राजस्थांनी सबद कोस

राजस्थांनी सबद कोस

[राजस्थानी हिन्दी बृहत् कोश]

[प्रथम खण्ड]

कर्ता

सीतारांम लाळस

व्युत्पत्ति आदि द्वारा—परिष्कारक

पं. नित्यानन्द शास्त्री दाधीच

[आशुकवि, कविभूषण, व्याकरण, साहित्य, कोशादि तीर्थ,
श्रीरामचरिताब्धिरत्नम् महाकाव्य आदि के प्रणेता]

प्रकाशक

राजस्थानी शोध संस्थान

जोधपुर [राजस्थान]

प्रकाशक
राजस्थानी शोध संस्थान
जोधपुर

प्रथम संस्करण

मुद्रक
हरिप्रसाद पारीक
साधना प्रेस
जोधपुर

समर्पण

जिन्होंने अपनी महती कृपा से
इस अकिंचन के जीवन में ज्ञानार्जन की जिज्ञासा जागृत कर
साहित्य अध्ययन की ओर आकृष्ट किया
उन
परम वन्दनीय पूज्य नानाजी
कविवर श्री सादूल्दानजी बोगसा, सरवड़ी (मारवाड़)
तथा
जिन्होंने कोश-निर्माण की अनुपम प्रेरणा प्रदान कर
प्रस्तुत कोश-निर्माण के पथ पर अग्रसर किया
उन
राजस्थानी के अनन्य सेवी, विद्यानुरागी
पं० हरिनारायणजी पुरोहित, बी. ए., विद्याभूषण, जयपुर
को
पावन स्मृति में
सादर समर्पित



Jaipur, Rajasthan

सन्देश

त्याग और बलिदान से ओतप्रोत राजस्थान का इतिहास जितना उज्ज्वल है उतना ही उज्ज्वल, समृद्ध और ओजस्वी यहां का साहित्य है। प्राचीन डिंगल गीत, कविराजा सूरजमल का वंशभास्कर, राठौड़ पृथ्वीराज की वेलि क्रिसन रुकमणिरी, ईसरदासजी के कुण्डलिये, ढोला मारू रा दूहा, मीरां बाई के पद, संतों की वाणियां तथा लोगों के कण्ठों में सुरक्षित विशाल लोक-साहित्य किसी भी प्रान्तीय भाषा के उच्चस्तरीय साहित्य के समकक्ष रखा जा सकता है। परन्तु इस भाषा का कोई व्याकरण और कोश न होने के कारण इस साहित्य का उचित मूल्यांकन तथा प्रचार भारत के अन्य प्रान्तों में नहीं हो पाया।

यह देख कर बड़ा हर्ष होता है कि श्री सीताराम लाळस ने पहले व्याकरण प्रकाशित कर और अब वृहद् राजस्थानी शब्द कोश का निर्माण कर इस अभाव की पूर्ति करदी है और इसका प्रथम खण्ड प्रकाशित होने जा रहा है। अब देश के विद्वान् राजस्थानी साहित्य का सही मूल्यांकन कर सकेंगे, ऐसी मेरी धारणा है।

श्री सीताराम लाळस एक साधारण अध्यापक हैं और उनके सीधे-सादे वेश तथा सरल स्वभाव को देख कर किसी भी व्यक्ति के लिए उनकी प्रकांड विद्वता और भाषा-शास्त्र में असाधारण गति का अंदाज लगाना कठिन हो जाता है। पर एक अवसर पर राजस्थानी शोध संस्थान के कार्यालय में जब मैंने कोश के कई एक अंशों की व्याख्या उनसे सुनी तो मैं उनकी विशाल जानकारी और असाधारण विद्वता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

राजस्थानी भाषा के इस कोश में विद्वान् सम्पादक ने अपनी ३० वर्ष की निरन्तर साधना के फलस्वरूप विस्तार के साथ राजस्थानी शब्दों के विभिन्न अर्थ, व्युत्पत्ति तथा जो अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं उससे कोश की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। इस कार्य के महत्व को समझ कर ही राजस्थान सरकार ने तथा भारत सरकार ने इसके प्रकाशनार्थ आर्थिक सहायता भी दी है।

मैं इस उपयोगी ग्रन्थ के सम्पादन के लिए श्री सीताराम लाळस को तथा सुन्दर प्रकाशन के लिए राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर व उसके प्रबन्धकों को हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी राजस्थानी शोध संस्थान इस प्रकार के सुन्दर प्रकाशन कर राजस्थानी साहित्य की अमूल्य सेवा करता रहेगा।

मोहनलाल सुखाड़िया

जेथ नदी जळ बहळ, तेथ थळ विमळ उलट्टै ।
तिमर घोर अंधार, तेथ रवि किरण प्रगट्टै ।
राव करीजे रंक, रंक सिर छत्र धरीजै ।
'मलू' तास विसवास, आस कीजे सिमरीजै ।

चख लहै अंध . पंगू चलण, मूनी सिद्धायत वयण ।
तो किया (करत) कहा न ह्वै क्रिसन, नारायण पंकज नयण ।। १

महात्मा मलूकदास

प्रबन्धकारिणी समिति की ओर से

राजस्थानी भाषा के एक सर्वांगीण कोश की कमी राजस्थान के विद्वान् और गण्यमान्य व्यक्ति कई वर्षों से अनुभव कर रहे थे। जहां तक मेरा ख्याल है आज से कोई ३०-३५ वर्ष पहले भूतपूर्व जोधपुर राज्य के दीवान सर सुखदेव ने एक राजस्थानी कोश बनवाने का प्रयत्न किया था। कोश-निर्माण सम्बन्धी अन्य जो भी प्रयास समय-समय पर हुए उनका विस्तृत वर्णन कोशकर्ता ने अपने निवेदन में किया है। मेरे मित्र स्वर्गीय ठाकुर भवानीसिंहजी, पोकरण, ने भी इस विषय में कई बार मेरे से चर्चा की। उनकी भी इस कार्य में बड़ी रुचि थी। इस वृहत् राजस्थानी शब्द-कोश का कार्य श्री सीतारामजी लाळस लगभग ३० वर्षों से कर रहे हैं। जिस लगन और निष्ठा से उन्होंने यह कार्य किया है वह वास्तव में सराहनीय है।

इतना बड़ा कार्य अकेले व्यक्ति से होना संभव नहीं था अतः कई व्यक्तियों ने समय-समय पर किसी न किसी रूप में उन्हें सहयोग दिया, जिसका जिक्र उन्होंने स्वयं किया है। कोश के लिए शब्द जब काफी संख्या में शामिल कर लिए गए और उन्हें अक्षर-क्रम से जमाया गया तो उनके सामने यह प्रश्न आया कि इस कार्य को पूर्ण रूप देकर प्रकाशित करवाया जाय।

राजस्थानी शोध संस्थान के संचालक श्री नारायणसिंह भाटी ने प्रबन्धकारिणी समिति के सामने यह प्रस्ताव रखा कि उक्त ग्रन्थ का प्रकाशन कार्य संस्थान अपने हाथ में लेले। प्रबन्धकारिणी समिति ने इसे अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य समझ कर सहर्ष स्वीकार किया। कोश को उदाहरण, मुहावरे, व्युत्पत्ति, आवश्यक टिप्पणियां आदि से सर्वांगीण रूप देने के लिए कोशकर्ता को एक विस्तृत योजना दी गई और उस योजना के अनुसार राजस्थानी का वृहद् कोश बनाने हेतु समिति ने अर्थ आदि की आवश्यक व्यवस्था भी की। इस प्रकार की योजना के अनुसार लगभग चार वर्ष तक निरंतर कार्य चलते रहने पर कोश का प्रथम भाग तैयार हुआ है। शेष तीन भागों पर अभी कार्य चल रहा है। यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि इस वृहत् कोश का प्रथम भाग एक बड़ी साहित्य-साधना के पश्चात् जनता के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है।

जनतंत्र में जनवाणी का बड़ा महत्व होता है। राजस्थानी यहां की जनता की मातृभाषा है। पर हमारा दुर्भाग्य है कि भारतवर्ष की अन्य भाषाओं की तरह राजस्थानी को संविधान में स्थान प्राप्त नहीं हो सका। पर यहां की जनता के हृदय में राजस्थानी का स्थान है और राजस्थान के नवयुवक विद्वानों ने भी इसके महत्व को समझ कर ही इस ओर पूर्ण अभिरुचि प्रकट की है।

राजस्थान सरकार ने भी 'प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान' जैसी महत्वपूर्ण संस्था कायम कर राजस्थानी व अन्य भाषाओं के ग्रंथों को सुरक्षित करने तथा विद्वानों के लिए उन्हें उपलब्ध कराने का अत्यन्त उपयोगी व सराहनीय कार्य किया है। राजस्थानी शब्द कोश इन ग्रंथों को समझने में तथा नये लेखकों को प्रोत्साहित करने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। एक तरह से देखा जाय तो राजस्थानी शब्द कोश समय की मांग है। आज जब विकेन्द्रीकरण द्वारा शासन सत्ता ग्राम जनता के हाथों में चली गई है तो यह आवश्यक है कि ग्राम जनता की भाषा को भी उचित महत्व दिया जाय और उसका अपना कोश व नया साहित्य बने जो यहाँ की जनता की भावनाओं का सही माध्यम हो। प्रस्तुत ग्रंथ को देख कर हमारे देश के बड़े विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है। अतः यह विद्वत्-वर्ग तथा जनता दोनों के लिए लाभप्रद सिद्ध होगा, ऐसी आशा है। राजस्थान सरकार व भारत सरकार ने इस ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ आर्थिक सहयोग दे कर संस्थान के कार्य को और भी सुलभ बना दिया जिसके लिए संस्थान उनका अत्यंत आभारी है।

झालावाड़ नरेश श्रीमान् हरिश्चन्द्रजी तथा कर्नल ठा० श्यामसिंहजी ने जो विशेष आर्थिक सहायता दी है, उसके लिए भी मैं प्रबन्धकारिणी समिति की ओर से उनका आभार स्वीकार करता हूँ।

असली कार्य तो इस कोश के सम्पादक श्री सीतारामजी लाळस व शोध संस्थान के संचालक श्री नारायणसिंहजी भाटी का है जिनके अथक प्रयत्न से ग्रन्थ का प्रकाशन इस रूप में सम्भव हो सका है। राजस्थानी साहित्य की जो सेवा इन्होंने की है उसका आभार आने वाली पीढ़ियाँ भी मानेंगी।

कोश का कार्य किस विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया गया है उसके सम्बन्ध में कुछ कहने का अधिकारी मैं नहीं हूँ, क्योंकि यह तो विद्वानों के ही कहने की बात है। पर मुझे यह आशा है कि यह कोश राजस्थानी साहित्य की बहुत बड़ी कमी को पूरा कर के राजस्थान की जनता की बहुत बड़ी सेवा करेगा और हमारी जो यह अभिलाषा है कि राजस्थानी भाषा को संविधान में मान्यता प्राप्त हो, उसे फलीभूत करने में भी यह अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा।

भैरूंसिंह (खेजड़ला)
अध्यक्ष
प्रबंधकारिणी समिति
चौपासनी शिक्षा समिति, जोधपुर

वसंत पंचमी
सं० २०११
जोधपुर

संचालकीय वक्तव्य

आधुनिक भारतीय भाषाओं में राजस्थानी भाषा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। पर इस भाषा के साहित्य के प्रकाशन की समुचित व्यवस्था न होने के कारण तथा कोश व व्याकरण के अभाव में इसे वह महत्व नहीं मिल पाया जिसकी वह अधिकारिणी थी। इस प्रान्त के विभिन्न राज्यों की सांस्कृतिक व ऐतिहासिक विशेषताओं को सर्वप्रथम विश्व के सामने आधुनिक ढंग से प्रकट करने का श्रेय कर्नल टॉड को है जिन्होंने न केवल यहाँ के इतिहास पर ही प्रकाश डाला वरन् यहाँ की साहित्यिक निधि तथा महत्वपूर्ण साहित्यकारों तथा कवियों की ओजस्विनी वाणी की भी यथास्थान प्रशंसा भी की। परन्तु यहाँ की भाषा पर भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण करते समय सर्वप्रथम वैज्ञानिक ढंग से विचार सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने किया। हालांकि कुछ और विदेशी विद्वानों ने भी इस बीच छोटे-बड़े प्रयत्न इस भाषा पर प्रकाश डालने के लिए किये पर उन सब में ग्रियर्सन का कार्य ही अधिक महत्वपूर्ण था। उन्होंने अपने सर्वे की जिल्द संख्या ९ में गुजराती और राजस्थानी भाषाओं को पृथक करते हुए प्रत्येक भाषा की व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं तथा बोलियों आदि पर बहुत उपयोगी कार्य किया और उन्हीं की सहायता से दूसरे इटली के विद्वान् डॉ० तैस्सीतोरी को राजस्थानी भाषा तथा साहित्य पर कार्य करने का अवसर मिला। उनका कार्यकाल १९१४ से १९१९ तक ही रहा पर इस काल में वे बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर गये। हस्तलिखित ग्रन्थों के सर्वेक्षण तथा 'वेलि क्रिसन रुकमणिरी' जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों के सुन्दर सम्पादन के साथ-साथ उन्होंने पुरानी राजस्थानी का व्याकरण भी लिखा तथा गुजराती और राजस्थानी के अलग-अलग अस्तित्व प्राप्त करने की सीमा रेखा पर बड़ी बारीकी तथा नपे-तुले ढंग से विचार किया। उनका यह कार्य केवल राजस्थानी व गुजराती भाषा के अध्ययन के लिए ही उपयोगी नहीं है वरन् अन्य सम्बन्धित भारतीय भाषाओं के लिए भी कई प्रकार से बड़े महत्व का है। यदि वे कुछ समय और जीवित रहते तो शायद राजस्थानी के लिए बहुत-सा उपयोगी कार्य कर जाते पर ऐसा न हो सका। उनके उस कार्य को किसी ने भी आगे नहीं बढ़ाया।

कुछ वर्षों बाद यहीं के विद्वानों ने कुछेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन कर लोगों में राजस्थानी के प्रति रुचि उत्पन्न की, उनमें श्री रामकरण आसोपा, जोधपुर, श्री सूर्यकरण पारीक, बीकानेर तथा पुरोहितजी श्री हरिनारायणजी, जयपुर का नाम उल्लेखनीय है। यह जितना भी कार्य हुआ इससे भाषा-विज्ञान के विद्वानों के हृदय में राजस्थानी के लिए बड़ी जिज्ञासा उत्पन्न हुई जिसके फलस्वरूप प्रसिद्ध भारतीय भाषाविद् श्री सुनीतिकुमार चटर्जी ने उदयपुर साहित्य संस्थान के तत्वावधान में राजस्थानी भाषा पर महत्वपूर्ण भाषण दिए, जो राजस्थानी की प्राचीनता और अन्य भारतीय भाषाओं से उसके सम्बन्ध पर अच्छा प्रकाश डालते हैं।

इधर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस भाषा के प्राचीन गौरव को सुरक्षित रखने और प्रकाश में लाने के लिए कई योग्य व्यक्ति तत्पर हुए, कितने ही प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन विभिन्न संस्थाओं द्वारा हाथ में लिया गया और आधुनिक राजस्थानी में नए पद्य तथा गद्य के लेखक भी समय की मांग के अनुकूल रचनाएँ प्रस्तुत करने लगे। राजस्थान की जनता ने अपनी मातृभाषा में अपने ही हृदय के उद्‌गारों को व्यक्त होते देख उसका समुचित आदर भी किया। और भारत के अनेक निष्पक्ष विद्वानों ने ऐसे प्रयत्नों की हृदय से प्रशंसा भी की। पर इस भाषा का व्याकरण और शब्द कोश, जब तक किसी उपयुक्त विद्वान् की साधना के फलस्वरूप सामने नहीं आया तब तक कई लोगों को राजस्थानी को एक स्वतंत्र तथा सशक्त भाषा के रूप में स्वीकार करने में बड़ी आपत्ति थी। सौभाग्य से राजस्थान की इस समस्या को पूर्ण करने वाला व्यक्ति उसे मिल गया। श्री सीताराम लाळस ने ७-८ वर्ष पहले अपना व्याकरण प्रकाशित करवाया था जिसकी प्रशंसा भाषा विज्ञान के सभी विद्वानों ने की और लगभग ३० वर्ष

के असाध्य परिश्रम के फलस्वरूप उनका 'राजस्थानी सबद कोस' चार भागों में प्रकाशित हो रहा है। इसका पहला भाग आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

पूरे कोश मे करीब सवा लाख शब्दों को उनके हिन्दी अर्थ और उदाहरणों तथा मुहावरों आदि सहित प्रकाशित किया जा रहा है। यह कोश कितना विद्वतापूर्ण और उपयोगी है यह तो विद्वानों के समझने और कहने की बात है, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि श्री सीतारामजी का यह प्रयत्न राजस्थानी भाषा के लिए ही नहीं वरन् राष्ट्र भाषा हिन्दी और उससे सम्बन्धित अन्य भारतीय भाषाओं के लिए भी अत्यन्त उपयोगी और ऐतिहासिक महत्व का है।

कोश-निर्माण का कार्य श्री सीतारामजी ने सन् १९३२ में पंडित हरिनारायणजी विद्याभूषण की प्रेरणा से प्रारंभ किया था और तब से वे निरन्तर इस पर कार्य करते रहे। इतने बड़े कार्य के लिए आर्थिक सहायता की बड़ी आवश्यकता थी जो उन्हें समय-समय पर साहित्य-प्रेमी सज्जनों से मिलती रही। पर कर्नल ठा० श्यामसिंहजी ने इस कार्य के महत्व को समझ कर विशेष आर्थिक सहायता का प्रबन्ध किया जिसके फलस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में शब्दों तथा उदाहरणों का संकलन संभव हो सका। इसके पश्चात् राजस्थानी शोध संस्थान की प्रबन्धकारिणी समिति ने इस कार्य को संस्थान के अन्तर्गत ले लिया। अभी तक प्रेस कॉपी बनने तथा कोश को पूर्णता प्रदान करने में काफी काम शेष था, वह काम विस्तृत योजना के अनुसार संस्थान के तत्वावधान में श्री सीतारामजी करते रहे। कर्नल ठा० श्यामसिंहजी की भी आर्थिक सहायता संस्थान को इस कार्य में मिलती रही। इतने बड़े ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए बहुत बड़ी धन-राशि की आवश्यकता थी। अतः झालावाड़ नरेश श्रीमान् हरिश्चन्द्रजी ने पहले-पहल पांच हजार रुपये की राशि इस कार्य के लिए प्रदान की और कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। तत्पश्चात् राजस्थान राज्य के मुख्यमंत्री श्री मोहनलालजी सुखाड़िया तथा केन्द्रीय सरकार के विज्ञान अनुसंधान व सांस्कृतिक मंत्री श्री हुमायूं कबीर को यह कार्य दिखाने का अवसर संस्थान की प्रबन्धकारिणी समिति के अध्यक्ष श्री भैरूंसिंहजी खेजड़ला M. L. A. व मंत्री श्री विजयसिंहजी सिरियारी M. P. के प्रयत्नों के फलस्वरूप मिला और उसी वर्ष राजस्थान सरकार से ९४७०) रु० की तथा भारत सरकार से १७०००) रु० की आर्थिक सहायता कोश के प्रकाशनार्थ प्राप्त हुई। तथा दूसरे वर्ष राजस्थान सरकार ने ७५३०) रु० की सहायता और दी जिसके लिए उपरोक्त दोनों महानुभावों का मैं हृदय से आभार स्वीकार करता हूं। सरकारी सहायता शीघ्रातिशीघ्र दिलवाने में राजस्थान शिक्षा मंत्रालय के सचिव श्री विष्णुदत्तजी शर्मा I. A. S., वित्त विभाग के उपसचिव श्री विनोदचन्द्रजी पांडे I.A. S. तथा श्री जगन्नाथसिंहजी मेहता I. A. S., संचालक, शिक्षा विभाग और केन्द्रीय सरकार के डॉ० रोजेरियो संयुक्त शिक्षा सलाहकार तथा डॉ० रघुवीरसिंहजी, सीतामऊ M. P. का पूरा सहयोग मिला, जिसके लिए भी मैं संस्थान की ओर से उनका आभार प्रकट करता हूं।

जैसा कि बड़े कामों में प्रायः हुआ करता है, इस कोश के प्रकाशन में भी हमें अजीब तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, जिनका हमें अनुमान नहीं था। उन कठिनाइयों के फलस्वरूप प्राप्त अनुभव भी एक धरोहर है। पर इन कठिनाइयों को दूर करने का श्रेय ठा० भैरूंसिंहजी खेजड़ला तथा विजयसिंहजी सिरियारी के अतिरिक्त कर्नल ठा० श्यामसिंहजी, श्री गोवर्द्धनसिंहजी I.A.S. तथा राजा साहिब देवीसिंहजी भाद्राजून को है जिन्होंने इस कार्य के राष्ट्रीय महत्व को समझते हुए हर कठिनाई में मेरी पूरी सहायता की अन्यथा शायद इस कोश का यह प्रथम खण्ड अब तक प्रकाशित नहीं हो पाता।

अंत में मैं उन सभी महानुभावों का आभार प्रदर्शित करना आवश्यक समझता हूं जिन्होंने परोक्ष या अपरोक्ष रूप में इस कार्य को पूर्णता प्रदान करने में सहयोग दिया है या जिन्होंने हमें इस क्षेत्र में विशेष प्रकार के अनुभव प्राप्त करने का अवसर दिया है।

नारायणसिंह भाटी
संचालक
राजस्थानी शोध-संस्थान, जोधपुर

निवेदन

राजस्थानी भाषा एवं साहित्य अत्यन्त सम्पन्न होते हुए भी आधुनिक ढंग से निर्मित कोश का इसमें सर्वथा अभाव ही रहा है। यद्यपि डिंगल में रचे गये नाम माला कोश, अनेकार्थी कोश तथा एकाक्षरी कोश अल्प संख्या में उपलब्ध अवश्य हैं परन्तु साहित्य के अध्ययन में इनकी उपादेयता प्रायः नहीं के बराबर है। प्रस्तुत कोश का निर्माण राजस्थानी साहित्य में इसी अभाव की पूर्ति करने का एक प्रयास मात्र है। अन्य भाषाओं में निर्मित अधिकांश कोश अपने पूर्ववर्ती कोशों पर ही आधारित होते हैं परन्तु राजस्थानी में कोश-रचना की अपनी परम्परा से पृथक इस प्रकार के कोश निर्माण के पथ में प्रथम चरण ही है। वस्तुतः कोश-सम्पादन का कार्य सब प्रकार के साहित्यिक कार्यों से बहुत ही कठिन परिश्रम एवं व्ययसाध्य है। अतः मुझे प्रायः उन सभी कठिनाइयों से गुजरना पड़ा है जो किसी भाषा के प्रथम कोश के निर्माण के समय आती हैं।

प्रस्तुत कोश राजस्थानी में आधुनिक ढंग का सर्व प्रथम कोश होने के कारण कुछ निश्चित सिद्धान्तों का निर्धारण आवश्यक था। सब से बड़ी समस्या शब्द-संग्रह की थी। जीवित और प्रचलित भाषाओं में नित्य नए शब्द बनते रहते हैं तथा नित्य नया साहित्य भी प्रकाशित होता रहता है। अतः पुरानी पुस्तकों के साथ ही नवीन पुस्तकों में से भी शब्द-संग्रह करना आवश्यक था। यह कार्य जितना आवश्यक था उससे कहीं अधिक दुरूह भी था। पुरानी पुस्तकों में अधिकांश हस्तलिखित ग्रंथ थे। शब्दों के बीच अवकाश या स्थान देने की परिपाटी उस युग में नहीं के समान थी। लिपिकर्ताओं के अज्ञान से पुस्तकों के बहुत से शब्दों में परिवर्तन हो गया था। जीर्णशीर्ण अवस्था में मिलने वाले ये अधिकांश ग्रंथ अपूर्णावस्था में थे। किन्हीं के कुछ पृष्ठ ही गायब थे तो किन्हीं प्रतियों में शब्दों के शुद्ध रूपों का पता तक नहीं चलता था। ऐसी स्थिति में शब्दों के अर्थ-ग्रहण की समस्या बड़ी विकट थी। जो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं उनमें भी अधिकांश का प्रकाशन उच्च स्तर का न हो सका। पुराने ढंग से छपी हुई बहुत सी पुस्तकों में भी आठ-आठ और दस-दस शब्द और यहाँ तक कि पूरे चरण और पूरी पंक्तियाँ एक साथ छपी हुई मिलती हैं। शब्दों के रूपों में विभिन्नता का पाया जाना तो साधारण सी बात है। प्रकाशित पुस्तकों में ऐसी पुस्तकें अल्प संख्या में ही प्राप्त होती हैं जिनमें फुटनोट में पाठान्तर की व्यवस्था की गई है। शब्द वर्तनी के दृष्टि-कोण से कई पुस्तकों का सम्पादन भी दोषपूर्ण हुआ है। ऐसी अवस्था में शब्द-चयन कार्य बहुत ही कठिन हो गया। इसके विपरीत जिन प्रकाशित पुस्तकों का प्रकाशन एवं सम्पादन सुन्दर ढंग से हुआ है उनकी टीकायें, शब्दानुक्रमणिकायें, कठिन शब्दों के अर्थ हमारे बहुत ही सहायक हुए हैं।

सभी प्रकार की पुस्तकों में से शब्द-चयन स्वयं मेरे द्वारा ही हुआ है। प्रकाशित पुस्तकों को तो मैंने एक बार पढ़ कर लिए जाने वाले शब्दों को रेखांकित कर दिया और लेखकों ने उन शब्दों की स्लिपें (चिटें) तैयार करलीं। हस्तलिखित ग्रंथों के शब्दों की स्लिपें (चिटें) लेखकों के पास बैठ कर मैंने स्वयं ने तैयार कराईं। इसके अतिरिक्त सुदूर देहाती गाँवों में घूम-घूम कर लोहारों, सुनारों, खातियों, चमारों, तेलियों, गूजरों, कहारों, जुलाहों, धुनियों, गाड़ीवानों, कसारों, कुश्तीबाजों, सिकलीगरों, सिलावटों, महाजनों, बजाजों, पंसारियों, दलालों, महावतों, जुआरियों, सईसों आदि से सम्बन्धित शब्द भी एक-त्रित करने का प्रयत्न किया गया। पशु-पक्षी तथा अन्य जीव-जन्तु आदि से सम्बन्धित शब्द भी लिए गये। इतिहास, भूगोल, गणित, दर्शन शास्त्र, खगोल शास्त्र, शकुन शास्त्र, ज्योतिष, विज्ञान, वास्तु विद्या, शालिहोत्र, कृषि, राजनीति, युद्ध, अर्थ-शास्त्र, काम विज्ञान, धर्म शास्त्र, नीति शास्त्र, वैद्यक आदि से संबंधित वे सभी शब्द लेने का भी प्रयास किया गया है जिनका राजस्थानी साहित्य व भाषा में प्रयोग हुआ है अथवा जिनका यहाँ के जन-जीवन में प्रचलन है। गृहस्थी के पदार्थों, पकवानों, मिठाइयों, विवाह आदि की रस्मों, तरका-रियों, फल-फूलों, पेड़-पौधों, पहिनने के आभूषणों, वस्त्रों,

अनाजों, बरतनों, देवी-देवताओं, योगासनों आदि के नामों एवं पारिभाषिक शब्द भी लेने के लिए सम्बन्धित व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त किया गया है। विभिन्न विषयों के अनेक शब्दों के अर्थ एवं परिभाषा में जहाँ भी तनिक शंका हुई, वहाँ विषय-सम्बन्धित विद्वज्जनों से बिना किसी हिचकिचाहट के सम्पर्क स्थापित कर शब्दों का अर्थ या परिभाषा ज्ञात की गई।

राजस्थान में युद्ध एक प्रिय विषय रहा है, अतः युद्ध में प्रयुक्त होने वाले अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र यहाँ पाये जाते हैं। विभिन्न शस्त्रागारों में जाकर प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों को देख कर उनकी वास्तविक परिभाषा इस कोश में दी गई है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक व्यक्तियों की जीवनियाँ, प्राचीन स्थानों एवं त्यौहारों का वर्णन भी यथा स्थान पर संक्षिप्त रूप में दे दिया गया है जो व्यक्ति विशेष अथवा घटना विशेष की पूरी जानकारी देने में सहायक ही सिद्ध होगा। शब्दार्थ के साथ साथ व्यापक रूप में प्रयुक्त होने वाले मुहावरों तथा कहावतों को भी यथा स्थान देने का प्रयत्न किया गया है। इतने पर भी मैं यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि राजस्थान में प्रचलित अथवा राजस्थानी साहित्य में प्रयुक्त सभी शब्दों का समावेश इस कोश में हो गया है। यद्यपि वैसे ही किसी भाषा के समस्त शब्दों का संग्रह एक महान् कठिन कार्य है तथापि किसी जीवित भाषा में शब्दों का आगम निरंतर होता ही रहता है। कोश अधिकतम पूर्णता प्राप्त कर सके, इसी उद्देश्य से मेरी ओर से, प्रेस में पृष्ठों के छापे जाने के समय तक मिलने वाले नवीन शब्दों को कोश में अंकित करने का प्रयास चलता ही रहा। प्राचीन राजस्थानी में कुछ ऐसे अटपटे शब्दों का प्रयोग मिलता है जिनका प्रयोग बाद के साहित्य में नहीं हुआ और न होने की भविष्य में आशा ही है। कई बार तो ऐसे शब्द अपने मूल अर्थ से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। कई कोशकारों के मत से इस प्रकार के शब्दों को कोश में स्थान नहीं देना चाहिए।[1] तथापि प्राचीन राजस्थानी के अध्ययन एवं उसे ठीक तरह समझने के उद्देश्य से ही ऐसे शब्दों को इस कोश में स्थान दिया गया है। जीवित भाषा होने के फलस्वरूप स्थानिक प्रभावों के कारण इसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन एवं रूपान्तर होते रहते हैं तथा नए-नए शब्द मिलते रहते हैं। इस कोश में कुछ ऐसे विदेशी शब्दों को भी स्थान दे दिया है जो साहित्य एवं लोक-व्यवहार में रूढ़िग्रस्त हो चुके हैं और हमारे व्याकरण के नियमों से अनुशासित होते हैं। ऐसे शब्दों के आगे कोष्टक में उनके शुद्ध मूल रूप भी प्रस्तुत कर दिए गये हैं।

शब्दों की प्रामाणिकता एवं अर्थ की स्पष्टता का ध्यान रखने के फलस्वरूप शब्दों के साथ उदाहरण भी देने का निश्चय किया गया था। किन्तु यह निश्चय करना वस्तुतः एक कठिन कार्य था कि किन-किन शब्दों के उदाहरण दिए जायें और किन-किन शब्दों के उदाहरण छोड़ दिये जायें। इस सम्बन्ध में कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। शब्दों के कम प्रयोग एवं कम प्रचलन के कारण तो उनके उदाहरण दिये ही गए हैं परन्तु अनेक शब्दों के ठीक उपयोग को बताने के लिए भी उनके उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। साथ-साथ ऐसे शब्दों के भी उदाहरण दे दिए गए हैं जिनके सम्बन्ध में हमारे दृष्टिकोण से किसी प्रकार की आपत्ति या आशंका हुई है। दिए गए उदाहरणों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि कहीं-कहीं वे लम्बे हो गए हैं। शब्द-कोश का एक उद्देश्य उसे उपयोग में लेने वालों की जिज्ञासा पूरा करना भी है अतः उदाहरण में उतनी ही पंक्तियाँ दी गई हैं जिनसे सम्बन्धित शब्द का अर्थ स्पष्ट हो जाय, फिर वह केवल एक वाक्य के रूप में है अथवा उसका विस्तार चार-पांच पंक्तियों में हो गया है। कुछ शब्दों के अर्थ विशेष की पुष्टि के लिए यद्यपि उदाहरण में गीतों की एक दो पंक्तियाँ दी गई हैं परन्तु केवल उन पंक्तियों से अर्थ स्पष्ट नहीं होता। कारण यह है कि शब्द के उस विशेष अर्थ का सम्बन्ध पूरे गीत से होता है। राजस्थानी के डिंगल गीतों में यह परम्परा है कि उनमें शब्द की पुनरावृत्ति नहीं होती किन्तु अर्थ-चमत्कार के लिए पूर्व के द्वाले के शब्द या शब्दों के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग होता है। अतः इस प्रकार के शब्द का अर्थ गीत के पूर्व के द्वालों से सम्बन्धित होता है। उदाहरण के लिए **असत** शब्द में अर्थ संख्या ७ **शत्रु, दुश्मन** दिया हुआ है और अर्थ की पुष्टि के लिए **सूजा हरो असतां सालै, हालै मन मांनिए हुए** उदाहरण दिया हुआ है। यहां यह **असतां** शब्द इस गीत के पूर्व के द्वाले **बोलियां तणी घणी धर बावै, फाबै जुध जुध**

[1] देखो 'कोश कला'—रामचन्द्र वर्मा, पृ० २८, २९।

करण फते के बोखियां शब्द के लिए ही प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ भी शत्रु ही है। अतः कोश का उपयोग करने वाले सज्जन जहाँ ऐसी शंका का अनुभव करें वहाँ गम्भीरता-पूर्वक विचार करें।

मूल एवं मुख्य शब्द के साथ पर्यायवाची शब्द भी दिए गए हैं। राजस्थानी में किसी-किसी शब्द के अनेकों पर्यायवाची शब्द मिलते हैं, अतएव किसी शब्द के साथ इस प्रकार के पर्यायवाची शब्दों की संख्या कुछ अधिक हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसे राजस्थानी की विशेषता समझ कर स्वीकार कर लेना ही उचित है। इन पर्यायवाची शब्दों को यथास्थान अक्षर-क्रम से भी ले लिया गया है। बहुत से शब्द ऐसे भी होते हैं जिनके योग से अथवा जिनके आगे अन्य शब्द लग कर और अन्य शब्द भी बनते हैं। जैसे **गज** से **गजानन, गजकांन, गजगति, गजधड़, गजपति, गजपत, गजपाळ, गजबंध** आदि ऐसे शब्दों को अलग-अलग यथा स्थान अक्षर क्रम में तो लिया ही गया है परन्तु इनको उन शब्दों के साथ भी लिया गया है जिनके योग से या जिनके साथ लग कर वे बने होते हैं। पर्यायवाची एवं यौगिक शब्दों के अतिरिक्त मुख्य शब्द के साथ रूप भेद, अल्पार्थ, महत्ववाची एवं विलोम शब्द तथा क्रिया प्रयोग आदि भी यथा स्थान अक्षर क्रम से दिए गए हैं।

मोटे तौर पर प्रथम खंड के प्रकाशित होने तक कुल मिला कर ८००००० (आठ लाख) के लगभग स्लिपें (चिटें) तैयार की गईं। लगभग ३०० राजस्थानी पुस्तकों से शब्द इकट्ठे किये गये। पांच हजार के लगभग फुटकर राजस्थानी डिंगल गीतों से भी शब्द संग्रह किया गया। कोश की पूर्णता चार खंडों में होगी और जहाँ तक अनुमान किया जाता है इन चारों खंडों की पृष्ठ संख्या लगभग ३५०० के होगी। शब्द संख्या को अधिक से अधिक बताने में आजकल के कोश निर्माताओं में एक प्रकार की होड़-सी लग रही है। किसी भी प्रकार से शब्दों की संख्या अधिक बताई जा सकती है परन्तु यह निश्चित है कि जहाँ कोश की पृष्ठ संख्या तो कम होती है और शब्द संख्या अधिक बताई जाती है; ऐसे कोशों में शब्दों के अर्थ अधिक विस्तृत एवं स्पष्ट रूप से नहीं मिल सकते। इनमें अर्थों का स्थान कोरी शब्द संख्या ही घेरे रखती है। चूंकि अधिकतर शब्द-कोशों की शब्द संख्या के उल्लेख का उद्देश्य प्रचार मात्र होता है, अतः ये शब्द संख्यायें बहुत भ्रामक और प्रायः निरर्थक होती हैं। किसी विद्वान का यह कथन पूर्ण सत्य है कि शब्द संख्या का महत्त्व तो तभी माना जायगा जब कि गृहीत शब्दों के अर्थों का विवेचन और व्याख्या भी समुचित रूप से हो। यदि ऐसा नहीं है तो शब्द संख्या वह धोखे की आड़ है जिसकी ओट में ग्राहकों का भली भांति शिकार होता रहता है। ऐसी अवस्था में कोश की शब्द संख्या बताना बड़ा जोखिम का काम है और वह भी उस समय जब कि कोश के चार खंडों में से केवल एक खंड ही प्रकाशित हुआ हो एवं बाद के खंडों के पृष्ठों के प्रेस मे जाने तक नित्य नए-नए शब्दों का समावेश हो जाता हो। फिर भी अक्षर-क्रम से तैयार किए गए रजिस्टरों से अनुमान लगाये जाने पर प्रस्तुत कोश में कुल शब्द संख्या १२५००० (एक लाख पच्चीस हजार) के लगभग ठहरती है। इस संख्या में न्यूनाधिकता होना संभव है।

देवनागरी लिपि में प्रकाशित कोशों के शब्द-क्रम में भी विभिन्नता पाई जाती है। प्राचीन वस्तु एवं विषय-वर्ग को परम्परा को छोड़ दिया जाय तब भी आधुनिक ढंग से प्रकाशित कोश में भी समानता नहीं पाई जाती है। प्रायः बड़े-बड़े विद्वान अपने-अपने विचारों और सिद्धान्तों के अनुसार क्रम में कई प्रकार के छोटे-मोटे अंतर स्थिर कर लेते हैं और उन्हीं के अनुसार अपने कोश का निर्माण करते हैं। अनुस्वारों के सम्बन्ध में अधिकांश कोशकारों ने अनुस्वार-प्रधान प्रणाली को ही अपनाया है। देवनागरी वर्णमाला में अनुस्वार का स्थान स्वरों के अंत में है अतः कई शब्द कोशों में इसी को ध्यान में रख कर अनुस्वार को स्थान दिया गया है। राजस्थानी में अनुनासिक के रूप में पंचम् वर्ण यथा ङ, ञ, ण, न एवं म का उपयोग नहीं होता है। भाषा में अनुस्वार के व्यापक रूप को देखते हुए उसे वर्ग के आरम्भ में ही लिखने का निश्चय किया गया। इसके अतिरिक्त अनुस्वार और चंद्रबिंदु के प्रयोग की भी बड़ी समस्या थी। इन दोनों का प्रयोग किया जाता है किन्तु दोनों के युक्त प्रयोग के कारण कोई निश्चित सीमा-रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है कि कौनसा प्रयोग चंद्र बिन्दु का है और कौनसा अनुस्वार का। राजस्थानी कवियों ने आवश्यकता होने पर ध्वनि कम या अधिक शक्तिशाली करने

के लिए इसमें बहुत स्वतन्त्रता बरती है। कोश आरम्भ करने के पहिले इस सम्बन्ध में निश्चित स्थिर करना अत्यन्त आवश्यक था अतः हमने इन दोनों के स्थान पर एक मात्र अनुस्वार लेना ही निश्चित किया और उसे वर्ण के आरंभ में ही स्थान दिया गया।

राजस्थानी में कुछ विशेष ध्वनियों को प्रकट करने के लिए कुछ विशेष वर्ण हैं यथा ल़ या ल या व़, स़ आदि। साधारणतया ल़ और ल का क्रम कुछ जटिल है। नीचे बिंदी वाले शब्दों को पहिले लेने की परिपाटी रखी गई है। इस नियम से **आळ** शब्द पहिले होगा तथा **आल** शब्द बाद में। सम्पूर्ण कोश में प्रायः इसी नियम का पालन किया जा रहा है किन्तु इस नियम का कठोरता से पालन करने पर यह अनुभव हुआ कि सम्बन्धित शब्द दूर-दूर पड़ जाते हैं और जिज्ञासु पाठकों को निराशा होती है। इन दोनों में उच्चारण-भेद को स्वीकार करते हुए भी पाठकों को जटिलता एवं दुरूहता से बचाने के लिए क्रम में दोनों के मध्य कोई विशेषता नहीं बरती गई, किन्तु समान शब्दों में इसका कुछ ध्यान अवश्य रखा गया है जिसके अनुसार **अकल, गल, आल** आदि शब्द **अकळ, गळ,** और **आळ** आदि के तत्काल बाद में ही लिए गये हैं। इसके अतिरिक्त बहुत प्रयत्न करने पर भी सम्बन्धित प्रेस व़ एवं स़ के टाइप की व्यवस्था नहीं कर सका, अतः व़ और स़ से सम्बन्धित शब्द व और स के ही अन्तर्गत दे दिए गये हैं। द्वितीय खण्ड में व़ और स़ की भी व्यवस्था हो सकेगी, ऐसी पूर्ण आशा है।

इस प्रणाली के आधार पर राजस्थानी कोश-निर्माण का प्रथम प्रयास होने के कारण शब्दों की व्युत्पत्ति का कार्य अत्यन्त कठिन था। शब्द की ठीक व्युत्पत्ति के अभाव में उसके सही अर्थ या उसकी आत्मा तक पहुँचना बहुत कठिन होता है। किसी वस्तु का वास्तविक रूप तो उसके आधार द्वारा ही प्रकट होता है। अतः शब्दों की उचित व्युत्पत्तियों के अभाव में कोश प्रायः अपूर्ण ही रह जाता है। प्रस्तुत कोश में शब्दों की व्युत्पत्ति देने में हम जो समर्थ हुए हैं, उस सम्बन्ध में स्वर्गीय विद्यानुरागी पं० नित्यानन्दजी शास्त्री, चाँद बावड़ी, जोधपुर का सहयोग चिरस्मरणीय रहेगा। राजस्थानी का मूल उद्‌गम संस्कृत से सम्बन्धित है। शास्त्रीजी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। संस्कृत के अनेक ग्रंथ (कोश, व्याकरणादि) उन्हें कण्ठस्थ थे। शब्दों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में उनकी प्रतिभा अद्‌भुत थी। उन्होंने कोश के सब शब्दों को सुन कर उनकी सही व्युत्पत्तियाँ बताईं एवं अशुद्ध व्युत्पत्तियों को शुद्ध किया। इस कार्य में यदि आपका सहयोग नहीं मिलता तो निस्संदेह व्युत्पत्तियों की दृष्टि से यह कोश अधूरा ही रह जाता। (परम) पूजनीय होने के नाते उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना या धन्यवाद अर्पण करना उनकी प्रतिभा के समक्ष निरी तुच्छता ही होगी। अतः मैं तो यही कहूँगा कि उनके शुभाशीर्वाद ने सदैव मेरा पथ प्रशस्त किया है। इसके लिए मैं उनका सदैव ऋणी हूँ। यथासम्भव प्रत्येक शब्द के साथ व्युत्पत्ति देने का प्रयत्न किया गया है। मूल शब्द से वर्तमान शब्द के स्वरूप तक का विकास भी आवश्यकतानुसार दिया गया है। यथाः— **आई** सं०, **आर्या** प्रा०, **अज्जा** अप०, **आजी** रा०, **आई**, आयी अर्थात् दुर्गा। इसी प्रकार **कोसीस**— सं० **कपि शीर्षक**, प्रा० **कवि सीसग**, अप० **कवसोस**, रा० **कोसीस** अर्थात् किले या गढ़ की दीवार में थोड़ी-थोड़ी दूर पर त्रिकोणाकार स्थान या कंगूरा अथवा शिखर। कुछ शब्दों के साथ उनका सन्धि-विच्छेद एवं समास का स्पष्टीकरण भी कर दिया गया है जिससे जिज्ञासुओं को अर्थ समझने में सुगमता होगी और साथ ही साथ उनके ज्ञान की वृद्धि में भी यह सहायक होगा। जैसे— **ओखधीस**— सं० **औषधि+ईश** अर्थात् **चंद्रमा। इंदरावर**— सं० **इंदिरा+वर** अर्थात् **लक्ष्मीपति, विष्णु।** कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार धातुओं को उपसर्गों अथवा प्रत्ययों से पृथक कर के भी दर्शाया गया है। यथा—**आसन्न = आ+सद्+क्त**। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो अपने भिन्न-भिन्न अर्थों में चार-चार और छः-छः भिन्न-भिन्न मूलों से निकले हैं। उदाहरण के लिए **असत्** शब्द अपने विभिन्न अर्थों में— **सं० असत्, सं० असत्वर, सं० अस्त, सं० असत्य, स० असत्व, सं० अस्थि** आदि से विकृत हुआ है। शब्द की व्युत्पत्ति देते समय शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थों पर अधिक ध्यान दिया गया है। इन सब का श्रेय पं० नित्यानन्दजी शास्त्री को ही है। उनके प्रयास से ही ऐसे अनेक शब्दों की व्युत्पत्तियाँ देना सम्भव हो सका है जो यद्यपि दुर्लभ नहीं तो दुरूह अवश्य ही थीं। उदाहरणार्थ **छोकरौ** एवं **डीकरौ** शब्दों की व्युत्पत्तियाँ उन्होंने संस्कृत के **शोकहर** एवं **दीप्तिकर** से मानी है। यह वस्तुतः उनकी गहरी

पैठ एवं अनोखी सूझ का ही प्रमाण है। इतना सब कुछ होने पर भी यह तो नहीं कहा जा सकता कि कोश में दी गई सब व्युत्पत्तियाँ अपने में पूर्ण हैं। उनमें मतभेद हो सकता है। इसके अतिरिक्त भाषा विज्ञान का भी निरन्तर विकास होता जा रहा है। भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा नित नवीन सिद्धान्तों की स्थापना की जा रही है। ऐसी स्थिति में आज जो सत्य मानी जाने वाली व्युत्पत्ति कल गलत सिद्ध हो जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। विकासोन्मुख अवस्था का स्वागत करना ही चाहिए।

कोश में अर्थों का महत्व सबसे अधिक है। कोश का मुख्य उपयोग अर्थ, परिभाषा या व्याख्या जानने के लिए ही किया जाता है। अन्य उपयोग प्रायः गौण होते हैं, अतः इस बात का ध्यान रखने का विशेष प्रयत्न किया गया है कि शब्दों के अर्थ या उनकी व्याख्या ठीक प्रकार से स्पष्ट हो जाय, सहज में बोधगम्य हो जाय एवं अर्थ देखने में पूर्ण सुविधा हो, इसी दृष्टि से शब्द के विभिन्न अर्थों को अलग-अलग वर्गों में बाँट दिया गया है और पार्थक्य प्रकट करने के लिए उनके साथ संख्यासूचक अंक भी दे दिए गये हैं। आवश्यकता होने पर अर्थ स्पष्ट करने के उद्देश्य से शब्द के साथ कुछ विशेष विवरण भी प्रस्तुत किया गया है जो उस शब्द के सम्बन्ध में अतिरिक्त जानकारी देने में सहायक होगा। अर्थ देने के लिए प्रायः पर्याय एवं व्याख्या दोनों विधियाँ अपनाई गई हैं। जहाँ 'अनंग', 'मार', 'मदन' आदि के आगे केवल कामदेव ही लिखना पर्याप्त समझा गया है वहाँ कुछ शब्दों की पूरी व्याख्या भी दी गई है। प्रयत्न यह किया गया है कि जो परिभाषाएँ दी जायें वे जटिलताओं से मुक्त तथा दुरूहताओं से रहित हों, जिससे वे साधारण पाठकों को भी भली प्रकार बोधगम्य हो सकें। शब्दों के साथ जो क्रिया प्रयोग, मुहावरे, कहावतें, रूप-भेद, अल्पार्थ, महत्त्ववाची आदि शब्द हैं वे सब उन्हीं अर्थों के तुरन्त बाद ही दिए गए हैं जिनसे कि वे सम्बन्धित हैं। अर्थ और व्याख्या मुख्य या अधिक प्रचलित शब्द के साथ देकर उस शब्द के अन्य रूपभेदों के सम्मुख उस शब्द का निर्देश कर दिया गया है। यदि इस शब्द का निर्देशन शब्द के किसी अर्थ विशेष से ही संबंध है तो उस निर्देश के आगे संबंधित अर्थ का संख्यासूचक अंक भी दे दिया गया है। इस प्रकार के स्पष्टीकरण से, आशा है कि पाठक एवं जिज्ञासु जन सहज ही में आशय समझ लेंगे और तुरन्त अभीष्ट अर्थ तक पहुँच जायेंगे।

प्रस्तुत कोश के निर्माण की एक लम्बी कहानी है। जब से राजस्थानी साहित्य से मेरा परिचय हुआ तभी से एक सर्वाङ्ग, पूर्ण और बृहत् कोश का अभाव मुझे खटकता रहता था। मैंने अपनी जिज्ञासा, यद्यपि वह मेरा दुस्साहस ही था, राजस्थानी के अनन्य सेवी पुरोहित श्री हरिनारायणजी के समक्ष प्रकट की। इस पर उन्होंने कोश सम्बन्धी कुछ राजस्थानी पुस्तकें मेरे पास भेजीं। पुस्तकों के सम्बन्ध में मैंने पुनः उन्हें अपनी अल्प मति के अनुसार कुछ सूचना दी। इसके प्रत्युत्तर में मुझे दिनांक ६-४-३२ को उनका लिखा हुआ पत्र मिला। कहना न होगा कि यही पत्र इस कोश के निर्माण की सम्पूर्ण शक्ति अपने में समेट कर लाया था। यही पत्र इस कोश के निर्माण का मुख्य प्रेरणा-स्रोत था। पत्र के भावों ने हृदय पर प्रभाव जमाया, एक नवीन प्रेरणा मिली, पथ प्रशस्त हुआ। इससे यद्यपि राजस्थानी भाषा के बृहत् कोश का सूत्रपात भले ही न हुआ हो परन्तु कोश-निर्माण का विचार तो दृढ़ एवं निश्चित रूप से हो ही गया। उन्हीं दिनों में मैंने 'सूरज-प्रकाश' आदि कुछ हस्तलिखित ग्रंथों से शब्द छांट कर उनकी एक लम्बी सूची बना कर पुरोहित श्री हरिनारायणजी के पास प्रेषित की। उन्होंने उस सूची को पसन्द नहीं किया किन्तु साथ में प्रकाशित अथवा अप्रकाशित ग्रंथों से शब्द छांटने के तरीके के सम्बन्ध में अपने सुझाव भेज दिए। उन्हीं सुझावों के अनुसार नए सिरे से शब्द संग्रह का कार्य आरंभ कर दिया। पहला प्रयास होने एवं समयाभाव के कारण इसकी गति अति धीमी रही। कुछ सज्जन ऐसे भी थे जो शब्द देखने के बहाने स्लिपें ले जाते और लाख कहने पर भी वापिस लौटाने का नाम तक नहीं लेते। ऐसी अवस्था में इस प्रकार की स्लिपों को फिर से तैयार करना पड़ा। ऐसे विशाल कार्य में इस प्रकार की छोटी-बड़ी कठिनाइयाँ तो आती ही हैं। पुरोहित श्री हरिनारायणजी की इस सम्बन्ध में कुछ विशेष कृपा रही। कोश के शब्द-संग्रह की प्रगति से मैं उन्हें निरन्तर सूचित करता रहता था। कई बार दो-दो मास तक मैं जयपुर में इसी कार्य हेतु रहा और दिन में निरन्तर उनके पास जात

था। उनके निर्देशन में विभिन्न ग्रंथों से शब्द-चयन कर अनेक स्लिपें बनाईं। वस्तुतः मुझे कहने में संकोच नहीं है कि अगर श्री पुरोहितजी महाराज की कृपा एवं सहयोग मुझे प्राप्त नही होता तो मेरा इस कोश-निर्माण के पथ पर कदम रखना नितांत असम्भव था। उन्होंने मुझे यह विश्वास भी दिलाया था कि वे मेरे द्वारा तैयार किए गए कोश को नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित होने वाली 'बालाबक्ष राजपूत चारण पुस्तक-माला' के अन्तर्गत प्रकाशित कराने का प्रयत्न करेंगे। दैव को यह स्वीकार नहीं था। संवत् २००२ में पुरोहितजी का स्वर्गवास हो गया। कोश के निर्माण की प्रगति में यह एक जबरदस्त व्याघात था। फिर भी उनकी इच्छा के अनुसार कोश-निर्माण का कार्य निरन्तर चलाए रखने का प्रयत्न किया। इस थोड़ी सी अवधि में कोश निर्माण के लिए मुझे जो अनुपम प्रेरणा व अमूल्य निर्देशन पुरोहित श्री हरिनारायणजी द्वारा प्राप्त हुए हैं, इसके लिए मैं उनका चिर ऋणी हूँ।

व्यावहारिक दृष्टि से यह सत्य है कि कोरे परिश्रम एवं लगन से कोश जैसा कार्य तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि इसके लिए पर्याप्त आर्थिक सहयोग उपलब्ध नहीं हो। इसकी प्रगति में आर्थिक समस्या एक मुख्य बाधा थी। साधारण अध्यापकीय पद पर कार्य करते हुए स्वयं मेरे ही द्वारा कोश के सम्पूर्ण व्यय-भार को वहन करने की कल्पना भी आकाश कुसुमवत् थी। आर्थिक अभाव के कारण कार्य में अवरोध उपस्थित हुआ ही। इसी समय ठाकुर श्री गोरधनसिंहजी मेड़तिया (खानपुर) की कृपा मुझे वरदान सिद्ध हुई। मैंने उनसे कोश सम्बन्धी आर्थिक समस्या के सम्बन्ध में कुछ चर्चा की जिसके फलस्वरूप उन्होंने अपने पास से रुपये देकर इस समस्या को हल कर दिया। उनका इस प्रकार का सहयोग कोश के आरम्भ होने के समय से लेकर आज तक समान रूप से प्राप्त हो रहा है। यह उन्हीं के सफल प्रयासों का फल है कि कोश आज इस रूप में प्रकाशित हो सका है। साहित्य-प्रकाशन में आपकी ऐसी सच्ची लगन और सद्भावना निश्चय ही आपकी महान उदारता एवं सौजन्य का परिचायक है। मैं हृदय से आपका कृतज्ञ हूँ।

कोश निर्माण के सम्बन्ध में मोतीसर शाखा के एक कबीर पंथी साधु श्री पन्नारामजी का सहयोग भी मैं नहीं भूल सकता। उनका राजस्थानी के सम्बन्ध में अद्भुत ज्ञान था। 'रघुनाथ रूपक', 'रघुवरजस प्रकाश', 'लखपत पिंगळ' आदि ग्रंथ उनको कंठस्थ थे। सैकड़ों ही गीत उन्हें मौखिक रूप से याद थे। सात-आठ बार मैंने उनका चातुर्मास भी करवाया। चातुर्मास के समय जो भी अतिरिक्त समय मिलता उस समय डिंगल गीतों के अर्थ एवं शब्द व्याख्या के सम्बन्ध में उनसे विचार-विमर्श होता रहता था। उनके द्वारा मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला है, इसके लिए मैं उनका पूर्ण आभारी हूँ।

शब्द संग्रह के लिए स्लिपें बनाने का कार्य अब विकास पा रहा था। मेरे अकेले के प्रयत्न अब इस कार्य के लिए पर्याप्त नहीं थे। अतः स्लिपें बनाने के लिए कुछ कर्मचारियों की नियुक्ति भी आवश्यक थी। इसके लिए विशेष आर्थिक सहायता की आवश्यकता थी। इस समय आर्थिक सहयोग की व्यवस्था कराने में श्री उदयराजजी उज्ज्वल का विशेष हाथ रहा है। साहित्य में, वह भी विशेषकर राजस्थानी साहित्य में आपकी विशेष अभिरुचि रही है। साहित्य-सेवा की भावना से ही आपने इस कार्य में अपना यह सहयोग दिया है। आपने तत्कालीन पोकरण ठाकुर स्व० श्री भवानीसिंहजी से आर्थिक सहयोग के लिये अनुरोध किया जिसके फलस्वरूप उनसे २४७५)रु. कोश कार्य के लिए प्राप्त हुए। श्री भवानीसिंहजी की उदारता तथा श्री उदयराजजी उज्ज्वल की सौजन्यता एवं सहृदयता के लिये अपना आभार प्रकट करता हूँ।

इसी समय श्रीमान् ठाकुर गोरधनसिंहजी के सद्प्रयत्नों के फलस्वरूप नीमाज ठाकुर श्री उम्मेदसिंहजी से भी इसी कार्य के लिये लगभग २२००) की आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। इस प्रकार निरन्तर सहयोग मिलते रहने से स्लिपें बनने के कार्य में अच्छी गति उत्पन्न हो गई। इस समय तक विभिन्न शब्दों की चार लाख के लगभग स्लिपें तैयार हो चुकी थीं। शब्द संग्रह का कार्य प्रायः ठीक चल ही रहा था परन्तु यह आर्थिक सहयोग कालान्तर में परिस्थितिवश रुक जाने के कारण फिर से कोश कार्य में व्यवधान आ गया। ऐसी भी स्थिति आ गई कि यह कार्य एक बारगी तो बंद ही हो गया।

इसी समय मुझे पता लगा कि शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर ने भी राजस्थानी भाषा का एक बृहद् कोश

बनाने का निश्चय किया है। इस सम्बन्ध में ऐसा सुना गया कि वे श्री रामकरण आसोपा द्वारा संकलित एवं अक्षर क्रम में व्यवस्थित लगभग चालीस हजार शब्द प्राप्त कर चुके हैं। यह एक बहुत बड़ी प्राप्ति थी। मेरा उद्देश्य तो केवल इतना ही था कि राजस्थानी भाषा में सर्वाङ्गपूर्ण शब्द कोश का जो अभाव है उसकी पूर्ति हो जाय। स्वयं उसका श्रेय प्राप्त करने का मेरा लेश मात्र भी विचार नहीं था। अतः जब मुझे यह ज्ञात हुआ कि शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर कोश निर्माण करने का विचार कर रहा है तो मैंने अपनी कोश सम्बन्धी सारी संचित सामग्री, जो उस समय बहुत मात्रा में संग्रहीत थी, इन्स्टीट्यूट, बीकानेर को देने का निश्चय कर लिया और इसी उद्देश्य से मैंने अपने द्वारा संग्रहीत शब्दों में से धीरे-धीरे कुल ६३००० (तिरेसठ हजार) शब्द मय अर्थ एवं उदाहरण के उनके पास भेज दिए और इसके साथ में यह भी निश्चय किया कि आवश्यकता होने पर उसे सब प्रकार की सहायता भी दी जाय किन्तु विधाता को संभवतः यह भी स्वीकार न था। काफी समय तक राह देखने पर भी शार्दूल राजस्थानी इन्स्टीट्यूट बीकानेर, कोश के प्रकाशन का कोई विशेष प्रबंध नहीं कर सका। तब मैंने स्वयं ही इस ओर पुनः प्रयास आरंभ किया। यद्यपि आर्थिक समस्या तो दुर्गम पर्वत की भांति मेरे समक्ष अडिग खड़ी थी तथापि कुछ साहस बटोर कर फिर आगे कदम रखा और ठाकुर गोरधनसिंहजी के समक्ष बिना किसी हिचकिचाहट के इसी समस्या को एक बार फिर रख दिया। उदारमना ठाकुर साहब ने कोश-प्रकाशन के प्रति पूर्ण सहानुभूति बताते हुए आर्थिक सहयोग देने का विश्वास दिलाया। शब्द संग्रह के लिए अन्य स्लिपें बनाने, बनी हुई स्लिपों को काट कर क्रमवार व्यवस्थित करने एवं उन्हें अक्षर-क्रम से रजिस्टरों में लिखने आदि के कार्य आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त व्यय-साध्य थे किन्तु श्री गोरधनसिंहजी की कृपा से यह समस्या हल हो ही गई। ठाकुर श्री गोरधनसिंहजी के बारबार नामोल्लेख के कारण कुछ सज्जनों को पुनरुक्ति का अनुभव हो सकता है परन्तु यह सत्य ही है कि उन्हीं के सद्-प्रयत्नों के फलस्वरूप इस कोश का निर्माण हो पाया है। श्रेयांसि बहु विघ्नानि' के अनुसार इस बड़े कार्य में भी समय-समय पर अनेक विघ्न उपस्थित हुए पर उनके प्रयत्नों से धीरे-धीरे सभी विघ्न दूर होते गये। आपके व्यक्तिगत सम्पर्क एवं पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर ही श्रीमान ठाकुर कर्नल श्री श्यामसिंहजी ने स्लिपें कटवाने, उन्हें क्रमवार जमाने एवं रजिस्टरों में अक्षर क्रम से अंकित कराने आदि का सभी व्यय देना स्वीकार किया।

कोश निर्माण के कार्य में कर्नल श्री श्यामसिंहजी का जो अत्युत्तम सहयोग प्राप्त हुआ है, वह राजस्थानी साहित्य के साथ सदैव स्मरणीय रहेगा। वास्तव में आज के इस युग में कर्नल श्री श्यामसिंहजी जैसे साहित्य-प्रेमी सज्जन विरले ही मिलते हैं। संभवतः यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी कि अगर उनका सहयोग प्राप्त नहीं हुआ होता तो शायद कोश भी नहीं होता। जिस समय से आपका सहयोग प्राप्त हुआ है उस समय से लेकर अद्यावधि उनकी रुचि इस कोश में वैसी ही चली आ रही है। उनकी महती कृपा के कारण आगे हमने किसी भी प्रकार की आर्थिक कठिनाई अनुभव नहीं की। जब-जब भी अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकता हुई, आपने मुक्तहस्त होकर अपना सहयोग दिया। लगातार प्रति माह आवश्यकतानुसार निश्चित रूप से आर्थिक सहायता प्रदान करना साधारण कार्य नहीं है। गंगा की अविरल धारा के समान उनके द्वारा प्रदत्त सहायता अजस्र बनी रही है। स्लिपों के द्वारा सम्पूर्ण कोश की प्रथम प्रतिलिपि आपकी ही आर्थिक सहायता से की जा सकी। आर्थिक सहायता के अतिरिक्त आपके द्वारा प्राप्त अन्य सहयोग भी उल्लेखनीय है। कोश के लिए विभिन्न विषयों पर पुस्तकों की अत्यन्त आवश्यकता थी। इतनी बड़ी संख्या में पुस्तकें खरीदना मेरे लिए संभव नहीं था। कुछ पुस्तकें तो अत्यन्त दुर्लभ भी थीं तथा कुछ अधिक कीमती भी थीं। इस कठिनाई का ज्ञान होते ही श्रीमान् कर्नल साहब ने अपना निजी पुस्तकालय हमारे लिए उपलब्ध कर दिया। आपका यह पुस्तकालय बहुत ही विशाल है। उसमें विभिन्न विषयों की अनेक पुस्तकों का सुन्दर संग्रह है। राजस्थान में ऐसे पुस्तकालय बहुत ही कम हैं। उनके समस्त पुस्तकालय से हमने पूरा-पूरा लाभ उठाया है। आवश्यकता होने पर नैपाली कोश, 'पाइअ-सद्द-महण्णवो' जैसी कीमती पुस्तकें भी मंगवा कर हमें दीं। जब भी हमें किसी वस्तु की आवश्यकता हुई, उन्होंने उसकी तुरन्त ही व्यवस्था कर दी। बड़े-बड़े समाजोपयोगी कार्य ऐसे ही उदार, दानी एवं विद्वान महानुभावों के

बल पर ही सम्पन्न होते हैं। मैं कर्नल श्री श्यामसिंहजी के उपकारों से अनुगृहीत हूँ। उनके लिए आभार प्रदर्शित करने का साहस तो मैं नहीं कर सकता क्योंकि यह सब उन्हीं की कृपा का प्रसाद है।

कर्नल श्री श्यामसिंहजी के द्वारा आर्थिक सहयोग की पूर्ण सुविधा प्राप्त होने पर कोश सम्बन्धी कार्य अधिक गति एवं व्यवस्थित रूप में होने लगा। सभी स्लिपों को अक्षर क्रम से व्यवस्थित कर प्रत्येक वर्ण के पृथक-पृथक रजिस्टर में उनको अंकित करने का कार्य आरम्भ हुआ। साथ ही साथ मुझे जैसे-जैसे नवीन हस्तलिखित ग्रंथ एवं प्रकाशित पुस्तकें या संस्करण प्राप्त होते रहे, उनसे मैं नवीन स्लिपें बनाने का कार्य निरन्तर करता रहा। शब्दों को सम्मिलित करने का कार्य जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि कोश के पृष्ठ प्रेस में छपने हेतु जाने के समय तक होता रहा है। इतना सब कुछ होने पर भी संभव है कि बहुत से शब्द रह गये हों। ऐसे छूटे हुए एवं नवीन उपलब्ध होने वाले शब्द कोश के चारों खण्डों के प्रकाशित होने के बाद परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जायगा।

इस प्रकार कार्य करते हुए सभी संग्रहीत शब्दों को अक्षर-क्रम से रजिस्टरों में लिख लेने से कोश का एक अच्छा ढाँचा तैयार हो गया। अब प्रेस में सामग्री देने के लिए प्रेस कापी तैयार करने की समस्या सामने थी। यह भी एक विकट समस्या थी। प्रेस कापी के लिए रजिस्टरों में तैयार किये गये कोश के ढांचे में क्रिया प्रयोग, मुहावरे, कहावतें, रूप भेद, अल्पार्थ सूचक शब्द एवं महत्त्ववाची शब्दों का समावेश करना अत्यन्त आवश्यक था। प्रेस कापी बनाने के साथ ही साथ नए प्रकाशित ग्रंथों से शब्द छांट कर स्लिपें बनाना तथा उन्हें भी प्रेस कापी में सम्मिलित करना आवश्यक था। इस सभी कार्य के लिए कर्मचारियों की संख्या बढ़ाना अत्यन्त जरूरी था। इसके साथ ही अब छपाई-व्यय, जिसकी अधिकता का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है, सामने था। इतना अधिक व्यय भार एक व्यक्ति द्वारा ही वहन किया जाना दूभर नहीं तो कठिन अवश्य ही है। अतः कोश हितैषी महानुभावों की सम्मति से कोश प्रकाशन का कार्य शिक्षा समिति चौपासनी, जोधपुर के नियंत्रण में इस शर्त पर दे दिया गया कि शिक्षा समिति अपने अधीनस्थ कार्य करने वाले राजस्थानी शोध-संस्थान के अंतर्गत इसे प्रकाशित करा दे। शोध-संस्थान के अंतर्गत इस कोश-निर्माण के कार्य की सम्पन्नता के लिए शिक्षा समिति ने प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकारों से प्रान्तीय भाषाओं के उत्थान के निमित्त प्राप्त होने वाली आर्थिक सहायता प्राप्त की। इसका श्रेय शिक्षा समिति के अध्यक्ष श्री भैरूंसिंहजी खेजड़ला, सदस्य, विधान सभा तथा मंत्री श्री कुंवर विजयसिंहजी सिरयारी, सदस्य, राज्य सभा, को ही है। राजकीय सहायता प्राप्त करने के लिए कुछ अंशों में व्यक्तिगत अनुदान भी आवश्यक था, अतः इसी अवसर पर झालावाड़ नरेश श्री हरिश्चन्द्रजी ने ५०००) रु० का अनुदान देकर इस कार्य को सुगम बना दिया। इसके साथ ही साथ राजा साहब ने कोश कार्य के लिए भविष्य में भी आर्थिक सहयोग देते रहने का पूर्ण आश्वासन दिया। उनकी इस परम उदारता के लिए मैं उनका आभारी हूँ।

राजकीय सहयोग प्राप्त होने पर शोध-संस्थान के अंतर्गत कोश प्रकाशन का कार्य सुचारु रूप से होने लगा। इस सुन्दर व्यवस्था का श्रेय राजस्थानी शोध-संस्थान के संचालक श्री नारायणसिंह भाटी, एम. ए., एल-एल. बी. जो राजस्थानी के एक श्रेष्ठ कवि भी हैं, को है। आपके द्वारा मुझे जो सहयोग प्राप्त हुआ वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। कोश प्रकाशन का कार्य जब से आपने अपने नियंत्रण में लिया तभी से इस कार्य की सम्पन्नता में सतत प्रयत्नशील हैं। कोश निर्माण के प्रति आपने अपनी अभिन्न रुचि प्रकट कर अपना अपूर्व साहित्य प्रेम प्रकट किया है। कोश कार्य के लिए राजकीय सहायता प्राप्त करने के लिए आपको अनेकों बार बाहर भी जाना पड़ा, जिसमें आपने समय-असमय व सुविधा-असुविधा का कोई ध्यान न रखते हुए अपने महत्वपूर्ण कार्य को भी एक तरफ रखते हुए कोश के प्रति तत्परता बतलाई। कोश की भूमिका में 'राजस्थानी भाषा का विवेचन' एवं 'साहित्य परिचय' के प्रकरणों के लिखने में भी आपने पूर्ण सहयोग दिया है। आपके साहचर्य्य का मैंने पूर्ण लाभ उठाया है और इसीलिए आपको बार-बार कष्ट भी देता रहा। आपकी सहृदयता एवं सहयोग के लिए मैं आपको अन्तःकरण से धन्यवाद देता हूँ।

माननीय श्री मोहनलाल सुखाड़िया, मुख्य मंत्री, राजस्थान सरकार, की इस राजस्थानी कोश पर विशेष कृपा दृष्टि रही है। सर्वप्रथम दिनांक ११-११-५६ को उच्चतर विद्यालय, चौपासनी, जोधपुर के प्रांगण में जब अखिल राजस्थान एन. सी. सी. शिविर (कन्या वर्ग) के विसर्जन समारोह की अध्यक्षता करने पधारे थे तब अत्यधिक व्यस्त कार्यक्रम होते हुए भी आपने कोश के लिए कुछ समय निकाल कर शोध-संस्थान के कार्यालय में पूर्ण रूप से कोश का अवलोकन किया। कोश निर्माण की प्रणाली एवं उस समय तक के प्रकाशित शब्दों के अर्थों से, जो उदाहरण, मुहावरों, कहावतों आदि से पुष्ट थे, अत्यन्त प्रभावित हुए। राजस्थानी भाषा में इस नवीन प्रयास की प्रशंसा करते हुए वे मुझे उसी दिन (११-११-५६) को उदयपुर ले गए। वहाँ मेरी भेंट श्री हुमायूं कबीर, केन्द्रीय मन्त्री, वैज्ञानिक अनुसंधान एवं सांस्कृतिक मंत्रणालय, जो उस समय औषधालय के उद्‌घाटनार्थ पधारे हुए थे, से कराई। इन दोनों महानुभावों ने राज्य की ओर से आर्थिक सहायता की स्वीकृति प्रदान की जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। मुख्य मंत्री महोदय ने कोश के लिए अपना शुभ सदेश भेजा है, जिसके लिए भी मैं कृतज्ञ हूँ।

शिक्षा समिति के आधीन शोध-संस्थान के नियंत्रण में कोश प्रकाशन की उत्तम व्यवस्था करने एवं केन्द्रीय तथा राजकीय या राज्यीय आर्थिक सहायता प्राप्त कराने में जो सहयोग चौपासनी शिक्षा समितिके अध्यक्ष एवं राजस्थान विधान सभा के सदस्य ठाकुर श्री भैंरूंसिंहजी खेजड़ला तथा शिक्षा समिति के मंत्री सिरियारी कुंवर श्री विजयसिंहजी, सदस्य राज्य सभा, का प्राप्त हुआ है वह किसी भी स्थिति में विस्मृत नहीं किया जा सकता। इन्हीं महानुभावों के सद्‌प्रयत्नों एवं कोश के प्रति पूर्ण सहानुभूति होने के कारण ही कोश इस स्वरूप में प्रकाशित होने में समर्थ हो सका है। मुख्य मंत्री श्री मोहनलालजी सुखाड़िया को कोश देखने के लिए शोध-संस्थान, चौपासनी के कार्यालय में लाना तथा कोश कार्य से परिचित कराना आदि सभी का श्रेय इन्हीं दोनों महानुभावों को है। आपके जिस सहयोग ने मुझे अपना कार्य सम्पन्न करने के लिए उत्साहित किया है उसके लिए मैं इन दोनों महानुभावों तथा प्रबंधकारिणी समिति के सदस्यों का हृदय से कृतज्ञ हूँ।

कोश निर्माण जैसे विशाल एवं दीर्घकालीन कार्य में अधिकाधिक सहृदय विद्वज्जनों का सहयोग अपेक्षित ही था। कोश के माध्यम से ही मुझे अनेक महानुभावों के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इनमें पद्मश्री जिनविजयजी मुनि, पुरातत्त्वाचार्य, सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर; श्री विष्णुदत्तजी शर्मा, प्रधानाचार्य, प्रशासकीय प्रशिक्षण विद्यालय, जोधपुर; श्री विष्णुदत्तजी शर्मा, सचिव, शिक्षा सचिवालय, राजस्थान; श्री लक्ष्मीनारायणजी जोशी, सदस्य, राजस्थान लोक सेवा आयोग; श्री भगवतशरण उपाध्याय, सम्पादक, हिन्दी विश्वकोश; डॉ० मोतीलाल मेनारिया, संचालक, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर; डॉ० रोजेरियो, संयुक्त शिक्षा सलाहकार, केन्द्रीय सरकार दिल्ली; डॉ० कन्हैयालाल सहल, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बिड़ला आर्ट्‌स कॉलेज, पिलानी; श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ, महामहोपाध्याय, जोधपुर; डा० रघुवीरसिंह, महाराज कुमार सीतामऊ; डॉ. बी. एल. रावत; श्री जगन्नाथसिंह मेहता, संचालक, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा, राजस्थान; श्री सुधीन्द्रकुमार, उपसंचालक, शिक्षा विभाग, जोधपुर; श्री जनार्दनराय नागर, अध्यक्ष, साहित्य अकादमी, उदयपुर; श्री शिवशंकरजी, जिलाधीश जोधपुर; श्री गोपालनारायणजी बोहरा, एम. ए., उपसंचालक, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर; श्री शाह गोवर्द्धनलालजी काबरा; श्री अगरचन्दजी नाहटा; श्री आर. पी. श्रीवास्तव, रेक्टर, चोपासनी इन्स्टीट्यूट, श्री गणपतिचन्द्रजी भण्डारी, प्राध्यापक, महाराज कुमार कॉलेज, जोधपुर; सन्ना ठाकुर तणुराव, जैसलमेर; कर्नल श्री धोंकलसिंह मांमड़ोली व महन्त श्री लादूरामजी विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सभी महानुभावों ने मेरे कोश को बहुत निकट से देखा है और समय-समय पर अपने अमूल्य सुझाव देते हुए मेरी कोश-प्रणाली की सराहना भी की है। इनके जिस सहयोग से मुझे बल प्राप्त हुआ है और जिसके फलस्वरूप मैं अपने इस कार्य को सुगमतापूर्वक सम्पन्न करने में कुछ भी समर्थ हुआ हूँ उसके लिए मैं इन सभी विज्ञ जनों के प्रति आभारी हूँ।

इसके अतिरिक्त अनेक सज्जनों से समय-समय पर आवश्यकतानुसार मेरा सम्पर्क रहा है जिनमें श्री शक्तिसिंहजी (मंडला) अधीक्षक, पुरातत्त्व अजायबघर एवं विभाग

श्री दुर्गालाल माथुर, क्यूरेटर, अजायबघर, जोधपुर; श्री रावत सारस्वत, सम्पादक, मरुवाणी; रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत; श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया; श्री आनन्दीलालजी शास्त्री; श्री कोमल कोठारी, सचिव, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर; श्री विजयदान देथा, कवि श्री रेवतदानजी 'कल्पित'; वकील श्री अचलसिंहजी भाटी; श्री धोंकलसिंहजी, वाइस प्रिन्सीपल, चौपासनी, विद्यालय; श्री सत्यप्रकाश जोशी, एम. ए., जोधपुर; श्री तेजसिंहजी, शोध सहायक, राजस्थानी शोध संस्थान; लेफ्टीनेंट श्री रेवतसिंहजी भाटी; श्री चन्द्रसिंहजी जोधा; जोधसिंहजी उज्ज्वल, बीकानेर; श्री चंद्रसिंहजी बीका; श्री अक्षयचन्द्र शर्मा, बीकानेर आदि ने भिन्न-भिन्न क्षेत्र में अपना सहयोग दिया है। इसके लिये ये सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

यह तो पहिले ही कहा जा चुका है कि कोश प्रकाशन का कार्य राजस्थानी शोध-संस्थान, चौपासनी, जोधपुर के सुपुर्द कर दिया गया था। कोश प्रकाशन की समुचित व्यवस्था के लिये शिक्षा समिति, चौपासनी ने एक पृथक उपसमिति का निर्माण किया, जिसके अध्यक्ष पद का भार भाद्राजून राजा साहिब श्री देवीसिंहजी को सौंपा गया। यह मेरे लिए अत्यन्त सौभाग्य की बात हुई। राजा साहिब ने जिस सच्ची लगन से कोश कार्य की सम्पन्नता में अपना सहयोग दिया है उसके लिए मैं उनका चिर कृतज्ञ हूँ।

जैसा कि पूर्व विवरण से स्पष्ट है कि कोश निर्माण का कार्य कोई अल्पावधि का कार्य नहीं है और न ही किसी एक व्यक्ति की शक्ति का ही है। कोश का कार्य पर्याप्त अवधि तक चलता रहा है जिसमें कई व्यक्तियों ने वेतन पर कार्य करते हुए कोश कार्य के प्रति तत्परता एवं सुरुचि का परिचय दिया। श्री सुकनमलजी माथुर, एम. ए., बी. एड. ने कोश का कार्य बहुत लम्बे समय तक किया। उनकी कर्मठता एवं लगन के कारण उन्हें इस कार्य का काफी अनुभव हो गया जिससे आगे चल कर कोश की विशेषताओं का बारीकी के साथ निर्वाह करने में भी उनका सहयोग मिला और कार्य शीघ्रता से आगे बढ़ गया। इस कार्यावधि में उनके द्वारा किए गए सुन्दर कार्य, उनकी समय की पाबन्दी एवं कार्य के प्रति जागरूकता निश्चय ही सराहनीय है।

श्री मोहनलालजी पुरोहित, बी. ए., बी. एड., साहित्य-रत्न ने भी काफी अर्से तक कोश कार्यालय में तथा अन्यत्र रहते हुए भी कोश सम्बन्धी कार्य किया। कोश सम्बन्धी बहुत से कृषि संबंधी शब्दों का संकलन भी उनके द्वारा किया गया तथा उन शब्दों की परिभाषा भी आप ही ने बनाई। इनकी लगन, गहरी सूझ एवं सार ग्रहण करने की शक्ति वस्तुतः प्रशंसनीय है। हिन्दी साहित्य में विशेष रुचि होने के कारण लेखन कार्य में इनकी ओर से विशेष सहयोग मिला है। ये परिश्रमी व्यक्ति हैं और बड़ी लगन के साथ कोश कार्य कर रहे हैं।

कोश कार्य करते हुए श्री भँवरलालजी कछवाहा ने भी थोड़े से समय में कोश की कार्य-प्रणाली को बड़ी खूबी के साथ समझा है और बड़े ही परिश्रम तथा रुचि के साथ कार्य कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त श्री शक्तिदानजी कविया, एम. ए. ने भी कुछ समय तक कोश सम्बन्धी कार्य किया, ये राजस्थानी के अच्छे कवि भी हैं। मेरे अनुज श्री जैतदान लाळस ने बाहर भ्रमण कर ग्रामीण शब्दों, राजस्थान के देहाती क्षेत्रों में प्रचलित मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि के संग्रह करने में मेरी पर्याप्त सहायता की। कोश का कार्य करने वाले अन्य कार्यकर्ताओं में श्री सुमेरमलजी लोढ़ा, श्री हेमसिंहजी चौहान, श्री भालचन्द्रजी बोहरा, श्री बख्तावरदानजी वणसूर, श्री सांवळदानजी रतनू तथा श्री दौलतसिंहजी भी धन्यवाद के पात्र हैं। इन सभी कार्यकर्ताओं के उज्ज्वल भविष्य एवं सफल जीवन की कामना करता हूँ।

यह मेरा सौभाग्य ही था कि कोश प्रकाशन का कार्य साधना प्रेस, जोधपुर जैसे योग्य एवं व्यवस्थित प्रेस द्वारा सम्पन्न हुआ। प्रेस के व्यवस्थापक श्री हरिप्रसादजी पारीक के ही प्रयत्नों का फल है कि यह राजस्थानी शब्द कोश इस रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा सका है। श्री पारीकजी ने सही एवं शुद्ध रूप देने, प्रूफ संशोधन करने एवं उत्तम प्रकाशन करने के लिए जो अथक परिश्रम किया है उसके लिए वे वस्तुतः धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में मैं उन सभी सज्जनों एवं सहयोगी बन्धुओं का आभार स्मरण किये बिना नहीं रह सकता, जिनसे परोक्ष या अपरोक्ष रूप में मुझे कोश निर्माण एवं इसकी सम्पन्नता में यथाविधि सहयोग प्राप्त होता रहा है। कदाचन् विस्मृति के

प्रभाव से सहयोगी जन का नामोल्लेख नहीं हो पाया है तो उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

यथेष्ट सावधानी रखने पर भी जो कुछ मानव-स्वभाव-सुलभ त्रुटियां या भूलें हुई हों उनको सुधारने के लिए विद्वानों से सादर विनम्र प्रार्थना करता हुआ यह आशा करता हूँ कि वे ऐसी भूलों के विषय में मुझे सतर्क करेंगे ताकि भविष्य में तदनुसार संशोधन का कार्य सरल हो सके। जो विद्वान मेरे भ्रम प्रमादों की प्रामाणिक पद्धति से मुझे सूचित करेंगे उनका मैं चिर-कृतज्ञ रहूंगा।

यदि मेरी इस कृति से राजस्थानी साहित्य के उन्नयन में कुछ भी सहयोग पहुंचा तो मैं अपने इस दीर्घकालीन परिश्रम को सफल समझूंगा।

बसन्त पंचमी
सं० २०१८ विक्रम

—सीताराम लाळस

प्रस्तावना

राजस्थानी भाषा का विवेचन



भाषा मनुष्य के विकास का सब से महत्वपूर्ण साधन है। इसके द्वारा मानव का समाज से संपर्क स्थापित होता है। भाषा के द्वारा जहां बालक दूसरों के भावों को जानता है, वहां अपने भाव भी वह दूसरों के समक्ष व्यक्त करता है। भावों को व्यक्त करने से इच्छाओं की पूर्ति के साथ मानव में विचार करने की भी शक्ति आती है तथा उसे अपनी सामर्थ्य का ज्ञान होता है। तुलसी के 'गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न-न-भिन्न'[1] के अनुसार भाषा और विचार एक ही तथ्य के दो पहलू हैं। किसी भी व्यक्ति के बौद्धिक विकास को उसके भाषा-ज्ञान तथा उसके शब्दों की संख्या से भले प्रकार जाना जा सकता है। भाषा के माध्यम से ही मानव ने अपना सांस्कृतिक एवं भौतिक विकास किया है, किन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि मानव के विकास के साथ भाषा का भी विकास होता है। इस दृष्टि से दोनों का विकास अन्योन्याश्रित है।

मनुष्य की भाषा उसकी सृष्टि के आरम्भ से, अविरल गति से, प्रवाह रूप में चली आ रही है। नदी के वेग के समान ही उसकी भाषा का वेग भी अनियंत्रित होता है। भाषा में अनेकरूपता का यही मूल कारण है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह अनेकरूपता कितनी पुरानी है। समय-समय पर इसी अनेकरूपता को संयत एवं टकसाली रूप देने का बार-बार प्रयत्न किया जाता रहा। किसी भाषा के इस सुसंगठित रूप को प्रस्तुत करने में उस भाषा का व्याकरण और कोश प्रधान साधन हैं। इनके अभाव में कोई भाषा रूपवती भिखारिन की भाँति कभी आदरणीय नहीं हो सकती। खेद है कि राजस्थानी में इनका अभाव रहा है।

लगभग सत्तर वर्ष पहिले जोधपुर के पंडित रामकरण आसोपा ने 'मारवाड़ी भाषा री व्याकरण' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया था। सन् १९१४ में तैस्सीतोरी का प्रयत्न भी इस ओर विशेष सराहनीय रहा किन्तु परिवर्तित परिस्थितियों, प्रतीकों और प्रतिमाओं के कारण नयी राजस्थानी के साथ इनका सामञ्जस्य अपूर्ण रहा। आठ-नौ वर्ष पहिले मैंने भी 'राजस्थानी व्याकरण' के नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की थी। किन्तु ये सब प्रयत्न आरंभिक अवस्था के अनुरूप ही माने जा सकते हैं। शब्दकोश-निर्माण का प्रयत्न इस ओर अधिक किया गया। नाममालाओं आदि के रूप में एक शब्द के अनेकों पर्यायवाची शब्दों के कोश राजस्थानी में भी प्राप्य हैं। डिंगळ नांममाळा, नागराज डिंगळ कोश, हमीर नांम माळा, अवधांन माळा, नांम माळा, मुरारीदानजी का डिंगळ कोश, अनेकार्थी कोश, एकाक्षरी कोश[1] आदि कितने ही कोश इस सम्बन्ध में गिनाये जा सकते हैं। आधुनिक कोशों के समान इनकी उपादेयता चाहे न मानी जाय परन्तु इनके महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। प्रायः ये कोश छंदोबद्ध हैं। संभव है पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित करने के उद्देश्य से ही इनका लयात्मक एवं तुकात्मक रूप प्रस्तुत किया गया हो। राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के संबंध में शोध कार्यों के लिये इनकी उपयोगिता निर्विवाद है। वैज्ञानिक ढंग से राजस्थानी भाषा के विकास को समझने के लिए ये एक महत्त्वपूर्ण साधन हैं। लिपिकर्ताओं की कृपा एवं जीर्ण-शीर्ण अवस्था के कारण किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर इनकी उपादेयता संदिग्ध हो सकती है[2], तथापि कई कोश निसंदेह प्रामाणिक हैं। हमीरदांन रतनू की 'हमीर नांममाळा' की प्रामाणिकता

[1] रामचरितमानस—बालकाण्ड, दो० १८

[1] इनमें से कुछ कोशों का संग्रह 'परंपरा' में 'डिंगल कोश' के नाम से राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर, द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

[2] जैसे इसी 'डिंगल कोश' में प्रकाशित 'हमीर-नांम-माळा' पृष्ठ ८३ में 'द्रिव्य' के प्रर्याय रूप में 'श्रवरै' और 'आइतेयक' शब्द दिये गए हैं, यह लिपिकर्ताओं की भूल का परिणाम है। शुद्ध रूप में ये 'स्वः' (देखो 'संस्कृतकोश'), रै—दोनों अलग-अलग होंगे तथा 'आइतेयक' के स्थान पर 'स्वापतेय' होगा (मि०—अमरकोश—२/६०) इसी प्रकार की अन्य भूलें देखी जा सकती हैं।

असंदिग्ध है। यह राजस्थानी के समस्त प्राचीन कोशों में सब से अधिक प्रचलित एवं प्रसिद्ध है। इन सभी कोशों में प्रायः एक शब्द के अनेक पर्याय दिये गये हैं। कविराजा मुरारिदान के डिंगळ कोश एवं उदयराम बारहठ की 'अवधांन माळा' को छोड़ कर प्रायः सभी कोश अत्यन्त छोटे एवं अपूर्ण हैं। ये सभी संस्कृत के 'अमरकोश' के ढंग पर निर्मित हुए हैं। यह अवश्य है कि आधुनिक रचना-शैली, वर्ण और मात्रानुक्रम, शब्दार्थ एवं उनकी विवेचनात्मक व्याख्या एवं व्युत्पत्ति आदि के अभाव में आधुनिक ढंग से निर्मित कोशों के समान इनसे लाभ नहीं उठाया जा सकता।

उपरोक्त असुविधा के कारण ही विद्वानों ने इसके लिये विषय-विभाग-मार्ग के स्थान पर अक्षर-क्रम-युक्त शब्द-क्रम वाले मार्ग को अधिक उपयुक्त एवं वैज्ञानिक समझा। इस प्रकार कोश जनसाधारण के लिए बोधगम्य एवं सुगम हो गया। आधुनिक समय में प्रायः सभी कोश, चाहे वे किसी स्तर या प्रकार के हों, अक्षर-क्रम और शब्द-क्रम से ही बनते हैं। महत्वपूर्ण ग्रंथों के साथ भी प्रतीकानुक्रमणिका, विषयानुक्रमणिका, शब्दानुक्रमणिका आदि अनुक्रमणिकाएँ समाविष्ट रहती हैं। इससे विषय, शब्द, प्रतीक आदि का उल्लेख एवं विवरण ढूंढ़ने में पाठकों को अत्यन्त सुगमता रहती है। किन्तु इन अक्षर-क्रम और शब्दक्रमानुरूप कोशों के निर्माण में प्राचीन कोशों का महत्त्व भी उल्लेखनीय है। प्रायः सभी मौलिक कोशकारों ने इन्हीं को अपना आधार मान कर नये रूप-रंग में नये आधुनिक कोशों का निर्माण किया है।

राजस्थानी में इस प्रणाली पर आधारित कोशों के निर्माण का प्रयास प्रायः नहीं के बराबर हुआ। पंडित रामकरण आसोपा ने इस ओर समुचित प्रयत्न कर लगभग साठ हजार शब्दों का अक्षर-शब्द-क्रम के अनुसार संकलन किया था, किन्तु वे अपने प्रयास को पूरा न कर सके। शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर, ने भी कुछ वर्षों पहले इसके निर्माण की घोषणा की थी। वस्तुतः कोश-निर्माण का कार्य किसी एक व्यक्ति-विशेष के सामर्थ्य की बात ही नहीं है। सामूहिक प्रयत्न इसमें आवश्यक है। सम्भव है सर्वप्रथम प्रकाशित कोश में कुछ त्रुटियां रह जायें किन्तु यह निश्चय ही भविष्य में कोश-निर्माण के पथ को प्रशस्त अवश्य करेगा।

विस्तार-क्षेत्र की दृष्टि से राजस्थानी का अपना एक विशेष महत्त्व है। मालवे सहित राजस्थान के विशाल भू-भाग पर राजस्थानी फैली हुई है। सन् १९३१ ई० में राजस्थानी बोलने वालों की संख्या एक करोड़ चालीस लाख आंकी गई थी,[१] जिसमें भीली भाषा बोलने वालों की संख्या सम्मिलित नहीं है। अगर इसे भी सम्मिलित कर लिया जाय तो राजस्थानी भाषियों की संख्या एक करोड़ साठ लाख तक पहुँच जाती है।

सत्रहवीं शताब्दी तक के साहित्य के आधार पर राजस्थानी को अत्यन्त समृद्ध भाषा माना जा सकता है। आज भी इस भाषा के सैकड़ों ग्रंथ जीर्ण-शीर्ण अवस्था में उन लोगों के पास बंदी हैं जो उनका मूल्यांकन नहीं कर सकते।

भारत की अन्य प्रांतीय भाषाओं की तरह राजस्थानी की भी अपनी कुछ विशिष्ट विशेषतायें हैं। ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोलियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है[२]—

१. **पश्चिमी राजस्थानी**—इसमें मारवाड़ी, थली, बीकानेरी, बागड़ी, शेखावाटी, मेवाड़ी, खैराड़ी, गोडवाड़ी और देवड़ावाटी सम्मिलित हैं।

२ **उत्तर पूर्वी राजस्थानी**—अहीरवाटी और मेवाती।

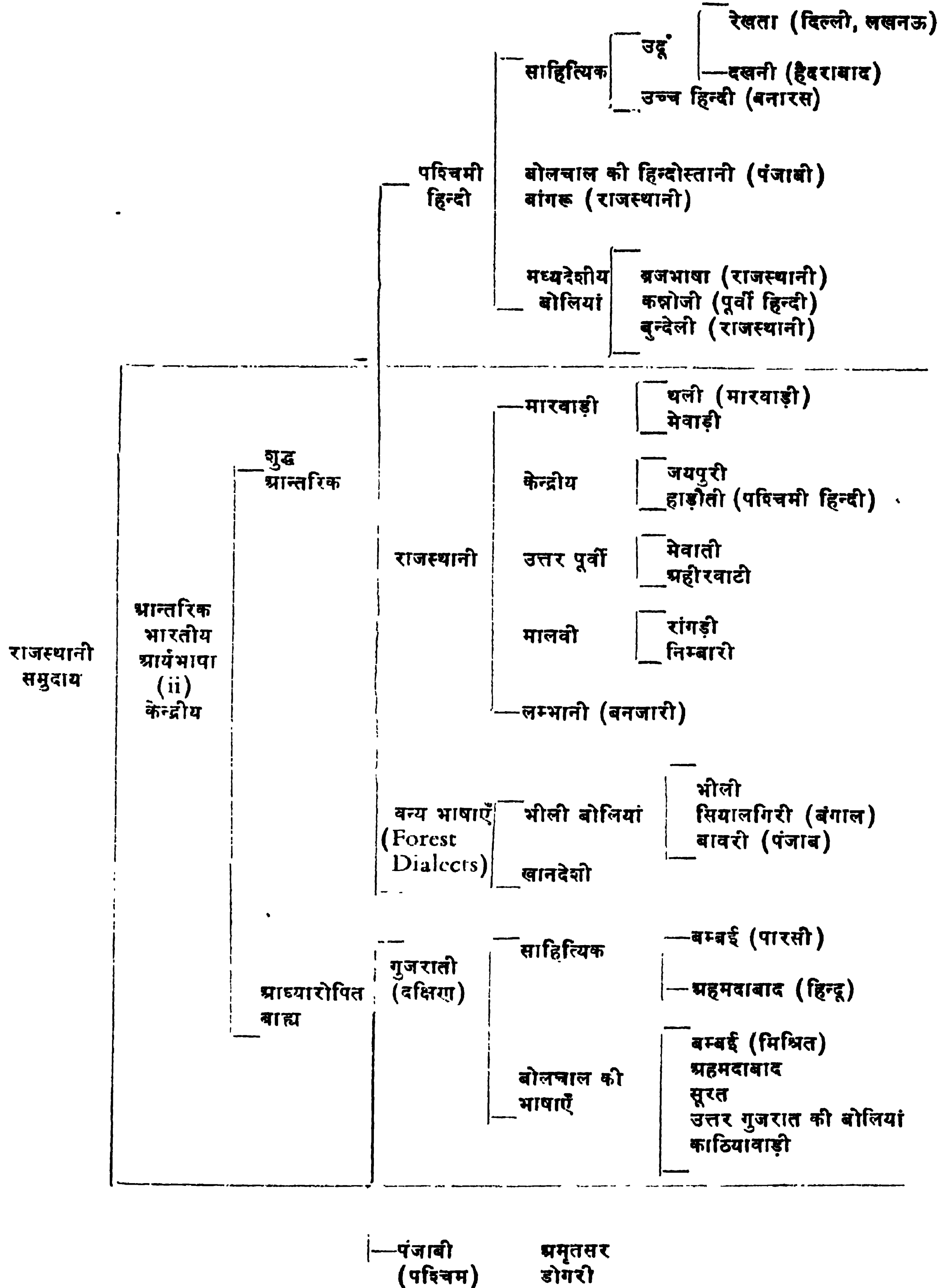
३. **ढूंढाड़ी**—इसे मध्यपूर्वी राजस्थानी भी कहा जाता है, जिसमें तौरावाटी, जयपुरी, काठेड़ी, राजावाटी, अजमेरी, किशनगढ़ी, शाहपुरी एवं हाडौती सम्मिलित हैं।

४. **मालवी या दक्षिण-पूर्वी-राजस्थानी**—इसमें रांगड़ी और गोंडवाडी हैं।

५ **दक्षिणी राजस्थानी**—निमाड़ी।

अगर भीली को भी राजस्थानी के अन्तर्गत माना जाय तो इनकी संख्या छः हो जायगी। ग्रियर्सन ने यद्यपि इसे राजस्थानी से अलग माना है[३] तथापि व्याकरण एवं भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे अलग नहीं माना जा सकता। इन सब बोलियों पर अपने पड़ौस मे बोली जाने वाली भाषाओं एवं बोलियों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इस संबंध में राजस्थानी वर्ग की भाषाओं एवं बोलियों का यह चित्र[४] उल्लेखनीय है—

१ राजस्थानी भाषा—सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृष्ठ ५
२ Linguistic Survey of India Vol. IX Part II, Page 2-3
३ Linguistic Survey of India, Vol. IX, Part II, Page 1
४ Elements of the science of Language by Taraporewala के पृष्ठ २६५ पर दियेगये चित्र (Table XX) का हिन्दी अनुवाद

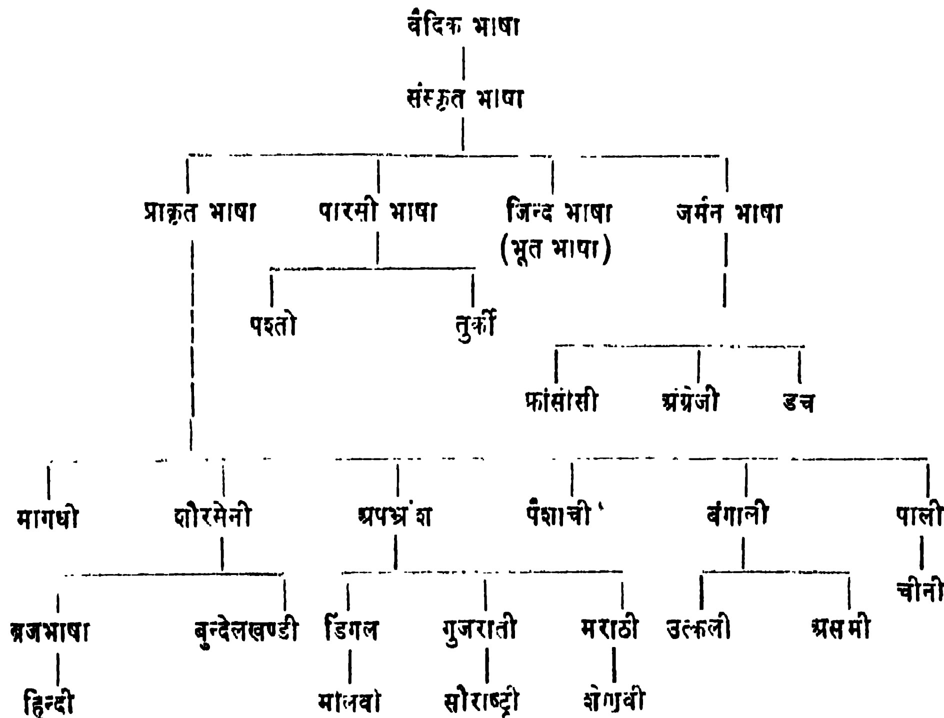

राजस्थानी समुदाय
आन्तरिक भारतीय आर्यभाषा (ii) केन्द्रीय
शुद्ध आन्तरिक
पश्चिमी हिन्दी
साहित्यिक
उर्दू
रेखता (दिल्ली, लखनऊ)
दखनी (हैदराबाद)
उच्च हिन्दी (बनारस)
बोलचाल की हिन्दोस्तानी (पंजाबी)
बांगरू (राजस्थानी)
मध्यदेशीय बोलियां
ब्रजभाषा (राजस्थानी)
कन्नोजी (पूर्वी हिन्दी)
बुन्देली (राजस्थानी)
राजस्थानी
मारवाड़ी
थली (मारवाड़ी)
मेवाड़ी
केन्द्रीय
जयपुरी
हाड़ौती (पश्चिमी हिन्दी)
उत्तर पूर्वी
मेवाती
अहीरवाटी
मालवी
रांगड़ी
निम्बारी
लम्भानी (बनजारी)
वन्य भाषाएँ (Forest Dialects)
भीली बोलियां
भीली
सियालगिरी (बंगाल)
बावरी (पंजाब)
खानदेशी
आध्यारोपित बाह्य
गुजराती (दक्षिण)
साहित्यिक
बम्बई (पारसी)
अहमदाबाद (हिन्दू)
बोलचाल की भाषाएँ
बम्बई (मिश्रित)
अहमदाबाद
सूरत
उत्तर गुजरात की बोलियां
काठियावाड़ी
पंजाबी (पश्चिम)
अमृतसर
डोगरी

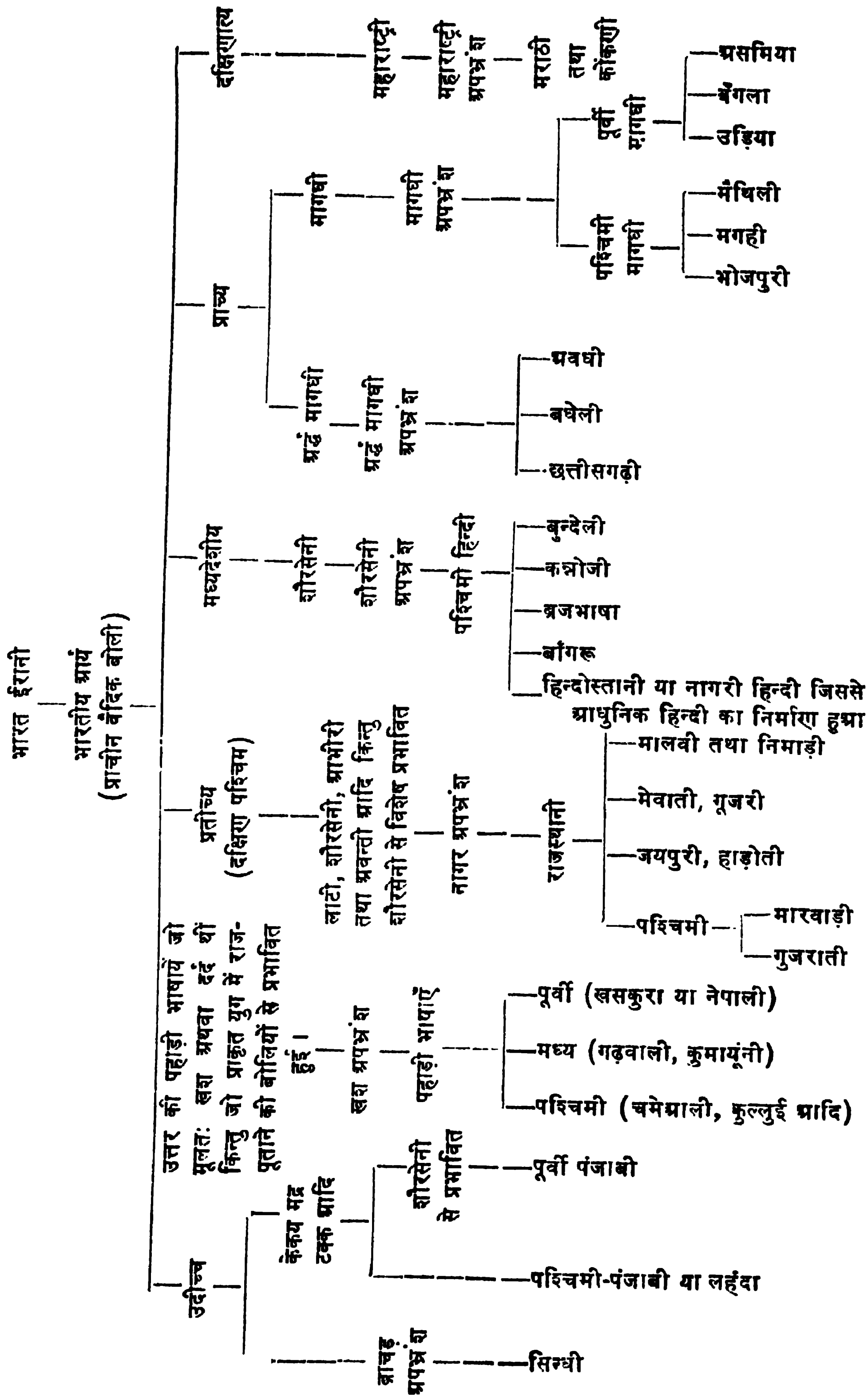
भारतीय आर्य भाषाओं का विधिवत् इतिहास हमें प्रामाणिक रूप से उपलब्ध नहीं है, तथापि इसकी साधारण रूपरेखा ऋग्वेद से आज तक उपलब्ध है। कुछ विद्वानों ने अनार्य भाषाओं को छोड़ कर संसार भर की परिष्कृत भाषाओं का उद्गम वैदिक भाषा को माना है।[1] इस संबंध में इस मत के समर्थक विद्वानों ने शब्दों के कई प्रमाण देकर एक भाषा का दूसरी भाषा से संबंध बताने का प्रयत्न किया है। कुछ विद्वानों ने भारतीय-योरोपीय भाषाओं की मूल भाषा के रूप में उर्सप्राख (Ursprache) नामक एक नई भाषा की कल्पना की है।[2] भाषाविज्ञान के क्षेत्र में शोध की गति इतनी तीव्र है कि नित्य नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जा रहा है एवं नई भाषाओं पर प्रकाश पड़ता जा रहा है। भारतीय आर्य भाषाओं के संबंध में डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का निम्नलिखित वर्गीकरण उल्लेखनीय है[3]—

१ श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य ने झालरपाटन से प्रकाशित 'सौरभ' अक्तूबर १९२० के एक लेख में निम्नलिखित चित्र प्रकाशित किया है।

२ Elements of Science of Language–by Taraporewala, Page 21

३ The Origin and Development of the Bengali Language–Part I, by S. K. Chatterji, Page 6




भारत ईरानी
भारतीय आर्य (प्राचीन वैदिक बोली)
दक्षिणात्य
महाराष्ट्री
महाराष्ट्री अपभ्रंश
मराठी तथा कोंकणी
प्राच्य
मागधी
मागधी अपभ्रंश
पूर्वी मागधी
असमिया
बँगला
उड़िया
पश्चिमी मागधी
मैथिली
मगही
भोजपुरी
अर्द्ध मागधी
अर्द्ध मागधी अपभ्रंश
अवधी
बघेली
छत्तीसगढ़ी
मध्यदेशीय
शौरसेनी
शौरसेनी अपभ्रंश
पश्चिमी हिन्दी
बुन्देली
कन्नोजी
ब्रजभाषा
बाँगरू
हिन्दोस्तानी या नागरी हिन्दी जिससे आधुनिक हिन्दी का निर्माण हुआ
प्रतीच्य (दक्षिण पश्चिम)
लाटी, शौरसेनी, आभीरी तथा अवन्ती आदि किन्तु शौरसेनी से विशेष प्रभावित
नागर अपभ्रंश
राजस्थानी
मालवी तथा निमाड़ी
मेवाती, गूजरी
जयपुरी, हाड़ोती
पश्चिमी
मारवाड़ी
गुजराती
उत्तर की पहाड़ी भाषाएँ जो मूलतः खश अथवा दर्द थीं किन्तु जो प्राकृत युग में राजपूताने की बोलियों से प्रभावित हुईं।
खश अपभ्रंश
पहाड़ी भाषाएँ
पूर्वी (खसकुरा या नेपाली)
मध्य (गढ़वाली, कुमायूंनी)
पश्चिमी (चमेआली, कुल्लुई आदि)
उदीच्य
केकय मद्र टक्क आदि
शौरसेनी से प्रभावित
पूर्वी पंजाबी
पश्चिमी-पंजाबी या लहंदा
व्राचड़ अपभ्रंश
सिन्धी

इस वंश-वृक्ष से राजस्थानी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश पड़ता है। प्राचीन काल में इसका नाम मरुभाषा ही था।[१] कालान्तर में यह डिंगळ कहलाने लगी। इसी नामकरण के समय राजस्थानी में समृद्धतम साहित्य की रचना हुई। आधुनिक समय में मोटे तौर से इसे राजस्थानी ही कहा जाता है। अतः राजस्थानी से हमारा अभिप्राय उसी परंपरागत मरु एवं डिंगळ भाषा से है।

राजस्थानी के ठीक उद्गम को समझने के लिये अन्य भाषाओं का अध्ययन आवश्यक है। तैस्सितोरी व ग्रियर्सन ने सोलहवीं शताब्दी तक पश्चिमी राजस्थान तथा गुजरात की भाषा को एक ही माना है,[२] किन्तु डा० चाटुर्ज्या के अनुसार यह शौरसेनी या मध्यप्रदेशीय प्राकृत, जिसे पाली भी कहा जा सकता है, से अलग थी।[३] वास्तव में पाली मध्यप्रदेश की भाषा का ही साहित्यिक रूप था। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि पाली और प्राचीन मागधी प्राकृत की ही बोलियां हैं।[४] पश्चिमी पंजाब की बोली एवं सौराष्ट्र की बोली में भी कुछ समानता अशोक के समय में पाई जाती है। इससे यह तो स्पष्ट है कि राजस्थान में जो आर्य बोली आई वह मध्यप्रदेश की ओर से नहीं आई। सम्भव है आधुनिक हिसार, शेखावाटी या उदयपुर की राह से आई हो क्योंकि राजस्थानी-गुजराती का मेल, पश्चिमी पंजाबी से तथा कुछ-कुछ सिंधी से है किन्तु मध्यप्रदेश की बोली से नहीं है।[५] राजनैतिक रूप से भी राजस्थान का गुजरात, सिंध एवं पंजाब से अधिक सम्बन्ध रहा है। प्राचीन काल में भी 'गुर्जरत्रा' (गुर्जर गोत्रा) अर्थात् 'गूजर या गूर्जर लोगों का देश' के नाम से सिंध, गुजरात और मारवाड़ सम्मिलित रूप से एक ही राष्ट्र था।[६]

---

[१] कविराजा सूर्यमल्ल ने वंशभास्कर में स्थान-स्थान पर इस नाम का प्रयोग किया है।

[२] (क) पुरानी राजस्थानी (मू० ले० एल. पी. तैस्सितोरी)—अनु० नामवरसिंह, अध्याय १, भूमिका पृष्ठ १०
(ख) राजस्थानी भाषा—डा० चाटुर्ज्या, पृष्ठ ४५

[३] राजस्थानी भाषा—डा० चाटुर्ज्या, पृष्ठ ४५

[४] – वही –

[५] – वही – पृष्ठ ४७

[६] राजपूताने का इतिहास—जिल्द पहली—ले० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृष्ठ १०७

कुछ विद्वानों का निश्चित मत है कि राजस्थानी का उद्गम शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है,[१] यद्यपि कुछ लोगों ने इस सम्बन्ध में संदेह प्रकट किया है।[२] इस ओर प्रामाणिक अनुसंधान की आवश्यकता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ३३ वें अधिवेशन के सभापति पद से भाषण देते हुए श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने इसका उद्गम गुर्जरी अपभ्रंश से माना है। श्री एन० बी० दिवातिया ने भी गुजराती की उत्पत्ति की विवेचना करते हुए इसी का समर्थन किया है।[३] जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि राजनैतिक रूप से सिंध, गुजरात एवं मारवाड़ के सम्मिलित रूप को 'गुर्जरत्रा' (गुर्जर+गोत्रा) कहा जाता था, किन्तु कालान्तर में (जैसा कि अलबरूनी ने वर्णन किया है) संभवतया भीनमाल का राज्य हाथ से निकल जाने से गुर्जरों का राज्य छोटा रह गया। इसकी राजधानी 'नराएन' कही गई है।[४] इतने लम्बे समय तक इस विस्तृत भू-भाग पर गुर्जरों का अधिकार रहने से भाषा का प्रभावित होना संभव है। अतः गुर्जरी अपभ्रंश नाम अधिक सार्थक है। डा० ग्रियर्सन ने राजस्थानी की उत्पत्ति नागर अपभ्रंश एवं पश्चिमी हिन्दी से मानी है।[५] डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार नागर अपभ्रंश गुजरात के उस भाग में बोली जाती थी जहां आजकल नागर ब्राह्मण बसते हैं। नागर ब्राह्मण विद्यानुराग के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। इन्हीं के नाम

---

[१] (क) प्राकृत भाषाओं का व्याकरण—रिचर्ड पिशल; अनु० डा० हेमचन्द्र जोशी, पृष्ठ ६-७, पैरा ५
(ख) 'पुरानी राजस्थानी' (मू० ले० एल. पी. तैस्सितोरी) अनु० डॉ० नामवरसिंह, अध्याय १, भूमिका पृष्ठ १
(ग) हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—डा० उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ १७८

[२] हिन्दी भाषा का इतिहास—डा० धीरेन्द्र वर्मा, भूमिका ४६ व ५० पृष्ठ पर दी गई फुटनोट की टिप्पणी

[३] Gujrati Language and Literature, Vol. II, by N. B. Divatia B. A., Lecture V, Page 9

[४] – वही – पृष्ठ १९३

[५] (क) Linguistic Survey of India, Vol. IX, Part II.
(ख) हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—डा० उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ २६७

से कदाचित् नागरी अक्षरों का नाम पड़ा।[1] नागर अपभ्रंश के व्याकरण के लेखक हेमचन्द्र गुजराती ही थे। हेमचन्द्र के मतानुसार नागर अपभ्रंश का आधार शौरसेनी प्राकृत था।[2] इस दृष्टि से नागर अपभ्रंश शौरसेनी का ही एक रूप है।[3] किन्तु डा० चादुर्ज्या इसी स्थान की भाषा को सौराष्ट्री अपभ्रंश के नाम से पुकारते हैं।[4] ये दोनों नाम ही कुछ अस्पष्ट से जान पड़ते हैं। नागर अपभ्रंश से अभिप्राय नागर जाति की अपभ्रंश से है या नागरिकों की अपभ्रंश से, यह साफ नहीं है।[5] सौराष्ट्र अपभ्रंश नाम भी कुछ संकीर्ण है। इससे इसका दायरा केवल सौराष्ट्र (काठियावाड़) तक ही सीमित होना सूचित होता है।[6]

राजस्थानी के प्रादुर्भाव का निश्चित समय बताना कुछ कठिन सा है। ठीक समय निर्धारण करने के लिए हमें उस काल की रचनाओं पर दृष्टिपात करना होगा। श्री राहुल सांकृत्यायन ने कुछ प्राचीन कवियों के फुटकर दोहे एवं पद खोज निकाले हैं[7] जिनमें से कुछ हैं—

१. सरहपाद—

(संवत् ६६० के लगभग)

रचना—जहि मन पवन न संचरई, रवि ससि नाहि पवेस।
तहि वट चित्त विसाय करू, सरहे कहिय उवेस।।

२. लूहिया—

(संवत ८३० के लगभग)

रचना—का आ तरुवर पंच बिडाल, चंचल चीए पइयो काळ।
दिअ करिअ महासुद परिमाण, लूइ भणइ गुरु पच्छिअ जाण।।

उपरोक्त रचनाओं को पुरानो राजस्थानी के साथ कुछ समानता अवश्य है। लूहिया की रचना की भाषा कान्हडदे-प्रबन्ध के कुछ दोहों की भाषा के काफी निकट है। वह राजस्थानी का आरंभिक काल हो सकता है। गेय रूप में सब से प्रथम छंदबद्ध ग्रंथ हमें 'बीसलदेव रासो' प्राप्त है। यह राजस्थानी का प्राचीनतम ग्रंथ है। यहां कुछ मतभेद हो सकता है। कई विद्वानों ने इसे पश्चिमी हिन्दी का सब से पहला ग्रंथ माना है। संभवतया यह इसलिये माना गया हो कि उन्होंने राजस्थानी को हिन्दी का ही एक रूप मान लिया। अगर निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो यही विचारधारा वर्तमान में राजस्थानी साहित्य के ह्रास का कारण हुई। राजस्थानी की स्वयं की विशेषता है, उसका अपना व्याकरण है, शब्द-भंडार है, समृद्ध साहित्य है, उसे उसी रूप में देखना चाहिए। 'बीसलदेव रासो' के निर्माणकाल के संबंध में भी विवाद है। उसका सही रचनाकाल निश्चित होने की अवस्था में राजस्थानी के उद्गम के समय का अनुमान करना कठिन नहीं होगा।

बीसलदेव के निर्माणकाल के बारे में विस्तृत विवेचना हम इसी भूमिका में राजस्थानी साहित्य के इतिहास की विवेचना करते समय करेंगे किन्तु मोटे रूप से इसका निर्माण-काल ग्यारहवीं शताब्दी माना जा सकता है।[1] जिस लोकभाषा में 'बीसलदेव रासो' की रचना हुई उसके उस रूप तक पहुँचने में अवश्य कुछ समय लगा होगा। इस दृष्टि से सौ डेढ़ सौ वर्ष का समय कुछ अधिक नहीं। नवीं शताब्दी की सरहपा एवं लूहिया की रचनाओं का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। वे भी हमारे मत की पुष्टि करती हैं। यद्यपि इस समय के काफी बाद तक अपभ्रंश में साहित्य रचना होती गई तथापि लोकभाषा के रूप में आरंभिक राजस्थानी की नींव नवीं शताब्दी में स्थापित हो चुकी थी। दोनों का कुछ संबंध भी काफी समय तक रहा एवं साहित्यिक रूप से तेरहवीं शती में दोनों का विच्छेद हुआ। तैस्सीतोरी ने भी प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का अपभ्रंश से अंतिम रूप से संबन्ध-विच्छेद कर लेने का समय तेरहवीं शताब्दी के आसपास निश्चित किया है।[2]

---

[1] हिन्दी भाषा का इतिहास —डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ४८

[2] (क) — वही — पृष्ठ ४८
(ख) Prakrit Grammar of Hemchandra.

[3] हिन्दी भाषा का इतिहास—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ४८

[4] राजस्थानी भाषा—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृष्ठ ४५

[5] राजस्थानी भाषा और साहित्य—मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ ३

[6] — वही — पृष्ठ ३

[7] महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा सम्पादित 'दोहा-कोश'

[1] इसकी विस्तृत व्याख्या इसी भूमिका के राजस्थानी साहित्य के इतिहास के प्रसंग में आगे की जायेगी, जिसमें बीसलदेव रासो के संवत् १०७३ में रचे जाने की पुष्टि की गई है।

[2] 'पुरानी राजस्थानी'—(मू ले० तैस्सितोरी) अनु० नामवरसिंह अध्याय १, भूमिका पृष्ठ ८

गुजराती एवं राजस्थानी को सोलहवीं शताब्दी तक एक ही भाषा माना गया है,[1] यद्यपि सौ वर्ष पहिले से ही इनमें साधारण विभेद आरम्भ हो गया था। नरसिंह मेहता का जन्म सन् १४१३ ई० में हुआ था। इनके द्वारा लिखित गीत आधुनिक गुजराती के अधिक निकट हैं, किन्तु गेय रूप में होने के कारण इतने वर्षों में इसकी भाषा में अन्तर हो जाना स्वाभाविक है। सन् १४५६ में रचित 'कांन्हडदे प्रबन्ध' की समान भाषा के रूप में ही संभवतया नरसिंह मेहता ने रचना की होगी। 'कांन्हडदे प्रबन्ध' का रचयिता 'पद्मनाभ' नरसिंह मेहता का समकालीन था। सोलहवीं शताब्दी में ये दोनों भाषायें अपने अलग-अलग रूपों में विकसित हुई।[2]

जैसा कि ऊपर लिख आये हैं, राजस्थानी प्रधान पांच शाखाओं में विभक्त है। प्रत्येक शाखा की स्वयं की अपनी कुछ विशेषतायें हैं। पश्चिमी राजस्थानी के कुछ क्षेत्रों में **इकार** तथा **उकार** के स्थान पर **अकार** करने की प्रवृत्ति अधिक है, यथा–हाजर, **मनख, मालम, बराजो** आदि। वर्तमान काल में इसमें जहां **है** का प्रयोग होता है वहां भूतकाल के लिये **हो** या **हा** का प्रयोग होता है, यथा–**चालै है** (वर्तमान काल), **चालता हा** (भूतकाल)।[3] मेवाड़ी में **सकार** के स्थान पर **हकार** करने की प्रवृत्ति अधिक है। हम आगे विवेचन करेंगे कि राजस्थानी में **स** और **स़** के उच्चारण में कुछ भेद है जो साधारणतया अन्य भाषी विद्वानों के लिये कुछ कठिनता उत्पन्न कर देता है। मेवाड़ी **स** के स्थान पर **स़** या **ह** का प्रयोग अधिक होता है, किन्तु इसका यह परिवर्तन शब्द के प्रथम अक्षर तक ही सीमित रहता है। पश्चिमी राजस्थानी में प्रायः **बकार** के स्थान पर **वकार** करने की भी प्रवृत्ति है, यथा–**वात, वार**।

उत्तर-पूर्वी राजस्थानी में भी पश्चिमी राजस्थानी की तरह भूतकाल के लिए **हो** का प्रयोग होता है। पश्चिमी राजस्थानी में संबंधकारक के लिए **रो रा री** का प्रयोग होता है किन्तु पूर्वी राजस्थानी में **को का की** का प्रयोग अधिक है। अल्प प्राण का प्रयोग भी उत्तर-पूर्वी राजस्थानी की अपनी विशेषता है।[1]

पश्चिमी राजस्थानी के अन्तर्गत हमने मारवाड़ी, थली, बीकानेरी, बागड़ी, शेखावाटी, मेवाड़ी, खैराड़ी, गोड़वाड़ी आदि को भी गिना है। इन सब में आपस में कुछ विभेद हैं। बागड़ी में **चकार** और **छकार** का **स़कार** हो जाता है, जैसे—**स़ोर** (चोर), **स़ांनी** (छांनी) आदि। इसमें **सकार** का **हकार** भी होता है। किन्तु ऐसी अवस्था में **ह** की ध्वनि अत्यन्त निर्बल होकर **स** के निकट चली जाती है, यथा—**होनौ** (**स़ोनौ**)। गोड़वाड़ी में भी **सकार** को **हकार** में परिवर्तित करने की प्रवृत्ति प्रचलित है, यथा—**सिनांन** को **हिनांन** अथवा **सिनांन**। इसमें **ड़** को भी **र** में परिवर्तित कर दिया जाता है, यथा—**कीरी** (**कीड़ी**) = चिउँटी। उसमें बागड़ी के समान ही **चकार** और **छकार** का भी **स़कार** हो जाता है, जैसे—**पस़ै** (पछै), **स़ोरी** (छोरी) आदि।

जहां पश्चिमी राजस्थानी में **वकार** करने की प्रवृत्ति है वहां ढूंढ़ाड़ी में **वकार** के स्थान पर **बकार** करने की प्रवृत्ति प्रचलित है, यथा—**बात, बै'म, बचन** आदि। इसमें **आबो, जाबो, खाबो** आदि रूप का प्रचार है। वर्तमान काल में **छै**, भूत काल में **छो** तथा भविष्य काल में **ला** का प्रयोग होता है।[2] प्राचीन काल में **छै** का प्रयोग लिखित गद्य साहित्य में सर्वत्र पाया जाता है। मुंहणोत नैणसी की ख्यात एवं बांकीदास की ख्यात इसके उदाहरण हैं, किन्तु आधुनिक समय में इसका प्रयोग केवल ढूंढ़ाड़ी एवं उसके आसपास के क्षेत्र तक ही सीमित रह गया है। **इकार** तथा **उकार** का भी ढूंढ़ाड़ी में **अकार** हो जाता है।

क्षेत्र-भेद की दृष्टि से राजस्थानी में विभिन्न विशेषताएँ पायी जाती हैं। ढूंढ़ाड़ी और पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) को ही हम शुद्ध राजस्थानी का रूप मान सकते हैं। अधिकांश साहित्य-सामग्री इसी में उपलब्ध है।[3] पूर्वी राजस्थानी ब्रज भाषा से प्रभावित है जबकि पश्चिमी राजस्थानी गुजराती से

---

[1] राजस्थानी भाषा—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृष्ठ ४५ व ४६

[2] 'Gujrati must have differentiated from old western Rajasthani in the sixteenth century into a separate language'—Dr. S. K. Chatterji, Origin & Development of Bengali Language, Vol. I, Page 9

[3] Linguistic Survey of India, Vol. IX, Part, II Page 20.

[1] Linguistic Survey of India, Vol. IX, Part II, Page 43–51

[2] – वही – Page 41

[3] "The only dialect of Rajasthani which has a considerable recognized literature is Marwari"—Linguistic Survey of India, Vol. IX Part II, Page 3.

साम्य रखती है। मोटे तौर पर यह देखा जाय तो मालूम होगा कि प्रायः विभिन्न संस्कृतियों का राजस्थान के रास्ते ही भारत के विभिन्न भागों में प्रसार हुआ है। अतः यह स्पष्ट रेखा द्वारा विभाजित नहीं किया जा सकता कि विभिन्न संस्कृतियों ने कब-कब और किस-किस रूप में यहां पर प्रभाव डाला। एक तरह से यह उन सब प्रभावों का सम्मिलित रूप है।

कुछ शब्दों के प्रयोग तो वास्तव में आश्चर्य में डाल देते हैं। राजस्थानी में कुछ ऐसे विशेष शब्द भी हैं जो वेदों में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु उनका प्रयोग इतर भाषाओं में साधारणतः नहीं पाया जाता। उदाहरण के लिए कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

१ **गिरिआरक** = सुमेरु पर्वत ('आरक' स्वर्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है।)

२ **प्राचीन वरहिस** = इंद्र।

३ **दलम** = इंद्र।

४ **तविख** (तविष) = स्वर्ग।

ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। सीधे वेदों के बाद राजस्थानी में इन शब्दों का प्रयोग वस्तुतः राजस्थानी साहित्यकारों के विशाल अध्ययन एवं पांडित्य का परिचायक है। कुछ साहित्यकारों ने संस्कृत से सम्बन्ध दर्शाने के लिए कुछ शब्दों की विभिन्न व्युत्पत्तियां बताई हैं पर वे संदिग्ध हैं। वैसे भी प्रत्येक शब्द को बलात् खींच कर संस्कृत से संबंधित करने की प्रवृत्ति, जो आधुनिक युग में खूब प्रचलित है, उचित नहीं कही जा सकती। शब्दों को अपने स्वयं के स्वाभाविक रूप में ही ग्रहण करना वांछनीय है।

रूपभेद भी राजस्थानी की अपनी विशेषता है। एक ही शब्द के कई रूप यहां मिलते हैं, यथा—भूमि के लिए **भोम, भुमि, भुंहडी, भूंई, भंय, भुंवि**; पृथ्वी के लिए **प्रथी, प्रथवी, प्रथमी, पोहोवी, पुहमी** आदि। कुछ कवियों ने शब्दों के रूपभेदों को विशेष स्तर पर ही प्रयोग करने की सतर्कता बरती है, किन्तु कुछ अन्य कवियों ने स्वरों को दीर्घ ह्रस्व करने, शब्दों को तोड़ फोड़ कर नये अटपटे अर्थ में प्रयोग करने, अपनी इच्छानुसार स्वरों को उलट पुलट करने आदि में बहुत ही स्वतंत्रता से काम लिया है। यह संभव हो सकता है कि इस श्रेणी के कवियों ने अपभ्रंश की परम्परा के प्रभाव से ही ऐसे प्रयोग किये हों।[1]

जहां राजस्थानी की कई रचनाओं का स्तर बहुत ऊंचा है वहां राजस्थानी से अनभिज्ञ लेखकों, कवियों एवं संपादकों ने राजस्थानी को बहुत अटपटे शब्द दिये हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित 'मीरां पदावली' में मीरां के एक प्रसिद्ध पद की पहली पंक्ति इस प्रकार दी है—

'बसो मेरे **णेणण** में नंदलाल'

राजस्थानी में **न** एवं **ण** दोनों का प्रयोग होता है और दोनों का अपना विशिष्ट स्थान है। प्रायः इतर भाषा-भाषियों ने यह मान लिया है कि राजस्थानी में **न** के स्थान पर सर्वत्र **ण** और **ल** के स्थान पर **ळ** का प्रयोग ही होता है।[2] संभव है अपभ्रंश के प्रयोगों के कारण इन्होंने राजस्थानी के सम्बन्ध में भी ऐसी ही धारणा बनाली हो। प्राकृत, मागधी आदि भाषाओं में जिन शब्दों में लगातार आने वाले दो **नकार** हों, वहां कहीं पूर्व **नकार** एवं कहीं उत्तर **नकार णकार** हो जाता है यथा—**नैण, णैन** (नैन), **नाणा, णाना** (नाना) आदि। राजस्थानी में यह प्रणाली प्रयुक्त नहीं होती। यहां शब्द के आरंभ में **ण** का प्रयोग नहीं पाया जाता। अपभ्रंश आदि भाषाओं में उपरोक्त प्रयोगों के कारण ही इतर भाषा-भाषियों द्वारा संपादित राजस्थानी के ग्रंथों में इस प्रकार की भूलें प्रायः पायी जाती हैं। कुछ उदाहरणों से दोनों के प्रयोग से अर्थ की विभिन्नता स्पष्ट हो जाएगी—

कांन = कर्ण	**कांण** = तराजू के पलड़ों में संतुलन की विषमता, मर्यादा आदि।
नांनौ = मातामह	**नांणौ** = रुपया-पैसा।
मन = जी, हृदय	**मण** = एक तौल परिमाण।

---

[1] इस सम्बन्ध में देखिये—'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण'—मू० ले० रिचर्ड पिशल, अनु०-डा० हेमचन्द्र जोशी, पृष्ठ ५६, पारा २८ का अंतिम अंश।

[2] देखिये—'मीरांबाई की पदावली' संपादक—परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित—भूमिका, पृष्ठ ६२ व ६३ पर दी गई टिप्पणियां (सातवां संस्करण)।

पांन = पत्ता	**पांण** = कलप, धार, बाढ़, बल, हाथ आदि ।
जांन = बारात	**जांण** = जानने की क्रिया ।
बोलौ = बोलिये !	**बोलौ** = बधिर ।
पालौ = झाड़ी विशेष का पत्ता ।	**पालौ** = पैदल ।
काल = कल	**काल** = यम, मृत्यु ।
कालौ = पागल	**कालौ** = काला, श्याम वर्ण ।

हम ऊपर राजस्थानी में शब्दों के रूप-भेद की चर्चा कर रहे थे । रूप-भेद होने के कई कारण हैं । भाषा-विज्ञान के अनुसार भी ध्वनि-परिवर्तन के कई कारण होते हैं, यथा—वाक्यंत्र अथवा श्रवणयंत्र की विभिन्नता, अनुकरण की अपूर्णता, अज्ञानता, भ्रमपूर्ण उत्पत्ति, बोलने में शीघ्रता, मुख-सुख, भावुकता, बना कर बोलना, विभाषा का प्रभाव, भौगोलिक प्रभाव, सामाजिक प्रभाव, लिखने के कारण, संक्षिप्त करने की प्रवृत्ति, बलहीन व्यञ्जन का आधिक्य, स्वाभाविक विकास, मात्रा या तुक, सादृश्य, स्वराघात आदि । ध्वनि-परिवर्तन में इनमें से कोई न कोई कारण अवश्य होता है । इन सब पर सूक्ष्म रूप से विस्तृत प्रकाश डालने का हमारा मंतव्य नहीं है तथापि राजस्थानी भाषा की वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचना करने के लिये इनकी थोड़ी जानकारी विषयान्तर न होगी ।

मोटे तौर पर प्रायः प्रयत्न-लाघव के कारण भी कई शब्दों का निर्माण हो जाता है । असाधारण लंबाई को न संभाल सकने के कारण लोग सुविधा के लिए उसे छोटा कर देते हैं । उदाहरण के लिए **जयरांमजी की** का **जैरांमजी**, **चाय** का **चा** **छाछ** का **छा** एवं **साहब** का **सा** हो गया है ।

अनुकरण के कारण भी कई नये शब्दों का प्रयोग हुआ है यथा—**कँवर, भँवर, चँवर, टँवर** आदि । मात्रा या तुक मिलाने के लिए भी कुछ सिद्ध कवियों को छोड़ कर प्रायः अन्य कवि लोग ध्वनि में मनमाना परिवर्तन कर देते हैं । राजस्थानी के कुछ कविगण तो इसके लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं । यथा—

सत्थ = साथ
किम्मत = कीमत
मुनी = मुनि
कव, कवी (कवि) आदि ।

पाद-पूर्ति के लिये प्रायः **ह, क, स** आदि का प्रयोग भी साधारण बात है । वेदों एवं संस्कृत में भी **ह** पाद-पूर्ति के रूप में प्रचुर मात्रा में आया है ।[1] उसी परंपरा के कारण राजस्थानी के काव्य-ग्रंथों में इसके कई उदाहरण मिल जायेंगे । अपभ्रंश की प्राचीन पद्धति के अनुसार भी शब्दों को कोमल-कांत पदावली में परिवर्तित करने की इच्छा के कारण कुछ कवियों ने अकार को उकार में परिवर्तित कर दिया, यथा—**कमळु** (कमल), **चपळु** (चपल) आदि ।[2]

स्वराघात के कारण भी राजस्थानी में ध्वनि-परिवर्तन हुआ है । ऊंचे सुर देने के लिये हमें मुंह फैलाना पड़ता है, अतः संवृत स्वरों का कभी-कभी विवृत में परिवर्तन हो जाता है । इस प्रकार **इ** का **ए** और **उ** का **ओ** हो जाना साधारण बात है । यथा—

कुष्ठ = कोढ़ ।
कुक्षि = कोख आदि ।

अधिकतर ध्वनि-परिवर्तन प्रायः भाषा के प्रवाह में स्वयमेव हो जाते हैं । उनके लिए किसी विशेष अवस्था या परिस्थिति की आवश्यकता नहीं होती । भाषा विज्ञान ने इन्हें स्वयंभू (unconditional, spontaneous or incontact) कहते हैं । ये कई प्रकार से हो जाते हैं । बोलने में शीघ्रता या स्वराघात के प्रभाव से कुछ ध्वनियों का लोप संभव है । ऐसी ध्वनियों में आदि स्वर लोप के उदाहरण बहुत मिलते हैं ।

(i) **अमीर = मीर**
(ii) **अनाज = नाज**
(iii) **अकाल = काल**

स्वरों के अतिरिक्त व्यंजन-लोप के भी उदाहरण मिलते हैं, यथा—

---

[1] (क) बाल्मीकि रामायण में भी पाद-पूर्ति के लिए 'ह' का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है, यथा—

शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः ।
पम्पा तीरे हनुमता संगतो वानरेण ह ।।

बाल्मीकि रामायण
बालकांड, प्रथम सर्ग श्लोक ५८

(ख) अमरकोश में भी इसका उल्लेख है—'तु हि च स्म ह वै पादपूरणे 'इत्यमरः' । बाल्मीकि रामायण के बाद संस्कृत ग्रंथों में प्रायः इस प्रकार के प्रयोग नहीं मिलते ।

आदि व्यञ्जन लोप—

(i) स्थाली = थाळी

(ii) श्मशान = मसांण

(iii) स्थान = थांन

(iv) स्तम्भ = थंभ

मध्य व्यञ्जन लोप —

(i) सूची = सूई

(ii) कोकिल = कोइल

(iii) घरद्वार = घरबार

(iv) कायस्थ = कायथ

(v) कारतिक = कातिक

अंत व्यञ्जन लोप—

(i) सत्य = सत

(ii) निम्ब = नीम

(iii) जीव = जी

इसके अतिरिक्त जब एक ही व्यञ्जन दो बार पास-पास आ जाता है तो प्रयत्न-लाघव के कारण दो के स्थान पर केवल एक ही व्यञ्जन प्रयोग में आने लगता है, यथा—

(i) बाप-पड़ौ = बापड़ौ

(ii) नाक-कटौ = नकटौ

प्राकृत एवं अपभ्रंश का प्रभाव भी राजस्थानी पर पर्याप्त रूप से पड़ा है।[1] प्राचीन राजस्थानी में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं—

(i) वचन = वग्रण

(ii) सागर = साग्रर, सायर .

(iii) संदेश = संदेसउ

(iv) नगर = नयर

जहां बोलने में शीघ्रता के कारण किसी ध्वनि का लोप होता है वहां सुगमता के लिए नई ध्वनियों का भी प्रवेश हो जाता है। इसका प्रधान कारण उच्चारण की सुविधा है। इसके भी दो भेद होते हैं, यथा—

आदिस्वरागम—प्राय: ऊष्म ध्वनियों के आरंभ में ही यह प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है।

(i) स्नान = असनांन

(ii) स्तुति = असतूती

(iii) सवार = असवार

(iv) वारना = अवारणो

मध्यस्वरागम—

(i) भ्रम = भरम

(ii) जन्म = जनम

(iii) स्वाद = सवाद

विपर्यय भी ध्वनि-परिवर्तन का एक कारण है। असावधानी के कारण ही प्राय: इस प्रकार का ध्वनि-परिवर्तन होता है। यथा—

(i) जानवर = जनावर, जिनावर

(ii) तमगा = तुगमौ

(iii) ब्राह्मण = बांम्हण

(iv) नारिकेल = नाळेर

(v) डूबणो = बूडणो

रेफ[1] के कारण भी राजस्थानी में ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है। रेफ के विषय में आधुनिक राजस्थानी में कोई विशेष नियम नहीं है। आधुनिक संपादकों ने अपने द्वारा संपादित ग्रंथों में रेफ का प्रयोग किया है। यह शोधकर्त्ताओं का कार्य है कि वे प्राचीन मूल प्रतियों (जो स्वयं रचयिताओं द्वारा लिपिबद्ध हो) से वर्तमान प्रतियों को मिला कर शोध करें। जहां तक हमारा प्रश्न है, हमने राजस्थानी में रेफ को नहीं माना है। प्राकृत एवं अपभ्रंश में रेफ का प्रयोग नहीं मिलता। संभव है वही परंपरा राजस्थानी ने ग्रहण करली हो। रेफ के लोप के कारण कई ध्वनि-परिवर्तनों के उदाहरण इस प्रकार मिलते हैं,[2] यथा—

---

[1] इसी प्रभाव के कारण ह्रस्व को दीर्घ करने के लिए कविता में प्राय: अनुस्वार अथवा वर्ण द्वित्व का प्रयोग कर दिया जाता है, यथा—कनक > कनंक, कटक > कटक्क, भ्रमर > भ्म्मर आदि।

[1] रेफ से हमारा तात्पर्य 'र' के उस रूप से है जो अन्य अक्षर के पहले आने पर उसके मस्तक पर रहता है, यथा—हर्ष, सर्प आदि।

[2] (क) राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृष्ठ ४०

(ख) ऐसा प्राय: स्वरभक्ति (Anaptyxis) के कारण होता है। देखो Elements of the Science of Language—by Taraporewala, Para 130 (d). Pp. 163-164.

(i) **कर्म = करम**

(ii) **दुर्गा = दुरगा**

(iii) **धर्म = धम्म, धरम**

(iv) **चर्म = चरम, चांम**

कुछ व्यञ्जन यथा **प, ब, म, थ** आदि उच्चारण में स्वर के समीप होने के कारण स्वर में परिवृत होकर फिर अपने पहले के व्यंजन में मिल जाते हैं। इस प्रकार का परिवर्तन कई बार तो इतना विषम हो जाता है कि नयी ध्वनि मूल ध्वनि से नितांत साम्यरहित प्रतीत होने लगती है, यथा—

पुत्र = पुत्त = उत्त = वत[1]

शत = सम्र = सव = सउ = सौ

नयन = नइन = नैन = नैण

राजस्थानी में प्रत्येक स्वर का अनुनासिक रूप भी पाया जाता है। इस भाषा में अनुनासिकता की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। चूंकि अनुनासिक ध्वनि ही हमारे लिए स्वाभाविक एवं सरल है अतः अनजाने ही उसका विकास स्वतः हो गया है। वास्तव में अनुनासिक एवं निरनुनासिक दोनों स्वर भिन्न-भिन्न हैं। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में स्थान वही रहता है किन्तु साथ ही कोमल तालु और कौवा नीचे झुक आता है जिससे मुख द्वारा निकलने के अतिरिक्त हवा का कुछ भाग नासिका विवर में गूंज कर निकलता है, इस कारण स्वरों में अनुनासिकता आ जाती है। कई स्थानों पर अनजाने ही अनुनासिकता का विकास हो गया है, यथा—

(i) **कूप = कूँआ**

(ii) **अश्रु = आँसू**

(iii) **उष्ट्र = ऊंट**

(iv) **पुच्छ = पूछ**

(v) **अक्षि = आंख**

राजस्थानी में अगर सबसे अधिक मतभेद किसी पर है तो वह अनुनासिक समस्या पर ही है। भाषा विज्ञान के अनुसार अनुनासिकता आना स्वाभाविक है। भाषा के स्वाभाविक विकास में ऐसा हो जाता है। संभवतया इसका मुख्य कारण मुख-सुख है।

राजस्थानी में उन सभी दो अक्षर वाले शब्दों में जिसमें पहला अक्षर **आ** स्वर से युक्त हो तथा दूसरा अक्षर अनुनासिक हो तो अनुनासिक के पूर्व अक्षर पर अनुस्वार लगता है। क्रियाओं के सम्बन्ध में यह नियम उनके धातु पर ही लागू होता है। धातु क्रिया के उस अंश को कहते हैं जो उसके समस्त रूपान्तरों में पाया जाता है। उदाहरणार्थ **चालणौ, चालियौ, चालेला, चालतौ** आदि समस्त रूपों में **चाल** अंश समान रूप से मिलता है, अतः **चाल** इन क्रिया-रूपों की धातु मानी जाती है जो संस्कृत के 'चल्' धातु से बनी है। कुछ विद्वानों के मतानुसार धातु की धारणा वैयाकरणों की उपज है एवं यह भाषा का स्वाभाविक अंग नहीं है।[1] प्रायः क्रिया के—**णौ** से युक्त साधारण रूप से—**णौ** हटा देने पर राजस्थानी धातु निकल आती है जैसे—**खाणौ, जांणणौ, देखणौ** में क्रमशः **खा, जांण, देख** धातु है। क्रिया के ऐसे धातु भी अगर दो अक्षर-युक्त हों एवं पहला अक्षर **आ** स्वर से युक्त हो तथा दूसरा अक्षर अनुनासिक हो तो अनुनासिक के पूर्व अक्षर पर अनुस्वार लग जाता है। अतः यह नियम साधारण तथा क्रिया-धातु वाले सभी शब्दों पर लागू होता है[2] —

साधारण—(i) **आम = आंम**

(ii) **राम = रांम**

(iii) **काम = कांम**

(iv) **दान = दांन**

[1] The उत्त becomes वत by prati-samprasarana in these cases. I do not believe that पुत्र-पुत्त becomes वुत्त and thus वत्त; for in the case of गुहिलोत the steps are पुत्त-उत्त, (not पुत्त, वुत्त, उत्त)"
—Gujrati Language and Literature, Vol. I
—by N. B. Divatia, Pp. 146, Foot-note No. 24

१ हिन्दी भाषा का इतिहास—धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ २९०
२ (क) भाषा विज्ञान— भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ २०९—
"आज भी कुछ शब्दों में अनुनासिकता आ रही है, यद्यपि लिखने में अभी हमने उन्हें स्वीकार नहीं किया है—
आम = आंम काम = कांम हनूमान = हँनूँमान
राम = रांम नाम = नांम महाराज = मँहाराज"
(ख) हिन्दी भाषा का इतिहास—धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ १४० भी द्रष्टव्य है।

क्रियाएँ—

क्रिया	राज. धातु	राजस्थानी रूप
जानना	जांण	जांणणौ
मानना	मांण	मांणणौ
तानना	तांण	तांणणौ
नमाना	नांम	नांमणौ

(अर्थ झुकाना एवं उंडेलना)

जिन क्रियाओं के धातु दो अक्षरयुक्त नहीं हैं अथवा प्रथम अक्षर आ की मात्रायुक्त एवं दूसरा अनुनासिक नहीं है तो ऐसी क्रियाओं में अनुस्वार का प्रयोग नहीं होता—

क्रिया	राज. धातु	राजस्थानी रूप
आना	आ	आणौ
खाना	खा	खाणौ
चलना	चाल	चालणौ
मारना	मार	मारणौ
देखना	देख	देखणौ आदि

इसके अतिरिक्त दो से अधिक अक्षरों वाले कुछ शब्दों में भी अनुनासिकता प्रवेश करती जा रही है

(i) अमानत = अमांनत
(ii) खयानत = खयांनत
(iii) आनन = आंणण
(iv) बादाम = बादांम
(v) सामंत = सांमंत
(vi) प्राघुण = पांमणौ आदि।

किन्तु इसी श्रेणी के कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो अनुनासिक नहीं होते, यथा—

(i) करामात = करामात
(ii) आनंद = आणंद
(iii) कयामत = कयामत आदि।

वास्तव में इस सम्बन्ध में कोई निश्चित सीमा रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती कि दो से अधिक अक्षरों वाले अमुक शब्दों में अनुस्वार लगेगा और अमुक में नहीं। यह प्रमुखतया उच्चारित की जाने वाली ध्वनि पर ही निर्भर है। इस ध्वनि की खोज किसी अन्य भाषा के प्रभाव से बच कर अथवा उसका आवरण हटा कर शुद्ध राजस्थानी की गहराई में पैठ कर ही की जा सकती है।

भाषा का वैज्ञानिक एवं स्वाभाविक रूप वह है जो बोलने की ध्वनि के अनुसार ही लिपिबद्ध हो। भाषा-विज्ञान ने यह मान लिया है कि यह ध्वनि स्वाभाविक है और आधुनिक भाषाओं में वह आ भी रही है। अतः उसके आगमन को स्वाभाविक मान कर उसे ग्रहण कर लेना उचित एवं वैज्ञानिक होगा। हिन्दी आदि कुछ अन्य भाषाओं में भी अब अनुनासिकता का प्रवेश हो रहा है। चाहे विद्वान अभी उसे लिखने में स्वीकार करने की स्थिति में न हों),[1] किन्तु राजस्थानी में इसका प्रवेश सोलहवीं शताब्दी से पहले ही हो चुका था। उस काल की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में इसका प्रयोग देखा जा सकता है। जो विद्वान इसे स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं वे संभवतया भाषा के स्वाभाविक प्रवाह एवं विकास को अवरुद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

भारत की विभिन्न बोलियों में भी अनुनासिकता की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।[2] वर्तमान बोलियां ही भविष्य में साहित्यिक भाषा का आधार बनती हैं। अतः इस विकास को दबाने की अपेक्षा इसे स्वाभाविक रूप में ग्रहण कर लेना ही युक्तिसंगत है। अतएव इसी प्रणाली को हमने कोश में स्वीकार किया है।

कुछ लोगों के कथनानुसार राजस्थानी में सबसे अधिक तोड़-मोड़ नामों में हुई है, चाहे वे किसी मनुष्य के नाम हों अथवा किसी स्थान विशेष के। किन्हीं स्थानीय नामों का ब्यौरेवार अध्ययन करने के लिये स्थानीय जातियों की भाषा, प्रसार और तत्कालीन रहन-सहन की जानकारी अत्यावश्यक है। मुंडारी, द्रविड़, आर्य एवं म्लेच्छ परिवार की भाषाओं ने स्थान-नामों की रचना में महत्वपूर्ण भाग अदा किया है।[3] परिवर्तित साहित्यिक विशेषताओं ने इन नामों पर पर्याप्त प्रभाव डाला है। संस्कृत शब्दों को जिन प्राकृत एवं अपभ्रंश की साहित्यिक विशेषताओं में से गुजरना पड़ा उनका उन

[1] भाषा-विज्ञान—भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ २०९।

[2] धीरेन्द्र वर्मा ने 'हिन्दी भाषा का इतिहास' पृष्ठ १०९ में इस प्रकार के अनुनासिक स्वरों की छोटी सी तालिका दी है।

[3] पाणिनिकालीन भारतवर्ष—वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ १८०।

नामों पर भी प्रभाव आवश्यक था। नामों के रूपभेद का मोटे रूप मे मुख्य कारण यही है,[1] यथा--

चित्तौर—चतरंग, चत्रंग, चत्रंगद, चत्रकोटगढ़, चत्रगढ़, चात्रंग, चात्रक, चितावर, चित्रकूट, चित्रकौर, चीतगढ़, चीतदुरंग आदि।

नामों में एक प्रकार की जातीय और वैयक्तिक सुरुचि, आस्था और संस्कृति की छाप पाई जाती है। चरक[2] ने नामों को दो प्रकार से विभक्त किया है—नाक्षत्रिक नाम एवं आभिप्रायिक नाम। वह नाम जो किसी नक्षत्र में हुए जन्म के अनुसार रक्खा जाता है, नाक्षत्रिक नाम कहलाता है। आभिप्रायिक नामों में कोई अभिप्राय निहित रहता है। अधिकांश नाम प्राय: आभिप्रायिक ही पाये जाते हैं। ऋग्वेद काल एवं उसके उपरांत पिता से प्राप्त होने वाले पैतृक नाम को जोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ती गई। राजस्थान की शासकीय एवं उससे सम्बन्धित अन्य जातियों में यह प्रवृत्ति पर्याप्त रूप से परिलक्षित होती है, यथा—**रामसिंह जोधावत, नाथूराम खड़गावत** आदि। पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी में इसका विस्तार के साथ उल्लेख किया है। गोत्र एवं उपगोत्रीय नामों के अतिरिक्त स्थानवाची नाम भी राजस्थान में प्रचलित हैं। स्वयं के रहने अथवा पूर्वजों के रहने से—दोनों प्रकार से स्थानवाची नामों का निर्माण हो जाता है। किसी स्थान से हटने पर भी उस व्यक्ति की सन्तानें उस स्थान के नाम को जारी रखती हैं, यथा—**गोविंदलाल जयपुरिया, धनराज मेड़तिया** आदि। किसी स्थान की शासक जाति भी कालांतर में उस स्थान से सम्बन्धित स्थानवाची नाम ग्रहण कर लेती है। प्राचीन समय में सांभर पर चौहानों का राज्य रहा था, उसी कारण चौहानों को आज भी **सांभरिया** कह देते हैं।

राजस्थान में नामों के सम्बन्ध में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो आधुनिक समय में प्राय: अन्य स्थानों में नहीं मिलतीं। विवाहोपरांत स्त्री प्राय: अपने पति का गोत्र ही नाम के साथ लिखती है। कायस्थ जाति की सक्सेना लड़की का विवाह किसी माथुर के साथ होने पर वह श्रीमती कमला माथुर के नाम से ही पुकारी जाती है। राजस्थान में कहीं-कहीं इससे विपरीत प्रथा मिलती है। यहाँ की कई शासकीय जातियों में लड़की विवाहोपरांत भी अपना गोत्र एक इकाई के रूप में कायम रख लेती है, यथा—**कूंपावतजी** आदि। गोत्र के साथ जी लगाने से उस गोत्र की स्त्री का बोध होता है जिस गोत्र से वह आई है। यही कारण है कि अन्य प्रान्तों की तरह गोत्र के साथ जी लगा कर पुकारने या लिखने की प्रथा राजस्थान में नहीं है। किसी राणावत गोत्र के पुरुष को राणावतजी कह कर पुकारना यहाँ अशिष्टता है। यहाँ जी वर्ण ने भी नामों में एक नवीनता उत्पन्न करदी है।[1]

नामों के प्राय: दो भाग होते हैं, यथा—पूर्वपद एवं उत्तरपद, यथा – **रायमल्ल**। वैदिक काल में नाम बह्वच (बहुत अच् वाले) होते थे जो पूर्वपद एवं उत्तरपद के मेल से बने होते थे।[2] कालांतर में उत्तरपद या पूर्वपद को लोप करके नामों को छोटा करके बोलने या लिखने की प्रथा चल पड़ी। राजस्थानी के कवियों ने इसका खूब लाभ उठाया। एक नाम के दोनों पदों को उलटने, किसी पद को लुप्त करने तथा रूपांतरित करने में वे अग्रणी रहे हैं। इस नई परंपरा ने एक प्रथा का रूप धारण कर लिया है, यथा—रायमल्ल के विभिन्न प्रचलित रूपभेद हैं—**राय, मल्लराय, मल्ल, रायमल, रायम** आदि। नामों को छोटा करने में प्यारवाचक या निंदावाचक अल्पार्थों ने भी बहुत योग दिया है जिनका वर्णन हम आगे अल्पार्थ शब्दों का विवेचन करते समय करेंगे।

धर्म, देवी-देवताओं एवं पशु-पक्षियों का भी मनुष्यों के नामकरण पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। देवताओं के नाम, मनुष्यों के नामों में इस प्रकार घुल-मिल जाते हैं और पुरातत्त्व की सामग्री की तरह बच रहते हैं। सिंह शब्द का भारतीय एवं विशेष कर राजस्थानी नामों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है।

---

१ राठौड़—राठवड़, राठउड़, राठोड़, राइठोड़, रट्ठवड़, रट्ठउड़, राठौहड़, राउठउड़।

चौहान—चाहवांण, चाहमांण, चहुमांण, चहुवांण, चवांण, चुहांण, चोहांण, चोहान।

२ देखो—चरक, शरीर-स्थान, अ० ८। ५१

१ प्राचीन काल में भी एक जनपद में उत्पन्न राजकुमारियाँ या स्त्रियाँ विवाह के बाद जब दूसरे जनपद में जाती थीं तो पतिगृह में वे अपने जनपदीय नाम से ही पुकारी जाती थीं। इससे स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा और गौरवात्मक स्थिति का संकेत मिलता है, यथा—माद्री, कुंती, गांधारी आदि।

२ अष्टाध्यायी : पाणिनि—५/३/७८

राजस्थानी नामों के उत्तरपद के रूप में **सिंह** शब्द को जो स्थान मिला है वह संभवतया किसी अन्य शब्द को नहीं मिला।

कुछ व्यक्ति विशेष के नाम अत्यधिक महत्व पाने पर कालान्तर में विशेषण का रूप धारण कर लेते हैं। प्रसिद्ध **बाघ**[1] नाम क्षत्रिय से उत्पन्न **बगड़ावतों** की वीरता के कारण प्रायः राजस्थान में काम निकालने वाले वीर, साहसी पुरुषों को **बघड़ावत** विशेषण से संबोधित किया जाता है। बुवाल के राजा ईहड़देव चालुक्य की पुत्री **जयमती**[2] अत्यन्त दुश्चरित्रा हुई। पति के वृद्ध होने के कारण उसने राव भोज के साथ रहना चाहा और बाद में उनकी ही मृत्यु का कारण बनी। इसी के आधार पर आज भी दुश्चरित्रा स्त्री को दुत्कारते समय **जा! ए रांड जैमती!** कह कर फटकारा जाता है। इन उदाहरणों से यह मान लेना उचित न होगा कि जिस व्यक्ति के लिये ये विशेषण रूप प्रयोग किये जांय उनमें उस विशेष नामधारी व्यक्ति के गुणों का संन्निहित होना आवश्यक है। कालान्तर में नाम के साथ संयुक्त गुण अलग हो जाते हैं और वे किसी दूसरे ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगते हैं। अफलातून एक प्रसिद्ध दार्शनिक था, किन्तु आज राजस्थान में किसी जबरदस्त व प्रबल व्यक्ति को भी **बड़ो अफलातून** आदमी है, कह दिया जाता है। यद्यपि दर्शन के साथ उस व्यक्ति का किंचित् मात्र भी सम्बन्ध नहीं होता। प्राचीन कुक्कुटध्वज नामक राजा के कारण **लक्कड़धज**, प्रसिद्ध धनवंतरि वैद्य के कारण **धन्तरजी** आदि विशेषण प्रचलित हो गये हैं। अंग्रेजी शासनकाल के गवर्नर जनरल का लॉर्ड विशेषण **लाटसाहब** व्यंग्य रूप में आज भी प्रयुक्त किया जाता है। ये सब नाम विशेषण रूप में होकर सर्वसाधारण में प्रयुक्त होने लगे हैं।

प्रत्येक शब्द का अपना कुछ विशेष इतिहास होता है, उसकी निश्चित पृष्ठभूमि होती है। एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में बिल्कुल विभिन्न अर्थ में प्रयुक्त हो जाते हैं, यद्यपि तत्सम रूप के कारण उनका लगाव पुरानी भाषा से भी सम्बंधित रहता है। इस सम्बन्ध में कई रूप प्रचलित हैं, यथा—अर्थ-संकोच, अर्थ-विस्तार, अर्थ-परिवर्तन आदि। पूर्व संस्कृत में **सर्प** शब्द समस्त रेंगने वाले जंतुओं के लिए प्रयुक्त होता था किन्तु अर्थ-संकोच के कारण आज वह केवल **सांप** के लिए प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार **संध्या** शब्द जो सवेरे, शाम (प्रातः संध्या, सायं संध्या) दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता था, भ्रम के कारण अब केवल शाम के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। अर्थ-परिवर्तन के कारण भी कुछ शब्द भाषा बदलते समय अर्थ भी बदल लेते हैं। अरबी भाषा में **हैफ** शब्द अफसोस, दुख एवं अत्याचार के अर्थ में आता है किन्तु इसी भाषा से राजस्थानी में आने पर यही **हैफ (हैप)** शब्द आश्चर्य एवं विस्मय का अर्थ देता है। फारसी भाषा में **खसपोस** विशेषण रूप में 'घास से ढका हुआ' या 'घास से आच्छादित' के अर्थ

---

१ बाघ नामक क्षत्रिय के विषय में प्रसिद्ध है कि उसने अपने निवास-स्थान गोठण की पच्चीस भिन्न-भिन्न जाति की कन्याओं के साथ जंगल में गंधर्व विवाह कर लिया था। बात प्रकट होने पर कन्याओं के माता-पिताओं ने भी इनका विवाह बाघ के साथ कर दिया। विवाह के समय ग्राम का पुरोहित (गुरु) ने विवाह के पहले बाघ से यह प्रण करा लिया कि विवाह की दक्षिणा में एक कन्या जो सबसे सुन्दरी होगी, उसको उसे देना होगा। अतः गुरु की इच्छानुसार अत्यन्त सुंदरी मेघवाल (बलाई) जाति की कन्या का विवाह गुरू के साथ कर दिया गया। इसकी संतान गुरड़ा नामक नई स्वतंत्र जाति के रूप में प्रसिद्ध हुई। शेष चौबीस कन्याओं के जो चौबीस पुत्र उत्पन्न हुए वे अपने पिता के नाम पर 'बघड़ावत' कहलाये। ये चौबीसों भाई अपने समय के प्रसिद्ध वीर और दानी हुए। वदान्यता में इनकी साम्यता कर्ण से की जाती है और ये लोग प्रातःस्मरणीय माने गये हैं।

(सौरभ, भाग १, खंड २, मार्च सन् १९२१, पृष्ठ १७ की टिप्पणी)

२ यह बुवाल के राजा ईहड़देव चालुक्य की पुत्री थी। इसका विवाह राणा भणाय के वृद्ध राजा बाघराज पड़िहार से हुआ था। बाघ के चौबीस पुत्रों की वीरता के प्रभाव से वृद्ध राजा ने बघड़ावतों के साथ भ्रातृ-भाव स्थापित कर लिया था। बघड़ावतों में एक भोज भी था जिसने इतना धन लुटाया कि चारों ओर उसकी कीर्ति फैल गई थी। अपने पति को वृद्ध एवं भोज को सुन्दर एवं युवा देख कर उन्हें पति रूप में ग्रहण करने के विचार से भोज के पास संदेश भेजा। भोज ने उचित मौका देख कर बाघराज की अनुपस्थिति में डाका डाल कर जयमति को उड़ा लिया। इस पर बाघराज ने एक बड़ी सेना लेकर भोज पर चढ़ाई करदी। इधर जयमती भी भोज से शीघ्र ऊब गई और मन ही मन पछताने लगी। अतः उसने भोज एवं उसके भाइयों को मरवाने के उद्देश्य से बाघराज से लड़ने को खूब प्रोत्साहित किया। सब भाई एक-एक कर के बाघराज की सेना द्वारा मार डाले गये। इसी दुश्चरित्र एवं कपट भाव के कारण जयमती को कालान्तर में अत्यन्त हेय दृष्टि से देखा जाने लगा।

(सौरभ, भाग १, खंड २, मार्च सन् १९२१, पृष्ठ १८ की टिप्पणी)

में प्रयुक्त होता है किन्तु राजस्थानी में यह संज्ञा रूप में आच्छादन या पाटन के लिये आता है। कई बार तो एक ही भाषा के शब्दों में अर्थ-परिवर्तन हो जाया करता है।[१] स्थान विशेष से सम्बंधित बहुत से नाम भी कालान्तर में सार्वदेशिक बन जाते हैं। पुराने सिंध प्रान्त में अच्छा घोड़ा व नमक मिलने के कारण वहाँ के घोड़ों को **सैंधव** कहते हैं किन्तु कालान्तर में यही नाम प्रायः नमक एवं घोड़े का पर्याय ही बन गया।[२] कई बार नये आये शब्द पुराने शब्दों को दबा देते हैं। इस प्रकार पुराने शब्दों का प्रचलन कम होता जाता है। नये **लैम्प** एवं **लालटेन** ने प्राचीन **दीपक** एवं **दीवौ** का प्रयोग बहुत कम कर दिया है। अरबी, फारसी, इरानी, तुर्की, पुर्तगाली आदि भाषा के अनेक शब्दों ने ग्रामस्तर तक की बोलचाल की भाषा में घर कर लिया है, यथा—**सा'ब, जवाब, जलसौ, अरज, तमाकू, अलमारी**, इत्यादि।

सादृश्य का प्रभाव भी जोड़ी के शब्दों में बहुधा दिखाई देता है। स्वर्ग-नरक राजस्थानी में इसी सादृश्य के प्रभाव के कारण **सरग-नरग** हो गये। व्यर्थ की पंडिताई की अहमन्यता में पड़ कर कुछ लोग सादृश्य के स्थान के अशुद्ध प्रयोग कर बैठते हैं।[३] राजस्थानी के **सराप** (शाप) को वे **श्राप** लिख कर संस्कृत से निकटता एवं पंडिताई का दम भरते हैं। इसी प्रकार **जबाब** को **जवाब, रवाज** को **रिवाज, जिगर** को **जिग़र, काग़ज** को **काग़ज़** आदि कहने एवं लिखने वालों की कमी नहीं है। अन्य भाषा में प्रयुक्त होने पर शब्द भी कुछ मर्यादित होकर नयी भाषा के नियमों एवं व्याकरण के साँचे में ढल जाते हैं।

ध्वनि-विकास एवं ध्वनि-परिवर्तन की गति बहुत ही मंद होती है। संस्कृत का 'अग्नि' आज **आग** हो गया है, किन्तु इसे इस रूप में आने में कितनी शताब्दियां लगी होंगी? इसके बीच में **अग्गी, अग्गि, आगि** आदि रूप भी आये होंगे। इसके अतिरिक्त **ई** का ह्रस्व **इ** और उससे फिर लोप हो जाना भी कम समय का द्योतक नहीं है। यदि **ई** की काल-मात्रा ४० इकाई रही हो तो उसको शून्य तक पहुँचने में कई सौ वर्ष लगे होंगे। ध्वनि-विकास तो मनुष्य समुदाय में अनजाने ही अपने-आप हुआ करता है। किसी भाषा-वैज्ञानिक द्वारा भाषा-विज्ञान के अध्ययन के समय ही इस परिवर्तन का पता चलता है।

संस्कृत की कुछ परंपरायें राजस्थानी में भी उसी रूप में मिलती हैं। संस्कृत के कुछ शब्दों के आदि वर्ण की पुनरावृत्ति होने पर भी अर्थ प्रायः वही रहता है, यथा—**चल = चंचल**। इसी प्रकार राजस्थानी में भी कुछ शब्द बन गये हैं—**छेड़णौ = छंछेड़णौ; छोरापण = छिछोरापण** आदि।

ध्वनि-विकास के इस प्रकरण में राजस्थानी की कुछ अन्य ध्वनि-विकास-विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं।

आद्य या मध्य अक्षरों में, उसके पूर्व या पश्चात् दीर्घ-स्वर वाला कोई अक्षर हो तो राजस्थानी में **अ** का **इ** हो जाता है, यथा—सं०—**कपाट**, अप०—**कवांड**, रा०—**किंवाड़**, अ० **सलांम**, रा० **सिलांम**। इसी प्रकार **उ, ऊ, प, फ, ब, भ** और **म** ओष्ठ्य वर्णों के पूर्व या पश्चात् **अ** आने पर वह प्रायः '**उ**' का रूप धारण कर लेता है। यथा सं०—**प्रहर**, अप०—**पहर**, रा० **पुहर**, सं० **पल**, रा० **पुल**। दो या दो से अधिक अकारयुक्त व्यञ्जन एक दूसरे के बाद आने पर **अ** प्रायः फैल कर **अइ** हो जाता है, यथा—**करइतु = करतु**; कहीं पर यह ऐ भी हो जाता है, यथा—सं०—**सहस्र**, रा०—**सैंस**। कहीं-कहीं पर **इ** दुर्बल होकर **अ** हो जाता है, यथा—**इन्द्र = अंद्र, इला = अला**; तथा कहीं-कहीं पर **उ** दुर्बल होकर **अ** हो जाता है, यथा—**उलूक = अलूक**। प्राकृत एवं अपभ्रंश के **अई** का भी केवल **इ** के रूप में सरलीकरण हो गया, यथा—सं० **करोति**, अप० **करइ**, रा० **करि**। इस सरलीकरण के साथ ही व्याकरण की दृष्टि से भी निर्मित रूप पूर्वकालिक हो गया है। तत्सम रूपों के तद्भव रूपों में परिवर्तित होने के

---

[१] इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य है--

"The word असुर meant originally the Deity (lit, the Lord of Life, असू), but later on it was misunderstood and the initial अ- was taken to be the negative prefix and a new word सुर was coined to mean "god" and असुर came to have the meaning 'demon'.

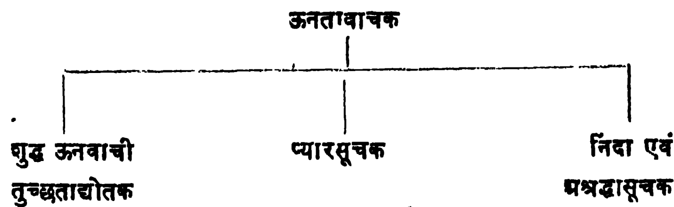
—Elements of Science of Language
by Taraporewala, Pp. 102.

[२]—वही—पृष्ठ १०५

[३] सामान्य भाषा विज्ञान—बाबूराम सक्सेना, पृष्ठ ६७

साथ ही व्याकरण की दृष्टि से रूप बदलने की विवेचना हम पीछे कर चुके हैं।

बलाघात एवं भावातिरेक का भी भाषा-परिवर्तन पर बहुत प्रभाव पड़ता है, यद्यपि इसके मूल में भी सुविधाजनक प्रयत्न-लाघव ही होता है। शब्दों के प्रयत्न-लाघव के साथ भाव-संबंधी प्रयत्न-लाघव भी कार्य करता है। कुछ मनुष्य वास्तविक स्थिति को तुच्छ समझ कर एवं कुछ कम कर के आंकते हैं। अल्पार्थ शब्दों की उत्पत्ति का यही कारण है। प्रेम, स्नेह, ईर्ष्या, द्वेष आदि मनोविकार भी ऊनवाचक शब्दों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं। ऊनवाची शब्दों का विभाजन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है—



प्रत्येक को तुच्छ समझ कर एवं कुछ कम कर के आंकने की एवं अहंभाव की रक्षा करने की प्रवृत्ति ही शुद्ध तुच्छता-द्योतक ऊनतावाचक शब्दों की उत्पत्ति का कारण बनती है। अचेतन मन की इस अहंभाव की तुष्टि के अतिरिक्त किसी अन्य मनोविकार या भाव की अभिव्यक्ति इसमें नहीं होती। पाणिनी-काल में भी इस प्रकार के प्रयोग प्रचलित थे। पाणिनि ने इस सम्बन्ध में अपने व्याकरण के सूत्र ५। ३। ८०; ५। ३। ८१; ५।३।८६; में इनका उल्लेख किया है। प्रस्तुत कोश में इस प्रकार के समस्त अल्पार्थों को संबंधित शब्द के साथ देने का प्रयत्न किया गया है, यथा—**घोड़ौ = घोड़लौ, घोड़ियौ; गधौ = गधेड़ौ, गधेड़ियौ** आदि।[1]

भावातिरेक के कारण भी भाषा में परिवर्तन होता है, यद्यपि इसके मूल में भी सुविधाजनक 'प्रयत्न-लाघव' कार्य करता है। दुलार की आंतरिक भावना कई बार हमारे द्वारा उच्चारित शब्दों में भी झाँकने लगती है। बच्चों के पग को दुलार में हम कई बार **पगलिया** कह बैठते हैं। **कमलेश** नामक शिशु को हम प्यार में **कमियौ** कह बैठते हैं।[1] **बाँह** का **बँहिया, मुख** का **मुखड़ौ** रूप मोहक मोहन के अतिशय प्रेम का ही द्योतक हो सकता है। प्रेमातिरेक के कारण मनुष्य अपने स्निग्धजनों के नाम कुछ-कुछ बिगाड़ कर बोलने लगता है। जहाँ प्रेमातिरेक के कारण शब्दों के उच्चारण में कुछ अंतर आ जाता है, वहाँ गुस्से में प्रायः नाम और शब्द भी बिगड़ जाया करते हैं। कुछ विषयों या व्यक्तियों के प्रति हमारे मन में घृणा के स्थायी भाव (Sentiments) नहीं होते किन्तु उनके प्रति कभी क्रोध आने पर हम शब्दों को बिगाड़ डालते हैं, यथा—**कालूराम** का **कालूड़ौ**।

कुछ व्यक्तियों के प्रति हमारे आंतरिक मन में क्रोध अथवा घृणा के स्थायी भाव (Sentiments) होते हैं। तब हमारा अचेतन मस्तिष्क (Unconcious-mind) उस घृणा एवं क्रोध को शब्दों के बिगड़े हुए रूप में प्रस्तुत कर प्रकट भी कर देता है, यथा—**साधु = साधुड़ौ**। इस आधार पर बिगड़े उच्चारण के शब्दों अथवा विषय के प्रति उच्चारणकर्ता के हृदय में तनिक भी श्रद्धा नहीं होती। इस प्रकार विभिन्न मनोविकार शब्दों के भाषा-वैज्ञानिक पहलू की दृष्टि से काफी प्रभावशाली सिद्ध होते हैं।

जहां अपने अहंभाव के कारण अथवा अन्य किसी मनो-विकार के कारण ऊनतावाची शब्दों की उत्पत्ति होती है वहां दूसरे का महत्व कुछ अधिक प्रकट करने के लिये महत्ववाची शब्दों का प्रयोग भी पाया जाता है। यह वास्तविक वस्तु को कुछ अधिक बढ़ा-चढ़ा कर (चाहे वह आकार में हो अथवा भाव में) प्रस्तुत करने के प्रयत्न के कारण होता है। ऐसे शब्दों के रूप, औकारांत अथवा अकारांत ही होते हैं। मूल रूप के अकारांत, औकारांत शब्द अपने महत्ववाची रूप में अकारांत हो जाते हैं, यथा— **गधौ = गधेड़, घोड़ौ = घोड़** आदि।

राजस्थानी भाषा के स्वरों की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। कई स्वरों के उच्चारण में वैशिष्ठ्य है। विशेष रूप में इनको स्पष्ट करने के लिये प्रत्येक का अपने अलग रूप में स्पष्ट करने का प्रयत्न वांछनीय होगा।

अ—यह ह्रस्व अर्द्धविवृत मध्य स्वर है। जैसा कि हम

---

[1]कई बार इस सम्बन्ध में 'की' का प्रयोग भी हो जाता है, यथा—नाथी = नथकी।

[1]ली का प्रयोग—चिड़कली, धीवड़ली।

पहले विवेचन कर चुके हैं। कुछ शब्दों में **अ** स्वर लुप्त हो गया है,[1] यथा—**अनाज = नाज, अकाल् = काल्**

यह कहीं मध्य में लोप होता है तथा कहीं अंत में। लुप्त होने के साथ ही विभिन्न दूसरे स्थलों में इसका आगम भी हो जाता है। रेफ वाले प्राय: समस्त शब्दों में **अ** का आगम होता है, यथा—**धर्म = धरम, कर्म = करम**। किन्तु कुछ स्थलों में **अ** शुद्ध रूप में प्रवेश पा गया है, यथा—**जंबुअदीप, दुअट्ठ** आदि। **अ** का **आ** के स्वर में परिवर्तन भी यदा-कदा हो जाता है, यथा—**महेस = माहेस, उदयपुर = उदयापुर, समरथ = समराथ** आदि। कहीं-कहीं **अ** के स्थान पर **इ** का प्रयोग हो जाता है, यथा—**जग = जिग, कलोल = किलोल्** आदि। **अ** के **उ** में परिवर्तन के भी कई उदाहरण प्राप्त हैं, यथा—**श्मशान—मसांण > मुसांण, अज्ज > अज्जु, वायस > वायसु आदि। अ का य** में परिवर्तन—

रत्न > रतन > रअण > रयण।

आ—यह दीर्घविवृत्त पश्च संयुक्त स्वर है। **आदोत = दोत, आडंबर = डंबर** आदि शब्दों में **आ** का लोप हुआ है तथापि—**रण = आरांण** आदि शब्दों में **आ** का आगम हुआ है। कई बार अंतिम अक्षर **आ** के स्थान पर **अ** का ही प्रयोग हो जाता है, यथा—**सीता = सीत, लंका = लंक**। स्त्रीत्व-निर्देशक टा, (आ बन्त) प्रत्यय से सिद्ध हुए शब्दों का अंतिम आकार प्राय: अकार में परिणत हो जाता है,[2] जैसे—**गंगा = गंग, सीता = सीत, सीय, माला = माल, धारा = धार** आदि। शब्द के आदि में भी **आ** का कई बार **अ** में परिवर्तन हो जाता है, यथा—**राजपूत = रजपूत, आग्या = अग्या**।

ओ, औ—ये अर्द्धसंवृत, दीर्घ, पश्च, स्वर हैं। शब्दों के अंत में **अय** के प्रयोग पर **औ** का परिवर्तन धीरे-धीरे स्थान ले लेता है, यथा—**समय = समौ, अजय = अजौ**। राजस्थान में प्राय: **ओ** और **औ** के प्रयोग के सम्बन्ध में अत्यधिक मतभेद चला आ रहा है। प्राय: लोगों ने अधिकतर इस सम्बन्ध में स्वच्छंदता ही बरती है। अन्य भाषाओं में अधिकतर शब्द मर्यादित हो जाने के कारण इन दोनों स्वरों के मध्य एक निश्चित सीमा-रेखा निश्चित हो गई है। *प्राचीन प्रतियों में इनका स्वतंत्र अमर्यादित प्रयोग मिलता है* किन्तु संभव है, वह लिपिकर्ताओं की कृपा का फल हो। इस सम्बन्ध में विशेष गवेषणा की आवश्यकता है। यह निश्चित है कि राजस्थानी में प्राय: सभी **ओकारांत** शब्दों के अन्त में **औ** का प्रयोग ही होता है, यथा—**घोड़ौ, गधौ, म्हारौ, प्यारौ** आदि। समस्त क्रियाओं में भी यही परिपाटी है, यथा—**करणौ, मरणौ, कटणौ, खाणौ, जांणणौ, मांनणौ** आदि। प्राय: अधिकतर लेखकों ने क्रियाओं के अंत में **औ** का ही प्रयोग किया किन्तु अन्य के विषय में काफी भिन्नता मिलती है। यह तो हमें मानना पड़ेगा कि राजस्थानी भाषा की प्रवृत्ति **औ** की ओर अधिक झुकाव प्रकट करती जा रही है। वैसे भी हिन्दी के समस्त आकारांत शब्द राजस्थानी में औकारांत ही पुकारे जाते हैं, यथा—**गधा = गधौ, घोड़ा = घोड़ौ**।

बलाघात के कारण हम किसी विशेष अक्षर पर अधिक प्राणशक्ति व्यय कर देते हैं, उसका परिणाम हमें दो रूपों में मिलता है। अंतिमाक्षर पर बलाघात के कारण ही प्राय: अंतिमाक्षर के रूप में **औ** के प्रयोग की बहुलता मिलती है। दूसरा परिणाम यह भी होता है कि किसी अक्षर विशेष पर अधिक प्राणशक्ति खर्च कर देने पर आसपास के अक्षर कमजोर पड़ जाते हैं तथा कभी-कभी इसी कमजोरी के कारण वे गायब भी हो जाते हैं, यथा—**समय = समयौ = समौ**। किन्तु अंतिमाक्षर के रूप में समस्त शब्दों के पीछे **ओ** के स्थान पर **औ** का प्रयोग कठोरता से लागू नहीं किया जा सकता। ओकारान्त वाले शब्दों में यह कठिनाई अधिक बढ़ जाती है। **ओ** और **औ** के द्वारा वे भिन्न अर्थ देते हैं, यथा—**सो-सौ, रो-रौ, जो-जौ** आदि। तब भी इन थोड़े से शब्दों को अपवाद मान लिया जाय तो ओकारांत समस्त शब्दों के अंत में **औ** का प्रयोग प्राय: सब जगह किया जा सकता है।

उ—यह संवृत्त ह्रस्व पश्च स्वर है। प्राचीन एवं मध्यकालीन राजस्थानी ग्रंथों में इसके प्रयोग के प्रचुर

[1] स्वर या व्यञ्जन लोप अथवा आगम, एव परिवर्तित शब्दों के रूप देने का यह अर्थ नहीं है कि इस प्रकार के परिवर्तन इस श्रेणी में आने वाले प्रत्येक शब्द में आवश्यक रूप से होते ही हों। उनका ऐसा परिवर्तन संभव है। कई बार इस प्रकार के परिवर्तित नये रूप एवं पूर्व अपरिवर्तित रूप दोनों भाषा में प्रयुक्त होते रहते हैं।

[2] कुछ पुल्लिग शब्दों में भी ऐसा परिवर्तन होता है, जैसे—पिता = पित, दाता = दात आदि।

उदाहरण पाये जाते हैं, यथा– **सउदागर, संदेसड़उ, सासरउ, कियउ** आदि। कालांतर में इसी **अउ** ने **औ** का रूप ले लिया[1], यथा– **सौदागर, संदेसड़ौ, सासरौ, कियौ** आदि। **उ** के बाद ही महाप्राण अक्षरों के आगम से बलाघात के कारण वह अक्षर विशेष महत्व पा लेता है और धीरे-धीरे **उ** लुप्त हो जाता है, यथा– **उदधि-दधि, उपानह-पनही**। कई बार **उ अ** में परिवर्तित हो जाता है। इसका कारण भी सहज-प्रयत्न एवं प्रयत्नलाघव ही कहा जायेगा, यथा– **साधु = साध, मधुर = मधरौ, कुमार = कंवर** आदि। राजस्थानी भाषा की यह एक विशेष प्रवृत्ति है।

ऊ– यह संवृत्त, दीर्घ, पश्च, स्वर है। मात्रापूर्ति के लिये यह कवियों का विशेष रूप से सहायक रहा है। कविता में इसी के कारण **तंतु = तंतू, उठणौ = ऊठणौ, उगणौ = ऊगणौ** आदि का प्रयोग बहुत मिलता है। सुगमता के लिये ह्रस्व को दीर्घ में परिवर्तन कर देना उनके लिये सहज है। यह प्रवृत्ति प्रायः सभी भाषाओं में पायी जाती है। बलाघात के कारण बोलचाल में भी कुछ लोग प्रायः **उ** के स्थान पर **ऊ** का प्रयोग करते हैं।

इ, ई– ये संवृत अग्रस्वर हैं। इनके प्रयोग से राजस्थानी में शब्दों के कुछ विशेष रूपों का निर्माण हो गया है, यथा– **करइ, रहइ, संदेसड़इ** आदि। इसके अतिरिक्त **घरि, विसि** आदि के रूप भी प्रचलित हैं। प्रायः कई स्थानों पर **अ ई** के रूप में परिवर्तित हो जाता है, यथा— **चमकणौ = चिमकणौ**। इसके अतिरिक्त **इ** स्वयं कई बार **अ** में परिवर्तित हो जाता है, यथा— **हरि = हर, कवि = कव, उदधि = उदध, रीति = रीत** आदि। प्रायः लिपिकर्ताओं के कारण अथवा अज्ञानावस्था से दोनों ह्रस्व एवं दीर्घ रूप प्रचलित हो गये हैं। यथा **लिपि = लिपी मुनि = मुनी, कवि = कवी** आदि। **इ** का **ए** में भी परिवर्तन होता है, यथा— **हिमालय = हेमालौ**। कई शब्दों में **इ** का आगम हो जाता है, यथा– **स्त्री = इस्तरी, स्कूल = इस्कूल, स्टेशन = इस्टेसण**।

राजस्थानी में **ऋ, ॠ, लृ, लॄ** आदि नहीं हैं। **ऋ** का **रि** के रूप में ही प्रयोग किया जाता है, यथा— **ऋषि = रिसी, रिखी, ऋतु = रितु** आदि। इसी प्रकार **मृग** को **म्रग, पृथ्वी** को **प्रथ्वी** आदि लिखा जाता है। ये प्रयोग दो रूपों में प्रचलित हैं—

१ **मृग = म्रग, मिरग**
२ **पृथ्वी = प्रथमी, प्रिथमी**
३ **दृग = द्रग, द्रिग**
४ **वृथा = व्रथा, विथा**

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनमें **ऋ अ** में परिवर्तित हो जाता है—

१ **कृष्ण = कन्ह**
२ **कृसानु = कसण**
३ **तृण = तण**

ऋ का **आ** में परिवर्तन—

१ **श्रृंखला = सांकल**
२ **कृष्ण = कान्ह**
३ **मृत्तिका = माटी**

ऋ का **इ** में परिवर्तन—

१ **हृदय = हियौ**
२ **श्रृगाल = सियालियौ**
३ **श्रृंगार = सिणगार**

ऋ का **ई** में परिवर्तन—

१ **गृद्ध = गीध**
२ **घृत = घी**
३ **श्रृंग = सींग**

ऋ का **उ** में परिवर्तन—

पृथ्वी = पुहमी

ऋ का **ऊ** में परिवर्तन—

१ **वृद्ध = बूढ़ौ**
२ **मृत = मूवौ**
३ **वृक्ष = रूंख**

ऋ का **ए** में परिवर्तन—

कृपाण = केवांण
धृष्ट = धेटौ
दृश् = देखणौ
मृत्तिका = मेट

---

[1] Gujarati Language and Literature, Vol. I by N. B. Divatia, Page 189

ए, ऐ- ये अर्द्धसंवृत्त अग्रस्वर हैं। इनके प्रयोग में कवियों ने प्रायः स्वच्छंदता बरती है। कवियों ने अगर कुछ कृपणता की हो तब भी लिपिकर्ताओं ने इन पर प्रचुर कृपा की है। **घरे = घरै, करे = करै** आदि रूप अनायास ही मिल जाते हैं। कई बार इनका प्रयोग बहुत ही लघु उच्चारण में प्रयुक्त होता है। निम्नलिखित उदाहरणों में **ए** का लघु उच्चारण हुआ है—

कद **रे** मिळउंली सज्जना, लांबी बांह पसार—ढो.मा.

निम्नलिखित उदाहरणों में **ऐ** का लघु उच्चारण हुआ है—

१ पंथी एक संदेसड़उ, लग ढोलइ **पेंहचाइ**—ढो.मा.

२ बरती मो बारी(ह), **सोवै** क जागै सांवरा।

—रांमनाथ कवियौ

प्रायः **य** का **ऐ** में परिवर्तन हो गया है—

१ **अजय = अजै**

२ **जयपुर = जैपुर**

३ **हयवर = हैवर**

४ **उदय = उदै**

ऐ का **ए** में परिवर्तन—

१ **तैल = तेल**

२ **शैवाल = सेंवाल**

विभिन्न स्वरों की विवेचना करने के बाद व्यञ्जनों की विवेचना करना समीचीन होगा।

कवर्ग- यह कंठ्यवर्ग है जिसके अंतर्गत **क, ख, ग,** और **घ** आते हैं। राजस्थानी भाषा के व्यञ्जनों की कुछ अपनी विशेषतायें हैं। कई स्थानों पर **क** राजस्थानी में लुप्त हो गया है—

१ **मस्तक = माथौ**

२ **कार्तिक = कातौ**

३ **अचानक = अचांण**

कुछ स्थानों में **आ** का आगम हो जाता है—

१ **कंचुकी = कांचळी**

२ **कल (कल्य) = काल**

क्रियाओं में कई स्थानों पर **क** प्रायः द्वित्व हो जाता है।[1] किन्तु यह प्रवृत्ति साधारणतया कविताओं में ही अधिक पायी जाती है—

१ **चमकणौ = चमक्कणौ**

२ **सरकणौ = सरक्कणौ**

३ **खणंकणौ = खणंक्कणौ**

क्रियाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य शब्दों में भी **क** कई बार द्वित्व हो जाता है, यथा-

१ **हक = हक्क**

२ **कटक = कटक्क**

क को **य** में परिवर्तन करने की प्रवृत्ति राजस्थानी में पायी जाती है—

१ **दिनकर = दिणयर**

२ **सकल = सयळ**

क का महाप्राण **ख** है। अतः कई स्थानों पर **क** महाप्राण होकर **ख** हो जाता है—

१ **रुकमिणी = रुखमिणी**

२ **किंसुक = किंसुख**

इसके विरुद्ध कई बार महाप्राण **ख** अल्पप्राण होकर **क** बन जाता है—

१ **भीख = भीक**

२ **भूख = भूक**

३ **खाखरौ = खाकरौ**

४ **खाख = खाक**

स्वयं महाप्राण **ख** भी कई स्थानों पर द्वित्व हो जाता है—

१ **चक्षु = चख = चक्ख**

२ **अक्षर = आखर = अक्खर**

३ **चखणौ = चक्खणौ**

अल्पप्राण **क** के समान महाप्राण **ख** का भी **ह** में परिवर्तन हो जाता है—

१ **रेख = रेह**

२ **मुख = मुह**

[1] प्राकृत भाषाओं में भी इस प्रकार के द्वित्व की परम्परा है। देखो— 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण'—आर० पिशल (जर्मन भाषा में) पारा २८५ से ३०० तक।

३ सखि = सहि
४ शिखर = सिहरां

ख का ढ में परिवर्तन—

खंडहर = ढंढेर

कवर्ग के अंतर्गत ग स्वयं अल्पप्राण व्यञ्जन है। क अघोष वर्ण है जबकि ग घोष वर्ण है। कई बार ग अघोष वर्ण में परिवर्तित हो जाता है—

१ नाबालिग = नाबालक
२ गाजबीज = काजबीज

इसी प्रकार अघोष वर्ण भी घोष वर्ण में परिवर्तित हो जाता है—

१ उपकार = उपगार
२ सेवक = सेवग
३ शोक = सोग
४ काक = काग

क के समान ग भी य में परिवर्तित हो जाता है, यथा—

१ सागर = सायर
२ गगन = गयण
३ नगर = नयर

जिस प्रकार क का महाप्राण ख है ठीक उसी प्रकार ग का महाप्राण घ है। घ भी निम्नलिखित उदाहरणों में अल्पप्राण हो गया है—

१ मेघनाद = मेगनाद
२ अरघ = अरग

निम्नलिखित उदाहरणों में घ ह हो गया है—

१ मेघ = मेह
२ दीरघ = दीह

चवर्ग– यह तालव्य वर्ग है, जिसके अंतर्गत च, छ, ज एवं झ आते हैं। इनमें च और ज अल्पप्राण तथा छ और झ महाप्राण वर्ण हैं। च अघोष और ज घोष वर्ण है।

निम्नलिखित उदाहरणों में वर्ण द्वित्व हो जाते हैं—

च– १ फच्चर
२ टुच्चो

ज– १ अज्ज
२ कज्ज
३ कमधज्ज

झ– १ तुझ्झ
२ मुझ्झ
३ जूझ्झणो

च का महाप्राण में परिवर्तन—

१ पश्चात् = पछै
२ पश्चिम = पिछम

छ का अल्पप्राण में परिवर्तन—

छछुंदर = चकचुंदर

ज का महाप्राण में परिवर्तन—

१ जहाज = झाझ
२ जहर = झैर

झ का अल्पप्राण में परिवर्तन—

१ संध्या = संझ्या = संज्या
२ मध्यरात्रि = मझरात = मजरात

च का ज में परिवर्तन—

१ पंच = पंज
२ आलोच्य = आलोज

च का य में परिवर्तन—

१ वचन = वयण
२ लोचन = लोयण

छ का स में परिवर्तन—

१ पछै = पसै
२ पश्चाताप = पछतावो = पसतावो

च का स में परिवर्तन—

चबूतरो = सबूतरो

छ और च के स में परिवर्तन की प्रवृत्ति राजस्थान के प्रायः कुछ ही भागों में पायी जाती है जिसका विवेचन हम राजस्थान की प्रमुख बोलियों का विवेचन करते समय कर चुके हैं।

ज का द में परिवर्तन—

१ कागज = कागद
२ गुजरणो = गुदरणो
३ मुजफर = मुदफर

४ होज = हौद

ज का ल में परिवर्तन

कागज = कागळ

ज का य में परिवर्तन —

१ गज = य

२ भुजंग = भयंग

३ राजकुमारी = रायकुंवरी

टवर्ग– यह मूर्धन्य वर्ग है। इसके अंतर्गत ट, ठ, ड, ढ, ण आते हैं। इनमें ट और ड अल्पप्राण तथा ठ और ढ महाप्राण हैं। ट का महाप्राण ठ है तथा ड का महाप्राण ढ है।

इनमें ट और ड के द्वित्व बहुत प्रचलित हैं, यथा–

ट का– १ अरट्ट

२ गरट्ट

३ बट्ट

ड का– १ लड्डु

२ हड्ड

३ तिड्ड

ट का महाप्राण में परिवर्तन —

१ दृष्टि = द्रस्टि = दीठ

२ दृष्ठि = द्रस्टि = दूठौ

ड का महाप्राण में परिवर्तन –

१ खंडहर = खंढेर = ढंढेर

राजस्थानी में ट का ड में परिवर्तन होने की विशेषता है, यथा –

१ घोटक = घोडउ = घोड़ो

२ कोटि = कोडि = कोड़

इस सम्बन्ध में यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि ड और ड़ के अमर्यादित प्रयोगों ने प्रायः गलतफहमियां उत्पन्न करदी हैं। भाषा के अधिकतर विद्यार्थी इनके मध्य अवस्थित अंतर से परिचित नहीं होते। हों भी कैसे—अन्येतर भाषाओं में मिलने वाले समस्त कोशों मे, जिनमें अकारादि क्रम से शब्द अंकित रहते हैं ड एवं ड़ को एक ही वर्ण मान कर टवर्ग के अंतर्गत ही अकारादि क्रम से उपस्थित किया गया है। दोनों के प्रयोग शब्दों में काफी मात्रा में अंतर उत्पन्न कर देते हैं—

१ कोड = उमंग, उत्साह

कोड़ = करोड़, कोटि

२ मोड = संन्यासी

मौड़ = दूल्हे का शिरोभूषण

इन अंतरों को दृष्टिगत रखते हुए यह अवश्य मानना पड़ेगा कि इनको अकारादि क्रम से एक ड के अंतर्गत रखना उचित नहीं कहा जा सकता। ड़ और ढ़ का उच्चारण जीभ का अग्र भाग उलट कर मूर्द्धा पर लगाने से होता है। इस उच्चारण को द्विस्पृष्ट कहते हैं। वैदिक भाषा में दो स्वरों के बीच में आने वाले ड् ढ् का उच्चारण ल् ल्ह् होता था। पाली में भी यह विशेषता पाई जाती है किन्तु संस्कृत में यह परिवर्तन नहीं होता था। मध्यकाल में संभवतया किसी समय स्वर के बीच में आने वाले ड् ढ् का उच्चारण ड़ ढ़ के समान होने लगा हो। ड़ और ढ़ से कोई शब्द आरंभ नहीं होता। कवर्ग के अंतिमाक्षर ङ के स्थान पर साधारण जन ड़ का उच्चारण करने लगे। आज भी चटसाल में पढ़ते बच्चे क, ख, ग, घ, ड़ के उच्चारण से कवर्ग को याद करते हैं। अंतिमाक्षर अनुनासिक रूप ङ का कवर्ग में उच्चारण की दृष्टि से एक प्रकार से राजस्थानी में लोप हो गया है। प्राचीन सब प्रतियों में ङ ही मिलता है किन्तु इसी ङ का कालांतर में ड़ के रूप में परिवर्तन हो गया। किन्तु कवर्ग के अंतिमाक्षर के रूप में ङ के स्थान पर ड़ के उच्चारण की परंपरा को हमने मान कर उसी का परिपालन करने की चेष्टा की है। यद्यपि यह कंठ्य न हो कर मूर्धन्य ही है तथापि उपरोक्त परंपरा के कारण हमने भी ड़ को अकारादि क्रम में घ के बाद ही स्थान दिया है। पाठकगण राजस्थानी की इस विशेषता को कोश-अवलोकन के समय ध्यान में रक्खें तो वे अधिक सुविधा के साथ शब्दों को ढूंढ़ सकेंगे।

ट और ठ के संयुक्त रूप भी राजस्थानी में मिलते हैं—

१ पुट्ठो

२ कट्ठो

३ चिट्ठी

ड और ड़ के उपरोक्त विवेचन पर दृष्टि डालते समय यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि राजस्थान में ट कई स्थानों में ड़ में परिवर्तित हो गया है।

१ कपाट = कपाडि, किंवाड़, कवाड़

२ भट = भड = भड़

३ कटि = कड़

तवर्ग— यह दंत्य वर्ग है। इसके अंतर्गत त थ द ध और अनुनासिक न है। इसमें त और द अल्पप्राण हैं जिसके महाप्राण क्रमशः थ और ध[1] हैं। त अघोष तथा द घोष वर्ण है।

द्वित्व रूप त— १ गत्त २ असपत्त

थ— १ कथ्थ २ सथ्थ

द— १ मरद्द २ भद्द ३ हद्द

ध— १ सुध्ध २ गिध्ध

न— १ मन्न २ रतन्न ३ जतन्न

त का विभिन्न वर्णों में परिवर्तन हो जाता है, यथा—

त का द में— १ विपत्ति = विपदा

२ आपत्ति = आपद

त का च में— १ सत्य = सच

२ मीति = मीच

त का मूर्धन्य ट में— १ कर्तन = काटणो

२ उद्वर्तन = उबटन

३ निवर्तन = निबटणो

त का य में— १ गत = गय

२ सत = सय

त का व में— १ सुजात = सुजाव

त का व में— १ प्रभात = पोहोव

२ घात = घाव

त का अपने महाप्राण थ में— १ कंत = कंथ

२ भरत = भरथ

३ अस्तभन = आथुणो

त का क में परिवर्तन— सौत = सौक

इनके अतिरिक्त कुछ स्थानों पर त का लोप हो जाता है, यथा—

१ कदाचित = कदाच् = कदास

२ उत्साह = उछाह

[1] बहुत से विद्वानों ने ध के नीचे बिंदी मान कर एक नयी ध्वनि निश्चित की है। पं० रामकर्ण आसोपा ने भी ध के नीचे बिंदी को स्वीकार किया है। देखो 'मारवाड़ी री पैली पोथी।'

३ शीतल = सीलो

इसी प्रकार थ भी अपने अल्पप्राण त में परिवर्तित हो जाता है—

१ हाथ = हात

२ अवस्था = औसता

थ का मूर्धन्य ठ में परिवर्तन—

स्थान = ठांण = ठांव

थ का ह में परिवर्तन—

१ नाथ = नाह

२ गाथा = गाहा

३ गूथ = गूह

४ कथना = कहना

द का लोप— १ नदी = नई

२ द्वार = बार

३ एकादश = ग्यारा

द का अपने महाप्राण ध में परिवर्तन—

दंग = धंग, धंगड़ो

द का न में परिवर्तन—

१ चंदन = चन्नण

२ संदेस = संनेस

३ चांद = चांन

द का ज में परिवर्तन—

१ अद्य = आज

२ श्वापद = सावज (सिंह)

द का ड में परिवर्तन—

१ दाव = डाव

२ दंड = डंड

३ दर्दुर = डेडरो

द का त में परिवर्तन—

१ मस्जिद = मसीद = मसीत

२ सुफेद = सुपेद = सुपेत

३ मदद = मदत

द का य में परिवर्तन—

१ मदन = मयण

२ मदकल = मयगल

३ पाद = पाय

द का व में परिवर्तन -

१ पाद = पाव

२ स्वाद = साव

ध का अल्पप्राण द में परिवर्तन—

१ समाधि = समाद

२ अश्वमेध = असमेद

३ श्रद्धा = सरदा

४ श्राद्ध = सराद

५ लोध्र = लोद

ध का झ में परिवर्तन—

१ संध्या = संझ्या, सांझ

२ बंध्या = बांझ

३ मध्य = मझ्झ

ध का मूर्धन्य ढ में परिवर्तन—

१ संनद्ध = सनढ

२ वृद्ध = बूढो

३ धोक = ढोक

ध का ह में परिवर्तन—

१ जलधर = जलहर

२ विषधर = विसहर

३ रुधिर = रुहिर

न का ल में परिवर्तन—

१ जन्म = जनम = जलम

२ नंबर = लंबर

न का ड़ में परिवतन—

१ हनुमान = हड़ूमांन

२ रणमल्ल = रिनमल्ल,रिड़मल्ल

न का ड में परिवर्तन—

कनेर = कंडेर

न का द में परिवर्तन—

उन्माद = उदमाद

न का मूर्धन्य ण में परिवर्तन—

१ योनि = जूण

२ जन = जण

तवर्ग के वर्णों का मूर्धन्य वर्णों में परिवर्तन एक निश्चित क्रम से होता है। त का ट में, थ का ठ में, द का ड में, ध का ढ में तथा न का ण में होता है। इस क्रम में उलटफेर नहीं होता। इस प्रकार दंत्य वर्णों का मूर्धन्य वर्णों में कुछ क्रमिक परिवर्तनशील समानता है। उच्चारण में सूक्ष्म निकटता का भाव है।

पवर्ग- यह ओष्ठ वर्ग है। इसके अंतर्गत प, फ, ब, भ और म हैं। इनमें प और ब अल्पप्राण हैं जिनके महाप्राण क्रमशः फ और भ हैं। प अघोष एवं ब घोष वर्ण है।

द्वित्व रूपों के उदाहरण—

प का = अप्प, बप्प, जप्प

फ का = बप्फ

ब का = अकब्बर, सरब्ब, अब्ब

भ का = अम्भ, नम्भ, गरम्भ

म का = करम्म, सरम्म, धरम्म

प प्रायः कुछ शब्दों में महाप्राण हो जाता है, यथा–

१ दोपहर = दोफार

२ वाष्प = बाफ

३ परशु = फरसो

इसी प्रकार महाप्राण फ भी कुछ शब्दों में अल्पप्राण प में परिवर्तित हो जाता है—

१ सफेद = सुपेत

२ अफसोस = अपसोस

ब का अपने महाप्राण भ में परिवतन—

बहुत = भोत

भ का अल्पप्राण ब में परिवर्तन—

१ सोभा = सोबा

२ अभ्र = आभो, आबो

३ गरभ = ग्याब

इनके अतिरिक्त पवर्ग के वर्ण कुछ अन्य वर्गों में भी परिवर्तित हो जाते हैं। परिवर्तित वर्णों के अनुसार प्रत्येक अक्षर का अलग-अलग उदाहरण दिया जाना समीचीन होगा—

प का व में परिवर्तन—

१ नूपुर = नेवर

२ कपाट = किंवाड़

३ गोपाल = गुवाल

४ अपर = अवर

५ अंतःपुर = अंतेवर

६ कृपाण = केवांण

उ तथा अ के साथ प का ओ में परिवर्तन—

१ अपयश = ओवस

२ सपत्नी = सौत

३ कर्पादिका = कोडी

४ उपाख्यान = ओखांण

फ का ह में परिवर्तन[1]

१ मुक्ताफल = मोताहल

२ सफल = सहल

३ अफल = अहर

ब का लोप—

१ कदम्ब = कदम

२ शब्द = साद

३ चौबीस = चोईस

ब का प में परिवर्तन—

१ खूबसूरत = कपसूरत

२ जब्त = जपत

३ गंधर्व = गंधरब = गंध्रप

ब का म में परिवर्तन—

१ प्रबोध = परमोद

२ संबंध = सनमन

राजस्थानी में प्रायः बहुलता से ब, व का स्थानीय बन जाता है। व को ब बनाने व उच्चारण करने की ओर राजस्थानी की प्रवृत्ति अधिक है।

१ वंशी = बंसी

२ वट = बट

३ वार = बार

४ वपु = बपु

५ वाम = बांम

६ वचन = बचन

भ का म में परिवर्तन—

१ उपालम्भ = ओळभौ = ओलमौ

२ सौरभ = सौरम

३ स्तंभ = थांम, थंभ

भ का लोप—

१ कुम्भकरण = कूमकरण

२ कुसुम्भ = कसुम, कसूमल

भ का ह में परिवर्तन—

१ सुरभि = सुरही

२ लाभ = लाह

३ करभ = करह

४ सुभट = सुहट = सुहड़

म का व में परिवर्तन—[1]

१ ग्राम = गांव

२ भीम = भींव

३ कुमार = कंवर

४ चामर = चंवर

५ सीमा = सींव

म का ब में परिवर्तन—

१ उत्तमांग = उतबंग

२ आम्र = आंबो

म का न में परिवर्तन—

१ सम्मान = सनमान

२ सम्बंध = सनमंद

३ सम्मुख = सनमुख

म के महाप्राण के रूप में म्ह का प्रयोग कई शब्दों में होता है, यथा—

१ महाराज = म्हाराज

२ मैं = म्हैं

३ मेरा = म्हारो

[1] हेमचंद्र सिद्धहेमचंद्र १।२३६ में अनुमति देता है कि फ के स्थान पर प्राकृत में भ और ह दोनों रखे जा सकते हैं। देखो—पिशल का व्याकरण, पारा १९२।

[1] अपभ्रंश में भी यह विशेषता पाई जाती है। देखिये—हिन्दी साहित्य का बृहत्त इतिहास, प्रथम भाग, सं० राजबली पांडे, पृष्ठ ३२१।

र–यह अल्पप्राण घोष वर्त्स्य लुंठित ध्वनि है। निम्न-लिखित शब्दों में र का लोप हो जात है–

१ प्रेम = पेम
२ श्रावण = सांवण
३ प्रण = पण
४ शीर्ष = सीस
५ ध्रुव = धु
६ भाद्रपद = भादवो
७ सहस्र = सहस

र का आगम–

१ शाप = सराप
२ सजल = सरजल़
३ सिखर = सिरहर

र का परिवर्तन ड़ में बहुलता के साथ होता है, यथा–

१ विरुव = बिड़व
२ अर्बुद = अड़ब
३ परदा = पड़दो

र का ल़ में परिवर्तन–

१ दारिद्रय = दाल़द
२ हरिद्रा = हल़दी

रेफ की विवेचना हम पीछे कर चुके हैं, अतः इसकी पुनरावृत्ति यहाँ उचित न होगी।

ल– यह अल्पप्राण घोष वर्त्स्य पार्श्विक ध्वनि है।

ल का द्वित्व– सल्लणो, गल्ल, पीथल्ल आदि।

[1]ल का ल़ में परिवर्तन–

१ माला = माल़ा
२ धूलि = धूल़
३ शूल = सूल़

ल का र में परिवर्तन

किल = किर

ल़ का ड़ में परिवर्तन

धूलि = धूड़

ल का लोप–

१ फाल्गुण = फागुण, फागण
२ म्लेच्छ = मेछ

ल का न में परिवर्तन–

ललाट = लिलाड़ = निलाड़

ल का महाप्राण ल्ह में–

१ लाश = ल्हास
२ कल = काल = काल्हि

राजस्थानी में ल के अतिरिक्त ल़ की ध्वनि भी होती है। इस सम्बन्ध में डा० चाटुर्ज्या लिखते हैं[1] कि 'पुरानी राजस्थानी में सिर्फ ल ही लिखा जाता था पर ल़ का उच्चारण भाषा में था। इसके पक्ष में युक्ति है। अभी तक पूर्वी पंजाबी की गुरुमुखी लिपि में जैसा हम देखते हैं ल़ के लिये वर्ण नहीं है, पर ल़ ध्वनि पंजाबी भाषा में सुनाई देती है।' संस्कृत तथा अन्य भाषाओं में ल़ की ध्वनि नहीं है। वेदों में इसका प्रयोग हुआ है। उसके बाद इसका प्रयोग प्राकृत[2] राजस्थानी एवं मराठी में ही हुआ है।[3] ल और ल़ के ध्वनि एवं अर्थभेद के विषय में हम विवेचन कर चुके हैं। ल वर्त्स्य ध्वनि है एवं ल़ मूर्धन्य ध्वनि है। किसी शब्द के प्रथम अक्षर के रूप में ल़ का प्रयोग नहीं होता। यह उत्तरवर्ती अक्षरों के रूप में ही शब्द में स्थान पाता है।

व– यह दंतोष्ठ्य घोष संघर्षी ध्वनि है। राजस्थानी में व के नीचे बिंदी लगा कर व़ लिखने की प्रथा है। साधारणतया व और व़ में कोई भेद नहीं किया जाता। श्री नरोत्तम स्वामी ने व को अंग्रेजी के W और व़ को V के समान उच्चरित मान कर ध्वनि में अन्तर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।[4]

---

[1] हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि भाषा-प्रवाह में परिवर्तित नये रूप एवं पूर्व अपरिवर्तित रूप दोनों प्रयुक्त होते हैं। किन्तु इस परिवर्तन में ऐसी बात नहीं है। यद्यपि इन रूपों में ल का परिवर्तन ळ में हुआ है किन्तु राजस्थानी में ये नये परिवर्तित रूप ही प्रयुक्त होते हैं। राजस्थानी में ल और ळ के प्रयोग निश्चित हैं उनमें परस्पर परिवर्तन नहीं होता।

[1] राजस्थानी भाषा : डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृष्ठ १३

[2] प्राकृत भाषाओं का व्याकरण–मूल ले० रिचर्ड पिशल, अनुवादक–डा० हेमचन्द्र जोशी (हिन्दी में) पृष्ठ संख्या ३४८, ३४९

[3] Gujarati Language and Literature, Vol. II by N.B. Divatia, Pages 70-71

[4] 'राजस्थान रा दूहा' भाग १ में राजस्थानी वर्णमाला लिखते हुए श्री नरोत्तम स्वामी ने एक नोट दिया है—

'राजस्थानी लिपि में संस्कृत व (w) व़ से और राजस्थानी व़ (v) व से लिखा जाता है।'

श्री मेनारिया ने भी इस मत का समर्थन किया है।[१] डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या व और ब़ की दो ध्वनियां स्वीकार नहीं करते।[२] डा० ग्रियर्सन ने इन ध्वनियों में भेद माना है।[३] उनके अनुसार ब़ की वास्तविक ध्वनि अंग्रेजी के न तो w में है और न v में। यथार्थ में यह इन दोनों के बीच की ध्वनि है। डा० ग्रियर्सन के अनुसार भारत में v का उच्चारण शुद्ध ओष्ठ्य[४] है किन्तु राजस्थानी में अनेक शब्द ऐसे हैं जहां व का यह शुद्ध ओष्ठ्य उच्चारण नहीं है। डा० ग्रियर्सन का यह मत सही मालूम होता है। व और ब़ की ध्वनि में अन्तर अवश्य है। डा० नरोत्तमदास ने जो ब़ को अंग्रेजी v के समान उच्चारित माना है, वह संभवतया इस आधार पर माना है कि ये दोनों दंतोष्ठ्य हैं। इनमें ऊपर के दांत नीचे के होठों का तनिक सा स्पर्श करते हैं एवं स्पर्श करने के पश्चात् अलग होते ही मुंह की अवरुद्ध वायु निकल कर ध्वनि उत्पन्न कर देती है। व में दांत होठों के नजदीक जरूर जाते हैं किन्तु होठों का स्पर्श नहीं करते। नजदीक जाते हुए ही वे वायु निकालते रहते हैं। इसमें वायु अवरुद्ध नहीं होती। इस दृष्टि से व और ब़ में अन्तर है। ब़ और अंग्रेजी के v में भी इतना अन्तर है कि ब़ में होठों की अवस्था विवृत्त होती है तथा v में उनकी अवस्था विवृत्त नहीं होती।

वास्तव में प्रत्येक भाषा की अपनी कुछ विशेष ध्वनियाँ होती हैं, अन्य किसी भाषा की ध्वनि विशेष से उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

दोनों के मध्य के इस भेद को जानना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि व के स्थान पर ब़ और ब़ के स्थान पर व का

'वीर सतसई' का संपादन करते हुए संपादकों ने श्री नरोत्तम स्वामी के पत्र का हवाला देते हुए भूमिका में लिखा है—

'मेनारियाजी का लिखना सर्वांश में ठीक नहीं, भ्रमपूर्ण है। आजकल लोग हिन्दी तथा ब्रज के प्रभाव से ब को प्राय: ब. से लिख देते हैं, यह अशुद्ध है। बीकानेर नहीं किन्तु वीकानेर लिखना चाहिए। टैसिटोरी ने सर्वत्र Viko लिखा है। Biko नहीं। रोमन में ब को v से तथा ब़ को w से लिखा जाना चाहिए।'

उपरोक्त दोनों उल्लेखों में अन्तर है। हमने पहले उल्लेख के अनुसार ही स्वामीजी का मत मान लिया है। राजस्थानी भाषा और साहित्य में डा० हीरालाल माहेश्वरी ने भी पृष्ठ ४१ में इसी मत का समर्थन किया है।

१ व का उच्चारण डिंगल में दो तरह से होता है, एक संस्कृत व अथवा अंग्रेजी w की तरह और दूसरा अंग्रेजी v की तरह। उच्चारण का यह अन्तर बतलाने के लिए लिखने में एक व तो वैसा ही रहने दिया जाता है पर दूसरे के नीचे बिन्दी लगादी जाती है।
—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ३२

२ देखिए 'वीर सतसई' की भूमिका, पृष्ठ १०६—डा० सहल द्वारा संपादित।

३ हिन्दी में व का उच्चारण दंतोष्ठ्य माना जाता है।

४ "I take this opportunity of explaining the pronunciation of the letter व, sometimes transliterated w, and sometimes v. In western Hindi and in the languages further to the east this letter almost invariably becomes b. Thus 'wadan', a face becomes 'badan', and 'vichar' consideration becomes बिचार. In Rajasthan we first come upon the custom prevalent in Western India of giving this letter its proper sound. In the मराठी section of the survey it is regularly transliterated v, but this does not indicate its exact pronunciation. In English the letter v is formed by pressing the upper teeth on the lower lip. It is thus a denti-labial. This sound, so far as I am aware, does not occur in any Indo-European language. In India v is a pure labial, and is formed by letting the breath issue, not between the teeth and the lip, but between the two lips. An experiment will show the correct sound at once.

It is something between that of an English w and that of an English v. This sound naturally varies slightly according to the vowel which follows it. Before long or short a, u, o, ai, or an it is nearer the sound of w, while before long or short i or e it is nearer that of v. This sound will be naturally uttered under the influence of the following vowel, so long as the consonent w or v is pronounced as a pure labial and not as a denti-labial. In transliterating Rajasthani I *represent* the w sound by w and the v sound by v, but it must be remembered that the English sound of v is never intended. Thus I write Marwari not Marvari because the v is followed by a but Malvi not Malwi because v is followed by i"

—Linguistic Survey of India, Vol. IX p. 5. Grierson.

प्रयोग होने से शब्द का अर्थ बिल्कुल पलट जाता है। निम्न-लिखित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

१ वार = दिन, प्रहार वा़र = सहायतार्थ पीछा करना
२ वीर = बहादुर वी़र = रवानगी
३ वात = वायु वा़त = कहानी

इस ध्वनि-भेद के ज्ञान के पूर्ण अभाव में ही प्रायः साधारण जन प्रत्येक व के नीचे बिंदी लगा कर लिख देते हैं।

व का द्वित्व—

१ हैव्वर
२ गैव्वर

व का म में परिवर्तन—

१ रावण = रांमण
२ हयवर = हैमर
३ विवाह = बिमाह
४ यादव = जादम

व का लोप—

१ लवण = लूण
२ यादव = जादू
३ पांडव = पांडू
४ भव = भौ
५ दंडवत = डंडौत, दंडौत

व का महाप्राण व्ह का प्रयोग—

१ व्हालौ
२ व्हैम

व का ब में परिवर्तन—

१ वाम = बांम
२ वंसी = बंसी

व के महाप्राण के रूप में भी व़ का प्रयोग किया जाता है। उच्चारण की दृष्टि से व़ पर्वग के वर्ण ब के नजदीक है व शुद्ध ओष्ठ्य है। कुछ विद्वानों का कथन है कि व़ शब्द के आरम्भ में प्रायः नहीं आता[1], किन्तु कई शब्द ऐसे मिलते हैं जिनमें व़ शब्द के पहले आया है यथा—

१ व़ाकारणौ
२ व़ात
३ व़ावल़ आदि।

यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि अभी तक व और व़ का तुलनात्मक वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया जा सका है। भाषा विज्ञान के विद्यार्थियों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

य– यह तालव्य घोष अर्द्धस्वर है। ल एवं व के प्रयोग में विभिन्नता को देख कर राजस्थानी में कुछ लोग य के नीचे बिंदी का लगाते है[1], किन्तु उच्चारण की दृष्टि से उसका कोई विशेष महत्व नहीं है। इस बिंदी से य और य़ में उच्चारण विभिन्नता प्रकट नहीं होती। संस्कृत की भांति य का द्वित्व प्रयोग राजस्थानी में नहीं होता—

१ सूर्य्य = सूरज
२ मोर्य्य = मोरी

य की ओर झुकाव के कारण कई शब्दों में य का आगम हो गया है यथा—

१ राठौड़ = रायठौड़
२ रथ = रयत्थ
३ अकथ्थ = अकथ्य
४ शाबास = स्याबास
५ लज्जा = लज्या
६ मनसा = मनस्या

य का लोप—

१ पुण्य = पुन
२ दैत्य = दैत
३ आदित्य = आदीत
४ ज्योति = जोत
५ मनुष्य = मिनख
६ मध्य = मझ
७ नियम = नेम

[1] श्री कन्हैयालाल सहल, श्री पतराम गौड़ तथा श्री ईश्वरदान आसिया द्वारा संयुक्त रूप से संपादित कविराजा सूर्यमल्ल की 'वीर सतसई' की भूमिका पृष्ठ १०९ में लिखा है—
व़ अन्तस्थ व्यंजन semi vowel है, जैसे स्वा़मी, हुवौ, स्व़र, सेव़ग, साव़। व संघर्षी व्यंजन है जैसे वन, वासदे, वासग। व व्रजभाषा में ब बन जाता है, पर व़ ब नहीं बन सकता। व़ शब्द के आरम्भ में प्रायः नहीं आता।

[1] शोध पत्रिका भाग ४ अंक ३ मार्च ५३ में प्रकाशित एक लेख 'राजस्थानी में ध्वनि परिवर्तन का पारा ८९ का अंतिम अंश।

८ नीयत = नीत

य का इ में परिवर्तन–

१ मयण = मइण

२ नारायण = नरायण, नराइण

इ का य में परिवर्तन–

१ रमाइन = रमायण

२ कोइल = कोयल

३ कोइक = कोयक

य का ऐं में परिवर्तन–

१ अजय = अजैं

२ भय = भैं

३ अभय = अभैं

४ जय = जैं

५ नयन = नैण

राजस्थानी में य को ज में परिवर्तन करने की प्रवृत्ति की ओर अधिक झुकाव होता जा रहा हैं[1]। अनेक शब्दों में य ज में परिवर्तित हो गया है। यथा–

१ योगी = जोगी

२ युग = जुग

३ यज्ञ = जग्य

४ युक्ति = जुगत

५ यात्रा = जातरा

य का व में परिवर्तन–

१ न्याय = न्याव

२ वायु = वाव

३ आयुध = आवध

४ आयु = आव

उपाय = उपाव

श, ष, स राजस्थानी में इन तीनों के स्थान पर केवल एक दन्त्य 'स' का ही प्रयोग होता है।[1] 'श' के लिए सदैव 'स' प्रयुक्त होता है।

१ शमा = समा

२ शाम = सांम

३ श्याम = स्यांम

४ आशा = आसा

५ शय्या = सेज

किन्तु 'ष' के लिए 'स' एवं 'ख' दोनों वर्ण प्रयुक्त होते हैं—

१ दोष = दोख, दोस

२ वर्षा = वरखा, वरसा

३ पाषाण = पाखांण, पाखांन
पासांण, पासांन

४ तृषा = तिरस, तिरख

'स' का लोप

१ स्नेह = नेह

२ स्थिर = थिर

३ स्थापना = थापना

४ सहेली = हेली

---

[1] (क) 'पुरानी राजस्थानी' मू० ले० डा० एल० पी० तेस्सितोरी अनु० नामवरसिंह पारा २२।

'ज कभी-कभी य में बदल जाता है। अनेक स्थानों पर इस परिवर्तन का आभास-मात्र होता है, क्योंकि लिखने में ज और य प्रायः एक दूसरे के स्थान पर व्यवहृत हो जाते हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि वे बहुत कुछ एक ही प्रकार से उच्चरित होते थे, अर्थात् ज की तरह। लेकिन कुछ अन्य स्थानों पर ऐसा प्रतीत होता है कि ज का दुर्बल होकर य हो जाना वास्तविक है, अर्थात स्वरों के बीच ज व्यंजन की शक्ति खो देता है और जैन-प्राकृत की य श्रुति की तरह Euphonic तत्व के रूप में प्रयुक्त होता है।

(ख) श्री मोतीलाल मेनारिया ने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पृष्ठ ३३ पर लिखा है—

'डिंगल में य का उच्चारण य और ज दोनों तरह से होता है। जब य किसी शब्द का पहला अक्षर होता है तब इसका उच्चारण प्रायः ज किया जाता है और ज ही लिखा जाता है। परन्तु जब य शब्द के पहले अक्षर के बाद आता है तब यह ज्यों का त्यों य बोला और लिखा जाता है। जैसे (क) जुध (युद्ध), जोधा (योद्धा), जात्रा (यात्रा), जमराज (यमराज)। (ख) न्याय, ख्यात, रायबादा, माया, शयन, बयण, गुणियण।

किन्तु मेनारिया का यह मत उचित नहीं मालूम होता। शय्या आदि में य प्रथम अक्षर न होने पर भी ज हो जाता है यथा–सेज गुणियण को गुणिजण भी कहते हैं

[1] 'प्राचीन भारती के कई एक वर्णों का भी प्राकृत में सर्वथा अभाव हो गया है, जैसे ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ऐ, औ, य, श, ष तथा विसर्ग।' प्राकृत प्रवेशिका मू० ले० ए० सी० वूल्नर अनु० बनारसीदास जैन पृष्ठ ११ "श् ष् स्-इन तीनों के स्थान में दन्त्य स हो जाता है।" वही पृष्ट-१६ पारा क,

श का लोप

१ **आश्चर्य = अचरज**

२ **निश्चित = नचीत**

ष का लोप

१ **शुष्क = सूखौ**

२ **वाष्प = भाप**

३ **मुष्टि = मूठ**

४ **दुष्काल = दुकाळ**

स का ह में परिवर्तन

१ **केसरी = केहरी**

२ **दिवस = दिवह**

३ **जैसलमेर = जेहलमेर**

ष का ह में परिवर्तन

१ **पौष = पोह**

२ **पुण्य = पुहप**

३ **पुष्कर = पुहकर**

४ **कोष = कोह**

श का छ में परिवर्तन

१ **शकट = छकड़ौ**

२ **शोकहर = छोकरौ**

३ **शोभा = छोभा**

ल, ळ, व, व़ के समान **स** के नीचे भी बिंदी लगाई जाती है। दोनों के उच्चारण में भेद है।

स़ की ध्वनि महाप्राण है। इससे **स** पर जोर देकर उच्चारण किया जाता है अतः **स** का उच्चारण **ह** के निकट चला जाता है यथा **स़ोरौ, स़ाथी** आदि। पश्चिमी राजस्थान में **स** के स्थान पर **स़** का उच्चारण एक आम बात है। लिखित साहित्य में केवल **स** का ही प्रयोग होता है।

राजस्थानी में यद्यपि **श** का प्रयोग नहीं होता तथापि प्राचीन परिपाटी के अनुकरण से प्रारम्भिक ज्ञान कराते समय बालकों को **श, ष, स** का ज्ञान कराया जाता था।

स का छ में परिवर्तन—

१ **वत्स = वाछौ**

२ **उत्साह = उछाह**

३ **मत्सर = मछर**

४ **तुलसी, तुलछी, तुलछां**

ह—यह काकल्य घोष, संघर्षी ध्वनि है। जितनी इस अक्षर ने राजस्थानी कवियों की सहायता की, तुलनात्मक दृष्टि से उतनी सहायता अन्य किसी अक्षर द्वारा उन्हें प्राप्त नहीं हुई। अन्य भाषाओं में भी इसके उदाहरण प्रचुर रूप से प्राप्य हैं जिसकी विवेचना हम पीछे कर चुके हैं। पादपूर्ति के लिए **ह** का प्रयोग राजस्थानी कवियों ने भी स्वतंत्र रूप से किया है—

१ **घोड़ौ = घोड़ांह**

२ **नेड़ौ = नेड़ांह**

३ **ढोलौ = ढोलांह**

४ **मोड़ = मोड़ांह**

५ **मच्छी = मच्छीह**

शब्दों के अंत में प्रयुक्त होने के अतिरिक्त **ह** का आगम शब्दों के मध्य भी हुआ है—

१ **अंबर = अंबहर**

२ **समर = समहर**

३ **डाल = डाहल**

४ **एक = हेक**

५ **एकठा = हेकठा**

६ **अब = हव**

अन्य प्रकार से **ह** का आगम

१ **लाश = ल्हास**

२ **रईस = रहीस**

३ **लसकर = ल्हसकर**

अपभ्रंश प्रयोगों के प्रभाव में आकर कुछ क्रियाओं में भी **ह** का प्रयोग होने लगा है।

१ **देना = दिण्णउ = दीन्हौ**

२ **मेलणो = मेल्हणौ**

३ **उल्लसइ = उल्हसइ**

ह का लोप

१ **ब्रह्मा = बिरमा, बरम**

२ **सहस्र = सैंस**

३ **ब्राह्मण = बांमण**

४ **दरगाह = दरगा**

५ आलीजाह = आलीजो
६ उगाही = उगाई
७ सिपाही = सिपाई

ह का ऐ में परिवर्तन–
१ नहर = नै'र
२ कहर = कै'र
३ जहर = जै'र, झै'र
४ सहर = सै'र

ह का घ में परिवर्तन–
१ सिंह = सिंघ
२ सिंहासन = सिंघासण
३ बाह = बाघ, बाग

ह का य में परिवर्तन–
१ साहब = सायब
२ दहेज = दायजो

ह का व में परिवर्तन–
१ सेहरौ = सेवरौ
२ विवाह = व्याव
३ मोहनी = मोवनी

राजस्थानी में विसर्ग का प्रयोग नहीं होता। विसर्गरहित शब्द ही प्रयुक्त किये जाते हैं, यथा—दु:ख = दुख।

क्ष का प्रयोग राजस्थानी में संस्कृत शब्दों के तत्सम रूपों में होता है, यद्यपि उसमें भी परिवर्तन की ओर झुकाव अधिक है, यथा–

१ क्षेत्र = खेत
२ क्षार = खार
३ राक्षस = राकस
४ लक्षण = लक्खण = लच्छण

इन दोनों रूपों का प्रयोग राजस्थानी में होता है। ज्ञ का प्रयोग राजस्थानी में नहीं होता। इसकी ध्वनि को ग्य में फैला कर उपस्थित किया जाता है, यथा–

१ संज्ञा = संग्या
२ यज्ञ = जग्य, जिग
३ सर्वज्ञ = सरवग्य
४ प्रज्ञान = प्रग्यांन
५ आज्ञा = आग्या

ज्ञ का ज में परिवर्तन–
१ अज्ञान = अजांण
२ प्रतिज्ञा = पैज

ज्ञ का ण में परिवर्तन–
१ राज्ञी = रांणी
२ आज्ञा = आंण (णा)

ज्ञ का न में परिवर्तन–
१ अभिज्ञान = अहनांण
२ साभिज्ञान = सहनांण
३ संज्ञानी = सैनांणी

राजस्थानी में सावर्ण्य प्रवृत्ति की विशेषता विशेष रूप से उल्लेखनीय है[1]—

१ रिक्त = रित्तो
२ चक्र = चक्को
३ कार्य = कज्ज
४ हस्त = हत्थ
५ मत्सर = मच्छर
६ मध्य = मज्झ

संस्कृत भाषा के विसर्ग ध्वनि के समान अरबी एवं फारसी भाषा की जिह्वामूलीय ध्वनियाँ भी राजस्थानी में साधारण हो जाती हैं—

१ ग़रीब = गरीब
२ बुख़ार = बुखार
३ बाज़ = बाज
४ साफ़ = साफ

शब्दों को संक्षिप्त करने एवं अक्षर को लुप्त करने की प्रवृत्ति राजस्थानी में है। ऐसे स्थलों पर सम्बन्धकारक चिन्ह (Apostrophe) का भी प्रयोग किया जाता है। अधिकतर स, ष, श, ह आदि अक्षरों का ही इस प्रकार लोप होता है। अधिक खोजबीन करने पर कुछ दूसरे अक्षरों के उदाहरण भी

[1] शोध पत्रिका, भाग ४, अंक ३, मार्च ५३ में प्रकाशित मनोहर शर्मा का एक लेख—'राजस्थानी में ध्वनि-परिवर्तन' का पारा ९३।

प्राप्त हो सकते हैं, तथापि तुलनात्मक दृष्टि से उनका प्रयोग बहुत कम होता है।

स का लोप–

१ ससुराल = सासरौ, सा'रौ

२ स्थूल = थू'ल

३ स्कंध = कां'धौ

ष का लोप–

१ कुष्ठ = को'ड

२ कृष्ण = का'नौ

३ कोष्ठक = को'ठौ

ह का लोप–

१ पौष = पौह, पौ'

२ चाह = चा'

३ फूहड़ = फू'ड़

इन अक्षरों की विलुप्तावस्था में (') चिन्ह का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव में अर्थभेद के कारण असंगति उत्पन्न हो जाती है। दोनों के अर्थभेद के उदाहरणों से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगी, यथा–

१ चा' = इच्छा
  चा = चाय

२ चे'रौ = चेहरा
  चेरौ = दास, सेवक

३ ना'र = नाहर, सिंह, बाघ
  नार = नारी, स्त्री

इस प्रकार (') के चिन्ह के अभाव में अर्थ कई बार बिल्कुल बदल जाता है। इसके प्रयोग का अधिक झुकाव वर्तमान काल में ही अधिक देखा जाता है। संभव है यह आंग्ल भाषा के प्रभाव का कारण हो।

भाषा विज्ञान के अंतर्गत ध्वनिलोप (Haplology) के नियमानुसार एक ही प्रकार की दो ध्वनियों के आसपास आने पर उच्चारण सौकर्य के लिये एक प्रायः लुप्त हो जाता है, जिसका उल्लेख हम इस निबन्ध के आरम्भ में व्यञ्जनलोप के उदाहरण देते समय कर चुके हैं (देखो—पृष्ठ १३)।

अन्य भाषाओं के समान राजस्थानी में भी प्रतिध्वनित अथवा अनुकरणमूलक शब्दों का खूब व्यवहार होता है। प्रतिध्वनित रूप में मुख्य शब्द के किंचित् अंशों को ही दुहराया जाता है। इस अंश का स्वतः कुछ अर्थ नहीं होता किन्तु मूल शब्द के साथ यह 'इत्यादि' का अर्थ देता है, यथा—रोटी-वोटी, भात-वात आदि। प्रायः ये शब्द मूल शब्द के आद्य अक्षर के व्यंजन-ध्वनि के स्थान पर व बिठा देकर बनते हैं।'

कुछ शब्द गहराई एवं घनत्व उत्पन्न करने के लिए शब्दों के साथ प्रयुक्त होते हैं। इनका उद्देश्य शब्द का अर्थ कुछ अधिक स्पष्ट कर गहराई तक पहुँचाने का होता है—

यथा—१ फीकौ = फीका
  फीकौ थूक = बिल्कुल फीका, थूक के समान फीका

२ धोळौ = सफेद
  धोळौ बग = बगुले के समान सफेद, नितान्त श्वेत

३ लंबौ = लम्बा
  लबौ लड़ंग = पंक्ति के समान लम्बा, बहुत लम्बा

४ डींगौ = ऊँचा, लम्बा
  डींगौ डांग = बहुत लम्बा (ऊँचाई में व्यक्ति के लिए)

उपरोक्त शब्दों के साथ आने वाले शब्दों में कुछ अर्थ निहित है। किन्तु, कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जिनको मूल शब्दों से अलग कर देने पर उन शब्दों का कोई विशेष अर्थ नहीं निकलता, वे केवल शब्दों के साथ रह कर ही अर्थ में वैचित्र्य उत्पन्न करते हैं, यथा—

१ धोळौ = सफेद
  धोळौ घट – बिल्कुल सफेद
  धोळौ फट = ,, ,,

२ सीधौ सड़ाग = बिल्कुल सीधा
  सीधौ सणंक = ,, ,,

३ लीलौ = नीला
  लीलो चैर = गहरा नीला

इसके अतिरिक्त व्यवहार में समान अर्थ वाले शब्दों को भी कहीं-कहीं साथ-साथ उपस्थित कर दिया जाता है। अलग-अलग रूप में वे दोनों समान अर्थ देते हैं, एवं सम्मिलित रूप से भी उनका अर्थ वही रहता है, उसमें परिवर्तन नहीं होता। इनका वर्गीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है—

राजस्थानी भाषा—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृष्ठ ५२

१. अनुकार शब्द—

पूछ-ताछ, देख-भाल

२. अनुचर शब्द—

कपड़ा-लत्ता, दिन-दहाड़ौ, कांम-काज

३. सहचर या अनुवाद शब्द—

साग-सब्जी, पहाड़-परवत, नदी-नाला, ब्याव-सादी

४. विकार शब्द—

गोभी-गाभी, गाबा-गूबौ

कुछ शब्द अर्थ में भिन्नता रखते हुए भी रोजाना के सहचर्य के कारण साथ-साथ आ जाते हैं। इन्हें प्रतिचर शब्द कहते हैं, यथा—

दिन-रात, राजा-वजीर आदि।

वर्ण-विपर्यय की विवेचना हम पहले कर चुके हैं। उसके आधार पर कुछ शब्द परस्पर आदान-प्रदान कर संतुलन ठीक बनाये रखते हुए भी रूप में परिवर्तन कर लेते हैं—

यथा— **जंघा = जांघ**

संझा = सांझ

राजस्थानी नामों के सम्बन्ध में विवेचना करते हुए उनके रूप-भेद आदि की विशेषताओं का वर्णन किया जा चुका है, किन्तु कुछ इस प्रकार की जटिलताएँ हैं, जिसके कारण भाषा कई स्थलों पर बड़ी दुरूह हो गई है। ऐसे शब्दों का प्रयोग, जिनके कई अर्थ हो सकते हैं, किसी विशेष एक अर्थ में प्रयुक्त किया जाय, वह भी लाक्षणिक रूप से, तब उनका अर्थ बड़ा अस्पष्ट-सा हो जाता है। ऐसे प्रसंगों में पूरी कविता या प्रसंग के ज्ञान बिना चलती हुई गाड़ी रुक जाती है। एक दो उदाहरणों द्वारा यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो सकेगी। प्रिथीराज राठौड ने अपनी वेलि में रुक्म के लिए **सोनानांमी** प्रयुक्त किया है। **सोनानांमी** का अर्थ रुक्म नहीं होता। सोने (स्वर्ण) के बहुत से पर्यायवाची शब्द होते हैं, उनमें एक शब्द रुक्म भी होता है। इसी को आधार मान कर उन्होंने वेलि में रुक्म के लिए **सोनानांमी**[1] प्रयुक्त किया है। कितनी जटिलता है। कुछ कविगण इससे भी आगे बढ़ गये हैं। प्राचीन गीतों में सीसोदिया भीमसिंह के लिए कई स्थलों पर **पांडवनांमी**[1] प्रयुक्त किया गया है। **पांडवनांमी** का अर्थ किया गया है 'पांडव के नाम वाला'। पांडव पाँच थे। किस पांडु पुत्र के नाम का आधार मान कर अर्थ किया गया है यह तब तक स्पष्ट नहीं होता जब तक कि प्रसंगानुसार पूर्व ज्ञान प्राप्त नहीं कर लिया जाता। इस प्रकार ऊँट के लिए **सिसुनांमी**, महेशदास के लिए **भूतेसनांमी**[2], राव गांगा के लिए **ससमाथ**[3] आदि शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है।[4]

[1] निराउध कियौ तदि **सोनानांमी**, केस उतारि विरूप कियौ।
छिणियै जीवि जु जीव छंडियौ, हरि हरिणाखी पेखि हियौ॥
—वेलि क्रिसन रुकमणी री, राठौड़ प्रथीराज

[1] गोळा तीर आछूटै गोळा, दोळा आलम तणा दळ।
पड़ दड़ग्रड़ चड़यड़ चहुंपासै, खूमांणो लूंबिया खळ॥
पातल हरा ऊपरा पड़भव, खळ खूटा तूटा खड़ग।
पांडवनांमी नीठ पाड़ियो, लग ऊगमण आथमण लग।
—गीत भीमसिंह सीसोदिया रो : रच०—खेमराज दधवाड़िया।
(ना० प्र० प०, भाग १ के पृष्ठ १६० से बाबू रामनारायण दूगड़ के एक लेख से उद्धृत)

[2] घावां बाणासां तिलक्कां धू सांबलां गंगाजळां घोख,
बील पत्रां कटारां अखत्रां गोळी बांण।
सोर धुवां झाळां दीपमाळां गोळां फणां सेस,
पूजै यूं सतारा दळां माहेस पीठांण॥ १
हरी हरा रट्टां चहूं तरफ्फां असीस होत,
नमै सट्टी सट्टां धार खत्रीवट्टां नेम।
पड़ै पावां सार झट्टां हजारां अगुट्टां पेम,
अरच्चै **भूतेसनांमी** मरहट्टा येम॥ २
—गीत आसोप ठाकुर महेसदासजी री : रच०—उमेदराम सांदू

[3] हुवै मुहमेज दळ सबळ मंगळ हुवै।
जुवै जोधार जुब सार जाय जाडो॥
लोजते साथ भारथ 'गंग' लसतां।
आवीयो 'जैत' **ससमाथ** आडो॥
—राव गांगेजी री गीत (ठाकुर जैतसी री वात

[4] हिन्दी भाषा में भी इस प्रकार के प्रयोग पाये जाते हैं, यद्यपि राजस्थानी की अपेक्षा उनमें जटिलताएँ कम हैं—

१ रामचरित मानस में एक स्थान पर ऐसा प्रयोग मिलता है—

'विप्र श्राप तें दूनउ भाई, तामस असुर देह तिन्ह पाई।
कनककसिपु अरु हाटक लोचन, जगत विदित सुरपति मद मोचन॥
—बालकांड १२१/३

इसमें हिरण्यकशिपु के लिए 'कनककसिपु' तथा हिरण्याक्ष के लिए 'हाटकलोचन' का प्रयोग द्रष्टव्य है। सोने के पर्यायवाची शब्दों में हिरण्य, कनक तथा हाटक तीनों हैं, अतः हिरण्य के लिए 'कनक

कुछ शब्दों का उच्चारण राजस्थानी में कुछ विशेष प्रकार का होता है। अंग्रेजी के Hot (हॉट) एवं Call (कॉल) के समान ही इनका उच्चारण होता है। ऐसे उच्चारणों के लिए किसी अलग चिह्न द्वारा चिह्नित न होने के कारण बहुत से शब्दों के दोनों उच्चारण प्रचलित हो गए हैं, यथा–

कांम शब्द का उच्चारण

(१) **कांम**

(२) **कॉम**

राजस्थानी व्याकरण

संज्ञा–राजस्थानी में व्यञ्जनान्त अन्त्य स्वर[1] अधिकतर निम्नलिखित मिलते हैं—

आ–वांमा, रमा आदि।

इ–कवि, रवि आदि।

ई–सगती, मुगती, माळी, दही, रोही आदि।

उ–भानु।

ऊ–भालू, चक्कू, डाकू आदि।

ए–

ऐ–नेपै, रावळै।

औ–घोड़ौ, लड़कौ, बेटौ, कोठौ, माटौ इत्यादि।

अन्त्य व्यञ्जन साधारणतः निम्नलिखित हैं—

क–नाक, चाक, चमक, लटक आदि।

ख–राख, पंख, आंख, परख आदि।

ग–साग, आग, रोग, चंग आदि।

घ–बाघ, जांघ, ऊंघ आदि।

ड़–बाड़, नाड़, पीड़, मोड़ आदि।

च–आंच, नाच, काच, मच आदि।

छ–छाछ पांछ आदि।

ज–राज, काज, लाज आदि।

झ–सांझ, बांझ आदि।

ट–आट, दाट, पेट, ईंट, ऊँट आदि।

ठ–ओठ, सेठ, मठ आदि।

ड–सांड, लाड आदि।

ढ़–कोढ़, बाढ़ आदि।

ण–मांण, कांण, बांण आदि।

त–मात, पित, रेत, पोत आदि।

थ–हाथ, थोथ, नथ आदि।

द–दाद, तूंद, मोद, नाद आदि।

ध–कांध, दूध।

न–कांन, मन, तन आदि।

प–पाप, चेप, सांप, कप आदि।

फ–बाफ, बरफ, सूंफ आदि।

ब–अरब, गरब, आब आदि।

भ–लाभ, गरभ, नभ, आभ आदि।

म–कांम, नांम, बिदांम, दम आदि।

य–हाय, राय आदि।

र–हार, खुर, अमचूर आदि।

ल–काल, रेल आदि।

ळ–काळ, दाळ, साळ आदि।

व–गांव, घाव आदि।

व़–वाव़।

स–हूंस, वांस, ओस, उसांस आदि।

ह–उछाह, कलह आदि।

लिङ्ग–स्वाभाविक रूप से पुरुष, स्त्री एवं नपुंसक ये तीन वर्ग प्रकृति में मिलते हैं। इसी कारण प्रायः कई भाषाओं में

एवं हाटक' का प्रयोग कर दिया गया है। (प्रथीराज राठौड़ द्वारा रचित वेलि क्रिसन रुकमणी री' में दोहा १३४ में प्रयुक्त 'सोनानांमी' से इस प्रयोग को मिलाइये।

२ संस्कृत के 'द्विरेफ' शब्द की उत्पत्ति में भी यही प्रवृत्ति कार्य कर रही है। द्विरेफ का अर्थ है दो रेफ वाला, अर्थात् जिसमें दो रेफ हों। चूंकि भ्रमर शब्द में दो रेफ हैं अतः 'द्विरेफ' भी भ्रमर का पर्याय बन गया। इस प्रकार के शब्दों को Irony कहते हैं। देखिये— Elements of Science of Language, by Taraporewala, Page 98-99, Para 79.

[1] राजस्थानी में व्यंजनांत (हलंत) शब्दों की अंतिम व्यंजन ध्वनि या तो लुप्त हो जाती है या अ जोड़ कर अकारांत बनादी जाती है, यथा—मन (मनस्), जग (जगत्) आदि। अपभ्रंश में भी यही परंपरा मिलती है, देखो—हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, प्रथम भाग; सं०—राजबली पांडे, पृ. ३२२।

इन तीनों का प्रयोग हुआ है। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी, मराठी एवं गुजराती—इन तीन भाषाओं में ये तीनों लिङ्ग पाये जाते रहे हैं। प्राचीन राजस्थानी के बाद निरंतर दो ही लिङ्ग मानने की ओर राजस्थानी में झुकाव रहा। आज प्रायः पु० एवं० स्त्री० इन दो ही लिङ्गों का प्रयोग होता है।[1] स्थान-भेद के कारण विभिन्न बोलियों में कुछ लिङ्ग-भेद मिलते हैं। स्नान को पु० माना गया है, किन्तु जैसलमेर की ओर स्थानीय रूप में इसे स्त्री० माना गया है। परन्तु प्रामाणिक रूप से शब्दों का **मानकीकरण** Standard प्रायः स्थिर है।

आधुनिक रूप में राजस्थानी में नपुंसक लिंग नहीं है। किन्तु प्रकृत्यनुसारी पु० एवं नपुं० लिङ्ग का थोड़ा-सा भेद कर्मकारक के परसर्ग ने प्रयोग में अवश्य दृष्टिगत होता है, यथा—

१ माळी नै बुलावौ।
२ घोड़ी नै खोलदो।
३ बळीतौ लाओ।

अन्य परसर्गों में लिङ्ग विकार होता है किन्तु ने नपुं० के समान दोनों लिङ्गों में समान रूप प्रयुक्त होता है।

प्रायः राजस्थानी में तद्भव शब्दों का लिङ्ग वही है जो तत्सम रूपों का है। तत्सम रूपों से उन तद्भव रूपों तक आते-आते कुछ घिसा-पिटी इस प्रकार की हो गई है कि अन्य भाषा-भाषियों के लिए राजस्थानी को लिङ्ग समस्या कुछ दुरूह-सी हो गई है। यह दुरूहता केवल राजस्थानी में ही नहीं है अपितु हिन्दी तथा कुछ अन्य आर्य भाषाओं में भी वैसी ही है, यथा—

पु०	स्त्री०
हिसाब	किताब
ख्याल	बेल
सूत	लूट
बाग	आग

साधारण जन के लिए यह दुरूह है कि जब **हिसाब** पुलिंग है तो **किताब** स्त्री० क्यों है? **मकान** शब्द पु० है, जबकि **दुकांन** व **कबांन** शब्द स्त्री० है। इससे जन-साधारण की धारणा कुछ इस प्रकार की बनती है कि यह लिङ्ग-विधान नितांत अनियमित है। मेरी 'राजस्थांनी व्याकरण' में मैंने इस लिङ्ग-विधान की विवेचना एवं व्याख्या करने का प्रयत्न अवश्य किया है तथापि उसी क्रम में आने वाले विभिन्न-लिंगी शब्दों को अपवाद माना गया है। तब भी लिङ्ग-विधान के विकास-क्रम की कुछ अधिक सूक्ष्म एवं सरलतर व्याख्या की आवश्यकता है। यह समस्या उस समय और भी जटिल हो जाती है जबकि तत्सम रूपों का लिङ्ग तद्भव रूपों में परिवर्तित रूप में प्रचलित हो जाता है, यथा—

संस्कृत	राजस्थानी	
अग्नि (पु०)	आग (स्त्री०)	[प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में अगि पु० में प्रयुक्त हुआ है।]
देवता (स्त्री०)	देवता (पु०)	[इन्द्रिय-पराजय-शतक का बालावबोध—८३।]

तत्सम रूपों के नपुंसक लिङ्ग के बारे में यह माना गया है कि वे पु० एवं स्त्री० में बँट गए हैं। अतः इस बँटवारे में सम्बन्धित भाषाओं ने स्वतंत्र विचार द्वारा लिङ्ग निश्चित किए हैं। इस प्रस्तुत कोश में भी प्रामाणिक लिङ्ग रूपों को ही प्रस्तुत किया गया है। प्रचलित पु० शब्दों के साथ ही उनके स्त्री० रूप दे दिए गए हैं। अलग स्त्री० रूप उन्हीं शब्दों के दिए गए हैं जिनका पु० रूप बहुत कम प्रयुक्त होता है। अतः प्रचलित शब्दों के स्त्री० शब्दों को उनके पु० रूपों में ही खोजने का प्रयत्न करना चाहिये।[1]

[1] लिंग sex पर आधारित न होकर व्याकरण पर आधारित है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उद्धरण उल्लेखनीय है—
"The gender is not based on sex distinctions, but as in the Semitic and Indo-European families it is "grammatical". Perhaps it would be more correct to say that nouns are divided into two classes, which answer more or less to our masculine and feminine genders. As a general rule the big and strong things are 'masculine' and the weak and small things are feminine."
—Elements of Science of Language, by Taraporewala, Page 358, Para 240 (iii)

[1] कुछ प्राणीवाचक शब्द सदैव पु० रूप में ही प्रयुक्त होते हैं, यथा—बाबहियौ, मांछर, कागलौ आदि तथा कुछ सदैव स्त्री० रूप में ही प्रयुक्त होते हैं, यथा—कोयल, मैना, चील, उदेई, चुड़ैल आदि।

वचन— संस्कृत में एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन तीनों का प्रयोग होता था। मध्य भारतीय आर्य भाषा काल के प्रारम्भ में ही द्विवचन लुप्त हो गया।[1] इसी उत्तराधिकार के फलस्वरूप आधुनिक आर्य भाषाओं में केवल दो ही वचन होते हैं—एकवचन एवं बहुवचन। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के प्रारम्भिक काल तक प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का पु० प्रथमा, बहुवचन का प्रत्यय **आ** अपभ्रंश की पदांत ह्रस्व-स्वर लोप की प्रवृत्ति के कारण समाप्त हो गया।[2] यथा— सं० एकवचन पुत्र, बहुवचन पुत्राः। राजस्थानी में यह प्रवृत्ति विसर्ग लोप के साथ कुछ उलटफेर से अब भी प्रचलित है। यहां **अकारांत** एकवचन शब्दों का बहुवचन अंत्य-स्वर के बदले **आं** करने से बनता है, यथा—

	एकवचन	बहुवचन
पु०	नर	नरां
	खेत	खेतां
	कायर	कायरां
स्त्री०	रात	रातां
	चील	चीलां

इकारांत एवं **ईकारांत** एकवचन शब्दों के बहुवचन रूप में **यां** लगाया जाता है—

	एकवचन	बहुवचन
पु०	कवि	कवियां
	तेली	तेल्यां, तेलियां
स्त्री०	मूरती	मूरत्यां, मूरतियां
	रोटी	रोट्यां, रोटियां
	घोड़ी	घोड़्यां, घोड़ियां

औकारांत शब्दों के बहुवचन रूप **आकारांत** हो जाते हैं, यथा—

	एकवचन	बहुवचन
पु०	घोड़ौ	घोड़ा
	भालौ	भाला
	पोतौ	पोता

[1] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग–सं० राजबली पांडे, पृ० २६६।

[2] हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास–उदयनारायण तिवाड़ी, पृ० ४३४।

राजस्थानी में प्रायः **औकारांत** शब्द स्त्रीलिंग नहीं होते। लिंग परिवर्तन में उनका रूप **ईकारांत** अथवा **अकारांत** हो जाता है। अपवादस्वरूप एक अक्षरिक जो स्त्रीलिंग **औकारांत** शब्द मिलते हैं उनका बहुवचन रूप **वां** लगने से होता है, यथा—

पौ एक व० का **पौवां** बहु० व०

गौ एक व० का **गौवां** बहु० व०

आकारांत एवं **ऊकारांत** शब्दों में भी **वां** लगा कर उनका बहुवचन रूप बनाया जाता है, यथा—

एकवचन	बहुवचन
मा	मावां
लू	लूवां
बहू	

उपरोक्त रूपों के अतिरिक्त कुछ शब्दों की सहायता से भी बहुवचन प्रकट किया जाता है। प्रायः ये शब्द-समूह का बोध कराते हैं। इस प्रकार के शब्दों का योग होने पर कारक परसर्ग संज्ञा पद के साथ न लग कर इन्हीं शब्दों के बाद लगते हैं। इस प्रकार के कुछ शब्द ये हैं—**लोग**, **सब**, **सँग** (अथवा इनके रू०भे०) **गण** आदि। उदाहरणस्वरूप निम्न-लिखित प्रयोग द्रष्टव्य हैं—**राजा लोग**, **कवि लोगां सूं**, **सँग तारां**, **सँग जणा** आदि।

जैसलमेर आदि स्थानों में स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन रूप **एंकारांत** होते हैं, यथा—

एकवचन	बहुवचन
रोटी	रोटैं
सती	सतैं
ओल	ओलैं

एकवचन एवं बहुवचन तथा इनके कारक प्रत्ययों की विवेचना करने का यहां हमारा उद्देश्य नहीं है। यह कार्य वैयाकरणों एवं व्याकरण का है। प्रस्तुत कोश में एकवचन शब्दों को ही उपस्थित किया गया है। व्याकरण के नियमानुसार उनका बहुवचन रूप स्वयमेव समझ लेने का प्रयत्न अधिक उचित होगा। अपवादस्वरूप कुछ शब्द अपने बहु-वचन रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। उनका एकवचन प्रायः होता ही नहीं, अगर होता है तब भी वह अत्यन्त महत्वहीन होता

है। वे सदा बहुवचन रूप में ही सार्थक होते हैं, यथा—परियां[1], कंपा (खिम्रां), आखा आदि।

इस प्रकार के शब्दों को सोल्लेख उपस्थित किया गया है। फिर भी मोटे रूप से हमने कोश को कोश ही बनाये रखना वांछनीय समझा है, उसे व्याकरण बनाने का उद्देश्य हमारा कदापि नहीं है। प्रत्येक भाषा के अपने स्वयं के व्याकरण सम्बन्धी कुछ नियम होते हैं। जब कोई भाषा अन्य भाषाओं से किन्हीं शब्दों को ग्रहण करती है तब उन शब्दों को वह भाषा अपने व्याकरण के ढांचे के अनुकूल ढाल लेती है। राजस्थानी में भी विदेशी शब्दों को स्वदेशी रूप में बहुवचनान्त बना लिया जाता है, यथा—

विदेशी एकवचन शब्द	स्वदेशी बहुवचनान्त रूप
स्टेशन, स्टेसन	स्टेसनां
मोटर	मोटरां
टिकट	टिकटां

कारक— भारत की प्राचीन भाषाओं तथा योरोपीय भाषाओं में संज्ञाओं का सम्बन्ध उपसर्गों (Preposition) द्वारा प्रकट कर दिया जाता था। इनके अतिरिक्त अरबी-फारसी आदि भाषाओं में भी उपसर्गों की सहायता से कारक प्रकट किये जाते हैं। किन्तु भारतीय भाषाओं में प्राचीन काल से ही कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा था। इस परिवर्तन के अनुसार उपसर्ग क्रियाओं के साथ जुड़ने लगे और संज्ञाओं के कारक सम्बन्ध नियमित करने का इनका कार्य समाप्त हो चला। इस काल के उपरांत शब्दों के प्रातिपदिक रूप में विभक्ति-प्रत्यय लगा कर भिन्न-भिन्न कारक रूप निष्पन्न किये जाते रहे। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा, यथा—संस्कृतादि में छः कारक (संस्कृत में सम्बन्ध एवं संबोधनकारक का समावेश नहीं था। राजस्थानी में इन दोनों को मिला कर कारक संख्या आठ मानी जाती है) माने गये और प्रत्येक कारक का एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन का रूप अलग-अलग विभक्ति प्रत्ययों के योग से बनता था। इस दृष्टि से प्रत्येक शब्द के सामान्य रूप से चौबीस रूप होते थे। शब्दों के कारक रूपों में समीकरण की प्रवृत्ति के प्रसार के साथ ही प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में शब्द रूपों की बहुलता निरंतर कम होती गई एवं केवल पांच-छः रूप ही शेष रह गये। अपभ्रंश काल में तो शब्द-रूपों के अनुसार कारकों के केवल तीन ही वर्ग शेष बच रहे।

[1] पूर्वजों के अर्थ में।

ध्वनि-परिवर्तन के कारणवश विभक्ति प्रत्ययों के मूल रूप की अस्पष्टता अपभ्रंश काल तक इस अवस्था में पहुँच गई कि कारक प्रकट करने के लिये सहायक शब्दों का प्रयोग आवश्यक माना जाने लगा। आगे चल कर विभक्ति प्रत्ययों में और भी कमी हो गई। केवल कर्ता बहुवचन, करणकारक, सम्बन्ध बहुवचन और अधिकरण एकवचन के विभक्ति प्रत्यय ही जिस किसी रूप में शेष बच पाये, किन्तु उनमें समानता न रही।

राजस्थानी में कारकों के निर्विभक्तिक और सविभक्तिक रूप दोनों देखने को मिलते हैं। विभक्ति चिन्ह इस भाषा में अन्य भाषाओं की अपेक्षा कुछ अधिक एवं अनेक रूपों में मिलते हैं, यथा—

कारक	विभक्तियां	विभक्ति चिन्ह
करता	प्रथमा विभक्ति	×
करम	द्वितीया विभक्ति	ने, नूं, नां, को, कूं।
करण	तृतीया विभक्ति	सूं, ऊंती, सी, सेती, सात, हूंत, हूंता, सां, सैं, संधो।
संप्रदान	चतुर्थी विभक्ति	रैं, कै, बेई, बैई, लिये, आंटा, माटै, आंटै, वासते, कारण, सारू, तांई।
अपादान	पंचमी विभक्ति	तृतीया विभक्ति के समान।
सम्बन्ध	षष्ठी विभक्ति	रा, री, रै, रौ, का, की, के, को, चो, चा, च, ची, तणो, तणी[1], तण।
अधिकरण	सप्तमी विभक्ति	मैं, में, मांय, परे, पै, माथै, ऊपरै, तांई, तक, खनै,

[1] 'तण' का प्रयोग हेमचंद्र के दोहों में षष्ठी वाले रूपों के साथ भी मिलता है। बाद में जाकर इन्हीं से राजस्थानी में तणा-तणी का विकास हुआ है—देखिये—'हिन्दी का बृहत् इतिहास', प्रथम भाग, सं० राजबली पांडे, पृ० ३२६।

(मेरे द्वारा लिखित 'राजस्थानी व्याकरण, पृष्ठ १८)

कनै, नखं, नकै, खंडे, खूंडे,
गोडै, ढीहा, पां, ढीसा, बळ,
बलाकौ, पाहै, पास, पासै,
पागती, पसवाड़ै, पा'ड़ै
पासड़ै ।

सम्बोधन अष्टमी विभक्ति **हे, हो, अरे, ओ** ।

राजस्थानी में विभक्तिसहित बहुवचन बनाने के कुछ विशेष नियम हैं। यह व्याकरण का विषय होने के कारण उसका विस्तारपूर्वक उल्लेख यहाँ संभव नहीं है, तथापि कुछ विशिष्ट विशेषताओं से परिचित कराना विषयान्तर न होगा।

बहुवचन बनाने में अकारांत विकारी शब्द आंकारांत तथा आकारांत विकारी शब्द आंकारांत या वांकारांत हो जाते हैं, यथा–

एकवचन	बहुवचन
घर	घरां (नै)
वात	वातां (सूं)
खेत	खेतां (में)
राजा	राजाआं, राजावां (नै)
पिता	पिताआं, पितावां (नै)

इकारांत तथा **ईकारांत** शब्दों को बहुवचन बनाने के लिये **इकारांत** शब्दों में **यां** जोड़ा जाता है एवं **ईकारांत** शब्दों में ई को ह्रस्व कर यां जोड़ दिया जाता है–

एकवचन	बहुवचन
कवि	कवियां
टोपी	टोपियां
घोड़ी	घोड़ियां

उकारांत तथा **ऊकारांत** शब्दों को बहुवचन बनाने के लिये **उकारांत** शब्दों में **आं** अथवा **वां** जोड़ दिया जाता है एवं **ऊकारांत** शब्दों में ऊ को ह्रस्व कर **आं** या **वां** जोड़ा जाता है–

एकवचन	बहुवचन
साधु	साधुआं, साधुवां
बरू	बरुवां

एकारांत शब्दों को बहुवचन बनाने के लिये **आंकारांत** एवं **हांकारांत** बनाया जाता है, यथा–

एकवचन	बहुवचन
मे	मेआं, मेहां
खे	खेआं, खेहां

ऐकारांत शब्द दोनों वचनों में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं–

एकवचन	बहुवचन
रावळै	रावळै (पु०)
कलं	कलं (स्त्री०)

ओकारांत शब्दों का बहुवचन **आकारांत** करने पर हो जाता है, यथा–

एकवचन	बहुवचन
दादौ	दादां, दादा
छोकरौ	छोकरां, छोकरा

कुछ विशिष्ट परसर्गों का विवेचन करना इस दृष्टिकोण से उचित होगा–

नै– इस परसर्ग का व्यवहार राजस्थानी की एक प्रमुख विशेषता है। कुछ अन्य भाषाओं में भी इसका व्यवहार परसर्ग के रूप में होता है। प्रायः इसके स्थान पर यदा-कदा **नूं, कूं, को, नां** आदि भी प्रयुक्त होते हैं–

१ घोड़ां **नै** मारौ।
२ घोड़ां **नूं** मारौ।
३ घोड़ां **कूं** मारौ।
४ घोड़ां **को** मारौ आदि।

जो अप्राणीवाचक शब्द हो, उसके साथ साधारणतया **नै** का प्रयोग नहीं किया जाता, यथा–

१ कपड़ा खोल दौ।
२ घास काटौ।
३ नळ खोल दौ।

किन्तु जोश, क्रोध, गर्वोक्ति, उद्देश्य-विधेय, निश्चयात्मक भावों आदि में **नै** लगाना आवश्यक है अन्यथा भाव विशेष अस्पष्ट रहेगा एवं साधारण भाव ही प्रकट होगा।

इस **नै** परसर्ग की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में काफी मतभेद है। प्रायः इसका सम्बन्ध प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की करण-कारक एकवचन की विभक्ति **एन** से जोड़ते हैं एवं वर्ण-

व्यत्यय से एन का ने में परिणत होने का अनुमान करते हैं, किन्तु यह मत ठोस प्रमाणों पर आधारित नहीं माना जाता। डा० चाटुर्ज्या इस परसर्ग की व्युत्पत्ति सं० शब्द **कर्ण** से मानते हैं। उनके अनुसार इस परसर्ग का प्राचीन रूप **कनै** था। राजस्थानी में आधुनिक काल में भी यह शब्द 'समीप' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, यथा-म्हारै **कनै** आव (मेरे पास आ)। सं० **कर्ण** मध्य भारतीय आर्य भाषा काल में **कन्न** एवं अपभ्रंश में इसका अधिकरण रूप **कन्नहि** बनता है, जिसमें **क** तथा **ह** के लोप से **नइ** और गुण द्वारा **नै** रूप निष्पन्न हुआ। संस्कृत **कर्ण** का शब्दार्थ कान होते हुए भी यह सामीप्य का बोधक है। अतः राजस्थानी में भी यह संज्ञा एवं क्रिया के मध्य संबंध स्थापित करने में प्रयुक्त होता रहा है।[1]

हम ऊपर लिख चुके हैं कि **को** राजस्थानी में **नै** परसर्ग के स्थानापन्न रूप में प्रयुक्त होता है, यथा-

रांम नै रोटी घालौ।
रांम को रोटी घालौ।

अन्य भाषाओं में इन परसर्गों के प्रयोग से अर्थान्तर हो जाता है, यथा-

रांम ने रोटी खाई।
रांम को रोटी डालिये।

राजस्थानी में इस प्रकार का विभेद नहीं है।

निम्नलिखित उदाहरणों से परसर्गों की व्याख्या अधिक स्पष्ट हो जायगी—

१ करम-

(i) रथ थंभि सारथी विप्र छंडि रथ, औ पुर हरि बोलिया इम।
आयौ कहि, कहि नांम आम्हीणौ, जा सुख दे स्यांमा नै
जिम॥—वेलि. ६६

(ii) आजूणउ धन दीहड़उ, साहिब कउ मुख दिट्ठ।
माथा भार उळथ्थियउ, आंख्यां अमी पयट्ठ॥
—ढो.मा. ५३१

(iii) राजा रांणी नूं कहइ, बात विचारउ जोइ।
आज विलइ यां दीकरी, हांसउ हसिली लोइ॥
—ढो.मा. ७

[1] हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ ४४०-४४१।
राजस्थानी में सामीप्य के बोधक इस प्रकार के अनेक अंगवाची शब्द मिलते हैं = गोडै, नखै, पाहई आदि।

२. करण-

(i) चकडोळ लगै इणि भांति सुं चाली,
मति तै वाखांणण म मूं।
सखी समूह मांहि इम स्यांमा,
सीळ आवरित लाज सूं॥—वेलि. १०३

(ii) गादह दाध्यउ दग करि, सासू कहइ वचन्न।
करहउ ए कूड़इ मनइ, छोड़उ करइ यतन्न॥
—ढो.मा. ३३५

३. सम्प्रदान-

(i) तदि नृप पग वंदि मुनि तणा, कोपज छिमा कराय।
साथ दिया लछमण सहित, रछया कजि रघुराय॥
—सू.प्र., पृष्ठ २६

(ii) रोहड़ छळि राजा रतन।—वचनिका रतनसिंघजी री

(iii) सीख रतन कीधी सगि साख।—वचनिका रतनसिंघजी री

४. अपादान-

(i) इंद्र मांगै जिन कनै (सूं) दक्षिणा।—अज्ञात

(ii) नदी हेम थी ले चली जांणि नीर।
—वचनिका रतनसिंघजी री

(iii) चीतारंती चुगतियां कुंझी रोयहियांह।
दूरां हुंता तउ पलइ, जऊ न मेल्हहियांह॥
—ढो.मा. २०३

५. सम्बन्ध-

(i) करहा कहि कासूं करां, जो ए हुई अकाह।
नरवर केरा माणसां, कारै कहिस्यां जाह॥
—ढो.मा. ४४५

(ii) साहिब आया, हे सखी, कज्जा सहु सरियांह।
पूनिम-केरे चंद ज्यूं, दिसि च्यारे फळियांह॥
—ढो.मा. ५२८

(iii) साल्ह चलंतइ परठिया, आंगण बीखड़ियांह।
कूंबा-केरी कुहड़ि ज्यूं, हियड़इ हुइ रहियांह॥
—ढो.मा. ३६७

(iv) सखी अमीणां कंत रौ, औ इक बड़ौ सुभाव।
गळियारां ढीलौ फिरै, हाकां वागां राव॥
—हा.भा. १७

(v) सिंघ सरस रायसिंघ रै रहियो भूझै रांम।
आडौ सरवहियो अछै कळह तणौ घरि कांम॥
—हा.भा. १६

(vi) विलंतो जसौ बिसकन्या बाखाणियो ।
परणती कंथ बौ मुरड़ पहचाणियो ॥—हा. भा. २५

(vi) कांम संग्राम बी हांम जुध कांमणी ।
घणा नर जोवती भोमि माई धणी ॥—हा.भा. २२

(vii) जिण दीध जनम, जगि, मुखि दे जीहा,
क्रिसन जु पोखण भरण करै ।
कहण तणौ तिणि तणौ कीरतन,
स्रम कीधां विणु केम सरै ॥—वेलि. ७

(viii) ग्रहै ग्रंत्रावळि उड़ि चली ग्रीभणी ।
त्रिहूं भुयण रही वात सोहड़ां तणी ॥—हा.भा. ४७

(ix) संहितासु तणं पुत्र ग्रक्रसासु(स) ।
ग्रक्रसासु तणं पुत्र जवनासु ॥—सू.प्र पृष्ठ ११

(x) फिरि फिरि झटका जै सहै हाका बाजंतांह ।
त्यां घरि हंदी बंदड़ी धरणीं कापुरसांह ॥
—हा.भा. ३८

७. ग्रधिकरण–

(i) कुंदणपुर हूंता वसां कुंदणपुरि,
कागळ दीधौ एम कहि ।
राज लगें मेल्हियौ रुखमणी,
समाचार इणि मांहि सहि ॥—वेलि. ५६

(ii) सींगण कांइ न सिरजियां, प्रीतम हाथ करंत ।
काठी साहंत मूठि-मां, कोडी कासी संत ॥
—ढो.मा. ४१६

(iii) मारू लंक दुइ ग्रंगुळां, वर नितंब उर मंस ।
मल्हपइ मांझ सहेलियां, मांन सरोवर हंस ॥
—ढो.मा. ४६१

(iv) वपु नीलवसन मझि इम वखांण ।
जगमगत घटा मझि छटा जांण ॥
—सू.प्र., पृष्ठ १५

(v) सींगाळी ग्रवखल्लणी, जिण कुळ हेक न थाय ।
जास पुराणी बाड़ जिम, जिण जिण मत्थै पाय ॥
—हा.भा. ३२

(vi) घणा मझ घातियां भार झालै धणी ।
बहुत ग्रवगुण कियां थोड़ही बोलणी ॥
—हा.भा. १५

(vii) मधि त्रेता जुग चैत्रमास, सकंति-मेखि सरि ।
करक लगन पख सुकळ, धरा पुनवसु नखित्र धुरि ॥
सू.प्र., पृष्ठ २०

(viii) रमैं हसै नरिंदरं, मझार राज मिंदरं ।
करै उछाह सुक्किया, पचास सातसै प्रिया ॥
सू.प्र., पृष्ठ २२

(ix) मणी चढ़ि खेति जसवंत सूं ग्राहुड़ी ।
पिय नखै पौढ़सी नहीं पणिहारड़ी ॥—हा.भा. ३१

परसर्गोंरहित कारक विभक्तियों के उदाहरण—

१. कर्त्ता–

(i) सीखावि सखी राखी माखै सुजि, राणी पूछै रुखमणी ।
ग्राज कही तौ ग्राप जाइ ग्रावूं, ग्रंब जात्र ग्रंबिका तणी ॥
—वेलि. ७६

(ii) तरै बांण बांदे गयौ देखि तासं ।
सुरांराज झल्ले न हल्ले सरासं ॥—सू.प्र., पृष्ठ २८

२. करम–

(i) दुसटां रचियौ दाव, ग्रोपद (को) नागी देखवा ।
ग्रब तो बेगो ग्राव, साय करण नै सांवरा ॥
—द्रो पु. ५०

(ii) हलै हेक राई न को स्रम्म होतां ।
जसी जीव चालै न ज्यूं बांम (को) जोतां ॥
—स.प्र., पृष्ठ २८

३. करण–

(i) सांवण ग्रायउ साहिबा, पगइ (से) विलंबी गार ।
ग्रच्छ (से) विलंबी बेलड़यां, नरा (से) विलंबी नार ॥
—ढो.मा. २६६

४. सम्प्रदान–

(i) हंसां (के लिये) नग हरनूं तुचा, दांत किरातां (के लिए) दीध ।
—बां.दा.

(ii) प्रिव माळवणी परहरे, हाल्यउ पुंगळ (के लिये)देस ।
ढोला म्हां बिच मोकळा, वासा घणा वसेस ॥
—ढो.मा.

५. ग्रपादान–

(i) कुमकुमै मंजण करि धौत वसत धरि,
चिहुरे (से) जळ लागौ चुवण ।—वेलि. ८१

(ii) ऊनमियउ उत्तर दिसइं, गाज्यउ गुहरि गंभीर ।
मारवणी प्रिय संभरयउ, नयणे (से) वूठउ नीर ॥
—ढो.मा. १८

६. सम्बन्ध–

(i) केवियां (के) दळ तंदळ जेणि किया ।
दन सांसण लक्ख गजेन्द्र दिया ॥
—वचनिका रतनसिंघजी री

(ii) छुटै अम्रताधार . अप्पार छंदं ।
चवै हंस (का) वाखांण बे भांण चंदं ।।—सू.प्र. २८

(iii) इंद्राँ (का) वाहण नासिका, तासु तणइ उणिहार ।
तस भख हूवउ प्राहुणउ, तिणि सिणगार उतार ।।
—ढो.मा. ५८०

(iv) पछैं जमी आकास, पवन पांणी, चंद सूरज नूं प्रणांम करि आरोगी (क) दोळी परिक्रमा दीन्ही ।
—वचनिका रतनसिंघजी री

७. अधिकरण—

(i) रचे चिंतामणी सु हार, कंठि (में) रंक कीजियं ।
पलं पलं विलोकि पुत्र, जेण भांति जीजियं ।।
—सू.प्र., पृष्ठ २५

(ii) सखिए, साहिब आविया, जांहकी हूंति चाइ ।
हियडउ हेमांगिर भयउ, तन पंजरे (में) न माइ ।।
—ढो.मा.

(iii) चंचळां (पर) चढ़ि महा सरवर री पाळि आइ ऊभी रही—
—वचनिका रतनसिंघजी री

८. सम्बोधन—

(i) सखिए साहिब ! आविया, मन चाहंदी मोइ ।
वाडी हुवा वधांमणा, सज्जण मिळिया सोइ ।।
—ढो.मा. ५३२

(ii) रजस्वळा नारीह ! कथा गोप किणसूं कहूं ।
समझौ हरि सारीह, (म्हारी) सरम मरम री सांवरा ।।
—द्रौ०पु० ४७

प्रस्तुत कोश में मूल शब्दों को ही स्थान दिया गया है। शब्दों के अर्थ के प्रमाण में दिये जाने वाले उदाहरणों में कहीं-कहीं उसी शब्द का परिवर्तित रूप लिख दिया गया है, किन्तु वे मूल शब्दों की भूमि को अधिक स्पष्ट करते हैं। विकारी शब्दों के उपरोक्त उदाहरणों में शब्दों के परिवर्तित एवं मूल रूप का सम्बन्ध पूर्णतया स्पष्ट हो जाएगा ।

सर्वनाम—

वैदिक तथा पाणिनिकालीन संस्कृत के विभिन्न सर्वनामों का स्थिरीकरण पर्याप्त रूप से हो चुका था। किन्तु कालांतर में प्राकृत, अपभ्रंश एवं राजस्थानी आदि आधुनिक आर्य-भाषाओं तक आते-आते सर्वनाम के इन रूपों में काफी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। राजस्थानी में भी विकल्प से सर्वनामों के अनेक रूप उपलब्ध हैं, किन्तु उन सभी को कतिपय मूल रूपों के अन्तर्गत लाया जा सकता है ।

समय के बीतने के साथ ही संज्ञापदों की भाँति सर्वनामों के विकारी रूपों का भी लोप होता गया। प्राचीन काल की आर्य भाषा संस्कृत में उत्तम एवं मध्यम पुरुष में लिंग-भेद न था, केवल अन्यपुरुष के लिए इसका समावेश था, परन्तु समय की प्रगति के साथ ही इसका भी लोप हो गया। अगर वास्तव में देखा जाय तो राजस्थानी आदि आधुनिक भाषाओं के अंतर्गत सम्बन्धकारक के रूप विशेष्य के अनुसार होने के कारण वे विशेषण होते हैं, यथा—

(i) मारी घोड़ी
(ii) मारौ घोड़ौ

सर्वनाम के कई भेद बताये जाते हैं। डॉ० उदयनारायण ने नौ भेदों का उल्लेख किया है[1], किन्तु राजस्थानी में प्रायः सात प्रकार के भेद माने गये हैं[2] :—

१ पुरुषवाचक
२ निजवाचक
३ निश्चयवाचक
४ अनिश्चयवाचक
५ सम्बन्धवाचक
६ आदरसूचक
७ प्रश्नवाचक

---

[1] हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—डॉ० उदयनारायण तिवारी ने पृष्ठ ४६० पर निम्न लिखित नौ भेदों का उल्लेख किया है—

१. व्यक्तिवाचक या पुरुषवाचक (Personal)
२. उल्लेखसूचक (Demonstrative)
(क) प्रत्यक्ष-उल्लेख-सूचक (Near Demonstrative)
(ख) परोक्ष या दूरस्थ उल्लेखसूचक (Remote Demonstrative)
३. साकल्यवाचक (Inclusive)
४. सम्बन्धवाचक (Relative)
५. पारस्परिक सम्बन्धवाचक (Co-relative)
६. प्रश्नसूचक (Interrogative)
७. अनिश्चयसूचक (Indefinite)
८. आत्मवाचक (Reflexive)
९. पारस्परिक (Reciprocal)

[2] राजस्थानी व्याकरण—मेरे द्वारा लिखित—पृ० ६८ से ७१

इनका विस्तार से उल्लेख 'राजस्थांनी व्याकरण' में किया जा चुका है। यहाँ संक्षिप्त विवेचन ही पर्याप्त होगा।

[क] उत्तमपुरुष—राजस्थानी में इसके निम्नलिखित रूप मिलते हैं।

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी—	**हूं, मूं, म्हैं**	**म्हे, म्हां, अमे, अमां**
कर्म—	**म्ह, मी, मो**	**म्हां**
सम्बन्ध—	**म्हारौ, म्हाअजो**	**म्हांअलो, म्हांअजो, मांणो**
	स्त्री॰ **म्हारी**	**मांणी**

अविकारी मूं, **म्हैं** की उत्पत्ति[1] संस्कृत **मया+एन** से हुई है। प्राकृत के करणकारक में **मया—मए,** राजस्थानी में **म्हैं** रूप मिलता है। अपभ्रंश में इसके **मैं** तथा **मइँ** रूप हैं। इसी **मइँ** से मूं राजस्थानी रूप बना है। अनुनासिक होने का कारण वस्तुतः **एन** है। प्रायः सभी बोलियों एवं आर्य-भाषाओं में यह अनुनासिकता वर्तमान है।

बहुवचन रूप **अमे, अमां** की उत्पत्ति भी वैदिक **अस्मे** से ही हुई है। प्राकृत में **अस्में** का रूप **आम्हे** बना। इससे **आम्हि** बनता हुआ राजस्थानी में **अमें** या **अमां** रूप बहुवचन में मिलता है।[2]

संस्कृत के **अहकम्** का संक्षिप्त रूप अप॰ **हउँ** से राजस्थानी में **हूँ** हो गया। आधुनिक गुजराती में भी **हुं** का **काफी** प्रचलन है. यद्यपि यहाँ **अउँ** से **ऊ** के सबल रूप की अपेक्षा **उँ** वाले दुर्बल रूपों की प्रबल प्रवृत्ति है, तथापि आधुनिक राजस्थानी में **हूँ** रूप सुरक्षित है।

सम्बन्ध विकारी रूप **मुझ, मझ** की उत्पत्ति भी संस्कृत के **मह्यम** से हुई है। सं॰ **मह्यम** से प्राकृत में तथा अप॰ में **मज्झु** तथा राजस्थानी में **मुझ** या **मझ** होता है। गुजराती में इसी का रूप **मज** मिलता है। पुरानी राजस्थानी में अपवाद-स्वरूप **मेरउ** और **मोरउ** रूप भी मिलते हैं। ये दोनों रूप पूर्वी प्रदेश की ओर संकेत करते हैं और ब्रज तथा बुन्देली के विकारी रूप **मो, मे** के सदृश हैं। इन्हीं का बिगड़ कर आधुनिक राजस्थानी में **म्हारौ** या **मा'रौ** बन गये हैं।

आधुनिक राजस्थानी में **आंपांणे** या **आपांणो** रूप भी मिलता है। प्रायः इसका प्रयोग उत्तमपुरुष सर्वनाम के ऐसे बहुवचन में होता है, जिसमें सम्बोधित व्यक्ति भी वक्ता द्वारा अपने में सम्मिलित कर लिया जाता है। प्राचीन राजस्थानी की पांडुलिपियों में यह **आंप, आंपे** रूपों में कर्ता के लिए तथा **आपां** रूप में सम्बन्ध विकारी के लिए आया है। इस द्वितीय रूप का सम्बन्ध स्पष्टतः अपभ्रंश के **अप्पांह, अप्पहं** से है जो संस्कृत के **आत्मन्** से उत्पन्न हैं। आधुनिक राजस्थानो में इसका प्रयोग अविकारी कारकों के लिए भी बढ़ा दिया गया है।

[ख] मध्यमपुरुष—

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी—	**तूं, तूंह, थूं**	**तें, थें, थां**
कर्म—	**तइँ तुझे**	**तुम्ह, तुम्हां, थां**
तिर्यक या विकारी—	**तुझ**	**तुम्ह**
सम्बन्ध (पु॰)—	**थांरो**	**थांको, थांणो**
(स्त्री॰)	**थांरी**	**थांको, थांणी**

मध्यमपुरुष के रूप भी एकदम उत्तमपुरुष के समानान्तर ही मिलते हैं। वैदिक **तु-अम** में **तूं** या **थूं** की उत्पत्ति निहित है। वैदिक **तु-अम** से संस्कृत **त्वम्** या **त्वकम्**; प्राकृत **तू,** अपभ्रंश **तुहुं** उससे राजस्थानी रूप **तूं, तउं** मिलते हैं। इसी **तूं** का महाप्राण **थूं** भी प्रचलित हो गया। संस्कृत के **युष्मव** (**युष्मे**) प्रा॰ **तुम्हें** होता हुआ राजस्थानी में **तुम्ह, तुम्हां** या **थां** हो गया।

प्राचीन पांडुलिपियों में **तइं** का प्रयोग कर्म में भी हुआ है। यह **मइं** के समान ही विकारी रूप हो गया है—

सं॰ **त्वयां,** प्रा॰ **तइं, तइं,** राज॰ **तइं तिं, तिइं** (कां.दे.प्र.)

सम्बन्ध विकारी तुझ की उत्पत्ति भी संस्कृत के **तुभ्यम** एवं अपभ्रंश के **तुज्झु** से हुई है। आधुनिक राजस्थानी का **थारो** भी **तोरउ** रूप से बना है—

---

[1] संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् स्व. पं. श्री नित्यानन्दजी शास्त्री ने इसकी उत्पत्ति सस्कृत-अस्मद् (अहम्) से मानी है। परवर्ती दोनों अक्षरों के वर्ण-विपर्यय और आदिम अकार के लोप से **'म्हैं'** रूप होना माना है।

[2] अपभ्रंश में भी सर्वनाम रूपों में अस्मत् शब्द के प्रथमा एक वचन में 'हउ', 'मइ-मइ' रूप देखे जाते हैं। बहुवचन में अम्हें, अम्हइ— हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग—स॰ राजबली पांडे पृष्ठ, ३२४

सं० तुहकार्यं, अप० तुहारउ, ताहरउ, तोरउ। इसका अधिकरण रूप ताहरइ बनता है।[1]

बहुवचन रूप तुम्हे, तुम्हि, तम्हे, तम्हि, तुहे आदि प्राचीन राजस्थानी में प्रयुक्त हुए हैं। ये सब अपभ्रंश के तुम्हें एवं संस्कृत के तुष्मे से बने हैं।[2] आधुनिक राजस्थानी में अविकारी कारक के लिये तमे, थे (प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में तुहे), विकारी के लिये तमां, थां जो प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के तुम्हां का परिवर्तित रूप है और सम्बन्धी-सम्बन्ध के लिये तमांरो या थांरो (थारो) होता है।

विशेषण रूप होने के सम्बन्ध में डा० तैस्सितोरी ने अपने एक लेख Notes on the Grammar of the old western Rajasthani with special refernce to Apabhreamsa and Gujarati and Marwari'[3] में लिखा है—'सर्वनाम के जो रूप क्रिया विशेषण हो गये हैं, मुख्यत: उनके थोड़े से अपवादों को छोड़ कर ठेठ सर्वनाम विशेषण की तरह भी प्रयुक्त होते हैं और ठीक इसके विपरीत अधिकांश सार्वनामिक विशेषण स्वतंत्र सर्वनामों का भी कार्य करते हैं। मेरी राय में ऐसे ही भ्रम के कारण संभवत: अपभ्रंश एह (सं० एष) के सादृश्य पर जेह, तेह, केह जैसे रूप जो मूलत: सार्वनामिक विशेषण हैं, ठेठ सर्वनाम के क्षेत्र में आ गये।

(ग) अन्य पुरुष–

प्रत्यक्ष उल्लेख सूचक–

	एक व०	बहु व०
अविकारी –	ओ	ए
तिर्यक –	इण	इन्हां

परोक्ष उल्लेख सूचक–

	एक व०	बहु व०
अविकारी –	वो	वे
तिर्यक –	उण	उणां

व्युत्पत्ति–

सं० असौ; पा० असु; प्रा० असौ, ओह; रा० ओ।

सं० एते; प्रा० एए, एये (य श्रुति से); अप० एह; रा० ए।

सं० अमुष्याम् > अमुनाम > अउणं > उण्ह > उण

निजवाचक—

प्राय: इस सर्वनाम के अंतर्गत आप, आपण, आपणप, आपोप आदि रूप मिलते हैं जो अपभ्रंश के अप्प या अप्पण से होते हुए मूल रूप में आर्य भाषा संस्कृत के आत्मन् से उत्पन्न हुए हैं। आप अथवा आपण प्रकृति विशेषण की तरह (संबंधी सम्बन्ध कारक की रचना में) और सर्वनाम की तरह (उत्तम पुरुष सर्वनाम, बहुवचन के स्थानापन्न रूप में) दोनों प्रकार से प्रयुक्त होते हैं। इस सर्वनाम की रूप-रचना निम्नलिखित ढंग से की गई है—

	एक व०	बहु व०
कर्ता–	आप	आंप, आंपे, आपण
सम्बन्ध विकारी–	आपणपा	आंपां, आपां
सम्बन्धी-सम्बन्ध–	आपणपइं	आपणउ
अधिकरण–	आपणपइं	आपणइ

प्राय: परसर्गों के मेल से अविकारी शब्द आप प्रत्येक विभक्ति में प्रयुक्त हो जाता है।

निश्चयवाचक–

प्राचीन राजस्थानी में ए और आ प्रकृति के दो समूहों में विभक्त है। आधुनिक राजस्थानी में ओ रूप और मिलता है। इनके अर्थ में कोई विशेष अंतर नहीं है, यद्यपि आ और ओ से निश्चय की कुछ गहरी मात्रा का बोध उत्पन्न होता है।[1]

[1] यह उत्पत्ति भी डा० तैस्सितोरी द्वारा मानी गई है। (देखो—पुरानी राजस्थानी, पारा ८७)। तैस्सितोरी ने अपना मत संभवतया पिशेल के व्याकरण के आधार पर स्थिर किया है। (देखो—प्राकृत भाषाओं का व्याकरण—मू० ले० रिचर्ड पिशल, अनु० हेमचन्द्र जोशी, पारा ४२२)। कुछ विद्वानों के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'त्वाम' अथवा 'युष्मद' से मानी जा सकती है।

[2] इस लेख का अनुवाद 'पुरानी राजस्थानी' के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इसका अनुवाद डॉ० नामवरसिंह द्वारा किया गया है।

[3] यह उत्पत्ति डॉ० एल० पी० तैस्सितोरी द्वारा दी गई है। (देखो—पुरानी राजस्थानी—मू० ले० तैस्सितोरी, अनु० नामवरसिंह, पारा ८६) तैस्सितोरी का यह मत ठीक नहीं मालूम होता। संभवतया यह सं० ते (तेरा) से बना है।

[1] आधुनिक समय में आ स्त्री० एवं ओ पु० रूप में प्रयुक्त होता है। ए का प्रयोग दोनों के समान रूप से बहुवचन रूप में होता है।

कारक	प्राचीन पश्चिमी राज०		आधुनिक राज०	
	एक व०	बहु व०	एक व०	बहु व०
कर्ता-	एह, ए, आ	ए	वो, ओ	वे, ओ
करण	एण्इँ, एणी, इणी	एणे	उण, उवं	उणां, उआं, उवां
संबंध विकारी-				
	एह, ए	ईयां, एह	उण, उवं	उणां, वणां, उवां

प्राचीन राजस्थानी में आ वाले रूपों का उदाहरण बहुवचन में नहीं मिलता। वहाँ ए, एह रूप उभयलिंग है। ए रूप का एकवचन वाला अर्थ आधुनिक राजस्थानी में लुप्त हो चुका है। आधुनिक गुजराती में ए और आ को सामान्यतः सभी कारकों, वचनों और लिंगों में अपनाया गया है। प्राचीन रूप एण्इँ आधुनिक राजस्थानी में इणि हो गया।

अनिश्चयवाचक-

इस सर्वनाम का रूप प्रायः प्रश्नवाचक सर्वनाम के समान ही होता है। मुख्यतया केवल एक अंतर यह होता है कि अनिश्चयवाचक सर्वनाम में जोर देने के लिये अंत में ही का अर्थबोधक एक शब्द और जोड़ दिया जाता है।

निश्चयवाचक सर्वनाम के रूपों में एवं इसके रूपों में कुछ समानता है—

कारक	प्राचीन राजस्थानी		आधुनिक राजस्थानी	
	एक व०	बहु व०	एक व०	बहु व०
कर्म-	जो, जु	जे, जेअ	जिकौ, जकौ	जिकं, जकां
	सो, सोय	जेह, ते, तेअ	जिए, जं	जिणां, जां
		तेह	ज्यों	ज्यां
करण-				
	जेणइँ, जीणइँ	जेहे, जीए	जिकण, जकण,	जकां, जिकां
	जिणइ	जेउणोइँ	जणी, जीं	जणां, त्यां
	तेणइँ, तीणइँ	तेहे, तीए	तिण	तिणां
	तिणि, तेणीयइँ	तेणे, तीणे		
		तेउणोइँ		
सम्बन्ध अविकारी-				
	जास, जस	जेह, जीह	जकण, जीण	जका, जणां
	जसु,	जेहँ, जे	जं	जां
	तास, तस	तेह, तीह		
	तसु, तह	तेहँ, ते		
	तेह	तीयाँ		

आधुनिक राजस्थानी में रूपों की सीमा कुछ अधिक व्यापक है जिनमें से कुछ प्रमुख ये हैं—जो, सो और जिकौ, तिकौ, सामान्य कारक एकवचन के लिये, तथा बहुवचन और विकारी एकवचन के लिये जिण, तिण (प्राचीन राजस्थानी में जिणि, तिणि) तथा विकारी बहुवचन के लिये ज्यां, त्यां (प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में जीआं, तीआं) जिकौ-तिकौ के समान संयुक्त रूप सम्बन्धवाचक तथा नित्यसम्बन्धी सर्वनाम रूपों के साथ अनिश्चयवाचक को के संयोग से बनते हैं। आधुनिक राजस्थानी में इनके रूप सभी कारकों में किसी सामान्य सर्वनाम की तरह ही मिलते हैं, यथा—

एकवचन सामान्य-जिकौ, जिकां। कर्तृ—जिकण, जिकइ।
,, विकारी—जिकण।
बहुवचन सामान्य-जिका, जिकइ। कर्तृ—जिका।
,, विकारी—जिकां।

आदरसूचक-

आदरवाची सर्वनाम राजस्थानी में एक विशेष रूप में प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी या अन्य भाषाओं में संस्कृत आत्मन् से निकला हुआ आप शब्द प्रचलित है।[1] राजस्थानी में भी आप शब्द का प्रचलन है। राजस्थानी में कुछ ऐसे शब्द भी प्रचलित हैं जिनका अर्थ कुछ विशिष्ट व्यक्तियों से ही सम्बन्धित होता है किन्तु आदर के लिये सर्वसाधारण में भी किसी सामान्य व्यक्ति के लिये वे सर्वनाम रूप में प्रयुक्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिये रावळौ (सं० राजकुल से उत्पन्न) शब्द राजा या किसी ठाकुर के निवास-स्थान का अर्थ देता है। प्रायः राजा या ठाकुर के लिये ही कहा जाता है—रावळै सूं कठै बिराजै ? यही शब्द जन-साधारण में आप के अर्थ में प्रचलित होकर आदरसूचक बन गया है। इस प्रकार के शब्द जो प्रमुख रूप से राज, रावलं, आप, पींडा, डोलां आदि हैं, बहुधा बहुवचन में भी इसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं।

[1] 'आप' शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से होती है। जब यह निजवाचक में स्वय के लिये प्रयुक्त होता है तब उसकी उत्पत्ति 'आत्मन्' से मानी जा सकती है, किन्तु जब आप' किसी दूसरे के लिये आदरसूचक रूप में प्रयुक्त होता है, तो उसकी उत्पत्ति सं० 'आप्त' से ही मानी जायगी।

प्रश्नवाचक–

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता–	कुंण, कूंण, कवण को, का, किण	कुण, किणां
कर्म–	किणनै, किण, किणि, केण, कवण, कीनै	कीनै, कणां.नै
सम्बन्ध–	कींरा, किणरा कुणःह	किणांरा

व्युत्पत्ति–सं० कः पुनः > कपुण > कवुण (इससे राजस्थानो का कवण रूप बना है।) > कउण > कुंण।

इन उपरोक्त प्रकार के सर्वनामों के अतिरिक्त परिमाण, गुण और स्थान के अनुसार सार्वनामिक विशेषण भी होते हैं। सर्वनामों के उपरोक्त रूपों में प्रस्तुत कोश में मूल सार्वनामिक रूपों को तो स्थान दिया ही है, यथासंभव विभक्तिरहित प्रयुक्त होने वाले परिवर्तन रूपों को भी स्थान देने का प्रयत्न किया गया है।

परिमाणवाचक सार्वनामिक विशेषण भो तीन वर्गों में विभाजित किये गये हैं--

(अ)—

प्राचीन राजस्थानी	आधुनिक राजस्थानी
एतउ, जेतउ, तेतउ केतउ	इत्ता, जित्ता, कित्ता

ये संस्कृत के अयत्त्व और ययत्त्य से उत्पन्न माने गये हैं।[1] कुछ लोगों ने इनकी उत्पत्ति इयत्, यत्वत् तथा तत्वत् से मानी है।

(आ)—

प्राचीन राजस्थानी	आधुनिक राजस्थानी
एतलउ, जेतलउ तेतलउ, केतलउ	इत्तौ, कित्तौ किता

इनकी उत्पत्ति अप० एत्तुलउ, जेत्तुउल आदि से मानी जाती है।

(इ)—

प्राचीन राजस्थानी	आधुनिक राजस्थानी
एवडउ, जेवडउ, तेवडउ केवडउ	अवडो इडौ, किडौ

सं० अयवड्क, ययवड्क[1] तथा अप० एवडउ जेवडउ इत्यादि से उपरोक्त रूपों की उत्पत्ति हुई है।

मोटी दृष्टि से परिमाणवाचक सार्वनामिक विशेषण के उपरोक्त रूप आर्य भाषा संस्कृत के इयत्, यावत्, तावत् एवं कियत् के पर्याय हैं। इनके द्वारा किसी सबल विशेषण के समान रचना होती है।

गुणवाचक सार्वनामिक विशेषण भी पाँच वर्गों में विभाजित किये गये हैं—

(अ) प्राचीन राजस्थानी में इनके इसउ, असउ, जिसउ, तिसउ, किसउ, इसिउ, असिउ, जिसिउ, तिसिउ, किसिउ, इस्यउ, जिस्यउ, तिस्यउ, किस्यउ आदि रूप मिलते हैं जो अपभ्रंश भाषा के अइसउ, जइसउ, तइसउ, कइसउ से होते हुए संस्कृत के यादृश, तादृश से निकले हैं। इन रूपों में से किसउ तथा इसके रूपभेद किसिउ एवं किस्यउ सामान्यतः प्रश्नवाचक और अनिश्चयवाचक सामान्य सर्वनामों के लिये प्रयुक्त होते हैं। आधुनिक राजस्थानी में उपरोक्त इन्हीं रूपों से निःसृत इनके रूप-भेद यथा–इसौ, जिसौ, तिसौ, किसौ आदि प्रयुक्त होते हैं जिनमें किसौ प्रश्नवाचक एवं अनिश्चयवाचक सामान्य सर्वनामों के लिये प्रयुक्त होता है।

(आ) दूसरे वर्गभेद के अन्तर्गत प्राचीन राजस्थानी के एहउ, जेहउ, तेहउ, केहउ आदि रूप आते हैं। आधुनिक राजस्थानी में इनका प्रयोग अल्प मात्रा में ही होता है तथापि कुछ सुधरे रूप में ये एहौ, जेहौ, केहौ आदि रूपों में प्रयुक्त होते हैं। जहां कहीं भी ये विशेषण की तरह प्रयुक्त होते हैं इनमें लिंग, वचन और कारक के अनुसार रूपविकार होता है।

(इ) यह प्रायः केवल प्राचीन राजस्थानी में ही मिलता है। आधुनिक राजस्थानी में इनके ये रूप लुप्तप्राय हो गये हैं। इनके इस पुरानेपन पर अपभ्रंश की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। पुरानी राजस्थानी में एहवउ, जेहवउ, तेहवउ, केहवउ तथा इनके रूप भेद एव्हउ, जेव्हउ, तेव्हउ,

[1] देखो 'पुरानी राजस्थानी' पारा ६३ (i) तथा पिशेल का प्राकृत व्याकरण, पारा १५३। स्व० पं० नित्यानंदजी शास्त्री इनकी उत्पत्ति सं० इयत्, यावत् तथा कियत् से मानते हैं।

[1] स्व० पं० नित्यानंदजी शास्त्री के अनुसार यहाँ सं० अयवर्त एवं ययवर्त होना चाहिये।

केव्हउ मिलते हैं। आधुनिक गुजराती में इसके समक्ष **ऐवौ, जेवौ** रूप प्राप्य हैं।

(उ) उपरोक्त रूपों के रूपभेदों के अनुरूप ही प्राचीन राजस्थानी में **एहवडउ, जेहवडउ, तेहवडउ, केहवडउ** भी मिलते हैं। इनके ये रूप लुप्त-प्राय हैं। केवल तैस्सितोरी ने अपने राजस्थानी भाषा सम्बन्धी एक लेख में उल्लेख करते हुए लिखा है[1] कि 'जहाँ तक मुझे मालूम है, अपादान **हवडाँ, हिवडाँ,** (**एहवडाँ**) और अधिकरण **हवडइ** (**एहवडइ**), जो कि क्रियाविशेषण की तरह प्रयुक्त हुआ है, अधिकरण क्रियाविशेपण के अतिरिक्त इसका प्रयोग कहीं नहीं मिलता।'

(ए) आधुनिक राजस्थानी में **एडौ, जेडौ, तेडौ** एवं **केड़ौ**, जिनका प्राचीन राजस्थानी में **एहडउ, जेहडउ, तेहडउ, केहडउ** रूप मिलते हैं, प्रयुक्त होते हैं।

इन उपरोक्त पाँचों वर्गों के ये रूप जब विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं तो अर्थ की दृष्टि से ये संस्कृत के **ईदृशः, यादृशः** के समकक्ष होते हैं।

स्थानकवाचक सार्वनामिक विशेषण के रूपों में आधुनिक राजस्थानी में क्षेत्रीय रूप से कुछ स्थानों में **एथ, जेथ, तेथ, केथ** (प्राचीन राजस्थानी रूप **एथउ** या **अथउ, जेथउ, तेथउ, केथउ**) प्रयुक्त होते हैं। अपभ्रंश भाषा में इन्हीं स्थान-वाचक सार्वनामिक विशेषणों के लिए इस प्रकार के रूप नहीं मिलते, किन्तु स्थानवाचक सार्वनामिक क्रियाविशेषण रूप **एत्थु, जेत्थु, तेत्थु, केत्थु** का हेमचंद्र[2] ने प्रयोग किया है। प्राचीन राजस्थानी एवं आधुनिक राजस्थानी के प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट हो जायगा—

प्रा० रा० **केथउँ करय्‌ू त्रिसूल** (कां.दे.प्र. १०२)

आ० रा० **बै केथ गया ?** (क्षेत्रीय)

कुछ सर्वनाम क्रियाविशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं अतः उन्हें सार्वनामिक क्रिया विशेषण का नाम दिया गया है। अपादान रूप में **इहाँ** (**ईहां** रू०भे०) **अहाँ, जिहाँ, तिहाँ, किहाँ** आदि रूप मिलते हैं जो अपभ्रंश के **एअहाँ, आअहाँ, जहाँ, तहाँ, कहाँ** एवं प्राकृत के **एअम्हा, आअम्हा, जम्हा, तम्हा, कम्हा,** से होते हुए संस्कृत-**एतस्मात्, अयस्मात्, अवस्मात्**[1], **यस्मात्, तस्मात्, कस्मात्** रूपों से निःसृत हुए हैं। कुछ ग्रंथों में इनके संक्षिप्त रूप **जाँ, ताँ, काँ** का प्रयोग हुआ है। इनमें **जाँ, ताँ,** रूप तो प्रायः पर्यन्त अर्थ में प्रयुक्त होते हैं जो अर्थ में संस्कृत के **यावत्, तावत्** के समान है। अधिकरण क्रिया विशेषण रूप में **एहीं, अहीं, जहीं, तहीं, कहीं** प्रयुक्त होते हैं। अपभ्रंश रूप **एअहिं, आअहिं, जहिं, तहिं, कहिं** प्राकृत रूप **एअम्हि, आअम्हि, जम्हि, तम्हि, कम्हि** एवं संस्कृत रूप **एतस्मिन्, अवस्मिन्** या **अयस्मिन्, यस्मिन्, तस्मिन्, कस्मिन्** से इनकी व्युत्पत्ति मानी जा सकती है।[2]

अव्यय क्रिया विशेषण के रूप में **इम, जिम, किम, तिम** का प्रयोग होता है। कविता में **ऐम, जेम** इत्यादि का भी प्रयोग मिलता है।

विशेषण—

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में विशेषण पदों के रूपों में भी अपने विशेष्य पदों के अनुसार परिवर्तन होता था एवं मध्य भारतीय आर्यभापा काल में भी यह प्रणाली बहुत कुछ सुरक्षित रही। आधुनिक राजस्थानी में भी विशेषणों की रूप-रचना संज्ञा शब्दों की तरह ही होती है और ये अपने विशेष्य के लिंग, वचन, कारक के अनुसार होते हैं। स्त्री लिंग के रूप इसके अपवाद कहे जा सकते हैं, ये वचन और कारक संबंधी विशेषता से रहित होते हैं। प्रायः स्त्री लिंग विशेषण **इकारान्त** होते हैं, यथा—

उर चौड़ी कड़ पातळी, झीणी पांसळियांह।
कै मिळसी हर पूजियां, हीमाळै गळियांह॥

विशेषणों का प्रयोग जब क्रिया विशेषण की तरह होता है तो उनकी वाक्य-रचना दो प्रकार की हो जाती है—एक तो वे जो नपुंसक एक वचन में रहते हुए सभी कारकों में अपरिवर्तित रहते हैं; दूसरे वे जो किसी समानाधिकरण विशेषण की तरह लिङ्ग, वचन और कारक के अनुसार रूप-रचना करते हैं।

सर्वनामों के रूप एवं उन पर आधारित गुणवाचक तथा

[1] पुरानी राजस्थानी, मू० ले० एल. पी. तैस्सितोरी, अनु० नामवरसिंह, पृष्ठ १२० अथवा पारा ९४

[2] सिद्ध हेमचंद्र, ४–४०५

[1] संदिग्ध

[2] पुरानी राजस्थानी, मू० ले०—एल. पी. तैस्सितोरी, अनु०—नामवरसिंह, पारा ९८, पृष्ठ १२४

परिमाणवाचक विशेषण निम्नलिखित चित्र से भली प्रकार समझे जा सकेंगे—

सर्वनाम	रूप	गुणवाचक विशेषण	परिमाणवाचक विशेषण
औ, यौ	अण, अणी, इ, इं, इण इयै	ऐड़ौ, इसौ इस्यौ, ऐसौ	इतौ, इतरौ इतरोई, इडौ
श्रौ, ऊ, बौ	उण, उणी, वण	वेड़ौ, ऊड़ौ	उतौ, उतरौ, उतरोई
वौ, एवौ	वणी, विणी वण, बिण, बिणी बीं, वीं, उवै,	विसौ(बिस्यौ) बैसौ, बिसौ	वतौ, वतरौ वतरोई, वितौ, वितरौ, वितरोई वितौ, बितौ, बितरोई
तिकौ	तण, तिण	तैड़ौ, तिसौ तैसौ	तितौ, तितरौ, तितरोई तिडौ
जिकौ	जण, जिण जी	जैड़ौ, जिसौ जिस्यौ	जितौ. जितरौ जितरोई, जिडौ
कुण	कण, किण	कैड़ौ	कितौ, कितरौ, कितरोई किडौ।

तुलनात्मक विशेषण रूपों का प्रयोग राजस्थानी में जिस वस्तु से तुलना की जाती है वह अपादान कारक में होती है। इस प्रक्रिया में विशेषण अपरिवर्तित रहते हैं। प्राचीन राजस्थानी में अपादान परसर्ग मुख्यतया ये प्रयुक्त होते थे—

पाहिं-पाहति और थकी, थी[1]।

आधुनिक रूप में तुलनात्मक विशेषणस्वरूप प्रायः सूं, करतां आदि का प्रयोग होता है, यथा—

आ किताब उण सूं चोखी है।
रांम इण करतां चोखो टाबर है।

गणनावाचक संख्याओं का प्रयोग प्रायः अविकारी रूप में ही होता है, केवल करण कारक में उनके अंत में ए प्रत्यय लगता है। राजस्थानी में उनके विकारी रूपों का भी प्रयोग मिलता है, यथा—

चौसठ— साठ और चार के योग के बराबर।

चौसठमौं— जो क्रम में तिरेसठ के बाद पड़ता हो।

चौसठेक—चौसठ के लगभग।

चौसठौ—६४ वां वर्ष।

चौसठे, चौसठै—६४ वें वर्ष में।

[1] देखो—पुरानी राजस्थानी, तैस्सितोरी, पारा ७९, अनु० नामवरसिंह

प्रस्तुत कोश में प्रायः गणनावाचक संख्याओं के उपरोक्त समस्त रूपों को देने का प्रयत्न किया गया है। कुछ रूप तो राजस्थानी की अपनी विशेषता हैं, जैसे—**चारेक, पांचेक, सातेक, बीसेक, पचासेक** आदि। इस प्रकार के समस्त रूपों में गणनावाचक संख्या के साथ **एक** जुड़ा है, यथा—

चार+एक = चारेक
पांच+एक = पांचेक
सात+एक = सातेक

यह **एक** लगभग का अर्थ उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त **मौं** शब्द का रूप भी क्रमानुसार मिलने वाले स्थान का अर्थ देता है। अन्य अर्थ मुख्य भाषाओं के इसी समान रूप के साथ रखने से यह अर्थ स्पष्ट हो जायगा—

संस्कृत	हिन्दी	राजस्थानी
षष्ठ	छठां, छठवां	छठौ
द्वादश	बारहवां	बारमौं
द्वितीय	दूसरा	दूजौ, बीजौ, दूसरौ

अंतिम उदाहरण **मौं** रूप का नहीं है। गुणवाचक प्रथम चार संख्याओं में **मौं** नहीं लग कर उनका रूप इस प्रकार होता है—**पै'लौ, दूजौ, तीजौ, चोथौ**। इनके अतिरिक्त सब में **मौं** लग कर क्रमानुसार मिलने वाले स्थान का अर्थ उत्पन्न करता है। केवल **छः** का विकारी रूप **छठौ** ही होता है।

इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार मानी जा सकती है—
सं० मः [यथा सं० **पञ्चमः**] **वं>मः मौं**। किन्तु प्रथम चार संख्याओं में जिनमें कि **मौं** नहीं लगता, उनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार से की जायगी—

पे'लौ— सं० **प्रथम** अप० **पढ़म+इल्ल, पढ़िल्ल, पहिल**
दूजौ— सं० **द्वितीय** अप० रा० **दूजौ, बीजौ**
तीजौ—सं० **तृतीय** अप० **तीज, तीजौ**
चोथौ—सं० **चतुर्थ** अप० **चउत्थ, चोथौ**

गुणात्मक संख्यावाचक विशेषण में भी राजस्थानी में **दूना, तिया, चौका** आदि प्रयुक्त होते हैं। चटसाल में आज भी बालक बोलते हुए दिखाई देते हैं—

१ एक एकम् एक
२ दो दूणी चार
३ तीन तिया नौ
४ चार चौक सोळै, सोळ

५ पांच **पंजा** पच्चीस
६ छै **छका** छत्तीस
७ सातौ **सातौ** गुणपचा
८ आठौ **आठौ** चौसठ
९ नमे **नमे** इक्यासी
१० दाहे **दाहे** सौ

इस प्रकार के विशेषणों का साधारणत: गणित के पहाड़ों में ही प्रयोग होता है। समूहवाचक संख्याओं (Collective Numerals) के भी कुछ रूपों का प्रयोग राजस्थानी में होता हैं।

जोड़ौ, जोड़ी	(सं० **युत** या **युतक**)	दो का समूह
चौक	(सं० **चतुष्क**)	चार का समूह
सैकड़ौ	(सं० **शत**)	सौ का समूह
लख, लखो	(सं० **लक्ष**)	लाख का समूह यथा नवलखी हार
सतसई	(सं० **सप्त**+**शत**+**ई**)	सात सौ का समूह

उपरोक्त समूह रूपों के अतिरिक्त गंजीफे के खेल में विभिन्न इकाइयों के पत्तों को भी **इक्की, दुग्गी, तिग्गी, चौकी, पंजी, छक्की, सत्ती, अट्ठी, नैली, दैली** अथवा पुल्लिंग रूप **इक्को** (इसके पश्चात्) **पंजो, छक्को, सत्तो, अट्ठो, नैलो** एवं **दैलो** कहते हैं। इनकी व्युत्पत्ति का ठीक-ठीक पता नहीं चलता तथापि इनके द्वित्व-व्यंजनों की स्थिति से इन पर **पंजाबी** अथवा प्राचीन नागर अपभ्रंश का प्रभाव लक्षित होता है।

समानुपाती संख्यावाचक विशेषण के अंतर्गत साधारणतया संख्याओं में **गुणा** [सं० **गुण** (+ **क**), प्रा० **गुणअ**] के योग से समानुपाती संख्यावाचक पद बनाये जाते हैं। इनके योग से गणनात्मक संख्यावाचक शब्द के रूप में थोड़ा परिवर्तन हो जाता है, यथा—**दुगणौ, दूणौ** (= **दो**+**गुना**, **द्वि**+**गुणक**), **तिगणौ-तिगुणौ, चौगणौ-चौगुणौ, पंचगुणौ** अथवा **पांचगुणौ** आदि।

भिन्नात्मक संख्यावाचक **विशेषण** (Fractional Numerals) भी राजस्थानी में विभिन्न रूपों में मिलते हैं। सभी आर्य-भाषाओं में ये मिलते हैं। आधुनिक राजस्थानी में इनके रूप इस प्रकार हैं—

१/४ **पाव** [सं० **पाद**, अप० **पाअ**]
३/४ **पूण** [सं० **पाद**<**पादोन**<**पाउण** <**पूण**]
१/२ **आदौ, आधौ, अद्धौ** [सं० **अर्द्धक**<**अद्धअ**]
१ १/४ **सवा** [सं० **सपाद**<**सवाअ**]
१ १/२ **डोड, डोढ** [**द्वि अर्द्ध** (**क**)<**डि-अड्ढ**]
२ १/२ **अडाई, अढाई, ढाई** [**अर्द्ध-तृतीय** (**क**) <**अड्ढइअ**][1]

इसके अतिरिक्त गणित के पहाड़े रूप में ३ १/२ को **हूंटा** ४ १/२ गुणा को **ढंचा**, ६ १/४ गुणा को **सिटिया** कहते हैं। इनकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ स्पष्टतया ज्ञात नहीं हो सका है।

तिर्यक रूप में १/२ का प्रयोग **साढ़े** के अर्थ में प्राय: सभी संख्यावाचक गणनाओं में (एक एवं दो को छोड़कर होता है। **सं० सार्द्ध**, **प्रा० सड्ढ** से साढे रूप की व्युत्पत्ति[2] मानी जा सकती है।

बिंदी अथवा शून्य को संख्यावाचक गणनाओं में राजस्थानी में अशुभ माना गया है। व्यापारी अपने आंकड़ों में, तौल में तथा अन्य साधारण जनता भी १०० के स्थान पर १०१ लिखना अधिक ठीक समझती है। अगर बीच की शून्य भी हट सके तो अति उत्तम। इस दृष्टि से १११ की संख्या शुभ संख्या मानी जाती है। शून्य का शाब्दिक अर्थ भी कुछ नहीं होता है। सामान्य-जन इस अर्थ को पसंद नहीं करता अत: शून्य को बोलचाल में शून्य न कह कर 'शुभ' कहते हैं। शून्य को अशुभ कब से माना गया एवं क्यों माना गया, इस सम्बन्ध में क्रमबद्ध विवेचना हमें उपलब्ध नहीं है, तथापि सम्भवतया शून्य का अर्थ रिक्त एवं कुछ नहीं के कारण ही अशुभ माना गया है। जन-साधारण की यह इच्छा होती है कि उसका घर भरा रहे, वह स्वयं, उसका खेत आदि सब हरे-भरे रहें, ऐसी अवस्था में शून्य को वह शुभ रूप में किस प्रकार से स्वीकार कर सकता था?

गणना में अपेक्षाकृत कमजोर व्यक्ति ऋणात्मक संख्यावाचक विशेषणों का प्रयोग करते हैं। इसके लिए फारसी भाषा का **कम** शब्द ही राजस्थानी में प्रचलित हो गया है। यथा-**एक कम सौ। तीन कम चार बीसो।**

[1] कुछ विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति सं०—सार्द्ध+द्वय से मानी है।
[2] स्व० पं० नित्यानंदजी शास्त्री इनकी उत्पत्ति सं०—अर्द्धाञ्च से मानते हैं जिसका अर्थ है—अर्द्ध को लिये हुए।

निश्चित भाव प्रकट करने के लिए गणनात्मक संख्यावाचक शब्दों में ऊ प्रत्यय लगा कर उन्हें निश्चित बना देते हैं। इस प्रकार ऊ प्रत्यय **ही** के समान निश्चयात्मक अर्थ देता है, यथा—

चारूं, च्यारूं = चारों ही
दोनूं, दोन्यूं = दोनों ही
सातूं = सातों ही

दहाई के बाद की संख्याओं के साथ **ऊ** के स्थान पर सीधे **ही** का भी प्रयोग मिलता है, यथा—

१ **बारूं** = बारह ही
बारै ही = बारह ही
२ **अठारूं ही** = अठारह ही
अठारै ही = अठारह ही

दो एवं तीन की संख्याओं के साथ केवल नूं ही लगता है— **दोनूं, तीनूं** ।

इन्हीं संख्याओं को **आं** प्रत्यय के प्रयोग से कई बार अनिश्चयात्मक भी बना दिया जाता है, यथा—

पचासां, हजारां, सैंकड़ां, लाखां ।

दो संख्यावाचक शब्दों के योग से भी अनिश्चय व्यक्त किया जाता है— **बीस-तीस, बारै-तेरै, हजार-बारै सौ** आदि ।

प्रस्तुत कोश में संख्यावाचक गणनाओं के समस्त रूपों को देना संभव नहीं था, अतः किसी संख्या के केवल निम्नलिखित रूप देना ही संभव हो सका—

बत्तीस— तीस एवं दो के योग के बराबर
बत्तीसमौं— जो क्रम में इकत्तीस के बाद पड़ता हो
बत्तीसेक— बत्तीस के लगभग
बत्तीसौ— बत्तीस का वर्ष ।

अन्य रूप व्याकरण के अनुसार स्वयमेव निर्मित हो जाते हैं जिनका उल्लेख करना उचित न होगा ।

विशेषण की तुलनात्मक श्रेणियों में आधुनिक राजस्थानी में **सूं** का प्रयोग अधिक होता है, जिसका उल्लेख यथास्थान हम ऊपर कर चुके हैं। **तमवन्त** विशेषण (Superlative) का भाव विशेषण पद के पूर्व **सब सूं, सब में** अथवा **सब सूं बढ़ कर** इत्यादि अपादान अथवा अधिकरण परसर्ग युक्त पद जोड़ कर प्रकट किया जाता है, यथा—

१ राम **सब सूं** छोटो टाबर है ।
२ वो **सब में** हुसियार है ।
३ खेलण में तौ **सब सूं बढ़ कर** है ।

इनके अतिरिक्त समानता एवं सादृश्य का भाव प्रकट करने के लिए संज्ञा अथवा सर्वनाम पदों के साथ **सरीखौ, जेड़ौ, सा** आदि पद जोड़ दिये जाते हैं। इनमें भी रूप-विकार होते हैं—

१ इरै **सरीखौ** आदमी
२ सीता **सरीखी** लुगाइयां

सरीखा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के सदृक्ष शब्द से माना जाती है। राजस्थानी में इस शब्द के कई रूप-भेदों का प्रयोग हुआ है। इन सभी रूप-भेदों को कोश में स्थान दिया गया है।

अतिशय एवं आधिक्य के लिए विशेषण पद के साथ **सा** का प्रयोग होता है, यथा—

बोत सा छोरा आज छुट्टी माथै हैं ।

इसके अतिरिक्त सार्वनामिक विशेषणों का उल्लेख सर्वनामों के साथ किया जा चुका है। गणनात्मक संख्यावाचक समस्त विशेषणों के अविकारी रूपों की व्युत्पत्ति कोश में शब्द के साथ ही प्रस्तुत करदी गई है।

क्रिया— प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल के आरंभ में धातु-प्रक्रिया अत्यन्त जटिल थी एवं कालान्तर में इसमें सरलता की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती रही। विभिन्न गणों की धातुओं के रूपों में समानता आने का कारण सरलीकरण की इसी प्रवृत्ति का फल था। इसका प्रभाव यह हुआ कि गण-विभाग धीरे-धीरे घटता गया और अपभ्रंश काल तक समाप्त ही हो गया। इसके अनन्तर प्रायः सभी धातुओं के रूप भ्वादिगण के समान निर्मित होने लगे। कालान्तर में आत्मनेपद-परस्मैपद के भेद को दूर करने के साथ ही द्विवचन भी समाप्त हो गया।[1] कालों एवं प्रकारों के विभिन्न रूपों की संख्या भी घट गई। प्राचीन काल की अपेक्षा नवीन अपभ्रंश काल तक इस प्रकार धातु प्रक्रिया बहुत सरल हो गई, क्योंकि भाषा के नौसिखियों के लिये उस जटिलतर प्रवृत्ति का निर्वाह करना सहज रूप में बोधगम्य न था।

---

[1] हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, डॉ. उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ ४७७ ।

मध्य-भारतीय भाषा काल में तिङयन्त रूपों के स्थान पर कृदन्त रूपों का व्यवहार अधिक प्रचलित हो चुका था। सरलता के गुण के कारण इनका प्रचार शीघ्रता से हुआ। धातु रूपों को सीमित कर दिया गया और इन्हीं सीमित धातु रूपों से ही सभी कालों एवं प्रकारों का अर्थ द्योतन कराने के लिये नये-नये उपाय काम में लाये जाने लगे।

धीरे-धीरे भाषा अपने स्वाभाविक विकास की ओर निरन्तर बढ़ने लगी। प्राचीन जटिलता तो मध्य-भारतीय भाषा-काल में ही समाप्त हो चुकी थी। संयुक्त क्रियाओं का प्रचलन तीव्र गति से होने लगा। आधुनिक भाषाओं के लिये डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने क्रियाओं को मोटे तौर से दो रूपों में वर्गीकृत किया है। राजस्थानी की क्रियाओं को भी इन दो रूपों की दृष्टि से देखा जा सकता है, यथा-

(१) सिद्ध धातुएँ (Primary Roots) मूल रूप से सुरक्षित धातुयें जिनके अन्तर्गत निम्नलिखित रूप माने जा सकते हैं

खा(णौ) = [सं० **खाद्**, प्रा० **खाअ**]
गूंथ(णौ) = [सं० **ग्रंथ**, पा० **गुम्फ**, प्रा० **गुन्थ्**]
जांण(णौ) = [सं० **ज्ञा**, प्रा० **जाण**, **जाणेइ**]

(२) साधित धातुएँ (Secondary Roots)—वे धातुएँ जो मूल रूप में सुरक्षित नहीं हैं एवं किसी प्रत्यय के संयोग से जिनका निर्माण हुआ है, यथा-

घिसवाणौ, घिसाणौ = [सं० **घृष्** धातु के साथ **वा** या **आ** प्रेरणार्थक प्रत्यय के संयोग से]।
लिखवाणौ, लिखाणौ = [सं० **लिख** धातु के साथ **वा** या **आ** प्रेरणार्थक प्रत्यय के संयोग से] आदि।

डॉ० उदयनारायण तिवारी ने उपरोक्त भेदों को निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त किया है[1]—

१ सिद्ध धातुएँ—

(i) संस्कृत से आई हुई तद्भव सिद्ध धातुएँ—
(क) साधारण धातुएँ (ख) उपसर्गयुक्त धातुएँ।

[1] हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ ४७८-४७९।

(ii) संस्कृत णिजन्त से आई हुई सिद्ध धातुएँ।
(iii) संस्कृत से पुन: व्यवहृत तत्सम एवं अर्धतत्सम सिद्ध धातुएँ।
(iv) संदिग्ध व्युत्पत्ति वाली देशी धातुएँ।

२ साधित धातुएँ—

(i) आकारांत णिजन्त (प्रेरणार्थक)
(ii) नाम धातु—
(क) तद्भव—
(i) प्राचीन (उत्तराधिकार सूत्र में प्राप्त)
(ii) नवीन।
(ख) तत्सम।
(ग) विदेशी।
(iii) मिश्रित अथवा संयुक्त एवं प्रत्यययुक्त (तद्भव)
(iv) ध्वन्यात्मक अथवा अनुकार ध्वनिज धातुएँ।
(v) संदिग्ध व्युत्पत्ति की धातुएँ।

उपरोक्त वर्गीकरण उन्होंने हिन्दी भाषा के उद्गम और विकास की विवेचना (पृष्ठ ४७८-४७९) के अंतर्गत किया है, किन्तु क्रिया-पदों की दृष्टि से यह वर्गीकरण राजस्थानी में भी इसी प्रकार लागू हो सकता है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगी—

१ सिद्ध धातुएँ—

(i) संस्कृत से आई हुई तद्भव सिद्ध धातुएँ।
(क) साधारण धातुएँ—**कर(णौ)** [सं० **कृ**]
मांज(णौ) [सं० **मृज**, अप० **मज्ज**)
टूट(णौ) [सं० **त्रुट्**, अप० **टुट्ट**]
(ख) उपसर्गयुक्त धातुएँ—
उजड़णौ [सं० **उत्+जट्**, प्रा० **उज्जाडेइ**]
उतरणौ [सं० **उत् तृ**, प्रा० **उत्तरइ**]

कुछ धातुओं के आने के साथ ही नयी भाषा में उनका अर्थ भी बदल जाता है। संस्कृत के तत्सम् रूप के कर्मवाच्य रूप नयी भाषाओं में कई बार कर्तृवाच्य रूप हो जाता है, यथा-

सं० **तप्यते** = तपाया जाता है—कर्मवाच्य

अप० तप्पइ = स्वयं को तपाता है—कर्तृवाच्य

रा० **तपै** = तपता है—कर्तृवाच्य

उपरोक्त राजस्थानी शब्द **तपै** संस्कृत के **तप्यते** से ही निःसृत हुआ है, परन्तु अर्थ में परिवर्तन होकर वह कर्मवाच्य से कर्तृवाच्य हो गया।

(ii) संस्कृत णिजन्त से आई हुई सिद्ध धातुएँ संस्कृत की कुछ णिजन्त धातुओं में अंतर्निहित प्रेरणार्थक भाव लुप्त होकर केवल साधारण सकर्मक भाव रह गया है एवं प्रेरणार्थक भाव-स्वरूप कुछ नये स्वरूप निर्मित हो गये हैं, यथा–

राजस्थानी में **मरणौ** अकर्मक है, जिसका सकर्मक रूप **मारणौ** है। **मारणौ** सकर्मक रूप की उत्पत्ति संस्कृत के णिजन्त **मारयति** से हुई है। संस्कृत के इस णिजन्त धातु में प्रेरणार्थक रूप निहित है, किन्तु राजस्थानी में **मारणौ** केवल सकर्मक रूप है तथा उसका प्रेरणार्थक रूप राजस्थानी में **मरावणौ** होगा। इस प्रकार के कई उदाहरण दिये जा सकते हैं यथा–

उखाड़(णौ)–सं० **उत्खाटयति**; **बाल(णौ)** सं० **ज्वालयति**, **तपा(णौ)**–सं० **तापयति**, **हार(णौ)**–सं० **हारयति** आदि।

(iii) संस्कृत से पुनः व्यवहृत तत्सम् तथा अर्द्ध तत्सम् धातुएँ– संस्कृत भाषा के पश्चात् जब लोक भाषाओं ने साहित्यिक स्थान ग्रहण करना आरंभ किया, तब वे सस्कृत से पूर्ण रूप से प्रभावित थीं। बहुत से संस्कृत शब्दों को उसी तत्सम रूप में नयी भाषाओं में प्रयोग किया जाने लगा, परन्तु निरन्तर परिवर्तित परिस्थितियों में उत्पन्न, बाद में आने वाली लोक भाषाओं में इन्हीं रूपों का अर्द्धतत्सम् रूपों में परिवर्तन कर लिया गया। इनका प्रभाव क्रियापदों पर पड़ना आवश्यक था। अतः इन बदलते हुए अर्द्ध तत्सम् रूपों के क्रिया पद भी नये-नये प्रयुक्त होने लगे, यथा–

(i) **अरप** (सं० **अर्प**) **अरपणौ, अरपण करणौ**।

(ii) **गरज** (सं० **गर्ज**) **गरजणौ, गरजण करणौ**।

(iii) **रच** (सं० **रच्**) **रचणौ, रचना करणी**।

इनके साथ ही कुछ अन्य ऐसी धातुयें भी आधुनिक राजस्थानी में प्रयुक्त होती हैं जिनके तत्सम् रूप संस्कृत से आये प्रतीत नहीं होते। संभव है ये क्षेत्र विशेष की ही उपज हों एवं कालान्तर में साहित्य में इनका प्रयोग होने लग गया हो, यथा—

टोक(णौ), ठोक(णौ), झपट(णौ), लड़(णौ) इत्यादि।

२ साधित धातुएँ—

(i) आकारांत णिजन्त (प्रेरणार्थक)—ऊपर संस्कृत णिजन्त से आई हुई सिद्ध धातुओं के सिलसिले में हम यह उल्लेख कर चुके हैं कि संस्कृत की कुछ णिजन्त धातुओं में अंतर्निहित प्रेरणार्थक भाव लुप्त होकर केवल सकर्मक भाव रह गया है। राजस्थानी में इस भाव की पूर्ति **वा** प्रत्यय के प्रयोग से की जाती है, यथा–

अकर्मक	सकर्मक	प्रेरणार्थक
मरणौ	**मारणौ**	**मरवाणौ**
चढ़णौ	**चाढ़णौ**	**चढ़वाणौ**

इस नये प्रेरणार्थक रूप में परिवर्तन के समय एकाक्षरीय (Monosyllabic) दीर्घ स्वरयुक्त धातुओं का दीर्घ स्वर पलट कर ह्रस्व हो जाता है, यथा–

१ **घूमणौ—घुमवाणौ**

२ **चालणौ—चलवाणौ**

३ **पीणौ, पीवणौ —पिलवाणौ, पिवाड़णौ**

४ **सूणौ—सुलवाणौ, सुवाड़णौ**

किन्तु **ओ, औ** दीर्घस्वर युक्त धातुओं में परिवर्तन नहीं होता, वे अपने मूल रूप में ही रहती हैं—

१ **दौड़णौ, दौड़वाणौ**

२ **कोरणौ, कोरवाणौ, कोराड़णौ, कोरवावणौ**

ए प्रायः **इ** में परिवर्तन हो जाता है, तथापि कहीं-कहीं वही रूप प्रचलित रहता है, यथा—

देखणौ—देखवाणौ, दिखवाणौ

चेडणौ, चेढणौ—चेढवाणौ, चिढवाणौ

(ii) **नाम धातु**– नाम धातु बनाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। संज्ञापद अथवा क्रियामूलक विशेषण को क्रियापद के लिए धातु रूप में प्रयुक्त करने पर नाम धातु कहते हैं। मुख्यतया ये चार रूपों में मिलते हैं। प्रथम वे जिन्हें उत्तराधिकार सूत्र में प्राप्त कर लिया गया है, यथा—

सं० **पिष्ट**, प्रा० **पिट्टइ**, रा० **पीटणौ**

इनके अतिरिक्त राजस्थानी में **णौ** प्रत्यय लगा कर बहुत सी नयी नाम धातुओं का निर्माण कर लिया है, यथा—

सं० बुःख, अप० दुक्ख, रा० दूखणौ

सं० मूत्र, प्रा० मुत्त, रा० मूतणौ

प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में **अव** प्रत्यय का प्रयोग होता था। तैस्सितोरी ने भी इसका उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि ये नामधातु या तो सीधे संज्ञा या विशेषण के साथ क्रिया जोड़ने से बनते हैं अथवा प्रेरणार्थक प्रत्यय **अव** (**आव** कभी नहीं) जोड़ने से। ये दोनों तरीके प्राकृत और अपभ्रंश में भी प्रचलित थे। डा० तैस्सितोरी ने इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण भी दिये हैं[1]—

(i) संज्ञा या विशेषण से सीधे बनी नामबोधक क्रियाएँ-

आणंदिउ<**आणंद**<सं० **आनन्द**

जन्म्यउ<सं० **जन्मन्**

जीतइ, जीपइ <भूतकृदन्त **जीत** <अप० **जित्त**-<सं० **जित**।

(ii) संज्ञा या विशेषण में **अव** प्रत्यय जोड़ कर बनी हुई नामबोधक क्रियाएँ-

भोगवइ< सं० **भोग**

साचवइ<अप० **सच्चवइ**< सं० **सत्यापयति**

गोपावइ< सं० **गोपयति**

विदेशी संपर्क के साथ राजस्थानी में कई विदेशी शब्दों का प्रवेश हो गया है। विदेशियों के सम्पर्क से जब हम कोई नई विद्या, कला, खेल, फ़ैशन आदि सीखते हैं तब उस सम्बंध के विदेशी शब्द अनायास ही हमारी भाषा में प्रवेश पा जाते हैं। प्रायः कोई भी जीवित भाषा यथासंभव इन नये शब्दों को अपने ध्वनि-नियमों के साँचे में ढाल लेती है। राजस्थानी में भी अनेक विदेशी संज्ञा तथा विशेषण शब्दों के साथ **ई** जोड़ कर नाम धातुओं का निर्माण कर लिया गया है, यथा—

(i) फा० **शर्म** रा० **सरमा(णौ)**

जहाँ राजस्थानी ने अनेक विदेशी शब्दों को अपने ध्वनि-नियम में ढाल लिया है वहाँ कई शब्दों एवं नामधातुओं को ज्यों का त्यों अपने भीतर उतार लिया है। ऐसा प्रायः संस्कृत भाषा के सम्बन्ध में ही हुआ है, क्योंकि राजस्थानी मूल रूप में संस्कृत से सम्बन्धित ही मानी गई है, यद्यपि मध्यकाल में वह कितनी ही सीढ़ियाँ पार कर चुकी है, यथा—

सं०	रा०
भज्	भज(णौ)
आकुल	अकुला(णौ)
आलाप	आलाप(णौ)

(iii) मिश्रित अथवा संयुक्त एवं प्रत्यययुक्त (तद्भव)-

इनको हम दो रूपों में विभक्त कर सकते हैं—(i) मिश्रित एवं संयुक्त, तथा (ii) प्रत्यययुक्त।

पहली श्रेणी में वे संयुक्त विशेष धातुयें आती हैं जो धातुओं से पूर्व कृदन्त, क्रिया जातविशेष्य अथवा संज्ञा पद जोड़ कर बन जाते हैं, यथा—**आवण देणौ, बांट लेणौ, चढ़ बैठणौ** आदि। प्रस्तुत कोश में इन संयुक्त धातुओं के क्रियात्मक रूप ही दिए गए हैं, यथा—**आवणौ, बांटणौ, चढ़णौ** आदि। दूसरी श्रेणी में वे क्रियायें हैं जो राजस्थानी प्रत्यय के संयोग से बनी हैं। एक दो प्रत्ययों के उदाहरण से इन प्रत्यययुक्त क्रियाओं का रूप स्पष्ट हो जायगा, यथा—

(१) **क** प्रत्यययुक्त—

छिटकणौ – [सं० सृज, रा० छिड़+क+णौ]

चूकणौ – [सं० च्युत, रा० चू+क+णौ]

अटकणौ – [सं० अट्ट, रा० अट+क+णौ]

(२) **ड़** प्रत्यययुक्त—

थापड़णौ – सं० स्थाप+ड़+णौ]

वधाड़णौ – सं० वृधु+रा० ड़+णौ]

पछाड़णौ–[सं० पश्चात्+प्रा० पच्छा+ड़,रा० पछाड़+णौ]

(vi) ध्वन्यात्मक अथवा अनुकार ध्वनिज धातुएँ—

इस प्रकार की ध्वन्यात्मक या अनुकरणात्मक धातुएँ प्रायः सभी आर्य भाषाओं में मिलती हैं। अनुकरणात्मक शब्दों पर अलग से प्रकरण लिखा जा सकता है। प्रायः हर ध्वनि अपना एक विशेष प्रकार का अनुकरणात्मक शब्द उत्पन्न करती है और राजस्थानी भाषा अपना प्रसिद्ध **णौ** लगा कर उन्हें क्रिया रूप दे देती है। प्राचीन भाषाओं (यथा संस्कृत आदि) में इनके अनुकरणात्मक रूप अत्यन्त अल्प मात्रा में मिलते हैं, अतः संस्कृत के वैय्याकरणों ने इस प्रकार की धातुओं को देशी

[1] पुरानी राजस्थानी-मू०ले०-एल०पी० तैस्सितोरी; अनु० नामवरसिंह, पारा १४२।

के अंतर्गत ही मान लिया हैं, फिर भी झङ्कार, गुञ्जन आदि शब्द संस्कृत में मिलते हैं। राजस्थानी में इस प्रकार की ध्वन्यात्मक अथवा अनुकार ध्वनित धातुयें कई रूपों में पाई जाती हैं, यथा—**धमकणौ, झणझणाणौ, थरथरणौ खटखटाणौ** आदि।

(v) संदिग्ध व्युपत्ति वाली धातुएँ—राजस्थानी में कुछ इस प्रकार की धातुएँ मिलती हैं जिनकी व्युत्पत्ति बड़ी ही संदिग्ध है। वे न तो मूल रूप में संस्कृत से सम्बन्धित जान पड़ती हैं और न वे साधित धातुयें ही मानी जा सकती हैं। उनके प्राचीन रूपों को भी तत्कालीन वैय्याकरणों द्वारा देशी नाम दिया गया है। आज के युग में जबकि भाषा-विज्ञान बहुत उन्नति कर चुका है, इस प्रकार की धातुओं का सम्बन्ध खोजना अत्यन्त आवश्यक है। श्री उदयनारायण तिवारी ने अपनी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास में इस सम्बन्ध में कूद(णौ) धातु का उदाहरण दिया है।[1] उन्होंने लिखा है कि यद्यपि संस्कृत कोशों में एक धातु कूर्द् भी है और उससे कूद(णौ) का सम्बन्ध स्पष्ट है परन्तु कूर्द् धातु संस्कृत में बहुत बाद में अपनाई गई जान पड़ती है और बहुत संभव है कि तत्कालीन कथ्य भाषा (प्राकृत) से संस्कृत ने इसको ग्रहण किया हो। तमिळ भाषा में कूर्द् की सरूप एवं समानार्थक धातु मिलती है। इससे क्या यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि यह धातु प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा में तमिळ से ली गई? श्री तिवाड़ी का यह तर्क उचित भी हो सकता है एवं संस्कृत के कुछ विद्वान इससे मतभेद भी रख सकते हैं, तथापि मोटे रूप में इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि कतिपय धातुओं के तत्सम रूपों के सम्बन्ध में संदेह अवश्य है एवं प्रामाणिक रूप से उन्हें किसी अन्य प्राचीन आर्य भाषा से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से निम्न-लिखित धातुओं की गणना इस सम्बन्ध में की जा सकती है—

टहुक(णौ), झोंक(णौ), चौंक(णौ) आदि।

धातुओं का यह प्रकरण पूर्ण होने से पहले कुछ क्रिया विशेष्यपदों (Verbal Nouns) की जानकारी कर लेनी भी आवश्यक है। प्राचीन आर्य भाषा संस्कृत में यह आवश्यक समझा जाता था कि शब्दों के रूप चलाते समय उनके मूल रूप धातुओं में विभक्ति प्रत्ययों का संयोग किया जाय। कालान्तर में ध्वन्यात्मक परिवर्तन होते रहने के कारण कर्ता के एकवचन में प्रायः शब्द के मूल रूप ही रह गये। प्रायः सभी दूसरी भाषाओं में यह परिवर्तन मिलता है। राजस्थानी में ऐसे रूपों का अभाव नहीं है। इस प्रकार के शब्द प्रायः कर्ता या कर्मकारक में अकेले या समानार्थक धातु पदों के संयोग से प्रयुक्त किये जाते हैं। इनका प्रयोग संयुक्त क्रियाओं की रचनाओं में होता है। ऐसे शब्दों के कुछ उदाहरण निम्न-लिखित रूप से उल्लेखनीय हैं—

१ संपादक **काट-छांट** करनै कविता अखबार में छापी।

२ दो चार आदमियां री **धर-पकड़** होवतां सभा रा लोग भाग छूटा।

३ छोटा-छोटा छोरां नै पुलिस वाळां **डांट-डपट** करनै छोड़ देवै।

अकर्मक एवं सकर्मक रूप—

ऐसा माना गया है कि सिद्ध धातुओं के रूप प्रायः अकर्मक होते हैं। उनके द्वारा साधित धातुयें सकर्मक रूप धारण कर लेती हैं। किन्तु कई साधित धातुओं के भी अकर्मक रूप मिलते हैं, यथा—

बैठ(णौ) नाच(णौ)

खेल(णौ) (कूदणौ) आदि।

अकर्मक क्रियाओं को सकर्मक रूप देने के लिये उनमें आ जोड़ दिया जाता है, यथा—

अकर्मक रूप	सकर्मक रूप
कटणौ	काटणौ
मरणौ	मारणौ

सकर्मक क्रिया में जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, कर्म निहित रहता है अतः अन्य भाषाओं के समान राजस्थानी में भी इनके बाद परसर्ग **नै**[1] नहीं आता, किन्तु यह केवल अप्राणीवाचक संज्ञा शब्दों के विषय में ही लागू होता है, यथा—**गेंद फेंकौ, कपड़ा धोवौ, रोटी खावौ** आदि। जहां प्राणी-

[1] देखो धारा ३७४।

[1] इसने, नै परसर्ग की उत्पत्ति आदि के विषय में इसी प्रस्तावना के संज्ञा प्रकरण में कारकों की विवेचना करते समय प्रकाश डाला जा चुका है। देखिये पृष्ठ ३६, ३७।

वाचक संज्ञा पदों का व्यवहार होता है वहां सामान्यतया नै परसर्ग का प्रयोग पाया जाता है, यथा—

उण घोड़ा नै देखौ।
रांम नै मारौ, आदि।

किन्तु जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, जोश, क्रोध, गर्वोक्ति, उद्देश्य-विधेय, निश्चयात्मक भावों में नै लगाना आवश्यक है, चाहे सम्बन्धित शब्द प्राणीवाचक हो अथवा अप्राणीवाचक।

इस परसर्ग नै का प्रयोग वास्तव में बड़ा महत्वपूर्ण है। कर्म की इस विभक्ति का लोप होने से उसका निश्चय करना कठिन हो जाता है तथा भूतकालिक कृदंतीय रूप भी उसे प्रकट करने में असमर्थ रहता है।

राजस्थानी में अकर्मक से सकर्मक रूप बनाने में विभिन्न प्रत्ययों का प्रयोग होता है, यथा—

१ आव प्रत्यय से—

अकर्मक	सकर्मक
जागणौ	जगावणौ
मिलणौ	मिलावणौ

२ आड़ प्रत्यय से—

अकर्मक	सकर्मक
जीवणौ	जीवाड़णौ
नाचणौ	नचाड़णौ
खेलणौ	खेलाड़णौ

३ धातु के उपांत्य स्वर में परिवर्तन—

अकर्मक	सकर्मक
उतरणौ	उतारणौ
चढ़णौ	चाढ़णौ
बळणौ	बाळणौ

४ धातु बदल कर—

अकर्मक	सकर्मक
जाणौ	भेजणौ
टूटणौ	तोड़णौ

५ विना परिवर्तन के—

अकर्मक	सकर्मक
खड़णौ = मरना	खड़णौ = हांकना
गमणौ = खोना, गायब होना (नाश होना)	गमणौ = नाश करना, व्यतीत करना

६ अपवादस्वरूप कुछ अन्य रूप—

अकर्मक	सकर्मक
जागणौ	जागवणौ
वहणौ	वाहवणौ

साधारणतः सभी धातुओं के रूप समान रूप से समान आधार पर निष्पन्न होते हैं, किन्तु कुछ धातुएँ ऐसी हैं जिनके भूतकालिक कृदन्त तथा उससे बनने वाले कालों के रूप कुछ भिन्न होते हैं। यद्यपि भिन्नता कोई विशेष नहीं है, केवल धातु का रूप कुछ परिवर्तित अवस्था में होता है। मुख्य-मुख्य धातुयें ये हैं—

हो(णौ) हुणौ— हुवौ, हुइ, होई, हौ
कर(णौ)— कियौ, की, कीवौ, कीधौ, कीन्हौ, कीनौ
दे(णौ)— दियौ, दीवौ, दीधौ, दीन्हौ, दीनौ
ले(णौ)— लियौ, लीवौ, लीधौ, लीन्हौ, लीनौ
पी(णौ)— पीयौ, पीवौ, पीधौ, पीनौ

लिंग, वचन, पुरुष, प्रकार, वाच्य कालादि का प्रभाव धातुओं पर पड़ता है। प्राचीन आर्य भाषा संस्कृत में भी कृदन्त रूपों में लिंग भेद मिलता है, यथा—

स गतः = वह गया
सा गताः = वह गयी

राजस्थानी में भी यही प्रणाली पाई जाती है जो संभवतया संस्कृत के प्रभाव के कारण है। अतः यहां भी धातु रूपों में लिंग भेद होता है, यथा—

वौ गयौ = वह गया
वा गई = वह गयी

परम्परा रूप में संस्कृत से प्राप्त आज्ञात्मक रूप भी (Imperative) राजस्थानी में मिलते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में इनका उल्लेख विभिन्न प्रकार से हुआ है। राजस्थानी में इनके ये रूप इस प्रकार हैं—

आधुनिक राजस्थानी	प्राचीन राजस्थानी
उत्तम पुरुष—	
एक वचन-चालूं, करूं	बोलज्यूं, चलउं
बहु वचन-चालां, करां	बोलज्यां, चलउं

प्राय: इस प्रयोग में रूप **उकारान्त** होते हैं। प्राचीन राजस्थानी पर अपभ्रंश के प्रभाव के कारण कई रूपों में अपभ्रंश एवं पुरानी राजस्थानी में अत्यधिक भेद नहीं हैं।

मध्यम पुरुष[1]—

एक वचन–	**चल, कर, मर**	**आणज्यो, करो, चालि**
	चाल	**चालो**
बहु वचन–	**चालों, करो, मरो**	**आणज्यां, करां**
	चलों	

अन्य पुरुष—

एक वचन–	**चालियो, करै**	**पुरज्यो यछै, आवइ**
	लिखावै, करावै	**हुवइ, भंमइ, सुणै**
	पेखीजै	**मांडइ, रहियो, बोलिजइ**
बहु वचन–	**चालिया**	

राजस्थानी में क्रिया प्रयोगों की कुछ विशेषताएँ—

आदरसूचक[2] प्रयोग राजस्थानी में प्राय: बहुवचन में ही किये जाते हैं, यथा—**आप अरोगिया, वे सिधाया**। अन्य भाषाओं की अपेक्षा राजस्थानी में आदरसूचक एवं मांगलिक प्रयोग के सम्बन्ध में कुछ विशेषताएँ हैं। आधुनिक हिन्दी में प्राकृत एवं अपभ्रंश के प्रयोग **किज्जइ, दिज्जइ** आदि रूपों का परिवर्तित रूप **कीजिए, दीजिए** आदि है। प्राचीन राजस्थानी में भी अपभ्रंश के प्रभावस्वरूप **किज्जइ, दिज्जइ** आदि रूपों का प्रयोग हुआ है। आधुनिक राजस्थानी में प्राय: मुख्य-मुख्य क्रियाओं के आदरसूचक रूप कुछ विशेष प्रकार के निर्मित हो गये हैं।

निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी[3]—

तू **खाव** = तुम खाओ

थे जीमों = तुम खाओ

आप **अरोगो** = आप खाइये

[1] राजस्थानी के मध्यम पुरुष के कई रूप संस्कृत के मध्यम पुरुषों के धातुओं के समान ही होते हैं, यथा—पढ़, जा, लिख आदि।

[2] प्राय: पश्चिमी राजस्थानी में आदरसूचक संज्ञा शब्दों के अगाड़ी जी नहीं लगाया जाता है वहां पर संबंधित क्रिया प्रयोग बहुवचन का रूप देकर आदरसूचक भाव व्यक्त किया जाता है—ज्यूं राव चूंडो बूढ़ा हुआ। राव जोधो बायाजी री जात पधारिया। देखो परम्परा—ऐतिहासिक वातां, पृ. १८, ३५।

[3] निम्न रूपों के अतिरिक्त सम्माननीय पुरुषों के लिए क्रिया के प्रेरणार्थक रूपों का प्रयोग किया जाता है, यथा—आप अरोगावै, आप पोढावै।

उपरोक्त तीन पदों का आधार समान धातु नहीं है। **खाणो** संस्कृत के **खादन** से बना है, **जीमणो** संस्कृत **जेमन** से तथा **अरोगणो** क्षेत्रीय मेवाड़ी उपज है। **अरोगणो** क्षेत्रीय उपज होने पर भी कालांतर में समस्त राजस्थान में व्यवहृत होने लगा। तीनों का समान अर्थ है तथापि आदरसूचक शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से इन तीनों के प्रयोगों में अंतर है। **खाणो** साधारण अर्थ में; **जीमणो** अपेक्षाकृत शिष्ट अर्थ में एवं **अरोगणो** आदरसूचक अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार का एक और प्रयोग दृष्टव्य है—

वो **जावै** = वह जाता है।

वे **पधारै** = वे जाते हैं या वे आते हैं।

आप **सिधावै** = आप जाते हैं।

जाणो– [सं० **यान**], **पधारणो** [सं० **पद्धारण**] **सिधाणो** [सं० **साधय**]

पधारणो शब्द की उत्पत्ति **पद्धारण** शब्द से मानी गई है। यह द्विअर्थक शब्द है। दोनों ही अर्थ परस्पर विरोधी हैं। राजस्थानी में **पधारणो** शुभागमन एवं आदरसहित विदा दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है।

अमांगलिक भाव के कारण प्राय: कई बार विरोधी अर्थ में क्रियाओं का प्रयोग होता है। इसके मूल में प्राय: यह भाव निहित है कि अशुभ सोचने, अशुभ कहने या अशुभ देखने से संभवतया अशुभ घटित हो जाता है। अत: वे क्रियायें जिनमें किसी प्रकार का अशुभ भाव अंतर्निहित होता है, नहीं बोली जाती है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी— पड़ोस में आटा मांगने एक स्त्री पड़ौसिन के यहाँ गई। पड़ौसिन के यहाँ भी आटा न था, अत: उसने कहा—**म्हारै तो आटो वधै**। राजस्थानी में **वधै** शब्द अधिक है के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पड़ौसिन ने यह नहीं कहा—कि हमारे यहाँ आटा नहीं है। 'नहीं है' अर्थ अशुभ है। भगवान सब कुछ देता है। भरा-पूरा घर है, अत: 'नहीं है' न कह कर, 'अधिक है' के अर्थ वाले शब्द का पड़ौसिन प्रयोग करती है। उसी प्रकार **आडो ढकणो** के स्थान पर **आडो मंगल करणो** कहा जाता है। इस प्रकार के कई उदाहरण दिए जाते हैं। कोश में इस प्रकार के शब्दों का वास्तविक अर्थ ही दिया गया है। **वधै** या **वधणो** का अर्थ कोश में '**बढ़ना**' या 'अधिक **होना**' ही

होगा। 'कम होना' अर्थ वहाँ नहीं मिलेगा। वास्तव में 'कम है' के अशुभ अर्थ से बचने के लिए ही तो उसके विरोधी अर्थ का प्रयोग किया जाता है[1]।

कर्तृवाचक संज्ञा—

(i) कर्तृवाचक संज्ञा एवं विशेषता—राजस्थानी में समस्त क्रियाओं से कर्तृवाचक संज्ञा[2] बनती है। क्रिया के धातु में **अणहार** के संयोग से यह रूप बनता है, यथा–

क्रिया	कर्तृवाचक संज्ञा
करणौ = करना	**करणहार** = करने वाला व्यक्ति
मरणौ = मरना	**मरणहार** = मरने वाला व्यक्ति
पाळणौ = पालन करना	**पाळणहार** = पालन करने वाला

इस प्रकार के प्रयोग ब्रज, अवधी आदि भाषाओं में भी प्रचलित हैं। तुलसी ने अपने मानस में इनका प्रयोग किया है।[3] इनका स्त्री लिङ्ग रूप **हारी** होता है। रूप भेद से इसका **हारि** एवं **हारी** दोनों रूपों में प्रयोग होता हैं। अपभ्रंश में भी इस प्रकार के प्रयोगों का प्रचलन था, यथा–**पालकहार**। **क** का लोप होने से यही राजस्थानी में **पालणहार** हो गया।

तैस्सितोरी ने पुरानी राजस्थानी के सम्बन्ध में **व** श्रुति का भी इस सम्बन्ध में उल्लेख किया है।[4] उन्होंने **अणावालौ** और **अवावालौ** का उदाहरण दिया है। प्रथम की उत्पत्ति **अणउँ** एवं द्वितीय की **अवउँ** क्रियार्थक संज्ञा से मानी है।

विशेषण के रूप में **इयौ** प्रत्यय से प्रायः सभी क्रियाओं के रूप बनते हैं—

क्रिया	कर्तृवाचक विशेषण
करणौ = करना	**करणियौ** = करने वाला
मरणौ = मरना	**मरणियौ** = मरने वाला
पालणौ = पालन करना	**पालणियौ** = पालने वाला

इस प्रकार के प्रयोग केवल राजस्थानी में ही पाये जाते हैं। अन्य भाषाओं में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते। प्रस्तुत कोश में समस्त क्रियाओं के इस प्रकार के रूप नहीं दिये गये हैं। सब के रूप देकर व्यर्थ में कोश के पृष्ठ बढ़ाने का कोई अर्थ न था, अतः मुख्य-मुख्य प्रचलित क्रियाओं के ये रूप सम्बन्धित क्रिया के साथ ही दे दिये गये हैं। जिन क्रियाओं के साथ ये रूप नहीं दिये गये हैं, पाठक स्वयं ऐसे रूपों का निर्माण कर सकते हैं।

वाच्य—

कर्मवाच्य रूप –

धातु में **ई** अथवा **ईज** (**य**) जोड़ने से यह रूप बनता है। प्राचीन भाषाओं में भी धातु में प्रत्यय के संयोग से कर्म-वाच्य रूप प्रकट किया जाता था। संस्कृत के धातु के साथ **य** जोड़ कर कर्मवाच्य का रूप बनाया जाता था। प्राकृत एवं अपभ्रंश में **इज्ज** या **ईअ** रूप मिलता है। वहाँ **ई** प्रत्यय का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं है। सिद्ध हेमचन्द्र ने (सं० **प्राप्यते**) **पाविअइ** का प्रयोग किया है। कुछ विद्वानों ने इस **ई** प्रत्यय का सम्बन्ध शौरसेनी तथा मागधी के **ई** से जोड़ा है तथा कुछ के मत से **इ** (**य**) प्रत्यय **इज्ज** (**ईज**) से निकला है और इसलिये शौरसेनी तथा मागधी के **ई** प्रत्यय से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इस **ई** का सम्बन्ध संस्कृत के **य** से अवश्य है।[1] ध्वनि-परिवर्तन पर विचार करते समय हम देख चुके हैं कि राजस्थानी में **य** का **ज** में परिवर्तन एक आम बात है। इस दृष्टि से **ईज** का प्रयोग भी इसी प्रकार से प्रचलित हुआ है, फिर भी **ई** स्वयं में **य** की ध्वनि संन्निहित है। **ईजइ** एवं **ईयइ** दोनों के रूप अत्यन्त समान हैं। दूसरे रूप **ईयइ** में **य** का लोप होकर द्वित्व के स्थान पर केवल ह्रस्व **इ** का रह जाना भी असंभव नहीं है। आधुनिक राजस्थानी में इस प्रकार **ई, ईज, इ** इन तीनों का प्रयोग कर्म-वाच्य रूपों के लिये होता है। यह केवल सकर्मक क्रियाओं का ही रूप होता है।

---

[1] अप्रिय को प्रिय रूप देने की प्रवृत्ति का ही यह रूप है जिसे Euphemism कहते हैं।

[2] व्याकरण में इन्हें कर्तृवाचक संज्ञा ही कहा गया है तथापि इनका प्रयोग विशेषण रूप में ही होता है अतः प्रस्तुत कोश में इनको विशेषण ही माना गया है।

[3] उ०—नाथ संभु धनु भंजनिहारा, होइहि केउ एक दास तुम्हारा।
—बालकांड, २७०।१—रामचरितमानस

[4] पुरानी राजस्थानी, पारा १३५।

[1] यण का इक हो जाता है जो संप्रसारण कहलाता है। य व र ल के स्थान में क्रमशः इ उ ऋ लृ होता है। (इग्यणः संप्रसारणम्) सिद्धान्तकौमुदी, सूत्र १/१/४५।

वर्तमान कर्मवाच्य–

प्राचीन राजस्थानी में **ईजइ, ईयइ (ईग्रइ)** एवं **ईइ** का प्रयोग कर्मवाच्य रूप बनाने में किया जाता था, यथा–

(i) **ईजइ** के उदाहरण–
कीजइ [सं० **क्रियते**, अप० **कीज्जइ**]
कहीजइ [सं० **कथ्यते**, अप० **कहिज्जइ**]

(ii) **आजई** या **अजई** से–
खाजइ [सं० **खाद्यते**, अप० **खज्जइ**]
नीपजई [सं० **निष्पद्यते**, अप० **णिप्पज्जइ**]

(iii) **(ईग्रइ), ईयइ** से–
करीयइ [सं० **क्रियते**, अप० **करिज्जइ, करीजइ**]
जोईग्रइ [सं० **द्योत्यते**, अप० **जोइज्जइ**]

(iv) **ईइ** से–
करीइ [ग्रन्य रूप **करी(य)इ** > **करीजइ**]
जाणीइ
धरीइ

ग्राधुनिक राजस्थानी में केवल **ईज, इज** एवं **ईयइ** का ही प्रयोग साधारणतः होता है–

(i) **ईज**–
काटणो कर्म वा० रूप–**काटीजणो**।
मारणो कर्म वा० रूप–**मारीजणो**।

(ii) **ईयइ**–
छोडणो **छंडयइ**।

इनके ग्रतिरिक्त केवल **ई** प्रत्यय से कुछ विशेष कर्मवाच्य रूप भी होते हैं। इनमें **ग्रौकारान्त** रूप न रह कर **ई** प्रत्यय से केवल **ईकारान्त** ही होते हैं। किन्तु इस प्रकार के रूपों के प्रयोग क्वचित् ही होते हैं ग्रथवा क्षेत्र विशेष में ही सीमित रहते हैं, यथा –

(i) **खाणो** क्रिया का कर्मवाच्य रूप **खाणी**।
उ०–म्हांसूं **खाणी** को ग्रावै नी—मुझसे खाया नहीं जाता।

(ii) **जोवणो** क्रिया का कर्मवाच्य रूप **जोवणी**।
उ०–म्हांसूं **जोवणी** को ग्रावै नी—मुझसे देखा नहीं जाता।

तैस्सितोरी ने प्राचीन राजस्थानी में कर्मवाच्य रूपों के प्रयोगों के सम्बन्ध में लिखा है[1]—'जितनी पांडुलिपियाँ मैंने देखी हैं उनमें हमें वर्तमान कर्मवाच्य के केवल ग्रन्य पुरुष के एकवचन ग्रौर बहुवचन रूप ही प्राप्त हुए हैं। इनमें से एकवचन के रूप ग्रधिक प्रचलित हैं ग्रौर इनका प्रयोग विविध ग्रर्थों में होता है ग्रौर प्रायः सभी पुरुषों के स्थान पर ये भाववाच्य में भी प्रयुक्त होते हैं।' यह मत कहाँ तक तर्कसम्मत है, यह विचारणीय एवं शोध का विषय है। प्राचीन राजस्थानी एवं ग्राधुनिक गुजराती में इस प्रकार के उदाहरण पाये जाते हैं किन्तु ग्राधुनिक राजस्थानी में इनका प्रयोग स्वल्प ही है।

भूतकालिक कर्मवाच्य –

साधारण **कर्तृवाच्य** रूपों के समान वर्तमान कर्मवाच्य रूपों में—**इयौ** प्रत्यय से ही उनका भूतकालिक रूप बनाया जाता है—

वर्तमान कर्म वा०	**भूतकालिक कर्म० वा०**
करीजणो	**करीजियौ**
काटीजणो	**काटीजियौ**
मारीजणो	**मारीजियौ**

लिङ्ग के प्रभाव से इनके रूपों में भी परिवर्तन हो जाता है। उपरोक्त रूप पुल्लिंग है। स्त्री लिङ्ग रूपों में **यौ** का लोप होकर रूप **ईकारांत** होता है, यथा–

वर्तमान कर्म वा०	**भूतकालिक कर्म वा०**	
	पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
लीरीजणो	**लीरीजियौ**	**लीरीजी**
खवीजणो	**खवीजियौ**	**खवीजी**

गोड़वाड़ ग्रादि क्षेत्रों में इस भूतकालिक कर्मवाच्य के रूप इस प्रकार मिलते हैं–

क्रिया	**भूतकालिक कर्मवाच्य**
लिखणो	**लिखांणो**
पढ़णो	**पढ़ांणो**
खाणो	**खांवाणो** ग्रादि।

[1] पुरानी राजस्थानी, डा० एल० पी० तैस्सितोरी, ग्रनु० नामवरसिंह, पारा १३७ का ग्रंश।

भविष्यत् कर्मवाच्य—

भविष्यत् कर्मवाच्य के रूप पुरानी राजस्थानी एवं आधुनिक राजस्थानी में कुछ भिन्न प्रकार से होते हैं। पुरानी राजस्थानी पर अपभ्रंश का पर्याप्त प्रभाव है। उसके कुछ रूप निम्नलिखित प्रकार से निष्पन्न होते हैं—

(i) इज वाले—

कीजसी = किया जायगा

जाइजसी = जाया जायगा

लीजिस्यइ = लिया जायगा

(ii) इ वाले

कहीस्यइ, कहीसिइ = कहा जायगा

बोलिसिइं = बोला जायगा

पराबीसिउ = पराभूत होंगे

मरीसिइ = मरेगा

पांमीस्यइं = पायेंगे

आधुनिक राजस्थानी में भी रूप प्रायः **सी** लग कर ही बनते हैं—

वर्तमान कर्मवाच्य	भविष्यत्कालिक कर्मवाच्य
लीरीजणौ	**लीरीजसी**
करीजणौ	**करीजसी**
खवीजणौ	**खवीजसी**

भाववाच्य—

सकर्मक क्रियाओं के रूप कर्मवाच्य तथा अकर्मक क्रियाओं के रूप **भाववाच्य** होते हैं। कर्मवाच्य एवं भाववाच्य के रूपों में कोई विशेष भेद नहीं होता। एक ही प्रकार से दोनों के रूप बनते हैं। केवल अकर्मक एवं सकर्मक के भेद से ही भाववाच्य एवं कर्मवाच्य रूप बनते हैं, यथा—

(अ) वर्तमानकाल—

क्रिया	वाच्य
मरणौ (अकर्मक)	**मरीजणौ** (भाववाच्य)
मराणौ (सकर्मक)	**मराईजणौ** (कर्मवाच्य)
कटणौ (अकर्मक)	**कटीजणौ** (भाववाच्य)
कटाणौ (सकर्मक)	**कटाईजणौ** (कर्मवाच्य)
काटणौ (सकर्मक)	**काटीजणौ** (कर्मवाच्य)

(आ) भूतकालिक—

क्रिया	वाच्य वर्तमानकाल	भूतकाल
पड़णौ (अ०रू०)	**पड़ीजणौ**	**पड़ीजियौ** (भाव० वा०)
काटणौ (स०रू०)	**काटीजणौ**	**काटीजियौ** (कर्म० वा०)

(इ) भविष्यकालिक—

क्रिया	वर्तमानकाल	भविष्यकाल
जावणौ	**जावीजणौ**	**जावीजसी**
बैठणौ	**बैठीजणौ**	**बैठीजसी**

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भाववाच्य एवं कर्मवाच्य दोनों में परिवर्तन करने या रूप बनाने की प्रणाली का कुछ एक ही प्रकार का ढंग है।

तैस्सितोरी ने अपने लेख में विधिमूलक कर्मवाच्य (Potential Passive) का भी उल्लेख किया है[१]। डॉ० हॉर्नले ने भी अपनी 'गौडियन ग्रामर' में इस सम्बन्ध में युक्तियां एवं उदाहरण प्रस्तुत किये हैं[२]। कर्मवाच्य धातु में **आ** जोड़ने से बनने वाले विधिमूलक कर्मवाच्य के कई उदाहरण प्राचीन राजस्थानी में मिलते हैं। इस कर्मवाच्य की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि सामान्यतः इसमें विधि (Potential) का अर्थ निहित रहता है, परन्तु कालान्तर में इस विशिष्ट अर्थ का धीरे-धीरे लोप होता गया। आधुनिक गुजराती में इसका प्रयोग सामान्यतः कर्मवाच्य के अर्थ में होता है। प्राचीन राजस्थानी में इस विधिमूलक कर्मवाच्य (Potential Passive) के निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं।

वर्तमान—

(i) **सरव पाप-मल-थकी मुकाइं** = (वे) सर्व पाप मल से मुक्त हो सकते हैं।

(ii) **तुम्हो अभक्ष्य-मांहि कहिवाय** = तुम अभक्ष्य में कहे जा सकते हो।

भविष्यत—

नरक रूपी या वैस्वानर मांहि पचाइसि = नरक रूपी वैश्वानर में पकाए जाओगे।

---

[१] पुरानी राजस्थानी, पृष्ठ १८४, पारा १४०

[२] 'गौडियन ग्रामर' पारा ४८४

आधुनिक राजस्थानी में इनका प्रयोग निम्नलिखित रूपों में होता है—

वर्तमान—

सब पापां सूं मुक्त होवीजे

भविष्य—

रोटी तवा माथै पकावीजसी

राजस्थानी में भविष्य आज्ञार्थक में **जे जै**, या **जौ** का प्रयोग होता है, यथा—

पत्र **लिखजे** = पत्र लिखना

औखध **खाइजौ** = औषधि खाना

धान **खरीदजे** – धान खरीदना

इन **जे, जै, जौ** की उत्पत्ति संस्कृत के **ण्यत् (यत्)** प्रत्यय से हुई है।

प्रेरणार्थक—

संस्कृत के मूल स्वर को दीर्घ करके प्रेरणार्थक बनाने की परिपाटी रही है। राजस्थानी मे भो इस प्रकार के कई उदाहरण मिलते हैं। यहाँ भी स्वर को दीर्घ करके प्रेरणार्थक रूप कई क्रियाओं का बनाया जाता है। सामान्यत: ऐसे रूपों को आजकल सकर्मक ही माना गया है। प्रस्तुत कोश में भी ऐसे रूप व्याकरण की दृष्टि से सकर्मक के अंतर्गत ही रक्खे गये हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ऐसा अनुभव होता है कि उनमें प्रेरणार्थक भाव अंतर्निहित है। ऐसे रूप अकर्मक क्रियाओं से बनते हैं।

अकर्मक क्रिया	सकर्मक क्रिया (प्रेरणार्थक रूप)	
	प्राचीन राजस्थानी	आधुनिक राजस्थानी
उतरणौ	**ऊतारइ**	**ऊतारणौ**
मरणौ	**मारइ**	**मारणौ**
मिळणौ	**मेळइ**	**मिळाणौ**

इसके अतिरिक्त राजस्थानी में **आव** प्रत्यय जोड़ कर भी प्रेरणार्थक रूप बनाये जाते हैं। यह **आव** प्रत्यय की उत्पत्ति संभवतया संस्कृत के **आ-पय** से हुई है। सं० का **'आ-पय'** अपभ्रंश में **आव, आवे** के रूप में प्रयुक्त हुआ है। प्राकृत में **आपय** को प्रत्यय के रूप में स्वीकार किया जाकर इसका प्रयोग सामान्यत: प्रेरणार्थक रूप बनाने में किया जाता था। ऐसा देखा गया है कि राजस्थानी में प्रेरणार्थक रूप इस प्रत्यय द्वारा बनाते समय मूल दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाया करता है, किन्तु यह नियम सदैव लागू नहीं होता। **आव** प्रत्यय से बने निम्नलिखित रूपों के उदाहरण दिये जा सकते हैं—

क्रिया	प्रेरणार्थक
काटणौ (स० रू०)	**कटावणौ**
मारणौ (स० रू०)	**मरावणौ**
आंणणौ	**अणावणौ** या **आंणावणौ**

प्राय: कई बार इस **आव** प्रत्यय का मूल स्वर ह्रस्व होकर **अव** के रूप में प्रयुक्त होने लगता है, यथा—

क्रिया	प्रेरणार्थक
मेलणौ	**मेलवणौ**
सीखणौ	**सीखवणौ**

इस प्रकार के रूपों का प्राकृत में भी हेमचंद्र ने प्रयोग किया है—**पट्ठवइ** (सिद्ध ४।३७), **मेलवइ** (सिद्ध ४।२८) **सीखवइ** (सिद्ध ३।१५०)। अत: यह केवल राजस्थानी की अपनी विशेषता नहीं है। इसे परम्परा के रूप में प्राकृत एवं अपभ्रंश से राजस्थानी में प्राप्त किया गया है। इस प्रकार **अव** प्रत्यय से बने रूप आधुनिक राजस्थानी में कम, परन्तु प्राचीन राजस्थानी में प्रचुरता से मिलते हैं। तैस्सितोरी ने भी इसका उल्लेख किया है। कठिनाई यह है कि इस **अव** प्रत्यय का प्रयोग राजस्थानी में अपभ्रंश की तरह नाम धातु बनाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है, यथा—

सं० **भोग**		रा० **भोगवइ**
सं० **सत्यापयति**	अप० **सच्चवइ**	रा० **साचवइ**
सं० **चिन्तयति**		रा० **चींतवइ**

इस प्रकार के रूपों से कई बार यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि **अवइ** वाला यह रूप प्रेरणार्थक है अथवा नाम धातु-निर्मित क्रियापद।

इसके अतिरिक्त **आड़** प्रत्यय के संयोग से भी राजस्थानी में प्रेरणार्थक रूप निष्पन्न हुए हैं। इस प्रत्यय का अस्तित्व प्राकृत में भी मिल जाता है। सिद्ध हेमचंद्र जैन सूरि ने अपने प्राकृत व्याकरण ४।३० में इसका उल्लेख किया है। इस प्रकार **व** के स्थान पर **ड** स्वार्थिक अथवा श्रुति तत्व के रूप में आया है। प्राचीन राजस्थानी में यह **आड** था किन्तु आधुनिक राजस्थानी में इसका प्रयोग **आड़** के रूप में हुआ है। **ड**

वर्ण के सम्बन्ध में विवेचना करते समय हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि प्राचीन राजस्थानी में **ड** का प्रयोग था। प्राचीन अपभ्रंश एवं प्राकृत में भी केवल **ड** ही था। इसी के प्रभाव के कारण पुरानी राजस्थानी में भी **ड** ही रहा, किन्तु आधुनिक राजस्थानी में यही **ड़** के रूप में प्रयुक्त होने लगा, यथा–

क्रिया	प्रेरणार्थक	
	प्राचीन राज०	आधुनिक राज०
लगाणौ	**लगाडणौ**	**लगाड़णौ**
काटणौ	**कटाडणौ**	**कटाड़णौ**
देखाणौ	**देखाडणौ**	**देखाड़णौ**
बांधणौ	**बंधाडणौ**	**बंधाड़णौ**

इस **आड़** प्रत्यय से कालान्तर में **आर** एवं **आल** दो प्रत्यय और प्रयोग में आने लगे। इन दोनों का प्रयोग प्राचीन राजस्थानी में तो बहुतायत से हुआ है परन्तु आधुनिक राजस्थानी में इनका प्रयोग बहुत कम मिलता है।

क्रिया	प्रेरणार्थक	
	प्राचीन राज०	आधुनिक राज०
घटाणौ	**घटारणौ (घटारइ)**	**घटारणौ**
दिवाणौ	**दिवारणौ (दिवारइ)**	**दिरावणौ**

आल प्रत्यय के रूप--

दिखाणौ[1]	**दिखालणौ (दिखालइ)**	**दिखालणौ**
बिठाणौ	**बेठालणौ**	**बैठालणौ**

वर्णों के स्थानान्तरण से कुछ क्रियाओं के रूप नये रूप में निर्मित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए **देणौ** क्रिया का प्रेरणार्थक रूप **दिवाणौ** है। **आर** प्रत्यय के संयोग से इसका **दिवारणौ** रूप भी बनता है किन्तु इस **दिवारणौ** रूप का प्रयोग आधुनिक साहित्य में नहीं होता। **र** के स्थानान्तरण से इसका **दिरावणौ** रूप ही पूरी तरह प्रचलित हो गया है। किन्तु मूल रूप में यह **आर** प्रत्यय का ही उदाहरण है। इस प्रकार **लेणौ** क्रिया का प्रेरणार्थक रूप **लेवाणौ** या **लेवारणौ** है। इस **आर** प्रत्यय वाले **लेरावणौ** रूप में भी **र** का स्थानान्तरण होकर **लेरावणौ** या **लिरावणौ** रूप ही मुख्यतया प्रचलित हो गया है। राजस्थानी में ये रूप विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आड़ एवं **आर** प्रत्यय से निर्मित होने वाले रूपों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। कालान्तर में इन दोनों प्रत्ययों का परस्पर प्रभाव के कारण संयुक्त रूप **अवाड़** या **अवाड** तथा **अवार** प्रयुक्त होने लगा। इन्हें हमें दुहरी प्रेरणार्थक क्रियायें कह सकते हैं, यथा—

क्रिया	प्राचीन राज०	आधुनिक राज०
कहणौ	**कहवारइ**	**कहवाड़णौ**
मेलणौ	**मेलवाडइ**	**मेलवाड़णौ**

ऊपर हम **र** के स्थान पर स्थानान्तरण के विषय में लिख चुके हैं। **आव** और **आर** का संयुक्त रूप **अवार** है, जो **दिवारणौ**, **लिवारणौ** में प्रयुक्त होता है। इसी **अवार** का रूप **र** के स्थानान्तरण के कारण **अराव** हो गया। इस सम्बन्ध में मतभेद हो सकते हैं। डॉ. तैस्सितोरी ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार धातु के अन्त्यस्वर तथा प्रत्यय के आद्य **अ** के बीच आई हुई **व** श्रुति तथा प्रत्यय गत **व** के पास रहने से जो उच्चारण सम्बन्धी कठिनाई उत्पन्न हो सकती थी उसे दूर करने के लिए **र** का स्थानान्तरण कर दिया गया है। इस प्रकार **दि-व्-अवार-अ इ** हुई, फिर **र** के वर्ण-विपर्यय द्वारा **दि-व-अराव अइ**[1]। डॉ० तैस्सितोरी के इस मत से पूर्ण सहमति कई विद्वानों को न हो सके किन्तु उनका यह मत विचारणीय अवश्य है।

धातु के स्वर में परिवर्तन करके भी प्रेरणार्थक रूपों का निर्माण होता है—

पीवणौ–क्रि०स० **पावणौ**–क्रि०प्रे०रू०

कुछ स्थानों में अथवा कुछ व्यक्तियों के प्रति आदर-सूचक भाव के निमित्त प्रेरणार्थक क्रियाओं का प्रयोग कर दिया जाता है, किन्तु वे प्रायः अपने मूल में आज्ञार्थक ही रहती है--

रावलं आरोगावौ(वं) —आप अरोगिए

रावलं पोढ़ावौ(वं) — आप शयन कीजिए

ल, **र** एवं **व** के संयोग से बनने वाले कुछ प्रेरणार्थक रूप विचारणीय हैं—

धातु	प्रेरणार्थक पहला रूप	प्रेरणार्थक दूसरा रूप
दा (देणौ)	**दिराणौ**	**दिलवाणौ, दिवाणौ**

[1] पुरानी राजस्थानी—मूल ले० तैस्सितोरी, अनु० नामवरसिंह, पारा १४१।

मर (मरणौ)	**मराणौ**	**मरवाणौ, मरवाड़णौ**
ला[1] (लेणौ)	**लिराणौ**	**लिरवाणौ, लिवाणौ**

आव प्रत्यय वाले प्रायः ये दोनों रूप प्रेरणार्थक क्रियाओं के रूप में मिलते हैं—

क्रिया	प्रेरणार्थक
करणौ	**कराणौ, करावणौ, करावावणौ**
करणौ	**करवाणौ, करवावणौ**
पढ़णौ	**पढ़वाणौ, पढ़वावणौ**

उपरोक्त समस्त प्रेरणार्थक रूप अपनी मूल क्रियाओं से सम्बन्धित हैं। अतः इस कोश में उन्हें स्वतन्त्र स्थान नहीं दिया गया है। प्रचलित क्रिया रूपों के साथ ही उनके द्वारा निर्मित अन्य रूप यथास्थान दे दिए गए हैं। किन्तु कुछ क्रियाओं के साथ में इस प्रकार के रूपों को स्थान दे दिया गया है तथा कुछ के साथ नहीं दिया गया। पाठकगण भ्रम में न पड़ जायँ, अतः स्पष्टीकरण आवश्यक है। प्रायः सभी प्रचलित एवं साधारण व्यवहार में काम आने वाली क्रियाओं के समस्त रूप उनके साथ ही दे दिए गए हैं, किन्तु कुछ क्रियाओं का प्रयोग अत्यन्त सीमित रूप में होता है, या तो वे साहित्य में भी बहुत ही कम स्थानों में प्रयुक्त हुई हैं या साधारण बोल-चाल के व्यवहार में काम में नहीं लाई जातीं। अतः इनके बनने वाले रूपों को कोश में स्थान नहीं दिया गया। इसके अतिरिक्त कुछ क्रियायें बहुत प्रचलित हैं, किन्तु उनके द्वारा बनने वाले रूप साधारणतः कार्य में नहीं आते। इस प्रकार की क्रियाओं के रूप नहीं दिए गए हैं। प्रायः समस्त क्रियाओं के येन-केन-प्रकारेण कुछ न कुछ रूप अवश्य होते हैं। अगर पाठकों को ऐसी क्रिया के रूपों की आवश्यकता अनुभव हो जिनके कि रूप इस कोश में नहीं लिखे गए हैं तो वे स्वयं इस भूमिका के आधार पर अथवा तत्संबंधित व्याकरण के नियमों के आधार पर उनके रूपों का निर्माण कर प्रयोग में ला सकते हैं। कोश व्याकरण का स्थान नहीं ले सकता। इस प्रकार के स्थानों में व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है। पाठकों को कोश का अवलोकन करते समय इन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

कृदन्त—

राजस्थानी में भी अन्य भाषाओं की तरह कृदन्तों का व्यवहार होता है।

वर्तमानकालिक कृदंत—इसका निर्माण धातु के अंत में **तां** लगाने से बनता है। प्राकृत के प्रभाव से **तौ** भी इस कृदंत के बनाने में प्रयुक्त होता है। **ड़ौ** राजस्थानी की अपनी विशेषता है। इस प्रकार **तां, तौ, तोड़ौ**—तीनों के संयोग से वर्तमानकालिक कृदंतों का निर्माण होता है। इस **तां** की व्युत्पत्ति संस्कृत वर्तमानकालिक कृदंत के अंत (शतृ-प्रत्ययांत)[1] वाले रूपों से मानी गई है। लिङ्ग के कारण इसके रूपों में भी विकार होता है, यथा—

सं० कृ क्रिया—करणौ करना

वर्तमानकालिक कृदन्त—**करतां**— करते हुए (पु०)
करती— करती हुई (स्त्री०)
करतौ— करता हुआ (पु०)
करती— करती हुई (स्त्री०)
करतोड़ौ—करता हुआ (पु०)
करतोड़ी—करती हुई (स्त्री०)

राजस्थानी साहित्य में इन कृदंतों का प्रयोग स्थान-स्थान पर हुआ है, यथा—

वह मुगलाँ बिरदैत, खागै **खंडरतौ** खलां
—वचनिका रतनसिंघजी री।

प्राचीन राजस्थानी में इसके रूप आंशिक रूप से अपभ्रंश एवं प्राकृत से प्रभावित हैं, यथा—

पु० एकवचन—**बूठंतौ, चलंतउ, चडंदउ**

पु० बहुवचन—**मनगमता, जावता, नीगमतांह, उसारंता भमंता**

स्त्री० —**विललंती, चाहंती, देखती, बलती**

आधुनिक राजस्थानी में **तौ** एवं **तोड़ौ** केवल एकवचन के रूप मे ही प्रयुक्त होता है। वर्तमानकालिक कृदन्त का यह एकवचनांत रूप है।

---

[1] जिस प्रकार दा = देना होता है, उसी प्रकार ला = लेना मान लिया गया है। दान-आदान जैसा सहयोग है, वैसा ही देना-लेना का सहयोग है। यह सादृश्य के प्रभाव के कारण है, ऐसा स्व. पं० नित्यानन्दजी शास्त्री का मत है।

[1] पं० नित्यानन्दजी शास्त्री के मत के अनुसार—'शान्-प्रत्ययांत' होना चाहिए।

उपरोक्त तीनों प्रत्यय, यथा—**तां, तौ, तोड़ौ**—इस कृदंत में प्रयुक्त होते हैं, तथापि इनके बीच सूक्ष्म रूप से कुछ अंतर विद्यमान है। **तौ, तोड़ौ** एकवचन के साथ ही सामान्य वर्तमान-काल का बोध कराते हैं, किन्तु **तां** प्रत्यय से निश्चयार्थ तत्काल का बोध होता है। सामान्यतया **तां** इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है और तात्कालिक कृदन्त के नाम से पुकारा जाता है। तात्कालिक कृदन्त रूप वर्तमानकालिक कृदन्त विकृत रूप में ही **इज, ईज, हिज, हीज, ज, पांण** आदि लगा कर बनता है, यथा—

दवाई देवतां **पांण** सास निकळ गियौ।

सिफारिस **लगावतां** ही नौकरी मिळगी।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि तात्कालिक कृदन्त में केवल '**तां**' प्रत्यय का ही प्रयोग होता है। इसकी पहचान तो केवल **ही, पांण, ईज** आदि का प्रयोग है। '**तौ**' का भी तात्कालिक कृदन्त अव्यय के रूप में कभी-कभी प्रयोग होता है, प्रायः यह सदा एकवचन रूप के प्रयोग तक ही सीमित रहता है, यथा—

चोर चोरी **करतौ ही** पकड़ीज गियौ।

इस प्रकार तात्कालिक कृदंत का अलग अस्तित्व न होकर यह वर्तमानकालिक कृदन्त का ही विकारी रूप है। इससे मुख्य क्रिया के साथ होने वाले कार्य की समाप्ति का बोध होता है। तात्कालिक कृदन्त और मुख्य क्रिया का उद्देश्य बहुधा एक ही रहता है पर कभी-कभी तात्कालिक कृदन्त का उद्देश्य भिन्न रहता है और यदि वह प्राणीवाचक हो तो संबंधकारक में आता है, यथा—

दिन **निकलतां पांण** चोर भाग गिया।

आपरै **आवतां हो** झगड़ौ ठंडो पड़ गियौ।

ड़ौ का प्रयोग राजस्थानी की विशेषता है। वर्तमान-कालिक कृदन्त के साथ इसके संयोग से वर्तमानकालिक कृदन्त विशेषण बन जाता है, यथा—

चलतोड़ी गाडी में मत बैठौ।

उड़तोड़ी चिड़ियां नै भाटा मत बावौ।

यह विशेषण विशेष्य लिङ्ग, वचन के अनुसार बदलता है। अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त भी वर्तमानकालिक कृदन्त का विकृत रूप मात्र है, यथा—उनै कांम **करतां** देर होइगी।

भूतकालिक कृदन्त—

यह धातु के अंत में प्रायः **इयौ** या **यौ** जोड़ने से बनता है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के भूतकालिक कर्मवाच्य कृदन्त के **त, इत** (क्त प्रत्ययान्त) वाले रूपों से मानी जाती है।[1] इसके रूप भी प्राकृत के समान ही होते हैं—

स० **चलितः** प्रा० **चलिओ,** रा० **चालियौ**
सं० **कृतः** प्रा० **करियो** रा० **करियौ**

ड़ौ के जोड़ने से भूतकालिक कृदन्त विशेषण का रूप बन जाता है। भूतकालिक कृदन्त विशेषण बनाने के नियमों का विस्तारपूर्वक उल्लेख करना व्याकरण का कार्य है। अकर्मक क्रिया से बना हुआ भूतकालिक कृदन्त विशेषण कर्तृवाच्य और सकर्मक क्रिया से बना हुआ कर्मवाच्य होता है, यथा—

अकर्मक—

ऊगियोड़ौ घास काट दियौ।

आयोड़ौ माल बारै मती फेंकौ।

सकर्मक—

तपायोड़ी चाँदी चमकदार हुवै।

निम्नलिखित उदाहरणों से भूतकालिक कृदन्त विशेषणों के रूप अधिक स्पष्ट हो जायेंगे—

बचियोड़ी रोटियां कुत्तां नै नांख दौ।

फंसियोड़ी मिनकी खतरनाक हुवै।

लिङ्ग एवं वचन के अनुसार ये विशेषण भी विशेष्य के अनुसार रूप बदलते हैं। प्रस्तुत कोश में इस प्रकार के भूत-कालिक कृदन्त विशेषणों को यथास्थान उपस्थित किया गया है।

पुरानी राजस्थानी में भी भूत कृदन्तों का प्रयोग अपभ्रंश से प्रभावित था। श्री तैस्सितोरी ने पुरानी राजस्थानी के भूत कृदन्तों को प्रत्यय एवं व्युत्पत्ति के अनुसार पाँच समूहों में रक्खा है[2]—

(१) **इउ (यु), (इअउ) यउ** अंत वाले भूत कृदन्त राज-स्थानी भूत कृदन्तों में इनका प्रयोग सबसे अधिक था, यथा—

करउ = कर्-इउ

कहउ = कह्-इउ

---

[1] **हिन्दी भाषा का इतिहास, धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ २९५, पारा ३१०**

[2] **पुरानी राजस्थानी, पारा १२६**

च्याउ = च्या-यउ

हु-यउ

(२) **आंणउ** अंत वाले भूत कृदन्त—इनका प्रयोग प्रमुखतया कर्मवाच्य के अर्थ में ही होता है। सिंधी भाषा के अंदर भी इस प्रकार के **छभाणौ, उभ्भाणौ, खाणौ** आदि रूप मिलते हैं। इनकी उत्पत्ति **आमणु** वाली कर्मवाच्य की क्रियाओं से है। पुरानी राजस्थानी में निम्नलिखित उदाहरण मिलते हैं—

क्रियांणउ = खरीदा

छेतरांणउ = धोखा खाया हुआ

मूकांणउ = मुक्त

रंगांणउ = रंगा हुआ

बिलखांणी (स्त्री०) = विलखाई हुई

(३) **धउ** अंत वाले भूत कृदन्त—इसके रूप बहुत ही सीमित मात्रा में प्रयुक्त होते हैं यथा—

कीधउ = किया **खाधउ** = खाया

दीधउ = दिया **पीधउ** = पिया

बीधउ = भयभीत **लीधउ** = लिया

इन छः उदाहरणों के अतिरिक्त और कोई उदाहरण इस प्रकार के प्रयोग के उपलब्ध नहीं है।[1] आधुनिक राजस्थानी में भी इन्हीं छः के आधार पर निम्नलिखित रूप प्रचलित हैं—

सं० **कृत** **करइ** से संबद्ध **कीधउ** से आधुनिक राजस्थानी में **कीधौ**
सं० **खादित** **खाइ** ,, ,, **खाधउ** ,, ,, ,, , **खाधौ**
सं० **दत्त** **दिइ** ,, ,, **दीधउ** ,, ,, ,, ,, **दीधौ**
सं० **पीत** **पीइ** ,, ,, **पीधउ** ,, ,, ,, ,, **पीधौ**
सं० **विद्ध** **बीहइ** ,, ,, **बीधउ** ,, ,, ,, ,, **बीधौ**
सं० **लात** **लिइ** ,, ,, **लीधउ** ,, ,, ,, ,, **लीधौ**

आधुनिक राजस्थानी में भी इन छः प्रयागों के अतिरिक्त अन्य प्रयोग नहीं मिलते। ये क्रियाओं के भूतकालिक प्रयोग हैं। भाषा-विज्ञान से सम्बन्धित लोगों के लिये इस प्रकार के रूप अध्ययन के विषय हैं। इनकी संतोषप्रद व्याख्या आज तक प्रायः उपलब्ध नहीं हुई है। तैस्सितोरी ने इस सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयत्न किया है। उन्होंने लिखा है कि "**धउ** का उत्पत्ति **न्हउ** में **द** श्रुति के समावेश द्वारा हुई है। यह प्रक्रिया अपभ्रंश के अति परिचित शब्द **पण्णरह** (< सं० **पञ्चदश**) के परिवर्तन से बहुत कुछ मिलती-जुलती है जो प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में **पनर** हो गया। प्रोफेसर पिशेल ने दिखलाया है कि प्राकृत भूत कृदन्त **दिण्ण दिद्‌न** से निकला है और दूसरी ओर इस प्रमाण का अभाव नहीं है कि संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत में भूत कृदन्त प्रत्यय **न** का प्रचलन अधिक है। **न** प्रत्यय वाले ये आनुमानित रूप **कृण-न** > **कृण्ण**; **खाद्-न** > **खान्न**; **दिद् न** > **दिन्न, पिप्-न, बिभ-न, लिन-न** ही है जिनसे प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के भूत कृदंत के **ध(उ)** वाले रूपों का इतिहास जाना जा सकता है। मध्यवर्ती अवस्थाएँ (**क**: स्वार्थे के साथ) ये हैं— **अप०—किण्णउ, खण्णउ, दिण्णउ, पिण्णउ, बिण्हउ, लिण्णउ, (लिण्हउ)**।'[1] इनमें अपभ्रंश का मूर्धन्य द्वित्व **ण** सरलीकृत होकर प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में दन्त्य **न** हो गया, यथा— **कीन्हउ, खान्हउ, दीन्हउ, पीन्हउ, बीन्हउ, लीन्हउ**। इसके पश्चात् **न्** के स्थान पर **द्** श्रुति का समावेश हो जाने से **कीधउ, खाधउ, दीधउ, बीधउ, लीधउ** रूप बनते हैं। **अउ** आधुनिक राजस्थानी में **औ** में रूपान्तरित हो गया है। अतः आधुनिक राजस्थानी में इनके **कीधौ, खाधौ, दीधौ, पीधौ, बीधौ, लीधौ** आदि रूप मिलते हैं। इन छः के अतिरिक्त और कोई रूप आधुनिक राजस्थानी में नहीं मिलता। **लाधौ** (प्राप्त) का सम्बन्ध सं० के **लब्ध** से है। इस **धउ** का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है।

(४) व्यञ्जनान्त धातुओं से निर्मित **त** या **न** वाले मूल संस्कृत कृदन्तों से उत्पन्न भूत कृदन्त—**इन** यौगिक रूप के दोनों तत्वों में से एक धातु का अंतिम व्यञ्जन है और दूसरा संस्कृत प्रत्यय है। अपभ्रंश में इन दोनों का सारूप्य होकर प्राचीन राजस्थानी में सरलीकरण हो गया[2], यथा—

कंठ्य—

सं० **भग्नक**, अप० **भग्गउ**, प्रा० रा० **भागउ**, आ० रा० **भागो**।

---

[1] 'रीधौ' शब्द भी राजस्थानी में मिलता है, किन्तु इसकी गणना इस प्रकार के शब्दों के अंतर्गत नहीं की जा सकती। 'रीझणौ' में 'झ' का परिवर्तन 'ध' में होने से 'रीधणौ' बन गया। 'रीधौ' इसीका भूतकालिक कृदन्त है।

[1] पुरानी राजस्थानी, पृ० १६२।

[2] पुरानी राजस्थानी, एल. पी. तैस्सितोरी, अनु० नामवरसिंह, पृष्ठ १६३।

सं० लग्नक, अप० लग्गउ, प्रा० रा० लागउ, ग्रा० रा० लागौ।

मूर्धन्य—

सं० छुट्, प्रा० छुट्ट, अप० छुट्टउ, प्रा० रा० छूटउ ग्रा० रा० छूटौ।

सं० वृष्टक, अप० विट्ठउ, प्रा० रा० बीठउ, ग्रा० रा० बीठौ।

सं० रुष्टक, अप० रुट्ठउ, प्रा० रा० रूठउ, ग्रा० रा० रूठौ।

दन्त्य—

सं० जितकः, अप० जित्तउ, प्रा० रा० जीतउ, ग्रा० रा० जीतौ।

सं० प्रभूतक[1], अप० पहुत्तउ, प्रा० रा० पहुतउ, पुहुतउ ग्रा० रा० पहुतौ, पो'तौ

सं० लब्धकः, अप० लद्धउ, प्रा० रा० लाधउ, ग्रा० रा० लाधौ।

सं० बद्धकः, अप० बद्धउ, प्रा० रा० बाधउ, ग्रा० रा० बाधौ।

सं० सिद्धकः, अप० सिद्धउ, प्रा० रा० सीधउ, ग्रा० रा० सीधौ।

(५) अलउ, इलउ वाले भूत कृदन्त—इनका प्रयोग बहुत ही थोड़ी मात्रा में मिलता है। वह भी प्राचीन राजस्थानी की पांडुलिपियों तक सीमित है। आधुनिक राजस्थानी में इनके रूप नहीं मिलते। प्राचीन राजस्थानी में कुछ रूप ये हैं—

सुणिल्ला = सुना, धुणिल्ला = धुना हुआ।

समस्त भूत कृदन्त लिंग, वचन एवं कारक के अनुसार विकारग्रस्त होते हैं।

भूत-कृदन्त के प्रयोगों एवं भूतकालिक कृदन्त विशेषण के रूप के बारे में ऊपर व्याख्या की जा चुकी है, फिर भी थोड़े से उदाहरण इस सम्बन्ध में और दिये जाने उचित होंगे, यथा—

(i) कर्तृ प्रयोग—हूं बोलियौ—मैं बोला।
मनैं कुण लायौ—मुझे कौन लाया ?

(ii) कर्मणि प्रयोग—
तारौ बीठौ—तारा दृष्टिगत हुआ।
मैं दांन दीधौ—मैंने दान दिया।

(iii) भावे प्रयोग—
म्हैं हस्यौ—मैं हँसा।

[1] प्र+'भू० = प्राप्तौ'क्तः।

पूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त भी भूतकालिक कृदन्त का विकृत रूप है, यथा—

विनै गयां बोत दिन होय गया।

भूतकालिक कृदन्त के विकारी रूप इस प्रकार हैं—

पु० एक०	अउ	लागउ, वूठउ, विलखउ
	यउ	आयउ
	इयउ	कूटियउ, ऊमाहियउ
पु० बहु० व०	आ	विलक्खा, प्रविठा, सूका
	या	पिया
	इया	भरिया
स्त्री० एक व०	ई	वियापी, मांतो-तांती
बहु०	इयां	सामुहियां, उपराठियां

पूर्वकालिक कृदन्त—

यह अविकृत धातु के रूप में रहता है या धातु के अंत में कर या नै लगा कर बनता है, यथा—

पांच बजीया सोकर उठीयो.........(i)
मार नै रुपिया खोस लिया.........(ii)

संस्कृत में यह कृदन्त त्वा और य लगा कर बनता है। क्रिया के पहले उपसर्ग आने पर ही संस्कृत में य लगता था किन्तु प्राकृत में यह भेद भुला दिया गया और उपसर्ग न रहने पर भी सं० य से सम्बन्ध रखने वाले रूपों का व्यवहार प्रचलित हो गया।

प्राकृत में संस्कृत के त्वा के स्थान पर ऊण का प्रयोग होने लगा। राजस्थानी में यही ऊण आगे जाकर नै हो गया। श्री एस० सी० वूल्लर ने अपनी प्राकृत प्रवेशिका में क्त्वा, ल्यप् प्रत्ययान्त या पूर्वकालिक क्रिया के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है[1]—

शौ० पुच्छिअ, महा० पुच्छिऊण, अमा० पुच्छित्ता या पुच्छिदूण। शौ० माग० कदुअ = कृत्वा, गदुअ = गत्वा।[1] कभी शौ० छंद में—ऊण-दूण प्रत्यय होते हैं। जैसे—पेक्खिऊण।

[1] प्राकृत प्रवेशिका—मू० ले० ए. सी. वूल्लर, अनु० बनारसीदास जैन, पारा १२२, पृष्ठ ६६।

गद्य में इय प्रत्यय ही होता है। माग० में अधिक प्रयोग ऊण प्रत्यय का है जैसे—**हऊण, गन्तूण, हसिऊण, काऊण**।

राजस्थानी में **नै** का सम्बन्ध इसी **ऊण** से है। मराठी में यह **ऊण** अभी तक प्रयुक्त होता है।

प्राचीन राजस्थानी में पूर्वकालिक कृदन्तों के रूप दो प्रकार से बनाये जाते थे –

(i) धातु में—**एवि** प्रत्यय जोड़ कर इसकी उत्पत्ति संस्कृत की सप्तमी **त्वी** से हुई है, यथा—

भणेवि, धरेवि, पणमेवि, जोडेवि।

इन रूपों का राजस्थानी में बहुत ही कम व्यवहार हुआ है, जो कुछ हुआ है वह भी कविता तक सीमित रहा है। इस पर अपभ्रंश काल का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है।

(ii) धातु में **ई** प्रत्यय जोड़ कर, यथा—

नमी, विस्तारी, वउलावी, लेई, जाई।

कई बार कवियों ने पादपूर्ति आदि के लिए **ई** के बाद **अ** का आगम कर दिया है, यथा—

मारीअ, छाँडीअ, वरीअ।

इसके अतिरिक्त गद्य और पद्य दोनों में पूर्वकालिक **ई** को जोरदार बनाने के लिए प्रायः उसके बाद स्वार्थिक **नइ** परसर्ग[1] जोड़ दिया जाता है, यथा—

करी-नइ, बाँची-नइ, थई-नई, भोगवी-नई।

अंत्य **ई** के आगम की उत्पत्ति के विषय में काफी मतभेद हैं। श्री उदयनारायण ने[2] इन **इ** प्रत्ययांत रूपों की उत्पत्ति संस्कृत **वृक्ष्य** से मध्यभारतीय आर्य भाषा में **देक्खिअ** तथा आधुनिक रूप में **देखि** परिवर्तन क्रम से मानी है।

डा० तैस्सितोरी ने इस सम्बन्ध में काफी छान-बीन की है। सं० **य** से अपभ्रंश **इ** से राजस्थानी पूर्वकालिक कृदन्त की **ई** धारणा को उन्होंने भ्रममूलक ठहराया है। उनके अनुसार अपभ्रंश के भावे सप्तमी कृदन्तों से प्राचीन राजस्थानी के **ई** वाले पूर्वकालिक कृदन्त उत्पन्न हुए हैं जिनमें **इ-इ** संकुचित होकर **ई** हो गया जैसा कि **ई** वाले तृतीया रूपों में हुआ है। इस तरह **करि-इ** (**करिउ** का सप्तमी रूप) से पूर्वकालिक कृदन्त **करी** उत्पन्न हुआ है[1]।

आधुनिक राजस्थानी में इन **ई** अन्त्य का प्रयोग कम होता है। प्रायः धातुओं के साथ **कर** या **नै** को जोड़ कर ही पूर्वकालिक कृदन्तों का प्रयोग किया जाता है। जहाँ **ई** का प्रयोग होता है वहाँ **नै** या **कर** का प्रयोग नहीं होता, यथा—

खेत **सींचि** आयौ ......(i)
खेत **सींचनै** आयौ.........(ii)
खेत **सींच नै** आयौ.........(iii)

उपरोक्त उदाहरणों में प्रथम **ई** अन्त्य का उदाहरण है। दूसरे में **नै** का प्रयोग हुआ है एवं तीसरे में **नै** लुप्त है। आधुनिक राजस्थानी में प्रायः दूसरे व तीसरे प्रकार के प्रयोग ही अधिक मिलते हैं। व्यवहार में आते-आते इस **इकार** का लोप होने लगा किन्तु अंत्य **इ** के लुप्त हो जाने से क्रिया के धातु वाले रूप और इस कृदन्त के रूप में कुछ भी भेद नहीं रह गया। अतः ऊपर से **कर, नै** आदि शब्द जोड़े जाने लगे। इस **कर** की उत्पत्ति प्रा० **करिअ** से मानी गई है।

काल—

व्याकरण में काल तीन माने गए हैं—वर्तमान, भूत एवं भविष्य। वर्तमान राजस्थानी की काल-रचना-प्रणाली प्राचीन आर्य भाषा संस्कृत की पद्धति से बहुत दूर चली गई। संस्कृत में धातु के तीन रूप किये जाते थे—**लङ्, लिट्** एवं **लुङ लकार** में, यथा—(स) **अगच्छत्**, (स) **जगाम**, (स) **अगमत्**। किन्तु मध्य काल में धातु के भूतकालिक कृदन्त रूप से ही भूत काल प्रकट किया जाकर ये तीनों रूप छोड़े जाने लगे। इन तीनों रूपों के बदले प्राकृत ने संस्कृत भाषा के कृदन्तीय रूप (**स**) **गतः** अपनाया। यह **गतः** मध्य काल में **गअ, गए** था एवं राजस्थानी में **गयौ** रूप में प्रयुक्त होने लगा। संस्कृत का वर्तमानकालिक कृदन्त रूप भी राजस्थानी में इसी प्रकार आया[2]। सं० **चलन्त** (**चलत्+शतृ** प्रत्यय-**अन्त**) से राजस्थानी में **चालतौ** बना। इन कृदन्तीय रूपों के अतिरिक्त

[1] मिलाओ—प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पिशेल, पारा ५८१।
[2] आधुनिक राजस्थानी में 'नै' इसी 'नइ' परसर्ग से निष्पन्न हुआ प्रतीत होता है।

[1] पुरानी राजस्थानी—डॉ० तैस्सितोरी, अनु० नामवरसिंह, पारा १३१ का कुछ अंश।
[2] मि० उपरोक्त प्रस्तावना का पृष्ठ ६३।

संस्कृत के वर्तमान निर्देशक प्रकार के रूप भी राजस्थानी में आ गये, यथा—

संस्कृत **चलति**, मध्यभाषाकाल **चलइ**, राजस्थानी **चालै**। संस्कृत भाषा से प्राप्त ये तीन रूप (एक तिङन्त एवं दो कृदन्त), हिन्दी धातुओं के विविध रूपों के आधार हैं और इनमें सहायक क्रियाओं के योग से राजस्थानी में काल-रचना-प्रणाली का विकास हुआ है।

निश्चयार्थ, आज्ञार्थ तथा संभावनार्थ इन तीन मुख्य अर्थों तथा व्यापार की सामान्यता, पूर्णता तथा अपूर्णता को ध्यान में रख कर समस्त राजस्थानी कालों की संख्या सोलह मानी जा सकती है, यथा—

१ साधारण अथवा मूलकाल

(१) भूत निश्चयार्थ — **वो चालियौ।**
(२) भविष्य ,, — **वो चालसी।**
(३) वर्तमान संभावनार्थ — **अगर वो चालै।**
(४) भूत संभावनार्थ — **अगर वो चालतौ।**
(५) वर्तमान आज्ञार्थ — **थूं चाल।**
(६) भविष्य आज्ञार्थ — **थे चालजौ।**

२ संयुक्त काल

वर्तमानकालिक कृदन्त+सहायक क्रिया

(७) वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ — **वो चालै है।**
(८) भूत ,, ,, — **वो चालतौ हो।**
(९) भविष्य ,, ,, — **वो चालतौ व्हैला**
(१०) वर्तमान ,, संभावनार्थ — **अगर वो चालतौ व्है**
(११) भूत ,, ,, — **अगर वो चालतौ होतौ।**

३ भूतकालिक कृदन्त+सहायक क्रिया

(१२) वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ — **वो चालियौ है।**
(१३) भूत ,, ,, **वो चालियौ हो।**
(१४) भविष्य ,, ,, **वो चालियौ व्हैला**
(१५) वर्तमान ,, संभावनार्थ **अगर वो चालियौ व्है।**
(१६) भूत ,, ,, **अगर वो चालियौ होतौ।**

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने ऐतिहासिक कालों को तीन वर्गों में विभाजित किया है[१]—

१. संस्कृत कालों के अवशेष काल—इस वर्ग के अंतर्गत वर्तमान संभावनार्थ और आज्ञा आते हैं।

२. संस्कृत कृदन्तों से बने काल—इस वर्ग के अंतर्गत भूत निश्चयार्थ, भूत संभावनार्थ तथा भविष्य आज्ञा आते हैं।

३. आधुनिक संयुक्तकाल—इस श्रेणी में कृदन्त तथा सहायक क्रिया के संयोग से आधुनिक काल में बने समस्त अन्य काल आते हैं।

राजस्थानी काल-रचना की दृष्टि से इन पर अलग-अलग विचार करना समीचीन होगा।

१ संस्कृत कालों के अवशेष[२]

डा० ग्रियर्सन ने 'जर्नल ऑफ दी एशियाटिक सोसाइटी बंगाल' १८९६ में 'रेडिकल एण्ड पार्टिसिपियल टेन्सेज' नामक लेख में इन कालों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। उन्होंने अपने लेख में हिन्दी के वर्तमान संभावनार्थ एवं आज्ञा पर विचार कर तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। राजस्थानी के सम्बंध में भी उसका उपयोग किया जा सकता है—

		संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश	राजस्थानी
एक वचन	(१)	**चलामि**	**चलामि**	**चलउ**	**चालूं**
	(२)	**चलसि**	**चलसि**	**चलहि, चलइ**	**चालै**
	(३)	**चलसि**	**चलइ**	**चलहि, चलइ**	**चालै**
बहुवचन	(१)	**चलामः**	**चलामो**	**चलहुं**	**चालां**
	(२)	**चलथ**	**चलह**	**चलहु**	**चालौ**
	(३)	**चलन्ति**	**चलन्ति**	**चलहिं**	**चालै**

डा० ग्रियर्सन ने जो तुलनात्मक कोष्ठक प्रस्तुत किया है वह विचारणीय है। मध्यम पुरुष के रूपों के विकास में कोई विशेष कठिनाई नहीं मालूम पड़ती किन्तु उत्तम पुरुष के सम्बन्ध में उपरोक्त विवेचना संदिग्ध है। इस पुरुष के एक-वचन के बारे में श्री उदयनारायण तिवारी ने इस प्रकार की

[१] हिन्दी भाषा का इतिहास—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ २६६, पारा ३१६।

[२] ग्रियर्सन, रैडिकल एण्ड पार्टिसिपियल टेन्सेज, जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसायटी ऑवबेंगाल, १८९६, पृ० ३५२, ३५५।

व्युत्पत्ति प्रकट की है[1]—प्रा० भा० आर्य भाषा—**चलामः**, प्रा० **चलामु, चलाउँ**, अप० **चलउँ**, राजस्थानी **चालूं**। यह अधिक संभव है कि **चलामि** के **इकार** के लोप हो जाने और म के अनुस्वार में परिवर्तित हो जाने से यह रूप बना होगा। बीम्स ने भी अपनी ग्रैमर (भाग ३) में इस मत का समर्थन किया है। इसी प्रकार इसके बहुवचन रूप **चालां** की उत्पत्ति भी संस्कृत **चलामि**, म० भा० आ० भा० **चलाइँ** से हुई होगी।

डा० ग्रियर्सन ने आज्ञा के रूपों का भी सम्बन्ध संस्कृत के वर्तमान काल के रूपों से ही माना है किन्तु बीम्स ने अपनी ग्रैमर में इनका सम्बन्ध संस्कृत के आज्ञा-रूपों से मान लिया है। बीम्स का मत भ्रामक मालूम होता है। संस्कृत, प्राकृत एवं राजस्थानी इन तीनों के आज्ञा-रूपों को बराबर देने से यह स्पष्ट हो जायगा—

	सं०	प्रा०	रा०
एक वचन—	**चलानि**	**चलमु**	**चालूं**
	चल	**चलसु, चलाहि**	**चाल**
	चलतु	**चलदु, चलउ**	**चाले**
बहु वचन—	**चलाम**	**चलामो**	**चालां**
	चलत	**चलह, चलध**	**चालो**
	चलंत	**चलंतु**	**चाले**

उपरोक्त कोष्ठक में मध्यम पुरुष एकवचन को छोड़ कर आज्ञार्थ के अन्य राजस्थानी रूप वर्तमान संभावनार्थ के ही समान है। पाली और प्राकृत में भी आज्ञा और संभाव्य भविष्यत् के रूपों का इस तरह का हेलमेल पाया जाता है।

राजस्थानी में भविष्य निश्चयार्थ में ल का संयोग होता है, यथा—

वो जावेला, वो करैला, थूं करैला, मूं करूंला।

राजस्थानी में सामान्य वर्तमान में अन्य भाषाओं के समान ही क्रिया रूपों का व्यवहार होता है। अन्य भाषाओं में (यथा-हिन्दी) सामान्य वर्तमान में लिङ्ग भेद से विकार होता है, यथा—

वह खाती है—स्त्री०
वह खाता है—पु०

किन्तु राजस्थानी में लिङ्ग भेद से कोई विकार नहीं होता। दोनों लिंगों में वह सामान्य रूप में व्यवहृत होते हैं—

	एक व०	बहु० व०	प्राचीन राज०
उत्तम पुरुष—	**खाऊं हूँ, खावूंछूं**	**खावा हां**	एक०व० **खाऊँ, खावउँ**
	खावां हां, खाऊं छूं	**खावां छां**	**बिउ**
	खावूं छूं		बहु०—**वेवां, थ्यां**
मध्यम पुरुष—	**थूं खावै छै**	**थे खावो छो**	**गाजइ, चुट्टइ**
	थूं खावै है	**थे खावो हो**	**खावइ**
अन्य पुरुष—	**(वां) वो खावे है**	**वे खावे है**	**खांवरा, जांणइ**
	(वां) वो खावै छै	**वे खावे छै**	**जायइ, बियइ आदि**

पूर्ण वर्तमान—

	एक व०	बहु व०
उत्तम पु०—	**म्हैं खायो है (छै)**	**म्हे खाया है (छै)**
	म्हैं खावो है (छै)	**म्हे खावा है (छै)**
मध्यम पु०—	**(थूं) तूं खायो है (छै)**	**थे खायो है (छै)**
	(थूं) तूं खावो है (छै)	**थे खावो है (छै)**
अन्य पु०—	**उण खायो है (छै)**	**उणां खायो है (छै)**
	उण खावो है (छै)	**उणां खावो है (छै)**

संभाव्य वर्तमान

	एक व०	बहु व०
उत्तम पु०—	**म्हैं सायत खाऊँ (खांवूं)**	**म्हैं सायत खावां**
मध्यम पु०—	**थूं (तूं) सायत खावै है**	**थे सायत खावो हो (छो)**
अन्य पु०—	**वो सायत खावै है (छै)**	**वे सायत खावै है (छै)**

संदिग्ध वर्तमान—

उत्तम पु०—	**म्हैं खावतो होऊंला**	**म्हे खावता होवांला**
मध्यम पु०—	**थूं (तूं) खावतो होवेला**	**थे खावता होवोला**
अन्य पु०—	**वो खावतो होवैला**	**वे खावता होवैला**

लिङ्ग भेद से संदिग्ध वर्तमान में विकार उत्पन्न होने से **खावतो** का **खावती** हो जाता है। वर्तमानकालिक कृदन्त (जिनकी विवेचना हम पहले कर चुके हैं) एवं सहायक क्रिया के संयोग से संदिग्ध वर्तमान का रूप बनता है।

[1] **हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—डा० उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ ४६६, पारा ३६३।**

हेतु हेतु मद् वर्तमान—

उत्तम पु०— **म्हैं खाऊं तौ, म्हनै भी वौ** **म्हे खावां तौ**
मध्यम पु०— **थूं (तूं) खावै तौ** **थे खावौ तौ**
अन्य पु०— **वौ खावै तौ** **वे खावै तौ**

राजस्थानी साहित्य में इन वर्तमान कालों के रूप विभिन्न रूपों में प्रयुक्त हुए हैं। प्राचीन एवं आधुनिक राजस्थानी की कुछ फुटकर कविता-पंक्तियों के उद्धरण से यह अच्छी तरह ज्ञात हो सकेगा—

१. बाज कुमैत विसासतौ, धीमैं बेग धपाय।
बाभी तोरण बींद तिम, **जोवौ** देवर **जाय** ॥—वी.स. १३४

२. **ईखौ** घर घर ऊतरै, चूड़ा भूखण चीर।
दया न मांनै दोयणां, बाई ! थांरौ बीर ॥—वी.स. १३६

३. मारू-लंक दुइ अंगुळां, वर नितंब उर मंस।
महहपइ मांझ सहेलियां, मानसरोवर हंस ॥—ढो.मा. ४६१

४. पुहपवती लता न परस पमूंके, देतौ अंग आलिंगन दांन।
मतवाळौ पय ठाइ न मंडै, पवन वमन **करतौ** मधुपांन ॥
—वेलि २६२

५. सखी अमीणा कंत रौ, औ इक बडौ सुभाव।
गळियारां ढीलौ **फिरै**, हाकां वागां राव ॥—हा.झा. १७

भूतकाल—

सामान्य भूतकाल और भूतकालिक कृदन्त के रूप प्राय: एक समान ही होते हैं। भूतकालिक कृदन्तों की विवेचना करते समय इस प्रकार के रूपों का उल्लेख कर चुके हैं, अत: सामान्य भूत के रूप में अपनी पुनरावृत्ति करना उचित न होगा। सामान्य भूतकाल में लिंग भेद से विकार होता है, यथा—

	एक वचन		बहुवचन	
	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री
उत्तम पु०—	**म्हैं आयौ**	**म्हैं आई**	**म्हे आया**	**म्हे आई म्हे आयै।**
मध्यम पु०—	**थूं आयौ**	**थूं आई**	**थे आया, थे आई,**	**थे आयै**
अन्य पु०—	**वौ आयौ**	**वा आई**	**वे आया, वे आई,**	**वे आयै**

****अउ** अंत वाले रूपों का प्रयोग राजस्थानी में विशेष प्रकार से होता है। भूतकालिक कृदन्तों के **अउ** अंत वाले रूपों यथा- **कीधौ, खाधौ, दीधौ, पीधौ, लीधौ** की विवेचना पहले की जा चुकी है। सामान्य भूत में भी उन्हीं रूपों का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत कोश में इन रूपों को स्थान दिया गया हैं। साधारणतया क्रियाओं के भूतकाल कोश में नहीं दिये गये तथापि इन रूपों की राजस्थानी विशेषता, जो किसी अन्य भाषा में नहीं मिलती, के कारण ही कोश में इनका उल्लेख किया गया है एवं उनके स्त्री लिंग रूप भी साथ में कोष्ठक में दे दिये गये हैं।

अपूरण भूतकाल—

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम पु०—	**म्हे आवतौ हौ** (तौ, थौ, हंतौ, हुंतौ, हतौ छौ)	**म्हे आवता हा** (ता, था, हंता, हुंता, हता)
मध्यम पु०—	**थू आवतौ हौ** (छौ)	**थे आवता हा** (छा)
अन्य पु०—	**वौ आवतौ हौ** (छौ)	**वे आवं हा**

पूरण भूतकाल—

उत्तम पु०—	**म्हैं आयौ हौ** (छौ, तौ, थौ, हंतौ, हुतौ, हतौ)	**म्हे आया हा** (छा, ता, था, हंता, हुता, हता)
मध्यम पु०—	**थूं आयौ हौ** (छौ, तौ, थौ, हंतौ, हुतौ, हतौ)	**थे आया हा** (छा, ता, था, हंता, हता, हुतौ)
अन्य पु०—	**वौ आयौ हौ** (छौ, तौ, थौ, हंतौ, हुतौ, हतौ)	**वे आया हा** (छा, ता, था, हंता हुता, हतौ)

संभाव्य भूत—

उत्तम पु०—	(सायत) **म्हैं आयौ होऊं(वा)**	**म्हे आया होवां**
मध्यम पु०—	**थूं आयौ होवै**	**थे आया होवौ**
अन्य पु०—	**वौ आयौ होवै**	**वे आया होवै**

संदिग्ध भूत—

	एक व०	बहु व०
उत्तम पु०—	**म्हैं आयौ (आवतौ) होऊलां**	**म्हे आया (आवता) होवाला**
मध्यम पु०—	**थूं आयौ (आवतौ) होवैला**	**थे आया (आवता) होवोला**
अन्य पु०—	**वौ आयौ (आवतौ) होवैला**	**वेआया (आवता) होवैला**

हेतु-हेतु मद् भूत—

उत्तम पु०— **म्हे आवतौ** **म्हे आवता**

म्हैं आयौ (आवतौ) होतौ (होवतौ)	म्हे आया (आवता) होता (होवता)
मध्यम पु०–थूं आवतौ	थे आवता
थूं आयौ (आवतौ) होतौ (होवतौ)	थेआया (आवता) होता (होवता)
अन्य पु०–वौ आवतौ	वे आवता
वौ आयौ (आवतौ) होतौ (होवतौ)	वे आया (आवता) होता (होवता)

भूतकालिक प्रयोगों के कुछ कविता पंक्तियों के उदाहरण–

१. सेल घमोड़ा किम सह्या, किम सहिया गज दंत।
कठिन पयोहर लागतां, कसमसतौ तूं कंत॥
कंत सूं ओळंबौ दियौ इम कांमणी।
तेण घट आज रा केम सहिया अणी॥—हा.झा. १६

२. ऊलंबे सिर हथ्थड़ा, चाहंदी रस-लुब्ध।
विरह-महाघण ऊमटयउ, थाह निहाळइ मुग्ध।—ढो.मा. १५

३. भड़ घोड़ा महंगा थिया, एकण झाट उडंत।
भड़ घोड़ां रा भांमणा, जेथ जुड़ीजै कंत॥—वी.स. २०

४. गंडा मारि वेसारिया नीठि गज्जं।
रुआमाळ फेरै करै झाडि रज्जं॥
तियां चोपड़ै तेल सिंदूर तन्नं।
वयंडा वणावै घणूं स्यांम व्रन्नं॥
नाड़ी भिड़ियां अंग लग्गा निहंगं।
जटा जूट संनाह जे कोड जंग॥
कसे पाखरां चांमरां जूह काळा।
बणे जांणि पाहाड़ हेमंग वाळा॥—वचनिका ५८ (२, ३, ४, ५)

भविष्यत्‌काल–

भविष्यकालिक रूपों में राजस्थानी में **ल** एवं **स** का प्रयोग प्रचुरता के साथ होता है। इन दो वर्णों के संयोग से ही भविष्यत्‌काल के रूप निर्मित होते हैं। संस्कृत के भविष्यत्-कालिक **स्य** प्रत्यय का प्राकृत परिवर्तन **स्स** में होता है। इसी से **करिष्यति** आदि का राजस्थानी रूप **करीस** आदि बनता है।

सामान्य भविष्यत्–

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम पु०–	म्हैं जाऊंला, म्हैं जाऊंलौ, म्हैं जाऊं	म्हे जावांला, म्हे जावां
मध्यम पु०–	थूं जावैला, थूं जावैलौ, थूं जाई	थे जावोला, थे जावौ
अन्य पु०–	वौ जावैला, वौ जावैलौ, वौ जाई	वे जावैला, वे जाई

दूसरा रूप **स** का अथवा रूपान्तरित **ह** का संयोग–

	एक व०	बहु व०
उत्तम पु०–	म्हैं जासूं, हूं जाही, हूं जासी, हूं जाईस, हूं जाईह, म्हैं जास्यूं, हूं जाऊं, हूं जाहूं	म्हे, जासां, म्हे जास्यां, म्हे जाहां, म्हे जास्यां
मध्यम पु०–	थूं जाईह, थूं जाईस, थूं जासी, थूं जाही	थे जाहौ, थे जासौ, थे जास्यौ
अन्य पु०–	औ (वौ) जासी, औ (वौ) जास्यै, औ (वौ) जाहो	औ (वे) जासी, औ (वे) जास्यै, औ (वे) जाही, औ (वे) जाई

इनके अतिरिक्त कुछ लोग **गा, गी, गो** के संयोग से भी इन रूपों का निर्माण करते हैं, किन्तु उनका प्रयोग बहुत ही सीमित मात्रा में होता है।

संभाव्य भविष्यत्‌काल–

उत्तम पु०–

एक व०– **सायत मैं जाऊं।**

बहु व०– **सायत म्हे जावां (जाहां)।**

मध्यम पु० –

एक व०– **सायत थूं जावै।**

बहु व०– **सायत थे आवौ (ओ)।**

अन्य पु०–

एक व०– **सायत वौ जावै।**

बहु व०– **सायत वे जावै (ऐ)**

आज्ञार्थक रूपों में **जा, जाजे, जाए, जावजे** आदि रूप केवल मध्यम पुरुष में होते हैं।

हेतु-हेतु मद भविष्यत्–

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम पु०-	आवैला तो म्हैं जाऊंला	म्है आवांला तो
मध्यम पु०-	थूं आवैला तौ	थे आवोला तौ
अन्य पु०-	वौ आवैला तौ	वे आवैला तौ

भूतकाल एवं भविष्यकाल के समस्त रूपों में लिंग भेद के कारण रूपों में विकार होकर पुल्लिंग रूप **औकारांत** अथवा **आकारांत** से बदल कर **ईकारांत** बन जाते हैं। किन्तु वर्तमान काल में इस प्रकार के रूपों का परिवर्तन साधारणतया नहीं होता।

भविष्यकालिक प्रयोगों के कुछ कविता प्रयोग उदाहरण—

१. केहरि केस भमंग मणि, सरणाई सुहडांह।
सती पयोहर क्रपण धन, पड़सी हाथ मुवांह।।
मुवांहिज पड़ैसी हाथ तो भमंग मणि।
गहड़ सरणाइयां ताहरै गैडसणि।।—हा झा. १२

२. राड़ि म करि इक तरफ रहि, आगै पीछै आव।
जोइ दिली फिरि जाइस्यां, परसि असप्पति पाव।।—वचनिका ४१

३. जेताइ दीसां धरण गगन मां, तेताई उठ जासी।
तीरथ बरतां ग्यांन कथंता, कहा लियां करवत कासी।।
यौ देही रौ गरब ना करणा, माटी मां मिळ जासी।
यौ संसार चहर री बाजी, सांझ पड़्यां उठ जासी।।
कहा भयां थां भगवा पहरयां, घर तज लयां संन्यासी।
जोगी होयां जुगत ना जांणी, उलट जनम फिर आसी।।
—मीरां

४. समळी और निसंक भख, अंबक राह म जाह।
पण धण रौ किम पेखही, नयण बिणट्ठा नाह।।—वी.स. १७

५. कंत भलां घर आविया, पहरीजै मो बेस।
अब धण लाजी चूड़ियां, भव दूजै भेटेस।।—वी.स. ८१

६. नारायण रा नांम सूं, नांक मरत जो लाज।
बूडेला बुध बायरा, जळ बिच छोड जहाज।।—ह.र. ३६

राजस्थानी में प्राय: क्रिया के अंत में **अ, इ, र, एवि, नै, ह** आदि प्रत्ययों के संयोग से पूर्वकालिक क्रियायें भी बनाई जाती हैं, यथा—

पालिअ = पालन कर		**ठांनि** = ठान कर।
जायर = जाकर		**प्रणमेवि** = प्रणाम कर।

मूल धातु के आगे **नै, र, अर, अन, न, इनै, ने, ए, ऐन, कै** प्रत्यय जोड़ कर भी बनते हैं। यह, तथा पूर्वकालिक कृदन्त एक ही हैं जिनका विवेचन हम कृदन्तों के सिलसिले में पहले ही कर चुके हैं।

उत्तरकालिक क्रिया (क्रियार्थक क्रिया) के प्रयोगों में प्रत्यय रहित अवस्था में रूप प्राय: **अकारांत** एवं **आकारांत** ही होते हैं, यथा—

म्हैं पढण आयौ हूं = मैं पढ़ने के लिये आया हूँ।
थूं खेलवा जावै है = तुम खेलने के लिये जाते हो।
वा खेलण आई है = वह खेलने के लिये आई है।
वौ मिळण आयौ है = वह मिलने के लिये आया है।

इनके अतिरिक्त मूल धातु के साथ विभिन्न प्रत्ययों के संयोग से भी उत्तरकालिक क्रिया के रूप बनते हैं। उदाहरण के रूप में **लिख** धातु के उदाहरण से ये रूप पूर्णतया स्पष्ट हो जायेंगे—

धातु— **लिख** = **लिखण, लिखण नै, लिखण नें, लिखण नां, लिखण नूं, लिखबा, लिखवा, लिखण आंटै, लिखवा आंटै, लिखबा आंटै, लिखण वासतै, लिखण सारू, लिखबा बेई, लिखवा बेई, लिखबा तांई, लिखण आंटा।**

उपरोक्त विवेचन से क्रिया के सब रूप पूर्णतया स्पष्ट हो गये होंगे। कोश में इस प्रकार से निर्मित सब रूपों का मूल क्रिया के साथ उल्लेख करना न तो आवश्यक ही है एवं न उचित ही। किसी क्रिया के प्रत्येक रूप एवं उसके निर्माण-नियमों का विवेचन करना व्याकरण का कार्य है। इस प्रस्तावना में मोटे तौर से इनके उल्लेख का केवल इतना ही अर्थ है कि पाठक कोश में मूल क्रिया देख कर उसके साथ ही दिये गये अन्य क्रिया रूपों को हृदयंगम कर सके एवं आवश्यकतानुसार उनका उपयोग कर सके। किसी क्रिया के विकारी रूप को ढूंढ़ने वाला पाठक निराश ही होगा जबकि इस भूमिका की टिप्पणियों द्वारा उसे यह ज्ञात हो जायेगा कि यह विकृत रूप किस क्रिया का है। मूल क्रिया ज्ञात होने पर वह कोश में उसे आसानी से ढूंढ़ सकेगा। मूल क्रियाओं के साथ उससे संबंधित मुख्य-मुख्य रूप प्रस्तुत कोश में दे दिये गये हैं। जो क्रियायें बहुत कम प्रयोग में आती हैं अथवा उससे बनने वाले रूप कुछ अटपटे हैं या कम व्यवहृत होते हैं, ऐसी मूल क्रिया के साथ अन्य रूप नहीं दिये गये। आवश्यकता होने पर पाठक

स्वयं व्याकरण के नियमानुसार उनके रूपों का निर्माण कर उपयोग करने को स्वतंत्र हैं। कुछ प्रचलित क्रियाओं के साथ विभिन्न रूप दिये गये हैं। कृदन्तों, सहायक क्रियाओं आदि का समावेश उनमें किया गया है। मूल क्रिया एवं उसका सकर्मक रूप, यदि कोई हो तो, एवं भूतकालिक कृदन्त विशेषण मूल स्थान पर दिये गये हैं। एक उदाहरण इस संबंध में पर्याप्त होगा-

करणौ, करबौ-क्रि०स०—**कार्य को संपादित करना।**
करणहार, हारौ (**हारी**), **करणियौ**—वि०।
करवाणौ. **करवाबौ**, **करवावणौ**, **करवावबौ**।
कराणौ. **कराबौ**, **करावणौ**, **करावबौ**—प्रे०रू०।
करिओड़ौ, **करियोड़ौ**, **करघोड़ौ**—भू०का०कृ०।
करीजणौ, **करीजबौ**—कर्म वा०।

इनमें सकर्मक रूप एवं भूतकालिक कृदन्त को इस प्रकार मूल संबंधित क्रिया के साथ दिये जाने के अतिरिक्त उन्हें अलग से भी अपने क्रमिक स्थान पर प्रस्तुत किया गया है। संबंधित क्रिया के साथ भूतकालिक कृदन्त के तीनों रूपों का उल्लेख है, यथा- **करिओड़ौ, करियोड़ौ**, **करघोड़ौ**; किन्तु अलग से क्रमशः दिये जाने पर उनका केवल **करियोड़ौ** रूप ही दिया गया है। शेष दो रूप संबंधित क्रिया के साथ ही दे देना पर्याप्त समझा गया है। प्रत्येक भूतकालिक कृदन्त के संबंध में यही परिपाटी प्रस्तुत कोश में अपनाई गई है। अलग से दिये गये भूतकालिक कृदन्त के साथ उनका स्त्रीलिंग रूप भी दे दिया गया है। पूर्वी राजस्थानी में क्रियान्त **णौ** के स्थान पर **बौ** का प्रयोग किया जाता है अतः प्रत्येक क्रिया एवं उसका रूप, जिनके अंत में **णौ** है, वह दूसरे **बौ** अंत के रूप में भी हर जगह प्रस्तुत कर दिया गया है। वस्तुतः दोनों एक ही हैं किन्तु क्षेत्र-भेद के प्रयोग से इन दोनों को स्थान देना आवश्यक समझा गया। हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि कुछ क्रियायें ऐसी हैं जिनका प्रयोग अकर्मक एवं सकर्मक दोनों रूपों में होता है, यथा—**लड़णौ** = मरना (अ०क्रि०), **लणड़ौ** = हांकना (स०क्रि०) इस प्रकार की क्रियाओं का अगर अकर्मक अर्थ पहले दिया गया है तो व्याकरण के कॉलम में क्रि०अ०स० अर्थात् पहले क्रिया अकर्मक लिखा गया है एवं सकर्मक बाद में लिखा गया है। किन्तु अगर सकर्मक अर्थ पहले लिखा गया है तो व्यवस्था इसके विपरीत होगी एवं व्याकरण के खाने में क्रि०स०अ० लिखा गया है। भूतकालिक कृदन्त विशेषण के अतिरिक्त अन्य कृदन्तीय रूप मूल क्रिया के साथ क्रिया रूपों में नहीं दिये गये हैं। इस प्रस्तावना के अध्ययन से पाठक स्वयं उनका रूप-निर्माण कर प्रयोग कर सकते हैं।

संज्ञा एवं विशेषण शब्दों के साथ कुछ के क्रिया प्रयोग भी दिये गये हैं जिससे पाठकों को उनके साथ प्रयुक्त होने वाली क्रियाओं अथवा सहायक क्रियाओं का ज्ञान हो जायगा।

क्रिया के इस प्रकरण के समाप्त होने से पहले सहायक क्रियाओं, द्वैत क्रिया-पदों, संयुक्त क्रिया-पदों आदि का उल्लेख करना विषयान्तर न होगा।

सहायक क्रियाओं की रचना प्रमुखतः संस्कृत धातु **भू** (प्राचीन राजस्थानी **होवउं**, आधुनिक राजस्थानी **होणौ**) और **अस** (प्राचीन राजस्थानी **अछवउं**) से हुई है। *निषेधवाचक रूप **नथी** ही अस धातु से बना है। सामान्य वर्तमानकाल में प्रायः **होवै** का (प्राचीन राजस्थानी में **हुइ** तथा काव्यगत रूप **होइ, होय** का) प्रयोग होता है जो अपभ्रंश के **होइ**, प्रा० **हवइ**[1] सं० **भवति** से निःसृत हुआ है। आधुनिक राजस्थानी में **होवै** के रूप भेद **हुवइ** एवं **व्है** भी प्रचलित है। तैस्सितोरी के मतानुसार ये दोनों रूप **व** श्रुति के समावेश से बने हैं।[2] बहुवचन के लिये प्राचीन राजस्थानी में **हुइं, हुइ, होइं, होइ, हुवइ** आदि रूप भी मिलते हैं। आधुनिक राजस्थानी में एक वचन में उत्तम पुरुष के लिये **हूँ**, मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष के लिये (तू या वह) **है** का प्रयोग है। सं०—**अस्म, अस्मि** से मध्यकालीन भाषाओं में **अम्हि** तथा वर्तमानकाल में **हूँ** हो गया। **हैं** रूप संस्कृत के **अस्ति**, प्रा०—**अत्थि, अहि** से निकला है। प्राचीन राजस्थानी में **हुतउं** सामान्य रूप से व्यवहृत होता था। यह सं०—**भवन्तकः**, अप०—**होन्तउ** से स्पष्टतः निकला है।

भूतकाल में प्रायः **हौ, छौ, थौ** का प्रयोग (स्त्री लिंग रूप में **ही, छी, थी**) एक वचन में एवं **हा, छै, छा, था** का प्रयोग बहुवचन में किया जाता है। **हौ** की व्युत्पत्ति इस प्रकार मानी

[1] प्राकृत भाषाओं का व्याकरण—ले० **रिचार्ड पिशेल**—**अनु० डॉ०** हेमचंद्र जोशी, पारा ४७५।

[2] पुरानी राजस्थानी, पृष्ठ १३९।

जा सकती है, सं० **असन्त-अहन्त, हंतौ-हतौ त** का लोप होकर **हौ**। प्राचीन राजस्थानी में सामान्य रूप **हूउ**, (अप० **हूअउ**, सं० **भूतक**), **हूअउ, हूयउ**, हऊउ और **हुयउ** मिलते हैं। मूल स्वर **ऊ** प्रायः ह्रस्व हो जाता है जबकि उसके बाद आने वाला पदान्त स्वर दीर्घ हो जैसे–**हुई** (स्त्री०) **हुआ** (पु० बहु०) इत्यादि।

निषेधवाचक रूप **नथी** का प्रयोग भी राजस्थानी में पाया जाता है। यह सं० **नास्ति**, प्रा० **णत्थि**, अप० **नाथि** से निकल **नथी** हो गया है। इसका प्रयोग सहायक एवं मुख्य दोनों अर्थों में होता है। लिंग एव वचन भेद से इसमें विकार उत्पन्न नहीं होता। प्राकृत में **अत्थि** तथा **णत्थि** का प्रयोग भी इसी रूप में एकवचन और बहुवचन सभी पुरुषों के साथ होता है। राजस्थानी कविताओं में **नथी** का प्रयोग प्रचुरता के साथ हुआ है, यथा–

> **कंत** लखीजै दोहि कुळ, **नथी** फिरंती छांह।
> **मुड़ियां मिळसी गींदवो,** वळै न धण री बांह॥
>
> —वी. स.

जब **नथी** का प्रयोग सहायक क्रिया के कार्य के लिये होता है तो प्राचीन राजस्थानी में वर्तमानकाल की रचना करने के लिये यह वर्तमान कृदन्तों के साथ जुड़ता है, यथा–

नथी कही तां = नहीं कहा जाता।

अथवा, फिर परोक्ष भूत की रचना के लिये भूतकृदन्त के साथ जुड़ता है, यथा–

हउँ बाहरइ नथी नीसरी = मैं बाहर नहीं निकली।

वर्तमानकाल में सहायक क्रिया के लिये पूर्वी राजस्थानी में प्रायः **छै** का प्रयोग किया जाता है। लिंग भेद के कारण इस काल के एकवचन के अंतर्गत इसमें विकार नहीं होता, केवल उत्तम पुरुष के एकवचन में इसका रूप **छूं** (**म्हैं आऊं छूं**) पाया जाता है अन्यथा यह विकार रहित ही रहता है, यथा–

एक वचन– **तूं आवै छै** = तू आता है।
वो आवै छै = वह आता है।
स्त्री०– **तू आवै छै** = तू आती है।
वा आवै छै = वह आती है।

बहुवचन में अन्य पुरुष एवं मध्यम पुरुष के प्रयोग में **छै** तथा **छौ** का प्रयोग भी होता है, यथा–

बहुवचन पु०–
थे आवौ छौ = तुम आते हो।
वे आवै छै = वे आते हैं।
स्त्री०–**थां आवौ** छौ = तुम आती हो।
वे आवै छै = वे आती हैं।

उत्तम पुरुष के **बहुवचन** में इसका रूप **छां** होता है, यथा– **म्हे आवां छां**।

प्रायः मुख्य क्रिया के रूप के साथ ही इस सहायक क्रिया **छै** का रूप निर्धारित होता है। ऐकारान्त होने पर **छै**, ईकारांत होने पर **छी**, आकारांत में **छां** तथा औकारांत में **छौ** रूप ग्रहण कर लेता है।

प्राचीन राजस्थानी में भी इसके सामान्य वर्तमान में प्रायः इस प्रकार के रूप पाये जाते हैं—

	उत्तम पु०	**मध्यम पु०**	**अन्य**
एकवचन–	**छउं, छूं**	**अछइ, छइ**	**अछइ, छइ**
बहुवचन–	**छूं**	**अछउ, छउ**	**अछइ, छइ, छि**

छै का भविष्यकालीन रूप नहीं होता। संस्कृत के **भू** द्वारा सब कालों के रूप बनते हैं किन्तु **अस** का भविष्यत् रूप नहीं होता। **छै** की उत्पत्ति **अस्** धातु से ही हुई है, अतः **छै** का भी भविष्यकालीन रूप नहीं होता। पाणिनि का सूत्र श्नसोर-ल्लोपः (६।४।१११) यह **होने** अर्थ वाले **अस्** धातु के अकार का लोप कर डालता है। इसी आधार पर **सत्** का **छतौ, छै, छौ, छा** रूप अपभ्रष्ट होकर दिखाई पड़ते हैं। भविष्यत् में तो पाणिनि **अस्** को **भू** कर **भविष्यति** बनाता है, जो भाषा में **होगा** के स्थान पर प्रयुक्त होता है।[1]

डॉ० तैस्सितोरी ने **छै** या **छूं** संबंधी ये सब रूप **अछवउं** क्रिया से माने हैं। पिशैल ने अपने प्राकृत व्याकरण में[2] इसकी उत्पत्ति सं० **ऋच्छति** एवं अप० **अच्छइ** से मानी है। **अछइ** का प्रयोग एवं **अ** के लोप से **छइ** का प्रयोग इसीसे निःसृत हुआ है। प्राचीन राजस्थानी में वर्तमान कृदन्त **छतउ** सं०

[1] यह स्व० पंडित नित्यानन्द शास्त्री का मत है।

[2] पिशैल का प्राकृत व्याकरण, पारा ५७, ४८०

ऋच्छन्तकः, अप०-**अच्छन्तउ** से निकल कर बना है।[1] डॉ० तैस्सितोरी का यह मत[2] हमें उचित नहीं मालूम देता।

संभाव्य अतीत में सहायक क्रियाओं के रूप इस प्रकार मिलते हैं—

	उत्तम पु०	मध्यम पु०	अन्य पु०
एकवचन-	**मैं होतौ**	**तू होतौ**	**वो होतौ**
बहुवचन-	**आपां (या म्हां) होता**	**थे होता**	**वे होता**

होतौ रूप प्राकृत के **होन्तो** का रूप भेद है। प्राकृत का **होन्तो** सं० के **भवन्** से निकला है। **होता**, **होतौ** का ही विकारी रूप है।[3]

भविष्यत्काल में मध्यमपुरुष में **होइसि**, **हुएसि**, **हुइसिइ**, **होसि** आदि रूप, अप०-**होएस्सहि** या **होस्सहि** एवं संस्कृत के भविष्यसि से निकले हैं। अन्य पुरुष के एकवचन में **हुसइ**, **हुसिइ**, **हुसि**, **हुस्यइं**, **होसिइ**, **होस्यइं**, **हसिइ** आदि रूप मिलते हैं। इनकी उत्पत्ति अपभ्रंश **होसइ** (सिद्ध हेम० ४।३८८) एवं **भोष्यति** (भविष्यति) से मानी गई है।[4]

संभाव्य भविष्यत् के रूप इस प्रकार होते हैं-

	उत्तम पु०	मध्यम पु०	अन्य पु०
एकवचन	**मैं होऊंला**	**तू होवेला**	**वो होवेला (होलां)**
बहुवचन	**म्हां होवालां (होलां)**	**थे होवोला**	**वे होवेला (होलां)**

द्वैत क्रिया पद—

कार्य की निरन्तरता, महत्व एवं पुनः करने के भाव जिनमें तात्कालिक किये जाने वाले कार्य का भाव निहित रहता है, प्रकट करने के लिये प्रायः कृदन्तीय रूपों को द्वित्व कर दिया जाता है, यथा-

(i) चील **उडती-उडती** नीचे पड़गी।

(ii) **भागतां-भागतां** ठोकर लागगी।

(iii) का'णी **सुणतां-सुणतां** नींद आयगी।

इसके अतिरिक्त पूर्वकालिक क्रिया के द्वित्व में **नै** परसर्ग को बाद में जोड़ देते हैं, यथा-

(i) **नाच-नाच नै** राजी कियौ।

(ii) **पढ़-पढ़ नै** हुसियार होइ गियौ।

पाणिनि ने भी 'नित्यवीप्सयोः' ८।१।४ (वीप्सा) के अर्थ में द्वैत क्रियापदों के बारे में **भुक्त्वा-भुक्त्वा** आदि के रूप में विधान किया है। इस दृष्टि से इनके प्रयोग की परिपाटी अति प्राचीन मानी जा सकती है।

कई बार समानार्थ में अथवा इसी के समान विभिन्न अर्थ में कुछ धातु पदों को युग्म रूपों में प्रयुक्त करते हैं, यथा-

(i) वौ चार आखर **लिख-पढ़** नै रौब गांठै।

(ii) **देख-सुण** नै कांम करणौ चाहिजै।

(iii) **कूट-पीस** नै कप्पड़छांण कर लियौ।

इस प्रकार के **प्रयोग संभवतया प्राचीन आर्य-भाषाओं में नहीं प्राप्त होते**। ये बाद की आधुनिक उपज मालूम होते हैं।

अन्य आधुनिक भाषाओं के समान आधुनिक राजस्थानी में भी पारस्परिक क्रिया-विनिमय प्रकट करने के लिये, क्रिया विशेष्य पदों के 'द्विरुक्त' रूप प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार के युग्म पदों में पहला पद **आकारांत** तथा दूसरा पद **ईकारांत** कर दिया जाता है, यथा—

(i) टाबरां नै घणी **मारा-मारी** मत करजौ।

(ii) **देखा-देखी** टाबर बिगड़ै।

उपरोक्त द्वैत क्रिया पदों में एक ही क्रिया की पुनरावृत्ति हुई है किन्तु कभी-कभी अन्य समानार्थक क्रियाओं का भी युग्म बना कर प्रयोग कर दिया जाता है—

छीना-झपटी नी करणी चाहिजै।

संयुक्त क्रिया पद (Compound verbs)—

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में जो काम प्रत्यय आदि लगा कर लिया जाता था वह काम अब बहुत कुछ संयुक्त क्रियाओं से होता है। अन्य आधुनिक भाषाओं के समान राजस्थानी भाषा में भी संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। प्राचीन भाषाओं, जैसे ग्रीक, लैटिन, संस्कृत आदि में क्रिया पदों में उपसर्ग लगा कर नवीन भावों का प्रकाशन होता था। योरोप की कई आधुनिक भाषाओं में

[1] पुरानी राजस्थानी—मू०ले० डॉ० एल. पी. तैस्सितोरी, अनु० नामवर सिंह, पारा ११४

[2] श्री N. B. Divatia ने भी तैस्सितोरी का यह मत नहीं माना है। देखिये Gujarati Language and Literature, Vol. 1, Page 248 to 264

[3] हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—डॉ० उदयनारायण तिवारी, पारा ४०५

[4] पुरानी राजस्थानी, मू. ले. डॉ. एल. पी. तैस्सितोरी, अनु० नामवर-सिंह, पारा ११४

कालान्तर में इसका अभाव होता गया । आधुनिक भारतीय भाषाओं में इसकी क्षतिपूर्ति संयुक्त क्रियाओं के प्रयोग से की गई । इन संयुक्त क्रिया पदों का रूप अत्यन्त आधुनिक होने के कारण इनका ऐतिहासिक रूप से विवेचन करना सम्भव नहीं है । द्रविड़ भाषाओं में भी संयुक्त क्रियाओं का बहुत प्रयोग होता है किन्तु आधुनिक उत्तर भारत की भाषाओं में उसके प्रभाव के कारण ही संयुक्त क्रिया पदों का प्रयोग होने लगा हो, यह कहना संदिग्ध है । केलॉग ने अपनी ग्रैमर में संयुक्त क्रियाओं का विस्तार से वर्गीकरण किया है। आधुनिक भाषाओं में क्रिया पदों के साथ संज्ञा, क्रियामूलक-विशेष्य अथवा कृदन्तीय पदों के संयोग के कारण एक विशेष प्रकार का मुहावरेदार प्रयोग बन जाता है । इन दो संयुक्त पदों में से क्रिया पद वास्तव में सहायक रूप में ही होता है तथा वह संज्ञा एवं क्रियामूलक विशेषण या विशेष्य (Participle तथा verble Nouns) की विशेषता द्योतित करता है ।

संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग प्राचीन काल से ही चला आ रहा है, ऐसा डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने उदाहरण देकर सिद्ध करने का प्रयत्न[1] किया है ।

केलॉग ने संयुक्त क्रियाओं को पाँच वर्गों में बाँटा है[2]— (१) पूर्वकालिक कृदन्त पद-युक्त; (२) आकारान्त क्रिया-मूलक विशेष्य पद-युक्त; (३) असमापिका पद-युक्त; (४) वर्तमानकालिक तथा भूतकालिक कृदन्तयुक्त; (५) विशेष्य अथवा विशेषण पद-युक्त ।

१. पूर्वकालिक कृदन्त पद-युक्त—

(i) भृशार्थक (Intensives), यथा— **फेंक देणौ, खा जाणौ, पी लेणौ, गिर पड़णौ** आदि ।

(ii) शक्यताबोधक (Potentials)— ये पूर्वकालिक कृदंत के साथ **सक(णौ)** के संयोग से बनते हैं, यथा— **पढ़ सकणौ, देख सकणौ** आदि ।

(iii) पूर्णताबोधक (Completives)— ये पूर्वकालिक कृदंत रूप एवं **चुक(णौ)** क्रिया के साथ निष्पन्न होते हैं, यथा— **खा चुकणौ, कर चुकणौ** आदि ।

२. आकारान्त क्रिया-मूलक विशेष्य पदयुक्त—

(i) पौन: पुन्यार्थक (Frequentatives)— क्रियामूलक विशेष्य पद जो आकारान्त हो उसके साथ **कर(णौ)** क्रिया के संयोग से बनते हैं, यथा— **जाया करणौ, खाया करणौ, सोया करणौ** आदि ।

(ii) इच्छार्थक (Desiderative)— ये **चाह(णौ)** धातु के संयोग से बनते हैं, यथा— **वो बोलणौ चावै । वा लड़णौ चावै, वौ पढ़णौ चावै ।**[3]

३. असमापिका पद युक्त—

(i) आरम्भिकता-बोधक (Inceptives)— यह असमापिका पद के विकारी रूप के साथ **लग(णौ)** धातु के संयोग से बनते हैं, यथा— **खावण लागणौ, पढ़ण लागणौ** आदि ।

(ii) अनुमतिबोधक (Permissive)— यह असमापिका पद के विकारी रूप के साथ **दे (णौ)** क्रिया लगा कर बनते हैं, यथा— **जावण देणौ, सोवण देणौ, पढ़ण देणौ** आदि ।

(iii) सामर्थ्यबोधक (Acquisitives)— **पा(णौ)** या **पा(वणौ)** को असमापिका-पद के विकारी रूप के साथ जोड़ कर बनाया जाता है, यथा— **करण पावै** आदि ।

४. वर्तमानकालिक तथा भूतकालिक कृदन्तयुक्त—

(i) निरन्तरता-बोधक (Continuatives)— यह वर्तमान-कालिक कृदन्त के साथ **रै(णौ)** के जोड़ने से बनता है, यथा— **करतो रैवै, पढ़तौ रैवै, सोवतौ रैवै** आदि । भूतकालिक कृदंत के संयोग से भी इनका निर्माण होता है, यथा— **दूध पीया करौ**।

(ii) प्रगतिबोधक (Progressives)— वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ **जा(णौ)** क्रिया के योग से यह रूप बनता है यथा— **पढ़तौ जाणौ, खेलतौ जाणौ, नदी उतरतौ जावै** आदि।

(iii) गत्यर्थक (Statical)— यह वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ गतिबोधक क्रिया के जोड़ने से बनता है, यथा— **वो गावतौ चालै, रोवतौ दोड़ै** आदि ।

(५) विशेष्य अथवा विशेषण-पद-युक्त—वाक्य विशेष

[1] बैंगाली लेंग्वेज—डा० चाटुर्ज्या, पारा ७७८

[2] हिन्दी ग्रामर—कैलॉग, पृ० २५८

[3] पूर्वी राजस्थान में ये रूप निम्न प्रकार से भी बनते हैं—वो बोलणी चावै, वा लड़णी चावै, वो पढ़णी चावै ।

या विशेषण पदों के साथ **कर(णौ), हो(णौ), ले(णौ), दे(णौ)** आदि धातुओं के जोड़ने से बनते हैं, यथा– **काम करणौ, मोज करणी, सुख देणौ** आदि।

क्रिया सम्बन्धी इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले कुछ ऐसी विशेषताओं की ओर इंगित कर देना चाहते हैं जो प्रायः किसी अन्य भाषा में नहीं मिलतीं।

राजस्थानी में कुछ क्रियायें केवल भाववाच्य ही होती हैं। उनका अकर्मक एवं सकर्मक रूप नहीं बनता। वे अपने भाववाच्य रूप में ही प्रयुक्त होती हैं, यथा—

१. **तुहींजणौ** (सं० **तुम्यते**) पशुओं में मादा का गर्भ-स्राव होना।

२. **गड़ीजणौ**—भैंस का गर्भवती होना।

३. **आंबाईजणौ, आंबीजणौ**– १. अधिक शारीरिक कार्य करने या अधिक चलने से शरीर का ऐंठा जाना।
२. नींबू, आम, अमचूर आदि खट्टे पदार्थों के खाने से दांतों का खट्टा होना।

४. **फोगराईजणौ, फोगरीजणौ**– अधिक पानी के प्रभाव से फूल जाना, अथवा कालर नामक कीड़ा लगने से मिट्टी, पत्थर आदि की बनी दीवार व वस्तुओं पर से पपड़ी उतरना।

५. **कालरीजणौ**

६. **फाताईजणौ, फातीजणौ**– व्याकुल होना, घबड़ाना।

राजस्थानी के ये प्रयोग बड़े स्वाभाविक एवं स्वतंत्र हैं। सम्भवतया इस प्रकार के सूक्ष्म भाव स्पष्ट करने वाले प्रयोग अन्य भाषाओं में कम मिलते हैं। प्रस्तुत कोश में इस प्रकार के भाववाच्य रूपों को मूल क्रिया के समान ही स्थान दे दिया गया है एवं पाठकों को असुविधा से बचाने के लिये इनको प्रायः अकर्मक रूप मान लेने की प्रवृत्ति अपनाई गई है। किन्तु वास्तव में ये भाववाच्य रूप ही हैं, इनके सकर्मक एवं अकर्मक रूपों का निर्माण होता ही नहीं। भूतकालिक कृदन्त विशेषण रूप अवश्य ही इनसे निर्मित होते हैं यथा–**तुहीजियोड़ौ, आंबाईजियोड़ौ, आंबीजियोड़ौ, फोगरीजियोड़ौ, कालरीजियोड़ौ, फातीजियोड़ौ** आदि। इनके स्त्री लिंग प्रयोग भी शब्द के साथ ही उपस्थित कर दिये गये हैं किन्तु ये इन भाववाच्य रूपों के ही भूतकालिक कृदन्त विशेषण हैं। रूप-भेद के अनुसार इनके कई भेद होते हैं, यथा—

कुईजणौ
कुयीजणौ } (सं० **कुथ्-पूती-भावे**)–सड़ना, खमीर उठना।
कुहीजणौ

इस प्रकार के रूपभेद वाले प्रयोगों में प्रमुख रूप से प्रयुक्त होने वाले रूप को मुख्य स्थान देकर बाकी को उसी के साथ रूप भेद में दे दिया गया है।

राजस्थानी भाषा की कुछ क्रियायें उसी रूप में संज्ञा अर्थ में भी प्रयुक्त होती हैं। इस प्रकार के प्रयोग में अर्थ बदल जाता है किन्तु मूल भाव के अनुसार दोनों में थोड़ा बहुत सादृश्य रहता है, यथा–

खुरचणौ– क्रि०स० कुरेदना, खुरचना।
खुरचणौ– सं०पु० कुरेदने या खुरचने का लोहे या पीतल का बना एक उपकरण।
कसणौ– क्रि० स० बजबूत बांधना, कसौटी पर कसना आदि।
कसणौ– सं० पु० रगड़ कर परीक्षा करने का काला पत्थर, कंचुकी बांधने की डोरी, कवच का हुक आदि।

उपरोक्त उदाहरणों के उन क्रियाओं के रूप स्पष्ट हैं जो संज्ञा अर्थों में भी उसी रूप में प्रयुक्त होती हैं। संज्ञा के अतिरिक्त कुछ क्रियायें विशेषण अर्थों में भी प्रयुक्त होती हैं, यथा–

भुसणौ– क्रि० अ०–भौंकना।
भुसणौ– वि०–भौंकने वाला।
व्हेणौ– क्रि०–अ० चलना।
व्हेणौ – वि०–चलने में दक्ष, चलने वाला।

विशेषण अर्थों में कोई क्रिया उसी समय प्रयुक्त होती है जब क्रिया के करने में दक्षता या अधिकता का भाव निहित हो, जैसे—

कुत्तौ **भुसै** है— कुत्ता भौंकता है।
कुत्तौ **भुसणौ** है— यह कुत्ता (बहुत) भौंकने वाला है।

इस प्रकार के विशेषण प्रयोगों में लिङ्ग एवं वचन-भेद से शब्दों में विकार होता है।

कुछ क्रियायें तीनों अर्थों में (यथा- क्रिया, संज्ञा एवं विशेषण) प्रयुक्त होती हैं। इस प्रकार का एक उदाहरण यहां पर्याप्त होगा।

१. सुबै बिदांम रौ सीरौ **खाणौ** जोइजै—प्रातःकाल बिदाम का हलुवा खाना चाहिये।

२. **खाणौ** पुरस नै बेगौ लावौ—भोजन शीघ्र परोस कर लाइये।

३. औ कुत्तौ **खाणौ** है—यह कुत्ता काटने वाला है अथवा इस कुत्ते के काटने का स्वभाव है।

उपरोक्त इन तीनों उदाहरणों में **खाणौ** शब्द अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। पहले उदाहरणों में क्रिया, दूसरे में संज्ञा एवं तीसरे में विशेषण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

क्षेत्र भेद के अनुसार पूर्वी राजस्थान आदि स्थानों पर क्रियान्त में **णौ** के स्थान पर **बौ** का प्रचलन है यथा- **करबौ, दौड़बौ, खाबौ** आदि। सभी क्रियाओं के साथ क्रियान्त में **णौ** रूपों के साथ **बौ** रूप भी दिये गये हैं। ये केवल क्षेत्र भेद का प्रभाव है, किन्तु इस प्रकार के प्रयोगों से अर्थ-विस्तार संकुचित हो गया है। **णौ** क्रियान्त वाली कुछ क्रियाओं का संज्ञा या विशेषण अथवा दोनों रूपों में प्रयुक्त होना सम्भव है परन्तु **बौ** क्रियान्त वाली क्रियायें सामान्यतया इस प्रकार के विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त नहीं होतीं। ऊपर के उदाहरणों में **खुरचणौ** एवं **कसणौ** क्रिया एवं संज्ञा दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु **खुरचबौ** एवं **कसबौ** केवल क्रिया अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं। संज्ञा अर्थ में इस प्रकार के रूप नहीं मिलते। यही प्रभाव क्रियाओं के विशेषण प्रयोगों पर भी पड़ता है। **खाणौ** शब्द कभी-कभी संज्ञा एवं विशेषण अर्थों में भी प्रयुक्त हो जाता है, किन्तु **खाबौ** का प्रयोग केवल क्रिया अर्थ में ही होता है। कभी-कभी इसे विशेषण रूप में प्रयुक्त कर देते हैं यथा- **कुत्तौ बडौ खाबौ है**—कुत्ता काटने वाला है आदि। किन्तु यह **णौ** क्रियान्त वाले रूपों के प्रभाव के कारण है। सामान्यतया **बौ** क्रियान्त वाले रूपों का प्रयोग क्रिया अर्थ के अतिरिक्त नहीं किया जाता, अतः प्रस्तुत कोश में जहां क्रिया शब्दों में **णौ** एवं **बौ** क्रियान्त वाले दोनों रूप दे दिये गये हैं वहां इन क्रियाओं से बनने वाले संज्ञा एवं विशेषण अर्थ वाले शब्दों के केवल **णौ** अंत वाले रूप ही दिये गये हैं। **बौ** क्रियांत वाले कुछ शब्द दोनों अर्थों (यथा क्रिया व संज्ञा) में प्रयुक्त होते हैं, यथा—

करबौ- क्रि० स० (सं० कृ) करना।

करबौ- सं० पु० (सं० करम्भ) दले हुए अनाज को पका कर छाछ के मिश्रण से बनाया जाने वाला एक प्रकार का पेय पदार्थ।

ऐसे प्रयोगों के मूल तत्सम आधार अलग-अलग होने के कारण हमारी उपरोक्त संभावनाओं में नहीं आते। इस प्रकार का प्रयोग संयोगिक है। क्रिया एवं संज्ञा अर्थों में कोई सामञ्जस्य नहीं। अतः यह मान लिया गया है कि **बौ** क्रियांत वाले शब्द केवल क्रिया सम्बन्धी अर्थ ही देते हैं जब कि **णौ** क्रियान्त वाले कुछ शब्द क्रिया के अतिरिक्त संज्ञा एवं विशेषण अर्थ भी देते हैं।

कुछ क्रियाओं का प्रचलन आरम्भ के स्वर को ह्रस्व से दीर्घ करके भी उसी अर्थ में हो गया है। इस प्रचलन से उनके अर्थ में कोई भिन्नता उत्पन्न नहीं होती, यथा—

अजमाणौ, आजमाणौ ।	**जगणौ, जागणौ** ।
रखणौ, राखणौ ।	**थकणौ, थाकणौ** ।
पकणौ, पाकणौ ।	**चखणौ, चाखणौ** ।
भगणौ, भागणौ ।	आदि।

किन्तु यह परिवर्तन प्रायः उन्हीं क्रियाओं में सम्भव है जिनके आरम्भ में दोनों स्वर ह्रस्व हों। अगर प्रथम ह्रस्व है एवं उसके बाद पड़ने वाला वर्ण अ स्वर के अतिरिक्त किसी अन्य स्वर से प्रभावित है तो ऐसा परिवर्तन प्रायः सम्भव नहीं है। अपवादस्वरूप कुछ ऐसे शब्द भी मिल जाते हैं जिनमें प्रथम स्वर के बाद पड़ने वाला दूसरा स्वर ह्रस्व से दीर्घ होता है, यथा—

उमहणौ, उमाहणौ

किन्तु इनमें भी प्रथम दोनों वर्णों में अ स्वर होना आवश्यक है। दूसरे स्वर से प्रभावित वर्णों में परिवर्तन इस प्रकार नहीं होता।

ध्वनि के सम्बन्ध में विवेचना करते समय हम लिख आए हैं कि क्रोधादि मनोविकारों के कारण हम शब्दों को प्रायः

बिगाड़ कर बोलते हैं। क्रियाओं में भी इन मनोविकारों का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। कुछ क्रियाओं के प्रयोगों से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

(i) रोटी **गिटणी**

(ii) लाडू **घसकाणो** आदि

रोटी प्रायः स्वभाव से ही भूख मिटाने के लिये खाई जाती है। उससे खाने वाले की आत्मा भी सन्तुष्ट होती है। बलात् खाने या खिलाने से खाने वाले के आत्म-सन्तोष से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अतः प्रायः क्रोधादि में इनका प्रयोग बिगड़ कर असम्बन्धित क्रियाओं के साथ जुड़ जाता है। दवाई की गोली के लिये ही सामान्यतया **गिटणो** का प्रयोग होता है किन्तु क्रोध के प्रभाव से प्रायः लोग रोटी **गिटलै** भी कह देते हैं। इस प्रकार के प्रयोग करने वाले व्यक्ति के मनोभावों से प्रभावित होते हैं। (**अठी आ**–इधर आ) को क्रोध में लोग **अठी बल** (इधर जल) भी उच्चारित कर देते हैं। ऐसे प्रयोगों को बोलने वाले व्यक्ति के मनोविकारों के आधार पर ही देखना चाहिये।

क्रिया विशेषण—

प्राचीन एवं मध्यकालीन आर्य भाषाओं, यथा-संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि में नाम तथा सर्वनाम शब्दों के परे तद्धित के कतिपय प्रत्यय लगाने से अव्यय बन जाते हैं। प्राचीन भाषाओं के अंतर्गत प्राप्त यह विशेषता आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में भी पूर्णतया सुरक्षित है। आधुनिक क्रिया विशेषणों की उत्पत्ति प्रायः संस्कृत संज्ञाओं अथवा सर्वनामों से हुई है। अर्थ की दृष्टि से ये कालवाचक, स्थानवाचक, दिशावाचक तथा रीतिवाचक इन चार मुख्य वर्गों में विभक्त किये जाते हैं। डा० तैस्सितोरी ने[1] इन्हें करणमूलक, अधिकरणमूलक, विशेषणमूलक एवं अव्ययमूलक नाम से विभाजित किया है। वे करणमूलक के अंतर्गत रीति का बोध कराने वाले क्रिया-विशेषणों को एवं अधिकरणमूलक के अंतर्गत काल एवं स्थान के बोधक क्रिया विशेषणों को रखते हैं। उनके लिखे अनुसार विशेषणमूलक क्रिया विशेषण से परिमाण या मात्रा का अथवा रीति की भावना में संशोधन का बोध होता है और अव्यय-मूलक विशेषण (एक निश्चित उद्गम स्रोत न होने के कारण) कोई एक निश्चित अर्थ व्यक्त नहीं करते। निषेधवाचक क्रिया विशेषणों की गणना भी उन्होंने अव्ययमूलक विशेषण के अंतर्गत ही की है।

[1] पुरानी राजस्थानी—अनु० नामवरसिंह, पारा ९९

१ सर्वनाममूलक क्रिया विशेषण

(i) कालवाचक—इसका प्रयोग प्रायः **ब** के संयोग से होता है, यथा – **अब, जब, तब, कब** आदि। राजस्थानी में इनका प्रयोग **जद, तद, कद** आदि रूपों में **ब** लगा कर भी किया जाता है। **ब** वाले रूपों की उत्पत्ति डा० चटर्जी ने वैदिक **एव, एवा**, सं० **एवं**, प्रा० **एव्वं, एव्वं** से तथा बीम्स ने अपनी व्याकरण में सं० **वेला** से मानी है। राजस्थानी के **द** रूपों वाले शब्दों **जद, तद, कद** आदि की उत्पत्ति संस्कृत के **यदा, तदा, कदा** आदि से स्पष्ट ही है।

ही के संयोग से (अब+ही) **अभी** (तब+ही) **कभी** (कब+ही) **कभी**, (कद+ही) **कदी** आदि रूप भी प्रचलित हो गये हैं।

(ii) स्थानकवाचक—इनके रूप राजस्थानी में **थ** या **ठ** के संयोग से बनते हैं, यथा—**अठै, बठै, तठै, कठै** आदि या **ऐथ, ओथ, केथ** आदि। इनका सम्बन्ध संस्कृत के **अत्र, यत्र, तत्र, कुत्र** आदि से जोड़ा जा सकता है।

(iii) रीतिवाचक—इनके रूप **यूं**, के संयोग से बनते हैं यथा—**ज्यूं, त्यूं, क्यूं** आदि। इन रूपों की उत्पत्ति अत्यन्त संदिग्ध है। डा० चटर्जी ने इनकी उत्पत्ति अप० के **जेंव, तेंव केंव, जेवं, तेवं, केवं** आदि से बताई है तथा केलॉग ने अपनी व्याकरण में इस प्रकार के शब्दों की उत्पत्ति सं० **इत्थं, कथं** आदि से मानी है। बीम्स ने इनका सम्बन्ध सं० **मत्** प्रा० **मन्तो** से मानी है, यद्यपि संस्कृत भाषा में इस प्रत्यय से बने हुए रूप अर्थ की दृष्टि से परिमाणवाचक होते हैं। इस प्रकार इन शब्दों की व्युत्पत्ति का विवेचन अत्यन्त संदिग्ध है।

(२) संज्ञामूलक, क्रियामूलक एवं अन्य क्रिया विशेषण—

(i) कालवाचक—इसके अंतर्गत **आज, काल, परसूं, तरसूं, सुबै, तड़कै, तुरत, झट, अचांणक** आदि शब्दों के प्रयोग आते हैं। **आज** सं० के **अद्य** से, **काल** सं० **कल्य**, अप० **कल्ले** से,

परसूं सं० **परश्व,** = आने वाला दूसरा दिन (तैस्सितोरी के अनुसार सं० **परमर्के**) से, **तरसों** सं० **त्रि+श्वस्** से, **तुरत** सं० **त्वरितम्** से, **झट** सं० **झटति** से निकले हैं। प्राचीन राजस्थानी में इन रूपों का प्रयोग प्रायः **ई** के संयोग से होता था, यथा– **काल्हि, कालि, दीहइ, परमइँ, प्रभातइ, रातइ, विहांणइ, सांझइ** आदि।

(ii) स्थानवाचक—इसमें **भीतर, बाहर, आगे, पीछे** आदि रूपों का प्रयोग होता है। **भीतर** का संबंध सं० **अभ्यंतर, बाहिर** का सं० **बहिः, आगे** का सं० **अग्रके, पीछे** का सं० **पश्चके** या **पश्चिले** से जोड़ा जाता है। राजस्थानी में **मांयनै** भी भीतर के लिये प्रयुक्त होता है। प्राचीन राजस्थानी में **आगइ, आगलि, पाछइ, पाछलि** आदि रूपों का खूब प्रचलन था। तैस्सितोरी ने इन स्थानवाचक एवं कालवाचक क्रिया-विशेषणों को अधिकरण मूलक क्रिया-विशेषण कहा है।[1]

(iii) रीतिवाचक—तैस्सितोरी ने इनको करणमूलक[2] कहा है। उसके अनुसार इनका उपयोग प्रायः रीतिवाचक क्रिया-विशेषण के रूप में होता है जैसा कि संस्कृत और प्राकृत में भी होता है। प्राचीन राजस्थानी में निम्नलिखित प्रकार के रूप प्रचलित थे--

आडइँ = आर-पार, **कस्टइँ** = कठिनाई से, **जोडिलइ** = संयुक्त रूप से, **दोहिलइँ** = कठिनाई से, **निश्चइँ** (सं० **निश्चयेन** = निश्चयपूर्वक, **प्राहइँ** = **प्राहिइँ** (सं० **प्रायकेण,** अप० **प्राअएँ**) = प्रायः, **मउडइँ** (सं० **मृदुटकेन,** अप० **मउडएँ**) = देर से, **रूडइ** (सं० **रूपटकेन,** अप० **रूअडएँ**) = भली-भांति, **वेगि** (स० **वेगेन**) = वेगपूर्वक, **संक्षेपइकरी** (सं० **संक्षेपेण**) = संक्षेप में, **सहजि** (सं० **सहजेन**) – स्वभावतः आदि। तैस्सितोरी ने विशेषणमूलक क्रिया विशेषणों का एक और भेद माना है। इनका निर्माण एकदम नपुंसक लिङ्ग एकवचन विशेषणों के द्वारा किया जाता है। यह विधि आधुनिक सभी भारतीय भाषाओं में प्रचलित है तथापि गुजराती, मराठी, सिंधी भाषाओं में ही इसका स्वरूप स्पष्ट रूप से लक्षित होता है क्योंकि नपुंसक लिङ्ग इन्हीं भाषाओं में सुरक्षित रह गया है।

[1] पुरानी राजस्थानी, पारा ६६

[2] –वही–

क्रिया विशेषण की यही शाखा आधुनिक राजस्थानी में सब से अधिक विवादास्पद हो गई है। सब वैय्याकरणों में क्रिया-विशेषण अव्यय के शब्दों को विकाररहित माना है तथा वे सदा सब प्रकार के प्रयोगों में एक रूप में ही रहते हैं किन्तु राजस्थानी में इन विशेषणमूलक क्रिया विशेषणों के शब्दों में विकार उत्पन्न हो जाता है, यथा–

हिन्दी भाषा–पु० एक व०– वह **धीमे-धीमे** चलता है।
स्त्री० एक व०– वह **धीमे-धीमे** चलती है।
पु० बहु० व०– वे **धीमे-धीमे** चलते हैं।

राजस्थानी भाषा–पु० एक व०– वो **धीमे-धीमे** चालै।
स्त्री० एक व०– वा **धीमी-धीमी** चालै।
पु० बहु व०– वे **धीमा-धीमा** चालै।

इस प्रकार वचन एवं लिङ्ग के प्रभाव से इनमें विकार उत्पन्न हो जाता है। एक और उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी—

पु० एकवचन– वो **बेगौ** आयौ।
स्त्री० एकवचन– वा **बेगी** आई।
पु० बहुवचन– वे **बेगा** आया।
स्त्री० बहुवचन– वे **बेगी** आई।

राजस्थानी की इसी विशेषता के कारण इस शाखा के अंतर्गत आने वाले क्रिया विशेषण रूपों में लिङ्ग-भेद एवं वचन-भेद से विकार होना मान लिया गया है। यद्यपि उद्देश्य-विधेय के अनुसार ये एक प्रकार के विशेषण ही हैं तथापि इनका प्रयोग क्रिया विशेषण के तौर-तरीकों पर हो गया। प्राचीन राजस्थानी में प्रायः ऐसा विकार नहीं पाया जाता, यथा–

घणुँ = घना। उ०—घणुँ दौडउ या सोचइ मनि घणऊँ।

थोडुँ = थोड़ा।

पहिलूँ = पहले।

जोई नीचुँ जगणी-नइ-कहइ।

जिनमें ये नपुंसक एकवचन में रहते हुए सभी कारकों में अपरिवर्तित रहते हैं उनको तो तैस्सितोरी ने विशेषणात्मक क्रिया विशेषण एवं जो किसी समानाधिकरण विशेषण की

तरह लिंग वचन और कारक के अनुसार रूप-रचना करते हैं उनको क्रियाविशेषणात्मक विशेषण नाम से लिखा है।[1]

सर्वनाम के अंतर्गत स्थानवाचक क्रिया-विशेषणों के रूप में **उरौ** = इधर, यहाँ; **परौ** = उधर, वहाँ; दूर आदि के प्रयोग लिंग एवं वचन के प्रभाव से विकारग्रस्त होते हैं, यथा–

उरौ = इधर (पास) आ—पु० ।

उरी आव = इधर (पास) आ—स्त्री० ।

उरा आवौ = इधर (पास) आइये ।—पु० बहु व० ।

ऐसे प्रयोग प्राय: अन्य भाषाओं में नहीं मिलते। अत: अन्य भाषा-वैय्याकरण इन क्रियाविशेषणों के विकारग्रस्त भेदों पर नाक-भौं सिकोड़ें तो कोई आश्चर्य न होगा। प्रस्तुत कोश में इस विकारग्रस्त श्रेणी में आने वाले क्रियाविशेषणों में लिंग भेद देकर ही उपस्थित किया गया है। अत: ऐसे रूपों पर आपत्ति करने वाले महानुभावों को राजस्थानी की इस विशेषता को ध्यान में रखना चाहिये।

अव्ययमूलक क्रियाविशेषण—इस श्रेणी के अंतर्गत वे क्रियाविशेषण आते हैं जो किसी सिद्ध शब्द से उत्पन्न नहीं हुए हैं, यथा–

अजी = अब तक ।

अतिहिं = अत्यन्त ।

नहीं, नइँ ।

मत =

अवधारण अथवा जोर देने के लिये शब्दों के अंत में जोड़े जाने वाले निपात **इ, जि (ज) ही** हैं। **इ** संस्कृत **अपि** से एवं **जि (ज)** संस्कृत **एव** से उत्पन्न हुआ है, यथा–

सघलउ-इ वंसु = संपूर्ण ही वंश ।

आज-इ लगइ = आज तक ।

हूँ करेसि-जि = मैं करूँगा ही ।

सात-ज = सात ही ।

एक-इ-जि = एक ही ।

अगर शब्द के साथ कोई परसर्ग होता है तो यह निपात शब्द एवं परसर्ग के बीच में आ जाता है, यथा–

गुरुआ-इ न = गुरुओं को भी ।

ही निपात का प्रयोग प्राय: प्राचीन राजस्थानी में कम हुआ किन्तु आधुनिक राजस्थानी में इसका प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है—

ईणि हि-जि-कारणि = इसी कारण में से ।

तिम-ही-ज = इसी प्रकार ।

परिमाणवाचक क्रिया विशेषणों के अन्तर्गत **ज्यादा, बोत, कम, कुल** आदि प्रयुक्त होते हैं।

जब सर्वनाम-सम्बन्धी अव्यय को दुहरा दिया है तथा अन्य अव्ययों से संयुक्त कर दिया जाता है तो प्राय: उनका अर्थ परिवर्तित होता है, यथा– **जब-जब** के साथ **तब-तब** और **जठै-जठै** के साथ **तठै-तठै** आदि।

अनिश्चितता का भाव उत्पन्न करने के लिए संबंधवाची अव्यय का अनिश्चयवाची अव्यय के साथ संयोग कर दिया जाता है, यथा—**जद-कदी, जठै-कठी** आदि भी कभी अनिश्चितता प्रकट करने के लिए एक दो अव्ययों के मध्य **न** का प्रयोग कर दिया जाता है, यथा—**कदी न कदी, कठै न कठै** आदि।

निम्नलिखित प्रकार के पदों का भी प्रयोग प्राय: राजस्थानी में अव्यय की भांति होता है, यथा—**नाच कर, मिल कर, जाण कर** आदि। पूर्वकालिक क्रिया से सम्बन्धित होने के कारण ये पूर्वकालिक क्रियाविशेषण कहे जा सकते हैं। इनका विवेचन हम पीछे कर चुके हैं। ऐसे पदों को कोश में स्थान देना उचित नहीं समझा गया क्योंकि इस प्रकार के पदों का निर्माण व्याकरण के निश्चित नियमों के आधार पर होता है। इस सम्बन्ध में सम्बन्धित व्याकरण को जानकारी आवश्यक है। अत: ऐसे रूपों को छोड़ कर शेष समस्त क्रियाविशेषणों के रूपों को उनके रूप भेदों सहित प्रस्तुत कोश में स्थान दिया गया है। जहां उनमें लिङ्ग-भेद का विकार भी दिया गया है वहां पाठकों को विशेषणात्मक क्रियाविशेषणों के संबंध में दी गई टिप्पणी को ध्यान में रखना चाहिए।

[1] पुरानी राजस्थानी, पारा ७८ और १०२ ।

राजस्थानी साहित्य का परिचय



आर्यावर्त के विशाल भू-खंड में राजस्थान का विशिष्ठ ऐतिहासिक महत्त्व है। शताब्दियों से यहाँ के लोगों ने भारतीय संस्कृति, कला और साहित्य को अक्षुण्ण योग-दान दिया है जिसके महत्त्व पर आने वाली पीढ़ियाँ भी गर्व का अनुभव करती रहेंगी। यहाँ का बहुत प्राचीन इतिहास अभी अंधकार में है, पर जहाँ तक हमारे इतिहासकार पहुँचे हैं उनके लिखे इतिहासों को देखने से पता चलता है कि यहाँ के लोगों ने अपनी स्वतंत्रता और संस्कृति की रक्षा के लिए जो निरन्तर संघर्ष, तप और त्याग का जीवन व्यतीत किया है, उसके दर्शन अन्यथा दुर्लभ हैं।

इसी संघर्षमय जीवन में उन्होंने अपने सांस्कृतिक आदर्शों की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग ही नहीं किया, उस संस्कृति को अपनी कलात्मक रचनाओं के माध्यम से अक्षुण्ण बना देने के लिए भी बहुत कड़ी साधना, मौलिक सूझ-बूझ और अमरता को वरण करने की अमिट लालसा का परिचय दिया है।

राजस्थान का प्राचीन कलात्मक वैभव सर्व-विख्यात है। यहाँ के विशाल एवं सुदृढ़ दुर्ग, जैन व अजैन मंदिर, भव्य राजप्रासाद, सती-स्मारक, समाधि-स्थान आदि वास्तु कला के अद्‌भुत नमूने हैं। इन राजप्रासादों और दुर्गों की बुलंदी आज भी उस समय के जीवन की बुलंदगी का संदेश दे रही है। इसी तरह यहाँ की मूर्ति कला में उस काल के कलाकारों की सौन्दर्यानुभूति ही सुरक्षित नहीं है. शताब्दियों से चली आ रही धार्मिक निष्ठा को कला के माध्यम से व्यंजित कर भारतीय संस्कृति की एकता और अखंडता का भी परिचय दिया है।

चित्रकला में राजपूत कलम के अगणित चित्र विभिन्न शैलियों में चित्रित किये गए। मुगल शैली से प्रभावित होने पर भी वैष्णव धर्म-भावना को राधा कृष्ण की लीलाओं के रूप में चित्रित कर नैसर्गिक प्रेम भावना को मौलिक अभिव्यक्ति देने में यहाँ के कलाकारों ने कोई कसर नहीं रखी। जीवन के ऐश्वर्य, विलास और प्रणय को चित्रित करने वाले कलाकारों ने विभिन्न रंगों और आकृतियों के माध्यम से जो भावानुभूति की बारीकियों का चित्रण किया है, उसकी विलक्षणता और सौन्दर्यानुभूति को भावोद्रेक से रंजित कर देने वाली क्षमता को कौन अस्वीकार कर सकता है? इन अमूल्य चित्रों के पीछे उन्हें चित्रित करने वाले कलाकारों की प्रेरणा और उनके आश्रयदाताओं की परिष्कृत रुचि हमारे कल्पना लोक को आज भी अभिभूत कर देती है।

संगीत के क्षेत्र में भी यह प्रांत पिछड़ा हुआ नहीं रहा। यहाँ के शासकों ने संगीत को प्रश्रय तो दिया ही परन्तु कई एक ने स्वयं संगीत की साधना कर इस विषय के ग्रंथों का निर्माण भी किया। राणा कुंभा का संगीतराज इसका प्रमाण है। राजस्थान के मध्ययुगीन भक्त कवियों ने विभिन्न राग-रागिनियों में हजारों पदों की रचना कर संगीत के माध्यम से ही उन्हें अपने-अपने इष्ट देवता को अर्पण किया है। मुगल सल्तनत का पतन हो जाने पर तो बहुत से प्रसिद्ध गायकों व नृत्यकारों को राजस्थान के शासकों ने ही प्रश्रय दिया था। यहाँ की मांड रागिनी (?) और अनेकानेक धुनें (तानें) आज भी यहाँ के लोकगीतों में सुरक्षित हैं। संगीत की विरल साधना के प्रतीक स्वरूप राग-रागिनियों के कितने ही सुन्दर व चित्ताकर्षक चित्रों का निर्माण यहाँ हुआ है।

विभिन्न कलाओं को प्रश्रय देने वाली इस भूमि का प्राचीन साहित्यिक गौरव भी किसी प्रान्तीय भाषा के साहित्यिक गौरव से कम नहीं है। जिस परिमाण में यहाँ साहित्य सृजन हुआ है उसका सतांश भी अभी प्रकाश में नहीं आया। अनगिनत हस्तलिखित ग्रन्थों में वह अमूल्य सामग्री ज्ञात-अज्ञात स्थानों पर बिखरी पड़ी है। काव्य, दर्शन, ज्योतिष, शालिहोत्र, संगीत, वेदांत, दर्शन, वैद्यक, गणित, शकुन आदि से सम्बन्ध रखने वाले मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त कितने ही संस्कृत, प्राकृत, फारसी आदि के प्राचीन ग्रन्थों के अनुवाद व टीकाओं का निर्माण यहाँ हुआ है।

इतना ही नहीं, यहाँ के शासकों ने प्राचीन संस्कृत साहित्य की रक्षा की ओर भी समय-समय पर ध्यान दिया है।

औरंगजेब के समय में जब धार्मिक असहिष्णुता के कारण संस्कृत के धार्मिक ग्रन्थों को क्षति पहुँचाई जाने लगी तो बीकानेर के तत्कालीन महाराजा अनूपसिंहजी ने कितने ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथों को सुदूर दक्षिण से मंगवा कर अपने यहाँ सुरक्षित रखा जो आज भी अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर में विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त अन्य शासकों ने भी अपने संग्रहालयों में संग्रहीत कर कितने ही ग्रन्थों को कालकवलित होने से बचाया।[1] जैन यतियों ने अपने सतत् प्रयत्नों से बहुत बड़ी साहित्यिक निधि को मंदिरों और उपाश्रयों आदि में सुरक्षित रखा। कितने ही ठाकुरों तथा जागीरदारों ने भी इस दिशा में महत्व-पूर्ण कार्य किया। ये सभी प्रयत्न यहाँ के लोगों के प्रगाढ़ साहित्य-प्रेम के परिचायक हैं।

जिस सामाजिक ऊहापोह और राजनैतिक तथा साम्प्र-दायिक उथल-पुथल के बीच यहाँ साहित्य सृजन हुआ है, इतिहास इसका साक्षी है। काल-क्रम की पृष्ठ-भूमि के साथ आगे हम उसका उल्लेख यथास्थान करेंगे।

सम्पूर्ण प्राचीन राजस्थानी साहित्य को ४ मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है। इस दृष्टि से संक्षेप में यहाँ कुछ विचार उनकी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए किया जा रहा है।

(१) जैन साहित्य
(२) चारण साहित्य[2]
(३) भक्ति साहित्य
(४) लोक साहित्य

जैन साहित्य अधिकांश में जैन यतियों और उनके अनु-गामी श्रावकों द्वारा लिखा गया है। उसमें उनके धार्मिक नियमों और आदर्शों का कई प्रकार से गद्य तथा पद्य में वर्णन है। यह साहित्य बहुत बड़े परिमाण में लिखा गया है और प्रारम्भिक राजस्थानी साहित्य की तो वह बड़ी धरोहर है। जैन साधुओं ने धार्मिक साहित्य का ही निर्माण किया है पर अन्य अच्छे साहित्य के संग्रह और सुरक्षा में संकीर्णता नहीं बरती। इस ओर हम पहले ही संकेत कर आये है। अतः उनकी राजस्थानी साहित्य को बहुत बड़ी देन है पर उनका यह साहित्य जैन धर्म से सम्बन्धित होने के कारण जैन धर्माव-लंबियों तक ही सीमित रहा। वह समूचे समाज की वस्तु न बन सका। जो मध्ययुगीन सन्तों की धार्मिक वाणियों तथा तुलसी-कृत रामायण आदि का समूचे उत्तरी भारत में प्रचार-प्रसार हुआ और सूर, तुलसी, मीरा, कबीर, दादू आदि के पद जन-जन के कंठहार बन गए वैसी स्थिति जैन साहित्य की नहीं बन सकी। वह साहित्य जन-जन का साहित्य न बन सका और न समाज के बहुत बड़े क्षेत्र को ही उतना प्रभावित कर सका।

चारण शैली में साहित्य का निर्माण चारणों के अतिरिक्त राजपूत, मोतीसर, भोजक ब्राह्मण, ओसवाल आदि अनेक जाति के लोगों ने किया है पर चारणों की इसे विशेष देन है। चारण जाति का शासक वर्ग के साथ विशेष सम्बन्ध रहा है। वे मध्य-कालीन राजपूत संस्कृति के प्रेरक स्रोत रहे हैं। संघर्ष के युग में उन्होंने अपने आश्रयदाताओं को कभी अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं होने दिया। उन्होंने तत्कालीन शासकों को ऐश्वर्य और विलासी जीवन से दूर ही नहीं रखा अपितु निरन्तर संघर्ष कर देश और धर्म की रक्षा करने के लिए प्राणोत्सर्ग कर देने की प्रेरणा देना ही अपने जीवन का ध्येय माना है। मौका पड़ने पर वे स्वयं रण भूमि में उपस्थित होकर वीरों को उत्सा-हित करने तथा स्वयं युद्ध करने में पीछे नहीं रहे है। आज उनके द्वारा किए गए युद्ध-वर्णन भले ही अतिशयोक्तिपूर्ण लगें पर यवनों द्वारा आतंकित समाज की सुरक्षा के लिए उन कवियों ने अपने योद्धाओं के समक्ष शत्रुओं की सेना रूपी कुंवरी (कुमारी) कन्या को वरण करने की मधुर कल्पना रख कर मोत के विकराल स्वरूप को जो तुच्छ रूप दिया है वह तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार अत्यन्त आवश्यक था। मनुष्य सभी कुछ आदर्श जीवन के लिए करता है और उस आदर्श की रक्षा के लिए सहज ही मृत्यु का आलिंगन करने वाले व्यक्ति के यशोगान में कौनसी उपमा अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकती है? इसका अनुभव सहानुभूतिपूर्वक इस साहित्य का अध्ययन करने पर ही हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उनका साहित्य अत्यन्त प्राणवान और जीवन्त साहित्य है। उसमें जीवन की जो ऊर्जस्विता दृष्टिगोचर होती है वह

[1] सरस्वती भंडार उदयपुर, पोथीखाना जयपुर, अलवर का राजकीय संग्रह, जैसलमेर जैन संग्रहालय, जोधपुर का पुस्तक प्रकाश आदि।

[2] चारण-साहित्य से तात्पर्य यहां चारण शैली में लिखे गए साहित्य से है।

अन्यथा दुर्लभ है। इस प्रकार के साहित्य की रचना करने वाले कवियों की शासक वर्ग और समाज में बड़ी प्रतिष्ठा थी। शासक उन्हें जागीर देकर सम्मानित करते थे। राज दरबार में उन्हें उचित आसन मिलता था और समाज उन्हें आदर की दृष्टि से देखता था। शासकों पर कई बार जब कि आपत्ति आ जाती तो वे उनकी पूरी सहायता करते थे।[1] उन्हें दी गई जागीर 'सांसण' के नाम से पुकारी जाती थी। क्योंकि उस जागीर पर पूरा अधिकार चारण का ही होता था। यहां तक कि राज्यद्रोह करने वाला व्यक्ति भी 'सांसण' में शरण चला जाता तो उसे कोई दखल नहीं देता था। चारणों को इतना सम्मान मिलता था, इसके उपरांत भी वे शासकों को खरी-खरी सुनाने में भी कभी नहीं चूकते थे। युद्ध में वीर गति प्राप्त करने वाले की जहां वे प्रशंसा करते थे वहां युद्ध से भाग जाने वाले की निंदा करने में भी कसर नहीं रखते। सच तो यह है कि वे वीरता के उपासक थे और किसी भी वीर के वीरतापूर्वक कार्य की प्रशंसा किए बिना उनका मन नहीं मानता था, चाहे वह व्यक्ति उनका परिचित हो अथवा नहीं। यही कारण है कि उनके द्वारा रचा गया अधिकांश साहित्य वीररसात्मक है और उस समय में उस साहित्य का बड़ा ही सामाजिक महत्त्व रहा है।

राजस्थान में भक्ति साहित्य भी बहुत बड़े परिमाण में लिखा गया है। संत कवियों की वाणियां आज भी समाज में प्रचलित हैं। उत्तरी भारत की संत परम्परा से प्रभावित होने पर भी यहां की संत परम्परा में तथा भक्ति साहित्य में एक विशेषता यह है कि उनका झुकाव अधिकतया निर्गुण भक्ति की ओर रहा है। यहां के कवियों ने यहां की भाषा में नवीन उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं आदि के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति को एक नवीन रूप दिया है जो बड़ा ही प्रभावोत्पादक और सरस है।

किसी भी देश या प्रान्त का लोक साहित्य वहां के जन-जीवन से निसृत स्वाभाविक भावोद्रेक को व्यक्त करता है। राजस्थान की वीर प्रसविनी भूमि में जहां हजारों कवियों ने अपनी काव्य-कला के माध्यम से राजस्थानी साहित्य की सेवा की है वहां कितने ही अज्ञात जन कवियों ने अपनी सरल और सरस वाणी में अपने लौकिक अनुभवों को जन साधारण की निधि बना दिया है। लोक-गीत, पवाड़े, लोक कथायें, कहावतें मुहावरे आदि राजस्थानी लोक साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। लोक साहित्य जितने बड़े परिमाण में यहां सुरक्षित है उतना शायद भारत की किसी अन्य भाषा में उपलब्ध नहीं होगा। राजस्थानी लोक गीतों की विविधता और सरसता तो सर्व-विख्यात है। राजस्थान की संस्कृति को समझने के लिए भी उनसे बढ़ कर अन्य कोई उपयोगी साधन शायद ही सुलभ होगा। क्योंकि यहां के जन-जीवन की सर्वांगीण निश्छल अभिव्यक्ति इसी साहित्य में सुरक्षित मिलती है। युगों-युगों से यह साहित्य जनता का मनोरंजन ही नहीं करता रहा है परन्तु इसने उन्हें व्यावहारिक जीवन दर्शन भी दिया है। राजस्थानी साहित्य को प्राणवान बनाने का और भाषा को नवीन रूप प्रदान करने का बहुमूल्य कार्य भी अज्ञात रूप से इसी साहित्य ने किया है।

इतने विशाल और विविधतापूर्ण राजस्थानी साहित्य की महानता को विद्वान सही रूप में तभी समझ पायेंगे जब वह सम्पूर्ण साहित्य सुलभ हो जायेगा। कोश-निर्माण के दौरान में मुझे इस साहित्य की कितनी ही हस्तलिखित प्रतियाँ देखने का और उनकी खूबियों पर विचार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतः इस साहित्य के महत्व पर विचार करते समय कई बार प्रसिद्ध अंग्रजी आलोचक मेथ्यू अरनॉल्ड की पंक्तियां याद आ जाती हैं जिनमें वह इंगलैण्ड की महानता उसके बहुत बड़े साम्राज्यवाद अथवा सैनिक शक्ति और असाधारण राजनीतिज्ञों की वजह से नहीं पर अंग्रेजी साहित्य की महानता की वजह से मानता है।[1] क्या राजस्थानी का इतना महान् साहित्य हमारे देश की महानता का प्रतीक नहीं है? सभी भारतीय भाषाओं का साहित्य अपने-अपने ढंग का निराला है पर राजस्थानी साहित्य की कुछ अपनी ऐसी विशेषतायें हैं जो अन्य भाषाओं के साहित्य में देखने में नहीं आतीं। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी मुक्त हृदय से इस विशेषता को स्वीकार

[1] राव चूंडा अपने पिता वीरम की मृत्यु के उपरांत बचपन में आल्हा बारहठ के घर पर ही बड़ा हुआ था।

[1] 'And by nothing is England so glorious as by her poetry. Mathew Arnold. Preface to the 'Poems of Wordsworth'.

किया है—'भक्ति रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी न किसी कोटि का पाया जाता है। राधाकृष्ण को लेकर हर एक प्रांत ने मंद व उच्च कोटि का साहित्य पैदा किया है, लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है उसकी जोड़ का साहित्य नहीं मिलता।'[१] राजस्थानी साहित्य के महत्त्व के सम्बन्ध में इससे अधिक और क्या कहा जाय ?

राजस्थान का यह प्राचीन साहित्य डिंगल तथा पिंगल दो भाषाओं में प्राप्त होता है। कई विद्वानों ने पिंगल को डिंगल की ही एक शैली मान लेने की भूल की है। पर वास्तव में पिंगल डिंगल से भिन्न भाषा है जो ब्रज का ही एक स्वरूप है। कविराजा बांकीदास[२] एवं सूर्यमल्ल मीसण ने भी इन दोनों भाषाओं का अस्तित्व स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में डॉ. एल. पी. तैस्सितोरी ने एक स्थान पर लिखा है—

'It is well known that there are two languages used by the bards of Rajputana in their poetical compositions and they are called 'Dingala' and 'Pingala'. These are not mere 'styles' of poetry as held by Mahamahopadhyaya Har Prasad Shastri, but two distinct languages, the former being the local Bhasha of Rajputana and the letter Braja Bhasha, more or less vitiated under the influence of the former.'[3]

इसके अतिरिक्त सर जार्ज ग्रियर्सन ने भी इस सम्बन्ध में अपना निश्चित मत प्रस्तुत किया है—

'Marwari has an old literature about which hardly any thing is known. The writers some times composed in Marwari and some times in Brij Bhasa. In the former case, the language was called 'Dingala' and in the latter 'Pingala'[४].

डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने उदयपुर में दिए गए अपने एक भाषण में कहा था कि 'गुजरात और मारवाड़ के जैन आचार्य और पंडितों के द्वारा सौराष्ट्र अपभ्रंश से उद्भूत पुरानी पश्चिमी राजस्थानी में साहित्य का सृजन होने लगा पर साथ ही साथ शौरसेनी अपभ्रंश साहित्यिक भाषा, पूर्व से बदलती गई, इसका एक नवीनतम या अर्वाचीन रूप 'पिंगल' नाम से राजस्थान और मालवा के कवियों में पूर्णतया गृहीत हुआ। पिंगल का एक साहित्य बन गया। पिंगल को शौरसेनी अपभ्रंश साहित्यिक भाषा और मध्यकालीन ब्रज भाषा, इन दोनों के बीच की भाषा कहा जा सकता है। ब्रज भाषा प्रतिष्ठित हो जाने के बाद पिंगल के साथ-साथ ब्रज भाषा ने भी राजस्थानी भाषाओं में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। समग्र राजस्थान ब्रज भाषा के लिए अपना क्षेत्र हो गया। ब्रज भाषा के कुछ श्रेष्ठ कवि राजस्थानी भाषी ही थे। फिर राजपूताने के भाट और चारणों ने 'पिंगल' की अनुकारी एक नई कवि भाषा मारवाड़ी के आधार पर बनाई जो 'डींगल' या 'डिंगल' नाम से अब परिचित है।'[१]

डॉ० चाटुर्ज्या ने जहां पिंगल के अनुकरण पर डिंगल नाम का प्रादुर्भाव होना माना है वहाँ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने डिंगल के अनुकरण पर पिंगल नामकरण का अनुमान किया है।[२] वास्तव में पिंगल और डिंगल दो भिन्न भाषायें हैं।[3] पिंगल का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है[४] और डिंगल का गुर्जरी अपभ्रंश से।[५] देखा जाय तो डिंगल काव्य पिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। जब ब्रज भाषा की उत्पत्ति हुई तो उसका तत्कालीन प्रभाव राजस्थान के पूर्वी प्रदेश पर भी पड़ा। शुद्ध डिंगल तथा ब्रज भाषा से प्रभावित डिंगल में अंतर स्पष्ट करने के लिए संभवतः दोनों का नामकरण हुआ हो। यह तो सर्वविदित है कि ब्रज भाषा के पहले से ही

---

[१] डि. बी., हि. सा. स. प्रयाग, संवत् २००३, पृ० ६८

[२] डिंगलियां मिलियां करै, पिंगल तणो प्रकास।
संसक्रति व्हे कपट सज, पिंगळ पढ़ियां पास।—बां. दा. ग्रं० भाग २

[3] Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. X No. 10 PP. 375

[४] Linguistic Survey of India, Vol. IX, Part II, Page 19.

[१] राजस्थानी भाषा : डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृष्ठ ६५

[२] हिन्दी साहित्य : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ६७

[3] राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृष्ठ ७

[४] (क) Linguistic Survey of India, Grierson, Pt. I, Page 126
(ख) राजस्थानी भाषा : डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० ६४

[५] (क) अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ३३ वें अधिवेशन का विवरण—कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, पृष्ठ ६।
(ख) राजस्थान का पिंगल साहित्य तथा राजस्थानी भाषा और साहित्य—श्री मोतीलाल मेनारिया।

राजस्थानी में काव्य-रचना होती थी। अतः यह कहना उचित नहीं होगा कि पिंगल के आधार पर ही डिंगल का नामकरण-संस्कार किया गया। इस सम्बन्ध में डॉ० रामकुमार वर्मा का यह मत उचित मालूम देता है कि—'उचित तो यह ज्ञात होता है कि 'डिंगल' के आधार पर ही 'पिङ्गल' शब्द का उपयोग किया होगा। इस कथन की सार्थकता इससे भी ज्ञात होती है कि पिङ्गल का तात्पर्य छंदशास्त्र से है। ब्रज भाषा न तो छंदशास्त्र ही है और न उसमें रचित काव्य छंदशास्त्र के नियमों के निरूपण के लिए ही है। अतएव 'पिङ्गल' शब्द ब्रज भाषा काव्य के लिए एक प्रकार से उपयुक्त ही माना जाना चाहिए। हां यह अवश्य है कि ब्रज भाषा काव्य में छंदशास्त्र पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया गया है और सम्भवतः यही कारण है कि उसका नाम पिङ्गल रखा गया है।'[1]

यहां हम प्राचीन राजस्थानी को डिंगल के नाम से अभिहित कर रहे हैं। कुछ विद्वानों का यह भी भ्रम है कि शायद राजस्थान में पिङ्गल साहित्य का निर्माण परिमाण में डिंगल से भी अधिक हुआ है, पर यह मान्यता भी निराधार है, जैसे कि हम पहिले कह आये हैं कि डिंगल का अधिकांश साहित्य अभी प्रकाश में नहीं आया है और बहुत सा लिपिबद्ध भी नहीं हुआ है, इसीलिए शायद ऐसी भ्रामक धारणा बन गई है।

राजस्थानी साहित्य के इस विवेचन के पश्चात् अब हम उसके विकास-क्रम पर विचार करते हैं। राजस्थानी भाषा विवेचन के प्रकरण में हम यह स्पष्ट कर आये हैं कि राजस्थानी का निकास अपभ्रंश भाषा से हुआ है। अतः अपभ्रंश की अन्तिम अवस्था ही राजस्थानी का आदिकाल अथवा प्रारम्भिक काल माना जाता है। राजस्थानी का प्राचीन नाम मरु भाषा है। सर्व प्रथम मरु भाषा का नाम हमें मारवाड़ राज्य के जालोर ग्राम में रचे गए जैन मुनि उद्योतन सूरि के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कुवलय माला' में मिलता है। इस ग्रन्थ की रचना विक्रम संवत् ८३५ में हुई थी। इसमें तत्कालीन १८ भाषाओं का उल्लेख है जिसमें मरु भाषा का नाम भी है। यथा—

'अप्पा-तुप्पा', भणिरे अह पेच्छइ मारुए तत्तो
'न उरे भल्लउं' भणिरे अह पेच्छइ गुज्जरे अवरे
'अम्हं काउं तुम्हं' भणि रे अह पेच्छइ लाडे
'भाइ य इ भइणी तुब्भे' भणि रे अह मालवे दिट्ठे।
(कुवलयमाला)

इससे यह प्रकट हो ही जाता है कि राजस्थानी साहित्य का निर्माण लगभग नवीं शताब्दी में होने लग गया था। इस समय की मुख्य भाषा अपभ्रंश थी और अधिकांश साहित्य की रचना इसी भाषा में हो रही थी, अतः ऐसे समय में नव विकसित भाषा में निर्मित होने वाला साहित्य इसके प्रभाव से अछूता कैसे रह सकता था। यही कारण है कि यद्यपि राजस्थानी साहित्य का निर्माण नवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही आरम्भ हो गया था, फिर भी ११ वीं शताब्दी तक हमें बहुत ही कम साहित्य उपलब्ध होता है। यह सब कुछ होते हुए भी यह तो निश्चित है कि राजस्थानी अपने प्रारम्भिक काल में राजस्थान की ही नहीं वरन् उसके आसपास के बहुत बड़े भू-खंड की भाषा रही है। गुजराती भाषा के मर्मज्ञ एवं विद्वान स्वर्गीय झवेरचंद मेघाणी ने भी अपने शब्दों में इसे स्वीकार किया है।

'अपनी मातृ भाषा का नाम था—राजस्थानी! मेड़ता की मीरां इसी में पदों की रचना करती और गाया करती थी। इन पदों को सौराष्ट्र की सीमा तक के मनुष्य गाते तथा अपना कर के मानते थे। चारण का दूहा राजस्थान की किसी सीमा में से राजस्थानी भाषा में अवतरित होता तथा कुछ वेश बदल कर काठियावाड़ में भी घर-घराऊ बन जाता। नरसी मेहता गिरनार की तलहटी में प्रभु पदों की रचना करता और ये पद यात्रियों के कण्ठों पर सवार होकर जोधपुर, उदयपुर पहुँच जाया करते थे। इस जमाने का पर्दा उठा कर यदि आप आगे बढ़ेंगे तो आपको कच्छ, काठियावाड़ से लेकर प्रयाग प्रर्यन्त के भूखंड पर फैली हुई एक भाषा दृष्टिगोचर होगी ''। इस व्यापक बोलचाल की भाषा का नाम—राजस्थानी। इसी की पुत्रियाँ फिर ब्रजभाषा, गुजराती और आधुनिक राजस्थानी का नाम धारण कर स्वतंत्र भाषायें बनीं।' अतः राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य एक विस्तृत भू-भाग का साहित्य था।

किसी भी साहित्य के क्रमिक विकास का अध्ययन सुविधापूर्वक एवं समुचित रूप से तभी हो सकता है जब कि वह

[1] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, भाग १, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० १३९–१४०

वैज्ञानिक रूप से उचित कालों में विभाजित हो। इसी दृष्टि-कोण से अनेक विद्वान साहित्यकारों ने अपने-अपने मतानुसार राजस्थानी साहित्य को भी भिन्न-भिन्न कालों में विभाजित किया है। उनमें से अनेक विद्वानों का काल-विभाजन पूर्ण वैज्ञानिक एवं तर्कयुक्त है।

जैसा कि हम प्रारम्भ में लिख चुके हैं कि राजस्थानी की नींव नवीं शताब्दी में स्थापित हो चुकी थी इसलिए राजस्थानी साहित्य के प्राचीन काल का आरम्भ हम नवीं शताब्दी के आरम्भ से ही मानते हैं। डा० एल. पी. तैस्सितोरी ने प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का अपभ्रंश से अंतिम रूप से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने का समय तेरहवीं शताब्दी के आसपास निश्चित किया है। स्पष्ट तो यह है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ तक डिंगल भाषा अपभ्रंश के प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त न हो पाई थी। अतः पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक के साहित्य को प्रारंभिक काल के अंतर्गत रखना अधिक वैज्ञानिक है। लगभग इस काल के पश्चात् डिंगल एक स्वतंत्र एवं सुगठित भाषा के रूप में विकसित हुई। इसके पश्चात् का काल मध्य-काल माना जा सकता है। इस काल में रचित प्रचुर एवं विशिष्ट साहित्य ने ही राजस्थानी को पूर्ण विकसित रूप प्रदान किया और इसे उन्नति के शिखर पर बैठाने वाले अधिकांश कवि भी इसी काल में हुए। इस काल में पाई जाने वाली साहित्यिक विशेषतायें निरन्तर रूप से महा कवि सूर्यमल्ल मीसण की रच-नाओं के पूर्व के समय तक मिलती रही है। अतः महाकवि सूर्य-मल्ल के समय से ही राजस्थानी का आधुनिक युग माना जा सकता है। इस सम्पूर्ण विवेचन के अनुसार हम अपने दृष्टिकोण से राज-स्थानी साहित्य को निम्न प्रकार से कालबद्ध कर सकते हैं—

१. आदिकाल वि० सं० ८०० से सं० १४६०
२. मध्यकाल वि० सं० १४६० से सं० १६००
३. आधुनिक काल वि० सं० १६०० से वर्तमान काल तक

वस्तुतः काल-विभाजन किसी काल विशेष की समाप्ति और दूसरे काल के आरम्भ होने के समय के मध्य कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं है। अतः हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि काल की समाप्ति के पश्चात् उस काल की शैली व परम्परा में आगे कोई रचना नहीं होती। आरंभिक काल की भी कुछ विशेषतायें ऐसी हैं जो मध्यकाल की रचनाओं में भी पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल के भी अनेकानेक कवि मध्यकालीन ऐतिहासिक परंपरा का अनुसरण करते आ रहे हैं। अतः उपरोक्त सीमा रेखायें परिवर्तन के आरंभ की ही सूचक मानी जा सकती हैं। अब हम ऊपर दर्शाये हुए तीनों कालों को पृथक-पृथक लेकर उनमें रचे जाने वाले साहित्य पर प्रकाश डालेंगे।

पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ काल-विभाजन के साथ केवल पद्यात्मक रचनाओं का ही वर्णन किया जा रहा है। गद्य साहित्य एवं लोक साहित्य का पृथक-पृथक शीर्षकों के अंतर्गत अलग से विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

आदिकाल—विक्रम संवत् ८०० से १४६०

नवीं शताब्दी से पूर्व प्राचीन राजस्थानी के प्रारंभिक साहित्य की क्या दशा रही होगी इसकी कल्पना करने के लिए इतिहास में कोई सामग्री नहीं मिलती। यद्यपि यह तो माना जाता है कि अपभ्रंश से अन्य भाषाओं के उद्गम के समय अपभ्रंश के साथ-साथ उनमें भी साहित्यिक रचनाये अवश्य हुई हैं परन्तु प्रामाणिक सामग्री के अभाव में बहुत प्राचीन साहित्य के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पूर्व वर्णित मुनि उद्योतन सूरि रचित 'कुवलय माला' जिसका, काल सं० ८३५ है, से हमें राजस्थानी का परिचय मरु भाषा के नाम से मिलता है। यद्यपि यह ग्रन्थ राजस्थानी की रचना तो नहीं फिर भी इसमें राजस्थानी में वर्णित चर्चरी द्वारा हमें तत्कालीन राजस्थानी के स्वरूप की झलक अवश्य मिलती है। उदाहरण के लिए उक्त ग्रंथ का एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है—

उ. – कसिरण-कमळ-दळ लोयरण-चल रे, हंत ओ।
पीरण-पिहुल-थरण-कडियल भार किलंत ओ॥
तारण-चलिर वळियावळि-कळयळ-सद्द ओ।
रास यम्मि जइ लब्भइ जुबइ-सत्थ ओ॥

इससे यह तो पता चलता है कि राजस्थानी साहित्य का निर्माण नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही आरम्भ हो चुका था परन्तु इसके बाद १० वीं शताब्दी के अन्त तक कोई प्रामाणिक लिपिनिष्ठ रचना प्राप्त नहीं होती। इसके अनेक कारण हैं। ऐसा माना जाता है कि राजस्थानी का अति प्राचीन तथा प्रारंभिक साहित्य अधिकांश में श्रुतिनिष्ठ साहित्य ही था। श्री किशोरसिंह बारहठ ने प्रारंभिक काल के साहित्य के

सम्बन्ध में लिखा है कि चारण जाति के मरु देश में आने के पूर्व अर्थात् विक्रम की नवीं शताब्दी के आसपास उसके क्षेत्र में केवल एक नायक जाति ही ऐसी जाति थी जो अपने प्रारंभिक साहित्य को परम्परा से कंठस्थ करती हुई सुरक्षित रखे हुए थी। नायक लोग अपने पूर्वजों से सुन सुन कर जो पंवाड़या, गीत आदि कंठस्थ किया करते थे या नए रचा करते थे उन्हीं को गांवों में जाकर रात्रि के समय चौपाल, या गांव के मध्य के खुले स्थान में एकत्रित जन-समूह के बीच रावणहत्थे (एक प्रकार का तन्त्री वाद्य विशेष) पर गाते और उनका अर्थ श्रोताओं को समझाया करते। इसी समय उन्होंने एक और जाति का भी अस्तित्व स्वीकार किया है, वह है जोगी या नाथ जाति जिसने प्राचीन श्रुतिनिष्ठ साहित्य की सुरक्षा में अपना योगदान दिया है।[1]

पंवाड़यों तथा गीतों का साहित्य भी अधिक प्राचीन तथा श्रुतिनिष्ठ होने के कारण उनके रचयिताओं की पिछली संतान उसे ठीक रूप में याद न रख सकी। अनेक प्रक्षिप्त अंशों का समावेश होने के साथ साथ कुछ चरितनायकों की जीवन-कथाओं के साथ अप्रासंगिक व चमत्कारिक बातें भी जोड़ दी गईं। अपनी प्राचीन थाती को इस प्रकार लुप्त होते देख कर संभव है उस समय के लोगों में इस साहित्य की रक्षा की इच्छा अवश्य उत्पन्न हुई होगी। इसी के फलस्वरूप चित्रलिपि का प्रयोग किया गया। अपने चरितनायकों का पूर्ण जीवन-चरित चित्रों के रूप में अंकित किया जाने लगा। इन चित्रों का उन घटनाओं तथा कथाओं के साथ सम्बन्ध रहता था जो नायक आदि जाति के लोगों द्वारा रावणहत्थे पर मौखिक रूप से गाई जाती थी। इस चित्रलिपि के कारण चरित-नायकों के जीवन में अप्रासंगिक एवं चमत्कारिक घटनाओं का प्रवेश तो रुक गया किन्तु गाई जाने वाली भाषा में परिवर्तन तब भी होता गया। चित्र चित्रित होने के कारण स्थिर रहे परन्तु गीत गेय रूप में ही आने वाली पीढ़ियों को हस्तांतरित होने से उनकी मूल रचना में कितना अंश प्रामाणिक है और कितना प्रक्षिप्त, इसका पता लगाना अत्यन्त कठिन हो गया। राजस्थानी में इन चित्रों के आधार पर गाये जाने वाले गीतों को 'फड़ें' कहते हैं जो पट का अपभ्रंश है। आज भी राजस्थान के सुदूर गांवों में यदाकदा इन पंवाड़ों एवं फड़ों का आनन्द लिया जाता है।

लगभग नवीं शताब्दी के अन्तिम काल में एक ऐसी घटना हुई जिससे राजस्थानी साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। जिस समय राजस्थान में राजस्थानी की उपरोक्त दशा थी, ठीक उसी समय सिन्ध में वहां की तत्कालीन भाषा को वहां के चारण नवजीवन प्रदान कर रहे थे। सिन्ध के प्राचीन वीरों का यशोगान एवं वीरों का चरित्र-वर्णन उनकी कविताओं में स्पष्टतः लक्षित होता था। उस समय के सूमरा क्षत्रियों के अत्याचारों से वहां की जनता व्याकुल हो उठी। इसी समय सिन्ध में आवड़देवी का पिता मामड़ सकुटुम्ब आकर बस गया। ये कुल सात बहिनें थीं। सिंध के तत्कालीन राजा ने इनके सौन्दर्य-वर्णन पर लुभायमान होकर इन सातों बहिनों को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया। ऐसी अवस्था में आवड़ देवी ने अपने अनुयायी समस्त चारणों को सिन्ध देश छोड़ कर राजस्थान की ओर जाने का निर्देश दिया और साथ में स्वयं भी सिन्ध छोड़ कर राजस्थान में आ बसी। आये हुए चारण कवियों ने यहां की लोक भाषाओं का प्रयोग धीरे-धीरे अपने साहित्य में किया। इस घटना से राजस्थानी साहित्य को एक नया मोड़ प्राप्त हुआ।

जिस समय राजस्थानी साहित्य में यह नवीन प्रवाह आया उस समय यहां की राजनैतिक परिस्थिति भी पूर्ण विचित्र थी जिसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। सोलंकी, पंवार, कछवाह, परिहार, तोमर, गहलोत, चौहान और यादव (भाटी) उस समय यहां शासन कर रहे थे। शासक वर्ग में परस्पर घोर संघर्ष चल रहा था। शासकीय स्थिति पूर्ण अनिश्चित थी। ऐसी स्थिति के मध्य प्रथम तो विशिष्ट साहित्य का सृजन होना संदिग्ध ही है, फिर भी यदि कुछ हो पाया तो वह आश्रयदाताओं को रणभूमि में उत्साहित करने के निमित्त फुटकर रचनायें ही थीं अथवा उनके मनोरंजनार्थ कोई प्रेम काव्य आदि। यही कारण है कि इस काल के प्राप्त ग्रंथों में जैन साहित्य को छोड़ कर, जो कि अधिकांश में अपने धर्म से ही सम्बन्धित है, अन्य सभी ग्रंथ प्रेम काव्य ही हैं। राज्याश्रय के

---

[1] सौरभ पत्रिका, भाग १, संख्या १, पृ० ५७, डिंगल भाषा और उसका साहित्य।—किशोरसिंह बारहठ

कारण उनकी कुल रचनाओं के लिखित एवं प्रामाणिक रूप राज्य के संग्रहालयों में सुरक्षित रहे। किन्तु ये इतने थोड़े हैं कि तत्कालीन राजस्थानी साहित्य के सम्बन्ध में पूर्ण एवं स्पष्ट दृष्टिकोण उपस्थित नहीं करते। इसके अतिरिक्त जन-साधारण के मन में अपने वीर चरितनायकों के प्रति अपार श्रद्धा थी। इसका मुख्य कारण यह था कि ये ही वीर लोग संकट के समय जन साधारण के जीवन धन की रक्षा करते। जन जीवन की रक्षार्थ वे अपने प्राणों की आहुति देने के लिए सदैव तत्पर रहते। अतः ऐसे वीरों की प्रशंसा में बनाई गई कवितायें शीघ्र ही प्रचलित हो जाया करतीं और श्रुतिनिष्ठ साहित्य के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती थीं। उस काल में साहित्य को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति बहुत कम थी। यही कारण है कि आदि काल का लिपिनिष्ठ साहित्य बहुत ही कम मात्रा में प्राप्त होता है।

प्राचीन राजस्थानी साहित्य में जो कुछ भी लिखित एवं प्रामाणिक साहित्य प्राप्त हुआ है उसमें जैनाचार्यों का साहित्य भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जैन-साहित्य की रचना संस्कृत काल से होती आयी है और यही कारण है कि प्राकृत और अपभ्रंश में भी जैन-साहित्य हमें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। इसका मुख्य कारण यही रहा है कि जैन मुनि तथा उनके श्रावकगण सदैव से ही अपने इस धार्मिक साहित्य की सुरक्षा के प्रति सचेष्ट एवं जागरूक रहते आये हैं। राजस्थानी में भी जो कुछ आदिकालीन जैन एवं जैनेतर साहित्य हमें मिलता है वह भी इनकी साहित्य सुरक्षा के प्रति इस प्रवृत्ति का ही परिणाम है। जिनालयों, जैन-भण्डारों, उपाश्रयों आदि में प्राप्त राजस्थानी साहित्य की प्राचीनतम प्रतियां इसका सही प्रमाण हैं। राजस्थानी के प्रारम्भिक काल में रचित जैन मुनियों की अनेक धार्मिक रचनायें प्राप्त होती हैं परन्तु यह काल अनेक देशी भाषाओं का जन्म-काल होने के कारण उन भाषाओं के विद्वानों ने तत्कालीन रचनाओं को अपनी भाषा की प्रारम्भिक रचनायें मान लिया है। फिर भी उस समय राजस्थान में रहने वाले जैन मुनियों तथा अन्य सिद्धों व नाथों द्वारा जो भी रचनाएँ हुईं वे प्रामाणिक रूप से राजस्थानी रचनायें ही मानी जा सकती हैं। इस प्रारंभिक काल की अनेक रचनायें उपलब्ध हैं परंतु कहीं पर वे अपने रचनाकारों के सम्बन्ध में मौन साधे हुए हैं तो कहीं अपना रचनाकाल प्रकट करने में पूर्ण असमर्थ। साहित्य की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में शोध-कार्य अनेक वर्षों से हो रहा है और इसी के फलस्वरूप अन्धकार के गर्त में डूबे हुए अतुल साहित्य में से उसका कुछ भाग प्रकाश में आया है। अब हम इस काल के प्राप्त महत्वपूर्ण साहित्य को क्रमशः उनके संवतोल्लेख के अनुसार प्रस्तुत करेंगे।

खुम्माणरासौ—

राजस्थानी साहित्य में प्रारम्भ से ही प्रथम काव्य-ग्रन्थ के रूप में 'खुमाणरासौ' का उल्लेख किया जाता रहा है।[1] आज इसकी प्राप्त प्रतियों के आधार पर इसके रचनाकाल में अनेक विद्वानों को पूर्ण सन्देह है। इस काव्य-ग्रंथ में चित्तौड़ के महाराणा प्रतापसिंह तक का वर्णन दिया गया है। इससे यह प्रकट होता है कि यह ग्रन्थ समय-समय पर नई सामग्री प्राप्त करने के कारण अपने वास्तविक रूप से सर्वथा भिन्न हो गया है। एक स्थान पर इसके रचयिता का नाम दलपत-विजय लिखा गया है। कुछ लोगों के मतानुसार ये जैन साधु थे।[2] कर्नल टॉड ने अपने इतिहास में चितौड़ के रावळ खुम्माण का उल्लेख किया है। उन्होंने अपने इतिहास में लिखा है कि काल भोज (बप्पा) के पश्चात् खुम्माण गद्दी पर बैठा। इतिहास में इस खुम्माण का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसके शासनकाल में ही बगदाद के ख़लीफा अलमांसू ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। कर्नल टॉड द्वारा यह वर्णन खुम्माणरासौ के आधार पर ही किया गया प्रतीत होता है। सम्भवतः कर्नल टॉड को इस विषय में भ्रान्ति हो गई। काल भोज (बप्पा) से लेकर तीसरे खुम्माण तक वंशावली इस प्रकार मानी गई है।[3] कालभोज (बप्पा) > खुम्माण > मत्रट, भर्तृभट्ट > सिंह,

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास—लेखक रामचन्द्र शुक्ल, सातवां संस्करण, संवत् २००८, पृष्ठ ३३।

[2] 'ये (दलपत) तपागच्छीय जैन साधु शान्तिविजयजी के शिष्य थे। इनका असली नाम दलपत था किन्तु दीक्षा के बाद बदल कर दौलत-विजय रख लिया गया था। विद्वानों ने इनका मेवाड़ के रावळ खुंमाण द्वितीय (सं० ८७०) का समकालीन होना अनुमानित किया है, जो गलत है। वास्तव में इनका रचनाकाल सं० १७३० और सं० १७६० के मध्य में है। राजस्थानी भाषा और साहित्य—लेखक मोतीलाल मेनारिया। पृष्ठ ८२।

[3] वीर विनोद, प्रथम भाग, कविराजा श्यामलदास, पृष्ठ २६७ से २७२ तक।

खुम्माण (द्वितीय) महायक, खुम्माण (तृतीय)। इस प्रकार स्पष्ट है कि खुम्माण तीन हुए हैं। कर्नल टॉड ने इन तीनों को एक ही मान लिया है। लेकिन इन तीनों का शासनकाल इतिहासकार इस प्रकार मानते हैं।

खुम्माण (प्रथम) वि.सं. ८१० से ८३५।
खुम्माण (द्वितीय) वि.सं. ८७० से ९०० तक।
खुम्माण (तृतीय) वि.सं. ९६५ से ९९० तक।

अब्बासिया वंश के अलमामूं का समय भी वि.सं. ८७० से ८९० तक माना जाता है। इसी समय वह खलीफा रहा। यदि कोई लड़ाई अलमामूं के साथ खुम्माण की हुई होगी तो वह दूसरे खुम्माण के समय में ही हुई होगी। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि 'खुम्माणरासो' की रचना भी इमी काल में हुई।[1]

यह सब कुछ होते हुए भी मूल रचना के वास्तविक स्वरूप के अभाव में उसके रचनाकाल के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इस रचना में महाराणा प्रताप तक का वर्णन होने के कारण कई विद्वान इसे १७ वीं शताब्दी हो की रचना मानते हैं। इसके साथ यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि दलपति विजय इसका वास्तविक रचयिता था अथवा इसके प्रक्षिप्त अंश का।[2] इस प्रकार खुम्माणरासो को प्रामाणिक रूप से प्रथम काव्य-ग्रन्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता।

'ढोला मारू रा दूहा'—सं. १०००

राजस्थानी के श्रेष्ठ प्रणय-काव्य 'ढोला मारू रा दूहा' का रचनाकाल श्री मोतीलाल मेनारिया ने वि.सं. १००० के आस-पास का अनुमान किया है।[3] ढोला मारू एक लोक-काव्य के रूप में प्रसिद्धि पा चुका है। ऐसे जन-प्रिय लोक-काव्यों की जो अवस्था होती है, उसकी विवेचना हम पहले कर चुके हैं। संभव है सर्वप्रथम इसकी रचना किसी सुयोग्य कवि ने की हो तथापि वर्तमान रूप में जो ढोला मारू की प्रतियाँ उपलब्ध हैं वे कालान्तर में अन्य लोगों द्वारा जोड़े गये प्रक्षिप्त अंश सहित ही मिलती हैं। काव्य की कथा ऐतिहासिक है तदपि पूर्ण ऐतिहासिक शोध के अभाव में यह निश्चित करना अत्यन्त कठिन है कि उसमें ऐतिहासिकता का अंश कितना है। कछवाह राजपूतों की ख्यातों के अनुसार यह कहा जा सकता है कि नल और ढोला ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। काव्य में ढोला को नरवर के चौहान राजा नल का पुत्र बताया गया है किन्तु इतिहास के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नरवर में चौहानों का राज्य कभी नहीं रहा। ओझाजी ने लिखा है[1] कि कछवाह वंश की ख्यातों में नल और ढोला का जो स्पष्ट वृत्तान्त मिलता है तथा ढोला को मारवणी का पति कहा है वह वस्तुतः सत्य है। अतः यह तो निसंदेह कहा जा सकता है कि ढोला कछवाह वंश का क्षत्रिय था। कछवाह वंश की ख्यातों में इसका समय संवत् १००० के आसपास दिया गया है। अगर ढोला के शासनकाल में ही 'ढोला मारू' की रचना की गई हो तो इसका रचनाकाल संवत् १००० के आसपास माना जा सकता है।

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन दोहों का सबसे पुराना रूप ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी का माना है।[2] डॉ० भोलाशंकर व्यास ने इसका रचनाकाल विक्रम की १३वीं-१४वीं शती माना है।[3] १२वीं या १३वीं शती को इसका रचनाकाल मानने वाले इसकी रचना ढोला के तीन सौ वर्ष बाद हुई मानते हैं। सिद्ध हेमचन्द्र ने अपनी अपभ्रंश व्याकरण में दो तीन बार 'ढोल्ला' शब्द का प्रयोग किया है।[4] वहाँ यह तीनों बार नायक

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास—ले० रामचन्द्र शुक्ल, सातवां संस्करण, सं० २००८, पृ० ३३ के आधार पर।

[2] हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास—सं० राजबली पांडेय, प्रथम भाग, पृष्ठ सं० ३७६।

[3] राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा—ले० मोतीलाल मेनारिया, परिशिष्ठ—पृष्ठ २१९।

[1] टॉड राजस्थान—संपादक, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृष्ठ ३७१, टिप्पणी संख्या ५९।

[2] हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ९।

[3] हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास—प्रथम भाग, खंड २, अध्याय ४, पृष्ठ ४०४।

[4] ढोल्ला सामला धण चम्पा-वण्णी।
णाइ सुवण्णरेह कस-वट्टइ दिण्णी॥ ८।४।३३०।१
ढोल्ला मइँ तुहुँ वारिया मा कुरु दीहा माणु।
निद्दए गमिही रत्तडी दडवड होइ विहाणु॥८।४।३३०।२
ढोल्ला एँह परिहासडी अइ भण-भण कवणहिं देसि।
हउँ झिज्जउँ तउ केहिं पिअ तुहुँ पुणु अन्नहि रेसि॥८।४।४२५।१
—अपभ्रंश व्याकरण—आचार्य हेमचंद्र

के अर्थ में आया है। हेमचंद्र का जन्म संवत् ११४५ और मृत्यु संवत् १२२६ में मानी गई है।[१] श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने भी इसका समर्थन किया है।[२] इससे यह तो स्पष्ट है कि उस समय ढोला के सम्बन्ध में जनसाधारण में काफी जानकारी प्रचलित होगी। जिस प्रकार राधा-कृष्ण ऐतिहासिक एवं वास्तविक व्यक्ति होते हुए भी कालान्तर में काव्य में समस्त कविता के नायक-नायिका के रूप में रूढ हो गये, ठीक उसी प्रकार ढोले का नाम भी तत्कालीन कविताओं में नायक के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा हो। आधुनिक राजस्थानी के लोक-गीतों में 'ढोला' का प्रयोग नायक, पति, वीर आदि के लिये प्रचुरता के साथ पाया जाता है।[3] इससे यह सहज में ही अनुमान किया जा सकता है कि हेमचंद्र के समय तक ढोला के सम्बन्ध में दोहे जनसाधारण में इतने प्रचलित हो गये होंगे कि उस समय के कवियों ने उसके नाम का नायक के रूप में किसी भी कविता में प्रयोग करना आरम्भ कर दिया हो। जनसाधारण में दोहों के ऐसे प्रचलन के लिये सौ-डेढ़ सौ वर्ष का समय कुछ अधिक नहीं। अगर हेमचंद्र का समय संवत् ११४५-१२२६ माना गया है तो ढोला मारू के इन दोहों का निर्माणकाल संवत् १००० सहज ही माना जा सकता है। इस प्रकार के उदाहरणों में भाषा-विज्ञान के अनुसार अर्थ-विस्तार प्रायः हो जाया करता है। राजस्थानी भाषा की विवेचना करते समय ऐसे उदाहरण हम प्रस्तुत कर चुके हैं।

भाषा की दृष्टि से वर्तमान समय में प्रचलित ढोला मारू के दोहे इतने प्राचीन नहीं मालूम होते। वस्तुतः लोक-काव्य और अन्य साहित्यिक रचनाओं में काफी अंतर होता है। किसी साहित्यिक ग्रन्थ के निर्माण में कुछ न कुछ साहित्यिक कला का होना अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। लोक-गीतों की रचना-व्यवस्था इसके ठीक विपरीत होती है। लोक-गीतों का निर्माता यदि कोई हो सकता है तो देश विशेष की प्राचीन-कालीन परिस्थिति और साधारण जनता की सामूहिक रागात्मक अभिरुचि ही हो सकती है। गेय गीतों को मौखिक रूप में आने वाली पीढ़ियों में हस्तान्तरित करने की परंपरा बहुत ही प्राचीन समय से प्रचलित रही है। अतः वह तत्कालीन जनता की साधारण अभिरुचि से प्रेरणा पाती रहती है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ढोला मारू की भूमिका में इस सम्बन्ध में एक स्थान पर लिखा है[१], 'यह काव्य मौखिक परंपरा के प्राचीन काव्य-युग की एक विशेष कृति है और सभव है कि तत्कालीन जनता की साधारण अभिरुचि को ध्यान में रख कर उससे प्रेरित होकर किसी प्रतिभासंपन्न कवि ने जनता के प्रीत्यर्थ उसी के मनोभावों को वर्तमान काव्य-रूप में बद्ध कर उसके समक्ष उपस्थित कर दिया हो और जनता ने बड़ी प्रसन्नता से इसे अपनी ही सामूहिक कृति मान कर कंठस्थ किया हो। ऐसी दशा में व्यक्ति विशेष कवि होने पर भी उसके व्यक्तित्व का सामूहिक अभिरुचि के प्रबल प्रवाह में लुप्त प्राय हो जाना संभव है। अतएव हमारा अनुमान है कि व्यक्ति विशेष का इसके बनाने में कुशल हाथ स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हुए भी सामूहिक मनोभावों की एकता और सहानुभूति एकत्रित होने के कारण कवि का व्यक्तित्व समूह में लुप्त हो गया है। और अंत में मौखिक परम्परा से चला आता हुआ यह काव्य हमको किसी व्यक्ति विशेष कवि की कृति के रूप में नहीं मिला बल्कि जनता के काव्य के रूप में उपलब्ध हुआ है।'

कुछ विद्वानों ने 'कल्लोल' नामक एक कवि को ही इसका

---

१ कुमारपालचरित : Introduction, Page, XXIII-XXV, (१९३६)

२ जैन गुर्जर कविओ, प्रथम भाग, जूनी गुजराती भाषानों संक्षिप्त इतिहास' : श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई, पृष्ठ ११३।

3 (i) गोरी छाई छै जी रूप, ढोला, धीरां-धीरां आव।

(ii) सावण खेती, भंवरजी, थे करी जी, हांजी ढोला, भादूड़े करयो छो निनांण। सीट्टां रो रुत छाया, भंवरजी, परदेश में जी, ओ जी म्हांरा घण कमाऊ उमराव, थांरी प्यारी ने पलक न आवड़े जी।

(iii) गोरी तो भीजै, ढोला, गोखड़े, आलीजो भीजें जी फौजां मांय। अब घर आवजो, आसा थारी लग रही हो जी।

(iv) दूधां ने सींचावो ढोलाजी रो नीबूंड़ो ओ राज।
—ढोला मारू रा दूहा, सं० रामसिंह तथा नरोत्तमदास, पृष्ठ संख्या ३९८।

१ 'ढोला मारू रा दूहा'—भूमिका, पृष्ठ ३६।

रचयिता माना है।[1] जोधपुर के सिवाना नामक ग्राम में एक जैन यति के पास से प्राप्त प्रति में इसके रचयिता का नाम लूणकरण खिड़िया लिखा है। खेद की बात है कि संवत् १५०० के पहले की लिखी कोई प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है। वैसे तो 'ढोला मारू रा दूहा' की बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान के पुस्तक भंडारों में मिलती हैं किन्तु वे अधिक पुरानी नहीं हैं। असली काव्य तो संभवतया सब का सब दूहों में ही लिखा गया होगा, परन्तु कालान्तर में दूहों की यह शृङ्खला छिन्न-भिन्न हो गई। संवत् १६१८ के लगभग जैसलमेर के एक जन यति कुशललाभ ने तत्कालीन महारावल के आदेशानुसार 'ढोला मारू' के विभिन्न दोहों को इकट्ठा किया और इस छिन्न-भिन्न कथा-सूत्र को मिलाने के लिए कुछ चौपाइयाँ बनाईं। इन चौपाइयों को दूहों के बीच में रख कर कुशललाभ ने पूरे कथा-सूत्र को ठीक कर दिया। अभी तक उपलब्ध प्रतियों में यही प्रति सबसे पुरानी मानी गई है। श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने इन दोहों का निर्माण-काल संवत् १५०० वि० के लगभग माना है।[2]

जेठवे रा सोरठा— ११००

राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा के परिशिष्ट में श्री मेनारिया ने 'जेठवे रा सोरठा' का निर्माणकाल सं० ११०० के लगभग दिया है।[3] इनके साहित्यिक महत्व को छोड़ कर पहले इन पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार कर लेना आवश्यक है। श्री मेनारियाजी के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति ने इन दोहों की रचना इतनी प्राचीन नहीं मानी है। प्रायः प्रत्येक सोरठे के अंत में जेठवा या मेहउत शब्द आया है। स्वर्गीय श्री झवेरचंद मेघाणी ने जेठवे के गुजराती सोरठों का संकलन किया था। इसी प्रसंग में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—"यह कथा श्री जगजीवन पाठक ने सन् १९१५ में 'गुजराती' के दीपावली अंक में लिखी थी तथा 'मकरध्वजवंशी महीपमाला' पुस्तक में भी लिखी है। इसमें सम्पादक ताळाजा के 'एलमवाला' का प्रसंग (सात हुकाळी, मंत्रेभहरण आदि : देखो रसधार, १ : पृष्ठ १८८) मेहजी के साथ जोड़ते हैं। इसके पश्चात् यह प्रसंग बरड़ा पर्वत पर नहीं परन्तु दूर ठांगा पर्वत पर घटित मानते हैं। मेहजी को श्री पाठक १४४ वीं पीढ़ी में रखते हैं परन्तु उनका वर्ष व संवत् नहीं बताते। उनके द्वारा बाद के १४७ वें राजा को १२ वीं शताब्दी में रखने के अंदाज से मेहजी का समय दूसरी या तीसरी शताब्दी के भीतर किया जा सकता है। परन्तु वे स्वयं दूसरे एक मेहजी को (१५२) संवत १२३५ के अन्तर्गत लेते हैं। ऊजळी वाले मेहजी यह तो नहीं हो सकते। कथा के दोहे १०००-१५०० वर्ष प्राचीन तो प्रतीत नहीं होते। घटना होने के पश्चात् १००-२०० वर्षों में इसका काव्य-साहित्य रचा गया होगा। यदि इस प्रकार गणना करें तो मेह-उजळी के दोहे संवत् १४००-१५०० तक प्राचीन होने की कल्पना अनुकूल प्रतीत होती है। तो फिर इस कथा के नायक का १५२वां मेहजी होने की संभावना अधिक स्वीकार करने योग्य प्रतीत होती है।" इसके अतिरिक्त इन सोरठों की भाषा भी नवीन है। कालान्तर में जेठवे के नाम पर विभिन्न कवियों द्वारा रचे गये सोरठे भी इसमें सम्मिलित होते गये। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दो सोरठे मथानिया-निवासी श्री जैतदान बारहठ द्वारा संवत् १९७४-७५ में लिखे गये थे, किन्तु बाद में वे 'जेठवे के सोरठे' के नाम से प्रसिद्ध हो गये—

> डहक्यो डंफर देख, बादळ थोथो नीर बिन,
> हाथ न आई हेक, जळ री बूंद न जेठवा।
> दरसण हुआ न देव, भेव बिहूणा भटकिया,
> सूना मिंदर सेव, जलम गमायो जेठवा।

उपरोक्त दोहे जेठवे के नाम से परम्परा के 'जेठवे रा सोरठा' नामक अंक में प्रकाशित हो चुके हैं। अतः इन दोहों का ठीक रचनाकाल निश्चित् करना अत्यन्त कठिन है। जो सोरठे पुराने कहे जाते हैं वे भी साहित्यिक दृष्टि से पन्द्रहवीं

[1] (क) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, पृष्ठ २०१।
(ख) राजस्थानी भाषा और साहित्य : श्री मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १०१।
(ग) हिन्दी काव्य-धारा में प्रेम-प्रवाह : श्री परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २६।
(घ) प्राचीन राजस्थानी साहित्य, भाग ६, सं० गोवर्धन शर्मा, पृष्ठ ८३-८५।

[2] 'ढोला मारू रा दूहा'—प्रकाशक, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, डॉ० ओझा द्वारा लिखित प्रवचन, पृष्ठ ७।

[3] राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा : पं० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ २१९।

सोलहवीं शताब्दी के प्रतीत होते हैं—चाहे इनका ऐतिहासिक आधार कितना ही पुराना क्यों न हो।

'ढोला मारू रा दूहा' तथा 'जेठवे रा सोरठा' इन दोनों लौकिक प्रेम-काव्यों में ऐतिहासिक तथ्य गौण ही है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है[1] कि "वस्तुतः इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया। बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक कथानायक बनाने की प्रवृत्ति रही है।......कर्मफल की अनिवार्यता में, दुर्भाग्य और सौभाग्य की अद्भुत शक्ति में और मनुष्य के अपूर्व शक्तिभंडार होने में दृढ़ विश्वास ने इस देश के ऐतिहासिक तथ्यों को सदा काल्पनिक रंग में रंगा है। यही कारण है कि जब ऐतिहासिक व्यक्तियों का भी चरित्र लिखा जाने लगा तब भी इतिहास का कार्य नहीं हुआ। अन्त तक ये रचनायें काव्य ही बन सकीं, इतिहास नहीं।"

बीसलदेव रासौ[2]—

प्राचीनता की दृष्टि से बीसलदेव रासौ का अत्यधिक महत्व है। साहित्यिक दृष्टि से इसका मूल्य कितना ही नगण्य क्यों न हो किन्तु प्राचीनता उसकी एक ऐसी विशेषता है जिसके कारण इसके अध्ययन-अध्यापन की ओर कई विद्वानों का ध्यान गया है। अगर देखा जाय तो यही ग्रन्थ राजस्थानी का प्राचीनतम प्रामाणिक ग्रन्थ है। किसी भी प्राचीन ग्रन्थ का अपने शुद्ध रूप में मिलना संभव नहीं है और फिर एक ऐसे ग्रन्थ का जो सैकड़ों वर्षों तक गाया जाता रहा हो, शुद्ध प्राचीन रूप में मिलना सर्वथा असंभव है। अतः इसी को आधार मान कर कुछ विद्वानों ने समस्त प्राचीन ग्रंथों को आधुनिक सिद्ध करने में ही अपनी अधिकांश शक्ति खर्च करदी है। 'बीसलदेव रासौ' के बारे में डॉ० उदयनारायण तिवारी लिखते हैं[3]—"वास्तव में नरपति न तो इतिहासज्ञ था और न कोई बड़ा कवि ही। किसी सुनेसुनाये आख्यान के आधार पर लोगों को प्रसन्न करने के लिए उसने कुछ बेतुकी तुकबंदी कर के काव्य का एक ढांचा—येन-केन-प्रकारेण खड़ा कर दिया, जिस पर उसके पश्चात् के कवियों ने भी नमक-मिर्च लगाया। इस प्रकार एक साधारण कवि के मिथ्या-बहुल-काव्य को लेकर जिसका असली रूप भी इस समय सुरक्षित नहीं, इतनी ऐतिहासिक ऊहापोह करनी ही व्यर्थ है।" श्री मेनारिया ने इस संबंध में एक नई कल्पना की है। उन्होंने 'नरपति नाल्ह' का सम्बन्ध 'नरपति' नामक एक गुजराती कवि से जोड़ दिया है।[1] इन दोनों को वे एक ही कवि मानते हैं एवं इनका रचनाकाल संवत् १५४५-१५६० के आसपास माना है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी श्री मेनारिया के मत का समर्थन किया है।[2]

'बीसलदेव रासौ' को प्राचीनतम मानने के लिये इसके निर्माणकाल की विवेचना अत्यन्त आवश्यक है। नरपति नाल्ह ने अपनी पुस्तक की रचना-तिथि निम्नलिखित प्रकार से दी है।

बारह सै बहोत्तरां हां मंझारि।
जेठ वदी नवमी बुधवारि॥
'नाल्ह' रसायण आरंभई।
सारदा तूठि ब्रह्म कुमारी॥[3]

इसी के आधार पर बीसलदेव रासौ की रचना-तिथि मिश्र बंधुओं ने[4] संवत् १३५४, लाला सीताराम ने १२७२ तथा सत्यजीवन वर्मा ने[5] १२१२ माना है। श्री रामचंद्र शुक्ल ने भी वर्माजी के मत का अनुमोदन किया है।[6] मिश्र बंधुओं ने अपनी 'विनोद' में लिखा है—'चंद और जल्हण के पीछे संवत् १३५४ में नरपति नाल्ह कवि ने बीसलदेव रासौ नामक ग्रंथ बनाया। इसमें चार खंड हैं और उनमें बीसलदेव का वर्णन है। नरपति नाल्ह ने इसका समय १२२० लिखा है, पर जो तिथि उन्होंने बुधवार को ग्रंथ-निर्माण की लिखी है

[1] हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ७१

[2] इसका विशुद्ध राजस्थानी रूप 'बीसलदे रासौ' है।

[3] 'वीर काव्य'—ले० डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ २०८।

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य—ले० पं० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ ८८-८९।

[2] हिन्दी साहित्य : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ५२।

[3] बीसलदेव रासौ : सं० सत्यजीवन वर्मा—काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, प्रथम सर्ग, ४।

[4] मिश्रबंधु विनोद।

[5] नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'बीसलदेव रासौ' की भूमिका, पृष्ठ ५।

[6] हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचंद्र शुक्ल (सातवाँ संस्करण) पृष्ठ ३४।

वह १२२० संवत् में बुधवार को नहीं पड़ती परन्तु १२२० शाके बुधवार को पड़ती है। इससे सिद्ध होता है कि यह रासौ १२२० शाके में बना।" विक्रम संवत् और शक संवत् में लगभग १३४ वर्ष का अंतर है अतः उन्होंने ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १३५४ मान लिया। मिश्र बंधुओं की इस विवेचना का आधार बाबू श्यामसुंदरदास की एक रिपोर्ट[१] है जिसमें उन्होंने लिखा था कि—The author of this chronicle is Narpati Natha and he gives the date of the composition of the book as samvat 1220. This is not vikram samvat.' किन्तु गौरीशंकर हीराचंद ओझा की मान्यता के अनुसार राजपूताने में पहले शक संवत् प्रचलित नहीं था।[२] यहाँ के लोग विक्रम संवत् का ही प्रयोग करते थें, अतः शक संवत् की कल्पना उचित प्रतीत नहीं होती। इसके अतिरिक्त 'बहोत्तरां' का अर्थ 'बीस' मान कर इसका रचनाकाल १२२० मानना भी ठीक नहीं है। 'मिश्र बंधु विनोद' में एक दामों नामक कवि का विवरण आता है। उसने 'लक्ष्मणसेन-पद्मावती' की कहानी लिखी थी। उसने अपने ग्रंथ में कहानी का रचनाकाल इस प्रकार दिया है—

संवत् पदरइ सोलोत्तरां मझार, ज्येष्ठ वदी नौमी बुधवार।
सप्त तारिका नक्षत्र दृढ़ जान, वीर कथा रस करू बखान॥

मिश्र बंधुओं ने इस सोलोत्तरां का अर्थ सं० १५१६ लिखा है। तत्पश्चात् एक 'हरराज' नामक अन्य कवि का वर्णन है, जिसने राजस्थानी में 'ढोला मारू बानी' चौपइयों में लिखी थी। उसमें भी कहानी का रचनाकाल 'संवत् सोलह सै सत्तोतरइ' दिया है। मिश्र बंधुओं ने यहाँ भी इसका अर्थ १६०७ किया है, १६७७ नहीं। आश्चर्य तो यह है कि वे 'पंदरइ सोलोत्तराँ' को तो १५१६ और 'सोलह सै सत्तोतरइ' को १६०७ मान लेते हैं किन्तु 'बारह सै बहोत्तरां' को १२१२ न मान कर १२२० मानते हैं। वस्तुतः 'बहोत्तर' 'द्वादशोत्तर' का रूपान्तर मात्र है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त 'बीसलदेव रासौ' को संवत् १४०० में रचा हुआ मानते हैं।[३] इस सम्बन्ध में उनका तर्क यह है कि जिन स्थानों के नाम 'बीसलदेव रासौ' में आते हैं, उनमें से कोई भी सं० १४०० के बाद का नहीं प्रमाणित हुआ है।'

श्री सत्यजीवन वर्मा एवं श्री रामचंद्र शुक्ल ने 'बीसलदेव रासौ' का रचनाकाल संवत् १२१२ माना है।[१] इसका कुछ ऐतिहासिक आधार भी है। 'बीसलदेव रासौ' में सर्वत्र क्रिया का प्रयोग वर्तमान काल में किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि कवि बीसलदेव का समकालीन था। दिल्ली की प्रसिद्ध फिरोजशाह की लाट पर संवत् १२२० (विक्रमी), वैशाख शुक्ला १५ का खुदा हुआ एक लेख मिलता है।[२] उसके द्वारा यह पता चलता है कि बीसलदेव संवत् १२१०-१२२० तक अजमेर का शासक था।

'बड़ा उपाश्रय' बीकानेर में 'बीसलदेव रासौ' की एक और प्रति कुछ दिन पहले मिली थी।[३] इसमें 'बारह सै बहोत्तरां मंझारि' के स्थान पर ग्रंथ का रचनाकाल इस प्रकार लिखा है—

संवत सहस तिहतरइ जाणि,
नाल्ह कवीसर सरसीय वाणि।

इसके अनुसार 'बीसलदेव रासौ' का रचनाकाल संवत् १०७३ ठहरता है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी इसी मत की पुष्टि करते हुए संवत् १०७३ को ही उचित ठहराया है।[४] उन्होंने अपने इतिहास में लिखा है[५]—गौरीशंकर हीराचंदजी

[१] हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की रिपोर्ट, सन् १९००।

[२] काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित बीसलदेव रासो की भूमिका, पृष्ठ ६ में दिये गये डॉ० ओझा के पत्र का उल्लेख।

[३] 'बीसलदेव रास'—सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त एवं श्री अगरचन्द नाहटा, हिन्दी परिषद, विश्वविद्यालय प्रयाग द्वारा प्रकाशित, भूमिका ५८।

[१] 'बीसलदेव रासो' सं० सत्यजीवन वर्मा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, भूमिका, पृष्ठ ६।

[२] आविन्ध्यादाहिमाद्रे विरचितविजयस्तीर्थयात्रा प्रसंगा–
उद्ग्रीवेषु प्रहर्ता नृपतिषु विनमत्कन्धरेषु प्रयत्नः।
आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेच्छविच्छेद नाभि–
र्देवः शाकंभरीन्द्रो जगति विजयते बीसलः क्षोणिपालः।
ब्रूते सम्प्रति चाहुवाणतिलकः शाकंभरी भूपति–
श्रीमान विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मनः।
अस्माभिः करंदव्यापि हिमवद्विन्ध्यान्तरालंभुवः
शेष स्वीकरणीयमस्तु भवतामुद्योगशून्य -मनः॥

[३] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, अंक १, पृष्ठ ९९

[४] हिन्दी का आलोचनात्मक इतिहास, प्रथम खंड, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ १४७।

[५] वही, पृष्ठ १४७।

ओझा के अनुसार बीसलदेव का समय संवत् १०३० से १०५६ माना गया है।[1]......यदि गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार बीसलदेव का काल संवत् १०३० से १०५६ मान लिया जाय तो बीसलदेव रासौ की रचना १५६ वर्ष बाद होती है। ऐसी स्थिति में लेखक का वर्तमान काल में लिखना समीचीन नहीं जान पड़ता। अतएव या तो बीसलदेव काल जो वीसेंट स्मिथ और गौरीशंकर हीराचंद ओझा द्वारा निर्धारित किया गया है, उसे अशुद्ध मानना चाहिये, अथवा बीसलदेव रासौ में वर्णित इस 'बारह सै बहोत्तरां हां मंझारि' वाली तिथि को।" इस प्रकार ग्रंथ के रचनाकाल की तिथि संवत् १२१२ को गलत ठहराते हुए उन्होंने संवत् १०७३ को ही ठीक माना है।

वीसेन्ट ए० स्मिथ ने अपने इतिहास में लिखा है—
'Jaipal, who was again defeated in November 1001, by Sultan Mahmud, committed suicide and, was succeeded by his son Anandpal, who like his father joined a confederacy of the Hindu powers under the supreme command of Vishal Dev, the Chauhan Rajah of Ajmer.'

इस प्रकार डॉ० वर्मा द्वारा यह लिखा जाना कि या तो बीसलदेव काल जो वीसेंट स्मिथ और गौरीशंकर हीराचंद ओझा द्वारा निर्धारित किया गया है, उसे अशुद्ध मानना चाहिये अथवा रासौ में वर्णित इस 'बारह सै बहोत्तरां मंझारि' वाली तिथि को, ठीक नहीं जान पड़ता। सांभर एवं अजमेर की चौहान परंपरा में चार बीसलदेव हुए हैं। बीसलदेव विग्रहराज द्वितीय का समय संवत् १०३० से १०५६ तक माना जाता है। बीसलदेव विग्रहराज तृतीय का काल ११११२-१११६ के आसपास तथा बीसलदेव विग्रहराज चतुर्थ का राज्यकाल संवत् १२१०-१२२० के आसपास होना अनुमानित किया गया है। संवत् १०७३ में ग्रंथ रचना के विचार के समर्थक इस ग्रंथ के नायक बीसलदेव को विग्रहराज द्वितीय मानते हैं एवं संवत् १२१२ के समर्थक विग्रहराज चतुर्थ।

बीसलदेव रासौ में उल्लिखित ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर इन तिथियों का विवेचन करना अत्यन्त आवश्यक है। यह पहला ग्रंथ है जिसका रचना-काल शोध द्वारा ठीक निर्धारित किया जा सकता है।

संवत् १०७३ के पक्ष में कई तर्क दिये जाते हैं। बीसलदेव का विवाह भोज की कन्या राजमती के साथ होना लिखा है। राजा भोज के समय के सम्बन्ध में वीसेंट ए० स्मिथ लिखते हैं[1]—

"Munja's nephew, the famous Bhoja ascended the throne of Dhar in those days the capital of Malwa, about 1018 A. D. and reigned gloriously for more than forty years."

इस दृष्टि से राजा भोज बीसलदेव विग्रहराज द्वितीय का समकालीन ही सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में बीसलदेव का राजा भोज की पुत्री से विवाह होना संभव है। अगर संवत् १२१२ को रचना-काल माना जाय तो यह निश्चित है कि 'बीसलदेव रासौ' घटना-काल के काफी बाद में लिखा गया होगा, किन्तु जैसा कि हम लिख चुके हैं, रासौ की भाषा में वर्तमान-काल का इस ढंग से प्रयोग किया गया है कि कवि को नायक का समकालीन मानना ही होगा। अतः अगर 'बीसलदेव रासौ' के नायक को विग्रहराज चतुर्थ मान लिया जाय तो एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि राजा भोज की पुत्री के साथ विवाह किस प्रकार संभव है। धार में उस समय कोई भोज नामक राजा नहीं था। बीसलदेव के एक परमारवंशीय रानी तो अवश्य थी, क्योंकि उसका वर्णन पृथ्वीराज रासौ में भी आता है।[2] हो सकता है राजा भोज के पश्चात् उस वंश ने यह उपाधि प्राप्त करली हो जिससे आगे होने वाले परमार-वंशी सरदार व राजा का भोज उपाधिसूचक नाम रहा हो। नरपति नाल्ह ने अपने रासौ में असली नाम न देकर केवल उपाधिसूचक नाम ही दे दिया हो। किन्तु परमार वंशी कन्या के लिए जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं, उनके द्वारा यह भ्रम हो जाता है कि राजा भोज का नाम कहीं पीछे से मिलाया हुआ न हो, जैसे—'जन्मी गौरी तू जैसलमेर' 'गोरड़ी जैसलमेर की'। धार के परमार इधर राजपूताने में भी फैले हुए थे अतः राजमती का उनमें से किसी सरदार की कन्या होना भी संभव है।

[1] हिन्दी टाड राजस्थान, प्रथम खंड, पृष्ठ ३५८।

[1] "Early History of India."—V. A. Smith, page 393.

[2] देखो भूमिका H. Search Report, 1900

इस सम्बन्ध में एक और मत का उल्लेख आवश्यक है। डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने लिखा है[1]—"बीसलदेव रासौ नामक हिन्दी काव्य में मालवे के राजा भोज की पुत्री राजमती का विवाह चौहान राजा बीसलदेव (विग्रहराज तीसरे) के साथ होना लिखा है और अजमेर के चौहान राजा सोमेश्वर के समय के (वि० सं० १२२६) बीजोल्यां (मेवाड़) के चट्टान पर खुदे हुये इस बड़े शिलालेख में बीसल की रानी का नाम राजदेवी मिलता है। राजमती और राजदेवी एक ही राजपुत्री के नाम होने चाहियें, परन्तु भोज ने सांभर के चौहान राजा वीर्यराम को मारा था। ऐसी दशा में भोज की पुत्री राजमती का विवाह बीसलदेव के साथ होना सम्भव नहीं। उदयादित्य ने चौहानों से मेल कर लिया था अतएव सम्भव है कि यदि बीसलदेव रासौ के उक्त कथन में सत्यता हो तो राजमती उदयादित्य की पुत्री या बहिन हो सकती है।" अवंती के राजा भोज ने सांभर के चौहान राजा वीर्यराम को मारा था, ऐसा उल्लेख पृथ्वीराजविजय में भी है।[2] वीर्यराम विग्रहराज तृतीय का ताऊ था अतः बीसलदेव विग्रहराज तृतीय और परमारवंशी राजा भोज में परस्पर वैमनस्य पैदा हो गया था। ऐसी दशा में राजा भोज का बीसलदेव तृतीय के साथ अपनी पुत्री का विवाह करना सम्भव नहीं जान पड़ता। किन्तु श्री रामबहोरी शुक्ल और भगीरथ मिश्र ने इसका समाधान इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि[3] "यह तो निश्चित ही है कि भोज-वीर्यराम युद्ध के बाद मालवा और शाकंभरी के राजाओं में सुलह हो गई थी। क्या यह सम्भव नहीं कि वीर्यराम के भतीजे बीसलदेव तीसरे की वीरता से मुग्ध होकर भोज ने अपनी लड़की उसे ब्याह दी हो और इसी सम्बन्ध के कारण बीसलदेव ने उदयादित्य को सहायता दी हो। तब यह कहना होगा कि नरपति ने बीसलदेव चौथे के राज्य-काल में सं० १२१२ वि० (११५५ ई०) में बीसलदेव रासौ की रचना की परन्तु उसमें जो कहानी दी वह बीसलदेव तीसरे की थी।"

बीसलदेव रासौ में बीसलदेव की यात्रा का वर्णन इतने स्पष्ट शब्दों में किया गया है कि धार के राजा के सिवाय अन्य किसी के साथ सम्बन्ध की कल्पना करना ही उचित नहीं जंचता। बीसलदेव अजमेर से रवाना होता हुआ चित्तौड़ होकर धार पहुँचता है। यात्रा के स्थानों का वर्णन भी स्पष्ट है। अतः यह आवश्यक है कि बीसलदेव राजा भोज का सम-कालीन हो। सं० १०७३ वि० मानने से ऐसा संभव है।

रासौ में लिखा है कि शादी के पश्चात् बीसलदेव तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में उड़ीसा गया था तथा उड़ीसा जाने के पहले भी सात वर्ष बाहर रहा था। मुहणोत नैणसी की ख्यात का अनुवाद व सम्पादन करते हुए श्री रामनारायण दूगड़ ने एक टिप्पणी में लिखा है[1] कि "बीसलदेव दूसरे ने नरबदा तक देश विजय किया, गुजरात के प्रथम सोलंकी राजा मूलराज को कंथाकोट में भगाया, अणहिलवाड़े के पास बीसलपुर का नगर बसाया और भड़ौंच में आसापूरा देवी का मन्दिर बन-वाया। सोलंकी राजा मूलराज के साथ युद्ध करने के कारण बीसलदेव साल-डेढ़ साल बाहर रहा था, तथा बीसलपुर नामक नगर बसाया था।" श्री ओझाजी भी इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं[2]—"मूलराज को इस प्रकार उत्तर में आगे बढ़ता देख कर सांभर के राजा विग्रहराज (बीसलदेव दूसरे) ने उस पर चढ़ाई कर दी जिससे मूलराज अपनी राजधानी छोड़ कर कंथादुर्ग (कंथाकोट का किला : कच्छ राज्य) में भाग गया। विग्रहराज साल भर तक गुजरात में रहा और उसको जर्जर करके लौटा।"

सम्भव है कवि ने साल-डेढ़ साल को सात वर्ष की अवधि में परिणत कर दिया हो तथा नरबदा व पूर्व के देश जीतने के

---

[1] राजपूताने का इतिहास, Vol. I—गौरीशंकर हीराचंद ओझा (दूसरा परिवर्द्धित संस्करण, पृष्ठ २१६।

[2] वीर्यरामसुतस्तस्य वीर्येण स्यात्स्मरोपमः।
यदि प्रसन्नया दृष्टया न दृश्यते पिनाकिना ॥ ६५
अगम्यो यो नरेन्द्राणां सुधादीधितिसुन्दर।
जघ्ने यशश्चयो यश्च भोजेना वन्ति भूभुजा॥ ६७
पृथ्वीराजविजय, सर्ग ५।

[3] हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, लेखक—रामबहोरी शुक्ल और भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ९३।

[1] मुहणोत नैणसी की ख्यात (प्रथम भाग), (हिन्दी अनुवाद), सं०, रामनारायण दूगड़, पृष्ठ १९९ की फुट-नोट में दी गई टिप्पणी।

[2] राजपूताने का इतिहास, Vol. I., ले० गोरीशंकर हीराचंद ओझा, पृष्ठ २४०।

लिये कुछ वर्ष उसे बाहर बिताने पड़े हों और नरपति नाल्ह ने उस अवधि को बारह वर्ष लिख डाला हो।

उपरोक्त सब दृष्टियों से संवत् १०७३ की तिथि ही अधिक प्रमाणित मालूम देती है। किन्तु इस सम्बन्ध में एक शंका और होती है। विग्रहराज द्वितीय सांभर का शासक था, जैसा कि स्व० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने भी अपने इतिहास में स्पष्ट किया है।[1] प्रस्तुत रासो का नायक अजमेर का शासक था—

'गढ़ अजमेरां को चाल्यौ राव।'
'गढ़ अजमेरां गम करऊ।'
'गढ़ अजमेरां पहुतां जाई।'

अजमेर नगर अर्णोराज के पिता अजयदेव (अजयराज) द्वारा बसाया गया था। श्री ओझाजी ने भी पृथ्वीराज प्रथम (सं० ११६२ वि०) के पुत्र अजयदेव को अजमेर बसाने वाला कहा है। श्री रामनारायण दूगड़ भी इसका समर्थन करते हैं।[2] अजयदेव का समय सं० ११७० वि० के आसपास का माना जाता है। इस दृष्टि से बीसलदेव विग्रहराज द्वितीय (जो लगभग एक सौ वर्ष पहिले हो चुका था) का अजमेर का शासक होना संभव नहीं है।

अपने विवाह के पश्चात् जब बीसलदेव धार से अजमेर लौटता है तो उसे आनासागर मार्ग में मिलता है।

दीठउ आनासागर समंद तणी बहार।
हंस गवणी अग लोचणी नारि॥
एक भरइ बीजी कलिख करइ।
तीजी धरी पावजे ठंडा नीर॥
चौथी घनसागर जूं घूलई।
ईसी हो समंद अजमेर को वीर॥[3]

आनासागर झील को बनाने वाले अर्णोराज बीसलदेव विग्रहराज चतुर्थ के पिता थे। ओझाजी ने भी इसी मत की पुष्टि[4] की है।

बाबू श्यामसुंदरदास इसे अनार्पण देवी के नाम पर बना हुआ मानते हैं।[1] बाबू साहब बीसलदेव रासो में वर्णित आनासागर और अर्णोराज द्वारा बनाये गये आनासागर में भेद करते हैं, किन्तु वह एक ही है जो अजमेर से कुछ दूरी पर है। विग्रहराज चतुर्थ बीसलदेव जब विवाह कर के लौटा होगा तो इस सागर की शोभा नवीन रही होगी तथा उसके पिता की कीर्ति-स्मरण के लिये कवि ने इसका वर्णन किया हो। ऐसी अवस्था में विग्रहराज द्वितीय व तृतीय को (जो अर्णोराज से डेढ़ सौ वर्ष पहले हो चुके थे) शादी के पश्चात् आनासागर मिलना असंभव-सा हो जाता है।

उपरोक्त दो विरोधाभासी ऐतिहासिक तथ्यों के कारण बीसलदेव रासो का रचनाकाल निश्चित् रूप से तय किया जाना कुछ कठिन-सा है। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह सैकड़ों वर्षों तक गाया जाता रहा। गेय रूप में होने के कारण किसी गायक ने उस समय परिस्थितियों के अनुसार अगर उसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन कर लिया हो तो आश्चर्य नहीं। जो विरोधाभासी ऐतिहासिक तथ्य मिलते हैं, उनका यही कारण जान पड़ता है। वास्तव में संवत् १०७३ की तिथि ही निश्चित् रूप से जान पड़ती है। बीसलदेव तथा धार का राजा भोज पँवार दोनों ग्यारहवीं शताब्दी में सं० १००० और १०७३ के बीच में थे। राजा भोज का राज्यासीन होने का समय संवत् १०५५ माना जाता है। किन्तु जिस समय राजा भोज गद्दी पर बैठा उस समय उसकी आयु केवल नौ वर्ष की थी। अतः राजमती का भोज की पुत्री न होकर बहिन होना ही अधिक उचित मालूम पड़ता है। रासो के अनुसार कवि बीसलदेव का समकालीन ही मालूम देता है। अगर 'बीसलदेव विग्रहराज द्वितीय का स्वर्गवास सं० १०५६ में मान लिया जाय तो बीसलदेव रासो का रचनाकाल उसके

---

[1] राजपूताने का इतिहास, Vol. I, ले० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृष्ठ २४०।

[2] मुहणोत नैणसी की ख्यात (प्रथम भाग), हिन्दी अनुवाद—सं० रामनारायण दूगड़, पृष्ठ १६६ की फुटनोट में दी गई टिप्पणी।

[3] बीसलदेव रासो—सं० सत्यजीवन वर्मा, ना०प्र०स०, प्रथम सर्ग, पृष्ठ २७, छंद ७५।

[4] 'अजयदेव के पुत्र अर्णोराज (आना) के समय मुसलमानों की सेना फिर इधर आई, पुष्कर को नष्ट कर अजमेर की तरफ बढ़ी और पुष्कर की घाटी उल्लंघन कर आनासागर के स्थान तक आ पहुँची, जहाँ अर्णोराज ने उसका संहार कर विजय प्राप्त की। यहाँ मुसलमानों का रक्त गिरा था अतएव इस भूमि को अपवित्र जान जल से इसकी शुद्धि करने के लिये उसने यहाँ आनासागर तालाब बनवाया। राजपूताने का इतिहास, Vol. I., पृष्ठ ३०५।

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ५, पृष्ठ १४१।

सत्रह वर्ष बाद होता है। १७ वर्ष का समय इतना लंबा नहीं जो बीसलदेव और भोज जैसे प्रसिद्ध राजाओं की स्मृति को भुला दे और उनके सम्बन्ध में कवि को कल्पना का आश्रय लेना पड़े। अजमेर एवं आनासागर सम्बन्धी वर्णन गायकों ने बीसलदेव विग्रहराज चतुर्थ के समय तथा उसके भी बाद संभवतया सम्मिलित कर लिये हों।

बीसलदेव रासौ की भाषा भी आरंभिक राजस्थानी का उदाहरण है। कई सौ वर्षों तक मौखिक रूप में रहने पर कई स्थल वस्तुतः बदल गये हैं किन्तु अंतस्थल मे अभी वही प्राचीनता का ढांचा वर्तमान है। इसमें कुछ फारसी शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जैसे—महल, इनाम, नेजा, चाबुक आदि। ये शब्द बाद में मिलाये गये प्रतीत होते हैं। किन्तु यह भी संभव है कि नरपति नाल्ह ने स्वयं भी इनका प्रयोग किया हो, क्योंकि उस समय मुसलमानों का भारत में प्रवेश हो गया था। बीसलदेव के सरदारों में एक मुसलमान सरदार भी था जैसा कि नरपति नाल्ह ने रासौ में लिखा है—

चढ़ि चाल्यौ छै मीर कबीर।
खुद कार तुह्या टुकेटुक धीर ॥ १–४३
महल पलांण्यो ताज दीन।
खुरसांणी चढ़ी चाल्यो गोड ॥ १–४१

मुसलमानों के सम्पर्क में आकर अगर नरपति नाल्ह ने कुछ फारसी शब्दों को ग्रहण कर लिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। प्राकृत एवं अपभ्रंश की छाप इस काव्य में पूरी तरह स्पष्ट है। यह ग्रंथ उस समय रचा गया जब कि साहित्यिक विद्वानों की भाषा प्राकृत व अपभ्रंश थी। उस समय बोल-चाल की भाषा में नरपति नाल्ह ने काव्य-रचना कर वास्तव में बड़े साहस का कार्य किया। कहीं-कहीं मेलन, चितह, रणि, आपिजइ, इणीविधि, ईसउ, नायर, पसाऊ, पयोहर आदि प्राकृत शब्द भी आ गए जिनका प्रयोग अपभ्रंश काल के पीछे तक भी होता रहा।

बीसलदेव रासौ में कारक दो प्रकार से व्यक्त हुए हैं। कुछ में तो विभक्तियों का प्रयोग है, कुछ में कारक चिन्ह लगे हैं। इस प्रकार भाषा में संयोगात्मक और वियोगात्मक दोनों अवस्थायें प्राप्त हैं। वर्तमान काल भी इसमें दो प्रकार से व्यक्त हुए हैं। एक तो 'छइ' वा 'हइ' मूल क्रिया में लगा कर तथा दूसरे मूल क्रिया में परिवर्तन कर के। भाषा यद्यपि काफी नवीन रूप में हो गई है किन्तु प्राचीन रूप भी पूर्णतया नष्ट नहीं हुआ। प्राय: संज्ञायें, कारक आदि प्राचीन रूप में मिलते हैं। विसनपुरी, म्हारउ, मिलिअ, पणमिअ, अछइ, वे, राखइ, जेणि इत्यादि अपभ्रंश के ठीक पश्चात् की लोक-भाषा के प्रयोग हैं। ऐसे प्रयोगों की संख्या काफी अधिक है। कई ऐसे प्रयोग भी मिलते हैं जो सोलहवीं शताब्दी की भाषा के रूप कहे जा सकते हैं। जैसे—'बेटी राजा भोज की' में 'की' और 'उलिगाणा गुण वरणिता' में 'वरणिता' का प्रयोग। किन्तु ऐसे शब्द बहुत कम हैं। इस तनिक से शब्द-साम्य पर इसे सत्रहवीं शताब्दी का रचित जाली ग्रंथ कह देना उचित नहीं। भाषा की परीक्षा उसके शब्दों से न होकर व्याकरण से होती है। 'बीसलदेव रासौ' की भाषा को व्याकरण की कसौटी पर कसने से पता चलता है कि उसमें अपभ्रंश के नियमों का विशेष पालन हुआ है। इस सम्बन्ध में दो उदाहरणों से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी—

कसमीरां पाटणह मंझारि। सारदा तुठि ब्रह्मकुमारि ॥
'नाल्ह रसायण नर भणइ। हियडइ हरषि गायण कइ भाइ ॥
खेलां मेल्ह्या मांडली। बहस सभा मांहि मोहेउ छइ राइ ॥
—खंड १, छंद ६।

नाल्ह बषाणइ छइ नगरी जू धार।
जिहां बसइ राजा भोज पंवार।
असीय सइहस सजे करि मैमन्ता।
नंच क्षोहण जे कर मिलइ निरिंदा ॥
कर जोड़े 'नरपति' कहइ।
विसनपुरी जाणे वसइही गोव्यंद ॥—खंड १, छंद १२

ग्रंथ के रचयिता के विषय में भी नाम के अतिरिक्त अन्य जानकारी बहुत ही कम है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सोलहवीं शताब्दी के गुजरात के 'नरपति' और 'बीसलदेव रासौ' के रचयिता नरपति नाल्ह एक व्यक्ति नहीं हैं। श्री मोतीलाल मेनारिया की एक होने की धारणा[1] का खंडन करते हुए श्री माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है[2]—"गुजरात के

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य, ले० पं० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ ८८-८९।

[2] 'बीसलदेव रास', सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त तथा श्री अगरचन्द नाहटा, प्रकाशक : हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय प्रयाग, भूमिका, पृष्ठ ६०।

'नरपति' ने अपने को कहीं 'नाल्ह' नहीं कहा जबकि 'बीसलदेव रासौ' का रचयिता अपने को 'नाल्ह' कहता है। फिर जो पंक्तियाँ तुलना के लिए दोनों कवियों से दी गई हैं, उनमें चार तो इस संस्करण में प्रक्षिप्त माने गए छंदों की हैं, और शेष तीन पंक्तियों में जो साम्य है वह साधारण है। उस प्रकार का साम्य देखा जावे तो मध्य युग के किन्हीं भी दो कवियों की रचनाओं में मिल सकता है। फिर 'बीसलदेव रासौ' में न जैन नमस्क्रिया है और न कोई अन्य बात मिलती है जिससे इसका लेखक जैन प्रमाणित होता हो। केवल आंशिक नाम-साम्य के आधार पर इस रचना को सोलहवीं-सत्रहवीं शती के किसी जैन लेखक की कृति मानना तटस्थ बुद्धि से सम्भव नहीं ज्ञात होता है।"

कवि की जाति भी विवादास्पद है। आचार्य शुक्ल ने इसे भाट माना है।[1] श्री अगरचन्द नाहटा इसे ब्राह्मण (सेवग) मानते हैं।[2]

बीसलदेव रासौ की रचना के बाद से ही राजस्थानी भाषा शनैः शनैः अपभ्रंश से दूर होकर अपना स्वतन्त्र रूप ग्रहण करने लगी। ११वीं शताब्दी से लेकर आदि काल के अन्तिम समय, अर्थात् लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक प्राचीन राजस्थानी के जैन कवियों के अनेक प्रामाणिक ग्रंथ हमें प्राप्त हैं परन्तु इस अवधि की जैनेतर स्वतन्त्र रचनायें प्रायः अनुपलब्ध ही हैं। ढोला मारू रा दूहा, जेठवा रा दूहा और बीसलदेव रासौ जो ११वीं शताब्दी की ही रचनायें मानी गई हैं, को छोड़ कर १५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक कोई अन्य जैनेतर स्वतन्त्र ग्रंथ प्राप्त नहीं होता। इसका अभिप्राय यह नहीं कि इस काल में कोई जैनेतर रचना हुई ही नहीं। साहित्य की सुरक्षा के प्रति शिथिलता एवं उदासीनता के कारण ही तत्कालीन रचनायें अपना स्थायित्व नहीं रख सकीं। उस समय की रचनाओं के अनेक फुटकर पद इन्हीं शताब्दियों में जैन मुनियों द्वारा रचित प्रभावकचरित्र, प्रबन्धकोश, प्रबन्ध चिन्तामणि, उपदेशतरंगिणी, पंचशती कोश आदि ग्रंथों में उद्धृत मिलते हैं। यहां हम तेरहवीं शताब्दी तक की जैनेतर रचनाओं के प्राप्त फुटकर पदों को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत कर आगे प्रामाणिक जैन साहित्य का शताब्दी अनुसार उल्लेख करेंगे। जैनेतर फुटकर पद जो भी प्रबन्धादि ग्रंथों में उद्धृत मिलते हैं प्रायः चारणों, भाटों तथा ब्राह्मणों आदि की ही रचनायें हैं।

१. उदाहरण—प्रभावकचरित्र—

१. मणु हुल्लीय फुल्ल म तोडहु मन आरामा म मोडहु।
मण कुसुमहिं अच्चि निरञ्जणु, हिण्डह काइं वणेण वणु।
२. नवि मारिअइ नवि चोरिअइ, पर-दारह अत्थु निवारिअइ।
थोवाह विथोवं दाइअइ, तउ सगि टुगुटुगु जाइयइ।
(वृद्धवादि सूरिचरितम् में संग्रहीत)

२. डूमण चारण—

जीव वधन्तां नग्ग गइ, अवधन्तां गइ सग्गि।
हुं जाणुं दुइ वट्टड़ी, जिणि भावै तिणि लग्गि।
(उपदेशतरंगिणि)

३ रामचन्द्र चारण—

काहूं मती विभंतड़ी, अजीय मणिअड़ा गुणेह।
अखय निरंजण परम पया, अजय जय न लहेह॥
अम्हे थोड़ा रिपु घणा, इम कायर चिंतंति।
मुद्ध निहालउ गयणयलु, के उज्जोउ करंति॥
(पुरातनाचार्यप्रबन्ध)

४ बागण कवि—

कुमरउ ! कुमर विहार, एता कांइं कराविया।
ताहं कु करिसइ सार, सीप न आवइं सयं घणी॥
(पुरातनाचार्यप्रबन्ध)

५ आमभट्ट—

रे रक्खइ लहु जीव वड विरणि मयगळ मारइ,
न पीइ अणगल नीर हेलिरायह संहारइ।
अवरन बंधइ कोइ सधर रयणायर बंधइ,
पर नारी परिहरइ लच्छि पररायह रूंधइ।
ए कुमार पाल ! कोपिं चडिउ फोडइ सत्त कडाहि जिम,
जे जिणधम्म न मन्निसिइं तींहवी चाडिसु तेम तिम।
(उपदेशतरंगिणी)

६ उदयसिंह चारण—

सुन्दर सर असुराह दलि, जल पीधउं वयणेहिं।
उदयनरिंदहिं कड्ढीउं, तीहं नारीनयणेहिं॥
(प्रबन्धचिन्तामणि)

७ मुंजराजप्रबन्ध—

देव अम्हारी सीख, कीजइ अवगणिअइ नहीं।
तूं चालंती भीख, इणि मंत्रिहिं हुस्यइ सही॥

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, सातवां संस्करण, पृष्ठ ३७।

[2] राजस्थानी, भाग ३, अंक ३ में प्रकाशित नाहटाजी का एक लेख।

सामी मुहतउ वीनवइ, ए खेहलउ जुहार ।
अम्ह आइसु हिव सीसि तुह, पडतउं देखूं छार ।।
जा मति पच्छइ सम्पज्जइ, सा मति पहिली होइ ।
मुंज भणइ मुणालवइ, विघन न वेढ़इ कोइ ।।

(प्रबन्धचिन्तामणि)

८. संवत् ११९९ के आसपास श्री विजयसिंह ने सांचोर के दहियों का राज्य छीन लिया था। उस समय के जिस पद का उल्लेख मुहणोत नंणसी ने अपनी ख्यात में किया है वह निम्न है—

धरा धू'ण धकचाळ कीध दहिया दल्लवहै ।
सवदी सवळां माल प्राण मेवास पहै ।।
आल्हणसुत विजयसी वंस आसराव प्रागवड़ ।
खाग त्याग सत्रवाट सरण विजय पंजर सोहड़ ।।
चहुआंण राव चौरंग अचल नरांनाह अणभंग नर ।
धूमेर सेत ज्यां लग अचळ तांम राज सांचोरधर ।।

जिनवल्लभ सूरि—

११वीं शताब्दी तक राजस्थान में रचित अपभ्रंश काव्य के प्रकाश में आगे चल कर तेरहवीं शताब्दी में अनेक जैन मुनियों ने राजस्थानी में भी रचना की है। उन्हीं की रचनाओं के आधार पर इस शताब्दी तक राजस्थानी को गुजराती तथा अपभ्रंश से मुक्त होना माना जाता है। जैन साहित्य में प्रथम ग्रंथ हमें जैनाचार्य जिनवल्लभ सूरि रचित 'वृद्ध नवकार' प्राप्त होता है। सूरिजी का देहान्त संवत् ११६७ में माना जाता है। अतः यह निश्चित है कि 'वृद्ध नवकार' की रचना भी संवत् ११६७ के पहिले ही की गई होगी।[1] इस ग्रंथ की भाषा के उदाहरण के लिए एक पद प्रस्तुत किया जाता है—

उ०—चित्रा बेली काज किसै देसांतर लंघउ ।
रयण रासि कारण किसै सायर उल्लंघउ ।।
चवदह पूरव सार युगे एक नवकार ।
सयल काज महि पल सरै दुत्तर तरै संसार ।।

वज्रसेन सूरि—

इसके बाद प्राप्त होने वाली रचनाओं में वज्रसेन सूरि रचित 'भरतेश्वर-बाहुबलिघोर' रचनाकाल वि.सं. १२२५ और शालिभद्र सूरि रचित 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' वि.सं. १२४१ प्राचीन राजस्थानी की प्राचीनतम रचनायें हैं। इन ग्रंथों की भाषा के उदाहरण-स्वरूप दो पद यहां उद्धृत हैं—

धर डोलइ खलभलइ सेनु, दिणियरु छाइजइ ।
भरहेसरु चालियउ कटकि, कसु ऊपमु दीजइ ।।
तंति सुणे विणु बाहू बलिण, सीवइ गय गुड़िया ।
रिण रहंसिहि चउरंग दलिहि, बेऊ पासा जुडिया ।।

(बाहुबलि घोर)

कंधगल केकाण, कवी करडइं कडियाल।
रण गाइं रवि रण वखर सखर घण घाघरीयाला,
सींचाण वरि सरइं, फिरइं सेलइं फोकारइं
ऊडइं आडइं अंगि रंगि, असवार विचारइं ।

(बाहुबलि रास)

इनके अतिरिक्त तेरहवीं शताब्दी की अन्य अनेक उल्लेखनीय जैन रचनायें हैं। स्थानाभाव के कारण प्रत्येक ग्रंथ का पूर्ण परिचय एवं उसकी भाषा का उदाहरण देने में असमर्थ से हैं। फिर भी पाठकों की सुविधा के लिए प्राप्त प्रामाणिक ग्रंथों के नाम, उनके रचनाकार एवं रचनाकाल यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

मुनि शालिभद्र सूरि कृत—बुद्धिरास, वि.सं. १२४१ ।

कवि आसिगु कृत—जीवदयारास, चन्दमबाला, वि.सं. १२५७।

धर्म(धम्म) मुनि कृत—जम्बूस्वामी, वि.सं. १२६६।

मुनि जिनपति सूरि कृत—जिनपति सूरि बधावण गीत, वि.सं. १२३२ ।

विजयसेन सूरि कृत—रेंवतगिरि रास, वि.सं. १२८७ ।

पल्हण कवि कृत—आबूरास, नेमिनाथ बारहमासा, वि.सं. १२८९।

जिनभद्र सूरि रचित—वस्तुपाल तेजपाल प्रबन्धावली, वि.सं. १२९० ।

सुमतिगणि रचित—नेमिरास तथा गजधर सार्धशतक वृहद्वृत्ति, वि.सं. १२९५।

अभयदेव सूरि रचित—जयंतविजय, वि.सं. १२८५ ।

इनके अतिरिक्त शान्तिनाथ रास, महावीरजन्माभिषेक, श्री वासुपूज्य बोलिका चाचरी, शान्तिनाथ बोली, रसविलास, गयसुकुमाल रास आदि भी इसी शताब्दी की रचनायें मानी जाती हैं। इस काल की भाषा के उदाहरण के लिए मुख्य ग्रंथों के कुछ पद यहां उद्धृत किये जाते हैं—

के नर सालि दालि भुंजंता, घिय घलहलु मज्झे विलहंता ।
के नर भूखा दूखियइं, दीसहिं परघरि कम्मु करंता ।
जीवता विमुया गणिय, अच्छहिं बाहिरि भूमि रुलंता ।

—जीवदयारास सं० १२५७।

२—अगुरु अंजण अंबिलीय अंकअइय अंकुल्लु ।
उंबरु अंबरु आमलीय, अगरु असोय अहल्लु ।।
वेयलु वंजलु बडल वडो, वेडस वरण विडंग ।
वासंती वीरिणि विरह, वंसियाली वण वंग ।।
सीसमि सिंबलि सिरसमि, सिंधुवारि सिरखंड ।
सरलसार साहार सय, सागु सिगु सिणदंड ।।
(रेवंतगिरि रास वि.सं. १२८७)

३— विसय सुक्खु कहि नरय दुवारु, कहि अनंत सुहु संजम भारु।
भलउ बुरउ जाणत विचारइ, कगिणि कारणि कोडि कुहारइ ।
(नेमिरास वि.सं. १२६५)

४—कासमीर मुख मंडण देवी वाएसरि पाल्हणु पणमेवी ।
पदमावतिय चक्केसरि नमिउं, अंबिक देवी हउ वीनवउं ।।
चरिउ पयासउ नेमि जिण केरउं, कपीतु गुण धम्म निवासो ।
जिम राइमइ वीओगु भणां, 'बारहमास' पयासउ रासो ।।
(नेमिनाथ बारहमासा वि.सं. १२८६)

तेरहवीं शताब्दी की साहित्यिक परम्परा चौदहवीं शताब्दी के ग्रंथों में भी परिलक्षित है। इस शताब्दी की प्राप्त स्वतंत्र रचनाओं में अधिकांश जैन मुनियों के ही ग्रंथ प्राप्त हैं। प्राप्त ग्रंथों का उल्लेख कर हम नीचे इस काल की भाषा के उदाहरणस्वरूप विख्यात ग्रंथों के पद उद्धृत करेंगे।

चौदहवीं शताब्दी की रचनायें–

अभयतिलक गणि कृत—महावीर रास, वि.सं. १३०७।

लक्ष्मीतिलक उपाध्याय कृत—बुद्धचरित्र, श्रावकधर्म प्रकरण वृहतवृत्ति, वि.सं. १३११।

आणंद सूरि एवं प्रेम सूरि रचित–

द्वादश भाषा (ढ़ाल) निबद्ध तीर्थ माला स्तवन, वि.सं. १३२३।

मुनि राजतिलक रचित शालीभद्र रास, वि.सं. १३३२।

कवि सोममूर्ति कृत—१ जिनेश्वर सूरि दीक्षा विवाह वर्णन रास, सं. १३३१।

कवि सोममूर्ति कृत—२ जिनप्रबोध सूरि चर्चरी, वि.सं. १३३२।

कवि हेमभूपण मणि कृत जिनचंद्रसूरि चर्चरी, वि.सं. १३४१।

मुनि मेरुतुङ्गाचार्य कृत प्रबन्ध चिन्तामणि संग्रह, सं० १३६१।

श्रावक कवि वस्तिम रचित बीस विरह मान रास, सं० १३६२।

गुणाकार सूरि रचित श्रावक विधि रास, सं० १३७१।

अंबदेव सूरि कृत समरा रास, सं० १३७१।

मुनि धर्मकलश कृत जिनकुशल सूरि पट्टाभिषेक रास, सं० १३७७।

जिनप्रभ सूरि रचित पद्मावती चौपई, वि.सं. १३८५।

इनके अतिरिक्त कवि छल्हु कृत क्षेत्रपाल, द्विपदिका, कवि सारमूर्ति कृत 'पद्मसूरि पट्टाभिषेक रास', जिनपद्म सूरि रचित स्थूलिभद्र फाग, पउम रचित शालीभद्र काव्य, सोलणु कृत चर्चरिका आदि भी इसी शताब्दी की रचनायें हैं।

चौदहवीं शताब्दी के ग्रंथों में प्रयुक्त राजस्थानी भाषा—

तसु उवरि भवणु उत्तंग वर तोरणं,
मंडलिय राय आणसि अइ सोहणं ।
सुहोणा भुवण पालेण कराविय,
जगधरह साहु कुलिकलस चडाविय।
हेम धय दंड कलसो तहि कारिउ,
पहु जिणेसर सुगुरु पासि पयठाविउ ।
विक्कमे वरिस तेरहइ सत्तरुत्तरे,
सेय वयसाह दसमीई सुहवासरे ।
(महावीर रास)

'संत जिणेसर' वर भयणि, मांडिउ नंदि सुवेह ।
वरिसहिं भविय दाणजलि, जिम गयणंगणि मेह ।
ताहि अगयारिय नीपजइ, झाणनलि पजलंति ।।
तउ संवेगहि निम्मियउ, हथलेवउ सुमहुत्ति ।
(जिनेश्वर सूरि दीक्षाविवाहवर्णन रास)

वाजिय संख असंख नादि काहिल दुडुदुड़िया,
घोड़े चडइ सल्लार सार, राउत सींगडिया ।
तउ देवालउ जोत्रि वेगि, घाघरिखु झमकइ,
सम विसम नवि गणइ कोइ नवि वारिउ थक्कइ ।।
सिजवाळा धर धड़हड़इ वहिणि बहुवेगि ।
धरणि धड़क्कइ रजु ऊडए, नवि सूझइ मागो ।
हय हींसइ आरसइ करह वेगि वहइ वइल्ल,
साद किया थाहरइ अवरु नवि देई बुल्ल ।
(समरा रास)

बंझ नारि तुह पय झापंति, सुरकुमरोवम पुत्त लहंति ।
निंदू नंदण जणइ चिराउ, दूहव पावइ वल्लह राउ ।।

चिंतियफल चिंतामणि मंति तुज्झ पसायिं फलइ नियंतु ।
अणुगह नर पिक्खेवि, सिज्झइ सोलह विज्जाएवि ।।
(पद्मावती चौपई)

सीमळ कोमल सुरहि वाय जिम जिम वायंते ।
माणमडफ्फर माणणिय तिम तिम नाचंते ।।
जिम जिम जलभर भरिय मेह गयणंगणि मिलिया ।
तिम-तिम कामी तणा नयण नीरिहि झलहलिया ।।
भोस मेहारव भर उलटिय, जिम जिम नाचइ मोर ।
तिम-तिम माणिणि खळभळइ, साहीता जिम चोर ।।
(स्थूलीभद्र फाग)

चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य तक की उल्लेखनीय रचनायें निम्नलिखित हैं। ग्रन्थों की नामावली के पश्चात् भाषा के उदाहरणस्वरूप कुछ पद उद्धृत किए जा रहे हैं।—

राजेश्वर सूरि कृत प्रबन्ध कोश, नेमिनाथ फागु, वि.सं. १४०५।

कवि हलराज कृत स्थूलिभद्र फाग, वि सं. १४०९।

मुनि शालिभद्र सूरि कृत पांच पांडव रास. वि.सं. १४१०।

मुनि विनयप्रभसूरि कृत गौतमस्वामी रास, वि.सं. १४१२।

जैन मुनि ज्ञानकलश रचित जिनोदय सूरि पट्टाभिषेक रास, वि.सं. १४१५।

श्रावक विद्धणु रचित ज्ञानपंचमी चौपई, वि.सं. १४२३। मेरुनंदण गणि कृत जिनोदयसूरि गच्छनायक विवाहलु, वि.सं. १४३२।

देवप्रभ गणि कृत कुमारपाल रास।

कवि चंपा कृत देवसुन्दर रास, वि.सं. १४४५।

साधु हंस कृत शालिभद्र रास, वि.सं. १४५५।

१—वंकुडियालीय भुंहडियहं, भरि भुवणु भमाडइ ।
लाडी लोयण लह कुडलइ सुर सग्गह पाडइ ।।
किरि सिसि बिंब कपोल, कन्नहिंडोल फुरंता ।
नासा वंसा गरुड चंचु दाड़िम फल दंता ।।
अहर पवाल तिरेह कंठुराजलसर रूडउ ।
जाणु वीणु रणरणइं, जाणु कोइल टहकडलउ ।।
(नेमिनाथ फागु)

२—जिम सहकारिहिं कोयल टहकउ जिम कुसुमह वनि परिमल बहकउ
जिम चंदनि सोगंध विधि, जिम गंगाजलु लहरिहिं लहकइ,
जिम कणयाचलु तेजिहिं झलकइ,
तिम गोयम सोभाग निधि ।।
(गौतम स्वामी रास)

३—इक्कु जगि जुग पवरु अवरु निय दिक्ख गुरु
गुणिसुं हुउं तेण निय मइ बलेण ।
सुरभि किरि कंचणं दुद्ध सक्कर घणं
संखु किरि भरीउ गंगा जलेण ।।
अत्थि गूजरधरा' सुंदरी सुंदरे,
उरवरे रयण हारोवमाणं ।
लच्छि केलिहरं नयरु 'पल्हणपुरं',
सुरपुरं जेम सिद्धामिहांण ।।
(जिनोदय सूरी गच्छनायक वीवाहलु)

आदि काल की इस अंतिम अवधि में जैन ग्रंथों के साथ-साथ कुछ उल्लेखनीय जैनेतर रचनाओं का भी निर्माण हुआ है। प्रामाणिक रचनाओं के रूप में प्राप्त होने के कारण आदि-काल के साहित्य में इन जैनेतर रचनाओं का अपना विशेष महत्व है। इन रचनाओं में सर्वप्रथम 'बारूजी सौदा' के फुट-कर गीतों का उल्लेख मिलता है। ये उदयपुर के महाराणा हम्मीर के समकालीन थे। इस दृष्टि से इनका रचनाकाल संवत् १४०८ से १४२१ के बीच माना जा सकता है। वैसे इनका लिखा हुआ कोई ग्रंथ स्वतंत्र रूप में तो नहीं मिलता लेकिन कुछ फुटकर गीत यत्र-तत्र मिल जाते हैं जो उस काल की साहित्यिक विधाओं को समझने में सहायक होते हैं। उदाहरण-स्वरूप उनका लिखा एक गीत यहां उद्धृत किया जाता है—

ऐळा चितौडा सहै घर आमी, हूं थारा दोखियां हरूं ।
जणणी इसौ कहूँ नह जायो, कहवं देवी धीज करूं ।। १
रावळ बापा जसौ रायगुर, रीझ खीझ सुरपंत री रूंस ।
दस सहंसां जेहो नह दूजौ, सकती करैं गळा रा सूंस ।। २
मन साचै भाखै महमाया, रमणा सहती बात रसाळ ।
सरज्यौ लै अड़सी सुत सरखो, पकड़े लाऊं नाग पयाळ ।। ३
आलम कलम नवै खंर गळा, कैलपुरारि मींढ किसौ ।
देवी कहै सुण्यौ नह दूजो, अवर ठिकांणे भूप इसौ ।। ४.

प्राचीन राजस्थानी साहित्य, भाग ६[1] में असाइत नामक एक कवि का और उल्लेख किया गया है। इन्होंने वि. संवत् १४२७ में 'हंसाउली' काव्य की रचना की। 'हंसाउली' मुख्यत: एक प्रेम - काव्य है जो चार खण्डों में विभक्त है तथा ४४० कड़ियों में लिखा हुआ है। सम्पूर्ण काव्य चौपाइयों में रचा

[1] उदयपुर साहित्य संस्थान।

गया है किन्तु बीच-बीच में दोहों का भी प्रयोग किया गया है। इस ग्रन्थ के निर्माण के पूर्व ही एक जैन कवि विनयभद्र 'हंसवच्छ' काव्य चौपाइयों में लिख चुका था। उसमें भी इसी प्रेम-कथा का वर्णन है। कवि असाइत ने उसी प्रेम-गाथा को अपने 'हंसाउली' में नवीन रूप में प्रस्तुत किया। इनकी कविता पर जैन कवियों की शैली व परम्परा की पूर्ण छाप दृष्टिगोचर होती है। 'हंसाउली' की भाषा निम्न उद्धरण से देखी जा सकती है—

विवध फूल फल निव नैवेद्य, वीणा वस गाइ गुण भेद।
सोइ जि परवरी पंचसि नारि, दीठी कुंयरि मंत्रि मढि बारि ।।
यथ देवी तब बुद्धि निधांन, हाकि मुनि केसर प्रधांन।
नरहत्या ति किधी धर्णा मुझ मढि मर हेसि पापिणी ।।
हंसाउली सबद जव सुणी, जांण्यु देवि कुपी मुझ भणी।
कर जोडीनि ऊभी रहि गत, पूरब भव वीतक कहि ।।

श्रीधर व्यास द्वारा रचित 'रणमल छन्द' नामक रचना भी इस काल की एक प्रामाणिक रचना मानी जा चुकी है। उक्त कवि के सम्बन्ध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है, फिर भी इनकी रचना ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्ण प्रामाणिक है। 'रणमल छंद' सत्तर छंद का एक वीर काव्य है जिसमें पाटण के तत्कालीन सूबेदार मुजफ्फरशाह और ईडर के वीर राठौड नरेश रणमल्ल के युद्ध का सजीव चित्रण है। इस युद्ध का समय अनेक विद्वानों ने ई. सन् १३९७ माना है। इसके सम्बन्ध में इतिहासज्ञों का भिन्न-भिन्न मत है, फिर भी गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान के. ह. ध्रुव ने सन् १३९७ को ही स्वीकार किया है।[1] इस दृष्टि से इस ग्रन्थ का रचनाकाल वि. सं. १४५४ के आस-पास ही ठहरता है। इसकी भाषा के उदाहरण हेतु एक पद नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

गोरी दल गाहवि दिट्ठ दहुद्दिसि गढ़ि मढ़ि गिरिगह्वरि गडियं।
हणहणि हवकन्तउ हुं हुं हय हय हुंकारवि हयमरि चडियं ।।
धडहडतउ धडि कमधज्ज धरातळि घसि धगडायण घूंसधरइ।
ईडरवइ पंडर वेस रसु रणि रांमायण रणमल्ल करइ ।।

इसी समय कवि जाखौ मणिहार भी हो चुके हैं जिन्होंने लगभग संवत् १४५३ में बोलचाल की राजस्थानी में 'हरिचंद पुराण' नामक धार्मिक ग्रन्थ की रचना की। उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि आदिकालीन राजस्थानी साहित्य हमारे समक्ष मुख्यत: दो रूप में आता है—जैनेतर साहित्य एवं जैन साहित्य। इस काल की प्राप्त सभी रचनाओं में जैनेतर साहित्य की अपेक्षा जैन साहित्य अधिक मात्रा में उपलब्ध है और वह पूर्ण प्रामाणिक भी है। इस प्रारंभिक साहित्य के कई ग्रन्थों की प्रामाणिकता को लेकर भिन्न-भिन्न साहित्य-विशेषज्ञों तथा इतिहासकारों ने यद्यपि अपनी मत-भिन्नता प्रकट की है, फिर भी इन रचनाओं को उन्होंने प्रामाणिक रूप से आदिकालीन रचनायें ही स्वीकार किया है। दोनों ही प्रकार की रचनाओं के उल्लेख के समान यथास्थान पर दिये गए पदों के उदाहरण तत्कालीन राजस्थानी भाषा पर प्रकाश ही नहीं डालते परन्तु भाषा के निजी अस्तित्व का प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं। निष्पक्ष दृष्टिकोण से यह तो मानना ही होगा कि इस काल की रचनाएं हमारी अमूल्य निधि रही हैं। हिन्दी व राजस्थानी इसी विधि के द्वारा ही अपनी मां अपभ्रंश से सम्बन्ध स्थापित करती हैं। इन रचनाओं में वास्तव में हम प्राचीनता के दर्शन करते हैं, चाहे वे पूर्ण न होकर आंशिक ही हों। ये रचनाएं उस मिली-जुली अवस्था की प्रतिनिधि हैं जब राजस्थानी अपभ्रंश से पृथक स्वतंत्र सत्ता ग्रहण करने का प्रयत्न कर रही थी। इस दृष्टि से इन रचनाओं का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

आदिकालीन राजस्थानी साहित्य के वर्णन के समय अनेक विद्वानों का प्राय: यही मत उल्लिखित मिलता है कि यह साहित्य वीररस-प्रधान है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखकों ने तो राजस्थानी की इन्हीं प्रारम्भिक रचनाओं के नाम उल्लेख कर उसे वीरगाथा-काल नाम भी दे दिया है, जब कि राजस्थानी साहित्य में पन्द्रहवीं शताब्दि के प्रारम्भ तक वीर-रस का कोई ग्रंथ उपलब्ध भी नहीं होता। परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। विद्वानों का यह मत पूर्ण भ्रमात्मक ही प्रतीत होता है। इस काल की उल्लेखित रचनाओं में एक भी स्वतंत्र रचना ऐसी नहीं है जिसे हम वीररस-प्रधान कह सकते हैं। प्राप्त रचनायें मुख्यत: प्रेम-काव्य होने के कारण शृंगारिक हैं। अन्य या तो धार्मिक ग्रन्थ होने के कारण उपदेशात्मक हैं या फिर वस्तु-वर्णन-प्रधान। यह सत्य तो अवश्य है कि इस काल में राजनैतिक स्थिति संघर्षपूर्ण थी। राजपूत शासक

[1] प्राचीन गुर्जर काव्य—के. ह. ध्रुव. प्रस्तावना, पृष्ठ ३।

युद्ध के लिए सदैव ही तत्पर रहते थे। अनेक राजपूत वीरों ने युद्ध के मैदान में अपने अद्भुत शौर्य का परिचय भी दिया परन्तु उनकी वीर-प्रशंसा तथा युद्ध-वर्णन का तत्कालीन कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। अतः इस सम्बन्ध में तत्कालीन लिपिनिष्ठ रचनाओं के अभाव में इस समय के साहित्य को वीररसप्रधान बताना असंगत ही है। हो सकता है, उस समय वीर-चरित-नायकों की वीर-प्रशंसा में श्रुतिनिष्ठ साहित्य प्रचलित हो।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में आचार्य शुक्ल के हिन्दी के आदिकाल को वीर-गाथा काल बताने के मत का खण्डन करते हुए बताया कि शुक्लजी द्वारा जिन १२ ग्रंथों के आधार पर इस काल को वीर गाथा काल नाम दिया गया है उनमें से कई रचनायें तो बाद की निकलती हैं और कुछेक के सम्बन्ध में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उनका मूल रूप क्या था।[1] खुमाण रासौ बहुत पीछे की रचना निकलती है तो पृथ्वीराज रासौ के मूल रूप का पता नहीं चलता, बीसलदे रासौ कोई वीर रस-प्रधान रचना नहीं है। अतः उन्होंने भी मिश्रबंधुओं द्वारा दिये गये नाम—आदिकाल के ही पक्ष में अपना मत दिया है।

साहित्य-विशेषज्ञ एवं विद्वद्जन आदिकालीन रचनाओं के सम्बन्ध में निरन्तर रूप से अनुसन्धान एवं साहित्य शोध-कार्य करते आ रहे हैं। इसी के परिणामस्वरूप राजस्थानी के प्राचीनतम साहित्य का दिग्दर्शन सम्भव हो सका है। प्राचीन राजस्थानी की अनेक रचनायें आज भी अज्ञानता के अंधकार में लुप्त हैं। जन-साधारण की अशिक्षा के कारण और प्राचीन साहित्य के महत्व की अनभिज्ञता के कारण कई प्राचीन मौलिक ग्रन्थ व ग्रन्थों की प्रतियां सुदूर गाँवों में विनाश को प्राप्त हो रही हैं। इसके अतिरिक्त प्राप्त रचनाओं में से भी कुछेक काल-प्रमाण के अभाव में विवादग्रस्त पड़ी हुई हैं। ऐसी स्थिति में अप्राप्त रचनाओं की खोज एवं प्राप्त साहित्य के सम्बन्ध में शोधकार्य अत्यन्त आवश्यक रूप से अपेक्षित है। इस प्रकार का कार्य न केवल साहित्य की अभिवृद्धि ही करेगा अपितु उसकी प्रामाणिकता को और अधिक पुष्टि प्रदान करता हुआ हमारी अपनी प्राचीन संस्कृति की सुरक्षा करने में भी सहयोगी सिद्ध होगा।

[1] हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रथम व्याख्यान, पृ० ११

मध्यकाल—वि. सं. १४६० से १९०० तक

आदिकालीन राजस्थानी साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि में हम यह बता आए हैं कि लगभग विक्रम की तेरहवीं शताब्दी तक राजपूताने के प्रत्येक विभाग पर राजपूती राज्य की स्थापना हो चुकी थी। देश में होने वाले बाह्य आक्रमणों एवं राजपूत राजाओं के पारस्परिक युद्धों के कारण तत्कालीन राजनैतिक स्थिति पूर्ण अनिश्चित थी। आगे चल कर मध्य-युग में विदेशी सत्ताधारियों के राज्य-विस्तार के लोभ एवं राजपूतों के पारस्परिक वैमनस्य तथा फूट के कारण यह स्थिति अधिकाधिक संघर्षपूर्ण बनती गई। उत्तर-पश्चिम से आने वाले मुसलमान आक्रमणकारियों ने देश की कमजोरी से लाभ उठा कर उत्तरी भारत में अपनी सत्ता कायम कर दी। जब दिल्ली की बादशाहत से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ तो वे राज-पूताने के राज्यों को भी अपने अधिकार में करने के लिए प्रयत्न करने लगे। इसके लिए उन्हें अनेक युद्ध करने पड़े। वीर राज-पूत लोग, विदेशी सत्ता तो दूर रही, उस समय अपने पड़ोसी राजपूत राजा की अधीनता भी स्वीकार करने के लिए कभी तैयार नहीं थे। अतः उन आक्रमणों का कोई परिणाम नहीं निकला। तुगलक वंश की कमजोरी के समय राजपूत राजाओं ने उन सभी राज्यों को पुनः प्राप्त कर लिया जिन्हें मुसलमानों ने हस्तगत कर लिया था।

मध्य युग में यद्यपि दिल्ली में मुस्लिम सल्तनत कायम हो चुकी थी, फिर भी बाह्य आक्रमणों का अंत नहीं हुआ था। वि० सं० १४५५ (ई० सन् १३९८) में अमीर तैमूर ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर दिल्ली को फतह किया, उसे लूटा और वहाँ मारकाट की। इन बाह्य आक्रमणों एवं आंतरिक युद्धों के कारण तुगलक शासक बिल्कुल कमजोर हो गए और सैयदों ने उनसे राज्य छीन लिया। ये कुछ ही वर्ष रह पाये थे कि लोदी पठानों ने इनसे बादशाहत छीन ली। इस वंश के बादशाहों ने भी राजपूत राजाओं पर अनेक आक्रमण किये परन्तु यहां के शासको ने सभी आक्रमणों का सदैव ही वीरता के साथ प्रतिरोध किया। जिसके फलस्वरूप दिल्ली में कोई स्थायी सल्तनत कायम न हो सकी और निरन्तर आक्रमणों के कारण इन मुस्लिम शासकों की शक्ति क्षीण हो गई और अवसर का

लाभ उठा कर अनेक क्षेत्रीय शासकों ने अपनी स्वाधीन रियासतें कायम करदीं। इन रियासतों में भी एकता का परम अभाव था। इनमें पारस्परिक द्वेष एवं फूट की वृद्धि होती गई जिसके कारण इनकी शक्ति का भी ह्रास हो गया।

ऐसी स्थिति में मुगल सरदार बाबर ने हिन्दुस्तान में आकर अपनी सल्तनत कायम करने का प्रयत्न किया। यद्यपि स्वतंत्रता-प्रेमी मेवाड़ राज्य के वीर शासक राणा सांगा ने खानवा के युद्ध (वि० सं० १५८४) में बाबर से लड़ते समय अद्भुत वीरता एवं अदम्य साहस का परिचय दिया तथापि दुर्भाग्यवश विजय बाबर के ही हाथ रही। इस पराजय के कुछ ही दिनों बाद राणा सांगा की मृत्यु हो गई जिसके कारण समूचे भारतवर्ष की स्वाधीनता ही अंधकार में विलीन हो गई। इस समय देश में कोई ऐसी एक दृढ़ सत्ता न रह गई थी जो विदेशी सत्ता को देश से निकाल बाहर करती। इसके फलस्वरूप मुगल सल्तनत की नींव ही भारत में अधिक गहरी जमती गई। हुमायू की मृत्यु तक तो कुछ उथल-पुथल अवश्य होती रही और उसमें कई विघ्न उत्पन्न हुए, परन्तु हुमायू की मृत्यु के बाद अकबर जब गद्दी पर बैठा तो उसने अपने शासन को दृढ़ करने के लिए हिन्दुओं को प्रसन्न रखने व राजपूत राजाओं के साथ मेल-जोल बढ़ाने की नीति को अपनाया। वह राजपूतों की वीरता से परिचित हो चुका था। इस समय राजपूताने में कुल ११ राज्य थे[1], जिनमें मेवाड़ (उदयपुर) और जोधपुर राज्य मुख्य थे। अकबर ने सर्व प्रथम आंबेर के राजा भारमल कछवाहा को कुछ प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया। परन्तु इसके साथ ही वह राजपूताने की मुख्य शक्ति मेवाड़ को भी अपने अधीन करने के लिए पूर्ण उत्सुक था। इसी उद्देश्य से उसने वि० सं० १६२४ में महाराणा उदयसिंह पर चढ़ाई की। महाराणा इस युद्ध में हार अवश्य गए परन्तु उन्होंने अधीनता स्वीकार नहीं की। चित्तौड़ का किला छोड़ने के उपरान्त भी वे युद्ध करते ही रहे। महाराणा उदयसिंह के देहांत के बाद महाराणा प्रताप ने स्वतंत्रता के व्रत को कायम रखा। उन्होंने यवनों के विरुद्ध जिस वीरता का परिचय दिया वह विश्व-विदित है। इसी प्रकार मुगल सल्तनत के अन्तिम काल तक स्वाधीनता-प्रेमी राजपूत समय-समय पर अपनी मर्यादा एवं हिन्दुत्व की रक्षा के लिए निरन्तर युद्ध करते हुए अपनी वीरता का परिचय देते रहे। औरंगजेब ने जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद जोधपुर को खालसे कर लिया और मेवाड़ के राणा से अप्रसन्न होने के कारण उस पर चढ़ाई करदी। उसके बाद बहादुरशाह ने महाराजा जयसिंह से आमेर छीन लिया था परन्तु मुगल सल्तनत का पतन होते देख जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह व आमेर के राजा जयसिंह ने महाराणा अमरसिंह द्वितीय की सहायता से अपने अपने राज्यों पर पुनः अधिकार कर लिया। इस अवसर पर महाराजा अजीतसिंह को राज्याधिकार प्राप्त कराने में उनके सामंत वीर राठौड़ दुर्गादास ने पूर्ण सहयोग देकर सच्ची स्वामी-भक्ति का परिचय दिया।

मुगल सल्तनत के पतन के समय जब मरहठों की शक्ति बढ़ती जा रही थी तब यहां के शासकों को तो उनका भी प्रतिरोध करना पड़ा। इसके परिणामस्वरूप मरहठों तथा राजपूतों में भी निरन्तर संघर्ष चलता ही रहा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि यह काल भयकर युद्ध एव संघर्ष का युग रहा। इस संघर्ष में विशेषतः राजपूताने के वीरों ने जो अतुल शौर्य का परिचय दिया वह कहीं अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। अपनी मर्यादा और मातृभूमि की रक्षा के लिए युद्ध भूमि में हँसते-हँसते प्राणों की आहुति दे देना ही इनके जीवन की विशेषता थी। यही कारण है कि इस संघर्ष काल में वीरता, साहस और बलिदान का परिचय देने वाले योद्धाओं की अनेकों गाथाओं से राजस्थानी साहित्य का भंडार भरा हुआ है। ऐसे शूरवीर नायकों की कीर्तिगाथायें इस समय के साहित्य की मुख्य धरोहर हैं।

इस अमर साहित्य का सृजन करने वाले कवि प्रायः राज्याश्रित होते थे। राज्याश्रित होने पर उनका उद्देश्य राजा की प्रशंसा करना ही नहीं होता था। वे जहाँ भी वीरता और मानवीय गुणों का परिचय पाते, अपनी काव्य-प्रतिभा के माध्यम से उन गुणों को जन साधारण तक पहुँचाते, चाहे वर्णन साधारण योद्धा के सम्बन्ध में हो, चाहे किसी बड़े शासक के सम्बन्ध में। कविवर दुरसा आढ़ा ने जनता एवं स्थानीय शासक के मध्य भी सम्मान प्राप्त किया और प्रताप की प्रशंसा

[1] उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, जोधपुर, बीकानेर, आंबेर, बूंदी, सिरोही, करौली और जैसलमेर।

में 'विरुद छिहत्तरी' लिख कर बादशाह अकबर के दरबार तक में अधिक ख्याति पाई।

दूसरा उदाहरण कविराजा बांकीदासजी का भी है। ये जोधपुर के महाराजा मानसिंह के राजकवि थे पर जब खांडप के एक साधारण व्यक्ति लाधा सोलंकी ने भीषण दुष्काल के समय अपने क्षेत्र की प्रजा की यथाशक्ति सहायता की और आने जाने वाले यात्रियों की सुविधा के लिए बहुत से प्रयत्न किए तब कवि ने उसके सुकृत्यों की प्रशंसा में भी गीत कह कर उसे अमर कर दिया।[1] इस काल के कवियों की अपनी निजी विशेषता थी। ये केवल सरस्वती के उपासक ही नहीं होते थे पर रणचण्डी का आह्वान भी समय पड़ने पर स्वीकारते थे। रणस्थल में उपस्थित हो अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा वीरों में जोश की उमंगें भरते तथा आप स्वयं भी हाथ में तलवार ले अपने नायक का साथ देते। वीरों की प्रशंसा में कर्नल टाड ने जहां अपने ये विचार व्यक्त किए हैं कि……… There is not a petty State in Rajasthan that has not had its Thermopylae and scarcely a city that has not produced its Leonidas' वहां इस प्रसंग में प्रो. नरोत्तमदास स्वामी ने उचित ही लिखा है कि 'कर्नल टाड यह लिखते समय इतना और लिखना भूल गए थे कि थर्मापोली से रण-क्षेत्र तैयार करने वाले वीर सैनिक कवियों से भी राजस्थान का साधारण से साधारण गांव भी खाली नहीं रहा है।' -राजपूत लोग अपने धर्म एवं स्वतंत्रता की रक्षा के लिए रणोन्मत्त होकर सहर्ष मृत्यु को गले लगाते और उनकी स्त्रियां और बच्चे मर्यादा की रक्षा के लिए अपने आपको अग्नि देवी की गोद में समर्पित करते। कवि लोग प्रत्येक परिस्थिति में साथ रहते। इसलिए प्रत्यक्ष दृश्यानुभूति होने के कारण उनकी लेखनी ऐसे वीरों के उज्ज्वल चरित्र की अभिव्यक्ति के लिए बरबस ही फूट पड़ती।

इन कवियों की रचना में आज लोगों को भले ही अति-शयोक्ति लगे परन्तु जिन वीरों की अद्भुत वीरता एवं बलिदान ने शत्रुओं को भी मुक्त कंठ से प्रशंसा करने के लिए बाध्य कर दिया और वे ऐसे वीरों की प्रशंसा करते अघाये नहीं, वे सच्चे देश भक्त वास्तव में ही प्रातःस्मरणीय हैं। चित्तौड़ दुर्ग की रक्षा के लिए अकबर की विशाल सेना के विरुद्ध युद्ध करते हुए वीर शिरोमणि जयमल मेड़तिया और वीरवर पत्ता सीसोदिया ने जिस अद्भुत वीरता, प्रगाढ़ देश-प्रेम और सच्ची स्वामी-भक्ति के दर्शन कराये उसकी अकबर जैसा समृद्धिशाली बादशाह भी अपने सच्चे हृदय से सराहना किये बिना न रह सका। वीरों ने अपने चमत्कारों द्वारा अपनी प्रतिष्ठा उसके हृदय पर अमिट रूप से अंकित करदी। बादशाह ने इन वीरों की केवल अपने मुख से ही प्रशंसा नहीं की अपितु युग्म वीर जयमल और पत्ता की वीरता को चिरस्थायी एवं चिरस्मरणीय करने के लिए दोनों वीरों की पाषाण की गजारूढ़ दीर्घ प्रतिमायें बनवा कर आगरे में अपने शाही किले के प्रधान द्वार पर बड़ी प्रतिष्ठा के साथ स्थापित करादी।[1]

मूर्ति-स्थापन के साथ यह भी प्रसिद्ध है कि बादशाह अकबर ने इन दोनों मूर्तियों पर उन वीरों की प्रशंसा की याद में निम्नलिखित दोहा भी खुदवा दिया था—

> जयमल बड़तां जीवणं, पत्तो बायें पास।
> हिन्दू चढ़िया हाथियां, अडियो जस आकास॥

जहां प्रतिपक्षी द्वारा वीरों की कीर्ति एवं यश की रक्षा के लिए इतनी चेष्टा की जाय वहाँ लेखनी द्वारा ऐसे वीरों के लिए जो कुछ भी लिखा जाय वह बहुत थोड़ा है।

वीरों की कीर्ति-रक्षार्थ यशगान करने वाले कवि स्वयं भी वीर होते और उन्हें वीरता का सच्चा अनुभव भी होता था। इसीलिए उनके द्वारा रचित साहित्य में हमें वीरत्व की जीवन्त झांकी के दर्शन होते हैं। इस कथन की पुष्टि में अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

[1] झरहरियो आभ न कूमांडे झड़, विखमां जग परहरियो वाव।
जो उगणतरो धरहरियो जग में, चाळक न परहरियो चाव॥ १
अंन बिन लोक चहूं चक ओड़ै, गया माळवे छोडे गेह।
दोवां नाडकां छेह दिखायो, 'आसावत' दरियाव अछेह॥ २
मानव बिकै पाव अंन माट, दुरभिख जग में ताव दियो।
अंन रांधे कोरे नह ऊतर, लाधे हद सो भाग लियो॥ ३
भेटे कोय गयो नंह भूखो, परजाची कीधी प्रतिपाळ।
खोटे समय उगंतरे खांडप, सोलंकी दरसियो सुकाळ॥ ४
—बांकीदास ग्रन्थावली, भाग ३, भूमिका

[1] बर्नियर्स ट्रेवल्स इन दी मुगल एम्पायर, कान्स्टेबल और स्मिथ कृत, पष्ठ २५६–५७।

खानवा के युद्ध में महाराणा संग्रामसिंह जब घायल हो गए तो उनके सैनिक लोग उन्हें उठा कर ले आये। मूर्च्छा खुलने पर राणा उदासीन हुए और अपने आपको अंग भंग देख राणा के पद के लिए अनुपयुक्त घोषित कर दिया। उसी समय कवि जमणाजी अपने एक ही गीत द्वारा उनमें उत्साह की उमंग भर देते हैं और इस गीत से प्रभावित होकर सांगा ने राणा पद को पुनः स्वीकार कर लिया।

गीत—सतबार जरासंघ आगळ स्री रंग, बिमहा टीकम दीध बग।
मेलि घात मारे मधुसूदन, असुर घात नांखे अळग ॥ १

पारथ हेकरसां हथणापुर, हटियौ त्रिया पडंतां हाथ।
देख जका दुरजोधण कीधी, पछै तका कीधी कांइ पाथ ॥ २

इकरां रांमतणी तिय रांवण, मंद हरेगो दहकमळ।
टीकम सोहि ज पथर तारिया, जगनायक ऊपरा जळ ॥ ३

एक राड भव मांह अवत्थी, ओरस आणे केम उर।
'माल' तणा केवा कज मांगा, सांगा तू साले असुर ॥ ४

राजपूताने के वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप की वीरता, त्याग एवं बलिदान से कौन परिचित नहीं है। अकबर जैसे सम्राट ने भी महाराणा प्रताप की वीरता का लोहा माना और प्रमुख शत्रु होते हुए भी उसकी सदैव प्रशंसा की। राणा ने अपना समस्त जीवन युद्ध में ही व्यतीत किया। राणा के प्रति तत्कालीन कवि सूरायच टापरिया का कहा हुआ गीत कायर के हृदय में भी उत्साह की लहर उत्पन्न कर देता है—

गीत—वरियाम विडंग न लहै वेसांमी, खग सावरत रणा पैसे खाप।
अकबर माह न छाडै आरंभ, पांण न छाडै रांण प्रताप ॥ १

वे अतलोकि नरींद बराबर, पेखे पदम हाथ लहै परै।
मेले जोगणिपुरौ महादळ, केळपुरौ उखेळ करै ॥ २

प्रभणे किरण पेखि कीळापति, देखै मीढ़ण तणौ दुह राव।
नंद-हुमाऊं रीस न नामै, सीस न नामै 'सिंघ' सुजाव ॥ ३

सूरज-चंद तांम समासे, खरै आव वाजियौ खरौ।
हेकां सिर खीटै बाबर हर, हेको अमट 'संग्राम' हरौ ॥ ४

मध्यकालीन राजपूत राजा लोग जहाँ अपनी शूरवीरता के लिए प्रसिद्ध हो चुके हैं वहाँ दानशीलता एवं त्याग में भी वे अपना प्रतिद्वन्दी नहीं रखते। वीरों के प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं वीरता के अद्भुत कार्य-कलापों की प्रेरणा से जिस प्रकार वीर-काव्यों की रचना हुई है, उसी प्रकार दानवीरों की दान-वीरता भी इन कवियों की कविता में उद्भूत हुई है। अपने आश्रित कवियों को उनकी सुन्दर रचनाओं पर करोड़ पसाव और लाख पसाव देने की परम्परा सर्वविदित है। इस प्रकार के दान और पुरस्कार में भी परस्पर प्रतिस्पर्धा की भावना रहती और दान देने में अपना नाम उच्च रखने के लिए एक दूसरे से बढ़ कर दान दे दिया करते। कवि शंकर बारहठ की कविता पर प्रसन्न होकर बीकानेर महाराजा रायसिंह ने उसे सवाकोड़ का पुरस्कार प्रदान किया। इसकी सूचना जब जयपुर के महाराजा मानसिंह को उसकी रानी, जो महाराजा रायसिंह की लड़की थी, द्वारा मिली तो उन्होंने प्रातः ही ६ श्रेष्ठ कवियों को बुला कर ६ करोड़ पसाव का पुरस्कार दे दिया।[1] इस प्रकार की पुरस्कार व्यवस्था से राजा लोग अपने आश्रित कवियों को सम्मानित कर साहित्य-सृजन के लिए प्रोत्साहित करते तथा साहित्य के प्रति अपना अटूट प्रेम भी प्रगट करते। मध्यकालीन कवियों को निरन्तर रूप से साहित्य रचना के लिए इस प्रकार का प्रोत्साहन मिलने के कारण भी इस काल में राजस्थानी का अतुल भंडार उपलब्ध होता है।

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध अर्थात् अकबर के शासन-काल के आरम्भ होने तक भारत में मुगल राज्य की नींव सुदृढ़ हो चुकी थी और निरन्तर युद्ध एवं मुगलों के प्रभुत्व ने राजपूत राजाओं की शक्ति को जर्जर कर दिया था। ऐसी स्थिति में भी वीरता के उपासक राजपूत अब भी अपने धर्म एवं हिन्दुत्व की रक्षार्थ अवसर पड़ने पर प्राणों की बाजी लगाने से चूकते नहीं थे। इस्लाम का आतंक देशव्यापी हो गया था। राजस्थान् के सुदूर गांवों में भी हिन्दू जाति की साधारण जनता को धर्म के नाम पर बहुत बुरी तरह से कष्ट दिया जा रहा था। गायों को लूट कर ले जाना, मन्दिरों को नष्ट करना,

---

[1] पोळ पात हरपाळ[1], प्रथम प्रभता कर थप्पे।
दळ में दासो[2] नरू[3] सहोड़ घण हेत समप्पे।
ईसर[4] किसनो[5] अरघ, बड़ी प्रभता बाघाई
भाई डूंगर[6] भरो, क्रीत लख मुखां कहाई।
अई अई 'मांन' उनमान पहो, हात अनो-धन धन हियौ।
सुरज घड़ीक चढ़ता समौ, दे छ कोड़ दातण कियौ॥
—वीरविनोद, भाग २, कविराजा श्यामलदास, पृ० १२८५

लूट-मार करना आदि दिन प्रति दिन की घटनायें थीं। ऐसे संकट काल में उस जनता के वीर नायक प्राय: ये ही वीर राजपूत उनकी रक्षार्थ सामने आते और आततायियों के अन्याय का अन्तिम श्वास तक प्रतिरोध करते। ऐसे धर्मवीरों के चरित्र-वर्णन एवं उनके बलिदान की प्रशंसा के लिए तत्कालीन कवियों की लेखनी मौन कैसे रह सकती थी। इसीलिये धर्मवीरों के बलिदान की अनेक गाथायें मध्ययुगीन राजस्थानी साहित्य में हमें उपलब्ध होती हैं। गायों की रक्षा करते समय मर मिटने वाले के प्रति रचा हुआ कवि का निम्न गीत कितना हृदयस्पर्शी है।

गीत—मिळ भायां मतौ कियौ मा जायां
दळ बळ सज आयां दुरत।
गायां गीयां जीवीयां कुण गत
गायां वांसै मुग्रां गत ॥ १
सजीयां खाग 'प्रीयाग' समोभ्रम।
साची कहै बंधवां सार।
वित जावै ऊभा वाहरुग्रां,
लांणत वां वाहरुग्रां लार। २
'बदरै' 'अने'र्का वातां बे मुख
सुरां देणौ मरण ·····।
घन धारियां लाज की धणियां,
धणीयां ऊभौ जाय धृग ॥ ३
अरजा देव प्रथी परमाणै······
ओजो मांटीपणौ गई।
भारत कट पड़ीयां बे भायां,
गायां घट खूंदती गई ॥ ४

इसी प्रकार धर्म रक्षा में रत अनेक बहादुरों ने स्थान-स्थान पर मंदिरों, देवरों की रक्षा में अपने प्राणो की आहुति दी है। एक वीर राठौड़ मेड़ता के मंदिर की रक्षा करते करते काम आगया, जिसके सम्बन्ध में कहा हुआ गीत बरबस ही हमारी भावनाओं को झकझोर देता है।

झिरमिर झिरमिर मेवा बरसै, मोरां छती छाई।
कुळ में छै तो आव 'सुजांणा', फौज देवरै आई॥

गीत—आया दळ असुर देवरां ऊपर
कूरम कमधज एम कहै।
ढहियां सीस देवळ ढहसी,
ढह्यां देवाळौ सीस ढहै ॥ १
'माल' हरौ 'गोपाल' हरौ मंड
अडिया दुहूं लागां अणभंग.
उतगंग साथ उतरसी अंडौ
अंडा साथ पड़ै उतमंग ॥ २
'स्यांम' सुतन 'पातळ' सुत सझिया,
निज भगतां बांध्यौ हर नेह।
देही साथ समायां देवळ,
देवळ साथ समायां देह ॥ ३
कुरम खंडेले कमंध मेड़ते,
मरण तणौ बांध्यौ सिर मोड़।
'सूजा' जिसौ नहीं कोइ सेखौ,
'राजड़' जिसौ नहीं राठौड़ ॥ ४

जहां राजपूत वीरों ने अपनी वीरता, बलिदान और दान-शीलता आदि का अपूर्व परिचय देकर साहित्य-सृजन के लिए तत्कालीन कवियों को प्रेरित किया, वहां इनकी वीर स्त्रियों ने भी किसी प्रकार की कसर न रखी। जैसे वीर राजपूत पुरुष वैसी ही उनकी वीर नारियां। पुरुषों की भांति इन्हें भी प्राणों का मोह लेश मात्र भी नहीं था। जिस प्रकार कायर कहलाने की अपेक्षा वीर राजपूत मर जाना अधिक पसंद करते थे, उसी प्रकार राजपूत वीरांगनायें किसी कायर की मां, बहन या पत्नी कहलाना अपने लिए महान लज्जा की बात समझती थीं। युद्ध के समय मातायें अपने वीर पुत्रों, पत्नियां सुभट पतियों तथा बहिनें बहादुर भाइयों को सहर्ष अपने हाथ से तिलक कर लड़ने के लिए विदा देने में अपना अहोभाग्य समझती थीं। विदाई के अवसर पर उनके द्वारा प्रकट किये जाने वाले हृदयोद्गार वस्तुतः उनके वीर हृदय का परिचय देते हैं। युद्ध में जाने वाले वीर से माता यही कहती कि पुत्र! तूने मेरे स्तन का पान किया है अतः युद्ध में मेरे दूध को कलंकित न करना। बहिन यह कह कर विदा देती कि, मेरे वीर (भ्राता) यह चुनड़ी तूने अपने हाथ से मुझ पर ओढ़ाई है अतः इस चुनड़ी को अपने नाम से लज्जित न करना, और पत्नी यह कह कर शकुन मनाती कि आर्य पुत्र! यह अहिवात (चूड़ो) मैं तुम्हारे नाम का धारण किए हुए हूं अतः इसे तुम किसी तरह से कलंकित न होने देना। अवसर पड़ने पर ये नारियां स्वयं भी रणचण्डी का रूप धारण कर शत्रुओं का संहार करने के लिए युद्ध-भूमि में आ उतरतीं और आवश्यकता होने पर अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए हँसते-हँसते जौहर की ज्वाला को भी

वरण करतीं। राजस्थानी साहित्य इसके अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

राजस्थानी साहित्यकारों ने इन वीरांगनाओं के उज्ज्वल चरित्र को बड़े ही आदर और श्रद्धा के साथ अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया है। नारी के जिन विभिन्न रूपों का उन्होंने दर्शन किया, उसका अपने साहित्य में दिग्दर्शन कराया है। शक्ति रूप में उसकी पूजा की है, माँ के रूप में उसकी वंदना की है, वीरांगना के रूप में उसका सम्मान किया है। जयसिंह कछवाहा की पुत्री किसनावती अपने पुत्रों की रक्षा हेतु शक्ति रूप धारण कर युद्ध में शत्रुओं का संहार करती है; उसका वर्णन तत्कालीन कवि गोरधन बोगसे ने किया है जिसमें नारी की वीरता पर देवता तक न्यौछावर हुए हैं।

गीत—भारथ मझि मिळे दूसरो भारथ रथ ठांमियो जोवण ग्रहराज
उमया ईस उभै आहुड़िया, किसनावती तणैं सिर काज ॥
क्रत सूरति पेखे कछवाही, हुवो पदम हथ विमुह हथ।
आदमियां उतवंग लै आदम, संकति रूप कहियो सकत ॥
अमुख-अमुख चर नारद ओसर, त्रिपति पांच मिळि पांचतत।
हूँ सर तिरपति सुज जांण हरि, त्रिसगति त्रिहूँ रति तिरपत ॥
रुद्र-घरणी जंपै, साभळि रुद्र, आज लगै तै लिया अनेक।
जैसिंघ-धूय तणौ धू जोतां, अंबर भर मो जुडियो एक ॥
हरि-दरगाह न्याय गा हाले, ब्रह्म वांटियो करे विचार।
सतरमो सिणगार सिवा सिव सिर आधै पूरो सिणगार

(राजस्थानी वीर गीत, गीत ११७)

इसी प्रकार वीर पत्नी का स्वरूप हमें कवि ईसरदास कृत 'हालां झालां रा कुंडलिया' में हाला जसवंतसिंहजी (जसा जी) की पत्नी द्वारा पति को कहे हुए शब्दों में मिलता है। हलवद नरेश झाला रायसिंह, हाला जसवन्तसिंह पर चढ़ाई कर उसके नगर ध्रोल में आ पहुँचे तब हाला ठाकुर की पत्नी उन्हें युद्ध के लिए तत्पर करती है—

उठि ऊढ़ंगा बोलणा, कांमणि आखै कंत।
अै हल्ला तो ऊपरां, हूंकळ कळळ हुवंत ॥
हूंकळ सींधवो वीर कळ हळ हुवै।
वरण कजि अपछरां सूरिमां वह बुवै ॥
त्रिजड़-हथ मयंद जुध गयंद घड़ तोड़णा।
उठि हर धवळ सुत अढ़ंगा बोलणा ॥

(हालां झालां रा कुंडळिया, पृ० ६)

मध्य युग में स्त्री समाज में सती प्रथा का विशेष महत्व था। प्राचीन काल से चली आ रही इस प्रथा को इस युग में बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। प्रारम्भ में पति की मृत्यु के पश्चात् अनुसरण या सहगमन करना ही स्त्रियों का जीवनादर्श था। पति के साथ चितारोहण करती हुई नारी को यह दृढ़ विश्वास होता था कि उसके सती होने के बाद उसे अमर लोक में अमर सौभाग्य मिलेगा। आगे चल कर प्रचलित होने वाली जौहर प्रथा भी इसी का विकसित रूप है। मध्यकाल में युद्धों की अधिकता थी। युद्ध में वीर राजाओं, सामंतों तथा सैनिकों का काम आ जाना ही जब निश्चित सा प्रतीत होता तो उसके पूर्व ही उनकी वीर स्त्रियां महलों आदि में चिता की तैयारी कर उसमें अपने प्राणों की बलि दे देतीं। उनका यह तेजोमय आदर्श बहुत ऊंचा था। इसकी झलक मध्यकाल की रचनाओं में स्थान-स्थान पर मिलती है। किशनगढ़ के महाराजा बहादुरसिंह ने अखां नामक वीरांगना के सती होने पर जो गीत कहा उसे उदाहरणार्थ यहां प्रस्तुत किया जाता है—

गीत—लगी लाय प्रत रोम धकतीरथी धोम लख,
बोम अंतरीक बहती बताई।
जळ पाखां चाढ़ती सकळ जग जोव ज्यो,
अनळ झळ पड़णवा 'अखां' आई ॥ १
बर सबद रांम रांमेत मुख बोलती,
तोलती देह सत बरत तावै।
दुनी कौतक कहै भमी वा देख ज्यो,
उक्रमी गयंण मग क्रमी आवै ॥ २
आरखत बदन 'अजबेस' बाली उमंग,
मछर छळ छोड उर अराळी मीच।
कीच कूळ उकासण कंथ आसण करै,
बैठगी विखम झळ हुतासण बीच ॥ ३
रूप दाहे दवन अंगारा……
मन भवन अगन जस हूंत मंडगी।
कुळ उतंग डोर आवागवन भंग कर,
चंग पवन संग जिम सुरंग चडगी ॥ ४

इसी प्रकार जोधपुर के महाराजा मालदेव की रानी उमा भटियाणी अपने मान के कारण आजीवन महाराजा से रूठी रही और अपने ननिहाल में रह कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया, परन्तु अन्त में महाराजा की मृत्यु के समाचार सुनते ही वहाँ से आकर उनके साथ सती हो गई। इसी का वर्णन तत्कालीन कवि आसा बारहठ ने बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से किया है—

कवित्त—हंस गमरण राव रमरण, निरम्मळ सारंग नेरणी ।
इम्रत बैरण सब जांरण, बदन चन्दा ग्रह बेरणी ।
पतबरता पदमरणी, सील सुन्दर सतवन्ती ।
लछरण महा लच्छिमी, जिसी गंगा पारबत्ती ।
बड सती माल चाढ़त बड्डम, जीव ग्रंग करती जुवा ।
झैलती झाळ ग्राठूं दिसा, हार कण्ठ जू जू हुग्रा ॥[1]

निस्सन्देह मध्ययुग में राजपूताने के वीर राजाओं ने अपूर्व देश-प्रेम और अद्भुत वीरता का परिचय दिया। राजाओं के आश्रित कवियों ने अपनी ओजस्विनी एवं शक्ति-शालिनी वाणी में उनकी वीरता का यशोगान किया है और उनकी प्रशंसा में ग्रंथों की रचना की है। उन्होंने इनके इस उज्ज्वल पक्ष का चित्रण करने में अतिशयोक्ति का भी सहारा लिया है परन्तु यह भी सत्य है कि उनके अन्य जीवन पक्षों पर भी वे मौन नहीं रहे। जहाँ कहीं कवियों ने वीरों तथा अपने आश्रयदाताओं की कायरता देखी है, उनमें झूठा गर्व पाया है, वहीं अपनी उसी प्रभावशाली वाणी में तीक्ष्ण फटकार के साथ उनकी भर्त्सना की है। इनके साहित्य में कायरों की हीनता और राजाओं के मिथ्याभिमान का चित्रण भी स्पष्ट रूप से मिलता है। हल्दी घाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप को पराजित कर जयपुर नरेश मानसिंह उदयपुर पहुँचे और वहाँ पिछोले के तालाब में अपने घोड़े को पानी पिलाने लगे। घोड़ा पानी पी रहा था, उसी समय वे गर्व से बोले, 'बेटा नीला ! तुम तृप्त होकर पानी पिओ। या तो इस पिछोले में मंडोवर के राव जोधा राठौड़ ने ही राणा के बल को चूर्ण कर अपने घोड़े को पानी पिलाया या आज मैं महाराणा प्रताप के गर्व को खण्डित कर तुझे इस पिछोले में पानी पिला रहा हूँ।' इसी समय जयपुर निवासी जगावत शाखा का बारहठ 'किसना' भी जो मानसिंह का आश्रित कवि होने के कारण उस युद्ध में शामिल था, मानसिंह के घोड़े के साथ-साथ अपने घोड़े को भी पानी पिला रहा था। वह मानसिंह के थोथे गर्व के शब्दों को सहन नहीं कर सका और तत्काल ही मानसिंह को निम्नलिखित उपालम्भसूचक दोहा कह सुनाया।

'मांना' मन ग्रंजसो मती, ग्रकबर बळ ग्रायाह ।
'जोधै' जंगम ग्रापणा पाणां बळ पायाह ॥[2]

[1] राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद, पृ० ११०–१११

[2] चारण ग्रखबार, सम्पादक : किशोरसिंह बारहठ, पृ० २५४

एक समय बीकानेर के महाराजा दलपतसिंह ने जहांगीर बादशाह की फौज के साथ युद्ध किया, तब उसी के राठौड़ साथियों ने उसे धोखा देकर बादशाह की फौज से मिल कर उसे कैद करा दिया। महाराजा को कैद कराने के बाद जब सभी राठौड़ अपने राज्य की ओर पुनः लौटे तब कवि इसे सहन न कर सका और उसने अपनी ओजस्वी वाणी में उन्हें स्पष्ट कह सुनाया—

फिट बीकां फिट कांधळां फिट जंगळ धर लेडां ।
'दळपत' हुड ज्यूं बांधियो, भाज गई भेड़ां ॥[1]

मारवाड़ के महाराजा जसवंतसिंह प्रथम ने बादशाह शाहजहाँ की शाही सेना को लेकर औरंगजेब के विरुद्ध धरमत (उज्जैन) में युद्ध किया। युद्ध में विपरीत परिस्थितियों के कारण हार निश्चित समझ महाराजा के मंत्रियों ने उन्हें युद्ध से लौट कर मारवाड़ पहुंच जाने के लिए बाध्य कर दिया। युद्ध में सेना का भार रतलाम के राजा रतनसिंह ने संभाल लिया और महाराजा जसवंतसिंह मारवाड़ चले आये। उनके युद्ध से लौटने पर उनकी रानी ने तो किले के द्वार बंद करवाये ही पर कवियों ने भी उन्हें कायर राजपूत होने के अनेक उपालम्भ दिए। बारहठ नरहरदास कवि का ऐसा ही गीत हम उदाहरण के लिए यहाँ प्रस्तुत करते हैं जो निस्सन्देह कायर की रगों में भी वीरता की भावना भरने में पूर्ण समर्थ है।

गीत—महा मंडियौ जाग उज्जैरण खागां मर्थं
रुदन बिलखावती रही रोती ।
हेळवी 'ग्रमर' री हीय करती हरख
'जसा' ग्रपछर रही बाट जोती ॥
किया काचा 'ग्रमर' 'सूरहर' कळोधर
डरत गत न पीधौ फूल दारू ।
बडा री भोळवी हूर ग्रावी वरण
मेलती गई नीसास मारू ॥
पाटवी हेळवी बेगमैं पैलकै
तैं समै ग्रैलकै लीध टाळा ।
पागती 'दलो' नै 'रतन' परणीजतै
बाट जोती रही 'गजन' वाळा ॥

[1] त्रिविध संग्रह, संकलनकर्ता : ठाकुर भूरसिंह, मलसीसर, पृ० १५२ ।

ज तौ वीवाह री बाट जोती जगत
रूक बळ आसियौ गियौ राजा ।
मराडी जांन घर आवियौ मांडवै
तेल चढ़ती रही अछर ताजा ॥

इसी प्रकार एक बार उदयपुर का महाराणा राजसिंह औरंगजेब से मिलने के विचार से दिल्ली की ओर रवाना हुआ। मेवाड़ की परम्परा में यह बात अपमानजनक थी। अतः तभी जीलिया चारणवास का कवि कमाजी (कम्मा) जो पंगु था, उस मार्ग में एक टीबे पर बैठ गया। महाराणा की सवारी जब उसके सामने होकर निकल रही थी तब उसने अपना निम्न छप्पय १०-१५ बार पढ़ कर सुना दिया। छप्पय को सुनते ही महाराणा को मेवाड़ के गौरव का भान हुआ और उन्होंने अपनी सवारी वहीं से उदयपुर की ओर मोड़ ली। उन्होंने समझ लिया कि दिल्ली जाकर बादशाह से मिलना मेवाड़ को नीचा दिखाना है। कवि का छप्पय वस्तुतः एक सारगर्भित व्यंगोक्ति है।

छप्पय—अजे सूर झळहळै, अजे प्राजळै हुतासण ।
अजे गंग खळहळै, अजे साबत इंद्रासण ।
अजे धरणि ब्रहमंड, अजे फल फूल धरत्ती ।
अजे नाथ गोरक्ख, अजे अह मात सकत्ती ।
आजू हीलोहल धू अटळ, बेद धरम बांणारसी ।
पतसाह हूंत चीतोड़पत, रांण मिळै किम 'राजसी' ॥

यद्यपि इस प्रकार की उपालम्भोक्तियों तथा व्यंगोक्तियों का दुष्परिणाम इन आश्रित कवियों को भुगतना पड़ता था, फिर भी जहां सच्चे वीर की मुक्त-कंठ से प्रशंसा करने में उद्यत रहते वहां कायरता एवं हीनता ा चित्रण करने में भी वे नहीं चूकते। इन कवियों की रचना चाहे वीर राजपूत में देश और धर्म की रक्षा के लिए मर मिटने वाली ओजस्विनी शक्ति प्रदान करने तथा कर्तव्यों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के लिए हो अथवा कायर एवं मिथ्याभिमानी को लज्जित कर व्यंग तथा उपालम्भ के प्रभाव से उसकी रगों में सच्चा राजपूती जोश उत्पन्न करने के लिए हो, सदैव ही सद्भावना से उद्भूत होती। इतना ही नहीं, इस काल के कवियों की कविता में देश-प्रेम की सच्ची भावना स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। अनेक प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनायें इसका प्रमाण हैं।

माधोजी सिंधिया ने राजपूतों का दमन करने की भावना से जोधपुर राज्य को अपने अधीन करने के लिए फ्रांसीसी डी. बोइने की अध्यक्षता में वि. सं. १८४७ में अपनी एक सेना भेजी। जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के पास भी अनेक वीर सरदार थे जिन पर उनको विश्वास ही नहीं, पूर्ण गर्व भी था। इस अवसर पर महाराजा ने अपने वीर सरदार महेशदास के प्रति जो कुछ भावना प्रकट की वह उसकी वीरता का अच्छा प्रमाण है।[1] परन्तु यही वीर जब कि राठौड़ों की सेना मराठों से मेड़ता के पास मुकाबला कर रही थी तब महाराजा को लेकर कुछ अन्य सरदारों के साथ लौट कर आ गए, तब कवि तो मौन कैसे रह सकता था। उसने युद्ध से लौट आने वाले वीर सरदारों को देश-रक्षा हित चेतावनी देने के लिए तीक्ष्ण व्यंगोक्ति सुना ही दी—

आप भलांई आविया, मुवरा वसावौ देस ।
जंबक ए क्यूं जीविया, 'आसौ', 'किसनौ', 'महेस' ।

यह व्यंगोक्ति महेशदास के हृदय पर तीर सी लगी। वह उलटे पैर रण-स्थल में लौट गया और वहीं राज्य-रक्षा हित बहादुरी के साथ लड़ते हुए अपने प्राणों की बलि दे दी। कवि उसकी अद्भुत वीरता की सराहना किए बिना नहीं रह सका।

आसांणौं अंजस करै, अंजसै मुरधर देस ।
दल दिखणी रै ऊपरै, बणियौ बींद महेस ॥
म्हैस कहै सुण मेड़ता, सांची साख भरेस ।
कुण भिड़सी कुण भागसी, देखै जसी कहेस ॥
पग जड़िया पाताळ सूं, अड़िया भुज अमरेस ।
तन झड़िया तरवारियां, मुड़िया नहीं माहेस ॥

केवल सराहना तक ही उनकी कविता सीमित नहीं रही, अवसर आने पर सत्यता प्रकट करने के लिए स्पष्टोक्ति का भी प्रयोग किया। महेशदास के मरने पर उसका परिवार रक्षा हेतु देशनोक पहुंच गया। इधर आसोप ठिकाना सूना देख गच्छीपुरे के ठाकुर जगरामसिंह ने महाराजा के साथ सांठ-गांठ कर उसका पट्टा अपने नाम करा लिया। कवि को ज्ञात होने पर उसने दरबार में ही यह कह सुनाया—

मरज्यौ मती महेस ज्यूं, राड बिचै पग रोप ।
झगड़ा में भाग्यौ जगौ, उण पायी आसोप ॥

दिखणी आयौ सज दळां, पृथी भरावण पेस ।
कूंपा तो बिन कुण करै, म्हारी मदत महेस ॥
सुख महलां नह सोबणौ, भार न झल्लै सेस ।
तो ऊभां दळअत तणां, मुरधर जाय महेस ॥

इस पर जोधपुर के महाराजा ने महेशदास के पुत्र को बुला कर पुनः आसोप का ठिकाणा उसके नाम कर दिया।[1]

ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर यह बात प्रसिद्ध है कि राजपूताने के वीर राजपूत अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए शत्रुओं से लोहा लेने में पूर्ण प्रबल थे। परन्तु इसके साथ ही उनमें एक बहुत बड़ी कमजोरी भी थी, और वह थी उनकी पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता की दृढ़ भावना। इसी भावना ने उनकी अदम्य शक्ति का ह्रास कर दिया जिससे वे अत्यन्त बलशाली एवं वीर होते हुए भी अपनी स्वतंत्रता कायम रखने में सफल न हो सके। छोटा से छोटा शासक भी अपनी निजी स्वतंत्रता चाहता था। कोई भी राजा किसी अन्य राजा की अधीनता स्वीकार करना नहीं चाहता था। इसके साथ ही अपने बाहुबल के प्रभाव से अपने राज्य का विस्तार तथा अपनी वीरता की मान्यता भी चाहता था। इसी कारण इन राज्यों में भी परस्पर अनेक युद्ध हुए। जोधपुर और बीकानेर के राजा यद्यपि परस्पर भाई थे, फिर भी इन्होंने अनेक युद्ध किए। इसी प्रकार जयपुर जोधपुर व जयपुर बीकानेर के बीच भी युद्ध होते रहे। इस द्वेष की भावना के कारण कई बार वे राष्ट्रीय हितों को भी तिलांजली दे दिया करते थे, यद्यपि इसके अपवाद भी अनेक थे, तथापि कुछेक राजपूतों में इस पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता की अति हो चुकी थी।

इस सम्पूर्ण राजनैतिक विवेचना के आधार पर यह मानना ही होगा कि मध्यकाल में राजस्थान विषम परिस्थितियों का अनुभव कर रहा था। ऐसी परिस्थितियों में अंकुरित, पोषित एवं संवर्धित होने के कारण इस काल का राजस्थानी साहित्य प्रधानतया वीररसात्मक ही रहा है। आगे यथास्थान इस काल के वीर साहित्य का संवत् अनुसार उल्लेख करेंगे।

जिस समय राजस्थान में सच्ची वीरता के दर्शन हो रहे थे और यहाँ के कविजन अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा वीरों में देश-प्रेम की भावना का उद्घोष कर अपनी लेखनी द्वारा उज्ज्वल चरित्रों का निर्माण कर रहे थे, उसी समय भारतीय जन-जीवन एक नवीन लहर का प्रभाव अनुभव कर रहा था। दक्षिण में प्रस्फुटित एवं विकसित होने वाली भक्ति-भावना जो बहुत पहिले से धीरे-धीरे उत्तरी भारत में आ रही थी, राजनैतिक परिवर्तनों एवं अनुकूल वातावरण के कारण व्यापक रूप से प्रसारित होने लगी। लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी तक आते-आते उसका रूप काफी व्यापक हो चुका था। भक्ति की इस धारा ने उत्तरी भारत को, जो इस समय तक बाह्य आक्रमणों एवं अनेक युद्धों की विभीषिका से पूर्ण आतंकित हो चुका था, धर्म के क्षेत्र में भक्ति की ओर आकृष्ट किया। भारत में इस भक्ति-भावना के आविर्भाव के सम्बन्ध में डा. रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि 'यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि भक्ति का जन-व्यापी प्रभाव दक्षिण के अलवार[1] गायकों से ही ईसा की छठवीं शताब्दी में आरम्भ हो चुका था।'[2] प्रारम्भ में इसका प्रभाव दक्षिण में रहा परन्तु इस अविरल स्रोत का प्रवाह सीमित कैसे रह सकता था। अतः धीरे-धीरे परिस्थिति अनुकूल परिवर्तनों के साथ विस्तृत क्षेत्र में व्यापक होता ही गया। प्रारम्भिक स्थिति में गीतों की लोकप्रियता के कारण भक्ति का रागात्मक रूप ही अधिक प्रिय रहा, परन्तु आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने 'अहं ब्रह्मास्मि' कह कर अद्वैतवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इसके प्रभाव से वैष्णव भक्ति में कुछ काल के लिए अवरोध अवश्य आ गया परन्तु इसके बाद ही श्री रामानुजाचार्य श्री माध्वाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य तथा श्री वल्लभाचार्य ने अपने-अपने संशोधन के साथ क्रमानुसार विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत और शुद्धाद्वैत सिन्द्धातों का प्रतिपादन कर वैष्णवों के चार संप्रदायों की स्थापना की। रामानन्द ने रामानुजाचार्य के भक्ति सिद्धान्तों का उत्तर भारत में अधिकाधिक प्रचार किया। इस भक्ति धारा के उचित प्रभाव के फलस्वरूप ही विदेशी धर्मों के विरुद्ध भारतीय हिन्दू धर्म स्थिर रह सका।

स्वामी रामानन्द, भक्त नामदेव तथा संत ज्ञानेश्वर आदि के पर्यटन एवं धार्मिक प्रचारों से दक्षिण की भक्ति लहर लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी तक उत्तरी भारत में व्यापक रूप से प्रवाहित हो चुकी थी। ऐसे समय में राजस्थान भी इसके प्रभाव से अछूता कैसे रह सकता था। दक्षिण का प्रारंभिक

---

[1] जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग २, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृष्ठ ७५३ का फुट नोट।

[1] हिन्दी साहित्य कोश में आलवार' जाति बताया गया है।

[2] हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, धीरेन्द्र वर्मा तथा ब्रजेश्वर वर्मा, पृ. १९०।

संत सम्प्रदाय जो तेरहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में विट्ठल सम्प्रदाय के रूप में रहा, वह धीरे-धीरे उत्तर भारत में आता हुआ पन्द्रहवीं शताब्दी में निर्गुण सम्प्रदाय के रूप में प्रचारित हुआ। इस निर्गुण सम्प्रदाय ही का प्रभाव राजस्थानी संतों पर पड़ा। यह लहर यहाँ स्वामी रामानन्द की शिष्य परम्परा के साथ प्रविष्ट हुई। इसके पूर्व यहां भारत के अन्य क्षेत्रों की भांति नाथ अथवा सिद्ध सम्प्रदाय का ही प्राधान्य रहा। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक मत्स्येंद्रनाथ माने जाते हैं, जिनके शिष्य गोरखनाथ हुए हैं। गोरखनाथ के सम्बन्ध में आज भी राजस्थान में बहुत से चमत्कारपूर्ण किस्से-कहानियां प्रचलित हैं। राजस्थान में नाथ जोगी संप्रदाय का प्रभाव काफी समय तक बना रहा। मारवाड़ राज्य में तो महाराजा मानसिंह के समय में राजकीय कागज-पत्रों, आज्ञाओं आदि के शिरो भाग पर जालंधरनाथजी का नाम भी लिखा जाने लगा। इसके अलावा अनेक स्थानों पर नाथों के मठ स्थापित हो चुके थे।

नाथ जोगी संप्रदाय के अन्तर्गत संत कवियों ने 'वांणियों' तथा 'सब्दों' का निर्माण किया। इनमें से जिसने भी किसी पद का निर्माण किया, उस पद को उसने अपने गुरु के नाम से ही प्रचारित किया। अधिकतर पद नाथ संप्रदाय के चमत्कारिक सिद्धों के नाम से ही बनाये गए हैं अतः यह पता लगाना अत्यंत कठिन है कि उनमें से कितने पद वास्तव में उनके गुरुओं द्वारा निर्मित हैं और कितने शिष्यों द्वारा। इसी संदिग्धता एवं उलझन के कारण इन नाथ सतों के साहित्यिक कृत्यों का ठीक ऐतिहासिक स्थान निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। इस सम्बन्ध में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—'गोरखनाथ के नाम पर जो पद मिले हैं वे कितने पुराने हैं, यह कहना कठिन है। इन पदों में से कई दादूदयाल के नाम पर, कई कबीर के नाम पर और कई नानकदेव के नाम पर पाये गए हैं। कुछ पद लोकोक्ति का रूप धारण कर गए हैं, कुछ ने जोगीड़ों का रूप लिया है और कुछ लोक में अनुभवसिद्ध ज्ञान के रूप में चल पड़े हैं। इन पदों में यद्यपि योगियों के लिए ही उपदेश हैं, अतएव उनमे भी उसी प्रकार की साधनामूलक बातें पाई जाती है जो इस प्रकार की रचनाओं का मुख्य प्रतिपादन है।[1]

इस प्रकार की संदिग्धताओं के कारण ही इन नाथ-जोगी सम्प्रदाय के अधिकतर संतों की रचनाओं का राजस्थानी के ऐतिहासिक काल-निर्धारण में उचित स्थान देना संभव नहीं है। नाथ साहित्य के उदाहरण के लिए 'चरपट' नामक नाथ संत की रचना दी जा सकती है। इनका पूर्व का नाम श्री चरकानंद नाथ था। ये कहीं गोरखनाथ के और कहीं बालानाथके शिष्य कहे गए हैं। इनकी कविताओं का एक उदाहरण डॉ. मोहनसिंह ने उद्धृत किया है, वह इस प्रकार है—

सुधु फटकि मनु गिआनि रता। चरपट प्रणिवै सिध मता।
बाहिरि उलटि भवन नहि जाऊ, काहे कारनि कांननि का चीरा खाउ।
बिभूति न लगाओ जिउतरि उतरि जाइ. खर जिउ धूड़ि लेटे मेरी बलाई।
सेली न बांधौ लेवौ ना त्रिगानी, ओढउं ना खिथा जो होइ पुरानी।
पत्र न पूजौ उड़ा न उठावौ, कुते की निआई मंगने न जावौ।
बासी करि के भुगति न खाओ, सिधिआ देखि सिंगी न बजाओ।
दुआरि दुआरे घूआ न पाओ, भेखि का जोगी न कहावौ।
आतिमा का जोगी चरपट नाउ[1]

श्री रामकुमार वर्मा ने 'चरपट' के नाम से कविता का उदाहरण जो प्रस्तुत किया है वह निम्न है—

इक लाल पटा इक सेत पटा, इक तिलक जनेऊ लमक लटा।
जब नहीं उलटी प्राण घटा, तब चरपट भूले पेट नटा।
जब आवैगी काल घटा, तब छोड़ि जाइगे लटा पटा।
सुणि सिखवंती सुणि पतवंती, इस जग महि कैसे रहणां।
अंखी देखन कंनी सुनणा, मुख सों कछू न कहणां।
बकते आगे स्रोता होइ रहु, धोक आगे मस कीना।
गुरु आगे चेला होइबौ, एहा बात परबीना॥
मन महि रहना भेद न कहना बोलिबौ अम्रत बानी।
अगला अगन होइबा औधू, आप होइबो पांनी॥[2]

मेरे अपने संग्रह में 'चरपट' के नाम से एक 'सब्दी' संगृहीत है, उसकी भाषा का उदाहरण इस प्रकार है—

घिस घिस गई नाक की डांडी, अहार की कोथली नरग की कूंडी।
मन का वासा अजब तमासा, चस चस का हारत गुंजा।
गंधबी गंधजार विजारा, चरपट चाला मांत जुहारी॥ १
चांम की कोथली, चांम का सूया, ताकी सरीत करी जग मूया।
देवैंगे धूप मांनी मांन जाता, कोई गुरु मुख एक ही चेत्या।
'चरपट' कहै सुनौ हो अंदी, कांमण संग न कीजै॥ २

[1] नाथ सम्प्रदाय, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १८२

[1] पंजाब विश्वविद्यालय पुस्तकालय की ३७४ संख्या की हस्तलिखित प्रति से उद्धृत।

[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११९।

उपरोक्त तीन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि चरपट के नाम से जिन कविताओं का उल्लेख किया जाता है उनकी भाषा में कितना अंतर है। तब यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इन नाथ जोगी सम्प्रदाय के संतों के नाम जो 'सब्दियां' मिलती हैं वे उनके नाम से बाद में उनके शिष्यों द्वारा लिखी गई हों। प्रामाणिकता के अभाव में उनका महत्व न्यून रह जाता है। अतः इस प्रकार के उदाहरणों की विवेचना इस निबन्ध में उपयोगी सिद्ध नहीं होगी।

नाथ सम्प्रदाय अपने काल का एक मुख्य सम्प्रदाय था और इसके नाथों तथा सिद्धों की हठ तथा योग-क्रियाओं का अपना विशेष महत्व था। परन्तु इनकी यह योग मार्ग की साधना इनके शिष्यों तक ही सीमित रह गई। धार्मिक दृष्टि से गोपनीय एवं कष्टसाध्य होने के कारण जन-साधारण को अपनी ओर आकृष्ट न कर सकी। यह साधना किसी भी प्रकार से लोक-जीवन की आध्यात्मिक निष्ठा तथा भक्ति-भावना से उत्प्रेरित करने में समर्थ न हो सकी। समय की गति के साथ इसका भी विकास होता रहा और कालान्तर में जो संत सम्प्रदाय हमारे समक्ष आया वह इसी का विकसित रूप था। यद्यपि संत सम्प्रदाय इसके विकास की एक स्वतंत्र कड़ी थी और योग का अभ्यास इसकी साधना का अंग बना, तथापि इस युग में उत्तर भारत में व्यापक रूप से प्रवाहित होने वाली भक्ति-धारा भी इस संप्रदाय की साधना का अंग बन गई।[1]

राजस्थान में भक्ति धारा के व्यापक प्रवाह का श्रेय संत सम्प्रदाय को ही है। उत्तर भारत में स्वामी रामानन्द द्वारा प्रतिपादित एवं प्रचारित धार्मिक सिद्धान्तों का प्रभाव यहां के संतों पर भी पड़ा और इसी के परिणामस्वरूप उनकी शिष्य परम्परा यहां आरम्भ हो गई। संतों ने अवश्य ही अपनी निर्गुण वाणी द्वारा जन-साधारण मे भक्ति-धारा बहाई परन्तु इस क्षेत्र में यहां के सिद्ध पुरुषों का जो हाथ रहा वह भुलाया नहीं जा सकता। आलोच्य काल के पूर्व इन सिद्ध पुरुषों ने ही अपने आत्मबल के प्रभाव से राजस्थान के लोक जीवन में भक्ति-भावना एवं आध्यात्मिक निष्ठा की प्रथम किरण जागृत की। इन सिद्ध पुरुषों में यहां के पांच पीर के नाम से प्रसिद्ध पांच वीर पुरुष हो चुके हैं जिनके नाम—(१) पाबूजी राठौड़ (२) रामदेवजी तंवर (३) हड़बूजी सांखला (४) मेहाजी मांगलिया और गोगाजी चौहान। ये सिद्ध पुरुष नाथों की भांति योगमार्गी नहीं थे, अपितु दृढ़ हिन्दू वीर थे। सम्भवतः मुसलमानों के प्रभाव से इनके साथ पीर शब्द जुड़ गया है। इनकी प्रसिद्धि में यह दोहा प्रचलित है—

पाबू हड़भू रांमदे, मांगलिया मेहा।
पांचूं पीर पधारज्यो, गोगा दे जेहा॥

इन वीरों ने जन-साधारण के कष्टों को समझा और उनसे छुटकारा दिलाने के लिए पूर्ण प्रयत्न किया। यही नहीं, उनकी जीवन-रक्षा एवं धर्म-रक्षा के लिए समय आने पर उन्होंने अपने प्राणों की बलि भी दे दी। इसीलिए समाज में इनके प्रति अटूट श्रद्धा जागृत हो चुकी थी। ऐसे ही सिद्ध पुरुषों में मारवाड़ के राठौड़ राव मलखाजी के पुत्र मल्लीनाथजी तथा उनकी पत्नी रूपांदे का भी नाम लिया जा सकता है। इसी श्रेणी में जाखड़ जाट वीर तेजा को भी नहीं भुलाया जा सकता। इनकी मान्यता धीरे-धीरे राजस्थान के बाहर भी होने लगी। इनके नाम पर लोग 'जम्मे' लगाने लगे। जनता में इनके प्रति श्रद्धा इतनी बढ़ गई कि स्थान-स्थान पर इनके 'देवरे' बन गए। यही वह समय था जब कि स्वामी रामानन्द की भक्ति संबन्धी विचारधारा यहां पनप रही थी। स्वामी कृष्णदास पयहारी के राजस्थान में आने के पश्चात् काफी संत उनकी शिष्य परम्परा में आ गए और भक्ति-धारा को प्रबल बनाने लगे।

राजस्थान में संतों ने निर्गुण पक्ष को लेकर ही अपनी वाणियों की रचना की है। यद्यपि जन-साधारण में सगुणोपासना प्रचलित थी और लोग मन्दिरों आदि में देव-दर्शन और पूजा आदि करने में विश्वास रखते थे, तथापि भक्ति-सम्बन्धी जो भी रचनायें हुईं निर्गुणोपासना की ही हुईं। इस युग में केवल मीरां को छोड़ सगुण भक्ति सम्बन्धी किसी अन्य भक्त कवि की रचनायें प्राप्त नहीं होतीं। संत लोग मुख्यतः स्वानुभूति को अभिव्यक्ति एवं आत्म-ज्ञान की प्रेरणा हेतु वाणियों की रचना करते और उन्हें सत्संग में गाते। इन्होंने सदैव जीवन के जटिल प्रश्नों पर व्यावहारिक रूप से विचार किया है और वाणियों के सहारे अपनी भावाभिव्यक्ति द्वारा

[1] हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, व्रजेश्वर वर्मा; संत काव्य, डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. २०७।

जन-जीवन में आत्मज्ञान का प्रतिबोध कराया है। संत लोग सत्संग-प्रेमी होने के कारण पर्यटन भी अधिक करते थे, इसी कारण उनकी रचनाओं में समीपवर्ती बोलियों तथा भाषाओं का प्रभाव पाया जाना स्वाभाविक ही है। इस युग के संतों की वाणियां ग्रंथों के रूप में उपलब्ध हैं। हम संवत्क्रम से यथा-स्थान इनका उल्लेख करेंगे।

संतों के अतिरिक्त इस काल के अन्य राजस्थानी कवियों ने भी भक्ति साहित्य की रचना कर साहित्य-वृद्धि में योगदान देकर अपनी भक्ति का परिचय दिया है। इन कवियों में प्रमुखतया चारण एवं जैन कवि ही हैं। अनेक साहित्यकार यह कह कर राजस्थानी भक्ति साहित्य की महत्ता कम कर देते हैं कि इस युग में वातावरण की अनुकूलता के अभाव में डिंगल काव्य-निर्माता भक्ति साहित्य का निर्माण नहीं कर सके। डॉ. जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव का उनके शोध प्रबन्ध 'डिंगल साहित्य'[१] में यह मत कि मध्य युग में राजनैतिक अव्यवस्था एवं संघर्षमय वातावरण में कवियों का भक्ति रस की कविता सुनाना बेवक्त की शहनाई होता, उचित प्रतीत नहीं होता। साहित्य राजाओं का न होकर जनसाधारण का होता है। तत्कालीन अनेक आश्रित कवियों की भक्ति सम्बन्धी रचनायें स्वतः इनके मत के विरोध में अपना प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। इन कवियों ने डिंगल के वीर काव्यों की रचना के साथ-साथ ही भक्ति सम्बन्धी रचनायें की हैं। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध कवि ईसरदास को ही लें। ये कई राजाओं के पास रहे और इन्होंने 'हालां झालां रा कुंडळिया' नामक वीर ग्रंथ की रचना की। इसके अतिरिक्त इनके अनेक वीर गीत भी प्राप्त होते हैं। वीर रस की रचना के साथ इनके भक्ति रस के भी ग्रंथ उपलब्ध हैं जिनके नाम—१. हरिरस, २. छोटा हरि-रस, ३. बाल लीला, ४. गुण भागवत हंस, ५. गरुड़पुराण, ६. गुणआगम, ७. निंदास्तुति, ८. रसकैलास, ९. वैराट, १०. देवियांण आदि हैं। हरिरस की प्रसिद्धि में कवि केसोदास गाडण का कहा हुआ दोहा यहाँ देना पर्याप्त होगा—

जग प्राजळतो जांण, अघ दावानळ ऊपरां।
रचियो 'रोहड़' रांण, समंद 'हरी रस' सूरवत॥

[१] देखो—पृष्ठ १८७

कवि जग्गा खिड़िया अपनी वीर रस की रचना 'रतन महेशदासोत री वचनिका' के लिए प्रसिद्ध है ही, परन्तु इन्होंने शान्त रस की भी रचना की है, जिसके लगभग १४० छप्पय कवित्त हमें प्राप्त हुए हैं। उदाहरण के लिए उनका एक छप्पय कवित्त यहां प्रस्तुत है—

जिके जपै हरि जाप, जिके वैकुंठ सिधावै।
जिके जपै हरि जाप, उदर फिर कदे न आवै॥
जिके जपै हरि जाप, जियां मन सांसो भग्गै।
जिके जपै हरि जाप, जियां जम लत्त न लग्गै॥
क्रमबंध पाप जावै कटे, उर परम्म धरतां अगा।
एतौ प्रताप हरि जाप रौ, जाप ज जनि भूलै जगा॥

प्रसिद्ध अल्लूजी कविया को ही लीजिये। ये भी चारण कवि थे जो इस काल में शांत रस की रचना के लिए प्रसिद्ध हो चुके हैं। इन्होंने रामावतार एवं कृष्णावतार सम्बन्धी रच-नायें की हैं। इनकी भक्ति-भावना निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है। इनके रचे हुए १६० भक्ति सम्बन्धी छप्पय कवित्त मिलते हैं।

कवित्त—जेथ नदी जळ बहूळ, तेथ थळ विमळ उलट्टै।
तिमिर घोर अंधार, तेथ रिवकरण प्रकट्टै॥
राव करीजे रंक, रंक ले सिर छत्र धरीजै।
'अलू' तास विसवास आस कीजै सुमरीजै॥
चख लिए अंध पंगु चलण मुनि सिद्धायत वयण।
तो करत कहा न हुवै नारायण पंकज नयण।

भक्ति रस की रचना के साथ-साथ इन्होंने भी वीर रस में कई गीत कहे हैं।[१] इनके अतिरिक्त भी अनेक चारण कवि हुए हैं जिन्होंने इस काल में शान्त रस की रचना कर भक्ति साहित्य की महिमा बढ़ाई है।[२] संवत् क्रम से जहां इस युग के

[१] **गीत सूरजमल हाडा रौ—**
अळआंणे पगे अंगि उघाड़ै, विणि हथियारां वस्त्र विणि,
जेसाहरौ दिग्रंबर जाणै, जातौ दीठौ घणे जणि
वटुओ तेग कटारी वीटी, खाटी रई उगरै खाद।
मुड़तौ आखड़तौ सूरजमल, विण पैठौ छांडे खित्रवाट॥
मलगीके आये सूरिजमल्ल, भुजि उडे न कियौ आराथ।
हाके न मिळियौ हाथुकै, हु लियौ झंड लगाड़े हाथ॥

[२] चौमुख[१] चौरा[२] चंड[३] जगत ईस्वर[४] गुन जानें।
करमानंद[५] और कोल्ह[६] अलू[७] अक्षर परवानें।
माधौ[८] मयुरा[९] मध्य साधु जीवानंद[१०] सीवा[११]।

कवियों का उल्लेख किया जायगा वहाँ अन्य कवियों तथा उनके ग्रंथों का भी उल्लेख करेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस मध्यकाल में कवियों की ओजस्विनी वाणी में वीर रस का स्रोत वहा है वहां संतों एवं भक्त कवियों द्वारा भक्ति रस की भी धारा प्रवाहित हुई है। इन दोनों धाराओं के साथ आदिकालीन शृंगारिक धारा भी नियमित रूप से बहती चली आई है। उसमें किसी प्रकार का विक्षेप नहीं आया। मध्ययुग में वीर, भक्ति और शृंगार की निरन्तर प्रवाहित होने वाली इस त्रिवेणी के प्रभाव से ही श्रेष्ठ एवं प्रचुर साहित्य उपलब्ध हुआ है।

आदिकाल की भांति मध्यकाल में भी साहित्य-रचना में जैन विद्वानों का प्रचुर मात्रा में सहयोग रहा है। श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने एक लेख में लिखा है कि 'राजस्थानी साहित्य का निर्माण सबसे अधिक चारणों ने किया है, यह माना जाता है। पर, वास्तव में जैन विद्वानों ने गद्य और पद्य में जितने बड़े साहित्य का निर्माण किया है उसकी तुलना में चारण कवियों की रचनायें परिमाण में आधी भी नहीं होंगीं। मेरे ख्याल से १० लाख से भी अधिक श्लोक परिमाण वाला राजस्थानी साहित्य केवल जैन विद्वानों द्वारा रचित ही है। तीन-चार कवि तो ऐसे हो गये हैं जिनमें से एक-एक व्यक्ति ने लाख श्लोक से भी अधिक परिमाण की रचना की है।' वास्तव में राजस्थानी साहित्य बहुत अंशों में जैन विद्वानों का ऋणी है। इस काल की भी इनकी अनेक रचनायें उपलब्ध हैं। इन विद्वानों ने साहित्य-रचना के साथ-साथ पूर्व रचित साहित्य को सुरक्षित रखने की भी व्यवस्था की। अपनी तथा अन्य कवियों की रचनाओं की प्रतिलिपियां भी उन्होंने खूब कीं। उनके सद्-प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही आज जैन भंडारों में राजस्थानी साहित्य के अनेक अमूल्य ग्रंथ उपलब्ध हैं। जैन विद्वानों ने धार्मिक रचनाओं के अतिरिक्त अन्य जीवनोपयोगी विषयों पर भी अपनी लेखनी चलाई है। उनके धार्मिक ग्रंथों का भी साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन करना आवश्यक है। कोरे धार्मिक

ऊदा[12] नारायनदास[13] नाम मांडन[14] तन ग्रीवा।
चौरासी रूपक चतुर चवत बांनी जूजुवा।
चरन सरन चारन भगत हरि गायक एता हुवा।

(नाभादास)

ग्रंथ कह कर उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जैन विद्वानों की प्रवृत्ति संकीर्ण कभी नहीं रही। अतः उनकी धार्मिक रचनाओं को साहित्य में विवेच्य योग्य न मानने की भावना उचित प्रतीत नहीं होती। इस काल की महत्वपूर्ण रचनाओं का उल्लेख संवत् क्रम में यथास्थान किया जायेगा।

कालक्रम से समस्त साहित्य की विवेचना के पूर्व इस युग में साहित्य की बहुलता के कारण पद्य एवं गद्य में जो विविध रूपता प्रकट हुई उसकी व्याख्या को स्थान देना कुछ सीमा तक उचित ही होगा। आदिकाल की विवेचना में जैसा कि हम बता आये हैं कि राजस्थानी साहित्य का प्रारम्भिक रूप श्रुति-निष्ठ साहित्य के रूप में ही था। प्रारम्भिक काल में इसी का उपयोग अधिक था। दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी में इसके साथ-साथ लिपिबद्ध साहित्य भी प्राप्त होने लगा। मध्यकाल में लिपिबद्ध साहित्य का विकास अधिकाधिक हुआ। लिपिनिष्ठ साहित्य की प्रचुरता एवं विविधता के कारण ही मध्यकाल राजस्थानी साहित्य का स्वर्ण युग कहलाता है। श्रुतिनिष्ठ साहित्य भी यथाविधि अपने क्षेत्र में चलता रहा। दोनों ही प्रकार के साहित्य के विभिन्न अंगों को, जो इस काल में प्रचलित हो चुके थे, सूची के रूप में यहां प्रस्तुत करते हैं—

(१) श्रुतिनिष्ठ साहित्य—

१. पंवाड़्या
२. पड़ें (फड़ें)—यथा पाबूजी री पड़, बगड़ावतां री पड़ आदि।
३. कहानियां
४. वातें
५. लोक गीत
६. चरजा
६. भजन (हरजस)

(२) लिपिनिष्ठ या लिखित साहित्य—

१. गीत (फुटकर)[1]

[1] 'गीत' डिंगल साहित्य की विशिष्ट देन है, जिसका जोड़ अन्य भारतीय आर्य भाषाओं, हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, सिंधी आदि में नहीं मिलता। गीत एक प्रकार की छोटी सी कविता है जिसमें प्रायः चार दोहले होते हैं। ये गीत गाने की चीज नहीं हैं। एक लय विशेष से, ऊंचे स्वर में इनका पाठ किया जाता है। ध्यान रखने की बात है कि पिंगल के पद-साहित्य और डिंगल के गीत-साहित्य में

(३) ऐतिहासिक काव्यः—

(i) पद्य—

१. चरितनायकों के नाम पर—

(क) रास- रायमल रासौ, रतन रासौ, रांणा रासौ आदि ।

(ख) प्रकास- राजप्रकास, सूरजप्रकास, भीमप्रकास आदि ।

(ग) विलास- राजविलास, जगविलास, रतनविलास आदि ।

(घ) रूपक- रघुनाथरूपक, राजरूपक, रतनरूपक, महाराज गजसिंहजी रौ रूपक आदि ।

(ड़) वचनिका- अचळदास खीची री वचनिका, राठौड़ रतनसिंह महेसदासोत री वचनिका आदि ।

(च) वेल (वेलि)- राजकुमार अनोपसिंहजी री वेल, राजा रायसिंहजी री वेल, रूपांदे री वेल आदि ।

२. छंदों के आधार पर—

(क) नीसांणी- नीसांणी वीरमांण री, गोगैजी चहुवांण री नीसांणी, आंबेर रा महाराज प्रताप-सिंघजी री नीसांणी आदि ।

(ख) झूलणा- सोढ़ां रा गुण झूलणा, राजा गजसिंघ रा झूलणा, अमरसिंहजी रा झूलणा आदि ।

(ग) झमाल- बीदावत करमसेण हिमतसिंघोत री झमाल, आदि ।

(घ) गीत- सीधलां रा गीत, पंवारां रा गीत, जाड़ेचां रा गीत आदि ।

(ड़) कुंडळिया- हालां झालां रा कुंडळिया, सगरांमदास रा कुंडळिया आदि ।

(च) कवित्त (छप्पय)- महाराज अभैसिंहजी रा कवित्त, पंवार अखैराज रा कवित्त, राठौड़ रतनसी रा कवित्त, महाराज गजसिंहजी रा निरवांण रा कवित्त ।

(छ) दूहा (सोरठा)- पाबूजी रा दूहा, राव अमरसिंहजी रा दूहा, लाखै फूलांणी रा दूहा आदि ।

(ii) गद्य—

(क) ख्यात- सीसोदियां री ख्यात, राठौड़ां री ख्यात, कछवाहां री ख्यात, मुहणोत नैणसी री ख्यात आदि ।

(ख) वात- रांणै उदैसिंह री वात, हाडे सूरजमल री वात, राव बीकैजी री वात, जैसलमेर री वात आदि ।

(ग) विगत- गैहलोतां री चौबीस साखां री विगत, कछवाहां सेखावतां री विगत, जोधपुर-बीकानेर टीकायतां री विगत आदि आदि ।

(घ) पीढ़ी- ईडर रा धणी राठौड़ां री पीढ़ियां, हमीरोत भाटियां री पीढ़ियां ।

(ड़) वंसावळी- राठौड़ां री वंसावळी, राजपूतां री वंसा-वळी, जैसलमेर भाटी महारावळ री वंसा-वळी आदि ।

(iii) प्रकीर्ण काव्य—

(क) देश-भक्ति, देशों का नैसर्गिक वर्णन ।

(ख) अश्व-प्रशंसा ।

(ग) उष्ट्र-प्रशंसा ।

(घ) शस्त्र-प्रशंसा ।

(ड़) शृंगार रस की प्रकीर्ण कवितायें

(च) सिलोका (ब्राह्मणीय)

(iv) अनुवाद-टीकाएँ, रूपान्तर आदि—

(i) धार्मिक ग्रंथों का- भागवत का अनुवाद, गीता का अनुवाद आदि ।

(ii) अन्य ग्रन्थों का अनुवाद- नीति मंजरी आदि ।

(v) शास्त्रीय साहित्य—

(i) धर्म शास्त्र

(ii) ज्योतिष शास्त्र

समानता नहीं है । गीतों में इतिहास की अलभ्य और अक्षय सामग्री भरी पड़ी है । ऐसा कोई भी वीर, जुझार या त्यागी पुरुष नहीं हुआ होगा जिस पर एक-आध गीत न बने हों । जिन पुरुषों और घटनाओं को इतिहास ने भुला दिया है, उनकी स्मृति को गीतों ने ही सुरक्षित रखा है ।' राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, पृष्ठ ७२

(iii) शकुन शास्त्र
(iv) शालिहोत्र
(v) वृष्टि विज्ञान
(vi) तत्वज्ञान
(vii) नीति शास्त्र
(viii) आयुर्वेद शास्त्र
(ix) कोक सार

राजस्थानी साहित्य के सम्बन्ध में उपरोक्त वर्गीकरण अपने में पूर्ण नहीं है, फिर भी इससे राजस्थानी साहित्य की एक दृष्टि में झलक तो अवश्य ही मिल जाती है। उपर्युक्त समस्त विवेचन के पश्चात् अब हम मध्यकालीन पद्य साहित्य का संवत्-क्रम से शताब्दी अनुसार वर्णन करेंगे।

मध्यकाल के आरम्भ में वीररसात्मक काव्यों में शुद्ध डिंगल का प्रयोग होने लगा था। इसके साथ-साथ भाषा का संगठन भी कुछ अधिक उच्च स्तर प्राप्त करता जा रहा था। किन्तु जैन साहित्य में उस समय भी प्राकृत एवं संस्कृत का प्रभाव कुछ-कुछ दृष्टिगोचर हो रहा था।

जयशेखर सूरि– सर्व प्रथम संवत् १४६२ में जयशेखरसूरि कृत त्रिभुवनदीपकप्रबन्ध, नेमिनाथ फागु तथा अर्बुदाचल-वीनती रचनायें प्राप्त होती हैं।

हीरानंद सूरि– संवत् १४८५ में पींपलगच्छ के हीरानंद सूरि ने 'वस्तुपाल तेजपाल' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसी समय के उनके लिखे हुए 'विद्याविलास पवाड़ा' के उदाहरण से उस समय की भाषा का ज्ञान हो सकता है—

तिणि पुरि निवसइं सेठि धनावह धम्मी नइ धनवंत।
पदम सिरी तस घरणी भणीइ सहि जिइं अति गुणवंत॥
तस घरि नंदन च्यारि निरुपम पहिलउ धुरि धनसार।
बीजउ बंधव बहु गुण बोलइ बुद्धिवंत गुण सार॥
त्रीजु मूरति वंत (गुण) सागर, सागर जेस गंभीर।
चउथउ बंधव सुणि धन सागर समरससाहस धीर॥

उपरोक्त कविता में संस्कृत और प्राकृत के तत्सम और तद्भव शब्दों को लेने की प्रवृत्ति स्पष्टतः लक्षित होती है।

यह परिपाटी चारण साहित्य में, जो इस काल में प्रचुर मात्रा में प्राप्त है, नजर नहीं आती। उनके द्वारा सुसंगठित डिंगल भाषा के प्रयोग के कारण ही इस समय से काल-विभाजन किया गया है।

सिवदास गाडण– संवत् १४८५ में ही चारण कवि सिवदास रचित वीर काव्य 'अचळदास खीची री वचनिका' प्राप्त होती है। चारण कवियों की रचना में प्रथम ग्रन्थ होने तथा मध्यकाल का प्रथम वीररसात्मक ग्रन्थ होने के कारण इसका महत्व बहुत अधिक है। मालवा के बादशाहों की तवारिख में लिखा है कि सन् १४२३ ई. (संवत् १४८०) में हुशंग गोरी ने चढ़ाई कर के गागरौण को फतह किया था। डॉ. तैस्सितोरी ने इस ग्रन्थ की रचना को इस युद्ध की समकालीन रचना बतलाया है।[1] ग्रन्थ की भाषा सुगठित स्वतंत्र राजस्थानी का उदाहरण है।

सातलसोम हमीर कन्ह, जिम जौहर जालिय।
चढ़िय लेति चहुवांण, आदि कुळवट्ट उजाळिय॥
मुगत चिहुर सिरि मंडि, वपि कंठि तुळसी वासी।
भोजाउति भुजबळहिं, करिहि करिमर कळासी॥
गढ़ि खंडि पड़ंति गागुरणि, दिढ़ राखे सुरिताण दळ।
संसारि नांव आतम सरिग, अचळि बेवि कीवा अचळ॥

बादर ढाढ़ी– इसी शताब्दी में ढाढ़ी जाति के कवियों का भी अच्छा सहयोग रहा। डॉ. रामकुमार वर्मा ने ढाढ़ियों की कविता को चारणों की कविता से भी पुराना माना है।[2] ढाढ़ियों की फुटकर कवितायें तो बहुत मिलती हैं परन्तु पूर्ण ग्रन्थ के रूप में १५ वीं शताब्दी का बादर ढाढ़ी द्वारा रचित 'वीरमायण' नामक ग्रन्थ मिलता है। इसमें राव वीरमजी राठौड़ का शौर्य-वर्णन है। राजा वीरमजी का शासन काल संवत् १४३५ का माना जाता है।[3] बादर ढाढ़ी राव वीरमजी के आश्रय मे ही था। श्री ओझाजी के अनुसार

---

[1] A descriptive catalouge of Bardic and Historical mss. Pt. 1, Bikaner State, Fasc. I, Page 41।

[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रथम-खण्ड, पृष्ठ १७३

[3] 'It is an anonymous Dhadi composition of the 15th Century. It deals with the Chivalry of Rao Biramji Rathore, who reigned C.V.S. 1435 (A.D. 1378) The Rao was the patron of the poet.' A Descriptive Catalogue, Pt. 1, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, पृष्ठ ३।

वीरमदेव की मृत्यु संवत् १४४० में हुई थी।[1] इसके रचना-काल में काफी मतभेद है। स्वयं श्री मेनारिया ने भी परस्पर विरोधी विचार प्रकट किए हैं। एक स्थान पर उन्होंने इसका रचना काल संवत् १४४० लिखा है[2] तथा दूसरे स्थान पर लिखते हैं—'परन्तु जैसा कि कुछ लोग मान बैठे हैं, यह वीरमजी की समकालीन रचना नहीं है। कोई अठारहवीं शताब्दी के मध्य में यह रची गई है।'[3] ग्रंथ का आधार ऐतिहासिक है जिसकी पुष्टि ऐतिहासिक ग्रंथों से हो जाती है। इसमें राव वीरम के द्वितीय पुत्र चूंडा के विवाह तथा दहेज में मंडोर-प्राप्ति का उल्लेख है।[4] ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार मंडोर पर चूंडा का अधिकार संवत् १४५१ में हुआ था।[5] ग्रन्थ में राव वीरम के पुत्र गोगे का जोइयों के साथ किए गए युद्ध का वर्णन भी है।[6] श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ के अनुसार गोगा का जन्म संवत् १४३५ तथा स्वर्गवास संवत् १४५९-६० में हुआ था।[7] अतः ग्रन्थ की रचना संवत् १४६० के पश्चात् ही किसी समय हुई होगी। ग्रंथ में स्वयं कवि ने अपनी ओर से कहीं पर भी रचना काल नहीं लिखा है। यह ग्रंथ पन्द्रहवीं शताब्दी की रचना अवश्य है परन्तु यह श्रुतिनिष्ठ साहित्य के रूप में ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता रहा, अतः भाषा में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। प्रतिलिपियाँ जो भी प्राप्त हैं वे बहुत समय पश्चात् की हैं अतः उनकी भाषा के आधार पर इस रचना का काल निर्धारित नहीं किया जा सकता। डॉ० माहेश्वरी ने इसका रचना-काल संवत् १५०० के लगभग माना है।[8] कुछ लोगों ने भ्रमवश

[1] जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग १, 'राव वीरम' शीर्षक के अंतर्गत।

[2] (क) राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा—डॉ. मोतीलाल मेनारिया, प्रथम संस्करण, परिशिष्ट के अंतर्गत, पृष्ठ २२१।

(ख) डिंगल में वीर-रस—डॉ. मोतीलाल मेनारिया, भूमिका, पृष्ठ ३६।

[3] राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ. मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १७०

[4] देखो 'वीरमायण', नीसांणी ९९।

[5] 'मारवाड़ का इतिहास' श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ—प्रथम भाग, पृष्ठ ६१ पर फुटनोट में दी गई टिप्पणी।

[6] देखो 'वीरमायण', नीसांणी १०१।

[7] 'मारवाड़ का इतिहास' श्री विश्वेश्वर नाथ रेऊ—प्रथम भाग, पृष्ठ ५६-५७ पर फुटनोट में दी गई टिप्पणी।

[8] राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, पृष्ठ ७६।

वीरमायण के रचयिता का नाम रामचंद्र लिख दिया है[1] जो ठीक नहीं है, क्योंकि स्वयं कवि ने ग्रंथ में अपना नाम बादर ढाढ़ी ही बताया है—

सामां वीरम सारका विण ऊभा कीला।
बादर ढाढ़ी बोलीयौ, नीसांणी गला॥[2]

इसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है कि इसी काल में लिखी जाने वाली राठौड़ों की ख्यातों में 'वीरमायण' के अनेक दोहों तथा उक्तियों का प्रयोग हुआ है। जिन्होंने आगे चल कर कहावतों का रूप ले लिया।[3] इन ख्यातों की रचना के सम्बन्ध में अनेक इतिहासकारों ने यह मान लिया है कि ख्यातों का लिखा जाना लगभग अकबर के शासन-काल में प्रारम्भ हो चुका था। पूर्वकाल से मौखिक रूप में हस्तांतरित होने के कारण ही यह प्रयोग सम्भव हो सका है।

ग्रंथ की भाषा ओज-गुण-सम्पन्न बोलचाल की राजस्थानी है—

दिल्ली सूं चढ़ीया दुजल, गोरी सुरतांणा।
बाज छतीसूं ई बाजतां, नांबत नीसांणा।
मांडळ सूं महमंद चढ़े, खांमंद खुरसांणा।
सातूं लोपी सायरां, जळ पाजा जांणा।
इण विध महमंद आवियौ, कीधा घमसांणा।
हजरत बे भेळा हुआ, पूरब पिछमांणा।
घर बेहूँ मोटा बहत, छोटा रहमांणा।
खोज गमाड़ण खूनीयों, जोड़े जमरांणा।
रीस करै ज्यों रोळवे, बोले महरांणा।

चानण खिड़ियौ—चानण खिड़ियौ राव रणमल का समकालीन कवि था। संवत् १४९५ का इनका गीत उपलब्ध है। कवि ने जिस भाषा का प्रयोग किया है उसके उदाहरण के लिए एक गीत यहाँ दिया जाता है—

अपूरब वात सांभळी ओही, रिम चूके म्रित दिन रयण।
सूतें तेहिज काढ़ी सुजड़ी, जागत काढ़े घणा जण॥
चूक हुवे केइक चीतारै, वाहै केइ वहंतै वाढ़ि।
पोढ़िया रयण जेम प्रतमाळी, कद ही कोइ न सकियौ काढ़ि॥

[1] मारवाड़ का मूल इतिहास—ले० पं. श्री रामकरण आसोपा, पृष्ठ ८७।

[2] देखो—'वीरमायण', नीसांणी ८०।

[3] क. हमारे संग्रह में 'राठौड़ों की ख्यात'।

उ०— तेरे तूंगा भांजिया माले सलखांणी।

ख. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास, पं० श्री रामकरण आसोपा, पृष्ठ ८३।

अंत परजाई चूक अहाड़ा, भ्रम हलि हुवै हुवौ ऊखेळ।
रिणमल जेथ कियौ रायांपुर, मेळ जूज अर जमदढ़ मेळ।
अे अखियात, सळखहर ओपम, अगैं न सूझी सुर असुर।
कर सूतैं मेलियौ कटारी, अणी सु काढ़ी प्रिसण-उर।

मध्यकाल के इस आरम्भिक समय में ऊपर वर्णित कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों की रचनायें भी प्राप्त हैं। स्थानाभाव के कारण केवल उनका नामोल्लेख ही कर पा रहे हैं।

(कवि भीम—सदयवत्सचरित, सं० १४६६, गुणवन्त—वसन्त विलास, मांडण, सिद्धचक्र श्रीपाल रास, संवत् १४६८, मेहाकवि—रणकपुर स्तवन, तीर्थमाला स्तवन, संवत् १४९९, सोमसुन्दर सूरि—नेमिनाथ नवरस फाग, संवत् १४९९, बारहठ दूदो, मेहौ बारहठ, आल्हौ बारहठ, धरमौ कवियौ, खिड़ियौ लूणकरण आदि)

पसाइत—सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखी हुई गाडण पसाइत की ये दोनों रचनायें ग्रंथ के रूप में उपलब्ध हैं। दोनों रचनायें अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति में प्राप्त हैं।[1] 'राव रिणमल रौ रूपक' में मारवाड़ के राव रणमल की कीर्ति और राणा कुम्भा द्वारा उनकी मृत्यु का वर्णन है। राव रणमल के सम्बन्ध में इनकी अन्य फुटकर रचनायें भी प्राप्त हैं जिनमें रणमल द्वारा जैसलमेर के भाटियों से अपने पिता राव चूंडा की मृत्यु का बदला लेने का वर्णन है। 'गुण जोधायण' में जोधाजी के राज्य-प्रसार तथा बहलोलखाँ के साथ युद्ध करने का वर्णन है। इन घटनाओं के आधार पर ही डॉ० माहेश्वरी ने पसाइत का रचनाकाल संवत् १४८० से १५३१ माना है।[2] कवि पसाइतै ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह गुण जोधायण के प्रस्तुत उदाहरण में देखिये—

वळो प्रबत लंघीयौ चडे पाखरीयें घोड़े,
जाए ढीन्हा घाव, कोट चीत्रोड़ किमाड़े,
बोल ढोल बोलियौ, त्यार स्रमणे उत सुणीया,
कूंभनेर नारियां अभ पेटां हूँ छणीया,
चीतोड़ तणै चूंडाहरा किमाड़े परजाळीये,
जोहार जाय 'जोधै' कियौ, राव रिणमल'पालीय।

---

[1] प्रति नं० १३६।
[2] राजस्थानी साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, पृष्ठ ८८।

इनकी फुटकर रचनाओं में (१) 'कवित्त राव रिणमल चूंडै रै वैर में भाटियाँ नै मारिया तैं समै रा, (२) 'कवित्त राव रिणमल नागौर रै धणी पेरोज नै मारिया तैं समै रा' तथा (३) 'कवित राणै मोकल मुआं री खबर आयां रा' प्रसिद्ध है। इन फुटकर रचनाओं में भी राजस्थानी का स्वतंत्र रूप से प्रयोग हुआ है। राणा मोकल की मृत्यु का बदला लेने की रणमल की भावना इस उदाहरण में देखते ही बनती है—

जेय चडै आकास तांम आयास उतारूं,
जे पसै पाताळ काढ़ पायाळा मारूं,
जेथ जाय तेथ जाय खित खेलूं खत्र साचौ,
जऐ किम जीवतौ प्रति ओगारी वाचौ,
बावन वीर वीरमहर कोय जु जुध मंडे कया,
मालवै वीर मोकळ तणा रिणमल लई प्रतंग्या॥

जयसागर—इसी प्रकार पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के संधिकाल में महोपाध्याय जयसागर जैन कवि हो चुके हैं जिन्होंने राजस्थानी में अनेक रचनायें रच कर साहित्य की अभिवृद्धि की है। इनकी 'जिनकुशलसूरि सप्ततिका' राजस्थानी की विशिष्ट रचना है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा रचित लगभग ३० ग्रंथ उपलब्ध हैं। ग्रंथों के आधार पर ही उनका रचना-काल संवत् १४८० से १५१५ माना जाता है। सर्वसाधारण में प्रिय 'वीरप्रभु वीनती' का एक उदाहरण देखिए—

नयण नाभि सलूणिय रूयडी, तपइ भाल प्रभाजळ कूयडी।
मुघट होठ हियउं तिम मोकळउं, जिण तणउं अथवा सहुयइ भलउं।
तिसउ कंठ तिमा कर जांणिवा, तिसिया रख तिसा नख पल्लवा।
पग तिसाहु तिसि पुणि आंगुळी, सलहियइ प्रभु बिंब किसउंवळी।

देपाल—इसी समय के प्रसिद्ध कवि देपाल भी हैं जो नरसी मेहता के समकालीन माने जाते हैं। इनके द्वारा रचित छोटी-मोटी १४ रचनायें प्राप्त हैं जिनका रचना काल सं० १५०१ से १५३४ है। इनकी 'जंबू स्वामी' पंचभव वर्णन चौपई का एक उदाहरण देखिये—

धन धन जे गुरु लहइ सुसाध
आराधी भव टाळइ ग्गाध
वचन सुणी तस सेवा करइ
भव सायर ते दुत्तर तरइ।
मरण महगळ जीव नर, जन्म कूपि निविडंति।
व्यारिक खाय भुयंगमंह, अज गिरि नर गहवंति॥

पद्मनाभ—उत्तरकालीन अपभ्रंश से विकसित होती हुई पुरानी पश्चिमी राजस्थानी डिंगल के मध्यकालीन ग्रंथों में पूर्ण स्वतंत्र राजस्थानी के रूप में प्रयुक्त होने लग गई थी। इसका प्रमाण हमें पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम काल में लिखी जाने वाली रचनाओं से ही मिल जाता है। इसकी भाषा का सुन्दर उदाहरण हमें इस शताब्दी की रचना 'कान्हड़दे प्रबन्ध' में मिलती है। इस ग्रन्थ की रचना जालोर के चौहान अखैराज के आश्रित वीसनगरा नागर ब्राह्मण 'पद्मनाभ' ने संवत् १५१२ में की थी, जिसमें जालोर के अधिपति सोनगरा शाखा के चौहान कान्हड़दे के साथ अलाउद्दीन खिलजी के हुए युद्धों का वर्णन है। कहा जाता है कि जब अल्लाउद्दीन खिलजी सोमनाथ पर आक्रमण कर महादेव की मूर्ति उठा लाया तो कान्हड़दे ने उसे हटा कर धर्म की मर्यादा की रक्षा की और शिवलिंग को मकराने गांव में मन्दिर बनवा कर स्थापित किया। मुहणोत नैणसी की ख्यात में भी इस घटना का उल्लेख है।[1] कान्हड़दे का तेजस्वी रूप इस ग्रंथ में स्थल-स्थल पर झलकता है। इतिहास की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ रचना है। ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण जो हमें इसमें मिलता है वह भी सही है।

साहित्यिक दृष्टि से अवलोकन करने पर प्रतीत होता है कि यह श्रेष्ठ रचना प्राचीन होते हुए भी प्रसादगुणयुक्त प्रवाहपूर्ण शैली में लिखी गई है। कवि की यह ओजपूर्ण एवं वीररसात्मक रचना है। सहायक के रूप में शृंगार और करुणरस भी यथास्थान मिलते हैं। ग्रंथ में दो पात्रों—कान्हड़दे तथा अल्लाउद्दीन की पुत्री फिरोजा का विशिष्ट चित्रण हुआ है। भाषा की दृष्टि से भी इस काव्य का विशिष्ट महत्व है। डॉ॰ तैस्सितोरी ने इसे इस दृष्टि से समुचित महत्त्व दिया है। गुजराती विद्वान श्री के. बी. व्यास ने अपनी भूमिका में इसके हत्व को निम्न प्रकार प्रकट किया है[2] —

'The Kanhadade Prabandha' is perhaps the most valuable treasure in old Gujrati or old Western Rajasthani as it is called by Dr. Tessitory. It is an epic of a glorious age and thereis nothing to compare with it either in old or modern Gujrati. It can easily stand in comparison with the celebrated 'Prithviraja Raso' in old Hindi. There are various reasons why the Kanhadade Prabandha has attained this unique position. In the first place it is a text of supreme importance for a study of the development of the Gujrati language. Composed as early as V.S. 1512; it represents an important landmark in the evolution of the Gujrati language. It embodies a stage when Gujrati and Rajasthani were just beginning to evolve their distinctive characteristics from the common source the post Apabhramsa. While the morphology and the general character of the language are unmistakably Gujrati, its phonology reveals several Rajasthani traits.'

डॉ॰ माताप्रसाद ने लिखा है[1]—'राजस्थानी ही नहीं हिन्दी के भी प्रारंभिक युग के ग्रंथों में कदाचित् ही कोई ग्रंथ ऐसा माना जा सकता है जिसकी रचना-तिथि इतनी निश्चित हो। रचना के महत्त्व के अनुसार ही ग्रन्थ का पाठ भी अपने मूल रूप में प्रायः सुरक्षित है और अपने युग की भाषा के अध्ययन के लिए एक दृढ़ आधार प्रस्तुत करता है। इसकी भाषा निम्न उदाहरण में देखिये—

उ॰—रणि राउत वावरइ कटारी, लोह कटांकडि ऊडइ।
तुरक तणा पाखरीया तेजी, ते तरूआरे गूडइ॥
माल तणी परि बाथे आवइ, प्रांणइ विलगइ भूंटइ।
गुडदा पाटू दोट वजावइ, भिडइ प्रहारे मोटइ॥
ऊपरिथा पूंतार विछूटइ, भूतलि भाजइ पाउ।
वाढ़ी सूंढ़ि ढोलीइ ढांचा, धरणि वलइ नीहाउ॥
भाजइ कंध पडइ रिण माथां, धगड तणां धडधाइ।
माहो-मांहि मारेवा लागा, विगति किसी न कहाइ॥

ऋषिवर्द्धन सूरि—जैन कवि ऋषिवर्द्धन सूरि द्वारा चित्तौड़ में रचित नलदमयंती रास के सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ का एक प्रसिद्ध राजस्थानी ग्रंथ है। इसका रचना काल

[1] मुहणोत नैणसी की ख्यात—प्रथम भाग, सं॰ : पं. रामकरण आसोपा, पृ॰ २६१।

[2] 'कान्हड़दे प्रबन्ध'—सं. : प्रो॰ कांतिलाल बलदेवराम व्यास, राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर से प्रकाशित, प्रस्तावना १।

आलोचना, भाग १४, पृष्ठ ६४।

सं० १५१२ है। इसी समय की कवि की अन्य 'जिनेन्द्रातिशय पंचाशिका' भी है। जिस सरल राजस्थानी का कवि ने अपने ग्रंथ में प्रयोग किया है उसे नलदवदंती के निम्न उदाहरण में देखा जा सकता है—

मणिमय कुंडळ राखड़ी सखि मांणिक मोतीहर।
तिलक निगोदर खीट्ली सखि कांठलु मेखळा सार।
कंचण कंकण मूंदड़ी सखि चूड़ी चूनड़ी चारु।
तीयली नेत्र पटलडी सखि नेउर रणझुणकार।

दामो[1]—कवि दामो कृत 'लखमसेन पदमावती चौपई' एक प्रेम-काव्य है जो अभी तक अप्रकाशित है।[2] ग्रंथ में स्वयं ग्रंथकार द्वारा वर्णित तिथि के अनुसार इसका रचना काल संवत् १५१६ जेठ वदि नवमी है।

संवत् पनरइ सोळोत्तर तर, मझारि जेठ बदी · वमी बुधवार।

इस ग्रंथ में गढ़ सामौर के राजा हंसराय की पुत्री पदमावती तथा लखनौती के राजा लखमसेन के परस्पर प्रणय तथा विवाह का वर्णन विशुद्ध राजस्थानी में बड़े ही रोचक ढंग से किया गया है। कवि का भाव पक्ष प्रबल होने के कारण रचना में सजीवता आ गई है। इसके साथ ही प्रसादगुणयुक्त प्रवाहमयी सरल एवं सरस भाषा ने इसके महत्व को द्विगुणित कर दिया है। भाषा का प्रवाह निम्न उदाहरण में देखिये—

पर दुखइं ते दुखीयां, पर सुख हरख करंत।
पर कजइ सुदा सुहड, ते विरळा नर हुंत॥
पर दुखइं सुख उपजइ, पर सुख दुख करंत।
पर कजइ कायर पुरस, घरि घरि वार फिरंत॥
सीह सीचाणो सापुरिस, पडि पडि उठंति।
गय गडर कुच कापुरिस, पड़े न वलि उठंति॥

कवि भांडउ—व्यास जाति के कवि भांडउ ने ग्रंथ 'हमीरायण' की रचना वि. सं. १५३८ में की। इस ग्रंथ का नाम 'राय हमीर देव चौपाई' भी मिलता है। इस ग्रंथ में रणथंभोर के प्रसिद्ध वीर चौहान हम्मीरदेव की शरणागत रक्षा और उनके पराक्रम का सुन्दर वर्णन है। रचना पर जैन शैली का प्रभाव स्पष्ट लक्षित है। ग्रंथ की भाषा के उदाहरण हेतु कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं—

न परणाऊं डीकरी, न आपौ वेऊं मीर।
हाथी गढ़ आपउ नहीं, इसउ कहई हमीर॥
तूं सरीखा सुरतांण सूं, करई विग्रह निसी-दीस।
हमीर देव कथउ इसउ, तब इव नांमे सीस॥

जांभोजी—जैसा कि हम पहिले कह आये हैं कि इस काल के आरम्भ के साथ ही राजस्थान में भक्ति-भावना की लहर प्रवाहित हो चुकी थी और उसके प्रभाव से संत लोग भक्ति-सम्बन्धी रचनायें भी करने लग गये थे। अतः इस प्रकार की रचना में जांभोजी द्वारा रचित 'जम्भसार' ग्रंथ प्राप्त होता है। ये पंवार राजपूत थे और इनका जन्म संवत् १५०८ में नागौर परगने के पीपासर गांव में हुआ था। इन्होंने विशनोई सम्प्रदाय की स्थापना की और संवत् १५४२ में उपदेश देना आरम्भ किया। जम्भसार का रचना काल भी यही माना जाता है। जांभोजी ने 'वांणियों' तथा 'सबदों' द्वारा भिन्न-भिन्न विषयों पर जन-समुदाय को उपदेश दिये। उनके एक 'सबद' का उदाहरण यहां देखिये—

कांयरें मुरखा तैं जनम गमायो, भूंय भारी ले भारूं।
जा दिन तेरे होम न जाप न तपः न किया।
गरू न चीन्हों पंथ न पायो, अहल गई जमवारूं।
ताती बेळा ताव न जाग्यौ, ठाढ़ी बेळा ठारूं।
बिबै वेळा विस्णु न जंप्यौ, तातें बहुत भई कसवारूं॥
खरी न खाटी देह बिणाठी, थिर न पावणा पारूं॥
अह निस आव घटकती जावै, तेरा स्वास सभी कसवारूं॥
जा जन मंत्र विस्णु नहिं जंप्यौ, ते नर कुबरण काळू॥

सिद्ध जसनाथ—ये जांभोजी के ही समकालीन थे जिन्होंने अपने प्रभाव से जसनाथी सम्प्रदाय की स्थापना की। ये कातरियासर (बीकानेर) के हमीरजी जांणी जाट और उनकी पत्नी रूपांदे के पोष्य पुत्र थे। इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि हमीरजी को ये एक तालाब के पास पड़े मिले। संवत् १५५१ आश्विन शुक्ला सप्तमी को इन्हें ज्ञान प्राप्ति हुई। इसके पश्चात् इन्होंने अपनी 'वाणी' द्वारा ज्ञानोपदेश देना आरम्भ किया। इनकी 'वाणी' के विषय प्राणी मात्र पर दया, पशु-हिंसा का विरोध, जीव ब्रह्म की एकता, संसार की नश्वरता आदि हैं। इन्होंने अपने जीवन में चमत्कारी प्रमाण देकर जन साधारण को जीव, दया तथा ज्ञान मार्ग के प्रति आकर्षित किया। इनके द्वारा चलाया हुआ जसनाथी सम्प्रदाय का सीधा सम्बन्ध नाथ सम्प्रदाय से है, परन्तु वैष्णवी भक्ति-

[1] डॉ हीरालाल माहेश्वरी के शोध प्रबन्ध राजस्थानी साहित्य से साभार।

[2] ग्रंथ की संवत् १६६९ की लिखी हुई हस्तलिखित प्रति श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर में है।

धारा को भी इन्होंने अपनी साधना का अंग माना है। जसनाथजी ने अपनी 'वांणी' में जन-साधारण में प्रचलित बोलचाल की राजस्थानी का ही प्रयोग किया है, जो निम्न उदाहरण में देखा जा सकता है।

काई रै पिरांणी खोज नै खोजै, खाख हुवै भुस खेहा।
काची काया गळ गळ जासी कूं कूं बरणी देहा।
हाडां ऊपर पून ढुळैली, घणहर बरसै मेहा।
माटी में माटी मिळ जासी, भसम उडै हुय खेहा।
हुय भूतळा खाख उड़ावै, करणी रा फळ ऐहा।
घड़ी घड़ी बाइन्दा बाजै, रच्या न रहसी छेहा।
गावां गाडर सै'रां सूअर, खाड खिणै हुय सेहा।
किये किरत नै जोय पिरांणी, दोस न दीज्यो देवा।

धर्मसमुद्र गणि—जैन कवियों की परम्परा में सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में खरतरगच्छीय धर्मसमुद्र गणि का नाम भी प्रसिद्ध है। इनकी रचनाओं के अनुसार इनका रचना काल संवत् १५६७ से १५९० है। इनके ग्रंथों में 'सुमित्रकुमार रास' 'कुलध्वजकुमार रास', 'रात्रिभोजन रास' और 'शकुन्तला रास' आदि प्रसिद्ध हैं। 'शकुन्तला रास' छोटी रचना है परन्तु राजस्थानी में शकुन्तला पर प्रथम पद्य-बद्ध रचना[1] होने के कारण इसका अपना महत्व है। विषय पौराणिक होते हुए भी जैन कवि की रचना होने के कारण यह जैन धर्म से प्रभावित है। कवि की भाषा के उदाहरण हेतु 'शकुंतला रास' का पद यहां प्रस्तुत किया जाता है।

राय अन्याय तणउ रखवाल
पाल पृथ्वी तणउ सहू कहइ ए।
ए निरधार ऊपरि हथियार
भार सोभा केही लहइ ए।

गणपति—कायस्थ नरसा के पुत्र कवि गणपति ने माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध की रचना संवत् १५७४ में की।[2] राजस्थान में माधवानल कामकन्दला की प्रेम-कथा बहुत प्रचलित है। इसी प्रणय-कथा के आधार पर यह शृंगारिक रचना हुई है। महा-काव्य की शैली में लगभग २५०० दोहों (दोग्धक) में यह कथा कही गई है। इसी आधार पर डॉ० रामकुमार वर्मा ने इसी ग्रंथ का नाम 'माधवानल प्रबन्ध दोग्धक' दिया है।[1] इस रचना में विप्रलंभ तथा संयोग दोनों ही प्रकार के शृंगार का पूर्ण परिपाक हुआ है। इसके अतिरिक्त बारहमासा वर्णन विशेष आकर्षित करने वाले विषय हैं। कवि ने राजस्थानी और गुजराती घरों में प्रत्येक ऋतु में जो-जो सुख-सामग्रियाँ उपलब्ध होती हैं उनका अच्छा चित्रण किया है। ग्रंथ की भाषा भी सरल एवं प्रसादगुणयुक्त है। उदाहरण के लिए फाल्गुन मास का वर्णन देखिये—

फागुण-केरां फणगरां, फिरि फिरि गाई फाग।
चंग वजावइ चंग परि, आलवइ पंचम राग॥
केलि कुसुंभा केरड़ां, केसर सुर-तरु सोय।
माधव कीजइ छांटणां, अमर आश्चर्यइं जोइ।
पीली कीधी पाघड़ी, फूलडीए रंग रोळ
अन्यो अन्यि छांटणा, चटकु लागु चोळ॥

गोरा—कवि गोरा बीकानेर के राव जैतसी के समकालीन थे। इनके लिखे कुछ कवित्त प्रसिद्ध हैं। 'राव लूणकरण रा कवित्त' में राव लूणकरण के युद्ध और उनकी मृत्यु का ओजपूर्ण वर्णन है। यह युद्ध संवत् १५८३ में नारनौल के समीप मुसलमानों के साथ हुआ था। इसी प्रकार 'राव जैतसी रा कवित्त' में जैतसी की हुमायूं के भाई कामरान पर विजय का वर्णन है। यह युद्ध सं० १५९१ में हुआ था। इन कवित्तों की रचना कवि ने उसी समय की थी। भाषा का स्वरूप इस उदाहरण में देखिये—

अहि मिसि फनु फुंकरइ पवन मिसि सत्रु संघारइ
सिंह जेम उठठवै हाकि हनुमत जिम मारइ
वयरी सउं बळ ग्रहइ गहवि गढ़ कोट उपाडइ
जे अन्याव अंगवै तिनिहि सपतं ग्रहि तडइं
'कमज राइ लूंण कंप्रत न महि मंडालि जसु संभळ्यो।
जयतसी राव 'गोरउ' भणंइ मुगळ तणउं दळ निर्दळ्यो।

बीठू सूजो—संवत् १५९१ से १५९८ के बीच बीठू शाखा के सूजा नामक चारण ने 'राउ जैतसी रौ छंद' नामक एक ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ में बीकानेर नरेश राव जैतसी का बाबर के द्वितीय पुत्र कामरान के साथ हुए युद्ध का सुन्दर वर्णन है। प्रारम्भ में जैतसी की वंशावली देते हुए

---

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी पृष्ठ २५३
[2] गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज, Vol. XCIII, संपादक—मजूमदार।

[1] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ १७१।

कवि ने इसके पूर्वजों की प्रशंसा भी की है। ऐतिहासिक दृष्टि से ग्रंथ का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। उस समय का इतिहास अधिकतर मुसलमानों ने लिखा है और जैतसी एवं कामरान के बीच होने वाले युद्ध के विषय में वे मौन साध गये हैं। संभव है कामरान की पराजय के कारण ही उन्होंने ऐसा किया हो। सूजाजी ने इस युद्ध का विस्तारपूर्वक वर्णन कर राजस्थान ही नहीं अपितु भारत के इतिहास की कड़ी को कायम रक्खा है। डॉ० तैस्सितोरी ने इस सम्बन्ध में लिखा है[1]—

> 'The fact that the Mohammadan historians do not even mention this unfortunate adventure of the son of Babar, only enhances the value of the poem, which may thus claim the credit of filling a small gap in the history of India.'

इसका परिणाम यह हुआ है कि रचना के मूल कथानक में युद्ध के वातावरण का प्राधान्य हो गया है। चारणों की जिस परम्परा का पहले उल्लेख किया गया है उसी परम्परा के अन्तर्गत यह ग्रंथ रचा गया है। भाषा के उदाहरण से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जायगी—

राठउड़ां पाखइ अउर राइ, लोक किय मूगुले पाइ लाइ।
छान पति हेक अम्मली छत्त, गिर मेर प्रमाणइ तास गत्त।
खुररांणी खाफर खेड़ खत्ति, पारंभ कियउ उतराध पत्ति।
लाहउरि सेन सम्मिळइ लक्ख, पाखरिजइ तेजी सूध पक्ख।
सम्मिळइ साहि आलम समांन, खिड़ि संतरि बहत्तरी मिळइ खांन।
काळवा कुही करड़ा कियाह, हांसला हरे वीनइ हलाह।
रोभड़ा महूड़ा पीत रंग, तोरकी केवि ताजी तुरंग।
डूंगरी मसक्की वेसि दीय, अइराक ततारी आरबीय।
खुरसांणी मकुरांणी खहंग, पतिसाह तणा छूटइ पवंग।

इस उदाहरण से मालूम होता है कि दीर्घकाल से मुसलमानों के साथ सम्पर्क होने के कारण उनकी बोली तथा भाषा का प्रभाव राजस्थानी पर पड़ा। इसी कारण अरबी फारसी तक के तद्भव शब्दों का प्रयोग राजस्थानी में खुले रूप से होने लगा। देशी शब्दों का विस्तृत प्रयोग इसमें बराबर होता रहा है जो वीर-रस की कविताओं में प्रायः अनिवार्य रूप से पाये जाते रहे हैं। इसके साथ-साथ धीरे-धीरे ध्वन्यात्मक तथा वर्णनात्मक विशेषताओं का भी प्रवेश इसमें होता गया। अनुप्रास एवं उपमा की ओर भी कवियों का ध्यान आकर्षित हुआ।

मीरां बाई—इसी शताब्दी के अन्तिम चरण में वैष्णव भक्ति धारा से प्रभावित कृष्ण-भक्ति में लगी हुई मीरां बाई ने अपने हृदय के भावों की अभिव्यक्ति के लिए जिन पदों को गाया है वे ही इस साहित्य की अमूल्य निधि बन गये हैं। भक्ति रस के अनेकानेक पदों की रचना के कारण ही राजस्थानी साहित्य के विकास की कहानी में मीरां बाई का प्रमुख स्थान है। मीरां बाई का जन्म संवत् १५५५ के लगभग जोधपुर राज्य में मेड़ता परगने के कुड़की ग्राम में मेड़ते के राठौड़ राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह के यहां हुआ था।[1] इनकी माता का बाल्यावस्था में देहान्त होने के कारण ये अपने दादा राव दूदाजी के पास ही रहती थीं। उन्नीस वर्ष की अवस्था में इनका विवाह मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (सं० १५६५-८४) के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। दुर्भाग्यवश विवाह के तीन वर्ष बाद ही मीरां बाई विधवा हो गईं। ऐसी अवस्था में भी उनके हृदय पर एक सच्ची राजपूत रमणी के साहस एवं निष्ठा की गहरी छाप प्रकट हो रही थी। बाल्यकाल से ही कृष्ण के प्रति पूर्ण अनुरक्त होने के कारण इस समय उनकी निष्ठा और भी अधिक दृढ़ हो गई। पतिदेव का वियोग होते ही अपने सारे लौकिक सम्बन्धों के बन्धन से मुक्त होकर वे अपने इष्टदेव की आराधना में लवलीन हो गईं। थोड़े ही समय बाद पिता एवं श्वसुर की मृत्यु के कारण विरक्ति की भावना और तीव्र हुई और वे लोक-लज्जा का परित्याग कर साधु-संतों के सत्संग में आने लगीं। भगवद्दर्शन हेतु मन्दिरों में पहुंचती और वहाँ प्रेमावेश में आकर कृष्ण की मूर्ति के समक्ष नाचने तथा गाने लगतीं।

मीरां बाई की भक्ति का आदर्श ऊंचा था। उनके 'परमभाव' का निर्वाह किसी साधारण भक्त के वश की

[1] छंद राउ जइतसी रउ, वीठू सूजइ रउ कहियउ—सं० डॉ० तैस्सितोरी, Introduction, Page 1.

[1] मीरां की जन्मतिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है पर हमें उपरोक्त संवत् कई कारणों से उचित प्रतीत होता है। स्थानाभाव के कारण उन सभी मतभेदों पर हम अपना मंतव्य यहां प्रकट नहीं कर रहे हैं। —सं०

बात नहीं। जो कुछ भी उन्होंने कहा, वह उनकी आंतरिक अनुभूति की तीव्रता के कारण रागमय होकर गीत के रूप में ही प्रकट हुआ। समय-समय पर दी जाने वाली यातनाओं के कारण उपस्थित होने वाली बाधाओं एवं कठिनाइयों ने उन्हें निरुत्साही करने के बजाय और भी अधिक शक्ति प्रदान की। मीरां बाई को उनके समय की राजनैतिक तथा धार्मिक स्थिति ने अपने मार्ग पर अग्रसर होने के लिए पूर्ण साथ दिया। एक तरफ जोगी और नाथ सम्प्रदाय अपनी अलख को लोक-जीवन में मिश्रित कर रहा था तो दूसरी ओर कबीर की निर्गुण वाणी राजस्थानी क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी थी। इस सब के साथ-साथ सगुण भक्ति की धारा व्यापक रूप से प्रवाहित हो रही थी। ऐसे ही समय में यहाँ ईसरदास, जांभोजी, सिद्ध जसनाथ, केसोदास गाडण आदि महात्माओं ने सगुण-निर्गुण की बहती हुई धाराओं में अपना महान् योग दिया। मीरां का प्रादुर्भाव भी इसी वातावरण में हुआ था। युद्ध की रण-भेरी के बीच उन्होंने निर्गुण वाणी को सुना और जोगियों को अलख जगाते देखा और दूसरी ओर कृष्ण के रूप-सागर की असीम छवि को निहार कर भाव-विभोर हो गईं। उन्होंने दोनों मार्गों का अनुकरण किया और अनुभूति को शान्त-रस में प्रवाहित किया। उन्होंने स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए अनेकानेक पद विभिन्न राग-रागनियों में गाये।

मीरां बाई के पदों की संख्या कई हजार बताई जाती है, किन्तु उनके सभी पद आज उपलब्ध नहीं हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने 'मीरां बाई की पदावली' के नाम से लगभग २०० पदों का संग्रह प्रकाशित कराया था। जयपुर के स्व० पुरोहित श्री हरिनारायणजी ने लगभग एक हजार पदों का संग्रह किया था। उन पदों को अब राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान प्रकाशित करवा रहा है। सबसे बड़ी समस्या यह है कि मीरां बाई के पदों की भाषा एक ही प्रकार की नहीं है। बहुत से ऐसे पद हैं जो ठेठ राजस्थानी कहे जा सकते हैं किन्तु कुछ पर गुजराती एवं ब्रज-भाषा का भी पूर्ण प्रभाव है। कहीं-कहीं पंजाबी, खड़ी बोली एवं पूरबी तक का न्यूनाधिक सम्मिश्रण है। मीरां बाई के बहुत से पदों के विषय में यह कहा जा सकना अत्यन्त कठिन है कि जिस रूप में वे पाये जाते हैं, ठीक उसी रूप में रचे भी गये होंगे। इन्होंने मेड़ता, मेवाड़, द्वारिका, वृन्दावन आदि अनेक स्थानों पर निवास किया था, अतः उन स्थानों की बोलियां तथा भाषाओं का प्रभाव इनके पदों पर पड़ना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त पदों की भाषा सीधी-सादी, सरल एवं जनसाधारण की चलती भाषा होने के कारण सर्वसाधारण ने उन्हें अपना लिया। लोकप्रिय एवं गेय होने के कारण ही वे अधिकाधिक प्रचलित होते गये और स्थान तथा समयानुसार उन पर भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रभाव स्वभावतः पड़ता गया।

मीरां के पदों में जो रस है, प्रेमानुभूति की जो करुणा-मयी कसक है वह किसी अन्य भक्त कवि में नहीं आ पाई है। गहरे भावों की उत्तम अभिव्यंजना के कारण ही इनकी कविता जन-जन के गले का हार बन सकी है। उदाहरण-स्वरूप इनका एक प्रसिद्ध पद यहाँ उद्धृत करते हैं।

> स्यांम मिळण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊं बाटड़ियां।
> दरस बिना मोहि कछु न सुहावै, जक न पड़त है अँखड़ियां।
> तळफत-तळफत बहु दिन बीता, पड़ी बिरह की पासड़ियां।
> अब तो बेगि दया करि साहिब, मैं तो तुमरी दासड़ियां।
> नैण दुखी दरसण कूं तरसै, नाभिन बैठे सांसड़ियां।
> राति दिवस यह आरति मेरे, कब हरि राखे पासड़ियां।
> लागी लगनि छूटण की नाहीं, अब क्यूं कीजै आंटड़ियां।
> मीरां के प्रभु कब रे मिलोगे, पूरो मन की आसड़ियां।

सोलहवीं शताब्दी के कुछ और भी कवि हैं जिन्होंने फुटकर गीतों, दोहों तथा अन्य रचनाओं द्वारा साहित्य में अपना योगदान दिया है। कुछ प्रसिद्ध कवियों के नाम उनके रचनाकाल के साथ दिये जा रहे हैं--

बीठू सूरो सं० १५१५-१५२५, मुनि मतिशेखर सं० १५१४-३७। लालूजी महड़ू सं० १५६१-८३, सहजसमुद्र सं० १५७०-१६००। कवि जमणाजी सं० १५८०-९०, विनयसुन्दर सं० १५८३-१६१४, राजशील सं० १५६३-१५९४, हरिराम केसरिया (रचनाकाल अनिश्चित) आदि-आदि।

राजस्थानी साहित्य के ऐतिहासिक कालक्रम में सत्रहवीं शताब्दी का विशिष्ट महत्व है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं कि समस्त राजस्थानी साहित्य में से सत्रहवीं शताब्दी का साहित्य पृथक् कर दिया जाय तो पीछे के साहित्य का महत्व

साधारण रह जाता है। इस शताब्दी में प्रचुर मात्रा में ही रचना नहीं हुई, अपितु विशिष्ट एवं विषद ग्रंथों का निर्माण भी इसी शताब्दी में हुआ। साहित्य के सभी अंगों से परिपूर्ण इस शताब्दी की उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं ने ही इस काल को राजस्थानी साहित्य का स्वर्णयुग कहलाने का अवसर प्रदान किया है। इस शताब्दी के प्रमुख कवियों की संवत्-क्रम से हम यहाँ चर्चा कर रहे हैं।

आसौ बारहठ—कवि आसाजी बारहठ जोधपुर राज्य के भाद्रेस गाँव के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम गीधा था। ये राव मालदेव के कृपा-पात्र होने के कारण इन्हीं के पास रहते थे। इनके विषय में यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि जब मालदेवजी ने अपनी रूठी रानी भटियाणी उमादे को मनाने के लिए इनके भतीजे ईसरदास को अजमेर भेजा था तब आसाजी भी उनके साथ गये। ईसरदास अनेक कठिनाइयों के बाद रानी को मना कर ला रहे थे कि मार्ग में कोसाना गाँव के पास (जो जोधपुर से लगभग ३० मील ही दूर रह जाता है) आसाजी ने रानी को यह दोहा कह सुनाया—

> मांण रखै तौ पीव तज, पीव रखै तज मांण।
> दो-दो गयंद न बंध ही, हेकै खंभू ठांण॥

इसका भावार्थ समझ कर रानी वहीं से जैसलमेर लौट गई और मालदेव के जीवनपर्यन्त जोधपुर नहीं आई। आसाजी भी कुछ समय पश्चात् जैसलमेर चले गये और वहाँ से चल कर कोटड़ा के सरदार बाघा के पास रहने लगे। यह भी कहा जाता है कि जैसलमेर के रावल ने भारमली नामक दासी को, जो बाघा के पास रहती थी, अपने यहाँ लाने के लिए कोटड़ा भेजा था। कोटड़ा में बाघा और भारमली के प्रेमपूर्ण व्यवहार से प्रसन्न होकर वे वहीं रहने लग गये। एक बार आमोद-प्रमोद के समय इनके मुंह से यह दोहा निकल गया—

> जहां तरवर तहां मोरिया, जहां सायर तहां हंस।
> जहां 'बाघा' तहां भारमली, जहां दारू तहां मंस।

इस पर बाघा ने आसाजी को भारमली कभी नहीं मांगने के लिए वचन-वद्ध कर दिया। यहाँ रहते हुए बाघा के प्रति इनका प्रेम प्रगाढ़ होता गया। उसकी मृत्यु पर इन्होंने बड़े मार्मिक दोहे कहे हैं। ये दोहे आज भी हृदय को छुए बिना नहीं रहते—

> बाघा हाले बेग, दुःख साले 'दूदा' हरा,
> आठूं पहर उदेग, जातौ देगौ जैतवत।
> हाठां पड़ी हड़ताळ, हमें मद सूंगा हुआ,
> कूके घणा कलाळ, बिकरौ भागौ बाघजी।

अपने जीवन के शेष क्षणों में वे बाघा को कभी भूल नहीं पाये। पिछले समय में ये अमरकोट के तत्कालीन राणा के पास भी रहे। उन्होंने बाघा को भुलाने के लिए बहुत प्रयत्न किए परन्तु विफल रहे। राणा ने एक बार आठ पहर तक बाघा का नाम न लेने के लिए आसाजी से कहा और भांति-भांति के आमोद-प्रमोद में मग्न रखा परन्तु भोर होने के पूर्व ही जब मुर्गे ने बांग दी तो अनायास ही इनके मुख से निकल पड़ा—

> कूकड़ क्यूं कुरळावियौ, ढळती मांझल जोग।
> कै थनै मिनड़ी भांपियौ, कै बाघा तणौ विजोग॥

सुबह होते-होते राणाजी आसाजी को तालाब पर स्नान के लिए ले गये। नहाने के बाद तालाब से बाहर निकलने पर कवि भूल से राणाजी के कपड़े पहिनने लगे तो राणा ने कहा ये तो मेरे कपड़े हैं। इस पर उन्हें पुनः बाघा की स्मृति हो आई और उन्होंने यह दोहा राणा को कह सुनाया—

> की कह की कह की कहूं, की कह करूं बखांण।
> थारौ म्हारौ न कियौ, अे बाघा अहनांण॥

इन्होंने फुटकर रचनाओं के साथ कुछ ग्रंथों की भी रचना की है जिनमें प्राप्त ग्रंथों में 'राउ चन्द्रसेण रा रूपक', 'रावळ माला सलखावत रौ गुण', 'गुण निरंजन प्रांण' प्रसिद्ध हैं। फुटकर रचनाओं में 'बाघजी रा दूहा', 'उमादे भटियांणी रा कवित्त' आदि प्रचलित हैं। इनकी भाषा का उदाहरण उमादे के सती होने पर कहे हुए इस कवित्त में देखा जा सकता है—

> भंवर भ्रूह परजाळ जंघा रंभातर।
> कनक पयोधर कुम्भ, राख कीया चढ़ि जमहर।
> चंपकळी निरमळी, भखै झाळा दावानळ।
> बांहां नाळ मुणाळ, कंठ होमे सानूजळ।
> बिधु बदन केस कोमळ तवां, दहवे जेम सहस्स फण।
> बाळिया सती 'ऊमा' बिनै, अधर बिंब दाड़म दसण॥

कुशललाभ- ये खरतरगच्छीय वाचक अभयधर्म के शिष्य थे। इन्होंने अपनी समस्त रचनायें राजस्थानी भाषा में ही की हैं। अपने समय के श्रेष्ठ कवियों में इनकी गणना थी। इनकी प्रौढ़ कृतियाँ ही इसका प्रमाण हैं। इनके द्वारा रचे गये ग्रंथों के अनुसार इनका रचनाकाल इस शताब्दी का प्रथम चरण ही है। संवत् १६१६ में इन्होंने लोक-कथानक पर 'माधवानल चौपाई' काव्य की सुन्दर रचना की। राजस्थानी साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृति 'ढोला मारू' जो एक सरस प्रेम-काव्य है, के बिखरे हुए दोहों को एकत्र कर कवि ने अपनी ओर से कथासूत्र को जोड़ने के लिए चौपाइयाँ मिला कर उसे पूर्ण किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'तेजसार रास' (सं० १६२४), 'अगड़दत्त रास' (सं० १६२५), 'दुर्गा सप्तसी', 'जिनपालित जिनरक्षित संधि', 'भवानी छंद' आदि कई ग्रन्थों की रचना की। 'ढोला-मारवण री चोपई' में इनकी भाषा का स्वरूप निम्न उदाहरण में देखा जा सकता है—

> गोधूळिक वेळा जब हुई, जोवा जांन पधारी जुई।
> तब पिंगळ तेड़ी सुभ वार, परिणाव्यउ करि मंगळच्यारि।
> निरखयउ नयणे पिंगळराय, राजाइ तसु आप्यउँ दाय।
> रूपवंत नइँ सुंदर देह, मोढी-मनि निरखतां सनेह।
> सोळह वरसे परण्यउँ राउ, अति सुकमाळ असंभय काय।
> बारह वरस-तणी देवड़ी, लोक कहइ ए जोड़ी जुडी।
> एक कहइ तूठउ करतार, पांम्यउ तिणि पिंगळ भरतार।

मालदेव—ये राजस्थान में भटनेर (हनुमानगढ़) के रहने वाले थे। इनकी रचनाओं में इनका संक्षिप्त नाम 'माल' ही मिलता है। इनकी कृतियों के आधार पर इनका रचनाकाल सं० १६१२-१६२० के आसपास ही प्रतीत होता है। अपनी रचनाओं की लोकप्रियता एवं परवर्ती कवियों के उल्लेखों के आधार पर यह स्पष्ट है कि अपने समय में ये एक प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने लगभग २५ ग्रंथों की रचना की जिनमें से 'मन-भमरा गीत', 'महावीर पारणा', 'माल शिक्षा चौपाई', 'शील बावनी' आदि तो अपनी निजी विशेषताओं के कारण श्रद्धालु भक्तों के हृदय की हार बनी हुई हैं। इनके अतिरिक्त भी 'पुरंदर चौपाई', 'पद्मावती पद्मश्री रास', 'राजुल नेमिनाथ धमाल', 'भोजप्रबंध मृगांक पद्मावती रास' तथा अन्य फुटकर गीत आदि भी अधिक विख्यात हैं। 'पुरंदर चौपाई' का एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

> अति प्रीतम जउं बीछड़इ, तउ ही न मरणौ जाइ।
> हीयड़ा सांबर सींग ज्युं, दिन दिन नीठुर थाइ॥
> पांणी तणइ वियोग, कादम ज्युं फाटइ हीयउ।
> इम जौ मांणस होइ, साचउ नेह तौ जाणिजइ॥
> अइ वाळहां वियोग, पांणी पापिण नीसरइ।
> साचउ नेह ते जोइ, जइ लोयण लोहू वहइ॥

बारहठ ईसरदास—राजस्थानी साहित्य के इस स्वर्णिम-काल में बारहठ ईसरदास का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि ईसरदास ने चारण परम्परानुमार केवल वीररसात्मक रचनायें ही नहीं कीं अपितु राजस्थानी साहित्य में भक्ति रस की अनुपम रचना देकर अपने एक भक्त होने का परिचय भी दिया है। इनकी लेखनी से वीर रस और भक्ति रस की दोनों ही धारायें समान रूप से प्रवाहित हुई हैं। कवि एवं भक्त ईसरदास का जन्म संवत् १५९५ में माना जाता है। ऐतिहासिक आधार तथा उनकी जन्मपत्री इसी बात की पुष्टि करते हैं।[1] अपने जीवनकाल में इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की—

१–हरिरस, २–छोटा हरिरस, ३–गुण भागवत हंस, ४–गरुड़ पुरांण, ५-बाळलीला, ६–निंदा-स्तुति, ७–देवियांण, ८–गुण आगम, ९–गुण वैराट, १०–सभापर्व, ११–रास-कैळास, १२–हालां झालां रा कुण्डळिया और १३–दांण लीला।

उनकी इन रचनाओं में 'हरिरस' और 'हालां झालां रा कुंडळिया' इनकी सर्वोत्क्रृष्ट रचनायें हैं। 'हरिरस' शान्त रस का ईश्वर भक्ति का ग्रन्थ है जिसमें अटूट तन्मयता, अगाध प्रेम एवं दृढ़ विश्वास भरा पड़ा है। ईश्वर के अनेक नामों की महिमा, उसके प्रति कवि का प्रेम, दीन जनों का कारुणिक प्रकार आदि सभी बातों का 'हरिरस' में सुन्दर समन्वय हुआ है। कवि ने कर्म, उपासना तथा ज्ञान तीनों विषयों का उल्लेख विषद विवेचना के साथ किया है। पूर्ण अध्ययन से इस ग्रंथ में श्रीमद्भागवत का संक्षिप्त सार मिल जाता है। भक्ति रस का ग्रंथ होने के कारण यह राजस्थान तथा गुजरात के लोगों का दैनिक पाठ करने का ग्रंथ बन गया है। हरि-भक्तों में जैसा 'हरिरस' का प्रचार यहाँ हुआ वैसा किसी

[1] 'हरिरस' (राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता)।

अन्य रचना का नहीं। ग्रंथ में यत्र-तत्र सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों की मिली-जुली झलक भी दृष्टिगोचर होती है।

निरगुण नाथ नमो जिय नाथ, सबंगत देव नमो ससिमाथ।
नमो तो नमो तो लीला नांम सोहं अवतार नमो स्रीरांम॥
निरंजण नाथ परम्म नृवांण, किसन महाघण-रूप कल्यांण।
सबग्गुण देव अतीत संसार, बिभू अति गुज्झ परम्म बिचार॥

अब उनकी भक्ति के उदाहरण के लिए निम्न कवित्त देखिये—

जनम-पीड़ जगदीस, ईस अवतार म आंणे।
छळ-बळ करि-छोडवण, जनम आपण कर जांणे।
भणे नांम हूँ भणिस, जोति जगती जगदीसै।
क्रपा साधना करण, तवन कोड़ तेतीसै।
द्रगदेव दिनंकर ससि दुवै, त्रिगुण नाथ तारण-तरण।
'ईसरो' कहै असरण-सरण, किसूं तूझ कारण करण॥

'हरि रस' में भाषा की विविधता पायी जाती है। कहीं संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों की बहुलता है तो कहीं फारसी शब्दों तथा साधारण बोलचाल के शब्दों का भी प्रयोग पाया जाता है। जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है वहाँ भाषा अत्यन्त सरल एवं चलती हो गई है।

अवगुण मोरा बापजी, बगस गरीब निवाज।
जो कुळ पूत कपूत व्है, तो ही पिता कुळ लाज॥
म्हैं तो कुछ करता नहीं, करता है करतार।
देखो करता क्या करं, रख बंदा इतबार॥
रांम भरोसे ऊकळं, भादण ईसरदास।
ऊकळता में ग्रोर दं, बंदा रख बीसास॥

कवि ईसरदास का दूसरा प्रसिद्ध ग्रंथ 'हालां झालां रा कुंडलिया' है। यह वीर-रस-प्रधान काव्य है। श्री मोतीलाल मेनारिया द्वारा उदयपुर से प्रकाशित ग्रंथ में ५० कुंडलिया दिए गए हैं। ऐसा कहा जाता है कि स्व० पुरोहित श्री हरिनारायणजी के संग्रह में ६३ कुंडलिया संग्रहीत थे। ये कुंडलिया स्फुट रूप में ही मिलते हैं तथा इन छंदों में क्रम-बद्धता का अभाव है। प्रत्येक कुंडळिया अपने आप में पूर्ण है। 'हालां झालां रा कुंडळिया' का वर्ण्य-विषय हलवद (वर्तमान नाम ध्रांगध्रा) के अधिपति झाला रायसिंह ध्रोल राज्य के ठाकुर हाला जसवन्तसिंह (जसाजी) जो कि उनके निकट सम्बन्धी भी थे[1], के बीच होने वाले युद्ध से सम्बन्धित है। राजस्थानी भाषा की सर्वश्रेष्ठ वीररसात्मक कृतियों में इस ग्रंथ का स्थान है। कवि ने ओजस्विनी भाषा का प्रयोग कर इसे वीररस की एक सजीव कृति बना दिया है। कवि ने इसमें झड़-उलट कुंडळिया का प्रयोग किया है जिससे रचना में और भी सार्थकता आ गई है। ग्रंथ की भाषा क्लिष्ट न होकर पूर्ण प्रसादगुणयुक्त है। मौलिक भावों की अभिव्यंजना के लिए सुन्दर शब्दावली का चयन कवि की अपनी निजि विशेषता है। शब्दों का विषयानुकूल प्रयोग एवं उनकी विशिष्ट ध्वन्यात्मकता से बरबस हो ओज फड़क उठता है। वीर-रस का रूप वास्तविक नीचे दिए गए उदाहरण में देखा जा सकता है—

एको लाखां आंग में सीह कहीजै सोय।
सूरा जेथी रोड़ियं कळहळ तेथी होय॥
कळळ हूंकळ अवसि खेति सूरा करै।
धीरपं सुहड़ रिण चलण धीरा धरै॥
आगि अजाणि जसवंत अकळावणो।
खाग बळि एकलो लाख दळ खावणो॥ (८)

इस ग्रंथ में अधिकांश पद्यों को ईसरदास ने स्त्री के मुंह से कहलवाया है। वीर जसाजी की राणी अपने पति, अपनी सखी आदि के समक्ष अपने वीर-भाव प्रकट करती है। कवि की इस अभिव्यक्ति में बड़ी स्वाभाविकता एवं सरसता आ गई है। इससे समस्त रचना भाव-सौन्दर्य से अभिभूत हो गई है—

ऊठि अचूंका बोलणा, नारि पयंपै नाह।
घोड़ां पाखर घमघमी, सींधू राग हुवाह॥
हुवो अति सींधवो राग बागी हका।
थाट आया पिसण घाट लागै थका॥
अखाड़ां जीति खग अरि घड़ा खोलणा।
ऊठि हरधवळ सुत अचूंका बोलणा॥ ४

ग्रंथों के अतिरिक्त कवि द्वारा रचे हुए कुछ फुटकर गीत भी मिलते हैं। गीतों की भाषा प्राचीन चारण काव्य-परंपरा का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है—

रंग रातो चीत कवट-हर राजा, अवरां हूंतो ऊतरीयो।
तो मुख दीठै लाख-तियागी 'विजा' जगत सहु वीसरीयो॥ १
'विजमल' तुझ दीठै वीसरिया, सयळतणा भूपति सिगळेय।
दूजा तीह भऊजे किम डूंगर, निरख्यो ज्यां सुरगिरि नयणेह॥ २
अनिजळ तीह थियै किम आरति, जमण-गंग-तट वसिया जाइ।
दीठै तुझ पछै 'दूदावत', दूजा सुपह न आवै दाइ॥ ३

[1] झाला रायसिंह जसाजी के भानजे थे

वीठू मेहा—कवि ईसरदास की भांति वीर रस की सुन्दर रचना देने वालों में कवि वीठू मेहा का नाम भुलाया नहीं जा सकता। इनकी रचनाओं में 'पाबूजी रा छंद', 'गोगाजी रा रसावला' तथा कर्मसी और सांवलदास के प्रति कहे हुए कवित्त बहुत प्रसिद्ध हैं। 'पाबूजी रा छंद' की हस्तलिखित प्रति का विवरण डॉ० तैस्सितोरी ने दिया है[1] जो अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर में सुरक्षित है। इस प्रति में इसके रचनाकाल तथा लिपिकाल का कहीं उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी इसके साथ ही अन्य रचना 'जैतसी रो पाधड़ी छद, लिखा हुआ है जिसका लिपिकाल सं० १६७२ लिखा हुआ है।[2] दोनों ही रचनायें एक ही हाथ की लिखी होने के कारण 'पाबूजी रा छंद' का लिपिकाल सं० १६७२ के बाद ही माना जा सकता है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि बीठू की यह रचना संवत् १६७२ के पूर्व ही प्रसिद्ध हो चुकी होगी। बीठू मेहा के जोधपुर के कूंपा मेहराजोत पर लिखे हुए फुटकर गीत भी प्राप्त होते हैं। कूंपा मेहराजोत संवत् १६०० में जोधपुर की ओर से शेरशाह के विरुद्ध लड़ कर काम आया था।[3] इस दृष्टि से बीठू मेहा का रचनाकाल सत्रहवीं शताब्दी का प्रथम चरण ही माना जा सकता है।

'गोगाजी रा रसावला' भी फुटकर छन्दों की रचना है जिसमें गोगाजी चौहान का युद्ध, उनकी वीरता तथा गायों की रक्षार्थ किए गए आत्म-त्याग का विषद वर्णन है। वीर-रस के फुटकर कवित्तों में बागड़ के करमसी और सांवलदास चौहान की वीरता पर कहे हुए कवित्त बहुत प्रसिद्ध हैं। ये दोनों वीर डूंगरपुर के महारावळ आसकरण (सं० १६०६-३७) की ओर से महाराणा उदयसिंह की सेना के विरुद्ध लड़ कर काम आये।[4] वीठू के ये कवित्त वीररस के सजीव उदाहरण हैं जिसकी झलक निम्न उद्धरण में देखी जा सकती है—

डहरिए डगक डहक्क, हक्क होए हलकारां।
वाजे धवक झड़क्क, लंक त्रूटे झूझारा।
डरे कूंत खरड़क्क सार झाबक्क सबक्कां।
फोफर फटिय मुवक्क, रकत ऊबके खळक्कां।
वर वंक वधे चहुवांण वंस. विढ़ण वंक आंकह चलै।
सामळै सुहड़ सो खंड किय, खळां सरै सारण खळै॥

रामा सांदू—ये मेवाड़ के राणा उदयसिंह के समकालीन थे।[1] इन्होंने महाराणा की प्रशंसा में १५ वेलिया छंदों में 'वेलि राणा उदयसिंघरी' की संवत् १६२८ के आसपास रचना की। इसके अतिरिक्त इन्होंने फुटकर गीतों की भी रचना की है। उदाहरण के लिए एक गीत यहाँ दिया जा रहा है।

गीत—दळ पैलां अकळ उलटा देखै,
खळ मैंगळ प्रजाळण खाग,
धूहड़ खत सूरत घड़हड़ियो,
'ईसर' तिकर पराळी आग॥ १
माहव तणो महाबळ मिळियो
घणा जूंझार वधै घण घाय॥
पंडवेसां पटहथां प्रजाळण
लांप तणै गंज लागी लाय॥ २
आडै घाय बाजियो 'ईसर'
खळ मैंगळ जाळण खुरसांण
आग अंगारै लाग उडियो
उजवाळै झाळां असमांण॥ ३
'माधव' हरो अछरां वरमाळै
सुजड़ उजाळै तेरे साख
'ईसर' दावानळ उझमियो
रिम लाकड़ घड़ बाळै राख॥ ४

अखौ भाणावत—ये रोहड़िया शाखा के चारण थे और जोधपुर के राजा मालदेव के कृपा-पात्र भाना बारहट के पुत्र थे। बाल्यकाल में ही माता-पिता की मृत्यु के कारण इनका पालन-पोषण मालदेव की झाली रानी स्वरूपदे ने अपने पुत्र उदयसिंह और चन्द्रसेन के साथ किया। बड़े होने पर भी ये उदयसिंह के साथ ही रहते थे। कारणवश उदयसिंह ने चारणों के गाँव छीन लिए थे। इसके विरुद्ध संवत् १६४३ में आउआ ठिकाने में चारणों ने धरना दिया। उदयसिंह ने अखा को उनसे सुलह करने के लिए भेजा परन्तु अखाजी सुलह

---

[1] Descriptive Catalogue, Sec. II, Pt. 1, Page 8-9.

[2] संवत् १६७२ वर्षे शाके १५ माह मासे शुक्ल पक्षे त्रितीयां तिथौ गुरुवासरे……।

[3] मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, वि० रेउ०, पृ० १२८-१३१।

[4] डूंगरपुर राज्य का इतिहास : गौ० ही० ओझा, पृ० ८९-९०।

[1] नैणसी की ख्यात, भाग १, पृ० १११।

करने के बजाय स्वयं घेरने में शामिल हो गए और वहीं उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए।

अखाजी डिंगल के कवि थे। द्वारकादास दधवाड़िया ने अपने ग्रन्थ 'दवावैत' में अपने से पूर्व के कवियों का वर्णन किया है, उसमें अक्खाजी का भी उल्लेख कवि के रूप में किया है। इन्होंने वेलिया छंद में 'वेलि देईदास जैतावत री' नामक ग्रंथ की रचना की। इस वेलि में २३ दोहलों में देवीदास जैतावत के युद्ध एवं वीरता का वर्णन है। संवत् १६१६ में देवीदास ने जालोर को अपने अधिकार में कर लिया और बदनोर से जयमल को भी निकाल दिया। ये अकबर से शाही सेना की सहायता लेकर मेड़ता पर चढ़ आये। यहीं देवीदास ने उनसे युद्ध किया और वहीं वीरगति को प्राप्त हुआ। कवि की रचना इस घटना की सम-सामयिक ही जान पड़ती है। अतः इसका रचनाकाल संवत् १६२० के आसपास ही माना जा सकता है। इस वेलि से एक पद नीचे उदाहरण-स्वरूप दिया जाता है—

मिळि जमलि राण कल्यांण मेड़तै,
घणंजू वेहता बिरद घण।
बळ छाडियौ तुहारै बोले,
त्रिहुं ठाकुरे जैततण॥ ११

अखाजी वैसे किसी ग्रंथ आदि की रचना के लिए प्रसिद्ध नहीं हैं परन्तु फुटकर गीतों की रचना के लिए राजस्थानी साहित्य-जगत में इनकी प्रसिद्धि अधिक है। गीत बड़े ही सुन्दर हैं जिनकी भाषा शैली बड़ी प्रसादगुणयुक्त है। इनके द्वारा लिखे गए एक गीत का उदाहरण देखिये—

ताकंती फिरै हिंदवां तुरकां
जुड़ै न भरता भांत जुई।
मरण तुहारे चंद मछर गुर
अकबर फौज सचीत हुई॥ १
कसै न जूसण राग कलासै,
विलखी फिरै न पूछै बात।
एकण कमंध मरण उतरिया,
असपत फौज तणै अंह बात॥ २
रचै न जूसण टोप राखड़ी,
हिए न कांचू जिरह न हार।
'गंगा' हरा मरण गहलांणी,
सारी फौज तणा सिणगार॥ ३
मोंगण हार 'माल' तण मूश्रो,
सजती जै ऊपर सिणगार।
साह घड़ा राठौड़ सरीखा,
अब दूजै पामिस भरतार॥ ४

अल्लू कविया—ये जाति के कविया गोत्र के चारण थे और जोधपुर के राजा मालदेव के समकालीन थे। इनका जन्म सिणला ग्राम में हेमराज कविया के घर संवत् १५६० में हुआ।[1] इनका रचनाकाल संवत् १६२० के लगभग माना जा सकता है। इनका रचा हुआ कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। सम्भव है इन्होंने कोई ग्रंथ लिखा ही न हो, फिर भी इनके कुछ फुटकर छप्पय एवं गीत मिलते हैं जिनकी विशेष प्रसिद्धि है। इनकी कविता को पढ़ कर किसी ने ठीक ही कहा है—

कविते अलू दूहे करमाणंद, पात ईसर विद्या चौ पूर।
छंदे 'मेहो' झूलणे 'मालो', सूर पदे गीते हर सूर॥

इनकी कविताओं से कोई ठोस ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त नहीं होती परन्तु सभी कवितायें सरस, हृदयग्राही एवं भक्ति-रस से परिपूर्ण अवश्य हैं—

गोप नार चित हरण, प्रेम लच्छण समप्पण
कुंज विहारी क्रसण रास व्रन्दावन रच्चण
गोवरधन ऊधरण ग्राह मारण गज तारण
जुरासिंधु सिसपाळ भिडै भू-भार उतारण
जमलोक दरस्सण परहरण भौ भग्गो जीवण मरण
ओ मंत्र भलो निस दिन 'अलू' सिमर नाथ असरण सरण॥

इन्होंने जोधपुर के राव मालदेव की विभिन्न विजयों के वर्णन हेतु कुछ कवित्तों की रचना की है जिनमें से अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर की हस्तलिखित प्रति[2] में ४ कवित्त मिलते हैं। इन कवित्तों में वीर-रस की झलक दिखाई देती है। इनके बून्दी के हाडा सूरजमल पर लिखे गीत भी प्राप्त हैं जो कवि के भाव पक्ष को स्पष्ट करने में सहायक हैं।

गोरधन बोगसौ—कवि गोरधन बोगसौ गोत्र के चारण, मेवाड़ राज्य के निवासी थे। ये महाराणा प्रताप के

---

[1] परम्परा, भाग १२, सिद्धभक्त कवि अलूनाथ कविया : श्री सौभाग्यसिंह शेखावत, पृ० ५५।

[2] प्रति नं० ६६।

समकालीन थे अतः इनका रचनाकाल संवत् १६३३ के आस-पास माना जाता है। ये अपने वीररसपूर्ण फुटकर गीतों के लिए ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके ओजपूर्ण गीत पाठकों के हृदय में उत्साह का संचार करने से पूर्ण समर्थ हैं। भाषा सरस एवं मंजी हुई है। गीतों में जथा और उक्तियों का निर्वाह भली प्रकार से हुआ है।

हल्दी घाटी के युद्ध में कवि स्वयं महाराणा प्रताप के साथ थे। अतः अपने गीतों में हल्दी घाटी के युद्ध एवं राणा प्रताप के शौर्य एवं पराक्रम का आंखों देखा वर्णन करने से उनमें सजीवता आ गई है। गीत के पढ़ते ही सारा दृश्य आंखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है। इसी युद्ध के वर्णन का एक गीत देखिये—

गयंद 'मांन' रै मुहर ऊभौ हुतौ दुरदगत,
सिलह पोसां तणा जूथ साथै।
तद बही रूक अणचूक 'पातळ' तणी,
मुगळ बहलोल खां तणै माथै ॥ १
तणै भ्रम 'ऊद' असवार चेटक तणैं,
घणौ मगरूर बहरार घटकी।
आचरैं जोर मिरजातणैं आछटी,
भाचरैं चाचरैं बीज भटकी ॥ २
सूरतन रीझतां भीजतां सैलगुर
पहां अन दीजतां कदम पाछे।
दांत चढ़तां जवन सीस पछटी दुजड़
तांत साबण ज्युहीं गई ताछे ॥ ३
वीर अवसांण केवांण ऊजबक बहे,
रांण हथवाह दुय राह रटियौ।
कट झिलम सीस बगतर बरंग अंग कटे,
कटे पाखर सुरंग तुरंग कटियौ ॥ ४

सूरा टापरिया—ये टापरिया शाखा के चारण थे। ये भी महाराणा प्रताप और पृथ्वीराज राठौड़ के समकालीन थे। दिल्ली में अनायास ही इनकी मुलाकात पृथ्वीराज से हो गई थी। पृथ्वीराज ने इनका खूब सम्मान किया और इन्हें बादशाह अकबर के दरबार में ले गये, वहाँ सूरा ने निम्न-लिखित सोरठा कहा—

अकबरिया इण वार, मर रे मैंगळ हर धणी।
सोयळी सह संसार, दोयळी कोई देखां नहीं ॥

अकबर ने इसका अर्थ शीघ्र समझ लिया और सूरा से अपनी मृत्यु की कामना करने का सोरठा फिर से सुनाने को कहा। तब शीघ्र ही सूरा ने उसे पलट कर इस प्रकार कहा—

अकबरिया इण वार, म मरे मैंगळ हर धणी।
सोयळी सह संसार, दोयळी कोई देखां नहीं ॥

इस पर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सूरा की इच्छापूर्ति की।

सूरा निस्सन्देह श्रेष्ठ कवि था। वह सत्यवादी एवं वीरता का उपासक होने के साथ-साथ सच्चा राष्ट्र भक्त भी था। इसकी कविता में राष्ट्रीय भावना स्पष्ट रूप से झलकती है। महाराणा प्रताप के प्रति कहे हुए सोरठे वीररस के सुन्दर उदाहरण हैं—

मांझी मोह मराट, 'पातल' रांण प्रवाड़ मल।
दुजड़ां किय दह बाट, दळ मैंगळ दांणव तणा ॥
चंपौ चीतोड़ाह, पोरस तणौ प्रतापसी।
सोरभ अकबर साह, अलियळ आभड़ियौ नहीं ॥
अंही भुजे अरीत, तसलीमज हिंदू तुरक।
माथै निकर मजीत, परसाद कै प्रतापसी ॥
चौकी चीतोड़ाह, 'पातल' पंडवेसां तणी।
रहचेबा रांणाह, आयौ पण आयौ नहीं ॥

सूरा के फुटकर गीत भी अनेक प्राप्त हैं जो उसकी काव्य-प्रतिभा के सच्चे प्रमाण हैं। गीतों की भाषा ओजपूर्ण है। शब्द-चयन पूर्ण विषयानुकूल है जो बरबस ही पाठकों में उत्साह की उमंग पैदा कर देता है। एक गीत का उदाहरण देखिये—

आलापै राग गारड़ू अकबर,
दै पैंतीस असट कुळ दाव।
रांण सेस बसुधा कथ राखण,
राग न पांतरियौ अहराव ॥
मिणधर छत्रधर अवर गेल मन,
ताइधर रजधर 'सींघतण'।
पूंगी दळ पतसाह पेरतां,
फेरै कमळ न सहसफण ॥
गढ़ गढ़ राफ मेटे गह,
रैण खत्रीध्रम लाज अरेस।
पंडर बेस नाद अण पीणग,
सेस न आयौ पतौ नरेस ॥

आया ऊन भूपत आवाहण,
भुजंगे भुजंग तजे बळ भंग ।
रहियो रांण खत्रीध्रम राखण,
सेत उरंग कळोधर 'संग' ।।

हीर कलश—राजस्थानी के जैन कवि हीर कलश खरतर-गच्छ की सागरचन्द्र सूरि शाखा के विद्वान थे। जीवनकाल के अधिकांश भाग में ये बीकानेर तथा जोधपुर राज्य में ही रहे अतः इनका जन्म इन दोनों राज्यों में होना सम्भव है, जो वि० सं० १५९५ में हुआ था। कवि ने बहुत संख्या में रचनायें लिखी हैं जिनका रचनाकाल सं० १६१५ से ५७ है। इस प्रकार इन्होंने लगभग ४२ वर्ष तक साहित्य-साधना में रत रह कर कई श्रेष्ठ रचनाओं का निर्माण किया।

श्री अगरचन्द नाहटा ने कवि के ३० ग्रंथों का संवत् क्रम से नामोल्लेख किया है।[1] इनकी अन्तिम रचना 'हीयाली' सं० १६५७ नागौर के निकटवर्ती 'डेह' नामक स्थान पर रची हुई मिलती है। कवि का स्वर्गवास इसी स्थान पर होने का अनुमान लगाया जाता है। इनकी रचना 'मोती कपासिया संवाद' का एक उदाहरण देखिये—

मोती–कहि मोती सुणि कांकड़ा, मइ तइ केहो साथ ।
हूं साव्हु कंचण सरिस, तइ खळ कूकस बाथ ।।
मइ सुर नरवर भेटीया, कीधां जिहां सिंगार ।
तइ भेटीया गोधण वळद, जिहां कीधा आहार ।।

कपासिया–ऊतर दीयइ कपासीयउ, अम्ह आहार जोइ ।
गायां गोरस नीपजइ, वळदे करसण होइ ।।
गोधण जदि वांटउ न हुइ, तदि वरतइ कंतार ।
धांन वडइ सव वेचीयइ, सोवन मोती हार ।।

कनक सोम—इसी समय के अन्य जैन कवि कनक सोम की रचनायें भी राजस्थानी साहित्य में उल्लेखनीय हैं। ये खरतर-गच्छ के अमर माणिक्य के शिष्य थे। डॉ० माहेश्वरी ने इनके ग्रंथों की सूची में १२ नाम गिनाये हैं।[2] ग्रन्थों में संवतोल्लेख के अनुसार इनका रचनाकाल भी १६२५ से १६५५ तक के लगभग ठहरता है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'आषाढ़ भूति चौपाई' का उदाहरण देखिये—

नट ए पुत्री गीखवी, ए मुनिवरनि मोहउ रे।
हाव भाव विभ्रम करी, काम दुधा घरि दोहउ रे।
भुवन सुंदर जय सुन्दरी, मुनि गोहन वर नारी रे।
जन मन रंजन अवतरी, गोरी रति अनुकारी रे।
कुंच विच हार विण्यउ हस्यउ, गिरि विचि गंग प्रवाहा रे।
नाभि मंडळ सागर संगरइ, जांनु कि तीरथ लाहा रे ।।

रंगरेलौ बीठू—इनके जन्मकाल के सम्बन्ध में विशेष पता नहीं चलता। इतना अवश्य प्रचलित है कि ये जैसलमेर के रावल हरराज और बीकानेर के राजा रायसिंह के समकालीन थे। इनका जन्म जैसलमेर राज्य के सांगड़ ग्राम में हुआ था, परन्तु बचपन में ही कच्छभुज चले गए और वहीं विद्याध्ययन किया। इसके पश्चात् वे देशाटन के लिए निकल पड़े और विभिन्न नगरों एवं देशों में घूमते हुए उनका वर्णन अपनी कविता में करने लगे। इनकी कवितायें व्यंग के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। ये घूमते हुए अपने देश जैसलमेर आ पहुँचे और यहीं पर जैसलमेर का वर्णन अपनी व्यंगपूर्ण भाषा में किया और यहाँ के रावल को सुना दिया। रावल ने इसे दूषित समझ बीठू को कैद कर लिया। बीकानेर के राजा रायसिंह अपना विवाह करने जैसलमेर पहुँचे तब इनको छुड़ा कर साथ ले आये। यहाँ इन्होंने रायसिंह की प्रशंसा में कुछ फुटकर गीतों की रचना कीं। एक समय राजा के कहने पर कवि ने रानी के समक्ष जैसलमेर का वर्णन सुनाया। वह व्यंगपूर्ण होने के कारण रानी को कटु लगा, इससे उसने नौकरों द्वारा रात्रि में बीठू को पलंग सहित कूए में पटकवा दिया। भाग्य से वे वहाँ बच गये और निकल कर भीनमाल चले गये जहाँ से जालोर का बिहारी पठान अपने साथ ले गया। इनकी रचना के उदाहरण देखिये—

राठौड़ महाराजा रायसिंह कल्याणमलोत रौ गीत—

पाताळ तठै बळि रहण न पाऊं, रिध मांडे स्रग करण रहै।
मो म्रितलोक राइसिंघ मारै, कठै रहूं हरि दळिद्र कहै ।। १
विरोचंद-सुत अहिपुर वारै, रवि-सुत तणो अमरपुर राज।
निधि- दातार कलाउत नरपुर, अनंत रोर-गति केहि आज ।। २

---

[1] शोध पत्रिका, भाग ७, अंक ४ : राजस्थानी भाषा के एक बड़े कवि हीर-कलश।

[2] राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० २६५–२६६।

रयण-दियण पाताळ न राखे, कनक-श्रवण रूधी कविळास ।
महि-पुड़ि गज-दातार ज मारै, विसन कसै पुड़ि मांडूं वास ।। ३
नाग अमर नर भुवण निरखतां, हेक ठौड़ छै, कहै हरि ।
घर अर नांन्हा सिंघ घातिया, कुरिंद तठै जाइ वास करि ।। ४

ऊमर कोट—

पद्मण पांणी जावत प्रात, रुळंती आवत आधी रात ।
बिलक्खा टाबर जोवे बाट, धिनो धर धाट धिनो धर धाट ।।
अरोगे नीर गधां सर आंण, सराप संदेस धरां सोढ़ांण ।
कविसर पारख ठोठ न कोय, हसती भेस बराबर होय ।।
परख्या ऊन बरोबर पाट, धिनो धर धाट धिनो धर धाट ।।

दूदा आसिया—राजस्थानी साहित्य में इस समय चारण परम्परा की बहुलता थी। समस्त राजस्थान में यह लहर व्यापक रूप से व्याप्त थी। अन्य चारण कवियों की भाँति इसी समय दूदा आसिया भी प्रसिद्ध कवि हो चुका है। ये आसिया गोत्र के चारण सिरोही राज्य के निवासी थे। इनका रचना-काल संवत् १६३३ से १६४४ के लगभग माना जाता है। सिरोही के राव सुरताण ने इन्हें सीवाणा के राठौड़ कल्ला के पास भेजा था। यहाँ पर इन्होंने राठौड़ कल्ला की वीरता की प्रशंसा में अनेक कुंडलिया तथा फुटकर गीत लिखे। इनके रचे कुंडलियों की संख्या १४० के लगभग कही जाती है, यद्यपि अभी तक केवल २० कुंडलिये ही उपलब्ध हैं। दूदाजी के गीत निसन्देह सुन्दर रचनायें हैं। भाषा और भाव दोनों ही इनकी काव्य-प्रतिभा के द्योतक हैं। उदाहरण के लिए इनका निम्न गीत देखिये—

सवीयांण 'कल्यांण' तणै व्रत सीधो, अगै भेटिया असत अग्यांन ।
आजस आभड़ छोत उतरीयो, स्रोण गंगोदक हुओ सनांन ।। १
सर नांमियो गंगाजळ स्रोणी, सत सीधो 'कल्यांण' सकाज ।
असती पोहां तणी आभड़ियो, अनड़ प्रवीत हुओ तिण आज ।। २
'माल' हर गढ़ सीस मरंतै, मंजन गाळिया मिले मळ ।
'लाखावटे' तुहाळो लोई, जांणी लधियो गंगजळ ।। ३
पांणी स्रोण सीस-पांणीजै, सत सीधो कल्यांण सपोत ।
मोटा अनड़ तणै सिर मरतै, 'छाडा' हरै उतारी छोत ।। ४

माला सांदू—माला सांदू बीकानेर के राजा रायसिंहजी के समकालीन थे। इनके जीवन का अधिकांश भाग रायसिंहजी के साथ ही व्यतीत हुआ प्रतीत होता है। 'दयाळदास की ख्यात' से पता चलता है कि इन्होंने रायसिंह से दो बार पुरस्कार प्राप्त किया था।[1] ओझाजी के अनुसार संवत् १६२७ में अकबर के नागौर आने पर बीकानेर के राव कल्याणसिंह अपने पुत्र रायसिंह के साथ उससे मिले। संवत् १६३० में कल्याणमल का देहान्त हुआ।[2] इसी समय गुजरात विजय पर जोधपुर का राज्य अकबर ने रायसिंह को दिया। 'दयाळदास की ख्यात' के अनुसार संवत् १६४६ में रायसिंह ने जैसलमेर के रावळ हरराज की पुत्री से विवाह किया।[3] कवि की रायसिंहजी के सम्बन्ध की लिखी रचना व अन्य रचनाओं के आधार पर इनका रचनाकाल सं० १६३० से १६६० माना जा सकता है। इनके लिखे तीन ग्रंथ मिलते हैं—

(१) झूलणा महाराज रायसिंघजी रा ।
(२) झूलणा दीवांण श्री प्रतापसिंघजी रा ।
(३) झूलणा अकबर पातसाहजी रा ।

उपर्युक्त तीनों ही रचनायें झूलणा छन्द में हैं, जिनमें कवि ने अपने समय के तीन ऐतिहासिक प्रसिद्ध वीरों, अकबर प्रताप और रायसिंह के पराक्रमों का वर्णन किया है। रचनायें घटनाओं की सम-सामयिक जान पड़ती हैं जिससे उनमें वास्तविकता आ गई है। हल्दी घाटी के युद्ध-वर्णन में इनकी भाषा पूर्ण ओजस्विनी हो गई है और इसमें कवि की राष्ट्रीय भावना स्पष्ट रूप से झलकती दिखाई देती है। उदाहरण के लिए एक पद नीचे देखिये—

जोगण खप्पर मांडीय पळ रत अघाई
नाळां गोळा पूरीया की सोर सजाई
सोर पलीता गड़ड़ीया हथनाळ हवाई
धर पड़सादे परबतां फिर गैण गजाई
सिर चढ़ीतो सीसोदीयो सोहीयो सेलारां
आळूझै अंत्रावळी वणीयो तिण वारां ।।

[1] क. गांव एक भदोरो नागौर रो माले सांदू नूं दीनो । ख. हाथी एक माले सांदू नूं । (ख्यात, भाग २, पृ. ११८, १२५)

[2] बीकानेर राज्य का इतिहास : गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृ. १६३ का फुटनोट ।

[3] दयाळदास री ख्यात, भाग २, पृ. १२३ ।

रिड़ै रगत्र सगत पत्र भरीया कर भारां,
झाळ ज बहैड हिंगळ का पड़नाळ पयारां।
लट छूटा तूटा कमळ घट फूटा धारां,
जांग क मट उपटीया विच हट रंगारां।

इन भूलणाओं के अतिरिक्त कवि के कई फुटकर गीत और कवित्त मिलते हैं। गीतों की भाषा भी पूर्ण प्रवाहमयी तथा ओजगुण-सम्पन्न है। भाव पक्ष प्रबल होने के कारण गीत बड़े ही आकर्षक हो पाये हैं। राव जोधा के पुत्र करमसी के प्रति कहे एक गीत के दो दोहले यहाँ उदाहरण में देखिये—

गखत जो नहीं 'कमो' रिण रहचै।
धाय मिळे रिण असुर घड़।
तो जड़ जंगळ जात जैता।
ज्यूं जैतायण ही जात जड़।। १
पोह धमोरो अनै द्रोणपुर।
पैह मेड़तो जांगळू पैह।
काडत जड़ां सहत किलमायण।
'करमट' जो नह करत कळैह।। २

हेमरत्न सूरि—ये पद्मराज गणि के शिष्य थे।[1] सत्रहवीं शताब्दी के जैन कवियों में इनका नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी निम्नलिखित रचनायें है—

१—महिपाळ चौपाई, २—अमर कुमार चौपाई, ३—सीता चरित्र, ४—गोरा बादळ पदमनी चौपाई।

उपरोक्त प्रमुख रचनाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक फुटकर रचनायें भी हैं। ग्रंथों में प्रयुक्त भाषा शुद्ध राजस्थानी है। इनकी 'गोरा बादल पदमनी री चौपाई' वीररस की अनूठी रचना है। शृंगार रस का प्रयोग भी गौण रूप से इसमें हुआ है। गोरा बादल की वीरता एवं पद्मनी के शील का कवि ने बहुत सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। कवि के वीररस का उदाहरण देखिये—

धड़ ऊपरि धड़ ऊथलि पड़इ, ग्रहि करवाळ मूंड विणु भिड़इ।
रण चाचरि नाचइ रजपूत, पाड़इ पड़इ किहाडइ भूत।
नवि चीतारइ घर सुख साथ, वाहइ बहकि छछोहा हाथ।
रे! रे! मुगळ आंधा कोर, इम कहि वाहइ खग अघोर।
पदमिण साटइ ले करवाळ, किहां दिल्लीधर बन संभाळि।।

[1] जैं०गु०क०, तृतीय भाग, पृ० ६८०।

बारहठ शंकर—इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवियों में बारहठ शंकर भी उल्लेखनीय कवि हैं। ये रोहड़िया शाखा के चारण थे और बीकानेर के प्रसिद्ध राजा रायसिंहजी के ही समकालीन थे। रायसिंहजी द्वारा संवत् १६५१ में कवि को सवा करोड़ का दान देना सर्वप्रसिद्ध है।[1] संवत् १६४३ में जोधपुर के राजा उदयसिंह के समय राज्य के चारणों ने आउआ गाँव में धरना दिया तब उसमें ये भी थे किन्तु किसी कारण-वश उस धरने को छोड़ कर चले ग। कहायं जाता है कि इनकी पत्नी पद्मा जो माला सांदू की बहिन थी, इन्हें छोड़ कर चली गई और आजीवन रायसिंह के भाई अमरसिंह को अपना धर्म भाई बना कर उसी के पास रह गई।

कवि शंकर बारहठ की 'दातार सूर री संवाद' प्रसिद्ध रचना है।[2] इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में विद्यमान है। इस रचना में, जैसा कि इसका नाम है, दानवीर और शूरवीर पुरुषों के संवाद हैं। इस परस्पर वार्तालाप में प्रत्येक एक दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करता है। अन्त में रायसिंहजी अपनी विशेष युक्ति देकर दानी को श्रेष्ठ बता कर उनका न्याय करते हैं। इस रचना के अतिरिक्त कवि के अन्य फुटकर गीत भी बहुत मिलते हैं। गीतों की भाषा साधारण होते हुए भी वे बड़े प्रभावपूर्ण प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए निम्न गीत देखिये—

अकळ थाट असमांण अर ऊपरै आंगिया,
दूहरी कुंजरै ढाल ढळकांणियां।
सिखर भुरजां चढ़ी सखी साहवांणियां,
रायसिघ संपेखे नंद गिररांणियां।।
कळहळ बगतरां टोप री झरहरी,
घमघमै घूघरां पाखरां छरहरी।
कोट कमसीस पैह निजर सांमी करी,
'कला' सुत पेखियौ कोड राय करी।।
धूपटै धरा पुर जोध हरसै अणी,
वेहद राज ऊजळी सिह मार्थ बणी।
तुरी आफाळतां विन्न अरब्रद तणी,
मारवौ राव साराहियौ पदमणी।।

[1] दयाळदास री ख्यात, भाग २, पृ० १२६-१२७।

[2] Descriptive Catalogue Sec. II, Pt. I, Page 14: Tessitori.

पूजवै 'सिंध' पाहाड़ सिर पोगरां,
कमंध असफेरिया अचळ रा कांगरां।
हुवै हैकंप तिण वार 'बीजड़' हरां,
बीनवै अभै मांगत त्रिय नैं वरां ॥

पद्मा सांदू—राजस्थान की स्त्री कवियों में पद्मा का नाम भी महत्वपूर्ण है। यह ऊपर वर्णित कवि बारहठ शंकर की पत्नी और प्रसिद्ध कवि माला सांदू की बहिन थी। इसने अपने भाई माला से ही शिक्षा पाई थी। इसका रचनाकाल संवत् १६४० के आसपास ही माना जाता है। सं० १६४३ में जोधपुर राज्य के चारणों द्वारा आउआ गांव में दिये जाने वाले धरने में से शंकर बारहठ के लौट आने पर यह उनसे रुष्ट होकर राजा रायसिंह के भाई अमरसिंह के पास चली आई और उसके अन्तःपुर में रहते हुए कविता करने लगी। अमरसिंह के विद्रोही हो जाने के कारण संवत् १६५४ में अकबर ने अपने सेनापति अरबखां को इन्हें पकड़ने के लिए भेजा। अमरसिंह अफीम ज्यादा खाते थे, अतः इन्हें जगाना आसान कार्य न था। इस पर पद्मा ने नीचे उदाहरण में दिये गये गीत द्वारा उसे जगा कर युद्ध के लिए प्रेरित किया। अमरसिंह इसी युद्ध में मारे गये। इनका पृथक कोई ग्रंथ तो नहीं मिलता परन्तु फुटकर गीत प्राप्त हैं जो निसन्देह सुन्दर हैं—

सहर लूटतो सरब नित देस करतो सरद,
कहर नर प्रगट कांधी कमाई।
उज्यागर झाल खग 'जैतहर' आभरण,
'अमर' अकबर तणी फौज आई ॥ १
बोकहर साहिधर मार करतो वसू,
अभंग अरियंद तो सीस आया।
लाग गयणाग खग तोल भुज लंकाळा,
जाग हो जाग कलियांण–जाया ॥ २
गोळ भर सबळ नर प्रगट अर-गाहण,
अरबखां आवियो लाग असमांण।
निवारो नींद कमधज अबै निडर नर,
प्रगट हव 'जैतहर' दाखवो पांण ॥ ३
जुड़ै जमराण घमसांण मातो जठै,
साज तुरकांण भड़ बीज समरो।
आपरी जिका थह न दी भड़ अवर नैं,
आपरी जिके थह रहयो 'अमरो' ॥ ४

दुरसा आढ़ा—मध्यकाल में साहित्य की विभिन्न धारायें भिन्न-भिन्न कवियों द्वारा पूर्ण रूप से पोषित हुई है। ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल देश के लिए बलि होने वाले, स्वतन्त्रता के उपासक एवं धर्म-रक्षक वीरों के प्रति उनके यशोगान एवं वीर प्रशंसा में इस काल के कवियों ने अपनी लेखनी चलाने में कोई कसर उठा न रखी। ऐसे कवियों की कविताओं में देश एवं मर्यादा की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करने वालों के प्रति श्रद्धा एवं सहानुभूति स्पष्ट रूप से झलकती है। उनकी कविताओं में राष्ट्रीय भावना की धारा अविरल रूप से बही है। इस युग के वीर शिरोमणि, राजस्थान के सूर्य राणा प्रताप का यशोगान जितना उनके समकालीन कवियों ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ ही है। ऐसे कवियों में दुरसा आढ़ा का नाम अग्रगण्य है। काव्य-चमत्कार एवं भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से इनकी तुलना इनके समकालीन कवि पृथ्वीराज राठौड़ से भले ही न की जा सके तथापि प्राचीन परंपरागत डिंगल में गीत-रचना की दृष्टि से इनका महत्व कम नहीं है।

दुरसा आढ़ा गोत्र के चारण मेहाजी के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १५९२ में जोधपुर राज्य के अन्तर्गत धूंदला गांव में हुआ था। इनकी माता का नाम धन्नीबाई था जो बोगसा गोविन्द की बहिन थी। अत्यधिक निर्धनता के कारण दुरसा के जन्म के पूर्व ही इनके पिता मेहाजी ने सन्यास ग्रहण कर लिया था। इनकी माता ने बड़ी कठिनाइयों का सामना करते हुए इनका पालन-पोषण किया। बाल्यकाल में ही बगड़ी के ठाकुर प्रतापसिंह सूंडा इन्हें एक किसान के पास से ले गये और पालन-पोषण करते हुए इनकी शिक्षा आदि का प्रबन्ध किया। दुरसा ने ठाकुर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए यह दोहा कहा—

'माथै मावीतांह, जनम तणौ क्यावर जितो।
सूंडो सुध पाताह, पाळणहार प्रतापसी ॥

काव्य-रचना के स्वरूप दुरसा को अपने जीवन में धन, यश एवं सम्मान बहुत प्राप्त हुआ। कहा जाता है कि जोधपुर पर अधिकार के समय बीकानेर के राजा रायसिंह ने इनको चार गांव, एक करोड़ का पुरस्कार और एक हाथी प्रदान किये थे।[1] इन्होंने बादशाह अकबर तथा सिरोही के राव

[1] दयाळदास री ख्यात, भाग २, पृ० ११८।

सुरताण से भी एक-एक करोड़ का पुरस्कार प्राप्त किया था।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि दुरसा अपने काल के अत्यन्त लोकप्रिय कवि थे। इनके लिखे हुए तीन ग्रंथ बतलाये जाते हैं—

(१) विरुद छहत्तरी (२) किरतार बावनी, और (३) श्री कुमार अजाजी नी भूचर मोरी नी गजगत। अन्तिम दो ग्रंथों को इनके रचे मानने का कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है। 'विरुद छिहत्तरी' वास्तव में इनकी एक अनोखो रचना है। इसमें कवि ने महाराणा प्रताप की प्रशंसा मुक्त कंठ से की है। यह ७६ दोहों का ग्रंथ है। ये दोहे पृथ्वीराज द्वारा रचित दोहों से किसी रूप में कम नहीं हैं। यही कारण है कि कुछ दोहों में इतनी समानता आ गई है कि लोग भ्रम से दुरसा आढ़ा के दोहों को भी पृथ्वीराज द्वारा रचा गया मान लेते हैं। उदाहरण के लिए देखिये—

अकबर समंद अथाह, सूरापण भरियौ सजळ।
मेवाड़ौ तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी॥
—पृथ्वीराज

अकबर समंद अथाह, तिहँ डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाड़ौ तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी॥
— दुरसा आढ़ा

अकबर एकण बार, दागल की सारी दुनी।
अणदागल असवार, रहियौ रांण प्रतापसी॥
—पृथ्वीराज

अकबरिये इक बार, दागल की सारी दुनी।
अणदागल असवार, एकज राण प्रतापसी॥
—दुरसा आढ़ा

अकबर बादशाह के दरबार में दुरसा को बहुत सम्मान प्राप्त हुआ था। यहां उनकी प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी। इतना सब कुछ होते हुए भी उन्होंने अकबर की प्रशंसा में अपनी लेखनी कभी नहीं चलाई। अकबर के समक्ष भी वे सदैव राणा प्रताप की ही प्रशंसा करते थे। इससे कवि की आन्तरिक राष्ट्रीय भावना का स्पष्ट पता चलता है। महाराणा प्रताप की मृत्यु का समाचार जब बादशाह ने सुना तो उनकी आंखें भर आईं और एक लम्बी निश्वास छोड़ी। इस पर दुरसा उनके हृदय के भाव को समझ गये और शीघ्र ही निम्न कवित्त सुनाया—

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १३७, १३८।

अस लेगो अण दाग, पाघ लेगो अणनांमी
गो आडा गवड़ाय, जिको बहतो धुर वांमी
नवरोजे नंह गयो, न गो आतसां नवल्ली
न गो झरोखां हेठ, जेथ दुनियांण दहल्ली
गहलोत रांण जीती गयो, दसण मूंद रसणा डसी।
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत साह 'प्रतापसी'॥

कवि के कवित्त में अपने भावों का सच्चा प्रतिबिम्ब देख बादशाह प्रसन्न हुये।

राजस्थानी साहित्य में दुरसा का स्थान बहुत ऊंचा है। इन्होंने अपने ग्रंथों के अतिरिक्त फुटकर रचना भी बहुत की है। ईश-कृपा से इन्होंने दीर्घायु प्राप्त की अतः अनुमान लगाया जा सकता है कि अपने जीवनकाल में इन्होंने प्रचुर मात्रा में साहित्य रचना की। फुटकर रचनाओं में इनके—१–राउ श्री सुरतांण रा कवित्त, २–झूलणा रावत मेघा रा, ३–दूहा सोळंकी वीरमदेजी रा, ४–गीत राजि श्री रोहितासजी रौ, तथा ५–झूलणा राव श्री अमरसिंघजी गजसिंघोत रा आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। दुरसाजी हिन्दू-धर्म, हिन्दू-जाति और हिन्दू-संस्कृति के अनन्य उपासक थे। अपनी कविता में उन्होंने तत्कालीन हिन्दू समाज की विपन्नावस्था और अकबर की कूटनीति का बड़ा ही सजीव, वीर-दर्पपूर्ण एवं चुभता हुआ वर्णन किया है।[1] इनकी भाषा प्रसादगुणयुक्त होने के साथ-साथ ओजपूर्ण एवं प्रभावमयी है जो पाठकों के हृदय पर अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रहती। फुटकर रचना के एक गीत का उदाहरण देखिये—

सामो आवियौ सुरसाथ सहेतो, ऊंच बहा ऊदांणा।
अकबर साह सरस अणमिळियां, रांम कहै मिळ रांणा॥ १
प्रम गुर कहै पधारो 'पातल', प्राझा करण प्रवाड़ा।
हेवं सरस अणमिळिया हींदू, मोसूं मिळ मेवाड़ा॥ २
एकंकार ज रहियौ अळगो, अकबर सरस अनैंसो।
विसन भणै रुद्र ब्रह्म बिचाळै, बीजा 'सांगण' बैसो॥ ३

निस्सन्देह दुरसाजी अपने समय के बहुत ऊंचे कवि थे। डिंगल भाषा को ऐसे कवियों पर गर्व है।

पृथ्वीराज राठौड़—मध्यकाल में राजस्थानी साहित्य जब अपने उच्च शिखर पर था और दुरसा आढ़ा जैसे कवि अपनी

[1] डिंगल में वीररस, पृ० ५१।

रचनाओं से उसका पोषण कर रहे थे, उसी समय साहित्य क्षेत्र में एक ऐसे व्यक्ति का अवतरण हुआ जिसने अपूर्व साहित्य की रचना कर केवल साहित्य को ही नहीं अपितु राजस्थानी भाषा को भी उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुंचाने में अमूल्य सहयोग दिया। ये व्यक्ति थे, बीकानेर नरेश राव कल्याणमल के पुत्र एवं राव जैतसी के पौत्र श्री पृथ्वीराज राठौड़। इनका जन्म संवत् १६०६ में हुआ था। ये उच्च कोटि के कवि एवं योद्धा होने के साथ-साथ पूरे भगवद्भक्त भी थे। इस समय में उत्तरी भारत में व्याप्त भक्ति-लहर से ये भी पूर्ण प्रभावित थे और इसी कारण इनकी रचनाओं में इनकी भक्ति-भावना की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भक्त कवि नाभादास ने अपनी भक्तमाल में इनका भी गुण-गान किया है।[1]

अपनी विशिष्ट विद्वत्ता एवं उच्च कोटि की रचनाओं के कारण राजस्थानी साहित्य के सर्वोत्कृष्ट कवियों में इनका स्थान है। इनके लिखे पांच ग्रंथ मिलते हैं—

१—वेलि क्रिसन रुकमणी री।

२—दसम भागवत रा दूहा।

३—गंगा लहरी।

४—वसदे रावउत, और

५—दसरथ रावउत।

अंतिम चारों रचनायें शांतरस के भक्ति सम्बन्धी छंदों से परिपूर्ण हैं। 'दसम भागवत रा दूहा' में कृष्ण भक्ति सम्बन्धी १८४ दोहे हैं। 'दशरथ रावउत' में श्री रामचन्द्रजी की स्तुति में ५० के लगभग दोहे हैं। 'वासदे रावउत' में श्री कृष्ण का गुणानुवाद किया गया है तथा 'गंगा लहरी' में गंगा की महिमा का वर्णन करते हुए ८० के लगभग दोहे हैं।

प्रथम रचना 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' पृथ्वीराज की काव्यमयी प्रतिभा की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। एक मत के अनुसार इसकी रचना संवत् १६३७ में हुई।[1] इसके समर्थक डॉ० तैस्सितोरी[2], सूर्यकरण पारीक[3], रामकुमार वर्मा[4] प्रभृति विद्वान हैं। दूसरा मत डॉ० मोतीलाल मेनारिया का है। इन्होंने सरस्वती भंडार, उदयपुर से प्राप्त वेलि की तीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इसका रचनाकाल संवत् १६४४ माना है।[5] श्री मेनारिया का अनुमान है कि संवत् १६३७ 'वेलि' को आरम्भ करने का समय है तथा इसका समाप्ति काल १६४४ ही है। यह ग्रंथ डिंगल साहित्य के प्रसिद्ध छंद वेलियो गीत में लिखा हुआ ३०५ दोहालों का एक खण्ड काव्य है। यह ग्रंथ साहित्य जगत में कितनी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है, इसका अनुमान दुरसा आढ़ा नामक सम-सामयिक कवि के निम्न छंद से ही लगा सकते हैं, जिसने 'वेलि' को 'पांचवां वेद' कह कर पुकारा है—

रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण,
'वेलि' तासु कुण करै वखांण।
पांचमौ वेद भाख्यौ पीथळ,
पुणियौ उगणीसमौ पुरांण ॥

'वेलि' की कथा का बीज रूप आश्रय श्रीमद्भागवत-पुराण, दशम स्कन्ध के अन्तर्गत अध्याय ५२, ५३, ५४ व ५५ से ग्रहण किया गया है। यह बात स्वयं कवि ने ग्रंथ के छन्द

---

[1] सवैया गीत श्लोक, वेलि दोहा गुण नव रस।
पिंगळ काव्य प्रमांण, विविध विधि गायौ हरजस ॥
परिदुख विदुख सलाघ्य, वचन रसना जु उच्चारै।
अरथ विचित्रन मोल, सबै सागर उद्धारै ॥
रुकमणी लता बरणण अनुप, वगीस वदन कल्याण सुव।
नरदेव उभै भासा निपुन, प्रथीराज कविराज हुव ॥

---

[1] हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग से प्रकाशित 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' पृ० २७२, दो० ३०५।

वरसि अचळ गुण अंग ससी संवति, तवियौ जस करि श्री भरतार।
करि श्रवणे दिन रात कंठ करि, पामै स्री फळ भगति अपार ॥

[2] 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, Introduction, Page IX.

[3] 'वेलि' (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) भूमिका, पृ० ९७, ९९।

[4] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ११२ (प्रथम संस्करण)

[5] क. सोळह सै संबत चमाळै वरसै, सोम तीज वैसाख सुदि। (सं० १७०१ की प्रति)

ख. सोळह सै संवत चमाळै वरखै सोमतीज वैसाख समंघि। (सं० १७२८ की प्रति)

ग. सोळह सै संवत चमाळीसै वरसै, सोम तीज वैसाख सुदि। (सं० १७९५ की प्रति)

२६१ में सुन्दर रूपक का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए स्वीकृत की है—

वल्ली तसु बीज भागवत वायौ,
महि थांणौ प्रथुदास मुख ।
मूल ताल जड़ अरथ मंडहे,
सुथिर करणि चढ़ि छांह सुख ।। २६१

कथा-विस्तार में श्रीकृष्ण रुक्मिणी के विवाह, उनकी रति-क्रिड़ा और अन्त में प्रद्युम्न के जन्म का वर्णन किया गया है। साथ ही साथ रुक्मिणी का नख-शिख-रूप-वर्णन, षट्-ऋतुवर्णन आदि का भी हुआ है, यद्यपि इसका कथा के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। कथानक केवल बीज रूप में ही ग्रहण किया गया है। काव्य-सौष्ठव व वर्णन-शैली पूर्णतया मौलिक है। जिस समय तुलसीदासजी अपने 'रामचरित मानस' की रचना द्वारा वैष्णव भक्ति के प्रचार में संलग्न थे उसी समय राजपूताने में प्रवाहित होने वाली भक्तिधारा में पृथ्वीराज ने यह शृंगार रस को अनूठा ग्रंथ लिखा। वीररसात्मक काव्य की प्रचुरता के कारण कुछ लोगों की ऐसी धारणा हो गई थी कि राजस्थानी भाषा तो वीररसात्मक काव्य के लिए ही उपयुक्त है तथा शृंगार की श्रेष्ठ कविताओं की रचना इस भाषा में नहीं की जा सकती। 'वेलि' की रचना ने यह भ्रम पूर्ण रूप से निवारण कर दिया। भक्ति की भावना के साथ शृंगार की रसीली साधना भी है। ग्रंथ में १५ से २४ तक के दोहलों में उच्च शृंगार-प्रधान भावमयी उक्तियां भरी पड़ी हैं जिनसे कवि की श्रेष्ठ कल्पना, गहन सूझ एवं मनन का स्पष्ट पता चलता है। कवि ने देवी रुक्मिणी के यौवनागमन एवं वयसंधि का जिस विलक्षण दक्षता से वर्णन किया है उससे कवि की उच्च काव्य-प्रतिभा को स्वीकार करने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। जिस विधि से कवि ने अपनी वर्णन-शैली के माध्यम से मानव-विज्ञान एवं दर्शनशास्त्र का सामंजस्य उपस्थित किया है वह किसी भी पाठक के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़े बिना नहीं रह सकता। वयसंधि का अनुपम शृंगारिक वर्णन देखिये—

पहिलौ मुख राग प्रगट थ्यो प्राची
अरुण कि अरुणोद अम्बर ।
पेखे करि जागिया पयोहर
सञ्झा वंदण रिखेसर ।। १६

इसी प्रकार यौवन प्रकट करने वाले अंगों के उभार के सम्बन्ध में जो कवि की सूझ है वह देखते ही बनती है। यह अद्भुत शृंगारिक उक्ति पाठकों के हृदय को छूए बिना नहीं रहती—

आगळि पित मात रमंती अंगणि
कांम विरांम छिपाड़ण काज ।
लाजवती अंगि एह लाज विधि
लाज करंती आवै लाज ।। १८

इस प्रकार भक्ति के उस युग में रीति का यह मनोरंजक और सरस वर्णन राजस्थानी साहित्य की अनोखी वस्तु है। इस सबका श्रेय राठौड़ पृथ्वीराज को ही है।

वेलि का ढांचा प्राचीन राजस्थानी का ही है, किन्तु मध्यकाल की प्रचलित विशेषतायें भी इसमें मिलती हैं। देखा जाय तो वेलि की अक्षरी सर्वथा माध्यमिक राजस्थानी की सी ही है। इतना अवश्य है कि इसकी रचना तत्कालीन बोलचाल की भाषा में न की जाकर साहित्यिक डिंगल में ही की गई है। शब्दों का तोड़-फोड़ करने की जो परम्परा मध्यकाल में रचित राजस्थानी के साहित्यिक ग्रंथों में मिलती है वह 'वेलि' में बहुत कम दृष्टिगोचर होती है। इसी विशेषता के कारण यह शृंगारिक-काव्य डिंगल भाषा पर कर्णकटुता, कठोरता तथा कांतगुणहीनता आदि के लगाये जाने वाले आरोपों को सर्वथा मिथ्या सिद्ध करने में सफल हो सका है। इस सम्बन्ध में वेलि का संपादन करते हुए श्री रामसिंह तथा श्री सूर्यकरण पारीक ने लिखा है—'वेलि जैसे डिंगल के सर्वोत्तम शृंगार ग्रंथ को रखते हुए यह विश्वास करते हैं कि इस ग्रंथ रत्न के उच्चतम भाषा-सौन्दर्य, शब्द-सौष्ठव, छंद-माधुर्य, विविध अलंकृति और अर्थगौरव से मुग्ध होकर सहृदय पाठक न केवल डिंगल भाषा सम्बन्धी काठिन्य एवं श्रुतिकटुत्व के ही भावों को सदा के लिए विस्मृत कर देंगे वरन् यह जान कर कि डिंगल में भी संस्कृत, परिमार्जित हिन्दी तथा अन्यान्य उन्नत प्रान्तीय भाषाओं के समान समस्त काव्य गुणों को धारण करने की पूर्ण क्षमता है, अत्यन्त संतुष्ट होंगे।[1]

वस्तुतः वेलि की भाषा सौन्दर्ययुक्त होने के साथ-साथ पूर्ण प्रवाहमयी है। कवि द्वारा विषयानुकूल शब्द-चयन ने

[1] वेलि क्रिसन रुकमणी री : सं० ठाकुर रामसिंह तथा पं० सूर्यकरण पारीक, हिन्दुस्तान एकेडेमी, प्रयाग से प्रकाशित—भूमिका पृष्ठ १०६

ग्रंथ की सरसता एवं स्वाभाविकता को द्विगुणित कर दिया है। स्वाभाविकता के साथ-साथ कविता की संगीतमयी मधुरिमा ने ग्रंथ को सर्वोच्च स्थान पर लाने में पूर्ण सहयोग दिया है। इसकी एक विशेषता यह और है कि यह शृंगारिक काव्य है पर इसकी आत्मा में आध्यात्मिक संदेश निहित है। इसका मूल संदेश भक्तिमय है और वह अवश्य ही साधारण जीवन-निर्वाह के लिए एक आदर्श स्थापित करता है। परन्तु जिस उच्च शृंगारिक आवरण में अपनी गहन आध्यात्मिकता प्रस्तुत की वह जन साधारण के लिए बोधगम्य न हो सकी। यही कारण है कि पृथ्वीराज अपने समसामयिक रामभक्त कवि तुलसी की भांति लोक शिक्षा के लिए भक्ति का आदर्श रखने में असमर्थ रहे। कवि की विद्वत्ता एवं अनुभव-दक्षता के सम्बन्ध में किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है। उनका यह ग्रंथ ही इस बात का सही प्रमाण है। स्वयं कवि ने भी यह स्पष्ट कर दिया है कि ग्रंथ की गहनता एवं उसका अर्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए पाठक को भी विविध शास्त्रों के मर्म का ज्ञाता होना अत्यन्त आवश्यक है। सत्य तो यह है कि कवि के व्यक्तित्व को समझने पर ही उनकी इस गहन काव्य-चातुरी और विशिष्ट अभिव्यक्ति को हृदयंगम किया जा सकता है। पृथ्वीराज के व्यक्तित्व के विषय में कर्नल टॉड ने लिखा है—

> 'Pirthi Raj was one of the most gallant chieftains of the age, and like the Troubadour princes of the west could grace a cause with the soul inspiring effusions of the muse, as well as aid it with his sword; nay in an assembly of the bards of Rajasthan the palm of merit was unanimously awarded to the Rathore cavalier ?'

वास्तव में जो व्यक्ति समस्त भारत की शक्तियों को नतमस्तक करने वाले मुगल साम्राज्य की शक्ति के अधीनस्थ रहते हुए भी अपने देश की स्वतंत्रता की कामना प्रकट कर सके उसके शौर्य्य के आदर्श की सहज ही में कल्पना की जा सकती है। वे राजपूत थे और साहस और उत्साह का मूल्य पहचानते थे। महाराणा प्रताप को लिखे गये पत्र के विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व से लोग आज भी भली भांति परिचित हैं।

निस्सन्देह 'वेलि' समस्त काव्य-गुणों की पूर्णता प्राप्त कर एक अत्यन्त प्रौढ़ कलाकृति हो गई है। ग्रंथ में कला पक्ष एवं भाव पक्ष का जो सुन्दर सामंजस्य उपस्थित हुआ है वह अन्यत्र सुलभ नहीं। वर्ण्य-विषयानुकूल नादसौन्दर्ययुक्त शब्द-चयन, एवं प्रसंगानुकूल भाषा में लोच 'वेलि' की अपनी निजी विशेषता है। कवि का प्रकृति-वर्णन जो षट्-ऋतु वर्णन के रूप में हुआ है, परंपरानुगत और पिष्टपेषित नहीं है। कवि ने राजस्थान के ऋतु-परिवर्तनों को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देख कर उन्हें हूबहू उतारने का सफल प्रयास किया है। वैसे तो कवि ने साधारणतः सभी ऋतुओं के वर्णन में अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है तथापि इनकी ये सब कल्पनायें इनके अपरिचित वस्तु ज्ञान भंडार एवं निजी सांसारिक अनुभवों पर आश्रित हैं।

'वेलि' की भाषा के लालित्य एवं सहज प्रवाह में अलंकारों का विशेष हाथ है। शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का ही स्वाभाविक रूप से प्रचुर प्रयोग हुआ है। अर्थालंकारों में उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा का अधिकाधिक प्रयोग हुआ है। कवि की उपमाओं के सम्बन्ध में डॉ० मेनारिया का कथन है कि 'वे अपनी उपमाओं में न केवल उपमेय उपमान का साधर्म्य कथन करते हैं प्रत्युत दोनों के आसपास के पूरे वातावरण को ही शब्दों में ला उतारते हैं जिससे भाव सजीव होकर जगमगाने लगता है।'[2] यथा—

संग सखी सीळ कुळ वेस समांणी, पेखि कळी पदिमणी परि।
राजति राजकुंअरि राय अंगणि, उडियण बीरज अंबहरि॥

वस्तुतः वेलि अपने काल की प्रौढ़तम रचना है। इसमें राजस्थानी साहित्य की परम्परानुगत प्रेम, भक्ति एवं वीर रस की त्रिवेणी के दर्शन होते हैं। राजस्थानी की पूर्व प्रचलित प्रमुख काव्यधाराओं की समष्टि पूर्णरूपेण हो पाई है। कवि की इस अनुपम कृति के विषय में डा० तैस्सीतोरी ठीक ही लिखते हैं—

> 'The Veli....is one of the most fulgent gams in the rich mine of the Rajasthani literature...is one of the most perfect productions of the Dingala literature, a marvel of poetical ingenuity,

[1] 'Annals of Mewar' Chapter XI, Page 273 of Routledge's edition.

[2] राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ० मोतीलाल मेनारिया पृ० १२५

in which like in the Taj of Agra, elaborateness of detail is combined with simplicity of conception and exquisitness of feeling is glorified in immaculateness of form [1]

पृथ्वीराज की कविता-शैली के व्यापक प्रभाव ने न केवल राजस्थानी साहित्य के महत्त्व की अभिवृद्धि ही की अपितु इसने पिंगल पर डिंगल की श्रेष्ठता भी स्थापित कर दी। पृथ्वीराज यदि चाहते तो इस ग्रंथ की रचना पिंगल में भी कर सकते थे। ब्रज भाषा माधुर्यगुण से ओतप्रोत है, किन्तु ओजगुण की उसमें कमी है। डिंगल इस कमी की पूर्ति करती है। बिना ओजगुण के वेलि में वह बल, वह उल्लास, वह लावण्य और वह तेज नहीं होता जिसके दर्शन आज हमें इस ग्रंथ में स्थल-स्थल पर होते हैं। इस मत का प्रतिपादन करते हुए डॉ० तैस्सितोरी लिखते हैं—

'It is certain that had Prithiraj chosen to compose his Veli in emasculated Pingala, he would have given us a very different composition, not superior in musicality, and considerably inferior in naivete. But fortunately for us, he preferred to compose in the literary bhasa of his native land, the Dingala of the *bards*[2]'.

डिंगल ग्रंथों के अतिरिक्त महाराजा पृथ्वीराज ने अनेक फुटकर गीत एवं दोहे भी लिखे हैं। गीत-रचना में उन्होंने चारण परम्परा का ही अनुकरण किया है। महाराणा प्रताप ने जीते-जी अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। उनकी प्रशंसा में लिखा पृथ्वीराज का प्रसिद्ध गीत आज भी जन-साधारण में खूब प्रचलित है। उदाहरण के लिए उसे ही हम यहाँ उद्धृत करते हैं[3]—

नर जेथि निमांणा नीलजी नारी
अकबर गाहक वट अवट
आवै तिणि हाटै 'ऊदावत'
वेचै किम रजपूत वट ॥ १

गोजाइतां तणै नउरोजै
जेथि मुसीजै जणो-जण
चौहटि तिणि आवै चीतोड़ौ
'पतौ' न खरचे खत्रीपण ॥ २
पड़पंच दीठ वध लाज न व्यापति
खोटौ लाभ कुलाभ खरो
रज्ज वेचिवा नायौ 'रांणौ'
हाटि मीर 'हमीर' हरौ ॥ ३
पिड आपरै दाखि पुरसातण
रह अणियाळ तणै बळ रांणै
खत्र वेंचियौ जठै वड खत्रिए
खत्र राखियौ जठै खुम्मांणि ॥ ४
जासी हाट वात रहिसी जगि
अकबर ठगि जासी एकार
रहि राखियौ खत्री ध्रम रांणै
सगळौ ई वरतै संसार ॥ ५

इनकी लेखनी में ही ओज नहीं बल्कि रचना के आधार पर इनके हृदय की दृढ़ता एवं ओजस्विता स्पष्ट प्रकट होती है। इनके वीर रस में जहाँ अनुपम ओज की छवि है वहाँ शान्त रस में विरक्ति भाव के दर्शन होते हैं। शान्त रस के एक गीत का कुछ अंश देखिये—

सुखरास रमंता पास सहेली
दास खवास मोकळा दांम
न लियौ नांम पखै नारायण
'कलिया' उठ चलिया बेकांम ॥ १
माया पास रही मुळकंती
सजि सुंदरि कीधां सिणगार
बहु परिवार कुटंब चौ बाधो
हरि बिन गयौ जमारौ हार ॥ २
हास हसंता रह्या धौळहर
सुखमै राजत जे सिणगार
लाखां धणी पयाणै लांबै
जातां नह भेजिया जुहार ॥ ३

× ×

केसर चनण चरचतौ काया
भणहणता ऊपर भ्रमर
रजियौ राख तणै पूगरणै
घणा मुसांणां बीच घर।

[1] वेलि क्रिसन रुकमणी री—सम्पादक डॉ० एल. पी. तैस्सितोरी, भूमिका, पृ० १।

[2] वेलि क्रिसन रुकमणी री—सं. डॉ० तैस्सितोरी, भूमिका, पृ० १२।

[3] वही, पृ० ४।

खाटी सो दाटी घर खोदे
साथ न चाली हेक सिळी
पवन ज जाय पवन बिच पैठो
माटी माटी मांहि मिळी ॥

लक्खोजी—ये रोहड़िया शाखा के चारण मारवाड़ राज्य के अन्तर्गत साकड़े परगने के नानणियाई ग्राम के निवासी थे। ये बादशाह अकबर के कृपापात्रों में थे। ऐसा कहा जाता है कि अकबर ने इन्हें मथुरा के पास अन्तर्वेद में साढे तीन लाख की जागीर दी और मथुरा में रहने के लिए हवेली प्रदान की। बादशाह ने उन्हें 'वरण पतसाह' अर्थात् चारणों के बादशाह की उपाधि भी दी थी जिसके प्रमाण में यह दोहा है—

अकबर मुंह सूं आखियो, रूड़ो कहै दोहूं राह,
मैं पतसाह दुन्यानपत, लखा बरण पतसाह।

'दयाळदास की ख्यात' में बीकानेर नरेश रायसिंह द्वारा इन्हें एक करोड़ पसाव और दो हाथी देने का उल्लेख मिलता है।[1] इनके नाम के दो पट्टे मिलते हैं। एक पट्टा संवत् १६५८ और दूसरा सं० १६७२ का है। इनसे इनका बादशाह अकबर के समय से लेकर जहांगीर के समय तक विद्यमान रहने का पता चलता है। इनका लिखा एक ग्रंथ 'पाबू रासौ' मिलता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अन्य फुटकर गीतों की रचना के साथ राठौड़ पृथ्वीराज की 'वेलि' पर टीका भी लिखी थी। 'पाबू रासौ' दोहा छंद में रचित एक चरित्र काव्य है जिसमें पाबूजी राठौड़ के जीवन-चरित्र का वर्णन है। इनका रचा एक गीत जैमळ मेड़तिया की प्रशंसा में मिला है।

गीत—

गज रूप चढ़ण अंग रहण असंभगति, पहप कमळ दैसोत पगि,
जिम जगदीसर पूजतौ 'जैमल' जैमल तिम पूजिजै जगी ॥
गज आरोह वद वद गढ़पति, चौसरा धरि बंदे चलण,
'वीर' तणौ अरचतौ विसंभर, तिम अरचीजै आपतण।
मोटा पहु आराध करै महि, मोटे गढ़ लीजतै मुओ,
जगि हरि भगत तुहाळौ 'जैमल', हरि सारीख प्रताप हुओ।
रथि हाथ रूक समरथ रे खगि, महिपति पग तिस अेक मण,
प्रम कमधज जिण वडम पूजतौ, आप वडिम सूजि आचरण ॥

इस शताब्दी में एक ओर जहां कवि लोग राजा-महाराजाओं के यशोगान, उनका देश-प्रेम और वीरता की प्रशंसा में अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा प्रचुर मात्रा में वीर-रस की रचना कर रहे थे, वहां दूसरी ओर भक्ति के प्रभाव से भक्त कवि लोग शान्तरस की अधिकाधिक रचना कर साहित्य की अभिवृद्धि कर रहे थे। इन भक्त कवियों में केसोदास गाडण, माधोदास दधवाड़िया, सायांजी भूला आदि का नाम उल्लेखनीय है। यहां संवत्-क्रम के अनुसार इन्हीं के साहित्य का परिचय दे रहे हैं।

केसोदास गाडण—ये गाडण शाखा के चारण थे। इनका जन्म जोधपुर राज्यान्तर्गत गाडणों की बासनी में सदामल के घर संवत् १६१० में हुआ था। डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने इन्हें सोजत परगने के चिड़िया नामक गांव का निवासी बताया है[1] जो अशुद्ध है। इनके विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि ये गृहस्थ होते हुए भी सदैव साधुओं की भांति गेरुआं वस्त्र पहिनते थे। इस विषय में और इनकी प्रशंसा में 'वेलि क्रिसन रुकमणी' के रचयिता राठौड़ पृथ्वीराज ने निम्न दोहा कहा था—

'केसौ' गोरखनाथ कवि, चेलो कियो चकार।
सिध रूपी रहता सबद, गाडण गुण भंडार ॥

केसोदास महात्मा ईसरदास के समकालीन ही थे। ईसरदास की प्रशंसा में इन्होंने निम्न दोहा कहा है—

जग प्राजळतो जांण, अघ दावानळ ऊपरां।
रचियो रोहड़ रांण, समंद हरी रस सूरवत ॥

कहा जाता है कि इसके बदले में ईसरदास ने भी उनकी रचना की प्रशंसा निम्न दोहा कह कर की—

नीसांणंद नीसांण, 'केसव' परमारथ कियो।
पोह स्वारथ परमांण, सो बीसोतर बरण सिर ॥

केसोदास जोधपुर के महाराजा गजसिंहजी के कृपा-पात्र थे।। इसके अनुसार इनका रचनाकाल लगभग १६४० के पश्चात् ही माना जा सकता है। संवत् १६६७ में इनका देहान्त हो गया था। इनकी रची हुई निम्नलिखित रचनायें कही जाती हैं—

[1] दयाळदास री ख्यात, भाग २, पृ० १०५, ११८, १२४

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ११६।

१—गुणरूपक बंध, २—राव अमरसिंहजी रा दूहा, ३—नीसांणी विवेक वारता, ४—गजगुण चरित और अन्य फुटकर दोहे, गीत आदि।

इन ग्रंथों में 'गुणरूपक' सबसे बड़ा ग्रंथ है। ग्रंथ का विषय वही है जो हेम कवि ने अपने ग्रन्थ 'भाखा चरित्र' का रक्खा है। विषय समान होते हुए भी 'गुणरूपक' हेम कवि के ग्रन्थ से विस्तार में कहीं अधिक है। महाराजा गजसिंह ने मुगल बादशाह जहांगीर की ओर से शाहजादा खुर्रम के विरुद्ध युद्ध किया था। यह युद्ध संवत् १६८१ में हुआ था और कवि ने अपना ग्रन्थ भी सं० १६८१ में सम्पूर्ण किया जैसा कि 'गुणरूपक' के अंतिम कवित्त में लिखा है—

सोळह सै संमत हुऔ, जोगणपुर चाळौ
समै एकासियै मास काती बडाळौ
पूनम थावर वार सरद रितु है पळट्टी
बीर खेत्र पूरब्ब रितु हेमंत प्रगट्टी।
सुरतांण खुरम भागौ, भिड़े चाड़ चिकत्था चक्कवै।
गजसिंह प्रवाडौ खाट्टियौ, गिळै भीम चित्तौड़वै।

इसी ग्रंथ पर प्रसन्न होकर महाराजा गजसिंह ने इनको एक लाख पसाव का पुरस्कार दिया था। दोहा, कवित्त, गाहा, अड़ल, मथाणा इत्यादि मिला कर कुल एक हजार छन्द इस ग्रन्थ में हैं। उदाहरण के लिए निम्न छंद देखिये—

गरजंति धनख गुणबांण बणण घण,
आग अकारण उडवियं।
गज थाटां गहण गणण गयणंगण,
सोक सणण भरपूर थियं।
धड़हड़ि धक धोम यळिक खग घड़ि घड़ि,
रावत वड़ि वड़ि रोस चडै।
गड़ि गड़ि नीसांण गयण किरि गडिग्रड़,
खांडा खड़ि खड़ि खाट खड़ै॥

'नीसांणी विवेक वारता' इनकी शान्त रस की रचना है जिसमें वेदान्त का वर्णन है। यह ३३ नीसांणी छंद[1] का ग्रन्थ है। कवि की आस्था परब्रह्म में प्रकट होती है। परब्रह्म की स्तुति की एक नीसांणी देखिये—

फूलां मझे वासना तिल तेल वलाया,
वेसन्नर लकड़ी पाखांण जिम लोह लुकाया,
थण मझे जिम खीर सीर ऊदरत कहाया,
आठां अंगां मझ लै तत् पांचे कहाया,
गोरस चोपड़ एकठा दोय हेक देखाया,
सूरिज घांम संजोईया जिम आग उनाया,
जिम चेतन मनख वन मंझ मन मंडे माया,
आदर खांणी अध भुजां जिम बीज बंधाया,
कांसा मझे गेबका जिम सबद सुणाया,
पांणी हूंदे प्रतीबिंब जिम दरपण छाया,
दैवां देतां अहि नरां एह ग्यांन दढ़ाया,
विण खोज्यां पाया नहीं खोज्या जिहां पाया।

माधोदास दधवाड़िया—केसोदास गाडण के समकालीन भक्त कवियों मे माधोदास दधवाड़िया का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इनका जन्म जोधपुर राज्य के बलूंदा ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम चूंडाजी था। इनका जन्मकाल निश्चित तो नहीं है पर कई विद्वानजन अपनी अटकल से सं० १६१० और १६१५ के मध्य किसी समय मानते हैं। जोधपुर नरेश सूरसिंहजी इनके आश्रयदाता थे। पृथ्वीराज राठौड़ से भी इनका अच्छा परिचय था। 'वेलि' को सुन कर ये बड़ खुश हुए और मुक्त कंठ से पृथ्वीराज की इस रचना की प्रशंसा की। इस पर पृथ्वीराज ने भी इनकी प्रशंसा में निम्न दोहा कहा—

चूंडे चत्रभुज सेवियौ, ततफळ लागौ तास।
चारण जीवौ चार जुग, मरौ न माधोदास॥

इनका रचनाकाल सत्रहवीं शताब्दी का तृतीय चरण ही माना जा सकता है। मिश्र-बन्धुओं ने इनका कविताकाल सं० १६६४ माना है।[1] ऐसा कहा जाता है कि इनके जीवन के अंतिम काल में मुसलमान लोग इनकी गायें चुरा कर ले गये। इनको पता लगने पर अपने पुत्र को साथ लेकर उनका पीछा किया और उनसे युद्ध किया। इसी युद्ध में सं० १६६० में उनका स्वर्गवास हुआ।

---

[1] छंद में प्रायः चार पंक्ति होती हैं परन्तु नीसांणी छन्द में जहां तक तुकबन्दी मिलती है वहां तक एक ही नीसांणी रहती है। पंक्तियों की सीमा-रेखा से यह छन्द मुक्त है। तुक के अनुसार पंक्तियों की कमी व अधिकता हो सकती है।

[1] मिश्रबन्धु विनोद : प्रथम भाग, पृ० ३७६।

माधोदास उच्च कोटि के कवि एवं धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे अतः इनकी रचना शान्तरस से ओतप्रोत है। इनके रचे हुए तीन ग्रन्थ प्राप्त हैं। १—रामरासौ, २—भासा दसम-स्कंध, और ३—गजमोख।

रामरासौ इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है जो सोलह सौ से अधिक छंदों का एक वृहत् ग्रन्थ है। इसमें राम कथा का विविध छंदों में विस्तार के साथ वर्णन किया है। इसमें साहित्यिक डिंगल एवं बोलचाल की राजस्थानी का सुन्दर मिश्रण है। इसी के प्रभाव से ग्रंथ की भाषा सरस एवं प्रवाह-मय हो पाई है। सीता-हरण के पश्चात् सूनी कुटिया के द्वार पर राम का विलाप-वर्णन देखिये—

लखमंण सूना झूपड़ा, सीता चोर पइठ।
घर धण दीसौ नाह विण, धण विण नाह म दिठ।
तरि तरि पेखि न कलपतरू, सर सर हंस म सोभि।
कुमळ न लखमंण जांनकी, नडि नडि विहड न खोजि।
भंणि भंणि सीत सुभांम, वंन वंन खिण खिण विचरतां।
व्यापै रांम विरांम, जळ तोछै थळ माछ जिम।

'गजमोख' नीसांणी छंदों में लिखी गई छोटी रचना है। महाभारत की 'गज-ग्राह' कथा के आधार पर इसकी रचना की गई है। इसके अतिरिक्त कवि के अन्य फुटकर गीत भी मिलते हैं।

सायांजी झूला—भक्त कवियों में सायांजी झूला का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म संवत् १६३२ में और मृत्यु १७०३ में हुई। ये ईडर नरेश राव कल्याणमल के आश्रित थे। सायांजी श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। अपनी समस्त कविता इन्होंने भगवान श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में लिखी है जो भक्तिरस से परिपूर्ण है। इनकी भाषा परिमार्जित एवं प्रभावोत्पादक है। कहीं-कहीं पर गुजराती का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। सायांजी स्वयं काठियावाडी थे अतः उनकी कविताओं में गुजराती का पुट होना संभव ही है।

इनके लिखे दो ग्रंथ मिलते हैं—१—रुपमणीहरण तथा २—नागदमण। दोनों ही ग्रंथ कृष्णभक्ति सम्बन्धी हैं। 'रुषमणी-हरण' में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण एवं उन दोनों के विवाह की कथा का वर्णन है। यह ४३६ छंदों का एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसके सम्बन्ध में अकबर का यह कथन है कि पृथ्वीराज की वेलि को सायांजी के 'हरणिया' चर गये, बहुत प्रचलित है। वास्तव में ऐसी बात नहीं है, पृथ्वीराज की 'वेलि' सर्वश्रेष्ठ काव्यकृति है और 'रुषमणी हरण' एक साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रंथ। इन दोनों की तुलना करना ही अनुचित है।

सायांजी का दूसरा ग्रंथ 'नागदमण' है। इसमें १२७ भुजंगप्रयात, ४ दोहे तथा एक छप्पय कुल मिला कर १३२ छंद हैं। ग्रंथ में विषयों के वर्णन की शैली जो कवि ने अपनाई है उससे इसकी विशेषता अधिक बढ़ गई है। कवि ने कृष्ण की बाललीला-वर्णन, नागणी के साथ संवाद तथा कालिया-मर्दन का सजीव चित्रण उपस्थित किया है। ग्रन्थ की भाषा प्रसाद-गुणयुक्त तो है ही तथापि विषयानुकूल वात्सल्य, माधुर्य, ओज, भय, विस्मय आदि भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति के कारण उसमें विशेष रस प्रवाहित हो गया है। कवि के दोनों ही ग्रन्थों के उदाहरण यहाँ नीचे दिए जाते हैं—

रुखमणी हरण—

स्रीक्रमन भेटबा देवळ दिस संचरी।
पाखती पूज रै साज बहु परवरी।
मेघमाळा जही सोमरथ सारखी।
पींजरै अंबरै गरद री पालखी॥

दुलहणी पाखती हालियौ हेम दळ।
मयंक खड़िया मले जांण तारा-मंडळ।
आव ऊभा सया काज संकेत रा।
देहळी ओळगी भीतरै देहरा॥

वींटियौ आव चक्रबंध चहुंवै वळै।
देहरा सहित सिसपाळ वाळै दळै।
गेंदळां हैदळां पैदळां गूंथणी।
चालतौ कोट चौफेर लीधौ चुणी॥

नागदमण—

कृष्ण कालिय नाग का मर्दन कर उसके फणों पर सवार होकर व्रजवासियों को दर्शन देते हैं, इसका वर्णन देखिये—

उवारे घणां आप आपे अरच्चे
चुवे चंदणं कासमीरी चरच्चे
अही नाथियौ पोयणी नाळ आणे
असवार आपे हुवे अप्पलांणे॥ १२१
काळी मारियौ कम्मळांमार कांने
पड्यौ आय पाताळ सुं आप पांने

असबार काळी तणी कांन आयौ
विवीधं विधी व्रज्ज नारी वधायौ ॥ १२२

हेम सामोर—कवि हेम, सामोर शाखा के चारण, बीकानेर राज्यान्तर्गत सीथल गाँव के निवासी थे। ये जोधपुर के महाराजा गजसिंह के कृपा-पात्र थे। संस्कृत, प्राकृत, फारसी के विद्वान होने के कारण इनका विशेष सम्मान था। इनका रचनाकाल संवत् १६८५ के आसपास माना जा सकता है। इनका लिखा हुआ 'गुण भाखा चरित्र' नामक एक ग्रन्थ मिलता है जिसमें महाराजा गजसिंहजी का चरित्र वर्णित है। इसी ग्रन्थ के युद्ध-वर्णन का एक उदाहरण देखिये—

वहै ऊजळा वीजळा सार वज्जै।
भड़ां अधळां कंधळां कंध भज्जै।
डळां हड्डुळां गुड्डुलां टूट उड्डै।
वड़ां अत्तुळां सातळां नीर बुड्डै ॥ १
चळां रत्तळां वाहळां स्रोण चल्लै।
भुकै कम्मळां सम्मळां भुक्ख भल्लै।
रुळां अंतुळां तंतुळां घाव रूकां।
हुळां साबळां स्रोण भब्भक्क हूकां ॥ २

इस काल में संत कबीर के उपदेशों का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ रहा था। कबीर पंथ की सफलता से प्रभावित होकर राजस्थान में भी कुछ उसी प्रकार के पंथों की नींव पड़ी, जिनमें दादू पंथ, चरणदासी पंथ आदि प्रमुख हैं। संत-साहित्य के सम्बन्ध में पर्याप्त लिखा जा चुका है। इसी संत-परम्परा में जो कवि हुए उनमें से कुछ संत तो ऐसे भी हुए जिनका भाव-प्रदर्शन के साथ-साथ काव्य-चमत्कार एवं भाषा-लालित्य पर भी अधिकार था। कला पक्ष की दृष्टि से भी उनकी कविता उच्च कोटि की होती थी, किन्तु ऐसे संत कवियों की संख्या अधिक नहीं थी। अधिकतर संत कवियों ने जो कुछ लिखा उनमें अपने धर्म-सिद्धांतों के प्रचार तथा प्रसार की भावना अधिक थी, साहित्य-सौन्दर्य उनमें उतना नहीं है।

दादूदयाल—संत कवियों में दादूदयाल का स्थान बहुत ऊंचा है। संवत् १६३१ में इन्होंने ब्रह्म-संप्रदाय की स्थापना की, जिसका कार्य वे मृत्युपर्यन्त अविच्छिन्न रूप से चलाते रहे। ये कबीर के समकालीन नहीं थे, किन्तु इनकी रचनाओं पर कबीर का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। महात्मा दादूदयाल के जन्म एवं जन्म-स्थान के सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। अनेक विद्वानों के मतानुसार ये संवत् १६०१ में अहमदाबाद नगर के ब्राह्मण लोदीराम को साबरमती में बहते हुए एक शिशु के रूप में प्राप्त हुए थे। उन्होंने ही इनका पालन-पोषण किया। इनके प्रारम्भिक जीवन के संबंध में विशेष वृत्तान्त उपलब्ध नहीं है।

दादू की भाषा मुख्यतः राजस्थानी है। कहीं-कहीं गुजराती और पश्चिमी हिन्दी का तथा बहुत ही कम पंजाबी का मिश्रण पाया जाता है।[1] दादूजी ने अपने भावों तथा सिद्धांतों को वाणियों के रूप में ही प्रकट किया है जिनमें इनकी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति प्रतीत होती है। दादूदयाल की वाणियों का संकलन एवं संग्रह इनके शिष्यों ने किया है। वाणियों की सरलता ही इनकी अपनी विशेषता है। इनकी वाणी का निम्न उदाहरण देखिये—

जीवां मांहै जीव रहै, ऐसा माया मोह।
सांईं सूधा सब गया, 'दादू' नहीं अंदोह ॥ १
दादू इण संसार सां, निमख न कीजौ नेह।
जांमण मरण आवटण, छिन-छिन दाझै देह ॥ २
आपै मरै आपकूं यह जीव विचारा।
साहिब राखणहार है, सो हितू हमारा ॥ ३
मरिबै की सब ऊपजै, जीबै की कछु नांहि।
जीबै की जांणै नहीं, मरबै की मन मांहि ॥ ४
दादू नीका नांव है, तीन लोक ततसार।
रात दिवस रटिबौ करं, रे ! मन इहै विचार ॥ ५
दादू सब जग निरधना, धनवंता नहिं कोइ।
सो धनवंता जांणिए, जाके रांम पदारथ होइ ॥ ६

रज्जबजी—महात्मा दादू की शिष्य-परम्परा में रज्जबजी नाम के प्रसिद्ध संत हुए हैं। ये दादू के प्रधान शिष्यों में थे। रज्जबजी की साखियाँ जनसाधारण में बहुत प्रचलित हो चुकी हैं और उनकी वाणी को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। इनके रचे दो ग्रंथ प्राप्त हैं—१-'बांणी' जिसमें साखी और अनेक पद हैं और २-'सर्वंगी' जिसमें अपनी वाणी के साथ पूर्वकालीन महात्माओं के वचन संगृहीत हैं। अपने निजी ज्ञान एवं अनुभव के कारण उनकी वाणी में विशेष प्रभाव छलक आया है।

---

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, पृ. २८४।

रज्जबजी का जन्म सांगानेर में एक सैनिक पठान के घर हुआ था। इनका जन्म-संवत् कहीं लिखा नहीं मिलता। साधुजनों में प्रचलित मत से वे १२२ वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके थे। उनकी मृत्यु सं० १७४६ के लगभग मानी जाती है इसके अनुसार उनका जन्मकाल सं० १६२४ ठहरता है।[1] ऐसा कहा जाता है कि रज्जबजी जब विवाह के लिए जा रहे थे तब आमेर में दूल्हे के वेश में ही दादूजी से मिले और वहीं उनके शिष्य बन कर वैराग्य ले लिया। यहां सन्त सत्संग के प्रभाव से उनके ज्ञान की अभिवृद्धि हुई और धीरे-धीरे वे अपनी वाणी भी सुनाने लगे। इस समय उनके भी शिष्य हो गये जो सावधानीपूर्वक इनकी वाणियों को लिखते रहते। उनकी ज्ञान-पिपासा अत्यन्त प्रबल थी और इसकी शांति के लिए वे सतत् प्रयत्नशील रहते। धीरे-धीरे इनका अनुभव बढ़ता ही चला गया और वे दादूजी के प्रिय एवं प्रधान शिष्यों में हो गये। वे अपने गुरु के अनन्य भक्त थे एवं अपने गुरु में अटूट श्रद्धा रखते थे। एक बार दादूजी रज्जबजी के 'अस्थल' पर सांगानेर पधारे तब उन्होंने अपने गुरु की बड़े प्रेम और भक्तिभाव से सेवा की। इस प्रसंग में उन्होंने कुछ छंद और पद भी कहे हैं। गुरु-भक्ति का उदाहरण देखिये—

रज्जब रजा खुदाय की, पाया दादू पीर।
कुल मंजिल महरम किया, दिल नांही दिलगीर ॥
देख्या पारस परसतां, लोहे लाभ सुलीन।
रज्जब गुर दादू मिळत, सो गति हमसों लीन ॥
गुर दादू का हाथ सिर, हिरदे त्रिभुवन नाथ।
रज्जब डरिए कौन सों, मिळिया सांईं साथ ॥

रज्जबजी की भाषा साधारण राजस्थानी की बोलचाल की भाषा है। इस सरल भाषा में उन्होंने अपने गम्भीर ज्ञान एवं उच्च अनुभव को ऐसे सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है कि जिज्ञासुओं को उनकी उक्तियों में रत्न भरे मिलते हैं। दृष्टान्तों के प्रयोग से रचना का भाव-वैचित्र्य और भी बढ़ गया है और 'वांणी' प्रभावपूर्ण बन गई है। रज्जबजी के जीवनकाल में ही उनके अनेक भक्त शिष्य बन गये जिन्होंने अपनी वाणियाँ रच कर अपने गुरु रज्जबजी को भेंट कर दी। अब यहाँ रज्जबजी की रचना का उदाहरण देखिये—

[1] 'राजस्थान' वर्ष १, संख्या २, महात्मा रज्जबजी, पुरोहित श्री हरिनारायण, पृ० ६८-६९।

संतो मगन भयौ मन मेरौ।
अहनिस सदा एक रस लागा, दियौ दरीबै डेरौ ॥
कुळ मरजाद मेंड सब भागी, बैठा भाठी नेरौ।
जाति पांति कछु समझौं नाहीं, किसकूं करै परेरा ॥
रस की प्यास आस नहिं औरों, इहि मत किया बसेरा।
ल्याव-ल्याव याही लै लागी, पीवैं फूल घनेरा ॥
सो रस मांग्या मिळै न काहू, सिर साटै बहुतेरा।
जन रज्जब तन मन दै लीया, होय धणी का चेरा ॥

×

रज्जब सांचा सूर को, बैरी करै बखांण।
साध सराहै सो सती, जती जोखता जांण ॥
रजब पराये बाग में, दाख तोर कर खाहि।
अपणू कछू न बीगरै, असहो सह्यो न जाहि ॥
रज्जब पारस परसतै, मिटिगो लोह बिकार।
तीन बात तौ रहि गई, बांक धार अरु मार ॥
रज्जब ऐसा मन करो, जैसा पहिली था।
जांणै रस्सा मूंज का, लाध्या ही न था ॥
सरज्यो आवै अरस सूं, बूठां करै सुकाळ।
अण सरज्यो रज्जब कहै, खादो देत उखाल ॥
भली कहत मांनत बुरी, यह परकृति है नीच।
रज्जब कोठी गार की, ज्यूं धोवे ज्यूं कीच ॥

हरिदास—इनके भी प्रारम्भिक जीवन के विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। अन्य प्राचीन संतों की भांति इनका जीवन चरित्र भी जनश्रुति के आधार पर ही ज्ञात है। कोई इन्हें बीदा राठौड़ और कोई जाट बतलाते हैं। कुछ भी हो, इतना अवश्य है कि ये एक उच्च कोटि के संत और सहृदय कवि थे। अनुमानतः ये सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में ही हुए हैं। इनके मृत्युकाल के सम्बन्ध में भी विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ मृत्यु-संवत् १७००[1] मानते हैं तो किन्हीं ने अपने मतानुसार सं० १५९५[2] और सं० १६००[3] भी दिया है।

इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इनकी भक्ति-साधना

[1] 'श्री हरिपुरुषजी की वांणी' में वर्णित हरिदास का संक्षिप्त जीवन-चरित्र—साधु देवदास : जोधपुर सं० १९८८।

[2] मरु भारती, वर्ष ४, अंक १, अप्रेल १९५६।
पंद्रह सौ पचांणवें, सुद फागण छठ जांण,
बीसा सो वपु राख के, पहुंचे पद निर्वांण।

[3] वही : संवत सोळह सै सईकै, हरि पुरुस गये धांम हरि कै।

से इनकी ख्याति डीडवाणे के आसपास के क्षेत्रों में फैल गई थी और वहीं पर इनके कई शिष्य भी हो गए थे। हरिदास ने अपने जीवनकाल में निरंजन निराकार की उपासना कर एक नवीन सम्प्रदाय का प्रचलन किया जो आगे चल कर निरंजनी सम्प्रदाय कहलाया। डीडवाने के निकट ही गाढ़ा नामक गांव इनका प्रमुख स्थान है जहाँ प्रति वर्ष फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में १ से १२ तक मेला लगता है।

हरिदासजी ने भले ही निरंजन निराकार की उपासना के आधार पर नवीन मत का प्रतिपादन कर एक नए सम्प्रदाय को जन्म दिया हो परन्तु उनकी रचना-शैली और भक्ति-साधना के आधार पर उन्हें निर्गुणमार्गी संतों की परम्परा से पृथक नहीं माना जा सकता। इनकी रचना ज्ञान, भक्ति और वैराग्य से सराबोर है। इन पर कबीर का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है। इसी के फलस्वरूप इनकी रचना में साम्प्रदायिक कट्टरता की घोर भर्त्सना मिलती है। विषय-निरूपण का ढंग इनका अपना निजी है जो सुन्दर भाषा के प्रयोग के कारण अत्यन्त चित्ताकर्षक बन पड़ा है। इनकी रचना का उदाहरण देखिये—

स्याह लाल जरदा सफेद, गिरिवर सुत हाथि हजूरि।
लोह पलटि कंचन करे, सोतो पारस कहूं दूरि॥
हीरा की सोभा कहां, सोतो चोर ले जाय।
वो हीरा कोइ और है, उलटि चोर कूं खाय॥
मन मरजी वा तन समंद, उलटा गोता खाय।
हीरा ले न्यारा रह्या, खरा जळ न सुहाय॥

(शब्द परीक्षा योग से)

मन पंखिया मैं तू जांण्यौ रे भाई।
उलटै खेलि परम निधि पोई॥
अगम अगाहि अंतरि अविनासी।
मन निहचळ काया तन कासी।
अवरण वरण करम नहिं काया।
सूछिम व्रछ सूं सीतळ छाया॥
जन हरिदास निरभै भै नांही।
(म्हारौ) प्रांण बसै हरि तरवर मांही॥

समयसुन्दर—सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपनी अनूठी साहित्यिक रचनाओं के कारण विशेष ख्याति प्राप्त करने वालों में जैन कवि समयसुन्दर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका जन्म जोधपुर राज्यान्तर्गत सांचोर ग्राम में हुआ था जो कवि स्वयं द्वारा लिखित 'सीताराम चतुष्पदी' के खण्ड ६ ढाल तीसरी के अन्तिम पद से प्रकट होता है—

'मुझ जनम श्री सांचोर मांहि,
तिहां च्यार मासि रह्या उछाहि।

इनका जन्म-समय अज्ञात है तथापि अनेक विद्वानों ने अनुमानतः सं० १६२० माना है।[1] आपने सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मृत्युपर्यन्त लगभग ५० वर्ष तक निरन्तर साहित्य की सेवा करते हुए विशाल साहित्य का निर्माण किया।

कवि समयसुन्दर अपनी भावुकता और औदार्य के कारण ही कवि थे। ये अपने समय में अपनी विशालहृदयता के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध थे। संवत् १६८७ में गुर्जर देश में होने वाले भयंकर दुष्काल ने इनके जीवन को और भी कारुणिक और दयनीय स्वरूप प्रदान किया। कविवर इस प्रकार सर्वतोमुखी प्रतिभा को धारण करने वाले एक उद्भट विद्वान थे। साहित्य-चर्चा करने वाले उत्कृष्ट वाचक के साथ-साथ ये श्रेष्ठ कवि भी थे। इन्होंने अपनी लेखनी से अनेकार्थी साहित्य, व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, पादपूर्ति साहित्य, सैद्धान्तिक और भाषात्मक गेय साहित्य की मौलिक रचनायें और टीकायें ग्रंथित कर जो भारतीय वाङ्मय की सेवा की है, वह वस्तुतः अनुपमेय है।[2] इनके द्वारा रचित अपार साहित्य के कारण यह स्पष्ट ही है कि ये अपने समय के अत्यन्त प्रख्यात कवि और प्रौढ़ विद्वान थे। कविवर की 'पुण्य छत्तीसी' का उदाहरण देखिये—

पुण्य तणा फळ परतिख देखो, करो पुण्य सहु कोय जी।
पुण्य करंतां पाप पुळावे, जीव सुखी जग होय जी।
अभयदांन सुपात्र अनोपम, वळि अनुकंपा दांन जी।
साधु स्रावक धर्म तीरथ यात्रा, सील धर्म तप ध्यांन जी॥

[1] समयसुन्दर-कृत 'कुसुमांजली': सम्पादक अगरचन्द नाहटा, भंवरलाल नाहटा, में महोपाध्याय विनयसागर द्वारा लिखित कविवर का जीवन चरित्र, पृ० २ का फुट नोट।

[2] समयसुन्दर कृत 'कुसुमाञ्जली': सम्पादक, अगरचन्द नाहटा, भंवरलाल नाहटा, में महोपाध्याय विनयसागर द्वारा लिखित कविवर का जीवन चरित्र, पृ० ५०-६०।

इनके 'बारह मासा' वर्णन का कुछ अंश नीचे दिया जाता है —

सखि आयउ स्रांवण मास, पिउ नहीं मांहरइ पासि ।
कंत बिना हुं करतार, कीधी किसा भर्णा नारि ॥
भाद्रवइ वरसइ मेह, विरहणी धूजइ देह ।
गयउ नेमि गढ़ गिरनारि, निरवही न सकी नारि ॥
आंसू अमी झरइ चंद, संयोगिनी सुखकंद ।
निरमळ थया सर नीर, नेमि बिना हुं दिलगीर ॥
कातियइ कामिनी टोळ, रमइ रासडइ रंग रोळि ।
हुं घरि बइसी रहि एथि, मन माहरउ पिउ जेथि ॥

कल्याणदास मेहड़ू—ये डिंगल के कवि जाडा मेहड़ू के पुत्र थे और जोधपुर के महाराजा गजसिंह के कृपा-पात्रों में थे। इनका रचनाकाल संवत् १६८५ के लगभग था। ये असाधारण गुण-सम्पन्न प्रतिभावान व्यक्ति थे। ये वीरता के उपासक थे अतः इनकी रचना अधिकतर वीर पुरुषों और वीर जातियों की प्रशंसा में ही लिखी हुई मिलती है। भाषा पूर्ण मजी हुई और भाव उच्च कोटि के हैं। इनके सुन्दर गीतों और इनकी असाधारण काव्य-प्रतिभा के कारण ही महाराजा गजसिंह ने इनको लाखपसाव प्रदान किया था।[1]

बूंदी के वीर हाडा राव रतनसिंह पर लिखी हुई 'राव रतन री वेलि' इनकी प्रसिद्ध रचना है।[2] इस खण्ड काव्य में कवि ने रतनसिंह के जीवन चरित्र का वर्णन करते हुए इनके पूर्वजों की वीरता का भी उल्लेख किया है। इस काव्य में कुल तीन षट्पदियां और १२१ छंद हैं। काव्य में वर्णित भिन्न-भिन्न विषय उचित उपमाओं के प्रयोग से आकर्षक हो गये हैं। यद्यपि रचना एक लघु काव्य ही है पर कवि की प्रतिभा बताने में पूर्ण सफल व समर्थ है। वेलि का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

वाछंट ओझटा कटक घट वढ़ीया, दुजड़े ऊलट पुलट दूवो ।
मेह रयण घाइ झड़ वट मंडीयो, हेवें काळ सुकाळ हूवो ॥ ८१
रड़वड़ीया रूंड मूंड राइजादां, धड़ वेरूंड गुड़ीया धार ।
मांणिक डंड प्रचंडां माथै, मेह रयण बूठो झड़ मार ॥ ८२

[1] वीर विनोद : श्यामलदास, द्वितीय भाग, पृ० ८२० ।

[2] शोध पत्रिका, दिसम्बर १९६० : कल्याणदास मेहड़ू री कही 'राव रतन री वेलि' : श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ।

वीठू सुन्दरदास—इस शताब्दी के अन्तिम दशक में प्राप्त होने वाली रचनाओं में वीठू सुन्दरदास की रचनायें उल्लेखनीय हैं। कवि सुन्दरदास वीठू शाखा के चारण थे और इतिहास-प्रसिद्ध जोधपुराधिपति महाराजा गजसिंह के पुत्र अमरसिंह के आश्रित थे। इनका रचनाकाल संवत् १६९४ के आसपास माना जा सकता है। ये बड़े स्वामीभक्त थ और इसी के कारण वे अमरसिंह के विशेष कृपा-पात्रों में थे। एक बार अपने स्वामी के प्राण बचाने पर इन्हें झोरड़ा नामक ग्राम पुरुस्कार में प्राप्त हुआ था जिसके विषय में निम्न दोहा व छप्पय प्रसिद्ध है—

आय चोर अमरेस री, फाड़ी तम्बू कनात ।
सिर तोड़चो समसेर सूं, हद सुंदर रो हात ॥

छप्पय—

पट्ट पर सूं उत्तराध, कोस दस गांव कहीजै ।
इम कह्यो 'अमरेस', दवागिरां लिख दीजै ॥
झास गांव झोरड़ो, भळे परगने भदांणो ।
तांबा पत्र तांम हुवो, सांसण हिंदवांणो ।
केकांण रीझ मोतीकड़ां, जग परसिध जस वासणै,
'अमरेस' दियो सांसण अचळ, सुकवि सुंदरदास नैं ॥

बादशाह शाहजहाँ की भरी सभा में अमरसिंह ने एक कटार से एक ही वार में सलावत खाँ को मारा था। उस समय सुन्दरदास भी उनके साथ थे और उनकी प्रशंसा में अनेक कवित्त बनाये। एक छंद उदाहरण के लिए देखिये—

सिंध करणाटक रुस रोम सोम बलख बीच,
ऐसे विसरांणी कांनी कांनी घबरांणी है ।
दूजा 'गजेस' जीत जाहिर विदेस देस,
चहुं कांनी छांनी नहीं हरख हिंदवांणी है ।
पातसाही कहां क्या उथाप थाप तेरे हाथ,
सात सर पार फतह सरसांणी है ।
कहै कवि सुंदरदास, राव अमरेस आज,
ऐसे अदल्ली हूंत दिल्ली दहलांणी है ॥

इसके अतिरिक्त इनके अनेक फुटकर गीत भी हमारे संग्रह में प्राप्त हैं। उनमें से अमरसिंहजी का एक गीत यहाँ दिया जाता है—

अडर खेड़ेचे मघ ऊसर बर ऊपरा,
भिड़ण अंग निडरता बीया 'बाघा' ।

हारिया घणा भड़ हसम पतसाह रा,
भिड़िया भड़ धके सोई धके भागा ॥ १
ओधहर तोय कर तेग जग आहरां,
थाहरा दळा थिर विजै थावै ।
सावळां खळां वप सलोहा साभिया,
जंगां जुड़ निलोहा नाह जावै ॥ २
अडर नर भोक रै अमर आपायता,
विचळ हुए असुर धर सोर बरते ।
नीसा भर सेभ सुख ओभके नींद में,
डरे इम साह नित तोय डरते ॥ ३
जवन मन हार हिंदवांण धजराज को,
पूज कुण रीभ कज खाग पांणे ।
परा गिर वार सूं जार······पति,
जोस अंग ऊफणे जगत जांणे ॥ ४
सेख हर पठांणां मुगळ हर सय्यद्दां,
भेचके निसा दिन फिकर भरिया ।
खळां वप घाविया खास अंब खास में,
'अमर' कज इसी विध अमर करिया ॥ ५

सत्रहवीं शताब्दी के अन्तर्गत उल्लिखित कवियों के अतिरिक्त और भी अनेक कवि हैं जो अपनी फुटकर रचनाओं यथा—गीत, दोहे, कवित्त आदि के लिए प्रसिद्ध हैं। ऐसे कवियों की रचना में विशेष ग्रंथ तो प्राप्त नहीं होते परन्तु उनकी फुटकर रचनाओं का कोई पार नहीं है। केवल सत्रहवीं शताब्दी के ही फुटकर कवि इतने हैं कि उन सभी के नाम गिनाना प्रायः कठिन सा ही है, फिर भी कुछ प्रसिद्ध कवियों के नाम नीचे दिए जा रहे हैं।

सादूळ (सं० १६००-१०), सांखला करमसी रुणेचा (सं० १६१०), रतना खाती (सं० १६१७), दयासागर (सं० १६१७), रावळ हरराज (१६१८), रांमा सांदू (सं० १६-२८), किसनौजी भादौ (सं० १६३०-३४), देवौ (सं० १६३२) पीथोजी आसियौ (सं० १६३३), उपाध्याय गुणविनय (सं० १६१३-७६), रतनू देवराज (सं० १६३५), सिंढ़ायच गंगौ (सं १६३५), गरीबदास (सं० १६३२-३५), जाडा महड़ू (सं० १६३५), दल्लौ आसियौ (सं० १६४०), बखनाजी (सं० १६४०), बाजिदजी (सं० १६५०), गरीबदास (सं० १६-३२ से ६०), चम्पा दे (सं० १६५०), महाराणा प्रतापसिंह (सं० १६३२-१६५३), महाराजा रायसिंह (सं० १६२८ से १६६८), सेवारांम (सं० १६५६-६०), हरनाथ (सं० १६६०), हरपाळ (सं० १६६०), नरूजी (सं० १६६०), किसनदास (सं० १६६०), राजसिंह (सं० १६६०), डूंगरसिंह (सं० १६६२), सेवादास (सं० १६६०), नेतौ (सं० १६६२), हरखौ (सं० १६६५), महारांणा अमरसिंह (सं० १६५३-७३), महाराजा मांनसिंह (सं० १६५६ - १६७१), आसौ सिंढ़ायच), (सं० १६६५) किसनौ आढ़ौ (१६७०), रूपसिंह लाळस (सं०१६७०), परशुरांमदेव (सं० १६७७), आसियौ भोपत (सं० १६८०), कवि मांन (सं० १६७३-८०), चुतरौ मोतीसर (सं० १६८५), भोजग मनोहर (सं० १६६०), खेतसिंह (सं० १६६०), माधौदास गाडण (सं० १६६५, हरिदास भाट (सं० १७००)।

अठारहवीं शताब्दी

नरहरिदास—ये रोहड़िया शाखा के चारण लक्खाजी के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६०० के उत्तरार्द्ध में हुआ था। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल के भक्त कवियों में इनका नाम उल्लेखनीय है। इनका ब्रज भाषा का लिखा 'अवतार चरित्र' का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसके अतिरिक्त इनकी राजस्थानी की मुक्तक रचनायें भी उपलब्ध हैं। 'अमरसिंहजी रा दूहा' और अनेक फुटकर गीत इनकी काव्य-प्रतिभा का प्रमाण देने में पूर्ण समर्थ हैं। इनकी भाषा माधुर्यगुणयुक्त सरस एवं सरल है। इनका एक गीत देखिये—

कुतब गोस अबदाळ सूफी अनै कलंदर,
पीरजादा मिळै सांभ परभात ।
कांन 'अवरंग' रा भरै इक राह कज,
वरै नह पड़ै जसवंत छनै बात ॥ १
गोलवी कराड़ै अरज काजी मुला,
पाडजै देव हर दलां कर पेळ ।
मेछवांछै जिको हिंद इकलीम मभ,
खड़ौ राजा जिसूं वणै नह खेल ॥ २
अरथ कर नवा फुरकांण री आयतां,
लियां कर साह रै कांन लागै ।
कहै मख दूम जग हुंक मजहब करो,
.... ॥

गोविन्दजी—ये रोहड़िया शाखा के चारण और मेवाड़ राज्य के निवासी थे। महाराणा जगतसिंह के समकालीन

होने के कारण इनका रचनाकाल संवत् १७०० के आसपास ठहरता है। इनका स्वतंत्र ग्रंथ तो नहीं मिलता परंतु वीर-रस से परिपूर्ण अनेक फुटकर गीत उपलब्ध हैं। गीतों में प्रयुक्त वीररस की उक्तियां सीधी हृदय को स्पर्श करती हैं। वर्णन में सजीवता है। सुन्दर शब्द-चयन के कारण भाषा-सौष्ठव देखते ही बनता है। महाराणा जगतसिंह के पराक्रम की प्रशंसा में लिखा एक गीत देखिये—

अवर देस देसां तणां लार कर एकठा,
रैसिया मूगळां दीध राये।
हेक सिर नावियो नहीं 'सांगाहरै',
'जगै' पतसाह रै द्वार जाये ॥ १

झाड़ पाहाड़ मेवाड़ रा झाटके,
जूंभ रूपी हुवौ खाग झाले।
मुगळां न गो दिल्लीस थांणा मिळण,
हिंदवांणां तणौ छात हाले ॥ २

रांण रजपूत बट तणौ छळ राखियौ,
साह सूं नांखियौ तोड़ सांधौ।
कमरबंध छोड़ कर जोड डंडवत करण,
'करण' रै नांमियौ नहीं कांधौ ॥ ३

'जगतसी' 'अमरसी' 'उदैसी' जेहवौ,
छातपत केम कुळ राह छाडै।
रांण सीसोदियौ टेक झालै रहै,
एक पतसाह सूं कंध आडै ॥ ४

जयसोम—कवि जयसोम के निश्चित जन्मकाल का पता नहीं लगता, फिर भी सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही इनका पैदा होना माना जाता है। ये तपागच्छीय जैन साधु विजयदेव के शिष्य जससोम के शिष्य थे। अपनी रचना के अन्त में उन्होंने गुरु-वन्दना करते हुए स्वयं लिखा है—

तप गछपति विजयदेव मुनीसर कवि जससोम गुणवरिआरे,
तास सीस जयसोम नमई···जे समरस गुण भरिआरे।

इन्होंने धर्म ग्रन्थ के ६ भागों की गद्य में टीकायें भी लिखी हैं जिनसे इनको शास्त्रविज्ञता एवं विद्वत्ता का पता चलता है। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'बारह भावना वेलि', जिसकी रचना संवत् १७०३ में हुई थी, राजस्थानी साहित्य में अधिक ख्याति प्राप्त कर चुका है। रचनाकाल के सम्बन्ध में स्वयं कवि ने दृष्टि-कूट शैली में लिखा है—

भोजन नभ गुण (१७०३) बरस सुचि, सित तेरस कुंजवार,
भगत हेतु भावन भणी, जेसलमेर मझार।

कवि की शान्तरस की यह रचना साधारण बोलचाल की भाषा में ही लिखी गई है। कवि इसी भाषा के आधार पर अपनी बात जन-मानस में उतारना चाहता है। जैसलमेर में कृति का निर्माण होने के कारण स्थल-स्थल पर स्थानीय झलक दृष्टिगोचर होती है, फिर भी सरल राजस्थानी का रूप सर्वत्र हो रहा है। कवि का अलंकारों की ओर ध्यान तो नहीं रहा तथापि कहीं-कहीं शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का प्रयोग हुआ है, उनसे कवि की सुन्दर भावाभिव्यक्ति का पता चलता है। रचना का एक उदाहरण देखिये—

सुभ मांनस मांनस करी, ध्यांन अम्रत रस रोळ।
नवदळ स्री नवकार पद, करि कमळासन कोळ ॥
पातक पंक परवाळि नइ, करि संवरनि पाळि।
परमहंस पदवी भजै, छोड़ी सकळ जंजाळि ॥

जगा खिड़िया—राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल में प्राचीन परंपरागत चारण शैली में रचे गये ग्रंथों में 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री, जगा खिड़िया री कही' प्रमुख है। इसके रचयिता जगाजी खिड़िया गोत्र के चारण थे। इनके विषय में बहुत कम विदित है। इन्होंने अपनी वचनिका में अपने जीवन-चरित्र तथा वंश-परम्परा आदि के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं दिया। निम्न पंक्तियों से केवल उनके नाम का पता चलता है—

जोड़ि भणै खिड़ियौ 'जगौ', रासौ रतन रसाळ।
सूरा पूरा सांभळौ, भड़ मोटा भूपाळ ॥ २६५

राजस्थानी के विशिष्ट ज्ञाता एवं काव्य-जिज्ञासु डॉ० तैस्सितोरी ने कवि के जीवन वृत्त को पाने का विशेष प्रयत्न किया। जगा के वंशजों से तो कोई उपयुक्त सामग्री न मिल सकी, फिर भी उन्होंने अपने अथक प्रयत्नों से कवि के बारे में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की।

जगाजी रतलाम के वीरवर रतनसिंह के दरबारी कवि थे। उक्त ग्रंथ में इन्हीं रतनसिंह का वर्णन बड़ी ओजस्वी भाषा में किया गया है। राजा रतनसिंह जोधपुर के राठौड़ राजा जसवंतसिंह की ओर से शाहजादा औरंगजेब के विरुद्ध लड़ कर वीरगति को प्राप्त हुये। यह घटना वि. सं. १७१५ में हुई थी। कवि ने इसी घटना का उल्लेख अपनी वचनिका

में किया है। कुछ विद्वानों के मतानुसार ये स्वयं घटनास्थल पर उपस्थित थे और उन्होंने रतनसिंह की वीरता का आंखों देखा हाल अपनी वचनिका में लिखा है। इस प्रकार इस ग्रंथ का रचनाकाल भी संवत् १७१५ के आसपास ही माना जा सकता है।

वचनिका वीररस-प्रधान ग्रंथ है जिसमें गद्य एवं पद्य दोनों का ही प्रयोग हुआ है। भाषा की ओजस्विता से स्पष्ट है कि कवि ने अपनी रचना के लिए सोलहवीं शताब्दी से चली आ रही वीररसात्मक काव्य भाषा का ही अनुकरण किया है। ग्रंथ की भाषा पूर्ण प्रौढ़ है। किस रस में, किस प्रसंग में और कैसी परिस्थिति में भाषा का प्रयोग एवं किस प्रकार की वाक्य-रचना का प्रयोग किया जाय, इस बात का कवि को पूरा ज्ञान था। विषयानुकूल शब्द-चयन एवं प्रसंगानुकूल भावाभिव्यक्ति के कारण कृति बड़ी उत्कृष्ट हो गई है। भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार प्रतीत होता है। युद्ध के विकट प्रसंग का एक शब्द-चित्र देखिये—

भड़ां धड़ भंजि हुवै बि बि भग्ग,
खड़क्खड़ ढल्ल झड़ज्झड़ खग्ग ।।
कड़क्कड़ वाजि धड़ां किरमाळ ।
बड़ब्बड़ भाजि पड़ंत बंगाळ ।।
दड़ब्बड़ मुण्ड रड़ब्बड़ दीस,
धड़ब्धड़ लेत चड़च्चड़ ईस ।।
अंत्रां खग झाट निराट अळग्ग ।
पड़ै बि बि जंघ पड़ै झड़ि पग्ग ।।

वचनिका में अनेक छंदों तथा गद्य-बंधों का प्रयोग किया गया है। त्रोटक, भुजंगी, गाथा, मौक्तिक-दांम, दूहा, बड़ा दूहा, कवित्त, चंद्रायणो, हणूफाळ गाहा, चौसर और दुमेल आदि के प्रयोग से उन्होंने अपने पाण्डित्य का अच्छा प्रदर्शन किया है। कवि की उच्च काव्य-प्रतिभा के फलस्वरूप यह ग्रंथ कथा-प्रवाह की दृष्टि से, शब्द-चयन की दृष्टि से और रस-वर्णन की दृष्टि से उच्च कोटि की रचना हो गया है।

यह तो सत्य ही है कि चारण काव्य-परम्परा में वीररस का प्राधान्य रहता आया है, किन्तु उत्तम कवि प्रसंगवश समस्त रसों का वर्णन किया करते थे। जगा खिड़िया ने भी अपनी वचनिका में वीररस के साथ-साथ अन्य रसों का भी प्रयोग किया है।

तिण वार त्रिया रतनेस तणी विधि साहस सोळ सिंगार वणी ।
पग हाथ मलूक ज पंकजयं, गुरिण छत्तिय गत्ति विन्है गजयं ।
कटि सिंघ नितंब जंघा कदळी, चित नित्त वित्त मराळ चली ।
तन रंभह खंभ कनंक तिसी, ओपै सिरि नागेंद्र वेणि इसी ।
वनिता मुख पूनिम चंद वणी, भ्रिग भ्रूह चखां भ्रिग रूप भणी ।

जगा खिड़िया जहाँ वीर और शृंगार रस के अच्छे कवि थे वहाँ ये ईश्वर के भी परम भक्त थे। वीर-रस की रचना के साथ-साथ ईश्वर-भक्ति सम्बन्धी हृदयस्पर्शी कविता का सृजन भी इन्होंने अपनी लेखनी से किया है। भक्ति सम्बन्धी शांत-रस से ओतप्रोत उनके सभी छप्पय केवल गंभीर, भाव-युक्त एवं चमत्कारपूर्ण ही नहीं अपितु उनकी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति करने में भी पूर्ण समर्थ हैं। भक्तिरस का एक छप्पय देखिये—

पत राखे द्रोपदी, प्रभू विरदां प्रतपाळे ।
ब्रह्म पत्त राहवी वेद च्यारे ही गावाळे ।
पत राखे पडवां, अंब कर मांझि उपाये ।
गजपत पत राहवे, अनंत खगपत चढ़ आये ।
करणां निधांन जगियो कहै, बहनांमी वह बूझि इण ।
कळजुग इमा मांहे किसन, राखे पत राधा रमण ।।

धर्मवर्द्धन—कविवर धर्मवर्द्धन के जन्म-संवत् तथा माता-पिता के सम्बन्ध में कोई विवरण ज्ञात नहीं है परंतु इनकी लिखी 'श्रेणिक चौपई' से इनका जन्म-संवत् १७०० निर्धारित होता है—

वयु लघु में उगणीस में वरसे, कीधी जोड कहावै ।
आयो सरस वचन को इण में, सो सद्गुरू सुपसाये री ।[1]

इस चौपई की रचना संवत् १७१९ में चन्देरीपुर में हुई थी।[2] १९ वर्ष की अल्पायु में ही आपने काव्य की रचना कर अपनी कवित्व-शक्ति एवं कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया। अपने जीवन काल में आपने प्रचुर मात्रा में साहित्यिक रचनायें की जिनसे आपका राजस्थानी, हिन्दी-गुजराती मिश्रित लोक-भाषा एवं संस्कृत भाषा पर पूर्णाधिकार स्पष्ट प्रकट होता है। आपकी लिखी हुई रचनाओं के आधार पर आपका रचना-काल संवत् १७१९ से संवत् १७७३ ठहरता है। आपकी सभी

---

[1] राजस्थान, भाद्रपद १९९३, वर्ष २, संख्या २, राजस्थानी साहित्य और जैन कवि धर्मवर्द्धन : श्री अगरचन्द, नाहटा पृ० ३ ।

[2] 'सतरसै उगणीसे वरखे चंदेरीपुर चावै ।'

रचनायें बड़ी उत्तम, प्रौढ़ एवं मनोहारिणी हैं। उनमें कई स्थलों पर आपके असाधारण पांडित्य, विलक्षण व्यक्तित्व एवं श्रेष्ठ प्रतिभा का परिचय मिलता है। इसी असाधारण व्यक्तित्व एवं काव्य-प्रतिभा के कारण अपने जीवनकाल में ही आपने बहुत अधिक ख्याति प्राप्त करली थी। बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह, सुजाणसिंह; जैसलमेर के रावल अमरसिंह, जोधपुर नरेश जसवंतसिंह, वीर शिवाजी और राठौड़ दुर्गादास आदि से आपका काफी अच्छा परिचय था। संवत् १७४० में जिनचन्द्र सूरि ने आपको उपाध्याय के पद से सुशोभित किया। ८० वर्ष की दीर्घायु प्राप्त कर संवत् १७८०-८१ में आप परलोकगामी हुये। आपकी राजस्थानी रचना का उदाहरण देखिये—

शीत ऋतु वर्णन—

ठंड सबळी पड़े हाथ पग ठाठरे,
बायरो ऊपरां सबळ बाजै।
माल साहिब तिके मौज मांणे मही,
भूखियह लोक रा हाड भाजै।
किड़किड़ै दांतां री पांत सी सी करै,
धूम मुख ऊबमा तणा धखिया॥
दरब सुं गरब सौ जांणि गुजें दरक,
दरब हीणा सबै लोक दुखिया।

सुस्त्री वर्णन—

सुकुळीणी सुंदरी मिठबोली मतिवंती
चित चोखे अति चतुर जीह जीकार जयंती।
दातारणि दीपती पुण्य करतां परकासू।
हसतमुखी नित हरखि सेवि संतोखे सासू।
सुकुळीण सील राखे सुजस, गहै लाज निज गेह नी।
'धरमसी' जेण कीधौ धरम, तिण गुणवंत पांमी गेहिनी।

किसोरदास—ये मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के आश्रित कवि थे। इनका रचनाकाल संवत् १७१६ के लगभग माना जा सकता है। अपनी जाति के सम्बन्ध में इन्होंने स्व-रचित ग्रन्थ 'राजप्रकास' में लिखते हुए अपने आपको राव बताया है—

रांणी प्रतपै राजसी, धर गिर पाटउ धोर।
राज प्रकासित नाम गहि, कहि कहि राव किसोर॥

अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में लिखा इनका एक ग्रन्थ 'राजप्रकास' प्राप्त है। इस ग्रंथ में प्रारम्भ के ५६ छंदों में महाराणा राजसिंह के पूर्वजों का संक्षिप्त वर्णन है और उसके बाद महाराणा राजसिंह के वैभव, विलास एवं शौर्य्य तथा पराक्रम का वर्णन किया हुआ है। प्रस्तुत ग्रंथ में दोहा, कवित्त, मोतीदाम आदि विविध छंदों को मिला कर कुल १३२ पद्य हैं। ग्रन्थ की भाषा शुद्ध साहित्यिक डिंगल भाषा है। विषयानुकूल उचित शब्दावली के प्रयोग से कृति सुन्दर बन पड़ी है। नीचे इसका एक उदाहरण देखिये—

कवि धनि कीय करतार बार राजसी बिराजै।
सर गिरवर संचरी छत्रधारी कीत छाजै।
चंद दुहींद नरींद तेज सीतळ प्रवतारी।
सतजुग त्रेता हूंत बार द्वापर हू भारी।
अंक गिरह तेणि आईस अणी जांम न सातां जांणीयौ।
राजसी रांण अविचळ रहौ राव किसोर वखांणियौ॥

'राजप्रकास' तो कवि की उच्च कोटि की साहित्यिक कृति है ही परन्तु इसके अतिरिक्त इनके फुटकर गीत भी मिलते हैं। गीतों में चारण शैली का निर्वाह पूर्ण रूप से हुआ है।

लधराज[1] —ये जोधपुर राज्यान्तर्गत सोजत नगर के निवासी थे। इनके पिता कोचर, मूहता मंत्रीश्वर महेश थे जो महाराजा जसवंतसिंहजी के अत्यन्त विश्वासपात्र मंत्री थे। कवि ने अपनी रचनाओं में कहीं लधिया, लधो, लधमल, लधराज आदि लिख कर अपना नाम प्रकट किया है। 'देव विलास' में अपना परिचय देते हुए स्वयं कवि ने लिखा है—

महिप राव 'चूंड' रै, तपे नागौर तखत्ते।
'कोचर' पुत्र सुपुत्र, हुवौ राव जोध वखत्ते।
'दूजण' 'सांगो' 'नरो' 'अखो' 'तपमाल' सुरधर।
तिण घर 'वैरीसाल', वीरगे-हीमत सागर।

×

तिण वंस लधराज, तुच्छमती तुछ आदर।
तिण मोटो गुण एक, वसे सोभित निरंतर॥
करै सेव च बंड, हुई परसख सगत्ती।
तिण कारण तेण नूं, सिको मांनै छत्रपत्ती॥

---

[1] मरु-भारती, जनवरी-फरवरी ५४ में लिखित श्री अगरचन्द नाहटा के लेख, 'महाराजा जसवन्तसिंह के मंत्री लधराज और उनके ग्रन्थ' से साभार।

अन्य रचनाओं में भी अपने पिता का नाम, जन्म-स्थान आदि के विषय में इन्होंने उल्लेख किया है। यथा 'महादेव निसाणी' में—

कर भासा 'लधराज', पिता 'माहेस' मंत्रीस्वर,
सोजत वास सुवास, सेव चामुंड निरंतर।

संवत् १७०८ से सं० १७३० तक की लिखी आपकी रचनायें प्राप्त हुई हैं, जिनकी सूची निम्न है—

१–कालिकाजी रा दूहा, सं० १७०८, २–पाबूजी रा दूहा, सं० १७०९, ३–प्रबोधमाला, ४–देव विलास, सं० १७१३, ५–लधमलसतक दूहा, सं० १७२३, ६–रुक्मांगद चरित, सं० १७२३। इनके अतिरिक्त 'सीख बत्तीसी' 'भजन पच्चीसी' 'महादेवजी री निसांणी' 'गणेसजी री निसांणी' आदि के साथ-साथ कुछ गुटके भी उपलब्ध हैं। कवि ने साधारण बोलचाल की राजस्थानी भाषा में ही काव्य-रचना की है। इन्हें संस्कृत का ज्ञान नहीं था। संस्कृत के आधार पर बनाये गये ग्रंथ इन्होंने दूसरे विद्वानों से सुन कर ही बनाये हैं। कवि ने स्वयं अपनी रचना में सोजत के श्रीमाली पंडित रामेश्वर का नामोल्लेख किया है। यहाँ नीचे हम उनके 'देवविलास' का एक उदाहरण दे रहे हैं—

जोधांणे 'जसराज' नृप, तप दूजो 'जैचंद'।
उठी दिली लग आगरै, हद ईस दीसी समंद।
प्रभ दीधो महाराज पद, रीझे साहजहांन।
पीछै 'औरंग' मांन अत, मह्पित न को समांन।
मिश्री तिण 'लधमालियो', साचो सगत भगत।
रहे भजन भगवंत रत जे जांणंत जगत।

गिरधर आसियौ—कवि गिरधर मेवाड़ निवासी आसिया शाखा के चारण थे। इनका लिखा हुआ ग्रंथ 'सगतसिंघ रासौ' प्राप्त हुआ है, जिसमें वीर शिरोमणि महाराजा प्रताप के छोटे भाई शक्तिसिंह के जीवन-चरित्र का विवरण दिया गया है। यह लगभग ५०० छंदों का ग्रंथ है जिसमें दोहा, भुजंगी, कवित्त आदि मुख्यतः प्रयुक्त हुए हैं। उक्त 'रासौ' की भाषा साहित्यिक डिंगल होने के कारण रचना प्रौढ़ हो पाई है। 'सगतसिंघ रासौ' की भाषा का उदाहरण देखिये—

'ऊदळ' रांणं एक दिन, सभ पूछियौ स कोइ,
अणी सिरै कर आहणी, हूं सारै हूं सोइ॥
मैंगळ मैंगळ सारिखौ, सीह सारिखौ सीह,
सगतौ 'उदियासिंघ' तणं, अंग पित जिसौ अबीह।
पल रतैं मुख रत्तड़ी, बैंस जिहिं कुळ वग्ग,
सगतै जमदड़ढ़ां सिरै, आफाळियौ करग्ग॥

उक्त ग्रंथ के अतिरिक्त कवि के फुटकर गीत भी उपलब्ध हैं जिनमें वीर व शृंगार रस की बहुलता स्पष्ट झलकती है।

जोगीदास—ये जाति के चारण थे और प्रतापगढ़ नरेश महारावत हरिसिंह के आश्रित कवि थे। इनका रचनाकाल संवत् १७२१ के लगभग है। कवि का लिखा एक ग्रंथ 'हरि पिंगल प्रबन्ध' उपलब्ध है जिसमें कवि ने स्वयं रचनाकाल संवत् १७२१ दिया है—

संवत् सतर इकवीस में, कातिक सुभ पख चंद,
हरि पिंगळ हरिश्चंद जस, वणियौ खीर समंद।

हिन्दी एवं डिंगल के मुख्य-मुख्य छंदों के लक्षणों को उदाहरण सहित विवेचना की है। समस्त ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त है जिसमें प्रत्येक भाग को एक परिच्छेद का रूप दिया गया है। अन्तिम परिच्छेद के अधिकांश भाग में कवि ने अपने आश्रयदाता महारावत हरिसिंह के वंश-गौरव का विस्तृत विवरण दिया है। भाषा, कविता, विषय आदि सभी दृष्टि से 'हरि पिंगळ प्रबन्ध' एक सफल रचना है। इसका उदाहरण देखिये—

जां लग रवि ससि अचळ, अचळ जां सेस धरत्ती।
जां वेळावळ अचल अचळ जां केल सकत्ती।
बभ संभ जां अचळ अचळ जां मेर गिरव्वर।
इद ध्रुम्र जां अचळ अचळ जां भरण विसंभर।
चहुं वेद धरम्म जां लग अचळ, जाय व्यास वांणी विमळ।
'जगराज' नंद जग मध्य लै, हरिसिंघ तां लग अचळ।

उपाध्याय लाभवर्द्धन—ये खरतरगच्छ की क्षेम शाखा के मुनि शान्तिहर्ष के शिष्य थे। इनका जन्म-नाम लाला या लालचन्द था। संवत् १७२३ में सिरोही के आचार्य जिनचन्द्र सूरि ने इन्हें जैन मुनि की दीक्षा दी और इनका दीक्षा-नाम लाभवर्द्धन रखा। अपने समय के जैन कवियों में ये राजस्थानी के श्रेष्ठ कवि हो चुके हैं। इनकी सबसे पहली रचना 'विक्रम ९०० कन्या चौपाई' है जो संवत् १७२३ में जोधपुर राज्यान्तर्गत जयतारण ग्राम में रची गई थी। ग्रंथ की समाप्ति के लिए स्वयं कवि ने लिखा है[1] —

[1] जैन गुर्जर कवियो, भाग २, पृ० २१२।

परसाद तिण सदगुरु तणौं, एकी चौपई सार
ढाळ सतावीसमी भली, सुणंतां हर्स अपार
सतरें सै तेवीस में, नभ मास सुद्धि पख
तिहां ए संपूरण थइ, तिथै तेरस बुधवार
ग्रांम स्री जयतारण सरस लहीई, नगरी सुथिर सुखकार ।

इसके बाद से लेकर संवत् १७७० तक की आपकी अनेक रचनायें उपलब्ध हैं जिनकी सूची नीचे दी जाती है ।

लीलावती रास सं० १७२८, विक्रम पंच दंड चौपाई सं० १६३३, धर्मबुद्धि पापबुद्धि रास सं० १६४२, निसांणी महाराजा अजीतसिंहजी री सं० १७६३, पांडव चरित चौपाई सं० १७६७, शकुन दोपिका चौपाई सं० १७७० आदि ।

इनके अतिरिक्त इनकी फुटकर रचनायें भी अनेक हैं। आपने अपना सारा जीवनकाल राजस्थान में ही बिताया और वृद्धावस्था तक रचनाओं का निर्माण करते रहे । आपकी भाषा लोक-भाषा-मिश्रित साहित्यिक डिंगल है । लीलावती का एक उदाहरण देखिये—

मेरी देहु लाला चूनड़ी ग्रे जात कही ईक ढाळ रे,
जे चतुर हुसी सो समझसी, लाभवरधन वचन रसाळ रे ।

ढुळावे हो गजसिंघ री छावौ महिल में, ग्रेह देसी में ग्रेह,
पूरीय बीजी हो ढाळ कही, इमी लालचंद ससनेह ।

कुंभकरण—रतनरासौकार कवि कुंभकरण का जन्म-नाम दलपत था । इनका जन्म नागोर के समीप भदोरा गांव में कवि माला सांदू के पुत्र ईसरदास के घर में हुआ था । इनके जन्मकाल के सम्बन्ध में कोई निश्चित संवत् ज्ञात नहीं है, फिर भी रतनरासौ के पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि ये रतलाम नरेश रतनसिंह के पुत्र रामसिंह और उसके पुत्र शिवसिंह के समय विद्यमान थे। कवि के रचे हुए दो ग्रंथ १ 'रतन रासौ' और २ 'जयचन्द रासौ' उपलब्ध हैं । 'रतन रासौ' तो महाराजकुमार रघुवीरसिंह और श्री काशीराम शर्मा के सद्प्रयत्नों से बहुत शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है । 'जयचन्द रासौ' की हस्तलिखित प्रति पाली जिले के मिरगेसर ग्राम में भोमदानजी सांदू के पास निजी सम्पत्ति के रूप में सुरक्षित है । 'रतन रासौ' के अनुसार कवि का रचनाकाल लगभग १७३२ के लगभग ठहरता है ।[1] शिवसिंह का शासनकाल सं० १७४० से सं० १७५२ है । 'रतन रासौ' की रचना इससमय से कुछ पूर्व रामसिंह के शासनकाल के अन्तिम समय में हुई थी । कवि के अनुसार इस रचना की समाप्ति में बारह वर्ष लगे, अतः इसका रचनाकाल संवत् १७३२ ही समीचीन जान पड़ता है ।

कवि की भाषा प्रौढ़ और संयत है । ग्रंथ में विविध प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है । 'रतन रासौ' का एक उदाहरण यहां देखिये—

लाज खितेति कुंकुम चढांय
सिव भक्त रतन रासौ पढ़ाय
रासौ अगाध सिव कर रतन, कुंभकरन कवि-इंद्र
कित स्रंगार सम इच्छाक छत्र, द्रढ़ सिध आनंद
चित चमत्कार सस्फुट वचन, अस्त्र सस्त्र चतुर्थ ध्रति
'सिवरतनसिंघ' रासौ सरस, श्रम विधांन सुन परि नृपति ।

वीर दुरगादास की प्रशंसा में कुंभकरण कृत दो गीत—

(१)

अबळघाट खट झाट दहवाट करत्तौ प्रसण
भिड़तां निसाट चर थाट भागौ
'दुरग' दिली जाय र दरकार जुध देखिया
लार संकर वहै प्यार लागौ । १
भीमड़ा तणै तट विकट घट भांजतौ
भोम भाराथ सिवनाथ भोळा
जोयवा खड़ा संकर सकत्त जेहड़ा
दोवड़ा तेवड़ा जूथ दोळा । २
पेखता फिरंता फिरे हूरां परी
खिले नारद सकत्त वीर खेळा
अवलियां लिए पैकंबरां अंबरां
महत है आसुरां सुरां मेळा । ३
वींभरै तरैं केई मीर वजरैं विकर,
नगाछ खग फरहरैं वीर ताळी
कहर घर रिणोही वीर हाका करै
अजेही भीमड़ा तीर वाळी । ४

(२)

ईळा ऊकटै काट है थाट भळै अभग
अकळ दोय वात संसार आखै

[1] 'रतन रासौ' के रचयिता का वंश-परिचय—काशीराम शर्मा, राजस्थान भारती, भा० ३, अं० ३-४ ।

राह हिंदू तणी साह 'औरंग' रुकै,
राह हिंदूआं तणी 'दुरग' राखै । १
खेघ चढिया घरा बेघ बिहूं खड़खड़
सुध्रम राखण कुळां जुगां सारूं
अजादा वेद री खूंद मेटण मतै
अजादा वेद री गह्यां मारूं । २
पटक रहिया घेंणू कटकता असपती
मुरधरा काज अर घरा मारी
पालटै तखत पण धरम नेंह पालटै
धरम री सरम करणोत धारी । ३
देवड़ां कूरमां अने हाडां दुगम
चमक चीतोड़पत दीध चांटी
'नींब' हर कमधजां चाळ बांधत नहीं
मुखां कलमा पढत घणा मांटी । ४

मान जती—कवि मान विजयगच्छीय जैन यति थे। इनके यति होने का उल्लेख कविराजा बांकीदास के 'वात संग्रह' में आया हुआ है—"मांनजी जती राज विलास नामरूपक रांणा राजसिंह रौ वणायौ"[1] इसके अनुसार कवि मान ने 'राज विलास' ग्रंथ की रचना की। इनका रचनाकाल सं० १७३० से १७४० है। 'राज विलास' उच्च साहित्यिक डिंगल की एक वीररस-प्रधान सुन्दर कृति है। कवि ने इस ग्रंथ में अपने समय के मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के जीवन-इतिहास का सुन्दर वर्णन किया है। महाराणा राजसिंह ने औरंगजेब के बढ़ते हुए अत्याचारों का बड़ी बहादुरी के साथ विरोध किया और संकटापन्न अवस्था में हिन्दू धर्म की रक्षा की। राणा का यही जीवन-वृत्त उक्त ग्रंथ में १८ विलासों में विभक्त किया गया है। कवि का राणा के समसामयिक होने के कारण ग्रंथ में वास्तविक घटनाओं का उल्लेख हुआ है। सही घटनाओं के समावेश के कारण साहित्यिक महत्त्व के साथ इसका ऐतिहासिक महत्व भी बहुत बढ़ गया है। औरंगजेब के विरुद्ध राणा की चढ़ाई का उदाहरण देखिये—

रांण चढ़े राजेस सहस पण बीस तुरग सजि
घुरत निसांननि घोख रवि सुढकिय हय खुर रजि
मयंगळ दळ मय मत्त घटा उट्ठी कि स्यांम घन
पयदळ सहस पचीस सज्ज सायुध सूरं तन

बांकीदास की ख्यात : पं० नरोत्तमदास स्वामी, पृ० ६७।

रथ अंत्रि सहस सस्त्रहि भरिय, कर हां गिनति परंत किहि
जग मज्झ कवन जननी जन्यौ, जंग आह जितै सुजिहि।

वृन्द—महाकवि वृन्द का पूरा नाम वृन्दावनदास था किन्तु 'रचना कलाप: में कवि ने उसे वृन्द ही रखा। ये शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रूपसी था जो बीकानेर राज्य के रहने वाले थे किन्तु सोलहवीं शताब्दी में वे जोधपुर राज्य के मेड़ता गांव में आकर बस गये। यहीं पर प्रौढ़ावस्था में इनके घर संवत् १७०० के आश्विन शुक्ला प्रतिपदा, गुरुवार को वृन्द का जन्म हुआ। इन्होंने अपने बाल्यकाल में काशी जाकर वहां के तारा नामक पंडित से साहित्य, वेदान्त आदि अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। काशी से लौटने पर मेड़ते में इनका बहुत सम्मान हुआ। जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह ने भी इनको कुछ भूमि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। धीरे-धीरे ये बादशाह औरंगजेब के दरबार में भी पहुंच गये। वहां इनकी अधिक प्रशंसा हुई।

संवत् १७३८ में किशनगढ़ के महाराजा मानसिंह ने इन्हें सम्मानित किया और संवत् १७६४ में यहीं के महाराजा राजसिंह ने अपने यहां बसा लिया।[1] कवि ने अपना शेष जीवन यहीं बिताया और अन्त में संवत् १७८० में यहीं पर उनका स्वर्गवास हो गया।

कवि वृन्द डिंगल व हिन्दी दोनों में ही कविता करते थे। हिन्दी साहित्य में भी इनके अनेक काव्य-ग्रंथ उच्च स्थान प्राप्त कर चुके हैं। डिंगल में लिखा 'वचनिका-स्थान' इनका बहुत ही ख्याति-प्राप्त ग्रंथ है। कवि ने संवत् १७६४[2] में इस ग्रंथ की रचना की जिसमें संवत् १७१५ में शाहजहाँ के पुत्रों—दारा, शुजा, मुराद और औरंगजेब के बीच दिल्ली की बादशाहत के लिए धौलपुर के पास सामूगढ़[3] में हुए युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में किशनगढ़ के महाराजा रूपसिंह ने दारा का पक्ष लेकर औरंगजेब के साथ बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया। इस युद्ध में उन्होंने अपना जो अपूर्व पराक्रम दिखाया उसी का कवि ने 'वचनिका' में सजीव चित्रण किया है। जैसी अद्भुत वीरता राजा ने दिखाई वैसी ही वीरतापूर्ण भाषा में

---

[1] 'रघुनाथरूपक गीतां रौ' में पुरोहित हरिनारायणजी द्वारा लिखित भूमिका, पृष्ठ ४।

[2] डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने इसका रचनाकाल सं० १७६२ माना है।

[3] औरंगजेब नामा : यदुनाथ सरकार, अनुवादक नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ ८६।

कवि ने उक्त रचना की है। वीर रस की मौलिक एवं ओजपूर्ण रचना वास्तव में पढ़ते ही बनती है।

वृन्द कवि के वंशज श्री जियालालजी ने 'रघुनाथ रूपक' की टीका के अन्त में महाकवि वृन्द की डिंगल कविता के कुछ गीतों को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है। उसी में से त्रिकुट-बंध गीत हम यहां नीचे दे रहे हैं।[1] कवि की ओजपूर्ण भाषा देखिये—

दळ दिखण मिळ दिल्ली दळां, वध बेध खेद दुहूं बळां।
धर लियण धूपट दियण धस मस, रूक रथ राजांन।
'अवरंग' संगर आहुरे, फव फौज गज धज फरहरे।
धर फतर हैवर धूज धर, मद झरर कुंजर सिर चमर।
नर निजर नाहर डर निडर, तन पहर बगतर छिलम छर।
हर समर हस वर कस कमर, धर सरध सर धर कर सिफर।
बद कँवर बीरत बांन॥

एक अन्य गीत के दो दोहले और देखिये—

मच्चै दिली रा चकत दिनी दिसां धमच्चकां मचै,
संभाळै कायरां धरां सूरां चढ़ै सोह।
धवै नाळां भड़ा भड़ी धड़ा धड़ी धूजे धरा,
छूटै बांणां गोळी रांमचंगिया छछोह॥ १
तड़ा तड़ी तठै बगतरां तणी तूटै कड़ी,
धमां धमी ऊठै घणां सेलां रा धमोड़।
झड़ा झड़ी जठै तरवारियां थी पड़ै झींक,
रमैं खगां महाराजा 'राजसिंह' राठौड़॥ २

महाराजा अजीतसिंह--अजीतसिंहजी का जन्म संवत् १७३५ चैत्र कृष्णा चतुर्थी को हुआ था। इनके पिता जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंहजी भी संस्कृत, ब्रजभाषा और डिंगल भाषा के बड़े अच्छे विद्वान थे। महाराजा का देहान्त अजीतसिंह के जन्म के कुछ दिनों पहले ही हो गया था। महाराजा के देहान्त होने पर वीर दुर्गादास, जो उनके विश्वस्त अनुचरों में थे, अजीतसिंह को काबुल से मारवाड़ ले आये और वयस्क होने तक इन्हें छिपा कर रखते हुए इनका पालन-पोषण किया। वयस्क होने पर ये मारवाड़ के अधिपति घोषित कर दिये गये। इसके पश्चात् इनका अधिकांश समय युद्धों में ही बीता। अन्त में संवत् १७८१ में ये अपने जनानखाने में सोते हुए अपने पुत्र बख्तसिंह द्वारा मार डाले गये।[1]

महाराजा अजीतसिंह वीर, साहसी और स्वाभिमानी नरेश होने के साथ विद्वान और अच्छे कवि भी थे। उनके रचे निम्न ग्रंथ हैं जिनकी हस्तलिखित प्रतियां पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में विद्यमान है।

(१) गुण सागर (२) गज उद्धार (३) दुर्गापाठ भासा (४) निर्वाण दूहा। इनके अतिरिक्त इन्होंने अनेक फुटकर दूहे तथा गीत भी लिखे हैं जो अपनी सरलता एवं सरसता के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता की भाषा प्रसाद-गुणमयी साधारण बोलचाल की भाषा है। प्रवाहमयी होने के कारण इसमें विशेष आकर्षण है। 'गज उद्धार' में गज की करुण पुकार का एक उदाहरण देखिये--

उंडे जळ में ले चल्यौ, गज कुं विकटौ ग्राह।
तब ततकार संभारीयौ, राधा नागर नाह॥
जिण सांई पैदा कियौ, सो मो पास सदाय।
अलख अपंपर ईसवर, सो क्यूं अळगौ थाय।
जळ आयौ गज पीठ पर, डर उपज्यौ मन मांहि।
ग्राह राह वैरी भयौ, जळ उडे ले जांहि।

लोक-भाषा का प्रयोग इनकी द्वारिका यात्रा के सम्बन्ध में लिखे फुटकर दोहों में देखिये—

और सवै आंणंद हुओ, एक बात नह चाह।
'कील्यांणो राजण तणो, मुवो द्वारिका मांह॥
सिरदारां साथे हुती, नारी परतग दोय।
ठाली भूली रह गई, साथ गई नह कोय॥
ईते मरगे राह में, मांणस तीन हजार।
ऊंट तुरंगम बैल री, कर कुण सकै सुमार॥

कीर्तिसुन्दर—जैन विद्वानों ने स्व-रचनाओं के अतिरिक्त अनेक संग्रहों का भी निर्माण कर साहित्य की सतत् सेवा की

---

[1] इस सम्बन्ध में श्री जियालालजी ने 'रघुनाथरूपक' की टीका के अंत में एक नोट दिया है—'हमारे प्रपिता 'वृन्द सतसई' के कर्ता कवि वृन्दजी भी डिंगल कविता करते थे, जिनका बनाया हुआ यह 'त्रिकुट-बंध' गीत कृष्णगढ़ महाराजा श्री राजसिंहजी का 'सुलतांनी जंग' अर्थात् आजमशाह और मुअज्जम में युद्ध हुआ, इसका भाव है, और जैसा कि ऊपर दरसाया गया है—इस युद्ध का वृन्दजी ने 'सत्यरूपक' ग्रंथ बनाया। यह युद्ध धौलपुर के 'जाजुवा' नामक मैदान में संवत् १७६४ में हुआ।"

[1] जोधपुर राज्य का इतिहास : गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृष्ठ ६००।

है। इन संग्रहों में 'कथा संग्रह' आदि ग्रंथ मिलते हैं। ऐसे ही एक कथा संग्रह 'वाग्विलास' का निर्माण करने वाले जैन मुनि कीर्तिसुन्दर थे। कीर्तिसुन्दर राजस्थान के प्रसिद्ध कवि-वर महोपाध्याय के शिष्य थे। 'वाग्विलास' में कथा सम्बन्धी कुछ संस्कृत श्लोकों के साथ राजस्थानी गद्य-पद्य में अनेक सुन्दर कथा प्रसंग दिये हुये हैं। इसके अतिरिक्त कवि के निम्न ग्रंथ भी प्राप्त हैं -

१–माकड़रास, २–अभय कुमारादि, ३–ज्ञान छत्तीसी, ४–कौतुक पच्चीसी, ५–साधुरास, ६–चौबोली चौपाई, ७–अवंति सुकुमार चौढ़ाळिया आदि। 'वाग्विलास' ग्रंथ के अन्त में उसका निर्माणकाल आदि नहीं दिया हुआ है। परन्तु अन्य ग्रंथों को देखने से उसका रचनाकाल संवत् १७५० से १७६५ के मध्य ठहरता है। विनोदपूर्ण रचना 'मांकड़रासौ' का उदाहरण देखिये—

बोलंता मांहो मैं बजरैं, निश्रांमो हिव आयो नजरैं।
सौड़ मांहै आवैं सळवळतो, वळैं पलक में पूठा वळतो ॥
नेठ पकड़तां हाथैं नावैं, जोतां हीज कठै ही जावैं।
फेरंता कर केइक फिसिया, घर में केइक कुमळे घुसिया ॥
बाहर घालि वळैं केइ वळिया, 'मांकण' हिवैं घणा हिज मिळिया।
पीवैं लोही केइक पूठैं, ऊंघांणो सो भड़की ऊठैं ॥

द्वारकादास—ये दधवाड़िया गोत्र के चारण और भक्ति रस के प्रसिद्ध ग्रंथ 'रांमरासौ' के रचयिता प्रसिद्ध कवि माधोदास दधवाड़िया के पुत्र थे। ये अपने समय के जोधपुर नरेश अजीतसिंहजी के कृपापात्र थे और उनकी फौज में मुसाहिब के पद पर आसीन थे। इस समय उनकी प्रतिष्ठा बहुत थी। पिता की भांति इनमें भी काव्य-शक्ति प्रस्फुटित हुई और आगे चल कर डिंगल में सुन्दर रचनायें कर राजस्थानी के श्रेष्ठ कवियों में स्थान प्राप्त किया। इन्होंने महाराजा अजीतसिंहजी के जीवनकाल में ही संवत् १७७२ में 'महाराजा अजीतसिंह री दवावैत' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें महाराजा के शौर्य, पराक्रम और वैभव का विशिष्ट वर्णन है। इसकी समाप्ति पर रचनाकाल के सम्बन्ध में स्वयं कवि ने लिखा है—

दवावैत द्वादस हुआ, तीन कवित्त दोय गाह।
सतरे संवत् बहोतरे, कवि द्वारे कहियाह ॥

इसी ग्रंथ पर प्रसन्न होकर अजीतसिंहजी ने इन्हें जयतारण परगने का बासनी गांव प्रदान किया। इनकी भाषा सरल एवं आकर्षक है। सर्वत्र प्रसाद गुण ही छाया हुआ है। भाषा का उदाहरण यहाँ देखिये—

इनके खेहां के डंबर उनके बद्दल के आडंबर।
इनके नोबत के टंकारे, उनके गाज घनघोरे।
इनके भालों का भाव, उनके बीज के सळाव।
इनके पंचरंगे वांने, उनके इंद्रधनक तांने।
इनके हस्तियां के हलके, उनके एरावत तुलके।
इनके स्वेत दंत, उनके जेही बुक पंत।

उपरोक्त ग्रन्थ के अतिरिक्त कवि के अनेक फुटकर गीत भी पाये जाते हैं। गीतों की रचना साधारण है। भाषा बोल-चाल की सरल भाषा है। महाराजा अभयसिंह के सम्बन्ध में कहा हुआ एक गीत देखिये—

सोहे सांमळी घड़ सुघड़ सहेली,
वांछंती वर समर वहेली।
चौरंग सीलहै फाड़ कुच चौळी,
वाजंद्रे 'अभमाल' विरोळी ॥ १
सार सिंगार छतीसूं सज्जैं,
ओप टोप पगूं घट आंब्रजैं।
विचित्र घड़ा इण वैर विलूंधै,
रिण कण-कण कीधी रस रूळूधै ॥ २
नेवर पाखर रोळ नचंती,
संग 'सिर विलंद' तणै सोभंती।
रोळी 'अजण' तणै रंग रमणी,
गहु खोसाड़ गई गय गमणी ॥ ३
ओप टोप गूंघट तोड़ावै,
माड हाड भागा मचकावै।
'गजन' हरा आगै रण गहली,
चतुरंगण हा हा कर चल्ली ॥ ४
लड़खड़ती पडती लालरती,
मेल मांण सिर 'संबर' मरती।
गी 'अभमल' अगै पड़ गळियां,
मरमट मूंक मरद्दां मिळियां ॥ ५
जंत जुअर बडो जुध जीपै,
दळ गुजरात अमल धर दीपै।
गूड मलार राग सुर गवणी,
पेस करी 'द्वारै' पालवणी ॥ ६

हमीरदान रतनू—मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य में अपनी विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण रचनाओं के कारण हमीरदान रतनू का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये रतनू शाखा के चारण थे और जोधपुर राज्यान्तर्गत घड़ोई ग्राम के निवासी

थे। बचपन से ही ये कच्छभुज में रहते थे। ये कच्छभुज के महाराव श्री देशलजी प्रथम (सं० १७७४ से सं० १८०८) के महाराज कुमार लखपतजी के कृपापात्र थे। अपनी रचना में कवि ने अपना स्वयं का परिचय देते हुए अपने आश्रयदाता के सम्बन्ध में भी लिखा है—

मुरधर देस सिवाना नगर मध्य
उतन घड़ोई प्रसिद्ध अमीर।
चारण 'रतनू' कवियण चावौ,
हरि रौ चाकर नांम 'हमीर'॥
जाड़ेचा सूरज राव जळवट,
भुज भूपत लखपत कुळ भांण।
त्रिय ग्रंथ कीध प्रजाची तिण रै,
जोतिखि पिंगळ नांम सब जांण॥

इनके प्रसिद्ध डिंगल कोश 'हमीर नांममाळा' की रचना संवत् १७७४ में हुई थी अतः इनके काव्य-सृजन का काल भी इसी के आसपास माना जाना चाहिए। इनके रचे लगभग १७५ ग्रंथ बताये जाते हैं जिनमें निम्नलिखित ग्रन्थ मुख्य हैं—

१–लखपत पिंगळ, २–पिंगळ प्रकास, ३–हमीर नांममाळा ४–जदवंस वंसावळि, ५–देसळजी री वचनिका, ६–जोतिस जड़ाव, ७–ब्रह्माण्ड पुरांण, ८–भागवत दर्पण, ९–चाणक्य नीति, १०–भरतरी सतक, ११–महाभारत रौ अनुवाद छोटौ व बड़ौ।

ये राजस्थानी के उच्च कोटि के विद्वान और श्रेष्ठ कवि थे। खेद है कि राजस्थानी साहित्य के इतिहास सम्बन्धी अब तक के प्रकाशित ग्रन्थों में इनको समुचित स्थान प्रदान नहीं किया गया। इनके ग्रंथों में 'लखपत पिंगळ' तथा 'पिंगळ प्रकास' दोनों ही छंद-शास्त्र के सुन्दर ग्रंथ हैं। 'लखपत पिंगळ' कवि का सबसे अधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसका निर्माण संवत् १७९६ में हुआ था—

संवत सत्तर छिनुअौ, पणा तस वरस पटंतर।
तिथि उतम सातिम्म, वार उतिम गुरू वासर।
माह मास व्रतमांन, अरक बैठौ उत्तरादणि।
सुकळ पख्य रिति सिसिर महा सुभ जोग सिरोमणि।
बिसतार गाह मात्रा वरण सुजि पसाउ सर सखिरौ।
कहियौ 'हमीर' चित चोज करि पिंगळ गुण लखपति रौ॥

ग्रन्थ की भाषा सरल और प्रवाहयुक्त है। कवि ने इसमें छंदों एवं गाहों के लक्षण देकर सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। वस्तुतः यह छंदों का श्रेष्ठ ग्रन्थ है। छंद शास्त्र का ही इनका दूसरा ग्रंथ 'पिंगळ प्रकास' है जो 'लखपत पिंगळ' से पहिले समाप्त कर लिया गया था। ग्रंथ के अन्त में कवि ने इसका रचनाकाल दिया है—

संवत सतरह अड़सठै, माह सीत रित मास।
जिहड़ौ जोड़ै जांणीयौ, एहड़ौ कीअौ अभ्यास।
सुणतां पुणतां सीखतां, अधक होइ आणंद।
कहीयौ ग्रंथ हमीर कवि, गुण ग्राहग गोविंद।

'अचळदास खीची री वचनिका' व 'रतनसिंघ री वचनिका' की भांति हमीरजी ने भी अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में 'देसलजी री वचनिका' की रचना की। यह पूर्ववर्ती वचनिकाओं की भांति गद्यबद्ध रचना न होकर डिंगल पद्य में ही हैं। ऐतिहासिक काव्य होने के कारण इसका भी अधिक महत्त्व है। इसमें संवत् १७८५ की होलिका के समय सरबुलन्द व कच्छ के महाराव देशल के बीच घोर युद्ध हुआ जिसमें देशल ने विजय प्राप्त की, इसी का ओजस्वी भाषा में सुन्दर वर्णन है। भाषा का प्रवाह देखते ही बनता है। निम्न उदाहरण में शब्द-चयन का चमत्कार देखिये—

भळाभळ कूंत खिवे अदभूत, धौळै दिन वेढ़ करै अविधूत।
हुए असुरांण घणां खळ हांण, सांमी दस नांम रचै घमसांण॥
लथोबथ लोह झपेट लपेट, खसै दळ मूंगळ आखळ खेट।
नागा करिवा वर खाग निनाग, कटै धड़ बेहड़ पग्ग करग्ग॥
कड़ाकड़ जूट बिछूट कटक्क, तड़ातड़ि त्रूट मित्रां मसतक्क।
धमंचक चोट अणीं पड़ि धार, तड़फड मीर फड़फड़ तार॥

ग्रंथों के अतिरिक्त कवि के अनेक फुटकर गीत भी उपलब्ध हैं जिनकी भाषा बड़ी सरस एवं चलती हुई है।

वीरभांण—अठारहवीं शताब्दी में राजस्थानी की श्रेष्ठ रचनाएँ प्रदान करने वालों में कवि वीरभांण का नाम भी अग्रगण्य है। ये भी जोधपुर राज्य के घड़ोई ग्राम के रहने वाले रतनू शाखा के चारण थे और हमीर रतनू के ही समसामयिक थे।[1] इन्होंने डिंगल के ख्यातिप्राप्त प्रसिद्ध ग्रंथ 'राजरूपक' की रचना कर साहित्य की ही अमूल्य सेवा नहीं की अपितु इतिहास को भी एक अमूल्य देन दी है। ग्रन्थ में तिथि अनुसार अनेक ऐतिहासिक धटनाओं पर विशद वर्णन होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व भी बहुत अधिक है। इस ग्रंथ

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य, डा० मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ १७८

में जोधपुर के महाराजा अभयसिंह और गुजरात के सूबेदार सर बुलन्दखां के बीच अहमदाबाद पर हुए युद्ध (सं. १७८७) का वर्णन है। इस युद्ध में कवि वीरभांण स्वयं महाराजा अभयसिंह के साथ थे अतः उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में अहमदाबाद के युद्ध का अपनी आंखों देखा वर्णन किया है। इस ग्रंथ से उस समय की राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अहमदाबाद के युद्ध के अतिरिक्त कवि ने उक्त ग्रन्थ में महाराजा जसवंतसिंह और महाराजा अजीतसिंह की जीवन घटनाओं के ठीक-ठीक संवत् और स्थान-स्थान पर काम आने वाले वीरों व सामंतों के नाम भी दिए हैं। इसके अनुसार यह स्पष्ट है कि कवि घटनाओं के समय उनके साथ उपस्थित अवश्य ही रहा होगा। डा० मोतीलाल ने इनका जन्म संवत् १७४५ बताया है[1] जो इस तथ्य से उचित प्रतीत नही होता। इनका जन्म अवश्य ही महाराजा जसवंतसिंह के अन्तिम काल के निकट ही हुआ समीचीन जान पड़ता है।

ग्रंथ की भाषा सरल होते हुए भी पूर्ण साहित्यिक डिंगल है। पूरा ग्रंथ ४६ प्रकाशों में विभक्त है। निम्न पंक्तियों में कवि की भाषा देखिये—

परम अंस रवि वंस, अवर दुरवंस अभायौ।
हंस वंस अवतंस, पुंस परताप सवायौ।
तेज पुंज आजांनबाहु, मुख कंज सकोमळ।
मंजु कांम समरूप अंज गज बंध महाबळ।
अणकोट कोट ऊथापणौ, आयां थापण ओटरां।
पेखियौ सांम चढ़ती प्रभा, सांमंतां नवकोटरां॥

करणीदान—जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के अहमदाबाद के युद्ध का वर्णन करने वालों में कवि वीरभांण के साथ ही महाकवि करणीदान का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये कविया शाखा के चारण मेवाड़ राज्य के शूलवाड़ा ग्राम के निवासी थे। ये जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के आश्रित कवि थे। 'सूरज प्रकास' जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना संवत् १७८७ में समाप्त करने के कारण इनका रचनाकाल संवत् १७८७ के आसपास ही ठहरता है। ऐसा कहा जाता है कि

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १७८।

महाराजा अभयसिंह ने अहमदाबाद के युद्ध में जाने से पूर्व अपने तीन मुख्य कवियों को युद्ध का वर्णन करने की आज्ञा दी थी, जिनमें कविराजा करणीदान, वीरभांण रतनू तथा बखता खिड़िया थे। वीरभांण ने पूर्वोक्त 'राजरूपक' ग्रन्थ की रचना की। बखता खिड़िया ने १६५ छप्पय कवित्तों में युद्ध का वर्णन किया, परंतु कविराजा करणीदान ने अपने ग्रन्थ 'सूरज प्रकास' में महाराजा के सर बुलन्दखां के साथ हुए युद्ध के वर्णन का उद्देश्य लेकर इनके पूर्वजों का भी इतिहास दिया है। इस ग्रंथ में अहमदाबाद के युद्ध का वर्णन अधिक विस्तार के साथ किया गया है।

'सूरज प्रकास' 'राजरूपक' की भांति महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ तो है ही परन्तु वह साहित्य की दृष्टि से भी अधिक महत्त्वशाली है। करणीदानजी भी वीरभांण की तरह युद्ध में महाराजा के साथ उपस्थित थे, इसीलिए युद्ध का आंखों देखा वर्णन बड़ा सजीव बन पड़ा है। ग्रंथ के प्रारम्भ में महाराजा अभयसिंहजी के पूर्वजों का संक्षिप्त वर्णन है जिसमें सर्व प्रथम सूर्य वंश की वंशावली और उसके साथ रामायण की कथा लिखी है। रामायण की कथा के पश्चात् राम के पुत्र कुश से लेकर राजा पुंज तक की वंशावली देकर राजा जयचंद से अजीतसिंहजी तक के राजाओं का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है।

ग्रन्थ की रचना में कवि को एक वर्ष की अवधि लगी जिसका उल्लेख कवि ने स्वयं ग्रन्थ के अन्त में किया है—

सत्र से समत सत्यासियं, विजयदसमी सनि जीत।
वदि कातिग गुण वरणियौ, दसमी वार अदीत।
वणियौ ग्रुण इक वरस विचि, उकति अरथ अणपार।
छंद अनुस्टप करिउ जन, सत पंच सात हजार।
'अभा' तणी सुभ नजर अति, वधि छक सुकवि विधांन।
कुरबदांन लहियौ अधिक, कहियौ करणीदांन॥

'सूरज प्रकास' वस्तुतः डिंगल भाषा का एक उच्च कोटि का ग्रंथ है। ग्रंथ के अध्ययन से पता चलता है कि कविराजा का राजस्थानी भाषा पर तो पूर्ण अधिकार था ही परन्तु इसके साथ-साथ उन्हें अरबी, फारसी व संस्कृत का भी उत्तम ज्ञान था। उक्त ग्रन्थ में कवि ने पात्रों के चरित्र-चित्रण और वस्तु-वर्णन में अपनी अद्भुत काव्य शक्ति का परिचय दिया है। अलंकार एवं रस-विधान भी यथोचित है। इस ग्रंथ में सभी रसों का समावेश है पर करुण रस किसी स्थान पर नहीं

मिलता। सम्भवतः वीर रस की इस श्रेष्ठ रचना में करुण रस को सम्मिलित करना कवि को अभीष्ट न था। भाषा का प्रवाह एवं चमत्कार निम्न उदाहरण में देखिये—

सुणि 'रांमो' सबळ रौ, एम बोलियौ अड़ी खंभ।
विड़ंग ग्रोरि दळ 'विलंद' जवन खग हणू रूप जम।
घण झेलूं खग घाव, सांम निज कांम सुधारूं।
सिर समपूं संकर नूं, रंभ चौसरि गळ धारूं।
जग तणौ मोह माया तजूं, जिम गोपीचंद भरथरी।
चढ़ि रथां ग्रमरपुर मझि चढ़ूं, ग्रमर कीत ग्रापरी॥

कवि ने इसी विस्तृत ग्रन्थ का सारांश लेकर 'विरद-संणगार' नामक छोटा ग्रंथ तैयार किया और महाराजा को दरबार में सुनाया। महाराजा इसे सुन कर बहुत अधिक प्रभावित हुए और कवि को अधिकाधिक सम्मान प्रदान किया। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त 'जतीरासा' तथा 'अभय भूषण' इनके दो उत्तम ग्रंथ और मिलते हैं। 'अभय भूषण' का एक सवैया देखिये—

ऐ न घटा तन ग्रांन सजे भट, ऐ न छटा चमके छहरारी।
गाज न बाजत दुंदुभि ऐ, बक पंत नहीं गज दंत निहारी॥
ऐ न मयूर जु बोलत हैं, बिरदावत मंगन के गन भारी।
ऐ नहिं पावस काळ ग्रली, 'ग्रभमाल' 'ग्रजावत' की ग्रसवारी॥

ग्रंथों के अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर करणीदानजी के लिखे अनेक गीत भी मिलते हैं जिनमें इनका कवित्व स्पष्ट रूप से झलकता है।

खेतसी सांदू—ये जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के आश्रित थे और कविराजा करणीदान और वीरभांण की भांति ये भी अहमदाबाद के युद्ध में महाराजा के साथ थे। ये सांदू शाखा के चारण और नाथूसिंह सांदू के पुत्र थे। डा० मोतीलाल मेनारिया ने भी इन्हें सांदू बतलाया है। परंतु श्री अगरचंद नाहटा ने अपने लेख 'भाषा भारत की ऐतिहासिक प्रशस्ति'[1] में एक प्रति का उल्लेख कर 'खेतसी' का 'गढ़वी खिड़िया' होना लिखा है। खेतसी के रचित प्रसिद्ध ग्रंथ 'भाषा भारत' की उदयपुर वाली प्रति में इनका सांदू होना ही लिखा है और कविराजा करणीदान के 'सूरज प्रकास' से भी यही बात पुष्ट होती है—

सुतण 'नाथ' 'खेतसी', वदै सांदू खग वाहण।
'वखतौ' खिड़ियौ वदै, रचूं 'ग्रमरा' जैही रण॥

[1] राजस्थान भारती : सादूंल राजस्थानी रिसर्च-इन्स्टीटयूट बीकानेर, अंक १-२, वर्ष ६।

कवि ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'भाषा भारत' में महाभारत का राजस्थानी में सुन्दर पद्यानुवाद किया है। इसका रचनाकाल संवत् १७६० के आसपास माना जाता है। ग्रन्थ की समाप्ति सं० १७६० में हुई। इसका उल्लेख कवि ने स्वयं अपने ग्रंथ में किया है—

सतरमै सांमंत वरस नेउवै वसेखण।
कवि सुर वरखे करी कथ भारथ संपूरण।
वेसाखह वदि विवध तिथ एकम ग्रालोकत।
भोमवार निरधार निरत रित राव स चाहत।
उतरांण भांण वरनन ग्रगम दिस दिखण्ण विचारि उर।
कवि 'सीह' परम महिम कही कुर पंडव क्रम जुत दुकर।

कवि का पूरा नाम खेतसिंह था परंतु कविता में इन्होंने अपने नाम के अन्तिम दो अक्षरों का ही प्रयोग किया है। 'भाषा भारत' डिंगल की श्रेष्ठ रचनाओं में से है। इसकी भाषा पूर्ण साहित्यिक डिंगल एवं प्रौढ़ है। इसमें मोतीदांम, हनूफाळ, दूहा, कवित्त, चौपाई आदि अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा के उदाहरण के लिए निम्न कवित्त देखिये—

तर भेळप सुख मिळत, निसा भेळप तप नाहिन।
जळ भेळप मळ घटत, सतह पुरखां चित चाहिन।
पंडित भेळप प्रगट, मनह हरिनांम पियासै।
गुणीयां भेळप गुणी, बिमळ बुद्धि बधण बिकासै।
महिमा समंद जादव निमळ, देखत ग्रन ग्राणंदीयौ।
कथी सीह हठी भेळप करे, भाखा दध पारह भयौ॥

पीरदांन लालस—ये लाळस गोत्र के चारण जोधपुर राजयन्तर्गत शेरगढ़ परगने में जुड़िया गांव के रहने वाले थे। इनके जन्मकाल एवं माता-पिता के सम्बन्ध में कोई विशेष विवरण ज्ञात नहीं है। ये एक भक्त थे। इनके भक्ति सम्बन्धी ग्रंथों की प्रति हमारे संग्रह में है जिसके अन्त में स्वयं पीरदांन लाळस के हाथ का सांइया झूला रचित एक गीत लिखा हुआ है जिसमें उसका लेखनकाल संवत् १७६२ लिखा है। इससे संवत् १७६२ में उनका जीवित होना प्रकट होता है। इनका रचनाकाल भी इसी संवत् के आसपास माना जा सकता है। इनके ग्रन्थों का एक संग्रह 'पीरदांन लाळस ग्रन्थावली' के नाम से बहुत शीघ्र ही सादूंल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीटयूट, बीकानेर, प्रकाशित कर रहा है। कवि ने साधारण बोलचाल में ही शान्तरस की सुन्दर रचना की है। निम्न उदाहरण में इनकी भक्ति-भावना के साथ कविता-शैली देखिए—

भला तूझ उबारण अयौ जगदीस जुरारी
नरहर ग्रुह हरनाथ निमौ निकळंक बिजारी।
कन्हैया कांन्हुम्रा निमौ निकळंक नरसेर
ग्वाळ निमौ ग्वाळिया, साच सार्थं सारंगधर।
राजि नां किसी परि रीझवां, राज वडा राधारमण
'पीरियौ' तूझ दासै प्रभु, मूझ निवाजै महमहंण॥
(ग्रलख ग्राराध)

ग्रठारहवीं शताब्दी में भी इतने ग्रधिक कवि हुए हैं कि सब का क्रम से परिचय देना सम्भव नहीं होता ग्रतः ग्रब हम इस शताब्दी के शेष कवियों का उनके रचनाकाल के साथ नामोल्लेख मात्र कर रहे हैं। इस शताब्दी के ग्रन्य कविगण— खेतसी लाळस (सं० १७००), किसनो ग्राढ़ौ दुरसावत (सं० १७०२), खीमराज दधवाड़िया (सं० १७०५), हरिदास सिंढ़ायच (सं० १७०५), बल्लू महड्ड (सं० १७०५), महेस-दास ग्राढ़ौ (सं० १७१०), डूंगरसी (सं० १७१०), महाराजा करणसिंह (सं० १७१५-२६), ग्रासकरण (सं० १७१५), पीरदांन ग्रासिया (सं० १७१५), जिनसमुद्र सूरि (सं० १७२०), मतिसुंदर (सं० १७२४), हेमराज (सं० १७२६), मोहनलाल (सं० १७२६), कुसळधीर (सं० १७२७), मथेरन उदयचंद (सं० १७३१-६५), मथेरन जोगीदास (सं० १७३१-६२). रुगौ मूथौ (सं० १७४०-५०). वीर दुर्गादास (सं० १७४०-६०), नाथौ सांदू (१७४५-६०), ईस्वरदास (मं० १७६४), कम्मा नाई (सं० १७७०), वख्ताजी खिड़िया (सं० १७८०-८५), कुसाळचंद्र काळा (सं० १७८१), नैणसी (सं० १७८६), वरजूबाई (सं० १७८७-९०), भाखसी लाळस (सं० १७८८), जोधराज (सं० १७८५), टोडरमल (स० १७९७)।

काल-निर्धारण के समय हम यह निश्चयपूर्वक कह ग्राये हैं कि राजस्थानी साहित्य की मध्यकालीन परम्परा लगभग १९ वीं शताब्दी की समाप्ति तक निरन्तर रूप से पाई जाती है। यद्यपि इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में साहित्य के वर्ण्य विषय एवं शैली में कुछ नवीनता के दर्शन हो जाते हैं, फिर भी मध्यकालीन विशेषतायें तो इस शताब्दी की समाप्ति के बाद तक भी पूर्ण रूप से मिलती हैं। ग्रब हम यहाँ मध्यकाल की इस ग्रन्तिम (उन्नीसवीं) शताब्दी के कवियों व उनके द्वारा रचित रचनाग्रों का परिचय देंगे।

पहाड़खां ग्राढ़ा—ये ग्राढ़ा शाखा के चारण, जोधपुर राज्य के पांचेटिया ग्राम के निवासी थे ग्रौर जोधपुर के महाराजा विजयसिंह ग्रौर बखतसिंह के समकालीन थे। इन्होंने ग्रपना ग्रधिकांश समय रियां ठाकुर शेरसिंहजी के पास रह कर ही बिताया। इन्होंने बादर ढ़ाढ़ी के प्रसिद्ध ग्रंथ वीरमायण की घटना के ग्राधार पर 'गोगादे रूपक'[1] काव्य ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थ में कवि द्वारा रचनाकाल ग्रादि कहीं भी दर्शाया नहीं गया है फिर भी ग्रन्य तथ्यों के ग्राधार पर कवि का रचना-काल संवत् १८०५ से १८१० तक माना जा सकता है। उक्त ग्रन्थ में राव वीरमदे के पुत्र गोगादे ग्रौर जोहियो के नेता दला के मध्य हुए युद्ध का वर्णन है। गोगादे ने ग्रपने पिता वीरमदे की मृत्यु का बदला लेने के ग्रभिप्राय से ही दला से युद्ध किया था। इस ग्रन्थ में मोतीदाम ग्रौर त्रोटक छंदों का ही प्रयोग हुग्रा है। ग्रन्थ की भाषा साहित्यिक है, शब्द-सौष्ठव देखते ही बनता है। निम्न उदाहरण देखिये—

उडै रज डंमर व्योम ग्रथाह, मिळै निस जांणक भाद्रव माह।
दलं कद वीरम हूंतायदाय, उगंतां सूर विस लियौय ग्राय।
धुबै पड़ रोस ग्ररारक धाक, हुबो-हुब होय चहुंबळ हाक।
डमंकय वाहर बाहर ढोल, खेगां जड जीण दुबागाय खोल।

उक्त ग्रंथ के ग्रतिरिक्त भिन्न-भिन्न ग्रवसर पर पहाड़खां के ग्रनेक फुटकर गीत लिखे हुए प्राप्त हैं। गीतों की भाषा में ग्रोज एवं लावण्य है। ग्राउवे के ठाकुर कुशलसिंह ग्रौर कवि के ग्राश्रयदाता शेरसिंह के मध्य जोधपुर राज्य के विषय को लेकर परस्पर द्वन्द युद्ध हुग्रा। इस युद्ध में दोनों ही वीर वीर-गति को प्राप्त हुए। इस सम्बन्ध में कवि ने एक सुन्दर गीत लिखा है। इसका प्रथम एवं ग्रन्तिम दो द्वाले देखिये—

वडा बोलतौ बोल, बातां घणी बणातौ,
जोम छक जणातौ टसक जाभी।
'सदारौ' ग्रग्राजै 'सेर' ऊभौ समर,
'मधारा' हरारा ग्राव माभी॥ १
×
सता रा दिली ग्रांबेर चीतोड़ सूं,
विढण कुण कुंवारी धड़ा वरसी।
...विचै तांम ग्रधरात रो,
कांम पड़सी तरै याद करसी॥ २१

[1] राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा प्रकाशित हो चुका है

जूझ रो भार बिहूँवां भलो झलियो,
निज बचन तोल साचां निभायो।
'हरारौ' सती संग सतीपुर हालियो,
मालियौ 'सेर' प्रम जोत मांहै ।। २२

बहादुरसिंह—बहादुरसिंह राठौड़ राजपूत थे। ये किशनगढ़ राज्य के संस्थापक महाराजा कृष्णसिंह के वंश में महाराजा राजसिंह के पुत्र थे। हिन्दी के श्रेष्ठ भक्त कवियों में अपना नाम रखवाने वाले कवि नागरीदास (सांवतसिंह) इन्हीं के बड़े भाई थे। राजसिंह की मृत्यु (सं० १८०५) पर बादशाह अहमदशाह ने सांवतसिंह को किशनगढ़ का राजा घोषित कर दिया। परंतु सांवतसिंह इस समय दिल्ली में था अतः उसकी अनुपस्थिति में बहादुरसिंह स्वयं किशनगढ़ का राजा बन गये। इन्होंने अपनी बहादुरी और चतुराई से ३३ वर्ष तक अर्थात् सं० १८०५ से सं० १८३८ वि० तक राज्य किया।

महाराजा को डिंगल भाषा से प्रेम था। वे स्वयं डिंगल में कविता किया करते थे। इनकी लिखी 'रावत प्रतापसिंघ म्होकमसिंघ हरीसिंघोत रीं वात' जो एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक वार्ता है, उपलब्ध है। डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने भी अपने राजपूताने के इतिहास में इसका उल्लेख किया है।[1]

उक्त वात में देवलिया रावत हरीसिंह के पुत्र प्रतापगढ़ के संस्थापक रावत प्रतापसिंह तथा इनके अनुज म्होकमसिंह का वीरतापूर्ण चरित्र-चित्रण है। रावत प्रतापसिंह का प्रतापगढ़ का शासनकाल संवत् १७३० से १७६४ माना जाता है।[2] बहादुरसिंह इनके परवर्ती काल में हुये, अतः स्पष्ट है कि ये उनकी वीरता से प्रभावित थे।

'रावत प्रतापसिंघ म्होकमसिंघ हरीसिंघोत री वात' वीरचरित नायकों की विलक्षण वीरता पर आधारित एक वर्णनात्मक कथा है। वार्ता में सर्वप्रथम प्रतापसिंह का श्रेष्ठ शासक के रूप में चित्रण है। इसके पश्चात् म्होकमसिंह की वीरतापूर्ण घटनाओं का वर्णन होने के कारण वार्ता में वीर रस का परिपाक पूर्ण रूप से हुआ है। कवि ने ओजस्वी भाषा में धाराप्रवाह के रूप में अनेक गीत, दूहे और कवित्त लिख दिए हैं। भाषा की प्रौढ़ता एवं सुन्दर शब्द-सौष्ठव के कारण वीर घटनाओं का चित्रण बड़ा सजीव बन पड़ा है। सम्पूर्ण रचना गद्य पद्य दोनों में ही है। इसके एक कवित्त का उदाहरण देखिए—

बजै झाट बीजळां, काटि पड़ कंध बिछूटै।
तड़िछ उठ घट तठै, जोंम धक हूता जूटै।
अमोरामा आछटै, छोह उपटै छछोहा।
मिटै घटै नह मरट, लहै चहै गळ लोहा।
अवनाड बीर साहस अधिक, दुहूं तरफां छक दाखवै।
धड़ भिड़ै देख पड़ियां धरा, वाह वाह सिर आखवै।।

महाराजा बहादुरसिंह ने इस 'वात' के अतिरिक्त कुछ फुटकर गीतों की रचना भी की है। गीतों की भाषा मंजी हुई है। इनमें भी ओज गुण की प्रधानता है।

ब्रह्मदास- ब्रह्मदास के जन्म का नाम विसनदांन (विष्णुदान था)। इन्होंने जोधपुर राज्य के माड़वा नामक ग्राम में बीठू शाखा के चारण जगा के घर में जन्म लिया था। इनके जन्मकाल के सम्बन्ध में कोई विशेष विवरण ज्ञात नहीं है। इन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत पालन किया और आगे चल कर दादूपंथी साधु बन गये। इनके गुरु का नाम हरिनाथजी था। साधु होने के पश्चात् इन्होंने अपना समय हरि-भजन व शास्त्र-श्रवण में ही व्यतीत किया। ये राजस्थानी के अच्छे कवि भी थे। अपनी भक्ति-भावना को इन्होंने अपनी भगतमाला में सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है। इनका जोधपुर के महाराजा विजयसिंहजी के राज्यकाल में विद्यमान होना पाया जाता है। इसी के अनुसार इनका रचनाकाल सं० १८१६ के आसपास ठहरता है। इनके भक्ति सम्बन्धी दोहे देखिये—

' ऊचरतां सुख ऊपजै, सुणतां आवै स्वाद।
कहियौ दांणव कोप कर, हर पर हर पहलाद।।
संतां सायक तूं सदा, दुसटां खायक देव।
केसव तो बरणन करूं, भल गुरु दीनो भेव।

इनके भक्ति सम्बन्धी एक गीत में अनूठी सूझ देखिये—

कहै मांनवी देव प्रणमेव चिरतां सकळ,
जांण कुण सकै गोपाळजी कौ।
ऊधरे सत महिमा करे ऊजळी,
नद्या कर तिरे सिसपाळ नीकौ।। १

[1] प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास, डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पृ० १६५ और १८५ के फुट नोट में।
[2] वही–पृष्ठ १७७-१८८।

दुवस दातार अणपार जगदीस री,
भलाई वेद गावै भलाई।
दूध पाय'र तिरी जसोदा देवकी,
पय विख पूतना मोख पाई ॥
भाग जागै कहै किसी ही भांत सूं,
दांमोदर मांय चित राख दीधां।
रुकमणी आदि तो पतिवरत सूं ऊधरी,
कूबड़ी आदि विभचार कीधां।
×
कहै ब्रह्मदास जगदीस महाराज री,
गत अगत सेस माहेस गावै।
रिझावै जिकै पदन्याव पावै परम,
परम पद खिजावै जिकेई पावै ॥

ओपाजी आढ़ा—ये सिरोही राज्य के पेशुआ नामक गांव में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम बखता आढ़ा था। इनके जीवन की मुख्य घटनाओं, जन्म-मरण के संवतों के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इतना अवश्य है कि ये जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के दरबारी कवि थे और महाराजा मानसिंह के समय तक विद्यमान रहे। इसी के आधार पर इनका रचनाकाल वि० सं० १८४० से १८७५ तक माना जाता है। इनका लिखा स्वतंत्र ग्रंथ तो कोई प्राप्त नहीं, किन्तु इनके लिखे फुटकर डिंगल गीत बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। इनके गीतों में बड़ी सरसता और कमनीयता है। भाव अनुभवगम्य और मर्मस्पर्शी हैं। गीत शान्त रस से ओतप्रोत एवं उपदेशात्मक होते हुए भी अधिक जनप्रिय हैं। इनके एक गीत का उदाहरण यहाँ देखिये—

जोबन कारमो रे! विहांणे वह जासी,
आदर भजन-तणो अभियास।
प्रांणिया! कदे न आवै पाछो,
वळे न बीजो बागड़ वास ॥ १
होव सनाथ जनम मत हारब,
नाथ समर त्रयलोक नरेस।
नांम लियण जोयां मिळसी नह,
बीस कोड़ वेतां लघु वेस ॥ २
सूनै गांव म फाड़व साड़ो,
गाफल हिरदै राख गिनांन।
'ओपा' ऐ दिन कदै फिर आसी,
भजसी भळै कदै भगवांन ॥ ३
परसरांम भज पाज अम्रितफळ,
जनम सफळ हुय जासी।
पाछो वळै अमोलक पंछी,
इण तरवर कद आसी ॥ ४

ओपाजी एक भक्त कवि थे। इनकी भक्ति दास भाव की थी। हिन्दी के कवियों की भांति इनकी भक्ति के प्रधान विषय ईश्वर के प्रति अटल विश्वास, मानव जीवन की क्षण-भंगुरता, काल की सबलता, सांसारिक वैभव की अनित्यता आदि थे। कवि के गीतों में इनकी मौलिकता स्पष्ट रूप से झलकती है।

हुकमीचंद खिड़िया—राजस्थानी साहित्य में गीत रचना की परम्परा अति प्राचीन है। राजस्थानी के अनेक कवियों ने अपने डिंगल गीतों द्वारा ही इस साहित्य को समृद्धशाली बनाने में पूरा-पूरा सहयोग दिया है। हुकमीचंद खिड़िया भी एक ऐसे कवि हो गये हैं जिनके गीत श्रेष्ठ कोटि के कहे जा सकते हैं। उनके गीतों की श्रेष्ठता सर्वमान्य ही रही है, इसीलिये किसी कवि ने कहा है—

मरूप कवित्त नरहरि छप्पय, सूरजमल के छन्द।
गहरी झमक गणेस री, रूपक हुकमीचंद ॥

हुकमीचन्द जयपुर राज्य के निवासी थे। ये जोधपुर के महाराजा विजयसिंह और शाहपुरा के राव उम्मेदसिंह के समकालीन माने जाते हैं। इन्होंने अपने समकालीन राजाओं पर अनेक गीतों की रचना की और प्रायः सभी से सम्मान के रूप में जागीर प्राप्त की। ये गीत रचने में ही विशेष निपुण थे इसीलिए गीतों के अतिरिक्त इनकी कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती। एक रचना 'जयपुर के महाराजा प्रतापसिंहजी री झमाल' अवश्य है परन्तु 'झमाल' एक बड़ा गीत होने के कारण यह भी गीतों की श्रेणी में ही आ जाता है। इनके गीत मुख्यतः वीर-रस प्रधान ही हैं। मौलिक उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के साथ-साथ गीतों में भाषा अत्यन्त प्रौढ़ एवं ओजपूर्ण है। इनके एक प्रसिद्ध गीत के कुछ द्वाले नीचे उद्धृत किये जाते हैं। यह गीत शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह की वीरता की प्रशंसा में कहा गया है। उम्मेदसिंह ने मेवाड़ की रक्षा के लिए मरहठा सरदार माधोजी सिंधिया से उज्जैन में क्षिप्रा नदी के तट पर घनघोर युद्ध किया था। यह युद्ध संवत् १८२५ में हुआ था।[1] कवि

[1] वीर विनोद, भाग २, कविराजा श्यामलदास, पृष्ठ १५५६।

स्वयं इस युद्ध में उपस्थित थे। अतः इन्होंने राजा उम्मेदसिंह की अद्‌भुत वीरता का आंखों देखा वर्णन अपने इस गीत में किया है। इस युद्ध की तिथि के अनुसार ही कवि का रचना-काल संवत् १८२५ के आसपास ठहरता है। गीत का उदाहरण देखिये—

कड़ी वागतां वरम्मां पीठ पनागां उघड़ी केत,
मागां काळ घड़ी देत पैंडा आसमेद।
छड़ाळां अभागां लागां ऊडी आसमांन छायौ,
ऊपड़ी बाजंदां बागां यूं आयौ 'ऊमेद'॥ १
कोडी-डढ़ा फुणी झाट मोडतौ कमट्टां कंध,
पव्वैराट सिध बीछोड़तौ भोमपाट।
थंभ जंगां बोम बांट जोड़तौ रातंगा थाट,
तोड़तौ मातंगां घाट रोड़तौ त्रांबाट॥ २
बाथ रौ बजरंगी मोड़ चितोड़नाथ रौ बंधू,
काळी चक हात रौ आरोध लीधां क्रोध।
दुस्सासेण माथ क्रतांत रोध धायौ दूठ,
जेठी पाराथ रौ किना भारात रौ जोध॥ ३

पाट-धणी धारा धांम वंस मंत्र कांम पूगौ,
खाग धारां ऊगौ अत्यु भांण सो अखेद।
बदीतौ बचाड़ पाठ नेकी धाड़ धाड़ा बीर,
अेकी राड़ जीतौ आठ प्रवाड़ा 'उमेद'॥ २२
कोड़ सबा जांमै काळनांमै चाढ़ै हेक कोड़,
माहा रुद्र धांमै न को पांमै अेही मीच।
बीच अेक नरां लोक आयौ तूं 'उम्मेद' बीर,
बीर अेक तूं ही गौ अम्मरां लोकां बीच॥ २३

कृपाराम—ये जोधपुर राज्य में मेड़ता परगने के जसूरी नामक गाँव के निवासी खिड़िया शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम जगाराम था। ये बड़े होने पर सीकर चले गये और वहीं रावराजा लक्ष्मणसिंह के पास रहने लगे, जिन्होंने इनके काम से प्रभावित होकर 'लछीपुर' और 'ढांणी' जो आज कृपाराम की 'ढांणी' के नाम से प्रसिद्ध है, गांव प्रदान किये। काव्य-जगत में ये अपने सोरठों और दोहों की रचना के लिए अधिक ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इन्होंने अपने सेवक 'राजिया' को सम्बोधित कर सोरठे व दोहे कहे थे। सम्भवतया सेवक की सेवा एवं स्वामीभक्ति से प्रसन्न होकर उसके नाम को अमरता प्रदान करने के लिए ही कवि ने इन सोरठों की रचना की हो। इनके ये दोहे 'राजिया के सोरठे' के नाम से जनसाधारण में अधिक प्रचलित हैं। साहित्य जगत में आज जो कृपाराम की प्रसिद्धि है वह इन्हीं सोरठों की लोकप्रियता के कारण है।

इन सोरठों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी सरलता, सहजता एवं बोधगम्यता है। शीघ्र बोधगम्य होने के कारण ही ये सहज ही पाठकों के हृदय में अपना स्थान बना लेते हैं। कवि ने स्वयं जीवन के चौराहे पर खड़े होकर विभिन्न समस्याओं को देखा, परखा एवं उन पर विचार किया। तत्पश्चात् उनका निचोड़ एवं निष्कर्ष इन सोरठों के रूप में सर्वसाधारण के सामने प्रस्तुत किया है। सरलता और सादगी ही इनका सबसे बड़ा सौन्दर्य है। सोरठों में इतनी सजीवता है कि ये इतने प्राचीन होते हुए भी आज नवीन प्रतीत होते हैं। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा कि इनका प्रत्येक सोरठा सांसारिक अनुभव का भंडार है, काव्य-दक्षता का प्रतीक है। निम्न दोहों में कवि की विशेषता देखिये—

हिम्मत कीमत होय, बिन हिम्मत कीमत नहीं।
करे न आदर कोय, रद कागद ज्यूं राजिया॥
नरां नखत परवांण, ज्यां ऊभां संके जगत।
भोजन तपै न भांण, रांवण मरतां राजिया॥
लह पूजा गुण लार, नह आडंबर सूं निपट।
सिव वंदे संसार, राख लगायां राजिया॥
सांचौ मित्र सचेत, कह्यौ, कांम न करै किसौ।
हर अरजण रै हेत, रथ कर हांक्यौ राजिया॥
मळयागिर मंझार, हर कोइ तरु चंदण हुवै।
संगत लहै सुधार, रूंखां नै ही राजिया॥
पुन्न गया परवार, सज्जन-साथ छुट्या सदै।
दुरजण-जख्ख री लार, रोता फिरवै राजिया॥
मुख ऊपर मीठास, घट मांहीं खोटा घड़ै।
इसड़ां सूं इखळास, राखीजै नहिं राजिया॥
मिळियां मत मनवार, बोलड़ियां भाखै बुरी।
लांणत दे ज्यां लार, रजी उडाबौ राजिया॥

कृपाराम के लिखे ये सोरठे जनसाधारण में इतने अधिक प्रचलित हुए कि बहुत से अन्य कवि भी राजिया के नाम से सोरठों का निर्माण करने का लोभ संवरण नहीं कर सके हैं। इससे राजिये के वास्तविक सोरठों में कुछ प्रक्षिप्त अंश भी सम्मिलित हो गये हैं। उदाहरण हेतु निम्न सोरठा श्री फतहकरण उज्ज्वल का बनाया हुआ है परन्तु कई लोग भ्रमवश इसे कृपाराम का सोरठा ही समझते हैं—

मिनखां घणां न मांन, मांन रहे हेकण मनां ।
जीतौ जुध जापांन, रूस तणै बळ राजिया ।।

सोरठों के अतिरिक्त कवि का लिखा एक ग्रन्थ 'चाळक नेची माता' भी उपलब्ध है जो एक नाटक ग्रन्थ है। इसकी भाषा प्रौढ़ एवं परिमार्जित है। कवि द्वारा किया गया प्रकृति वर्णन भी स्वाभाविक एवं सजीव है। प्रातःकाल का वर्णन देखिये—

मिळत ग्रोक निस चरण, कोकनद मधुप कोक जिम ।
सुमन बास दिन कर प्रकास, छुटत ग्रकास तिम ।।
इधि ग्रमांम झल्लरी दमांम, विधि विधि नह बज्जत ।
सिव झिली कोसिक सिगाळ, सुर नाहिन सज्जत ।।

दयालदास— रामस्नेही साधुग्रों ने भी राजस्थानी साहित्य में ग्रपना योगदान दिया है। रामस्नेही साधु ग्रौर उनके ग्रनुयायी निर्गुण परमेश्वर को राम के नाम से मानते हैं। इन साधुग्रों में रामचरणजी, हरिरामदासजी, दरियावजी ग्रादि उल्लेखनीय हैं। राजस्थानी साहित्य में दयाळदासजी का नाम इनकी रचनाग्रों के लिये विशेष महत्व का है। ये भक्त कवि रामदासजी के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १८१६ में हुग्रा था। पिता की भांति इन्होंने भी ग्रपनी भक्ति सम्बन्धी रचनाग्रों द्वारा ग्रपनी भक्ति एवं काव्य-शक्ति का परिचय दिया। इनका रचा हुग्रा 'करुणा सागर' बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। रामस्नेही सम्प्रदाय के ग्रनुयायियों में इसका विशेष ग्रादर है। 'करुणा सागर' के ग्रतिरिक्त इनके रचे हुए भक्ति सम्बन्धी ग्रनेक फुटकर पद भी प्राप्त हैं जिनमें निर्गुण भक्ति की ग्रविरल धारा बही है। इनकी भक्ति-भावना निम्न पद में देखें—

सजनी म्हारी रांम सभा वलिहारी ए।
रांम सनेही परचै हरिजन चरण कमळ बळिहारी ए।
तन मन धन निछरावळ करसां ग्रठ सिधि नव निधि सारी ए।
रचना ब्रहमंड सजूं संजीवन ग्ररपूं वार हजारी ए।
सत गुरु सें मैं उरण नहीं जिण दिया रांम-धन भारी ए।
दयाल बाळ निरा लेऊं बलैया निभज्यौ टेक हमारी ए।

मनसारांम (मछ कवि)— मध्यकालीन साहित्य में केवल रसाप्लावित वीर एवं शृंगारिक रचनायें ही नहीं हुईं ग्रपितु इस काल में कई उच्च कोटि के रीति ग्रंथकारों ने उत्तम रीति ग्रंथों का निर्माण कर साहित्य को ग्रमूल्य निधि ग्रर्पित की है। इस काल के रीति ग्रंथकारों में मनसाराम उर्फ मंछ कवि का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म जोधपुर नगर के शाकद्वीपी ब्राह्मण बखशीरामजी के घर संवत् १८२७ वि० में हुग्रा। बाल्यावस्था में इन्होंने विद्या ग्रपने चाचा हाथीराम के पास ही ग्रहण की। ये जोधपुर के महाराजा मानसिंह, जो स्वयं काव्य-प्रेमी थे, के ही समकालीन थे। इन्होंने ग्रपनी सुन्दर रचनाग्रों के फलस्वरूप महाराजा से बहुत ग्रधिक सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त किया।

इन्होंने श्री रामचन्द्र का यश-वर्णन करते हुए रीति ग्रंथ 'रघुनाथ रूपक गीतां रौ' का निर्माण किया। यह ग्रंथ छंद-शास्त्र का उत्तम ग्रंथ होते हुए भी राम-यश वर्णन के लिए ग्रधिक प्रसिद्ध है। सभी वर्णन राजस्थानी के प्रसिद्ध छंद 'गीत' में ही किया गया है। इसी विशेषता के कारण कवि ने ग्रंथ का नाम भी 'रघुनाथरूपक गीतां रौ' रक्खा—

इण ग्रंथ मो रघुनाथ गुण ग्रत भेद कविता भाखियौ।
इण होज कारण नांम श्री 'रघुनाथ रूपक' राखियौ ।।[1]

इसी ग्रंथ में कवि ने ग्रपने काव्य-चातुर्य से डिंगल भाषा की कविता की रीतियां, छंद-भेद, छंद-लक्षण, ग्रलंकार, गुण-दोष ग्रादि का समावेश कर दिया है। यद्यपि कवि की यह एक ही रचना है परन्तु इसने कवि को ग्रमर कर दिया है। ग्रंथ की भाषा ग्रत्यंत प्रौढ़ एवं पूर्ण परिमार्जित साहित्यिक डिंगल भाषा है। ग्रंथ में प्रसाद गुण ग्रधिक होने ग्रौर भाषा-प्रवाह होने के कारण काव्य की दृष्टि से भी यह सुन्दर बन पड़ा है। सम्भवतः ग्राज इसकी व्यापक प्रसिद्धि का भी यही कारण हो। इनके सम-सामयिक कवि उत्तमचंद भंडारी ने इनके विषय में जो कविता कही उससे कवि की उस समय की प्रतिष्ठा का पता लगता है—

ग्राछौ कीध इसोह, रस ले साहित सिंधु रौ।
जग सह पियण जिमोह, रूपक रांम पयोध रुख ।।
मनसारांम प्रबंध मझ, राखे मनसारांम।
कियौ भलौ हिज कांम कवि, कियौ भलौ हिज कांम।

'रघुनाथ रूपक गीतां रौ' के सम्बन्ध में डॉ० ग्रियर्सन ने इंपीरियल गजेटियर की दूसरी जिल्द के ११ वें

[1] नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'रघुनाथ रूपक गीतां रौ' पृ० २८४।

अध्याय में जो अपने विचार प्रकट किये हैं उससे कवि की इस कृति के महत्व का पता चलता है—

"....The most admired Dingala work is the 'Raghunath Roopak' of Mansa Ram, written at the commencement of the nineteenth century. It is a prosody with copious original examples, so arranged that they give a continuous history of Ram."

ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि ने अपनी रचना के लिए सोलहवीं शताब्दी से चली आ रही भाषा का ही अनुकरण किया है। ग्रन्थ में कला पक्ष एवं भाव पक्ष दोनों ही बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। परंपरागत डिंगल की विशेषतायें यत्र-तत्र खूब झलकती हैं। ग्रन्थ का एक गीत देखिये—

गीत जात सपंख रो

अंगां ऊसंसे सवायो तायो सुणं वेण रांणवाळा,
बडाळां छोह में छायो चखां चोळ व्रम्न।
फळसां अघायो लेण रटक्कां सजोर काथें,
कटक्कां रांम रै माथै आयो कुंभक्रन्न ।। १
अछेहो बदन्नां वांणी बोलतो पुलस्त अंसी,
क्रोधाळ त्रसूळ तसां तोलतो करूर।
मिळे मूंछ भूहारां डोलतो आकारीठ महां,
गरीठ दोयणां हिया छोलतो गरूर ।। २
उमंगे रढ़ाळा छूटे सोहड़ां काकुस्थवाळा,
अताळा सजूटे तेण सांमूहां अडील।
हुवै चुरा पव्वै कीसा विछूटे उडल्ला हूंत,
फूटै काच सीसा जांणे कुंभाथळां फील ।। ३
लचै चीलहारांव सीस हजारूं ढ़ाळवा लागा,
दिगीस ठाळवा लागा दिसावा दुझाल।
लेवा मुंड सुरांगणा भूतेस चालवा लगा,
खंचे रथां दिवेसां भाळवा लागा ख्याल ।। ४

बांकीदास—परंपरागत चारण शैली एवं प्राचीन डिंगल भाषा के रचनाकारों में कविराजा बांकीदास का नाम अग्रगण्य है। इनका जन्म जोधपुर राज्यान्तर्गत पचपद्रा परगने के भांडियावास ग्राम में संवत् १८३८ वि० में हुआ था। ये आशिया शाखा के चारण फतहसिंह के पुत्र थे। बाल्यावस्था में अपने गाँव में ही कुछ शिक्षा ग्रहण कर ये जोधपुर आ गये जहाँ रायपुर के ठाकुर अर्जुनसिंह ने इनकी शिक्षा की व्यवस्था की। यहाँ पर इन्होंने काव्य, व्याकरण, इतिहास आदि विभिन्न विषयों का अध्ययन किया और अवधि समाप्त होने पर रायपुर चले गये।

संवत् १८६० में जब ये पुनः जोधपुर आये तो यहाँ इनकी मुलाकात आयसजी देवनाथजी, जो जोधपुर के तत्कालीन महाराजा मानसिंह के गुरु थे, और विद्या के परम रसिक और गुणग्राही थे, से हुई। देवनाथजी बांकीदास की अद्भुत काव्य-शक्ति से बहुत प्रभावित हुए और उन्हें महाराजा मानसिंह के पास भेज दिया। महाराजा मानसिंह स्वयं काव्य-प्रेमी एवं विद्वान् थे। वे बांकीदास की कविता से बड़े प्रसन्न हुए और इन्हें अपना काव्य-गुरु बना लिया। कालान्तर में महाराजा ने इन्हें कविराजा की उपाधि, पांव में सोना, लाख पसाव आदि देकर खूब सम्मानित किया और इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। महाराजा ने अपने गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को सूचित करने के अभिप्राय से कागजों पर लगाने की मोहर (जो आज तक कविराजा के वंशजों के पास सुरक्षित है) रखने की आज्ञा दी जिस पर निम्न बरवै जाति का छंद खुदा हुआ है—

श्रीमान् मान धरणि पति, बहु गुन रास।
जिण भाषा गुरु कीनो बांकीदास ।।

कविराजा डिंगल भाषा के पूर्ण विद्वान् और आशु कवि थे। इनकी स्मरणशक्ति भी अपूर्व थी। इन्होंने भिन्न-भिन्न विषयों पर कविता की है। विषयगत शब्द-चयन भी अनूठा है। कवि ने अपनी रचना में मुख्य छंद दोहा, सोरठा तथा गीत आदि का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया है। काव्य की भाषा अत्यन्त प्रौढ़, परिमार्जित एवं प्रसादगुणयुक्त है। अलंकारों के प्रयोग से उसमें विशेष लोच, लावण्य एवं आकर्षण आ गया है। भाषा की सरलता का उदाहरण देखिये—

सादूळो लाजै ससां, घात करण धिरतांह।
कूंभाथळ खाय चो-गल, गज मोती खिरतांह ।।
मरणो लाजम मांमलै, धार अणी चढ़ धाप।
पड़णो सांकळ पींजरै, सिहां वडो सराप ।।
पग पग कांटा पाथरै, वादीलो वनराव।
होणो ज्यूं त्यूं होवसो, दिये न होणो दाव ।।
सादूळो वन साहिबो, खाटे पग पग खून।
कायरड़ा इण कांम नूं, जंबक कहै जबून ।।

कविराजा की वीररसात्मक उक्तियां, जो अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं कलात्मक हैं, देखते ही बनती हैं—

सूतौ थाहर नींद सुख, सादूलौ बळवंत।
बन कांठे मारग बहै, पग पग होल पड़ंत॥
घाल घणां घर पातळा, श्रायौ वह में श्राप।
सूतौ नाहर नींद सुख, पोहरौ दियै प्रताप॥

कविराजा ने अपने जीवनकाल में अनेक ग्रंथों की रचना की। इनके ग्रंथों के आधार पर इनका रचनाकाल संवत् १८६० से सं० १८६० है। इनके रचे निम्नलिखित ग्रंथ उपलब्ध हैं—

१–सूर-छतीसी, २–सीह-छतीसी, ३–वीर-विनोद, ४–धवळ-पचीसी, ५–दातार-बावनी, ६–नीति-मंजरी, ७–सुपह-छतीसो, ८–वैसक-वारता, ९–मावड़िया-मिजाज, १०–कृपण-दरपण, ११–मोह-मरदन, १२–चुगल-मुख-चपेटिका, १३–वस-वारता, १४–कुकवि-बतीसी, १५–विदुर-बतीसी, १६–भुरजाळ-भूसण, १७–गंगालहरी, १८–जेहल जस-जड़ाव, १९–कायर-बावनी, २०–भमाल नखसिख, २१–सुजस छतीसी, २२–संतोस बावनी, २३–सिद्धराव छतीसी, २४–वचन विवेक पच्चीसी, २५–कृपण पच्चीसी, २६–हमरोट छत्तीसी, २७–स्फुट संग्रह, २८–कृस्णचंद्र-चंद्रिका, २९–विरह चंद्रिका, ३०–चमत्कार चंद्रिका, ३१–मांनजसो मंडन, ३२–चंद्रदूसण दरपण, ३३–वैसाख वारता संग्रह, ३४–स्त्री दरबारी कविता, ३५–रस तथा अलंकार ग्रंथ, ३६–व्रत्तरत्नाकर भासा व्याख्या, ३७–महाभारत छंदोऽनुवाद, ३८–गीत वा छंदां रौ संग्रह, ३९–ऐतिहासिक वारता संग्रह, ४०–अंतरलापिका, ४१–थळवट पच्चीसी।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त कविराजा ने अनेक फुटकर गीतों की भी रचना की जो पूर्ण रूप से काव्य-कला-कलित, भावापन्न एवं स्फूर्तिवर्द्धक हैं। इनकी रचना प्राचीन परम्परागत वीररसात्मक डिंगल के आधार पर ही हुई है।

रामदान लालस—ये जोधपुर राज्य के निवासी फतहदान के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १८१८ में हुआ था। जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने इनकी कविता से प्रभावित होकर इन्हें तोळेसर नामक गांव प्रदान किया था। यह घटना सं० १८६५ की है। इसी तिथि के अनुसार इनका रचनाकाल संवत् १८६५ के आसपास ही माना जाता है। संवत् १८८२ में इनका देहान्त हो गया।

इनके रचित तीन ग्रंथ हैं—१. भीम प्रकास, २. करणी-रूपक, ३. खीचियों का इतिहास।

'भीम प्रकास' में महाराणा भीमसिंह के वैभव-वर्णन के साथ कुछ मेवाड़ का इतिहास भी वर्णित है। इसमें कुल १७५ छंद हैं। कहीं-कहीं बीच में गद्यबद्ध वर्णन भी मिलता है। इसकी भाषा कुछ इस प्रकार की है—

असंक सेन आरंभ बोल नकीब बळोबळ।
गहरां थाट गैमरां चपळ हैमरां चळोबळ।
भाल तेज भळहळै ढ़ळै बिहुं वै पख चम्मर।
दिन दूलह दीवांण ए चढ़ियौ छक ऊपर।
तिण वार आप दरियाव तट बिडंग छंडि जगपति बियौ।
दीवांण 'भीम' गणगोर दिन एम रांण आरंभियौ॥

दूसरे ग्रन्थ 'करणी रूपक' में करणी देवी का चरित्र एवं इतिहास वर्णित है और 'खीचियों के इतिहास' में खीची शाखा के चौहानों का क्रमबद्ध इतिहास लिखा है। ग्रंथों में शुद्ध डिंगल भाषा का प्रयोग हुआ है।

महाराजा मानसिंह—ये जोधपुर के महाराजा थे। इनका जन्म संवत् १८३९ में हुआ था और २१ वर्ष की अवस्था में (सं० १८६०) जोधपुर की राज्यगद्दी पर बैठे। ये स्वयं एक अच्छे विद्वान और काव्य-रचना में प्रवीण कवि थे। कविता-प्रेमी एवं सरस्वती-उपासक होने के कारण इन्होंने अपने राज्य-काल में काव्य-कला को विशेष प्रोत्साहन दिया। इन्होंने भागवत की मारवाड़ी भाषा में सुन्दर टीका की है। इसके अतिरिक्त मौलिक ग्रंथों की रचना भी की है। ये डिंगल तथा पिंगल दोनों ही भाषाओं में रचना करते थे। नाथ सम्प्रदाय के प्रति अधिक श्रद्धा होने के कारण इनकी रचनाओं में इसी सम्प्रदाय की महिमा को अधिक स्थान दिया गया है।

राजस्थानी की उपलब्ध रचनाओं में उनकी काव्य-कला एवं भाव-मौलिकता वस्तुतः सराहनीय है। महाराणा भीमसिंहजी की प्रशंसा में लिखा यह गीत उदाहरण के लिए देखिये—

हेमगर जसा डुंगरां, नदियां नद रोकियौ नहीं।
सुसबद तूझ तणौ सिसोदा, मावै नह दुनियांण मझी॥ १
है नभ जितै अहिमकर हिमकर, नरपुर अतै रहण री नीम।
महत सुजस विसतार न मावै, भरतखंड मझ रांण भीम॥ २

गुण में अण अण कंठ गवीजै, नरमळ ज्यूं नरभर में नीर।
जग मांभळ वसतार घणै जस, हुश्रो श्रमावड़ हुआ हमीर।। ३
श्रड़सी सुत कीरत दिन ऊगै, परसण घण जोजन पारंभ।
एक खंड की हुए श्रमावड़, श्रन खंडां मावणो श्रसंभ।। ४

महाराजा मानसिंह केवल कवि ही न थे, अपितु कवियों एवं विद्वानों का पर्याप्त आदर करते थे। इन्होंने अपने दरबार में एक बार सत्ताईस कवियों को एक-एक हाथी एवं लाख पसाव प्रदान किया था। साहित्य से विशेष प्रेम होने के कारण इन्होंने अपने किले में 'पुस्तक प्रकास' नामक पुस्तकालय की स्थापना की। इसमें १६७८ संस्कृत पुस्तकों तथा १७०० राजस्थानी एवं हिन्दी की हस्तलिखित प्रतियों का बड़ा सुन्दर संग्रह है। कविता के साथ इन्हें चित्रकला का भी विशेष शौक था। अपने 'पुस्तक प्रकास' में इन्होंने विविध चित्रों का संग्रह करवा कर तत्कालीन कला एवं संस्कृति को सुरक्षित रखा। संवत् १६०० वि० में इनका देहान्त हो गया।

सांईदीनजी—सांईदीनजी, जो अपने छोटे नाम 'दीनजी' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं, उदयपुर राज्य के कैलाशपुरी ग्राम के निवासी थे। इनके जन्म एवं मृत्यु के संवत् का ठीक-ठीक पता नहीं लगता। ये जाति के लुहार बताये जाते हैं। अपने जन्मस्थान के बारे में दीनजी स्वयं एक स्थान पर लिखते हैं—

'गुरु स्थान गिरनार, हौं उदैपुर देस एकलिंग वासी।'

दीनजी एक चमत्कारिक सिद्ध हो चुके हैं। मेवाड़ के महाराणा भीमसिंहजी इन्हें बहुत मानते थे। सिद्ध पुरुष होने के साथ-साथ ये एक प्रतिभावान कवि भी थे। पढ़े-लिखे विशेष न होने के कारण इनकी रचना साधारण बोलचाल की राजस्थानी में ही है। आध्यात्मिक चिन्तन ही इनका विषय था, अतः इनकी कविता में ब्रह्म का ही वर्णन है जो रहस्यवाद से परिपूर्ण है। इनका रचनाकाल सं० १८६० के आसपास ही माना जाता है। ब्रह्म या अध्यात्म सम्बन्धी इनके रचे हुए छंद 'सांईदीन के रेखते' के नाम से प्रसिद्ध हैं। एक 'रेखते' में इनके विचार देखिये—

दीन देख संसार विचार किया, संसार तो रैन का सपना है।
जांण बूज जंजाळ में कौन पड़ै, तेहुं काळ की भाळ में तपना है।
देख प्यारे हुसियार रै'णा, इस जुग में कोई न श्रपणा है।
सांईदीन कहै मन मांन मेरा, जुग जुग जीवां तोही खपणा है।

नवलदान लालस—ये जोधपुर राज्य में शेरगढ़ परगने के जुडिया ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम रिवदान था। बाल्यावस्था में ही इनके माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण इनका पालन-पोषण पाटोदी ठाकुर के यहाँ हुआ। ऊपर वर्णित सिद्ध 'सांईदीन' पाटोदी ठाकुर के पास आया-जाया करते थे अतः ठाकुर ने नवलदान को शिक्षा ग्रहण करने हेतु सांईदीन के सुपुर्द कर दिया। अतः इन्होंने अपनी शिक्षा सांईदीन से ही प्राप्त की। तत्कालीन आहोर का ठाकुर अनाड़सिंह सांईदीन का परम भक्त था और वह प्रायः सांईदीन को अपने यहीं रखता। सांईदीन ने नवलदान की मेधा-शक्ति एवं काव्य-रुचि से प्रभावित होकर उन्हें आहोर ठाकुर के पास ही रख दिया। जोधपुर के महाराजा भीमसिंह ने मानसिंह के विरुद्ध जो इस समय जालोर के किले में था अपनी सेना भेजी। मानसिंह के सभी हितैषी उसकी सहायता के लिए जालोर पहुंचे। इस समय नवलदान भी आहोर ठाकुर के साथ मानसिंह के पास गये। वहाँ अपनी कविता से इन्होंने अच्छा सम्मान प्राप्त किया। मानसिंह के जोधपुर की गद्दी पर आसीन होने पर ये भी जोधपुर आ गये और यहीं रहने लगे। 'आबू वर्णन' इनकी राजस्थानी की सुन्दर कृति है। महाराजा ने इन्हें भी एक हाथी और लाख पसाव प्रदान किया था। इसके अतिरिक्त संवत् १८७४ में नरवा नामक ग्राम भी प्रदान किया। आबू वर्णन में से एक 'रोमकंद' छंद देखिये—

बोहो फूल हुबास जहुड़िये डंबर, ताज कदम सरोह तठै।
सावत्रीये धायु चंपेलिए साटै, जाय खिजूरिये केळ जठै।
केवड़ा अहवेल कणेर अणाकळ कंज समूलीये पार किसौ।
अनड़ां सिरताज वणै गिर आबूये, जांण धराज सुमेर जिसौ।।

उदयराम—कवि उदयराम जोधपुर राज्य के थबूकड़ा गांव के निवासी थे। जोधपुर के काव्य-प्रेमी महाराजा मानसिंह के समय में ही ये विद्यमान थे। महाराजा ने जिन सत्ताईस कवियों को एक-एक हाथी और लाख पसाव प्रदान किया था उनमें ये भी सम्मिलित थे।[१] इनका अधिक समय कच्छभुज के राजा भारमल तथा उनके पुत्र देसल द्वितीय के पास व्यतीत

[१] हमारे संग्रह में महाराजा मानसिंह के समय के इन कवियों का एक चित्र सुरक्षित है।

हुआ। इसीलिए इन्होंने अपनी प्रसिद्ध रचना 'कविकुळ-बोध' में इन दोनों की प्रशंसा की है।

'कविकुळ-बोध' कवि की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। छन्द-शास्त्र का यह उत्तम ग्रन्थ है। इसमें गीतों का वर्णन और उनके भेद और जथायें आदि का वर्णन विशिष्ट प्रकार एवं वैज्ञानिक रूप से किया हुआ है। डिंगल गीतों के प्रसिद्ध ग्रंथ 'रघुनाथ रूपक' में केवल ७२ जाति के गीतों का वर्णन है परन्तु 'कविकुळ-बोध' में कवि ने ८४ प्रकार के गीतों का उल्लेख किया है।

इसमें काव्य में प्रयुक्त होने वाले नौ रसों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। रस-व्याख्या के अन्तर्गत कवि ने विभावों तथा अनुभावों का भी सुन्दर ढंग से विवेचन किया है। रसों में आने वाले दोषों को भी उदाहरण सहित प्रस्तुत करने का कवि ने सफल प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त कवि ने उक्त ग्रंथ में 'उकतों' तथा जथाओं का विवरण देकर डिंगल-पिंगल के महत्त्व को प्रकट किया है। समस्त ग्रंथ १० तरंगों में विभक्त है। छन्द-शास्त्र सम्बन्धी तरंगों के पश्चात् अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन देकर कवि ने अवधानमाळा, एकाक्षरी कोश तथा अनेकार्थी कोश देकर अपने पूर्ण एवं दृढ़ भाषा-अधिकार का परिचय दिया है।

ग्रंथ की भाषा विशुद्ध साहित्यिक डिंगल है जो तत्सम शब्दों को प्रचुरता लिए हुए है। सस्कृत शब्दों की अधिकता होते हुए भी सुन्दर शब्द-चयन एवं भाषा में प्रवाह होने के कारण भाव बोधगम्य है। ग्रन्थ का एक गीत उदाहरण के लिए यहां प्रस्तुत किया जाता है---

सम सुं निस, निस सुं सस सोभा,
सस निस सुं द्रय गयण सुणाय।
वारज जळ जळ सुं दुत वारज,
जळ वारज सर प्रभा सुणाय ॥ १
वनता वर वर सुं दुत वनता,
वर वनता प्रभता घर बार।
कंकण नग नग सुं दुत कंकण,
नग कंकण दुत कण निहार ॥ २
गुणियण ग्रंथ ग्रंथ दुत गुणियण,
गुणियण ग्रंथ प्रभा जग ग्यांन।
नृप सुं निपुण निपुण सुं नृपता,
नृप कब सुं दुत छमा निदांन ॥

'देसळ' कुळ कुळ सुं दुत देसळ,
कुळ देसळ जस काछ प्रकास।
भाव प्रकास जथा गुण भारी।
उदैरांम जस कियौ उजास ॥

किसना आढ़ा—पूर्व के पृष्ठों में हमने इस शताब्दी में रचे जाने वाले श्रेष्ठ रीति ग्रंथों में 'रघुनाथरूपक गीतां रौ' तथा 'कविकुळ-बोध' आदि का उल्लेख कर साहित्य के उत्थान एवं विकास में इनके महत्त्व को प्रकट किया है। इसी श्रृंखला में कवि 'किसना आढ़ा' अपनी श्रेष्ठ कृति 'रघुवरजस प्रकास' द्वारा एक कड़ी और जोड़ने में सफल होते हैं। कवि किसना आढ़ा राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि दुरसाजी के वंशजों में थे। इनके पिता का नाम दूल्हजी था, जिनके छः पुत्रों में से ये तीसरे पुत्र थे। 'रघुवरजस प्रकास' में कवि ने अपना वंश-परिचय दिया है—

दुरसा घर किसनेस, किसन घर सुकवि महेसर।
सुत महेस खुंमाण, खांन साहिब सुत जिण घर ॥
साहिब घर पनसाह, पना सुत दूल्ह सुकव पुण।
दूल्ह घरे षट पुत्र, दांन जस किसन बुधोमण ॥
साकृप चमन मुरधर उतन, परगट नगर पांचेटियौ।
चारण जात आढ़ा विगत, किसन सुकवि पिंगळ कियौ ॥

किसना आढ़ा का रचनाकाल संवत् १८८० के आस-पास है। ये मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह के आश्रित कवि थे। इनके रचे दो ग्रंथ उपलब्ध हैं---१. 'भीम विलास' और २. 'रघुवरजस प्रकास'। 'भीम विलास' महाराणा भीमसिंह की आज्ञा से सं० १८७९ में लिखा गया था जिसमें उक्त महाराणा का जीवन-वृत्त है। 'रघुवरजस प्रकास' राजस्थानी भाषा का छंद-रचना का उत्कृष्ट लाक्षणिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ में संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश, हिन्दी व राजस्थानी के छंदों का मौलिक रचना में विषद विवेचन है। छंद-रचना के नियमों व लक्षणों का वर्णन सरल, प्रवाहमय एवं प्रसादगुणयुक्त भाषा में होने के कारण यह एक सफल रचना बन पड़ी है। छंदों के वर्णन में कवि ने अपनी रामभक्ति का पूर्ण परिचय दिया है। राम-गुणगान ही कवि का मुख्य ध्येय था, अतः छंद-रचना के लक्षणों के साथ-साथ रामगुण-वर्णन करते हुए कवि ने एक पंथ दो काज की कहावत को पूर्ण रूप से चरितार्थ किया है। मनसा-राम कृत 'रघुनाथ रूपक' में रामकथा रामायण की भांति

क्रमबद्ध चलती है। परन्तु किसनाजी ने अपने उक्त ग्रंथ में मुक्तक रूप से राम-महिमा का वर्णन किया है। छंद लक्षण जैसे अरुचिकर विषय को कवि ने अति सरस बना कर रख दिया है।

पूर्वोल्लिखित अन्य छन्द शास्त्र सम्बन्धी रचनाओं— पिंगळ प्रकास, लखपत पिंगळ, हरि पिंगळ रघुनाथ रूपक, कविकुळ-बोध आदि में इतना विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं हुआ है जितना आलोच्य ग्रथ 'रघुवरजस प्रकास' में मिलता है। इसमें कवि ने ९१ गीतों का वर्णन किया है। केवल गीतों का ही नहीं, गीतों के विभिन्न अंगों का वर्णन भी बड़े सुन्दर एव विस्तृत ढंग से किया गया है। वस्तुतः यह ग्रंथ कवि की उच्च काव्य-प्रतिभा का पूर्ण परिचायक है।

इस ग्रंथ की एक विशेषता यह है कि इसमें चित्र काव्य का भी उल्लेख मिलता है। संस्कृत व व्रज भाषा में चित्र काव्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है, परन्तु अद्यावधि डिंगल गीतों के प्राप्त लाक्षणिक ग्रन्थों में चित्र काव्य सम्बन्धी विवरण नहीं मिलता। 'रघुवरजस प्रकास' में एक 'जाळीवंध वेलियो सांणोर गीत' का चित्र-काव्य के रूप में उदाहरण मिलता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य के गीतों में चित्र-काव्य की रचना प्रारम्भ हो गई थी।

सम्पूर्ण ग्रंथ में प्रसाद गुण का पूर्ण रूप से निर्वाह हुआ है। भाषा की सरलता के कारण ही समस्त ग्रंथ में प्रवाह एक सा रहा है। गीतों में प्रयुक्त 'वयण सगाई' से उनमें विशेष आकर्षण उत्पन्न हो गया है। ग्रंथ का एक गीत देखिये—

गीत 'पंखाळो'

दसरथ नृप नंदण हर दुख दाळद, मिटण फंद जांमण मरण।
कर आणंद वद नित 'किसना', चंद रांम वाळा चरण॥
दीनानाथ अभै पद दांनख, भांनख अंतक समर भर।
मांनख जनम सफळ कर मांगण, धांनख धर पद सीसधर॥
सुरसर सुजळ नूमळ संजोगी, दळ मळ अघ ओघी दुख दंद।
साभ कमळ पद रांम असोगी, मन अलियळ भोगी मकरंद॥

उपरोक्त दोनों ग्रंथों के अतिरिक्त कवि की अनेक फुटकर कवितायें तथा गीत भी प्राप्त हैं। इनकी काव्य-शक्ति पर प्रसन्न होकर महाराणा भीमसिंह ने इनको सीसोदा गाँव प्रदान किया था।

रायसिंह सांदू—जिस प्रकार कवि कृपाराम के सोरठे 'राजिया के सोरठे' के नाम से राजस्थानी साहित्य में प्रसिद्धि पा चुके हैं, उसी प्रकार रायसिंह सांदू के 'मोतिया के दूहे' भी अधिक ख्याति-प्राप्त हैं। रायसिंह सांदू का जन्म जोधपुर राज्य के बाली परगने में मिरगेसर ग्राम में संवत् १८५० में हुआ था। ये परम ईश्वर-भक्त थे। इनकी रचना में इनकी सात्विक भक्ति स्पष्ट रूप से झलकती है।

ये एक बार उदयपुर राज्य के रूपनगर ठिकाने के ठाकुर नवलसिंह के पास गये। वहीं ये अस्वस्थ हो गये। ठाकुर ने मोतिया नामक सेवक को इनकी सेवा में नियुक्त कर दिया। मोतिया सेवक ने इनकी सेवा, जब तक वे पूर्ण स्वस्थ नहीं हो गये, जी-जान से की। रायसिंह उसके सेवा-भाव से अत्यधिक प्रभावित हुए और उसके प्रति उसी समय निम्न दोहे कहे—

जगपत दीठो जोय, रूपनगर 'नवलेस' रै,
किणी ठिकांणै कोय, मींढ़ न किंकर मोतिया॥ १
केइ केइ मोती कीध, तकलीणा घर घर तिके।
अधके तोल अबींद, माधव घड़ियो मोतिया॥ २

इसके बाद इसी मोतिया को सम्बोधित कर इन्होंने अनेक दोहे कहे, जो अपनी सरलता एवं सरसता के कारण जन-जन में प्रचलित हो गये। इन दोहों में वर्णित अन्योक्ति विशेष रूप से आकर्षित करती है। इनका रचनाकाल उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम चरण ही माना जा सकता है। संवत् १९१८ में इनका देहावसान हो गया। इनके कुछ दोहे देखिये—

सारै दुख सहियो, नवग्रह बांधे नाखिया,
रांमण नां रहियो, माथा दस ही मोतिया।
नाणो गयो निरधार, ताणो रहियो न तेण रै,
लेणो वीसल लार, माया सांसो मोतिया।
'कासूं काज करेह, सिंधुर बाधा सांकळां,
भगवत पेट भरेह, मण नित चहिए मोतिया।
भटकै कर कर भेख, घर घर अलख जगावतां,
दुनियां रा ठग देख, मळसी पनिया मोतिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्य कवि

उम्मेदरांम (सं० १८०९), देवीदास खिड़िया (सं० १८०७ से १५), अमरसिंह (सं० १८१७), नंदलाल (सं० १८२५), मोतीचंद (सं० १८३६-४५), अरजुनजी बारहट (सं० १८४२), उम्मेदसिंह सांदू (सं० १८४७), चंडीदास (सं० १८४९-६०

उदयचंद भंडारी (सं० १८६०), हाथीरांम कल्ला (सं० १८६०), मुनि गुणचंद (सं० १८७०), नागजी (सं० १८७०-७८), भोपाळदांन सांदू (सं० १८८०), उदयचंद यति (सं० १८८०)

उपरोक्त फुटकर कवियों के अतिरिक्त इस शताब्दी में और भी कुछ प्रसिद्ध कवि हुए हैं जिनका ठीक-ठीक संवत्-काल ज्ञात नहीं होता। ऐसे ही कवि महाराजा मानसिंह के रचनाकाल (सं० १८६०-१६००) के समय अपनी रचनाओं के कारण प्रसिद्ध थे जिनकी सूची निम्न है—

कुसळजी रतनू, गुमांनजी, पनजी आढ़ा, बुधजी आसिया, सुरतौ बोगसौ, महादांन महड़ू, मोतीरांम, लक्ष्मीनारायण सेवक, तिलोक सेवक, दौलतरांम सेवक, संतोकीरांम, मनोहर-दास, बखसीरांम, गाडूरांम सेवक, ताराचंद, रिझावर आदि-आदि।

राजस्थानी साहित्य का मध्ययुग वस्तुतः इस साहित्य के उत्थान का युग था। पूर्व के पृष्ठों में इस युग के प्रदत्त साहित्य के परिचय से यह स्पष्ट हो ही गया कि जिस प्रचुर मात्रा एवं विविधता में इस काल में साहित्य का निर्माण हुआ वह अन्य किसी काल में न हो सका। ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, लौकिक आदि विभिन्न शाखाओं में ओजयुक्त वीर-रस, लावण्य एवं माधुर्ययुक्त शृंगार रस, निष्ठायुक्त भक्ति-रस के साथ-साथ छन्द-शास्त्र के लाक्षणिक ग्रंथ एवं अनेकानेक प्रबन्ध-काव्य, मुक्तक-काव्य, फुटकर गीत, लोक साहित्य आदि का सृजन हुआ। साहित्य के इस महत्वपूर्ण युग का सूत्रपात उस समय से होता है जब कि पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजस्थानी भाषा में कुछ-कुछ प्रौढ़ता के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। यही भाषा इस युग में आगे चल कर उच्च काव्य प्रतिभासम्पन्न कवियों एवं साहित्यकारों की लेखनी से पूर्ण परिमार्जित होकर युग के समूचे साहित्य में धाराप्रवाह के रूप में बही है।

कवि की रचना काल-प्रसूत होती है और उसमें तत्का-लीन समाज की संस्कृति का वास्तविक प्रतिबिम्ब झलकता है। इस काल के साहित्य का सर्वांगीण रूप से अध्ययन करने पर यह सत्य उतरता है। मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में वीर-रस-प्रधान साहित्य की अधिक रचना हुई। इसमें केवल उस समय की ऐतिहासिक घटनाओं का ही साहित्यिक वर्णन नहीं अपितु जनजीवन की वास्तविक स्थिति एवं तत्कालीन चरित-नायकों के उज्ज्वल चरित्र का प्राणवान चित्रण मिलता है। ये वीर-रसात्मक रचनायें ही इस तथ्य का प्रमाण हैं कि राजस्थानी वीर-रस वर्णन के लिये अत्यन्त उपयुक्त भाषा है। निस्सन्देह कान्हड़दे प्रबन्ध, राउ जैतसी रौ छंद, हालां झालां रा कुण्डळिया, झूलणा दीवांण प्रतापसिंहजी रा, कुंडळिया कल्ला रायमलोत रा, वचनिका राठौड़ रतनसिंह महेसदासोत री आदि ग्रंथ तथा अखौ भाणावत, गोरधनजी बोगसौ, सूरायच टापरिया, महाराजा प्रथ्वीराज, दुरसा आढ़ा प्रभृति कवियों के गीत तथा फुटकर रचनायें वीर-रस के बोलते हुए प्रमाण हैं।

परवर्ती काल में भी वीररस की श्रेष्ठ रचनायें होती रहीं परन्तु आलोच्य काल के मध्य भाग में ही साहित्यकारों का ध्यान साहित्य की विभिन्न विधाओं की ओर आकृष्ट हो गया था। इसी के फलस्वरूप धीरे-धीरे इसी काल में साहित्य के विविध विषयों पर भी श्रेष्ठ ग्रंथ रचे गये। उत्तर भारत में व्याप्त एवं विवर्द्धित संत साहित्य की धारा ने राजस्थानी संतों को भी प्रभावित किया और जंभसागर, सिद्धनाथ री वांणी, हरि रस, मीरां पदावली, विवेक वारता री नीसांणी, रुक्मणी हरण, हरिपुरुष री वांणी, रांमरासौ आदि भक्ति की भिन्न धाराओं से सम्बन्धित श्रेष्ठ ग्रंथ एवं अलूनाथ, जग्गा खिड़िया, सांयाजी झूला, ओपा आढ़ा, ईसरदास प्रभृति भिन्न-भिन्न भक्त कवियों के उत्तम छप्पय कवित्त, गीत आदि जनसाधारण के मध्य आये। इन संतों एवं भक्त कवियों ने अपनी वाणी, पदों एवं अन्य प्रकार की रचना के लिए अत्यन्त सरस एवं सरल राजस्थानी का प्रयोग किया। इससे अनेक भक्तों की वाणी एवं पद जन-जन के कंठ-हार हो गये और शताब्दियां गुजर जाने के बाद भी धरोहर के रूप में जन-समुदाय के बीच सुरक्षित चले आ रहे हैं।

इस काल में रची जाने वाली श्रेष्ठ रचनाओं के कारण ही राजस्थानी साहित्य अपने विकास की चरम सीमा को पहुँच रहा था। प्रारंभिक काल में यद्यपि कुछ प्रणय-कथायें शृंगार रस के साहित्य के रूप में हमारे समक्ष आईं तथापि इस काल की शृंगारिक रचना पृथ्वीराज राठौड़ कृत 'किसन रुकमणी री वेली' एक अनुपम कृति ही नहीं, इस काल का

गौरव भी है। ऐसी ही रचनाओं से भाषा को पूर्ण प्रौढ़ता प्राप्त हुई। इस समय तक भाषा को जो उच्चस्तरीय रूप प्राप्त हुआ उसका निर्वाह इस काल के अन्तिम समय तक पूर्ण रूप से होता रहा। भाषा को यह स्वरूप देने में इस काल के रीति ग्रंथकारों का हाथ भी महत्वपूर्ण रहा है। श्रेष्ठ रीति ग्रंथकारों ने छंद-शास्त्र सम्बन्धी उच्च कोटि की रचनायें प्रस्तुत कर साहित्य को अमूल्य निधि भेंट की है। पिंगळ सिरोमणी, पिंगळ प्रकास, लखपत पिंगळ, हरि पिंगळ, रघुनाथ रूपक गीतां रौ, रघुवरजस प्रकास, कविकुळ बोध आदि लाक्षणिक ग्रंथों में गीतों, छंदों, रसों, जथाओं, उकतों, अलंकारों आदि की जो सुन्दर विवेचना हुई है वह अन्यत्र दुर्लभ है। प्रत्येक ग्रंथ अपने आप में एक पूर्ण एवं मौलिक रचना है।

राजस्थानी जैन साधुओं, मुनियों तथा श्रावकों ने भी विविध प्रकार की रचनाओं का निर्माण कर मध्यकालीन साहित्य के विकास में अपना सराहनीय सहयोग प्रदान किया। इन्होंने केवल अपनी धर्म-सम्बन्धी रचनायें ही न कीं परन्तु इनके प्राप्त ग्रन्थों में छन्द ग्रन्थ, कोश, अलंकार और शृंगार सम्बन्धी ग्रंथ भी उपलब्ध हैं। इनकी रचनाओं में शांत रस की जिस अखंड धारा के दर्शन हुए हैं वह अन्यत्र सुलभ नहीं। युग की मांग के अनुसार अनेक जैन कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा जन-जीवन में आध्यात्मिक भक्ति एवं वैराग्य का प्रेरणा-स्रोत बहा कर उन्हें विलास की ओर से हटा कर धर्माभिमुख किया है। जैन कवियों की कुछ रचनायें तो साहित्य का प्राण बन चुकी हैं। अनेक जैन कवियों ने साहित्य-निर्माण के साथ-साथ प्राचीन ग्रंथों की राजस्थानी में टीकायें कर जैनेतर साहित्य का प्रचार किया और अपने भंडारों में सुन्दर संग्रह किया। वस्तुतः जैन संतों एवं कवियों का हमारे साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इनके साहित्य का अध्ययन कर मूल्यांकन करने से निश्चित ही राजस्थानी साहित्य का महत्व बढ़ेगा।

साहित्य कभी किसी जाति विशेष या समाज-विशेष का नहीं होता। इसका अधिकार और इसका प्रभाव सार्वभौम होता है। मध्ययुगीन साहित्य की यही विशेषता है। बड़े से बड़े महाराजा से लेकर साधारण से साधारण व्यक्ति की रचनायें इस काल में प्राप्त होती हैं। इस युग में जहाँ एक ओर काव्य-प्रेमी एवं विज्ञ महाराजाओं ने स्वयं काव्य-रचना कर और अपने काल के कवियों को विविध प्रकार से प्रतिष्ठित कर साहित्य-सृजन को प्रोत्साहन दिया, वहाँ जन-साधारण के बीच सरल से सरल व्यक्ति ने अपनी काव्य-शक्ति द्वारा अपने भावों को रचनाबद्ध कर उन्हें जन-जन के गले का हार बना दिया।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मध्यकाल राजस्थानी साहित्य के इतिहास में न केवल अपनी बहुसंख्यक रचनाओं तथा विभिन्न साहित्यिक विधाओं की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण है वरन् काव्य-कला की सर्वांगीण उत्कृष्टता का श्रेय भी इसी काल को है। उत्कृष्ट काव्य-रचनाओं परस्थानाभाव के कारण संक्षेप में ही प्रकाश डाला जा सका है, पर आशा है इनके साहित्यिक महत्व का अनुमान पाठकों को इस विवेचन से अवश्य हो जायगा।

आधुनिक काल—(वि०सं० १९०० से वर्तमान काल तक)

साहित्य में कालजनित परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन अवश्य आता है परन्तु इसकी गति अति धीमी होती है। प्रारम्भ में परिस्थितियों का प्रभाव तत्कालीन समाज पर पड़ता है जिससे सामाजिक गतिविधियों में परिवर्तन उपस्थित होता है। यही प्रभाव शनैः शनैः साहित्यकारों के साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। यह भी सत्य है कि समाज सदैव एक ही परिस्थिति में नहीं रहता। संसार की गतिशीलता के साथ-साथ सामाजिक परिस्थितियाँ भी स्वयं परिवर्तनशील हैं। मध्यकाल के संघर्षपूर्ण वातावरण में जीवन की अनिश्चितता बढ़ गई और संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। इसके प्रभाव से आदिकालीन साहित्यिक परम्परा धीरे-धीरे लुप्त होती नजर आई और मध्यकाल के अर्द्ध भाग तक इसी परिवर्तन का प्रभाव उस समय के साहित्य पर पूर्ण रूप से छा गया। मध्यकाल का संघर्ष भी स्थिर न रह सका। आगे चल कर राजनैतिक परिवर्तनों के कारण सामाजिक, धार्मिक आदि विभिन्न परिवर्तन होते रहे और उनका स्वरूप उस समय रचे जाने वाले साहित्य में दृष्टिगोचर होने लगा। यही कारण है कि राजस्थानी साहित्य में मध्यकाल की रचनाओं में जिस वीरता के दर्शन होते हैं और जो भक्तियुक्त शान्त रस का प्रवाह मीरां, ईसरदास, केसवदास गाडण, दादूदयाल और हरिपुरुष की शैली में मिलता है वह कालान्तर में नहीं है।

अतः स्पष्ट है कि साहित्य में भी शैली विशेष के प्रवाह का समय होता है जो पूर्णरूपेण समाज की तत्कालीन परिस्थितियों और आवश्यकताओं पर ही आधारित होता है।

१९ वीं शताब्दी के अंतिम काल में समूचे भारतवर्ष में बहुत बड़ा राजनैतिक परिवर्तन आया। मुगल सल्तनत के पतन के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत के विशाल भू-खंड पर यहाँ की डावांडोल परिस्थितियों से लाभ उठा कर कब्जा कर लिया था। इतना ही नहीं, वे अपने अधिकार को साम, दाम दंड, भेद आदि कई प्रकार की नीतियों का सहारा लेकर और भी दृढ़ बनाने में लगे हुए थे। अंग्रेज जनरलों ने भारतीय सेनाओं के बल-बूते पर ही भारत को दासता की शृंखलाओं में जकड़ लिया। राजस्थान मरहठों के आक्रमणों से बहुत कमजोर हो चुका था और यहां के शासकों की आपसी फूट ने भी उनकी शक्ति को जर्जरित कर दिया था। अतः अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति के बल पर यहां के शासकों की परिस्थितियों से पूरा लाभ उठाया और उनके साथ सन्धि आदि कर के अपने अधीन कर लिया। मरहठों से मुकाबिला करने का वायदा भी अंग्रेजों ने उनके साथ किया। इतना होते हुए भी राज्य-सत्ता में उनका हस्तक्षेप सहज ही में हो गया हो ऐसी बात न थी। संघर्ष ही जिनका जीवनोद्देश्य रहा हो वह जाति एकाएक समर्पण कर दे, ऐसा संभव नहीं था। अतः कई एक शासकों व बहादुर व्यक्तियों ने अवसर पड़ने पर विदेशी सत्ता का वीरतापूर्वक मुकाबिला किया। ऐसे वीरों में बूंदी के बलवंतसिंह हाड़ा का संघर्ष इतिहास में सदा अमर रहेगा। इसी तरह भरतपुर के शासक रणजीतसिंह ने लॉर्ड लेक के साथ जो दृढ़ता के साथ युद्ध किया वह भी उल्लेखनीय है। पर अंग्रेजों ने इस प्रकार के संघर्षों के बावजूद भी यहाँ की नाजुक परिस्थितियों से पूरा लाभ उठाया और राजस्थान की राज्य-सत्ता पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया।

भारतवर्ष में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रभाव से अंग्रेजी सत्ता कायम हो जाने पर भी भारतवासियों में स्वतंत्रता की आग जो अब भी चिंगारी के रूप में शेष थी वही चेतना का झोंका पाकर चमक उठी। परिणामस्वरूप २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में वि० सं० १९१४ (सन् १८५७) में स्वतन्त्रता संग्राम की देशव्यापी आग भभक उठी। इस स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और तांतिया टोपे जैसे स्वतंत्रता-प्रेमी वीरों ने किया। उसका प्रभाव राजस्थान पर भी पड़ा। आउवा ठाकुर खुशहालसिंह तथा गूलर के ठाकुर बिशनसिंह मेड़तिया ने अंग्रेजों की खिलाफत करने में कोई कसर उठा न रखी और कोटा आदि स्थानों पर भी अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ने का पूरा प्रयत्न किया गया। पर अंग्रेजों ने देश की आपसी फूट से लाभ उठा कर शीघ्र से शीघ्र इस बढ़ती हुई अग्नि को दबा दिया और इसके तुरन्त बाद ही ब्रिटेन की सम्राज्ञी विक्टोरिया ने भारत को अंग्रेजी साम्राज्य का अंग घोषित कर दिया। इसके पश्चात् समस्त भारतवर्ष पर अंग्रेजी सत्ता दृढ़ता से कायम हो गई। राजस्थान में भी उनका रेजीडेण्ट रहने लगा और सन्धिपत्र के अनुसार राजस्थान के राज्यों में अंग्रेजों की हुकूमत का हस्तक्षेप होने लगा।

अंग्रेज अपनी राज्य-सत्ता कायम रखने के लिए यहां की राजकीय शक्ति को ही अपने अधिकार में नहीं रखना चाहते थे। इनकी दृष्टि और समझ बड़ी गहरी थी इसलिए इन्होंने अपनी संस्कृति का प्रभाव भी यहाँ की संस्कृति पर डालना प्रारंभ किया और यहां के लोगों के लिए ऐसी शिक्षा-प्रणाली की व्यवस्था की जो उनके वफादार नौकर और अंग्रेजी संस्कृति के प्रशंसक पैदा कर सके। राजस्थान के शासकों को तो उन्होंने राजनैतिक विषमताओं से निश्चिन्त ही नहीं किया वरन् अपनी संस्कृति में उन्हें रंगने की भी पूरी चेष्टा की और इसमें वे सफल भी हुए। अजमेर में मेयो कॉलेज की स्थापना के पीछे भी इसी उद्देश्य का रहस्य छिपा हुआ था। शासक वर्ग के पीछे-पीछे यहाँ के बड़े-बड़े जागीरदार और धनी लोग भी उसी पथ का अनुकरण करने लगे। संघर्ष का समय समाप्त हो चुका था अतः शासक वर्ग तथा धनी वर्ग ऐश-आराम में लीन हो गया और साथ ही साथ अपनी संस्कृति तथा देश-प्रेम को भुलाता गया। शासक वर्ग का जो अपनी प्रजा के साथ निकट संबंध था उसमें भी धीरे-धीरे शिथिलता आती गई और दुराव होता गया। अंग्रेज अपनी कानूनी व्यवस्था में बड़े पटु थे। उन्होंने कानून एवं अपनी कूटनीति के माध्यम से हर मनुष्य की मिल्कियत तथा उसके माली अधिकारों को सुरक्षित करने की उत्तम व्यवस्था की और सरकारें आपसी सम्बन्धों पर नहीं वरन् कानून के बल पर चलने लगीं।

सैकड़ों वर्षों से चारण कवियों का जो सम्बन्ध शासक वर्ग के साथ तथा अन्य लोगों के साथ बना हुआ था वह एकाएक शिथिल हो गया। इसके दो मुख्य कारण थे। एक तो यह कि अब वह संघर्ष का समय न रह गया था जिसमें कि वे अपने वीरों को देश और धर्म की रक्षा के लिए ललकारते और दूसरा यह कि अंग्रेजों ने अपनी गंभीर कूटनीति के आधार पर शासक वर्ग को इस तरह अपनी संस्कृति में जकड़ लिया था कि उनके पास काव्य आदि सुनने की फुर्सत नहीं रह गई थी और न वे उसकी आवश्यकता ही महसूस कर सकते थे। ऐसी स्थिति में चारण कवियों ने भी अपना रुख बदल दिया। अब उनका न तो पहिले का सा सम्मान ही रह गया था और इस नये परिवर्तन में उन्हें काव्य-कला के बल पर न कोई आर्थिक लाभ ही होता था। चारणों के अतिरिक्त राजपूत, मोतीसर, भोजक ब्राह्मण आदि अन्य जातियाँ भी डिंगल काव्य के सृजन में सैकड़ों वर्षों से अपना योग देती आई थीं पर इस प्रकार के सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन के कारण उनमें भी अन्तर आ गया था। राजस्थानी साहित्य में चारण-काव्य की परम्परा इस प्रकार यहां आते-आते शिथिल हो गई। बूंदी के कविराजा सूर्यमल २० वीं शताब्दी के प्रारंभ में अंतिम महान् कवि हुए। वे जैसे उत्तम कवि थे वैसे उद्भट विद्वान भी। उनकी कविता में मध्यकालीन डिंगल का गौरव एक बार पुनः अपनी उत्कर्षता पर आ गया। 'वंश भास्कर' के अतिरिक्त उनकी 'वीर सतसई' डिंगल-काव्य का उत्कृष्ट नमूना है। संवत् १९१४ के स्वतंत्रता संग्राम के समय अवसर की अनुकूलता देख राजस्थान के शासकों व वीरों को उनकी प्राचीन वीरता एवं गौरव का स्मरण दिलाने हेतु ही उन्होंने वीर शैली में इस रचना द्वारा राजस्थान की वीरता को ललकारा था। 'वीर सतसई' के दोहे मध्यकालीन साहित्यिक परम्परा से प्रभावित हैं, फिर भी उनमें युग की नवीनता झलकती है। कवि की ललकार रोम-रोम में उत्साह उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ है—

मूंछ न तोड़ी कोट में, कढ़ियां छोडै काळ।
काळां घर चेजो करै, मूसा पण मूंछाळ॥
इकडंकी गिण अेक री, भूलै कुळ साभाव।
सूरां आळस एस में, अकज गुमाई आव॥
तन तुरंग अर जीव तन, कढ़णो मरणो हेक।
जीव बिणट्ठां जे कढ़ो, नांम रहीजै नेक॥

जिण बन भूल न जावता, गैंद, गवय, गिड़राज।
तिण बन जंबुक ताखड़ा ऊधम मंडै आज॥

कविराजा सूर्यमल के पश्चात् डिंगल-काव्य-परम्परा अधिकाधिक शिथिल होती ही गई, परन्तु बारहठ केसरीसिंह की रचना में यह अन्तिम लौ एकबारगी अपनी समस्त शक्ति ग्रहण कर क्षण भर के लिए प्रज्वलित होकर सदैव के लिए लुप्त हो गई। भारत के वायसराय लॉर्ड कर्जन ने दिल्ली में दरबार आयोजित करने के लिये भारत के समस्त नरेशों को फरमान भेजा। उदयपुर के महाराणा फतहसिंह भी दरबार में सम्मिलित होने के लिए रवाना हो गये। प्राचीन परम्परा एवं मर्यादा के प्रेमी ठाकुर केसरीसिंह बारहठ को यह मेवाड़ की आन के विरुद्ध लगा। उन्होंने तत्काल ही महाराणा को मेवाड़ के गौरव की स्मृति दिलाने हेतु 'चेतावणी रौ चूंगट्यौ' नामक एक दोहों का संग्रह पत्र के रूप में लिख भेजा।[1] उनकी

---

[1] पग पग भम्या पहाड़, धरा छांड राख्यो धरम।
(ईसूं) महारांणा' र मेवाड़, हिरदे बसिया हिन्द रै॥ १
घण घलिया घमसांण (तोई) रांण सदा रहिया निडर।
(अब) पेखंतां फुरमांण, हलचल किम फतमल हुवै॥ २
गिरद गजां घमसांण, नहचें धर माई नहीं।
(ऊ) मावै किम महारांण, गज दो सै रा गिरद में॥ ३
ओरां ने आसांण, हाकां हरवळ हालणो।
(पण) किम हाले कुळ रांण, (जिण) हरवळ साहां हंकिया॥ ४
नरियंद सह नजरांण, झुक करसी सरसी जिकां।
(पण) पसरेलो किम पांण, पांण छतां थारो 'फता'॥ ५
सिर झुकिया सह साह, सींहासण जिण सांम्हने।
(अब) रळणो पंगत राह, फाबे किम तोने 'फता'॥ ६
सकळ चढ़ावें सीस, दांन धरम जिणरो दियो।
सो खिताब बख्सीस, लेवण किम ललचावसी॥ ७
देखेला हिंदवांण, निज सूरज दिस नेह सूं।
पण तारा परमांण, निरख निसांसा न्हांकसी॥ ८
देखे अंजस दीह, मुळकेलो मन ही मनां।
दंभी गढ़ दिल्लीह, सीस नमंतां सीसवद॥ ९
अंतबेर आखीह, 'पातल' जो बातां पहल।
(वे) रांण! सह राखीह, जिणरी साखी सिर जटा॥ १०
कठिन जमांनो कोल, बांधै नर हीमत बिना।
(यो) बीरां हंदो बोल, 'पातल' 'सांगे' पेखियो॥ ११
अब लग सारां आस, रांण रीत कुळ राखसी।
रहो साहि सुखरास, एकलिंग प्रभु आपरै॥ १२
मांन मोद सीसोद! राजनीत बळ राखणो।
(ई) गवरमिंट री गोद, फ़ळ मीठा दीठा फता॥ १३

यह रचना केवल १३ दोहों की है परन्तु उसमें प्राचीन काव्य-परम्परा की आत्मा बोलती है। इसका प्रभाव सीधा महाराणा के हृदय पर हुआ। महाराणा वायसराय के दरबार में सम्मिलित न हुए। इस प्रकार वे अपनी परम्परागत मर्यादा को निभाने में समर्थ हुए। इसीलिए राजस्थानी साहित्य में इन दोहों का ऐतिहासिक महत्त्व है।

जिस समय अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा के माध्यम से अंग्रेज अपनी भाषा का प्रचार यहाँ कर रहे थे उसी समय उत्तरी भारत में भारतेन्दु ने हिन्दी भाषा के विकास और प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठाया। खड़ी बोली में गद्य रचना होती थी पर पद्य के लिए अभी तक ब्रज का ही प्रयोग होता था। ब्रज-काव्य की रचना राजस्थान में बहुत पहिले से ही भक्ति-काव्य के रूप में होती आई थी। यहीं वृन्द जैसे भक्त कवि ने सुन्दर भक्ति की रचनायें और बिहारी ने रीतिकाल में 'बिहारी सतसई' जैसी अलंकृत कलाकृति ब्रज को भेंट की थी। अतः इस समय में आकर यहां के कवि ब्रज की ओर फिर आकृष्ट हुए और इसके माध्यम से भी काव्य-रचना करना पांडित्य का एक प्रमाण माना जाने लगा। सूर्यमल जैसे डिंगल आदि अनेकों भाषाओं के प्रकांड पंडित ने भी अपने 'वंश भास्कर' मे ब्रज अथवा पिंगल का बहुत प्रयोग किया है। ऐसी स्थिति में डिंगल में काव्य-रचना अधिक परिमाण में नहीं हो सकी। उत्तरी भारत में धीरे-धीरे हिन्दी का प्रचार बढ़ता ही गया और राजस्थान में भी शिक्षा-दीक्षा का माध्यम इसी भाषा को बनाया गया। इस कार्य में उत्तर प्रदेश से आये हुए अध्यापकों का भी काफी हाथ रहा। यह सब कुछ होने के बावजूद भी हिन्दी अथवा ब्रज भाषा यहां की मातृभाषा राजस्थानी का स्थान नहीं ले सकी। शहरों के नागरिकों और छोटे से शिक्षित वर्ग तक ही हिन्दी का पठन-पाठन सीमित रहा। आजादी के पश्चात् ज्योंही भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण की नवीन लहर उठी, सभी लोग अपनी-अपनी भाषा और उसके अतीत गौरव की ओर पूर्ण ध्यान देने लगे। राजस्थान के डिंगल साहित्य के अभ्युत्थान के अभिप्राय से प्राचीन साहित्य की खोज की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा और अनेक प्राचीन ग्रंथों का सम्पादन तथा प्रकाशन किया जाने लगा जिससे इस भाषा की अभिव्यक्ति-क्षमता और अन्य कई साहित्यिक विशेषताओं से विद्वान प्रभावित हुए और यहाँ के नवीन लेखकों को राजस्थानी भाषा के माध्यम से साहित्य-सृजन करने की प्रेरणा भी मिली। आजादी के संघर्ष के दौरान में भी कई बार राजस्थानी में क्रांति के स्वर सुनाई पड़ते थे पर अब व्यवस्थित रूप से राजस्थानी में लेखन-कार्य प्रारम्भ हुआ और अनेक संस्थायें और लेखक इस ओर गतिशील हैं।

यहाँ हम आधुनिक काल के कुछ विशिष्ट कवियों का परिचय देकर अन्य कवियों की नामावली प्रस्तुत कर रहे हैं।

रामनाथ कविया—राजस्थानी साहित्य में दोहा शैली में रचना करने की परम्परा में रामनाथ कविया का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म सं० १८६५ में 'चोखां का बास' (सीकर) में हुआ था। इनके द्वारा लिखे गए 'द्रोपदी-विनय' सम्बन्धी सोरठे बहुत ही प्रसिद्ध हैं जो 'द्रोपदी-विनय' अथवा 'करुण बहत्तरी' के नाम से प्रकाशित भी हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा समय-समय पर फुटकर दोहे व सोरठे भी कहे गये हैं क्योंकि इनकी यह विशेषता थी कि ये पात्र को प्रत्यक्ष देख कर तत्काल अपने भाव व्यक्त कर देते थे। इनका रचनाकाल बीसवीं सदी का प्रारम्भ ही माना जा सकता है। इनकी काव्य-शैली निम्न उदाहरण में देखिये—

व्यास बिगाड़यो वंस, कैरव निपज्या जेण कुळ।
असली ह्वे ता अंस, सरम न लेता सांवरा॥
सासू मत्रज साज, पूत जण्या जे पार का।
ज्यांरी पारख आज, साची हुँगी सांवरा॥
मो मन पडियो मोच, आव कह्या आयो नहीं।
साड़ी रो नहं सोच, सोच विरद रो सांवरा॥

सती नारी के आक्रोश की अच्छी व्यञ्जना इन सोरठों द्वारा हुई है। भाषा अत्यन्त सरल एवं प्रवाहमय है।

सूर्यमल्ल मिश्रण—इस परिवर्तन काल के सर्वोत्कृष्ट कवि सूर्यमल्ल मीसण (मिश्रण) हुए हैं। इनका जन्म बूंदी में वि० सं० १८७२ कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा को चंडीदानजी के घर में हुआ था।[1] चंडीदानजी स्वयं एक अच्छे कवि थे। राजस्थानी साहित्य में उनके भी अनेक ग्रंथ प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। माता-पिता का प्रभाव सूर्यमल्ल पर पर्याप्त रहा और इसी कारण वे अपने जीवन में एक सफल कवि ही नहीं अपितु

[1] वीर सतसई, सम्पादक : श्री कन्हैयालाल सहल, भूमिका पृ० १२।

महाकविराजा की उपाधि से प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। इनकी सर्वोत्कृष्टता का प्रमाण इनका साहित्य तो है ही, फिर भी इनके विषय में विद्वानों द्वारा दी गई सम्मतियों का यहाँ उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा। रघुवीरसिंह के शब्दों में 'साहित्य के क्षेत्र में महाकवि सूर्यमल का एकछत्र शासन था।' मोतीलाल मेनारिया के मतानुसार 'परिवर्तनकाल में सबसे बड़े कवि बूंदी के सूर्यमल हुए जिनको चारण लोग अपनी जाति का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं।' डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के विचारानुसार 'सूर्यमल अपने काव्य और कविता को Lay of the last Minstrel. बना गये और वे स्वयं बने Last of the Giants.'[1]

राजस्थानी भाषा के कवि तो अनेक हुए हैं किन्तु सूर्यमल्ल के समान विद्वान कदाचित् ही कोई हुआ हो। साधारणतः उस काल के समस्त कवि कुछ न कुछ कम-अधिक विद्वान हुआ ही करते थे तथापि ज्ञान की दृष्टि से सूर्यमल वास्तव में सूर्य ही थे। छंद-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, काम-शास्त्र ज्योतिष-शास्त्र, शब्द-शास्त्र आदि अनेक शास्त्रों में ज्ञान होना ही इनकी बहुज्ञता का द्योतक था। इतने विषयों में जानकारी रखने वाला अन्य कवि शायद ही राजस्थानी साहित्य के इतिहास में मिल सके। राजस्थानी के लिए यह गौरव की बात है कि सूर्यमल्ल जैसे विद्वानों ने इसे गौरवान्वित किया।

सूर्यमल्लजी के लिखे दो ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं। एक 'वंश भास्कर' एवं दूसरा 'वीर सतसई'। 'वंश भास्कर' एक बहुत बड़ा गद्य-पद्य-बद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ है जो चार जिल्दों में प्रकाशित हो चुका है। 'वंश भास्कर' के एक टीकाकार श्री कृष्णसिंह ने इन्हें सच्चा इतिहास-लेखक लिखा है। कविराजा श्यामलदास ने भी अपने 'वीर विनोद' में 'खुद बूंदी के एक बड़े मौतबर सत्यवक्ता कवि चारण' से सम्बोधित किया है। इतिहास की दृष्टि से 'वंश भास्कर' कितना सही है, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। डॉ० गौरीशंकर हीराचद ओझा ने लिखा है 'सूर्यमल्ल ने वंश भास्कर नामक विस्तृत पद्यात्मक ग्रन्थ लिखा जिसमें दिए हुए चौहानों तथा हाडों के इतिहास का गद्यात्मक सारांश बूंदी के पंडित गंगासहाय ने 'वंश प्रकाश' नाम से प्रसिद्ध किया है, वही बूंदी का इतिहास माना जाता है। सूर्यमल्ल एक अच्छा कवि था परन्तु इतिहासवेत्ता न होने से उसने उक्त पुस्तक में प्राचीन इतिहास भाटों की ख्यातों से ही लिया है। उसमें सैकड़ों कृत्रिम पीढ़ियां भरदी हैं और वि०सं० १५८४ (ई० सन् १५२७) तक के सब संवत् तथा ऐतिहासिक घटनाएँ बहुधा कृत्रिम लिखी हैं। उस समय तक का इतिहास लिखने में विशेष खोज की हो, ऐसा पाया नहीं जाता। कवि का लक्ष्य कविता की ओर ही रहा, प्राचीन इतिहास की विशुद्धि की ओर नहीं।'[1]

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस ग्रन्थ का स्थान चाहे जो हो परन्तु यह तो निश्चित रूप से सत्य है कि यह साहित्य की एक उत्कृष्ट कृति है। कवि ने अपने ज्ञान के आधार पर वंश-भास्कर में संस्कृत, प्राकृत तथा मरुदेशीय आदि विभिन्न भाषाओं का भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्रयोग किया है। इन भाषाओं के सामंजस्य के प्रभाव से कहीं-कहीं भाषा जटिल भी हो गई है।

> कटिल्ल कणिकावली भय ह्लदावली भये।
> अरि'ठ के अपष्ठ व्रंद लोम कंद उन्नये।।
> बनै अरी पलास कांन अंद नाग वल्लरी।
> कलेज पीलु पणिका कसेस तोर इक्करी।।

मिश्र-बन्धुओं ने लिखा है कि सूर्यमल्ल के वंश भास्कर द्वारा हमारे यहाँ कथा-विभाग की अच्छी पूर्ति हुई है। इनका कविता-चमत्कार अच्छी श्रेणी का है। ग्रन्थ से कवि का पांडित्य भली भांति प्रदर्शित होता है। इससे इनकी सत्य-प्रियता का पूरा प्रमाण मिलता है। भाषा राजपूतानी, बुंदेलखंडी और प्राकृत मिश्रित है।

इनका दूसरा ग्रंथ 'वीर सतसई' इस युग का सर्वश्रेष्ठ वीर-रसात्मक ग्रन्थ है। यह समस्त ग्रन्थ सरल एवं प्रसादगुण-युक्त प्रवाहमय राजस्थानी में रचा गया है। लोकप्रियता की दृष्टि से सूर्यमल्ल की 'वीर सतसई' को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। संकीर्ण भावों से परे सार्वजनीन भावों का चित्रण 'वीर सतसई' की एक अद्वितीय विशेषता है। इसमें कवि का

[1] डिंगल साहित्य, डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, भूमिका पृ० ५६।

[1] राजपूताने का इतिहास—ले० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, द्वितीय भाग, पृ० ५५८।

पांडित्य नहीं प्रकट होता। इसमें कोई कलाबाजी नहीं अपितु कला है। इस संबंध में डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने लिखा है—'मेरे विचार में 'बंश भास्कर' जैसा वृहत् ग्रंथ भविष्य में जनता के लिए नहीं रहेगा, पर 'वीर सतसई' के दोहे राजस्थानी का अस्तित्व जब तक रहेगा तब तक अमर रहेंगे। इस दोहा-पुस्तिका में राजस्थानियों की साहित्यिक रुचि विराजती है।'

सूर्यमल्ल अपने युग के प्रतिनिधि कवि थे और वह समय देश का महान संक्रमण काल था। विदेशी सत्ता का प्रभुत्व अधिकाधिक बढ़ता जा रहा था। उस समय ऐसी शक्ति का अभाव अनुभव किया जा रहा था जो अपनी प्रेरणा से बिखरी हुई राजपूत शक्ति को एक सूत्र में बांध कर विदेशियों के विरुद्ध मोर्चा लेने के लिए खड़ी कर दे। युग-प्रतिनिधि कवि इस ओर प्रयत्न करने का बीड़ा न उठाते तो वे संभवत: अपने कर्तव्य से च्युत होते। 'सतसई' के दोहों में जागरण का यही महामंत्र फूंका गया है। आरम्भ में ही कवि ने संकेत किया है—

बीकम बरसां बीतियौ, गणचौ चंद गुणीस।
बिसहर तिथ गुरु जेठ बदि, समय पलट्टी सीस।

'सतसई' में राजपूती वीरत्व का गुणगान अवश्य है किन्तु काव्य-चातुर्य के कारण कहीं भी किसी जाति विशेष की ओर स्पष्ट संकेत नहीं किया गया है। अत: स्पष्टत: 'सतसई' में वर्णित भावनायें एवं वीर चेष्टायें किसी भी आदर्श वीर की चेष्टायें व भावनायें मानी जा सकती हैं। देश के युवक, युवतियों में मरण की सार्थकता का अमोघ मंत्र फूक-फूंक कर कवि ने देश-रक्षा के निमित्त उत्सर्ग होने का आव्हान किया था। इन दोहों में मर-मिटने की उत्कट भावना है, हृदय को वीरत्व से उद्वेलित करने की अतुल शक्ति है।

'सतसई' की भाषा आधुनिक है। प्राचीन शास्त्रीय डिंगल के स्थान पर इसमें बोलचाल की भाषा का ही अधिकतर प्रयोग हुआ है। 'सतसई' की लोकप्रियता का सभवत: यही कारण है। कहीं-कहीं प्राचीन डिंगल के अनुरूप विभक्ति-प्रयोग हुआ है किन्तु वहाँ भी सीधे-सादे शब्दों में कवि ने बोलचाल की भाषा में बहुत कुछ कह दिया है—

माथ धरे सासू कहै, हरख अचांणक काय।
बहू बळेवा हुलसै, पूत मरेवा जाय॥

देख सहेली मो धणी, अजको बाग उठाय।
मद प्याला जिम एकलो, फौजां पीवत जाय॥
धीरा-धीरा ठाकुरां, अमी न भागी जाय।
धणियां पग लूंबी धरा, अबकी ही धर आय॥

इस सरल भाषा में कवि ने अपने ग्रंथ में अद्भुत वीरत्व का चित्रण किया है। वीरत्व का परिचय पराक्रम, साहस, धैर्य, स्फूर्ति, उदात्त भावना, सहिष्णुता आदि से ही मिलता है। अत: वीर के चरित्र-चित्रण में कवि ने उसकी बाह्य-आंतरिक मनोवृत्तियों तथा कार्य-कलाप का सुन्दर वर्णन कर अपनी सूक्ष्म निरीक्षण की अद्भुत शक्ति का परिचय दिया है। 'सतसई' के दोहों में योद्धा के बाह्य-जगत की क्रिया एवं वृत्ति के साथ उसकी आंतरिक वृत्तिका जो सुन्दर सम्मिश्रण है वह अन्यत्र सुलभ नहीं। उदाहरणस्वरूप कुछ दोहे देखिये—

जिम-जिम कायर थरहरै, तिम-तिम फैले नूर।
जिम-जिम बगतर ऊबड़ै, तिम-तिम फूलै सूर॥
सांम्है भालै फूटतौ, पूग उपाड़ै दंत।
हू बळिहारी जेठ री, हाथी हाथ करंत॥
कंकांणी चंपै चरण, गीधांणी सिर गाह।
मो बिण सूतौ सेज री रीत न छंडै नाह॥

उल्लिखित ग्रंथों के अतिरिक्त कविराजा सूर्यमल्ल मिश्रण द्वारा लिखे गए फुटकर गीत भी बड़ी मात्रा में मिलते हैं। प्राचीन चारण शैली के आधार पर ही उन्होंने गीतों की रचना की है। उनका रचा हुआ निम्न गीत देखिये—

दगौ बिचारै फेरियौ अंगरेजां लोगां चौगड्डौ,
तासा बबी भडंदा, तेड़ियौ नाग ताय।
भाळ धांचौ फेरियौ लैह री हूंत छायौ भांण,
बांघलो केहरी 'चैन' घेरियौ बलाय॥ १
माचै खाग झाटां राचै तंवाई छ खंडां माथै,
रत्रां आट पाटां नदी बहाई रोसाग।
पाथ थाटां जंग रूपी कुबांणा नवाई पांणा,
सत्राटां वेढ़ियो थाटां, सवाई 'सोभाग'॥ २
सुणै घोर तासां आसमांण लागियौ सीस,
सत्रां घू चैन' री खाग बागियौ समूल।
कोपै 'हग' आसुरां विभाड़वा आगियौ किनां,
सिंधुर पाड़ेवा सूतौ जागियौ सादूळ॥ ३
देखतां एहबौ जंग धड़क्कै आगरौ दिल्ली,
बंबी जैत माग रा रड़क्कै बारंबार।
झड़क्कै खाग रा बाढ़ भड़क्कै कायरां झुंड,
हमल्लां नाग रा माथा रड़क्कै हजार॥ ४

इस महाकवि का निधन वि० सं० १९२५ को हुआ। इनके देहान्त पर पूर्व-उल्लिखित रामनाथ कविया द्वारा कहे गए मर्मस्पर्शी मरसियों में कितनी सत्यता है—

मिळतां कासी मांह, कवि पिंडतां सोभा करी।
चरचा देवां चाहि, सुरग बुलायो 'सूजड़ो' ॥ १
निज छळती गुण नाव, मीसण 'छो' खेवट मुदै।
अब के हकण उपाव, सुकवी मरतां 'सूजड़ा' ॥ २
करती ग्रब कविराज, मीसण नित थारै मना।
सुरसत दुखित समाज, सुकवी मरतां 'सूजड़ा' ॥ ३
मुदै गरुड़ खग मौड़, मेर पहाड़ां मांन जै।
मीसण कविदा मौड़, सुरग पहूंतो 'सूजड़ो' ॥ ४
थई अत्यु थारीह, कुण मेटे करतार सूं।
खतम लगी खारीह, सुणता कांनां 'सूजड़ा' ॥ ५
जिण सूं ऊजळ जात, दिस-दिस सारै दीसती।
रैणव थारी रात, सुकवि न जनम्यो 'सूजड़ा' ॥ ६

स्वरूपदास—ये देथा शाखा के चारण मिश्रीदान के पुत्र थे। इनके पूर्वज ऊमरकोट के रहने वाले थे परन्तु सराइयों द्वारा लूट-खसोट के कारण इनके पिता अपने भाई परमानन्द को साथ लेकर अजमेर राज्य के बड़ली गांव में आ गये और वहीं रहने लगे। स्वरूपदास के बचपन का नाम शंकरदान था। इन्होंने अपनी शिक्षा अपने चाचा परमानन्द से ही ग्रहण की। वेदान्त के प्रभाव से इनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। अतः शिक्षा की समाप्ति के बाद देवलिये ग्राम में एक दादू-पंथी साधू के पास जाकर स्वयं दादू-पंथी साधू बन गए। इससे इनके चाचा को बड़ी निराशा हुई। इसी पर क्षोभ प्रकट करते हुए उन्होंने स्वरूपदास को एक पत्र में लिखा—

कीधो थो की कोल, कह पाछो कासूं कियो।
बेटा थारा बोल, सालै निस दिन 'संकरा' ॥

स्वरूपदास का मालवे में बहुत सम्मान था। यहां पर ये प्रायः 'अन्नदाता' के नाम से ही पुकारे जाते थे। एक बार रतलाम के राजा बलवंतसिंह ने मरते समय इनको निम्न दोहा कहा—

धारी चरणां धांम, बळवंत रै चितयौं बदे।
सेवग रो सतरांम, अनदाता छै अबे ॥

इस पर स्वरूपदास ने निम्न उत्तर दिया—

मांणक हूंत प्रमोल, अंत तणो सतरांम यह।
'बळवंत' थारा बोल, खारा निस दिन खटकसी।

ये डिंगल, पिंगल एवं संस्कृत आदि भाषाओं के विद्वान थे। हिन्दू धर्म-शास्त्रों का भी इनको अच्छा ज्ञान था। राजस्थानी के साथ ब्रज भाषा में भी इनकी अनेक रचनाएं उपलब्ध हैं। इनका 'पांडव यशेन्दु चंद्रिका' एक सफल काव्य है। यद्यपि ग्रंथ ब्रज भाषा का है तथापि स्थान-स्थान पर राजस्थानी में भी वर्णन मिलता है।

डिंगल के प्रसिद्ध कवि सूर्यमल्ल मिश्रण इनके समकालीन थे और इनके प्रति बड़ी श्रद्धा और सम्मान का भाव रखते थे। कई विद्वान तो इन्हें सूर्यमल्ल का गुरु भी मानते हैं। संवत् १९२० में ये स्वर्गलोक सिधारे। रतलाम नरेश बलवंत-सिंह की मृत्यु पर इनका राजस्थानी में कहा हुआ मरसिया उदाहरण के लिए प्रस्तुत है—

केई अलापता राग पात कीरति गावता केई,
सुणावत केई विप्र सभा में सलोक।
भलो भाई कळ तौने आवतां न लागी भेला।
प्रथीनाथ 'बळूंतेस' जावतां प्रलोक ॥
थंड देख रंकां तणा उद्याळब द्रबां थेली,
सुद्रसां भाळबा रोर गाळब सहीप,
फीलां सीस चढी मारू प्रजा नै पाळबा फेरू,
माळबा देस में पाछा पधारो महीप ॥

×

छूटी चखां नीर सतरांम रै करंता चेला,
'सरूप' गुरु की छाती उभेळै समंद।
जांमी आज छोड़ मोनै अकेला कठीनै जाबो,
कोयला विरंगा हेला दे रही कंबंध ॥

सम्मानबाई—आधुनिक काल के कवियों के अन्तर्गत सम्मानबाई का नाम भी उल्लेखनीय है। ये प्रसिद्ध कवि राम-नाथ कविया की सुपुत्री थीं। स्त्री कवियों में इनका स्थान बहुत ऊंचा है। ये ईश्वर की अनन्य भक्त थीं। इन्होंने अपना समस्त जीवन हरि-स्मरण में ही व्यतीत किया। हरि-भक्ति में इन्हें पति-सहयोग भी पूर्ण रूप से मिला। इसी से प्रभावित होकर इन्होंने 'पति सतक' की रचना की जिसमें अपने पति के गुणों की प्रशंसा की है। इनकी दूसरी रचना 'क्रस्ण बाळ लीला' है जिसमें इनके भक्ति सम्बन्धी बड़े अनूठे पद हैं। इनकी भाषा में तत्कालीन परिवर्तनों का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। 'सोळो' इनकी राजस्थानी की अनुपम कृति है। इसी का एक उदाहरण देखिये—

रांम बनूं छै कृपाळो, बनाजी मैं नैरा नजर भर न्हाळो ।
कसूं बल पाग कैसरिया जांमूं, तुररा किळंगी वाळी ।
नैरा सलूरा झोंकत झ्योढ़ो, बिच भरा भणियाळो ।
बय किसोर सरब भांति सुहावै, सहज सलूरणौ काळो ।
करत मरोड़ मधुर पग धरत, चलत मनौ मन मतवाळो ।
बंकोई चालै टेढ़ोई झोंकै, लुळि-लुळि बनि दिस न्हाळो ।
कहत 'समांन' कवर दसरथ रो, बींद बडो चिरताळो ।
दसरथ सुवन अयोध्या का राजा, कंवर कौसल्या वाळौ ।
भूप उदार तिलक रघुकुळ को, चहुं पुर को उजियाळो ।।

गणेशपुरी—इस परिवर्तन-काल में सूर्यमल्ल की प्रेरणा से प्रेरित होने वाले कवियों में गणेशपुरी का नाम भी उल्लेखनीय है । इनका जन्म संवत् १८८३ में जोधपुर राज्य के अन्तर्गत 'चारणवास' गांव में हुआ था । ये पदमजी रोहड़िया चारण के पुत्र थे । बचपन से ही डिंगल भाषा के प्रति इनकी रुचि अधिक थी । यह बात प्रचलित है कि एक बार 'जसवंत जसौ भूषण' के रचयिता कविवर मुरारीदानजी से इनका अलंकारों पर शास्त्रार्थ हुआ था । गणेशपुरी भी पंडित थे, परन्तु अपने क्षेत्र में मुरारीदानजी का प्रभाव होने के कारण लोगों ने मुरारीदानजी का ही पक्ष लेकर गणेशपुरी को पराजित घोषित कर दिया । इससे इनके हृदय पर बड़ी ठेस पहुंची और इन्होंने सन्यास धारण कर लिया और इसके बाद काशी में १० वर्ष तक रह कर विद्याध्ययन किया । काशी से लौटने पर कविराजा सूर्यमल्ल के पास कुछ समय तक रहे । इसके पश्चात् ये जोधपुर आये और मुरारीदानजी से शास्त्रार्थ करने को कहा परन्तु मुरारीदानजी ने सन्यासियों से शास्त्रार्थ न करने की बात कह कर उसे टाल दिया ।

गणेशपुरी एक सुयोग्य साहित्य-सेवी और काव्य-कुशल व्यक्ति थे । इनके रचे हुए तीन ग्रंथ प्राप्त हैं ।

१—वीर विनोद, २—जीवन मूल और ३—मारू महरांण ।

'मारू महरांण' 'काव्य प्रकाश' और 'साहित्य-दर्पण' के ढंग पर लिखा गया राजस्थानी का विशाल लाक्षणिक ग्रंथ है । इनकी कवितायें एवं गीत प्राचीन परंपरागत डिंगल का अच्छा नमूना हैं । आधुनिक काल में होते हुए भी इनकी कविता पर वर्तमान दृष्टिकोण की छाप नहीं है । भावों की स्पष्टता एवं शब्द-सौष्ठव इनकी कविता का विशेष गुण है, किन्तु आधुनिक काल में भी उसी प्राचीन परंपरागत भाषा व शैली में होने के कारण इनकी कविता जन-साधारण के हृदय को स्पर्श नहीं कर सकी । केवल काव्य-प्रेमियों के सम्मुख काव्य-कला का सुन्दर नमूना बन कर रह गई । इनके रचे एक गीत का उदाहरण देखिये—

गीत

सिव सादत सीस फूल रा सहजां, देख मठोड़ा सला दवै ।
'वाघ' सुतन रघुवर अस वातां, फतैपेच रै फैल फवै ।। १
'दूदा' सरब जगत नैं दीठां, ठहरै दांन मांन मन ठीक ।
कळग्रछ सिधी नरेस करणसा, करण फूल कीमत कोड़ीक ।। २
पर दुख काटण तणा प्रवाड़ां, जांणै जीवण जुवा-जुवा ।
वीर उभै बाजूबंध विधरा, हातम विक्रम नृपत हुवा ।। ३
कटक खेमल फतमल कहा कंकण, चंद लखो हृत फूल सचो :
जगत सुपह द्रढ़ भगत तणो जस, ओपै अमळ आरसी···।। ४
भाऊ नृप सिवराज भुजाळा, हद गज रा गज देवणहार ।
'मांन' भूप 'बळवंत' महाराजा, हुवा हमेल अनै चंद्रहार ।। ५
लंगर अवर लाज रा लंगर, नळ धीरज धरन नूपर वीर ।
मारू तूं मो मत महळी रै, हुवौ तेवटौ हेल-हमीर ।। ६

शिवबख्श पाल्हावत—शिवबख्श का जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत हणोतिया ग्राम में वि० सं० १८९९ में हुआ था । ये पाल्हावत शाखा के चारण रामसुख के पुत्र थे और प्रसिद्ध कवि रामनाथजी कविया के दोहित्र थे । बाल्यकाल में ही पितृविहीन होने के कारण ये अपने ननिहाल अलवर आ गए । इनके नाना स्वयं काव्य-प्रेमी थें, अतः उनका प्रभाव शिवबख्श पर भी पड़ा । ये भी नाना का अनुकरण कर कविता करने लगे और शीघ्र ही डिंगल के ज्ञाता हो गये ।

प्रारम्भ में ये थाणा के ठाकुर हनुमंतसिंह के कृपापात्र थे । यहाँ ठाकुर के लड़के मंगलसिंह से इनकी गाढ़ी मैत्री थी । मंगलसिंह अलवर के महाराजा शिवदानसिंह द्वारा गोद ले लिए गए और कुछ समय बाद ही शिवदानसिंह की मृत्यु के पश्चात् वे अलवर के महाराजा बन गये । शिवबख्शजी भी थाणा से अलवर आ गये और यहीं काव्य-रचना करने लगे । कुछ समय पश्चात् महाराजा से अनबन होने के कारण ये अलवर त्याग कर वृन्दावन चले गये और वहीं रह कर इन्होंने 'वृन्दावन शतक' की रचना की ।

महाराजा मंगलसिंह की मृत्यु के पश्चात् ये वृन्दावन से अपने गाँव आये । यहीं पर इन्होंने 'झमाळ अलवर सड्रितु

वर्णन' ग्रंथ रचा। उपरोक्त ग्रंथों के अतिरिक्त इनके दो ग्रंथ 'झमाळ जूनिया' और 'तवारीख अलवर' और मिलते हैं। 'सड्रितु वर्णन' में नायिका-भेद पर भी इन्होंने कुछ लिखा है किन्तु प्रकृति-वर्णन सजीव एवं स्वाभाविक है। वर्षा के बाद धरा की मनोहर छवि निम्न उदाहरण में देखिये—

हरिया तरु गिरवर हुवा, पांवरिया बन पात।
सर तालर भरिया सुजळ, बसुधा सबज बनात।।
बसुधा सबज बनात बिछायत ज्यौं बणीं।
खिलह ओस कंण जोति कि नां हीरा कणीं।।
इंद बधू अणपार क बसुधा बिचरी।
मनु तूटी मणि माळ, मदन महिपत्त री।।

वीर-रस-वर्णन तो प्रायः चारणों की पैतृक सम्पत्ति है। शिवबख्श का वीर-रस-वर्णन भी अनूठा है। इन्होंने वीर वचन शिकार के पशु सूअर, सिंह आदि से ही कहलाये हैं। सिंह द्वारा कायर के प्रति कहे वीर वचन निम्न उदाहरण में देखें—

इसा बचन सुणि ऊठियौ, अंग मोड़ै असळाक।
बाघ कहै सुण बाघणी, तजणी खेत तलाक।।
तजणी खेत तलाक, कहाऊं केहरी।
सहौ गरज नहिं सीस, क माथैं मेहरी।।
मरण तणौ भय मांनि, भोमि तजि भागवै।
बाघ जनम बेकाज, लाज कुळ लागवैं।।

यद्यपि अलवर नरेश से इनका सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया था परन्तु थाणा ठाकुर से आपका सम्बन्ध पूर्ववत् ही बना रहा। संवत् १९५६ में थाणा ठाकुर साहब की अलवर स्थित हवेली में ही इनका देहान्त हो गया।

राव बख्तावर—राव बख्तावर का जन्म संवत् १८७० में उदयपुर राज्यान्तर्गत बसी ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम सुखराम था जो बसी के ठाकुर अर्जुनसिंह के पूर्ण कृपा-पात्र थे। राव बख्तावर का जन्म-नाम मोडजी था। इनके बाल्य-काल में पिता की मृत्यु हो जाने के कारण बसी के ठाकुर अर्जुनसिंह ने इन्हें पुत्रवत् समझ सभी प्रकार से सुयोग्य बनाया। संवत् १९०९ में गांव के पारस्परिक झगड़े के सम्बन्ध में ये उदयपुर में आये। यहां इनकी भेंट महाराणा स्वरूपसिंह से हुई। महाराणा ने इनकी कविता तथा वाक्य-चातुरी से प्रसन्न होकर वेतन पर अपने पास रख लिया और कालान्तर में मिहारी तथा डांगरो ग्राम प्रदान कर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। इन्हीं महाराणा ने मोडजी से इनका नाम बख्तावरजी रखा। महाराणा की आज्ञा से इन्होंने 'स्वरूप यस प्रकास' ग्रन्थ की रचना की जिसमें अन्योक्ति कवित्तों की बाहुल्यता है। महाराणा स्वरूपसिंह के बाद भी तीन महाराणाओं के समय में इनकी प्रतिष्ठा पूर्ववत् बनी रही। संवत् १९५१ में इनका देहावसान हो गया।

अपने काल में होने वाले सभी महाराणाओं की प्रशंसा में इन्होंने ग्रंथ लिखे। इनके लिखे निम्न ११ ग्रंथ हैं[1]—

१–स्वरूप यस प्रकास, २–सम्भू यस प्रकास, ३–सज्जन यस प्रकास, ४–फतह यस प्रकास, ५–सज्जन चित्र-चंद्रिका, ६–केहर प्रकास, ७–रसोत्पत्ति, ८–संचारणव, ९–अन्योक्ति प्रकास, १०–रागनियां री पुस्तक, ११–सांमंत प्रकास।

इन ग्रंथों में 'केहर प्रकास' सबसे बड़ा और श्रेष्ठ ग्रंथ है, जो ग्रंथकर्ता के प्रपौत्र कवि राव मोहन द्वारा ही सम्पादित हो चुका है। 'केहर प्रकास' में केसरीसिंह और उनकी प्रेयसी कमल प्रसन्न के प्रणय का वर्णन है। इसमें १४८६ छंद हैं। भाषा आधुनिक बोलचाल की राजस्थानी है। वर्णन बड़ा हो रोचक और कलापूर्ण है। इसी ग्रंथ के मिलन प्रकरण का एक उदाहरण देखिये—

उसैं कंवर झंकियौ असांइ मदन आगर सूत।
कंवळ दसी झांकर कही, आ कुण गजब अभूत।।
कंवळ जिकण पुळ कंवर री, सुरत झंकण फिर सार।
झंके मुड़े फिर आ झंके, लिलचावण ले लार।।
झंक्यौ कंवर अद झोक सूं, सांगे अतरे साद।
कहियौ ओ पात्यौ कियौ, अमे घड़ी दिन आध।।
कंवर गयौ पांत्यौ कहत, लगन कंवळ री लाय।
कंवळ हुई भंवर कुळफ, बीज सनेह बुहाय।।

ऊमरदांन लालस—राजस्थानी काव्य की नवीन धारा में विशिष्ट योगदान देने वालों में कविवर ऊमरदांन लाळस का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने तत्कालीन परि-स्थितियों का सरस राजस्थानी में अनुपम चित्र प्रस्तुत कर राजस्थानी साहित्य जगत में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। ये एक जन्म-सिद्ध कवि थे और इनमें प्रायः वे सभी गुण विद्यमान थे जो एक प्रतिभाशाली कवि में होने चाहिएँ। इस

[1] 'केहर प्रकास' सं० कवि रावमोहन, ग्रन्थकर्ता का परिचय, पृ० ३-४।

समय तक प्रायः समस्त राष्ट्र में सुधारवाद की एक प्रबल लहर प्रवाहित हो चुकी थी। भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनेक सुधारवादी रचनायें ही जन-जीवन के समक्ष प्रस्तुत की जा रही थीं। कविवर ऊमरदान भी इसी नवीन विचारधारा के व्यक्ति थे। इन्होंने भी समयानुसार परिस्थिति को समझाते हुए समाज-सुधार की विवेचना सरस राजस्थानी में की। आपका जन्म संवत् १६०८ में जोधपुर राज्यान्तर्गत फलोदी तहसील के ढाढ़ रवाळा ग्राम में हुआ था। इनके पिता बख्शीरामजी संस्कृत एवं राजस्थानी के अच्छे विद्वान थे। ऊमरदानजी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर इन्हीं के पास हुई थी। माता-पिता का सुख इनके भाग्य में नहीं था, अतः दुर्भाग्यवश बाल्यकाल में ही ये अपने पारिवारिक सुख से वंचित हो गये। इसके बाद ये रामस्नेही साधुओं के सम्पर्क में आ गये और अन्त में संवत् १६३६ में जोधपुर में मोती चौक रामद्वारा के साधु के शिष्य हो गये। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है—

ऊमर मत उगणीस में, बरस छतीसे बीच।
फागण अथवा फरवरी, निरख्या सतगुरु नीच॥

इस दोहे में सत्गुरु के साथ नीच शब्द का प्रयोग महत्वपूर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह दोहा ऊमरदानजी द्वारा बाद में लिखा गया होगा। 'ऊमर-काव्य' में भी यह दोहा 'संत-असंत सार' के साथ ही लिखा हुआ है। संवत् १६४० में जब ऋषि दयानन्द मारवाड़ में आये तब उनसे प्रभावित होकर श्री ऊमरदान ने साधु सम्प्रदाय छोड़ दिया और गार्हस्थ्य जीवन प्रारम्भ कर दिया। स्वामी दयानन्द के प्रभाव से ये कट्टर आर्यसमाजी हो गये और इसी कारण जहाँ भी इन्होंने तनिक अवगुण अथवा बुराई देखी उसी ओर कस कस कर व्यंग-बाण मारने में तनिक भी संकोच नहीं किया। इस प्रकार की इनकी रचना कुछ लोगों द्वारा सभ्य रुचि के प्रतिकूल समझी गई, परन्तु ऊमरदानजी को इसकी तनिक भी परवाह नहीं थी। व्यक्ति विशेष या समुदाय विशेष इनके प्रति कैसे विचार रखता है, इस ओर इनका तनिक भी ध्यान न था। अपने स्वयं के सम्बन्ध में, इसी प्रसंग में, इन्होंने लिखा है—

जोगी कहो भव भोगी कहो,
रजयोगी कहो को केसेई हैं।
न्यायी कहो अन्यायी कहो,
कुकसाई कहो जग जैसेइ हैं।
मीत कहो वो अमीत कहो,
ज्युं पलीत कहो तन तैसेइ हैं।
ऊत कहो अवधूत कहो,
लो कपूत कहो, हम हैं सोई हैं॥

इन्होंने विभिन्न विषयों पर अपनी कवितायें लिखी हैं। 'संत कसौटी' को छोड़ कर प्रायः इनकी सभी फुटकर कविताओं का संग्रह 'ऊमर-काव्य' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। सुधारवादी दृष्टिकोण होने के कारण आपकी कविताओं के प्रसंग भी तत्कालीन समाज में प्रचलित दोष एवं कुरीतियों से ही सम्बन्धित हैं। मादक द्रव्यों के सेवन के प्रति ये पूर्ण विरुद्ध थे। अतः स्थल-स्थल पर इनकी कविता में बुराइयों का स्पष्ट वर्णन मिलता है। रामस्नेही साधुओं की भी इन्होंने निःसंकोच निन्दा की है। संत शब्द को बदनाम करने वाले असंतों की भी खूब खबर ली है—

गुरु आप अज्ञांनी जुगत न जांणी,
चेला मुक्त चहंदा है।
करणी रा काचा साध न साचा,
बाचा बहोत बकंदा है।
अंधे को अंधा घर के कंधा
चल कर पार चहंदा है।
नगटा निरदावे जमपुर जावे,
खररर खाड खपिंदा है।

कविवर ऊमरदान की रचना यद्यपि साधारण बोलचाल की राजस्थानी में है, फिर भी उसमें अनेक संस्कृत शब्दों का प्रयोग हुआ है। इससे उनके संस्कृत भाषा के ज्ञान का भी परिचय मिलता है। इनकी समस्त रचनाओं में चलती भाषा का अधिक प्रयोग होने के कारण प्रायः सभी रचनायें साधारण जन-जीवन के बीच अधिक प्रसिद्ध हो गई हैं। कवि ने सरल एवं सरस भाषा में बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। संवत् १६५६ में मारवाड़ में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। जन-जीवन की दशा बड़ी दयनीय हो गई। इन्हीं सभी विषम परिस्थितियों एवं जन-जीवन की हीन दशा का बड़ा ही मार्मिक एवं सजीव वर्णन कवि ने 'छपना री छोरा रौळ' नामक रचना में किया है। काव्य के पठन मात्र से आँखों के समक्ष चित्र सा उपस्थित हो जाता है। अकाल के दुष्प्रभाव से हुई ग्रहिणियों की दुर्दशा का कारुणिक चित्रण देखते ही बनता है—

आतो श्रोलग नैं अंबक दळ आयौ,
छाती छोलण नें छपनो छित छायो।
जायक पावक जिम रंडातक जीवै,
गातां ठोडां सूं चंडातक सीवै।
आधी उगळांची कांचळियां आधी,
बिनिये चूंडी बिन चौंथरियां बाधी॥
सोनूं रूपो तन पोठी सुपनैं में,
छल्ले बींटी बिन दीठी छपनैं में।
काजळ टीकी बिन फीकी द्रग कोरां,
मघवा विधवा बिच बिवरो नहिं सोरां।
महला मुरधर री तरसैं अन तांई,
तीजैं पोरां तक बीजैं दिन तांई।
नांखै नीसासा आसा अड़ियोड़ी,
पामर पुरखां रे पांनें पड़ियोड़ी।
ऊजळ मळ संकुळ पीठी उबटांणी,
'करडै लो' साथे प्रेरण कूटांणी।
कळियां कूंला री कादै में कळगी,
विखहर संगत सूं पीपळियां बळगी।

महाराज चतुरसिंह—भक्त-कवि महाराज चतुरसिंह का जन्म मेवाड़ के राजघराने में करजाळी की हवेली, उदयपुर में संवत् १९३६ में हुआ था। इनके पिता महाराज सूरतसिंह करजाळी जागीर के स्वामी और मेवाड़ के महाराणा फतहसिंह के भाई थे। महाराज चतुरसिंह अपने पिता के चार पुत्रों में सबसे छोटे थे। इनकी रुचि बचपन से ही आध्यात्मिकता की ओर झुकी हुई थी। अध्ययन की ओर इनका झुकाव विशेष था। विभिन्न भाषाओं के धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करने के लिए इन्होंने संस्कृत, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी तथा उर्दू आदि अन्य भाषाओं का भी अच्छा अभ्यास कर लिया था।

आपका विवाह अठारह वर्ष की आयु में हुआ था। इनके दो कन्यायें भी हुईं। परन्तु दस वर्ष बाद ही इनकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। इससे इनकी विरक्ति और भी बढ़ गई और इसके बाद इन्होंने अपना अधिक समय योगाभ्यास, ईश-भजन, शास्त्राध्ययन तथा पुस्तकें लिखने में ही बिताया। आपने अनेक पुस्तकों की रचना की जिनमें से कई प्रकाशित हो चुकी हैं। ये ईश्वर के अनन्य उपासक और भक्त-कवि थे। मीरां के बाद मेवाड़ में यही इतने लोकप्रिय भक्त-कवि हो गए हैं। आपने राजस्थानी और ब्रज भाषा दोनों में ही कविता की है।

इनकी भाषा सरल बोलचाल की भाषा ही है जो अत्यन्त मधुर एवं भावपूर्ण है। इन्होंने जो कुछ लिखा वह स्वयं की आत्मानुभूति के आधार पर ही लिखा है। इसलिए इनकी रचना मौलिक बन पड़ी है। इनकी रचनाओं में १–भगवद्गीता की गंगाजळी टीका, २–परमारथ विचार, ३–योग सूत्र की टीका, ४–मांनव मित्र रांमचरित्र वारता, ५–दुरगा सप्तसती वारता, ६–अलख पचीसी वारता, ७–चतुर चिंतामणि, ८–महिम्न-स्तोत्र आदि की सुन्दर रचनायें हैं।

जहां मीरां अपने आराध्यदेव की सेविका (चाकर) बनने की हार्दिक कामना करती है वहां महाराज चतुरसिंह अपने आपको अपने उपास्यदेव की चाकरी में ही रत मानते हैं। इस भाव को उन्होंने कितनी सरल अभिव्यक्ति से प्रकट किया है—

म्हें तो छांजी चाकर वांका, म्हें तो ठेठ जनम जनम का,
बाज राज लीला रे म्हें तो, सदा पागड़े लागां।

मौलिकतापूर्ण एवं भावमयी होने के साथ-साथ इनकी रचना सदुपदेशों से भी ओतप्रोत है जो मानव जीवन को उच्चादर्शों के दर्शन कराती है। ऐसे ही भावमय पद का एक उदाहरण देखिये—

रे मन छन ही में उठ जांणो।
ई रो नी है ठोड ठिकांणो, अरे मन छन ही में उठ जाणो।
साथै कंई न लायौ पेली, नी साथै अब आंणो।
वी वी आय मळेगा आगे, जी जी करम कमांणो॥ १
सो सो जतन करे ईं तन रा, आखर नीं आपांणो।
करणो व्है सो झटपट कर लै, पछे पड़ै पछतांणो॥ २
दो दन रा जीवा रे खातर, क्यूं अतरो ऐंठांणो।
हाथां में तो कंई न आयौ, वातां में बेकांणो॥ ३
कणी सीम पै गांम वसावै, कणी नीम कमठांणो।
ई तो पवन पुरख रा मेळा, 'चातुर' भेद पछांणो॥ ४

सामन्ती घर में जन्म लेकर और विलास के हास में अपना पालन-पोषण पाकर भी इन्होंने सदैव सरल एवं सात्विक जीवन व्यतीत किया। घर पर रहते हुए जब इन्हें अपने अध्ययन एवं आध्यात्मिक चिन्तन में बाधा प्रतीत हुई तो इन्होंने घर भी छोड़ दिया और उदयपुर से १६ मील की दूरी पर नउवा ग्राम के पास एक स्थान पर कुटिया बना कर रहने लगे। यहीं संवत् १९९६ में अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

उपरोक्त वर्णित कवियों के अतिरिक्त आधुनिक काल में अनेकों कवियों ने भी अपनी विभिन्न रचनायें प्रस्तुत कर राजस्थानी साहित्य को जीवन-दान देने में अपना सहयोग दिया। आज भी अनेक कवि इस ओर सतत् प्रयत्नशील हैं। विषय-विस्तार-भय से नीचे इन कवियों के नाम मात्र देकर ही संतोष करना पड़ रहा है—

चंडीदांन (कोटा), प्रतापकुंवरी बाई (जाखण, जोधपुर), गोपाळ कविया (चोखां का बास, शेखावाटी), मुरारिदांन (बूंदी), गुलाबजी (बूंदी), बिड़दसिंह (अलवर), केसरीसिंह (सोन्याणा, उदयपुर), मुरारिदांन आसिया (जोधपुर), अम्रत-लाल माथुर (कुचेरा, जोधपुर), गणेसदांन (जोधपुर), महादांन (पारलू, जोधपुर), जैतदांन (मथानिया, जोधपुर), किसोरदांन (लोळावस, जोधपुर), जुगतीदांन (बोरूंदा, जोधपुर), सेवा-दास (जोधपुर), पुरोहित केसरीसिंह (तिंवरी, जोधपुर), पाबूदांन आसिया (भांडियावास, जोधपुर), मोडजी आसिया (भांडियावास, जोधपुर), राघूदांन सांदू (मिरगेसर, जोधपुर), चिमनदांन रतनू (विडलिया, जोधपुर), फतहकरण (ऊजळां, जोधपुर), क्रस्णसिंह सोदा (शाहपुरा), मोडजी महियारिया (उदयपुर), बालाबक्स पाल्हावत (हणूतिया, जयपुर), बळवंत-सिंह रोहड़िया (माहुद, अलवर), रांमनाथ रतनू (किशनगढ़), मुरारीदांन (आंगदोस, जोधपुर), लिखमीदांन बारहठ (आंगदोस, जोधपुर), कांनीदांन (देशनोक, बीकानेर), हिंगळाजदांन कविया (सेवापुरा, जयपुर), नाथूदांन बारहठ (शेरगढ़, जोध-पुर), सेरजी बारहठ (भाखरी, जाधपुर), भगवानजी रतनू (लालपुरा, जोधपुर) भावनादास साधु (जोधपुर), किसोर-सिंह वार्हस्यपत्य (शाहपुरा), धूड़जी मोतीसर (जुडिया, जोधपुर), पन्नारांमजी (जोधपुर), प्रभुदांन (भांडियावास जोधपुर), चौथमलजी जैन साधु।

नाथूदांन (उदयपुर), राव मोहनसिंह (उदयपुर), नैनूरांम संस्करता (बीकानेर), मुरारिदांन कविया (जयपुर), अक्षयसिंह रतनू (जयपुर), देवकरण बारहठ (इन्दोकली, जोधपुर), कन्हैयालाल सेठिया (बीकानेर), रेवतदान (मथा-निया, जोधपुर), गजानन (रतनगढ़, बीकानेर), चन्द्रसिंह बीका (बिरकाळी, बीकानेर), उदयराज उज्जळ (ऊजळां, जोधपुर), नारायणसिंह भाटी (माळूंगा, जोधपुर), मनोहर शर्मा (जयपुर), मेघराज मुकुल (बीकानेर), लक्ष्मणसिंह रसवंत (जाळसू, जोधपुर), कल्यांणसिंह राजावत (चितावा, नागौर), रेंवतसिंह भाटी (नरवर, किशनगढ़), भीम पांडिया (बीकानेर), सोहनलालजी तेरापंथी, प्रभुदांन (मथानिया, जोधपुर), किसोर कल्पनाकांत (रतनगढ़, बीकानेर), क्रस्णगोपाळ कल्ला (मेड़ता, जोधपुर), गणपति स्वांमी (पिलाणी, जयपुर), गणेसीलाल व्यास (जोधपुर), गंगारांम पथिक (बीकानेर), चंडीदान सांदू (हिलोड़ी, नागौर), भरत व्यास (चुरू, बीकानेर), मरुधर म्रदुल (जोधपुर), माधव शर्मा (चुरू, बीकानेर), राज श्री 'साधना' (कोटा), रामदेव आचार्य (बीकानेर), रावत 'सारस्वत' (चूरू, बीकानेर), विस्वनाथ शर्मा 'विमलेश' (झुंझुनू, जयपुर), सक्तिदांन कविया (बिराही, जोधपुर), सोभागसिंह सेखावत (भगतपुरा, सीकर), रामसिंघ सोलंकी (उदयपुर), हणूंतसिंह देवड़ा (राणीवाड़ा, जालोर)।



राजस्थांनी गद्य साहित्य

विद्वानों ने प्राचीन एवम् आधुनिक भाषाओं के अध्ययन में राजस्थानी को भी पर्याप्त महत्व दिया है, किन्तु उनका यह आधार राजस्थानी की काव्यगत विशेषताओं तक ही सीमित रहा। गद्य की दृष्टि से भी राजस्थानी एक समृद्ध भाषा है; इस तथ्य की ओर सम्भवतया उनका ध्यान ही नहीं गया। राजस्थान के विद्वानों ने भी इसे प्रकाश में लाने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया। यहां के अधिकांश आधुनिक विद्वानों ने भी सम्भवतः भाषायी एकता को पुष्ट करने की दृष्टि से अथवा किन्हीं अन्य कारणों से प्रायः हिन्दी भाषा में ही गद्य निर्माण किया है। इसका परिणाम राजस्थानी के लिए अत्यन्त हानिकर सिद्ध हुआ है। तत्कालीन राजभाषा आयोग ने अपने प्रतिवेदन में राजस्थानी को स्वतंत्र प्रांतीय भाषा के रूप में स्वीकार नहीं किया, यद्यपि इस प्रतिवेदन के पहले बड़े-बड़े भाषाविद् राजस्थानी को एक स्वतंत्र भाषा के रूप में स्वीकार कर चुके हैं।

सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' में राजस्थानी को एक पृथक साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकार किया है। डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या[1] तथा डॉ० एल. पी. तैस्सितोरी ने भी इसे केवल बोलियों का समूह न मान कर हिन्दी से स्वतन्त्र एवं भारतीय आर्य-भाषाओं के परिवार की एक समृद्ध भाषा माना है।

हमारा उद्देश्य इस विवाद में पड़ने का नहीं। तथापि यह निस्संदेह सत्य है कि राजस्थानी में विपुल काव्य-निधि के अतिरिक्त गद्य साहित्य की परम्परा भी बहुत प्राचीन एवम् समृद्ध रही है।

इसके समुचित प्रकाशन एवम् अध्ययन के अभाव में ही प्रायः लोगों की इस प्रकार की धारणा-सी बन गई है कि राजस्थानी में गद्य साहित्य नगण्य अथवा गौण है। आधुनिक युग में राजस्थानी गद्य को स्थिति बड़ी चिंतनीय रही है, इसे राजस्थानी साहित्य की सेवा करने वाले लेखकों ने भी अनुभव किया है। यद्यपि इस स्थिति में अब बहुत अन्तर आ चुका है, कई व्याकरण प्रकाशित हो चुके हैं, कोश का निर्माण भी हो चुका है, राजस्थान निवासी अपनी भाषा की रक्षा के प्रति अधिक जागरूक हैं, राजस्थानी की सूक्ष्म बारीकियों का अनुसंधान किया जा रहा है, एवम् उस पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किए जा रहे हैं, और आधुनिक लेखक भी इसी भाषा में कहानी, उपन्यास आदि लिख रहे हैं।

जो लोग राजस्थानी के सम्बन्ध में यह भ्रामक धारणा रखते हैं कि राजस्थानी का अर्थ विभिन्न बोलियों का समूह मात्र है तथा उसमें गद्य का एकस्तरीय रूप नहीं है, उनकी यह धारणा प्राचीन राजस्थानी गद्य (ख्यात, बातें) का अध्ययन करने पर अवश्य मिट जानी चाहिये। मुहणौत नैणसी जालोर का निवासी था, कविराजा बांकोदास जोधपुर के रहने वाले थे, दयाळदास ने अपनी ख्यात बीकानेर में बैठ कर लिखी थी और कविराजा सूर्यमल बून्दी के निवासी थे, किन्तु इनके लिखे गद्य में विशेष अन्तर नहीं है। राजस्थानी भाषा की एकरूपता का इससे बढ़ कर अन्य कौनसा प्रमाण हो सकता है।

आज के साहित्य में गद्य की प्रधानता है, किन्तु प्राचीन साहित्य में गद्य का ऐसा प्रचलन नहीं था। राजस्थानी में गद्य का प्राचीन रूप मिलता है, किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वह साहित्य का उतना प्रभावशाली वाहन नहीं रहा जितना कि पद्य।

राजस्थानी गद्य के विकास पर दृष्टि डालते समय हम विषय-क्रम (यथा—ख्यात, बात आदि) का वर्गानुसार उल्लेख न कर के कालक्रमानुसार ही विकास-क्रम का विवेचन करेंगे।

चौदहवीं शताब्दी से राजस्थानी गद्य-रचना को परम्परा स्पष्ट रूप से देखने में आती है। गद्य लिखने की परम्परा इससे भी प्राचीन अवश्य थी पर उसके उदाहरण बहुत अल्प मिलते हैं।[1] चौदहवीं शताब्दी के प्राचीनतम गद्य के दो उदाहरण हमें उपलब्ध हैं। पहला उदाहरण एक गोरखपंथी गद्य ग्रंथ में मिलता है। हिन्दी साहित्य के सभी इतिहासकारों ने गोरखपंथी की रचना के रूप में निम्नलिखित अवतरण उद्धृत किया है

> 'श्री गुरु परमानन्द तिनको दडवंत है। हैं कैसे परमानन्द आनन्द स्वरूप हैं सरीर जिन्हि को। जिन्ही के नित्य गायें तें सरीर चेतन्नि अरु आनन्दमय होतु हैं। मैं जु हौं गोरिख सो मछंदरनाथ को दडवंत करत हौं। हैं कैसे वे मछंदरनाथ। आत्मा ज्योति निस्चल है अन्तःकरन जिनिको अरु मूल द्वार तें छइ चक्र जिनि नाकी तरह

---

[1] 'वस्तुतः भाषा-शास्त्र की दृष्टि से विचार किया जाय तो राजस्थानी, कोसली या अवधी, भोजपुरी या मैथिली आदि बोलियां नहीं, भाषायें ही हैं।'—राज भाषा आयोग का प्रतिवेदन, पृ० २३८।

[1] शिलालेख, ताम्रपत्र आदि के रूप में कहीं-कहीं प्राचीन राजस्थानी गद्य के नमूने आज भी उपलब्ध होते हैं। यहाँ एक १३वीं शताब्दी का शिलालेख प्रस्तुत कर रहे हैं जो बीकानेर के नाथूसर गांव में उपलब्ध हुआ है।

प्रलेख का मूल पाठ—

पंक्ति—१—समत १२८० बेरखे मती माह सुद्ध २ राग—
,, २—ड कुसलो गारधनत काम यायो छं गा धनैस—
,, ३—सर माह. रगड़ कुसलो रणधीर त झुझार
,, ४—हवा छं पाता अरषीओ रं बैरे महे कम या—
,, ५—या भटी कस(ल) संघ अखराज तरै म
,, ६—ह डऊ ॥ काम यया छ।

—'वरदा' पुष्ठ ३, वर्ष ४, अंक ३

आनँ। अरु जुग काल क ह रचना तत्व जिनि गायौ। सुगंध कौ समुद्र तिनि कौ मेरी दंडवत। स्वामी, तुमं तौ सतगुरु अम्हें तौ सिख सब्द एक पूछिबौ, दया करि कहिबौ मनि न करिबौ रोस।'

उपरोक्त अवतरण में 'पूछिबौ' 'कहिबौ' 'करिबौ' आदि के प्रयोगों के कारण इसके रचयिता को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने राजस्थान का निवासी माना है।[1] पूर्वी राजस्थान में आज भी क्रियाओं के अंत में 'बौ' लगाने की प्रथा है। किन्तु इन्हीं प्रयोगों को देख कर कुछ बंगाली विद्वानों ने अनुमान किया है कि इसकी भाषा पर पूर्वी बंगाल की भाषा का प्रभाव पड़ा है। नाथपंथी साधक प्रायः देशाटन करते रहते थे। अतः उनकी भाषा पर अनेक स्थानों की भाषाओं का प्रभाव पड़ना सम्भव है। अधिकतर विद्वानों ने उपरोक्त अवतरण को ब्रज-भाषा का नमूना माना है। वास्तव में यह ब्रजभाषा का ही उदाहरण है। प्राचीन राजस्थानी में वाक्यों का संगठन इस ढंग का नहीं मिलता।

चौदहवीं शताब्दी का एक और गद्य का उदाहरण श्री मोतीलाल मेनारिया ने प्राचीन राजस्थानी गद्य के नमूने के रूप में अपनी 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' नामक पुस्तक में उद्धृत किया है—

'ज्ञानाचारि पुस्तकं पुस्तिका संपुट संपुटिका टीपणां कबली उतरी ठवणी पाठा दोरी प्रभृति ज्ञानोपकरण अवज्ञा, अकालि पठन प्रतिचार विपरीत कथनु उत्सूत्र प्ररूपणु अश्रद्धधांन—प्रभृतिकु आलोयहु।'—आराधना[2] (संवत् १३३०)

श्री संग्रामसिंह द्वारा ...त 'बाल शिक्षा व्याकरण' में भी राजस्थानी गद्... ण पाये जाते हैं। इस ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १३३६ है। यद्यपि यह संस्कृत व्याकरण का ग्रंथ है तथापि समझाने के लिए इसमें राजस्थानी गद्य के शब्द-समूह का प्रयोग किया गया है।

पद्य की तरह राजस्थानी गद्य के भी प्रारंभिक विकास में जैन विद्वानों का विशेष हाथ रहा है। संवत् १४११ के गद्य का एक उदाहरण एक जैन आचार्य द्वारा लिखा मिलता है। इसे राजस्थानी गद्य के नमूने के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

ग्रामि एक अति दरिद्रता करी दुःखित डोकरी एक हूंती। हंसउ इसइ नामि तेहनउ दीकिरउ एकु हूंतउ। सु आजिविका कारणि ग्राम लोक तणा वाछरू चारतउ। अनेरइ दिनि संध्या समइ उद्यान-वन हूंतउ वाछरू ले आवतउ हूंतउ सु सर्पि डसिउ, मूर्च्छा आवी; तिहांईजि महाविसवेग संगनु हूंतउ हेठउ ढलिउ। जिम कास्टु निस्चेस्टु हुयइ तिम थाई मही पीठि पड़िउ। किणिहि एकि ग्राम माहि आवी करि डोकरि आगइ कहिउ—ताहरउ दीकिरउ सरपि डसिउ। बाहिरि अचेतनु थाई पड़िउ छइ।' तरुणप्रभा-चार्य[1] संवत् (१४११)

पन्द्रहवीं शताब्दी में राजस्थानी गद्य में दो प्रकार की लिपि का प्रयोग होता था। पहले प्रकार में महाजनी लिखावट होने से मात्राओं आदि का बहुत कम प्रयोग किया जाता था। राव चूंडा के समय का (वि० सं० १४७८) एक ताम्र-पत्र बड़ली ग्राम में प्राप्त हुआ है। इसमें तत्कालीन महाजनी लिखावट का प्रयोग किया गया है—

श्री राव चूंडाजी रो दत बड़ली गांव।
प्रोयत सादा नं दीधौ संवत् १४ व...
रस आठतरो काती सुद पूनम रे।
दिन वार सूरज पुस्करजी माथै।
पुण्यारथ कीदो महाराज चूंडाजी।
दुवौ तेवीस हजार वीगा जमीनी।
म समेत ईस्वर प्रीतये
गांव दीधौ हिन्दू नं गऊ मुसलमा
सू॰ माताजी चामुंडाजी सूं बेमुख
आल-औलाद अणारी कोई गोती पोतो।
ईस्वर सूं बेमुख प्रोयत सादा नै।[2]

[1] हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

[2] प्राचीन गुजराती गद्य-संदर्भ—मुनि जिनविजय, पृष्ठ २१८-२१९।

[1] 'षडावश्यक बालावबोध'—रचयिता खरतरगच्छाचार्य तरुणप्रभ सूरि, संवत् १४११।

[2] मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, लेखक—विश्वेश्वरनाथ रेऊ, पृष्ठ ६५ से उद्धृत।

दूसरे प्रकार को लिपि काफी साफ-सुथरी और स्पष्ट होती थी।

शैली की दृष्टि से भी यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आगे जाकर गद्य की दो प्रमुख शैलियाँ बन गई थीं—जैन शैली तथा चारण शैली। इस समय का एक विशिष्ट ग्रंथ 'प्रथीचंद चरित' अपर नाम 'वाग्विलास' जैनाचार्य माणक्य-सुन्दर सूरि द्वारा रचा हुआ मिलता है। इसका रचनाकाल संवत् १४७८ है। इसमें वर्णन बड़ा सजीव, कथात्मक एवं महत्वपूर्ण है। लोक-भाषा में वर्णनों का ऐसा सुन्दर संदर्भ ग्रंथ सम्भवतः अन्य नहीं है। इसमें पृथ्वीचन्द्र के चरित्र की अपेक्षा वाग्विलास रूप-चमत्कारिक वर्णनों की ही प्रधानता के कारण रचयिता ने ही सार्थक नाम 'वाग्विलास' स्वयं रखा है। ग्रन्थ प्रायः तुकान्त गद्य में लिखा गया है, जिसे पढ़ते समय काव्य-का सा आनन्द प्राप्त होता है। उस समय में ऐसे ग्रंथ का निर्माण वास्तव में राजस्थानी गद्य साहित्य की समृद्धि का महत्वपूर्ण उदाहरण है। ग्रन्थ की भाषा भी अपेक्षाकृत परि-मार्जित एवं सुन्दर है। उदाहरण के रूप में एक-दो वर्णन देखिये—

मरहट्ठ देस वरणण—

> 'जिरा देसि ग्राम अत्यन्त अभिराम। भलां नगर जिहां न मागीयइ कर। दुर्ग जिस्यां हुई स्वर्ग। धान्य न निपजइ सामान्य। आगर, सोना, रूपा तणा सागर। जेइ देस माहि नदी बहीइं, लोक सुषहं निर्वहइ। इसिउ देस पुण्य तणउ निवंश गरुअउ प्रदेश। तिणि देस पहठाणपुर पाटण वर्तइं, जिहां अन्याय न वर्तइं। जीणइ नगरि कउसीसे करी सदाकार पाषलि पोढ़उ प्राकार, उदार प्रतोली द्वार। पाताल भणी धाई, महाकाय षाइ, समुद्र जेहनु भाई। जे लिइ केलास पर्वत सिउंवाद, इस्या सर्वग्य देव तणा प्रासाद। करइ उल्लास, लक्षेस्वरी कोटिध्वज तणा आवास। आणंदइ मन, गरुडं राजभवन। उपरि उवंड सुवर्णमय दड, ध्वजपट लह-लहई प्रचंड।'

वास्तव में राजस्थानी साहित्य की उत्पत्ति और विकास में जैन धर्म का बहुत हाथ रहा है। विकासोन्मुख राजस्थान का प्राचीन रूप हमें उस समय के जैन आचार्यों की भाषा में मिलता है। इस पर विशेष कर नागर अपभ्रंश का अधिक प्रभाव है। वाग्विलास के सात-आठ साल बाद ही संवत् १४८५ में हीरानंद सूरि द्वारा लिखा गया 'वस्तुपाल तेजपाल रास' नामक ग्रन्थ की भाषा से यह स्पष्ट हो जाएगा—

> 'इसउ एक श्री सत्रुंजय तणउ विचारु महिमा नउ भण्डरु मंत्रीस्वर मन माहि जाणी उसरंग आणी। यात्रा उपरि उद्यम कीधउ, पुण्य प्रसादन नउ मनोरथ सिधउ।'

इस समय की भाषा के 'कोधउ' (कोधौ) 'सिधउ' आदि रूप विशेष रूप से दृष्टव्य हैं। 'उ' का प्रयोग प्रायः शब्दांत में प्रचुरता के साथ मिलता है।

इस समय में अनेक जैनेतर (चारण शैली) रचनाओं का भी निर्माण हुआ है। संवत् १४८५ में रची गई 'अचळदास खीची री बचनिका' इनमें प्रमुख है। इसके रचनाकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। श्री अगरचंद नाहटा एवं श्री मोतीलाल मेनारिया ने इसे पंद्रहवीं शताब्दी का ग्रंथ माना है। श्री मेनारिया ने इसका रचनाकाल स्पष्ट रूप से १४८५ ही दिया है।[1] परंतु डॉ० रामकुमार वर्मा ने संवत् १६१५ माना है।[2] हमारे दृष्टिकोण से इस ग्रंथ की रचना संभवतः पंद्रहवीं शताब्दी में हुई है। डॉ० तैस्सितोरी का मत भी इसी का समर्थन करता है।[3] इसका रचयिता शिवदास चारण कवि था। उसने इस ग्रंथ में गागरौन के खीची शासक अचळदास की उस वीरता का वर्णन किया है जो उन्होंने मांडल के पातिशाह के साथ युद्ध में दिखलाई थी। उस युद्ध में अचळ-दास वीरगति को प्राप्त हुए। शिवदास ने यह सब आंखों-देखा वर्णन किया है। ग्रंथ में पद्य के साथ-साथ वात रूप गद्य भी पाया जाता है। यह गद्य सर्वत्र तुकांत नहीं है। उस काल की रचना का यह अच्छा उदाहरण है—

> "तितरइ वात कहतां वार लागइ। अस्त्री जनं सहस चाळीस कउ संघाट आइ संप्राप्ती हुवइ छइ। बाळी-भोळी अबळा-प्रउढ़ा

[1] राजस्थानी भाषा और साहित्य—पं० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १००।

[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा, तृतीय संस्करण, पृष्ठ १७८।

[3] A descriptive Catalogue of Bardic and Historical Mss. Pt. J. Bikaner State, Fasc. 1., P. 401.

सोडस-वारखी-राणी रवताणी बहुवा-बहुवी ही आपणा देवर जेठ भरतार का सत देखती फिरइ छइ।'

इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में तुकांत गद्य का भी उदाहरण मिलता है जो काव्य का सा आनन्द देता है—

'पगि पगि पउलि हस्ती की गज घटा, ती ऊपरि सात-सात सइ धनक-धर सांवठा। सात-सात ओलि पाइक की बइठी, सात-सात ओलि पाइक की उठी। खेडा उडण मुद फरफरी चुहुंच की ठांइ ठांइ ठररी इसी एक स्यापट उडि चत्र दिसी पड़ी, तिण वाजि तकइ निनादि घर आकास चडहडी। बाप बाप हो! थारा आरंभ पारंभ लागि गढ़ लेयण हार किना। बाप बाप हो! थारा सत तेज अहंकार, राइ द्रुग रावणहार।'

संवत् १५१२ में 'कान्हडदे प्रबंध' की रचना हुई। इसमें भी पद्य के बीच-बीच में कहीं-कहीं गद्य मिलता है—

'वाघवालिया च्यारि च्यारि विलगा छइ। किरि जाणीइ आकासि तणा गमन करसि। अथवा पाताल तणां पाणी प्रगटावसि। ते घोड़ा गगोद कि स्नांन कराव्या तेह तणि सिरि श्री कमलि पूजा कीधी। तेह तणि पूठि बावनो चंदन तणा हाथी दीधा। तेह तणि पूठि पंच वर्ण पाखर ढाळी। किसी पखर—रण-पखर, जीणपखर, गुडिपखर, लोहपखर, कातलीयालीपखर।'

उस समय की साहित्यिक भाषा एवं बोलचाल की अथवा ताम्रपत्रों की भाषा में पर्याप्त अंतर दृष्टिगोचर होता है। संवत् १५१६ में जोधपुर के महाराजा राव जोधाजी ने श्रीपति के पुत्र रिषभदेव को, जो जाति का सारस्वत ब्राह्मण था और जिसका अवटंक ल्होड़ ओझा था, पुरोहितपन का ताम्रपत्र कर दिया था। उस ताम्रपत्र से उस काल की भाषा पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है—

'महारावजी श्री जोधाजी वचनायते तथा कनोज सूं सेवग लूंब रिसी जातऐ सारसुत ओजो ल्होड़ सेवा लेनें आयो सु राठोड़ वंस रा सेवग ऐ है। ठेटु कदीम सूं मुलगायां री सेवगपणो इणारो है। पहरी वंस रै माताजी श्री आदपंखणीजी चक्रेश्वरीजी पछै राव श्री धूहड़जी नूं वर दीधो नैं नाग रा रूप सूं दरसण दीधो तरै नागणेचियां कहांणी सु धूहड़जी रो तांबापत्र ओझा रिषभदेव श्रीपत रा बेटा कनै थी सु वाचनै मैं ही तांबापत्र कर दीधो। इण मुजब राठोड़ बंस रो सवगपणे रो लवाजमो जावर परणियो नेग वापो राजलोक रावळै करै सु वरत वडुलियो सरबेत रणा रो नेग है नै राठोड़ बंस गोतमस गोत्र अकरूर साखा री लार इतरा जणा छै। पीरोत सेवड़ ओजा सेवग लोड मथरेण रुदर देवा। सो देस परदेस मांहरी आल ओलाद पीढी दर पीढी ओजा रिषभदेव री।'[1]

मुसलमानी शासन के कारण अरबी-फारसी के भी कई शब्द बोलचाल की भाषा में प्रवेश पा गये हैं। उपरोक्त ताम्रपत्र में भी कदीम, लवाजमो, आल-ओलाद आदि शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से दृष्टव्य है।

श्री मेनारिया ने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में संवत् १५३२ के लगभग लिखे गये एक ताम्रपत्र का उल्लेख किया है—

'धरती वीघा तीन सै सुर प्रब में उदक आघाट श्री रामार अरपण कर देवाणी सो अणी जमी रो हांसल भोग डंड वराड लागत वलगत कुडा नवाण रुख वरख आंबा महुड़ा मेर को लकम सरब सुदी थारा बेटा पोता सपुत कपुत खायां पायां जायेला।'[2]

जैन धर्म के उद्धारक भगवान महावीर ने लोक-भाषा में अपने प्रवचन किये और परवर्ती जैनाचार्यों ने भी लोक-भाषा का सदा आदर किया और उसमें निरन्तर साहित्य-निर्माण करते रहे। अतएव लोक-भाषा के क्रमिक विकास के अध्ययन की सामग्री केवल जैन साहित्य में ही सुरक्षित है। जैन आचार्यों ने लोक-भाषा में केवल रचनाएँ ही नहीं कीं, अपितु उन रचनाओं को सुरक्षित रखने का भी महान् प्रयत्न किया। जैन भंडारों में से बहुत-से ऐसे ग्रन्थ उपलब्ध हुए जिनकी प्रतियां अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होतीं।

जैन भण्डारों से उपलब्ध सोलहवीं शताब्दी में रची गई दो-तीन रचनाओं का उल्लेख करना यहां अनुचित न होगा। जैसलमेर के जैन भण्डार से १६वीं शताब्दी के आरम्भ में लिखा गया एक विशिष्ट वर्णनात्मक ग्रन्थ अपूर्ण रूप में प्राप्त हुआ है, जिससे तत्कालीन भाषा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इनमें से कुछ वर्णन तो संस्कृत में हैं किन्तु अधिकांश वर्णन राजस्थानी में ही लिखा गया है।

---

[1] मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास—ले० रामकरण आसोपा, पृ. १८५ से उद्धृत।

[2] राजस्थानी भाषा और साहित्य—पं० मोतीलाल मेनारिया, पृ. २७४।

रसवति वरणन —

'उपलइ मालि प्रसन्नइ कालि। भला मंडप निपाया, पोयणी नै पानै छाया। केसर कुंकम ना छड़ा दीधा। मोती ना चौक पूरया। ऊपरि पंचवरणा चंद्रवा बांध्या, अनेक रूपे आछी परियछीना रंग साच्या। फूलां ना पगर भरया, अगर ना गंध संचरया। धांन गादी चातुरि चाकला, बइसण हारा बइठा पाताळा। सारवा घाट मेलाव्या आगलि पाट। ऊंची आडणी, झलकती कुंडली। ऊपरि मेलाव्या सुविसाळ थाळ, वाटा, वांटली सुवरणमई कचोळी। रूपा नी सीप ढूकी, इसी भांत मूकी।'

इस काल में तुकांत गद्य वाले और विशिष्ट वर्णनात्मक गद्य ग्रन्थ राजस्थान में निरन्तर बनते रहे हैं। राजस्थानी की इस परम्परा पर संस्कृत के काव्यकार बाण की रचना में भाषा की चित्रोपमता, लय-समन्वित विचारों की नूतन परम्परा तथा अलंकरणप्रियता अधिक है। दंडी की भाषा शिष्ट, स्निग्ध एवं शान्त है। पद-विन्यास की प्रौढ़ता अनूठी लाक्षणिकता, सजीव मूर्तिमता का समावेश, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का मनोरम प्रयोग आदि विशेषताएँ दण्डी के साहित्य में बहुलता से मिलती हैं। राजस्थानी गद्य-काव्यों में भी अलंकरणप्रियता अधिक है। संस्कृत में ऐसे गद्य के लिए जिसमें अनुप्रासों और समासों की अधिकता हो एवं जिसमें पद्य का सा आनन्द आवे, वृत्तगंधी का उल्लेख किया गया है। गद्य की भाषा हमारे जीवन के अधिक समीप है, अतः अत्यधिक भावुक हृदय कवि-जन, जिन्हें छन्दों की कृत्रिमता प्रिय नहीं है, इसी के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करते हैं, किन्तु उस समय के साहित्य पर पड़ा हुआ पद्य का विशाल प्रभाव, उन्हें पद्य के समीप रहने की ही प्रेरणा देता था। अतः गद्य होते हुए भी उनके पढ़ने और सुनने में पद्य के समान आनन्द या रस प्राप्त होता है। ऐसे गद्य-काव्यों का यह निष्कर्ष निकालना ठीक न होगा कि पद्यबद्ध रचना के क्षेत्र में असफल होने पर ही कविगण गद्य का आश्रय लेते हैं। पद्यबद्ध रचना के क्षेत्र में पूर्ण सफल व्यक्ति ही गद्य-काव्य-क्षेत्र में उतर सकते हैं। गद्य की स्वाभाविकता ने जहां लेखकों को गद्य लिखने के लिए प्रोत्साहित किया वहां पद्य की एक लय, एक ध्वनि, एक आश्रय की सत्ता का भी उन्होंने उपयोग किया; यह वह समय कहा जा सकता है जब कि गद्य पद्य से अलग होने का प्रयत्न कर रहा था किन्तु पद्य के प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त अभी तक न हो सका था। सम्भवतः गद्य-काव्यों की इतनी प्राचीन परम्परा आधुनिक समय में प्रचलित अन्य भाषाओं में नहीं मिलती।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरकाल में निर्मित दो और पद्यानुकारी कृतियों का उल्लेख हम यहां कर रहे हैं। ये दोनों राजस्थानी साहित्य-भाग २, में प्रकाशित हो चुकी हैं।[1] जैसा कि हम लिख चुके हैं, ये रचनाएँ गद्य में होने पर भी पद्यात्मक शैली से प्रभावित हैं—

१. 'पहिलउ दामा पुरोहित तणी नगरी श्री तिमरी आविया, पइसा रा मोटइ मंडाण कराविया, जांगी ढोल झालरि संखि वादित्र बजाविया, बिहुं पासे पटकूल तणा नेजा लहकाविया, पगि पगि खेला नचाविया, तणिया तोरण बंधाविया। गीत गान कीधा पून कळस सूहव सिरि दीधा; भला मंगळीक कीधा। घरि-घरि गूडि ऊछळी, श्री संघ तणी पूगी रळी। दाहो तरसो वरसां तणो कांण भागी, पुण्य तणी वेली वधिवा लागी। सरव ·····का मेळउ हुयउ। प्रसंग जोड़ी वडा बंधव श्री सूजा सहित राउल सातल वणावितउ सोभइ।'

२. 'मिळिया ओसवाळ, श्रीमाळ ढिलीवाळ, खंडेलवाळ, गुजराती, मेवाती, जैसलमेरा, अजमेरा, भटनेर, सिंधू, बहुतेरा, गोडवाड़ा, मेवाड़ा, मारुआड़ा, महेवेचा, कोटड़ेचा, पाटणेचा, मांडया सोवन पाट, धवळिया मंदिर हाट, फूल बिखेरया वाट, एकन हुवा महाजन-तणा थाट, ढमक्या ढोल-निसाण, ऊमटिया खरतर नां खुरसांण, ऊछव करइ जिणराज ठाकुर सुजाण। वाजिवा लागा तूर, ऊपना आणंद पूर भट्ट थट्ट लहइं कूर कपूर, याचक आपइ आसीस लहइं बोल बंभीस, न करइ लगाइ रीस, पूगी मनइ जगीस, पूत कळस ले नारी आवइ, धवळ मंगळ गावइ, मोतिए गुरुइ वधावइ, ऊपरि प्रति बहुमूल, उतारइ सोवन फूल, उछाळइ चावळ, कूआ बेळाउळ, जाणिवा लागा रांउळ, जिसा गयणि गाजइ बादळ, तिसा रळी रळी रणकइ मादळ, चउपट चडसाळ वाजइ ताळ कंसाळ।'

[1] ये दोनों रचनाएँ संवत् १५४८ एवम् १५६६ के मध्य में रची गई हैं। पहली रचना में जैसलमेर के राव सातल का परिचय दिया गया है एवम् दूसरी रचना में खरतरगच्छाचार्य श्री जिनशान्तिसागर सूरिजी के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालने के साथ ही तत्कालीन जोधपुर नरेश की वीरता एवम् उदारता का उल्लेख है।

धीरे-धीरे गद्य का विभिन्न रूपों में विस्तार होने लग गया था। आवश्यकतानुसार विभिन्न विचार-प्रवाह के रूप में गद्य का प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी में विभिन्न रूपों में गद्य-लेखन प्रारंभ हो चुका था। वात, ख्यात, पीढ़ी, वंसावली, टीका, वचनिका, हाल, पट्टा, बही, शिलालेख, खत आदि के माध्यम से समाज के संघर्ष-पूर्ण तत्वों, सौन्दर्य-भावनाओं, सृजनात्मक प्रवृत्तियों तथा अन्य कितने ही कार्य-व्यापारों का सुन्दर चित्रण हुआ है। इन विभिन्न विषयों के संबंध में मुन्शी देवीप्रसाद ने 'चांद' (मारवाड़ी अंक) नवम्बर १९२९ में 'भाट और चारणों का हिन्दी भाषा सम्बन्धी काम' नामक एक लेख में लिखा था—

"ये लोग पद्य को 'कविता' और गद्य को 'वारता' कहते हैं। 'वारता' ग्रंथ 'वचनका' 'वात' और 'ख्यात' कहलाते हैं। 'वचनका' और 'ख्यात' इतिहास के और 'वात' किस्से-कहानी के ग्रंथ हैं। इनमें गद्य और पद्य दोनों प्रकार की कविताएँ हैं। 'वचनका' और 'ख्यात' में बनावट का भेद होता है। 'वचनका' में तुकबंदी होती है, 'ख्यात' में नहीं होती पर उसकी इबारत सीधोसादी होती है।'

समृद्धता की दृष्टि से राजस्थानी का वात साहित्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। राजस्थान में कहानी लिखने की परम्परा बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है। संपूर्ण वात साहित्य के प्रकाश में न आने के कारण अधिकांश विद्वान वातों की विशिष्ट विशेषताओं के संबंध में अनभिज्ञ ही रहे। यही कारण है कि अधिकतर विद्वानों ने इन वातों का विषय (रईसों, नवाबों आदि के अवकाश के क्षणों में मनोरंजन हेतु) प्रेम एवं अतिरंजित एवं आकस्मिक घटनाओं से परिपूर्ण ही माना है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य' नामक पुस्तक में राजस्थानी गद्य साहित्य के विषय में लिखा है—'ब्रजभाषा की भाँति ही राजस्थानी में ख्यात, वात और वार्ताओं का साहित्य थोड़ा बहुत बनता रहा। मुगल दरबार में 'किस्सागोई' नाम की एक विशेष प्रकार की कला का जन्म हो चुका था। मुगल काल के अंतिम दिनों में तो 'किस्सा-गोई' या 'दास्तानगोई' एक पेशे का रूप धारण कर चुकी थी। किस्सा-गो लोग अवकाश के क्षणों में बादशाहों, नवाबों और अन्य रईसों का मनोरंजन किया करते थे। इन कहानियों का प्रधान विषय प्रेम हुआ करता था और अतिरंजित एवं आकस्मिक घटनाओं से वर्ण्य-विषय को आकर्षक बनाने की चेष्टा भी होती थी। राजपूत दरबारों में भी इनका थोड़ा-बहुत अनुकरण होने लगा, इसी कारण राजस्थानी भाषा में भी 'किस्सागोई' का साहित्य बनता रहा। परन्तु जिस प्रकार राज-पूत कला मुगल कला से प्रभावित होकर भी भीतर से संपूर्ण रूप से भारतीय बनी रही, उसी प्रकार यह आख्यान साहित्य भी संपूर्ण रूप में भारतीय ही बना रहा।'

इस सम्बन्ध में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि राज-स्थानी वात साहित्य पर मुगल काल में प्रचलित किस्सागोई का असर भले ही पड़ा हो किन्तु राजस्थानी में वात साहित्य सम्बन्धी रचनाएँ मुगलों के भारत में आने से पहले ही निर्मित होती रही हैं। अतः राजस्थान की कहानी कहने और लिखने का विचार नितान्त मौलिक है। 'वात' शब्द भी कहानी का उपयुक्त पर्याय नहीं है। 'वात' शब्द में कहानी के अन्तर्गत वर्णित की जाने वाली सम्पूर्ण रोचकता, कहने वाले की विज्ञता और सुनने वाले के जिज्ञासापूर्ण आग्रह का एक मिश्रित भाव-सृजन निहित है। विषय की दृष्टि से भी राजस्थानी वार्ताओं का प्रेम, वीर, हास्य एवं शान्त रस के अन्तर्गत वर्गीकरण किया जा सकता है। श्री रावत सारस्वत ने विभिन्न दृष्टियों से 'वातों' का जो वर्गीकरण किया है[1] वह राजस्थानी वात साहित्य को पूर्णरूपेण समझने में सहायक होगा।

१—कथानक की दृष्टि से—

(क) ऐतिहासिक—राव रिणमल री वात, पाबूजी री वात, कानड़दे री वात, नापै सांखळे री वात, राव अमरसिंहजी री वात आदि।

(ख) अर्द्ध ऐतिहासिक— गोगैजी री वात, सयणी चारणी री वात, जोगराज चारण री वात, राजा मांन-धाता री वात, पीरोजसाह पातिसाह री वात, मूमल री वात आदि।

---

[1] राजस्थान भारती, वर्ष ३, जुलाई १९५१।

(ग) काल्पनिक– वात ठग री बेटी री, पदमकळा री वात, फोगसी एवाळ री वात, कोड़ीधज री वात, चंदण मळयागिरि री वात आदि।

(घ) पौरांणिक– सोमवती अमावस री कथा, बुधास्टमी व्रत कथा, राजा नळ री वात, दुआरका महातम री वात, रांमनवमी री कथा आदि।

२–विषय की दृष्टि से—

(क) प्रेम– सोरठ री वात, ऊमादे भटियांणी री वात, ढोला मरवण री वात, वींझरै अहीर री वात, रांणै खेतै री वात, सोना री वात आदि।

(ख) वीर– जगदे पँवार री वात, सोनिगरै मालदे री वात, राव चूंडै री वात, डाढाळै सूर री वात, राजा प्रथीराज चौहांन री वात, गौड़ गोपाळदास री वात आदि।

(ग) हास्य– च्यार मूरखां री वात, गोदावरी नदी रै जोगी री वात, मांमै भांणजै री वात, राजा भोज और खापरियै चोर री वात, बीरबळ री वात आदि।

(घ) शान्त– राजा भोज री पनरमी विद्या री वात, भांडरण गांम रै पीर री वात, रांमदास वैरावत री आखड़ियां, रांमदे तुवर री वात आदि।

३–भाषा के प्रभाव की दृष्टि से—

(क) राजस्थांनी– नागौर रै मामले री वात, सूरां अर सतवादियां री वात, सांई री पलक में खलक बसै तैं री वात, राजा भीम सूं जुध कियौ तैं री वात आदि।

(ख) उर्दू मिश्रित– कुतबदी साहिजादै री वात, देहली री वात, लुकमांन हकीम की आपणै बेटे कूं नसीहत आदि।

(ग) ब्रजभाषा मिश्रित– नासिकेत री कथा, पूरणमासी री कथा आदि।

(घ) गुजराती मिश्रित– अंजना सती री वात।

४- रचना प्रकार की दृष्टि से—

(क) गद्यात्मक– सूरिजमल हाडै री वात, राजा करणसिंहजी री कंवरी री वात आदि।

(ख) गद्य पद्यात्मक– रतना हमीर री वात, नागजी नागमती री वात, पना वीरमदे री वात आदि।

(ग) पद्यात्मक– विद्याविळास चौपई, नळ दमयंती चौपई, सनिस्चरजो री कथा, ढोला मारवणी चौपई आदि।

५–शैली की दृष्टि से—

(क) घटनात्मक– पातिसाह औरंगजेब री हकीकत, जैपुर में सेव वैस्णवां रौ झगड़ौ हुयौ तैंरी हाल आदि।

(ख) वर्णनात्मक– खीची गंगेव नींबावत रौ बेपारौ, लूणसाह री वात रौ वखांण आदि।

(ग) विचारात्मक– माघ पिंडत, राजा भोज, डोकरी री वात, जसनाथ जाट री वात।

६–उद्देश्य की दृष्टि से—

(क) व्यक्ति चित्रण– हरराज रै नैणां री वात, हरदास ऊहड़ री वात, ऊदै उगणावत री वात, महाराजा पदमसिंह री वात आदि।

(ख) समूह दर्शन– भायलां री वात, बूंदेलां री वात, सांचौर रै चहुवांणां री वात, गढ़ बांधव रै धणियां री वात।

(ग) समय व स्थान विशेष का वर्णन– राव बीकै बीकानेर वसायौ तैं समै री बात, रांणै उदैसिंह उदयपुर वसायौ तैं समै री वात, अणहलवाड़ा पाटण री वात आदि।

उपरोक्त वर्गीकरण के साथ इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि राजस्थानी वात-साहित्य इतना विस्तृत तथा विविधतापूर्ण है कि उसका पूर्ण वैज्ञानिक वर्गीकरण करना साधारण रूप में सम्भव नहीं है।

"राजस्थानी साहित्य में मोटे तौर पर दो प्रकार की बातें मिलती हैं। एक तो वे बातें जिनका लिपिबद्ध स्वरूप बन गया है और जिनकी भाषा-शैली में स्थायी रूपगत विशिष्टता प्रकट होती है। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे बातें आती हैं जिनका कोई एक शैलीगत रूप लिपिबद्ध नहीं हो सका, किन्तु वे अभी तक लोगों की जबान पर ही हैं। इस दूसरे प्रकार की वातों को लोक-कथाओं के नाम से भी पुकारा जाता है।"[1]

राजस्थानी लोक-कथाओं की दृष्टि से भी बहुत समृद्ध है। राजस्थान के भूतकालीन इतिहास की गौरव कथायें आदि विविध रसों से परिपूर्ण होकर लोककथाओं के रूप में प्रचलित

[1] परम्परा–राजस्थानी बात संग्रह, भूमिका, पृष्ठ १२।

हो गई हैं। ग्राम-ग्राम में इन लोक-कथाओं की समृद्ध स्मृतियाँ और रसात्मक श्रुतियाँ प्रचलित हैं और नाना जनों के स्मरण और कण्ठ में रम रही हैं। स्थानीय प्रभावों के कारण उनमें अधिक विभेद पाया जाता है और लिपिबद्ध बातों में जहाँ घटनाओं का एक रूढ़ रूप परिपाटी से चला आ रहा है वहाँ इन वातों (लोक-कथाओं) में परिवर्तन के लिए सदैव गुंजाइश रहती है। वातों की रचना-प्रणाली पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

यद्यपि राजस्थानी की प्राचीन वातों में आधुनिक साहित्य की कहानियों में मिलने वाला सूक्ष्म तत्वों का चित्रण, पात्रों का वैज्ञानिक चरित्र-लेखन तथा कहानी लेखक के विस्तृत अध्ययन की सारगर्भित मार्मिक उक्तियों आदि का अस्तित्व आदि नहीं मिलता तथापि राजस्थानी वातों की अपनी एक विशिष्ट शैली है।

घटना-बाहुल्य राजस्थानी वातों की प्रमुख विशेषता है। इनमें पाठकों को मन्त्रमुग्ध करने की अपूर्व क्षमता है। बीच-बीच में जहाँ भी अवसर प्राप्त होता है वहीं प्रकृति की अनुपम छटा, नगर की विशालता एवं सम्पन्नता, दुर्ग की अभेद्यता, युद्ध की भयंकरता, वीरों का रण-कौशल, हाथी-घोड़ों के लक्षण, अस्त्र-शस्त्रों की विशेषताएँ, नायिका का सौन्दर्य, उसके श्रृंगारिक उपकरणों आदि का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। ये वर्णन इतने सजीव एवं मार्मिक हैं कि पाठकों के कल्पना पटल पर सजीव चित्र उपस्थित कर देते हैं। वात कहने वाले या लिखने वालों की दृष्टि इतनी पैनी हो गई है कि वे अत्यंत सूक्ष्म तत्वों का निर्देश करना भी नहीं भूले हैं। उदाहरण के रूप में जहाँ मृगया का वर्णन हो रहा है वहाँ एक-एक क्षण के परिवर्तन के सुन्दर चित्र हैं। किसी सरस विषय को वे और भी मनोरंजक बना देते थे। कुछ रचनाएँ तो ऐसी हैं जिनमें शताब्दियों का इतिवृत्त ठूंस दिया गया है एवं उनका लिपिबद्ध रूप सैकड़ों पृष्ठों में जाकर समाप्त होता है। किन्तु कुछ रचनाओं में थोड़े से समय में घटित होने वाली छोटी-छोटी घटनाओं का भी अत्यन्त विशद वर्णन है: सोलहवीं शताब्दी में[1] रची गई 'खीची गंगेव नींबावत रो दो-पहरो' इसका सुन्दर उदाहरण है। इसमें खीची-वंशीय नींबा के पुत्र गंगेव की एवं उनके साथियों की एक दिन की दिनचर्या का वर्णन है जिसमें दुपहर का वर्णन प्रधान है। छोटे-छोटे वाक्यों की सुन्दर योजना के कारण गंभीर भावों की आलोचना तथा सूक्ष्म तत्वों का चित्रण बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। इसी बात का एक उदाहरण देखिये—

> 'तठा उपरायंत मोदियां नै हुकम हुवो छै। भूंबाई सारू सारी ही वसत सीधो मीठांण वेसवार सरब लेय राती-नाडी चाल-ज्यो, म्है सिकार रम उण नाडी आवां छां। सू मोदी भोई तो पाधरा नाडी रै मारग वहीर हुवा छै। आप रमणै'र मारग भाखरां नै खुडां रै मारग चालिया छै। घोड़ां रा पोडां सूं जमी गूंज रही छै। खेह री डोरी आकास नै जाय लागी छै। घूघरमाळ घोड़ां री बाज रही छै। हींस कळळ होफ हुयनै रही छै। बहलियां रा घूघरां जंगां री झमकार हुयनै रह्यो छै। बहलां रा वांस पइयां री खड़बड़ाट हुयनै रह्यो छै। होकारा हुयनै रह्या छै। सहनायां में मलार राग हुयनै रह्यो छै। निसांण मूंहडै आगै फरहरतै रह्या छै। नकीब, चोपदार नजर दौलत। सू सूरज री किरण नै वरछियां री एकै किरण हुयनै रही छै। इसो समीयो वणनै रह्यो छै।'

वर्णन परंपरागत होते हुए भी इसकी सरसता में कमी नहीं आ पाई है। व्यक्ति-चित्रण भी इन वातों में बड़े सुन्दर ढंग से उपस्थित किया जाता है। इसी 'खीची गंगेव नींबावत रो बेपारौ' नामक वात में खीची गंगेव के व्यक्तित्व का रेखा-चित्र देखिये—

> 'तठा उपरांयत गंगेव नींबावत बाहर पधारै छै, सू किण भांत रो छै? ऊगतो सूरज, पावासर रो हांस, कुंवरांपत कुंवर, जळहर जबाध भोगी भंवर, कसतूरियो म्रिघ, लांघियो सिंघ, सोळ गंगेव, दुरजोधन अहमेव, जुजठळ ज्यूं साच, दुरवासा वाच, ग्यांन रो गोरख, सहदेव ज्यूं सारी वात समरथ, अरजुन ज्यूं बांण, करण ज्यूं दांन पांण, बत्तीस आखड़ी रो निवाहणहार, वैरियां विभाडणहार, पर-भोम पंचायण, घण दियण, जस लियण, कळायरो मोर, सूंधै भीनै गात, केसरिया पोसाख कियां, पांच हथियारां बाधां आंण घोड़ै असवार हुवै छै।'

प्राय: सभी वातों में तत्कालीन समाज की परिस्थितियों का सुंदर चित्रण मिलता है। इन वातों से मध्यकालीन राजस्थान के बहुत बड़े समाज के सामाजिक एवं राजनैतिक वातावरण, आमोद-प्रमोद, रूढ़ि-निर्वाह, जीवन सिद्धान्तों आदि पर प्रकाश पड़ता है। वर्णनों की सजीवता, औत्सुक्य का

[1] राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १, प्रकाशक— राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर में प्रकाशित अगरचंद नाहटा का एक लेख, पृ० २४ के आधार पर।

निर्वाह, लयात्मक भाषा में काव्य का सा आनंद और सामाजिक सत्य की अभिव्यक्ति आदि के कारण सैकड़ों वर्षों से ये बातें राजस्थान के लोगों को अत्यन्त प्रिय रही हैं।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक राजस्थानी का गद्य साहित्य काफी उन्नति कर चुका था। सुसंगठित भाषा में उपमाओं, दृष्टान्तों और उत्प्रेक्षाओं एवं अतिशयोक्तियों का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग होने लगा था। रूढ़ उपमानों के अतिरिक्त अन्य कितने ही नये मौलिक उपमानों का भी प्रयोग हुआ है। पद्य के समान गद्य में भी नख-शिख वर्णन राजस्थानी वातों में पाया जाता है। सोलहवीं शताब्दी[1] का ही इस संबंध में गद्य का एक और उदाहरण देखिये—

> 'तठा उपरांति करि नै राजां न सिलामति नख सिख सूधो सिणगार वखांणीजै छै। वासिगां सागीधी पन्नपन्नेण ऊपरि सीसफूल मोतिआं रो वणाव वणी नै रहियौ छै। पूनिमचंद सो मुख सोळै कळा संपूरण विराजिओ छै। तिलक बीच बिंदी झिल नै रही छै। कबांण ज्यां बाकी भ्राहां भमर विलसी विराज नै रहिया छै। अिध नैणां त्रिखां भलकां ज्यों जळवालिआं टोए अणिआळो काजळ ठांतियौ छै सू आसी नासिका बीच बेसर वणी, उजळ पाणी नरमदा मोती प्रोया सू लटकि नै रहिआ छै। बिचै लाल मणी झळक रही छै।'
>
> —राजांन राउतरी वात-वणाव।

राजस्थानी वातों की यह परम्परा आधुनिक काल तक निर्बाध गति से चली आ रही है। सोलहवीं शताब्दी के बाद भी साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत सी सुन्दर बातें लिखी गईं, जिनका हम आगे यथास्थान उल्लेख करेंगे।

वात साहित्य के अतिरिक्त उस समय 'वंसावळी' या 'पीढ़ियावळी' भी लिखी जाती रही, जिनका साहित्य की अपेक्षा इतिहास की दृष्टि से अधिक महत्व है। वंसावळी या पीढ़ियावळी में पीढ़ियाँ दी जाती हैं, जिनके साथ में व्यक्तियों का संक्षिप्त या विस्तृत परिचय भी प्रायः रहता है। विविध जातियों की वंशावलियाँ भाट, मथेरण आदि जाति के व्यक्तियों द्वारा लिखी जाती रही है। बीकानेर के जैन संग्रहालयों में इस प्रकार की लिखी गई वंशावलियाँ प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होती हैं। 'बच्छावत वंसावळी, राठौड़ वंस री विगत आदि वंशावळियाँ तो इतिहास की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। विविध राज्यों की लिखी हुई अधिकांश पीढ़ियावलियाँ आधुनिक समय में उपलब्ध नहीं हैं। जो मिलती हैं उनसे ही राजस्थान के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

संवत् १६०० के लगभग की लिखी गई 'राठौड़ों की वंशावळी' से उस समय की भाषा एवं वंशावलियाँ लिखने के ढंग की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

> 'पछै मुलतान री फौजां नै दिली री फौजां ले नै राउ चूंडै उपर नागौर आयो। राउ चूंडो नागोर मारिया पछै केल्हण अपूठो आयो।'—राठौड़ां री वंसावळी (सं० १६००)

पन्द्रहवीं शताब्दी के 'बालावबोध' लिखने की परंपरा भी अभी तक जैन लेखकों में चली आ रही थी। बालक भी सरलता से समझ सकें, इस तरह की टीका को 'बालावबोध' कहा गया है।[1] संवत १६०० की लिखी गई 'मुनिपति चरित्र बालावबोध' की एक प्रति हमारे देखने में आई है। भाषा की दृष्टि से यह ग्रन्थ काफी महत्वपूर्ण है। इसकी भाषा का एक उदाहरण देखिये—

साकत (साकेत) नगर चंद्रावतंसक राजा। तहनइ (तेहनइ) बि भार्या। एक सुदर्शना। बीजी पद्मावती। सुदर्शना ना बि पुत्र। सागरचंद्र। मणिचंद्र। पद्मावती ना बि पुत्र। गुणचंद्र। बालाचंद्र। चंद्रावतंसक राजा इंदीवउ दखी। (देखी) अभिग्रह लीधउ। जां ए दीवउ बलि सिइ तांमइ का सगन पाखिउ। दासिइं च्यारइ पुहर दीवउ सींचिउ। राजानउं सयर ताहो (लोही) भरिउं। मूरछा आवी। आकुल हुउ। मरी इदवालां कि गिाराज परीघउ मिलिउ। (मरी देव लोकि गिरोज परीघउ मिलिउ)

इस समय की बोलचाल की भाषा में अरबी-फारसी का प्रयोग बढ़ता जा रहा था। शासन-कार्यों में भी फारसी-मिश्रित राजस्थानी का प्रयोग होता है। बारहठ लक्खा द्वारा

---

[1] राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १, प्रकाशक—राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर—में प्रकाशित श्री अगरचंद नाहटा का एक लेख, पृष्ठ ३४ के आधार पर।

[1] परंपरा, भाग ९-१० 'नीतिप्रकास' में प्रकाशित श्री अगरचंद नाहटा का एक लेख— 'राजस्थानी भाषा में अनुवाद की परम्परा', पृष्ठ १७२।

संवत् १६४२ में कुलगुरु गंगारामजी को बादशाह अकबर की ओर से दिये गये ताम्रपत्र की भाषा के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी—

परवाना

लीखावतां बारहठजी श्री लखोजी समसत चारण वरण वीसजात्रा सीरदारां सूं श्री जेमाताजी की बाचज्यो अठे तषत आगरा श्रीपातसाजी श्री १०८ श्री अकबर साहजी रा हजुरात दरीषांना माहीं भाट चारणां रा कुळ री नंदीक कीधो जण वषत समसत राजेसुर हाजर था वां का सेवागीर वी हाजर था जकां सुण अर मो सु समंचार कह्या जद सब पंचां री सला सु कुलगुरु गंगारामजी प्रगणे जेसलमेर गांव जाजीयां का जकाने अरज लीष अठे बुलाया गुर पधारया श्री पातसाहजी नी रुबकारी में चारण उत्पत्ती सास्त्र सिवरहस्य सुणायो पंडतां कबूल कीधां जण पर भाट झुटा पडया गुरां चारण वंस री पुषत राखी नीवाजस सारां बुतासु सीवाय बंदगी कीधी ओर माग बुता माफक हाती लाष पसाव प्रथक दीधो गांव की अवेज बावन हजार बीगा जमी ऊजेण के प्रगने दीधी जकण रो तांबापत्र श्री पातसाहजी का नांव को कराय दीधो अण सवाय आगा सुं चारण वरण समसत पचां कुल गुरु गंगारामजी का बाप दादा ने ब्याव हुअे जकण में कुल दापा रा रुपीया १७॥) ओर त्याग परट हुवे जीण मां मोतीसरां को नांवो बंधे जीण सु दुणो नांवो कुल गुरु गंगारांम का बेटा पोता पायां जासी संमत १६४२ रा मती माहा सुद ५ दसकत पचोली पन्ना-लाल हुकम बारठजी का सु लीखी तखत आगरा समसत पंचां की सलाह सू आपांणो यां गुरां सू अधीकता दुजो नहीं छै।'[1]

परवर्ती काल में राजस्थानी गद्य में साधारणतः दो प्रकार की पुस्तकें लिखी गई—कुछ स्वतंत्र ग्रंथ तथा कुछ साहित्यिक ग्रंथ की टीकाएँ, अनुवाद आदि, स्वतंत्र ग्रंथों के अन्तर्गत इस समय में रचा गया 'दलपत विळास' का उल्लेख आवश्यक है। इसकी रचना रायसिंहजी के समय में संवत् १६२१ से १६६८ के बीच किसी समय हुई थी[2] क्योंकि इसमें संवत् १६३२ तक की घटनाओं का उल्लेख मिलता है। इस ग्रन्थ की भाषा का एक उदाहरण देखिये—

'एक अमरै कल्याणमलोत पातिसाही साथि ली हुती। ताहरां कुंवर श्री दळपतजी नूं राजाजी कहाड़ि मेल्हियो जुंऐ साथि बेराए। अर इणानूं काढे परहा धरती महा अमरै नूं। ताहरां इसड़ै सै टांणै कुंवर श्री दळपतिजी बीकानेर थी चढि अर इयां सांमहा पधारिया। आंबासर महा करि, सोहवै महा करि सिधू पधारिया। सिधू आेथ खबरि पाई जु एथि तो नैड़ा सा नहीं। ताहरां सिधू हुता कूच करि अर बाडसरि पधारिया। ओथि राघवदास रा आदमी खोसाखूंदी करता हुता सु कुंवर श्री दळपतजी झलाड़िया।'

दूसरे प्रकार के ग्रन्थ अनुवाद एवं टीका के रूप में मिलते हैं। अनेक साहित्यिक ग्रंथ (जिसमें अधिकतर काव्य ग्रंथ ही होते थे) जो साधारण जन के लिये सहज रूप में बोधगम्य नहीं होते थे, उनकी उस समय में प्रचलित सरल गद्य में टीका प्रस्तुत की जाती थी जिससे जन-साधारण भी उन काव्य-ग्रंथों का रसास्वादन कर सकें। राजस्थानी अनुवादों की विविध शैलियां पाई जाती हैं। वे अनुवाद या टीकाएँ जो जैन ग्रंथों या जैन विद्वानों के किये हुए हैं, उन्हें प्रधानतया 'टब्बा', 'बालावबोध' और 'वार्तिक' के नाम से ही संबोधित किया गया है। 'टब्बा' संक्षिप्त शब्दानुवाद का द्योतक है। अनुवाद अनेक प्रकार के पाये जाते हैं जिनमें शब्दानुवाद, छायानुवाद प्रधान रूप से उल्लेखनीय हैं। विस्तृत विवेचन को टीकाओं की संज्ञा मिल जाती है। इस काल में अनेक ग्रंथों की टीकायें लिखी गईं। प्रथीराज की 'वेलि' पर लिखी गई आठ-दस टीकायें मिलती हैं, उनमें प्राचीनतम रूप में उपलब्ध टीका का उदाहरण हम यहां दे रहे हैं जो संभवतः संवत् १६८३ का है—

'बलि को बंधणहार। सब ही बात सामरथ। श्री क्रसण रुखमणीजी बांह पकड़ि रथ उपरि बैसाणी। तबै बाहर वाहर हुई। कहण लागा जु कोई होय सु दौडिज्यो। हरणाखी कहतां रुकमणीजी हरि कहतां क्रम्ण हरि लें गयो।'

— वेलि क्रिसण रुखमणी री टीका (संवत् १६८३)

इन टीकाओं के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं के ग्रंथों का भी राजस्थानी में अनुवाद किया गया। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं में रचित ग्रंथों को समझना जब जन-साधारण के लिए अत्यन्त कठिन हो गया तब प्रचलित भाषा में उनके अनुवाद की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। यद्यपि प्रारम्भ में अधिकांश अनुवाद जैन आचार्यों द्वारा किए हुए ही मिलते हैं तथापि जैनेतर अनुवाद भी बाद में

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, संवत् १९७७ में प्रकाशित 'चारणों और भाटों का झगड़ा' नामक लेख, पृ० १३१-१३४ से उद्धृत।

[2] राजस्थान भारती, भाग २, अंक १, जुलाई १९४८, पृ० ५१।

सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध होते हैं। इनमें 'भागवत दसम स्कंध भासा', 'महाभारत भासा', 'गरुड़ पुरांण भासा' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

मुस्लिम संस्कृति एवं साहित्य के प्रसार के कारण फारसी भाषा के भी अनेक ग्रंथों का अनुवाद राजस्थानी में किया जाने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी तक तो यह परंपरा बहुत हो बढ़ गई थी।

टीकाओं एवं अनुवादों के अतिरिक्त सत्रहवीं शताब्दी के परवर्ती काल तक गद्य काव्य का रूप भी काफी निखर चुका था। भाषा में लालित्य की मात्रा कुछ अधिक दृष्टिगोचर होने लगी थी। वर्णन बड़े सुन्दर होते थे। सत्रहवीं शताब्दी में लिखित एक वर्णनात्मक ग्रन्थ में विरहिणी का वर्णन देखिये—

> 'हार त्रोड़ती, वलय मोडती। आभरण भांजती, वस्त्र गांजती। किंकणी कलाप छोड़ती, मस्तक फोडती। वक्षस्थल ताड़ती, कंचउ फाड़ती। केश कलाप रोलावती, पृथ्वी तलि लोटती। आंसूकरी कंचुक सींचती, डोडली दृष्टि मींचती। दीन वचन बोलती, सखीजन अपमानती। थोड़इ पांणी माछळी जिम तालोवलि जाती, सोक विकल जाती, मोक विकल थाती। क्षणि जोयइ, क्षणि रोयइ। क्षणि हसइ, क्षणि रूसइ। क्षणि आक्रंदइ, क्षणि निंदइ। क्षणि मूझइ, क्षणि बूझइ। तेह तनु संतापइ चंदणु। कमळनाल पुण मेलइ जाल। चंद्रकांति ज्वलइ, पुस्प सय्या बलइ। हार भावइ अंगार, कदलीहर, मानइ जमहर, जे जल सीकर ते उद्वेग कर। जउ सीतलोपचार, ते करइ विकार। इणि परि प्रज्वलित, स्नेह पटल, विरहानल नीपजइ।'[१]

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि सत्रहवीं शताब्दी तक मुगलकालीन साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का प्रभाव राजस्थान की भाषाओं एवं बोलियों पर भी पर्याप्त रूप से पड़ने लगा था। उस समय की वे वार्तायें अथवा लोक-कथायें जो बोलचाल की भाषा में लिखी जाती रहीं, उनमें अरबी-फारसी के शब्द निस्संकोच रखे गये हैं। ये कथाएँ साहित्यिक निपुणता या चमत्कार की दृष्टि से नहीं लिखी गईं। सत्रहवीं शताब्दी की लिखित 'कुतबदीन साहिजादे री वारता' का एक उद्धरण देखिये—

> 'एक दिवस पीरोजसाह का उमराव दांनसमंद की बेटी साहिबां खुलावती थी, ढ़ढ़णी खुस्याल भई महरवांन हुई कर कहण लागी—'अरे साहिबां तुझ कूं उपगार करूंगी इहै खूब ममां क्या उपगार करंगी उपगार करती है हमारे वडां बुढु कै नांम लेती है।'

साधारणतः लोक-कथाओं का निर्माण जन-साधारण के लिये ही किया जाता था, अतः उन कथाओं की रचना प्रायः बोल-चाल की भाषा में ही की जाती थी। अरबी-फारसी शब्दों का प्रचलन बोलचाल की भाषा में निरन्तर बढ़ता ही जा रहा था। लेखक प्रायः अरबी-फारसी के अच्छे जानकार भी होते थे। अतः बाद की 'वातों' में अरबी-फारसी का प्रयोग बड़ा सुव्यवस्थित ढंग से हुआ। 'वातों' में इन शब्दों के प्रचुर प्रयोग का दूसरा कारण इन लोक-कथाओं का कई वर्षों तक लिपिबद्ध नहीं होना भी है। लिपिबद्ध न होने से इनका स्वरूप स्थिर न रह सका और कालान्तर में इनकी भाषा अरबी-फारसी शब्दों से प्रभावित होती गई और जब इनको लिपिबद्ध किया गया तब तक ये शब्द इन वातों में अपनी जड़ जमा चुके थे। 'वात' के लेखकों ने जहाँ मुसलमानी पात्रों का वर्णन एवं कथानक प्रस्तुत किया है वहाँ उसके अनुरूप अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया है जिससे वर्णन में अत्यंत स्वाभाविकता बनी रहती है—

> 'नबाब मुहीम सर कर पदमपुरे सूं पाव कोसे'क गांव थो उणमें आ उतरियौ थो। इतरै उण बखत रा ढोल नगारा बाजिया जिका सुण'र पूछी—आज भाई के पुरे में ढोल नगारे जो बाजे हैं सो किसी की सादी है या कोई कुंवर पैदा हुवा है या किही ऊपर फतह हासिल की है? सो जाय सताब खबर लेय आवौ। जणां आदमी खबर नुं गयौ। आदमी तुरत आय सारी खबर सुणाई।
>
> —महाराजा श्री पदमसिंह री बात

प्राचीन राजस्थानी का गद्य अनेक रूपों में मिलता है। वातें, लोक-कथायें, वंशावलियाँ आदि का उल्लेख हम कर चुके हैं। संवत् १७१५ में एक और प्रमुख 'वचनिका' का निर्माण हुआ। इसके पहले शिवदास चारण द्वारा 'अचळदास खीची री वचनिका' लिखी जा चुकी थी जिसका उल्लेख हम यथास्थान कर चुके हैं। उसी परंपरा में जग्गा खिड़िया ने 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघ जी री महेसदासोत री' की रचना

[१] राजस्थान साहित्य संग्रह, भाग १, प्रकाशक : राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर, जोधपुर में प्रकाशित अगरचंद नाहटा के एक लेख के पृ० २२ पर दिया गया उद्धरण।

कि किन्तु शिवदास के निर्दिष्ट मार्ग पर चल कर भी जग्गा साहित्यिक दृष्टि से उससे आगे निकल गया। भाषा की दृष्टि से इसका रूप शिवदास की वचनिका से अधिक सुघरा हुआ है। इसमें गद्य-पद्य दोनों का प्रयोग बड़े सुंदर ढंग से किया गया है। प्रबंध काव्यों में पद्य के साथ ही साथ गद्य के प्रयोग की परंपरा भी राजस्थानी साहित्य में काफी समय से चली आ रही है। संभवत: यह प्रणाली संस्कृत के चम्पू ग्रन्थों से ली गई है। इस प्रकार के गद्य ग्रन्थों में ये गद्य खंड विभिन्न नामों से मिलते हैं, यथा—वचनिका, वारता दवाबैत आदि।

१—वारता—औरंगसा पातसा आसुर अवतार। तपस्या के तेज पुंज एक से विसतार। आप का विहाई सा प्रताप का निदान। मारतंड आगे जिसी जोतसी जिहांन।—राजरूपक (सं० १७८७)

२—दवाबैत—ऐसा गढ जोधांण और सहर का दरसाव जिसके चौतरफ कीं वागीचूं का डंबर और दरियाऊं का बणाव। पहिले वागीचूं की सोभा कहिके दिखाया पीछे दरियाऊ की तारीफ जिसके गुन गाया। सो कैसे कहि दिखाया जळ निवांणूं का निवास रतिराज का वास। गुलजार के रस नें होजूं का बणाव। इंद्रलोक सा उदोत अवासूं का दरसाव।—सूरजप्रकास (सं० १७८७)

'वचनिका' ग्रन्थ में एक-एक चरित्रनायक का विवरण और यश-वर्णन रहता है। 'रघुनाथ रूपक' इत्यादि छंद-शास्त्रीय ग्रंथों में गीतों आदि का विवेचन करने के साथ वार्ता, वचनिका, दवावैत आदि गद्य रूपों के भी लक्षण उदाहरण सहित दिए हैं। उसमें गद्य के दो भेद माने हैं—दवाबैत और वचनिका। इन दोनों के भी दो दो भेद किये गये हैं—दवाबैत के शुद्धबंध और गद्यबंध तथा वचनिका के पद्यबंध और गद्यबंध। मंछ कवि द्वारा लिखे गये दवाबैत की व्याख्या करते हुए उसके टीकाकार श्री महताबचंदजी खारैड़ ने लिखा है—"दवाबैत कोई छंद नहीं है, जिसमें मात्राओं वर्णों अथवा गणों का विचार हो। यह अंत्यानुप्रास रूप गद्य जाल है। अंत्यानुप्रास, मध्यानुप्रास और किसी प्रकार का सानुप्रास या यमक लिया हुआ गद्य का प्रकार है। यह संस्कृत, प्राकृत, फारसी, उर्दू और हिन्दी भाषा में भी अनेक कवियों और ग्रंथकारों द्वारा प्रयोग में लाया हुआ मालूम देता है। आधुनिक लल्लूलालजी के 'प्रेमसागर' आदि ग्रंथों में तथा उर्दू के 'बहारवेखिजा', 'नोवतन' आदि ग्रंथों में तथा फारसी के ग्रंथों में देखा जाता है। यह दवाबैत दो प्रकार की होती है—एक शुद्धबंध अर्थात् पद्यबंध जिसमें अनुप्रास मिलाया जाता है और दूसरी गद्यबंध जिसमें अनुप्रास नहीं मिलाते हैं।

इस सम्बन्ध में श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा अपने एक लेख में दी गई टिप्पणी भी उल्लेखनीय है[1]—"रघुनाथरूपक में वचनिका और दवाबैत के जो भेद बताये गये हैं, उनके नामों में थोड़ा उलटफेर हो गया है, गद्यबद्ध को पद्यबद्ध और पद्यबद्ध को गद्यबद्ध कह दिया गया है। टीकाकार ने जो टिप्पणियाँ दी हैं वे भी भ्रांतिपूर्ण हैं। शुद्ध विवेचन इस प्रकार है—वचनिका के दो भेद होते हैं—(क) पद्यबध (या पदबद्ध), जिसमें मात्राओं का नियम होता है। इसके दो भेद होते हैं—१. जिसमें आठ-आठ मात्राओं के तुक-युक्त गद्य खंड हों और २. जिसमें बीस-बीस मात्राओं के तुक-युक्त गद्य खंड हों। (ख) गद्यबद्ध, जिसमें मात्राओं का नियम नहीं होता। इसके भी दो भेद होते हैं—३ वारता (कहीं-कहीं तुकान्त गद्य के लिये भी वात, वार्ता या वार्तिक नाम का प्रयोग देखा जाता है) या साधारण गद्य ४. तुक युक्त गद्य। दवाबैत के भी इसी प्रकार दो भेद होते हैं—१. पद्यबद्ध (या पदबद्ध) इसमें चौबीस-चौबीस मात्राओं के तुकयुक्त गद्य खंड होते हैं; २ गद्यबद्ध—इसमें तुकयुक्त गद्य खंड होते हैं, मात्राओं का नियम नहीं होता। दवाबैत और वचनिका में क्या अन्तर है, यह अभी तक समझ में नहीं आ पाया है। वचनिका के चतुर्थ भेद और दवाबैत के द्वितीय भेद में कोई अन्तर नहीं दीख पड़ता। उपलब्ध दवाबैतों की भाषा राजस्थानी से प्रभावित खड़ी बोली हिंदी है जबकि वचनिकाओं की राजस्थानी।"

संवत् १७१५ में रची गई 'राठौड़ रतनसिंघजी महेसदासौत री वचनिका' इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। चारण कवियों और काव्य-रसिकों में वचनिका का अत्यधिक मान और सत्कार रहा है। यह एक प्रबंध काव्य है। उस काल के अन्य ग्रंथों के समान वचनिका में भी विदेशी (अरबी-फारसी) शब्दों का प्रयोग हुआ है किन्तु उनकी संख्या बहुत ही कम है। डिंगल के कुछ विशिष्ट ध्वन्यानुकरण-मूलक शब्द

---

[1] राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १, प्रकाशक : राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर, जोधपुर, में प्रकाशित 'राजस्थानी गद्य काव्य की परम्परा' नामक श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वारा लिखे गये एक लेख में दिये गये फुट नोट के आधार पर।

भी काफी मात्रा में पाये जाते हैं। यथा— गड़गड़, हड़बड़, घड़ड़ि, खाटरखड़ि, ऋहऋह, चड़च्चड़, झाटझड़ि, धड़धड़, कणकण, कळळ, सळस्सळि, टळट्टळि खड़क्खड़ आदि। संस्कृत-मूलक कुछ शब्द तत्सम रूप में भी आये हैं। इस ग्रंथ का एक अतुकांत गद्य का उदाहरण देखिये—

'इणि भांति सूं च्यारि रांणी त्रिण्ह खवासि अग्य नाळेर उछाळि वळण चाली। चंचळां चढि महा सरवर री पाळि आइ ऊभी रही। झिसड़ी ही'क दीसै। जिसड़ो कीरतियां रौ भूंबको। कैं मोतियां री लड़ी। पवंगां सूं उतरि महा प्रवीत ठौडि ईसर गौरिज्या पूजी। कर जोड़ि कहण लागी। जुग जुग श्री ही'ज धणी देज्यो। न मांगां वात दूजी। पछै जमी आकास पवन पाणी। चंद सूरज नूं। प्रणाम करि। आरोगी ढोळी परिक्रमा दीन्ही। पछै आप रै पूत परिवार नै छेहली सीख मति आसीस दीन्ही।'

—वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री (सं० १७१५)

वात और वचनिका के अतिरिक्त राजस्थानी गद्य साहित्य के विकास में ख्यातों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक दृष्टि के अतिरिक्त ऐतिहासिक दृष्टि से भी इन ख्यातों का महत्व बहुत अधिक है। राजस्थानी में 'ख्यात' शब्द प्रायः इतिहास के पर्याय रूप में ही प्रयुक्त होता रहा है। 'ख्यात' संस्कृत के 'ख्याति' शब्द का रूपान्तर मात्र है।[1] अठारहवीं शताब्दी में कई ख्यातें लिखी गईं। वैसे क्रमबद्ध इतिहास लिखने की परंपरा प्राचीन भारत में नहीं मिलती, किन्तु मुगलकाल में लिखी गई फारसी तवारीखों के प्रभाव के कारण लोक-भाषाओं में इतिहास लिखने का प्रयत्न किया गया। सम्राट अकबर को इतिहास से बड़ा प्रेम था। उसने अपने समय में इतिहास लेखन को बहुत महत्व दिया। अब्बुल फजल द्वारा 'अकबर नामा' एवं 'आइने अकबरी', अब्दुल कादिर बदऊनी कृत 'तारीखे बदऊनी' निजामुद्दीन द्वारा 'तबकाते अकबरी' आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ इसी समय लिखे गये। स्थानीय राजाओं ने भी इतिहास-लेखन के महत्व को समझा एवं इसके लिखाने की आवश्यकता अनुभव करने लगे। सम्राट ने भी राजपूत राजाओं को इसके लिये प्रेरित किया। इसके बाद प्रायः प्रत्येक राजपूत राजा के समय में नियमपूर्वक ख्यातें लिखी जाती रहीं। राजस्थानी का प्राचीनतम ख्यात साहित्य प्रायः इसी समय से मिलना आरंभ होता है। वास्तविक एवं प्रामाणिक गद्य साहित्य का उदाहरण इन्हीं ख्यातों में मिलता है। ये ख्यातें विभिन्न लोगों द्वारा लिखी जाती रहीं। कुछ ख्यातें तो राज्य की ओर से नियुक्त ख्यात-लेखकों द्वारा लिखी गईं। इन ख्यातों में अपने स्वामी के प्रति प्रशंसायें ही अधिक हैं, आलोचनायें कम। इस दृष्टि से इनका साहित्यिक मूल्य चाहे कितना ही क्यों न हो, ऐतिहासिक मूल्य अवश्य कुछ कम हो जाता हैं। इन राजकीय ख्यात-लेखकों के अतिरिक्त कुछ व्यक्तियों ने स्वतंत्र रूप से भी ख्यातें लिखीं। इतिहास की दृष्टि से ये ख्यातें ही अधिक प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण हैं। इनमें नैणसी, दयाळदास व बाँकीदास के नाम प्रमुख रूप से लिये जा सकते हैं।

ख्यातें प्रायः दो ढंग से लिखी जाती रहीं। एक तो वे जो लगातार इतिहास के रूप में लिखी गईं एवं जिनमें साधारणतया क्रम-भंग नहीं होता। इसके अंतर्गत 'दयाळदास री ख्यात' मानी जा सकती है। दूसरे प्रकार की वे ख्यातें हैं जिनमें क्रमबद्ध इतिहास के स्थान पर क्रमरहित फुटकर बातें पाई जाती हैं। कुछ बातें उनमें बड़ी भी होती हैं एवं कुछ बातें नितांत छोटी एक डेढ़ लाइन में ही समाप्त होने वाली होती हैं। अगर इन बातों को क्रम से लगा दिया जाय तो भी इनसे कोई शृंखला-बद्ध इतिहास नहीं बनता। दूसरी श्रेणी के अंतर्गत 'बाँकीदास की ख्यात' की गणना की जा सकती है।

आधुनिक समय में लिखे गये मुगलकालीन इतिहास प्रायः मुसलमानी तवारीखों को आधार मान कर ही लिखे गये हैं, अतः ये इतिहास बहुत कुछ अधूरे, भ्रमात्मक एवं एकपक्षीय ही कहे जा सकते हैं। राजस्थानी ख्यातों से सहायता लेकर इन भूलों एवं अधूरेपन को दूर किया जा सकता है, किन्तु अद्यावधि इनका उपयोग नाम मात्र के लिये ही हुआ है। संभवतः इसका प्रमुख कारण इन ख्यातों का शीघ्र प्रकाशित न होना भी हो।

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, में प्रकाशित 'विविध विषयों' के अंतर्गत 'चारण' पर विचार प्रकट करते हुए श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने मुरारि कवि के नाम से श्लोक दिया है—

चर्चाभिश्चारणानां क्षिति रमण, परां प्राप्य संमोदलीलां।
मा कीर्तेः सौविदल्ला नवगणय कवि प्रात वाणी विलासान्॥
गीतं ख्यातं न नाम्ना किमपि रघुपतेरद्य यावत्प्रसादा।
द्वाल्मीकेरेव धात्रीं धवलयति यशोमुद्रया रामभद्रः॥

इसमे 'ख्यात' शब्द का प्रयोग है, अतः ऐसा माना जा सकता है कि 'ख्यात' शुद्ध तत्सम शब्द है।

ख्यात-लेखकों को विभिन्न विषयक सामग्री खोजने तथा उसे उचित रूप में उपस्थित करने के लिये अथक परिश्रम करना पड़ा है, किन्तु खेद है कि उनके इस कठोर परिश्रम का अभी तक उचित मूल्याङ्कन नहीं किया गया।

ख्यातों में गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग किया गया है तथापि पद्य की मात्रा बहुत ही कम है। ख्यात-साहित्य की इस परंपरा में मुँहणौत नैणसी द्वारा संवत् १७१६ में लिखी ख्यात बहुत महत्वपूर्ण है। नैणसी की ख्यात में बातें बहुत बड़ी-बड़ी हैं जो कई पृष्ठों तक चलती हैं। अगर इन बातों को क्रम से व्यवस्थित कर दिया जाय तो उनसे क्रमवार इतिहास बन जाता है।

'मुंहणौत नैणसी की ख्यात' राजस्थानी गद्य की अत्यन्त प्रौढ़ और उत्कृष्ट रचना कही जा सकती है। इस ख्यात के गद्य का एक नमूना देखिये—

'माछळां रा मगरा सूं उतर नै सहर छै। दीवांण रा मोहल पीछोळा री पाळ ऊपर छै। मोहलां थी आथवण नूं तळाव लगतौ सहर छै। कोस दो रै फेरै छै। सहर री एक कांनी माछळा रौ मगरौ छै। एकण कांनी खरक दिस सिसरवा रौ मगरौ छै। तळाव घणौ भरीजै तरै पांणी मगरै तांई जाय छै। तळाव में पांणी माछळा रा मगरा रौ, सीसरवा रा मगरा रौ घणौ आवै छै। तळाव निपट वडौ छै। मांहे मगरमछ रहै छै। तळाव ऊंडौ घणौ छै। ते तळाव री मोरी छूटै छै। तिण थी घणी धरती दोळी फिरै छै। तिणरौ घणौ हासल हुवै छै।'

राजपूताने के इतिहास में कई जगह जहां प्राचीन शोध से प्राप्त सामग्री इतिहास की पूर्ति नहीं कर सकती, वहाँ नैणसी की ख्यात ही कुछ-कुछ सहारा देती है। इतिहास की दृष्टि से यह एक अपूर्व संग्रह है।

कालक्रम की दृष्टि से अठारहवीं शताब्दी के परवर्ती काल में ख्यात साहित्य के अतिरिक्त परंपरागत गद्य-काव्य के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। इनमें 'सभाश्रृंगार' नामक ग्रंथ की एक प्रति संवत् १७६२ की मिली है। यद्यपि सोलहवीं शताब्दी में गुजराती राजस्थानी से अलग हो चुकी थी तथापि इस पर गुजराती का थोड़ा बहुत प्रभाव मालूम देता है। इस ग्रंथ का वर्षाकाल का एक वर्णन देखिये—

'वरखाकाल हुउ, वहितौ रहित कुयउ, वाबि पाणी भरता रया। बादल उनया। मेघ तणा पाणी वहै, पंथी नामइ जाता रहै। पूरब नौ वाजइ वाय लोक सहु हरखित थाय। आकास धड़हड़ै, खाळ खड़हड़ै। पंखी तड़फड़इ, वडा मांणस लड़थड़इ, काठ खड़इ, हाळी हळ खड़इ। आपणा भरि कादम फेड़इ, बीजा काज मेड़इ। पार पार न लीइं, साध विहार न करीइं। अनेक जीव नींपजै, विविध धान्य ऊपजै। लोकनी आस पूजै, गाय भैंस दूजै।'

इस समय की दवावैत के रूप में लिखी गद्य रचनायें भी मिलती हैं। उदाहरण के लिये मालीदास भाट द्वारा रचित 'नरसिंहदास गौड़ की दवावैत' का एक उदाहरण देखिये—

'रंग छहरते हैं। कपड़े पहरते हैं तोसक सील्यावता है। हजूरी पावता है। बढ़ते उतरते पाव दे सलांम करावते है। अदबफत पाढ़ता है। अंबर फटते हैं। सभा बिराजती है। कीरत राजते हैं। घोड़े फिरते हैं। पायक अड़ते हैं। गुणीजण राग घटता है। वह वखत वणता है। सोभा बणती है। श्री दीवांण पधारते हैं। दुसमण को जारते हैं। देसों दूर डरते हैं। साहौ काम सरते हैं। कवीसुर बोलते हैं। भरणा खोलते हैं। काम का सूरत। जेतला विहाडा तेतला प्रवाड़ा। जग जेठराज नरसिंह जेत, कवि मालीदास कहै दवावैत।'

इस दवावैत के अतिरिक्त संवत् १७७२ में बनाई गई कुछ और दवावैत भी मिलती हैं जिनमें रामविजय उपाध्याय द्वारा रचित जैनाचार्य जिनसुखसूरिजी की दवावैत तथा जिनलाभसूरि दवावैत प्रमुख है। इस काल का दवावैत-साहित्य बहुधा जैन-आचार्यों द्वारा ही रचा गया है।

इस काल में संस्कृत गद्य ग्रंथों के कुछ अनुवाद भी किये गये। संवत् १७७३ में लिपिबद्ध 'वैताळ पच्चीसी' की भाषा का उदाहरण देखिये—

वार्ता—तीर्थं विस्वनाथ रौ दरसन कर बैठौ इतरइ एक नाइका वहिल हूं ऊतरि स्नांन करि पूजा करि चाली। तितरइ एक वर दीठी कवर नुं कवरी यइ दीठौ मांहोमाहि निभर मिली कांम रा बांण लागा उन्मादन सोखण, संदीपन, मोहन, तापन ए पांच बांण कांम रा नाइका रा हीया मांहि चुभीया तरै कुळ री मरयादा छोडि लाज दूर करि सील कनार इधरि समस्या करि संकेत स्थान कह्या—एक कमळ हाथ मांहे लीयौ हूंतौ माथइ लगाइ पछै कांनै लगायौ, कांनां थी दांते लगायौ, दांतां थी पगे लगायौ, पगां थी हीयइ धरि चालती हुई, वांसइ राजा पुत्र विरह करि पीड़ित हुइउ तरइ प्रधांन…'

संवत् १८०० के बाद गद्य साहित्य का विस्तार द्रुत गति से हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में ऐसे बहुत से लेखक हुए जिन्होंने

उत्कृष्ट कोटि का गद्य साहित्य लिखा। शैली की विविधता की दृष्टि से भी इस काल का विशेष महत्व है।

संवत् १८०० के गद्य का एक उदाहरण श्री मेनारिया ने राजस्थानी भाषा और साहित्य में दिया है—

> 'पछै बामण सोदो ले नै तळाव उपर रोटी करवा बैठो। अठे तळाव री तीर एक मीडक आयो। आवे न बांमण थी कही। देवता तोहे तो में अठे कदी नहीं देख्यो। तू कठे जाय है। जदी बांमण कहै। हूं उजीण रहो छूं नै गयाजी जाऊं छूं।'

भाषा की दृष्टि से यह उदाहरण उन्नीसवीं शताब्दी के परवर्ती काल का मालूम होता है। संवत् १८०० तक गद्य साहित्य में इतनी आधुनिकता नहीं आने पाई थी।

कविराजा बाँकीदास द्वारा संवत् १८६० में लिखी गई ख्यात राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर से प्रकाशित हो चुकी है। इसमें छोटी-छोटी फुटकर बातों का संग्रह है। लगभग २७७६ बातें इसमें संग्रहीत हैं। राजपूताने के समस्त राज्यों एवं मुगल बादशाहों के इतिहास सम्बन्धी अनेक फुटकर नोट इसमें भरे पड़े हैं। ख्यात की भाषा का एक उदाहरण दृष्टव्य है—

> 'अकबर री मा मक्का वगैरै मकां-सरीफ ज्यांरी ज्यारत करण गयी। पातसाह मिरजा सरफुद्दीन नुं साथै मेलियो। अेक पीर विलायत में जिण री ज्यारत सुहागवती करै, विधवा न करै। ज्यारत करण वास्तै विधवा अन्य पुरख सूं अवध करि निका पढ़ लै। उण पीर री ज्यारत करण नूं अकबर री मा मिरजा सरफुद्दीन साथ निका पढ़ी। दिली अकबर री मा पाछी आयी। जद आ वात सुणी अकबर फुरमायो—आगै तो सरफुद्दीन हमारा चाकर रहा, अब हमारा बाबा है।'

उन्नीसवीं शताब्दी का वात साहित्य के विकास की दृष्टि से काफी महत्व है। इस शताब्दी के आरंभकाल (संवत् १८१२) में लिपिबद्ध 'श्री ढोलामारूजी री वारता' नामक एक ग्रन्थ जोधपुर के 'पुस्तक प्रकाश' में वर्तमान है। ग्रन्थ प्राय: दोहों-सोरठों में ही लिखा गया है किन्तु बीच-बीच में कुछ फुटकर गद्य भी दिया गया है—

> 'जण गांम ऐवाळ रहैतो हुतो अण गांम ऐक लुगाई री नांम मारूणी हुंती। ऐवाळ जांणीयो वा मारू। ऐवाळ कहण लागो मारू तो माहरा साथ मांह छै। काले म्हारी छाळ चारती हुंती।'

'ढोला मारू री वात' की एक और लिपिबद्ध प्रतिलिपि संवत् १८७२ की मिलती है। इस काल के गद्य का क्रमश: विकास समझने में इसका उदाहरण भी सहायक होगा—

> 'पिंगळ राजा सांवतसी देवड़ा नै आदमी मेल कहायौ—अबै थे आणो करो। तद सांवतसी आणो ही विचारियो पण बात बांध कोई बैसे नहीं। कुंवरि नै ऊझणो दे मेली जे। तद ऊंठ, घोड़ा, रथ, सेजवाळ, खवास, पासवांन, साथै हुवा सो उदैचद समै नहीं। वाट रोक्या छै। अनरथ होय, माल जाय। तरै सांवत सी आदमी ने कह्यौ—जै मारग विखम छै। आप छांनै परधान मेलो तो आणो करां। कुंवरि नै घरे पहुंचायां पछै सारी बात सोरी छै। इतरी कहि आदमी नै सीख दीधी।'

उपरोक्त दोनों उदाहरणों की तुलना से यह स्पष्ट है कि जहां पहले उदाहरण में प्राचीनता की छाप स्पष्ट है वहाँ पिछले उदाहरण में भाषा आधुनिकता की ओर बढ़ती हुई दिखाई देती है। 'रहंतौ हुतौ' 'चारती हुंती' आदि प्रयोग आधुनिक वातों में नहीं मिलते, अगर मिलते भी हैं तो उनकी संख्या नगण्य है। अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग प्राय: बढ़ता जा रहा था। संभवत: इसका कारण यह था कि उस समय राजस्थान के अधिकतर रजवाड़ों का शासन-संबंधी कार्य प्राय: फारसी के माध्यम से ही संपन्न होता था।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि इस शताब्दी में वात रचनाओं में विविध शैलियों का प्रयोग किया गया। प्रतीकात्मक शैली में लिखी गई 'डाढ़ाळा सूर की वात' इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस वात में वीरोचित कार्यों का आरोपण एक सूअर परिवार पर किया गया है। 'डाढ़ाळा सूर' की वीरता अपने युग की वीर भावना के अनुकूल एवं अनुरूप है। किन्तु जहाँ किसी ऐतिहासिक कथा में 'वीरता' पात्रों एवं घटनाक्रम में निहित रहती है, वहां इस वात में 'वीरता' को अमूर्त तत्व के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है। संभवत: प्रतीकात्मक शैली में लिखी गई यह पहली रचना है, इस कारण इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। सूअर की व्यवहारगत और स्वभावजन्य परिस्थितियों के आधार पर मानवोचित वीरभाव की अभिव्यंजना जैसी सुन्दर इस वात में बन पड़ी है, वैसी संभवतया अन्य किसी प्रकाशित वात में नहीं पायी जाती। किसी ने इस वात के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि 'प्रतीक के ही कारण

इस कथा में एक प्रकार से सत्य का विरूपात्मक प्रयोग हुआ है और यह 'विरूप' एक वीर सूअर परिवार के प्रतीक रूप में स्थापित किया गया और सफलतापूर्वक निभाया भी गया।[1] यह बात भी संभवतया उन्नीसवीं शताब्दी के परवर्ती काल में लिपिबद्ध की गई जान पड़ती है। इस बात की भाषा का एक उदाहरण देखिये—

'पाव कोसे'क गया जद डाढ़ाळौ बोलियौ–भूंडण, म्हा सूरवीर रौ खेतरिण रौ छोडियौ आछौ नहीं। घावां बड़ो धरम छै और म्हारौ सरीर सूं सभार छूं। काल्ह पग पसार थे म्हे मरीस तौ अगत जायसै, मोनूं अगत होयसी, थांनूं बड़ौ महणौ होसी। राव डो रजपूत छै, सूरवीर छै। पाछौ जाय कांम आयसूं तो गत होयसी। राव रौ चित्त सांत होवै। मोनूं फेर इसौ सापुरुख कोई मारणेहारौ नहीं मिळसी तींसूं राजी होय मोनूं सीख देवौ जे कांम आवूं।'

उन्नीसवीं शताब्दी का अंतिम गद्य लेखक कविराजा सूर्यमल्ल हुआ। अपने वृहत् ग्रंथ 'वंशभास्कर' में इन्होंने गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग किया है। साहित्यिक रूप में इन्होंने संस्कृतनिष्ठ राजस्थानी का प्रयोग किया। वंशभास्कर की भाषा में प्रसाद गुण का अभाव है, वह अत्यन्त गूढ़ और क्लिष्ट है, यहां तक कि टिप्पणी से भी आशय सुगमता से नहीं खुलता। संभवतया प्राचीन परंपरागत क्लिष्ट राजस्थानी का यह अंतिम उदाहरण है। भाषा में संस्कृत के तत्सम रूपों का प्रयोग प्रचुरता के साथ हुआ है—

'सो राजा नैं आपरा प्रांण रौ औषध अनंगसेना जांणि अवरोध वाय रांणी रैं अग्य निवेदन कीधौ। रांणी तो कळिजुग गे रूप एहा अभिरूप अवनीस रौ तिरस्कार करि सुद्धांत रैं आश्रित अनेक जन रहै जिकां में कोई दो ही लोक रो खोवणहार ठाळियो जिण री संगति रैं प्रभाव स्वर्ग लोक रा मार्ग मुद्रित कराय कुंभीपाक रां निवास भाळियो सो आपरा स्वामी रो दीधो अपूर्व चमत्कारिक फळ रांणी अनंगसेना नैं जाररैं भेट कीधौ।'

साहित्यिक भाषा एवं लोकभाषा में सदैव से अंतर रहता चला आया है, अतः कविराजा ने जिस भाषा का अपने गद्य में प्रयोग किया है, वह जन-साधारण में प्रचलित भाषा से काफी दूर थी। उस समय में जन-साधारण के प्रयोग में आने वाले गद्य के नमूने के रूप में नामली ठाकुर साहब बखतावरसिंहजी को चैत्र शुक्ला नवमी संवत् १६१५ के दिन सूर्यमल्ल द्वारा लिखे गये एक पत्र के कुछ अंश उद्धृत कर रहे हैं—

'धार सों तथा आमझरा सों अंग्रेज को काई कसूर बणि आयो सो बीसा बिक दस्तूर लिखावसी और राजसिंह के साथ पत्र गयो मींमें धरम के निमित्त युयुत्सा को प्रश्न लिख्यो छै तींको भी प्रत्युत्तर लिखायो नहीं सो अब ज्यां-ज्यां की जसी जसी तरह दीसती होय सो लिखावसी— म्लेच्छां को इरादो अस्यो दीसै छै कि अब कै रह्या तो ई आरयावत हैं परतंत्र करि ही देसी अर ठिकाणौ कोई भी हिंदू कै न रहसी परंतु परमेश्वर की इच्छा आरय न राखबा की दीसै छै क्योंकि अबार क्षत्रियां ने प्रतिकूल बातां छै जे सब अनुकूल दीस रही छै तीसों भावी विपरीत ही जाण्यो पड़ै छै और अठी का तरफ को वरतमांन जांणसी कि इंगरेज की फोज अजमेर सूं कोटे लड़ाई पर आई छै। गोरां तो सोळासै छै अर काळा हजार च्यार के अनुमान छै परन्तु मन मैं बदल्या हुवा दीसै छै···।'

बीसवीं सदी के आरम्भ में दयाळदास सिंढ़ायच द्वारा 'राठौड़ां री ख्यात' नाम से एक वृहत् ग्रंथ रचा गया, जिसका कुछ अंश अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर से प्रकाशित भी हो चुका है। दयाळदास की भाषा एवं ख्यात के सम्बन्ध में डॉ० दशरथ शर्मा लिखते हैं—

'We might regard Dayaldas Sindhayach as the last of the great bardic chroniclers of Bikaner. With the advance of the western system of education and increasing materialism their days were speedily coming to an end. Dayaldas however was an honoured courtier, trusted adviser and emissari besides being a state chronicler. He was no Abul Fazl; but his position in the state affairs was high enough to suggest some comparison with that great historian of the Mugal period Like him Dayaldas Sindhayach was an erudite scholar. He was an accomplished rhetorician, a writer of excellent Marwari, only a little inferior to that of Nainsi Munnot.'

दयाळदास की भाषा सीधी-सादी किन्तु प्रवाहपूर्ण है। उसका उद्देश्य साहित्यिक ग्रंथ लिखना नहीं था। उसने इतिहास लिखा, परन्तु उसमें प्रयुक्त राजस्थानी गद्य उस समय के गद्य साहित्य पर प्रकाश डालता है। दयाळदास की ख्यात में प्रयुक्त गद्य का एक उदाहरण देखिये—

[1] 'परंपरा' के 'राजस्थानी बातां' नामक अंक में श्री कोमल कोठारी द्वारा लिखे गये एक लेख के आधार पर।

'पीछै ग्रालमगीरजी हाथी सूं उतरिया, ग्रर फौज मांय फिरै है। ग्राप रा काम ग्राया तथा घायलां नूं देखै है। ग्रापरी तरफ रां नू उठावै है, पाटा बांध जाबतो करावै है, तथा डोलियां मैं घालै है, वा साह सूजै री तरफ रां नूं मारै है। ग्रर बूंदी रा राव राजा सत्रसालजो घावांपूर हुवा पड़िया है। जिसै ग्रालमगीरजी गया। सु मूहडै ऊपर हाथ फेरियो। ग्रर पांणी पायो। सावचेत कर ग्रमल दियो। तद चेतो हुवो, पछै ग्रालमगीरजी फुरमायो जो रावजी ग्ररज करो।'

दवावैत, वचनिका ग्रादि के रूप में बीसवीं शताब्दी में बहुत कम लिखा गया। दवावैत, वचनिका, वारता ग्रादि प्राचीन राजस्थानी की शैली रही है। ग्रारंभिक काल में कुछ कवियों ने इनमें रचनायें कीं, किन्तु वे ग्रधिक प्रसिद्धि प्राप्त न कर सकीं। इनमें गोपाळदास कविया रचित 'शिखर वसोत्पत्ति वारतिक' (संवत् १९२६) तथा 'लावारासा' ग्रौर कविराव बख्तावर द्वारा रचित 'केहर प्रकास' (संवत् १९३६) की गणना की जा सकती है। ये तीनों ऐतिहासिक ग्रंथ हैं। इनकी भाषा प्राचीन परंपरागत राजस्थानी का ग्रनुकरण करती सी मालूम होती है, यथा—

'स्यांम ताज कफनी कमंडल में नीर। डाटी सुपेत सेख सुवरण सरीर॥ मोकल राव ग्रातौ देखि माथा कौं नवायौ, सांई स्यां भुरांनी सेख नामी पंथ पायौ। जंगल में चरे छी सो ग्रच्छाई झोटी ग्राई, मोकल का कनां सू सेख चीपी में दुहाई।'

—शिखर-वंशोत्पत्ति

'पुत्री जिणरे कंवलप्रसण रूप री निधांन। सुकेसिया सूं सवाई साव रंभा रे समान। साहित्य शृंगार काव्य जबानी पर कहे। रमाताल परिजंत संगीत में रहे। वीणांधर सहजांई गावे किण भांत। तराज पर नहं ग्रावे नारद वीणां री तांत। जिणने सुण्यां कोकिला मयूर लाज भाग जावे। कुरंग ग्रो भमंग वन पाताल सुं ग्रावै।'

'सुघड़ जठे बोली या नवेलां सहज सारे ही सिधावज्यो। पण बाग वन सरोवर कदे भी मत जावज्यो। जावेला बाग तो पिक सुक ग्रली उड़ जावसी ने बिंबफल श्रीफल ग्रनाड़ सेवां जो सुखावसी, जावेला जो वन तो खंजन कपोत चोच चूरेला।'

—केहर-प्रकाश

इन सबको श्लोक की तरह मात्राग्रों ग्रादि के प्रतिबंध से रहित गद्य ही समझना चाहिये। ग्राधुनिक काल में इस प्रकार की रचनाग्रों का निर्माण नहीं होता।

उपरोक्त लिखे गये गद्य के विकास-क्रम पर दृष्टि डालते समय यह ध्यान रखना ग्रावश्यक है कि प्राचीन राजस्थानी में जहां कहीं भी गद्य का उपयोग हुग्रा, वहां वह वैज्ञानिक या विचारात्मक रूप में न होकर सीधेसादे कथात्मक रूप में हुग्रा। उस काल के गद्य के लिये सीधी एवं सरल शैली ही उपयुक्त समझी जाती थी क्योंकि तब तक उसके सामने गहन एवं सूक्ष्म विचारों की ग्रभिव्यक्ति का ग्रवसर ही उपस्थित न हुग्रा था। संभवतया इसी कारणवश भाषा में ग्रंतर्निहित व्यञ्जना शक्ति भी पूर्ण रूप से प्रदर्शित न हो सकी थी। किन्तु भारतीयों की चिन्तन-शक्ति पर जब से पाश्चात्य योरोपीय विचारधारा का प्रभाव पड़ा तब से भाषा के विकास के लिये भी एक नये युग का सूत्रपात हो गया। एक बंगाली लेखक द्वारा सूत्र रूप में कहा गया यह ठीक ही मालूम देता है कि 'ग्रंग्रेजी के साथ-साथ भारत में गद्य का ग्राविर्भाव हुग्रा, कविता की जगह तर्क ने ले ली।' इसमें कुछ ग्रतिशयोक्ति हो सकती है, किन्तु यह तो मानना पड़ेगा कि गद्य के ग्राधुनिकीकरण में पाश्चात्य शिक्षा का बहुत कुछ हाथ रहा है।

भारत के पराधीनताकाल में जो राष्ट्रीयता की लहर उठी उसके कारण स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिये देश की एकता पर ग्रधिक ध्यान दिया जाने लगा। 'एक भाषा, एक राष्ट्र' की ग्रावश्यकता को कुछ लोगों ने महसूस किया। जातीय एवं प्रांतीय बंधन तोड़ कर लोग राष्ट्रीय दृष्टिकोण ग्रपनाने लगे। संभवतः इसी कारणवश बीसवीं शताब्दी में राजस्थानी में गद्य-निर्माण एक तरह से ग्रवरुद्ध हो गया। राजस्थान में हिन्दी गद्य का निर्माण एवं विकास होने लगा। कविराजा श्यामलदास, शिवचंद्र भरतिया, मुन्शी देवीप्रसाद, पं० लज्जाराम, पं० रामकर्ण, पुरोहित हरिनारायण, गौरीशंकर हीराचंद ग्रोझा, पं० सूर्य्यकरण प्रभृति कई विद्वान हिन्दी के ग्रच्छे गद्य-लेखक हो गये हैं। इनमें से शिवचंद्र भरतिया एवं पं० रामकर्ण ने राजस्थानी में भी गद्य लिखा किन्तु हिन्दी गद्य के मुकाबले इसकी मात्रा ग्रत्यन्त ग्रल्प रही। शिवचंद्र भरतिया ने तो राजस्थानी में तीन नाटकों का भी निर्माण किया। राजस्थानी गद्य के इतिहास में संभवतः नाटक रचना पहली बार इनके द्वारा ही हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजस्थानी के साहित्यकारों का ध्यान इस ग्रोर ग्राकर्षित हुग्रा है। ग्रब राजस्थानी गद्य

साहित्य के पुनर्निर्माण का प्रयत्न चारों ओर से हो रहा है। यह शुभ लक्षण है। भारतीय आर्य भाषा के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान ज्यूल ब्लॉक (Jwes Bloch) ने एक स्थान पर कहा था कि 'भारतीय आर्य भाषाओं के समक्ष जब आधुनिक शिक्षण-व्यवस्था की सार्वजनीन स्वीकृति के फलस्वरूप वैज्ञानिक विषयों की अभिव्यक्ति का प्रश्न उपस्थित हुआ तब एक कठिन समस्या खड़ी हो गई, क्योंकि देशी भाषायें तब तक ऐसे विषयों के पूर्णतया प्रकाशन के लिये संपूर्ण रूप से समृद्ध माध्यम न बन सकी थीं और उपयुक्त वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली की कमी के साथ-साथ अधिकांश भाषाओं का लड़खड़ाता सा एवं अनिश्चित गद्य-विन्यास भी इस असामर्थ्य का कारण था।' इसके साथ ही डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का यह कथन नितांत सत्य है कि 'यदि नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में एक सरल और शक्तिशाली गद्य शैली का आविर्भाव शीघ्र ही हो गया होता तो भारतीय चिन्तन के पुनर्निर्माण में बड़ी भारी सहायता मिलती और उनको लेकर भारतीय मानसिक जागृति का उदय भी कितना ही पहले हो गया होता।' राजस्थान एवं राजस्थानी गद्य के लिये भी ये कथन अक्षरशः सही उतरते हैं। फिर भी आधुनिक काल में किये जा रहे प्रयत्नों को देखते हुए यह सहज ही कहा जा सकता है कि राजस्थानी गद्य साहित्य का भविष्य उज्वल है।

राजस्थानी लोक-साहित्य

राजस्थानी भाषा और तत्सम्बन्धी साहित्य के विवेचन के उपरान्त राजस्थानी लोक-साहित्य का भी संक्षिप्त विवेचन राजस्थानी संस्कृति एवं साहित्य के पूर्ण परिचय में सहायक सिद्ध होगा। हम यह बता आये हैं कि राजस्थानी साहित्य अत्यंत समृद्ध तथा विविधतापूर्ण है, परंतु यहां का लोक-साहित्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उसकी अपनी मौलिक विशेषतायें हैं जिसके अध्ययन के बिना राजस्थानी भाषा के साहित्य का सम्पूर्ण चित्र हम प्रस्तुत नहीं कर सकते। इस लोक-साहित्य की महत्ता स्वीकार करते हुये श्री नारायणसिंह भाटी लिखते हैं 'कि मरुभूमि के सौरभ की जो ताजगी आज भी इस लोक-साहित्य में है वह न बड़े-बड़े प्रबंध-काव्यों के अलंकृत छंदों में और न इतिहास तथा ख्यातों की जिल्दों में ही ढूंढ़ने से मिल सकती है। यहां का लोक-साहित्य जन-जीवन से सिंचित उस कुसुम के समान है जिसका रंग समय के आतप से आज तक नहीं मुर्झाया, न जिसके सौरभ में ही कोई कमी आई है। यह लोक साहित्य मरुभूमि के निवासियों की रागात्मक प्रवृत्तियों का वह कोश है जो लिपिबद्ध न होने पर भी सांस्कृतिक इतिहास की वास्तविकता को बड़ी खूबी के साथ अपने में संजोये हुए है।'[१] 'लोक' की वास्तविक संस्कृति उसके कंठस्थ साहित्य में निहित होती है। अतः 'लोक' शब्द की व्याख्या के अभाव में लोक-साहित्य का ज्ञान सर्वथा अपूर्ण है। यह 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है जिसका प्रयोग वैदिक काल से निरन्तर रूप में होता चला आ रहा है। वेद, उपनिषद्, गीता आदि सभी में इसकी व्याख्या हुई है।[२] डॉ. वासुदेवशरण के शब्दों में 'लोक' हमारे जीवन का महासमुद्र है; उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। 'लोक' राष्ट्र का अमर स्वरूप है; 'लोक' कृत्स्न-ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए 'लोक' सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्व भूतमाता, प्रथिवि और लोक का व्यक्त रूप मानव यही हमारे नए जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक-पृथिवी-मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।'[३] स्पष्ट है कि 'लोक' भू-भाग पर व्याप्त साधारण जन-समाज है, जिसे आज हम संस्कृति की संज्ञा देते हैं वह 'लोक' से भिन्न नहीं है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का उल्लेख किया जाता है परन्तु 'लोक' दोनों ही संस्कृतियों में

---

१ हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडस भाग—(राजस्थानी लोक-साहित्य) पृ० ४२७।

२ (i) वही—प्रस्तावना, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० १–२।
(ii) भारतीय लोक-साहित्य : डॉ० श्याम परमार, पृ० ६–१०

३ सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक) सं० २०१० में पृ० ६५ पर प्रकाशित 'लोक का प्रत्यक्ष दर्शन' नामक लेख से।

विद्यमान है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने परिष्कृत एवं संस्कृत लोगों के प्रभाव से दूर अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त लोगों को ही लोक की संज्ञा दी है।

उन्होंने लिखा है—'लोक' शब्द का अर्थ 'जान-पद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि-सपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।'[1] इससे स्पष्ट है कि इस भू-भाग पर रहने वाला वह जन-समुदाय जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रह कर अपनी पुरातन सभ्यता को प्रवहमान करता हुआ जीवन-निर्वाह करता है 'लोक' कहलाता है। इन्हीं लोगों का साहित्य 'लोक-साहित्य' कहा जाता है। यह साहित्य प्रायः मौखिक होता है जिसकी भाषा बोलचाल की भाषा ही होती है। यह श्रुतिनिष्ठ अवस्था में परम्परागत रूप से चला आता है। 'आधुनिक साहित्य का नवीन प्रवृत्तियों में 'लोक' का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से मुक्त हो कर साधारण जन-समाज, जिसमें पूर्व संचित परम्परायें, भावनायें, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामग्री ही नहीं अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ किन्तु ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है।'[2] स्पष्टतः 'लोक' शब्द हमारी व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की सुरक्षित निधि एवं अर्वाचीन संस्कृति के विकास का प्रतीक है।

प्राचीन भारतीय साहित्य से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस देश में वैदिक काल से ही लोक-जीवन में संस्कृति की दो पृथक धाराओं का प्रवाह होता रहा है—(i) शिष्ट संस्कृति, एवं (ii) लोक संस्कृति। शिष्ट संस्कृति से अभिप्राय उस परिष्कृत एवं सुसभ्य वर्ग की संस्कृति से है जो अपने बौद्धिक विकास के उच्चतम शिखर पर पहुंचा हुआ था और

[1] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'जनपद' वर्ष १, अंक १, पृ० ६५।

[2] भारतीय लोक-साहित्य—श्याम परमार, पृ० ११।

अपनी ज्ञान-प्रतिभा के कारण समाज का नेतृत्व कर रहा था। लोक-संस्कृति से अभिप्राय उस साधारण जन-समाज की संस्कृति से है जो अपने जीवन की प्रेरणा 'लोक' से ही प्राप्त करती थी। जिसका बौद्धिक विकास सामान्य धरातल पर ही था। इन दोनों संस्कृतियों के सम्बन्ध में डॉ० बलदेव उपाध्याय का यह कथन उल्लेखनीय है कि लोक-संस्कृति शिष्ट-संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रिया-कलापों के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है। इस दृष्टि से अथर्ववेद, ऋगवेद का पूरक है। ये दोनों संहितायें दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचायिकाएँ हैं। अथर्ववेद लोक-संस्कृति का परिचायक है तो ऋगवेद शिष्ट संस्कृति का। अथर्ववेद के विषयों का धरातल सामान्य जन-जीवन है तो ऋगवेद का विशिष्ट जन-जीवन है।[1]

हमारी भारतीय संस्कृति सम्पूर्णतः इस देश की साधारण जनता पर आधारित है जो यहाँ के गांवों, वनों एवं पर्वतों पर निवास करती है। उसमें भारतीय लोक-जीवन का आदर्श है। लोक-संस्कृति प्रकृति की गोद में पलती है। जन-साधारण के आचार-विचारों में वह प्रतिबिम्बित होती है। लोक-संस्कृति की श्रेष्ठता से समाज को बल एवं प्रेरणा प्राप्त होती है। 'लोक-संस्कृति वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है; वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान, तथा औषधि के क्षेत्र में हुई हो, अथवा सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में, अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के उपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में सम्पन्न हुई हो।'[2] लोक-संस्कृति को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है[3]—

१. लोक-विश्वास और अंध-परम्पराएँ।
२. रीति-रिवाज तथा प्रथाएँ।
३. लोक साहित्य।

[1] काशी विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित 'समाज' वर्ष ४, अंक ३ (१९५८) पृष्ठ ४४६।

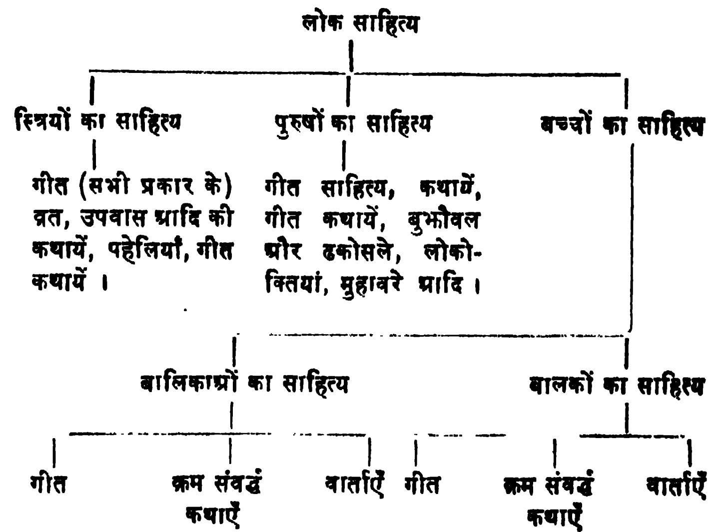
[2] (i) ए हैंड बुक आव फोक लोर—सोफिया बर्न।
(ii) ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन—डॉ. सत्येन्द्र, पृ. ४-५।

[3] सोफिया बर्न द्वारा 'ए हैंड बुक आव फोक लोर' में दिए गए वर्गीकरण पर आधारित।

लोक-साहित्य लोक-संस्कृति का ही एक अंग है, उसका एक अंश है। हम जो कुछ सोचते हैं, करते हैं, गाते हैं, रोते हैं उन सबका प्रतिबिम्ब हमारे लोक-साहित्य में मिलता है। डॉ० सत्येन्द्र के अनुसार 'लोक साहित्य में पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के सम्बन्ध में, भूत-प्रेतों की दुनिया तथा उनके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषय में जादू, टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य व्यवसाय, पशु-पालन आदि विषयों के भी रीतिरिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्म-गाथायें, अवदान (लीजेण्ड), लोक कहानियां, गीत, साके (बैलेड) किंवदन्तियां, पहेलियां तथा लोरियां भी इसके विषय हैं।'[1] इससे स्पष्ट है कि लोक-साहित्य के अंतर्गत स्त्रियों, पुरुषों एवं बच्चों का संपूर्ण गद्य तथा पद्य वाङ्मय आ जाता है। जीवन के विभिन्न बंटवारों के अवसर पर गाये जाने वाले गीत, ऋतु-परिवर्तन तथा खेतों की बोआई, निराई आदि के समय हृदय में उमड़ती हुई भावनाओं का पद्यमय लययुक्त प्रकटीकरण, प्रेम-व्यापार में कोमल भावनाओं की सरस अभिव्यक्ति, वृद्ध दादियों, नानियों, माताओं तथा बुजुर्गों द्वारा कही जाने वाली कहानियां एवं छोटी-छोटी कथायें जन-साधारण के अनुरंजन के लिए खेले गये सांग या नाटक, अपने दैनिक जीवन में जन-जन द्वारा प्रयुक्त कहावतें एवं मुहावरे, छोटे-छोटे बच्चों द्वारा खेल-खेल में गाई जाने वाली लययुक्त तुकबंदियां सभी कुछ लोक साहित्य के अंतर्गत आते हैं। इस दृष्टि से लोक-साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त ही विस्तृत एवं व्यापक हो जाता है।

प्राचीन काल में जब कि मनुष्य पूर्णतया प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था, वह आडम्बर तथा कृत्रिमता से कोसों दूर था। वह सरल, सहज एवं स्वाभाविक वृत्ति का प्राणी था। उस समय भी उसका अपना साहित्य था जो स्वाभाविकता, स्वच्छंदता तथा सरलता से पूर्ण पगा हुआ था। वह आधुनिक साहित्य की भांति कथाओं के अनेक प्रकार के शिल्प-विधान तथा अलंकारों के भार से दबा हुआ न था। वह साहित्य उतना ही स्वाभाविक था जितना जंगल में खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छंद था जितना आकाश में विचरने वाली चिड़ियां, उतना ही सरल तथा पवित्र जितनी गंगा की निर्मल धारा। उस साहित्य का अवशिष्ट तथा सुरक्षित अंश ही आज हमें लोक-साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है।[1]

डॉ० श्याम परमार ने लोक-साहित्य का विस्तार निम्न-लिखित रूप से प्रस्तुत किया है[2]—



यह सम्पूर्ण साहित्य प्राय: मौखिक होता है, अत: अनेक विद्वानों के मतानुसार इसे 'साहित्य' की संज्ञा न देकर वाङ्मय ही कहा जा सकता है। लोक-साहित्य न किसी व्यक्ति विशेष द्वारा ही निर्मित होता है और न किसी व्यक्ति विशेष की निधि होता है। उसके पीछे अटूट परम्परा होती है जो समाज से अविच्छिन्न होती है। उसकी अभिव्यक्ति सामूहिक होती है। लोक की मानसिक सम्पन्नता एवं समाज की आत्मा को अभिव्यक्त करने वाली मौखिक अभिव्यक्तियां ही लोक-साहित्य की निधि हैं। डॉ० उपाध्याय के शब्दों में 'सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर

[1] ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन—डॉ० सत्येन्द्र, पृ० ४-५।

[1] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—षोडश भाग, प्रस्तावना पृष्ठ १५।

[2] भारतीय लोक साहित्य—डॉ० श्याम परमार, पृष्ठ २१।

जनता है, उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसी को लोक-साहित्य कहते हैं।' इस प्रकार लोक-साहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा जनता के लिए लिखा गया हो।[1] वस्तुतः सर्व-साधारण जनता जो कुछ सोचती है, जिन भावों की अनुभूति करती है उसी की अपने विविध कार्य-कलापों में नानाविध रूप से अभिव्यक्ति इस साहित्य में उपलब्ध होती है। हम मोटे रूप से उपलब्ध होने वाले समूचे लोक-साहित्य को मुख्यतः निम्न पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१. लोक गीत
२. लोक गाथा
३. लोक कथा
४. लोक नाट्य
५. लोक सुभाषित

लोक-साहित्य के अध्ययन की सुविधा हेतु हम उपरोक्त पाँचों विभागों का क्रमशः विवेचन करने का प्रयास करेंगे।

लोक गीत—किसी भी जाति या प्रांत के लोक गीत वहां की जनता की औसत रागात्मक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी सहज संगीतात्मक उर्मियों में वहां का जीवन-सागर तरंगित होता हुआ प्रतीत होता है। प्रारम्भ में मानव के उल्लसित मन से मधुर संगीत-लहरी के साथ जो भाव फूट पड़े होंगे वही उसके गीत हो गए। तभी से लेकर आज तक मनुष्य निरन्तर रूप से उल्लसित जीवन के आह्लाद को प्रकट करने, सुख की अनुभूति करने तथा जीवन में बढ़ती हुई विषाद-रेखा को क्षीण करने, दुख-दर्द को भुलाने, अपना समय सुहावना बनाने आदि के लिए अपने हृदयगत भावों को ऐसे ही गीतों की लड़ियों में संजो कर अभिव्यक्त करता आया है। राजस्थान इस दृष्टि से बहुत धनी है। 'जीवन के हर महत्त्व-पूर्ण कार्य में गीत का स्थान है। बच्चा गर्भ में होता है तभी से गीत गाये जाते हैं। जन्म की खुशी गीतों में ही व्यक्त होती है। बच्चा बीमार होता है तो गीतों के माध्यम से ही देवता मनाये जाते हैं और अनेक संस्कार गीतों के बिना संभव कहां हैं। विरह के क्षणों में व्यथित हृदय का बोझ इन्हीं गीतों में उँडेल कर हलका करते हैं। मरण के पश्चात् गंगा माता की अभ्यर्थना तक में गीतों के बिना काम नहीं चल सकता। कहने का तात्पर्य यह कि पूरा जीवन ही गीतमय है। जीवन के हर मार्मिक क्षण का स्पंदन इन गीतों की रागिनियों में मुखरित हो उठा है।'[1]

विभिन्न साहित्यकारों ने इन लोक गीतों का वर्गीकरण अपने-अपने दृष्टिकोण से किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार किये गए निम्न पांच भेद वैज्ञानिक एवं उचित प्रतीत होते हैं—

(i) संस्कार सम्बन्धी गीत—

क— जन्म सम्बन्धी संस्कारों के गीत।

१ सीमंतोन्नयन के गीत, २ प्रसव सम्बन्धी गीत, ३ चरुवा गीत, ४ नामकरण, अन्नप्राश, झडूले तथा कर्ण-छेदन के गीत, ५ पलने के गीत।

ख— उपनयन तथा विद्यारम्भ संस्कारों के गीत।

ग— विवाह संस्कार के गीत।

१ सामान्य गीत, २ कन्या पक्ष के गीत, ३ वर पक्ष के गीत, ४ भांवरी पड़ने के गीत, ५ समधियों के गीत, ६ बना, ७ द्विरागमन के गीत।

घ— मृत्यु सम्बन्धी गीत।

(ii) व्यवसाय सम्बन्धी गीत—

क— जीविका सम्बन्धी गीत।

१ नृत्य तथा नाट्य गीत, २ रातीजगा, कथा गीत, पौराणिक भजन, हरजस आदि, ३ पवाड़ा तथा अन्य विविध।

ख— व्यवसाय करते समय श्रम-परिहार निमित्त गाने के गीत।

१ कृषि सम्बन्धी, ऊँटवालों के, चरवाहों के, २ कुआ चलाने के बारेती गीत, कुए पर पानी भरने वालियों के गीत, ३ चक्की और चरखे के गीत,

[1] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—षोडश भाग, पृ० १६।

[1] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, राजस्थानी लोक साहित्य—नारायणसिंह भाटी, पृष्ठ ४१६।

४ अन्य व्यवसाय, मजदूरी आदि करने वालों के गीत।

(iii) आवसरिक गीत—

क— ऋतु सम्बन्धी गीत।

ख— मेले, त्यौंहारों और व्रत सम्बन्धी गीत।

१ होली के, गवर के, घुड़ले के तथा आखातीज, श्रावणी तीज, कजली तीज आदि के गीत, २ कार्तिक और माघ स्नान के गीत।

ग— देवी देवताओं के गीत।

१ देव चरित तथा देवी चरित, २ पौराणिक और सिद्ध पुरुषों के गीत, ३ सतियों और पितरों के गीत।

घ— आस्था और भजन आदि के गीत।

१ भजन, हरजस, सबद, संतवाणी, २ तीर्थयात्रा-सम्बन्धी गीत।

(iv) पारिवारिक गीत—

क— शृंगार रस के गीत।

१ प्रोषित पतिका स्वकीया—काछबियौ, रांणौ, पिणियारी, कुरजां, झीणी केसर, ओळूं, मोरली आदि, २ उत्कंठिता स्वकीया—जलौ, बिलालौ आदि, ३ संयोगिता स्वकीया—कूकड़लौ, दारूड़ौ आदि, ४ वियोग पक्ष के गीत।

ख— भाई, बहन, ननद, भावज आदि सम्बन्धों के गीत।

ग— दाम्पत्य जीवन के गीत।

घ— भोज्य पदार्थों के गीत।

(v) फुटकर—

क— देश सम्बन्धी - जोधांणौ, बीकांणौ, उदियांणौ।

ख— ऐतिहासिक—नथमलजी, दूदा मेड़तिया, अमरसिंह राठौड़, पाबू धांधल, डुड़िया कौ नन्द जी।

ग— बाल गीत।

घ— विविध—मूमल, मधकर, दिवलौ, ऊंट, सूवटौ, कूओ, नींबड़ी, केवड़ौ।

लोक गीतों में विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति बड़ेसुन्दर ढंग से हुई है। राजस्थानी के काजळियो, पिणिहारी आदि गीत शृंगार के अच्छे उदाहरण हैं। निहालदे नामक लोक गीत में करुण रस की निष्पत्ति हुई है। ओळूं एवं कुरजां आदि गीतों में करुण रस का प्रबल प्रवाह प्रवाहित होता है। पुत्री की बिदाई का अवसर वस्तुतः बड़ा ही दुखदायी होता है। परिवार के आम्र-वन की मधुर कोयल माता-पिता, भाई बहिनों का प्यार छोड़ कर पति के साथ ससुराल के लिये विदा होती है तो गीत गाने वाले एवं सुनने वाले अनायास ही अश्रु विगलित हो उठते हैं। ऐसे गीत बड़े ही करुणापूर्ण तथा हृदय-विदारक होते हैं। 'आऊवा' संबंधी लोक गीतों में वीर रस का परिपाक हुआ है। लोक-देवी-देवताओं संबंधी गीत शांत रस के अच्छे उदाहरण हैं। इसी दृष्टि से विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति करने वाले गीतों को रसानुभूति की प्रणाली के अंतर्गत रक्खा गया है।

लोक-जीवन का प्रकृति के प्रति वैयक्तिक नहीं, सामूहिक संबंध रहता है। अतः लोकगीतों में प्रकृति का चित्रण सामूहिक भावना का ही प्रतीक होता है। प्रकृति उनकी साहित्यिक अनुभूतियों को उभारती है। बरसाती बादलों को देख कर लोक जीवन में सामूहिक प्रतिक्रिया होती है। अतः खेती के समय बादलों की घन-घटाओं को देख कर उनकामन उल्लसित हो उठता है। ऐसे समय में गाये गये गीत ऋतु-संबधी गीतों के अंतर्गत रक्खे जा सकते हैं। कृषि-कर्म, ऋतु-परिवर्तन, देव पूजा, प्रकृति पूजा, पशु पूजा, और वीर पूजा से संबंधित अनेक उत्सव त्यौहारों के रूप में भी मनाये जाते हैं। गणगौर, घुड़लौ, लोटियौ का गीत, होली, लूअर आदि गीत ऐसी ही जन-भावनाओं को प्रदर्शित करते हैं। प्रायः ये सब जन-कल्याण की मांगलिक भावना पर आधारित होते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न व्रतों के अवसर पर भी स्त्रियों द्वारा गीत गाये जाते हैं। इन गीतों को 'ऋतुओं तथा व्रतों के क्रम' के अंतर्गत रक्खा जा सकता है।

कुछ लोक गीत परंपरा से गाने वाली जातियाँ घर-घर जाकर त्यौहारों के अवसर पर या यों ही मनोरंजन के लिये सुनाया करती हैं। जाति या पेशेवर इन गायकों की गायन-शैली में और परिवार की गायन-शैली में काफी अंतर होता है। इन जातियों के गानों में केवल लोककला के ही तत्व समाहित नहीं होते अपितु शास्त्रीयता का भी पूरा पुट रहता है, फिर भी इन्हें लोकगीतों की श्रेणी में ही गिना जाना चाहिये, क्योंकि

उनमें अभिव्यक्त भावों का रूप, औसत सामाजिक व्यक्ति की चेतना का अंश है। ढोली, ढाढ़ी, मिरासी, मांगणियार, फदाळी, कलावत, लंगा आदि अनेक जातियाँ इस प्रकार के गीतों के गाने का व्यवसाय करती हैं, यद्यपि आधुनिक समय में यह जातिगत व्यवसाय निरन्तर कम होता जा रहा है।

लोक-जीवन में श्रम का भी महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन के अनेक कार्यों में मनुष्य को श्रम करना पड़ता है। श्रम करते समय परिश्रमजन्य क्लांति को दूर करने के लिये गीतों का आश्रय लिया जाता है। खेती या अन्य श्रम संबंधी सामूहिक आयोजनों में काम की निमग्नता के बीच सामूहिक ध्वनियों के रूप में कविता के बोल स्वयमेव मुखरित हो उठते हैं। राजस्थानी में 'भणतें' बहुत प्रसिद्ध हैं। मानव-श्रम के साथ मानव-गीत संगीत का मधुर मिश्रण अनोखा है। कुँओं से पानी खींचते समय, हल जोतते समय और ऊँटों की लम्बी कतार तथा बैलों की बाळद के लम्बा रास्ता तय करते समय जो गीत गाये जाते हैं उनमें मानव श्रम एवं मानव का हृदय दोनों मिल कर गाते हैं। ऐसे गीतों को श्रम-सम्बन्धी गीतों के अंतर्गत रखा जा सकता है।

लोक गीतों का यह वर्गीकरण अंतिम नहीं है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, विभिन्न लेखकों ने लोक गीतों का वर्गीकरण अपने-अपने दृष्टिकोण से किया है। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने[1] ११ श्रेणियों में और श्री सूर्यकरण पारीक ने[2] २१ श्रेणियों म लोक गीतों का विभाजन किया है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' षोडश भाग, की प्रस्तावना में लोक गीतों के श्रणी-विभाजन का एक वृक्ष प्रस्तुत किया है।[3] अपने इस वर्गीकरण के लिए उनका मत है कि यह वर्गीकरण वैज्ञानिक है क्योंकि लोक गीतों की समस्त विधाएँ इसमें अंतर्भुक्त हो जाती हैं। इस देश के किसी भी प्रदेश के लोक गीतों के भेद तथा प्रभेद रक्खे जा सकते हैं।

संभवतया उनका यह वर्गीकरण ब्रज, मैथिल, भोजपुरी आदि उत्तरप्रदेशीय लोक गीतों को दृष्टिगत रख कर किया गया है। राजस्थानी लोक गीतों की दृष्टि से यह वर्गीकरण भी अधूरा ही कहा जायगा। लोक गीतों की दृष्टि से राजस्थानी बहुत समृद्ध भाषा है। उपरोक्त वर्गीकरण में यद्यपि अधिकांश राजस्थानी गीतों का समावेश हो जाता है, तथापि कुछ गीत ऐसे हैं जिनका उल्लेख इस वर्गीकरण में नहीं किया गया है। ऋतु-संबंधी वर्गीकरण में 'सियाळी', 'सांवण' आदि अन्य ऋतुओं के गीत भी राजस्थान में बहुत लोकप्रिय हैं। व्रत-सम्बन्धी गीतों में तीज, गणगौर, करवाचौथ आदि के गीतों का समावेश इसमें नहीं किया गया है। राजस्थान में अहीर, दुसाधों, चमारों, कहारों, धोबियों आदि के कोई विशेष गीत प्रचलित नहीं हैं। यहाँ लोक गीतों को गाने वाली कुछ पेशेवर जातियाँ हैं जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। श्रम-संबंधी गीत राजस्थान में 'भणत' के नाम से प्रसिद्ध हैं। फिर भी अन्य वर्गीकरणों की अपेक्षा उपरोक्त वर्गीकरण अधिक वैज्ञानिक है। अतः अब हम इन्हीं वर्णित पाँचों विभागों की क्रमशः विवेचना प्रचलित एवं प्रसिद्ध लोक गीतों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए करेंगे।

१—संस्कार सम्बन्धी गीत

भारतीय लोक-जीवन जन्म से मृत्यु तक विभिन्न कालों में विभाजित है। इन कालों के लिये विभिन्न संस्कारों का आयोजन किया गया है। हर संस्कार के साथ संगीत की मधुर स्वर-लहरियाँ हमारे साथ चलती हैं। गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक षोडश संस्कारों का विधान किया गया है, तथापि इनमें पुत्र-जन्म, जनेऊ, विवाह, गौना, मृत्यु आदि प्रधान संस्कार माने जाते हैं।

(१) पुत्र-जन्म—इसके अंतर्गत गर्भाधान, गर्भिणी की शरीर-यष्टि, प्रसव-पीड़ा, दोहद, छठी आदि से सम्बन्धित गीत आते हैं। किसी नव-विवाहिता वधू के प्रथम बार गर्भाधान होना अत्यन्त मंगलमय माना जाता है। गर्भाधान से सम्बन्धित गीतों में गर्भवती स्त्री के शरीर में होने वाले (नौ मास तक) परिवर्तनों का बड़ा वैज्ञानिक वर्णन होता है। गर्भवती स्त्री जिन अभिलषित वस्तुओं को खाने की इच्छा करती है, उनका भी बड़ा रोचक वर्णन राजस्थानी गीतों में पाया जाता है—

पै'लो मास उलरियो ए जच्चा बैं रो आळसियै मन जाय
दूजो ए मास उलरियो ए जच्चा बैंरो थूंकतड़े मन जाव ए
अलबेली ए जच्चा चांदी रे प्याले केसर पावसां ॥ टेक

[1] 'कविता कौमुदी' — पं० रामनरेश त्रिपाठी, भाग ५, पृष्ठ ४५।
[2] 'राजस्थानी लोकगीत' — श्री सूर्यकरण पारीक, पृष्ठ २२-२५।
[3] हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृ. ५५-५६।

नवराळी ए अच्चा पानां रे बरक चढ़ावसां
तीजो मास उलरियौ ए अच्चा नींबूड़े मन जाय
चौथो मास उलरियौ ए अच्चा लाडूड़े मन जाय ए।। अल०।

राजस्थानी में 'दोहृद' के गीतों की यह परम्परा नवीन नहीं है। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास ने भी सुदक्षिणा के दोहद का बड़ा सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है।[1] प्रायः सभी प्रदेशों के लोक गीतों में दोहृद का रोचक वर्णन मिलता है। राजस्थान में गर्भवती की इच्छा-पूर्ति कराना बड़ा महत्वपूर्ण एवं पुण्य कार्य माना जाता है। गर्भावस्था के आठवें मास में स्त्रियाँ 'अजमौ' गाती हैं। नववधू गर्भवती है, पति कार्यवश परदेश जा रहा है। पति की अनुपस्थिति में अजवाइण आदि की व्यवस्था कौन करेगा ? क्या होगा ?

थेइज ओ केसरिया सायब गांव सिधाया ओळगणी,
सिधाया ओ अजमौ कुण मोलावे ओ राज !
थेइज ओ मांनेतण रांणी हालरियौ जिणजो,
थेनडियौ जिणजो ओ अजमौ म्हारा भाबोसा मोलावे ओ राज !

पुत्र-जन्म से सम्बन्धित गीतों को दो भागों में बाँटा जा सकता है-- (क) जन्म से पूर्व के गीत, एवं (ख) जन्म के बाद के गीत। पुत्र-जन्म से संबंधित उपरोक्त गीत जन्म से पूर्व के गीत कहे जा सकते हैं। पुत्र-जन्म का उत्सव सबसे मंगलमय उत्सव माना जाता है, अतः जन्मोत्सव बड़े हर्ष एवं उल्लास के साथ मनाया जाता है। राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में पुत्र-जन्म से संबंधित अनेकों गीत प्रचलित हैं। जन्म से पूर्व प्रसव-वेदना से पत्नी व्याकुल हो रही है। पति बाहर चौपड़ खेलने में मस्त है। पत्नी पति को दाई बुलाने के लिये सूचना देना चाहती है। क्या कहे ? कैसे कहे ?—

ओ राजा सार रमता पीव थें पासा दूर धरौ वे हां
ओ राजा सार धरौ चित्रमाळ पासा रंग मे'ल धरौ वे हां
ओ राजा जाजम देवौ उठाय साथीड़ां ने सीख देवौ वे हां
ए म्हारी सदा सवागण नार थांरे कांई हुयौ वे हां
ओ राजा लाज सरम री बात पियाजी ने कांई केवूं वे हां
ए गोरी थारौ म्हारौ जिवड़ौ एक दोनूं बिच कोण सुणे वे हां
ओ राजा धसमस दूखै पेट कमर में चीस चलै वे हां
ओ राजा होय घुड़लै असवार दाईजी ने लेण चालौ वे हां...

राजस्थान में पुत्र के जन्म पर उत्सव मनाया जाता है। किन्तु पुत्री का जन्म अधिक अच्छा नहीं माना जाता। पुत्रवती स्त्री का आदर अधिक होता है। लोक गीतों में इसकी झलक अनायास ही मिल जाती है। मोढ़े पर बैठे हुए पति-पत्नी बातें कर रहे हैं। पत्नी पूछ रही है कि अगर मेरे लड़की हुई तो तुम मेरा प्यार किस प्रकार करोगे ?—

जी ओ धण मुढलै पिव पालिगै
तौ बोय जणां ए मतौ उपाइयौ
जी पिया जे म्हारै जलमेगी धीय
तौ किसड़ा लाड लडावस्यौ जी
जी गोरी जै थांरे जलमेगी धीय
तौ खाट पिछोकडै घलावस्यां जी
लाडू खारे लूण का जी
पड़दौ दां काळी कांमळी जी
मुख सें कदेय नीं बोलस्यां जी
ए म्हे सिधारांगा चाकरी जी
थांने भेजां थांरे बाप के जी ।।

पुत्र-जन्म के बाद कुछ दिनों तक लगातार गीत गाये जाते हैं। इस सम्बन्ध में अनेकों गीत प्रचलित हैं। जन्म के छठे दिन विशेष रूप से उत्सव मनाया जाता है। उस दिन सन्तानोत्सव से सम्बन्धित गीत गाये जाते हैं। विभिन्न लोक गीतों के संग्रहों में इस समय गाये जाने वाले कई गीत प्रकाशित हो चुके हैं।

जन्मोत्सव पर प्रसूता स्त्री को पीली चूनर ओढ़ाते हैं। इसे 'पीळौ ओढ़ाना' कहते हैं। राजस्थान में 'पीळौ' सौभाग्यवती एवं पुत्रवती स्त्री का मांगलिक परिधान है। बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ नववधुओं एवं बहुओं को 'पीळा ओढ़ने' का आशीर्वाद देती हैं। लोक गीतों में भी इस पीळी चूनर की सुंदरता का वर्णन किया गया है—

उदयपुर से तौ सायबा पीळौ मंगाओ जी
तौ नांनी-सी बंधण बंधाओ गाढ़ा मारूजी !
पीळा तौ पल्ला साहेबा बंधण बंधावौ जी
तौ अदबिच चांद छपावौ गाढ़ा मारूजी !
पीळौ तौ ओढ़ म्हारी अच्चा पोढ़ेजी
बड़ी तौ सराही सहर सराही गाढ़ा मारूजी !

[1] न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितं
स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी।
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः
प्रिया सखीमुत्तर कोशलेश्वरः।। रघुवंश—३।५

पीळौ तौ ओढ़ म्हारी अम्बा महल पधारी श्री
तौ कोई हे सपूती निजर लगाई गाढ़ा मारूजी !...

इसी प्रसंग में 'लोरी' सम्बन्धी लोक गीतों की विवेचना भी अप्रासंगिक न होगी। राजस्थानी लोक गीतों में 'लोरी' का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। माता पालने में ही वीर-लोरियाँ सुना कर शिशु में शौर्य व बलिदान के संस्कारों का बीजारोपण करती है।[1] आसपास की प्रकृति, पशु-पक्षी, वनस्पति आदि से प्रथम बार परिचय कराती है—

गीगा ने खिलायी ए चिड़कली
गीगा ने खिलायी ऐ !
गीगा रोवै म्याऊं म्याऊं
गीगा ने हँसायी, ए चिड़कली, गीगा ने खिलायी ऐ !
पगां अक वांधूं घूघरगा थारै
गळ मोतीड़ा रौ हार, ए चिड़कली, गीगा ने खिलायी ऐ...

इस सम्बन्ध में 'गाडूलो' नामक लोक गीत भी राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है। स्नेहमयी माता खाती से कह रही है कि मेरे पुत्र के लिये एक सुन्दर-सा गाडूला (गाड़ी—जिसके सहारे बच्चे चलना सीखते हैं) बना कर लाओ—

सुण सुण रे खाती रा बेटा, गाडूलौ घड़ ल्याय।
गाडूलौ घड़ ल्याव, म्हारै गीगा के मन भाय।
आंम को गाडूलौ घड़ ल्याव, चाँदी का पात चढ़ाय।
सोने की, खाती रा बेटा, कील ठोकाय।
सुण सुण रे खाती रा बेटा, गाडूलौ घड़ ल्याय।...

(ii) उपनयन संस्कार—

इसे जनेऊ' कह कर भी पुकारते हैं। 'जनेऊ' शब्द यज्ञोपवीत का अपभ्रंश रूप है। मनु ने द्विजों के लिये यज्ञोपवीत आवश्यक माना है। अन्य जातियों के लिये भी विभिन्न आयु तथा विभिन्न अवसर पर यज्ञोपवीत धारण करने का विधान है। जनेऊ के गीतों में उन विधि-विधानों का उल्लेख पाया जाता है जो संस्कार में पाये जाते हैं। यज्ञोपवीत संस्कार के समय यज्ञोपवीत धारण करने वाला पूजा-विधान के पश्चात् अपने निकट सम्बन्धियों से भीख मांगने की रस्म पूरी करता है। उसी समय स्त्रियों द्वारा गाया जाने वाला गीत देखिये—

गळै जनेऊ लाडा पाटके री डोरी
भिक्षा पुरसे बहू सुरजजी री गोरी
गळै जनेऊ लाडा पाटके री डोरी
भिक्षा पुरसे बहू ब्रह्माजी री गोरी
गळै जनेऊ लाडा पाटके री डोरी
भिक्षा पुरसे बहू ब्रह्माजी री गोरी
गळै जनेऊ लाडा पाटके री डोरी
भिक्षा पुरसे बहू महादेवजी री गोरी
गळै जनेऊ लाडा पाटके री डोरी
भिक्षा पुरसे बहू...सुखदे गोरी॥

(iii) विवाह—

विवाह संपूर्ण मानव जाति का एक पवित्र एवं प्रधान संस्कार माना जाता है। विभिन्न देशों में विवाह के भिन्न-भिन्न तरीके प्रचलित हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार राजस्थान में 'चँवरी' में वर-वधू द्वारा अग्नि के चारों ओर परिक्रमा करना (भाँवरे पड़ना) विवाह का सबसे मुख्य कार्य है।

राजस्थान में मंगलकारक देवता के रूप में गणेशजी का स्मरण किया जाता है अतः प्रत्येक मंगल कार्य के आरंभ में विनायक (गणपति) का आह्वान किया जाता है। विवाह-सम्बन्धी समस्त संस्कारों के पहले विनायकजी के गीत गाये जाते हैं। इस सम्बन्ध में क्षेत्र-भेद की दृष्टि से राजस्थान में अनेकों गीत प्रचलित हैं, किन्तु सभी में सकल सिद्धि और मंगलदायक विनायक का स्मरण किया जाता है जिससे समस्त संस्कार बिना किसी विघ्न-बाधा के कुशलपूर्वक संपन्न हो सकें, क्योंकि श्री विनायक को 'विघ्नहरण एवं मंगलकरण' माना जाता रहा है—

गढ़ रणत भंवर सूं आवौ विनायक
करौ नी अणचींती विड़दड़ी।
विड़द-विनायक दोनूंजी आया
आय तौ उतरिया हरिये बाग में।
ढूंढत ढूंढत नगरी जी ढूंढी
कोई, घर तौ बतावौ लाडले रे बाप रौ।
ऊँची सी मेडी, लाल किंवाड़ी
केळ झबरकै लाडले रे बारणे।

[1] मि०—इला न देणी आपणी, हालरिये हुलराय।
पूत सिखावे पालणें, मरण बड़ाई माय॥—सूर्य्यमल मिश्रण

म्हाँजी रो वासो सरवर वसियो
सरवर भरियो ठंडे नीर सूं ।
भरियो तो सरवर लेवें रे हिलोळा
नीर भरै पणिहारियां ।
दूजो तो वासो बाड़्यां जी वसियो
बाड़्यां तो छायी फळ फूलां सूं ।
आगणो तो वासो ग्वाड़ां जी वसियो
ग्वाड़ां तो भरी धोळी धेनां सूं...!

विवाह के अधिकतर गीत वर एवं कन्या दोनों पक्षों में समान रूप से गाये जाते हैं। विनायक-पूजा के पश्चात् प्रति दिन रात्रि में वर की प्रशंसा में गीत गाये जाते हैं। ऐसे गीतों को 'बनड़े' कहते हैं। कहीं-कहीं बोली-परिवर्तन के कारण इन्हें सांझी के गीत भी कहते हैं। राजस्थानी में 'बनड़े' का अर्थ 'दूल्हा' होता है। इन गीतों में वधू की ओर से वर से अनेक प्रकार की प्रार्थनायें की जाती हैं—बारात कैसी हो? बराती कैसे हों?—

सिरदार बनांजी हस्ती थे लाइजो हे कजळी देस रा
उमराव बनांजी घुड़ला थे लाइजो हे खुरसांणी देस रा
सिरदार बनांजी सेवरिये झबूके ओ आभा बीजळी
उमराव बनांजी सोनो थे लाइजो हे लंकागढ़ देस रो
उमराव बनांजी रूपो थे लाइजो हे ऊजळपुर देस रो···

विवाह के अवसर पर अनेक प्रकार के रीति-रस्म होते हैं। वर-वधू के तेल चढ़ाना, उबटन करना इनमें प्रमुख है। 'उबटन' को राजस्थानी में 'पीठी' कहते हैं। सोलह श्रृंगारों में उबटन का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इससे शरीर की एवं मुख की कान्ति बढ़ कर रंग निखरने लगता है। विवाह के अवसर पर राजस्थान में 'पीठी' का आम रिवाज है। वर या कन्या के 'पीठी' करते समय स्त्रियाँ गीत गाया करती हैं—

गहूं ए चिणां री ऊबटणो, मांय चमेली री तेल
अब लाडो बैठयो ऊबटणे ॥ १
आयो म्हारी दादां निरखलो, आयो म्हारी मांयां निरखल्यो
थां निरख्यां सुख होय, अब लाडो बैठयो ऊबटणे ॥ २
तो कर लाडा उबटणो, थारा ऊबटणा में बास घणी
थारी दादयां संजोयो ऊबटणो, थारी मांयां संजोयो ऊबटणो ॥ ३
कोई तेल फुलेल चम्पेल घणी, चम्पा री कळियां सुगंध घणी
लाडा रा मन में आस घणी ॥ ४

गीतों में हास्य का पुट देने या वर के साथ विनोद करने का अवसर प्रायः स्त्रियाँ निकाल ही लिया करती हैं। ऐसी दशा में किसी गीत के साथ दो चार पंक्तियां वे अपनी ओर से भी जोड़ दिया करती हैं, यद्यपि विनोद के सिवाय उनका कोई विशेष महत्व नहीं होता—

चंपळ री चोसठ कळियां ए,
बनो पूरै बनी री रळियां ए।
बनड़े रे हाथ पतासा ए,
बनो करै बनी सूं तमासा ए।
बनड़े रे हाथ में डोरी ए,
बनड़े सूं बनड़ी गोरी ए।
बनड़े रे हाथ में कूंची ए,
बनड़े सूं बनड़ी ऊँची ए।

राजस्थान के विवाह संबंधी लोक गीतों में 'बनड़ो', 'बनो' 'लाडो' आदि शब्द वर के लिये एवं 'बनड़ी', 'बनी', 'लाडी' आदि शब्द वधू के लिये प्रयुक्त होते हैं। प्रत्येक रस्म के लिये अनेकों गीत मिलते हैं, किन्तु प्रायः भाव उनमें एकसा ही पाया जाता है। बरात के चढ़ते समय दूल्हा घोड़े पर चढ़ता है, उस समय भी गीत गाये जाते हैं—

घोड़ी बांधो मगर रे रूंख, चंनण रे रूंख
मोड़ दरवाजे चंपे री दोय कळियां बे
घोड़ी चढ़सी वसदेवजी रो नंद, पून्यो रो चंद
हीरां रो हार, मथराजी रो वासी बे
धन धन हो गोरा स्रीकस्न केसरिया कँवर
थांरे सेवरो बँधावां बे
ठाकुर आया, ठाकुर केळ करै किललोळ करै
थांरे बाबेजी री डोढ़ी बे
धन-धन ए बहू वसदेव री
केसरिया कँवर जिण स्रीकस्ण जायो बे।

इसी प्रसंग में इन गीतों की एक मुख्य विशेषता का उल्लेख कर देना आवश्यक है। राजस्थान में इन संस्कार-संबंधी सभी गीतों को स्त्रियाँ ही गाती हैं। गाने में पुरुषों का भाग नहीं होता।

बारात जब वधू के द्वार पर पहुँच जाती है तो वर 'तोरण' का अभिवादन करता है। इस अवसर पर दूल्हा तलवार एवं वृक्ष की टहनी से तोरण को स्पर्श करता है। विवाह के निमित्त औपचारिक रूप से आने का वर का यह प्रथम अवसर होता है, अतः

'कांमण' द्वारा वधू उसी समय वर को वश में करने का प्रयत्न करती है। आरंभ में ही किया गया प्रयत्न अधिक फल-दायक होता है। 'कांमण' शब्द संस्कृत के 'कार्मणं' का ही अपभ्रंश रूप है। कार्मण का अर्थ है—'जादू-टोना या वशीकरण'। इस अवसर पर 'कांमण' गीत गाने का अभिप्राय दूल्हे पर वशीकरण करना होता है। इसीलिए 'कांमण गीतों' के साथ साथ कुछ 'कांमण' क्रियायें भी की जाती हैं। संभवतया यहाँ प्रेम के जादू से मतलब है। 'कांमण' विभिन्न तरीकों से किया जाता है। कुछ जातियों में 'तोरण' स्पर्श करते समय वर के ऊपर वधू द्वारा मंत्रित 'कपासिया' आदि वस्तुयें फेंकी जाती हैं। वर के मित्र हाथ में ढाल लेकर उन वस्तुओं से 'वर' की रक्षा करते हैं जिससे 'वर' वधू के वशीभूत होने से बच जाय। इस समय स्त्रियाँ भी गाने लगती हैं—

तोरण में आया राईवर, थरहर कंप्या राज
बूझां सिरदार बनी ने, कांमण कुण करया छे राज
म्हे नहिं जांणां, म्हां रा खाती कांमणगारा राज
खाती को नेग चुकास्यां, कांमण ढीला छोडो राज
छोड्यां न छूटै, राईवर, करड़ा घुळया छै, राज...

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि "प्रकृतिस्वरूपा स्त्री प्रेम की आदि-शक्ति है। वह अपने प्रेम से पुरुष को वशीभूत कर लेती है। यही प्रेम का 'वशीकरण' है—जादू है। इसी को 'कांमण' कहा है, जिसके आतंक से पुरुष राईवर थर-थर कांपने लगता है। फिर यौवन की प्रथम आभा से स्त्री में एक और शक्ति का प्रकाश होता है, जिसके आगे पुरुष का पुरुषत्व मोम होकर पिघल जाता है। प्रेम और वशीकरण जितना ही ज्यादा प्रभावशाली हो, 'कांमण' जितना ही ज्यादा घुले उतना ही अच्छा।"[1]

इस प्रकार विवाह के छोटे-मोटे प्रायः सभी रीति-रस्मों पर स्त्रियाँ गीत गाया करती हैं। इस संबंध में विभिन्न लोक-गीतों के संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। इन रीति-रस्मों के अतिरिक्त विवाह संबंधी कुछ साधारण गीत भी प्रचलित हैं। कन्या अपने पिता से निवेदन करती है कि देश के बजाय भले ही मुझे परदेश में देना पर 'वर' मेरी जोड़ी का देना। वर न काला हो, न गोरा हो, न लम्बा हो, न ठिगना हो—

काची दाख हेठे बनड़ी पोन चावै, फूल सूँघै
करै ए बाबेजी सूँ बीनती
बाबाजी, देस देता परदेस दीज्यो
म्हांरी जोड़ी रो बर हेरज्यो
काळो मत हेरो, बाबाजी, कुळ ने लजावै
गोरो मत हेरो, बाबाजी, अंग पसीजै
लांबो मत हेरो, बाबा सांगर चूँटै
ओछो मत हेरो, बाबा बावन्यूँ बतावै।
ऐसो बर हेरो, कासी रो बासी
बाई रे मन भासी, हसती चढ़ आसी
हँस खेल, ऐ बाबेजी री प्यारी बनड़ी
हेरयो ए फूल गुलाब रो।

वर के प्रति कन्या की यह इच्छा कितनी स्वाभाविक है। आज कितने माता-पिता अपनी कन्या की इच्छा को ध्यान में रख कर उसका विवाह करते हैं?

राजस्थान में 'चँवरी' में साधारणतया सात भाँवरे पड़ने की प्रथा नहीं है। इस समय यहां चार भाँवरे ही पड़ते हैं तथा प्रत्येक भाँवर (फेरा) के साथ स्त्रियाँ गा उठती हैं—

पं'लो फेरो ले म्हारी लाडो बाई दादोसा ने लाडली
दूजो फेरो ले म्हारी लाडो बाई बाबोसा ने लाडली
तगणो फेरो ले म्हारी लाडो बाई वीरोसा ने लाडली
चोथो फेरो लियो म्हारी लाडो होइए पराई ए
हळवां हळवां चाल म्हारी लाडो हँसेला सहेलियां।

विवाह के अवसर पर 'भात' या माहेरा भरना' राजस्थान की एक महत्वपूर्ण प्रथा है। घर पर पुत्र या पुत्री का विवाह निश्चित होने पर बहन अपने भाई तथा माता-पिता को निमंत्रण देने के लिए स्वयं अपने पति के साथ पीहर जाती है। भाई बहिन का निमंत्रण स्वीकार कर विवाह-संस्कार के दिन अपने कुटुम्बी जनों को साथ लेकर अपनी बहिन के घर पहुँचता है और वहाँ अपनी शक्ति के अनुसार बहिन और बहिन के परिवार को पहरावनी देता है। इस अवसर पर वह कुछ नकद द्रव्य भी सहायता के रूप में देता है। भाई के न होने पर निकट सम्बन्धी ही माहेरा भरता है। विवाह-संस्कार के दिन प्रत्येक बहिन अपने भाई की तीव्र उत्कण्ठा के साथ प्रतीक्षा करती है। 'माहेरा' लेकर भाई के आने का समाचार

[1] 'राजस्थान के लोक गीत' – प्रथम भाग, संपादक–ठाकुर रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी। पृष्ठ १५६ में दिया गया 'कांमण' गीत का भावार्थ एवं टिप्पणी।

सुन लेती है तो वह अपने आपको बड़ी भाग्यशालिनी समझती है। विशेष प्रसन्नता के कारण प्रेमाश्रु रोके नहीं रुकते। माहेरा भरने के समय इसी सम्बन्ध के गीत गाये जाते हैं। विवाह के अवसर पर बहिन अपने भाई की प्रतीक्षा में कितनी उत्सुकता दिखाती है और भाई के आ जाने पर भाई के हाथ से चूनड़ी ओढ़ने की इच्छा कितने उल्लसित मन से प्रकट करती है, वह निम्न गीत में देखिये—

उड बायसड़ा म्हारा, पीयर जा, नूंत पियर रा आतवी जे।
×
झीणी-झीणी, रे बीरा, उडे छै खेह, बादळ दीसै धूंधळा जे।
बळदां री, रे बीरा, बाजी छै टाळ, गाड चरखता म्हे सुण्या जे।
म्हारे बीरेजी रा चमक्या छै सेल, भावजां रा चमक्या चूड़ला जे।
×
भारत रे बीरा भावज ने ओढ़ाय, म्हांने घणा मोलां री चूनडी जे।
सुसराजी ने, बीरा, सिरमौ ओढ़ाय, सासूजी ने साड़ी सांपड़ जे।
म्हारा जेठां ने, बीरा, साल दुसाल, देवरां ने पिचरंग मोळिया जे।
म्हारी नणद ने दिखणी रो चीर, देराण्यां-जेठाण्यां ने पीळा
पोमचा जे ॥

(iv) गौना—'गौना' शब्द संस्कृत के 'गमन' का विकृत रूप है। प्रायः बड़ी आयु में विवाह होने पर कन्या को विवाह के दूसरे दिन ही विदा कर दिया जाता है किन्तु छोटी आयु में विवाह होने पर जब तक कन्या युवा नहीं हो जाती, उसे ससुराल नहीं भेजा जाता। कुछ जातियों में तो 'गौने' की प्रथा-सी हो गई है। उनमें कन्या चाहे जितनी बड़ी या छोटी हो—विवाह के कुछ अवसर बाद ही उसे ससुराल भेजा जाता है। विवाह के समान इसे भी धूमधाम से मनाया जाता है। राजस्थान में इसे 'मुकलावा' भी कहते हैं।

कन्या की विदाई का दृश्य वस्तुतः बड़ा करुणामय होता है। इतने वर्षों तक पाली-पोसी कन्या को अपने से अलग करना साधारण जन के लिये बड़ा ही कठिन होता है, फिर भी इस कार्य को तो उसे संपादित करना ही होता है। समाज का नियम ऐसा ही है। ऐसे समय गाये गये गीतों को राजस्थानी में 'ओळूं' कहते हैं। 'ओळूं' का शाब्दिक अर्थ है 'याद', यद्यपि 'याद' शब्द पूरी तरह से 'ओळूं' के भावों को प्रदर्शित नहीं करता। इन गीतों के भाव इतने करुण होते हैं कि सुन कर हृदय थाम कर आँसू रोकना कठिन हो जाता है। स्त्रियाँ गाती हुई प्रेम-विह्वल हो जाती हैं और उनकी आँखों से अश्रुओं की झड़ी लग जाती है। पुरुषों की आँखें भी छलछला आती हैं, क्योंकि गाने वाली स्त्रियों की सिसकियाँ, गीत के शब्द और संगीत को और भी हृदयस्पर्शी बना देती हैं और सुनने वाले भी अश्रुविगलित हो उठते हैं—

म्हे थां ने पूछां म्हारी धीवड़ी
म्हे थां ने पूछां म्हारी बाळकी
इतरो बाबैजी रो लाड, छोड'र बाई सिध चाल्या ?
म्हे रमती बाबोसा री पोळ
म्हे रमती बाबोसा री पोळ
आयो सगेजी रो सूवटो, गायड़मल ले चाल्यो।
म्हे थां ने पूछां म्हारी धीवड़ी
इतरो माऊजी रो लाड छोड'र बाई सिध चाल्या··· ?

कई गीतों में कन्या की उपमा कोयल से दी जाती है। कोयल वसन्त की दूतिका है। कोयल के छोड़ जाने पर उपवन का वसन्त नहीं रहता। लाड़-प्यार से पाली हुई कन्या के पति-गृह चले जाने पर माता-पिता का घर सूना हो जाता है और समस्त वातावरण विषादमय हो जाता है। विवाहोपरान्त कन्या की विदाई के समय सखी-सहेलियाँ उदास हो रही हैं, क्योंकि उनके उपवन की कोकिला अब विदा ले रही है। सभी उस समय सजल नेत्र हो जाते हैं और विदा होती हुई कन्या को सम्बोधित कर गद्‌गद् कण्ठ से कहते हैं—मेरे उपवन की कोकिला, तू यह उपवन छोड़ कहाँ चली ?

वनखंड री ए कोयल, वनखंड छोड कठै चाली ?
थारी आळे दीवाळे गुडियाँ धरी
वनखंड की ए कोयल, वनखंड छोड कठै चाली ?
थारी साथ सहेल्यां उणमणी
वनखंड री ए कोयल, वनखंड छोड कठै चाली ?
थारी माऊजी थारे बिन उणमणा
थारी छोटी बेनड़ रोवै अकेलड़ी
वनखंड री ए कोयल, वनखंड छोड कठै चाली ?
थारो बीरो सा फिरै छै उदास
बिलखत थांरी भावजड़ी
वनखंड री ए कोयल, वनखंड छोड कठै चाली ?···

२—व्यवसाय सम्बन्धी गीत

(i) श्रम गीत— राजस्थान एक शुष्क प्रदेश होने के कारण यहाँ का जीवन बड़ा कठोर है। यहाँ के लोगों को

अपनी जीविका के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है। कृषि ही यहाँ का मुख्य व्यवसाय होने के कारण यहाँ का 'लोक' सदैव से ही परिश्रम में पलता आया है। श्रम के साथ मानव-गीत-संगीत का साहचर्य अनोखा है। कठोर परिश्रम की अथक थकान को संगीत की मधुर लहरियाँ क्षण भर में दूर कर देती हैं। गीतों की स्वर-लहरी के साथ श्रमिक अपने अंगों के परिचालन को एक कर देता है और उसी आनन्द में बिना थकान महसूस किए लम्बे समय तक कार्य में जुटा रहता है। इसी अभिप्राय से खेतों में हल चलाते हुए, कुओं से पानी खींचते हुए, फसल को काटते हुए और उसी प्रकार श्रम का अन्य कार्य करते हुए लोग अपने गीतों की मधुर ध्वनि से ही अपने समय को रंगीन और सुखमय बनाते हैं। गीत की मधुर ध्वनि में वे अपने श्रम के कष्टों को भूल कर कार्य में लवलीन हो जाते हैं। राजस्थान में एक विशेष लय के साथ ही श्रमगीत गाये जाते हैं। ऐसे गीतों को यहाँ 'भणतें' कहते हैं। इन भणतों की संख्या राजस्थानी लोक साहित्य में बहुत ही कम है। जो कुछ हं उसी को घुमा-फिरा कर श्रम के विभिन्न अवसरों पर गाया जाता है। नीचे दी गई एक भणत का एक उदाहरण देखिये—

> रांमयौ भरणलौ रे भाई !
> सांवण रा सरड़ाटा श्रो भाई !
> भादरवै रा लौं'र श्रो भाई !
> सांवण पैं'ली तीज श्रो भाई !
> सहियां राखी तीज श्रो भाई !
> सहियां हींडौ हींडै श्रो भाई !
> सींगाटी रा साठ श्रो भाई !
> पूठै रा पचास श्रो भाई !
> बूंदी री बंदूक श्रो भाई !
> सीरोही तरवार श्रो भाई !
> गेंडासाही ढाल श्रो भाई !

पुरुषों की भांति स्त्रियाँ भी श्रम के समय अपने गीतों द्वारा अपने श्रम को सरल बना देती हैं। घर तथा कृषि में अनेक प्रकार के कार्यों को करने के लिये श्रम में जुट जाती हैं। चरखा कातते समय उनके द्वारा गाया जाने वाला गीत देखिये—

> चाल रे चरखला, हाल रे चरखला !
> कातण वाळी छैल छबीली बैठी पीढ़ौ ढाळ।
> म्हीं म्हीं पूणी कातै, लाम्बौ काढ़ै तार
> चाल रे चरखला, हाल रे चरखला !

गीत की स्वर-लहरी के साथ चरखे का तकुआ घूमता रहता है और स्त्रियाँ पूणी पर पूणी कातती जाती हैं, अघाने का नाम तक नहीं।

श्रम-गीत की राग, श्रमिक एकाकी हो या सामूहिक रूप में, दोनों ही परिस्थितियों में अलापी जाती है, श्रम को हल्का बनाने के लिए। भणतें निश्चित रूप से श्रम के समय ही गाई जाती हैं परन्तु इनके अतिरिक्त शृंगारिक, धार्मिक या ऋतु-सम्बन्धी गीत भी श्रमिक लोग अपने मन को बहलाने के लिए गा उठते हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ श्रम के समय भजन या हरजस भी गाती हैं, या फिर अपनी वय के अनुसार शृंगारिक, ऋतु-सम्बन्धी तथा प्रेम-सम्बन्धी गीत भी गा लेती हैं।

(ii) जीविका सम्बन्धी गीत—राजस्थान के कुछ लोक-गीत यहाँ के क्वचित लोगों की जीविका के साधन बन चुके हैं। यहाँ की कुछ विशेष जातियों के लोग, जिनका व्यवसाय ही लोक गीत गाना है, वे अपने यजमानों के यहां भिन्न-भिन्न अवसरों, उत्सवों या आयोजनों पर या एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते हुए जन-समुदाय के समक्ष गीत गा कर अपनी जीविका उपार्जित करते हैं। ऐसे गीतों में धार्मिक, शृंगारिक और ऐतिहासिक गीतों का विशेष स्थान है। अवसर की उपयुक्तता के अनुसार ये लोग वैसे ही गीत गाते हैं। शृंगारिक गीतों में दाम्पत्य जीवन के संयोग एवं वियोग-शृंगार सम्बन्धी या लोक समाज में प्रचलित प्रणय-कथा सम्बन्धी गीत ही अधिक गाये जाते हैं जिनमें जलौ, काजळियौ, मूमल, कसूंबौ, मधकर, काछबियौ, नागजी, आभल खींवजी रा गीत, बाघौ-भारमली रा गीत, ढोला मारू रा गीत आदि प्रसिद्ध हैं। धार्मिक गीतों में भक्ति-सम्बन्धी हरजस, भजन तथा भक्त चरित्र के साथ पाबूजी रा गीत, बगड़ावतां रा गीत, रामदेवजी रा गीत, तेजाजी रा गीत भी गाये जाते हैं। इन गीतों में धार्मिक महत्व के साथ ऐतिहासिक घटनायें भी सम्बन्धित हैं। इसी प्रकार इन गाने वाली जातियों के ऐतिहासिक गीतों में डूंगजी जवारजी, दूदौ मेड़तियौ, अमरसिंह राठौड़, रतन रांणौ,

जोरजी आदि गीत प्रसिद्ध हैं। ऐसे गीतों के उदाहरण विषय-सम्बन्धी वर्गों में भी दिये गये हैं। यहाँ गाने वाली जातियों द्वारा गाया जाने वाला प्रसिद्ध 'मूमल' गीत प्रस्तुत करते हैं--

काळी रे काळी काजळिये री रेखड़ी रे
हां जी रे, काळोड़ी कांठळ में चमकै बीजळी
म्हांरी बरलाळ री मूमल हालै नी ए आलीजे रे देस।
न्हायो मूमल माथियो रे मेट सूं
हां जी रे, कड़ियां तो राळया मूमल केसड़ा
म्हारी जग मीठी मूमल, हालै नी ए आलीजे रे देस।
सीसड़लो मूमल रो सरूप नारेळ ज्यूं
हां जी रे, केसड़ला माड़ेची रा वासग नाग ज्यूं
म्हांरी जग वाळी ए मूमल, हालै नी ए अमरांणे रे देस।
नाकड़लो मूमल रो खांडइये री धार ज्यूं
हां जी रे, दांतड़ला ऊजळ-दंती रा दाड़म बीज ज्यूं
म्हांरी हरियाळी ए मूमल, हालै नी ए रसीले रे देस।
पेटड़लो मूमल रो पींपळिये रे पांन ज्यूं
हां जी रे, हिवड़लो मूमल रो सांचे ढाळियो
म्हांरी हरियाली ए मूमल, हालै नी ए अमरांणे रे देस।
जांघड़ली मूमल री देवळिये रे थंभ ज्यूं
हां जी रे, साथळड़ी सपीठी पींडी पातळी
म्हांरी मोड़ेची मूमल हालै नी ए आलीजे रे देस।
जायी रे मूमल इये लोद्रवांणे रे देस में
हां जी रे, मांगी रे मूमल ने रांणे महंदरे
म्हांरी जेसांणे री मूमल, हाले नी ए अमरांणे रे देस।

राजस्थान में मुख्यतया गाने वाली जातियां—ढोली, ढाढ़ी, मिरासी, मांगणियार, फदाळी, कलावत और कव्वाल, लंगा, पातर, कंचनी, नट आदि हैं। इन जातियों के लोग प्रायः किसी वाद्य-यन्त्र की धुन के साथ लोक गीतों को गा कर ही अपनी जीविका प्राप्त करते हैं। इन लोगों के द्वारा गाये जाने वाले गीतों में कुछ विशेष गीत विशेष जाति से ही सम्बन्ध रखते हैं। ढोली माताजी की रात जगाते हैं। लंगा जाति के लोग सुबह लाखा फूलांणी, बाघा कोटड़ा, दोपहर को 'सारंग' और संध्या को 'श्याम कल्याण' गाते हैं। इसी प्रकार का इनमें विधान है। थोरी, भील या नायक—पाबूजी, गोगाजी आदि के गीत गाते हैं। फदाळी लोग मुसलमानों के धार्मिक उत्सवों के समय हरे व लाल झंडे लेकर गाते हुए जलूस निकालते हैं। पीर और मीर आदि की आराधना के लिए जाते समय भी मुसलमान इनको गाने के लिए आमंत्रित करते हैं।

३—आवसरिक गीत

(i) ऋतु संबंधी गीत—विभिन्न ऋतुयें मनुष्य के आस-पास उल्लासमय वातावरण का सृजन करती हैं। वसंत एवं वर्षा ऋतु इनमें मुख्य है। वर्षा ऋतु में भी सावन का महीना लोक गीतों का प्रमुख विषय रहा है। उमड़ते-घुमड़ते बादल, उनमें चमकती बिजली, चारों ओर फैली हुई हरियाली अनायास ही मन मोह लेती है। गृहस्थ के सब सदस्य कृषि-कार्य में उल्लास एवं हर्ष के साथ लगे रहते हैं—

झिरमिर-झिरमिर मेहूड़ो वरसै, बादळियो घररावै ए!
जेठजी तो म्हांरा बोझा काटै
परण्यो हळियो बावै ए!
झिरमिर-झिरमिर मेहूड़ो वरसै, बादळियो घररावै ए!
देवर म्हांरो करै अळसोटी
जेठांणी रोटी ल्यावै ए!
झिरमिर-झिरमिर मेहूड़ो वरसै, बादळियो घररावै ए!
बाळकियो भतीजो म्हारो रेवड़ चरावै
नणदल गायां घेरै ए!
झिरमिर-झिरमिर मेहूड़ो वरसै, बादळियो घररावै ए...!

हे पपीहा! तेरे बोलने का समय यही है। जेठ का महीना बीत गया है। लूएँ बंद हो गई हैं। आषाढ़ भी उतर गया है। सावन लग चुका है। काली घटाओं से आकाश आच्छादित हो रहा है। रे पपीहा, यही अवसर तेरे बोलने का है। लोक गीतों में इन भावों का बड़ा सुन्दर चित्रण मिलता है—

रुत आई रै पपइया थारै बोलण री रुत आई रै
जेठ मास री लूवां रै बीती, अब सुरंगी रुत आई
रुत आई रै पपइया थारै बोलण री रुत आई।
असाढ़ उतरियो, सांवण लाग्यो, काळी घटा घिर आई
रुत आई रै पपइया थारै बोलण री रुत आई।
कदेगक झोला चलै सूरियो, धीमी-धीमी पुरवाई
रुत आई रै पपइया, थारै बोलण री, रुत आई···।

श्रावण मास के तीज सम्बन्धी गीत (कजली) भी इसी के अंतर्गत आते हैं। इनमें शृंगार रस के उभय पक्ष—संयोग तथा वियोग की झांकी देखने को मिलती है। तीज के अवसर पर किसी पेड़ की डाल पर रस्सियों का झूला डाल कर लड़कियां झूला झूलती हैं। मद-मंद बहते समीर एवं पृथ्वी से उठती हुई सोंधी-सी सुगंध चारों ओर फैली हरियाली के बीच झूला झूलने का आनंद तो अवर्णनीय है। ऐसे समय प्रत्येक

कन्या का मन झूला झूलने का करता है। लड़की अपनी माँ से कहती है—ए माँ ! चंपा के बाग में झूला डाल दो, नवेली तीज आ गई। मेरी सहेलियों के अपने घर में हिंडोले हैं परन्तु मेरे नहीं हैं। मैं आज झूला झूलने गई तो मुझको किसी ने नहीं झुलाया—

ए मा, चंपा बाग में हींडो घला दे
तीज नुहेली आई।
ए मा, और सहेल्यां रे घर रो हींडो
म्हारे हींडो नांहीं।
ए मा, हींडे हींडण गयी आज मैं
कोइयन हींडै हिंडाई
सारी सहेल्यां मैं सूं मुख ज मोड़यो
बिनां हींड्यां ही आई।
ए मा, चंपा बाग में हींडो घला दे
तीज नुहेली आई !

वर्षा के पश्चात् शीत ऋतु आई। सर्दी के कारण शरीर का अंग-प्रत्यंग काँप रहा है। राजस्थानी के 'सियाळो' नामक लोक गीत में इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है—

कस्या रे नगर सूं आयो रे सियाळो
तो घर कूंणी जी रे जाइयो भंवर जी
यो जाड़ो सेलीवाळा ने लागै
धार नगर सूं आयो रे सियाळो
तो घर रावजी रे जाइयो भंवरजी
यो जाड़ो सेलीवाळा ने लागै
सोना री सगड़ी जड़ाऊ रा दूदया
तोई म्हारो जाडो नहीं जाइयो भंवर जी !

शीत के बाद वसंत ऋतु का पदार्पण होता है। वसंत का सब से मुख्य एवं प्रिय त्यौहार है होली। प्रायः सभी लोग इसे बड़े उत्साह एवं उल्लास से मनाते हैं। होली एवं फाल्गुन का यह उल्लास एक स्थान पर ही सीमित नहीं है, सार्वत्रिक है। फाल्गुन मास में राजस्थान के किसी भी कोने में आपको 'चंग' की ध्वनि सुनाई पड़ेगी। फाल्गुन के गीत स्त्री एवं पुरुष दोनों में प्रचलित हैं। दोनों समान रूप से गाते हैं। गीत भी दोनों के अलग-अलग होते हैं। स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीत पुरुषों से भिन्न होते हैं।

होली के अवसर पर 'लूंर' एवं 'घूमर' का राजस्थानी लड़कियों में बहुत प्रचलन है। 'होली के समय बालिकाएँ और स्त्रियां, गहनों और वस्त्रों से सज-धज कर, मिल-जुल कर, गाती-बजाती, खेलती-कूदती और नाचती हैं। 'लूंर' एक नाच का नाम है जिसमें स्त्रियां हाथ बाँध कर (मिला कर) चक्राकार नाचती हैं। इसको 'लूंबर' अथवा 'घूमर' भी कहते हैं। कहीं-कहीं पर डंडो की ताल 'डांडिया' पर भी नाच होता है। गुजरात में इस प्रकार के नृत्य का अधिक प्रचार है, जैसे 'गरबा'। ऐसे गीतों में गंभीर और सूक्ष्म भावों अथवा कथानकों के स्थान पर खुला और सादा सार्वजनिक आल्हाद का व्यापक भाव रहता है। कल्पना की उड़ानों की यहां आवश्यकता नहीं होती। इस खुलेपन, सादगी और सार्वजनिक उदार भावना की काव्य-जगत में कितनी कमी है, सच्ची प्राकृतिक कविता के रसिक ही जानते हैं।'[1]

'लूंर' एवं 'घूमर' के साथ गाये जाने वाले अनेकों गीत राजस्थान में प्रचलित हैं। एक गीत देखिये —

होळी आई, ए सहेल्यां, मिल खेलां लूंर। होळी आई ए !
कोई-कोई ओढ़यां झीणी-झीणी चूनड़,
कोई-कोई ओढ़यां दिखणी चीर। होळी आई ए !
होळी आई, ए सहेल्यां, मिल खेलां लूंर। होळी आई ए !
कोई-कोई पहरयां रिमझिम बिछिया,
कोई-कोई पहरयां पायलड़ी। हाळी आई ए !
होळी आई, ए सहेल्यां, मिल खेलां लूंर। होळी आई ए !...

होली के गीतों में उल्लास तथा आनंद की अभिव्यक्ति हुई है। इनमें मस्ती का भाव पाया जाता है। 'फाग खेलना' या 'गेर रमना' राजस्थान में होली के अवसर पर एक मुख्य मस्तीभरा कार्य है। राजस्थान में इन 'फाग खेलने' से सम्बन्धित गीत भी काफी प्रचलित हैं, किन्तु ऐसा मालूम होता है कि इन पर 'ब्रज की होली' का प्रभाव है। गोरे-गोरे बदन पर रंग की पिचकारी डालने से नायिका पूरी भींग गई है। घूँघट एवं वस्त्र सारे शरीर से चिपक गये हैं, कंचुकी का रंग कच्चा होने से बिखर गया है, ये सब भाव सूर द्वारा व्यक्त पदों में भी मिल जाते हैं। ब्रज के लोक गीतों में ऐसे भाव

---

[1] 'राजस्थान के लोक गीत'—प्रथम भाग, संपादक : ठाकुर रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी, पृ० ९९-१०० में दिया गया गीत का भावार्थ एवं टिप्पणी।

आज भी पाये जाते हैं। राजस्थानी का ऐसा ही एक लोक गीत इस प्रकार है—

> माथा में मैंमद हव के बिराजे तो रखड़ी की छिब न्यारी जी
> म्हौरा भिलता जोबन पर किण डारी
> पिचकारी जी म्हें तो सगळी भींज गई, किण डारी
> ज्यां डारी ज्यां ने मोहे बतावो नींतर दोंगी मैं गाळी जी
> म्हारा गोरा सा बदन पर किण डारी
> बूजी-सा का जाया, बाई-सा का बीरा
> तोरा जांन डारी पिचकारी जी मैं तो सगळी भींज गई
> ऐसी डारी कांनां मे कुंडळ, हव के बिराजे तो भुटणां की छिब
> न्यारी जी ।...

लोक गीतों में 'बारहमासी' गीतों का भी अपना स्थान है। इन गीतों में प्राय: विप्रलम्भ शृंगार ही अधिक पाया जाता है। किसी विरहिणी नायिका के 'बारह मासों' में अनुभूत वियोगजन्य दु:खों का वर्णन इसमें रहता है। इनके नैसर्गिक सौन्दर्य के सामने कीट्स के हल्के पैर, गहरे नील रंग की बनफशा-सी आँखें, काढे हुए बाल, मुलायम पतले हाथ, श्वेत कंठ और मलाईदार वक्ष-प्रदेश वाली नायिका भी फीकी पड़ जाती है।[1] इन लोक गीतों का प्राकृतिक सौन्दर्य वस्तुत: प्रभावशाली है। इन 'बारहमासी' लोक गीतों का आरंभ विभिन्न समय में होता है। इनके गाने का कोई निश्चित नियम नहीं है। कुछ गीत आषाढ़ या श्रावण मास से आरम्भ होते हैं तो कुछ गीत चैत्र से। इस सम्बन्ध में कोई शास्त्रीय नियम भी नहीं है। डॉ० रघुवंश के अनुसार इनके आरम्भ करने की तीन प्रमुख रीतियाँ हैं—'एक में वर्णन चैत्र से आरम्भ होता है, दूसरी में आषाढ़ से और तीसरी में अवसर के अनुसार।'[2] राजस्थानी में 'बारहमासे' प्राय: पावस ऋतु से ही आरम्भ होते हैं।

राजस्थानी के अतिरिक्त हिन्दी, ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी आदि में बारहमासे' की यह परंपरा खूब प्रचलित है। सुप्रसिद्ध प्रेममार्गी कवि जायसी ने भी नागमती के विरह का वर्णन 'बारहमासा' के माध्यम से किया है।[3] दूसरी भाषाओं की अपेक्षा राजस्थानी में इन 'बारहमासों' का प्रचलन कुछ कम है। यह भी संभव है कि ब्रज के प्रभाव से ही राजस्थानी लोक गीतों में 'बारहमासे' आये हों। राजस्थानी लोक गीतों के सभी संग्रह में मिला कर भी एक या दो से अधिक 'बारहमासे' नहीं मिलते।

इन 'बारहमासी' गीतों में प्रत्येक मास का वर्णन क्रम से किया जाता है। हर मास की रूपरेखा संक्षेप में दी जाती है, किन्तु इस बात का अवश्य ध्यान रक्खा जाता है कि जिन उपकरणों से ऋतु-वर्णन की योजना की जाती है वे प्रचलित और सर्वानुभूत हों। विरहिणी उन्हीं को लेकर अपने प्रवासी प्रियतम को स्मरण करती है। इसी प्रकार ऋतुओं पर मानवी भावों का पूर्ण आरोप होता है।[1]

राजस्थानी 'बारहमासा' का एक उदाहरण देखिये जिसमें पावस से वसंत ऋतु तक का अत्यन्त मार्मिक वर्णन हुआ है—

> भादू बरखा झुक रही, घटा चढ़ी नभ ओर
> कोयल कूक सुणावली, बोले दादुर मोर
> ए जी सिरकार पपैयो पिव पिव सब्द सुणावे मेरे प्रांण !
> चमचम चमके बीजुली, टप टप बरसे मेह
> भर भादूं बिलखत तजी, भलो निभायो नेह
> जी सिरदार चतर चौमासे में घर आवो ओजी मेरे प्रांण !
> आसोजां में सीप ज्यौं, प्यारी करती आस
> पिव पिव करती धण कहे, प्रीतम आए न पास
> जी उमराव इंद्रजी ओलर ओलर आवे ओजी मेरे प्रांण !
> करूं कड़ाई चाव से, तेरी दुरगा मांय
> आसोजां में आय के, जो प्रियतम मिळ जाय
> जी महारांणी थारे सुवरण छत्र चढाऊं मेरे प्रांण !
> कातिक छाती कर कठिन, पिया बसे जा दूर
> लालच के बस होय के, बिलखत छोडी दूर
> जी उमराव धण थारी ऊभी काग उडावे मेरे प्रांण !...

(ii) त्यौहार एवं पर्व सम्बन्धी गीत—

हमारे त्यौहार और पर्वों के तो लोक गीत प्राण हैं। गणगौर का त्यौहार राजस्थान में बड़े ठाट से मनाया जाता है। 'गौरी' को कन्या-जीवन का आदर्श माना गया है। चूंकि उपयुक्त पति की प्राप्ति के लिए 'गौरी' ने कठिन व्रत किया था, अत: उपयुक्त पति की प्राप्ति के लिये कन्याएँ भी गौरी

[1] 'मैथिली लोक गीत'—रामइकबालसिंह 'राकेस' पृ० ३६०।
[2] 'प्रकृति और हिन्दी काव्य'—डॉ० रघुवंश, पृ० ४०२।
[3] 'पद्मावत'—मलिक मुहम्मद जायसी, नागमती, वियोग खंड।

[1] 'भारतीय लोक-साहित्य'—डॉ० श्याम परमार, पृ० १११।

की पूजा एवं व्रत करती हैं। इसमें काष्ठ या मिट्टी से बनी गौरी की मूर्ति की पूजा की जाती है। चैत्र शुक्ला तृतीया अथवा चतुर्थी को मेले के दिन 'गौरी' की सवारी किसी जलाशय पर ले जाई जाती है। लोक गीतों की मधुर झंकार के साथ सारा वातावरण हर्ष एवं आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है—

हे गवरल, रूड़ो है नजारो तीखो है नैणां रो
गढां हे कोटां सूं गवरल ऊतरी
हो जी, बैंरे हाथ कँवळ केरो फूल
हे गवरल, रूड़ो है नजारो तीखो है नैणां रो।
सीस हे नाळेरां गवरल सारियो
हो जी, बैंरी वेणी छै वासग नाग
हे गवरल, रूड़ो हे नजारो तीखो है नैणां रो।
भँवारे हो भँवरो गवरल हे फिरै
होजी, बैंरी लिलवट आंगळ च्यार
हे गवरल, रूड़ो है नजारो तीखो है नैणां रो···।

उपर्युक्त पति पाने के लिए कन्यायें गौरी का व्रत रखती हैं। लोक गीतों में उनकी यह भावना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। उदाहरणस्वरूप एक लोक गीत देखिये जिसमें गौरी से प्रार्थना की गई है कि मुझे—मेड़ी पर बैठ कर मद पीने वाला, सुन्दर घुड़सवार, टेढ़ी पगड़ी बांधने वाला तथा मंद-मंद चाल चलने वाला सुन्दर सा वर देना। किन्तु—चूल्हे का चांद, हँडिया का अमीर, नौ थाल भर कर राबड़ी पी जाने वाला सोलह रोटियां खा जाने वाला पेटू वर मत देना—

मेड़ी बैठयो मद पीवै ए, लीला केरो असवार
खांगी बांधै पागड़ी ए, मधरी चालै चाल
कड़ मोड़ घोड़े चढे ए, चाल निरखतो जाय
ओ वर देवो, माता गोरल ए, म्हे थां ने पूजण आय।
चूल्हे केरो चांद ए, हांडी को हमीर
नौ थाळां पीवै राबड़ी ए, सोळा रोटी खाय
ओ वर टाळो माता गोरल ए, म्हे थां ने पूजण आय!

गौरी-पूजन करने वाली कन्यायें 'घुड़ला' भी घुमाती हैं। 'घुड़ला' एक छोटा सा छिद्रों वाला घड़ा होता है जिसमें दीपक जलता रहता है। इस घुड़ले को सिर पर रख कर स्त्रियां गीत गाती हैं। इन गीतों के पीछे एक ऐतिहासिक सन्दर्भ भी है। गौरी-पूजन को जाती हुई कन्याओं को 'घुड़ले खां' नामक यवन ने अपहरण करने की चेष्टा की थी। जोधपुर नरेश सातळजी ने घुड़लेखां को मार कर उन कन्याओं का उद्धार किया था, उसी की स्मृतिस्वरूप तीरों द्वारा छिदे हुए सिर के रूप में मिट्टी का छिद्रों वाला घड़ा लेकर गीत गाती हुई लड़कियां घूमती हैं—

घुड़लो घूमेला जी घूमेला, घुड़ले रे बांधो सूत
घुड़लो घूमेला, सवागण बाहरे आय। घुड़लो घूमे०
प्रतापजी रे जायो पूत, घुड़लो घूमेला जी घूमेला
सवागण बारे आय, घुड़लो घूमेला जी घूमेला
तेल बळे घी लाव, घुड़लो घूमेला जी घूमेला
मोत्यां रा आखा लाव, घुड़लो घूमेला जी घूमेला।

वसंत ऋतु में आने वाला चैत्र मास युवकों एवं युवतियों के लिये मस्ती का संदेश लेकर आता है। चैत्र मास में अनेक त्यौहार मनाये जाते हैं। 'गणगौर' एवं 'घुड़ले' का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। इसी मास में 'लोटियों' का मेला भी भरता है। कुमारियां व विवाहिता स्त्रियां रिक्त कलश (लोटे) लेकर किसी सरोवर अथवा कुएँ पर जाती हैं। वहाँ जल देवता की पूजा करती हैं तथा जल से भरे हुए कलश लेकर वापिस लौटती हैं। उस अवसर पर निम्नलिखित गीत गाया जाता है—

दळ बादळ बिच चमके जी तारा
सांज समै पिव लागै जी प्यारा
कांई रे जबाब करूं रसिया!
जाब करूंली, जबाब करूंली
आलीजे री सेजां में रीझ रहूंली
कांई रे मिजाज करूं रसिया। १
मांथा री रस मैं मद लीवो
मैंमद रो रस राजींदे लीयो
कांई रे गुमांन करूं रसिया
कांई रे मिजाज करूं रसिया
हां रे मद-छकिया सेजां में रीझ रहूंली
कांई रे जबाब करूं रसिया। २

प्रत्येक मास में कोई न कोई पर्व आकर हमारी धार्मिक भावनाओं को जागृत किया करता है। विभिन्न पर्वों, उत्सवों, व्रतों आदि के अवसर पर प्रायः स्त्रियां मिट्टी के छोटे से कूंडे में गेहूँ या जौ बो देती हैं। इनके बढ़े हुए अंकुरों को 'जँवारा' कहते हैं। गौरी-पूजन तथा दुर्गा-पूजा के समय तो प्रायः 'जँवारों' की भी पूजा की जाती है। इन जँवारों से सम्बन्धित

लोक गीत भी राजस्थान में प्रचलित हैं। ऊँचे टीले पर लह-लहाते हुए हरे-हरे 'जँवारे' हैं, नीचे हरिण जौ चर रहे हैं। गौरी कहती है—हे ब्रह्मा जी के पुत्र ईसर जी, इन वन के हरिणों को हटाओ तो! ईसर जी उत्तर देते हैं—हे मेरी सुन्दर गौरी, मैं क्यों हटाऊँ, मेरी बहन सुभद्रा तो ससुराल में है। पत्नी के प्रति यह विनोदपूर्ण संकेत है कि यदि उसको अपने 'जँवारों' को मृगों से बचाना है तो वह अपने भाई को क्यों नहीं बुला लेती। पति भाई का काम क्यों करे?[1]

ऊँचे मगरे ए जी म्हाँरा हरिया जँवारा
लुळिया जँवारा, नीचे मिरगा जव चरै
मिरगा घेरौ नी, ब्रह्माजी रा ईसरजी
घेरौ नीं वन रा मिरगला!
म्हें क्यूँ घेरां, ए म्हाँरी गवर सांवळड़ी
गवर पातळड़ी, बाई म्हाँरी सोदरा सासरै
मिरगा घेरौ नी, वसदेवजी रा स्रीकिसनजी
घेरौ जी वन रा मिरगला!
म्हें क्यूँ घेरां, ए म्हाँरी रुकमण सांवळड़ी
रुकमण पातळड़ी, बाई म्हाँरी सोदरा सासरै।

(iii) देवी-देवताओं सम्बन्धी गीत—

भारतीय संस्कृति के आधार पर यह स्पष्ट है कि यहाँ का नारी जीवन धार्मिक वृत्ति से सदैव ओत-प्रोत रहा है, इसीलिए स्त्रियों को धर्म एवं संस्कृति की रक्षिका कहा गया है। भारत में व्याप्त संत-परंपरा का प्रभाव स्त्रियों पर भी स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। नारी भावुक-हृदया होती है, अतः धार्मिक बातों का प्रभाव उस पर बहुत शीघ्र और अधिक होता है। राजस्थान के लोक-जीवन में भी धर्म का सब से अधिक प्रभाव है। आज के वैज्ञानिक युग में भी यहां का जन-जीवन धर्माभिमुख है। धार्मिक परम्परा को निरन्तर रखने में यहां की स्त्रियों का भी महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। स्त्रियों के धर्म-संबंधी हार्दिक उद्गार उनके गीतों के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते रहे हैं। भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं, जिनके प्रति जन-साधारण की थोड़ा-बहुत भी श्रद्धा रही है, के गीत आज भी परम्परा के रूप से गाये जाते हैं। इन गीतों में यहां के लोक की धार्मिक वृत्ति का बोध होता है।

राजस्थान में भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की मान्यता है। इनमें माताजी, भैरूंजी, बालाजी, सेडळ माता आदि अनेक लोक गीतों में प्रसिद्ध हैं। स्त्री-समाज में इनसे सम्बन्धित अनेक गीत प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए बालाजी अर्थात हनुमानजी का एक गीत देखिये—

कुण चिणायो, ओ बाला जी, थांरो देवरो जी?
कुण दिरायी गज-नींव?
बाबा बजरंग जी रौ बंगळौ हद वण्यौ।
राजांजी चिणायौ म्हारौ देवरौ
सेवगां दिरायी गज-नींव
बाबा बजरंग जी रौ बंगळौ हद वण्यौ।
+
वाग विधूंस्या लंका दळमळी
सारया राजा रामचंद्र का कांम
बाबा बजरंग जी रौ बंगळौ हद वण्यौ।
धन माता अंजनी की कूख
उण जायौ हणवंत पूत
बाबा बजरंग जी रौ बंगळौ हद वण्यौ।

देवी-देवताओं के गीतों के सम्बन्ध में यहां रात्रि-जागरण का भी बहुत प्रचार है। इसे 'रातिजगा' कहते हैं। अनेक मांगलिक अवसरों तथा 'पुत्र-जन्म', 'विवाह' 'तीर्थयात्रा का प्रीति-भोज' 'व्रत आदि का उजवणा' आदि आवश्यक रूप से इसका आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त 'सती की मनौती' या किसी देव या देवी विशेष के लिए तिथि निश्चित कर रात्रि-जागरण का आयोजन किया जाता है। रात्रि-जागरण में पूर्ण रात्रि भर देवी-देवताओं सम्बन्धी गीत गाते हुए जगते रहने के कारण इसे 'रातिजगा' कहते हैं। साधारणतः 'रातिजगा' का आयोजन स्त्रियों द्वारा ही किया जाता है, फिर भी शनिवार, मंगलवार या अन्य किसी दिन अथवा ग्रहण, अमावस्या, पूर्णिमा आदि के अवसर पर उस दिन के इष्टदेव के नाम पर पुरुष भी किसी मंदिर में या घर पर ही एकत्रित होकर रात्रि-जागरण करते हैं।

कई बार लोग रामदेवजी, गोगाजी, भैरूंजी, माताजी आदि के जागरण अपने-अपने इष्टदेव के अनुसार करवाते

[1] 'राजस्थान के लोक गीत'—प्रथम भाग, सं० ठा० रामसिंह एम० ए०, सूर्यकरण पारीक एवं नरोत्तमदास स्वामी, पृ० ४७ पर दिये गये 'जँवारा' गीत का भावार्थ।

हैं। रामदेवजी का जागरण करने को 'कांमड़' आते हैं। ऐसे जागरण को 'जमो' कहते हैं। यह भांबियों द्वारा ही किया जाता है। 'माताजी' के भोपे माताजी की रात जगाते हैं। 'गोगाजी' की रात उनके भक्त 'गोगानवमी' को जगाते हैं। इन 'रातिजगों' में प्राय: सगुण एवं निर्गुण दोनों ही प्रकार की भक्ति के पद और भजन गाये जाते हैं।

प्राय: सभी प्रकार के रात्रि-जागरणों में सर्वप्रथम गणेशजी की स्तुति की जाती है—

गौरी को नंद गणेस मनावां
हिड़दै में सारद माई, रै'जी...
मिवन करां म्हारै गुरां पीरां नै
गुरु म्हानैं ग्यांन बताई
मेरे दिल का दाग परै कर भाई, रै जी···!

गणेशजी की स्तुति के बाद अपने इष्टदेव या देवी-संबंधी गीत गाये जाते हैं। कुछ जातियों में 'पितर' को भी मान्यता दी जाती है। शुभ अवसरों पर यथा—पुत्र-जन्म, विवाह, तीर्थयात्रा या कोई लाभ-प्राप्ति पर 'पितरेस्वर' के निमित्त भी रात्रि-जागरण किया जाता है। यह केवल स्त्रियों द्वारा ही किया जाता है एवं कुछ चुने हुए गीत ही गाये जाते हैं जो 'पितरों' से सम्बन्धित होते हैं। कुछ स्त्रियां इस प्रकार के गीत गाने का व्यवसाय ही किया करती हैं। कुछ पारिश्रमिक पर इन्हें रात्रि-जागरण के लिये बुला लिया जाता है।

गंगा-यात्रा के बाद किए गए रात्रि-जागरण में अधिकतर गंगाजी-संबंधी ही गीत गाये जाते हैं। इसी प्रकार हनुमानजी, रामदेवजी, पाबूजी, गोगाजी, भैरूंजी, माताजी आदि के निमित्त किए गये जागरण में इन्हीं देवताओं से सम्बन्धित गीत अधिकतर गाते हैं। अन्य भजन भी गाये जा सकते हैं किन्तु आरम्भ उन विशिष्ट गीतों से ही किया जाता है।

रात्रि-जागरण के समाप्त होने पर ब्राह्म मुहूर्त्त में प्रभातियां गाई जाती हैं। प्रभात के समय जब जागने का समय होता है, तब यह गाया जाता है। इस सम्बन्ध में भी अनेक गीत प्रचलित हैं। ऐसे ही एक गीत का उदाहरण देखिये—

अंबर जाग्या देवी-देवता
धरती जाग्यो वासग नाग
झालर तौ बाजी राजा रांम की।
मंडप में काळी माता जाग्या
पुरी में जगनाथ बाबो जाग्या
बंगळै में हणमांन बाबो जाग्या
परींडे में पितर देवता जाग्या
मिंदर में सती माता जाग्या
मठ में भैरूं बाबो जाग्या
पा'ड़ां में बदरीनाथ जाग्या
परवत में पालकेत जाग्या
जांके पीठ वसै सकराय
झालर तौ बाजी राजा रांम की।

रात्रि-जागरण के अतिरिक्त साधारण समय में भी देवी-देवताओं के गीत गाये जाते हैं। आदिम अवस्था में मानव का विश्वास था कि देवी-देवताओं के मनाने से प्राकृतिक बाधायें एवं रोग आदि से मुक्ति मिल जाती है। यही भाव थोड़े बहुत प्रभाव से अभी तक चला आ रहा है। चेचक की बिमारी को आधुनिक युग में खतम-सा ही कर दिया गया है तथापि आज भी स्त्रियों का विश्वास है कि शीतलादेवी की प्रार्थना करने से उसे शांत किया जा सकता है। चेचक की इस देवी के प्रति उसने अपनी पुत्र-भावना प्रगट कर के उसे माता के रूप में ग्रहण किया है और सामूहिक भाव से एक निश्चित वार तथा तिथि मुकर्रर कर के इसे त्यौहार के रूप में सामाजिक मान्यता प्रदान की है। बच्चे को माता (शीतला) निर्विघ्न निकल जाय, इसके लिये मां सेडळ माता (शीतला देवी) की अनेक बलइयां लेती हैं[1]—

जद म्हांरी माता तूठण लागी
बाजर को सो बीज, बला ल्यूं सेडळ माता ए !
जद म्हांरी माता भरणै लागी
मक्कै को सो बीज, बला ल्यूं सेडळ माता ए !
जद म्हांरी माता मांन लियो ए
सोयो सारी रात, बला ल्यूं सेडळ माता ए !
भरिये कूंडाळै चोकसी जी
नांनड़िय री माय, बला ल्यूं सेडळ माता ए !

इस प्रकार अनेक देवी-देवताओं-सम्बन्धित गीत राजस्थान में प्रचलित हैं।

---

[1] परंपरा—वर्ष १, अंक १, अप्रैल १९५६, पृष्ठ १३२।

(iv) व्रत तथा उपासना सम्बन्धी गीत—

भारतीय शास्त्रों का ऐसा विश्वास है कि व्रतोद्यापन, स्नान, देव-दर्शन आदि पुण्य कार्य स्त्रियों को अवश्य करते रहना चाहिए। इससे उन्हें योग्य एवं मनचाहे पति तथा श्रेष्ठ घरबार मिलते हैं। तुलसी-व्रत का भी इस दृष्टि से बड़ा महत्व है। यद्यपि तुलसी वृक्ष का पूजन प्रायः सभी स्त्रियों द्वारा किया जाता है, तथापि कुमारी कन्याएँ तथा नवविवाहिता वधुएँ इसका विशेष रूप से व्रत रखती हैं। यह व्रत कार्तिक मास में किया जाता है। प्रति वर्ष कार्तिक शुक्ला एकादशी को समस्त भारत में तुलसी-शालिग्राम विवाह-समारोह भी मनाया जाता है। इस विवाह के सम्बन्ध में राजस्थान में अनेकों कथाएँ प्रचलित हैं। एक लोक गीत में शालिग्राम के प्रति तुलसी के विवाह की इच्छा प्रकट की गई है—

चांद तौ बाबुल घट बढ़ ऊगै तौ—
सूरजजी रै किरणां घणेरी हो रांम !
ईसर तौ सोळा दिन आवै तौ—
सिवजी कै जटा ए घणेरी हो रांम !
विरमा बाबाजी वेद पढ़ावै तौ—
विनायक कै सूंड बडेरी हो रांम।
किसन बाबाजी गायां चरावै तौ—
ए बर म्हांनै ना भावै हो रांम !
म्हांनै म्हारौ साळगरांम बर हेरौ तौ—
बै म्हारी ओड़ निभावै हो रांम !

राजस्थानी लोक गीतों में तुलसी वृक्ष का पीपल एवं वट-वृक्ष से भी अधिक महत्व माना गया है। आस्तिक नर-नारी प्रातःकाल स्नान के बाद तुलसी के दर्शन करना एवं तुलसी-पत्र लेना अपना परम धर्म समझते हैं। कार्तिक मास में हर शाम को बाला बालिकाएँ तुलसी के वृक्ष के चारों ओर परिक्रमा करती हैं एवं दीपक जलाती हैं। सात्विक जीवन व्यतीत करने वाली कन्या को ही सुन्दर एवं श्रेष्ठ पति प्राप्त होता है, इसकी झलक अनायास ही लोक-गीतों में मिल जाती है। तुलसी कहती है कि हे बहनों—

चैतां में ए भैंणां गोरल पूजी तौ
निरणी ऊठ संवारी हो रांम !
वैसाखां ए भैंणां बड़ पीपळ सींच्या तौ—
स्यौ पर लोटौ ढाळयौ हो रांम !
जेठां में ए भैंणां जेठूड़ा घाल्या तौ—
बिन मांग्यौ पांणी पायौ हो रांम !
पगल्यां सूं ए भैंणां पग ना धोयौ तौ—
दिवलै सूं दिवलौ न जोयौ हो रांम !
आलो ए भैंणां पीपळ न काट्यौ तौ—
बैठी गउ न सताई हो रांम !
भूखा बिपर न ठाया ए भैंणां तौ
कुंवरी कन्या न मारी हो रांम !
अतणां तो ए भैंणां जप तप कीन्या तौ—
जद ए किसन वर पायौ हो रांम !

कार्तिक मास में अनेक प्रकार के व्रत करने का विधान है। शास्त्रों में कार्तिक मास की पवित्रता के वर्णन के साथ ही स्नान का भी विशेष महात्म्य बताया है।[1] कहा जाता है कि ब्रह्मचर्यपूर्वक नियमित स्नान करने से बड़ा फल होता है। धार्मिक पर्व और त्यौहार मनाने में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ विशेष उत्साह रखती हैं।[2] यद्यपि शास्त्रों में स्त्री एवं पुरुष वर्ग, दोनों के लिये ही कार्तिक स्नान की समान विधि निर्दिष्ट है, तथापि पुरुष तो कोई विरला ही चार घड़ी के तड़के उठ कर विधि के अनुसार स्नान करने का कष्ट करता होगा। शरद् पूर्णिमा से कार्तिक स्नान आरंभ किया जाता है। प्रति दिन ब्राह्म मुहूर्त्त में विभिन्न गीतों के साथ कार्तिक स्नान किया जाता है—

सात सयां रै झूमखै राधा न्हांवण चाली ओ रांम !
आडा किसन जी फिर गया, थांनै जांण न देस्यां ओ रांम !
थारा जी बरज्या न रै'वां, म्हारी सास खिनाया ओ रांम !
खोल्या जी स्याळू स्यावटा, राधा जळ में पधारी ओ रांम !
लीन्या किसन जी कापड़ा, जाय कदम चढ़ बैठ्या ओ रांम !
देवौ किसन जी कापडा, लज्जा राखौ म्हारी ओ रांम !
थांरा जी कपड़ा जद देवां जळ सैं होज्याओ न्यारा ओ रांम !
जळ सैं न्यारा ना होवां, थे पुरुख म्हे नारी ओ रांम !...

---

[1] न कार्तिकसमो मासो न काशी सदृशी पुरी।
न प्रयागसमं तीर्थं न देवः केशवात्परः
प्रातः स्नानं नरो यो वै कार्तिके श्री हरिप्रिये।
करोति सर्वतीर्थेषु यत्स्नानस्यात्तत्फलं लभेत्॥
कार्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः।
जपन् हविष्यभुक् शान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

[2] कार्तिक स्नान के राजस्थानी महिमा लोक गीत—पं० झाबरमल शर्मा, मरु भारती, वर्ष ६, अंक १, पृष्ठ २४।

स्नान के अनन्तर वे पथवारी के चारों ओर एक साथ बैठ जाती हैं और वहां उनके गीतिमय स्तोत्रों की धारा प्रवाहित होती है—

पथवारी तूं पथ की ए रांणी, बाट चढ़ी जस देय
जस की माय कंवळ की रांणी, नारायण सें हेत
हेत बडौ क करतार बडो म्हांरौ पिता बडो संसार
ऊगंतै सूरज मिळै चकवा मिळै चकवी—
गऊ बंधन छोडदयौ

थारी करी सेवा स्यांमसुंदर राधा प्यारी किसन प्यारी !

इसके अतिरिक्त वट-पूजा, करवाचौथ, बछ-बारस, ऊब-छठ आदि अनेक व्रतों से सम्बन्धित लोक गीत राजस्थान में प्रचलित हैं।

४—पारिवारिक गीत

राजस्थान में पारिवारिक जीवन से संबंधित लोक गीत भी अनेकों प्रचलित हैं। इन लोक गीतों में पति-पत्नी के संबंधों को लेकर अतुलनीय एवं अनोखा साहित्य रचा गया। यह वस्तुतः सत्य है कि लोक गीत की एक-एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएँ, खण्डिताएँ और धीराएँ निछावर की जा सकती हैं, क्योंकि ये निरालंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से लदी हुई होकर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं हैं और अपने आप में परिपूर्ण हैं।[1] लोक गीतों के मुख्य विषयों में पति-पत्नी का कोमलतम और स्नेहपूर्ण सम्बन्ध भी है। राजस्थानी का प्रसिद्ध लोक गीत 'पणिहारी' इसी एकनिष्ठ प्रेम का सुन्दर उदाहरण है।

विवाह के पश्चात् सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाने के लिए पति को नौकरी पर जाना पड़ता है। अगर नौकरी नहीं भी हो तब भी पत्नी से अलग होने का कोई न कोई अवसर तो आता ही है। राजस्थानी लोक गीतों में तो ऐसे अनेकों गीत मिल जाते हैं जिनमें पत्नी अपने पति को किसी प्रकार कुछ देर रोकने के लिए मिन्नतें करती है। 'एक थंभियौ महल' एवं 'कसूंबौ' आदि लोक गीत दाम्पत्य जीवन के संयोग पक्ष की मधुरिमा को व्यक्त करते हैं। पत्नी अपने पति का नौकरी पर जाने से रोकना चाहती है किन्तु लाख मना करने पर भी पति कर्तव्य-पालन के लिए चला जाता है। ऐसे भी लोक गीत मिलते हैं जिनमें पत्नी अपने पति से निवेदन करती है कि तुम नौकरी कहीं पास में ही कर लो जिससे शाम होते ही घर लौट आया करो। तुम्हें किसने यह बात सुझाई ? नौकरी पर जाने की सीख तुम्हें किसने दी ? जिन साथियों ने तुम्हें ऐसी सीख दी उन पर बिजली गिरे, उन्हें काला सांप डसे। प्रश्नोत्तर का यह एक सुन्दर गीत है—

नैड़ी तो नैड़ी करजो पिया चाकरी जी
सांझ पड़यां घर आय, जावो गोरी रा बालमा जी !
कुणी तो चाळा थांने चाळिया जी, कुणी थांने दीवी सीख
अब घर आय जावो गोरी रा बालमा जी !
साथीड़ा चाळा गोरी चाळिया जी, रावजी दीवी म्हांने सीख
अब घर आय जावो गोरी रा बालमा जी !
साथीड़ां पं पड़जो ढोला बीजळी जी, रावजी नै खाज्यो काळो सांप
अब घर आय जावो आसा थांरी लग रही जी !......

अपने वैवाहिक जीवन में एकनिष्ठता के लिए स्त्री-पुरुष में परस्पर आकर्षण बनाये रखना होता है। अतः विवाह के आरंभ के दिनों में स्त्री के सौन्दर्य एवं पुरुष की पौरुष शक्ति का भी महत्व है। लोक गीतों में इन दोनों सुन्दरताओं का वर्णन हुआ है। 'रैणांदे' और 'मूमल' नामक लोक गीतों में स्त्री-सौन्दर्य का अत्यन्त सुंदर वर्णन है। पति-पत्नी के एकनिष्ठ प्रेम का भी लोक गीतों में पर्याप्त वर्णन रहता है। उदाहरण के लिए एक लोक गीत देखिये जिसमें प्रेयसी अपने प्रिय से उपवन में आकर मिलने की प्रार्थना कर रही है। पपीहे की पुकार मिलनोत्कण्ठा को तीव्र कर रही है किन्तु प्रिय पूर्व विवाहित है। उसमें स्वकीया के प्रति निष्ठा है—

भंवर म्हारे बागां आजो जी
बागां फिरूं अकेली, पपैयौ बोल्यौ जी !
सुंदर गोरी किस विध आवां जी
म्हांकी परणी करै लड़ाई, पपैयौ बोल्यौ जी !
भंवर थांकी परणी मरज्यौ जी
बागां फिरूं अकेली पपैयौ बोल्यौ जी
सुंदर गोरी के थेंई मरज्यौ जी
म्हांकी परणी बंस वधावै, पपैयौ बोल्यौ जी !
म्हांकी परणी पूत खिलावै, पपैयौ बोल्यौ जी !

लोक गीतों में मुख्यतया स्त्री को ही केन्द्र समझ कर

[1] पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

उसको पीहर की परिस्थितियों में तथा ससुराल की परिस्थितियों में रखा गया है, जिससे कि सभी पारिवारिक सम्बन्धों पर लोक गीतों की मान्यताएँ स्पष्ट हो सकें। ससुराल में जहां वधू, भावज, माता, देवराणी, जेठाणी आदि के अनेक रिश्तेदारों के रूप में रहना पड़ता है, वहाँ पीहर में वह पुत्री, बहिन, नणद, भाणजी आदि के रूप में होती है। इन सम्बन्धों के पीछे समाज के विकास का तथा आर्थिक, नैतिक एवं वैधानिक मान्यताओं व धारणाओं का जाल-सा बिछा रहता है। पीहर तथा ससुराल दोनों से सम्बन्धित अनेक गीत राजस्थान में मिलते हैं। उदाहरण के लिए 'घूघरी' नामक लोक गीत को लिया जा सकता है। एक स्त्री के बच्चा हुआ। उसके घर 'घूघरी' बना कर बाँटी गई। नाई ने जली हुई पेंदी की घूघरी उसकी नणद के यहाँ भी भेज दी। स्त्री को मालूम होने पर वह पति से जिद करने लगी कि नणद के यहाँ भेजी गई घूघरी लौटा लाओ। तंग आकर बेचारा भाई अपनी बहिन के ससुराल घूघरी लौटा लाने के लिए गया। सीधे सरल भाई ने कह दिया–'हे प्यारी बहिन, तुम्हारी भाभी ओछे घर की लड़की है। वह तुमसे घूघरी वापिस माँगती है।' बहिन को भी अपने भाई की प्रतिष्ठा का ख्याल है। घूघरी बच्चे खा चुके थे, अतः उसने सोने की घूघरी बनाई और उस पर चाँदी के बड़े-बड़े दाने रक्खे और भाई को देने पीहर गई और शिष्ट व्यंग कसा—

नीसर भावज बाहर आव
थारी पाछी ल्याया घूघरी, जी म्हांरा राज
झीनो भावज पल्लो ए पसार
कोई गज को काढ़यो घूंघटो, जी म्हांरा राज
जे म्हे होता निरधणियां घर नार
थारी किस विध ल्याता घूघरी, जी म्हांरा राज
थारी किस विध ल्याता घूघरी, जी म्हांरा राज

भाई-बहिन के मधुर प्रेम-संबंधी चित्र भी राजस्थानी लोक गीतों में उपलब्ध होते हैं। बड़ी बहिन एवं छोटे भाई के प्रेम एवं विनोद का एक सुदर उदाहरण देखिये—

मोरिया बागां बागां जाय नै
काची कुळियां लायो रे, भन मोरिया
काची नै कुळियां रा गजरा गुंथाया, रे भन मोरिया
गजरा गुंथाय नै गवरां बाई-सा' रै मेली, रे भन मोरिया
बाई-सा' बड़ा है, म्हाँरा गजरा पाछा मेलै रे भन मोरिया
गजरा गुंथाय नै सोदरां बाई-सा' मेली, रे भन मोरिया
बाई-सा' बड़ा है, म्हाँरा गजरा पाछा मेलै, रे भन मोरिया।

राजस्थान का एक प्रसिद्ध गीत है 'कुरजाँ'। इस गीत को विरहिणी नायिका अपने प्रियतम के लिए भी गाती है और इसी गीत के भाव बदल कर बहिन अपने भाई की प्रतीक्षा में भी गाती है। गीत के भाव इतने सबल, सशक्त और मनोहर हैं कि पीहर की याद में किसी भी बालिका के सहजात मन का सहज अनुभव किया जा सकता है।[1]

परिवार के कार्यों की अभिव्यक्ति भी इन लोक गीतों में बहुत ही सुन्दर ढंग से हुई है। राजस्थान में कृषि ही जीविका का रूप प्रमुख साधन है। परिवार के सभी सदस्य, चाहे पुरुष हो अथवा स्त्री, चाहे पुत्री हो अथवा वधू, छोटा हो या बड़ा, सभी कृषि-कार्य में उत्साह से अपना हाथ बँटाते हैं। कोई हल चलाता है तो कोई 'बोझा' काटता है, कोई कुआ चलाता है तो कोई फसल काटता है, कोई घर के मवेशी चराता है तो कोई भोजन ही लाता है। अनेक गीतों में इन्हीं कार्यों की अभिव्यक्ति हुई है। पुत्री द्वारा गाया जाने वाला एक लोक गीत देखिये—

आयो आयो सांवण भादवो
कोई, काळी घटा घिर आय, आज म्हांरी बदळी बरसैगी
म्हां री वीरोजी वीजै बाजरी
म्हां रा भाभीजी काटै फोग, आज म्हांरी बदळी बरसैगी
म्हां रा काकोजी चरावै टोड़िया
म्हां रा माऊजी लावै छकियार, आज म्हांरी बदळी बरसैगी

वधू अपनी सास के साथ-साथ खेत में अपने कार्य पर जाती है। धरा के स्वतंत्र प्रांगण में वह भी उल्लसित मन से गा उठती है—

सासू बहू म्हे चली खेत नै
लीनी गंडासी हाथ, बणायी झूंपड़ी
सासूजी तो पूळा काटया
कोई म्हे काटया सर ए पचास, बणायी झूंपड़ी
म्हारे परण्ये छायी तिरणी
म्हारे देवरिये गूंथ्यो पाल, बणायी झूंपड़ी
सासू बहुवां मिळ गारो तो ढोळयो
कोई लीप्यो-लोप्यो सारी पाल, बणायी झूंपड़ी
आ झूंपड़ी म्हांरी माळियो
स कोई आ झूंपड़ी म्हांरो मैं'ल, बणायी झूंपड़ी।

---

[1] परंपरा—वर्ष १, अंक १, अप्रेल १९५६, पृष्ठ ११७।

ग्राम्य-जीवन से सम्बन्धित कुछ ऐसे लोक गीत भी पाये जाते हैं जिनमें किसी आभूषण अथवा घरेलू उपकरण की प्रशंसा की गई हो। 'गोरबंध' एवं 'इंढ़ांणी' ऐसे ही लोक गीत हैं। 'गोरबंध' ऊँट के गले का एक आभूषण होता है। यह गीत उसी आभूषण का रूप चित्रण करता है—

बारा रे समंदां सूं कोडा मंगाया
जूने गढ़ गूंथाया रे, म्हारौ गोरबंद लूंबाळौ !
असी रे कोडां में तू उजळा
हुडबी काच बिड़ाया रे, म्हारौ गोरबंद लूंबाळौ !
असी रे लड़ां री म्हारौ गोरबंधियौ नै
पची लड़ां री लूंबां रे, म्हारौ गोरबंद लंबाळौ !
ओधांणां सूं रेसम मंगायौ
गोरबंधियौ गूंथायौ रे, म्हारौ गोरबंद लूंबाळौ !

इसी प्रकार 'इंढ़ांणी' नामक लोक गीत में 'इंढ़ांणी' (पानी लाने के लिए सूत, मूँज अथवा नारियल की जट का बना एक उपकरण जिसे स्त्रियाँ सिर पर रख कर उस पर पानी का घड़ा रख कर लाती हैं) की प्रशंसा की गई है

म्हारी सवा पाव की इंढूंणी
म्हारौ सवा सार कौ सूत, गमगी इंढूंणी !
म्हारी माऊजी बणायी इंढूंणी
म्हारी मामीजी कात्यौ सूत, गमगी इंढूंणी !
मोतीड़ा जड़ी म्हारी इंढूंणी
कोई हीरा जड़यौ म्हारौ सूत, गमगी इंढूंणी !
म्हारी सवा लाख री इंढूंणी
म्हारौ सवा लाख रौ सूत, गमगी इंढूंणी !
ग्रौर बणास्यां इंढूंणी
म्हे ग्रौर कतास्यां सूत, गमगी इंढूंणी !

५—विविध गीत

राजस्थानी के अंतर्गत कुछ गीत ऐसे भी मिलते हैं जिनका अंतर्भाव उपर्युक्त श्रेणी-विभाजन में नहीं होता। "लोक गीत के स्वर दूर से आते हैं। जाने ये स्वर कहाँ से फूट पड़ते हैं। युग-युग की पीड़ा-वेदना, युग-युग की हर्ष-श्री, रीति-नीति, प्रथा-गाथा, अचूक, सहज रूढ़िवार्त्ता, भौगोलिक एवं वातावरण-निर्मित संस्कृत परम्परायें सभी इन स्वरों में अपने नाम-धाम अथवा अंश आदि का परिचय देती प्रतीत होती हैं।"[1]

(i) ऐतिहासिक गीत—राजस्थान में व्यावसायिक गायकों द्वारा गाये जाने वाले अनेकों गीत प्रचलित हैं। इन गीतों को प्रायः व्यावसायिक गायक ही गाते हैं। 'रतन रांणी' ऐसा ही एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक लोक गीत है। 'रतन' ऊमर कोट का एक सोढ़ा राजपूत था। किसी अंग्रेज की हत्या के अपराध में उसे तत्कालीन पोलिटिकल ऐजेन्ट द्वारा फाँसी दिलवादी गई थी। गीत बड़ा करुणापूर्ण है जिसमें सोढ़ा 'रतन रांणा' की पत्नी अपने मृत पति की याद कर रही है। यह एक प्रकार का मरसिया ही है—

म्हारा रतन रांणा, एकर तौ अमरांणे घोड़ौ फेर !
भटियल ऊभी छाजइये री छांह, हो जी हो
आंसूड़ा ढळकावे कायर मोर ज्यूं रे
म्हारा रतन रांणा एकर सूं अमरांणे घोड़ौ फेर
अमरांणे में घोर अंधार, हां रे म्हांरा सोढ़ा रांणा
अमरांणे में हो घोर अंधार. हो जी हो
विलखण नै लागै रे मैं'ल माळिया हो
म्हारा रतन रांणा, एकर तौ अमरांणे पाछौ आव !

राजस्थानी लोक गीतों में प्राचीन इतिहास प्रतिबिम्बित होता है। सन् १८५७ के प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम में राजस्थान ने भी अपना योग-दान दिया। तत्कालीन लोक गीत सहस्रों नर-नारियों द्वारा गाये जाकर उस स्वातंत्र्य-संग्राम एवं बलिदान हुए वीरों का जयघोष करते रहते हैं। 'आऊवा' के ठाकुर खुशालसिंहजी इन सब में अग्रगण्य थे। 'आऊवा' ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। आऊवे के साथ युद्ध में पॉलिटिकल एजेन्ट कैप्टेन मैशन मारा गया। लोक गीतों में इस भावना का सुन्दर चित्रण हुआ है—

ढोल वाजै थाळी वाजै भेळो वाजै बांकियो
अजंट ने मार नै दरवाजे न्हांकियो
जूझै आऊवो !
हे ओ जूझै आऊवो
आऊवो मुलकां मे चावो ओ के
जूझै आऊवो !

निरन्तर आठ महिनों तक खुशालसिंहजी ने अंग्रेजों से मोर्चा लिया। मारवाड़ के आसोप, गूलर, लांबिया, बाजवास, आलनियावास, भिवाळियां, बांता और मेवाड़ के सलूम्बर, रूपनगर, लसानी आदि जागीरदारों ने भी आऊवे का साथ

---

[1] देवेन्द्र सत्यार्थी।

किया । लोक गीतों में भी इस संगठन के लिए की जाने वाली प्रेरणा का भाव मिलता है—

पाळवी मे पासीप वरिणया मोतीड़ां री माळा रे
कारे म्हांकी कूंचियां तुड़ावी ताळा रे, झगड़ो बावरियो
वा'–वा' झगड़ो बावरियो टोळी रै ठीकायत माथै
चढ मैं आया हो, झगड़ो बादरियो।
पाळवे वाळा बाग में बाबलिये वाळो घेरो रे
माथै फोजां आई नै अंगरेज भेळो रे
भायां सांमल रीज्यो वा'वा' भायां सांमल रीज्यो
ठाकर नै ठिकांणी छूटै रे के भायां सांमल रीज्यो
एक तो नगारो धरिणयां रातेनाडे बाजे ओ
दूजोड़ो नगारो धरिणयां ठेठ बाजे ओ
के झंडो रोपियो, वा'वा' झंडो रोपियो
गोरां रा माथा कंवरां लीधो ओ के झंडा रोपियो......

लोक गीतों में तत्कालीन समाज की राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण मिलता है। अंग्रेजों की कूटनीति का लोक गीतों ने पर्दाफाश किया है। अंग्रेज ने इस देश को क्या दिया ? भाइयों में फूट डाली, (यह फूट डालो और शासन करो की नीति की ओर संकेत करता है) बेगार की प्रथा आरम्भ की एवं आर्थिक दृष्टि से देश को निर्बल बना दिया। भारत के अतीत की समृद्धि और सुख-सम्पन्नता विलीन हो गई। दरिद्रता यहां तक बढ़ गई कि अनेक भारतीय रोटी-रोटी को मुहताज हो गये। अंग्रेजों ने जो यहाँ पर अपनी कूटनीति चलाई उसकी लोक-भावना में स्पष्ट अभिव्यंजना हुई है—

मोडकी मगरी सै पांणी ढाळौं ढाळ ढळियो रे
आबू पारै पा'ड़ां में अंगरेज बड़ियो रे'
काळी टोपी रो देस में छावणियां नाखै रे, काळी टोपी रो
देस में अंगरेज आयो काईं-काईं लायो रे
फूट नांखी भायां में बेगार लायो रे
काळी टोपी रो, वा'वा' काळी टोपी रो।
घोड़ा रोवै घास नै टाबरिया रोवै दांणा नै
बुरजां में ठकुरांण्यां रोवै जांमण जाया नै
के रोळो बापरियो, वा' वा' रोळो बापरियो
देस में अंगरेज आयो रे, के रोळो बापरियो !

राजस्थान के निवासियों में अंग्रेज-सत्ता के खिलाफ असंतोष एवं उत्पीड़न था, अतः वे हृदय से अंग्रेजी सत्ता से मुक्ति की कामना करते थे। 'गोरा हट जा' ऐसा ही लोक-गीत है।

समय आने पर जन-जीवन की रक्षा करने तथा धर्म की रक्षा करने के लिए जिन-जिन वीरों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया है वे भी यहां के लोक गीतों में प्रसिद्ध हो चुके हैं। अनेक वीरों के प्रति यहां के लोक-जीवन में विशेष आस्था और श्रद्धा होने के कारण उन्हें धार्मिक महत्त्व प्राप्त हो गया है। ऐसे वीरों में पाबूजी, गोगाजी, रामदेवजी, तेजाजी आदि प्रसिद्ध हैं जिनके गीत आज भी लोक-जीवन में विशेष सम्मान के साथ गाये जाते हैं। इन गीतों का धार्मिक महत्त्व के साथ-साथ ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि भी है। इनके अतिरिक्त अनेक ऐतिहासिक घटनायें तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्ति भी लोक गीतों में गाये जाते हैं। गायों की रक्षा करने में अपना बलिदान देने वाले प्रसिद्ध गोगाजी का एक लोक गीत देखिये—

गिगन-भवन सूं कुरजां उतरी, कोई यक लाई बात ओ
कुण-कुण ठाकर जूझिया, कुण-कुण आया है काम ओ
गोगो नै धरमी वेई जूझिया, गोगो आयो है काम ओ
आठम रै दिन जूझिया, नमैं लीधो अवतार ओ
दसम रै चिणावूं धरमी रे देवरो, बबस जातीड़ो जाय ओ
बांधो गोगाजी री धरमी राखड़ी, आठम री नव गांठ ओ
तूठै गोगोजी सांवण रमती तीजण्यां, ज्यांरो अमर अहिवात ओ।
तूठै गोगोजी बूढ़ा ठाड़ा डोकरा, तूठै भल मोडियारां ओ
गाय गवाड़ै सीखै सांभळै, जिण री गोगोजी पूरै छै आस ओ।

(ii) बाल गीत—

राजस्थानी लोक गीतों का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। जीवन के प्रत्येक पहलू पर लोक गीत मिलते हैं। बालक-बालिकाओं-संबंधी अनेकों गीत राजस्थानी में विद्यमान हैं। स्वर, ताल और लय के अतिरिक्त उनकी एक विशेषता है और वह उनकी मनोवैज्ञानिकता। बाल-मनोविज्ञान का उनमें सर्वत्र निर्वाह हुआ है।[1]

खेल ही खेल में रात हो जाने के कारण भाई अपनी छोटी बहिन से कह रहा है कि—"बहिन, शीघ्र चल, देख आकाश में चांद चढ़ आया है, किरतियां ढल रही हैं, जल्दी चल

[1] राजस्थानी लोक गीत—संग्रहकर्त्ता—श्री जगदीशसिंह गहलोत, सं० रामप्रसाद दाधीच, पृ० १३७।

अन्यथा माताजी मारेंगी, बाबाजी गालियां देंगे, तब बड़ा भाई मना करेगा और कहेगा कि बहिन को गालियां मत दो, वह तो परदेसिन है, कुछ दिनों बाद जँवाई ले जायगा।" गीत का काव्य-सौन्दर्य भी दृष्टव्य है—

चांद चढ्यो गिगनार
किरत्यां ढळ रहियां जी ढळ रहियां
अब बाई घरे पधार
माऊजी मारैला जी मारैला
कोई बाबोसा देला गाळ
वडोड़ो वीरो वरजैला जी वरजैला
मत दो म्हांरी बाई नै गाळ
बाई म्हारी परदेसण जी परदेसण
आ आज उडै परभात
तड़कले उड ज्यासी जी उड ज्यासी
सांवणियै रा दिनड़ा च्यार
जँवाईड़ो ले ज्यासी जी ले ज्यासी !

वर्षा काल में उमड़ते मेघों को देख कर छोटे-छोटे बालक और बालिकायें गा उठते हैं—

मेह बाबा आजा
घी ने रोटी खाजा !
आयो बाबो परदेसी
अबै जमांनो कर देसी !
ढाकणी में ढोकळो
मेह बाबो मोकळो !

इसी प्रकार अनेकों तुकबंदियां मिलती हैं। कुछ ता केवल शिशुओं को बहलाने के लिये ही निर्माण की गई जान पडती हैं -

कांन्या मांन्या कुर्रर
जाऊं जोधपुर्रर
लाऊं कबूतर्रर
ऊडाय देऊं फर्रर

(iii) अन्य गीत—

लोक गीत लोक-हृदय के उद्‌गार हैं, जिन पर समाज की छाप स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। इनका क्षेत्र जीवन के विस्तार के साथ सम्बन्धित है। आदि काल से ही मानव अपने जीवन की जिन-जिन गतिविधियों में जीवनानुभूति करता आया है उसका एक-एक क्षण और विविध कार्य-कलापों का एक-एक अंग इन लोक गीतों में अभिव्यक्त हुआ है। समाज की आत्मा के परिचायक, इन लोक गीतों को वर्गों की सीमा-रेखा में बांधना, उनके विस्तार और उनकी महत्ता को कम करना है। हमने अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से उपरोक्त विवेचन में लोक गीतों को कुछ वर्गों में विभक्त कर उनका संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया है। परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि हम राजस्थान के लोक गीतों को इस रेखा में बांध ही नहीं सकते। कुछ लोक गीत तो निश्चयपूर्वक वर्णित वर्गों के अनुसार सम्बन्धित अवसरों पर ही गाये जाते हैं परन्तु बहुत से गीत किसी विशेष अवसर या वर्ग से सम्बन्धित होते हुए भी भिन्न-भिन्न समय पर भी गाये जाते हैं। जनेऊ संस्कार के समय प्रायः सभी गीत विवाह सस्कार के ही गाये जाते हैं। विशेष ऋतु-सम्बन्धी, पर्व-सम्बन्धी या शृंगारिक गीत श्रम के समय, मेलों आदि में तथा गाने का व्यवसाय करने वाले लोगों द्वारा किसी उत्सव या आयोजन विशेष के समय भी गाये जाते हैं। कुछ ऐसे भी गीत हैं जिनका व्यापक प्रयोग होने के कारण किसी वर्ग की सीमा में नहीं बँधते। जीवन में रस घोलने, वातावरण को उल्लासमय बनाने, दुख-दर्द को भुलाने, शृंगार के दोनों ही पक्षों को अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न जड़ पदार्थों, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों को ही अपने गीतों का विषय बना लिया है। इनमें कांगसियो, गाडूलो, दिवलो, नींबड़ली, नींबूड़ो, बड़लो, मरवो, केवड़ो, तथा सूवटो, पपिओ, हिरणी आदि बहुत प्रचलित गीत हैं। इसी प्रकार अनेक ग्राम्य-गीत यथा—खीचड़ो, हाळी, ऊंट, कूवो, विणजारो आदि गीतों की मधुर स्वर-लहरी भी बहुधा सुनाई पड़ती ही रहती है।

खीचड़ो गीत में अकृत्रिम जीवन एवं सरल भावों की अभिव्यक्ति श्रोताओं को आकर्षित किए बिना नहीं रहती—

म्हारो मीठो लागै खीचड़ो
म्हारो चोखो लागै खीचड़ो
छुळक्यो-छांटयो बाजरो
म्हे दळी ए मूंगां की दाळ, मीठो खीचड़ो
ऊंखळ घाल्यो बाजरो
म्हे छल्लै वाली दाळ, मीठो खीचड़ो
म्हे मानूं कूटयो बाजरो
म्हे मीठी छांटी दाळ, मीठो खीचड़ो

बबबद सींवं बाबरी
कोई बच-पच सींवं वाळ, मीठी बीचड़ो
दूध-बीचड़ी बावा बैठ्या।
कोई तरसै म्हारी जाड़, मीठी बीचड़ो

४—राजस्थानी लोक गाथा

राजस्थानी लोक साहित्य में लोक गाथाओं का भी महत्त्व-पूर्ण स्थान है। लोक गाथा अंग्रेजी शब्द Ballad का रूपान्तर मात्र है। Ballad की उत्पत्ति लैटिन शब्द Ballure से मानी जाती है, जिसका मूल अर्थ नाचना होता है। रोबर्ट ग्रेब्स के मतानुसार बैलेड में संगीत और नृत्य दोनों की प्रधानता रहती है।[1] डॉ० मरे ने अपने अंग्रेजी शब्द कोश में स्फूर्ति-दायक या उत्तेजनापूर्वक वह कविता जिसमें कोई लोकप्रिय आख्यान सजीव रीति से वर्णित हो, को बैलेड कहा है।[2] संसार की प्राय: सभी भाषाओं में लोक गाथायें किसी न किसी रूप में अवश्य वर्तमान हैं। राजस्थानी के लिए लोक गाथा किंचित् नया शब्द है। प्राय: अंग्रेजी शब्द Ballad का रूपान्तर लोक गीत ही किया जाता है। ढोला मारू के विद्वान संपादकों ने भी प्रस्तावना में 'लोक गीत' शब्द का ही प्रयोग किया है।[3] मगर सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो 'लोक गीत' एवं 'लोक गाथा' दोनों में बड़ा अन्तर है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने Ballad के लिए 'लोक गाथा' का प्रयोग किया है।[4] वस्तुत: यह रूपान्तर अधिक वैज्ञानिक है। उन्होंने लोक गीतों एवं लोक गाथाओं में मोटे तौर से दो भेद बताये हैं।[1] (१) स्वरूपगत भेद, एवं (२) विषयगत भेद।

[1] "It is connected with the word 'Belle' and originally ment a song for refrain intended as accompany-ment to dancing but later covered any song in which a group or people socially joined"—Robert Grabs, The English Ballad (Preface)

[2] "A simple spirited poem in short stanzas in which some popular story is graphically told"—New English Dictionary. 'बैलेड' शब्द का अर्थ।

[3] ढोला मारू रा दूहा—सं० रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, एवं नरोत्तमदास स्वामी—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित—प्रस्तावना, पृष्ठ ४१।

[4] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, पृष्ठ ७३।

लोक गीत प्राय: छोटे होते हैं तथा लोक गाथायें लम्बी होती हैं। यद्यपि कुछ लोक गीत भी लम्बे होते हैं तथापि लोक गाथाओं की लम्बाई से उनकी तुलना नहीं की जा सकती। राजस्थानी का 'ढोला-मारू' नामक काव्य एक लोक गाथा ही है। अंग्रेजी भाषा की प्रसिद्ध 'दी जेस्ट आव् रोबिनहुड' नामक लोक गाथा हजारों पंक्तियों में समाप्त होती है।

विस्तार के अतिरिक्त लोक गीत एवं लोक गाथा में विषय-गत अन्तर भी निहित रहता है। लोक गीतों में जीवन की विभिन्न अनुभूतियों का प्रकाशन होता है। विभिन्न संस्कारों, विभिन्न ऋतुओं, उत्सवों, पर्वों एवं त्यौहारों पर अनेक प्रकार के लोक गीत गाये जाते हैं। लोक गाथाओं में इन विषयों का मुख्य रूप से समावेश नहीं होता। उनमें प्रेम का पुट होते हुए भी प्राय: युद्ध, वीरता, साहस, रहस्य और रोमांच आदि का पुट अधिक मिलता है। इन गाथाओं में चित्रित नायक प्राय: लोकत्राता या लोकरक्षक के रूप में सामने आता है। लोक गीत एवं लोक गाथाओं के उपरोक्त भेद के कारण दोनों को एक ही श्रेणी में रखना उचित नहीं है।

लोक गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वान इनकी रचना किसी समुदाय के द्वारा हुई मानते हैं, किन्तु कुछ विद्वान इन्हें किसी व्यक्ति विशेष की रचना स्वीकार करते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० ग्रिम का समुदायवादी, श्लेगल का व्यक्तिवादी, स्टेंथल का जातिवादी, चाइल्ड का व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवादी, आदि अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। भारतीय विद्वान डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपना एक अलग मत 'समन्वयवाद' नाम से प्रस्तुत किया है।[2]

प्रसिद्ध कहानी लखक जेम्स ग्रिम के अनुसार लोक गाथाओं

[1] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—षोडश भाग, प्रस्तावना—ले० डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ ७४।

[2] वही—पृष्ठ ७७।

का रचयिता जन-समुदाय (Das Volksdichter) ही है,[1] क्योंकि लोक गीतों एवं लोक गाथाओं में जन-समुदाय की आत्मा संपूर्ण रूप में प्रकाशित होती है। उनके अनुसार लोक गाथाओं की रचना किसी विशिष्ट या प्रसिद्ध कवि के द्वारा नहीं होती अपितु इनकी रचना स्वतः होती है और उसका प्रचार भी जन-साधारण में स्वतः ही हो जाता है।[2] डॉ० गूमर ने भी इसका प्रतिपादन करते हुए कहा है कि लोक गाथा जनता के द्वारा जनता के लिए जनता की कविता है।[3] देखा जाय तो जन-समुदाय का काव्य-निर्माता होना कोई असंभाव्य बात नहीं है। किन्तु इसके साथ यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सभी लोक गाथाओं की रचना जन-समुदाय द्वारा ही हुई होगी। 'ढोला मारू' के विद्वान सम्पादकों ने भी 'समुदायवादी' सिद्धान्त को मान्यता दी है।[4]

इस सिद्धान्त के विरुद्ध कुछ विद्वानों का कथन है कि किसी कविता या गाथा का रचयिता कोई न कोई व्यक्ति अवश्य होता है। डॉ० स्टेंथल के मतानुसार किसी जाति (Race) के समस्त व्यक्ति मिल कर लोक गाथाओं का निर्माण करते हैं। स्टेंथल का यह मत व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता क्योंकि किसी छोटी जाति के सम्बन्ध में तो यह मत समीचीन

[1] "He (Grim) maintained that the poetry of the people 'sings itself'; it has no individual poet behind it and is the product of the whole folk"—Old English Ballads--Gummer, भूमिका Page 49-50

[2] "Epic Poetry, He (Grim) says, is not produced by particular Rend recognized poets but rather springs up and spreads along time among the people themselves, in the mouth of the people"—Old English Ballads—Gummer, भूमिका, Page 51.

[3] "The Poetrv of the People, by the People, for the People"—Old English Ballads—Gummer.

[4] ढोला मारू रा दूहा—सं० रामसिंह, सूर्यकरण पारीक एवं नरोत्तमदास स्वामी—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित—प्रस्तावना, पृष्ठ ४६।

हो सकता है किन्तु किसी बड़े देश की बड़ी जाति के सम्बन्ध में यह मत नितांत अव्यवहार्य है। डॉ० उपाध्याय के अनुसार 'समस्त जाति' लोक गाथाओं का निर्माण करती है, उतनी ही हास्यास्पद है जितनी 'समग्र जाति' शासन करती है, उक्ति।[1] जिस प्रकार शासन का संचालन कुछ चुने हुए व्यक्तियों द्वारा होता है उसी प्रकार लोक गाथाओं की रचना कुछ विशिष्ट लोक कवियों का ही कार्य है। प्रो० चाइल्ड ने व्यक्तिवाद का समर्थन करते हुए उसमें इतना-सा और जोड़ दिया है कि उसमें लेखक के व्यक्तित्व का कुछ विशेष महत्व नहीं होता।[2] इस सम्बन्ध में यह सम्भव प्रतीत होता है कि समय-समय पर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में गाये जाने के कारण उनमें परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होते रहने से मूल लेखक का व्यक्तित्व नष्ट या तिरोहित हो जाता हो। प्रो० चाइल्ड लोक गाथाओं को किसी व्यक्ति विशेष द्वारा रचित स्वीकार तो करते हैं किन्तु वे लेखक के व्यक्तित्व को कोई महत्व प्रदान नहीं करते। 'समन्वयवाद' के नाम से डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपना नया मत प्रस्तुत किया है।[3] उनके मतानुसार सभी सिद्धान्तों में कुछ न कुछ सत्य का अंश विद्यमान है। सभी सिद्धान्त कारणीभूत हैं एवं इन सभी का सहयोग इन गाथाओं के निर्माण में उपलब्ध होता है।[4]

लोक गाथाओं में अनेक विशेषताएँ होती हैं। इनमें मुख्य-

[1] हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना—ले० डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ ८१, ८२।

[2] "Though they (ballads) do not write themselves as Villiam Grim has said, though a man and not a people has composed them, still the author counts for nothing, and it is not by mere accident but with best region that they have come down to us anonimous"—Jhonson 'Encyclopaedia' 1893 A.D.

[3] हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृष्ठ ८४।

[4] हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृष्ठ ८५।

मुख्य विशेषताओं को प्रायः दस भागों में विभक्त किया जाता है[1]—

(१) रचयिता का अज्ञात होना
(२) प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव
(३) संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य
(४) स्थानीयता का प्रचुर पुट
(५) मौखिक परम्परा
(६) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव
(७) अलंकृत शैली की अविद्यमानता
(८) कवि के व्यक्तित्व की अप्रधानता
(९) लम्बे कथानक की मुख्यता
(१०) टेक पदों की पुनरावृत्ति

इन विशेषताओं की विवेचना करने से पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि लोक गीतों एवं लोक गाथाओं में कोई स्थूल अंतर नहीं है। इतना अवश्य है कि लोक गीत आकार में छोटे होते हैं और उनमें कथानक का सर्वथा अभाव रहता है। लोक गीत सकांगी होते हैं। उनमें प्रायः विषयवस्तु का गीतिमय वर्णन होता है। गीतात्मकता ही इनकी प्रधान विशेषता है। लोक गाथा—लोक गीतों का ही दूसरा रूप है। लोक गाथायें गेय अवश्य हैं परन्तु ये आकार में दीर्घ होती हैं और विस्तृत कथानक ही इनकी मुख्य विशेषता है। लोक गीतों व गाथाओं में परस्पर निकट सम्बन्ध होने के कारण उपरोक्त विशेषताओं में से अधिकांश लोक गीतों में भी प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं।

यद्यपि लोक गीत एवं लोक गाथायें किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा ही रची जाती हैं तथापि कालान्तर में उसके रचयिता का नाम लोगों को ज्ञात नहीं रहता। राजस्थानी में प्रचलित किसी भी लोक गाथा के रचयिता का नाम आज तक मालूम नहीं हो सका। कुछ लोक गाथाओं का रचयिता कोई व्यक्ति न होकर समुदाय होता है, अतः ऐसी अवस्था में वह रचना सारे समुदाय की कृति ही कही जा सकती है।

लोक साहित्य कंठस्थ साहित्य होने के कारण लोक गीतों की भांति लोक गाथायें भी मौखिक रूप से ही आगे की पीढ़ी में हस्तान्तरित होती रही हैं। इसीलिए लोक गाथाओं का मूल पाठ भी प्रामाणिक रूप से उपलब्ध नहीं होता। समय-समय पर भाषा में होने वाले परिवर्तनों का भी लोक गाथाओं पर प्रभाव पड़ता है। इसके साथ ही स्थान-दूरी के कारण जनवाणी में कुछ अन्तर होने के कारण भी प्रचलित गाथाओं में परिवर्तन आ जाता है। मूल रूप के अभाव में इनका सम्पादन भी एक कठिन समस्या है। वैसे इनका महत्त्व मौखिक रूप में ही अधिक है। लिपिबद्ध होने से इनका विकास एवं वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है। राजस्थान के वीर पुरुषों के अद्भुत पराक्रम की अनेकों गाथाओं को स्थायित्व देने का श्रेय यहां के भीलों, नायकों, थोरियों तथा जोगियों को प्राप्त है। बगड़ावतों, गोगाजी चौहान, दूल्हौ धाड़वी आदि की वीर गाथाओं को यहां के लोक गायकों ने ही कालकलवित होने से बचाया है। वास्तव में इन गाथाओं ने ही अपनी मौखिक परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा है। सत्य भी यही है कि लोक गाथा तभी तक सुरक्षित रहती है जब तक उसकी परम्परा मौखिक होती है। डॉ० सिवजिक का कथन है कि 'यदि आपने किसी लोक गाथा को लिपिबद्ध कर लिया तो यह निश्चित रूप से समझ लीजिये कि आपने उसकी हत्या में सहायता पहुंचाई है।'[1] प्रो० गूमर के अनुसार भी लोक गीतों व लोक गाथाओं की सच्ची कसौटी मौखिक परम्परा ही है।[2]

लोक गाथाओं में संगीत एवं नृत्य का अभिन्न साहचर्य्य निहित रहता है। गांवों में 'पाबूजी की पड़' कई रातों तक लगातार गाई जाती रहती है। गायक 'पड़' को गाने के साथ-साथ आवश्यकतानुसार नृत्य भी करता है। इसी प्रकार राजस्थान में होली पर्व पर 'लूर' एवं 'घूमर' नामक नृत्य के

[1] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृष्ठ ८७।

[1] "In the act of writing each one (ballad) down, you must remember that you are helping to kill that ballad..... It lives only while it remains what the french with a charming confusion of ideas call oral literature"—Frank Cizvik—The Ballad, Page 39.

[2] "These are the cardinal virtues of the ballad, with respect to its conditions critics unite in regarding oral transmission as its chief valuable test"—Old English Ballad—Gummar, Page 29.

साथ-अनेक गाथायें गाई जाती हैं । इन लोक गाथाओं में लोक गीतों की भांति स्थानीयता का प्रचुर पुट रहता है । स्थानीय वातावरण, रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, आचार-विचार, प्रकृति-वर्णन आदि का इनमें सजीव चित्रण रहता है । उदाहरण के लिए 'पाबूजी रा पवाड़ा' में उनकी वेश-भूषा का वर्णन देखिये—

सिर तौ बांध्यौ छै ठाकर हरियौ रूमाल
कोई अंगरखौ पैरघौ रै भुरजाळ लांबी बांह कौ ।
धोतो तौ बांधी छै पाबू लाल कणी की खास
कोई लांबै तौ कूंटां री पहरी छै बंकै मोचड़ी ।

इसी प्रकार 'ढोला मारू' नामक लोक गाथा में भी जगह-जगह पर स्थानीयता का पुट दीख पड़ता है । मालवा देश सजल है, अतः वहां की मालवणी 'मरु देश' के प्रति अनिच्छा प्रकट करती हुई कहती है कि ऐसे देश को जला दूं जहां पानी के लिए ही आधी रात को प्रिय का साथ त्यागना पड़ता है—

बाळउं बाबा देसड़उ, पांणी संदी ताति ।
पांणी केरइ कारणइ, प्री छंडइ अधराति ।।
बाबा, म देइस मारुवां, वर कूंआरि रहेस ।
हाथि कचोळउ सिरि घड़उ, सींचंती य मरेस ।।
मारू, थांकइ देसड़इ, एक न भाजइ रिड्ड ।
ऊचाळउक अवरखणउ, कइ फाकउ कइ तिड्ड ।।
जिण भुइ पन्नग पीमणा, कमर कंटाळा रूंख ।
आके फोगे छांहड़ी, हूंछां भांजइ भूख ।।

यह 'मरु देश' के ठेठ देहाती जीवन का सजीव चित्रण है । यह ऐसा सूक्ष्म निदर्शन है कि राजस्थान देश की आत्मा का चित्र स्पष्ट रूप से उभर आता है ।

'लोक गीत' एवं 'लोक गाथाओं' का प्रयोग विशेषतः जन-जीवन में मनोरंजन की दृष्टि से ही किया जाता रहा है । लोक गाथायें 'लोक' के आमोद-प्रमोद का एक साधन बनी हुई हैं । जन-साधारण को उपदेश देने का सहारा इन गाथाओं से नहीं लिया गया है । यही कारण है कि उपदेशात्मक प्रवृत्ति का इनमें सर्वथा अभाव है । मनोरंजन एवं आमोद-प्रमोद हेतु लोक गाथाओं की अभिव्यक्ति होने के कारण इनकी वर्णन-शैली भी अत्यन्त सरल और सीधी होती है । जन-साधारण में व्याप्त बोली ही इन गाथाओं की भाषा है । चूंकि इनको जनता की कविता (Poetry of the people) कहा जाता है, अतः इनमें अलंकार-विधान तथा कृत्रिम साहित्यिक विधानों का सर्वथा अभाव रहता है । यदि कहीं कोई अलंकार या अन्य साहित्यिक गुण दृष्टिगोचर हो तो उसे अनायासपूर्वक संन्निवेश ही समझना चाहिए । वस्तुतः कथावस्तु एवं भावों का सरल वर्णन ही लोक गीतों एवं लोक गाथाओं की विशेषता है । लोक गीतों एवं लोक गाथाओं की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें रचिताओं के व्यक्तित्व का अभाव पाया जाता है । सिजविक तो व्यक्तित्वहीनता को ही लोक गाथा का सर्वश्रेष्ठ गुण मानता है ।[1] लोक गाथा कहने वाले का उस कथा में कोई विशेष भाग नहीं होता । गाथाओं का रचयिता या गायक इनमें न तो अपने निजी विचार ही व्यक्त करता है, न किसी वस्तु की आलोचना हो । प्रधान कथावस्तु की अभिव्यंजना मात्र ही लोक गाथा के रचयिता तथा गायक का सिद्धान्त होता है ।

यह तो हम पहिले ही बता आये हैं कि लोक गीत एवं लोक गाथाओं में संगीत का अभिन्न साहचर्य्य है, परंतु इसमें भी विशेष आकर्षण एवं कर्णप्रियता लाने के लिए टेक पदों की पुनरावृत्ति की जाती है । लोक गाथा में पद के चरण विशेष के साथ टेक पदों की आवृत्ति नियमित होती है । इन पदों का उद्देश्य लोक गीतों को जीवन प्रदान कर श्रोताओं के हृदय-पटल पर अमिट प्रभाव उत्पन्न करना होता है । श्रोतागण स्वयं आनन्दित होकर गायक के साथ-साथ टेक पदों को गाने लग जाते हैं । इसी के आधार पर सिजविक का यह मत है कि टेक पद लोक गाथाओं की वह विशेषता है जिससे पता चलता है कि ये गीत सामूहिक रूप से पहले गाये जाते थे ।[2] वर्तमान काल में समवेत स्वर से गीत गाने की प्रवृत्ति इसी परम्परा को सूचित करती है ।

---

[1] "The first and the foremost quality of the ballad in any language is not its personality but its impersonality. There can be disagreement about"—The Ballad—Frenck Civizik, Page 11.

[2] "The refrain is another peculiarity of the popular ballad that establishes its derivation from the chorus song."—Civizic—The Ballad, Page 27.

२ लोक गाथाओं का वर्गीकरण—

भिन्न-भिन्न विद्वानों ने लोक गाथाओं का वर्गीकरण अपने-अपने दृष्टिकोण से विभिन्न रूपों में किया है। कहीं इनका वर्गीकरण आकार की दृष्टि से मिलता है तो कहीं विषय की दृष्टि से। आकार की दृष्टि से लोक गाथायें 'लघु' एवं 'वृहत्' दो रूप में प्राप्त होती हैं। लोक साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान प्रो. गूमर ने लोक गाथाओं का वर्गीकरण निम्न छः रूपों में किया है—

(१) प्राचीनतम गाथायें (ओल्डेस्ट बैलेड्स)
(२) कौटुंबिक गाथायें (बैलेड्स ऑव किनशिप)
(३) शोकपूर्ण एवं अलौकिक गाथायें (कोरोनेच एण्ड बैलेड्स ऑव दी सुपर नेचुरल)
(४) निजंधरी गाथायें (लीजेंडरी बैलेड्स)
(५) सीमांत गाथायें (बार्डर बैलेड्स)
(६) आरण्यक गाथायें (ग्रीनवुड बैलेड्स)

'ढोला मारू' के विद्वान सम्पादकों ने लोक गाथाओं के मुख्य रूप से चार विभाग किये हैं।[1]

(१) परंपरागत लोक गाथायें (Traditional ballads)
(२) चारणी लोक गाथायें (Minstrel ballads)
(३) विकृत लोक गाथायें (Broadside ballads)
(४) साहित्यिक लोक गाथायें (Literary ballads)

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक गाथाओं का वर्गीकरण विषय की दृष्टि से किया है। गाथाओं के भिन्न-भिन्न विषयों के आधार पर उनका यह विभाजन समुचित प्रतीत होता है। उन्होंने लोक गाथाओं को निम्न तीन भागों में विभाजित किया है—

(१) प्रेम कथात्मक गाथायें (Love ballads)
(२) वीर कथात्मक गाथायें (Heroic ballads)
(३) रोमांच कथात्मक गाथायें (Romantic ballads)

भारतीय परिस्थितियों एवं राजस्थानी लोक गाथाओं को दृष्टिगत रखते हुए डॉ० उपाध्याय द्वारा किया गया वर्गीकरण ही उचित कहा जा सकता है। 'ढोला मारू' के सम्पादकों का वर्गीकरण स्वरूपगत किया गया है। राजस्थानी लोक गाथाओं को हम विषयगत वर्गीकरण के आधार पर ही ठीक स्पष्ट कर सकते हैं। डॉ० उपाध्याय के विषयगत वर्गीकरण के अनुसार सर्व प्रथम प्रेम कथात्मक गाथायें आती हैं। इन गाथाओं में उल्लिखित प्रेम साधारण परिस्थितियों में उत्पन्न नहीं होता। राजस्थानी की 'ढोला मारू' नामक लोक गाथा इसी के अंतर्गत मानी जा सकती है। इसमें मुख्यतः ढोला एवं मारवणी का प्रेम वर्णित है एवं अन्य सभी प्रासंगिक वृत्तांतों का सहायक के रूप में प्रवाह हुआ है। प्रेम गाथाओं में हीररांझा, बींजा सोरठ, पन्ना वीरमदे आदि प्रसिद्ध हैं।

दूसरे प्रकार की वे वीर रसात्मक लोक गाथायें हैं जिनमें किसी वीर के साहसपूर्ण और शौर्यसंपन्न कार्य का वर्णन रहता है। राजस्थान के लोक साहित्य के अंतर्गत गाये जाने वाले विभिन्न वीर पुरुषों से संबंधित 'पँवाड़े' इसी कोटि में रखे जा सकते हैं। इनमें प्रायः उन लोगों का यश-गान होता है जिन्होंने लोक कल्याण तथा वचन-निर्वाह के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। यद्यपि ऐसे अनेक वीरों का यशगान साहित्यिक कृतियों में नहीं किया गया, तथापि जन-साधारण ने मौखिक रूप से गाई जाने वाली लोक गाथाओं के द्वारा उनके यश को सुरक्षित रखा। इन पँवाड़ों में राजस्थान के धार्मिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक आदर्शों का प्रतिबिम्ब मिलता है। पाबूजी का पँवाड़ा, नानड़िया का पँवाड़ा, गोगादे चहुआंण का पँवाड़ा, डूंगजी जवारजी री पड़ आदि लोक गाथायें ऐसी ही वीर रसात्मक गाथायें हैं। इस प्रकार की लोक गाथाओं के द्वारा राजस्थान का लोक हृदय इन वीरों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

तीसरे प्रकार की रोमांचकथात्मक गाथायें हैं। इनमें प्रायः असाधारण एवं अलौकिकता का वर्णन रहता है। पढ़ते-पढ़ते या सुनते-सुनते सहसा रोमांच हो उठता है। इनमें जादू द्वारा तोता या मैना बना देना, बकरा बना देना आदि अनेक असामान्य घटनायें निहित रहती हैं। 'निहालदे सुलतान' संबंधी लोक गाथा ऐसी एक लोक गाथा है।

खेद है कि राजस्थानी लोक गीतों पर काफी कुछ लिखा जाने के बावजूद लोक साहित्य का यह अंग लोक साहित्यकारों की लेखनी से अछूता रह गया है।

[1] ढोला मारू रा दूहा—डॉ० रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी।

३ लोक कथाएँ—

लोक साहित्य के अन्तर्गत लोक कथाओं का स्थान भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन कथाओं में प्राचीन लोक संस्कृति अभिनिहित है। राजस्थानी साहित्य में इन लोक कथाओं की संख्या अनन्त है। यद्यपि इनका कोई पूर्ण संग्रह प्रकाशित करने का प्रयास प्रकाश में नहीं आया है तथापि मरु भारती, वरदा आदि शोध-पत्रिकाओं में यत्र-तत्र ये लोक कथाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। लोक कथाओं की दृष्टि से राजस्थानी बहुत ही समृद्ध है। कहा जाता है कि जिस प्रकार आदि काव्य का जन्म इस देश में हुआ, उसी प्रकार संसार की सब से प्राचीन कथाओं के निर्माण का श्रेय भी इस पुण्य-भूमि भारत को ही है। लोक कथाओं की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक संहिताओं में भी इन कथाओं के बीज उपलब्ध हैं। उसके पश्चात् ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों में भी अनेक कथाएँ उल्लिखित हैं। संस्कृत का 'पंचतंत्र' तो लोक कथाओं का प्रसिद्ध संग्रह है।

राजस्थानी में लोक कथाओं के लिए ही प्रायः 'बातां' शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है, किन्तु 'लोक कथा' एवं 'बात' में स्पष्ट अन्तर पाया जाता है। आधुनिक समय में प्रचलित कहानी एवं लघु कथा में जो अन्तर है वही साधारणतया 'बात' तथा 'लोक कथा' में माना जाना चाहिए। विभिन्न मूल अभिप्रायों को लेकर लोक कथाएँ चलती हैं। अगर इन मूल अभिप्रायों को अलग से छाँटा जाय तो इनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँचेगी। डॉ० कन्हैयालाल सहल ने 'मरु भारती' में लोक कथाओं के कुछ मूल अभिप्रायों के सम्बन्ध में विभिन्न उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

यद्यपि सीधे तौर पर ये लोक कथाएँ जनसाधारण को उपदेश देने के लिए नहीं लिखी गईं, तथापि उनकी रचना में शिक्षा देने की मूल भावना निहित रहती है। प्राचीन पौराणिक एवं परियों की कथाएँ एवं लघु कथाएँ अनजाने में ही हमें शिक्षा प्रदान कर देती हैं।

"राजस्थानी कथाओं के पात्र प्रायः वर्ग प्रतिनिधि होते हैं। इन पात्रों में 'ब्राह्मण' विद्वान और ज्ञानवान होता है, परन्तु हाजिरजबाब नहीं। 'राजपूत' वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया गया है जो अपनी प्रतिज्ञा अथवा उद्देश्य के लिए सर्वस्व बलिदान कर देता है। वह सीधे और सत्य मार्ग को अपनाता है, चाहे उसे हानि ही क्यों न उठानी पड़े। व्यापारी-वर्ग को 'बनिये' के रूप में वर्णित किया गया है जो प्रत्युत्पन्नमति है और आर्थिक विषयों में सदा चौकन्ना रहता है। किसान को 'जाट' के रूप में चित्रित किया गया है, जो सीधा-सादा लगता है परन्तु व्यावहारिक ज्ञान काफी रखता है। 'मियां' (मुसलमान) उस समय के शासक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपने को चतुर प्रमाणित करने के लिए कुछ बुद्धि-प्रदर्शन करता है परन्तु मुंह की खाता है। शिल्पी वर्ग का निरूपण 'कुम्भकार' में किया गया है जो अधिक होशियार तो नहीं, पर उसका सद्भाग्य उसे पार कर देता है। इस प्रकार के पात्रों से लोक कथाओं का ताना-बाना बुना हुआ होता है। अधिकतर ये कथाएँ वीरता और बुद्धि से पूर्ण कार्यों का दिग्दर्शन कराती हैं। कुछ कथाएँ राजाओं और राजपूतों के वीर कृत्यों से परिपूर्ण हैं तथा कुछ में सदुपदेश दिये गये हैं। कुछ में हंसी और हाजिरजबाबी दिखलाई गयी है। बुद्धि-द्वन्द्व में जाट की विजय और बेचारे मियाँ की पराजय।"[१]

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक कथाओं का वर्गीकरण छः प्रकार से किया है[२]—

१–नीति कथा
२–व्रत कथा
३–प्रेम कथा
४–मनोरंजक कथा
५–दंत कथा
६–पौराणिक कथा

लोक साहित्य के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली अधिकतर लोक कथायें प्रायः नीति-कथायें ही होती हैं। यद्यपि इनका मुख्य उद्देश्य नीति-कथन ही होता है, तथापि यह प्रत्यक्ष रूप में न होकर परोक्ष रूप से ही सम्पादित होता है। भारतीय जीवन धर्म से अनुप्राणित होने के कारण यहाँ स्त्रियों द्वारा विभिन्न व्रतों के किये जाने का विधान है। प्रायः प्रत्येक व्रत के दिन कोई न कोई कथा कही जाती है, जिसमें उस व्रत को करने

---

[१] मरु भारती, वर्ष ९, अंक १, अप्रैल १९६१, पृष्ठ २ से उद्धृत।

[२] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृष्ठ ११३-११४।

वालों को लाभ-प्राप्ति होने का प्राय: वर्णन रहता है। प्रेम-कथाओं के अन्तर्गत वे लोक कथायें आती हैं जिनमें बहिन के प्रति भाई का प्रेम, माता के प्रति पुत्र का प्रेम अथवा पुत्र के प्रति माता का प्रेम एवं दाम्पत्य प्रेम का वर्णन रहता है। दाम्पत्य प्रेम सम्बन्धी इन लोक कथाओं में बड़े पवित्र प्रेम की झाँकी मिलती है। काम-वासना की उसमें गन्ध तक नहीं रहती। बालकों को कही जाने वाली कथायें (यथा परियों की कथा, चिड़ा-चिड़ी की कथा) मनोरंजक कथाओं के अन्तर्गत आती हैं। इनका उद्देश्य केवल बालकों का मनोरंजन करना होता है। परम्परा से आती हुई कथायें दन्तकथायें कहलाती हैं यथा पाबूजी री कथा, केसरिया कंवरजी री कथा आदि। पौराणिक कथायें भी राजस्थानी लोक साहित्य में प्रचुरता के साथ मिलती हैं। गणेसजी री कथा, पारबती री कथा आदि ऐसी ही लोक कथायें हैं।

प्राय: सभी लोक कथाओं में निम्नलिखित विशेषतायें प्रचुरता के साथ मिलती हैं—

(१) प्रेम का अभिन्न पुट
(२) अश्लील शृंगार का अभाव
(३) मानव की मूल वृत्तियों से निरंतर साहचर्य
(४) मंगल कामना की भावना
(५) सुखांतता
(६) रहस्य, रोमांच एवं अलौकिकता की प्रधानता
(७) उत्सुकता की भावना
(८) वर्णन की स्वाभाविकता

धार्मिक एवं अंधविश्वासों का भी प्रभाव इन लोक कथाओं पर स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। एक छोटी-सी राजस्थानी लोक कथा में 'भाग्यवाद' का प्रभाव देखिये—

> "एक आदमी या बात सुण राखी ही क दिन भर में आदमी रै मुंह सैं नीकळयोड़ी एक बात जरूर सांची होवै। वीं कै पां और क्यूंई ही कोयनी, एक पीतळ री टोकणी ही सो वीं नें लेकर बैठग्यो अर टोकणी नै कैवै लाग्यो क होज्या सोनै की, होज्या सोनै की। कहतां-कहतां आखतो होग्यो अद झाळ मरतो बोल्यो क सोनै की नई होवै तो लोह की ई होज्या। अद टोकणी झट लोह की होगी। करमहीण की चोखी बात सांची कोनी होवै, ल्याऊ बात झट सांची हो ज्यावै।"

राजस्थानी लोक कथाओं का अपना विशेष महत्व है। यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि दूर-दूर जातियों के फैलने, बसने और सम्पर्क स्थापित करने से कथाएँ एक स्थान पर नहीं रह सकीं। अनेक राज्यों में फैली लोक कथाओं में बहुत सी समानताएँ मिलती हैं। जातक कथाओं, प्राचीन वेदों के आख्यान, कथा सरित सागर, वैताळ पचीसी, हितोपदेश आदि से संबंधित कथायें अनेक भाषाओं में अपने बिगड़े रूप में उपलब्ध हो जाती हैं। वस्तुत: भारत के अनेक राज्यों में एक ही कथा अपने विभिन्न रूपों में कैसे टिकी रहती है, इसका अध्ययन करना बड़ा मनोरंजक कार्य है।

लोक नाट्य—

आधुनिक समय में प्रचलित नाटकों का बीज भी प्राचीन लोक नाट्यों में निहित है। राजस्थान में प्राचीन समय से ही लोक नाट्य का प्रचलन था, चाहे उसका स्वरूप कुछ भिन्न रहा हो। राजस्थान में प्रचलित 'कठपुतली' का खेल वस्तुत: बहुत पुराना है। प्राय: चारपाई खड़ी कर के आगे के भाग में रंगीन वस्त्र से बना परदा टांग दिया जाता है, जिसके आगे सूत्रधार पुतलियां उतार कर राजपूती वीरता को प्रगट करने वाली अथवा अन्य किसी घटना का संचालन करता है। इसके साथ ही कोई व्यक्ति उससे संबंधित घटना का वर्णन करता रहता है।

विवाह के अवसर पर अनेक जातियों में स्त्रियां बारात बिदा हो जाने पर स्वांग का अभिनय करती हैं। एक स्त्री पुरुष-वेश धारण कर 'वर' बनती है एवं दूसरी स्त्री 'वधू' बनती है, फिर विवाह के प्राय: सभी रीति-रस्मों का अभिनय किया जाता है। बहुत सी जातियों में इसे 'टूंटियौ नाचणौ' कहते हैं। मनोरंजन के अतिरिक्त इसका कोई विशेष उद्देश्य नहीं है। इससे यह तो स्पष्ट है कि लोक जीवन से लोक नाट्यों का घनिष्ठ संबंध है।

'ख्याल' भी राजस्थान का एक लोक नाट्य है। इसके लिये साधारण मंच तैयार किया जाता है जो प्राय: चारों ओर से खुला होता है। इस पर पौराणिक तथा धार्मिक कथाओं के अतिरिक्त जनश्रुति पर अथवा ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित कथाओं को अभिनीत किया जाता है। इसमें स्त्री पात्रों का अभिनय भी पुरुषों द्वारा ही किया जाता है। राज-

स्थान में विभिन्न स्थानों पर खेले जाने वाले ख्यालों में गोपी-चन्द, भरथरी, चन्द्र मलयागिरी, रूप बसन्त, राठौड़ अमरसिंह आदि के ख्याल बहुत प्रसिद्ध हैं।

इसके अतिरिक्त समस्त भारत में खेली जाने वाली राम-लीला एवं रासलीला भी एक प्रकार के लोक नाट्य हैं। दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा इनका अभिनय राजस्थान में कम होता है। ठेठ राजस्थानी व्यक्ति प्रायः रासलीला नहीं करते।

राजस्थान में प्रचलित उपरोक्त लोक नाट्यों की विशेषताओं की ओर दृष्टिपात करना अप्रासंगिक न होगा। इन लोक नाट्यों में प्रायः वे ही कथायें होती हैं जिनका यहां के जन-जीवन में बहुत प्रचलन होता है। प्रायः ऐतिहासिक कथा-वस्तुओं में धार्मिक मान्यताओं का अनायास ही प्रवेश हो जाता है। संगीत एवं नाटक का चोली-दामन का साथ है। यह संगीत गांवों में प्रायः ढोलक, सारंगी या रावणहत्थे की सहायता से चलता है। इन लोक नाट्यों में नाटकीय तत्वों की ओर प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता। जो कुछ नाटकीयता इनमें पायी जाती है वह स्वाभाविक एवं अनायास आई हुई ही समझ लेना चाहिये। लोक नाट्यों में राजस्थान के विभिन्न हिस्सों में विभिन्न बोलियों में प्रचलित है। लोक भाषा ही लोक नाट्यों का प्राण है। अपने ज्ञान के अनुसार इन लोक नाट्यों में वेश-भूषा का पर्याप्त ध्यान रखा जाता है। साधनों के अभाव में यद्यपि उनके वेश-भूषा संबंधी प्रयत्न अपूर्ण ही रहते हैं। साहित्यिक नाटकों की तरह इन नाटकों में विदूषक का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। विदूषक की वेश-भूषा, उसके हाव-भाव और कहने का ढंग सभी कुछ प्रायः हास्योत्पादक होते हैं।

आधुनिक सिनेमा एवं नाटकों ने इन लोक नाट्यों को बहुत हानि पहुँचाई है। आजकल इनका खेला जाना निरंतर कम होता जा रहा है। शहरों में इन्हें हेय दृष्टि से भी देखा जाने लगा है। सस्ते सिनेमाओं के कारण इन लोक नाट्यों में कई जगह अश्लीलता भी आ गई है। संगठित रूपों से इन लोक नाट्यों के विकास का प्रयत्न करना आवश्यक है। इन्हीं में राजस्थान की आत्मा बसती है।

लोक सुभाषित—

सुन्दर ढंग का कथन या वह उक्ति जिसमें चमत्कार हो सुभाषित कहलाती है। जन-साधारण अपने परम्परागत संचित ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर अपने दैनिक व्यवहार में स्वाभाविक रूप से इसी प्रकार की अनेक उक्तियों का प्रयोग करता आया है। इस प्रकार के लोक साहित्य की सामग्री को हम निम्न तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) लोकोक्ति

(२) मुहावरे

(३) पहेलियाँ

(i) लोकोक्ति—लोक साहित्य में लोकोक्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है। संसार के सभी देशों और जातियों में कहावतों का महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः लोकोक्ति जनता-जनार्दन की उक्ति है। साहित्य की दृष्टि से भी कहावतों का महत्व कुछ कम नहीं है। कहावतें भाषा का शृंगार हैं। लोकोक्ति एक संक्षिप्त व चुभता हुआ जीवन का सुंदर सूत्र है जो जनता की जिव्हा पर निवास करता है तथा जो व्यावहारिक जीवन के निरीक्षण, शाश्वतिक अनुभूति या जीवन के सच्चे नियम को प्रकाशित करता है। इस प्रकार लोकोक्तियों में मानव जीवन के विभिन्न क्षत्रों की अनुभूति पुंजीभूत रूप में उपलब्ध होती है।[1] डॉ० वासुदेवशरण के शब्दों में लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है।

लोकोक्तियों का प्रयोग अत्यन्त प्राचीनकाल से होता आया है। लोकोक्ति के लिये संस्कृत में भी सुभाषित या सूक्ति शब्द का प्रयोग हुआ है।[2] विभिन्न योरोपीय एवं भारतीय भाषाओं में लोकोक्तियों के संग्रह एवं संपादन का बड़ा सुंदर कार्य हुआ है। राजस्थानी में 'राजस्थानी कहावतें, एक अध्ययन' नामक डॉ० सहल का शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हो चुका है। इसमें राजस्थानी कहावतों का पूर्ण एवं वैज्ञानिक

---

[1] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना, पृष्ठ १३४।

[2] सुभाषितेन गीतेन, युवतीनां च लीलया।
मनो न रमते यस्य, स योगी अथवा पशुः॥

विवेचन प्रस्तुत किया गया है।[1] विभिन्न विषयों से सम्बन्धित कहावतों का इसमें विषयानुसार वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। राजस्थानी कहावतों के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये यह पुस्तक पर्याप्त है।

राजस्थान में लोक जीवन का कोई भी अंग ऐसा नहीं रहा जिसके सम्बन्ध में लोकोक्ति का प्रयोग न होता हो। मनोरंजन, प्रहसन, शोक दुःख, व्यंग, श्रम, भोजन, पर्व आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में लोकोक्तियों का प्रयोग होता है। इन लोकोक्तियों की स्वाभाविकता, इनका गूढ़ार्थ और इनमें पाया जाने वाला चमत्कार ही इनकी विशेषता है। राजस्थानी लोकोक्तियों का उदाहरण देखिये—

१—कागा कुत्ता कुमाणसां, तीन्यूं एक निकास।
ज्यां ज्यां सेरयां नीसरै, त्यां त्यां करै बिणास।।

अर्थ—कौवे, कुत्ते, और दुर्जन तीनों समान ही स्वभाव के होते हैं; ये जिस मार्ग से निकलते हैं वहीं विनाश करते हैं।

२—म्हारी हुती नै म्हैं ही ल्याई,
बैन हुती नै सोक कहाई,
सांमी बैठी सुरमों सारै,
मांखी नहीं मुळको मारै।

अर्थ—स्त्री के सन्तान न होने के कारण पति दूसरा विवाह करने के लिए तैयार हो गया तब पत्नी ने उचित समझ कर अपनी छोटी बहिन का ही विवाह अपने पति से करवा दिया। सोचा था कि दोनों बहिनें प्रेम से रहेंगी परन्तु वह तो उसके लिए शूल बन गई। युवा एवं सुन्दर होने के कारण पति की अधिक मानेता हो गई और श्रृंगार में व्यस्त रहने लगी। छोटी बहिन के सभी कार्य बड़ी को व्यंग लगने लगे। इसी प्रकार कोई अपने ही व्यक्ति का भला चाहने के लिये उसे अपने साथ रखता है और जब वह उसी के लिए बाधक हो जाता है तब यह उक्ति कही जाती है।

३—माथा माथै बीटोरो (भयारी) और कै' म्हनै तंबू में आवण दो।

अर्थ—सिर पर तो कांटों का गट्ठर और कहता है मुझे शामियाने में प्रवेश करने दो। अपनी हस्ती, योग्यता और स्थिति के बाहर बात करने पर यह उक्ति उस आदमी के प्रति कही जाती है।

[1] भारती साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली से प्रकाशित।

मुहावरा—

मुहावरा का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितनी भाषा की उत्पत्ति। संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग प्रचुरता के साथ मिलता है। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने मुहावरों की परिभाषा करते हुए लिखा है कि मुहावरा किसी भाषा अथवा बोली में प्रयुक्त होने वाला वह वाक्य-खंड है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज, रोचक और चुस्त बना देता है। संसार में मनुष्य ने अपने लोक-व्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कौतूहल से देखा है, समझा है, तथा बार-बार उनका अनुभव किया है उनको उसने शब्दों में बांध दिया है। वे ही मुहावरे कहलाते हैं।[1]

लोक जीवन में अनेक मुहावरे प्रचलित हैं। इन मुहावरों में जनता के जीवन की झांकी देखने को मिलती है। मुहावरों की विशेषता बतलाते हुए डॉ० उपाध्याय कहते हैं।[2]—"मुहावरे की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह किसी वाक्य का अंगीभूत होकर रहता है। जैसे 'आग लगाना' एक मुहावरा है। परन्तु इसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। जब तक इसका किसी वाक्य में प्रयोग नहीं होता तब तक इससे किसी अर्थ की व्यंजना नहीं हो सकती। मुहावरा अपने मूल रूप में ही सदा प्रयुक्त होता है। यदि मूल मुहावरों के स्थान पर उसके पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाय तो उसकी अभि-व्यंजना शक्ति नष्ट हो जाती है।[२]"

लोक संस्कृति का स्पष्ट चित्रण इन मुहावरों में मिलता है अतः इनके वैज्ञानिक अध्ययन की अत्यन्त आवश्यकता है। यद्यपि राजस्थानी की विभिन्न पत्रिकाओं में मुहावरों के अनेक छोटे-मोटे संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, तथापि इस सम्बन्ध में पूर्ण एवं संगठित प्रयत्न की आवश्यकता है। राजस्थानी शब्द-कोश में सम्बन्धित शब्दों के साथ आवश्यक जानकारी के लिये प्रचलित मुहावरे प्रस्तुत कर दिये गये हैं।

पहेलियां—

यह संस्कृत के प्रहेलिका शब्द का रूपान्तर मात्र है। पहेलियों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन हैं। संस्कृत साहित्य

[1] पं० रामनरेश त्रिपाठी, त्रिपथगा, अंक ६ (मार्च १९५६), पृष्ठ १०।

[2] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, प्रस्तावना पृष्ठ १४२।

में प्रहेलिकायें प्रचुर मात्रा में मिलती है। आज भी गाँवों में अवकाश के क्षणों में पहेलिया बालकों, बूढ़ों और नौजवानों सभी के लिए मनोरंजन का उत्कृष्ट साधन हैं। स्त्रियाँ भी उन्हें अपना अस्त्र समझती हैं। ससुराल में जामाता की परीक्षा लेने के लिये स्त्रियाँ पहेलियों की झड़ी लगा देती हैं। डॉ० सत्येन्द्र के अनुसार 'लोक मानस इसके द्वारा अर्थ-गौरव की रक्षा करता है और मनोरंजन प्राप्त करता है। यह बुद्धि-परीक्षा का साधन है। भाव से इसका सम्बन्ध नहीं होता, प्रकृत को गोप्य करने की चेष्टा रहती है, बुद्धि-कौशल पर निर्भर करती है।'[1]

पहेलियों के अनेक भेद किये गये हैं जिसमें निम्नलिखित मुख्य हैं—

(१) खेती सम्बन्धी
(२) भोज्य पदार्थ सम्बन्धी
(३) घरेलू वस्तु सम्बन्धी
(४) जीव सम्बन्धी
(५) प्रकृति सम्बन्धी
(६) शरीर सम्बन्धी
(७) प्रकीर्ण

राजस्थानी लोक जीवन में इन पहेलियों का भी विशेष स्थान है। अवकाश के क्षणों में अपने मनोरंजनार्थ लोग इनका प्रयोग भी करते हैं। लोक जीवन में पहेलियों को बुद्धि के माप का एक साधन माना है। इन पहेलियों में कुछ तो इस प्रकार की हैं कि उनमें केवल प्रश्न ही किया गया है और इनका उत्तर बुद्धि के प्रयोग द्वारा बाहर से देना पड़ता है। अन्य प्रकार की पहेलियों में प्रश्न के साथ-साथ उत्तर भी श्लेषालंकार में दिया हुआ होता है। बुद्धि से विचार कर उसी में से उत्तर निकाला जाता है। राजस्थानी पहेलियों के उदाहरण देखिये—

[1] 'ब्रज- लोक साहित्य का अध्ययन', डॉ० सत्येन्द्र, पृष्ठ ५२०।

१ चार खूणां री बावड़ी, भरी झकोळा जाय।
हाथी घोड़ा डूब ग्या, पिणियारी खाली जाय॥

—काच

२ एक भंडार नौ लख तारा, जिण में बैठ्या दो बिणजारा।
अन खावै न पाणी पीवै, दुनिया देख देख कर जीवै॥

—चांद, सूरज

३ नारी पुरख न आदरै, तसकर बांधो जाय।
तेजी ताजणी खमै, कह चेला किण दाय॥

—गुरुजी तेज नहीं

इन पहेलियों के अतिरिक्त राजस्थानी लोक साहित्य में 'भूंगररासौ' और प्रचलित है। पहेलियों में तो प्रश्न एवं उत्तर दोनों सार्थक होते हैं किन्तु 'भूंगररासौ' में बे-सिरपैर, ऊटपटांग एवं असंबद्ध बातें ही कही जाती हैं, जिनका उद्देश्य जनता का विशुद्ध मनोरंजन करना ही होता है। इन निरर्थक तुकबंदियों को सुन कर गंभीर प्रकृति के मनुष्यों के होठों पर भी मुस्कराहट खेल जाती है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में ऐसी ही उक्तियों को 'ढकोसला' कहते हैं।

'भूंगररासौ' के उदाहरण देखिये—

१ भाकर माथूं गोड़ो पड़ियो, मैं जांण्यो वडबोर।
हाथ में ले'र चाखियो, वाह रे ऊना खीच॥

२ ऊबो ऊंट मींगणां करे, तड़ तड़ वाजै ताली।
लाव पड़ोसण कबाड़ियो, डोरा घालूं राली॥

३ रबड़क भैंस पींपळ चढ़ी, गिड़क तोड़ायी नाथ।
डागळा माथा ऊं डूंम पड़ियो, भागो गांव भाभी रो
साथळ माऊं हाथ॥

उपरोक्त विवेचन राजस्थानी लोक साहित्य की एक छोटी-सी झाँकी प्रस्तुत करने में सहायक होगा। लोक गीत एवं लोकोक्तियों को छोड़ दिया जाय तो राजस्थानी में लोक-साहित्य से सम्बन्धित बहुत कम सामग्री का प्रकाशन एवं समुचित सम्पादन हो पाया है। अतः इस सम्बन्ध में विशेष प्रयत्नों की आवश्यकता है। इसी के द्वारा प्राचीन राजस्थान की लोक-संस्कृति पर कुछ प्रकाश पड़ सकेगा।

—सीताराम लाळस

संकेताक्षरों का विवरण

संक्षिप्त रूप	पूर्ण रूप	रचयिता
अं०	अंग्रेजी	
अ०	अरबी	
अक०	अकर्मक	
अक० रू०	अकर्मक रूप	
अनु०	अनुकरण	
अनेक०, अनेका०	अनेकार्थी कोश	श्री उदयरांम बारहठ (गूंगा)
अप०	अपभ्रंश	
अमरत	अमरतसार	श्री महाराजा प्रतापसिंह (जयपुर)
अ० मा०	अवधांनमाळा	श्री उदयरांम बारहठ (गूंगा)
अ० रू०	अकर्मक रूप	
अल्प०, अल्पा०	अल्पार्थ	
अव्य०	अव्यय	
इब०	इबरानी	
उ०	उदाहरण	
उप०	उपसर्ग	
उभ० लिं०	उभयलिंग	
ऊ० का०	ऊमर-काव्य	श्री ऊमरदांन लाळस
एका०	एकाक्षरी नांम माळा	श्री वीरभांण रतनू, श्री उदयरांम बारहठ (गूंगा)
क० कु० बो०	कवि कुळ बोध	श्री उदयरांम बारहठ (गूंगा)
क० च०	करणी-चरित्र	ठा० किशोरसिंह वार्हस्पत्य
कर्म वा०, कर्म वा० रू०	कर्म वाच्य रूप	
कहा०	कहावतें	
कां० दे० प्र०	कान्हडदे प्रबन्ध	श्री पद्मनाभ
क्रि०	क्रिया	
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक	
क्रि प्र०	क्रिया प्रयोग	
क्रि० प्रे०	क्रिया प्रेरणार्थक	
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण	
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक	
क्व०, क्व० प्र०	क्वचित् प्रयोग	
क्षेत्र०	क्षेत्रीय प्रयोग	
ग० मो०	गजमोक्ष	श्री हरसूर बारहठ
गी० रां०	गीत रांमायण	श्री अमृतलाल माथुर (कुचेरा निवासी)
गु०	गुजराती	

संक्षिप्त रूप	पूर्ण रूप	रचयिता
गु० रू० बं०	गुण रूपक बंध	श्री केसोदास गाडण
गोर०	गोरादि	
गो० रू०	गोगादे रूपक	श्री पाहू खां धाढी
घी०	घीमी	
घेत मांनखा	घेत मांनखा	श्री रेवतदांन कल्पित
चौबोली	चौबोली	संपादक डॉ० कन्हैयालाल सहल
ज० खि०	जग्गा खिड़िया रा कवित्त	श्री जग्गो खिड़ियो
जा०	जापानी	
ज्यो०	ज्योतिष	
डिं०	डिंगल	
डिं० को०	डिंगल कोश	कविराजा मुरारिदांन (बूंदी)
डिं० नां० मा०	डिंगल नांम माळा	श्री हरराज (कवि)
ढो० मा०	ढोला मारू[1]	संपादक श्री रामसिंह, श्री सूर्यकरण पारीक, नरोत्तमदास स्वामी
तु०	तुर्की	
द० दा०	दयाळदास री ख्यात	श्री दयाळदास सिंढायच
दसदेव	दसदेव	श्री नानूराम संस्कर्ता
द० वि०	दलपत विलास	सम्पादक श्री रावत सारस्वत
दुर्गादास	दुर्गादास	श्री नारायणसिंह भाटी
दे०	देखो	
देवि०, देवी०	श्री देवियांण	श्री ईसरदास बारहठ
द्रो० पु०	द्रोपदी पुकार	श्री रामनाथ कवियो
नां० मा०	नांम-माळा	अज्ञात
ना डिं० को०	नागराज डिंगल कोस	श्री नागराज पिंगळ
ना० द०	नागदमण	श्री सांइया झूला
नी० प्र०	नीति प्रकाश	श्री सगरांम सिंह मुहणोत
नैणसी	मुहणोत नैणसी री ख्यात	सम्पादक, महामहोपाध्याय पं० रामकरण आसोपा
पं०	पंजाबी	
पर्याय०	पर्यायवाची शब्द	
पा०	पाली	
पा० प्र०	पाबू प्रकास	कवि श्री मोडजी आसियो
पिं० प्र०	पिंगळ प्रकास	श्री हमीर दांन रतनूं
पु०	पुल्लिग	
पुर्त०	पुर्तगाली	
पृष०	पृषोदरादि	
पे० रू०	पेमसिंह रूपक	श्री प्रतापदांन गाडण

[1] इसके अतिरिक्त हमने 'ढोला मारू' की भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा लिखित हस्तलिखित वार्तों की प्रतियों में से शब्द लिये हैं, उनका भी संकेत-चिन्ह 'ढो० मा०' ही रखा गया है।

संक्षिप्त रूप	पूर्ण रूप	रचयिता
प्र०, प्रत्यय	प्रत्यय	
प्रा०	प्राकृत	
प्रा० प्र०	प्राचीन प्रयोग	
प्रा० रू०	प्राचीन रूप	
प्रे०	प्रेरणार्थक	
प्रे० रू०	प्रेरणार्थक रूप	
फा०	फारसी	
फ्रां०	फ्रांसीसी	
बहु०	बहुवचन	
बां० दा०	बांकीदास ग्रंथावली, भाग १,२,३	श्री बांकीदास
बां० दा० ख्या०	बांकीदास री ख्यात	श्री बांकीदास
बी० दे०	बीसळदे रासो	श्री बीसळदे
भ० मा०	भगतमाळ	श्री ब्रह्मदास दादूपंथी
भाव०	भाव वाचक	
भाव वा०, भाव वा० रू०	भाव वाच्य रूप	
भू०	भूतकाल	
भू० का० कृ०	भूतकालिक कृदन्त	
भू० का० प्र०	भूतकालिक प्रयोग	
भ्रं० पु०	भृंगी पुरांण	श्री हरदास
म०	मराठी	
महु०, महुत्व०	महत्त्ववाची शब्द	
मा०	मागधी	
मा० म०	मारवाड़ मरदुमशुमारी रिपोर्ट	मुंशी श्री देवीप्रसाद
मि०	मिलाओ	
मीरां	मीरांबाई	
मुहा०	मुहावरे	
मेघ०	मेघदूत	श्री नारायणसिंह भाटी
मे० म०	मेहाई महिमा	श्री हिंगळाजदांन कवियो
यू०	यूनानी	
यौ०	यौगिक	
र० ज० प्र०	रघुवर जस प्रकास	श्री किसनो आढ़ो
र० रा०	रसराज अंक, परम्परा	सम्पादक : श्री नारायणसिंह भाटी
र० रू०	रघुनाथ रूपक गीतां रो	श्री मनछाराम (मंछ कवि)
र० हमीर०	रतना हमीर री वारता	महाराजा श्री मानसिंह, जोधपुर
रांमकथा	श्रीरांमचंद्रजी से संबंधित कथा	
रा०	राजस्थानी	
रा० ज० रासौ	राउ जैतसी रो रासौ	अज्ञात
रा० ज० सी०	राउ जैतसी रो छंद	श्री बीठू सूजो नगराजोत
रा० दू०	राजस्थानी दूहा	सम्पादक : श्री नरोत्तमदास स्वामी
रा० प्र०	राजस्थानी प्रत्यय	

संक्षिप्त रूप	पूर्ण रूप	रचयिता
रां० रा०	रांमरासौ	श्री माधौदास दधवाड़ियौ
रा० रू०	राजरूपक	श्री वीर भांण रतनू
रा० वं० वि०	राठौड़ वंस री विगत	अज्ञात
रा० सा० सं०	राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १	सम्पादक : श्री नरोत्तमदास स्वामी
रू० भे०	रूप भेद	
ल० पिं०	लखपत पिंगळ	श्री हमीरदांन रतनूं
ला० रा०	लावारासा	श्री गोपाळदांन कवियौ
लू	लू	कुं० चंद्रसिंह बीकौ
लै०	लैटिन	
लो० गी०	राजस्थानी लोक गीत	
वं० भा०	वंश भास्कर	श्री सूरयमल्ल मीसण
व०	वर्तमान काल	
व० ।० कृ०	वर्तमान कालिक कृदन्त	
वचनिका	वचनिका रतनसिंह महेसदासोत री	श्री जग्गौ खिड़ियौ
वरसगांठ	वरसगांठ	श्री मुरलीधर व्यास
वादळी	वादळी	कुं० चन्द्रसिंह बीकौ
वि०	विशेषण	
विलो०	विलोम	
वि० वि०	विशेष विवरण	
वि० स०	विड़द सिणगार	कविराजा श्री करणीदांन कवियौ
वी० दे०	वीसळदे रासौ	श्री वीसळदे
वी० मा०	वीरमायण	श्री बहादर ढाढ़ी
वी० स०	वीर सतसई	श्री सूरयमल्ल मीसण
वी० स० टी०	वीर सतसई टीका	श्री किसोरदांन बारहठ
वेलि.	वेलि क्रिसन रुकमणी री	महाराजा श्री प्रिथीराज राठौड़
वेलि टी०	वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका	अज्ञात
व्या०	व्याकरण	
शक०	शकंदादि	
शा० हो०	शालि होत्र	अज्ञात
शि० वं०	शिखर वंशोत्पत्ति	श्री गोपाळ कवियौ
शि० सु० रू०	शिवदांन सुजस रूपक	श्री लालदांन बारहठ
सं०	संस्कृत	
सं० उ०	संज्ञा उभयलिंग	
सं० पु०	संज्ञा पुल्लिंग	
सं० स्त्री०	संज्ञा स्त्रीलिंग	
स०	सकर्मक	
स० रू०	सकर्मक रूप	
सर्व०	सर्वनाम	
सांझ	सांझ	श्री नारायणसिंह भाटी
सू० प्र०	सूरजप्रकास	कविराजा श्री करणीदांन कवियौ
स्त्री०	स्त्रीलिंग	
स्पे०	स्पेनिश	
श्री हरि पु०	श्री हरिपुरुषजी	
ह० नां०, ह० नां० मा०	हमीर नांम माळा	श्री हमीरदांन रतनू
ह० पु० वा०	श्री हरिपुरुषजी की वांणी	श्री हरिपुरुषजी
ह० प्र०	हंस प्रबोध	ठा० श्री हमीरसिंहजी राठौड़
ह० र०	हरिरस	श्री ईसरदास बारहठ
हा० झा०	हालां झालां रा कुंडळिया	श्री ईसरदास बारहठ

* [यह संकेत इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल कविता में प्रयुक्त हुआ है]

राजस्थांनी सबद-कोस

राजस

अ–संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश व राजस्थानी [वर्णमाला] त
लिपि का प्रथम अक्षर या स्वर है जिसका उच्चारण कंट
बिना इसके व्यंजनों का स्वतंत्र रूप से उच्चारण नहीं ह

अं—सानुस्वार अ। सं०पु०—१ कमल. २ पूर्ण ब्रह्म. ४ दुःख. ५ भक्ति. ६ श्रीकृष्ण (एका.)
वि०—१ विरक्त. २ श्रेष्ठ (एका.)

अंक–सं०पु० [सं०] १ होनहार, प्रारब्ध, भाग्य. २ चिन्ह, निशान, बैल आदि को दागने का चिन्ह. ३ दाग, धब्बा. ४ अक्षर. ५ गोद. (यौ०–अंकायत) ६ शरीर, अंग. ७ संख्या का चिन्ह ० से ९ तक. ८ पाप. ९ लिखावट. १० अपराध. ११ दुःख. १२ अध्याय नाटक का एक अंश. १३ एहसान। उ०—अंक करे जोधांण उदैपुर आस्रय देर झेलिया आतुर।—वं.भा. १४ जन्मांतर. १५ नौ की संख्या*।

अंकआड*–वि०—देखो 'आडे अंक'।

अंककार–वि० [सं०] अंकों का हिसाब करने वाला, गणितज्ञ।

अंकगणित–सं०स्त्री० [सं०] वह विद्या जिसके द्वारा संख्याओं की मीमांसा की जाय, संख्याओं का हिसाब।

अंकड़ी–सं०स्त्री० [सं० अक्षि] १ आँख। [सं० अंकुर] २ टेढ़ी नोक, कँटिया वृक्षों से फल-पत्ते आदि तोड़ने का बाँस का लम्बा डंडा जिसके सिर पर लोहे का हँसिया लगा हुआ होता है, तीर का टेढ़ा फल।

अंकड़ौ–सं०पु० [सं०अंक+ड़ौ–रा०प्र०] १ अक्षर. २ प्रारब्ध, भाग्य*।
उ०—कांमपताका काय उदै जे अंकड़ा, राजस तजि चित रोंस क
सोक्यां संकड़ा।—बां.दा. (अल्पा.)

अंकज–सं०पु० [सं०] वह जो अंक से उत्पन्न हो।

अंकणौ, अंकबौ–क्रि०स०—देखो 'आंकणौ'।

अंकधारण–सं०पु०यौ [सं० अंक+धारण] तप्त मुद्रा से चिन्ह करना, दगान, शंख चक्र आदि का चिन्ह।
क्रि०प्र०—करणौ।

अंकधारी–वि० [सं० अंकधारिन्] (स्त्री० अंकधारण) १ देव विशेष के नाम की तप्त मुद्रा धारण करने वाला. २ सांड, बैल या घोड़ा आदि जिसके पैर पर तप्त लोहे की त्रिशूल, शंख आदि के आकृति की छाप हो।

अंकपळई, अकपळाई–सं०स्त्री०[सं० अंकपल्लव] अंकों को अक्षरों के स्थान
ाय से वाक्य के समान अर्थ निकालने की एक
।

ंकपाली] १ धाय. २ मा, माता।

गोद, क्रोड़।

अंकमाळ–सं०पु० [सं० अंकमाल] १ आलिङ्गन, गले लगाना. २ अक में माला की तरह धारण करना।

अंकरास–सं०पु०—समय, अवसर, मौका।

अंकवार–सं०पु० [सं० अंकमाल] १ कांख. २ गोद।

अंकवाळी–वि०—असीम, अधिक, बेहद। उ०—काळी नाथियौ ऊपरे नित्त काळी, वळी रंभ नाटारँभे अंकवाळी—ना.द.।

अंकविद्या–सं०स्त्री० यौ० [सं० अंक+विद्या] अंकगणित।

अंकस्थ–वि० [सं० अंक+स्थित] १ गोद में बैठा हुआ. २ गोद लिया हुआ, दत्तक—वं.भा.।

अंकहूंतलेखाळ–सं०पु० यौ० [सं० अंक+हूंत–रा०प्र०+सं०लेख+पाल] मंत्री, दीवान—(डिं.नां.मा.)

अंका–सं०पु० [सं० आकाश] आकाश, आसमान। (यौ०–अंकागाडी)

अंकाई–सं० स्त्री०—१ कूंत, अटकल, वस्तु संख्या मूल्य या परिमाण का अनुमान या अंदाजा. २ खलिहान में (फसल में) काश्तकार और जागीरदार के हिस्से का ठहराव या अनुमान।
क्रि०प्र०—करणी-होणी।

अंकागाडी–सं०स्त्री० [सं० आकाश+रा० गाडी] हवाईजहाज, वायुयान।

अंकाणौ, अंकाबौ–क्रि०स० [सं० अंकन] १ अंकाना. २ मूल्य निर्धारित करवाना. ३ तौल कराना. ४ अंकित कराना, दाग लगवाना।
अंकाणहार-हारौ(हारी), अंकाणियौ, अंकावणियौ–वि०—अंकित कराने वाला। **अंकायोड़ौ, अंकावियोड़ौ**–भू०का०कृ०—अंकित कराया हुआ। **अंकावणौ, अंकावबौ**–अंकणौ का प्रे०रू० तथा अंकाणौ का रू०भे०। **अंकिओड़ौ, अंकियोड़ौ, अंक्योड़ौ**–भू०का०कृ०। **अंकीजणौ, अंकीजबौ**–भाव वा.।

अंकायत–वि० [सं० अंक+आयत–रा०प्र०] दत्तक, गोद लिया हुआ।
सं०पु०–दत्तक पुत्र।

अंकाळौ–सं०पु०—१ आक की सूखी लकड़ी के उपर का पतला छिलका जिसको बँटकर रस्सी बनाई जाती है. [सं०अंक+आळौ–रा०प्र०] २ गोद वाला।

अंकावणौ, अंकावबौ–क्रि०स० (अंकणी का प्रे०रू०) देखो 'अंकाणौ'।
अंकास–सं०पु० [सं० आकाश] गगन, आसमान, आकाश।
अंकित–वि० [सं०] १ चिन्हित, निशान किया हुआ. २ वर्णित. ३ लिखित, चित्रित।
क्रि०प्र०—करणौ-होणौ।
अंकियोड़ौ–वि० (अंकणौ का भू०का०कृ०) [सं० अंकित, प्रा० अंकिअ, अप० अंकिओ+ड़ौ–रा०प्र० अंकियोड़ौ, अंक्योड़ौ] (स्त्री० अंकियोड़ी) अंकित।
अंकुड़ी–सं०स्त्री०—१ हुक, कँटिया. २ झुकी हुई छड़. ३ बाँस के डंडे के छोर पर लगा हुआ हँसिया।
यौ०—अंकुड़ीदार।
अंकुड़ीदार–सं०स्त्री०—१ कँटिया लगा हुआ, हुक लगा हुआ. २ गड़ारी।
अंकुड़ौ–सं०पु० [सं० अंकुर] लोहे का टेढ़ा काँटा जो बाँस के लम्बे डंडे में लगाया जाता है (इसके द्वारा वृक्षों की पत्तियाँ तोड़कर पशुओं को खाने के लिये डाली जाती हैं)
अंकुर–सं०पु० [सं०] १ डाभ, कल्ला, कनखा, कोंपल. २ अंखुआ नवोद्भव, प्ररोह।
क्रि०प्र०—आणौ-उगणौ-जमणौ-निकळणौ-फूटणौ-फेंकणौ-फोड़णौ-लाणौ-लेणौ।
३ नोक. ४ कली. ५ जख्म भरते समय उत्पन्न होने वाले मांस के छोटे लाल-लाल दाने।
अंकुरणौ, अंकुरबौ–क्रि०अ० [सं०अंकुर] १ अंकुर निकलना (रा.रू.) २ ध्वनि करना, बजना। उ०—यों नेउर पग अंकुरे यों मक्कुन आया !—वं.भा.
अंकुरित–वि० [सं०] १ जिसमें अंकुर हो गया हो. २ (अंकुर) फूटा हुआ या निकला हुआ।
क्रि०प्र०—करणौ-होणौ।
अंकुरितजौवणा–वि०स्त्री० [सं० अंकुरित+यौवना] नवयौवना, जिसके यौवन चिन्ह (यथा–कुच) स्पष्ट रूप से उभर आये हों।
अंकुरियोड़ौ–वि० [सं० अंकुरित, प्रा० अंकुरिअ, अप० अंकुरिओ+ड़ौ रा०प्र०] (स्त्री० अंकुरियोड़ी) जिसमें अंकुर हो गया हो, अंकुरित।
अंकुस—सं०पु० [सं० अंकुश] १ हाथी के हाँकने का छोटा भाला या काँटा (अंकुसड़ौ, अंकुसिऔ अल्पा०)
यौ०—अंकुसग्रह, अंकुसधारी।
क्रि०प्र०—मारणौ-लगाणौ।
२ प्रतिबंध, दबाव, रोक. ३ भय, डर.
क्रि०प्र०—राखणौ-छोडणौ।
४ एक सामुद्रिक चिन्ह।
क्रि०प्र०—देखणौ।
अंकुसग्रह–सं०पु० [सं० अंकुश+ग्रह] फीलवान, महावत।
अंकुसदुरधर–सं०पु० [सं० अंकुशदुर्धर] उन्मत्त या मतवाला हाथी।
अंकुसदंतौ–सं०पु० [सं० अंकुश+दंत या दंती] वह हाथी जिसका एक दाँत सीधा और दूसरा नीचे को झुका हो।
अंकुसधारी–सं०पु० [सं० अंकुश+धारिन्] महावत।
अंकुसमुख–सं०पु०—रथ (डि.नां.मा.)
अंकुसी–सं०स्त्री० (अंकुश का अल्पा०) १ टेढ़ी कील, कँटिया, हुक. २ डर।
अंकूर–सं०पु० [सं० अंकुर] १ अंकुर, कोंपल. २ अंक, लेख।
अंकोड़–सं०पु०—१ मुंह पर मुड़ा हुआ लकड़ी का टुकड़ा. २ रहँट के अन्दर लगा हुआ लकड़ी का वह मोटा डंडा जिसके ऊपरी सिरे पर नीचे के छेद में रहँट का 'ऊबड़ियौ' (देखो-ऊबड़ियौ) घूमता रहता है। रहँट के घूमने वाले चक्र के बीच वाले लकड़ी के स्तम्भ के ऊपरी सिरे को अपने स्थान पर स्थिर रखने के लिए उपयोग में लाया जाने वाला उपकरण. ३ देखो 'अंकोड़ियौ'. ४ देखो 'अंकुड़ौ'।
अंकोड़ियौ–सं०पु०—१ कपाट बंद करने की चिटकनी या अर्गला. २ देखो 'अंकुड़ौ' (अल्पा०) ३ ऊँट या बकरी के बालों के कातने के उपकरण में फँसाई गई एक प्रकार की तकली जो लोहे या लकड़ी की बनी होती है।
अंकोड़ौ–सं०पु०—१ देखो 'अंकुड़ौ'. २ देखो 'अंकोड़' (१)
अंकोट–सं०पु०—देखो 'अंकोल' (अमरत)
अंकोल–सं०पु०—प्रायः सारे भारत में पहाड़ी जमीन पर पाया जाने वाला शरीफ के वृक्ष से मिलता-जुलता एक प्रकार का वृक्ष (अमरत)
अंकौ–सं०पु० [सं० अक] भवितव्यता, होनी।
मुहा०—इण सू आगे अंकौ है—भावी प्रबल है।
अंख–सं०स्त्री [सं० अक्षि, रा० आंख] आँख, नेत्र।
अंखड़ी–सं०स्त्री० [सं० अक्षि+ड़ी–रा०प्र०] आँख, नेत्र (अल्पा०)
अंखफोड़–सं०स्त्री०—एक प्रकार की लता विशेष (क्षेत्रीय)
अंखमींच–वि०पु०—(वह व्यक्ति) जिसे अपनी एक आँख कुछ मींच कर देखने की आदत हो।
अंखमींचणी–सं०स्त्री०—देखो 'आंखमींचणी'।
अंखि–सं०स्त्री० [सं० अक्षि] आँख, नेत्र। उ०—नीचे वेग मैं अंखि तारा न मावै, गजां डांण लागां बयानै गमावै।—वं.भा.
अंखियां–सं०स्त्री० [सं० अक्षि+यां रा०प्र०, बहु०] आँखें, नेत्र।
अंखी–सं०स्त्री०—देखो 'अंखी'।
अंग–सं०पु० [सं०] १ देह, शरीर. २ अवयव।
क्रि०प्र०—मोड़णौ-लागणौ।
३ अंश, खंड, भाग, हिस्सा, टुकड़ा. ४ भेद, भाँति. ५ उपाय. ६ पक्ष, तरफ. ६ अनुकूल, सहायक, मित्र. ८ प्रकृति, स्वभाव, आदत. ९ मन. १० छः की संख्या* ११ आठ की संख्या सूचक* १२ वेद के छः अंग. १३ सेना के चार अंग (देखो-'चतुरंगणी'). १४ पार्श्व, बगल. १५ राजनीति के सात अंग. १६ कार्य करने

का साधन. १७ बंगाल का प्राचीन नाम. १८ बिहार व उड़ीसा की सीमा के प्रदेश का एक प्राचीन नाम।

वि०—प्रिय।

अंगउधार—सं०पु०—बिना किसी वस्तु के रेहन रक्खे अथवा बिना किसी लिखापढ़ी के दिया या लिया गया ऋण।

क्रि०प्र०—देणौ-लेणौ।

अंगखंभ—सं०पु० [सं० अंग+स्तम्भ] हाथी (ना.डिं.को.)

अंगगध—सं०पु०—कामदेव (अ.मा.)

अंगड़—सं०पु०—अग्नि, आग, अंगारा।

अंगड़ाई—सं०स्त्री०—१ आलस्य या जम्भाई के साथ अंगों को तानना या फैलाना. २ देह टूटना. ३ करवट बदलना।

क्रि०प्र०—लेणी।

अंगड़ाणौ, अंगड़ाबौ—क्रि०अ० [सं० अंगअटन] आलस्य या जम्भाई के साथ अंगों को तानना या फैलाना, देह तोड़ना।

अंगड़ाओड़ौ, अंगड़ायोड़ौ—भू०का०कृ०—अंगड़ाई लिया हुआ।

अंगड़ावणौ, अंगड़ावबौ—क्रि०प्र०—'अंगड़ाणौ' का रू०भे०।

अंगचालन—सं०पु० [सं० अंग+चल] अंगों का संचालन, अंगों को चलाना या हिलाना।

अंगज—सं०पु० [सं०] (स्त्री० अंगजा) १ पुत्र, लड़का. (वं.भा.) २ बाल, रोम. ३ पसीना. ४ कामक्रोध आदि विकार. ५ कामदेव. ६ मद. ७ रोग, ८ जूं. ९ 'हाव' 'भाव' और 'हेला' नामक स्त्रियों के यौवन सम्बन्धी सात्विक विकार (सा.)

वि०—शरीर से उत्पन्न।

अंगजा, अंगजाई—सं०स्त्री०—बेटी, पुत्री। उ०—प्रथ्वीराज नूं आपरै अंतहपुर आंणि वेद मंत्रां रा विधानपूरबक अंगजा इच्छणी परिणाय दीधी।—वं.भा.

अंगठ—सं०पु०—बैलगाड़ी में थाटे (मुख्य चौड़ा तख्ता) के नीचे लगाया हुआ वह चौड़ा तख्ता जो घोड़े के खुर की आकृति का होता है।

अंगण—सं०पु० [सं०] आंगन, चौक, सहन।

अंगणाई—सं०पु० [सं० आंगन] आंगन, सहन।

अंगणा—सं०स्त्री० [सं० अंगना] १ सुन्दर देह वाली स्त्री. २ उत्तर दिग्वर्ती हाथी, सार्वभौम की हथिनी।

अंगणि—सं०स्त्री० [सं० अंगण, सं० अंगना] १ देखो 'अंगण'. २ देखो 'अंगणा' (१)

अंगत्रांण—सं०पु० [सं० अंग+त्राण] १ शरीर-रक्षक. २ अंगरखा, कुरता. ३ कवच।

अंगद—सं०पु० [सं०] १ बाहु का एक आभूषण. २ बालि वानर का पुत्र (रामचरित). ३ नूपुर।

अंगदवार—सं०पु० [सं० अंग+द्वार] १ शरीर के द्वार, यथा—नाक, कान, मुख या मल-मूत्र मार्ग. २ नौ की संख्या*

अंगदान—सं०पु० [सं०] १ पीठ दिखाना, युद्ध से पीछे भागना. २ तनु-दान, संभोग (स्त्री के लिए)

क्रि०प्र०—करणी।

अंगदार—वि०—अपने स्वभाव या प्रकृति के विरुद्ध आचरण को सहन न करने वाला।

अंगदियौ, अंगदीयौ—सं०पु० [सं० अंगदीया] कारूपथ नामक देश की नगरी जो लक्ष्मण के पुत्र अंगद को मिली थी (रामकथा)

अंगद्वार—सं०पु०—देखो 'अंगदवार'।

अंगधारी—वि० [सं० अंग+धारिन] शरीरधारी प्राणी।

अंगन—सं०पु० [सं० आंगन] आंगन, चौक।

अंगना—सं०स्त्री० [सं०] १ स्त्री (रू.भे.—अंगणा) उ०—नायक रै विदेश गमण आपरी अंगना रै समांन राजपुत्रियां भी कुळ रा धरम रै अनुसार पावक रा प्रवेस बिनां ही उणाही बिदेस में बसण री चाह लागी।—वं.भा. २ गाय (अ.मा.)

अंगनि—सं०स्त्री० [सं० अग्नि] अग्नि, आग। उ०—तिके सती अंगनि सनांन करि नै सरग भोग रा सुख मांणै छै।—रा.सा.स.

अंगनिबांण—सं०पु० [सं० अग्नि+बाण] आग की ज्वाला प्रकटाने वाला बाण, अग्निबाण।

अंगन्यास—सं०पु० [सं०] मंत्र पढ़ते हुए किसी अंग का स्पर्श करना (तंत्र शा.)

अंगपाळ—सं०पु० [सं० अंगपालक] १ अंग-रक्षक, शरीर-रक्षक. २ अंग देश का राजा।

अंगफूटणी—सं०स्त्री०—शरीर में होने वाला एक प्रकार का दर्द विशेष (अमरत)

अंगबळ—सं०पु०—घी, घृत (अ.मा.)

अंगबूल—सं०पु०—(युद्ध में शस्त्रों द्वारा होने वाले) शरीर के टुकड़े।

अंगभंग—सं०पु०यौ० [सं०] १ अवयव का टूटना या नाश होना. २ शरीर के अंग की हानि. ३ स्त्रियों की वशीभूत या मोहित करने की चेष्टा।

क्रि०प्र०—करणी-होणी।

अंगभंगी—सं०स्त्री० [सं०] स्त्रियों की वशीभूत या मोहित करने की शारीरिक क्रिया या चेष्टा।

क्रि०प्र०—करणी।

वि०—टूटे अंग वाला, अपाहिज।

अंगभाव—सं०पु० [सं०] संगीत या नृत्य में आंखें, भृकुटि, हाथ-पैर आदि अंगों से किया जाने वाला मनोविकारों का प्रकाशन।

अंगभू—सं०पु०—स्वामी कार्तिकेय, षडानन।

अंगभूत—वि० [सं०] अन्तर्गत, भीतरी।

सं०पु०—१ वंशज. २ पुत्र, बेटा।

अंगमणौ, अंगमबौ—क्रि०स०—अधिकार मे करना। उ०—ऊजड़ दसपुर अंगमूं बळै तिकारै वैर, निज घर थे आवो न तो, खांन विचारी खैर।—वं.भा.

अंगमरद–सं०पु० [सं० अंगमर्द] देखो 'अंगमरदरग'।

अंगमरदण–सं०पु० [सं० अंगमर्द] १ हड्डियों का फटना, हड्डियों में दर्द होना (रोग)

क्रि०प्र०—होणौ।

२ हाथ-पैर दबाने वाला नौकर।

सं०स्त्री०—३ मालिश।

क्रि०प्र०—करणौ।

अंगमाठ–वि०—बलिष्ट, बलवान, दृढ़, मजबूत। उ०—लोह लाठ अंगमाठ लियां लडंगा भड़ लारां–क्रमाल।—महादांन महडू

अंगया–सं०स्त्री०—देखो 'अंगिया'।

अंगरक्षा–सं०स्त्री० [सं० अंग+रक्षा] शरीर की रक्षा।

अंगरख–सं०पु० [सं० अंग+रक्षक] अंगरक्षक, शरीररक्षक।

अंगरखि, अंगरखी–सं०स्त्री० [सं० अंगरक्षिका] एक प्रकार का सिला हुआ वस्त्र विशेष जो शरीर पर पहिनने के काम में आता है जिसमें बंध या बटन लगे रहते हैं।

अंगरखौ–सं०पु० [सं० अंग+रक्षक] एक प्रकार का सिला हुआ वस्त्र विशेष जो शरीर पर पहिनने के काम में आता है जिसमें बंध या बटन लगे हुए होते हैं। अंगा, अचकन।

अंग-रखौ–वि०—अदने स्वभाव का (व्यक्ति)

अंगरख्या–सं०स्त्री० [सं० अंग+रक्षा] शरीर की रक्षा।

अंगरण–सं०पु०—शरीर ढकने का वस्त्र।

यौ०—अंगरण-पंगरण।

अंगरळी–सं०स्त्री० [सं० अंग=अवयव+रा० रळी=उमंग] १ आनन्द. मौज. २ संभोग।

अंगरस–सं०पु० [सं०] १ किसी पत्ती या फली का कूट कर निकाला हुआ रस (वैद्यक) स्वरस. २ संभोग, सुरति।

अंगरह–सं०पु०—वह अखाड़ा जहाँ व्यायाम आदि किया जाय।

अंगराग–सं०पु० [सं०] १ केसर, कस्तूरी, कपूर आदि सुगंधित द्रव्यों से युक्त चन्दन का शरीर में किया जाने वाला लेप, उबटन. २ वस्त्र और आभूषण. ३ स्त्रियों द्वारा विभिन्न प्रकार से किया जाने वाला शरीर के पाँच अंगों का शृंगार, यथा–माँग में सिंदूर, माथे में रोली, गाल पर तिल की रचना, केसर का लेप और हाथ-पैरों में मेंहदी या महावर. ४ मुंह में लगाने की एक प्रकार की देसी सुगंधित बुकनी।

अंगराज–सं०पु० [सं० अंग+राज] १ अंग देश का राजा. २ दान-वीर कर्ण। (अ.मा.; ह.नां.मा.)

अंगरिख्या–सं०पु०—देखो 'अंगरख्या'।

अंगरी–सं०पु०—कवच।

अंगरु–सं०पु०—पुत्र, लड़का।

अंगरेज–सं०पु० [पुर्त० इंग्लेज] १ इंग्लैंड का निवासी. २ आंग्ल जाति।

अंगरेजड़ी–सं०स्त्री० —देखो 'अंगरेजी' (अल्पा.)

अंगरेजड़ौ, अंगरेजियौ, अंगरेजौ–सं०पु० [पुर्त० इंग्लेज] इंग्लैंड देश का निवासी (अल्पा.)

अंगरेजी–सं०स्त्री०—इंग्लैंड निवासियों की भाषा, अंग्रेजी।

वि०—अंग्रेजों का, अंग्रेजों संबंधी. विलायती।

अंगरेळ–सं०स्त्री०—अगरबत्ती, सुगंधित पदार्थों से बनी जलाने की एक प्रकार की बत्ती।

अंगरौ–सं०पु० [सं० अंगार] १ जलता या दहकता हुआ कोयला, चिनगारी. २ बैल के पैर का एक रोग।

अंगळ–सं०स्त्री० [सं० अंगुली] १ उँगली, अंगुली. २ हाथी की सूंड का अग्र भाग. ३ [सं० अंगुल] आठ जौ की लंबाई का नाप।

अंगळज–वि०—मूर्ख, अज्ञानी, अपठित। (ह.नां.मा.)

अंग-लीलंग–सं०पु०—हँस (अ.मा.)

अंगलेज–सं०पु० [पुर्त० इंग्लेज] देखो 'अंगरेज'।

अंगलेडौ–सं०पु०— उँगली या अंगूठे के ऊपर होने वाला विषैला फोड़ा। (क्षेत्रीय)

अंगवट–सं०पु०—स्वभाव, प्रकृति, शरीर का स्वाभाविक गुण।

अंगवारौ–सं०पु०—किसानों द्वारा कृषि-कार्य में एक दूसरे को पारस्परिक दी जाने वाली शारीरिक सहायता का एक रूप जिसमें आवश्यकता होने पर एक कृषक दूसरे कृषक का कार्य करने चला जाता है तथा उसके बदले उस कृषक के यहाँ भी आवश्यकता पड़ने पर कार्य करने के लिए वह पहुँच जाता है। इसमें मजदूरी नहीं देनी पड़ती।

पर्याय०—पिंडवड़ी–हाडवड़ी।

अंगविकृति, अंगविकृती, अंगविक्रिति–सं०स्त्री० [सं० अंग+विकृति] अपस्मार, मृगीरोग, मूर्च्छा, पक्षाघात, अंगों का टेढ़ा-मेढ़ा होना।

अंगविक्षेप, अंगविखेप–सं०पु० [सं० अंगविक्षेप] अंगों का मटकाना चमकाना, नृत्य, नर्तन में कलाबाजी।

अंगविद्या–सं०स्त्री० [सं०] सामुद्रिक शास्त्र।

अंगवोट–सं०पु०—शरीर का गठन, ढाँचा, काठी, देह की उठान।

अंगसंग–सं०पु०—१ स्पर्श. २ संभोग।

अंगसंपेख–सं०पु० [सं० अंग संप्रेक्ष] अंग देश का एक नाम (प्राचीन)

अंगसंसकार–सं०पु० यौ० [सं० अंग+संस्कार] स्वभाव, प्रकृति।

अंगसी–सं०स्त्री० [सं० अंकुश] १ हल का फल. २ स्वर्णकारों की बंकनाल जिससे दीपक की लौ को फूंक कर छोटे व बारीक जोड़ जोड़े जाते हैं।

अंगहीण–सं०पु० [सं० अंगहीन] १ अंगरहित. २ कामदेव।

वि०—१ वह जिसका अंग खंडित हो।

२ अधूरा, जो सर्वांग-पूर्ण न हो।

अंगहोमा–सं०स्त्री०—अपने शरीर को अग्नि में होमने वाली स्त्री, सती।

अंगांगी (भाव)–सं०पु० [सं० अंगाङ्गी] अवयवों का पारस्परिक संबंध, अंश का पूर्ण के साथ संबंध।

अंगा–सं०पु० [सं० अंग] देखो 'अंग'।

अंगाठी–सं०स्त्री०—वह गाय जिसके थनों में ग्रंथी हो। वि०वि० देखो 'अंगारी' (२,३)

अंगार–सं०पु० [सं०] १ अंगारा, जलता या दहकता हुआ कोयला, चिनगारी, निर्धूम या धुआँरहित आग।
सं०स्त्री०—२ अंगीठी।

अंगारक–सं०पु० [सं०] १ सूर्य (अ.मा.) २ मंगलग्रह (अ.मा.)

अंगारपुसप, अंगारपुसब–सं०पु० [सं० अंगार+पुष्प] १ अंगारे के समान लाल एक प्रकार का फूल, अंगारपुष्प. २ इंगुदी या हिंगोट का वृक्ष।

अंगारमण, अंगारमणी–सं०पु० [सं० अंगारमणि] लाल मणि, सूंगा।

अंगारमति–सं०स्त्री० [सं०] कर्ण की स्त्री।

अंगारवली–सं०स्त्री० [सं० अंगार-बल्ली] गुंजा, घुंघची, चिरमटी।

अंगारी–सं०स्त्री० [सं०] १ चिनगारी. [रा०] २ गायों के थनों में होने वाला एक प्रकार का रोग विशेष जिसमें स्तन का दूध बंद हो जाता है. ३ इस रोग से पीड़ित गाय।

अंगारौ–सं०पु०—देखो 'अंगार' (१)

अंगि–सं०—देखो 'अंगी'।

अंगिका–सं०स्त्री० [सं०] अंगिया, चोली, कंचुकी, स्त्रियों के पहनने की कुर्ती।

अंगिया–सं०स्त्री० [सं० अंगिका] १ अंगिका, चोली, कंचुकी।
सं०पु०—२ 'जामा' नामक पुरुषों के पहनने का अधोवस्त्र। वि०वि० देखो जामौ'।

अंगियौ–सं०पु० [सं० अंगा] अंगरखा।

अंगिरस–सं०पु० [सं०] देखो 'अंगिरा' (अ.मा.)

अंगिरा–सं०पु० [सं० अंगिरस] १ दस प्रजापतियों में से एक प्राचीन ऋषि. २ बृहस्पति. ३ तारा. ४ ब्रह्मा के मानस पुत्र जो धर्मशास्त्र के प्रवर्तक ऋषियों में से हैं—'अंगिरा संहिता' इनका ग्रंथ है। ज्योतिष के ये आचार्य थे। देवगुरु बृहस्पति इनके पुत्र हैं।

अंगी–सं०पु० [सं० अंग+ई] १ शरीर, तन. २ नाटक का प्रधान नायक. ३ शरीरधारी।
सं०स्त्री०—४ आग, अग्नि।

अंगीकरणौ, अंगीकरबौ–क्रि०स०—१ स्वीकार करना. २ ग्रहण करना (कां.दे.प्र.)

अंगीकार–सं०पु० [सं०] स्वीकार, मंजूर, ग्रहण (वं.भा.)
क्रि०प्र०—करणौ।

अंगीकृत–वि० [सं० अंगीकृत] मंजूर, स्वीकृत, अपनाया हुआ (वं.भा.)

अंगीकृति–सं०स्त्री० [सं०] स्वीकृति, मंजूरी।

अंगिखट–सं०पु० [सं० षट्+अंग] वेद के छ अंग (डिं.को.)

अंगीठ–सं०पु० [सं० अग्निस्था, अग्निष्ठा प्रा० अंग्गिठा] १ अंगारा।
सं०स्त्री० २ अग्नि. ३ भोजन पकाने के लिए आग रखने का चूल्हा, अंगीठी।
वि०—अग्नि के समान लाल।

अंगीठी–सं०स्त्री० [सं० अग्निस्था, प्रा० अग्गिठा] आग जलाने का पात्र, भोजन पकाने के लिए आग रखने का चूल्हा। उ०—मीरां रौ प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जळौ जा अंगीठी।—मीरां

अंगीठौ–सं०पु० [सं० अग्निस्था—अग्निष्ठा, प्रा० अग्गिठा] अंगारा, अग्निकरण। (अंगिठड़ौ, अंगीठियौ—अल्पा.)

अंगीरस–सं०पु०—देखो 'अंगिरा'।

अंगीरौ–सं०पु० [सं० अंगार] अग्निकण, अंगार, चिनगारी।

अंगीलौ–सं०पु०—बुनने के निमित्त क्रमबद्ध किए हुए लम्बे सीधे सूत (तांणी) को बांधने का खूंटा या मेख।
वि०—अपने स्वभाव या प्रकृति के विरुद्ध आचरण को सहन न करने वाला। (पर्याय०—अंगदार)

अंगुछि–सं०स्त्री० [सं० अंग+प्रोक्षक] १ तौलिया, शरीर पोंछने का वस्त्र, गमछा. २ उत्तरीय, उपवस्त्र. (अंगोछियौ—अल्पा.)

अंगुठी–सं०स्त्री० [सं० अंगुष्ठ] पैर के अनवट के स्थान पर पहिना जाने वाला कांसे को ढाल कर बनाया हुआ गहना।

अंगुरी–सं०स्त्री०—अंगूरों द्वारा बनाई गई शराब।
वि०—अंगूरों के समान हरे रंग वाला।

अंगुळ–सं०पु० [सं० अंगुली] १ उँगली. २ हाथी की सूंड के आगे का भाग. ३ आठ जौ के बराबर लम्बाई का एक नाप. ४ ग्रास या बारहवां भाग (ज्योतिष, सूर्यग्रहण में)।

अंगुळी–सं०स्त्री० [सं०] १ उँगली. २ हाथी की सूंड का अग्र भाग।

अंगुळीत्राण–सं०पु० [सं० अंगुलित्राण] प्राचीन समय में बाण चलाते समय पहिनने के काम आने वाला गोह के चमड़े का बना हुआ एक प्रकार का दस्ताना।

अंगुसट, अंगुस्ट–सं०पु० [सं० अंगुष्ठ] अंगूठा, हाथ या पैर की मोटी अंगुली।

अंगुस्ठासण–सं०पु० [सं० अंगुष्ठासन] योग के चौरासी आसनों में से एक—इसमें घुटने से दोनों पाँव मोड़ कर, एड़ियों को जंघा के निम्न भाग से लगा कर पंजे के ऊपर शरीर का समस्त भार देकर बैठा जाता है।
एक पाँव को पंजे पर बोझ देकर दूसरे पाँव को जिसके पंजे पर बैठे उसके घुटने पर चढ़ाकर बैठने से इसके दो भेद होते हैं।—दक्षिण तथा वांम अंगुस्ठासण।

अंगूठी–सं०स्त्री०—१ मुद्रिका, मुंदरी, छल्ला. २ देखो 'अंगुठी'. ३ सीने के समय दर्जियों के उँगली में पहिनने की लोहे या पीतल की टोपी, आरसी।

अंगूठौ–सं०पु० [सं० अंगुष्ठ] अंगूठा, हाथ या पैर की मोटी उँगली।

अंगूर–सं०पु० [फा०] रसीला और मीठा एक प्रकार का छोटा नरम फल जिसे सुखा कर प्रायः किशमिश, दाख या मुनक्का आदि भी बनाया जाता है। इसकी लता होती है।

कहा०—भवेई अंगूर खाटा है—आसानी से प्राप्त न होने वाली वस्तु की निंदा कर उपेक्षा करने पर कहा जाता है।

अंगूरी–वि० [फा० अंगूर+ई] अंगूर के रंग के समान हल्का हरा।

अंगे-अंगेई–क्रि०वि०—१ बिल्कुल, नितांत, कतई. २ वास्तव में।

अंगेजणौ, अंगेजबौ–क्रि०स० [सं० अंग=शरीर+रा०=हिलना, कांपना +णौ] मंजूर करना, ग्रहण करना, स्वीकार करना।

अंगेजणहार-हारौ (हारी), अंगेजणियौ।

वि०—स्वीकार करने वाला। **अंगेजियोड़ौ**–भू०का०कृ०—स्वीकृत।

अंगेठी–सं०स्त्री०—देखो 'अंगीठी'।

अंगोअंग, अंगोअंगि–वि०—१ पूर्ण. २ ठीक।

क्रि०वि० [सं० अंग+प्रति+अंग] अंग-प्रत्यंग, संपूर्ण अंग, पूर्णरूपेण।

सं०पु०—किसी बात को पूर्णरूप से समझने का भाव।

अंगोछ–सं०पु०—देखो 'अंगोछौ'।

अंगोछी–सं०स्त्री०—१ छोटा तौलिया. २ उत्तरीय।

अंगोछौ–सं०पु० [सं० अंग+प्रोक्षण] १ तौलिया, शरीर पोंछने का वस्त्र, गमछा. २ उत्तरीय, उपवस्त्र। (अंगोछियौ—अल्पा.)

अंगोठी–सं०स्त्री०—देखो 'अंगूठी'।

अंगोटौ–सं०पु० [सं० अंगुष्ट] अंगूठा।

अंगोळइणौ, अंगोळईबौ–क्रि०स० [प्रा०ह्०] स्नान करना (ढो.मा.)

अंगोळणौ, अंगोळबौ–क्रि०स०—स्नान करना, नहाना।

स्नान कराना, नहलवाना।

अंगोळिया–सं०स्त्री०—नाइयों का एक भेद।

अंगोळियौ–सं०पु०—१ स्नानघर. २ पेशाबघर. ३ 'अंगोलिया' शाखा का नाई।

अंगोळी–सं०स्त्री०—१ स्नान।

अंग्रेज–सं०पु० [पुर्त्त० इंग्लेज] देखो 'अंगरेज'।

अंघेड–सं०पु० [सं० अंघ्रि] छोटी जाति की स्त्रियों के पैर के अंगूठे में पहिनने का जेवर विशेष।

अंघियौ–सं०पु०—नेकरनुमा पहिनने का वस्त्र, जांघिया।

अंघ्रप–सं०पु० [सं० अंघ्रिप] वृक्ष (अ.मा.)

अंघ्रि, अंघ्री–सं०पु० [सं० अंघ्रि] १ पैर, चरण. २ चौथा भाग. ३ वृक्ष, वृक्षों की जड़ (अ.मा.)

अंघ्रीयस–सं०पु० [सं० अंघ्रि] पैर, चरण।

उ०—**अंघ्रीयस** खंभ किरि थंभ ऊप, अनि भूप कोप बंधण अनूप।
—रा.रू.

अंचंभ–सं०पु०—१ देखो 'अचंभौ'।

क्रि०वि०—अकस्मात्, अचानक।

अंचल–सं०पु० [सं० अंचल] १ वस्त्र या साड़ी का सामने रहने वाला छोर, पल्ला, आंचल. २ सीमा का समीपवर्ती भाग. ३ किनारा, तट. ४ वस्त्र।

अंचळबंध–सं०पु० [सं० अंचल+बंधन] गठजोड़ा, वर-वधु के वस्त्रों के छोरों को मिलाकर बांधना।

अंचळा–सं०स्त्री०—गठजोड़ा, ग्रंथिबंधन।

उ०—छोडि चौरी हथळेवै छूटै, मन बंधे **अंचळा** मिसि—वेलि.

अंचळौ–सं०पु० [सं० अंचल] एक वस्त्र विशेष जिसे प्रायः साधु या संन्यासी शरीर पर डाले रहते हैं, जो ढीला और बिना आस्तीन या बाँहों के कुर्ते के समान होता है।

अंचित–वि० [सं० अर्चित] पूजित, पूजा हुआ, आराधित (वं.भा.)

अंछ्या–सं०स्त्री० [सं० इच्छा] इच्छा, कामना, चाह।

अंछर–सं०पु० [सं० अक्षर] १ अक्षर. २ जादू-टोना।

सं०स्त्री० [सं० अप्सरा] ३ अप्सरा।

अंछावाळौ–वि० [सं० इच्छा+वाळौ—रा०प्र०] इच्छुक, इच्छान्वित।

अंछया–सं०स्त्री० [सं० इच्छा] अभिलाषा, इच्छा।

अंछया संपत–सं०पु०—कुबेर (अ.मा.)

अंजण–सं०पु० [सं० अंजन] १ सुरमा. २ काजल।

क्रि०प्र०—घालणौ-डालणौ-लगाणौ।

३ लेप।

क्रि०प्र०—करणौ-लगाणौ।

४ रात्रि. ५ एक दिग्गज. (वं.भा.) ६ एक वृक्ष. ७ एक पर्वत. ८ कद्रू से उत्पन्न होने वाले एक सर्प का नाम. ९ माया. १० काला या सुरमई रंग। [अं०—इंजिन] ११ रेल गाड़ी का इंजिन।

वि०—नेत्रों में काजल डालने वाला।

अंजणकेस–सं०पु० [सं० अंजनकेश] दीपक, दिया।

अंजणकेसी–सं०स्त्री० [सं० अंजनकेशी] अंजन के तुल्य श्याम केश वाली स्त्री।

अंजणसळाक, अंजणसळाका–सं०स्त्री० [सं० अंजनशलाका] वह सलाई जिससे सुरमा लगाया जाता हो।

अंजणा–सं०स्त्री० [सं० अंजना] हनुमानजी की माता और केशरी नामक वानर की स्त्री।

अंजणी–सं०स्त्री० [सं० अंजनी] १ देखो 'अंजणा'. २ गुहांजनी।

अंजणेव–सं०पु०—अंजनी पुत्र हनुमान।

अंजणौ, अंजबौ–क्रि०स०—अंजन लगाना, नेत्रों में काजल डालना।

अंजन–सं०पु०—देखो 'अंजण' (रू.भे.)

अंजनकंवार–सं०पु० [सं० अंजना+कुमार] अंजनी पुत्र हनुमान।

अंजना–सं०स्त्री०—देखो 'अंजणा'।

अंजनानंदन–सं०पु० [सं०] अंजनी पुत्र, हनुमान।

अंजनामिका–सं०स्त्री०—नेत्रों का एक प्रकार का रोग विशेष।

अंजनी–सं०स्त्री० [सं०] १ हनुमान की माता और केशरी नामक वानर की स्त्री। सं०पु० [रा०] २ एक प्रकार का घोड़े में होने वाला अशुभ चिन्ह. ३ एक प्रकार का अशुभ घोड़ा (शा.हो.)

अंजनीज–सं०पु०—अंजनी के पुत्र हनुमान।

अंजरूत–सं०पु०—गोंद (अमरत)

अंजळ–सं०पु०—१ देखो 'अंजळी'. २ अन्न-जल, दाना-पानी।
कहा०—अंजळ बड़ौ बळवंत है, काळ बड़ौ सिकारी है—भावी प्रबल है, होनहार अवश्य होता है, मनुष्य की इच्छा का कोई मूल्य नहीं।

अंजळिपुट–सं०पु० [सं०] दोनों हथेलियों को मिला कर बनाया हुआ संपुट।

अंजळी–सं०स्त्री० [सं० अंजलि] १ दोनों हथेलियों को मिला कर संपुट करना, हथेलियों से बना हुआ गड्ढा।
क्रि०प्र०—देणौ-भरणौ।
२ अंजली में आने वाला परिमाण उतना अनाज या वस्तु जिससे एक अंजली भर जाय, प्रस्थ. ३ हथेलियों से निकला हुआ दान या दान का अन्न।

अंजळीउपेत–वि०—करबद्ध (वं.भा.)

अंजळीगत–वि०यौ० [सं० अंजलि+गत्] अंजली या हाथ में आया हुआ, प्राप्त।

अंजळीबंध–वि० [सं० अंजलि+बद्ध] करबद्ध, हाथ जोड़े हुए।

अंजस–सं०पु०—१ अभिमान, गर्व. २ खुशी, प्रसन्नता।
क्रि०प्र०—करणौ-होणौ।

अंजसणौ, अंजसबौ–क्रि०स०—गर्व करना, अभिमान करना।

अंजांम–सं०पु० [फा०अंजाम] १ अंत, परिणाम, फल. २ समाप्ति, पूर्ति।
क्रि०प्र०—होणौ।

अंजार–सं०पु०—एक तीर्थ-स्थान विशेष।

अंजीर–सं०पु० [फा०] गूलर के समान फल वाला एक वृक्ष तथा उसका फल जिसकी गिनती मेवों के अन्तर्गत होती है और पुष्टिकर माना जाता है।

अंजील–सं०स्त्री० [यू० इंजील] ईसाइयों की धर्म पुस्तक।

अंजुरणौ, अंजुरबौ–क्रि०अ०—अंकुरित होना।

अंजूळी–सं०स्त्री०—देखो 'अंजळी'।

अंट–सं०पु०—१ लेख, भाग्य लेख। उ०—विधाता अंट लिखियां बड़ा, भूपत "मानौ" भाग में।—चैनजी वगसूर. २ अधिकार (में), कब्जे (में). ३ धोती की कमर के ऊपर की लपेट. ४ पेंच, गाँठ. ५ शरारत, बदमाशी. ६ कलम का चाकू से निकाला हुआ वह नुकीला भाग जिससे लिखने का कार्य होता है. ७ इसके द्वारा लिखी गई लिखावट. ८ कड़ी (कवच)। उ०—सब सूर सनाहत्ति अंट जड़ी, हय हींस नगारन ठौर पड़ी।—लावारासा

अंट-संट–सं०पु०—१ व्यर्थ का प्रलाप. २ बेतरतीब, अस्तव्यस्त।

अंटाणौ, अंटाबौ–क्रि०स०—धोखा देकर या छल से किसी का धन या वस्तु छीन लेना।
अंटाणहार-हारौ (हारी), अंटाणियौ, अंटावणियौ–वि०—धोखा देकर या छल से किसी का धन या वस्तु छीनने वाला।
अंटाअोड़ौ-अंटायोड़ौ-अंटावियोड़ौ–भू०का०कृ०—छल से प्राप्त किया हुआ।
अंटावणौ, अंटावबौ–अंटाणौ का रू.भे.।

अंटायोड़ौ–भू०का०कृ०—धोखा या भूल से प्राप्त किया हुआ। (स्त्री० अंटायोड़ी)

अंटावणौ, अंटावबौ–क्रि०स०—देखो 'अंटाणौ'।

अंटी–सं०स्त्री० [सं० अंड या अष्ठि, प्रा० अट्ठि] १ उँगलियों के बीच की जगह. २ कमर पर रहने वाली धोती की लपेट या मंडलाकार ऐंठन जिसमें कभी-कभी लोग रुपया-पैसा रखते हैं।
क्रि०प्र०—देणी-मारणी-लगाणी।
कहा०—धन अंटे विद्या कंठै—धन वही काम आयेगा जो अपनी अंटी में है तथा विद्या वही काम आयेगी जो स्वयं के कंठों में स्थित है।
३ शरारत, बदमाशी. ४ तर्जनी या अंगूठे के पास की उँगली के ऊपर मध्यमा या बीच की उँगली चढ़ाकर बनाई गई एक मुद्रा (बालक). ५ भागते या चलते हुए पीछे से किसी के पैर में पैर द्वारा मारी गई टक्कर, लत्ती. ६ सूत या रेशम की गुंडी. ७ सूत लपेटने की लकड़ी. ८ विरोध, बिगाड़, लड़ाई।

अंड–सं०पु० [सं०] १ अंडकोश. २ ब्रह्मांड. ३ सुवृत्त* (डिं.को.) ४ कस्तूरी, मृगनाभि. ५ वह कलश जो शिखर पर रक्खा जाता हो. ६ मकानों की छाजन. ७ कामदेव. ८ कोश।

अंडकटाह–सं०पु०यौ० [सं० अंड+कटाह] ब्रह्मांड, विश्व।

अंडकोस–सं०पु० [सं० अंडकोश] फोता, वृषण, अंड।
पर्याय०—पोतवाळ फोता, अंडोळिया, आंड।

अंडज–सं०पु० [सं०] जीवों की वह जाति जो अंडों से उत्पन्न होती है, यथा—पक्षी, सर्प, मछली, गोह, गिरगिट आदि।

अंडजजळआधार–सं०स्त्री०—मछली। (अ.मा.)

अंडज्ज–सं०पु०—देखो 'अंडज'।

अंडबंड–सं०पु०—ऊटपटाँग या व्यर्थ का प्रलाप, बे सिर-पैर का बकना।
क्रि०प्र०—केणौ-बकणौ।
वि०—अस्त-व्यस्त, इधर-उधर का, असंबद्ध।

अंडबधी, अंडवद्धि, अंधवधी–सं०स्त्री० [सं० अंडवृद्धि] एक प्रकार का रोग विशेष जिसमें अंडकोश बढ़ जाते हैं।

अंडकार, अंडाकती–वि० [अंड+आकार या अंड+आकृति] अंडे की आकृति का, अंडे की शक्ल का।

अंडियौ–सं०पु० [सं० अंड] १ अंडकोश. २ अंडकोशधारी।

अंडी–सं०स्त्री० [सं० एरण्ड] १ एरण्ड का वृक्ष. २ रेंडी, रेंडी के फल का बीज. ३ एक प्रकार का रेशमी वस्त्र।

अंडौ–सं०पु० [सं० अंड] १ अंडज जन्तुओं (मादा) के गर्भाशय से उत्पन्न वह गोल पिंड जिसमें पीछे से बच्चे निकलते हैं।
क्रि०प्र०—देणौ-निकळणौ-फूटणौ।
२ शरीर, देह, पिंड।

अंढौ–सं०पु०—दिन का तीसरा पहर।

अंणद–सं०पु० [सं० आनन्द] हर्ष, खुशी, प्रसन्नता।

अंणहार–सं०स्त्री०—सूरत, शक्ल, आकृति ।
उ०—इण भांति री कांमणी त्यांरा उरस्थळ पाकी नारंगीयां सारीखी **अंणहार** पाके वरन कोमळ कठोर कुच अंसू भींडिमां थकां रहै । —रा.सा.सं.

अंणियाळ–सं०पु० [सं० अणी=नोक] भाला—देखो 'अणियाळ' ।

अंणि–सं०स्त्री० [सं० अनीक] १ फौज. २ बल. ३ नोक. ४ मान, प्रतिष्ठा । (यौ०—अंणीपांणी)

अंत–सं०पु० [सं०] १ समाप्ति, पूर्ति, इति, अवसान. २ अंतकाल, मौत, मृत्यु ।
क्रि०प्र०—आंणी-करणौ-होणौ ।
कहा०—अंत चोखौ तौ सब चोखौ—जिसने अंतिम समय शांति से व्यतीत किया उसने सब कुछ पा लिया. ३ शेष या अंतिम भाग. ४ छोर, सीमा, हद. ५ परिणाम, नतीजा ।
कहा०—अंत खुदा बैर है—हद से अधिक कोई काम अच्छा नहीं या अति सर्वत्र वर्जयेत् ।
६ प्रलय, नाश । [सं० अंतर] ७ अन्तःकरण, हृदय. [रा०] ८ यम, (अ.मा.). ९ आंत, अन्त्र* । उ०—गीध कळं जो चील्ह उर, कंका **अंत** विलाय । तौ भी सौ धक कंत री, मूछां भ्रूंह मिळाय ।—वी.स.
वि०—१ निकृष्ट, नीच । उ०—खांण चार खोहण घरा, जाया जिण दिन जंत, कीधा किण पाखै करम, उत्तम मद्धम **अंत** ।—ह.र.
२ असीम, अपार ।
क्रि०वि०—अन्त में, निदान ।

अंतआखर–सं०पु० [सं० अन्त्याक्षर] शब्द, पद या वर्णमाला का आखिरी वर्ण ।

अंतक–सं०पु० [सं०] १ अन्त या नाश करने वाला. २ यमराज, यम (अ.मा.) ३ शिव, रुद्र. ४ सन्निपात ज्वर का एक भेद. ५ मृत्यु
उ०—जिंहि बळतें बुंदी बहुरि चउ देस धुमाया, सौ हुलकर तेरौ कहां अब **अंतक** आया ।—वं.भा.

अंतकर–सं०पु० [सं० अंतक] १ अन्त या नाश करने वाला. २ यमराज (डिं.को.). ३ शिव, रुद्र ।

अंतकरण–सं०पु० [सं० अन्तःकरण] हृदय, मन, अन्तःकरण ।

अंतकरता–सं०पु० [सं० अंत+कर्त्ता] देखो 'अंतकर' ।

अंतकरम–सं०पु० [सं० अंत+कर्म] अन्त्येष्टि क्रिया, मृत्यु के बाद किया जाने वाला क्रिया-कर्म, मृतक संस्कार ।

अंतकराऐ–सं०पु० [सं० अंतक+राज] यमराज । उ०—केस जरा धोबण करे, धोळा अत ही धोय । **अंतकराऐ** ऐंचतां, हात न मैला होय —बां.दा.

अंतकलोक–सं०पु० [सं० अंतक+लोक] यमलोक ।

अंतकापुर, अंतकापुरी–सं०स्त्री०—१ एक तीर्थस्थान. २ यमलोक, यमपुरी ।

अंतकार, अंतकारक–सं०पु०—अन्त या संहार करने वाला, यमराज ।

अंतकारी–सं०पु० [सं० अन्तक] १ अन्त करने वाला, संहारक ।
सं०स्त्री०—२ अन्त्येष्टि क्रिया ।

अंतकाळ–सं०पु० [सं० अन्त+काल] मृत्यु का समय, मौत, अवसानकाल ।

अंतकिरिया–सं०स्त्री० [सं० अन्त+क्रिया] १ अन्त्येष्टि क्रिया, अन्त करने की क्रिया ।
सं०पु०—२ यमराज, संहारक ।

अंतकुटिल–वि०—कपटी, धोखेबाज, कुटिल ।

अंतकृत, अंतक्रित–सं०पु० [सं० अन्त+कृत] १ अन्त करने वाला, संहारक. २ यमराज ।

अंतग–सं०पु०—१ पारंगत, निपुण । [सं० अन्तक] २ यमराज. ३ मारने वाला ।

अंतगति–सं०स्त्री० [सं० अन्त+गति] १ अन्तिम दशा, अन्तर्गति, २ मौत ।

अंतज–सं०पु० [सं० अन्त्यज] १ शूद्र, नीच कुल का व्यक्ति. २ अछूत, नीच. ३ अन्तिम अक्षर या वर्ण. [सं० अन्त्र] ४ आंत ।
उ०—कोड़ां **अंतज** कढिया, पिंड थाकौ आपांण ।
वि० [सं० अन्त्यज] अन्तका, अन्तिम (अक्षर या वर्ण के लिए)
उ०—वांका चौथा वरग में, अन्तज आखर एक । उणनूं अळगौ राख ही, नर बुधवंता नेक ।—बां.दा.

अंतजथा–सं०स्त्री०—डिंगल गीत-रचना का नियम विशेष जिसमें मुख्य वर्णन, आदि के द्वाले से आरंभ होकर क्रमशः अंत के द्वाले में स्पष्ट हो जाता है ।

अंतड़ी–सं०स्त्री० [सं० अंत्र] आंत ।

अंतत–सं०पु०—यमराज (अ.मा.)

अंतनि–सं०पु० [सं० अंत्र+नि] आंत ।

अंतपर–सं०पु० [सं० अन्तःपुर] जनाना, भीतरी भाग, रनिवास ।

अंतपाळ–सं०पु० [सं० अंतपाल] १ द्वारपाल, संतरी, दरबान. २ सीमांत, प्रहरी. ३ प्रतिहार ।

अंतपुर–सं०पु० [सं० अन्तःपुर] जनाना, भीतरी भाग, रनिवास ।

अंतपुळ–सं०पु० [सं० अंत=अंतिम+रा० पुळ=क्षण, समय] अंतिम समय, अंतकाल ।

अंतबरण–सं०पु० [सं० अन्त्यज+वर्ण] शूद्र, अन्तिम वर्ण ।

अंतमेळ–सं०पु०—वह दोहा छंद जिसके प्रथम व चतुर्थ पद के प्रत्येक पद में ग्यारह मात्रायें तथा दूसरे व तीसरे पद के प्रत्येक पद में तेरह मात्रायें होती है । इसे 'वडौ दूहौ' भी कहते हैं । इसमें तुक प्रथम एवं चतुर्थ पद के अन्त में मिलता है ।

अंतरंग–वि० [सं०] १ भीतर का. २ 'बहिरंग' का विपरीत, मानसिक. ३ अभिन्न, घनिष्ठ (मित्र)
सं०पु०—दिली दोस्त, घनिष्ठ मित्र ।
क्रि०वि०—बीच में ।
उ०—आवें जितनें **अंतरंग** इम दिवस धुमाया ।—वं.भा.

अंतरंगाधार–सं०पु० [सं० अन्तर्गांधार] संगीत का विकृत स्वर जो तीसरे स्वर के अन्तर्गत है।

अंतरंगी–वि०—अभिन्न, घनिष्ट, दिली।

अंतर–सं०पु० [सं०] १ भेद, फर्क, अलगाव, विभिन्नता।
क्रि०प्र०—करणौ-देणौ-पड़णौ-होणौ।
कहा०—मिनखां मिनखां अंतर, केई हीरा केई पत्थर—मनुष्यों में अच्छे व बुरे दोनों होते हैं।
२ मध्यम की दूरी, फासिला, अवकाश. ३ दो घटनाओं के बीच का काल. ४ ओट, आड़, व्यवधान।
क्रि०प्र०—करणौ-लाघणौ-पड़णौ।
५ समय. ६ परदा. ७ छिद्र, छेद, रंध्र (वं.भा.) [अ० इत्र] ८ इत्र। [सं० अंतस] ९ हृदय, अंतःकरण। उ०—जिकौ दोही पिता पुत्रां रौ मिळाप सुणि अंतर में एक जांणि तुरकां रौ तोम त्रासियौ—वं.भा. [सं०अंतःपुर] १० अंतःपुर, रनिवास (ना.डि.को.) [सं० अंत्र] आंत. [रा०] ११ पानी, जल।
वि०—अन्तर्धान, गायब।
क्रि०प्र०—करणौ-होणौ।
क्रि०वि०—अन्दर, भीतर, बीच में। उ०—इंकि निसीथ रुक्ख चढ़ि डाकी, अंतर दुरग गयौ एकाकी।—वं.भा.

अंतरअयण–सं०पु० [सं० अंतर+अयन] १ एक देशविशेष. २ तीर्थों की परिक्रमा।

अंतरख–सं०पु० [सं० अतरिक्ष] देखो 'अंतरिख'।

अंतरगत–वि० [सं० अन्तर+गत] १ भीतरी, अन्तर्भूत. २ गुप्त. ३ सम्मिलित. ४ अन्तःकरण स्थित।

अंतरगति–सं०स्त्री० [सं० अन्तर+गति] मन का भाव, चित्तवृत्ति, भावना, इच्छा।

अंतरगिरा–सं०स्त्री०—अन्तःकरण की ध्वनि, मन की आवाज।

अंतरग्यांन–सं०पु० [सं० अन्तर्ज्ञान] भीतरी ज्ञान, आत्मज्ञान।

अंतरघट–सं०पु० [सं० अन्तर्घट] अन्तःकरण, हृदय, मन।

अंतरचकर, अंतरचक्र–सं०पु० [सं० अन्तर+चक्र] १ दिग्विभागों में पक्षियों के शब्द श्रवण कर शुभाशुभ फल कहने की विद्या (शकुन शा.) २ तंत्रशास्त्रानुसार शरीर के आंतरिक मूलाधारादि कमलाकार छः चक्र।

अंतरछाल–सं०स्त्री० [सं० अन्तर+चाल] वृक्ष के ऊपर की छाल के भीतर की कोमल छाल या झिल्ली।

अंतरजांमी–सं०पु० [सं० अन्तर्यामी] वह जो हरएक के मन की बात जानता है, ईश्वर।

अंतरद्वार–सं०पु०यौ० [सं० अन्तर+द्वार] १ गुप्तद्वार. २ खिड़की।

अंतरदस–सं०स्त्री०यौ० [सं० अन्तर+दिशा] दो दिशाओं के मध्य की दिशा, कोण, विदिशा।

अंतरदसा–सं०स्त्री०यौ० [सं० अन्तर+दशा] १ मन की अवस्था. २ ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों की चाल का विधान।

अंतरदांन–सं०पु० [फा० इत्रदान] इत्र रखने का पात्र।

अंतरदाह–सं०स्त्री० [सं० अन्तर्दाह] भीतरी जलन (एक प्रकार का रोग)

अंतरदिसा–सं०स्त्री०यौ० [सं० अन्तर+दिशा] दो दिशाओं के मध्य की दिशा, कोण, विदिशा।

अंतरद्रस्टी, अंतरद्रस्ठी–सं०स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि] १ अन्तर्ज्ञान, प्रज्ञा. २ आत्मचिंतन।

अंतरधान, अंतरध्यांन–सं०पु० [सं० अन्तर्धान] १ लोप, अदर्शन, तिरोधान, अदृष्ट. २ गुप्त।
क्रि०प्र०—करणौ-होणौ।
वि०—अलक्ष, अदृश्य, अन्तर्हित, लुप्त।
क्रि वि०—१ दूर. २ अलग, पृथक्, विलग. ३ भीतर, अन्दर।

अंतरपट–सं०पु० [सं०] १ परदा, आड़, ओट. २ वह वस्त्र या परदा जो विवाह-मंडप में मृत्यु की आहुति के समय अग्नि और वर-कन्या के मध्य में डाला जाय. ३ छिपाव, दुराव. ४ कपड़ा लपेटने की वह विधि या क्रिया जो धातु या औषधि को फूंकने के प्रथम उसको संपुट कर गीली मिट्टी का लेप करते हुए की जाय; कपड़ कोट. कपड़ मिट्टी।
क्रि०प्र०—करणौ।

अंतरपुरख, अंतरपुरस–सं०पु० [सं० अंतर+पुरुष] १ आत्मा. २ ईश्वर, अन्तर्यामी।

अंतरपुरी–सं०स्त्री०—स्वर्ग।

अंतरबंध–सं०पु०—आत्मज्ञान, आत्मा की पहिचान, अध्यात्म ज्ञान।

अंतरबळी–वि०—जिसमें आत्मिक बल अधिक हो।

अंतरबेर–सं०स्त्री०—अंतिम समय, मृत्युकाल।

अंतरभाव–सं०पु० [सं० अन्तर+भाव] १ अन्तर्गत होना, मध्य में प्राप्ति. २ नाश. ३ तिरोभाव, विलीनता, छिपाव. ४ प्रयोजन, आशय।

अंतरभावणा–सं०स्त्री०—१ ध्यान. चिंता, सोच. २ गुणनफलान्तर से संख्याओं को सही करना (ज्यो.)

अंतरभूत–वि० [सं० अंतर्भूत] अन्तर्गत।
सं०पु०—१ जीवात्मा, प्राण. २ मध्यगत।

अंतरभेद–सं०पु०—देखो 'अंतरवेद'।

अंतरमुख–वि० [सं० अंतर्मुख] १ जिसका मुख भीतर की ओर हो।
सं०पु०—वह फोड़ा जिसका मुख या छिद्र भीतर की ओर हो।
क्रि०वि०—भीतर की ओर प्रवृत्त।

अंतरयांमी–सं०पु०—देखो 'अंतरजांमी'।

अंतररत–सं०स्त्री०—देखो 'अंतररति'।

अंतररति–सं०स्त्री० [सं०] कामशास्त्र के अनुसार स्त्री-प्रसंग के सात प्रकार के प्रमुख आसन, यथा—स्थिति, तियक, सम्मुख, अध, ऊर्ध्व और उत्तान।

अंतरलापिका–सं०स्त्री० [सं० अन्तर्लापिका] वह पहेली जिसका उत्तर उसीके शब्दों या अक्षरों से निकलता हो।

अंतरलीण–वि० [सं० अन्तर्लीन] १ जो मन में ही मग्न हो, आत्म-विलीन. २ भीतर ही छिपा हुआ।

अंतरविकार–सं०पु० [सं० अन्तर्विकार] शरीर के भूख, प्यास आदि धर्म।

अंतरवेग–सं०पु० [सं० अन्तर्वेग] भीतर का वेग, यथा–छींक, पसीना आदि।

अंतरवेद–सं०पु० [सं० अन्तर्वेद] गंगा-यमुना के बीच में स्थित मथुरा के आसपास के प्रदेश का प्राचीन नाम जो यज्ञों की वेदियों के लिए प्रसिद्ध था।

अंतरवेदी–सं०पु० [सं० अन्तर्वेदी] 'अन्तरवेद' का निवासी।

अंतरवेर–सं० स्त्री०—देखो 'अंतरबेर'।

अंतरसंचारी–सं०पु० [सं०] प्रधान और स्थिर मनोविकारों में से किसी की सहायता व पुष्टि करके रस की सिद्धि के लिए मनुष्य के हृदय में बीच-बीच में आने वाले अस्थिर मनोविकार।

अंतरसंपाड़ौ, अंतरसनांन–सं०पु० [सं० अंतर+स्नान] वह स्नान जो यज्ञ-समाप्ति पर किया जाय, अवभृथ स्नान।

अंतरातमा–सं०स्त्री० [सं०अन्तरात्मा] १ जीवात्मा. २ अंतःकरण. ३ ब्रह्म.

अंतराय–सं०पु० [सं०] १ विघ्न, बाधा. २ ज्ञान का बाधक. ३ योग सिद्धि के नौ विघ्न।

सं०स्त्री०—४ भेद, भिन्नता। उ०—ऊँचनीच अंतराय, कीरत कीधी किरतबां, मिनख जमारै मांय, रहे भलाई राजिया। ५ समय, अवधि। उ०—सामंतां रौ वेग कंठीरव झेलियौ जिण अंतराय में चालुक्यराज सावधांन थियौ।—वं.भा.

अंतरायांम–सं०पु० [सं० अन्तरायाम] एक प्रकार का वात रोग जिससे मनुष्य के नेत्र, हिचकी और पसली जकड़ जाती है और मुख से लार टपकती रहती है, शरीर भीतर की ओर कमान जैसा मुड़ जाता है। (अमरत)

अंतराळ–सं०पु० [सं० अंतराल] १ घेरा, मंडल. २ घिरा हुआ स्थान. ३ मध्य, बीच. ४ आकाश (डि.को.) [सं० अंत्र] ५ आंत।

अंतरावळ–सं०पु० [सं० अंत्र+अवलि] आंत, अंत्र।

अंतरि–क्रि०वि०—भीतर, अन्दर, में।

अंतरिक, अंतरिकख, अंतरिक्ष, अंतरिख, अंतरिच्छ, अंतरिछ–सं०पु० [सं० अंतरिक्ष] १ ग्रहों या तारों के बीच का शून्य स्थान, आकाश, आसमान. २ स्वर्ग लोक. ३ एक केतु. ४ एक प्रसिद्ध योगेश्वर. [रा०] ५ ऊँचा स्थान, झूला। उ०—रस दायिनी सुंदरी रमतां, सेज अंतरिख भूमि सम।—वेलि.

वि०—१ अंतर्धान, लुप्त. २ गुप्त, अप्रकट।

उ०—हरिणाखी कंठ अंतरिख हूंती, बिंबरूप प्रगटी बहिरि।—वेलि.

अंतरित–वि० [सं०] १ भीतर किया या रखा हुआ. २ अन्तर्धान. ३ ढका हुआ।

अंतरी–क्रि०वि०—दूर।

अंतरीक, अंतरीख–सं०पु० [सं० अंतरिक्ष] देखो 'अंतरिख'।

अंतरीज–सं०पु० [सं० अंतःकरण] अंतःकरण, हृदय। उ०—राखै तौ नाम जिके अंतरीज, बळै घख त्यांह न मारै बीज।—ह.र.

अंतरीप–सं०पु० [सं०] १ द्वीप, टापू. २ समुद्र मे दूर तक गया हुआ पृथ्वी का नुकीला भाग।

अंतरीय–सं०पु० [सं०] वह वस्त्र जो साड़ी के नीचे पहना जाय, अधोवस्त्र।

अंतरू–सं०पु० [सं० इत्र] इत्र, अतर।

अंतरे–क्रि वि० देखो 'अंतरै' (रू.भे.)

अंतरेवौ–सं०पु०—लहँगे या घाघरे के अधिक नीचा हो जाने के कारण कुछ ऊँचा करने के उद्देश्य से की जाने वाली एक प्रकार की सिलाई या टांका जो लहँगे का कपड़ा इस तरह मोड़ कर लगाया जाता है कि दूर से दिखाई नहीं पड़ता।

अंतरै–क्रि०वि० [सं० अंतर] १ बाद में। उ०—वहि मिळी घड़ी जाइ घणा वांछता, घणा दीहां अंतरै घरि।—वेलि. २ मध्य में, बीच में। उ०—आयौ अंस खेड़ि अरि सेन अंतरै, प्रथिमी गति आकास पथ।—वेलि. ३ दूर, अन्तर पर. ४ अगाड़ी।

अंतरैतंत–सं०पु —अंत समय।

अंतरौ–सं०पु० [सं० अंतरा] १ किसी गीत या गायन का स्थायी टेक के अतिरिक्त अन्य पद या चरण. २ वह ज्वर जो एक दिन के अंतर से आता हो. ३ भेद, फर्क। उ०—हंस बगला हाल सूं जिम अंतरौ जगाय।—बां.दा. ४ दूरी. ५ बिछोह, वियोग।

अंतविदारण–सं०पु० [सं०] सूर्य या चन्द्र ग्रहण के दस प्रकार के मोक्षों में से एक।

अंतस–सं०पु० [सं० अंतस्] अन्त.करण, हृदय, चित्त, मन।

अंतसमय, अंतसमै, अंतसमौ–सं०पु० [सं० अंत+समय] अन्तिम समय, मृत्यु काल।

अंतस्थ–वि० [सं०] भीतरी, अन्दर की ओर स्थित।

अंतहकरण, अँतहकरण–सं०पु० [सं० अन्तःकरण] १ हृदय, अन्तरात्मा, मन। उ०—इण रीति सोमेस्वर री पाटरांणी कमळा बीसळदेव रा बर रै अनुसार आपरा अँतहकरण रौ आसय सफळ कीधौ।—वं.भा. २ विवेक, नैतिक बुद्धि।

अंतहपुर, अंतहपुरि, अंतहपुरी–सं पु० [सं० अन्तःपुर] जनाना, भीतरी भाग, रनिवास।

अंताखरी–सं०पु० [सं० अंत्याक्षरी] १ वह दूसरा पद्य या छंद जो पहले कहे हुए श्लोक या छंद (पद्य) के अंतिमाक्षर से आरम्भ हो. २ उक्त रीति के अनुसार किया गया पद्य-पाठ।

अंतानुप्रास–सं०पु० [सं० अंत्यानुप्रास] तुकांत. तुकबन्दी।

अंताळ, अंतावळ–सं०स्त्री०—शीघ्रता, जल्दबाजी।

क्रि०प्र०—करणी-होणी (मि० उतावळ)

अंति–क्रि०वि० [सं० अंत] अन्त में, आखिर में। उ०—कोकिल निसुर

प्रसेद ग्रोसकरण, सुरति ग्रंति मुख जिम सुत्री ।—वेलि.

अंतिक–क्रि०वि०—समीप, निकट । उ०—दुरगपुर री प्रतिनिधि इणारा अग्रज इंद्रसाळ रै **अंतिक** आलोचि उर द्रंग दीधौ ।—वं.भा.

अंतिम–वि० [सं०] १ सबसे पीछे का या बाद का, आखिरी ।

यौ०—अंतिम जात्रा ।

२ सबसे बढ़ कर ।

अंतिमजातरा, अंतिमयातरा, अंतिमयात्रा–सं०स्त्री० [सं० अंतिमयात्रा] मृत्यु, महाप्रस्थान, मरण ।

अंतेउर, अंतेउरी–सं०पु० [सं० अंतःपुर] १ रनिवास, अंतःपुर, जनानखाना ।

सं०स्त्री० [रा०] २ अंतःपुर में निवास करने वाली स्त्री, रानी, ठकुरानी । उ०—धन धन जीवौ धणी, धनौ 'कुसियाळ' **अंतेउर** ।

—अरजुनजी बारहठ

अंतबेर–सं०पु० [सं० अंतिम+बेला] १ अंतिम समय, मृत्युकाल । [सं० अंतःपुर] २ देखो 'अंतेउर' (१)

अंतेवर, अंतेवरि–सं०पु० [सं० अंतःपुर] देखो 'अंतेउर' ।

अंतेवासी–सं०पु० [सं०] गुरु के समीप रहने वाला विद्यार्थी ।

अंतेस्टी–सं०स्त्री० [सं० अंत्येष्ट्री] शव-दाह से सपिंडन तक का कृत्य, मृतक कर्म, अंतिम संस्कार ।

अंतैपुर–सं०पु० [अंतःपुर] देखो 'अंतहपुर' ।

अंत्यज–सं०पु० [सं०] अंतिम वर्ण में उत्पन्न व्यक्ति, शूद्र ।

वि०—१ आततायी । उ०—इसड़ा अनरथ रा करणहार अंत्यज पुळियार होई जीवता रहि जावै ।—वं.भा. २ नीच ।

अंत्यविपुला–सं०स्त्री० [सं०] आर्याछंद का एक भेद विशेष जिसे अंत्यविपुला-महाचपला, अंत्यविपुला-जघनचपला या अंत्यविपुला-मुखचपला भी कहते हैं ।

अंत्याक्षरी–सं०पु० [सं०] देखो 'अंताखरी' ।

अंत्यानुप्रास, अंत्यानुपरास–सं०पु० [सं० अंत्यानुप्रास] १ किसी पद्य के चरणों में अंतिम अक्षरों का मेल, तुकांत. २ शब्दालंकार के अंतर्गत एक प्रकार का भेद विशेष ।

अंत्येस्टी–सं०स्त्री० [सं० अंत्येष्टि] देखो 'अंतेस्टी' ।

यौ०—अंत्येष्टी संस्कार ।

अंत्र–सं०पु० [सं०] आंत ।

अंत्रजांमी–सं०पु०—अन्तःकरण की प्रवृत्तियों को जानने वाला । (स्त्री०—अंत्रजांमण रू.भे.—अंतरजांमी)

अंत्रवधी–सं०स्त्री० [सं० अंत्र+वृद्धि] आंत उतरने का एक रोग विशेष (अमरत)

अंत्राळ–सं०पु० [सं० अंत्र] आंत, अंत्र ।

अंत्राळजी–सं०स्त्री० [सं० अंत्रालजी] प्रायः वात और कफ के प्रकोप से होने वाली पीब से भरी एक प्रकार की गोल फुंसी (वैद्यक; अमरत)

अंत्रावळि, अंत्रावळी–सं०स्त्री० [सं० अंत्रावलि] अंत्र, आंत ।

अंत्रावाळ, अंत्रि–सं०स्त्री० [सं० अंत्र+अवलि] आंत, अंत्र ।

अंद–सं०पु०—पाप, पातक, दोष ।

अंद, अंदक–सं०पु० [सं० अंदु, अंदुक] हाथी का पैर बांधने का रस्सा ।

—वं.भा.

अंदग्रो–सं०पु० [सं० अंदुक] हाथी के पैर में डालने का कांटेदार यन्त्र (रू०भे०—अंदुक)

—वं.भा.

अंदक–सं०पु० [सं० अंधक] देखो 'अंधक' ।

अंदर–सं०पु० [सं० इंद्र] इन्द्र (डि.को.)

क्रि०वि० [फा०] भीतर ।

अंदरी–वि० [फा०] भीतरी, अन्दर का ।

सं०स्त्री० [सं० इन्द्रिय] इन्द्रिय ।

अंदरूणी, अंदरूनी–वि० [फा० अंदरूनी] भीतरी, अन्दर का ।

अंदलोक–सं०पु० [सं० इन्द्र+लोक] सुरलोक, स्वर्ग, देवलोक ।

अंदाज–सं०पु० [फा०] १ अटकल, अनुमान. २ नाप-जोख. ३ ढंग, ढब. ४ मटक, हाव, चेष्टा ।

क्रि०प्र०—करणौ-लगाणौ-होणौ ।

अंदाजन–क्रि०वि० [फा०] अनुमान से, लगभग, करीब ।

अंदाजौ–सं०पु० [फा० अंदाज] अटकल, अनुमान, तखमीना ।

अंदाता–सं०पु० [सं० अन्न+दातृ] अन्न देने वाला, अन्नदाता ।

अंदियारौ–सं०पु० [सं० अंधकार, प्रा० अंधआर, अप० अंधार] अंधेरा । अंधियारा ।

अंदु–सं०पु० [सं० इंदु] १ चंद्रमा. २ देखो 'अंदग्रो'. ३ देखो 'अंदुक' ।

अंदुग्रौ–सं०पु० [सं० अंदुक] देखो 'अंदग्रो' ।

अंदुक–सं०पु० [सं०] १ देखो 'अंदग्रो'. २ स्त्रियों के पैरों में पहनने का एक आभूषण विशेष, पायजेब ।

अंदेस, अंदेसौ–सं०पु० [फा० अंदेशा] १ आशंका, भय. २ संशय, संदेह. ३ अनुमान. ४ सोच, चिंता, असमंजस. ५ आगा-पीछा ।

क्रि०प्र०—करणौ-होणौ ।

अंदोळणौ, अंदोळबौ–क्रि०स०—आंदोलित करना, विलोड़ित करना, इधर-उधर करना । **अंदोळिग्रोड़ौ, अंदोळियोड़ौ, अंदोळ्योड़ौ**–भू०का०कृ०—आंदोलित किया हुआ, विलोड़ित । **अंदोळीजणौ, अंदोळीजबौ**—कर्म वा० रू०—आंदोलित किया जाना । भाव वा०रू०—आंदोलित हुआ जाना ।

अंद्र–सं०पु० [सं० इंद्र] इंद्र, पुरन्दर, सुरपति—(डि.को.)

अंद्रजीत–सं०पु० [सं० इन्द्रजीत] इन्द्र को जीतने वाला, मेघनाद ।

अंद्रसस्त्र–सं०पु० [सं० इन्द्र+शस्त्र] इन्द्र का एक शस्त्र, वज्र ।

अंद्रासण–सं०पु० [सं० इन्द्रासन] १ इन्द्र का आसन. २ ऐरावत हाथी ।

अंद्री–सं०स्त्री० [सं० इन्द्रिय] इन्द्रिय, इन्द्री ।

अंध–वि० [सं०] १ नेत्रहीन, अन्धा. २ अज्ञानी, मूर्ख, अविवेकी. ३ अचेत, असावधान. ४ उन्मत्त, मस्त, मतवाला ।

सं०पु०—१ नेत्रविहीन प्राणी, अंधा, सूरदास. २ जल. ३ अन्ध-

कार. ४ एक मुनि. ५ कवियों के पथ के विरुद्ध चलने का काव्य सम्बन्धी दोष. ६ शिकारी, बहेलिया. ७ दक्षिण का एक प्रान्त आंध्र. ८ डिंगल-गीतों में उक्तियों के रूप के बिगड़ने से होने वाला साहित्यिक दोष—(र.रू.)

अंधक–सं०पु० [सं०] १ नेत्रहीन मनुष्य, अन्धा. २ कश्यप और दिति का पुत्र एक दैत्य।

अंधकरप, अंधकरिप–सं०पु० [सं० अंधक+रिपु] अंधक नामक दैत्य के शत्रु, महादेव।

अंधकरिम–सं०पु० [सं० अंधक+रिपु] अंधक नामक दैत्य के शत्रु महादेव।

अंधकार–सं०पु० [सं०] १ अंधेरा. २ पाताल (डिं.नां.मा.) ३ शंकर (अ.मा.)

अंधकारी–सं०स्त्री० [सं०] एक रागिनी (संगीत)

अंधकाळ–सं०पु० [सं० अंध+काल] अंधेरे के समय।

अंधकूप–सं०पु० [सं० अंध+कूप] १ वह कुंआ जो सूखा हो व घास-फूस से ढका हो. २ एक नरक का नाम।

अंधखोपड़ी–सं०उ०लिं०—बुद्धिरहित मस्तिष्क वाला, मूर्ख, नासमझ।

अंधड़–सं०स्त्री० [सं० अंध+ड़–रा०प्र०] १ गर्द मिली हुई तीव्र झोंकेदार वायु, वेगयुक्त हवा. २ आंधी, तूफान।

अंधता–सं०स्त्री० [सं०] १ अंधापन, दृष्टिहीनता. २ नेत्रों का एक रोग विशेष (अमरत)

अंधतामिस्त्र–सं०पु० [सं०] इक्कीस नरकों के अंतर्गत घने अंधकार वाला नरक।

अंधताइत–सं०पु० [सं० अंधक+दैत्य] अंधकासुर नामक दैत्य।

अंधधुंध–सं०स्त्री० [सं० अंध+रा०–धुंध] १ अन्याय. २ गड़बड़ी. ३ धींगाधींगी।

क्रि०वि०—१ अंधाधुंध, विचाररहित. २ अधिकता से।

अंधन–सं०पु०—अंधा, नेत्रहीन।

अंधपरंपरा–सं०स्त्री० [सं० अंध+परंपरा] बिना किसी विचार के पुरानी चाल का अनुकरण, भेड़ियाधसान।

अंधपूतना–सं०स्त्री०—बालकों का एक रोग विशेष।

अंधबाई–सं०स्त्री [सं० अंध+वायु] १ अंधावत, एक रोग. २ आंधी, तूफान।

अंध-भाव–सं०पु०—अंधापन।

अंधळ–वि० [सं० अंध+ळ–रा०प्र०] अन्धा, नेत्रहीन।

अंधळौ–वि० [सं० अंधळी] अन्धा।

अंधबिसवास–सं०पु० यौ० [सं० अंधविश्वास] बिना विचार किए हुए किसी बात में विश्वास कर निश्चय करना, विवेकशून्य धारणा।

अंधसुत–सं०पु०—१ अन्धे का पुत्र. २ धृतराष्ट्र के पुत्र, यथा–दुर्योधन, दुःशासन आदि।

अंधातमस–सं०पु० [सं० अंधतामिस्र] अंधकार, अंधेरा। (डिं.को.)

अंधाधुंध–क्रि०वि०—१ बेतहाशा. २ बिना विचारे. ३ अधिकता से।

अंधाबाळ–वि०—लोभी, लालची।

अंधायतर–सं०पु०—वेग (अ.मा.)

अंधार–सं०पु० [सं० अंधकार] अंधार, तिमिर।

अंधारक–सं०पु० [सं०] अंधेरा, तिमिर।

अंधारखातौ–सं०पु० यौ०—देखो 'अंधेरखातौ'।

अंधारव–सं०पु० [सं० अंधकार] गहन अंधकार, गहरा अंधकार।

अंधारी–सं०स्त्री० [सं० अंधकार+ई–रा०प्र०] १ अन्धड़, आंधी. २ कृष्ण पक्ष की अंधेरी रात्रि. ३ अन्धेरा. ४ मूर्छा. ५ हाथी के कुम्भस्थल का आवरण। उ०—इभ कुम्भ अंधारी कुच सु कंचुकी, कवच संभु कामक कळह।—वेलि.

वि०—अन्धियारी।

कहा०—अंधारी रात में मूंग काळा अन्धेरे में सब कुछ एकाकार हो जाता है।

अंधारु, अंधारूं, अंधारू–सं०पु० [सं० अन्धकार] अन्धकार, अन्धेरा।

अंधारौ–सं०पु० [सं० अन्धकार] १ अन्धकार, अंधेरा।

क्रि०प्र०—करणौ-पड़णौ-होणौ।

कहा०—अंधारै में किसो कांन में कवो जावै स्वभाव, आदत अथवा प्रकृतिजन्य कार्य अन्धेरे में भी किए जा सकते हैं। उनके लिए रोशनी की आवश्यकता नहीं होती।

२ धुंधलापन।

अंधारोपख–सं०पु० [सं० अंधार+पक्ष] कृष्णपक्ष (चंद्रमास)

अंधाहुली–सं०स्त्री०—एक प्रकार का पौधा, अर्कपुष्पी, सूर्यमाली।

अंधियार–सं०पु० [सं० अंधकार, प्रा० अंधआर, अप० अंधयार] अंधेरा, अंधकार।

अंधियारणौ, अंधियारबौ–क्रि०स० [सं० अंधकार] अंधेरा करना।

अंधियारणहार-हारौ (हारी), **अंधियारणियौ**–वि०—अंधेरा करने वाला।

अंधियारिओड़ौ, अंधियारियोड़ौ, अंधियारयोड़ौ–वि०—अंधकार किया हुआ। **अंधियारीजणौ, अंधियारीजबौ**–भाव वा०रू०— अंधेरा होना।

अंधियारियोड़ौ–भू०का०कृ०—अन्धकार किया हुआ।

अंधियारी–सं०स्त्री० [सं० अंधकार+ई–रा०प्र०] अंधेरा, अंधकार।

वि०—१ प्रकाशरहित. २ कृष्णपक्ष की, कृष्णपक्ष संबंधी।

अंधियारौ–सं०पु० [सं० अंधकार] देखो 'अंधियार'। उ०—बिन पिया जोत मंदिर अंधियारौ दीपक दाय न आवै।—मीरां

अंधियारोपख–सं०पु० [सं० अंधकार+पक्ष] कृष्णपक्ष।

अंधियावणौ–वि० [सं० अंधकार] अंधकारपूर्ण, अंधकारयुक्त।

अंधीझाड़–सं०पु०—एक प्रकार की घास जो औषधि के प्रयोग में आती है।

अंधेर–सं०पु० [सं० अंधकार] १ अन्याय. २ उपद्रव. ३ गड़बड़ी. ४ कुप्रबन्ध. ५ अंधाधुंध।

कहा०—अंधेर नगरी अणबूझ राजा, टकै सेर भाजी और टकै सेर खाजा—बड़ा भारी अन्याय, अराजकता, जहां भले-बुरे सब के साथ एकसा बर्ताव हो।

अंधेरखातौ–सं०पु० [सं० अंधकार+फा० खातो] १ गड़बड़ हिसाब-किताब, व्यतिक्रम. २ अन्यथाचार, कुप्रबन्ध. ३ अविचार. अन्याय।

अंधेरी–सं०स्त्री० [सं० अंधकार+ई-रा०प्र०] १ अंधकार, तम. २ अंधेरी रात्रि. ३ आंधी, अंधड़।

वि०—१ अंधकारयुक्त. २ अंधकार के समान।

अंधेरौ–सं०पु० [सं० अंधकार] देखो 'अंधारौ'।

अंधौ–सं०पु० [सं० अंध] देखो 'आंधौ'।

अंधोदरपण–सं०पु० [सं० अंध+दर्पण] धुंधला दर्पण।

अंधोधुंध–क्रि०वि०—देखो 'अंधाधुंध'।

अंध्यार–सं०पु० [सं० अंधकार] अंधेरा, अंधकार।

अंध्यारौ–वि० [सं० अंधकार] अंधकारयुक्त।

सं०पु० (स्त्री० अंध्यारी) अंधेरा।

अंध्र–सं०पु० [सं०] १ दक्षिण का एक प्रान्त, आन्ध्र. २ शिकारी (अ.मा.)

अंन–सं०पु० [सं० अन्न] अनाज, अन्न।

अव्यय [रा०] और।

वि० [रा०] अन्य।

अंनदाता, अंनदातार–सं०पु० [सं० अन्न+दातृ] १ अन्न दान करने वाला. २ पोषक, प्रतिपालक. ३ मालिक, स्वामी।

अंनपूरणा–सं०स्त्री० [सं० अन्नपूर्णा] १ अन्न की अधिष्ठात्री देवी. २ दुर्गा का एक नाम. ३ काशीश्वरी, विश्वेश्वरी. ४ चारण कुलोत्पन्न बरवड़ी देवी का एक नाम।

अंनार–सं०स्त्री० [फा० अनार] दाड़िम नामक फल तथा उसका वृक्ष-विशेष।

अंब–सं०पु० [सं०] १ शिव, महादेव (ना.डिं.को.) [सं० अंबक] २ नेत्र, नयन, [सं० अंबुधि] ३ समुद्र (अ.मा) [सं० अंबु] ४ जल। उ०—नैण नीरज, में अंब बहे रे गंगा बहि जाती।—मीरां ५ चंद्रमा [सं० अंबुद] ६ बादल [सं० आम्र] ७ आम का वृक्ष या उसका फल। उ०—मारगि मारगि अंब मोरिया, अंबि अंबि कोकिल आलाप।—वेलि. [सं० अंबर] ८ आकाश. ९ वस्त्र।

सं०स्त्री० [सं० अंबा] १० उमा, पार्वती। उ०—अंब हुकम गई अंब अराधण, सुख-सागर दरसायौ हे माय।—गीत रां.। ११ दुर्गा. १२ धरती. १३ शक्ति. १४ माता, जननी। उ०—आज कहौ तौ आप जाइ आवूं, अंब जात्र अंबिका तणी।—वेलि. [सं० अंबु] १५ कांति।

अंबक–सं०पु० [सं०] आंख, नेत्र। उ०—समळी और निसंक भख, अंबक राह म जाह।—बी स.

अंबकास–सं०पु० [अ० आमखास] देखो 'अंबखास'।

अंबकेसर, अंबकेस्वर–सं०पु० [सं० अंबिकेश्वर] महादेव का एक नाम।

अंबखास–सं०पु० [अ० आमखास] महलों के भीतर का वह भाग जहां राजा या बादशाह बैठते थे।

अंबज–सं०पु० [रा०] १ श्वेत रक्त वर्ण* (डिं.को.) [सं० अंबुज] २ कमल।

अंबध, अंबधि–सं०पु० [सं० अंबुधि] समुद्र, सागर। (अ.मा.; डिं. नां.मा.)

अंबनयर–सं०पु०—जयपुर से छः मील दूर आमेर नामक कस्बा (प्राचीन)

अंबनिध–सं०पु० [सं० अंबु+निधि] समुद्र, सागर।

अंबपुर–सं०पु०—देखो 'अंबनयर'।

अंबर–सं०पु० [सं०] १ वस्त्र, कपड़ा, पट। उ०—धरती पड़यौ ढिगास अंबर अंबर सूं अड़यौ, आयो पूरण आस सही बजाजी सांवरो।—रांमनाथ कवियौ २ आकाश, आसमान।

कहा०—१ अंबर दूभै भूत कमावै, आकासी धन आपे आवै—सब काम मुफ्त में होकर बिना प्रयास अर्थ-प्राप्ति होती है. २ कपास. ३ एक प्रकार का इत्र. ४ आमेर नगर. ५ अमृत. ६ उत्तरी भारत का एक प्राचीन प्रदेश. ७ बादल, मेघ [सं० आम्र] ८ आम का फल तथा उसका वृक्ष। उ०—'अंबर मोरीजै छै। कूंपळां फूटीजै छै। वणराई मंजरी छै।—रा.सा. सं.

अंबरचर–वि० [अंबर+चर] आकाश में विचरण करने वाला, नभचर।

अंबरडंबर–सं०पु० [सं० अंबर+डंबर] १ सूर्यास्त का समय. २ संध्या की लालिमा।

अंबरबेलि–सं०स्त्री० [सं०] देखो 'अमरबेल'।

अंबरमणि–सं०पु० [सं० अंबर+मणि] सूर्य्य।

अंबररस–सं०पु० [सं० आम्ररस] आमों का रस।

अंबरसरीखौ–सं०पु० [सं० अंबर=आकाश रा० सरीखौ=समान] एक प्रकार का शुभ रंग का घोड़ा (शा.हो.)

अंबराळ–सं०पु०—आकाश, आसमान (डिं.नां. मा.)

अंबरीक, अंबरीख, अंबरीस–सं०पु० [सं० अंबरीष] १ सूर्य. २ सूर्य-वंशी एक पौराणिक राजा. ३ भाड़।

अंबरीसक–सं०पु० [सं० अंबरीसक] भाड़।

अंबवेळा–सं०पु० [सं० अंबु+वेला] समुद्र, सागर।

अंबवौ–सं०पु०—देखो 'अंबुवौ'।

अंबस्ट–सं०पु० [सं० अंबष्ठ] कायस्थों का एक भेद।

अंबस्टा–सं०स्त्री० [सं० अंबष्ठा] मालती (अ.मा.)

अंबहर–सं०पु० [सं० अंबु+धर] १ इन्द्र. २ बादल. ३ समुद्र (अ.मा.) [सं० अंबु+हरति] ४ सूर्य. ५ अग्नि. [सं० अंबर] ६ आकाश।

अंबहरि–सं०पु० [सं० अंबर] आकाश। उ०—राजति राजकुंअरि राय अंगण, उडीयण वीरज अंबहरि।—वेलि.

अंबा–सं०स्त्री० [सं०] १ माता, जननी. २ पार्वती. ३ देवी, दुर्गा. ४ काशी नरेश की बड़ी कन्या जिसे भीष्मपितामह अपने भाई विचित्रवीर्य्य के लिए हर लाए थे और वह भीष्म से बदला लेने के लिए बाद में शिखंडी के रूप में उत्पन्न होकर भीष्म की मृत्यु का कारण हुई. ५ आम (अ.मा.) ६ शीतला रोग की अधिष्ठात्री एक देवी विशेष। वि. वि. देखो 'सीतळा'।

अंबाड़ी–सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का पौधा जिसकी छाल के रेशे से रस्सियां बुनी जाती हैं। [अ० अमारी] २ हाथी की पीठ पर रक्खा जाने वाला हौदा।

अंबाजी–सं०स्त्री०—१ देखो 'अंबा' (१, २, ३,) २ दांता राज्य की कुल-देवी।

अंबानेर–सं०पु०—देखो 'अंबवयर'।

अंबापोहण–सं०पु० [सं० अंबा=शीतलादेवी+रा० पोहण=सवारी] गधा (अ.मा.)

अंबाय–सं०स्त्री० [सं० अंबा] दांता राज्य की आराध्य देवी 'अंबा'।

अंबार–सं०पु० [फा०] १ ढेर, समूह, पुंज। उ०—आखै कवि ईसर तेज **अंबार**।—ह.र.

क्रि०वि० [रा०] अभी, अब।

अंबारत, अंबारथ–सं०स्त्री [अ० इमारत] बड़ा और पक्का मकान, विशाल भवन। उ०- मिल गया 'पाल' 'बूढ़ो' मुगत मोखतणी **अंबारतां**।—पा.प्र.

अंबारी–सं०स्त्री०—देखो 'अंबाड़ी'।

अंबारोह–सं०पु० [सं० अंबोरुह] कमल, पंकज।

अंबालिका–सं०स्त्री० [सं०] १ माता, मां. २ मालती लता. ३ काशी-राज की सबसे छोटी कन्या जिसे भीष्मपितामह अपने भाई विचित्र-वीर्य्य के लिए हर लाये थे और राजा पांडु के पीछे यह अपनी सास सत्यवती के साथ वन में चली गई थी।

अंबि–सं०स्त्री० [सं० अंबा] १ माता, जननी. २ दुर्गा. ३ धरती. ४ शक्ति. ५ उमा, पार्वती।

अंबिका–सं०स्त्री० [सं०] १ माता, जननी. २ देवी, दुर्गा, भगवती. ३ पार्वती. ४ जैनियों की एक देवी. ५ काशीराज की मध्यमा कन्या जिसे भीष्मपितामह अपने भाई विचित्रवीर्य्य के लिए हर लाए थे। यह धृतराष्ट्र की माता थी।

अंबिकालय–सं०पु० [सं० अंबिका+आलय] अंबिका देवी का मंदिर।

अंबिकावन–सं०पु० [सं० अंबिकावन] पुराण प्रसिद्ध इलाबूत खंड जहां जाने से पुरुष स्त्री हो जाते थे।

अंबु–सं०पु० [सं० अम्बु] १ पानी, जल. २ चार की संख्या*. ३ जन्म-कुण्डली के बारह स्थानों में से चतुर्थ स्थान।

सं०स्त्री०—४ कांति।

अंबुआळ–वि० [सं० अंबु=कांति] कांतिवान, तेजस्वी।

सं०पु० [रा०] वीर पाबू राठौड़ का एक नाम। उ०—भुजाळ **अंबुआळ** फेर भीच चंद्रभांण नै।—पा.प्र.

अंबुओ–वि०—देखो 'अंबुवौ'।

अंबुज–सं०पु० [सं०] १ वह जो जल से उत्पन्न हो. २ कमल. ३ बेंत. ४ शंख. ५ घोंघा. ६ ब्रह्मा. ७ वज्र. ८ एक सामुद्रिक चिन्ह।

अंबुजसुत–सं०पु०यौ० [सं० अंबुज+सुत] कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा।

अंबुजा–सं०स्त्री० [सं०] एक रागिनी विशेष (संगीत)

अंबुजात–सं०पु० [सं०] कमल।

अंबुजासण, अंबुजासन–सं०पु० यौ० [सं० अंबुज+आसन] जिसका कमल पर आसन हो, ब्रह्मा।

अंबुद–सं०पु० [सं०] जल देने वाला, बादल, मेघ।

अंबुधर–सं०पु० [सं०] १ पानी को धारण करने वाला, बादल. २ इंद्र।

अंबुधि–सं०पु० [सं०] सागर, समुद्र। उ०—**अंबुधि** सात कहावत हे क्षिति, स्रोण को सिंधु नयौ कद सूझ्यौ।—पदमसिंह री बात

अंबुनाथ–सं०पु० [सं०] समुद्र सागर।

अंबुनिधि–सं०पु० [सं०] १ बादल, मेघ. २ समुद्र।

अंबुप–सं०पु० [सं०] १ समुद्र, वरुण. शतभिषा नक्षत्र।

अंबुपत, अंबुपति, अंबुपती–सं०पु० [सं० अंबुपति] समुद्र, सागर।

अंबुवाह–सं०पु० [स० अंबु+बाह] बादल।

अंबरासी–सं०पु० [सं० अंबु+राशि] समुद्र, सागर।

अंबुवाह–सं०पु०—देखो 'अंबुवाह'।

अंबुवौ–वि०पु०—गहरे खाकी रंग का सा।

सं०पु०—एक रंग विशेष जो गहरे खाकी रंग का सा होता है।

अंबुसायी–सं०पु० [सं० अंबुशायी] १ विष्णु. २ जल. ३ चार की संख्या* ४ असुर. ५ पितर।

अंबू–सं०पु० [सं० अंबु] देखो 'अंबु' (अल्पा०–अंबूड़ौ—रू.भे.)

उ०—आस धरंदा आज सौ, मिळियो जोग दिखाय। हम भूखे तुझ नेह के, **अंबूड़ा** ज चखाय।—जलाल बूबना री बात

अंबूवाळ–सं०पु०—देखो 'अंबुआळ'।

अंबोद–सं०पु० [सं० अंबुद] बादल, मेघ।

अंभ–सं०पु० [सं० अंभस्] १ जल, पानी. २ लग्न से चतुर्थ राशि. ३ चार की संख्या*. ४ देव. ५ असुर. ६ राशि. ७ पितर. ८ बादल।

अंभनिधि–सं०पु० [सं० अंभ+निधि] सागर, समुद्र।

अंभोज–सं०पु० [सं०] १ कमल. २ चंद्रमा. ३ मोती।

अंभोद–सं०पु० [सं०] बादल, मेघ।

अंभोनिधि–सं०पु० [सं०] समुद्र, सागर।

अंभोरासि–सं०पु० [सं० अंभोराशि] समुद्र, सागर।

अंभोरुह, अंभोरू, अंभोरूह–[सं० अंभोरूह] कमल।

अंभोसह–सं०पु०—कमल।

अंमणीमांण–सं०पु०—देखो 'अमलीमांण' (ल.पि.)

अंमत–सं०पु० [सं० अमृत] १ दूध (अ.मा.) २ जल. ३ अमृत ४ दो दीर्घ के बीच लघु सहित पाँच मात्राओं का नाम ऽ।ऽ (डिं.को.)

अंम्हां–सर्व०—हम।

अंबर–सं०पु० [सं० अंबर] वस्त्र (अ.मा.)

अंवळउ, अंवळऊ–वि० [प्रा०रू०] १ उलटा. २ टेढ़ा. प्रसवकाल में बच्चे का टेढ़ा होकर जन्म स्थान पर आना. ४ दुखी, व्यथित।

उ०—सज्जण चाल्या हे सखी, पड़हउ वाज्यउ द्रंग।
काँही रळी वधामणां, काँही अंवळउ अंग।—ढो.मा.

अंवळाई–सं०स्त्री०—१ चक्कर, वक्र मार्ग, घूम. २ वक्रता, टेढ़ापन. ३ कुटिलता।

अंवळौ–वि०पु०—विरुद्ध, टेढ़ा। उ०—खिमत करै जिम खांन, वीरम जिम अंवळौ वहै।—गो.रू.

कहा०—१ अँवळौ आडो बैठणौ—खुद संकट में पड़ कर भी किसी की सहायता करना। २ जे सांई संवळौ होय तौ अंवळा होय अनेक—अगर ईश्वर अपनी सहायता पर है तो सब विरुद्ध हों तब भी क्या हो सकता है।

अंवार–सं०स्त्री०—१ देरी, बिलम्ब. २ अवसर. ३ झड़बेरी के कटे हुए झाड़ों के समूह का गोलाकार रखने का ढंग।

अंवारणौ–सं०पु०—१ 'अंवारणौ' क्रिया का भाव या क्रिया. २ वह पदार्थ जिसके द्वारा यह क्रिया संपादित की जाय।

अंवारणौ, अंवारबौ–क्रि०स०—प्रेत-बाधा या रोग-शांति के हेतु किसी व्यक्ति के शरीर के चारों ओर कोई पदार्थ घुमा कर किसी को दान में देना अथवा फेंक देना।

अंवारणहार-हारौ (हारी), अंवारणियौ—वि०।

अंवारीजणौ, अंवारीजबौ—भाव वा.।

अंवारियोड़ौ-अंवारीयोड़ौ—भू.का.कृ.।

अंवारियां, अंवारिये–सं०पु०—एक प्रकार का प्रचलित विश्वास जिसके अनुसार एक व्यक्ति इस क्रिया को करने पर एकांत में जाकर सो जाता है तथा मृत हो जाता है। एक अथवा अधिक दिन के पश्चात् उसकी आत्मा विभिन्न लोकों मे घूम कर उसके मृत शरीर में वापस प्रवेश कर जाती है तब वह पुनर्जीवित होकर अन्य लोगों को अपने विभिन्न लोकों के अनुभव सुनाता है। कई लोग इसे मिथ्या अंध-विश्वास या ढोंग भी मानते हैं।

क्रि०प्र०—जाणौ।

अंवारियोड़ौ, अंवारीयोड़ौ, अंवारयोड़ौ–भू०का०कृ०—वह व्यक्ति जिस पर 'अंवारणौ' की क्रिया संपादित की गई हो अथवा वह पदार्थ जिसके द्वारा यह क्रिया की गई हो। (स्त्री० अंवारियोड़ी)

अंविस्ट–सं०पु०—देखो 'अंबस्ट'।

अंवेर–सं०स्त्री०—हिफाजत, निगरानी।

अंस–सं०पु० [सं०अंश] १ भाग, हिस्सा, विभाग. २ भाज्य-अंक. ३ वह अंक जो कि भिन्न की लकीर के ऊपर हो (गणित) ४ भाग. (गणित). ५ सोलहवां भाग (कला). ६ वृत्त की परिधि का ३६०°वां हिस्सा (रेखागणित). ७ लाभ का हिस्सा. ८ बारह आदित्यों में से एक. ९ कंधा। उ०—धीर मेर रा खड्ग प्रहार सूं कन्ह महर री अंस पंसुळी सूधी झड़ियौ।—वं.भा. १० किरण, रश्मि. ११ वंशज. १२ वीर्य. १३ शक्ति. १४ अक्षांश (भूगोल)

अंसकूट–सं०पु० [सं०] कूबड़, ककुद।

अंसधारी–वि० [सं० अंश+धारिन्] १ देवशक्ति से युक्त. २ अवतारी. ३ हिस्सेदार. ४ वीर, बहादुर. ५ वंशज।

अंसावतार–सं०पु० [सं० अंश+अवतार] परमात्मा का वह अवतार जो पूर्णावतार न हो किन्तु जिसमें उसकी शक्ति का कुछ अंश हो।

अंसी–वि० [सं० अंशिन] देखो 'अंसधारी'।

अंसु–सं०पु० [सं० अंशु] १ किरण, प्रभा (अ.मा.) २ लेशमात्र, भाग. ३ सूर्य्य. ४ तेज, दीप्ति, ज्योति [सं० अश्रु] ५ आँसू।

उ०—प्राजळ चख वेगम अंसुपात, जमना जळ काजळ बहत जात।
—वि.सं.

अंसुक–सं०पु० [सं० अंशुक] १ पतला या महीन वस्त्र. २ रेशमी कपड़ा।

अंसुधर–सं०पु० [सं० अंशुधर] १ रश्मिधारी, सूर्य. २ अग्नि. ३ चन्द्रमा. ४ दीपक. ५ देवता. ६ ब्रह्मा. ७ प्रतापी या वीर पुरुष. ८ वंशज।

अंसुपात–सं०पु० [सं० अश्रुपात] आँसू गिराना, रोना, अश्रुपात।

क्रि०प्र०—करणौ-होणौ।

अंसुमांण, अंसुमांन–सं०पु० [सं० अंशुमान] १ सूर्य. २ चन्द्रमा. ३ सागर के पौत्र और असमंजस के पुत्र अयोध्या के एक सूर्यवंशी राजा।

अंसुमाळी–सं०पु० [सं० अंशुमाली] १ सूर्य. २ चन्द्रमा. ३ अग्नि. ४ दीपक. ५ देवता।

अंसुवन–सं०पु० [सं० अश्रु] आँसू, अश्रु। उ०—इक बिरहणि हम ऐसी देखी अंसुवन की माळा पोवैं।—मीरा

अंसू–सं०पु०—देखो 'अंसु'।

अंसूपती–सं०पु० [सं० अंशु+पति] सूर्य्य।

अंह–सं०पु० [सं० अंहस्] १ बाधा. २ दुःख ३ व्याकुलता. ४ अपमान. ५ पाप (डिं.को.)

सर्व०—मैं।

अनु०—खाँसने की ध्वनि।

अंहति–सं०स्त्री० [सं०] १ दान. २ त्याग. ३ पीड़ा।

अ–उप०—शब्द के पूर्व आकर यह विपरीत या निषेधार्थ, समान या विशेष का अर्थ सूचित करता है; जैसे–अभागी, अधरम, असवार, अप्रबळ, असमर।

सं०पु०—१ महादेव. २ ब्रह्मा. ३ कृष्ण. ४ सूर्य्य. ५ चंद्रमा. ६ पवन. ७ प्राण. ८ आनन्द. ९ काल. १० विष्णु।

संं०स्त्री०—११ लक्ष्मी. १२ शिखा. १३ प्रजा (एका.)

अइ–अव्यय [सं० अयि] १ हे, अरे (संबोधनार्थ या विस्मय में) २ 'ओ' शब्द का बहुवचन (प्रा.रू.)

अइयौ–अव्यय [सं० अयि] हे, अरे (संबोधनार्थ या विस्मय अर्थ में)

अइराक, अइराकि-सं०पु०— ईराक देश में उत्पन्न घोड़ा. २ ईराक देशोत्पन्न। देखो 'एराक'।

अइहइ–क्रि०वि० [प्रा.रू.] ऐसा, ऐसी। उ०—अग-नयणी, अगपति मुखी, अग मद तिलक लिलाट। अग-रिपु कटि सुंदर वणी, मारू **अइहइ** घाट।—ढो.मा.

अई, अईज–क्रि०वि०—१ व्यर्थ, फिजूल. २ ऐसे ही।

अई–अव्यय [सं० अयि] १ हे, अरे (संबोधनार्थ या विस्मय अर्थ में) (रू.भे. अइ) २ वाह-वाह सूचक शब्द।

अईभाग–सं०पु०- अहोभाग्य।

अईयौ–अव्यय [सं० अयि] हे, अरे (संबोधनार्थ या विस्मय अर्थ में) उ०—**अइयौ** अकबरिया तेज तिहारौ तुरकड़ा।

अउ–सर्व०—१ 'ओ' का प्राचीन रूप 'वह'। उ०—सारीखी जोड़ी जुड़ी, आ नारी **अउ** नाह।—ढो.मा. २ यह। उ०—रांणी राजा सूं कहइ, कीजइ **अउ** विमाह।—ढो.मा.

अउगुण–सं०पु० [सं० अवगुण] १ दोष. २ बुराई. ३ अवगुण।

अउभकई–क्रि०वि० [प्रा.रू.] अचानक, अकस्मात। उ०—सउदागर राजा तिहाँ बइठा मंदिर मंझ, मारू दीठी **अउभकइ**, जांणि खिवी घण संझ।- ढो.मा.

अउभणई, अउभणउ—किसी अंगीकृत व्रत की समाप्ति पर किया जाने वाला उत्सव अथवा भोज। इसके पश्चात् उस व्रत को निरन्तर रखने की आवश्यकता नहीं होती (प्रा.रू.—मि० उभमणौ)

***अउत**–वि० [सं० अपुत्रक, प्रा० अउतग्र] १ पुत्रहीन, निसंतान। [सं० अयुक्त] २ अयुक्त, अनुचित। उ०—**अउत** होइ घरि छोड़ां हो राय।- वी.दे.

अउथि, अउथी–क्रि०वि०—वहाँ, उस जगह। उ०—ईडर की घर अळगउँ जइ तूँ कहइ तु जाह। **अउथि** घड़ाऊँ आभरण, माल्हवणी मेलांह।- ढो.मा.

अउब–वि० [सं० अद्भुत] अद्भुत। उ० -भिड़ियौ 'मालौ' **अउब** भत, रौदां सगत रही न। किळ तेरै तूंगा किया, अजड़ां तेरै तीन।—बां.दा. यौ०—अउबभत।

अउबगति, अउबगत्ति, अउबभत–सं०स्त्री०—अद्भुत गति। क्रि०वि०—अद्भुत रीति से।

अउर–क्रि०वि० [सं० अपर] और, अन्य। सं०पु० [सं० उर] हृदय।

अउळगउँ, अउळगऊँ–क्रि०वि० [प्रा.रू.] १ दूर, अति दूर। उ०—ईडर की धर **अउळगउँ**, जइ तूँ कहइ तु जांह। अउथि घड़ाऊँ आभरण, माल्हवणी मेलांह।—ढो.मा. २ अलग।

अउळगण–सं०पु० [प्रा.रू.] प्रवास। उ०—ईडर की धर **अउळगण**, हूँ तउ जांणण देसि। घरि बइठाई आभरण, मोल मुहंगा लेसि। —ढो.मा.

अउसर–सं०पु० [सं० अवसर] १ समय. २ अवसर, मौका।

अऊंनम–सं०पु०—ॐ नमः, प्रणव मंत्र।

अऊँळी–वि०स्त्री०—विरुद्ध, उलटा। उ०—प्री पूठइ असतरी परजळइ, परिण नारी पूठि पुरख नवि बळइ। आ तें मांडी **अऊँळी** रीति, बात न बेइसइ ढोला चीति।—ढो.मा.

अऊंळौ–वि०पु०—विरुद्ध, उलटा (स्त्री० अऊंळी)

अऊग्राहणौ, अऊग्राहबौ–क्रि०स०—१ बदला लेना. २ वसूल करना, उगाहना। उ०—गाहिया पिसण घणा वैर **अऊग्राहिया**।—द.दा.

अऊत–वि० [सं० अपुत्रक, प्रा० अउतग्र] १ निःसंतान. २ कुपुत्र। उ०—कूड़ा निलज कपूत, हियाफूट ढांढा असल, इसड़ा पूत **अऊत**, रांड जणै क्यूं राजिया। ३ बेवकूफ. ४ उजड्ड।

अऊती–वि०स्त्री० [सं० अपुत्रक, प्रा०अउतग्र] निःसंतान, निपूती।

अऊब–वि०—देखो 'अउब'।

अग्रोड़ौ–सं०पु०—१ टोकने का भाव. २ झिड़की, दुत्कार। (मि० ओड़ौ)

अकंटक–वि० [सं०] १ निर्विघ्न, बेखटके, बाधारहित. २ जिसका कोई विरोधी न हो, शत्रुहीन।

अकंपण–वि० [सं० अ+कंपन] कंपनरहित, दृढ़, स्थिर। सं०पु०—एक राक्षस जिसने खर के वध का वृत्तांत रावण से कहा था।

अक–सं०पु० [सं०] १ पाप. २ दुःख. ३ पीड़ा।

अकखड़पण, अकखड़पणौ–सं०पु०—देखो 'अक्खड़पणौ'।

अकखणौ, अकखबौ–क्रि०स०—कहना।

अकड़–सं०स्त्री०—१ ऐंठ, तनाव, मरोड़. २ बंध. ३ घमंड, अहंकार, ४ ढिठाई. ५ हठ, जिद. ६ बांकापन. ७ लड़ना।

अकड़णौ, अकड़बौ–क्रि०अ०—१ सूखने के कारण सिकुड़ जाना. २ टेढ़ा हो जाना. ३ कड़ा पड़ जाना. ४ ऐंठना, मरोड़ना. ५ सर्दी से ठिठुरना. ६ सुन्न होना. ७ शरीर को तानना. क्रि०स०—८ अभिमान करना, शेखी बघारना. ९ हठ करना. १० अड़ जाना. ११ गुस्सा दिखाना. १२ रौब दिखाना या धमकी देना।

अकड़णहार-हारौ (हारी), अकड़णियौ–वि०—अकड़ने वाला।

अकड़ाई–(स्त्री०)

अकड़िग्रोड़ौ, अकड़ियोड़ौ, अकड़योड़ौ–भू०का०कृ०—अकड़ा हुआ। यौ०—अकड़बाज, अकड़-मकड़।

अकड़बाई–सं०स्त्री०यौ०—१ वायु के प्रकुपित होने से शरीर के अकड़ जाने का एक प्रकार का वात रोग. २ देह की नसों का पीड़ा के साथ खिंचना या तनना, ऐंठन।

अकड़बाज–वि०—शेखीबाज, घमंडी।

अकड़बाजी–सं०स्त्री०—१ ऐंठ, शेखी. २ घमंड, गर्व।

अकड़-अकड़-सं०स्त्री०—१ ऐंठ. २ गर्व ।
अकड़ाई-सं०स्त्री०—१ गर्व, अभिमान. २ अकड़ने की क्रिया, ऐंठन ।
अकड़ाळ-वि०—जबरदस्त ।
अकड़ाव-सं०पु०—ऐंठन, खिचाव ।
अकड़ियोड़ौ-भू०का०कृ०—अकड़ा हुआ (स्त्री० अकड़ियोड़ी)
अकड़ू-वि० उ०लिं०—१ अभिमानी. २ अकड़ने वाला, अकड़बाज ।
अकड़ूबाज—देखो 'अकड़बाज' ।
अकड़ैत-वि०—१ अकड़बाज, अकड़. २ बलवान ।
अकड़ौ—देखो 'अकडी' ।
अकच-वि० [सं० अ+कच] बिना बाल का, रोमरहित ।
सं०पु०—जैन साधु ।
अकच्छ-वि० [सं० अ+कच्छ या कक्ष] १ नंगा, नग्न. २ व्यभिचारी, लम्पट ।
अकज-वि०—१ खराब. २ व्यर्थ । उ०—इकडंकी गिरा एकरी, भूले कुळ साभाव । सूरां आळस ऐस में, अकज गुमाई आव ।—बी.स.
सं०पु० [अ+कार्य] १ नाश. २ हानि ।
अकजौ, अकज्ज-वि०—१ व्यर्थ, निकम्मा. २ कायर, डरपोक ।
उ०—सूर बागा सझै, रौद्र हिंदू रजै । सोभणी सकजै, अमेळां अकजै ।—रा रू.
सं०पु० [अ+कार्य] १ अकाज. २ बिगाड़. ३ बुरा कार्य ।
अकठ-सं०स्त्री०—वह गाय या भैंस जिसका दूध आसानी से निकलता हो ।
अकडोडियौ-सं०पु०—आक या मदार का फूल जो प्रायः शिव-पूजा में प्रयोग किया जाता है ।
अकढ़-सं०पु०—बिना गर्म किया हुआ दूध ।
अकढ़ियौ, अकढ़ियोड़ौ-सं०पु०—बिना गर्म किया हुआ दूध ।
अकण, अकणी-सं०स्त्री०—गेहूँ की वे बालें जिनमें गेहूँ का बीज न पनपा हो, बिना कण या अनाज का ।
अकतार-सं०पु० [सं० इख्तियार] १ अधिकार, काबू, प्रभुत्व, स्वत्व. २ अधिकार क्षेत्र. ३ शक्ति, सामर्थ्य ।
अकत्थ, अकथ-वि० [सं० अ+कथ्] १ न कहने योग्य. २ कथन-शक्ति से परे या बाहर । उ०—अगम अगाध तू अगला अगवांणी, तू अवगत अनाथनाथ तू अकथ कहांणी ।—केसवदास गाडण
३ जो न कहा जा सके, अवर्णनीय । उ०—अकथ कहांणी प्रेम री, किण सूं कही न जाय ।—ढो.मा.
अकथकथ-वि०—अकथनीय ।
अकथा-सं०स्त्री० [सं०] कुकथा, अपभाषा ।
अकथियोड़ौ-भू०का०कृ०—नहीं कहा हुआ (स्त्री० अकथियोड़ी)
अकथ्थ, अकथ्य—देखो 'अकथ' । उ०—पंथ असैंदौ पूगणौ, अळगौ घणौ अकथ्थ ।—बां दा.
अकनकंवार-सं०स्त्री०—१ आजीवन या कुछ काल तक कौमार्य व्रत धारण करने का भाव ।
वि०—देखो 'अकनकंवारौ' ।
अकनकंवारौ, अकनकुंवारौ-वि०—आजीवन कौमार्य व्रत धारण करने वाला, जिसने स्त्री-प्रसंग न किया हो (स्त्री० अकनकुंवारी)
अकपट-सं०पु० [सं० अ+कपट] कपटहीन, सरल, सीधा, छलहीन ।
अकबक-सं०पु०—१ व्यर्थ बकबक, असंबद्ध प्रलाप. २ धड़क, खटका. ३ चतुराई ।
वि०—१ अंडबंड. २ भौंचक्क । उ०—बिरदाळि बंदिम बिफ्फरे, अति बेग सम्मुह उप्परे, बजि कटक दमनक रचक धमचक, अटक बक तक मुलक अकबक, अछक छक भट ललक ।—वं.भा. ३ निस्तब्ध. ४ घबराया हुआ ।
अकबक्कणौ, अकबक्कबौ-क्रि०अ०—व्याकुल होना । उ०—भोगी भोग न झिलि सकें भूमि अकबक्कै ।—वं.भा.
अकबरी-सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का प्राचीन सोने का सिक्का. २ एक प्रकार की मिठाई ।
अकबार-सं०पु० [अ० अख़बार] समाचार-पत्र, खबर का कागज ।
अकबाल-सं०पु० [सं० इकबाल] देखो 'इकबाल' ।
अकयथ्थ-वि० [प्रा०रू०] अकारथ, व्यर्थ । उ०—वालिभ गरथ वसीकरण, बीजा सहु अकयथ्थ । जिए बडघा दळ उतरइ, तरणि पसारइ हथ्थ ।—ढो.मा.
अकर-वि० [सं०] १ न करने योग्य. २ कठिन. ३ जबरदस्त. ४ भयंकर. ५ बिना हाथ का. ६ बिना कर या महसूल का, कर मुक्त ।
अकरण-सं०पु० [सं०] १ इंद्रियों से रहित, परमात्मा. २ कर्म का फलरहित होना. ३ न करने योग्य कार्य, बुरा या आपत्तिजनक कार्य. ४ पाप [सं० अ+कर्ण] ५ बहिरा. ६ सांप ।
वि० [अ०+कारण] १ बिना कारण का. २ असंभाव्य. ३ अघटनीय ।
अकरणकरण-सं०पु०—ईश्वर, परमात्मा ।
अकरतौ-वि० [अ+कर्ता] १ कर्म न करने वाला, अकर्मण्य. २ जो कर्मों से निर्लिप्त हो, कर्म से पृथक ।
अकरब-सं०पु० [अ०] एक प्रकार का घोड़ा जिसके मुंह पर सफेद बाल होते हैं और उक्त सफेद बालों के बीच-बीच में दूसरे रंग के भी बाल होते हैं; ऐसा घोड़ा अशुभ माना गया है (शा.हो.)
अकरम-सं०पु० [सं० अ+कर्म] १ न करने योग्य कार्य २ बुरा काम. ३ पाप, अपराध. ४ अधर्म ।
क्रि०प्र०—करणौ, होणौ ।
वि०—१ बेकार, कामरहित [सं० अ+क्रम] २ बिना क्रम के, क्रमहीन, उलटा-पुलटा ।
अकरमक-सं०पु० [सं० अकर्मक] व्याकरण के अनुसार क्रिया के दो मुख्य भेदों में से एक भेद जिसमें कर्म की आवश्यकता नहीं होती और कर्त्ता तक ही क्रिया का कार्य समाप्त हो जाता है ।

अकरमणय-वि० [सं० अकर्मण्य] १ आलसी. २ कुछ काम न करने वाला, निकम्मा, निठल्ला. ३ काम करने के अयोग्य. ४ पापी, दुष्कर्मी ।

अकरम संन्यास-सं०पु०यौ० [सं० अक्रम+संन्यास] क्रम से न लिया गया संन्यास ।

अकरमी-सं०पु० [सं० अकर्म्मिन्] १ बुरा काम करने वाला. २ पापी, दुष्कर्मी. ३ अपराधी । (स्त्री०—अकरमण) ।

अकरम्म—देखो 'अकरम' ।

अकरांइजणौ, अकरांइजबौ-क्रि०अ०—पथरीले मार्ग में चलने से पैरों का अकड़ना ।

अकरांइजियोड़ौ—भू०का०कृ० ।

अकरांइजियोड़ौ-वि०—पथरीले मार्ग में चलने से अकड़ा हुआ (पैर) । (स्त्री०—अकरांइजियोड़ी)

अकराळ-वि०—१ भयंकर, भयावह, विकराल. २ कठोर. [सं० अ+कराल] ३ जो भयंकर या भयावह न हो ।

अकरिता—देखो 'अकरती' ।

अकरुण-सं०पु० [सं० अ+करुण] करुणारहित, निर्दयी, निष्ठुर, क्रूर।

अकरूर, अकरूरि-सं०पु० [सं० अक्रूर] श्वफल्क और गान्दिनी के पुत्र एक यादव जो श्रीकृष्ण के चाचा थे ।

अकरेलणौ, अकरेलबौ-क्रि०स०—१ खोद कर कोई गडी हुई वस्तु निकालना. २ खोदना । उ०—खेता काढै खाल, जोड कर ऊंट अलांणां, कसियां सूं अकरेल, नैण जळ भरा निनांणां ।—दसदेव

अकळक-वि० [सं० अकलंक] १ निष्कलंक. २ दोषहीन, निर्दोष ।

अकळंकता-सं०स्त्री० [सं० अकलंकता] निर्दोषता, कलंकहीनता ।

अकळ-वि० [सं० अकल] १ अपार, असीम । उ०—अजन प्राण तप अकळ, देख खुरसाण दहल्ले ।—रा रू. २ अगम्य । उ०—अकळ अजन्म अलेख अप्रप्रम क्रम मम कटै तुझ कथतां क्रम ।—ह.र. ३ वीर, समर्थ । उ०—दोळा त्रीस हजार दळ, अकळ अजो नरपत्त । —रा.रू.

४ संपूर्ण, अखिल । उ०—अकळ तुहिं ज कै कोइ अवर, बोहौ नांमी बूझब्ब ।—ह र. ५ व्याकुलतारहित, दोषरहित । उ०—ज्यांरै धोरी बेगड़ो, ज्यांरा सींग बधंत । औ जूपैं जिण रथ अकळ, सोही रण सोहंत ।—बां.दा. ६ व्याकुल, बेचैन, घबराया हुआ ।

सं०पु०—१ ईश्वर (नां.मा) २ शिव (अ.मा.)

अकल-सं०स्त्री० [अ० अक्ल] बुद्धि, समझ, ज्ञान ।

पर्याय०—ध्यांन, धी, बुद्धि, मति, समझ ।

क्रि०प्र०—आणी, गमाणी, जाणी, देणी, रे'णी, होणी ।

मुहा०—अकल खरच करणी—समझ से काम लेना. २ अकल घास चरण नै जावणी—बुद्धि का अभाव. ३ अकल चकराणी—हैरान होना. ४ अकल देणी—समझाना. ५ अकल दौड़ाणी—सोच-विचार करना, गौर करना. ६ अकल भांग खाणी—मूर्खता का काम करना. ७ अकल माथै भाटा पड़णा—बुद्धि भ्रष्ट होना. ८ अकल मारी जाणी—बुद्धि भ्रष्ट होना. ९ अकल री अजीरण होणी—बेवकूफ होना. १० अकल री दुसमण—बेवकूफ, मूर्ख. ११ अकल री पूतळी—मूर्ख (व्यंग्य) १२ अकल री पूरौ (व्यंग्य) मूर्ख. १३ अकल सूं भारियां (बोझियां) मरै है—बेवकूफ होना ।

कहा०—१ अकल उधारी ना मिळै, हेत न हाट बिकाय—बुद्धि उधार नहीं मिलती, वह अपनी ही काम देती है तथा प्रेम बाजार में पैसे से प्राप्त नही किया जा सकता । २ अकल ऊमर ऊपर नहीं है—बुद्धि का आयु से संबंध नही है अर्थात् कम आयु वाला व्यक्ति भी बुद्धिमान हो सकता है. ३ अकल तौ अडनै ई को निकळी नी—नितांत बेवकूफ. ४ अकल बडी'क भाग—बुद्धि भाग्य से बड़ी है. ५ अकल बड़ी'क (कै) भंस—भंस से बुद्धि बड़ी है. ६ अकल रै लारै डांग (लट्ठ) ले'र दौड़णौ—बुद्धिमानी की बात न सुनना व मूर्खता का काम करना. ७ अकल रौ अजीरण—आवश्यकता से अधिक बुद्धि होना (व्यंग्य) मूर्ख होना. ८ अकल सरीरां ऊपजै दियी न आवै सीख—अकल अपनेआप आती है, सिखाने से नही आती. ९ अकल सरीरां ऊपजै दीया आवै (लागै) डांम—बुद्धि सिखाई हुई नही आती, दिये तो डांम (देखो डांम) लगते हैं. १० अकल सूं खुदा पिछाणीजै—बुद्धि से परमात्मा प्राप्त होता है अर्थात् बुद्धि से बडी से बडी समस्या समझी जा सकती है. ११ अकल होयै ऊपजै दीयां लागै (आवै) डाम—बुद्धि सिखाई हुई नही आती; दिये हुए तो डाम (देखो डांम) लगते है. १२ आप री अकल नै घोडा ई नही नावडै (पुगै)—बहुत बुद्धिमान होना. १३ एक मण अकल सौ मण इलम—विद्या की अपेक्षा बुद्धि बडी है. १४ नकल में अकल री जरूरत है—बिना बुद्धि के नकल में भी काम नही चल सकता. १५ मूरख री अकल माथै में होवै—मूर्ख को पीटने पर ही बुद्धि आती है. १६ लुगायां में अकल व्है तो जांन में क्योंनी ले जावै—अगर स्त्रियों में भी बुद्धि होती तो उन्हे बारात में ही साथ क्यों न ले जाते अर्थात् स्त्रियो में बुद्धि नहीं होती. १७ सूतो खावै हिंगतो गावै उण में अकल कदे नी आवै—जो आदमी सोता हुआ खाता है तथा शौच जाते गाता रहता है वह सदा मूर्ख होता है ।

(रू०भे०—अक्कल, अक्कलि, अक्खल, अकलि, अकिल)

यौ०—अकलदार, अकलनधांन, अकलमंद, अकलवांन (अकलड़ी-अल्पा.)

अकलकरो-सं०पु० [सं० आकरकरभ, अ० अक़रक़रहा] प्रायः उत्तर अल्जीरिया में होने वाला एक प्रकार का पौधा विशेष जिसकी जड़ें पुष्ट होती है । यह कामोद्दीपक औषधि है । इससे मुंह में जीभ पर चुनचुनाहट होकर थूक अधिक आता है (अमरत)

अकळकुमारी-सं०स्त्री०—पृथ्वी, धरती (नां मा.)

अकलखरो, अकलखुरो—देखो 'अकलकरो' ।

अकळगति-सं०स्त्री० [सं० अकल+गति] वह अवस्था या गति जिसका ज्ञान मनुष्य न लगा सके ।

अकलदाढ, अकलदाढ़-सं०पु० [सं० अकल+सं० दंष्ट्रा] मनुष्य के वयस्क

पर बत्तीस दाँतों के अतिरिक्त निकलने वाला दाँत ।
अकलदार–वि० [अ० अक्ल+फा० दार] बुद्धिमान, समझदार ।
अकलनधान–वि० [अ० अक्ल+सं० निधान] १ बुद्धिमान, पंडित. २ चतुर ।
अकळबकळ–वि०—१ व्याकुल, घबराया हुआ. २ अव्यवस्थित. ३ अस्तव्यस्त. ४ बेढंगा, अंटसंट. ५ बहुत. ६ मर्यादा से बाहर ।
अकलमंद–वि० [अ० अक्ल+फा० मंद] १ बुद्धिमान, समझदार. २ चतुर ।
कहा०—अकलमंद नै इसारौ घणौ—बुद्धिमान व्यक्ति थोड़े से इशारे से ही सब बात समझ लेता है ।
अकलमदी–सं०स्त्री० [अ० अक्ल+फा० मंद+ई–रा०प्र०] बुद्धिमानी, समझदारी ।
अकलमस–वि० [सं० अ+कल्मष] निष्पाप ।
अकळ-बकळ—देखो 'अकळबकळ' ।
अकलवांन–वि० [अ० अक्ल+वांन–रा०प्र०] बुद्धिमान ।
अकळविकळ—देखो 'अकळबकळ' ।
अकळा–सं०स्त्री—बिजली (नां.मा.)
अकळाणौ, अकळाबौ–क्रि०अ०—घबराना, व्याकुल होना । उ०—चुभै कपोळां आय भांमण जद **अकळावै** । नख बधतोड़ै हाथ सांवळी लट सिरकावै ।—मेघ०
अकळायोड़ौ–भू०का०कृ०—व्याकुल ।
अकळावणौ, अकळावबौ–प्रे०रू०—तथा क्रिया 'अकळाणौ' का रू.भे.
अकलाळौ–वि० [अ० अक्ल+आळौ–रा०प्र०] बुद्धिमान, दूरदर्शी । उ०—जद पाछौ कह्यौ 'जसू' आगम **अकलाळै** ।—वी.मां.
अकलि–सं०स्त्री० [अ० अक्ल] अक्ल, बुद्धि । देखो 'अकल' ।
अकलीम–सं०पु० [अ० अक्लीम] १ देश. २ बादशाहत, राज्य । उ०—साह तणा खूनी सबळ, आय बचै इण ठौड़ । औ सातूं **अकलीम** में, चावौ गढ़ चीतौड़ ।—बां.दा.
अकळीस–सं०पु० [सं० अकल+ईश] १ विष्णु. २ निराकार, परमात्मा. ३ शिव ।
अकळीसट–वि० [सं० अक्लिष्ट] सुगम, सहज, आसान ।
अकळेस–वि० [सं० अ+क्लेश] क्लेशरहित, सुखी ।
सं०पु० [सं० अकल+ईश] देखो 'अखलेस' ।
अकळेस्र, अकळेसुर, अकळेस्वर–सं०पु० [सं० अखिलेश्वर] १ देखो 'अखळेस' २ श्रीकृष्ण (अ.मा.)
अकल्पत-वि० [अ+कल्पित] कल्पनारहित, सच्चा ।
अकल्यांण–स०पु० [सं० अ+कल्याण] अमंगल, अशुभ, बुरा, अशुकन ।
अकवानंद–सं०पु०—भीम (अ.मा.)
अकस–सं०पु० [अ०] १ डाह, द्वेष । उ०—कविराजा सूं मंदकवि, **अकस** करै अविचार । अब जग करता सूं **अकस**, करसी घट करतार । —बां.दा.
२ बैर, विरोध, शत्रुता । उ०—राव करी तहिसौं **अकसै**, फिर भाज गयौ रण भीम न आयौ ।—बां.दा. [फा० अक्स] ३ छाया. ४ प्रतिबिंब. ५ तसवीर, चित्र ।
सं०पु० [सं० आकाश] ६ आकाश, व्योम । उ०—**सकसे का जैसवार अकसे का वाई** ।—रा.रू.
क्रि०वि०—१ सगर्व से, ऐंठ के साथ । उ०—अबदळखां चढ़ियौ **अकस**, कस बडफर केवांण ।—रा.रू.
अकसणौ, अकसबौ—१ ईर्ष्या करना. २ कोप करना ।
अकसमात–क्रि०वि० [सं० अकस्मात्] १ अकस्मात्, सहसा यकायक, अनायास. २ संयोगवश ।
अकसर–क्रि०वि० [अ०] प्रायः, बहुधा, अधिकतर ।
अकसीर–सं०स्त्री० [अ० अक्सीर] किसी धातु को सोना या चाँदी का बना देने वाला रस या धातु, रसायन, कीमिया. २ सब रोगों को नष्ट करने वाली दवा ।
वि०—अव्यर्थ, अचूक, अमोघ ।
अकसौ–संपु० [अ० अकस] ईर्ष्या । उ०—छळ न वळै सौ **अकसौ** छोडै, इरांनी नह कौ बळ ओडै ।—रा.रू.
अकस्मात—देखो 'अकसमात्' ।
अकस्स–सं०पु० [अ० अकस] देखो 'अकस' । उ०—चढ़ियौ गढ़ तरवार गहि, ऊहड़ धारि **अकस्स** ।—रा.रू.
अकस्सण–वि० [अ० अकस] १ कोप करने वाला. २ ईर्ष्या करने वाला ।
अकस्सणौ, अकस्सबौ–क्रि०अ०—१ कोप करना । उ०—इंदावत सिवदांन **अकस्सै**, प्रसण गिळण भुज गयण परस्सै ।—रा.रू.
२ ईर्ष्या करना (रू.भे.—'अकसणौ, अकसबौ')
अकह—देखो. 'अकथ' ।
अकह्यौ–क्रि०वि०—बिना कहा । उ०—न कदेई **अकह्यौ** कियौ । —पलक दरियाव री बात
अकांपा–वि० [सं० अ+कंपित] १ न काँपने वाला, कंपनरहित. २ जितेन्द्रिय ।
अकांम–क्रि०वि०—व्यर्थ, बिना कारण, बिना मतलब । उ०—कर मत सुपियारी कंवर, काली कळह **अकांम** ।—पा.प्र.
सं०पु० [सं० अकाम] १ कार्य-हानि, नुकसान. २ विघ्न, बिगाड़. ३ नाश, ध्वंश । उ०—औ मेळू अवरां तणौ, असुरां करण **अकांम**। —रा.रू.
४ इच्छारहित, कामनारहित । उ०—अनांम **अकांम** अयास अवेस, आदेस आदेस आदेस आदेस ।
अकांमी–वि० [सं० अ+कामिन्] १ कामनारहित, निस्पृह. २ कामरहित, जितेन्द्रिय. ३ व्यर्थ, बेकाम, निकम्मा ।
अकाज–सं०पु० [सं० अ+कार्य] १ कार्य-हानि, नुकसान. २ विघ्न. ३ बिगाड़. ४ बुरा कार्य । उ०—औसर मांय **अकाज**, सांमौ बोल्यां सांपजै । करणौ जे सिध काज, रोस न कीजै राजिया । ३ मृत्यु.

४ दुख, कष्ट, आपत्ति ।

क्रि०वि०—व्यर्थ, निष्प्रयोजन ।

अकाजी–वि०—कार्य हानि करने वाला, बाधक ।

अकाथ–वि०—१ अकारण, वृथा । [सं० अकथ] २ अकथ अकथनीय ।

अकाय–वि० [सं० अ+काय] १ काया या देहरहित, जन्म न लेने वाला, निराकार ।

सं०पु०—१ ईश्वर. २ कामदेव. ३ शक्ति, बल ।

अकार–सं०पु० [सं०] १ 'अ' वर्ण [सं० आकार] २ आकृति, स्वरूप, मूर्ति. ३ निशान ।

वि० [सं० अ=नहीं+रा० कार=कार्य] १ बेकार, बेकाम ।

[सं० अ=नहीं+कार=मर्यादा] २ मर्यादारहित ।

अकारज—देखो 'अकाज' ।

अकारण–वि० [सं० अ+कारण] १ बिना कारण, हेतुरहित ।

उ०— मेछ **अकारण** आप मुरादौ, संग अजीम वळे सहिजादौ ।

२ स्वयंभू । —रा.रू.

क्रि०वि०—व्यर्थ, बेसबब ।

अकारणीक, अकारनीक–वि० [सं० अ+कारण+ईक–रा०प्र०] देखो 'अकारण' । उ०—**अकारनीक** आप नांहि कारनीक हो क्रनू ।—ऊ.का.

अकारथ–वि० [सं० अकार्य्यार्थ, प्रा० अकारिग्रत्थ] बेकार, व्यर्थ, फिजूल निष्प्रयोजन ।

क्रि०प्र०—करणौ, जाणौ, समाणौ, होणौ ।

अकारी–सं०स्त्री०—१ काश्तकारों का कुए पर बैलों को बारी-बारी से जोतने का एक निर्धारित समय ।

वि०—१ देखो 'अकारौ' ।

२ बुरी, खराब. ३ दर्द करने वाली ।

उ०—सू मघ जेठ कळाधर सारी, आयौ रवि ज्यौं किरण **अकारी** । —रा.रू.

अकारो, अकारौ–वि० (स्त्री० अकारी) १ तीव्र, तेज. २ कड़ा. ३ जबरदस्त, बलवान, महातेजस्वी । उ०—उदं भड़ मेलिया **अकारा**, नीसरिया खळ छोड नकारा ।—रा.रू.

वि०—भयंकर । उ०—कळ काळ आवसी, पवन वाजसी **अकारौ** । सर नाडा सूखसी, धणी पलटसी धरा रौ ।—पहाड़ खां आढ़ौ

अकाळ–वि० [सं० अकाल] अनुपयुक्त अवसर, बुरा समय, असमय ।

सं०पु०—१ मौत, मृत्यु. २ दुर्भिक्ष, दुष्काल. ३ घाटा, कमी ।

क्रि०प्र०—आणौ, पड़णौ, होणौ ।

अकाळकी–सं०स्त्री०—बिजली (ह.नां.)

अकाळकुसम–सं०पु० [सं० अकाल+कुसुम] बिना ठीक समय या बे-ऋतु फूलने वाला फूल ।

अकाळजळद–सं०पु० [सं० अकाल+जलद] असमय के बादल ।

अकाळणी–सं०स्त्री०—काली सर्पिणी । उ०—सर्णकि खाग खगए, **अकाळणी** उमंगए ।—रा.रू.

अकाळपुरस, अकाळपुरुस–सं०पु० [सं० अकाल+पुरुष] सिक्खों के ग्रंथ में ईश्वर का एक नाम ।

अकाळपुसप, अकाळपुस्प–सं०पु० [सं० अ+काल+पुष्प] अकाल-कुसुम ।

अकाळमांत–सं०स्त्री० [सं० अकाल+मृत्यु] असमय की मृत्यु, असामयिक मृत्यु ।

अकाळमूरत–सं०पु० [सं० अकाल+मूर्ति] नित्य या अविनाशी पुरुष, ईश्वर ।

अकाळमौत, अकाळम्रतु—देखो 'अकाळमांत' ।

अकाळव्रस्टी, अकाळव्रस्ठी–सं०स्त्री० [सं० अकाल+वृष्टि] कुसमय की वर्षा, असमय की वर्षा ।

अकाळी–सं०पु० [सं० अकाल+ई] १ एक चक्र के साथ सिर पर काली पगड़ी वाले एक प्रकार के नानकपंथी साधु. २ नानक संप्रदाय की एक शाखा विशेष जो गुरु गोविंदसिंहजी को मानते हैं ।

वि०—१ भयंकर, भीषण, कराल, विकट. २ जो श्याम वर्ण का न हो, उज्ज्वल, सफेद ।

अकास–सं०पु० [सं० आकाश] आकाश, आसमान । उ०—छत्र **अकास** एम ओछायौ, घण आयौ किरि वरण घण ।—वेलि.

कहा०—अकास सूं पड़ी तौ खजूर में अटकी—एक विपत्ति से निकल कर दूसरी विपत्ति में पड़ना. २ अकास सूं पड़ी धरती झाली कोनी—भारी विपत्ति में पड़ना; ऐसी विपत्ति में पड़ना जिससे बचना संभव न हो ।

यौ०—१ अकासबांणी. २ अकासीबिरत ।

अकासबांणी–सं०स्त्री० [सं० आकाशवाणी] देववाणी ।

देखो 'आकासवाणी' ।

क्रि०प्र०—करणी, होणी ।

अकासबेल–सं०स्त्री० [सं० आकाश+बेलि] अमरबेल ।

अकासि, अकासी–सं०स्त्री० [सं० आकाश+ई] १ आकाश से संबंध रखने वाली २ चील ।

सं०पु०—३ बादल (नां.मा.) [सं० आकाश] ४ आकाश ।

उ०—पानी पवन और धूर **अकासि** ।—वी.दे.

वि०—१ आकाश से संबंध रखने वाली. २ ईश्वरीय. ३ अनिश्चित (आय)

अकासीबिरत–सं०स्त्री० [सं० आकाश+ई+वृत्ति] देखो 'आकासी-बिरत' ।

अकिंचन, अकिंचनक–वि० [सं० अकिंचन] १ निर्धन, कंगाल, दीन. २ कर्मशून्य. ३ असमर्थ. ४ तुच्छ ।

अकिल—देखो 'अकल' ।

अकिलज्योति–सं०स्त्री० [सं० अखिल+ज्योति] अखिल ज्योति ।

अकिलदाढ़—देखो 'अकलदाढ़' ।

अकीक–सं०पु० [फा० अक़ीक़] एक प्रकार का लाल पत्थर विशेष ।

अकीब, अकीबौ–क्रि०भू०का० [सं० अ+कृ] (स्त्री० अकीबी) 'करना'

का निषेधात्मक भूतकालिक रूप, नहीं किया (बहु० अकीधा) उ०—जिम सिणगार अकीधै सोहति, प्री आगमि जांणियै प्रिया। —वेलि.

अकीनी–वि० [अ० यकीनी] १ विश्वासी. २ निश्चित।

अकीयारथ–वि०—व्यर्थ, निष्फल। देखो 'अक्यारथ'।

अकीरत, अकीरति, अकीरती–सं०स्त्री० [सं० अकीर्ति] अयश, अपयश, बदनामी।

अकीरतिकर, अकीरतीकर–वि० [सं० अकीर्तिकर] अपयशकारी, अयशस्कर।

अकीरत–सं०स्त्री० [सं० अकीर्ति] देखो 'अकीरत'।

अकुंठ–वि० [सं०] १ तीक्ष्ण, पैना. २ खुला हुआ. ३ तीव्र. ४ खरा, चोखा, उत्तम।

अकुंठत–वि० [सं० अकुंठित] जो कुंठित न हो, पैना।

अकुपार–सं०पु० [सं० अकूपार] सागर, समुद्र (ह.नां., डिं.को.)

अकुळ–वि० [सं० अ+कुल] १ जिसके कुल में कोई न हो, परिवारहीन. २ नीच कुल का, कुलहीन, अकुलीन।

अकुळणी–वि०स्त्री०—व्यभिचारिणी, अकुलीन। उ०—नट ज्यौं नाचता, कुळचता, अकुळणी नैंण ज्यौं ऊछाछळा आपरी छाआं सूं डरपता। —रा सा.सं.

अकुळणो, अकुळबो, अकुळाणो, अकुळाबो–क्रि०अ० [सं० आकुलन] व्याकुल होना, घबराना। उ०—आ सुणतां थांणौ अकळायो, नूरमली जोधांणै आयो।—रा.रू.

अकुळाणियौ–वि०—व्याकुल होने वाला।

अकुळावणो, अकुळावबो- 'अकुळाणो' का रू.भे.।

अकुळीजणो, अकुळीजबो–अपने आप व्याकुल होना—भाव वा.।

अकुळीजियोड़ो–भू०का०कृ० व्याकुलित।

अकुळावणो, अकुळावबो—देखो 'अकुळाणो'।—व्याकुलित

अकुळी—देखो 'अकुळीण'।

अकुळीण–वि० [सं० अकुलीन] (स्त्री० अकुळीणी) १ नीच कुल का, कुजाति. २ शूद्र, वर्णसंकर. ३ कमीना। उ०—कोड़ वचन खातर कियां, पातर करै न प्रीत। आथ देखै अकुळीण नूं, माडै करलै मीत।—बां.दा.

अकुसळ–वि० [सं० अकुशल] १ अमंगल, बुरा. २ जो चतुर न हो।

अकुसळता–सं०स्त्री० [सं० अकुशलता] १ अदक्षता, चतुरता या निपुणता का अभाव. २ अमंगलता, अशुभ।

अकुसळी–वि० [सं० अकुशली] १ कौशलहीन. २ अप्रसन्न, नाखुश।

अकूंणो, अकूंणौ–वि०—१ पूर्ण, पूरा. २ जो न्यून न हो। उ०—केहरि तण पण लड़ण अकूंणो, लीधां वरत जगपती लूंणो।—रा.रू.

अकूठ, अकूत, अकूतण–वि०—जो कूंता न जा सके, अपरिमित, बहुत।

अकूतियोड़ो–वि०—बिना कूंता हुआ, बेअंदाज। (स्त्री० अकूतियोड़ी)

अकूपार–सं०पु० [सं० सागर] समुद्र (डिं.नां.मा; अ.मा.)

अकरड़ी—देखो 'उकरड़ी' (क्षेत्रीय)

कहा०—अकूरड़ी री हूंस है—१ बेकार या गंदी वस्तु में भी उत्तम वस्तु की प्राप्ति अथवा दुष्ट, मूर्ख व निकृष्ट व्यक्तियों के समूह में भी उत्तम व्यक्ति मिल सकता है. २ वह निकृष्ट वस्तु या व्यक्ति जिसके आसपास की वस्तुएँ या व्यक्ति उससे अधिक निकृष्ट हो।

अकेल, अकेलौ–वि० [सं० एक+ल, लो–रा०प्र०] १ एकाकी, बिना साथी के। उ०—थारी छोटी बैनड़ रोवै अकेलड़ी, वनखंड की ए कोयल, वनखंड छोड कठै चली।—लो.गी.
२ इकलौता. ३ अद्वितीय। (स्त्री० अकेली, अकेलड़ी)
सं०पु०—निर्जन, एकांत।

अकेवड़ियौ, अकेवड़ो–वि०—१ इकहरा, एक परत का. २ देखो 'इकेवड़ियौ'।

अकेवळो–वि० [सं० एक] १ अकेला, एकाकी. २ देखो 'अकेवड़ो'।

अकोट–वि० [सं० आ+कोटि] करोड़ तक, करोड़ों। [सं० अ+कोटि] १ जो करोड़ न हो, उससे कम हो. २ बिना किले का।

अकोतर–वि० [सं० एकसप्तति, प्रा० एकसत्तरि, अप० इकोतरै] सत्तर और एक की संख्या का।
सं०स्त्री०—७१ की संख्या।

अकोतरसो–वि०—एक सौ एक।
सं०स्त्री०—एक सौ एक की संख्या।

अकोतरो–सं०पु०—७१ वाँ वर्ष।

अकोर–सं०पु०—भेंट, उपहार। उ०—मीरां रे प्रभु हरि अबिनासी, देस्यूं प्रांण अकोर।—मीरां

अकोविद–सं०पु० [सं०] १ मूर्ख. २ अदक्ष, अचतुर।

अक्क–सं०पु० [सं० अर्क] १ आक, मंदार। उ०—उत्तर आज स उत्तरउ, पल्लांणियां दरक्क। दहिसी गात कुंवारियां, थळ जाळी बळि अक्क।—ढो.मा. २ सूर्य। उ०—अक्क उदैगिरि आत कै, वारिज बिकसाया।—वं.भा.

अक्कल देखो 'अकल'।

अक्कळा–सं०स्त्री०—१ भयंकर रूप धारण करने वाली। उ०—देवी सवकळा अक्कळा सव्व सिद्धि।—देवि. २ अंगहीन. ३ निराकार परमात्मा, निरावयव।

अक्खड़–वि०—१ उद्धत, उजड्ड, उच्छृंखल. २ झगड़ालू. ३ निर्भय, निडर ४ असभ्य, अशिष्ट. ५ स्पष्ट वक्ता, खरा।

अक्खड़पण, अक्खड़पणो–सं०पु०—१ उद्दण्डता, उच्छृंखलता. २ अशिष्टता. ३ उग्रता।

अक्खड़ाई–सं०स्त्री०—१ उद्दंडता, उच्छृंखलता. २ अशिष्टता. ३ उग्रता।

अक्खणो, अक्खबो–क्रि०स० [सं० आ+ख्या] कहना। उ०—जरै कुमर हट जांणि जनक आगै इम अक्खी।—वं.भा.

अक्खर—देखो 'अक्षर'। उ०—पत्र अक्खर दळ द्राळा जस परिमळ, नव रस तंतु विधि अहोनिसि।—वेलि.

अक्यारथ, अक्यारथो–वि०—व्यर्थ, फजूल। उ०—रांम नांम बिना सबद,

ते सबद अक्यारथा ।—ह.र.

अक्रंम—देखो 'अकरम'।

अक्र–सं०पु० १ नृत्य के समय पैरों को उठा कर वापिस भूमि पर रखने का ढंग विशेष. २ नृत्य की मुद्रा विशेष ।

अक्रत–सं०पु०—१ पाप २ कुकृत्य, दुष्कर्म । उ०—गरढ़ी गंघारांह, जिण नैं पूछौ जायनैं । सो कहमी मारांह, क्रन अक्रत री करवां ।

—रामनाथ कवियो

३ बुरा कार्य । उ०—जांग अजांग बणे जोखमियो, कीधी अक्रत घणी करतार ।—अज्ञात

वि० [सं०अ+कृत] १ बिना किया हुआ. २ बिगड़ा हुआ. ३ जो किसी का रचा हुआ न हो, स्वयंभू ।

अक्रतघण–वि० [सं० अकृतघ्न] जो उपकार माने, जो कृतघ्न न हो, कृतज्ञ ।

क्रि०प्र०—होणौ ।

अक्रति-सं०स्त्री० [सं० अ+कृति] बुरी कृति, बुरी करनी ।

अक्रतिम–वि० [सं० अकृत्रिम] प्राकृतिक, जो बनावटी न हो ।

अक्रम–वि० [सं०] क्रमहीन, बिना क्रम के ।

सं०पु० [सं अ+कर्म] १ देखो 'अकरम'। उ०—माहरा अक्रम मेटबा माहृत ।—ह.र. २ समय (अ.मा.)

अक्रमणय—देखो 'अकरमणय'।

अक्रमसंन्यास—देखो 'अकरमसन्यास'।

अक्रमावळूंत–वि०यौ०—पापों को नाश करने वाला (ईश्वर)

अक्रम्म—१ देखो 'अकरम'। उ०—अक्रम्म न क्रम न आदि न अंत ।

—ह.र

२ देखो 'अक्रम' (१) उ०—नमौ अवधूत अक्रम्म अजीत ।—ह.र.

अक्रांत–सं०पु०—आक्रमण, हमला । उ०—इति श्री पालपोरसातने पुरुवायण विभागे आसिया मोडजी कृत अक्रांत रौ समौ ।—पा प्र.

अक्रित—१ देखो 'अक्रत'। उ०—मेटण अक्रित जगनहू समरथ ।

२ अकारथ, व्यर्थ । —गजमोख

अक्रिति, अक्रिती—देखो 'अक्रति'।

अक्रित्रिम—देखो 'अक्रतिम'।

अक्रूर—देखो 'अकरूर'।

वि०—जो क्रूर न हो, दयालु ।

अक्रूररियौ—देखो 'अकरूर' (अल्पा०)

अक्रोधा–वि०स्त्री० [सं० अ+क्रोध] शान्त, क्रोधरहित ।

अक्ष–सं०पु० [सं०] १ चौसर का खेल. २ धुरी. ३ रुद्राक्ष. ४ आंख. ५ पृथ्वी को आरपार कर दोनों ध्रुवों तक पहुँचने वाली मानी जाने वाली कल्पित रेखा (भूगोल) [अ० अक्स] ६ प्रतिबिंब, छाया. ७ तसवीर ।

अक्षक–सं०पु०—बेहड़ा (अ.मा.)

अक्षकुमार–सं०पु० [सं०] रावण का पुत्र अक्षयकुमार जो हनुमान द्वारा अशोकवाटिका में मारा गया था ।

अक्षत–वि० [सं० अ+क्षत] समूचा, बिना टूटा हुआ ।

सं०पु०—पूजा के काम में आने वाले बिना टूटे चावल ।

अक्षतजोनि, अक्षतयोनि–सं०स्त्री०—वह कन्या जिसका पुरुष से संसर्ग न हुआ हो ।

अक्षम–वि० [सं०] १ क्षमारहित. २ क्षमतारहित, अशक्त, असमर्थ. ३ असहिष्णु ।

अक्षमता–सं०स्त्री० [सं०] १ क्षमा का अभाव. २ असहिष्णुता. ३ असामर्थ्य. ४ डाह, ईर्ष्या ।

अक्षय–वि० [सं०] क्षयहीन, अविनाशी, अमर । उ०—मेधा महंत, दीपत दिगंत, आदांन ओघ, अक्षय अमोघ ।—ऊ.का.

अक्षयकुमार—देखो 'अक्षकुमार'।

अक्षयवट–सं०पु० [सं०] गया में स्थित एक बड़ का पेड़ जिसका नाश प्रलय में भी नहीं माना जाता है ।

अक्षर–वि० [सं०] १ नित्य, नाश-रहित. २ सत्य. ३ निर्विकार ।

सं०पु०- १ अक्षर, वर्ण, हरफ. २ आकाशादितत्व. ३ आत्मा. ४ ब्रह्म. ५ शिव. ६ सत्य. ७ इंद्रासन (नां.मा.)

अक्षरमुस्टिकाकथन–सं०पु० [सं० अक्षर+मुष्टिका+कथन] चौसठ कलाओं के अंतर्गत एक कला ।

अक्षांस–सं०पु० [सं०] भूमंडल पर पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाली पूर्ण वृत्त के आकार की कल्पित रेखा ।

अक्षि–सं०स्त्री० [सं०] आंख, नेत्र ।

अक्षिर—देखो 'अक्षर'।

अक्षी—देखो 'अक्षि'।

अक्षीण–वि० [सं०] जो क्षीण या कम न हो. २ अविनाशी ।

अक्षुण–वि० [सं० अक्षुण्ण] बिना टूटा हुआ, समूचा ।

अक्षोभ–सं०पु० [सं०] १ दृढ़ता, स्थिरता. २ धीरता. ३ क्षोभ का अभाव ।

वि०—१ स्थिर. २ गंभीर. ३ शांत ।

अक्षौहिणी–सं०स्त्री०—पूरी चतुरंगिनी सेना जिसमें सेना के चारों अंग नियमित संख्या में पूरे होते थे। इसमें १०९३५० पैदल, ६५६१० घोड़े, २१८७० रथ और ११८७० हाथी होते थे ।

अखंग–वि० [सं०] न झुकने वाला, अविनाशी ।

सं०पु० [रा०] वह पशु जिसके दाग लगा हुआ न हो ।

अखंड–वि० [सं०] १ जिसके टुकड़े न हों, समग्र, संपूर्ण. २ लगातार ; उ०—रांम रांम रटतौ रहै, आठूं पोहर अखंड ।—ह.र.

३ बेरोक, निर्विघ्न. ४ अजर-अमर ।

सं०पु०—१ ईश्वर ।

सं०स्त्री०—२ गिरिजा, पार्वती (अ.मा.)

अखंडत—देखो 'अखंडित'।

अखंडळ–सं०पु० [सं० आखंडल] इंद्र ।

अखंडित–वि० [सं०] १ निर्विघ्न, बाधा रहित. २ लगातार, अविच्छिन्न. ३ जो खंडित न हो, पूरा। उ०—मुकतमाळ दुलड़ी उर मंडित, अती भार सबसत अखंडित।—रा.रू.

अखंडी, अखंडौ—देखो 'अखंड'।

अख–सं०पु०—बाग, बगीचा।

अखगरियौ–सं०पु० [फा० अखगरिया] वह घोड़ा जिसके मलते समय शरीर से चिनगारी पैदा होती हो (अशुभ)—शा.हो.

अखड़—देखो 'अक्खड़'।

सं०स्त्री०—१ पड़ी हुई जमीन जिसमें कृषि होती हो, कृषिरहित भू-भाग, परती।

सं०पु०—२ एक प्रकार का घोड़ा जो चलते समय ठोकर खाकर चलता है (अशुभ)—शा.हो.

अखड़पण, अखड़पणौ—देखो 'अक्खड़पणौ'।

अखड़मूत–सं०पु०—घोड़े का एक रोग विशेष जिसके कारण घोड़े के पेशाब करने में अड़चन होती है (शा हो.)

अखड़ैत, अखड़ैत–वि०—१ अकड़ने वाला. २ झगड़ालू. ३ बलवान। उ०—जंगा जीत तपोबळ जालम, ओप बड़ै अखड़ैत।—रा.रू.

सं०पु०—१ वीर, योद्धा। उ०—जरू अखड़ैत बेहूं जगजीत, सिंघ हिंदवांन बेहूं सुपवीत।—गो.रू. २ मल्ल, पहलवान।

अखज–वि० [सं० अ+खाद्य] न खाने योग्य पदार्थ।

अखज्ज—देखो 'अखज'।

अखट–सं०पु०—अकड़ता हुआ चलने वाला घोड़ा (शा.हो.)

अखण–सं०पु०—मुँह, मुख (अ.मा.)

अखणी–सं०स्त्री० [अ० यखनी] १ मांस का रस, शोरबा [सं० यक्षिणी] २ यक्ष जाति की एक देव-स्त्री।

अखणौ, अखबौ–क्रि०स० [सं० आ+ख्या] कहना। उ०—मुनेसर ध्यांन धरंत महंत, अखै जुग हेकौ हो नांम अनंत।—ह.र.

अखणियौ–वि०—कहने वाला।

अखियोड़ौ–भू०का०कृ०—कहा हुआ।

अक्खणौ, अक्खबौ—रू०भे०।

अखत—१ देखो 'अक्षत'. २ अटल, निश्चल। उ०—खेंच रथ अखत असमांण रहियौ खड़ौ। नखत नव लाख सूधौ निमानाथ।
—अज्ञात

सं०पु०—१ अन्न, अनाज. २ बिना टूटा हुआ चावल। उ०—हरी द्रोब दधि अखत ओप दीपक आरत्तिय।—रा.रू.

क्रि०वि०—सरासर, बिल्कुल।

अखतजोण, अखतजोणी—देखो 'अक्षतयोनि'।

अखतपीळा–सं०पु० [सं० अक्षत+पीत] विवाहादि शुभ कार्यों पर निमंत्रण हेतु दिए जाने वाले पीले रंगे हुए चावल।

अखतियार–सं०पु० [फा० इख्तियार] १ अधिकार, स्वत्व, सामर्थ्य। २ धारण, स्वीकार।

क्रि०प्र०—करणौ, राखणौ, देणौ, होणौ।

क्रि०प्र०—करणौ।

अखतीज—देखो 'आखातीज'।

अखत्यार—देखो 'अखतियार'।

अखत्यारपण, अखत्यारपणौ–सं०पु० [फा० इख्तियार+रा०प्र०-पणौ] अधिकार, स्वत्व की भावना।

अखत्र–वि० [सं० अक्षत] १ अखंड, अक्षत। उ०—अति छूटे गोळा रण अखत्र, नव लाख जांण तूटे नखत्र।—वि.सं. २ अक्षत। उ०—घावां बांणां सा तिलकां धू साबळां गंगाजळां धोक। बीलपत्रां अखत्रां कटारां गोळी बांण।—उम्मेदजी सांदू

अखन—देखो 'अखंड'।

अखनकंवारी—देखो 'अकनकुंवारी'। (स्त्री० अखनकंवारी)

अखबार–सं०पु० [अ०] समाचार पत्र।

अखबारनवीस–सं०पु० [अ०] पत्रकार।

अखम—देखो 'अक्षम'।

अखमता—देखो 'अक्षमता'।

अखमाळा–सं०स्त्री०—वशिष्ठ की पत्नी–अरुंधती।

अखय—देखो 'अक्षय'।

अखयकुमारी–वि०स्त्री०—अक्षतयोनि। उ०—माह मास सीय पड़ै अति सार, रांमजती धन अखयकुमारि।—वी.दे.

अखयबड़—देखो 'अक्षयवट'।

अखया—१ देखो 'अखय' ('अखय' का स्त्री०)

सं०स्त्री०—२ दुर्गा, महामाया। उ०—स कालिका सारदा समया, त्रिपुरा तारणि तारा त्रनया। ओहं सोहं अखया अभया, आइ अजया विजया उमया।—देवि.

अखर—देखो 'अक्षर'।

अखरणौ, अखरबौ–क्रि०स०—१ अखरना, खलना, बुरा लगना. २ कष्टदायी होना।

अखरणौ–वि०—अखरने वाला।

अखरब–वि०—बहुत, अपार। उ०—सगरब न्याय सासनां उपासनां न आंन की। अखरब आस परब-परब सरब सक्तिमांन की।—ऊ.का.

अखरावळि, अखरावळी–सं०स्त्री० [सं० अक्षर+अवलि] अक्षरों की पंक्ति, अक्षर-समूह। उ०—प्रकटित प्रथिमी प्रथु मुख पंकज, अखरावळि मिसि थाइ एकत्र।—वेलि.

अखरौ–वि० [सं० अ+खरा] १ झूठा, जो खरा न हो. कृत्रिम, बनावटी।

सं०पु० [सं० अक्षर] अक्षर।

अखरोट–सं०पु० [सं० अक्षोट] १ एक प्रकार का फलदार ऊँचा पेड़ जो भूटान से अफगानिस्तान तक होता है. २ अंडाकार बेहड़े के आकार का इस वृक्ष का फल. ३ 'वयणसगाई' का एक नाम।

वि०वि०—देखो 'वयणसगाई'।

अखळ-वि० [सं० अखिल] १ समस्त, सम्पूर्ण, अखिल [सं० अ+खल] २ जो दुष्ट न हो।

अखळीस, अखळेसवर, अखळेसुर, अखळेस्वर-सं०पु० [सं० अखिलेश्वर] ईश्वर, परमात्मा।

अखव-वि० [सं० अखिल] समस्त, सम्पूर्ण, अखिल।

अखसत—देखो 'अक्षत'।

अखा-सं०पु० [सं० अक्षत] बिना टूटा हुआ चावल, अक्षत (मि० आखा) उ०—मोती का **अखा** किया, अंतेवर सहुं जोवड़ छइ राई।- बी.दे.

अखाड़मल, अखाड़सिध-सं०पु०—१ योद्धा, वीर. २ पहलवान।

अखाड़ामंड-सं०पु०—योद्धा, वीर।

अखाड़ौ-सं०पु० [सं० अक्षवाट] १ कुश्ती लड़ने या कसरत करने का चौकोर स्थान। उ०—राघव उमंग हंस हंस रटै, खेलूं खगां खतंग रौ; रिम हणे आज पुरू'रळी जुडूं **अखाड़ौ** जंग रौ।—र.रू. २ साधुओं की साम्प्रदायिक मंडली. ३ तमाशा या गाने वालों की मंडली. ४ दल. ५ सभा, दरबार. ६ रंग भूमि, नाटयशाला. ७ युद्धस्थल. ८ युद्ध। उ०—हम्मीर री सभा हूं महाराज पड़िहार ढाल तरवारि पकड़ि **अखाड़ै** आयौ।—वं.भा. ६ चमत्कारपूर्ण कार्य, यश के कार्य। उ०—धनौ धन्य मा आवड़ा धाड़ धाड़ा, अखीजै किसी जीह थारा **अखाड़ा**।—मे.म.

अखाज, अखाध-वि० [सं० अ+खाद्य] अखाद्य, न खाने योग्य। उ०—जला **अखाज** न खाइये, केही पड़ै कुबांण। माथूं सूं विन तांणिये, मेहांणी पण जांण।—जलाल बूबना री बात

अखि-वि० [सं० अखिल] समग्र, पूरा, समस्त।

सं०स्त्री० [सं० अक्षि] आंख, नेत्र।

अखिआत—देखो 'अखियात'।

अखिआंं-सं०स्त्री० [सं० अख्याति] १ ख्याति, यश, कीर्ति. २ अपयश।

अखित—देखो 'अक्षत'। उ०—ऊछब हुआ **अखित** ऊछळिया, हरी द्रोब केसर हळिद्र।—वेलि.

अखियात-वि०—१ प्रसिद्ध, मशहूर। उ०—**अखियातां** बातां वचै, जरा काळ डर छड्ड।—बां.दा. २ अद्भुत, अनोखा। उ०—दातापण दातार सूं, वाखाणौ कवि पात। कीरत तांहरी कनकसुत, इळ मांहे **अखियात**।—पलक दरियाव री बात [सं० अक्षय] ३ जो नाश न हो सके। उ०—पलट कूंकाड़ सूं गया पाछा पगां, जाय नहवात **अखियात** जाता जुगां।—महादांन महडू

सं०स्त्री० [सं० अख्याति] १ प्रसिद्धि. २ अपयश, बदनामी, अकीर्ति [सं० आख्यात] ३ आश्चर्यजनक बात। उ०—ए **अखियात** जु आउधि आउध सजै रुकम हरि छेदै सोजि।—वेलि.

(रू०भे०—अखिआत)

अखिर-सं०पु० [सं० अक्षर] १ वर्ण, अक्षर। उ०—'नाल्ह' रसायण रस भणइ, भूलौ **अखिर** आणजो ठाई।—बी.दे. [अ० अखीर] २ अंत, छोर, समाप्ति, आखिर।

क्रि०वि०—निदान, अंत में, आखिरकार।

वि० [सं० अखिल] १ समस्त, सम्पूर्ण. २ अक्षय।

अखिल, अखिलि-वि० [सं० अखिल] समस्त, सम्पूर्ण, अखंड। उ०—राज तणी इच्छा रघुराया, **अखिल** चराचर जीव उपाया।—ह.र.

अखिलेस-सं०पु० [सं० अखिलेश] ईश्वर, परमात्मा। उ०—नमो अपरम्म नमौ **अखिलेस**।—ह.र.

अखी-वि० [सं० अक्षय] १ अमर, न मिटने वाला। उ०—ऐ कूरम रहसी **अखी**, जुग जुग डूंग जुहार।—डूहा डूंगजी जवारजी रा २ विख्यात, प्रसिद्ध।

सं०स्त्री०—१ विजय, जीत। [सं० अक्षि] २ आंख, नेत्र।

अखीअमावस-सं०स्त्री० [सं० अक्षयामावस्या] वैशाख मास की अमावस्या।

अखीण-वि० [सं० अ+क्षीण] जो क्षीण या दुबला न हो।

अखीर—देखो 'आखीर'।

अखूंतौ-वि०—उतावला।

सं०पु०—योद्धा। उ०—कटारां छुरां धारि घानख कूतां, खिजे रूक बंदूक झाली **अखूंतां**।—हिंगळाजदांन कवियौ

अखूंनी-सं०पु०—यवनों की एक जाति, मुसलमान। उ०—खुरसांणी रहमांन **अखूंनी** सीदी, हबस राफसी सूंनी। मीर पाक ऐराक मकाई, तुरक सगुर जसथांनी ताई।—रा.रू.

वि० [सं० अ+फा० खूनी] जिसने खून न किया हो।

अखूट, अखूठ-वि०—जो समाप्त न हो, बहुत अधिक, अपार। उ०—आथ अटूट **अखूट** अन, प्रजा घणौ सुखपोस।— बां.दा.

अखेंग, अखेंगौ-सं०पु० (स्त्री० अखेंगी) वह पशु जिस पर पहिचान का कोई चिन्ह या दाग न हो।

अखे—देखो 'अक्षय'।

अखेकुमार—देखो 'अक्षयकुमार'।

अखेट-सं०पु० [सं० आखेट] शिकार, आखेट।

अखेटक-सं०पु० [सं० आखेटक] शिकारी।

अखेद-सं०पु० [सं० अ+खेद] आनन्द, प्रसन्नता।

वि०—खेदरहित, प्रसन्न।

अखेनम-सं०स्त्री० [सं० अक्षयनवमी] १ श्राद्ध पक्ष के अंतर्गत आने वाली नवमी तिथि, जिस दिन सौभाग्यवतियों तथा माताओं का श्राद्ध किया जाता है. २ कार्तिक शुक्ला नवमी जो पुण्य तिथि मानी जाती है। त्रेता का आरम्भ इसी दिन से माना जाता है।

अखेपाद-सं०पु० [सं० अक्षय+पाद] एक दार्शनिक ऋषि जिन्हें गौतम भी कहते हैं, न्याय दर्शन के यही प्रणेता थे।

अखेबड़, अखेयबड़—देखो 'अक्षयवट'।

अखेल—देखो 'अखिल'।

अखेलौ-वि०पु० (स्त्री० अखेली) १ रुग्णावस्था से बेचैन, व्याकुल. २ नहीं खेल सके ऐसा। उ०—संचै भांण तमासै **अखेला** खेल खेल

लीधा ।—कंवर छत्रसिंह रौ गीत ३ विचित्र, अद्भुत ।
उ०—दीकरौ दलेली सिंघ रौ देखजौ, अखेली आळ आ खेल आयौ ।
—आसियौ बुधजी

अखेस–वि०—युद्धरहित, युद्ध से निर्लिप्त । उ०—अक्रेह अप्रेह अखेह अखेस ।—ह.र.

अखेह, अखेहय–वि० [सं० अक्षय] १ अक्षय, नाश रहित [रा० अ+खेह] २ बिना धूलि का, निर्मल । उ०—१ अक्रेह अप्रेह अखेह अखेस ।—ह.र. उ०—२ मरजाद सर-सर सरिति अनुमिति छूटि जात अखेहयं ।—रा.रू.

अखेंग, अखेंगौ–वि० (स्त्री० अखेंगी) देखो 'अखेंग' ।

अखै—देखो 'अक्षय' (यौ० अखैमाळ)

अखैकुमार—देखो 'अक्षयकुमार' ।

अखैपाद—देखो 'अखेपाद' ।

अखैबट, अखैबड़, अखैबर—देखो 'अक्षयवट' ।

अखैमाळ–स०स्त्री० [सं० अक्षमाळा] रुद्राक्ष की माळा, अक्षमाला ।
उ०—मुकुट किरीट अखै गळमाळ ।—ह.र.

अखैरज–सं०पु०—रावण का पुत्र अक्षयकुमार जो अशोकवाटिका में हनुमान द्वारा मारा गया था ।

अखैवट—देखो 'अक्षयवट' ।

अखौ–वि० [सं० अक्षय] सम्पूर्ण, पूरा ।

अखोड़–वि० [सं० अ+खोड़=ऐब] १ भद्र, साधु प्रकृति का, सज्जन. २ सुंदर. ३ जिसमें कोई कलंक या ऐब न हो, निर्दोष ।

अखोण, अखोणी, अखोहिण, अखोहीणी, अखोहण, अखोहणी— देखो 'अक्षौहिणी' । उ०—दुमासरा क्रम गंगेव दुजोण, खपे कुरखेत अढ़ार अखोण ।—ह.र.

अख्खणौ—देखो 'अखणौ' ।

अख्खर—देखो 'अक्खर' ।

अख्तावर–सं०पु० [फा० आख्तः] वह घोड़ा जिसके जन्म से ही अंडकोष की कोड़ी न हो (ऐबी)—शा.हो.

अख्यात–वि० [सं०] १ जिसे कोई न जानता हो, जो प्रसिद्ध न हो. २ देखो 'अखियात' ।

अख्याति, अख्याती—देखो 'अखियात' ।

अगंज, अगंजण–वि०पु०—वह जो जीता न जा सके । उ०—पैलां कटकरां भारायां मेलै पमंगां उछांटीपणै, बंका भ्रांटीपणै गंजै अगंजां बिसेस ।—रांमकरण महडू

अगंजणौ–वि०—वह जो किसी से जीता न जा सके, अजेय ।

अगंजणौ, अगंजबौ–क्रि०स०—जीतना, विजयी होना ।

अगंजणियौ–वि०—जीतने वाला ।

अगंजिओड़ौ, अगंजियोड़ौ, अगंज्योड़ौ–भू०का०कृ०—विजयी ।

अगंजी–सं०पु०—गढ़ (अ.मा.)
वि०—न दबने वाला, अजय, अपराजित । उ०—प्रचंड डंडण अगंजी गंजण, धनमी भ्रसूत ताहि नूमी भूत करण ।—रा.रू.

अगंजीगंज, अगंजीगंजणौ–वि०—अजेय या न दबने वाले योद्धाओं को भी दबाने वाला अत्यंत पराक्रमी ।

अगंजौ–वि०—अजय, अपराजित (मि० अगंज)

अगंड–सं०पु० [सं०] हाथ-पैर रहित धड़, कबंध, रुण्ड ।

अग–स०पु० [सं०] १ न चलने वाला, स्थावर. २ पर्वत । उ०—डिग अकबर दळ ढांण, अग अग भगड़ै आथड़ै ।—दुरसौ आढ़ौ ३ वृक्ष. ४ सूर्य. ५ टेढ़ा चलने वाला, सर्प [सं० अघ] ६ पाप, कुकर्म ।
क्रि०वि०—आगे, अगाड़ी, सम्मुख ।
सं०स्त्री० [सं० अग्नि] १ अग्नि । उ०—संपेख अग नग साख सी, रत रोस मारग राखसी ।—रा रू. (यौ० अगनग)
[रा०] यश, कीर्ति, प्रशंसा ।

अगइ–क्रि०वि०—अगाड़ी । उ०—राजा पांडघौ लीयौ हौ बोलाई । अगइ बात कहौ समझाय ।—वी.दे.

अगउवौ—देखो 'अगुऔ' ।

अगक–वि०—मिथ्या, असत्य ।

अगड़–वि०—१ अग्रणी, अगाड़ी. २ अगम्य, भयंकर. ३ अनघड़ ।
सं०पु०—१ अकड़, दर्प, ऐंठ. २ देखो 'अगढ़' (वं.भा.)
उ०—एक पोहर जूटा भड़ ऐसा, जुध गजराज अगड़ विण जैसा ।
—रा.रू.

अगड़-बगड़–वि०—१ बे सिर-पैर का, क्रमहीन असंबद्ध. २ व्यर्थ ।
सं०पु०—असंबद्ध प्रलाप ।

अगच्छि–क्रि०वि०—अगाड़ी ।

अगज–वि० [रा० अग=पर्वत+ज] पर्वत से उत्पन्न ।
सं०पु०—१ शिलाजीत. २ हाथी । [सं० अंगज] ३ कामदेव ।

अगजीत–वि० [सं० अघ+जीत] १ पापों को जीतने वाला, धर्मात्मा. २ विजय प्राप्ति में अग्रणी । उ०—इसी वह तेग सदा अगजीत, सजे नर कम्मर 'पेम' सजीत ।—पे.रू.

अगझाळ–सं०स्त्री० [सं० अग्नि+रा० झाळ=लपट] अग्नि की लपट ।

अगड, अगडु–सं०पु०—१ रोक, बंध, प्रतिबंध, रुकावट । उ०—मारू रायांमालहर, सारू खळां अगडु ।—रा.रू. २ देखो 'अगढ़' ।

अगढ़–सं०पु०—१ दो हाथियों के बीच की दीवार जिससे हाथी परस्पर लड़ न सकें. २ हाथी का बंधस्थल (वं.भा.)

अगढ़भाट–वि०—भयंकर, डरावना ।

अगढ़ाळ, अगढ़ाळियौ–स०पु०—वह कोठरी जिस पर ढलुआं छप्पर लगाया हुआ हो ।

अगणंत—देखो 'अगणित' ।

अगण–सं०पु० [सं०] छंद शास्त्र के आठ गणों में से वे गण जो काव्य-रचना में अशुभ माने जाते हैं (र.रू.)
सं०स्त्री०—अग्नि, आग । उ०—घायल री गत घायल जांण्यां, हिवड़ौ अगण संजोय ।—मीरां
वि०—पापरहित, पवित्र ।

क्रि०वि०—अग्र, अगाड़ी। उ०—अकबर दळ रहियौ अगण, कळंक विणा कुंभेण कळोधर।—दुरसौ आढ़ौ

अगणत, अगणित–वि० [सं० अगणित] जिसकी गणना न हो सके, बहुत, असंख्य, अपार। उ०—विदर पिदर जांणं नहीं मादर विदरां मूळ। रातै अगणत रंग रा, दिल री कुसी दुकूळ। बा.दा.

अगणौ–वि०—पूर्व का, आगे का, अग्रणी। उ०—अगणौ तो वासौ ग्वाड़ां जी वसियौ, ग्वाड़ां तौ भरी धोळी धेनां मूं।—गो.गी.

अगत, अगति–सं०स्त्री० [सं० अगति] १ दुर्गति, बुरी गति, दुर्दशा. २ प्रेतयोनि। उ०—काल्ह पग पसार थे म्हे मरांस तो अगत जायसां।—डाढ़ाळा सूर री बात

३ जिसकी गति या मोक्ष न हुआ हो. ४ दाहादि क्रिया।

क्रि०वि०—करणी, होणी।

५ नरक।

अगतियौ—देखो 'अगति' (३)

अगती—देखो 'अगति'।

अगतौ–सं०पु०—वह दिन जब जीव-हिंसा न की जाय और न साधारणतया भट्टी ही जलाई जाय। इस दिन प्रायः कारीगर या अन्य औजारों द्वारा काम करने वाले व्यक्ति भी अपना कार्य बंद रखते हैं (धार्मिक, सामाजिक). [फा० अख्यत:] २ बधिया किया हुआ घोड़ा (शा.हो.)

अगत्थ, अगथ्थि, अगथि–सं०पु [सं० अगस्त्य] अगस्त्य ऋषि। उ०—तंबेरम कुंभ दुहाथळ तत्थ। आडागिरि मत्थक हत्थ अगत्थ।—मे.म.

अगद–सं०पु० [सं० अ+गद] १ निरोग, स्वस्थ। उ०—करि उपचार अगद बपु कीधौ, दुळभ वित्त संचय नृप दीधौ।—वं.भा.

२ दवा, औषधि. ३ वैद्य।

अगदराज–सं०पु०—अमृत, सुधा (ह.नां.)

अगन–सं०स्त्री० [सं० अग्नि] १ अग्नि (डिं.को) उ०—खरराथ उडी हय पदन खेह, मंडियौ अहमदपुर अगन मेह।—वि.सं. २ पूर्व और दक्षिण के मध्य की आग्नेय दिशा का नाम. ३ इस दिशा का दिक्‌पाल (डिं.को.) ४ माया (अ मा.)

वि०—सफेद व रक्तवर्ण के मिश्रित रंग वाला* (डिं.को.)

अगनग–सं०पु०यौ०—ज्वालामुखी पर्वत। उ०—संपेख अगनग साख सी, रत रोस मारग राखसी।—र.रू.

अगनजंत्र–सं०पु०यौ० [सं० अग्नि+यंत्र] बंदूक या तोपादि अस्त्र।

अगनझाळ–सं०स्त्री०यौ० [सं० अग्नि+ज्वाला] अग्नि की लपट।

अगनबडवा–सं०स्त्री०यौ० [सं० बडवाग्नि] समुद्र के अंदर की आग, बडवानल।

अगनबाय–सं०पु०—घोड़े का एक रोग विशेष (शा.हो.)

अगनि–सं०स्त्री० [सं० अग्नि] अग्नि, ज्वाला।

अगनिउ–सं०पु० (प्रा०रू०) आग्नेय दिशा का नाम।

अगनियौ–सं०पु०—१ एक कांटेदार वृक्ष विशेष जिसके पत्ते आम से मिलते-जुलते होते हैं किन्तु तना काले रंग का होता है. २ एक रोग विशेष।

अगनिहोत्र—देखो 'अगनीहोत्र'।

अगनी–सं०स्त्री० [सं० अग्नि] १ अग्नि।

पर्याय०—अनळ, अपत, अरुचिख, अलियळ, आतस, आपित, आश्रयआस, उखर, क्रपीठ, क्रसांन, क्रस्न, जागवी, जाग्रवी, जातबेध, जातवेद, जाळानळ, जोनक्रपीठ, ज्वाळाजीह, झळमाळा, तमोधन, दावानळ, दहण, धनंजय, धोम, धूमधज, पावक, वैसंदर, बरहीमुख, मंगळ, महवर, मारुतसखा, रोहितांम, रोहितास, वरतमा, विध, विभावसु, वीतहोत, वैसंनर, सपतारची, सपती, सिखा, सिखावांन, सुखमा, सुरांमुख, हुतभख, हुतास, हुतासण।

क्रि०प्र०—घालणी-बाळणी-जळाणी-बुझाणी-लगाणी-सुळगाणी।

(रू०भे०-अग, अगन, अगनि, अगिन, अग्नि, आग।)

यौ०—अगिनजंत्र, अगनीबडवा, अगनीअस्त्र, अगनीकुंड, अगनीकण, अगनीकरम, अगनीकोण, अगनीक्रिया, अगनीगरभ, अगनीज्वाळा, अगनीजीभ, अगनीदाग, अगनीदाह, अगनीपरीक्षा, अगनीपुराण, अगनीबांण, अगनीबोट, अगनीमुख, अगनीसंसकार, अगनीहोतर (त्र).

२ जठराग्नि, पाचन शक्ति।

यौ०—अगनीदीपक, अगनीदीपण, अगनीमाद।

३ ताप, प्रकाश. ४ पंचमहाभूतों में से एक. ५ वेद के तीन प्रधान देवताओं में से एक. ६ पित्त. ७ तीन की संख्या* ८ चित्रक वृक्ष. ९ अग्निकोण का देवता. १० घोड़े के माथे पर की भौंरी।

वि०—काला, कृष्ण, श्यामवर्ण* (डिं.को.)

अगनीअस्त्र–सं०पु०यौ० [सं० अग्नि+अस्त्र] आग फेंकने वाले अस्त्र, बंदूक, तोप, तमंचा आदि।

अगनीकंवर–सं०पु०यौ० [सं० अग्नि+कुमार] कार्तिकेय।

अगनीकण–सं०पु०यौ० [सं० अग्नि+कण] चिनगारी, अंगारे का छोटा टुकड़ा।

अगनीकरम–सं०पु०यौ० [सं० अग्निकर्म] १ अग्निहोत्र, हवन. २ शवदाह।

अगनीकीट–सं०पु०यौ० [सं० अग्निकीट] अग्नि में निवास करने वाला समंदर नाम का एक प्रकार का कीड़ा विशेष।

अगनीकुंड–सं०पु०यौ० [सं० अग्निकुंड] १ आग जलाने का कुंड. २ गरम जल का सोता, यज्ञकुंड, एक तीर्थ का नाम।

अगनीकुंवर–सं०पु०यौ० [सं० अग्निकुमार] कार्तिकेय।

अगनीकुळ–सं०पु०यौ० [सं० अग्निकुल] क्षत्रियों का एक कुल विशेष जिसकी उत्पत्ति अग्नि से हुई कही जाती है।

अगनीकोण–सं०पु०यौ० [सं० अग्निकोण] दक्षिण-पूर्व का कोना, आग्नेय दिशा।

अगनीक्रिया–सं०स्त्री०यौ० [सं० अग्नि+क्रिया] शव का दाह-कर्म, अंत्येष्टि संस्कार।

अगनीगरभ–सं०पु०यौ० [सं० अग्नि+गर्भ] १ सूर्यकान्त मणि।

२ आतशी शीशा. ३ ज्वालामुखी पर्वत ।

अगनीअंतर—देखो 'अगनजंत्र' ।

अगनीज–सं०पु० [सं० अग्निज] १ जो अग्नि से उत्पन्न हो. २ एक कुल जो अग्नि से उत्पन्न माना जाता है. ३ सोना (अ.मा.)

अगनीजवाळा–सं०स्त्री०यौ० [सं० अग्नि+ज्वाला] आग की लपट ।

अगनीजीभ–सं०स्त्री०यौ० [सं० अग्निजिव्हा] आग की लपट (अग्नि की सात जिव्हायें मानी जाती हैं—असुलुहिता, सुवरणा (सुवर्णा), सुहिता, स्फुलिंगिनी, परिवह, विश्वमाया और बहुरूपा)

अगनीदाग, अगनीदाह–सं०पु०यौ० [सं० अग्नि+दाह] शव को अग्नि में जलाने की क्रिया, अंत्येष्टि संस्कार ।

अगनीदीपक, अगनीदीपण–सं०पु०यौ० [सं० अग्निदीपक] वह औषधि जो जठराग्नि को तीव्र करे ।

अगनीपंथो–सं०पु०यौ०—एक विशेष जाति का घोड़ा (शा.हो.)

अगनीपरीक्षा–सं०स्त्री०यौ० [सं० अग्नि+परीक्षा] १ प्राचीन विधान अनुसार झूठ-सच या दोषादोष की परीक्षा करने की क्रिया विशेष जिसके अनुसार जलती हुई आग पर चल कर या जलता हुआ कोयला, तेल, पानी या लोहा लेकर परीक्षा दी जाती थी. २ सोने या चांदी को आग में तपा कर परखना ।

अगनीपुरांण–सं०पु०यौ० [सं० अग्निपुराण] अठारह पुराणों में से एक पुराण विशेष ।

अगनीबांण–सं०पु०यौ० [सं० अग्निबाण] आग की ज्वाला प्रकटाने वाला बाण ।

अगनीबीज–सं०पु०यौ० [सं० अग्निबीज] १ सोना. २ 'र' वर्ण ।

अगनीबोट–सं०पु०यौ० [सं० अग्नि+बोट] भाप के द्वारा चलने वाली नाव, स्टीमर ।

अगनीमणी–सं०स्त्री०यौ० [सं० अग्निमणि] १ सूर्यकान्त मणि. २ आतशी शीशा ।

अगनीमंथ–सं०पु० [सं० अग्निमंथ] यज्ञ के लिये अग्नि निकालने का अरणी नामक वृक्ष ।

अगनीमांद–सं०स्त्री० [सं० अग्निमांद्य] भूख न लगना, मंदाग्नि ।

अगनीमुख–सं०पु०यौ [सं० अग्निमुख] १ देवता. २ प्रेत. ३ ब्राह्मण (अ.मा.)

अगनीवंस–सं०पु०यौ० [सं० अग्निवंश] अग्निकुल ।

अगनीवीज–सं०पु०यौ० [सं० अग्निबीज] सोना (डिं.को.)

अगनीवीरज–सं०पु०यौ० [सं० अग्नि+वीर्य] सोना (ह.नां. पाठांतर)

अगनीसंसकार–सं०पु०यौ० [सं० अग्नि+संस्कार] १ शुद्धि के लिए अग्नि से किया गया स्पर्श, तपाना, जलाना. २ अंत्येष्टि संस्कार ।

अगनीसखा–सं०पु०यौ०—१ अर्जुन (अ.मा.) [सं० अग्निसखा] २ वायु, हवा ।

अगनीसाळ–सं०स्त्री० [सं० अग्निशाला] अग्निहोत्र का स्थान ।

अगनीसुधी–सं०स्त्री०यौ० [सं० अग्नि+शुद्धि] अग्नि के स्पर्श द्वारा किसी वस्तु को शुद्ध करना, अग्निपरीक्षा ।

अगनीह–सं०पु० [सं० आग्नेय] उत्तर पूर्व के बीच का कोना, आग्नेय कोण ।

अगनीहोतर, अगनीहोत्र–सं०पु० [सं० अग्निहोत्र] वेदोक्त मन्त्रों से अग्नि में आहुति देने की क्रिया ।

अगनेउ—देखो 'अगनीह' ।

अगन्न–सं०स्त्री० [सं० अग्नि] अग्नि, आग । उ०—भीमाजळ रिण-छोड़ रौ, जोधो सांभ जतन्न । भाटी इंदो भीम तण, अरि भण काज **अगन्न** ।—रा.रू.

अगभू–सं०पु०—स्वामी कार्तिकेय (अ.मा.)

अगंभ–सं०पु० [सं० अ+गर्भ] गर्भ में न जन्म लेने वाला, परब्रह्म । उ०—**अगंभ** अछेह उदार अनोप ।—ह.र.

अगम–वि० [सं० अग्रिम] १ पहले सोचने वाला, दूरदर्शी । कहा०—१ अगम बुद्धी वांणियो, पिच्छम बुद्धि जाट । तुरत बुद्धि तुरकड़ो, बांमण सप्पमपाट—बनिये को पहिले सूझती है, जाट को पीछे मुसलमान को तुरंत और ब्राह्मण को बिल्कुल नहीं. २ अगम बुद्धी वांणियो, पिच्छम बुद्धि अह्म. ३ अगम बुद्धी वांणियो, बांमण सप्पमपाट—बनिये को पहले सूझती है और ब्राह्मण को पीछे या बिल्कुल नहीं सूझती ।

[सं० अगम्य] २ जहाँ कोई जा न सके. ३ दुर्गम । उ०—गिर भंगर तर **अगम** गथ, सिव चोर सरसद ।—अज्ञात ४ दुर्बोध. ५ न जानने योग्य. ६ कठिन. ७ दुर्लभ. ८ विकट. ९ बुद्धि से परे । उ०—**अगम** परब्रह्म गुण गत अपारै ।—र.रू. १० अथाह, अपार, बहुत गहरा ।

सं०पु०—१ मार्ग, रास्ता. २ भविष्यतकाल. ३ दूरदर्शिता. ४ वृक्ष. ५ पर्वत ।

अगमगम–सं०पु०—भीम (अ.मा.)

अगमद्रस्टी–वि० [सं० अगम+दृष्टि] दूरदर्शी ।

अगमबुद्धि, अगमबुद्धी, अगमबधी–वि०—पहले सोचने वाला, दूरदर्शी । वि०वि०—देखो 'अगम' १ ।

अगमभाखी–वि०—भविष्यवक्ता ।

अगमांगम–वि०—१ अथाह, अपार. २ अगम, अगम्य-आगम । उ०—रमणीक दीप पाबू रहीं, सिध **अगमांगम** सूझसी ।—पा.प्र.

अगमूं, अगम्म–वि० [सं० अगम्य] देखो 'अगम' । उ०—उमा तो पार **अगम्म** अलेख ।—ह.र.

अगम्मबुद्धी—देखो 'अगमबुद्धि' ।

अगम्य—देखो 'अगम' । उ०—महातम ध्येय रती नहिं गम्य, गती निगमागम गेय **अगम्य** ।—ऊ.का.

अगम्या–सं०स्त्री०—जिस स्त्री के साथ सम्भोग करना निषिद्ध हो, मैथुन करने के अयोग्य स्त्री, यथा—गुरुपत्नी आदि ।

अगर–सं०पु० [सं० अगरू] १ सुगंधित लकड़ी वाला वृक्ष जो भूटान,

आसाम आदि पहाड़ी इलाकों से प्राप्त होता है, और जिसकी लकड़ी करीब २० वर्ष के पश्चात् पक कर खूब रसीली हो जाती है। इसके रस से ही लकड़ी की कीमत आंकी जाती है। इसकी अगरबत्ती बनती है और इत्र बनाने में भी काम आती है। उ०—अरणी अगनि अगरमैं में इंधण, आहूंति घ्रत घणसार अछेह।—वेलि. २ एक औषधि. ३ चंदन. ४ डिंगल के वेलिया सांणोर छंद का एक भेद विशेष जिसके प्रथम द्वाले में ४० लघु १२ गुरु कुल ६४ मात्रायें हों तथा क्रम से शेष के द्वालों में ४० लघु ११ गुरु कुल ६२ मात्रायें हों. (पिंगळ प्रकास) ५ प्रथम एक नगण फिर दो तगण और अंत में ह्रस्व वर्ण का एक छंद विशेष (ल.पिं.)

क्रि०वि० [फा०] १ यदि, जो. २ मगर. ३ आगे, अगाड़ी। उ०—जहां पहलवां जीभ सूं, केकाउस कहियोह। अंतक केहर अगर औ, रुस्तम नंह रहियोह।—बा.दा.

अगरणी–वि० [सं० अग्रगण्य] १ प्रधान, मुखिया. २ श्रेष्ठ, उत्तम।

अगरगांमी–सं०पु० [सं० अग्रगामी] आगे जाने वाला या चलने वाला, नेता।

अगरचे, अगरचैं–अव्यय [फा० अगरचे] १ गोया. २ यद्यपि, बावजूद कि।

अगरचौ–सं०पु०—अगर से बना एक सुगंधित पदार्थ विशेष।

अगरजन्मौ, अगरजलमौ–सं०पु० [सं० अग्र+जन्मा] १ बड़ा भाई. २ ब्राह्मण. ३ ब्रह्मा. ४ पुरोहित. ५ नेता।

वि०—पहले उत्पन्न होने वाला।

अगरणी—देखो 'अगरगी'।

अगरदांन–सं०पु०—सुगंधित अगर रखने का पात्र विशेष।

अगरब–वि० [सं० अगर्व] गर्वरहित, अभिमानहीन।

अगरबत्ती–सं०स्त्री० [सं० अगरवर्तिका] अगर की बत्ती जिसे सुगंध के लिये जलाते हैं।

अगरभ—देखो 'अगरब'।

अगरवाळ–सं०पु०—वैश्यों की एक जाति विशेष।

अगराई—देखो 'अंगड़ाई'।

अगराजणौ–क्रि०अ०—१ जोर का शब्द करना. २ गरजना, दहाड़ना। (रू०भे०—अग्राजणौ, अग्राजबौ)

अगरासण–सं०पु० [सं० अग्राशन] १ देवार्पित भोजन का प्रथम भाग. २ गो-ग्रास।

अगरि–क्रि०वि०—अगाड़ी।

अगरेजी–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा विशेष (शा.हो.)

अगरेळ—देखो 'अगर'। उ०—संग वेळ सुरमा वास अगरेळ महक्की।
—रा.रू.

अगळ–क्रि०वि०—१ अगाड़ी, सम्मुख. २ पास।

अगळज–वि०—मूर्ख (अ.मा.)

अगळबंब–सं०पु०—एक प्रकार का आभूषण।

अगल-बगल–क्रि०वि० [फा०] १ इधर-उधर, आस-पास. २ दोनों ओर, दोनों किनारे।

अगलांणौ–वि०—पूर्व की, पहले की।

अगलूणौ–वि० (स्त्री० अगलूणी) १ पुराना, प्राचीन. २ अगला, पूर्व का। उ०—जिण दिन ढोलउ आवियउ, तिण अगलूणी रात। मारू सुहिणउ लहि कह्यउ, सखियां सूं परभात।—ढो.मा.

अगलौ–वि० [सं० अग्र+लौ–रा०प्र०] (स्त्री० अगली) १ सामने या आगे का. २ प्रथम या पहिला. ३ पूर्ववर्ती. ४ प्राचीन, पुराना. ५ आगामी (यौ०–अगलौ भौ) ६ अपर, अन्य, दूसरा. ७ अगुआ, प्रधान. ८ चतुर।

सं०पु०—पूर्वज, पुरखा।

अगवांण–सं०पु० [सं० अग्र+यान] १ अगुआ। उ०—खाग उनागियां खिवे माथै खळां, रांग रा दळां अगवांण नगराज।—अज्ञात
२ अगवानी करने वाला।

अगवांणी–सं०स्त्री०—आदरसहित, अतिथि से आगे बढ़ कर मिलना, स्वागत, पेशवाई।

सं०पु०—१ आगे चलने वाला। उ०—काळौ अगवांणी करौ, गोरी जैरी गैल। धमकै कटियां घूघरा, लटियां तेल फुलैल।—मे.म.
२ अग्रणी नेता, अगुआ। उ०—चतुर हुवौ चहुवांण अनड़ संगर अगवांणी।—वं.भा.

अगवाई–सं०स्त्री०—आदरसहित अतिथि से आगे बढ़ कर मिलने का भाव।

अगवाड़ौ–सं०पु० [सं० अग्रवाट] घर के आगे का भाग।

अगवारे, अगवारैं, अगवारौ–क्रि०वि०—अगाड़ी। उ०—सहर छोटी सी भाखरी री खांम, अगवारैं वडौ मैदांन उनाळी निपट घणी, छोटा-मोटा ढीबड़ा ३०० हुवै।—नैणसी

अगस, अगस्त, अगसत, अगसत्य–सं०पु० [सं० अगस्त्य] १ एक ऋषि जिन्होंने समुद्र को सोख लिया था। ये मित्रावरुण के पुत्र माने जाते हैं। विन्ध्यपर्वत का गर्व खंडन करने के कारण अगस्त्य कहलाये। इनको कुंभज भी कहते हैं. २ एक तारा जो भादों में सिंह के सूर्य के १७ अंशों पर उदय होता है। इसके उदित होने पर जल निर्मल हो जाता है और वर्षा कम तथा शीत की वृद्धि हो जाती है तथा रास्तों आदि का जल सूख जाता है. ३ अंग्रेजी वर्ष का आठवां महीना. ४ एक वृक्ष जिसके फूल, छिलके, व, पत्तियां औषधि के काम आते हैं। (रू.भे.–अगथ)

अगस्त, अगस्य—देखो 'अगसत'

अगस्तियौ, अगस्थियौ—देखो 'अगस्त' (४)

अगहण, अगहन–सं०पु० [सं० अग्रहायन] हेमन्त ऋतु का पहिला महिना, मार्गशीर्ष।

अगहर–वि० [सं० अघ+हर] (स्त्री० अगहरणी) पापों को हरण करने वाला। उ०—पर अचर चित, निश्चळ निचित, नहि आदि

अंत अगहर अनंत ।—ऊ.का.

क्रि०वि०—१ आगे. २ प्रथम, पहले ।

अगांणी-सं०पु०—पत्थर की वह शिला जो रहँट के उस किनारे पर रक्खी जाती है जिधर से खाली माल (पानी की डोलियां) कुयें में जाती हैं ।

अगांम-वि० [सं० अ+ग्राम] गांवरहित ।

अगांळी-सं०स्त्री०—लीपने का एक प्रकार (क्षेत्रीय)

अगा-क्रि०वि०—१ पूर्व, पहले । उ०—उबारिय स्राप अगा अमरीख, सेवग्ग कियौ तैं आप सरीख ।—ह.र. २ अगाड़ी, सम्मुख ।

अगाउ—देखो 'अगाऊ' ।

अगाउणी, अगाउनी-सं०स्त्री०—पूर्व दिशा ।

क्रि०वि० [सं० अग्र] आगे, अगाड़ी ।

अगाऊ-वि०—प्रथम या आगे आने वाला (व्यक्ति)

क्रि०वि०—१ पहले, पूर्व । उ०—हेरू एक सेवा ने अगाऊ खबरि दीनी । चांदी लूट सीकर का किला में नांख लीनी ।—शि.वं.

२ अगाड़ी । उ०—दूत रै साथ सत्कार रौ वरण दूत तौ अगाऊ भेजियौ ।—वं.भा.

अगाड़ी-क्रि०वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+आड़ी-रा०प्र०] १ आगे, भविष्य में. २ सामने, समक्ष. ३ पूर्व, पहिले. ४ पास ।

सं०पु०—१ आगे या सामने का भाग. २ घोड़े के अगले पैर का बंधन. ३ सेना का पहिला धावा ।

अगाड़ी-पिछाड़ी-सं०स्त्री०—घोड़े के अगले और पिछले पैरों में बंधी हुई रस्सी या सांकल । उ०—जीण मांडजै छै केसवाळी रंग-रंग री गूंथजै छै, अगाड़ी-पिछाड़ी खोलजै छै ।—रा.सा.सं.

अगाजणौ, अगाजबौ-क्रि०अ०—गर्जन करना । उ०—चौमासै बादळां जिहीं फौजां रा समूह चालै, आगळी गयंद छाजै अगाजै अपार ।—अज्ञात

अगाढ़-वि०—१ गहरा, गंभीर. २ बलवान, शक्तिशाली ।

अगात-वि० [सं०] शरीररहित, निराकार । उ०—अगात असास अबात अबेस, आदेस आदेस आदेस आदेस ।—ह.र.

अगाध, अकाध-वि० [सं० अगाध] १ अथाह, बहुत गहरा. २ अपार, असीम । उ०—उत्तर आज न जाइयइ, जिहां स मीत अगाध ।—ढो.मा.

३ समझ में न आने योग्य, दुर्बोध । उ०—अगम अगाध तू अगला अगवांणी । तू अवगत अनाथनाथ तू अकथ कहांणी ।—केसोदास गाडण

अगार-सं०पु० [सं० आगार] १ समूह. २ खजाना. ३ घर, स्थान (अ.मा.) उ०—दूदौ इम भाखे दुसह आयौ ऊठि अगार ।—वं.भा.

[सं० अंगार] ४ अंगार ।

क्रि०वि०—आगे, अगाड़ी, पहिले ।

अगाळ-वि०—विशेष, अधिक ।

अगालग-क्रि०वि०—निरंतर ।

अगाळा-सं०स्त्री०—बरछी (डिं.नां.मा.)

अगास-सं०पु० [सं० आकाश] आकाश, शून्य । उ०—जळ मंहि वसइ कमोदणी, चंदउ वसइ अगासि ।—ढो.मा.

अगासइ-सं०पु० [सं० आकाश] आसमान, आकाश । उ०—दीसि अगासइ तावड़ि दाझइ, रातइ वाइ ताढ़ि ।—कां.दे.प्र.

अगासुर—देखो 'अघासुर' ।

अगाह-वि० [सं० अगाध] १ अथाह, बहुत, गहरा [फा० आगाह] २ विदित, प्रकट [रा०] ३ जो नाश न किया जा सके । उ०—ऐसौ पातिसाह कौ परगाह, सग्गहां तैं अगाह ।—रा.रू.

४ ग्रहण न किया जाने वाला । उ०—अलाह अगाह अबाह अजीत, अमात अतात अजात अतीत ।—ह.र.

सं०पु०—परब्रह्म ।

क्रि०वि०—१ आगे से, पहले से. २ अगाड़ी । उ०—एक राव अरबद्द बियौ सरणवै बयट्ठौ । एकाएक अगाह एक एकाह अपूठौ ।
—नैणसी

अगाहट-सं०पु०—दान या पुरस्कार में दी गई जागीर ।

अगाहि-वि०—वह जो विजय नहीं किया जा सके, अजय । उ०—'औरंग' 'जसौ' अगाहि, जुटा सूरिज राहू ज्यूं ।—वचनिका

अगिन-सं०स्त्री० [सं० अग्नि] अग्नि, आग (मीरां)

वि० [सं० अज्ञान] मूर्ख, ज्ञानरहित (ह.नां. पाठांतर)

अगिभू-सं०पु०—स्वामी कार्तिकेय (ह.नां.)

अगियांन-सं०पु० [सं० अज्ञान] अज्ञान, मूर्खता ।

अगिया बैताळ-सं०पु०—एक कल्पित बैताल ।

अगियार-वि० [सं० एकादशन, पा० एग्रारह, प्रा० एक्कारस, अप० एग्गारह] दस और एक, ग्यारह ।

सं०स्त्री०—ग्यारह की संख्या ।

अगिलि-वि०स्त्री०—१ अगली. २ पहिले की, पूर्व की ।

अगिलौ-वि०—१ अगला. २ पहिले का ।

अगिल्ल-सं०पु०—पूर्वज, पुरखा ।

वि०—१ आगे का. २ पहिले का ।

अगिवांण-सं०पु०—अग्रगामी । उ०—तोहि लंबोदर बीनमूं, चउसठि जोगिनि का अगिवांण ।—वी.दे.

अगी-सं०स्त्री० [सं० अग्नि] अग्नि ।

अगीत-वि०—१ न गाये जाने योग्य । उ०—अलीत अदीत अरीत अराह, अमीस अभीत अगीत अगाह ।—ह.र.

२ न गाया जाने वाला ।

अगीरणौ, अगीरबौ—देखो 'उगेरणौ' । उ०—गायां एवड़ ग्वाळ, अगीरै रागां छोरा ।—दगदेव

अगुग्रौ-वि०पु०—१ अग्रणी, आगे चलने वाला, मुखिया, नेता, प्रधान. २ मार्गदर्शक ।

क्रि०वि०—अग्र, अगाड़ी । उ०—आगळ सुरग कपाट अघ, बोजग अगुग्रौ देख । संपत लता कुठार मम, विगत लता घण वेख ।—बां.दा.

अगुण-सं०पु० [सं०] १ निर्गुण. २ दोष. ३ बुराई ।

सं०स्त्री० [रा० उगूणी] ४ पूर्व दिशा।

वि०—१ निर्गुणी. २ मूर्ख. ३ अनाड़ी. ४ अगुआ. ५ श्रेष्ठ।

अगुवांणी—देखो 'अगवांणी'।

अगुवो—देखो 'अगुग्रौ'।

अगूंग-वि०—पहिले का, पूर्व का।

अगूभ-वि०—मूर्ख (अ मा.)

अगूढ़-वि० [सं०] १ जो छिपा न हो, स्पष्ट, प्रकट। उ०—अटकाई नह आयबळ, आई जरा अगूढ़।—बां.दा. २ आसान, सरल।

अगूण-सं०पु० [रा० उगणी] १ पूर्व दिशा। उ०—अगूण पासी थोड़ो उजास होवण लागतौ।—बरसगांठ २ देखो 'अगुण'।

अगेंदर, अगेंद्र-सं०पु० [सं० अगेन्द्र] १ पर्वतराज हिमालय. २ सुमेरु पर्वत।

अगेभू-सं०पु०—स्वामी कार्तिकेय (ह.नां.)

अगेती-वि०—अग्रणी, अगाड़ी रहने वाला, अग्रगामी। उ०—कुळवट खेती कमधजां, खग सेती उखेल। जेतां पतो न जांण दे, हरम्म अगेती हेळ।—किसोरदांन बारहठ

अगेस-क्रि०वि०—आगे। उ०—लहै वैण इतौ लेस, तांण भूह करै तेस। सालुळ अगेस सस, राघवेस राघवेस।—र.रू.

अगै-वि०—पहिला, पूर्व का।

क्रि०वि०—१ पूर्वकाल में, अतीत में। उ०—भारी अगै अगै रे भारत, हेकण जीभ प्रताप हुवा।—बां.दा.

२ आगे, अगाड़ी, सम्मुख (रू.भे.—आगे)

अगैह-वि० [सं० अ+गृह] १ जिसका कोई घर न हो, बिना घर का।

सं०पु०—परब्रह्म।

अगोअगा-क्रि०वि०—१ पूर्व. २ अगाड़ी।

अगोवाड़ो-सं०पु० [सं० अग्र+वाट] घर का आगे का भाग।

अगोचर-वि० [सं०] १ जो इन्द्रियों से अनुभव न हो सके, इंद्रियातीत. २ अप्रकट, अव्यक्त, अप्रत्यक्ष।

सं०पु०—विष्णु, परब्रह्म।

अगोणी-वि०—पूर्व दिशा की ओर का, प्राची का।

उ०—सारा जाट वांभी बात सारी जांण पाई। फौजाराव सेखा की अगोणी भूमि आई।—शि.वं.

अगोत-वि० [सं० अ+गोत्र] जिसके वंश का पता न चले, गोत्रहीन।

अगोनी—देखो 'अगवांणी'।

अगोरौ-वि० [सं० अ+गोरा] जो गौर वर्ण न हो, श्याम वर्ण का।

अग्ग-क्रि०वि०—अगाडी, आगे, सम्मुख। उ०—पित्थल इम आयौ परणि, सम्मद पायौ सोम। अनळ अग्ग प्रतिहार अरि, हुणि कीधा घण होम।—वं.भा.

सं०स्त्री० [सं० अग्नि] अग्नि। उ०—प्रीत पुरांणी ना हुवै, जो उत्तम सौं लग्ग। सौ बरसां जळ में रहै, पथरी तजै न अग्ग।—अज्ञात

अग्गण-सं०पु० [सं० प्रांगण] आंगन। उ०—ढोलइ चलतां परिठ्यउ अग्गणि मोजां सल्ल।—ढो.मा.

अग्गणि-सं०स्त्री० [सं० अग्नि] अग्नि।

अग्गमबुद्धि, अग्गमबुद्धी-वि०—पहिले सोचने वाला, दूरदर्शी।

वि०वि०—देखो 'अगम' (१)

अग्गर-सं०पु० [सं० अगर] १ देखो 'अगर'। उ०—साळगरांम सिला-मुध सेविस, अग्गर चंदण धूप उखेविस।—ह्.र.

[सं० आगार] २ महल, प्रासाद। उ०—अग्गर जेहा झूंपड़ा, तउ आसंग मोह।—ढो.मा.

अग्गळ-सं०पु० [सं० अर्गल] लकड़ी का वह डंडा जो किवाड़ बंद करने के पीछे की ओर लगाया जाता है अरगला।

वि०—आगे, अग्रणी। उ०—सतरै सै सांमंत आंक आठै सुभ अग्गळ।—रा.रू.

क्रि०वि०—आगे, अगाड़ी। उ०—बर्द 'जसो' जिण वार, कंवर अग्गळ जोड़ कर।—वं.भा.

अग्गलो, अग्गलौ-वि० [सं० अग्र+लो, लौ—रा०प्र०] (स्त्री० अग्गली) १ अगला, आगे का, अग्रगी (रू.भे.—अगलो) उ०—तिण वेळा रिण अग्गला, जेता सूर समत्थ।—रा.रू. २ पुराना, प्राचीन।

अग्गस्त—देखो 'अगस्त'।

अग्गालि, अग्गाळी-सं०स्त्री० [सं० अकाल] १ कुसमय, अनुपयुक्त समय २ अकाल, दुष्काल। उ०—थळ मथ्थइ जळ वाहिरी, तूं कांइ नीलां जाळ। कंइ तूं सींची सज्जणां, कइ बूठउ अग्गालि। ना हूं सींची सज्जणे, ना बूठउ अग्गालि। मो तळि ढोलउ बहि गयउ, करहउ बांध्यौ डालि।—ढो.मा.

अग्गि-सं०स्त्री० [सं० अग्नि] अभग्गि अग्गि के अग्ग, सुभग्ग भग्गते सुनें।—ऊ.का.

क्रि०वि० [सं० अग्र] आगे, अगाड़ी।

अग्गिआंन-सं०पु० [सं० अज्ञान] अज्ञान।

अग्गी—देखो 'अग्गि'।

अग्नि-सं०स्त्री०—१ देखो 'अगनी'. २ चौसठ प्रकार के वीरों में से एक वीर। उ०—सिद्ध री संगति सह महामंत्र रौ साधन करि अग्नि कोकिल नांम दोय वीर वसीभूत किया।—वं.भा.

अग्निक्रम—देखो 'अगनीकरम'।

अग्निकुळ—देखो 'अगनीकुळ'।

अग्निकुंड—देखो 'अगनीकुंड'।

अग्निकोण—देखो 'अगनीकोण'।

अग्निगरभ—देखो 'अगनीगरभ'।

अग्निज—देखो 'अगनीज'।

अग्निजुग—देखो 'अगनीयुग'।

अग्निज्वाळा—देखो 'अगनीजवाळा'।

अग्निझाळ-सं०स्त्री०यौ० [सं० अग्निज्वाला] १ आग की लपट.

२ जल पिप्पली का वृक्ष. ३ बब का वृक्ष जिसके लाल फूल लगते हैं (ग्रमरत)

ग्रग्निदाह—देखो 'ग्रगनीदाह'।

ग्रग्निदीपक—देखो 'ग्रगनीदीपक'।

ग्रग्निपरीक्षा—देखो 'ग्रगनीपरीक्षा'।

ग्रग्निपुराण-सं०पु०यौ० [सं० ग्रग्निपुराण] ग्रठारह पुराणों में से एक।

ग्रग्निबाण—देखो 'ग्रगनीबाण'।

ग्रग्निबाव-सं०पु०—चौपायों तथा विशेष कर घोड़ों का एक रोग जिसमें उनके शरीर पर छोटे-छोटे ग्रांवले निकल कर बढ़ते हैं ग्रौर फूटते हैं (शा.हो.)

ग्रग्निबीज-सं०पु०यौ० [सं०] १ सोना. २ ग्रक्षर, वर्ण।

ग्रग्निभू-सं०पु० [सं०] स्वामी कार्तिकेय।

ग्रग्निमंथ—देखो 'ग्रगनीमंथ'।

ग्रग्निमणि-सं०स्त्री०यौ० [सं०] १ सूर्यकांत मणि. २ ग्रातशी शीशा।

ग्रग्निमांध—देखो 'ग्रगनिमांद'।

ग्रग्निमुख—देखो 'ग्रगनीमुख'।

ग्रग्नियुग-सं०पु०यौ०—ज्योतिष में माने गये पाँच-पाँच वर्ष के युगों में से एक युग।

ग्रग्निरोहणी, ग्रग्निरोहिणी-सं०स्त्री०यौ० [सं०] बगल के किसी भाग में होने वाली ग्रंथी या फोड़ा। यह 'कांखोलाई' से भिन्न होता है (ग्रमरत)

ग्रग्निवंस-सं०पु०यौ० [सं० ग्रग्नि+वंश] ग्रग्निकुल।

ग्रग्निव्रत-सं०स्त्री०यौ० [सं०] वेद की एक ऋचा का नाम।

ग्रग्निसंस्कार—देखो 'ग्रगनीसंसकार'।

ग्रग्निसखा-सं०पु०यौ०—१ हवा, वायु. २ ग्रर्जुन।

ग्रग्निसाळ-सं०स्त्री० [सं० ग्रग्निशाला] ग्रग्निहोत्र का स्थान।

ग्रग्निसिखा-स०स्त्री०यौ० [सं० ग्रग्नि+शिखा] ग्राग की लपट।

ग्रग्निसुद्धि—देखो 'ग्रगनीसुधी'।

ग्रग्निहोतर, ग्रग्निहोत्र—देखो 'ग्रगनीहोतर'। उ०—स्रीमाली नां गिरुग्रां गोत्र, घरि घरि ग्रवसथ ग्रग्निहोत्र।—कां.दे.प्र.

ग्रग्निहोतरी, ग्रग्निहोत्री-सं०पु०—१ ग्रग्निहोत्र करने वाला. २ ब्राह्मणों का एक जाति-भेद।

ग्रग्नि—देखो 'ग्रगनी'।

ग्रग्निकरम—देखो 'ग्रगनीकरम'।

ग्रग्य-वि० [सं० ग्रज्ञ] ग्रज्ञानी, बेवकूफ।

ग्रग्यता-सं०स्त्री० [सं० ग्रज्ञता] मूर्खता, ग्रज्ञानता, नासमझी।

ग्रग्यान-सं०स्त्री० [सं० ग्रज्ञान] १ मूर्खता, जड़ता. २ न्याय में एक निग्रह स्थान. ३ ग्रविवेक।

वि०—मूर्ख, ग्रज्ञानी।

ग्रग्यानता-सं०स्त्री० [सं० ग्रज्ञानता] मूर्खता, ग्रविवेक, नासमझी।

ग्रग्यानपण, ग्रग्यानपणौ-सं०पु० [सं० ग्रज्ञान+रा० प्र० पणौ] १ मूर्खता, नासमझी. २ ग्रज्ञानावस्था।

ग्रग्यानी-वि० [सं० ग्रज्ञान+ई] मूर्ख, बेवकूफ, नासमझ।

ग्रग्या-सं०स्त्री० [सं० ग्राज्ञा] ग्राज्ञा, ग्रादेश, हुक्म। उ०—राज ग्रग्या म्हारै सिर राखिस, भूधर सूझ तणौ गुण भाखिस।—ह.र.

ग्रग्यात-वि० [सं० ग्रज्ञात] जो ज्ञात न हो, ग्रपरिचित, गुप्त। उ०—लग्गी हांम विलास, विती ग्रग्यात प्रात मध्यांन।—रा.रू.

ग्रग्यातजोबणा-सं०स्त्री० [सं० ग्रज्ञातयौवना] मुग्धा नायिका का एक भेद जिसमें स्त्री को ग्रपनी उभरती जवानी का भान न हो।

ग्रग्यातवास-सं०पु० [सं० ग्रज्ञातवास] ग्रज्ञातवास, गुप्तवास, छिप कर निवास करना।

ग्रग्येय-वि० [सं० ग्रज्ञेय] १ न जानने योग्य. २ समझ में न ग्राने योग्य. ३ ज्ञानातीत, दुर्बोध।

ग्रग्र-सं०पु० [सं०] १ ग्रागे का भाग, सिरा, नोंक. २ ग्रवलम्बन, सहारा. ३ समूह. ४ शिखर. ५ एक राजा का नाम. ६ मुखिया. ७ स्मृति के ग्रनुसार मोर के ४८ ग्रंडों के बराबर ग्रन्न की भिक्षा का एक तौल।

वि०—१ ग्रगला. २ प्रथम. ३ श्रेष्ठ, उत्तम।

क्रि०वि०—१ ग्रगाड़ी। उ०—तिल मातर भीत न बीत तणी, यंमि हालत ग्रग्र कियां हथणी।—मे.म. २ सामने। उ०—जिका ग्रग्र मो भड़ कीट पतंग, जिका जुड़ि जीत सकै नंह जंग।—मे.म.

ग्रग्रकारी-वि०—१ ग्रग्रणी, ग्रगुग्रा। उ०—एते कवि वीरता के ग्रग्रकारी।—रा.रू. २ ग्रगला, ग्रागे का।

ग्रग्रगण्य-वि० [सं० ग्रग्रगण्य] १ जिसकी गणना पहले की जावे। उ०—मरियाद मित्र, पावन पवित्र, धन्यास्ति धन्य, गुरु ग्रग्रगण्य। —ऊ.का.

२ नेता, मुख्य।

ग्रग्रगामी-सं०पु० [सं०] १ ग्रागे चलने वाला. २ ग्रगुग्रा, प्रधान व्यक्ति. ३ नेता।

वि०—जो ग्रागे चले।

ग्रग्रगाव-सं०पु०—पर्वत (डिं.नां.मा.)

ग्रग्रज-सं०पु० [सं०] १ जो भाई पहिले जन्मा हो, बड़ा भाई। उ०--ग्रनुज ए उचित ग्रग्रज इम ग्राखै, दुसट सासना भली दई। —वेलि.

२ ग्रगुग्रा, नेता. ३ ब्राह्मण. ४ ब्रह्मा. ५ जोशपूर्ण ग्रावाज।

वि०—श्रेष्ठ, उत्तम।

ग्रग्रज स्यांम-सं०पु० [सं० ग्रग्रज+श्याम] श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम (नां.मा.)

ग्रग्रजन्मा-सं०पु०यौ० [सं० ग्रग्र+जन्म+ग्रा] १ ब्रह्मा. २ ब्राह्मण. ३ बड़ा भाई।

ग्रग्रजाति, ग्रग्रजाती-सं०स्त्री० [सं० ग्रग्र+जाति] ब्राह्मण।

ग्रग्रज्ज—देखो 'ग्रग्रज' (रू.भे.)। उ०—गुणादि ग्रतीत लखण्ण ग्रग्रज्ज। —ह.र.

अग्रणी–वि०—अग्रगण्य, अगुआ (वं.भा.)

अग्रतई–क्रि०वि०—सम्मुख, सामने।

अग्रभाग–सं०पु० [सं०] आगे का भाग या सिरा, नोंक, चोटी, छोर।

अग्रम–सं०पु०—बड़ा भाई (अ.मा.)

अग्रवळ—देखो 'अगरवाळ'।

अग्रवाण–वि०— अग्रणी, अगला। उ०—पड़े भगांग देस देस अग्रवाण पीडणी।—रा.रू.

अग्रवाणी–सं०पु०—अग्रगामी, मुखिया, नेता।

अग्रवाळ—देखो 'अगरवाळ'।

अग्रसण–सं०पु० [सं० अग्राशन] देवता या गौ के निमित्त भोजन करने से पूर्व निकाला गया भोजन का अंश।

अग्रसर–वि० [सं०] १ जो आगे जाय, अगुआ. २ जो आरम्भ करे. ३ मुख्य, प्रधान।

सं०पु०—१ अग्रगामी, आगे जाने वाला व्यक्ति. २ प्रधान व्यक्ति, मुखिया।

अग्रसोची–वि०—दूरदर्शी, पहले सोचने वाला।

अग्राज–सं०स्त्री०—गर्जना, दहाड़। उ०— अबर री अग्राज सूं, केहर खीज करंत। हाक धरा ऊपर हुई, केम सहै बळवंत।—बां दा.

अग्राजणौ, अग्राजबौ–क्रि०अ०—जोशीली आवाज करना, वीर ध्वनि करना, दहाड़ना। उ०—'सदा' री अग्राजे 'सेर' ऊभौ समर 'मदा' रा हरा रा भाव माफी।—पहाड़खा आढ़ौ

अग्राजणहार, हारौ (हारी), अग्राजणियौ–वि० --दहाड़ने वाला।

अग्राजिग्रोड़ौ, अग्राजियोड़ौ, अग्राज्योड़ौ भू०का०कृ०।

अग्राहन–वि० [सं० अग्राह्य] १ न ग्रहण करने योग्य. २ धारण करने के अयोग्य. ३ त्याज्य।

***अग्राह्य**–वि० [सं०] न ग्रहण करने योग्य।

सं०पु०—जो ग्रहण करने में न आवे, ईश्वर। उ०—बराबर दीस दिगंतर बाह्य, अगोचर गोप्ति अग्राह्य।—ऊ.का.

अग्राह्याक–वि०—सर्व प्रथम रहने वाला। उ०—नमो अग्राह्याक स्रवन पुट सारू सत नमो। --ऊ.का.

अग्रि–वि०— अग्र भाग, अगला, अग्रिम। उ० नासा अग्रि मुताहळ निहसति, भजति कि सुक मुख भागवत।- वेलि.

अग्रिम–वि० [सं०] १ उत्तम. २ पेशगी. ३ आगे आने या जाने वाला, आगामी ४ प्रधान।

अग्रे–अव्यय [सं०] १ आदि में, पहले।

कहा०—१ अग्रे-अग्रे ब्राह्मणा--ब्राह्मण सब कामो में आगे रहते है. २ अग्रे-अग्रे ब्राह्मणा, नदी नाळा वरजंते—ब्राह्मण सब कामों में आगे रहते है पर आफत के कामों को छोड कर।

२ सामने।

अग्रेज–वि०—अगला भाग। उ०—मातहूत अधिकी मया, करै जुगल जिम केण। मळ वा कर सूं मेटही, श्री रसणा अग्रेण।—बां.दा.

अग्रेसुर, अग्रेस्वर–सं०पु० [सं० अग्र+सुर] देवों में जिसकी पूजा सबसे पहले की जाय, गणेश (अ.मा.)

अग्रेह–वि०—घररहित।

सं०पु०—ईश्वर, परब्रह्म। उ०—अलेह अदेह अनेह अनांम, अरेह अछेह अग्रेह अगांम।—ह.र.

अघ–स०पु० [सं०] १ पाप, अधर्म, गुनाह। उ०—देवी तीरथ रै रूप अघ विखम टारै।—देवि. २ दुःख. ३ व्यसन. ४ कुकर्म. ५ कंस का एक सेनापति, अघासुर नामक राक्षस।

अघजीत–वि० [सं० अघ+जिति] पापों पर विजय पाने वाला, धर्मात्मा।

अघट–वि० [सं० अ=नहीं+घट=होना] १ जो कार्य रूप में परिणित न हो सके, न होने योग्य। उ०—एक डाळी झड़ै नराताळी अघट, नदी वही कराळी रुधर वाळी निपट।—किसनजी आढ़ौ

२ कठिन. ३ जो ठीक न उतरे. ४ अनुपयुक्त, अयोग्य, बेमेल. ५ अद्भुत। उ०—आयां तट सामद रै, दीठौ अघट दुवार।—रा.रू. ६ स्थिर. ७ अपार, बहुत। उ०—हुयौ घटिये कळू अघट बीकाहरौ।—आसियौ भोपत

सं०पु०— चारणों की जागीरी का गांव।

अघटवांन–वि०— अद्भुत, विचित्र, करामाती।

अघटणौ, अघटबौ–क्रि०अ०—चकाचौंध होना। उ०—दृग मिळत अमिलत चपल देखत अवनि पर जन अघटहो।—रा.रू.

अघटित–वि० [सं०] १ जो घटित न हुआ हो. २ असंभव, अनहोनी. ३ अनिवार्य, अवश्य होने वाला. ४ अयोग्य, अनुपयुक्त, अनुचित।

अघट्ट—देखो 'अघट'। उ०—इसा व्यास प्रोहित्त मत्री अघट्ट।—रा.रू.

अघट्टणौ, अघट्टबौ–क्रि०अ०—अद्भुत ढग से ध्वनि करना, अद्भुत ढंग से उत्सव मनाया जाना। उ०—व्रति आदि सस्त्र विद्या वरण उच्छब वादि अघट्टियां।—रा.रू.

अघडंडी–स०पु०—यम (अ.मा.)

अघण–सं०पु० [सं० अग्रहायण] अगहन मास (रू.भे.)

अघन–सं०पु० [स० अग्रहायन] १ अगहन मास।

सं०स्त्री० [सं० अग्नि] २ अग्नि, आग (रू.भे.)

अघनासक–वि० [सं० अघ+नाशक] १ पाप को नाश करने वाला।

सं०पु०—१ मंत्र. २ जप. ३ विष्णु. ४ दान. ५ पुण्य।

सं०स्त्री०—६ गंगा।

अघबकाविहंता–सं०पु०—श्रीकृष्ण (अ.मा.)

अघमोचण, अघमोचन–वि०—पापों को काटने वाला।

सं०पु०—१ विष्णु. २ श्रीकृष्ण।

सं०स्त्री०—३ गंगा (अ.मा.)

अघरायण–सं०स्त्री०—अत्यधिक गर्म व तेज वायु, तेज लू।

वि०—भयंकर।

अघली—देखो 'अगळी' (रू.भे.)

अघवांन–वि० [सं० अघवान] पापी।

अघवारण–वि० [सं० अघ+वारण] पापों को रोकने वाला।

सं०पु०—ईश्वर। उ०—अहर निपाप करिस **अघवारण**, मुळके तूझ प्रेम मधु-मारण।—ह.र.

अघहट–वि०—पापों को हटाने वाला।

अघहण–सं०पु० [सं० अग्रहायण] अगहन, मार्गशीर्ष का महीना (रू.भे.)

अघहर–वि० (स्त्री० अघहरणी) पापों को हरण करने वाला।

अघहरणी–सं०स्त्री०—१ महादेवी. २ दुर्गा।

अघहारी–वि०—पापों को मिटाने वाला।

सं०पु०—ईश्वर, विष्णु।

अघाट–सं०पु०—१ वह जमीन जिसको बेचने व दूसरों को देने का हक उसके मालिक को न हो. २ चारणों की जागीर का गांव।

अघाणौ, अघाबौ–क्रि०अ०—तृप्त होना, अघाना। उ०—अजे **अघाया** म्हे तौ नहीं हे, दोय क और दिराव।—गी.रां.

अघायोड़ौ–भू०का०कृ०—तृप्त।

अघावणियौ–वि०—तृप्त होने वाला।

अघावणौ, अघावबौ, अघाहणौ, अघाहबौ—रू०भे०।

अघात–सं०पु० [सं० आघात] चोट, घात, प्रतिघात। उ०—घात **अघात** टाळणी घटघट, मेहा सघू सेवगां मात।—दौलतसिंह बारहठ

वि०—भयंकर। उ०—औ अन्याव **अघात**, सोहो सारां भड़ सांभळौ। सक घावड़ पुत्र सात, वीरम खाग विहूंडिया।—गो.रू.

अघातौ–वि०—पूर्ण, तृप्त।

अघायल–वि०—अपीड़ित, स्वस्थ जो घायल न हो।

अघायौ–वि०—पूर्ण तृप्त, अघाया हुआ।

अघायोड़ौ–भू०का०कृ०—पूर्ण तृप्त, अघाया हुआ।

अघारि, अघारी–वि० [सं० अघ+अरि] पापनाशक।

सं०पु०—अघासुर को मारने वाले, श्रीकृष्ण।

अघावणौ, अघावबौ—देखो 'अघाणौ' (रू.भे.)।

अघासुर–सं०पु० [सं०] पूतना का भाई, एक राक्षस जो श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया था।

अघाहणौ, अघाहबौ–देखो 'अघाणौ' (रू भे.)

अघि, अघी–वि० [सं० अघी] पापी, दुराचारी।

अघोर–वि०—१ सौम्य, सुहावना. २ प्रिय. ३ पूर्ण. ४ अधिक. ५ भयंकर. ६ घोर। उ०—इतरै माळवणी तौ सूय रही सो **अघोर** निद्रा आय गई।—ढो.मा.

सं०पु०—१ शिव का एक रूप, महादेव. २ एक पंथ विशेष जिसके अनुयायी नर-मांस व मद्य तो खाते ही हैं, यहाँ तक कि उन्हें मल-मूत्र आदि पदार्थों से भी घृणा नहीं होती. ३ इस पंथ का अनुयायी. ४ रुग्णावस्था की नींद, तंद्रा।

अघोरकुंड–सं०पु०—एक तीर्थ का नाम।

अघोरनाथ–सं०पु०—१ शिव, महादेव. २ अघोरपंथ का मुखिया।

वि०—भयंकर, डरावना।

अघोरपंथ–सं०पु०—अघोरियों का मत या संप्रदाय। देखो 'अघोर' (२)

अघोरपंथी–सं०पु०—अघोरपंथ का अनुयायी, अघोरी, औघड़।

वि०—घृणित, घिनौना (व्यक्ति)

अघोरी—देखो 'अघोरपंथी'।

अघोस–वि० [सं० अ+घोष] १ शब्दरहित, नीरव. २ अल्प-ध्वनियुक्त।

सं०पु०—१ व्याकरण में उस वर्ण-समूह का नाम जिसमें क्रमशः प्रत्येक वर्ग का प्रथम द्वितीय अक्षर और 'स' भी है। २ ग्वाला।

अघौ–क्रि०वि०—दूर। उ०—रांम **अघौ** ऊगतां **अघौ** रवि, माव जपै नवसहस नरेस।—महाराजा करणसिंह री गीत

अग्घ–सं०पु० [सं० अघ] पाप, कुकर्म। उ०—देवी अवंती अजोध्या **अग्घ** हाता।—देवि.

अग्घहाता–वि०स्त्री०—पापों का नाश करने वाली, मोक्ष देने वाली। उ०—देवी मथुरा माईया मोक्षदाता, देवी अवंती अजोध्या **अग्घहाता**।—देवि.

अग्घोर—देखो 'अघोर' (रू.भे.)

अग्घोरकुंड—देखो 'अघोरकुंड'। उ०—देवी कांमरू पीठ **अग्घोरकुंडे**।—देवि.

अग्घोरी—देखो 'अघोरपंथी'।

अघ्रांण–वि०—१ गंधमय. २ गंधरहित। उ०—प्रछन्न प्रगट्ट पुरख्ख पुरांण, अखंडित ग्यांन प्ररम्भ **अघ्रांण**।—ह.र.

सं०स्त्री०—सुगंध, गंध। उ०—पूजै पग बिम्मळ बेद पुरांण, अली-यळ नाथ लियै **अघ्रांण**।—ह.र.

अघ्रायण—देखो 'अघरायण'।

अड़ंगौ–सं०पु०—१ विघ्न, रुकावट, अवरोध, अड़चन. २ हस्तक्षेप. ३ पाखंड, ढकोसला. ४ स्वार्थसिद्धि की युक्ति।

अड़–सं०स्त्री०—१ वह सीधी लकड़ी जो कुयें से पानी निकालने के पाट के नीचे होती है. २ हठ, टेक, जिद्द।

अड़क–वि०—उद्दण्ड, गँवार, बदमाश।

सं०पु०—१ बिना बोये ही बरसात से उत्पन्न होने वाला अनाज का पौधा. २ अशुद्ध बीज का अनाज. ३ वर्णसंकर।

अड़कणी–सं०स्त्री०—किसान स्त्रियों के बाँह पर धारण करने का चांदी का बना एक आभूषण।

अड़कणौ, अड़कबौ–क्रि०अ०—१ अड़ना. २ छूना, स्पर्श करना। उ०—धिख ज्वाळा आंखियां, वोम चाचरी **अड़क्कै**।—बखतौ खिड़ियौ

अड़कण, अड़कन–सं०स्त्री०—भारी या लुढ़कने वाली वस्तु को स्थिर या टिकाये रखने के लिये लगाया जाने वाला पदार्थ या वस्तु।

अड़कमल–सं०पु०—भाटी वंश की एक शाखा या व्यक्ति।

अड़कमालोत–सं०पु०—राठौड़ राव चूंडाजी के पुत्र अड़कमाल के वंशज, राठौड़ों की एक उपशाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

अड़काणौ, अड़काबौ, अड़कावणौ, अड़कावबौ–क्रि०स०—१ सहारा देना. २ अड़ाना, रोकना।

अड़काबणियो–वि०—सहारा देने वाला, रोकने वाला।

अड़कावियोड़ो, अड़काविियोड़ो, अड़काय्योड़ो–भू०का०कृ०—सहारा दिया हुआ, अड़ाया हुआ।

अड़किग्रोड़ो, अड़कियोड़ो, अड़क्योड़ो–भू०का०कृ०—अड़ा हुआ।

अड़कियो–सं०पु०—बिना बोए ही बरसात से उत्पन्न होने वाला अनाज का पौधा विशेष (मि० अड़क १)

अड़कियोड़ो–भू०का०कृ०—१ अड़ा हुआ, सहारा दिया हुआ. २ स्पर्श किया हुआ, छुआ हुआ। (स्त्री० अड़कियोड़ी)

अड़खण, अड़खन–सं०स्त्री०—बाधा, रुकावट, विघ्न, दिक्कत।

क्रि०प्र०—करणी, घालणी, होणी।

अड़खल–सं०स्त्री०—१ कष्ट, तकलीफ, कठिनाई, दिक्कत।

उ०—मोखमपुरै बिसन हुय मांदो, पूरण अड़खल पाई।—मे.म.

२ बिमारी. ३ दर्द. ४ विघ्न।

अड़ड़, अड़ड़ाट–सं०स्त्री० [अनु०] १ क्रम से रक्खी हुई एक के ऊपर एक वस्तुओं के गिरने से उत्पन्न ध्वनि विशेष. २ लगातार अड़-अड़ के समान ध्वनि।

अड़णो, अड़बो–क्रि०अ०—१ रुकना, अटकना, ठहरना. २ हठ करना, टेक ठानना. ३ अकड़ना. ४ फंसना. ५ स्पर्श करना, छूना।

अड़णियो–वि०—अड़ने वाला।

अड़ाणो, अड़ाबो, अड़ावणो, अड़ावबो–क्रि०स०—देखो 'अड़ाणो'।

अड़िग्रोड़ो, अड़ियोड़ो, अड़योड़ो–भू०का०कृ०—अड़ा हुआ।

अड़ताळीस–वि० [सं० अष्टचत्वारिंशत्, पा० अट्ठचत्तालीसा, अप० अट्ठतालीस] चालीस और आठ के योग के बराबर।

सं०पु०—चालीस और आठ के योग की संख्या।

अड़ताळीसमौ–वि०—जो क्रम में सैंतालीस के बाद पड़ता हो, अड़तालीसवां।

अड़ताळीसे'क–वि०—चालीस और आठ के योग के लगभग।

अड़ताळीसो, अड़ताळो, अड़ताळो–सं०पु०—अड़तालीसवां वर्ष।

अड़तीस–वि० [सं० अष्टत्रिंशत्, पा० अट्ठतीस, प्रा० अट्ठत्तीस, अप० अट्ठत्रीस] तीस और आठ के योग के बराबर।

सं०पु०—तीस और आठ के योग के बराबर की संख्या।

अड़तीसमौ–वि०—जो क्रम में सैंतीस के बाद हो, अड़तीसवां।

अड़तीसे'क–वि०—तीस और आठ के योग के बराबर।

अड़तीसो, अड़तीसो–सं०पु०—अड़तीसवां वर्ष।

अड़दार–वि०—१ रुकने वाला, अड़ियल. २ मस्त, मतवाला. ३ ऐंठदार।

अड़प–सं०स्त्री०—१ हठ, आग्रह. २ साहस, बल, शक्ति।

उ०—अड़पायतो अड़प आपांणो कविळ वराह संग्राम करि।

३ होड़, स्पर्द्धा. ४ प्रभाव, रोब। —दूदो आसियो

यौ०—अड़पदार, अड़पति, अड़पाई, अड़पायत, अड़पायतो।

अड़पति, अड़पत्ति–वि०—१ जिद्दी, हठी. २ अकड़ने वाला, अकड़ू. ३ उद्दंड. ४ साहसी, बहादुर, वीर।

अड़पदार–वि०—साहसी, बहादुर, वीर. २ अकड़ू. ३ हठी।

अड़पाई–वि०—हठीला, जिद्दी, मान पर मरने वाला।

सं०स्त्री०—हठ, जिद्द।

अड़पायत, अड़पायतो, अड़पायतौ–वि०—१ बलवान, शक्तिवान, जोरावर।

उ०—बड़ा अड़पायत आंटीला राजा हुवा।—पदमसिंह री बात

२ निडर. ३ स्थायी, टिकाऊ. ४ अकड़ू. ५ जिद्दी।

अड़पायल, अड़पाल–वि०—१ वीर, बलवान. २ निडर. ३ योद्धा. ४ अकड़ू. ५ जिद्दी।

अड़फ्फणो, अड़फ्फबो–क्रि०अ०—भूमिसात होना।

अड़बंक, अड़बंग, अड़बंगी–वि०—१ टेढ़ा-मेढ़ा. २ ऊँचा-नीचा. ३ विकट, कठिन. ४ विलक्षण, अनोखा. ५ उद्दंड. ६ अपठित. ७ शक्तिशाली, बलवान। उ०—बडो अड़बंक महाजुद्ध जीपियो। दूजो रायसिंह परवाड़ां दीपियो।—पदमसिंह री बात

अड़बंध–सं०पु०—कब्जियत।

अड़ब–वि० [सं० अर्बुद] अरब, सौ करोड़।

सं०पु०—१ अरब की संख्या. २ वह राग जिसमें पाँच स्वर आवें (संगीत)

अड़बड़–वि०—१ अटपटा. २ कठिन, दुर्गम।

सं०पु० [अनु०] एक ध्वनि विशेष।

अड़बड़णो, अड़बड़बो–क्रि०अ०—१ एक साथ चलना. २ हड़बड़ाना।

अड़बड़िग्रोड़ो, अड़बड़ियोड़ो, अड़बड़्योड़ो—भू०का०कृ०।

अड़बड़णो—रू०भे०।

अड़बड़ाट–सं०स्त्री०—१ एक प्रकार की ध्वनि विशेष. २ कार्य या सामान की अधिक उलझन। उ०—घणो अड़बड़ाट चोखो नी लागै।

अड़बड़ियो–वि०—शीघ्रता करने वाला, उतावला।

अड़बड़ियोड़ो–भू०का०कृ०—एक साथ चला हुआ, हड़बड़ाया हुआ। (स्त्री० अड़बड़ियोड़ी)

अड़बड़ी–सं०स्त्री०—१ एकत्रित हो कर एक साथ चलने से उत्पन्न ध्वनि।

उ०—आपड़ी कंकपत्यां अठी, अठी सकत्यां अड़बड़ी।—मे.म.

वि०—शीघ्रता करने वाली।

अड़बपसाव–सं०पु०—एक अरब का दान। उ०—देतो अड़बपसाव दत, वीर गौड़ बछराज। गढ़ अजमेर सुमेर सूं, ऊंचो दीसै आज।—बां.दा

अड़बी–सं०स्त्री०—१ बाधा, विघ्न, आपत्ति. २ हठ. ३ झगड़ा, बहस. ४ वैर, शत्रुता।

अड़बीलो–वि० (स्त्री० अड़बीली) १ हठीला. २ विघ्न डालने वाला, बाधक।

अड़बो–सं०पु०—वह बादल का टुकड़ा जो भूमि को स्पर्श करता प्रतीत होता है (क्षेत्रीय)

अड़भंग–वि०—१ जबरदस्त. २ न भागने वाला. ३ हठी. ४ टेढ़ा-मेढ़ा. ५ विचित्र. ६ कठिन, विकट।

अड़भंगी–वि० उन्मत्त. २ उद्दण्ड. ३ चंचल. ४ शक्तिशाली।

अड़व—देखो 'अड़व'।

अड़बड़–सं०स्त्री० [अनु०] १ एक साथ बहुत से आदमियों के चलने से होने वाली आवाज. २ देखो 'अड़बड़'. ३ आतुर।

अड़बड़णो, अड़बड़बो–क्रि०अ०—१ एक साथ चलना. २ हड़बड़ाना. ३ भीड़ में धक्का-पेल करना। उ०—हींचता बाछड़िया तांबाड़, मिळै जद गायां **अड़बड़** जाय।—सांझ ४ शीघ्रता करना।

अड़बड़ाट –देखो 'अड़बड़ाट'।

अड़वौ–सं०पु०—चिथड़े एवं घास-फूस का बनाया हुआ वह पुतला जो खेत में चिड़ियों या अन्य कृषि-हानिकारक पशुओं को दूर रखने के लिए रक्खा जाता है।

कहा०—खेत में अड़वा ज्यूं कांई ऊभौ है—मूर्ति के समान खड़ा होकर (मूर्ख के समान) क्या देख रहा है?

अड़व्वड़—देखो 'अड़बड़'।

अड़सट–वि० [सं० अष्टषष्टि. प्रा० अट्ठसट्ठि, अप० अठसट्ठि] साठ और आठ के योग के बराबर।

सं०स्त्री०—साठ और आठ के योग की संख्या।

अड़सटमौ–वि०—जो क्रम में अड़सठ के बाद पड़ता हो।

अड़सटेक–वि०—लगभग अड़सठ।

अड़सटो, अड़सठो–सं०पु०—अड़सठवां वर्ष।

अड़सट्ठ, अड़सट्ठि—देखो 'अड़सट'।

अड़साल, अड़सालो–वि० [सं० अरि+शल्य] १ शत्रु के लिए शल्य रूप, बहादुर. २ ईर्ष्यालु। उ०—दळ असेस दुखेस सुणे विगती **अड़साला**।—रा.रू. ३ हठी, जिद्दी।

अड़सूल–सं०पु०—खेत में बेकार के छोटे-छोटे पौधे, झाड़ियां आदि निकालने की क्रिया (क्षेत्रीय)

अड़ा–सं०स्त्री०—युद्ध, लड़ाई।

अड़ाई–सं०स्त्री०—अटकाव, बाधा, विघ्न, रुकावट। उ०—कसबा नोलगढ़ के तौ जमीं की मांकड़ाई। समर्थसिंहजी का कैर कांकड़ की **अड़ाई**।—शि.वं.

अड़ाक, अड़ाकी, अड़ाकू–वि०—१ अकड़ने वाला, अकड़्. २ जिद्दी. ३ अड़ियल। उ०—ईत तणौ नह भीत अगंजी, मांन दुजा मन मेर। आखेटां मजबूत **अड़ाकी**, जीत किया खळ जेर।—र.रू.

अड़ाखड़ी–सं०स्त्री०—१ टंटा, फिसाद, लड़ाई. २ वैमनस्य, द्वेष।

अड़ाग–वि०—१ जबरदस्त, बलवान. २ अड़ने वाला, लड़ने वाला।

अड़ाड़–सं०पु० [अनु०] १ चलने की आवाज. २ तेज वायु की ध्वनि।

अड़ाभड़–सं०स्त्री० [अनु०] ध्वनि विशेष।

क्रि०वि०—निरंतर, लगातार।

अड़ाणो, अड़ाबो–क्रि०स० [अड़णो का स.रू.] १ अटकाना, रोकना. १ उलझाना, फंसाना. ३ ठूंसना, भरना. ४ रुकावट डाल कर गति रोकना. ५ स्पर्श कराना।

अड़ाणियो–वि०—अड़ाने वाला।

अड़ायोड़ो–भू०का०कृ०—अड़ाया हुआ।

अड़ावणो, अड़ावबो—रू०भे०।

अड़ापड़ी–वि०—साधारण (बात), मामूली।

अड़ाभड़–सं०स्त्री० [अनु०] एक ध्वनि विशेष। उ०—घूमर घालै गोह स्याळिया संख **अड़ाभड़**।—दसदेव

अड़ाभड़ी–सं०स्त्री०—बहुत से मनुष्यों का समूह, जमघट भीड़।

अड़ाभीड़–वि०—अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित।

सं०स्त्री०—भीड़, देखो 'अड़ाभड़ी'।

अड़ायत, अड़ायतो–वि० (स्त्री० अड़ायती) १ बलवान, शक्तिशाली. २ आड़ करने वाला, जो ओट करे. ३ अड़ने वाला, जिद्दी, दुराग्रही

उ०—तद सूरौ तौ घणौ ही जांणौ जे राजूखां सरीखौ सरदार इतरी आजीजी नोहरा करै छै तौ टिकणौ वाजिब छै पण खींवौ **अड़ायत** पूरौ सो रहै नहीं।—सूरे-खींवे कांधळोत री बात

अड़ाळ–सं०पु०—एक प्रकार का नृत्य, मयूर नृत्य।

वि०—जिद्दी, हठ करने वाला।

अड़ाव–सं०पु०—१ प्रतिबंध, विघ्न, बाधा, परहेज, रोक. २ झुण्ड, समूह ३ आवश्यकता, जरूरत. ४ वह खेत जो लगातार जोते जाने के कारण कमजोर हो गया हो और फिर उपजाऊ शक्ति ग्रहण करने के लिए कुछ समय तक परती छोड़ दिया गया हो।

अड़ावणो, अड़ावबो—देखो 'अड़ाणो'।

अड़ावियोड़ो—वि०।

अड़ाविग्रोड़ो, अड़ावियोड़ो, अड़ाय्योड़ो—भू०का०कृ०।

अड़ियल, अड़ियल्ल–वि० उ०लिं०—१ अकड़ कर चलने वाला, अकड़्. २ बार-बार चलते समय हठपूर्वक रुक जाने वाला. ३ जिद्दी, हठी। उ०—भाय दाय क्रमि भरै पाय लंगर खरळक्कै। ऐंड बेंड **अड़ियल्ल** नीठ दोय पेंड सरक्कै।—रा.रू.

अड़ियाल–वि०—१ योद्धा. २ अकड़् ३ उद्दंड, हठी। उ०—**अड़ियाल** लये केइ तुरस ओट, चड़ियाल करै केइ घं खळ चोट।—पा.प्र.

अड़ियोड़ो–भू०का०कृ०—१ स्पर्श किया हुआ. २ अड़ा हुआ, अटका हुआ. ३ अकड़ा हुआ. ४ फँसा हुआ, उलझा हुआ।

(स्त्री० अड़ियोड़ी)

अड़ी–सं०स्त्री०—१ रोक, अड़ान. २ हठ, आग्रह, दुराग्रह।

मुहा०—अड़ी करणी—मचलना।

३ गहरी आवश्यकता. ४ आवश्यक समय जुटने का भाव, मौका।

वि०—स्पर्श की हुई।

अड़ीखंभ–वि०—१ शक्तिवान, पुष्ट, जोरावर। उ०—खैरवे इंद्र जोधौ नहीं **अड़ीखंभ**।—सुरतौ बोगसौ २ अडिग, अचल, अटल।

उ०—मांझियां ऊबेड़ जाड़ा राड़ा जीत मारवाड़ा, आपै ऊपैहरा राजा धाड़ा **अड़ीखंभ**।—महादांन महड़ू

अड़ीजोध–वि०—बड़ा वीर, महावीर।

अड़ीयल—देखो 'अड़ियल'। उ०—बरबल कंगळ कड़ी बड़ड़ै। जुधमल बेहूं अड़ीयल जुड़ै।—गो.रू.

अड़ीलो—देखो 'अड़ियल'। उ०—जुड़ंवा माहोमाह जोधार, अड़ीला बेहूंय भींच उदार।—गो.रू.

अड़ीसल—देखो 'अड़साल'। उ०—अड़ीसल वीरम हूंता आज, सव्याज। लेसी खून सकाज।—गो.रू.

अड़ूड़, अड़ूड़मो, अड़ूड़ो–वि०—१ जबरदस्त. २ बहुत बढ़िया, श्रेष्ठ. ३ बहुत अधिक।

अड़ूवो, अड़ूसो–सं०पु० [सं० आटरूष] १ एक प्रकार का वृक्ष. २ इसी वृक्ष के समान पत्तों वाला एक प्रकार का छोटा पौधा जिसकी पत्तियों को औषधि के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है (अड़ूओ–रू.भे.)

अड़ेगड़े, अड़ंगड़े–क्रि०वि०—अड़ोस-पड़ोस, आस-पास, करीब।
वि०—समान, सदृश।

अड़ेच, अड़ेज–सं०पु०—१ विघ्न, रुकावट, बाधा. २ अत्यधिक जरूरत. ३ प्रतिबंध, परहेज।

अड़ेल, अड़ैल–वि०—हठी, जिद्दी। उ०—गाढ़ेल अड़ेल दोनूं रोसेल कसैल ग्रीठ।—चतुरजी खिड़ियो

अड़ो–सं०पु०—सहारा।

अड़ोधड़ो–सं०पु०—१ अंटसंट वस्तुओं का पूरा भार, समस्त बोझ. २ गड़बड़-घोटाला. ३ उलाहना।
कहा०—अड़ोदड़ो(धड़ो) बऊडी रै सिर पड़ो—अपराध कोई करे और दोष किसी के सिर मँढ़ा जाय।

अड़ोस-पड़ोस–क्रि०वि०—आस-पास, करीब, निकट।
सं०पु०—आस-पास का स्थान या वहाँ का निवासी।

अड़ोसी-पड़ोसी–सं०पु०—आस-पास के निवासी, समीप के रहने वाले।

१. **अचंक**–क्रि०वि०—अचानक, अकस्मात। उ०—अंगरेज येम जरणैल सा'ब, आयो अचंक रुढ़यो नबाब।—ला.रा.

अचंचळ–वि०—जो चंचल न हो, धीर, गंभीर, स्थिर।

अचंचळता–सं०स्त्री०—स्थिरता, गंभीरता।

अचंचळपण, अचंचळपणो–सं०पु०—स्थिरता, गंभीरता।

अचंट–सं०पु०—रोकड़ रुपया।
वि०—१ उग्रताशून्य, शान्त. २ सुशील।

अचंड–वि०उ०लिं० [सं०] १ उग्रताशून्य, शान्त. २ सुशील।

अचंती–वि०स्त्री०—१ अचिंत्य, अज्ञेय. २ कल्पनातीत, अतुल. ३ आकस्मिक। उ०—एही भली न करहला, कळहळिया कड़कांण। का प्रिय संगां प्रांण करि, कांई अचंती हांण।—ढो.मा.

अचंतो–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

अचंबो, अचंबौ–सं०पु० [सं० असंभव] आश्चर्य, विस्मय।

अचंभ–वि०—१ चकित, विस्मित, आश्चर्यान्वित। उ०—समहर बळवाहतां असमर, छूटा फिरंग दळां रत छोळ। रातो देख अचंभ वंत रतनाकर, चामल किम कीधो रंग चोळ।—चंडीदांन मीसण
२ आश्चर्यजनक। उ०—ग्रिह-ग्रिह प्रति भींति सुगारि हींगळू, ईंट फिटकमै चुणी अचंभ।—वेलि.
सं०पु०—आश्चर्य, विस्मय। उ०—अचंभ लख्यो परचे घट एह, वस्यो हररांम स्वदेस विदेह।—ऊ.का.

अचंभणो, अचंभबो–क्रि०अ०—आश्चर्य करना। उ०—अचंभियो भांण मधकर हरा ऊपरै, धोम दुहवा इसी वाद धिखियो।—गोरधन गाडण

अचंभनि, अचंभनी–सं०पु०—आश्चर्य। उ०—मानहु कांमनि कांम, रंभ लखि होत अचंभनि।—ला रा.

अचंभम, अचंभव–सं०पु० [सं० असंभव] आश्चर्य, विस्मय, अचंभा। उ०—हुय धरा नरां नर हैमरां, उरध अचंभम अम्मरां।—रा.रू.

अचंभित–वि०—चकित, विस्मित, आश्चर्यान्वित।

अचंभो, अचंभौ–सं०पु० [सं० असंभव] विस्मय, आश्चर्य।

अचंभ्रम–सं०पु० [सं० असंभव] अचरज, आश्चर्य, विस्मय।
उ०—एक अचंभ्रम परखणै, अति छति सकति अजेव।—रा.रू.

अच–सं०पु०—१ हाथ, कर। उ०—करणी 'सेखो' काढ़ियो, ग्रहि अच लाई घर।—जुंझारसिंह मेड़तियो
देखो 'आच'। [सं० अच] २ स्वर।
क्रि०वि०—अचानक, अकस्मात।

अचकन–सं०पु०—बंद गले का एक प्रकार का कोट जो घुटनों तक लंबा होता है।

अचको, अचक्को–क्रि०वि०—१ अचानक, एकदम।
२ अनजान, अपरिचित।

अचक्षु–वि० [सं० अ+चक्षु] नेत्ररहित, अंधा।

अचगळ–वि०—१ उदार, दातार। उ०—परिखै गुण पिंगळ, आखि अचगळ, भोज रा भूज भार।—ल.पि. २ श्रेष्ठ, बढ़िया।

अचड़–सं०स्त्री०—१ उत्तम कार्य, श्रेष्ठ कार्य. २ कीर्ति, यश।
वि०—अचल, स्थिर। उ०—वैकुंठ गयो वीठल्ल रो, अजबसाह राखे अचड़।—रा.रू २ बड़ा, महान. ३ बढ़िया, श्रेष्ठ।
उ०—ऊबरी अचड़ वातां जग ऊपरै।—जसजी आढ़ो

अचड़पण, अचड़पणो, अचड़पणौ–सं०पु०—१ उत्तम कार्य. २ श्रेष्ठ कार्य का गुण या शक्ति. ३ उदारता. ४ शौर्य।

अचड़ांकरण–वि०—अचल कार्य करने वाला।

अचणो, अचबो–क्रि०स०—१ आचमन करना. २ खाना, भक्षण करना। उ०—अचै कवण जहर विण ईस।—र.रू.

अचपड़ा–सं०पु०—शीतला रोग से मिलता-जुलता अधिकतर बच्चों को होने वाला एक रोग विशेष जो शीतला व ओरी के समान भयंकर नहीं होता।

अचपळ, अचपळउ–सं०स्त्री०—चंचलता।
वि०—चंचल, नटखट, चपल।

अचपळता–सं०स्त्री०—नटखटपन, चंचलता।

अचपळो, अचपळौ–वि०पु० (स्त्री० अचपळी) १ नटखट, चंचल,

चपल। उ०—अचपळौ दिनड़ौ होसी रात, चांनणौ होसी घोर अंधार।—सांझ

कहा०—हालै न चालै म्हारौ नांम अचपळौ—न हिल सके, न चल सके, किन्तु नाम नटखट। जब नाम गुणों के विपरीत हो।

२ उत्पाती, बदमाश।

अचप्पळ—देखो 'अचपळ'। उ०—खइंगरू वहइ गति नंदघोख, मछराळ अचप्पळ पमग मोख।—रा.ज.सी.

अचमन—देखो 'आचमन'।

अचर—सं०स्त्री०—१ अप्सरा। उ०—वर अचर विमै वर जेण वार, हूरां वर वरिया सर हजार।—वि.सं.

सं०पु०—२ ऊंट को होने वाला एक रोग विशेष जिसके कारण वह खाना-पीना बंद कर देता है। यह रोग उसे कोई विषैला पदार्थ खाने से हो जाता है।

वि० [सं०] ठहरा हुआ, न चलने वाला, स्थावर।

अचरज—सं०पु० [सं० आश्चर्य] किसी नई, अभूतपूर्व या असाधारण बात के देखने, सुनने या ध्यान में आने से उत्पन्न होने वाला एक प्रकार का मनोविकार, आश्चर्य, विस्मय।

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।

अचरजणौ, अचरजबौ—क्रि०अ०—आश्चर्यान्वित होना।

अचरज्ज—देखो 'अचरज'।

अचरज्जणौ, अचरज्जबौ—क्रि०अ०—आश्चर्य करना विस्मित होना। (रू.भे. 'अचरजणौ') उ०—असपति निरख अचरज्जियौ, रूप परख कुळ राह मैं।—रा.रू.

अचरिज, अचरिज्ज—देखो 'अचरज'। उ०—लिखमी आप नमे पाइ लागी, अचरिज कौ लाधै अरथ।—वेलि.

अचळ—वि०—१ जो न हिले, निश्चल, चिरस्थायी. २ दृढ़।

सं०पु०—१ पर्वत (अ.मा.) २ सूर्य (क.कु.बो.) ३ पृथ्वी (डिं.को.) ४ इन्द्रासन (अ.मा.) ५ यश ६ ध्रुव. ७ सुमेरु पर्वत. (नां.मा.) ८ जैनियों का पहला तीर्थंकर. ९ श्रेष्ठ कार्य, महान कार्य. (मि० अचड़) उ०—अमरसिंह गजसिंह के, करी अचळ राठौड़। कांन बाढ़ बूचौ कियौ, गुन्हैगार छै गौड़।

—राठौड़ अमरसिंह री बात

१० सात की संख्या सूचक*। उ०—वरसि अचळ गुण अंग ससि संवति, तवियौ जस करि स्री भरतार।—वेलि.

अचळकीळा—सं०स्त्री० [सं० अचलकीला] पृथ्वी।

अचलतौ—वि०—चलचित्त।

अचळा—वि०स्त्री०—१ स्थिर, निश्चल. २ चिरस्थायी।

सं०स्त्री०—पृथ्वी (अ.मा., डिं.को.)

अचळेस, अचळेसर, अचळेसुरय*—सं०पु० [सं० अचलेश्वर] १ शिव. महादेव. २ आबू पर्वत का एक भाग जहाँ पर अचलेश्वर का मंदिर है।

अचळ्ळ—देखो 'अचळ'। उ०—रूकहथा हरदास रा, अजरा खरा अचळ्ळ।—रा.रू.

अचवन—देखो 'आचमन'।

अचांचक अचांण, अचांणक, अचांणचक, अचांणचूकी, अचांणजक, अचांणी, अचांन, अचांनक, अचाक—क्रि०वि०—अचानक, अकस्मात, यकायक। उ०—१ हमलौ कर आदमी हजार डेढ़ सूं अचांणचक गया सो गांव सूं एक कोस उरै जाय नोबत बजाई।—सूरे खींवे री बात उ०—२ छोळ चढ़ै कैळास पाहुण जोग अचांणी। कुबदी रांवण हत्थ डूंगरां नींव हिलांणी।—मेघ. उ०—३ नटै निसांन नाद त्यूं तमाम धांम में तनै, बितांन आंन रेनु कौ, अचांन भांन के बनै।—ऊ.का.

अचागळ अचागळौ, अचागळी—वि०—१ अडिग, अचल. २ उदार, दातार. ३ वीर. बहादुर (रू.भे. अचगळ) उ०—अमर अनइ पीथल्ल अचागळ, वरविय राइमल्ल अतुळीबळ।—रा.ज.सी.

अचाचूक—क्रि०वि०—अकस्मात, अचानक।

अचाणौ, अचाबौ—देखो 'अचगौ अचबौ'। उ०—यौं मुख बीरौ आप, यौं गंगोद अचाया।—वं.भा.

अचार—सं०पु० [फा०] १ फल अथवा तरकारियों में नाना प्रकार के मिर्च मसाले डाल कर तैयार किया हुआ खाने का पदार्थ।

[सं० आचार] २ देखो 'आचार'।

अचारज—सं०पु० [सं० आचार्य] १ आचार्य. २ एक जाति विशेष जिसके व्यक्ति मृतक की अंत्येष्टि संस्कार की क्रिया आदि संपादित कराते हैं. ३ इस जाति का कोई व्यक्ति।

अचारवती—सं०स्त्री०—आचार-विचार से रहने वाली, शुद्ध आचरण करने वाली। उ०—ऐसी कहा अचारवती, रूप नहीं एक रती।—मीरां

अचाळ—वि०—१ बहुत अधिक. २ चालरहित. ३ तेज. ४ भयंकर, प्रचंड. ५ अटल अचल। उ०—आडौ पर्बराट वीर बैराट अचाळ ऊभौ।—हुकमीचंद खिड़ियौ

सं०स्त्री० [सं० अचला] पृथ्वी, धरती।

अचावा, अचासा—सं०पु०—विवाह के पश्चात् ही वधू का कुछ रस्में पूरी करने वर के घर जाने का एक रिवाज (विशेष) (श्रीमाली ब्राह्मण)

अचाह—सं०स्त्री० [सं० अ+फा० चाह] अरुचि, अनिच्छा।

वि०—इच्छा न रखने वाला।

अचाही—वि० [सं० अ+फा० चाह+ई-रा०प्र०] किसी पदार्थ की इच्छा न करने वाला, निस्पृह।

अचिंत—क्रि०वि०—अकस्मात, यकायक। उ०—आई खबर अचिंत री, मिटगी तन री दाह। हम कासीदां अखियौ, मरगौ 'औरंगसाह'।

—अज्ञात

वि०—निश्चित (रू.भे.-अचींत)

अचिंतणीय—वि० [सं० अचिंतनीय] जिसका चिंतन न हो सके, अज्ञेय, निर्बोध।

अचिंत्य—वि० [सं०] वह जिसके विषय में सोचा न जा सके।

सं०पु०—ईश्वर।

अचिंत्यौ—क्रि०वि० [सं० अचिन्त्य] १ बिना सोचा हुआ. २ अकस्मात, सहसा।

अचित–सं०पु० [सं० अचित्] १ रामानुजाचार्य के मतानुसार तीन पदार्थों में से एक, अचेतन, जड़, प्रकृति। क्रि.वि.–यकायक, चिंतारहित।

अचिरज, अचिरिज—देखो 'अचरज'। उ०—सांतळ नइ मनि साहरण देखी, मोटउ **अचिरज** आवइ।—कां.दे.प्र.

अचींत—देखो 'अचित'।

अचींतियां–क्रि०वि० [सं० अचिंत्य] अकस्मात्, यकायक, एकाएक। उ०—आवी खबर **अचींतियां**, विसमें जैसी वत्त।—रा.रू.

अचींतौ–देखो 'अचित'। उ०—असतखांन उर थयो **अचींतौ**, विचित्रां तणो सोच सुण वीतो।—रा.रू.

अचीती–वि० [सं० अचिंत्य] कल्पनातीत, जो चिंतन करने योग्य न हो, अज्ञेय।

.क्रि०वि०—दैवात्, सहसा। उ०—ओभळै **अचीती** रांन लागां उमंग, प्रतीती वडम याळां अभंग पूत।—लिछमणसिंह सीसोदिया रौ गीत

अचीतौ–वि० [सं० अचित] निशंक, अचिंतित। उ०—अअपत धर अजमेर **अचीतौ** आवसी, वातां सांमधरम तणी रह जावसी।—रा.रू.

अचीरज—देखो 'अचरज'।

अचूंकौ–वि०—१ अद्भुत, अनोखा। उ०—ऊठि **अचूंका** बोलणा, नारि पयंपै नाह।—ढो.मा. २ न चूकने वाला।

अचूंडौ–वि०—भयावह, डरावना। उ०—दवारां तणो करै नत देखो, चूंडो करै **अचूंडा** चाव।—रावत संग्रामसिंह चूंडावत रौ गीत

अचूंबो, अचूंभो सं०पु० [सं० असंभव] आश्चर्य, अचंभा।

अचूक–वि० [सं० अच्युत] १ जिसमें भूल न हो, ठीक. २ भ्रमरहित. ३ न चूकने वाला अमोघ। उ० मेणा तणी जडाळी समहरि, हुवतै चूक **अचूक** हुई।—कल्याणदास जाडावत

अचूकाळ—देखो 'अचूगाळ'।

अचूकौ–वि० [सं० अच्युत] नहीं चूकने वाला।

अचूगाळ–सं०पु०—१ वह पशु जो स्वच्छता का विशेष ध्यान रखता हो, २ स्वच्छता का अत्यधिक ध्यान रखने वाला।

कहा०—अचूगाळ कीच में पड़ै—अत्यधिक स्वच्छता रखने वाले व्यक्ति को मौका पड़ने पर कभी गंदे स्थान में भी रहना पड़ता है।

अचेत–वि० [सं०] १ चेतनारहित, बेसुध, संज्ञाशून्य।

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।

२ विकल. ३ असावधान, अनजान, बेखबर। उ०—आयुध अलीह-हय परघो खेत, घन घाव मीर घूमत **अचेत**।—ला.रा.

४ नासमझ, मूर्ख. ५ जड़।

सं०पु०—१ निर्जीव पदार्थ, जड़. २ प्रकृति. ३ अज्ञान. ४ माया।

अचेतण, अचेतन–वि०—जिसमें चेतना का अभाव हो, चेतनारहित, ज्ञानशून्य। उ०—भूल्यो इतरा भेद वींणती मेघ करंतां। न चेत **अचेतण** ग्यांन कांम कबांण चढ़ंतां।—मेघ.

अचेतौ–वि० (स्त्री० अचेती) १ अचेत. २ असावधान। उ०—सिखर ते घरती रहइ नीम्या, अंधला ! असूर ! असती ! **अचेती**।—वी.दे.

अचैन, अचैनूं–सं०पु०—१ व्याकुलता, बेचैनी, विकलता. २ कष्ट। वि०—विकल, बेचैन। उ०—भायां बंसकां सूं तो जरमी कौ लोभ दायो, सारो देसवास्यां भी **अचैनूं** जोरि पायो।—शि.वं.

अचो–सं०पु०—मवेशियों के रोमों में चिपक कर रहने वाला एक प्राणी (कीड़ा) जो उनके रक्त पर ही जीवित रहता है।

अचोट–सं०पु०—गढ़, किला (अ.मा.)

अचोळ–वि०—१ शिथिल, सुस्त। उ०—चोळा लेती भासै अंग, **अचोळ** सचोळा लेती भाव।—र. हमीर २ वह जो लाल न हो।

अच्चड़—देखो 'अचड़'।

अच्चरजिणौ, अच्चरजिबौ–क्रि०स० [सं० आश्चर्य, प्रा० अच्चरिय] अजरज करना, आश्चर्य करना। उ०—असपती सुणे **अच्चरजियौ**, परम धांम किर प्रगड़ौ।—रा.रू.

अच्चळथांन–सं०पु [सं० अचल+स्थान] जो स्थान अचल हो। उ०—दिया तैं बार किता बरदांन, थये ध्रू राजस **अच्चळथांन**।—ह.र.

अच्छ–वि० [सं०] १ उत्तम, भला. २ खरा. ३ साफ, निर्मल. ४ सुंदर।

सं०पु०—१ भालू (डिं.को.) २ स्वच्छ जल (डिं.को.)

सं०स्त्री० [सं० अक्षि] ३ आंख, नेत्र।

अच्छकछक–वि०—१ अपार, बहुत (रू.भे.–अछकछक)

अच्छत—देखो 'अछत'।

अच्छर–सं०स्त्री० [सं० अप्सरा] १ अप्सरा, देवांगना। उ०—बरि थवकै बरिहूर सूर बरि थवकै **अच्छर**।—ला.रा.

२ वेश्याओं की एक जाति विशेष।

सं०पु० [सं० अक्षर] ३ देखो 'अक्षर'।

वि० [सं० अच्छ] अच्छा, उत्तम।

अच्छरा, अच्छरि, अच्छरी–स०स्त्री० [सं० अप्सरा] अप्सरा, देवांगना। उ०—जठै हाडै कहियो ए कुंकुम रा दुकूळ तौ **अच्छरीगणां** रै उचित जांणि कीधा।—वं.भा.

अच्छाई–सं०स्त्री० [सं० अच्छ+ई-रा०प्र०] अच्छापन, सुंदरता, सुघराई।

अच्छापण, अच्छापणौ–सं०पु० [सं० अच्छ+पण, पणौ-रा०प्र०] उत्तमता।

अच्छारौ–वि० [सं० अच्छ] अच्छा, बढ़िया।

अच्छि*, अच्छियउ–वि० (प्रा०रू०) [सं० अच्छ] अच्छा, बढ़िया, उत्तम, सुंदर। उ०—अंगि अभोखण **अच्छियउ**, तन सोवन सगळाइ।—ढो.मा.

अच्छूगाळ—देखो 'अचूगाळ'।

अच्छूतौ—देखो 'अछूतौ'।

अच्छेप—देखो 'अछेप'।

अच्छेहौ—देखो 'अछेहौ'।

अच्छी–वि० [सं० अच्छ] १ अच्छा, बढ़िया. २ उत्तम, श्रेष्ठ. ३ सुघड़, सुंदर. ४ ठीक।

क्रि०प्र०—करणी, होणी ।

अच्छोहीणी—देखो 'अक्षौहिणी' ।

अच्युत—वि० [सं०] १ जो गिरा न हो, अटल, दृढ़. २ अविनाशी. ३ जो न चूके ।

संपु०—१ विष्णु. २ श्रीकृष्ण (अ.मा.) ३ विष्णु का कोई अवतार. ४ चार श्रेणी के जैन देवताओं में वैमानिक श्रेणी के कल्पभव नामक देवताओं का एक भेद ।

अच्युताग्रज—संपु० [सं० अच्युत+अग्रज] श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम

अच्युतानंद—वि० [सं० अच्युत+आनंद] जिसका आनंद नित्य हो ।

संपु०—परब्रह्म, नित्यानंद, ईश्वर । उ०—नमो ब्रह्म-केवळ रावण-अज्ज, नमो **अच्युतानंद** गोविंद अज्ज ।—ह.र.

अचज—देखो 'अचरज' ।

अछंट—वि०—अलग, पृथक, दूर । उ०—धीरण रा पांणि रा प्रहारण हूं वीरमदेव रो मुंड **अछंट** उडि पड़ियौ । - व.भा.

क्रि०वि०—अचानक, अकस्मात् । उ०— तेग बखांणी कंत री, आई बाज **अछंट** । वेखीजै जिम बाप रै, बेटां दो घर बंट ।—वी.स.

अछइ—'है' क्रिया का रूप । उ०—अहर-रंग रत्तउ हवइ, मुख काजळ मसि ब्रन्न । जांण्यउ गुंजाहळ **अछइ**, तेण न कूकउ मन्न ।

—ढो.मा

अछक—वि०—१ न छका हुआ, अतृप्त, भूखा. २ उन्मत्त, मस्त । उ०—अटक दक तक मुलक अकबक **अछक** छक भट ललक अति धक तुपक चलि हक ।—वं.भा.

अछकछक—वि०—अपार । उ०—छिल बहत धक-धक **अछक-छक**, अंतराळ गरळक दुळ इधक ।—रा.रू.

अछकणो, **अछकबो**—क्रि०अ०—१ छकना, तृप्त होना । उ०—दोऊं ओर दुवाह यौं असि बाह **अछक्कै** ।—वं.भा.

२ अतृप्त रहना, न अघाना । उ०— खळकीय खग्ग हळकीय खाप, **अछकिय** छकिय संकर आप ।—गो.रू.

अछकणहार, **हारो** (**हारी**), **अछकणियो**—वि०—१ तृप्त होने वाला २ अतृप्त रहने वाला ।

अछकिओड़ो अछकियोड़ो अछक्योड़ो—भू०का०कृ०—१ तृप्त. २ अतृप्त ।

अछड़—संस्त्री०—श्रेष्ठ कार्य । उ०—अत **अछड़ां** करण माझियां मारण, कटकां अटक केवियां काळ ।—बां.दा.

अछड़ी—संस्त्री०—१ मामूली हलके दाने की ज्वार जो रंग में सफेद होती है तथा जिसका भुट्टा लम्बा होता है ।

अछत—वि०—गुप्त, छिपा हुआ, प्रच्छन्न ।

संस्त्री० [सं० इच्छा] १ अभिलाषा, कामना, चाह । उ०—ग्राह गह्यां गजराज ऊबरयां, **अछत** करयां वरदांन ।—मीरां २ कमी ।

उ०—पैले भव रै पून, जिको इण भव मौ जुड़ियौ, पोह जिणरै परताप, **अछत** नह कु आभड़ियौ ।—पहाड़खां आढ़ौ

३ सम्मान. ४ विद्यमानता. [सं० अक्षत] ५ देखो 'अक्षत' ।

क्रि०वि०—१ रहते हुए, उपस्थिति में. २ सिवाय, अतिरिक्त ।

अछतो—वि०—निर्बल । उ०—हार गयो **अछतो** हुओ, छतो थको ही छैल । २ गायब. ३ साधनहीन. ४ निर्धन । —बां.दा.

अछर—संस्त्री० [सं० अप्सरा] १ अप्सरा (अ.मा.) २ गनिका, वेश्या ।

संपु० [सं० अक्षर] ३ देखो 'अक्षर' ।

अछर-भवन—संपु०यौ० [सं० अक्षर+भवन] भाल, ललाट (अ.मा.)

अछरवर—संपु०—योद्धा (डि.नां.मा.)

अछरांबर—संपु०—अप्सराओं द्वारा वरण किया जाने वाला व्यक्ति, योद्धा, वीर । उ०—दोय सहस्र अग्र दोयसें, **अछरांबर** यकसार । बरिया खाटू खेत बिच, हूरां होय जुहार ।—शि.वं.

अछरा—संस्त्री० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] १ अप्सरा, देवांगना २ वेश्या, पतुरिया । (डिं.को.)

अछरांणि—संस्त्री० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] १ अप्सरा ।

[सं० अक्षर] २ देखो 'अक्षर' ।

अछरी—संस्त्री० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] अप्सरा ।

अछरीक—वि०—बहुत, अधिक । उ०—अरि घड़ा गया था सोक **अछरीक**

—बळवंतसिंह गोठड़े रो गीत

अछळ—वि०—छलरहित, कपटरहित ।

अछांनो—विपु० [सं० अ+रा० छांनो=गुप्त] (स्त्री० अछांनी) १ गुप्त, छिपा हुआ, अपरिचित. २ अगुप्त, प्रकट, प्रसिद्ध ।

उ०—जगत **अछांनी** आंगणौं, सो मांनी महाराज ।—रा.रू.

अछाड़—वि०—घायल, आहत । उ०—पड़िया गज खित जांणै पहाड़, उठिया आसुर धिक जुध **अछाड़** ।—शि.सु.रू.

अछाय—वि०—कटु वचन न सहन करने वाला (डिं.को.)

अछायो—वि०—१ आच्छादित. २ भरे हुए, परिपूर्ण, पूर्ण । उ०—रोद्र **अछाया** रोस में, आया सीस अपार । कमधज्जे सांम्हा किया, तिण वेळा तोखार ।—रा.रू. ३ व्याप्त. ४ जोशीला । उ०—ऊपर खांन तणै दळ आया, अर निरदळता कमध **अछाया** ।—रा.रू. ५ प्रसिद्ध, मशहूर. ६ कटु वचन सहन न करने वाला । उ०—चली फौज चावै, हुवौ लोक हावै । अठी ऐ **अछाया**, उठी खेप आया ।—रा.रू.

अछिप—वि०—अगुप्त, प्रकट ।

अछी—संस्त्री० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] अप्सरा, देवबाला ।

अछीज—वि०—जिसकी क्षति या कमी न हो ।

संपु०—ईश्वर ।

अछूत—वि० [सं० अ+छुप्त, प्रा० अछुत्त] १ बिना छुआ हुआ. २ अस्पृश्य. ३ नया, कोरा, पवित्र ।

संपु०—अन्त्यज, निम्न कोटि का व्यक्ति या जाति, शूद्र ।

अछूतो—वि० [सं० अ+छुप्त, प्रा० अछुत्त] १ नया, ताजा, नवीन. २ कोरा, बिना छुआ हुआ, जो बरता न गया हो, पवित्र. ३ अस्पृश्य

४ अक्षय. ५ अखण्ड. ६ अपूर्व, अभूतपूर्व। उ०—अर भावती सुता रा स्वसुर आप बिबाहिणि री प्रारथना रै प्रमांण बिबाहण री बात बिरुदां रा बिसेस निबाहण री निहारि अछूतौ जस लीजै।
—वं.भा.

सं०पु०—स्पर्श करने का भाव। उ०—भगवान रै अछूतौ करनै खावणौ चाहीजै।

अछेक–वि०—छिद्ररहित, कटावरहित, अखण्ड। उ०—अतिक्रम विक्रम त्रिक्रम आस्य, अछेक अनेकन अंक उपास्य।—ऊ.का.

अछेद–वि० [सं० अछेद्य] १ जिसका छेदन न हो सके, अभेद्य. २ अखंड. ३ निष्कपट।

सं०स्त्री०—अभिन्नता, अभेद।

अछेप–सं०पु०—अस्पृश्य, अछूत।

वि० अछूत।

अछेरौ–वि०पु० [सं० अच्छ] १ बढ़िया, अच्छा, श्रेष्ठ। उ०—देस-देस 'लाखा' दुवा, जस थारौ जेहल्ल। जावै पिण जावै नहीं, एह अछेरा गल्ल।—बां.दा.

सं०पु०—१ आश्चर्य, विस्मय। उ०—रतन दिली सूं आंणियौ, सूरा है समरत्थ। ग्रहियौ म्हे चीतोड़गढ़, किसूं अछेरा कत्थ।—बां.दा. [रा०] २ आधा सेर तोल का एक बाट।

अछेह–वि० [सं० अछेद्य] १ अखंडित, छेदरहित. २ छेह न देने वाला, अथाह. ३ अनन्त। उ०—अगम्भ अछेह उदार अनोप।—ह.र. अत्यन्त, ज्यादा. ५ सीमा या मर्यादारहित। उ०—अनाथांनाथ अनंत अछेह।—ह.र.

सं०पु०—परब्रह्म।

क्रि०वि०—लगातार, निरंतर। उ०—अरणी अगनि अगर मैं इंधण, आहुति घ्रत घणसार अछेह।—वेलि.

अछेहयं–वि०—१ अपार, अथाह, जो समाप्त न हो। उ०—मरजाद सर सर मरिति अनुमिति छूटि जात अछेहयं।—रा.रू.

२ देखो 'अछेह'।

अछेहरी–वि०स्त्री०—बढ़िया, श्रेष्ठ। उ०—बेंडाकां सांमहां सत्रां ताके अछेहरी वागां।—रावत हिम्मतसिंह सक्तावत री गीत

अछेही–वि०स्त्री०—१ बढ़िया, सुन्दर. २ निर्दय, निष्ठुर. ३ निर्मोही।

अछेहौ–वि०—१ जिसे शीघ्र क्रोध न आवे, गहरा मनुष्य, गंभीर. २ अनन्त, अपार, जो समाप्त न हो। उ०—अछेहौ बदन्ना वांणी बोलतौ पुलस्थ अंसी, क्रोधाळ असूळ तमां तोलतौ करूर।—र.रू.

अछै—'है' क्रिया का प्राचीन रूप। उ०—अछै हरि तूंहिज आपो-आप, बुझां हिव तूझ बियां नहिं बाप।—ह.र.

अछोड़ी–वि०—अच्छी, बढ़िया।

सं०स्त्री०—१ ज्वार. २ महीन रेत।

अछोतौ—देखो 'अछूतौ'।

अछोभ–वि० [सं० अक्षोभ] १ अचंचल, स्थिर. २ उद्वेगशून्य, खेद-रहित, क्षोभरहित. ३ माया-मोहशून्य. ४ निडर, निर्भय, ५ जिसे नीच कर्म से ग्लानि न हो, नीच. ६ लोभरहित. ७ गंभीर।

अछोर–वि० [सं० अ+छोर=सीमा] अनन्त, बहुत अधिक, जिसका छोर न हो।

अछोह–सं०पु० [सं० अक्षोभ, प्रा० अच्छोह] १ शांति, स्थिरता. २ निर्दयता।

अछ्यौ–वि० [सं० अच्छा] अच्छा, उत्तम।

अजंग–वि० [सं० अ+फा० जंग] १ जंगरहित, बिना युद्ध। उ०—अभंग अपंग असंग असंन, अरंग अजंग अबंग अनंत।—ह.र.

२ भयावह। उ०—जंगळ देस अजंग थळ, कोहड़ै ऊंडा नीर। ढोलौ खड़ै उतावळा, सैणां तणै ज सीर।—ढो.मा.

अजंगम–सं०पु०—छप्पय नामक मात्रिक छंद का ३३वां भेद जिसमें ३८ गुरु ७६ लघु से ११४ वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं।

अजंगी–वि०—भयंकर। उ०—राज रा अजंगी जंगां भागा आसुरांण।
—सवाईसिंह रौ गीत

अजंट–सं०पु० [अं० एजेन्ट] १ किसी दूसरे की ओर से काम करने वाला अधिकृत व्यक्ति. २ प्रतिनिधि. ३ आढ़तिया, दलाल।

अजंटी, अजंठी–सं०स्त्री० [अं० एजेन्ट] १ प्रतिनिधि का कार्यालय. २ अजंट का कार्यालय, पुरानी रियासतों में ब्रिटिश काल में अंग्रेजों की ओर से रहने वाले प्रतिनिधि का कार्यालय।

अजंप–वि०—जो कहने में न आ सके, अकथनीय। उ०—गांमी गंवार कोई अचांणक देखै, उर मैं अजंप कंप उमर भर लेखै।—रा.रू.

अजंसी—देखो 'अजंटी'।

अज–वि० [सं०] जिसका जन्म न हुआ हो, स्वयंभू। उ०—अलाव निरंजण अज अविकारी, व्याप रह्या सब जग मांहीं।—गी.रां.

२ क्रूर। (डिं.को.)

सं०पु० [सं०] १ देवता (अ.मा.) २ श्रीकृष्ण (नां.मा.) ३ ब्रह्मा. (डिं.को.) ४ विष्णु. ५ शिव (अ.मा.) ६ कामदेव. ७ सूर्यवंशी राजा दशरथ के पिता. ८ बकरा, मेंढ़ा।

सं०स्त्री०—१ माया, शक्ति. २ ज्योतिष में शुक्र की गति के अनुसार तीन नक्षत्रों की एक वीथि।

क्रि०वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज] १ अभी तक. २ अब. ३ आज। उ०—सुन स्वार विचार तजौ सब ही, अज कांम करौ सो करौ अब ही।—ऊ.का.

अजइपुर–सं०पु० (प्रा०रू०) अजमेर का एक नाम (रू.भे.)

अजक–वि० [सं० अ+जक=चैन–रा०] १ बेचैन, व्याकुल. २ चंचल. उ०—जसा हर करी मचकाय जकड़ीदणी। आठ पौहरां रहै अजक ओड़ीदणी।—महादांन महड़ू

३ सतर्क। उ०—धणी अजकां तणी रहै सजकी धरा।—महादांन महड़ू

क्रि०वि०—१ घबराया हुआ. २ चंचलता से। उ०—फेंकै अजक

गुलाल करंती कांम जतन रा ।—मेघ.

सं०स्त्री०—व्याकुलता । उ०— खुर सुचि झमक चकमक किलक डक लगि **अजक** चउ चक पुलक सक कर घमक पखरक भरक रज ढक श्राजि ।—वं.भा.

अजकणो, अजकतो–वि०—१ उद्यत. २ चपल, चंचल ।

उ०—**अजकणा** टाबर तारां काज, करै जोबन जोबरळो घात ।—सांझ

अजकाणो, अजकाबो–क्रि०अ०—बेचैन होना, चंचल होना ।

उ०—पंखिया परदेसी **अजकाय**, श्रागमै असमांनी असमांन ।—सांझ

अजको–वि०—१ चंचल, चपल, उतावला । उ०—तोरण जातां बाहरू, सुणियो **अजकै** बींद । लाखां हुण लीधी सखी, मोटै पड़वै नींद ।

—वी.स.

२ सतर्क । उ०—थाट घणा घणा रावतां श्राटबंका थहै, दुझड़ झल अरंदां प्रांण सुभा दहै । कर दुरंग रळमी कंथ कांमण कहै, रात दिन भुप लिछमण **अजको** रहै ।—अज्ञात ३ श्रातुर । उ०—जांणू **अजको** मेघ जावतां कारज म्हारै, परबतिया फूलाळ अलेखां श्राडा थारै ।—मेघ.

सं०पु०—१ जागृत रहने का भाव, नींद का अभाव. २ वीर. ३ देखो 'अजक' ।

अजगंधा–सं०स्त्री० [सं०] अजवाइन ।

अजगर–सं०पु० [सं०] १ बहुत मोटी जाति का एक सांप । इसके दांतों में विष नहीं होता किन्तु बकरी, हिरन आदि को समूचा निगल जाता है.

कहा०—अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न कांम । दास मलूका कह गये, सब के दाता रांम. २ अजगर पड़ी उजाड़ में, दाता देवणहार—अजगर कहीं परिश्रम करने नहीं जाता परन्तु दाता परमात्मा उसे खाद्य पहुँचा देता है—आलसी व्यक्ति पर व्यंग से ।

२ आलसी, उद्यमहीन व्यक्ति ।

अजगरी–सं०स्त्री० [सं० अजगरीय] अजगर के समान निरुद्यम वृत्ति ।

वि०—१ अजगर सी. २ बिना परिश्रम की. ३ आलसी ।

अजगल्लिका–सं०स्त्री०—अमृत सागर के अनुसार एक क्षुद्र रोग ।

अजगव–सं०पु० [सं०] शिवजी का धनुष, पिनाक ।

अजड़–वि०—१ उद्दंड, अनम्र. २ मूर्ख. [सं०] ३ जो जड़ न हो, सजीव ।

सं०पु० [रा०] देखो 'अजड़ौ' ।

अजड़ो, अजड़ो–सं०पु०—वह युवा बैल जो कृषि कार्य के लिए तैयार न किया गया हो ।

वि०—उद्दंड, अनम्र ।

अजटा–वि०स्त्री० [सं० अ+जटा] बिना जटा की, जटारहित ।

अजडो–वि०—उद्दंड, अनम्र ।

अजण–सं०पु०—१ राजा सहस्रार्जुन का नाम (डिं.को.) २ अर्जुन ।

अजणदंती–सं०पु० [सं० अंजनदंती] पश्चिम दिशा का दिग्गज (वं.भा.)

अजतन–सं०पु० [सं० अ+यत्न] बिना यत्न, यत्नरहित ।

अजनंद–सं०पु० [सं०] अज के पुत्र राजा दशरथ (र.रू.)

अजन–वि० [सं०] १ जिसका जन्म न होता हो, अजन्मा. २ निर्जन, सुनसान ।

सं०पु०—१ निर्जन स्थान. २ अर्जुन । उ०—ताकड़ा **अज** भीमेण ताय । खांगड़ा उरस थी भचक खाय ।—वि.सं. ३ सहस्रार्जुन ।

अजनबी–वि० [फा०] अपरिचित, अज्ञात, अनजान ।

अजनम, अजनमो–वि० [सं० अजन्मा] १ जन्मरहित. २ नित्य अविनाशी अनादि ।

सं०पु०—१ ब्रह्मा. २ विष्णु. ३ शिव. ४ सूर्य (अ.मा.)

अजनी–सं०स्त्री० [सं० अजा] बकरी ।

अजन्न–सं०पु० [सं० अर्जुन] १ अर्जुन. २ सहस्रार्जुन । (रू भे. 'अजन')

अजन्म—देखो 'अजनम' । उ०—अकळ **अजन्म** अलेख अप्रंप्रम, क्रम मम कटै तूझ कथतां क्रम ।—ह.र.

अजप, अजपा–सं०पु०—१ तांत्रिकों के मतानुसार एक मंत्र जिसका उच्चारण नहीं किया जा सकता, केवल श्वास के गमनागमन द्वारा जप किया जाता है. २ बुरा जाप या पाठ करने वाला व्यक्ति. ३ परब्रह्म, ईश्वर. ४ गायत्री मंत्र ५ हंस मंत्र ।

अजपाळ–सं०पु० [सं० अजा+पालक] १ बकरियाँ पालने वाला गड़रिया. २ संगीत में भैरव राग का पुत्र संपूर्ण जाति का एक राग (संगीत) ३ जमालघोटा. ४ देखो 'अजयपाळ' ।

अजपो—देखो 'अजप' ।

अजप्पा—देखो 'अजप' । उ०—**अजप्पा**-जाप तणो तूं ईस, **अजप्पा** तोरा जोग अधीस ।—ह.र. २ गायत्री मंत्र (रू.भे.)

अजब, अजबीय, अजब्ब–वि० [अ० अजब] अद्‌भुत, आश्चर्यजनक, विलक्षण ।

अजभक्ष, अजभख–सं०पु० [सं० अजभक्ष] १ बबूल का वृक्ष. २ बेर का पेड़ या पत्ती जिसे बकरियां बड़े चाव से खाती हैं ।

अजमत–सं०पु० [अ० अज़्मत] १ प्रताप. २ शान. ३ बड़ाई, महत्व. ४ चमत्कार ।

अजमाइस–सं०स्त्री० [फा० अजमाइश] अजमाइश, जांच, परख, परीक्षा.

अजमीढ़–सं०पु०—१ युधिष्ठिर. २ चली आती हुई वर्ष गणना का कोई वर्ष । उ०—गंधरबमेण सुत मन गहिर, पलटण सक **अजमीढ़** पर ।—वं.भा.

अजमेरी–वि०—अजमेर का, अजमेर संबंधी ।

सं०पु०—१ अजमेर निवासी. २ गौड़वंशीय या चौहानवंशीय राजपूत ।

सं०स्त्री०—अजमेर की भाषा ।

अजमेरो–वि०—अजमेर का, अजमेर संबंधी ।

सं०पु०—१ चौहान. २ गौड़ राजपूत ।

सं०पु०—१ गौड़वंश के राजपूतों की उपाधि. २ गौड़वंशीय या चौहानवंशी राजपूत. ३ अजमेर की ओर होने वाले बैलों की एक नस्ल या इस नस्ल का बैल. ४ अजमेर का निवासी।

अजमो–सं०पु० [सं० यवानिका] १ अजवायन।

कहा०—कीरी मा अजमो खायो है—कठिन काम या मुकाबला कौन कर सकता है ? (समर्थ व्यक्ति के लिए) २ पुत्र-जन्मोत्सव के अवसर पर गाया जाने वाला लोक गीत।

अजमोद–सं०स्त्री० [सं० अजमोदा] अजवायन के समान एक वृक्ष व उसके बीज जिनके सेवन से प्रायः अजीर्ण दूर होता है।

अजय–सं०पु० [सं० अ+जय] १ पराजय, हार. [रा०] २ छप्पय छंद के ७१ भेदों में से प्रथम भेद जिसमें ७० गुरु, १२ लघु से ८२ वर्ण या १५२ मात्रायें होती है।

वि० [सं० अजय्य] अजय, जो पराजित न किया जा सके।

अजयपाळ–देखो 'अजपाळ'।

अजया–सं०स्त्री० [सं०] १ विजया, भांग २ बकरी. ३ दुर्गा, देवी।

वि०स्त्री०—जो जीती न जा सके, अजय।

अजर–वि० [सं०] १ जो बूढ़ा न हो, जरारहित. २ परमेश्वर का एक विशेषण. ३ वह द्रव्य या संपत्ति जो हजम न हो सके (दान) उ०—भय न हुए कर भगत, अजर दांणौ जारण करै। खैरायत कर ख्यांत, नर खावै र नोपला।—आलजी दधवाड़ियौ

४ बलवान, जबरदस्त. ५ जो हराया न जा सके. ६ अच्छा. भला, सुंदर।

सं०पु०—१ देवता. २ महादेव. ३ विष्णु. ४ हनुमान. ५ श्रीकृष्ण (अ.मा.)

अजर-अमर–वि० [सं०] १ सदा युवा व जीवित रहने वाला।

सं०पु०—आशीर्वादात्मक शब्द विशेष।

अजरख–सं०स्त्री०—वह रंगीन कपड़ा जिसे सिंधी मुसलमान तहमद बांधने के काम में लेते है।

अजरट–वि०—जबरदस्त, बलवान।

अजरधोम–सं०पु०—१ असह्य धुंआ. २ अधिक क्रोध।

अजराइल–देखो 'अजरायल'। उ०—गंज गिगदा दम गिणै, अजराइल डाकी।—केसोदास गाडण २ देखो 'अजरायल' (रू.भे.)

अजराग–वि०—जबरदस्त, बलवान. २ भयंकर।

अजरामर—देखो 'अजर-अमर'।

सं०पु०—ईश्वर।

अजरायल, अजराल, अजरावल–वि० [सं० अजर+आयल रा०प्र०] १ जो कभी पुराना न पड़े. २ सदा एक सा रहने वाला. ३ पक्का. ४ अमिट. ५ चिरस्थायी. ६ निडर, निर्भय, निशंक. ७ जबरदस्त, शक्तिशाली। उ०—मार पाड़ माचतौ गयौ अजरावल डाकी।—पा.प्र. ८ पहलवान. ९ चंचल, नटखट।

सं०पु० —योद्धा, वीर। उ० —तो जिसां छायलां सिंह 'गोकळ' तणा धणी अजरायलां तणी धरती।—बदरीदास खिड़ियौ

अजरी–वि०स्त्री०—१ चंचल. २ जबरदस्त। उ० —कहजै धन पोंच कमंधज री, अजरायल आसंग की अजरी।—पा.प्र.

अजरेल, अजरैल—देखो 'अजरायल' (रू.भे.) उ०—ग्रहै गिड़कंद तणौ कुण गैल। उडावत तुंड धकै अजरेल।—पा.प्र.

अजरौ–सं०पु०—वीर, बहादुर। उ०—नजरां गोरां निरखिया, अजरां पारख आज।—आउवा गदर रौ दूहौ

वि०—१ बलवान. २ लड़ाकू. ३ जोशयुक्त जोशीला।

उ०—यह स्रीमुख बोल सुणौ अजरा। धर सेस तजै सरण धांधल रा। ४ चंचल, नटखट। —पा.प्र.

अजरोमर– देखो 'अजर-अमर'।

अजवरघा–सं०स्त्री०—सीसोदिया वंश की एक शाखा।

अजवांण, अजवांणी, अजवाइन, अजवायण, अजवायणि, अजवायन–सं०स्त्री० [सं० यवानिका] सारे भारत में, विशेष कर बंगाल में, लगाया जाने वाला एक पौधा विशेष। इसके बीजों में एक विशेष प्रकार की महक होती है तथा स्वाद में तीक्ष्ण होते हैं। ये मसाले और दवा के काम आते हैं। भभके पर उतारने से इनमें से अर्क (अमूम का पानी) और तेल निकलता है।

अजवाळ–वि० [सं० उज्ज्वल] १ उज्ज्वल. २ शुभ्र, स्वच्छ. ३ प्रकाशमान. ४ उज्ज्वल करने वाला।

सं०पु०—शुक्ल पक्ष।

अजवाळणौ, अजवाळबौ–क्रि०स०—१ उज्ज्वल करना. २ चमकाना. ३ प्रकाशित करना. ४ प्रतिष्ठा बढ़ाना। उ०—'जैतां' तणी रीत अजवाळी, खागां मुहै पाड़िया खळ।—तेजसी खिड़ियौ

अजवाळणियौ—वि०।

अजवाळिओड़ौ, अजवाळियोड़ौ, अजवाळयोड़ौ–भू०का०कृ० उजला किया हुआ।

अजवाळियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उज्ज्वल किया हुआ, चमकाया हुआ. २ प्रकाशित (स्त्री० अजवाळियोड़ी)

अजवाळौ–वि०—प्रकाशयुक्त।

सं०स्त्री०—१ चांदनी. २ रोशनी, प्रकाश।

अजस–सं०पु० [सं० अयश] अयश, अपयश, बदनामी। उ०—चाख्यौ जग-जग तें अजस को न चाख्यौ एक।—ऊ.का.

अजसी–वि० [सं० अयश+ई–रा०प्र०] अपयशी, यशहीन, अख्यात।

अजसुत–सं०पु० [सं०] शिव, महादेव (अ.मा.)

अजस्र–वि० [सं०] चिरस्थायी।

क्रि०वि०—निरंतर, सर्वदा। उ०—अजस्र अस्र धस्र-धस्र बिस्र पीवतौ बह्यौ।—ऊ.का.

अजहति, अजहत्स्वारथा–सं०स्त्री० [सं० अजहत्स्वार्था] साहित्य में शब्द-शक्ति के तीन भेदों में लक्षणा-शक्ति का एक भेद विशेष। इसमें लक्षक शब्द अपने वाचार्थ को न छोड़ कर कुछ भिन्न अथवा अतिरिक्त अर्थ

प्रकट करता है। इसका दूसरा नाम उपादान लक्षणा भी है।

अजहद-वि० [फा०] अपरिमित, अत्यन्त, बहुत अधिक।

अजां-अव्यय [सं० अद्य] १ अब तक, आज तक, अभी तक।
उ०—श्रावण कह गया अजां न आया, कर म्हांणं कौल गया।
२ अब। —मीरां

अजांचक-देखो 'अचाचक' (रू.भे.) उ०—एक कोई सिरदार माथे अजांचक री दुसमणां री फौज चढ़ आई।—वी स. टी.

अजांण-वि०—१ अनजान, अपरिचित, अनभिज्ञ।
कहा०—अजांण'र आंधौ बराबर हुवै—अनजान व्यक्ति अपने अज्ञान के कारण कोई मूर्खता या बुराई कर बैठे तो बुरा नहीं मानना चाहिए. २ अजांण निरदोस है। अजांण्यै नै दोस नहीं—अनजान आदमी को किसी बात का दोष नहीं दिया जा सकता. ३ अजांण्यां पांणी में नहीं उतरणौ—बिना गहराई मालूम किये अपरिचित जल में कभी नहीं उतरना चाहिये। अज्ञात स्थिति में कोई कार्य न करना चाहिये। देखो 'अणजांण'। २ मूर्ख। उ०—गाल संवारण में गमै, ऊमर काय अजांण। आखर प्रांण प्रमूक ओ, खाक हुसी मळ खांण।—बां.दा.

अजांणक्रग—देखो 'अजांनक्रग'।

अजांणचक, अजांणजक, अजांणजख-देखो 'अचांचक' (रू.भे.)
उ०—ज्यूंहीं खीवे रा भालकां री चमक दीठी त्यूंहीं तुरत ऊठ उठै आय अजांणजख रौ होळं सी ऐक तीर पकड़ खंच्यौ।
—सूरे-खीवे री बात

अजांणता-सं०स्त्री० [सं० अज्ञानता] मूर्खता, मूढ़ता, अज्ञानता।

अजांणपण, अजांणपणो, अजांणपणौ-सं०पु० मूर्खता, मूढ़ता, अज्ञानता, नासमझी।

अजांणियौ, अजांण्यौ-वि०—अपरिचित। देखो 'अजांण'।
क्रि०वि०—१ बिना जाने ही. २ अकस्मात्, अचानक। उ०—उण सम अकबर री फौज रा हरोळ हलकार करि अजांणिया तोपखांना माथै आय पड़िया।—बां.दा.

अजांणी-क्रि०वि०—बिना जाने ही, अकस्मात्, अचानक।
वि०—अपरिचित। देखो 'अजांणियौ'। उ०—अजांणी सरगपुरी रौ सार, राखलूं कुण-सी लालां तोल।—सांझ

अजांन-सं०स्त्री० [अ० अजान] मस्जिदों के मीनारों पर मुसलमानों को नमाज के समय की सूचना के लिये लगाई जाने वाली पुकार, बांग।
वि० [सं० अ=नहीं+फा० जान=प्राण] निर्जीव, प्राणरहित।

अजांनक्रग-वि० [सं० आजानु+कर] जिसके हाथ घुटनों तक लंबे हों, आजानुबाहु। उ०—कूंपावत कांन्ह अजांनक्रग, सुत एम मांम नृप छळ सुमग्ग।—रा.रू.

अजांनबाह, अजांनबाहु-वि० [सं० आजानु+बाहु] लंबे हाथों वाला।
सं०पु०—जिसके हाथ घुटनों तक लम्बे हों, आजानुबाहु।
उ०—तोरी धाक मांन के जवाहर अजांनबाह। गोरे जीव जावन की आस तें छुटयौ करै।—डूंगजी री कवित्त

अजांबिका-सं०स्त्री०—१ भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की एकादशी. २ इस दिन किया जाने वाला व्रत।

अजा-सं०स्त्री० [सं०] १ बकरी. २ प्रकृति. ३ माया, शक्ति. ४ दुर्गा. ५ भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का व्रत. ६ पार्वती।
वि०स्त्री०—१ जन्मरहित. २ जो उत्पन्न न की गई हो।

अजाएकादसी-सं०स्त्री० [सं० अजा+एकादशी] भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी (मि० अजांबिका)

अजाच, अजाचक, अजाची-वि० [सं० अ+याचक] वह व्यक्ति जिसे कुछ मांगने की आवश्यकता न हो, संपन्न व्यक्ति।

अजात-वि० [सं०] १ जन्मविहीन, अजन्मा, जिसका जन्म न हुआ हो. २ जिसकी जाति-पांति का पता न हो (मि० कुजात)

अजातसत्र, अजातशत्रु-वि० [सं० अजातशत्रु] जिसका कोई शत्रु न हो, शत्रुविहीन।
सं०पु०—१ राजा युधिष्ठिर (अ.मा.) २ शिव. ३ एक काशी नरेश जिसका वर्णन उपनिषदों में आता है. ४ मगध नरेश बिंबसार का पुत्र।

अजाती-वि० [सं० अ+जाति] १ जाति से निकाला हुआ, जातिच्युत, पतित. २ दूसरी जाति का, विजातीय।

अजाधर-सं०पु०—१ बोझा, वजन. २ संकट. ३ कलंक।

अजाप—देखो 'अजप' (रू भे)

अजामळ, अजामिळ, अजामीळ-सं०पु० [सं० अजामिल] एक पापी ब्राह्मण का नाम, जो मरते समय अपने पुत्र नारायण का नाम लेने मात्र से ही तर गया था।

अजामेध-सं०पु० [सं० अजा+मेध] एक प्रकार का यज्ञ विशेष जिसमें बकरे की बलि दी जाती है। उ०—असमेध अजामेध हुवा आगै, घणूं सुणै नरमेध घणौ।—महारांणा सांगा रौ गीत

अजामेळ—देखो 'अजामळ'। उ०—अजामेळ जमदळ अगा, बिलटयौ बिसमी बार।—ह.र.

अजायब-सं०पु० [अ०] आश्चर्यजनक पदार्थ।
वि०—'अजब' का बहुवचन।

अजायबखांनो, अजायबघर-सं०पु०—वह भवन जहां कई प्रकार की आश्चर्यजनक वस्तुओं का संग्रह किया गया हो।

अजायौ-वि०पु०—अजन्मा, जन्म नहीं लेने वाला।
सं०पु०—१ ईश्वर। उ०—जगत कहै दसरथ रौ जायौ, अविगत थारौ नांम अजायौ।—पीरदांन लाळस २ ब्रह्मा।

अजारो, अजारौ-सं०पु० [अ० इजारा] १ अधिकार. २ किसी पदार्थ को उजरत या किराये पर देना, इजारा, ठेका। उ०—क्रपण संतोस करै नहीं, लालच आडे अंक। सुपरां अभीसण सूं मिळै, लिए अजारे लंक।—बां.दा.

अजिठा-सं०स्त्री०—मृगछाला, मृग का चमड़ा।

अजित–वि० [सं०] अपराजित, जो जिता न जा सके।
स०पु०—१ श्रीकृष्ण (अ.मा.) २ विष्णु. ३ शिव. ४ बुद्ध. ५ जैनियों के २४ तीर्थङ्करों में से दूसरा।
अजितनाथ–सं०पु०—जैनियों के दूसरे तीर्थङ्कर का नाम।
अजिता–सं०स्त्री०—१ भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी. २ इस दिन किया जाने वाला व्रत।
अजितेंद्रिय, अजितेंद्रीय–वि० [सं० अ+जितेंद्रिय] जो इन्द्रियों के वशीभूत हो, विषयासक्त, इन्द्रियलोलुप।
अजिन–सं०स्त्री० [सं० अजिनम्] मृगचर्म, मृगछाला।
अजिया–सं०स्त्री० [सं० अजा] बकरी (अल्पा०) (रू.भे 'अजा')
अजिर–सं०पु० [सं०] आंगन, सहन। उ०—अजिर मारजण गुण ओपाया, महले नवरंग चित्र मंडाया।—रा.रू.
अजिह्मग–सं०पु० [सं० अजिह्मग] बाण, तीर (डिं.नां.मा.)
अजी–अव्यय [सं० अयि] संबोधनसूचक शब्द, अरे, जी।
अजीज–वि० [अ० अजीज] प्रिय, प्यारा, स्नेही।
सं०पु०—१ सम्बन्धी, आत्मीयजन. २ मित्र।
सं०स्त्री०—३ खुशामद, प्रार्थना। उ०—इसी भांति सूं बहोत अजीज कीवी।—पलक दरियाव री बात
अजीत—देखो 'अजित'।
अजीतनाथ—देखो 'अजितनाथ' (रू.भे.)
अजीब–वि० [अ०] विलक्षण, विचित्र, आश्चर्यजनक, अनूठा।
अजीय–क्रि०वि० [सं० अद्य] आज तक, अभी तक, अद्यपर्यन्त।
उ०—गूजरातिनउ खोखरउ आथउ, अजीय न आवइ पार।—कां.दे.प्र.
वि० [सं० अजय] विजयी, अजेय।
अजीया–सं०स्त्री० [सं० अजा] बकरी (अल्पा०) उ०—अजीया जेम आचार, रीभ कीधा गजराजां।—बुधजी आसियौ (रू.भे. 'अजिया')
अजीरण–सं०पु० [सं० अजीर्ण] अन्न का अच्छी तरह से न पचना, अपच, बदहजमी।
वि०—१ अधिकता, बहुतायत. २ नया, जो पुराना न हो।
अजीरनग्रह–सं०पु०—पारसियों का दिन में तीसरी बार नमाज पढ़ने का संध्याकालीन समय जो ३ बजे के पश्चात् आरंभ होता है।
अजीव–वि० [सं०] १ चेतनाविहीन, बिना प्राण का, मृत, निर्जीव।
[अ० अजीब] २ अजनबी. ३ अद्भुत।
अजीवन–सं०पु० [सं० अ+जीवन] मृत्यु, मौत।
वि०—मृत, निष्प्राण।
अजु–अव्यय—१ और. २ जो। उ०—प्रति अंब मौर तोरण अजु अंबुज कळी सू मंगळ कळस करि।—वेलि.
अजुआळ–वि० [सं० उज्ज्वल] उज्ज्वल करने वाला।
सं०पु०—१ प्रकाश, रोशनी, उजाला. २ चांदनी. ३ अपने कुल अथवा जाति में श्रेष्ठ व्यक्ति। उ०—चूंडा वीरम सळख, साख तेरह अजुआळा।—वचनिका
अजुआळणौ, अजुवाळबौ, अजुआळिणौ, अजआळिबौ–क्रि०स० [सं० उज्ज्वल] उज्ज्वल करना, चमकाना, प्रकाशित करना। उ०—अणिआळी अणबीह, पंचहजारी पाड़ती। अजुआळे भारथि अमर, सोभा वीकमसीह।—वचनिका
अजुआळो, अजुवाळो—देखो 'अजुआळ'। उ०—काळे अजुआळो किओ, आवि दळां अविभ्रट्ट।—वचनिका
अजुक्त–वि० [सं० अयुक्त] १ अयोग्य. २ अनुचित. ३ युक्तिशून्य. ४ अमिश्रित, अलग. ५ आपदग्रस्त. ६ अनमना।
अजुगत, अजुगति–सं०स्त्री० [सं० अयुक्ति] १ अयुक्तियुक्त, असाधारण बात. २ अनुचित या असंगत बात।
अजुध्या–सं०स्त्री०—अयोध्या (अ.मा.)
अजुवाळणौ अजुवाळबौ—देखो 'अजुआळणौ'।
अजुसार–सं०पु०—वेग (अ.मा)
अजू–क्रि०वि० [सं० अद्य] १ आज तक, अभी तक। उ०—जबर दूत मेले समुभावौ, रहम अजूं समजै तो रांवण।—र.रू.
२ देखो 'अजु' (रू.भे.)
अजूंभौ–वि० [सं० अ+युद्ध+औ–रा०प्र०] भयंकर, डरावना।
अजूंणौ–वि० [सं० अद्य+णौ–रा०प्र०] (स्त्री० अजूणी) १ आज का. २ अभी का. ३ असार, साररहित. ४ अरुचिकर, कष्टप्रद।
उ०—ढळतां मास असाढ़ अजूंणौ सांवण संभियौ।—मेघ.
अजू–क्रि०वि० [सं० अद्य] १ अब, अभी. २ आज तक। देखो 'अजूं'।
अजूआळ–सं०पु० [सं० उज्ज्वल] प्रकाश, रोशनी, उजाला। उ०—डूंगर तणां सिखर डगमगइ, थयूं अजूआळ सायर लगई।—कां.दे.प्र.
अजूब–वि० [अ० अजीब] अनोखा, अजीब, अनूठा।
अजूयाळ—देखो 'अजूआळ'।
उ०—गमे गमे दीसइ अजूयाळां, म्लेछे छांडी छाक। आपोपरि असमहीया ऊठइ, कटकि पड़ीउ बल काक।—कां.दे.प्र.
अजूह–सं०पु०—१ युद्ध, लड़ाई. २ समूह, यूथ।
अजे–क्रि०वि० [सं० अद्य] १ अब तक. २ अभी तक (रू.भे.–अजूं)
उ०—अजे घणी उजेण, भणजै बातां भोज री। जुग में बाता जेण, मरै न कीरत मोतिया।—रायसिंह सांदू
वि० [सं० अजय] अजय।
अजेगढ़–सं०पु०—अजमेर का एक नाम।
अजेज–क्रि०वि० [रा० अ+जेज=विलंब] अविलम्ब, शीघ्र, जल्दी।
उ०—कजाकणि डाकणि काढ़ि कळेज, जिमावत साकणि जूह अजेज।—मे.म.
अजेजौ–वि०—विलम्ब न करने वाला, उतावला।
अजेत–वि०—१ पराजित, हारा हुआ. २ न जीता जा सकने वाला।
उ०—खंधार बळां खड़रांण खेत, जुध करै भुजबळ म्हे अजेत।
—शि.सु.रू.
अजेय–वि० [सं० अजय] जो जीता न जा सके।

अजेव-वि० [सं० अ = नहीं + जीव] १ जीवरहित। उ०—अमात अतात अजात **अजेव**, अदीह अरात अभ्रत अभेव।—ह.र.
[सं० अजेय] २ अजेय, जो जीता न जा सके। उ०—परबत पई पछाड़िया, मेरो चाचग देव। कुंभकरण रांणी कियो, अहयो रयण **अजेव**।—बां.दा.

अजेस, अजेंस-क्रि०वि० [सं० अद्य + स-रा०प्र०] अब तक, अभी तक (रू.भे.-अजे, अजूं)। उ०—काटियै माथै 'तोळं' पाछो झटको वाह्यो सो थांभो कटांणो, थांभो **अजेस** है।—बां.दा.

अजै—देखो 'अजे'। उ०—अमर नाम उण री **अजै**, की जादा कहियांह। —बां.दा.

अजैगढ़-सं०पु०—अजमेर का एक नाम।

अजैपाळ—देखो 'अजपाळ'।

अजैपाळियो-सं०पु० [सं० अजयपाल] जमालगोटा।

अजैपुर-सं०पु०—अजमेर शहर।

अजै-विजै-वि०—समान, सदृश, बराबर।

अजोग-वि० [सं० अयोग्य] १ जो योग्य न हो. २ बेकाम. ३ बेमेल. ४ अनुचित, अवांछित। उ०—करी अंगरेज **अजोग** इसी, फिरि लोक फटाय-फटाय के फांटं।—चैनसिंह रौ सवैयो
५ अक्षम. ६ बुरा, भयंकर. ७ खोटा।
सं०पु०—न होने वाली बात।

अजोग्य-जोग्य-जथा-सं०स्त्री०—डिंगल में गीत (छंद) की वह रचना जिसमें अयोग्य के साथ योग्य का वर्णन हो (क.कु.बो.)

अजोड़ो-वि०—१ जिसके बराबर दूसरा कोई न हो, अद्वितीय. २ जोडारहित. ३ विरुद्ध।

अजोणानाद-सं०पु०—१ जो उत्पन्न न हुआ हो, अजन्मा. २ शिव, महादेव।

अजोणिय—देखो 'अजोणिय' (रू.भे.)

अजोणी-वि० [सं० अयोनि] जो उत्पन्न न हुआ हो।
सं०पु०—'अजोणिय'।

अजोणीनाथ-सं०पु० [सं० अयोनि + नाथ] १ शंकर (डिं.को.)
२ परब्रह्म।
वि०—अजन्मा।

अजोधिया, अजोधीया, अजोध्या-सं०स्त्री० [सं० अयोध्या] सरयू नदी के किनारे वैवस्त मनु द्वारा बसाया जाने वाला एक नगर जहाँ श्री रामचन्द्रजी का जन्म हुआ था। यह सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी थी (रामकथा)
पर्याय०—अवध, कोसला, साकेत।

अजोध्यानाथ-सं०पु० [सं० अयोध्या + नाथ] श्री रामचन्द्र।

अजोनी—देखो 'अजोणिय'। उ०—केसव क्रस्ण किलांण कह, अलख **अजोनी** ईस।—ह.र.

अजोनिपीर—देखो 'अजोणिय'।

अजोरौ-वि० [रा० अ = नहीं + फा० जोर = शक्ति] निर्बल, अशक्त।

अजौं-क्रि०वि० [सं० अद्य] अब तक, अब भी। उ०—कीच सो गलीच कांम भूलि तें भयो। नीच कांम बीच **अजौं** नीच तू नयो।—ऊ.का.

अजौ-वि० [सं० अज + औ-रा०प्र०] १ जिसका जन्म न हुआ हो, जन्म-रहित।
२ [फा० अजब] अजब, अनोखा, विलक्षण, अद्‌भुत।
सं०पु०—१ ब्रह्मा. २ बकरा।

अजौणिय-वि० [सं० अयोनि] न जन्म लेने वाला, अयोनि।
उ०—**अजौणिय** जोणिय जांणिय ईस, सुरासुर स्वांमिय को धर सीस।—ऊ.का.
सं०पु०—१ ईश्वर. २ शिव. ३ ब्रह्मा।

अज्ज-सं०पु० [सं० अज] १ ब्रह्मा। उ०—नमो अच्युतानंद गोविंद **अज्ज**।—ह.र. २ बकरा. [सं० आर्य] ३ आर्य।
उ०—**अज्ज** धरम रच्छक हतै रु जवनिस्ट उतै, घाट हळदी रण भ्रमावै भट भालों को।—बारहठ बालाबक्स पालावत
४ भारतवर्ष। उ०—अखंड ब्रह्मचरच के, सिखंड खंड **अज्ज** के। सधीर ही हमीर से, गंभीर भीर गज्जते।—ऊ.का.
सं०स्त्री० [सं० अजा] ५ बकरी।
क्रि०वि० [सं० अद्य] आज, इसी दिन। उ०—किण गळि घालूं घूघरा, किण मुख बाहूं लज्ज। कवण भले री करहलो, मूंघ मिळाऊं **अज्ज**।—ढो.मा.

अज्जण-वि० [सं० अ = नहीं + जन] निर्जन।
सं०पु० [सं० अर्जुन] १ अर्जुन. २ सहस्रार्जुन. ३ अजामिल।
उ०—हरि हरि करि उद्धरे, गजह सांमंद ध्रू **अज्जण**।—ज.खि.

अज्जमंडळ-सं०पु० [सं० आर्य + मंडल] भारतवर्ष।
(मि० अज्ज (४)) उ०—प्रटिकज्ज **अज्जमंडळ** असेस, दिगविजय कीध जिण तिण प्रदेस।—वं.भा.

अज्जांणचक, अज्जांणजक, अज्जांणजक्क-देखो—'अचांचक'। (रू.भे.)
उ०—जोध राइ सेन **अज्जांणजक्क**, कमराळ सीसि कीया कटक्क।
—रा.ज.सी.

अज्जांणवो-वि०—अज्ञानी. मूर्ख। उ०—आळसवां **अज्जांणवां**, दिल खोटंतां दूर। साहिब सांचां साधवां. है हाजरां हजूर।—ह.र.

अज्जा-सं०स्त्री० [सं० अजा] १ दुर्गा, देवी. २ बकरी।
उ०—इत्यादिक **अज्जा** कथितादक ऊणी। पहुंची प्रमदा पथ पर-मारथ पूणी।—ऊ.का.

अज्या—देखो 'अजा'। उ०—आंन देव रा दास सुणो सब ही नर नारी। हरी नांम नै छोड पूंछ पकड़ली **अज्या** री।—सगरांमदास

अज्यास-सं०स्त्री०—१ अशान्ति। उ०—वात करण सुरतांण सूं, अरि घरि करण **अज्यास**।—रा.रू. २ अस्थिरता, चंचलता. ३ क्षोभ. ४ असंतोष. ५ उत्पात [सं० अविश्वास] ६ विश्वासशून्य. ७अनिश्चय।

अज्योधा---देखो 'अजोधिया'।

अभड़-वि०---न बरसने वाला, न गिरने वाला।

अभाळ-वि०---देदीप्यमान, तेजस्वी. २ पराक्रमी. ३ ज्वालास्वरूप।

अटंकणौ अटंकबौ---देखो 'अटकणौ'।

अटंकौ-वि०---१ अधिक. २ निशंक, निडर। उ०---दीसै जोम अटंका बोलणा वैण बंका दूठ, डंका अ'बागळां नीधसै धोळै दीह।
---हीमलौ आढ़ौ

अटक-सं०स्त्री०---१ रोक, रुकावट. २ उलझन. ३ बाधा, अड़चन. ४ हिचक. ५ संकोच।

क्रि०प्र०---पड़णी।

६ पथ्य, परहेज. ७ सिंधु नदी (पाकिस्तान के अंतर्गत) पर स्थित एक छोटा नगर जहाँ प्राचीन तक्षशिला नगरी थी।

अटकण-सं०पु०---१ रोकने या बाधा डालने वाली वस्तु. २ सहारे के लिए लगाई जाने वाली कोई वस्तु या टुकड़ा. ३ सहारा।

अटकण-बटकण-सं०पु०---बच्चों द्वारा खेला जाने वाला एक प्रकार का खेल।

अटकणी-सं०स्त्री०---१ अगंला. २ रोक।

अटकणौ, अटकबौ-क्रि०अ०स०---१ रुकना। उ०---**अटकाई** नह आयबळ, आई जरा अगूढ़। आसी जद तू अटकसी, मांन किसी विध मूढ़।
---बां.दा.

कहा०---काचरियां बिनां किसा व्याव अटकै---छोटी-मोटी चीजों के अभाव में बड़े काम रुका नहीं करते।

२ अड़ना. ३ उलझना, फँसना। उ०---वारिज भवां अलक मतवारी, नैण रूप रस **अटकै**।---मीरां

४ डिगना. ५ रोकना।

अटकणहार, हारौ (हारी)-वि०---अटकने वाला।

अटकणियौ-वि०---अटकने वाला।

अटकाणौ, अटकाबौ---'अटकाणौ' का स०रू०।

अटकिओड़ौ, अटकियोड़ौ, अटक्योड़ौ---भू०का०कृ०।

अटकळ-सं०स्त्री०---१ अनुमान, अंदाज. २ उपाय, तरकीब, युक्ति. ३ कल्पना।

अटकळणौ, अटकळबौ-क्रि०स०---अनुमान करना, अंदाज लगाना, अटकल लगाना। उ०---सुकवि हुए सुदतार रौ, सुजस करै कर क्रोध। **अटकळज** पायौ अवस, कुकवी कनै कुबोध।---बां.दा.

अटकळणियौ-वि०---अनुमान करने वाला।

अटकळिओड़ौ, अटकळियोड़ौ, अटकळ्योड़ौ---भू०का०कृ०।

अटकळपच्चू-सं०पु०---अनुमान, मोटा अंदाज। उ०---पढ़्यौ-लिख्यौ नंदो 'कको' ई कोनी। हैंसाब **अटकळपच्चू** सूं कर लेतौ हो।

२ कपोलकल्पना। ---वरसगांठ

क्रि०वि०---अनुमान से, अंदाज से।

अटकळियोड़ौ-भू०का०कृ०---अनुमानित (स्त्री० अटकळियोड़ी)

अटकाणौ, अटकाबौ-क्रि०स०---१ रोकना। उ०---**अटकाई** नह आयबळ, आई जरा अगूढ़।---बां.दा.

२ अड़ाना, ठहराना, लगाना. ३ फँसाना, उलझाना।

उ०---सांकड़ै मारगियै मरमाय, घूंघटै ओळूंडी **अटकाय**।---सांझ

४ उठा रखना, पूरा करने में देर करना।

अटकाणहार, हारौ(हारी), अटकाणियौ-वि०---अटकाने वाला।

अटकावणौ, अटकावबौ---'अटकाणौ' का रू.भे.।

अटकायोड़ौ-भू०का०कृ०---अटकाया हुआ।

अटकायोड़ौ-भू०का०कृ०---अटकाया हुआ (स्त्री० अटकायोड़ी)

अटकाव-सं०पु०---१ रोक, रुकावट. बाधा, प्रतिबंध। उ०---चारण भाट नै **अटकाव** नहीं, और कोई हुकम बिनां जांण पावै नहीं।
---कहवाट सरवहिया री बात

२ विघ्न. ३ परहेज. ४ अड़चन।

अटकावणौ, अटकावबौ---देखो 'अटकाणौ' (रू.भे)।

अटकियोड़ौ, अटकीयोड़ौ-भू०का०कृ०---अटका हुआ। (स्त्री० अटकियोड़ी)

अटकौ---देखो 'अटकाव'।

अटक्क---देखो 'अटक'। उ०---मातौ धूम मुरद्धरा, तातौ जोस कटक्क। सोनंग रातौ वेध लग, जातौ साह **अटक्क**।---रा.रू.

अटक्कणौ, अटक्कबौ---देखो 'अटकणौ'। उ०---ऊपड़ै नहै नह ऊगतै, आलम रहै **अटक्कियौ**।---रा रू.

अटखेल-सं०पु०---१ उलझाने वाला खेल, मन बहलाने वाला खेल, खिलवाड़, कौतुक. २ ढिठाई, चंचलता।

अटण-सं०पु०---पैर, चरण। उ०---थे **अटण** हूं चाल, हंगांमी ढोला रे।---लोकगीत

अटणौ, अटबौ-क्रि०अ०---१ चलना, घूमना, यात्रा करना।

उ०---उदर भरण घर घर **अटै**, रटै नहीं सीरांम।---बां.दा.

२ आड़ करना, ओट करना।

अटणहार, हारौ (हारी), अटणियौ-वि०---घूमने वाला।

अटपट---देखो 'अटपटी'। उ०---चटपट पिंजारण घट घट छुच्चेंठी, **अटपट** आंतां नै तांतां जिम ऐंठी।---ऊ.का.

सं०स्त्री०---देखो 'अटपटाई'।

अटपटाई-सं०स्त्री०---१ अमुहानी. २ अड़चन।

अटपटाणौ, अटपटाबौ, अटपटावणौ, अटपटावबौ-क्रि०अ०---१ अटपटाना. २ घबड़ाना. ३ हिचकना. ४ अंडबंड होना।

अटपटावियोड़ौ---भू०का०कृ०।

अटपटि, अटपटी-वि०स्त्री०---१ तिरछी. २ नटखट. ३ संकोचभरी, अनरीति. ४ विचित्र।

कहा०---ऐ विद्या तूं अटपटी, घट-घट मांय घड़ीह। किण-किण नै समझाइयै, कुवै ई भांग पड़ीह---जितने मनुष्य उतनी बुद्धि।

सं०स्त्री०—देखो 'अटपटाई'।

अटपटो–वि०पु० (स्त्री० अटपटी) १ टेढ़ा-मेढ़ा. २ कठिन, विकट, दुस्तर। उ०—मोजां दियण अटपटै मारग, कमधज तूं दपटै केकांण।
—दुरगादत्त बारहठ

३. गूढ़, गहरा, जटिल. ४ अनुचित. ५ अनोखा।

अटबट–वि०—ऊटपटांग।

अटम-सटम–वि०यौ०—१ बेतरतीब. २ अंट-संट. ३ हर प्रकार का अथवा कई चीजों का बिना किसी आधार के मिश्रण।

अटयासी–वि० [सं० अष्टाशीति, प्रा० अट्ठासीइ, अप० अट्ठासी] अस्सी और आठ के योग के बराबर।

सं०पु०—अस्सी और आठ के योग की संख्या।

अटयासी'क–वि०—अस्सी और आठ के योग के लगभग।

अटयासीमौ–वि०—जो क्रम में सत्तासी के बाद पड़ता हो।

अटयासीयौ–सं०पु०—अठासीवां वर्ष।

अटर-सटर–वि०यौ०—देखो 'अटम-सटम'।

अटळ–वि०—१ न टलने वाला, स्थिर, अचल, चिरस्थायी, पक्का, ध्रुव. २ नित्य. ४ अवश्यंभावी।

अटळज–सं०स्त्री०—भूमि, पृथ्वी (डि.नां.मा.)

अटळ्ळ–वि० [सं० अटल] देखो 'अटळ'। उ०—दोय उदैपुर ऊजळा, दुय दातार अटळ्ळ।—हरिदास

अटवि, अटवी–सं०स्त्री० [सं० अटवी] १ वन, जंगल (अ.मा.) २ हिंस्र जन्तुओं के रहने का स्थान (वं.भा.)

अटव्यासण–सं०पु०—जंगल का निवास। उ०—दुरग्घट अटव्यासण सोपट दुख दीखैं। अज्जण मज्जण बिण सज्जण मुख ईखैं।—ऊ.का.

अटसट—देखो 'अड़सट'।

अटा–सं०स्त्री०—१ अटारी, कोठा (अ.मा.) २ अट्टालिका, महल। उ०—सरद घटा जिम ऊजळी, दिस दिस अटा बिलंद।—बां दा. ३ बादलों की घटा।

अटाटूट–वि०—१ बिलकुल, नितान्त. २ अत्यधिक।

अटाटोप–वि०—१ देखो 'घटाटोप'. २ आवृत। उ०—अटाटोप बनां री चनणां कीधौ मळैअद्र, संभू-निळै ऊजळै वचाळै गणां सेण। दीपै मांनताळा हंसां मंडळी निवास दीधौ, कवंदां मंडळी लीधां दूसरौ कुंभेण।—बां.दा.

अटारी–सं०स्त्री०—१ ऊपर के खंड पर बनी हुई कोठरी. २ महल। उ०—कितां पीठि होदा लसे चित्रकारी, उघाड़ै जिकै तुंग सोभा अटारी, बड़े नाद भेरी किता पीठि बाजै।—वं.भा.

अटाळ–सं०स्त्री० [सं० अट्टालिका] १ बुर्ज. २ ऊंचा स्थान. ३ विवाह के अवसर पर मांगलिक स्नान कराने के पूर्व वर अथवा वधू के सिर पर मला जाने वाला एक तरल पदार्थ जिसमें घृत, गेहूं का चून, कुंकुम आदि मिले रहते हैं।

वि०—बदमाश, शैतान।

अटाळिका–सं०स्त्री० [सं० अट्टालिका] १ प्रासाद, महल, विशाल भवन। उ०—घुमंड मेघ की घटा यहां अटाळिका नहीं।—ऊ.का. २ राजगृह. ३ अटारी।

अटाळौ–सं०पु० [सं० अट्टाल] १ बेकार की वस्तुओं का ढेर. २ ढेर, राशि। [सं० अट्टालिका] ३ महल, अट्टालिका। उ०—मन चढ़िया कवळास मेर क्या गोख अटाळा।—केसोदास गाडण

अटूट–वि०—१ न टूटने वाला, जिसका खंड न हो सके, अखंड. २ मजबूत. ३ जिसका पतन न हो, अजेय. ४ अपरिमित, अपार। उ०—आथ अटूट अखूट अन, प्रजा घणी सुख पोख।—बां.दा.

अटे—देखो 'अठे'।

अटेर–वि०—१ नहीं मुड़ने वाला. २ विजयी। उ०—भूप हुआ जिण कुळ भला, थिर अटेर मुख थांन।—वं.भा.

अटेरण, अटेरणौ–सं०पु०—सूत को लपेट कर लच्छी बनाने का एक उपकरण।

अटेरणौ, अटेरबौ–क्रि०स०—१ अटेरना, अटेरन पर लपेट कर सूत की गुंडी बनाना. २ हद से ज्यादा नशा करना या भोजन करना।

अटेरणियौ–वि०—अटेरने वाला।

अटेरवाणौ, अटेरबाबौ—प्रे०रू०।

अटेरिओड़ौ, अटेरियोड़ौ, अटेरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

अटेरियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ (सूत) लपेटा हुआ. ३ अत्यधिक भोजन या नशा किया हुआ। (स्त्री० अटेरियोड़ी)

अट्ट–सं०पु०—१ महल, अट्टालिका। उ०—इसा रंगभू द्रंग रा अट्ट ऊंचा, सिटावै जिकां हेठ पंखी समूंचा।—वं.भा. २ बाजार, हाट. ३ किले या गढ़ की बुर्ज।

अट्ट-सट्ट–क्रि०वि०—देखो 'अंट-संट'।

अट्टहास–सं०पु०—अत्यधिक जोर की हंसी, ठठा कर हंसने की ध्वनि।

अट्टी–सं०स्त्री०—१ अटेरन पर लपेटी हुई सूत की लच्छी. २ दमड़ी का आधा भाग।

क्रि०वि०—इधर (रू.भे.-अटी)

अट्टौ–सं०पु०—१ ताश का एक पत्ता जिसमें किसी रंग की एक सरीखी आठ बूंटियां हों. २ मचान, अट्टालिका. ३ अदल-बदल। (यौ०—अट्टौ-सट्टौ)

मुहा०—अट्टौ-सट्टौ करणौ—१ इधर-उधर से काम निकालना. २ अदल-बदल करना।

अट्ठ–वि० [सं० अष्ट] आठ। उ०—घुमाय लट्ठ अट्ठ जांम, हौं फिरौं घमां-घमां।—ऊ.का.

अट्ठाइस–वि० [सं० अष्टविंशति, पा० अट्ठावीसा, प्रा० अट्ठावीस, अप० अट्ठवीस] बीस और आठ के योग के बराबर।

सं०पु०—बीस और आठ के योग की संख्या।

अट्ठाइसमौ–वि०—जो क्रम में सत्ताइस के बाद पड़ता हो।

अट्ठाइसौ–सं०पु०—अट्ठाइसवां वर्ष।

अट्ठावन—देखो 'अठावन'।

अट्ठोत्तरसउ-वि० [प्रा०रू०] एक सौ आठ। उ०—पुण्यवंत घरि त्रिरिण वार, अट्ठोत्तरसउ मंगळाचार।—कां.दे.प्र.

अठंतर-वि० [सं० अष्टसप्तति, पा० अट्ठसत्तरि, प्रा० अट्ठहुत्तरि, अप० अठोतरि] सत्तर और आठ के योग के बराबर।

सं०पु०—सत्तर और आठ के योग की संख्या।

अठंतरमो-वि०—जो क्रम में सतहत्तर के बाद पड़ता हो।

अठंतरो, अठंतरौ—अठहत्तरवां वर्ष।

अठप-वि०—चचल. २ दृढ़. ३ नहीं रुकने वाला।

अठ-वि० [सं० अष्ट, पा० अट्ठ] आठ।

अठकळ-सं०स्त्री०—१ देखो 'अटकळ' [सं० अष्ट+कल] २ आठ मात्रायें (छंद शास्त्र)

अठखेली-सं०स्त्री०—१ चपलता, चुलबुलापन. २ विनोद-क्रीड़ा।

क्रि०प्र०—करणी, होणी।

३ मादकता, मतवाली चाल।

अठठ-सं०पु०—चोट, प्रहार। उ०—अठठ पड़ डंडाळां चठठिया बांण अत।—बीरमियो मूळी

अठताळो-सं०पु०—१ अड़तालीसवां वर्ष. २ डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसमें तीन चरण चौदह-चौदह मात्राओं के और चौथा दस मात्राओं का (रघुवरजस प्रकास के अनुसार प्रत्येक चरण में चौदह-चौदह मात्रायें) होता है। तुकांत में गुरु लघु होता है। (रघुवरजस-प्रकास के अनुसार प्रत्येक चरण का अंतिम वर्ण दीर्घ होता है) इसी प्रकार चार चरण फिर कर एक द्वाला बनता है। चौथे व आठवें चरण का और प्रथम, द्वितीय, पंचम, षष्ठ व सप्तम का तुकांत मिलता है। प्रथम द्वाले के प्रथम पद में १८ मात्रायें होती हैं। (क.कु.बो. व र.रू.)

अठतीसो-सं०पु०—अड़तीसवां वर्ष।

अठत्तर—देखो 'अठंतर'।

अठत्तरमो-वि०—जो क्रम में सत्तर के बाद पड़ता हो।

अठत्रीस-वि० [सं० अष्टात्रिंशत्, पा० अट्ठतीस, प्रा० अट्ठतीस, अप० अट्ठत्रीस] तीस और आठ के योग के बराबर।

सं०पु०—तीस और आठ के योग की संख्या।

अठत्रीसमो-वि०—जो क्रम में सैंतीस के बाद पड़ता हो।

अठपेलू-वि०—१ आठ पहल या पार्श्व का, आठ कोने वाला।

सं०पु०—१ अठपहला. २ अष्ठभुजा।

अठमासियो, अठमासो-सं०पु०—१ आठ माशे का तोल. २ आठ मास का उत्पन्न होने वाला गर्भ का बालक।

वि०—आठ महीने का।

अठयासियो-सं०पु०—अट्ठासी का वर्ष।

अठयासी-वि०—अस्सी और आठ का योग। देखो 'इठियासी' (रू.भे.)।

अठळायोड़ो-भू०का०कृ०—१ इतराया हुआ. २ गर्वित. ३ मतवाला। (स्त्री० अठळायोड़ी)

अठळावणो, अठळावबो-क्रि०अ०—१ इतराना, गर्व करना. २ चोंचला करना, नखरे करना. ३ मदोन्मत्त होना, मस्ती दिखाना।

इठळावणो—रू.भे.

अठळावणहार, हारो (हारी), अठळावणियो—वि०।

अठळावियोड़ो—भू०का०कृ०।

अठवाड़ो-सं०पु०—१ आठ दिन का समय या काल, सप्ताह. २ आठवां दिवस।

अठवाळी-सं०स्त्री०—वह पालकी जिसे आठ आदमी उठाते हैं।

अठसठ, अठसठि—देखो 'अड़सठ'। उ०—अठसठ तीरथ संतां नै चरणे, कोटि कासी नै कोटि गंग रे।—मीरां

अठस्रवण-सं०पु० [सं० अष्ट+श्रवण] आठ कानों वाला व्यक्ति, ब्रह्मा। (डि.को.)

अठांणवो-सं०पु०—अठानवां वर्ष।

अठांणी-वि०—१ मजबूत, दृढ़, स्थान से न हटने वाला। [सं० अष्ट+रा.प्र. आंणी] २ आठ। उ०—कोपै कोल तुंडा कासवांणी छाय वाय कुंडा। गै अठांणी भुसुंडा भमाय भूलै गाज।—हुकमीचंद खिड़ियो ३ बलवान, शक्तिशाली. ४ अधिक, बहुत।

अठांणूं-वि० [सं० अष्टनवति, प्रा० अट्ठाणउइ, अप० अट्ठानवे] नब्बे और आठ के योग के बराबर।

सं०पु०—नब्बे और आठ के योग की संख्या।

अठांणूंक-वि०—अट्ठानवे के लगभग।

अठांणूंमो-वि०—जो क्रम में सत्तानवे के बाद पड़ता हो।

सं०पु०—अठानवां वर्ष।

अठांम-वि० [सं० अ+ठांम] स्थानरहित। उ०—आरांम अजांम अयांम अपक्ख, अठांम अगांम अधांम अलक्ख।—ह.र.

सं०पु०—ईश्वर।

अठांस-वि०—१ दृढ़, मजबूत. २ गंभीर. ३ वीर।

अठाइ—देखो 'अठाई'।

अठाइस—देखो 'अट्ठाइस'।

अठाई—देखो 'अट्ठाइस'।

सं०स्त्री०-आठ दिनों का उपवास। जैनमतावलंबियों का लोकप्रिय व्रत।

अठाईस—देखो 'अट्ठाइस'।

अठाईसमो-वि०—अट्ठाइसवां, जो क्रम में सत्ताइस के बाद पड़ता हो।

अठाईसेक-वि०—अट्ठाइस के लगभग।

अठाईसो-सं०पु०—अठाइसवां वर्ष।

अठाऊं-क्रि०वि०—१ यहां से. २ इधर से, इस ओर से।

अठार-वि० [सं० अष्टादशन, प्रा० अट्ठारह] दस और आठ की संख्या के बराबर।

सं०पु०—१ दस और आठ के योग की संख्या, अठारह की संख्या।

उ०—आखर दग्ध अठार वर्द कवसल वर वीरह—र.रू.।

२ पुराणों की संख्या का सूचक. ३ चौसर का एक दांव।

अठारटंकी–सं०पु०—देखो 'अढ़ारटंकी'। उ०—एकंकार करेबानू दिली भरत्तार आया, तुजीहां अठारटंकी आबढ़ियां तोण।

—महारांणा जयसिंह रौ गीत

अठारमौ–वि०—जो क्रम में सत्रह के बाद पड़ता हो। अठारहवां।

अठारभार–सं०पु०—अष्टादश भार वनस्पति।

अठारह, अठारे–वि० [सं० अष्टादशन, पा० अट्ठारह] दस और आठ की संख्या के बराबर।

सं०पु०—१ दस और आठ के योग की संख्या, १८. २ पुराणों की संख्या का सूचक शब्द. ३ चौसर का एक दांव (रू.भे. 'अठार')

अठारे'क–वि०—अठारह के लगभग।

अठारौ–सं०पु०—अठारहवां वर्ष।

वि० [रा० अठ=यहां+रौ-रा०प्र०] यहां का (स्त्री० अठारी)

अठारोतरौ–सं०पु०—अठारहवां वर्ष।

अठालग–क्रि०वि०—यहां तक। उ०—अर आप जिसा राजकुमार रौ इण तरह अठालग आवणौ अरथबिहूणौ खटावै नहीं—वं.भा.।

अठावन–वि० [सं० अष्टापञ्चाशत्, प्रा० अट्ठवण्णं, अप० अट्ठावन] पचास और आठ का योग।

सं०पु०—पचास और आठ के योग की संख्या, ५८।

अठावनमौ–वि०—जो क्रम में सत्तावन के बाद पड़ता हो।

अठावने'क–वि०—अट्ठावन के लगभग।

अठावनौ–सं०पु०—५८वां वर्ष।

अठावीस–वि०—देखो 'अट्ठाइस'।

अठासी–वि० [सं० अष्टाशीति, प्रा० अट्ठासीइ, अप० अट्ठासी] अस्सी और आठ के योग के बराबर।

सं०पु०—अस्सी और आठ के योग की संख्या।

अठासीमौ–वि०—जो क्रम में सत्तासी के बाद पड़ता हो।

अठासीयौ–सं०पु०—८८ वां वर्ष।

अठि–वि० [सं० अष्ट] आठ।

क्रि०वि०—१ इधर. २ यहां।

अठिकांणी, अठिकांनी–क्रि०वि०—इधर, इस ओर।

अठिनाऊं–क्रि०वि०—१ यहां से. २ इधर से, इस ओर से।

अठिसठि–वि०—देखो 'अड़सठ'।

अठी–क्रि०वि०—इधर, इस ओर। उ०—अहंकार अठी अभमल अमांन खिलियार उठी सिर विलंद खांन—वि.सं.। (वि० उठी)

अठी-अठी, अठी-उठी–क्रि०वि०—इधर-उधर।

अठीक–सं०पु०—झूठ (अ.मा.)

अठीनलौ–वि० [स्त्री० अठीनली] इधर का, इस ओर का।

कहा०—अठीनली छियां उठीनै आयां सरै—सुख-दुख बारी-बारी से सभी को आते हैं।

अठीनै, अठीनै–क्रि०वि०—१ इस तरफ, इधर. २ यहां।

अठीफौ–वि०—हृष्ट-पुष्ट, मजबूत।

अठीलौ–वि०—इस ओर का, इधर का।

अठे–क्रि०वि०—यहां।

कहा०—१ अठे कांई मकिया खावण नै पधारिया हौ—यहां आराम के लिए नहीं आये, कुछ काम कीजिए। २ अठे कांई धरने भूल गया हौ?—बार-बार यहां क्यों आते हो, क्या यहां कोई वस्तु रख कर भूल गए हो? ३ अठे कांई टक्का मांगण नै है—यहां पैसा खर्च करने की बात मत करो। ४ अठे कांई लोबौ लेवण ने पधारिया—यहां किस लाभ की आशा से आए हो? यहां लाभ की आशा करना व्यर्थ है। ५ अठे किसा नागा नाचै है?—यहां कौनसा असभ्य कार्य हो रहा है? ६ अठे किसी बांदरी ब्याई है—यहां कोई अद्भुत कार्य थोड़े ही हो रहा है। ७ अठे किसा सोनय्या नीपजै—यहां सोने के सिक्के पैदा नहीं होते, यहां कोई विशेष लाभ नहीं है। ८ अठे किसौ रुळि रौ जोड है?—देखो कहा० ११। ९ अठे किसौ नाथी रौ बाड़ौ है—यहां कौनसा चकला समझ रखा है। १० अठे किसी नांनांणी है? यहां कौनसा तुम्हारा ननिहाल है जो तुम कुछ भी करने या खाने-पीने के लिए स्वतन्त्र हो? ११ अठे किसौ रुळि रौ जोड देखियौ—यहां कौनसा बिना मालिक का लावारिस माल देखा है, जो लेने का प्रयत्न कर रहे हो। १२ अठे की हेमांणी (गाडियोड़ी) गाडी है? यहां क्या सोने का खजाना गड़ा है? १३ अठे कीं आंना तूटै है—इस व्यक्ति में कुछ विशेष सार नहीं है। १४ अठे जोईजै जका उठै जोईजै—भले आदमियों की चाह लोक-परलोक में सर्वत्र होती है।

अठे–क्रि०वि०—यहां, इस जगह पर (देखो 'अटे' रू.भे.)

अठेल, अठेलमौ–वि०—१ बलवान, जोरावर। उ०—जोगी जटा थटा हूंत खूटौ वीरभद्र जांणै। असी रीत आंण जूटौ नौ हत्थौ अठेल।

—अज्ञात

२ वह जो पीछे न हटे, वीर, अविचलनीय, दृढ़। उ०—लेबा आयौ छाक जके पाछौ भाग लागौ, ऊभौ जेत-खंभ हुआं (थकां) संभरी अठेल—कोठारिया रावत जोधसिंह रौ गीत। ३ बहुत, अधिक। उ०—ऊगै जिम दूणा अमल, लीजै आज अठेल। मरजाणी रा खेल में, घरजाणी रा खेल—वी.स.। ४ यथेष्ट।

अठै—क्रि०वि०—देखो 'अटे'। उ०—अठै रहतां करतां बरस एक हुवौ ताहरां बचौ एक पाळियौ—चौबोली।

अठैइज–क्रि०वि०—यहीं (निश्चयार्थ सूचक)

अठोकौ–वि०—मजबूत, दृढ़, शक्तिशाली। उ०—तेजवंत अठोका तुरंग तास, झट दौड़ गुण ग्रह कुरंग जास—शि.सु.रू.।

अठोठ–वि० [रा०-अ+ठोठ] १ विद्वान. २ पढ़ा-लिखा।

अठोतर–वि०—देखो 'अठंतर'।

अठोतरमौ–वि०—अठहत्तरवां।

अठोतरसौ—वि०—एक सौ आठ, १०८।

अठोतरी—वि०—एक सौ आठ।

सं०स्त्री०—१ एक सौ आठ की संख्या. २ एक सौ आठ मणियों वाली जपने की माला।

अठोर, अठोरिय, अठोरी—वि०—१ मजबूत, दृढ़. २ तीव्र, तेज।
उ०—कळ पांण **अठोरिय** धोफ करै, जिणवार बळांराय तौर जडै—पा.प्र.।

अट्ठी—सं०स्त्री०—एक रंग की आठ बूंटियों वाला ताश का पत्ता।

अट्ठौ—सं०पु०—डिंगल का एक वर्ण छंद (गीत) विशेष जिसमें प्रथम चार चरण अरध नाराच छंद (देखो 'अरध नाराच') के तथा अंत में एक दोहा होता है—र.ज.प्र.।

अडंगाबाज—वि०—१ पाखंडी, आडंबर रचने वाला, असत्यवादी. २ रुकावट डालने वाला, विघ्न उत्पन्न करने वाला [सं० अडंगाबाजी]

अडंगो, अडंगौ—सं०पु०—१ विघ्न, रुकावट, अवरोध, अड़चन. २ हस्तक्षेप. ३ पाखंड, ढकोसला. ४ स्वार्थसिद्धि की युक्ति।
वि०—न झुकने वाला, न मानने वाला, अनम्र।

अडंड—वि० [सं० अदंड] १ जिस पर किसी का दंड न लगे. २ निर्भय, अदंड। उ०—दिली रा नायबां डंडै **अडंडां** लगाड़ै डंड—अजीतसिंह रौ गीत। ३ देखो 'अदंड'।
सं०पु०—घोड़ा। उ०—सीस रै भूतेस सत्रां, रीस रै वेढाक-रंगी। 'ईसरै' ओरियावार तीसरी **अडंड**—ईसरदास खिड़िया रौ गीत।

अडंडणीय—वि० [सं० अदंडनीय] जो दंड पाने योग्य न हो अदंड्य।

अडंडा-डंड—सं०पु०—जिसको दंड देने की सामर्थ्य किसी में न हो उसे भी दंड देने वाला व्यक्ति, महान वीर।

अडंबर—सं०पु०—देखो 'आडंबर'। उ०—मेह **अडंबर** मंडती, रज अंबर ढकै—वं.भा.।

अडकारणौ, अडकारबौ—क्रि०स०—१ मारना, संहार करना. २ हजम करना, खा जाना। उ०—दिती सुत सुंभ निसुंभ बिदारि। कई रतबीज गई **अडकारि**—मे.म.।
अडकारणियौ—वि०—मारने वाला, हजम करने वाला।
अडकारिओड़ौ-अडकारियोड़ौ-अडकारयोड़ौ—भू०का०कृ०—मारा हुआ, हजम किया हुआ।

अडग—वि० [अ+डिग] न डिगने वाला, अटल, अचल, अडिग।
उ०—अजोध्यानाथ दसमाथ रावण **अडग**, महा बे ओर भाराथ मातौ —र.रू.

अडगपण, अडगपणौ—सं०पु०—[अ+डिग+पण-पणौ-रा०प्र०] नहीं डिगने का भाव, अचलत्व, स्थिरता। उ०—विकळ मन हुवै नह समर वस परवुळ कापण **अडगपण**—पा.प्र.।

अडगी—वि०—१ भिड़न्त करने वाला, टक्कर लेने वाला।
२ नहीं डिगने वाला, अडिग।

अडपणौ, अडपबौ—क्रि०अ०—१ जिद्द करना। उ०—राव सांसण लेवण रीसांणौ, राखण काज **अडपियौ** रांणौ—दुरसौ आढ़ौ।
२ साहस करना।

अडपेच—सं०पु०—पगड़ी की पड़ी लपेट। उ०—पाघ रा पेच चौकड़ी च्यार खोल···पछै च्यार **अडपेच** देय पेच लेता—पदमसिंह री बात।

अडबंध—सं०पु०—१ कटिबंध. २ कोपीन बांधने की रस्सी।

अडब—सं०स्त्री० [अ० अदब] इज्जत, मान मर्यादा।

अडर—वि० [रा० अ+डर] निडर, निर्भय, वीर। उ०—उभै नर बराबर पाथ रूपी **अडर**—पहाड़ खां।

अडरपण, अडरपणौ—सं०पु० [अ+डर+पण, पणौ-रा.प्र.] निर्भयता, निडरता, वीरता।

अडल—सं०पु०—जहां लघु दीर्घ का कोई नियम न हो, ऐसा १६ मात्रा का एक मात्रिक छंद विशेष (छंद-शास्त्र)

अडवांणी—सं०स्त्री०—१ सिंचाई की एक क्रिया। किसी तालाब या नहर से पानी लाकर किसी गहरे गड्ढे में डाला जाता है तथा फिर उस गड्ढे के पानी द्वारा सिंचाई की जाती है. २ वह भूमि जहां इस क्रिया से सिंचाई की जाय।

अडवाळणौ, अडवाळबौ—क्रि०स०—अधिकार में करना। उ०—अधपत उदक धरा, **अडवाळै**, रोहड़ ग्वाळ थकौ रुखवाळै—दुरसौ आढ़ौ।
अडवाळिओड़ौ-अडवाळियोड़ौ-अडवाळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

अडवाळियोड़ौ—भू०का०कृ०—अधिकार में किया हुआ, अधिकृत (स्त्री० अडवाळियोड़ी)

अडवाळोत—सं०पु०—राठौड़ राव रिड़मलजी के पुत्र अडवाळजी के वंशज राठौड़ों की एक शाखा अथवा इस शाखा का व्यक्ति।

अडांण—सं०पु०—१ मकान बनाते समय उस पर पत्थर आदि चढ़ाने के लिए काष्ठादि के लट्ठों को बांधकर बनाया जाने वाला ढलुवां रास्ता. २ दीवार या छत आदि को गिरने से रोकने वाली लकड़ी, अडांन।

अडांणू, अडांणौ—सं०पु०—गिरवी रक्खी हुई वस्तु।
उ०—थोड़ी-थोड़ी कर'र पांच सौ गज जमी **अडांणै** मेलीजगी जद घर वाळां नै दोरी लागी—वरसगांठ।

अडाई—वि० [सं० सार्द्ध+द्वितीय] ढाई, दो और आधे के योग के बराबर।
सं०स्त्री०—ढाई की संख्या।

अडायटौ—सं०पु०—ओढ़ने का सूती वस्त्र विशेष।

अडारगर, अडारगिर—सं०पु०—देखो 'अढ़ारगिर'।

अडारणौ, अडारबौ—क्रि०स०—देखो 'अडकारणौ'।

अडारौ—सं०पु०—अन्न न पचने से उत्पन्न विकार, अजीर्ण, अपच।

अडावौ—सं०पु०—देखो 'अड़वौ' (क्षेत्रीय)

अडाह—सं०स्त्री० [सं० अ+दाह] ईर्ष्यारहित भाव, प्रेम, स्नेह।

अडिग—वि०—[अ+डिग] न डिगने वाला, स्थिर, निश्चल, अटल। (रू.भे.–अडग)

अडिगासण, अडिगासन–वि० [सं० अडिग+आसन] दृढ़ आसन।
उ०—**अडिगासन** आसण अहेस्वर से, मद नाद अमद्द महेस्वर से।
—ऊ.का.

अडिल, अडिल्ला–सं०पु०—सोलह मात्राओं का एक मात्रिक छंद विशेष जिसमें जगण गण का निषेध है (पिंगलप्रकाश)

अडींग–वि०—जबरदस्त, बलवान। उ०—उतारै हदफां अमां असंखी **अडींग**, तारीफ जाहरां प्रथी वाहरै धानंखी तसां—दुरसौ आढ़ौ।

अडीक–सं०स्त्री०—राह, प्रतीक्षा, इंतजार।

अडीकणौ, अडीकबौ–क्रि०स०—राह देखना, इंतजार करना, प्रतीक्षा करना। उ०—आठूं पो'र **अडीकतां** बीतै दिन ज्यूं मास। दरसण दे अब वादळी, मत मुरधर ने तास—वादळी।

अडीकणियौ–वि०—प्रतीक्षा करने वाला।

अडीकिओड़ो-अडीकियोड़ो-अडीक्योड़ो–भू०का०कृ०—राह देखा हुआ।

अडीकाणौ-अडीकाबौ—अडीकणौ का प्रे०रू०।

कहा०—अडीकतां को आवै नी—ऐसा विश्वास है कि जिसकी प्रतीक्षा की जाती है वह शीघ्र नहीं आता।

अडीठ–वि० [सं० अदृष्ट, प्रा० अदिट्ठ] १अ दृष्ट, जो दिखाई न पड़े २ लुप्त. ३ छिपा हुआ।

सं०पु०—प्रायः गरदन और पीठ के जोड़ पर होने वाला एक प्रकार का जहरीला भयंकर फोड़ा विशेष। इसका विष शरीर के भीतर ही भीतर अति शीघ्रता से फैलने लगता है। यह रक्त-विकार के कारण उत्पन्न होता है एवं (कई लोगों के विचार से) असाध्य माना जाता है।

अडीनै–क्रि०वि०—यहाँ (रू.भे. अठीनै)

अडीरळ–वि०—१ बहादुर, वीर, निर्भय. २ भयंकर, भयावह। उ०—जुध समै **अडीरळ** रूप जजराट रा खांट रा बाघ कुण फेट खावै
—गुलजी आढ़ौ

अडील, अडीलौ–वि०—१ बिना शरीर का. २ न डिगने वाला, दृढ़। उ०—उमंगे रढ़ाळा छूटे सोहड़ां काकुस्थवाळा, अताळा सजूटे तेग सामूहां **अडील**—र.रू.।

अडूर–वि०—१ निडर, निर्भय, निशंक। उ०—आरंभ कुंभ सुत खित **अडूर**—रा.रू.। २ बहुत, अधिक।

अडेल–वि०—१ निडर. २ बहुत. ३ अड़ियल. ४ जबरदस्त, योद्धा। उ०—मरदां **अडेल** आंम्हां-सांम्हां मुहां मांडीस—हुकमीचन्द खिड़ियौ। ५ सुस्त।

अडोल–वि०—१ न हिलने वाला, स्थिर, अटल। उ०—वीकौ गाजी-साह तण, वाह **अडोळ** कमंध—रा.रू.। २ स्तब्ध।

सं०पु०—१ बिना गढ़ा हुआ पत्थर. २ पहाड़ (अ.मा.) ३ वह ऊंट जिस पर चारजामा न कसा गया हो।

अडोळणौ, अडोळबौ–क्रि०अ०—१ भ्रमण करना।

क्रि०स०—२ मारना. ३ भक्षण करना। उ०—डाकण भखै न बाघ **अडोळै**—अज्ञात।

अडोळिओड़ो-अडोळियोड़ो-अडोळ्योड़ो–भू०का०कृ०।

अडोळियोड़ो–भू०का०कृ०—भ्रमण किया हुआ (स्त्री० अडोळियोड़ी)

सं०पु०—१ बिना साफ की गई खुरदरी लकड़ी. २ वह ऊंट जिस पर चारजामा न कसा हुआ हो, किन्तु बैठने के लिए वैसे ही टाट आदि का टुकड़ा डाल दिया गया हो।

अडोळौ–वि०—१ देखो 'अडोळ' (स्त्री० अडोळी) २ आभूषणहीन उ०—पिण कंवर जगदेव नै **अडोळौ** दीठौ जद गहणा बगसिया।
—जगदेव पंवार री बात

अडौळ–वि०—१ भद्दा, कुरूप, बेढ़ंगा. २ वीर, धैर्यवान. ३ देखो 'अडोळ'।

अड्डर–वि०—देखो 'अडर' (रू.भे.)

अड्डौ–सं०पु०—१ ठहरने की जगह. २ मिलने या इकट्ठे होने का स्थान. ३ धूर्तों का मिल कर बैठने का स्थान. ४ दुराचारिणी या वेश्याओं के रहने का स्थान. ५ वह स्थान जहां पर पुरुष अथवा स्त्रियां कुकर्म हेतु आते हों, चकला. ६ बुरे अथवा कानून विरुद्ध कार्य करने वाले व्यक्तियों का उस कार्य के लिए मिलने का स्थान।

अढंगांण–वि०—विकट, जबरदस्त, दुर्गम। उ०—गंजे दुरंग **अढंगांण** मेवासा बंका गिरंद—हुकमीचन्द खिड़ियौ।

अढंगी–सं०पु०—१ कामदेव. (डिं.को.) २ देखो 'अढंगी

अढंगौ–वि० (स्त्री० अढंगी) १ अद्भुत, अनोखा, विचित्र. २ भयंकर। उ०—लाखां तणा पटायत लड़िया, चूंडा झाला चंगा। एकण भूप उमेद ऊपरा, असमर बगा **अढंगा**—उम्मेदसिंह साहपुरा रौ गीत।

सं०पु०—कामदेव।

अढ़ढ़ढ़–अव्य० [अनु०] खेद, क्लेश, शोक या आश्चर्यसूचक शब्द।

अढ़तालीसौ–सं०पु०—अड़तालीसवां वर्ष।

अढ़तियौ–सं०पु०—आढ़त करने वाला, दलाल।

अढ़तौ–वि०—१ समान, बराबर. २ विशेष।

अढ़र–वि०—१ मजबूत, दृढ़. २ सुन्दर।

अढ़रह–वि०—अठारह।

अढ़ळक–वि०—उदार, दातार। उ०—बोलियौ विसनर सांभळौ बारठां वात थे कही सौ निपट वारू, चीत **अढ़ळक** सौ अठे ही चाहीजै मंगायो पोतरौ म्हे राव मारु—अमरसिंह रौ गीत।

अढ़वौ–वि०—१ विशेष. २ अद्भुत. ३ अधिक (रू.भे. अढ़तौ)

अढ़हर-वरण—देखो 'वरण-अढ़ार'।

अढ़ाइटौ–सं०पु०—देखो 'अढायटौ'।

अढ़ाई–वि०—देखो 'अडाई'।

अढ़ायौ–सं०पु०—ढाई गुणा का पहाड़ा (गणित)

अढ़ार–वि०—१ बहुत, अधिक. २ अठारह। उ०—धरी दधि पाज पहाड़ां धार, पदम्म **अढ़ार** उतारे पार—ह.र.। ३ देखो 'अडारगिर' उ०—आबूधर धूजै गिर **अढ़ार**—वि.सं.।

अढ़ारगर, अढ़ारगिर–सं०पु०—१ अष्टादशभार युक्त वनस्पति वाला पर्वत. २ आबू पर्वत का एक नाम. ३ चौहान वंशीय राजपूतों की उपाधि। उ०—'उदाहरा' ज तू उधरियौ। गुणां प्रसाद **अढ़ारगिर**।
—दुरसौ आढ़ौ

अढ़ार-कबांण–सं०पु०—देखो 'अढ़ारटंकी'। उ०—गुणभार **अढ़ार-कबांण** ग्रहै—गो.रू.।

अढ़ारटंक, अढ़ारटंकी–सं०पु०—(वह धनुष) जिसका नाप अठारह टंकी हो (डि.को.)। वि०वि० देखो 'टंकी'। उ०—कसीस **अढ़ारटंकां** ऊधड़ी परीर कंकां, झड़ी बीर बंकां सीस असंकां झूसांण।
—बारहठ दुरगादत्त

अढ़ारदांनी–सं०स्त्री०—एक प्रकार का सीधा खड़ा दीपक जिसके आस-पास दीपक रखने के लिए भी कई स्थान होते हैं।

अढ़ारभार–सं०पु०—देखो 'अठारभार'। उ०—**अढ़ारभार** वनस्पति झुक नै रही छै—रा.सा.सं.।

अढ़ारवन्न–सं०पु०—१ चारण, कवि। उ०—वाचई सुजस्स **अढ़ारवन्न**
—रा.ज.सी.

अढ़ारह-भार–सं०पु०—देखो 'अठारभार'।

अढ़ारियौ–वि०—लुच्चा, लफंगा (बाजारू)

अढ़ारे, अढ़ारै–वि० [सं० अष्टादश, अप० अट्ठारह] अठारह।
सं०पु०—अठारह की संख्या।

अढ़ीठ–वि०—दृढ़, मजबूत।

अढुओत–सं०पु०—गहलोत वंश के क्षत्रियों की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति (नैणसी)

अणं–सं०पु० [सं० अणु] देखो 'अणु'। उ०—**अणं** तें व्याणूं तें ब्रहदळ विभू तें अति विभू—ऊ.का.।

अणंक–सं०पु०—गर्व अभिमान। उ०—वैर हर **अणंक** तज रणंक सूधा वहै—बद्रीदास खिड़ियौ।

अणंकळ–वि०—१ निष्कलंक, कलंकरहित, दोषरहित। उ०—एक देस औछाड़, इसा अनेक **अणंकळ**—रा.रू.। २ शुभ्र, पवित्र. ३ जबरदस्त, बलवान, निडर, वीर। उ०—दळपति उदिआसिंघ माल गंगेव महाबळ, बाघा सूजा जोध, कमंध रिणमाल **अणंकळ**—वचनिका। ४ स्वाधीन, स्वतंत्र। उ०—मगरै पहली अटक महाबळ, आद रांम सामंत **अणंकळ**—रा.रू.। ५ अपार।

अणंजर–सं०पु०—ईश्वर (ग.मो.)

अणंडर–वि०—निडर, निर्भीक (रू.भे.–'अडर')

अणंत–वि० [सं० अनन्त] अनन्त, अपार। उ०—कूदां जळ अंतर नांडरचौ थे एक बाहु **अणंत**—मीरां।

अणंतचौदस–सं०स्त्री० [सं० अनंतचतुर्दशी] भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी। इस दिन बहुत से लोग प्रायः व्रत रखते हैं एवं बाहु पर चौदह गांठें लगा हुआ सूत का अर्चित गंडा बांधते हैं।

अणंद–सं०पु० [सं० आनन्द] १ आनन्द, हर्ष, प्रसन्नता. २ मीसण गोत्र का ईश्वर भक्त चारण कवि।

अणंदह–सं०पु० [सं० आनन्द] आनन्द, हर्ष, प्रसन्नता। उ०—पाय सिंघ गळ अड़े, चक्र झळहळे चवदह; मळे क्रोड तेतीस, उदौ सुरियंद **अणंदह**—ना.द.।

अण–क्रि०वि०—बिना, बगैर।
वि०—अन्य, दूसरा।
उप०—राजस्थानी उपसर्ग जो शब्दों के पूर्व लग कर अधिक या निषेध का अर्थ प्रकट करता है।
सर्व०—१ यह. २ इस। उ०—जण गांम ऐवाळ रैंहतौ हुतौ **अण** गांम ऐक लुगाई रौ नांम मांरूणी हुंतौ—ढो.मा.

अणअंजन–सं०पु०—ईश्वर (ग.मो.)

अणअपराध–वि० [सं० अन्+अपराध] निर्दोष, निरपराध।

अणअवसर, अणअसवर–सं०पु० [सं० अन्+अवसर] १ फुरसत का न होना, अवकाश का अभाव. २ बेमौका, कुसमय। उ०—पग रण पटैत भोज भाई करि भेळा, **अणअवसर** इम आइ खेलि दीधी डर खेळा।
—वं.भा.

अणआंमय–वि० [सं० अनामय] रोगहीन, स्वस्थ. २ निर्दोष, दोषरहित। उ०—नमौ **अणआंमय** जोत अखंड—ह.र.।
सं०पु०—निरोगता, कुशलक्षेम।

अणइच्छा–सं०स्त्री० [सं० अनिच्छा] १ इच्छा या अभिलाषा का अभाव, अनिच्छा. २ अरुचि।

अणउदम–सं०पु० [सं० अनुद्यम] बेकारी, ठालापन। उ०—उद्यम करौ अनेक अथवा **अणउदम** रहौ। होसी नहचै हेक, रांम करै सो राजिया।
—किरपारांम

अणउदमी–वि०—बेकार, ठाला।

अणउद्योग–सं०पु० [सं० अनुद्योग] उद्योग या परिश्रम का अभाव।

अणउद्योगी–वि० [सं० अन्+उद्योगी] उद्योग न करने वाला, परिश्रम न करने वाला।

अणउपयुक्त–वि० [सं० अनुपयुक्त] १ उपभोग या व्यवहार में न लाया हुआ, बिना इस्तेमाल किया हुआ. २ अयोग्य. ३ असंगत, अनुचित।

अणउपयुक्तता–सं०स्त्री० [सं० अनुपयुक्त+ता–रा०प्र०] अनुपयुक्तता, अयोग्यता।

अणउपयोगता–सं०स्त्री० [सं० अनुपयोगिता] १ अयोग्यता. २ निरर्थकता. ३ बेकारी।

अणउपयोगी–वि० [सं० अनुपयोगी] बेकाम, बेकार, व्यर्थ का, फजूल।

अणऊधम–सं०पु०—देखो 'अणउदम'।

अणक–वि०—१ कुत्सित, निंदित. २ अधम, नीच।

अणकचोट–सं०पु०—गुस्सा।

अणकढ़, अणकढ़िओड़ौ, अणकढ़ियोड़ौ, अणकढ़चोड़ौ–वि०—बिना गर्म किया हुआ (दूध)।

अणकमाऊ–वि०—निठल्ला, निकम्मा, बेकार, कुछ भी आमदनी नहीं करने वाला

कहा०—कमाऊ पूत आवै डरतो, अणकमाऊ आवै लड़तो—कमाऊ को घर की चिन्ता बनी रहती है जब कि न कमाने वाले को कलह से ही मतलब होता है।

अणकळ–वि०—१ वीर, योद्धा। उ०—है गै दळ हल्लिया मिळै अणकळ अनिमंधी।—रा.रू. २ निर्दोष, बेऐब, जिस पर किसी प्रकार का कलंक नहीं हो, शुभ्र। उ०—केहरि सरगि पहुतौ अणकळ करनहरौ अखियात करि।—गीत चौहांण नाहरखांन किसनदासोत रौ ३ अपार, बहुत। उ०—कप कही रचना सकल अणकळ चित भ्रम मिट जाय निसचळ।—र.रू. [सं० अन्+रा० कल=चैन] ४ बेचैन। क्रि०वि०—बिना विचारे। उ०—आयौ दळ अजमाल रै, मन अणकळ कळ मूळ—रा.रू.

अणकळळ–सं०पु०—१ विष्णु. २ महादेव. ३ देखो 'अणकळ'।

अणकांणी, अणकांनी–क्रि०वि० [रा० अण=इस+कांनी=तरफ] इस तरफ।

अणकारी–वि०—१ जबरदस्त. २ तीक्ष्ण. ३ अनहोनी, अलौकिक। उ०—विसतरी बात सारी विसव अणकारी उतपात सी।—रा.रू. सं०पु० [सं० अनुकारी] १ नकलची, अनुकरण करने वाला. २ आज्ञाकारी।

अणकीलौ–वि०—१ शीघ्र चिढ़ने वाला. २ शीघ्र नाराज होने वाला. ३ द्वेष रखने वाला।
सं०पु०—मारवाड़ राज्यांतर्गत सिवाना कस्बा के किले का एक नाम (रू.भे. अणकिलौ)

अणकूंत–वि०—बिना आंका हुआ, बिना जांचा हुआ। उ०—खळ गुळ अणकूंताय हेक भाव कर आदरै, ते नगरी हूंताय रोही आछी राजिया —किरपारांम।

अणख–सं०पु०—१ क्रोध, कोप, रिस. २ दुःख, खिन्नता. ३ ग्लानि. ४ ईर्ष्या, द्वेष, डाह. ५ झुंझलाहट।

अणखड़–वि०—बिना जोता हुआ खेत या भूमि।

अणखणाट–सं०पु०—१ क्रोध, नाराजगी. २ उदासीनता. ३ झुंझलाहट।

अणखणौ, अणखबौ–क्रि०स० [सं० अनक्ष, प्रा० अनक्ख+रा०णौ] १ डाह करना, द्वेष करना, ईर्ष्या करना. २ टोकना. ३ चिढ़ना. ४ तिरस्कार करना, झिड़कना। उ०—विरहण काय अणखजै, मारू हूंदौ देस।—ढो.मा. ५ थोड़े-थोड़े नुकसान पर डांटना।
अणखणहार-हारौ (हारी) अणखणियौ–वि०—टोकने वाला।
अणखयोड़ौ–भू०का०कृ०—अणखाणौ–प्रे.रू.
अणखीजणौ–कर्म.वा.।

अणखरब–वि०—अपार, असीम, बहुत। उ०—अणखरब कळह तर कहै दुज अंकठा।—बां.दा.

अणखलौ–सं०पु०—मारवाड़ के सिवाना नामक कस्बे में स्थित एक किले का नाम (द.दा.) (रू.भे. अणकीलो, अणकिलौ)

अणखांमणौ–वि०—देखो 'अणखावणौ'।

अणखावी, अणखाधी–क्रि०वि०—बिना किसी कारण के, अकारण। उ०—खळ अणखाधी मेह मौ पित काकौ मारियां। उणनै आधी देह करसूं वह कटारियां।—पा.प्र.

अणखावण, अणखावणौ–वि०—१ असुहावना, अप्रिय। उ०—आ सही, सिरोही आबू ले, वौ बात करी अणखावण री, पण रीत निभाणयां बडकां री, वैरी रौ धाव सरावण री।—कन्हैयालाल सेठिया २ उदासीन, खिन्नचित्त, दुःखी।

अणखी–वि०—क्रोधी, कुपित, गुस्सावर।

अणखीलीयौ–वि०—स्वतंत्र, बंधनरहित।

अणखीलौ–वि०—देखो 'अणकीलौ'।

अणखूट, अणखूटइ, अणखूटी–वि० [सं० अन्+रा० खूट] अपार, बहुत। उ०—रावत बट रांणाह, पिंड अणखूट प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ क्रि०वि०—१ बेमौत, अकाल (मृत्यु)। उ०—माधव अणइ करण जा नांसी कांई मरण अणखूटइ।—कां.दे.प्र. २ अकस्मात्. ३ बिना टूटे। उ०—कौ लाहै लोभियां मौत चाहै अणखूटी, कमण पांण पाकड़ै बीज असमांण बिछूटी।—रा.रू.

अणगंज–सं०पु०—१ वह जो किसी से जीता न जा सके. २ कामदेव (ह.नां.) ३ वीर, विजयी।

अणगंम–वि०—अगम्य, जो समझ में नहीं आवे। उ०—एक कहै आप रै, कियौ मन स्वारथ कज्जै। एक कहै अणगंम, रीत अणप्रीत सु रज्जै —रा.रू.

अणगणती–वि० [सं० अगणित] अगणित, असंख्य, अपार, जिसे गिना न जा सके।

अणगणिया, अणगणत–वि० [सं० अगणित] अगणित, असंख्य, अपार।

अणगम–क्रि०वि०—अचानक, एकबारगी, सहसा, अकस्मात्। उ०—असुरांण दळ सिर असंख अणगम, विसख घण जिम बरसिया। —रा.रू.
वि० [सं० अगम्य] अगम्य।

अणगम्य–वि० [रा० अण+सं० गम्य] १ जहां कोई न जा सके, अगम, कठिन, गहन. २ जो साधारणतया समझ में न आवे।

अणगळ–वि०—बिना छना हुआ। उ०—अणगळ पांणी में पड़ै प्रभातै ही जाय, मारै जीव असंख ही, पाछै रोटी खाय।—सगरांमदास

अणगा–सं०स्त्री०—भाटी वंश की एक शाखा।

अणगारौ–सं०पु० [स० अन्+अगार] १ साधु. २ त्यागी। उ०—अै तौ जिन कल्पी अल्पी अणगारा, थीवर कल्पी जन नांखै थुथकारा।—ऊ.का.

अणगाळ–वि०—वीर, योद्धा। उ०—वहतां पंथ विचाळ, सूतौ तर दीधा सबद। गोगा दे अणगाळ, जड़ कार्ढ खिण जोइयां।—गो.रू.

अणगिण, अणगिणत, अणगिणती–वि० [सं० अगणित] अगणित, अपार, बेहद। उ०—जुभांणा उरसां अणगिण तीर, भिरगलै लागी नीं इक बांण।—सांझ

अणगेम–वि०—पापरहित। उ०—सारगत साहरै धार भुजबळ सुपह, ढंगळ वै कूंतरै अणी **अणगेम**।—किसोरदांन बारहठ

अणगो–सं०पु०—श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को आयोजित एक नागव्रत जिस दिन स्त्रियां नागपूजन के उपरांत घृत शर्करा मिश्रित बाजरी के आटे के मोदक और भिगोये हुए मोठों का सेवन करती हैं। (श्रीमाली ब्राह्मण)

अणघड़ी–क्रि०वि० [रा० इण=इसी+घड़ी] इसी समय, ठीक इसी समय।

वि०स्त्री० [रा० अण+घड़] बिना गढ़ा हुआ।

अणचर–सं०पु० [सं० अचर] जड़ या जंगम वस्तु या पदार्थ। उ०—औ तौ दया तणी दरियाव, औ तौ चर **अणचर** री चाव। —पी.रां.

अणचळ–वि० [सं० अचल] देखो 'अचळ'। उ०—इम मांणिक्यराज सुत अस्टम कल्यणराज संगर **अणचळ**।—वं.भा.

अणचायौ, अणचाह–वि०—१ इच्छा के विरुद्ध, नापसंद. २ अनिष्टकर।

अणचाहत–वि०—जो प्रेम न करे, न चाहने वाला। उ०—हाय दई कैसी करी, **अणचाहत** के संग। दीपक मन भावै नहीं, जळ जळ जात पतंग।—अज्ञात।

अणचाही–वि०—देखो 'अणचायौ'।

अणचिंत, अणचिंतवियौ, अणचिंतव्यौ, अणचिंत्यौ, अणचींत–क्रि०वि०—अकस्मात, अचानक (रू.भे. अचिंत) उ०—१ हुरम रहै वस हिंदवां मैं जाऊं **अणचींत**। कतल कबीला जौ करै तौ बस नाहि प्रतीत।—रा.रू. २ हिव किंव ढोलौ नीपजै, देवतणौ परभाव। लेख मिळै **अणचिंतव्यौ**, जांण म जांणै भाव।—ढो.मा.

अणचींता–वि० [सं० अचिंत्य] अविचारित, अचिंतित।

क्रि०वि०—अचानक, अकस्मात्।

अणचींतियौ–क्रि०वि०—अचानक, अकस्मात्। उ०—आवै केइक चींतिया **अणचींतिया** अनेक। वळै सलब्भा होय सब, उर अदतारां छेक। —बां.दा.

अणचींती, अणचींतौ, अणचींत्यौ–क्रि०वि० [सं० अचिंत्य] १ बिना विचारा हुआ. २ अकस्मात, अचानक। उ०—आई खबर जरां **अणचींतौ**, विहारियां मैं करड़ी बीती।—रा.रू.

अणचूक–वि० अचूक, नही चूकने वाला। उ०—तद बही रूक **अणचूक** पातम तणी, मुगल बहलोलखां तणै माथै।—गोरधन बोगसौ।

अणचूकरी–क्रि०वि०—अकस्मात्, अचानक।

वि०—अमोघ।

अणचेत–वि० [सं० अन्+चेत] बेहोश, अचेत, मूर्छित। उ०—पड़घा कई आसण जीण उपेत, चड्या असवार पड़घा **अणचेत**।—मे.म.

अणच्चळ–वि० [सं० अचल] अचल, अटल। उ०—कहिम बीस ब्रहमंड गाट छेडै है कागळ। कहिम सपत पाताळ चलै जाय हूं त **अणच्चळ**। (रू.भे. अणचळ) —आसियौ करमसी खींबोसूरोत

अणछक–क्रि०वि०—अकस्मात्।

वि०—वैभवरहित।

अणछांणियौ, अणछांण्यौ–वि०—बिना छना हुआ।

अणछांनै–वि०—मशहूर, प्रसिद्ध।

अणछेह–वि० [सं० अन्+रा० छेह] अपार, अत्यन्त। उ०—इक कहै चोटी एह, छिब लखौ सुख **अणछेह**।—रा.रू.

अणछेहड़ौ–वि० [रा० अण=नहीं+छेहड़ौ=किनारा] अपार, अत्यंत। उ०—गावै नवला गीत, बंदै बड बेहड़ां। मोहरां वरसै मेह छकै **अणछेहड़ां**।—रा.रू.

अणजांण–वि०—१ बिना जाना-पहचाना हुआ, अज्ञात। उ०—खिण एक धरती अंबर बीच, अमूंजै सूनौपण **अणजांण**।—सांझ २ भोला-भाला, नासमझ। उ०—कागद आखर गाळिया, कांइक थई कुबांण। कै पंथी भीना हुआ, लिखणहार **अणजांण**।—ढो.मा. ३ अनभिज्ञ, अपरिचित। उ०—जिकूं हेक भगवाट न जांणै, हेकै नाकारै **अणजांण**।—ईसरदास बारहठ।

क्रि०वि०—अकस्मात्।

सं०स्त्री०—नासमझी, अज्ञानावस्था।

अणजांणिउ–वि० [प्रा०रू०] अनजान, अपरिचित (कां.दे.प्र.)

अणजांणियौ अणजांण्यौ–वि०—अपरिचित।

अणजाचक–वि० [सं० अयाचक] याचना न करने वाला, न मांगने वाला, सन्तुष्ट, सम्पन्न।

अणजाची–वि० [सं० अयाची] जिसे मांगने की आवश्यकता न हो, संपन्न, धनी।

अणजीत–वि० [सं० अजित] अपराजित, विजयी। उ०—हठि चढ़ पूठि असि पूठि जोधाहरै। जुतै गढ़ सनढ़ **अणजीत** जीता।—अज्ञात

अणजीमियौ–वि०—बिना भोजन किया हुआ, भूखा।

अणजुगती–सं०स्त्री० [सं० अयुक्ति] १ युक्ति का अभाव, मेल न मिलना, अप्रवृत्ति। उ०—खूंद गधेड़ा खाय, पैलां री वाड़ी पड़ै। आ **अणजुगती** आय, रड़कै चित में राजिया।—किरपारांम

वि०—अनुचित, अयोग्य, अनुपयुक्त। उ०—कही न मांनै काय, जुगती **अणजुगती** जगत। स्यांणां में सुख पाय, रहणौ चुप हुय राजिया।—किरपारांम

अणजेज–क्रि०वि० [सं० अन्+रा० जेज=विलंब] अविलंब, शीघ्र।

अणडंड–वि० [सं० अदंड] १ अदंडनीय, जिसको कोई दंड न दे सके। २ जिसे दंड देना अपराध समझा जाता है।

अणडंडांडंड, अणडंडाडंड–वि०—जिसको कोई दंड न दे सके उसको भी दंड देने वाला व्यक्ति, अत्यन्त पराक्रमी।

अणडग–वि० [सं० अडिग] नहीं डिगने वाला, अडिग, अचल।

अणडर–वि०—निडर, निर्भय, निशंक। उ०—अमर राखण सुजस आखर डंबर लसकर पासि **अणडर**।—ल.पि

अणडीठ–वि०—बिना देखा हुआ।

अणडूरल–वि०—निर्भय, निडर।

अणडोल, अणडोलक–वि०—न हिलने वाला, स्थिर, अटल।
उ०—अड़ए अणडोल जाटां पत आवियौ, तोल खग कपाटां खोल ताळा।—बाँ.दा.

अणडूर–वि०—निर्भय, निडर। उ०—थई सु ओप थेघए, मिळै समुद्र मेघए। उभै दिसा अणडूर, तुरंग कीध आतुरं।—रा.रू.

अणढंक, अणढकियौ, अणढ़कियोड़ौ–वि०—बिना ढका हुआ, ढक्कनरहित, खुला।

अणत–सं०पु० [सं० अनन्त] १ खुदाई किये हुए तांबे के तार पर सोने का चद्दर चढ़ाकर बनाया हुआ भुजा पर धारण करने का आभूषण. २ बाहु पर बांधने का चौदह गाँठें लगा हुआ सूत का अर्चित गंडा। ३ विष्णु. ४ शेषनाग. ५ लक्ष्मण. ६ बलराम।
वि० [सं० अनत] १ सीधा, जो झुका हुआ न हो. २ अविनाशी, अशेष।
क्रि०वि० [सं० अन्यत्र] दूसरे किसी स्थान पर, और कहीं, अन्यत्र।

अणतगोर–सं०पु०—स्वरभेद (संगीत शास्त्र)

अणतचवदस–सं०स्त्री०—देखो 'अणंतचौदस'।

अणतमूळ–सं०पु० [सं० अनंतमूल] जंगली चमेली, एक औषधि का नाम।

अणतविजय–सं०पु० [सं० अनंतविजय] युधिष्ठिर के शंख का नाम।

अणताघ–वि०—अथाह, अपार, बहुत (रू.भे.–अणगाघ, अणथाह)

अणतियौ–सं०पु०—अनन्तचतुर्दशी का व्रत रखने एवं बाहु पर अर्चित अनन्त धारण करने वाला व्यक्ति।

अणती–सं०स्त्री०—गाड़ी की नाभि के ऊपर मध्य में लगाया जाने वाला लोहे का कड़ा या छल्ला।

अणतोल–वि०—१ शक्तिशाली, बलवान। उ०—चढ़े तिह बाज 'सिवो' अणतोल, बकै सब तांम जयौ जस बोल।—शि.सु.रू. [सं०अन्+तौल] २ बहुत, अपरिमित. ३ जिसे तौला न जा सके. ४ वह जो तौला न गया हो।

अणतोलौ–वि० (स्त्री० अणतोली) देखो 'अणतोल'। उ०—लखै राम सुलिखमण बाळक, तेज रिखी अणतोली।—र.रू.

अणथग, अणथाग–वि०—अथाह, बेहद, बहुत। उ०—परघळ घल पांणीह, भूपत हौद भरावियौ। जळ अणथग जांणीह कतरौही ऊंडौ कहूँ।—पा.प्र.
सं०पु०—सागर, समुद्र (डिं.नां.मा.)

अणथागड़ौ–वि०—जिसका कोई थाह न ले सके, वीर।

अणथाह–वि०—देखो 'अथाह'।
सं०पु०—सागर, समुद्र (ना.डिं.को.)

अणथिर–वि० [सं० अस्थिर] चलायमान, चंचल, क्षणभंगुर।

अणद–सं०पु०—देखो 'अणंद' (रू.भे.)

अणदगियौ–वि०—दागरहित, निष्कलंक, निष्पाप। उ०—अणदगियै तुरी ऊजळै असमर, चाकर होवण न डिगियौ चीत। सारा ही हिंदूसथांन तणै सिर, 'पातल' नै 'चंद्रसेण' प्रवीत।—दुरसौ आढ़ौ

अणदरिद्र–वि०—धनवान, धनी।

अणदध–वि०—बिना जला हुआ।

अणदाग, अणदागल–वि०—दागरहित, निष्कलंक। उ०—अकबरियै इक बार, दागल की सारी दुनी। अणदागल असवार, रहियौ रांण प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ. २ निष्पाप, पवित्र।

अणदाव–वि०—१ अपार, अथाह, असीम. २ असंख्य। उ०—अरि जाळंधर आवियौ, मिळिया खळ अणदाव।—रा.रू.

अणदायतण–सं०स्त्री०—आनन्द मीसण चारण नामक कवि की पुत्री देवल, जो देवी का अवतार कही जाती है।

अणदिट्ठौ–वि०—१ अदृश्य. २ बिना देखा हुआ। उ०—सखिए सज्जण वल्लहा, जइ अणदिट्ठा तोइ। खिण-खिण अंतर संभरइ, नहीं विसारइ सोइ।—ढो.मा.

अणदी–सं०स्त्री०—कुयें के मोट के रस्से के छोर के साथ जुड़ा हुआ लकड़ी का वह खंड जिसमें कीली डाल कर रस्से को जूये के साथ जोड़ा जाता है।

अणदीठ–वि०—देखो 'अदीठ'। उ०—दुहाड़त सेर हल्या रणधीठ, देख्यां कर चक्र चल्या अणदीठ।—मे.म.

अणदीठचकर–सं०पु० [सं० अदृश्य+चक्कर] अदृश्य, आपत्ति, ऐसा भयंकर कष्ट जिसके आने के पूर्व कोई चिन्ह न दिखाई दे।
(रू.भे. अदीठचकर, अधीठचकर)

अणदीठौ–वि० [सं० अदृष्ट] अदृष्ट, जो दिखाई न दे (स्त्री० अणदीठी)
उ०—ऐंठे चूंठे नै मींठी कर आंणै। दीठौ अणदीठौ दीठां कर जांणै।
—ऊ.का.

अणदीध–वि०—नहीं दिया हुआ।

अणदेह, अणदेही–सं०पु०—शरीररहित, निराकार। उ०—नमो अणदेही व्यापक अनंत।—ह.र.

अणदोस–सं०पु० [सं० अन्+दोष] दोष का अभाव।
वि०—निष्कलंक, निर्दोष, दोषरहित, निरपराध। उ०—रहै रोस रै जोस अणदोस रूठा।—रा.रू.

अणद्रोहौ–वि०—१ कभी द्रोह न करने वाला. २ जिसका कोई शत्रु न हो।

अणधार–वि०—किसी की परवाह न करने वाला। उ०—धारण प्रवीण अणधार धीर।—रा.रू.

अणधिकार–सं०पु० [सं० अनधिकार] अधिकारहीन, अधिकार का अभाव।

अणधिकारचेस्टा–सं०स्त्री० [सं० अनधिकार+चेष्टा] अधिकारहीन इरादा या चेष्टा, बिना अधिकार मिले ही किया जाने वाला कोई कार्य।

अणधिकारी–वि० [सं० अनधिकारिन्] १ जिसे अधिकार न हो, स्वत्वहीन. २ अयोग्य, अपात्र, कुपात्र।

अणधीर–वि० [सं० अधीर] देखो 'अधीर'। उ०—मफीखांन पतसाह सूं, अरज लिखी अणधीर। दुरगा भग्गा जंग मैं, लग्गा लोह सरीर।
—रा.रू.

अणधीरज–सं०स्त्री० [सं० अधैर्य्य] अधैर्य्य, धैर्य का अभाव, व्याकुलता, घबड़ाहट।

अणध्याय–सं०पु० [सं० अनध्याय] छुट्टी का दिन।

अणनथौ–वि०—१ जिसके नाक में नाथ न हो. २ स्वतंत्र, अंकुश-रहित।

अणनमियौ–वि०—१ अनम्र. २ हठी, जिद्दी. ३ न झुकने वाला।

अणनामी–वि०—न नमने वाला, वीर। उ०—अकबर हूँत रहयौ **अणनामी**, सुरताणां बांधियां सारीख।—दुरसौ आढ़ौ।

अणनाथ–वि०—१ बिना मालिक या स्वामी का। उ०—नाथ अमी **अणनाथ**, किम कीधी होसी किसूं।—पा.प्र. २ निराश्रित, लावारिस, असहाय।

अणनींद–वि०—नींद न लेने वाला।

अणनीतौ–वि०—अनीतिवाला, अन्यायी।

अणनुनासिक–वि० [सं० अन्+अनुनासिक] मुंह तथा नाक से न बोले जाने वाले (अक्षर), जो अनुनासिक न हों।

अणपंखी–वि० [सं० अन्+पक्ष] वह जिसका कोई पक्ष नहीं लेता हो। उ०—**अणपंखियां** आधार, सार लेण दुखियां तणी। इळ ऊपर इक बार, आजे फतमल आहड़ा।—कविराव मोहनसिंह

अणपटां–वि०—जिसके पास जागीरी न हो। उ०—पटां री लाज सहु कोइ आवै प्रथम, **अणपटां** धरा रै काज आया।—जगौ सांदू

अणपढ़, अणपढ़ियौ–वि०—१ अपढ़, बिना पढ़ा. २ मूर्ख, अशिक्षित, निरक्षर।

अणपांण–वि०—अत्यधिक शक्तिशाली, बलवान। उ०—**अणपांण** अधीर लड़ै असत्रां, सबळां तन पांण लड़ै ससत्रां।—पा.प्र.

अणपार–वि० [सं० अपार] १ अपार, असीम। उ०—वयण बूझण जपै जाचण सुजस, जण-जण पण रखण **अणपार**।—ल.पिं.
२ असंख्य, अगणित। उ०—**अणपारां** वेढ़ हिंदुआं असुरां, कळ वारां खेत कियौ। खगधारां वाहण खेड़ेचौ, गज भारां ऊपरा गयौ।—अज्ञात
सं०पु०—सांख्य शास्त्रानुसार वह तुष्टि जो धनोपार्जन के परिश्रम और निद्रा से छुटकारा पाने पर होती है।

अणपीणग–वि०यौ०—नहीं पीने वाला। उ०—गढ़-गढ़ राफ-राफ मेटे गह, रेण खत्रीध्रम लाज अरेस। पंडरबेस नाद **अणपीणग**, सेस न आयौ पतौ नरेस।—गोरधन बोगसौ

अणफट–वि०—जो फटे नहीं, जो साधारण चोट से भी नहीं फटे। उ०—दसरावै दसरावै दीजै **अणफट** खत मांमलो असाध।
सं०पु०—अश्लील शब्द। —पदमसिंहजी री गीत

अणफेर–वि०—न फिरने वाली, न मुड़ने वाली, न हारने वाली। उ०—फेरा लेतै फिर अफिर, फेरी घड़ **अणफेर**। सीह तणी हरधवळ सुत, गहमाती गहडेर।—हा.झा.

अणबंछत–वि०—देखो 'अणबंछक'। उ०—साखा बियौ मयंक पह सुभ्रम, मंन **अणबंछत** तूझ मण।—महाराणा कुंभा री गीत

अणबंध–वि०—अपार, बहुत। उ०—उतरती वातां करै, औरां री **अणबंध**। निज मुख पांणी ऊतरै, ईखै नेंह मद अंध।—औ.वा.

अणबंधव–वि० [सं अबंधु] बंधुरहित, मित्रहीन। उ०—'पाळह' पीरां पीर 'पाळ' **अणबंधवां** बंधव।—पा.प्र.

अणबण, अणबणाव–सं०स्त्री०—अनबन, बिगाड़, विरोध, झगड़ा, झंझट, द्रोह (ह.नां.)

अणबींद, अणबींध–वि०—देखो 'अविंध'।

अणबीह–वि०—निडर, निर्भय (डिं.नां.मा.)
सं०पु०—राजा, नृप (डिं.को.)

अणबूझ–क्रि०वि०—बिना किसी से सलाह लिए।
वि०—१ किसी से सलाह न लेने वाला, नासमझ. २ वह जिसे पूछने की आवश्यकता न हो. ३ वह जिसके लिए पूछने की आवश्यकता न हो।

अणबूझियोड़ो, अणबूझयौ–वि०—बिना पूछा हुआ। (स्त्री० अणबूझियोड़ी)

अणबूढ–वि०—जो बूढ़ा न हो, जवान, युवा।

अणबेध–वि०—बिना छेद किया हुआ, बिना बिंधा हुआ।

अणबोल, अणबोलियौ, अणबोलौ–वि० (स्त्री० अणबोली) १ मौन, न बोलने वाला, चुप, गूंगा। उ०—इतरी सांभळ नादर **अणबोलियौ** गयौ।—जलाल बूबना री बात २ जो अपना सुख-दुख वाणी द्वारा प्रकट न कर सके। उ०—मैंनत मजदूरी मासक घण मोला। बिलखा बिगताळ आसक **अणबोला**।—ऊ.का.

अणब्याहौ–वि०—अविवाहित, कुंआरा (स्त्री० अणब्याही)

अणभंग, अणभंगी, अणभंगौ–वि० [सं० अन्+भंग] १ अखंड, पूर्ण. २ न मिटने वाला. ३ जिसका क्रम न टूटे. ४ वीर, बहादुर, अटल। उ०—अजर अमर **अणभंग** बजर आयुध बजरंगी।—र.रू.
सं०पु०—१ सिंह, शेर (ना.डिं.को.) २ गरुड़ (अ.मा.)

अणभग–वि०—नहीं भागने वाला, बहादुर, वीर।

अणभजियौ–वि०—जिसका ईश्वरभक्ति में विश्वास न हो। उ०—**अणभजिया** भजिया तणी, दीखै प्रतख दुसाल।—र.रू.

अणभणियौ–वि०—अपढ़, अशिक्षित, मूर्ख।
कहा०—अणभणिया घोड़ै चढ़ै भणिया मांगै भीख—अनपढ़ घोड़े पर चढ़ते हैं जबकि पढ़े हुए भीख मांगते फिरते हैं। यह सब प्रारब्ध का खेल है। प्रायः यह कहावत अपढ़ व्यक्ति कहते हैं।

अणभल, अणभलौ–सं०पु० [सं० अन्+रा० भलो] १ बुराई. २ अहित, हानि।

अणभाखी–वि०—बिना कही हुई।

अणभाय, अणभावतो, अणभावतौ, अणभावियौ–वि०—अनचाहा, अप्रिय, अरुचिकर। उ०—भावियौ भगत चे देत **अणभावियौ**।
—ब्रह्मदास दादूपंथी

अणभिग, अणभिग्य–वि० [सं० अनभिज्ञ] १ अनाड़ी, मूर्ख. २ अपरिचित, अनजान।

अणभिग्यता–सं०स्त्री० [सं० अनभिज्ञता] १ नादानी, मूर्खता, अनाड़ीपन. २ अनजानपन ।

अणभेद–वि० [सं० अभेद] देखो 'अभेद' ।

अणभेदी–वि० [सं० अभेद+ई] भेद न जानने वाला ।

अणभेव, अणभै, अणभेव–वि०—१ प्रत्युत्पन्न, चमत्कारपूर्ण मानसिक उपज । उ०—जागै गोरख जोग तंत घट घट मंम्काह । आतम अणभै ब्रह्म ग्यांन मधुरा अमीयांह—केसोदास । २ निडर, निर्भय. ३ विचित्र । उ०—दुविध दातार अणभेव जगदीस री भलांई वदै गावै भलाई । दूध पाय'र तिरी जसोदा देवकी, पाय विख पूतना मोख पाई—ब्रह्मदास दादूपंथी ।

सं०पु०—१ चमत्कारपूर्ण मानसिक उपज ।

क्रि०प्र०—उपजणी ।

२ निर्भय व्यक्ति ।

कहा०—अणभै रा नगारा घुरै—निर्भय व्यक्ति का सब जगह डंका बजता है ।

अणमण, अणमणौ–वि०—१ उदास, खिन्न, सुस्त, अन्यमनस्क ।

उ०—अणमणौ करिया टेपा कांन, चोवटै ऊभी हेकल सांड—सांझ ।

२ जिसको मनों में भी न तौला जा सके, अपार ।

अणमांनेतण, अणमांनेती–सं०स्त्री०—वह स्त्री जिसका प्रियतम या पति उससे प्रेम न करता हो । उ०—जद राव रै रांणी बाघेली अणमांनेती तिण कह्यौ ।—बां.दा.

अणमा–सं०स्त्री० [सं० अणिमा] १ अति सूक्ष्म परिमाण. २ आठ सिद्धियों के अन्तर्गत प्रथम सिद्धि जिसमें योगी लोग अणु के समान सूक्ष्म शरीर धारण कर लेते हैं तथा दिखाई नहीं देते । (ह.नां.)

अणमाप, अणमापी, अणमापं–वि०—१ जिसके परिमाण का अनुमान न हो. २ अपरिमित, असीम, अपार । उ०—रिणमाल जोध उण वार रां बळ अणमाप भुअव्वळां ।—रा.रू.

अणमायौ–वि०पु०—अप्रमांण, नहीं समाने वाले । उ०—ग्रै थांणै कांणाणै आया, मेवासियां उवर अणमाया ।—रा.रू.

अणमाव, अणमावतौ–वि०—अधिक, बहुत, अपार । उ०—लाल सु चुप अग्रज लखै, ऊफणियौ अणमाव ।—वं.भा.

अणमिणि–वि०—जो बहुत भारी हो, वजनी (द.दा.)

अणमिळणूं अणमिळणौ—सं०पु०—न मिलने का भाव, मिलने का अभाव ।

उ०—अणमिळणूं मो हुम्रो एम तौ, मिटसी किम मोजां महारांण ।
—बां.दा.

अणमिळियां–क्रि०वि०—नहीं मिलने पर, बगैर मिले । उ०—मेछां वदन जोस अणमिळियां, पाळै जांण कमळ परजळियां ।—रा.रू.

कहा०—अणमिळियां रा त्यागी रांड मरयां वैरागी—न मिलने पर त्यागी, स्त्री के मर जाने पर वैरागी—आजकल के साधु-सन्यासियों पर व्यंग ।

अणमींत–वि०—अपार, असीम । उ०—अक्षां डाळी भांत भंतीली, फूल महक अणमींतरी ।—दसदेव

अणमेल–वि०—१ मिलावट का, विशुद्ध, खालिस. २ बेमेल, असंबद्ध, बेतुका, असंगत ।

अणमोत–क्रि०वि०—बेमौत, अकाल (मृत्यु) उ०—क्यूं सारंग बारी कंवर, महि अणमोत मरेह ।—पा.प्र.

अणमोल, अणमोलौ–वि०—१ अमूल्य. २ मूल्यवान, बहुमूल्य. ३ सुंदर, उत्तम ।

अणमौत–क्रि०वि०—बेमौत (रू.भे. अणमोत)

अणयुगतूं–वि० (प्रा०रू०) अनहोनी, असंभव । उ०—पुण्यइ अणयुगतूं संभवइ, रांमि राक्षस हणीया सवइ ।—कां.दे.प्र.

अणरता–वि०—१ बिना रंगा हुआ, सादा. २ जिसने कभी प्रेम नहीं किया हो ।

अणराई–सं०स्त्री०—देखो 'अणराय' ।

अणरागी–वि०—माया-मोह से रहित, वैरागी । उ०—क्यूं करौ मोत री सोच किया सतगुरु अणरागी ।—सगरांमदास

अणराय–सं०स्त्री०—याद, स्मृति । उ०—कांई करै अणराय, कांई मन पछतावो करै, रहणहार थिर थाइ, जाणहार जावै 'जसा' ।—जसराज

अणरुचि–सं०स्त्री० [सं० अरुचि] १ घृणा, नफरत. २ अरुचि, अनिच्छा ।

अणरूप–वि०—१ रूपरहित, निराकार. २ कुरूप, भद्दा, बदसूरत ।

अणरेस, अणरेह, अणरेहौ–वि०—१ अजय. २ विजयी. [सं० अन्+रेखा] ३ अपार, अत्यधिक । उ०—हेक प्रांण दुय देह, प्रीत अणरेह परसपर ।—र.रू. ४ रेखारहित, निराकार । उ०—ममौ ! अणरेह अनेह अनंत ।—ह.र. ५ निष्कलंक । उ०—अणरेह अथग दूजौ अचळ मोटम दिढ़ गिरमेर री । निज सम्रंद दुरंद चंद नहीं समवड़ साहिब सेर री ।—पहाड़खां आढ़ौ । ६ पराजय, हार ।

अणलेख, अणलेखे–वि०—१ अगोचर, अदृश्य, अलख. २ अपार, बहुत.

अणवंछक, अणवंछकी–सं०पु०—दुश्मन, शत्रु (अ.मा., ह.नां.)

वि०—नहीं चाहने वाला (रू.भे. अणवंछत)

अणवट–सं०पु०—एक प्रकार का चाँदी का छल्ला जिसको स्त्रियां पैर के अंगूठे में पहनती हैं, अनवट । उ०—बींछिया घूघरा रांमनारायण ना अणवट अंतरजामी रे ।—मीरां

अणवणत–सं०स्त्री०—अनबन, बिगाड़, वैमनस्य, विरोध, मनमुटाव ।

उ०—तिण नै रावत मेघ क्युंहीक अणवणत हुई; तरै उणनूं मेघ कहाड़ियो ।—नैणसी

अणवर–सं०उ०लिं० [सं० अनुवर] विवाह के अवसर पर दूल्हे के साथ रहने वाला पुरुष अथवा दुल्हिन के साथ रहने वाली स्त्री । उ०—बेली सहि बिरदैत, जेठी गोवरधन जिसा, करनाजळ अणवर कन्है थड आंनी वांनैत ।—वचनिका

अणवांसी–सं०स्त्री० [सं० अण्वंश] विस्वांसी का बीसवां भाग, एक बिस्वे का एक बटे चारसौवां भाग ।

अणवारीयां–क्रि०वि०—इस समय, अभी ।

अणविद्या–सं०स्त्री०—ज्ञान का अभाव, अज्ञान, देखो 'अविद्या'।

अणबिलोयौ–वि०—बिना मथा हुआ (दही)

कहा०—साधां रै कंई सवाद, माई अणबिलोया ई थाल—अगर छाछ न हो तो दही डाल दो, साधुओं के स्वाद कैसा ? इच्छा न दिखाते हुए अप्रत्यक्ष रूप से अच्छी वस्तु की माँग करने पर।

अणवींदौ–सं०पु०—विवाह के समय दूल्हे के साथ रहने वाला अविवाहित सहचर (श्रीमाली ब्राह्मण)

अणवीह–वि०—देखो 'अणबीह'।

अणवोर–सं०उ०लिं०—देखो 'अणवर'—१ (श्रीमाली ब्राह्मण)

अणसंक–वि०—१ निडर, निर्भय. २ निशंक, संदेहरहित।

उ०—सोनंग दुरग अणसंक सो, संक न कांई संभरे।—रा.रू.

सं०पु०—गरुड़ (रू.भे. अणसंख)

अणसंकण–वि०—१ निर्भय। उ०—अणसंकण जुध आरंभे, कूंपा कांकण हत्थ।—रा.रू. २ निःशंक, निर्द्वन्द्व. ३ रक्षित। (रू.भे. अणसंक)

अणसंका–वि०—देखो 'अणसंकण'।

सं०स्त्री०—आशंका, भय, डर।

अणसंकौ–वि०—देखो 'अणसंक'।

अणसंख–वि० [सं० असंख्य] अगणित, असंख्य, अपार।

सं०पु०—गरुड़ (अ.मा.) (रू.भे. अणसंक)

अणसंभ, अणसंभव–वि० [सं० असंभव] जो संभव न हो, अनहोना, असंगत।

अणसजण–सं०पु० [सं० अ+सज्जन] दुर्जन, दुष्टजन, खल।

उ०—सजण अणसजण हुआ ओह अळधा भार। विरह महासि ऊलटे कंत न कीधी सार।—ढो.मा.

अणसमज, अणसमझ–वि०—मूर्ख।

सं०स्त्री०—मूर्खता।

अणसहणी, अणसहणौ–वि० [सं० असहनीय] असह्य, न सहने योग्य।

अणसहियौ–वि० [सं० असहन] जो सहन न करे, असहिष्णु।

सं०पु०—शत्रु, वैरी।

अणसाधु–वि०—असाधु, जो साधु या सज्जन न हो। उ०—सांई साधु तारिया अणसाधु बोया।—केसोदास गाडण।

अणसार–वि० [सं० असार] साररहित, तत्वःशून्य, निःसार, शून्य।

उ०—सार तथा अणसार, थेटू गळ बंधियौ थको। बड़ां सरम चौ भार, राळ्यां सरै न राजिया।—किरपाराम

अणसुणियौ, अणसुणी, अणसुणौ–वि०—बिना सुना हुआ, अनसुना, अश्रुत।

अणसुभ, अणसुभ–सं०पु० [सं० अशुभ] १ अमंगल, अकल्याण, अहित. २ पाप. ३ अपराध।

वि०—अशुभ, अमंगलकारी। उ०—वनड़ी परणीजण 'पाळ' बण। देयवी अणसुभ सगून दये।—पा.प्र.

अणसूत–वि०—१ शैतान, बदमाश. २ जबरदस्त।

अणसूया–सं०स्त्री० [सं० अनसूया] ईर्ष्या न करना. २ नुकताचीनी न करना. ३ अत्रिमुनि की पत्नी. ४ शकुन्तला की एक सखी।

अणसोम–वि० [सं० असौम्य] १ असौम्य, अप्रिय, भद्दा, बदसूरत. २ क्रूर, भयंकर। उ०—अणसोम गुणां कोपे 'अभौ' करण मोम किलवायणां।—रा.रू.

अणहद–सं०पु० [सं०] १ देखो 'अनाहत'.

वि०—बहुत, अधिक, अपार। उ०—घण मो बीजौ जीव एकली चकवी सिरखी। वीछंतां भरतार आंणजे अणहद बिलखी।—मेघ.

अणहदनाद–सं०पु० [सं० अनाहतनाद] देखो 'अनाहत' (३)।

अणहलपुरौ–सं०पु०—गुजरात का एक प्राचीन नगर।

अणहार–सं०पु०—१ वह व्रत जिसमें कुछ न खाया जाय, उपवास, लंघन।

सं०स्त्री०—२ जय, विजय।

अणहारि, अणहारी–सं०पु०—१ लक्षण, चिन्ह। उ०—नगण तगण दुइ लुघ, निरखि आखर दस अवधारि। रूप आठसौ आठ रौ, अगर छंद अणहारि।—ल.पिं. २ सूरत।

वि०—समान। उ०—तठा उपरांति करि नै राजांन सिलामति पचास टांक चिलेरीखा अणहारी कबांण रा घोकारा वाजि नै रहिया छै।—रा.सा.सं.।

अणहाल–सं०पु०—बेहाल। उ०—ईस तणी अणहाल विजोगण सेज सवंती।—मेघ.

अणहित–सं०पु० [सं० अहित] बुराई, अकल्याण।

वि०—१ शत्रु, वैरी, विरोधी. २ हानिकारक, अनुपकारी।

अणहितू–वि०—अशुभ चाहने वाला, शत्रु।

अणहिलवाड़ौ–सं०पु०—गुजरात का एक प्राचीन प्रान्त, अन्हिलवाड़ा (ढो.मा.)

अणहूंती, अणहूंत–सं०स्त्री०—अनहोनी। उ०—दुरजण केरा बोलड़ा, मत पांतरजौ कोय। अणहूंती हूंती कहै, सगळी सांच न होय।

—ढो.मा.

वि०—१ अलौकिक. २ असंभव।

कहा०—अणहूंत भाटै सूंही काठी—असंभव कार्य या बात के लिए।

अणहूंतै, अणहूंतौ–सं०पु० (स्त्री० अणहूंती) १ अनहोनी (मि० अणहूंती) २ अन्याय।

वि०—१ असंभव. २ चंचल, नटखट, शैतान. ३ अवांछनीय।

उ०—खिण एक धरती अंबर बीच, अमूंजै सूनोपण अणजांण। घुळै ज्यूं अणहूंतौ अवसाद, फिरंता मन मूंगा दिन मांन।

—सांझ

क्रि०वि०—बिना कारण, अकारण। उ०—तरै खवास कह्यौ अणहूंतौ किण रौ नांम कहूं।—वीरमदे सोनगरा री बात।

अणहूणी, अणहोणी–सं०स्त्री०—१ अनहोनी, न होने वाली, असंभव।

कहा०—अणहोणी होवै नहीं, होणी हो सो होय—प्रारब्ध पर किसी का वश नहीं चलता। २ अलौकिक।

सं०स्त्री०—१ अलौकिक घटना. २ असंभव बात।

अणहोती–सं०स्त्री०—देखो 'अणहोणी'। उ०—रैता गोपाळ बस गांवां दो ब्यारि। सारी **अणहोती** बात सैता बिचारि।—शि.वं.

अणहूंती–सं०स्त्री०—अनहोनी। उ०—**अणहूंती** व्है आज, हुई न आगै होण री। कैरव करै अकाज, आज पितामह ईखता।—रामनाथ कवियो

अणागम–सं०पु० [सं० अनागम] १ आगमन का अभाव, न आना. २ अज्ञान, ज्ञान का अभाव।

अणाणो, अणाबो–क्रि०स०—देखो 'अणावणो'।

अणाद–वि० [सं० अनादि] जिसका आदि न हो, अनादि।

अणादर–सं०पु० [सं० अनादर] १ निरादर, अवज्ञा, अपमान, तिरस्कार २ पराजय।

अणाय–सं०स्त्री०—याद, स्मृति।

अणाळ–वि०—झूठ, असत्य (अ.मा.)

अणावड़ो, अणावणो–सं०पु०—स्मृति, याद, बच्चों का अपने प्रिय संबंधी को याद करने का भाव।

अणावणो, अणावबो–क्रि०स०—मंगाना, कार्य कराना। उ०—नेवळां रा पाट **अणावो**, जेठ बैठा श्रो दसरथजी रा सीय।—लो.गी.

अणावणहार-हारो (हारी), अणावणियो–वि०—मंगाने वाला, कार्य कराने वाला।

अणावित्रोड़ो-अणावियोड़ो-अणाव्योड़ो–भू०का०कृ०—मंगाया हुआ, कार्य कराया हुआ।

अणाणो, अणाबो–क्रि० (रू.भे.)

अणावो–सं०पु०—बुलावा।

अणास–सं०स्त्री०—कठिनाई।

अणि–सं०स्त्री० [सं०] १ नोक, धार. २ सीमा, किनारा. ३ फौज, सेना. उ०—डांखियो सेर साजी **अणि** डाकरै।—जवानजी आढो

सं०पु०—४ भाला।

सर्व०—इस, यह।

अणिआळी–सं०स्त्री०—कटार। उ०—**अणिआळी** अणबीह, पंचहजारी पाड़तो— वचनिका।

अणिपांणी–सं०स्त्री०—साहस, वीरता।

अणिमा–सं०स्त्री० [सं०] १ अति सूक्ष्म परिमाण. २ आठ सिद्धियों में से प्रथम जिससे योगी लोग अणु के समान सूक्ष्म शरीर धारण कर लेते हैं (डि.को.)

अणिमादिक–सं०स्त्री०—अणिमा आदि आठ सिद्धियां—१ अणिमा. २ गरिमा. ३ महिमा. ४ लघिमा. ५ प्राप्ति. ६ प्राकाम्य. ७ ईशित्व. ८ वशित्व।

अणिय–सं०पु०—कानों का अग्र भाग। उ०—वृत्ति कांन सतीखण **अणिय** वंक—रा.रू.।

अणियांभमर, अणियांभंवर–सं०पु०—१ सेनापति. २ योद्धा। उ०—भेजे इम **अणियांभंवर**, जेठी कँवर जनेस। बंसी हूं चढ़ियो बळे धन चय देण धनेस।—वं.भा. ३ शौकीन व्यक्ति. ४ मस्ताना व्यक्ति।

अणियार–वि०—नुकीला, पैना।

सं०स्त्री०—सूरत, शक्ल, आकृति।

अणियाळ–सं०पु०—१ ऊँट (डि.नां.मा.)। २ भाला। उ०—पेले आपतणा पुरसोतम, रह **अणियाळ** तणी बलरांण।—पृथ्वीराज राठौड़

अणियाळा–सं०पु०—नेत्र, नयन। उ०—फूलां रा चौस पैहरियां थकां टोय **अणियाळां** काजळ ठांसिया थकां।—रा.सा.सं.

अणियाळी, अणियाळीह–वि०—१ नोकदार, तीखा, तीक्ष्ण, पैना। उ०- आंखड़ियां **अणियाळियां** काजळ रेख कियांह। बीभळियां भावंदियां, लाज सनेह लियांह।—बां.दा.

२ मान-मर्यादा को निभाने वाली (पु० अणियाळो)

सं०स्त्री०—१ कटार (डि.को.) २ टिटहरी।

अणियाळो–वि० (स्त्री० अणियाळी) १ नोकदार, तीखा, तीक्ष्ण, पैना। उ०—लागो लोचण लाह, **अणियाळा** अळता तणो। सरसूं सेर सथाह, जोड़ी तोसूं जेठवा। २ मान-मर्यादा को निभाने वाला।

सं०पु०—१ ऊँट (डि.नां.मा.) २ भाला। उ०—बगतरां रा तवा फोड़-फोड़ पूठी परा **अणियाळा** अणी नीसरै।—रा.सा.सं.

अणियो–सं०पु०—तराजू का पलड़ा।

अणिहारो–सं०पु०—सूरत, शक्ल, आकृति (रू.भे. उणिहारो)

अणी–सं०स्त्री०—१ भाले की नोक। उ०—नर कायर आंणै नहीं, लूण लिहाज लगार। घोळै दिन छोड़ै धणी, **अणी** मिलै उण बार।—बां.दा. २ सिरा, नोंक। उ०—खेलबो पसंद कीनो बाहणी **अणी** को तें।

—ऊ.का.

[सं० अनीक] ३ फौज, सेना, हरावल। उ०—झालो सिंहदेव तो प्रथम **अणी** में हीं लोह छक होय प्रांणां रा पोखण।—वं.भा. ४ सीमा. ५ पत्थर की खुदाई करने का औजार विशेष. ३ खंड, विभाग, दल। उ०—कीधा दोय **अणी** कमधज्जां।—रा.रू. ७ धुरी. ८ शिखर. [रा०] ९ भाला, बरछा।

वि०—अग्रगण्य, आगे रहने वाला। उ०—बगा सिंधवो नाद कटकां **अणी** बीरबर।—रणसी सीसोदिया रो गीत

सर्व०—यह, इस।

अणीआळो–सं०पु०—देखो 'अणियाळो'। उ०—तळघां सूखड़ा तोलइ मांन, नागरवेलि **अणीआळां** पांन।—कां.दे.प्र.

सं०पु०—भाला। (रू.भे. अणियाळो)

अणीक–सं०पु० [सं० अनीक] १ फौज, सेना. २ झुंड, दल. ३ युद्ध।

वि०—बुरा, खराब।

अणीके–सर्व०—इस (क्षेत्रीय)

अणीखा–वि०—१ जिसके सामने देखा न जा सके. २ भयानक।

अणीपति–सं०पु० [सं० अनीक+पति] सेनापति।

अणीपांणी–सं०स्त्री०—१ मान, मर्यादा, प्रतिष्ठा। उ०—चाकरी अव्वल तरह करै, आछी तरह करै। कनै का लोग नूं **अणीपांणी** सूं आछी तरह राखै।—राठौड़ अमरसिंघ री बात २ साहस, शक्ति, सामर्थ्य।

अणीभमर, अणीमल–सं०पु०—योद्धा, वीर (डिं.नां.मा.)

अणीमेळ–सं०पु०—भाले आदि की नोकों के परस्पर मिलने का भाव। उ०—मुरचां रा मुकामला मंडाया छै, **अणीमेळ** हुम्रो छै। रायजादा भाला भळकि नै रहीमा छै।—रा.सा.सं.

अणीयाळ–सं०स्त्री०—१ कटारी। उ०—तोल **अणीयाळ** जळ बोळ चखतां तणां, रोष हिलोळिया दईव राये।—नरहरदास बारहठ।

सं०पु०—२ भाला (रू.भे. अणियाळ)

अणीयाळो, अणीयाळौ–वि०—देखो 'अणियाळौ' (रू.भे.) उ०—अंगोअंगि पटे **अणीयाळे** प्रांणइ पाखर फोड़इ।—कां.दे.प्र.

अणीसमराथ–वि०—१ सामर्थ्यशाली. २ मददगार. ३ युद्ध में कुशल।

अणुंताई–सं०स्त्री०—१ बदमाशी, शैतानी, शरारत. २ अन्याय।

अणु–सं०पु० [सं०] १ परमाणु से बड़ा तथा द्वयणुक से छोटा, कण, टुकड़ा. २ रजकण. ३ संगीत के अनुसार तीन ताल के काल का चतुर्थांश समय, एक मुहूर्त का ५४६७५००० वां भाग।

वि०—१ बहुत छोटा, जो कठिनता से दिखाई दे, सूक्ष्म. २ थोड़ा, कम (रू.भे. अणूं)

अणुनासिक–वि०—वे अक्षर जो मुंह और नाक से उच्चारण किये जायें यथा—ङ, ण, न, म, अनुनासिक।

अणुपातक–सं०पु० [सं० अनुपातक] चोरी, झूठ बोलना, पर-स्त्रीगमन आदि का पाप जो ब्रह्महत्या के समान समझा जाता है।

अणुबंध–सं०पु० [सं० अनुबंध] १ बंधन, लगाव. २ आरम्भ, अनुसरण, होने वाला शुभाशुभ. ३ वात, पित्त, कफ में से जो प्रधान हो. ४ दो पक्षों में कोई कार्य करने के लिए होने वाला ठहराव या समझौता. ५ वस्तुओं, जीवों, अंगों आदि में अनिवार्य रूप से होने वाला पारस्परिक संबन्ध. ६ किसी विषय की सब बातों का विवेचन।

अणुमा–सं०स्त्री०—बिजली।

अणुराव–सं०पु० [सं० अनुकरण] १ नकल, अनुकरण। उ०—ए सारस कहिजइ पसू, पंखी केरा राव। उवै बोल्या सर ऊपरइ, थां कीधी **अणुराव**।—ढो.मा. २ पीछे होने वाला शब्द।

अणुवाद–सं०पु० [सं०] १ दर्शनशास्त्र के अंतर्गत एक सिद्धान्त जिसमें जीव या आत्मा को अणु माना गया हो. २ वह शास्त्र जिसमें पदार्थों के अणु नित्य माने गये हों, वैशेषिक दर्शन।

अणुवादी–वि० [सं०] अणुवाद में विश्वास करने वाला।

सं०पु०—वल्लभाचार्य्य का अनुयायी वैष्णव।

अणुवीक्षण–सं०पु०—एक यन्त्र जिसके द्वारा सूक्ष्म पदार्थ देखे जा सकते हैं।

अणुहांणौ–वि० (स्त्री० अणुहांणी) नंगे पैर, जूतेरहित।

अणुहार, अणुहारौ–सं०पु० (स्त्री० अणुहारि, अणुहारी) सूरत, शक्ल। उ०—ताहरां हरदांन बोलियौ—ऊभारौ सरीर तौ आपां हायां फूंकियौ पण **अणुहारौ** तौ लागी छै।—पलक दरियाव री बात

वि०—समान, तुल्य, बराबर। उ०—अगर तणै **अणुहार**, पीड़ातां परमळ करै। ते सज्जन संसार, जोया पर जुड़िया नहीं।—ढो.मा.

अणूं–वि०—देखो 'अणु'। उ०—महा **अणूं** बचनीय जिकां री माधुरी। दै पिय, रसणां दाखि रती ही नां दुरी।—बां.दा.

सं०पु०—देखो 'अणु'।

अणूंत–सं०स्त्री०—१ असंभव कार्य, न होने वाला काम।

कहा०—अणूंत भाटै सूं ई काठी है—असंभव कार्य करना बड़ा कठिन है। (रू.भे. अणहूंत) २ शैतानी, बदमाशी. ३ घर में कुछ भी न होने की दशा।

सं०पु०—४ शैतान व्यक्ति।

कहा०—अणूंत रै वायोड़ी कौ ऊगै नी—अन्याय का अच्छा प्रतिफल नहीं मिलता।

वि०—बहुत, अधिक। उ०—उतरघा सूत **अणूंत** मूंत रेल न माया। —ऊ.का.

अणूंतौ–वि० (स्त्री० अणूंती) १ बदमाश. २ अन्यायी, नालायक. ३ चंचल. ४ बुरा. ५ बहुत, अधिक।

अणू–वि०—तनिक (अ.मा.)

सं०पु०—देखो 'अणु' (रू.भे.) उ०—मुकुंद लहै कुण तोरा अम्म **अणू** मझ राखै कोटि आलम्म।—ह.र.

अणूतौ–वि०—देखो 'अणूंतो' (रू.भे.)

कहा०—अणूतौ घास उकरड़धां ऊगै—व्यर्थ की वस्तु पर।

अणूहांणौ–वि०—नंगे पैर। उ०— एक मांदा एक न सकइ ऊठी, एक **अणूहांणा** ऊघाड़ा। दांणा पांच लहइ नवि खावा, एक तणइ पाए लोहड़ां।—कां.दे.प्र.

अणूहार, अणूहारौ–सं०पु०—सूरत-शक्ल। उ०—सारीखै **अणूहारै** सारो मुलक भरियौ छै।—पलक दरियाव री बात

अणै–सं०पु०—रथ (डिं.नां.मा.)

अणेती–वि०—असंभव (रू.भे. अणहूंत, अणहूंती)

अणेवर–सं०स्त्री०—वह स्त्री जो दुलहिन के साथ उसके ससुराल जाय।

अणेसौ–सं०पु०—१ अभावावस्था में होने वाला दुःख या कष्ट, वियोग-जनित दुःख. २ शोक, दुःख. ३ बल, साहस. ४ आशंका, संशय। उ०—देस विदेसां ना आवां म्हारौ **अणेसा** भारी।—मीरां ५ संभावना (रू.भे. अनेस) ६ ईर्ष्या, डाह। उ०—तरै धरती रौ वेध, राज रा **अणेसा** ऊपरां नागोर दोलतियाखांन पातिसाही करै। —जैतसी ऊदावत री बात

अणे–अव्यय—और।

अणोआई, अणोई–सं०स्त्री०—श्वासरोग, दमा (रू.भे. अणोहाई)

अणोखौ–वि० (स्त्री० अणोखी) अद्भुत, अनोखा, अनुपम।

अणोटपोल–सं०पु०—स्त्रियों के पैर का आभूषण विशेष (रा.सा.सं.)

अणोर–सं०पु०—विवाह में वर या वधू के सदा साथ रहने वाला उसका छोटा व कुंआरा भाई (पुष्करणा ब्राह्मण)

अणोहाई–सं०स्त्री०—श्वासरोग, दमा (रू.भे. अणोआई, अणोई)

अतंक–सं०पु०—१ आतंक. २ कष्ट।

अतंग–वि०—पारंगत, निपुण, पूरा जानकार।

अतंत–वि० [सं० अत्यंत] अत्यन्त, अधिक, बहुत ज्यादा।

अतंद्र–वि० [सं० अतंद्रिक] १ आलस्यरहित, चंचल। उ०—सहर अवंती जिण समय, चारुदत्त द्विजचंद्र। क्रम पढ़ियौ विद्या कळा, दुरबिध भाव अतंद्र—वं.भा.। २ विकल, व्याकुल।

अत–वि० [सं० अति] बहुत, अधिक, अतिशय। उ०—अत परमळ पसर पसरिया आंबा, सुक पिक बोलै सुखद सराग—बां दा.।

सं०स्त्री० [सं० अति] १ अधिकता. २ शीघ्रता, जल्दी।

सं०पु०—३ ईश्वर, परब्रह्म। (ह.र.)

उप —शब्दों के पहले लगने वाला एक उपसर्ग जिससे अधिक के अर्थ का बोध होता है।

क्रि·वि० [सं० अत्र] यहां, इस स्थान पर।

अतएव–क्रि०वि० [सं] इसलिए, इस कारण।

अतखंभ–सं०पु [सं० अंतरिक्ष+स्तम्भ] भाला (डिं.नां.मा.)

अतग, अतगी–वि० [सं० उत्तुंग] ऊँचा। उ०—अगत झाळ औराळ जगि विकराळ मांझि तेज जिण—भगवानजी रतनू।

अतट, अतड–सं०पु०—१ पर्वत का शिखर, चोटी. २ टीला।

अतण–सं०पु० [सं० अ+तन] १ बिना देह का व्यक्ति. २ कामदेव. ३ परब्रह्म।

वि०—बिना देह का।

अतताई–वि० [सं० आततायी] आततायी, दुष्ट, क्रूर, अत्याचारी। उ०—तपसी रौ रूप धरे अतताई, अडंग कुटी गइ सीत उठाई —र.रू.

अतदगुण–सं०पु [सं० अतद्गुण] एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें एक पदार्थ का किसी ऐसे दूसरे पदार्थ के गुणों को न ग्रहण करना दिखाया जाय जिसके कि वह अत्यंत समीप न हो।

अतन, अतनौ–वि०—निर्बल, कमजोर, पुंसत्वहीन। उ०—मद मेटि कियौ अतनौ मरद जद मैं तोनें जांणियौ -ऊ.का.।

सं०पु०—१ कामदेव (अ.मा.) २ देखो 'अतण'।

अतपराक्रम–सं०पु० [सं० अति+पराक्रम] बड़ा प्रताप, बड़ा तेज, पराक्रम

अतप्रसंग–सं०पु० [सं० अति+प्रसंग] १ अत्यंत मेल. २ अति विस्तार. ३ व्यभिचार।

अतप्रांण–वि० [सं० अति+प्राण] देखो 'अतिप्रांण'।

अतमभवन–सं०पु०—ब्रह्मा, विधाता (डिं.नां.मा.)

अतरंग–वि०—तरंगरहित, शांत।

सं०पु०—शांत समुद्र।

अतर–वि० [सं० अति] बहुत, अधिक।

सं०पु० [सं० इत्र] १ फूलों की सुगन्धि का सार, निर्यास. २ सागर, समुद्र (अ.मा.)

अतरदांन–सं०पु० [अ० इत्र+फा० दान] इत्र रखने का पात्र।

अतराज–सं०पु० [अ० एतराज] १ विरोध, आपत्ति. २ संदेह।

अतरिख–सं०पु० [सं० अंतरिक्ष] आकाश।

अतरूज–सं स्त्री०—देखो 'अतळूज'।

अतरे, अतरै–क्रि·वि०—१ इतने में। उ०—अतरै मिरजौ आवियौ, गह छावियौ निराट—रा.रू.। २ इसके बाद. ३ अभी तक, अब तक, इसी अवसर में।

अतरौ–वि० (स्त्री० अतरी) इतना। उ०—रोटी चरखो रांम, अतरौ मुतलब आपरौ, की डोकरियां कांम, राज कथा सूं राजिया—किरपारांम (बहु० अतरा)

अतरोक, अतरोयक–वि०—इतना ही, इतना सा।

अतरौ–वि०—इतना अधिक (रू.भे. अतरो)

अतळ–सं०पु०—सात पातालों के अंतर्गत दूसरा पाताल (पौराणिक)

वि०—१ तळरहित, बिना पेंदी का [सं० अतुल] २ अतुल, अत्यधिक।

अतळबळ–वि० [सं० अतिबल] अत्यधिक शक्तिशाली।

अतळस–सं०स्त्री० [अ०] एक प्रकार का रेशमी वस्त्र जो बहुत नरम होता है। उ०—साल सूतरू चिकन शुभ, अतळस जरकस आंण। तो तट दी लाखै तरां, पहरांमणी पुरांण—बां.दा.।

अतळसी–सं०पु०—१ ख्वाजासरों का एक भेद विशेष जो पुरुषाकार को अंडकोश सहित जड़ से ही काट डालते हैं। इनको संदली भी कहते हैं. २ देखो 'अतळस'।

अतळस्स–सं०स्त्री०—देखो 'अतळस'। उ०—दर परदे जरदोज, सयन अतळस्सां मुखमल—ला.रा.।

अतळा–वि०—सुंदर (नेत्रों की बनावट और सुंदरता के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द)। उ०—लोयण अतळा जेह—र. हमीरवार्त्ता।

सं०स्त्री०—पृथ्वी। उ०—चले चक पत चळदळ भांति, तळातळ ज्यों अतळा विचळाति—ला.रा.।

अतळाग–सं०स्त्री०—याद, स्मरण (डिं.को.)

अतळीबळ, अतळीबळि–वि० [सं० अतुल+बल] अत्यधिक बलवान, शक्तिशाली (डिं.को.)

अतळूज–सं०स्त्री०—श्वास नली में यकायक जल या अन्न के अंश के चले जाने से होने वाली खरखराहट या सुनसुनी।

अतळौ–वि०—१ आधारशून्य. २ बुरा, निकृष्ट। उ०—अपने आसरियै अतळौ दिन ऊगौ, पीहर सासरियै पतळौ पुन्य पूगौ। —ऊ.का.

अतवाद–सं०पु०—देखो 'अतिवाद'।

अतवादी–वि०—देखो 'अतिवादी'।

अतवार–सं०पु०—१ इतवार, रविवार। [फा० एतबार] २ भरोसा, विश्वास।
वि० [रा०] अपार, बेहद। उ०—**अतवार** वहै आपै अनंत, सह विदु हुय जावै सगा—जग्गौ खिड़ियौ।

अतवेध–सं०पु०—युद्ध, समर।

अतस, अतसय–वि० [सं० अतिशय] अपार, अत्यंत (अ.मा.)
सं०पु०—१ आत्मा. २ अस्त्र. ३ वायु. ४ वल्कल वस्त्र।

अतसौर–सं०पु० [सं० अति+फा० शोर] अत्यधिक आवाज व शोरगुल।

अतरह–सं०पु०—समुद्र, सागर (डिं.नां.मा.)

अता–सर्व०—इतने, इतना। उ०—रजपूत महारज कीत रता, उणबार चढ़े सरदार **अता**—शि.सु.रू.।

अताई–वि०—अत्यधिक।
सं०पु० [सं० आततायी] १ आततायी, दुष्ट. २ अन्यायी।

अताक–वि०—गुप्त (अ.मा.)

अताग–वि०—१ न त्यागने वाला. २ अथाह।

अतागे–क्रि०वि०—जल्द, शीघ्र। उ०—आयौ नाग सूं झूझ लेवा **अतागौ**। —ना.द.

अतात–वि० [सं० अ+तात] अनाथ, निराश्रित।
सं०पु०—परब्रह्म (ह.र.)

अतार–सं०पु०—१ दवाओं को बेचने वाला, पंसारी. २ अत्तार। ३ देखो 'अतारां'।

अतारां–सं०पु०—१ मुसलमान. २ आततायी, दुष्ट। उ०—मिरजौ तिण वारां मीर करारां साथि **अतारां** करि सारां—रा.रू.।
क्रि०वि०—इतने में।

अतारी–वि०—तेज, चंचल, शीघ्रगामी। उ०—तुरँग खेड़िया भांत **अतारी**। गुरड़ जांण चढ़ियौ गिरधारी—रा.रू.।

अतारू–वि०—जो तैरना नहीं जानता हो। उ०—बे हरि भजै **अतारू** बोलै, ते अब भागीरथी म तूं—वेलि.।

अतारो, अतारौ–वि०—अधिक, बहुत। उ०—तुरंगां वणै तेज अंगां **अतारौ**—रा.रू.।

अताळ–वि०—१ बहुत, अति, अत्यन्त. २ तेज, भयंकर।
उ०—'अभमाल' क्रोध देखे **अताळ**, महमंद साह दिये मुक्तमाळ। —वि.सं.

अताळौ–वि० (स्त्री० अताळी) १ उतावला, जल्दबाज. २ आतुर. ३ बलवान, जोशीला. ४ मजबूत, दृढ़। उ०—'रूपमल' घोड़ असवार 'उमेद' हर अरांनी जोड़ वागां **अताळी**—अज्ञात।
५ तेज, तीक्ष्ण. ६ भयंकर। उ०—एक दाळी झड़ै नराताळी अघट, नदी बही कराळी रुधिर वाळी निपट। वीर ताळी वजै **अताळी** रिण विकट नचै काळी सहत कमाळी जांण नट—किसनजी आढ़ौ।
क्रि०वि०—शीघ्रता से। उ०—उमंगे रढ़ाळा छूटे सोहड़ां काकुस्थवाळा, **अताळा** सजूटे तेण सामूहां अडील—र.रू.।

अति–वि०—बहुत, अधिक।
सं०स्त्री०—अधिकता, ज्यादती।

अतिकम, अतिकमण–सं०पु०—देखो 'अतिक्रम'।

अतिक्रांतभावनीय–सं०पु०—योगदर्शन के अंतर्गत चार प्रकार के योगियों में से एक योगी, वैराग्यसंपन्न योगी।

अतिकाय–वि० [सं० अति+काय] १ स्थूलकाय, मोटा. २ बलवान।
सं०पु०—रावण का वह पुत्र जिसको लक्ष्मण ने मारा था।

अतिक्रम–सं०पु० [सं०] १ नियम या मर्यादा का उल्लंघन, विपरीत व्यवहार, अन्यथाचरण। उ०—सौ राजकुमार रा आसय मैं तुलै तौ कन्या काळ रौ **अतिक्रम** जांणि अठै ही विवाह करूं—वं.भा.।
२ अपमान. ३ पार होना, लाँघना। उ०—**अतिक्रम** विक्रम त्रिक्रम आस्य, अछेक अनेकन अंक उपास्य—ऊ.का.।

अतिक्रांत–वि० [सं० अति+कांति] १ चमकीला, अत्यंत कांतिवान।
उ०—किता सस्त्र **अतिक्रांत** जड़ित पन्ना सोवन्नां—रा.रू.।
[सं०] २ सीमा से बाहर गया हुआ, बीता हुआ।

अतिगंज–सं०पु०—ज्योतिष शास्त्र के २७ योगों में से एक योग। (ज्योतिष बाळबोध)

अतिगति–सं०स्त्री०—१ अन्याय, अत्याचार। उ०—सदाई सबळा राजा निबळा राजा नै झालता आया छै, बंद मांहे सदाई राखता आया, पिण तौ ठाकुर ज्यूं कोई **अतिगति** मांडै नहीं। —कहवाट सरवहिया री बात
२ उत्तम गति, मोक्ष।
वि० [सं० अतिगत] बहुत, अधिक।

अतिचार–सं०पु० [सं०] १ किसी ग्रह का बिना किसी राशि का भोग-काल समाप्त किये दूसरी राशि में चले जाना. २ विघात, व्यतिक्रम (जैन). ३ ग्रहों की शीघ्र चाल।

अतिचारी–वि० [सं०] १ अन्यथाचारी. २ अति करने वाला।

अतिचाह–वि० [सं० अति+चाह] उत्सुक, इच्छुक, उत्कंठित। (डिं.को.)

अतितीव्र–सं०पु०—संगीत में वह स्वर जो तीव्र से भी कुछ अधिक ऊँचा हो।

अतिथि–सं०पु० [सं०] १ मेहमान, अनिश्चित, आगंतुक. २ वह संन्यासी जो एक स्थान पर एक रात्रि से अधिक न ठहरे।

अतिथिपूजा–सं०स्त्री० [सं० अतिथि+पूजा] संन्यासी या महात्मा की सेवा।

अतिदरप–वि० [सं० अति+दर्प] घमंडी, अभिमानी (वं.भा.)

अतिदेव–सं०पु०—१ बड़ा देवता. २ शिव. ३ विष्णु।

अतिपराक्रम–सं०पु० [सं०] बड़ा प्रताप, बड़ा तेज, शौर्य्य।

अतिपान–सं०पु० [सं० अतिपान] बहुत पीना, पीने का व्यसन।

अतिपात–सं०पु० [सं०] अव्यवस्था, गड़बड़ी।

अतिपातक–सं०पु० [सं०] धर्मशास्त्र में वर्णित नौ पातकों में बड़ा पातक—माता, बेटी या पतोहू के साथ गमन करने वाला पुरुष अथवा पिता, पुत्र व दामाद के साथ गमन करने वाली स्त्री।

अतिप्रसंग–सं०पु० [सं०] अत्यन्त मेल, देखो 'अतप्रसंग'।

अतिप्रांण–वि० [सं० अतिप्राण] बलवान, शक्तिशाली, अत्यंत शक्तिशाली। (रू.भे. 'अतप्रांण') उ०—बाळे सा इणविधि बर विवेक, **अतिप्रांण** हुवा भूपति अनेक—वं.भा.।

अतिबरवे–सं०पु०—एक मात्रिक छंद विशेष जिसमें प्रथम व तृतीय चरण में १२ मात्राएँ तथा दूसरे चौथे चरण में नौ मात्राएँ होती हैं। विषम पदों के अंत में जगण नहीं होता तथा सम पदों के अंत का वर्ण लघु होता है।

अतिबरसण–सं०स्त्री० [सं० अति+वर्षण] अतिवृष्टि, अत्यन्त वर्षा (डि.को.)

अतिबळ–वि० [सं० अतिबल] अत्यधिक बलवान, शक्तिशाली, महावीर। सं०पु०—एक राक्षस।

अतिबळा–सं०स्त्री० [सं० अतिबला] १ प्राचीन काल की एक प्रकार की युद्ध विद्या जिसके प्रभाव से श्रम और प्यास, भूख आदि बाधाओं का भय नहीं रहता। उ०—विद्या विलास **अतिबळा** रिख पढ़ाई रांम। —रांमरासौ

२ ककई नामक पौधा।

अतिमुसळ–सं०पु० [सं०] यदि किसी नक्षत्र में मंगल अस्त हो और उसके सत्रहवें नक्षत्र व १८ वें नक्षत्र से अनुवक्र हो तो इस वक्र को अतिमुसळ कहते हैं—फलित ज्योतिष के अनुसार इससे चोर और शस्त्र का भय रहता है तथा अनावृष्टि होती है।

अतिमूत्र–सं०पु० [सं०] अधिक मूत्र उतरने का एक प्रकार का रोग विशेष जिससे रोगी कमजोर हो जाता है (वैद्यक)

अतियोग–सं पु० [सं०] किसी मिश्रित औषधि में किसी द्रव्य का नियत मात्रा से अधिक मिल जाना।

अतिरंग–सं०पु०—१ अत्यन्त आनन्द, अत्यन्त प्रसन्नता। उ०—अति प्रगट रस थुड़ डाळ अदभुज(त) गाय **अतिरंग** आदरे—रा.रू.।

२ अंतरंग, घनिष्ठ। उ०—सेज पधारीं राव की, **अतिरंग** स्वामी सुं मीली राति—वी.दे.।

अतिरंजन–सं०पु० [सं०] १ बढ़ा-चढ़ा कर कहने का ढंग, अत्युक्ति. २ अत्यन्त प्रसन्नता।

अतिरथी–सं०पु० [सं०] वह जो रथ पर चढ़ कर अकेला बहुत से लोगों से लड़े, महारथी, रणकुशल।

अतिरय–सं०पु०—तीव्र वेग। उ०—बिसमय प्रळय मय भय समय निरदय उदय रवि नयनिळय **अतिरय** अजय खयकर अखय—वं.भा.।

अतिरिक्त–क्रि०वि० [सं०] सिवाय, अलावा।

वि०—१ शेष, बचा हुआ. २ अलग।

अतिरेक–सं०पु० [सं० अति+रिच्+घ ञ्] आधिक्य, अतिशय।

अतिळीवर, अतिळीवरळ–वि० [सं० अतुल्य+बल] वीर, योद्धा, शक्तिशाली।

अतिवाद–सं०पु० [सं०] १ डींग, शेखी. २ खरी बात, सच्ची बात. ३ कटूक्ति।

अतिवादक, अतीवादी–सं०पु० [सं०] १ सत्यवक्ता. २ कटुवादी. ३ डींग मारने वाला।

अतिवरस्टी–सं०स्त्री० [सं० अतिवृष्टि] अत्यधिक वर्षा।

अतिसय–वि० [सं० अतिशय] बहुत, ज्यादा, अत्यधिक। उ०—आसाढ़ जांणि डंडूळ, **अतिसय** गयण चढ़ि गैतूळ—रा.रू.।

अतिसयपांन–सं०पु० [सं० अतिशयपान] अत्यन्त मद्यपान, मद्याहार। (मि० अतिपांन)

अतिसयोकती–सं०स्त्री० [सं० अतिशय+उक्ति] भेद में अभेद तथा असंबंध में संबंध दिखलाते हुए किसी वस्तु को बहुत बढ़ा कर प्रकट करने का एक प्रकार का अलंकार अथवा जहाँ प्रस्तुत की अत्यन्त प्रशंसा के लिए अतिशय अर्थात् लोक सीमा का उल्लंघन करके कोई बात कही गई हो।

अतिसामान्य–सं०पु० [सं० अति+सामान्य] बहुत ही साधारण, मामूली बात।

अतिसार–सं०पु० [सं०] १ पेट का रोग विशेष जिसमें रक्त मिश्रित आँव के अथवा पतले किन्तु अधिक दस्त आते हैं।

वि० [रा०] अतिशय, बहुत। उ०—माह मास सी पड़यो **अतिसार,** जळ-थळ-महीयळ सहू कीया छार—वी.दे.।

अतिसै–वि० [सं० अतिशय] अतिशय, बहुत, अधिक (रू.भे. अतिसय)

अतिहसित–सं०स्त्री० [सं० अति+हसित] अट्टहास, जोर की हँसी।

अतींद्रय–वि० [सं० अतीन्द्रिय] अगोचर, अप्रत्यक्ष, अव्यक्त।

अती–सर्व०—इतनी। उ०—कहि **अती** बात सारी कथा, तवी राय सेवा तणी—मे.म.।

वि० [सं० अति] बहुत, अधिक (रू.भे. अति)

अतीचपळ–वि० [अति+चपल] अधीर, चलायमान।

अतीत–वि० [सं०] १ बीता हुआ, भूत, गत, पुराना। उ०—बिछोड़ै रुद्र कपाळ ब्रहम्म, कियौ सुकदेव **अतीत** करम्म—ह.र.।

२ निर्लेप, विरक्त। उ०—सबग्गुण देव **अतीत** संसार, बिभू अति गुज्झ परम्म बिचार—ह.र.। ३ दरिद्र, कंगाल. ४ पृथक, अलग।

क्रि०वि०—परे, बाहर। उ०—नमो धक पंख सहोवर धज्ज, गुणादि **अतीत** लखण्ण-अग्रज्ज—ह.र.।

सं०पु० [सं० अतिथि] १ विरक्त साधु, वीतराग, सन्यासी। उ०—इतरै देवीदास बोलियौ—**अतीतां** क्यों खड़ा छौ? कासूं देखां भीखी नै मारग लागौ—पलक दरियाव री बात।

२ अतिथि. ३ परब्रह्म. ४ संगीत में सम से दो मात्राओं के उपरांत आने वाला स्थान. ५ तबले के किसी बोल या टुकड़े की सम से आधी वा एक मात्रा के पहले समाप्ति. ६ दसनामी संन्यासियों का एक नाम।

अतीतकाळ–सं०पु०यौ० [सं०] बीता हुआ समय, प्राचीन काल।

अतीत्य, अतीथ–सं०पु० [सं० अतिथि] १ अभ्यागत, मेहमान. २ संन्यासी, विरक्त साधु, गृहत्यागी. ३ जैन साधु. ४ गरीब व्यक्ति।

अतीवस्टी–सं०स्त्री० [सं० अतिवृष्टि] अत्यन्त वर्षा, अतिवृष्टि।

अतीर–सं०पु०—समुद्र, सागर (ह.नां., अ.मा.)

अतीव–वि०यौ० [सं० अति+इव] अधिक, अतिशय अत्यन्त।
उ०—तथा **अतीव** नम्रता करी सु नम्र में तुर्भे—ऊ.का.।

अतीस–सं०पु० [सं०] हिमालय के अंचल में होने वाला पौधा जो औषधि के काम में आता है—अमरत।

अतीसय–वि०—देखो 'अतिसय' (रू.भे.)

अतीसीळ–सं०पु०—हाथी हस्ती (डि.नां.मा.)

अतु–वि० [सं० अत्यन्त] अत्यन्त, बहुत, अधिक, अतिशय।

अतुर–वि० [सं० आतुर] व्याकुल, व्यग्र, घबड़ाया हुआ, उद्विग्न, दुखी।
क्रि०वि०—शीघ्र, जल्दी। उ०—आच नित जनक नृप लिखे कागद **अतुर**—र.रू.।

अतुराई–सं०स्त्री० [सं० आतुर] उतावलापन, जल्दबाजी।

अतुळ–वि० [सं० अतुल] १ जो तौला या कूंता न जा सके, असीम, अपार, बहुत, अधिक. [सं० अतुल्य] २ अनुपम। उ०—एक चंदाणा जाति रा हळखड़ रजपूत री पुत्री नूं बळ में **अतुळ** जांणि प्रसभपूरवक परणियौ।
—वं.भा.
३ जबरदस्त।

अतुळनीय–वि० [सं० अतुलनीय] १ अपरिमित, अपार. २ अनुपम, बेजोड़।

अतुळबळ–वि० [सं० अतुल+बल] अत्यधिक शक्तिशाली, समर्थ।
उ०—ग्रह तै सत डोर जगा छत्रियां गुर, बोह मोजां बिध **अतुळबळ**।
--महारांणा जगतसिंह री गीत

अतुळित–वि० [सं०] १ बिना तौला हुआ, अपरिमित, अपार, असंख्य २ अनुपम, अद्वितीय, बेजोड़।

अतुळी–वि० [सं० अतुल्य] १ अनुपम, अद्वितीय. २ असमान।

अतुळीबळ–वि० [सं० अतुल्य+बल] अत्यन्त शक्तिशाली।
उ०—**अतुळीबळ** भाडै असरां री, खागां मार गमाड़ै खोज—र.रू.।

अतुळय–वि० [सं० अतुल्य] १ अनुपम, अद्वितीय. २ असमान, असदृश।

अतू–वि०—अत्यन्त, बहुत अधिक, अतिशय।
सं०पु०—कर्ज के खाते जमा की जाने वाली रकम।

अतूठौ–वि० (सं० अ+तुष्ट) अप्रसन्न। उ०—समांणी जसूं नागरांणी सुणायौ, अरूठौ **अतूठौ** भले काज आयौ—ना.द.।

अतूळ–वि० [सं० अतुल्य] अतुल्य, अनुपम, अद्वितीय।

अतेज–वि० [सं० अ+तेज] १ तेजहीन, निस्तेज, मंद, मलिन.
२ अंधकारयुक्त।

अतेरु–वि०—जो तैरना न जानता हो।
सं०पु०—सागर, समुद्र (डि.नां.मा.)

अतै–क्रि०वि०—तब तक, इतने में। उ०—अपछरां चडी रथ्थां **अतै** चंडथां नोहथ्थां चडी—मे.म.।

अतोट–सं०पु०—१ जो शीघ्र प्रसन्न न हो. २ वज्र (नां.मा.)

अतोर–वि०—न टूटने वाला, पुष्ट, दृढ़, अभंग।

अतोल, अतौल–वि० [सं० अतोल] १ जो तौला या कूंता न जा सके, अपरिमित, अपार। उ०—हव लड़य कइक दिन हुय हरोल, इळ पती फौज री बळ **अतोल**—पे.रू.। २ जो तौला हुआ न हो।
सं०पु०—पहाड़, पर्वत (अ.मा.)

अतोली, अतोलौ–वि० [सं० अतुल] बहुत (रू.भे. अतोल)
उ०—सांवण का दिनां में साल बरसा छी **अतोली**, सारां ही दिनां में इंद्र आंख्यां भी न खोलां—शि.वं.।

अत्त–सं०स्त्री० [सं० अति] अधिकता।

अत्तर–सं०पु० [फा० इत्र] इत्र, पुष्पसार। उ०—वणै केसरां **अत्तरां** बोह बागां, प्रभा चंद्र मोहै भड़ां व्रंद पागां—रा.रू.।

अत्ता–सर्व०—इतने (रू.भे. 'अता')

अत्तार–सं०पु० [अ०] १ इत्र बेचने वाला, गंधी. २ यूनानी औषधियां बनाने तथा बेचने वाला।

अत्ति, अत्ती–वि० [सं० अति] बहुत, अधिक।
सर्व० [रा०] इतनी।
सं०पु० [सं० अति] अत्याचार।

अत्तीत–सं०पु०—देखो 'अतीत, अतीथ' (रू.भे.)

अत्तीव–वि० [सं० अतीव] देखो 'अतीव'। उ०—अवरंगी **अत्तीव** आपरंगी अणनीतौ—रा.रू.।

अत्तू–सं०पु०—कर्ज के पेटे खाते की अवधि व्यतीत होने के पूर्व जमा की जाने वाली रकम (रू.भे. अतू)

अत्तोतायौ–वि० (स्त्री० अत्तोताई) १ आततायी. २ छिछले स्वभाव का. ३ उतावला।
कहा०—१ अत्तोताई बेटौ जायौ नाळ पैं'ली नाक कटायौ—उतावले स्वभाव की स्त्री के पुत्र जन्मा तो अपनी आतुरता के कारण नाल के स्थान पर नाक काट डाली. २ अत्तोताई री मांटी आवै दोपारै री दीयौ जगावै—पति के आने पर उससे शीघ्र मिलने को आतुर उतावली स्त्री दुपहरी में हो सांझ समझ कर दिया जला देती है। उतावली स्त्रियों के लिये।

अत्थ–सं०पु० [सं० अर्थ] देखो 'अथ'। उ०—मंगळ री जणणी मही, अदतारां री **अत्थ**—बां.दा.।
क्रि०वि०—अब। उ०—हेम सेत मंझार न को हिव **अत्थ** न रावह, इत्थ चवत्थौ राव हुवत जंपियै सरोवह—लल्ल भाट।

अत्थड़ी–सं०पु० [सं० अर्थ] देखो 'अरथ'। उ०—ऊघम हत्थां **अत्थड़ी**, कानां सुण निज क्रीत—बां.दा.।

अत्यंत–वि० [सं०] अतिशय, अधिक, बहुत।

अत्यंतागांमी–वि० [सं०] शीघ्रगामी।

अत्यंताभाव–सं०पु० [सं०] १ किसी वस्तु का पूर्णतया अभाव, सत्ता का पूर्ण रूप से न होना. २ वैशेषिक के मतानुसार पांच अभावों में से चौथा।

अत्यंतिक–वि० [सं०] बहुत, अधिक।

अत्यत्कस्ट–वि० [सं० अति+उत्कृष्ट] अत्युत्तम, अतिश्रेष्ठ, बहुत बढ़िया।

अत्याकार–सं०पु० [सं०] हार, पराजय (डिं.को.)

अत्याग–सं०पु० [सं० अ+त्याग] ग्रहण, स्वीकार।

अत्यागी–वि० [सं० अ+त्यागिन्] १ अवगुणों को न त्यागने वाला, दुर्व्यसनी. २ न त्यागने वाला।

अत्याचार–सं०पु० [सं०] १ सदाचार का उल्टा, आचार का अतिक्रमण, अन्याय, विरुद्धाचरण. २ ज्यादती. ३ आडंबर, ढकोसला।

अत्याचारी–वि० [सं०] अत्याचार करने वाला, अन्यायी, धर्मध्वज।

अत्यानंदा–सं०स्त्री०—वह योनि जो अधिक मैथुन से भी संतुष्ट नहीं होती तथा जिससे स्त्री बंध्या हो जाती है। वैद्यक में इसे एक रोग कहा गया है।

अत्यावस्यक–वि०यौ० [सं० अत्यन्त+आवश्यक] जो बहुत ही जरूरी हो।

अत्युक्त–वि० [सं०] बहुत बढ़ा चढ़ा कर कहा हुआ।

अत्युक्ति, अत्युक्ती–सं०स्त्री० [सं० अत्युक्ति] वास्तविकता से बहुत बढ़ा चढ़ा कर वर्णन करने की एक रीति।

अत्युतकंठा–सं०स्त्री० [सं०] १ चिन्ता, मनस्ताप. २ उच्चाभिलाषा।

अत्र–क्रि० वि० [सं०] यहाँ, इस स्थान पर। उ०—चहुँधा चरित्र वैस्णवे विचित्र, त्रैलोक तत्र, वह मिलत अत्र—ऊ.का.।

अत्रपत, अत्रपती–वि० [सं० अतृप्त] असन्तुष्ट, भूखा, अतृप्त।

सं०स्त्री० [सं० अतप्ति] चित्त की अशांति, असंतोष, अतृप्ति।

अत्रय–सं०पु०—देखो 'अत्रि'। उ०— पिरभू किता वासर पाय, अत्रय तणै आश्रम आय—र.रू.।

अत्रसण–वि०—निर्लोभी।

अत्रस्त–वि० [सं० अ+त्रस्त] भयरहित निडर।

अत्रस्थ–वि० [सं०] यहाँ का, यहाँ रहने वाला।

अत्रि–सं०पु० [सं०] १ सप्तऋषियों में से एक जो ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं. २ एक तारा जो सप्तऋषिमंडल में है।

अत्रिगुण–वि० [सं०] सत, रज और तम नामक तीनों गुणों से पृथक, त्रिगुणातीत।

अत्रिज–सं०पु० [सं०] अत्रि मुनि के पुत्र—१ चन्द्रमा, २ दत्तात्रेय, ३ दुर्वासा।

अत्रिजात–सं०पु०यौ० [सं०] १ चंद्रमा. २ देखो 'अत्रिज'।

अत्रिप्रिया–सं०स्त्री० [सं०] अत्रि ऋषि की पत्नी—अनसूया।

अथ–सं०पु० [सं० अर्थ] १ शब्द का अभिप्राय. २ अभिप्राय, मतलब, प्रयोजन. ३ काम, इष्ट. ४ हेतु, निमित्त. ५ धन, संपत्ति। उ०—भर बत्थां अथ काढ़जै, मंदिर जळतै मांय—ह.र. (रू.भे. अरथ) ६ शब्द, स्पर्श, रस, रूप एवं गंध इंद्रियों के पांच विषय [सं०] ७ एक मंगलसूचक शब्द जिससे प्राचीन काल में लोग किसी ग्रंथ वा लेख का आरम्भ करते थे। उ०—अथ ओंमकार, अक्षर उचार, निस दिवस नाम रट राम-राम—ऊ.का.।

अव्यय०—१ अब, इस समय. २ अनन्तर. ३ आरम्भ में।

अथइणौ, अथइबौ–क्रि०अ० (प्रा०रू०) [सं० अस्त] अस्त होना।

अथऊ–सं०पु०—सूर्यास्त होने के पहिले किया गया भोजन (जैन)

अथक–वि०—१ न थकने वाला, अश्रांत, परिश्रमी. २ बहुत, अधिक।

अथग–वि०—१ देखो 'अथाह'। उ०—अंग धुन, व्यंग रस घाट कवता अथग—क.कु.बो.। २ देखो 'अथक'।

सं०पु०—१ हाथी (ना.डिं.को.) २ समुद्र, सागर (अ.मा.)

अथगणौ, अथगबौ–क्रि०अ०—रुकना (सूर्य)। उ०—अथगियौ भांण मधुकराहर ऊपरा धोम दुहुवां इसौ वाद धिखियौ—अज्ञात।

अथगूं–वि०—अथाह, अपार (रू.भे. 'अथग')

अथग्ग–वि०—देखो 'अथग' (रू.भे.)

अथड़ाणौ, अथड़ाबौ–क्रि०अ०—१ लड़खड़ाना. २ टकराना, भिड़ना।

अथड़ाणहार-हारौ (हारी), अथड़ाणियौ–वि०—भिड़ने वाला।

अथड़िओड़ौ, अथड़ियोड़ौ, अथड़्योड़ौ–भू०का०कृ०।

अथड़ीजणौ—भाव.वा.।

अथड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—लड़खड़ाया हुआ, टकराया हुआ। (स्त्री० अथड़ियोड़ी)

अथमणौ–सं०स्त्री० [सं० अस्तमन] पश्चिम दिशा।

अथमणौ, अथमबौ–क्रि०अ० [सं० अस्त] १ अस्त होना, डूबना, लुप्त होना. २ नष्ट होना, चला जाना।

अथमणहार-हारौ-(हारी), अथमणियौ–वि०—अस्त होने वाला।

अथमावणौ—'अथमणौ' का स०रू०—अस्त कराना।

अथमायोड़ौ, अथमिओड़ौ, अथमियोड़ौ, अथम्योड़ौ–भू०का०कृ० अस्त हुआ हुआ।

अथमावियोड़ौ—भू०का०कृ०।

(विलोम—उगमणौ, उगमबौ)

अथमावणौ, अथमावबौ–क्रि०अ०—देखो 'अथमणौ'।

क्रि०स०—१ अस्त करना. २ नष्ट करना।

(क्रि० 'अथमणौ' का स.रू.)

अथमियोड़ौ–वि०—अस्त (स्त्री० अथमियोड़ी)

अथर–वि० [सं० अस्थिर] १ अस्थिर। उ०—आ माया काया अथर रिध धण छाया रीत—अज्ञात २ अधीर, चंचल।

अथरब–सं०पु० [सं० अथर्व] १ एक वेद का नाम, अथर्ववेद. २ अथर्ववेद का एक मन्त्र।

अथरबण–सं०पु० [सं० अथर्वन] १ देखो 'अथरब'। २ शिव, महादेव।

अथरबणी–सं०पु० [सं० अथर्वनी] पुरोहित, कर्मकांडी, यज्ञ करने वाला।

अथरबवेद, अथरववेद–सं०पु० [सं० अथर्ववेद] ब्रह्मा के उत्तरमुख से निकलने वाला चार वेदों के अंतर्गत चौथा वेद जिसकी नौ शाखायें

हैं। इन शाखाओं में से आजकल शौनकीय मिलती हैं, जिसमें २० काण्ड, १११ अनुवाक, ७३१ सूक्त तथा ४७६३ मंत्र हैं। धनुर्वेद इसका उपवेद है। (डि.को.)

अथरवसिर–सं०पु० [सं० अथर्वशिर] तैत्तरेय शाखा के समय यज्ञ की वेदी बनाने के लिए काम में लायी जाने वाली ईंट।

अथरवसिरा–सं०स्त्री० [सं० अथर्वशिरा] वेद की एक ऋचा का नाम।

अथरूज–सं०स्त्री०—श्वासनली में एकाएक जल या अन्न के अंश के चले जाने से होने वाली खरखराहट या सुनसुनी। (रू.भे. अतळूज)

अथळ–सं०पु०—किसान को लगान पर जोतने के निमित्त दी जाने वाली भूमि।

अथळस–सं०पु०—१ ऋतुमती घोड़ी के पास ले जाते समय घोडे की कामाग्नि उत्तेजित करने के उद्देश्य से उसके लिङ्ग को सहलाने की क्रिया. २ हस्तमैथुन।

अथळूज–सं०स्त्री०—देखो 'अतळूज' (रू.भे.)

अथवा–अव्यय [सं०] या, वां, किंवा। एक वियोजक अव्यय।
उ०—जंतु भखै **अथवा** जळै, कै पड़ियौ रह जाय। किल भिमटा भसमी क्रमी, इण नर तन सूं थाय—बां.दा.।

अथहा–वि०—अथाह, अपार। उ०—काळ गिरंद **अथहां** कळोधर, प्रतपाळा बंधव महाराज—उम्मेदसिंह सीसोदिया रो गीत।

अथांणुं, अथांणौ–सं०पु०—अचार (अमरत)

अथांमणौ, अथांमबौ–क्रि०अ० [सं० अस्तमन] १ अस्त होना।
उ०—तिमिर मिटै पावक तुटै पाबू भांण प्रकाश। अइयौ 'चंद्र' **अथामियां** अइयां चंद उजास—पा.प्र.। २ मरना।

अथांमणहार-हारौ-(हारी), अथांमणियौ–वि०—अस्त होने या मरने वाला।

अथमणौ, अथमबौ—(रू.भे.)

अथाई–सं०स्त्री० [सं० स्थायी] १ सभा, बैठक. २ देखो 'हताई'।

अथाग, अथागौ, अथाघ, अथाब–वि०—बहुत, अधिक, अपार।
उ०—१ रोज सिकारां खेलणौ, देखै बाग तड़ाग, हूंकळ दळ गज हैवरां, अमरख नरां **अथाग**—रा.रू.।
२ असुरांण उठी अब्दुल नवाब, हिंदवांण अठी तपबळ **अथाब**। —शि.सु.रू.

अथार–सं०स्त्री०—योनि, भग।

अथाल–वि०—१ अथाह, अपार, अपरिमित, विरुद्ध. २ बढ़िया।
उ०—ईखै अस सुद्रब चीज **अथाल** 'मालावत' लोभ धरै जगमाल। —गो.रू.

अथाह–वि०—१ जिसकी थाह न हो, अगाध, बहुत गहरा. २ जिसका कोई पार न पा सके, अपरिमित। उ०—जांणिक उलटइ समंद **अथाह**—वी.दे.। ३ गंभीर, गूढ़, कठिन।
सं०पु०—१ जलाशय. २ गहराई. ३ गड्ढा. ४ सागर, समुद्र।

अथि, अथी–सं०पु० [सं० अर्थ] १ संपत्ति, धन, द्रव्य। उ०—असमर समर **अथी** ऊधमणी, मनड़ै अणै नथी अहमेव—जसजी आढ़ौ। २ धनाढ्य, धनी।

अथिर–वि० [सं० अस्थिर] अस्थिर, नाशवान, चलायमान, चल, जंगम। उ०—**अथिर** आदि मंडांण न को दीसै थिरताई, काळ ग्रास संसार ग्रास जीवणै न काई—रा.रू.

अथूळ–वि०—१ स्थूल. [सं० अ+स्थूल] २ जो स्थूल न हो।

अथोग–वि०—अथाह, अपार। उ०—पाळो पड़ै **अथोग**, झड़ै लासूड़ा नीचै—दसदेव।

अदंक–सं०पु० [सं० आतंक] भय, डर, आतंक।

अदंग–वि० [सं० अदग्ध] १ बेदाग, शुद्ध, निर्दोष. २ बहुत घबराया हुआ. ३ अत्यधिक आश्चर्यान्वित।

अदंड–वि० [सं०] १ जो दंड के योग्य न हो अथवा जिसे दंड न दिया जा सके, अदंडनीय. २ जिस पर किसी प्रकार का कर न लगे, कर-रहित. ३ निर्भय।
सं०स्त्री०—बिना मालगुजारी की अथवा माफी की भूमि।

अदंडनीय, अदंडमांन, अदंड्य–वि० [सं०] १ जो दंड पाने के योग्य न हो. २ दंड से मुक्त. ३ करमुक्त. ४ निर्भय।

अदंत–वि० [सं०] १ बिना दांत का, जिसके दांत न निकले हों. २ दुध-मुहां. ३ अति वृद्ध जिसके दांत न हों. ४ बिना युवावस्थासूचक दांतों वाला ऊंट।
सं०पु०—वह ऊंट जिसके युवावस्थासूचक दांत न निकले हों।

अदंतर–वि० [सं० अर्द्ध+अंतर] ऊंचा, मध्य में।

अदंतिका–सं०स्त्री०—एक देवी का नाम—बां.दा. ख्यात।

अदंद–वि० [सं० अद्वन्द्व] निर्द्वन्द्व, बाधारहित, शांत।

अदंभ–वि० [सं० अ+दंभ] बिना किसी आडंबर के, सच्चा, निश्छल, स्वाभाविक, स्वच्छ, शुद्ध।
सं०पु०—शिव।

अदंस–वि० [सं० अ+दंश] जो दंशा न गया हो, बिना काटा हुआ, घावरहित।

अद–सं०पु० [सं०] १ भोजन, आहार. (डि.को.) २ प्रतिष्ठा।

अदकर–वि०—१ प्रौढ़, अधेड़. २ अर्धभाग का, आधा।

अदकालौ–वि०—बेसमझ।

अदक्ष–वि० [सं० अ+दक्ष] जो चतुर न हो, जो निपुण न हो।

अदखड़–वि०—देखो 'अदकर' (रू.भे.)

अदखिण–वि० [सं० अर्द्ध+क्षण] थोड़ा समय, अल्पकाल।

अदग–वि०—१ बेदाग, निष्कलंक, शुद्ध। उ०—दिन जीतणौ संसार देखतां रण जीतणौ सिधवै राग, दाग **अदग** खग त्याग देवड़ौ, देवड़ौ गयौ अदागे दाग—जाडोजी महडू। २ निरपराध. ३ अछूता. ४ अस्पष्ट. ५ बचा हुआ।

अदगध–वि० [सं० अ+दग्ध] १ जो दुखी न हो, सुखी. २ जो दग्ध या जला न हो।

अदगावळो, अदगावळौ–वि०पु० (स्त्री० अदगावळी) १ अंगविहीन, विकृत अंग वाला. २ निकम्मा. ३ नपुंसक।

अदगेलो, अदगेलौ–वि० (स्त्री० अदगेली) १ पागल. २ मूर्ख।

अदठ–वि०—कृपण, कंजूस। उ०—इळ अणबूठै कसौ अंबहर, अनड़ अदठ नै उहवै आय—महाराणा लाखा री गीत।

अदत–वि०—कृपण, कंजूस। उ०—अदता टांणा ऊपरै, नांणां खरचै नांहि—बाँ.दा.।

अदतार, अदतारौ–वि०—कृपण, कंजूस (मि. अदत)
उ०—आवै केइक बीतिया, अणचीतिया अनेक। वळै सलब्भा होय सब, उर अदतारां छेक—बाँ.दा.।

अदती–सं०स्त्री० [सं० अदिति] १ प्रकृति. २ पृथ्वी. ३ दक्ष प्रजापति की कन्या जो देवताओं की माता है. ४ अंतरिक्ष. ५ माता-पिता।
सं०पु० [सं० आदित्य] ६ अदिति के पुत्र यथा सूर्य, इन्द्र, वामन, वसु और हिरण्यकश्यपु।

अदतीपूत, अदतीसुत–सं०पु० [सं० अदिति+पुत्र] अदिति के पुत्र—१ हिरण्यकश्यपु, २ देवता, ३ सूर्य (डिं.को.)

अदतेव–सं०पु०—देवता, सुर (अ.मा.)

अदतो–वि०—कृपण, कंजूस (मि. 'अदत' रू.भे.)

अदत्त–वि० [स०] १ न दिया हुआ, असमर्पित, अप्रतिपादित. २ वह वस्तु जिसके दिये जाने पर भी लेने वाले को लेने और रखने का अधिकार न हो (स्मृति). ३ कृपण, कंजूस। उ०—ऊंमर लग ऊधार री, बांण न छोड़ै बत्त। जोर फिरावै जाचकां ऊधारियो अदत्त।
—बाँ.दा.

अदत्तदांन—सं०पु०—बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण, अपहरण, चोरी।

अदत्तू–वि०—कृपण, कंजूस (रू.भे. अदत)

अदन–सं०पु० [सं० अद्+भक्षणे] १ भक्षण, भोजन, जेवनार, आहार, खाना. [सं० अ+दिन] २ बुरा समय, कुदिन, आपत्तिकाल।
उ०—करि बेड़े बरबाद, बाद बारूद उडाये। हम तुम जुट्टे तदन, अदन अहिमति उर छाये—ला.रा.। [अ०] ३ अरब के किनारे पर एक बंदरगाह व नगर, जहां ईश्वर ने आदम को रक्खा था। यह स्वर्ग का उपवन भी माना जाता है।
वि०—हतभाग्य। उ०—तिके पातां भड़ां अदन मुरधर तणै, पाट रा थंभ रिण वाट पड़िया—पहाड़खां आढ़ो।

अदनबदन–क्रि०वि०—इधर, उधर (लो.गी.)

अदनासियो–वि०—१ दुखी, खिन्न चित्त. २ दुष्ट. ३ शत्रु।

अदनीचीज–वि०—छोटी व तुच्छ वस्तु (डिं.को.)

अदनो, अदनोह–वि० [अ० अदना] (स्त्री० अदनी) १ तुच्छ, साधारण। उ०—दोलत आंणै दूर सूं, अंग बणै अदनाह। बड़ा प्रपंची बांणिया, बाघ गऊ बदनाह—बाँ.दा.। २ क्षुद्र, नीच। उ०—बडा पुरुख री बांण अदना रो आदर करै, मोछां रा एलांण सुभता बोलै बकरिया—मोहनलाल साह।

अदन्न–सं०पु० [सं० अदिन] बुरा दिन, कुदिन, आपत्तिकाल (रू.भे. अदन)
उ०—मो काके पतरी मरण, श्री किम थयो अदन्न। रिप किण कारण राज नै जींद दियौ जामन्न—पा.प्र.।

अदपत, अदपति, अदपती–सं०पु० [सं० अधिपति] देखो 'अधिपति'।
उ०—१ जगत रो 'मोकम' जिसौ ओठम कुळ अदपत।
—किसनजी दधवाड़ियौ
२ अमर तेतीस कोड़तणी अदपती मदपती डोळ भुलै मुरारी।
—श्री किसन भगवांन री गीत

अदफर–सं०पु०—१ पहाड़ के मध्य का हिस्सा (मि. 'अधफर' रू. भे.)
२ बालू रेत के टीबे के मध्य का हिस्सा।
[सं० अधर] ३ अधर. ४ अंतरिक्ष. ५ बीच, मध्य।
क्रि०वि०—१ बीच में. २ आधी दूरी पर।

अदब–सं०पु० [अ०] १ शिष्टाचार, कायदा. २ आदर-सम्मान, मान, प्रतिष्ठा. ३ लिहाज।

अदबदाकर–क्रि०वि०—१ हठ करके. २ अवश्य।

अदबिच–क्रि०वि०—बीच में, मध्य में।

अदबिचलो, अदबिचलौ–वि०—बीच का, मध्य का। उ०—नां नारी नां नाह, अदबिचला दीसै अपत। कारज सरै न काय, रांडोल्यां सूं राजिया।
—किरपाराम

अदबी–वि०—अदब-कायदा संबंधी।

अदबै–क्रि०वि०—संभवतया, अपेक्षाकृत (द.दा.)

अदब्भुत–वि० [सं० अद्भुत] अद्भुत, विलक्षण, विचित्र।
(रू.भे. अदभुत)

अदभुज–सं०पु० [सं० उद्भिज] वृक्ष, पेड़ (अ.मा.)
वि० [सं० अद्भुत] अद्भुत, विचित्र (रू.भे. अदभुत) उ०—अति प्रगट रस थुड़ डाळ अदभुज गाय अतिरंग आदरे—रा.रू.।

अदभुत, अदभूत–वि० [सं० अद्भुत] १ अद्भुत, विलक्षण, विचित्र, अनोखा। उ०—दान सरीखौ दूसरौ औखद नह अदभूत। हेक थकौ सारा हरै, महारोग मजबूत—बाँ.दा.। २ सुंदर (अ.मा.)
३ विस्मय, आश्चर्य. ४ काव्य के नौ रसों के अंतर्गत एक रस विशेष जिसमें अनिवार्य विस्मय की पुष्टता होती है। इसका आलंबन अलौकिक पदार्थ, उद्दीपन, उसके गुणों का वर्णन तथा अनुभाव संभ्रमादिक है।

अदभुतता–सं०स्त्री० [सं० अद्भुतता] विचित्रता, अनोखापन।

अदभुतालय–सं०पु० [सं० अद्भुतालय] अजायबघर।

अदभ्र–वि०—बहुत, अधिक, अपार।

अदम–वि० [सं०] १ दमनरहित, इन्द्रिय-निग्रह न करने का भाव।
[रा०] २ स्वतंत्र, स्वाधीन। [सं० अदम्य] ३ जिसका दमन न हो सके, प्रचंड, प्रबल। उ०—अदमां दामणी छांन मांनांमणी सचाई।
—बखतो खिड़ियो

अदमपैरवी–सं०स्त्री० [फा०] किसी मुकदमे में आवश्यक कार्यवाही न करने का भाव ।

अदमसबूत–सं०पु० [फा०] प्रमाणाभाव, सबूत का अभाव ।

अदमहाजरी–सं०स्त्री० [फा०] अनुपस्थिति ।

अदमु–वि० [सं० अदम्य] १ देखो 'अदम्य' [रा०] २ छोटा, तुच्छ. ३ नीच ।

अदमोलौ–वि०यौ० [सं० अर्द्ध+मूल्य] आधे मोल का ।

अदम्य–वि० [सं०] जिसका दमन न हो सके, प्रचंड, प्रबल ।

अदय–वि० [सं०] दयारहित, निर्दय, निष्ठुर ।

अदरंग–सं०पु०—घोड़े का एक रोग विशेष जिसके कारण से घोड़े का आधा अंग नष्ट हो जाता है । (शा.हो.)

अदर–सं०पु० [सं० अधर] १ देखो 'अधर'. [रा०] २ तीर, बांण (अ.मा.)

अदरक–सं०पु० [सं० आर्द्रक, फा० अदरक] एक प्रकार का पौधा विशेष जिसकी तीक्ष्ण और चरपरी जड़ मसाले और दवा के काम आती है ।

अदरकी–सं०स्त्री० [सं० आर्द्रक] वह टिकिया जो सोंठ और गुड़ मिला कर बनाई गई हो ।

अदरातियौ–सं०पु०—देखो 'अदरातियौ' ।

अदरस–वि० [सं० अदृश्य] अदृश्य, लुप्त, गायब, ओझल । उ०—अरम लगि पड़ि निहस ऊधस, सूर अदरस धूम सपरस—रा.रू. । (मि० 'अदरसणि')

अदरसण–सं०पु० [सं० अदर्शन] १ अविद्यमानता, असाक्षात्. २ लोप. ३ विनाश ।

क्रि०प्र०—करणौ-होणौ ।

अदरसणि–वि० [सं० अदृश्य] अदृश्य, लुप्त । उ०—ऊजळ अदरसणि निसि उजुयाळी, घणूं किसूं वाखांण घणै—वेलि. ।

अदरसणीय–वि० [सं० अ+दर्शनीय] १ जो दर्शन या देखने के योग्य न हो. २ बुरा, कुरूप, भद्दा ।

अदरांणौ–वि०—न अधिक पुराना और न नया (स्त्री० अदरांणी)

अदरा–सं०पु० [सं० आर्द्रा] आर्द्रा नामक एक नक्षत्र ।

अदरातियौ–सं०पु०—१ दामाद को अर्ध रात्रि में दूसरी बार खिलाया जाने वाला भोजन. २ किसी व्रत की पहली रात्रि को अर्धरात्रि के बाद किया जाने वाला भोजन (विशेषकर भाद्रपद शुक्ला तीज के पहले द्वितीया की रात्रि को व्रत करने वाली स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला भोजन). ३ वह व्यक्ति जो कुएँ द्वारा सींची जाने वाली कृषि भूमि पर पिछली रात्रि में कृषि सम्बन्धी कार्य करता हो ।

अदल–सं०पु० [अ०] न्याय, इन्साफ । उ०—राजा रांम री रसणांण, आलम अदल वरती आंण—र.रू. ।

वि०—१ बढ़िया । उ०—अदल लियौ बदळौ नकू राखी उधारी । —बां.दा.

२ मुख्य. ३ न्यायशील । उ०—सूरां तैं सूरा महापूरां से अदल । —रा.रू.

अदळद–वि० [सं० अ+दरिद्र] दारिद्र्य-रहित, धनवान । उ०—विप्र अदळद कीधा दुख वारे—रा.रू. ।

अदल-नसाफ–सं०पु०यौ० (अ० अदल+इंसाफ) अदल, इंसाफ, न्याय । उ०—सबळा पकड़ै जड़ै सांकळां, निबळां कीजै अदल-नसाफ । —जवानजी आढ़ौ

अदळबदळ–क्रि०वि० [अनु०] उलटफेर, हेरफेर, परिवर्तन ।

अदळिद्र–वि०—देखो 'अदळद' । उ०—अदळिद्र किया आसाउवां अभैसाह अजमाल रै—रा.रू. ।

अदळियापातसा–सं०पु०—देखो 'अदलीपातसा' ।

अदळी–वि० [सं० अ+दल] १ बिना पत्तों का. २ बिना सेना का ।

अदली, अदलीपातसा–सं०पु०—१ मस्त. २ ब्रह्मज्ञानी । उ०—अलख अदलीपातसा, कुण तौ जैवड़ा—केसोदास । [अ० अदली] ३ न्यायी ।

अदल्ल–सं०पु० देखो 'अदल' ।

अदव, अदवौ–वि०—१ कृपण, कंजूस । उ०—ऊंबाजळबळ कायरां, बिदरां कुळ बिवहार । नहीं दवां निरधूमतां, ज्यूं अदवां उपगार । —बां.दा.

२ बिना जला, अदग्ध ।

अदसेर–वि०—आधा सेर ।

अदसेरेक–वि०—आधा सेर के लगभग ।

अदस्टांण–सं०पु० [सं० अधिष्ठान] अधिष्ठान, नगर (अ.मा.)

अदांत–वि०—देखो 'अदंत' ।

अदांन–वि०—१ कंजूस, कृपण [सं० अ+फा० दाना] २ अनजान, नादान, नासमझ ।

अदांव–सं०पु० [अ० अ+दांव] १ बुरा दांव. २ असमंजस, कठिनाई ।

अदा–वि० [अ०] बेबाक, चुकता ।

सं०स्त्री०—१ हाव-भाव, नखरा. २ ढंग, तर्ज ।

अदाग, अदागी–वि०—१ बेदाग, साफ, निर्दोष, पवित्र, निष्कलंक । उ० —दिन जीतगौ संसार देखतां रण जीतगौ सिंधवै राग, दाग अदग खग त्याग देवड़ौ देवड़ौ गयौ अदागै दाग—जाडोजी महड़ू ।

२ संकेत चिन्ह रहित (पशु) । उ०—पमंग अदाग सुजस पड़ियागळ अकबर दळ रहियौ अगण । कळंक विना कुंभेण कळोधर, वाघ कळोधर कळंक विण—दुरसौ आढ़ौ ।

अदात, अदाता, अदातार–वि० [सं० अदाता] कृपण, कंजूस । (मि० अदत, अदतार)

अदाप–वि० [सं० अ+दर्प] दर्पहीन, निरभिमानी । उ०—वडा वडौ अभिमांन बिन, दांन महांन अदाप । महा वीर मन नांहि मद, तो घिन-धिन परताप—जैतदांन बारहठ ।

अदाब–सं०पु० [सं० अदब] देखो 'अदब' । उ०—आसीस नेक कहि कहि अदाब, सिरपाव साह बगसे सिताब—वि.सं. ।

अदावद, अदावदी–सं०स्त्री०—१ होड़, ईर्ष्या। उ०—तिण दावै सीसोदियां हाडां रै वैर पड़ियौ घणा दिन अदावद वुही। घणौ वैर धुखियौ—नैणसी। २ तर्क-वितर्क. ३ वैमनस्य, शत्रुता।

अदायगी–सं०स्त्री० [अ०] बेबाकी, चुकता।

अदाळत–सं०स्त्री० [अ० अदालत] १ न्यायालय, कचहरी. २ न्यायाधीश। यौ० [अदा+लत] ३ हाव-भाव दिखाने की टेव या आदत।

अदाळतदीवांणी–सं०स्त्री० [अ० दीवानी+अदालत] संपत्ति या स्वत्व संबंधी मामलों के निर्णय की कचहरी।

अदाळतफौजदारी–सं०स्त्री० [अ० अदालत+फा०फौजदारी] भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत अपराधों के मामलों के निर्णय की कचहरी।

अदाळत माल–सं०स्त्री० [अ०] लगान या मालगुजारी संबंधी मामलों का निर्णय करने वाली कचहरी।

अदाळति, अदाळती–वि० [अ० अदालत] न्यायालय संबंधी, अदालत सम्बन्धी।

अदाव–सं०पु०—कंजूस, कृपण, सूम। उ०—छत्र धारी बेहूं दातार सोभाग प्रथी सीस छायौ, धुधड़ै अदावां मांण हटायौ धींधींग।
—जवांनजी आढ़ौ

अदावत–सं०स्त्री० [अ०] शत्रुता, दुश्मनी, वैर, विरोध।

अदावती–वि० [अ० अदावत] शत्रु, विरोधी, द्वेषी।

सं०स्त्री०—शत्रुता, दुश्मनी।

अदावदी–सं०स्त्री० —देखो 'अदावदी' (रू.भे.)

अदावांन, अदावौ–वि०—१ नखरा करने वाला. २ कृपण, कंजूस।

अदाह–सं०स्त्री० [अ० अदा] १ हाव, भाव, नखरा. [सं० अ+दाह] २ दाह या जलनरहित।

अदिठ–वि०—अदृष्ट।

सं०पु०—ईश्वर।

अदिति–सं०स्त्री० [सं०] १ प्रकृति. २ पृथ्वी. ३ दक्ष प्रजापति की कन्या और कश्यप की पत्नी जो देवताओं की माता है—इन्हीं से वामन भगवान भी उत्पन्न हुए थे।

अदितिनंदन, अदितिसुत–सं०पु० यौ० [सं०] १ देवता. २ सूर्य।

अदिन–सं०पु० [सं०] बुरा दिन, संकटकाल, अभाग्य, बुरा समय।

अदिपुरख–सं०पु० [सं० आदि+पुरुष] आदिपुरुष, परमेश्वर।

अदियण–वि०—कृपण, कंजूस। उ०—अदियण दयण तणा जग इधका, वडा बोलवे किया वस—सांवळ बीठू।

अदिव्य–वि० [सं०] १ लौकिक, साधारण. २ बुरा।

सं०पु०—तीन प्रकार के नायकों में से एक, लौकिक नायक।

अदिव्या–सं०स्त्री० [सं०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक, लौकिक नायिका।

अदिस–वि०—दिशारहित।

अदिस्ट–वि० [सं० अदृष्ट] अदृष्ट, लुप्त।

अदिस्टी–वि०—१ अदूरदर्शी, मूर्ख. २ अभागा. ३ दृष्टिहीन।

सं०स्त्री०—१ बुरी दृष्टि. २ अंधापन. ३ अदूरदर्शिता।

अदीठ–वि० [सं० अदृष्ट, प्रा० अदिट्ठ] अदृष्ट, गुप्त, ओझल।

सं०पु०—१ मिटने या नाश होने का भाव। उ०—दीरघ पीठ भयंकर देतां धीठ गरळ घुमै अन धाव। रीर अदीठ हुवै प्रजळै रिम, रीझ गरीठ अवै भुज राव—क.कु.बो.। २ देखो 'अडीठ'।

अदीठ चक्कर–सं०पु०—दैवी प्रकोप, किस्मत का चक्कर। उ०—बेहुए जळ पीवै सीह बाकरी, पण नह दाखै जबरपणौ। वहै अदीठ चक्कर अणवारां, तो वाळा परताप तणौ—जवांनजी आढ़ौ।

अदीठि, अदीठी–सं०स्त्री० [सं० अ+दृष्टि] १ बुरी दृष्टि. २ अंधापन. ३ अदृष्टि।

अदीठौ–वि० [सं० अदृष्ट, प्रा० अदिट्ठ] अदृष्ट, लुप्त, ओझल।

अदीत–वि०—न दिया जाने वाला। उ०—अलीत अदीत अरीत अराह, असीत अभीत अगीत अगाह—ह.र.।

सं०पु०—१ देवता. २ इंद्र. ३ वामन. ४ वसु. ५ अदिति के पुत्र एक मुनि. [सं० आदित्य] ६ सूर्य। उ०—उर नभ जितै न ऊगमै औ संतोख अदीत। नर तिसना किसना निसा, मिटै इतै नेंह मीत—बाँ.दा.।

(यौ० अदीतवार)

अदीतवार–सं०पु० [सं० आदित्यवार] शनिवार के पश्चात् पड़ने वाला दिन। (मि० अदीत–६)

कहा०—१ आज सांप खायां अदीतवार कद आवै—समय या आवश्यकता पड़ने पर वस्तु न मिले तो बाद में उसकी प्राप्ति व्यर्थ है. २ सांप खाया नै अदीतवार कद आवै—अधिक पीड़ा या कष्ट में धैर्य्य धारण करना बहुत कठिन है।

अदीति–सं०स्त्री० [सं० अदिति] १ दक्ष प्रजापति की अदिति नामक कन्या. २ प्रकृति. ३ पृथ्वी। (मि० अदिति–रू.भे.)

अदीतिनंदण, अदीतिसुत, अदीतीसुत–सं०पु०यौ० [सं० अदितिसुत] १ देवता (नां.मा.) २ सूर्य्य।

अदीन–वि० [सं० अ+दीन] १ धनवान, संपन्न। उ०—देख काळ दीन कौं अदीन कौ उरघौ। नांम ही गरीब के निवाज कौ धरयौ—ऊ.का.। [अ० अ+दीन] २ नास्तिक. ३ अनम्र, उग्र, अविनीत।

अदीयण–वि०—न देने वाला, कृपण, कंजूस।

अदीस्टं, अदीस्ठे–वि० [सं० अधिष्ठित] अधिष्ठित। उ०—कूं कूं भरीय कचोळड़ी, बाधन-सेज अदीस्ठे जाई—वी.दे.।

अदीह–सं०पु० [सं० अ+दिवस] रात दिन का न होना।

वि० [सं० अदीर्घ] जो लंबा न हो, छोटा।

अदुंद–वि० [सं० अद्वन्द्व, प्रा० अद्वन्द्व] १ द्वन्द्वरहित, निर्द्वंद्व, बाधारहित. २ शांत. ३ निश्चित. ४ अद्वितीय, बेजोड़. ५ कलहरहित, युद्धरहित। उ०—यी वरखा रित बोळवी, वीरां सरद अदुंद
—रा.रू.

अदुखति–वि० [सं० अदूषित] १ निर्दोष, शुद्ध। उ०—दिव्य कास्ट

खट जाति **अदूखति**, अगर कपूर घिरत जुत आहुति—रा.रू.। २ स्वतन्त्र।

अदुखन–वि० [सं० अदूषण] पवित्र, दोषरहित।

अदुतिय–वि० [सं० अद्वितीय] अद्वितीय, बेजोड़।

अदूंद–वि०—देखो 'अदुंद'

अदूर–क्रि०वि० [सं०] जो दूर न हो, निकट, पास, समीप।

अदूरदरसी–वि० [सं० अदूरदर्शी] दूर तक न सोचने वाला, स्थूल बुद्धि वाला, जो दूरंदेश न हो।

अदूरदरसीता–सं०स्त्री० [सं० अदूरदर्शिता] नासमझी, अदूरदर्शिता।

अदूसण–वि० [सं० अदूषण] निर्दोष, दोषरहित, शुद्ध, निष्पाप।

अदेख, अदेखी–वि०—१ जो देखा न गया हो. २ न देखने वाला. ३ छिपा हुआ. ४ अदृश्य, गुप्त. ५ ईर्ष्यालु।

अदेयदांन–सं०पु० [सं० अदेय+दान] अयोग्य व्यक्ति को दिया गया दान, अपात्र को दान।

अदेव–वि०—कृपण, कंजूस। उ०—मदमसत उडावै रेत करता मकर **अदेवां** तेथ घर दसत आवै—तिलोकजी बारहठ।

सं०पु०—१ मनुष्य। उ०—धड़ ऊपर सिर धारियौ जोध भलौ 'जगदेव', काट कंकाळी अप्पियौ, कीधौ देव **अदेव**—बाँ.दा.। २ मुसलमान. ३ वायु. ४ असुर, राक्षस (नां.मा.) ५ शिव, महादेव (क.कु.बो.)

अदेवाळ–वि०—१ नहीं देने वाला. २ कृपण, कंजूस। उ०—**अदेवाळां** दाझै छाती सांभळै कीरती हाका—अज्ञात।

अदेस–सं०पु०—१ अन्य देश, दूसरा देश, परदेश।

[सं० आदेश] २ आज्ञा, आदेश. ३ प्रणाम, दंडवत (साधु)।

अदेह–वि० [सं० अ+देह] १ बिना देह का, शरीररहित.

[रा०] २ नहीं देने वाला, कृपण, कंजूस।

सं०पु०—१ निषेधसूचक शब्द, नहीं। उ०—दाता सरबस दांन दे, ऊतर एक **अदेह**—बाँ.दा.। [सं० अ+देह] २ परब्रह्म. ३ कामदेव।

अदोख–वि० [सं० अदोष] १ निर्दोष, निष्कलंक. २ निरपराध. ३ निर्विकार।

सं०स्त्री०—अग्नि आग (ना.डि.को.)

अदोखी–वि० [सं० अ+दोष] १ निर्दोष, निरपराध. २ मित्र।

अदोड़ी–सं०स्त्री०—मरे हुए गाय या बैल का साफ-सुथरा किया हुआ आधा चमड़ा।

अदोत–सं०पु० [सं० उद्योत] १ प्रकाश. २ उन्नति, वृद्धि. ३ कांति, शोभा। उ०—धावै जळधरीपाव जोत रा धारणा धारै, वैरियां वतावै संज मौत रा वैताळ। जत्रां कत्रां सारां सारा डंभ तोतरा विलाय जावै, ताळै **अदोतरा** राजा घुरावै त्रंबाळ—मानसिंहजी रौ गीत।

वि०—१ प्रकाशित, दीप्त. २ शुभ्र, उत्तम। उ०—लीधां नांम नीठ नीठ अनेक जनमां लागां। अभै धांम पावै ठांम वैकूंठ **अदोत**।

—दादूपंथिया रौ गीत

अदोरो–वि०—जो आराम से हो, आनंदित।

अदोळी–सं०स्त्री०—१ तेल, घी, दूध आदि लेने के लिए छोटी कटोरीनुमा लोह का बना एक उपकरण जिसके एक पतला लंबा ऊंचाई की ओर छड़ लगा रहता है जो पकड़ने के काम आता है। २ कृषि में रबी की फसल में किया जाने वाला आधा हिस्सा. ३ देखो 'अदोड़ी'।

अदोस–वि०—देखो 'अदोख' (नं. १)

अदोसी–वि०—देखो 'अदोखी' (नं० १)

अदोह–सं०पु०—१ दुःख. २ शोक. ३ सोच, चिन्ता।

उ०—सुजांण बहोत **अदोह** कियौ—पलक दरियाव री बात।

४ पश्चाताप।

अद्दण–वि० [सं० अद्] खाने वाला (वं.भा.) उ०—'अजो' हुवौ दक्खिणदळ **अद्दण**—वं.भा.।

अद्ध–वि० [सं० अर्ध] आधा, अर्ध। उ०—दिन जुध अत लग्गौ दुसह, अर भग्गौ निस **अद्ध**—रा.रू.।

अद्धरयण–सं०स्त्री० [सं० अर्द्ध+रजनी] अर्धरात्रि, आधी रात्रि।

उ०—वनिता-पति विदेस गय, मंदिर-मझे **अद्धरयणी**। बाळा लिहइ भुयंगी, कहि सुंदरि, कवण वुज्झेण—ढो.मा.।

अद्धिकारी–सं०पु० [सं० अधिकारी] १ अधिकारी, स्वत्वाधिकारी. २ उत्तराधिकारी।

अद्धियावणी–वि०—भयानक, भयंकर। उ०—उमड घटा **अद्धियावणी**, बीज छटा छिबवाह। विस जिमड़ी लागै बुरी, निस पावस विण नाह।

—र. हमीर

अद्धी–सं०स्त्री०—अर्धरात्रि। उ०—**अद्धी** के घरियार पें चर पत्र लगाया—वं.भा.।

अद्धो–सं०पु० [सं० अर्द्ध] १ किसी वस्तु का आधामान. २ वह बोतल जो पूरी बोतल की आधी हो।

अद्धोरुक–सं०पु०—लहंगा। उ०—यो **अद्धोरुक** उल्लसे यां दस दिपाया। यों आहूत बिमांन के यां बाजि मँगाया—वं.भा.।

अद्य–क्रि०वि० [सं०] अब, आज, अभी।

अद्याप, अद्यावधि–क्रि०वि०—आज तक। उ०—अर वैताळ रा कीधा वाणी विलास नीतिसार प्रमुख ग्रंथ **अद्यावधि** चतुरां रा चित्त हरै।

—वं.भा.

अद्यूत–वि०—अद्वितीय। उ०—सोदागर मारवणी नै माहा **अद्यूत** देवंगना जिसी देखनै कह्यौ—ढो.मा.।

अद्र–सं०पु० [सं० अद्रि] १ पर्वत, पहाड़। उ०—महा बेग बहिया गनीम **अद्र** तणे माथै—तेजरांम आसियौ। २ सूर्य. ३ वृक्ष (नां.मा.)

अद्रक–सं०स्त्री० [सं०] देखो 'अदरक'।

अद्रको–सं०पु०—भय, डर, आतंक। उ०—छूट मल सुणै उम्मेद धारा डंका, रिमां घर **अद्रका** पड़ै राजा—उम्मेदसिंह सीसोदिया रौ गीत।

अद्रजा–सं०स्त्री० [सं० अद्रिजा] १ गिरिजा, पार्वती (डिं.को.) २ गंगा।

अद्रनि–सं॰पु॰ [सं॰ अद्रि] पर्वत, पहाड़ । उ॰—किधौं कुळ **अद्रनि** इंद्र हकारी, किधौं कुळ कद्रु निपै पनगारि—ला.रा. ।

अद्रमणी–वि॰स्त्री॰ (पु॰ अद्रमणौ) १ भयानक, भयंकर, भीषण । उ॰—गोड़ करती घणी ढाहती मीरजां, उलट सुज पलट वहती वधाई । असुर सुरग करै आज **अद्रमणी,** आवधां तणी एक नदी आई—महाराजा अभयसिंह री गीत । २ उदासीन ।

अद्रस्ट–वि॰ [सं॰ अदृष्ट] १ न देखा हुआ, अगोचर, अलक्ष. २ अंतर्द्धान, लुप्त ।

सं॰पु॰—१ भाग्य, किस्मत. २ अग्नि और जल आदि से उत्पन्न होने वाली आपत्ति. ३ दुर्भाग्य. ४ प्रकृतिजन्य उत्पात ।

अद्रस्टपुरख, अद्रष्टपुरस–सं॰पु॰ [सं॰ अदृष्टपुरुष] १ किसी कार्य में स्वयंमेव कूद पड़ने वाला. २ बिना बनाए बनने वाला. ३ ईश्वर ।

अद्रस्टपूरब, अद्रस्टपूरव–वि॰ [सं॰ अदृष्टपूर्व] १ जो पहले न देखा गया हो. २ अद्‌भुत, विलक्षण. ३ धर्माधर्म की संज्ञा (नैयायिक), अदृष्ट आत्मा का धर्म (वैशेषिक), बुद्धि धर्म (सांख्य पातंजलि)

अद्रस्टफळ–सं॰पु॰ [सं॰ अदृष्टफल] १ पूर्वकृत कर्मों के फल, यथा सुख, दुख आदि. २ अज्ञात परिणाम ।

अद्रस्टवाद–सं॰पु॰ [सं॰ अदृष्टवाद] परलोकादि परोक्ष बातों का निरूपण करने वाला सिद्धांत ।

अद्रस्टवादी–सं॰पु॰—अदृष्टवाद को मानने वाला ।

अद्रस्टौ–सं॰पु॰ [सं॰ अदृष्ट] जो देख न सके. २ देखो 'अदृष्ट' ।

अद्रस्य–वि॰ [सं॰ अदृश्य] १ जो दिखाई न दे, अलख. २ इन्द्रियों से जिसका ज्ञान न हो सके, अगोचर. ३ लुप्त, गायब ।

अद्राजणौ, अद्राजबौ–क्रि॰अ॰—नगाड़ा बजना । उ॰—देखै जोम भाजै अरी **अद्राजै** दमांम—अज्ञात ।

अद्रि–सं॰पु॰—देखो 'अद्री' (वं.भा.)

अद्रिन–सं॰पु॰ [सं॰ अद्रि] पहाड़, पर्वत (रू.भे. अद्रनि)
उ॰—मुनि सिंधुनि तोय ततौ उछरै, डुलि दीरघ **अद्रिन** अंग भिरै —ला.रा. ।

अद्रियांमणी, अद्रियांमणौ–वि॰—१ भयंकर, भयानक । (मि॰ अध्रियांमणौ रू.भे.) २ उदासीन ।

अद्रिस्ट–वि॰ [सं॰ अदृष्ट] देखो 'अद्रस्ट' (रा.रा.)

अद्री–सं॰पु॰ [सं॰ अद्रि] १ पर्वत, पहाड़ (अ.मा.) २ वृक्ष (अ.मा.) ३ सूर्य ।

अद्रियांमणौ–वि॰ (स्त्री॰ अद्रीयांमणी) भयानक, भयावना । (मि॰ अध्रियांमणौ रू.भे.) उ॰—सहर जोध सुहावणौ जोधांण 'मांन' लागै जको, आज घणू **अद्रीयांमणौ**—बुधजी आसियौ ।

अद्वितिय, अद्वितीय, अद्वीत–वि॰ [सं॰ अद्वितीय] १ जिसके समान दूसरा न हो, बेजोड़, अनुपम, विलक्षण, अतुल्य । उ॰—१ जिसौ रांम पुर जनक दरसि अभिरांम **अद्वितिय**—रा.रू. । उ॰—२ अभैशाह **अद्वीत** ईश्वर समांन । —रा.रू.
२ एकाकी, अकेला. ३ प्रधान, मुख्य ।

अद्वेत–वि॰—देखो 'अद्वैत' ।

अद्वेतवाद–सं॰पु॰—देखो 'अद्वैतवाद' ।

अद्वेस–वि॰ [सं॰ अ+द्वेष] द्वेषरहित ।

अद्वैत–वि॰ [सं॰] १ एकाकी, अकेला. २ अनुपम, बेजोड़ ।
सं॰पु॰—१ भेदरहित, द्वैतरहित. २ शंकराचार्य का मत जो वेदांत के आधार पर है और जिसके अनुसार जीव और ब्रह्म में भेद नहीं, दोनों एक हैं, संसार मिथ्या है, व ब्रह्म ही सत्य है. ३ ब्रह्म, सत्य ।

अद्वैतवाद–सं॰पु॰—देखो 'अद्वैत' (सं पु॰ २)

अधंतर–सं॰पु॰—आकाश, आसमान । उ॰—गिरमेर ठेल देहूं गुडाय, **अधंतर** डिगतौ लेउं उठाय—शि.सु.रू. । २ सुमेरु पर्वत ।

अधंस–सं॰पु॰ [सं॰ अध्वंस] ध्वंस या नाशरहित ।

अध–अव्यय [सं॰ अध] १ नीचे, तले, नीचे की ओर ।
वि॰ [सं॰ अर्द्ध, प्रा॰ अद्ध] १ 'आधा' शब्द का सूक्ष्म रूप, आधा. २ तुल्य या सम (भाग)
सं॰पु॰—तल, पाताल, नीचे की ओर की दिशा ।

अधआंनौ–सं॰पु॰—अधन्नी, दो पैसों के बराबर का सिक्का (पुराना)

अधक–वि॰ [सं॰ अधिक] अधिक, बहुत ।

अधकचरियौ, अधकचरौ–वि॰पु॰ (स्त्री॰ अधकचरी) १ अधूरा. २ आधा कुटा, पिसा, दरदरा, आधा कुचला हुआ ।

अधकच्चौ–वि॰—अधकच्चा, अपरिपक्व ।

अधकणौ, अधकबौ–क्रि॰अ॰—अधिक होना ।
अधकणियौ–वि॰ ।
अधकिओड़ौ, अधकियोड़ौ, अधक्योड़ौ–भू॰का॰कृ॰—अधिक हुआ हुआ ।

अधकपाळी–सं॰स्त्री॰—आधे शिर का दर्द, इस रोग में शिर में केवल बायीं ओर अथवा दायीं ओर आधे भाग में बड़े जोर का दर्द रहता है । सूर्यावर्त्त ।

अधकमास–सं॰पु॰—देखो 'अधिकमास' ।

अधकर–सं॰पु॰—देखो 'अदकर' (रू.भे.)

अधकांणी–वि॰—बहुत, अधिक । उ॰—बाणी ब्रिथा हुवै रै बीरा, चित **अधकांणी** चिंता—र.रू. ।

अधकाई–सं॰स्त्री॰—१ अधिकता, बाहुल्य । उ॰—ज्याग हूंता **अधकाई** सवाई दिखाई जुधां, छांगिया रवते खळां बाजूजळां छेक, ताखा तणौ आखौ वंस आसती बचायौ तेण, आसुरांण जीवतौ न जाण पायौ एक—खीमराज बारहठ । २ महिमा, बड़प्पन ।

अधकायोड़ौ–भू॰का॰कृ॰—अधिक हुआ हुआ (स्त्री॰ अधकायोड़ी)

अधकार–सं॰पु॰ (सं॰ अधिकार) १ विशेषता. २ मान, प्रतिष्ठा. ३ देखो 'अधिकार' ।

अधकारी–सं॰पु॰—देखो 'अधिकारी' । उ॰—**अधकारी** असुरां तणां, सुण धूजिया सरब्ब—रा.रू. ।

अधकारौ-सं०पु०—१ विशेषता. २ अधिकता. ३ मान, प्रतिष्ठा. ४ प्यार। उ०—सगळा मूंडौ मचकोळ'र कैता—बैन री **अधकारौ** इज घणौ माथै चाढ़ने—वरसगांठ।

अधकालौ-वि०—१ बेसमझ, मूर्ख. २ आधा पागल।

अधकाव-वि०—अधिक, ज्यादा। उ०—सुजड़ **अधकाव** जड़ कुरड़ परवाह सक, दूठ उमरड़ सत्रां होम देहा—करणीदान कवियौ।

अधकावणौ, अधकाववौ-क्रि०स०—अधिक करना।

अधकि-सं०स्त्री०—अधिकता, विशेषता।

अधकी-वि०—देखो 'अधिक'।

अधको-वि०—विशेष, अधिक। उ०—हालियौ हंस साथै कियो 'हरा' री, हुते सुत 'मदा' री घणौ **अधको**—पहाड़खां आढ़ौ।

अधकोड़ौ-वि०—अधिक, बहुत।

अधकोस-सं०पु०—एक मील, दूरी का एक माप।

अधकोसेक-वि०—एक मील के लगभग।

अधक्ख-सं०पु० [सं० अध्यक्ष] स्वामी, मालिक, नायक, सरदार, अधिष्ठाता। (देखो 'अध्यक्ष')

अधखड़-सं०पु०—देखो 'अदखड़'।

अधखण-सं०पु० [सं० अर्द्ध+क्षण] आधे क्षण का समय।
वि०—अधेड़।

अधखरी-वि०—अर्द्धरात्रि सम्बन्धी। उ०—सुख सूं बाजी सदन में सायंकाळ विचाळ वीजी खीची रै बुरी **अधखरी** घड़ियाळ—पा.प्र.।

अधखायौ-वि०—आधा खाया हुआ, आधा पेट।

अधखिलौ-वि० (स्त्री० अधखिली) आधा खिला हुआ, अर्द्ध विकसित।

अधखुलौ-वि० (स्त्री० अधखुली) आधा खुला हुआ।

अधगति, अधगती-सं०स्त्री० [सं० अधोगति] पतन, अधोगति, दुर्दशा, दुर्गति, अवनति।

अधगावळौ-वि० (स्त्री० अधगावळी) देखो 'अदगावळौ'।

अधगेलौ-वि० (स्त्री० अधगेली) देखो 'अदगेलौ'।

अधचरौ-वि०— आधा चराया हुआ, आधा खाया हुआ (चौपाया)

अधड़ची-सं०पु०—शत्रु, दुश्मन। उ०—भलौ रांण सगरांम इम **अधड़ची** मुख भणै, दुजडहत दससहंस बोल दीधौ।
—महारांणा सांगा री गीत

अधधपत-सं०पु० [सं० उदधि] सागर, समुद्र।

अधनो, अधनौ-वि०—अयोग्य, छोटा। उ०—क्या करंता क्या करै, हस्ती मार गरद में धरै। सुख जाके सपने नहीं, ता **अधना** सिर छत्र धरै।
—पलक दरियाव री बात

अधन्नी-सं०स्त्री०—आधे आने का सिक्का (पुराना)

अधप-सं०पु०—१ भूखा सिंह। [सं० अधिप] २ पति, स्वामी, मालिक. ३ राजा. ४ प्रभु. ५ सरदार (अ.मा.)
वि०—अतृप्त। उ०—मांन तण तणौ खग **अधप** अण माप।
—अज्ञात

अधपई-सं०स्त्री०—देखो 'अधपाई'।

अधपत-सं०पु०—देखो 'अधिपति'। उ०—आया अन **अधपत** आह्वान, भोपत भोयंग हुआ बळ भंग। रहियौ रांण खत्री ध्रम राखण, स्वेत उरंग कळोधर संग—दूरसौ आढ़ौ।

अधपतण, अधपतन-सं०पु० [सं० अध:पतन] नीचे गिरना, अवनति, अध:पात, दुर्दशा, दुर्गति।

अधपति, अधपती, अधपत्त,अधपत्ती-सं०पु०—देखो 'अधिपति' (डिं.को.)
उ०—आज रजपूत तणौ पंथ चूकिया **अधपति**, जुगां लग जिकी नह बात जासी—गोपालदांन खिड़ियौ।

अधपाई-सं०स्त्री०—एक सेर का आठवां भाग या उसके तौल की माप. २ छटांक का बाट (रू.भे. अधपई)

अधपात-सं०पु०—देखो 'अधपतन'।

अधप्पत-सं०पु०—देखो 'अधिपति'। उ०—दखै कर हाक सबै सिरदार, **अधप्पत** अग्र ग्रहौ असवार—पा.प्र.।

अधफर, अधफरौ-सं०पु०—देखो 'अदफर'। उ०—लोहरां लंगरां झाट लाग **अधफरां** गिरां तर झड़ै आग—वि.सं.।

अधबिच-क्रि०वि०—मध्य में, बीच में। उ०—आडौ समद अथाह, **अधबिच** में छोडी अठै कहौ जी कारण काह, जोगण करगौ जेठवा।

अधबिचलौ-वि०—बीच का, मध्य का (रू.भे. अदबिचलो)

अधबीच-क्रि०वि०—देखो 'अधबिच'।

अधबीठौ-वि०—१ अपूर्ण, कोई कार्य या वस्तु का पूर्ण न होना. २ पृथक, भिन्न। (स्त्री० अधबीठी) (रू.भे. 'अदबीठो')

अधबुध-वि० [सं० अर्द्ध+बुध=ज्ञान] अर्द्ध शिक्षित।

अधबूढ़-वि०—अधेड़, प्रौढ़।

अधभुत-वि०—देखो 'अदभुत' (रू.भे.)

अधम-वि० [सं०] १ नीच, निकृष्ट, बुरा। उ०—मोटां तणौ प्रसाद कहै महि, ऐठौ आतम सम **अधम**—वेलि.। २ पापी, दुष्ट।
उ०—धन दिवस आवण हुऔ **अधमां** करण पावन काज—रा.रू.।
३ निंदित।
सं०पु०—वह घोड़ा जिसका आधा रंग उसके शेष आधे रंग से भिन्न हो (अशुभ)—शा.हो.

अधमई-सं०स्त्री०—नीचता, अधमता।

अधमउधारण-सं०पु० [सं०अधम+उद्धारण] १ पतितों का उद्धार करने वाला. २ विष्णु, ईश्वर (डिं.को.)

अधमता-सं०स्त्री० [सं०] अधम का भाव, नीचता, खोटाई, खोटापन, तुच्छता।

अधमरति-सं०स्त्री०—मतलब का प्रेम।

अधमरियौ, अधमरौ-वि०—अधमरा, मृतप्राय। उ०—**अधमरियां** प्रांण मती तड़फा, सूळी पर सेज चढ़ाती जा। चूंदड़ी री एक झपेटौ दै, ए लिछमी दीप बुझाती जा—रेवतदांन।

अधमा–सं०स्त्री०—१ नायक या नायिका को कड़ी व कटु बातें कह कर संदेशा पहुँचाने वाली दूती. २ प्रिय या हितकारी नायक के प्रति भी अहित या बुरा व्यवहार करने वाली स्त्री।
वि०स्त्री०—अधम, नीच (मि० 'अधम')

अधमाई–सं०स्त्री०—नीचता, अधमता।

अधमादूती–सं०स्त्री०—देखो 'अधमा' (१)

अधमाधम–वि० [सं०] बहुत नीच, अधम से अधम।

अधमींचौ–वि०—आधी मींची हुई (आँखें), अर्द्ध उन्मीलित।
उ०—छिली रहै जळ छाक मिळी आंख्यां अधमींची—ऊ.का.।

अधमुऔ, अधमुवौ–वि०—अधमरा। उ०—जे भूंडरा रै धकै चढ़ै सौ जमपुरी जावै, नै चीलहरां रै धकै चढ़ै जिका जखमी अधमुवा हुइ जावै—डाढ़ाळ सूर री बात।

अधमोलौ–वि०—देखो 'अदमोलौ'।

अधरंग–सं०पु०—देखो 'अदरंग'।

अधर–सं०पु० [सं०] १ नीचे का होठ (अ.मा.)
पर्याय०—ओट, ओठ, ओपवरणत, ओस्ट, दांतबसन, मुखअग्र, मुखरूप, रदघर, रदछद, रदछदन, रदडसरा, रदधर, रदनछद, रदनसदन, होट, होठ आदि।
२ बिना आधार का स्थान. ३ अंतरिक्ष. ४ अधस्थल. ५ जो पकड़ में न आवे।
स्त्री०—६ आग, अग्नि (ना.डिं.को.)
क्रि०वि०—बीच में, मध्य में।
वि०—लाल, रक्तवर्ण* (डिं.को.)

अधरक-सं०स्त्री०—देखो 'अदरक' (रू.भे.)

अधरज–सं०पु० [सं० अधर+रज) ओठों की ललाई।

अधरत-सं०स्त्री० [सं० अर्द्ध+रात्रि] निशीथ, मध्यरात्रि।
उ०—अधरत री उतपात, वावळ कांठळ सूं वरणी। विजखै वदन वरात, आंरण वाग मझ ऊतरी—पा.प्र.

अधरतियौ–सं०पु०—देखो 'अदरातियौ'।

अधरपांन–सं०पु० [सं० अधरपान] सात प्रकार की बाह्यरतियों के अंतर्गत एक रति, ओठों का चुम्बन।

अधरबंब–क्रि०वि०—न नीचे न ऊपर, न इधर न उधर. त्रिशंकु, अधर।
उ०—वे ऊंधा लटकै अधरबंब, नहिं झेलै अंबर नै धरती—रेवतदांन।

अधरबिंब–सं०पु०—बिंबफल के समान लाल ओठ।

अधरबुधी–वि० [सं० अधर+बुद्धि] नासमझ, मूर्ख।

अधरम–सं०पु० [सं० अधर्म] अधर्म, पाप, दुष्कर्म, धर्मविरुद्ध कार्य, अन्याय। उ०—सरम सांमध्रम हूंत सपग्गो, अधरम हूंता रहै अलग्गो—रा.रू.।

अधरमकाय–सं०पु० [सं० अधर्मास्तिकाय] १ पाप, अधर्म. २ द्रव्य के छः भेदों में से एक (जैनशास्त्र)

अधरमधु–सं०पु० [सं०] अधररस, अधरामृत।

अधरमाचार–सं०पु० [सं० अधर्म+आचार] दुष्कर्म, अधर्म, अधर्म का व्यवहार।

अधरमाचारी–वि० [सं० अधर्माचारी] नीच आचार वाला, दुष्कर्मी।

अधरमातमा–वि० [सं० अधर्मात्मा] पापी, दुराचारी, अन्यायी।

अधरमी–वि० [सं० अधर्मी] पापी, दोषी, दुराचारी, अधर्मी।

अधरस–सं०पु०—देखो 'अदरस'।

अधरसण–सं०पु०—देखो 'अदरसण'।

अधरांणौ–वि०—न नया और न पुराना (वस्त्र)

अधराज–सं०पु०—देखो 'अधिराज'। उ०—असंभ गजराज अधपति घड़ ऊपरा बरूथौ मयंद अधराज बखतौ—महाराज बखतसिंह री गीत।

अधराजियौ–सं०पु०—१ देखो 'अधिराज'। २ आधे हिस्से का स्वामी। उ०—राज थंभ दिली रा हुता अधराजिया दिली रा छळ बाजिया तोम दुजड़ां—नबाब खांनदौरा री गीत।
३ शासक कुल का बड़ा सरदार, बड़ा जागीरदार।
उ०—मंडोवर तणा अधराजिया मेड़ते बाजिया दहूं धरती तणै बेध—पहाड़खां आढ़ौ।

अधरात, अधराति–सं०स्त्री० [सं० अर्ध+रात्रि] निशीथ, अर्द्धरात्रि।
उ०—बाळउँ बाबा देसड़उ, पांणी........। पांणी केरइ कारणइ प्री छंडइ अधराति—ढो.मा.।

अधरातियौ–सं०पु०—देखो 'अदरातियौ'।

अधराधर–सं०पु०—नीचे का होठ।

अधराम्रत–सं०पु०यौ० [सं० अधर+अमृत] अधरसुधा, ओठों का रस।

अधरैणी–सं०स्त्री० [सं० अर्द्ध+रजनी] अर्धरात्रि, निशीथ।
उ०—कमधज जीरण करावियौ, अधरैणी रै ऊठ—पा.प्र.।

अधल–सं०पु०—मुक्ति, मोक्ष, स्वर्ग। उ०—वीरबळ री जीव तन रूप मांगियोड़ी पड़दौ त्यज अधल पड़दा में दाखल हुवौ—बां.दा.।

अधलोक–सं०पु०—पाताल (अ.मा.)

अधव–सं०पु० [सं० अध्व] मार्ग, पथ, रास्ता।
सं०स्त्री० [सं० अ+धव] विधवा।

अधवर–सं०पु० [सं० अध्वर] यज्ञ (अ.मा.) (मि० अध्वर)

अधवसन–सं०पु०—१ अधोवस्त्र, नीचे का कपड़ा. २ साड़ी के नीचे पहनने का वस्त्र. ३ जांघिया (डिं.को.)

अधवा–सं०स्त्री० [सं० अ+धव+आ] १ विधवा। [सं० अध्वर] २ मार्ग, पथ, रास्ता (ह.नां.) (मि० 'अधव' रू.भे.)

अधवाचर–सं०पु०—भौंरा, भ्रमर (अ.मा.)

अधविच–क्रि०वि०—देखो 'अदबिच' (रू.भे.)

अधविचलौ–वि०—देखो 'अधबिचलौ'।

अधवीटौ, अधवीठौ, अधवीधौ–वि० (स्त्री० अधवीटी) अपूर्ण, असमाप्त। (रू.भे., अदबीठौ, अदबीटौ) उ०—रवि रथ रोक तमासै रीधौ, मिळ जोगरण पीधौ रुद्र मोद। वदै महेस हार अधवीधौ, सिर कुटका कीधौ सीसोद—महादांन महडू।

अघसाय–सं०पु०—श्रीकृष्ण (अ.मा.)

अघसिरौ–सं०पु०—सूर्यवंशी त्रिशंकु नामक एक राजा, देखो 'त्रिसुंक'।

अधसेर–सं०पु०—आधा सेर का बाट।
वि०—आधा सेर।

अधसेरेक–वि०—आधा सेर के लगभग।

अधसेरौ–सं०पु०—दो पाव का मान, आधे सेर का बाट।

अधांम–वि० [सं० अ+धाम] १ स्थानरहित. २ सर्वत्र मिलने वाला।
उ०—आरांम अजांम अयांम अपक्ख, अठांम अगांम **अधांम** अलक्ख।
—ह.र.
सं०पु०—परब्रह्म।

अधाक–सं०स्त्री—१ धाकरहित, आतंकविहीन।

अधाप–सं०पु० [सं० अधिप] राजा, नृप (अ.मा.)
वि०—अतृप्त। उ०—मोकळहरा **अधाप** मांमलां, पोरस धिनौ खत्री बट पांण—महारांणा सांगा रौ गीत।

अधायउ, अधायौ–वि० [सं० अ+धायौ रा०] १ अतृप्त, असंतुष्ट, भूखा।
उ०—फतमाला पीथल्ल का, पीथल पारथ अंग। तत्ता ताए लोह सम, सदा **अधाया** जंग—रा.रू.। २ बिना दौड़ा हुआ।
सं०पु०—भूखा सिंह।

अधायोड़ौ–वि०—१ तृप्त (स्त्री० अधायोड़ी)। २ भूखा, अतृप्त।

अधार–सं०पु० [सं० आधार] १ तल, आधार. २ अवलंब, सहारा।
उ०—चैत्र मासां चतुरंगी नारि। प्रीय विण जीवूं कवण **अधार**।
—वी.दे.
३ नींव, बुनियाद. ४ बिना आधार का स्थान, आकाश. ५ व्याकरण में अधिकरण कारक. ६ आत्मबल. ७ उपाय, तरकीब।
उ०—रांणी कह्यौ राजा रिखीस्वरां पासै पधारौ। रिखीस्वर कोई **अधार** करै—चौबोली।

अधारणौ, अधारबौ–क्रि०स०—१ धारण करना। उ०—अत असतुत धर परस **अधारै**, चले बिपिन तप चाहे—र.रू.। २ धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाना. ३ उठाये रखना।
अधारणहार-हारौ (हारी), अधारणियौ–वि०।
अधारीजणौ-अधारीजबौ–कर्म० वा०।
अधारिप्रोड़ौ-अधारियोड़ौ-अधारयोड़ौ–भू०का०कृ०।

अधारमिक–वि० [सं० अधार्मिक] १ पापी. २ दुष्ट. ३ नास्तिक. ४ धर्म से रहित।

अधारि–वि० [सं० आधार] देखो 'अधार'। उ०—तूं हिव पूगळ भणी पधारि, मारू जीवी मंत्र **अधारि**—ढो.मा.।

अधारियोड़ौ–भू०का०कृ०—धारण किया हुआ (स्त्री० अधारियोड़ी)

अधावणौ, अधावबौ–क्रि०अ०—१ दौड़ना. २ तृप्त होना।

अधावियोड़ौ–भू०का०कृ०—तृप्त (स्त्री० अधावियोड़ी)

अधि–उप० [सं०] शब्दों के पूर्व लगने वाला उपसर्ग जो ऊपर, ऊँचा आदि अर्थ ध्वनित करता है। इसका अपभ्रंश रूप राजस्थानी में अधपत, अधराज आदि में प्रयुक्त होता है।

अधिक, अधिकउ–वि० [सं० अधिक] १ बहुत, ज्यादा, विशेष।
उ०—प्रीय सुं **अधिकउ** प्रेम, रयणि दिवस रंगइ रमइ—ढो.मा.।
२ अतिरिक्त, फालतू. ३ घना, गाढ़ा।

अधिकत–वि०—अधिक, विशेष। उ०—जथा आप कविता जथा, कीरत पता कमंध। उभय संग मिळ **अधिकत**, सुवरन जथा सुगंध।
—जैतदांन बारहठ

अधिकतम–वि० [सं० अधिक+तम-प्रत्यय] अत्यन्त अधिक।

अधिकतर–वि० [सं० अधिक+तर-रा०प्र०] दूसरे की अपेक्षा अधिक, अति अधिक।
क्रि०वि०—प्रायः।

अधिकता–सं०स्त्री० [सं०] १ बहुतायत, विशेषता. २ बढ़ती, वृद्धि।

अधिकबंत, अधिकबंतौ, अधिकबंतौ–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा जो अशुभ माना जाता है (शा.हो.)

अधिकमास–सं०पु० [सं० अधिक+मास] प्रति तीसरे वर्ष होने वाला मास, मल मास, लौंद का महीना, शुक्ल प्रतिपदा से अमावस्या तक ऐसा काल जिसमें संक्रान्ति न पड़े।

अधिकरण–सं०पु० [सं०] १ कर्त्ता और कर्म द्वारा क्रिया का आधार, व्याकरण में सातवां कारक. २ पाँच अवयवों वाला वेदान्त के अनुसार वह प्रकरण जिसमें किसी सिद्धान्त पर विवेचना की जाय।

अधिकांस–सं०पु० [सं० अधिकांश] अधिक भाग।
क्रि०वि०—ज्यादातर, विशेषकर

अधिकाई–सं०स्त्री०—१ अधिकता। उ०—सिरै हूंत भड़ पंत सवाई, आदर अदब नीत **अधिकाई**—रा.रू.। २ महिमा, बड़प्पन।
उ०—धन-धन वाजै धिया वंस री वधै वडाई। आज अगन नह जळूं किसूं कुळ री **अधिकाई**—पा.प्र.। ३ विशेषता. ४ अधिकार।
उ०—परंतु आपरै रासि संचय करि सहायक नूं कण देण री **अधिकाई** मुणीजै—वं.भा.।

अधिकाधिक–वि० [सं०] अधिक से अधिक।

अधिकार–सं०पु० [सं० अधिक+कृ+घञ्] १ कार्यभार, आधिपत्य।
क्रि०प्र०—चलाणौ-देणौ-सूपणौ।
२ हक, स्वत्व।
क्रि०प्र०—देणौ-राखणौ।
३ सामर्थ्य, शक्ति. ४ जानकारी. ५ योग्यता।
६ कब्जा, दावा, प्राप्ति।
क्रि०प्र०—करणौ-जमाणौ।
७ प्रकरण।

अधिकारी–सं०पु० [सं० अधिकारिन्] १ स्वामी, स्वत्वधारी, हकदार (वं.भा.) २ योग्यता या क्षमता रखने वाला, उपयुक्त व्यक्ति.
३ नाटक का वह पात्र जिसे रूपक का प्रधान फल प्राप्त हो.
४ पुजारी, पंडा, स्थान या मठाधीशों के उत्तराधिकारी।

अधिकावणौ, अधिकावबौ–क्रि०स० [सं० अधिक] अधिक करना।

उ०—झळक गया घननूं झुरै, हया दया कर हीण। वित **अधिकाबे** वाणियौ, नांणौ लीण अलीण—बां.दा.।

अधिकाणौ-अधिकाबौ—(रू.भे.)

अधिकाविप्रोड़ौ-अधिकावियोड़ौ-अधिकाव्योड़ौ—भू०का०कृ०—अधिक किया हुआ।

अधिकि—वि० [सं० अधिक] अधिक (रू.भे.)

अधिको, अधिकौ—वि० [सं० अधिक] अधिक, बहुत (रू.भे)

उ०—ताहरां पंचां कह्यौ ईंडा ल्यायौ तेंरौ **अधिकौ** हैंमी—चौबोली।

अधिछिपत्र—वि०—तेंगड़ाया हुआ (डि.को.)

अधिटौ—सं०पु०—मध्य (रू.भे. आधेटौ)

क्रि०वि०—मध्य में, आधी दूरी पर।

अधिदेव, अधिदेवता—सं०पु० [सं०] (स्त्री० अधिदेवी) इष्टदेव, कुलदेव।

अधिदैव—वि० [सं०] दैविक, आकस्मिक।

अधिदैवत—सं०पु० [सं०] पदार्थ संबंधी विज्ञान विषय वा प्रकरण।

अधिनाथ—सं०पु० [सं०] सबका स्वामी, सरदार।

अधिनायक—सं०पु० [सं०] सरदार, मुखिया, प्रधान व्यक्ति।

अधिप—सं०पु० [सं०] १ स्वामी, मालिक. २ राजा। उ०—अग आडा जूझार, अकबर पग चांपै **अधिप**। गौ राखण गुंजार, पिंड में रांण प्रतापसी—दुरसौ आढ़ौ। ३ सरदार. ४ प्रभु, ईश्वर (डि.को.) (मि० अधिपति)

अधिपत, अधिपति—सं०पु० [सं०अधिपति] १ नायक, नेता, सरदार, मुखिया. २ मालिक, स्वामी, प्रभु, राजा। उ०—**अधिपति** काज करण चित उज्जळ। —रा.रू.

अधिमास—सं०पु०— देखो 'अधिकमास' (रू.भे.)

अधियांमण, अधियांमणी—वि०स्त्री०—१ नाशकारी, ध्वंसकारी, संहारक. २ भयंकर, भयावह। उ०—तांमस **अधियांमण** भूप तांम, रांमण जुध दीठा जांण रांम—वि.सं.।

अधियाळ—वि०—आधा, अर्द्ध। उ०—सौ **अधियाळ** सूंडाळ सांवठा, तैं दीधा 'कलियांण' तणा—महाराजा रायसिंह रौ गीत।

अधियावणो, अधियावणौ—वि०पु०—१ वीर, बहादुर। उ०—अठी कुळ उजाळण पाळ **अधियावणौ**, भुजाळ झालियौ हाथ भालौ—गिरवरदांन. २ भयंकर।

अधियौ—सं०पु०—१ अर्द्धभाग, आधा हिस्सा. २ गाँव में आधी पट्टी की जमीदारी. ३ खेती की एक रीति जिसके अनुसार उपज का आधा तो खेत के मालिक को और आधा श्रम करने वाले को मिलता है। ऐसे ही गाय के बच्चों के मूल्य का आधा गाय के मालिक को और आधा उसे चराने तथा रखने वाले को दिया जाता है। ४ आधी पट्टी का मालिक, आधे का हिस्सेदार।

अधिरति—सं०स्त्री०—अर्द्धरात्रि, मध्यरात्रि।

अधिरथ—सं०पु० [सं०] १ रथ हांकने वाला, सारथी. २ बड़ा रथ. ३ कर्ण के पिता का एक नाम।

अधिराज—सं०पु० [सं०] राजा। उ०—रांणनगर **अधिराज** हल्ल बिक्कम आयौ हरि—वं.भा.।

अधिरोहण—वि०पु०—१ चढ़ने वाला, सवार होने वाला. २ ऊपर उठने वाला।

सं०पु० [सं०] ऊपर चढ़ना या सवार होने का भाव।

अधिरोहणी, अधिरोहिणी—सं०स्त्री० [सं० अधिरोहिणी] सीढ़ी, निसैनी।

उ०—प्रामार रै साथ अरबुदाचळ जाय तत्काळ ही अनेक **अधिरोहिणी** लगाय दुरग रै अंतर पूगा—वं.भा.।

अधिलोक—सं०पु० [सं०] संसार, ब्रह्मांड।

अधिवर—सं०पु० [सं० अध्वर] यज्ञ, होम (ह.नां.)

अधिवास—सं०पु० [सं०] १ रहने का स्थान, निवासस्थान. २ सुगंध, खुशबू।

अधिवासी—सं०पु० [सं० अधिवासिन्] १ निवासी, रहने वाला. २ बसने वाला।

अधिवेसन—सं०पु० [सं० अधिवेशन] सभा या जमाव।

अधिसथांन—सं०पु० [सं० अधिस्थान] शहर, नगर (ह.नां.)

अधिस्टाता, अधिस्ठाता—सं०पु० [सं० अधिष्ठाता] १ अध्यक्ष, मुखिया, प्रधान. २ ईश्वर. ३ रक्षक, पालन करने वाला (स्त्री० अधिस्ठात्री)

अधिस्टात्री, अधिस्ठात्री—सं०स्त्री० [सं० अधिष्ठात्री] १ मुखिया, प्रधान. २ रक्षिका, पालिका. ३ देवी, दुर्गा।

अधी—वि० [सं० अर्द्ध] आधा, आधी।

अधीठचक्कर—सं०पु०यौ० [सं०अदृष्ट+चक्कर] अदृश्य चक्र, दैवी प्रकोप, किस्मत का चक्कर, भाग्य का फेरा।

अधीत—वि० [सं०] पढ़ा हुआ, शिक्षित, पठित।

अधीन—वि० [सं०] देखो 'आधीन'।

अधीनता, अधीनत्ता—सं०स्त्री० [सं० अधीनता] देखो 'आधीनता'।

अधीर—वि० [सं०] १ घबड़ाया हुआ, जिसमें धैर्य न हो, उद्विग्न, व्याकुल, बेचैन। उ०—आइस दाखै सास **अधीरां**—रा.रू.। २ चंचल, आतुर, उतावला। उ०—बंदा बहोत **अधीर** है, तिल भर नहीं करार—ह.र.। ३ असंतोषी।

अधीरज—सं०स्त्री० [सं० अधैर्य] अधीरता, घबराहट, चंचलता।

वि०—चंचल (अ.मा.)

अधीरता—सं०स्त्री० [सं०] धैर्य्यविहीनता, घबराहट, उतावली, आतुरता, बेचैनी।

अधीरा—वि०स्त्री० [सं०] अधीर, धैर्य-रहित, चंचल, विकल, विह्वल।

सं०स्त्री०—नायक में अन्य नारी विलास सूचक चिन्ह देख कर अधीर हो प्रत्यक्ष कोप करने वाली नायिका।

अधीरौ—सं०पु०—देखो 'अधीर'।

अधीस—सं०पु० [सं० अधीश] १ स्वामी। उ०—ले लच्छी मरहट्टरी, गूजर खंड **अधीस**। आय महालच्छी चरण, सींग नमायौ सीस। —बां.दा.

२ राजा. ३ ग्रधीश्वर, चक्रवर्ती मंडलेश्वर. ४ ग्रध्यक्ष ।

ग्रधीसर–सं०पु० [सं० ग्रधीश्वर] देखो 'ग्रधीस' ।

ग्रधुकंवौ–वि०—ग्रग्नि की तरह धुकने वाला । उ०—किलँब दगंधां **ग्रधुकंवां**—रा.रू. ।

ग्रधुना–क्रि०वि० [सं०] ग्राजकल, इस समय ।

ग्रधुर–सं०पु०—देखो 'ग्रधर' । उ०—**ग्रधुरां** डसणां सूं उदै, विमळ हास दुतिवंत—बां.दा. ।

ग्रधूत–वि० [सं०] १ ग्रकंपित, निर्भय, निडर. २ उचक्का. ३ सज्जन ।

ग्रधूर–सं०पु० [सं० ग्रधर] ग्रधर, होंठ (रू.भे. ग्रधुर)

उ०—ऊभा मोरळी नाद लीधै **ग्रधूरं**, मारो जागसीसांम वादै मधूरं ।
—ना.द.

ग्रधूरौ–वि०—(स्त्री० ग्रधूरी) ग्रधूरा, ग्रपूर्ण, ग्राधा, खंडित ।

उ०—**बोलै** यां राजांन **जौ ग्राजांनबाहू** पूरा । ऐसे परहंस वंस खमै सौ **ग्रधूरा**—रा.रू. ।

सं०पु०—ग्रपरिपक्व गर्भ का बच्चा जो ग्रवधि के प्रथम ही जन्म लेकर मर गया हो ।

क्रि०प्र०—देणौ, नांखणौ, पड़णौ, होणौ ।

ग्रधेड़–वि०— ढलती युवावस्था का, बुढ़ापे ग्रौर जवानी के बीच की ग्रवस्था वाला ।

ग्रधेली–सं०स्त्री०—रुपये का ग्राधा सिक्का, ग्रठन्नी, नये पचास पैसे का सिक्का ।

ग्रधेलौ–सं०पु०—१ ग्राधे पैसे का सिक्का (पुराना). २ एक तोले के लगभग का तौल विशेष ।

ग्रधौ–ग्रव्यय [सं० ग्रधः] नीचे, तले ।

सं०पु०— १ नरक. २ किसी वस्तु का ग्राधा भाग, ग्रद्धा. ३ पूरी बोतल के ग्राधे नाप की बोतल. ४ ग्राधे का पहाड़ा(गणित)

ग्रधोक–सं०पु०—नमस्कार, प्रणाम ।

ग्रधोक्षज, ग्रधोखज–सं०पु० [सं० ग्रधोक्षजः] १ जिसका स्वरूप इंद्रियों से प्रत्यक्ष नहीं हो । उ०—**ग्रधोखज** ग्रक्खर तुज्झ ग्रभेव, दिनंकर चंद न जांणै देव—ह.र. । २ विष्णु. ३ कृष्ण (ग्र.मा.) ४ परब्रह्म ।

ग्रधोगत–वि० [सं०] ग्रवनत, पतित ।

सं०स्त्री०—देखो 'ग्रधोगति' ।

ग्रधोगति, ग्रधोगती–सं०स्त्री० [सं० ग्रधोगति] पतन, ग्रवनति, दुर्गति, ग्रधःपतन ।

क्रि०प्र०—करणी, हौणी ।

ग्रधोगमण, ग्रधोगमन–सं०पु० [सं० ग्रधोगमन] पतन, नीचे जाना ।

ग्रधोगामी–वि०पु० [सं० ग्रधोगामिन्] नीचे जाने वाला, ग्रवनति या पतन की ग्रोर जाने वाला ।

ग्रधोड़ी–सं०स्त्री०—ग्राधा चमड़ा, गाय या बैल का साफ किया हुग्रा ग्राधा चमड़ा (रू.भे.–ग्रदोड़ी)

ग्रधोफर–सं०पु०—पहाड़ों के बीच का भाग, मध्य का भाग ।

देखो 'ग्रदफर' । उ०—तँबेरम कुंभ दुहाथळ तत्थ, ग्राडागिरि मत्थ क हत्थ ग्रगत्थ । प्ररोहत होफर खोफ ग्रपार, **ग्रधोफर** ग्राभ डरै ग्रसवार—मे.म. ।

ग्रधोभवण, ग्रधोभुवन–सं०पु० [सं० ग्रधोभुवन] पाताल, बलिराजा के रहने का स्थान (डिं.नां.मा.)

ग्रधोमारग–सं०पु० [सं० ग्रधोमार्ग) १ नीचे का रास्ता, सुरंग का मार्ग. २ गुदा ।

ग्रधोमुख–वि० [सं०] नीचे मुँह किए हुए, ग्रौंधा, उल्टा ।

क्रि०वि०—ग्रौंधा, मुँह के बल ।

ग्रधोवाय, ग्रधोवायु–सं०पु० [सं० ग्रधोवायु] ग्रपान वायु, पाद, गुदा की वायु ।

ग्रधौड़ी–सं०स्त्री०—देखो 'ग्रधोड़ी' (रू.भे.)

ग्रध्ध–वि०—देखो 'ग्रद्ध' (रू.भे.)

ग्रध्धे–वि० [सं० उर्ध्व] ऊपर । उ०—देवी ग्रब्बळा सब्बळा वोम **ग्रध्धे** ।
— देवि.

ग्रध्धो—देखो 'ग्रद्धो' ।

ग्रध्य–क्रि०वि० [सं० ग्रद्य] ग्रब, ग्राज, ग्रभी ।

सं०पु०—ग्रारम्भ, शुरू । उ०—ग्रनिच्छ जीव **ग्रध्यतैं** हरीच्छ मौ बळीयसी —ऊ.का. ।

ग्रध्यक्ष–सं०पु० [सं०] स्वामी, मालिक, नायक, सरदार, ग्रधिष्ठाता ।

ग्रध्यक्षर–क्रि०वि० [सं०] ग्रक्षरशः, ग्रक्षर-ग्रक्षर ।

ग्रध्ययन–सं०पु० [सं०] पठन-पाठन, पढ़ाई, पढ़ना, ग्रभ्यास ।

ग्रध्यवसाय–सं०पु० [सं०] १ सतत किया जाने वाला उद्योग या उपाय । परिश्रम, उत्साह. २ निश्चय, दृढ़तापूर्वक किसी काम में संलग्न. ३ उत्तम काम करने की उत्कंठा, कर्मदृढ़ता. ४ ज्ञान ।

उ०—जिण **ग्रध्यवसाय** कीधां सब्दरूप संसार रा पदारथ प्रछन्न न रहै—वं.भा. ।

ग्रध्यवसायी–वि० [सं० ग्रध्यवसायिन्] ग्रध्यवसाय करने वाला, परिश्रमी ।

ग्रध्यांमण, ग्रध्यांमणौ–वि०—१ भयानक, डरावना. २ घोर, उदास ।

ग्रध्यातम–सं०स्त्री० [सं० ग्रध्यात्म] १ ग्रात्म विषयक ज्ञान, ज्ञानतत्व, ब्रह्मविचार । उ०—**ग्रध्यातम** मरम विसतार बावन, ग्रक्खर संसाश्रित प्राकृति विगति सूंझै—ल.पि. । २ ग्रात्मा, मन एवं देह संबंधी दुःख ।

ग्रध्यातमविद्या–सं०स्त्री० [सं० ग्रध्यात्मविद्या] ब्रह्मविद्या, ग्रात्मतत्व-विषयक शास्त्र ।

ग्रध्यातमिक–वि० [सं० ग्रध्यात्मिक] ग्रध्यात्म संबंधी ग्रात्मा संबंधी ।

ग्रध्यापक–सं०पु० [सं०] पढ़ाने वाला, शिक्षक ।

ग्रध्यापकी–सं०स्त्री० [सं०] पढ़ाने का व्यवसाय ।

ग्रध्यापण, ग्रध्यापन–सं०पु० [सं० ग्रध्यापन] ग्रध्यापक का कार्य, शिक्षा-कार्य । उ०—माळव रै महीप व्याकरण रा **ग्रध्यापन** में एक ग्रब्द रौ ग्रनध्याय मांनि पांणिनीय रौ प्रतिनिधि भट्टि नामक

काव्य बणाय पढ़ायौ—वं.भा.।

अध्यापणौ, अध्यापबौ–क्रि०स०—अध्यापन का कार्य करना, पढ़ाना। वं.भा.

अध्यारोप–सं०पु० [सं०] १ एक के व्यापार को दूसरे में लगाना. २ वेदांत के अनुसार अन्य में अन्य वस्तु के अभाव या भ्रम की झूठी कल्पना. ३ एक के व्यापार को अन्य में लगाना (सांख्य)

अध्याहार–सं०पु० [सं०] १ तर्क-वितर्क, बहस. २ वह क्रिया जिसके द्वारा अस्पष्ट वाक्य को दूसरे शब्दों में स्पष्ट किया जाय।

अध्येय–सं०पु० [सं० अध्ययन] अध्ययन, पठन-पाठन। उ०—कौ करत सरव अध्येय ग्रंथ, को लेत पार उतराद पंथ—ला.रा.।

अध्रम–सं०पु० [सं० अधर्म] देखो 'अधरम'। उ०—अध्रम खळ प्रोलंब, अक्रम कोटे आलूजिस, जम दड्ढा मझ पड़िस, खोड़ माया खोसाड़िस। —जग्गौ खिड़ियौ

अध्रियांमणौ, अध्रियांमण–वि०—डरावना, भयंकर। उ०—सूजहर मिळै अध्रियांमण साज सूं। जेत खंभ आज रौ किला जेरै—अज्ञात।

अध्रियांमणी–सं०स्त्री०—कटारी, कृपाण।

वि०—भयंकर, भयावह। (रू.भे. अध्रयांमणी, अध्रियांम्हणी, अध्रीयांमण)।

अध्रियांमणौ, अध्रियांम्हणौ, अध्रीमणौ–वि०—१ भयावना, डरावना। उ०—उकटे काट निराट अध्रियांमणा—पदमसिंह री बात। २ वीर, बहादुर, पराक्रमी। उ०—लोड़िधर वीर वर पराई लावणा। आपणी न दै भड़ जिकै अध्रियांमणा—हा.झा.।

अध्रीयांमण, अध्रीयांवणौ, अध्रीयांवणौ–वि०—देखो 'अध्रियांमण'। उ०—सालुळै रौद रोळा सह। धणी चाड अध्रीयांवणा। —बखतौ खिड़ियौ

अध्व–सं०पु० [सं०] १ मार्ग, रास्ता. [सं० अध्वर] २ यज्ञ। उ०—उण समय पाळा होय दो ही वीरां अजमेर मंडोवर रा सुहाग री लाज रा लंगर घीसैंता अस्वमेध अध्व रा अवभ्रथ रौ तिरस्कार करता पेंड सांम्है ही लगाया—वं.भा.।

अध्वग–सं०पु० [सं०] १ पथिक, राही, बटोही। उ०—तहँ नहिं तमांम घण सीत घांम। फळ फूल फार अध्वग उदार—ऊ.का.। २ ऊँट. ३ सूर्य. ४ खेचर.

अध्वर–सं०पु० [सं०] १ यज्ञ। उ०—दिया रण अध्वर में बळिदांन। २ वसुभेद. ३ सावधान।

अध्वरयु–सं०पु० [सं० अध्वर्यु] वह ब्राह्मण जो यज्ञ में यजुर्वेद का मंत्र पढ़े।

अध्वासण, अध्वासन–सं०पु०—योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन जिसमें दोनों हाथ पाँव लंबे करके उलटा सोया जाता है।

अन–अव्यय [सं० अन्] शब्दों के पहले लग कर अभाव या निषेध सूचित करने वाला उपसर्ग।

अनंक–सं०पु०—चिन्हरहित, परब्रह्म। उ०—अनंक न संक न बंक न घीस, अवास न वास न आस न ईस—ह.र.।

अनंग–वि० [सं०] अंगरहित, बिना देह का।

सं०पु०—१ आकाश. २ कामदेव (ह.नां., अ.मा.) ३ वह घोड़ा जिसकी बाँयी बगल में भौंरी (चक्र) हो (अशुभ) —शा.हो.

अनंगक्रीड़ा–सं०स्त्री० [सं० अनङ्गक्रीड़ा] १ रति, संभोग, मैथुन. २ मुक्तक नामक विषम वृत्त का एक भेद (छंदशास्त्र)

अनंगवती–वि०स्त्री० [सं०] कामवती।

अनंगसेखर–सं०पु० [सं० अनंगशेखर] बिना लघु गुरु के क्रम का दण्डक नामक वर्ण वृत्त का एक भेद विशेष जिसमें ३२ वर्ण होते हैं।

अनंगसेना–सं०स्त्री० [सं०] राजा भर्तृहरि की पत्नी पिंगला का दूसरा नाम (वं.भा.)

अनंगह–सं०पु० [सं० अनंग] कामदेव (रू.भे.) उ०—संकर पवन सकत्ति, अवनि ध्रम लच्छि अनंगह—ह.र.।

अनंगारि, अनंगारी–सं०पु०यौ० [सं० अनंगारि] कामदेव के शत्रु, महादेव, शिव।

अनंगी–सं०पु० [सं०] १ कामदेव (डि.को.) २ ईश्वर।

वि०—अंगरहित, बिना देह का।

अनंजळ–सं०पु०यौ० [सं० अन्न+जल] अन्नजल (रू.भे.)

अनंजा–सं०स्त्री० [सं० अनुजा] छोटी बहिन।

अनंत–वि० [सं० अन्+अंत] १ अंतर या पाररहित, असीम, बेहद। उ०—सोमंतु जंतु अनंत सुखमय सुखद संपति सारण—रा.रू.। २ अविनाशी. ३ अशेष।

सं०पु०—१ विष्णु. २ शेषनाग. ३ लक्ष्मण. ४ बलराम. ५ आकाश। (डि.नां. मा.) ६ बाहु का एक भूषण. ७ सूत्र का एक गंडा जिसे भादों शुक्ला चतुर्दशी के व्रत के दिन बाहु पर बांधते हैं. ८ अनन्तजित नामक जैनाचार्य. ९ शिव, महादेव (अ.मा.)

अनंति–क्रि०वि०—पीछे। उ०—चौथे मंगळ रांमचंद सुर तरणि श्री रांम आगै क्रमि आंणि अनंति सीता वांम सु अंग—रांमरासौ।

अनंतकाय–सं०पु० [सं०] वे वनस्पतियाँ जिनके खाने का निषेध है (जैन)

अनंतगीर–सं०पु० [सं० अनन्तगीर] स्वरभेद (संगीत शास्त्र)

अनंतचतुरदसी, अनंतचवदस–सं०स्त्री०—देखो 'अणंतचौदस'।

अनंतटंक–सं०पु० [सं०] मेघराग का पुत्र एक राग विशेष (संगीत)।

अनंतदरसण, अनंतदरसन–सं०पु० [सं० अनंतदर्शन] सम्यक दर्शन, सब बातों का पूरा ज्ञान (जैन)।

अनंतनाथ–सं०पु०—जैनों के चौदहवें तीर्थंकर।

अनंतमूळ–सं०पु० [सं०] एक पौधा या बेल जो रक्त-शोधक होता है, औषधि विशेष।

अनंतर–क्रि०वि० [सं०] १ पीछे, उपरांत, बाद। उ०—इण बात रै अनंतर कैंमास भी सहोदर चामुंडराज समेत प्रस्थांन कियौ—वं.भा.। २ निरंतर लगातार. ३ पास, समीप।

अनंतवात–सं०पु० [सं०] शिर में भयंकर पीड़ा होने का एक प्रकार का शिर का रोग विशेष (वैद्यक)।

अनंता–वि०स्त्री०—जिसका अंत या पारावार न हो।

सं०स्त्री०—१ पृथ्वी (नां.मा.) २ पार्वती. ३ अनंतमूल. ४ पीपल. ५ अनंत सूत्र।

अनंतापति, अनंतापती–सं०स्त्री०—१ भूमि, पृथ्वी (अ.मा.)

सं०पु०—२ राजा, नृप।

अनंद–सं०पु० [सं० आनन्द] १ आनन्द, सुख, आराम। उ०—छंद व्है सुछंद औ अनंद को कह्यौ—ऊ.का.। २ भोजन, खाना (ह.नां.)

सं०पु०—३ देखो 'आणंद' (छंदशास्त्र)

वि० [सं० अ+नंद] बिना पुत्र का।

अनंदी–वि० [सं० आनन्दी] आनन्दयुक्त। उ०—रिध सिध दोऊ बंदी रहैज संदी, सदा अनंदी गिर वाया—पा.प्र.।

अनंद्री–सं०पु०—देवता (अ.मा.)

अनंद्रीपित–सं०पु० [सं० इंद्रियपति] देखो 'अनिंद्रीपित'।

अन–अव्यय [सं० अन्] १ प्रायः स्वर से आरम्भ होने वाले शब्दों के पूर्व लग कर अभाव या निषेधसूचक भाव बतलाता है. २ और।

उ०—सहँस दोय महिसी अन सुरभी, कंचन करहां भरी कतार।

—बारूजी सौदा बारहठ

वि० [सं० अन्य] दूसरा, भिन्न, पराया, पृथक, अन्य। उ०—मिळिया दळ कमँधां अणमापै, अन सिरजौर गिणै नहिं आपै—रा.रू.।

सं०पु० [सं० अन्न] १ अन्न, अनाज, धान (डिं.को.)

उ०—इक चिंता मनमैं घणी, नहीं ज पुत्र रतन, तिण पाखै लागै इसौ जांण अलूणौ अन—ढो.मा.।

सं०स्त्री०—देखो 'आंन'।

अनअवसर–सं०पु० [सं० अन्+अवसर] बे मौके, कुसमय, असमय।

उ०—अर जिसड़ी जांणी जिसड़ी अवसर अनअवसर भी जिण ठांम राजा होय तिण ठांम ही आय कहै—वं.भा.।

अनइ–क्रि०वि०—और। उ०—भाई मेहर अनइ ठाठीया, चालइ काहर कमांणी—कां.दे.प्र.।

अनइच्छा–सं०स्त्री० [सं० अन्+इच्छा] १ अरुचि, इच्छा का अभाव. २ निष्प्रयोजन।

अनकार, अनकारौ–वि०—वीर, योद्धा। उ०—१ 'केहर' तणौ कहै अनकारां कळह न कीजै सुवप कटै।—दूदौ आसियो।

उ०—२ कीरत एम कहै अनकारां, पत दूजो नह सूरत पाक। ऊ 'जीवराज' फेर जुग आवै, पहरावै भूखण पोसाक।—सगतोजी सौदो

अनकूट–सं०पु० [सं० अन्नकूट] एक पर्व दिवस जो प्रायः दिवाली के दूसरे दिन माना जाता है, इसमें विविध प्रकार के अन्नों के भोजन बनाते हैं और उनका भोग भगवान को लगा कर खाते हैं। यह कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा से पूर्णिमा तक किसी भी तिथि को मनाया जा सकता है।

अनकूळ–वि० [सं० अनुकूल] देखो 'अनुकूल'। उ०—जेहा मेहा जगत सूं मत बिरचौ सुख मूळ। जीवाड़ै सारी जगत, अै अबिरच अनकूळ—बां.दा.।

अनकोट–सं०पु०—देखो 'अनकूट'।

अनख–सं०पु० [सं० अनक्ष, प्रा० अनक्ख] १ क्रोध, रोष, नाराजगी. २ दुःख, खिन्नता. ३ ईर्ष्या, डाह. ४ ग्लानि. ५ झंझट।

वि०—बिना खून या नख का।

अनग–सं०पु०—अचम्भा, आश्चर्य। उ०—गजारोही वाजी पदन हथ आजी गत लगै। अयोसा योसा जी अनग जिम वाजीगर अगै।

—ऊ.का.

अनगढ़–वि०—१ बिना गढ़ा हुआ. २ बेडौल, भद्दा. ३ बेतुका।

अनघ–वि० [सं० अन्+अघ] निष्पाप, निर्मल, पवित्र, पुण्यवान।

सं०पु०—पुण्य।

अनड़–वि० [सं० अदि बंधने। धातु। अन्दनं अन्दः भावे घञ्। न अन्दः अनन्दः=निर्बन्धन। अनन्दः=अनड़–राजस्थांनी] १ अनम्र, उद्दंड. २ वीर, बलवान। उ०—आंमि संग्रामि झूंझार माल्है गहड़। अरि घड़ा खेसवै आप न खिसै अनड़—हा.झा.। ३ किसी के सामने न झुकने वाला। उ०—अगै जिण कुळ अनड़ हुवौ चहुवांण हरीमणि रांणनगर अधिराज हल्ल, बिक्कम आयौ हणि—वं.भा.।

४ बंधनरहित, स्वतन्त्र।

सं०पु०—१ किला, गढ़। उ०—अनड़ तजै धरती अर आया, मिरजै फिर मोरचा मँडाया—रा.रू.। २ पर्वत, पहाड़ (अ.मा.) ३ राजा. ४ हाथी. ५ वह जो बंधन में रहने का अभ्यस्त न हो यथा—वृषभ, सांड (वं.भा.) [रा०] ६ अनड़पक्षी (देखो 'अनड़पंख) उ०—ईंटा अनड़ तणाह, बिन माळै मेले बुआै। उर अर पांख बिनांह, जीवै किण विध जेठवा।

अनड़नड़–वि०—१ उद्दंड व्यक्तियों को भी झुकाने वाला. २ स्वभाव से ही स्वतंत्र प्रकृति वालों को भी बंधन में लाने की सामर्थ्य रखने वाला, पराक्रमी, वीर।

अनड़पंख, अनड़पंखेरू–सं०पु० [सं० अनलपक्ष] एक प्रकार की कल्पित चिड़िया जिसके विषय में कहा जाता है कि वह सदा आकाश में ही उड़ती रहती है और पृथ्वी पर नहीं आती। अपना अंडा आकाश से गिरा देती है किन्तु वह अंडा पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही फूट जाता है और बच्चा निकल कर आकाश में उड़ने लगता है। उ०—धर जहर देखिया ग्रुरड़ धंख, पेखिया पटाझर अनड़पंख—वि.सं.।

अनड़पण, अनड़पणौ–सं०पु०—१ शौर्य्य, वीरता, बहादुरी। उ०—अर आपरा अनड़पणा रै अनुसार मंडोउर आपरी बिबाहिणि नूं देण रौ सुजस चोतरफ ही चलायौ—वं.भा.। २ उद्दंडता. ३ स्वतंत्रता, आजादी।

अनड़-पै-राज–सं०पु०—सुमेरु पर्वत। उ०—उरड़ घमचाळ होतां बणै आपरा, अनड़-पै-राज तस ग्रुरड़ येहा—करणीदांन कवियौ।

अनड़ांनड़–वि०—देखो 'अनड़नड़'।

अनड़ी–सं०स्त्री०—अनाड़ीपन, मूर्खता। उ०—आडौ नवकोट रौ नाथ आयौ अडर। आंबेर रा करै मत बात अनड़ी। सेवरां बीच कोई

उपदरी पावसी, वैलसी रात रा हाय बनड़ी ।
—महाराजा मांनसिंह रौ गीत

वि०—देखो 'अनाड़ी' ।

अनचार–सं०पु० [सं० अनाचार] १ अन्याय, अत्याचार. २ पापाचार, अनाचार । उ०—**अनचार** करंतो देख एह भल मात 'करनला' लियो भेव—रांमदांन लाळस ।

अनचाहत–वि०—जो प्रेम न करे, न चाहने वाला, निर्मोही ।

अनजळ–सं०पु०यौ० [सं० अन्न+जल] अन्न-जल । उ०—जिण रौ **अनजळ** खाय, खळ तिण सूं खोटी करै—किरपाराम ।

अनज्ज–वि० [सं० अनुज] देखो 'अनुज' ।

अनज्जबंस–सं०पु०—अनार्यवंश । उ०—कुकज्ज लज्जतौ करधौ **अनज्जबंस** अज्जकौ । लुलायु लज्ज भीतभज्ज लज्जनां निलज्जकौ ।
—ऊ.का.

अनडबांण–वि०—जिसे बंधन में रहने का अभ्यास न हो ।

सं०पु० [सं० अनड्वान्] बैल, सांड, वृषभ ।

अनडर–वि०—१ बलशाली, शक्तिशाली. २ निडर ।

अनडवांन–सं०पु० [सं० अनड्वान्] देखो 'अनडबांण' ।

अनडीठ–वि० [सं० अन्+दृष्ठ, प्रा० डिट्ठ] बिना देखा ।

अनडुह, अनडुहौ–सं०पु० [सं० अनुडुह्] बैल, वृषभ (डि.नां.मा.)

अनड़–सं०पु०—दुर्ग, किला, गढ़ । उ०—झाटक कोट हुवौ जूंझाऊ, रच भाराथ रढ़ाळौ । पड़ियां सीस पछै पालटसी, **अनड़** पळोधी आळौ
—आवड़दांन लाळस

अनतंडा–वि०—विरुद्ध, विपक्ष का ।

अनत–वि० [सं०] १ जो झुका हुआ न हो, सीधा. २ बेहद. ३ बड़ा ।

क्रि०वि० [सं० अन्यत्र, प्रा० अन्नत्त] अन्यत्र, कहीं और ।

सं०पु० [सं० अनंत] १ शेषनाग. २ ईश्वर, परमेश्वर । उ०—बहियौ नहीं वे न तत वहिया, **अनत** कह्यौ तै ऊगरिया ।
—माहारांणा कुंभा रौ गीत

अनता–सं०स्त्री०—पृथ्वी, भूमि (ह.नां.)

अनरथ–सं०पु० [सं० अनर्थ] १ देखो 'अनरथ' । देखो 'अनथ' ।

अनरथांनरथौ–देखो 'अनथांनथौ' ।

अनथ–सं०पु०—देखो 'अनरथ' ।

वि०—१ जिसके नाक में नाथ न हो. २ उद्दंड. ३ स्वतंत्र ।

अनथांनथौ–सं०पु०—१ अनाथों का नाथ, स्वामी, जिसकी कोई रक्षा करने वाला न हो उसकी रक्षा करने वाला. २ उद्दंड व्यक्ति को भी झुकाने की सामर्थ्य रखने वाला, वीर । उ०—सुज सांम ध्रमी समरथौ रै, नव सहंसो **अनथांनथौ**—किसनजी आढ़ौ । ३ ईश्वर ।

अनथू–सं०पु०—देखो 'अनथ' ।

अनदांन–सं०पु० [सं० अन्न+दान] अन्न या भोजन का दान ।

अनदाता–सं०पु० [सं० अन्नदाता] अन्नदान करने वाला, पोषक, प्रतिपालक, स्वामी । उ०—जिण नवलक्खी सिंध धर, दी दिन हेकै दांन । **अनदाता** उपमेय है, 'ऊनड़' है उपमांन—बां.दा. ।

अनदास–सं०पु० [सं० अन्नदास] पेट के लिए ही दास होने वाला, पेटू, खुदगर्ज ।

अनद्यतनभविस्य–सं०पु० [सं० अनद्यतनभविष्य] १ वह समय जो आने वाली आधी रात्रि के बाद आवे. २ व्याकरण के अन्तर्गत भविष्यकाल का एक भेद ।

अनद्यतनभूत–सं०पु० [सं०] १ बीती हुई आधी रात के पहिले का समय. २ व्याकरण के अन्तर्गत भूतकाल का एक भेद ।

अनधिकार–सं०पु० [सं०] १ अधिकार का अभाव बेबसी. २ अयोग्यता, अक्षमता ।

वि०—अधिकाररहित, अनुचित ।

अनधिकारचेस्टा–सं०स्त्री०यौ० [सं० अनधिकारचेष्टा] नाजायज या अनुचित चेष्टा ।

अनधिकारी–वि० [सं० अनधिकारिन्] जिसे अधिकार न हो, अयोग्य, अपात्र ।

अनध्याय–सं०पु० [सं०] वह दिन जिसमें शास्त्रानुसार पढ़ने-पढ़ाने का निषेध हो । उ०—माळव रै महीप व्याकरण रा अध्यापन में एक अब्द रौ **अनध्याय** मांनि पांणिनीय रौ प्रतिनिधि भट्टिनामक काव्य वणाय पढ़ायौ—वं.भा. ।

अनन्नास–सं०पु०—राम बांस की तरह का एक छोटा पौधा जिसके डंठलों के अंकुरों की गाँठें खट्टी-मीठी और खाने योग्य होती हैं ।

अनन्य–वि० [सं०] जो अन्य से संबंध न रक्खे, एकनिष्ठ, एक ही में लीन । उ०—अर **अनन्य** भक्ति रा प्रभाव करि जगदंबा रौ प्रसाद पाइ बारह बरस रा वय में पाछौ आइ फूंफा समुद्रसिंह नूं मारि आप रा पिता बिजैसूर रौ बैर लियौ ।—वं.भा.

अनन्यता–सं०स्त्री० [सं०] एकनिष्ठा, अन्य से संबंध रखने का अभाव ।

अनन्यपण, अनन्यपणौ–सं०पु०—देखो 'अनन्यता' ।

अनपच–सं०पु०—अजीर्ण, बदहजमी, अपच ।

अनपांणी–सं०पु० [सं० अन्न+रा० पांणी] देखो 'अन्नजळ' ।

उ०—आगै कमंधै आखियौ, सुण मछरीक मुकन्न । **अनपांणी** मन भावियां, पधरावियां अजन्न—रा.रू. ।

अनपूरण, अनपूरणा–सं०स्त्री० [सं० अन्नपूर्णा] १ अन्न की अधिष्ठात्री देवी । उ०—आठ सिद्ध नव निद्ध रही मौ पिता रसोड़ै, मौ कमळायत माय जिका **अनपूरण** जोड़ै—पा.प्र. । २ दुर्गा का एक रूप, काशीश्वरी, विश्वेश्वरी ।

अनबंधौ–वि०—देखो 'अनमंध' ।

अनभै–सं०पु०—देखो 'अणभै' ।

अनमंद–सं०पु०—देखो 'अनमंध' । उ०—वाहतां तेग **अनमंदां** कंध विछुड़ै—जसवंतसिंहजी रौ गीत ।

अनमंध–वि०—अपार, बहुत, असंख्य । उ०—सितर खांन सकबंध, कटक **अनमंध** छिले कर । असपत हद सामंद, कीध ऊबंध प्रमेसर ।
—रा.रू.

सं०पु०—१ जिसको कोई बांध नहीं सकता अर्थात जिसकी कोई समानता नहीं कर सकता, वीर। उ०—मुकन तणौ जोड़ै **अनमंध** बोलै रांम मरण पण बंधै—रा.रू.। २ परमेश्वर, ईश्वर (द.दा.) ३ शत्रु, दुश्मन।

अनमंधौ, अनमंधौ—सं०पु०—देखो 'अनमंध'। उ०—सांवळ आद खांन सकबंधी, ऐ 'ऊदा' मिळिया **अनमंधी**।—रा.रू.

अनम—वि० [सं० अनम्र] १ उद्धत, बली. २ उद्दंड, धृष्ट. ३ नहीं झुकने वाला। उ०—झुक बहणौ नह जांणियौ, दोयण वय मुख दब्ब। पातल जंदा उरध पग, संधा **अनम** सरब्ब।—जैतदांन बारहठ

अनमख—सं०पु० [सं० अनमिष] समय (अ.मा.)

अनमद—वि०—मदरहित, अहंकारहीन, घमंड से रहित।

अनमांन—सं०पु०—देखो 'अनुमांन' (ल.पिं.)

अनमांनांम—वि०—उद्दंड व्यक्तियों को झुकाने की सामर्थ्य रखने वाला, वीर, शक्तिशाली। उ०—**अनमांनांम** उनरथांनाथी, बळवंत भरै गयण सूं बाथ।—कूंपा राठौड़ रौ गीत

अनमाई—सं०स्त्री०—अनम्रता। उ०—संथा साच तताई पण री गाई गवै सारै, **अनमाई** राई तनां जणाई ओसाप।—पूरजी भादौ

अनमापौ—वि०—१ न मापा जाने योग्य. २ जो मापा न जा सके।

अनमिख—वि० [सं० अनिमेष] निमेषरहित, टकटकी के साथ। (रू.भे. 'अनमेख')

क्रि०वि०—१ एकटक, अपलक. २ निरंतर।

सं०पु०—१ देवता (नां.मा.) २ मछली (अ.मा.) ३ सर्प (डिं.को.)

अनमित, अनमिति—वि०—असंख्य, अपार। उ०—आरंभ काज गज आरुहै, **अनमित** सेन उलट्टियौ।—रा.रू.

अनमित्ती—वि०—१ अप्रमाण, अनिदर्शन। उ०—आवी फौज लखां **अनमित्ती**, जोवंतौ मारग जगपत्ती।—रा.रू. २ बहुत, अधिक।

अनमियौ, अनमी—वि०—१ अनम्र, उद्दंड. २ नहीं झुकने वाला, वीर। उ०—अकबर कनें अनेक, नम-नम नीसरिया नृपति, **अनमी** रहियौ एक, पहुवी रांण प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ

अनमीखंध—वि०—जो अपना कंधा न झुकने दे, शक्तिशाली, बलवान। (मि. अनम्मीखंध रू.भे.)

अनमीपण, अनमीपणौ—सं०पु०—अनम्रता। उ०—पाट रखपाळ रिड़माल **अनमीपणौ**, गरट घोड़ां भड़ां खूर कीधां घणौ।—अज्ञात

अनमुखाव—सं०पु०—देवता (अ.मा.)

अनमुनी—सं०स्त्री [सं० उन्मुनी] हठयोग में अंग-विन्यास की मुद्रा विशेष।

अनमेख—सं०पु०—देखो 'अनमिख'। उ०—**अनमेख** द्रस्ट पेखंत छवि, मीन चंद्र प्रतिबिंब पर।—रा.रू.

अनमेळ—सं०पु०—शत्रु, वैरी। उ०—**अनमेळ** कढ़िढ्य कोट तें, निजराज पद्धर थप्पियौ।—ला.रा.

अनम्म, अनम्मी—वि०—जो नम्र न हो, अविनयी, अनम्र, उद्दंड।

उ०—भूप **अनम्मी** भाळवा, घण रिपु करण संहार। ऐ कूरम इळ पर उभै, जनम्या डूंग जुहार।—डूंगजी जवारजी रा दूहा

अनम्मीखंध—वि०—देखो 'अनमीखंध'। उ०—पाथ ज्यूं **अनम्मीखंध** वंसनूं चाढ़ियौ पांणी, यूं पछै ऊमटां नाथ पोढ़ियौ आरांण।—सूरजमल मीसण

अनम्र—वि० [सं० अ+नम्र] उद्दंड, ढीठ, धृष्ट, अविनीत।

अनय—सं०पु०—अनीति, अन्याय। उ०—अकबर दळ अप्रमांण, उदैनयर घेरै **अनय**। खागां बळ खूमांण, साहां दळण प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ

अनयास—क्रि०वि० [सं० अनायास] अनायास, अकस्मात, सहसा।

वि० [सं०अन्+आशा] आशारहित, निराश। उ०—**अनयास** होत मेवासपति, तुरक तोर तुट्टै तदन।—ला.रा.

अनरगळ—वि० [सं० अनर्गल] १ बेरोक, बेधड़क. २ व्यर्थ, अंडबंड। उ०—बधा वपु जाहिर पथ्य विवेक **अनरगळ** बाहिर भीतर एक।—ऊ.का.

क्रि०वि०—अप्रतिहत, लगातार।

अनरत—सं०पु० [सं० अनृत] झूठ, असत्य (अ.मा.)

अनरत्थ, अनरथ—सं०पु० [सं० अनर्थ] १ अनर्थ, अनिष्ट, बिगाड़. २ उपद्रव। उ०—१ सूधी वाट कटक संग्रांम, **अनरथ** थास्यइ जाइमांम।—ढो.मा. उ०—२ यह बत्त हुव **अनरत्थ** सी, सादूळ सिकुळतें जरयौ।—ला.रा. ३ विरुद्ध अर्थ, उलटा मतलब, असत्य, झूठ। उ०—रहौ बीवरै रांमरस, **अनरथ** घणौ अलंत। याहिज है ध्रम आतमा, ऐ तीरथ, ऐ तंत।—बां.दा. ४ अधर्म से प्राप्त किया गया धन. ५ अन्याय, अत्याचार। उ०—कुमार कहियौ चोड़ै चढ़ि चालियां इसड़ा **अनरथ** रा करणहार अंत्यज पुळियार होइ जीवता रहि जावै।—वं.भा.

अनरथक—वि० [सं० अनर्थक] निरर्थक, अर्थरहित, व्यर्थ, निष्प्रयोजन।

अनरथकारी—वि०पु० [सं० अनर्थकारिन्] (स्त्री० अनरथकारणी) १ उलटा मतलब निकालने वाला। २ अनिष्टकारी, उपद्रवी, अनर्थ करने वाला।

अनरध—वि० [सं० अनिरुद्ध] १ जो रोका न गया हो, अबाध. २ बेरोक, जो रुका हुआ न हो।

सं०पु०—श्रीकृष्ण के पौत्र और प्रद्युम्न के पुत्र जिन्हें उषा व्याही गई थी।

अनरस, अनरसा, अनरसो—सं०पु०—१ रसहीनता, शुष्कता, रुखाई. २ कोप. ३ मनोमालिन्य, फूट. ४ दुःख, खेद, रंज. ५ उदासी, विरसता [सं० अन्य+रस] ६ दूसरा रस। उ०—रहै विलंबै रांमरस, **अनरस** गिणै अलप्प।—ह.र.

अनरूप—वि०—१ कुरूप, भद्दा, बदसूरत. २ असदृश।

अनळ—सं०स्त्री० [सं० अनल] १ अग्नि, आग (अ.मा.) २ पित्त. ३ तीन की संख्या* [सं० अनिल] ४ वायु। उ०—**अनळ बळ प्रबळ**

बहतां अकळ अजावत, सखर उड़ पड़ै गजघज समेत।
—उम्मेदसिंह सीसोदिया रौ गीत

अनळकुंड–सं०पु० [सं०] अग्नि-कुंड। वि०वि० देखो 'अगनीकुंड'। उ०—वंस चहुवांण वखांण आंण सुरतांणां ऊपर। **अनळकुंड** उतपत्त मुद्रा की चाहु महेसर।—मालौ आसियौ

अनळचूरण–सं०पु० [सं० अनल+चूर्ण] बारूद।

अनळपंख–सं०पु—देखो 'अनड़पंख'। उ०—कीड़ी नै कण पूरवै मण मैंगळ चारै। **अनळपंख** आकास कूं दिन चून दिराड़ै।
—केसोदास गाडण

अनळपंखचार–सं०पु०—हाथी (डि.को.)

अनळपंखी–सं०पु०—देखो 'अनड़पंख'।

अनलप–वि० [सं० अनल्प] बहुत, अधिक।

अनळपुड़–सं०पु०—पहाड़, पर्वत। उ०—आयत इळा **अनळपुड़** आवत, समँद आयतां वळॆज सात।—महारांणा लाखा रौ गीत

अनळमुख–वि० [सं०] जो अग्नि द्वारा पदार्थों को ले।
सं०पु०—१ ब्राह्मण. २ देवता।

अनळस–वि० [सं०] आलस्यरहित, परिश्रमी।

अनळा–सं०स्त्री० [सं०] १ कश्यप ऋषि की पत्नियों में से एक जो दक्ष प्रजापति की कन्या थी. २ माल्यवान नामक राक्षस की एक कन्या. [सं० अनल] ३ अग्नि, आग. [सं० अनिल] ४ हवा, वायु।

अनलायक–वि०—नालायक, अयोग्य, मूर्ख।

अनलूणी, अनलूणौ–वि०—देखो 'अलूणी' (रू.भे.)

अनल्प–वि० [सं०] देखो 'अनलप' (रू.भे.) उ०—अनंत आप हैं **अनल्प** आदि अंत अल्प में।—ऊ.का.

अनवय–सं०पु० [सं० अन्वय] १ वंश, कुल. २ वाक्य-रचना के नियमानुसार पद्यों के शब्दों को यथा-स्थान रखने का ढंग या क्रिया।

अनवाई–सं०स्त्री०—नहीं झुकने का भाव, अनम्रता।
वि०—नहीं नमने वाला।

अनवी–वि०—नहीं नमने वाला, वीर। उ०—**अनवी** मुरधर रै अदन, जोखमियौ घण जांण।—ऊ.का.। २ अनम्र।

अनवार–वि० [सं० अन्य] अन्य, दूसरा। उ०—महमा बढ़ि मयंक कुळ मंडण, पोह **अनवारां** प्रभत पढ़ौ।—महारांणा उदैसिंघ रौ गीत

अनसन–सं०पु० [सं० अनशन] उपवास, निराहार व्रत।

अनसवर–वि० [सं० अनश्वर] १ नष्ट न होने वाला, अविनाशी, अटल. २ नित्य, सनातन।
सं०पु०—ईश्वर, परमात्मा।

अनसार–सं०पु०—भोजन (अ.मा.)

अनसूया, अनसोया–सं०स्त्री० [सं० अनसूया] १ दूसरों में दोष न देखने का भाव, ईर्ष्या का अभाव. २ दक्ष प्रजापति की कन्या तथा अत्रि मुनि की पत्नी. ३ शकुन्तला की एक सखी या सहेली।

अनस्व–सं०पु०—[सं० अनश्व] गधा। उ०—वामांग डक्कनिय पत्ति अस्व दक्खिन भुजांन हूं क्यौ **अनस्व**।—ला.रा.

अनस्वार–सं०पु० [सं० अनुस्वार] देखो 'अनुस्वार'।

अनहद, अनहद्द–वि०—अपार, असीम। उ०—विरांण सब्द सुणिया विहद्द। नीसांण तूर **अनहद्द** नद्द।—वि.सं.
सं०पु० [सं० अनाहत] अनाहत नाद। उ०—सुन मंडळ मध्य परम सुन, **अनहद** नीसांण। सबद बतावै एकठा तद होय कल्यांण।
—केसोदास गाडण

अनांम–वि० [सं० अनाम] बिना नाम का, अप्रसिद्ध, नामरहित।

अनांमा, अनांमिका–सं०स्त्री० [सं०अनामिका] मध्यमा के बाद की उंगली।
वि०—अप्रसिद्ध, बिना नाम का।

अनांमी–वि०—१ अप्रसिद्ध, बिना नाम का. २ अनोखा, अद्भुत। उ०—साख तणा सूरज सगतावत, आंरी रीत **अनांमी**। ठाकर नांमी अवर ठिकांणा, नीबज राजा नांमी।—नीबज रौ गीत

अनांक–क्रि०वि०—अनाहक, नाहक, व्यर्थ। उ०—मनाक सौख्य छाक में मना **अनाक** क्है अटयौ।—ऊ.का. (रू.भे. अनाख)

अनाकर–वि०—निराकार, आकाररहित। उ०—**अनाकर** साकर आखर अंत, भलौ भव भाग भजे भगवंत।—ऊ.का.

अनाकांनी–सं०स्त्री०—अनसुनी करना, बहलाना, टालमटूल, आनाकानी।

अनागत–वि० [सं०] १ अनुपस्थित. २ होनहार, आगे आने वाला. ३ अज्ञात. ४ अनादि, अजन्मा. ५ अपूर्व, अद्भुत. ६ आगमन का अभाव।
सं०पु०—संगीत में लय एवं ताल की दृष्टि से मुख्य सम के पहिले ही सम दिखाना।

अनाग्रह–क्रि०वि०—बिना आग्रह के। उ०—**अनाग्रह** भुल्लित आंन उपाय, प्रफुल्लित ज्यूं पतनी-पति पाय।—ऊ.का.

अनाघात–वि० [सं०] १ आघात या चोट से रहित. २ बिना कारण, अकारण।

अनाड़–सं०पु०—पर्वत, पहाड़. २ वीर, योद्धा (रू.भे. अवनाड़) ३ राजा, नृप (ह.दा.)

अनाड़वी–वि०—१ अनाड़ी. २ अनम्र, उद्दंड, अभिमानी. ३ वीर, योद्धा।

अनाड़ी–वि०—१ नासमझ, नादान, मूर्ख।
कहा०—अनाड़ियां रा गुरु अनाड़ी है—गुरु व शिष्य दोनों मूर्ख हैं।
२ अकुशल, अपटु, अनभ्यस्त. ३ जिसके शरीर में नाड़ी की गति मंद हो गई हो।

अनाड़ीपण, अनाड़ीपणौ–सं०पु०—१ मूर्खता, नासमझी. २ उद्दंडता ३ अदक्षता, अपटुता।

अनाड़ो, अनाड़ौ–वि०—जो बंधन में न आवे, वीर, योद्धा। देखो 'अमड़'

अनाचार–सं०पु० [सं०] १ दुराचार, कुरीति, अशुद्धाचार, पापाचार. २ अंधेर. ३ अत्याचार।

अनाचारता–सं०स्त्री० [सं० अनाचारिता] दुराचारिता, कुरीति, कुचाल, बुरा आचरण।

अनाज–सं०पु० [सं० अन्नाद] अन्न, धान्य, गल्ला ।
अनातप–सं०पु० [सं०] धूप का अभाव ।
वि० [सं०] ताप से रहित, शीतल ।
अनातम–वि० [सं० अनात्म] आत्मारहित, जड़ ।
सं०पु०—आत्मा का विरोधी पदार्थ, अचित्, जड़ । उ०—**अनातम** आतम ठेल उठेल ।—रा.रू. ।
अनाथ–वि० [सं०] १ स्वामीरहित, जिसके कोई पालन-पोषण करने वाला न हो, असहाय, अशरण । उ०—**अनाथ** साथ हाथ आथ अन्न पावतै नहीं ।—ऊ.का. २ दीन, दुखी । उ०—अबै जु लाज नाथ हाथ 'ऊमरै' **अनाथ** की ।—ऊ.का.
क्रि०प्र०—करणौ, होणौ ।
सं०पु०—वह बैल जिसके नाक में नाथ न डाली गई हो ।
अनाथांनाथ–सं०पु०—अनाथों के सहायक, ईश्वर, विष्णु (ह.र.)
अनाथालय, अनाथाश्रम–सं०पु० [सं० अनाथालय, अनाथाश्रम] दीन-दुखियों या असहायों के पालने-पोषने का स्थान, यतीमखाना, लावारिस बच्चों की रक्षा का स्थान ।
अनाथी, अनाथौ–सं०पु०—नाक में बिना नाथ डाला हुआ बैल ।
वि०—१ जिसके नाक में नाथ न डाली गई हो. २ उद्दंड. ३ बिना स्वामी का, अनाथ । उ०—**अनाथी** आत आया अठै आतम जांणी आपसी, कमंध केइ लोह कंचन किया पारस भूप प्रतापसी ।—अज्ञात (रू.भे. अनथ)
अनाद–वि०—देखो 'अनादि' । उ०—बित जिम बांटै तिम वधै, आ है रीत **अनाद** ।—बां.दा.
अनाद जुगाद–देखो 'अनादि' ।
अनाद जोगी–सं०पु०यौ० [सं० अनादि+योगी] महादेव, शिव ।
उ०—जटाधारी जोगधारी **अनाद जोगी**, पाणां नमौ सींगी नाद पूरतां प्रकास ।—महाराजा मांनसिंह
अनादर–सं०पु० [सं०] आदर का अभाव, अवज्ञा, अपमान, अवहेलना, तिरस्कार ।
अनादरणीय–वि० [सं०] १ जो आदर के योग्य न हो. २ आदि-रहित, उत्पत्तिहीन ।
अनादरणौ, अनादरबौ–क्रि०अ०—अनादर करना । उ०—अवाचि जांण आदरचौ उदीचि कौं **अनादरचौ** ।—ऊ.का.
अनादि, अनादी–वि० [सं०] १ आदिरहित, उत्पत्तिहीन, स्वयंभू, नित्य (ब्रह्म). २ बहुत दिनों से जो शिष्ट परंपरा से चला आया हो, चिरकाल से (मि० 'अनाद') उ०—ऐ राठौड़ **अनादि** आदि असिवर अनिमंधो ।—रा.रू.
अनाधार–वि०[सं०] आधाररहित, बेसहारा ।
अनाप–सं०पु० [सं० अन्न+आप] अन्न-जल । उ०—खुधा त्रिखा पिड़त पुरख, तन त्यागत अतीव । अभवी कह न **अनाप** दे, जे हीज अभवी जीव ।—ऊ.का.
अनापसनाप–वि० [सं० अनाप्त] १ ऊटपटांग, अंडबंड. २ अत्यधिक, परिमाण से अधिक ।
सं०पु०—निरर्थक प्रलाप ।
अनापौ–वि०—बहुत, अधिक, अत्यधिक ।
अनांमत–सं०स्त्री०—देखो 'अमानत' (रू.भे.)
अनांमय–वि० [सं० अनामय] रोगरहित, निरोग, तंदुरुस्त ।
उ०—**अनांमय** अव्यय अक्षय आथ, निरामय निरभय नाथ अनाथ ।
—ऊ.का.
सं०पु०—निरोगता, स्वास्थ्य, कुशलक्षेम । उ०—अर **अनांमय** पूछण रौ व्याज करि पिता नूं बडा भाई समेत मारि साह होण रौ संकळप करि दिल्ली माथै आपरी चतुरंग चमू चलाई ।—वं.भा.
अनायक–वि०—नायकरहित, रक्षकरहित, बिना स्वामी का ।
अनायत–सं०स्त्री० [अ० इनायत] १ कृपा, दया, अनुग्रह, एहसान. २ दान. ३ बख्शीश (द.दा.)
अनायस–क्रि०वि०—देखो 'अनायास' ।
अनायास–क्रि०वि० [सं०] १ बिना प्रयास, सहज. २ अकस्मात्, अचानक । उ०—करवाळ ढाळ दिस कर कयास, ओलंदे हैं नहिं **अनायास** ।—ऊ.का.
अनार–सं०स्त्री० [फा०] एक प्रकार का वृक्ष तथा उसका फल जिसे दाड़िम भी कहते हैं ।
अनारज–सं०पु० [सं० अनार्य] १ जो आर्य न हो, अनार्य. २ दस्यु या दास ।
वि०—जो उत्तम या श्रेष्ठ न हो, नीच ।
अनारदांणौ–सं०पु० [फा० अनारदाना] अनार नामक फल के सुखाये हुए दाने ।
अनारी–वि०—१ देखो 'अनाड़ी' । उ०—उद्यम छोड़ रह्यौ अग उद्यम, आठूं ही पहर **अनारी** । रोटी २ करतौ रोवै, मूढ़ महा झक मारी ।
—ऊ.का.
२ वह जिसके स्त्री न हो ।
अनाळ–वि० [सं०अ+नाळ=मार्ग रा०] मार्गरहित, स्थानरहित, सर्वत्र ।
उ०—अचाळ अरद्ध अनाळ अनेस, आदेस, आदेस आदेस आदेस ।
—ह.र.
अनाळसी–वि० [सं० अन्+आलस्य+ई–रा.प्र.] उद्योग करने वाला, उद्यमी । उ०—**अनाळसी** न आळसी न नाळसी निस्रेयको ।
—ऊ.का.
अनावस्यक–वि० [सं० अनावश्यक] जिसकी आवश्यकता न हो, गैर-जरूरी, अनुपयोगी ।
अनावस्यकता–सं०स्त्री० [सं० अनावश्यकता] आवश्यकता का अभाव ।
अनावत–वि० [सं० अनावृत्त] जो ढँका न हो, खुला ।
अनावस्टि, अनावस्टी–सं०स्त्री० [सं० अनावृष्टि] वर्षा का अभाव, जल-कष्ट ।

अनाश्रित-वि०—देखो 'अनाव्रत' (रू.भे.)
अनाव्रिस्टी-सं०स्त्री०—देखो 'अनावृस्टि' (रू.भे.)
अनास-सं०पु०—१ एक प्रकार का वृक्ष तथा उसका फल विशेष।
उ०—अखोड़ अनास किरंजी अनूप। सिरै खारक तीन विधी सरूप।
—क.कु.बो.
२ देववृक्ष (अ.मा.) ३ वह जो वीर न हो, कायर व्यक्ति।
अनासती-वि०—१ दुःखमय, बुरा. २ कायर।
सं०स्त्री०—१ वह स्त्री जो सतीत्वहीन हो. २ कुसमय।
अनासगर-सं०पु०—देखो 'आनासागर' (रू.भे.)
अनासिक-वि० [सं० अ+नासिक] नकटा, नाकरहित।
अनास्था-सं०स्त्री० [सं० अन्+आस्था] १ अश्रद्धा. २ अनादर, अप्रतिष्ठा।
अनाश्रम-वि० [सं०] १ आश्रयहीन. २ पतित. ३ बिना परिश्रम का।
अनाश्रमी-वि० [सं० अनाश्रमी] गृहस्थ आदि आश्रमों से रहित, आश्रम-भ्रष्ट, पतित।
अनाश्रय-वि० [सं० अनाश्रय] १ निराश्रय, निरवलंब. २ दीन, अनाथ।
अनाश्रित-वि० [सं० अनाश्रित] १ निराश्रय, निरवलंब. २ अनाथ।
अनाह-सं०पु० [सं० आनाह] कब्ज रोग, अफारे का रोग (अमरत)
वि० [सं० अनाथ] बिना स्वामी का, दीन, दुखी।
अनाहक-क्रि०वि०—नाहक, व्यर्थ में। उ०—मोने आय अनाहक मारघो सांम खून विण...।—र.रू.
अनाहत-वि० [सं०] आघातरहित, जो आहत न हुआ हो।
सं०पु०—१ दोनों हाथों के अंगूठों से दोनों कानों के रन्ध्र बंद करने पर ध्यान करने से सुनाई पड़ने वाला शब्द (योग). २ योग के आठ कमल या चक्रों में से एक जिसका स्थान हृदय, ६००० जप, रंग लाल व पीला मिश्रित (मतांतर से कहीं श्वेत) और देवता रुद्र माने जाते है। इसके दलों की संख्या १२ तथा अक्षर क से ठ तक माने गये हैं। ३ किसी इष्ट, मंत्र या नाम की वह ध्वनि जो इन्द्रियों को अंतर्मुखी करने पर सुनाई दे। सिद्धि प्राप्त होने पर यह हर समय निरंतर सुनाई देती रहती है। निरंतर जाप अथवा ध्यान करने से इस स्थिति पर पहुँचा जा सकता है (योग)।
अनाहतनाद-सं०स्त्री०—प्रकृति में व्याप्त ध्वनि। देखो 'अनाहत'
अनाहद-सं०पु०—देखो 'अनहद'। उ०—जठे जम काळ जरा नहिं जोर. घुरै घट नाद अनाहद घोर।—ऊ.का.
अनाहदवांणी-सं०स्त्री० [सं० अनाहत+वाणी] १ आकाशवाणी, देव-वाणी. २ देखो 'अनाहत'-१, ३।
अनाहार-सं०पु० [सं०] भोजन का अभाव या त्याग।
वि०—१ निराहार, जिसने कुछ न खाया हो. २ (वह व्रत) जिसमें कुछ न खाया जाय. ३ विजयी।
अनाहारी-वि०—निराहार रहने वाला।

अनिंद-वि० [सं० अनिंद्य] १ जो निंदा के योग्य न हो, निर्दोष, उत्तम। २ जिसे नींद न आती हो।
अनिंदक-वि०—जो निंदा न करता हो।
अनिंदित-वि० [सं०] अगर्हित, उत्तम, प्रशस्त।
अनिंद्य-वि० [सं०] देखो 'अनिंद' (रू.भे.)
अनिंद्रा-सं०पु०—१ देवता (नां.मा.) २ नींद न आने का रोग विशेष।
अनिंद्रीपति-सं०पु०यौ० [सं० इंद्रियपति] मन (ह.नां.)
अनि-सर्व०—अन्य, दूसरा, भिन्न। उ०—(१) अस्व दुरद जेब अनेक, अनि छात ग्रह अनेक।—रा.रू. उ०—(२) चाप नमायौ रांमचंदि अनि दुनि भूप नमै दुरि।—रांमरासौ
अनिअनी-क्रि०वि०—भिन्न-भिन्न, अन्य, तरह-तरह। उ०—अनिअनी भोग भुगतै इळा, तवै सु सुख हाजर तियां।—ज.खि.
अनिआई-वि० [सं० अन्यायी] शैतान, बदमाश, अन्यायी।
उ०—'मोटल' सरखो मारियौ जिण सकज जमाई। 'देउरो' घर डोबियौ इणहिज अनिआई।—वीरमायण
अनिकार-सं०पु०—वीर, योद्धा। उ०—ओळण अनिकारां नरां हालां रा पण हाथ।—हा.झा.
अनिच्छ-सं०स्त्री०—१ इच्छा का अभाव (डिं.को.)
उ०—अनिच्छ जीव आवतै हरीच्छ सौ बलीयसी।—ऊ.का.
वि०—अनिश्चित। उ०—स्वइच्छ सिच्छ सूर वे अनिच्छ ऊंघते नहीं।
—ऊ.का.
अनिच्छा-सं०स्त्री०—इच्छा का अभाव।
अनित्य-वि० [सं०] १ वह जो खुद कार्य रूप हो तथा जिसका कारण कोई हो, अर्थात् जो सदैव एक सा न रहे, जैसे संसार। उ०—ए संसार अनित्य आदि सविकार उचारै।—रा.रू. २ जो स्वयं कारण रूप हो और कार्य रूप न हो, असत्य, झूठा। उ०—निरवांण नित्य अंतर अनित्य।—ऊ.का. ३ विनाशी, अस्थायी, नश्वर, नाशवान।
अनित्यता-सं०स्त्री० [सं०] नश्वरता, अस्थिरता।
अनित्यवाद-सं०पु० [सं०] प्रत्येक पदार्थ को क्षणिक और नश्वर मानने तथा किसी पदार्थ को शाश्वत और नित्य न मानने वाला सिद्धान्त।
अनित्यवादी-सं०पु०—१ अनित्यवाद के सिद्धान्त का समर्थक. २ इस सिद्धान्त के समर्थक एक प्रकार के बौद्ध।
अनिप-सं०पु० [सं०] सेनापति।
अनिपुण-वि० [सं०अ+निपुण] जो निपुण न हो, अपटु।
अनिपुणता-सं०स्त्री० [सं०] अपटुता, अदक्षता।
अनिबंध, अनिबंधी-वि०—स्वतंत्र, देखो 'अनमंध'।
अनिमंध—देखो 'अनमंध'। उ०—करि अवस देस कमंध, महि मेळ दळ अनिमंध।—रा.रू.
अनिमंधी-वि०—स्वतंत्र, वीर, देखो 'अनमंध'। उ०—आरहियौ ईखवा साह दरगह सकबंधी, है गै दळ हलिया मिळै अणकळ अनिमंधी।
—रा.रू.

अनिमिख—देखो 'अनमिख' (रू.भे.)

अनिमित—वि०—निमित्त या हेतुरहित, निष्कारण, बिना निमित्त या कारण के।

अनिमिस, अनिमेख—वि० [सं अनिमेष] देखो 'अनमिख' (रू.भे.)

अनियत—वि० [सं०] १ जो नियत या निश्चित न हो, अनिश्चित. २ अस्थिर, अनित्य।

अनियम—संपु० [सं०] १ नियमाभाव, व्यतिक्रम. २ अनिश्चय।

अनियमित—वि० [सं०] नियमरहित, अव्यवस्थित, अनिश्चित, जो नियमानुकूल न हो।

अनियाई—वि० [सं० अन्यायी] अन्यायी, बदमाश, धूर्त्त। उ०—ईखै दुरयोधन **अनियाई** सकळ पांडवां चींत संभाई।—रा.रू.

अनियाऊ—संपु० [सं० अन्याय] अन्याय, अनीति, देखो 'अन्याय'।

अनियायी, अनियायीयौ—वि० [सं० अन्यायी] अन्यायी। उ०—आइयौ **अनियायीय** घर पुड़ किणी न धारतौ।—पा.प्र.

अनियाव—संपु० [सं० अन्याय] अन्याय, अत्याचार, देखो 'अन्याय' (रू.भे.)

अनिरणय—संपु० [सं० अनिर्णय] द्विविधा, संदेह, संशय, अनिश्चय, दो बातों में से किसी का भी निश्चय न होना।

अनिरत, अनिरित—संपु० [सं० अनृत्य] झूठ, असत्य (ह.नां.)

अनिरुद्ध, अनिरुध—वि० [सं०] बिना रुका हुआ, जो अवरुद्ध न हो।
संपु०—श्रीकृष्ण के पौत्र और प्रद्युम्न के पुत्र। ये उषा के पति थे। (वेलि.)

अनिरुध्ध—संपु० [सं० अनिरुद्ध] देखो 'अनिरुद्ध' (रू.भे.)

अनिळ—संस्त्री० [सं० अनिल] वायु, हवा, पवन। उ०—भाजि बळ खळ हुए खळभळ, चळ विचळ करि **अनिळ** दळ चळ।—रा.रू.

अनिळकुमार—संपु० [सं० अनिलकुमार] १ हनुमान. २ भीम।

अनिळसखा—संपु० [सं० अनल+सखा] वायु, हवा।

अनिळासी—संपु०यौ० [सं० अनिलाशिन्] १ सर्प. २ एक व्रत विशेष. ३ केवल वायु का सेवन करके रहने वाला प्राणी या तपस्वी।

अनिवारित—वि० [सं०] जो निवारण करने योग्य न हो, वारण न किया हुआ।

अनिस—क्रि०वि० [सं०] निरन्तर, लगातार। उ०—बट राज बंसधारी प्रबळ, लाग **अनिस** जस लेण री।—वं.भा.
वि० [सं०] रात्रि का अभाव, निशारहित।

अनिसचित—वि० [सं० अनिश्चित] जिसका निश्चय न हो, अनियत, अनिर्दिष्ट।

अनिस्ट—वि० [सं० अनिष्ट] अवांछित, जो इष्ट न हो।
संपु०—अमंगल, अहित, बुराई, हानि।

अनिस्टकर, अनिस्टकार, अनिस्टकारी—वि० [सं० अनिष्टकर] अपकारक, अहितकर, हानिकर।

अनिस्ठुर—वि० [सं० अनिष्ठुर] जो निर्दयी न हो, दयावान, सरलचित्त।

अनिस्ठा—वि०स्त्री [सं० अनिष्ट+आ] जो इष्ट न हो, अवांछित।

अनिहद—देखो 'अनहद'। उ०—त्रिभुवन सार अपार, पार **अनिहद** अथाह।
—केसोदास गाडण

अनींद—वि०—निद्रारहित, जिसको नींद न आती हो।

अनींद्र—संपु०—देवता (ह.नां.) देखो 'अनिंद्रा' (रू.भे.)

अनी—संस्त्री०—१ देखो 'अणी'. २ सेना, फौज (अ.मा.) ३ समय (अ.मा.)

अनीक—संपु० [सं०] १ सेना, फौज, समूह। उ०—तिकण रै साथ कछवाह जयसिंह गोड़ अनिरुद्धसिंह नवाब वलेलखांन तीन ही मुख्य सामंत दे'र आपरौ उद्धत **अनीक** दियौ।—वं.भा. २ युद्ध. ३ योद्धा। उ०—मनिद्धि सुभट समरन समींक। इक्कतें इक्क उद्धत **अनीक**।
—ऊ.का.

४ साथी भागी। उ०—जठे नरेस कह्यौ फौज रै और भोज रै साथ म्हांरा जावण में तौ पिता-पुत्रां रै दोहीं तरफ अपजस री **अनीक** है।
—वं.भा.

वि०—जो अच्छा न हो, बुरा।

अनीकनी—संस्त्री० [सं० अनीकिनी] १ सेना, फौज (ह.नां) २ अक्षौहिणी सेना का दशांश।

अनीच—वि०—किसी बात में जो कम न हो, ऊँचा, जो नीच न हो। उ०—नीचे किए नीचौं को **अनीचे** किए ऊंचौं कौ।—ऊ.का.

अनीठ—वि० [सं० अनिष्ट] १ जो इष्ट न हो, अप्रिय, बुरा. २ जो समाप्त न हो सके, अपार, बहुत।
क्रि०वि०—सरलता से, आसानी से।

अनीत, अनीतत, अनीति—संस्त्री० [सं० अनीति] १ अन्याय, बेइंसाफ, अंधेर। उ०—भाजगी सरब रीतां भली, हमै **अनीतां** हालसी। नर लोक इंद 'मांना' नृपत, सैणां दिन २ सालसी।—बुधजी आसियौ २ अत्याचार। उ०—विनीत नीतवांन जै **अनीत** बाधतै नहीं।
—ऊ.का.

अनीतौ—संपु०—१ अन्यायी. २ बदमाश। उ०—टाबर लाड सूं बढौ **अनीतौ**।—सूरे खींवे री बात। ३ दुराचारी। उ०—**अनीता** चा.ता जकै वदीता न आंणै कोई। दूठ सत्रां गोळ आड़ मचावै उमेद।—अज्ञात

अनीप—संपु०—सेनापति।

अनीम—वि० [सं० अनम्र] १ न झुकने वाला. २ वीर।

अनीयाव—संपु० [सं० अन्याय] देखो 'अन्याय'। उ०—आज हुवौ **अनीयाव** आज धम पाजा फूटी।—बुधजी आसियौ

अनीलबाजी, अनीलवाजी—संपु०—१ जिसका घोड़ा श्वेत रंग का हो. २ अर्जुन।

अनीस—वि० [सं० अनीश] १ बिना मालिक या स्वामी का, अनाथ. २ असमर्थ, असहाय. ३ सर्वश्रेष्ठ।

सं०पु०—१ विष्णु. २ जीव. ३ माया. ४ सेनापति ।

अनीस्वर–वि० [सं० अनिश्वर] ईश्वर-भिन्न, नास्तिक ।
सं०पु०—देखो 'अनीस' ।

अनीह–वि० [सं०] १ इच्छा न रखने वाला, निर्लोभ, निष्काम. २ निश्चेष्ट, आलसी, बोदा ।
सं०पु०—समय, वक्त ।

अनुंद्रमी–वि०—देखो 'अन्युद्धमी' । उ०—करैं प्रळाप जाप कै ञताप में अनुंद्रमीं ।—ऊ.का.

अनु–उपसर्ग—शब्दों के पूर्व लगने वाला एक उपसर्ग जो निम्नलिखित अर्थ देता है—पीछे, सह, सादृश्य, प्रत्येक, बारंबार, अनुसार, अधीन, समीप, आदि ।
अव्यय—हाँ, ठीक ।
क्रि०वि०—अब, आगे ।
(रू.भे.–अणु)

अनुकंपा–सं०स्त्री०—१ दया, कृपा, अनुग्रह । उ०—तिणसौं दस गुणौं सरीरसुख, दस गुणौं द्रविण दे दे'र वै भी सभ अवंती रै अधीस अनुकंपा में गहिया ।—वं.भा.
२ सहानुभूति, करुणा ।

अनुकथण–सं०पु० [सं० अनुकथन] १ वह कथन जो किसी के कहने के बाद कहा जाय. २ पारस्परिक वार्तालाप. ३ अनुकूल कथन. ४ पुनरुक्ति कथन ।

अनुकरण–सं०पु० [सं०] १ देखादेखी कार्य, नकल, प्रतिरूपकरण, अनुरूप या सदृशकरण. २ वह जो पीछे उत्पन्न हो या आवे ।
क्रि०प्र०—करणौ ।

अनुकरणीय–वि० [सं०] अनुकरण करने के योग्य ।

अनुकरता–सं०पु० [सं० अनुकर्त्ता] अनुकरण या नकल करने वाला ।

अनुकार–वि०—बराबर, उपमा, सदृश, तुल्य, समान (वं.भा.)
उ०—जरै दोही सामंतां रा अहंकार रै ऊफांण भद्रकाळी रा कटाक्ष रै अनुकार चंद्रहासां रा संपात छूटिया ।—वं.भा.
सं०पु०—देखो 'अनुकरण' ।

अनुकूळ–वि० [सं० अनुकूल] १ मुआफिक, अनुसार । उ०—रति अनुकूळ विलास घणां रळियामणां । भीसग दीसै इंद्र लिवूं हूं भांमणां ।
२ प्रसन्न. ३ तरफदार । —बां.दा.
सं०पु०—वह नायक जो एक ही विवाहिता स्त्री में अनुरक्त हो ।

अनुकूळता–सं०स्त्री० [सं० अनुकूलता] पक्षपात, तरफदारी, विरुद्ध न होने का भाव. २ प्रसन्नता. ३ सहायता ।

अनुकूळा–सं०स्त्री०—एक प्रकार का छंद विशेष जिसमें प्रथम एक भगण, एक तगण और एक नगण के पश्चात् अन्त में दो गुरु होते हैं । (पिंगळ)

अनुकोस–सं०पु० [सं० अनुक्रोश] कृपा, दया (अ.मा.)

अनुक्रम–सं०पु० [सं०] १ क्रमानुसार, सिलसिला, परिपाटी ।
उ०—कही अनुक्रम सूं कथा, विच वाराह पुरांण ।—बां.दा.
२ यथाक्रम, आनुपूर्वी । उ०—रवि किरण अनुक्रम रेख, वाधंत तेज विसेख ।—रा.रू.

अनुक्रमणिका, अनुक्रमणीका–सं०स्त्री० [सं० अनुक्रमणिका] १ क्रम, सिलसिला. २ सूची, फेहरिस्त, तालिका ।

अनुक्रमणौ, अनुक्रमबौ–क्रि०अ० [सं० अनुक्रम] अनुक्रम से होना, क्रमवार होना । उ०—जग सीत प्रगटत पंथ चख जग अगनि दिसि असि अनुक्रमे ।—रा.रू.

अनुक्रमि–क्रि०वि०—अनुक्रम से । उ०—दिन रात सम तुल रासि दिन-कर सरकि अनुक्रमि सरवरी ।—रा.रू.
सं०पु०—देखो 'अनुक्रम' ।

अनुग–वि० [सं०] १ अनुयायी, अनुगामी. २ अनुकूल, मुआफिक ।
सं०पु०—१ सेवक, दास, अनुचर (अ.मा.) (ह.नां.)
उ०—अर प्रभात हुवां केई गरभवती पत्नी आपरा अनुगांनूं काठी चाढण री निदेस दे'र घणी रा अंचळ हूं अंचळ जोड़ियौ ।—वं.भा.
२ पीछे चलने वाला । उ०—असुभ चले कौ अनुग भूतरौ भाई मोटौ ।—ऊ.का.

अनुगत–सं०पु० [सं०] १ सेवक, अनुचर, नौकर । उ०—अग्रज रा आदेस रै अनुसार अब भावी रा भरोसा मैं भ्रम देखि प्राचीरापति सुजासाह ४०/२ रै नूं तजि आपरै देस आइ अनुगत भाव दिखाइ संभर सिरोमणि सत्रुसाळ रा पगां मैं प्रणांम कीधौ ।—वं.भा.
२ गीत के साथ धीरे २ ताल वाद्य का वादन (संगीत)

अनुगमण–सं०पु० [सं० अनुगमन] १ पीछे चलना, अनुसरण, समान आचरण. २ स्त्री का सती होना, सहगमन ।

अनुगामी–वि० [सं० अनुगामी] पीछे चलने वाला, अनुगमन करने वाला, अनुयायी, सहकारी, अनुवर्त्ती । उ०—सब इण रा अनुगांमी रै । ब्रह्मा विस्णु महेस्वर इणनै नित हो कहै नमांमि रै ।—गी.रां.

अनुग्या, अग्गिनुया–सं०स्त्री० [सं० अनुज्ञा] आज्ञा, हुक्म ।
उ०—निकांम आंम भांम कौ अनुग्गिया भजै नहीं ।—ऊ.का.

अनुग्रह–सं०पु० [सं०] १ कृपा, दया, अनिष्ट-निवारण, करुणा. २ प्रसन्नता ।

अनुग्राहक–वि० [सं०] अनुग्रह करने वाला, कृपालु, दयालु, उपकारी ।

अनुचर–सं०पु० [सं०] १ दास, नौकर, सेवक । उ०—तथापि साहस रै साथ असूया रै अनुचर आपरौ ही आदेस प्रबळ मांनियौ ।—वं.भा.
२ अनुयायी, अनुगामी ।

अनुचित–वि० [सं०] जो उचित न हो, नामुनासिब, बुरा, अयोग्य, नीतिविरुद्ध ।

अनुज–वि० [सं०] (स्त्री० अनुजा) पीछे उत्पन्न होने वाला ।
सं०पु०—छोटा भाई (ह.नां.)

अनुजीवी–वि० [सं०] १ पराधीन. २ आश्रित ।
सं०पु०—दास, सेवक, नौकर ।

अनुज्ज–सं०पु० (स्त्री० अनुज्जा) देखो 'अनुज' (रू.भे.)

अनुताप–सं०पु० [सं०] १ तपन, दाह, जलन. २ दुःख, रंज. ३ अफसोस, पछतावा। उ०—रजपूती पाताळ में गई जिणरी **अनुताप** आप रै बदळै ओरानूं आवै।—वं.भा.

अनुद्यमी–वि० [सं०] आलसी, उद्यमरहित।

अनुद्रुत–सं०पु० [सं०] संगीत के अनुसार ताल का एक भेद विशेष।

अनुधावण, अनुधावन–सं०पु० [सं० अनुधावन] १ अनुसरण, अनुकरण, नकल. २ अनुसंधान।

अनुनय–सं०पु० [सं०] विनय, विनती, प्रार्थना, विनम्रकथन।

अनुप–वि० [सं०] अनुपम, अतुल्य।

अनुपकारी–वि० [सं०] अहितकारी, अनुपकारक।

अनुपम–वि० [सं०] अनोखा, बेजोड़, अतुल्य, उपमारहित।

अनुपमता–सं०स्त्री० [सं०] अनुपम होना, बेजोड़पन।

अनुपयुक्त–वि० [सं० अन्+उपयुक्त] जो उपयुक्त न हो, अयोग्य, असंगत, अनुचित।

अनुपांन–सं०पु० [सं० अनुपान] औषधि के साथ या ऊपर से खाई जाने वाली वस्तु।

अनुपात–सं०पु० [सं०] तीन दी हुई संख्या के द्वारा चौथी संख्या को जानने की एक त्रैराशिक क्रिया (गणित)

अनुपातक–सं०पु० [सं०] बड़ा भारी पाप, ब्रह्महत्या के समान माने जाने वाले पाप।

अनुपादक–सं०पु० [सं०] आकाश से भी सूक्ष्म एक प्रकार का तत्व (तंत्र)

अनुप्रास–सं०पु० [सं०] एक प्रकार का शब्दालंकार विशेष जिसमें किसी पद का एक ही अक्षर बारबार आता है, वर्णावृत्ति–इसमें स्वरसाम्य होना आवश्यक नहीं अपितु केवल वर्ण-समानता ही मुख्य है।

अनुबंध–सं०पु० [सं०] १ बंधन, लगाव. २ व्याकरण के अनुसार वह इत्संज्ञक सांकेतिक वर्ण जो प्रत्यय का लोप होने वाला हो और जो गुण-वृद्धि आदि के लिये उपयोगी हो। ३ देखो 'अणुबंध'।

अनुभय, अनुभव–सं०पु० [सं० अनुभव] १ वह ज्ञान जो साक्षात करने से प्राप्त हो, परीक्षा से प्राप्त ज्ञान, तजरबा। उ०—सिव सक्ति सीम, **अनुभव** असीम, सिद्धान्त सार, नित निराकार।—ऊ.का.
२ समझ, ज्ञान।

अनुभवणौ, अनुभवबौ–क्रि०अ०—अनुभव करना।

अनुभवी–वि० [सं० अनुभविन्] जिसे अनुभव हो, तजरबाकार, जानकार।

अनुभाव–सं०पु० [सं०] १ महिमा, बड़ाई. २ काव्य में रस के अंतर्गत एक अंग जिससे रस का बोध होता हो।

अनुभावी–वि० [सं० अनुभाविन्] देखो 'अनुभवी'।

अनुभूत–वि० [सं०] १ जिसका अनुभव या साक्षात ज्ञान हो चुका हो. २ परीक्षित, निश्चित। उ०—अर अगया रौ संवाद **अनुभूत** करि फौज में पाछा पधारण रौ निदेस लगायौ।—वं.भा.

अनुभूति–सं०स्त्री० [सं०] अनुभव, परिज्ञान, बोध।

अनुमत, अनुमति–सं०स्त्री० [सं० अनुमति] १ आज्ञा, हुक्म, सम्मति. २ वह पूर्णिमा जिसमें चंद्रमा पूर्ण कलायुक्त न हो अर्थात् वह पूर्णिमा जिस दिन चतुर्दशी का योग हो।

अनुमरण–सं०पु० [सं०] सहमरण, सती होना, एक साथ मरना।

अनुमांन–सं०पु० [सं० अनुमान] १ अटकल, अंदाजा. २ न्याय के चार प्रमाण भेदों में से एक, तर्क, हेतु के द्वारा निर्णय, विचार, कल्पना। देखो 'अनुमिति' (२)।
क्रि०वि०—अनुसार। उ०—तिहां परमेश्वर कौ गुणानुवाद आपणि मति के सारै स्रम कीधा विण केम सरै। बुद्धि कै **अनुमांन** कह्यौ चाहिजै।—वेलि.टी.

अनुमित–वि० [सं०] अनुमानित, अंदाजा किया हुआ।

अनुमिति–सं०स्त्री० [सं०] १ अनुमति, आज्ञा, स्वीकृति।
[सं० अनुमान] २ नवीन न्याय के अन्तर्गत प्रमाण के चार भेदों में से एक जिसमे प्रत्यक्ष साधन के द्वारा अप्रत्यक्ष अर्थात किसी अन्य वस्तु का अनुमान किया जाय. ३ अनुमान अंदाजा। उ०—मरजाद सर सर सरिति **अनुमिति** छूटि जात अछेहयं।—रा.रू.

अनुमोदक–वि०—अनुमोदन करने वाला, समर्थक।

अनुमोदन–सं०पु० [सं०] १ प्रसन्नता का प्रकाशन. २ समर्थन, प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकृति। उ०—कोधौ दुल्लह कंवर मिरा छकियै अनुमोदन।—वं.भा.

अनुमोदित–वि० [सं०] जिसका अनुमोदन कर दिया गया हो, समर्थित। उ०—मोरां **अनुमोदित** लोरां लड़ लागी, नीझर नवनीरद भमनां भव भागी।—ऊ.का.

अनुयायी–वि० [सं०] अनुगामी, अनुकरण करने वाला, पीछे चलने वाला।
सं०पु०—१ सेवक, अनुचर. २ शिष्य, अनुवर्ती।

अनुयोजन–सं०पु० [सं०] पूछने की क्रिया, जिज्ञासा, प्रश्न (डिं.को.)

अनुरंजण–सं०पु० [सं०] १ अनुराग, प्रीति. २ मनोरंजन।

अनुरक्त, अनुरत, अनुरति–वि०—अनुरागयुक्त, आसक्त, लीन, रत।

अनुराग–सं०पु० [सं०] १ आसक्ति, प्रेम, प्यार, मोह. २ रति, संभोग. ३ प्रशंसा. ४ हल्की लालिमा।

अनुरागी–वि० [सं० अनुरागिन्] (स्त्री० अनुरागणी) अनुराग रखने वाला, प्रेमी, अनुरक्त। उ०—रे जाया! धन थारी बुध लाल. रांम **अनुरागणी** के हा।—गी.रां.

अनुराग्य–सं०पु०—देखो 'अनुराग'। उ०—अभ्यासी वैराग्य प्रनत **अनुराग्य** व्रत्ति वधें।—ऊ.का.

अनुराधा–सं०स्त्री०—सत्ताईस नक्षत्रों के अंतर्गत सत्रहवां नक्षत्र जिसमे सात तारे होते हैं।

अनुरूप–वि० [सं०] १ सदृश, समान रूप का, एक सा. २ उपयुक्त. ३ अनुकूल।

अनुरूपक–सं०पु० [सं०] सदृश वस्तु, प्रतिमूर्ति।

अनुकपता–सं०स्त्री० [सं०] १ समानता. २ अनुकूलता।

अनुरोध–सं०पु० [सं०] १ रुकावट, बाधा. २ प्रेरणा, उत्तेजना. ३ विनयपूर्वक आग्रह।

अनुलोम–सं०पु० [सं०] १ ऊँचे से नीचे आने का काम. २ उतार का सिलसिला. ३ स्वरों का क्रमशः उतार (संगीत), अवरोहण।
वि०—सीधा, क्रम से, अविलोम, यथाक्रम।

अनुलोमज–सं०पु० [सं०] उच्चवर्ण के किसी पुरुष का अपने से नीचे वर्ण की स्त्री के विवाह से उत्पन्न संतान।

अनुलोमनी–सं०स्त्री० [सं० अनुलोमन] कब्जियत को दूर करने वाली रेचक या दस्तावर दवा।

अनुलोम विवाह–सं०पु०—उच्च वर्ण के किसी पुरुष का अपने से नीचे वर्ण की स्त्री से किया जाने वाला विवाह।

अनुवाचन–सं०पु० [सं०] विधि के अनुसार यज्ञों में किया जाने वाला मंत्रों का पाठ।

अनुवाद–सं०पु० [सं०] १ पुनरुक्ति, दोहराना. २ भाषांतर, उल्था, तर्जुमा. ३ वाक्य का वह भेद जिसमें कही हुई बात का फिर-फिर कथन हो (न्याय)

अनुवादक–सं०पु० [सं०] अनुवाद करने वाला, भाषान्तरकार।

अनुवादित–वि० [सं०] अनुवाद किया हुआ।

अनुवादी–वि० [सं०] संगीत के अंतर्गत स्वर का एक भेद विशेष जिसकी किसी राग में जरूरत न हो तथा प्रयोग करने से राग अशुद्ध हो जाय।

अनुवासन–सं०पु० [सं० अनुवाशन] १ वस्त्र आदि को सुगंधित रखने का भाव. २ पिचकारी द्वारा किसी तरल औषधि को शरीर में पहुँचाने की क्रिया (सुश्रुत)

अनुसंधान–सं०पु० [सं०] खोज, अन्वेषण।

अनुसयाना–सं०स्त्री० [सं० अनुशयाना] प्रिय के मिलने के स्थान के नष्ट हो जाने से दुःखी नायिका, परकीया नायिका का एक भेद विशेष।

अनुसर, अनुसरण–सं०पु० [सं०] १ पीछे चलना. २ अनुकरण, नकल। उ०—ओ हिज नेह निभावण हारी, इण ही नै अनुसर लै पागलणी।—गी.रां.

अनुसरणौ, अनुसरबौ–क्रि०अ० [सं० अनुसरण] पीछे चलना, अनुसरण करना। उ०—रवि मकररासि निवास राजत उतर मगहर **अनुसरे**।
—रा.रू.

अनुसरणहार, हारौ (हारी), अनुसरणियौ–वि०—अनुसरण करने वाला।

अनुसरवाणौ–प्रे०रू०। **अनुसराणौ, अनुसराबौ**–स.रू.

अनुसरिप्रोड़ौ-अनुसरियोड़ौ-अनुसरयोड़ौ–भू०का०कृ०।

अनुसराणौ, अनुसराबौ–क्रि०स० [सं० अनुसरण] पीछा कराना, अनुसरण कराना।

अनुसराणियौ–वि०—अनुसरण कराने वाला।

अनुसरीजणौ, अनुसरीजबौ–भा०वाच्य०—पीछे चला जाना।

अनुसरीजिप्रोड़ौ, अनुसरीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—पीछे चला गया हुआ।

अनुसरियोड़ौ–भू०का०कृ०—अनुसरण किया हुआ।
(स्त्री० अनुसरियोड़ी)

अनुसवार–सं०पु० [सं० अनुस्वार] वह अनुनासिक वर्ण या स्वर जो स्वर के पीछे उच्चरित होता हो, स्वर के ऊपर की बिन्दी।

अनुसार–क्रि०वि० [सं० अनु+सृ+घञ्] अनुकूल, सदृश, समान, मुआफिक, अनुरूप। उ०—मत **अनुसारैं** मंछ कह, रचूं गीत कविराज।—र.रू.

अनुसासक–सं०पु० [सं० अनुशासक] १ आज्ञा देने वाला. २ शिक्षक. हकूमत करने वाला।

अनुसासण, अनुसासन–सं०पु० [सं० अनुशासन] १ आज्ञा, आदेश. २ शिक्षा, उपदेश।

अनुसीलन–सं०पु० [सं० अनुशीलन] १ चिंतन, मनन. २ अभ्यास।

अनुस्टप–सं०पु० [सं० अनुष्टुप्] आठ वर्ण के पद वाला एक प्रकार का वर्ण वृत्त विशेष जिसके चारों पदों में पाँचवा वर्ण लघु और छठा वर्ण गुरु हो। सम पदों में सातवाँ वर्ण भी लघु होता है। अन्य वर्णों के लिए कोई विशेष नियम नहीं है। (र.ज.प्र.)

अनुस्टांन–सं०पु० [सं० अनुष्ठान] किसी कार्य-सिद्धि के निमित्त देव विशेष या ग्रह की की जाने वाली पूजा।

अनुस्टुप–सं०पु०—देखो 'अनुस्टप'।

अनुस्ठांन–सं०पु० [सं० अनुष्ठान] देखो 'अनुस्टांन'।

अनुहार–वि० [सं०] १ सदृश, तुल्य, समान। उ०—धुव जित तित टामंक ध्वनि, हुव इत हित **अनुहार**।—वं.भा.
सं०स्त्री०—२ आकृति, शक्ल।

अनूंतौ–वि० (स्त्री० अनूंती) १ बहुत. २ शैतान, बदमाश. ३ अन्यायी।

अनूकंपा–सं०स्त्री० [सं० अनुकंपा] देखो 'अनुकंपा'।

अनूग्रह–सं०पु० [सं० अनुग्रह] देखो 'अनुग्रह'। उ०—बांकैदास जांणियौ विध विध राज **अनूग्रह** जंगळराय।—बाँ.दा.

अनूठापण, अनूठापणौ–सं०पु०—१ विचित्रता, विलक्षणता, अनोखापन, २ सुंदरता. ३ स्वच्छता।

अनूठौ–वि० [सं० अनुत्थ, प्रा० अनुट्ठ] (स्त्री० अनूठी) १ अनोखा, विचित्र. २ बढ़िया, अच्छा।

अनूढ़–वि०—कुंआरा, अविवाहित। उ०—जिणनूं **अनूढ़** मुणि अहत जंग 'अभलदै' कीधौ भस्म अंग।—वं.भा.

अनूढ़ा–सं०स्त्री० [सं०] किसी पुरुष से प्रेम रखने वाली अविवाहिता स्त्री, एक प्रकार की नायिका (वं.भा.)

अनूढ़ागामी–सं०पु० [सं०] व्यभिचारी, लंपट, वेश्यागामी, अविवाहिता स्त्रियों से व्यभिचार करने वाला।

अनूतौ–वि० (स्त्री० अनूती) देखो 'अनूंतौ' (रू.भे.)

अनूप-वि० [सं०] १ सुंदर, मनोहर। उ०—'लांबे' सर पांणी भरै गौरी गात अनूप, ज्यां आगै पांणी भरै रंभ अलौकिक रूप। —बाँ.दा.
२ अद्वितीय, अनुपम। उ०—अलख अजोनी आतमा, अचळ अनूप अनंत, तू मारै तारै तुही, भले भले भगवंत। —ऊ.का.
३ बढ़िया, अच्छा। उ०—यां आद विखै चांपा अनूप, भुज गयण धरै पण वयण भूप।—रा.रू.
सं०पु० [सं०] १ जल-प्लावित या सजल प्रांत। [सं० अनुपज] २ उपज का अभाव, फसल का मारा जाना [रा०] ३ डिंगल के चौरासी छंदों में से एक छंद विशेष (क.कु.बो.) ४ ग्यारह वर्णों का एक प्रकार का वर्णिक छंद विशेष जिसमें तीन यगण होते हैं और अंत में लघु गुरु होता है। (ल.पिं.)

अनूपजथा-सं०स्त्री० [सं० अनूप+जथा-रा०] राजस्थानी गीत (छंद) रचना का एक नियम विशेष जिसमें गीत (छंद) की गति अर्थ व ज्ञान में अद्भुत हो एवं जिसका वर्णन निपुण उक्ति से किया जाय। (क.कु.बो.)

अनूपतर-सं०पु०—आम (अ.मा.)

अनूपम-वि० [सं०] अद्वितीय, बेजोड़, निरुपम। उ०—रूप अनूपम मारुवी, सुगुणी नयण सुचंग।—ढो.मा.

अनूपां, अनूपे, अनूपौ-वि०—अनुपम, अद्भुत। उ०—इकां एक वाधू अनूपे अनूपां।—रा.रू.

अनूरौ-वि० (सं० अ+फा० नूर) तेजहीन, कांतिहीन।

अनै-अव्यय—और। उ०—पैदळ, घोड़ा, ऊंट अनै कफ, मंडयौ जुध मेदांनी।—ऊ.का.
सं०पु०—आदेश, हुक्म, आज्ञा।

अनेक-वि० [सं०] एक से अधिक, बहुत, अगणित।

अनेकता-सं०स्त्री० [सं०] १ भेद, विभेद, विरोध, मताधिक्य. २ अधिकता, बहुलता।

अनेकप-सं०पु० [स०] हाथी (ह.नां., डिं.को.)

अनेकलोचन-सं०पु० [सं०] इंद्र।

अनेकांत-वि० [सं०] १ चंचल. २ जो एकांत न हो।

अनेकांतवाद-सं०पु० [सं०] जैनदर्शन, आर्हतदर्शन।

अनेकारथ-वि०यौ० [सं० अनेक+अर्थ] जिसके बहुत से अर्थ हों।

अनेकारथी-सं०पु०—वह कोश जिसमें एक शब्द के अनेक अर्थ दिये गये हों।

अनेकी-सं०स्त्री० [सं० अ+फा० नेकी] १ बुराई. २ अपकार. ३ अन्याय।

अनेकै-वि० [सं० अनेक] अनेक, बहुत। उ०—अनेकै अनोपै गजै रूप ऐसौ।—रा.रू.

अनेड़-वि०—१ निकम्मा. २ टेढ़ा. ३ खराब, बुरा. ४ उद्दंड।

अनेत-वि० [सं० नेति] अंतहीन, नेति। उ०—वहै नेत नेति अनेति बखांणै।—भंगीपुरांण

अनेम-वि० [सं० अ+नियम] नियमरहित, बेकायदा।

अनेर-सर्व०—अन्य, दूसरा। उ०—अकबर उर मैं साल अहाड़ी, ओयणै सेवग भूप अनेर।—पीथोजी आसियौ

अनेरी-वि०—अन्य, दूसरी। उ०—रत्तड़ियां वहि जाइ, सुणतां सज्जण वत्तड़ी, 'जसा' सु नावै दाइ, कथा अनेरी चित्त मैं।—जसराज

अनेरण-वि०—नहीं झुकने वाला, अजेय।

अनेरौ-सर्व०—अन्य, दूसरा, अपर (मि. अनेर)
(बहु०—अनेरां) उ०—भाप करै सर सूभर भरिया, धरती रूप अनेरां धरिया।—आसौ बारहठ

अनेस-सं०पु० [सं० अ+स्नेह] १ स्नेहरहित. २ घररहित।
उ०—अचाळ अरद्ध अनाळ अनेस, आदेस, आदेस, आदेस, आदेस। —ह.र.
वि०—अनेक। उ०—मीरां रै प्रभु स्यांम मिळण विण जीवनि जनम अनेस।—मीरां

अनेसी-सं०स्त्री०—खोटी बात, बुरी बात। उ०—करि आज हिंदूनि ऐसी अनेसी, तिहारे रही राज कै पाज कैसी।—ला.रा.

अनेसौ-सं०पु०—संदेह, शक (रू.भे. अणेसौ)
उ०—पव्वनो नचंदो दंडदो प्रवेसं, अठे ऐहरा गम्मएही अनेसो। —ना.द.
वि०—देखो 'अनैसौ'।

अनेह-सं०पु० [सं० अ+स्नेह] १ प्रेम या स्नेह का अभाव।
उ०—पण तज देह अवेह पधारौ एह अनेह अभावां।—ऊ.का.
२ विरक्ति। उ०—नमौ अणरेह अनेह अनंत।—ह.र.
३ समय, काल (मि० अनेहा) उ०—चहुआंण कन्न कहियौ 'सातूं ही भायां रौ वैर वाळण रा संकळप होय तौ इण संग्राम सवाय वळै किसड़ौ अनेह आवै छै।—वं.भा.

अनेहा-सं०पु० [सं०] समय, काल, अवसर (डिं.को.)

अनेही-सं०पु० [स० अ+स्नेहिन्] वैर रखने वाला, द्वेषी।

अनै-सं०पु० [सं० अनय] अनीति, अन्याय।
अव्यय—१ फिर, पुनः. २ और। उ०—पुरातन प्रीत जिसी हरि पथ। राजा लोमंज अनै दसरथ।—रांमरासौ

अनैस-सं०पु०—देखो 'अनेस'।

अनैसी-वि०—१ अद्भुत, अतुल्य। उ०—साहसूं अवाकी थकै नव साहसां आप बळ भुजा कीन्ही अनैसी।—द्वारकादास दधवाड़ियौ।
२ असमान, बेजोड़। उ०—ऊंबां लूंबां ढूंत अनैसी, तर भड़ वळी वहीरां तैसी।—रा.रू. ३ अप्रिय, खराब।
सं०स्त्री०—बुरी बात, देखो 'अनेसी'।

अनैसौ-क्रि०वि०—दूर, अपरिचित। उ०—एकंकार ज रहियौ अळगो, अकबर सरस अनैसौ।—दुरसौ आढ़ौ।
सं०पु०—१ दुःख. २ शक, संदेह।
वि० [सं० अ+स्नेह] १ परवाह न करने वाला, लापरवाह।

उ०—तेजो प्रुकन महाबळ तैसा, अरिवळ भांजण प्रांण अनैसा ।
—रा.रू.

२ निशंक. ३ बुरा, अप्रिय ।

अनोअन, अनोअन्न–सर्व० [सं० अन्योन्य] परस्पर, आपस मे एक दूसरे से ।

उ०—१ **अनोअन** मांय तुहाळा अंस, हुमें न संताय छतो थयो हंस ।
—ह.र.

उ०—२ लगे अंग तूटै **अनोअन** खूटे ।—रा.रू.

सं०पु०—एक प्रकार का अलंकार विशेष जिसमें दो वस्तुओं का किसी क्रिया या गुण एक दूसरे के कारण उत्पन्न होना कहा जाय ।

अनोकह–सं०पु० [सं० अनोकहः] १ अपना स्थान न छोड़ने वाला, स्थावर. २ वृक्ष, पेड़ (ह.नां.)

अनोखी–वि०—देखो 'अनोखो' का स्त्री० (रू.भे. 'अनोखी')

अनोकुह–सं०पु० [सं० अनोकहः] वृक्ष, पेड़ (ह.नां.)

अनोख–वि०—देखो 'अनोखो' ।

अनोखापण, अनोखापणौ–सं०पु०—१ अनूठापन, निरालापन, विचित्रता. २ सुन्दरता ।

अनोखो, अनोखौ–वि० (स्त्री० अनोखी) १ अनूठा, निराला, विलक्षण ।

उ०—स्रम थोड़े बोह नफो सांपजै, बीसर मती **अनोखी** बात—बां.दा.

२ सुंदर ।

कहा०—अनोखै हाथ कटोरा आया पांणी पी-पी आफरिया—अनोखे व्यक्ति को कहीं से कटोरा मिल गया तो बस लगा पानी पीने और पेट फूल आया—मूर्ख अथवा तुच्छ व्यक्ति के लिए, जो कोई नई चीज मिलने पर साधारण वस्तु अथवा अधिकार की प्राप्ति पर इतराने लगता है ।

अनोड़–वि०—न रुकने वाला, वीर, योद्धा । उ०—मछरीक 'फतौ' गज घड़ मरोड़, 'अजबेस' लाल पातल **अनोड़** ।—रा.रू.

अनोप–वि० [सं० अनुपम] देखो 'अनुपम' । उ०—अगम्भ अछेह उदार **अनोप** अप्रम्म अथाह अगम्म अलोप ।—ह.र.

अनोपम–वि०—देखो 'अनुपम' । उ०—चौसट कळा री जांण, बुध-निधांन, अगनयणी इसी **अनोपम** अस्त्री होय तो म्हांनै परणीजण री खांत छै ।—ढो.मा.

अनोपमता–सं०स्त्री० [सं० अनुपमता] अनोखापन, अनुपमता, चमत्कार-युक्त कार्य ।

अन्न–सं०पु० [सं०] १ अनाज, धान, खाद्य पदार्थ, पका हुआ अन्न ।

कहा०—१ अन्न खावै जिसी डकार आवै—जैसा अन्न खाता है वैसी ही डकार आती है । २ अन्न खावै जिसो मन्न होवै—भोजन का प्रभाव मन पर अवश्य पड़ता है । ३ अन्न खावै जिसी नीयत हुवै—जैसा अन्न खाया जाता है वैसी ही बुद्धि होती है । ४ अन्न जी रा बाजा नै अन्न जी रा ही गाजा—संसार में सब अन्न की ही माया है, सब अन्न के पीछे दौड़ते हैं । ५ अन्न ज्यांरा पुन्न—पुण्य उसी को प्राप्त होता है जिसका अन्न होता है । ६ अन्न मुक्ता घी जुक्ता—अनाज के अनुपात से घी खाना चाहिए । ७ म्हांरे बाप नै अन्न मत मिळजो, म्हनै बळीता नै मेल देवेला—काम करने के बजाय भूखों मर जाना अच्छा है—आलसी व्यक्ति पर प्रायः कही जाती है । ८ अन्न री तो आखी ही कोनी, कड़ाव हलावण री बातां करै—अन्न का तो दाना ही नहीं है और बातें बड़ी-बड़ी करता है—व्यर्थ में बड़ी-बड़ी गप्पें मारना ।

(रू.भे. अन)

यौ०—अन्नकूट, अन्नछेत्र, अन्नजळ, अन्नपांणी ।

अन्नकूट–सं०पु० यौ० [सं०] देखो 'अनकूट' ।

अन्नछेत्र–सं०पु०यौ० [सं० अन्नक्षेत्र] देखो 'अनसत्र' ।

अन्नजळ–सं०पु० यौ० [सं०] देखो 'अनजळ' ।

क्रि०प्र०—करणी, छोड़णी, होणी ।

अन्नजी, अन्नजीबाजी–सं०पु०—अनाज, अन्न (व्यंग)

अन्नड़–देखो 'अनड़' ।

अन्नणचन्नण–सं०पु० [सं० इंधन+चन्दन] चंदन का ईंधन ।

उ०—**अन्नणचन्नण** चिता चिणाई, नारेळां में दाग । आरबार फिर जाट लोटियै, लांपो दियो लगाय ।—डूंगजी जवारजी री पड़

अन्नथा–क्रि०वि० [सं० अन्यथा] देखो 'अन्यथा' ।

अन्नदांन–सं०पु०यौ० [सं० अन्नदान] देखो 'अनदांन' ।

अन्नदाता–सं०पु०यौ० [सं०] देखो 'अनदाता' ।

अन्नदास–सं०पु०यौ० [सं०] देखो 'अनदास' ।

अन्नपांणी–सं०पु०यौ० [सं० अन्न+रा० पांणी] अन्नजल, दानापानी, आबोदाना ।

अन्नपूरण, अन्नपूरणा–सं०स्त्री० [सं० अन्नपूर्णा] १ देखो 'अनपूरणा'. २ श्री बरवड़ी देवी का दूसरा नाम ।

अन्नप्रतग्या, अन्नप्रतन्या–सं०स्त्री० [सं० अन्न+प्रतिज्ञा] भोजन न करने की प्रतिज्ञा । उ०—बतइ भणइ पहिला घाउ ले सूं, **अन्नप्रतन्या** लीधी ।—कां.दे.प्र. ।

अन्नप्रासन–सं०पु०यौ० [सं० अन्नप्राशन] पहिलेपहल बच्चों को अन्न चटाने का एक संस्कार विशेष ।

अन्नमयकोस–सं०पु०यौ० [सं० अन्नमयकोश] अन्न से निर्मित त्वचा से लेकर वीर्य्य तक का समुदाय । पंचकोशों में से प्रथम (वेदांत)

अन्नल, अन्नला–सं०स्त्री०—देखो 'अनल' । उ०—देवी **अन्नला** रूप आकास भम्मै, देवी मानवां रूप म्रतलोक रम्मै ।—देवि.

अन्नसत्र–सं०पु०यौ० [सं०] भूखों को भोजन देने का स्थान ।

अन्नसन–सं०पु० [सं० अनशन] देखो 'अनसन' ।

अन्नाद–वि० [सं० अनादि] देखो 'अनादि' । उ०—देवी आद **अन्नाद** ओंकार वाणी ।—देवि.

अन्नाहत–सं०पु०—देखो 'अनाहत' । उ०—उअंकार **अन्नाहत** अक्खर, सिद्धि बुद्धि दै सारद गुणेसर ।—रा.जे.सी.

अन्निबंध–वि०—देखो 'अनबंध' ।

अणेक–वि०—देखो 'अनेक'। उ०—एक देस औद्धाड़, इसा **अणेक** अणंकळ।—रा.रू.

अन्य–वि० [सं०] दूसरा, और, भिन्न, गैर, पराया।

अन्यक्रीत–वि० [सं०] दूसरे का खरीदा हुआ।

अन्यत्र–वि० [सं०] दूसरी जगह।

अन्यथा–वि० [सं०] विपरीत, उलटा, विरुद्ध, असत्य।

सं०पु०—विपर्यय, झूठ।

अव्यय—नहीं तो।

अन्यन–वि०—देखो 'अनन्य'।

अन्यपुरस–सं०पु० [सं० अन्यपुरुष] १ पुरुषवाची सर्वनाम का तीसरा भेद (व्याकरण). २ दूसरा व्यक्ति।

अन्याई–वि० [सं० अन्यायी] अन्याय या अत्याचार करने वाला। उ०—पातसाह अणथाह कोप जळ थाह न काई, रतन रूप सुरधरम गिळण हटियौ **अन्याई**।—रा.रू.

अन्याय–सं०पु० [सं०] १ न्यायविरुद्ध आचरण. २ अनीति, जुल्म, अत्याचार. ३ बेइंसाफी।

अन्यायी–वि० [सं० अन्यायिन्] अन्याय करने वाला, अत्याचारी, जालिम।

अन्याव–सं०पु० [सं० अन्याय] देखो 'अन्याय'। उ०—तमायची रै सहर में, एक बड़ौ **अन्याव**। चंगी माड़ू मारियौ, पूछै नहीं नियाव।

—जलाल बूबना री बात

अन्युद्यमी–वि०यौ०—१ दूसरे का उद्यम करने वाला (मि० पैल) २ उद्यम न करने वाला (मि० अनुंद्यमी)

अन्योक्ति–सं०स्त्री० [सं०] वह कथन जिसका अर्थ कही गई वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं पर घटाया जाय। कई आचार्यों ने इसे अलंकार भी कहा है।

अन्योन्य–सर्व० [सं०] परस्पर, आपस में।

अन्योन्याभाव–सं०पु०यौ० [सं०] वह भाव जिसके अंतर्गत एक वस्तु दूसरी वस्तु नहीं हो सकती।

अन्योन्याश्रय–सं०पु०यौ० [सं०] १ एक दूसरे का परस्पर सहारा. २ सापेक्ष ज्ञान (न्याय)

अन्वय–सं०पु० [सं०] १ परस्पर संबंध. २ संयोग, मेल. ३ कार्य-कारण का संबंध. ४ कविता के शब्दों को गद्य रचना के नियमानुसार यथा स्थान रखने का कार्य।

अन्वेसक–वि० [सं० अन्वेषक] अन्वेषण या खोज करने वाला।

अन्वेसण–सं०पु० [सं० अन्वेषण] अनुसंधान, खोज, तलाश।

अन्हायतर–सं०स्त्री०—शीघ्रता (ह.नां. पाठांतर)

अपंग–वि०—१ अंगहीन. २ लंगड़ा, लूला। उ०—**अपंग** पंग अंध जिम बैठ जांणतै नहीं।—ऊ.का. ३ अशक्त, असमर्थ, असहाय, बेबस। उ०—'तगत' कौ कियौ तंग 'सज्जन' कौ अत्यु संग, कोटापती कौ **अपंग** 'ऊमर' उचारूं मैं।—ऊ.का. ४ देखो 'उपंगी' (१)।

अपंथ–सं०पु० [सं० अपथ] १ पथविहीन. २ कुमार्ग, कुपथ। उ०—अघ **अपंथ** मेट निज पंथ इण उजळै, भूमंडळ तणा हालै सकळ भूप।

—उम्मेदसिंह सीसोदिया री गीत

३ विकट मार्ग, बीहड़ रास्ता।

अपंपर–वि०—अत्यधिक, अगणित, अपार, बहुत। उ०—धणर एक धारणा पारपरमोद **अपंपर**।—पा.प्र.

सं०पु० [अपरंपार] १ अनंत. २ विष्णु, ईश्वर, जगदीश्वर।

अप–उप० [सं०] शब्दों के पहले लगने वाला एक उपसर्ग जो उलटा या विरुद्ध का अर्थ देता है।

सर्व०—आप, अपने। उ०—खरौ जिगरिया खांन जिकौ उत्तर **अप** जोरै, पूरब सादित प्रगट तकौ ऊव ज निज तोरै।—रा.रू.

सं०पु० [सं० आप] पानी, जल (ह.नां.)

अपअप्प, अपआप–सर्व०—अपनेआप, स्वयं। उ०—गेपन तुड़ कछवाह-कुळ, मिळे आनि **अपअप्प**।—ला.रा.

अपइण–सर्व०—अपना। उ०—पंच सहेली मिळी धन साथ। चोरी म्हेली धन **अपइण** हाथ।—वी.दे.

अपकंठ–सं०पु०—बालक (अ.मा.)

अपक–सं०पु० [रा०] जल, पानी।

अपकज–क्रि०वि०—अपने लिए।

अपकरण–सं०पु०—दुराचार, अनिष्ट कार्य।

अपकरता–सं०पु० [सं० अपकर्ता] १ हानिकारक, बुरा करने वाला. २ पापी।

अपकरम–सं०पु० [सं० अपकर्म] दुष्कर्म, कुकर्म।

अपकाजी–वि०—स्वार्थी, खुदगरज, मतलबी।

अपकार–सं०पु० [सं०] १ बुराई. २ हानि, क्षति, अनिष्ट। उ०—**अपकार** उजार गुजार करै, क्रपया उपकार अपार करै।

—ऊ.का.

३ निरादर, अपमान।

अपकारक–वि० [सं०] १ विरोधी. २ दुष्कर्मी. ३ हानि पहुँचाने वाला, अपकार करने वाला।

अपकारी–वि० [सं० अपकारिन्] १ हानिकारक, अपकार करने वाला. २ विरोधी, द्वेषी।

अपकीरति, अपकीरती–सं०स्त्री० [सं० अपकीर्ति] अपयश, बदनामी, निंदा, अकीर्ति। उ०—जात जान्यौ जनन पै मनन मुरात जान्यौ, अर्त्तहिं निबाह्यौ **अपकीरति** बिबाह्यौ नां।—सूरजमल मीसण

अपक्ख–वि० [सं० अ+पक्ष] पक्षरहित, असहाय। उ०—आरांम अजांम अयांम **अपक्ख**, अठांम अगांम अधांम अलक्ख।—ह.र.

अपक्रति–सं०स्त्री० [सं० अपकृति] १ हानि, बुराई. २ अपकार. ३ अपमान।

अपक्षपात–सं०पु० [सं०] न्याय, बिना किसी पक्षपात के, पक्षपातरहित।

अपक्षपाती–वि०—जो किसी प्रकार का पक्षपात न करे, न्यायी।

अपक्षेपण–सं०पु० [सं०] फेंकना, गिराना।

अपगा–सं०स्त्री० [सं०] नदी, सरिता। उ०—**अपटै अपगा** ज्यूं ही, भभकै स्रोण धार भाड़ा। मारवाड़ा हकौ हकै बकै मार-मार। —हुकमीचंद खिड़ियौ

अपगौ–वि० (स्त्री०अपगी) १ देखो 'अपंग'. २ लँगड़ा. ३ जिसके पैर न हो. ४ अविश्वासपात्र।

अपघात–सं०स्त्री० [सं०] १ हत्या, हिंसा. २ धोखा. ३ आत्महत्या, खुदकुशी। उ०—रैण अंधारी बिरह घेरा, तारा गिणत निस जात। ले कटारी कंठ चीरूं, करूंगी **अपघात**।—मीरां

अपघातक, अपघाती–वि०—१ हिंसक. २ विश्वासघाती. ३ आत्म-हत्या करने वाला।

अपड़णौ, अपड़बौ–क्रि० स०—१ पकड़ना। उ०—एहड़ी सुणे माहा-राज कहियौ उठै। **अपड़** खीची उरौ भेज दीजौ अठै।—जसजी आढ़ौ २ रोकना, थामना. ३ बंदी करना. ४ दौड़ने, चलने या किसी और बात में बढ़े हुए के बराबर हो जाना।

अपड़णहार-हारौ (हारी), अपड़णियौ–वि०—पकड़ने वाला।

अपड़योड़ौ–भू०का०कृ०—पकड़ा हुआ। **अपड़वाणौ**–प्रे.रू.–पकड़वाना।

अपड़वायोड़ौ–भू०का०कृ०—पकड़ाया हुआ।

अपड़ाणौ, अपड़ाबौ, अपड़ावणौ, अपड़ावबौ–स०रू०।

अपड़िओड़ौ, अपड़ियोड़ौ, अपड़योड़ौ–भू०का०कृ०—पकड़ा हुआ।

अपड़ीजणौ, अपड़ीजबौ–कर्म वा०।

अपड़ीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—पकड़ा गया हुआ।

अपड़ाणौ, अपड़ाबौ–क्रि०स०—पकड़ाना।

अपड़ाणियौ–वि०—पकड़ाने वाला।

अपड़ाओड़ौ, अपड़ायोड़ौ–पकडाया हुआ।

अपड़ावणौ, अपड़ावबौ–रू.भे.

अपड़ायोड़ौ–भू०का०कृ०—पकड़ाया हुआ (स्त्री० अपड़ायोड़ी)

अपड़ावणौ, अपड़ावबौ–क्रि०स०—देखो 'अपड़ाणौ'।

अपड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—पकड़ा हुआ (स्त्री० अपड़ियोड़ी)

अपड़ीजणौ, अपड़ीजबौ–क्रि० कर्म वा०—पकड़ा जाना।

अपड़ीजिओड़ौ, अपड़ीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—पकड़ा गया हुआ।

अपड़ीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—पकडा गया हुआ, रोका गया हुआ। (स्त्री० अपड़ीजियोड़ी)

अपच–सं०पु० [सं०] १ अजीर्ण, कुपच, बदहजमी. [सं० अपथ्य] २ जो पथ्य न हो, बद-परहेज, अपथ्य।

अपचय–सं०पु० [सं०] संहार, नाश। उ०—सय पय ह्रदय **अपचय** कटय भट स्मय निचय हय गय मार हीन सुमार।—वं.भा.

अपचाल–सं०पु०—खोटाई, बुरी चाल।

अपचित–वि०—पूजित (डिं.को.)

अपची–सं०स्त्री० [सं०] कंठमाला रोग का एक भेद विशेष—इसमें कंठ-माला की गाँठें स्थान-स्थान पर फोड़े होकर फूटने लगती हैं (अमरत)

अपचौ–सं०पु० [सं० अपच] अपच, बदहजमी। उ०—दमंगळ विण **अपचौ** दियण, वीर धणी रौ धांन।—बी.स.

अपच्छर–सं०स्त्री० [सं० अप्सरा] अप्सरा, देखो 'अपछरा'। उ०—खित हूर **अपच्छर** वीद खटै, किरमाळ बहै वरमाळ कटै।—रा.रू.

अपच्छरलोक–सं०पु० [सं० अप्सरा+लोक] वह लोक जहाँ वीर गति प्राप्त वीरों के साथ अप्सरायें रमण करती हों।

अपछर–सं०स्त्री० [सं० अप्सरा] १ देखो 'अपछरा'। उ०—रथ बैठौ कमंध मनां पूरै रळी। वरै **अपछर** कहर सुरग वसियौ। —वीठल गोपाळदास रौ गीत

[अं० ऑफिसर] २ अफसर।

अपछररई–वि०—अप्सरा के समान, अप्सरा के तुल्य। उ०—मारुवणी पिंगळ सुधू **अपछररइ** उणिहार। बाळपणइ परणी पछइ भूल न कीन्ही सार।—ढो.मा.

अपछरलोक–सं०पु० [सं० अप्सरा+लोक] देखो 'अपच्छरलोक'।

अपछरवर–सं०पु० [सं० अप्सरा+वर] १ इन्द्र. २ योद्धा, वीर (ह.नां.)

अपछरा–सं०स्त्री० [सं० अप्सरा] १ अप्सरा, परी। उ०—पड़ै सोक सांमळां, सूर पड़ियां घमसांणां। पड़ै भणण जांभरां, वरण **अपछरां** बिमांणां।—बखतौ खिड़ियौ।

पर्याय०—उरब्बसी, उरवसी, खी, घ्रताची, घ्रतायची, तिलतांम, त्रिलोचना, निरतंत, परी, पुरी, बारंग, मंजूघोसा, मेनक, मैनका, रंभ, सुकेसी, सुरगबेसां, सुरवेस्या, हूर।

(रू.भे.—अच्छर, अछर, अछरा, अछरी, अपछर, अपछ्रा)

अपजय–सं०स्त्री० [सं०] पराजय, हार।

अपजस–सं०पु० [सं० अपयश] अयश, अकीर्ति, निंदा। उ०—जाहर जस खुसबोह जुत, सुदता कुसम सुसोह। कांटा सू भुंडौ कृपण, वप **अपजस** बदबोह।—बाँ.दा.

वि०—कृष्णवर्ण, काला* (डिं.को.)

अपजससोर–सं०पु०—अपकीर्ति का फैलना।

अपजोग–सं०पु० [सं० अपयोग] कुयोग, बुरा समय।

उ०—अपसकुन भयेउ आद्यांत एक, **अपजोग** पराजय के अनेक। —ला.रा.

अपजोर–सं०पु०—अपना खुद का जोर, अपनी शक्ति। उ०—लांर वर इंद्र जिम कठठ फौजां लंगर वीर **अपजोर** वर गुमर बाँकै। —बखतौ खिड़ियौ

अपजोरो, अपजोरौ–वि०—१ स्वतन्त्र रहने वाला. २ मनमानी करने वाला. ३ अपने बल हीं पर निर्भर रहने वाला।

अपट–वि०—बहुत, अधिक, अपार। उ०—दे दरसण दीनौंह अनधन रिध-निध ध्रित **अपट**।—पा.प्र.

सं०पु० [सं० अ+पटक=वस्त्र] दिगंबर, नंगा।

अपटणौ, अपटबौ–क्रि०अ०—मर्यादा या हद से बाहर होना, उमड़ना। उ०—**अपटै** अपगा ज्यूं ही भभकै स्रोण धार आड़ा, मारवाड़ा हकौ हकै बकै मार-मार।—हुकमीचंद खिड़ियौ

अपटां–वि०—बहुत, अधिक।

अपटाव–सं०स्त्री०—रोग, बिमारी (ह.नां.)

अपटी–सं०स्त्री० [सं०] १ वस्त्र. २ आवरण. ३ तंबू, शामियाना।

अपटु–वि० [सं०] १ जो दक्ष या निपुण न हो, अकुशल, अचतुर. २ निर्बुद्धि. ३ रोगी, सुस्त, आलसी (डिं.को.)

अपटुता–सं०स्त्री० [सं०] कुशलता या दक्षता का अभाव।

अपठ–वि० [सं०] १ जो पढ़ा हुआ न हो, अनपढ़. २ मूर्ख।

अपड–वि०—१ अजेय, वीर (द.दा.) २ देखो 'अपढ़'।

अपढ़–वि० [सं० अपठ] १ जो पढ़ा हुआ न हो, अनपढ़। उ०—प्रगणमूं एक आध पढ़ै अपढ़ै—ऊ.का.। २ मूर्ख।

अपण–सर्व०—अपना। उ०—करि किरपा प्रतिपाळ मो परि, रखो न अपण देस।—मीरां

अपणउ–सर्व० (प्रा०प्र०) अपना, निजका।

अपणाइत, अपणाई–सं०स्त्री०—देखो 'अपणायत'।

अपणाणौ, अपणाबौ–क्रि०स०—१ ग्रहण करना. २ अपने अनुकूल करना, अपनी ओर करना, अपना बनाना। उ०—म्हांनै दीन जन जांण अपणाय लीजो। कै मनसा रै माफक ही बणाय दीजो।

—गी.रां.

३ अपने अधिकार में करना। उ०—अजमल नवकोटी अपणाई।

—रा.रू.

४ सहारा देना. ५ संबंध जोड़ना, वश करना।

उ०—अपणायौ अपणौह पुरुस कद होय परायौ।—ऊ.का.

अपणाणहार-हारौ (हारी)–वि०—अपनाने वाला।

अपणाओड़ौ, अपणायोड़ौ–भू०का०कृ०।

अपणावणौ, अपणावबौ–रू.भे.।

अपणात–सं०स्त्री०—देखो 'अपणायत'।

अपणापण, अपणापन, अपणापौ,–सं०पु० (स्त्री० अपणायत) अपनापन, आत्मीयता, अपनत्व, भाईचारा, ममत्व। उ०—गोमती फीस पड़ी अर बसका भरती बोली—दुख अपणायत री ईज आवै है।—वरसगांठ

क्रि०प्र०—करणी, छोड़णी, तोड़णी, राखणी, होणी।

अपणायोड़ौ–भू०का०कृ०—अपनाया हुआ।

(स्त्री० अपणायोड़ी)

अपणावणौ, अपणावबौ–क्रि०स०—देखो 'अपणाणौ'।

उ०—हालां भालां होवसी, सीहां लत्थौबत्थ। धर पैलां अपणावसी, कै अपणी पर हत्थ।—हा.भा.

अपणी–सर्व०—'अपणौ' का स्त्रीलिंग रूप, अपनी, खुद की।

कहा०—अपणी करणी पार उतरणी—कार्य के अनुसार फल मिलता है। करनी का फल भोगना ही पड़ता है।

अपणूं–सर्व०—अपना, खुद का। उ०—नासै टूव्है निलज खास अपणूं घर खोवै।—ऊ.का.

अपणेस–सं०स्त्री०—ममत्व, अपनापन।

अपणै–सर्व०—अपना।

अपणौ–सर्व० [सं० आत्मन्, प्रा० अत्तणो, अप० अप्पणो] (स्त्री० अपणी) अपना, निज का, स्वकीय। उ०—ऊंट टाट खावै न आ, अपणौ जांण अभाग।

—ऊ.का.

सं०पु०—आत्मीय, स्वजन।

क्रि०स०—देखो 'आपणौ'।

अपतंत्र–सं०पु०—एक प्रकार का वात राग जिससे शरीर टेढ़ा हो जाता है। (अमरत)

अपत–वि० [सं० अ+पत्र] १ पत्र या पत्तों से हीन, आच्छादनरहित, नग्न। उ०—वचन नृपति अविवेक, सुण छोड़ै सेणा मिनख। अपत हुवां तर एक, रहै न पंछी राजिया।—किरपारांम [सं०अपात्र] २ अधम, नीच। उ०—मांनै कर निज मीच, पर संपत देखै अपत। निपट दुखी व्है नीच, रीसां बळ-बळ राजिया।—किरपारांम [सं०अ+पत=लज्जा] ३ निर्लज्ज। उ०—नरक नै कमर बांधी, निठुर घिरै न किणारा वेरिया। अमलियां हूंत इधका अपत, हूकाधारी हेरिया।—ऊ.का.

४ अविश्वासी. [रा०] ५ कायर, कमजोर नपुंसक। उ०—ना नारी ना नाह, अधबिचला दीसै अपत। काज सरै ना काय, रांडोलां सूं राजिया—किरपारांम ६ विरुद्ध. ७ पतनोन्मुख। उ०—आगै खत्री अपत नसां कस हुअगा नांमी, कहां उगूणी कोर जाय आंथूणी जांमी।—ऊ.का.

सं०पु० [सं० अपत्य] १ पुत्र, संतान, औलाद. [रा०] २ आग, अग्नि (अ.मा.). ३ अप्रतिष्ठा। उ०—उरड़ अकुळाय आघा पड़ै आय अत। पड़ावै माजनूं लाजनूं खो अपत।—ऊ.का.

अपतर–वि०—१ नीच, पतित. २ कृतघ्नी।

सं०स्त्री०—बिना कृषि कार्य में उपयोग ली हुई भूमि, वह भूमि जो जोती न गई हो।

अपताई–सं०स्त्री०—१ निर्लज्जता. २ नीचता।

अपतानक–सं०पु० [सं०] स्त्रियों के गर्भपात मे होने वाला एक रोग विशेष। (अमरत)

अपताप–सं०पु० [फा० आफताब] सूर्य्य।

वि०—नीच।

अपति–सं०स्त्री० [सं०] १ अग्नि, आग (अ.मा.) २ देखो 'अपती'।

वि०—१ कृतघ्न. २ पापी।

अपतियारौ–सं०पु०—अविश्वास।

अपतियौ–सं०पु०—१ जिसकी प्रतिष्ठा न हो, अविश्वस्त मनुष्य. २ नीच।

अपती–वि० [सं० अ+पति] १ विधवा, पतिविहीना।

[सं० अ+पत्ति=गति] २ पापी, दुष्ट, दुराचारी। उ०—धाड़ा धाड़ायत लूटणनै धावै, अपती कुळ हीणा कूटण नै आवै।

—ऊ.का.

३ प्रमादी. ४ कायर. ५ कृतघ्न. ६ आततायी।

सं०स्त्री० [सं० आपत्ति] १ दुर्गति, दुर्दशा. २ अनादर. ३ आपत्ति. ४ अग्नि, आग (नां.मा.)

अपथ-सं०पु० [सं०] १ पथविहीन, कुमार्ग।
(यौ० अपथगामी, अपथचारी) २ कुपथ्य।
क्रि०प्र०—करणी।
अपथगामी-सं०पु०यौ० [सं०] कुमार्गी, दुराचारी।
अपथचारी-सं०पु० [सं०] कुमार्गी, दुराचारी।
अपथ्य-सं०पु० [सं०] कुपथ (वि०वि०-देखो 'कुपथ्य')
अपद-सं०पु० [सं०] १ बिना पैर के रेंगने वाले जीव-जन्तु [सं० आपद] २ आपदा, विपत्ति।
वि० [सं०] १ पदरहित, पंगु. २ कर्मच्युत. ३ पैदल, बिना सवारी।
क्रि०वि०—अनुचित रूप से।
अपदत, अपदत्त-वि०—अपना दिया हुआ। उ०—हय फेरहि कछवाह घर, जीति करहि अपदत्त।—ला.रा.
अपधन-सं०पु०—अवयव, देहांग (डि.को.)
अपधांतस-सं०पु०—चंद्रमा (नां.मा.)
अपध्यांन-सं०पु०—चंद्रमा (अ.मा.)
अपध्वंस-सं०पु० [सं० अपध्वंश] १ अधःपतन. २ अपमान, अप्रतिष्ठा. ३ नाश।
अपनांम-सं०पु० [सं० अपनाम] बदनामी, निंदा, शिकायत।
अपनासण-सं०पु०—योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन जिसमें स्वस्तिकासन की तरह बैठकर दोनों हाथों के पंजों का मूल भाग जांघ के मूल में जोर से लगा कर शरीर को सीधा रखकर बैठना होता है। इससे अपानवायु का ऊर्ध्वभाग में आकर्षण होता है।
अपबरजन-सं०पु०—दान, उत्सर्ग (डि.को.)
अपबाहुक-सं०पु०—देखो 'अवबाहुक'।
अपभ्रंस-सं०स्त्री० [सं० अपभ्रंश] प्राकृत भाषा का वह विकृत रूप जिससे पुरानी राजस्थानी व हिंदी निकली है। एक भाषा विशेष।
अपभ्रंसी-सं०पु० [सं० अपभ्रंश] अपभ्रंश भाषा।
वि०—अपभ्रंश भाषा का, अपभ्रंश भाषा संबंधी।
अपमपर-वि०—जिसकी महिमा अपार हो।
अपमल, अपमल्लौ-वि०—१ मतवाला, मस्त. २ उद्दंड।
अपमांन-सं०पु० [सं० अपमान] अनादर, तिरस्कार, अवहेलना, दुत्कार (डि.को.)
अपमांनी-वि० [सं० अपमानिन्] निरादर या तिरस्कार करने वाला।
अपमारग-सं०पु० [सं० अपमार्ग] कुमार्ग।
अपरंच-अव्यय [सं०] और भी, पुनः।
अपरंपर-सं०पु०—ईश्वर। उ०—उदर पवित्र करिस अपरंपर, चरणा-म्रत तौ धरै चक्रधर।—ह.र.
अपरंपार-वि० [सं० अपरं+रा० पार] अपार, असीम, बेहद।
अपरंमपक-सं०पु०—महादेव, शिव (भ्रं०पु०)
अपर-वि० [सं०] १ इतर, अन्य, दूसरा, भिन्न. २ पूर्व का, पहिला, जो दूसरा न हो. ३ पिछला [रा०] ४ अपार। उ०—चालंतौ कोट पयंपै चूंडौ, ऐ पुरसातन तणा अपर।—चूंडा रौ गीत
अपरचन-वि०—गुप्त।
अपरचौ-सं०पु०—अविश्वास। उ०—ताहरां कुंवर हंसियौ—थांनै हरदांन री अपरचौ पड़ियौ।—पलक दरियाव री बात
अपरण-सं०स्त्री० [सं० अपर्णा] गिरिजा, पार्वती (अ.मा.)
अपरणा-सं०स्त्री० [सं० अपर्णा] १ पार्वती, उमा (ह.नां.) २ देवी, दुर्गा (क.कु.बो.)
वि० [सं० अ+पर्णा] पर्ण या पत्र से रहित, पत्रविहीना।
अपरतो, अपरतौ-सं०पु०—१ स्वार्थ, बेईमानी. २ अविश्वास, शंका।
कहा०—ओछा ठाकर नै मुजरां री अपरतो—छिछला आदमी सदा अभिवादन का ही भूखा रहता है।
अपरपक्ष-सं०पु० [सं०] १ कृष्ण पक्ष. २ प्रतिवादी।
अपरबळ-वि० १ बलवान, प्रचंड, शक्तिशाली।
उ०—कूंभा कांपळियारै घोड़ी एक निपट अपरबळ छै।—नैणसी
२ दूसरे का बल. ३ पराये बल पर आश्रित, जिसे दूसरे का बल या सहारा प्राप्त हो।
अपरम्म-सं०पु०—देखो 'अपंपर'। उ०—नमौ अपरम्म नमौ अखि-लेस।—ह.र.
अपरलोक-सं०पु० [सं० अपर+लोक] परलोक, स्वर्ग, ऊर्ध्वलोक।
अपरवळ-वि०—देखो 'अपरबळ'।
अपरस-वि० [सं० अ+स्पर्श] १ जिसे किसी ने न छुआ हो. २ न छूने योग्य, अस्पर्श्य। उ०—महि सुई खट मास प्रात जळ मंजै, आप अपरस अरु जित इन्द्री।—वेलि. ३ पवित्र, शुद्ध
उ०—सनांन कर अपरस होय गोविंद री दरसण कियौ—बां.दा.
सं०पु०—१ अछूत, शूद्र. २ हथेली और तलुओं का एक चर्म-रोग।
अपरांठौ-वि०—पीठ फेर कर बैठने वाला. देखो 'अपूठौ'।
क्रि०वि०—पीठ पीछे।
अपरा-सं०स्त्री० [सं०] १ अन्य प्रकार की विद्या जो अध्यात्म या ब्रह्म विद्या के अतिरिक्त हैं, लौकिक विद्या. २ पश्चिम दिशा।
अपरा एकादसी-सं०स्त्री०—ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की एकादशी।
अपराजित-वि० [सं०] १ विजयी. २ जो जीता न जा सके, अजेय।
सं०पु०—१ विष्णु. २ शिव।
अपराजिता-सं०स्त्री० [सं०] १ विष्णुकांता लता. २ दुर्गा. ३ कोयल।
अपराद, अपराध-सं०पु० [सं० अपराध] १ दोष, कसूर, जुर्म, चूक, गलती. २ अन्याय, अनीति।
अपराधक-सं०पु०—देखो 'अपराध' (डि.को.)
अपराधी-सं०पु० [सं०] (स्त्री० अपराधण, अपराधणि) कसूरवार, अप-राध करने वाला। उ०—१ जन हरिदास निद्रा अपराधणि, गंगतरंग दिखावै।—ह.पु. २ मेछां अपराधियां मारणा, भलां सेवगां आवै भाव।—बां.दा.

अपराधीड़ौ–वि०—देखो 'अपराधी' (अल्पा.)

अपराधीन–वि० [सं०] स्वाधीन, जो पराधीन न हो।

अपरिग्रह–सं०पु० [सं०] १ अस्वीकार. २ धन का त्याग. ३ मोह-त्याग (जैन)

अपरोगो–वि०पु० [देश०] (स्त्री० अपरोगी) डरावना, भयंकर। उ०—आनिस अपरोगोह 'जींदै' नै मारै जिसी।—पा.प्र. २ अजनबी, अपरिचित. ३ मन न मिलाने वाला, हिलमिल कर नहीं रहने वाला, अनभिज्ञ, परहेज वाला, रूखी प्रकृति वाला।

अपळंग–वि०—निर्बल, अशक्त, असमर्थ।

अपल–वि०—बहुत, अत्यधिक, बेहद। उ०—कमठा गुण खाग खरा कमिया अपलां छक पायक ऊमसिया।—पा.प्र.

सं०पु०—१ दातार, देने वाला (ह.नां.) २ योद्धा, वीर। उ०—'हरिभांण' ऊपरा तुरी मेल्हियौ अपलां जळा-बोळ जूटियौ, बीच घूमरां मुगल्लां—बखतौ खिड़ियौ।

अपलख्यणौ–वि० [अपलक्षण+ई-रा०प्र०] अपलक्षणधारी, बुरे लक्षण वाला।

अपलच्छ, अपलच्छण–सं०पु० [सं० अपलक्षण] कुलक्षण, बुरा चिन्ह, अवगुण। उ०—इतने अपलच्छ असंतन के, सुणिए अब लच्छण संतन के।—ऊ.का.

अपलांणियौ, अपलांणौ–सं०पु०—वह ऊँट जिस पर चारजामा कसा हुआ न हो।

अपलाप–सं०पु० [सं०] मिथ्यावाद, बकवाद, वाग्जाल।

अपल्ल–वि०—देखो 'अपल'। उ०—रीधौ साथां रेगवां जस गाथां जेहल्ल। भारांणी बाथां भरै आथां दिए अपल्ल।—बां.दा.

अपवरग, अपवरग्ग–सं०पु० [सं० अपवर्ग] १ मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति। उ०—त्रिवग्गा नां स्वरगा नहिन अपवरगा दिक तकें।—ऊ.का.

२ त्याग, दान. ३ एक स्वर्ग का नाम (नां.मा.)

अपवरजित–वि० [सं० अपवर्जित] त्यागा हुआ।

अपवस–वि०– अपने वश का।

अपवाद–स०पु० [सं०] १ अपकीर्ति. २ दोष, पाप. ३ वह नियम जो साधारण नियम के या व्यापक नियम के विरुद्ध हो।

अपवादक, अपवादी–वि० [सं०] खंडन करने वाला, अपवादकारक।

अपवार–सं०स्त्री०—अत्यधिक कार्य।

अपवाहक–वि० [सं०] एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने वाला।

अपवाहुक–सं०पु० [सं०] वायु के प्रकोप से होने वाला एक रोग जिसमें बाहु की नसें मारी जाती हैं (अमरत)

अपवितर, अपवित्र–वि० [सं० अपवित्र] अशुद्ध, अशौच, जो पवित्र न हो।

अपवित्रता–सं०स्त्री० [स०] अशुद्धि, नापाकी।

अपव्यय–सं०पु० [सं०] निरर्थक व्यय, फजूलखर्ची।

अपस–सं०पु०—१ अपस्मार, मृगी नामक एक प्रकार का रोग. २ डिंगल गीतों के अंतर्गत एक दोष जहां दृष्टिकूट पद योजना हो और उनका अर्थ साफ-साफ नहीं झलकता हो. ३ कार्य करने में असमर्थ व्यक्ति। [सं० अ=खराब+पशु] ४ कुत्सित पशु, गधा। उ०—करहउ कूड़इ मनि थकइ, पग राखीयउ जांण। ऊकरड़ी डोका चुगइ, अपस डँभायउ आंण।—ढो.मा.

वि०—सुस्त, आलसी।

अपसकुन, अपसगन, अपसगुन–सं०पु० [सं० अपशकुन] बुरा शकुन, अशुभ-सूचक चिन्ह, अमंगल लक्षण।

अपसद्दन–वि० [सं० अपशद] नीच, अधम। उ०—चतुरंगनि ठेलि खद्दन की, जुद संगरची अपसद्दन की।—ला.रा.

अपसब्द–सं०पु० [सं० अपशब्द] बुरा या अश्लील शब्द, दूषित शब्द, कुवाक्य।

अपसर–सं०स्त्री० [सं० अप्सरा] १ देवांगना, अप्सरा. २ एक देव जाति (अ.मा., नां.मा.) [अं० ऑफिसर] ३ देखो 'अफसर'।

अपसरा–सं०स्त्री०—देखो 'अपछरा'। उ०—किन्नर गंध्रव गुण गण गावै, निपुण अपसरा नाच रही।—गी.रां.

अपसवारथी–वि०—खुदगर्जी, मतलबी।

अपसांण–सं०पु०यौ०—अपशकुन, बुरे शकुन। उ०—तुर आठ झलै सह झंप तटै, अपसांण हुवा चख देख उठै।—पा.प्र.

अपसूकन–सं०पु० [सं० अपशकुन] अपशकुन, बुरे शकुन। उ०—डावउ करेवउ कर करइ। महा अपसूकन होज्यौ ए भुवाळ।—बी.दे

अपसोस–सं०पु० [फा० अफसोस] १ शोक, रंज, दुःख. २ पछतावा, पश्चात्ताप। उ०—तोस पोस ओस मारू काय अपसोस कोस, हाय दारू तेरे दोस कहांलौं पुकारूं मैं।—ऊ.का.

अपसोसणौ, अपसोसबौ–क्रि०स०—चिंता या अफसोस करना, रंज करना।

अपस्मार–सं०पु० [सं०] एक प्रकार का रोग विशेष जिसकी उत्पत्ति चिंता, शोक और भय के कारण कुपित त्रिदोष से मानी जाती है (वैद्यक)

अपस्मारी–वि०—अपस्मार रोग से ग्रस्त।

सं०स्त्री०—अपस्मार रोग।

अपहड़–सं०पु०—१ दातार, दानवीर, उदार पुरुष। उ०—बड़ दाता पातां बड़ां अपहड़ पूरै आस। मोताहळ हंसां मिळै पावासर रै पास। २ योद्धा, वीर. ३ राजा. ४ चित्त में ग्लानि या कायरता न लाने वाला, अप्रतिहत। उ०—क्यूं नह सूकौ कबर मैं, हातम हंदौ हत्थ। हातम ले उण हत्थ सूं, अपहड़ बांटी अत्थ—बां.दा.

वि०—१ अजेय. २ पूर्ण. ३ जो धोखा न दे। उ०—अपहड़ अथग अरेह, जिकौ विनड़ियौ वधतौ।—पहाड़ खां आढ़ौ

अपहरण–सं०पु० [सं०] १ लूट, छीनने का कार्य. २ छिपाव।

अपहरणौ, अपहरबौ–क्रि०स० [सं० अपहरण] छीनना, ले लेना, लूटना, चुराना, अपहरण करना।

अपहरता, अपहारी–सं०पु० [सं० अपहर्ता, अपहारिन्] अपहरण करने वाला।

अपहास–सं०पु० [सं०] उपहास, अकारण हँसी-मजाक, दिल्लगी, निंदा

ठट्ठा। उ०—सिव सिव सुत हिमगिरसुता, बिसनु दिवाकर चंद, अब कायर अपहास री, रचना रचूं अमंद।—बां.दा.

अपह्नुति–सं०स्त्री० [सं०] उपमेय का निषेध करके उपमान का स्थापन करने का एक काव्यालंकार।

अपांग–सं०स्त्री० [सं० आपगा] नदी।

सं०पु० [सं०] आँख की कोर, कटाक्ष। उ०—अपांग लोल गोलती इलोल में उठै नहीं।—ऊ.का.

वि०—अंगहीन, लूला-लंगड़ा।

अपांण–सं०पु०—बल, शक्ति। उ०—विदेही तणै दिवांण, ईस चाप धरे आंण। तोड़वा अनेक तांण, ऊठिया करे अपांण।—र.रू.

वि० [सं० अ+पाणि] १ बिना हाथ का [रा०] २ बिना कलप लगा हुआ. ३ अशक्त. ४ वह पशु जो पूर्ण अघाया हुआ न हो।

अपांणै–सर्व०—अपने (रू.भे.)

अपांन–सं०पु० [सं० अपान] १ दस या पाँच प्राणों में से एक, वह गुदास्थ वायु जो मल-मूत्र को बाहर निकालता है, तालु से पीठ तथा गुदा से उपस्थ तक व्याप्त वायु, गुदा में रहने वाली पवन. २ गुदा।

अपांनवायु–सं०स्त्री०यौ० [सं० अपानवायु] गुदा मार्ग में से निकलने वाली वायु, पाद।

अपा–वि०—दूर, पास या निकट का उल्टा, दूर होना।

उ०—जिकौ धोकबा काज जावै जमातां। अपा पाप थावै बजै सिद्ध आतां।—मे.म.

सं०स्त्री० [रा०] १ गर्व. २ आत्मभाव।

अपाटव–सं०पु० [सं०] १ अपटुता, अनिपुणता, बोदापन (डिं.को.) २ मूर्खता. ३ रोग।

अपात्र–वि० [सं०] कुपात्र, अयोग्य, मूर्ख।

अपादांन–सं०पु० [सं० अपादान] व्याकरण में एक कारक जिससे एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ की क्रिया का आरंभ सूचित हो, जिससे किसी पदार्थ का किसी दूसरे पदार्थ से पृथकता प्रकट की जाय।

अपाप–सं०पु० [सं० अ+पाप] पुण्य, जो पाप न हो।

वि०—निष्कलंक, पापरहित।

अपामारग–सं०पु० [सं० अपामार्ग] चिचड़ा नामक एक झाड़ी जो औषधियों में प्रयुक्त होती है। (अमरत)

अपायत–वि०—बलवान, शक्तिशाली।

अपार–वि० [सं०] १ सीमा-रहित, अनंत, असीम, बेहद, अतिशय, अत्यधिक. २ दूर, जो नजदीक न हो। उ०—तब निबाब उर तापियो, फिर थापियो विचार। अरज लिखी अवरंग सूं मोसूं पंथ अपार।—रा.रू.

अपारण–वि०—देखो 'अपार' (१) उ०—धूप अगर दीपक सुभ धारण, मन देवां धन सेव अपारण—रा.रू.

अपराथ–वि० [सं० अपार्थ] अर्थहीन, निरर्थक, व्यर्थ।

अपारांय, अपारां–वि०—अनेक, एक से अधिक, बहुत। उ०—कर मूछ घरे खग केत करे, गजराज अपारांय बीच वरै।—रा.रू.

अपारै–वि०—देखो 'अपार' (१) उ०—आखउ विगत हुय सुचित सांभळ उमा, अगम परब्रह्म गुण गत अपारै।—र.रू.

अपाल–वि०—१ नहीं रुकने वाला। उ०—अठी दिखणाद दिसा 'अजमाल', प्रलै फिर सागर मीत अपाल।—रा.रू.

२ रोकने वाला। उ०—इते विचवाळी सूर अपाल मिणधर आयौ रावळ 'माल'।—गो.रू.

अपाळ–वि०—१ जिसका कोई पालन करने वाला न हो. २ बिना पालन किया हुआ। उ०—अबाळ अबद्ध अकाळ अक्रम्म, अपाळ अलद्ध अभाळ अभ्रम्म।—ह.र.

अपाळौ–वि०—१ पैदल नहीं चलने वाला. २ असवारोही. ३ पैदल।
उ०—वीर हाक वापरै, रीठ वाजियौ अपाळां।—बखतौ खिड़ियौ

अपावन–वि० [सं०] अपवित्र, अशुद्ध, मलिन। उ०—गळ मुंडमाळ मसांण ग्रह, संग पिसाच समाज। पावन तूझ प्रभाव सूं, संभू अपावन आज।—बां.दा.

अपाहिज–वि० [सं० अपभंज, प्रा० अपहंज] १ जिसका कोई अंग अपूर्ण या अशक्त हो. २ लूला-लंगड़ा. ३ असमर्थ, अशक्त, आलसी।

अपी–सं०पु०—सूर्य्य (डिं.को.)

अपीत–वि० [सं० अ+पीत] जो पीले रंग का न हो। उ०—अरत्त अपीत असेत असेस।—ह.र.

अपीतजा–सं०स्त्री०—अग्नि।

अपीधां–वि०—बिना पिये हुए, तृषित, प्यासा।

अपील–सं०स्त्री० [अं०] विचारार्थ की गई प्रार्थना।

क्रि०प्र०—करणी-होणी।

अपीलांट–सं०पु० [अं० अपेलेंट] अपील करने वाला व्यक्ति।

अपीली–वि० [अं० अपील] अपील संबंधी।

अपुत्र–वि०पु० [सं० अ+पुत्र] सन्तानरहित, निर्वंश।

अपुत्री–वि० [सं० अ+पुत्र+ई रा०प्र०] १ वह जिसके पुत्री न हो, पुत्रीहीन. २ देखो 'अपुत्र'।

अपुनीत–वि० [सं०] अपवित्र, अशुद्ध, दूषित।

अपूठ–वि० [रा०] १ उल्टा, पीछे, पीठ की ओर का. २ अप्रसन्न।

अपूठो, अपूठौ–वि० [सं० अपृष्ठ] (स्त्री० अपूठी) १ पीठ घुमा कर, पीठ पीछे, उलटा, विमुख। उ०—कोई निंदौ कोई बिंदौ, मैं चलूंगी चाल अपूठी।—मीरां २ देखो 'अफूटी'। (रू.भे.)

अपूणौ–वि०—पूर्ण, पूरा।

अपूत–वि० [सं० अपुत्र] १ पुत्रहीन. २ कुपुत्र, कपूत [सं०] ३ अशुद्ध, अपवित्र।

अपूर–वि० पूरा, भरपूर।

अपूरण–वि० [सं० अपूर्ण] कम होने वाला, जो पूर्ण न हो, अधूरा।

अपूरणता–सं०स्त्री० [सं० अपूर्णता] अधूरापन, कमी।

अपूरणभूत—सं०पु० [सं० अपूर्णभूत] क्रिया में भूतकाल का वह रूप जिसमें क्रिया की समाप्ति न पाई जाय (व्याकरण)

अपूरणौ, अपूरबौ—क्रि०स०—१ कम करना. २ पूर्ण करना.
क्रि०अ०—३ कम होना। उ०—औरंग तणौ प्रताप इम, धर प्रगटयौ निरधार। हिंदू धरम **अपूरियौ**, भ्रम पूरियौ संसार।—रा.रू.

अपूरणहार-हारौ (हारी), अपूरणियौ—वि०—कम करने वाला।

अपूरिश्रोड़ौ-अपूरियोड़ौ-अपूरयोड़ौ—कम किया हुआ।

अपूरीजणौ-अपूरीजबौ—भाव वा०।

अपूरब, अपूरव—वि० [सं० अपूर्व] १ विलक्षण, अनोखा. २ अपूर्व।
उ०—तरै पिंगळ राजा बोलियौ, थे अतरा सहर दीठा छै त्यां मांहै कोई **अपूरब** वस्त दीठी होय सु कहौ।—ढो.मा.
३ उत्तम, श्रेष्ठ। उ०—देखै भवदरियाव, रची पगां सूं श्रीरमण। नरां **अपूरब** नाव, नाविक विण निरभर नदी।—बां.दा.
४ अपूर्ण, जो पूरा न हो. ५ पूर्व जन्म का, पहिले का।
उ०—पुनि पुन्य उदै भय पूरब के उघरे उर अंक **अपूरब** के।—ऊ.का.

अपूरबता—सं०स्त्री० [सं० अपूर्वता] विलक्षणता, अनोखापन।

अपूरबरूप—सं०पु० [सं० अपूर्वरूप] पूर्व गुण की प्राप्ति का निषेध करने वाला एक काव्यालंकार।

अपूरबी—वि० [सं० अपूर्व+ई रा०प्र०]—अद्भुत, विलक्षण।

अपूरियोड़ौ—वि०—कम किया हुआ (स्त्री० अपूरियोड़ी)

अपूरीजणौ, अपूरीजबौ—क्रि०भाव वा०—अपूर्ण होना, कम होना। देखो 'अपूरणौ'।

अपूरीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ जो कम हो गया हो. २ कम किया हुआ। (स्त्री० अपूरीजियोड़ी)

अपेक्षा—सं०स्त्री० [सं०] १ आकांक्षा, अभिलाषा, इच्छा।
उ०—जिण जार रौ पण चित्त अनंगमेना री **अपेक्षा** करि एक बार बिलासिनी मैं बिसेस करि आसक्त रहै तिणनूं इण जाय दीधौ।—वं.भा. २ बनिस्बत, तुलना, मुकाबिला।

अपेक्षित—वि० [सं०] इच्छित, अभिलषित।

अपेय—वि० [सं० अ+पेय] न पीने योग्य। उ०—जरै **अपेय** अचळ जळ जाणै, तोड़ै अरर मुच्छ कर ताणै।—वं.भा.

अपेल—वि०—अटल, स्थिर।

अपैठ—वि० [सं० अप्रविष्ट, पा० अपविट्ठ, प्रा० अपइट्ठ] १ दुर्गम, अगम।
सं०स्त्री०—अविश्वास।

अपोढ़ी—सं०उ०लिं० [रा० अ+पोढ़ी=शयन] निद्रा से जाग्रत होने की क्रिया।

अपोचणौ, अपोचियौ—वि०पु० (स्त्री० अपोचण, अपोचणी) परिश्रम करने की शक्ति से हीन, अशक्त, निर्बल।

अपोचौ—वि०पु०—अशक्त, असमर्थ, परिश्रम करने की शक्ति से हीन।

अप्प, अप्पण—सर्व०—अपना (रू.भे.)। उ०—शेपन तुड़ कछवाह-कुळ, मिळै आंणि **अप अप्प**।—ला.रा.

अप्पणूं—सर्व० [सं० आत्मनो, प्रा० अत्तणो, अप० अप्पणो] निज का, अपना, स्वकीय। उ०—**अप्पणूं** बायोड़ौ नव बीज न ऊगौ।—ऊ.का.

अप्पणै—सर्व०—अपने।

अप्पणौ—सर्व० [सं० आत्मनो, प्रा० अत्तणो, अप० अप्पणो] अपना।

अप्पणौ, अप्पबौ—क्रि०स० [सं० अर्पण] देना, अर्पण करना।
उ०—काट कैंकाळी **अप्पियौ**, कीधौ देव अदेव।—बां.दा.

अप्पनू—सर्व०—अपना। उ०—**अप्पनू** पोत करिए न उदोत।—ऊ.का.

अप्परमांण—सं०पु० [सं० अप्रमांण] अप्रमाण, अनिदर्शन, अदृष्टान्त।
वि० [रा०] १ जो प्रमाण न हो, प्रमाणाभाव. २ अपार, असीम, बेहद।

अप्पलांणियौ, अप्पलांणियोड़ौ, अप्पलांणौ—वि०—बिना चारजामा कसा हुआ ऊँट। उ०—अही नाथियौ पोयणीनाळ आणै, असस्वार आपै हुवै **अप्पलांणै**।—ना.द.

अप्पवासी—वि०—गुप्त रूप से रहने वाला।
सं०पु०—जलजंतु।

अप्पित्त—सं०स्त्री०—अग्नि। उ०—छवंतां झळै ओझळै आप छाया, जिकै अंबु **अप्पित्त** के वायु जाया।—वं.भा.

अप्रंपर—वि०—अपार, अथाह। उ०—परम धरम कर जमण **अप्रंपर**, आयौ थांन जिहांन उजागर।—रा.रू.

अप्रंप्रम—सं०पु०—अप्रमेय, परब्रह्म, ईश्वर। उ०—अकळ अजन्म अलेख **अप्रंप्रम**, क्रम मम कटै तूझ कथतां क्रम।—ह.र.
वि०—बहुत।

अप्रकास—सं०पु० [सं० अ+प्रकाश] १ अंधकार. २ अज्ञान।
वि०—छिपा हुआ, गुप्त, अप्रकट। उ०—मिरचै मुहकम भारियौ कर छळ मिळ **अप्रकास**।—रा.रू.

अप्रकासित—वि० [सं० अप्रकाशित] १ गुप्त, छिपा हुआ.
२ जो प्रकाशित न हो, तिमिराच्छन्न।
क्रि०प्र०—करणौ-होणौ।

अप्रकास्य—वि० [सं० अप्रकाश्य] जो प्रकट करने योग्य न हो, गोप्य।

अप्रखर—वि० [सं०] मृदु, कोमल।

अप्रगल्भ—वि० [सं०] १ जो प्रौढ़ न हो. २ अपरिपक्व।
३ ढीला, सुस्त।

अप्रछन—वि०—१ गुप्त, अप्रकट। उ०—गढ़वांरी ली गाय, **अप्रछन** खीची आयनै।—पा.प्र. [सं० अ+प्रच्छन्न] २ प्रकट, जो प्रच्छन्न न हो. ३ दुष्ट।

अप्रजौ—वि०—अपार बल वाला। उ०—मांण मांण भुजै ऊठियौ **अप्रजै**।—रा.रू.

अप्रतिग्रहण—सं०पु० [सं०] किसी वस्तु को ग्रहण न करना।

अप्रतिबंध—सं०पु० [सं०] स्वच्छंदता।

अप्रतिभ—वि० [सं०] १ प्रतिभाशून्य. २ चेष्टाहीन, उदास, स्फूर्ति-शून्य, सुस्त. ३ लज्जित। उ०—बूंदी रा नरेस हम्मीर री सासू

मंडोउर ही द्विजांनूं देण री जणाइ आपरा अप्रतिम तनुज नूं तरजियौ।—वं.भा.

अप्रतिम–वि० [सं०] अद्वितीय, बेजोड़, जिसके समान कोई दूसरा न हो।

अप्रतिस्ठ–वि० [सं० अप्रतिष्ठ] जिसकी प्रतिष्ठा न हो, तिरस्कृत।

अप्रतिस्ठा–सं०स्त्री० [सं० अप्रतिष्ठा] अनादर, अपमान, अपकीर्ति।

अप्रतिस्ठित–वि० [सं० अप्रतिष्ठित] जिसकी प्रतिष्ठा न हो, तिरस्कृत।

अप्रतीत–सं०पु०—काव्य रचना का एक दोष। उ०—अप्रतीत निज थांन ऊघड़ै, ग्रांम्य गंवार वचन मति ग्रेह।—बां.दा.
वि०—अविश्वस्त, विश्वास के अयोग्य।

अप्रत्यक्ष–वि० [सं०] जो प्रत्यक्ष न हो, परोक्ष।

अप्रधान–वि० [सं० अप्रधान] जो प्रधान न हो, गौण।

अप्रबळ–वि० [सं० अ+प्रबल] बहुत प्रबल, महान पराक्रमी, बलवान। उ०—हुई मुरद्धर ऊपर हल्लां, महा अप्रबळ जोर मुगल्लां।—रा.रू.
सं०पु०—दैत्य (अ.मा.)

अप्रभंसी–सं०स्त्री० [सं० अपभ्रंश] अपभ्रंश भाषा (अ.मा.)

अप्रमांण–सं०पु० [सं० अप्रमाण] जो प्रमाण न हो, प्रमाणाभाव, अनिदर्शन, अदृष्टान्त। उ०—विधूंसणा जांणक हांणक भूप। रच्या अप्रमांण सुदस्सण रूप।—मे.म.
वि०—बहुत अधिक, असीम, बेशुमार। उ०—मिश्री ले अप्रमांण, सींचौ घोळै घी सहित। विख सौ नीम वखांण, मीठौ होवै न मोतिया। (रू.भे. अप्परमांण) —रायसिंह सांदू

अप्रमाद–वि० [सं० अ+प्रमाद] प्रमाद व घमंडरहित, आलस्यरहित। उ०—सदा अप्रमाद जोगाणंद सिद्ध।—ह.र.

अप्रमित–वि० [सं० अपरिमित] अपार, अपरिमित। उ०—कवण चतुर गणिका, चारुदत्त घर चित्त, तजि दळिद्र भजि मुज्झ तूं विलसि अप्रमित वित्त।—वं.भा.

अप्रमेह–वि० [सं० अप्रमेय] अथाह, अपार, जो नापा न जा सके। उ०—अप्रमेह गुण ग्रंथ, औखद आचारय भारी।—दसदेव

अप्रम्म–वि० [रा० अ+सं० परम] परब्रह्म, ईश्वर।

अप्रयुक्त–वि० [सं०] जो काम में न लाया गया हो, अव्यवहृत।
सं०पु०—साहित्य का एक दोष विशेष। उ०—अप्रयुक्त सुध सदन आख्यौ, अरथ कहण असमरथ अत।—बां.दा.

अप्रवांणी–सं०पु० [सं० अप्रमाण] अनिदर्शन, अदृष्टांत, अप्रमाण। उ०—अगे अप्रवांणी बजै खग्गवांणी, कबाड़ी सकट्टां कटै जांण कट्टां। —रा.रू.
वि०—बहुत, अधिक।

अप्रवीत–वि० [सं० अ+पवित्र] अपवित्र, दूषित, कलंकित, अशुद्ध। उ०—पल तोकर हाकल मांड पगं। विण छोत मिटै नह सूर वगं। सुप्रवीत महोजत सूर सरी। कमवेस पड़ै अप्रवीत करी।—पा.प्र.

अप्रसन, अप्रसन्न–वि० [सं० अप्रसन्न] उदास, सुस्त, खिन्न, असंतुष्ट। उ०—अरि न अप्रसन्न हुवै प्रसन्न में वडौ विभौ।—ऊ.का.

अप्रसन्नता–सं०स्त्री० [सं०] नाराजगी, असंतोष, उदासी, खिन्नता।

अप्रस्तुत–वि० [सं०] जो प्रस्तुत या उपस्थित न हो, अप्रासंगिक, गौण।

अप्रस्तुत-प्रसंसा–सं०पु० [सं० अप्रस्तुत-प्रशंसा] अप्रस्तुतार्थ के वर्णन द्वारा प्रस्तुतार्थ का वर्णन किया जाने वाला एक प्रकार का अर्थालंकार विशेष।

अप्राप्त–वि० [सं०] जो प्राप्त या सुलभ न हो, अप्रस्तुत।

अप्रिय–वि० [सं०] जो प्रिय न हो, अरुचिकर।

अप्रीति–सं०स्त्री० [सं०] प्रेम का अभाव, विरोध, शत्रुता।

अप्रेह–वि०—अप्रतिम, अद्भुत। उ०—अक्रेह, अप्रेह अखेह, अखेस। —ह.र.

अप्रोगी, अप्रोगौ–वि० [सं० अप्रयोगी] १ जिसका पहले प्रयोग नहीं किया गया हो, नया। उ०—रीत अप्रोगी रूकहथ, मोहण जोगीदास। —रा.रू.
२ अप्रिय, अरुचिकर. ३ अजनबी, देखो 'अपरोगौ'।

अप्रौढ़–वि० [सं०] जो प्रौढ़ या पुष्ट न हो, नाबालिग।

अप्सर–सं०स्त्री० [सं० अप्सरा] देखो 'अप्सरा'।

अप्सरा–सं०स्त्री० [सं०] इन्द्र की सभा में नाचने का कार्य करने वाली स्वर्ग की वेश्या। देखो 'अपछरा'।

अफंड–सं०पु०—१ धूर्तता, ठगी, पाखण्ड, ढकोसला। उ०—आदू खटरस ऊपरौ, मांडी नवरस मंड। कुकवि कहै विध सूं कियौ, आचारजां अफंड।—बां.दा. २ स्वांग. ३ अड़ंगा, टंटा, झगड़ा. ४ बवंडर।
क्रि०प्र०—करणौ-रचणौ-होणौ।

अफंडी–वि०—१ धूर्त, ठग, पाखंडी. २ झगड़ा करने वाला।

अफंद–सं०पु०—१ फंद या बंधनरहित। उ०—मही प्रमार री थिरू, हुती धुराद मंड सूं। अरोग भोम भूप आय, हौ जकौ अफंद सूं। —पा.प्र.
२ देखो 'अफंड'।

अफगांन, अफगांनी–सं०पु०—अफगानिस्तान का निवासी, काबुली, आगा।

अफड़णौ, अफड़बौ–क्रि०स०—भिड़ना, टक्कर लेना।
उ०—दळ अफड़ै दळां दुहुं दुजड़ी, कमळ कळहै बाखांण करै। —कल्यांणदास महडू

अफट–वि०—नहीं फटने वाला।

अफताब–सं०पु० [फा० आफ़ताब] सूर्य।

अफताबी–वि० [फा० आफ़ताब+ई-रा०प्र०] सूर्य संबंधी।

अफछर, अफछरा–सं०स्त्री० [सं० अप्सरा] अप्सरा, देवांगना।
उ०—वाजिया समरां घड़ा अवधि वरै। चाव कर अफछरां वधाया चोसरै, अंमदाबाद जेठी मरै ऊबरै कणेठी रहचौ अजमेर साकौ करै।—हरिसिंह चांदावत रौ गीत

अफकर–वि०—न मुड़ने या फिरने वाला (द.दा.)

अफर–सं०स्त्री०—१ पृष्ठ भाग, पीठ। उ०—**अफर** खळां आंगण नर अवरां, दीठी जिकां बिलागौ दोख—तेजसी खिड़ियौ।
२ शत्रुता, द्वेष। उ०—उदीयासींघ लियण आगाहठ इहगां सूं मांडी **अफर**।—दुरसौ आढौ
वि०—१ वापस न मुड़ने वाला, न हारने वाला. २ नहीं फाड़ा जाने वाला।

अफरांठौ–वि०—पीठ फेर कर या पीठ घुमा कर खड़ा या बैठा हुआ।

अफरा–सं०स्त्री०—बड़ी सेना। उ०—**अफरा** पारंभ वाळा डिगै सीस सेस आळा।—प्रभूदांन मोतीसर

अफरास्याब–सं०पु० [फा० आफर्सयाबे] फारस देश का बादशाह।

अफरी–वि०स्त्री०—१ न मुड़ने वाली, पीछे न हटने वाली. २ जबरदस्त, शक्तिशाली. ३ अधिक।
सं०स्त्री०—फौज, सेना।

अफरीदी–सं०स्त्री०—पेशावर की उत्तरी पहाड़ियों में रहने वाले पठानों की एक जाति।

अफरूंटौ–वि०—देखो 'अफरांठौ'।

अफल–वि० [सं०] फलहीन, बिना फल का, निष्फल।

अफलातू, अफलातून–वि०—१ बहुत अधिक अभिमान करने वाला. २ बेपरवाह. ३ बहुत, अधिक, असीम.
सं०पु०—प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो का एक अरबी नाम।

अफवा, अफवाह–सं०स्त्री० [अ० अफवाह] झूठी खबर, उड़ती खबर।

अफवाज–सं०स्त्री० [अ०] १ वीरता। २ फौज (फौज का बहु०) उ०—अई चीतगढ़ ऊधरा, सकल गढ़ां सिरताज। तूं जूनी परणै नवी असुरांरी **अफवाज**।—बां.दा.

अफसर–सं०पु० [अं० ऑफिसर] अधिकारी, प्रधान कर्मचारी।

अफसरी–सं०स्त्री०—प्रधानता, हुकूमत, अधिकार।

अफसोस–सं०पु० [फा०] रंज, दुःख, शोक।

अफारौ–वि०—१ अधिक, बहुत। उ०—चारै सहस ऊपना बारै, आवै मारग कोप **अफारै**—रा.रू.। २ शक्तिशाली, बहादुर. ३ क्रोध से भरा हुआ, क्रुद्ध। उ०—कमँधां थांन हुवौ हलकारौ, उण दिस आयौ जवन **अफारौ**।—रा.रू. ४ भयानक, भयंकर।
उ०—कळकाळ चौखूंट आज फैलियौ **अफारौ**। ३ शक्तिशाली, जबरदस्त, तेज। उ०—दक्खण हसनअली दुरपारौ आगळ सूरां सैद **अफारौ**।—रा.रू. ५ अपार, विस्तृत। उ०— देख मुगल अबदल्ल, फौज अणचल्ल **अफारी**।—रा.रू.

अफाळणौ, अफाळबौ–क्रि०स०—१ देखो 'आफळणौ' (स.रू.)
२ तेजी से चलाना। उ०—दळनाथ हल्लै पंथ देस दिसि अस 'धीर' **अफाळिय** कोस असी।—गो.रू.

अफीण, अफीम–सं०स्त्री० [सं० अहिफेन, अ० अफयून, पु० ओपियन, अं० ओपियम] पोस्त के डोंडे का गोंद जो कड़ुआ, मादक और विषैला होता है।

अफीमची, अफीमी–वि०—अफीम खाने का स्वभाव वाला।

अफुल्ल–वि० [सं०] १ बिना फूला या खिला हुआ, अविकसित, उदास. २ पुष्परहित।

अफूटौ, अफूठौ–वि० (स्त्री० अफूटी) १ पीठ फेरने का भाव, पीठ पीछे का, विरुद्ध दिशा की ओर मुंह किए हुए. २ विरुद्ध। उ०—अणी मिळै अरि मुड़ै **अफूटा**—रा.रू. ३ उल्टा। उ०—अई कळा भोपाळ थारा नखत आज रै दिली भुज लाज रै दुखत दावै। सायजादा बेहुं कर साज रै **अफूटा** राज रै कनै आवै।—हुकमीचन्द खिड़ियौ।
क्रि०वि०—त्वरायुक्त, शीघ्र।
उ० राजा री रजपूतांणी नै मोटियार पीपड़ **अफूटा** आया।
—जैतसी ऊदावत री बात

अफेर, अफेरौ–वि०—नहीं फिरने वाला, योद्धा। उ०—'सोनंग' 'दोलौ' मेड़तै, आसतखां अजमेर। जैतारण साहब्बदी, बेल अजीम **अफेर**।
—रा.रू.।

अफौ–सं०पु०—एक प्रकार का कँटीला क्षुप।

अबंक–वि० [सं० अ+वक्र] सरल, सीधा, सादा, वक्रतारहित।
उ०—बूंदी कोटो वीकपुर, सारा भूप **अबंक**। राज दिखावै हीणता, ज्यां धन खावै रंक।—रा.रू.

अबंद–वि० [सं० अबंध] बंधनरहित, प्रतिबंधहीन, मुक्त। उ०—बळाकारी कांमां रा **अबंदां** देण बंद।—बखतौ खिड़ियौ

अब–क्रि०वि०—अभी, इस समय, इस क्षण (डिं.को.)। अव्यय—तदुपरांत, तत्पश्चात्।

अबक–वि० (सं० अ+वच) अकथ्य, न कहने योग्य। उ०—रावौ आगै रसण रै, राघव नांम रसाळ। मुख मांझल आंणौ मती, गिणौ **अबक** ज्यूं गाळ।—बां.दा.

अबकलो, अबकलै–१ इस बार. २ दूसरी बार। उ०—आयगी ऊंची ? **अबकलै** तौ लदियोड़ै ऊँठ ऊपर छेकड़लौ तिणखोई समझौ।
—वरसगांठ

अबकाई–सं०स्त्री०—१ कठिनता, मुश्किल, कष्ट, तकलीफ. २ अड़चन, आपत्ति. ३ रजोदर्शन (स्त्रियां)

अबकी–क्रि०वि०—१ इस बार. २ दूसरी या अगली दफा।
वि०—देखो 'अबकौ'।

अबके, अबकै–क्रि०वि०—१ इस बार. २ दूसरी या अगली दफा।
उ०—साह दिलासा मोकळी, झूठी आसा धार। तूं मेरै सबकै सिरै, **अबकै** आवै मार।—रा.रू.

अबकौ–वि० (स्त्री० अबकी) टेढ़ा, मुश्किल, कठिन, दुरूह।

अबखाई–सं०स्त्री०—देखो 'अबकाई' (रू.भे.)

अबखो, अबखौ–सं०पु० (स्त्री० अबखी) कठिन, मुश्किल, कष्ट, संकट, आपत्ति (डिं.को.) उ०—यतनी कहा आंण वणी **अबखी**।
—पा.प्र.
वि०—बुरा, दुखमय, दुरूह, कठिन, जैसे 'अबखी वेळा'।

क्रि०वि०—मुश्किल से, कठिनता से। उ०—धरिणयां पग लूंबी भरा, अबखी ही घर आय।—बी.स.

अबगात–वि०—दागरहित, निष्कलंक (मि० अबगात)

उ०—तुरी अबगात खत्रीवट अजड़ै, खरहंड तणी न लागी खेह।

—महारांणा प्रतापसिंह री गीत

अबचळ–वि० [सं० अविचल] अटल, निश्चल, अविचल।

उ०—सचा अबचळ अंबरीख, धू अंबर तारे।—केसोदास गाडण

अबछर–सं०स्त्री० [सं० अप्सरा] अप्सरा। उ०—अबछर आभ अवर अरधंगा, पदमण धरिए पाछी।—ऊ.का.

अबछळ–वि० [सं० अविचल] अविचल, अटल। उ०—हमकै रांम सा' मांगूं ओ, पीर सा' मांगूं ओ सायबजी रौ राज अबछळ राखौ चूड़ौ-चूनड़ी।—लो.गी.

अबछांड–वि०—रक्षक, सहायक मददगार। उ०—नगांपत कूरमांनाथ चलतां नगां, खगांपत हुवौ अबछांड खुमांण।—हुकमीचंद खिड़ियौ

अबज*–वि०—१ श्वेत. २ रक्तवर्ण।

अबजात–सं०पु०—शत्रु, दुश्मन (ह.नां.)

अबझलणौ, अबझलबौ–वि०—जोश करना, आकाश को भी छूने की इच्छा करना।

अबझलणहार-हारौ (हारी), अबझलणियौ—जोशीला, आकाश को भी छूने की इच्छा करने वाला।

अबट–सं०पु०—बुरा रास्ता, ऊजड़, ऊबट, विकट मार्ग। उ०—लीक लीक गाडी वहै, कायर अनै कपूत। लीक तजै अबट वहै, सायर सिंह सपूत।

अबड, अबडौ–वि०—बलवान, साहसी, निडर। उ०—करण धड़चां धड़च घणां बगत्तर कड़ां, भूप कड़छां-कड़छां कबी अबडां भड़ां।

—माघोसिंह सीसोदिया रौ गीत

वि०—इतना (बहु० अवडा)

अबणासी–वि० [सं० अविनाशी] देखो 'अविनासी'।

अबदार–सं०पु०—शराब।

अबदाळ–सं०पु० [अ०] मुसलमानों द्वारा महान एवं ईश्वर भक्त माने जाने वाले महा पुरुष जो कुल तीस होते हैं। उ०—कुतब गोस अबदाळ सूफी अनै कळंदर।—अज्ञात

अबदूर–क्रि०वि०—समीप (अ.मा.)

अबद्ध–वि० [सं०] मुक्त, जो बंधन में न हो।

अबधू, अबधूत–सं०पु० [सं० अवधूत] देखो 'अवधूत'। उ०—बांका वेद पुरांण बिच, सायद आछै सूत। सुख संतोख सराहियौ, आपदत्त अबधूत।—बां.दा.

(स्त्री० अबधूतण, अबधूतांणी)

अबध्य–वि० [सं०] १ न मारने योग्य, जिसे मारना शास्त्रसम्मत न हो. २ जो किसी से न मरे।

अबनमो, अबनमौ–वि०—१ दूसरा, द्वितीय. २ अभिनव.

सं०पु०—वंशज, पौत्र। उ०—चक्रवत हुसी अबनमौ चूंडौ, घणू दाखवूं किसूं घणौ।—केसरीसिंह बारहठ

अबनाड़–वि०—१ अनम्र. २ वीर. ३ योद्धा। उ०—समर मझ धाड़ अबनाड़ उमेदसा, जैत जुध जोतां तीख सकळ आज।

—हुकमीचंद खिड़ियौ

सं०पु०—४ पहाड़, पर्वत।

अबनिमौ, अबनीमौ–सं०पु०—देखो 'अबनमौ' (रू.भे.)

अबरक–सं०पु०—देखो 'अभ्रक' (रू.भे.)

अबरके, अबरकै–क्रि०वि०—१ अब, इस समय, इस बार।

उ०—अबरकै रचे रणजीत फौजां अणी, रज करी सरी गत घणी राखी।—बां.दा.

२ अगली दफा। उ०—अवन अणथाह जातां अबरकै, दुरग री तेग वाराह री दाढ़।—भोजराज महियारियौ

अबरख–सं०पु०—देखो 'अभ्रक' (रू.भे.)

अबरण–वि० [सं० अ+वर्ण] १ बिना रूप-रंग का. २ जातिरहित।

उ०—अबरण वरण ऊंच क्या नीचा, परपूरण सब मांही।

—श्री ह.पु.

सं०पु०—ईश्वर, परब्रह्म।

अबरस–सं०पु० [फा०] घोड़े का एक रंग विशेष जो खुलते हुए सफेद रंग के समान होता है। (शा.हो.)

अबरी–सं०स्त्री०—१ देखो 'अभरी' २ देखो 'अवरी'।

अबरोसियौ–वि०—अविश्वासी, संदेहशील।

अबळ–वि० [सं०] निर्बल, कमजोर, कृश, दुर्बल। उ०—अरजुण हारियौ होय अबळ उदासी।—सिवदांन बारहठ

सं०स्त्री० [सं० अबला] १ स्त्री, औरत [सं० अवलि] २ पंक्ति, कतार।

अबलक, अबलकौ–सं०पु० [सं० अवलक्ष] सफेद और काले या सफेद और लाल रंग का (घोड़ा)।

वि०—चितकबरा (घोड़ा)।

अबलका–सं०स्त्री० [सं० अभिलाषा] अभिलाषा, इच्छा।

अबलख, अबलखौ–वि० [सं० अवलक्ष] देखो 'अबलक' (रू.भे.)

अबलखा–सं०स्त्री०—देखो 'अबलका' (रू.भे.)

अबळण–वि०—१ सत्य. २ अटूट. ३ घमंडी।

सं०स्त्री०—१ एक गति. २ लौटना क्रिया का भाव. ३ न लौटना।

अबलांबकौ–सं०पु०—जो निर्बलों का सहारा या शक्ति हो।

वि०स्त्री०—निर्बल, अशक्त, कमजोर।

अबळा–सं०स्त्री० [सं० अबला] स्त्री, औरत, नारी (ह.नां., अ.मा.)

कहा०—अबळा नै सतावे (दुखावै), ज्यांनै रांम दुखावै—अबलाओं (स्त्रियों) को दुख देना बहुत बुरा है।

अबळाभूल–सं०स्त्री०—१ सोलह शृंगारों से सुशोभित महिला.

सं०पु०—२ अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित योद्धा ।

अबळापण, अबळापणौ–सं०पु० [सं० अबला+पणौ–रा०प्र०] निर्बलता, कमजोरी, स्त्रीत्व । उ०—द्रौपद दुखियारीह, पुकारी **अबळापणै** । —रामनाथ कवियौ

अबलाकि–वि० [सं० अभिलाषी] १ अभिलाषा करने वाला. २ उदासीन ।

अबळासेन–सं०पु०—कामदेव, रतिपति (डि.को.)

अबळी, अबळौ–वि० [सं० अ+बल+ई] कमजोर, अशक्त । उ०—**अबळी** सबळी नै सबळी उर आंणै, गोरी गुणवंती गोरी गुण जांणै ।—ऊ.का.

अबवेल–सं०स्त्री०—सहायता, मदद, रक्षा ।

अबात–वि० [सं०] १ निर्वात, वायुहीन [रा० अ+बात] २ वार्तालाप-रहित, बिना बात या वृत्तांत के । उ०—अगात, असास, **अबात** अबेस ।—ह.र.

अबाबील–सं०स्त्री० [फा०] काले रंग की एक प्रकार की चिड़िया ।

अबार, अबारू–क्रि०वि०—अभी, अभी तक, इसी समय (डि.को.) उ०—ताहरां बहू कह्यौ—हे हरमाळा, **अबार** तूं जाय देख, श्रो डेरो छै कै कोई छळछिद्र छै ।—पलक दरियाव री बात ।

अबाळ–वि०—बिना बालक के. २ बाल्यावस्था से रहित । उ०—**अबाळ** अग्रद्ध अकाळ अक्रम्म ।—ह.र.

क्रि०वि०—बालकपर्यंत ।

अबास–सं०पु० [सं०आवास] निवास-स्थान, रहने का मकान, भवन । वि० [सं० अ+वास] १ निवास-स्थान से रहित । उ०—**अबास** न बास न आस न ईस ।—ह.र. [रा० अ+बास] २ किसी प्रकार की गंध से रहित, सुगंधिरहित ।

अबाह–वि०—बाहुरहित, निर्बाहु । उ०—अलाह अगाह **अबाह** अजीत । —ह.र.

अबिणास–सं०पु०—हानि, नाश ।

अबिणासी–वि० [सं० अविनाशी] देखो 'अवनासी' ।

अबिरच–वि०—१ प्रसन्न, खुश । उ०—जेहा मेहा जगत सूं, मत बिरचौ सुख मूळ । जीवाड़ै सारी जगत, मै **अबिरच** अनकूळ ।—बां.दा. २ अनुकूल ।

अबिरचणौ अबिरचबौ–क्रि०अ०—१ प्रसन्न या खुश होना. २ अनुकूल होना ।

अबिरचणहार-हारौ (हारी), अबिरचणियौ—प्रसन्न या खुश होने वाला, अनुकूल होने वाला ।

अबिरळ–वि० [सं० अविरल] देखो 'अविरळ' ।

अबींध–वि० [सं० अबिद्ध] १ बिना छेद किया हुआ, बिना बेधा हुआ, अक्षत. २ निष्कलंक ।

अबीज–सं०पु०—जो बिना बीज ही उत्पन्न हो । उ०—तू सरब बीज **अबीज**, बीज सौ तू सुभयांणी ।—केसोदास गाडण

अबीढ़ौ–वि० (स्त्री० **अबीढ़ी**) १ अद्भुत, अनोखा । उ०—१ सुणण ललच्चे स्रोण **अबीढ़ा** आखरां ।—किशोरदांन उ०—२ कहां **अबीढ़ी** जलम भोम, कहां मरण उपाई ।—वीरमायण २ दुरुह, कठिन, दुर्गम्य, भयंकर, टेढ़ा । उ०—भीम के भुजाट पाणां हैजम्मां लाट के भंज **अबीढ़ा** घाट के भड़ां थाट के प्राणांस ।—गीत डूंगजी रौ ३ बहादुर, जोशीला, ओजस्वी, वीररसपूर्ण । उ०—सारा जां दिनां में रैणवायलि गांम रैता, सारा पूत स्यामां का **अबीढ़ा** जोरि बैता । शि.व.

अबीर–सं०पु० [अ०] गुलाल या अबरक का चूर्ण जिसे होली में लोग एक दूसरे पर डालते हैं व देव-पूजा में भी काम आती है । रंगीन बुकनी । उ०—पेंडा जितना छै तितना सघळां ही रंग रंग का **अबीर** बिछाया छै ।—वेलि.

अबीरमई, अबीरमयी–वि०—१ अबीरयुक्त, रंग गुलाल से आच्छादित. २ कायरतायुक्त ।

अबीरी–वि०—अबीर के रंग का, कुछ श्यामता लिए लाल रंग का । सं०स्त्री०—अबीर । उ०—ख्याल गुलाल **अबीरी** खेलण, अजन प्रताप परख रस आयौ ।—रा.रू.

अबीह, अबीहौ–वि०—१ जबरदस्त, महान । उ०—लोह लाठ जेतखंभ गिरंदां गढां चौ लाडो दळां लाखां मांण गाढ़ौ बोलै धोळै दीह । जाज्वळी वीरांण मांडै विखमी पड़तां जाडो, आडो नवां कांटां कोट दससमो **अबीह** ।—हुकमीचंद खिड़ियौ [अ+बीह=डर रा०] २ निडर, निशंक, निर्भय । उ०—निज क्रममोत पैंडै न बीह, उदावत ऐंडेंगे **अबीह** ।—ऊ.का. । सं०पु०—चौहान वंश की अबीहा शाखा का व्यक्ति ।

अबीहा–सं०स्त्री०—चौहान वंश की एक शाखा ।

अबुंवा–सं०पु०—एक रंग विशेष । वि०—इस रंग संबंधी या इस रंग का ।

अबुध–वि० [सं०] अज्ञानी, मूर्ख, अनाड़ी ।

अबूज, अबूझ–वि०—१ अबोध, नासमझ, नादान । उ०—काली मत दाखव कुवच, बोल विचार **अबूझ** ।—पा.प्र. २ जो बूझा या जाना न जा सके । सं०पु०—बिना पूछे या बिना मुहूर्त दिखाए किया जाने वाला (लग्न)

अबूझणौ, अबूझबौ–क्रि०स०—१ देखो 'बूझणौ' । २ दम घुटना । उ०—अहीरावनै दावकाढ़न सूझै, असौ भीड़ियौ सहेस नासे **अबूझै** । —ना.द.

अबूझौ–सं०पु०—१ मूर्छा, रोग । वि०—जो कार्य करने में दक्ष न हो, अपटु, अदक्ष ।

अबेध–वि० [सं० अबिद्ध] बिना छेदा हुआ, जो छिदा न हो ।

अबेर–सं०स्त्री० [सं० अबेला] १ विलंब, देर । उ०—धन ले बीरा धाड़वी, अब कीजै न **अबेर** ।—वी.स. २ कुसमय. ३ सम्हालना क्रिया का भाव ।

क्रि०वि०—अविलम्ब, शीघ्र।

अबेरणौ, अबेरबौ–क्रि०स०—१ सम्हालना. २ सँवारना, ठीक ढंग से रखना, सुव्यवस्थित रखना।

अबेरणहार-हारौ (हारी) अबेरणियौ–वि०—सम्हालने वाला, सँवारने वाला।

अबेराणौ–प्रे.रू.।

अबेरिप्रोड़ौ, अबेरियोड़ौ, अबेरयोड़ौ–सम्हाला हुआ, सुव्यवस्थित किया हुआ।

अबेराणौ, अबेराबौ–क्रि०प्रे०—१ सम्हलाना. २ सुव्यवस्थित कराना।

अबेराणहार-हारौ (हारी) अबेराणियौ–सम्हलाने वाला, सुव्यवस्थित कराने वाला।

अबेरायोड़ौ–सम्हलाया हुआ, सँवारा हुआ।

अबेरावणौ, अबेरावबौ–रू.भे.।

अबेरावणौ, अबेरावबौ–क्रि०स०—देखो 'अबेराणौ' (रू.भे.)

अबेरियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ सम्हाला हुआ. २ सुव्यवस्थित किया हुआ। (स्त्री० अबेरियोड़ी)

अबेरौ–सं०पु०—सम्हालने या सुव्यवस्थित करने की क्रिया व उसका भाव।

अबेस–वि० [फा० बेश] १ अधिक, बहुत। [रा०] २ आयुरहित।
उ०—अगात असास अबात **अबेस**।— ह.र.
सं०पु० [सं० आवेश] जोश।

अबेह, अबै–क्रि०वि०— १ बिना समय. २ अब, इस बार।
कहा०—१ अबै किसा मीयां मरग्या क रोजा घटग्या—अब कौनसा मौका निकल गया कि यह काम नहीं हो सकता।
२ अबै तौ ओछी दाई में आगया हौ—अब वृद्ध होगए हो तथा आयु बहुत कम बची है अतः धर्म व सत्कर्म की ओर ध्यान दीजिए।
३ अबै तौ मोटां घरां ही भूख आय गई है—आजकल दरिद्रता सब ओर छा गई है. ४ अबै नींद जागी है—अब सचेत हुए हो।

अबोट–वि०—१ पवित्र, साफ. २ अछूता. ३ अखंड. ४ बिना सिर पैर की (बात), तथ्यहीन (गप्प)

अबोटी–सं०पु०—१ भोजक जाति के वे व्यक्ति जो राज-मंदिरों के पुजारी होते हैं. २ रसोई या पूजा के समय पहना जाने वाला पवित्र वस्त्र।
वि०—बिना कटा हुआ।

अबोद, अबोध–वि०—अबोध, मूर्ख, अज्ञानी।
उ०—महा **अबोध** साधनी सुबोध मंडळी नहीं।— ऊ.का.

अबोल–वि०—मौन, चुप, शांत। उ०—सो साथ री मांणस कोई बोलै नहीं। **अबोल** अबोल ही बहै।—डाढ़ाळा सूर री बात।

अबोलणौ–वि०—नहीं बोलने वाला, मूक। उ०—**अबोलणा** जुग बीतण लागी, कायां री कुसळात।—मीरां
सं०पु०—१ शत्रु. २ पशु. ३ वैरभाव, शत्रुता, मनमुटाव।

अबोलौ–वि०—१ देखो 'अबोल'। उ०—इतरी कह **अबोली** रही।
—सूरे खींवे री बात
२ जिसके विषय में बोल या कह न सके।
सं०पु०—कटुवाणी, बुरा कथन।
क्रि०वि०—बिना बोले हुए, चुपचाप।

अब्ज–सं०पु० [सं०] जो जल से उत्पन्न हो, यथा—कमल, शंख, चंद्रमा, कपूर।

अब्द–सं०पु० [सं०] १ मेघ. २ आकाश. ३ वर्ष, साल।
उ०—माळव रै महीप व्याकरण रा अध्यापन में एक **अब्द** री अनध्याय मांनि पांणिनीय री प्रतिनिधि भट्टि नांमक काव्य बणाय पढ़ायौ।—वं.भा.

अब्धि–सं०पु० [सं०] समुद्र, सागर।

अब्बल–वि०—देखो 'अव्वल'। उ०—पछै हाथ लगाय **अब्बल** तरह सू संपड़ाई।—सूरे खींवे री बात।

अब्बळा–सं०स्त्री०—देखो 'अबळा'। उ०—देवी **अब्बळा** सब्बळा वोम अध्धे।—देवि.

अब्बहि–वि०—निडर, निशंक।

अब्बास–सं०पु० [अ०]मुहम्मद साहब के चचा का नाम।

अब्बौ–सं०पु० [फा० आब] पानी। उ०—जांणक तत्ते तेल में बूंदे परि **अब्बौ**।—ला.रा.
क्रि०वि० [रा०] अभी, इसी समय।

अब्बीर–सं०स्त्री० [सं० अबीर] अबीर, गुलाल। उ०—खेह गरद्दी मेहलौं **अब्बीर** उडाया।—वं.भा.

अब्बू–सं०पु०—आबू पर्वत। उ०—सो सुरतांण हुणे फोजां सह, **अब्बू** विदित कियौ रण आग्रह।—वं.भा.

अब्भ–सं०पु० [सं० अभ्र] आकाश, गगन। उ०—कान भनक तब तैं परी चढ़ि कुंभ चलाया। तबतें संभर तंडि कै सिर **अब्भ** लगाया।
—वं.भा.

अब्भिमांन–सं०पु० [सं० अभिमान] अभिमान (रू.भे.)
उ०—गिरं कंध अंधा ह्रिदै अग्गिआनं, मरे मारि जांणै जिके **अब्भिमांनं**।—वचनिका

अब्याई–वि०स्त्री०—जिसने प्रसव न किया हो (पशु) उ०—जंगळ में चरै छी सौ **अब्याई** भोटी आई। 'मोकळ' का कनां सू सेख धीपी में दुहाई।— शि.वं.

अब्यागत–वि० [सं० अभ्यागत] गरीब, दीन, दुर्बल।

अब्रक–सं०पु० [सं० अभ्रक] सात उपधातुओं में से एक (अ.मा.)

अब्रद्ध–वि० [सं० अवृद्ध] जो वृद्ध न हो, युवा। उ०—अवाळ **अब्रद्ध** अकाळ अक्रम्म।—ह.र.

अभंग–वि० [सं०] १ वीर, निश्चयी, बहादुर, निडर (डिं.को.)
२ अखंड, अटूट, पूर्ण। उ०—सुणं पढ़ नह सासतर सेवै नह सत संग, सुखदायक किम सांपजै उर संतोख **अभंग**।—बां.दा.

३ अनापशनाप । उ०—**अभंग** अलिंग अद्रंग अदेस ।—ह.र.

सं०पु०—१ सिंह (अ.मा.) २ एक प्रकार के पद या भजन जिनका व्यवहार मराठी में भी होता है ।

अभंगपद–सं०पु० [सं०] श्लेष अलंकार का एक भेद विशेष ।

अभंगी, अभंगीय–वि० [सं० अभंगिन्] १ वीर, बहादुर, जिनका भंग न हो । उ०—१ लंक दिस सुण इतौ हालै, **अभंगी** आगां ।—र.रू. उ०—२ **अभंगीय** रोम हुवौ असवार, दिपै चहुवांण सु कान उदार । —शि.सु.रू.

२ पूर्ण, अखंड. ३ नहीं भगने वाला । उ०—सांचां राड़ री मिळायौ सूत पालटै **अभंगी** संगी, आचां उडाड़ री भेद न पायौ अनूप ।—मानसिंहजी

अभंगुर–वि०— दृढ़, जो न मिटे, जो न टूटे ।

अभंजन–वि० [सं०] जिसका भंजन न किया जा सके, अटूट, अखंड ।

अभ–सं०पु० [सं० अभ्र] आकाश (अ.मा.)

अभक्त–वि० [सं० अ+भक्त] जो भक्त न हो ।

अभक्स, अभक्ष, अभक्ष्य, अभख, अभखज–वि० [सं० अभक्ष] अखाद्य, अभोज्य, न खाने योग्य, धर्म शास्त्र में जिसके खाने का निषेध हो । उ०—भख **अभखज** बाघ कूं दे दूध मंजारे ।—केसोदास गाडण

अभग्गी–वि० [सं० अभाग्य+औ] (स्त्री० अभग्गी) अभागा, भाग्यहीन, बदकिस्मत । उ०—**अभग्गि** अग्गि के अग्गे सुभग्ग भग्गने सुनें । —ऊ.का.

अभड़छेट, अभड़छोत–सं०स्त्री०—अस्पृश्य व्यक्ति को स्पर्श करने का भाव, अशौच ।

अभड़ीजणौ, अभड़ीजबौ–क्रि०अ०—१ अस्पृश्यों के स्पर्श से अशौच लगना । उ०—ढेढ़ तौ है, पण है तो मिनख-ई महाराज ! छाती पर हाथ धर'र कैया—काई मिनख मिनख रै पल्लो लागतै-ई **अभड़ीज** जावै ।—वरसगांठ

अभड़ीजियोड़ी–वि०—रजस्वला (स्त्री०)

अभड़ीजियोड़ौ–वि०—जिसका अस्पृश्यों से स्पर्श हो गया हो । (स्त्री० अभड़ीजियोड़ी)

अभधूत–सं०पु०—देखो 'अवधूत' (रू.भे.)

अभनम–सं०पु० वंशज, पौत्र या प्रपौत्र ।

अभनमौ, अभनमौ, अभनवौ–सं०पु० अपने पूर्वजों के अनुरूप गुण धारण करने वाला, वंशज, पौत्र या प्रपौत्र । उ०—कोपिया थकै काकोधरा काढ़िया, **अभनमौ** 'भीम' ओठामियां आज ।

वि०—१ दूसरा, द्वितीय. २ अभिनव. ३ सदृश, समान ।

अभभूप–सं०पु०—कवि (अ.मा.)

अभम–सं०पु० [सं० अभिमान] अभिमान, घमंड (अ.मा.)

अभमांन–सं०पु० [सं० अभिमान] अभिमान, घमंड, अहंकार । उ०—जाणौ छै जाणौ छै जाणौ समझौ जे भीतर वे स्यांन । बेदिन काज जहर मत बोवौ मरदां दूर करौ **अभमांन** ।—ओपौ आढ़ौ

क्रि०प्र०—करणौ-होणौ-छोडणौ ।

अभमांनव–सं०पु० [सं० अभिमन्यु] अर्जुन का पुत्र, अभिमन्यु । उ०—**अभमांनव** जुद्ध भीमेण इसा, सतवादि जुधिस्टर द्रोण जिसा । —शि.सु.रू.

अभमांनी–वि०—देखो 'अभिमांनी' (ह.नां.) (रू.भे.)

अभमाती–सं०पु० (सं० अभ्यमित्र) शत्रु, दुश्मन (अ.मा.)

अभय–वि० [सं०] निर्भय, निडर, बेखौफ, कुशल ।

सं०पु०—१ भयविहीनता. २ शरण. ३ कुशलता (अ.मा.) (यौ० अभयदांन, अभयपद)

अभयधाम–सं०पु०यौ०—१ मोक्ष. २ स्वर्ग, बैकुण्ठ ।

अभयपद–सं०पु० [सं०] मोक्ष, मुक्ति, निर्भय पद । उ०—यूं धरै ध्यांन दिन रात **अभयपद** पासी प्रांणी ।—सगरांमदास

अभयवचन–सं०पु०यौ० [सं०] रक्षा का वचन ।

क्रि०प्र०—देणौ-लेणौ ।

अभया–सं०स्त्री० [सं०] १ दुर्गा, भगवती । उ०—ओहं सोहं अखया **अभया** आइ अजया विजया उमया ।—देवि.

२ हरीतकी, हर्रे (नां.मा., अ.मा.)

वि०स्त्री०—निडर, निर्भय ।

अभयास–सं०पु० [सं० अभ्यास] देखो 'अभ्यास' ।

अभर–वि० [सं० अ+भर=भार] १ निहाल, कृतकृत्य ।

[सं० अ+भार] २ जो उठा कर ले जाया न जा सके, दुर्भर, दुर्वह, उ०—दांन दिया जिस अरब का कव दरब **अभर** का ।—दातारमाळा

अभरण–सं०पु०—१ अंत गुरु की चार मात्रा का नाम (डिं.को.) [सं० आभरण] २ आभूषण ।

क्रि०वि०—कृतकृत्य ।

अभराभरण–वि० उ०लिं०—१ भूखों को भोजन देने वाला. २ अपूर्ण को पूर्ण करने वाला । उ०—करतार तू ही करणा-करणी भव रूप तूं ही **अभराभरणी** ।—क.कु.बो.

अभरी–वि० [सं० आभरी गौ.] १ धनाढय, संपत्तिशाली ।

उ० फौज धन सूं **अभरी** हुई फतै कर पाछी वळी ।—बां.दा.

२ वह जिसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो गई हों, संतुष्ट ।

३ परिपूर्ण । उ०—**अभरी** थावै आथ सु, चित सरसावै चाव । जावै दाता द्वार जे, पावै पांच पसाव ।— बां.दा.

सं०स्त्री०—जिल्दसाजी के काम आने वाला रंगीन अथवा छींटदार पतला कागज ।

अभरोसौ–सं०पु०—अविश्वास, शक ।

अभल–वि०—अश्रेष्ठ, बुरा, जो भला न हो ।

अभलाक, अभलाख–सं०स्त्री० [सं० अभिलाष] इच्छा, अभिलाषा (रू.भे.)

उ०—रिम हर चित धरण कहै यमरांणी, हळदी घाट हुई रण हाक चोळ करण रहगी मांहि चित, अंग अहवातं तणी **अभलाक** । —महारांणा प्रताप री गीत

अभलाखी–वि० [सं० अभिलाषिन्] इच्छुक।

अभलेखा, अभलेखौ–सं०पु० [सं० अभिलाष] देखो 'अभिलासा' (रू.भे.) उ०—नीचौ नैणां सूं धोबां जळ धावै, ऊंचौ ईसण री **अभलेखौ** आवै।—ऊ.का.

अभवनमत–सं०पु० [सं०] काव्य का एक दोष विशेष। उ०—दळ दूजा री पद दळ दूजै, जांण अवै **अभवनमत** जोग।—बां.दा.

अभवहार–सं०पु० [सं० अभ्यवहारः] भोजन (अ.मा.)

अभवी–वि० [सं० अभव्य] १ न होने योग्य. २ विलक्षण, अद्‌भुत. ३ भद्दा, बुरा, अशुभ। उ०—खुधा त्रिखा पीड़ित पुरख तन त्यागत अतीव, **अभवी** कह न अनापदे, जेही ज **अभवी** जीव।—ऊ.का.

अभाए–वि० [सं० अभात, प्रा० अभायो] असुहावना, अरुचिकर। उ०—**अभाए** सबद्दं बजे अप्रमाणं कळा सोर प्राणं सबाणं कबाणं। —रा.रू.

अभाग–सं०पु० [सं० अभाग्य] दुर्भाग्य, मंदभाग्य, बदकिस्मती। उ०- ऊँट टाट खावै न अां अपणो जांण **अभाग**। अपणो जांण **अभाग** गजब नहिं खाय गधेड़ो।—ऊ.का.

अभागियो, अभागियौ, अभागी, अभागो, अभाग्यौ–वि०पु० [सं० अभिगिन्] (स्त्री० अभागण) भाग्यहीन, बदकिस्मत। उ०—हरि पधारयां आंगणां गयी मैं **अभागण** सोय।—मीरां

मुहा०—अभागियैरी खोपड़ी—अभागा मनुष्य।

कहा०—१ असाढ़ां रा तौ मेह अभागियै रै ही करै—आषाढ़ मास में तो वर्षा अवश्य होती है, अन्यथा बाद में वह निरर्थक होती है। २ आंदो नाग अभागियो मदवो मायादार, इतरा नां चालै पाधरा समझावौ सौ बार—अंधा सर्प, अभागा व्यक्ति, शराबी तथा धनवान, इनको कितनी बार ही समझाइए परन्तु कभी अच्छी राह पर नहीं चलते।

अभाळ–वि० [सं० अ+भाल्य] अप्राप्त। १ नहीं देखा जा सके। २ नहीं देखा जाने योग्य।

सं०स्त्री०—ललाट (क.कु.बो.)

अभालौ–वि०—बिना शस्त्रधारी, बिना भाले का।

अभाळौ–वि०—बिना देखा।

अभाव–सं०पु० [सं०] १ अविद्यमानता, न होना, असत्ता. २ त्रुटि, कमी, घाटा, टोटा. ३ विरोध, बुरा भाव।

अभावण–वि०—अरुचिकर, अप्रिय। उ०—भरयौ पूर अघ जगत **अभावण**, आगम अत कीधौ फिर आवण।—रा.रू.

अभावणौ–वि०—अप्रिय, असुहावना।

अभावणौ, अभावबौ–क्रि०अ०—१ असह्य होना। उ०—**अभावै** ईढ़ रां हिए लाखां धूप टावै आथां।—रामकरण महडू

२ अरुचिकर होना। उ०—विसतरी कत्थ जग जण बदन अरि मनि घणां **अभावियौ**।—रा.रू.

अभावणहार-हारौ (हारी), अभावणियौ–वि०—अरुचिकर होने वाला

अभावियोड़ौ, अभावियोड़ो, अभाव्योड़ौ–भू०का०कृ०—अरुचिकर, अप्रिय, असुहावना।

अभावियौ, अभावियोड़ौ–भू०का०कृ० [सं० अभात+ड़ौ-रा.प्र.] अनचाहा, अरुचिकर। (स्त्री० अभावियोड़ी)

अभावी–वि० [सं०] न होने वाली बात।

अभावो, अभावौ–वि० [सं० अभात] अप्रिय, अरुचिकर, भयावह। उ०—१ देवळियौ वंसनयर अनै पुर डूंगर, त्रिहूँ ऐ भूप **अभावौ** तांम।—पतौ आशियौ

उ०—२ **अभावौ** बहादर सुतन साहब उगां।
—बळवंतसिंह गोठड़ा रौ गीत

अभितरेण–क्रि०वि० [सं० अभ्यंतर] अभ्यंतर, भीतर। (डो.मा.)

अभि–उप० [सं०] एक उपसर्ग जो शब्द के पहले लग कर सामने, बुरा, इच्छा, समीप, बारंबार, अच्छी तरह, दूर, तथा ऊपर का अर्थ देता है।

क्रि०वि०—अभी, अब (रू.भे.)

अभिअंतर–क्रि०वि० [सं० अभ्यंतर] भीतर।

अभिचार–सं०पु० [सं०] छः प्रकार का तंत्र का प्रयोग—मारण, मोहण, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटण और वशीकरण।

अभिचारक–सं०पु० [सं०] तंत्र मंत्र द्वारा किए जाने वाले कर्म।

वि०—इन तंत्र मंत्रों का प्रयोग करने वाला।

अभिच्छ–वि० [सं० अभिक्षा] याचनारहित।

अभिजण–सं०पु० [सं० अभिजन] १ कुल, वंश (डिं.को.) २ पूर्वजों का निवास-स्थान।

अभिजांणण–वि० [सं० अभिज्ञ] कुशल, पटु, दक्ष (डिं.को.)

अभिजित–वि० [सं०] विजयी।

सं०पु०—१ श्रवण नक्षत्र के प्रथम चार दंड तथा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के अंतिम पन्द्रह दंड. २ एक नक्षत्र का नाम जिसमें तीन तारे होते हैं और उसका आकार सिंघाड़े जैसा होता है।

अभिणासी–वि० [सं० अविनाशिन्] देखो 'अविनासी' (रू.भे.)

अभित्ति–वि० [सं० अ+भीति] निर्भय, निडर, निशंक। उ०—भिरे **अभित्ति** भित्ति को सबुज्ज के भवावनी।—ऊ.का.

अभिधांन–सं०पु० [सं०] १ कथन. २ शब्दकोश. ३ नाम। उ०—एक रुचिर गणिका उठै, सुभगुण सोळ समांन। कवि बसंत सेना कहै, उचित जास **अभिधांन**।—वं.भा.

अभिधांनकोस-छंदोग्यांन–सं०पु० [सं० अभिधान+कोष+छंदोज्ञान] काम-शास्त्र की ६४ कलाओं के अंतर्गत एक कला, देखो 'कळा'।

अभिधांनी–वि० [सं० अभिधान+ई-रा०प्र०] नामधारी, नाम का। उ०—इण कुळ ही देवट **अभिधांनी**, महीभुजंग हुवौ रणमांनी। —वं.भा.

अभिधा–सं०स्त्री० [सं०] १ शब्द शक्ति के तीन भेदों में से एक भेद जिससे शब्द के वाच्यार्थ को प्रकट किया जाता है. २ नाम।

अभिधेय–वि० [सं०] १ नाम लेने योग्य. २ अर्थ।

अभिनंदन–सं०पु० [सं०] १ प्रशंसा. २ स्वागत. ३ बधाई. ४ जैनियों के चौथे तीर्थंकर का नाम।

अभिनंदनीय–वि० [सं०] वंदनीय, जो प्रशंसा के योग्य हो।

अभिनंदित–वि० [सं०] वंदित, प्रशंसित।

अभिन–वि० [सं० अभिन्न] देखो 'अभिन्न' (रू.भे.) उ०—विधि सहित बधावै वाजित्र वाजै, भिन भिन **अभिन** वांणी मुख भाखी। —वेलि.

अभिनमौ–सं०पु० [सं० अभिन्न+मौ–रा०प्र०] देखो 'अभनमौ' (रू.भे.)

अभिनय–सं०पु० [सं०] स्वांग, नकल, किसी अन्य व्यक्ति के भाषण तथा चेष्टा को कुछ समय के लिए धारण करना।

अभिनव–वि० [सं०] नया, नवीन।

अभिन्न–वि० [सं०] जो पृथक न हो, मिला या सटा हुआ।

अभिन्नता–सं०स्त्री० [सं०] पृथकता का अभाव, संबंध, लगाव।

अभिप्राय–सं०पु० [सं०] आशय, मतलब, अर्थ. तात्पर्य।

अभिप्रेत–वि० [सं०] अभिलषित, इच्छित।

अभिबादन–सं०पु० [सं० अभिवादन] प्रणाम, नमस्कार, वंदना (डिं.को.)

अभिभव–सं०पु० [सं०] पराजय, हार, नीचा देखना (डिं.को.)

अभिमंत्रण–सं०पु० [सं०] मंत्रों द्वारा किया जाने वाला संस्कार, आह्वान।

अभिमंत्रित–वि० [सं०] जो मंत्रों द्वारा पवित्र किया हुआ हो।

अभिमत–सं०पु० [सं०] आशय। उ०—आपरी अंगना रौ इसड़ौ **अभिमत** जांणि रौपाळ भाकरा सोढा दामां री दुहिता सुगुणां नांम इसड़ी आपरी पत्नी नूं।—वं.भा.

अभिमनपूत–सं०पु०यौ० [सं० अभिमन्यु+पुत्र] अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित नामक राजा।

अभिमन्न, अभिमन्यु–सं०पु० [सं० अभिमन्यु] सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न अर्जुन का पुत्र, अभिमन्यु। (रू.भे.)

अभिमांण, अभिमांन–सं०पु० [सं० अभिमान] अहंकार, गर्व, घमंड, मद अहंभाव। (डिं.को.) उ०—हद डाँण अगां **अभिमांण** हरै, प्रळंबी कुरबांण उडांण परै।—मे म.

अभिमांणी, अभिमांनी—वि० [सं० अभिमानिन्] अहंकारी, घमंडी, अभिमान करने वाला।

सं०पु०—शत्रु, दुश्मन (ह.नां.—पाठांतर)

अभमाती–सं०पु० [सं० अभ्यमित्र] शत्रु, वैरी (अ.मा.)

अभिमुख–क्रि०वि० [सं०] सामने, आमने-सामने।

उ०—नागणी लेती तोप रै **अभिमुख** धकावै जिण तरह काळेजा करां मैं लीधा प्राणां रौ दुरभिक्ष पटकता चहुवांण रा सामंत बीच हुवा।—वं.भा.

अभिया–सं०स्त्री० [सं० अभया] हरड़े, हरें (अ.मा.) (रू.भे. अभया)

अभियागत–वि० [सं० अभ्यागत] गरीब, कंगाल, दरिद्र, याचक। (रू.भे. अभ्यागत)

अभियास–सं०पु० [सं० अभ्यास] देखो 'अभ्यास' (रू.भे.)

अभियासी–वि० [सं० अभ्यासी] देखो 'अभ्यासी' (रू.भे.)

अभियुक्त–सं०पु० [सं०] दोषी, अपराधी, मुलजिम।

अभियोग–सं०पु० [सं०] अपराध, मुकदमा।

अभियोगी–वि० [सं०] नालिश करने वाला, अभियोग चलाने वाला।

अभिरांम, अभिरांमा–वि० [सं० अभिराम, अभिरामा] मनोहर, सुंदर, रम्य, प्रिय। उ०—१ निज बासक कहियौ निसा, इम सासक **अभिरांम**।—वं.भा. २ रांमा **अभिरांमा** कामातुर रोवै, हड़मल हुड़दंगी सेजां में सोवै।—ऊ.का.

सं०पु० [सं० अभिराम] १ आनन्द, प्रमोद. २ अंत गुरु की चार मात्रा का नाम। (डिं.को.)

अभिरांमी–वि० [सं० अभिरामिन्] रमणकर्त्ता (वं.भा.)

अभिरुचि–सं०स्त्री० [सं०] चाह, पसंद।

अभिरुता–सं०स्त्री० [सं०] संगीत की एक मूर्च्छना।

अभिरूप–वि० [सं०] मनोहर, सुंदर।

सं०पु०—१ पंडित, विद्वान (डिं.को., ह.नां.) २ कामदेव. ३ शिव. ४ चंद्रमा. ५ विष्णु. ६ वीर।

अभिलाख–सं०स्त्री० [सं० अभिलाष] देखो 'अभिलासा' (रू.भे.)

उ०—सवरी वन मांहि प्रीत सू सांची, उवर जठै दरसण **अभिलाख**। —र.रू.

अभिलाखणौ, अभिलाखबौ–क्रि०स०—देखो 'अभिलासणौ'।

उ०—आखां जगदीस्वर सांधण **अभिलाखौ**, राखां बांधण री ईस्वर नह राखो।—ऊ.का.

अभिलाखा–सं०स्त्री० [सं० अभिलाष] देखो 'अभिलाख'।

उ०—घूम'र आव 'जसू' पूरण घण, 'ऊमर' री **अभिलाखा**।—ऊ.का.

अभिलाखी–वि० [सं० अभिलाषिन्] देखो 'अभिलासी'।

अभिलाखुक–वि० [सं० अभिलाषुक] अभिलाषा करने वाला, लोभी।

अभिलाप–सं०पु० [सं०] कथन, वाक्य।

अभिलास–सं०स्त्री० [सं० अभिलाष] १ देखो 'अभिलासा'।

उ०—तिती **अभिलास** सह कथा सुणवा तणी, महेसुर यथारथ दाख मोनै।—र.रू. २ शृंगार के अन्दर दस दशाओं में से एक, प्रिय से मिलने की इच्छा।

अभिलासक–वि० [सं० अभिलाषक] अभिलाषी, इच्छुक।

अभिलासणौ, अभिलासबौ–क्रि०स० [सं० अभिलाष] अभिलाषा करना।

उ० कोमळ राता पातळा, अधर जिकां रा ईख, **अभिलासै** पीवण भ्रमर, सुधा जांम दे सीख।—बां.दा

अभिलासा–सं०स्त्री० [सं० अभिलाष] इच्छा, कामना, चाह, आकांक्षा।

अभिलासी–वि० [सं० अभिलाषिन्] अभिलाषा रखने वाला, इच्छुक, आकांक्षी।

अभिवादन–सं०पु० [सं०] प्रणाम, वंदना, नमस्कार।

अभिव्यक्ति–सं०स्त्री० [सं०] स्पष्टीकरण, साक्षात्कार।

अभिसप्त–वि० [सं० अभिशप्त] १ जिसे शाप दिया गया हो. २ मिथ्या दोष से आरोपित।

अभिसव–सं०पु० [सं० अभिषव] १ एक प्रकार की शराब विशेष (डि.को.) २ अभिषेक।

अभिसाप–सं०पु० [सं० अभिशाप] १ बददुआ. २ झूठा दोषारोपण।

अभिसार–सं०पु० [सं०] युद्ध। उ०—पावस आयां जक पड़ै, पैलां दहल अपार। भाजड़ री घर-घर भणै, हुआं लोह **अभिसार**।—वी.स.

अभिसारिका, अभिसारिणी–सं०स्त्री० [सं०] वह नायिका जो अपने प्रेमी से मिलने के लिए संकेत स्थान पर जाय अथवा अपने प्रेमी को संकेत स्थान पर बुला ले। उ०—चन्द्रकिरणी कुळटा सु निसाचर, दवड़ित **अभिसारिका** द्रिठ।—वेलि.

अभिसेक, अभिसेख–सं०पु० [सं० अभिषेक] १ जल से सिंचन, छिड़काव. २ ऊपर से जल डाल कर स्नान. ३ किसी बाधा आदि की शांति के लिए मंत्र पढ़ कर दूर्वा और कुश से जल छिड़कना. ४ विधि-पूर्वक मंत्र द्वारा अभिमंत्रित जल छिड़क कर राज पद पर निर्वाचन. ५ यज्ञादि के पश्चात् शांति के लिए स्नान. ६ शिव लिंग पर ऊपर से जल टपकाने का कार्य।

अभिस्ट–वि० [सं० अभीष्ट] अभिलषित, इच्छित। देखो 'अभिस्ट' (रू.भे.) उ०—सुबरण रासि सदा ही संपादन होय योंही **अभिस्ट** वर चंडिका सूं पाय प्रच्छन्न ही आपरै नगर गियौ।—वं.भा.

अभी–क्रि०वि०—ठीक इसी समय इसी क्षण।

अभीच–वि० [सं० अभ्यग्रच] वीर, योद्धा, सुभट। उ०—सुभ वार महूरत जांग दिन तत **अभीच** सार्धं तरां।—रा.रू.

अभीड़ौ–वि०—१ असुहावना, अरुचिकर. २ कटु. ३ जोशपूर्ण। उ०—चगे नथी पावां वीरताई ऊफणी रै चखां। बातां हुई गणी रै **अभीड़ा** बोलैं बोल।—कमजी दधवाड़ियौ

अभीढ़ौ–वि० (स्त्री० अभीढ़ी) देखो 'अबीढ़ौ'।

अभीत, अभीति–वि० [सं० अ+भीति] निडर, निर्भय, साहसी। उ०—१ उन्हें न भीत और **अभीत** व्हेन त्यां अगे।—ऊ.का. २ **अभीति** वीति कूद देय चंड मुंड ज्यों अरे।—ऊ.का.

सं०पु०—शत्रु (अ.मा.)

अभीतौ–वि० [सं० अ+भीति] निडर, निशंक।

अभीनमौ–सं०पु०- देखो 'अभनमौ' (रू.भे.)

अभीमत–सं०स्त्री० [सं० अभिमत] १ देखो 'अभिमत' (रू.भे.) २ मनचाही बात।

वि०—मनोनीत वांछित।

अभीमता–सं स्त्री० [सं० अभिमान्यता=अभिम्मता] घमंड, अभिमान।

अभीमांन–सं०पु० [सं० अभिमान] देखो 'अभिमांन' (रू.भे.)

अभीमुख–क्रि०वि० [सं० अभिमुख] देखो 'अभिमुख' (रू.भे.)

अभीयास–सं०पु० [सं० अभ्यास] देखो 'अभ्यास' (रू.भे.)

उ०—जोबन कारमौ विहांणै उठ जासी, एकौ भजन तणौ **अभीयास** प्रांणिया ए विन कदै पांमणां वळै न बीजै वागड़ वास।

—ओपौ आढ़ौ

अभीर–वि० [रा० अ+भीर=सहायता] जिसका कोई सहायक न हो। उ०—'पालह' पीरां पीर 'पाल' अण बंधवां बंधव। 'पाल' **अभीरां** भीर 'पाल' पित माता संधव।—पा.प्र.

सं०पु० [सं०] १ गोप, अहीर. २ प्रत्येक चरण में ग्यारह मात्राओं वाला काव्य का एक छंद विशेष। किसी के मत से अंत में जगण भी होता है (र.ज.प्र.)

अभीरूप–सं०पु०—देखो 'अभिरूप' (रू.भे.)

अभीसप्त–वि०—देखो 'अभिसप्त' (रू.भे.)

अभीस्ट–वि० [सं० अभिष्ट] १ वांछित, अभिप्रेत, आशयानुकूल. २ इच्छित, मनोनीत, पसंद, चितचाहा।

सं०पु०—३ मनोरथ, कामना।

अभुक्तमूळ–सं०पु०यौ० [सं० अभुक्तमूल] मूल नक्षत्र के आदि की तथा ज्येष्ठा नक्षत्र के अंत की दो घड़ी।

अभुत–वि०—देखो 'अभूत'।

अभूखण, अभूखन–सं०पु० [सं० आभूषण] आभूषण, जेवर।

अभूत–वि० [सं०] १ अद्भुत, विचित्र। उ०—देख देख सगळी गत दाखी, भूप **अभूत** रूप छत भाखी।—रा.रू. २ अपूर्व, जैसा पहले कभी नहीं हुआ हो। उ०—**अभूत** रीस पूत साह जूत दाह अंग में। हलै अभंग रूप माग धू लगै निहंग में।—रा.रू.

अभूतपूरब–वि०यौ० [सं० अभूतपूर्व] अनोखा, विलक्षण, अपूर्व।

अभूती–वि० [सं० अभूत] १ अपूर्व, जो पहले कभी न हुई हो। उ०—भई घात रण वात **अभूती** रांण वडी गिणवी रजपूती—रा.रू. २ अद्भुत, अनोखा, विचित्र।

अभूनौ–वि०—१ सुनसान. २ विना भुना हुआ।

अभूमो, अभूमौ–वि०—१ विचार-शक्ति-शून्य, मूर्ख, अज्ञानी. २ वह व्यक्ति जो कोई काम ढंग से न कर सके।

अभूलणौ, अभूलबौ–क्रि०स०—याद रखना, स्मरण रखना। उ०—फबै मोगरौ सेवती जाय फूली भ्रंगी पंति सेवति भूली **अभूली**।—रा.रू.

अभूलणहार-हारौ (हारी), अभूलणियौ—याद रखने वाला।

अभूलिओड़ौ, अभूलियोड़ौ, अभूल्योड़ौ—भू०का०कृ०।

अभूलियोड़ौ–भू०का०कृ०—याद रक्खा हुआ। (स्त्री० अभूलियोड़ी)

अभेख–सं०पु० [सं० अ+भेष] असाधु, दुष्ट (देखो 'भेख') उ०—सब भेख **अभेख** सुधार करै।—ऊ.का.

अभेडौ–वि०—कठिन, मुश्किल।

अभेव–सं०पु० [सं०] १ एकत्व, अभिन्नता, जहां भेद या दुराव न हो. २ रूपक अलंकार का एक भेद।

वि०—अभिन्न, एक।

अभेदवादी-वि० [सं० अभेदवादिन्] जो परमात्मा व जीवात्मा में भेद न करे। अद्वैतवादी।

अभेधांम-संपु० [सं० अभयधाम] मोक्ष। उ०—लीधां नांम नीठ नीठ अनेक जनमां लागां। **अभेधांम** पावै वैकूंठ अदोत।
—दादूपंथियां री गीत

अभेळिणौ, अभेळिबौ-क्रि०स०—न लूटना। उ०—ग्रासुर गांम **अभेळियां** गो भेळियां कटक्क।—रा.रू.

अभेळिणहार-हारो (हारी), अभेळिणियौ—न लूटने वाला।

अभेव-वि० [सं० अभेद] १ देखो 'अभेद'। २ जिसका भेद कोई न जाने। उ०—अधोखज अक्खर तुज्झ **अभेव**, दिनंकर चंद न जांणै देव।—ह.र.

अभै-[सं० अभय] देखो 'अभय' (रू.भे.) उ०—सरण **अभै** कीधौ मियां, लीधौ बीत संभाळ।—रा.रू.

अभैदांन-संपु० [सं० अभयदान] १ भय से बचाने का वचन देना, शरण देना, रक्षा करना. २ क्षमादान, मुआफी. ३ बड़ा योगी, महादेव (रा.रा.)

अभैपद-संपु० [सं० अभयपद] अभयपद, निर्भय स्थान।
उ०—सांई सतगुरु खोजिया, लाभै अपाह। परम **अभैपद** पाइए, भ्रम भंजै तांह।—केसोदास गाडण

अभैपुरा-संपु०—राठौड़ क्षत्रियों की तेरह शाखाओं में से एक शाखा।

अभैमुनि-संपु० [सं० अभिमन्यु] अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु (रू.भे.)

अभोक्ता-वि० [सं०] जो भोग या व्यवहार न करे।

अभोखण-संपु० [सं० आभूषण] आभूषण, गहना। उ०—अंगि **अभोखण** अच्छियउ, तन सोवन सगळाइ। मारू अंबा-मउर जिम, कर लग्गइ कुंमळाइ।—ढो.मा.

अभोग-वि० [सं०] १ फैलाव, विस्तार. २ भोग-विलासरहित. [सं० अभोग्य] ३ जिसका भोग न किया गया हो, अनुपभोग।
उ०—महामुनी समांन में महांन हानि मुक्ति में। **अभोग** रोग ना अरै जरै न जोग जुक्ति में।—ऊ.का.

अभोगत-वि० [सं० अभुक्त] जो काम में लाया हुआ न हो, अव्यवहृत, नया। उ०—अलाहिदौ महिल एक **अभोगत** पैली करायौ थौ तिण मांहे राखी।—वीरमदे सोनगरा री बात

अभोगी-वि० [सं०] इंद्रिय-सुख से उदासीन, विरक्त।

अभौ-संपु० [सं० अभ्र] आकाश, आसमान (रू.भे.—अभ, अभौ, अम्भ)

अभौतिक-वि० [सं०] अगोचर, जो भौतिक न हो।

अम्भ-संपु० [सं० अभ्र] १ आकाश, आसमान। उ०—तेता मारू मांहि गुण, जेता तारा **अम्भ**।—ढो.मा. २ बादल, मेघ।
उ०—उपज्जै जेम अकासां **अम्भ**।—ह.र.

अम्भरी-देखो 'अभरी' (रू.भे.)

अभ्यंतर-संपु० [सं०] १ मध्य, बीच. २ हृदय।
क्रि०वि०—भीतर। उ०—जंतर जर हरणूं **अभ्यंतर** जड़ियौ, पीतम प्यारी नै परहरणूं पड़ियौ।—ऊ.का.

अभ्यसणौ, अभ्यसबौ-क्रि०स०—अभ्यास करना। उ०—वेद पुरांण सास्त्र **अभ्यसइ**, इस्या विप्र तिणि नयरी वसइ।—कां.दे.प्र.

अभ्यस्त-वि० [सं०] १ जिसको अभ्यास हो गया हो. २ दक्ष, निपुण।

अभ्यागत-संपु० [सं०] १ मेहमान, अतिथि. २ संन्यासी।
वि०—गरीब, दरिद्र। उ०—अतिथी **अभ्यागत** टोळा टुळ आवै झोळी झंडा ले पोळी पधरावै।—ऊ.का.

अभ्यागम-संपु० [सं० अभि+आगम] युद्ध (ह.नां.)

अभ्यामरद-संपु० [सं०अभ्यामर्द] युद्ध, दंगल (अ.मा.)

अभ्यास-संपु० [सं०] १ कोशिश, परिश्रम, पूर्ण ज्ञान प्राप्ति के लिए बार बार किसी काम को करने की आदत। उ०—नहीं उगत **अभ्यास** नह, गुर सूं लियौ न ग्यांन।—बां.दा.
क्रि०प्र०—करणौ-पड़णौ-होणौ।
कहा०—अभ्यास बत्तौ है—अभ्यास से सब हो सकता है।
२ टेव, आदत. ३ युद्ध, समर। (ह.नां.)

अभ्यासकळा-संस्त्री० [सं० अभ्यासकला] विविध योगांगों के मेल से बनने वाली योग की चार कलाओं में से एक।

अभ्यासी-वि० [सं०] १ अभ्यस्त जिसे अभ्यास हो। उ०—**अभ्यासी** वैराग्य प्रगत अनुराग्य व्रति बधे।—ऊ.का. २ दक्ष, निपुण।
उ०—अठासी **अभ्यासी** दरब्बार आठूं, सखी देख बंटा लखंलक्ख साठूं।—ना.द.
३ अभ्यास करने वाला। उ०—बिगड़ी किसमत री पारायण बांचै, नाड़ी नाड़ी में नारायण नाचै। बगण्या बैदेही वेही **अभ्यासी**, संका देही नहिं गेही संन्यासी।—ऊ.का.

अभ्युदय-संपु० [सं०] १ उदय, प्रादुर्भाव. २ तरक्की।

अभ्र-संपु० [सं०] १ मेघ, बादल (ना.डिं.को.)
२ आकाश। उ०—घटा घुमंडी घोरिके आसाढ़ **अभ्र** लौं घिरयौ।
—ला.रा.
३ अभ्रक धातु. ४ स्वर्ण (डिं.को.) ५ धन।
वि०—श्वेत*।

अभ्रक-वि० [सं०] श्वेत-कृष्ण, हल्का कालापन लिए श्वेत* (डिं.को.)
संपु०—१ अबरक, भोडल. २ एक रस जो सन्निपातादि रोगों पर दिया जाता है (वैद्यक)

अभ्रात, अभ्रात्त-वि० [सं०अभ्रातृ] १ पालन-पोषणरहित। २ भाईरहित.
उ०—अमात अतात अजात अजेव। अदीह अरात **अभ्रात्त** अभेव।
—ह.र.
३ सेवकरहित. ४ अपार। उ०—रंग सुरंग वण गजराज, क्रिति **अभ्रात** होत अकाज।—रा.रू.

अभ्रमांण, अभ्रमांन-संपु० [सं० अभिमान] अभिमान, अहंकार।
उ०—गरब कियौ ले ग्रांम पासि **अभ्रमांण** रहै पिणि।
—पीरदांन लाळस

अभ्रमारग–सं०पु० [सं० अभ्रमार्ग] आकाश, आसमान (डिं.नां.मा.)

अभ्रम्म–वि० [सं० अभ्रम] भ्रमरहित, भ्रांतिविहीन।
उ०—अपाल अलद्ध अभाळ **अभ्रम्म**।—ह.र.

अभ्रय–सं०पु० [सं० अभ्र] बादल (अ.मा.)

अभ्रस्याम–सं पु० [सं० अभ्रस्वामी] इन्द्र (अ.मा.)

अभ्रांत–वि० [सं०] भ्रम से रहित, स्थिर।

अभ्रांति–सं०स्त्री० [सं०] १ स्थिरता, अचंचलता. २ भ्रम का अभाव।

अभ्रावा–सं०स्त्री०—चौहान वंश की एक शाखा (वं.भा.)

अमंख–सं०पु० [सं० आमिष] १ मांस, गोश्त। उ०—बहरी **अमंख** हित पंख बळ, गहै कुळंक असंक गत।—रा.रू.

अमंखांचरेल–सं०पु० [सं० आमिष+रा० चरेल] १ पलचर, मांसाहारी. उ०—छायौ धूंये अयास धमंका सोर भंकां छूट, घोर तोपां **अमंखां चरेल** पंखां घांण।—दुरगादत्त बारहठ २ सिंह. ३ गिद्ध।

अमंग–वि०—१ न मांगने योग्य, जो मांगा न जा सके।
उ०—**अमंग** अपंग असंग असंन, अरंग अजंग अबंग अनंत।—ह.र.
२ अयाचक।

अमंगण–वि० [सं० अमार्गण] अयाचक, जो मांगने वाला न हो, याचनारहित। उ०—हुवा **अमंगण** पाय धन, दुज दिन मंगणहार।—रा.रू.

अमंगळ–वि० [सं० अमंगल] मंगलशून्य, अशुभ, अनिष्ट।
सं०पु०—अकल्याण, दुख अशुभ, अनिष्ट। उ०—मणि मंत्र तंत्र बळ जंत्र **अमंगळ** थळि जळि नभसि न कोई छळन्ति।—वेलि.

अमंछ–सं०पु०— ईश्वर (नां.मा.)

अमंत्रंद–सं०पु० [सं० अमित्र+इंद्र] शत्रु, रिपु।

अमंत्र–सं०पु० [सं० अमित्र] शत्रु, दुश्मन (अ.मा.)

अमंद, अमंदो–वि० सं०] १ उद्योगी, जो मंद बुद्धि का न हो.
२ जो धीमा या हल्का न हो, तेज। उ०—अब कायर अपहास री रचना रचूं **अमंद**।—बां.दा. ३ उत्तम, श्रेष्ठ। उ०—अद्भुत **अमंद**, सोभासमंद, श्रुति सकळ सार वरजित विकार।—ऊ.का.
४ बड़े जोर की। उ०— अरज **अमंदी** मोकळी, औरंग हंदी ओर।
—रा.रू.
५ तेज, वेगपूर्वक। उ०—मेड़तिया महाराज दळ किया मुदै करतार, दुंद **अमंदी** सालुळै, त्यां हंदी तरवार।—रा.रू.
६ स्वस्थ, निरोग।

अमंध–वि०—देखो 'अमंद' (रू.भे.)

अमंलीमांण–वि०—१ ऐश्वर्य या अधिकारों का उपभोग करने वाला।
उ०—अइयौ **अमलीमांण,** असुरां सूं भारथि अमर। करतौ घाउ कटारिआं, चटां लटां चहुआंण।—वचनिका
२ दातार।

अम–सर्व० [सं० अस्मद्] हमारा, मेरा। उ०—माठा दिन मिटिया हुवै, सेवक थयां सनाथ। सफळी सेवा चाकरी, आज थई **अम** नाथ।
— ढो.मा.

अमआवस–सं०स्त्री० [सं० अमावस्या] देखो 'अमावस्या' (रू.भे.)

अमईणौ–सर्व० [सं० आस्माकीन] हमारा, मेरा। उ०—वीचीवियूं घोडेह, **अमईणौ** वत आतळै।—पा.प्र.

अमकै–क्रि०वि०—१ इस समय। उ०—पटहत्था सिंह सुरतांण रा पोतरा, उडाया तोतरा अखर **अमकै**।—छत्रसिंह नींबाज री गीत
२ अगली बार।

अमख–सं०पु० [सं० आमिष] देखो 'अमंख'। उ०—फणां मह बड़ड़ धड़ बाज नासा फड़ड़ लियां पंख झड़ा फड़ **अमख** लूदा।
—पहाड़ खां आढ़ौ

अमखचरौ–सं०पु० [सं० आमिष+चर] देखो 'अमंखांचरेल'
उ०—रिख नारद रीझियां, जिकां हासा रस छायौ, हूर अछ रीझिया महासूरा वर पाया। सांमळां ग्रीघ रीझायसकौ **अमखचरौ** चर उचरा।—बखतौ खिड़ियौ

अमग्ग–सं०पु० [सं० अ+मार्ग] १ कुमार्ग, बुरा मार्ग. २ अधर्म।

अमड़ौ–सं०पु०—वृक्ष विशेष (मेवात)

अमचूर–सं०पु० [सं० आम्र+चूर] १ सुखाई गई कच्चे आम की फांकें.
२ इन फांकों का चूर्ण।

अमट–वि०—देखो 'अमिट'। उ०—बळ **अमट** ऊवट गयण वट, द्रढ़ दनुज दहवट कज दपट।—र.रू.

अमटणौ, अमटबौ–क्रि०अ०—नहीं मिटना।
अमटणहार-हारौ (हारी), अमटणियौ–नहीं मिटने वाला।

अमट्ट–वि०—देखो 'अमिट'। उ०—रजवट वट घट रावतां, उप्रवट उछट **अमट्ट**।—किशोरदांन बारहठ

अमठ–वि०—१ जो कृपण न हो, दातार. २ देखो 'अमिट'।
उ०—मन जांणै सहल दीयण वित मौजां, ऐ दौ पण धरियां **अमठ**। वेंडा री वातां ईज वेंडी रै, वेंडा रा पेंडा ईज विकट।
—वीर रौ गीत

अमणौ–सर्व० [सं० आस्माक] १ हमको, हमें। उ०—कुखत्री कमध कपूत। वीर वचन **अमणौ** वदै।—पा.प्र. २ हमारा।
उ०—पाड़ चकारां पांण अमणौं वित्त ले हेंडियौ।—पा.प्र.

अमत्र–सं०पु० [सं०] पात्र, बर्तन। उ०— छत्रै गरळ **अमत्र** इक मतिमंद मँगाया।—वं.भा.

अमद–वि० [सं०] बिना मद या गर्व के, मदरहित।

अमदूत-सं०पु० [सं० यमदूत] १ वह घोड़ा जिसके होंठ परस्पर न मिलते हों. (शा.हो.) २ वह घोड़ा जिसका शरीर सफेद हो, किन्तु चारों पैर श्याम रंग के हों। यह अशुभ माना गया है (शा.हो.)
३ देखो 'जमदूत' (रू.भे.)

अमन–सं०पु० [अ०] १ शांति, चैन, आराम। (यौ० अमन-चैन)
उ०—धरती सारी **अमन** चैन हुई, जैजैकार हुवौ।
—जलाल बूबना री बात
२ रक्षा, बचाव।
वि० [रा० अ+मन] बिना मन।

अमर–सं०पु० [सं०] १ देवता। उ०—**अमर** वडे तेतीस कोड़, जस नांम जपंदे।—केसोदास गाडण (डिं.को.) २ पारा. ३ कुलिश. ४ ईश्वर (नां.मा.) ५ गंधर्व (अ.मा.) ६ आकाश (अ.मा.) ७ वृक्ष. ८ अमरकोश. ९ पृथ्वी (डिं.नां.मा.) १० लिंगानुशासन नामक प्रसिद्ध कोश के रचयिता अमरसिंह जो विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में थे. ११ उनचास पवनों में से एक. १२ राजस्थानी के वेलिया सांगोर छंद का एक भेद विशेष जिसके प्रथम द्वाले में ३८ लघु १३ गुरु कुल ६४ मात्राएँ तथा इसी क्रम से शेष द्वालों में ३८ लघु, १२ गुरु कुल ६२ मात्राएँ होती हैं। (पिं.प्र.) १३ इकतीस मात्रा का एक मात्रिक छंद-विशेष (ल.पिं)

वि०—जो न मरे, चिरंजीवी, नित्य, चिरस्थायी।

उ०—आतम पियां अजांण ही, अमर करै अमरत्त।—ह.र.

अमरकंटक–सं०पु० [सं०] सोन और नर्मदा नामक नदियों का संगमथल जो विंध्याचल पहाड़ पर स्थित है तथा जिसकी गिनती तीर्थों के अंतर्गत होती है।

अमरकोट–सं०पु०—सिन्ध प्रांत का एक प्रदेश तथा उसका प्रमुख नगर जो पाकिस्तान में स्थित है।

अमरकै–क्रि०वि०—१ इस बार। उ०—**अमरकै** कियौ रिड़माल पणौ उजळौ, भाग मोटै खड़ग जैत भाळै।—चंडावळ लछमणसिंह रौ गीत २ अगली दफा।

अमरक्ख–सं०पु० [सं० अमर्ष] १ देखो 'अमरख'। [रा०] २ एक वृक्ष तथा उसका फल जो खट्टमिट्ठे होते है, इसे कमरख भी कहते हैं।

अमरक्खणौ–वि० [सं० अमर्षण+औ–रा०प्र०] क्रोध करने वाला।

अमरक्खणौ, अमरक्खबौ–क्रि०अ० [सं० अमर्षण] क्रोध करना, अमर्ष करना। उ० **अमरक्खे** हरखे अजों यों दाखे महाराज।—रा.रू.

अमरख–सं०पु० [सं० अमर्ष] १ क्रोध, कोप, गुस्सा (अ.मा)

उ०—हरनेत्र जळै ज्वाळा विहद श्रीकजि **अमरख** संमिळै।—रा.रू.

२ जोश। उ०—मां नै बाघण उदर मझ, बाघ अंस कुळवाट। **अमरख** लीधां ऊछळै, घण हूंदे घरराट।—बां.दा. ३ असहिष्णुता। ४ अपना तिरस्कार करने वाले का कुछ भी बिगाड़ सकने की सामर्थ्य न होने के कारण तिरस्कृत व्यक्ति में होने वाला दुःख या क्रोध।

उ०—अतळीबळ 'अमर' न सहियौ **अमरख** साह आलम आगळी मनाढ़। —अज्ञात

५ रस के अंतर्गत एक संचारी भाव–(मा.)

अमरखी–वि० [सं० अमर्षिन्] १ क्रोधी. २ बुरा मानने वाला. ३ दुखी।

अमरगिर–सं०पु० [सं० अमरगिरि] १ जयपुर के निकट स्थित आमेर का किला. २ आमेर का पर्वत. ३ सुमेरू पर्वत।

अमरट–सं०पु०—देखो 'अमरख'।

अमरण–सं०पु० [सं०] अमर होने का भाव, अमरत्व।

अमरत–सं०पु० [सं० अमृत] १ वह पदार्थ जिसके पीने से प्राणी अमरत्व प्राप्त करता है।

क्रि०प्र०—देणौ-पीणौ-लेणौ।

पर्याय०—अगद, अगदराज, अमर, अम्र, अम्रति, दधसुत, देवभख, पयूख, पियूख, मधु, मार, रतन, समंदसुत, सुधा, सोम।

रू०भे०—अम्मरत, अम्रत, अम्रति।

यौ०—अमरतकर, **अमरतचरण**।

२ वह सामग्री जो यज्ञ के पीछे बच गई हो. ३ अन्न. ४ दूध. ५ औषधि. ६ विष. ७ बच्छनाग. ८ पारा. ९ धन. १० स्वर्ण. ११ मीठी वस्तु. १२ धन्वंतरी. १३ देवता. १४ बनमूंग।

वि० [सं० अ+मृत] जो मरा न हो, मृत्युरहित।

अमरतकर–सं०पु० [सं० अमृतकर] चंद्रमा (ह.र.)

अमरतका–सं०स्त्री० [सं० अमृता] हरीतकी, हर्रे (अ.मा.)

अमरतवांन–सं०पु० [सं० अमृत+आधान] १ सुधादान, अमृत का दान. २ भोजन व घी आदि खाद्य पदार्थ रखने का गहरा चीनी मिट्टी का ढक्कनदार बर्तन। (मि० अमरतबांण, अम्रितबांण)

अमरतधारा–सं०स्त्री०—देखो 'अम्रतधारा'।

अमरतधुन, अमरतधुनि–सं०स्त्री० [सं० अमृत+ध्वनि] एक प्रकार का चौबीस मात्राओं वाला यौगिक छंद-विशेष जिसके आदि में एक दोहा होता है और प्रत्येक चरण में झटके के साथ अर्थात द्वित्व वर्गों से युक्त तीन यमक रहते हैं। इसमें दोहे को मिला कर छः चरण होते हैं। प्रायः यह छंद वीर रस के लिए प्रयुक्त होता है।

अमरतबांण–सं०पु० [सं० अमृत भाजन] देखो 'अम्रितबाण'।

अमरता–सं०स्त्री० [सं० अमृता] १ गिलोय. २ दूर्वा. ३ तुलसी. ४ अमरत्व। उ० एक उपावणहार का अणभै **अमरता**।

—केसोदास गाडण

५ मदिरा. ६ आमलकी. ७ हरीतकी. ८ पिप्पली. ९ अमरत्व, देवत्व।

वि०—जो मरे नहीं. २ न मरने वाली।

अमरति, अमरती–सं०स्त्री० [सं० अमृता] १ एक प्रकार की मिठाई.

वि०वि०—देखो 'इमरती'।

वि०—नहीं मरने वाला, अमर। उ०—**अमरति** नांम अलाहदा दूनियांन दिनाई।—केसोदास गाडण

अमरत्त–सं०पु०—देखो 'अमरत' (रू.भे.) उ०—आतम पियां अजांण ही, अमर करै **अमरत्त**।—ह.र.

अमरनांमौ–सं०पु०यौ०—१ यश, प्रशंसा, कीर्ति. २ वह जिसका नाम अमर हो गया हो (ल.पिं.)

अमरनाथ–सं०पु० यौ० [सं०] १ काश्मीर की राजधानी श्रीगनर से ७ दिन के मार्ग पर हिन्दुओं का एक तीर्थ। यहाँ श्रावण की पूर्णिमा को बर्फ से ढके शिवलिंग के दर्शन होते हैं. २ जैनों के १८ वें तीर्थङ्कर।

अमरपख–सं०पु०यौ० [सं० अमरपक्ष] पितृपक्ष।

अमरपति–सं०पु० [सं०] १ इंद्र. २ विष्णु (पिं.प्र.)

अमरपद–सं०पु०यौ० [सं०] १ मुक्ति, मोक्ष. २ देवपद. ३ बैकुंठ, स्वर्ग (नां.मा.)। उ०—हुवै मुवां बिन मुकत नैंह, भै बिन हुवै न प्रीति। सुधा पियां बिन **अमरपद**, ह्रं न दियां बिन कीत।—बां.दा.

अपरपसाव–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

अमरपुर, अमरपुरी–सं०पु० [सं०] अमरावती, देवलोक, स्वर्ग।
उ०—लार नृप ऊभै सतियां लियां **अमरपुरी** में आविया।—पा.प्र.

अपरपुरौ–सं०पु०—१ देखो 'अमरपुर'. २ देखो 'अमरकोट'.
३ अमरकोट का निवासी सोढ़ा राजपूत।

अमरबेल–सं०स्त्री० [सं० अंबरवल्ली] बिना जड़ों और पत्तों वाली एक पीली लता या बौर, आकाश बौर।

अमरभुवण–सं०पु०यौ० [सं० अमर+भुवन] स्वर्ग, बैकुण्ठ।

अमरभेंट–सं०स्त्री०—नारियल (अ.मा.)

अमरमुख–सं०पु०—अग्नि (अ.मा.)

अमरलोक–सं०पु०यौ० [सं०] देवलोक, स्वर्ग, इंद्रपुरी।

अमरवंस–सं०पु० [सं० अमर+वंश] देववंश, जो वंश अमर हो।
अमरवंस आपांण जांण लंका छळबंदर।—रा.रू.

अमरवेल–सं०स्त्री०—देखो 'अमरबेल' (रू.भे.)

अमरस–सं०पु० [सं० आम्र+रस] १ अमावट, आमों का रस.
२ देखो 'अमरख'। उ०—**अमरस** बेहतवार, निरदयता मन नासतिक, नर सम सार असार, पैलां घर बांछै पिसण।—बां दा.

अमरसुहाग–सं०पु० यौ०—सदा अखंड रहने वाला सुहाग।

अमरसुहागण–सं०स्त्री० यौ०—१ वह स्त्री जो पूरे जीवन भर सुहागिन बनी रहे. २ सती. ३ वेश्या।

अमरांण, अमरांणौ–सं०पु०—देखो 'अमरकोट'।

अमरांमाळ–सं०पु०—१ देववृन्द, देव समूह. २ देव पंक्ति।

अमरालोक–सं०पु० यौ० [सं० अमरलोक] स्वर्ग, अमरलोक।

अमराई–सं०स्त्री० [सं० आम्रराजि] १ आम का बाग, आमों के वृक्षों का झुरमुट. २ अमरत्व।
कहा०—अमराई रा बीज खा'र कोई आया नी– कोई भी अमर नहीं है।

अमराख–सं०पु० [सं० अमर्ष] देखो 'अमरख' (रू.भे.)

अमरांपुरी, अमरापुर–सं०पु० [सं० अमर+पुर] देखो 'अमरपुर' (अ मा.)

अमराभुज–सं०पु०—दैत्य (अ.मा.)

अमरालय–सं०पु० [सं०] स्वर्ग, देवालय।

अमराव–सं०पु० [अ० अमीर] १ सरदार। उ०—**अमराव** अमीरळ बळ अथाह। सांमहा मेलिया पातसाह।—वि.सं. २ धनाढ्य.
३ प्रतिष्ठित व्यक्ति, अमीर. ४ राजा या बादशाह के कृपापात्र व्यक्ति।

अमरावत–सं०पु०—बीका राठौड़ों की एक शाखा।

अमरावती–सं०स्त्री० [सं०] देवपुरी, स्वर्ग, इंद्रपुरी (अ.मा.)

अमरित–सं०पु० [सं० अमृत] अमृत (रू.भे.)

अमरी–सं०स्त्री० [सं०] १ देवता की स्त्री, देवपत्नी. २ देवकन्या.
३ अप्सरा। उ०—रतनां री रासि, अंधारै री आदीत, अरस री **अमरी**, सरग री झांप···घणै हाट नै चीरमां लपेटी थकी विराजमांन होइ नै रही छै।—रा.सा.सं. ४ एक वृक्ष. ५ आसन. ६ दूब, दूर्वा. ७ गिलोय. ८ राजस्थानी की बहत्तर कलाओं में से एक।

अमरीक, अमरीख–सं०पु० [सं० अमरीष] अमरीष नामक एक पौराणिक सूर्यवंशी राजा जो बड़ा ईश्वर-भक्त था।

अमरु, अमरू—देखो 'अमर'।
सं०पु० [अ० अहमर] १ एक प्रकार का रेशमी वस्त्र।

अमरूद–सं०पु०—१ सफरी, जामफल नामक एक फल. २ इस फल का वृक्ष।

अमरेस, अमरेस्वर–सं०पु० [सं० अमरेश] १ देवराज, इंद्र। [सं० अमर्ष] २ देखो 'अमरख'।

अमरौ–वि० [रा० अ+मरा] अमर, जो मरा न हो।
सं०पु० [सं० अमरा] १ दूब. २ सेहुंड, थूहर. ३ काली कोयल.
४ गर्भ के बालक पर लिपटी रहने वाली झिल्ली, ५ आंवला.

अमळ–वि० [सं० अ=रहित+मल] १ मलरहित, स्वच्छ, निष्कलंक।
उ०—दिव रूप आंगण तरुणि दरसी, **अमळ** दळ पट अंबरे।—रा.रू.
२ पवित्र। उ०—धुज उजळ देवळ **अमळ** निरख नमै नरयंद।
—रा.रू.

अमल–सं०पु० [अ०] १ अधिकार, शासन। उ०—भोमिया रावळ माला री **अमल** मांनै छै।—नैणसी।
क्रि०प्र०—करणौ-जमाणौ-होणौ।
यौ०—अमलदस्तूर, अमलदारी, अमलबरामद।
२ व्यवहार, कार्य, आचरण का साधन. ३ नशा, आदत, लत.
४ प्रभाव, असर. ५ समय, वक्त। उ०—हिवै तीजै पहर कै **अमल** राजा बोलियौ।—चौबोली ६ नीला रंग. ७ आरम्भ.
[रा०] ८ सिंह (ना.डिं.को.) ९ थकान मिटाना, दम लेना, विश्राम। उ०—१ ताहरां विजाणंद रै डेरै सयणी आयी, विजाणंद साम्हो आयो, आइनै रांम रांम कियौ, कह्यौ हालौ राज **अमल** करौ। ताहरां वीजाणंद सयणी नै डेरै ले गयौ।—सयणी री बात
उ०—२ किउं ठाकुर अळगा वहउ, आवउ अमल करांह, म्हे पिण जास्यां नरवरइ, एकण साथ खड़ांह।—ढो.मा.
१० अफीम नामक एक मादक द्रव्य।
पर्या०—अफीण, अफीम, आफू, कसनागरौ, काळागर, काळियौ, काळौ, किसनागर, कैफ, क्रस्नागर, तिजारती, दांणवत, नागझाग, नागफैण, पोसत, सांवळियौ, सांवळौ।
क्रि०प्र०—खाणौ-गळणौ-गळाणौ-जमाणौ-देणौ-लेणौ।
अल्पा०—अमलड़ौ। (रू.भे.–अमल्ल)
यौ०—अमलदार, अमल री चिट्ठी, अमल रौ कोट।
वि० [सं० अम्ल] खट्टा, तुर्श (यौ०–अमलपित्त)

अमलड़ौ–सं०पु०—अफीम (अल्पा०) उ०—भेख बिगाड़ै जगत नै, जगत बिगाड़ै भेख । औ लै बाबा **अमलड़ौ** दुनियां में सुख देख ।
—ऊ.का.

अमलतास–सं०पु०—एक वृक्ष जो बहुत बड़ा होता है । इसके पत्ते लाल चंदन के पत्तों से मिलते-जुलते होते हैं । फली के आकार के व डेढ़ हाथ लम्बे फल होते हैं ।

पर्याय०—आरगवध, करमाळौ, गरमाळौ ।

अमलतासियौ–वि०—अमलतास के फूल के समान ।

अमलदस्तूर–सं०पु०—राज्याधिकार देने की रस्म । उ०—चाकरी खूब करावौ पण बादसाहां री **अमलदस्तूर** दुरस्त करियौ चाहौ तौ म्हारे मुरातबा माफक मनसब देवौ ।—जलाल बूबना री बात

अमलदार–सं०पु०—अफीमची ।

पर्याय०—अफीणची, अफीमची अमली खेखी, डैंळ, माखौ ।

अमलदारी–सं०स्त्री०—१ अधिकार, शासन, राज्य ।

अमलपट्टौ–सं०पु०—किसी प्रतिनिधि या कारिंदे को किसी कार्य में नियुक्त करने के लिये दिया जाने वाला अधिकार-पत्र या दस्तावेज ।

अमलपित्त–सं०पु० [सं० अम्लपित्त] पित्त के प्रकोप से होने वाला एक रोग विशेष जिसमें भोजन खट्टा होकर अपच उत्पन्न कर देता है। (अमरत)

अमलबेत–सं०स्त्री० देखो 'अमलवेत' (रू.भे.)

अमलबेल–सं०स्त्री०—भारत के प्रायः सभी गरम प्रदेशों में पाई जाने वाली एक प्रकार की लता (रू.भे. अमरबेल)

अमल री चिट्ठी–सं०स्त्री०—अफीम के खर्च के निमित्त प्रजा से लिया जाने वाला सरकारी लगान ।

अमल रो कोट–सं०पु०—१ बड़ा अफीमची. २ अफीम खिलाने वाला ।

अमलवेत, अमलवेद–सं०पु० [सं० अम्लवेतस] १ एक प्रकार की लता जिसकी सूखी टहनियां खट्टी होती हैं और चूर्णों में डाली जाती है। २ एक प्रकार का खट्टे फलों वाला वृक्ष तथा इसका फल (अमरत)

अमलांचाक–सं०पु०- अफीम के नशे में चूर । उ०—आपां बिनां कदे एकलौ नहीं जातौ, नै **अमलांचाक** पोसाक कर आज एकलौ हो मुळकतौ थकियौ चालियौ सौ भली नहीं ।– जलाल बूबना री बात

अमळा–सं०स्त्री०—१ पृथ्वी (नां.मा.) [सं० अमला] २ लक्ष्मी. [सं० आमलक] ३ आंवला ।

वि० [सं० अमला] मलरहित, स्वच्छ, निर्मल । उ०—बिमळा कमळा-सी **अमळा** बेसां री कड़ियां रळकंता कमळां केसां री ।—ऊ.का.

अमलिक–वि०स्त्री० [सं० अम्लिका] इमली ।

अमलियौ–सं०पु०—अफीमची । उ०—न्यात मेतरां मिळ निपुण पांमर सांसी परखिया, **अमलियां** देख भारी अधम होकाधारी हरखिया ।
—ऊ.का.

अमली–सं०पु०—१ अमल या अभ्यास करने वाला. २ नशेबाज, अफीमची । उ०—म्हांने गिणज्यौ मूढ़ **अमलियां** भोगणहारां ।
—ऊ.का.

सं स्त्री०—२ इमली. ३ आम का पौधा या पेड़ ।

वि०—उल्टी । उ०—**अमळी** समळी आरती । जाई बघेरइ दियौ मिलांण ।—वी.दे. (यौ०—अमळी-समळी)

अमलीड़, अमलीड़ौ–सं०पु०—अफीमची ।

अमलीमांण–वि०—देखो 'अमंलीमांण' । उ०—पुर दिल्ली पाधारियौ मारू **अमलीमांण** । जोवै बाजारां जुड़ै हिंदू मुस्सलमांण ।—रा.रू.

अमलौ–सं०पु० [अ०] १ कार्याधिकारी, कर्मचारी, कचहरी में काम करने वाला [सं० आम्र] २ आम, आम्र । उ०—**अमलै** री जागां तमलौ ऊग्यौ, सींचूं दूध मळाई रे ।—लो.गी.

अमल्ल–सं०पु०—देखो 'अमल' (रू.भे.)

उ०—तीस बरस कुसती करी, पड़ गुड़ उथल पथल्ल, तैं दीधौ गोडां तळै, अइयौ मींत **अमल्ल** ।—ऊ.का.

अमवौ–सं०पु० [सं० आम्र] आम का वृक्ष अथवा उसका फल ।

उ०—म्हांरे आंगण में **अमवा** रौ पेड़ ।—लो.गी.

अमां–सर्व० [सं० अस्मद्] १ हमारे । उ०—मैं तो जोगी सारखा, जोगी म्हांरै लाग । कोइक जोगण परणस्यां, **अमां** सरीखी आज ।—ढो.मा. २ हमको । उ०—वेदु जटधर चवै वीणती, निरखै मधुवन तणौ निवास । व्रजवासी कवळास वसावौ, विसन **अमां** दीजै व्रजवास ।
—अज्ञात

अमांण–वि०—१ बिना हिलाये-डुलाये सीधा. [सं० अप्रमांण] २ बहुत, अपार. [सं० अ+मान] ३ मानरहित ।

सर्व०—१ हमारा. २ मेरा.

अमांणौ–सर्व० [सं० अस्मद्] (बहु—अमांणा) मेरा, हमारा ।

अमांन–वि० [सं० अमान] १ बहुत, बेशुमार । उ०—मदे **अमांन** मांन तें बिमांनु ढप्पती बहै ।—ऊ.का. [रा०] २ मजबूत, दृढ़ । उ०—थित सहर लाडणूं राजथांन, अत सहर कोट रच गढ़ **अमांन** ।
—शि.सु.रू.

३ स्थिर, अटल । उ०—**अमांन** थांन आंन तें प्रमांन अस्त्र तें परें । ऊ.का. [सं०] ४ निरभिमान, गर्वरहित । उ०—अहंकार अठी 'अभमल' **अमांन** खिलियार उठी सिर विलंद खांन ।—वि.सं. [सं० अप्रमाण] ५ अप्रमाण, प्रमाणरहित । उ०—मनबुध **अमांन** पहुंचे न प्रांन, वाचक न वाच्य वह पद अवाच्य ।—ऊ.का. [सं० अ+मान=प्रतिष्ठा] ६ तिरस्कृत, मानरहित, तुच्छ ।

सं०पु०—१ पांडु पुत्र भीम (अ.मा.)

सं०स्त्री० [अ० अमानत] २ अमानत, धरोहर । उ०—रांणा रतनसी रौ कंवर घड़सी दोय जणा तो अै नै जणा तीन दूजा जुमलै पांच तुरकां नूं **अमांन** सूंपी ।—बां.दा. [सं०अ+मान=प्रतिष्ठा] ३ बेइज्जती अपमान, अप्रतिष्ठा । उ०—थिरा नभ थावर जंगम थांन, महा पद आपद मांन **अमांन** ।—ऊ.का. [अ०] ४ रक्षा, शरण, पनाह ।

अमांनत–सं०स्त्री० [अ० अमानत] कुछ काल के लिए अपनी वस्तु किसी दूसरे के यहां रखना, धरोहर, थाती ।

अमांनतदार-संपु० [अ० अमानतदार] जिसके पास कोई धरोहर या अमानत रक्खी हो।

अमांनी-वि०— जिसे अभिमान न हो।

अमांनुस-वि० [सं० अमानुष] जो मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर हो।

अमांनुसी-वि० [सं० अमानुषीय] मानव स्वभाव के विपरीत।

अमांनेतण-सं०स्त्री०—वह स्त्री जिसका पति उसे हृदय से न चाहता हो।

अमांनेतणपण, अमांनेतणपणौ-स०पु०—पत्नी या नायिका का मान न रखने का भाव।

अमांम-वि०—१ बढ़िया श्रेष्ठ। उ०—वाळागारा भूपाळा ऊमरांमाळा मेर चंपा, उजाळा दीपक्कां ढाळा विरदां **अमांम**।

—गीत आउवा रौ

[सं० अप्रमाण] २ बहुत, तमाम। उ०—बाजराज बारण रथां, अवर समाज **अमांम**। हाजर तिण वारी हुआ, त्यारी करै तमांम।

—र रू.

अमांमदस्तौ-सं०पु०—देखो 'हमांमदस्तौ' (रू.भे.)

अमांमो, अमांमौ-वि०—१ देखो 'अमांम'। उ०—१ आव सुमत खग सकत **अमांमी** सनि गुण हुवै जगत चौ सांमी।—रा.रू.

उ०—२ किलम **अमांमौ** कमधजां सांमौ वगौ आय।—रा.रू. (स्त्री० अमांमी)

२ बहुत, अधिक। (मि० अमांम)

अमांस-वि० [सं० अ+मास] जिसके शरीर पर मांस बहुत थोड़ा हो, दुर्बल।

अमा-सं०स्त्री० [सं०] १ अमावस्या। उ०—ईस्वरीसिंह सिटाय सुनि, भयौ **अमा** ससि भाय।—वं.भा.

२ माता, मां। उ०—कळह **अमा** घी कायरां वीर भड़ां सुखवांम (भूमि)

अमाई-वि०—१ अप्रमाण। उ०—यां दाखे तरवार उठाई मौरां प्रगटी पीड़ **अमाई**।—रा.रू. २ बहुत, अधिक। उ०—विसनदास बालौ वरदाई, मोकळसर उर खळां **अमाई**।—रा.रू. (रू.भे. अमांम)

अमाडौ-सं०पु०—युद्ध।

अमात-वि० [सं० अ+मातृ] मातृहीन। उ०—अलाह अगाह अबाह अजीत, **अमात** अतात अजात अतीत।—ह.र.

अमात्य-सं०पु० [सं०] मंत्री। उ०—प्रांणप्रिया छोटी कुमरांणी गोडि मदनावती नूं बुलाइ अनेक उचित बाड़ा बणाइ आपरा **अमात्य** नूं बंबावदै बरणदूत दे'र उपयम रै उचित उपहार एकठौ कराइ लग्न पूछियौ।—वं.भा.

अमाप, अमापियौ, अमापी-वि०—जिसका माप या तोल न किया जा सके। अपार, असीम, बेशुमार। उ०—१ लोहूंलाट लंगरी **अमाप** फौजां ले'र।—गीत डूंगजी रौ

उ०—२ नळी कटाड़ूं नीली लप, घी **अमापियौ** खाय। हाथ वैंत रै आंतरै, ऐ कोटड़िया जाय।—बां.दा.

अमाय-वि०—१ मातृहीन. २ बहुत, बेशुमार। उ०—जस करै एम दुनियांण जाय, महरांण जेम गरवत **अमाय**।—वि.सं.

अमार-क्रि०वि०—अभी, अब (रू.भे.-अबार)

अमारग-सं०पु० [सं० अ+मार्ग] कुमार्ग, बुरी राह।

अमारड़ी-सर्व० (प्रा०रू०) हमारी। उ०—कइवा देवळ-पुतळी (?) ईसीय छइ प्रभुजी **अमारड़ी** नार।—वी.दे.

अमारी-सं०स्त्री०—देखो 'अंबाड़ी' (रू.भे.)

अमारू-वि०—दूसरा, अन्य।

क्रि०वि०—अभी, अब।

अमारौ-सर्व०—१ हमारा. २ मेरा (रू.भे.)

अमाव-वि०—बहुत, अधिक, असीम। उ०—उरां दाभ्यां वैरी हरां दिलेसां **अमाव**।—रामकरण महडू

सं०पु०—१ योद्धा, सुभट।

सं०स्त्री० [सं० अमावस्या] २ अमावस्या की तिथि।

अमावड़-वि०—नहीं समाने वाला, असीम। उ०—**अमावड़** वनां में हुई लोथां अनंत।—बां.दा.

अमावणौ, अमावबौ-क्रि०स०—न समाना।

अमावतौ-वि० (स्त्री० अमावती) अपार, बहुत, अधिक।

अमावस, अमावस्या, अमावास्या-सं०स्त्री० [सं० अमावस्या] कृष्ण पक्ष की अन्तिम रात्रि, अमावस्या।

कहा०—१ अमावस री रात भैंसारात गिणीजै—अमावस्या की रात्रि भैंसा (यमदूत) की रात्रि है। अमावस्या की रात्रि मांगलिक कार्यों के लिए अच्छी नहीं समझी जाती।

अमावियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ नहीं समाया हुआ. २ आजमाया हुआ. (स्त्री० अमावियोड़ी)

अमास-सं०पु० [सं० आवास] आमखास, सभाभवन, आवास, निवास-स्थान। उ०—लाजवरद सीळ सुपेद, जंघाळ जुगत व्रत। रचि **अमास** नवरंग, करे मधि चित्र देवकृत।—रा.रू.

अमासव-सं०स्त्री० [सं० अमावस्या] देखो 'अमावस'।

उ०—दिन में रात जगावती, वादळियां वरसात। कदे **अमासव** सी करै, चट पूनम री रात।—वादळी

अमास्ती-सर्व०—हम।

अमिट, अमिट्ट-वि०—नहीं मिटने वाला, स्थायी, निश्चित, नित्य, दृढ़। उ०—**अमिट** भड़ां बळ अंग में, कोठारां सांमांन। सांमध्रमी ठाकुर सकौ, दिए रंग दुनियांन।—बां.दा.

अमित-वि० [सं०] अपरिमित, असीम, अपार। उ०—अदभूत रेख सोभा **अमित**, कळप तरोवर सेवकां।—रा.रू.

सं०पु०—१ अमृत। उ०—जोगी जगत संन्यासी जेता, अन घ्रत **अमित** लहै पुर एता।—रा.रू. २ थूक [सं० अ+मित्र] ३ शत्रु, दुश्मन (मि० अमित्र)

अमित्ती-वि० [सं० अमित] अपरिमित, अपार, असीम।

अमित्र–वि० [सं०] शत्रु, बैरी। उ०—चरित्र में विचित्र ज्यूं, पवित्र में पवित्र जे। अमित्र के अमित्र त्यूं, सुमित्र के सुमित्र जे।—ऊ.का.

अमित्रता–सं०स्त्री० [सं०] शत्रुता। उ०—अयांन तें अमित्रता बिचित्रता विचित्र की, महांन मित्र मित्रता पवित्र तें पवित्र की।—ऊ.का.

अमिय–सं०पु० [सं० अमृत] अमृत, सुधा। उ०—तिहारी त्रस्टी पें अमिय कर अम्टी तन तजूं। कुद्रस्टी दिस्टी को भसम कर इस्टी हरि भजूं।—ऊ.का.

अमिरत–सं०पु० [सं० अमृत] अमृत, सुधा (रू.भे.)

अमिरतबांण–सं०पु० यौ०—देखो 'अम्रतबांण'।

अमिरति, अमिरती–सं०पु० [सं० अमृत] अमृत (रू.भे.)

अमिळणौ, अमिळबौ–क्रि०स०—नहीं मिलना। उ०—द्रग मिळत अमिळत चपळ देखत अवनि पर जन अघटही।—रा.रू.

अमिळी–वि०—न मिलने योग्य, बेमेल, बेजोड़।
सं०स्त्री०—इमली।

अमिळियोड़ौ, अमिळीयोड़ौ–भू०का०कृ०—नहीं मिला हुआ। (स्त्री० अमिळीयोड़ी)
सं०पु०—वह बैल जिसके दांत पूरे नहीं आये हों।

अमी–सं०पु० [सं० अमृत, प्रा० अमिअ] १ अमृत, पीयूष। उ०—विख हळाहळ बोय के, कोई अमी उपावै।—केसोदास गाडण. २ थूक, ष्ठीवन. ३ दूध। उ०—देवी मात रे रूप तूं अमी स्रावै।—देवि. ४ पानी। उ०—देवी सागरे सीप में अमी स्रावै। -देवि.
सर्व०—मैं, मेरा, मुझे, हमारा, हम।

अमीठौ–वि० [रा० अ+मीठौ] जो मीठा न हो, कड़ुआ, कटु।

अमीणि, अमीणिय–सर्व०—१ मेरी. २ हमारी। उ०—लग वेध अमीणिय धेन लए। -पा.प्र.

अमीणौ–सर्व० [सं० आस्माक] १ हमारा. २ मेरा। उ०—सखी अमीणा कंत री अंग ढीलो आचंत।—हा.झा.

अमीणोय–सर्व०- हमारा, मेरा। उ०—वत जाय अमीणोय वार वही, नरनाह घरां आज 'पाल' नहीं।-पा.प्र.

अमीत–वि० [सं० अ+मित्र] शत्रु, बैरी।

अमीन–सं०पु० [अ०] १ कचहरी या अदालत का वह कर्मचारी या अहलकार जिसके सुपर्द बाहर का काम हो. २ जागीरी सेटिलमेंट विभाग का एक कर्मचारी।

अमीया (ह)–सं०पु० [सं० अमृत, प्रा० अमिअ-रा० अमी] अमृत। उ०—आतम अरणभै व्रहम ग्यांन मुधरा अमीयाह।—केसोदास गाडण

अमीर–सं०पु० [अ०] १ शासनाधिकारी, सरदार। उ०—जिसो लाय जाळियौ, फजर मिळ जाय फकीरां। साह दहण सेकियौ, इसौ पेखियौ अमीरां।—रा.रू. २ धनाढय, दौलतमंद. ३ अफगानिस्तान के राजा की उपाधि।

अमीरपण, अमीरपणौ–सं०पु०—१ अमीर होने का भाव. २ अमीरों का सा स्वभाव।

अमीरळ–सं०पु०—देखो 'अमीर'। उ०—आया मिळण अमीरळ एता, जवनां दळ मुदायत जेता।—रा.रू.

अमीरस–सं०पु० [सं० अमृत+रस] अमृत। उ०—बारैई मास अमीरस बरसै, परसे तन परसावै।—ऊ.का.

अमीरांनौ–वि०—१ अमीरों के समान. २ अमीरी प्रकट करने वाला।

अमीरी–सं०स्त्री०—रईसी, धनाढ्यता, उदारता। उ०—सड़कां ऊपर करै मजूरी, मोटा सेठ सेठांणी। करसां नै मजदूरां आगै, भरै अमीरी पांणी।— रेवतदांन

अमुक–वि०—फलां, ऐसा-ऐसा।

अमुख–सं०पु० [सं० आमिष] मांस। उ०—अमुख अमुखचर नारद औमर, त्रिपति पांच मिळि पांच तत।—गोरधन बोगसौ (यौ० अमुखचर)

अमुखचर–सं०पु० [सं० आमिष+चर] मांसाहारी।

अमूंजणी–सं०स्त्री० [सं० आमूर्च्छन] १ वात-विकारजनित एक रोग, मूर्छा. २ दम घुटने का भाव।

अमूंजौ–सं०पु०—१ उमस की कड़ी गर्मी. २ दमघुटन।

अमूक–वि० [सं०] जो गूंगा न हो, वक्ता, चतुर।

अमूकणौ, अमूकबौ–क्रि०स० [सं० आमुक्त] निकालना, काढ़ना।

अमूकयौ, अमूकयोड़ौ–भू०का०कृ०— निकाला हुआ। (स्त्री० अमूकयोड़ी)

अमूकवाणौ, अमूकवाबौ–क्रि० [प्रे०रू०] निकलवाना।

अमूकवायोड़ौ–भू०का०कृ०—निकलाया हुआ। (स्त्री० अमूकवायोड़ी)

अमूकाणौ, अमूकाबौ–क्रि० [प्रे०रू०] निकलाना, कढ़ाना। (रू.भे. अमूकावणौ)

अमूकायोड़ौ–भू०का०कृ०—निकलवाया हुआ (स्त्री० अमूकायोड़ी)

अमूकावणौ, अमूकावबौ–क्रि०स०—देखो 'अमूकाणौ'।

अमूकावियोड़ौ–भू०का०कृ०—निकलवाया हुआ (स्त्री० अमूकावियोड़ी)

अमूकियोड़ौ–भू०का०कृ०—निकाला हुआ (स्त्री० अमूकियोड़ी)

अमूजणौ, अमूजबौ–क्रि०अ०— देखो 'अमूझणौ'।

अमूजौ–सं०पु०—देखो 'अमूझौ'।

अमूझणी–सं०स्त्री०—१ मूर्छा. २ दमघुटन।

अमूझणौ–सं०पु०—१ मूर्छा. २ दमघुटन।

अमूझणौ, अमूझबौ–क्रि०अ०—१ दम घुटना. २ दिल घबराना। उ०—सौ राव आंमण दुमण अमूझियौ ही ऊभो छै, बोलै क्यूं ही नहीं छै।—डाढ़ाळा सूर री बात
३ मूर्छित होना।

अमूझणहार-हारौ (हारी), अमूझणियौ–वि०—मूर्छित होने वाला, जिसका दम घुटता हो।

अमूझाणौ-अमूझाबौ-अमूझावणौ-अमूझावबौ–स०रू०।

अमूझिओड़ौ-अमूझियोड़ौ-अमूझयोड़ौ–भू०का०कृ०।

अमूझीजणौ, अमूझीजबौ–भाव वा०।

अमूझाणी, अमूझाबौ—क्रि०अ०—१ दम घुटना. २ मूर्छित होना।
क्रि०स०—१ दम घुटाना. २ मूर्छित करना।
अमूझणहार-हारौ (हारी), अमूझाणियौ—वि०।
अमूझायोड़ौ—भू०का०कृ०। **अमूझावणौ, अमूझावबौ**—रू०भे०।
अमूझायोड़ौ—भू०का०कृ०—१ दम घुटा हुआ. २ दिल घबराया हुआ। (स्त्री० अमूझायोड़ी)
क्रि०स०—१ दम घुटाया हुआ. २ मूर्छित किया हुआ।
अमूझावणौ, अमूझावबौ—क्रि०स०—देखो 'अमूझाणौ' (रू.भे.)
अमूझियोड़ौ—भू०का०कृ०—मूर्छित, जिसका दम घुटा हुआ हो, जिसका दिल घबराया हुआ हो। (स्त्री० अमूझियोड़ी)
अमूझौ—सं०पु०—१ दम घुटने का भाव. २ वर्षाकाल में उमस की कड़ी गर्मी।
पर्याय०—आड़ंग, उमस, हुड़तपौ।
क्रि०प्र०—होणौ।
अमूढ़—वि० [सं० अ+मूढ़] जो मूढ़ न हो, चतुर।
अमूमन—क्रि०वि० [अ०] प्रायः, बहुधा, अक्सर।
अमूळ—वि० [सं० अमूल] १ जड़ या मूलरहित कारणरहित।
उ०—बिना वपु रूप अनंत बिथार, **अमूळ** बिरक्ख सु विस्वाधार। —ह.र.
[रा०] २ जड़ या मूलसहित।
अमूल—वि० [सं० अमूल्य] अमूल्य। उ०—जउ भरि बूठउ भाद्रवउ, मारू देस **अमूल**।—ढो.मा.
अमूल्य—वि० [सं०] १ जिसका मूल्य निर्धारित न किया जा सके, अनमोल. २ बहुमूल्य।
अमे—सर्व०—१ मेरा. २ हम। उ०—**अमे** राठौड़ राजां तणा उमरा, जुड़ेवा पारकी छुट्टी जागां।—अमरसिंह राठौड़ री बात।
क्रि०वि०—अब (रू.भे. अमै, हमै)
अमेद—सं०स्त्री० [फा० उम्मीद] उम्मीद, आशा, इच्छा।
अमेध—सं०पु० [सं० अमेध] १ मूर्ख (अ.मा.) [सं० अमेध्य] २ विष्ठा, मल-मूत्र, अपवित्र वस्तु।
वि० [सं० अमेध्य] १ अपवित्र। उ०—जिण समै महामारी रै मंडाण नरां रौ नांम देखि कोईक कच्चा मंत्र रा देणहार आहवरा **अमेध** सामंतर सूचिया घोड़ै चढ़ण री हूँस धारी।—वं भा.
अमेळ—सं०पु० [रा० अ+मेळ=मित्रता] १ मेल या मैत्री से रहित। मनमुटाव, विरोध, अनमेल, शत्रुता। उ०—१ ए जो पांडव थया **अमेळा**, विठळ धाव तौ जिसी वेळा।—सिवदांन बारहठ
उ०—२ उदैपुर रांणा जैसिंघजी रै नै कंवर अमरसिंघजी रै **अमेळ** हुवौ।—बां.दा.
२ राजस्थानी के छोटे सांणोर गीत (छंद) का एक भेद विशेष जिसमें विषम पदों में १६ मात्राएँ और समपदों में यदि अंत में गुरु हो तो १४ व लघु होने की अवस्था में १५ मात्रायें होती हैं किन्तु इसके पदों का तुक नहीं मिलता।
वि०—बेढंग, बेतरतीब, भद्दा। उ०—हळ वळ करै कादरी पहरै ऊपर बांधै पाघ **अमेळ**, वर तर हार जिसौ वाड़ी रौ मूठी अनै ताड़ी रौ मेळ।—कु.त रौ गीत
अमेव—वि० [सं०] १ असीम. २ अज्ञेय, जो जाना न जा सके.
सं०पु० [सं० अहमेव] अभिमान, घमंड।
अमेह—क्रि०वि०—अब, अभी।
अमै—क्रि०वि०—अब अभी। उ०—आंमंख ढळा **अमै** कुण आपै, खेचर ग्रथा भमै चहुँखूंट।—सांगा री गीत
सर्व०—हम।
अमोगौ—वि०—१ बढ़िया, समर्थ। उ०—बकसी लोग मुनसी राय लिखवा में **अमोगो**।—शि.वं. २ पूरा।
अमोघ—वि० [रा०] १ अपार। उ०—आखंतां नांम टळै अघ ओघ, उपज्जै आणंद सुख **अमोघ**।—ह.र. [सं०] २ अव्यर्थ, अचूक।
उ०—इसड़ौ **अमोघ** उपाइ बिचारि कपट रै प्रपंच बाणियां री बरात बणाई।—वं.भा.
सं०पु०—समुद्र (ना.डिं.को.)
अमोघौ—वि०—बहुत, भरपूर। देखो 'अमोघ'।
अमोड़ौ—वि०—नहीं मुड़ने वाला, पीछे न हटने वाला, योद्धा, वीर।
उ०—अई अरोड़ा रांण झाला अचळ अखाड़ा, जैतखंभ **अमोड़ा** खळां जारै।—झाला जालमसिंह कोटा रौ गीत।
अमोल, अमोलक, अमोलख, अमोलिक, अमोल्य—वि०पु० [सं० अमूल्य, अमूल्यक] देखो 'अमूल्य'। उ०—१ वाल्हौ रूंख मंदार सबळे फूलां भरियौ। ऊभौ जेथ **अमोल**, मौ धण बाछल हरियौ। —मेघ.
उ०—२ खग जड़ाव भारिया कितांई सिरपाव **अमोलक**।—रा.रू.
३ ओगण मेटणहार, **अमोलख** ओखद इणमें।—वसदेव
४ तठा उपरांति करि नै सराफ बजाज जोहरी दलाल भांति भांति रा बाब, भांति भांति रा पदारथ, भांति भांति री **अमोलिक** वसतां मोलावीजै छै।—रा.सा.सं.
५ रिध सोव्रन मोती रतन, वसन **अमोल्य** विसाह।—रा.रू.
अमौघ—वि० [सं० अमोघ] देखो 'अमोघ' (क.कु.बो.)
अम्मर—सं०पु०—१ देखो 'अमर'। उ०—१ परवाड़ा थारा इळ ऊपर **अम्मर** करै बखांण।—रा.रू.
उ०—२ तपै भूम **अम्मर** हुय ताता।—ऊ.का.
अम्मरांईसर—सं०पु० [सं० अमरेश्वर] देवेश, इन्द्र (डिं.को.)
अम्मरी—सं०स्त्री०—देखो 'अमरी'। उ०—देवी भूतड़ां **अम्मरी** वीस भुजा।—देवि.
अम्मलीमांणि—देखो 'अमलीमांण' (रू.भे.) उ०—जइतसी राइ मच्चावि जंग **अम्मलीमांणि** टाळिय न अंग।—रा.ज.सी.
अम्मा—सं०स्त्री०—माता, जन्मदात्री।
अम्मांमौ—सं०पु० [अ०अमामा] प्रायः मुसलमानों द्वारा बांधा जाने वाला एक प्रकार का साफा। देखो 'अमांमौ'।

अम्यांन–वि०—बिना म्यान, म्यानरहित, नंगी (तलवार)।
उ०—लोह लाठ हतावेय ढाल लियां, कर दूजेय खाग **अम्यांन** कियां—पा.प्र.

अम्रकोस–सं०पु०—१ अमरकोश. २ मृग की नाभि।

अम्रत–सं०पु० [सं० अमृत] १ अमृत, पीयूष, देखो 'अमरत' २ हरीतकी, हड़, हर्रे (अ.मा.) ३ फलित ज्योतिष के अट्ठाइस योगों में से एक योग (ज्योतिष बाळबोध)।

अम्रतकर–सं०पु० [सं० अमृतकर] देखो 'अमरतकर' (ह.र.)

अम्रतकुंडळी–सं०स्त्री० [सं० अमृत+कुंडली] प्लवंगम या चांद्रायण के अंत में हरिगीतिका के दो पद मिलाने से बनने वाला एक छंद विशेष (पिंगळ)

अम्रतगति–सं०स्त्री० [सं० अमृतगति] प्रत्येक चरण में क्रमशः भगण जगण नगण तथा अंत में गुरु वर्ण का छंद विशेष (र.ज.प्र.)

अम्रतगीत–सं०पु० [सं० अमृतगीत] पिंगल प्रकाश के अनुसार एक वर्णिक वृत्त विशेष।

अम्रतचरण–सं०पु० यौ० [सं०] वह जिसकी अस्खलित गति हो, गरुड़ (नां.मा)

अम्रतदांन–सं०पु० यौ० [सं० मदाधान अथवा अमृत+आधान] १ शराब रखने का बर्तन विशेष. २ देखो 'अम्रतबांण'।

अम्रतधारा–सं०स्त्री० यौ० [सं० अमृत+धारा] अजवायन का सत, पोदीना (पीपरमेंट) के फूल और कपूर तीनों को समभाग मिलाने से बनने वाली एक औषधि विशेष जो ज्वर, हैजा व नेत्र, कान, नाक आदि के अनेक रोगों की दवा है।

अम्रतधुनि, अम्रतध्वनि–सं०स्त्री०यौ० [सं० अमृतध्वनि] चौबीस मात्राओं का एक यौगिक छंद विशेष। देखो 'अमरतधुन'

अम्रतबंधु–सं०पु० यौ० [सं० अमृत+बंधु] देवता।

अम्रतबांण–सं०पु० यौ० [सं० अमृत+भाजन] प्रायः चीनी मिट्टी का बना हुआ गहरा बर्तन विशेष जिसमें शराब मुरब्बा, घी आदि रक्खे जाते हैं। (अमरत)

अम्रतमई–सं०पु० यौ०—चंद्रमा (अ.मा.)

अम्रतयोग–सं०पु० यौ० [सं० अमृतयोग] फलित ज्योतिष के अंतर्गत एक शुभ फलदायक योग।

अम्रतरस्स–सं०पु० यौ० [सं० अमृतरस] देखो 'अमरतरस'।
उ०—सदा नित आनंद नांम सहस्स, रघूपति उच्चित **अम्रतरस्स**।
—ह.र.

अम्रतलोक–सं०पु० यौ० [सं० अमृतलोक] स्वर्ग, बैकुंठ।

अम्रतसिद्धियोग–सं०पु० यौ० [सं० अमृतसिद्धियोग] एक प्रकार का शुभ योग जिसके अनुसार रविवार को हस्त नक्षत्र का होना, गुरुवार को पुष्य नक्षत्र, बुधवार को अनुराधा नक्षत्र, शनिवार को रोहिणी नक्षत्र, शुक्रवार को रेवती नक्षत्र और मंगलवार को अश्विनी नक्षत्र हो।

अम्रताभख–सं०पु० यौ० [सं० अमृतभक्ष्य] देवता (नां.मा.)

अम्रतास–सं०पु० [सं० अमृताश] देवता (डिं.को.)

अम्रताहरण–सं०पु० यौ० [सं० अमृतभरण] गरुड़।

अम्रतिमय–सं०पु० [सं० अमृतमय] चंद्रमा (ह.नां.)

अम्रतेस–सं०पु० [सं० अमृत+ईश] देवता (ह.नां., नां.मा.)

अम्रित–सं०पु०—देखो 'अमरत'। उ०—अति सीतळ **अम्रित** जिसौ पायौ परघळ नीर।—ढो.मा.

अम्रितबांण–सं०पु०—देखो 'अम्रतबांण' (रू.भे.)

अम्रितबंणी–वि० यौ० [सं० अमृत+वचन+ई–रा०प्र०] मधुरभाषिनी
उ०—आगै म्रिगानैणी, **अम्रितबंणी** कांमणी सिणगार सझिया छै।
—रा.सा.सं.

अम्लपित्त–सं०पु० यौ० [सं०] एक प्रकार का रोग विशेष जिसमें किया जाने वाला भोजन पित्त के दोष से खट्टा हो जाता है। (अमरत)

अम्ह–सर्व० [सं० आस्माक, अस्मदीय] हम, हमारी, हमारे, मेरे, मेरी। मैं, मैंने। उ०—१ वसिस्ट रांम कुमार वय, औ **अम्ह** धरौ आदेस। क्यूं मेल्हूं रघुकुळ कमळ दुस्ट निसाचर देस।—रांमरासौ
उ०—२ सौ लेजावण सदन पुणे मीसण बाटी प्रति। उठै सिद्धपळ **अम्ह** मगि जीमण चहियौ मति।—वं.भा.

अम्हक–वि० [अ० अहमक] मूर्ख, उद्दंड।

अम्हतणौ–सर्व० [सं० अस्मदीय] हमारी, मेरी। उ०—एक वीनती हिव **अम्हतणी**, संभळि तूं सोवनगिरि-धणी।—ढो.मा.

अम्हनइ–सर्व० (प्रा०रू०) हम। उ०—**अम्हनइ** मोकळिया इणि ठाइ, कुमरि तुम्हारी मांगद राइ।—ढो.मा.

अम्हनि–सर्व०—मेरी, हमारी। उ०—वळी वचन बोलइ सुरतांण, **अम्हनि** इणि परि करज्यौ जांण।—कां.दे.प्र.

अम्हस्यूं–सर्व०— हमसे। उ०—**अम्हस्यूं** प्रीति आंणेज्यौ घणी, आंणइ जमारइ मोकळावणी।—कां.दे.प्र.

अम्हां–सर्व०—हमारा, मेरा, हमको। उ०—कहौ गुण केहि गोरड़ी विध दाखवौ **अम्हां**।—ढो.मा.
सं०स्त्री० [फा० अम्मा] माता।

अम्हारउ–सर्व० (प्रा०रू०) हमारे, मेरे।

अम्हारी–सर्व०— हमारी।

अम्हि–सर्व०—हम। उ०—बेटी वचन ऊचरइ इसूं, देवलोक **अम्हि** बे पामिसूं।—कां.दे.प्र.

अम्हिणौ–सर्व० [सं० आस्माकीन] १ मेरा. २ हमारा।

अम्हीणा, अम्हीणी, अम्हीणो–अम्हीणौ–सर्व०—१ मेरा. २ हमारा, हमारी। उ०—१ ढाढ़ी जो ढोलौ मिळै, कहै **अम्हीणी** बत्त।
—ढो.मा.
उ०—२ राघव **अम्हीणौ** आतम रांम।—ह.र.

अम्हे–सर्व० [सं० अस्मद] १ हम। उ०—१ कइ **अम्हे** नीच संग आचरियउ कनक चोरीया कापी।—कां.दे.प्र.

२ मेरे। उ०—हे ब्राह्मण पुरतौ अम्हे कहतां मेरे आगे जिहां पठयौ हुइ।—वेलि. टी.।

अय–सं०पु० [सं० अयस्] १ शस्त्र, हथियार। उ०—**अयबळ** तपबळ बाहुबळ बळधन को बळराज।—ला.रा. २ लोहा (अ.मा.) ३ आगे आने वाला। उ०—उदय रवि नयनिलय अतिरय अजय खयकर अखय जय अय उभय सय पय हृदय अपचय कटय भट स्मय निचय।—वं.भा.

सं०स्त्री० [सं० अज] ४ अग्नि।

अयणौ–सर्व०—अपना। उ०—वगसै तनै गुनौ इण वारै, चित **अयणौ** जौ विग्द विचारै।—र.रू.

अयत–सं०पु० [सं० अयुत] दस हजार की संख्या का स्थान या उस स्थान की संख्या। उ०—ईसरनै द्रब दस **अयत** जस गाहक घण जांण। चाकर दे चारणां कमधज राव कल्यांण।—अज्ञात

अयथा–वि० [सं०] १ झूठा, मिथ्या. २ अयोग्य।

अयण, अयन–सं०पु० [सं० अयन] १ गति, चाल. २ दिन (नां.मा.) ३ उत्तर या दक्षिण की ओर सूर्य या चन्द्रमा की गति या प्रवृत्ति. ४ राशि चक्र की गति. ५ ज्योतिषशास्त्र. ६ आश्रम, स्थान, घर. ७ काल, समय. ८ अंश. ९ दो की संख्या* १० पैर, चरण।

अयनक–सं०पु० [सं०] मार्ग, रास्ता।

अयनकाळ–सं०पु०यौ० [सं० अयनकाल] एक अयन में लगने वाला लगभग छः मास का समय।

अयनसंक्रम, अयनसंक्रांति–सं०स्त्री०यौ० [सं०] १ मकर और कर्क राशि की संक्रांति. २ हरएक संक्रांति के २० दिन पहले का काल।

अयपान–सं०पु०यौ० [सं० अयःपान] एक नरक का नाम।

अयबळ–सं०पु०यौ० [सं० अयस्+बल] १ शस्त्रबल।

उ०—**अयबळ** तपबळ बाहुबळ बळधन को बळराज।—ला.रा.

२ आयुबल।

अयराक–सं०पु० [सं० हयराज] १ घोड़ा। उ०—डगै न भगै म वजै हक डाक। उपाड़िये बाग यसी **अयराक**।—पा.प्र.

२ शराब (तेज शराब जो तीसरी बार औटाया गया हो।)

मि० 'ऐराक'

वि०—जबरदस्त।

अयरापति–सं०पु० [सं० ऐरावत] १ ऐरावत. २ हाथी।

उ०—**अयरापति** चढ़ि चाल्यौ राय, ली अस्त्री अरधंग वइसाय।—वी.दे.

अयस–सं०स्त्री०—१ आज्ञा, हुक्म (ह.नां.) [सं० आकाश]

२ आसमान।

अयांण, अयांन–वि० [सं० अज्ञान] अज्ञान, मूर्ख। उ०—हर हर करतौ हरख कर, आळस मकर **अयांण**।—ह.र.

सं०पु०—अज्ञान, अज्ञानता। उ०—चित प्रथम चेत, उल्लू अचेत, यह तन **अयांन**, न स्थिर निदांन।—ऊ.का.

अयांणौ, अयांनौ–वि० [सं० अज्ञानी] (स्त्री० अयांणी) मूर्ख, अज्ञानी। उ०—आसुर प्रतिदिन चित ललचानौ, मन ही मन गुनि भयौ **अयांनौ**।—ला.रा.

अयाचक, अयाची–वि० [सं० अयाचिन्] जिसे कुछ माँगने की आवश्यकता न हो, समृद्ध, न माँगने वाला। उ०—ताहरां श्री भगवांन फुरमायौ—मैं हाथ **अयाची** छूं। म्है किहीं कन्है हाथ मांड्यौ नहीं, सारां ही नै देऊं छूं।—पलक दरियाव री बात

अयार–वि० [रा० अ=नहीं+फा० यार=मित्र] शत्रु, दुश्मन (डिं.को.)

अयाळ–सं०स्त्री० [तु० याल] घोड़े या सिंह के गरदन के बाल।

अयास, अयासि–सं०पु० [सं० आकाश] १ आकाश, आसमान।

उ०—१ छायौ धूंम्र **अयास** घमंकां सोर भंकां छूट।—दुरगादत्त बारहठ

२ वणवीर चडिय तेवहि व्रहासि, अहिकारि थम्भ आडइ **अयासि**।—रा.ज.सी.

२ चिन्ह, लक्षण। उ०—प्रेम प्रीत संभोग सुख, ए सिणगार **अयास**। (रू.भे. आयासि)—ढो.मा.

अयी–अव्यय [सं० अयि] १ संबोधनसूचक शब्द, अरे! हे!

२ आश्चर्यसूचक शब्द।

अयुक्त–वि० [सं०] अयोग्य, अनुचित, असंबद्ध।

अयुत–सं०पु० [सं०] १०००० की संख्या, इस संख्या का स्थान।

वि० [सं०] १ दस हजार। उ०—**अयुतं** सर ऊंटन सोर भरे, सत सोडस तोप तयार करे।—ला.रा. २ देखो 'अयुक्त'।

अयोग–सं०पु० [सं०] १ योग का अभाव, पाप या दुष्ट ग्रहों का बुरे नक्षत्रों के साथ एकत्रित होना अथवा जन्मकुंडली के स्थानों में पड़ना, कुसमय. २ दुष्काल. ३ संकट, कठिनाई. ४ वह वाक्य-विन्यास जो सुगमता से अर्थ न दे।

वि० [सं०] १ अप्रशस्त, बुरा [सं० अयोग्य] २ अयोग्य, अनुपयुक्त, अपात्र, निकम्मा। उ०—**अयोग** हूं कुयोग में यथा नियोग कीजिये।—ऊ.का.

३ अनुचित, नामुनासिब. ४ असमर्थ, अक्षम।

अयोग्य–वि० [सं०] १ अनुपयुक्त, जो योग्य न हो, अपात्र. २ अनुचित, नामुनासिब। उ०—यह पत्र बिचित्रित चित्र योग्य, आरण्य-रुदन वत भौ **अयोग्य**।—ऊ.का. ३ असमर्थ, अक्षम।

अयोध्या–सं०स्त्री० [सं०] देखो 'अजोध्या'।

अयोनि, अयोनी–वि० [सं०] १ जो उत्पन्न न हुआ हो, अजन्मा. २ नित्य. उ०—**अयोनी** योनी की विरति चित होनी रचि यही।—ऊ.का.

सं०पु०—१ शिव. २ ईश्वर. ३ विष्णु. ४ ब्रह्मा।

अयोसा–सं०पु० [सं० अयोषा] मर्द, नर, पुरुष। उ०—**अयोसा** योसा जी अनग जिम बाजीगर अगे।—ऊ.का.

अरंग–सं०पु०—सुगंधि का झोंका।

वि०—१ आनन्दरहित. २ बिना रंग का, रंग का अभाव। उ०—मधुर **अरंग** अमंग नियंग नमो।—ह.पु.वा. ३ भयावह।

अरंगी–वि०—१ बिना रंग का. २ वह जो किसी में आसक्त या अनुरक्त न हो। उ०—असंग अभंग **अरंगी** रांमा पूरण पर-ब्रह्म परम सुख धांमा।—ह.पु.वा.

अरंड–सं०पु० [सं० एरंड] एरंड या रेंडी का वृक्ष। उ०—सूरां अर सतवादियां धीरां एक मनाह, दई करेसी कांमड़ा **अरंड** फळैसी तांह। —चौबोली

अरंडोळी, अरंडोळ्या–सं०स्त्री० [सं० एरंडफली] एरंड के बीज (अमरत)

अरंढ़ी–सं०पु०—दिन का तीसरा प्रहर।

अरंत–वि० [सं० अरि+अंत] अड़ने वाला, युद्ध करने वाला, शत्रुओं का नाश करने वाला।

अरंद, अरंदौ, अरंद्र–सं०पु० [सं० अरि+इंद्र] शत्रु, दुश्मन (डि.को.) उ०—१ निजदळ गवण अगम कर दीरघ घेरत नगर **अरंदा** है—र.रू. २ खागरा का भूरडंडां **अरंद्रां** खांगास।—गिरवरदांन सांदू

अर–अव्यय—और। उ०—सूरां **अर** सतवादियां धीरां एक मनांह। —चौबोली

सं०पु० [सं० अरि] १ अरि, शत्रु, दुश्मन। उ०—माड़ेचौ रांमौ मुकनांणी, **अर** मारे तेगां ऊबांणी।—रा.रू.

सं०स्त्री०—२ शीघ्रता। उ०—करौ दया मौ सीस दयाकर, आपौ सार चार गुण **अर** कर।—रा.रू.

वि०—पीला।

अरकंमवण–सं०पु० [सं० अरिकुमुदिनी] सूर्य, भानु (क.कु.बो.)

अरक–सं०पु० [सं० अर्क] १ सूर्य (डि.को., अ.मा.) २ इंद्र. ३ तांबा. ४ स्फटिक. ५ पंडित. ६ ज्येष्ठ भ्राता. ७ रविवार. ८ आकवृक्ष, मंदार. उ०—कट उडियांण लियां डमरू कर भांग धतूरा भोगी, **अरक** फूल जळ धोम उपासू जय-जय संकर जोगी। —क.कु.बो.

९ विष्णु. १० बारह की संख्या. [अ०] ११ उतारा, निचोड़ा या भभके से उतारा हुआ रस।

क्रि०प्र०—आणौ-उतारणौ-काढ़णौ-खींचणौ-निचोड़णौ-पड़णौ।

१२ शराब। उ०—पीयाला साथियां **अरक** पावण पीयण। - अज्ञात

१३ नदी (अ.मा.) १४ एक पुष्प विशेष (अ.मा.)

वि०—तेज।

अरकगीर–सं०पु० [फा०] घोड़े की पीठ पर रखकर जीन खींचने का नमदे का बना हुआ टुकड़ा।

अरकज–सं०पु० [सं० अर्कज] १ सूर्य-पुत्र यम. २ शनि. ३ अश्विनी-कुमार. ४ सुग्रीव. ५ कर्ण. ६ सावर्णि मनु।

अरकसुत–सं०पु०यौ० [सं० अर्क+सुत] सूर्य पुत्र यथा—यम, शनि, अश्विनीकुमार, सुग्रीव, कर्ण व सवर्णि मनु (मि० अरकज)

अरकाद–सं०पु० [सं० अर्क] सूर्य। उ०—नमौ असगांन नमौ **अरकाद** —सूरज अस०

अरकासार–सं०पु०यौ० [सं० अर्क+आसार] तालाब, बावली।

अर-कुमंवण–सं०पु० [सं० अरि+कुमुदिनी] सूर्य, भानु।

उ०—रवि विधि नयण अरुण तमचर रिप **अर-कुमंवण**—क.कु.बो.

अरक्क–सं०पु०—देखो 'अरक'। उ०—चढ़े गजां दांतूसळां रण रीझवै **अरक्क**।—बां.दा.

अरखौ–क्रि०वि०—फौरन, शीघ्र।

अरग–सं०स्त्री० [सं० आरिग] तलवार। उ०—तें झाड़ी महू तणै **अरग** आ अहूटी बूंदां पड़ै कत्थीक ज्यां ऊक जांणक छूटीय—वी.मा.

अरगजा–सं०स्त्री०—एक प्रकार का सुगंधित पदार्थ जो केसर, चंदन, कपूर आदि सुगंधित पदार्थों के मिलाने से बनता है, उबटन। उ०—अमित गुलालां **अरगजां** केसर अतर फुलेल।—रा.रू.

अरगजो, अरगजौ–सं०पु०—देखो 'अरगजा'। उ०—किहि करि पांन **अरगजौ** किहि करि, धूप सखी किहि करगि धरि।—वेलि.

अरगणौ, अरगबौ–क्रि०स०—देखो 'अरघणौ'।

अरगत–सं०पु०—लोहा छीलने का औजार।

अरगती–सं०स्त्री०—फौलाद का बना एक औजार विशेष जो कि लोहे के बने औजारों को घिसकर ठीक करने के काम आती है, रेती।

अरगतौ–सं०पु०—बढ़ई का अथवा लोहार का औजार विशेष देखो 'अरगती'।

अरगनी–सं०स्त्री० [सं० आलग्न] किसी घर में कपड़े आदि रखने के लिये बाँधी या लटकाई जाने वाली बांस, लकड़ी या रस्सी।

अरगळा–सं०स्त्री० [सं० अर्गला] १ कपाट बंद करने की लकड़ी, ब्योंडा, अर्गला. २ रोक, संयम।

अरघ–सं०पु० [सं० अर्घ] १ षोडशोपचारों के अंतर्गत पूजन का एक उपचार, अर्घ्य, हाथ धोने के लिये जल, पूजा के निमित्त अंजली में जल लेकर अर्पित करना। उ०—**अरघ** दीध अरक नूं जयौ जगमण तम जारण।—भगवांनजी रतनू २ सम्मान प्रदर्शनार्थ गिराया जाने वाला जल।

क्रि०प्र०—करणौ-देणौ।

अरघणौ, अरघबौ–क्रि०स० [सं० अर्ह] पूजा करना, अर्घ्य देना, अर्चन करना। उ०—जस कज **अरघौ** रूपक जोड़ा दूजा करौ कजोड़ा दूर। —बाघोर महाराज सिवदांनसिंह

अरघणहार-हारौ (हारी), अरघणियौ–वि०—अर्घ्य देने वाला।

अरघाणौ–प्रे०रू०। **अरघायोड़ौ**–भू०का०कृ०—पूजित।

अरघिओड़ौ-अरघियोड़ौ-अरघ्योड़ौ–भू०का०कृ०—पूजित।

अरघीजणौ-अरघीजबौ–कर्म० वा०।

अरघीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—पूजित।

अरघपात्र–सं०पु०यौ० [सं० अर्घ्य+पात्र] अर्घ्य का जल रखने का पात्र।

अरघयोड़ौ–भू०का०कृ०—अर्घ्य दिया हुआ, पूजित, अर्चित। (स्त्री० अरघयोड़ी)

अरघळ-परघळ, अरगळौ-परगळौ, अरघळौ-परघळौ–वि० (स्त्री० अरघळी-परघळी) प्रचुर, बहुत।

अरघाणौ, अरघाबौ—क्रि०स०—पूजा कराना, अर्घ्य दिलाना।

अरघाणहार-हारौ (हारी), अरघाणियौ—अर्घ्य दिलाने वाला।

अरघावणौ-अरघावबौ—(रू.भे.)

अरघाओड़ौ-अरघायोड़ौ—भू०का०कृ०—अर्घ्य दिलाया हुआ।

अरघायोड़ौ—भू०का०कृ०—पूजा कराया हुआ, पूजित, अर्घ्य दिलाया हुआ। (स्त्री० अरघायोड़ी)

अरघावणौ, अरघावबौ—क्रि०स० [सं० अर्ह] देखो 'अरघाणौ' (रू.भे.)

अरघियोड़ौ—भू०का०कृ०—पूजित, अर्घ्य दिया हुआ (स्त्री० अरघियोड़ी)

अरघौ—सं०पु० [सं० अर्घ्य] अरघ का जल रखने का एक पात्र।

अरड़—सं०स्त्री०—१ बलात् धँसने का भाव या क्रिया. २ भय, आतंक. [अनु०] ३ ध्वनि-विशेष।

अरड़णौ, अरड़बौ—क्रि०अ०—१ चिल्लाना, चीखना. २ ऊँट द्वारा दर्दभरी आवाज करना. ३ धँसना, फँसना।

अरड़णहार-हारौ (हारी), अरड़णियौ—वि०—चीखने वाला।

अरड़वाणौ-अरड़वाबौ—प्रे०रू०। **अरड़ायोड़ौ**—भू०का०कृ०—चीखा या चिल्लाया हुआ।

अरड़ाणौ, अरड़ाबौ—क्रि०स०।

अरड़िओड़ौ-अरड़ियोड़ौ-अरड़्योड़ौ—भू०का०कृ०—चीखा या चिल्लाया हुआ।

अरड़ीजणौ-अरड़ीजबौ—भाव वा०।

अरड़ांण—सं०पु०—रुदन, विलाप।

अरड़ाट, अरड़ाटौ—सं०पु०—१ तीव्र वेग की आँधी की ध्वनि. २ दुःख या दर्दभरी आवाज. ३ ध्वनि विशेष।

अरड़ाणौ, अरड़ाबौ—क्रि०अ०—देखो 'अरड़णौ'।

क्रि०स०—धँसाना।

अरड़ावणौ, अरड़ावबौ—रू०भे०। **अरड़ायोड़ौ**—भू०का०कृ०—चिल्लाया हुआ।

अरड़ावीजणौ, अरड़ावीजबौ—भाव वा०।

अरड़ायोड़ौ—भू०का०कृ०—चिल्लाया या चीखा हुआ। (स्त्री० अरड़ायोड़ी)

अरड़ाव—सं०स्त्री०—१ ध्वनि विशेष. २ दर्द भरी चीख।

अरड़ावणौ, अरड़ावबौ—क्रि०अ०—देखो 'अरड़ाणौ, अरड़ाबौ' (रू.भे.)

उ०—खेहाडंबर खर अंबर अरड़ावै, धरणीतळ धूणें गरदव गरड़ावै। —ऊ.का.

अरड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—चिल्लाया हुआ, चीखा हुआ। (स्त्री० अरड़ियोड़ी)

अरड़िंग, अरड़ींग, अरड़ींगौ—वि०—१ बलवान, जबरदस्त।

उ०—१ हिंदू तांम हकारिआ सिंघ असौ जैसिंघ। किमा विदा कूरिम कमंध, ए बेवै अरड़िंग।—वचनिका

२ तरत मुख लड़भड़ै सहर तरसींग रा, उजड़ै झाक आपूण अरड़ींग रा। धरहरै धमंक धाका पड़ै धींग रा, सीसकिण रीस आज री गजसींग रा।—महादांन महडू

२ योद्धा, शूर। उ०—रेवा सागर अमल में, आगै ही अरड़ींग। हुमैं सिंध सागर हठी, अपणायौ तें सींग।—बां.दा.

अरड़ूसौ, अरड़ूसौ—सं०पु० [सं० अटरूष, प्रा० अडरुष] देखो 'अड़ूसौ'।

अरड़ौ—वि०—बलात धँसने वाला। उ०—वडै वेद रस खेद वाई ज तू वीरवर अभंग भड़ मांगवा वडा अरड़ा। ताहरी वणी अंग ऊपर 'बुड़ा' तणा झूलती रुधर जम डाढ़ 'झरड़ा'।—झरड़ा राठौड़ री गीत (रू.भे. अरड़)

सं०पु०—बलात् धँसने का भाव। उ०—ऊंणा ऊरणियां खरसणियां ओळै, डरड़ा नरड़ा बिण अरड़ा दे टोळै।—ऊ.का.

अरचणौ, अरचबौ—क्रि०स० [सं० अर्चन] पूजा करना, अर्चन करना।

उ०—अहड़ौ सूर मसीत न अरचै, अरचै देवळ गाय उभै। —दुरसौ आढ़ौ

अरचणहार-हारौ (हारी), अरचणियौ—वि०—अर्चना करने वाला।

अरचयोड़ौ-अरच्योड़ौ—भू०का०कृ०—अर्चित, पूजित।

अरचवाणौ-अरचवाबौ—प्रे०रू०—पूजा कराना।

अरचाणौ-अरचाबौ, अरचावणौ-अरचावबौ—प्रे०रू०—पूजा कराना, अर्चन कराना।

अरचायोड़ौ-अरचावियोड़ौ—भू०का०कृ०—पूजा कराया हुआ, अर्चना कराया हुआ।

अरचावीजणौ-अरचावीजबौ—पूजा कराया जाना।

अरचीजणौ-अरचीजबौ—कर्म वा०—पूजा या अर्चित किया जाना।

अरचीजिओड़ौ-अरचीजियोड़ौ-अरचीज्योड़ौ—भू०का०कृ०—अर्चित, पूजित।

अरचन—सं०पु० [सं० अर्चन] पूजन, अर्चन।

अरचा—सं०स्त्री० [सं० अर्चा] १ पूजा, अर्चन, सम्मान, प्रतिष्ठा।

उ०—आप जिम करग नग थपै दर उचत ऐ, ऊथपै पुरंदर तणी अरचा।—बां.दा. २ चर्चा, विवरण। उ०—चित भव भांडां री चरचा नहिं चावै। लिपळी रांडां री अरचा नहिं लावै। —ऊ.का.

अरचाणौ, अरचाबौ—क्रि०स० (प्रे०रू०) [सं० अर्चन] पूजा कराना, अर्चन कराना।

अरचणहार-हारौ (हारी), अरचाणियौ—वि०—पूजा कराने वाला।

अरचायोड़ौ—भू०का०कृ०—पूजा कराया हुआ, अर्चन कराया हुआ।

अरचावणौ, अरचावबौ—रू०भे०

अरचावीजणौ, अरचावीजबौ—कर्म वा०।

अरचायोड़ौ—भू०का०कृ०—पूजा कराया हुआ, अर्चित। (स्त्री० अरचायोड़ी)

अरचावणौ, अरचावबौ—क्रि०स०—देखो 'अरचाणौ' (रू.भे.)

अरचित—वि० [सं० अर्चित] अर्चित, पूजित (डिं.को.)

अरचियोड़ौ—भू०का०कृ० [सं० अर्चित] अर्चित, पूजित। (स्त्री० अरचियोड़ी)

अरच्चणौ, अरच्चबौ–क्रि०स०—देखो 'अरचणौ' (रू.भे.)
उ०—उवारे घणां आप आपे **अरच्चे**, सुव चंदण कासमीरी चरच्चे।
—ना.द.

अरज–सं०स्त्री० [अ० अर्ज] १ विनय, निवेदन, प्रार्थना।
उ०—सुणै नबाब इनायत सारी, ओरंग दिस लिख **अरज** अफारी।
—रा.रू.
२ चौड़ाई।
सं०पु०—३ राजा (अ.मा.) ४ अर्जुन। उ०—**अरज** भीम जिसा आलीजा रेसैं बेदिल किया रंग। जरै तूझ विन कमण जोजरी, नव पण जिसा अमोलक नग।—ओपौ आढ़ौ

अरजण–वि०—१ काला, श्याम* २ श्वेत, सफेद (डिं.को.)
सं०पु०—१ देखो 'अरजुण' २ स्वर्ण. ३ चांदी।
उ०—विप्र मूरति वैद रतन मैं वैदी, वंस आद्र **अरजुन** (ण) मैं वेह।
—वेलि.

अरजणौ, अरजबौ–क्रि०स० [सं० अर्जन] उपार्जन करना।
अरजणहार-हारौ (हारी), अरजणियौ–वि०—उपार्जन करने वाला।
अरजिओड़ौ, अरजियोड़ौ, अरज्योड़ौ–भू०का०कृ०—उपार्जित।

अरजदास्त–सं०स्त्री०यौ०—निवेदनपत्र।

अरजन–सं०पु०—देखो 'अरजुण'। उ०—सांचौ मित्र सचेत, कह्यौ कांम न करै किसौ। हर **अरजन** रै हेत, रथ कर हांक्यौ राजिया।
—किरपारांम

अरजनपता–सं०पु०यौ० [सं० अर्जुन+पितृ] इंद्र (डिं.को.)

अरजन्न–सं०पु० [सं० अर्जुन] देखो 'अरजुण'।

अरजमा–सं०पु० [सं० अर्यमा] सूर्य (नां.मा.)
वि०—अजन्मा (क.कु.बो.)

अरजळ–वि०—घायल, व्याकुल। उ०—अक्काई रै बांह में तीर लागौ तिकौ बैऊं बाहां फोड़ि नांखी, **अरजळ** हुवौ पड़ियौ।
—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात
सं०पु०—वह घोड़ा जिसका एक पांव सफेद रंग का हो।
(अशुभ—शा.हो.)

अरजाऊ–वि०—अर्ज, प्रार्थना या पुकार करने वाला।

अरजित–वि० [सं० अर्जित] १ संग्रह किया हुआ, संग्रहीत. २ कमाया हुआ।

अरजियोड़ौ–भू०का०कृ० [सं० अर्जित] उपार्जित किया हुआ।
(स्त्री० अरजियोडी)

अरजी–सं०स्त्री० [फा० अर्जी] प्रार्थनापत्र, निवेदनपत्र, प्रार्थना।

अरजीदावौ–सं०पु०यौ० [फा० अर्जीदावा] वह निवेदनपत्र जो अदालत में दीवानी मुकदमें से संबंधित दिया गया हो।

अरजुण–सं०पु० [सं० अर्जुन] १ देवराज इन्द्र के औरस (पांडु के क्षेत्रज) और कुंती के गर्भज पुत्र, पांच पांडवों में से एक जो श्रीकृष्ण के बहनोई और मित्र थे। द्रौपदी, चित्रांगदा तथा सुभद्रा नामक इनके तीन प्रधान स्त्रियां थीं।
पर्याय०—अगनीसखा, अरजुन, अरिजन, कपीधज, कपीधाय, करण-सत्र, कलिफालगुन, कारमुख, काळमूक, किरीट, किरीटी, गुडाकेस, जय, जग्हाथ, जिसन, जिसुन, दांनीरिप, दैतार, धनंजय, धनुजय, नर, निर, पंडवमध, पंडसुत, पाथ, पारथ, पाराथ, फालगुण, ब्रहनट, मधिपंडव, मरदांमरद, महासूर, महीसूर, माक, मोक, यंद्रजीत, राधावेधा, राधावेधी, रिपकैरवां, वहनट, विभच्छ, वीभव, वेधीसबद, वैंधीकरण, व्रखसेन, व्रखसोन, सक्रनंद, सक्रनंदन, सगतिविलंद, सबद-वेध, सरभ्रजीत, सरधनुधार सबसाची, सव्यसाची, सुगत, सुतर, सुभट सुभद्रेस, सुभ्रदेस, सेतअसनयसेन, सेतअस्व, हरीसखा।
२ स्वर्ण. ३ चांदी. ४ अर्जुन काठी नामक एक दातार राजा।
वि० श्वेत, सफेद* (डिं.को.)
रू०भे०—अरजण, अरजुन, अरज्जण, अरज्जन।

अरजुणवंसी–सं०पु० यौ०—अर्जुन वंश के राजपूत।

अरजुणियौ–सं०पु० [सं० अर्जुन] अर्जुन वृक्ष (अरजुण का अल्पा०)

अरजुन–सं०पु० [सं० अर्जुन] देखो 'अरजुण'

अरजुनसखा–सं०पु० यौ० [सं० अर्जुन+सखा] श्रीकृष्ण (अ.मा.)

अरजुनी–सं०स्त्री० [सं० अर्जुनी] गाय (अ.मा.)

अरजुनोत–सं०पु०—१ राठौड़ राव चूंडाजी के पुत्र अर्जुन के वंशज, राठौड़ों की एक उपशाखा या इस उपशाखा का व्यक्ति. २ भाटी वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

अरज्ज–सं०स्त्री०—देखो 'अरज' (रू.भे.) उ०—जद भूमत जांमैये चाळ भली। भणियूं फिर राव **अरज्ज** भली।—पा.प्र.

अरज्जण, अरज्जन, अरज्जुण–सं०पु० [सं० अर्जुन] देखो 'अरजुण'।
उ०—१ भीमाजळ बळ आगलौ, भीम **अरज्जण** जेम।—रा.रू.
२ अत आवध तास अभास इसा, जुध इंद्र दुजेस **अरज्जन** सा।
—शि.सु.रू.
३ सेवै पग सन्नक जन्नक सूर, **अरज्जुण** उद्धव औ अक्रूर।
—ह.र.

अरट–सं०पु० [सं० अरघट्ट, प्रा० अरहट्ट, अप० रहट्ट] १ कुयें से पानी निकालने का मालाकार यंत्र, रहँट २ डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसके विषम पदों में चार चौकल सहित १६ मात्रायें होती हैं किन्तु आदि का चरण अपवाद है जिसमें १८ मात्रायें होती हैं। सम चरणों में दो चौकल और अंत में गुरु-लघुसहित ११ मात्रायें होती हैं। इस प्रकार कुल चार या चार से अधिक द्वाले होते हैं। (र रू.) कविकुल-बोध के अनुसार प्रत्येक चरण में चार भगण तथा अंत में गुरु का एक (गीत) छंद विशेष. ३ एक प्रकार की बंदूक।

अरटियौ–सं०पु०—१ रहँट (अल्पा.) २ सूत कातने का रहँटा, चरखा. ३ सूत कातने के चरखे की प्रशंसा में गाया जाने वाला एक मारवाड़ी लोकगीत. ४ डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसके विषम पदों में चार चौकल सहित १६ मात्रायें होती हैं। किन्तु आदि का चरण अपवाद है जिसमें ४, १० और ५ पर विश्राम सहित १९ मात्रायें

होती हैं। सम पदों में अंत में दो गुरु सहित तीन चौकल होते हैं। इसमें नगण का निषेध है। (र.रू.) पिंगल शिरोमणि के अनुसार इसे अरहट भी कहते हैं. ५ एक प्रकार की बंदूक।

अरट्ठ–सं०पु०—रहँट, देखो 'अरट' (१), (रू भे.)। उ०—कितेक जात व्योम कौ मनौ अरट्ठ को घरी।—ला.रा.

अरडींग–देखो 'अरड़ींग'।

अरडूवौ, अरडूसौ–सं०पु०—देखो 'अड़ूसौ' (रू.भे.)

अरण–सं०पु० [सं० अरण्य] १ अरण्य, वन, जंगल (अ.मा.) उ०—अरण आग्या करी मूझ नायक अवध, अवध वीताय नै वेग आवां।—र.रू. [सं० अरुण] २ सूर्य (अ.मा.) उ०—किप हड़मत विना समंद कुण कूदै, अरण विना कुण गमै अंधार।

—तेजसी खिड़ियौ

३ सूर्य के सारथी जो गरुड़ के ज्येष्ठ भ्राता हैं—संपाति और जटायु इनके पुत्र थे. ४ गुड़. ५ संध्याराग. ६ आक, मंदार. ७ अव्यक्त राग. ८ कुष्ट भेद. ९ गहरा लाल रंग, कुंकुम, सिंदूर. १० माघ मास का सूर्य [रा अ+सं० रण] ११ युद्ध. उ०—ईस अरधंग सहत खड़ा जोबा अरण।—जवांनजी आढ़ौ

सं०स्त्री०—१२ रौप्य चाँदी। उ०—वेदी छै सु रतन जड़ित छै। नीला बांस छै। अरजन (अरण ?) कहतां रूपा का कळसां कौ वेह छै।

—वेलि. टी.

१३ लोहे की बनी एक चौकोर छोटी चौकी जिस पर आग में तपाकर धातु को पीटा जाता है।

वि० [सं० अरुण] लाल, सुर्ख। उ०—आग झाळ चख अरण, निमख नह कोप निवारै।— आसौ बारहठ

अरण्य–सं०पु० [सं० अरण्य] वन, जंगल (नां.मा.)

अरणव–सं०पु० [सं० अर्णव] १ समुद्र, सागर (डि.को., अ.मा.) २ इंद्र. ३ सूर्य।

अरणव मंदिर–सं०पु० यौ० [सं० अर्णव+मंदिर] वरुण, जलदेव (डि.को.)

अरणा, अरणी–सं०स्त्री० यौ०—देखो 'अरणौ'

अरणि, अरणी–सं०स्त्री०—१ टहनियांदार एक गुल्म विशेष जो औषधियों में प्रयुक्त होता है (अमरत). २ काष्ठ से उत्पन्न की जाने वाली यज्ञ की अग्नि अथवा इस अग्नि को उत्पन्न करने का काष्ठ। देखो अरणौ (२) उ०—जिके वेद मूरति ब्राह्मण छै सु अरणी अगनि लगाड़ि होम करै छै।—रा.सा.सं. [सं० अरुण] ३ सूर्य. [रा०] ४ एक मारवाड़ी लोक गीत।

अरणी-अगनी–सं०स्त्री० यौ० [सं० अरण्य+अग्नि] यज्ञाग्नि, दावानल।

अरणौ–सं०पु० [सं० अर्ण=पानी] १ जोधपुर से दक्षिण पश्चिम में दस मील की दूरी पर स्थित एक तीर्थ स्थान। यह तीर्थ कुंड है। कहा जाता है कि इसी कुंड में स्नान करने पर मैनका अप्सरा से शापग्रस्त तपस्वी (जिसके कारण वह वृद्ध हो गया था) वापिस तरुण हो गया। [सं० अरणी] २ एक प्रकार का वृक्ष जिसके तना नहीं होता। इसकी लकड़ी से चमारों की नलियां बनती हैं। इसके पत्ते ऊँट बड़े चाव से खाते हैं।

अरणोद, अरणोव–सं०पु० [सं० अरुण+उदय] उषाकाल, ब्राह्म मुहूर्त, सूर्योदय। उ०—इह बीच अरणोव होण लागौ, मुरगौ बोलि उठ्यौ।

—वेलि. टी.

अरण्य–सं०पु० [सं०] १ एक वन विशेष. २ जंगल, वन. ३ कायफल. ४ संन्यासियों के १० भेदों में से एक भेद विशेष।

अरण्यसस्ठी–सं०स्त्री०यौ० [सं० अरण्यषष्ठी] ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी का एक व्रत-विशेष।

अरण्यु, अरण्यू–सं०पु०—एक औषधि का नाम, अग्निमंथ (अमरत) देखो 'अरणी' (२)।

अरत–सं०पु० [सं० अराति] शत्रु, वैरी। उ०—गुमर अरत तजै वसै गिरवर।—क.कु.बो.

वि० [सं० आर्त्त] दुखी, कष्ट, पीड़ित। उ०—जन हरिदास अरचित अरत हरि समरथ सरजणहार।—ह.पु.वा.

अरतिमर–सं०पु०यौ० [सं० अरि+तिमिर] सूर्य। उ०—दिनकर चत्रभांण क्रम साखी अर-तिमर।—क.कु.बो.

अरत्त–वि० [सं०] १ विरक्त, जो लीन न हो, अलिप्त. [सं० अ+रक्त] २ जो रक्तवर्ण न हो। उ०—अरत्त अपीत असेत असेस।—ह.र.

अरत्थ–सं०पु० देखो 'अरथ' (रू.भे.) उ०—आखर सूधा आंगणै, आखू ख्यात अरत्थ। पा.प्र.

अरत्थि–सं०पु०—देखो 'अरथ' (रू.भे.)

वि० [सं० अर्थिन्] चाहने वाला, इच्छुक, धन का इच्छुक। उ०—सेध निवाहां सूरमां, राहां वेध अरत्थि।—रा.रू.

अरथ–सं०पु० [सं० अर्थ] १ शब्द का अभिप्राय. २ प्रयोजन, मतलब, अभिप्राय. ३ काम, इष्ट, हेतु, निमित्त।

कहा०—अरथ आवै सो आपणौ—समय पर काम आने वाला व्यक्ति ही अपना है।

४ इंद्रियों के विषय. ५ धन, संपत्ति। उ०—लिखमी आप नमै पाइ लागी, अचरिज कौ लाधै अरथ।—वेलि. ६ कुंडली में लग्न से दूसरा घर।

क्रि०वि०—लिये, निमित्त, हेतु। उ०—आंना अध आंना अरथ तुरत विगाड़ै तांन, वदळै तुरै वांणियौ घुर गोढ़ा लै धांन।—बां.दा.

अरथकर–वि० [सं०] लाभकारी, धन उपार्जन में फायदेमंद।

अरथण–क्रि०वि० [सं० अर्थ] लिए। उ०—आहाड़ा कर नवौ ऊपनौ ताई अरथण ज्याग तणौ।—महारांणा मोकळ रौ गीत

अरथमंत्री–सं०पु० यौ० [सं० अर्थमंत्री] आय-व्यय की व्यवस्था करने वाला मंत्री, वित्त मंत्री।

अरथवाद–सं०पु०यौ० [सं०] तीन प्रकार के वाक्यों में से एक (न्याय)।

अरथसचिव–सं०पु० यौ० [सं०] आय-व्यय की व्यवस्था करने वाला मंत्री, वित्त मंत्री।

अरथांतरन्यास–सं०पु० यौ० [सं०] एक प्रकार का काव्यालंकार जिसमें प्रस्तुत अर्थ का अप्रस्तुत अर्थांतर के न्यास (स्थापन) से समर्थन किया जाता है।

अरथाणौ, अरथाबौ–क्रि०स० [सं० अर्थापन्न] १ अर्थ करना. २ अर्थ समझाना।

अरथाणहार-हारौ (हारी), अरथाणियौ–अर्थ करने वाला।

अरथाग्रोड़ौ-अरथायोड़ौ–भू०का०कृ० —अर्थ समझाया हुआ।

अरथात–अव्यय [सं० अर्थात्] यानी, मतलब यह है कि, अर्थात, फलतः विवरण सूचक शब्द।

अरथाभास–सं०पु० [सं० अर्थाभास] १ शब्दार्थ, आभास, अर्थ का प्रभाव। उ०—तन वीरा रस तमक पढ़ण धुन चमतकार पर। ओजे **अरथाभास** 'पाल' दुत दरस तात पर।—पा.प्र.

अरथालंकार–सं०पु० [सं० अर्थालंकार] साहित्य का एक प्रकार का अलंकार जिसमें अर्थ का चमत्कार दिखाया जाय।

अरथि–क्रि०वि० [सं० अर्थ] १ देखो 'अरथ'. २ लिए, निमित्त। उ०—अब रति कौ सहंसकार करिवा कै **अरथि** सखियां उद्यम कीयौ छै।

अरथी, अरथीन–सं०स्त्री० [सं० रथ] १ बांस का बना हुआ सीढ़ी के आकार का वह ढांचा जिस पर रखकर मुर्दे को ले जाते हैं। सं०पु०—२ वादी, प्रार्थी, मुद्दई. ३ सेवक. ४ याचक (अ.मा.) ५ धनी।

वि० [सं० अर्थिन्] १ इच्छा रखने वाला, चाह रखने वाला, प्रयोजन वाला, याचक [सं० अ+रथी] २ पैदल।

अरथ्थ–सं०पु० [सं० अर्थ] देखो 'अरथ' (रू.भे.)

अरथ्य–सं०पु०—१ देखो 'अरथी'. २ देखो 'अरथ' (रू.भे.)

अरद–वि० [सं० अर्द्ध] आधा, अर्द्ध।

सं०पु० [सं० अरि+इन्द्र] शत्रु, दुश्मन।

अरदगोखौ–सं०पु०—देखो 'अरधगोखौ' (रू.भे.)

अरदचंद, अरदचंद्र–सं०पु०यौ० [सं० अर्द्धचंद्र] देखो 'अरधचंद'।

अरदनाराच–सं०पु०—देखो 'अरधनाराच'।

अरदनिसा–सं०स्त्री०यौ० [सं० अर्द्ध निशा] अर्द्ध रात्रि, आधी रात. निशीथ।

अरदपुंड–सं०पु० [सं० अर्द्धपुंड्र] देखो 'अरधपुंड'।

अरदभाख–सं०पु०—देखो 'अरधभाख'।

अरदभाखड़ी–सं०स्त्री०—देखो 'अरधभाखड़ी'।

अरदभुजंगी–सं०पु०—देखो 'अरधभुजंगी'।

अरदली–सं०पु० [अं० ऑर्डरली] किसी कर्मचारी के सदा साथ रहने वाला सेवक, सेवक।

अरदसावझड़ौ–सं०पु०—देखो 'अरधसावझड़ौ'।

अरदास–सं०स्त्री० [सं०अर्द=याचनं] १ प्रार्थना, विनती, स्तुति, विनय। उ०—पाल तणौ ग्रहै पागड़ौ आखी म्है **अरदास**।—पा.प्र.

अरदित–वि० [सं० अर्दित] पीड़ित।

सं०पु०—एक प्रकार का वात रोग जिसमें मुंह टेढ़ा हो जाता है तथा जीभ से बोलना रुक जाता है, लकवा (अमरत)

अरद्धंग–सं०स्त्री०यौ० [सं० अर्द्धांगिनी] स्त्री, पत्नी। उ०—अबकी सज्जण जे मिळै, कबहुं न छोड़ूं संग। पी हरणां हरणांख ज्यूं, होय रहूं **अरद्धंग**।—जलाल बूबना री बात

अरद्ध–वि० [सं० अर्द्ध] आधा, अर्द्ध।

अरद्धचंद्र–सं०पु० यौ० [सं० अर्द्ध+चंद्र] १ आधा चंद्रमा. २ एक प्रकार का त्रिपुंड. ३ किसी को निकाल कर बाहर करने के उद्देश्य से गले में हाथ लगाने की मुद्रा।

अरद्धनारीस्वर–सं०पु०यौ० [सं० अर्द्धनारीश्वर] शिव व पार्वती का रूप (तंत्र)

अरद्धमागधी–सं०स्त्री०यौ० [सं० अर्द्धमागधी] प्राकृत भाषा का एक भेद, एक प्राचीन भाषा।

अरद्धव्रत्त–सं०पु०यौ० [सं० अर्द्धवृत्त] वृत्त का आधा भाग।

अरद्धसमव्रत्त–सं०पु०यौ० [सं० अर्द्धसमवृत्त] एक प्रकार का वर्ण वृत्त जिसका पहला चरण तीसरे के बराबर और दूसरा चौथे के बराबर हो।

अरद्धांगणी, अरद्धांगिणी–सं०स्त्री०यौ० [सं० अर्द्धांगिनी] पत्नी, जोरू।

अरद्धाळी–सं०स्त्री०यौ० [सं० अर्द्धालि] दो चरण की चौपाई, आधी चौपाई।

अरधंग–सं०स्त्री०यौ० [सं० अर्द्धांगिनी] १ स्त्री, सहधर्मिणी, जोरू। उ०—चवसट्ठ अखाड़ै रंग चाय, **अरधंग** सहत सिव खड़ह आय।

—वि.सं.

२ इंद्रानी, शची (अ.मा.) ३ गंगा (अ.मा.)

सं०पु०—४ शिव. ५ पक्षाघात या एक विशेष प्रकार का लकवा या वायु रोग जिसमें आधा शरीर बेकाम और शून्य होकर जड़ीभूत सा हो जाता है, फालिज।

अरधंगा, अरधंगि, अरधंगी–सं०स्त्री०यौ० [सं० अर्द्धांगिनी] स्त्री, जोरू, सहधर्मिणी। उ०—१ तूं **अरधंगा** ईसवर माया पटरांणी।

—केसोदास गाडण

२ **अरधंगी** रा अंग मनां में आप मिळावै। विश्वना बांध्यौ पंथ सांइणी किण विध आवै।—मेघ.

अरध–वि० [सं० अर्द्ध] आधा। उ०—**अरध** निसा भागा कछवाहा साख भरै जग सारौ।—भवानीसिंह उदावत री गीत

क्रि०वि० [सं० अधः] नीचे, अंदर, भीतर।

अरधकूरमासण–सं०पु०यौ० [सं० अर्द्धकूर्मासन] योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन। दोनों हाथ की ठेउनी को भूमि पर रखकर कलाई को सामने लंबा करके, पंजे की हथेली सूधी रखके घुटने पर गिरकर मुख को आगे बढ़ाकर बैठने से अर्धकूर्मासन होता है।

अरधगोख–सं०पु०यौ०—डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसके प्रथम

तीन चरणों के प्रत्येक चरण में रगण, जगण और अंत में गुरु और लघु इस क्रम से आठ वर्ण होते हैं तथा चौथे चरण में रगण व जगण सहित छः वर्ण होते हैं। चारों चरणों के अंत में तुकांत होता है। (र.ज.प्र.)

अरधगोखौ–सं०पु०यौ०—डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसके चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में २० मात्राएँ होती हैं तथा चौथे चरण में वीप्सा अलंकार होता है। चारों चरणों के अंत में तुकांत होता है (र.रू.)

अरधचंद, अरधचंद्र–सं०पु०यौ० [सं० अर्द्ध+चंद्र] १ आधा चंद्रमा. २ किसी को निकाल कर बाहर करने के उद्देश्य से बाहर किये जाने वाले व्यक्ति के गला पकड़ते समय हथेली की बनने वाली अर्द्धचंद्राकार मुद्रा। उ०—**अरधचंद** हेकां दिये, हेकां गाळ हजार। हेकां कुतकी हे दुवै, एह दुस्ट अदतार।—बां.दा.

अरधनाराच–सं०पु०—नाराच नामक छंद विशेष का एक भेद जिसके चार चरणों में से प्रत्येक चरण में प्रथम ह्रस्व व फिर लघु के क्रमानुसार ८ वर्ण एवं १२ मात्रायें होती हैं।

अरधनिसा–सं०स्त्री०यौ० [सं० अर्द्ध+निशा] आधी रात, निशीथ।

अरधपादासण-सं०पु०यौ [सं० अर्द्धपादासन] योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन। यह खड़ी अवस्था में बांये पैर के पंजे को दाहिने पैर के घुटने के उत्तर भाग में आडा स्थापित करने से होता है। पाँवों की स्थिति बदलने से इसका दूसरा प्रकार भी हो सकता है।

अरधपुंड–सं०पु०—वैरागी संन्यासियों के भाल पर किया जाने वाला खड़ा तिलक।

अरधभाख–सं०पु०—डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसके लक्षण 'भाख' गीत (देखो 'भाख') के अनुसार ही होते हैं किन्तु तुकांत दो-दो चरणों का मिलता है (र.रू.)

अरधभाखड़ी, अरधभाखरी–सं०पु०—डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जो भाखड़ी गीत (छंद) का आधा चार चरणों का होता है। इसके प्रथम दो चरण भाखरी गीत (छंद) के तथा तीसरे पद में सिंहावलोकन कर बैताल छंद के दो पद रक्खे जाते हैं (र.रू.)

अरधभुजंगी–सं०पु०—एक छंद विशेष जिसके चार चरणों में से प्रत्येक चरण में दो यगण होते हैं।

अरधसरीरी–सं०स्त्री०यौ०– अर्द्धांगिनी, स्त्री, पत्नी। उ०—ताहरां रांणी कही तौ हूँ थांहरी **अरधसरीरी** किसी बिध छूं।—चौबोली

अरधसवासण–सं०पु०यौ० [सं० अर्द्धशवासन] चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन जिसे पर्यंकासन भी कहते हैं। पीछे दोनों पावों को घुटने से लौटाकर पंजों को जंघा के निम्न भागों के नीच लाकर सोने और दोनों हाथों को लंबा करके जांघ पर रखने से यह आसन होता है। कहा जाता है कि इस आसन से बंधकुष्ठ का नाश होता है।

अरधसावझड़ौ–सं०पु०—डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसमें शुद्ध सावझड़े गीत के चारों चरणों के समान ही इस गीत (छंद) के भी चारों चरण होते हैं, किन्तु 'अरध सावझड़े' में दो-दो चरणों के तुकांत मिलते हैं (र.रू. व र.ज.प्र.), किन्तु मतांतर से चारों चरणों के प्रत्येक चरण में सोलह मात्रायें होती है तथा चारों चरणों में तुकांत होता है (क.कु.बो.)

अरधांग, अरधांगि–सं०स्त्री०यौ० [सं० अर्द्धांगिनी] पत्नी, स्त्री। उ०—बरसें गळबांह कियां बिहरें, **अरधांग** मनू हरि नृत्य करें। —ला.रा.

अरधाभेदक–सं०पु० [सं० अर्द्धाभेदक] केवल आधे शिर में पीड़ा होने का शिरका एक रोग विशेष (अमरत)

अरधियौ–सं०पु०— १ देखो 'अधराजियौ'. २ देखो 'अधौ'।

अरधी–वि० [सं० अर्द्ध] आधा।

अरधूंस– सं०स्त्री० [सं० अरिध्वंशा] सेना, फौज (अ.मा.)

अरधौ–वि० [सं० अर्द्ध] आधा (अमरत)

अरनांमणौ–वि०—शत्रुओं को झुकाने वाला, वीर, योद्धा।

अरनाद–सं०पु०—सूर्य्य। उ०– नमौ अरनाद अकास अनाद। —सूरज प्रस.

अरनी–सं०स्त्री—१ विद्युत (ह.नां.) [सं० अरणी] २ देखो 'अरणी'।

अरपण, अरपन–सं०पु० [सं० अर्पण] देना, दान, नजर, भेंट, समर्पण। उ०—तन मन धन सब **अरपन** ईस हूके।—जैतदांन बारहठ

अरपणौ, अरपबौ–क्रि०स० [सं० अर्पण] अर्पण करना, सौंपना। उ० –कोई तन मन धन सरवस **अरप्या** भाव सूं हो राज।—मी.रां.

अरपणहार-हारौ (हारी), अरपणियौ–वि०—अर्पण करने वाला।

अरपयोड़ौ–अर्पित।

अरपाणौ-अरपाबौ–स.रू.।

अरपिओड़ौ-अरपियोड़ौ-अरप्योड़ौ–भू०का०कृ०—अर्पित।

अरपीजणौ-अरपीजबौ–कर्म वा०—अर्पित किया जाना।

अरपाणौ-अरपाबौ–क्रि०स० [प्रे०रू०] अर्पण कराना।

अरपाणहार-हारौ (हारी), अरपाणियौ–वि० अर्पण कराने वाला।

अरपायोड़ौ—अर्पण कराया हुआ।

अरपावणौ-अरपावबौ–रू०भे०।

अरपाल–सं०पु०—युद्ध (अ.मा.)

अरपियोड़ौ–भू०का०कृ० [सं० अर्पित] अर्पित, अर्पण किया हुआ। (स्त्री० अरपियोड़ी)

अरब–सं०पु० [सं० अर्बुद] १ सौ करोड़ की संख्या। उ०—काळौ बीसळदे कियौ दरब सिला तळ दे'र, विमळ कियौ वच्छराज पह **अरब** समपी अजमेर।—बां.दा. [अ०] २ एशिया महाद्वीप के दक्षिण पश्चिमी भाग में स्थित एक रेगिस्तानी प्रदेश. ३ इस देश का मनुष्य. ४ इस देश का घोड़ा. ५ घोड़ा।

अरबजियौ–सं०पु०—साधारण कांटेदार वृक्ष, इसकी लकड़ी मजबूत होती है।

अरबद–सं०पु० [सं० अर्बुद] १ अरावली पहाड़ का एक हिस्सा. २ आबू पहाड़।

अरबदगिर–सं०पु०यौ० [सं० अर्बुद+गिरि] आबू पहाड़।

अरबदियौ, अबरदीयौ–सं०पु० [सं० अर्बुद] आबू पर्वत (अल्पा.)
उ०—बादळ लूंबियौ बोह पालर बूठा चहुं दिस बादळ छायौ। मेहाजळ वाळौ मतवाळौ **अरबदियौ** मद आयौ।—आबू परवत रौ गीत

अरबद्दह–सं०पु० [सं० अर्बुद] आबू (नैणसी)

अरबद्ध–सं०पु० [सं० अर्बुद] १ आबू पहाड़. २ अरावली पहाड़ का एक नाम. ३ शरीर में एक प्रकार की गांठ वाला रोग. ४ गणित में दसवें स्थान की संख्या।

अरबिंद–सं०पु० [सं० अरविंद] १ कमल. २ सारस।

अरबिस्तान–सं०पु० [फा० अरबिस्तान] अरब देश जो एशिया के दक्षिणी-पश्चिमी रेगिस्तानी प्रदेश में स्थित है।

अरबी–वि०—अरब देश का, अरब देश संबंधी।
सं०स्त्री०—१ अरब देश की भाषा।
सं०पु०—२ अरब देशोत्पन्न घोड़ा।

अरबुद–सं०पु० [सं० अर्बुद] देखो 'अरबद्ध'।

अरबुदाचळ–सं०पु०यौ० [सं० अर्बुद+अचल] आबू पर्वत।

अरबुद्धनि–सं०स्त्री०—देखो 'अरबद्ध' (३) (अमरत)

अरबूद, अरब्बद–सं०पु०—देखो 'अरबद' (रू.भे.)। उ०—वीटियौ ग्वद कमंधां वणै, जांणा **अरब्बद** बद्दळां।—रा.रू.

अरब्बी—देखो 'अरबी' (रू.भे.)

अरभ–सं०पु० [सं० अर्भक] बालक (अ.मा.)
वि० [सं० अर्द्ध] अर्द्ध। उ०—पाया कुळतणीगत पावै, यौं पालवणी **अरभ** उपावै।—क.कु.बो.

अरभक–सं०पु० [सं० अर्भक] १ बालक। उ०—किसूं गरभ जरमन करै, **अरभक** हि न उछंत।—किशोरदांन बारहठ

अरभरम–सं०पु० स्वर्ण, सोना (अ.मा.)

अरमांन–सं०पु० [तु० अरमान] चाह, इच्छा, अभिलाषा।

अरमोड़ौ–वि० [सं० अरि=शत्रु+रा०–मोड़ौ=मोड़ने वाला] शत्रुओं को पीछे हटाने वाला, वीर, बहादुर।

अरयंद–सं०पु० [सं० अरि+इंद्र] सबसे बड़ा शत्रु, महाशत्रु।
उ०—चित सुध 'अभौ' पयंपै 'चिमनौ', ऊपर खड़ आया **अरयंद**।
—जादूराम आढ़ौ

अरय्यमा–सं०पु० [सं० अर्यमन] बारह आदित्यों के अंतर्गत एक आदित्य।

अरर–अव्यय—१ शोक व दर्द सूचक मुंह से निकलने वाली इस प्रकार की ध्वनि. २ विस्मयबोधक शब्द. ३ अत्यन्त व्यग्रता का सूचक शब्द।
सं०पु० [सं०] कपाट, किंवाड़। उ०—नाह न छोडै बीच ही, दड़ियां जिम दोटाय। घर घाते रण हूंसिया, आसी अरर जुड़ाय।—वी.स.

अरराट–सं०पु० [अनु०] १ घोर ध्वनि, घोर मंथन व दर्द की आवाज। उ०—जांणै सागर खीर रै मंदर रो **अरराट**।—वी.स.
[सं० अरि+राट्] २ शत्रु राजा।

अरळ–सं०स्त्री० [सं० अर्गला] १ अर्गला, व्योंड़ा। उ०—निकळिया फळसां सरा जिम **अरळ** जडांणी।—वीरमायण [सं० अरि] २ शत्रु, वैरी।

अरळावणौ, अरळावबौ–क्रि०अ०—देखो 'अरड़ावणौ'।

अरलु–सं०स्त्री०—१ एक औषधि का नाम (अमरत) २ एक फल विशेष (अमरत) ३ कड़वी लौकी (अमरत)।

अरवंत–सं०पु० [सं० अरि] शत्रु।

अरवजियौ–सं०पु०—कांटेदार एक प्रकार का वृक्ष विशेष जिसकी लकड़ी बड़ी मजबूत होती है। इसकी लकड़ी की प्रायः बैलगाड़ी के पहिये की नाभि बनती है।

अरवत–सं०पु० [सं० अर्वन] घोड़ा, अश्व (डि.नां.मा.)

अरवळ–सं०पु०—घोड़े के कान की जड़ में गर्दन की ओर होने वाली भौंरी। अगर यह दोनों ओर होती है तब शुभ तथा केवल एक ओर होने की अवस्था में अशुभ मानी जाती है। (शा.हो.)

अरवा–[सं० अर्वन] घोड़ा, अश्व (अ.मा.)

अरवाचीन–वि० [सं० अर्वाचीन] आधुनिक, नवीन (अ.मा.)

अरविंद–सं०पु० [सं०] कमल (ह.नां.)

अरविंदनयन–सं०पु०यौ० [सं०] १ वह जिसके नेत्र कमल के समान हों. २ विष्णु।

अरविंदनाभ–सं०पु०यौ० [सं० अरविंद+नाभि] विष्णु।

अरविंदबंधु–सं०पु०यौ० [सं०] सूर्य।

अरविंदयोनि–सं०पु०यौ० [सं०] ब्रह्मा।

अरविंदलोचन, अरविंदाक्ष–सं०पु०यौ० [सं०] देखो 'अरविंदनयन'।

अरवी–सं०स्त्री०—तरकारी के रूप में खाया जाने वाला एक प्रकार की कंद या जड़।

अरस–सं०पु०—१ आकाश। उ०—चलकर मजल निकट गिर पहुँचिय, चढ़ रज **अरस** फरक धुज चाहि।—र.रू. [सं० अर्श] २ बवासीर (अमरत). ३ छत, पटाव. ४ महल।
वि०—१ नीरस, फीका, शुष्क. २ अरसिक, असभ्य।

अरस-परस–वि० [सं० आदर्शस्पर्श] १ दर्शन, साक्षात्कार।
सं०स्त्री०—२ आंख-मिचौनी का खेल।
क्रि०वि०—प्रत्यक्ष, रूबरू।

अरसाथ–सं०पु० [सं० अरि+रा० साथ] अरिदल, शत्रुदल।

अरसाधनी–सं०स्त्री० [सं० अरिसादिनी] सेना (अ.मा.)

अरसाल–सं०पु० [सं० अरि+शल्य] १ गढ़, कोट, किला (डि.को.)। २ शत्रु के हृदय में शूल की तरह खटकने वाला, वीर, योद्धा।
उ०—आपां तौ जांनेती बणल्यां, बीन बणै भोपाळ। दोय जणां जांगड़िया बणकै, सिंधू द्यौ **अरसाळ**।—डूंगजी जवारजी री पड़
३ राजा कर्ण (अ.मा.)

अरसालौ–सं०पु० [सं० अरिशल्य] देखो 'अरसाल' (२)। उ०—भोम

विगाडूं भोमिया आया **अरसाला** ।—पा.प्र.

अरसि–सं०पु०—आकाश । उ०—उरिण वेळा लागो **अरसि**, वंस वधारण-वांन ।—वचनिका

अरसिक–वि० [सं०] जो रसिक न हो, अरसज्ञ, रूखा ।

अरसुरयोत–सं०पु०—भाटी वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति ।

अरसो–सं०पु० [अ० अर्सा] समय । उ०—दिन पांच-छै अरसा पड़ीया ।—चौबोली

अरस्स, अरस्सए, अरस्सि–सं०पु०—देखो 'अरस' (रू.भे.) । उ०—हुए रिणि हक्क किलक्क हमस्स, उडै रत छोळि दिसेह **अरस्स** ।—वचनिका

अरहंत–सं०पु० [सं० अर्हंत] जैनियों के पूज्य देवता ।

अरहट, अरहठ–सं०पु० [सं० अरघट्ट, प्रा० अरहट्ट, अप० रहट्ट] कुयें से पानी निकालने का रहँट । उ०—**अरहट** कूप तमांम, ऊमर लग न हुवै इती । जळहर एकी जांम, रेळै सब जग राजिया ।—किरपारांम

अरहटणो–वि०—शत्रुओं का नाश करने वाला ।

अरहटणौ, अरहटबो–क्रि०स०—शत्रुओं का नाश करना । उ०—देतौ परदक्षरणा आव दिल्ली **अरहट्टै** ।—आसियो मालो ।

अरहड–सं०पु०—अरहर नामक द्विदल (अमरत)

अरहण–वि० [सं० अरि+हन्] शत्रुओं का संहार करने वाला, वीर, योद्धा ।

अरहणा–सं०स्त्री० [सं० अर्हणा] पूजा, अर्चना (डि.को.)

अरहत–सं०पु०—१ पूजा. २ जिनदेव ।

अरहर–सं०पु० [सं० आढकी, प्रा० अडढकी] १ एकद्विदल अनाज जिसकी दाल बनाई जाती है, तूर । [सं० अरि+रा० हर] रिपु, वैरी, शत्रु । उ०—दंत दुहत्त्या ज्यांह हाथियां सबळ दळ । आवधां अरहरां चूर करणो अकळ ।—हा.झा.

अरहित–वि० [सं० अर्हित] पूजित, अर्चित (डि.को.)

अरहो–सं०पु० [सं० अर्ह] अत्यन्त आवश्यक कार्य ।

अरांणि–सं०पु० [सं० रण] युद्ध । उ०—पातळउ चड़िय हरि सज्जि पांणि, असुरांह थाट भेळण **अरांणि** ।—रा.ज.सी.

अरांन–सं०पु० [सं० अरि] शत्रु, रिपु ।

अरांन, अरांनी–सं०पु०—वह घोड़ा जो चलते चलते सवार के नीचे से जांघों के बीच में से होकर आगे निकल जाय (ऐबी)

अरांनो–सं०पु०—बहादुर, वीर । उ०—छक बळ रांण दळां नह छांना, भीच **अरांना** भड़ज भला ।—जवांनजी बारहठ

अरांम–सं०पु० [सं० आराम] बाग, उपवन ; [फा० आराम] १ चैन, सुख, मौज. २ विश्राम, थकावट मिटाना. ३ सुविधा. ४ शान्ति ।

अरांमखोर–वि०यौ० [फा० आराम+खोर] आरामतलब, आराम करने वाला । उ०—हूं जहां **अरांमखोर** तूं जहां तरयौ ।—ऊ.का.

अराई–सं०स्त्री० [सं० अहार्य] घास-फूस की बनी गेंडुरी जिस पर जलपात्र आदि रखते हैं, इंडुरी ।

अराक–वि०—१ अकड़ने वाला, अड़ने वाला । उ०—अरें न और के अगें **अराक** तें अरधा करें ।—ऊ.का. २ देखो 'ऐराक' (रू.भे.)

अराड़ो–वि०—१ बहुत, अत्यधिक. २ बढ़िया, सुंदर ।

अराज–वि०—बिना राज्य का ।

अराजक–वि० [सं० अ+राज+बुञ्] जहां राजा न हो, राजारहित, शासनरहित ।

सं०पु०—उपद्रव, अशान्ति, अराजकता ।

अराजकता–सं०स्त्री० [सं०] शासनाभाव, अशांति, अंधेर, विप्लव, क्रांति ।

अराट–सं०पु० [सं० अरि+राट्] १ शत्रु-राजा । उ०—खग झाट निलाट पल्लाट खळां, दियै काट निराट **अराट** वळां ।—पा.प्र. २ देखो 'अरराट' ।

अरात–वि० [सं० अ+रात्रि] रात्रिरहित ।

सं०पु० [सं० अराति] शत्रु, दुश्मन । उ०—विख लहराय बिया समवादी रोर जाय मत दाह **अरात** ।—क.कु.बो.

अराति, अराती–वि० [सं० अ+रात्रि] १ रात्रिरहित । [सं० अराति] २ शत्रु, वैरी (ह.नां.) । उ०—धरा प्रचार धूर में समग्ग बग्ग की धरै, मुरै **अराति** मग्ग में न पग्ग अग्ग में परै ।—ऊ.का.

३ दुष्ट, आततायी ।

सं०पु० [सं० अराति] १ फलित ज्योतिष में कुंडली का छठा स्थान. २ मनुष्य के आंतरिक शत्रु यथा—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य ।

अरातो–वि०—विरक्त, उदासीन ।

अरादो–सं०पु० [अ० इरादः] १ विचार, [रा०] २ दोस्ती, मित्रता ।

अराधणा–सं०स्त्री० [सं० आराधना] १ आराधना, पूजा, उपासना. २ विनय, प्रार्थना ।

अराधणौ, अराधबो–क्रि०स० [सं० आराधन] आराधन करना, प्रार्थना करना । उ०—समाधी साधू मैं अवर न अराधूं उर अरू ।—ऊ.का.

अराधणहार-हारौ (हारी), अराधणियौ–आराधन करने वाला ।

अराधिओड़ो-अराधियोड़ो-अराध्योड़ो–भू०का०कृ०—आराधन किया हुआ ।

अराधियोड़ो–भू०का कृ०—आराधन किया हुआ (स्त्री० अराधियोड़ी)

अरापत–सं०पु०—देखो 'ऐरावत' (डि.को.)

अराब–सं०पु० [फा०] १ छोटी तोप । उ०—वोम **अराबै** गाजियै ढोल हुवा सब ठौड़ ।—रा.रू. २ सेना, फौज । उ०—**अराबां** तणो असबाब अपणावियौ, भट खिलकता तणो भागो ।—बां.दा.

अराबा–सं०स्त्री०—१ तोप रखने की बैलगाड़ी. २ फौज की टुकड़ी ।

अराबो–सं०पु०—देखो 'अराब' । उ०—**अराबो** छोड दै आव री अटी नै, हमें हूं सांमहो खड़ै आयो ।—पहाड़खां आढ़ो

अरावळ–सं०पु० [फा० हरावल] सेना का अग्रभाग ।

अरावो–सं०पु०—सांप की कुंडली मारकर बैठने की मुद्रा (क्षेत्रीय–द.दा.)

अराह–सं०पु० [सं० अ+राह] कुमार्ग ।

वि०—मार्गरहित ।

अरिंद–सं०पु० [सं० अरि+इन्द्र] शत्रु, दुश्मन, रिपु।

अरि–सं०पु० [सं०] १ शत्रु, बैरी. २ लग्न से जन्मकुंडली में छठा स्थान (फलित ज्योतिष). ३ मनुष्य के आंतरिक शत्रु यथा—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य्य. ४ पहिया, चक्र।
अव्यय—और। उ०—देखि जठांणी लागौ छइ जेठ। भूखी कुंमळाणी अरि सूकइ छइ होठ।—वी.दे.

अरिग्रण–सं०पु० [सं० अरि+जन] अरिजन, शत्रुगण।
उ०—रवि रिपु भवन जकौ सुखरासी, अरिग्रण कुळ बळ करण उदासी।—रा.रू.

अरिक–सं०पु० [सं० आरेक] संदेह, शंक, शंका।

अरिकेसी–स०पु० [सं० अरि+केशी] केशी नामक असुर का शत्रु, श्रीकृष्ण।

अरिघड़–सं०स्त्री० [सं० अरि+घटा=दल] शत्रुदल।

अरिघन–सं०पु०—शत्रुघ्न। उ०—इक मांडवी वर भरथ अरिघन सतुत कीरत कोय।—रांम रासौ

अरिजण, अरिज्जण–सं०पु० [सं० अरिजन] १ देखो 'अरिग्रण' [सं० अर्जुन] २ देखो 'अरजुण'। उ०—दुरजोधन जिसड़ा दूसासण जुधिठिळ अरिजण भीम जिसा।—गोरधन बोगसौ

अरिथंड, अरिथाट–सं०पु० [सं० अरि=शत्रु+रा० थाट=समूह, दल] शत्रुदल।

अरिंद–सं०पु० [सं० अरि+इन्द्र] शत्रु। उ०—प्रवाड़ा अछूता खाटै भारथां अफेर पीठ, देर रीठ खागां यळां अरिंदां दाबूत।
—रावत हिम्मतसिंह सक्तावत रौ गीत

अरिदम–सं०पु० [सं० अरिंदम] शत्रुओं का दमन करने वाला।

अरिदळ–सं०पु० [सं० अरि+दल] शत्रुसेना।

अरिभंजण–वि०—क्षत्रुओं का संहार करने वाला।

अरियण, अरियांण–सं०पु०[सं० अरि+जन] शत्रुगण, वैरी। उ०—सबळ बोलियौ 'प्राग' समोभ्रम, अरियण विहर करां खग उत्तम।—रा.रू.

अरिया–सं०स्त्री०—तरककड़ी नामक एक प्रकार की ककड़ी (क्षेत्रीय)

अरियौ–सं०पु०—फोड़ा, फुंसी।

अरिराज–सं०पु०—१ शत्रु. २ शत्रुओं का नेता।

अरिल्ल–सं०पु०—एक प्रकार का मात्रिक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्रायें तथा अंत में दो लघु होते हैं।

अरिसाल–सं०पु० [सं० अरि+शल्य] शत्रु के हृदय में शूल की तरह खटकने वाला, वीर, योद्धा। उ०—महाराजा 'अभमाल' वडौ अरिसाल विवत्रौ।—रा.रू.

अरिस्ट–सं०पु० [सं० अरिष्ट] १ दुःख, पीड़ा, आपत्ति। उ०—दिन-दिन नखत्र गिरै दरसावै। अरिस्ट निरख आसुर अकुळावै।—रा.रू.
२ दुर्भाग्य, अमंगल, पापग्रहों का योग. ३ एक प्रकार का आसव या मद्य जो धूप में औषधियों का खमीर उठाकर बनाया जाता है. ४ वृषभासुर राक्षस. ५ उत्पात, उपद्रव।
वि०—१ दृढ़. २ अविनाशी. ३ बुरा. ४ मृत्युयोग्य।

अरिस्टनेमि–सं०पु० [सं० अरिष्टनेमि] १ कश्यप प्रजापति का नाम. २ जैनियों के एक तीर्थङ्कर।

अरिस्टा–सं०स्त्री० [सं० अरिष्टा] दक्ष प्रजापति की पुत्री जो गंधर्व की माता एवं कश्यप ऋषि की स्त्री थी।

अरिहंत–सं०पु०—जैनियों के एक तीर्थङ्कर। उ०—कै पूजै श्रीकंत नू कै पूजै अरिहंत। बांका मत विसवास कर, ए सह बराक असंत—बां.दा.
वि० [सं० अरि+हन्] १ शत्रुओं को नष्ट करने वाला.
[सं० अर्हत्] २ पूज्य, पूजनीय, स्तुति के योग्य। उ०—निमौ देव अरिहंत पुरिखि परधांन पुरातुम।—पीरदान लाळस

अरिहंतनर–सं०पु०यौ० [सं० अरि+हंत+नर] १ ईश्वर. २ काम, क्रोध, लोभ आदि विकारों को नष्ट करने वाला. ३ शत्रुओं का संहार करने वाला. ४ जैन-तीर्थङ्कर।

अरिहण, अरिहन–सं०पु०—देखो 'अरिघन'।

अरिहर, अरिहरि, अरिहरौ–सं०पु०—शत्रु के वंश का व्यक्ति, शत्रु। उ०—साबळां ऊजळां बीजळां सांफळी, धीव दे अरिहरां सीस घायौ।
—कछवाहा खंगारोत रौ गीत

अरिहा–सं०पु० [सं० अरिघ्न] शत्रुघ्न। उ०—भरथ अरिहा लछण भ्रात अग्रज सुभग।—र.ज.प्र.

अरी–सं०पु० [सं० अरि] शत्रु, वैरी (ह.नां.—रू.भे.)
अव्यय [सं० अयि] १ स्त्रियों के लिए एक सम्बोधन. [रा०] २ और उ०—रूप अपूरब पेखियौ, लावण लाडु अरी पकवांन।—वी.दे.
क्रि०वि०—इधर बुलाने के लिए प्रयुक्त (पु० अरौ)

अरीअंधार–सं०पु०यौ० [सं० अरि+अंधकार] अंधेरे का शत्रु, सूरज, सूर्य्य (डिं.को.)

अरीकुळ–सं०पु०यौ० [सं० अरि+कुल] शत्रु का वंश।
उ०—अरीकुळ आरा भयौ प्यारा सुभ आरा तें।—ऊ.का.

अरीझ–वि०—वह जो प्रसन्न न हो। उ०—अजरा जरै अरीझ रिझावै।
—ह.पु.वा.

अरीठौ–सं०पु०—रीठे का वृक्ष तथा उसका फल।

अरीढ़–वि०—पीठ न दिखाने वाला, वीर। उ०—मिळै न मीढ़ मीढ़ के अरीढ़ रीढ़ ते अरी।—ऊ.का.

अरीत–वि०— बिना किसी प्रकार की रीति का। उ०—अलीत अदीत अरीत अराह।—ह.र.
सं०स्त्री० [सं० अरीति] अनरीति, कुरीति, बुरी रस्म। उ०—ऐही भुजे अरीत, तसलीमज हींदू तुरक। माथै निकर मजीत, परसाद कै प्रतापसी।—सूरायच टापरधौ

अरीन–सं०पु० [सं० अरि] अरि, वैरी, शत्रु।

अरीनिकंदण–वि०यौ० [सं० अरि+निकंदन] शत्रुओं को मारने वाला। उ०—निरख छठै रिपु ग्रह ससिनंदण, कुळ मातुळ सुख अरीनिकंदण।
—रा.रू.

अरीपुलोम–सं०पु०यौ० [सं० अरि+पुलोम] इंद्र (डिं.को.)

अरीबंधु–सं०पु०यौ०—चंद्रमा।

अरीयण, अरीयांण–सं०पु०—देखो 'अरिग्रण'। उ०—आप न मुड़ियै जाय अरीयण, तौ आगै पाछै मुड़ैयर।—रावत चूंडा लखावत रौ गीत

अरीस–वि०यौ० [सं० अरि+ईश] बड़ा शत्रु।

अरीहण–सं०पु० [सं० अरि] शत्रु, दुश्मन (मि. अरिग्रण)
वि०—शत्रु का नाश करने वाला।

अरीहरि–सं०पु० [सं० अरि+रा० हरि] शत्रु के वंशज, शत्रु।
उ०—वाजुवा कमंध रचि पहां बोलावतौ, अरीहरि गांजतौ भुज पुकारै।—राठौड़ महाराजा जसवंतसिंह रौ गीत

अरुंखिका–सं०स्त्री० [सं० अरुंषिका] सिर के बाल उड़ने का एक रोग विशेष जो कफ और रक्त के विकार या कृमि के प्रकोप से होता है। यह इन्द्रलुप्त नामक रोग का एक भेद माना जाता है (अमरत) भाव प्रकाश के अनुसार इस रोग में शिर में अत्यन्त क्लेदयुक्त व्रण हो जाते हैं।

अरुंधती–सं०स्त्री० [सं०] १ वशिष्ठ मुनि की स्त्री का नाम. २ दक्ष की एक कन्या जो धर्म को ब्याही गई थी. ३ वशिष्ठ तारे के समीप सप्तर्षि मंडल में रहने वाला एक छोटा तारा (ऐसी किंवदंती है कि मृत्यु के छः मास पूर्व यह तारा नहीं दिखता). ४ नासिका का अग्र भाग।

अरुंधतीस–सं०पु० [सं० अरुंधती+ईश] वशिष्ठ मुनि।

अरु–अव्यय—१ और. २ पुनः, फिर।

अरुख–वि०— विरुद्ध, विमुख (एकाक्षरी)

अरुचि–सं०स्त्री० [सं०] १ रुचि का अभाव, अनिच्छा. २ घृणा, नफरत, वितृष्णा. ३ मंदाग्नि जिसमें भोजन की इच्छा नहीं होती।

अरुचिकर–वि० [सं०] जिससे अरुचि उत्पन्न हो, जो रुचिकर न हो।

अरुचिख–सं०स्त्री०—आग, अग्नि (नां.मा.)

अरुज–वि० [सं०] नीरोग, रोगरहित।

अरुजण, अरुजन–सं०पु [सं० अर्जुन] १ अर्जुनवृक्ष। उ०—वट तमाळ पीपळ विरख, अरुजन समी अपार।—रा.रू. २ अर्जुन, पार्थ।

अरुझणौ, अरुझबौ–क्रि०अ०—उलझना, फँसना।

अरुझाणौ, अरुझाबौ–क्रि०स०—उलझाना, फँसाना।

अरुझियोड़ौ–भू०का०कृ०—उलझा हुआ, फँसा हुआ।
(स्त्री० अरुझियोड़ी)

अरुठौ–वि०—देखो 'अरूठ'।

अरुण–वि० [सं०] लाल, रक्त (डिं.को.)
सं०पु०—१ सूर्य। उ०—दुज जळ मांझळ सांपड़ै, अरुण उदै री बार। गावै कं दातार गुण, कै गावै करतार।—बां.दा.
२ सूर्य का सारथी. ३ गुड़. ४ शब्दरहित अव्यक्त राग. ५ कुष्टभेद. ६ कुमकुम, गहरा लाल रंग, सिंदूर. ७ संध्याराग. ८ माघ मास का सूर्य्य।

अरुणचूड़–सं०पु०यौ० [सं०] कुक्कुट, मुर्गा।

अरुणता–सं०स्त्री० [सं०] ललाई, लालिमा। उ०—पहिलें मुख कै विखै अरुणता दीसण लागी।—वेलि. टी.

अरुणप्रिया–सं०स्त्री०यौ० [सं०] अप्सरा, सूर्य्य की स्त्री।

अरुणसिखा–सं०पु०यौ० [सं० अरुणशिखा] मुर्गा, कुक्कुट।

अरुणा–सं०स्त्री०—१ मजीठ. २ इंद्रायण. ३ उषा।

अरुणाई–सं०स्त्री० [सं० अरुण] लालिमा, ललाई। उ०—अरुणाई महाउर सी दरसै।—ला.रा.

अरुणानुज–सं०पु०यौ०—गरुड़ (इनके बड़े भाई सूर्य्य के सारथी थे) (अ.मा.) उ०—जस छळ जागणहार, धरपुड़ त्यागणहार धिन। अरुणानुज असवार कर छाया ज्यां सिर करै।—बां.दा.

अरुणावरज–सं०पु० [सं०] गरुड़ (ह.नां., अ.मा.)

अरुणी–सं०स्त्री०—१ ललाई. २ मेहँदी।

अरुणोद–सं०पु०यौ० [सं० अरुणोदय] उषाकाल, ब्राह्ममुहूर्त्त, तड़का, भोर।

अरुणोदधि–सं०पु०यौ० [सं०] मिश्र और अरब के बीच में स्थित एक समुद्र, लालसागर।

अरुणोदय–सं०पु०यौ० [सं०] सूर्योदय, उषाकाल, भोर, तड़का।
उ०—कै अरुणोदय कांति रही मिळि राजही।—बां.दा.

अरुणोदयसप्तमी, अरुणोदयसातम–सं०स्त्री०यौ०—माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी जिसमें सूर्योदय के समय स्नान करने का बड़ा महात्म्य है।

अरुथ–सं०पु० [सं० अर्थ] १ धन वित्त. २ अर्थ।

अरूं–अव्यय—और।

अरूड़–वि०—१ बहुत, अधिक. २ बढ़िया। उ०—अति आथ धांन धीणा अरूड़।—रांमदान लाळस

अरूड़णौ, अरूड़बौ–क्रि०अ०—एक के ऊपर एक अधिक संख्या में गिरना।

अरूच–सं०स्त्री० [सं० अरुचि] देखो 'अरुचि' (रू.भे.)

अरूठ–वि०—१ क्रुद्ध, नाराज. २ बलवान, जबरदस्त।

अरूढ़णौ, अरूढ़बौ–क्रि०अ० [सं० आरूढ़] चढ़ना, सवार होना।
उ०—इंद्र गै अरूढ़ गिरवांण झून सामां आया।—चावंडदान महड़ू

अरूप–वि० [सं० अ+रूप] १ जिसका कोई रूप न हो, निराकार।
उ०—अभंग अथाह अप्रेय अरूप, छछोह बदन्न मदन्न सरूप।—ह.र.
२ बदसूरत, कुरूप।
सं०पु०—विष्णु (ह.नां.)

अरूहणौ, अरूहबौ–क्रि०अ०—सवार होना, सवारी करना।
अरूहणहार-हारौ (हारी), अरूहणियौ–सवारी करने वाला।
अरूहिग्रोड़ौ-अरूहियोड़ौ-अरूहयोड़ौ–भू०का०कृ०—सवार।

अरूहियोड़ौ–वि०—सवार हुआ हुआ, आरूढ़ (स्त्री० अरूहियोड़ी)

अरे–अव्यय [सं०] आश्चर्य या संबोधनार्थक अव्यय।

सं०पु०—अरेटे का वृक्ष, देखो 'अरेटौ'।

अरेटौ, अरेठौ—सं०पु०—एक प्रकार का वृक्ष तथा उसका फल विशेष जिसको पानी में भिगोकर सोने-चांदी के आभूषणों को साफ किया जाता है।

अरेत—सं०स्त्री० [अ० अ+रैय्यत] दूसरों की प्रजा। उ०—बिजेत बांन जेत के निसांन घोरते बहे। रसा **अरेत** रेत को मुखग्ग टोरते रहे।—ऊ.का.

वि० [रा० अ+रेत=धूलि] धूलिरहित, बिना धूलि का।

अरेध—सं०स्त्री० [सं० आराधन] देखो 'आराधना'। उ०—तरै **अरेध** कर नागणेची नूं ल्यायौ।—रा.वं.वि.

अरेस—वि०—दागरहित, निष्कलंक। उ०—गढ़ गढ़ राफ राफ मेटै गह रेण खत्रीध्रम लाज **अरेस**।—गोरधन बोगसौ

सं०पु०—१ आकाश, आसमान। उ०—कपोळं गजां चोळ सिंदूर कैसं ओपै इंद्रधांनख जैसा **अरेसं**।—वचनिका

[रा० अ+रेस=पराजय] २ विजय, जीत।

अरेह—वि०—१ देखो 'अणरेह'. २ निष्कलंक। उ०—अपहड़ अथग **अरेह**, जिकौ बीनड़ियौ वधंतौ।—पहाड़ खां आढ़ौ

सं०पु०—पुत्र, बेटा। उ०—रांण उदैसिंह तणौ अरेहण, राव मालदेव तणौ **अरेह**।—दुरसौ आढ़ौ

अरेहण—वि०—१ योद्धा, वीर, नहीं नमने वाला। उ०—**अरेहण** बेहग जेम निगेम करै पख उजळा।—ल.पिं. २ बाधा डालने वाला। उ०—सांमि धरम चित सरम, आदि रज करम **अरेहण**।—रा.रू.

सं०पु० [सं० रेह=शोक+हन्=नाश] पुत्र, बेटा (रू.भे. अरेह) उ०—रांण उदैसिंह तणौ **अरेहण** राव मालदेव तणौ अरेह।
—दुरसौ आढ़ौ

अरेहौ—वि० [सं० अरि+हन्] पीछे न हटने वाला, वीर, जो हार न माने। उ०—आद नाथ लखधीर **अरेहा**, ऐ मछरीक ढाल दळ एहा।
—रा.रू.

सं०पु०—दुश्मन, शत्रु।

अरौ—सं०पु०—बैलगाड़ी के पहिए की गडारी और पुट्ठे के बीच में जड़ी रहने वाली लकड़ी की चौड़ी पटरी, आला।

क्रि०वि०—इधर बुलाने के लिए प्रयुक्त।

अरोग—वि० [सं० आरोग्यता] रोगरहित, नीरोग, भला-चंगा।

सं०पु०—सुख (डिं.को.)

अरोगणौ—वि० भोजन करने वाला, भक्षण करने वाला। (स्त्री० अरोगणी)

उ०—असुर सुर खोतरै मेछ **अरोगणी**, जोगणी जोत रै रूप जागै।
—खेतसी बारहठ

अरोगणौ, अरोगबौ—क्रि०स०—भोजन करना, भक्षण करना।

उ०—पहरण छाल **अरोगण** वन फळ।—गी.रां.

अरोगणहार-हारौ (हारी), अरोगणियौ—वि०—भोजन करने वाला।

अरोगाड़णौ-अरोगाड़बौ, अरोगाणौ-अरोगाबौ, अरोगावणौ-अरोगावबौ—रू०भे०—भोजन कराना।

अरोगिओड़ौ-अरोगियोड़ौ-अरोग्योड़ौ—भू०का०कृ०—भक्षण किया हुआ।

अरोगियोड़ौ—भू०का०कृ०—भोजन किया हुआ, भक्षण किया हुआ। (स्त्री० अरोगियोड़ी)

अरोगी—वि०—नीरोगी।

सं०स्त्री०—चिता। उ०—तद **अरोगी** चिणा सत्य करायौ तिका सत्यलोक पोंहती।—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात

अरोड़—वि०—१ जबरदस्त, बलवान, नहीं रुकने वाला। उ०—दीठौ जोड़ दुरग्ग री, बंधव खेम **अरोड़**। भारथ मांहै भीमसी, जांणै पारथ जोड़।—रा.रू. २ बहुत। उ०—वां दीध बगस दौलत **अरोड़**।
—वि.सं.

सं०पु०—समुदाय, झुंड। उ०—रिमां धू मरोड़ थाट खगाटां पाथरै रूप सुभट्टां **अरोड़** लीआ साथ रहै सदीव।—रांमकरण महड़ू

अरोड़णौ—वि०—रोकने वाला। उ०—सिरताज धराज वहै छिब सायक यूं खगराज **अरोड़णा** है।—क.कु.बो.

अरोड़ा—सं०पु० [सं० अरूढ़] खत्रियों के अंतर्गत पंजाब की एक जाति विशेष।

अरोड़ी—सं०पु०—एक प्रकार की अफीम विशेष। देखो 'आरोड़ी'।

उ०—केसरिया पोतां रूमालां में घातजै छै, **अरोड़ी** गाळजै छै।
—रा.सा.सं.

अरोड़ौ, अरोड़ौ—वि०—देखो 'अरोड़'। उ०—घण मोला स खरीदो घोड़ा समर **अरोड़ा** राखौ सूर।—बाघोर महाराजा सिवदांनसिंह

अरोपा—वि०—मजबूत, दृढ़। उ०—गांठ मखतूल अर सिया-बर बांण गिण, मेर ज्यूं **अरोपा** कीध माई। भांण रै ऊगवण थया वज्र लीक भल, 'अमर' नै दिया औ वचन आई।—खेतसी बारहठ

अरोम—वि० [सं०] रोम या बालरहित, निलोम।

अरोळी—सं०पु० [सं० हरावल] फौज का अग्र भाग, हरावल।

अरोहक—सं०पु०—सवार। उ०—अमरसी वाह मांणक तणां **अरोहक** वाह मांणक तुरंग अमरसी वाला।

अरोहण—सं०पु० [सं० आरोहण] १ आरोहण, चढ़ना, सवार होना। उ०—गुण पति आग्या सांहणी, अस्व **अरोहण** कज्जि।—रा.रू. २ सीढ़ी, सोपान. ३ अंकुर का प्रादुर्भाव।

अरोहणौ, अरोहबौ—क्रि०अ० [सं० आरोहण] चढ़ना, सवार होना। सं०—चढ़ाना।

अरोहित, अरोही—वि० [सं० आरोही] १ अंकुरित. २ सवारी किए हुए, सवार। उ०—सिरी घटियाल **अरोहित** सेर, सख्यां महताहळ माळ सुमेर।—मे.म.

अरौड़—सं०पु०—१ वेग (अ.मा.) २ देखो 'अरोड़' (रू.भे.)

अलंकार—सं०पु० [सं०] १ आभूषण, जेवर, गहना।

उ०—सुणीजै **अलंकार** झंकार सूतां, हुवै नींद बिक्षेप ताकीद हूंतां।
—मे.म.

२ किसी बात को चारु चमत्कार चातुर्य के साथ कहने का ढंग या रुचिर रोचकतापूर्ण प्रकाशन रीति (काव्य). ३ संगीत के अभ्यास के लिए स र ग म का विभिन्न तरीकों से प्रयोग। संगीत-रत्नाकर के मत से ६३ अलंकार माने जाते हैं. ४ वे हाव-भाव या आंगिक चेष्टाऐं जो नायिका के सौन्दर्य को बढ़ावें (साहित्य). ५ राजस्थानी की बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला. ६ छंदशास्त्र में प्रथम गुरु सहित चार मात्रा का नाम (डि.को.)

अलंकत, अलंक्रित–वि० [सं० अलंकृत] १ अच्छी तरह से सजाया हुआ, विभूषित। उ०—जदूकुळ-नायक सामिय-जग्ग, पदम्म-पताक-**अलंकत** पग्ग।—ह.र. २ चारु, चमत्कृत, काव्यालंकारयुक्त।

उ०—अरुच **अलंकत** अरथ सूं, निरगुण मन निरवाह। कुकवि ब्रह्म ग्यांनी तणी, रात दिवस इक राह।—बां.दा.

अलंक्रिती–वि० [सं० अलंकृती] अलंकार जानने वाला। उ०—आयां सुपन **अलंक्रिती** होण तणी नह होस।—बां.दा.

अलंग–क्रि०वि०—१ ऊपर या दूर। उ०—हासंग पेग्व महराज रंग, उडगयण बाज, तुर रा **अलंग**।—वि.सं. २ तरफ, ओर।

सं०स्त्री०—१ सेना का पक्ष. २ दिशा।

वि०—१ बहुत. २ ऊंची, उत्तंग। उ०—सफीलां **अलंग** आडावळा सरोतर सघर बुरजां गिरां नाग सामांन।— उमेदजी सांदू।

अलंगणौ, अलंगबौ–क्रि०स०—आलिंगन करना।

अलंगाणौ. **अलंगाबौ**–प्रे०रू०।

अलंगतौ, अलंगां, अलंगांण–क्रि०वि०—दूर। उ०—वरमा कावळ वीर महाजुध मंडिया, अर भग्गा **अलंगांण** आथांण उछंडिया।

—किसोरदांन बारहठ

अलंगाणौ, अलंगाबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०) आलिंगन कराना। देखो 'अलंगणौ'।

अलंगार–सं०पु०—योद्धा, वीर, बहादुर। उ०—कांनी कांनी भड़ज हूंकळै अणकांनी ऊभां **अलंगार**।—अज्ञात

अलंगी–क्रि०वि०—दूर।

अलंत–वि०—व्यर्थ। उ०—रहौ वीबरै रांमरस, अनरस घणौ **अलंत**। याहिज है धम आतमा ऐ तीरथ ऐ तप।—ह.र.

अळंबै–वि० [सं० अवलंबित] अवलंबित, आश्रित। (देवि.)

अळ–सं०स्त्री० [सं० इला] १ पृथ्वी, धरती (डि.को.). २ विष।

अल–वि० [सं० अलम्] व्यर्थ, निरर्थक। उ०—संयम सहाय **अल** अंतराय।

—ऊ.का.

सं०पु० [सं० अलि] १ भौंरा। [रा०] २ पानी, जल (ना.डि.को.) ३ वंश, गोत्र (कायस्थ). [सं०] ४ बिच्छू का डंक। उ०—या बात करण गोचर पड़तां ही गढ़ रा सिपाह प्रामारवी अली रा अंग री स्परस करतां **अल** रा चालवा में विलंब न होय तिण रीति सुणतां ही समीप आया।—वं.भा.

अलअळी–वि०—काला, श्याम (अ.मा.)

अळआर, अळआरौ–सं०पु०—निस्सार या निरर्थक शब्द।

उ०—ऊसर बैणां सूं स्रवती **अळआरां**, धूसर नैणां सूं ध्रवती जळधारां।—ऊ.का.

अलक–सं०स्त्री० [सं०] १ मस्तक के इधर-उधर लटकने वाले बाल, केश, लट, घुंघराले बाल। उ०—स्रम स्वेद कपोलन में झलकैं, **अलकं** दुहू नागिन सी तलकैं।—ला.रा. २ हरताल. ३ मंदार. [सं० अलक्ता] ४ महावर।

अलकनंदा–सं०स्त्री० [सं०] गंगोत्री के आगे भागीरथी की धारा से मिलने वाली गढ़वाल की एक नदी।

अलकमध्य–सं०पु० [सं०] भाल, ललाट (अ.मा.)

अलकलडैतौ–वि०—दुलारा, प्यारा।

अलका–सं०स्त्री० [सं०] १ कुबेर की पुरी (यौ० अलकापति)

अलकाधारी–सं०पु० [सं० अलकाधारिन्] १ अलकावलि धारण करने वाला. २ श्रीकृष्ण। उ०—मोर मुगट माथ्थां तिलक, बिराज्यां कुंडळ **अलकाधारी** जी।—मीरां

अलकानगरी–सं०स्त्री० [सं०] कुबेर की पुरी।

अलकापत, अलकापति–सं०पु०यौ० [सं० अलकापति] १ कुबेर। (अ.मा., डि.को.) २ आठ दिग्पालों में से एक।

अलकापुरी–सं०स्त्री० [सं०] कुबेर की पुरी।

अलकावळ, अलकावळि–सं०स्त्री०यौ० [सं० अलकावलि] केशों का समूह, लटों की राशि। उ०—ईंढी कवडाळी माथै पर ओडी, छैली **अलकावळ** मुखड़ै पर छोडी।—ऊ.का.

अलक्क–सं०पु०—देखो 'अलक' (रू.भे.)

अलक्ख–वि० [सं० अलक्ष] १ जो लक्ष या लाख के बराबर न हो। [सं० अलक्ष्य] २ जिसका लक्ष्य न किया गया हो, न देखा हुआ, अदृश्य। उ०—**अलक्ख** आकार अणलेप अवगत अनंत संतहित रूप साकार सारे।—र.रू. (यौ० १ अलक्खनिरंजन. २ अलक्खपुरख) ३ जिसका लक्षण न कहा जा सके। उ०—**अलख** पुरुस आदेस, देस बचाय दयानिधे। वरणन करूं विसेस, सुह्रद नरेस प्रतापसी।

—दुरसौ आढ़ौ

सं०पु०—१ ईश्वर, परब्रह्म (डि.को.) (क्रि०प्र० जगावणौ)

कहा०—१ अलख पुरख री माया, कठै धूप कठै छाया—कहीं सुख, कहीं दुःख, यही ईश्वरीय लीला है। २ अलख भरोसे ऊकळै आधण ईसरदास—सब कार्य ईश्वर के भरोसे चलते हैं, सब प्रभु की माया है।

२ भिक्षार्थ भिक्षाटन करते समय दशनामी संन्यासियों द्वारा उच्चारण किया जाने वाला शब्द। (रू.भे. अलख)

अलक्षण–सं०पु० [सं०] अशुभ या बुरा लक्षण।

वि०—चिन्ह या संकेतरहित।

अलक्ष्य–वि० [सं०] देखो 'अलक्ख'।

अलख–सं०पु०—१ तीर (डि.नां.मा.)

२ पानी या कीचड़ में अधिक समय तक रहने से होने वाला पैरों या हाथों का रोग (अमरत). ३ देखो 'अलक्ख' नं० २। उ०—भटकै कर कर भेख, घर घर अलख जगावता। दुनियां रा ढंग देख, मिळसी पनिया मोतिया।—रामसिंह सांदू

वि०—देखो 'अलक्ख' (रू.भे.)

अलखधारी, अलखनांमी—सं०पु०यौ०—गोरखनाथ के अनुयायी एक प्रकार के साधु।

अलखपुरख—सं०पु०यौ० [सं० अलक्ष्य+पुरुष] अदृश्य व्यक्ति, ईश्वर। उ०—अलखपुरख घट घट रह्या भरपूर समाई।—केसोदास गाडण

अलखभुयण—सं०पु०यौ० [सं० अलक्ष्य+भुवन] स्वर्ग। उ०—जस बाखांण राजपंछ बाजै, अलखभुयण धण सुणै इम।
—महारांणा जगतसिंह रौ गीत

अळखांमण—सं०स्त्री०—१ शरारत, उद्दंडता। उ०—अतरी अणहूँतीह अळखांमण न चलै अठै, बळ हूळ बापोतीह जठै तुज्ज पतरी जमी।
—पा.प्र.

२ उदासीनता, खिन्नता (मि० अळखांमणौ)

अळखांमणौ, अळखांवणौ—वि०—१ खराब, बुरा, अप्रिय. २ खिन्न-चित्त। उ०—ऐता होश्रै अळखांमणा, जो मांडै घर वास।—ढो.मा. ३ उद्दंड, शरारती, भयावह। उ०—बूडा रौ बेटोह, अत घेटौ अळखांमणौ। खींचां सूं खेटोह, करसी वेगौ इज कमध।—पा.प्र.

अळखेलियौ—वि०—योद्धा, जबरदस्त। उ० लड़ै गढ़ कोठिया वणांहड़ो ले लियौ, बकारै रखै सीसोद अळखेलियौ।—हुकमीचंद खिड़ियौ

अलग—क्रि वि० [सं० अलग्न] १ पृथक. २ दूर, अति दूर। देखो 'अलग्ग' (रू.भे.)

अलगगीर—सं०पु० [अ० अरकगीर] घोड़े की पीठ पर रखा जाने वाला वह कम्बल या नमदा जिस पर जीन या चारजामा कसते हैं।

अलगचौ—सं०पु०—देखो 'अलगोजौ' (रा.सा.सं.)

अलगरज, अलगरजी—वि० [अ० अलगरज] मस्त, उन्मत्त, बेपरवाह। उ०—भल अलगरजी ओड, आसरौ राखै प्यारौ। करै न दूजौ कांम, लिगां जौ डैरौ लारौ।—दसदेव

अलगरद—सं पु० [सं० अलगर्द] जल में रहने वाले विषहीन सर्प व मेंढ़क उ०—परंतु इसड़ा राग रा रिझवार अलगरद विनेसम तौ कठै न जांणिया।—वं.भा.

अळगां, अळगा—क्रि०वि० [सं० अलग्न] दूर, अलग, फासले पर।

अलगूंजौ—सं०पु०—देखो 'अलगोजौ' (रू.भे.)

अळगौ—क्रि०वि० (स्त्री० अळगी) १ दूर. २ पृथक।

अलगोजौ—सं०पु० [अ० अलगोजा] एक प्रकार की बांसुरी। उ०—रोजा निसवासर संठां में साजै, बेंक्रति कंठां में अलगोजा बाजै।—ऊ.का.

अळगौ, अळग्ग, अळग्गौ—क्रि०वि०—१ अलग, पृथक, दूर। उ०—सरम सांमध्रम हूँत सपग्गौ। अधरम हूँता रहै अळग्गौ—रा.रू.

२ दूर, बहुत फासले पर। उ०—ढोलइ चित्त विमासियउ, मारू देस अळग्ग। आपण जाए जोइयउ, करहां हुंदउ वग्ग।—ढो.मा.

अळघौ, अळधौ—क्रि०वि०—१ अलग, पृथक. २ दूर, फासले पर। (रू.भे. अळगौ)

अलड़—सं०पु०—वह जो लड़ा न हो। उ०—अलड़ अलंगे ओदकै, भारथ खग भिड़वाव। तौ ऊभां करनेस तण, पण न लागै दाव।
—पदमसिंह री बात

अलड़-बलड़—वि०—अंड-बंड, अंट-संट, अव्यवस्थित।

अलड़ौ—वि० [स्त्री० अलड़ी] अल्हड़, मनमौजी, लापरवाह, भोला। कहा०—अलड़ौ जोबण भींतां रै लगावण नै को हुवै नी—अल्हड़ यौवन दीवारों के लगाने को नहीं होता, किसी वस्तु का आधिक्य होने पर भी वह व्यर्थ नहीं गँवाई जाती।

अलज—वि०—बुरा, खराब। उ०—इंद्र गौतम अहिलिआ अलज चारित्र अनंत, रांम सुणि ए राजा रिख पाप सराप परसंग।
—रांमरासौ

देखो—'अलिज्ज'।

अळजउ—सं०पु०—मनमुटाव। उ०—भाऊ भाट संदेसड़उ, दिसि सयणां कहियाह। कीयउ मारू अळजउ, बांहां दे मिळियाह।—ढो.मा.

अळजगउ—क्रि०वि०—१ अलग, पृथक. २ दूर, फासले पर। (मि० अळजयउ)

अळजयउ—क्रि०वि०—१ अलग, पृथक. २ दूर, फासले पर। उ०—ढोलउ मारू अळजयउ, साईं दे मिळियाह।—ढो.मा.

अलज्ज—वि० [सं०] निर्लज्ज, लज्जाहीन। उ०—ए अपराधी आतमा, ओगुण एह अलज्ज।—ह.र.

अळजो, अळजौ—वि०—उद्विग्न, चिंतित, उत्कंठित। उ०—अलवेला अळजौ घणौ, देखण पीय दीदार।—ढो.मा. सं०स्त्री०—उत्कंठा, अभिलाषा। उ०—चित मिळवारी चाहि, राति दिवस अळजौ रहै। आऊं भुंइ अवगाहि, जाणू सयण कन्है 'जसा'।
—जसराज

अलटौ—सं०पु०—जुर्म, कलंक।

अलता—सं०स्त्री० [सं० अलक्तक] मेंहदी, महावर। उ०—पाय लाखीणी धरमी रै मोचड़ी, अलतां राता छै पांव ओ।—लो.गी.

अलतो-अलतौ, अळतो-अळतौ—सं०पु० [सं० अलक्तक] १ मेंहदी, महावार। [रा०] २ ध्वंश, नाश।

अळथा—वि० [सं० अल्] बहुत, अधिक। उ०—सजण अण सजण हुआ, ओह अळथा भार। विरह महासिर उलटे, कंत न कीधी सार।
—ढो.मा.

अलद्ध—वि० [सं० अलब्ध] भिन्न, पृथक, अलग। उ०—अवाळ अवद्ध अकाळ अक्रम्म, अपाळ अलद्ध अभाळ अभ्रम्म।—ह.र.

अलप—वि० [सं० अल्प] अल्प, थोड़ा, किंचित्। उ०—रोग अगिन अरु राड़, जांण अलप कीजै जतन, बधियां पछै बिगाड़, रोक्यां रहे न राजिया।—किरपारांम

अलपता, अलपताई–सं०स्त्री० [सं० अल्पता] १ कमी, न्यूनता. २ छोटाई, सूक्ष्मता। उ०—बाहिर भीतर सुनि थूळ मांहै अलपता। —केसोदास

[रा०]—३ शैतानी, बदमाशी।

अलपतौ–वि०—चंचल, बदमाश, शैतान।

अलप्प–वि० [सं० अल्प] देखो 'अलप'। उ०—रहै विलंबे रांमरस, अनरस गिणे अलप्प।—ह.र.

अलफ–सं०पु०—अ० अ—अगले दोनों पैर उठा कर पिछली टांगों पर घोड़े का खड़ा होना।

अलफौ–सं०पु० [अ० अलफा] प्राय: मुसलमान फकीरों के पहनने का एक प्रकार का ढीला-ढाला बिना बांह का बहुत लंबा कुरता, गुदड़ी।

अलबत, अलबता, अलबत्ता–क्रि०वि० [अ० अलबत्ता] १ अलबत्ता, निसंदेह, बेशक। उ०—कठण पड़े जद कांम, हांम पकड़ गाढ़ो रहै। तो अलबत ही तांम, रांमभली ह्वै राजिया।—किरपारांम

२ किन्तु, लेकिन। उ०—रहै भूखौ बन राव, अलबत घास न आचरै। घालै हाथळ घाव, मैंगळ ऊपर मोतिया।—रायसिंह सांदू

त्रि०—कुछ, किंचित। उ०—नव द्वारां रा रसिक नवेला, अलबत भग अधिकाई—ऊ.का.

अलबतौ–वि०—१ देखो 'अलपतौ'।

२ घुमाया हुआ, हिलाया हुआ (रा.रा.)

अलबेलापण, अलबेलापणौ–सं०पु०—बांकापन, सजधज, छैलापन, सुंदरता. २ अनोखापन, विचित्रता. ३ अल्हड़पन, बेपरवाही।

अलबेलियौ–वि०—देखो 'अलबेलौ'। उ०—आलीजा अलबेलिया हो हंजा हुसनाक।—बां.दा.

म०पु०—एक अश्लील मारवाड़ी गीत।

अलबेलौ–वि० [सं० अलभ्य+ला] (स्त्री० अलबेलण) १ बांका, छैल-छबीला, बना-ठना, सुंदर। उ०—बिरछां बेलां पर चढ़णै बुधि चाही, उर में अलबेलां बेलण सुध आई।—ऊ.का.

२ अनूठा, अनोखा. ३ अल्हड़, मनमौजी, तरंगी।

अलबेस–सं०पु० [सं अल] पहनावा। उ०—करे आदेस आरोहिया केसरी, मरद अलबेस री जोगमाया।—मे.म.

अलभ्य–वि० [सं०] न मिलने योग्य, अप्राप्य, जो कठिनता से मिल सके, दुष्प्राप्य, दुर्लभ, अमूल्य। उ०—गाय किसी'क अलभ्य वस्तु भगवांन दुनियां रै लाभ रै वास्तै वणायी है—वरसगांठ

अलम–सं०पु० [अ०] १ रंज, दुःख. २ झंडा, पताका. [रा०] ३ पहाड़, पर्वत. ४ समूह, भीड़. ५ सामर्थ्य. ६ निषेध।

अव्यय० [सं० अलम्] यथेष्ट, पर्याप्त, पूर्ण।

वि०—१ व्यर्थ, निरर्थक. २ बहुत।

अलमिति–अव्यय [सं० अलम्+इति] बस, काफी। उ०—भमियां भूगोळक नभगोळक भाई, कविजण करुणारस अलमिति अधिकाई। —ऊ.का.

अलमसत–वि० [फा० अलमस्त] निर्द्वन्द, बेफिक्र, मस्त। उ०—गोदड़ कानफाड़ जोगी जंगम...अलमसत फकीर जिके संसार नूं भागा थका फिरै।—रा.सा.सं.

अलमारी–सं०स्त्री० [पुर्तगाली–अलमारियो, अं० अलमिरा] वस्तुओं आदि के रखने के लिए खाने या दर बनी दीवार में जड़ी अथवा धरती पर ऊंचाई में खड़ी रहने वाली बड़ी संदूक, आलमारी।

अलमित्र–सं०पु०—गरुड़ (ना.मा.)

अलरक–सं०पु० [सं० अलर्क] १ पागल कुत्ता. २ सफेद आक।

अलल–सं०पु०—१ घोड़ा। उ०—पारख गुण करै ठिकांणै पूछै, उच्छळता बगसै अलल।—हुकमीचंद खिड़ियौ

२ भाला (ना.डिं.को.) (रू.भे. अलल्ल)

अललटप्पू–वि०—१ अंट-संट, अंड-बंड. २ बिना अंदाज, बिना उचित लक्ष्य साधे. ३ बेठौर-ठिकाने का. ४ थोड़ा।

अललहिसाब–क्रि०वि०—बिना हिसाब किये, योंही, बिना सोचे-समझे. अटकलपच्चू।

अलल्ल, अलल्लौ–सं०पु०—देखो 'अलल'। उ०—उरं ढाल सारीख चौड़ा अलल्ला, भिड़जां बांहूं जंघ बे पक्ख भल्ला।—वचनिका

अलवतौ–वि०—देखो 'अलपतौ'।

अलवबो, अलवबौ–सं०पु०—आफत। उ०—आ बात सुणि रावळजो नै घणो मोच हुवौ नै कह्यौ, म्हां तौ सोनिगरां सू भलौ कीयौ थौ पिण मांहिजै गळै अलवबौ छोकरी री नांखियौ।

—वीरमदे सोनगरा री बात

अळवळाट–सं०पु०—१ व्यर्थ का कार्य. २ बकवाद।

सं०स्त्री०—३ व्यर्थ की भीड़, चंचलता।

अलवलियौ–वि०—शौकीन। उ०—बाकरां नूं बरकौ करण रै पगां अलवलियां मोटयारां नूं हुकम कीजै छै।—रा.सा.सं.

अळवांणौ–वि० [सं० अनुपानह] नंगे पैर, बिना जूती पहने हुए उ०—झगड़ै गाढ़ा अळवांणा पगां ऐक बेंत च्यार आंगळ भाळ तार री अढ़ाई आंगळ भोई।—बां.दा.

अलवि–वि०—चंचल। उ०—खांडा पटा तणा गजवेलि, अलवि आगिला हींडइ गेलि।—कां.दे.प्र.

अलवी–सं०पु०—१ अली की वह संतान जो हसन और हुसैन से उत्पन्न न होकर अन्य बेटे या बेटियों से उत्पन्न हुई थी।

२ देखो 'अलवि' (रू.भे.)

अलवेलौ–वि०—देखो 'अलबेलौ'। उ०—जिके अलवेला ठाकुर जुवांन तिके केसरिया वागां पहिरै बैठा था त्यां वेगि सघळां ही बगतर पहिरया।—वेलि. टी.

अलवौ–वि०—१ अनावश्यक बातें करने वाला. २ अविश्वासपात्र. ३ चंचल, नटखट।

अलस–सं०पु०—एक प्रकार का अजीर्ण रोग (अमरत)

अलसक–सं०पु०—एक प्रकार का कुष्ट रोग (अमरत)

अळसणी, अळसबौ–क्रि०अ० [सं० अलस] आलस्य करना।

अळसणहार-हा.रौ (हारी), अळसणियौ—आलस्य करने वाला।

अळसाणौ, अळसाबौ—रू०भे०

अळसियोड़ौ, अळसियोड़ौ, अळस्योड़ौ—भू०का०कृ०

अळसाक–सं०पु०—आलस्य। उ०—तजी **अळसाक** अलप है जीवन, समझि देखि अभिमांनी वे।—ह.पु.वा.

अळसाणौ, अळसाबौ–क्रि०अ०—१ आलस्य करना, अलसाना।

उ०—विस कमाय अगखाय, मोह पाय **अळसाय** मति। जनम इस्यारथ जाय, रांम भजन बिन राजिया।—किरपारांम

२ कुम्हलाना, मुरझाना। उ०—बेगी बावड बावळी, धांन रह्यौ **अळसाय**, पांनां मुख पीळीजीयौ, झुर झुर नीचा जाय—बादळी।

अळसियौ–सं०पु०—केंचुआ नामक बरसाती कीड़ा जो एक बालिश्त लंबा होता है (एकाक्षरी)

अळसियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ आलस्य किया हुआ।

२ कुम्हलाया हुआ। (स्त्री० अलसियोड़ी)

अलसी–सं०स्त्री० [सं० अतसी] एक पौधा विशेष तथा इस पौधे के बीज।

अळसीड़ौ–सं०पु०—घास-फूस, कूड़ा-कचरा, अव्यवस्थित सामान (क्षेत्रीय)

अळसेट–सं०पु० [सं० अलस] ढिलाई, व्यर्थ की देर, टालमटूल, चकमा (क्षेत्रीय)

अळसोटौ–सं०पु—खेत में फसल के साथ होने वाला घास-फूस (क्षेत्रीय)

अळह–वि० [सं० असफल] १ वृथा, फजूल, व्यर्थ।

उ०—औ सादूळौ ऊछळै, छर उछज कर छोह। गाजै जळहर गयण में, जाय **अळह** तै जोह।—बां.दा. २ अलग, पृथक।

अलहणपुर–सं०पु०—अन्हिलवाड़ा जो राजा जयसिंह सिद्धराज की राजधानी थी (इति.)

अलहदा–वि० [अ०] अलग, भिन्न, जुदा।

अलहिया–सं०स्त्री०—सब कोमल स्वरों की एक रागिनी जो हिंडोल राग की स्त्री कही जाती है (संगीत)

अलहैरी–सं०पु० [अ०] एक ही कूबड़ वाला एक प्रकार का अरबी ऊँट।

अलाण, अलान–सं०पु० [सं० आलान] १ हाथी के बाँधने का खूटा या सिक्कड़. २ एक प्रकार का पौधा जिससे झाड़ू बनाए जाते हैं. [अ० इअलान] ३ घोषणा, मुनादी।

अलांणौ–वि०—बिना चारजामा कसा हुआ ऊँट।

उ०—खेतां काढ़ै खाल, जोड़कर ऊँट **अलांणा**। —दसदेव

अलांबु–सं०पु० [सं०] एक फल विशेष, देखो 'अरलू' (अमरत)

अलांम–वि० [अ० अल्लामा] १ बदमाश, दुष्ट, नटखट।

उ०—रटै रहीम न रांम, भेस बदल भमता फिरै। इसड़ा धुरत **अलांम** चरण पुजावै चकरिया।—मोहनलाल साह

२ नीच. ३ कोरी बातें बनाने वाला. ४ चोर (ह.नां., अ.मा.)

अळा–सं०स्त्री० [सं० इला] इला, पृथ्वी, भूमि। उ०—थाट थंभ अभंग सारंग नाहरां थाहरां, **अळा** तौ सारखां हाथ आवै।

—रावत सारंगदेव रौ गीत

अला-आयु–सं०पु०—वह घोड़ा जिसकी पीठ मयूर के रंग की हो। (अशुभ—शा.हो.)

अळाई–सं०स्त्री० [सं० अलाती] १ छोटी फुन्सी, पिटिका. २ आफत, अलाबला। उ०—आज वेढ़ रै दिन म्हारै माथै छत्र मांडो, आ **अळाई** मांनूं प्रिथीराज री लागै।—नैणसी

३ सुस्ती, आलस्य. ४ घोड़े की एक जाति-विशेष।

वि० [सं० आलस्य] आलसी, सुस्त, काहिल।

अलाखौ–सं०पु० [अ० इलाका] रियासत, कई गाँवों की जमींदारी (रू.भे.)

उ० काटचा कैर बैरी वां **अलाखा** काट लीनां। देवै उदैपुर का ग्रांम साटै काट लीना।—शि.वं.

अलाग–सं०स्त्री०—वह बंदूक जो लक्ष्य पर ठीक न लगे। वह बंदूक जिसकी मार तेज न हो।

वि०—१ भिन्न, पृथक। उ०—हूँ सेवक प्रिथीदास तणौ हरि, अवरां देवां लाग **अलाग**। रूड़ौ तिको प्रसाद रावळौ, भूंडौ तिको अमीणौ भाग।—प्रिथीराज राठौड़ २ आसक्ति-रहित।

क्रि०वि०—दूर, पथक।

अलागलाग–सं०पु०—नृत्य या नाचने का एक ढंग।

अलागीर–सं०पु० (अ० अल्लाह+फा० गीर) मुसलमान।

अलागौ–वि०—१ नहीं लगने वाला. २ बिना लगाव।

अलाचारी–सं०स्त्री० [सं० आलापचारी] देखो 'आलापचारी'।

उ०—सनमुख कलावंत अदंग ले **अलाचारी** करै। पाखती सागड़द पैसारौ लोग ऊभौ रहै।—कहवाट सरवहिया री बात

अलाज–वि० [सं० अलज्ज] बेशर्म, निर्लज्ज।

अलात–सं०पु० [सं०] १ अधजला, जलता हुआ काठ या अन्य कोई पदार्थ २ देखो 'अलातचकर'। उ०—चक्र बंधै सिस सूर कै, जिम आवत जांणै। गोळाकार **अलात** गत, पूरब पिछमांणै।—मोडजी आसियौ ३ चक्र (डिं.को.) ४ पलीता। उ०—**अलात** दे दे'र गोळां री गजर लगायौ।—वं.भा.

अलातचकर, अलाचक्र–सं०पु० [सं० अलातचक्र] १ किसी जलते हुए पदार्थ या लकड़ी को चारों ओर घुमाने से बनने वाला आग का एक चक्र, आग का घेरा, गोना या वृत्त. २ एक प्रकार का नृत्य-विशेष।

अलादी–वि० [फा० अलाहिदा] पृथक, भिन्न, दूसरी।

उ०—तिण वास्तै म्हांसूं आ बात दीवांण रै कहै व्है नहीं नै रतनसीजी फुरमावै तौ बात **अलादी** तरै रांणै रतनसी सांमौ जोयौ। —नैणसी

अलाप–सं०पु०—देखो 'आलाप'

अलापणौ, अलापबौ–क्रि०स० [सं० आलापन] १ अलापना, तान लगाना, स्वर देना या उठाना। उ०—वीण **अलापी** देखि ससि, किस गुण मेल्ही वीण।—ढो.मा. २ बोलना।

अलापियोड़ौ–भू०का०कृ०—अलापा हुआ।
(स्त्री० अळापियोड़ी)

अलाब–सं०पु०—१ आग का ढेर. २ अलाव।
वि०—क्रोधित, लाल। उ०—लिखिया खत धिखिया चख अलाब।
—वि.सं.

अला-बला–सं०स्त्री०—देखो 'अलाय-बलाय'।

अलाय–सं०स्त्री०—१ इल्लत।
(यौ० अलायबलाय)
कहा०—आयी अलाय, दी चलाय—उधर से आया, इधर दे दिया।
२ बेकारी. ३ एक छोटा कांटेदार पौधा जिसे ऊँट बड़े चाव से खाता है। इसकी टहनियाँ बहुत पतली होती है। (क्षेत्रीय)

अलायची–सं०स्त्री०—देखो 'इलायची'।

अलायदौ–वि० [अ० अलहदा] (स्त्री० अलायदी) पृथक, जुदा, भिन्न, विलग। उ०—आयनैं कोटड़ी में एक अलायदौ नोरौ छै तिणमें डेरौ दिरायौ।—जैतसी ऊदावत री बात
क्रि०वि०—एक तरफ, एक ओर, पृथक। उ०—मारवणी जी अलायदा ढोलिया सूं ऊतरि बैठा छै।—ढो.मा.
वि० [अ० अल्लाह+पं०—दा] अल्लाह, अल्लाह संबंधी।

अलाय-बलाय–सं०स्त्री० [फा० बला=आपत्ति] इल्लत, आफत, व्यर्थ की आफत।

अलाव–सं०पु० [सं० अलात] १ तापने के लिए जलाया हुआ अग्नि का ढेर, अग्नि-राशि। उ०—कोपत हुल कर बिनु करै अंखिन धकत अलाव।—वं.भा. २ कुम्हार का आवां।
उ०—जठै गजारूढ़ चालुक्यराज सामुहौ धकाय अलाव धकतां लोयणा मिळाय आपरा पखरैतां नूं प्रेरणा रै काज अनेक प्रसंसा रा प्रपंच भणियौ।—वं.भा.

अलावा–क्रि०वि० [अ०] अतिरिक्त, सिवाय।

अलास–सं०पु०—गले का एक रोग (अमरत)

अलाह–वि० [सं० अ+लाभ] लाभरहित, विरक्त, वैरागी।
उ०—अलाह अगाह अबाह अजीत, अमात अतात अजात अतीत।
—ह.र.
सं०पु० [अ० अल्लाह] खुदा, अल्लाह। उ०—कैरव ज्यूं आया कमंध, पांडव ज्यूं पतिसाह। यां हरिनांम उचारिओ, वां रहिमांण अलाह।—वचनिका

अलाहिदौ–वि० [अ० अलाहदा] पृथक, एकान्त, विलग।
उ०—अलाहिदौ महिल एक अभोगत पैली करायौ थौ, तिण मांह राखी।—वीरमदे सोनगरा री बात

अलिंग–वि० [सं०] लिंगरहित, चिन्हरहित, बिना लक्षण का।
उ०—अभंग अलिंग अद्रंग अदेस।—ह.र.
सं०पु०—१ ईश्वर (वेदांत) २ ऐसा शब्द जो दोनों लिंगों में प्रयुक्त होता हो।

अलि–सं०पु० [सं०] १ भौंरा, भ्रमर (डिं.को.) २ कोयल. ३ गरुड़ (अ.मा.). ४ वृश्चिक राशि. ५ बिच्छू, वृश्चिक।
सं०स्त्री० [सं० आलि] सखी, सहेली (डिं.को.)
वि०—१ अतिशय, बहुत, अति (अ.मा.) २ चंचल।

अलिअळ–सं०पु० [सं० अलि] भ्रमर, भौंरा (नां.मा.)
देखो 'अलियळ' (रू.भे.)

अलिक–सं०पु० [सं०] ललाट, माथा, मस्तक। उ०—बभूति की टीकी निज अलिक नीकी नित बसै।—मे.म.
वि० [सं० अलीक] निष्कलंक, पवित्र, शुद्ध।

अलिकावळि–सं०स्त्री० [सं० अलकावलि] बालों का समूह, केशों की लट, अलका। उ०—केमरिआ अलिकावळि काळा नाग ज्यौं चिटुला ज्यौं चिळक नै रही छै।—रा.सा.सं.

अलिकेंदु–सं०पु० [सं० अलिक+इंदु] महादेव, शिव। उ०—अलिकेंदु बिंदु अदेव मरदण वारिधी विस जारणं।—ला.रा.

अलिप–वि० [सं० अलिप्त] अलिप्त, निर्लेप।

अलिपद*–वि०—छः।

अलियळ–सं०पु०—१ समुद्र, सागर (ना.डिं.को.) उ०—आचां अलियळ विरद उदार।—क.कु.बो.
२ भ्रमर, भौंरा। उ०—अलियळ सहज सुबास बस, रहै निकट दिन रात।—बां.दा.
सं०स्त्री०—३ अग्नि, आग (ना.डिं.को.)

अलियार–सं०पु०—योद्धा (अड़ियल)
वि०—मस्त।

अलियावळि–सं०स्त्री०यौ० [सं० अलि+अवलि] भौंरों की पंक्ति।
उ०—झर लागि सुगंध मनो झपटी, अलियावळि अंगन की लपटी।
—ला.रा.

अळियौ–वि०—१ चंचल, नटखट, शरारती। उ०—मा बाजण नै बळियौ मूळौ, औ अळियौ सुत जाई नै।—ऊ.का.
कहा०—१ अळियौ सांप काटै नीं तौई फूंफाड़ा करै—शरारती सर्प को काटने का अवसर नहीं मिलने पर भी वह फुंफकारा करना नहीं छोड़ता। २ सबसूं अळियौ नै नांम सैणौ—व्यक्ति का नाम प्रकृति या स्वभाव के विपरीत होने पर।
२ व्यर्थ, बेकार। उ०—औ उमराव म्हांरो जोबन अळियौ जावै म्हांरा राज उमरावजी हो रसिया।—लो.गी.
३ खराब। उ०—इत्यादिक मोथी आदति रा अळिया, थोथी थळवट रा थळिया बेथळिया।—ऊ.का.
सं०पु०—१ खेत के अंदर उत्पन्न होने वाला घास।
उ०—ऊगो अळियौ घास अणूंतो, आथूणी भरेत।
२ वह नाज जिसमें कंकड़, पत्थर आदि हों. ३ केंचुआ. ४ फोड़ा, फुंसी। देखो 'अणियौ'

अलियौ, अलियौभंवर–वि०यौ०—शौकीन। उ०—भीमाजळ अलियौ

भंवर महलां रंग मांणेह ।—महादांन महड़ू

अली–संपु० [सं० अलि] १ देखो 'अलि' ।

संस्त्री० [सं० आलि सं०] २ सखी-सहेली । उ०—हरि हिवड़ै रौ हार अली हे म्हांरो प्रांणां रौ प्रांण आधार ।—मी.रां.

संपु० [अ०] ३ मुहम्मद साहब के चचेरे भाई [रा०] ४ बैल ।

उ०—तुली ढाल रूड़ी घली काळ ओपां, अली जोट जूड़ी हली ज्वाल तोपां, कहे एम दीठां अळै नेम कोपां ।—वं.भा.

अलीक–वि० [सं०] १ मिथ्या, झूठ, मर्यादारहित (अ.मा., डिं.को.) २ अप्रतिष्ठित. ३ अप्रिय ।

संपु० [सं० अ+लीक] १ कुमार्ग. २ अमर्यादा ।

अलीण–वि० [सं० अ+लीन] १ अग्राह्य । उ० मादक अलीण मेलै न मुख वांरा लेऊं वारणा ।—ऊ.का. २ अनुपयुक्त. ३ नाजायज, अनुचित ।

अलीत–वि० न लिया जाने वाला, अलिप्त । उ०—अलीत अदीत अरीत अराह, असीत अभीत अगीत अगाह ।—ह.र.

अलीन–वि०—देखो 'अलीण' ।

अलीप्रभ–वि०—श्याम (ह.नां.)

अलीबंध–संपु०—पीठ पर ढाल बांधने के बंधन जो वक्षस्थल से जकड़े जाते थे । उ० तठा उपरांति करि नैं गजांन सिरामनि अतरा मांहै ढालां रा अलीबंध छूटे छै ।—रा.सा.सं.

अलीमन–संपु०—यवन, मुगल । उ०—अलीमन सूर रौ वंस कीधौ असत, रेस टीपू विजै भंबट कढ़िया ।—बां.दा.

अलीयळ–संपु० [सं० अलि] भौंरा (रू.भे. अलियळ)

उ०—पूजै पग बिम्मळ वेद पुरांण, अलीयळ नाथ लिये अघ्रांण ।—ह.र.

अलील–संपु०—सागर, समुद्र (ना.डिं.को.)

अलीलौ–संपु० जो लीला या क्रीड़ारहित हो, ईश्वर ।

उ०—अलीलौ लील करंत आदेस ।—ह.र.

वि०—वह जो हरा न हो, सूखा ।

अलुजाड़–संपु०—देखो 'अळूझाड़' । उ०—सळूझाय मळां अलुजाड़ मुणौ, तद आवण मौ परधांन तणौ । पा.प्र.

अलुज्झ–वि०—१ उलझा हुआ. २ व्यापक, फैला हुआ ।

उ०—अछै सब मांहि ज आप अलुज्झ । गोविंद तुह्मीणौ लीधौ गुज्झ ।—ह.र.

अळुझाड़, अळुझाड़ौ–संपु०—१ बिखरा हुआ सामान, बिना सुलझा हुआ सामान, अव्यवस्थित सामग्री. २ विघ्न, बाधा. ३ गुत्थी, उलझन ।

अळुवावणौ, अळुवावबौ–क्रि०अ०—निद्रायुत होना, आकुल ।

उ०—आलस अंग अपार नयन निद्रा अळुवाया ।—अज्ञात

अळूंजाड़ौ–संपु०—देखो 'अळूझाड़ौ'

अलूक–संपु० [सं० उलूक] उल्लू नामक पक्षी (अ.मा.)

वि०—क्रूर (डिं.को.)

अलूकी–संस्त्री० [सं० उलूपी] मछली (ह.नां.)

अळूज–संस्त्री०—उलझन ।

अळूजणौ, अळूजबौ–क्रि०अ०—उलझन में फँसना, देखो 'अळूझणौ'

अळूजाणौ, अळूजाबौ–क्रि०स०—देखो 'अळूझाणौ' ।

अळूझणौ, अळूझबौ–क्रि०अ०—१ उलझना, फँसना । उ०—ओभक गैळी में आवेस अळूझै सीळी रेळी में चीसळियां सूझै ।—ऊ.का. २ भिड़ना, लड़ना. ३ अटकना ।

अळूझणहार-हारौ (हारी), अळूझणियौ–वि०—उलझने वाला ।

अळूझाणौ, अळूझाबौ, अळूझावणौ, अळूझावबौ—स०रू०

अळूझिओड़ौ, अळूझियोड़ौ, अळूझयोड़ौ–भू०का०कृ०—उलझा हुआ ।

अळूझोजणौ, अळूझीजबौ—भाव वा०

अळूझाड़, अळूझाड़ौ–संपु०—देखो 'अळुझाड़' ।

अळूझाणौ, अळूझाबौ–क्रि०स० १ उलझाना, फँसाना. २ भिड़ाना, लड़ाना. ३ अटकाना ।

अळूझाणहार-हारौ (हारी), अळूझाणियौ–वि०—उलझाने वाला ।

अळूझायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

अळूझावणौ, अळूझावबौ—रू०भे० ।

अळूझायोड़ौ–भू०का०कृ०—उलझाया हुआ । (स्त्री० अळूझायोड़ी)

अळूझावणौ, अळूझावबौ–क्रि०स० देखो 'अळूझाणौ' (रू.भे.)

अळूझियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उलझा हुआ, फँसा हुआ. २ भिड़ा हुआ. ३ अटका हुआ । (स्त्री० अळूझियोड़ी)

अलूणौ–वि० [सं० अलवण] (स्त्री० अलूणी) १ अलौना, नमकरहित, फीका । उ०—तिण पाखै लागै इसौ, जांणि अलूणौ अन्न ।—ढो.मा.

कहा०—अलूणी सिला कुण चाटै—बिना लाभ की आशा के कौन काम करे ।

[सं० अ+लावण्य] २ लावण्यरहित, कांतिहीन, फीका ।

उ०—पिया बिना मेरी सेज अलूणी, जागत रैण बिहावै ।—मीरां

[सं०अ+लूञ्=छेदन] ३ बिना छेदा हुआ, बिना काटी हुई (ऊन-भेड़)

अळूधणौ, अळूधबौ–क्रि०अ०—फंदे में फँसना, उलझना । उ०—हारि जीति भरको पड़ी, तहां अळूधा जीव ।—ह.पु.वा.

अलूधणहार-हारौ (हारी), अलूधणियौ–वि०—फंदे में फँसने वाला ।

अळूधाणौ, अळूधाबौ—स०रू० ।

अळूधाणौ, अळूधाबौ–क्रि०स० फंदे में फँसाना ।

अळूधियोड़ौ–भू०का०कृ० फंदे में फंसा हुआ । (स्त्री० अळूधियोड़ी)

अलूप–वि० [सं० लुप्त] लुप्त, लोप, छिपा हुआ ।

अलूल-जलूल–क्रि०वि० [अनु०] ऊटपटांग, अंडबंड, अंटसंट ।

अलेख–वि० [सं० अ+लिख्] १ जिसके सम्बन्ध में कोई भावना या विचार न हो सके, दुर्बोध, अज्ञेय । उ०—उमा तो पार अगम्म अलेख, लखम्मी तूझ न जाणै लेख ।—ह.र. [सं० अलेख्य] २ जो लिखने के योग्य न हो. ३ अगणित, अपार, असंख्य. ४ अदृश्य, जिसे देखना सहज न हो ।

सं०पु०—१ बुरा लेख. २ ईश्वर। उ०—खपै काळा दाग सूं **अलेख** वाळा लेख।—हणूदांनजी कवियौ। ३ संन्यासियों द्वारा भिक्षार्थ उच्चारण किया जाने वाला शब्द। उ०—पीछै रांवण आय कर **अलेख** जगाया।—केसोदास गाडण

अलेखां—वि० (बहु०) [सं० अलेख] १ असंख्य, अगणित।
उ०—जांणू अजकौ मेघ जावतां कारज म्हांरै। परबतियां फूलाळ **अलेखां** आडा थारै।—मेघ० २ व्यर्थ।

अलेखी—वि०—१ अंधेर करने वाला, अन्यायी. २ असंख्य, अगणित।

अलेखै—वि० (बहु०) [सं० अलेख] १ देखो 'अलेखां' (रू.भे.)
२ व्यर्थ। उ०—देवी तौ दरसण विनां हे! जनम **अलेखै** जाय।
—गी.रां.

अलेप—वि० [सं०] १ निर्लिप्त, अलिप्त. २ निर्दूषण, निर्दोष।
उ०—पहली छंद प्रबंध में लघु गुरु दगध **अलेप**।—र.रू.

अळेवण—सं०पु० [सं० आलेपन] १ सामग्री, सामान. २ वैभव. ३ शरीर की बनावट. ४ ढंग।

अलेह—वि०—लेन-देनरहित, विरक्त। उ०—**अलेह** अदेह अनेह अनांम, अरेह अछेह अग्रेह अगांम।—ह.र.

अलैया—सं०स्त्री०—एक राग विशेष (संगीत)

अलोईजणौ, अलोईजबौ—क्रि०अ०— देखो 'अलोवीजणौ, अलोवीजबौ'।

अलोक—वि० [सं० अलोक्य] १ जो इस लोक से संबंध न रक्खे, अपूर्व, अनोखा. २ अद्भुत, विचित्र, जो देखने में न आवे।
उ०—जड़ावगी लड़ां दांवणी झूंटणा झूंबरा **अलोक** वण रह्या छै।
—रा.मा.म.

[सं० अ+लोक] ३ निर्जन।
सं०पु०—१ पातालादिलोक. [सं० आलोकक] २ प्रकाश, प्रभा, कांति, दीप्ति, प्रभा।

अलोकिक—वि०—देखो 'अलौकिक'। उ०—की हीरा कणियांह **अलोकिक** कांतरी। पूछै को कथ कुंदकळी रै पांतरी।—बां.दा.

अलोच—सं०पु० [सं० आलोच] विचार।

अलोज—वि०—स्वस्थ। उ०—अजै सिव आद्र पांण **अलोज**। हुतौ ज हुतौ ज हुतौ ज।—ह.र.

अलोणौ, अलोबौ—क्रि०स०—देखो 'अलोवणौ'

अलोप—वि० [सं० आलुप्त] लुप्त, अंतर्धान, अदृश्य।
उ०—तद रंभा बोली—अबै म्हांरी मुजरौ छै, हूं जावूं छूं, म्हांरी वात कांनै कांनै हुई म्हैं आपसूं कोल कीन्हो थो। रावजी घणा ही नो'रा किया पिण **अलोप** हुई नै जाती कहियौ...।
—वीरमदे सोनगरा री वात

[सं० अलुप्त] २ प्रकट, जो लुप्त न हो।
क्रि०प्र०—करणौ-होणौ।
सं०पु० ईश्वर, परब्रह्म। उ०—अगम्भ अछेह उदार अनोप, अप्रम्म अथाह अगम्म **अलोप**।—ह.र.

अलोम—वि० [सं०] लोमरहित, निर्लोम, बालरहित।
उ०—जंघ **अलोम** अनूप जुग, नाजुक पणै निघात।—बां.दा.

अलोय—वि० [सं० अ+लोचन] १ नेत्ररहित, बिना आंख का. [सं० अलोक] २ अनुचित।

अलोळ—वि० [सं० अलोल] १ अचंचल, स्थिर, दृढ़।
उ०—गज मंगळ गज खूब गुमांनी, वैरीसाल **अलोळ** सुवांनी।
—रा.रू.

२ युवा, जवान। उ०—लका धजर **अलोळ** बजरमणि गोल बिचोली।—मे.म.

अलोवणौ, अलोवबौ—क्रि०स० [सं० आलेपन] मिलाना, मिश्रित करना।
अलोवणहार-हारौ (हारी), अलोवणियौ—वि०—मिलाने वाला।
अलोवियोड़ो, अलोवियोड़ो, अलोव्योड़ौ—भू०का०कृ०।
अलोवीजणौ, अलोवीजबौ—कर्म वा०—मिश्रित हुआ जाना।

अलोवियोड़ो—भू०का०कृ०—मिश्रण किया हुआ, मिश्रित।
(स्त्री० अलोवियोड़ी)

अलोवीजयोड़ो, अलोवीजीयोड़ो—भू०का०कृ०—मिश्रित, मिलाया हुआ।
(स्त्री० अलोवीजीयोड़ी)

अलोह—वि०—१ बिना शस्त्र के घाव या चोट खाया हुआ. २ बिना शस्त्र वाला।

अलोहित—सं०पु० [सं० आलोहित] लाल कमल।

अलौकिक—वि० [सं०] १ जो इस लोक से सम्बन्ध न रक्खे, लोकोत्तर।
उ०—**अलौकिक** लौकिक सार असार हरिजन जांणत जांणणहार।
—ऊ.का.

२ अनोखा, अद्भुत, अपूर्व। उ०—करण मसळै उरज तोड़ै अंगियां कसां, चित चलै **अलौकिक** करै चाळो।—बां.दा.
३ अमानुषी, दैवी, दिव्य।

अल्प, अल्पक—वि० [सं० अल्प] थोड़ा, कम, न्यून, छोटा।

अल्पग्य—वि० [सं० अल्पज्ञ] कम बुद्धि वाला, नासमझ।

अल्पग्यता—सं०स्त्री० [सं० अल्पज्ञता] नासमझी, ज्ञान की कमी।

अल्पजीवी—वि०यौ० [सं० अल्पजीविन्] थोड़ा जीने वाला, अल्पायु।

अल्पता—सं०स्त्री० [सं०] कमी, न्यूनता, छोटापन।

अल्पप्रांण—सं०पु०यौ० [सं० अल्पप्राण] वर्णमाला का वह वर्ण जिसके उच्चारण में प्राणवायु का अल्प व्यवहार हो।

अल्पायु—वि०यौ० [सं०] जिसकी आयु थोड़ी हो।

अल्पी—वि० [सं० अल्प] देखो 'अल्प'।

अल्यंग—सं०पु० [सं० आलिंगन] आलिंगन। उ०—रुठि गोरी **अल्यंग** न लेहि। पल्यंग बइसइ नवि पांन न लेहि।—वी.दे.

अल्ल—सं०पु० [सं० आल] देखो 'अल'।

अल्लमगल्लम—क्रि०वि० [अनु०] अनापशनाप, अंडबंड, अंटसंट।
सं०पु०—व्यर्थ की बकवाद।

अल्लांम—वि० [अ० अल्लामा] देखो 'अलांम'।

अल्ला–सं०पु० [अ०] ईश्वर, खुदा। उ०—मालिक नहीं खालिक मुसलमीन, **अल्लाह** है रब्बल आलमीन।—ऊ.का.

कहा०—१ अल्ला-अल्ला खैर सल्ला—खैर जो हुआ सो अच्छा। २ अल्ला री मां रौ चाळीसौ—अल्ला की माँ का चालीसवाँ दिन, बेअंतजामी कार्य के लिए कहा जाता है। ३ मियां साब रोवौ क्यूं, कै अल्ला मुख ऐसाइज किया—कुरूपता भी ईश्वरीय देन है। ४ राम सूं चोदू अल्ला ई कोयनी- अमुक व्यक्ति भी आपसे कम नहीं है या अमुक व्यक्ति भी अमुक से कम नहीं है।

अल्लाह–सं०पु०– देखो 'अल्ला'। उ०—**अल्लाह** मुहम्मद सिर उठाय, मगरिब मक्के मस्रत मनाय।—ऊ.का.

अल्लील–सं०पु०– एक बड़े जल-कुंड का नाम जो हिंगलाज देवी के मंदिर के पास है।

अल्लू–सं०पु० [सं० उलूक] उल्लू, उलूक।

अल्हड़–वि० [सं० अल=बहुत+लल=चाह] मनमौजी, उद्धत [रा०] २ अनगढ़।

अल्हड़पण, अल्हड़पणौ–सं०पु०—१ बेपरवाही. २ लड़कपन, भोलापन. ३ उजड्डपन, अनाड़ीपन।

अल्हड़बल्हड़–वि० [अनु०] अंटसंट, अंडबंड।

अवंकौ–वि० [सं० अ+वंक] १ सीधा, सरल, वंकरहित। २ निधड़क, वीर।

अवंत, अवंति, अवंतिका, अवंती–सं०स्त्री० [सं० अवंती] मालव प्रदेश की प्राचीन ऐतिहासिक राजधानी जो क्षिप्रा नदी के तट पर है, उज्जैन, उज्जयिनी (यह सात प्रधान पुरियों में से एक है। प्राचीन)

अव–उप० [सं०] एक उपसर्ग जो प्रायः निश्चय, अनादर, ईषत्, नीचाई, व्याप्ति आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है।

अवअत्त–वि० [सं० अव्यक्त] देखो 'अव्यक्त' (रू.भे.)

उ०—नमौ **अवअत्त** भगत्त अछेह, नमौ सतरुघ्न भरत्त सनेह।—ह.र.

अवकर–सं०पु० [सं०] कचरा, कूड़ा-करकट।

अवकार–सं०पु० [सं० अविकार] वह जिसमें कोई विकार न हो, ईश्वर। उ०- अजर **अवकार** अज अमर अंगी। क.कु.बो.

अवकास–सं०पु० [सं० अव+काश+अल्] १ अवसर, समय। उ०—श्रीमनूं प्राण बचावण रै काज अभीस्ट आगार जावण रौ **अवकास** दियौ।—वं.भा.

२ सुभीता, छुट्टी का समय, विश्राम काल, खाली वक्त. ३ आकाश, शून्य स्थान।

सं०स्त्री०—४ दूरी, फासिला।

अवकीरण–वि० [सं० अवकीर्ण] १ फैलाया या छितराया हुआ. २ ध्वस्त, नष्ट।

अवकीरणी–वि० [सं] वृत्त तोड़ने वाला।

अवक्कीबांणरौ–वि० [सं० अवाच्यवचन] नहीं कहने योग्य वचन कहने वाला। उ० –वीफरिया बबरेल **अवक्कीबांणरा**। बंधव धूहड़ वीर धणी जोधांण रा।—सर प्रताप री झमाळ

अवक्तव्य–वि० [सं०] १ जो कहने योग्य न हो, निषिद्ध. २ झूठ।

अवक्र–वि० [सं० अ+वक्र] सीधा, जो टेढ़ा न हो। उ०—विवक्रि वक्र व्है **अवक्र** चक्र चेंठते वहें।—ऊ.का.

अवखळणौ–सं०पु० [सं० अपस्खलन] देखो 'औखळणौ'

अवखांण, अवखांणौ–सं०पु० [सं० उपख्यान] कहावत, लोकोक्ति। उ०—जिण दीन्हा सौ उबरिया आदू **अवखांणा**।—केसोदास गाडण

अवखाळणौ–वि०—प्रसिद्ध, बहादुर (रू.भे. अवखळणौ)

अवगत–वि० [सं०] १ विदित, ज्ञात, जाना हुआ, परिचित। उ०—तू **अवगत** अनाथनाथ तू अकथ कहांणी।—केसोदास गाडण २ नीचे गया हुआ, गिरा हुआ. ३ जो न जाना जा सके। देखो 'अवगति'। ४ विचित्र।

सं०पु०—१ विष्णु. २ ईश्वर (ह.नां.)। उ०—निंदा नेता री भव भव में भूंडी, बिध्या बेता विण **अवगत** गत ऊंडी।—ऊ.का.

३ वेग (अ.मा.) ४ लीला, रचना। उ०—रांण राजड़ जिमा मरै वरसां हुय सतर, देखौ **अवगत** देव, हुए थारा दिन इतरा।

—अरजुणजी बारहठ

अवगति–सं०स्त्री० [सं०] १ बुद्धि, धारणा, समझ, ज्ञान, बोध। [सं० अपगति] २ बुरी दशा, बुरी गति। उ०—ईस अमपति किसी उन्नति, करै **अवगति** जिकूं सिर क्रति।—रा.रू.

सं०पु० [सं० अवगति] ३ जिसकी गति का पार न पा सके, ईश्वर। उ०—पादाकांती पदकांती विन पावै आरचावरती जन अन विन अकुळावै वह तौ अखळेस्वर **अवगति** अनदाता तत सत जग-पाळक जग भाळक त्राता।—ऊ.का.

४ विचित्र, अद्भुत। उ०—देही देवळ चिणगहार **अवगति** चेजारा, आपौ मझे देवता आपौ पूजा रा।—केसोदास गाडण

अवगत्त–वि०- १ देखो 'अवगत' २ देखो 'अवगति'

उ०—पढ़ नांम रिदै करता पुरस, 'जगा' एक **अवगत्त** जग।—ज.खि.

अवगन–सं०पु० [सं० अपगुन] निर्गुण, ईश्वर। उ०—सास्वत स्वरूप **अवगन** अनूप भव गगन भूरि सब साक्षी सूरि।—ऊ.का.

अवगाढ़–स०पु० [सं०] युद्ध, समर। उ०—'अमर' **अवगाढ़** जमडाढ़ जम आछटै—नरहरदास बारहठ

वि० १ बलवान, वीर, बहादुर। उ०—सोळै सै इक्काणवै सुद पूनम आसाढ़, देवलोक ऊदौ गयौ, गंग हरौ **अवगाढ़**।—बां.दा.

[सं० अव+गाह+क्त] २ निमज्जित. ३ छिपा हुआ. ४ घना, निबिड़, गाढ़ा।

अवगात–वि०—निष्कलंक. २ बेदाग। (मि० अवगात)

अवगाळ–सं०पु० [सं० उद्गार] १ ताना, व्यङ्ग. २ कलंक, दोष। उ०—आ मोटी **अवगाळ**, मारू धर रहती मुवै। 'केहरिया' करनाळ, जो न जुड़त 'जै साह' सूं। ३ शर्म, लज्जा. ४ निंदा।

अवगाह–सं०पु०—१ हाथी का ललाट. २ स्नान (मि० अवगाहण)

३ युद्ध। उ०—सुर नर साह अवगाह सारां सिरै, थाल तौ थांण थमसांण धेरै। रौद वळ भाड़तौ पाड़तौ खाग रिम, डांण भर गयौ सुरतांण डेरै।—पतौजी बारहठ ४ गहरा स्थान, संकट का स्थान. ५ कठिनाई, कठिनता।

अवगाहण, अवगाहन—संपु० [सं० अवगाहन] १ स्नान, निमज्जन. २ जल में पैठ कर नहाना, विलोड़न, डुबकी, गोता। उ०—जळ अवगाहन जीवणौ, दूर हुआं अति दीन। तूं गंगा तौ जळ तणौ, मौं कद करसी मीन।—बां.दा. ३ खोज, छानबीन. ४ लीन होकर विचार करना. ५ ग्रहण करने की क्रिया का भाव। उ०—एक पंथ त्रिण काज अठै इळ, जिण अवगाहण भाग जगै।—बां.दा. ५ अथाह जल, गहरा स्थान, जिसके तल का पता न हो।

अवगाहणौ, अवगाहबौ—क्रि०अ० [सं० अवगाहन] १ पैठ कर जल में नहाना, निमज्जन करना, स्नान करना। उ०—अड़सट धांम पहल अवगाहै 'पीठवौ' गौ समियां न पछै।—पीठवौ २ छानबीन करना. विचलित करना. ३ हलचल मचाना, मारना, चलाना। उ०—सेद विलंद परि बीड़ौ साहौ, गुज्जर धर आसुर अवगाहौ।

—रा.रू.

४ देखना, सोचना, विचारना. ५ पार करना। उ०—चित मिळवा री चाहि, रात दिवस अळजौ रहै। आऊं भुंइ अवगाहि, जाणूं सयण कन्है 'जमा'।—जसराज

अवगाहणहार-हारौ (हारी), अवगाहणियौ—अवगाहन करने वाला।

अवगाहिओड़ौ, अवगाहियोड़ौ, अवगाहयोड़ौ—भू०का०कृ०—अवगाहन किया हुआ।

अवगाहियोड़ौ—भू०का०कृ०—अवगाहन किया हुआ। (स्त्री० अवगाहियोड़ी)

अवगुंठन—संपु० [सं०] १ घूंघट, पर्दा. २ ढकना, छिपाना।

अवगुण—संपु० [सं०] दोष, ऐब, बुराई, दुर्गुण। उ०—गुण अवगुण जिण गांव, सुणै न कोई सांभळै। उण नगरी विच नांव, रोही आछी राजिया।—किरपारांम

कहा०—अवगुण तौ कागलो देखै—दुष्ट व्यक्ति की दृष्टि हमेशा दूसरों के अवगुणों पर पड़ती है।

अवगुणी—वि० [सं० अवगुण+ई] दुर्गुणी, बुरा, सदोष, कुकर्मी। उ०—काफर साहां अवगुणी, गौ आंणी करतुत्त।—रा.रू.

अवग्या—संस्त्री० [सं० अवज्ञा] १ अपमान, अनादर, तिरस्कार। २ उपेक्षा, अवहेलना। उ०—घट घट घण नांमी स्वांमी सूराई, अंतरजांमी हुय ओळज नह आई, इसरी अवग्या ईस्वर क्यूं आंणी, बूढ़ी हुयग्यौ कै प्रग्या विसरांणी।—ऊ.का. ३ पराजय, हार. ४ एक प्रकार का अलंकार जिसमें एक वस्तु के गुण-दोष से दूसरी वस्तु के गुण-दोष न प्राप्त होना सूचित किया जाय।

अवघट—वि० [सं० अव+घट्ट=घाट] १ विकट, दुर्गम, कठिन. २ ऊंचा-नीचा, उबड़-खाबड़. ३ टूटा-फूटा।

अवड़ौ—संपु०—देखो 'अवोड़ौ' (रू.भे.)

अवचळ—वि०—देखो 'अविचळ'। उ०—अवचळ मंडप करै आगाहट, सुर जिम थापै कवेसुर।—दुरसौ आढ़ौ

अवचार—संपु० [सं० आचार] १ आचार, व्यवहार, चालचलन। उ०—मचै अवचार 'धूकळ' जगत मचायौ, वचायौ 'मांन' हरचंद वारौ।—बारहठ त्रिलोकजी २ देखो 'अविचार' (रू.भे.)

अवचीत—वि०—अचिंतित। क्रि०वि०—अचानक, अकस्मात्।

अवच्छेद—संपु० [सं०] १ अलगाव, भेद. २ अवधारण, निश्चय. ३ परिच्छेद।

अवच्छेदक—वि० [सं०] १ छेदने वाला. २ अवधारक, निश्चय करने वाला।

अवछन—वि० [सं० अवच्छिन्न] १ अलग किया हुआ, पृथक. २ सीमा-बद्ध, अवधिसहित. ३ विशेषणयुक्त. [सं० अवच्छन्न] ४ गुप्त। उ०—संभ घोर अंधकार कळिराज छायौ सत, जोर सत कियौ अवछन गवन जास।—उमेदसिंह सीसोदिया रौ गीत

अवछर—संस्त्री०—देखो 'अपछरा'। उ०—अमरांणी पर ऊपनी अवछर मौ ऊर आंण।—पा.प्र.

अवछळ—वि० [सं० अविचल] १ अटल, अविचल। उ०—सदा जोड़ी थांरी अवछळ होय, अमल्यां पर ऊभी दो जणी।—लो.गी. [रा०] २ कपट-रहित, छल-रहित।

अवछाड़—संपु० [सं० अवच्छाद] १ रक्षक। उ०—नगांपत कूरमां-नाथ चलतां नगां, खगांपत हुऔ अवछाड़ खूमांण।

—अनूपरांम कवियौ

२ किसी खाद्य-पदार्थ पर कपड़े आदि का ढक्कन डालना।

अवछाह—संपु० [सं० उत्साह] उत्साह। उ०—जिण वार नृप जै-साह, छति (छि) निरखि धरि अवछाह।—रा.रू.

अवजाती—संपु० [सं० अपजात] शत्रु, वैरी (ह.नां.)

अवजासणौ, अवजासबौ—क्रि०अ० [सं० उद्भाष] प्रकाशित होना, प्रकाश देना। क्रि०स०—प्रकाशित करना।

अवजासिओड़ौ-अवजासियोड़ौ-अवजास्योड़ौ—भू०का०कृ०—प्रकाशित।

अवजासियोड़ौ—भू०का०कृ० [सं० उद्भाषित] प्रकाशित। (स्त्री० अवजासियोड़ी)

अवजीत—संपु० [सं० अपजाति] शत्रु (अ.मा.) (रू.भे. अवजाती)

अवज्ज—संस्त्री० [फा० आवाज] आवाज, ध्वनि, शोर, बोली। उ०—अवज्ज बुज्ज के अरें सु बुज्ज बुज्ज बेरला।—ऊ.का.

अवझ्झड़, अवझड़—संपु०—तलवार का तिरछा प्रहार या ऐसे प्रहार से

होने वाला निशान । उ०—**अवज्झड़** त्रिज्झड़ भड़ड असंध, कटै कर कांपर कालिज कंध ।—वचनिका

अवझाड़–सं०पु०—प्रहार, चोट, तलवार का तिरछा प्रहार ।
उ०—बिजड़ **अवझाड़** खळ पाड़ जमदाढ़ वग्ग, विढै अवसांण कीधौ वड़ाळो ।—गोरधन गाडण

अवझाड़णौ, अवझाड़बौ–क्रि०म०—तिरछा प्रहार करना, मारना, काटना ।

अवटंक–सं०पु० [सं०] १ देखो 'उपटंक'। २ ब्राह्मणों का उपगोत्र ।
उ०—श्रीमाळी ब्राह्मण ज्यांरा चवदै गोत्र चोरासी **अवटंक** है ।
—बां.दा.

अवट–वि० [सं० अवाट] १ बिना रास्ते, बे-रास्ते । उ०—रजवट रूप अैसै हट घर जोधपुरै, भज्जहि **अवट** अरी कपट बिसारकै ।
—जैतदांन बारहठ

[सं० अवंट] २ जो बाँटा न जा सके, जिसके हिस्से न किए जा सकें ।
उ०—अलख भंडारा **अवट है**, किस वंट न हंदा ।—केसोदास गाडण

सं०पु० [सं०] १ पाताल (डिं.नां.मा.)

२ आयु, उम्र । उ०—खोयो म्हैं घर में **अवट**, कायर जंबुक कांम, सीहा केहा देसड़ा, जेथ रहै सो धांम ।—वी.स.

३ छिद्र, नटवृत्ति से जीवन बिताने वाला. ४ गर्व, गरूर.

[सं०] ५ गड्ढा, गढ़हा । उ०—मिळि थट पुरट छटपट कुघट घट परि **अवट** कट कट कपट तट अति भपट रन अट उबट बट —वं.भा.

६ तृण आदि से आच्छादित करके बनाया हुआ हाथियों को फँसाने का गड्ढा. ७ कुमार्ग. ८ वापिस मुड़ने का भाव या क्रिया ।
उ०—मांडवै 'पाल' काळ सूरजमल थोभै राघव जमै थट, घट भांजवातणी वट घायै वमुहा पावां ची **अवट** ।
—सूरजमल चांपावत रौ गीत

क्रि०वि०—शीघ्र, जल्दी । उ०—मद विद्या धन मांन, ओछा सो उकळै **अवट** । आधण रैं उनमांन, रैवै विरळा राजिया ।
—किरपारांम

अवटणौ, अवटबौ–क्रि०स०—१ युद्ध करना ।
क्रि०अ०—२ घूमना, फिरना, चक्कर लगाना ।
अवटणहार-हारौ (हारी), अवटणियौ—युद्ध करने वाला, घूमने वाला ।

अवठावणौ, अवठावबौ–क्रि०स०—पराजित करना, हराना ।
उ०—पर चंड-चंड कर होम पाठ, **अवठाय** दिया पतमाह आठ ।
—वि.सं.

अवठौ–सं०पु०—कड़ुआ, कटु उपालंभ, कटु शब्दों का दिया गया उत्तर । उ०—माता ऐ, **अवठा** सा बोल न बोल, परां तो पड़ैळी जी सासू नणद कै ।—लो.गी.

अवड–वि०—देखो 'अवढ़', देखो 'अवडौ'

अवडी, अवडीह–वि०—इतनी । उ०—जोड़ण वित अनजात में अकल नहीं **अवडीह**, वित नित जोड़ै वांणियो, कर कवडी कवडीह ।—बां.दा.

अवडो, अवडौ–सर्व०—१ ऐसा । उ०—**अवडौ** सायर नही उंडवण ।
—किसनौ आढ़ौ

२ इतना । उ०—**अवडौ** मेर न ऊचपण ।—किसनौ आढ़ौ

वि०—१ बहुत बड़ा । उ०—**अवडां** गजां भजां आराबां जूह हुह गै जूह जुआ होद नबाब रोद हेकारू हीलौ हळ गरकाब हुआ ।
—महेसदास आढ़ौ

२ भयंकर, जबरदस्त । उ०—**अवडौ** भार सहै सिर ऊपर वहतां खम झाटां बौछाड़, व्रज जिम राख दिली दळवांसै पड़ियौ चंद तणौ पहाड़ । ३ विचित्र, अनोखा ।

अवढ़–सं०पु०—वह (पौधा, घास आदि) जो काटा नहीं गया हो ।
(मि० अवढ़ियौ)

अवढ़ियौ–वि०—बिना काटा हुआ (घास व पत्ते आदि)
उ०—खेतां पालौ कटै, **अवढ़ियौ** ऊभौ खोड़ां, वाड़ां लामा वधै, बेजड़ा सूं जुड़ जोड़ा ।—दसदेव

अवढ़ौ–वि०—१ भयंकर, भयावह, कठिन । उ०—विखमी **अवढ़ी** जाइगा री चाकरी करस्यूं ।—जगदेव पंवार री वात

२ संकटमय. ३ असहनीय ।

अवणासी–वि० [सं० अविनाशिन्] देखो 'अवगामी' ।
उ०—**अवणासी** अवगत अविकारी, असरणसरण रांम अवतारी ।
—रा.रू.

अवणि, अवणी–सं०स्त्री० [सं० अवनि] पृथ्वी, भूमि, धरा (रू.भे.)

अवतंस–सं०पु० [सं०] १ भूषण, अलंकार. २ शिरोभूषण, टीका, सिरपेंच. ३ श्रेष्ठ व्यक्ति । उ०—बच्छळ कुळ बळभद्र नृप बळू प्रवाचक बंस । अंडर हुवा नृप ए उभय, इतर कुळां **अवतंस** —वं.भा.

४ दूल्हा. ५ सबसे उत्तम हार. ६ मुकट ।

अवतमस–सं०पु० [सं०] अंधेरा (नां.मा., अ.मा.)

अवतरण–सं०पु० [सं०] १ उतरना, पार होना. २ जन्म ग्रहण करना । उ० आप कळा सम **अवतरण**, मतौ कियौ महाराज ।
—रा.रू.

३ अवरोहण. ४ नमूना. ५ नकल, प्रतिकृति. ६ प्रादुर्भाव ।

अवतरणी–सं स्त्री० [सं० अवतरणिका] १ ग्रन्थ की प्रस्तावना के लिए लिखी जाने वाली भूमिका, उपोद्घात. २ परिपाटी ।

अवतरणौ, अवतरबौ–क्रि०अ० [सं० अवतरण] १ प्रकट होना, उत्पन्न होना, जन्म लेना । उ०—धज बंध 'सेर' रियां धणी, एक वेर फिर **अवतरै** ।—पहाड़खां आढ़ौ. २ प्रकाशित होना. ३ अवतार लेना ।
अवतरणहार-हारौ (हारी), अवतरणियौ–वि०—प्रकट होने वाला ।
अवतरिओड़ौ-अवतरियोड़ौ-अवतरयोड़ौ–भू०का०कृ०—अवतरित ।
अवतारणौ, अवतारबौ—स०रू०
अवतारियोड़ौ–भू०का०कृ०—उत्पन्न किया हुआ ।

अवतरि–सं०पु०—देखो 'अवतार' ।

अवतरियोड़ो–भू०का०कृ०—अवतरित (स्त्री० अवतरियोड़ी)

अवतार–सं०पु० [सं०] १ नीचे आना, उतरना. २ जन्म. ३ ईश्वर या किसी देवता का मनुष्यादि सांसारिक प्राणियों का शरीर धारण कर संसार में आना। धर्मस्थापन के उद्देश्य से ऐसे २४ बार अवतार लिया गया जिनमें प्रमुख दस अवतार ये हैं—मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, बुद्ध और कल्कि। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित चौदह और माने जाते हैं—ब्रह्मा, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, धन्वन्तरि, मोहिनी, वेदव्यास, बलराम, हंस और हयग्रीव। इस प्रकार कुल चौबीस अवतार माने गए हैं. ४ दस की संख्या* ५ चौबीस की संख्या*।

अवतारणौ, अवतारबौ–क्रि०स० [सं० अवतारण] उत्पन्न करना, रचना करना।

अवतारी–वि० [सं०] १ अवतार ग्रहण करने वाला. २ अलौकिक, दिव्य शक्तिसंपन्न। उ०—कर दर कूच अजन अहंकारी, आयौ धरि दिल्ली **अवतारी**।—रा.रू.

अवतोका–सं०स्त्री० [सं०] स्त्री या गौ जिसका किसी विशेष कारणवश गर्भ-पात हो गया हो। उ०—इक नहीं आक्रांता कांतातुर आडी, डाई **अवतोका** सोकाकुळ डाडी।—ऊ.का.

अवत्थी–सं०स्त्री० [सं० अपस्थान] पराजय, हार। उ०—एक राड़ भव मांह **अवत्थी** ओरंग आंगै केम उर।—जमणोजी बारहठ

अवथरि–क्रि०वि० [सं० उद्+तरस] तीव्र वेग से। उ०—अह सुरतांण आवियउ **अवथरि** करन तणा ऊठिय गज केसरि।—रा.ज.सी.

अवदंस–सं०पु० [सं० उपदस] मद्यपान के तत्काल पश्चात् अच्छी लगने वाली नमकीन व चरपरी वस्तु, गजक।

अवदांन–सं०पु० [सं० अवदान] १ अच्छा कार्य, शुद्ध आचरण. २ खंडन, तोड़ना. ३ त्याग, उत्सर्ग [सं० अपदान] ४ कुत्सितदान ५ वध, मार डालना।

अवदात–वि० [सं०] १ शुक्ल वर्ण, गौर। उ०—गोमती जळ करी गात, दिव चत्र वरण **अवदात**।—रा.रू. २ शुभ्र, उज्वल, निर्मल (अ.मा.) उ०—धिन मात पिता कुळ जात धिन, सत **अवदात** महासती।—रा.रू. ३ शुद्ध उ०—केहर रा नख रंध्र मूं, गज मोतियां निपात। सूरत कीरत वेल रा, बीज वर्वं **अवदात**।

—बां.दा.

४ पवित्र, विमल, उज्वल। उ०—अत सीतळ **अवदात**, संकर मन भावै सदा, वांका सांची वात, सुरसरी जळ राकेस सम।—बां.दा.

५ पीत, पीला।

सं०पु०—१ हंस. २ लखपत पिंगल के अनुसार प्रत्येक चरण में २३ मात्रा का एक मात्रिक छंद विशेष।

सं०स्त्री०—३ श्रेष्ठता। उ०—इण ही सूं **अवदात**, कहणी सोच विचार कर। बे मोसर री बात, रुड़ी न लागै राजिया।—किरपारांम

अवदातचळ–सं०पु० [सं० अवदात+चल=पक्ष] हंस (अ.मा.)

अवदारक–वि०—विदारण या विभाग करने वाला।

अवदारण–सं०पु० [सं०] विदारण करना, विभाग करना।

अवदाळ–वि०—उदार, महान (मुसल०)। उ०—खित साम खळां, तम माळ तिसौ, भ्रम ढाल धरा **अवदाळ** इसौ।—क.कु.बो. (मि० अबदाळ-रू.भे.)

अवदिसा–सं०स्त्री० [सं० विदिशा] १ दिशा. २ विरुद्ध दिशा। उ०—देवी निरझरै तरवरै नगै नेसै, देवी दिसै **अवदिसै** देसै विदेसै।

—देवि.

३ दो दिशाओं के बीच का कोना. ४ भेलसा नामक एक प्राचीन शहर।

अवदीक–सं०पु०—युद्ध (ह.नां.)

अवदीत–वि०—देखो 'अवदात'।

अवदोह–सं०पु०—दूध, दुग्ध, दोहन।

अवद्द–सं०पु०—भ्रू, भौंह। उ०—आंखडियां रतनाळियां, मूंछ **अवद्दां** फेर। नैणसी री ख्यात

अवद्ध–वि० [सं०] बंधनरहित, अनियंत्रित, स्वच्छंद।

अवद्या–सं०स्त्री० [सं० अविद्या] देखो 'अविद्या'। उ०—इत्याद **अवद्या** दुख अकळ सकळ विरोधी सुरधरम।—क.कु.बो.

अवध–सं०पु०—१ एक प्राचीन प्रांत। इसकी राजधानी अयोध्या थी। [सं० आयुध] २ अस्त्र-शस्त्र। उ०—तिण में रुड़ा रजपूत तिकै सग्ग रा उतावळा वैकूंठां लोड़ाऊ **अवधां** विरदां रा वहणहार।

—डाढ़ाळा सूर री बात

सं०स्त्री० [सं० अवधि] ३ अवधि। उ०—आविया उमड़ घणश्यांम बीती **अवध**। आविया नहीं घणश्यांम आली।—बां.दा.

४ अयोध्या नगर। उ०—एड़ी **अवध** उजाड़ मती, सियावर ने तू वन म्हां निकाळ मती।—गी.रां.

क्रि०वि०—अल्प समय के लिए, कुछ काल के लिए।

उ०—ज्यारत करण वामतै विधवा अन्य पुरख सूं **अवध** करि निकाह पढ़लै। बां.दा.

अवधईस–सं०पु० अवधेश, श्रीरामचंद्र (डि.को.)

अवधधिराज–सं०पु०—अयोध्यापति, श्रीरामचंद्र।

अवधनरेस–सं०पु० [सं० अवध+नरेश] १ अवध के महाराजा दशरथ. २ श्रीरामचंद्र।

अवधपति, अवधपती–सं०पु० [सं० अयोध्यापति] १ राजा दशरथ। उ०—कांई **अवधपती** रै घर अवतार लियौ हो राज—गी.रां.

अवधपुर, अवधपुरी–सं०पु०—देखो 'अजोध्या'।

अवधांन–सं०पु० [सं० अवधान] १ मनोयोग, चित्त का लगना, चित्त की वृत्तियों का निरोध कर चित्त को एक ओर लगाना।

उ०—चौसट **अवधांन** तणी चतुराई, बोलण माहराजां बिरद।

—बां.दा.

२ समाधि. ३ सावधानी, चौकसी [सं० आधान] २ गर्भ, पेट. [सं० अभिधान] ५ नाम । उ०—संख्या भेद समांन सूं विध अनेक **अवधांन,** पिंगळ मत विदवांन पढ़ ग्यांन जथा यण ग्यांन ।
—क.कु.बो.

अवधा—सं०पु० [सं० अभिधा] नाम । उ०— धुर द्वाळ **अवधा** धरै गुण थांणी गणगीत, अन क्रम गुण दूहा उकत आद जथा इण रीत ।
—क.कु.बो.

अवधार—सं०पु० [सं० अवधारण] १ सहायक, रक्षक. २ निश्चय, शंकारहित निर्णय ।

अवधारण—सं०पु० [सं०] निश्चय, विचारपूर्वक निर्धारण या निर्णय ।

अवधारणौ, अवधारबौ—क्रि०अ० [सं० अवधारण] १ धारण करना ग्रहण करना । उ०— परम सनेही परम प्रीय **अवधारौ** अरदास, महलें आवौ मोहनां साहिब पूरण आस । —ढो.मा.

२ मानना, स्वीकार करना । उ०—वचन **अवधारउ** असपतिराइ, जै जै वीतुं लसकर मांहि ।— कां.दे.प्र. ३ पूजना, नमस्कार करना. उ०—बेकर जोड़ी करी वीनती, आसापुरी **अवधारि** ।—कां.दे.प्र.

४ विचार करना, निश्चय करना । उ०—राउळ एक **अवधारउ** वात, सेजवाळि गढ़ कीधउ घात ।—कां.दे.प्र. ५ सहायता करना, रक्षा करना ।

अवधारणहार-हारौ (हारी), अवधारणियौ—वि०—अवधारण करने वाला ।

अवधारिओड़ौ, अवधारियोड़ौ, अवधारयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

अवधारियोड़ौ—भू०का०कृ० १ धारण किया हुआ. २ निश्चय किया हुआ. ३ अवधारण किया हुआ । (स्त्री० अवधारियोड़ी)

अवधि—सं०स्त्री० [सं०] १ समय, मियाद, निर्धारित समय ।

उ०—कुंअरी भणइ **अवधि** मइं कही, तिणि दिनि गढ़ भेळासइ सही ।
—कां.दे.प्र.

२ अंत समय, अंतिमकाल. ३ सीमा, हद ।

अव्यय [सं०] तक, पर्यन्त, लौं ।

अवधिग्यांन, अवधिदरसण—सं०पु० [सं०] १ सीमित, अपार ज्ञान ।

२ वह ज्ञान जिससे आत्मा का भी ज्ञान हो तथा जिसके द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, अंधकार और छाया आदि से व्यवहित द्रव्यों का भी प्रत्यक्ष हो (जैन)

अवधिमांन—सं०पु०—सागर, सिन्धु ।

अवधी—सं०स्त्री० [सं० अयोध्या] १ अयोध्यापुरी । उ०—जांणक **अवधी** अरथी, रांम रायंगण ।—रा.रू.

[सं० अवधि] २ देखो 'अवधि' ।

अव्यय—तक, पर्यंत, लौं ।

अवधीच—सं०पु० [सं० औदीच्य] ब्राह्मणों के कुल विशेष (गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज ने रुद्र महान नामक बड़ा शिव-मंदिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा के समय उत्तरी भारत से ब्राह्मणों को बुलाकर उनको वहीं रक्खा । उनकी संतान औदीच्य ब्राह्मण कहलाई । यह मंदिर सं० ९९९ से १०५२ वि० में बनाया गया था ।

अवधीरणा—सं०स्त्री० [सं०] तिरस्कार, अवज्ञा ।

अवधू—सं०पु०—देखो 'अवधूत' उ०—**अवधू** जोगी जुगतै न्यारा, पद निरबांण निरंतर बैण ।—ह.पु.वा.

अवधूत—सं०पु० [सं०] (स्त्री० अवधूतण) १ योगी, संन्यासी ।

उ०—निसचर म्है जांण्यौ **अवधूत** है; रांवण तूं तौ निकळ्यौ धूत ।
—गी.रां.

२ (स्वमतानुयायी) साधु विशेष, वर्ण और आश्रमोचित धर्मों को छोड़ कर केवल आत्मा को ही देखने वाले योगी अवधूत कहलाते हैं, यती ।

वि०—१ कंपित, कंपायमान. २ उदासीन ।

अवधूतांणी—सं०स्त्री०—दशनामी संन्यासियों में स्त्री साधु ।

अवधेस—सं०पु० [सं० अवध+ईश] १ अवधपति, दशरथ.

२ श्रीरामचंद्र ।

अवधेसर—सं०पु० [सं० अवधेश्वर] श्रीरामचंद्र (डिं.को.)

अवध्धौ, अवध्य—वि० [सं० अवध्य] १ बिना आहत किया हुआ, अवध्य । उ०—चढ़ें सिंघ चामुंड, कमळ हूंकारव कध्धौ, डरौ चरंतौ देख, असुर भागियौ **अवध्धौ** ।—देवि. २ वध के अयोग्य, न मारने लायक ।

अवध्वंस—सं०पु० [सं०] १ परित्याग, छोड़ना. २ निंदा. ३ चूर-चूर करना ४ संहार, नाश ।

अवन—सं०स्त्री० [सं० अवनि] पृथ्वी, भूमि (अ.मा.)—रू.भे.

उ०—सिव **अवन** कन्या हुंत संभव अगनि जोति अनोप ए, सुभ द्रस्ट भूप निहारि प्रज सहि अघट किरि सुख ओप ए ।—रा.रू.

अवनत—वि० [सं०] १ झुका हुआ, गिरा हुआ, पतित. २ नम्र, विनीत. ३ दुर्दशाग्रस्त ।

अवनति, अवनती—सं०स्त्री० [सं० अवनति] १ घटती, न्यूनता, कमी.

२ अधोगति, पतन, हीन दशा. ३ दुर्दशा, दुर्गति ।

अवनाड़—वि०—योद्धा, वीर, बलवान, जबरदस्त, देखो 'अनड़' ।

उ०—सीमाड़ थयौ **अवनाड़** सिध अध मठौ ऊंधां चला ।—पा.प्र.

अवनि, अवनी—सं०स्त्री० [सं०] पृथ्वी, धरा (डिं.नां.मा.)

उ०—**अवनी** आंदोळण ओळा ओसरिया, पिड़ि भिड़ि स्वामी पै गोळा जिम गिरिया ।—ऊ.का.

अवनी-अमर—सं०पु० [सं० अवनि+अमर] ब्राह्मण, भूदेव ।

अवनीता—वि० [सं० अ+विनीता] कुलटा ।

अवनीनाथ—सं०पु० [सं० अवनि+नाथ] पृथ्वीपति, राजा ।

अवनीप, अवनीपक—सं०पु० [सं०] राजा, नृप ।

उ०—रुद्रदत्त जिण निरत पुत्र जणिया कुळदीपक । सात जिके रणसूर प्रथम ईस्वर **अवनीपक** ।—वं.भा.

अवनीस, अवनेस–सं०पु० [सं० अवनी+ईश] राजा, नृप।

उ०—१ नमो करनल्ल बळू अवनीस, तोक्यां कर पत्र ससत्र छतीस। —मे.म.

उ०—२ हुवा देस अंचक्क हुवा अवनेस भयंकर।—रा.रू.

अवन्न, अवन्नि–सं०स्त्री० [सं० अवनि] अवनि, पृथ्वी (रू.भे.)

उ०—१ अग जातै आयौ मनै, आयौ पोस अवन्न।—रा.रू.

उ०—२ कीरत 'अजन' कमंध री, अति विसतरी अवन्नि।—रा.रू.

अवप–सं०पु० [सं० अवपु] अनंग, कामदेव (ह.नां.)

अवपाटिक–सं०पु० [सं०] पुरुष का लिंगेन्द्रिय संबंधी रोग विशेष। (अमरत)

अवपात–सं०पु० [सं०] १ तृणादि से आच्छादित किया हुआ हाथियों को फंसाने का गड्ढा. २ पतन, अधःपतन।

अवबाहुक–सं०पु०—एक रोग विशेष जिससे हाथ की संचालन शक्ति रुक जाती है। (अमरत)

अवबेल–सं०स्त्री०— देखो 'अववेल'

अवबोध–सं०पु० [सं०] १ जागना. २ बोध, ज्ञान।

अवभामिनी–सं०स्त्री०— ऊपर की त्वचा (अमरत)

अवभ्रथ–सं०पु० [सं० अवभृथ] १ मुख्य यज्ञ के समाप्त होने पर किए जाने वाले शेष कर्म जिनका विधान है. २ यज्ञांत स्नान। उ०—अस्वमेध अध्वर रा अवभ्रथ री तिरस्कार करता पैंड साम्है ही लगाया। —वं.भा.

अवमतिथि–सं०स्त्री०यौ० [सं०] वह तिथि जिसका क्षय होगया हो।

अवमरद–सं०पु० [सं० अवमर्द] लड़ाई, युद्ध।

उ० पहिली चंडासिराज प्रथ्वीराज १ रौ छोटौ पुत्र सांमंतसिंघ २ दिल्ली रा अवमरद हूं बाळक थकौ कढ़ियौ जिकण नूं पातसाह कुतबुद्दीन मेवात देस रौ कितो'क प्रांत दीधौ। —वं.भा.

अवमरदग्रहण–सं०पु०—सूर्य या चंद्रग्रहण का एक भेद।

अवमांन–सं०पु० [सं० अपमान] निरादर, तिरस्कार, अपमान (रू.भे.)

अवमांनना–सं०स्त्री० [सं० अवमानना] अनादर, अपमान।

अवयदिव–सं०पु० [सं०] (वह स्वर्ग जहां अवस्था नही बदलती) स्वर्ग (नां.मा.)

अवयव–सं०पु० [सं०] १ अंश, भाग, हिस्सा. २ शरीर का अंग, देहांग. ३ तर्कपूर्ण वाक्य का एक अंश या भेद (न्याय)

अवरंग, अवरंगी–वि०—बादशाह औरंगजेब का एक नाम।

उ०—अवरंगी अतीव आपरंगी अग्गनीतो, कियौ भंग लड़ि कुणे जंग जुड़ि बावन जीतो।—रा.रू.

२ बदसूरत, कुरूप. ३ उदासीन, खिन्न चित्त।

अवर–वि० [सं० अपर] १ अन्य, दूसरा। उ०—जसवंत गुरड़ न उड्डही ताळी त्रजड़ तणेह। हाकलियां कूला हुवै पंछी अवर पुणेह। —हा.झा.

२ अधम, नीच, मंद, अश्रेष्ठ [सं० अबल] ३ निर्बल।

अव्यय [सं०] १ और। उ०—जग ईख स्वाद पी ऊख रस जिम अवर चार अनारयं।—रा.रू. २ अगला।

अवरइ–क्रि०वि०—अन्य की, दूसरों की, औरों की। उ०—सभई भमइ अवरइ नाम, कहइ अवर मुझ अवरे काम।—ढो.मा.

अवरकज, अवरज–सं०पु० [सं० अवरज] १ छोटा भाई (अ.मा.,ह.नां.) २ शूद्र, नीच।

अवरण–वि० [सं० अवर्ण] १ वर्णरहित. २ बदरंगा।

३ अवर्णनीय। उ०—वैराट रूप अवरण वरण त्रसकत तंत त्रेगुवा। —अज्ञात

४ जिसका कोई रंग न हो। उ०—रत्त न पीत न स्वेत स्यांम अवरण ऊंकारा।- केसोदास गाडण

अवरणवरण–सं०पु०—ईश्वर, ब्रह्म।

अवरणी–वि० [सं० अवर्णनीय] जिसका वर्णन न किया जा सके, अवर्णनीय। उ०—मीढ़ जग पग्चा उदार, आप करतार अवरणी। —करणीरूपक

अवरती–सं०स्त्री० [सं० अर्वती] घोड़ी। उ०—आपरा अनेक प्रत्युपकार चीताइ आवरत प्रमुख अनेक अनुकरण रा नाच करती अवरती नूं विश्राम री बोल्न दे'र जोड़ये।—वं.भा.

अवरळ–वि० [सं० अविरल] १ मिला हुआ, अपृथक. २ अभिन्न, घना, सघन. ३ उज्वल, निर्मल।

क्रि०वि०—लगातार, धाराप्रवाह। उ०—सकळ सुरांसुर सांमिणी, सुण माता सरसत्त। विनय करे नै वीनवू, मूझ दौ अवरळ मत्त। —ढो.मा.

अवरसणउ, अवरसणौ–सं०पु० [सं० अवर्षण] अवर्षा, अनावृष्टि, दुष्काल

उ०—१ मारू थांकइ देसड़इ, एक न भाजइ रिड़इ, ऊचाळउ क अवरसणउ, कइ फाकउ कइ तिडड।—ढो.मा.

पाठांतर। उ०—२ मारवाड़ के देस मैं, एक न जावै पीड़। कबही हुवै अवरसणौ, कबही फाका तीड।—ढो.मा.

अवराधन–सं०पु० [सं० आराधन] उपासना, पूजा (रू.भे.)

अवराधो–वि० [सं० आराधनी] उपासक, पूजक।

अवरापण, अवरापणौ–सं०पु०—परायापन, दूसरे या अन्य का होने का भाव।

अवरी–सं०स्त्री० [सं० अ+वर+ई] १ कुमारी, अविवाहिता.

२ बिना युद्ध किए हुए सुसज्जित सेना। उ०—धरण निज धांम सलता विकट निज धरण, जोध अवरी वरण करण कण जोट पताखण प्रसण मडता मगज गळ पड़ै, चल पड़ै नाव गजबी गरंद चोट।—अज्ञात ३ एक नागकन्या-विशेष. ४ अप्सरा।

उ०—तरण रथ थिकत घण वहै लागां अतर, अडर कर कर मरै वरण अवरी। पड़ै धड़ गजांगण, कहै इम पंचाणण गजांगण कढै विण सोझ गवरी।—पीथौ सांदू

अवरुद्ध–वि० [सं०] १ रुंधा हुआ, रुका हुआ. २ आच्छादित. ३ गुप्त।

अवरेख–सं०स्त्री० [सं० अवलेख] १ लेख, लकीर. २ प्रतिज्ञा. ३ विचार, ध्यान, निश्चय। उ०—प्रसन करै नवकोटपती नूं, ईहग कुण एही **अवरेख**।—बां.दा.

अवरेखणौ, अवरेखबौ–क्रि०स०—१ देखना, अवलोकन करना। उ०—सूळी देवै महज देय दै फांसी देखौ, मिरघी लकवै मांहि उभय अंतर **अवरेखौ**।—ऊ.का. २ सोचना, विचार करना। उ०—रीत सबै नृप नीतरी, उरधारी **अवरेख**।—रा.रू. ३ लिखना. ४ अनुमान करना।

अवरेखणहार-हारौ (हारी), अवरेखणियौ—देखने या सोचने वाला. **अवरेखिप्रोड़ौ, अवरेखियोड़ौ, अवरेख्योड़ौ**—भू०का०कृ०।

अवरेखियोड़ौ–वि० सोचा या देखा हुआ। (स्त्री० अवरेखियोड़ी)

अवरेण–सर्व० [सं० अपर+एण–रा०प्र०] अन्य, दूसरा। उ०—बेटा जायां कवण गुण अवगुण कवण धियेण, जां ऊभां घर आपणी गंजीजै **अवरेण**।—अज्ञात

अवरेब–सं०पु० [सं० अव=विरुद्ध+रेब=गति] १ कपड़े की तिरछी काट. २ पेंच, उलझन।

अवरोध–सं०पु० [सं०] १ रुकावट, रोक, अड़चन (डि.को.) २ अन्तःपुर, रनिवास (डि.को.) ३ घेर लेना, घेरा. ४ अनुरोध।

अवरोधक–वि० [सं०] अवरोध उत्पन्न करने वाला, रोकने वाला।

अवरोधन–सं०पु० [सं०] १ रोकना. २ छेकना. ३ घेरना. ४ अंतःपुर, रनिवास (वं.भा.)

अवरोपण–सं०पु० [सं०] उखाड़ना।

अवरोसो, अवरोसौ–सं०पु० [रा० अ+भरोसा] अविश्वास, शक।

अवरोह–सं०पु० [सं०] १ उतार, गिराव, पतन, अवनति. २ सीढ़ी, सोपान, जीना. ३ स्वरों का नीचे से क्रमः—नि,ध,प,म,ग,रे, सा (संगीत)

अवरोही–सं०पु० [सं० अवरोहिन्] वह स्वर जिसमें पहले षड़ज का उच्चारण हो।

अवलंब, अवलंबण, अवलंबन–सं०पु० [सं०] १ आश्रय, सहारा, सहायता। उ०—अर भमर का भार सू वल्ली की लता धरती पड़ै। केलिका पेड़ कौ **अवलंब** लहि।—वेलि. टी. २ आधार।

क्रि०प्र०—करणौ-लेणौ-होणौ।

३ पांच प्रकार के कफ में से एक (अमरत)

अवलंबणौ, अवलंबबौ–क्रि०अ० [सं० अवलंबन] अवलंबन करना, आश्रय या सहारा लेना।

अवलंबत–सं०पु० [सं० अविलंबित] वेग (अ.मा.)

वि० [सं० अवलंबित] देखो 'अवलंबित'।

अवलंबित–वि० [सं०] १ आश्रित, निर्भर. २ सहारे पर स्थिर, टिका हुआ, आधारित. ३ किसी बात के होने पर निश्चित किया हुआ।

अवलंबी–वि० [सं० अवलंबिन्] १ स्वतंत्र, आजाद. २ सहारा व आश्रय देने या लेने वाला।

अवल–वि० [अ० अव्वल] १ प्रथम, उत्तम, श्रेष्ठ. २ पहला।

क्रि०वि०—आदि में, आरम्भ में। उ०—अपजस छावै आंगण **अवल** अवसांण न आवै।—ऊ.का.

अवलग्न–वि० [सं०] लगा हुआ या मिला हुआ, संबंधित।

अवळणौ, अवळबौ–क्रि०अ०—वापस मुड़ना। उ०—बाया वळग **अवळणा** बाया, गोविंद गोविंद साड गह।—महारांणा कुंभा रौ गीत

अवळा–सं०स्त्री० [सं० अबला] १ नारी, स्त्री, अबला। उ०—प्रेमि प्रसंग वातां करइ, **अवळा** प्रति ढोलउ हम कहइ।—ढो.मा.

२ देखो 'अबळा'। उ०—**अवळा** असत्री नै लियां घणी भोंय अहीर तूं आयौ छै।—वेलि. टी.

अवळाई–सं०स्त्री०—वक्रता, टेढ़ापन।

अवलाक–सं०स्त्री० [सं० अभिलाष] देखो 'अभिलासा'।

अवलाद–सं०पु० [फा० औलाद] वंशज, संतान, औलाद (रू.भे.)

अवलिग्रौ, अवलियौ–वि०—१ महान. २ उदार।

सं०पु०—महात्मा, सिद्ध पुरुष। उ०—आया संत **अवलिया** बडा-बडा दरवेस।—वी.मा.

अवलियापातसा, अवलियोपुरख, अवलियोपुरस–सं०पु०यौ०—१ ब्रह्मज्ञानी, पूर्ण ब्रह्म. २ सिद्ध पुरुष, महात्मा. ३ मस्त, मस्ताना।

अवळी–वि०—१ उल्टी, विरुद्ध, औंधी. २ विचित्र, अद्भुत। उ०—'ओपा' रांमतणी गत **अवळी** विणसै दिल्ली'र दखण वधै। —ओपौ आढौ

३ सुंदर. ४ सीधी।

सं०पु०—१ एक प्रकार का लम्बा टहनियोंदार पौधा।

सं०स्त्री०—२ पंक्ति, पांति। उ०—नभ देव विमांनन की **अवळी**, उड़ि गिद्धनि के गन संग चली।—ला.रा. ३ समूह, झुंड।

अवळीमांण–देखो 'अमलीमांण' (रू.भे.) उ०—महवेचा विखौ करतां 'मधकर' मछर तणा गढ **अवळीमांण**।—माधोसिंह महेचा रौ गीत।

अवलुंचन–सं०पु०—छेदना, काटना, उखाड़ना, नोचना।

अवलुंचित–वि० [सं०] कटा हुआ या छेदा हुआ।

अवळूड़ी–सं०स्त्री०—याद, स्मरण, स्मृति (अल्पार्थ, प्यार) उ०—**अवळूड़ी** लगाय गयौ म्हारा वालम।—लो.गीं.

अवलेप–सं०पु० [सं० अवलेपन] १ लगाना, लेपन करना, पोतना. २ लगाई जाने वाली वस्तु, लेप।

अवलेपन–सं०पु० [सं०] उबटन, लेप।

अवलेह–सं०पु० [सं०] १ जो न अधिक पतली न अधिक गाढ़ी हो, लेई. २ चटनी, माजून, औषधियों की चटनी।

अवळे–क्रि०वि०—ओट में, आड़ में, शरण में। उ०—ऊतारिय ओडिय तो **अवळे**। वतवार हमै तांय हूंत वळै।—पा.प्र.

अवलोकन–सं०पु० [सं०] १ देखरेख, देखभाल, दृष्टिपात, देखना। (डि.को.) २ जांच-पड़ताल।

अवळी–वि०—विरुद्ध, शत्रु, कष्ट देने वाला। उ०—सांई जो सँवळी हुवै, (तौ) **अवळा** हुवौ अनेक।—ह.र.। दुष्ट, घमण्डी।
सं०पु०—१ प्रसव के समय बच्चे का टेढ़ा या तिरछा हो जाना। २ गिरवी रक्खा हुआ माल।

अवल्ल–वि०—देखो 'अवल'। उ०—चंपा मांणै निर चढ़ै, आंबा भखै **अवल्ल**।—डाढ़ाळा सूर री बात।

अववेल–सं०स्त्री०—सहायता। उ०—सभै सूर असुरांण दळ पूर आयौ सिखर, किणी नह बियै **अववेल** कीजै।—राव जैतसी रौ गीत

अवस–वि० [सं० अवश] १ विवश, लाचार. २ पराधीन. ३ अबाध्य, असमर्थ. [सं० अ+वश] ४ जो वश में न किया जा सके।
क्रि०वि० [सं० अवश्य] १ अवश्य, निसंदेह, निश्चित, जरूर।
उ०—आ काठां चढ़सी **अवस**, धरणीधर दे धोक। सठ मन मानै सुधरसी, पातर सू परलोक।—बां.दा.

अवसता–सं०स्त्री० [सं० अवस्था] १ अवस्था, हालत, दशा. २ समय, काल, परिस्थिति. ३ आयु, उम्र।

अवसर–सं०पु० [सं०] १ समय, मौका। उ०—इण **अवसर** मत आळसै ईसर आखै एम।—ह.र. २ अवकाश, विश्राम, विराम, फुरसत. ३ प्रस्ताव. ४ मंत्र विशेष, वर्षण. ५ बार, दफा।
उ०—कै **अवसर** तोपां सिर काछी, असह ठेलि कीधी रण आछी।
—वं.भा.

अवसरप–सं०पु० [सं० अपसर्प] गुप्त दूत (डि.को.)

अवसरपिणी–सं०स्त्री० [सं० अवसर्पिणी] जैन शास्त्र के अनुसार गिराव का समय, अवरोह।

अवसरवाद–सं०पु० [सं० अवसर+वाद] मौका देख कर कार्य करने का भाव।

अवसरवादी–सं०पु० [सं० अवसर+वादी] मौका देख कर कार्य करने वाला।

अवसरि–सं०पु० [सं० अवसर] देखो 'अवसर' (प्रा रू.)
उ०—तिणि **अवसरि** बोल्यउ सुरतांण, सुकन बोल ताहरउ प्रमांण।
—कां.दे.प्र.

अवसांण–सं०पु०—१ अवसर, मौका, समय। उ०—उण ठांम आय **अवसांण** पाय, आसुर अभीत तिण हरी सीत।—र.रू.
[सं० अवमान] २ विराम, ठहराव, समाप्ति. ३ अंत, सीमा. ४ मरण, मृत्यु. ५ सायंकाल. ६ होशहवास, संज्ञा, चेतनता।
उ०—पछै फेर असवारां मांही आई सौ **अवसांण** खता कर दिया।
—डाढ़ाळा सूर री बात
[अ० अहसान] ७ ऐहसान। उ०—समझणहार सजांण, नर औसर चूकै नही। औसर रौ **अवसांण**, रहै घणां दिन राजिया—किरपारांम
८ युद्ध। उ०—गिरबांण बीमांण केकांण कटै, जमरांण 'गोगौ' **अवसांण** जुटै।—गो.रू.

अवसांणसद, अवसांणसध, अवसांणसिद्ध, अवसांणसिध्ध, अवसांणसुध–सं०पु० [सं० अवसान+सिद्ध] १ अवसर या समय पर कार्य सिद्ध करने वाला या काम आने वाला। उ०—**अवसांणसिद्ध** रहमांण अंस। बाखांण करूं नृप भांण बंस।—वि.सं. २ युद्ध में विजयी वीर। उ०—जुध करि पिरिआं जेम सादाउत **अवसांणसिध**।—वचनिका
३ युद्ध में वीर गति प्राप्त करने वाला। उ०—१ हेकला कमंध सिर महाभारत हुवौ धव करै चत्र पहर फूल धारां। सुरग दिस कुंजरां नरां **अवसांणसिध**, हालियौ वाह फेर वहणहारां।—राजसी बारहठ
उ०—२ झोळिआं ऊपड़िआ छै। जिकै **अवसांणसुध** खत्री छै, तांहरी अरोगी भिळै छै। रा.स.सं.

अवसांणो–सं०पु०—देखो 'अवसांण'। उ०—सौ लढौ **अवसांणो**, मढौ धीर वीर चतुरेम।—रा.रू.

अवसांन–सं०पु०—१ देखो 'अवसांण' (रू.भे.) २ भोजन (अ.मा.) ३ युद्ध (मि० अवसांण)

अवसाऊ–वि० [सं० आवश्यकीय] जरूरी, आवश्यकीय, अवश्य।
क्रि०वि०—१ अवश्य. २ अकस्मात्।

अवसाद, अवसादन–सं०पु० [सं०] १ नाश, क्षय. २ दीनता. ३ विषाद, दुख, थकावट। उ०—घूळै ज्यूं अगहूंतो **अवसाद**, फिरतां मन मूंगा दिन-मांन।—सांझ

अवसाप–सं०पु०—१ बल, सामर्थ्य. २ वदान्यता, उदारपन।
उ०—सरण साधार **अवसाप** रा यंद सम।—दुरगादत्त बारहठ
३ यश, कीर्ति। उ०—बीजां वर्णै नहीं ए बातां सर सातां पूगौ **अवसाप**। हेम तणौ भूखण वड हाथां बगसै नू पातां...।
—उमेदसिंह सीसोदिया रौ गीत
४ देखो 'ओसाप'।

अवसायिता–सं०स्त्री०—अष्ट सिद्धियों में से एक सिद्धि (डि.को.)

अवसि–क्रि०वि० [सं० अवश्य] अवश्य, जरूर, निसंदेह।
उ०—संदेसे ही घर भरयउ, कइ अंगणि कइ बार। **अवसि** ज लग्गा दीहड़ा, सई गिणइ गंवार।—ढो.मा.

अवसिस्ट–वि० [सं० अवशिष्ट] शेष, बचा हुआ।

अवसी–क्रि०वि०—देखो 'अवसि' (रू.भे.)
उ०—आधाइक मालण सू आनै **अवसी** भेळा हुआ नहीं।—बां.दा.

अवसेख–क्रि०वि०—अवश्यमेव।
वि० [सं० अवशेष] बचा हुआ।

अवसेचण–सं०पु० [सं०] १ सींचना, पानी देना. २ पसीना निकलना।

अवसेस–सं०पु० [सं० अवशेष] १ अन्त, शेष, बाकी, समाप्ति।
[सं० अभिषेक] २ अभिषेक, तिलक।
वि०—१ बचा हुआ। उ०—अर **अवसेस** सारा ही सामंत आमारराज सळख रै साथ अरबुदाचळ रै ऊपर चलाया।—वं.भा.
२ धर्मरहित. ३ भेदक. ४ तुल्य, समान।

अवस्कंद–सं०पु० [सं०] सेना की ठहरने की जगह, शिविर, डेरा।

अवस्ता–सं०स्त्री०—१ पारसियों की धार्मिक पुस्तक, जिंद अवस्था.
२ देखो 'अवस्था' (रू.भे.)

अवस्था–सं०स्त्री० [सं०] १ दशा, हालत, वेदांत के अनुसार चार अवस्थाएँ—जागृत, स्वप्न, सुषप्ति और तुरीय.

२ आयु, उम्र। उ०—सैसव कहतां बाळक **अवस्था**।—वेलि.टी.

स्मृति के अनुसार जीवन की आठ अवस्थाएँ—कौमार, पौगंड, किशोर, यौवन, बाल, तरुण, वृद्ध और वर्षीयान. ३ चार की संख्या॥

अवस्य–क्रि०वि० [सं० अवश्य] अवश्य, निसंदेह, निश्चित, सर्वथा-संभव।

अवस्स–क्रि०वि० [सं० अवश्य] देखो 'अवस्य'। उ०—आरी जीत **अवस्स** धरम पख धारियौ।—किसोरदांन बारहठ।

वि०—देखो 'अवस' (१, २) उ०—अजन विखौ आरंभियौ, पुर धरकिया **अवस्स**।—रा.रू.

अवस्सांण–सं०पु० [सं० अवसान] देखो 'अवसांण'।

अवहरण–वि० [सं० अपहरण] हरने वाला, दूर करने वाला।

अवहार–सं०पु०—१ बंधन। उ०—तण **अवहार** बेवळां तोड़ै, गोरी सेन अचेत गियौ।—उडणा प्रथीराज रौ गीत। २ नाका, मगर।

अवहित्था, अवहिथा–सं०स्त्री० [सं० अवहित्था] भय, गौरव लज्जादि के कारण हर्षादि के आकार को छिपाने की क्रिया का नाम। साहित्य में जो व्यभिचारी व संचारी भावों के अंतर्गत माना जाता है।

उ०—१ उनमाद अमुग्रा ग्लान अंग **अवहिथा** जडता धत अंग।
—क.कु.बो.

२ गूघू ज्यूं घर में घुसौ प्रीतम क्यू परभात। लागां चंदण लेप सू दरै न नख दरसात।—क.कु.बो.

अवहेलण, अवहेलन, अवहेलना–सं०पु० [सं० अवहेलना] अवज्ञा तिरस्कार, अपमान।

अवांतर–सं०पु० [सं०] मध्य, भीतर।

अवांरियां, अवांरियै–सं०पु०– देखो 'अंवारियां'।

उ०—धंब नरसिंघ थायौ खीच करमां कौ खायौ, **अवांरियां** पधार आयौ बात बोल बोदां की।—ऊ.का.

क्रि०प्र०—जाणौ।

अवांस–सं०पु० [सं० आवास] प्रासाद, महल।

उ०—आवी **अवांसई** सांचरी। हीयडइ हरीख मन रंग अपार।
—वी.दे.

अवाई–सं०स्त्री०—१ शब्द या ध्वनि, संदेश, खबर। उ०—अर आतंक री **अवाई** सूं जठी तठी रा गढ़ां रा कवांडां रै माथै।—वं.भा.

२ आगमन, आना. ३ गहरी जुताई।

अवाक, अवाकि, अवाकी–वि० [सं० अ+वच्+णिच मतांतर घञ गौः] १ चुप, मौन. २ स्तम्भित, चकित। उ०—धूहड़िया खग धाक, तौ वाळी तखतेस तण। वैरी हुवै **अवाक**, पिड़ गज बोहू प्रतापसी।
—किसोरदांन बारहठ

[रा०] ३ बहादुर, बलवान. ४ अप्रमाणिक। उ०—न तौ कमाळ वेद वाक्य को **अवाकी** कीजिये। ऊ.का.

सं०पु०—१ शत्रु, वैरी। उ०—साहसूं **अवाकी** थकै नव साहसां, आपबळ भुजां कीन्ही अनैसी।—द्वारकादास दधवाड़ियौ

अवाड़–सं०पु०—चोरों के पदचिन्हों के खोज के निमित्त चक्कर देने का भाव या विचार।

अवाड़ी, अवाड़ू–सं०पु०—१ वैद्य, चिकित्सक. २ चोर के पदचिन्हों की जाँच के लिए चक्कर देने वाला।

अवाड़ो–सं०पु०—१ कुएँ के पास पशुओं के जल पीने का बना स्थान। २ देखो 'ऊवाड़ो'।

अवाचक–सं०पु० –काव्य का एक दोष। उ०—ईछतै अरथ न कहै **अवाचक** सो संदरभ रहै संदेह।—बां.दा.

अवाचा–वि०–किसी वादा या वचन का रद्द होना। उ०—औ नीलो रूंख छै, जै छै मास तांई ना'यौ तौ तैं कहियौ न म्हैं सुणियौ, म्हैं कहियौ न तैं सुणियौ, वाचा **अवाचा** छै।—बात सयणी चारणी री

अवाचि, अवाची–सं०स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा। उ०—कह्यौ स्वकूच प्राचि कौ प्रतीचि पंथ तू परयौ। **अवाचि** जांण आदरयौ उदीचि कौ अनादरयौ।—ऊ.का.

अवाच्य–वि० [सं०] १ अकथ्य, जो कहा न जा सके। उ०—मनबुध अमांन पहुँचै न प्रांन, वाचक न वाच्य वह पद अवाच्य—ऊ.का.)

२ अनिंदित. ३ विशुद्ध. ४ मौनी, चुप. ५ जिससे बातचीत करना उचित न हो, नीच, अधम।

सं०पु०– [सं० अ०+वाच्य] कुवाच्य, गाली।

अवाज–सं०स्त्री० [फा० आवाज] शब्द, आवाज, ध्वनि, बोली।

क्रि०प्र०—आणी-करणी-देणी-पड़णी-मारणी-होणी।

अवाडू–वि०—विपरीत, विलोम, उल्टा, विरुद्ध। उ०—पांखड़ियां ई किउं नही, दैव **अवाडू** ज्यांह। चकवी कइ हइ पंखड़ी, रयणि न मेळउ त्याह।—ढो.मा.

अवाडो–वि०—१ बुरा. २ द्वेष रखने वाला।

अवात–वि० [सं० अ+वात] जहाँ वायु न लगे, वातशून्य।

अवादौ–सं०पु०—समय की मयाद, अवधि। उ०—पछै पातसाहजी आपरा हजूरी लोग दिनां रौ **अवादौ** बोलनै जाळोर मेलिया वे अठै आय...।– नैणसी

अवाप–सं०पु० [सं० आवापक] करभूषण, कंकण (डि.को.)

अवार–सं०स्त्री० —१ विलम्ब, देर, बेर। उ०—बळ दंध मार बयण बांणासुर आये दिन न कीध **अवार**, वडा वडा गा तोरण बांदे नवल वना अहंकार निवार।—ओपौ आढ़ौ [रा० अ+वार=विलंब] २ शीघ्रता. [रा०] ३ कंटीले झड़बेरी के बिना पत्तों के सूखे डंठलों का गेंडुरीनुमा ढेर।

अवारू–क्रि०वि०—अविलम्ब, अभी। उ०—तिकौ सिद्धराव जैसिंघ नै खबर हुई, काई बावड़ी सूं मालजादी दगौ कियौ थौ, तिकौ रातै लालू नै मारियौ, **अवारू** पांच आदमी मारिया, माळिया रा किवाड़ जड़ बैठी छै।—जगदेव पंवार री बात

अबाळ—सं०पु०—१ रहँट के कंगूरेदार दोनों चक्रों को आपस में मिलाने की क्रिया। रहँट पर घूमने वाले दोनों चक्र के सिरे जो एक दूसरे में फंसकर लाठ को घुमाते हैं। (रू.भे.—उबाळ). २ नदी के जल-प्रवाह के साथ आने वाला कूड़ा-करकट जो दोनों तटों पर पड़ा रह जाता है।

अबाळौ—सं०पु०—१ देखो 'अवाडौ' (रू.भे.)
२ देखो 'ऊवाड़ौ' (रू.भे.)

अबास—सं०पु० [सं० आवास] १ वास, घर, निवासस्थान, भवन।
उ०—पोळ प्रवाह करै पग पूजन, बड़ा **अबास** छोळ द्रब बेग। सिंधुर सात दोय दस सांसण, नाग ग्रहै दीधा इम नेग।
—बारूजी सौदा

[सं० आभास] २ चमक-दमक। उ०—वरखा रितु लागी आभा झरहरै वीजां **अबास** करै।—रा.सा.सं. [सं० उपवास] ३ व्रत, उपवास, लंघन।

वि० [स० अ+वास] १ निवासस्थानरहित. २ गंधरहित।
उ०—अनांम अकांम **अबास** अवेस आदेस आदेस आदेस आदेस।—ह.र.

अबास्य—सं०पु० [सं० आवास] वास, घर, निवासस्थान।
उ०—राई **अबास्यां** संचरघौ, सेज पधारयौ सांभरघौ राव—वी.दे.

अबाह—सं०पु० [सं० अबाध] १ जिस पर प्रहार न हो सके।
उ०—या दोळी अजमेर रै अकबर चमू अपार। औरंगसाह सनाह कर, थयौ **अबाह** प्रहार।—रा.रू.

२ भट्ट., ईंटों आदि से बना बड़ा चूल्हा। उ०—अति कळमळै प्रांण आपांणै। जळै **अबाह** छादियौ जांणै।—रा.रू. ३ कुम्हार के बर्तन पकाने का स्थान, आवां. ४ योगिनी का खप्पर।
उ०—खपिया जठै अठारै खोयण, आधी रहिया तेण **अबाह**। चोसट खपर पूरिया चुळबळ, हेकण कमंध तणी हथवाह।
—प्रिथीराज जैतावत री गीत

अबाहण—सं०पु० [सं० आह्वान] आह्वान, बुलावा। उ०—आया अन भूपत **अबाहण** भुजंगे भुजंग तजे वळभंग।—महारांणा प्रताप री गीत

अबिंद, अबिंध—वि०—छिद्रहीन, बिना छेदा हुआ (अमरत)
उ०—सउ सहसे एकोतरै, सिरि मोतीहरि सुध्ध। नदी निवासउ उत्तरइ, आणूं एक **अबिंध**।—ढो.मा.

अबि—सं०पु० [सं०] १ बकरा. २ भेड़।

अबिअट, अबिअट्ट, अबिअटु, अबिआट—सं०पु०—[सं० अट्ट=अतिक्रमण हिंसनयो: अभि+अट्ट=अविअट्ट] १ युद्ध। उ०—काळै अजुआळी किआौ, आवि दळां **अबिअट्ट**।—वचनिका २ वीर, योद्धा।
उ०—समराट, पतिपाट, **अबिआट** खत्रवाट साची—पिं.प्र. ३ झुंड, समूह, दल। उ०—वीजळां झाट **अबिआट** भांजण विढै।
—अनोपसिंह सांदू

सं०स्त्री०—४ तलवार, कृपाण। उ०—गोगा वीरम वैर कज्ज यूं वाही **अबिअट**—वी.मा.

वि० [सं० अविकट] ललित, मनोहर। उ०—कलीआंण सोरठ कमडौ बज परज कालंग बहंगड़ौ, अघड नट थट करत **अबिअट** चपट चटपट बाज चट चट।—सुरादास बारहठ

अविकळ—वि० [सं० अविकल] १ ज्यों का त्यों, बिना परिवर्तन या हेर-फेर के. २ पूर्ण, पूरा. ३ निश्चल, शांत. [रा०] ४ व्याकुल, घबराया हुआ. ५ वीर, बहादुर।

अविकार—वि० [सं०] १ निर्विकार, विकाररहित. २ परिवर्तनरहित, अविकल. ३ अविनाशी, जन्ममरणादि से रहित।
सं०पु० [सं०] १ विकाराभाव. २ ईश्वर, ब्रह्म।

अविकारी—वि० [सं० अविकारिन्] १ जिसमें विकार या परिवर्तन न हो, निर्विकार, विकारशून्य। उ०—जेहल ताळ खड़ीण व्है तरवर लाकड़ होय। हरम ढहे ढूंढा हुवै जस **अविकारी** जोय।—बां.दा.
यौ० अविकारी सब्द (व्याकरण)।
सं०पु०—सदैव एक सा रहने वाला, ईश्वर, ब्रह्म। उ०—अलख निरंजण अज **अविकारी**, व्याप रह्या सब जग मांही।—मी.रां.

अविगत—वि० [सं०] जिसकी गति का पता न चल सके, जो नष्ट नहीं हो, नित्य।
सं०पु०—ईश्वर (ह.नां.) उ०—१ मांगै मांगै पाव महेसर पगां तणी दै सेव प्रमेसर। **अविगत** नाथ पूरजै आसा। उ०—जगत कहै दसरथ रौ जायौ, **अविगत** थारौ नांम अजायौ।—पीरदांन लाळस

अविगति—सं०पु०—ईश्वर (नां.मा.)

अविग्रह—वि० [सं० अ+विग्रह] निराकार, जो स्पष्ट रूप से न जाना जा सके।

अविचळ—वि० [सं०] १ अचल, अटल, अमर। उ० और देवी राठा-सण छै, तिणरी तू घणी सेवा करजै। राज ताहरौ **अविचळ** रहसी।—नैणसी ३ स्थिर। उ०- जळ भूप प्रिस्ट धारे जुगळ वार्म भ्रू **अविचळ** वर्ण।—रा.रू. [सं० अ+विचल] ३ निडर, धीर, दृढ़, वीर।

अविचार—सं०पु० [सं०] १ विचार का अभाव, अविवेक. २ अन्याय।

अविचारित—वि० [सं०] बिना विचारा हुआ।

अविचारी—वि० [सं० अविचारिन्] अविवेकी, अज्ञानी।

अविच्छिन्न—वि० [सं०] अविच्छेद, अटूट, लगातार, अभंग।

अविच्छेद—वि० [सं०] अटूट, लगातार।

अविच्चळ—वि०- देखो 'अविचळ' (रू.भे.) उ०—ऊजळा चउंर ढळकइ अबीह, सिरि छत्र **अविच्चळ** जइतसीह।—रा.ज.सी.

अविड़ौ—वि०—१ दुर्गम, टेढ़ा-मेढ़ा. २ बाँकुरा, वीर (मि० अबीढ़ौ)

अविणास—सं०पु० [सं० अविनाश] १ विनाश का अभाव, अक्षय, नाश-रहित. २ ईश्वर, परब्रह्म।

अविणासी—वि० [सं० अविनाशी] जिसका नाश न हो, अनाशवान, अनिश्वर, अक्षय, नित्य, शाश्वत। उ०—अगम अगोचर अलख अचळ **अविणासी** ईस्वर।—रा.रू.

सं०पु०—१ ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा. २ शिव। उ०—तेगां वळ वादळ तड़ितासी, वरखा सी सर सोक वज। एकरा पगवांरगी **अविरगासी** कासीवासी कमळ कज।—दुरजणसाल भाटी री गीत।

अवितंस—सं०पु० [सं० अवतंस] १ भूषण, अलंकार. २ शिरोभूषण, टीका, मुकुट, शिरपेंच. ३ दूल्हा. ४ श्रेष्ठ व्यक्ति। उ०—यळा पुड़ न्याय वजै **अवितंस**। वडौ पौहचाळ सिधांरोह वंस।—पा.प्र.

वि०—निष्कलंक, (निर्बंधन) उ०—मुखड़ो पूनम रौ मयंक ऊगतड़ो **अवितंस**।—पा.प्र.

अविदित—वि० [सं०] अज्ञात, गुप्त, अप्रकट।

अविदिया—सं०स्त्री० [सं० अविद्या] देखो 'अविद्या'

अविदुसी—वि०— [सं० अविदुषी] मूर्खा, अनपढ़ी।

अविद्या—सं०स्त्री० [सं०] १ विपरीत ज्ञान. २ मिथ्या ज्ञान, अज्ञान। ३ मोहमाया का एक रूप या भेद (दर्शन). ४ मूर्खता. ५ कर्मकांड. ६ प्रकृति।

वि०—जड़, अचेतन।

अविद्वांन—वि० [सं० अविद्वान] जो विद्वान न हो, मूर्ख।

अविध—सं०पु० [सं० अवधि] अंत, हद, सीमा, पराकाष्ठा।

उ०—खंगारोत तूझ धिन खत्रवट, आखे जगि हुई **अविध**।

—सक्तावत विट्ठलदास री गीत

अविधांन, अविधा—सं०पु० [सं० अभिधान] नाम। उ०—तौ पद **अविधांन** प्रवाड़ा सूरत अरविंद इडग तंत इधकार।—रा.रू.

अविधूत—वि० [सं० अवधूत] देखो 'अवधूत' (रू.भे.)

उ०—गोदड़ कांनफाड़ जोगी जंगम सोफी संन्यासी **अविधूत** पंचागनी रा झूलगाहार अलमसत फकीर जिके संसार नूं भागा थका फिरै।—रा.सा.सं.

अविन—सं०स्त्री० [सं० अवनि] देखो 'अवनि' (रू.भे.)

अविनय—सं०पु० [सं०] विनय का अभाव, उद्दंडता।

अविनस्वर—वि० [सं० अविनश्वर] जो नष्ट न हो, चिरस्थायी।

अविनास—सं०पु० [सं० अविनाश] विनाश का अभाव, अक्षय।

अविनासी—वि० [सं०] देखो 'अविरगासी' (रू.भे.)

उ०—निरालंब निरलेप, अनंत ईसर **अविनासी**।—ह.र.

अविनीत—वि० [सं०] जो विनीत न हो, दुष्ट, ढीठ।

अविपित्तक—सं०पु० [सं०] अम्ल पित्त के रोग में दिया जाने वाला एक चूर्ण।

अविबुध—सं०पु० [सं०] असुर, राक्षस, दैत्य।

अविभक्त—वि० [सं०] अभिन्न, मिला हुआ, संयुक्त।

अविम्रस्य-विधेयंस—सं०पु० [सं० अविम्रस्यविधेयांश] साहित्य का एक दोष जहां विधेय अंश का विमर्श न हो। उ०—बिध उलटी **अविम्रस्य-विधेयंस**, प्ररथ कस्ट सौं कस्ट अधेय।—बां.दा.

अवियाट—वि०—देखो 'अविम्राट' (रू.भे.)

उ०—खूरम खांन दराब खीसिया, ग्रहासिया ग्रांबाट। **अवियाट** दूजा बळू अचळा थोभियौ गज थाट।—जैता महियारिया रौ गीत

अविरथा—क्रि०वि० [रा० अ+सं० वृथा] वृथा, फजूल।

उ०—निरंजन भजि तजि आंन सगाई, (तूं) क्यूं जन्म **अविरथा** खोवै।—ह.पु.वा.

अविरळ—क्रि०वि० [सं०] १ मिला हुआ, अपृथक, अभिन्न. २ घना, सघन, निविड़. ३ निरंतर, लगातार। उ०—विनय करी नैछी नियूं, द्यौ मुझ **अविरळ** मत्त।—ढो.मा.

अविरांम—वि० [सं० अविराम] बिना विश्राम के, बिना ठहराव के, निरंतर, लगातार।

अविरुद्ध—वि० [सं०] जो विरुद्ध या खिलाफ न हो, स्पष्ट।

उ०—कुवचन मुख कहणी नहीं, सुवचन कहणी सुद्ध, वचन विवेक पचीसिका इम आखै **अविरुद्ध**।—बां.दा.

अविरोध—सं०स्त्री० [सं०] १ समानता, साम्य, सादृश्य. २ मैत्री, मेल, एकता, प्रीति. ३ विरोधाभाव, अनुकूलता।

अविरोधी—वि० [सं० अविरोधिन्] जो विरोधी न हो, अनुकूल।

अविलंबत—क्रि०वि० [सं० अविलम्बित] शीघ्र, तुरन्त, बिना देरी के (ह.नां.)

अविळ—क्रि०वि०—१ अविलंब (पिं.प्र.)

वि०—टेढ़ा, तिरछा।

अविवाहित—वि०उ०लिं० [सं०] कुंआरा, जिसका विवाह न हुआ हो।

अविवेक—सं०पु० [सं०] विवेकाभाव, अविचार, अज्ञान, नासमझी, नादानी। उ०—बचन नृपति **अविवेक**, सुण छोड़े सैणां मिनख। अपत हुवां तर एक, रहे न पंछी राजिया।—किरपारांम

२ अन्याय।

अविवेकता—सं०स्त्री० [सं०] विवेक न होने का भाव, अज्ञानता।

अविवेकी—वि० [सं० अविवेकिन्] अज्ञानी, अविचारी, मूढ़, अन्यायी।

अविसेख—सं०पु० [सं० अभिषेक] अभिषेक, तिलक।

(रू.भे. अभिसेख)

अविस्वास—सं०पु० [सं० अविश्वास] विश्वास का अभाव।

अविस्वासी—वि० [सं० अविश्वासिन्] १ जिसका कोई विश्वास न करे, जिस पर विश्वास न किया जाय. २ जो किसी पर विश्वास न करे।

अविह—वि०—निडर, निर्भय, देखो 'अबीह'।

अविहड़—वि० [सं० अ+विघट] १ दृढ़, मजबूत. २ अखंड, अटूट।

उ०—थे पहचउ हिव पूगळ-भणी, तउ **अविहड़** होइ प्रीति आपणी।

—ढो.मा.

वि०—ऐसा। उ०—म्हैं तो **अविहड़** आदरी, जिहां लगें जीवन देह।

—ढो.मा.

अवींध—वि० [सं० अविध] १ बिना छेद का। देखो 'अविंध'— (रू.भे.) २ पूर्ण।

अवी—सं०पु० [सं० अवि] भेड़ा

अवीघट–देखो 'अविघट' (रू.भे.)

अवीचि–सं०पु० [सं०] एक नरक का नाम (पौराणिक)

अवीदात–वि०—देखो 'अवदात' (ह.नां.—रू.भे.)

अवीदौ–वि०—१ दुर्गम. २ टेढ़ा, तिरछा. ३ बांकुरा।

अवीघाट–देखो 'अविघाट' (रू.भे.)

अवीहड़–देखो 'अविहड़' (रू.भे.) उ०—रांणी इम रूड़ी परै, धरती अवीहड़ प्रीत।—ढो.मा.

अवूठणौ–क्रि०अ० [सं० अवृष्ट, प्रा० अवुट्ठ] अवर्षण होना, वर्षा न होना। उ०—अवूठेइ इंद्र घटै त्रिण अन्न।—रांमरासो

अवेखणौ, अवेखबौ, अवेखिणौ, अवेखिबौ–क्रि०स० [सं० अवेक्षण] देखना, ध्यान लगाना। उ०—पूगै जे हरयांन सांझ रै पैलां बादळ, रहे अवेखण अरक होवतौ आंख्यां ओभळ।—मेघ.

अवेखणहार-हारौ (हारी), अवेखणियौ—देखने वाला।

अवेखिओड़ौ, अवेखियोड़ौ, अवेख्योड़ौ—भू०का०कृ०।

अवेखियोड़ौ–भू०का०कृ० [सं० अवेक्षित] देखा हुआ (स्त्री० अवेखियोड़ी)

अवेढ़ी–वि०—१ प्रतिकूल. २ एकान्त (द.दा.)

अवेर–सं०स्त्री० [सं०] १ देरी, विलम्ब. [रा०] २ सम्हालने की क्रिया, ध्यान रखने का भाव।

मुहा०—हाथ री अवेर बत्ती है—स्वयं के द्वारा देख-सम्हाल करना सदैव अच्छा होता है।

अवेरणौ, अवेरबौ–क्रि०स० [सं० अवेरण] १ किसी कार्य को सुचारु रूप से करना. २ संभालना. ३ समेटना। उ०—मालिक रा माथा री उसीसौ हुवौ आपरौ बामेतर बाहू अवेरियौ।—वं.भा.

अवेरणहार, हारौ (हारी) अवेरणियौ–संभालने या समेटने वाला।

अवेराणौ-अवेराबौ, अवेरावणौ-अवेरावबौ–क्रि० प्रे०रू०।

अवेरिओड़ौ-अवेरियोड़ौ-अवेर्योड़ौ–भू०का०कृ०।

अवेरीजणौ-अवेरीजबौ–कर्म वा०—संभाला या समेटा जाना।

अवेरीजिओड़ौ-अवेरीजियोड़ौ-अवेरीज्योड़ौ–भू०का०कृ०—संभाला या समेटा गया हुआ।

अवेराणौ, अवेराबौ–क्रि०प्रे०रू०—१ सम्हलाना. २ समेटाना. ३ सँवारने का काम कराना।

अवेराणहार, हारौ (हारी) अवेराणियौ–वि०—सम्हलाने या समेटाने वाला।

अवेरावणौ-अवेरावबौ–रू०भे०।

अवेराविओड़ौ-अवेरावियोड़ौ-अवेराव्योड़ौ–भू०का०कृ०— समेटा, सम्हलाया या सँवारा हुआ।

अवेरायोड़ौ–भू०का०कृ०—सम्हलाया या समेटाया हुआ। (स्त्री० अवेरायोड़ी)

अवेरावणौ, अवेरावबौ–क्रि०प्रे०रू०—देखो 'अवेराणौ' (रू.भे.)

अवेरियोड़ौ–भू०का०कृ०—समेटा, सम्हाला या सँवारा हुआ। (स्त्री० अवेरियोड़ी)

अवेरो, अवेरौ–सं०पु०—१ कार्य को पूर्ण करने का भाव. २ सम्हालने, समेटने या सँवारने की क्रिया का भाव।

क्रि०वि० [अ+बेर] बेवक्त। उ०—इम परखे राजा आंबेरौ, आवै हित धर वेर अवेरौ।—रा.रू.

यौ०—वेर-अवेर।

अवेळौ–वि० [सं० अवेला] देर, विलम्ब।

कहा०—१ आथमियां पछै अवेळौ कैड़ौ, खोसियां पछै डर कैड़ौ। सूर्यास्त के पश्चात देर कैसी। लुट जाने के पश्चात भय कैसा। २ आप मरियां पछै अवेळो नईं नै खोयां पछै भी नईं—अपनी मृत्यु के बाद अथवा संपत्ति के लुट जाने पर किसकी चिंता की जाय। ३ सवेळी पणियार नै अवेळौ मेह—समय पर पानी भरने वाली पनिहारिन तथा रात्रि का मेह सदैव उत्तम होता है।

अवेव–सं०पु०—भेद, रहस्य। उ०—दीठी तौ ही गति न जांणां देव, अनंत तुहीणा कोटि अवेव।—ह.र.

वि०—निर्बल, दुर्बल, कमजोर।

अवेस–वि० [सं० अ+वेश] १ वेशरहित. [सं० अ+वयस] २ आयु-रहित, अनादि। उ०—अनांम अकांम अवास अवेस।—ह.र.

सं०पु० [सं० आवेश] जोश, आवेश।

अवै–सर्व०—उस। उ०—इसौ कहि बीड़ौ लीधौ, अवै पोठ भरियो नै भांति-भांति री चीजां लीधी।—कहवाट सरवहिया री बात

क्रि०वि०—अब। उ०—तद रंभा बोली, अवै म्हांरौ मुजरौ छै, हूं जाऊं छूं।—वीरमदे सोनगरा री बात

अवैतनिक–वि० [सं० अ+वेतन] जो बिना वेतन काम करे।

अवोड़ौ–सं०पु० [सं० अवहेल] सम्मान किये जाने योग्य व्यक्ति को उसकी बात का दिया जाने वाला कड़ुवा उत्तर, कटूक्ति।

अवोचण–सं०पु० [सं० अवंचन] पर्दानशीन स्त्रियों के पर्दा के निमित्त यात्रा में सिर पर ओढ़ने का श्वेत वस्त्र (मि० मुकनौ)

अव्यक्त–वि० [सं०] १ जो व्यक्त न हो, अगोचर, अप्रत्यक्ष, अदृष्ट. उ०—नमौ अव्यक्त नमौ सरवेस।—ह.र. २ अज्ञात. ३ अनिर्वचनीय, अकथनीय. ४ अस्पष्ट. ५ जिसमें रूप गुण आदि न हों. ६ अप्रकाशित।

सं०पु० [सं०] १ विष्णु. २ कामदेव. ३ शिव. ४ प्रकृति (सांख्य). ५ आत्मा, परमात्मा. ६ क्रियारहित ब्रह्म, जीव, सूक्ष्म शरीर।

अव्यय–वि० [सं०] १ सदा एक सा रहने वाला, जिसमें विकार उत्पन्न न हो। २ नित्य, आद्यंतहीन, अनश्वर। उ०—अनामय अव्यय अक्षय आप।—ऊ.का. ३ प्रवाह रूप से नित्य रहने वाला। उ०—ओगण मेटणहार, अमोलख ओखद इणमें। गूंद गणौ गुणकार, अव्यय सक्ति है जिणमें।—दसदेव

४ सदैव एक ही या समान रूप से प्रयुक्त होने वाले वे शब्द जिनके रूप, लिंग, वचन और कारकों के प्रभाव से बदलते नहीं हैं (व्याकरण)

अव्ययीभाव–सं०पु०यौ० [सं०] समास का एक भेद (व्याकरण)

अव्यवस्थित–वि० [सं०] १ शास्त्रमर्यादारहित. २ चंचल, अस्थिर. ३ असंगठित, व्यवस्थारहित ।

अव्यापी–सं०पु० [सं० अव्यापिन्] जो सब जगह व्याप्त न हो ।

अव्रत–सं०पु० [सं०] १ व्रत का अभाव. २ जैन मतानुसार व्रत का त्याग ।

वि०— जिसका व्रत नष्ट हो गया हो ।

अव्रद्ध–वि० [सं० अ+वृद्ध] (स्त्री० अव्रद्धा) युवा, जवान ।

अव्वतार–सं०पु०—देखो 'अवतार' ।

अव्वतारी–सं०पु०—अवतार लेने वाला ।

अव्वनी–सं०स्त्री०—देखो 'अवनी' (रू.भे)

अव्वर–वि० [सं० अपर] दूसरा, अन्य । उ०—दृढ़ नेम वचन मुख देखियां उर कंपावण **अव्वरां** ।—रा.रू. २ देखो 'अवर' । (रू.भे) सं०पु० [सं० अंबर] आकाश ।

अव्वल–वि०—देखो 'अवल' । उ०—अमरसिंह निगठ, सारी बात में **अव्वल** ।—अमरसिंह री बात

असंक–वि० [सं० अशंक] १ निर्भय, शंकारहित । उ०—सुर नर नाग नमै सह कोय । करै सह संक **असंक** न कोय ।—रांमरासौ

[सं० असंख्य] २ असंख्य, बहुत, अत्यधिक । उ०— घर कांम काज मन क्रोध धंक, भड़ हुवा घाव रमणा **असंक** ।— शि.मु.रू.

सं०पु०—१ युधिष्ठिर (ह.नां.). २ आतंक, भय (अ.मा.)

असंक, असंका–सं०स्त्री० [सं० अशंका] शका न होना, संदेहविहीनता । उ०—१ अठठां दिकपाळ न सम **असंक** ।—ऊ.का. उ०—२ सुण रांणी सीत **असंका** नैं, बन मेले लिखमण बंका नैं । धारे खळ पाछै धंकानै, लेगौ गह सीता लंका नै ।—र.रू.

असंकित–वि० [सं० अशंकित] १ निर्भय, निडर. २ शंकारहित. [सं० असंख्य] ३ असंख्य, बहुत ।

असंकी, असंकौ–वि०—निडर, निर्भय । उ०—भुजनाथ खळां सिर पारथ भारथ, आडा जीत **असंकौ** ।—क.कु.बो.

असंख, असंखी, असंखै, असंख्य, असंख्यात–वि० [सं० असंख्य] जिसकी गिनती न की जा सके, अगणित, अपार । उ०—१ **असंख** चत्रकोट रा सुणे दळ आवतां तरां अजमेर रा जड़णा ताळा ।

—कांन पंचोळी रौ गीत

उ०— २ नमौ जग आदि पुरक्ख जगीस, नमौ अवतार **असंखै** ईस ।

—ह.र.

३ **असंख्या** तूझ तणा अवतार ।—ह.र.

असंग–वि० [सं०] १ निर्लिप्त, अलग, किसी से सम्बंध या वास्ता न रखने वाला । उ०—उपत्ति-खपत्ति-प्रकत्ति-**असंग**, राजीवलोचन्न जांणौ धुवरंग ।—ह.र. २ एकाकी, अकेला । [रा०] ३ जबरदस्त बलवान । (मि० असंगौ) उ०—**असंगां** भमांड वाळां खगाटां **असंभ** ।—महाराजा रणसी रौ गीत

[सं० असंख्य] ४ असंख्य, अपार ।

सं०पु० [सं० अ+संग] १ बुरा संग, कुसंग. २ वृक्ष, पेड़ (अ.मा.)

असंगति–सं०स्त्री० [सं०] असम्बन्ध, बेसिलसिलापन ।

असंगौ–वि०—संग या साथ की परवाह न करने वाला, जबरदस्त, बलवान । उ०—जायल नृप **असंगां** उर झालण, अौ सारंग सुतवंस उजाळण ।—पा.प्र.

असंजोग–सं०पु० [सं० असंयोग] १ अनमेल, भिन्नता, पृथकत्व. २ अनायास, बेमौका, संयोगरहित ।

असंत–वि० [सं०] खल, दुष्ट, असाधु, नीच, दुर्जन ।

असंतुस्ट–वि० [सं० असंतुष्ट] १ जो संतुष्ट न हो, अतृप्त. २ अप्रसन्न ।

असंतुस्टि, असंतुस्टी–सं०स्त्री० [सं० असंतुष्टि] १ सन्तोष का अभाव, अतृप्ति. २ अप्रसन्नता ।

वि०— [सं० असंतुष्ठ+ई] असंतुष्ठ रहने वाला ।

असंतोस–सं०पु० [सं० असंतोष] १ संतोष का अभाव, अतृप्ति. २ अप्रसन्नता ।

असंतोसी–वि० [सं० असंतोषिन्] जिसे सन्तोष न हो, असंतुष्ट ।

असंध–सं०पु० [सं० आसन्नद्ध कवच । उ०—मुरड़क्क, मुड़क्क **असंध** मुड़ै, जुधपाळ अनै जिदराव जुड़ै ।—पा.प्र.

वि०—[सं० अ+संधि] बिना संधि या जोड़ का । उ०—तिके एक दिन वीरमदे नै निजर आया । थाळ **असंध** कोई दीसै नहीं ।

—वीरमदे सोनगरा री बात

[सं० असंधिक] २ अपूर्व, अद्वितीय । उ०—अवज्झड़ त्रिज्झड़ भड़ै **असंध**, कटै कर कोपर काळिज कंध ।—वचनिका

असंधौ–वि० [सं० असंधि] अनजान, अपरिचित । उ०—गूंद लाडू ले'र वीन वण, कर घमंड फुरती घणी । जाय **असंधै** ग्रांम गवाड़ै, परण पधारै वीनणी ।—दसदेव

असंप–सं०पु० [रा० अ+संप=मेल] विरोध, शत्रुता, स्नेहाभाव । उ०—दयण सकंप **असंप** विध, दोठां नावै दाय । किर पंखी वस पींजरै, छूटण करै उपाय ।— रा.रू.

असंपड़–वि० [सं० असंपुट] १ असंभव । उ०—संसार **असंपड़** संपड़ै 'जगा' नांम जगदीस रौ ।—ज.खि.

[रा० अ+संपाड़ौ=स्नान] २ बिना स्नान किया हुआ ।

असंभ–वि० [सं० असंभव] १ जो संभव न हो, नामुमकिन । उ०—एक खंड की हुवै अमावड़, अन खंडां मावणौ **असंभ** ।

—महाराजा मांनसिंह

[सं० अ+संभाति=संभव=असुहावना] २ भयंकर, भयावह । उ०—आड रोपी वज्रंद भीक वागौ **असंभ**, लीक टोप पटक पंथ लागौ ।—भरतपुर रौ गीत

[सं० अ+संभ+भृ=ड़्=संभ=असंभृ=असंभ] ३ बहुत, अपार । उ०—**असंभ** ऊपटै क्रोध जळ साहपुर नद अटक ।

—महाराजा रणसी रौ गीत

[सं० असंभव] ४ अजन्मा, अज, स्वयंभू। उ०—आदि अनादि **असंभ** आप मुद्रा ऊपाए, ओंकार अप्पार पार अम ही नहिं पाए।
—मालो आसियो

[सं० असंभव] ५ वीर, बहादुर। उ०—असमांनि जइत उठियउ **असंभ** थिड़तइ संसारि दे आभि थंभ।—रा.ज.सी.

६ अद्वितीय। उ०—इहै वर राजा तूझ **असंभ**, थियै चत्र पुत्र उभै कुळ थंभ।—रांमरासो

सं०पु० [रा०] १ युद्ध। उ०—असंगां भमाड वाळां खग्राटां **असंभ**।
—महाराजा रतनसी रौ गीत

२ जन्म व उत्पत्ति से रहित। उ०—नमो रुसि तापस रूप रिखंभ, नमो अवतार उदार **असंभ**।—ह.र. [सं० असंभव] ३ देखो 'असंभव'।

असंभम, असंभव—वि० [सं० असंभव] जो संभव न हो, नामुमकिन।
उ०—नाहर मलिक ऊसरिउ पाछउ हूई **असंभम** वात।—कां.दे.प्र.
सं०पु०—एक प्रकार का अलंकार विशेष जिसमें किसी पदार्थ की असंभवता बतलाई जाती है।

असंभावना—सं०स्त्री० [सं०] १ संभावना का अभाव, अनहोनापन।
उ०—सो **असंभावना** है समत्थ, बद कांड भरत ब्रह्मांड बत्थ।
—ऊ.का.

२ एक प्रकार का अलंकार विशेष।

असंभाव्य—वि० [सं०] १ न कहने योग्य, जिसका उच्चारण करना अनुचित हो, बुरा. २ जिसकी संभावना न हो।

असंभै—वि० [सं० असंभव] असंभव, नामुमकिन।

असंम—वि०—रागरहित (ह.र.)

असंसय—वि० [सं० असंशय] संशयरहित, निर्विवाद, यथार्थ।

असंसारी—वि० [सं०] १ विरक्त. २ अलौकिक।

अस—वि० [सं० ईदृश] १ ऐसा, इस प्रकार का। उ०—**अस** अप्रबळ भयस कळप तरु आयस जीवन गयौ समेत जड़।—रिवदांन महड़ू
२ तुल्य, समान।
क्रि वि०—इस तरह, इस भांति, ऐसे। उ०—तिरगे हम ज्यूं तस और तिरे, फिरगे हम ज्यूं **अस** ओर फिरे।—ऊ.का.
सं०पु० [सं० अश्व] १ घोड़ा, अश्व। उ०—लाखां दे तोपां जूट लार, कुंजर **अस** बगसे खग कटार।—वि.सं. २ सात की संख्या*।

असइ—सं०स्त्री० [सं० अ+सती] कुलटा, व्यभिचारिणी।
उ०—वाणिजां वधू गौ वाछ **असइ** विट चोर चकव विप्र तीरथ बेळ।—वेलि.

असकंदर—सं०पु०—यूनान का एक बादशाह, सिकंदर।
(वि०वि०—देखो 'सिकंदर') (रू.भे.—इसकंदर)
उ०—**असकंदर** जे आवही सुलेमांन वळ साज। तौ पी नह सूंपां तुनै अकबर कांहू आज।—बां.दा.

असकत—वि० [सं० अशक्त] १ अशक्त, अक्षम, असमर्थ, निर्बल।

असकणौ—सं०पु० [सं० असि+करण] लोहे का एक खुरदरा व दानेदार दो अंगुल चौड़ा और जौ भर मोटा एक औजार जिससे तलवार के म्यान के भीतर की लकड़ी साफ की जाती है।

असकाज—सं०पु०—भाला, बरछा (ना.डिं.को.)

असकुन—सं०पु० [सं० अशकुन] बुरा शकुन या लक्षण।

असक्त—वि० [सं० अशक्त] निर्बल, कमजोर।

असक्ति—सं०स्त्री० [सं० अ+शक्ति] निर्बलता, कमजोरी।

असखपणौ—सं०पु०—धनुष से तीर चलाने की क्रिया या काम।
उ०—जैसें वाउ थंभै तौ मेह वरसै त्यां अठै **असखपणौ** दूरि हुऔ।
—वेलि. टी.

असखेल—सं०पु० [सं० हसखेल] हँसी, मजाक, दिल्लगी। उ०—तैसूं थे इसी बात क्यूं कहो छो। बेटौ म्हांरौ छै। वांणियौ **असखेल** करै छै।—पलक दरियाव री बात

असगंध—सं०पु० [सं० अश्वगंधा] गर्म प्रदेशों में होने वाली एक सीधी झाड़ी।

असगुन—सं०पु०—देखो 'असकुन' (अमरत)

असगौ—वि०—१ जिससे संबंध या रिश्ता न हो. २ संबंध या रिश्ता न रखने वाला।

असग्गौ—वि०—देखो 'असगौ' (रू.भे.)
सं०पु०—शत्रु।

असड़ो, असड़ौ—वि० [सं० ईदृश] ऐसा (स्त्री० असड़ी)
उ०—अंग असळाक मोड़तौ आयौ दुल्हावत **असड़ौ** दरसायौ।
—वरजू बाई

असज्जन—वि० [सं०] जो सज्जन न हो, खल, दुष्ट।

असज्य—वि० [सं० असह्य] जो सहन न किया जा सके, असह्य।
उ०—सहियौ नँह जैसिंघदे, सज्य **असज्य** प्रताप।—बां.दा.

असटंग—वि० [सं० अष्टांग] देखो 'असटांग'।

असटंगी—वि०—आठ अंगों या अवयवों वाला।

असट—वि० [सं० अष्ट] आठ। उ०—कोस **असट** डेरा किया, प्रगट त्रिवेणी पार।—रा.रू.
सं०पु०—आठ की संख्या।

असटकुळ,असटकुळी—सं०पु० [सं० अष्टकुल] सर्पों के माने जाने वाले आठ कुल शेष, वासुकि, कंबल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख, और कुलिक (पुराण)

असटपद—सं०पु० [सं० अष्टापद] १ स्वर्ण, सोना (अ.मा.) २ सिंह (मि० अष्टपात)

असटपदी—सं०स्त्री० [सं० अष्टपदी] १ आठ पदों या चरणों का गीत या छंद. २ मकड़ी।

असटपात—सं०पु० [सं० अष्टपाद] १ शरभ, शार्दूल. २ मकड़ी (ह.नां)

असटपौ'र—सं०पु० [सं० अष्टप्रहर] अष्ट प्रहर, आठ पहर।

असटमी—सं०स्त्री० [सं० अष्टमी] शुक्ल या कृष्ण पक्ष की आठवीं तिथि।

उ०—उंच दिवस **असटमी** आद पख भाद्रव आयां।—रा.रू.

असटांग—सं०पु० [सं० अष्टांग] १ अष्टांग—योग की क्रिया के निम्नलिखित आठ भेद—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि. २ आयुर्वेद के माने जाने वाले आठ विभाग—शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगद तंत्र, रसायनतंत्र और बाजीकरण. ३ शरीर के आठ अंग—जानु, पाँव, हाथ, उर, शिर, वचन, दृष्टि और बुद्धि जिनसे प्रणाम करने का विधान है।

असटापद—सं०पु० [सं० अष्टापद] १ स्वर्ण, सोना। उ०—झड़प पाट झणणाट भोज जरदोज अछेरा। धव पेंडी कळधूत, कळस **असटापद** केरा।—मे.म. २ धतूरा. ३ सिंह (ह.नां.). ४ कृमि. ५ मकड़ी।

असटाविधांन—सं०पु० [सं० अष्ट+विधान] १ काव्य चमत्कार संबंधी आठ बातें. २ एक ही समय में एक साथ आठ भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य कर सकने की सामर्थ्य।

असटाविधांनी—सं०पु० [सं० अष्ट+विधान+ई] वह व्यक्ति जो एक ही समय में आठ भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य एक साथ कर सकने में समर्थ हो।

असण—सं०पु० [सं० अशन] १ भोजन, आहार (मि० असन)
उ०—आप करै सोही **असण**, इस्ट भोग अवसेस, इम पूपी जुग करि उठै, प्रभु रै कीधी पेम।—वं.भा.
२ चित्रक, भिलावाँ (डि.को.). ३ तीर, बाण।
उ०—तूटै **असण** धसण तरवारां, झोक छड़ाळां दिए झळ।
—नाथौ सांदू
४ सवार। उ०—घण वहण लोहण सघण घण, हय गजण कण-कण **असण** हण।—र.रू. ५ टेक, जिद्द, आग्रह. ६ गड्ढा.
[सं० अशनि] ७ वज्र। उ०—पड़ै गोळा **असण** उभै कोसां झेला।—मेघजी महड़ू

असणी—सं०स्त्री० [सं० अशनि] विद्युत, वज्र, इंद्रास्त्र। उ०—**असणी** जांणक इंद्र रौ पड़ै सीस पाहाड़।—किसोरदांन बारहठ

असत, असत्त—वि० [सं० असत्] १ मिथ्या, झूठ। उ०—विड री **असत** विजौ थियौ वांसै, वाजै हाक थई विकरोळ।—नैणसी
२ असाधु, अन्यायी, अधर्मी। उ०—सविधांग 'कल्यांण' तणौ अत सीधौ, अगै भेटियां **असत** अग्यांन।—दूदौ आसियौ
[सं० असत्वर] ३ कायर, डरपोक। उ०—उदग **असत** गया उलंडै, लाज बंधण पग लागौ लीह।—रावत रत्नसिंह चूंडावत रौ गीत
[सं० असवेत] ४ काला, श्याम। उ०—**असत** भमर सम आपियां बोम अहुरां बंक।—पा.प्र. [सं० अस्त] ५ छिपा हुआ, तिरोहित, अदृष्ट. ६ नष्ट. ७ खराब, बुरा। उ०—खत्रवट घट हुआं समै वळ खातां, पग पग घातां **असत** पुळ। जोतां राव जवांन ऊजळी, कसना रावत तणौ कुळ।—जसजी आढ़ौ
सं०पु० [सं० असत्य] १ झूठ, असत्य, मिथ्या। उ०—सत पोखण सोखण **असत**, उदित हरी हर आप।—जैतदांन बारहठ
क्रि प्र०—केणौ-बोलणौ।
[सं० असत्व] २ जड़, प्रकृति [सं० अस्त] ३ लोप, सूर्यास्त, अवसान. ४ नाश, विध्वंस. ५ सत का अभाव, देखो 'सत'।
[सं० अस्थि] ६ हड्डी, अस्थि। उ०—खग गिलत गूंदा तत अखत, वण **असत** परवत मेरवत।—रा.रू. [रा०] ७ शत्रु, दुश्मन।
उ०—सूजा हरौ **असतां** सालै, हालै मन मानिए हुए।—नाथौ सांदू

असतर—सं०पु० [सं० अस्=क्षेपणे, अस्त्र] १ वह हथियार जो फेंक कर चलाया जाय जैसे—बाण आदि. २ शत्रु के फेंके हुए हथियार को रोकने वाला उपकरण जैसे—ढाल. ३ मंत्र द्वारा चलाए जाने वाले हथियार. ४ चिकित्सकों के चीर-फाड़ करने वाले औजार [सं० अश्वतर] ५ खच्चर।

असतरी—सं०स्त्री [सं० स्त्री] १ महिला, नारी। उ०—लेखै **असतरी** प्रभु लूड सारंग सरलिया।—र.रू. २ पत्नी. ३ इस्त्री।

असतळ—सं०पु० [सं० स्थल] १ संन्यासियों के रहने का स्थान।
उ०—पूरब में मकमूदाबाद चंद्रकांणै गंमावतां रा वड़ा **असतळ** है।—बां.दा. २ मैदान।

असताचळ—सं०पु० [सं० अस्ताचल] वह कल्पित पर्वत जिसके पीछे जाकर सूर्य अस्त या छिप जाता है। उ०—थळ कज्जळ सरजीव कना **असताचळ** अग्रज। कना सेव कारणै देव सुत आया दिग्गज।
- रा.रू.

असति, असती—वि० [सं० अ+सती] १ जो सती न हो, कुलटा.
२ क्षीण, कमजोर। उ०—अभनमापाळ भुरजाळ यम ऊचरै, भांमणा लेहूं मूछाळ भूरा। असतियां चाढ़ियां कळा **असती** हुवै, सूर चढ़िया कळा हुवै सूरां।—अज्ञात [सं असत+ई] २ अधर्मी, पापी, दुराचारी।
उ०—चढ़ियौ कुळजुग पूर चढंतां, घण **असती** जाचतां घणां। मुख भेटतां समां मेवाड़ा, टळियौ पातक डील तणौ।
—महारांणा प्रताप रौ गीत
३ कायर, डरपोक, अशक्त। उ०—१ भूलगौ गसती भोम आगे वे **असती** भागौ।—अज्ञात
उ०—२ यूं करतां आया दळ आघा, पड़ भागा **असती** कर पेच।
—अभैसिंह चिमनसिंह चांपावत रौ गीत
४ काला, श्याम (नां.मा.)
सं०पु० [सं० असत्य] १ मिथ्या, झूठ (ह.नां.)
[सं० असत] २ विधर्मी, यवन। उ०—सूर नांमियौ गंगाजळ स्रोणी, सत सीधौ 'कल्यांण' सकाज। **असती** पोहां तणै आभड़ियौ, अनड़ प्रवीत हुऔ तिण आज।—दूदौ आसियौ

असतुंड—सं०पु० [सं० अश्व+तुंड] घोड़े की नाक। उ०—कटै **असतुंड** दुखंड कपाळ, रुकै ढक (ल) हुंत न कुंत कराळ।—रा.रू.

असतूत, असतूति, असतूती—सं०स्त्री० [सं० स्तुति] १ स्तवन, यशोगान, कीर्ति, कीर्तन (अ.मा.) प्रशंसा, प्रशस्ति, बड़ाई (डि.को.)

२ विनती, प्रार्थना, स्तुति। उ०—१ राजा इसी असतूती करी छै।
—पलक दरियाव री बात

उ०—२ ब्रहमा विसन महेस सेस असतूत करंदै।—केसोदास गाडण

असतोत्र—संपु० [सं० अस्तोत्र] १ गुण, कर्म और समावादी से स्तुति करना. २ किसी देवता का छंदोबद्ध स्वरूप कथन या गुण कीर्तन, स्तुति, स्तवन। उ०—प्रसन्न करण निज किरणपति सत असतोत्र उचार।—सूरज असतूत

असतौ—संपु०—निर्लेप। उ०—भूपर भालाळाह हेक तूंह असतौ हुवौ।
—पा.प्र.

असत्कार—संपु० [सं०] अपमान, तिरस्कार, निरादर।

असत्य—वि० [सं०] मिथ्या, झूठ।

असत्यता—संस्त्री० [सं०] झूठाई, मिथ्यापन।

असत्यवाद—संपु० [सं०] झूठ बोलना।

असत्यवादी—वि० [सं०] झूठ बोलने वाला, झूठा।

असत्र—संपु० [सं० अस्त्र] १ अस्त्र, हथियार। उ०—सोह ससत्र असत्र तुटा सकाज, कई माह मल जुद्ध करण काज।—शि.सु.रू.

[रा०] २ सूअर (अ.मा.)

वि० [सं० अ+शस्त्र] १ निशस्त्र, निहत्था। उ०—अणपांण अधीर लड़ै असत्रां। सवळां तन पांण लड़ौ ससत्रां।—पा.प्र.

[सं० अ+शत्रु] २ जो शत्रु न हो, मित्र।

असत्र-ससत्र—संपु०यौ० [सं० अस्त्र+शस्त्र] अस्त्र-शस्त्र, हथियार। देखो 'असत्र' (१)

असत्री—संस्त्री० [सं० स्त्री] १ स्त्री, महिला, नारी।

उ०—सूतौ धारै सांत सांभळ असत्री रा सबद।—पा.प्र.

२ पत्नी, जोरू। उ०—अंग री असत्री अंग रौ भरतार पाईजै छै।
—रा.सा.सं.

असथन—संपु०—अस्थि, मज्जा (डिं.को.)

असथळ—संपु० [सं० स्थल] देखो 'असतळ' (रू.भे.)

असथांन—संपु० [सं० स्थान] स्थान। उ०—उनमनि असथांन इसो दाता, अवर नांही अभै आपैदांन।—ह.पु.वा.

असथी—संस्त्री० [सं० अस्थि] अस्थि, हड्डी।

असथीपंजर—संपु०यौ० [सं० अस्थि+पंजर] हड्डियों का ढांचा, कंकाल (डिं.को.)

असदगति—संस्त्री०यौ० [सं० असद्गति] अधोगति।

असद—वि० [सं०] दुष्ट, नीच। उ०—असद गुरु सद्गुरु लच्छण ईख।
—ऊ.का.

असन—संपु० [सं० अशनि] देखो 'असण' (अ.मा.)

उ०—उर तरुणि सुख धनवंत जण अति असन गरम अनेक ए।
—रा.रू.

असनांन—संपु० [सं० स्नान] स्नान, नहाना। उ०—सफरा असनांन लाग धारां, उतरा रिव क्रम क्रम असमेद।
—हुकमीचंद खिड़ियौ

असनि—संपु० [सं० अशनि] १ वज्र, विद्युत (डिं.को.)

उ०—मनहु बूंद बस बात, असनि असमान विछुट्टिय।—ला.रा.

२ देखो 'असणि' ३ ओला। उ०—तोप-सब्द घनघोर तुपक भल असनि वरक्खिय।—ला.रा. ४ अंत गुरु की चार मात्रा का नाम (डिं.को.)

असनिकुमार—संपु० [सं० अश्विनीकुमार] देवताओं के वैद्य माने जाने वाले सूर्य के दो पुत्र जो त्वष्ठा की पुत्री प्रभा नाम की स्त्री से उत्पन्न हुए थे। उ०—असनिकुमार अगनि वन आखौ, देवनाथ महि वांमण दाखौ।—रा.रू.

असनी—संपु०—१ देखो 'असणि' (अ.मा.) [सं० अश्विनी]

२ सत्ताइस नक्षत्रों में से एक (नां.मा.)

असनेह—संपु० [सं० अस्नेह] १ शत्रुता, दुश्मनी, स्नेह का अभाव।

उ०—१ जुड़वा रण पाबुअ जींद जुआ। हट लाग सगा असनेह हुआ।
—पा.प्र.

२ अळगौ ही उर मैं बसै नींद न आवणवेह। ससि वदनी रौ साहिबौ कै दोयण असनेह।—बां.दा.

असन्न—वि० [सं० आसीन] आसीन, बैठा हुआ। उ०—आडवळै आयौ फरइ, एवड़ मांहि असन्न। तिण अजांणा ढोलइ तणइ, सूरख भागइ मन्न।—ढो.मा.

संपु० [सं० अशन] आहार, भोजन। उ०—नारायण भजियौ नहीं, भजिया अवर भजन्न, ज्यां तजियौ मांनव जनम, सक्रिया तन्न असन्न।
—ह.र.

असन्नु—संपु० [सं० अशन] १ भोजन (मि० असन, असण—रू.भे.)

संपु० [सं० अ+सज्जन=असज्जन, अप० असयण=असन्नु] असुर, राक्षस। उ०—दुस्टी असन्नु वेद छिन्नु बहु रुवन्नु अज्ज ए—करुणासागर

असप—संपु० [सं० अश्मन्] १ प्रस्तर, पत्थर (अ.मा.)

[सं० अश्व] २ घोड़ा [सं० अश्व+पति] ३ देखो 'असपति' (१२)

असपत—संपु० [सं० अश्वपति] देखो 'असपति' (१, २)

असपति, असपती—संपु० [सं० अश्व+पति] १ घोड़े का स्वामी, रिसालदार. २ बादशाह। उ०—उण वक्त खबर गुजरात आय। असपती अमल दीन्हौ उठाय।—वि.सं. ३ आसपास में लघु व मध्य में गुरु की चार मात्रा का नाम ।S। (डिं.को.)

असपतिराइ, असपतिराय, असपतिरावि, असपतीराइ, असपतीराय—संपु० बादशाह। उ०—बोल न मान्यउ असपतिराइ, गढ़ जाळहुर भणी दळ जाइ।—कां.दे.प्र.

असपत्त, असपत्ति, असपत्ती—संपु०—देखो 'असपति' (१, २)

उ०—उर भुकमा असपत्त सूं, तुकमा लेवण त्यार। पाछा करण प्रताप ज्यूं, बेढ़ नृपत वैपार।—किसोरदांन बारहठ

असपथ—संपु० [सं० अश्वत्थ] पीपल (ह.नां., पाठांतर)

असपरा—संपु०—१ देवता (अ.मा.)

संस्त्री० [सं० अप्सरा] २ अप्सरा, स्वर्ग की वेश्या।

असप्पति–सं०पु०—देखो 'असपति' (१, २) उ०—दोउ मयमंत सुजांण मेज दिसि बाहुड़इ । जाँणे धरती-काज **असप्पति** ग्राहुड़इ ।
—डो.मा.

असबझ–वि० [रा० असमझ] १ अज्ञानी, मूर्ख । उ०—म्हूँ अयांण **असबझ** हसौ ।—पीरदांन लाळस २ देखो 'असमझ'

असबाब–सं०पु० [अ०] सामान, सामग्री, चीज, वस्तु प्रयोजनीय पदार्थ ।

असभ्य–वि० [सं०] अशिष्ट, गंवार, उद्दंड । उ०—अहो अलभ्य उद्धमे **असभ्य** सभ्य अन्यते ।—ऊ.का.

असमंजत–सं०पु० [सं० असमंजस] बड़े उद्धत अत्याचारी स्वभाव का एक सूर्यवंशी राजा जो पिता के द्वारा त्यक्त होने पर भी वही राज्य का उत्तराधिकारी हुआ और कालांतर में बड़ा प्रसिद्ध हुआ । प्रसिद्ध राजा अंशुमान के यह पिता थे ।—रांमरासौ

असमंजस–सं०पु० [सं० असमंजस] पसोपेश, हिचकिचाहट, आगा-पीछा, दुविधा । देखो 'असमंजत' ।

असमंद्र–क्रि०वि० [सं० आ+समुद्र] समुद्रपर्यंत ।

असम–सं०स्त्री० [सं० अ+शम] १ अग्नि, आग (ना.डिं.को.)
सं०पु०—२ लुब्धता. ३ अशांति [सं०] ४ एक प्रकार का अलंकार विशेष जिसमें उपमान का मिलना असंभव कहा जाय ।
वि० [सं०] १ जो समान न हो, विषम. २ उबड़-खाबड़, ऊँचा-नीचा ।

असमझ–वि०—मूर्ख । उ०—हरण विसधर बचौ, आग बुझाय अंगार ! पिसण मार सुत पिसण रौ, **असमझ** लियौ उबार ।— बां.दा.
सं०स्त्री०—अज्ञानता, मूर्खता । उ०—परमेस्वरजी निमित्त धरम पुन करौ । घणौ सोच करणौ तौ **असमझ** रौ कांम छै ।
—पलक दरियाव री बात

असमत्थ–वि० [सं० असमर्थ] अयोग्य, अशक्त, दुर्बल, सामर्थ्यहीन ।
उ०— मुनि घालै तप जोग बळ, सरग कपाटां हत्थ । वे ही क्रपण कपाट नूं, ऊघाडण **असमत्थ** ।—बां.दा. ।

असमनेत्र–वि०यौ० [सं० असम+नेत्र] जिसके नेत्र विषम हों ।
सं०पु०—महादेव, शिव ।

असमय–सं०पु० [सं० अ+समय] विपत्तिकाल, कुसमय ।
वि०—सिद्धांतहीन, प्रतिज्ञाहीन ।

असमर–सं०स्त्री० [रा० अ+सं० समर] तलवार, खड्ग (अ.मा.)

असमरथ–वि० [सं० असमर्थ] अयोग्य, अशक्त, दुर्बल, सामर्थ्यहीन ।

असमबांण–सं०पु० [सं० असम+बाण] कामदेव ।

असमसर–सं०पु० [सं० असमशर] कामदेव ।

असमांण–सं०पु० [फा० आसमान] आसमान, आकाश । उ०—जमी **असमांण** न आंण न जांण, न लोकालोक न खांण न जांण— ह.र.
वि० [सं० अ+समान] जो समान न हो ।

असमांणक–सं०पु० [फा० आसमान] १ आसमान. २ स्वर्ग ।

असमांणि, असमांणी–वि०—१ आसमान जैसा. २ आसमान संबंधी, आकाशीय, दैवी । उ०—१ पाया सिधां परम तत, फतै **असमांणी** ।
—केसोदास गाडण

उ०—२ महाराज री **असमांनी** फतेह हुई ।—बां.दा.
सं०पु०—१ आसमान । उ०—वीरमदे चडियउ भंडरि लगि, लेखावि अस्सी असमांण लगि ।—रा.ज.सी. २ नीला रंग ।
क्रि०वि०—आकस्मिक, अचानक ।

असमांन–सं०पु०—देखो 'असमांण' उ०—वे बे कबांण भूथांण बंध, **असमांन** छिबत रोसांण अंध ।—वि.सं.

असमांनी–सं०स्त्री०—१ देखो 'असमांणी' २ आकाश के रंग से मिलते जुलते रंग का घोड़ा (शा.हो.)

असमाथ–वि० [सं० असमर्थ] असमर्थ, विवश ।

असमाध–सं०स्त्री० [सं० असमाधि] १ बिमारी, रोग. २ कष्ट, पीड़ा.
उ०— बडा जैसिंघजी रै मास दोय **असमाध** रही, पक्षाघात हुवौ ।
—बां.दा.
३ उपद्रव, कलह । उ०—घोडी आंण समाध **असमाध** उपाई ।
४ युद्ध । —वी.मा.

असमाधणौ, असमाधबौ–क्रि०अ० [सं० असमाधि] मरना ।
उ०—पछै रांणौ रायमल **असमाधियौ**, तैरै जिसौ लायक नहीं, रजपूत राजी नहीं ।—नैणसी
असमाधणहार-हारौ (हारी), असमाधणियौ–वि०—मरने वाला ।

असमाधि, असमाधी–सं०स्त्री०—१ पीड़ा, दुख, कष्ट (अ.मा.)
२ बिमारी, रोग (ह.नां.) (मि० असमाध–रू.भे.)

असमाप्त–वि० [सं०] अपूर्ण, अधूरा ।

असमाप्ति–सं०स्त्री० [सं०] अपूर्णता, अधूरापन ।

असमावत–वि० [सं० असमावर्त] जिसका समावर्त्तन संस्कार न हुआ हो.

असमाहित–सं०स्त्री० [सं०] चित्त की अस्थिरता ।
वि०—चंचल ।

असमेध, असमेघ–सं०पु० [सं० अश्वमेध] १ देखो 'अस्वमेध'.
२ एक प्रकार का घोड़ा विशेष जिसका श्वेत रंग हो अथवा अगला एक पैर श्वेत हो तथा दोनों कान श्याम रंग के हों । आंखें बड़ी बड़ी तथा आंखों में लाल रेखा हो । मतांतर से केवल काले कानों वाला घोड़ा भी असमेध कहलाता है । (शुभ शा.हो.)

असम्मर, असम्मी–सं०पु०—तलवार, खड्ग (डिं.को.)
(रू.भे.–असमर)

असयांनौ–वि० [सं० अ+सज्ञान] छल व चतुराई से रहित, सीधा-सादा ।

असर–सं०पु० [अ०] १ प्रभाव, दबाव [सं० असुर] २ असुर, राक्षस.
३ यवन, मुसलमान । उ०—अतुळीबळ झाड़ै **असरां** रौ, खागां मार गमाड़ै खोज ।—र.रू. [सं० असृज] ४ रुधिर, खून ।
उ०—**असर** घड़तोड़ ओहाळ मुंह ऊतरै, नदी नदियां मिळै रातड़ौ नीर ।—महारांणा रायमल्ल रौ गीत

वि० [सं० अ+शर] शररहित, बिना बाण के ।

असरचौ–सं०पु०—तकरार, झगड़ा, टंटा । उ०—जितरै आपस में **असरचौ** हुवौ । आपस में बोलणै लागा । ताहरां खींवै काढ़ि कटारी नै वाही ।—चौबोली

असरण–वि० [सं० अशरण] निराश्रय, निरावलंब, अनाथ, जिसे कहीं शरण न हो । (यौ० असरण-सरण)

उ०—१ त्रिभुवन-तारण-तरण, सरण-**असरण** साधारण ।—ह.र.

२ **असरण** सरण कह्यां गिरधारी, पतित उधारण पाज ।

—मीरां

असरण-सरण–वि०यौ० [सं० अशरण-शरण] निराश्रय व अनाथों को शरण देने वाला । उ०—परमेस्वर अणपार परम पूरण परमातम । श्रीपति **असरण-सरण** तरण-तारण त्रिगुणातम ।—रा.रू.

सं०पु०—ईश्वर ।

असरधा–सं०स्त्री० [रा०] १ कमजोरी । उ०—अै पंच तौ समाज री गरीबी अर **असरधा** ऊपर नहीं देय'र ।—वरसगांठ

[सं० अश्रद्धा] २ अश्रद्धा, श्रद्धा का अभाव ।

असरफी–सं०स्त्री० [फा० अशरफी] १ सोने का एक सिक्का, स्वर्ण-मुद्रा, मोहर ।

सं०पु० [रा०] २ पीले रंग का एक फूल ।

असरम, असरम्म–वि० [रा० अ+फा० शर्म] बेशर्म, बेहया ।

असरांण–सं०पु०—१ असुर. २ यवन, मुसलमान [सं० असुर+राट] ३ बादशाह ।

असराफ–वि० [अ० अशराफ] शरीफ, भद्र, सज्जन । उ०—जुंगूं कै जैतवार सिपाह बुलाए । दौ पक्खी विरदेत **असराफों** के जाए ।

—रा.रू.

असरायळ–वि०—शक्तिशाली, जोरावर (द.दा.)

(रू०भे०—अजरायळ, असराळ)

असरार–सं०पु० [सं० असुरारि] देवता (अ.मा)

असराळ [सं० आशरार] देखो 'अस्सराळ' (रू०भे०) उ०—काळ दुकाळ संभाळ करै करुणा के सागर, झाळ **असराळ** त्रिकाळ टरै हरि जासु कृपा कर ।—करुणासागर

असल–वि० [अ०] १ वास्तविक, जो झूठा या बनावटी न हो । उ०—कूड़ा निलज कपूत, हियाफूट ढांढ़ा **असल** ।—किरपारांम

२ खरा, सच्चा, बिना मिलावट का, खालिस. ३ कुलीन ।

सं०पु०—१ जड़, मूल, बुनियाद. २ मूलधन ।

असलस–सं०पु० [सं० आलस्य] आलस्य । उ०—सखी **असलस** लावड मौं सावण मास ।—वी.दे.

असळ-सळ–सं०स्त्री०—सेना के घोड़ों द्वारा चलने व दौड़ने पर उत्पन्न ध्वनि । उ०—ग्रीभ हळवळ समर गळळ पळ मळगरां **असळ-सळ** वळोवळ कळळ ढुकळ तुरा । महादांन महड़ू

असळाक, असळाख, असळाग–सं०पु० [सं० आलस्य] आलस्य, सुस्ती, शिथिलता, अनुत्साह । उ०—१ अंग छागी **असळाख** लाखां मांख्यां मुख लागी ।—ऊ.का. उ०—२ अंग **असळाक** मोड़तौ आयौ, दुल्हा-यत असड़ौ दरसायौ ।—वरजूबाई

उ०—३ उडै नहिं **असळाग** मांखियां बैठे मूंडे ।—ऊ.का.

असलियत–सं०स्त्री० [अ०] १ वास्तविकता. २ बुनियाद. ३ सार, तत्व ।

असली–वि० [अ० असल] सच्चा, खरा, बिना मिलावट का, शुद्ध, अकृत्रिम ।

कहा०—१ असली गुण कूं ना तजै, गुण कूं तजै गुलांम—असली गुण को नहीं त्यागता, वर्णशंकर गुण को त्याग देता है ।

असलीजदा–कुलीन, श्रेष्ठ । उ०—उत्तिम मद्धिम गुलांम कुण, कुण **असलीजदा** ।—केसोदास गाडण

असलीन–वि० [अ० असल] १ देखो 'असली' [सं० अश्लील] २ अश्लील, भद्दा, असभ्य ।

असलीयत–सं०स्त्री० [सं० असलियत] देखो 'असलियत' (रू.भे.)

असलील–वि० [सं० अश्लील] भद्दा, असभ्य, अशिष्ट ।

असलेखा–सं०स्त्री० [सं० अश्लेषा] सत्ताइस नक्षत्रों में से एक (नां.मा.)

कहा०—१ असलेखा बूठा बैदां घरै वधांमणा—अगर अश्लेषा नक्षत्र में वर्षा हो तो वैद्यों के घर बधाई के बाजे बजेंगे और रोग खूब फलेगा. २ असलेखा साव देसा—अश्लेषा नक्षत्र में सर्वत्र वर्षा होती है ।

असल्ली–वि० [अ० असल] देखो 'असली' उ०—ऊंधे पाघड़े काळ रूपी **असल्ली** बोलै पारसी ऐरसी गल्लवल्ली ।—वचनिका

असव–सं०पु० [सं० अश्व] घोड़ा, घोटक, तुरंग (ना.डि.को.)

असवत–सं०स्त्री० [सं० अश्वत्थ] पीपल (अ.मा.)

असवनी–सं०स्त्री० [सं० अश्विनी] एक नक्षत्र विशेष का नाम ।

असवां–सं०पु० [सं० अश्रु] आंसू । उ०—**असवां** जळ सींच सींच प्रेम बेल बूयां । दध मथ घ्रत काढ़ लयां डार दया छूयां ।—मीरां

असवांन–सं०पु० [फा० आसमान] आसमान (द.दा.)

असवार–सं०पु० [फा०] १ सवार, चढ़ना । उ०—अरुणानुज **असवार** कर छाया ज्यां सिर करै ।—बां दा. २ अश्वारोही. ३ चढ़ाई करना । उ०—पछै सीहोजी खोड ऊपर **असवार** हुआ, गेहलां नूं मारिया नै खोड लीनी—रा. वं.वि. ।

असवारगी–सं०स्त्री०—१ फैलने का भाव. २ सवारी ।

असवारी–सं०स्त्री० [फा० सवारी] देखो 'सवारी' । उ०—**असवारी** कजि आणियौ ऊपरि लूंण उतारि ।—रा.रू.

असवेत–वि० [सं० अ+श्वेत] जो श्वेत न हो, काला ।

असव्वार–सं०पु० [फा० असवार] देखो 'असवार' । उ०—जै जैकार जीहा हरीरांम जप्पै, **असव्वार** हूआं मूंछां पांणि अप्पै ।—वचनिका

असवाळा–सं०स्त्री० [सं० अश्व+शाला] घोड़ों के रखने का स्थान, अस्तबल, तबेला।

असह–वि० [सं० असह्य] असह्य, दुस्सह, न सहन किया जा सकने वाला। उ०—धूणै सिर पकड़ै धरा, **असह** सहै जे आर। बोहलिया बिरदावियां, गरज सरै न तार।—बां.दा.

सं०पु० [सं०] १ शत्रु, दुश्मन (मि०–असहण) उ०—**असहां** दस देस पेसकस आंणै।—क.कु.बो. २ यवन, मुसलमान. ३ हृदय [सं० अश्व] ४ घोड़ा [रा०] ५ आग, अग्नि, (अ.मा.) ६ पीड़ा (अ.मा.)

असहण–सं०पु० [सं० असहन] शत्रु, रिपु (अ मा.)

असहत–सं०पु०—१ शत्रु, असुर। उ०—मरू मरू करतौ सदा **असहतां** मारतौ।—प्रतापसिंह उदावत रौ गीत २ यवन, मुसलमान।

असहन–सं०पु०—देखो 'असहण'।

वि० [सं० असह्य] असह्य, दुस्सह।

असहनसील–वि० [सं० असहनशील] असहिष्णु, जो सहन न कर सके।

असहनसीलता–सं०स्त्री० [सं० असहनशीलता] सहनशक्ति का अभाव, असहिष्णुता।

असहाय–सं०पु० [सं०] जिसका कोई सहायक न हो, जिसे कोई सहारा न हो, नि:सहाय, निराश्रय, अनाथ।

असहायौ–सं०पु०—देखो 'असहाय' (रू.भे.)

असहिस्णु–वि० [सं० असहिष्णु] जो सहन न कर सके, असहनशील।

असहिस्णुता–सं०स्त्री० [सं० असहिष्णु+ता] सहन न कर सकने का भाव, असहनशीलता।

असहींस–सं०स्त्री० [सं० अश्व+रा० हींस] घोड़े की हिनहिनाहट। उ०—बखत रा बखतरां चीरणी, **असहींस** आभड़ै करणपटां। —दुरगादास

असही–वि० [सं०असह्य] १ असह्य, दुस्सह। उ०—समन पराया खेत में दास्व तोड़ खर खाय। हांणी कुछ होवै नहीं, **असही** सही न जाय। —समन

सं०पु०—शत्रु, वैरी।

असांच–वि० [सं० असत्य] असत्य, झूठ।

असांजन–सर्व०—हमारा। उ०—भजि निरंजन भरम भंजन, हरि **असांजन** नाथ।—ह.पु.वा.

असांत–वि० [सं० अशांत] जो शांत न हो अस्थिर।

असांति–सं०स्त्री० [सं० अशांति] १ चंचलता, अस्थिरता. २ असंतोष।

असांमरथ–वि०—असमर्थ। उ०—जौ ऐसौ **असांमरथ** छै तौ बेसि रहै। —वेलि. टी.

असांमान्य–वि० [सं०] असाधारण, जो सामान्य न हो।

असांयत–सं०स्त्री० [सं० अशांति] १ अशांति, चंचलता। उ०—थें करी **असांयत** आसरा। थिर सांयत थापवा सारू। —दुरगादास

२ असंतोष।

असाइच–सं०पु०—चौहानों की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

असाई–वि०—अशिष्ट, बेहूदा, बदतमीज।

असाउळि–सं०पु० (प्रा०रू०) [सं० अश्वाली] १ सेना. २ अश्वारोही सेना। उ०—भणी कटक ऊपडयां **असाउळि** गढ़ मांहि मेल्हिउं थांणउ।—कां.दे.प्र.

असाकल–सं०पु० [सं० अशाकल्य] अखंड। उ०—वयाळ सियाळ उनाळ वयाकुळ वारि वरसाळ खुधाळ सयूं। वनाळ विचाळ गिराळ **असाकळ** ज्वाळ मयाळ सखाळ लयूं।—करुणासागर

असाखी–सं०पु० [सं० असाक्षिन्] जिसकी गवाही धर्मशास्त्रानुसार मान्य न हो।

असाड–सं०पु० [सं० आषाढ़] देखो 'असाढ़' (रू.भे.)

असाडी–सं०स्त्री०—देखो 'असाढ़ी'।

असाडौ–सं०पु०—देखो 'असाढ़'।

असाढ़–सं०पु० [सं० आषाढ़] वर्षा ऋतु का प्रथम मास तथा ज्येष्ठ के बाद का महिना (डिं.को.)

कहा०—सौ मेळां री एक असाढ़—जो बैल सौ मेलों में नहीं बिकता वह आषाढ़ मास में आसानी से बिक जाता है। आषाढ़ मास में बैल का महत्व बढ़ जाता है।

असाढ़ी–वि०स्त्री०—१ आषाढ़ का, आषाढ़ सम्बन्धी।

सं०स्त्री०—१ आषाढ़ में बोई जाने वाली फसल, खरीफ. २ आषाढ़ मास की पूर्णिमा. ३ आषाढ़ मास की तिथि।

असाढ़ी नम–स०स्त्री०यौ०—आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की नवमी, सूर्यनवमी।

असाडौ, असाढ़ौ–सं०पु०—देखो असाढ़' (रू.भे.) उ०—आदर आवियौ रै भर मास **असाढ़ौ** पावस झीक पड़ांणौ।- आवू रौ गीत

असात–सं०पु० [सं० अशात] १ अपयश कुयश. २ दुख।

असाद–वि० [सं० असाध्य] असाध्य (रू.भे.)

असाधु–वि० [सं० असाधु] १ दुष्ट, दुर्जन. २ अविनीत, अशिष्ट, असज्जन।

असाद्धि–वि० [सं० असाध्य] असाध्य। उ०—घायल **असाद्धि** डोले न घुम्मि, सांनांन स्रोनतें रंगभूम्मि।—ला.रा.

असाध–वि०—१ असाधु, असज्जन, बुरा, दुष्ट। उ०—सांई साध ज तारिया **असाधां** बोया।—केसोदास गाडण

२ [सं० असाधीयस्] प्रचंडकाय। उ०—अमोलक उजळगात **असाध** सझौ हव साखत वेग समाध।—गो.रू. [सं० असाध्य] २ असाध्य, दुष्कर, कठिन। उ०—पुणजै मुध अखरोट पिए, श्री दस दोस **असाध**।—र.रू.

वि०—असंभव। उ०—सुणै जद गैहर ढोल समाध। आई तद माथै खून असाध—गो.रू.

असाधारण–वि०—जो साधारण न हो (द.दा.)

असाधि–वि० [सं०असाध्य] असाध्य। उ०—उत्तर आज स उत्तरइ, वाजइ लहर **असाधि**।—ढो मा.

असाधु–वि० [सं०] दुष्ट, खल, बुरा, असज्जन।

असाधुता–सं स्त्री० [सं०] अशिष्टता, दुष्टता, खोटाई, नीचता।

असाध्य–वि० [सं०] १ कठिन, न आरोग्य होने योग्य। उ०—जांण **असाध्य** व्याध जगदंबा, अंबा बांसै आई।—मे.म. २ जो साधा या सिद्ध न किया जा सके, दुष्कर। उ०—जटावर बचै दैंत जळाय, बिमोहै रूप **असाध्य** बणाय।—ह.र. ३ कठोर, तेज। उ०—दुहूं ओर तोप दगी कराळ, जंगी **असाध्य** मनु जेठ ज्वाळ।—ला.रा.

असायच–सं०पु०—गहलोत वंश की एक शाखा या उस शाखा का व्यक्ति।

असार–वि० [सं०] १ साररहित, निःसार, तत्वरहित। उ०—'ऊमरा' **असार** मांहि सार का परचौ। रांम नांम सार है **असार** सो सरचौ।—ऊ.का. २ तुच्छ. ३ बेमतलब [अ० आसार] ४ दीवार की चौड़ाई. ५ चिन्ह, लक्षण।

असारता–सं०स्त्री० [सं०] निस्सारता, तुच्छता।

असारौ–सं०पु० [फा० इशारा] इशारा, संकेत।

असालत–सं०स्त्री० [अ०] कुलीनता, सचाई।

असालतन–क्रि०वि० [अ० असालतन] स्वयं रूप में, खुद में।

असाळियौ, असाळयू–सं०पु० [सं० अहालिम] चंद्रसूर, हाली।

असावधांन–वि० [सं० असावधान] जो सावधान न हो, जो सचेत न हो, गाफिल, बेखबर। उ०—सदीव सत्य सावधांन, सावधांन की सुनूं। गुमांन ग्यांन गरहणां, **असावधांन** की गुनूं।—ऊ.का.

असावधांनता, असावधांनी–सं०स्त्री० [सं० असावधानी] बेपरवाही, असावधानी, सतर्कता का अभाव।

असावरी–सं०स्त्री० [सं० आशावरी] १ भैरव राग की स्त्री एक रागिनी (संगीत). २ एक प्रकार का धूप।

असास–वि०—श्वासरहित। उ०—अगात **असास** अबात अबेस—ह.र. सं०स्त्री० [सं० आशिष] आशीर्वाद। उ०—तिसै देवै आरोग नै **असास** कीधौ थौ।—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात

असाह–वि० [रा० अ+फा०शाह] १ निर्धन, कंगाल। उ०—साह व्हैं **असाह** चाह दाह तें सह्यौ।—ऊ.का. २ ऐसा। सं०पु०—वायु, पवन (अ.मा.)

असि–सं०पु० [सं० अश्व] १ अश्व, घोड़ा। उ०—अगसाखा **असि** अगा पवन उडांण डांण झापंदा पाळि हरि पिलि पगा दादुरिया नैव कुदंति।—रांमरासौ
सं०स्त्री० [सं०] २ तलवार, खड्ग (डि.को.)
वि० [सं० अ+श्वेत] १ काला, श्याम* (डि.को.)
[सं० ईदृश) २ ऐसा।

असिखित–वि० [सं० अशिक्षित] अनपढ़, उजड्ड, अनाड़ी।

असित–वि० [सं०] १ काला, श्यामवर्ण। उ०—स्यांम ताज कफनी **असित**, सुवरण जिसौ सरीर।—शि.वं. २ दुष्ट, बुरा, कुटिल। सं०पु० [रा०] कृष्ण पक्ष। उ०—सुचि नवमी कुज **असित** मांन बसु चउ तेरह मत।—वं.भा.

असितांग–वि०यौ० [सं० असित+अंग] काले रंग का, श्याम वर्ण का।

असिता–वि०—देखो असित'।
सं०स्त्री०—यमुना नदी।

असिद्ध–वि० [सं०]. १ जो सिद्ध न हो. २ व्यर्थ, अप्रमाणित।

असिद्धि–सं०स्त्री० [सं०] १ अप्राप्ति. २ कच्चापन. ३ अपूर्णता।

असिधावक–वि० [सं० असि+धावक] तलवार को साफ करने वाला, सिकलीगर। उ०—**असिधावक** आविया, सस्त्र मांजिया सताबी।—मे.म.

असिधावण–सं०पु०—तलवार की धार तेज करने वाला, सिकलीगर। उ०—**असिधावण** तौ पीव पर, वारी वार अनेक। रण झाटकतां कंत रै, लागै झाटक न एक।—वी.स.

असिनी–सं०स्त्री० [सं० अश्विनी] १ घोड़ी. २ एक नक्षत्र विशेष, अश्विनी।

असिपति, असिपत्ति–सं०पु० [सं० अश्वपति] देखो 'असपति' (१, २) उ०—**असिपत्ति** सेन सउं खेलि आळि। दाढ़ाळ जेम आंख्यउं दिखाळि।—रा.ज.सी.

असिबर–सं०स्त्री०—तलवार (मि० असिमर रू.भे.) उ०—सोहत धणियां सीस मिळै **असिबर** फणियां मुख।—वं.भा.

असिमर, असिमरि–सं०स्त्री० [सं० असि] तलवार, खड्ग। उ०—१ इम कहै महेस वडै प्रब आये, गहि **असिमर** दाखिये गहि।—सांखला महेस कल्याणमलोत री गीत
२ आहणिय अंकि **असिमरि** उलाळि पहटिया विया गमिया पयाळि।—रा.ज.सी.

असिमेध–सं०पु० [सं० अश्वमेध] देखो 'अस्वमेध'।

असिम्म–वि०—देखो 'असीम' (रू.भे.) उ०—धुनंति सोर घोर तें **असिम्म** अग्गि उच्छरें।—ऊ.का.

असिम्मर–सं०स्त्री० [सं० असि] तलवार, खड्ग। उ०—आहवि वाहि वहाड़ि **असिम्मर**, महाराज ले जाज्यौ मधुकर।—वचनिका

असिय–सं०पु० [सं० अश्व] घोड़ा।
सं०स्त्री०—अस्सी की संख्या।
वि०—अस्सी।

असियौ–सं०पु०—अस्सीवां वर्ष।

असिव–सं०पु० [सं० अशिव] अमंगल, अशुभ।

असिवर–सं०स्त्री०—१ तलवार। उ०—पहली **असिवर** पाछटै, अरियां लोह विछोड़, पाछै अजका भूप रा, दळ भड़ पूगै दौड़।—वी.स. सं०पु० [सं० असि+वर] २ वीर, बहादुर, योद्धा। उ०—अै राठौड़ अनादि आदि **असिवर** अनिमंधी।—रा.रू.

असिसेत–सं०पु० [सं० असिसेतु] गरुड़।

असिस्ट–वि० [सं० अशिष्ट] असभ्य, अभद्र, उजड्ड, गंवार।

असिस्टता–सं०स्त्री० [सं० अशिष्टता] बेहूदगी, अभद्रता, उजड्डपन।

असिहत्थ–वि० [सं० असि+हस्त] योद्धा, खड्गधारी।
उ०—गयजां में गंभीर नृप हुवौ अनड़ **असिहत्थ**।—वं.भा.

असी–सं०स्त्री० [सं० अश्विनी] १ घोड़ी। उ०—हएानांखां पाबू **असी** सजकर सांकेलाह।—पा.प्र. २ काशी के दक्षिण की एक नदी।
क्रि०वि०—ऐसी। उ०—संग्रांमां मंभावै वीज जुळां क्सां आय सांमै, रेग अेक थोड़ा नांमै थावै **असी** रीत।
—नवलजी लाळस
वि० [सं० अशीति, प्रा० असीइ, अप० असी] सत्तर और दस का योग, अस्सी।
सं०स्त्री०—अस्सी की संख्या, ८०।
कहा०—असी री आवंद चौरासी रौ खर्च—आमदनी से खर्च अधिक अच्छा नहीं होता।

असी'क–वि० [सं० अशीति+क] अस्सी के लगभग।

असीख–वि० [सं० अ+शिक्षा] अपठित।
सं०स्त्री०—बिना सीखी हुई बात।

असीगणौ, असीगबौ–क्रि०अ० [सं० आसंग] देखो 'आसींगणौ' (रू.भे.)

असीत–वि० [सं० अ+शीत] शीतरहित, गर्म, तेज। उ०—**असीत** अभीत अगीत अगाह।—ह.र.

असीम–वि० [सं०] सीमारहित, बेहद, अपरिमित, अनंत, अपार।
उ०—सिव सक्ति सीम अनुभव **असीम**, सिद्धांत सार गित निराकार।—ऊ.का.

असीमौं–वि०—अस्सीवां, ८० वां।

असीय–वि०—देखो 'असिय' (रू.भे.)

असील–वि० [सं० अशील] १ शीलरहित। उ०—सुभावां सयानां जे **असील** सील सुळभावै।—चंडीदांन मीसरा [अ० असील] २ खरा, सच्चा. ३ सुशील, ऊंचे वंश का।
सं०पु० [सं० असिल] १ योद्धा. २ एक प्रकार का शस्त्र।
उ०—सेर बच्चा कराबीणी खंजर कटार, सिरोही **असील** तेग बाहें असवार।—शि.वं.

असीवख–सं०पु०—पीपल का वृक्ष (नां.मा.)

असीस–सं०स्त्री० [सं० आशिष] १ आशीर्वाद। उ०—देरांणीजी ने **असीस** कहीज्यौ, म्रे उड़ती कूंजरियां।—लो.गी.
क्रि०प्र०—देणी-लेणी। [सं० असि] २ गदा।
उ०—ओडंडी **असीस** तोक लांगड़ौ कपीस आयौ, कोडंडी कसीस तोक आयौ गुड़ाकेस।—हुकमीचंद खिड़ियौ
वि०—बिना शिर का।

असीसणौ, असीसबौ–क्रि०स० [सं० आशिष] १ आशीर्वाद देना.
क्रि०प्र०—२ उफान आना।
असीसणहार-हारौ (हारी)—आशीर्वाद देने वाला, जोशीला।

असीसयोड़ौ-असीसियोड़ौ–भू०का०कृ०—आशीर्वाद दिया हुआ।

असीसियोड़ौ–भू०का०कृ०—आशीर्वाद दिया हुआ।
(स्त्री० असीसियोड़ी)

असु–सं०पु० [सं० अश्व] १ घोड़ा (वं.भा.)
[सं० असुः] २ प्राणवायु, जीवन, प्राण। उ०—उण दळिद द्विज रै अरथ वणि दासी विणु मोल। उलटौ निज धन अप्पियौ करि अधीन **असु** कोल।—वं.भा.

असुक–सं०पु० [सं० असृज] रक्त (अ.मा.)

असुकन–सं०पु० [सं० अशकुन] बुरा शकुन, बुरा लक्षण, अपशकुन।

असुख–सं०पु० [सं०] सुखाभाव, दुख, वेदना।

असुगन–सं०पु०—देखो 'असुकन' (रू.भे.)

असुचि, असुची–वि० [सं० अशुचि] अपवित्र, मैला, गंदा, मलिन।
उ०—**असुचि** मंत्र दिल्लीस उपायौ, बारि पटकि गोपळ बिगड़ायौ।
—वं.भा.

असुद्ध–वि० [सं० अशुद्ध] १ अपवित्र. २ असंस्कृत ३ गलत, जो सही न हो।

असुद्धता, असुद्धि–सं०स्त्री० [सं० अशुद्धि] १ अपवित्रता, गंदगी. २ गलती।

असुध–सं०पु०—बालक (अ.मा.)
वि० [सं० अशुद्ध] अपवित्र।

असुन–सं०पु० [सं० श्वान] श्वान, कुत्ता (अ.मा.)

असुबिधा–सं०स्त्री० [सं० असुविधा] अड़चन, कठिनाई, दिक्कत।

असुभ–सं०पु० [सं० अशुभ] १ अमंगल, अहित. २ पाप (अ.मा.) ३ अपराध।
क्रि०प्र०—करणौ-होणौ।
वि०—बुरा, खराब, अमंगलकारी।

असुभकारियौ, असुभकारी–वि०—अशुभकारी।
सं०पु०—बनिया, वणिक।
उ०—उठै वरखा विखै **असुभकारिया** कहतां वांणिया जिकै दुकाळ हुवौ चाहै धांन संचौ करै यौ जांणै दुकाळ पड़ै तौ अन्न रौ घणौ द्रव्य उपजै।—वेलि. टी.

असुभभंवर–सं०पु०—वह घोड़ा जिसका सब रंग श्याम (भंवर) हो, यह अशुभ माना गया है। (शा.हो)

असुर–सं०पु० [सं०] १ दैत्य, राक्षस (अ.मा., डिं.को.)
२ नीच वृत्ति का पुरुष. ३ बादल. ४ राहु. ५ विधर्मी, मुसलमान। उ०—आगै इण गढ वासतै, समर हुओ जग साख। सात लाख हिंदू मुवा, **असुर** अठारै लाख।—बां.दा.
[सं०] ६ नैऋत्य, आठ दिक्पालों में से एक दिक्पाल (डिं.को.)
सं०पु० [सं० अ+स्वर] स्वराभाव, बुरा स्वर।
वि०—काला, श्यामवर्ण* (डिं.को.)
सं०स्त्री० [सं० असु=विश्राम, र=देने वाली] ७ रात्रि।

असुरगुरु–सं०पु० [सं०] असुरों के गुरु, शुक्राचार्य।

असुरपत, असुरपति–सं०पु० [सं० असुर+पति] १ राक्षसपति, दानवेन्द्र. २ रावण. ३ कंस. ४ हिरण्यकश्यप [रा०] ५ यवन-बादशाह।

असुरपिरोहित–सं०पु० [सं० असुर+पुरोहित] दैत्यगुरु, शुक्र।
उ०—**असुरपिरोहित** सुत ग्रह आयौ, दिन चढ़तै सुत लाभ दिखायौ। —रा.रू.

असुरलोक–सं०पु०—राक्षसों का लोक। उ०—सु राज किसउ विराजं छै, नागलोक का राजा सिरहर, नरलोक, देवलोक, **असुरलोक**, सब ही तइ अधिक सोभति छै।—वेलि. टी.

असुरहण–वि०—असुरों का संहार करने वाला।
सं०पु०—१ श्रीकृष्ण. २ विष्णु. ३ श्रीरामचन्द्र।

असुरसेन–सं०पु० [सं०] एक राक्षस।

असुरांड–सं०पु० [सं० असुर] असुर, राक्षस। उ०—हूल **असुरांड** पड़ भूल सुध मांग हट, फिरै चित डुल जिम चाक फेरा।—र.रू.

असुरांण, असुरांमण, असुरांयण, असुराइण–सं०पु० [स्त्री० असुरांणी] १ मुसलमान, यवन। उ०—१ मदझरां डांग नीसांण मौज। फरहरां बांण **असुरांण** फौज।—वि.सं. उ०—२ हिन्दू **असुराइण** लड़सी।—वचनिका
२ असुर, राक्षस। उ०—हुवै **असुरांण** तणा हलकार, पुणै जमदग्गन मुक्ख पुकार।—ह.र. ३ यवन-बादशाह।

असुराई–सं०पु० [सं० असुर+राज] १ असुर व यवन-बादशाह। उ०—ससमथ जरदि न संमवइ, **असुराई** थट्टि न माइ।—रा.ज.सी.
सं०स्त्री०—२ खोटाई, शरारत।

असुरायण–सं०पु०—यवन, बादशाह। उ०—**असुरायण** विप्र ग्रहा अहयूं पड़ दादोय जूंज कटै पहयूं।—पा.प्र.

असुरारि, असुरारी–सं०पु० [सं० असुरारि] १ देवता. २ विष्णु, हरि. ३ लक्ष्मण (नां.मा.)

असुरी–सं०पु० [सं० असुर] १ यवन, मुसलमान। उ०—रायां राउ ऊपरि **असुरी** राइ।—रा.ज.सी.
सं०स्त्री०—२ राक्षसी (एकाक्षरी) ३ राई, सरसों जैसा एक तिलहन।

असुरेसुर–सं०पु० [सं० असुरेश्वर] १ दैत्याधिपति, दानवेन्द्र. २ यवन, बादशाह। उ०—आदर कियौ मिळै **असुरेसुर** दियौ नांम नृप तेग बहादुर।—रा.रू.

असुहर–सं०पु० [सं० असु+हर] शत्रु, रिपु, वैरी (डिं.को.)

असुहाई–सं०स्त्री० [सं० अशोभित] बुरी बात, मन के विपरीत बात। उ०—अत लड़तां प्रगटी **असुहाई**, दोय बेटी पकड़ी दरसाई।—रा.रू.
वि०—असुहावनी, दुःसह। उ०—ऊपर तिण बसंत रित भाई, सीत वितीत हुई **असुहाई**।—रा.रू.

असुहाणौ–वि० [सं० अशोभन] १ अप्रिय, दुखद. २ अरुचिकर।

असुहाणौ, असुहावौ–क्रि०स०—न सुहाना, अरुचिकर होना।

असुहायोड़ौ–भू०का०कृ०—अप्रिय, असुहावना (स्त्री० असुहायोड़ी)

असुहावणौ, असुहावबौ–क्रि०स०—देखो 'असुहाणौ'।

असुहावियोड़ौ–भू०का०कृ०—अप्रिय, असुहावना (स्त्री० असुहावियोड़ी)

असुहावत, असुहावतो, असुहावतौ–वि०—१ अप्रिय, दुखद. २ मन को प्रिय न लगने वाला, असुहावना। उ०—संक साह संपणै वयण न भणै **असुहावत**।—रा.रू.

असू–सं०स्त्री० [सं० अंशु] १ किरण, प्रभा, रश्मि। [सं० असु] २ देखो 'असु' (रू.भे.)

असूक–सं०पु० [सं० अंशुक] १ वस्त्र. २ शृंगार (ह.नां., पाठांतर)

असूया–सं०स्त्री० [सं०] १ दूसरे के गुण में दोष लगाना. २ ईर्ष्या, डाह। उ०—तथापि साहस रै साथ **असूया** रै अनुचर आपरोही आदेस प्रबळ मांगिया!—वं.भा. ३ निंदावाद. ४ औद्धित्य के कारण दूसरे के गुण स्मृद्धि को सहन न करने का एक प्रकार का संचारी भाव (साहित्य)

असूर–सं०पु० [सं० अशूर] जो शूर न हो, कायर। उ०—सिखर तें धरती रहइ नीम्या, अंधला! **असूर**! असती! अचेती—वी.दे.

असूल–सं०पु०—देखो 'उसूल' (रू.भे.)

असेंदौ, असेंधौ–वि० [सं० अ+संधि] अपरिचित, अजनबी।
उ०—तिण सूं सूराचंद रै गोखै चौताळै **असेंधा** असवार देखै तरै पूछण री गाढ़ घणी करै।—जैतसी ऊदावत री बात

असेख–वि० [सं० अशेष] १ पूरा, समूचा. २ सब, समस्त. ३ अधिक, बहुत। उ०—पिण भावी अति प्रबळ सकळ बस प्रांण **असेखां**।—रा.रू. ४ जो शेष न रहे।

असेत–वि० [सं० अश्वेत] जो श्वेत न हो, काला, श्याम।
उ०—अरत्त अपीत **असेत** असेस।—ह.र.

असेयौ–वि० [सं० असह्य] असह्य।
सं०पु०—शत्रु, वैरी।

असेर–सं०पु० [सं० अश्रेणिक] किला, गढ़। उ०—अच्छरां वधावै राग रंगां, गावै मोद अंगां। अढ़ंगा उबारै, हक्कां अभती **असेर**। —बुधसिंह सिंढ़ायच

असेवतौ, असेवौ–वि०—गहरा, अगाध।

असेस–वि० [सं० अशेष] देखो 'असेख'। उ०—१ बारली **असेस** सोध बोध तं करचौ।—ऊ.का.
उ०—२ कूड़ कपट मन केळवी, आया नळवर देस। नळवर कुंमर भेटस्यां, मन में चिंता **असेस**।—ढो.मा.

असै–क्रि०वि०—ऐसे। उ०—**असै** राव सेखै अमरसर का राज पाया। —शि.वं.

असैंदौ–वि०—अपरिचित। देखो 'असेंदौ'
कहा०—सैंदौ मसांण असैंदौ निवांण—परिचित श्मशान में (भूत-प्रेत का) तथा अपरिचित जलाशय में (फिसलने व डूबने का) सदा भय रहता है।

असै–सं०स्त्री० [सं० अ=नहीं+सै=मदद] असाध्वी, असती, कुलटा।
उ०—जग गळि लागी रहै असै जिमि, सहै न दूखण जेम सई।
—वेलि.

असौ–वि०—तैसा, ऐसा। उ०—असा चाळहा विनां तनै भूरा अभंग आळगै नहीं भाराथ आळा।—हुकमीचंद खिड़ियौ
सं०पु०—सोने या चादी का मढ़ा हुआ वह डंडा जो राजा महाराजाओं की सवारी के अगाड़ी आदमी लेकर चलता है। देखो 'आसौ'।

असोक–वि० [सं० अशोक] १ शोकरहित, दुखशून्य.
२ लाल। (डि.को.)
सं०पु०—१ आम की तरह लंबी-लंबी तथा लहरदार पत्तियों वाला एक पेड़. २ पारद. ३ ईसा के २५७ वर्ष पूर्व एक मौर्यवंशी राजा जो चंद्रगुप्त मौर्य्य का पौत्र था।

असोकवाटिका–सं०स्त्री०यौ० [सं० अशोक+वाटिका] रावण का एक प्रसिद्ध बगीचा जिसमें सीताजी को रक्खा गया था। (रा.रा.)

असोगी–वि० [सं० अशोक] शोकरहित।

असोज–सं०पु० [सं० आश्विन] आश्विन मास।

असोभ–वि० [सं० अशोभा] शोभारहित, कुरूप, बुरा, अनगढ़, भद्दा। उ०—सुभ सोभत पंकत हीर सिरै, क्रति नौ ससि हस्ति असोभ करै।—रा.रू.

असोभता–वि०—शोभारहित। देखो 'असोभ' (रू.भे.)
सं०स्त्री० [सं० अ+शोभा] शोभारहित होने का भाव, भद्दापन।
उ०—अब उतार असोभता धरै सोभता अंग।—पा.प्र.

असोम–वि० [सं० असौम्य] १ गर्म. २ बुरा. ३ भयसूचक।
सं०पु०—देखो 'असोमजंत्र' (२) उ०—मुनि जंत्र पांणि असोमं बजायौ, ललक्कारी किलक्कारी आयौ।—ला.रा.

असोमजंत्र–सं०पु० [सं० असौम्य यंत्र] १ बंदूक, तोप. २ नारद मुनि की वीणा जिसे वे प्रायः युद्ध में बजाते हैं। उ०—असोमजंत्र लै मुनी, अलापि बीर की धुनी।—ला.रा.

अस्टंग—देखो 'असटांग' (रू.भे.)

अस्ट–वि० [सं० अष्ट] आठ।
सं०पु०—आठ की संख्या।

अस्टक–सं०पु० [सं० अष्टक] आठ वस्तुओं का संग्रह।

अस्टकमळ–सं०पु० [सं० अष्टकमल] मूलाधार से ललाट तक के आठ कमल (हठयोग)—मूलाधार, विशुद्ध, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान, अनाहत, आज्ञाचक्र, सहस्राचक्र और सुरतिकमल।

अस्टकुळ–सं०पु० [सं० अष्टकुल] देखो 'असटकुळ'।

अस्टकुळी–सं०पु० [सं० अष्टकुली] १ जो साँपों के आठ कुलों में से किसी में उत्पन्न हुआ हो। [रा०] २ पर्वत। (नां.मा.)

अस्टकोण–सं०पु० [सं० अष्टकोण] आठ कोण वाला क्षेत्र।
वि०—आठ कोने वाला।

अस्टताळ–सं०पु० [सं० अष्टताल] संगीत में ताल के आठ प्रकार—आड़, दोज, ज्योति, चंद्रशेखर, गंजन, पंचताल, रूपक और समताल।

अस्टदळ–सं०पु० [सं० अष्टदल] आठ पत्तों का कमल।

अस्टदिस–सं०स्त्री० [सं० अष्ट+दिशा] आठों दिशायें।

अस्टद्रव्य–सं०पु० [सं० अष्टद्रव्य] हवन में काम आने वाले आठ द्रव्य—अश्वत्थ, गूलर, पाकर, वट, तिल, सरसों पायस और घी।

अस्टधातु–सं०पु० [सं० अष्टधातु] आठ धातुयें—सोना, चाँदी, ताँबा, रांगा, जस्ता, सीसा, लोहा और पारा।

अस्टपदी–सं०स्त्री० [सं० अष्टपदी] १ मकड़ी (रू.भे. असटपदी)
२ आठ पदों का समूह।

अस्टभुजा–सं०स्त्री० [सं० अष्टभुजा] दुर्गा, जिसके आठ भुजायें मानी जाती हैं।

अस्टमंगळ–सं०पु० [सं० अष्टमंगल] १ आठ मांगलिक द्रव्य या पदार्थ—सिंह, वृष, नाग, कलश, पंखा, वैजयन्ति, भेरी और दीपक.
२ देखो 'अस्टमंगळीक'।

अस्टमंगळताळ–सं०पु० [सं० अस्टमंगलताल] बाइस मात्राओं की ताल (संगीत)।

अस्टमंगळीक–सं०पु०—१ वह घोड़ा जिसके निम्नलिखित आठ स्थानों के बाल शुभ्र हों—छाती, चारों पैर, खुर, पूंछ, मुख और पीठ।
(शा.हो.)
२ वह घोडा जिसके चारों पैर सफेद हों शिर में तिलक हो, पूंछ सफेद हो, कालिमामय वृषण (अंडकोश) हों, छाती सफेद हो और भिन्न रंग की हो (शुभ)—शा.हो. [सं० अष्टमंगल] ३ देखो 'अस्टमंगळ'

अस्टमी–सं०स्त्री० [सं० अष्टमी] शुक्ल या कृष्ण पक्ष की आठवीं तिथि।

अस्टमूरती–सं०पु० [सं० अष्टमूर्ति] १ शिव की आठ मूर्तियां- क्षिति, जल, वायु, तेज, आकाश, यजमान, अर्क और चंद्र। (क.कु.बो.. अ.मा.)
२ शिव का एक नाम। उ०—अस्टमूरती खंड सत अज कंक प्रमथाधिप कपरदी।—क.कु.बो.

अस्टवरग–सं०पु० [सं० अष्टवर्ग] आठ औषधियों का समाहार।

अस्टवळी–क्रि०वि० -आठों दिशाओं में। उ०—वणि हीर जगामगि अस्टवळी महले किर दीपक माळ मिळी।—रा.रू.

अस्टसाठ–वि०—देखो 'अड़सट' (रू.भे.)

अस्टसिद्धि, अस्टसिधि–सं०स्त्री० [सं० अष्टसिद्धि] योग की आठ सिद्धियाँ यथा—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व, वशित्व। (ह.नां.)

अस्टांग–सं०पु० [सं० अष्टांग] देखो 'असटांग'।

अस्टांग जोग–सं०पु०यौ० [सं० अष्टांग+योग] योग के आठ अंग।
देखो 'असटांग' (१)

अस्टांना–सं०पु० [सं० अष्टाना] कायस्थों का एक भेद विशेष, कायस्थों की बारह उप जातियों के अंतर्गत एक उपजाति, अष्टाना।

अस्टाक्षर, अस्टाखर–सं०पु० [सं० अष्टाक्षर] आठ अक्षरों का मंत्र, "ॐ नमो नारायणाय" (र.ज.प्र.)

ग्रस्टाध्यायी–सं०स्त्री० [सं० ग्रष्टाध्यायी] ग्राठ ग्रध्यायों वाला पाणिनीय व्याकरण का प्रधान ग्रंथ।

ग्रस्टापद–सं०पु० [सं० ग्रष्टापद] १ देखो 'ग्रसटापद'। (ग्र.मा.)
वि०—१ पीला, पीत *। (डिं.को.) २ सफेदी लिए हुए पीला* (डिं.को.) ३ ग्रादि गुरु की चार मात्रा का नाम ऽ।। (डिं.को.)

ग्रस्टावक्र–सं०पु०यौ० [सं० ग्रष्टावक्र] १ टेढ़े-मेढ़े ग्रंगों वाला व्यक्ति. २ एक ऋषि (प्राचीन)

ग्रस्टावधांन–देखो 'ग्रसटाविधांन' (२)

ग्रस्टावसेस–सं०पु० [सं० ग्रष्टावशेष] ग्राठवां हिस्सा (ग्रमरत)

ग्रस्टीलौ–सं०पु० [सं० ग्रष्टीला] एक प्रकार का रोग विशेष (ग्रमरत)

ग्रस्त–सं०स्त्री० [सं० ग्रस्थि] १ हड्डी, ग्रस्थि. [सं० ग्रस्त] २ पतन. ३ ग्रवसान. ४ लोप, ग्रदर्शन. ५ ग्रधिकता।
वि०—१ छिपा हुग्रा, तिरोहित, ग्रंतर्हित. २ डूबा हुवा (सूर्य चंद्र ग्रादि)

ग्रस्तबळ–सं०पु० [ग्र० ग्रस्तबल] घुड़साल।

ग्रस्तमननक्षत्र–सं०पु० [सं०] जिस नक्षत्र पर कोई ग्रह ग्रस्त हो, वह नक्षत्र उस ग्रह का ग्रस्तमननक्षत्र कहलाता है।

ग्रस्तमित–सं०पु०—ग्रस्त होने की क्रिया या भाव। उ०—सूरय **ग्रस्तमित** हुग्रौ घरां कै विखै गहमहाट होइ रहयौ छै।—वेलि टी.

ग्रस्तमुख–सं०पु०—कुत्ता, श्वान। (ग्र.मा.)

ग्रस्तर–सं०पु० [फा०] १ नीचे या भीतर की तह, नीचे व ऊपर रख कर बीच में सिला हुग्रा कपड़ा. २ बारीक साड़ी के नीचे पहनने का स्त्रियों का ग्रंतरपट।

ग्रस्तरी–सं०स्त्री०—देखो 'ग्रसतरी'।

ग्रस्तव्यस्त–वि०यौ० [सं०] तितर-बितर, ग्रव्यवस्थित, छिन्न-भिन्न।

ग्रस्तस्वू–सं०पु०—एक प्रकार का शुभ रंग का घोड़ा। (शा.हो.)

ग्रस्ति–सं०स्त्री० [सं०] भाव, सत्ता, विद्यमानता।

ग्रस्तिकेतुसंग्या–सं०पु० [सं० ग्रस्तिकेतु संज्ञा] पश्चिम भाग में उदय होकर उत्तर भाग में फैलने वाला केतु (ज्यो०)।

ग्रस्तु–ग्रव्यय [सं०] १ खैर, ग्रच्छा. २ चाहे जो हो. ३ ऐसा ही हो.

ग्रस्तुति–सं०स्त्री० [सं० स्तुति] देखो 'ग्रसतूती'। उ०—**ग्रस्तुति** कर सब देव सिधाया, जग में जय जय धुन छाई।—गी.रां.

ग्रस्तेय–सं पु० [सं०] योग के नियम नामक एक ग्रंग का तीसरा भेद।

ग्रस्त्र–सं०पु० [सं०] देखो 'ग्रसतर'।

ग्रस्त्रकार–सं०पु० [सं०] हथियार बनाने वाला।

ग्रस्त्रचिकित्सा–सं०स्त्री०यौ० [सं०] चीर-फाड़ द्वारा की जाने वाली चिकित्सा।

ग्रस्त्रवेद–सं०पु०यौ० [सं०] ग्रस्त्र बनाने एवं उसके प्रयोग करने के ढंग का शास्त्र।

ग्रस्त्रसाळा–सं०स्त्री०यौ० [सं० ग्रस्त्रशाला] ग्रस्त्र-शस्त्रों के रखने का स्थान।

ग्रस्त्रिय, ग्रस्त्री, ग्रस्त्रीय–सं०स्त्री०—देखो 'ग्रसतरी'।
उ०—१ एक **ग्रस्त्रिय** छइ रतन संसार।—बी.दे.
२ ग्रयरापति चढ़ि चाल्यौ राय, ली **ग्रस्त्री** ग्ररथंग वइसाय।
—बी.दे.
३ **ग्रस्त्रीय** चरित्र उलिखई ही गंवार।—बी.दे.

ग्रस्थळ, ग्रस्थळि–सं०पु० [सं० ग्र+स्थल] १ बुरा स्थान, बुरी जगह, कुठौर. उ०—ग्रग्यांन **ग्रस्थळि** पांच रस बसि मोह महल में मनसौवै।—ह.पु.वा. २ दादूपंथी संन्यासियों के रहने का स्थान।

ग्रस्थांनस्थनपद–सं०पु०—काव्य का एक दोष। उ०—कहिणा जोग ग्ररथ पण नहि कह, **ग्रस्थांनस्थनपद** निज ग्रोक।—बां.दा.
क्रि०वि०—ग्रनुचित स्थान में।

ग्रस्थाई–वि० [सं० ग्रस्थायी] जो स्थायी न हो, ग्रस्थिर।

ग्रस्थिकुंड–सं०पु०यौ० [सं० ग्रस्थि+कुंड] एक नरक का नाम जिसमें हड्डियाँ भरी हुई हैं (पौराणिक)।

ग्रस्थिर–वि० [सं०] जो स्थिर न हो, चलायमान।

ग्रस्थिरा–वि स्त्री० [सं० ग्रस्थिर] चंचला, जो स्थिर न रहे।
सं०स्त्री०—लक्ष्मी। उ०—ग्रवर ग्रहे **ग्रस्थिरा** इंदिरा, रांमा हरिवल्लभा रमा।—वेलि.

ग्रस्थि-संचय–सं०पु०यौ० [सं०] ग्रंत्येष्टि के बाद का वह संस्कार जिसमें जली हुई हड्डियां एकत्रित की जाती हैं।

ग्रस्बाब–सं०पु० [फा० ग्रसबाब] देखो 'ग्रसबाब'।

ग्रस्मरी–सं०स्त्री० [सं० ग्रश्मरी] मूत्रेन्द्रिय का एक रोग विशेष, पथरी (ग्रमरत)।

ग्रस्मिता–सं स्त्री० [सं०] योग के ग्रनुसार पांच प्रकार के क्लेशों में से एक।

ग्रस्त्र–सं०पु० [सं० ग्रसृज] रक्त, रुधिर। उ०—ग्रसत्र **ग्रस्त्र** घम्रघम्र बिस्र पीवतौ बह्यौ।—ऊ.का.

ग्रस्रांनिका–सं०पु० [सं० ग्रश्रमिक] बलभद्र (ग्र.मा.)

ग्रस्रू–सं०पु० [सं० ग्रश्रु] देखो 'ग्रांसू'।

ग्रस्रुत–वि० [सं० ग्रश्रुत] बिना सुनी हुई, ग्रनसुनी। उ०—ग्रदिठ **ग्रस्रुत** किम कहणौ ग्रावै, सुख तें जांणणहार सुजि।—वेलि.

ग्रस्रुपात–सं०पु०यौ० [सं० ग्रश्रुपात] ग्रांसू गिराना, रुदन।

ग्रस्रुपीवणी–सं०स्त्री०यौ० [सं० ग्रसृज+रा०पीवणी] जोंक।

ग्रस्ली–वि० [ग्र० ग्रसल] देखो 'ग्रसली'।

ग्रस्लील–वि० [सं० ग्रश्लील] देखो 'ग्रसलील'।
उ०—पूरण रण निरस्थक व्है पढ़, लै **ग्रस्लील** समझ विष लोग।
—बां.दा.

ग्रस्लीलता–सं०स्त्री० [सं० ग्रश्लीलता] १ फूहड़पन, भद्दापन. २ घृणा. ३ लज्जा, लज्जास्पदता. ४ ग्रसभ्य सूचक बातों या शब्दों का काव्य में प्रयुक्त करने का दोष विशेष, यह शब्दगत दोष है।

ग्रस्लेस–सं०स्त्री० [सं० ग्रश्लेष] सत्ताइस नक्षत्रों के ग्रंतर्गत एक नक्षत्र।

अस्व-सं०पु० [सं० अश्व] १ घोड़ा, अश्व (डिं.को.) २ हाथ, उ०—निज सिध गोरखनाथ **अस्व** दिया मो पर उभै ।—पा.प्र.
वि०—सात*

अस्वक्रांता-सं०स्त्री० [सं० अश्वक्रांता] संगीत में एक मूर्च्छना ।

अस्वत्थ-सं०पु० [सं० अश्वत्थ] पीपल का पेड़ ।

अस्वत्थामा-सं०पु० [सं० अश्वत्थामा] द्रोणाचार्य का पुत्र जिसने जन्म लेते ही उच्चैःश्रवा नामक घोड़े के समान शब्द किया था ।

अस्वनी-सं०स्त्री० [सं० अश्विनी] १ सत्ताईस नक्षत्रों के अंतर्गत अश्विनी नामक एक नक्षत्र (नां.मा.) २ घोड़ी ।

अस्वनीकुमार-सं०पु० [सं० अश्विनीकुमार] १ अश्विनीकुमार जो देवताओं के वैद्य माने जाते हैं । (कां.दे.प्र.) २ एक प्रकार का घोड़ा जिसके कपोल पर दो भौंरी होती हैं । (शुभ)—शा.हो.

अस्वनीतात-सं०पु०यौ० [सं० अश्विनी+तात] सूर्य (नां.मा.)

अस्वपति-सं०पु० [सं० अश्व+पति] १ घुड़सवार. २ घोड़े का मालिक (शा.हो.) ३ बादशाह. ४ अश्विनीकुमार का नाम ।

अस्वप्न-सं०पु० [सं० अस्वप्न] सुर, देवता (डिं.को.)

अस्वबंध-सं०पु० [सं० अश्वबंध] घोड़े के चित्र में लिखा जाने वाला चित्र काव्य ।

अस्वमुख-सं०पु० [सं० अश्वमुख] किन्नर (डिं.नां.)

अस्वमेध-सं पु० [सं० अश्वमेध] १ षड्ज स्वर को छोड़ कर शेष छः स्वरों की एक प्रकार की तान. २ प्राचीन समय में चक्रवर्ती राजा द्वारा किया जाने वाला एक प्रकार का बड़ा यज्ञ जिसमें घोड़े के मस्तक पर जय पत्र बांध कर स्वेच्छा से घूमने को छोड़ दिया जाता था । जो उसे पकड़ता था उससे युद्ध कर उसे हरा कर घोड़े को ले आते और उसे मार कर उसकी चर्बी से हवन करते थे ।

अस्वरूढ़-सं०पु०—रथ (डिं.नां.मा.)

अस्वशाळ-सं०स्त्री०—अश्वशाला, घुड़साल (एकाक्षरी)

अस्वविद्या-सं०स्त्री०यौ० [सं० अश्व+विद्या] घोड़ा चलाने व उस पर सवारी करने तथा उसे परखने की विद्या ।

अस्वस्थ-वि० [सं०] बीमार, रोगी ।

अस्वा-सं०स्त्री० [सं० अश्व] १ घोड़ी । (ह नां.)
सं०पु०—२ घोड़ा, अश्व ।

अस्वार-सं०पु० [फा० असवार] देखो 'असवार' ।

अस्वारोहण-सं०पु०यौ० [सं० अश्वारोहण] घोड़े की सवारी ।

अस्वारोही-सं०पु०यौ० [सं० अश्वारोही] घुड़सवार ।

अस्वास्थ्य-सं०पु० [सं०] बीमारी, रोग ।

अस्विनी-सं०स्त्री० [सं० अश्विनी] देखो 'अस्वनी' ।

अस्विनीकुमार-सं०पु० [सं० अश्विनीकुमार] सूर्य के दो पुत्र जो त्वष्टा की पुत्री प्रभा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । ये देवताओं के वैद्य हैं ।

अस्वीकार-सं०पु० [सं०] इन्कार, नामंजूरी ।

अस्वीकुमार-सं०पु० [सं० अश्विनीकुमार] देखो 'अस्विनीकुमार' (अ.मा.)

अस्वीकृत-वि० [सं० अस्वीकृत] जो अस्वीकार कर दिया गया हो ।

अस्स-सं०पु० [सं० अश्व] १ अश्व, घोड़ा (डिं.को.)
२ देखो 'अस' (रू.भे.)

अस्सर-सं०पु०—देखो 'असर' (रू.भे.)

अस्सराळ-वि० [सं० आशराउ] १ भयंकर. २ शक्तिशाली ।
उ०—असपत्ति तणाइ दळि **अस्सराळ**, काबिली केवि धारा कराळ ।
—रा.ज.सी.
३ घातक (रू.भे. असराळ, अजराइल)
क्रि०वि०—अविच्छिन्न, निरंतर ।

अस्सली-वि० [अ० असल] देखो 'असली' (रू.भे.)

अस्सराळू-वि०—देखो 'अस्सराळ' । उ०—आवां न झाळू **अस्सराळू** बीच बाळू मिन्न ए । राख्या दयाळू अगयाळू अरि काळू हुन्न ए ।
—करुणासागर

अस्सांड-सर्व०—हमारे, मेरे । उ०— तरै कागड़ै कह्यौ, तुस्मांडै जीव नै चैन रख, **अस्सांडा** लेख है त्यूं व्हैंगा ।—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात

अस्सि-सं०पु० [सं० अश्व] घोड़ा । उ०—आरुहिय **अस्सि** आउध अपाल ।—रा.ज.सी.
वि०—अस्सी (रू.भे.)

अस्सी-वि० [सं० अशीति, प्रा० असीइ अप. असी] सत्तर और दस के योग के समान ।
सं०पु०—८०, अस्सी की संख्या ।

अस्सुरांण-देखो 'असुरांण' (रू.भे.)

अहं-सर्व० [सं० अहम्] मैं । उ०—किसन व्यास जे देव कवि, बालमीक सुखदेव । अन कवि गुरु सिख **अहं**, भाव छंद गुण भेव ।—रांमरासो
सं०पु० [रा०] १ पाप, दुष्कर्म, अपराध. २ विघ्न, बाधा.
३ दुःख. ४ अभिमान, घमंड । उ०—कहै दास सगरांम **अहं** भूंडी रै भाई ।—सगरांमदास

अहंकार, अहंकारज-सं पु० [सं०] १ घमंड, मैं हूँ या मैं करता हूँ ऐसी भावना, अहंकृति (अ.मा.)

अहंकारण, अहंकारणी-वि०स्त्री०— अहंकार करने वाली (स्त्री) ।
उ०—आप रहण रिण बात उबारण, उदर ऊपनी मत **अहंकारण** ।
—गो.रू.

अहंकारतन-सं०पु०—जूंझार योद्धा (अ.मा.)

अहंकारी-वि० [सं० अहंकारिन्] (स्त्री० अहंकारण) अहंकार करने वाला, घमण्डी । उ०— तद **अहंकारी** कोपियो, कुंभैरण जगाया ।
—केसोदास गाडण
सं०पु०—वीर, योद्धा (ह.नां.)

अहंकृत, अहंकृति-सं०पु० [सं० अहंकृति] अहंकार, घमंड ।

अहंचौ-सं०पु०—आश्चर्य, अचम्भा ।

अहंड-वि० [सं० अहिंड] लंगड़ा । उ०—सांड सबळ तुहाळै नांम 'जालम' सुपह । पंथ सारंग वहै **अहंड** पावां ।
—झाला जालमसिंह री गीत

अहंता–सं०स्त्री० [सं०] १ अहंकार, घमंड ।

अहंवाद–सं०पु० [सं०] डींग, शेखी, लंबी-लंबी बातें करना ।

अहंसी–देखो 'आहंसी' । उ०—**अहंसौ** उजाळा वीर छ्ना वाघ संधि आळा, काळा तूभ वाळा मांनां किमी रीत काळ ।—हुकमीचंद खिड़ियौ

अह–सं०पु० [सं० अहन्] १ दिन (डिं.को.) उ०—**अह** छट्ठ विहायां सातम आयां सूर अछायां दरसायां ।—रा.रू.

[सं० अह=दीप्तौ] २ विष्णु. [सं० अहि] ३ सूर्य.

४ सांप, सर्प. [सं० अहिराज] ५ शेषनाग । उ०—**अह** माथै रांग आभ लग ऊंचौ, नव खंडे जस झालर नाद ।—दुरसौ आढ़ौ

[सं० अहि] ६ राहु. ७ वृत्तासुर. ८ हाथी.

सं०स्त्री०—९ वेणी, चोटी ।

अव्यय [सं० अहह] आश्चर्य, खेद या क्लेशादि को सूचित करने वाला शब्द, अरे, हे ! उ०—पिंड बियां वण गरढ़ पण, हुवण परा-क्रम हांण । पण वय वधन प्रतापसी, **अह** वण घण आपांण ।

—जैतदांन बारहठ

सर्व०—यह । उ०—जा रुखमणी छै मु निरुमी । तूं **अह** सगाई वरजि मां ।—वेलि. टी.

अहक–सं०पु० [सं० ईहा] इच्छा, आकांक्षा ।

अहकर–सं०पु० [सं० अहन्+कर] सूर्य, भानु ।

अहकांम–सं०पु०—नियम, हुक्म ।

अहकार–सं०पु०—देखो 'अहंकार' (ह.नां.)

अहड़स–सं०पु०—वैमनस्य, मत्सरता । उ०—च्यारांई भायां आंटी करी, **अहड़स** हुई, तरै वीच मांणसे फिरनै कह्यौ ।—नैणसी

अहड़ो, अहड़ौ–क्रि०वि० (स्त्री० अहड़ी) ऐसा । उ०—बांचै हर हर बांण कनक न रांचै कांमणी, जोगी **अहड़ा** जांण, मन सै जीता मोतिया ।—रायसिंह सांदू

सं०पु०—देखो 'अउड़ौ' ।

अहचळ–सं०पु० [सं० अहि+चल] शेषनाग (रू.भे.)

वि०—१ अचल. २ निश्चल ।

अहछ्नौ–वि०—चंचल । उ०—अलल जैता **अहछ्ना** थंभ पाव जंग थाट चाट गजगीर सबूना ।—महादांन महड़ू

अहटाणो, अहटाबौ–क्रि०अ० [सं०] पता लगना, आहट लगना ।

अहड–सं०पु० [सं० आखेट] शिकार ।

अहण–सं०पु०—राठौड़ वंश की एक उप शाखा अथवा इस उप शाखा का व्यक्ति ।

अहत्थ, अहथ–सं०पु० [सं० अहित] बुरा काम, अनर्थ । उ०—मांझ पड़ी नह आवियो, कोय'क हुयौ **अहथ** । सर चूके पाराध ज्यां, मूंध मरोड़ै हत्थ ।—ढो.मा.

अहद–सं०पु० [अ०] प्रतिज्ञा, वादा, संकल्प ।

अहदवार–सं०पु० [फा०] राज्य की ओर से कर का ठेका दिया जाने का मुसलमानी राज्य का एक अफसर ।

अहदनांमौ–सं०पु० [सं० अहदनामा] इकरारनामा, प्रतिज्ञा-पत्र ।

अहदी–वि० [अ०] १ आलसी. २ अकर्मण्य, निठल्ला ।

उ०—बादसाह चाकरी बदळे **अहदी** मेलिया सो भली तरह जापती करावता ।—पदमसिंहजी री बात ३ दृढ़प्रतिज्ञ ।

सं०पु०—४ बादशाह का वह सेवक जो बादशाह की आज्ञा से किसी को लेने जाता है और साथ लेकर दरबार में उपस्थित होता है । (रू.भे. ऐदी) उ०—**अहदी** डेरनि पै अधम आय, दुख देत खुदोखुद लगत दाय ।—ऊ.का.

अहदेव–सं०पु० [सं० अहिदेव] १ शेषनाग । उ०—रटै **अहदेव** गणां रिखराज करै सिध संकर कीरत काज । [सं० अहन्+देव] २ सूर्य ।

अहनांण–सं०पु०—चिन्ह, निशान, संकेत । उ०—भीम गदा जुध भिड़ण का, जिम आर सुजांण । कर ओडव करवाळ मैं 'अभमन' **अहनांण** ।

—मोडजी आसियौ

अहनाथ–सं०पु० [सं० अहि+नाथ] १ शेष नाग. [सं० अहन्+नाथ] २ सूर्य ।

अहनायतर–सं०स्त्री०—शीघ्रता, जल्दी । (ह.नां.)

अहनिस, अहनिसा, अहनिसि–अव्यय [सं० अहर्निशि] दिन-रात, सदा, नित्य । (रू.भे. अहरनिस, अहोनस, अहोनिसि)

अहपंखाळ, अहपंखाळौ–सं०पु०—उड़ने वाला सांप, पंखधारी सर्प ।

अहपर–सं०पु०—देखो 'अहपुर' (रू.भे.) । उ०—वीरोचंद सुत **अहपर** वारो, रवसुत तणौ अमरपुर राज । निध दातार 'कलावत' नरपुर, अनंत रोर कही गत आज ।—दुरसौ आढ़ौ

अहपत–सं०पु० [सं० अहिपति] शेष नाग ।

अहपुर–सं०पु० [सं० अहिपुर, अहिपुरी] १ नागौर का एक नाम । २ नागपुर नगर का एक नाम. ३ पाताल लोक. ४ नाग लोक. ५ दिल्ली नगर का नाम. ६ हस्तिनापुर का एक नाम ।

अहफीण, अहफीन–सं०पु०—अफीम । उ०—**अहफीण** गळै नित मोद अंध, चवरै चढ़ आवत 'पाल' सिंध ।—पा.प्र.

अहफेण–सं०पु० [सं० अहि+फेण] १ सर्प के मुख की लार. २ अफीम ।

अहबेणी, अहबैणी–सं०स्त्री० [सं० अहि+वेणी] सांप के समान वेणी रखने वाली स्त्री ।

अहबेल–सं०स्त्री० [सं० अहिवल्लि] नागवल्लि, नागलता ।

उ०—केवड़ा **अहबेल** कणेर अगकळ, कंज समूळिए पार किसौ ।

—नवलजी लाळस

अहमक–वि० [अ०] बेवकूफ, मूर्ख ।

अहमकर, अहिमकर–सं०पु० [सं० अहिमकर] सूर्य, सूरज ।

उ०—है नभ जितै **अहिमकर** हिमकर, नरपुर अतै रहण री नीम ।
महत सुजस विसतार न मावै, भरतखंड मझ रांणा 'भीम' ।

—महाराजा मानसिंह

अहमण–सं०पु० [सं० अहमंणि] सूर्य ।

अहमह–सर्व० [सं० अहमस्मि] मैं । उ०—मह मह सुगंध चिमकस

मळण, जीतण तप अहमह जुई।—बं.भा.

अहमात–सं०स्त्री०—देवी, शक्ति। उ०—अजे धरणि अहमंड, अजे फळ-फूल धरत्ती। अजे नाथ गोरक्ख, अजे अहमात सकत्ती।

—महाराजा राजसिंह छप्पय

अहमुसल्यौ–सं०पु०—एक प्रकार का अशुभ रंग का घोड़ा। (शा.हो.)

अहमेव–सं०पु० [सं०] अभिमान, घमंड। उ०—दखै गोरख देव कर जप तप सीधा किता। मन पोरस अहमेव नूं सिध भरड़ा तूं हिज तूं।

—पा.प्र.

अहर–सं०पु० [सं० अधर] १ अधर, नीचे का होठ। उ०—सुंदरि सोवन वरण तसु, अहर अलत्ता रंगि। केसर लंकी खीण कटि, कोमळ नेत्र कुरंगि।—ढो.मा. २ राठौड़ों के प्रसिद्ध १३ वंशों में से एक।

वि० [सं० अफल] १ व्यर्थ, फिजूल, निष्फल। उ०—ऐहळा जाय उपाय, आछोड़ी करण अहर। दुस्ट किणी ही दाय, राजी हुवै न राजिया।—किरपारांम २ असमर्थ, बेकाम। उ०—कोपियै छाकियै चहर भड़ अहर करि। फुरळतै पिसण घड़ फेरवी, अफिर फिरि।—हा.झा. [सं० अपर] ३ दूसरा, अन्य। [सं० अधर] ४ नीच।

क्रि०वि० [सं० अहन्] दिन।

अहर-अळग–सं०पु०—छप्पय छंद का एक भेद विशेष, जिसके पढ़ने में होठ परस्पर नहीं मिलते, अतः वे वर्ण जिनके उच्चारण में परस्पर होठ मिलते हैं इसमें प्रयुक्त नहीं होते।—र.ज.प्र.

अहरण, अहरणि–सं०पु०—१ लोहे का वह चौकोर टुकड़ा जिस पर लुहार गर्म लोहा रख कर पीटता है। उ०—१ अहरण ठमको म्हे सुण्यौ, लोहौ घड़े लुहार। घड़जै घसजै वप्पड़ा, तौ काजै हथियार।

—डाढ़ाळा सूर री बात

उ०—२ अहरणि घण विचि हीरा गहरे, चोट फटक परि बैठे।

—ह.पु.वा.

[सं० अर्णव] २ समुद्र, सागर। उ०—सरदार सुतन अहरण समर, राज लाज राखे रहयौ। कोड़ीक नग 'सेरो' कमध, गांठ हूंत छूटे गयौ।—पहाड़खां आढ़ौ

अहरनिस–क्रि०वि० [सं० अहर्निश] रातदिन, सदा, नित्य।

उ०—बुरा पसू बच जाय अहरनिस खाय न आखू।—ऊ.का.

अहरांण–सं०पु० [सं० अहिराट] १ शेषनाग. २ सर्प।

उ०—फाड़ै फूंक न सभै फुण, पसरै औ ग्रहकपती नौ। सीक चढ़ै न सांमहियौ, राव गरुड़ आगै अहरांण।—मालौ सांदू

अहरांह–सं०पु०(बहु०) [सं० अधर] अधर, नीचे का होठ (रू.भे.)

उ०—आज फरूकइ अंखियां, नाभि भुजा अहरांह। मही ज घोड़ा सज्जणां, साम्हां किया घरांह।—ढो.मा.

अहराउ, अहराज, अहराव–सं०पु० [सं० अहि+राट] १ शेषनाग, वासुकी। उ०—आलापै राग गारडू अकबर, दे पैंतीस असट कुळ दाव। रांणै सेस वसुधा ध्रम राखण, राग न पांतरियौ अहराव।

—दुरसौ आढ़ौ

२ सूर्य. ३ राठौड़ वंश की १३ प्रमुख शाखाओं में एक।

अहरू–सं०पु० [सं० अहिरूप] सांप, सर्प। उ०—अहरू विख घोळंतां पछै जांणै पग लागो। सोर गंज ऊपरा किना खीरो भर भागो।

—बखतो खिड़ियो

अहळ, अहळउ–वि० [सं० अफल] व्यर्थ, बेकार, निरर्थक।

उ०—१ काछपाका निकळंक जती पर नार न जोवै। जोह अहळ नह जाय कळह नह जीव लुकोवै।—पा.प्र.

क्रि०वि०—योंही, व्यर्थ में। उ०—नर नारी सूं क्यूं जळइ, नर सूं नारि जळंत। साल्हकुंवर जोगी कहइ, अहळउ केम मरंत।—ढो.मा.

अहलकार–सं०पु० [फा०] कर्मचारी, कारिंदा। उ०—जिस बखत मीरखांन अहलकार दिल मालीक बुलवाये।—ला.रा.

अहलणौ, अहलबौ–क्रि०अ०—हिलना, कांपना।

अहलमद–सं०पु० [फा०] मुकदमों की मिसलों को रजिस्टर में दर्ज करने वाला अदालत का कर्मचारी।

अहलांण–सं०पु० [सं० संज्ञान=सेनाण] निशान, चिन्ह (रू.भे. अहनांण)

उ० जांणता जमा अहलांण आया नजर, उदैभांण चहुवांण आळा।

—रावत जोधसिंह री गीत

अहला–सं०स्त्री० देखो 'अहिल्या' (रू.भे.) उ०—पद परस अहला ऊधरी।—र.रू

अहलाद–सं०पु० [सं० आल्हाद] प्रसन्नता, खुशी।

वि० प्रसन्न। उ०—आये माघ भये अहलाद, जिनके नहीं विखे रसवाद।—ह.पु.वा.

अहळो, अहळौ–(स्त्री० अहळी) देखो 'अहळ' (रू.भे.)

अहलोक, अहलौक–सं०पु०—१ इहलोक, संसार। उ०—अहलोक तणौ उण वेर में, छार जेम मुख छंडियो।—अरजुनजी बारहठ

[यौ० सं० अहिलोक] २ नागलोक।

अहल्या–सं०स्त्री० [सं०] देखो 'अहिल्या'।

अहव–सं०पु० [सं० आहव] युद्ध। (मि० अहवि)

अहवात–सं०पु०—स्त्री का सौभाग्य, स्त्रियों का सुहाग (मि० अहिवात)

उ०—आप कुसळ चाहौ अधप, अरु धण री अहवात। हेक 'अजा' गजगाह रै, रहौ लूब दिन-रात।—रांमलाल आसियो

अहवांनियौ–वि०—१ श्याम वर्ण, काला. २ अभिनंदनीय।

उ०—मल्हांवण फौज बिसकांमणी मागियो। इसौ दीठौ न को वींद अहवांनियो।—हा.झा.

सं०पु०—योद्धा, वीर।

अहवारियै–देखो 'अंवारियै'। 'उ०—ताहरां देवीदास कह्यौ—थे यूं कहजौ—अहवारियै गया हुता उठै मिळिया था।

—पलक दरियाव री बात

अहवारी–सं०स्त्री०—देखो 'असवारी' (रू.भे.)

अहवाळ–सं०पु०—१ चिन्ह, निशान, लक्षण (अमरत) [अ०] २ वृत्तांत कथा, चरित्र, 'हाल' का बहु०। उ०—राणा रतनसेन रौ नै पदमावती री **अहवाळ** फारसी में करायौ—दारा सिकोह। नांम किताब रौ रतनसेन-पदमावती।—बां.दा.

अहवास–सं०पु० [सं० आवास] आवास, मकान, भवन।
उ०—**अहवास** है व्योम अदंतर रौ। उड थांण रह्यौ यक अंतर रौ।
—पा.प्र.

अहवि–सं०पु० [सं० आहव] युद्ध (रू.भे. अहव)
उ०—कसन नहं लगौ सिंध कळोधर। **अहवि** घाव मनाड़ि इसौ।
—गोपाळदास चूंडावत रौ गीत

अहवौ–वि०—ऐसा। उ०—मरुधर देस रै विखै सगळा ही सहरां प्रसिद्ध पुंगळ नांमे **अहवौ** नगर।—ढो.मा.

अहसकर–सं०पु० [सं० अहस्कर] सूर्य्य (अ.मा.)

अहसांन–सं०पु० [अ० अहसान] किसी के साथ भलाई करना, उपकार, अनुग्रह कृतज्ञता।

अहसांन-मंद–वि० [अ० अहसानमंद] कृतज्ञ, अनुग्रहीत।

अहह–अव्यय [सं०] आश्चर्य, खेद, क्लेश या शोकसूचक एक शब्द, अरे, हाय। उ०—**अहह** सोचै न अति दुरव्यसन दुसह उर।
—ऊ.का.

अहा–अव्यय [सं० अहह] १ आह्लाद और प्रसन्नतासूचक एक शब्द. २ हे! अरे! हाय! शोकसूचक शब्द।

अहाड़ा–सं०पु०—सीसोदिया वंश की एक शाखा।

अहाड़ौ–सं०पु०—१ एक प्राचीन नगर का नाम जहाँ पर गहलोत वंश का राज्य था. २ गहलोत वंश का क्षत्रिय।

अहातौ–सं०पु० [अ० अहाता] १ घेरा, अहाता. २ प्राकार, चहारदीवारी.

अहार–सं०पु० [सं० आहार] भोजन, आहार। उ०—अंकल करण अहार, दंतावळ ज्यां दूसरा। पळ भर पाळणहार, प्रगट्यौ सिंघ प्रतापसी।—फतहकरण ऊजळ।

अहारणौ, **अहारबौ**–क्रि०स०—१ आचमन करना। उ०—'मांन' गुना जारिया, जिता नृप केहो जारै। अगसत विनां उदध, अवर रिख कवण **अहारै**।—बुधजी आसियौ. २ आहार करना।
उ०—**अहारै** दुरदां हौदां डकारै धरा रै आंटै सात्रवां वकारै मारै नाहरां सीसोद।—पहाड़खां आढ़ौ

अहारी–सं०पु० [सं० आहारिन्] आहार करने वाला, भोजन करने वाला।
उ०—भूखा मांस **अहारी** भाखै, विलखै रंग उचारै वांणी।
—सुखजी खिड़ियौ

अंहिकारि, **अंहिकारी**–सं०पु० [सं० अहंकार] अहंकार, अभिमान।
उ०—वणवीर चडिय तेवहि वहासि। **अंहिकारि** थंभ आडइ प्रयासि।—रा.ज.सी.
वि०—अहंकारी, अभिमानी।

अंहिसक–वि० [सं०] जो हिंसा न करे, जिससे किसी को पीड़ा न पहुँचे।

अंहिसा–सं०स्त्री० [सं०] किसी को दुःख न देना, किसी जीव को न सताने या न मारने का भाव।

अंहिस्र–वि० [सं०] जो हिंसा न करे, अहिंसक।

अहि–सं०पु० [सं०] १ सांप, सर्प। उ०—**अहि**भूखन विजया भखी, जय जय जय त्रिपुरारि।—ला.रा. २ शेषनाग।
उ०—फणां काळा सफेद असबाज नासा फड़ड़ जिए पंखड़ा, फड़ अमंख लूंदा।—पहाड़खां आढ़ौ
३ सूर्य (अ.मा.) ४ राहु. ५ वृत्तासुर. ६ खल, वंचक. ७ इक्कीस अक्षरों के वृत्तों का एक भेद. ८ मात्रिक गणों के अंतर्गत ठगण अर्थात् छः मात्राओं के समूह का छठा भेद।SSI। (डिं.को.)
सं०स्त्री० ९ पृथ्वी. १० आठ की संख्या*
वि०—कुटिल (डिं.को.)

अहिकर–सं०पु० [सं० अहन्+कर] सूर्य (अ.मा.)

अहिक्षेत्र–सं०पु०—दक्षिण पांचाल की राजधानी।

अहिगण–सं०पु०यौ० [सं०] १ पांच मात्राओं के गण, ठगण का सातवां भेद का नाम. २ सर्पगण. ३ विष्णु (डिं.नां.मा.). ४ डिंगल के वेलिये सांणोर गीत का एक नाम।

अहिगणवंद–सं०पु०—विष्णु (डिं.नां.मा.)

अहिगतजथा–सं०स्त्री०यौ०—डिंगल गीतों (छंदों) की रचना का नियम या रीति विशेष जिसमें सर्प की चाल के अनुसार वर्णन हो।

अहिगति–सं०स्त्री०यौ० [सं०] सांप की चाल, टेढ़ी-मेढ़ी चाल।

अहिगाह–सं०पु०—गरुड़ (अ.मा.)

अहिग्राव–सं०पु०—शिव, महादेव (नां.मा.)

अहिग्रीव–सं०पु० [सं०] शंकर (अ.मा.)

अहिच्छत्र–सं०पु०यौ० [सं०] १ देखो 'अहिक्षेत्र'. २ नागौर का एक नाम।

अहित–वि० [सं०] १ शत्रु, वैरी (अ.मा.) २ हानिकारक।
सं०पु० [सं०] १ बुराई, अकल्याण. २ हानि. ३ शत्रुता।

अहितू–वि०—अहित चाहने वाला।

अहिधर–सं०पु० [सं०] शंकर, महादेव।

अहिधरण–सं०पु०यौ० [सं० अहि+धारण] १ शंकर. २ शेषनाग।

अहिनांण, **अहिनांणहु**, **अहिनांणी**–सं०पु० [सं० अभिज्ञान] चिन्ह, निशान।
उ०—सहिए साहिब आविस्यइ, मो मन हूई सुजांण। आगम वाधाऊ हुया, अंग-तणा **अहिनांण**।—ढो.मा.
क्रि०वि०—संकेत से।

अहिनाथ, **अहिनाह**–सं०पु० [सं० अहि+नाथ] शेषनाग।

अहिनिस, **अहिनिसि**–क्रि०वि० [सं० अहर्निश] रात-दिन, निरंतर, हर समय। उ०—भल सोहड अर हास भल, भली राज गति रीत। राजलोक रांणी भली, पाळै **अहिनिस** प्रीत।—ढो.मा.

अहिपत, **अहिपति**–सं०पु०यौ० [सं० अहर्पति] १ सूर्य (अ.मा.) [सं० अहिपति] २ शेषनाग।

अहिपिय–सं०पु० [सं० अहि+प्रिय] चंदन (अ.मा.)

अहिपुर, अहिपुरउ, अहिपुराह, अहिपुरी, अहिप्पुर–सं०पु०—१ पाताल-लोक. २ नागलोक. ३ नागपुर का एक नाम. ४ नागौर नगर का नाम. ५ बादशाह।

उ०—**अहिपुरं** समापिय तुरी अरथ।—रा.ज.सी.

६ दिल्ली का एक नाम. ७ हस्तिनापुर।

अहिप्रिय, अहिप्रियक–सं०पु०यौ० [सं० अहि+प्रिय] चंदन (नां.मा.)

अहिफीण, अहिफेण–सं०पु०यौ० [सं० अहिफेन] १ सर्प के मुख की लार या फेन. २ अफीम (डिं.को.)

अहिबंध–सं०पु०—डिंगल का एक वर्ण छंद (गीत)।—र ज प्र.

अहिबांण–सं०स्त्री०—घोड़ों की एक जाति विशेष (कां.दे.प्र.)

अहिबेल–सं०स्त्री० [सं० अहिबल्ली] नाग बेली। उ०—ऐसी विधि ले कीजियै, मित्रां सूं मन मेळ। सरसै सरस विरसै विरस, ज्यूं पत्तो **अहिबेल**।—जलाल बूबना री बात

अहिभख–सं०पु० [सं० अहिभुक्] १ मोर, मयूर (डिं.को.) २ गरुड़ (डिं.को.) [सं० अहिभक्ष्य] ३ चूहा. ४ वायु (अ.मा.)

अहिमंत्री–सं०पु० [सं० अहि+मंत्री] १ मंत्रवादी. २ गारुड़ी।

उ०—नेकूं पुत्र भतीज सम, जग **अहिमंत्री** जेम।—रा.रू.

अहिमकर–सं०पु० [सं०] दिनेश, सूर्य (क.कु.बो.)

उ०—मूंछां भूंहां मिळै, छिळै बीरा रस छोळां। वाज **अहिमकर** बाज, डकर हिमकर अग डोलां।—मे.म

अहिमति–सं०पु—घमंड, अभिमान, दर्प। उ०—करि बेड़े बरबाद बाद बारूद उड़ाए। हम तुम जुट्टे तदन, अदन **अहिमति** उर छाये।—ला.रा.

अहिमन–सं०पु०—चंदन (नां.मा.)

अहिमाळी–सं०पु०—शिव।

अहिमिण–सं०पु०यौ० [सं० अहिमणि] सर्प की मणि, एक प्रकार का नग (अ.मा.)

अहिमुख, अहिमुखो–सं०पु०यौ० [सं० अहिमुख] १ एक प्रकार का घोड़ा जिसके मुख की आकृति सर्प के मुख सी होती है (अशुभ)—शा.हो. २ मतांतर से एक प्रकार का घोड़ा जो अपनी जिव्हा बाहर निकाले हुए ही रहता है (अशुभ)—शा.हो.

अहिमेध–सं०पु० [सं०] सर्पयज्ञ।

अहिमेव–सं०पु० [सं० अहमेव] अभिमान, अहंकार (एकाक्षरी)

अहिर–सं०पु०—देखो 'अहीर'। [सं० अधर] २ अधर, नीचे का होठ। उ०—सज्जन मिळिया हे सखी, कासूं भगत करेस। **अहिरां अहिरां** पयोहरां, रमतां आड न देस।—ढो.मा.

अहिरघ–वि०—अहितुल्य। उ०—ललवांगी धन कूंवळी, **अहिरघ** बाळा निरमळ दंत।—वी.दे.

अहिरण–सं०स्त्री०—देखो 'एरण' (रू.भे.) उ०—घण **अहिरण** घण घाउ साम्है चाचरि सात्रवां।—वचनिका

अहिरबुधन–सं०पु० [सं० अहिर्बुध्न्] ग्यारह रुद्रों के अन्तर्गत एक रुद्र।

अहिरांणी–सं०स्त्री—१ सर्पिणी. २ शेषनाग की स्त्री।

अहिरांवण–सं०पु० [सं० अहि+रावण] रावण का एक साथी, पाताल-लोक का राजा जिसने राम और लक्ष्मण को बड़ा कष्ट दिया था। अंत में यह श्रीराम के द्वारा मारुति की सहायता से मारा गया था।

अहिराट–सं०पु० [सं० अहि+राट्] शेषनाग। उ०—धमै तोपां जिसूं **अहिराट** रा सिनांण धूजै, रोक जंगां लेखो हो अोघाट रा रकत।
—राघोदास सांदू

अहिराव–सं०पु०—१ सर्प. २ लक्ष्मण जो शेषनाग के अवतार माने जाते हैं। उ०—सीता सुणे हरि मौ संग अह दिस अनुसरे, रीता जाय उप **अहिराव** सगळा कथ ररे।—र.रू.

अहिरिप–सं०पु० [सं० अहि+रिपु] गरुड़ (नां.मा.)

अहिळ–वि० [सं० अ+फल] व्यर्थ। उ०—जोवन दरब न खट्टिया, ज्यां परदेसां जाय। गमिया मूंघी दीहड़ा, **अहिळ** जमारो माय।
—अज्ञात

अहिलिआ–सं०स्त्री० [सं० अहल्या] गौतम ऋषि की पत्नी का नाम। उ०—इंद्र गोतम **अहिलिआ** अलज चरित्र अनंत, राम सुणि ए राजरिख पाप सराप परसंग।—रांमरासो

अहिलोक–सं०पु० [सं०] १ पाताल. २ नागलोक।

अहिलोळ–सं०पु०—सागर, समुद्र (ना डिं.को.)

अहिल्या–सं०स्त्री० [सं० अहल्या] गौतम ऋषि की पत्नी, गौतमी।

वि०वि०—इनके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर इन्द्र ने चन्द्रमा को मुर्गा बना कर और गौतम को प्रातःकाल हो जाने का भ्रम करा स्नान-ध्यान को भिजवा आप गौतम के रूप में आकर इनके चरित्र को दूषित किया था। गौतम को यह रहस्य योगध्यान में ज्ञात हो जाने पर इन्हें शाप दिया। कौशिक की आज्ञा से राम ने इनका आतिथ्य स्वीकार करके इन्हें पवित्र किया और तब ये गौतम को प्राप्त हो सकीं। तुलसीकृत रामायण में शाप से इनका पत्थर होना और राम-पद स्पर्श से फिर स्त्री होकर गौतम को प्राप्त होना लिखा है।

अहिवर–सं०पु० [सं०] ५ गुरु और ३८ लघु कुल ४८ मात्राओं का दोहे का एक भेद विशेष (र.ज.प्र.)

अहिवल्ली–सं०स्त्री० [सं० अहिबल्ली] नागवल्ली की लता।

अहिवात–सं०पु० [सं० आधिपत्य, प्रा० आहिवत् = अहिवात] देखो 'अहवात'। उ०—तूठे गोगोजी सांवण रमती तीजण्यां, ज्यांरो अमर **अहिवात** औ।—लो.गी.

अहिवेल–सं०स्त्री० [सं० अहिबल्ली] नागरबेल, नागवल्ली।

अहीं, अहींज–क्रि०वि०—व्यर्थ।

अही–सं०पु० [सं० अहि] १ सांप [सं० अहन्] २ दिन। (ह.नां.) [रा०] ३ टगण की छः मात्राओं के छठे भेद का नाम ।ऽऽ। (डिं.को.) वि०—ऐसा।

अहीगण–सं०पु०—छंद शास्त्र में ठगण का एक भेद जिसमें मात्रा क्रम ऽ।। होता है। (डिं.को.)

अहीणो–सं०पु० [सं० अधेनुक] दूध देने वाले मवेशी का अभाव।

अहीत–सं०पु० [सं० अहित] देखो 'अहित' (ह.नां.)

अहीनाथ–सं०पु०यौ० [सं० अहि+नाथ] शेषनाग (पिं.प्र.)

अहीनार, अहीनारि, अहीनारी–सं०स्त्री०यौ० [सं० अहि+नारी] १ नागवंश की स्त्री. २ सर्पिणी. ३ शेषनाग की स्त्री। उ०—अहीनारि अंपे लही मोल उंची, प्रभू रे पहूँचे लटूके अहूँची। —ना.द.

अहीमुख–सं०पु०—वह घोड़ा जिसका मुंह सर्प के मुंह की आकृति का हो। यह अशुभ माना गया है।—शा.हो. (मि० अहिमुख)

अहीयांह–सर्व०—इन। उ०—जलाल हंदा हाथड़ा, न जोगा अहीयांह। सार पछंटण बैरियां, का रमावण सहियांह।—जलाल बूबना री बात

अहीर–सं०पु० [सं० आभीर] १ दूध दही आदि का रोजगार करने व गाय-भैंस रखने वाली एक जाति विशेष. २ इस जाति का व्यक्ति। (स्त्री० अहीरण, अहीरणी) पर्याय०—गोप, ग्वाला। ३ एक मात्रिक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में ग्यारह मात्रायें होती हैं किन्तु अंत में जगण होता है।

अहीराजा, अहीराव–सं०पु० [सं० अहि+राट्] शेषनाग, नागराज। उ०—अहीराव नै दावड़ा एह आड़ा, गुणां वेद जोतां कही क्रोड़ गाड़ा।—ना.द.

अहीरी–सं०स्त्री० [सं० आभीर+ई] अहीर की स्त्री, गोपिका, ग्वालिन उ०—इसा हर धकै चढ़ इसी कुण अहीरी, अंगूठौ दिखावै घरां आवै।—बां.दा.

अहीरीयौ–सं०पु०—१ देखो 'अहीर'। २ श्रीकृष्ण (अल्पा०)

अहीवलभ, अहीवल्लभ–सं०पु०यौ० [सं० अहि+वल्लभ] १ हवा, वायु (ह.नां.) २ चंदन।

अहीस–सं०पु० [सं० अहि+ईश] शेषनाग।

अहीसुता–सं०स्त्री०यौ० [सं० अहि+सुता] नागकन्या।

अहुटणो, अहुटबो–क्रि०अ०—१ हटना, दूर होना, अलग होना. २ वापस लौटना। उ०—अहुटै दवळउजीर पंह, जियत रहै जे आय।—ला.रा.

अहुटाणो, अहुटाबो–क्रि०स०—हटाना, दूर करना, भगाना।

अहुठ–वि० [सं० अध्युष्ठ] तीन और आधा।

अहुड़णो, अहुड़बो–क्रि०स०—भिड़ना, लड़ना। देखो 'आहुड़णो'

अहुणी–वि०—अनहोनी, असंभव।

अहुरमज्द–सं०पु०—पारसियों के अनुसार ईश्वर का एक नाम।

अहूं–सर्व० [सं० अहम्] मैं।

अहूत–वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अपुतअ, अप० अउतअ] निःसंतान। उ०—बेटा जायां की गुण जे गर होय कपूत 'अळसी' घर लालर न हुती अळसी जात अहूत।—अज्ञात

अहेड़–सं०पु० [सं० आखेट] शिकार। उ०—राइ अहेड़इ चालियो, उड़ीय खेह नइ सूझई भांण।—बी.दे.

अहेड़ी–सं०पु०—शिकारी। उ०—निरजळा करती एकादसी, एक अहेड़ी वनह मंझारी।—बी.दे.

अहेड़ौ, अहेड़ौ–क्रि०वि०—ऐसा, ऐसे। उ०—लुकाइ बचाळै प्रभूलंक लागे, अहेड़ा सुणां साखराकेथ आगे।—ना.द.

अहेज–क्रि०वि०—१ इसी समय. २ स्नेह छोड़ कर।

अहेत–सं०पु०—१ शत्रु. २ अहितू. ३ अस्नेह, स्नेहाभाव।

अहेतु–वि० [सं०] १ बिना कारण का, निमित्तरहित. २ व्यर्थ, अकारण [रा० अ+हितू] ३ शत्रु, दुश्मन।

अहेर–सं०पु० [सं० आखेट] १ शिकार, मृगया (रू.भे. अहेड़) २ वह जन्तु जिसका शिकार किया जाय।

अहेरी–सं०पु० [सं० अहेर] शिकारी, आखेटक, व्याध। (रू.भे.–अहेड़ी)

अहेवौ–क्रि०वि०—ऐसे। वि०—ऐसा।

अहेस–सं०पु० [सं० अहीश] १ शेषनाग. २ लक्ष्मण का एक नाम। उ०—अत हेत अहेस सुकंठ अनै, करुणानिध श्री रघुवीर कनै। —र.रू.

[सं० अथ+ईश] गजानन, गणेश। उ०—सूंडाडंड अहेस राग रीझै ससमोसर वणि सिंदुर चित्रवेस धार मदवेस पड़ै धर।—सू.प्र.

अहेसुर, अहेस्वर–सं०पु० [सं० अहि+ईश्वर] १ शेषनाग। उ०—अडिगासण आस अहेस्वर से, मद नाद अमद्य महेस्वर से। —ऊ.का.

[सं० अहन्+ईश्वर] २ सूर्य।

अहो, अहौ–अव्यय [सं०] संबोधकसूचक या विस्मय, हर्ष, करुणा, खेद, प्रशंसा आदि मनोविकारों का द्योतक शब्द। उ०—१ चिर सार यही सब प्यार चहौ, उपकार बिनां नहिं पार अहौ।—ऊ.का. उ०—२ अहो जग तात सुणौ वंभ एवं दियौ दह कंध जु तैं वर देव। —रांमरासौ

अहोड़ौ–सं०पु०—१ टोकने का भाव, झिड़की. २ किसी सम्मान-योग्य व्यक्ति को उसके द्वारा कही गई कोई बात का दिया जाने वाला कटु उत्तर।

अहोणो, अहोणौ–वि०—१ अयोग्य। उ०—काज अहोणौ ही करै, एह प्रकत खळ अंग। रांमण पठियौ रांम दिस, कर सोव्रनौ कुरंग। —बां.दा.

२ न होने वाला, असंभव। उ०—बैरी कड़क्कै 'बांकला' करै अहोणो काज, रांम तार गिरवर रची, पांणी ऊपर पाज।—बां.दा.

अहोनस, अहोनिस, अहोनिसि–क्रि०वि० [सं० अहर्निश] दिन-रात, सदा, नित्य। उ०—१ अहोनिस कागभुसुंड आराध, पढ़ै तौ नांम सदा प्रहलाद।—ह.र. उ०—२ अरक अगनि मिसि धूप आरती नियतणु वारै अहोनिसि।—वेलि.

अहोभाग–सं०पु० [सं० अहोभाग्य] सौभाग्य, धन्य-भाग्य।

अहोरात, अहोरात्र–क्रि०वि० [सं० अहन्+रात्रि] रात-दिन, सदा, नित्य।

अहोनस, अहोनिस–क्रि०वि०—देखो 'अहोनस'। (रू.भे.)

अह्म–सर्व० [सं० अहं] हम, मैं। उ०—१ तू एकज अब्ब थया तुम्ह अह्म।—ह.र. उ०—२ आगइ अह्म वरांसउ वीतउ, हिवड़ां छळ नवि छांडूं।—कां.दे.प्र.

अह्मीणौ, अह्मीणौ–सर्व० [स्त्री० अह्मीणी] हमारा, मेरा।

उ०—भगतां भूधर भांजण भीड़, पालीजै देव अह्मीणी पीड़- -ह.र.

आ

आ—वर्णमाला का द्वितीय अक्षर तथा स्वर जो अ का दीर्घ या वृद्धि रूप है।

आं, आं–सर्व०—इन। उ०—घट मार दंड घंटा घुरै ठीक कळ जी ठारती, उतारै कोई'क सेवक इसा आं संतां री आरती।—ऊ.का.

सं०पु० [अनु०] रोने का शब्द।

आंइणी–सं०स्त्री०—वह गाय अथवा भैंस जो कुछ समय तक दूध न देती हो।

आंइणौ–सं०पु०—देखो 'अहीणौ'।

आंऊ–सं०पु०—अहंकार, गर्व (द.दा.)

आंक–सं०पु० [सं० अंक] १ भाग्य. २ चिन्ह, निशान, बैल आदि को दागने का चिन्ह. ३ अक्षर. ४ संख्या का चिन्ह ० से ६ तक. ५ लिखावट. ६ प्रतीक। उ०—अमरसिंह निराठ सारी बात में अब्वल, बडी देसोत, मांटीपणै रौ आंक।—राठौड़ अमरसिंह री बात

आंकड़ौ–सं०पु० [सं० अंक+ड़ौ रा० प्र०] १ आय-व्यय का लेख पत्र। २ लोहे का एक प्रकार का टेढ़ा कांटा जो उन बड़ी तराजुओं के बीच लगाया जाता है जिनसे लकड़ी आदि तौलते हैं. ३ भाला. ४ चंद्राकार आकृति का शस्त्र या तीर का अगला भाग।

उ०—खगां झट आंकड़ा उरस लागां वहै, बांकड़ा अगै धर सणंक सूधा वहै।—महादांन महड़ू [सं० आंख+ढक] ५ कोल्हू के बैल की आंखों पर बांधा जाने वाला उपकरण।

आंकणौ–वि०—अंकित करने वाला। उ०—वडी आंकणौ वार जांणै विचार।—ल.पिं.

आंकणौ, आंकबौ–क्रि०स० [सं० अंकन] अंकित करना. २ दागना. ३ चिन्ह लगाना. ४ नाप-तौल के लिए अनुमान लगाना, कूंतना। ५ जांचना, परखना. ६ ठहराना, निश्चित करना।

आंकणहार-हारौ (हारी), आंकणियौ–वि०—अंकन करने वाला।

आंकाणौ, आंकाबौ—प्रे०रू०।

आंकिओड़ौ, आंकियोड़ौ, आंक्योड़ौ–भू०का०कृ०—अंकित।

आंकीजणौ, आंकीजबौ–कर्म वा०—चिन्ह लगाया जाना, हिसाब कराया जाना।

आंकीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—अंकित किया गया हुआ।

आंकल–सं०पु० [सं० अंकल] १ चिन्हित सांड, भैंसा अथवा बिना बधिया किया हुआ घोड़ा. २ मृत व्यक्ति की याद में दाग कर छोड़ा हुआ बैल।

वि०—१ व्यभिचारी. २ वीर, साहसी। उ०—एकल्ल मल्ल दुभल्ल आंकल, कहि कळहि अकळ।—ल पिं.

आंकलणौ, आंकलबौ–क्रि०स० [सं० अंकल+णौ रा०प्र०] १ चिन्ह लगाना, अंकित करना. २ दागना।

आंकलणियौ–वि०—चिन्ह लगाने या दागने वाला।

आंकलिओड़ौ, आंकलियोड़ौ, आंकल्योड़ौ–भू०का०कृ०—अंकित, दागा हुआ।

आंकलियोड़ौ–भू०का०कृ० [सं० अंकित] चिन्हित, दागा हुआ। (स्त्री० आंकलियोड़ी)

आंकवणौ–क्रि०स०—देखो 'आंकणौ'। उ०—गज बाघा वहै उपगार खत्री गुर, वदन वहै खग आंकविया। तौ ऊवारिया वडफरां ओटां, कोटां पावणहार किया। —भैरूंदास खिड़ियौ

आंकस–सं०पु० [सं० अंकुश] १ अंकुश, डर, भय, शंका. २ हाथी का अंकुश. ३ प्रतिबंध, दबाव, रोक. ४ एक प्रकार का शस्त्र।

आंकाणौ, आंकाबौ–क्रि०स०—१ चिन्ह लगवाना. २ दगवाना. ३ हिसाब लगवाना।

आंकावणौ, आंकावबौ—रू०भे०।

आंकायोड़ौ—अंकित कराया हुआ।

आंकायोड़ौ–भू०का०कृ०—अंकित कराया हुआ, दगवाया हुआ। (स्त्री० आंकायोड़ी)

आंकियोड़ौ–भू०का०कृ० [सं० अंकितः] १ चिन्हित. २ दागा हुआ. ३ अंकित. ४ हिसाब किया हुआ। (स्त्री० आंकियोड़ी)

आंकुस–सं०पु० [सं० अंकुश] १ देखो 'आंकस'। २ 'रघुवर जस प्रकाश' के अनुसार तीन लघु मात्राओं के समूह का नाम।

आंकूर–सं०पु० [सं० अंकूर] १ जखम का भरना. २ अंकुर। उ०—सूंमपणी पातक छटो, अपजस तर आंकूर। कारण इण बीकम करण, इण सूं रहिया दूर।—बां.दा.

आंकेल–सं०पु० [सं० अंकलः] वीर। उ०—राघोदेव सुधां सोळा भागे सात रोळी कीधा। ओळी लीधा जसौ बाघ ऊबरे आंकेल।
—चांवडदांन महड़ू

आंकोड़ियौ–सं०पु०—देखो 'अंकोड़'। उ०—जद श्री जी आंकोड़िया सूं वृक्ष री डाळ नमायी।—बां.दा.

आंकोर–सं०पु०—देखो 'आंकूर'।

आंकौ-सं०पु०—होनी, भवितव्यता।

उ०—१ अजै लग चारणां वचण आंकौ।—सं.भं.

२ पुर जोधांण उदैपुर, जैपुर पहु थांरा खूटा परियांण। आंकै, गई आवसी आंकै 'बाके' 'आसल' किया बखांण।

—गीत चेतावणी रौ—बां.दा.

कहा०—उण रै धिरण रौ आंकौ नहीं आयौ—अभी उसके अच्छे दिन नहीं आये हैं।

आंख-सं०स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि] १ रूप, वर्ण, विस्तार, आकारादि को देखने या अनुभव कराने वाली प्राणियों के शरीर की एक इन्द्रिय, नयन, लोचन।

पर्याय०—अंबक, अंबुक, आंखि, कटाक्ष, कांमधीठ, कायाजळ, कायालज, गो, चक्षु, चख, चरस, चांमणी, जगभाळण, जोत, जोय, दिग, दीठि, देखण, द्रग, द्रठा, द्रस्टि, नजर, नयण, निजर, निजरि, निरख, निरम्मळ, नेत्र, नैण, नैत्र, मनरंजन, मींट, मोहन, रतन, रार, रूपग्रह, रोहज, लोचण, लोचन, लोयण, विभळ, विलोचण।

क्रि०प्र०—आवणी-काढ़णी-खटकणी-घालणी-जावणी-नाचणी-फाटणी-फुरकणी-फूटणी-बळणी-मारणी-मींचणी-लागणी।

मुहा०- १ आंख आगे आवणौ—सम्मुख आना. २ आंख आवणी—आंख में दर्द तथा लाली आदि होना. ३ आंख उठणी—आंख दुखना. ४ आंख उठावणी—आंखें अच्छी तरह खोलकर सामने देखना, नुकसान पहुँचाने के ख्याल से देखना. ५ आंख कड़कणी—क्रोध करना, आंख में तेज दर्द होना. ६ आंख कांन खुला राखणां—होशियार रहना. ७ आंख-कांन नाचणौ—इतराना. ८ आंख खावणौ—आंखों को बुरा लगना. ९ आंख खुलणी—होशियार होना, स्थिति को समझना, आराम होना, नींद टूटना. १० आंख खोलणी—ख्याल करना, चेत करा देना, होश करा देना. ११ आंख गमावणी—अंधा होना. १२ आंख गुडाक जिसी हुवणी—आंख में दर्द के कारण सूजन आना. १३ आंख चढ़ाणी—गुस्सा करना. १४ आंख चलावणी—इशारा करना, नखरे करना. १५ आंख चिरमी आळी दाई—छोटी आंख. १६ आंख चींयै दाई—चिपचिपी व छोटी आंख. १७ आंख चुराणी—धोखा देना, बात करने में लजाना, चुपके से निकल जाना, छिपना. १८ आंख चूकणी—जरा सा लापरवाह होना या न देखना। १९ आंख छिपाणी—कतरा कर जाना, शर्माना, आमने-सामने न देखना, सामने न होना. २० आंख जमणी—नजर स्थिर होना. २१ आंख जांणै डभडोळा—बड़ी आंखें. २२ आंख जावणी—अंधा होना, दृष्टिरहित होना. २३ आंख जोड़णी—प्रेम करना, चार आंख करना. २४ आंख झपकणी—नींद आना. २५ आंख झुकणी—आंख नीची होना, शर्मा जाना. २६ आंख ठंडी करणी—किसी के दर्शन से तृप्ति करना. २७ आंख ठंडी होवणी—किसी के दर्शन से तृप्ति होना. २८ आंख ठरणी—देखो 'आंख ठंडी होवणी'. २९ आंख ठैरणी—नजर का स्थिर होना. ३० आंख डबडबाणी—आंखों में आंसू आ जाना. ३१ आंख डाकी आळी दाई—आंखें बड़ी होना. ३२ आंख तरसणी—किसी वस्तु को देखने की इच्छा होना. ३३ आंख दिखावणी—क्रोध करना, बिगड़ना. ३४ आंख देखतां—जानबूझकर. ३५ आंख दौड़ाणी—हर तरफ दूर दूर तक देखना. ३६ आंख नहीं उठणी—घमंड के कारण बात नहीं करना, शर्म से आंखें गड़ जाना, आंखों से न देखा जाना. ३७ आंख नहीं खोलणी—घमंड के कारण किसी ओर देखने का भी कष्ट न करना, बेहोश रहना, जरा भी ध्यान न देना. ३८ आंख नहीं टमकारणी—अपलक. ३९ आंख नहीं ठैरणी—एकटक न देखा जाना, किसी चीज का अत्यन्त चमकीला या अत्यन्त सुंदर होना. ४० आंख नहीं भींजणी—आंसू नहीं आना. ४१ आंख निकाळणी—गुस्से से देखना, आंख फोड़ना, अचरज करना. ४२ आंख नीची होणी—लज्जा पैदा होना, संकोच आदि के कारण बराबर न देख सकना. ४३ आंख न्हांखणी—आंखें डालना, कुदृष्टि फेंकना. ४४ आंख पसारणी—दूर तक देखना, किसी के स्वागत के लिये तैयार रहना. ४५ आंख पितर रौ नाडौ—चिपचिपी व आंसूभरी आंख. ४६ आंख पीछांणणी—संकेत समझना. ४७ आंख फड़कणी—भला या बुरा शकुन होना. ४८ आंख फाड़णी—घूर कर देखना, आश्चर्य से देखना, रास्ता देखना, बाट जोहना. ४९ आंख फाड़ नै देखणी—देखो 'आंख फाड़णी'. ५० आंख फाटणी—आश्चर्य-चकित होना. ५१ आंख फिरणी—गुस्सा हो जाना, दृष्टि बदल जाना. ५२ आंख फूटणी—दिखाई न देना. ५३ आंख फेरणी—ध्यान न देना, मैत्री खतम करना. ५४ आंख फोड़णी—किसी की प्रतीक्षा करने में कष्ट उठाना, आंख की रोशनी खराब करना, अंधा कर देना. ५५ आंख फोरणी—देखो 'आंख फोड़णी' और 'आंख फेरणी'. ५६ आंख बंद करणी—बेहोश हो जाना, मरना. ५७ आंख बंद होवणी—मर जाना, बेहोश होना, ध्यान न देना. ५८ आंख बचाणी—छिपना. ५९ आंख बदळणी—सहानुभूति न रहना, विरुद्ध हो जाना. ६० आंख बिछावणी—आदर से स्वागत करना. ६१ आंख बळणी—देखो 'आंखियां बळणी'. ६२ आंख बैठणी—आंख के डेले का भीतर चला जाना. ६३ आंख भरीजणी—आंखों में आंसू आना. ६४ आंख भरनै देखणौ—दृष्टि गड़ाकर देखना. ६५ आंख मटकाणी—नाज व नखरे करना, आंख से इशारा करना. ६६ आंख माथै चढ़णी—दृष्टि पर आना. प्रेम तथा विश्वास होना. ६७ आंख माथै बिठाणी—बहुत आवभगत या इज्जत करना. ६८ आंख माथै राखणौ—आदर और आराम से रखना. ६९ आंख मारणी—डराना, इशारा करना, प्रेम जताना, इशारे से मना करना. ७० आंख मिळावणी—आंख लड़ाना, प्रेम करना, आमने सामने खड़ा होना. ७१ आंख मींचणी—ध्यान न देना, मर जाना. ७२ आंख मींचीजणी—मर जाना, नींद

आना. ७३ आंख में काजळ घालणी—शृंगार करना. ७४ आंख में छनीछर बळै—अशुभ दृष्टि होना. ७५ आंख में पांणी नहीं होणौ—लज्जाहीन होना, आंखों का अश्रुरहित होना. ७६ आंख में फूलो पड़णौ-पड़बौ—आंख का एक रोग विशेष होना जिसके कारण दिखाई नही देता. ७७ आंख में खटाई आवणी—खटरास उत्पन्न होना, वैमनस्य होना. ७८ आंख में मिरचां घातणी—चालबाजी से हानि करना, धोखा देना. ७९ आंख में मैल आवणौ—दिल खट्टा होना या करना. ८० आंख में लूण घातणौ (नांखणौ)—चालबाजी से हानि करना, धोखा देना अंधा करना. ८१ आंख में राखणौ—बड़े यत्नपूर्वक रखना. ८२ आंख मौड़णी—देखो 'आंख फेरणी'. ८३ आंख राखणी—ख्याल रखना, मुहब्बत रखना. ८४ आंख राती करणी—गुस्सा करना. ८५ आंख री पूतळी कर'र राखणी—बड़े यत्नपूर्वक दुलारसहित रखना. ८६ आंख रै नीचे आवणौ—ध्यान या दृष्टि में आना. ८७ आंख रौ काजळ—बहुत प्यारा. ८८ आंख रौ तारौ—बहुत प्यारा. ८९ आंख लागणी—नींद आना, प्रेम होना. ९० आंख लड़णी—मुहब्बत होना. ९१ आंख लड़ाणी—नजर मिलाना, मुहब्बत करना. ९२ आंख लजाणी—लज्जित होना. ९३ आंख ललचाणी—देखने को जी चाहना. ९४ आंख लाल करणी—गुस्सा करना. ९५ आंख लालै चुट्ट करणी—अत्यन्त क्रोधित होना. ९६ आंख लाल होवणी—क्रोधित होना. ९७ आंख लुकावणी—देखो 'आंख चुराणी'. ९८ आंख बतावणी—डराना, भय दिखाना. ९९ आंख बदळणी—देखो 'आंख बदळणी' १०० आंख सीधी होणी—घमंड छोड़ना, मेल करना. १०१ आंख सूं आंख मिळणी—इशारा होना, मुहब्बत होना. १०२ आंख सूं आंख मिळावणी—इशारा करना, मुहब्बत करना १०३ आंख सूं आंख लड़णी—मुहब्बत होना. १०४ आंख सूं आंख लड़ाणी—मुहब्बत करना. १०५ आंख सूं आंधौ करणौ—दृष्टिहीन करना. १०६ आंख सेंकणी—देखने का सुख लूटना. १०७ आंख होवणी—जानकारी होना. १०८ आंखियां आवणी—देखो 'आंख आवणी'. १०९ आंखियां उठणी—देखो 'आंख उठणी'. ११० आंखियां कठै ही नै दिल कठै ही—अपने प्रेमी के ध्यान में लीन रहना, ध्यान न देना. १११ आंखियां काढ़णी—गुस्से से देखना. ११२ आंखियां खुलणी—देखो 'आंख खुलणी'. ११३ आंखियां खोलणी—देखो 'आंख खोलणी'. ११४ आंखिया खोवणी—अंधा होना. ११५ आंखियां गमावणी—अंधा होना. ११६ आंखियां गुद्दी लारै आवणी—मूर्ख होना, दिखाई न देना. ११७ आंखियां गुद्दी लारै होवणी—मूर्ख होना, दिखाई न देना. ११८ आंखियां घालणी—आंखें डालना, कुदृष्टि फेंकना. ११९ आंखियां चढ़णी—गुस्सा करना, गर्व से ऐंठना. १२० आंखियां चरख चढ़णी—गुस्सा करना, गर्व से ऐंठना. १२१ आंखियां चार होणी—आंख से आंख मिलना, प्रेम होना. १२२ आंखियां चार करणी—प्रेम करना.

१२३ आंखियां टेढ़ी करणी—गुस्सा करना. १२४ आंखियां ठंडी होणी (ठरणी)—देखो 'आंख ठरणी'. १२५ आंखियां ठारणी—किसी के दर्शन से तृप्ति करना. १२६ आंखियां तपणी—किसी की राह देखते थक जाना. १२७ आंखियां तरसणी—देखने के लिये लालायित होना. १२८ आंखियां दिखावणी—डराना, धमकाना. १२९ आंखियां दूखणी—बुरा लगना, किसी चीज को देखकर कष्ट होना. १३० आंखियां देखतां—सामने, जान-बूझकर. १३१ आंखियां नचावणी—इशारा या नखरे करना, इतराना. १३२ आंखियां नाचणी—इशारा या नखरे होना. १३३ आंखियां नीची करणी—लज्जित होना, संकोच आदि के कारण बराबर न देखना. १३४ आंखियां नीची होवणी—देखो 'आंख नीची होणी'. १३५ आंखियां फरूकणी—शुभ या अशुभ शकुन होना. १३६ आंखियां फाटणी—आश्चर्यचकित होना. १३७ आंखियां फाड़णी—देखो 'आंख फाड़णी'. १३८ आंखियां फिरणी—देखो 'आंख फिरणी'. १३९ आंखियां फूटणी—देखो 'आंख फूटणी'. १४० आंखियां फेरणी—देखो 'आंख फेरणी'. १४१ आंखियां फोड़णी—देखो 'आंख फोड़णी'. १४२ आंखियां बळणी—डाह पैदा होना, कष्ट होना, क्रोधित होना. १४३ आंखियां भरणी—आंखों में आंसू आना. १४४ आंखिया भरीजणी—आंखें अश्रुपूर्ण होना. १४५ आंखियां भीजणी—आंखें अश्रुपूर्ण होना. १४६ आंखियां मारणी—देखो 'आंख मारणी'. १४७ आंखियां मींचणी—देखो 'आंख मींचणी'. १४८ आंखियां मींच'र अंधारौ करणौ—बिना अधिक सोच-विचार किये कोई कार्य करना, बिना अधिक हानि लाभ के बारे में सोचे काम करना. १४९ आंखियां मींचीजणी—देखो 'आंख मींचीजणी'. १५० आंखियां में आवणौ या खटकणौ—दृष्टि में आना, ईर्ष्या का कारण बनना. १५१ आंखियां में घालणौ—अत्यन्त दुलार या प्रेम से रखना. १५२ आंखियां में घात'र राखणौ—बड़े दुलार या प्रेम से रखना. १५३ आंखियां में घाल्यौ नहीं रड़कणौ—बहुत प्रिय, किसी को बुरा मालूम न होना. १५४ आंखियां में चुभणौ—बुरा मालूम होना, ईर्ष्या का कारण बनना, पसंद आना. १५५ आंखियां में ठैरणौ—नजर स्थिर होना, पसंद आना. १५६ आंखियां में डर न होणौ—तनिक भी लाज या डर न होना. १५७ आंखियां में धूल घातणी (नांखणी)—चालबाजी से हानि करनी, धोखा देना. १५८ आंखियां में पांणी भरणौ—रोना, आंसू लाना. १५९ आंखियां में पांणी भरीजणौ—आंसू आना. १६० आंखियां में रड़कणौ—बुरा मालूम होना, ईर्ष्या का कारण बनना. १६१ आंखियां में राखणौ—अत्यन्त प्रेम से रखना. १६२ आंखियां में रात काढ़णी—रात भर जागते रहना. १६३ आंखियां री सरम राखणी—लोगों की दृष्टि से लज्जा महसूस करना. १६४ आंखियां री सोगन—यदि झूठ बोलूं तो आंखें फूट जांय. १६५ आंखियां रै आगै आवणौ—दृष्टिगोचर होना, सामने

आना. १६६ आंखियां रै आगै इंधारी होणौ—संसार सूना दिखाई पड़ना, कमजोरी या अधिक कष्ट के कारण साधारण बेहोशी आ जाना. १६७ आंखियां रै आगै चांनणौ होणौ—आंखों से स्पष्ट दिखाई देना, न दिखाई देना. १६८ आंखियां रै आगै तारा छूटणां—कमजोरी या शिथिलता के कारण अत्यंत थकावट महसूस करना. १६९ आंखियां रै आगै नाचणौ—देखो 'आंखियां रै आगै फिरणौ'. १७० आंखियां रै आगै फिरणौ—हर समय याद रहना. १७१ आंखिया रै आगै राखणौ—हर समय साथ या सामने रखना. १७२ आंखियां रोऊं रोऊं करणी—रोनी सूरत होनी. १७३ आंखियां रौ पांणी जावणौ—बेशर्म होना, बेहया होना. १७४ आंखियां रौ रौ नै मुजावणी—अधिक रोना, रो रो कर आंखों को फुलाना. १७५ आंखियां लाल-पीळी करणी—अधिक नाराज होना. १७६ आंखियां लालपीळी होणी—अधिक नाराज होना. १७७ आंखियां वरसणी—आंखों से खूब आंसू बहना. १७८ आंखियां विछावणी—अधिक आदर-सत्कार करना. १७९ आंखियां सूं आघौ—दूर होना. १८० आंखियां सूं कांम करणौ—इशारों से ही काम चला लेना. १८१ भर आंख देखणौ—पूरी तरह से आंख खोल कर किसी की ओर ताकना।

कहा०—१ आंख तणै फरूकड़ै क्या जांणूं क्या होय—पलक भर में न जाने क्या हो सकता है. २ आंख-कांन में च्यार आंगळ रौ आंतरौ है—सुनी और देखी बात में बहुत फर्क होता है। कान से सुनी बात की अपेक्षा आंख से देखी बात अधिक विश्वास के योग्य होती है. ३ आंख फूटी, पीड़ मिटी—हानि हुई पर कष्ट गया अच्छी वस्तु कष्टदायक हो तो उसका जाना ही अच्छा. ४ आंख में पड़्यौ तुस, औ ही लाधौ मिस—काम के समय साधारण सा बहाना मिल जाय तो उसी को लेकर टालमटोल करना. ५ आंख रै परमांण तौ फूलौ पड़ै ही कोनी—आंख के प्रमाण फूला नहीं पड़ता, बिल्कुल मनचाही बात नहीं होती. ६ आंखियां किसी गुद्दी लारै है—मूर्ख है, दिखाई नहीं देता. ७ आंखियां देखी परसरांम कदै न झूठी होय—परसराम कहता है कि आंखों देखी बात कभी झूठ नहीं होती. ८ न आंखियां देखै न कुत्तौ भूंकै—न आंखों से देखै न कुत्ता भौंके. ९ आंखियां मींच'र अंधारौ करै जकेरौ कोई कांई करै—जो जान-बूझ कर बात को टाले उसका कोई उपाय नहीं हो सकता.

१० आंखियां मींची'र अंधारौ हुयौ—देखरेख हटी कि काम चौपट हुआ, मरने के बाद कुछ नहीं, मरने के बाद काम बिगड़ गया. १२ आंखियां रौ आंधौ नांम नैणसुख—जब नाम के अनुसार गुण न हो. १३ आपरी आंखियां चांनणौ है—अब आपके द्वारा ही रास्ता दिखाया जायगा, सबकुछ आप पर निर्भर है. १४ काजळ सूं कांई आंख भारी है—भारी भरकम शरीर को छोटी व तुच्छ वस्तु का बोझ मालूम नहीं होता. १५ मोटी आंख फूटण नै, नै घणा हेत तूटण नै—अत्यधिक प्रेम टूटता भी अवश्य है।

रू०भे०—अंख-अक्ख-आंखि।

अल्पा०—आंखड़ली, आंखड़िय, आंखड़ी।

महत्ता०—आंखड़।

२ नजर, दृष्टि।

आंखड़ली—सं०स्त्री०—१ आंख, नेत्र (अल्पा० प्यार)

आंखड़िय—सं०स्त्री०—नेत्र, नयन (अल्पा०)

आंखड़ी—सं०स्त्री०—नेत्र, नयन (अल्पा०)

(बहु०—आंखड़ियां, आंख्यां)

उ०—जौ जौ झांवड़ियां जाती जतनाळी, रौ रौ **आंखड़ियां** राती रतनाळी।—ऊ.का.

आंखड़ौ—सं०पु० [आंख+ढक] कोल्हू में जोता जाते समय बैल की आंख के ऊपर लगाया जाने वाला ढक्कन।

आंखफूटणी—सं०स्त्री०—एक प्रकार की लता विशेष तथा उसका फल.

आंखमींचणी—सं०स्त्री०यौ०—आंख-मिचौनी का खेल।

वि०वि०—एक लड़का अपनी आंखें बंद कर लेता है और अन्य लड़के छिप जाते हैं तब वह लड़का बंद आंखों से ही किसी खिलाड़ी को पकड़ने या छूने का प्रयत्न करता है। जिस लड़के को छू लिया जाता है, वह अपनी आंख बंद कर वापस खेल आरम्भ करता है।

आंखरातंबर—सं०पु०—ऊंट (ना.डि.को)

आंखांलाल—सं०स्त्री०—कमेड़ी, पंडुकी।

आंखि, आंखी—सं०स्त्री० [सं०अक्षि] नेत्र, नयन। उ०—**आंखि** तरच्छी ईंग्वतां जीता समधां जांण।—बां.दा.

आंग—सं०पु० [सं० अंग] शरीर, अंग। उ०—उघाड़ी धरती छै सु तो जांणै गोरा **आंग** हुऔ।—वेलि.टी.

आंगण, आंगणई, आंगणउ—सं०पु० [सं० अंगण] १ घर के भीतर का सहन, चौक। उ०—१ बैरण रसणां बस त्रसणां तनताई, आभा **आंगण** री अंन मांगण आई। —ऊ.का. उ०—२ सावन नळ प्यंगळ हुई ओकई **आंगणई** सूकई चंपकी माळ।—वी.दे.

२ गुनाह, अपराध, कसूर।

आंगणारीडावड़ी—सं०स्त्री०—दासी, सेविका, परिचारिका।

आंगणियौ—सं०पु०—आंगन, चौक (अल्पा०) उ०—ऊभी **आंगणिये** बोळूड़ी आवै। गदगद मुरळी सुर ओळूड़ी गावै।—ऊ.का.

आंगणि—सं०पु० [सं० अंगण] आंगन। उ०—राजकुआंरि राय **आंगणि** कै विखै सखी विचि सोभा पावै छै।—वेलि. टी.

आंगणौ—सं०पु० [सं० अंगण] घर के भीतर का आंगन, चौक।

पर्याय०—अंगण, अंगन, आंगणू, अजिर।

कहा०—मांगणौ नै कोई तांगणौ, मोटौ मांचौ आंगणौ—प्रकृति द्वारा दी हुई वस्तुओं से ही संतोष करना।

आंगणौ, आंगवौ—क्रि०अ० [सं० अंगीकृत] १ स्वीकार करना।

उ०—खमा करण भगवांन नै, आंगी भूप उम्मेद।

—उदयराज ऊजळ

२ मन में विचार करना।

आंगनियौ-सं०पु०—स्त्रियों के कान की ऊपरी पट्टी में धारण करने का सोने या चाँदी का गहना ।

आंगम-सं०पु०—साहस, बल, उत्साह । उ०—उद्दम **आंगम** आखड़ो, ताप निडरता तंत । गाज मलफ एता गुणां, सीहां काज सरंत । —बां.दा.

आंगमण-सं०स्त्री०—हिम्मत, शक्ति, पराक्रम । उ०—तौ **आंगमण** नमौ सांगातण, रढ़ रांवण मेवाड़ां रांण ।—महाराणा उदयसिंह री गीत

२ अधिकार, कब्जा । उ०—कळह अदभूत जंगी वगौ काळ रौ, **आंगमण** लाल रौ नकूं आयौ ।—गोपाळदास दधवाड़ियौ

वि०—दबाने वाला । उ०—एकौ लक्खां **आंगमण**, सक्खां तेरह सूर ।—किसोरदांन बारहठ

आंगमणी-सं०स्त्री०—अधिकार, मातहती, अधीनता ।

आंगमणौ, आंगमबौ-क्रि०अ० [सं० अभ्युपगमन] १ निश्चय करना । उ०—आवी काळ आखरी मुवौ राजंद मंडोवर सांभळै वात उमा सती जादव **आंगमियौ** जळण ।—आसोजी बारहठ

२ साहस करना । उ०—भाइयां काज सिर **आंगमै** भारथां, भलाई कहाड़ै जिकै भाई ।—बुधजी आसियौ

३ सहन करना, बरदाश्त करना । उ०- करड़ी कुच नूं भाखता, पड़वा हुंदी चोळ । अब फूलां जिम **आंगमै**, सेलां री घमरोळ । —वी.स.

क्रि०स०—साध्य समझना, गालिब होना । उ०—वादीला वनराव रै जितै कळायां जोर । इनै न कौ खळ **आंगमै**, देवै लांबी डोर । — बां.दा.

५ पराजित करना, दबाना. ६ अंगीकार करना, स्वीकार करना । उ०—अड़सठ तीरथ किसूं **आंगमौ** दोरौ पंथ फळ लाधै दूरी देखौ रै ! चहुआंण दिखाळै हरि-पुर सत्र-घड परै हजूरी । —मादूळसिंह चौहांण री गीत

७ विचार करना. ८ अधिकार में करना । उ०—अठी रमजांन बेग पंजाब रौ विजय करि महमूद नूं निरबळ निहारी पाछौ जाइ आरयावरत्त नूं **आंगमण** रै काज तैमूर नूं अटक नदी रै वार आंणियौ ।—वं.भा.

आंगमणहार-हारौ (हारी), आंगमणियौ-वि०- अधिकार में करने वाला, पराजित करने वाला ।

आंगमिओड़ौ, आंगमियोड़ौ, आंगम्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

आंगळ-सं०पु० [सं० अंगुल] १ आठ जव की इतनी लम्बाई, अंगुली की मोटाई का माप । उ०—जितै जसौ पह जीवियौ, थिर रहिया सुर थांण । **आंगळ** ही अवरंग सूं, पड़ियौ नह पाखांण ।—बां.दा.

२ अंगुली (अल्पा०—आंगळड़ी) [सं० आंग्ल] आंग्ल भाषा, अंग्रेजी भाषा ।

आंगळड़ी-सं०स्त्री० [सं० अंगुल] उँगली (अल्पा०) उ०—संदेसा मति मोकळउ. प्रीतम तूं आवेस । **आंगळड़ी** ही गळ गई, नयण न बांचण देस ।—ढो.मा.

आंगळी-सं०स्त्री० [सं० अंगुली] १ उँगली (पैर अथवा हाथ की) पर्याय०—अंगळी, करपलव ,करसाख, करसाखा ।

कहा०—१ आंगळियां पुन लेणौ—अपने पास से बिना कुछ भी खर्च किए दूसरे का उपकार करने का यश लेना. २ आंगळी करणी (घालणी)—व्यर्थ का कष्ट देना, किसी कार्य के बीच में निरर्थक हस्त-क्षेप करना. ३ आंगळी पकड़ता पूंचौ पकड़ै—थोड़ा सा सहारा मिलते ही गले पड़ जाता है थोड़ा सा सिल-सिला जमते ही पूरा काम बना लेता है. ४ आंगळी पकड़'र पूंचौ पकड़णौ—धीरे धीरे काम का सिल-सिला जमाना चाहिए, किसी से काम निकालना हो तो उसे धीरे-धीरे वश में करना चाहिए. ५ आंगळी सूं छोरा करणा—बिना उचित उपकरणों या साधनों के इच्छित वस्तु प्राप्त करना (असंभव). ६ आंगळी सूं बेटा कौ व्है नी—कोई कार्य उससे संबंधित उचित उपकरण या वस्तु से ही किया जा सकता है. ७ आंगळी मूज नै हाळ कितीक व्है—कोई वस्तु अपने अनुपात या सीमा में ही अधिक से अधिक बढ़ सकती है. ८ ऊबी आंगळी घी को निकळै नी—सीधी अंगुली से घी नहीं निकलता, कोई कार्य कराने के लिए सीधेपन से काम नहीं बनता. ९ कंई आपरी आंगळी किचरीजी क्या मेरे कार्य से आपको कोई कष्ट हुआ. १० गुळ डळियां, घी आंगळियां डली डली करते गुड़ और उँगली-उँगली खाने घी शीघ्र समाप्त हो जाता है, थोड़े थोड़े निरन्तर व्यय से अधिक से अधिक वस्तु भी समाप्त हो सकती है. ११ हाथां पगां री आंगळियां भी सरीखी कौ हुवै नी- सब आदमी एक समान नहीं होते सब वस्तुयें बराबर नहीं होती, समान वितरण में भी थोड़ा-बहुत फर्क रह ही जाता है ।

२ हाथी की सूंड का अग्रिम भाग ।

आंगळीझल-सं०पु० [सं० अंगुली+धर] पुनर्विवाह के पश्चात् पति-घर जाने पर अपने पहले पति द्वारा उत्पन्न साथ ले जाई गई संतान ।

आंगळीरोपेखौ-सं०पु०यौ० [सं अंगुलि+पर्व] अंगुलियों की गाँठों के बीच का भाग ।

आंगवण-सं०स्त्री०—गर्व, घमंड । उ०- इसड़ी **आंगवण** मन मांहे घरै सु रांणा रा आदमी बीच फिरिया ।—नैणसी

आंगवणी, आंगवांणी-सं०स्त्री०—वश, अधिकार, कब्जा, प्रभाव ।

आंगस-सं०पु० [सं० अंकुश] १ डर, भय. २ मर्यादा ।

उ०- ओ हसती मरौ न मांने **आंगस** राजा मरौ स चूके रीत । —अज्ञात

आंगिमिणि-सं०पु०—अधिकार, कब्जा । उ०—**आंगिमिणि** न आव अनंत रै हरि पातिग सां हारियौ ।—पीरदांन लाळस

आंगिरस-सं०पु०—देखो 'अंगीरस' ।

आंगी-सं०स्त्री०—१ अंगिया, चोली, कंचुकी ।

कहा०—आंगी में सें बेस काडणौ—अनहोना, असंभव काम करना ।

२ चुननदार घेरे का पुरुषों का एक पहनावा। उ०—पछै एक दिन राघवदे दरबार आवतौ थौ, पैहरण नूं **आंगी** हुती।—नैणसी

आंगीठ—सं०पु० [सं० अग्निष्ठा, प्रा० अग्गीठा] अंगारा। उ०—तरण तप जळण **आंगीठ** रा सरोतर, सत्रां रण रीठ रा खगां साले।

—तिलोकजी बारहठ

आंगीरस—सं०पु०—देखो 'अंगीरस'।

आंगुळ—सं०पु०—देखो 'अंगुळ'।

आंगुठौ—सं०पु० [सं० अंगुष्ठ] अंगूठा। उ०—हथळेवौ क्रसणजी **आंगुठा** सहित पकड़ियौ।—वेलि. टी.

आंगुळी, आंगूळी—सं०स्त्री०—उंगली। उ०—१ **आंगुळी** गीणतां दिन गया, काग उडावतां दूखइ छइ बांह।—वी.दे. उ०—२ उलीगाणां की गोरड़ी, म्हां की **आंगूळी** देखतां गिळजे बांह।—वी.दे.

आंगो—सं०पु०—१ स्वभाव, प्रकृति. २ कवच, बख्तर. ३ शरीर. ४ काम या कार्यक्षेत्र में हिस्सा (कृषि)

आंच—सं०स्त्री० [सं० अर्चिष्] १ संकट, आफत, कष्ट। उ०—सांम धरम घर मांच, चाकर जेही चालसी। ऊंनी ज्यांनै **आंच**, रती न आवै राजिया।—किरपारांम २ आग, आग की लौ. ३ ताप, गरमी। उ०—नींद न आवै बिरह सतावे, प्रेम की **आंच** ढुळावै।

—मीरां

४ तेज, प्रताप. ५ चोट, प्रहार। उ०—मिट जोत प्रभाकर भंग-मगी, तन **आंच** लगी गुलियल्लतगी।—पा.प्र. ६ हानि। उ०—घणी धकां दौड़ता, लूट केई धन लाता, परवत भाड़ां बैस खोम केई नर खाता। मांन जको महाराज **आंच** न दीधी आवा, गुना करै बगसीस खोम दीधा धन खावा। —बुधजी आसियौ

७ क्रोध. ८ भय, डर. ९ ढालों को रखने का ढंग अथवा वह स्थान जहाँ ढालें रखी जांय। उ०—इण भांति री कटारी बीड़ी वटवै समेत ए जदी पगां सूं लपेट नै उग्रांहीज ढालां री **आंचां** मां राखीजै छै।—रा.सा.सं.

वि०—किंचित्, थोड़ा। उ०—पति गंध्रप है पांच, धरतां पग धूजै धरा। आवै लाज न **आंच**, धर नख सूं कुचरै धवळ।

—रामनाथ कवियौ

आंचभ—सं०पु० [सं० आश्चर्य] आश्चर्य, ताज्जुब।

आंचळ—सं०पु० [सं० अंचल] १ धोती दुपट्टे आदि के दोनों छोरों का एक भाग या कोना, पल्ला. २ सामने छाती पर रहने वाला स्त्रियों की साड़ी या ओढ़नी का छोर या पल्ला।

पर्याय०—अंचल, छेहड़ौ, पल्लौ, पटोलौ।

३ साधुओं का अंचला. ४ स्तन, उरोज। उ०—पुणी जोगणपुरी गुजरी पारखौ, गुडर गोखे चढ़ी गयण छायौ। बीबीयां **आंचळां** छोड़िया बाळकां, ईख सुरतांण गढ़ 'माल' आयौ।—अज्ञात

आंचळणौ, आंचळबौ—क्रि०स० [सं० अंचलित] आच्छादित करना। उ०—पाबासर जळ पीय, पोयण हेम खिलावै। एरावत मुख **आंचळतौ** घण नेह जतावै।—मेघ०

आंचळी—सं०स्त्री०—आंचल। उ०—**आंचळी** गैहती बइसाड़ी छइ आंगण, हंसि गळलाइ नई भांजिय कांण।—वी.दे.

आंचविहणौ, आंचविहबौ—क्रि०अ०—आचमन करना।

आंचातांणौ—वि०—ऐंचाताना, जिसकी पुतली देखने में दूसरी ओर को खिचती है। (स्त्री०—आंचातांणी)

आंचौ—सं०पु०—शीघ्रता।

आंजणी—सं०स्त्री०—आंख की पलकों पर होने वाली फुन्सी, गुहांजणी।

आंजणौ—सं०पु०—दहेज, यौतुक (जाट)

आंजणौ, आंजबौ—क्रि०स०—१ आंख में अंजन लगाना। उ०—ले पग धूड़ मधूर मन मांजू, औ तौ **अंजण** म्हांरा नयणां में आंजू।

—गी.रां.

२ माफ करना।

आंजणहार-हारौ (हारी), **आंजणियौ**—वि०—आंखों में अंजन लगाने वाला।

आंजळी—सं०स्त्री०—देखो 'अंजली'।

आंजस—सं०पु०—१ देखो 'अंजस'। २ गर्व, घमंड। उ०—कळजुग चलै न कार, अकबर मन **आंजस** युहीं।—दुरसौ आढ़ौ

आंजसणौ, आंजसबौ—क्रि०स०—गर्व करना।

आंजियोड़ो—वि०—अंजन किया हुआ। (स्त्री० आंजियोड़ी)

आंजुळी—सं०स्त्री० [सं० अंजलि] देखो 'अंजळि'। उ०—**आंजुळी** पितर पोखिय उदकिक।—रा.ज.सी.

आंट—सं०स्त्री०—१ हथेली में तर्जनी और अंगूठे के बीच का स्थान. २ शत्रुता, वैमनस्य, दुश्मनी। उ०—कोई आज पाछै **आंट** राखै बैर गावै। सौ ही खांप दोनां सूं निराळौ होय जावै।—शि.वं.

३ हठ, जिद्द। उ०—कुमार प्रथीराज दुरमन होय काका री गरहा प्रकट करी और कन्ह बी मूछ्यां विहाय आप री हवेली जाय पाछौ सभा आवण री **आंट** धरी।—वं.भा ४ कपट। उ०—अंग में राखै **आंट** करमां री पासी करै। जटा वधायां भांट महासिध होवै न मोतिया।—रायसिंह सांदू ५ लिखावट, अक्षर, अंक। उ०—मन जांणी पीऊ मिसरी, छाछ सोवनी मिळै नह छांट। वळिया सौ पाछा कुण वाळै उण घर री लेखण रा **आंट**—ओपौ आढ़ौ।

६ गिरह, ऐंठन. ७ प्रतिज्ञा, संकल्प. ८ दांव, वश. ९ बगतर की कड़ी. १० मोड़, घुमाव. ११ बांकुरापन, वीरता।

उ०—पड़ै अमाग्वड़ ओद छतरधर फिरंग पालटै, **आंट** धर क्रोध भुज गयण अड़िया।—कोठारिया रावत जोधसिंह री गीत

१२ घमंड, गर्व। उ०—भांजै चौक हरोलां अरि रा उतोळियां भालां धकै तणौ मेलियां जणी री रीत धूत। रही **आंट** कणी री जीवार सिद्धांराज राखी, माजी बाजी नवां कोटां धणी री सबूत।

—नवलजी लाळस

१३ देखो 'अंटी'।

आंटड़ी—सं०स्त्री०—वैर, शत्रुता (अल्पा०)

उ०—लागी लगनि छूटण की नाहीं, अब क्यूं कीजै **आंटड़ियां**।

आंटण—सं०पु० [सं० अट्टन] १ गांठ, ग्रंथि। २ पैर अथवा हाथ की अंगुलियों में अधिक कार्य या एक वस्तु के अधिक संघर्ष से पड़ने वाली ग्रन्थी जहाँ की चमड़ी कठोर एवं सुन्न होजाती है। उ०—रात-दिन तरवार कनै रहण सूं हाथ में तरवार री मूठ रा **आंटण** पड़ गया है।—वी.स.टी.

आंटरोकोट—सं०पु०—मान व गर्व का रक्षक, वीर, बहादुर। उ०—**आंटरा-कोट** मन-मोट मेरू अचळ। सूर तन ताप दे सोत सवायौ।

—जयसिंह राठौड़ रो गीत

आंटल—वि०—१ शत्रु, द्वेषी. २ नीच, दुष्ट।

आंट-सांट—सं०पु०—साजिश, मेल-जोल, गुप्त अभिसंधि।

आंटा—क्रि०वि०—लिए, निमित्त।

आंटादार—वि०—१ घुमावदार, वक्र. २ लपेटदार, साफे को बाँधने का एक ढंग विशेष. ३ वीर, बहादुर।

आंटायत, आंटायतौ—वि०यौ० [आंट+आयत] दुश्मन, शत्रु।

उ०—वंटायत आवधां झाट खामंद बचा। दोयणां **आंटायत** खाग दूजौ।—राव रतनसिंह रौ गीत

आंटियौ—सं०पु०—कवच को जोड़ने की कड़ी।

आंटी—वि०—वक्र, टेढ़ी, मुड़ी हुई।

कहा०—१ आंटी टूटी गवां री रोटी—यद्यपि रोटी आंटी-टेढ़ी है पर गेहूँ की है. २ कुत्ते की पूंछ दस बरस जमीं में राखी, निकाळी तौ फेर आंटी'र आंटी. ३ कुत्ते री पूंछ सदा आंटी री आंटी—जिस आदमी की बुरी आदत किसी प्रकार न छूटे।

सं०स्त्री० [सं० अंड] १ ईर्ष्या, वैर, शत्रुता। उ०—तिण रै च्यार बेटा, लायक सारीखै माथै, च्यारांई भायां **आंटी** करी, अहड़ूस हुई तरै वीच मांणसे फिरनै कह्यौ "सिंघासण छत्र वीच मेलौ, च्यारां ही भाई सिंघासण री पाखती दैसौ।—नैणसी २ कुश्ती का एक पेंच विशेष। उ०—उलझन, फंदा। उ०—मूरख कूं समझाइये औगुण करि बूझे रे, आपा की **आंटी** पड़ी सति साच न सूझे रे।—ह.पु.वा.

आंटीपण, आंटीपणौ—सं०पु०—१ शक्ति। उ०—पैलां कटक्कां भाराथां मेलै पमंगां उछांटीपणै, बंका **आंटीपणै** गंजै अगंजां असेण।

—रांमकरण महड़ू

२ शत्रुता, डाह। उ०—कूरमांनाथ जंगां धार **आंटीपणै**, सांमी फौजां फांटीपणै हरांमी सधीण।—महादांन महड़ू

आंटीलौ—वि०—१ गर्वयुक्त, अभिमानी। उ०—अनमी **आंटीला** थळिया थळ वाळा, विपदा बांटीला वळिया बळ वाळा।—ऊ.का.

२ मान-मर्यादा पर दृढ़ रहने वाला। उ०—बोलै बोल जिमा अतुळीबळ, निरवा है रजवट री नीम। की अचरज **आंटीला** 'केहर', कूंपां आहिज रीत कदीम।—बां.दा. ३ शत्रुओं से बदला लेने वाला, जबरदस्त। उ०—**आंटीला** ऊठ सताय वाळा, तौ ऊपर बागा त्रंबाळा।—वरजूबाई

आंटे—क्रि०वि०—लिए वास्ते, निमित्त, हेतु।

आंटेल—वि०—१ घमंडी। उ०—छिलै छाकिया छछोहा छूटा छोगाळा छबीला छैल। **आंटेल** सछोहा जिलै जाकिया अमीर।—र. हमीर

आंटै—क्रि०वि०—लिए, कारण, निमित्त। उ०—उठचौ दिली हूं ओरंगसाह ऐक राह तणै **आंटै**।—महाराणा जयसिंह रौ गीत

आंटौ—सं०पु० [सं० अट्ट] १ बदला। उ०—नागणी लार लूंठी लियण **आंटौ** कोइक आगलौ।—ऊ.का.

क्रि०प्र०—काढ़णौ-लेणौ।

२ शत्रुता, वैर।

उ०—**आंटौ** सासू आप रौ, सौ लेवौ कुळसार। जायौ बरजौ जगत रा, आंटा लियण उधार।—वी.स. ३ लपेट।

क्रि०प्र०—देणौ-लगाणौ।

४ युद्ध। उ०—वीरमदेव चारण

रावजी कनै मेलियौ धरती रौ **आंटौ** छै पण राज मोटा छौ।

—रा.वं.वी.

वि०—१ जैसा का तैसा. २ टेढ़ा, घुमावदार, वक्र।

क्रि०प्र०—करणौ-देणौ-पड़णौ-होणौ।

आंटौ-अंवळौ—वि०यौ०—१ टेढ़ा-तिरछा. २ दुःखी, कष्टमय।

कहा०—**आंटौ-अंवळौ** होय नै भी कांम करणौ—काम अवश्य करना चाहिए, चाहे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े।

आंटौ-टूंटौ, आंटौ-टेडौ—वि०—टेढ़ा-मेढ़ा, तिरछा. २ जीर्ण-शीर्ण।

आंठ-गांठ—वि०—१ पूर्ण, पूरा. २ सब तरह से बढ़िया।

उ०—**आंठ-गांठ** छिब अंगा।

आंठू—सं०पु०—१ ऊंट, घोड़े अथवा बैल के अगले पैर व छाती के जोड़ का स्थान। २ साहस, हिम्मत। उ०—गिरावै जिकै **आंठू** आं पांणि गज्जं।—वचनिका

आंठेब, आंठेव—सं०पु०—सहायक, रक्षक। उ०—छोगौ भूपै हरां सारां मेवाड़ां **आंठेब** छत्री आपा उपेहणं धाड़ा दूसरी उमेद।

—रांमकरण महड़ू

आंड—सं०पु० [सं० अंड] अंडकोश।

आंडळ—वि०—१ बड़े अंडकोश वाला. २ बड़ा आलसी व सुस्त जो अपने काम को बड़ी कठिनाई से करता हो।

आंडिया—सं०पु०बहु० [सं० अण्ड] अंडकोश।

आंडू—वि० [सं० अण्ड] अंडकोशयुक्त, जो वधिया न हो।

आंडू—सं०पु०—काले रंग का करील का फल जो उपयोग में नहीं लिया जाता है और प्रायः कठोर होता है।

आंण—सं०स्त्री०—१ शपथ, सौगंद। उ०—सांच कही सगरांम थे माहिबजी री **आंण**। रांमभजन बिन नरपसु खोड़ीला री खांण।

—सगरांमदास

२ घोषणा, दुहाई। उ०—बूंदी अजे रावराजा भावसिंघजी री **आंण** कहीजै।—बां.दा. ख्या. ३ आज्ञा। उ०—अडर मूळ डर न धारै कंस री **आंण** रौ, पिता माता तणौ डर न पखै।—बां.दा.

४ हकूमत। उ०—जोबन छत्र ऊंचाइया। इगि कंत ! काया मांहि फेरी छइ आंण।—वी.दे. [सं० अधुना] ५ वर्तमान का वर्ष, चालू वर्ष. ६ आयु।

वि०—१ दूसरा, और, अन्य।

कहा०—घर का जोगी जोगिया आंण गांव का सिद्ध—घर के योगी जोगिये कहलाते हैं, बाहर गांव के जोगी भी सिद्ध कहे जाते हैं। अति परिचय से अवज्ञा होती है।

२ इस, यह।

आंण-डांण—सं०स्त्री०—१ दुहाई. २ शपथ, सौगंध।

आंणण—सं०पु० [सं० आनन] मुख, मुंह, चेहरा। उ०—अफर सत्रां आंणण नर अवरां, दीठां त्यांव ज लागौ दोख।—तेजसी खिड़ियौ

आंणण-पंच—सं०पु० [सं० आनन+पंच] सिंह (ना.डिं.को.)

आंणणौ, आंणबौ—क्रि०स० [सं० आनयन] १ लाना। उ०—सहिए फिरि समझाविग्रउ, सुहिणइ दोस न कोइ। सउ जोयण साहिब वसइ, आंण मिळावइ तोइ।—ढो.मा.

आंणणहार-हारौ (हारी), आंणणियौ—लाने वाला।

कहा०—आंणै नीं मांनै नीं नै हूं लाडे री भुवा—बिना बूझे या माने जबरदस्ती मध्यस्थ बन जाना।

आंणदयाई, आंणवांण, आंणदुआई, आंणदुवाई—सं०स्त्री०—दुहाई।

उ०—जिण री प्रथ्वी ऊपर आंणवांण फिरै।—नैणसी

आंण-मांण—सं०पु०—इज्जत, मान।

आंणा—सं०स्त्री० [सं० आज्ञा] हुक्म, आदेश, आज्ञा। उ०—प्रामार जैतकुमर जनक री आंणा रै अनुसार इच्छगी रै एवज उरवसी देस आयौ।—वं.भा.

आंणांणौ, आंणांबौ—क्रि०स० [सं० आ+नी धातु] मंगवाना।

आंणवावणौ, आंणवावबौ—प्रे०रू०।

आंणियोड़ौ—भू०का०कृ०—लाया हुआ। (स्त्री० आंणियोड़ी)

आंणीजणौ, आंणीजबौ—क्रि०स०कर्म वा०—लाया जाना।

उ०—अत जतनां माथै ऊपाड़ै, रंभा दौळी थकी रहै। आम कमी जेंरी आंणीजै, वैरी छोरा पास वहै।—ओपौ आढ़ौ

आंणीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—लाया गया हुआ।

(स्त्री० आंणीजियोड़ी)

आंणेराव—वि०—१ लाने वाला। उ०—लूटी मामांन भंडारां आरपारी डांणेराव लागौ। सोभा आंणेराव लूटी खजांना मचूंप।

—महादांन महडू

आंणौ—सं०पु०—१ मायके से बहू को अथवा सुसराल से बेटी को लाने का भाव. २ गौना, विवाह के बाद की एक रस्म जिसमें वरवधू को प्रथम बार अपने घर लाता है। उ०—आंणा लेवण नै ऐ धूना आया, दरसण देवण नै मोभी मुळकाया।—ऊ.का.

आंणौ-एढ़ौ, आंणौ-टांणौ—सं०पु०—१ मांगलिक दिन. २ उत्सव या विवाहादि अवसर. ३ देखो 'टांणौ'।

आंणौ-मुकलावौ—सं०पु०—गौना, द्विरागमन।

आंत, आंतड़, आंतड़ी, आंतड़ौ—सं०स्त्री० [सं० अंत्र] शरीर का मल या व्यर्थ पदार्थ बाहर निकलने के लिए बनी प्राणियों के पेट के भीतर की लम्बी नली जो गुदा तक रहती है, अंत्र।

उ०—१ आंत ओज भेजी असत, नैण नळी भख नेह। आंमिख नर नांखै उदर, आंणै हरख अछेह।—क.कु.बो.

उ०—२ आंतड़ा तास पहरे उवर, दूर कियौ दुख दास रौ। राखजै नेक आलम रटै, एक उणी रौ आसरौ।—र.रू.

उ०—३ कुड़ कुड़ काया नै माया बिन मोसै, रोती कड़ियां दे आंतड़ियां रोसै।—ऊ.का.

(अल्पा०—आंतड़ी, आंतड़ौ) (महत०—आंतड़)

(बहु०—आंतड़ियां)

पर्याय०—अंत, अंतड़ा, अंत्रावळ।

आंतर—सं०पु० [सं० अंत्र] १ आंत, अंत्र। उ०—ढालां ढलांतर सांतर ढळियोड़ा, बैठा निरांतर आंतर बळियोड़ा।—ऊ.का.

[सं० अंतर] २ फासिला, दूरी. ३ अन्तर, भेद।

क्रि०वि०—१ बीच, मध्य. २ अंतर, भीतर।

उ०—रोगी आंतर बैद बसत है, बैद ही ओखद जांणै हौ।—मीरां

३ दूर। उ०—भोज कुंवर मुकळावी राय। आंतर वासौ दीयौ तिणि ठाय।—वी.दे.

आंतरउ—सं०पु० [सं० अंतर] १ दूरी. २ अंतर, फासला।

उ०—मारू त्रिहूं वरसां आंतरउ, आवौ ज्यंउ कीजइ नातरउ।

—ढो.मा.

आंतरगढ़ौ, आंतरगूंथ, आंतरगेड़ौ—सं०पु०—आमिषहारी व्यक्तियों द्वारा सेंक कर खाये जाने के लिए उनके द्वारा गूंथी जाने वाली पशुओं की आंतें।

आंतराळ—सं०पु०—आंत।

आंतरियौ—सं०पु०—आंत, अंत्र. २ मध्य, बीच।

आंतरी—सं०स्त्री०—आंत, अंत्र। उ०—रमेस री आंतरयां आसीस देगा लागी।—वरस गांठ

आंतरे, आंतरै—क्रि०वि० [सं० अंतर] दूर। उ०—विसुद्ध सुद्ध संथ तें आंतरै नहीं।—ऊ.का.

आंतरौ—सं०पु० [सं० अंतर] १ दूरी, फासिला। उ०—महाराज मांन मुरधरार माथै, चमू फिरंगी नांह चढ़ै। रै ! जांणै सूरजवाळौ रथ, कासी सूं आंतरै कढ़ै।—नाथूरांम लाळस

[सं० अंत्र+औ—रा०प्र०] २ अंत्र, आंत। उ०—जठै चावड़ी नूं सुपनो आयौ जे म्हांरौ पेट फाटौ छै आंतरां झाड़ झाड़ हुय गया छै।

—रा.वं.वि.

३ विलम्ब, देरी। उ०—एक घड़ी आंतरौ दोरम सोई दिखानौ।

—पहाड़खां आढ़ौ

आंतारौ—सं०पु०—१ दूरी, फासिला, अंतर।

सं०स्त्री० [सं० अंत्र] २ आंत, अंत्र ।

आंतिरौ–सं०पु०—दूरी, फासिला, अंतर । उ०—बीस पैंड दोनां का घोड़ा बीच लागें । दोनूं हांकि थाक्या पणि आंतिरा न भागै ।—शि.वं.

आंती–क्रि०वि०—तंग, हैरान ।

क्रि०प्र०—आंणी-करणी-होणी ।

सं०स्त्री०—कष्ट, आपत्ति ।

आंतेरौ–सं०पु०—एक प्रकार का कांटेदार लाल वृक्ष जिसके पत्ते भी लाल होते हैं । इन पत्तों के बांधने से अंग की सूजन कम होती है ।

आंतेलौ–सं०पु० [सं० अंतरिल] किसी वाहन पर (ऊँट, घोड़ा, गधा, भैंसा आदि) लादे हुए बोझ का एक तरफ अधिक भार के कारण झुक जाना, असंतुलन । (मि०—ह्र)

आंथण–सं०पु०—सायंकाल । उ०—च्यार सेर गेहूँ रो आटो परभात रा, आंथण री दस सेर चांवळां री खीचड़ी ।—सूरे खींवे री बात

आंधळघोटौ–सं०पु०—देखो 'आंधळघोटौ' ।

आंधळियौ–सं०पु०—अंधा (अल्पा०)

आंधलौ–वि०—देखो 'आंधलौ' (अल्पा०)

आंधाउली–सं०स्त्री०—देखो 'आंधाउली' ।

आंधाझाड़ौ–सं०पु०—देखो 'आंधाझाड़ौ' ।

आंधाहोली–सं०स्त्री०—१ अर्कपुष्पी, सूर्यमुखी ।
२ देखो 'आंधाउली' ।

आंधी–सं०स्त्री०—देखो 'आंधी' ।

आंधीआरसी–सं०स्त्री०—देखो 'आंधीआरसी' ।

आंधीखोपड़ी–सं०स्त्री०—देखो 'आंधीखोपड़ी' ।

आंधीझाड़ौ–सं०पु०—देखो 'आंधीझाड़ौ' ।

आंधीडंडूळ, आंधीडंबर–सं०पु०—देखो 'आंधीडंडूळ' ।

आंधीबाई–सं०स्त्री०—देखो 'आंधीबाई' ।

आंदोळण, आंदोळन–सं०पु० [सं० आंदोलन] बार-बार हिलना-डोलना, हलचल, उथल-पुथल करने वाला प्रयत्न, धूमधाम । उ०—अवनी आंदोळन ओळा ओसरिया । पिड़िभिड़ि प्लासी पै गोळा जिम गिरिया ।—ऊ.का.

आंदोवाळौ–सं०पु०—एक प्रकार का नहरुआ रोग जिसका कीड़ा बाहर नहीं निकलता है ।

आंधौ-वि०—देखो 'आंधौ' । (स्त्री० 'आंदी')

आंधौकाच–सं०पु०—देखो 'आंधौकांच' ।

आंधौकूओ–सं०पु०—देखो 'आंधौकूओ' ।

आंधारी–सं०स्त्री०—देखो 'आंध्यारी' ।

आंधयावणौ–वि०—अंधेरी ।

आंधरौ, आंधल–वि०—अंधा (अल्प०) उ०—राज काज रीत नीत बूझतौ रह्यौ । वाट आंधरै की यार सूझतौ बह्यौ ।—ऊ.का.

आंधळघोटौ–सं०पु०—एक प्रकार का खेल जिसमें एक व्यक्ति कपड़े द्वारा अपनी आँखें बंद कर दूसरों को पकड़ने का प्रयत्न करता है । अन्य खिलाड़ी आवाज के द्वारा अपनी उपस्थित दिशा की सूचना देते रहते हैं । प्रायः यह खेल अक्षय तृतीया पर लड़कियों द्वारा खेला जाता है ।

आंधळियौ–सं०पु०—अंधा (अल्पा०) उ०—मैया रे दुवारे आंधळिया पुकारे ले'र नयण घर जाय मेरी काळी मैया ।—लो.गी.

आंधळौ–वि०—अंधा, नेत्रहीन (अल्पा०) उ०—निंदा करसे नरक कुंड मां जासे थासे आंधळा अपंग रै ।—मीरां

आंधाउली–सं०स्त्री०—एक प्रकार का वनों में होने वाला क्षुप जिसकी डंडी कुछ लाल, पत्ते लंबे, गोल व रोमयुक्त और फल आसमानी रंग का नीचे की ओर होता है । लटजीरा, चिचड़ा (अमरत)

आंधाझाड़ौ–सं०पु०—एक प्रकार का पौधा विशेष जिसे अपामार्ग भी कहते हैं ।

आंधाहोली–सं०स्त्री०—अर्कपुष्पी, सूर्यमुखी (अमरत)

आंधी–सं०स्त्री०—प्रखर वायु जिसमें उड़ने वाली धूलि या गर्द से चारों ओर अंधेरा छा जाता है, तूफान, झंझावात ।

पर्याय०—अंधारी, झंकड़, डूंज, बावळ ।

कहा०—१ आंधी पछै मेह आवै—आंधी के साथ वर्षा आती है, कन्या के बाद पुत्र होता है. २ आंधी रांड मेहां री पाली रेवै—राजस्थान में आंधियां बड़े जोर से चलती हैं और घंटों चलती रहती हैं, पीछे मेह प्रायः आता है और मेह के आने पर ही वे दबती हैं, प्रकृति-निरीक्षण का अनुभव, दुष्ट व्यक्ति सभी की बात नहीं सुनते, जो उनसे जबरदस्त होता है उसीके मना करने पर बुरे काम से विरत होते हैं. ३ आंधी साथै मेह आया ही करै—आंधी के साथ वर्षा आया ही करती है. ४ आंधी में मोर चालै ज्यूं किया चालै—आंधी में मोर चलता है वैसे डगमगाता हुआ कैसे चलता है ?

वि०—'आंधौ' शब्द का स्त्री लिंग, देखो 'आंधौ' ।

आंधीआरसी–सं०स्त्री०—धुंधला दर्पण जिसमें प्रतिबिंब स्पष्ट न दिखाई देता हो ।

आंधीखोपड़ी–सं०स्त्री०—बुद्धिरहित, मूर्ख, नासमझ, भोंदू ।

आंधीझाड़ौ–सं०पु०—अपा मार्ग ।

आंधीडंडूळ, आंधीडंबर–सं०पु०—आंधी, तूफान, झंझावात ।

आंधीबाई–सं०स्त्री०—१ नेत्रहीन स्त्री २ एक रोग विशेष ।

आंधौ–स०पु० [सं० अंध] (स्त्री० आंधी) वह प्राणी जिसकी आंखों में ज्योति न हो, बिना आंख का जीव ।

वि०—१ दृष्टिरहित, बिना आंख का. २ विवेकरहित, अज्ञानी जिसे भले-बुरे का विचार न हो ।

पर्याय०—अंध, आंधलौ, दृस्टीहीण, सूरदास ।

क्रि०प्र०—करणी-बणणी-बणाणी-होणी ।

मुहा०—१ आंधौ दीयौ—धुंधले प्रकाश का दीपक. २ आंधौ बणणौ—आगा-पीछा कुछ न देखना, जानबूझ कर किसी के अन्याय

या गलती को न देखना. ३ आंधौ बणाणौ—धोखा देना, मूर्ख बनाना. ४ आंधौ होणौ—बेफिक्र होना, सामने की चीज का भी ध्यान न रखना. ५ आंधौ राज—ऐसा शासन या राज्य जहाँ अंधेर हो।

कहा०—१ आंधां री माख्यां रांम ही उडावै—निःसहाय व्यक्ति की सहायता भगवान ही करते हैं. २ आंधी ना देखै पितरां रा मूंढ़ा—अंधी पितरों का मुंह नहीं देख पाती, ऐसी जगह ले जाना जहां अपना कोई परिचित न हो. ३ आंधी पीसै कुत्ता खाय—अंधी पीसती है और कुत्ते खाते हैं—जहाँ अंधाधुंधी चलती हो। जब कोई व्यक्ति अपने लाभ या उपार्जित धन या संपत्ति की ठीक-ठीक व्यवस्था न करे और दूसरे लोग उसको उड़ावें. ४ आंधै आगै रोवै, नैण गमावै—जो सुने नहीं उससे आजिजी करना। जो समझे नहीं उसको अपना गुण बताना. ५ आंधै आगै रोवौ, भलां ही नैण गमावौ—देखो 'आंधै आगै रोवै, नैण गमावै.' ६ आंधी री जागण—अंधी स्त्री अगर जगती भी रहे तो भी उसका जागरण व्यर्थ होता है, वह पहरा नहीं दे सकती, अव्यवस्था व अंधाधुंधी चलने पर. ७ आंधै कुत्ते रै खोळण भी खीर—अंधा या विवेकहीन व्यक्ति बुरी वस्तु को भी अच्छी समझता है व उसे दुख या असंतोष नहीं होता. ८ आंधै नै कांई जोईजै ? दो आंखियां—अन्धे को क्या चाहिए, परमवांछित वस्तु को प्राप्ति पर. ९ आंधै नै काच देखावणौ है—गुणों को न समझने वाले व्यक्ति के आगे गुणों का प्रदर्शन करना व्यर्थ है. १० आंधै री तंदूरौ रांमदेवजी बजावै—निःसहाय की सहायता भगवान करते हैं. ११ आंधौ जांणौ आंधै री बलाय जांणै—अंधा जाने, अंधे की बला जाने—किसी बात की कुछ भी परवाह न करने पर. १२ आंधौ नूंतै दोय जिमावै—जो अंधे को जिमाता है उसे दो को भोजन कराना पड़ता है—एक अंधा, दूसरा अंधे को लाने वाला। व्यर्थ की परेशानी मोल लेने पर. १३ आंधौ नै अजांण बराबर हुवै—अंधा व अविवेकी व्यक्ति अनजान व्यक्ति के समान होते हैं। अगर इनसे कोई भूल भी हो जाय तो विशेष ध्यान नहीं देना चाहिए. १४ आंधा नै आंधौ नहीं कैणौ—अंधे को अंधा नहीं कह कर सूरदास कहना चाहिए, अंधा कहने से उसे दूना कष्ट होता है. १४ आंधौ भींत है कै भचीड़ो खायां ठा पड़ै—मूर्ख आदमी समझाने से नहीं समझता ठोकर खाने पर ही समझता है. १६ आंधा में कांणा राव—गुणहीन मनुष्यों में थोड़े गुण वाला मनुष्य भी बड़ा समझा जाता है. १७ आंधौ वांटै सीरणी घर-घरां नै देय—अंधा देवता का प्रसाद बांटता है तो घर के व्यक्तियों को ही देता है। स्वार्थी के लिए जो सब चीजें अपने ही आदमियों को दे. १८ आंधा नै हीया फूटोड़ो मिळणौ—जैसे को तैसा मिलना।

अल्पा०—आंधलियौ, आंधलौ, आंधियौ।

(महत्त०—अंध, आंधल। आदरसूचक—सूरदास)

२ जिसमें कुछ न दिखाई दे, धुंधला।

(यौ०—आंधौ काच, आंधौ कूम्रौ) (रू०भे०—अंध, आंदी)

आंधौकाच—सं०पु०—धुंधला दर्पण जिसमें प्रतिबिंब स्पष्ट न दिखाई देता हो।

आंधौकूम्रौ—सं०पु० [सं० अंधकूप] सूखा कुआ।

आंध्यारी—सं०स्त्री०—अंधकार, अंधेरा (अमरत)

आंध्र—सं०पु०—दक्षिण भारत का एक प्रांत।

आंन—सं०पु०—१ मर्यादा. २ शान।

मुहा—आंन री किरची—गर्वयुक्त, बड़ी शान रखने वाला।

३ अदब, लिहाज. ४ टेक, इज्जत।

वि०—अन्य, दूसरा। उ०—सुरपुरी अजोध्या दुवि समांन, एहवी पुरी त्रीजी न आंन।—रांमरासौ

आंनक—सं०पु० [सं०] १ डंका, नगाड़ा. २ भेरी, दुंदुभी. ३ गरजता हुआ बादल।

आंनद्ध आंनध—सं०पु०—१ नगारा ढोल, मृदंग। उ०—घटा भद्द ज्यों नद्द आंनद्ध घोरै। धुबै ताळ कंसाळ सांगीत धोरै।—मे.म.

वि०—कसा हुआ, मढ़ा हुआ, बद्ध, मिलित।

आंनन—सं०पु० [सं० आनन] मुख, चेहरा, बदन। उ०—आंनन रांम रांम सुण आंणै, अंतर आंणै रांम उर।—महारांणा कुंभा री गीत

आंनन-पांच—सं०पु०—सिंह, पंचानन (ना. डिं. को.)

आंनबांन—सं०स्त्री०—सजधज, ठसक, तड़क-भड़क।

आंनर—सं०पु० [अं० ऑनर] सम्मान, प्रतिष्ठा।

आंनरेरी—वि०—केवल प्रतिष्ठा के उद्देश्य से बिना वेतन काम करने वाला, अवैतनिक।

आंनाकांनी—क्रि०वि० [सं० अनाकर्णन] टालमटूल, सुनी-अनसुनी करना, न ध्यान देना, हीलाहवाला, आगापीछा।

आंनाड़—सं०पु०—१ किला, गढ़. २ वीर, योद्धा। उ०—सुत कल्यांण साह भुज सुजड़ां, अर समहर जीपै आंनाड़। चुणती चोळ हुई चांचाळी पसरी, चोळ ज हुआ पाहाड़।—संकर बारहठ ३ देखो 'अनड़'।

आंनावेस—सं०पु० [सं० अन्य देश] अन्य देश, दूर। उ०—आमी कोई देर लगाई, कोई आंनावेसर गयौ हो कांई ?—वरसगांठ

आंनासागर—सं०पु०—चौहान अर्णोराज का बनवाया हुआ अजमेर के समीप एक आनासागर नामक तालाब।

आंनी—सं०स्त्री०—देखो 'आंनौ'।

आंनीकांनी—क्रि०वि०—इधर-उधर, सब जगह। उ०—कही ही छांनी कांन में, भांनी नहीं महाराज। बांणी पड़ी बिबेक में, आंनीकांनी आज।—ऊ.का.

आंनूं—सर्व०—इनको।

सं०पु०—देखो 'आंनौ'।

आंनूपूरवी—वि० [सं० आनुपूर्वी] क्रमानुसार, एक के बाद दूसरा, क्रमानुगत, अनुक्रम।

आंनेक—वि०—अनेक, कई। उ०—पांण बुध अनावत तणै जस पायणी,

येम बण बायणी तेज आंनेक । मीर भल डायणी अंबखासांमही, यसी वरदायणी कटारी एक ।—करणीदान कवियौ

सर्व०—इनको । उ०—आंनै पंथ जातां एक गोलै रोक लीनां। आगै आंणि सारां के ढकेळा नांख दीनां ।—शि.वं.

आंनौ-सं०पु० [सं० आणक] १ रुपये के सोलहवें भाग का एक सिक्का. २ सेर का सोलहवां भाग, एक छटांक ।

आंप-सर्व०—अपने । उ०—लोक आंप मांहि परस्पर बात कहण लागा ।—वेलि. टी.

आंपणौ-सर्व०पु० (स्त्री०-आंपणी) अपना । उ०—इसौ ही कोई आंपणी परथै रै मांहीं छै ।—सूरे खींवे री बात

आंपां-सर्व० [बहु०] अपन, हम ।

आंपांणौ-(स्त्री० आंपांणी) सर्व०—अपना ।

आंपारौ-सर्व०—अपना ।

आंपे, आंपै-सर्व०—१ अपन, हम. २ अपने-आप ।

आंब-सं०पु० [सं० आम्र] १ आम, आम्र. [सं० अंबक] २ नेत्र, नयन ।

आंबउ-सं०पु० [सं० आम्र] आम, आम्र । उ०—ढाढ़ी एक संदेसड़उ, कहि ढोला समझाई । जोबण आंबउ फळि रह्यउ, साख न खाअउ आई ।—ढो.मा.

आंबखास-सं०पु० [अ० आमखास] महलों के भीतर का वह भाग जहां बादशाह वा राजा बैठ कर सलाह-मशविरा करते थे ।

उ०—तद हुवौ घाल जळ मांन त्रास, खूंद्राळम बाळौ आंबखास ।

—वि.सं.

आंबर-सं०पु० [सं० अंबर] आकाश, गगन ।

आंबलवांणी, आंबलवांणौ-सं०स्त्री०पु० [सं० अम्लिका+पानीय] देखो 'आंमलवांणी, आंमलवांणौ' ।

आंबली-सं०स्त्री० [सं० अम्लिका] १ इमली तथा उसका वृक्ष. २ देववृक्ष (अ. मा.)

आंबाण-सं०पु०—जयपुर से छः मील दूर आमेर नामक कस्बा ।

आंबाड़ी-सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का पौधा जिसकी पतली टहनियों की रस्सी बनाते हैं । इसके बीज चिकने होते हैं तथा मवेशियों को खिलाए जाते हैं. २ हाथी पर कसा जाने वाला चारजामा ।

आंबानेर-सं०पु०—जयपुर से छः मील दूर आमेर नामक एक कस्बा ।

आंबाहळद, आंबाहळदी-सं०स्त्री०—कपूरहल्दी जो दवाई के रूप में प्रयोग में लाई जाती है ।

आंबीजणौ, आंबीजबौ-क्रि०अ०—१ अधिक शारीरिक कार्य करने या अधिक चलने से शरीर का ऐंठा जाना (अमरत) [सं० अम्लित] २ नींबू, आम, अमचूर, इमली आदि खट्टे पदार्थों के खाने से दांतों का खट्टा हो जाना ।

आंबीजियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ वह जिसका शरीर अधिक शारीरिक कार्य करने या अधिक चलने से ऐंठ गया हो. २ वह जिसके दांत नींबू, आम, अमचूर, इमली आदि । खट्टे पदार्थों के खाने से खट्टे हो गये हों ।

आंबीहळद-सं०पु०—देखो 'आंबाहळदी' ।

आंबेर-सं०पु०—१ जयपुर से छः मील दूर एक कस्बा जो प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है. २ एक प्रकार की बंदूक ।

आंबौ-सं०पु० [सं० आम्र] १ आम, आम्र (अ.मा.)

कहा०—१ खावै आंबा नौ हुइ जावै लांबा—अधिक आम खाने से मनुष्य रोगी होता है. २ निंबोळी खाई जिणनै कंई ठा कै आंबौ कैड़ौ होवै—घटिया वस्तु पाने वाला बढ़िया वस्तु का अनुभव कैसे कर सकता है ।

२ पुत्री को विदा देते समय गाया जाने वाला एक गीत ।

आंम-सं०पु० [सं० आम्र] १ एक प्रसिद्ध रसीला, मीठा और परम स्वादिष्ट फल तथा उसका वृक्ष रसाल ।

कहा०—१ आंम खावण सूं कांम कै रूंख गिणण सूं—आम खाने से काम या पेड़ गिनने से २ आंम खावणा कै रूंख गिणणा—आम खाने या रूंख गिनने ? व्यर्थ की बातों में मगजपच्ची न करके सीधे अपना मतलब पूरा करना या जो चीज सामने आवे उससे लाभ उठाना चाहिए. ३ आंम फळै नीचौ तुलै, ऐरंड फळै इतराय—आम फलता है तो नीचे की ओर झुकता है, एरंड फलता है तो इतराता है (फैलता है ।) ४ आंम फळै नीचौ लुळै ऐरंड अकासां जाय—आम फलता है तो नीचे झुकता है, ऐरंड आकाश की ओर जाता है । बड़ा आदमी संपत्ति या प्रभुता पाकर नम्र होता है और तुच्छ व्यक्ति इतराने लगता है ।

(रू०भे०-आंबौ) [सं० आम] २ आमाशय रोग. ३ खाए हुए अन्न के कच्चा रहने से अपचकृत सफेद तथा लसीला मल, आंव. वि० [सं०] १ कच्चा, अपक्व. [अ०] २ साधारण, मामूली. [अ०] ३ प्रचलित, प्रसिद्ध ।

आंमखांनौ-सं०पु० [सं० आमखास] दरबारआम, वह राज-सभा जिसमें सब आदमी जा सकें ।

आंमखास-सं०पु०—देखो 'आंबखास' ।

आंमटी-सं०स्त्री०—डर, आतंक. भय । उ०—अदावां बिसर विण लगे नह'आंमटी तुरी वण चांमटी नवं ताता ।—अज्ञात

आंमडणौ, आंमडबौ-क्रि०अ०—मिटना, नष्ट होना । उ०—खड़हड़ै इंद्र कालंतरै पड़ै रुद्र ब्रहमा पड़ै । रूपक्क नांम रायसिंघ रौ तौही जरा न आंमड़ै ।—नैणसी

आंमडणहार-हारौ (हारी), आंमडणियौ-वि०—नष्ट होने वाला ।

आंमडिग्रोड़ौ-आंमडियोड़ौ-आंमडयोड़ौ-भू०का०कृ०—नष्ट, मिटा हुआ.

आंमडीजणौ, आंमडीजबौ—मिटा जाना, नष्ट किया जाना ।

आंमडीजियोड़ौ—मिटाया गया हुआ ।

आंमडियोड़ौ-भू०का०कृ०—नष्ट, मिटा हुआ । (स्त्री०-आंमडियोड़ी)

आंमणदूमण–वि०—खिन्न-चित्त, उदासीन। उ०—सौ राव **आंमणदूमण** अमूझियौ ही ऊभौ छै।—डाढाळा सूर री बात
(स्त्री० आंमणदूमणी)

आंमणदूमणा–सं०स्त्री०—उदासीनता। उ०—साहिब हंसउ न बोलिया मुझसूं रीसज आज। अंतरि **आंमणदूमणा**, किमउ ज इवड़उ काज।
—ढो.मा.

आंमणदूमणी–वि०—देखो 'आंमणदूमण'।

आंमणाय–सं०पु० [सं० आम्नाय] देखो 'आंमनाय'।

आंमद–सं०स्त्री० [फा० आमद] १ आना, आगमन. २ आय, आमदनी।

आंमदरफत–सं०पु० [फा० आमदरफ्त] आना-जाना, आवागमन।

आंमदांनी–सं०स्त्री० [फा० आमदनी] आय, प्राप्ति, आने वाला धन।

आंमना, आंमनाय–सं०स्त्री० [सं० आम्नाय] १ इच्छा, चाह। उ०—सत वीस वरण चारण विख्यात, नर नको **आंमना** निज सनाथ।—पा.प्र. २ प्रण, प्रतिज्ञा. [सं० आम्नाय] ३ वेद, श्रुति (डिं.को.) ४ अभ्यास, परंपरा (डिं.को.) ५ श्रीमाली ब्राह्मणों का किसी प्रदेश से संबंधित संघ।

आंमने-सांमने–क्रि वि० [अनु०] परस्पर एक दूसरे के सामने, प्रत्यक्ष।

आंमनो–सं०पु०—कोप, वैमनस्य। उ०—हूं सूंडौ राजपूत छूं, सेखा सूजावत रै वास वसूं छूं नै म्हारा धणी सूं **आंमनो** कर दांणी-पांणी अठै लायौ छै।—जैतसी ऊदावत री बात

आंमनो-सांमनो–सं०पु० [अनु०] मुकाबला।

आंममारग–सं०पु० [फा० आम+सं० मार्ग] राजपथ, सार्वजनिक रास्ता।

आंमय–सं०पु० [सं० आमय] १ रोग, बिमारी, पीड़ा, व्याधि। उ०—१ पहली कियां उपाय, दव दुसमण **आंमय** दटै। प्रचंड हुवां बस वाव, रोभा घालै राजिया।—किरपारांम
उ०—२ रोम रोम **आंमय** रहै, पग पग संकट पूर। दुनियां सूं नजदीक दुख, दुनियां सूं सुख दूर।—बां.दा.
२ आघात चोट (ह.नां.)
सर्व०—इसमें।

आंमरख, आंमरस–सं०पु० [सं० आम्र+रस] आमरस, आमों का रस, अमावट। [सं० आमर्ष] दुःख, क्रोध।

आंमरसतौ, आंमरासतौ–सं०पु०—राजपथ, सार्वजनिक रास्ता।

आंमल–सं०पु०—१ भाला. २ राज्यकर्मचारी. [फा० अमला] ३ छोटी फौज।

आंमलकी–सं०पु० [सं० आमलकी] छोटी जाति का आंवला, आंवली।

आंमलपित्त–सं०पु० [सं० अम्लपित्त] एक रोग विशेष जिसमें जो कुछ भोजन किया जाता है, पित्त के दोष से खट्टा हो जाता है।

आंमलवांणी, आंमलवांणौ–सं०स्त्री०पु० [सं० अम्लिका+पानीय] इमली को भिगो कर निचोड़ा गया पानी जिसमें गुड़ अथवा शक्कर मिला कर मीठा भी बनाया जाता है।

आंमलिय–सं०पु०—जोश, आवेश। उ०—ऊठिया कोपि **आंमलिय** अंग, आकासि अड़ाविय उत्तिमंग।—रा.ज.सी.

आंमली–सं०स्त्री० [सं० अम्लिका] १ इमली, एक बड़ा वृक्ष जिसके लंबे फल खट्टे होते हैं और खटाई के काम में आते हैं. २ इसी वृक्ष के फल।

आंमळी–वि०—निर्मल, विमल। उ०—आवी सब रत **आंमळी**, त्रिया करइ सिणगार। जिका हिया न फाटही, दूर गया भरतार।—ढो.मा.

आंमलेट–सं०पु० [अं०] मुर्गी के अंडे के अन्दर के पदार्थ को प्याज, मिर्च व घी आदि के साथ तवे पर बनाया गया एक खाद्य पदार्थ।

आंमवात–सं०पु० [सं०] एक प्रकार का रोग विशेष।

आंमसांमहा–क्रि०वि०—आमने-सामने।

आंमसूळ–सं०पु० [सं० आमशूल] एक प्रकार का रोग विशेष जिसमें आंव के कारण पेट में मरोड़े होने लगते हैं।

आंमहो-सांमहो–क्रि०वि०—आमने-सामने, सम्मुख।

आंमजीरण–सं०पु० [सं० आमाजीर्ण] एक प्रकार का अजीर्ण रोग।
(अमरत)

आंमास–सं०पु० [सं० आवास] १ निवास, घर, आवास, महल। उ०—रत्तं चक्ख सहासं, **आंमासं** पासि रमणीयं।—रा.रू.
२ आकाश। उ०—गैमर गोरी राय, तिण आंमास अड़ाविया।
३ आमखास। —नैणसी

आंमासय–सं०पु० [सं० आमाशय] किये हुए भोजन के पदार्थ एकत्रित होने व पचने की पेट के अंदर की थैली, आमस्थली।

आंमासांमाह–क्रि०वि०—देखो 'आंमसांमहा' (रू.भे.)

आंमिख, आंमिस–सं०स्त्री० [सं० आमिष] मांस, गोश्त। उ०—कुसुमल छोळ भरै नद खड़ग, करद्दम **आंमिस** हड्ड कवड्ड।
—मे.म.

आंमिखचर, आंमिखहार–सं०पु०—माँसाहारी।

आंमिल–सं०पु० [अ०] हाकिम, अधिकारी। उ०—**आंमिल** अमलों रा नयण जुड़गा रह्या अठ जांम। अमल थकां उघड़्या नहीं, अब उघड़े केहि कांम।

आंमीणो–सर्व० [सं० अस्माकम्] देखो 'अम्हीणो' (रू.भे)
उ०—सगत तणा हुकमी सुपह, अन रा ओठंम वीर। अळ ऊपर रह जो अमर 'पाल' **आंमीणा** पीर।—पा.प्र.

आंमी-सांमी–क्रि०वि०—देखो 'आंमसांमहा'।

आंमी हळदी–सं०स्त्री०—देखो 'आंबाहळदी'।

आंमुख–सं०पु० [सं०] १ नाट्यशास्त्र के अंतर्गत नाटक की प्रस्तावना। [सं० आमिष] २ मांस।

आंमू–सं०पु०—आम। उ०—**आंमू** तो पाक्या नींबू रस भरया, दूजौ बधावो जी भंवरजी रा सहर में।—लो.गी.

आंमेर–सं०स्त्री०—जयपुर से छः मील दूर एक प्राचीन ऐतिहासिक कस्बा।

आंमोद–सं०पु० [सं० आमोद] १ आनंद, हर्ष, खुशी. २ दिल-बहलाव. ३ सौरभ, गंध।

आंमोद-प्रमोद—सं०पु० [सं० आमोद-प्रमोद] १ भोग-विलास. २ हंसी-खुशी।

आंम्नाय—सं०पु०—१ वेद-पाठ. २ वेद।

आंम्रकूट, आंम्रकूटगिरि—सं०पु०—एक पर्वत का नाम। उ०—**बरसंती** अगणमाप बुझावै दावानळ नै। **आंम्रकूटगिरि** आप हरखसी मीत मिळण नै।—मेघ.

आंम्रयग्रास—सं०स्त्री०—अग्नि, ज्वाला (डिं.को)

आंम्लपित, आंम्लपित्त—सं०पु० [सं० अम्लपित्त] एक रोग विशेष जिसमें जो कुछ भोजन किया जाता है पित्त के प्रकोप से खट्टा हो जाता है।

आंम्ही-सांम्ही आंम्हो-सामा, आंम्हौ-सांम्हौ—क्रि०वि०—आमने-सामने, एक दूसरे के सम्मुख, मुकाबले में।

आंयणी—वि०स्त्री०—वह गाय या भैंस जिसने दूध देना बंद कर दिया हो।

आंर—सं०पु० [सं० अश्रु] आंसू, अश्रु, नेत्रजल। उ०—साईं दे दे सज्जना, रातइ इंणि परि रूंन। उरि ऊपरि **आंर** ढळइ, जांणि प्रवाळी चूंन।—ढो.मा.

आंरै—सर्व०—इनके। उ०—थेटू घर संबर ऊंचा सर थागै। **आंरै** माळागर मूंढ़ा रै आगै।—ऊ.का.

आंरौ—वि०—दूसरा, अन्य।
सर्व०—इनका।

आंव—सं०पु० [सं० आम] खाये हुए अन्न के कच्चा रहने से अपचकृत सफेद तथा लसीला मल।

आंवण—सं०पु० [सं० आमिक्षा] १ दूध से दही जमाने के निमित्त दूध में डाला जाने वाला खट्टा पदार्थ. २ लोहे की सामी जो बैलगाड़ी के चक्के के उस छेद के मुंह पर लगाई जाती है जिसमें से होकर धुरी का डंडा जाता है—मुहंदी।

आंवरत—सं०पु०—१ युद्ध में सैन्य-दल का मंडलाकार घेरा. २ युद्ध उ०—**आंवरत** फेरि संघारि भुंझारि अरि।—हा.झा.

आंवल—सं०स्त्री० [सं० उल्व] १ वह झिल्ली जिसमें गर्भ का बालक लिपटा होता है. २ वह झाड़ीनुमा पौधा जिसके फूल पीले रंग के होते हैं. यह चमड़ा सींजाने के काम आता है।
वि०—सीधी, सरल।

आंवळणौ, आंवळबौ—क्रि०स० [सं० आमोटन] १ मरोड़ना. २ बट देना।
आंवळणहार-हारौ (हारी), आंवळणियौ—वि०—मरोड़ने वाला।

आंवलनाळ—सं०स्त्री० [सं० उल्व] जरायु, जर।

आंवळा—सं०पु०—१ स्त्रियों के पैरों में धारण किया जाने वाला जेवर विशेष. २ घोड़ी के पैर में पहनाने का जेवर. ३ गाड़ी के पहियों को खाल से बांधते समय नेह के चारों ओर लगाए जाने वाले लकड़ी के छोटे डंडे।

आंवळाइग्यारस—सं०स्त्री० [सं० आमलक+एकादशी] फाल्गुण मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी।

आंवळाझूल—वि०—सुसज्जित, पूर्ण शृंगारयुक्त।
सं०पु०—सुसज्जित योद्धा। उ०—**आंवळाझूल** रावत पड़ै आबिढ़ा, बिढ़ा संग सांवळा सात बीसी।—गिरवरदांन सांदू

आंवळानवमी—सं०स्त्री०—कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की नवमी।

आंवळासार, आंवळासारगंधक—सं०पु०—खूब साफ किया हुआ वह गंधक जो पारदर्शक हो गया हो।

आंवळियोड़ौ—भू०का०कृ०—मरोड़ा हुआ।
(स्त्री० आंवळियोड़ी)

आंवळी—सं०स्त्री०—१ देखो '**आंवण**' (२)
२ गुदा की नली (अमरत)

आंवळीइग्यारस—सं०स्त्री०—फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी।

आंवळीजणौ, आंवळीजबौ—क्रि० भाव वा०—१ मरोड़ा जाना. २ मन ही मन कुढ़ा जाना।

आंवळीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—मरोड़ा गया हुआ, मन ही मन कुढ़ा हुआ।
(स्त्री० आंवळीजियोड़ी)

आंवळौ—वि०—टेढ़ा, बांका।
सं०पु०—१ पैरों में पहिनने का एक जेवर विशेष.
[सं० आमलक, प्रा० आमलओ] २ एक फल जो औषधि के काम आता है आंवला तथा इसका वृक्ष।

आंवां, आंवा—सं०स्त्री०—कुम्हारों का वह गड्ढा जहां वे मिट्टी के बर्तन पकाते हैं।

आंसढ़ियौ—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा विशेष जिसकी आंख फरकने पर आंख के पास की भौंरी भी फरकती है। (अशुभ)—शा.हो.

आंसू—सं०पु० [सं० अश्रु] करुणा, शोक या प्रेम आदि के कारण नेत्रों से निकलने वाला जल। उ०—**आंसू** अरु काजळ मिळि त्यांही मसि हुई तासुं कागळ लिखै छै।—वेलि. टी.
क्रि०प्र०—आणौ-गिरणौ-ढळकाणौ-नांखणौ-पीवणौ-पूछणौ-बवावणौ-भरणौ-लाणौ-सुखाणौ।
कहा०—१ आठ-आठ आंसू रोवणौ—बहुत रोना. २ पौर मरी सासू नै ऐस आया आंसू—किसी कार्य की प्रतिक्रिया नियत समय के बहुत बाद में होने पर।

आंसूड़ौ, आंसूडौ—सं०पु०—आंसू, अश्रु (अल्पा०)
(स्त्री आंसूड़ी) उ०—मुख भीज्यौ अंगिया चूयी, चुयचुय टपकी जाय। **आंसूड़ां** री धार तनेयक डट जाए।—लो.गी.

आंसूढाग—सं०स्त्री०—घोड़े के नेत्रों के नीचे की भौंरी (चक्र) जो अशुभ मानी गई। (शा.हो.)

आंहां—अव्यय—नहीं, जीभ हिलाने के श्रम से बचने के लिए किसी प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देते समय बोला जाने वाला शब्द।

आंहीणौ—सं०पु०—देखो—'**अहीणौ**'

आ—अव्यय—शब्दों के आदि में आने वाला उपसर्ग जो अभिविधि, अवधि, पर्यंत, सब प्रकार, न्यून और विपरीत का अर्थ देता है।

सं०पु०—१ शिव. २ कल्प वृक्ष. ३ परिश्रम. ४ स्तुति. ५ घोड़ा. ६ हाथी. ७ चंद्रमा. ८ चाणक्य. ९ धाम. १० नेत्र. ११ ब्रह्मा. १२ पितामह।

सं०स्त्री०—१३ लक्ष्मी। (एका०—क.कु.बो.)

वि०—१ श्वेत. २ बड़ा या महान।

सर्व० स्त्री०—यह।

क्रि०वि०—१ और. २ इसको, इस बात को।

आग्नरौ–सं०पु० [सं० आश्रम] कच्चा घास-फूस का मकान।

आइंदा–सं०पु०—[फा० आइन्द या आयंद] भविष्य काल, आने वाला समय।

वि०—आगंतुक, आने वाला।

क्रि०वि०—आगे, भविष्य में।

आइ–सर्व०—यह।

आइइता–क्रि०वि०—१ इत्यादि, आदि. २ इसी प्रकार। उ०—**आइइता** कूंपा सह आया, सांमधरम खित करम सवाया।—रा.रू.

आइड़ौ–सं०पु०—वर्णमाला का 'अ' स्वर।

आइठांण–सं०पु० [सं० अधिष्ठान, प्रा० अहिट्ठाण, रा० आइठांग] १ पैर अथवा हाथ की अंगुलियों में अधिक कार्य या एक ही वस्तु के अधिक संघर्ष से पड़ने वाली ग्रंथी जहाँ की चमड़ी कठोर एवं सुन्न हो जाती है।

उ०—छाळा पड़ग्या सूड़ करतां, हाथां **आइठांण**। कम्मर हुयगी बेवड़ी, जी करतां निदांण।—रेवतदांन

२ चिन्ह, संकेत। उ०—सांईणी सालै नहीं, सालै **आइठांण**।

आइणौ–सं०पु० [फा० आइना] १ शीशा, दर्पण. २ दूध का अभाव. (मि० आंहीणौ)

आइयळ–सं स्त्री० [सं० आर्या, प्रा० अज्जा आजा आजी, रा० आई] १ देवी, शक्ति. २ आवड़ देवी का एक नाम. ३ करणी देवी। ४ दुर्गा।

आइयौ–अव्यय० [सं० अयि] अय, अरे, हे। उ०—पाटौधर धर पौढ़ियौ **आइयौ** लेख अलेख।—ऊ.का.

आइस–सं०स्त्री० [सं० आदेश] १ आज्ञा, आदेश। उ०—राउळ कान्हड़ **आइस** दियउ, गढ़ अंबेरि मालदे गयउ।—कां.दे.प्र.

सं०पु० [सं० आदेशी] २ संन्यासी, फकीर। उ०—**आइस** देखि सगळां आदेस कीयौ, पिण किण ही ऊळख्यौ नहीं।

—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात

सं०स्त्री० [सं० आशा] ३ आशा।

आइसा–सं०स्त्री० [सं० आदेश] १ आज्ञा, आदेश. २ आयु।

आइसु–सं०स्त्री०—देखो 'आइस'।

आईबड़ौ–सं०पु०—एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसकी पतली टहनियों से रेहंट की माला बनती है। इसके तने पर पपड़ी आती है।

आईंरौ–सं०पु० [सं० आश्रम] सोने व सामान रखने का मकान।

आई–सं०स्त्री० [सं० आर्या, प्रा० अज्जा, अप० आजी, रा० आई, आयी] १ देवी, दुर्गा, शक्ति. २ करणी देवी का एक नाम, आवड़ देवी का नाम देखो 'आवड़' ३ एक देवी विशेष। यह बीका डाबी की पुत्री थी। इसका असली नाम जीजी बाई था जो पीछे से आईजी हो गया। अत्यन्त सुंदरी होने के कारण मांडू के बादशाह ने इससे विवाह करना चाहा, किंतु इसने स्वीकार न किया। यह रैदास भगत की शिष्या थी। अपने पिता के साथ मालवे से मारवाड़ में आई और बीलाड़ा नामक ग्राम में अपना स्थान मुकर्रर किया। आज भी बीलाड़े में इसकी गादी और जलने वाली अखंड ज्योति के दर्शन करने हजारों लोग आते हैं। यहाँ का पुजारी दीवान कहलाता है। आजकल लगभग ५ या ६ लाख व्यक्ति इसके अनुयायी हैं जो आई पंथी या डोराबंद पुकारे जाते हैं। इसके संबंध में कई चमत्कारपूर्ण किंवदंतियां प्रचलित हैं. ४ शृंखला, सांकल. ५ बच्चों को दूध पिलाने तथा उनकी रक्षा करने वाली स्त्री, धाय, उपमाता।

सर्व०—यही, यह।

आईइता–क्रि०वि०—देखो 'आइइता'।

आईड़, आईड़ी, आईड़ौ–सं०पु० [सं० आखेटक] १ आर्द्रा नक्षत्र. २ भील. ३ शिकारी. ४ एक देशी खेल।

आईज–सर्व०—यहीं। उ०—उणांरी हमार तौ **आईज** इच्छा छै।

—सूरे खींवे री बात

आईजणौ, आईजबौ–क्रि०अ०—आया जाना।

आईजी–सं०स्त्री० (महत्व०) देखो 'आई'।

आईठांण–सं०पु०—देखो 'आइठांण'।

आईनाथ–सं०स्त्री०—देखो 'आई' (३)

आईनौ–सं०पु० [फा० आईना] दर्पण, शीशा।

आईपंथ–सं०पु०यौ०—आई देवी द्वारा चलाया हुआ पंथ विशेष, देखो 'आई' (३)

आईपंथी–सं०पु०—आई पंथ का अनुयायी।

आईयौ–अव्यय [सं० अयि] सम्बोधनसूचक शब्द, हे! अरे!

आईरौ–सं०पु० [सं० आश्रम] घासफूस की कच्ची कुटिया या मकान।

आईवाळौ–सं०पु०—देखो 'आहीवाळौ'।

आईस–सं०स्त्री०—देखो 'आइस'। उ०—**आईस** दीधौ बीसळराई, प्रोहित मोकळाव्यौ तीणी ठाई।—बी.दे.

आउंस–सं०पु०—एक प्रकार का अंग्रेजी मान जो दो प्रकार का होता है। ठोस वस्तुओं को तोलने में १२ आउंस का एक पौंड और द्रव वस्तुओं को मापने में १६ ड्राम एक औंस होता है।

आउ–सं०स्त्री० [सं० आयु] जीवन, उम्र।

आउखी–वि०—पूर्ण, पूरी, अखंड। उ०—पारसी रा बोलणहार, **आउखी** ढाढ़ी राखणहार, बालि बाधि कोडी रा मारणहार।

—रा.सा.सं.

आउगाळ–सं०पु०—१ वर्षा ऋतु का आरम्भ या आगमन।

उ०—बरसाळा आग जमी मिट ग्रीखम ज्वाळा खाळा नाळा खळक

हले नद पुरह बहाळा आउगाळ उमंड मंडे बारह मेघमाळा ।
—पहाड़खां आढ़ो

२ सत्ताइस नक्षत्रों के अन्तर्गत इक्कीसवाँ नक्षत्र उत्तरासाढ़ा ।

आउगो, आउगौ–वि०—पूरा, पूर्ण, अखंड (पि.प्र.)
उ०—सारी धर भोगवि दिन साजा, रिण आउगौ मूझ दे राजा ।
—वचनिका

आउट–वि० [अं०] खेल में हारा हुआ या बहिर्भूत ।

आउदौ–वि० (स्त्री० आउदी) देखो 'आसूधौ' ।

आउध–सं०पु० [सं० आयुध] शस्त्रास्त्र, हथियार । उ०—इतर सत्र आयुधिक अट्ठ जुज्झे गाहि आउध ।—वं.भा.

आउधि–वि०—ताजा । उ०—आरुहिय अस्ति आउधि अयाळ मुगल्लां मळ वा 'जइतमाल' ।—रा.ज.सी.
सं०पु०—१ युद्ध. [सं० आयुध] २ अस्त्र-शस्त्र ।

आउधिक, आउधीक–वि० [सं० आयुध+ईक रा० प्र०] शस्त्र धारण करने वाला योद्धा । उ०—जरै बिजैसूर भी भावी नूं दोस दे'र आपरा आउधीक पूंतारि साम्हौं ही आयौ ।—वं.भा.
आउधौ वि० (स्त्री० आउधी) देखो 'आसूधौ'

आउरबा–सं०स्त्री० [सं० आयुस] आयु । उ०—ज्यों ज्यों राति घटै छै सु जांणे आउरबा घटै छै ।—वेलि. टी.

आऊंखांण–सं०पु०—१ पुराने समय में चमड़े पर लिया जाने वाला सरकारी कर. २ मवेशी का पूरा चमड़ा ।

आऊ–सं०स्त्री० [सं० आयु] आयु, उम्र, वयस । उ०—अर आपरी आऊ रै बळ ऊबरिया अंगनू कंवाड़ पगा मैं गाढ़ौ करण कलंब रूप कांटां मैं जड़ियौ ।—वं.भा.

आऊठांण–सं०पु०—देखो 'आइठांण' । उ०—जठै तारागढ़ हुवौ जिण अद्रि पर चामुंडा तीन ही देवियां रा स्थांन सरणीस्वर, सिव कौ मंदिर, एक छोटौ तड़ाग, जैतसागर एक, ए सात ही मुख आऊठांण पाया ।—वं भा.

आएड़ी–सं०पु० १ आर्द्रा नक्षत्र का एक नाम ।
सं०पु० [सं० आखेटक] २ शिकारी, आखेटक ।

आकंप–सं०पु०—भय, घबराहट । उ०—वधै पूर हैलूर फौजां सवाई, प्रथी भूप आकंप साकंप पाई ।—रा.रू.
(यौ०—आकंप-साकंप)

आकंपणौ, आकंपबौ–क्रि०अ०—कंपित होना, कंपकंपाना ।

आकंपियोड़ौ–भू०का०कृ०—कंपकंपाया हुआ, कंपित ।
(स्त्री० आकंपियोड़ी)

आक–सं०पु० [सं० अर्क, प्रा० अक्क] १ मंदार ।
क्रि०प्र०—चढ़णौ-देणौ-पावणौ-लागणौ ।
मुहा०—आक पावणौ—तंग करना, कष्ट देना ।
कहा०—१ आक धतूरा नींबड़ा-यांनै सींचौ घी सूं, ज्यांरा पड़्या सुभाव जासी जीव सूं—दुष्ट आदमी का कितना ही भला कीजिए किन्तु वह अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता. २ आक में आंबौ नीपज्यौ—नीच कुल में अच्छा पुरुष पैदा हुआ, दुष्ट के सज्जन पुत्र जन्मा, असम्भव बात हुई. ३ आक रौ कीड़ौ आक सूं राजी—प्रत्येक मनुष्य अपनी ही परिस्थिति को पसन्द करता है. ४ आळी चांमड़ी आक पावै—बहुत अधिक कष्ट देना. ५ मरतां मरतां ई आक पावै—अंत समय तक कष्ट देना. ६ मरतौ मरतौ ई आक पावै—मरते मरते भी दूसरों को कष्ट देना ।
(रू०भे० आकड़ो, अक्क) (अल्पा० आकड़ियौ)
(महत्त० आकड़) [रा०] २ बैलगाड़ी में थाटे (मुख्य चौड़ा तख्ता) के नीचे लगाया हुआ वह चौड़ा तख्ता जो घोड़े के खुर की आकृति का होता है ।
(मि० अंगठ)

आकड़–सं०पु०—आक, मंदार ।

आकड़ा-काकड़ा–सं०पु०—छोटे बच्चों का रोग विशेष जिसमें शीतला के समान फफोले होते हैं । (क्षेत्रीय) (मि० अचबड़ा)

आकड़ियौ–सं०पु०—१ गेहुँओं की फसल में होने वाली एक प्रकार की घास. २ आक का छोटा पौधा (अल्पा०)

आकड़ौ–सं०पु०—आक, मंदार, देखो 'आक' (१)
मुहा०—१ आकड़ा रै लागणौ—सर्वजनों को सहज ही किसी दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति होने पर. २ आकड़ो सींचणौ—उपयोग रहित व बेकार वस्तु या स्थान पर व्यय करना, निरर्थक परिश्रम करना ।

आकडोडियौ–सं०पु०—मंदार के फूल जो महादेवजी को चढ़ाए जाते हैं.

आकबत–सं०पु० [अ० आकिबत] १ परलोक. २ मृत्यु के बाद की अवस्था ।

आकबाक–वि०—देखो 'आकवाक' (रू.भे.)

आकर–सं०पु० [सं] १ खान, खदान । उ०—जग जंपत हम्मीर जिहिं कहि आकर गुनकेर ।—वं.भा. २ झुंड, समूह. ३ खजाना.
४ भेद, किस्म, जाति. ५ तेज । उ०—ऊटां लीजइ आकरा, चालीय चतुरास्या सामहां जांन ।—वी.दे. ६ तलवार चलाने का एक भेद ।

आकरखंण–सं०पु० [सं आकर्षण] कामदेव के पांच बाणों में से एक ।

आकरखणौ, आकरखबौ–क्रि०स० [सं० आकर्षण] आकर्षित करना, खींचना । उ०—जैसे प्रऊढा नाइका नोइक कौं आकरखै मोड़ा छांडै ।—वेलि. टी.

आकरग्यांन–सं०पु० [सं० आकरज्ञान] चौसठ कलाओं के अंतर्गत एक कला, खानों की कला ।

आकरणांत–क्रि०वि०—कान तक । उ०—तेहे घोड़े किस्या किस्या खित्री चडीया । पंचवीस वरस ऊपहरा । आकरणांत मूंछ, नाभि-प्रमांण कूच ।—कां.दे.प्र.

आकरती–सं०स्त्री० [सं० आकृति] देखो 'आक्रती' ।

आकरस–सं०पु० [सं० आकर्ष] खिंचाव।

आकरसक–वि० [सं० आकर्षक] आकर्षण करने वाला।

आकरसण–सं०पु० [सं० आकर्षण] १ एक वस्तु का दूसरी वस्तु को अपनी शक्ति या प्रेरणा से पास लाया जाने का भाव, खिंचाव. २ कामदेव के पांच बाणों में से एक।

आकरसणक्रीड़ा–सं०स्त्री० [सं० आकर्षणक्रीड़ा] चौसठ कलाओं के अंतर्गत पासा आदि फेंकने की एक कला।

आकरी–सं०स्त्री० [सं० आकर] खान खोदने का काम।

वि०—देखो 'आकरौ'। उ०—कै या बोल की **आकरी**? कोणे दुख देवर ! उळग जाई।—वी.दे.

आकरीरित, आकरीरुत–सं०पु०—ग्रीष्म ऋतु।

आकरौ–वि० (स्त्री० आकरी) १ बहुत, अत्यधिक।

उ०—सुरतांण साल भंता सबद उर ते चिंता **आकरी**।—रा.रू.

२ अमूल्य. ३ खरा. ४ चोखा, श्रेष्ठ. ५ कठोर, क्रूर, भयंकर! उ०—ए दिव छइ पीउ ! **आकरा**। इण दिव थी सुर नर हुआ छार।—वी.दे.

कहा०—आकरै देव नै सै (सब) कोई नमै—क्रूर देवता को सब कोई नमस्कार करते हैं। बलवान से सभी डरते हैं।

६ हठी, जिद्दी. ७ बहादुर. ८ तेज। उ०—चोथी रेढ़ो फिरियौ सौ इमो **आकरौ** आय फौज सूं भिळियौ सौ सागी कुंअर कन्हां गयौ।

—डाढ़ाळै सूर री बात

आकळ–वि० [सं० आकुल] व्याकुल, बेचैन। उ०—पेखीजै धण **आकळ** देवत नीराजणती। दुरबळ मौ उणियार विजोगण चित्र संवरती।

—मेघ०

आकलकरौ–सं०पु० [सं० आकारकरभ] अकरकरा (अमरत)

आकळणौ, आकळबौ–क्रि०स० [सं० आकुल] १ दुखित होना, व्याकुल होना (मि० आकळ) २ युद्ध करना। उ०—अणी जटवाड़ वीरांतणी **आकळै**, विवध तीरां तणी मची वरखा।—बां.दा.

आकळणहार-हारौ (हारी), आकळणियौ–वि०—व्याकुल, युद्ध करने वाला, वीर।

आकवाक–वि०—हक्का-बक्का। उ०—काचां **आकवाक** साचां कटाधार छाजै करां ऊधरां कळकै भैरू छाक लेता।—अज्ञात

क्रि०प्र०—करणौ-होणौ।

आकसमात–क्रि०वि०—देखो 'अकस्मात'।

आकांक्षा–सं०स्त्री० [सं०] १ अभिलाषा, इच्छा. २ जैनियों का एक अतिचार।

आकांक्षी–वि० [सं० आकांक्षिन्] इच्छुक, आकांक्षा करने वाला।

आकाडकळ–वि०—क्रोध में अपनी मर्यादा छोड़ देने वाला।

उ०—कटक चख चोळ घणबोल **आकाडकळ**, चोळ रंग चाढ़ एलम अचूंडौ। आडबारांछिलत खळां सिर आवियौ, चवै जुधवार जमरांण चूंडौ।—बदरीदास खिड़ियौ

आकाय–सं०स्त्री० [सं०] १ साहस, हिम्मत। उ०—गढ़वां री ली गाय, अप्रछन खीची आयनै। 'बूढ़ौ' तज **आकाय** मिळ बैठौ 'जींदौ' मई।

—पा.प्र.

[सं०] २ शक्ति, बल। उ०—अई तूझ **आकाय** 'बखतेस' छत्रधर अभंग।—प्रथीराज सांदू. [सं०] ३ वीरता, शौर्य। उ०—अडर झोक **आकाय** रिण टला रा दियण अत।—महाराजा मानसिंह

वि० [सं०] १ वीर, बहादुर। उ०—घाय खळ सबळ दळ आभ माथा घसै। ओह **आकाय** 'माधव' कठी ऊससे।

—माधोसिंह साहपुरा री गीत

[सं०] २ भीमकाय, प्रबल शरीरधारी, जबरदस्त। उ०—छपी वडवा अगन लाय सौ छोकरी डोकरी बडी **आकाय** डाकी।—फतेसिंह बारहठ

आकार–सं०पु० [सं०] १ स्वरूप, आकृति, सूरत। उ०—अति अदभुत सुंदर **आकार** तैं परणैवा हरख अपार।—ढो.मा.

[सं०] २ 'आ' अक्षर [सं०] ३ आह्वान, बुलावा (डिं.को.)

[सं०] ४ पाताल (ना.डिं.को.)

आकारग्यांन–सं०पु० [सं० आकार ज्ञान] चौसठ कलाओं के अंतर्गत खान विद्या की एक कला।

आकारणौ, आकारबौ–क्रि०स० [सं०] बुलाना।

आकारणहार-हारौ (हारी), आकारणियौ—बुलाने वाला।

आकारियोड़ौ-आकारियोड़ौ-आकारयोड़ौ—बुलाया हुआ।

आकारांत–सं०पु० [सं०] वह वर्ण जो अन्त में 'आ' स्वर सहित हो।

आकारा–सं०पु० [सं० आकार] आकृति, आकार, ढांचा।

उ०—दिन एकण पड़ जायगा धरिया **आकारा**।—केसोदास गाडण

आकारीठ–सं०पु० [सं० अखंड+अरिष्ठ, प्रा० आखारिट्ठ] १ युद्ध, संग्राम, लड़ाई। उ०—खुटा पराथी अनथां दीहां उरा थी ऊबेड़ खभ। कपोळां वराथी छुटा मदा काळा कीट। जच्छ दूत तणा साथी तूटा वज्र गैंग जेम, रांण वाळा येहू हाथी जुटा **आकारीठ**।

—महादांन मेहड़ू

२ शस्त्र-प्रहार या शस्त्र-प्रहार की ध्वनि। उ०—गोकळ जगौ गरीठ करि बिहुं बाजू 'केसउत' 'माल' हरै जुध मांडियौ रूकै **आकारीठ**।—वचनिका (मि०—आकारीठौ)

वि०—१ अत्यन्त तीक्ष्ण स्वभाव वाला. २ जबरदस्त, बलवान।

उ०—मिळै मूंछ भूहारां डोलतौ **आकारीठ** महां, गरीठ दोयणां हिया छोलतौ गरूर।—र.रू.

आकारियोड़ौ–भू०का०कृ०—बुलाया हुआ (स्त्री० आकारियोड़ी)

आकारीठौ–सं०पु०—१ महाघोर संग्राम, घमासान युद्ध।

(मि० आकारीठ) २. महाघोर शस्त्रों का प्रहार। उ०—निस गळती भूबियौ नत्रीठौ रूक तणो मच **आकारीठौ**।—रा.रू.

आकारौ–सं०पु०—देखो 'आकारा' (रू.भे.)

आकाळकी–सं०स्त्री० [सं० आकालिका] बिजली (अ.मा.)

आकास–सं०पु० [सं० आकाश] १ शून्य, आसमान, जहां वायु के अति-

रिक्त कुछ न हो, इसकी गणना पंचभूतों के अंतर्गत मानी जाती है। पर्याय०—अंतरीक, अंतरीख, अंबर, अनंत, अभ, असमांन, आभ, आभौ, आयास, उडपथ, खगपथ, गंगापथ, गगन, गयरा, गैरा, गैराग, ग्रहनेम, नभ, निहंग, पथछाया, पवनमग, पुहकर, पौल, पौहकर, बिसनपथ, बोम, मेघ, मेघपथ, वयद, विसनपद, वोम, सुन्य।

मुहा०—१ आकास खुलणौ—बदली न रहना. २ आकास छूणौ—गगनचुंबी होना, बहुत बढ़ कर बातें करना. ३ आकास पाताळ एक करणौ—कोई प्रयत्न न उठा रखना, बढ़-बढ़ कर बातें करना. ४ आकास पाताळ रौ फरक होणौ—बहुत बड़ा अन्तर होना. ५ आकास रा तारा तोड़णा—असंभव कार्य कर डालना. ६ आकास सूं बातां करणी—बहुत ऊँचा होना, बहुत बढ़-बढ़ कर बातें करना। कहा०—१ आकास विना थांबै खड़ौ है—ईश्वर के कृत्य महान हैं, सत्य पर ही सब कुछ आधारित है। (रू.भे. अकास)

यौ०—आकासगंगा, आकासचारी, आकासनदी, आकासबेल, आकासबांणी, आकासमंडळ, आकाममुखी, आकासलोचरा, आकामवांणी, आकासवेल, आकासव्रत्ति।

२ अभ्रक. ३ सूर्य, भानु। उ०—नमौ अरनाद आकास अनाद, नमौ कासब सुत क्रोध कीयंत।—सूरज असतोत्र

आकासगंगा-सं०स्त्री० [सं० आकाश गंगा] आकाश में उत्तर से दक्षिण तक फैला हुआ लम्बे रास्ते नुमा छोटे-छोटे तारों का समूह जो प्रायः अंधेरी रात्रि में स्पष्ट दिखाई देता है।

आकासचारी-वि० [सं० आकाशचारी] आकाश में विचरण करने वाला, आकाशगामी।

आकासनदी-सं०स्त्री० [सं० आकाश नदी] देखो 'आकासगंगा'।

आकासबांणी-सं०स्त्री० [सं० आकाशवाणी] आकाश से देवता लोगों द्वारा बोले जाने वाले शब्द, आकासवाणी, देववाणी।

आकासबेल-सं०स्त्री० [सं० आकाशवल्लि] अमरबेल नामक लता।

आकासमंडळ-सं०पु० [सं० आकाशमंडल] नभमंडल, खगोल।

आकासमुखी-सं०पु० [सं० आकाशमुखी] आकाश की ओर मुँह करके तप करने वाले एक प्रकार के साधु विशेष।

आकासलोचन-सं०पु० [सं० आकाशलोचन] ग्रहों की गति या स्थिति देखने का स्थान।

आकासवांणी-सं०स्त्री०—देखो 'आकासबांणी'।

आकासवेल-सं०स्त्री०—देखो 'आकासबेल'।

आकासव्रत्ति-सं०स्त्री [सं० आकाशवृत्ति] ऐसी आमदनी जो बंधी न हो, अनिश्चित आय।

आकासी-सं०स्त्री० [सं० आकाश+ई रा० प्र०] धूप आदि से बचने के लिए तानी जाने वाली चाँदनी।

वि० [सं० आकाशीय] १ आकाश से संबंध रखने वाली. २ ईश्वरीय, दैवी। उ०—इण माटी में सौ सौ पीढ़ी, मरगी भूखी प्यासी। भाग भरोसे रहयौ बावळा, प्रीत करी आकासी।—रेवतदांन

सं०पु०—बादल, मेघ।

आकासीविरत-सं०स्त्री०—देखो 'आकासव्रत्ति'।

आकीद-क्रि०वि० [अ० यकीन] विश्वास।

आकीन-सं०पु० [अ० यकीन] विश्वास, एतबार।

आकीनदार-सं०पु०—विश्वासपात्र।

आकुरित-वि० [सं० अंकुरित] उत्पन्न, अंकुरित, अंकुर निकला हुआ।

आकुळ-वि० [सं०] १ व्यग्र, उद्विग्न, विकल. २ व्याकुल, क्षुब्ध।

आकुळणौ, आकुळबौ-क्रि०अ० [सं० आकुलित] १ घबराना, व्याकुल होना. २ मिलना, सम्मिलित होना, अपने कुल में मिलना। उ०—पुळियौ पच्चीसौ चोतीसौ चुळियौ। अड़ताळीसौ भी अंतर आकुळियौ।—ऊ.का.

आकुळता-सं०स्त्री०—व्याकुलता, घबराहट, व्यग्रता।

आकुळियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ व्याकुल, घबराया हुआ. २ अपने कुल में सम्मिलित।

आकुळी-वि० [सं० आकुल] १ विकल, व्याकुल। उ०—वात सहू ढोलई सांभळी, माळवणी हुई आकुळी।—ढो.मा. २ उतावली।

आकुळेव-वि० [सं० आकुलित] घबराया हुआ, व्याकुल।

आकूत-सं०स्त्री० [सं०] १ अंदर का आशय. २ बुद्धि।

आकूती-सं०स्त्री० [सं०] स्वायंभुव मनु की तीन कन्याओं में से एक।

आकूर-सं०पु०—अंकुर।

आकेलौ-वि०—एकाकी, अकेला।

आक्रंद, आक्रंदन-सं०पु० [सं०] रोना, चिल्लाना, रुदन, पुकार।

आक्रत, आक्रति, आक्रती-सं०स्त्री० [सं० आकृति] १ आकृति, बनावट, गठन, आकार, रूप। उ०—१ दूध नीर मिळ दोय, एक जिसी आक्रत हुवै।—किरपाराम उ०—२ भली आक्रति भाळ, धणी वणियां थुथकारै।—दसदेव २ मुख, चेहरा. ३ मुख का भाव, चेष्टा।

आक्रम-सं०पु० [सं०] पराक्रम, शूरता।

आक्रमण-सं०पु० [सं०] हमला बलात् किया गया सीमाल्लोघन।

आक्रांत-वि० [सं०] १ जिस पर आक्रमण हो. २ घिरा हुआ, आवृत्त. उ०—इक नहिं आक्रांता क्रांतातुर आडी, डाई अवतोक सोकाकुळ डाडी।—ऊ.का. ३ वशीभूत, पराजित।

आक्रित, आक्रिति, आक्रित्ती-सं०स्त्री०—देखो 'आक्रति'।

आक्षेप-सं०पु० [सं०] १ आरोप, दोष लगाना. २ कटूक्ति, व्यंग्य, ताना।

आक्षेपक-वि० [सं०] आक्षेप करने वाला।

आक्सिजन-सं०पु०—रूप, रस, गंधरहित एक गैस या सूक्ष्म वायु।

आखंडळ-सं०पु० [सं०] इन्द्र, सुरेश (डिं.को., अ.मा.)

वि०—सम्पूर्ण।

आखंडळी-सं०पु० [सं० आखंडल+ई] इंद्र (ना.डिं.को.)

सं०स्त्री० [सं० आखंडल+ई] इंद्राणी।

क्रि०वि०—अगाड़ी, आगे।

आखड़णी, आखड़बौ–क्रि०अ० [सं० आस्खलन] १ ठोकर खाना।

कहा०—१ आखड़ियां चेतौ हुवै—ठोकर खाने पर चेत होता है, हानि उठाने पर आदमी सावधान होता है. २ आखड़िया जिसा पड़िया कोनी—ठोकर खायी वैसे गिरे नहीं, जैसी संभावना थी वैसी हानि नहीं हुई, जैसी संभावना थी वैसी बात नहीं हुई। ३ आखड़िया पण पड़िया नहीं—ठोकर खाने पर भी गिरा नहीं—कारण या संकट तो आया किंतु अधिक हानि नहीं हुई।

२ स्खलित होना, गिरना। उ०—प्रिसणां साथ कासळी पड़ियौ आंगम लखां दुग्रौ आखड़ियौ।—रा.रू.

आखड़ां–सं०स्त्री०—उदासीनता। उ०—साजां सोळ सिंगार, सोणा रो राखड़ां। सांवळिया सूं प्रीत, औरां सूं आखड़ां।—मीरां

आखड़ियोड़ौ–भू०का०कृ० [सं० आस्खलित] ठोकर खाया हुआ। (स्त्री० आखड़ियोड़ी)

आखड़ी–सं०स्त्री० [सं० अस्खलित] १ प्रण, प्रतिज्ञा।

उ०—अंग न छूटै आखड़ी, सीहां सापुरसांह। आखड़ियां अळगी रहै, कुतरां कापुरसांह।—बां.दा.

कहा०—तीजी फाळ न बावड़ै, भागां लार न जाय। सिंघां आ इज आखड़ी, पर मारियौ न खाय।

२ विरुदाने की बातें, जोश दिलाने की बातें।

(बहु० आखड़ियां)

आखणक–सं०पु० [सं० आखनक=भूदार] सूअर (ह.नां, अ.मा.)

आखणौ, आखबौ–क्रि०स० [सं० आख्यान, प्रा० अक्खान, रा० आखणौ] कहना, बयान करना (डिं.को.)। उ०—जिन्हां दीहां चा सौ वरस ब्रह्मा जीवाई, उस भी ब्रह्मा आखियौ, कुछ ऊमर नाहीं।—केसोदास गाडण

आखत–सं०स्त्री० [सं० आख्यात] बयान, कथन। उ०—रहिया जतरा मास जता दन हमै न रैवां। खमिया जम हीज खमौ केम आखत कर कैवां।—पा.प्र.

क्रि०वि०—तेजी से। उ०—आखत पग ऊठतां, ऊठ साखत पखराळी।

—मे.म.

आखती-पाखती–क्रि०वि० [सं० आसन्न+पार्श्व] आस-पास, निकट।

आखतौ, आलतौ–वि० [सं० अगतिक] १ इतना ऊबा हुआ कि धैर्य टूटने पर हो। उ०—ईस घणा जे आखता, तौ लीजै सिर तोड़। धड़ एकण धण रो धणी, पड़सी वैर बहोड़।—वी.स.

२ दुखी। उ०—राजपूत सारा चावड़ां थी आखता हुय रह्या छै।

—नैणसी

३ क्रुद्ध. ४ उतावला। उ०—सुख सेज दैण डीलौ सदा अमल लैण नै आखतौ।—ऊ.का. [फा०आस्त:] ५ बधिया किया हुआ।

क्रि०वि०—शीघ्र, तेज।

आखर–सं०पु० [सं० अक्षर] अक्षर, वर्ण, हरुफ। देखो 'अक्खर'।

उ०—कपळा कवळी नै बारै पुचकारै, लाखर लाखर मैं आखर मनमारै।—ऊ.का.

क्रि०वि० [फा० आखिर] आखिर, अंत में।

कहा०—आखर जात अहीर—आखिर तो अहीर जाति का है, आखिर तो मूर्ख बना रहा, आखिर तो नीच ही है। श्रीकृष्ण के लिए भक्तों का प्रेमपूर्ण ताना।

आखरबंत–क्रि०वि०—अंतिम समय। उ०—रसायण रा सोना री लाखां मोहरां अकबर पड़ाय ऐक ही ओरिया में राखी हुती, आखरबंत दांन सारू अकबर अकसमात मर गयौ। मोहरां धरी हीज रही।

—बां.दा. ख्या.

आखरी–सं०स्त्री०—१ रात्रि में वह स्थान जहाँ पशु प्रायः विश्राम के लिए इकट्ठे हो जाते हैं। उ०—हिरणां झाली आखरी ताकै कूवा खेळ। तिस मरता थिगता फिरै, छूटयौ हिरण्यां मेळ।—बादळी

२ कुयें पर बैलों से पानी निकालने का निश्चित किया गया समय। (रू०भे०—आखाड़ी, आखारी।

क्रि०वि०—अंतिम। (रू०भे०—आकरी)

आखळी–सं०स्त्री० [सं० आखनी] १ पत्थर रखने व बेचने का स्थान। [सं० आस्खलित] २ पथरीले रास्ते में गड्ढा।

आखवांन–सं०पु०—देखो 'आवखांन'।

आखांणौ–सं०पु० [सं० अक्षवट=अखाड़ौ] युद्ध।

उ०—उवेळण गंग वैर आखांणै, असमर कर राठौड़ अभोय।

—द.दा.

आखा–वि० [सं० अक्षत] १ सब. २ देखो 'आखौ' (१)

सं०पु०—१ धान के वे दाने जो किसी मांगलिक व पवित्र अवसर या कार्य के निमित्त हों. २ ब्राह्मणों को भिक्षा में दिया जाने वाला अनाज. ३ अक्षय तृतीया।

कहा०—आखा रोहण बायरी राखी सरवन न होय, पोही मूळ न होय तौ, मही डूलती जोय—अगर अक्षय तृतीया पर रोहिणी नक्षत्र न हो, रक्षा बंधन पर श्रवण नक्षत्र न हो और पौष की पूर्णिमा को मूला नक्षत्र न हो तो संसार में विपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं।

आखाई–वि०—सम्पूर्ण, अखंड।

सं०पु०—वह योद्धा जिसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की हो।

आखाड़मल–सं०पु०—बलवान, ताकतवर, योद्धा। उ०—माकड़ा झाड़ आखाड़मल, चाढ़यां मसती चालिया।—मे.म.

आखाड़सिद्ध–वि०—वह योद्धा जिसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की हो, योद्धा, वीर। उ०—सूर रो तपै नरनाह आखाड़सिद्ध, धजवड़ां पांण गैणाग धारै।—अज्ञात

आखाड़, आखाड़ौ–सं०पु०—१ देखो 'अखाड़ौ'।

उ०—अब वसंत कै आखाड़ौ होत है।—वेलि. टी.

२ युद्ध, संग्राम। उ०—ऊगां दन समैं करै आखाड़ा चोरंग भुवन हसत अणचूक।—प्रथीराज

आखाढ़–सं०पु० [सं० आषाढ़] देखो 'असाढ़'।

आखाड़सिद्ध–वि०—देखो 'आखाड़सिद्ध'। उ०—सम विखम अरध सम

मित्र गुण तोल वरण गण कळ अवध चत्र असी गीत डिंगल चवै सौ चारण आखाढ़सिद्ध ।—क.कु.बो.

आखाणक–सं०पु०—देखो 'आखणक' ।

आखातीज, आखात्रीज–सं०स्त्री० [सं० अक्षय तृतीया] वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया । यह राजस्थान का प्रसिद्ध त्यौहार है । (इस दिन को सतयुग का आरम्भ हुआ था, ऐसा कहा जाता है ।)

उ०—संवत सोळह सत्तोतरइ, आखात्रीज दिवस मन खरई ।—ढो.मा.

कहा०—१ आखातीज तिथक्कै दिन, गुरु होवै संजोत, तौ भाखै यौं भड्डळी, निपजै नाज बहोत—यदि अक्षय तृतीया गुरुवार को हो तो भड्डली कहती है कि बहुत अनाज पैदा होगा ।

कहा०—२ आखातीज दूज की रैण, जाय अचांणक जांचै सैण, कल्क बिचे मांगी नट जाय, तौ जांणीजै काळ सुभाय । हंस कर देय नटै नहि कोय, माघा सही जमांनौ होय—यदि अक्षय तृतीया के पूर्व की द्वितीया के दिन कोई किसी से वस्तु मांगे और उसे वह मिल जाय तो जमाना अच्छा होगा और यदि वह मना कर दे तो अकाल के लक्षण समझना चाहिए ।

आखानवमी–सं०स्त्री० [सं० अक्षत+नवमी] कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की नवमी ।

आखामंडळ–सं०पु०—द्वारिका के पास का ओखामंडल नामक एक स्थान ।

आखारीठ—देखो 'आकारीठ' ।

आखिर–वि० [फा०] देखो 'आखीर' ।

आखिरकार–क्रि०वि० [फा०] देखो 'आखीरकार' ।

आखिरी–वि० [फा०] अंतिम, सबसे पिछला ।

आखी–वि० [सं० अक्षय, सं० अखिल] अखंड, पूर्ण, संपूर्ण, पूरी ।

उ०—**आखी** उमर आंरी करा आथी । छळवळ मुतळब कर बसकर छिटकायौ ।—ऊ.का.

कहा०—आधी छोड़ आखी नै धाय, ऐसा डूबै थाह न पाय—वर्तमान की थोड़ी प्राप्ति को छोड़ कर जो भविष्य की अधिक प्राप्ति के लिए दौड़ता है वह वर्तमान की आधी प्राप्ति से भी हाथ धो बैठता है ।

आखीअणी–वि०—१ अटल. २ सम्पूर्ण. ३ सर्वदा अग्रगण्य रहने वाला । उ०—**आखीअणी** रहै 'ऊदावत', साखी आन्नम कलम सुणौ ।

—दुरसौ आढ़ौ

आखीर–वि० [फा० आखिर] अंतिम, पिछला, पीछे का ।

सं०पु०—१ अंत, परिणाम, फल. २ समाप्ति ।

क्रि०वि०—अंत में, निदान, अंततोगत्वा ।

आखीरकार–क्रि०वि० [फा० आखिरकार] १ अंत में, निदान, खैर. २ अवश्य ।

आखु, आखू–सं०पु० [सं० आखु] १ मूसा, चूहा । उ०—सिवरात्री मैं सिव दरसण गयौ सुकेरौ । अवलोके **आखू** सिव जब हुऔ उजेरौ ।

२ सूअर. ३ चोर । —ऊ.का.

आखेट–सं०स्त्री० [सं०] अहेर, शिकार, मृगया । (रू०भे०—आखेठ)

आखेटक, आखेटी–सं०पु० [सं० आखेटिन्] शिकारी, अहेरी ।

आखेठ–सं०स्त्री०—देखो 'आखेट' ।

आखेप–सं०पु० [सं० आक्षेप] १ दोषारोपण, अपवाद या इल्जाम लगाना. २ कटूक्ति, ताना. ३ फेंकना, गिराना. [रा०] ४ ग्रंथ का अध्याय या खंड. ५ इच्छा करने का भाव । उ०—सुजस लैण **आखेप** न साजै ।—ऊ.दां. ६ परिश्रम, कोशिश, यत्न. ७ कटाक्ष । उ०—कामातुर **आखेप** करे ।—ऊ.दां.

आखेटक–सं०पु०—अहेरी, शिकारी ।

आखो, आखौ–वि० [सं० अखिल] पूरा, अखंड, अक्षय, समस्त । (स्त्री० आखी) उ०—सांमण खुड़द प्रगटिया सकती, **आखौ** जग दरसण आवै ।—मे.म.

सं०पु०—१ अक्षत, अन्न के दाने । (बहु० देखो 'आखा')

२ बिना बधिया किया हुआ बैल या घोड़ा, आंडू ।

आख्यांन–सं०पु० [सं० आख्यान] वर्णन, वृत्तांत, कथा, कहानी ।

आख्यात–वि० [सं०] १ प्रसिद्ध, विख्यात. २ कहा हुआ ।

आख्यानक–सं०पु० [सं०] देखो 'आख्यांन' ।

आगंतुक–वि० [सं०] आने वाला ।

सं०पु०—१ अतिथि. २ आने वाला व्यक्ति. ३ अचानक होने वाला रोग ।

आगंध–सं०पु० [सं० अश्वगंधा] देखो 'आसगंध' ।

आग–सं०स्त्री०—१ अग्नि, ज्वाला ।

पर्याय०—देखो 'अगनी' ।

क्रि०प्र०—करणी-जळाणी-देणी-निकाळणी-पड़णी-बरसणी-बाळणी-बुझणी-भड़कणी-लगणी ।

मुहा०—१ आगबबूळौ होणौ—अत्यन्त क्रोधित होना. २ आग बुझणी—लड़ाई झगड़ा शांत होना, भूख शांत होना. ३ आग भड़कणी—लड़ाई पैदा होना. ४ आग में घी या पूळौ नांखणौ—कष्ट पर कष्ट देना, किसी के क्रोध को और भड़काना. ५ आग में कूदणौ—आफत में पड़ना, जानबूझ कर आफत मोल लेना. ६ आग लगणी—डाह या कुढ़न होना, क्रोधित होना, हृदय के किसी उद्गार का उमड़ना, बरबाद होना. ७ आग लगाणी—उपद्रव मचाना, पेट में गर्मी पैदा करना, व्याकुल करना, त्याग देना, झगड़ा बढ़ा देना, चुगलखोरी करना, नष्ट-भ्रष्ट करना. ८ आग लगाय नै तमासौ देखणौ—झगड़ा पैदा करके अपना मनोरंजन करना या मौज लेना. ९ आग लगाय नै पांणी लावण नै दौड़णौ—झगड़ा पैदा करके फिर उसे शांत करने की कोशिश करना ।

२ ताप, जलन. ३ कामाग्नि । (रू०भे० अग्ग)

आगड़, आगई–क्रि०वि०—अगाड़ी । उ०—हूं किम चालूं एकलौ, **आगइ** गोरी तीजइ परांण ।—वी.दे.

आगकुंड–सं०पु०—यज्ञकुंड ।

आगड़–सं०स्त्री०—चूल्हे के आगे का वह आयताकार भाग जहां राख एकत्रित होती है।

आगड़दि, आगड़दी–क्रि०वि०—आगे, अगाड़ी। उ०—आगड़दि भूत जोगण गण भैरव, आगड़दि अमर अपछर गण आंण।—र.रू.

आगड़ै–क्रि०वि०—अगाड़ी, सम्मुख।

आगड़ौ–क्रि०वि०—दूर। उ०—अगाड़ी थूं जा आगड़ौ फीटा पड़ै फिटोळबा, एक न एक देखौ अबे आपस देवै ओळबा।—ऊ.का.

(क्रि० पद—आगड़ौ जा, आगड़ौ बळ)

सं०पु०—१ पानी सींचते समय चक्की (गिर्री) के ऊपर रस्सी द्वारा पड़ने वाला चिन्ह. २ अनुमान, अंदाजा।

कहा०—कांटी रै बोविया री आगड़ां तक जोर—अगर कभी गोखरू (कांटी) पैर में चुभ भी जाय तो अपने छोटे कांटे की लंबाई से अधिक पैर में घुस कर नुकसान नहीं पहुँचा सकती, कोई व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही कार्य कर सकता है।

(मि० आंगळी सूज नै हाल कौ हूँ नी)

आगजंतर, आगजंत्र–सं०पु० [सं० अग्नि+यंत्र] अग्नियंत्र, बंदूक, तोप.

आगझाळ, आगझाळा–सं०स्त्री०[सं० अग्नि+ज्वाला] १ अग्नि, ज्वाला. २ अग्नि की लपट।

आगण–सं०स्त्री० [सं० आग्रहायण] १ मार्गशीर्ष का महीना (डि.को.) २ देखो 'आगड़'।

आगत–वि० [सं०] १ आया हुआ. प्राप्त. २ उपस्थित।

सं०पु०—वह फसल जो सबसे पहले बोई गई हो। (विलो० पाछत)

आगतरौ–सं०पु०—वह धान जो समय से कुछ पहले बोया हुआ हो। (विलो० पाछतरौ)

आगत-स्वागत–सं०पु०—देखो 'स्वागत'। उ०—तिहि भांति ब्राह्मण को आगत-स्वागत आतीथ धम कीधौ।—वेलि. टी.

आगतौ–वि० (स्त्री० आगती) देखो 'आखतौ'।

आगन–सं०स्त्री० [सं० अग्नि] अग्नि।

आगना–सं०स्त्री० [सं० आज्ञा] १ आदेश, हुक्म (अ.मा.) २ आज्ञा, इजाजत।

आगनि–सं०स्त्री० [सं० अग्नि] अग्नि। उ०—इहां आसोज मिळिया यें आगमि माहे जोति अधिक हुई छै।—वेलि. टी.

आगन्या–सं०स्त्री० [सं० आज्ञा] देखो 'आगना'।

आगबह–सं०पु० [सं० अग्निवह] धुंआ, धूम्र।

आगबोट–सं०पु० [सं० अग्नि+अं० बोट] भाप का जहाज अथवा नौका।

आगम–सं०पु० [सं०] १ आना, आगमन। उ०—सरसावै सारंगधर, मेले मारुत माय। भूप अवधचौ भरथ नूं, आगम कहियौ आय।—र.रू.

२ आमद, आमदनी, अर्थागम। उ०—चित सूं आगम चितवै, आ मजबूत उपाध, 'बंक' जुड़ै नंह वांछियो, इण कारण व्है आध।—बां.दा.

३ भविष्य, आने वाला। उ०—जद पाछौ कहियौ जसु आगम अकलाळै, बूकण री घर बोड नै कंई राखै काळै।—वी.मा.

(मि० अग्गम)

यौ०—आगमग्यांन, आगमबुद्धि, आगमसोची।

कहा०—१ अत पित वाळो आदमी, सोवै निंद्रा घोर, अणभणिया आगम कथै, रहै मेघ अति जोर—अधिक पित्त प्रकृति का व्यक्ति अगर अधिक एवं गहरी नींद सोता है तो (अपठित व्यक्तियों में यह प्रचलित है कि) वर्षा जोर की होगी. २ आगम सूझै सांडणी, दोड़ै थळां अपार, पग पटकै बैसे नहीं, जद मेह आवणहार—यदि ऊँटनी इधर-उधर दौड़ती फिरै, पैर पटके लेकिन बैठे नहीं तो वर्षा अवश्य आएगी. ३ बिगड़ै बासण चाक पर, मट्टी अधिक उभार, आरख आगम समझ कै, मेह कहै कुंभार—गीली मिट्टी के बर्तन चाक पर से नहीं उतरें किन्तु वहीं बिगड़ जावें तो कुम्हार कहता है कि वर्षा आई समझो. ४ व्रक्षन फळ विपरीत जब, उलट-पुलट लागंत, पड़ै काळ भयभीत यौं, आगम लिखियौ मित—यदि वृक्षों पर फल-फूल एक दूसरे के विपरीत उलटे-सुलटे लगें या वे विना ऋतु फलें तो भयंकर अकाल पड़ेगा।

४ भवितव्यता, होनी. ५ शास्त्र। उ०—सेस कूरम जितै समरम, इळा सुर ध्रम निगम आगम।—रा.रू. ६ प्रकृति और प्रत्यय के बीच होने वाले कार्य अर्थात् पद सिद्धि में आया हुआ वर्ण (व्याकरण) जैसे—समहर. ७ पुरुषों की बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला।

वि० [सं०] प्रथम, पहले। उ०—पाळ तणी परचार, कीधौ आगम कांमरौ। वरसतां घण वार, रुके न पांणी राजिया।—किरपारांम

आगमई–वि०—अग्नियुक्त, अग्निमय।

आगमग्यांनी, आगमजांण, आगमजांणी–सं०पु० [सं० आगमज्ञानी] भविष्य का ज्ञाता, होनहार या भविष्य जानने वाला।

आगमण, आगमणौ–सं०पु० [सं० आगमन] आना, आगमन। उ०—नस कियौ आगमण तेरे औरंग नये छिलते मक्खर पैले अछाया।—द.दा.

आगमवांणी–सं०स्त्री० [सं० अग्रिमवाणि] भविष्यवाणी।

आगमविसट, आगमविसटी–सं०स्त्री० [सं० अग्रिम दृष्टि] दूरदर्शिता।

वि० [सं० अग्रिम दृष्टि] दूरदर्शी।

आगमन–सं०पु० [सं०] आना। उ०—श्री क्रिसणदेव ब्राह्मण ने संहस्क्रत भाखा करि पूछै छै। तुम्हारौ आगमन क्यां हुऔ।—वेलि. टी.

आगमवक्ता–वि० [सं०] भविष्यवक्ता, ज्योतिषी।

आगमसोची–वि० [सं० अग्रिमसोची] दूरदर्शी, अग्रसोची।

आगमयूं–वि—आगत, आया हुआ। यत हूं कंवळूं गढ़ आगमयूं। कर कागद सूंप जुहार कियूं।—पा.प्र.

आगमि–वि० [सं० आगामी] देखो 'आगामी'। उ०—ससिपाळ कै आगमि भाग्य सुदी पाछै जाय रह्यौ थौ सु क्रस्णजी रै आगमि मांग कै पैंडै होय।—वेलि. टी.

आगम्म—देखो 'आगम'।

आगर–सं०पु० [सं० आकर] १ खान, कोष, खजाना. २ घर, गृह. ३ समूह, पुंज । उ०—मांन वडापरा मेर, मांन ऊंडापरा सागर । मांन दुजोधन, मांन, गुरा वदियौ आगर ।—बुधजी आसियौ

आगरणी–सं०स्त्री०—छः मास का गर्भ होने के बाद गर्भवती स्त्री को साध पुराने (इच्छा पूर्ति) का दिन, जब ससुराल की तरफ से उत्सव मनाया जाकर पौष्टिक भोजन बनाया जाता है । सीमतोन्नयन । (रू.भे. आघरणी) । उ०—सातमें महिने में आगरणी हुई । नव महिना पूरा हुवा ।—पलक दरियाव री बात

आगरबंध–सं०पु० (सं० आगलबंध] कंठमाला (अमरत)

आगराई–सं०पु०—आगरे का बना हुआ अफीम ।

आगळ–क्रि०वि०—अगाड़ी, आगे, सम्मुख । उ०—१ पदमणी आगळि घालइ छइ वाई । आगळ बइसी जीमावीयउ ।—वी.दे.

उ०—२ सौ मूरख संसार, कपट जिरा आगळ करै ।—किरपारांम

वि०—१ रक्षा करने वाला, रक्षक. २ विशेष, अधिक ।

सं०स्त्री० [सं० अर्गला] १ अर्गला, रोक. २ देखो आगळी (३)

आगळकूंची–सं०स्त्री०—अर्गला खोलने की एक प्रकार की चाबी जिसे कपाटों में बने एक छिद्र में डाल कर अन्दर की अर्गला खोली जा सकती है ।

आगळखूंटौ–सं०पु०—बुनने के निमित्त क्रमबद्ध किए हुए लंबे सीधे सूत (तांणी) को बांधने का खूंटा ।

आगलड़ौ–वि०—अगाड़ी का, आगे का । उ०—नागा नवळी नेह, जिरा तिरा सूं कीजै नहीं, लीजै आगलड़ा री छेह, आपतगा दीजै नहीं ।—ना वात

आगळणौ, आगळबौ–क्रि०अ०—ऊँट का कूदना ।

आगळतू–वि०—अधिक, आवश्यकता से अधिक ।

आगळसींगौ–सं०पु०—वह बैल जिसके सींग आगे की तरफ झुके हुए हों (अशुभ)

आगळि–क्रि०वि०—सामने, आगे, सम्मुख, अगाड़ी । उ०—सादल पीथल जोड़ सवाया, आगळि धणी वणी कळि आया ।—रा.रू.

आगळियार, आगळियाळ–वि०— अगुआ, अग्रगण्य, अग्रणी ।

उ०—१ आगळियार रुघावत ईखौ, सुरतौ विरतै सिंघ सरीखौ ।—रा.रू.

उ०—२ दत मोटा दिये वंस री दीपग, रिमां पछाड़ै सुजस रतौ । श्रो रड़मालां तरणौ आभरण, फौजां आगळियाळ फतौ ।—तेजसी खिड़ियौ

आगळिहार–वि०—देखो 'आगळियार' ।

आगळी–सं०स्त्री० [सं० अर्गला] १ देखो आगळौ' (पु०)

२ पसली के दर्द पर लगाया जाने वाला एक प्रकार का लेप ।

आगळीयाळ–वि०—देखो 'आगळियार' ।

आगळू–वि०—१ अधिक. २ आवश्यकता से अधिक ।

आगले, आगलै–वि०—अगले, पूर्व के, पहिले के ।

क्रि०वि०—आगे, अगाड़ी ।

आगळौ–सं०पु० (स्त्री० आगळी) चिटकनी, अर्गला ।

वि०—१ विशेष, अधिक । उ०—ढोला आमणादूमणौ, नख सूं खोदै भींत, हमधी कुरा छै आगळी, बसी तुहाळै चीत ।—ढो.मा.

कहा०—अेक अेक सूं आगळा ए पन्ना भुआ रा पूत—पन्ना बुआ के कुपुत्र एक एक से अधिक दुष्ट हैं, एक एक से बढ़ कर दुष्ट है । (बुरे व्यक्तियों के लिए)

२ अग्रणी, अग्रगण्य । उ०—थोड़ा बोलौ घरा सहौ नहचै जो नेठाह, जौ परवाड़ा आगळौ मित्र करीजै माह ।—हा.झा.

क्रि०वि०—अगाड़ी । उ०—चौमासे बादळा जिहीं फौजां रा समूह चालै, आगळी गयंद छाजै, अगाजै अपार ।—अज्ञात

आगलो, आगलौ–सं०पु० (स्त्री० आगली) (बहु० आगला) १ अगाड़ी का, आगे का, अग्रभाग का । उ०—ऊलटिया सिर आगरै अबदुल्ला 'अजमाल' । आगै पौहतै आगलौ वारग खांन दुभाल ।—रा.रू.

२ जो क्रम में वर्तमान के बाद पड़ता हो, दूसरा, अपर ।

उ०—वायस बीजउ नांम तैं आगलि लल्लउ ठवइ । जइ तूं हुई सुजांण तउ तूं वहिलउ मोकळे ।—ढो.मा.

कहा० १ आगले घर से खोटी क्यूं व्हौ हौ—यहां क्यों व्यर्थ में समय नष्ट कर रहे हो. आगे जाने पर शायद कुछ प्राप्त हो सके. २ सांमी लारलै गांव कूटीजनै जावै नै आगलै गांव सिद्ध—पाखंडी एक स्थान पर सजा पाकर भी अपने अवगुणों को छिपा कर दूसरे स्थान पर आदर प्राप्त कर सकता है । जो व्यक्ति एक स्थान पर बुरा समझा जाता है वह दूसरे स्थान पर अच्छा समझा जा सकता है ।

३ पूर्व जन्म का या पूर्व जन्म सम्बन्धी । उ०—कद मरै कुटिल औ काळ सूं कहे उडाऊं कागलो । नागणौ लार लूंठो नियण आंटो कोइक आगलौ ।—ऊ.का.

(यौ०—आगलौ भौ)

कहा०—१ आगला भौ रा बदळा किसा छूटै है ?—पूर्वजन्म में दूसरों को दुःख दिया है तो उसका बदला चुकाना ही पड़ता है. २ आगला भौ रा बदळा नहीं छूटै—देखो कहावत. (१) ३ आगला भौ रा बदळा है—पिछले जन्म के बदले (बदला लेने वाले) हैं । जब कोई सताता है तब ऐसा कहा जाता है । जब सन्तान होकर या सुयोग्य होकर माता-पिता के पहले मर जाती है तब भी कहा जाता है. ४ आगलै भौतर की मांगत चूकरणी—पूर्व जन्म की करणी का फल मिलना ।

४ पहिले का, पूर्ववर्ती, प्रथम, पिछला ।

कहा०—आगलौ पीसियौ खूट गियौ कंई—पहले का दुःख अथवा किसी बुरे काम का दिया हुआ दंड भूलने पर ।

५ विगत समय का, पुराना । (यौ० आगलौ समौ, आगलौ लोग)

६ आगामी, आने वाला, भविष्य ।

कहा०—आगली किरां ठा पड़ै है—भविष्य के सम्बन्ध में कौन कह सकता है ।

७ अगाड़ी, सामने, सम्मुख। उ०—आगळि पित मात रमंती अंगनि कांम विरांम छिपाड़ण काज।—वेलि.

कहा०—सासू आगली बहू है—इसे कोई कार्य करने के लिए दूसरे से आज्ञा लेनी पड़ती है। कोई कार्य करने में पूरी तरह से स्वतन्त्र नहीं है।

आगवण—देखो 'आगमण'।

आगवौ–वि०—अगुआ, मुखिया। उ०—तठै आगवौ खाग हूं छाग तोड़ै, चंडी काळिका मात रै सोण चोड़ै।—मे.म.

आगस–सं०पु०—१ अग्नि, आग. २ दोष, अपराध। उ०—बहुरि साह जसवंत बुलायौ, इहि आगस सौ प्हौत न आयौ।—वं.भा. ३ पाप।

आगस्त, आगस्ति–सं०पु० [सं० अगस्त्य] देखो 'अगसत'।

आगह–क्रि०वि०—पहिले, पूर्व। उ०—रतन छिपायौ क्यूं रहई, आगह बाचा कौ हीणौ छइ पूरव्यौ राइ।—वी.दे.

आगांमि, आगांमी–वि० [सं० आगामिन्] आने वाला, होनहार, भविष्य का या भविष्य संबंधी।

आगाऊ–वि०—अगाड़ी का, प्रथम।
सं०पु०—हरावल।

आगाड़ी–क्रि०वि०—देखो 'अगाड़ी'।

कहा०—फौज में पिछाड़ी भोज में आगाड़ी—कायर व्यक्ति के लिये प्रयुक्त।

आगाज–सं०पु० [सं० आग्नि=आग] १ क्रोध, रोष।

उ०—कहियउ तुम्हे माहरउ करउ, मारू मुझ कीजउ नातरउ। आपुं तउ हूं आधौराज, इणि परि घणा कीया आगाज।—ढो.मा.

सं०स्त्री० [सं० गर्जना] २ गर्जना, ध्वनि। उ०—किलकिल नाळि छूटी सू गोळां री आगाज सूं धरती धमकि नै रही छै।—रा.सा.सं.

आगापाछौ–क्रि०वि०—देखो 'आगौ-पाछौ'।

आगार–सं०पु० [सं०] १ घर, मकान। उ०—अर आपरा सांमी चाळुक्यराज भीम नूं प्रांण वचावण रै काज अभीस्ट आगार जावण रौ अवकास दियौ।—वं.भा. २ स्थान, स्थल. ३ खजाना।

आगाळी–वि०—१ आगे का, अगला. २ अधिक, विशेष।

आगासि, आगासी–सं०पु० [सं० आकाश] आकाश। उ०—भेटयां पातिक जाइ नासि, धोती ऊगाइ आगासि। साजां अंबाळू छइ हाथि, सख्य भणंता जाइ साथि।—कां.दे.प्र.

आगाहट, आगाहठ–सं०पु० [सं० अघात्य] वह भूमि जो किसी (प्राय: चारण) के अधिकार में चिरकाल के लिये हो और जिसे राजसत्ता पृथक न कर सके। चारणों के जागीरी के गांव। उ०—हजारां गयंद अव भिड़ज आगाहटां देसपत होड रां मांण दहिया—मांनसिंह रौ गीत

आगि–क्रि०वि०—१ अगाड़ी। उ०—त्रिणि फेरा लिधा तरणि आगि करि रघुनाथ।—रांमरासौ २ निकट, पास. ३ दूर।

सं०स्त्री० [सं० अग्नि] अग्नि, अनल। उ०—आग्या पाय अजीत री, लग्गा सूर धियागि। सिरि डेरां दळ सल्लळे, जळै प्रलै किरि आगि।
—रा.रू.

आगिम–क्रि०वि०—अग्र, आगे।

आगिन्या–सं०स्त्री० [सं० आज्ञा] आज्ञा (ह.नां.)

आगिमि–वि०—आगामी, आगे। उ०—आगिमि एक दीह असवार, मूंकेस्यां परिणवा विचार।—ढो.मा.

आगियाकारी–वि० [सं० आज्ञाकारी] आज्ञा का पालन करने वाला, आज्ञाकारी।

आगियौ–सं०पु०—१ जुगनु। उ०—तेजाळ जागिया कमंध तोर, आगिया दबे भूपाळ ओर।—वि.सं. २ छोटे बच्चों का एक रोग जिसमें शिर आदि पर फोड़े-फुंसी होते हैं. ३ एक प्रकार का पशुओं का रोग. ४ एक प्रकार की तांत्रिक या मंत्र-क्रिया जिससे दूरस्थ या निकट स्थान पर अग्नि पैदा की जाती है।

आगिलौ–वि०—१ देखो 'आगलौ'. २ विशिष्ट.

आगी–क्रि०वि०—देखो 'आगौ' (स्त्री०)
वि०–ऋतुमती, रजस्वला (स्त्री०)

आगीनै–क्रि०वि०—अगाड़ी, सामने।

आगीपाछ, आगीपाछी–सं०स्त्री०—१ चुगली, निंदा. २ इधर की बात उधर और उधर की बात इधर कहने का भाव।

आगीवांण–वि०—अगुआ, नेता। उ०—अठीनै स्वयंसेवकां रै दळ रौ रांमलो कप्तांन तौ बठीनै हरी अर रांमलै दोनां री वहुवां स्त्री स्वयंसेविकावां री आगीवांण।—वरसगांठ

आगूंच–क्रि०वि०—पहले से, पेशगी, पूर्व। उ०—थूं आई थेट घरा आगूंच, पळकती राखड़ियां भर थाळ।—सांझ

आगू–क्रि०वि०—१ पहले से, पेशगी, पूर्व। उ०—कहतौ थूं आगू कथन 'पाल' अमीणा पीर।—पा.प्र. २ अगाड़ी।

आगूकथ–सं०स्त्री०—भविष्यवाणी। उ०—अजन अगंजी गजन हर, गाहया वपन गिरांह। चवियौ भोपै भाकचंद, आगूकथ अवरांह।
—पा.प्र.

आगूलौ–क्रि०वि०—आगे, सामने।

आगूनै–क्रि०वि०—आगे वाला, अगला। उ०—कनै सूं मंगतवाड़ निकळी'र किणी कयौ—भाजो-भाजो, आगूनै चौक में चिणा बंटै है।
—वरसगांठ.

आगे–क्रि०वि०—देखो 'आगै'।

आगेड़ो–वि०—अधिक, विशेष।

उ०—पूत सपूती आगेड़ो बहू सांवत दे लियो है मोलाय, म्हारे नवल वनड़े रा सेवरा।—लो.गी.

आगेटी–सं०स्त्री०—बाजरी या ज्वार के कच्चे भुट्टे सेंकने वाली अग्नि जो हल्की हल्की जलती होती है।

आगेवांण–वि०—देखो 'आगीवांण'।

आगै–क्रि०वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग] १ और अधिक दूरी पर. २ सम्मुख, सामने. ३ जीते जी, जीवन काल में. ४ इसके पीछे, इसके बाद, अगाड़ी।

कहा०—१ आगै कुवौ (खाडौ) लारै खाई—आगे कुआ, पीछे खंदक दोनों ओर संकट है. २ आगै गधा आवै तौ लारै घोड़ां री आस कैड़ी—अगर आरंभ ही अशुभ हो तो अंत के शुभ होने की कल्पना कैसे की जा सकती है. ३ आगै धंधा पीछै धंधा, धंधै पर सिंवरै ऊ साहब का बंदा—दुनिया में काम-काज तो लगा ही रहता है, काम-काज में फँसे रहने पर भी जो परमात्मा को नहीं भूले वही ईश्वर का सच्चा भक्त है।

५ पूर्व, पहले।

कहा०—१ आगै तौ बाबाजी फूटरा घणा नै पछै लगायली भभूत—एक तो वैसे ही कुरूप है, उसके अनन्तर भस्मी और लगा ली, अब उसके रूप का क्या कहना? (व्यंग). २ आगै ही सोर अपार फेर अंगीरा ऊरिया—पड़े हुए बारूद में अग्नि देना, आग लगाना, झगड़ा कराना. ३ आगै हुता जैड़ा लारै हुय गया—जैसे आगे थे वैसे ही पीछे हो गये—पूर्वजों के गुणों के समान संतान होने पर।

६ भविष्य में, आगे को।

कहा०—१ आगै आगै गोरख जागै—भविष्य की चिंता छोड़ वर्तमान की चिंता करो, आगे गुरु गोरखनाथजी समर्थ हैं. २ आगै एक घड़ी री ही को दीसै नी—भविष्य में घड़ी भर बाद भी क्या होगा सो अज्ञात है, भविष्य का कुछ पता नहीं, घड़ी भर बाद क्या होगा इसका भी पता नहीं. ३ आगै री आगै दीसै—भविष्य की चिंता क्यों की जाय, समय आने पर देखा जायगा।

मुहा०—१ आगै-आगै—शनैः-शनैः. २ आगै आवणौ—सामने आना. ३ आगै करणौ—सामने करना. ४ आगै धरणौ—अपना आदर्श बनाना, पेश करना. ५ आगै नांखणौ—बिना प्रेम से दे देना. ६ आगै-पीछै न होणौ—कुल में कोई न होना. ७ आगै-पीछै फिरणौ—सदा साथ रह कर खुशामद करना सदा साथ रहना. ८ आगै पीछै रे'णौ—देखो 'आगै-पीछै फिरणौ'. ९ आगै-पीछै होणौ—कुल में और लोगों का होना. १० आगै बढ़णौ—पथ-प्रदर्शन करना, मुकाबिला करना, प्रगति करना, सामने आना. ११ आगै रौ पग लारै पड़णौ—अवनति होना. १२ आगै लारै न होणौ—कुल में कोई न होना. १३ आगै लारै फिरणौ—सदा साथ रह कर खुशामद करना, सदा साथ रहना. १४ आगै लारै रे'णौ—देखो 'आगै लारै फिरणौ'. १५ आगै पीछै होणौ—कुल में और लोगों का होना. १६ आगै होयनै लेवणौ—अच्छी तरह आगे बढ़कर किसी आते व्यक्ति का स्वागत करना। (रू.भे. आगे, आग)

आगै-पाछै—क्रि वि०—१ एक के पीछे एक, एक के बाद दूसरा, क्रम से. २ पहले या बाद को. ३ आसपास।

आगोतर—सं०पु०—१ अगला जन्म, भविष्य में होने वाला जन्म. २ पूर्व जन्म।

आगोर—सं०स्त्री०—१ जलाशय के पास की भूमि जहाँ वर्षा काल में पानी एकत्रित होकर उस जलाशय में आता हो. २ सारंगी में ठाठ के तार की ओर से तांत का पहिला तार।

आगौ—क्रि०वि०—देखो 'आघौ'। उ०—सारां ही नै देऊं छूं, लेणनै हाथ आगौ न करूं।—पलक दरियाव री बात

आगौ-कढ़ियौ—सं०पु०—१ बेगार. २ बिना मन किया हुआ उल्टा सीधा कार्य।

आगौ-पाछौ—सं०पु०—इधर-उधर करने की क्रिया या भाव।

आगौ-पीछौ—सं०पु०—१ आगा-पीछा, हिचक, दुविधा. २ शरीर का आगे और पीछे का भाग।

आगौलग, आगौलगा—क्रि०वि०—१ निरंतर, लगातार, अंतर रहित, क्रमशः। उ०—कहै दुनियांण ऐ आगौलगा कथन, रिडमलां थापिया जिकै राजा।—महाराजा मांनसिंह

आग्नेय—वि० [सं० आग्नेय] १ अग्नि का या अग्नि संबंधी. २ जिससे अग्नि निकले।

सं०पु०—१ अग्नि-पुत्र कार्तिकेय. २ ज्वालामुखी पर्वत. ३ एक प्रकार के अस्त्र जिनके चलाने पर आग निकलती थी। (प्राचीन)

४ पूर्व और दक्षिण के मध्य की एक दिशा।

आग्नेयास्त्र—सं०पु० [सं०] देखो 'आग्नेय' (३)

आग्या—सं०स्त्री० [सं०आज्ञा] १ आदेश, हुक्म. २ अनुमति. ३ शासन।

पर्याय०—आइस, आगिना, आदेस, जुसोई, जोग, नियोग, फुरमांण, हुकम, सासन।

क्रि०प्र०—करणी-के'णी-देणी-लेणी-होणी। (रू०भे० अगिया, अग्या)

यौ०—आग्याकारी, आग्याचक्र, आग्यापत्र, आग्यापाळक, आग्या-पाळण, आग्याभंग।

आग्याकारी—वि० [सं० आज्ञाकारी] आज्ञा का पालन करने वाला, आज्ञा मानने वाला, सेवक, दास, आज्ञानुवर्ती।

आग्याचक्र—सं०पु० [सं० आज्ञाचक्र] राजस्थानी के अनुसार योग या तंत्र में माने गए आठ कमल या चक्रों में से छठा चक्र जो सुषुम्ना नाड़ी के मध्य दोनों भौहों के बीच दो दल के कमल के आकार का माना जाता है। इसके जप १०००, रंग लाल तथा अक्षर दो होते हैं।

आग्यापत्र—सं०पु०—वह पत्र जिसमें किसी प्रकार का आदेश हो।

आग्यापाळक—वि०—आज्ञा का पालन करने वाला।

आग्यापाळण—सं०पु० [सं० आज्ञापालन] आज्ञा के अनुसार कार्य करना, फरमाबरदारी।

आग्याभंग—सं०पु० [सं०] आज्ञा न मानना, हुक्म-उदूली।

आग्रह—सं०पु०—१ अनुरोध. २ हठ, जिद. ३ तत्परता।

आग्राज—सं०स्त्री० [सं० आगर्जन] जोशपूर्ण आवाज, गर्जना, दहाड़।

उ०—कुमलिया पीड़ सिर विकट आग्राज कर कड़ाछियौ कांन नट राज काळौ।—बां.दा.

आग्राजणौ, आग्राजबौ—क्रि०अ०—गरजना, दहाड़ना।

आघ–सं०पु० [सं० अर्घ=पूजा, प्रा० अग्घ] १ मान, प्रतिष्ठा, सत्कार, इज्जत। उ०—१ झिलाय राजावत ज्यांरै मनीजता। महाराज ईसरीसिंघजी री बेटी कछवाहीजी रौ **आघ** कम हुतौ।—बां.दा.ख्या. उ०—२ रावतियां पग रोपसी वतळासी यह बाघ। बौहळौ पाटा बांधणां, आछौ होसी **आघ**।—बां.दा. [सं० अघ] २ पाप, दुष्कर्म। उ०—पुहकर सुथांन काती सु प्रव, जास जात्र ग्रहि नर जुड़ै। वाराह देव दीठां वदन, महा **आघ** दाळद मुड़ै।—जग्गी खिड़ियौ

आघउ–क्रि०वि०—दूर, अलग, फासले पर। उ०—किम आवेस्यइ इक दिन माहि, लगन दीह वहि **आघउ** थाहि।—ढो.मा.

आघरत–सं०पु० [सं० अर्ह=पूजायाम्] आदर, सत्कार।

आघड़ौ–क्रि०वि० (स्त्री० आघड़ी) दूर, अलग।

क्रि०पद—आघड़ौ जा, आघड़ौ बळ। उ०—नागड़ौ तौई देखौ निलज अमल न छोडै **आघड़ौ**।—ऊ.का.

आघण–सं०पु०—अगहन मास। उ०—**आघण** कर दिन छोटा होई, सखी संदेसौ मोकळउ कोई।—वी.दे.

आघतौ—देखो 'आखतौ'।

आघमण, आघमणौ, आघमनौ–वि०—१ अग्रणी. २ उदारचित. ३ उमंगवाला, जोशीला. ४ स्वागत करने वाला।

आघरणी—देखो 'आगरणी'।

आघसणौ, आघसबौ–क्रि०अ०स०—घर्षण करना। उ०—ठहक गजाघंट वीर नामा पमंग हड़हड़ां त्रहक तासा तबल आभ **आघसतड़ा**।

—माधौसिंह सीसोदिया रौ गीत

आघसतड़ौ–सं०पु०—१ अगस्त्य ऋषि. २ अगस्त्य नक्षत्र।

आघांणगुण, आघांणघुण–सं०पु०—भौरा, भ्रमर (अ.मा.)

आघाट–सं०पु०—देखो 'आगाहट'।

आघात–वि०—भयंकर। उ०—हथनाळि, हवाई, कुहकबांण्यां कौ सोर आघात होण लागौ।—वेलि. टी.

सं०पु० [सं०] १ चोट, प्रहार, आक्रमण. २ ठोकर।

उ०—मेघ जु वरसण लागा। तांह का पांणी परवतां की कंदरा थे अर नाळां थे पांणी चाल्यौ छै सु **आघांत** सबद हुओ छै।

—वेलि. टी.

३ टक्कर, धक्का. ४ ध्वनि। उ०—हेक तरफ समुद्र की लहरी कौ **आघात** सुणै।—वेलि.टी.

आघार–सं०पु० [सं०] १ घूप. २ घृत (अ.मा.). ३ छिड़काव. ४ हवि, मंत्र विशेष से किसी देव विशेष को घृत देना।

आघेरि, आघेरी–क्रि०वि०—दूर। उ०—म्हे कुरझां सरवर-तणी, पांखां किणहिं न देस। भरिया सर देखी रहां, उड **आघेरि** वहेस।

—ढो.मा.

आघै–क्रि०वि०—देखो 'आगै'। उ०—**आघै** गयो आगै देखै तो कासूं कोट छै।—चौबोली

आघौ–क्रि०वि० (स्त्री० आघी) (बहु० आघा) १ आगे, अगाड़ी।

उ०—उरड़ अकुळाय **आघा** पड़ै आय अत।

—ऊ.का.

कहा०—१ आघा पधारौ कूं कूं रा पगलियां—अपने कुंकुमचर्चित चरणों को दूर हटाओ, आपका शुभागमन न होना ही अच्छा है. २ आघौ दियौ पाछौ आवै (पड़ै)—दूर हटाने पर भी वापस लौट आता है (धन, संपत्ति), अत्यंत संपत्तिशाली के लिए.

२ दूर, फासले पर। उ०—घड़ी दोय उठै लागी, इतरै **आघौ** रह्यौ थौ।—पलक दरियाव री बात

कहा०—१ आघा नैड़ा ही को लागै नी—बिल्कुल संबंध न होने पर। २ आघा रह्यां सूं हेत वधै—दूर रहने से प्रेम बढ़ता है। विरह में प्रेम बढ़ता है।

३ पृथक, अलग। उ०—किम आवेस्यइ इक दिन माहि, लगन दीह वहि **आघउ** थाइ।—ढो.मा. ४ इस ओर, उस ओर. ५ निकट, पास। उ०—ठाकुर को प्रताप ज हुऔ तिणि ही तौ सीत पाल्यौ **आघौ** आवण न दीयौ।—वेलि. टी.

आघ्रात–सं०पु० [सं०] ग्रहण का एक भेद जिसमें चंद्र मंडल वा सूर्य्य मंडल एक ओर मलिन दीख पड़ता है। कहा जाता है कि इससे अच्छी वर्षा होती है।

आड़ंग–सं०पु०—वर्षा के आगमन की सूचना देने वाली गर्मी, उमस।

उ०—१ दुसमण री क्रपा बुरी, भली सैण री त्रास।
आड़ंग कर गरमी करै, जद वरसण री आस।

२ सु मेघ को **आड़ंग** जांणै जोगिणी आवी छै।—वेलि. टी.

आड़त–सं०स्त्री०—१ किसी दूसरे व्यापारी के माल को रख कर उसके कहने के अनुसार ही उसकी बिक्री कराने की व्यवस्था करने का धंधा, आढ़त. २ वह स्थान जहां ऐसी आढ़त का माल रक्खा जाता हो. ३ इस प्रकार आढ़त के द्वारा बिक्री कराने के बदले मिलने वाला धन, कमीशन, दस्तूरी. ४ पुराने समय में लिया जाने वाला सरकारी लगान जो केवल सांभर में ही वसूल किया जाता था. ५ गरज, आवश्यकता।

कहा०—आड़त मोटी आपरी, ज्यां घर मांदा पूत। भादां छाछ न घालता, जेठां घालै दूध।—जो कभी किसी की गरज न करता हो उसे भी आवश्यकता पड़ने पर बहुत खुशामद करनी पड़ती है।

आड़तियौ–सं०पु०—आड़त (देखो 'आड़त' [१]) का व्यवसाय करने वाला व्यक्ति। कमीशन लेकर किसी व्यापारी के माल की बिक्री कराने वाला।

आड़पियौ, आड़पीयौ–वि०—अप्राप्य, नहीं मिलने वाला। उ०—श्री गढ़ कहै दुनी **आड़पियौ**, अणगढ़ रांण थयो अदतार। खीजै गयौ खजानौ खोयौ, महमद सरखौ मांगणीयार।—अज्ञात

आड़ा-चौताळौ–सं०पु०—१४ मात्राओं की ताल।

आड़ाजीत–सं०पु०—योद्धा, वीर। उ०—**आड़ाजीत** कडाल ठहकै चाळ बांधपूरा खूंद चा त्रंबाळ खवां रणकै अखंड।—पहाड़खां आढ़ौ (मि. आडाजीत)

आड़ी–सं०स्त्री०—१ जोड़ी, युग्म, बराबर की। उ०—१ सुंदर सकुळीणी झीणी साड़ी में। जुलफां सपणीं जिम अपणी **आड़ी** में।—ऊ.का. उ०—२ धणी मौ रांम बखतौ तूझ धणी, उभै घर बरोबर समर **आड़ी**।—पहाड़खां आढ़ो
२ तबला, मृदंग आदि बजाने की एक रीति या ढंग।

आड़ीगारौ–सं०पु०—कलहप्रिय, झगड़ालू। **आड़ीगारा** चावचंडां भू दंडां भाळता एहां। दूठ राड़ीगारा वाळा चालता देसोत।
—महाराजा मांनसिंह

आड़ीवाळ–वि०—१ बराबर, समान. २ समवयस्क, हमउम्र।

आड़ू–वि०—१ उद्दंड. २ हठीला. ३ गँवार।
सं०पु० [सं० अंड] एक प्रकार के खटमीठे स्वाद वाला एक फल।

आड़ै-पाड़ै–क्रि०वि०—१ आस-पास, अगल-बगल. २ समीप।

आड़ो-पंचताळ–सं०पु०—संगीतके अंतर्गत पांच आघात और नौ मात्राओं का एक ताल।

आड़ोस-पाड़ोस–सं०पु० [सं० आसन्न पार्श्व] देखो 'अड़ोस-पड़ोस'।

आड़ोसी-पाड़ोसी–सं०पु०—देखो 'अड़ोसी-पड़ोसी'।

आड़ौ–सं०पु०—१ किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये किया जाने वाला बालहठ. २ युद्ध।

आचंत–वि०—शोभायमान।
क्रि०—है।

आच–सं०पु०—१ हाथ। उ०—**आच** निज जनक नृप लिखे कागद अतुर, अवधपुर अवधपुर अवधपुर अवधपुर।—र.रू.
२ समुद्र, सागर (ह.नां., ना.डि.को.)

आचगळ, आचगळौ–वि०—दृढ़, अटल, अडिग। उ०—धर तोमर खग धार पमंगां पाछटै। **आचगळा** अखड़ैत असंमर आछटै।
—किसोरदांन बारहठ

आचप्रभव–सं०पु०—राजपूत, क्षत्रिय (डि.को.)

आचमण–सं०पु०—देखो 'आचमन'।

आचमणौ, आचमबौ–क्रि०स०—आचमन करना, भक्षण करना। उ०—बूकड़ा बटक गूधा गटक लिये बळ। सह कटक **आचमै** गजां सहतौ।—झाला राजा राघवदेव रौ गीत

आचमन–सं०पु० [सं०] पूजा या धार्मिक कार्य के प्रारम्भ में दाहिने हाथ से थोड़ा जल लेकर पीना, जल पीना।

आचमनी–सं०स्त्री०—कलछी के आकार का एक प्रकार का छोटा सा चम्मच जिसे पूजा के समय पीने से अर्घ्य देने के लिए पंचपात्र में रखते हैं।

आचमन्न–सं०पु०—देखो 'आचमन'।

आचरज–सं०पु०—आश्चर्य, अचरज, अचंभा। उ०—कवण मोद जुत जगत में कह **आचरज** लखाय।—स्वरूपदास स्वांमी

आचरण–सं०पु० [सं०] १ अनुष्ठान, व्यवहार, बर्ताव, चाल-चलन, आचार-विचार, आचार शुद्धि। उ०—प्रम कमधज जिण वडिम पूजतौ आप वडिम सुजि **आचरण**।
—राठौड़ जैमल वीरमदेवोत रौ गीत
२ रीति-नीति. ३ चिन्ह, लक्षण।

आचरणौ, आचरबौ–क्रि०स० [सं० आ+चर] १ व्यवहार में लाना, उपयोग करना। उ०—भला भला ताजी चढ़ै। **आचरै** बीड़ा पाका पांन।—वी.दे.
२ खाना, भक्षण करना। उ०—रहै भूखौ बनराव, अलबत घास न आचरे। घाले हाथळ घाव, मैंगळ ऊपर मोतिया।—रायसिंह सांदू

आचरत–सं०पु०—१ जाना. २ व्यवहार करना।

आचरियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ व्यवहार में लाया हुआ, उपयोग किया हुआ. २ खाया हुआ।

आचवणौ, आचवबौ–क्रि०स०—आचमन करना।
आचवणहार-हारौ (हारी), आचवणियौ–वि०—आचमन करने वाला।

आचवियोड़ौ–भू०का०कृ०—आचमन किया हुआ (स्त्री० आचवियोड़ी)

आचार–सं०पु० [सं०] १ चाल-ढाल, रहन-सहन, व्यवहार। उ०—कुळवंती सूं क्रीत रौ, उलटौ है **आचार**। वा न तजै घर आपरौ, जग इण रौ संचार।—बां.दा. २ चरित्र, शील। उ०—थारे सार आधार उमेदपणी राह थेटा 'लछा' मूंछां पळेटा दे रही आडी लीह।—कमजी दधवाड़ियौ। ३ रीति-रस्म. ४ स्नान (अनुष्ठानादिक) ५ आचमन. ६ दान-पुण्य। उ०—समहर नै **आचार**, बेळा मन आघौ बधै, समझै कीरति सार, रंग छै ज्यांनै राजिया।—किरपारांम
७ नियम, लक्षण (पिं.प्र.)
[फा० अचार] ८ मसालों के साथ तेल में रख कर खट्टा किया हुआ आम आदि फल, कचूमर। उ०—घ्रत पूरित रस जेण घण, अन मिस्टांन अपार। तरकारी सुथरी अतर, अति सुंदर **आचार**।—रा.रू.
९ शुद्धि, सफाई। उ०—जोवै न कुळ **आचार** अली है, औ तौ नहीं गुण रूप अपार। हां हे हरि रीझै नेह निहार, हां हे औ तौ भगति वस भरतार।—गी.रा.

आचारगळौ–वि०—१ विचारवान, बुद्धिमान. २ वीर साहसी. ३ दृढ़, मजबूत।

आचारज–सं०पु० [सं० आचार्य] १ आचार्य, गुरु, पंडित, विद्वान (ह.नां.) उ०—मालम जोसी देखम व्यास, माघ **आचारज** कवि कालिदास।
—वी.दे.
२ शुक्राचार्य. ३ कवि (अ.मा.). ४ मृत्योपरांत क्रिया-कर्म कराने वाली एक जाति विशेष अथवा इस जाति का व्यक्ति।

आचारजी–सं०पु० [सं० आचार्य] १ पुरोहित, आचार्य. २ आचार्य का काम।

आचारणौ, आचारबौ–क्रि०स०—१ उपभोग करना, इस्तेमाल करना। उ०—रण भागा साह तणा दळ 'रांमा', जुग राखण अखियात जुई। उसरै घास मुखै **आचरियौ**, हरणी ताय दूबळी हुई।
—**दवौ दूहतौ**

२ आचरण करना।

आचारवांन–वि० [सं० आचारवान] १ पवित्रता से रहने वाला, सदाचारी. २ शुद्धाचरण या शुभाचार वाला।

आचार-विचार–सं०पु०यौ० [सं०] १ आचार और विचार, चरित्र और मन के सद्‌भाव. २ चाल-ढाल, रहने की सफाई. ३ शौच. ४ व्यवहार।

आचार-विरुद्ध–वि० [सं०] कुरीति, व्यवहार-विरुद्ध।

आचारवेदी–सं०पु० [सं०] भारतवर्ष (डिं.को.)

आचारहीण–वि०—आचारभ्रष्ट, आचारहीन।

आचाराज–सं०पु०—देखो 'आचारज'।

आचारि–सं०पु०—१ दान. २ दातार होने का भाव। उ०—ऊंनड़ जेवही आचारि अपहड़ भड़ निवड़ भारी।—ल.पिं.

आचारिज–सं०पु०—देखो 'आचारज'। उ०—त्रिकाळग्य तत जांण वांणि जोतिस ततवेता, आचारिज रिख उग्र जिकै इक्खज गुण जेता।—रा.रू.

आचारी–वि० [सं० आचारिन्] १ आचारवान, शास्त्रानुगामी. २ चतुर, दक्ष. ३ चरित्रवान, सच्चरित्र, सदाचारी. ४. दातार, दानी। [रा०] ५ समान, तुल्य, बराबर. ६ भोजन में छुआछूत का परहेज करने वाला।

सं०पु०—१ रामानुजाचार्य के सम्प्रदाय का वैष्णव. २ अन्त्येष्टी क्रिया कराने वाला व्यक्ति।

आचारीक–वि० सं० आचार+ईक रा० प्र०] १ आचार्य, दक्ष, चतुर. २ दातार। उ०—थारी रीझां सुणं सारै अचंभौ जिहांन थाई। आचारीक भारी सै उदाई भली आथ।

—रांमकरण महड़ू

आचारयविद्या–सं०स्त्री०—पुरुषों की बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला।

आचि–सं०पु०—हाथ (ल.पिं.)

आचू–सं०पु०—हाथ। उ०—जिस सायत परदळ के विगारू......अंग के ओनाड़ आचू के उदार काछवाचू के अडोल।—र.रू.

आच्छादन–सं०पु० [सं०] १ ढकना. २ वस्त्र, कपड़ा।

आच्छौ–वि०—देखो 'आछौ'।

आछंटणौ, आछंटबौ–क्रि०स०—दूर फेंकना। उ०—राती वरड़ी रौ पांडरौ नीर पवन रौ मारियौ फीण आछंटतौ थकौ झोला खाय रह्यौ छै।—रा.सा.सं.

आछ–सं०स्त्री०—छाछ (मट्ठा) को बिना हिलाए कुछ देर पड़ी रखने पर उस पर ऊपर आने वाला पानी या पानी के समान द्रव्य पदार्थ जो छाछ से अलग सा मालूम होता है। उ०—आछ रांमदे पीवण अटकी, दूभां नाभै घाली मटकी।—ऊ.का.

आछउ–वि०—अच्छा, सुंदर। उ०—थां सूतां म्है चालिस्यां, एह निचिंती होइ। रइबारी ढोलउ कहइ, करहउ आछउ जोइ।

—ढो.मा.

आछट–सं०स्त्री०—झटका, धक्का, पछाट, आघात।

क्रि०वि०—एकदम बड़े वेग के साथ। उ०—इण आछटनै तरवार काढ़ी, सोर हुवौ।—नैणसी

आछटणौ, आछटबौ–क्रि०स०—पछाड़ना, प्रहार करना।

उ०—जेठांणी भूलौ हमें, खरच दिखांणी रीस। देखौ देवर आछटै, हाथ्यां हाथळ तीस।—बी.स.

उ०—२ आव रै जोर मिरजा तणै आछटी। भाचरै चाचरै बीज भटकी।—गोरधन बोगसौ

आछटणहार-हारौ (हारी), आछटणियौ–वि०—पछाड़ने या प्रहार करने वाला।

आछटिओड़ौ-आछटियोड़ौ-आछटयोड़ौ–भू०का०कृ०।

आछटीजणौ, आछटीजबौ–कर्म वा०।

आछटियोड़ौ–भू०का०कृ०—पछाड़ा हुआ, प्रहार किया हुआ। (स्त्री–आछटियोड़ी)

आछन–सं०स्त्री० [सं० आच्छन्न] छिप कर रहने का भाव।

उ०—बारह मासां बीह, पांडव ही रहिया प्रछन। दुरगौ हेकौ दीह, आछन रह्यौ न आसवत।—अज्ञात

आछन्न–क्रि०वि० [सं० आसन्न] पास, निकट। उ०—ज्यां आछन्ना दूरि थकां भौ पासि।—हा.झा.

आछयौ–वि० [सं० अच्छ] १ अच्छा, उत्तम, ठीक (अमरत) २ स्वस्थ।

आछाद–वि० [सं० आच्छादित] ढका हुआ, आवृत्त, छिपा हुआ, तिरोहित।

आछादणौ, आछादबौ–क्रि०स०—आच्छादित करना, ढकना (पा.प्र.)

उ०—सूरय खेहि करी आछाद्यउ।—कां.दे.प्र.

आछादित–वि० [सं० आच्छादित] छाया या ढंका हुआ।

उ०—छत्र रंग रग का इतना ऊभा हुआ छै सु आकास आछादित हुऔ छै।—वेलि. टी.

आछापण, आछापणौ–सं०पु०—अच्छापन, उत्तमता, अच्छाई।

आछी–सं०स्त्री०—१ भलाई. २ आवड़देवी की बहिन तथा मामड़ की पुत्री जो देवी का अवतार मानी जाती है।

वि०स्त्री०—देखो 'आछौ' (स्त्री०) उ०—चतुरां क्यूं ऊंडी चिंता चांपां री, आछी ईसुर री भूंडी आंपां री।—ऊ.का.

आछीसिल–सं०पु० [आछी=श्वेत+सिल=सिला] १ स्फटिकमणि. २ स्फटिक सिला। उ०—बीच बिचाळै मरकत-चौकी जेथ सुहावै। आछीसिल पर कनक-छड़ी पळकीज लखावै।—मेघ०

आछेली–वि०स्त्री०—अच्छी, श्रेष्ठ। उ०—नारायणी सिला भू नाचेली नरत्याद पारायणी प्रवाड़ां आछेली दसादेण पातां।

—नवलजी लाळस

आछोड़ी–सं०स्त्री०—१ बालू, रेत. २ शक्कर, चीनी. ३ ज्वार (सफेद)

वि०—अच्छा, भला, ठीक, सुंदर (अल्पा०) (पु० आछोड़ौ)

उ०—ऐहळा जाय उपाय, आछोड़ी करणी अहर। दुस्ट किणी ही दाय, राजी हुवै न राजिया।—किरपारांम

आछोड़ौ–वि०—अच्छा, भला, ठीक, सुंदर (अल्पा०) (स्त्री० आछोड़ी)
उ०—आछोड़ा ढिग आय, यों आछा भेळा हुवै। ज्यूं सागर में जाय, रळै नदी जळ राजिया।—किरपारांम

आछौ, आछ्यौ–वि० (स्त्री० आछी) १ अच्छा, सुंदर, भला, उत्तम (डिं.को.) उ०—बणियौ नहीं आछौ कांम, बीर यूंही बीती बेहड़ली।—ऊ.का.

मुहा०—१ आछी करी—अच्छा कार्य किया (व्यंग्य), बहुत बुरा किया। २ आछी पदराई—अच्छी रक्खी। (व्यंग्य)

कहा०—१ आछी जीण सूं घोड़ौ आछौ कौ गिणीजैनी—अच्छी जीन से घोड़ा अच्छा नहीं गिना जाता, वाह्य वेश अच्छा होने पर भी निर्गुणी गुणवान नहीं समझा जा सकता. २ आछी बात लोकीक री है—उत्तम एवं भला वचन ईश्वरीय वचन के समान होता है, दुनिया को जो भली लगे वही बात उत्तम होती है. ३ आछौ फूल महेस चढ़ै—अच्छे फूल महादेवजी पर चढ़ते हैं, भली वस्तुएं भलों को दी जाती हैं।

२ स्वस्थ, नीरोग।

क्रि०प्र०—करणौ-होणौ।

३ श्वेत, सफेद।

(अल्पा०—आछोड़ौ)

आज–क्रि०वि० [सं० अद्य, पा० अज्ज] वर्तमान दिन में, जो दिन बीत रहा है उसमें, इन दिनों, वर्तमान समय में, अब।

कहा०—१ आज अमां नै काल तमां—देखो 'आज हमां तौ काल तमां'. २ आज मूंडौ देखीजै है सा—बहुत दिनों के बाद अब मिले हैं, अधिक समय के बाद मिलने पर. ३ आज मेरी मंगणी, कल मेरा ब्याव, टूट गई टंगड़ी रह गया ब्याव—आज मेरी मँगनी है, कल मेरा विवाह होगा, इस प्रकार सोचते-सोचते टांग टूट गई और विवाह धरा रह गया। मनुष्य सोचता है कुछ, होता है कुछ, भविष्य का कुछ पता नहीं. ४ आज सूं ही काल—क्या अब हम किसी कार्य के न रहे, किसी के द्वारा अवहेलना करने पर. ५ आज हमां तौ काल तमां—आज हमको तो कल तुमको (काम पड़ेगा), संसार में दूसरे से काम पड़ता ही रहता है।

सं०पु० [सं० आजि] घृत (अ.मा.), युद्ध।

आजकल, आजकाल–क्रि०वि०यौ०—इन दिनों में, वर्तमान समय में, कुछ दिनों में या कुछ समय में।

आजगव–सं०पु० [सं० अजगव] शिवजी का धनुष।

आजजुगाद–क्रि०वि०—परम्परा से।

आजन्म–क्रि०वि० [सं०] पूरे जीवन भर, जिंदगी भर, आजीवन।

आजम–वि० [अ० अजम] बहुत बड़ा, महान।

आजमाइस–सं०स्त्री० [फा० आजमाइश] परीक्षा, इम्तिहान।

आजमाणौ, आजमाबौ–क्रि०स०—आजमाइश करना, परखना, जांच करना, परीक्षा करना।

आजमाणहार-हारौ (हारी), आजमाणियौ—आजमाने वाला।

आजमायोड़ौ–भू०का०कृ०—आजमाया हुआ।

आजमावणौ-आजमावबौ—(रू.भे.)

आजमायोड़ौ–भू०का०कृ०—आजमाइश किया हुआ, परीक्षित। (स्त्री० आजमायोड़ी)

आजमावणौ, आजमावबौ–क्रि०स०—देखो 'आजमाणौ' (रू०भे०)

आजमूदा–वि० [फा०] परीक्षित, आजमाया हुआ।

आजलूं–क्रि०वि०—आज लौं, आज तक। उ०—और की निहार ऐब आजलूं जियौ। आपने किये कि ओर फोर तूं हियौ।—ऊ.का

आजांन–वि० [सं० आजानु] १ जांघ या घुटनों तक लंबा. २ आजानुबाहु।

आजांनदेव–सं०पु० [सं० आजानदेव] सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने वाले देवता।

आजांनबाह, आजांनबाहु, आजांनबाहू, आजांनभुज, आजांनबाळौ–सं०पु० [सं० आजानुबाहु] जिसके बाहु या हाथ जानु तक लम्बे हों, जिसके हाथ घुटनों तक पहुँचें, वीर, शूर, विशालबाहु।

आजांनु–वि०—देखो 'आजांन'।

आजांनुबाहु–वि०—देखो 'आजांनबाहु'।

आजाजीत–वि० [सं० आज्यजित] जो किसी से जीता न जा सके, अजेय। उ०—भांणौ नै सूरजमल दोय जणा हीज हुता सु सूर तौ हाथ नाया नै दोय रीछ आजाजीत आगै-पाछै आया। इसड़ा कदै आंखियां ही दीठा नहीं।—नैणसी

आजाद–वि० [फा० आजाद] १ जो बद्ध या परतंत्र न हो, छूटा हुआ, मुक्त। उ०—भरोसे खुसाळ सक्ति भिड़ण, संभियौ सगळां साथ रै, आजाद हिंद करवा उमंग, निडर 'आउवा' नाथ रै।

—गिरवरदांन कवियौ

२ बेफिक्र, बेपरवाह. ३ निडर, निर्भय. ४ स्पष्टवक्ता.

५ स्वतंत्र विचार के सूफी फकीर।

आजादगी, आजादी–सं०स्त्री० [फा० आजादी] स्वतंत्रता, स्वाधीनता।

आजानेय–सं०पु० [सं०] १ घोड़े की एक जाति जो श्रेष्ठ गिनी जाती है. २ इस जाति का घोड़ा।—शा.हो.

आजार–सं०पु० [फा० आज़ार] १ रोग, बीमारी, व्याधि (डिं.को.) २ लक्षण, चिन्ह (अमरत)

आजि–सं०स्त्री० [सं०] १ लड़ाई, समर, युद्ध। रू.भे. 'आजी') उ०—अच्छे वाजि उडायकै मन आजि मिळाया।—वं.भा. २ गमन, गति। [सं० आजि] घी, घृत (ह.नां.)

क्रि०वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज] आज। उ०—राइ कहई भली हुई आजि। कोकि भतीजौ सौंप्यौ राज।—वी.दे.

आजिज–वि० [अ०] १ दीन, विनीत, नम्र. २ हैरान।

आजिजी–सं०स्त्री० [अ०] दीनता, नम्रता, विनीत भाव।

आजी–सं०स्त्री०—१ युद्ध, संग्राम। उ०—गजारोही वाजी पवन हय

आजी गत लागे। प्रयोसा योसाजी अनंग जिम बाजीगर श्रगे।

—ऊ.का.

घी, घृत (ह.नां.)

आजीजी–सं०स्त्री० [अ० आजिजी] १ दीनता, विनम्रता. २ खुशामद।

आजीवका–सं०स्त्री० [सं० आजीवका] वृत्ति, रोजी, बंधान।

आजीवन–क्रि०वि०—जिंदगी भर।

आजीविका, आजुका–सं०स्त्री० [सं० आजीविका] रोजी, रोजगार, जीवन का सहारा।

आजुत–सं०पु० [सं० आयुत] दस हजार।

सं०स्त्री०—दस हजार की संख्या।

आजुरदा–सं०पु० [फा० आजुर्दह] १ गुलाम. २ सताया हुआ, दुखी, चिंतित।

आजूंणौ–वि० (स्त्री० आजूणी) आज का। उ०—तांत तणकै पीव पीयै, करहौ उगाळा लेह। भलां कढ़ेसी दीहंड़ा, विह **आजूणी** टाळेह।

ढो.मा.

आजू–सं०पु०—बेगार अनिच्छा से बिना पारिश्रमिक प्राप्त किये किया जाने वाला श्रम।

क्रि०वि०—अभी तक। उ०—**आजू** हीलोहळ धू अटळ, वेद धरम बांणारसी।—कम्मौ नाई

आजूणई–वि०—आज का, नवीन।

क्रि०वि०—आज। उ०—संपहुता सज्जण मिळिया, हूंता मुझ हीयाह। **आजूणई** दिन ऊपरइ, बीजा बळि कीयाह।—ढो.मा.

आजूणौ–वि० (स्त्री० आजूणी) १ आज की, आज का।

उ०—धन **आजूणौ** दीहड़ौ, धन आजूणी रात।—रा.रू.

२ जीवनपर्यन्त।

आजूत–वि०—देखो 'आयुत'।

आजूबाजू–क्रि०वि०—आस-पास, अगल-बगल।

आजै–क्रि०वि०—आज ही। [सं० आज्य, प्रा० अज्ज] उ०—**आजै** रळी वधांमणां, आजै नवला नेह। सखी अम्हींणी गोठ मइं, दूधे वूठा मेह।—ढो.मा.

आजौ–सं०पु० [रा०] १ बल, ताकत, साहस. २ विश्वास, भरोसा, सहारा। उ०—आपरौ **आजौ** आंण नै, आविया म्हे वेहै एथ। एकंथ भोम बतायदौ, जिम गोळ बांधां जेथ।—पा.प्र. ३ आश्विन शुक्ला प्रतिपदा को दौहित्र द्वारा संपन्न किया जाने वाला अपने नाना का श्राद्ध।

आजोळी–सं०स्त्री० [सं०] प्रकाश।

आजोकौ–वि०—आज का।

आज्यस्थाळी–सं०स्त्री० [सं० आज्यस्थाली] बटली के आकार का एक यज्ञपात्र जिसमें हवन के लिए घी रक्खा जाता है।

आझ–सं०पु० [सं० आजि] युद्ध।

आझा–सं०स्त्री०—इच्छा, कामना।

आझाड़ौ–वि०—काटने वाला, मारने वाला, योद्धा।

उ०—वांमी दिस वखतेस, जुड़ मेड़तिया जींमणै। **आझाड़ा** सांम्हौ अभौ, राजा महण रवेस।—रा.रू.

आझाळ–सं०स्त्री० [सं० ज्वाला] आग की लपट, ज्वाला।

आझाळौ–सं०पु० [सं० आजि+ज्वाला] वीर, बहादुर, जोशीला, तेजस्वी। उ०—१ वंस छतीस बरंम गनीमां गाळणौ। **आझाळौ** अधपती भली द्रढ़ भाळणौ।—किसोरदान बारहठ

उ०—२ उदिया जग भांण कांन **आझाळौ**, रण चाचर करनेस रढ़ाळौ। उजेण रै झगड़ै रौ गीत

आझौ–सं०पु०—वीरता, साहस, शक्ति। उ०—सांम ध्रम कांम पूरी सुमति, खरै मतै **आझै** खरै।—रांमरासौ

वि०—१ निकटतम, घनिष्ठ. २ बहुत, गहरा. ३ उदार, महान. ४ कलंक, दोष।

आटइयौ–सं०पु०—आटा, चून (अल्पा०) उ०—गेहूंड़ा पीसीजै, **आटइयौ** रांणी रावरो, रै म्हारा सायर सोढ़ा, एकर तौ अमरांणै घोड़ौ फेर।—लो.गी.

आटपाटां, आटांपाटां–सं०पु०—पानी का नदी के दोनों तटों से भी ऊपर बहने का भाव। उ०—१ माथै खाग झाटां राचै तंवाई छः खंडां माथै, रत्रां **आटपाटां** नदी बहाई रौसाण।—सूरजमल मीसण

उ०—२ तोय नहर आसू आवतां, छौळ सिमट थक नीर छजै। वट घाटां नद नांणा वाळी, आटां-पाटां वहै अजै।

—महाराणा भीमसिंह रौ गीत

वि०—ओतप्रोत।

आटबाट, आटवाट, आटबाटां–क्रि०वि०—इधर-उधर। उ०—१ निज थाट खोय फीटा निलज, साट न बूझै सार री। **आटबाट** भागै अकळ, चोट लगै विभचार री।—ऊ.का.

उ०—२ देस निकंटक कर दिए, असमझ मर आरांण। काट जकां कुळ ऊवटै, **आटबाट** इतफाक।—बां.दा.

आटी–सं०स्त्री०—१ अटेरण पर लपेटा हुआ सूत या सूत की गुंडी.

२ वेणी में डाली जाने वाली सूत या ऊन की मोटी डोरी.

३ वेणी। उ०—कर में कांकणियां जसदा गळ काठी, अदभुत मोरां पर लुढ़तोड़ी **आटी**।—ऊ.का.

यौ०—आटी-डोरडौ, आटी-डोरौ।

आटीबंध—रहँट की माल के सिरे पर के बंध के समीप का बंध, इन दोनों बंधों के बीच दूसरी माल का सिरा डाल कर जोड़ा जाता है।

आटौ–सं०पु०—१ किसी वस्तु का चूर्ण, बुकनी. २ किसी अन्न का चूर्ण, पिसान।

मुहा०—१ आटा में लूण—इतना कम कि जाना न जा सके. २ आटा दाळ री फिकर होणी—जीविका की चिंता होना. ३ आटै दाळ रौ भाव ठा पड़णौ—होश ठिकाने होना. ४ आटौ बाड़ौ लगणौ—ठीक ढंग से काम न करना. ५ आटौ बादी करणौ—मस्तिष्क में

कुमति उपजना. ६ आटा रै साथ घुण पीसीजै—अपराधी के साथ निरपराधी का भी दंडित होना।

कहा०—१ आटा खूटा नै चेला न्हाटा—खाद्य सामग्री समाप्त होने पर उस पर अवलंबित व्यक्तियों का वहां से चला जाना, स्वार्थ मिटने पर स्वार्थी आदमी का अलग हट जाना. २ आटै की भींत अटारी को मरबौ—आटे की दीवार अच्छी नहीं, अटारी से गिर कर मरना अच्छा नहीं. ३ आटै जैड़ी रोटी हुवै है—जैसा आटा है वैसी ही रोटी बनेगी, सामग्री के अनुसार ही किसी वस्तु का निर्माण होगा. ४ आटै में लूण खटावै जितौ कूड़ खटावै—आटे में नमक चलता है उतना झूठ; थोड़ा-सा झूठ चल सकता है पर अधिक नहीं. ५ आटै री कसर खाटै में निकळ जाई—एक वस्तु की कमी की पूर्ति दूसरी वस्तु से की जा सकती है. ६ आटै री कटारी खाय नै मरणौ—आटे की कटारी बना कर उससे आत्महत्या का प्रयत्न करना, कायरता-पूर्ण बार-बार आत्महत्या करने की धमकी देने पर. ७ आटै लूण समातौ खाणौ—आटे में नमक जितनी ही घूस लेनी चाहिये. ८ आटौ भाटौ घी घड़ौ, खुला केसां नार, डावा भला न जीमणां, ल्याळी जरक सोनार—शकुनशास्त्र के अनुसार आटा. पत्थर, घी का घड़ा, खुले केशों वाली स्त्री, भेड़िया, लकड़बग्घा और स्वर्णकार—ये चाहे बायीं और मिलें चाहे दायीं ओर कभी शुभ नहीं होते. ९ घी तौ घिलोड़ी मुजब, आटै रौ घाटौ नहीं—स्वागत-सत्कार हमारी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार करने का प्रयत्न किया जायगा।

आटौ-साटौ–सं०पु०—एक वस्तु लेकर बदले में दूसरी वस्तु देना, अदल-बदल।

आठ–वि० [सं० अष्ट] चार का दूना, सात और एक का योग।

सं०पु०—८ की संख्या।

मुहा०—१ आठ-आठ आंसू रोवणौ—बहुत रोना. २ आठूं पो'र या आठूं पो'र चौसट घड़ी—हर समय, दिन-रात।

कहा०—१ आठ पूरबिया, नव चूल्हा—आठ पूरबिए ब्राह्मण और नौ चौके, जब आपस में एक मत न हों और सब का मत अलग-अलग हो. २ आठूं बळदां अरट यूं ही चालणौ—यों ही कार्य चलता रहना, अव्यवस्थित रूप से काम चलने पर।

आठआंनी–सं०स्त्री०—आधे रुपए के बराबर का एक सिक्का, अठन्नी।

आठक–वि०—आठ की संख्या के बराबर।

सं०पु०—आठ की संख्या।

आठकरम–सं०पु० [सं० अष्ट+कर्म] आठ प्रकार के कर्म—ज्ञानावर्णी, दर्शनावर्णी, मोहिनी, अंतराय, वेदनी, नाम, गोत्र, आयुस्य (जैन धर्मानुसार)

आठकि–सं०पु०—प्रहार। उ०—धड़द्धड़ बेधड़ वज्जहि धार, कड़क्कड़ आठकि काठ कुठार।—रा.रू.

आठड़ो–वि० [सं० अष्ट] आठ (ल.पिं.)

आठद्रगन–सं०पु० [सं० अष्ट+दृग] जिसके आठ आंखें हों, ब्रह्मा, विरंचि (डिं.को.)

आठपग–सं०पु०—१ अष्टापद, सिंह। (मि०—अस्टापद) २ मकड़ी।

आठपुहर–क्रि०वि०यौ० [सं० अष्ट-प्रहर] आठों प्रहर, हर समय, दिनरात।

आठम–सं०स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी, चंद्रमास के प्रत्येक पक्ष की अष्टमी।

आठमासियौ–सं०पु०—१ आठ मास का गर्भस्थ शिशु. २ वह जिसने आठ मास गर्भ में रह कर जन्म ग्रहण किया हो।

आठमि, आठमी–सं०स्त्री०—देखो 'आठम' (पु० आठमौ)।

आठमौ–वि०—जो क्रम में सात के बाद पड़ता हो, आठवां।

आठवाट–सं०पु०—नष्ट। उ०—काट जिकां कुळ ऊबटै, आठवाट इत-फाक। वां सबळां ही पुरसड़ां, वैरी गिणै वराक।—बां.दा.

आठसिध–सं०स्त्री०—देखो 'अस्टसिद्धि'।

आठांजाम–वि० [सं० अष्ट+याम] हर-समय, रात-दिन।

आठांनी–सं०स्त्री०—देखो 'अठन्नी'।

आठांपोहर–सं०पु० [सं० अष्ट+प्रहर] हर समय, रात-दिन।

आठांभुजा–सं०स्त्री०—१ वह जिसके आठ भुजायें हों. २ देवी, दुर्गा (डिं.को.) ३ पार्वती (डिं.को.)

आठियौ–सं०पु०—१ बड़े मुंह वाली एक प्रकार की ऊँट पर कसी जाने वाली बंदूक. २ एक प्रकार की छोटी बंदूक जो पलीते से छोड़ी जाती थी।

आठी–सं०स्त्री०—१ देखो 'आंटी'। २ आठ छिद्रों वाली 'पुंगी' नामक एक वाद्य विशेष। उ० अनळ भरेग बाजती आठी, हरण भुजंगम दिये हिया।—उडणा प्रथीराज रौ गीत

आठूं–वि०—आठों। उ०—दुभ्रुल जिण भुजांबळ हूंत आठूं दिसा, लंघ सामंद कीधी लड़ाई—र.रू.

आठूंजांम, आठूंपहर–क्रि०वि०—आठों प्रहर, हर समय, रात-दिन।

आठूंवळां–क्रि०वि०—आठों दिशाओं की ओर, सब तरफ।

आठे'क–वि०—आठ के लगभग।

आठौ–सं०पु०—१ आठवां वर्ष. २ आठ का अंक. ३ ताश का वह पत्ता जिसमें आठ बूंटियां हों।

आडंगो–सं०पु०—जूसर को गाड़ी से दृढ़ रखने के लिये चमड़े का गोल बंधन जिस पर नाड़ा भी बांधा जाता है।

आडंबर–सं०पु० [सं०] १ गंभीर शब्द. २ तुरही की आवाज. ३ हाथी की चिंघाड़. ४ ऊपरी बनावट, दिखावा, ढोंग। उ०—थोथा गैडंबर संबर बिण थाया, छपनै सूमांसा आडंबर छाया।—ऊ.का.

५ तड़क-भड़क, टीम-टाम, चटक-मटक, ठाट-बाट। उ०—अति मोटै आडंबरां किधौ विवाह जेण। अरथ गरथ खरचा बहुत, सिंगळ नर-वर जांण।—ढो.मा. ६ तंबू. ७ युद्ध में बजाने का बड़ा ढोल. ८ ललकार. ९ युद्ध की घोषणा।

आडंबरी–वि० [सं०] आडंबर करने वाला, ऊपरी बनावट या दिखावा करने वाला, ढोंगी।

आड–सं०स्त्री०—१ ओट, परदा. २ रोक, बाधा। उ०—**आड** रोपी वज्र'द झीक वागौ असंभ।—बां.दा. ३ आसरा, सहायता की आशा. ४ सहायता, मदद. ५ बहाना. ६ लम्बी टिकली. ७ स्त्रियों के कंठ का एक भूषण. ८ स्त्रियों के माथे का आडा तिलक. ९ रक्षा, शरण. १० अड़ान, आधार. ११ तालाब में पानी लाने के निमित्त बनाई गई एक प्रकार की कच्ची नहर. १२ एक प्रकार का पानी में रहने वाला पक्षी जिसका शिकार किया जाता है। (रा.सा.सं.)

कहा०—आड रौ बच्चौ तौ समुद्रां में ही तिरै—जन्म-जात गुण स्वयमेव आ जाते हैं उन्हें सीखना नहीं पड़ता।

१३ ईंट या पत्थर का टुकड़ा जिसे गाडी के पहिए के नीचे इसलिए अड़ाते हैं कि पहिया ढाल की ओर आगे न बढ़ सके।

१४ सेतु. १५ पाल (नाव का). १६ केसर व चंदन का तिलक. उ०—द्रुत केसर **आड** भभूत दीध।—वि.सं. १७ सहायक।

उ०—जोध भयंकर जोधहर, अडर मुरद्धर **आड**। सरण छत्रधर सांप नै वर्ण अकब्बर चाड।—रा.रू.

१८ सन्यासियों के कोपीन के ऊपर कमर पर बांधी जाने वाली जेवडी या उसका बंध. १९ फलसा में लगाई जाने वाली लंबी मोटी सीधी लकड़ी। (क्षेत्रीय)

क्रि०वि०—ओर, तरफ। उ०—करहा नै कांब वाही करहौ कूदे खेळी री पैली **आड** जाय पड़ियौ।—ढो.मा.

आडई–वि०—देखो 'आड'।

आडण–सं०स्त्री०—१ ढाल. २ आड।

आडणी–सं०स्त्री०—अन्तरपट। उ०—आडी तौ देस्यां **आडणी** जी, झवक परोसां जी थाळ।—मा.गी.सं.

आडणौ, आडबौ–क्रि०स०—जुआ आदि खेलों में बाजी पर रखना। उ०—तिकै दीवाळी रै दिन जूवै रमिया, तरै खाफरै तौ राजा जैसिंघदे रौ चढ़ण रौ पाटहड़ौ घोड़ौ कोडीधज **आडियौ** नै काळै कांई'क बीजी वस्त आडी छै।—नैणसी

आडपलांण, आडपिलांण–सं०पु०—ऊंट पर एक ओर दोनों पैर लटका कर सवारी करने का ढंग विशेष।

आडबंद, आडबंध–सं०पु०—१ लंगोटी. २ कटिबंध, कोपीन बांधने की रस्सी। उ०—जट **आडबंध** सेली जड़ाव। आवधां वीर संजत अड़ान।—वि.सं. ३ वर की लाल पगड़ी या दुपट्टे पर लपेटा जाने वाला एक सफेद कपड़े का लंबोतरा टुकड़ा (बांभी)

आडबनोळी–सं०पु०—श्रीमाली व पुष्करणा ब्राह्मणों में ब्याह की एक रस्म जिसमें वधू को सजा कर घोड़ी पर बैठा कर वर के घर ले जाते हैं।

आडबाहक–वि०—१ हद से बाहर. २ अपने आपको रोकने वाला. ३ मर्यादा को उलंघन करने वाला। उ०—अर कुमारपणै ही अनेक आहव जीति के ही बैरियां रा व्रात दक्षिण दिसा रा लोकपाळ री पुरी रै पंथ लगाइ धरा री धन घूघट तै **आडबाहक हुवौ** तिकौ ही मारि दीधौ।—वं.भा.

आडवळारउ, आडवळौ–सं०पु० [सं० अर्बुदावलि] अरावली पर्वत उ०—अति आणंद ऊमाहियउ, वहइज पूगळ वट्ट। त्रीजइ पुहरि उलांघियउ, **आडवळारउ घट्ट**।—ढो.मा.

आडाअंक–देखो 'आडेअंक'।

आडागिरि–सं०पु०—विंध्याचल पर्वत। उ०—तंबेरम कुंभ दुहाथळ तत्थ. **आडागिरि** मत्थ क हत्थ अगत्थ।—मे.म.

आडाचौताळौ—१४ मात्राओं का ताल।

आडाजीत–वि०—१ वीर, बहादुर, शक्तिशाली। उ०—भुजनाथ खळां सिर पारथ, भारथ **आडाजीत असंकौ**।—क.कु.बो.

आडाडंबर–सं०पु०—आडंबर, घमंड। उ०—डाकर डौर न **आडाडंबर**, चित चातुरी न वीजो चोज। रिमदळ सबळ भांजिया रावळ, अण भांजवा-तणौ आलोज।—मालौ सांदू

आडायती–सं०पु० [सं० अर्गल] १ किंवाड़ बंद करने पर लगाई जाने वाली आडी लकड़ी अर्गल, ब्योंडा. २ किंवाड़. ३ अवरोध. ४ कल्लोल. ५ सूर्योदय या सूर्यास्त पर पूर्व या पश्चिमाकाश में दिखाई देने वाले रंग-बिरंगे बादल. ६ तलवार।

आडाराजपूत–सं०पु०—वे राजपूत वंश जिनमें पति की मृत्यु या पति के त्याग पर दूसरा पति करने की अनुमति है।

आडावळ–सं०पु०—अरावली पहाड़।

आडावाळौ–सं०पु०—१ अरावली पहाड़. २ चौहान वंशीय क्षत्रिय। उ०—जुड़ै सेन थंडां आडावाळी धोम जाळा री साबात जागी, खंडां **आडावाळा** री लागी हाला री खुनास।

—बलवंतसिंह हाडा रौ गीत

आडि–सं०स्त्री०—देखो 'आड' (१२) उ०—**आडि** जु बोलै छै दहै तंति को सुर हुओ।—वेलि. टी.

आडिया-काठिया–सं०पु०—बाधक। उ०—पण बीजा **आडिया-काठिया** भी मोकळा बळतां हा। नार पूड़ियां ई टाबरां तांई सुख सूं को देण दीनी।—वरसगांठ

आडियौ–सं०पु०—१ गाड़ी के अगले हिस्से में सामान लादने के निमित्त लगाया जाने वाला डंडा जो बाहर की ओर झुका रहता है. २ एक प्रकार का आरा. ३ बच्चे का हाथ की बांह पर नाक पोंछने की क्रिया या भाव।

आडी–सं०स्त्री०—१ रोक, अवरोध। देखो 'आडौ'। २ परदा, ओट. ३ पहेली. ४ धरातल के साथ लम्बाई. ५ मदद, सहायता। उ०—ओसर मोसर माय ब्यावड़ां **आडी आवै**।

—दसदेव

वि०—१ विरुद्ध. २ धरातल के साथ लम्बाई का।

उ०—आडी ओलळियां खायोड़ा आघा, लाडां-कोडां में जायोड़ लाधा।—ऊ.का.

आडीओळ-वि०—समस्त, सम्पूर्ण, पूरा।

आडीटांग-सं०स्त्री०—एक का अपनी टाँग द्वारा दूसरे की टाँग में अड़ा कर वा प्रहार कर गिराने की चेष्टा, लत्ती।

आडीधार-सं०स्त्री०—तलवार की धार।

आडीमाळ-सं०स्त्री०—गाँव के सरहद की सब भूमि. २ भूमि का वह भाग जिस पर फसल एक ही प्रकार की होती है।

आडीयौ-वि०—१ बराबर, समान।

सं०पु०—२ देखो 'आड़ियौ'।

आडीलीक आडीलीह—अत्यन्त अधिक, हद से बाहर। उ०—चटठा भै भीत रठा दुघटा कोयणां चोळ ऊभै घटा जटा सक्र गाथ में अनूप। लंगरां रटठा बे पनठा **आडीलीह** रांण वाळा भठा फील जूटा असै रूप।—पहाड़खां आढौ

आडू-सं०पु०—१ लोहे का बना बड़ा औजार जो कि लकड़ी व पत्थर को चीरने के काम आता है। [सं० आलु] २ एक प्रकार का फल जो खटमिठे स्वाद का होता है।

वि० [रा०] आगे, सम्मुख।

आडेअंक-वि०—बेहद, बहुत, अपार। उ०—कृपण संतोस करै नहीं, लालच **आडेअंक**। सुपण वभीखण सु मिळै, लिए अजारे लंक।
—बां.दा.

आडेकट-वि०—सब, समस्त, पूर्ण।

आडेखंड-वि०—१ बेरोक-टोक, खुला, स्वतन्त्र. २ विरुद्ध।

आडेछाज-सं०पु०—एक प्रकार की नाज साफ करने की क्रिया।

उ०—ऊफणी **आडेछाज** कठै'क, उरसां सुगन चिड़ी री पांख।
—सांझ

आडेफरे-सं०पु०—१ रेतीले टीबे का मध्य भाग. २ पर्वत का मध्य भाग।

आडेअंक-वि०—देखो 'आडे अंक'। उ०—सींगड़ियां ऊगण समै, वाछड़ुवां री वंश। खबर पड़ै धुर खेंचसी, औ तो **आडेअंक**।
—बां दा.

आडोवळौ-सं पु०—अरावली पहाड़ (रू०भे०)

आडोस-पाडोस-सं०पु०—पास का स्थान।

क्रि०वि०—पड़ोस में, आस-पास, करीब।

आडोसी-पाडोसी-सं०पु०—पास में रहने वाले, जिनका निवास-स्थान अपने निवास-स्थान के बिलकुल पास में हो।

आडोहडि-क्रि०वि०—देखो 'आडौअडि'।

आडोहल्लणौ, आडोहल्लबौ-क्रि०अ०—१ मदद करना. २ विरुद्ध चलना।

आडौ-वि० (स्त्री० आडी) १ विरुद्ध, विमुख (बहु० आडां)

क्रि०प्र०—करणौ-पड़णौ-बेहणौ-हालणौ।

उ०—लोहां करंतो झाटका फणां कंवारी घड़ां री लाडौ, आडौ जोधांण सूं खेंचियो वहे अंट—सूरजमल मीसण

२ सहायक, मददगार।

क्रि०प्र०—आणौ-आवणौ।

मुहा०—आडौ आणौ—मदद करना, समय पड़ने पर या कष्ट में सहायता देना।

कहा०—आडो आवै जिकौ ही सीरी—कष्ट पड़ने पर जो साथ दे वही वास्तव में साथी है।

३ आंखों के समानान्तर दाहिनी ओर से बाँयी ओर को, और बाँयी से दाहिनी ओर को गया हुआ वार से पार तक।

क्रि०प्र०—आणौ-आवणौ-करणौ-देणौ-पड़णौ-बहणौ-लेणौ-होणौ।

मुहा०—१ आडा हाथां लेणौ—ताना देकर शर्मिन्दा करना, मीठे शब्दों में व्यंग्य करना. २ आडौ आवणौ—अवरोध डालना, व्याघात पहुँचाना।

कहा०—१ घी घालसी जका तौ आडा हाथां घालसी—मुक्तहस्त से दान करने वाला ही सच्चा दानी है। जिसका सहायता करने का स्वभाव है वह तो अवश्य भरपूर सहायता करेगा।

सं०पु० [रा०] १ द्वार, दरवाजा. २ कपाट, किवाड़।

क्रि०प्र०—देणौ-लगाणौ-खोलणौ।

३ ओट, परदा।

क्रि०प्र०—आणौ-करणौ-देणौ-होणौ।

उ०—अंडज्ज स्वेदज्ज जरा उद्भिज्ज, माया सब तूझ म भूलब मुज्झ, म राख पड़दौ **आडौ** मुंह, जहां कुछ देखूं त्यां सब तूंह।—ह.र.

४ निंदायुक्त कविता. ५ भूमि के समानान्तर किसी वस्तु या व्यक्ति का होना।

क्रि०प्र०—करणौ-पड़णौ-होणौ। (स्त्री० आडी)

मुहा०—आडौ-होणौ, सोना।

कहा०—ऊबी आई आडी जाऊं—विवाह करके इस घर में खड़ी-खड़ी आई हूँ किन्तु मृत्यु के उपरांत लेट कर ही वापस जाऊँगी।

क्रि०वि०—बीच में, राह में। उ०—**आडा** डूंगर दूरि घर, वणइ न जांणइ भत्त। सज्जण संदइ कारणइ, हियउ हिळूसइ नित्त।
—ढो.मा.

आडौ अंवळौ-क्रि०वि०—१ इधर-उधर. २ जैसे-तैसे, ज्यों-त्यों।

सं०पु०—प्रसव के समय गर्भाशय में बच्चे का टेढ़ा-मेढ़ा हो जाना।
(अमरत)

आडौअडि-क्रि०वि०—बीच में अड़ कर, आडा आकर, रुकावट करके।

उ०—**आडौअडि** एकाएक आपड़ै, वाध्यो एम रुखमणी वीर।
—वेलि.

आडौ-खेमटौ-सं०पु०—संगीत के अंतर्गत मृदंग का साढ़े तेरह मात्राओं का एक ताल विशेष।

आडौ-धंस-सं०पु०—आँखों के समानान्तर बाँयी ओर से दाहिनी ओर या दाहिनी ओर से बाँयी ओर को गया हुआ मार्ग।

उ०—पछै रात आधी एक रौ अबदुल्ला रा लसकर ऊपर टूट पड़ियौ सु पेहली तौ आडैधंस...नोखिया ।—नैणसी

आडौ-चौताळ—सं०पु०—मृदंग का एक ताल विशेष (संगीत)

आडौ-ठेकौ—सं०पु०—संगीत के अंतर्गत नौ मात्राओं का एक ताल ।

आडौ-पंचताळ—सं०पु०—संगीत के अंतर्गत पाँच आघात और नौ मात्राओं का एक ताल ।

आडौमारग—सं०पु०—आँखों के समानान्तर बाँयी ओर से दाहिनी ओर और दाहिनी ओर से बाँयी ओर को गया हुआ मार्ग । (मि० 'आडौधंस')

आढ़त—सं०पु०—देखो 'आड़त' ।

आढ़तदार, आढ़तियौ—सं०पु०— देखो 'आड़तियौ' ।

आणंद—सं०पु० [सं० आनन्द] १ आनन्द, खुशी, हर्ष, उल्लास ।

क्रि०प्र०—करणौ-देणौ-मनाणौ-लेणौ-होणौ ।

पर्याय०—उछरंग, उमंग, परमसुख, प्रमुद, प्रमोद, महारस, मुद, मोद, विनोद, सामुद, हरखि, हुलास ।

यौ०—आणंद-उदभवन, आणंदकर, आणंदकारी, आणंदघण, आणंद-निध ।

२ मीसण गोत्र का एक ईश्वर भक्त चारण कवि. ३ ईश्वर, विष्णु (ह.नां.) ४ वेलिये सांणोर का एक भेद विशेष जिसके प्रथम द्वाले में ४२ लघु ११ गुरु कुल ६४ मात्रायें होती हैं. इसी क्रम से शेष के द्वालों में ४२ लघु १० गुरु कुल ६२ मात्रायें होती हैं. (पिं.प्र.) ५ एक वर्णिक छंद विशेष जिसमें प्रथम एक सगण फिर दो भगण, अंत में गुरु लघु होता है. (र.पिं.) ६ प्रथम गुरु ढगण के भेद का नाम ऽ।

आणंद-उदभवन—सं०पु०—वीर्य्य (डि.को.)

आणंदकंद—सं०पु० [सं आनन्द + कंद] ईश्वर (अ.मा.)

आणंदकर—वि० [सं० आनन्दकर] सुखकर, हर्षप्रद ।

आणंदकार—वि० [सं० आनन्दकर] सुखकर, हर्षप्रद (पिं.प्र.)

आणंदकारी—वि०— सुखकर, आनन्द देने वाला या करने वाला ।

आणंदघण—सं०पु० [सं० आनन्दघन] १ ईश्वर. २ श्रीकृष्ण (ह.ना.) ३ विष्णु की एक मूर्ति का नाम जो पहले नागौर में थी किन्तु आज-कल जोधपुर के किले में विराजमान है ।

आणंदणौ, आणंदबौ—क्रि०अ०—आनंदित होना, प्रसन्न होना ।

उ०—नगर लोग आणंदिया, बांध्या तोरण बार । घर घर गुडी उछळी, जंपै जयजयकार ।—ढो.मा.

आणंदनिध—सं०पु० [सं० आनन्द + निधि] सुख का सागर, अत्यधिक आनन्द ।

आणंदित—वि० [सं० आनन्दित] आनन्दित, खुश, प्रसन्न ।

उ०—तव धणी आणंदित होय ससिपाळ विवाहण चाल्यौ ।

—वेलि.टी.

आणंदियउ—वि०—आनन्दित, हर्षित । उ०—ढोलउ मन आणंदियउ, चतुर तणै वचनेह । मारू-मुख सोरंभियउ, आवि भमर भणकेह ।

—ढो.मा.

आं'ण—सं०पु० [सं० आसन] देखो 'आसन' (१)

आणौ, आबौ—क्रि०अ०—१ आना, पहुँचना ।

आणहार-हारौ (हारी), आणियौ—वि०—आने वाला ।

कहा०—१ आई जिउं ही गई—जैसे आई वैसे ही चली गई. २ आई बहू आयौ कांम गई बहू गयौ कांम—आदमी के आने-जाने के साथ काम बढ़ता घटता है. ३ आई आई जाई—जो भी संसार में आया है वह एक दिन अवश्य जायगा; संसार की सब वस्तुएँ नश्वर हैं; जिसकी मृत्यु आ गई है उसे ही जाना पड़ेगा. ४ आ अे बाई अबां, आप आप रै ढबां—अपने अपने ढब वालों को देना; पक्षपात करना. ५ आया था हर भजन कूं, ओटण लग्या कपास—भगवान का भजन करने को आये थे पर कपास ओटने लगे; जो काम करना था उसे छोड़ कर दूसरा काम करने लगे. ६ आयी अलाय दी बलाय—उधर से आया, इधर दे दिया. ७ आयी मौज फकीर की, दिया झूंपड़ा फूंक—फकीरों के लिए जो सांसारिक वस्तुओं से मोह नहीं रखते; मौजी आदमी के लिए जो मौज में चाहे सो कर बैठता है. ८ आयी ही छाछ नै, बण बैठी घर री धणियांणी—आयी थी छाछ को और बन बैठी घर की मालकिन; अनधिकार चेष्टा करना. ९ आयोड़ो मोसर नहीं चूकणौ—आया हुआ अवसर नहीं चूकना चाहिए. १० आरे म्हारा घर रा धणी, जट्टा थोड़ी जूंवां घणी—आ मेरे घर के मालिक जिसके जटा (बाल) तो थोड़ी है पर उसमें जुएँ बहुत हैं (किसी स्त्री का पति के प्रति कथन), मैले-कुचैले रहने वाले फूहड़ पुरुष के लिए. ११ आरे म्हारा घर रा धणी, मारी थोड़ी अर घींसी घणी—आ मेरे घर के मालिक, तूने मारा तो थोड़ा पर घींसा बहुत (अधमरा करके फिर घींस-घींस कर मार डाला । बहुत कष्ट से प्राण लिए); घृणित काम करने वाले फूहड़ पुरुष के लिए. १२ आरे म्हारा सपटपाट, हूं थनै चाटूं तूं मनै चाट—ओ मेरे सपटपाट, आ, मैं तुझे चाटूं और तू मुझे चाट; अत्यन्त गरीबी, अत्यन्ताभाव ।

१३ आरे राडया राड़ करां, निकमां बैठा कांई करां—अरे रांड के बेटे आ, निकम्मे बैठे क्या करें, और कुछ नहीं होता है तो लड़ाई ही करें । निकम्मे को काम चाहिए और काम नहीं होता है तो लड़ाई-झगड़े की ही सूझती है. १४ आवतां रा भाई नै जावतां रा जंवाई—जो प्रेम के साथ हमारे यहाँ आते हैं उनके हम भाई के समान प्रेमी और सहायक हैं पर जो अभिमान के साथ हमारे यहाँ से चले जाते हैं उनके हम जमाई हैं । जो प्रेम करें उनके सेवक है और जो अभिमान करें उनको नीचा दिखाने वाले हैं. १५ आव बळद मनै मार—आ बैल मुझे मार; जानबूझ कर आपत्ति को बुलाना. १६ आवै तौ जावैहीज क्यूं—अगर आना होता तो जाता ही क्यों; अगर किसी वस्तु की प्राप्ति भाग्य में लिखी होती तो प्राप्त वस्तु भी

चली न जाती. १७ आवै न जावै हूं लाडै री भुवा—आता है न जाता है. (कहती है कि) मैं दूल्हे की फूफी; जबरदस्ती पंच बनना. १८ आवो तो घर है नै जावो तो मारग है—आते हो तो घर है, जाते हो तो यह मार्ग रहा; प्रेमपूर्वक आते हो तो घर तुम्हारा ही है और अभिमान करके जाते हो तो खुशी से जाओ हमें कोई परवाह नहीं; प्रेमी का सत्कार करना चाहिए, अभिमानी की परवाह नहीं करनी चाहिए. १६ आवो भाई जीया, अबै घोटया'र पीया—भाई जीया आओ अब घोटना और पीना; अब अपना खर्च करो और खाओ-पीओ. २० आवो भाई भूरा लेखा पूरा—हिसाब-किताब साफ है; अब न लेना है न देना। जब हिसाब-किताब साफ हो जाय अथवा जब लाभ-नुकसान बराबर हो तब कहा जाता है. २१ आवो मीयां खाणो खावो भिसमिल्ला हात धलावो—आओ मियां खाना खालो. (मियां ने उत्तर दिया) मैं तैयार हूँ हाथ धुलाइए; किसी कार्य के लिए तत्पर होने पर कहा जाता है. २२ आवो मीयां छांन उठावो हम बूढ़े कोई जवांन बुलावो—मियाजी आकर यह छांन उठा दो (मियां ने उत्तर दिया) हम तो बूढ़े हैं, किसी जवान व्यक्ति को बुलाओ। अपनी सामर्थ्य से बाहर कार्य करने के लिए कहने पर।

आतंक–सं०पु० [सं०] १ रौब, दबदबा, प्रताप, भय, शंका।

क्रि०प्र०—फैलणो-राखणो-होणो।

पर्याय०—असंक, आतंक, उद्रक, चमक, डर, बीह, भय, भीत, भीय, भ्रमक, संक।

२ रोग, पीड़ा, ज्वर (ह.नां.) ३ वेग, उपद्रव (अ.मा.)

आतंकरी–वि०—आतंक उत्पन्न करने वाला, भयंकर। उ०—वाह सुग्रीव रीख्या उठी बंकरी, उठी चोकी विरूपाक्ष आतंकरी। —र.रू.

आतंख–सं०पु०—१ क्रोध, गुस्सा। उ०—लघू मध्य रगण फल अतक पत पवन लख, तात अनु जरा तन रगत आतंख।—र.रू.

२ देखो 'आतंक'।

आतंग–सं०पु०—देखो 'आतंक'।

आतंगी–सं०पु०—यमराज। उ०—तूटो बीज खूटो डाच आतंगी क्रोधार तणो। जाजुळी जोधार वाळो छूटो मेलजांण।—हुकमीचंद खिड़ियो

आत–सं०पु० [सं० अर्थ] देखो 'आथ'।

आतण–सं०स्त्री० [सं० अस्त] १ देखो 'आथण'। उ०—धोको दे दिन रा धी जावै, आतण रा असवारधां।—ऊ.का. २ सूत कातने का चरखा। उ०—ऊठो हे सहियां मांडो आतण, वेग वणावो वागो। हाडां कटक कूरमां होसी, नाह आवसां नागो।

—कायर रो गीत

आतणी–सं०स्त्री०—१ देवपूजा चढ़ाने को जाने वाली। उ०—नार ज आवै बाबा आतणी, सांवळिया मोटयार। सेवगां की ओ बाबा भली करो।—भेरूजी का लो.गी. २ देखो 'आथणी'।

आतताई, आततायी–सं०पु० [सं० आततायी] १ आततायी निम्नलिखित रूप से छः प्रकार से कहे जाते हैं—वधोद्यत, अनिष्टकारी, पातकी, आग लगाने वाला, विष देने वाला, धनापहारी, भूमि-परदार-अपहारक. २ हत्यारा. उ०—सौ भी आतताई नूं उबारि बापरो बचावणहार बाढ़ियो तौ भी अद्वितीय बार हुवा सुणि किता'क कविलोकां तिकणराही प्रहार रो प्रकरसण भणियो।

—वं.भा.

३ डाकू. ४ खल, दुष्ट. ५ अत्याचारी।

आतप–सं०पु० [सं०] १ धूप, घाम। उ०—पाताळ लोक आतप पड़ै, अड़ै आभ भालां अणीं।—मे.म. २ गर्मी, उष्णता. ३ प्रकाश, रोशनी. ४ ज्वर।

आतपत्र–सं०पु० [सं०] १ छत्र, चँवर, छतरी। उ०—यो सिर मौड़ रतनमय ओपै, ऊपरि आतपत्र आरोपै।—रा रू. २ कुकुरमुत्ता नामक एक पौधा।

आतपवारण–सं०पु०—छत्र, चँवर।

आतम–सं०पु० [सं० आत्मज] १ संतान। उ०—महमाया गिळिया परमातम आतम सिव उपजाया। [सं०] २ अन्धकार, अज्ञान.

३ आत्मा. देखो 'आत्मा'। उ०—तू आतम पर आतमा सबदे सहिनांणी।—केसोदास गाडण ४ मन। उ०—जुगत बिन सतरंज जीत न जांणी, आतम मूढ़ अज्ञांनी।—ऊ.का. ५ अहंकार.

६ धर्म. ७ स्वभाव (अ.मा.) ८ बुद्धि, चित्त. ६ संसार.

१० परमात्मा. ११ ब्रह्म, जीव।

वि०—आत्म, स्वकीय, निजी, अपने। उ०—मोटां तणो प्रसाद कहै महि ऐंठो आतम सम अधम।—वेलि.

आतमग्यांन–सं०पु० [सं० आत्मज्ञान] १ अपने स्वयं का जानना.

२ जीवात्मा और परमात्मा के विषय में जानकारी।

आतमग्यांनी–सं०पु०—जिसे आत्म-ज्ञान हो।

आतमघात–सं०पु० [सं० आत्मघात] अपने हाथों अपने खुद को मार डालना, आत्म-हत्या।

आतमघातक, आतमघाती–वि० [सं० आत्मघातक, आत्मघाती] आत्म-हत्या करने वाला।

आतमज, आतमजात–सं०पु०—१ पुत्र, लड़का. २ कामदेव.

३ रुधिर. ४ शरीर (अ.मा.)

आतमजोणी–सं०पु० [सं० आत्मज १ पुत्र, लड़का. २ कामदेव.

३ रुधिर। [सं० आत्मयोनि] ४ ब्रह्मा, विष्णु. ५ शिव.

६ कामदेव (डि.को.)

आतमत्याग–सं०पु०—अपने निज के लाभ की ओर ध्यान न देते हुए परोपकारी बुद्धि रखना।

आतमदरस, आतमदरसण–सं०पु० [सं० आत्मदर्शन] समाधि के द्वारा आत्मा और ब्रह्म को देखना। [सं० आत्म+दर्श] कांच, शीशा, दर्पण।

आतमद्रोही–वि० [आत्मद्रोहिन्] अपने को कष्ट या हानि पहुँचाने वाला।

आतमभु, आतमभू–वि० [सं० आत्मभू] अपने शरीर से उत्पन्न, आप ही आप उत्पन्न।

सं०पु०—१ कामदेव (अ.मा.) २ ब्रह्मा. ३ शिव. ४ विष्णु (ह.नां.) ५ पुत्र।

आतमरांम-सं०पु० [सं० आत्माराम] १ परमात्मा। उ०—ह्रदा में लाधो आतमरांम, कहो जी देव करूं सौ कांम।—ह.र. २ आत्मज्ञान से तृप्त योगी. ३ जीव, ब्रह्म. ४ तोता ५ अपने-आप, खुद।

आतमविद्या-सं०स्त्री० [सं० आत्मविद्या] अध्यात्मविद्या, ब्रह्मविद्या।

आतमसमुद्भव-सं०पु० [सं० आत्मसमुद्भव] १ ब्रह्मा. २ विष्णु. ३ शिव. ४ कामदेव।

आतमसाखी-सं०पु० [सं० आत्मसाक्षिन्] जीवों का द्रष्टा।

आतमसिद्ध-वि० [सं० आत्मसिद्ध] बिना प्रयास ही अपने आप होने वाला।

आतमसिद्धि-सं०स्त्री० [सं० आत्मसिद्धि] आत्माभाव की प्राप्ति, मुक्ति।

आतमहत्या-सं०स्त्री० [सं० आत्महत्या] खुदकुशी, अपने आपको मार डालना।

आतमा-सं०पु० [सं० आत्मा] १ मन या अंतःकरण से परे उसके व्यापारों का ज्ञान कराने वाली एक विशेष सत्ता, द्रष्टा, रूह, जीव, जीवात्मा, मन, हृदय, दिल, चित्त। इसके लक्षण निम्न लिखित माने जाते हैं—१ प्राण. २ अपान. ३ निमेष. ४ उन्मेष. ५ जीवन. ६ मनोगत इन्द्रियान्तर विकार।

मुहा०—आतमा सताणी—दिल दुखाना।

कहा०—आतमा सौ परमातमा—प्रत्येक आत्मा में ईश्वर का अंश है; जैसा हमें सुख-दुख होता है वैसा ही दूसरों को भी होता है। २ पुत्र. ३ कामदेव (अ.मा.)

आतमानंद-सं०पु० [सं० आत्मानंद] आत्मा का ज्ञान, आत्मा में लीन होने का अलौकिक सुख।

आतमारांम-सं०पु० [सं० आत्मा+राम] देखो 'आतमरांम'।

उ०—कोयल लाज करंत जगावै कांम नै, रीझावै अदभूत आतमारांम नै।—बां.दा.

आतमासी-सं०स्त्री०—मछली (अ.मा.)

आतमिक-वि० [सं० आत्मिक] आत्मा संबंधी, अपना, मानसिक।

आतमीय-वि० [सं० आत्मीय] अपना, निजी, स्वकीय, अंतरंग।

सं०पु०—रिश्तेवार, संबंधी।

आतमौ-सं०पु० [सं० आत्मा] देखो 'आत्मा'।

आतर-वि० [सं० आतुर] १ व्याकुल, व्यग्र, घबराया हुआ, उतावला, अधीर, उद्विग्न. २ उत्सुक. ३ दुखी, कातर. ४ रोगी।

क्रि०वि०—शीघ्र, जल्दी।

आतरपण, आतरपणौ-सं०पु०—जल्दबाजी, शीघ्रता।

आतलीबळ-वि० [सं० अतिबल] अतुल्य बलशाली, अत्यन्त बलवान।

आतळौ-वि०—दुष्ट, आततायी। उ०—धीचीवियूं घोड़ेह, अमईणौ वत आतळै।—पा.प्र. २ शीघ्रता करने वाला, हठ।

आतस-सं०स्त्री० [फा० आतश] १ अग्नि, आग (डि.को., अ.मा.) २ उष्णता, गर्मी. ३ सूर्यमुखी। उ०—खिलै जरदोजनि तै मखतूल, सरासनपै मनु आतस फूल।—ला.रा. ४ क्रोध, गुस्सा। उ०—पसर लसकर अतर थरर कायर पिंजर, लहर आतस अमर डमर लागी।—सेरसिंह कुसळसिंह री गीत

सं०स्त्री० [सं० आतिशबाजी] ५ आतिशबाजी। उ०—आतस अपार उचार जस गैलाइत तक्के गळी। नीसार सोर पूरति निपट यों जांणी पति आगळी।—रा.रू. ६ तोप, बंदूक।

उ०—धड़हड़ै आतसां पड़ै सहदां धकौ, जमस किम खायूं खग धार वहतौ जकौ।—किसनजी आढ़ौ

आतसक-सं०स्त्री० [फा० आतशक] फिरंग रोग, उपदंश, गर्मी।

आतसखांनौ-सं०पु० [फा० आतशखाना] वह स्थान जहाँ अग्नि रक्खी जाय।

आतसबाज-सं०पु० [फा० आतशबाज] आतशबाजी बनाने का काम करने वाला।

आतसबाजी-सं०स्त्री० [फा० आतशबाजी] वे खिलौने जिसमें बारूद भरा हो और जो जलने पर आवाज या रंग-बिरंगी रोशनी आदि उत्पन्न करें।

आतसफूल-सं०पु०—सूर्यमुखी फूल।

आतसी-वि० [फा० आतशी] अग्नि संबंधी, अग्नि-उत्पादक।

आताप-सं०पु० [सं० आतप] तेज, प्रकाश. । उ०—कलि मचंड अंसात उठै मेचक कुहर रेण मेचक संक ही राव रांणै। बीथरतौ तेण दिन आप 'सूजा' बिया जग हुंडिये तणै आताप जाणै।—अज्ञात

आतापी-सं०स्त्री० [सं०] १ एक असुर जिसे अगस्त्य मुनि ने अपने पेट में पचा लिया था. २ चील पक्षी।

आतागोती-सं०स्त्री०—संपत्ति, लक्ष्मी, वैभव, मिल्कियत्।

(मि०—आथा-पूंजी)

आताळ-वि०—तेज, शीघ्रगामी। (मि० आताळौ)

क्रि०वि०—तेजी से। उ०—आंसू नांखै आंख सूं, कर हूंता किरमाळ। भागळ नंह नाखै भिड़ज, असहां सिर आताळ।—बां.दा.

आताळौ-वि० [सं० उताल] आतुर, उतावला, तेज-मिजाज उ०—साहै मांणक छटा कंवर ताजी आताळै, आवै ढांणां अगै वगफिर सांमी वाळै।—पा.प्र.

आतिथ-सं०पु० [सं० आतिथ्य] अतिथि-सत्कार, पहुनाई, मेहमानदारी. उ०—करि वंदण आतिथ ध्रम कीधौ। वेदे कहियौ तेणि विसेखि।—वेलि.

यौ०—आतिथ-धरम, आतिथ-ध्रम।

आतिम-सं०पु० [सं० आत्मा] देखो 'आतमा'।

आतिमि-सं०पु० [सं० आत्मा] देखो 'आतमा'।

आतिवाहिक-सं०पु० [सं०] वायुमय कहा जाने वाला मृत्योपरांत लिंग शरीर। कहा जाता है कि इसके द्वारा जीव यम लोकादि में भ्रमण करता है।

प्रातीथ–सं०पु० [सं० प्रातिथ्य] प्रातिथ्य, प्रतिथि-सत्कार।
उ०—तिहि भांति ब्राह्मण को प्रागत स्वागत **प्रातीथ** ध्रम कीधौ।
—वेलि.टी.

प्रातुर–वि० [सं०] १ व्याकुल, घबराया हुप्रा, उद्विग्न, बेचैन।
उ०—एक तो हौं स्त्री प्रर प्रेम करि **प्रातुर** हुई।—वेलि. टी.
२ व्यग्र, उतावला। उ०—ताहरां मां पण प्राहीज कही—हालण रै वासते सारो लोक **प्रातुर** छै।—पलक दरियाव री बात
३ दुखी, कातर. ४ रोगी. ५ प्रस्थिर।
क्रि०वि० [सं० उच्छ्रक] शीघ्र, जल्दी। उ०—प्रौ घट घुड़लो जांण 'प्रोपला' गोविंद क्यूं नह गावै, खळ दळ जिसौ उघाड़ै खांडे, **प्रातुर** कीधां प्रावै।—प्रोपो प्राढ़ो

प्रातुरता–सं०स्त्री० [सं०] १ घबराहट, बेचैनी, व्याकुलता.
२ शीघ्रता, उतावलापन।

प्रातुरी–वि०स्त्री०—प्रातुर, घबराई हुई।

प्रात्तोताई–वि०स्त्री०—१ इतराई हुई, पागल।
कहा०—प्रात्तोताई मांटी प्रावै, दोपारां रै दियौ जगावै—पगली स्त्री पति के प्राने पर दुपहरी में भी दिया जलाती है; प्रसमय पर भी कोई काम करने पर कही जाती है।
२ सतायी हुई, दुखित।

प्रात्तोतायौ–वि०पु०—देखो 'प्रात्तोताई'

प्रात्मज–सं०पु०—१ पुत्र. २ कामदेव. ३ रुधिर (प्रनेक०)

प्रात्मा–सं०स्त्री०—देखो 'प्रातमा'

प्रात्मिक–वि० [सं०] प्रात्मा का या प्रात्मा संबंधी, मानसिक, प्रपना।
उ०—मम प्रमिय मूरि, द्रगतें न दूरि। **प्रात्मिक** प्रधार, पाहुँन पधार।—ऊ.का.

प्राथ–सं०पु० [सं प्रर्थ] १ धन, दौलत, संपत्ति, वैभव, द्रव्य।
उ०—**प्राथ** प्रटूट प्रखूट प्रन, प्रजा घणी सुखपोस। धन बांका ऊ प्रंगड़ो, साहिब जे संतोस।—बां.दा.
[सं० प्रर्थ] २ मतलब, प्रयोजन. [सं० हस्त्] ३ हाथ.
[सं० प्रर्थ] ४ किसानों के कार्य करने वाले व्यक्तियों का वर्ष भर के लिए निश्चित किया हुप्रा दिया जाने वाला धान प्रथवा धन।

प्राथड़णौ, प्राथड़बौ–क्रि०प्र०—१ युद्ध करना, लड़ना। उ०—ढिग प्रकबर दळ ढांण, प्रग प्रग झगड़ै **प्राथड़ै**। मग मग पाडै मांण, पग पग रांण प्रतापसी।—दुरसौ प्राढ़ो २ लड़खड़ाना।
उ०—घूरण नयणां चळ काजळ जळ घूमै। लड़ थड़ **प्राथड़तो** प्रीतम गळ लूमै।—ऊ.का. ३ प्रंधाधुंध चलना।
उ०—दिसा भूल होयोड़ा दुसटी, प्राथण रा **प्राथड़िया** है। घ्यांन तुरी चढ़ि लोभ गधेड़ै, चोड़ैधाड़ै चड़िया है।—ऊ.का.
प्राथड़णहार-हारो (हारी), प्राथड़णियौ–वि०—युद्ध करने वाला, लड़खड़ाने वाला।
प्राथड़िप्रोड़ौ-प्राथड़ियोड़ौ-प्राथड़योड़ौ—युद्ध किया हुप्रा, लड़खड़ाया हुप्रा।
प्राथड़ीजणौ, प्राथड़ीजबौ—भाव वा०।

प्राथड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—लड़खड़ाया हुप्रा, युद्ध किया हुप्रा।
(स्त्री० प्राथड़ियोड़ी)

प्राथण–सं०स्त्री०—संध्या, सांझ। उ०—मित मोरियौ तूझ **प्राथण** प्रोथ बिराजै। नाचै ताळी-ताळ पुळां घण पुराची बाजै।—मेघ०
कहा०—दिन ऊगा गहडंबरां, प्राथण झीणी वाव, डंक कहै सुण भड्डळी, ए काळा तणा सुभाव—प्रातःकाल की उमस प्रौर सायंकाल की मंद वायु दुष्काल के लक्षण हैं।
२ निवासस्थान, घर।

प्राथणली–सं०स्त्री०—सांझ, संध्या (क्षेत्रीय)

प्राथणी–सं०स्त्री—१ दूध को जमाने निमित्त पात्र। उ०—**प्राथणी** बीसमी किसौ प्रब प्रवरचौ, समी घर सेख रै वणी सादी।
—गोपीनाथ गाडण
२ वह पात्र जिसमें दही जमा हुप्रा हो। उ०—खुली **प्राथणियां** सायगियां खाती, फूली-फूली फिर फूंधाळी गाती।—ऊ.का.
कहा०—प्रोठी कदेई प्राथणी मिळै—मादा ऊँट का दूध कब जम कर दही बनता है? प्रर्थात् दूध होने पर भी वह जमता नहीं। किसी व्यक्ति के समय पर काम न प्राने पर कही जाती है।

प्राथब–सं०पु० [सं० प्रर्थ] लगान, कर। उ०—**प्राथब** का देवाळ छां। एक थांहरै रैत नै चैण सुणियौ, तैरा थाका पावां प्राया छां।
—कहवाट सरवहिया री बात

प्राथमंण, प्राथमणउ–सं०स्त्री०—१ पश्चिम दिशा, प्रस्त होने की दिशा। उ०—पहिल्नी होय दयामणउ, रवि **प्राथमणउ** जाइ। रवि ऊगइ विहसइ कंमळ, तिण इक विमणउ थाइ।—ढो.मा.
२ सायंकाल, संध्या। उ०—पंडव नांमी नीठ पाड़ियौ, लग उगमण **प्राथमंण** लग।—भीमसिंह सीसोदिया री गीत
३ प्रस्त, नाश, प्रवसान।

प्राथमणी–सं०स्त्री०—१ प्रस्त, नाश. २ संध्या, सायंकाल. ३ पश्चिम दिशा।

प्राथमणौ, प्राथमबौ–क्रि०प्र० [सं० प्रस्तमन] प्रस्त होना, प्रवसान होना। उ०—तपै सूर परतापसिंह, सब कूकै संसार। **प्राथमियां** सूं प्रोळखे, उण बिन घोर प्रंधार।—ऊ.का.
प्राथमणहार-हारो (हारी), प्राथमणियौ—प्रस्त होने वाला।
प्राथमिप्रोड़ौ-प्राथमियोड़ौ-प्राथमयोड़ौ—प्रस्त, प्रवसान हुप्रा हुप्रा।
प्राथमीजणौ, प्राथमीजबौ—भाव वा०।
प्राथम्मिणौ, प्राथम्मिबौ—रू०भे०।
कहा०—प्राथमियां पछै प्रवेळौ नईं नै खोयां पछै भौ नईं या प्राथमियां कांई प्रवेळौ है खोसियां पछै कांई डर है—जब तक वस्तु पास में रहती है तभी तक उसके खोने का भय रहता है.
२ ऊगै सौ तो प्राथमै, जलमै सो मर जाय—जो जन्म लेता है वह नाश को भी प्रवश्य प्राप्त होता है; संसार नश्वर है।

सं०स्त्री०—१ पश्चिम दिशा. २ अस्त होने की क्रिया।

आथमांण–सं०पु०—१ अस्त. २ पश्चिम दिशा।

आथमांणी–वि० —द्रव्य का उपभोग करने वाला।

आथमियोड़ी–भू०का०कृ०—अस्त, अवसान हुआ हुआ।
(स्त्री० आथमियोड़ी)

आथम्मणी, आथम्मबौ–क्रि०अ०—१ देखो 'आथमणी' (रू भे०)
उ०—विण जोर सोर पुर विस्तरै भड़ दरबार निहार अत, ऊगतै भांण आथम्मियौ पूगै दिन जोधांण पत।—रा.रू.

आथर–सं०पु० [सं० आस्तर] १ सर्दी आदि से बचने के लिए मवेशियों पर डाला जाने वाला मोटा वस्त्र (उस वस्त्र के डाले जाने से उनके चलने की क्रिया में कोई रुकावट नहीं होती।). २ घोड़े व ऊँट के जीन के नीचे दिया जाने वाला वस्त्र। (अल्पा० आथरियौ)
कहा —१ गधा तौ कूदै ई नंई नै आथरिया पै'ला कूदै—वह अफसर (या व्यक्ति जिस पर सब उत्तरदायित्व है) तो कुछ कहता ही नहीं किन्तु उसके साथ छुट-पुटे आदमी व्यर्थ ही डांटने लगते हैं। संबंधित व्यक्तियों की उपस्थिति में असंबंधित व्यक्तियों का व्यर्थ में कुछ कहना-सुनना. २ गधो तौ सागै पण आथरिया बदळियोड़ा—बनावट एवं टीमटाम से वास्तविकता नहीं छिपती. ३ आथर साटै बोरो पा'ड़ नै कांई थोरो—समान मूल्य या गुण की वस्तुओं के अदल-बदल पर।

आथवण–सं०स्त्री०—देखो 'आथमण'। उ०—घोघूंदो कोस नव आथवण नूं जीमणै रौ घाटानूं पैंडो।—नैणसी

आथवणी, आथवबौ–क्रि०अ०—देखो 'आथमणी।
उ०—तद प्रथीराज कुंभलमेर सूं चढ़ियौ दिन आथवतां रो सु परभात जाय तोडै।—नैणसी

आथमियोड़ी–भू०का०कृ०—देखो 'आथमिओड़ी'।
(स्त्री० आथमिओड़ी)

आथांण–सं०पु० [सं० स्थान अथवा आस्थान] १ स्थान, जगह।
उ०—कुंजर जिण रै श्रीकळस, अलहणपुर आथांण।—बां.दा.
२ नगर, शहर (अ.मा.) ३ घर (मि० आथांणी)
४ गढ़, किला। उ०—आठ पोहर मोटा आथांणा। वाखांणां थारी वडम।—किसनो आढ़ौ ५ सिंह की मांद. ६ राजधानी. (ह.र.) ७ पश्चिम दिशा। उ०—इसो कुण अभंग लग उदै आथांण नूं प्रसण जंग आंगमै आज 'कूपांण' नूं।—रांमलाल बारहठ

आथांणि, आथांणी–सं०पु०—घर, स्थान। उ०—महमंदखांन घाम्रे मनाइ। आपणइ 'अन्न' आथांणि आइ।—रा.ज.सी.

आथापूंजी, आथापोती–सं०स्त्री० [सं० अर्थ+फा० पूंजी] १ संपूर्ण संपत्ति, जमा-पूंजी, धन-दौलत। उ०—अमरसी भूप सुरतांण अमोलक, सुपह वडां ची रीत सबै। सिवनाथा मुरधर धर संपत, आथापूंजी तूंज अबै।—सिवनाथसिंह चांपावत री गीत। २ घर संबंधी संपूर्ण सामान जिसमें धन-दौलत भी हो. ३ गृहस्थी के प्रयोग में आने वाला समस्त सामान (दहेज)

आथिभुक–सं०पु०—मोती (नां.मा.)

आथिमणौ, आथिमबौ–क्रि०अ०—देखो 'आथमणौ' (प्रा.प्र.)
उ०—पूठि मिल्या ताल्या तेजी, जई आथिमतइ सूरि।—कां.दे.प्र.

आथीड़ा-साथीड़ा–सं०पु०—दोस्त, मित्र, साथी।

आथीत–सं०पु०—आतिथ्य। वेलि.टी.

आथुड़णौ, आथुड़बौ–क्रि०अ०—देखो 'आथड़णौ'। उ०—खाग झड़ उरड़ पड़ ढालड़ा खड़भड़ै रोस चढ़ सोहड़ आथुड़ अगुट रड़वड़ै।
—किसनजी आढ़ौ

आथुड़ीजणौ, आथुड़ीजबौ—भाव वा०।

आथुड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'आथड़ियोड़ौ'।

आथुण–सं०पु० [सं० स्थान] १ स्थान. २ नगर. ३ घर।
उ०—मुख खड़भड़ै सहर तरसींग रा ऊजड़ै झाक आथुण अरडींग रा।—महादांन महड़ू
सं०स्त्री०—४ पश्चिम दिशा।

आथुस–सं०पु०—लोहा (अ.मा.)

आथूंण, आथूंणी–सं०स्त्री०—पश्चिम दिशा। उ०—१ सांझ री किरण ढळै आथूंण, वळी यूं पीळीजी पिणिहार।—सांझ
उ०—२ ऊगूणी आथूंणी दै छौळ, सुखावै आखै अंबर मांय।—सांझ
क्रि०वि०—पश्चिम की ओर।

आथूंणू–क्रि०वि० —पश्चिम की तरफ।
वि०—पश्चिम का, पश्चिम दिशा संबंधी।

आथूंणौ–सं०पु०—पश्चिम दिशा। (मि० आथूंण)

आथू–सं०पु०—वह व्यक्ति जो वर्ष भर कृषक का कुछ कार्य करने के बदले अनाज वा धन प्राप्त करता हो।

आथूण–सं०स्त्री०—पश्चिम दिशा (रू भे०) (मि० आथूंण)

आथोमण–वि०— प्रयोजन वाला। उ०— सांमि धरम्मी सांमतण, सुणि पण गुणै सपूत। मिळिया तै आथोमणा, राव तणा रजपूत।
—रा.रू.

आदंत–वि० [सं० आदि+अंत] आद्यंत, आदि से अंत पर्यन्त।
उ०—गण त्रविध नह ग्यांन छंद आदंत न छांणै।—क.कु.बो.

आद–वि० [सं० आदि] १ प्रथम, पहला, शुरू का, आरम्भ का, मूल, अग्र, उत्पत्तिस्थान। उ०—आदि न को तो बिण अनंत, आतम क्रम्म न आद।—ह.र. २ देखो 'आध'।
सं०पु०—१ परमेश्वर।
सं०स्त्री०—२ आरम्भ, बुनियाद. [फा० याद] ३ याद, स्मरण।
उ०—अकबर कीना आद, हींदू नृप हाजर हुवा। मेदपाट मरजाद, पग लागो न प्रतापसी।—दुरसो आढ़ौ [रा०] ४ अदरख, अद्रक (मि० 'आदौ') ५ आर्द्रा नक्षत्र।
कहा०—पहली आद टपूकड़ै मासां पखां मेह—आर्द्रा नक्षत्र के आरंभ में बूंदें पड़ जांय तो महीने पद्रह रोज में वर्षा हो।

आदक–क्रि०वि० [सं० आदिक] १ आदि, प्रथम, पहला, शुरू का।
उ०—अंवा इण आदक और अनेक, हिवै रण हेकण हूँ बढ़ि हेक।
—मे.म.

२ नितांत।

सं०पु०—एक प्रकार का रोग।

आदक-बादक–अव्यय—इत्यादि।

आदकवि, आदकवी–सं०पु० [सं० आदिकवि] बाल्मीकि मुनि जिन्होंने सबसे प्रथम छंदोबद्ध काव्य को जन्म दिया था।

आदगौड़–सं०पु —भारद्वाज गौत्री ब्राह्मण जो बंगाल (गौड़) से प्रारंभ हुए।

आदजथा–सं०पु०—डिंगल गीतों (छंदों) की रचना का एक नियम विशेष जिसमें नायक का नाम गीत के प्रथम द्वाले में हो और तत्पश्चात् क्रमशः वर्णन हो।

आदजुगाद, आदजुगादि, आदजुगादी–क्रि०वि०—१ सृष्टि के आरम्भ से अंत तक। उ०—जोगी **आदजुगाद** ही दीहंदा उडा।
—केसोदास गाडण

२ परम्परा का। उ०—**आदजुगाद** अखाहर आगै, सार मरण घणघणौ सुख।—प्रथीराज जैतावत रौ गीत। ३ अति प्राचीन, अनादिकाल का।

आदण–सं०पु० [सं० आदहन=हिं० अदहन] १ उबलने के लिए रक्खा गया पानी, उबाल. २ आग पर चढ़ा हुआ वह गर्म पानी जिसमें दाल, चावल आदि पकाते हैं, अदहन। उ०—रांम भरोसे ऊकळै, **आदण** ईसरदास। ऊकळता में ओर ही, बंदा राख बिसास।
—ह.र.

आदत, आदति–सं०स्त्री० [अ०] १ स्वभाव, प्रकृति. २ अभ्यास, टेव। उ०—इत्यादिक मोथी **आदतिरा** अळिया। थोथी थळवट रा थळिया बेथळिया।—ऊ.का.

आदतिया, आदत्या–सं०पु०—देवता (अ.मा.)

आदबे–क्रि०वि०—आदि, इत्यादि।

आदपंखणी, आदपंखणी-चक्रेस्वरी–सं०स्त्री०—राठौड़ों की कुलदेवी।

आद-पख, आदम-पख–सं०पु०यौ० [सं० आदिपक्ष] आरम्भ का पक्ष, कृष्ण पक्ष। उ०—ऊंच दिवस असटमी **आदपख** भाद्रव आयां।—रा.रू.

आदपुरख–सं०पु० [सं० आदि पुरुष] १ विष्णु, परमेश्वर (डिं.को.) २ ब्रह्मा।

आदम–सं०पु० [अ०] १ मनुष्य जाति का सबसे प्रथम मनुष्य जिससे मानव सृष्टि चली, प्रथम प्रजापति जिनकी स्त्री का नाम हव्वा था—इन्हीं के कारण मनुष्य आदमी कहलाते हैं (इबरानी और अरबी मत) उ०—एक न चाहै और नूं, उभै दुखी व्है अंग। **आदम** नै इळवीस रौ, प्रगट विचार प्रसंग।—बां.दा. [रा०] २ महादेव।

आदमचस्म–सं०पु० [अ० आदम+फा० चश्म] एक प्रकार का घोड़ा विशेष जिसकी आंख की स्याही मनुष्य के आंख की स्याही के समान हो। (शा.हो.)

आदमण–सं०स्त्री०—आदमी का स्त्री लिंग, स्त्री, नारी।

आदमी–सं०पु०— [अ०] १ आदम की संतान, मनुष्य।

मुहा०—१ आदमी बणणौ—सभ्यता सीखना, बड़ा नामी या गुणी बनना. २ आदमी बणाणौ—आदमी कहाने योग्य बनाना, लायक, शिष्ट, सभ्य, गुणी बनाना. ३ आदमी होणौ—सच्चे अर्थ में मनुष्य बनना, बालिग होना, गुणी, सभ्य या शिष्ट होना।

कहा०—१ आदमी जोईजै रूंवाळी, लुगाई जोईजै सूंवाळी—आदमी शरीर में रोम वाला होना चाहिए और स्त्री रोमों से हीन. २ आदमी रा भाग पत्तै नीचे है—आदमी का भाग पत्ते के नीचे है। जैसे पत्ता हिलता है वैसे ही मनुष्य का भाग्य परिवर्तित होता रहता है. ३ आदमी वाड़ में मूतता ही आया है—यह काम होता ही आया है कहां तक रोकोगे; पुरुष व्यभिचारी होते ही हैं. ४ आदमी है के घणचक्कर—आदमी है या घन-चक्कर; मूर्ख या नटखट के लिए. ५ कूवौ-कूवौ नहं मिळै पण आदमी आदमी सौ वार मिळै—एक स्थान का कुआ दूसरे स्थान के कुए से नहीं मिल सकता किन्तु आदमी आपस में कभी न कभी अवश्य मिल जाते हैं; आदमी का काम आदमी से कभी न कभी अवश्य पड़ता है।

यौ०—आदमियत।

२ पति।

आदर–सं०पु० [सं०] सम्मान, सत्कार, प्रतिष्ठा, इज्जत, खातिर, आस्था, शिष्टाचार।

आदरणीय–वि० [सं०] आदर के योग्य, सम्मान करने के योग्य, मान्य, माननीय।

आदरणौ, आदरबौ–क्रि०स०—१ प्रारम्भ करना, आरम्भ करना।
उ०—मांयली तोपां तौ छूटै आडावळी धूजै ओ। आउवे रा नाथ तौ सुगाळी पूजै ओ, झगड़ौ **आदरियौ**—झल्लै आउवौ।
—लो.गी.

कहा०—आदरयां अधूरा रहै, हर करै सौ होय—आदमी जो करना चाहता है वह नहीं होता; भगवान करते हैं वही होता है।

२ आदर देना, सत्कार करना। उ०—१ आपरा वयण हूँ थांगौ नह **आदरूं**। आदरूं वयण जो रांग वाळै।
—जयसिंह राठौड़ रौ गीत

उ०—२ इण कारण कीरत **आदरियौ**, दह सोतां मुसकळ ओ देस।
—क्षत्रिय प्रशंसा

३ स्वीकार करना। उ०—१ कठण रीत रजपूत कुळ, खाग कमाई खाय। ओर कमाई **आदरै**, गोलो झगड़ै गाय।—बां.दा.

४ महत्व देना। उ०—जगमें रवि सुत जनम दांन कंचन **आदरियौ**।
—अरजुणजी बारहठ

आदरणहार-हारौ (हारी), आदरणियौ–वि०—प्रारंभ करने वाला, आदर करने वाला।

आदरिओड़ौ-आदरियोड़ौ-आदरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

आदरभाव-सं०पु०—सम्मान, सत्कार, कदर, प्रतिष्ठा ।

आदरवंत-वि०—१ आदर देने वाला, सत्कार करने वाला. २ आदर या सत्कार प्राप्त करने वाला ।

आदरस-सं०पु० [सं० आदर्श] १ दर्पण, शीशा (अ.मा.)
उ०—इतरै एक आली ले आवी, आंनन आगळि **आदरस** ।—वेलि.
२ अनुकरणीय, नमूना ।

आदरा-सं०स्त्री० [सं० आर्द्रा] सत्ताईस नक्षत्रों के अंतर्गत एक नक्षत्र ।
कहा०—१ आदरा बाजै बाय झूंपड़ी झोला खाय—आर्द्रा नक्षत्र में वायु चले तो झोंपड़ी झोंका खाने लगती है. २ आदरा भरै खादरा पुनरवसु भरै तळाव—आर्द्रा नक्षत्र में अगर वर्षा हो तो वह थोड़ी होती है किन्तु पुनर्वसु नक्षत्र में वर्षा होती है तो वह काफी होती है जिससे तालाब आदि भर जाते हैं. ३ आदरा वरसै नहीं, म्रिगसरा पून न जोय, तौ जांणीजै भड्डळी, वरसा बूंद न होय—अगर आर्द्रा नक्षत्र में वर्षा न हो, मृगशिरा नक्षत्र में पवन न चले तो निश्चय ही दुष्काल होगा. ४ क्रतिका कोरी गई, आदरा मेह न बूंद, तौ यूं जाणै भड्डळी, काळ मचावै दूंद—अगर कृत्तिका और आर्द्रा नक्षत्र में वर्षा की बूंद भी न पड़ी तो निश्चय ही दुष्काल का उपद्रव होगा.
५ रोयण तपै नै मिरगला बाजै, तौ आदरा अणचित्या गाजै—अगर रोहिणी नक्षत्र में कड़ाके की गर्मी पड़े, मृगशिरा नक्षत्र में तेज वायु चले तो आर्द्रा नक्षत्र में अवश्य ही वर्षा होगी ।

आदरियोड़ो-भू०का०कृ०—१ प्रारम्भ किया हुआ. २ आदर किया हुआ । (स्त्री० आदरियोड़ी)

आदरियौ-सं०स्त्री० [सं० आर्द्रा] आर्द्रा नक्षत्र । देखो 'आदरा' ।
कहा०—एक आदरियौ हाथ लग जाय पछै तौ करसौ राजी—आर्द्रा नक्षत्र में एक बार भी वर्षा हो जाय तो कृषक प्रसन्न रहता है ।

आदली-सं०स्त्री० [अ० अदल अथवा आदिल] न्याय, इन्साफ ।
उ०—बहादुरी, सखावत, **आदली**-ऐ तीन गुण अवस्य पातसाह में चाहिजै ।—वां.दा.

आदवराह-सं०पु० [सं० आदि+वाराह] १ शूकर, सूअर (ह.नां.)
२ वाराहवतार (अनेक०)

आदसगत-सं०स्त्री० [सं० आदि+शक्ति] आदि शक्ति, दुर्गा, महाकाली । उ०—**आदसगत** रीझियां, खोण कीधा तर ख्याळा । रुद्र रीझिया उवर पहरै रुंडमाळा ।—बखतौ खिड़ियौ

आदसजुगाद-क्रि०वि०—परम्परा से ।

आदांन-सं०पु० [सं० आदान] १ ग्रहण करना, लेना, स्वीकार करना ।
उ०—मेधा महंत, दीपत दिगंत । **आदांन** ओघ, अक्षय अमोघ ।
—ऊ.का.

आदांन-प्रदांन-सं०पु०यौ०—लेना-देना, लेन-देन, त्याग-ग्रहण, परिवर्तन ।

आदाब-सं०पु० [अ०] १ नियम, कायदा. २ लिहाज, इज्जत ।
उ०—जिणथी आपरो सिविर ऊंचा स्थळ पर होइ तौ कुपुत्र नूं **आदाब** राखण री सुद्धि रहै ।—वं.भा.
३ नमस्कार, अभिवादन. ४ संयम. ५ ध्यान, ख्याल ।

आदाबअरज-सं०पु०यौ० [अ० आदाब+अर्ज] नमस्कार, अभिवादन ।
उ०—**आदाबअरज** उम्मेदवार, परवरिसि करहु परवरदिगार ।
—ऊ.का.

आदासीसी-सं०स्त्री०—अर्द्धशिरोवेदना, आधे सिर में पीड़ा होना ।

आदि-वि० [सं०] १ प्रथम, पहला, आरंभ का ।
अव्यय-वगैरह, इत्यादि ।
सं०पु०—१ उत्पत्ति स्थान, आरम्भ, बुनियाद, कारण, मूलकारण.
सं०स्त्री० [रा०] २ अदरख. ३ पृथ्वी (डि.नां.मा.)

आदिक-अव्यय—इत्यादि, वगैरह । उ०—अर झालां प्रमारां नूं प्रचारि सीसोदियां भी केथोली सींघोली, जावद, अठांणां वींझोळी **आदिक** देस दुरग दाबि बेथम रै माथै तोपां रौ ताव धमायौ ।—वं.भा.

आदिकवि-सं०पु० [सं०] १ वाल्मीकि ऋषि. २ शुक्राचार्य ।

आदिकारण-सं०पु० [सं०] सृष्टि का मूल कारण ।

आदिजुगाद-क्रि०वि०—आदि से, प्रारंभ से (पिं.प्र.)

आदित-सं०पु० [सं० आदित्य] सूर्य्य (ह.नां.)

आदितपुत्र-सं०पु० [सं० अदिति+पुत्र] देवता (डिं.नां.मा.)

आदिता-सं०पु० [सं० आदित्य] सूर्य । उ०—कोट अनंत परकास ज्यूं सिसहर **आदिता** ।—केसोदास गाडण

आदित्त, आदित्य-सं०पु० [सं० आदित्य] १ सूर्य्य । उ०—मारुवणी मुंह वंन्न **आदित्त** हूं उज्जळी ।—ढो.मा. २ देवता, इन्द्र आदि.
३ भोजक जाति के व्यक्तियों के अनुसार शाकद्वीप के मग वर्ण के अंतर्गत एक जाति विशेष ।

आदित्यवार-सं०पु०—रविवार ।

आदिन-सं०पु०—बुरे दिन, संकटकाल, बुरा समय ।

आदिपक्ख-सं०पु० [सं० आदि+पक्ष] आरम्भ का पक्ष, कृष्ण पक्ष ।
उ०—**आदिपक्ख** अस्टमी मास नभ सुभ गुण मंडित ।—रा.रू.

आदिपुरक्ख, आदिपुरस-सं०पु० [सं० आदिपुरुष] परमेश्वर ।
उ०—ब्रह्म नमो प्रथु-राजा **आदिपुरक्ख** ।—ह.र.

आदिम-वि०—पहले का, पहला, प्राथमिक ।

आदियासगत-सं०स्त्री० [सं० आद्यशक्ति] देवी, दुर्गा । उ०—**आदियासगत** हिंगळाज आप ।—रामदांन लाळस

आदिरस-सं०पु [सं० आदर्श] दर्पण, शीशा । उ०—बहु दिवसे प्री आवियउ, सझिया श्री सिणगार । निजरि दिखाई **आदिरस**, किम सिणगार उतार ।—ढो.मा

आदिल-वि०— [अ०] १ उदार. २ न्यायी । उ०—सेरसाह सांचौ, सीलवंत, **आदिल**, नेक, नीतवंत, खबरदार अवलियौ रैत रौ पीहर ।
—वां.दा.ख्या.

आदिविपुला-सं०स्त्री० [सं०] प्रथमदल के प्रथम तीन गणों में अपूर्व पाद वाली आर्य्या, एक छंद विशेष ।

आदिविपुळा-जघनचपळा-सं०स्त्री०—एक छंद विशेष । प्रथम पाद के

गणत्रय में अपूर्ण पाद वाली आर्य्या जिसके दूसरे दल में दूसरा और चौथा गण जगण हो।

आदिसराध–सं०पु० [सं० आद्यश्राद्ध] मृत्योपरांत मृतक के पीछे ग्यारहवें दिन किए जाने वाले सोलह श्राद्धों में से पहला।

आदी-वि० [अ०] अभ्यस्त।

क्रि०वि० [सं० आदि] १ नितांत, बिल्कुल. २ इत्यादि।

आदीत, आदीता, आदीतौ–सं०पु० [सं० आदित्य] १ सूर्य।

उ०—**आदीता** हूँ ऊजळौ, मारवणी मुख ब्रन्न।—ढो.मा.

२ अदीति के पुत्र–इंद्र आदि देवता (अ.मा.) ३ वामन. ४ वसु. ५ विश्वोदेवा।

आदीपुरख–सं०पु०—देखो 'आदिपुरख'।

आदीस्वर–सं०पु० [सं० आदीश्वर] १ जैनियों के प्रथम तीर्थङ्कर, ऋषभदेव। उ०—१ नांम नंद आणंदनिध, भरत जनम करतार। सिद्धाचळ दरसण सुखद, **आदीस्वर** नोकार।—बां.दा.

उ०—२ भरत चक्रवर्ती आपरी हाथ री मूंदरी रा मांणक में **आदीस्वर** री प्रतिमा खुदायी।—बां.दा. २ ईश्वर, आदिपुरुष।

आदुपंथी–वि०—१ आदिकाल या परम्परा से एक ही राह पर चलने वाला. २ रूढ़िवादी। (रू०भे० आदूपंथी)

आदू–सं०पु० [सं० आदि] १ मूल, जड़, नींव. २ पूंजी।

वि०—१ प्राचीन, आदि काल का, आदिम। उ०—घाट सुरंगी गोरियां, **आदू** कहवत एह। पदमणियां हमरोट व्है, राख म संसो रेह।—बां.दा.

२ प्रथम, शुरू का. ३ अनादि। उ०—**आदू** तिवार में सुगन औ देख अमल बिन दोघड़ा।—ऊ.का.

क्रि०वि०—१ आदि में, आरम्भ में। उ०—खसै तै साहि बिना कंध लेघ, वचाड़िय देवां **आदू** बेध।—ह.र. २ आदि, इत्यादि।

आदूखण–वि०—निर्दोष, शुद्ध, स्वच्छ।

आदूणौ–क्रि०वि०—परम्परा से।

वि०—आदिकाल के पूर्व का, प्राचीन समय का।

आदूनेत–सं०पु०—परम्परा से आती हुई नेत (देखो 'नेत')

आदूपंथी–वि०पु०—देखो 'आदुपंथी'। उ०—**आदूपंथी** खागवाहा भागांतठै ताक ओळी पठांणां सूं दादूपंथी वागा बरापूर।—दादूपंथी साधां री गीत

आदूपण, आदूपणौ–सं०पु०—शुरुआत, आदि।

आदेच–सं०पु०—एक प्राचीन राजपूत वंश।

आदेस–सं०पु० [सं० आदेश] १ आज्ञा, हुक्म (वं.भा.) २ उपदेश. ३ नमस्कार, प्रणाम। उ०—अकेह अप्रेह अलेह अखेस, **आदेस** आदेस आदेस आदेस।—ह.र. ४ ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों का फल. ५ एक अक्षर का दूसरे के स्थान पर आना, अक्षर परिवर्तन, प्रकृति और प्रत्यय को मिलाने वाले कार्य (व्याकरण)

आदेसणौ, आदेसबौ–क्रि०स०—१ नमस्कार करना, अभिवादन करना। उ०—प्रथीनाथ पाई फतै सदाई 'जैसाह' पांण, वैरी ताई **आदेसियौ** रूकवाह वाह।—पहाड़ खां आढ़ौ २ आज्ञा देना।

आदेसि–सं०स्त्री०—आज्ञा (मि० आदेस—रू.भे.) उ०—राउळ कान्ह तणइ **आदेसि**, पाडइ सोर तोरकइ देसि।—कां.दे.प्र.

आदौ–वि० [सं० अर्द्ध] आधा, देखो 'आधौ'।

यौ०—आदौ-दूदौ।

सं०पु० [सं० अद्रक] अदरक, आद्रक।

आदोत–सं०पु० [सं० आदित्य] १ सूर्य्य। उ०—जनम नींबाज पावै परम जोत रा, दखां **आदोत** रा चहन दमकै।—अज्ञात २ प्रकाश।

आदोदूदौ–वि०यौ०—आधे भाग के बराबर या लगभग।

आदोफर–सं०पु०—१ पहाड़ के मध्य का भाग (मि० आधोफर) २ आकाश (अ.मा.)

आदोळौ–सं०पु०—माप लेने का एक उपकरण।

आद्र–वि० [सं० आर्द्र] १ गीला. २ हरा।

सं०पु०—आदिकाल। उ०—अजै सिव **आद्र** पांण आलोज, हुतौ ज हुतौ ज हुतौ ज हुतौ ज।—ह.र.

आद्रकणौ, आद्रकबौ–क्रि०अ०—भयभीत होना, डरना। उ०—**आद्रक्कै** आगरौ हुई दिल्ली हलचल्ले, जाट-वाट जूजुवा देस वैराट दहल्ले।—रा.रू.

आद्रकियोड़ौ–भू०का०कृ०—डरा हुआ, भयभीत, दहला हुआ।

आद्रा–सं०स्त्री० [सं० आर्द्र] सत्ताईस नक्षत्रों के अंतर्गत छठवें नक्षत्र का नाम जो आषाढ़ के प्रारंभ में ही लगता है। देखो 'आदरा' उ०—इहि बीचि **आद्रा** बूठी छै, सु भुंइ सहु आली कीधी छै।—वेलि. टी.

आधंतर आधंतरि, आधंधर–वि०—१ आकाश के मध्य. २ बीच का, मध्य का। उ०—ऊपाड़ियै तूट **आधंतर**, जण जण पूगौ जुवौ जुवौ।—दुरसौ आढ़ौ

सं०पु०—आकाश, आसमान। उ०—लागां वीर ताळी अछरां **आधंतरां** लूबै।—जवानजी आढ़ौ।

क्रि०वि०– आकाश में, मध्य में, बहुत ऊंचे पर। उ०—गढ़ रै हूं गिरनार अहूं मूंनव्रत निरंतर भरूं झांप भैरव चढ़ूं गिरनेर **आधंतर**।—पहाड़खां आढ़ौ

आध–वि० [सं० अर्द्ध] दो बराबर भागों में से एक, आधा।

सं०पु०—कृषकों के कार्य करने वाले व्यक्तियों को कृषक द्वारा उनकी सेवाओं के बदले बारह मास के लिए दिया जाने वाला अनाज या धन। (मि० आथ)

सं०स्त्री० [सं० आधि] मानसिक चिंता, मानसिक व्यथा, फिक्र। उ०—चित सूं आगम चितवै, आ मजबूत उपाध। 'बंक' जुई नहीं बंछियौ, इण कारण व्है **आध**।—बां.दा.

आधख–सं०पु०—प्रभुत्व, अधिकार।

आधखड़–सं०पु०—अधेड़ ।

आधण–सं०पु० [सं० आदहन] देखो 'आदण' । उ०—मद विद्या धन मांन, ओछा सौ उकळै अवट । आधण रै उनमांन रंवे विरला राजिआ ।—किरपारांम

आधपति, आधपती–सं०पु० [सं० अधिपति] अधिपति, राजा, नृप । उ०—आधपति धारियौ आलेख अद दूजै 'अजै', 'अभै' राज करै करी तारियौ आंबेर—हुकमीचंद खिड़ियौ

आधमी–सं०स्त्री०—खेती की एक रीति जिसके अनुसार उपज का आधा भाग तो खेत का स्वामी ले लेता है तथा आधा भाग कृषक (परिश्रम करने वाले के पास) बचा रहता है । पशु भी पालन-पोषण के निमित्त दिए जाते हैं । उनकी भी यही रीति है ।
(मि० आधियौ)

आधरत, आधरत्ति–सं०स्त्री० [सं० अर्द्धरात्रि] निशीथ, अर्द्धरात्रि । उ०—आरंभ रांम अइतसी अत्ति आवियउ मोर सिरि आधरत्ति ।
—रा.ज.सी.

आधरै–क्रि०वि०—धीरे, आहिस्ता । उ०—अमल कीयौ घोड़ा रौ तंग लीयौ आधरै आधरै आइ, फोज मेवाड़ री भेळी हुवौ ।—नैणसी

आधव्याध–सं०पु० [सं० आधि-व्याधि] मानसिक और शारीरिक पीड़ा ।

आधांतर–देखो 'आधंतर' ।

आधांन–सं०पु० [सं० आधान] १ स्थापना, रखना. २ गिरवी या बंधक रखना. ३ गर्भाधान, गर्भ । उ०—खाय तडच्छा खांन, थारा भय सौ भारथा । असुरांणी आधांन, अवधि बिहूणा ऊगळै ।
—ला.रा.

आधांनवती–सं०स्त्री० [सं०] गर्भवती ।

आधाईक–वि०—आधा, अर्द्ध, आधे के लगभग । उ०—कछ देस में कच्छी ओसवाळ कल्खसूरी किया, उबै हमैं आधाईक आंचळिया में वसै है आधाईक तपा में वसै है ।—बां दा. ख्या.

आधार–सं०पु० [सं०] १ आश्रय, सहारा, अवलंब । २ आलबाल, पात्र. ३ नींव, बुनियाद, मूलाधार. ४ आश्रय देने वाला, पालन करने वाला. ५ अधिकरणकारक (व्याकरण)

आधारणौ, आधारबौ–क्रि०स० [सं० आधार] १ लगाना (सती होने वाली स्त्रियों द्वारा सती होने के लिए जाते समय तोरण द्वार पर कुंकुम से भरकर अपने हाथ का चिन्ह लगाना । उ०—प्रथम सूरजपोळ, आच कुंकुम आधारियौ । २ सहारा या आधार देना, उठाना, उठाये हुए रखना । उ०—बेलियां बापू कारंतो आधारंतो भुजां आभ ।—देवो सुरतांणोत बीठू

आधारा, आधारि–सं०पु० [सं० आधार] आधार, आश्रय । उ०—असमरा आरि आधारि दाढ़ां अगरि । बढ़ियौ गाढ़ फोजां विडांणी ।—रावत मांनसिंह सलूम्बर री गीत

आधारी–वि०—सहारे पर रहने वाला ।

आधासी, आधासीसी–सं०स्त्री० [सं० अर्द्ध+शीर्ष] आधे सिर की पीड़ा, अधकपाली । उ०—जान्हूं दैरू जोय बिगत दुख भेद बतावौ । आधासीसी आंखि जुवर कुण सूळ जतावौ ।—ऊ.का. सूर्यावर्त नाम का सिर का रोग ।

आधि–सं०स्त्री० [सं०] १ मानसिक व्यथा, चिन्ता, दुख (डिं को.) उ०—बुध व्याधिय आधि उपाधिय में, सुध लाधिय सुक्ख समाधिय में ।—ऊ.का. २ देखो 'आदि' ।

आधियौ–सं०पु० [सं० अर्द्ध] १ किसी विषय में आधा हिस्सा लेने वाला. २ युद्ध में आधा भाग लेने वाला, योद्धा ।

आधिदेव, आधिदैव, आधिदैविक–सं०पु० [सं० आधि+दैविक] देवता, यक्ष, भूत प्रेतादि द्वारा प्राप्त दुःख । सुश्रुत में सात प्रकार के दुःख गिनाए गए हैं उनमें से निम्न लिखित तीन इस वर्ग के अंतर्गत हैं—१ ओले व वर्षादि से उत्पन्न दुःख. २ दैव बल कृत (बिजली पड़ना). ३ स्वाभाव बल कृत (भूख प्यास) उ०—आधिभूतक आधिदेव अध्यातम, पिंड प्रभवति कफ बात पित्त ।—बेलि.

आधिपत्य–सं०पु० [सं०] अधिकार, स्वामीपन । उ०—आप रा अनुज विक्रम रै उज्जइणी रा आधिपत्य रो अभिसेक करि राजा भरथरि दुरगम परवतां में निवास धारियौ ।—वं.भा.

आधिभूतक, आधिभूतग, आधिभौतिक–सं०पु० [सं० आधिभौतिक] व्याघ्र सर्पादि जीवधारियों द्वारा प्राप्त दुःख, सुश्रुत में रक्त, शुक्र दोष अथवा आहार-विहार से उत्पन्न व्याधियों को भी आधिभौतिक कहते हैं । उ०—आधिभूतक आधिदेव अध्यातम, पिंड प्रभवती कफ बात पित्त ।—वेलि.

आधियौ–सं०पु०—जायदाद का आधे हिस्से का हिस्सेदार । उ०—ऊदा धरती आधिया आहव आध सिवाय ।—रा.रू.

आधी–वि०—१ आधा, अर्द्ध (पु० आधौ) देखो 'आधौ' २ अपूर्ण ।
सं०स्त्री०—१ देखो 'आधि' । २ अर्द्ध रात्रि । उ०—आवै आधी रौ (ह) सावळ हथ सावळ सुणे ।—पा.प्र.

आधी'क–वि०—लगभग आधी ।

आधीन–वि० [सं०] १ आज्ञाकारी. २ वशीभूत. ३ स्वाधिकार युक्त. ४ आश्रित, दीन ।

आधीनता, आधीनी–सं०स्त्री०—१ वशवर्तित्व. २ नम्रता. ३ ताबेदारी. ४ आज्ञाकारिता. ५ अधीनता । उ०—चीतमरण रण चाय, अकबर आधीनी बिना । पराधीन दुख पाय, पुनि जीवै न प्रतापसी ।—दुरसौ आढ़ौ

आधीपौ–सं०पु०—खेती की एक रीति जिसके अनुसार उपज का आधा भाग तो खेत का स्वामी ले लेता है तथा आधा भाग कृषक (परिश्रम करने वाले के पास) बचा रहता है । पशु भी पालन-पोषण के निमित्त दिए जाते हैं उनकी भी यह रीति है ।

आधीरात–सं०स्त्री० [सं० अर्धरात्रि] जब रात का आधा भाग व्यतीत हो गया हो ।

आधुनिक–वि० [सं०] १ वर्तमान समय का, हाल का, आजकल का. २ नवीन, अभी का, नया । उ०—जिका **आधुनिक** पंडितां रै अवलंबन रूप समस्त विद्या समुद्र अनेक ग्रंथ बणाया ।—वं.भा.

आधू–वि०—आधे हिस्से पर कार्य करने वाला ।

आधूं-आध—देखो 'आधोआध' ।

आधेअऊखे–सं०स्त्री०—आधी कीमत । उ०—क्यों **आधेअऊखे** जमी गुमावै हो ? कुंई सोच'र तौ काम किया करौ ?—वरस गांठ

आधेटी–सं०पु०—किसी दूरी के बीच का स्थान, बीच, आधी दूरी । उ०—तिकै **आधेटै** पो'ता तठै दिन पोहर एक चढ़ियौ छै ।
जखड़ा मुखड़ा भाटी री वात

कहा०—जाट वाळी आधेटी—मूर्ख हिसाब ।

आधेपै–सं०पु०—देखो 'आधीणो' ।

आधेय–सं०पु०—किसी आधार पर टिकी हुई वस्तु ।

आधोआध, आधोआधि–सं०पु०—आधा भाग, बराबर का आधा हिस्सा, समान दो भागों में से एक भाग ।

आधो'केक–वि०—लगभग आधा । उ० —किल्लौ राज सोमा धांम सारौ पारि पायौ, रैणी कोट खाई सैर **आधो'केक** आयौ ।—शि.वं.

आधोड़ी–सं०स्त्री०—गाय या बैल का साफ किया हुआ आधा चमड़ा । उ०—लोह री मूठ लोह रातै नाळ री तरवार गळडवै रहती । **आधोड़ी** रौ गळडवौ रहतौ ।—वां.दा.ख्या.

आधोफर, आधोफरइ, आधोफरौ–वि०—बीच, मध्य । उ०—१ अंबर रै **आधोफरै**, वगिया टूक विहग । उ०—२ उडै रज असमांण, **आधोफर** छायौ अरक ।—गो.रू.

आधोफेर–सं०पु०—१ छज्जा । उ०—जळजाळ स्रवति जळ काजळ ऊजळ पीळा हेक राता पहल । **आधोफरै** मेघ ऊधगता, महाराज राजै महल ।—वेलि. २ आकाश और पृथ्वी के बीच में, बहुत ऊंचे पर । उ०—गाडी नालि गोळा चलै फौज गज्जं, धरा वोम **आधोफरै** ऊडि धज्जं ।—वचनिका ३ ढालू जमीन, उपत्यिका ।
उ०—आडवळ **आधोफरइ**, एवड़ मांहि असन्न । तिण अजांण ढोलइ तणइ, मूरख भागइ मन्न ।—ढो.मा.

आधोरण–सं०पु० [सं०] महावत । उ०—इण रीति वो ही गजां आप आपरा कलावां सूं **आधोरणां** नूं उछाय रोस मैं अंध होय समीप आवतां ही लोयण मिळाया ।—वं.भा.

आधोळी–सं०स्त्री०—१ देखो 'आधोड़ी'. २ बढ़ई का लकड़ी की गोलाई देखने का एक औजार ।

आधोसलै–क्रि०वि०—आर-पार, इस ओर से उस ओर तक ।
उ०—घणी तरवारियां रा वाढ़ ऊछळै छै । घणी बरछी **आधोसलै** नीसरी छै ।—सूरे खींवे री वात

आधौ–वि० [सं० अर्द्ध, पा० अद्धो, प्रा० अद्ध] (स्त्री० आधी) किसी वस्तु के दो बराबर हिस्सों में से एक ।
यौ०—आधीसीसी ।
मुहा०—१ आधी वात कै'णी—साफ न कहना, थोड़ा सा छांटता या कुछ कहना. २ आधे पेट रै'णी—तृप्त होकर नं खाना.
३ आधौ आध—दो बराबर भागों में. ४ आधौ होणौ—दुबला होना.
कहा०—१ आधी छोडै आखी नै धावै एड़ी डूबै थाह न पावै—वर्तमान की थोड़ी प्राप्ति को छोड़ कर जो भविष्य की अधिक प्राप्ति के लिए दौड़ता है वह वर्तमान की आधी प्राप्ति से हाथ धो बैठता है.
२ आधी रोटी घर री भली—आधी रोटी घर की अच्छी है । पराधीन रह कर पेट भरने की अपेक्षा स्वाधीन रह कर किसी तरह से गुजारा करना अच्छा है । परदेश में खूब पेट भरे तो वहां के कष्टों को देखते हुए उसकी अपेक्षा अपने देश में रह कर साधारण गुजारा कर लेना अच्छा है । दूसरे के घर पेट भरता हो तो भी घर का आधा भोजन अच्छा, क्योंकि दूसरे के यहां अपमान होगा. ३ आधे माहे कांमळ कांधे—आधा माघ बीत जाने पर कंबल कंधे पर आ जाती है । आधे माघ के बीतने पर जाड़ा कम होने लगता है ।

आधौआध, आधौआधि–क्रि०वि०—दो बराबर भागों में । उ०—दोनूं बंधवां कै भूमि **आधौआधि** बांटी । भावरसिंघजी मों 'दोल' काढ़मी बैंर ओटी ।—शि.वं.

आध्मांन, आध्यमांन–सं०पु० [सं० अध्मान] एक प्रकार का वायु रोग, वायु से पेट फूलना, अफारा (अमरत)

आध्यात्मिक–वि० [सं०] आत्मा सम्बन्धी, जिससे आत्मा का संबंध हो ।

आनंद–सं०पु० [सं० आनन्द] १ हर्ष, प्रसन्नता, खुशी, उल्लास ।
क्रि०प्र०—करणौ-मनाणौ-लेणौ-होणौ ।
मुहा०—आनंद रा ढोल बजावणा—प्रसन्नता मनाना, प्रसन्नता और मस्ती से जीवन बिताना ।
२ फलित ज्योतिष का एक योग ।

आनंदकंद–सं०पु०—१ आनन्द का मूल, ईश्वर. २ श्रीकृष्ण, गोपाल (अ.मा.)

आनंदता–वि०—आनन्द देने वाला ।
सं०स्त्री०—प्रसन्नता ।

आनंदबधाई–सं०स्त्री०—मंगल उत्सव ।

आनंदभैरव–सं०पु० [सं०] ज्वारादि की चिकित्सा में काम आने वाला वैद्यक का एक रस विशेष ।

आनंदभैरवी, आनंदभैरी–सं०स्त्री०—सब कोमल स्वरों वाली भैरव राग की रागिनी ।

आनंदमंदिरासण–सं०पु०—योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन जिसमें दोनों पांव की एडी पर दोनों कलाइयों को रख कर पंजे के ऊपर शरीर का बोझ डाल कर दोनों घुटनों को पृथ्वी पर लगाया जाता है और दाहिने हाथ से दाहिने पांव की ओर बांए हाथ से बांए पांव की एडी को पकड़ा जाता है ।

आनंदी–वि०—प्रसन्न, खुश ।

आप–सर्व० [सं० आत्मन, प्रा० अप्पणो] १ स्वयं, खुद (तीनों पुरुषों में)

२ तुम और वे के स्थान में आदरार्थक।

मुहा०—१ आपने भूलणौ—अपने को भूलना, होश में न रहना. २ आप सूं आप—अपने आप।

कहा०—आप आप की तांन में गधा भी मस्तांन—अपनी तान में गधा भी मस्त रहता है। अपनी मौज से क्या बड़े और क्या छोटे सभी मस्त रहते हैं. २ आप आप रा सीर-संस्कार (सेंसकार) है—अपने अपने पूर्व संस्कार और हिस्सा है। अपने अपने भाग्य के अनुसार सुख दुःख मिलते हैं. ३ आप आप री करणी नै पार उतरणी—खुद के कार्यों के फल खुद को ही मिलता है, दूसरे उसे प्राप्त नहीं कर सकते. ४ आप आपरी करणी रै कांठै—अपनी अपनी करनी के निकट हैं; अपने अपने कर्मों के अनुसार फल भोगते हैं. ५ आप आप री खेंचौ'र ओढ़ौ—अपनी अपनी चादर खेंचो और ओढ़ो; अपनी अपनी फिक्र करो; अपना अपना काम देखो; अपनी अपनी करनी का फल भोगो. ६ आप आप री रोटी हेटै खीरा देवै—अपनी अपनी रोटी सेंकने के लिए सब अंगारे रखते हैं; अपना-अपना स्वार्थ-साधन करते हैं; सब अपनी अपनी रोजी बनाये रखने का यत्न करते हैं. ७ आप आप रै घर में सारा ही (सै) ठाकर—अपने-अपने घर सभी ठाकुर; अपने घर में प्रत्येक व्यक्ति राजा के समान होता है. ८ आप आप रै थानै-मुकांनै भला—अपने अपने स्थान और मुकाम में ही भले; अपने स्थान पर सभी अच्छे लगते हैं; इतने दुष्ट हैं कि इनका अपने ही स्थान में रहना अच्छा है (बाहर निकलना अच्छा नहीं). ९ आप आपरै भाग रो सब (सै) खावै—अपने अपने भाग्य का सब खाते हैं; जिसके भाग्य में जितना लिखा है उतना वह भोगता है; सब अपने नसीब का खाते हैं, कोई किसी को भी नहीं खिलाता. १० आप-आप रौ जी सगळां नै प्यारौ है—अपना-अपना जीव सबको प्यारा है, अपनी रक्षा की फिक्र सभी को है. ११ आप कमाया कांमड़ा, किण नै दीजै दोस—अपने कमाये हुए काम हैं (अपने किये कामों का फल है), अब किसको दोष दें। जब अपने किये कर्मों का फल भोगना पड़ता है, तब कहा जाता है.

१२ आपकी (री) मौ लापसी, परायी मौ तुसकी—अपनी लपसी और पराई तुसकी होती है; अपनी खराब चीज भी अच्छी लगती है और दूसरे की अच्छी चीज भी खराब लगती है. १३ आप गुरांसा कांदा (बेंगण) खावै, दूजा नै परमोद (उपदेस) बतावै—गुरुजी स्वयं तो प्याज खाते हैं किन्तु दूसरों को प्याज न खाने का उपदेश देते हैं। जब कोई व्यक्ति स्वयं तो कोई काम करता है किन्तु दूसरों को वह काम बुरा बता कर न करने के लिए उपदेश देता है तब कही जाती है. १४ आप जैड़ी परायी होवै है—अपने समान ही दूसरों को समझना; जिससे अपने को कष्ट पहुँचता है उससे दूसरे को कष्ट पहुँच सकता है. १५ आप ठग्यां सुख ऊपजै, और ठग्यां दुख होय—स्वयं ठगाये जाने पर सुख होता है और दूसरे को ठगने से दुःख होता है। दूसरा हमें ठग लेता है तो हमें संतोष होता है कि हमने कोई बुरा काम तो नहीं किया। इससे आत्मा को शांति मिलती है किन्तु हम दूसरे को ठग लेते हैं तो हमारी ही आत्मा हमें धिक्कारती है जिससे हमें दुःख होता है. १६ आप डूबंतां बांमण लै डूबै जजमांन—ब्राह्मण स्वयं तो डूबता ही है साथ ही यजमान को भी ले डूबता है। मूर्ख पुरोहित (ब्राह्मण) के लिए, आजकल के ब्राह्मणों पर व्यंग्य; जो व्यक्ति अपने साथ अपने से संबंध रखने वाले दूसरों को भी हानि कर बैठे उसके लिए.

१७ आप न जावै सासरै औरां नै सिख (सीख) देय—स्वयं तो ससुराल जाती नहीं, दूसरों को जाने की शिक्षा देती है—जो दूसरों को उपदेश दे पर स्वयं व्यवहार न करे. १८ आप भला तौ जग (जुग) भला—भले को सब भले दिखते हैं; भले के साथ सब भलाई करते हैं. १९ आप मरतां बाप किणनै याद आवै—आप मर रहा हो तो बाप किसे याद आता है; स्वयं ही विपत्ती में पड़े हों तो दूसरों पर किसी का ध्यान नहीं जाता; पहले अपने-आपको बचाने की फिक्र होती है. २० आप मरियां पछै जुग प्रळै—अपने मरने के बाद चाहे प्रलय ही हो जाय; अपने मरने के बाद संसार में कुछ भी हो इससे हमें क्या लाभ; खुद के चले जाने के बाद पीछे लोग चाहे कुछ करें इससे अपने को कष्ट नहीं होता. २१ आप मरियां बिनां सरग कठै—खुद के मरे बिना स्वर्ग नहीं देखा जा सकता; स्वयं के द्वारा कार्य करने या कष्ट उठाने पर ही फल की प्राप्ति होती है. २२ आप मरियां सूं प्रळै है—देखो—'आप मरियां पछै जुग प्रळै'. २३ आप मरै (डूबै) जिण रै जग डूबौ—देखो—'आप मरियां पछै जुग प्रळै'. २४ आप मरयां जग परळै—देखो—'आप मरियां पछै जुग प्रळै'. २५ आप मरयां बिना सुरग कुण जाय—देखो—'आप मरियां बिना सरग कठै'. २६ आप मियां मंगता, बा'र खड़्या दरवेस—मियां स्वयं मंगते हैं और दरवाजे पर फकीर खड़ा है, धनहीन दानी के लिए; स्वयं धनहीन हों और दूसरा सहायता मांगने आवे तब. २७ आप मिळै सौ दूध बराबर मांग मिळै सौ पांणी—जो स्वयं (बिना मांगे) मिले वह दूध के समान है और जो मांगने से मिले वह पानी के समान है, मांगने की निंदा. २८ आप मीयां मांगणा नै बाहर खड़ा दरवेस देखो आप मियां मंगता, बा'र खड़्या दरवेस'. २९ आप रा कांटा तौ आप रै हीज भागै—खुद के बिछाये या डाले हुए कांटे खुद ही को चुभते हैं; अपनी करनी का फल खुद को ही भुगतना पड़ता है. ३० आपरा कीयोड़ा आपं हज भोगसी—अपनी करनी का फल खुद को ही भुगतना पड़ता है. ३१ आपरा पादा नै बड़ा सवादा—आपका पाद (अपानवायु) भी बड़ा सुस्वादु है। जब कोई व्यक्ति किसी की खुशामद करता है तब कहा जाता है. ३२ आप री खाज हाथै भागै—अपनी खुजली अपने ही हाथों से मिटती है; बिना स्वयं काम किये काम पूरा नहीं होता. ३३ आपरी खा'र परायी तकै जाय हड़मांन बाबै रै (बजरंगबली रै) धक्कै—जो आदमी अपनी रोटी खाकर परायी को भी लेना चाहता है वह हनुमानजी के धक्के चढ़ता है; जो अपना हिस्सा पाने के बाद भी दूसरे की रोटी छीनना

चाहता है उसका नाश होता है. ३४ आपरी गऊ हूं—आपकी गैया हूँ, मैं गाय के समान सीधा-सादा गरीब हूँ, मेरी रक्षा करो; जब कोई व्यक्ति किसी के पास रक्षा या शरण की याचना करता है तब कही जाती है. ३५ आपरी गरज गधै नैं बाप कुवावै (बणावै)—अपनी गरज गधे को बाप कहलवाती है। अपना काम निकालने के लिए नीच आदमी की भी खुशामद करनी पड़ती है; स्वार्थ-सिद्धि के लिए बुरा काम भी करना पड़ता है. ३६ आपरी गळी में कुत्तौ ही सेर—अपनी गली में कुत्ता भी शेर; अपने स्थान पर तुच्छ व्यक्ति भी बलवान होता है. ३७ आपरी जांघ (साथळ) उघाड़्यां आपनैं ही लाज—अपनी जाँघ उघाड़ने मे अपनेआप को ही लाज लगती है। अपने निकटस्थ संबंधियों की बुराई प्रकट करने से स्वयं ही लज्जित होना पड़ता है। (जब पुत्र आदि बुरा काम कर बैठते हैं तब बाप आदि का कथन) ३८ आपरी डाडी रै लसरकौ पैं'ली देवै—दाढ़ी जलने पर सबसे पहले व्यक्ति खुद की दाढ़ी बुझाने पर ध्यान देता है; अपना-अपना मतलब सबसे पहले बनाते हैं; अपने मतलब का सबसे अधिक ध्यान रखते हैं. ३९ आपरी गाय रौ घी सौ कोसां खाईजै—अगर आप किसी का स्वागत-सत्कार करते हैं तो वापस आपका भी स्वागत-सत्कार होगा ४० आपरी नरमाई (लायकी) पैले नैं खावै—अपनी नम्रता सामने वाले को खा जाती है; नरमाई से सामने वाला व्यक्ति भी पिघल जाता है। नम्रता के व्यवहार की प्रशंसा.

४१ आपरी नींद सूवै आपरी नींद जागै—अपनी नींद सोता है अपनी नींद जागता है (अपनी इच्छानुसार सोता है और इच्छानुसार जागता है) स्वाधीन व्यक्ति के लिये. ४२ आपरी मा नै डाकण कुण कैवै—अपनी माँ को डाइन कौन कहे; अपनी बुराई कोई प्रकट नहीं करता; अपने को कोई बुरा नहीं बताता. ४३ आपरी मारी हलाल—अपनी मारी (मुर्गी) हलाल; अपना ही किया काम ठीक समझना; अपना किया काम बुरा हो तो भी ठीक समझना.

४४ आपरी लाज आपरै हाथ में—अपनी लाज अपने हाथ में; अपनी लज्जा की रक्षा मनुष्य स्वयं कर सकता है. ४५ आपरी लापसी में सगळा घी घालै—अपनी अपनी लपसी में सब कोई घी डालते हैं; सब कोई अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर लाभ के लिए कार्य करते हैं. ४६ आपरी लुळताई पैंले नैं खाय—देखो 'आपरी नरमाई पैले नै खाय. ४७ आपरी समज सूं हीज (बोझियां) मरै है—अपनी बुद्धि के भार से खुद ही दबना; अपनी बुद्धि का थोथा अभिमान; मूर्ख व्यक्ति के लिए जो अपने को बहुत बुद्धिमान कहता हो. ४८ आपरै घर में औ हीज धोळी अवारौ नीकळ्यौ—अपने घर में यही सफेद जँवारा निकला; अपने कुटुंब में यही प्रतापी या भाग्य वाला हुआ.

४९ आपरै नाक माथै माखी कुण बैठण दे—अपनी नाक पर मक्खी कोई नहीं बैठने देता; कोई व्यक्ति ऐसा काम नहीं करना चाहता कि जिससे उसको दूसरे लोगों के सामने नीचा देखना पड़े या लज्जा अनुभव करनी पड़े. ५० आपरै मूं'डै री माखी तौ आप सूं ही उडेला—अपने मुँह पर बैठी मक्खी तो अपने खुद के हाथों से ही उड़ाई जाती है; बिना स्वयं काम किये अपना काम पूरा नहीं होता. ५१ आपरै रूप रौ'र परायै धन रौ पार नहीं—अपने रूप का और पराये धन का पार नहीं दीख पड़ता, सबको अपना रूप सबसे ज्यादा दीख पड़ता है और इसी प्रकार दूसरे का धन सबसे ज्यादा दीख पड़ता है। सभी अपने को सबसे सुन्दर और दूसरों को सबसे धनवान समझते हैं.

५२ आपरौ कायदौ आपरै हाथ—अपनी प्रतिष्ठा अपने हाथ; अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करना मनुष्य के हाथ की बात है (अच्छे काम करेगा तो प्रतिष्ठा रहेगी, बुरे काम करेगा तो नष्ट हो जायगी) नीच आदमी से झगड़ा करने वाले के प्रति. ५३ आपरौ घर नै हंग हंग नै भर—खुद का घर ही घर है चाहे जितना खराब कीजिये; अपनी वस्तु को चाहे जितना खराब या गंदा करो कोई उलाहना देने नहीं आता। अपने घर एवं वस्तुओं को बहुत गंदा रखने वाले के प्रति.

५४ आपरौ पेट (तौ) कुत्तौ ही भर लेवै—अपना पेट तो कुत्ता भी भर लेता है। केवल पेट भर लेना कोई बड़ी बात नहीं; मनुष्य जीवन तभी सार्थक है जब परोपकार किया जाय या कोई महान कार्य किया जाय. ५५ आपरौ बळद कवाड़ियै सूं नाथौ—खुद का ही बैल है इसे चाहे कुल्हाड़ी की सहायता से नाक में छेद करके नाथिये, अगर हानि भी हुई तो उलाहना देने कोई नहीं आयेगा। अपनी वस्तु को चाहे जितना खराब या गंदा करो अथवा चाहे जितनी हानि पहुँचाओ कोई उलाहना देने नहीं आता. ५६ आपरौ बाळियौ नै पैले रौ सुधारियौ—अपना खुद का जलाया हुआ और दूसरे द्वारा अपना सुधारा हुआ बराबर है अर्थात दूसरे के द्वारा किया कार्य चाहे वह भला ही हो परन्तु अपने आपका किया अच्छा लगता है. ५७ आप रौ बिगाड़्यौ नै परायौ सुधारियौ बराबर व्है है—खुद का कार्य बिगड़ने और दूसरे का सुधरने पर बराबर संतोष होना है। खुद का कार्य बिगड़ने पर संतोष इसलिए होता है कि चलो इससे किसी दूसरे की हानि तो नहीं हुई और दूसरे का कार्य सुधरने पर भी संतोष मिलता है। भले एवं परोपकारी व्यक्ति के लिये. ५८ आपरौ ब्रह्म कैवे जीमें फरक नहीं पड़ै—आत्मा की पुकार एवं मार्ग-दर्शन पर किसी प्रकार का अंतर नहीं पड़ता; आत्मा की आवाज सदा सत्य होती है. ५९ आपरौ माजनौ आपरै हाथ—देखो 'आपरौ कायदौ आपरै हाथ'. ६० आपरौ माथौ थोड़ौ ही फोड़ीजै—अपने हाथों से अपना सिर नहीं फोडा जा सकता; जान-बूझ कर अपने हाथों कोई अपनी हानि नहीं करता. ६१ आपरौ सौ आपरौ नै परायौ सौ परायौ—अपनी वस्तु अपनी एवं परायी वस्तु को परायी समझना; भोलेपन से ठगे जाकर न तो अपनी वस्तु दूसरे को देना और न पराई वस्तु लेने का प्रयत्न करना (नीति). ६२ आप व्यासजी बैंगण खावै औरां नै परमोद बतावै—देखो 'आप गुरुजी कांदा खावै दूजां नै परमोद बतावै'. ६३ आप समांन बळ नहीं मेघ समांन जळ नहीं—अपने समान बल नहीं, मेघ समान जल नहीं; सबसे बड़ा बल वही

जो अपने में ही क्योंकि समय पड़ने पर वही काम देता है, इसी प्रकार वर्षा का जल सर्वोत्तम होता है। स्वावलम्बन की प्रशंसा. ६४ आप सूं करै जकैरै बाप सूं टळणो नहीं—जो अपने साथ दुष्टता करे उसके बाप के साथ भी (दुष्टता करने से) नहीं चूकना; कोई अपना बुरा करे तो उसका पूरा प्रत्युत्तर देना चाहिये. ६५ आप सूं लांठो जम बराबर—अपने से शक्तिशाली व्यक्ति यम के समान होता है, उससे नहीं लड़ना चाहिये. हानि पहुँचाने की संभावना है. ६६ आप सूं व्है जिको कर लीजो—आप जो कर सको कर लेना (ललकार) हमें उसकी परवाह नहीं है. ६७ आप ही रोटी लेय नै खाय लेवै ऐड़ौ गिनायत चाहीजै—ऐसा समधी होना चाहिए जो स्वयं ही भोजन परोस कर खा लेवे, दूसरे द्वारा परोसे जाने की राह न देखे; ऐसा समधी हो जो अपने स्वागत-सत्कार में अधिक कष्ट न दे।

यौ०—आपकरमी, आपघाती।

सं०पु० [सं०] जल, वारि।

आपकरमी–वि०—१ अपने भाग्य पर रहने वाला, भाग्यशाली।

आपगरजी–वि०—अपना स्वार्थ चाहने वाला, स्वार्थी।

आपगा–सं०स्त्री० [सं०] नदी, सरिता। उ०—**आपगां** दळण गीखम जळण आहौटी, विसे खटचलण कळिया कदमवंद।—बां.दा.

आपघात–सं०पु० [सं० आत्महत्या] अपने आपको मार डालना, आत्म-हत्या। उ०—**आपघात** आदरां इसौ मनड़ो अकुळायौ।
—भगवांनजी रतनू

मुहा०—आप घात महा पाप—आत्महत्या भयंकर पाप है।

आपघाती–वि०—आत्महत्या करने वाला।

कहा०—आपघाती महापापी—आत्महत्या करने वाला सबसे बड़ा पापी माना जाता है।)

आपड़णौ, आपड़बौ–क्रि०स०—पकड़ना। उ०—अतरै मुकन कमंध **आपड़ियौ**, चंचळ सहित निजर खळ चढ़ियौ।—रा.रू.

आपड़णहार-हारौ (हारी), आपड़णियौ–वि०—पकड़ने वाला।

आपड़ाणौ, आपड़ाबौ—क्रि०स०।

आपड़िओड़ौ, आपड़ियोड़ौ, आपड़योड़ौ–भू०का०कृ०—पकड़ा हुआ।

आपड़ीजणौ, आपड़ीजबौ–भाव वा०—पकड़ा जाना।

आपड़ीजिओड़ौ, आपड़ीजियोड़ौ आपड़ीज्योड़ौ—पकड़ा हुआ। (स्त्री०—आपड़ीजिओड़ी)

आपड़ाणौ, आपड़ाबौ–क्रि०स०—पकड़ाना। (मि० आपड़णौ)

आपड़ायोड़ौ–वि०—पकड़ा हुआ। (स्त्री० आपड़ायोड़ी)

आपड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—पकड़ा हुआ। (स्त्री० आपड़ियोड़ी)

आपड़ीजणौ, आपड़ीजबौ–क्रि०अ०—पकड़ा जाना।

आपघ–सं०पु०—आत्महत्या। उ०—तरै जखड़ै कह्यौ, माजी सांच हीज फुरमावौ नहीं तो **आपघ** करिस्यूं।—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात

आपधक–सं०स्त्री०—घबराहट। उ०—इसौ सांभळ नै सगळ साथ दोड़ मची। बाहिरला-माहिलां री कोई खबर पड़ै नहीं। **आपधक** लागी।
—जैतसी ऊदावत री बात

आपण–सं०स्त्री० [सं०] १ दुकान।

सं०पु० [सं० अर्पण] २ श्रद्धा और भक्तिपूर्वक किसी को दान देना.

सर्व० [सं० आत्मन] अपना, अपने। उ०—गह भरियौ गजराज, मह माले **आपण** मतै। कूकरियां बेकाज, रुगड़ भुसै किम राजिया।
—किरपारांम

आपणउ–सर्व०—अपना। (प्रा०प्र०) उ०—कउआ दिउं बधाइयां, प्रीतम मेलइ मुज्झ। काढ़ि कळेजउ **आपणउ**, भोजन दिऊंली तुज्झ।—ढो.मा.

आपणड़ौ–वि०पु०—अपने का। (स्त्री० आपणड़ी)

आपणपूं–सं०पु०—अपनापन, ममत्व। उ०—लेइ भेट कइ मिळवा आवै, कइ पुरुसारथ दाखै। कइ ताहरूं भलपण जांणीसिइ घर **आपणपूं** राखै।—कां.दे.प्र.

आपणा–सर्व०—अपना। उ०—**आपणा** मन स्यूं आलोच ब्राह्मण आलोचै लागौ।—वेलि. टी.

आपणाणौ, आपणाबौ, आपणावणौ, आपणावबौ–क्रि०स०—१ अपनाना. २ अधिकार में करना। उ०—जद रावळ 'मालौ' जैसलमेर **आपणा-वण** आपरी फौज मेलो।—बां.दा.ख्या.

आपणि, आपणियां–सर्व०—अपनी। उ०—तिहीं परमेस्वर कौ गुणा-नुवाद **आपणि** मति कै सारै स्रम कीधा विणा केम सरै।
—वेलि. टी.

आपणियौ–वि०—अर्पण करने वाला।

आपणी–सर्व०—अपनी। उ०—कवेसुर **आपणी** आपणी वारी दांन सन-मांन पावै। स्री महाराज की कीरत उच्छब सूं गावै।—रा.रू.

आपणौ, आपबौ–क्रि०सं० [सं० अर्पण] १ देना। उ०—सूंप्या बाग सावटू, कोडीधज केकांण। आम्हां साम्हां आपिया, प्रीत चढ़ै परिमांण।—कां.दे.प्र.

२ अर्पण करना. ३ हुक्म देना. ४ धारण करना।

उ०—**आपौ** हूंतां अनंत, आप्यौ तैं अवतार। पाप धरम चा पारूं, लाया जीवां लार।—ह.र.

आपणावणौ, आपणावबौ—स०रू०।

सर्व०—अपना। उ०—प्रांण जितै जग **आपणौ**, प्रांण जितै तन पाक। प्रांण प्रयांण कियां पछै, व्है नर नांम हलाक।—बां.दा.

आपत–क्रि०वि०—आपस में, परस्पर।

सं०स्त्री० [सं० आपत्ति] आपति, कष्ट। उ०—संपत **आपत** सुख नै दुख जांणू ए माय।—गी. रां.

आपतहार, आपतहारी–सं०पु०—आपत्ति मिटाने वाला, संकटहरण।

उ०—खुदा-खेजड़ो रूंख, जुदा भगवन अवतारी। मुरधर प्रगटयौ पीर, अकाळां **आपतहारी**।—दसदेव

आपताप–सं०पु० [फा आफताब] सूर्य, सूरज। उ०—असा वीर ख्याल रा मंडांणी **आपताप** उठै, तठै रिमां मालरा 'सदांणी' वाळौ तोर।
—फतहरांम आसियो

आपती–सर्व०—अपन, स्वयं। उ०—**आपती** सको वडा ठाकुर मन सांच रखया। कोई दरबार आवै न छै।—नैणसी

आपत्ति–सं०स्त्री०—१ दुःख, क्लेश. २ संकट, विपत्ति. ३ विघ्न, बाधा. ४ कष्टकाल. ५ दोषारोपण. ६ उज्र, ऐतराज।

आपथी-आप–सर्व०—अपनेआप। उ०—फलांण दिन सोबत रा घोड़ा छूट नै **आपथी-आप** आवसी।—नैणसी

आपद–सं०स्त्री० [सं०] दुःख, संकट, विपत्ति।

आपदथित–वि० [सं० आपदाग्रस्त] आपत्ति में फँसा हुआ।

आपदत्त–सं०पु०—दत्तात्रेय मुनि का एक नाम। उ०—बांका वेद पुरांण बिच, सायद आछै सूत। सुख संतोख सराहियौ, **आपदत्त** अवधूत।—बां.दा.

वि०—अपना दिया हुआ, अपना प्रदत्त।

आपदा–सं०स्त्री० [सं०] दुःख, विपत्ति, क्लेश, आफत, कष्टकाल।

उ०—अब आपरै ऊपर महा संकट मांनि एक दीधौ तौ परमेस्वर दूजौ भी देसी ही परंतु **आपदा** में दिल्लीस भी इसौ व्याकुळ थियौ।—वं.भा.

आपद्धरम–सं०पु० [सं० आपद्धर्म] केवल आपत्काल में जिसका विधान हो।

आपनांमी–वि०—१ अपने नाम से प्रसिद्ध होने वाला। उ०—नवा कोटां नाथ रा सुभटां छोगा **आपनांमी**, बांमी-बंध लाखां पात आयरा बरीस।—गीत आउवा रौ

आपन्न–वि० [सं०] आपदग्रस्त, संकटापन्न, दुखी, पीड़ित।

आपपर–क्रि०वि०—आपस में, परस्पर। उ०—वसुदेव कुमार तणौ मुख विखै, पुणि सुणी जण **आपपर**।—वेलि.

आपबीच–क्रि०वि०—आपस में, परस्पर। उ०—सुबेउ उठि बैठा हुवा। ताहरां चिहुं **आपबीच** झगड़ौ हुवौ।—चौबोली

आपभांण–सं०पु०—पक्षी। उ०—गहर मतवंत कूंण मेह छांटां गिणै, भेदवे कवण नभ **आपभांणे**।—र.रू.

आपमणो–वि०पु०—सतर्क, सचेत। उ०—'गूंजुण' पर बोलत मोर घणा। मांझियां सह रैं'जोह **आपमणां**।—पा.प्र.

आपमलो–वि० [सं० आत्ममल्ल] १ अपनी इच्छा से कार्य करने वाला. २ स्वतन्त्र। उ०—मलराउ जिहीं जगि **आपमला**, भुज पूजै साहि-जहांन भला'—वचनिका

आपमाहै–क्रि०वि०—परस्पर, आपस में। उ०—केई एक दोइ मनुस्य **आपस'है** वातां करै छै।—वेलि. टी.

आपमुरादो, आपमुरादौ–वि०—१ स्वयं अपनी इच्छा से कार्य करने वाला. २ आजाद. ३ स्वेच्छाचारी। उ०—जिण दिनां पूगळ री राव सुद्रसेण जगदेवोत **आपमुरादौ** हुवौ, अरु देस में पण फिसाद कियौ।—द.दा.

आपयोड़ो–भू०का कृ० [सं० अर्पित] अर्पण किया हुआ। (स्त्री० आपयोड़ी)

आपरंगी–वि० [सं० आत्मरंगी] अपनी इच्छानुसार चलने वाला, मस्त. उ०—पेलै कवादी तिलंगां-बाड़ा जंगी राग घोरै पोख, महा जोम **आपरंगी** लीक सोबा मोड़।—बां.दा.

आपरूप–वि० [सं० आत्मरूप] मूर्तिमान, साक्षात् (केवल महापुरुषों के लिये)।

आपरो–वि०—आपका। (स्त्री० आपरी) (बहु० आपरा)

आपस–सं०स्त्री०—१ परस्पर। उ०—'अमरा' नूं कहियौ उमरावां, सकतां चूंडां **आपस** भावां।—रा रू. २ निज, संबंध, नाता. ३ भाईचार (जैसे—आपस रा लोग). ४ एक दूसरे का साथ. ५ अधिक परिश्रम करने का भाव।

आप-स्वारथी–वि०—केवल अपना स्वार्थ साधन करने वाला।
उ०—**आप-स्वारथी** मरौ आदमी, सत छोड़ै सौ मरौ सती।
—अज्ञात

आपहनांमी, आपहमलो, आपहमलौ–वि०—१ स्वतन्त्र, आजाद. २ अपने नाम से ही प्रसिद्ध होने वाला. ३ प्रभावशाली।

आपां–सर्व०—अपन लोग। उ०—उवै आयसै ताहरां **आपां** देस।
—चौबोली

आपांण–सं०पु०—शक्ति, साहस, पराक्रम। उ०—जांणौ बाभी जेण गज, लटकंतौ नीसांण। तेथी और न संचरै, देवर री **आपांण**।
—वी.स.

अपनापन। उ०—कोई विरला सूरमा **आपांण** छिपाई। मिळ बैठा रहमांण सूं लव चेतन लाई।—केसोदास गाडण

वि०—उन्मत्त, मस्त। (मि० आपांन)

आपांणो–वि०—१ बलवान, शक्तिशाली, पराक्रमी। उ०—ओढ़ै भुज डिगतौ अंबर, अहड़ा **आपांणो**।—वी.मा.
२ अपनी। देखो 'आपांणौ'।

आपांणो–वि०—अपना। उ०—अंग अनंग गया **आपांण**, जुड़िया जिणि वसिया जठरि।—वेलि.

आपांन–वि०—उन्मत्त, मस्त। उ०—आसव छकि **आपांन** वणै जदुबंस जथा वस।—वं.भा.

आपाउपेहर, आपाऊपेहरो–वि०—१ अपने बल से अधिक कार्य करने वाला। उ०—छोगौ भूपैहर सारां मेवाड़ आठेब छत्री **आपाउपेहरा** धाड़ा दूसरा ऊमेद।—रामकरण महड़ू. २ जोश-पूर्ण। उ०—अर प्रभात ही खीची १३ रा तोमर कपाट रै लागतां ही कुमार एकल असवार **आपाऊपेहरौ** आवतौ देखि आसंग में अणभावतौ जांणि गंगदेव हेलौ भी न देण पायौ।—वं भा.

आपापंथी–वि०—१ कुमार्गी, कुपंथी. २ स्वार्थी. ३ मनमानी करने वाला।

आपापणइ–सर्व०—अपने-अपने। उ०—सीखि मांगि मिळि गळि सुखि घणइ, पहुंता देसे **आपापणइ**।—ढो.मा.

आपापणो–सर्व०—अपने। उ०—पद्मनाभ कवि इणि परि भणइ, आव्या

रायममर आपणइ। बीजा छइ जे राणा राय, आपापणे आवासी आइ।—कां.दे.प्र.

आपायळी–वि०—बलवान, शक्तिशाली।

आपायत, आपायतौ–वि० [सं० आप्यायित] बलवान, शक्तिशाली, साहसी, जबरदस्त। उ०—१ नोपती करै उमंगां धरै नायता, आज फिण सिर कमर कसै आपायता।—महादान महड़ू

उ०—२ भड़ सिरे मतवाळ भड़थाट पांणियां भमर। चढ़े आपायता सीस ढुळतां चमर।—अज्ञात

आपाळणौ, आपाळबौ–क्रि०स०अ०—१ टकराना. २ परिश्रम करना। उ०—तठा उपरांति करि नै राजांन सिलामति हुमै राजांन कांमरा भूखिया, लांघणिया सीह ज्यौं आपाळि नै रहिया छै।

—रा.सा.सं.

आपित–सं०स्त्री० [सं० अप्पित] अग्नि, आग। (मि० अपत नं० २)

आपियोड़ौ—भू०का०कृ०—अर्पण किया हुआ, अर्पित। (स्त्री० आपियोड़ी)

आपीजणौ, आपीजबौ–क्रि०स०—अर्पण किया जाना।

आपीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—अर्पण किया हुआ। (स्त्री० आपीजियोड़ी)

आपुपा–वि०स्त्री०—अपनेआप समस्त कार्य करने वाली अथवा कराने वाली। उ०—वकळा सकळा व्रजा, उपावण आप आपुपा।—देवि०

आपूआप, आपे, आपेज, आपं–सर्व०—अपनेआप, स्वतः।

उ०—१ मढ़ में आपूंआप बिराजो, भळहळ ऊगो भांण।

—भादा राघवदास

२ जांणियौ कटारी सबळी लागी छै, आपे हेठी पड़सी।

—नैणसी

३ नहीं तो माय नहीं तो बाप, आपेज आपे ज उपन्नो आप।

—ह.र.

आपेटणकौ–वि०—१ वीर, योद्धा. २ साहसी। (स्त्री० आपेटणकी)

आपो-आप–सर्व०—अपनेआप, स्वतः। उ०—अछै हरि तूं हीज आपो-आप, बूंझा हिव तूझ बियां नहि बाप।—ह.र.

आपोक्लिम–सं०पु० [यू० एपोक्लिमा] जन्मकुंडली के अंतर्गत तीसरा, छठा, नवां और बाहरवां स्थान।

आपोपरि–क्रि०वि०—परस्पर, आपस में। उ०—गमै गमै दीसइ अजूयाळां, म्लेछे खांडी छाक। आपोपरि असमुहीया ऊठइ, कटकि पड़ीउ बळकाक।—कां.दे.प्र.

आपोपै–सर्व०—अपनेआप। उ०—आपोपै हूं'ता सो तूं आप, विसंभर भूत-सरब्ब वियाप।—ह.र.

आपौ–सं०पु०—१ स्वत्व। उ०—न जावै तिहारी बातां जुगां-जुग याद करै, आपौ बिजा 'कांन' धारी जांणियौ जहांन।

—गीत रावत जोधसिंह री

२ अपनापन, अपनी सत्ता। उ०—खोयौ आसुरी धरम आपौ विगोयौ तैं मीरखांन।—नवलजी लाळस. ३ आत्मा।

उ०—सांई हंदी सिर रजा चित सांई सरणा धू धरणा निरखणा आपा उधरणा।—केसोदास गाडण ४ ब्रह्म। उ०—आपा मझ देवता आपौ पूजारी।—केसोदास गाडण.

५ भरोसा, विश्वास. ६ घमंड, गर्व. ७ जोश। उ०—आठ दिसां तापौ अंगरेजी हीमत छापौ खळां हुणां, बापौ आज सांभियौ बीजा, तैं आपौ राइयां तणां!—गोपाळजी दधवाड़ियौ

८ होश-हवास। उ०—अबै छोरै आपौ सांभ लियौ है।

९ शक्ति, बल। उ०—इसै चोदू लोह सूं ढह पड़ियौ, आपौ नांख दियौ, ऊठ खड़ौ रहि।—पदमसिंहजी री बात. १० अवतार।

उ०—अवधेस्वर श्री रांमचंद्र आपौ ईस्वर का।—दुरगादत्त बारहठ

आप्त–वि० [सं०] १ बड़ा। उ०—परिब्रह्म पूरण तत मग्न तूरण, परमात्म प्राप्त, वह पुरुष आप्त।—ऊ.का. २ प्राप्त. ३ कुशल, दक्ष. ४ किसी विषय को ठीक तरह से जानने वाला. ५ विश्वस्त। सं०पु०—ऋषि।

आफत–सं०स्त्री० [अ०] १ आपत्ति, विपत्ति, मुसीबत। उ०—आफत मोटी नै खोटी पुळ आई। रोटी रोटी नै रैय्यत रोवाई।—ऊ.का.

२ दुःख, कष्ट।

आफताब–सं०पु० [फा०] सूर्य्य। उ०—हाजरघा नै जांन झोका, आफताब नै विमांन रोका। निमक की सरीती पै सिर दिया, हूर कै विमांन बैठि आसमांन को गया।—ला.रा.

आफताबी–सं०पु० [फा० आफताब] सूर्य्य।

वि०—सूर्य सम्बन्धी।

आफरणौ, आफरबौ–क्रि०अ० [सं० आस्फार=आध्मान] वायु से पेट फूलना, आफरा आना।

कहा०—अनोखे हाथ कटोरा आया पांणी पी पी आफरिया—अनोखे व्यक्ति को कहीं से कटोरा मिल गया तो बस लगा उससे पानी पर पानी पीने और पीते पीते पेट फूल गया। मूर्ख अथवा तुच्छ व्यक्ति के लिए जो कोई नई चीज मिलने पर, साधारण वस्तु अथवा अधिकार प्राप्ति पर इतराने लगता है।

आफरणहार, हारौ (हारी), **आफरणियौ**—जिसका वायु से पेट फूलता हो।

आफरिओड़ो, आफरियोड़ौ, आफरयोड़ौ–भू०का०कृ०—वायु से पेट फूला हुआ।

आफरीजणौ, आफरीजबौ—आफरा आ जाना।

आफरियोड़ौ–भू०का०कृ०—वायु से पेट फूला हुआ, आफरा आया हुआ। (स्त्री० आफरियोड़ी)

आफरीजणौ, आफरीजबौ–क्रि०अ०—वायु से पेट फूल जाना, आफरा आ जाना।

आफरीजिओड़ौ, आफरीजियोड़ौ, आफरीज्योड़ौ–भू०का०कृ०—आफरा आया हुआ। (स्त्री० आफरीजियोड़ी)

आफरीबाद, आफरीबाव—सं०पु०—धन्यवाद। उ०—सू मुकंद खांन नूं इण मारियौ अरु वडौ पराक्रम कियौ। तठै पातसाहजी श्री हाथां रूमाल सूं खेह झाटकी अरु फुरमायौ आफरीबाद है तुमारै तांई।
—द.दा.

आफरौ—सं०पु० [सं० आस्फार] १ अजीर्ण या वायु से पेट फूलना, आफरा आना।

आफळणौ, आफळबौ—क्रि०स०अ० [सं० आस्फारण] १ परिश्रम करना. २ यत्न करना. ३ हैरान या तंग होना। उ०—असि पायगा रह्या आफळता मद-झर खळहळता मैमंत।—प्रिथीराज राठौड़
४ तड़फना। उ०—तन अखत रोड डोलै तिकै उर अंतर सूं आफळै।
—ऊ.का.
५ टक्कर लेना, भिड़ना, लड़ना। उ०—१ मघाउत कज्जि रतन्न मुगत्ति, प्रिथि कजि आफळिया असपत्ति।—वचनिका
उ०—२ नह सादुळौ नीमजै, जुध जिण तिण सूं श्री वाहणआं आफळै, कुंजर हलकां काय।—बां.दा.
आफळणहार, हारौ (हारी)—परिश्रम या यत्न करने वाला, टक्कर लेने या भिड़ने वाला।
आफळिओड़ौ, आफळियोड़ौ, आफळयोड़ौ—भू०का०कृ०।
आफाळणौ, आफाळबौ—क्रि०स०।
आफाळीजणौ, आफाळीजबौ—क्रि० भाव वा०।

आफळियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ परिश्रम किया हुआ. २ तंग, हैरान. ३ टक्कर लिया हुआ, भिड़ा हुआ (स्त्री० आफळियोड़ी)

आफाळणौ, आफाळबौ—क्रि०स०—१ अधिक परिश्रम कराना. २ भिड़ाना, दो पदार्थों की परस्पर टक्कर या आघात कराना. ३ तेज गति से घोड़ा चलाना। उ०—तूरी आफाळतौ पेख अरवद तणी, मारवौ राव साराहियौ पदमणी।—द.दा.
आफाळणहार, हारौ (हारी), आफाळणियौ—वि०—अधिक परिश्रम कराने वाला, भिड़ाने वाला।
आफाळिओड़ौ, आफाळियोड़ौ, आफाळयोड़ौ—अधिक परिश्रम कराया हुआ, भिड़ाया हुआ।
आफाळीजणौ, आफाळीजबौ—क्रि०भा०।

आफाळियोड़ौ—भू०का०कृ०—अधिक परिश्रम कराया हुआ, भिड़ाया हुआ। (स्त्री० आफाळियोड़ी)

आफाळीजणौ, आफाळीजबौ—क्रि०भा०—अधिक परिश्रम कराया जाना, भिड़ाया जाना।

आफाळीजियोड़ौ—भिड़ाया गया हुआ, टकराया गया हुआ। (स्त्री० आफाळीजियोड़ी)

आफू—सं०पु०—अफीम। उ०—पातर हूंता प्रीत कर, आफूवळां अरोग। आखर पछतायां अठै, लांणत दे दे लोग।—बां.दा.

आफूआफे, आफेई, आफै—सर्व०—१ स्वयं, खुद. २ अपने आप, स्वतः उ०—१ हमें तोनूं नहीं कहस्यां। आफे अरज करस्यां।
—राठौड़ अमरसिंह री बात

२ एक वीर स्त्री आपरा पती री वीरपणौ देख सत्रु ऊपर आवण री मती करै पण पग पाछा पड़ै है, छाती धड़कै है, धकै आवतां काळी पीळी दीसै छै। सांम्हां आवतो कोई सुणै है तो आंखियां भय री मारी आफई मींचीज जावै।—वी.स.टी.

आफीबाद—देखो 'आफरीबाद'।

आबंद—सं०स्त्री०—आय, आमदनी।
कहा०—असी री आबंद, चोरासी री खरच—अस्सी की आमदनी चौरासी का खर्च। आमदनी से अधिक खर्च नहीं होना चाहिये।

आब—सं०पु०—१ आकाश. २ पानी, जल। उ०—'नीबै' तळौ निकाळयौ नेड़ौ, जिण रौ आब नांम रै जैड़ौ।—ऊ.का.
सं०स्त्री० [फा०] ३ चमक, आभा, कांति। उ०—ऊजळ जस मोती सो म्हारौ इणरी आब उतार मती।—गी.रां.
४ शोभा, रौनक। उ०—करिय मीर भ्रकुटी कुटील, बोलै येह जुबाब। किय रजपूत हि रज्ज बिन, किय नवाब बिन आब—ला.रा.
५ प्रतिष्ठा, उत्कर्ष। उ०—१ कर घटाटोप चढ़ियौ किलम यूं कथ राखण आब री।—बखतौ खिड़ियौ
उ०—२ बूंदी रा फरमांण बिच इम लिखियौ आदाब। भूप 'सता' धारै भुजां, अब म्हारै घर आब।—वं.भा.
कहा०—आब आब कर मर गया सिरहांणे रख्या पांणी—आब-आब करते हुए मर गये यद्यपि पानी सिरहाने के पास ही रक्खा था क्योंकि आस-पास के लोगों में 'आब' शब्द का अर्थ समझने वाला कोई न था और मियांजी 'पानी' कहना बुरा समझते थे क्योंकि वे फारसी पढ़े-लिखे थे। फारसी बोलने वालों पर व्यंग्य, जो घर में भी बाहरी भाषा का प्रयोग करते हैं (जैसे आजकल के शिक्षित) उनके लिए।

आबकार—सं०पु० [फा०] शराब बनाने या बेचने वाला, कलाल।

आबकारी—सं०स्त्री० [फा०] १ जहां शराब चुआई या बेची जाती है, शराबखाना. २ मादक वस्तुओं से सम्बन्ध रखने वाला महकमा।

आबखणौ, आबखबौ—क्रि०अ०—१ परिश्रम करना. २ युद्ध करना, टक्कर लेना (मि० आफळणौ)
आबखणहार, हारौ (हारी), आबखणियौ—वि०—परिश्रम करने वाला, टक्कर लेने वाला।
आबखाईजणौ, आबखाईजबौ—क्रि०भा०—परिश्रम अथवा युद्ध किया जाना।
आबखाईजियोड़ौ—भू०का०कृ०—परिश्रम किया गया हुआ।
आबखाणौ, आबखाबौ, आबखावणौ, आबखावबौ—क्रि०स०।

आबखाणौ, आबखाबौ, आबखावणौ, आबखावबौ—क्रि०स०—१ परिश्रम कराना. २ युद्ध कराना।

आबखियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ परिश्रम किया हुआ. २ युद्ध किया हुआ। (स्त्री० आबखियोड़ी)

आबखोरो–सं०पु० [फा०] पानी पीने का पात्र।

आबदस्त–सं०पु० [फा०] मल त्याग के बाद गुदा को जल से साफ करने की क्रिया।

आबदार–वि० [फा०] चमकीला, कांतिमान, द्युतिमान।
सं०पु०—पुरानी तोपों में सुंबा और पानी का पुचारा देने वाला आदमी।

आबदारखानो–सं०पु० [फा० आब+खानो] पीने के जल का स्थान।

आबनूस–सं०पु० [फा०] प्रायः जंगलों में होने वाला एक प्रकार का पेड़। बहुत पुराना होने पर इसकी लकड़ी का हीर बहुत काला हो जाता है।

आबनूसी–वि० [फा०] १ आबनूस के समान काला. २ आबनूस की लकड़ी का।

आबपासी–सं०स्त्री [फा० आबपाशी] सिंचाई।

आबरी– वि०—प्रतिष्ठित, मानवाला।

आबरू–सं०उ०ली० [फा०] इज्जत, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा।
उ०—**आबरू** थावतो वठै, पीवणी सही छो आक, जीवणो नहीं छो, घणी जावतां 'जसूंत'।—दलजी महड़ू
क्रि०प्र०—उतरणी-राखणी-होणी।
(यौ०—आबरूदार) (वि० बेआबरू)
मुहा०—१ आबरू उतरणी—अप्रतिष्ठा होनी. २ आबरू उतारणी, अप्रतिष्ठा करनी, बेइज्जत कर देना. ३ आबरू खाक (धूल) में मिळणी—अपनी या दूसरे की इज्जत खराब होना. ४ आबरू मांथै पांणी फिरणो—इज्जत खराब होना, प्रतिष्ठा में धक्का लगना. ५ आबरू मिट जाणी—इज्जत बरबाद हो जाना. ६ आबरू में फरक आणो—इज्जत में धब्बा आना, प्रतिष्ठा में दाग लगना. ७ आबरू में बट्टो लागणो, लागबो—प्रतिष्ठा में दाग लगना ८ आबरू रैणी—इज्जत रहना।
कहा०—आबरू उड़ियोड़ी मोती वाळी आब है—इज्जत उतरणी एवं मोती का पानी उतरना एक ही बात है। कांतिहीन होने पर मोती किसी काम का नहीं, इसी प्रकार अप्रतिष्ठित मनुष्य का कहीं आदर नहीं होता। एक बार अप्रतिष्ठा होने पर वापस इज्जत जमानी बड़ी कठिन होती है।

आबरूदार–वि०—इज्जत वाला, जिसकी प्रतिष्ठा हो, प्रतिष्ठित।

आबळ–सं०स्त्री० [सं० बल] शक्ति, बल, सामर्थ्य।

आबळबायरो–वि० [आबळ+रा० बायरो=हीन] अशक्त, कमजोर.

आबवेचा–सं०पु०—१ चौहान क्षत्रिय. २ आबू का निवासी।

आबहवा–सं०स्त्री० [फा०] सरदी, गर्मी स्वास्थ्य आदि के विचार से किसी देश की प्राकृतिक दशा, स्थिति या जलवायु।
मुहा०—आबहवा बिगड़णी—जलवायु या वातावरण दूषित होना।

आबाद–वि० [फा०] १ बसा हुआ. २ प्रसन्न, कुशल-पूर्वक. ३ उपजाऊ, जोतने व बोने योग्य।

आबादी–सं०स्त्री० [फा०] १ बस्ती, जन-स्थान. २ जन-संख्या. ३ खेती की भूमि।

आबी–वि० [फा०] १ पीने का पानी संबंधी. २ हल्के रंग का, फीका. ३ पानी के रंग का, हल्का नीला या आसमानी।
सं०स्त्री०—१ चमक-दमक. २ तलवार का पानी।

आबू–सं०पु०—१ राजस्थान के पश्चिम में स्थित अरावली पहाड़ पर बसा एक नगर. २ अरावली पहाड़ का एक हिस्सा।

आबूणो–वि०—आबू का, आबू संबंधी।
सं०पु०—१ आबू का अधिपति. २ देवड़ा चौहान।

आबूड़ो–सं०पु०—देखो 'आबू'। उ०—राब पीथल वाळो गिर रूड़ो आबूड़ो लागै असमांन।—आबू रो गीत

आबूव–सं०पु० [सं० अर्बुद] १ आबू पहाड़. २ आबू पहाड़ के निवासी।

आबेरणो, आबेरबो—देखो 'अबेरणो'।

आबो–सं०पु० [सं० आभ] १ आकाश, आसमान. २ आना
क्रि०प्र०—आना।

आबोजाबो–सं०पु०—आना-जाना।

आभ–सं०स्त्री० [सं० आभा] १ शोभा, कांति, पानी, छवि।
उ०—काळी कांणी कोभी कांमण, अपणी परणी आछी। अवछर आभ अवर अरधंगा, पदमण धरियै पाछी।—ऊ.का.
[फा० आब] २ पानी (डिं.को.)
सं०पु० [सं० अभ्र] ३ आकाश। (मि० आभो) उ०—नांम गोविंद थयो नमो नंदराय नंद अमंद जस गोरधन आभ अड़ियो।—बां.दा.

आभइयो–सं०पु० [सं० अभ्र] आकाश, आसमान। उ०—गीरैगांण मेरा मीठा, आभइयो घरराइयो। अब घर आज्यो वीर म्हांरा, मेह खेनड़ा आइयो।—लो.गी.

आभड़–सं०स्त्री०—अछूत के स्पर्श से लगने वाला कथित दोष, अशौच।

आभड़चेट, आभड़छेट, आभड़छोत–सं०स्त्री०—देखो 'आभड़'।
उ०—सवियांण कल्यांण तणै अत सीधो, अगै भेटिया असत अग्यांन, आज सह आभड़छोत उतरियो, स्रोण गंगोदक हुओ सनांन।
—दूदो आसियो

आभड़णो, आभड़बो–क्रि०स०—१ छूना, स्पर्श करना। उ०—चंपो चीतोड़ाह, पोरस तणो प्रतापसी। सोरभ अकबर साह, अलियळ आभड़ियो नहीं।—सूरायच टापरयो. २ अशौच लगना।
उ०—सर नांमियो गंगाजळ स्रोणी, सत सीधो कलियांण सकाज। असती पोहां तणो आभड़ियो, अनड़ प्रवीत हुओ तण आज।
—दूदो आसियो
३ लिपटना। उ०—मन संतोष प्रकासवै, बन स्रीखंड विकास। माळस उरग न आभड़ै, तौ की कहणो तास।—बां.दा. ४ भिड़ना टक्कर लेना। उ०—असहींस आभड़ै करण पटां, सोही संगीत सांचौ देश प्रेम चौ।—दुरगादास

आभड़णहार, हारो (हारी), आभड़णियो–वि०—स्पर्श करने या भिड़ने वाला।

आभड़ाणौ, आभड़ाबौ, आभड़ावणौ, आभड़ावबौ—क्रि०स०।

आभड़िओड़ौ, आभड़ियोड़ौ, आभड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

आभड़ाणौ, आभड़ाबौ—क्रि०स०—१ स्पर्श कराना. २ लिपटाना. ३ भिड़ाना। (आभड़ावणौ—रू०भे०)

आभड़ायोड़ौ—भू०का०कृ०—१ स्पर्श कराया हुआ. २ भिड़ाया हुआ. ३ लिपटाया हुआ। (स्त्री० आभड़ायोड़ी)

आभड़ावणौ, आभड़ावबौ—देखो 'आभड़ाणौ'।

आभड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ स्पर्श किया हुआ. २ लिपटा हुआ. ३ भिड़ा हुआ। (स्त्री० आभड़ियोड़ी)

आभमंडळ—सं०पु० [सं० अभ्र=आकाश+मंडल] आकाश मंडल।

आभय—सं०पु०—१ बादल, मेघ। उ०—बीजुळियां चहळावहळि, **आभय** आभय कोडि। कद रै मिळउंली सज्जणां, कस कंचुकी छोडि।—ढो.मा. २ आकाश, आसमान।

आभरण, आभरणौ—सं०पु० [सं०] १ गहना, आभूषण। उ०—अंतर नीलंबर अबळ **आभरण**, अंगि अंगि नग नग उदित।—वेलि.

आभा—सं०स्त्री० [सं०] चमक-दमक, कांति, दीप्ति, झलक, छाया, शोभा, ज्योति, प्रकाश। उ०—१ जमना जा गंग मिळी, गंग जा मिळी समंदां। **आभा** भरिया इंद, साख पूरी रव चंदां।
—महाराणा जयसिंह री गीत

उ०—२ **आभा** कहतां सोभा सु तौ महल मांहे, अनेक अनेक रंग का चितरांम छै।—वेलि. टी.। उ०—३ अउं नमसते चंडका चंद्र भाळ री नवीन **आभा**।—नवलजी लाळस। उ०—४ **आभा** आंगण री अन मांगण नै आई।—ऊ.का.

आभामरां—सं०स्त्री०—तलवार (अ.मा.)

आभार—सं०पु०—एहसान, उपकार।

आभारी—वि० [सं० आभारिन्] एहसान मानने वाला, उपकार मानने वाला।

आभास—सं०पु०—१ चमक-दमक, कांति, लावण्य। उ०—वर्णै चारु **आभास** वदनारविंद, उरं ऊपजै वेख रेखा अणंद।—रा.रू. २ प्रतिबिंब, छाया, झलक। उ०—जिकण समय कुमार रौ प्रताप अरक रै **आभास** ऊगौ।—वं.भा. ३ पता, संकेत, वह ज्ञान जिसमें सत्य की कुछ झलक मात्र हो। उ०—हुवौ 'पाल' **आभास** जंगी हिया में। पड़्यौ जूंझ आंटै भुजंगी प्रिया में।—पा.प्र.

आभि—सं०पु०—आकाश। उ०—असमांनि जइत उठियउ असम्भ, थिड़तइ संसारि दे **आभि** थंभ।—रा.ज.सी.

आभीर—सं०पु० [सं०] १ अहीर, ग्वाला. २ एक प्रकार का राग. ३ एक देश विशेष. ४ एक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में ११ मात्राऐं और अंत में डगण गण का तृतीय भेद होता है।
(र.ज.प्र.)

आभीरनट—सं०पु० [सं०] नट और आभीर से मिल कर बनने वाला एक संकर राग।

आभीरी—सं०स्त्री० [सं०] ईस्वी दूसरी या तीसरी शताब्दी में उत्तर-पश्चिम में प्रचलित भारत की प्राचीन भाषा।

आभील—सं०पु० [सं०] दुःख, क्लेश, कष्ट।

आभीसेख—सं०पु० [सं० अभिषेक] अभिषेक, तिलक। देखो 'अभिसेख'

आभुकण—सं०पु० [सं० आभूषण] देखो 'आभूखण'।

आभूखण—सं०पु० [सं० आभूषण] १ गहना, आभूषण, जेवर—ये मुख्यतः १२ माने जाते हैं—नूपुर, किंकणी, चूड़ी, अंगूठी, कंकण, बिजायठ, हार, कंठश्री, बेसर, बिरिया, टीका, सीसफूल (अ.मा.)
पर्याय०—आभरण, गहणौ, जेवर, ताबातीबौ, भूखण, सूत।
२ डिंगल के वेलिया सांणोर छंद का एक भेद विशेष जिसके प्रथम द्वाले में ४६ लघु ६ गुरु कुल ६४ मात्रायें हों, अन्य द्वालों में ४६ लघु ८ गुरु कुल ६२ मात्रायें हों। (पिं.प्र.)

आभूखत—वि० [सं० आभूषित] अलंकृत, सजा हुआ, सुसज्जित, सँवारा हुआ। उ०—**आभूखत** तन आभरण, जकै आवता भूल।—पा.प्र.

आभूसण—सं०पु०—देखो 'आभूखण' (१)

आभौ—सं०पु० [सं० अभ्र] आकाश, आसमांन। उ०—१ गोढ़ै थळ गोडा पहुवी पोढ़णनै। गाभौ गळती निस **आभौ** ओढ़णनै।—ऊ.का. उ०—२ **आभौ** रातौ मेह मातौ। आभौ पीळौ मेह सीळौ।
कहा०—१ आभै पटकी'र जमी झाली—आकाश ने गिरायी और जमीन ने झेली; बहुत ही निर्धन और दुर्दशाग्रस्त व्यक्ति के लिए जिसको कोई नहीं पूछता. २ आभै सूं पड्या'र धरती झाल्या कोनी—आकाश से गिरे और धरती ने झेला नहीं; घोर संकट में पड़ना. ३ आभौ इतौ-सोक दीसै—आकाश इतना सा (बहुत छोटा) दिखाई देता है. ४ आभौ टोपसी-सौ निजर आवै—आकाश नरेटी (नारियल के ऊपर के कठोर छिलके) जितना दिखाई पड़ता है. ५ आभौ रातौ मेह मातौ—आकाश लाल होगा तो मेह खूब होगा. ६ आभै री परी ज्यूं दीसणौ—आकाश की परी के समान मालूम पड़ना; बहुत सुन्दर मालूम पड़ना।

आभोग—सं०पु० [सं०] १ किसी वस्तु को लक्षित करने वाली सब बातों की विद्यमानता, पूर्ण लक्षण। उ०—मोनूं अब मारियां मिळै उचित सुजस **आभोग**।—वं.भा. २ किसी पद्य के बीच में कवि के नाम का उल्लेख. ३ भोगने की क्रिया या भाव। उ०—**आभोग** ऊरध मग जगत मूरध। साधन समग्र अखिलेस अग्र।—ऊ.का.
४ ध्रुपद गीत का चौथा भाग, इसमें वागेयकार का नाम होता है।

आमंक—सं०पु० [सं० आमिष] मांस।

आमंकचर—सं०पु०—मांसाहारी। उ०—चढ़ी गैणाक भणपार **आमंकचर**
—बिसनदास बारहठ

आमंख—सं०पु० [सं० आमिष] मांस। उ०—**आमंख** डळा अमै कुण आपै। खेचर व्रथा भमै चहुं खूंट।—सांगा री गीत

आमंखचर, आमंखभख, आमंखी, आमंखीआहार—वि०—मांसहारी।

आमंत्रण—सं०पु०—बुलाना, आव्हान, निमंत्रण।

आमांजीरण–सं०पु० [सं० आमाजीर्ण] एक प्रकार का अजीर्ण रोग (अमरत)

आमूझणौ, आमूझबौ–क्रि०अ०—देखो 'अमूझणौ'। उ०—जुदा हुमै जिद जीव, जिग लग आमूझे मरै।—वचनिका

आम्हो-साम्हौ–क्रि०वि०—आमने-सामने।

आयंदा–क्रि०वि०—देखो 'आइंदा'।

आय–सं०स्त्री० [सं०] १ आमदनी, प्राप्ति. २ लाभ. [सं० आयु] ३ आयु, उम्र (र.ज.प्र.)

कहा०—आय लारै उपाय है—मृत्यु की कोई औषधि नहीं है।

आयटण–सं०पु०—देखो 'आईठांण'

आयण–वि० [सं० अज्ञान] मूर्ख, अज्ञानी।

आयणौ–वि० [स्त्री० आयणी] आने वाला। उ०—पळासै डायणी हाक डाक दे बायणी पासै, आयणी ग्रीधा'र गूद गळासै अयास।—महादांन महडू

आयत–वि० [सं०] १ विस्तृत, लंबा-चौड़ा, विशाल। उ०—अबदुल्ला उर मंडळ आयत, वणी मिळण कज सांज विआयत।—रा.रू.

२ लंबा, देखो 'आयति'। ३ छोटा, जिसकी सीमा हो।

उ०—आयत इळा अनळपुड़ आयत, समंद आयतां वळै ज सात।—महारांणा लाखा री गीत

४ रुद्ध या मोड़ना 'देखो 'आयत्त'।

सं०पु० [सं०] १ समानान्तर, चतुर्भुज क्षेत्र जिसका एक कोण समकोण हो और लम्बाई चौड़ाई की अपेक्षा अधिक हो (रेखा गणित) [अ०] २ इंजील या कुरान का वाक्य. ३ घेरना, आवेष्टित करना (मि० आयत्त)

प्रत्यय०—शब्दों के पीछे लगने वाला प्रत्यय जैसे बंटायत, पंचायत आदि।

आयति–वि०—लंबा—देखो 'आयत'। उ०—भुज है अति आयति अमल भाळ, सुख विवध लखणं पट्टिय विसाळ।—रा.रू.

आयत्त–सं०पु० [सं० आयत] रुद्ध, मोड़ना। उ०—अरि नूं आयत्त करि समीप लीधौ।—वं.भा.

आयद्रा–सं०पु०—धनुष (अ.मा.)

आयबळ–सं०पु०—आयुबल।

आयबौ–सं०पु०—एक प्रकार का घास विशेष। उ०—सू किण भांत रा बकरा छै, रातड़िये रिण रा...आयबै रा चरणहार।—रा.सा.सं.

आयल–सं०पु०—१ वह पुंश्चली स्त्री जो किसी के साथ चली जाय।

उ०—आयल रा बाजै अपत, कुळ कायल रा कंस। तन घायल रा नह तनूं, बिगड़ायल रा बंस।—ऊ.का. २ एक प्रकार का मरुभाषा का लोक गीत।

सं०स्त्री० [सं० आर्या] ३ आवड़ देवी का एक नाम, करणी देवी का एक नाम। उ०—आयल आप उबारसो, मिळियौ औ मोसर।—ठाकुर जुंझारसिंह मेड़तियौ

आयव–सं०पु०—शब्द, ध्वनि (ह.ना.)

आयवात–सं०पु०—एक प्रकार का रोग विशेष (अमरत)

आयस–सं०पु० [सं०] १ लोहा. २ लोहे का कवच. ३ नाथ संप्रदाय के संन्यासियों की पदवी, सिद्ध, तपस्वी. ४ जोगियों में नाथ नाम का एक भेद. [सं० आदेश] ५ आज्ञा, हुक्म, आदेश (अ.मा.)

उ०—या तें आयस नन्ह का लहि कटक चलाया।—वं.भा.

आयात–सं०पु०—विदेशों से माल आदि मंगाने का कार्य, आगत।

आयास, आयासि–वि०—काळा, श्याम॰ (डिं.को.)

सं०पु०—आकाश, व्योम (डिं.को.) उ०—आयासि पंखि पाड़इ अमुल्ल, मांकड़ामुक्ख मुंडा मुगुल्ल।—रा.ज.सी.

आयी–सं०स्त्री०—देखो 'आई' (१, ३)

आयु–सं०स्त्री० [सं०] १ वय, उम्र. २ जिंदगी, जीवनकाल।

क्रि०प्र०—खूटणी, पावणी, लेणी, होणी।

आयुख–सं०स्त्री० [सं० आयुष] आयु, उम्र (र.ज.प्र.)

आयुत–वि० [सं० आयत] विशाल, दीर्घ। उ०—उरं छिब आयुत कट मयंद।—अज्ञात

आयुद्ध, आयुध–सं०पु० [सं० आयुध] १ हथियार, अस्त्र-शस्त्र (अ.मा.) २ पांच मात्रा का एक नाम (र.ज.प्र.) ३ उपस्थ, लिंग।

आयुधन–सं०पु० [सं० आयोधन] युद्ध, रण (अ.मा.)

आयुधाभ्यास–सं०पु० [सं०] अस्त्र-शस्त्र चलाने का अभ्यास जो बहत्तर कलाओं के अंतर्गत गिना जाता है।

आयुरबेद, आयुरवेद–सं०पु० [सं० आयुर्वेद] १ आयु संबंधी शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, धन्वन्तरि प्रणीत आयुर्विद्या. २ अथर्ववेद का उपवेद।

आयुस–सं०स्त्री०—१ आयु, उम्र। उ०—आयुस री किंही भरोसौ नहीं, तोसूं कमायोड़ौ क्यूं गमावां।—डाढ़ाळै सूर री बात

२ आज्ञा, आदेश। उ०—फबतौ आयुस श्रीमाधव फुरमायौ। कांतीचंदर नै काळींदर खायौ।—ऊ.का.

आयुस्मांन–सं०पु० [सं० आयुष्मान्] ज्योतिष शास्त्र के २७ योगों में से एक योग (ज्योतिष बालबोध)

वि०—दीर्घजीवी, दीर्घआयु।

आयू–सं०पु० [सं० आयु] देखो 'आयु'।

आयेदिन–क्रि०वि०—नित्यप्रति, हमेशा।

आयोड़ौ–भू०का०कृ०—आया हुआ। (स्त्री० आयोड़ी) देखो 'आणौ'।

आयोधन, आयोधम–सं०पु० [सं० आयोधन] संग्राम, लड़ाई (ह.नां.)

आरंक–वि०—समान, सदृश।

आरंग-पुर–सं०पु० [सं०] मकान का ऊपरी भाग। उ०—गहकै आरंग-पुर सारंग सुर गावै, आंणिक दीठां ई नीठां बण आवै।—ऊ.का.

आरंबराय–सं०स्त्री०—राठौड़ों की कुलदेवी। उ०—जिण काज पाळ रिणराज जाय। आरंबराय कर वेल आय।—पा.प्र.

आरंभ–सं०पु० [सं०] १ किसी कार्य की प्रथमावस्था का संपादन, शुरू, श्रीगणेश, प्रारम्भ। उ०—एकंत उचित क्रीड़ा चौ **आरंभ** दीठौ सु न किहि देव दुजि।—वेलि. २ बड़ा कार्य. ३ उपद्रव, युद्ध। उ०—दुरग तगौ साथै दुभल, करनहरा कुळ थंभ। कचरावत विजपाल सा, आदरियौ **आरंभ**।—रा.रू.

४ जलसा. ५ तैयारी। उ०—आज किण सीस **आरंभ** इसा।
—महादान महडू

६ वैभव। उ०—दया जहां **आरंभ** नहीं, **आरंभ** दया न होय।
—ह.पु.वा.

आरंभणौ, आरंभबौ–क्रि०स०—१ आरम्भ करना, शुरू करना।
उ०—रुक्मणीजी सिंगार **आरंभिया**।—वेलि. टी.
२ युद्ध करना, चढ़ाई करना। उ०—अनिगढ़ां विखम भ्रम ऊपजै, खळ त्यां उद्यम खंभियौ। 'गजसाह' बियौ गुज्जर सिरै, 'अमैसाह' **आरंभियौ**। —रा.रू.
आरंभणहार, हारौ (हारी), **आरंभणियौ**–वि०—आरम्भ करने वाला, युद्ध करने वाला।
आरंभिओड़ौ, आरंभियोड़ौ, आरंभ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

आरंभराम–सं०पु०—वह व्यक्ति जो श्रीराम के समान ही कार्य प्रारम्भ करके समाप्त कर सकने की क्षमता रखता हो। उ०—दिल्लीस्वर ईस्वर छै औ **आरंभराम** छै, करण मतै करै। —नैणसी

आरंभियोड़ौ–भू०का०कृ०—आरम्भ किया हुआ. २ युद्ध किया हुआ। (स्त्री० आरंभियोड़ी)

आर–सं०पु०—१ बिना साफ किया हुआ एक प्रकार का निकृष्ट लोहा. २ किनारा, कोना [सं० अर] ३ पहिए का आरा. ४ कांटा, पैना अंकुश. ५ हरताल. ६ शनि. ७ तांबा. ८ पीतल. ९ बैल के हांकने के डंडे के नीचे लगा कीला। उ०—धूंणै सिर पकड़ै धरा, असह सहै जे **आर**। बौहळियां विरदावियां, गरज सरै नह तार।
—बां दा.

[सं० अल=डंक] १० बिच्छू, भिड़ या मधुमक्खी का डंक।
[सं०] ११ मंगल ग्रह। उ०—उदैहाट की बंगड़ा दंत ईसा, सुहावै लियां **आर** राका ससी सा।—वं.भा.
[सं० आरी] १२ चमड़ा छेदने का सुआ या टेकुआ. [रा०] १३ जिद, टेक, हठ।

आरक, आरका–वि०—समान, बराबर, सदृश।

आरकगिरी–सं०पु०—सुमेरु पर्वत (ह.नां.मा.)

आरकूट–सं०पु० [सं०] पीतल।

आरख–सं०पु०—१ चिन्ह, निशान (मि० आरख) २ परीक्षा, जांच।

आरखता–सं०स्त्री० [सं०] लालिमा। उ०—इसी मुखि विखै **आरखता** दीसइ छै।—वेलि.टी.

आरखक–सं०पु० [सं०] कुंभ के नीचे का भाग।

आरख, आरखइ–वि०—समान, तुल्य। उ०—मुज सिंघ सही सुज सिंघ सत एह न **आरख आखरां**। काय बात न मांनै पर किणी क्रम्म दीघ जळतौ करां।—मालौ आसियौ
सं०स्त्री०—१ हालत, अवस्था। उ०—इस **आरखइ** मारुवी, सूती सेज विछाइ। सालहकुंवर सुपनहुं मिळिउ, जागि निसासउ खाइ।
—ढो.मा.

[सं० आलक्ष] २ चिन्ह, निशान। उ०—सु प्रतखि महादेव का मुख का **आरख** कहतां चिह्न।—वेलि. टी. ३ गुण। उ०—पारख स्री रांण करै अत प्रभता, अंग **आरख** दरसाय।
—साहपुरै अमरसिंह रौ गीत

४ जोश. ५ शक्ति, बल। उ०—समरांटां उछळ अड़तौ सौदा, तू विभुहा खड़तौ रणताळ। गाढां **आरख** भड़ां गई छी, पारख तौ सात में पयाळ।—महाराजा बहादुरसिंह कृत। ६ परीक्षा. ७ प्रभाव।

आरखौ–वि०—समान, सदृश। उ०—इळा इण सीह रा चीठला **आरखौ**, बूढ़ला सारखौ नकौ बीजौ।—फतैसिंह बारहठ

आरगत्त–वि० [सं० आरक्त] लाल, आरक्त। उ०—आंवळइ मूंछ चख **आरगत्त**, सुरितांण जइत विढ़िस्यइ संप्रत्त।—रा ज.सी.

आरड़णौ, आरड़बौ–क्रि०अ०—चिल्लाना। १ कराहना. २ ऊंट का दर्दभरी आवाज करना। उ०—ते देखी करहउ **आरड़इ**, रंभि जांणि दुखियौ नर रड़इ।—ढो मा. ३ धंसना।
आरड़णहार, हारौ (हारी), **आरड़णियौ**—चिल्लाने या कराहने वाला, धंसने वाला।
आरड़िओड़ौ, आरड़ियोड़ौ, आरड़योड़ौ–भू०का०कृ०—चिल्लाया या कराहा हुआ, धंसा हुआ।
आरड़ीजणौ–क्रि०—भाव वा०।

आरड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ चिल्लाया हुआ. २ कराहा हुआ. ३ दर्दभरी आवाज किया हुआ (ऊंट) ४ धंसा हुआ। (स्त्री० आरड़ियोड़ी)

आरज–सं०पु० [सं० आर्य] १ श्रेष्ठ पुरुष, सत्कुलोत्पन्न. २ सबसे प्रथम सभ्यता प्राप्त कर प्रचलित करने वाली एक मानव जाति।
३ हिन्दू। उ०—लोपै हींदू लाज सगपण रोपै तुरक सूं। **आरजकुळ** री आज, पूंजी रांण प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ
वि०—१ श्रेष्ठ, उत्तम. २ बड़ा. ३ श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न।

आरजधरम–सं०पु० [सं० आर्य+धर्म] आर्यधर्म, हिन्दूधर्म।

आरजभोम–सं०स्त्री० [सं० आर्यभूमि] आर्यभूमि, भारतवर्ष।

आरजवंस–सं०पु० [सं० आर्यवंश] आर्य, आर्यवंश।

आरजवरत–सं०पु० [सं० आर्यावर्त] उत्तरी भारत का प्राचीन नाम जो आर्यों का निवास-स्थान माना जाता है।

आरजवरती–वि० [सं० आर्यावर्ती] आर्यावर्त में रहने वाला।

आरजियांजी–सं०स्त्री० [सं० आर्या] साध्वी (जैन)

आरट–सं०पु० [अं० आर्ट] शिल्पकला, दस्तकारी, कलाकौशल।

आरटिकिल–सं०पु० [अं० आर्टिकिल] १ कोई निबंध या लेख. २ वस्तु।

आरण–सं०पु० [सं० आ+रण] युद्ध, लड़ाई। उ०—गैदंतो पाडा-खुरी, आरण अचळ अघट्ट। भूंडण जणै सु भू भली, थोभै अरियां थट्ट।—हा.झा. २ लुहार की भट्टी। उ०—तट गंगा तपियो नहीं, नह जपियो नरसीह। जड़ तैं आरण धमण जिम. दम गमियां बहु दीह। [सं० आहरण] ३ लोहार का लोहे का बना एक उपकरण जिस पर गर्म लोहा रख कर पीटा जाता है। उ०—रुकमइयो पखि तपत आरणि रणि, पेखि रुखमणी जळ प्रसन।—वेलि.

सं०पु० [सं० अरण्य] ४ वन, जंगल। उ०—हे ! आरण रा हिरणां थे महर करो। सीता री बात सुणाय उपकार करो।—गी.रां.

सं०स्त्री०—५ श्मशान भूमि में जागी हुई प्रेत टोली. ६ तलवार, कृपाण।

आरणियो-छांणो–सं०पु० [सं० आरण्य = वन + रा० छांणो = कंडा] कंडा, सूखा हुआ गोबर (अमरत)

आरणौ–सं०पु०—१ कंडा, सूखा हुआ गोबर।

वि०—जंगली, जंगल सम्बन्धी।

आरणौ-छांणौ–सं०पु०—देखो 'आरणियो-छांणो'।

आरण्य–सं०पु० [सं०] दशनामी संन्यासियों की एक शाखा जो स्वामी शंकर के शिष्य पद्मनाग से अपनी परम्परा बतलाते हैं।

वि० [सं०] जंगली, वन का, वनसम्बन्धी।

आरण्यक–सं०पु० [सं०] वेदों के अंतर्गत वह भाग जिसमें वानप्रस्थों के लिए उपयोगी उपदेश लिखे हैं।

आरण्यरुदन–सं०पु० [सं० अरण्य+रुदन] जंगल में रोना, कानन रुदन. उ०—यह पत्र विचित्रित चित्र योग्य। आरण्यरुदन वत भी अयोग्य। —ऊ.का.

आरत–सं०पु० [सं० आरक्त] १ क्रोध। उ०—खग तोलै मग आरत खत्थै, चोड़ै दाबी बात चकत्थै।—रा.रू. [सं० आर्त] २ दुःख, पीड़ा, कष्ट। उ०—विप्र गया बिन्हैं कहिया वयण, अत आरत उनमांन रा। घर कांन दुरग चित धारिया, पत्र सुजायत खांन रा। —रा.रू.

३ परिश्रम। उ०– परठी आभ गयण लग पूंहत, कीरत बाड़ी मोर कळी। सुतियाणी आरत कर सींची. फळ किव वयणां सुफळ फळी। —महाराणा हम्मीरसिंह री गीत

४ करुणाजनक पुकार। उ०—आरत सुण नैं आव, डांवरै रै खेड़ सूं। पीर अरज सुण पाळ, आव नेड़ै नेतड़ सूं।—पा.प्र.

५ आरती। उ०—रतन करां नेवछावरां. ले आरत साजां हो। —मीरां

वि०—१ दुखी, व्याकुल। उ०—मरघौ सुयोधन गौ झख मारत, आरथावरत को करणी आरत।—ऊ.का. २ दीन। उ०—थांनै आरत व्है वालम अरज गुजारै मांनो हे ! म्हांरी भांमणी। —गी.रां.

आरतड़ी, आरतड़ौ–सं०स्त्री०—आरती, परिछन।

(आरतड़ी–अल्पा०)

वि०—दुखी, पीड़ित।

आरतवंत–वि०—दुखी, पीड़ित, आपद्ग्रस्त। उ०—समै कुसमै सुर सारत सार, पुकारत आरतवंत पुकार।—ऊ.का.

आरतव–सं०पु०—आर्तव (अमरत)

आरति, आरती, आरतौ–सं०स्त्री० [सं० आरात्रिक] १ किसी मूर्ति के सामने उसके चारों ओर दीपक घुमाना. २ कपूर या घी की बत्ती रख कर इस प्रकार घुमाने का पात्र. ३ आरती के समय पढ़ा जाने वाला स्तवन या स्तोत्र। ४ अभिलाषा, लालसा। उ०—ढोलइ मनि आरति हुई, सांभळि ए विरतंत। जे जिन मारू विण गया, दई न ग्यांन गिणंत।—ढो.मा. [सं० आर्त] ५ दुःख. ६ आर्त्तवाणी, पुकार। उ०—सीता आरति रांम सुणि, ईस पिनाक उपाड़ि। —रांमरासो

वि०—१ व्याकुल, चिंतित. [सं० आरक्त] २ लाल, आरक्त। उ०—अनि जळ तीह थियै किम आरति, जमण-गंग तट वसिया जाइ।—ईसरदास बारहठ

आरत्त–वि० [सं० आर्त्त] पीड़ित, दुखित।

आरत्तनाद–सं०पु० [सं० आर्त्तनाद] दुःख या वेदना के कारण मुंह से जोर से होने वाला शब्द।

आरत्तव–सं०पु० [सं० आर्त्तव] स्त्रियों का रज।

वि०—ऋतु संबंधी।

आरत्ती–सं०स्त्री०—देखो 'आरती'। उ०—क्रत जीपक दुत कांम, ओप दीपक आरत्ती।—रा.रू.

आरदास–सं०पु० [सं० अर्द = याचने] प्रार्थना, विनय, स्तुति।

आरद्र–वि० [सं० आर्द्र] गीला, भीगा हुआ।

आरद्रक–सं०पु० [सं० आर्द्रक] अदरक।

आरद्रता–सं०स्त्री० [सं० आर्द्रता] गीलापन, नमी।

आरद्रा–सं०स्त्री० [सं० आर्द्रा] १ सत्ताइस नक्षत्रों के अंतर्गत एक नक्षत्र. २ सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में होने का समय।

आरधणौ, आरधबौ–क्रि०स०— आराधना करना, ध्यान करना।

उ०—अहो निस काकभुसुंड आराध पढ़ै, तौ नांम सदा प्रहलाद। —ह.र.

आरनौ–सं०पु०— राख का बना एक पात्र जिसमें चांदी तपा कर साफ की जाती है। [सं० आरण्य] जंगल, वन।

आरन्य—देखो 'आरण्य'।

आरपार–सं०पु०—यह किनारा और वह किनारा।

क्रि०वि —१ एक छोर से दूसरे छोर तक. २ एक तल से दूसरे तल का।

वि०—सीधा।

आरब–सं०पु० [सं० आरव] १ शब्द, आवाज, आहट। उ०—बीज सळाव खिवे वीजू जळ, कांठळ जरदां कळह कळ। जोधायत दीठौ जोड़ाळै, दळ घण आरब तूफ दळ।—चांनण खिड़ियौ
(मि० आरव–१) २ तोप रखने की गाड़ी।
३ तोप। उ०—उडै धोम आरबां आतस, खळ दळ सबळ लूंबिया खूर।—आसिया दयारांम रौ गीत।
४ मुसलमान. ५ देखो 'आराब'।

आरबळ–सं०पु० [सं० आहार+बल] १ शक्ति, बल. [सं० आयुर्बल] २ आयु, उम्र।
वि०—अरब देश का, अरब से संबंधित। उ०—खेड़ैच लसावै असा आरबी तौखार।—चंडीदांन मीसण

आरबी–सं०पु०—१ अरब देश का घोड़ा (उत्तम)—शा.हो.
२ घोड़ा। उ०—अैराकी काठीवाड़ आरबी चेट चिना सुचंग।
—क.कु.बो.
(मि० आरबीय) ३ एक यवन जाति. (रू०भे० आरब्बी)
४ अरबी भाषा. ५ कुरान शरीफ. ६ युद्ध के समय बजाया जाने वाला बाजा। उ०—आरबी बंब मादळ उभै, धुबै नाद बादळ धजर। मोनूं बताय बेढ़ीमणा, नाह कठी टेढ़ी नजर।—मे.म.

आरबीय–सं०पु०— अरब देश में उत्पन्न घोड़ा, अरबी घोड़ा।
उ०—डूंगरी मसक्की वंसि दीय, अइराक ततारी आरबीय। खुर-सांणी मकुरांणी खनंग, पतिसाह तणा छूटइ पवंग।
—रा.ज.सी.
वि०—अरब का, अरब संबंधी।

आरबौ–सं०पु०—युद्ध के समय बजने वाला बाजा। देखो आरबी नं० ६।

आरब्ब–सं०पु०—१ युद्ध, संग्राम। उ०—अड़ाभोड़ रावत्त चेला अवीहा, सिधी म्रब्ब आरब्ब सौ अब्ब सीहा।—रा.रू.
२ देखो 'आरब'।

आरब्बी–सं०स्त्री०—एक यवन जाति या इसका व्यक्ति।
(रू०भे० आरबी) उ०—ईरांनी तूरांनी ऐसे, जवन दुरास प्रळासी जैसे। सू मकरांण हरेवी सिंधी, आरब्बी गखड़ै अनमंधी।—रा.रू.

आरमी–सं०स्त्री० [अं० आर्मी] फौज सेना।

आरयामंडळ–सं०पु [सं० आर्य+मंडल] भारतवर्ष, आर्यावर्त।

आरयामत–सं०पु०—आर्य समाज की विचारधारा। उ०—चाल आयौ घणौ-श्री देवण आळौ तू तौ आरयामत रौ है।—वरसगांठ

आरय्या–सं०स्त्री० [सं आर्या] एक प्रकार का अर्धमात्रिक छंद विशेष जिसके प्रथम और तृतीय चरण में प्रत्येक में बारह-बारह तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में प्रत्येक में पंद्रह-पंद्रह मात्राएं होती हैं। चार मात्राओं का गण इस छंद में समूह कहलाते हैं। इसके पहले तीसरे, पांचवें और सातवें गण में जगण का निषेध है किन्तु छठे गण में जगण होना चाहिए।

आरय्यागीत–सं०स्त्री० [सं० आर्य्यागीति] विषम चरणों में बारह और सम चरणों में बीस मात्राओं का आर्य्या छंद का एक भेद।

आरय्यावरत–सं०पु० [सं० आर्य्यावर्त]उत्तरीय भारत का प्राचीन नाम।

आरव–सं०पु०—१ शब्द, आवाज, आहट. २ करुणाजनक आवाज। उ०—छपने घोरारव आरव रव छायौ, सूरज ससि मंडळ गरज्जित गहणायौ।—ऊ.का. ३ अरबी घोड़ा। उ०—के आरव ऊधरा हेक धजराज हुरेवी। आरूहतां उत्तंग अंग जुगि लगै रकेबी।
—रा.रू.
वि०—भयंकर, कष्टजनक (अ.मा.)

आरवा–सं०पु०—१ बढ़िया चावल. २ कच्चे या उबाले चावलों से निकाले हुए चावल।

आरवार–सं०पु० [सं०] भोमवार, मंगलवार।—वं.भा.

आरस–सं०पु० [सं० आर्ष] ऋषिप्रणीत ग्रंथ। उ०—पद पदारथ संबंध पुनि, प्रत्यय आगम लोप। आरस पौरस सुभ असुभ, ग्रंथ हृदय धर गोप।—ऊ.का.
वि०—लाल, रक्त वर्ण*।

आरसि, आरसी–सं०स्त्री० [सं० आदर्श] १ शीशा, दर्पण।
उ०—बंध किलौरन कंधन के खिंधि, अंधन आरसि ओपत ऐसे।
—ऊ.का.
२ शीशा जड़ा हुआ चाँदी-सोने का स्त्रियों के गले का एक आभूषण।
वि०—कायर, आलसी।

आरहट–सं०पु०—१ युद्ध। उ०—खड़ आरहटां रूस अछरां विमांण खाथा, सार झटां झड़ै माथा पड़ै वज्र सोह।—अज्ञात
२ तोप। उ०—गाजै बांण आरहट गोळां, धोळै दिन साबळां धमोड़। —बीठळ गोपाळदास रौ गीत
३ तोप का चक्र. ४ शत्रु, दुश्मन।

आरांक-सं०पु०—निशान, चिन्ह, संकेत।

आरांण–सं०पु०—१ युद्ध, संग्राम। उ०—पाथ ज्यूं अनम्मी खंध वंसनूं चाढ़ियौ पांणी, यूं पछै ऊमटां नाथ पोढ़ियौ आरांण।
—सूरजमल मीसण
२ सागर, समुद्र ३ सूर्य (ना.डि.को.)
[सं० आरण्य] ४ श्मशान।
वि०—१ जंगल का. २ शून्य, निर्जन।

आरांणि, आरांणी–सं०पु०—युद्ध, संग्राम, समर। उ०—रिण सोहा रिण सूरमा, वीको सोम वखांणि। नायक पायक भड़ निवड़, अरि भंजण आरांणि।—हा.झा.

आरांणौ–सं०पु०—आंगण। उ०—तितरै 'आंटो' हेठे आंराणै आयौ नै जांण्यौ सूता छै।—जखड़ा-मुखड़ा भाटी री बात

आरांन–सं०पु०—युद्ध, देखो 'आरांण'। उ०—दहूं दीन आरांन में प्रांन झोंकै, लगे खेल विम्मांन को भांन रोकै।—ला.रा.

आरांम–सं०पु० [सं० आराम] १ उपवन, वाटिका। उ०—इसड़ा अंगड़ा मुहम्मदसाह री अंगजा क्रीड़ा रै व्याज आरांम में आई तिकण नूं ले'र रजपूती रै उफांण मेहवै आई।—बं.भा.

२ मकान, आवास (अ.मा.) [फा०] ३ चैन, सुख, विश्राम, शांति. कहा०—आरांम घड़ी रौ ही चोखौ—सुख थोड़ा हो तो भी अच्छा ही है।
४ चंगापन, मेहत।

आरांमतलब–वि०—सदा आराम की इच्छा रखने वाला, सुस्त, आलसी।

आरात–सं०पु०—निकट, नजदीक, पास। उ०—पूजा मिसि आविसि पुरखोतम, अंबिकालय नयर आरात।—वेलि.

आराति–सं०पु०—शत्रु। उ०—क्रम पुस्ट पाळ आराति काळ।
—वं.भा.

आराध–सं०स्त्री० [सं० आराधना] १ स्तुति, प्रार्थना। उ०—मोटा पहु आराध करै महि, मोटै गढ़ लीजतै मुवौ। जरिण हरि भगत तुहाळौ 'जैमल', हरि सारिखा प्रताप हुवौ।
—जैमल वीरमदेओत रौ गीत

आराधक–वि० [सं०] आराधना करने वाला, उपासक। (वं.भा.)

आराधण–सं०स्त्री० [सं० आराधना] पूजा, सेवा, उपासना, आराधना।

आराधणौ, आराधबौ–क्रि०स०—१ प्रार्थना करना, स्तुति करना।
उ०—पीचासणि साकणि प्रतिबंबा, अथ आराधिजे अवलंबा—देवि.
२ रक्षा करना। उ०—चंद हुरा बिय चंद सम, दुंद बधारण कज्ज। बाधै दिन-दिन सांम छळ, आराधै कुळ लज्ज।—रा.रू.
३ वश में करना, अधीन करना। उ०—गढ़पत 'सूर' साह तिण गादी, एकौ छत्र धरा आराधी।—रा.रू.

आराधना–सं०स्त्री० [सं०] प्रार्थना। उ०—तरै गुरां श्रीदेवीजी री आराधना कीवी।—रा.वं.वि.

आराधियोड़ौ–भू०का०कृ०—आराधना किया हुआ।
(स्त्री० आराधियोड़ी)

आराधीजणौ, आराधीजबौ–क्रि०स०—आराधना किया जाना।

आराधै–सं०स्त्री०—प्रार्थना, पुकार।

आराब–सं०स्त्री०—१ गाड़ी पर रक्खी जाने वाली छोटी तोप।
उ०—मिळ दहूं दळां आराब गाज, सुज धरै जांण मेघा समाज।
—शि.सु.रू.
२ युद्ध का बाजा विशेष। उ०—बाज डाक आराबां त्रंबक गड़गड़ै त्रंबाळा।—अज्ञात

आराबा, आराबौ–सं०स्त्री०—१ गाड़ी या ऊँट पर लादी जाने वाली एक प्रकार की तोप। उ०—आतस आराबां हवायां रौ मारकौ पड़ि नै रहियौ छै।—रा.सा.सं. २ चक्केदार बड़ी तोप।
उ०—आराबां आतस झाळ, उन्हाळा प्रळै काळ।—वचनिका

आरालिक–सं०पु० [सं०] रसोईदार।

आराव–सं०स्त्री०—देखो 'आराब'

आरावौ–सं०पु०—१ देखो 'आराबौ' (१) २ गोला, बारूद।
उ०—तरै राव गांगोजी आराबौ सामांन सझ करि नै घणौ साथ सामांन लेनै कूंच कीधौ।—जैतसी ऊदावत री बात

आरास–सं०पु० [सं० आदर्श] शीशा। उ०—आसपास आरास उजास उजाळियां।—महादांन महड़ू

आराहड़ौ–वि०—जबरदस्त, शक्तिशाली। उ०—हुवै बितेजी अेकठा, केही काढ़ै कांन। अे हिंदू आराहड़ौ, तू मुग्गळ असमांन।
—रा.ज.रासौ.

आराहणौ, आराहबौ, आराहिणौ, आराहिबौ–क्रि०स०—१ आराधना करना. २ प्रार्थना करना। उ०—ताहरां च्यारां ही कह्यौ जु आराही देवी रै जाइनै पूजा आह्वांन करि देवी आराहिस्यां।—चौबोली

आरि–सं०स्त्री०—१ एक चिड़िया विशेष. २ झिल्ली। उ०—आरि तंतिसर भमर उपंगी, तीवट उघट चकोर तत्र।—वेलि.

आरिख, अरिखि, आरिखे–वि०—सदृश, समान, बराबर।
उ०—१ ऐसा वंस छत्रीस दरग्गह उंब रा, सामंद चंद दड़िदंक आरिख इंद रा।—वचनिका। उ०—२ आरिखे आज विभौ सुर इंद।
—रांमरासौ
सं०पु०—निशान, चिन्ह, संकेत। उ०—नायका कौ मुख पीळौ हुऔ सुरत कै अंति तैसे प्रिथी पीळाई की। कोकिळा बोलती रही सोई जांणौ निसुर हुई। ओस का कण इहै मांनौ प्रसेद का कण छै। इह आरिख करि प्रिथि नै नायका रौ द्रस्टांत कीयौ।—वेलि.टी.
[सं० आरक्ष] रक्षा-स्थान।

आरिज–सं०पु० [सं० आर्य] देखो 'आरज' (वं.भा.) उ०—आरिज राजां समय इण, जठी तठी अड़ि जुद्ध। आपस री दाबे इळा, राखी अवसर रुद्ध।—वं.भा.

आरिजधर–सं०पु० [सं० आर्य+धर] आर्यावर्त, भारतवर्ष (वं.भा.)

आरितवंतय–वि० [सं० आर्त] १ दुखी, पीड़ित, कातर (रा.रा.)
२ अस्वस्थ।

आरियापंथ–सं०पु० [सं० आर्य+पथ] आर्यसमाज जो ऋषि दयानंद द्वारा चलाया गया।

आरियामत–सं०पु० [सं० आर्य+मत] आर्यसमाज की विचारधारा।

आरिस्ट–सं०पु० [सं० अरिष्ट] १ भयंकर आपत्ति २ मृत्युचिन्ह.

आरी–सं०स्त्री०—१ लकड़ी चीरने का एक औजार. २ छोटा आरा.
३ बैलों के हांकने के पैने की नोक पर लगाई जाने वाली नुकीली कील. ४ जूता सीने की सुतारी. ५ गेंडुरी. ६ सोने-चाँदी को काटने की करोती।
सर्व०—इनकी।

आरीकारी–सं०स्त्री०—काम, व्यवस्था, ढंग। उ०—व्याह री आरीकारी मांडी पीठी कीधी, पीठी रा गीत गाया, बेह चौंरी बंधाई।
—जगमाल मालावत री बात

आरीख, आरीखै–वि०—समान, तुल्य, बराबर। (रू०भे० आरिख)
उ०—अस मेळी आरीख, राग वाग मन रंजणी। सखर पया सारीख, भोग न दूजौ भेंरिया।—महाराजा बळवंतसिंह
सं०पु०—चिन्ह, निशान।

आरीयण—सं०पु० [सं० आर्यस्थान] १ भारतवर्ष । उ०—**अकबर** दळ अगन कड़ाव **आरीयण**, लाकड़ सोह बळै कुळ लाज । दूध कुसळ पोहतौ खीची दळ, पांणी आवटियौ प्रिथीराज ।—खेतसी लाळस [सं० आर्यजन] २ आर्य हिंदू ।

आरीस, आरीसउ—सं०पु० [सं० आदर्श] दर्पण, कांच ।
उ०—१ जंगम्मं पसम्मं मुखमल्ल जेही, दिपै जांणि **आरीस** सारीस देही ।—वचनिका । उ०—२ वहू कन्हा जगणी इक वार, **आरीसउ** मांग्यउ तिणि वार ।—ढो मा.

आरूढ, आरूढ़—वि० [सं० आरूढ़] १ सवार, चढ़ा हुआ ।
उ०—विमिस्ट रिख बैल **आरूढ़** रस सांत बण, उजेणी सूद्र लोयण उभै भेख ।— र.रू. २ सन्नद्ध, तत्पर. ३ दृढ़, स्थिर ।
सं०स्त्री०—पार्वती, देवी, दुर्गा । उ०—सिंघवाहणी सार किल्यांणी संकरा. रुद्रांणी **आरूढ़** दिख्यांणी सुंदरा ।—क.कु.बो.

आरूढ़णौ, आरूढ़बौ—क्रि०अ०—आरूढ़ होना, सवार होना, चढ़ना ।
आरूढ़णहार, हारौ (हारी), आरूढ़णियौ—वि०—सवार होने वाला ।
आरूढ़िओड़ौ, आरूढ़ियोड़ौ, आरूढ़योड़ौ—भू०का०कृ० ।
(रू०भे० आरूहणौ)

आरूढ़हंस—सं०पु०—१ ब्रह्मा ।
सं०स्त्री०—२ सरस्वती ।

आरूढ़ियोड़ौ—भू०का०कृ० —आरूढ़ होने वाला, सवार होने वाला, चढ़ने वाला ।

आरूहणौ, आरूहबौ—क्रि०अ०—देखो 'आरूढ़णौ' ।
आरूहणहार, हारौ (हारी), आरूहणियौ—वि० ।
आरूहिओड़ौ, आरूहियोड़ौ, आरूह्योड़ौ—भू०का०कृ० ।
(रू०भे० आरूढ़णौ)

आरूहियणौ, आरूहियबौ—१ देखो 'आरूढ़णौ' ।
उ०—वांसइ **आरूहियउं** देद वाज, कुळ लाज मुंवारण सांमि काज ।
—रा.ज.सी.
२ आक्रमण करना, चढ़ाई करना । उ०— रांण पंचायण ऊपरा, राजा आरंभ रांम । **आरूहियौ** अणकळ 'अजो' दळ बळ साज दुगांम ।
—रा.रू.

आरूहियोड़ौ—भू०का०कृ०—सवार, चढ़ा हुआ । (स्त्री० आरूहियोड़ी)

आरे—सं०पु० [सं० ऊरीकृत] १ स्वीकार, मंजूर । उ०—बोलै साचा बोल, काचा न **आरे** करै । तिण मांणस रा तौल, मेर प्रमांणै 'मोतिया' ।—रायसिंह सांदू. २ तट, किनारा. ३ अधिकार, वश । उ०—दाव दारां पड़ै धाक चारूं दिसा, आपसा मांटियां करै **आरे** ।
—महादांन महड़ू

आरेख—वि०—बराबर समान, तुल्य । उ०—निस वासर भज रै घणनांमी, अंतरजांमी एक अलेख । दुनियां सोक विसेख मतौ दिल, अंब वाळा फूलां **आरेख** ।—ओपो आढ़ो

आरेटौ, आरेठौ—सं०पु० [सं० अरिष्टक] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो अधिकतर वनों में पाया जाता है । इसके एक डंठे में ६ या ७ पत्ते निकलते हैं । फल गोल गुच्छे में होते हैं । इसके फलों के झागों से रेशमी कपड़े व जेवर धोये जाते हैं । यह वृक्ष अथवा इसका फल ।

आरेण—सं०पु०—युद्ध ।

आरै-देखो 'आरे' ।

आरैल—सं०पु०—एक प्रकार का मोटे दाने का नाज विशेष । इसके दाने का आकार मटर के दाने के जैसा होता है ।

आरोगण—सं०पु० [सं० अरोग] भोजन, आहार (ह.नां., अ.मा.)

आरोगणौ, आरोगबौ—क्रि०स० [सं० अरोग] भोजन करना, खाना, सेवन करना (आदरसूचक) उ०—एक दिन राजा **आरोगतौ** हुतौ अौर रांणीजी मांख्यां उड़ावता हुता ।—चौबोली
आरोगणहार, हारौ (हारी), आरोगणियौ—खाने वाला ।
आरोगाड़णौ, आरोगाड़बौ—रू०भे० ।
आरोगाणौ, आरोगाबौ—क्रि०स० (प्रे०रू०)—भोजन खिलाना ।
आरोगिओड़ौ, आरोगियोड़ौ, आरोग्योड़ौ—भू०का०कृ० ।
आरोगीजणौ, आरोगीजबौ—कर्म० वा० ।

आरोगाड़णौ आरोगाड़बौ—क्रि०स०—१ देखो 'आरोगणौ' ।
२ देखो 'आरोगाणौ' ।

आरोगाणौ, आरोगाबौ—क्रि०स०—१ देखो 'आरोगणौ' ।
(प्रे०रू०) २ भोजन कराना ।

आरोगियोड़ौ—भू०का०कृ०—भोजन किया हुआ, खाया हुआ ।
(स्त्री० आरोगियोड़ी)

आरोगी—सं०स्त्री०— चिता । उ०--पछै जमी आकास पवन पांणी चंद सूरिज नूं परणांम करि **आरोगी**, दोळी परिक्रमा दीन्ही, पछै आपरै पूत परिवार नै छेहली सीखमति आसीस दीन्ही ।—वचनिका

आरोगीजणौ, आरोगीजबौ—क्रि०स०—भोजन किया जाना ।

आरोग्यता—सं०स्त्री०—तन्दुरुस्ती ।

आरोड़—वि०—बलवान, जबरदस्त, पराक्रमी, वीर । उ०—गढ लिखमण सारीसा गुड़िया, अड़सी कुळमंडण **आरोड़** ।
—महारांणा गढ़लक्ष्मणसिंह रौ गीत

आरोड़ी—सं०पु०—केशर-कस्तूरी के पुट से तैयार किया जाने वाला एक प्रकार का बढ़िया अफीम ।—रा.सा.सं.

आरोध—सं०पु० [सं० आयुध] शस्त्र, हथियार । उ०--काळी चक्र हाथ रौ **आरोध** लीधां क्रोध ।—हुकमीचंद खिड़ियौ

आरोधणौ, आरोधबौ—क्रि०स०—१ रोकना. २ छेंकना. ३ आड़ना ।

आरोप—सं०पु० [सं०] १ स्थापित करना. २ लगाना. ३ जमाना, रोपना. ४ एक वस्तु से दूसरी वस्तु के लक्षणों का मढ़ना. ५ कल्पना, भ्रम. ६ कलंक, दोष ।

आरोपक—सं०पु० [सं०] आरोप लगाने वाला । उ०—**क्रत विरुद्ध मति** विरुद्ध मति क्रत, **आरोपक** आरोप असेख ।—बां दा.

आरोपण—सं०पु० [सं०] लगाना, स्थापित करना, रोपना ।

आरोपणौ, आरोपबौ–क्रि०स०—१ आरोपित करना. २ धारण करना. ३ शोभायमान होना। उ०—यौं सिर मौड़'र तनमय ओपै, ऊपरि आतपत्र आरोपै।—रा.रू.

आरोपा–वि०—दृढ़, अटल। उ०—मेर ज्यूं आरोपा कीध माई।
—खेतसी बारहठ

आरोपित–वि० [सं०] १ लगाया हुआ। उ०—आरोपित आंखि सहु हरि आननि, गरभ उदधि ससि मध्य ग्रहीता।—वेलि. २ धारण किया हुआ। उ०—आरोपित हार घणौ थियौ अंतर, उरस्थळ कुंभस्थळ आज।—वेलि. ३ स्थापित किया हुआ, रोपा हुआ. ४ मढ़ा हुआ।

आरोपियोड़ौ–भू०का०कृ०—आरोपित किया हुआ। (स्त्री० आरोपियोड़ी)

आरोपीजणौ, आरोपीजबौ–क्रि० स०—१ आरोपित किया जाना. २ धारण किया जाना।

आरोपौ–सं०पु०—१ चमत्कार, देवप्रभा। उ०—थापै सोजत थांन पांणां वागै छत्रपती, जांणै सरब जेहांन आरोपौ भारी उठै—पा.प्र. २ आरोप, कलंक, दोष। उ०—ईडर राव तणौ आरोपौ, मेवाड़ा ऊपर मुणियौ। फिरमर धार करग कोदाळै, 'खेत' कळोधर रिण खिणियौ।—कांधळ चूंडावत सीसोदिया रौ गीत
३ बड़ा कार्य, उत्तम कार्य।

आरोमार–सं०पु०—स्तनों से दूध सूख जाने की क्रिया या भाव।

आरोह–सं०पु० [सं०] १ चढ़ाव, चढ़ाई. २ आक्रमण. ३ घोड़े हाथी आदि पर चढ़ना, सवारी. ४ जीवात्मा की ऊर्ध्वगति (क्रमानुसार) या जीव का क्रमशः उत्तमोत्तम योनियों का प्राप्त करना (वेदां०). ५ विकास, उत्थान. ६ आविर्भाव. ७ नितंब. ८ स्वरों का चढ़ाव या नीचे स्वर के पश्चात् क्रमशः ऊँचा स्वर निकालना, स्वरों का सीधा क्रम-सा रे ग म प ध नि सा (संगीत). ९ सीढ़ी (अ.मा.) १० ग्रहण के दश भेदों में से एक. ११ सवारी करने वाला, सवार। उ०—आरोह न दीठौ दूजौ भूप माधोसिंह एहौ, हजारी कुमेत जेहौ न दीठौ हैराव।—रांमकरण महड़ू

आरोहक–सं०पु०—सवार, आरोही। उ०— आरोहक दूवौ 'भारत' नीली उडंड, हद घड़ै विघातानाथ हाथां।
—माधोसिंह सीसोदिया रौ गीत

आरोहण–सं०पु० [सं०] १ चढ़ना, सवार होना. २ सवारी, वाहन। उ०—रिखि कस्यप आरोहण कमठ स्रंगाररस, मगवपत दुज वरण नयण त्रिय मीत।—र.रू. ३ सीढ़ी, सोपान (अ.मा.) ४ अंकुर का प्रादुर्भाव। (स्त्री० आरोहणी)

आरोहणौ आरोहबौ–क्रि०अ०—आरूढ़ होना, सवार होना।
उ०—वस धर फील कियौ फीलवांणै आरोहौ सीढ़ी पग आंणै।
—रा.रू.

आरोहणहार, हारौ (हारी), आरोहणियौ–वि०—आरूढ़ होने वाला।
आरोहिओड़ौ, आरोहियोड़ौ, आरोह्योड़ौ—आरूढ़, सवार।

आरोहा–सं०स्त्री०—सवारी करने वाली, सवार। उ०—आरोहा लंकाळ री क सत्रां धू जाळ री आग, रमा रूप जयो काछ पंचाळ री राय।—नवलजी लाळस

आरोहित, आरोहियोड़ौ–वि०—सवारी किया हुआ, चढ़ा हुआ।
उ०—गज आरोहित वड वड गढ़पति। चोसारां धरि वंदै चलण।
'वीर' तणौ अरचंतौ विसंभर। तिम अरचीजै आप तण।
—जैमल वीरमदेवोत रौ गीत

आरोही–वि०—१ चढ़ने वाला, सवार. २ ऊपर जाने वाला.
३ षड़ज से निषाध तक क्रमशः या उत्तरोत्तर चढ़ने वाला, स्वरसाध।

आरोहौ–सं०पु०—तीर, बाण। उ०—कबांणां आरोहां छूटै स्रछोहा कुंडळाव।—अज्ञात

आरोह्य–वि०—सवार, आरोही।

आरोह्यणौ, आरोह्यबौ–क्रि०स०अ०—१ चढ़ाना. २ सवारी करना, चढ़ना। (रू०भे० आरोहणौ)

आरौ–सं०पु० [सं० आर] १ लोहे की दांतीदार पटरी जिससे लकड़ी (रेत कर) चीरी जाती है, करौत. २ चमड़ा सीने का टेकुआ.
३ छेद करने का आरा. [सं० आहर] ४ गेंडुरी. ५ भट्टी का चूल्हा. ६ सर्प का बैठते समय बनाया हुआ घेरा. ७ रस्सी कपड़े आदि का बना गोल घेरा जिसके ऊपर पानी आदि के भरे व भारी बर्तन रक्खे जाते हैं। यह गेंडुरी से बड़ा होता है, ऐंडुआ. ८ जैन मतानुसार समय का एक विभाग. [सं० आर] ९ लकड़ी की वह छोटी पटरी जो गाड़ी के पहिए की गड़ारी और पुट्ठी के बीच में जड़ी रहती है. १० हल्ला, आवाज। उ०—सीरावण जीमण दो पैरां सारौ पीसण पोवण में आरौ पळलारी।—ऊ.का.
११ समय। उ०— अरीकुल आरा भयो प्यारा सुभ आरा तें।
—ऊ.का.

आरयावरत–सं०पु० [सं० आर्यावर्त] भारतवर्ष। उ०— अर प्रतिदिन प्रतना री प्रस्थांन होतां आघात रै आतंक आरयावरत हाकार भणियौ।—वं.भा.

आरयावरती–सं०पु०—भारतवासी। उ०—पादाकांति पदकांति बिन पावै, आरयावरती जन अन बिन अकुळावै।— ऊ.का.

आलंकृत–सं०पु० [सं० अलंकार] भूषण, गहना। उ०—काज सुधारण सदा कविंदां हाटक रा आलंकृत होय।—नींबोल सरूपसिंह रौ गीत
वि० [सं० अलंकृत] शोभित, अलंकृत।

आलंग–सं०पु०— घोड़ी की मस्ती।
क्रि०वि०—दूर, जुदा, पृथक, भिन्न। (मि० आळग)

आलंगण–सं०पु० [सं० आलिंगन] १ सात प्रकार की वाह्य रतियों में से एक। उ०—वाच क्रिया गुण वक्र विध, सुख चुंबन सिणगार आलंगण चेष्टा उदत, विध अनुभाव विचार।—क.कु.बो.
देखो 'आलिंगन'।

आलंगणौ, आलंगबौ–क्रि०स०— १ छूना, स्पर्श करना. २ याद करना.

३ आलिंगन करना। उ०—अंग घणां आलंगियौ, अधर घणां री ऐंठ। नर मूरख जांणै नहीं, पातरियां री पैठ।—बां.दा.

आलंगियोड़ो–भू०का०कृ०—स्पर्श किया हुआ, याद किया हुआ, आलिंगन किया हुआ। (स्त्री० आलंगियोड़ी)

आलंगीजणौ, आलंगीजबौ–क्रि०स०—१ छूआ जाना. २याद किया जाना. ३ आलिंगन किया जाना।

आलंबण, आलंबन-सं०पु० [सं० आलंबन] सहारा, आश्रय, अवलंब। उ०—धरम जुद्ध सौं मारियां तौ पलायन रौ आलंबन पाइ इसड़ा अधरमी समस्त ही मरण पावैं नहीं।—वं.भा.

आलंभन–सं०पु०—छूना, पकड़ना. २ मिलना.

३ मारण, वध।

आळ–सं०स्त्री०—१ युद्ध, लड़ाई। उ०—दीकरी दलेलीसींघ री देखजो अलेळी आळ औ खेल आयौ।—बुधजी आसियौ २ झंझट, बखेड़ा, झमेला। उ०—पुणै इम वीरमदे पूंछाळ, अठै थां खांन करै कुण आळ।—गो.रू.

कहा०—आळ करै कपाळ, टींचियौ पड़ै सामली लिलाड़—बुरे कार्य का बुरा परिणाम।

३ असत्य, झूठ। (यौ० आळजंजाळ)

उ०—आळै युधिस्ठर आळ, अरक सुत उत्तर आळै। ब्रह्म न बांचै वेद, पाप गंगा नहि पाळै।—चौथ बिठू

४ खेल, केलि, छेड़, छेड़-छाड़। उ०—अंगूठै री आळ, लोभी लगाड़ै गयौ। रूनी सारी रात, जक न पड़ी रै जेठवा।

५ आलस्य. ६ मादा पशुओं का योनि-स्थान।

वि०—१ व्यर्थ, फिजूल।

उ०—जे गाव कवि तू धन्य जथा, क्यूं और वखांणै आळ कथा।

—र.ज.प्र.

२ सामान्य, साधारण।

आल–सं०स्त्री०—१ हरताल. २ एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ और छाल से लाल रंग बनता है। उ०—अकबर दळ आल सावळां ओखण, जूझ कळह मातै रण जंग। रवदां तणै रगत सूं रांणै, राता किया पहाड़ां रंग।—महारांणा अमरसिंहजी री गीत

३ उपरोक्त पौधे से बना हुआ रंग. ४ लौकी, घीया. ५ हिन्दुआंणी की जाति का किन्तु उससे कुछ लंबोतरा मरु-भूमि में होने वाला एक प्रकार का फल विशेष. ६ गीलापन, आर्द्रता, तरी।

उ०—स्वेद हुवौ रति सदन में, ओठ पट्टी आल। सुपने अरथी संभयो, गोरी अधर गुलाल।—अज्ञात. ७ लड़की की संतान (यौ० आलऔलाद) उ०—महदी री औलाद सूं आल बहोत है।

—बां.दा. ख्या.

८ आंसू।

आल-औलाद–सं०पु०यौ०—१ बाल-बच्चे, कुल-परिवार. २ वंश, खानदान. ३ एक कीड़ा।

आलका–सं०पु०—छिपने की क्रिया अथवा भाव।

आळग–क्रि०वि०—१ अलग, दूर। उ०—पंथी एक संदेसड़उ, अल मांणस नइ भख्ख। आतम तुझ पासइ अछइ, आळग रूड़ा रख्ख।

—ढो.मा.

२ पृथक, भिन्न।

आळगणौ, आळगबौ–क्रि०अ० [सं० आलग्न] १ मन बहलना, मन लगना। उ०—धण नूं आळगसी धणी, सुणियां बागौ सार। हालीजै उण देसड़ै, प्रांणां री ब्यापार।—बी.स.

२ संतोष होना, चैन होना। उ०—१ अंग्रेजां धड़ सीस उतारूं, मारूं जद आळगै मनै।—चंडीदास मीसण

उ०—२ क्रोध झाळा विखम खगां रटकै कटक तोप सूरां सळक बांण ताळा। असा चाळा विनां तनै भूरा अभंग। आळगै नहीं भाराथ आळा।—उमेदसिंह सीसोदिया रौ गीत

३ अच्छा लगना. उ०—छाहणी धूप नूं आळगइ, कवियक झूंपड़ा होइ मसांण।—वी.दे.

आळचणौ–वि०—आलोचना करने वाला।

आळचणौ, आळचबौ–क्रि०स०—१ विचार करना. २ आलोचना करना।

आळजंजाळ–सं०पु०—झूठा माया-मोह। उ०—जगत आळजंजाळ, के तांणा-वेजा करै। कुळ में तीनूं काळ, भजन सार हिक भैरिया।

—महाराजा बळवंतसिंह

आळण–सं०पु० [सं० आद्रण] खीच पकाते समय खीच के साथ मिलाया जाने वाला द्विदल अनाज की दाल।

आळणौ, आळबौ–क्रि०अ०—१ आलस्य करना।

आलणौ, आलबौ–क्रि०स०—१ देना। उ०—जे जे मलिक राइ झालिया, ते कुंअरी नइ पाछा आलीया। आगेवांण दाखवइ वाट, साथि मोकळयउ बीजउ भाट।—कां.दे.प्र.

२ गमन करना. ३ कहना। उ०—धणी माहुरो नह कूरम, रांणौ धणी। अवरता वयण नह तूझ आलै।

—ठाकुर जयसिंह राठौड़ मेड़तिया रौ गीत

४ छोड़ना, त्यागना। उ०—अस्वालंब गवालंब आल्यौ, झटकै गयौ सीतळा झाल्यौ।—ऊ.का.

आलत–सं०स्त्री०—हँसी-मजाक।

आलतौ–वि०—लाल* (डिं.को.)

आलथी-पालथी–सं०स्त्री०—पलथी मार कर बैठने का ढंग।

आळपंपाळ–सं०पु०—देखो 'आळजंजाळ'।

आलपीन–सं०स्त्री० [पुर्त० आलफिनेट] एक प्रकार की घुंडीदार सुई जिसे कागज वगैरह नत्थी करने के काम में लिया जाता है।

आलबणौ, आलबबौ–क्रि०स०—आलंबन करना। उ०—चरिम चउरासी हूं आलबूं बिल-बिलाती कांई मेल्हे जाइ।—वी.दे.

आळ-बाळ–सं०पु०—पाखंड। उ०—आळ-बाळ करता फिरै, साध होण

की सोभ। पैलै मनि देखै पतित, मन अपणां की खोभ।—ह.पु.वा.

आलम–संपु० [अ० आलम] १ दुनिया, संसार। उ०—अल्हा एकण ढांकणी, सब **आलम** ढांकी।—केसोदास गाडण

२ दशा, अवस्था. ३ जन-समूह, जनता, संसार। उ—**आलम** हंदी हद है, अलाह बेहदा।—केसोदास गाडण. ४ खुदा, ईश्वर: उ०—**आलम** मोरा औगुणां, साहिब तूझ गुणांह। बूंद बिरक्खा रैण कण, थाघ न लब्भो त्यांह।—ह.र.

५ तमाशा, नकल. ६ नगाड़ा-निशान. ७ ढोली।

८ स्वामी, बादशाह (र.ज.प्र.) ९ यवन, मुसलमान।

उ०—अस सपत:स **आलमां** ऊपर, खळ दळ राकस वहै खग।—अज्ञात

१० राजस्थान में पूजे जाने वाले एक देवता।

आलमखांनौ–संपु०—१ वह स्थान जहाँ ढोली अथवा गाने वाली वेश्याऐं रहती हैं. २ नगारखाना।

आलमगीर–संपु० [अ०] १ संसारविजयी. २ संसारव्यापी. ३ औरंगजेब बादशाह की पदवी। उ०—मालुम मुलायजे करहु माफ, आलिम हैं **आलमगीर** आप।—ऊ.का.

आलमड़ौ–संपु० [अ० आलम] १ ईश्वर. २ दुनिया (अल्पा०)

आलमपत, आलमपती–संपु०—१ बादशाह। उ०—परखिया निजर **आलमपती** सारा ही मतिमंद सूं, आदरै न को कइ मेर उर समहर सेर विलंद सूं।—रा.रू. २ ईश्वर।

आलमपना, आलमपनाह–संपु० [अ० आलम+पनाह] संसार को शरण देने वाला। उ०—देखिये दरद हम बेगुनाह, पेखिये विरद **आलमपनाह** —ऊ.का.

आलमीन–संपु० [अ० आलम] संसार 'आलम' का बहुवचन। उ०—मालिक नहिं खालिक मुसलमीन, अल्ला है रब्बल **आलमीन**। —ऊ.का.

आलमोचा–संपु०—सोलंकी वंश की एक शाखा।

आलमौ–संपु० [अ० आलम] १ ईश्वर। उ०—तोनै मार राठौड़ां दगा सूं कासूं मूछां तांणी, **आलमा** जेहांन जांणी भावी जोरवांन। २ संसार। —हुकमीचंद खिड़ियौ

आलम्म–संपु० [अ० आलम] १ संसार, जगत। देखो 'आलम' (१) उ०—अणू मझ राखै कोटि **आलम्म**।—ह.र. २ बादशाह।

आलय–संपु० [सं०] घर, मकान, वासस्थान (ह.नां.) उ०—सुण सुण बीरा धाड़वी, **आलय** देखो और। घर री खूणै झूरसी, चल मग आतां चौर।—वी.स.

आलर–संपु०—१ दान।

संस्त्री०—२ उदारता।

आलरणौ, आलरबौ–क्रिअ०—वर्षा का शुरू होना। उ०—१ जला जेथ न आइये, खड़हड़िये नीवांण। **आलरतौ** ढहि पड़ै, जगहंसी घरहांण।—जलाल बूबना री बात. २ दान देना। उ०—असगज गय आगाहट **आलर**, बेळ समंद बालर बदबाद। हाकी सुजस हुमी हालर री, सरब धात झालर रौ साद।—महादांन महड़

आळबणौ, आळबबौ–क्रिअ०—बोलना।

आळवाळ–संपु०—घेरा, मंडल (डिं.को.)

आळस–संपु० [सं० आलस्य] आलस्य, सुस्ती। उ०—कागळ नहीं क मगि नहीं, लिखतां **आळस** थाइ। कइ उण देस संदेसड़ा, मोलइ वडइ विकाइ।—ढो.मा.

कहा०—मरण रै **आळस** सूं जीवै है—बहुत ही आलसी व्यक्ति पर।

आळसणौ–संपु०—आलस्य।

आळसणौ, आळसबौ–क्रिस०—१ आलस्य करना। उ०—वैर हमेस विसावणा, वाड़ विना वसणोह। वाघां रै क्यूं कर वणै, आरण **आळसणोह**।—बां.दा. २ विलम्ब करना। उ०—दसहरा लग **आळसै**, मालवणी वैणोह। मारू जिम जिम संभरै, जळ मूकै नयणेह। —बां.दा.

आळसवौ–वि०—आलसी, सुस्त। उ०—**आळसवां** अज्जाणवां, दिल खोटंतां दूर। साहिब सांचा साधवां, है हाजरां हजूर।—ह.र.

आळसियोड़ौ–वि०—आलस्य किया हुआ। (स्त्री० आळसियोड़ी)

आळसी–वि०—सुस्त, काहिल, अकर्मण्य।

आलसुवाय—वह गाय जिसके बच्चा हुए बहुत थोड़े ही दिन हुए हों।

आळसेट–क्रिवि०—आनंद के लिए। उ०—गिरिमाळां ज्यूं गाळा जुड़ै, **आळसेट** ऊंचा वढ़ां। त्याग, तप, भगती, रजपूती, नीत पाठ सुरनर पढ़ां।—दसदेव

आलस्य–संपु० [सं०] सुस्ती। उ०—**आलस्य** के मोड़िवै मतवाळा हुआ।—वेलि. टी.

आलांण, आलांन–संपु०—हाथियों का बंधस्थल, हाथी बांधने का खूंटा या रस्सी। उ०—इभ चाकर माकर उछट, उडि आसण आया। बारी बाहर लेण कौ, **आलांण** छुड़ाया।—वं.भा.

आळाणौ–संपु०—१ स्थगित. २ रद्द. [सं० आलस्य] ३ आलस्य।

आळाणौ, आळाबौ—हराना, पराजित करना।

आला–वि० [अ० अअ्ला] श्रेष्ठ, बढ़िया। उ०—१ सीख्यौ बंकी पाठसाला **आला** एक बंकी सीख्यौ।—ऊ.का. उ०—२ कव 'ओपा' लाडी ले कीरत, भूपत वार भजाड़ै। अण मांडहड़ै **आला** आला, वळिया ढोल वजाड़ै।—ओपौ आढ़ौ

आलात–संपु० [सं०] जलती हुई लकड़ी।

आलाप–संपु० [सं०] १ कथोपकथन, संभाषण, बातचीत। उ०—फेरवियां रा फेत्कार, प्रेतां रा **आलाप**, राक्षसां रा रास, कुणपां रा कपाळां रा कटकटाहट।—वं.भा. २ सात स्वरों का साधन (संगीत) तान, रागविस्तार।

वि०—बोलने वाला। उ०—भवांनी नमौ सत्य **आलाप** वाला, भवांनी नमौ छंद विद्याविसाला।—मे.म.

आलापक–वि० [सं०] बातचीत करने वाला, गाने वाला।

आलापचारी–संस्त्री०—स्वरों के साधने या तान लगाने की क्रिया।

उ०—ताहरां सयणी ओली—'बीजाणंद' एक बार म्हांनूं आलापचारी सुणावो।—सयणी री बात

आलापणो, आलापबो–क्रि०स० [सं० आलापन] गाना, सुर खींचना, तान लगाना। उ०—आलापै राग गारडू अकबर, दै पैंतीस असट कुळ दाव।—महाराणा प्रतापसिंह रौ गीत

आलापियोड़ो–भू०का०कृ०—आलापा हुआ। (स्त्री० आलापियोड़ी)

आलापी–वि० [सं० आलापिन] गाने वाला, तान लगाने वाला।

आलामुसाब–सं०पु० [अ० आला+मुसाहब] १ राजा का प्रधान मंत्री या सहवासी. २ श्रेष्ठ दरबारी।

आळायोड़ो–वि०—हराया हुआ।

आळावणो, आळावबो–क्रि०स०—१ हराना. २ मिटाना।

आलावणो, आलावबो–[सं० आलापन] १ बोलना. २ ऊंट का मुंह हिलाना। उ०—तनै दाखवै जोगवाळी तरक्कां करै दांन आलावता कासळक्कां। जमै गगळा घोघ दोनूं जवाड़ै, कवी जांणि झागड़ लूंगी कराड़ै।—रा.रू.

आलावरत–सं०पु० [सं० आद्रावर्त] पंखा, पंखी।

आलावियोड़ो–वि०—बोला हुआ। (स्त्री० आलावियोड़ी)

आलिंग–सं०पु०—स्पर्श करना या छूने का भाव। उ०—सायर अकळ अथाउ लहिरे गाडरंति गयण आलिंग, ता किम गम्म तळाउ।—रांमरासौ

क्रि०वि०—अलग, प्रवास में। उ०—प्रिय तिण रुति आलिंग रहां ताह सुं किसउ सवाद।—ढो.मा.

आलिंगण, आलिंगन–सं०पु० [सं०] गले से लगाना, परिरंभण, सप्रीति परस्पर मिलन, अंग लगाने की क्रिया। उ०—ढोलउ मिळियउ मारवी, दे आलिंगण चित्त। कर ग्रह आंणी अंक मइ, सेज सुणेमी बत्त।—ढो.मा.

आलिंगणो, आलिंगबो–क्रि०स०—आलिंगन करना, भेंटना, लिपटना।

आलिंगित–वि० [सं०] हृदय से लगाया हुआ।

आलिंगी–वि०—आलिंगन करने वाला।

आलि–सं०स्त्री०—१ सखी, सहेली। उ०—देखि सुरंगी डाळि, जांणूं जाइ विलगूं 'जसा'। आस करूं हूं आलि, करम विना मिळबो कठै।—जसराज. २ विच्छू. ३ भ्रमरी. ४ पंक्ति, अवली, रेखा। उ०—भुजाळि आलि भोलितें वहै विभा वनै।—ऊ.का. ५ सेतु।

आळि–सं०स्त्री०—खेल। उ०—सीहणि हेको सीह जणि, छापरि मंडै आळि।—हा.झा.

आलिगणो, आलिगबो–क्रि०अ०—मन लगना। उ०—मोहि न मंदिर आलिगइ, जाइ उडीसइ तइ रायस्युं बोल।—वी.दे.

आलिम–वि० [अ०] विद्वान, पंडित। उ०—मालुम मुलायजै करहु माफ, आलिम हैं आलमगीर आप।—ऊ.का.

आळियो–सं०पु०—१ छोटा ताका, छोटा आला. २ चंद्रमूर।

आली–सं०स्त्री० [सं० आलि] १ सखी, सहेली। उ०—कौन जतन करां मोरी आली, चंदन लाऊं घंसिके।—मीरां. २ देखो 'आलि'

वि० [सं० आर्द्र] भीगी हुई, गीली। देखो 'आलो' (पु०)

[अ०] १ बड़ा, उच्च. २ श्रेष्ठ, उत्तम।

आलीगारो–वि०—छैल, शौकीन। उ०—राजांन आलीजां आलीगारां नाह उला अलबेलिआं रा पदमणिआं रा रमण मांणै छै।—रा.सा.सं.

आलीजापणो–सं०पु०—कोमलता, सुकुमारता। (रू०भे० आलीजापण)

आलीजो–वि०—अलबेला, शौकीन, रसिक।

सं०पु०—प्यारा, पति, प्रेमी, प्रियतम। उ०—कांई ऐ करूं थांरै तेल नै म्हांरै आलीजे बिना किसो खेल।—लो.गी.

आलीजोभंवर–वि०—१ शौकीन, रसिक, मस्त। उ०—रजपूत वट रा साभावां कछिया कंवर, मदछकिया अलबेलिया आलीजाभंवर।—र. हमीर

२ कृपालु, उदार। उ०—जलाल बडो आलीजोभंवर बादसाह थो।—जलाल बूबना रीं बात

आलीणो–वि० [सं० आलीन] लीन, तन्मय, अनुरक्त, मग्न।

उ०—आलीणो हरनाम जांण अजांण जपै जो जीहा। मासतर बेद पुरांण सरब महीं तत्-अक्खर सारम्।—ह.र.

आळीमाट–वि०—व्यर्थ, निरर्थक।

आळीयोड़ो–वि०—आलस्य किया हुआ। (स्त्री० आळीयोड़ी)

आलीसांन–वि० [अ० आलीशान] १ भव्य, भड़कीला, शानदार. २ उच्च, श्रेष्ठ, उत्तम. ३ विशाल।

आलीढ़–सं०पु०—बांये पैर को पीछे करके और दाहिने को सामने टेक कर बैठने का बांण छोड़ने के समय का आसन।

वि०—अशित, भुक्त।

आलुक–सं०पु०—१ सर्प, शेषनाग। उ०—धड़कै उर कातर सोर धुखै, मच हक्क किलक्क अनेक मुखै। अतरै कमंधां दळ बाग उठी, छित काळ की आलुक ज्वाळ छुटी।—रा.रू. २ छेड़-छाड़. ३ भोगी।

आलूंधणो, आलूंधबो–क्रि०स०—उलझना। उ०—जासूं कहिये जाय, कहियें सैं कांनी थया, आलूंध्या उर मांय, मावै नाहीं मेहुउत।—जेठवा

आलू–सं०पु०—एक प्रकार का गोल कंद या मूल जो तरकारी आदि के काम में आता है और खाया जाता है।

आळूजणो, आळूजबो–क्रि०अ०—उलझना।

आळूजीजणो, आळूजीजबो–क्रि०अ०—उलझाया जाना।

आळूझ–सं०स्त्री० [सं० अवरुन्धन] १ अटकाव, फंसाव. २ गिरह, गांठ. ३ बाधा, पेंच. ४ फेर, चक्कर. ५ समस्या, उलझन. व्यग्रता, चिंता।

आळूझणो, आळूझबो–क्रि०अ०—१ उलझना, फंसना, अटकना।

उ०—जिकै आज जीवसी तिकां वा घड़ी दुहेली। आतम दम आळूझि पड़ै जम हत्थ अकेली।—रा.रू. २ लपेट में पड़ना, लिपटना ४ काम में लीन होना. ५ तकरार करना, लड़ना, रुकना।

आळूझियोड़ौ–भू०का०कृ० [सं० आरुद्ध] उलझा हुआ।
(स्त्री० आळूझियोड़ी)

आळूझीजणौ, आळूझीजबौ–क्रि०प्र०—उलझा जाना।
आळूझीजियोड़ौ—भू०का०कृ०।

आळूब, आळूबौ–वि०—बना-ठना, सजा हुआ। उ०—संभळत धवळ सर साहुळि संभळि। आळूबा ठाकुर अलल।—वेलि.

आळूधणौ, आळूधबौ–क्रि०प्र०—उलझना, फँसना। उ०—पहु गोधलिया पास, आळूधा अकबर तणी। रांणौ खिमै न रास, प्रघळी सांड प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ
आळूधणहार, हारौ (हारी), आळूधणियौ–वि०—उलझने वाला।
आळूधिओड़ौ, आळूधियोड़ौ, आळूध्योड़ौ—भू०का०कृ०

आळूधियोड़ौ–भू०का०कृ०—उलझा हुआ। (स्त्री० आळूझियोड़ी)

आलूबुखारा–सं०पु०—आलूब नामक एक वृक्ष का फल जो सुखाया जाता है और कुछ खटमिठा सा होता है।

आले–क्रि०वि० [सं० अद्य+कल] आजकल।
वि० [अ० अव्वल] १ बढ़िया, श्रेष्ठ. २ प्रथम।

आलेख–सं०पु० [सं०] १ लिखावट, लिपि. [सं० अलक्ष्य)
२ दशनमी संन्यासियों की भिक्षा मांगते समय की जाने वाली आवाज. ३ ईश्वर। उ०—आधपति धारियौ आलेख वद दूजै 'अजै' 'अभै' राज करै करी तारियौ आंबेर।—हुकमीचंद खिड़ियौ

आलेड़ौ–सं०पु० [सं० आर्द्रता] गीलापन, तरी, नमी।

आलेप–सं०पु०—१ मलहम, लेप. २ लेप करने का पदार्थ।

आळेमाट, आळेयमाट–वि०—व्यर्थ, निरर्थक। उ०—थाया संपत थाट, भंवर कंवर सुख भोगवै। म्हैं की आळेमाट, करतब री गूंजी 'करण'।
—लक्ष्मीदान

आळै–सं०पु०—१ उत्सर्ग. २ दान।
क्रि०वि०—पास। उ०—दातारां भूझारां रा नांम छै तिणसूं चारण-भाट देस देस रा रूपक लै आळै आवै।
—अखड़ा मुखड़ा भाटी री बात

आळैनाहर–सं०पु० [सं० आलय+नाहरि] सिंह की मांद।
उ०—किलमवाळै काय, के चाळै लागो कंवर। आळैनाहर आय, भाळै फेर न भारथा।—ला.रा.

आलोअण–सं०स्त्री० [सं० आलोचना] देखो 'आलोपण'। (जैन)

आलोक–सं०पु० [सं०] प्रकाश, चाँदनी, उजाला, चमक, ज्योति, द्युति, कांति, दीप्ति।

आलोकन–सं०पु०—दर्शन, अवलोकन।

आलोकभोमका–सं०स्त्री०यौ०—अलौकिक भूमि, लोकोत्तर।
उ०—आपरी जिनावरां जिसी' जूण नै भुला'र किणी बीजा–आलोक-भोमका में विचरतौ।—वरसगांठ

आळोच, आलोच–सं०पु० [सं० आलोच] १ सोच, चिंता।
उ०—जिनूं करबा तणी सोच न कियौ जितौ, इंद्र भरबा तणौ कियौ आलोच।—महारांणा राजसिंह री गीत. २ सोच-विचार, चिंतन, मनन। उ०—कियौ आपसूं आप आलोच कांनै, रमै साप सेघाउ सूधौ न मांनै।—ना.द. ३ मंत्रणा, सलाह.
उ०—चाचिगदे मनि पड़ियौ सोच, सोढ़ी साथि करइ आलोच।
जउ जांणीस्यइ पिंगळराय, दीठइ कटकि छांडि किम जाय।
—ढो.मा.
५ हाल, वृत्तांत। उ०—अनेकां पहां पेलवा दूत आवै, वधै सोच आलोच ऐसी बतावै।—रा.रू. ६ विवेचन, गुण-दोष का विचार.
७ गुप्त रहस्य, दर्शन. [सं० अरोच] ८ उद्विग्नता।
उ०—चारण वरण निसोच, तौ पाछै रह छै 'पता'। आवै मन आलोच, भूलां किम भीमेण रा।—अंबादांन रतनू
[सं० आलुंचन] ८ खेतों में गिरा हुआ अन्न बीनना।

आलोचक–वि०—१ देखने वाला. २ आलोचना करने वाला।

आलोचण–सं०पु०—१ आलोचन, दर्शन. २ गुण-दोष विवेचन।

आलोचणौ, आलोचबौ–क्रि०स०—१ आलोचना करना. २ समझना।
उ०—सठ गनका री बात सुण, आलोचे नह एम। चाहू घणां चरणां चढ़ी, काठां चढ़सी केम।—बां.दा. ३ विचार करना।
उ०—वदनारविंद गोविंद वीखियै, आलोचै आपोआप सूं।
—वेलि.
आलोचणहार, हारौ (हारी), आलोचणियौ–वि०—आलोचना करने वाला।
आलोचिओड़ौ, आलोचियोड़ौ, आलोच्योड़ौ—भू०का०कृ०।

आलोचना–सं०स्त्री० [सं०] किसी वस्तु के गुण-दोषों का निरूपण।

आलोचियोड़ौ–भू०का०कृ०—आलोचना किया हुआ, आलोचित।
(स्त्री० आलोचियोड़ी)

आलोज–सं०स्त्री० [सं० आलाप] १ बातचीत। (द.दा.)
२ देखो 'आलोज'।

आलोज, आलोझ–सं०पु०—१ संकल्प, प्रण, प्रतिज्ञा। उ०—डाकर डोर न आडाडंबर, चित चातुरी न बीजौ चोज। रिमदळ सबळ भांजिया रावळ, प्रण-भाजवा तणौ आलोज।—मालौ सांदू
२ मन के भाव। उ०—मुख करि किसूं कहीजै माहव, अंतरजांमी सूं आलोज।—वेलि. ३ विचार। उ०—आधा कोस अंतरै कटक आपणौ चलावां। न कौ रहा प्रण सोज, न कूं आलोज उपावां।
—रा.रू.
क्रि०वि०—विचार करना। उ०—हितू जांण सुविहांण, खांन इत-काद आद अत। कियौ विदा आलोझ, सोझ सुख वात घात चित।
—रा.रू.

आलोजणौ, आलोजबौ, आलोझणौ, आलोझबौ–क्रि०स०—विचार करना, सोचना। उ०—१ पदमण महल पौढ़तां पहत्री, ऐरापत देते इक आग। इळपत रासै चित आलोझै, नग नग पैड़ी दीना नाग।—द.दा.
उ०—२ रांणी श्री जसराज री, कमंध निवाहण कज्ज, अत सोचै आलोजतां, बारै मात वरज्ज।—रा.रू.

उ०—३ निस प्रथम जांम आलोझ नर, वारण 'सोनगिर' 'दुरस'। कर वाच वाद अकबर कुसळ, बीद हरै सझिया विहंग।—रा.रू.

आळो-दीवाली–सं०पु०यौ०—ताक।

आलोप–सं०पु० [सं० अलोप] अलोप, गुप्त, अदृश्य, गायब।

आळौ-भोळौ–वि०—नासमझ, मूर्ख। उ०—आळा-भोळा लोग, रोग सूं प्रणभिग भारी। सिरसिरवारी वैर, खेर पनड़ी खै खारी।—दसदेव

आलो-मलां–क्रि०वि०—चारों ओर। उ०—मरद घमसांण पुह लिये आलो-मालां। वढ़ण कज वाढ़ झेरीजीये वीजळां।

—रावत सारंगदेव रो गीत

आलोयण–सं स्त्री० [सं० आलोचना] १ आलोचना (जैन) २ देखना या बतलाना क्रिया का भाव (जैन)।

आळो-रींटौ–सं०पु०—बिना पकी छोटी ककड़ी।

आलोळ–वि०—चपल, चंचल, अस्थिर।

आळौ–सं०पु० [सं० आलय] १ ताक, आला। उ०—लेनै भीतर महल पधारिया नै वसत रूपै री डबी घाल ढोलियै रै पगांतिये आळौ थौ तें मांही कळ थी तिकै कळ मांही राखी।—पलक दरियाव री बात. २ घोंसला (क्षेत्रिय) उ०—लास, फोग'र, घिंटाळ ऊँटां, कातीसरी हर मासरौ से, सेळां, धुरी धरस्याळां आळां पंखघां आसरौ।

—दसदेव

वि०—[रा०] ३ अपरिपक्व फल। (स्त्री० आळी)

कहा०—१ आळी चांमड़ी आक पावै—बहुत अधिक कष्ट देना।

वि०—बिना शुद्ध किया हुआ (पशुओं का) चमड़ा।

उ०—देव कुळज नमि ऐ बचन, बदि आळा खालड़ ओढ़िया।

—ऊ.का.

अव्यय [सं० आलु] का।

प्रत्यय—राजस्थानी भाषा में क्रिया के अंत में लग कर कर्त्तृ-वाचक संज्ञा का अर्थ और पदार्थ या वस्तुवाचक के अंत में संयुक्त होकर संबंधवाचक संज्ञा का अर्थ देता है जैसे करणाळौ-दूधाळौ। (रू०भे० वाळौ)

आलौ–वि० [सं० आर्द्र] १ गीला, आर्द्र। (स्त्री० आली)

मुहा०—आलै धोरै चालणौ—साधारण कमाई होना।

कहा०—१ आलौ सूखौ भेळा ही बळै—गीला और सूखा काठ साथ ही जलते हैं; सबके साथ एक सा व्यवहार होता है; सबको स्थान मिलता है. २ कैर आलौ भी बळै सासू सीधी ई लड़ै—जिस प्रकार कैर के वृक्ष की लकड़ी जलाने में शीघ्र आग पकड़ लेती है, चाहे वह सूखी हो चाहे गीली, उसी प्रकार सास हमेशा बहू से लड़ती रहती है, चाहे वह सीधी हो या बुरी।

(विलोम—सूखो) [अ० आला] २ सबसे बढ़िया, अद्वितीय.

३ एक प्रकार का कीड़ा जिसे मवेशी खाते ही बेहोश हो जाता है।

४ आलस्य. ५ ताजा। उ०—दमांमी आणंद रै घाव था सो आला था, फूहा दीजता।—पदमसिंह री बात

आल्यंगन–सं०पु० [सं० आलिंगन] आलिंगन। उ०—सेज पहुंती राव की, देही आल्यंगन वीसळराय।—वी.दे.

आल्हा–सं०पु०—पृथ्वीराज चौहान के समय का मोहबे का एक प्रसिद्ध वीर पुरुष।

आवंण–सं०पु०—गाड़ी के चक्र के मध्य में लगाया जाने वाला लोह का उपकरण जिसमें गाड़ी की धुरी या अक्ष रहता है।

[सं० आमिक्षण] दूध जमाते समय दूध में डाला जाने वाला छाछादि अम्ल पदार्थ।

आवंतइ–वि०—आगामी, भावी। उ०—चंदा तौ किण खंडियउ, मौ खंडी किरतार। पूनिम पूरउ ऊगसी, आवंतइ अवतार।—ढो.मा.

आवंद–सं०स्त्री०—आय, आमदनी।

आव–सं०पु० [सं० अवरक्षादिषु घञ्=आव] १ उत्साह। उ०—रांण चढ़ै कस रोपरिण, येम धरै उर आव। सग वरण करणूं सुजस, हैं मरणौ हीसाब।—र.रू. २ आवभगत, अतिथिसत्कार।

उ०—आव नहीं आदर नहीं, नहीं नैणां में नेह, जिण घर कबहु न जाइये, कंचन बरसै मेह।—अज्ञात [सं० आयु] ३ आयु, उम्र। उ०—जीव दया पाळी जकां, उजवाळी निज आव। बनमाळी कीधौ बळू, पड़ी सुराळी पाव।—बां.दा. [सं० आय] ४ आय, आमदनी।

आव-आदर–सं०पु०यौ०—आवभगत, आदरसत्कार।

आयकार–सं०स्त्री०—एक प्रकार का सरकारी लगान. २ सत्कार, सन्मान।

आवकौ–वि०—देखो 'आवखौ'।

आवखांम–सं०पु०—गाय या बैल का बिना साफ किया हुआ पूरा चमड़ा (रा.रा.)

आवखो, आवखौ–वि०—१ वह पशु जो बधिया न किया गया हो. २ पूरा।

सं०पु० [सं० आयुष्य] आयु, उम्र। उ०—जोबन में मर जावणौ, दळ खळ साजै दाप। एह उचित बोह आवखो, सिंहां वडो सराप।

—बां.दा.

आवगमण–सं०पु० [सं० आवा+गमन] १ आना-जाना, आमदरफ्त. २ बार-बार जन्म लेना और मरना।

आवगो, आवगौ–वि०—पूरा, पूर्ण, संपूर्ण। उ०—किण दिन देखूं बाटड़ी, आतां पड़वै तूझ। घाव भरंतां आवगौ, बीत्यौ जोबन मूझ।

—वी.स.

सं०पु०—आयु, उम्र। उ०—एकर मंम ऊपरै आयो, सोह आवगो डूंगरां साथ।—दुरसौ आढ़ौ. (स्त्री०—आवगी)

आवड़–सं०स्त्री०—एक देवी विशेष।

[वि०वि०—आठवीं शताब्दी में काठियावाड़ के वल्लभीपुर नगर में साउवा शाखा के चारण मामड़ के यहां इनका जन्म हुआ था। ये सात बहिनें थीं जो सब देवियां मानी जाती हैं। इन्होंने आजीवन

कौमार व्रत धारण किया था। तत्कालीन सिंध के राजा ऊमर ने इनकी सुंदरता पर मोहित होकर इनसे विवाह करने का हठ किया किन्तु इन्होंने अपने चमत्कार व कौशल से उसे मार कर वहां भाटी वंश के क्षत्रियों का राज्य स्थापित कर दिया। अतः ये भाटी वंश की कुलदेवी मानी जाती हैं। इनके विषय में अनेकों किंवदंतियां व चमत्कार प्रसिद्ध हैं।]

पर्याय०—आई, चाळगनेची, डूंगरेची, तेमड़ाराय, भादरेची, मांमड़ियाई, सांगियाजी (सांगियाई)

आवड़णौ, आवड़बौ—क्रि०स० [सं० आपटन] १ मन लगना, सुहाना।

उ०— तौ विन घड़िय न **आवड़ै** रे छैला, जीव उतै इत देह।
—लो.गी.

[सं० आपतन] २ युद्ध करना। उ०—१ धर कारण बेहु **आवड़ै** छत्रधर, पाछट खग दाखवियौ पांण।—अज्ञात

उ०—२ ऊजेण खेत घड़ा बेहूं **आवड़ै**, नाळ नीहाव गाज नीसांण। सूर हणै माथै सायजादां, राजा उलटियौ महरांण।—महेसदास आढ़ौ

आवड़दा—सं०स्त्री० [सं० आयुष्य] आयु, उम्र। उ०—भूरी सूभर भर भावड़दा भांगी, मोटी झोटी री **आवड़दा** मांगी।—ऊ.का.

आवड़ा—सं०स्त्री०—देखो 'आवड़'।

आवड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ मन लगा हुआ, सुहाया हुआ.
२ युद्ध किया हुआ। (स्त्री० आवड़ियोड़ी)

आवड़ी—सं०स्त्री० [सं० आवृति] १ खेत का उतना भाग जितना एक हल से एक दिन में जोता जा सके. २ खेत की कल्पित लम्बाई का नाप जो लगभग १२५ बीघा होता है. ३ उम्र, आयु।

आवड़ौ—वि०पु०—भयंकर। उ०—आज रौ मांन दस गुणौ **आवड़ौ** बियौ विजपाल बायां थकां बावड़ौ।—महाराजा मांनसिंह रौ गीत

आवट—सं०पु० [सं० आवर्त] १ नाश, संहार। उ०—असमर गहै कलम किय **आवट**, बढ़तं घड़ा कंवारी बंद।—महारांणा सांगा रौ गीत

सं०स्त्री० [सं० आवर्त] २ इच्छा, चाह। उ०—प्राव्रट प्राव्रट री **आवट** मन मारै, थर नै पापां रा थर लेग्या लारै।—ऊ.का.

३ सेना. ४ युद्ध। उ०—धमाधम **आवट** कुढ़ंगां रीठ, रुकां पड़ सायक सेलां रीठ।— गो. रू.

आवटकूट, आवटकूटौ—सं०पु०यौ०—१ संहार, नाश। उ०— तस दीठा कमधज तणा, प्रसणां न दीठी पूठ। काछेलां वत कारणै, कीन्हौ **आवट कूट**।—पा.प्र. २ युद्ध।

आवटणौ, आवटबौ—क्रि०अ० [सं० आवर्त्त, पा० आवट्ट] १ गर्म होना, उबालना, औटा जाकर मात्रा में घट जाना। उ०—सांम उबेलै सांकड़ै, रजपूतां आरीत। जब लग पांणी **आवटै**, तब लग दूध नचीत।
—प्राचीन

(मि० आवट्टणौ) २ जलना, कुढ़ना, क्रोध करना। उ०—सु मेरै मुंहडै तौ क्यूं फेर कहै नहीं पिण मन मांहे **आवटै**।—नैणसी

३ जलना, भस्म होना। उ०—जिकै हाडां रा सस्त्र रूप अग्नि में अचांणक ही **आवटिया**।—वं.भा. ४ युद्ध में मरना या मारना, नष्ट होना. ५ समाप्त होना, खतम होना। उ०—१ इन्द्र चवदै **आवटै** दिन एकण मांई।— केसोदास गाडण

उ०—२ दिवस केतला रहिज्यौ मांडि, भांजी मन **आवस्यु** छांडि। असी सहस तुरक **आवटया**, त्रीस सहस हींदू दळि घटया।
—कां.दे.प्र.

उ०—३ सैदां मुंडां मंडै सेफळी, झेलीजै दीजै खग झोड़ै। आंमांसांमां कटै **आवटै**, रोद घटै न मिटै राठौड़।
—दुरगादास राठौड़ रौ गीत

आवटणहार, हारौ (हारी), आवटणियौ—वि०।

आवटिओड़ो, आवटियोड़ो, आवटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

आवटीजणौ, आवटीजबौ—क्रि०भाव वा०(रू०भे० आवट्टणौ)

आवटना—सं०पु० [सं० आवर्त्त, पा० आवट्ट] १ हलचल, उथल-पुथल. २ डांवाडोलपन, अस्थिरता।

आवटियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ उबला हुआ. २ कुपित. ३ युद्ध में नष्ट हुआ हुआ।

आवट्ट—सं०पु०—युद्ध। उ०—हुवै **आवट्ट** खपै खळ खट्ट।—रा.ज. रासौ

आवट्टणौ, आवट्टबौ—क्रि०अ०—१ औटना, उबलना। उ०—नदी कूप नद सूकि, कूक कातर उर फट्टिय। **आवट्टिय** जळ जोर, सोर दुहूं ओर उपट्टिय।— ला.रा.

२ देखो 'आवटणौ' (२, ३)

आवड़—सं०स्त्री०— खेत का उतना भाग जितना एक हल से एक दिन में जोता जा सके। उ०— झूसर धायां गळ **आवड़** कढ़ झांखै। नम नम सावढ़ नै नायां कण नांखै।—ऊ.का.

आवणू—वि०—आने वाला।

आवणौ, आवबौ—क्रि०अ०—देखो 'आणौ' (रू.भे.)

आवणहार, हारौ (हारी), आवणियौ—वि०—आने वाला।

आवद—सं०पु०—देखो 'आवद्ध'।

आवदा—सं०स्त्री०—आयु, उम्र (सा.ह्रा.)

आवद्ध—सं०पु० [सं० आयुद्ध] आयुध, हथियार, अस्त्र-शस्त्र। उ०- वाहद खड़ग वेसै विरत्त, रिणठाह रत्त **आवद्ध** रत्त।—रा.ज.सी.

आवद्ध-नख—सं०पु० [सं० नखायुद्ध] सिंह, शेर (ना.डिं.को.)

आवद्धि—सं०पु० [सं० आयुद्ध] आयुद्ध, अस्त्रशस्त्र, हथियार। उ०—**आवद्धि** टोपि ऊभरी अग्गि, खींटिया थाट बेवै खड़ग्गि।—रा.ज.सी

आवध—सं०पु० [सं० आयुध] १ आयुध, हथियार, अस्त्र-शस्त्र। उ०—जाय जोगण बंद जाजा, प्रजुण वन्ही करे प्राजा। वहण **आवध** होम वाजा, रुपी दराजा रोस।—र.रू. २ लिङ्ग, उपस्थ।

सं०स्त्री०—आय, आमदनी। उ०—क्यूं ज्यांसूं समवड़ करौ, दांन समापण दांम। दी धर **आवध** छोड़दत, जिण धर उनड़ जांम।
—बां.दा

आवधपांण—सं०पु० [सं० आयुद्धपाणि] गणेश (क.कु.बो.)

आवधमांजण-सं०पु०—सिकलीगर (डिं.को.)

आवधी-वि०—शस्त्र रखने वाला।

आवधीक-सं०पु०—अस्त्र-शस्त्रधारी। उ०—एक रंगी अथी नैण सेत तसां **आवधीक** सारा देवां सरै नूर सपूर सुभेद।
—माधोसिंह सीसोदिया रो गीत

वि०—योद्धा, वीर। उ०—लोहलाट लीधां भड़ां सनूर घयागां लागां। बजैकारी **आवधीक** पूरा जंगां बोभ।—रांमकरण महडू

आवभगत, आवभाव-सं०स्त्री०—आदर-सत्कार।

आवबळ-सं०पु०—आयुबल, आयु।

आवर-सर्व० [सं० अपर] अन्य, दूसरा। उ०—सुज सिंघ सही सुज सिंघ सत एह न आरख **आवरां**।—मालो आसियो

आवरण-सं०पु० [सं०] १ आच्छादन, ढकना. २ किसी वस्तु पर ऊपर से लपेटा हुआ वस्त्र. ३ परदा. ४ ढाल. ५ दीवार आदि का घेरा. ६ चलाये हुए अस्त्र-शस्त्र को निष्फल करने वाला. ७ अज्ञान।

आवरणसक्ति, आवरणसगती-सं०स्त्री० [सं० आवरण+शक्ति] आत्मा या चैतन्य की दृष्टि पर परदा डालने वाली शक्ति (वेदांत)

आवरत-सं०पु० [सं० आवर्त] १ पानी का भंवर. २ चक्र, फेर, घुमाव। उ०—**आवरत** जुद्ध परखै अमर, हरखै रिख नारद्द हर।—रा.रू. ३ न बरसने वाला बादल. ४ एक प्रकार का रत्न, राजावर्त, लाजवर्द. ५ सोचविचार, चिंता. ६ प्रलयकाल। उ०—**आवरत** मेघ सम ग्रोवड़ै, घड़ी पंच वग्गी खड़ग। सिरदार इता भिड़िया समर, नीवड़िया जिम घाय नग।—रा.रू. [रा०] ७ संसार. ८ हस्ती, गज (ना.डिं.को.) ९ झुंड, समूह, सेना, फौज। उ०—अणियां धार अनेक **आवरत**, पाड़े मूंठज पांण गया। खड़ग पखांण खेड़तै 'खेता', थाट रवद रण लोट थया।—महारांणा खेता रौ गीत
१० समुद्र, सागर। उ०—लोहां लोड़ बोड़दळ लागा, सुर **आवरत** संभ्रमिया सार। काळ थाट तणै कलमायण, काळै वार अहार किया।—महेसदास आढ़ौ

आवरतक-सं०पु०—आवर्तक। उ०—पुस्कर **आवरतक** मेघां रौ वंस निभावै। धीरे मन रा भेख राज रौ दूत कहावै।—मेघ

आवरती-सं०स्त्री० [सं० आवृत्ति] १ बार-बार किसी बात का अभ्यास. २ पाठ करना, पढ़ना।

क्रि०प्र०—करणी-होणी

आवरस-सं०पु०—१ आवेष्टन, घेरा। उ०—मोटा मुग्गुल्ल महोनमत्त, अमिळित दियइ अरि **आवरस**।—रा.ज.सी. २ देखो 'आवरत'।

आवरथ-सं०पु०—२ देखो 'आवरत'।

आवरदा-सं०स्त्री० [सं० आयु] उम्र, आयु। उ०—आहेड़ै जमरांण डांगा मंडै दीहाड़ी। सर क्रम बंध संधिया चाप **आवरदा** चाढ़ी।
—जग्गो खिड़ियौ

आवरित-वि० [सं० आवृत्त] १ देखो 'आव्रत'।
२ मूर्तिमान।

आवरो, आवरौ-सं०पु० [सं० आय+द्वार] आय, आमदनी।

आवल-सं०स्त्री०—१ छोटा टहनीदार एक प्रकार का क्षुप जिसका प्रयोग प्रायः चमड़े को रंगने में या औषधियों में किया जाता है। [रा० आ+सं० बल] २ शक्ति, बल, पुरुषार्थ।

आवळभूल-वि०—शृंगार और आभूषणों से सुसज्जित।
उ०—सह आभरणां सोभही, **आवळभूल** तियांह। जांणै फूलां भार जुत, हाटक बेलड़ियांह।—बां.दा.

आवळणो, आवळबो-क्रि०स०—बट देना, बल देना, ताव देना।
उ०—इम बोलै मूंछां **आवळतौ**। 'बळवंत' चख झळती मजबूत।
—महाराज बळवंतसिंह रौ गीत

आवळियौ-वि०—अभिमान या गर्वरहित। उ०—थित पुगइ राज तणी थळियां। उणनूं कर पायक **आवळियां**।—पा.प्र.

आवळी-वि०—भयंकर। (यौ० आवळीघड़ा)
उ०—हतां हावळी समंद खळां **आवळी** चमू वहंड।
—मेघराज बारहठ

सं०स्त्री०—१ एक पारी (Trip). २ अभिलाषा. ३ आयु। [सं० अवलि] ४ पंक्ति, श्रेणी। उ०—उकतां सुकवि बोलै ऊंच बिरदां **आवळी**। राजस भड़ां गहमह रूंस पूरण नित रळी।
—बां.दा.

५ वह विधि जिसके द्वारा बिस्वे की उपज का अनुमान होता है।

आवळीघड़ा-सं०स्त्री०—सुसज्जित सेना, बिना युद्ध, विकट सेना।
उ०—साह री **आवळीघड़ा** सर सावळां, झीक पड़ कावळी रोप झंडां। अर गजां खून काटै बिना **आवळी**, खुलै वांसावळी तेण खंडां।—अज्ञात

आवळो-वि०—१ टेढ़ा. २ दृढ़। उ०—अइयौ विरोळै खळां गनीमां दूसरा 'अजा' **आवळा** हिलोळै दळां आसमांन।
—हुकमीचंद खिड़ियौ

सं०पु०—योद्धा।

आवस-क्रि०वि० [सं० अवश्य] अवश्य, जरूर। उ०—जळण मांही जाळूंह, अमपति वेली दही आ। **आवस** उजवाळूंह, पंड होमे चारू पखां।
—पा.प्र.

[सं० आवास] आवास, मकान। उ०—तस हूंता ताळीह, दे 'पेमां' सबसौ दई। **आवस** उताळीह, हव सिध 'झरड़ौ' हालियौ।—पा.प्र.

आवस्यक-वि० [सं० आवश्यक] आवश्यक, जरूरी, सापेक्ष (वं.भा.)

आवस्यकता-सं०स्त्री० [सं० आवश्यकता] जरूरत, प्रयोजन, मतलब।

आवह-सं०पु० [सं० आहव] युद्ध। उ०—मह कहर **आवह** माचियौ, खूंदाळ खित रवि खांचियौ।—र.रू.

आवा-सं०पु० [सं० आपाक] कुम्हारों के मिट्टी के बर्तन आदि पकाने का गड्ढा, भट्टी।

आवागम-सं०पु० [सं० आवा+गमन] आवागमन। उ०—क्रम तीजै क्रम्मतां जाइ अकरम्म अळग्गा, चौथे क्रम चालतां भुवण **आवागम** भग्गा।—जग्गो खिड़ियौ

आवागमण, आवागवण, आवागौन–सं०पु० [सं० आवागमन] १ आना-जाना, आमदरफ्त. २ बार-बार जन्म लेना और मरना ।

आवाचि, आवाची–सं०स्त्री०—दक्षिण दिशा (वं.भा.)

आवाज–सं०स्त्री०—१ शब्द, ध्वनि, नाद. २ बोली. ३ वाणी. ४ शोर ।

क्रि०प्र०—करणी, पड़णी, मारणी, होणी ।

आवाजणौ, आवाजबौ–क्रि०प्र०—आवाज करना । उ०—अराबां आरंभ सोन आसमांन **आवाजियौ** ।—हुकमीचंद खिड़ियौ

आवाजांण–सं०स्त्री०—आना-जाना, बार बार जन्म लेना और मरना । आवागमन । उ०—रता तौ नांम जकै रहमांण, जिकां नह थाये **आवाजांण** ।—ह.र.

आवाजि–सं०स्त्री० [फा० आवाज] देखो 'आवाज' (प्रा.प्र.—रू०भे०)

आवाजियोड़ौ–भू०का०कृ०—आवाज किया हुआ ।
(स्त्री० आवाजियोड़ी)

आवांन–सं०पु [सं० आव्हान] आव्हान । उ०—रखेसरां जळ रौ कुंभ १ भरने रखेसर इंद्र रौ **आवांन** जपने मन्त्र भणने कियौ ।
—रा.वं.वि.

आवारागरद–वि० [फा० आवारागर्द] निकम्मा, व्यर्थ में इधर-उधर घूमने वाला ।

आवारागरदी–सं०स्त्री० [फा० आवारागर्दी] व्यर्थ में इधर-उधर घूमना, शोहदापन ।

आवारौ–वि० [फा० आवारा] १ निकम्मा, व्यर्थ में इधर-उधर घूमने वाला. २ शोहदा, लुच्चा. ३ गुंडा ।

आवास, आवासि–सं०पु० [सं०] १ महल, घर, प्रासाद । उ०—हाटकमय **आवास**, जटित मांणिक मोताहळ । दर परदे जरदोज, सयन अतलस्सां मुखमल ।—ला.रा. २ आसमान, आकाश (डि.नां.मा.) ३ निवास, रहने का भाव । उ०—सिला तखत केसर चमर, अनड़ दरी **आवास** । प्रगट लियां म्रगराज पद, सादूळा स्याबास ।—बां.दा. [सं० आभास] ४ आभास, चमक । उ०—वरखा रितु लागी, विरहणी जागी, आभा झरहरै, बीजां **आवास** करै ।—रा.सा.सं. ५ चिन्ह, लक्षण । उ०—रिखीस्वर की ओपमा कुचां ने दी । सु ए **आवास** तें··· ।—वेलि. टी.

आवाह–सं०पु० [सं० आहव] युद्ध । उ०—अन मुड़तां जुड़तां **आवाहे**, सिरदारां मोहरे समसेर ।—गोकुळदास सक्तावत

आवाहण, आवाहन–सं०पु० [सं० आह्वान] १ आह्वान, बुलावा । उ०—धाया मन भूपत **आवाहण**, भुजंगे भजंग तजे बळ भंग ।
—महारांणा प्रतापसिंह रौ गीत

२ मंत्र द्वारा किसी देवता को बुलाने का कार्य । उ०—होम कराड़ि भणाड़ि विप्रां हद, जपि **आवाहन** सूर इसट जद ।—वचनिका

आवाहणौ, आवाहबौ–क्रि०स०—१ आह्वान करना. २ प्रहार करना । उ०—प्रळै होवै भड़ भिड़ज रिणताळ लेखा पखै, खत्रीपत भीम **आवाहते** खाग ।—चतरौ मोतीसर. ३ घोषणा करना ।

आवाहणहार, हारौ (हारी), आवाहणियौ–वि०—आह्वान करने वाला, प्रहार करने वाला ।

आविंढ़ा–वि०—टेढ़ा, बाँकुरा, वीर । उ०—आंवळा झूल रावत पड़ै **आविंढ़ा**, विढ़ा संग सांवळा सात वीसी ।—गिरवरदांन सांदू

आविद्धा–सं०पु०—तलवार को अपने चारों ओर घुमा कर विपक्षी का प्रहार रोकने का तलवार के बत्तीस हाथों के अंतर्गत एक हाथ ।

आवियोड़ौ–भू०का०कृ०—आया हुआ । (स्त्री० आवियोड़ी)

आविरभाव–सं०पु० [सं० आविर्भाव] प्रकाश, प्राकट्य, उत्पत्ति ।

आविरहोतर–सं०पु० [सं० आविर्होत्र] प्रसिद्ध नौ योगेश्वरों में से एक योगेश्वर का नाम ।

आविल–वि० [सं०] गंदा, गदला ।

आविस्कार–सं०पु० [सं० आविष्कार] प्राकट्य, किसी नई वस्तु को ईजाद करना ।

आविस्कारक–वि०—आविष्कार करने वाला ।

आविहोत्र–सं०पु० [सं० आविर्होत्र] प्रसिद्ध नौ योगेश्वरों में से एक योगेश्वर का नाम ।

आवेग–सं०पु० [सं०] १ जोश, मन की झोंक ।

क्रि०प्र०—आणौ, करणौ, होणौ ।

२ रस में एक प्रकार का संचारी भाव । उ०—**आवेग** हरखतां चपळ आस, तत सिमरण आळस मरण तास ।—क.कु.बो.

आवेदन–सं०पु० [सं०] निवेदन, प्रार्थना ।

आवेदनपत्र–सं०पु० [सं०] वह पत्र जिस पर लिख कर कुछ निवेदन किया जाय, प्रार्थना-पत्र ।

आवेरणौ, आवेरबौ–क्रि०स०—संभालना । उ०—अठ सं० १७३६ माराज पदमसिंघ जादमराय दखणी सूं झगड़ौ कर कांम आया तिण री खबर माराज नूं हुई तद उणरौ रसालौ सारौ **आवेरियौ** ।
—द.दा.

आवेस–सं०पु० [सं० आवेश] १ प्रवेश. २ चित्त की प्रेरणा, वेग, जोश. ३ भूत-प्रेतादि बाधा. ४ मृगी रोग. ५ अहंकार. ६ क्रोध ।

आव्रत, आव्रति–वि० [सं० आवृत्त] आवृत्त, छिपा हुआ, घिरा या लिपटा हुआ । उ०—ओखा मंडळ विमळ थळ, जळ **आव्रत** जगवंद ।
—रा.रू.

सं०स्त्री० [सं० आवृत्ति] १ बार-बार किसी वस्तु का आना । उ०—सरवग्य सेस **आव्रति** असेस, सब सक्तिमांन पूरन प्रधांन ।
—ऊ.का.

२ बार बार किसी बात का अभ्यास. ३ पढ़ना, पाठ करना ।

आसंका, आसंक्या–सं०स्त्री० [सं० आशंका] १ डर, भय, संदेह, शक । उ०—साहिब अधर धरया सब दूजा, मिळता जांण्यां नाही, हमकूं कहो पढ़ौ ममभावौ या **आसंक्या** मन मांही ।—ह.पु.वा.

२ अनिष्ट की भावना. ३ त्रास. ४ आतंक।

आसंग-सं०स्त्री० [सं०] १ साथ, संग, संसर्ग. २ लगाव, संबंध. ३ आसक्ति, अनुराग. [रा०] ४ हिम्मत, साहस।

उ०—अंगरेजां हूंता कर **आसंग**, अड़ियौ दळां अमामी। जुध री सूरज चांद जेतला, 'नाथू' राखण नामी।

—देवड़ा नाथूसिंह री गीत

५ सामर्थ्य। उ०—जरै सेखेजी कह्यौ, स्याबास जैसा भतीज, तो विना इसी **आसंग** कुण करै।—जैतसी ऊदावत री बात

६ बल, शक्ति, पराक्रम।

आसंगणौ, आसंगबौ-क्रि०स० [सं० आसंज+घञ्] १ साहस करना।

उ०—रांमदासजी नै किण ही **आसंग्या** नहीं।—रा.सा.सं.

२ मन लगना, दिल बहलना। उ०—सुणि करहा ढोलउ कहइ, साची आखै जोइ। अग्गर जेहा झूंपड़ा, तउ **आसंगै** मोइ।—ढो.मा.

३ स्वीकार करना (द.दा.) ४ अधिकार या वश में करना।

उ०—इण रीति रा रजोगुण रै प्रकास उण समय री हाडौ राव किण ही न **आसंगियौ**।—वं.भा.

आसंगरू-वि०—समर्थ, शक्तिशाली। उ०—कर मेर अकब्बर गाहूनूं, सेग जोम नेनै सरू। सुरतांण महण हलोळियौ, दुरगदास **आसंगरू**।

—रा.रू.

आसंगगिरी-सं०स्त्री०—साहस। उ०—किंहीं रै कांधै चढ़ै, किंहीं रा हाथ खेंचै, चपळता **आसंगगिरी** करबौ करै।—सूरे खींवे री बात

आसंगीर-वि०—आशावान, इच्छान्वित।

आसंगो, आसंगौ-सं०पु०—१ आशा। उ०—सजन वसंति दूरै चिति नेहेण हुंति **आसंगौ**।—ढो.मा. २ साहस, हिम्मत। उ० आडौ झगड़ो चालै **आसंगौ**, वोलण वरतण मिलण समंद।

—फतैसिंह बारहठ

२ बल, पुरुषार्थ। उ०—**आसंगो** धणी मूं करै ऊदावतां रह्या ज्यांनै करै गयी रोटी।—प्रतापसिंह ऊदावत री गीत

३ भरोसा। उ०—स्याबास मोटा सगां, भली किरपा करता. हूं तौ थांहरै **आसंगै** आयौ थी तींसूं इतरी अरज लिखी थी सौ भली पीठ राखी।—अमरसिंह राठौड़ री वात

आस-सं०स्त्री० [सं० आशा] आशा, उम्मीद, लालसा, कामना, भरोसा।

कहा०—१ आसा अमर है—आशा कभी नहीं मरती; आशा सदा बनी रहती है. २ आसा, जठै करै भगवांन वासा।

३ आसा जठै वासा—आशा में भगवान निवास करते हैं; आशा कभी नहीं मरती, सदा बनी रहती है. ४ आसा रैणी-गर्भ रहना. ५ आशा ही आसा में मिनख जीवै—आशा ही आशा में मनुष्य जीवे; मनुष्य को आशा सदा लगी रहती है; मनुष्य का जीवन आशा के ही आधार पर है. ६ खोळै मांयलै नै नांख नै पेट मांयलै री आस राखै—वर्तमान में जो प्राप्त है उसको छोड़ कर भविष्य की आशा करना।

क्रि०प्र०—करणी, राखणी, पूरणी, रैणी, होणी।

उ०—तज जग झूठी तास, आस राख राघव अठी। प्रभु मेटे भव पास, भजन किया सूं भैरिया।—राजा बळवंतसिंह

(रू०भे० आसा)

२ दिशा. ३ कांच।

[सं० आस्य] ४ मुंह, मुख (अ.मा.) [रा०] ५ कमजोर या दुर्बल गाय के बछड़े का प्रसव होने के पश्चात् का गर्भाशय का भाग जो बाहर निकल जाता है. ६ छाछ (मट्ठा) को बिना हिलाए कुछ देर पड़ी रखने पर उस पर ऊपर आने वाला पानी या पानी के समान द्रव्य पदार्थ जो छाछ से अलग सा मालूम पड़ता है.

७ वेग (अ.मा.) ८ लड़ाई, युद्ध (ह.नां.) ९ तांबा (अ.मा.)

१० एक राग विशेष। उ०—सरी सरी सपोसयं, सुताल मालकोसयं। मिठास आस मंजरी, सरी सरी सगुज्जरी।—रा.रू.

आसआस-सं०स्त्री० [सं० आश्रयाश] अग्नि (अ.मा.)

आसइलु-सं०पु०—धनुष।

आसउदर-सं०स्त्री०—अग्नि (अ.मा.)

आसकंद-सं०पु० [सं० अश्वगंधा] एक प्रकार की घास विशेष जो छोटे-छोटे क्षुपों में होता है जो औषधि में प्रयुक्त होता है।

आसक-सं०पु० [अ० आशिक] १ प्रेम करने वाला मनुष्य, अनुरक्त पुरुष, आसक्त। उ०—मेंनत मजदूरी मासक दुगमोला। विलखा विगताळू **आसक** अणबोला।—ऊ.का. २ पवन, वायु (अ.मा.)

आसकर-वि०—याचक। उ०—सागर भुज भूप **आसकर** संवर।

—क.कु.बो.

आसका-सं०स्त्री० [सं० आस्यका] १ विभूति. २ सिद्ध महात्माओं के धूनी की राख अथवा देवी-देवताओं व भगवान के सामने रक्खे गये धूपदान की राख।

आसकारियौ-वि०—आशा करने वाला। उ० बाकी तीनूं ही भाई मुनसबदार हुवा। कोई किंहीं भाई री चाकर **आसकारियौ** नहीं हुवौ।—पदमसिंह री वात

आसक्त-वि० [सं०] अनुरक्त, लीन लिप्त, मोहित, मुग्ध। (वं.भा.)

उ०—अर वार-वार सिराहि भोगां में **आसक्त** आळसी और अवनीसां रा आसय में सूतौ वीररस जगायौ।—वं.भा.

आसक्ति-सं०स्त्री० [सं०] अनुरक्ति, लगन, इश्क।

आसगंध-सं०पु०—अश्वगंधा (अमरत)

आसगीर-वि०—आशावान। (मि० आसागीर)

आसगिरी-सं०स्त्री०—आशा, उम्मीद।

वि०—आशा या उम्मीद करने वाला।

आसचरज-सं०पु० [सं० आश्चर्य] अपूर्व, विस्मय, अद्भुत, विचित्र, अलौकिक।

आसण, आसन-सं०पु०—१ घोड़े व ऊँट की पीठ का वह स्थान जहां सवारी करते हैं अथवा जीण या चारजामे पर बैठने के स्थान पर रखा

जाने वाला उपकरण। उ०—पड़्या कई आसण जीण उपेत। चढ़्या असवार पड़्या अणचेत।—मे.म. [सं० आसन] २ स्थिति, बैठक, बैठने की विधि. ३ बैठने की वस्तु, वह वस्तु जिस पर बैठा जाय, पीढ़ा. ४ योगियों के बैठने की ८४ विभिन्न विधियां या रीतियां—

१ अंगुस्ठासण. २ अरधपादासण. ३ अघ्वासण. ४ अरधकूरमासण. ५ अरधसवासण. ६ अपनासण. ७ आनन्दमंदिरासण. ८ उस्ट्रासण. ९ उरधवसंयुक्तासण. १० उत्थित विवेकासण. ११ उरधवधनुसासण. १२ उत्कटासण. १३ उपधानासण. १४ एकपाद ब्रक्षासण. १५ कुक्कुटासण. १६ कूरमासण. १७ कंदर्पीड़नासण. १८ कोकिलासण. १९ कारमुकासण. २० क्षेमासण. २१ खंजनासण. २२ गोरक्षासण. २३ गरुड़ासण. २४ ग्रन्थिभेदनासण. २५ गरभासण. २६ चक्रासण. २७ ज्येस्ठिकासण. २८ ताडासण. २९ त्रिस्तंभासण.

३० त्रिकोणासण. ३१ दक्षिणपादअपानगमनासण. ३२ दक्षिणवक्रासण. ३३ दक्षिणसाखासण. ३४ दक्षिणतरकासण. ३५ दक्षिणचतुरथासपादासण. ३६ दक्षिणपादसिरासण. ३७ दक्षिणजान्हासण. ३८ द्विपादपारस्वासण. ३९ द्रकासण. ४० धीरासण. ४१ धनुसासण. ४२ निस्वासण. ४३ पद्मासण. (i) बद्धपद्मासण (ii) अरधपद्मासण (iii) उरधपद्मासण (iv) वामारधपद्मासण. ४४ पवनमुक्तासण. ४५ पस्चिमतानासण. ४६ पूरणपादासण. ४७ पूरवतरकासण. ४८ प्रारथनासण. ४९ परवतासण. ५० प्राणासण. ५१ पवनासण. ५२ भुजंगासण. ५३ मंडूकासण. ५४ मयूरासण. ५५ मत्स्येंद्रासण. ५६ मत्स्यासण. ५७ योन्यासण. ५८ लोलासण. ५९ वांमहस्तचतुस्कोणासण. ६० वांमपादअपानगमनासण. ६१ वांमसाखासण. ६२ वांमजान्वासण. ६३ वांमवक्रासण. ६४ वांमअरधपादासण. ६५ वांमहस्तभयंकरासण. ६६ वांमभुजासण. ६७ वातायनासण. ६८ वांमदक्षिणस्वासगमनासण. ६९ वीरासण. ७० वांमदक्षिणपादासण. ७१ ब्रक्षासण. ७२ वांमसिद्धासण. ७३ सवासण. ७४ सिद्धासण. ७५ स्थिरासण. ७६ स्वस्तिकासण. ७७ स्थितविवेकासण. ७८ सिंहासण (व्याघ्रासण) ७९ सलभासण. ८० सरवांगासण. ८१ समानासण. ८२ हस्तभुजासण. ८३ हस्तब्रक्षासण. ८४ हंसासण। उ०—पलकां रै ऊपर पग धर आजी तौ हिवड़ा रै आसण आप विराजौ।—गी.रां.

५ कामशास्त्र के अंतर्गत सुरति (संभोग) की विविध रीतियां. ६ योग के अष्टांग योग का तीसरा अंग। उ०—अर जम नियम आसण प्राणांयाम प्रत्याहार धारणा ध्यांन सातूं ही अंगां रौ जय करि अस्टम अंग समाहित भाव में निस्चळ होय आपही निरुपाधिक ध्येय रौ रूप धार लीधौ।—वं.भा. ७ निवास, डेरा. ८ चूतड़. ९ हाथी का कंधा जिस पर महावत बैठता है। उ०—इम चाकर माकर उछट उठि आसण आया, बारी बाहर लेण की आलांण छुड़ाया।—वं.भा. १० सेना का शत्रु के सम्मुख डटा रहना. ११ कुश या ऊन का बना बैठक जिस पर बैठ कर पूजा की जाती है. (अल्पा० आसणियौ) १२ सवारी, वाहन। उ०—तंती नाद तंबोळ रस, सुरह सुगंधी जांह। पग मोजां आसण तुरी, किसौ दिसावर त्यांह।—ढो.मा.

आसणियौ—सं०पु०—देखो 'आसण'। उ०—धणियां तणै प्रब मरण सुधारण, रणदळ वीच प्रहारण रूक। रिम हणिया आसणियै बारण, चारण हूरम आयौ चूक।—करणीदांन गाडण रौ गीत

आसणोट—सं०पु०—घोड़े के पीठ का तंग। उ०—सचोड़ा उरां सांकड़ा आसणोटां, मंडै पीठ मंचा जिसा गात मोटां।—वं.भा.

आसत—वि०—आस्तिक। उ०—सहु नासत सीवन सोध करै, बहु आसत जीवन बोध करै।—ऊ.का.

सं०स्त्री० [रा०] १ शक्ति. बल। उ०—आसत अनै करांमत अधको भगीरथ सरखौ कुळ भांण। कर आंखियात राखियौ कमधज, सुजड़ी रै ओळै सुरतांण—दुरगादास राठौड़ रौ गीत। २ अभिलाषा. [सं० आस्था] ३ सहारा, उम्मेद, विश्वास. [सं० अस्तित्व] ४ अस्तित्व, स्थिति। उ०—मही बिच सही आसत अजै मोकळी। महीपत तौ जसा मही मांहे।—अज्ञात

क्रि० [सं० अस्ति] है। [सं० सत्ता] सत्ता। उ०—गाय दुहता आंगणे सुभ्र साह तारे सर, हाथ बधारे बीस हथ आसत इळ ऊपर।

—क.च.

आसता—सं०स्त्री० [सं० आस्था] १ श्रद्धा, आदर (अ.मा.) २ विश्वास. ३ सभा, बैठक. ४ अंगीकार. आलंबन।

आसति—सं०स्त्री० [सं० आस्तिकता] १ आस्तिकता. [सं० आस्था] २ आस्था। उ०—आदर विण भगति, देव विण आसति, विण भायां संसार विखौ।—त्याग प्रसंसा रौ गीत. ३ शक्ति, बल, पराक्रम। उ०—अपूरब आसति लोवड़ियाळ, क्रपा तव ताम न ग्रासत काळ।—मे.म.

४ सत्यता। उ०—पह समराथ हाथ जग ऊपरि, क्यावरि करण करम रौ कोट। एकणि रहणि बडी मति आसति, सांमां सोह चढ़ावण साल।—ल.पि.

आसतिक—वि० [सं० आस्तिक] वेद, ईश्वर और परलोकादि पर विश्वास करने वाला, ईश्वर के अस्तित्व को मानने वाला।

आसती—क्रि० [सं० अस्ति] है। अस्तित्व का भाव।

वि०—१ समर्थ, शक्तिशाली (रा.रा.) २ आस्तिक. ३ अच्छी, सुंदर, उत्तम (डिं.को.)

आसतीक—वि० [सं० आस्तिक] देखो 'आसतिक'।

सं०स्त्री०—शूरता, वीरता। उ०—लीधां आसतीक 'रेणसिंग', ऊबारै घड़ा रौ लाडौ। ऊबारौ भड़ाळां नांम, चाढ़ौ कुळां अंब।

—कमजी दधवाड़ियौ

आसतीन-सं०स्त्री०—देखो 'प्रस्तीन'।

आसतीपण, आसतीपणौ-सं०पु०—१ बहादुरी। उ०—पेखै आप हुंता है उजीर रौ आसतीपणौ, उरां गुणां गंभीर रौ सोजबौ प्रगाध।
—रांमदांन भादौ

२ सत्यता. ३ अस्तित्व. ४ आस्तिकता।

आसते-क्रि०वि० [फा० आहिस्ता] धीरे-धीरे, आहिस्ता, शनैः शनैः।

आसथांन-सं०पु० [सं० आस्थान] बैठने की जगह, सभा, समाज, ठौर। (अ.मा.)

आसथा-सं०स्त्री०—देखो 'आसता'।

आसना-सं०स्त्री० [फा० आशना] चाहने वाली, प्रेमिका।

आसनाई, आसनाही-सं०स्त्री० [फा०] अनुचित प्रेम पर स्त्री से किया जाने वाला प्रेम। उ०—इसी सांची आसनाही थी सो सांची निबाही।—पदमसिंह री बात

आसनौ-सं०पु० [सं० आश्रयण] आश्रयस्थल, शरणस्थल।
उ०—ऊगै तांतो पगां आसनौ, सुरिस करै ते अ।प समौ।
—दुरसौ आढ़ौ

क्रि०वि० [सं० आसन्न] निकट, नजदीक। (मि० आसन्नौ)

आसन्न-वि० [सं० आ+सद्+क्त] १ निकट आया हुआ, समीपस्थ, पास बैठा हुआ. २ शेष. ३ निकटवर्ती। (मि० आसन्नौ)
क्रि०वि०—निकट, समीप।
सं०पु०—अवसान।

आसन्नता-सं०स्त्री०—सामीप्य, निकटता।

आसन्नौ-क्रि०वि० [सं० आसन्न निकट। उ०—श्रो आवै जिम जिम आसन्नौ, तिम तिम मुख धारण तकंति।—वेलि.

आसप-सं०पु० [सं० आसव] बढ़िया शराब विशेष। उ०—पीलचोसां अढ़ारदांनिश्रां री रसनाई लागि रही छै। तेज पुंज आसप आरोगीजै छै।—रा सा.सं.

आसपण, आसपणौ-सं०पु०—आस्तिकपन, आस्तिक होने की क्रिया या भाव।

आसपद-सं०पु० [सं० आस्पद] घर, सदन (ह.नां.)

आसपास-क्रि०वि०—१ चारों ओर. २ इधर-उधर. ३ निकट, समीप, पास।

आसपूरणौ-सं०पु०—एक प्रकार का शुभ घोड़ा (शा.हो)

आसब-सं०पु० [सं० आसव] १ शराब, मदिरा. २ अर्क।

आसमांण, आसमांन-सं०पु० [फा० आसमान] १ आकाश, गगन, व्योम। कहा०—आसमांन में बीजळी चमकै अर गधेड़ी लात वावै—आसमान में बिजली चमकती है और गधी लात मारती है। असंबंधित कारण से जब कोई भय खाता है तब यह कहावत कही जाती है। स्वार्थ में क्षति पहुंचने की संभावना से अकारण ही भय खाना पड़ता है।
२ स्वर्ग, देवलोक।

आसमांणी, आसमांनी-वि० [फा० आसमानी] आकाश संबंधी, आकाश के रंग का हल्का नीला, दैवी।

आसमुद्र-क्रि०वि० [सं०] समुद्र तक, समुद्रपर्यन्त।

आसमेद, आसमेध-सं०पु० [सं० अश्वमेध] अश्वमेध। देखो 'अश्वमेध'। उ०—आसमेद जाग रा अमाप पांव देत आघा, आछै खांप हूंत देत ओनागा अत्रीठ।—बदरीदास खिड़ियो

आसमेधी-देखो 'आसमेध'। उ०—राजा पांडुवां भी आसमेधी धारि लीनां। लोही की सम्योडी भूमिका नै पिंड दीना।—शि.वं.

आसय-सं०पु० [सं० आशय] १ आशय, अभिप्राय, मतलब, तात्पर्य. २ नीयत. ३ वासना, इच्छा. ४ बुद्धि (नां.मा., ह.नां.)
[सं० आश्रय] ५ घर (ह.नां.)

आसर-सं०पु०—१ अंत. २ असुर. ३ श्मशान भूमि. ४ अवसर, मौका। उ०—धूम मुसांणां में निसबासुर धावै। अंतेट्ठी आसर टांणा लख आवै।—ऊ.का.

आसरम-सं०पु० [सं० आश्रम] आश्रम (वरसगांठ)

आसरित-वि० [सं० आश्रित] १ सहारे पर टिका या ठहरा हुआ. २ भरोसे पर रहने वाला. ३ अधीन व्यक्ति. ४ सेवक, नौकर।

आसरियो-सं०पु० (अल्पा०) [सं० आश्रम+यो-रा०प्र०] देखो 'आसरो' उ०—अपणे आसरिये अतळो दिन ऊगो, पीहर सासरिये पतळो पुन पुगो।—ऊ.का.

आसरीबचन, आसरीबाद, आसरीवाद-सं०पु० [सं० आशीर्वचन, आशीर्वाद] मंगल-कामना सूचक वाक्य, आशिष, दुआ, मंगल-प्रार्थना।

आसरौ-सं०पु० [सं० आश्रय] १ सहारा, आश्रय, अवलंब, भरोसा, आशा। उ०—१ क्या ओछै का आसरा, क्या दुरजण की प्रीत।
—अज्ञात

उ०—२ आंतड़ा तास पहरै उवर, दूर कियौ दुख दास रौ। राखजे नेक आलम रटै, एक उणी रौ आसरौ।—र.रू.
२ जीवन या कार्य-निर्वाह का हेतु. ३ किसी से सहायता पाने का निश्चय। [सं० आश्रम] ४ मकान, घर। उ०—टप-टप चूवै आसरौ, टप-टप विरही नैण। झप-झप पळका बीज रा, झप-झप हिवड़ौ सेण।—बादळी ५ आश्रयदाता, सहायक. ६ शरण, पनाह, ७ प्रतीक्षा, इन्तजार. ८ अनुमान, अन्दाजा (द.दा.)

आसल-सं०पु०—१ राठौड़ राजपूतों की एक उप शाखा. २ हमला, आक्रमण। उ०—देवीदास जीवतौ जोधपुर गयौ तौ रावजी नूं आपां ऊपर जरूर ले आवसी, इणनूं मार लेणौ, आसल करौ। सरफुद्दीन जैमल फौज ले चढ़िया।—बां दा.
सं०स्त्री०—३ अग्नि (अ.मा.)

आसव-सं०पु० [सं०] १ भभके से चुवाया गया मद्य, केवल फलों के खमीर को निचोड़ कर बनाया गया, औषधियों के खमीर को छान कर बनाई गई औषधि, मदिरा। उ०—आंमिख पांन कपूर आसव, पुहवि नृप सुख पेखए।—रा.रू. २ अर्क।

आसवार–सं०पु०—सवार । उ०—आसवारां छोगा झोका लागै आसवार ।—रांमकरण महडू

आसवारी—देखो 'सवारी' ।

आससणौ, आससबौ–क्रि०स०—आशीर्वाद देना, आशिष देना ।

आसांण, आसांन–वि० [फा० आसान] सहज, सरल, सुगम ।
उ०—ग्रोरां नै आसांण, हाकां हरवल हालणौ ।—केसरीसिंह बारहठ
[फा० एहसान] एहसान, उपकार ।

आसांणी, आसांनी–सं०स्त्री०—सरलता, सुगमता, सुभीता ।
वि०—सरल, सुगम ।

आसांम–सं०स्त्री०—असम, भारत के उत्तर-पूर्व में एक प्रान्त, कामरूप (प्राचीन) ।

आसांमी–सं०पु० [फा०] १ अभियुक्त. २ देनदार. ३ काश्तकार. ४ धनवान या प्रतिष्ठित व्यक्ति । उ०—सुण नवकोट प्रगटियौ स्वांमी, ऐ भेळा मोटी आसांमी ।—रा.रू. ५ वह जिसने लगान पर जोतने के लिये खेत लिया हो. ६ व्यक्ति । उ०—तरै राड़ हुई । तरै आसामियां कांम आई तिण री विगत ।—रा.वं.वि.

आसांमीवार–सं०पु०—मुखिया, प्रधान । उ०—१२४२ आसांमीवार कांम आया ज्यांरा राजपूत ७०१ कांम आया, ३०० घोड़ा बढ़िया, ऐक हाथी मारांणी ।—बां.दा.ख्या.

आसा–सं०स्त्री० [सं० आशा] १ देखो 'आस' २ दिशा (अ.मा.) ३ दक्ष प्रजापति की एक कन्या. ४ एक देवी का नाम—आशापूर्णा । ५ गर्भ । उ०—वों समै भूंडण रितुमती हुई थी सो भूंडण नै आसा रही । महीना पूरा हुआ जद चील्हर पांच जाया ।
—डाढ़ाळा सूर री बात

आसाआस–सं०स्त्री० [सं० आश्रयाश] अग्नि, आग (नां.मा.)

आसाऊ–वि०—आशावान, उम्मीदवार । उ०—चौकी स्रंगार ढुळतां चमर, भलै भार गजबंध भति । 'अभसाह' वखत आसाउग्रां, वप अथाह आयौ तखत ।—रा रू.

आसागज–सं०पु० [सं० आशागज] दिक्पाल, दिग्पाल । उ०—खूब वजाई खग्ग नै, धारा धमचक्कै, कुक्कै कोड़ करीहिकै कमठेस मचक्कै । नीसासा नासानुगां आसागज तक्कै, भोगी भोग न झिलि सकै भूमि अकबक्कै ।—वं.भा.

आसागीर–वि०—देखो 'आसावांन' । उ०—नोछावर भूप की तमांम सैर कीनी । आसागीर पूरणय नांम रीझ लीनी ।—शि.वं.

आसाढ़–सं०पु०—ज्येष्ठ मास के बाद और श्रावण मास के पहले आने वाला एक महीना ।
कहा०—१ आसाढ़ै धुर अस्टमी, चंद उगंतौ होय । काळौ व्है तौ करवरौ, धोळौ व्है तौ सुगाळ—आषाढ़ मास के कृष्णाष्टमी को आकाश की ओर चंद्रमा को देखना चाहिये । अगर श्यामवर्ण है तो दुष्काल पड़ेगा और अगर सफेद है तो फसल अच्छी होगी. २ सावण तौ सूतौ भलौ, ऊभौ भलौ आसाढ—आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा के दिन का चंद्रमा जो उदय काल में सीधा खड़ा हो और श्रावण मास में यही चंद्रमा पड़ा उदय हो तो जमाना ठीक होने की संभावना रहती है ।

आसाढ़ाऊ, आसाढ़ी–सं०पु०—आसाढ़ का महीना ।
वि०—आषाढ़ मास का, आषाढ़ मास संबंधी ।
सं०स्त्री०—आषाढ़ मास की पूर्णिमा ।

आसापाळौ–सं०पु०—अशोक वृक्ष (रा.सा.सं.)

आसापुरा–सं०स्त्री—बरवड़ी देवी (चारण कुलोत्पन्न) का एक नाम ।
उ०—हूं इज आसापुरा हुई 'पावही' कहीजूं । हूं देवी हिंगळाज रैण डूंगरै रहीजूं ।—पा.प्र.

आसापुरी–सं०पु०—१ देव-पूजन के लिये उपयोग किया जाने वाला एक धूप विशेष.
सं०स्त्री०—२ चौहान वंश की इष्ट देवी (बां.दा.ख्या.)
३ आशापूर्ण करने वाली देवी, दुर्गा । उ०—कान्हड़ देवि भगति आदरी, ततखिण तूठी आसापुरी ।—कां.दे.प्र.

आसाभरी–वि०—आशापूर्ण, आशावान ।

आसामुखी–वि०—आशावान, उम्मीदवार । उ०—आस धरै आसामुखी, जेता आया ज्याग । अभरी हुई वळिया इता, भांणूं दूणै भाग ।
—रा रू.

आसायच–सं०पु०—गहलोत वंश की एक शाखा ।

आसार–सं०पु० [अ०] १ चिन्ह, लक्षण । उ०—माधुरय्य मेह, आसार गह, सदगुरु समांन, जीवन जहांन ।—ऊ.का. [अ०] २ दीवार के नींव की मोटाई. ३ दीवार की चौड़ाई. [सं०] ४ मूसलाधार वृष्टि, अतिवृष्टि । उ०—छूटी आसारां कामारां छिलती, पड़ती परनाळां पहुवी पिळपिळती ।—ऊ.का. [सं० आश्रय] ५ आश्रय । उ०—आसार दांन दातार अस्त्र, सब महा सूम सूंपत स्वरास्त्र ।
—ऊ.का.

आसालुब्धी–वि०—आशान्वित । उ०—आसालुब्धी हूं न मुड्य, सज्जन जंजाळेह । मारू से कइ हथ्थड़ा, झीणैं अंगारेह ।—ढो.मा.

आसालूंध, आसालूंधौ, आसाळू, आसालूत–वि०—१ आशावान, उम्मीदवार । उ०—आसालूंध उतारियौ, धण कंचुवौ गळेह । घूमैं पड़िया हंसड़ा, भूला मांनसरेह ।—ढो.मा. २ आशालुब्ध, प्रेमातुर ।
उ०—१ जदि जखड़ै कह्यौ-थे कहौ छौ सौ सगळौ तयार छै, पिण हूं आसालूंधौ झालां रै सासरै खड़वा कीधां जावूं छूं ।
—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात
उ०—२ आसालूत गांखड़ै ऊभी, टोयां काजळ टीबी । गळती रात पुकारै गोरी, बाबहिया ज्यूं बीबी ।—सुंदरदास बीठू

आसावंत–वि०—आशावान, उम्मीदवार । उ०—जगत सूत मागध वंदीजण, आसावंत किया नृप ऊरण ।—रा.रू.

आसावार–सं०स्त्री०—आशा को पूर्ण करने वाली देवी ।

आसावरी–सं०पु०—१ एक प्रकार का सुगंधित पदार्थ. २ एक प्रकार का बढ़िया कपड़ा (रा.सा.सं.) ३ एक प्रकार का कबूतर.
सं०स्त्री०—४ श्री नामक राग की एक रागिनी ।

आसावरीयांम–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

आसिक–वि० [अ० आशिक] इश्क या प्रेम करने वाला, प्रेमी, अनुरक्त। उ०—फकीर की लड़की साहिबां से आसिक रह्या।—रा.सा.सं.

आसिका–सं०स्त्री०—देखो 'आसका'। उ०—पूजा करी कुराम नइ चंदनि, एक राउत पाए लागइ। आस्यापुरी कान्हजी पाई, कही आसिका मांगइ।—कां.दे.प्र.

आसिख–सं०स्त्री०—आशिष, आशीर्वाद। उ०—विरुदावळि इम अक्खि दे आसिख मुद पाय।—वं.भा.

आसि-पासि–क्रि०वि०—आसपास। उ०—जैसे मध्य नायका तौ मांणिक छै अर कुंदण रै बीचि जड़्यौ छै, आसि-पासि हीरा लागा छै।—वेलि. टी.

आसिरवाद–सं०पु०—देखो 'आसिख'।

आसिरौ–सं०पु०—देखो 'आसरौ'। उ०—और आसिरौ ना म्हारौ थां विण, तीनूं लोक मंझार।—मीरां

आसिस–सं०स्त्री० [सं० आशिष] देखो 'आसीरा' (रू०भे०)

आसी–सं०स्त्री०—सर्प की दाढ़। (मि० आसीविख)

आसीगंणौ, आसिगंबौ–क्रि०अ०—मन लग ना, दिल बहलाना।

आसीन–वि० [सं०] १ बैठा हुआ, विराजमान. २ उपस्थित. ३ स्थित।

आसीरवाद, आसीरबाद–सं०पु० [सं० आशीर्वाद] किसी के कल्याण की इच्छा प्रकट करना. २ दुआ, आशिष।

आसीविख–सं०पु० [सं० आशीविष] सर्प, सांप (ह नां.)

आसीस–सं०स्त्री०[सं० आशिष] किसी के कल्याण की इच्छा प्रकट करना, दुआ, आशीर्वाद। उ०—तांहरै रांगियां गिण आसीस कहायनै नाळेर पांन बीड़ा मेल्हिया।—ढो.मा.
(अल्पा० आसीसड़ी)

आसीसड़ी–सं०स्त्री०—देखो 'आसीस'। उ०—आव सुहागण लाकड़ी, तेरा पड़िया काज। माता दी आसीसड़ी, सो दिन आया आज।
—अज्ञात

आसीसणौ, आसीसबौ–क्रि०स०—आशीर्वाद देना। उ०—आसीसै रूपक-बंध उचारि।—रांमरासौ

आसीसियोड़ौ–भू०का०कृ०—आशीर्वाद पाया हुआ।
(स्त्री० आसीसियोड़ी)

आसु–क्रि०वि० [सं० आशु] जल्दी, शीघ्र, तत्काल, झटपट।
उ०—अभगि अगि के अगे सुभग्ग भग्गते सुनें, उदग्ग पग्ग विग्गि आसु पग्ग लग्गते उनें।—ऊ.का.
सं०पु०—१ वर्षाकाल में उत्पन्न होने वाला एक प्रकार का धान्य. [सं० असु] २ प्राण. [सं० आश्विन] आश्विन मास। उ०—तोय नहर आसु आवंतां, छोळ समट थक नीर छजे। वट घाटां नद नांणां वाळी, आटां पाटां वहै अजे।—महारांणा भीमसिंह री गीत

आसुकवि–सं०पु० [सं० आशुकवि] तत्क्षण कविता करने वाला कवि।

आसुग–सं०पु० [सं० आशुग] १ बाण, शर (ह.नां.) २ वायु (ह.नां.) ३ मन।
वि०—द्रुतगामी।

आसुगासन–सं०पु० [सं० आशुगाशन] धनुष। (मि० आसग)

आसुती–सं०पु०—शराबविशेष, आसव।

आसुतोस–वि० [सं० आशुतोष] जो शीघ्र संतुष्ट हो जाय।
सं०पु०—महादेव का एक नाम।

आसुधर–सं०स्त्री०—तलवार (ना.डिं.को.)

आसुपाळौ–सं०पु०—अशोक वृक्ष।

आसुर–सं०पु० [सं० असुर] १ असुर, राक्षस। उ०—आसण गूढ़ करू पग आसुर, ज्याग विधुंसे जावै।—र.रू.
[सं० असुर] २ यवन, मुसलमान। उ०—खड़ौ कोई मुज्झतणौ रिण खेत, साझै औ आसुर पुत्र समेत।—गो.रू.
३ आठ प्रकार के विवाहों के अंतर्गत एक प्रकार का विवाह.
[सं० अस्र] ४ रक्त (अ.मा.)
वि०—असुर संबंधी।

आसुरांण–सं०पु०—१ मुसलमान, बादशाह। उ०—१ आसुरांण रोहता दोहता देवी 'बेद' आळी मोहता अभेदवाळी डाढ़ाळी नमांम।
—नवलजी लाळस
उ०—२ राजवंस खोय मन आसुरांण, इळ देह नास मत कर अजांण।—शि.सु.रू.

आसुरी–वि० [सं०] असुर संबंधी, राक्षसी (रा.रा.)
उ०—असुरै माया आसुरी, गरजंतै घणगत्ति।—रांमरासौ
सं०स्त्री०—१ संध्या (अ.मा.) २ पिशाचिनी, राक्षसी।
उ०—रगता सेता रणा, नमौ मा क्रसना नीला, सीकोतर आसुरी, सुरी सुसिला गरवीला।—देवि.

आसुरीधरम–सं०पु०—१ इस्लाम धर्म। उ०—खोयौ आसुरीधरम आपो विगोयौ तें मीरखांन।—नवलजी लाळस २ राक्षसी धर्म. ३ असुरता।

आसूं–सं०पु० [सं० आश्विन] आश्विन, क्वार का महिना।
उ०—भरियौ भादरवौ खाली पड़ भागौ। लगतां आसूं में आंसूं झड़ लागौ।—ऊ.का.
कहा०—सासू जितरै सासरौ, आसू जितरै मेह—जब तक सास तब तक ससुराल; जब तक आश्विन मास तब तक वर्षा की उम्मीद बनी रहती है।
क्रि०वि० [सं० आशु] जल्दी, शीघ्र, तुरंत।

आसूग–सं०पु० [सं० आशुग] देखो 'आसुग' (रू०भे०)

आसूदगी–सं०स्त्री०—संपन्नता, तृप्ति।

आसूदी–वि०—देखो 'आसूधौ'।

आसूबो, आसूबोहो–वि०—१ देखो 'आसूधौ' २ जिसे किसी प्रकार की थकान न हो। उ०—घोड़ौ जाय संभाळौ–आसूबौ छै कै दौड़ियौ छै।—जलाल बूबना री बात

आसूधौ–वि० (स्त्री० आसूधी) [फा० आसूद] १ परिश्रम न कर सकने वाला व्यक्ति. २ संतुष्ट, तृप्त. ३ संपन्न, धनाढ्य. ४ भरा-पूरा. ५ वह खेत जो काफी समय से बिना जोता पड़ा हो. ६ जिसे किसी प्रकार की थकान न हो।

आसूरण–सं०पु०—मुसलमान। उ०—इसी भांत आसूरण हिंदू अभंग, चुडै दस्सकंध जु होता सुजंग।—शि.सु.रू.

आसूसुखण–सं०स्त्री०—अग्नि, आग (ह.नां.)

आसे–सं०पु० [सं० आशय] देखो 'आशय'। उ०—जोग जुगत जगदीस्वर जपणां, अपणां जन्म उधारै। ऊमरदांन अनूपम आसे, बिरळा बात बिचारै।—ऊ.का.

आसेर–सं०पु० [सं० आश्रय] १ किला, गढ़। उ०—बुरज्जां चहूं जांण लोकेस बाका, प्रथी आभरौ बीच भांगै पताका। पड़ै दीठ आसेर ज्यौं मेर पब्बै, दुती देखियां स्वरग रौ दुरग दब्बै।

२ एक राजपूत वंश (वं.भा.) —हुकमीचंद खिड़ियौ

आसोज–सं०पु० [सं० अश्वयुज] आश्विन मास जो भाद्रपद के बाद और कार्तिक के पहले आता है। (डिं.को.)

कहा०—१ आसोजां रौ तावड़ौ जोगी हुग्या जाट—आसोज की धूप से जाट भी जोगी हो गये (जैसे जोगी अग्नि तापते हैं, वैसे ही जाट लोग, जो अधिकतर किसान होते हैं, आसोज की तेज धूप में खेतों में खड़े रहते हैं।) आसोज की धूप बहुत तेज होती है. २ आसोजां रा तावड़ा जोगी हुग्या जाट। बांमण हुग्या वांणिया, वांण्या हुग्या भाट—आसोज की धूप से जाट जोगी हो गये, ब्राह्मण बनिये हो गये और बनिये भाट हो गये. ३ धुर आसोज अमावसां, जे आवै सनिवार, समौ होसी करवरौ, पिंडत कहै विचार—अगर आश्विन मास की अमावस्या को शनिश्चरवार हो तो पंडितों के विचार में वर्ष साधारण कोटि का होगा. ४ आसोजां रा मेहड़ा, दोय बात विणास। बोरड़ियां बोर नहीं, विणियां नही कपास—अगर क्वार मास में वर्षा हो तो दो प्रकार की क्षति होगी—एक तो बदरि वृक्ष फल-रहित रहेगा, दूसरा कपास की फसल मारी जायेगी. ५ सांवण मास सूरियौ वाजै, भादरवै परवाई। आसोजां में समदरी वाजै, काती साख सवाई—अगर श्रावण मास में सप्त ऋषि के अस्त दिशा से वायु चले, भाद्रपद मास में पूर्व का वायु चले और आश्विन मास में नैऋत्य दिशा से वायु चले तो उस वर्ष कार्तिक मास की फसल सवाई या अधिक होती है।

आसोजी–सं०स्त्री०—आश्विन मास की तिथि।

वि०—आश्विन मास की, आश्विन मास संबंधी।

आसौ–सं०पु० [सं० आसव] १ लाल रंग की एक शराब विशेष.

२ तपस्या या भजन करते समय रात्रि में वक्षस्थल के अग्र भाग तथा बाहुमूल में सहारे के रूप में लगाया जाने वाला काष्ठ का एक उपकरण विशेष जिसे प्रायः संन्यासी रखते हैं. ३ सोने या चांदी से मढ़ा हुआ डंडा जिसे छड़ीदार रखता है।

वि०वि०—देखो 'छड़ीदार'। ४ औषधियों का अर्क (अमरत) ५ बढ़ई का एक उपकरण. ६ एक प्रकार का विशेष बनावट का चांदी या सोने से मढ़ा डंडा विशेष जिसे बादशाही दरबार में खड़े रहने के निमित्त सहारे के हेतु बड़े बड़े शाही दरबारी रखते थे। उ०—'मांन' महावड़ साख कर, आसौ फिर बडवाय। साहु सभा बन में खड़ौ, छाया सूं जग छाय।—बां.दा.

७ यमराज का पाश. ८ एक राग विशेष (रांमरासौ)

आस्त–सं०पु०—आपत्ति, कष्ट, विपदा, दुःख।

वि०—आस्तिक।

आस्तिक–वि० [सं०] जिसे ईश्वर, वेद या परलोक इत्यादि पर विश्वास हो।

आस्तिकता, आस्तिकपण, आस्तिकपणौ–सं०स्त्री० [सं०] ईश्वर, वेद व परलोक में विश्वास।

आस्तीक–सं०पु० [सं०] तक्षक सर्प के प्राण बचाने वाले एक ऋषि। (पौराणिक)

आस्तीन–सं०स्त्री० [फा०] बांहों को ढंकने का पहिनने के कपड़े का भाग।

आस्थांन–सं०पु०—१ बैठने का स्थान. २ सभा, बैठक।

उ०—अर दौ ही तरफ रा बीरां आस्थान रूप बाजार में प्रांण रा क्रय-विक्रय रूप व्यापार मचायौ।—वं.भा. ३ दरबार।

आस्था–सं०स्त्री०—श्रद्धा, भक्ति।

आस्थिसंस्कार–सं०पु० [सं० अस्थिसंस्कार] अपवित्र अवस्था में शरीर छूटने पर पुनः पुतला बना कर की जाने वाली दाह-क्रिया (ब्राह्मण)

आस्पद–सं०पु० [सं०] स्थान। उ०—अवंती रा अधीस प्रामारराज भरत्रीहरि रै रांणी पिंगळा जिकण रौ दूजौ नांम अनंगसेना कहीजै सो अद्वितीय प्रीति रौ आस्पद बणी।—वं.भा.

आस्फाळ–सं०पु०—भुजा ठोकना। उ०—जठै बैताळ रा आसफाळ डाकिणी गणांरा डमरू रा डात्कार।—वं.भा.

आस्य–सं०पु० [सं०] १ मुख, चेहरा। उ०—अतिक्रम विक्रम तिक्रम आस्य, अछेक अनेकन अंक उपास्य।—ऊ.का. [सं० आशय] २ तात्पर्य, मतलब, अभिप्राय। उ०—परिपूरण प्रेम, निज न्याय नेम, विग्यान विग्य, पूरण प्रतिग्य। गंभीर ग्यांन, विस्मय विग्यांन, उद्योग आस्य, एकौ उपास्य।—ऊ.का.

आस्यप–सं० उ०लिं० [सं० आसव] शराब, मद्य। उ०—अमलां रा रंग तरंग मांणीजै छै। तेज पुंज आस्यप रा प्याला आरोगीजै छै।
—रा.सा.सं.

आस्या–सं०स्त्री० [सं० आशा] आशा, उम्मीद। उ०—जीवतव्यनी आस्या टळी, ए पांणी नहीं पीजइ पळी। रांणी वात विमासी घणी, लिख्या लेख कान्हड़दे भणी।—कां.दे.प्र.

आस्यापुरी–सं०स्त्री०—आशा पूर्ण करने वाली देवी। उ०—आस्यापुरी सकति कर जोड़ी, राउळि करीउ जुहार।—कां.दे.प्र.

आस्याभंग–वि०—आशाभंग, आशाहत, निराश। उ०—सूंप्या द्रोह कह अम्हे कीधा, कइ छांना विख दीधां। **आस्याभंग** कह अम्हे कीधा, कइ धन प्रांणि लीधां।—कां.दे.प्र.

आस्रम–सं०पु० [सं० आश्रम] १ जहां ऋषि मुनि आदि रहते हों, तपोवन। उ०—कोई प्रेम रा प्यासां ने दरसण देवता हौ राज, दीठा प्रभूजी **आस्रम** अनेक हौ, प्रभूजी।—मी.रां. २ टिकने या ठहरने का स्थान विश्राम स्थान। उ०—छिपा तणै बळि **आस्रम** छूटौ, तारी जांण गयण सूं तूटौ।—रा.रू. ३ हिन्दुओं के जीवन की चार अवस्थायें–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास.
४ मठ. ५ स्थान, कुटी. [रा०] ६ दशनामी संन्यासियों की एक शाखा या भेद जो स्वामी शंकर के शिष्य विश्वरूप से अपनी परम्परा बतलाते हैं. ७ चार की संख्या*।
वि०—चार*।

आस्रमचौथौ–सं०पु०यौ० [सं० आश्रम+चतुर्थ] चतुर्थाश्रम, वृद्धावस्था, संन्यासाश्रम।

आस्रम्म–देखो 'आश्रम'। उ०—आंबेरौ जैसाह, सूरसागर **आस्रम्मे**। वरण दिसा वाग सूं, धणी बूंदी वड धम्मे।—रा.रू.

आस्रय–सं०पु० [सं० आश्रय] १ आधार, सहारा, अवलंब.
२ आधारवस्तु. ३ सरण, पनाह. ४ घर, मकान (अ.मा.)

आस्रययास–सं०स्त्री० [सं० आश्रयाश] अग्नि, आग (ह.नां., डि.को.)

आस्रव–सं०पु० [सं० आश्रय] देखो 'आश्रय'।

आस्रित–वि० [सं० आश्रित] १ किसी आश्रय या सहारे पर टिका हुआ. २ सेवक दास।

आस्रीवाद–सं०पु० [सं० आशीर्वाद] आशीर्वाद, आशिष।
उ०—महादेवजी देवी राठासण प्रसन्न हुवा, वर दीयौ, राज दीयौ, नु हमैं रांणानूं **आस्रीवाद** दीजै छै तरै हारीत प्रसन्न नहीजै छै।—नैणसी

आस्वाद–सं०पु० [सं०] स्वाद, जायका।

आस्वादन–सं०पु० [सं०] चखना या स्वाद लेना।

आस्वापुरी–सं०स्त्री०—आशा पूर्ण करने वाली देवी।
देखो 'आस्यापुरी'।

आस्वासन–सं०पु० [सं० आश्वासन] दिलासा, तसल्ली, सांत्वना, ढाढ़स।

आस्विनीकुमार–सं०पु०—१ अश्विनीकुमार.
वि०वि०—देखो 'अस्विनीकुमार'। २ दो की संख्या*।

आहंचणौ, आहंचबौ–क्रि०अ० [सं० अभ्यंचन] १ झटका देना, धक्का देना. २ मारना, ध्वंस करना। उ०—आहंचि मीर आगरड आइ, रहड़िया देस वाजा रड़ाइ।—रा.ज.सी.
आहंचणहार, हारौ (हारी), आहंचणियौ—झटका या धक्का देने वाला, मारने वाला।
आहंचिओड़ो, आहंचियोड़ो, आहंच्योड़ो–भू०का०कृ०—झटका दिया हुआ, मारा हुआ।

आहंचि–वि०—गर्व करने वाला, अभिमानी (रा.रा.)

आहंचियोड़ो–भू०का०कृ०—१ मारा हुआ. २ झटका दिया हुआ।
(स्त्री० आहंचियोड़ी)

आहंस–सं०पु० [सं० अभ्यंश, प्रा० आहंस=अहंस] १ साहस, हिम्मत.
२ पराक्रम, शक्ति, बल। उ०—आयौ इंगरेज मुलक रै ऊपर, **आहंस** लीधा खेंचि उरा। धणियां मरै न दीधी धरती, धणियां ऊभां गई धरा।—बां.दा. (यौ० आहंसधर, आहंसधारी)

आहंसणौ, आहंसबौ–क्रि०अ०—साहस करना।
उ०—कर विन भूह मूंछ सूं सज कर, अंग पौरस **आहंसियौ** गढ़ां। गळण आलम सा गौरी, हड़ हड़ 'दूदौ' हसियौ।—दूपौ सांदू

आहंसी–वि०—१ साहसी. २ बलवान, शक्तिशाली। उ०—हीकां धरै राहंसी वैरियां धू चलाया हाथ, **आहंसी** नमीठा काछी, मळाया औसांण।—सूरजमल मीसण

आहंसीक–वि०—देखो 'आहंसी'।

आह–सर्व०—यह।
अव्यय [सं० अहह] पीड़ा शोक दुःख खेद ग्लानिसूचक शब्द, निश्वास। उ०—**आह** करूं तौ जग जळै, जंगळ भी जळ जाय। पापी जिवड़ौ ना जळै, जामैं आह समाय।—अज्ञात
सं०पु०—१ कराहना, उसांस भरना, ठंडी सांस.
२ कमजोर गाय के प्रसव के पश्चात गर्भाशय का बाहर निकलने वाला भाग।

आहड़, आहड़ा–सं०स्त्री०—सीसोदिया वंश के क्षत्रियों की एक शाखा। (वं.भा.)

आहड़ी–सं०पु० [सं० आखेट+ई] १ थोरी जाति के वे व्यक्ति जो अधिक गरीब होते हैं तथा जानवरों का शिकार करते हैं या मजदूरी कर पेट पालते हैं. २ भील।

आहड़ेनरेस, आहड़ेस–सं०पु०—१ सीसोदिया वंशी क्षत्रियों की शाखा 'आहड़ा' का व्यक्ति।

आहड़ै-पाहड़ै–क्रि०वि०—आस-पास।

आहड़ौ–सं०पु०—देखो 'आहड़ेस'।

आहचणौ, आहचबौ–क्रि०स०—छीनना, झपटना, बलात पकड़ कर लाना।

आहचियोड़ौ–भू०का०कृ०—छीना हुआ, झपटा हुआ।
(स्त्री० आहचियोड़ी)

आहज–सं०पु० [सं० आज्य] घी, घृत (ह.नां.) (मि० आहिज)

आहट–सं०स्त्री०—वह ध्वनि और आवाज जो किसी वस्तु से उत्पन्न हो।
क्रि०प्र०—करणी, लेणी, होणी।

आहण–सं०पु० [सं० आहवन=आहण] युद्ध। उ०—खत्रवाट खत्री गुर होये खड़ग हथ, **आहण** तें साचवियै इम।—हरीसूर बारहठ
२ आसण। (रू०भे०)

आहणणौ, आहणबौ–क्रि०स०—१ वार करना. २ मारना।

उ०—हेली घर घर की हुवी, पूंचां छक पैगांम। हाथी हाथळ आहणै, नाहर जिण री नांम।—बी.स.

आहणहार, हारौ (हारी), आहणियौ–वि०—वार करने या मारने वाला।

आहणियोड़ौ—भू०का०कृ०।

आहणि, आहणिय—१ फौज, सेना। उ०—उठी हित आहणि भांजि अधार, लड़गै खाफर खोसि खंधार।—रा.ज. रासौ. २ युद्ध।

उ०—आहणिय ऐकि असिमरि उलाळि, पहटिया बिया गमिया पयाळि।—रा.ज.सी.

आहणियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ मारा हुआ. २ वार किया हुआ। (स्त्री० आहणियोड़ी)

आहणौ, आहबौ–क्रि०स०—१ मारना, हनन करना. २ जाना। (मि० आहणणौ)

आहत–वि० [सं०] घायल, जख्मी।

आहतनाद–सं०पु०—आघात अथवा संघर्षण से उत्पन्न होने वाली संगीतोपयोगी ध्वनि (संगीत)

आहर–सं०पु० [सं० आहव] १ युद्ध, लड़ाई। [सं० अह:) २ समय, वक्त, काल. ३ दिन।

आहरट–सं०स्त्री०—फौज सेना (अ.मा.)

आहरट्ट–सं०पु०—संहार. २ युद्ध। उ०—१ घण घाइ मुगल्लां घड़िय घट्ट, रहचिवा थट्ट हुइ आहरट्ट।—रा.ज.सी.

२ देखो 'आहरट'।

आहरण–सं०पु० [सं०] १ छीनना, हर लेना, लूटना-खसोटना. २ किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। [सं० आभरण] आभूषण। उ०—श्रीखंड पंक कुमकुमौ सलिल सरि, दळि मुगता आहरण दुति।—वेलि.

आहरौ–सं०पु० [सं० आश्रम] कच्चा घास-फूस आदि का बंद कमरा।

आहव–सं०पु० [सं०] १ रण, युद्ध (ह.नां.) उ०—आहवां अजीत छांह हमांऊ पुनीत एही, रूक रीझां क्रीत यूं तिहारी राघवेस।

२ यज्ञ। —र.रू.

आहवांन–सं०पु० [सं० आ-ह्वान] आव्हान। उ०—तरै रिखेसरां इंद्र रौ आहवांन कीधौ।—वं.वि.

आहवि, आहवी–सं०पु० [सं० आहव] १ युद्ध, रण। उ०—१ चतुर फतौ माभी चहुवांणां, आहवि लड़ण खगां ऊबांणां।—रा.रू.

उ०—२ आहवि नितदिनि इम, पाळ हरै जांवळि पिता।

—वचनिका

२ वीर, योद्धा। उ०—उछाह चाह आहवी, दुबाह दौड़ते नहीं।

—ऊ.का.

आहा–अव्यय [सं० अहह] १ आश्चर्य, हर्षादिसूचक शब्द. २ खेद या आक्षेपार्थक शब्द।

आहाड़–सं०पु०—१ मेवाड़ राज्य का प्राचीन नाम. २ सीसोदिया वंश का राजपूत. [सं० आषाढ़] ३ आषाढ़ मास।

कहा०—गाज बीज नै वायरो, पांसम सुद आहाड़। डरबीदे जे थाय तो, मेह वरी नै पाड़—अगर आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को मेघ गरजे, बिजली चमके तथा हवा भी चले तो बड़े जोर से वर्षा होगी जो पहाड़ों को भी गिरा देगी।

आहाड़ा–सं०पु०—१ सीसोदिया वंश के राजपूतों की एक शाखा।

आहाड़ा-खंड–सं०पु०—मेवाड़, मेदपाट।

आहाड़ौ–सं०पु०—१ सीसोदिया वंश की शाखा 'आहड़ा' का व्यक्ति.

उ०—कवि धारा एक वोय प्रवाड़ा गणावै कासूं। आहाड़ा विहाड़ा जेता प्रवाड़ा उमेद।—उमेदसिंह सीसोदिया रौ गीत

आहाट–सं०स्त्री०—देखो 'आहट'। उ०—वाट चाहै छै। एक वार तौ द्वारै आय कांन दे आहाट सुणै छै।—वेलि. टी.

आहार–सं०पु० [सं० आ+हृ+घञ्] भोजन, खाना, खाने की वस्तु।

कहा०—१ आहार मारै का भार मारै—या तो भोजन मारता है या भार मारता है; भोजन अच्छा न मिलने से या भार उठाने से मनुष्य दुर्बल होता है. २ आहार न मिलने से या भारी चीज के नीचे दबने से मौत होता है. ३ आहारे व्यौहारे लज्जा न कारे—आहार और व्यवहार में लज्जा नहीं करनी चाहिए।

[सं० आघार] घी, घृत (ह.नां.)

आहारज–सं०पु० [सं० अहार्य] पहाड़ (अ.मा.)

आहारथाळ–सं०पु०—विवाह के एक दिन पहले वधू के घर से वर के यहां भेजे जाने वाले परोसे हुए तीन थाल (पुष्करणा ब्राह्मण)

आहाराज, आहारिज–सं०पु० [सं० अहार्य] पहाड़ (ह.नां.)

आहाळ–सं०पु०—चिन्ह, निशान। उ०—कैहवत सारे ही कहै है आहर आहाळ। कहूं जिकांरौ कोटड़ी, धणी जिकांरै 'पाल'।—पा.प्र.

आहावि–सं०पु० [सं० आहव] युद्ध।

आहि–सं०पु० [सं० अहि] सर्प, सांप।

आहिज, आहिजि–सर्व०—१ यही. २ वही (रू०भे० आहीज)

उ०—वाट ज भूला जी? क दिस दू ी लिवी, कोई आया दूजै देम आहिज अजोध्या रै पुरी के अं र ही।—गी.रां.

सं०पु० [सं० आज्य] घृत (अ.मा.)

आहिठांण–सं०पु०—देखो 'आइठांण'।

आहिव–सं०पु०—देखो 'आहव'।

आही–सर्व०—यही। उ०—साहिब सूं दाखै सुखन, सत पुरखां उ साल। मुगलां आहिज चाकरी, मुगलां आही चाल।—बां.दा.

आहीज–सर्व०—१ यही. २ वही. ३ इसी। उ०—तद राजा कही साबास आहीज आहीज वरीयां ले आवौ।—चौबोली

आहीठांण–सं०पु०—देखो 'आइठांण'।

आहीर–सं०पु० [सं० आभीर] गूजर, गोप, दूध दही का व्यवसाय करने वाली एक जाति। (मि० अहीर) उ०—ब्रह्मा सिव कहै सुणौ ब्रजनायक, ब्रज दीठां न करौ अबेर। अमरापुर दीजै आहीरां, हर म्हांनै कीजै आहीर।—सिवदांन बारहठ

आहीवाळौ–सं०पु० [सं० आधिपत्य, प्रा० आहिवच्च=आहिवाळौ] ऋणी और ऋणदाता के मध्य की परस्पर की लिखावट का वह शर्तनामा जिसके अनुसार ऋणी की चल संपत्ति (मनकूला) का इस लिखावट में उल्लेख हो और अगर ऋणी ऋण चुकता न कर सके तो ऋणदाता उसकी चल संपत्ति को जिसका उल्लेख लिखावट में किया गया हो, उसको बेच या बिकवा कर अपनी कर्ज की रकम वसूल कर सके। (रू०भे० आईवाळौ)

आहु, आहुई–सं०पु० [सं० आहव] आहव, युद्ध।

आहुड़–सं०पु०—युद्ध, संग्राम। (मि० आहुड़णौ)

आहुड़णौ, आहुड़बौ–क्रि०स० [सं० आ+हुडु=आहुडन, आहुडण+औ] भिड़ना, टक्कर लेना, युद्ध करना। उ०—अणी चढ़ि खेती जसवंत सूं आहुड़ी। पिय नखै पौढ़सी नहीं परिणहारड़ी।—हा.झा.

आहुड़णहार, हारौ (हारी), आहुड़णियौ—भिड़ने या टक्कर लेने वाला।

आहुड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—टक्कर लिया हुआ, भिड़ा हुआ। (स्त्री० आहुड़ियोड़ी)

आहुट–सं०पु०—१ समर, युद्ध। उ०—अगन मार वरसै वर आहुट, नारद वेद पढ़ै नरवांण।—बलराम गौड़ रौ गीत

२ आहट, ध्वनि। उ०—अटत सेज द्वार विचि आहुटि, स्रुति दे हरि धरि समाश्रित।—वेलि. ३ पता, सुराग, टोह।

आहुटणौ, आहुटबौ–क्रि०अ०—१ वीर गति को प्राप्त होना।

उ०—जुटै दुहूं दळ जंग, आहुटै हिन्दु असुर। रंग हो भारथ रंग, उण बेला दै आपने।—ला.रा. २ युद्ध करना।

उ०—हुवै बावनेस वीर विक्रमी हकार वाड़ा, धारां पार वाड़ा सरां साबळां सघोम। सिंधू राग रेड़तै आहुटै सिंगारवाड़ा, भुटक्कै मेड़तै मारवाड़ा वीर भोम।—अज्ञात. ३ मिटना, नष्ट होना।

उ०—सुजस बिगड़ बिगड़ी सभा, आहुट गई उमंग। गनका सूं राखै गुसट, रसिया तोनूं रंग।—बां.दा.

आहुटणहार, हारौ (हारी), आहुटणियौ–वि०—युद्ध करने या वीर गति प्राप्त करने वाला, मिटने वाला।

आहुटि–सं०स्त्री० [सं० आहट] आहट, खटका, आवाज, ध्वनि।

आहुति, आहुती–सं०स्त्री० [सं० आ+हु+क्ति] १ मंत्र पढ़ कर देवता के लिए अग्नि में होम के पदार्थ डालना। उ०—दिव्य कास्ट खट जाति अदूखति। अगर कपूर घिरत जुत आहुती।—रा.रू.

२ हवन, होम. ३ हवन की सामग्री. ४ एक बार में यज्ञ-कुंड में डाली जाने वाली हवन सामग्री की मात्रा।

आहूत–वि०—बुलाया हुआ। २ देखो 'आहुति'।

आहूतण–सं०स्त्री०—अग्नि, आग (ह.नां.)

आहूत, आहूति, आहूती–सं०स्त्री०—देखो 'आहुति'।

उ०—देवी जम्मणी मख्ख आहूति ज्वाळा, देवी वाहनी मंत्र लीला विसाळा।—देवि.

आहे–क्रि०अ०—है।

आहेड़–सं०पु० [सं० आखेट] १ शिकार। उ०—चूहड़ एक समै छत्रधारी, आहेड़ चढ़्यौ अवतारी।—गो.रू.

[सं० आखेटक] २ शिकारी। उ०—आहेड़ै जमरांण डांण मंडै दीहाड़ी, सर क्रम बंध संधिया चाप आवरवा चाडी।

—जग्गौ खिड़ियौ

३ भील जाति का व्यक्ति। उ०—भालाळ तणा भुरजाळ भाळ, कमठाळ खीचियां तणा काळ। आहेड़ भमर मजबूत अंग, रजपूत समर जमदूत रंग।—पा.प्र.

आहेड़ा–सं०स्त्री० [सं० आखेट] १ शिकार, आखेट। उ०—एक दिवस आहेड़ा आळि, नळ राजा चढ़ियौ पुहगाळि।—ढो.मा.

२ गहलोत वंश की एक शाखा। (रा.वं.वि.)

आहेड़ियौ–सं०पु० (अल्पा०) १ शिकारी. २ भील. ३ आर्द्रा नक्षत्र।

आहेड़ी–सं०पु०—शिकारी. २ भील (मि० आहेड़)

३ आर्द्रा नक्षत्र।

आहेड़इ–सं०पु० [सं० आखेट] शिकार (अल्पा०)

उ०—रयणि दीहि संगति ते रमइ, भूपति बे आहेड़इ भमइ।

—ढो.मा.

आहेस–सं०पु० [सं० अहीश] १ शेषनाग. २ नमा. ३. अफीम।

उ०—आहेसां छाकिया जड़ै प्रळै कांत वाळा आव रवताळा ऊभा झोख खावै आकारीठ।—हुकमीचंद खिड़ियौ

आहोड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—चलाया हुआ, निशान लगाया हुआ। (स्त्री० आहोड़ियोड़ी)

आहोटणौ, आहोटबौ–क्रि०अ०—मिटना, नाश होना। उ०—आपगां दळण गीरवम जळण आहौटी, विसै खटचलण कळियां कदम-व्रन्द।

—बां.दा.

(रू०भे० आहुटणौ)

आह्लाद–सं०पु० [सं०] आनंद, खुशी, हर्ष।

आह्वड़णौ, आह्वड़बौ–क्रि०स० [सं० आहव] आक्रमण करना।

उ०—असपत इंद्र अवनि आह्वड़िया, धारा झड़ियां सहै धका।

—दूरसौ आढ़ौ

आह्वन–सं०पु०—आने वाले, अतिथि। उ०—जग में जनक रै जी दरगह हुआ नृप समुदाय। आह्वन आदरै जी जोजन तणौ सांमां जाय।

—र.रू.

आह्वय–सं०पु० [सं०] १ नाम। उ०—मेरी सच्ची ख्वाब है टारै न टरैगा, जिसका आह्वय भारथा वो खून करेगा।—ला.रा.

२ तीतर, बटेर आदि जीवों की लड़ाई की बाजी।

आह्वान–सं०पु०—१ पुकार, बुलावा। उ०—आया अन अधपत आह्वान। ओपत ओयंग हुआ बळ भंग। रहियौ रांण खत्री भ्रम राखण, स्वेत उरंग कळोधर 'संग'।—दूरसौ आढ़ौ

२ यज्ञ आदि में मंत्रों आदि से देवताओं को बुलाना।

इ

इ—वर्णमाला के स्वरों के अंतर्गत तीसरा स्वर या वर्ण जिसके बोलने का स्थान तालू है और प्रयत्न विवृत्त है। ई इसका दीर्घ रूप है।

इं-सर्व०—इस। उ०—इं गैले आयो रजपूत दोय वार, आडा फिरि पूछ लीनां सारा समचार।—शि.वं.

वि०—व्यर्थ, फजूल, बेकार।

इंउं, इंऊं-क्रि०वि०—इस प्रकार। उ०—**इंउं** कहतौ जसवंत अधिक विमळ विचार विचार, इळा सबळां रै आसरै निबळोड़ा नरनार।
—ऊ.का.

इंकलाब-सं०पु० [अ० इन्कलाब] जमाने का उलट-फेर, समय का फेर, बहुत बड़ा परिवर्तन, क्रांति। उ०—अंधकार मत जांग बावळा, **इंकलाब** री छाया है। इण भाग वदळिया लाखां रा, केई राजा रंक बणाया है।—रेवतदांन

इंग-सं०पु० [सं०] १ हिलना, कंपन. २ चिन्ह, संकेत।

इंगरेज-सं०पु०—अंग्रेज, इंग्लैंड का निवासी।

इंगळ-सं०पु० [सं० आंग्ल] १ अंग्रेज. २ इंगलिस्तान।

इंगळथांन, इंगळधर-सं०पु०—इंगलिस्तान, इंग्लैंड नामक देश।

इंगळस-सं०स्त्री०—१ देखो 'इंगळिस'। २ अंग्रेज।

उ०—आईयौ अंगरेजां अदभुत गतिवाळां, **इंगळस** नेसन रा देसन उजवाळां।—ऊ.का.

इंगळा-सं०स्त्री० [सं० इड़ा] बायीं ओर की इड़ा नामक नाड़ी (हठयोग)

इंगळिस-सं०स्त्री० [अं० इंगलिश] अंग्रेजी भाषा।

वि०—इंग्लैंड का, अंग्रेजों का।

इंगळिस्तांन-सं०पु०—अंग्रेजों का देश, इंग्लैंड। देखो 'इंगलैंड'।

इंगळिस्तांनी-वि० —अंग्रेजों का, अंग्रेजों संबंधी।

इंगलेंड-सं०पु०—यूरोप के उत्तर-पश्चिम का एक देश, इंगलिस्तान।

इंगार-सं०पु० [सं० अंगार] अंगार, अग्निकण। उ०—देही कण **इंगार** जू तपै। राज'र मांय भयउ उगतउ भांण।—वी.दे.

इंगित-सं०पु० [सं०] १ इशारा, संकेत, चिन्ह. २ चेष्टा।

इंग्लस-सं०स्त्री०—देखो 'इंगळिस'।

इंच-सं०पु० [अं०] एक फुट के बारहवें हिस्से के बराबर का नाप।

वि०—बहुत थोड़ा।

इंजन-सं०पु० [अं० एंजिन] १ कल, पेंच, भाप या बिजली से चलने वाला एक यंत्र. २ रेल्वे ट्रेन का वह डिब्बा या गाड़ी जो भाप के जोर से और सब गाड़ियों को खींचता है और चलाता है।

इंजीनियर-सं०पु० [अं० एंजीनियर] १ यंत्र विद्या का पूरा जानकार. २ शिल्प विद्या में दक्ष, विश्वकर्मा. ३ सड़को, इमारतों और पुलों आदि को बनवाने, सुधारने और देखभाल करने वाला एक सरकारी अफसर।

इंजील-सं०स्त्री०—ईसाइयों की एक धर्म पुस्तक।

इंठै-क्रि०वि०—यहां।

इंडिया-इंडो-सं०स्त्री०—भारतवर्ष, हिन्दुस्तान।

इंडौ-सं०पु० [सं० अंडा] १ अंडा। देखो 'अंडौ'। २ देवालय के शिखर के कलश। उ०—इयुं कहि **इंडौ** उतारि हाट मांहै बेसि रह्या।—चौबोली

इंद्राणी-सं०स्त्री०—देखो 'इंद्राणी'।

इंणगत-अव्यय—इस ढंग से, इस प्रकार।

इंणि-सर्व०—इस। उ०—साई दे दे सज्जना, रातइ **इंणि** परि रून। उरि ऊपरि आंर ढळइ, जांणि प्रवाळि चून।—ढो.मा.

इंतकाळ-सं०पु० [अ० इंतकाल] १ मृत्यु, मौत, स्वर्गवास, देहांत।

इंतजांम-सं०पु० [अ० इंतजाम] प्रबंध, बंदोबस्त, व्यवस्था।

इंतजार-सं०पु० [अ०] प्रतीक्षा, रास्ता देखना, बाट जोहना (डि.को.)

इंद-सं०पु० [सं० इंद्र] १ इंद्र। देखो 'इंद्र' (डि.को.)

[सं० इंदु] २ चंद्रमा (डि.को.) ३ एक की संख्या*।

४ अष्ट दिक्पालों में से एक. ५ छप्पय छंद का बाहरवां भेद जिसमें ५६ गुरु ३४ लघु कुल ९३ वर्ण व १५२ मात्रायें होती हैं।

इंदअरी-सं०पु० [सं० इंद्र+अरि] इंद्र के शत्रु असुर, दैत्य।

इंदगोप-सं०पु० [सं० इन्द्र+गोप] १ वीरबहूटी नामक वर्षा ऋतु का लाल कीड़ा विशेष. २ खद्योत, जुगनूं।

वि०—लाल, रक्त वर्ण* (डि.को.)

इंदजव-सं०पु० [सं० इंद्रयव] कूड़े के बीज।

इंदण-सं०पु० [सं० इन्धन] देखो 'इंधण'।

इंदपुरी-सं०स्त्री० [सं० इन्द्रपुरी] इंद्र की नगरी, इंद्रपुरी, स्वर्ग।

उ०—कनां **इंदपुरी** सी निजरि आवै छै।—रा.सा.सं.

इंदपूत-सं०पु० [सं० इन्द्रपुत्र] इन्द्र का पुत्र, बालि, वानर, जयंत।

इंदरबधू-सं०स्त्री० [सं० इंद्र+वधू] वीरबहूटी।

इंदर-सं०पु० [सं० इन्द्र] देखो 'इंद्र'।

इंदरगढ़-सं०पु०—देखो 'इंदपुरी'।

इंदरजाळ-सं०पु० [सं० इंद्रजाल] इंद्रजाल, मायाकर्म, जादूगरी, धोखा।

इंदरधनक-सं०पु०यौ० [सं० इंद्रधनुष] इंद्रधनुष। उ०—वो दीसै इंदर धनक, बांबी वार सुहातौ। पदम राग री छांह, रूप रा रेल बहातौ।
—मेघ०

इंदरप्रस्थ-सं०पु०—देखो 'इंद्रप्रस्थ'।

इंदरलोक-सं०पु० [सं० इंद्र+लोक] स्वर्ग, देवलोक, इंद्रपुरी।

इंदरा-सं०स्त्री० [सं० इंदिरा] लक्ष्मी (ह.नां.)

इंदराउ-सं०पु०—कपाटों पर लगाने की आड़ी लकड़ी, जिस पर दिला लगता है।

इंदरावर-सं०पु० [सं० इंदिरा+वर] लक्ष्मीपति, विष्णु।

इंदरियौ-सं०पु०—इंद्र (अल्पा०)

इंदलोक—देखो 'इंदरलोक' (डि.को.)

इंदव—सं०पु०— एक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में आठ भगण और अन्त में दो गुरु होते हैं।

इंदससतर—सं०पु० [सं० इंद्र+शस्त्र] इन्द्र का भाला जैसा एक शस्त्र विशेष, वज्र (डि.को.)

इंदसेन—सं०पु० [सं० इन्द्रसेन] बलि, विरोचन पुत्र।

इंदा—सं०पु०—परिहार वंश की एक शाखा।

इंदारी—सं०स्त्री० [सं० अंधकार] १ अंधेरा. २ चक्कर आने या आँखों के आगे अंधेरा छा जाने का भाव।

इंदारौ—सं०पु० [सं० अंधकार] अंधकार, अंधेरा।

इंदिरा—सं०स्त्री० [सं०] १ लक्ष्मी. २ शोभा, कांति।

इंदिरा एकादशी—सं०स्त्री०—आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी।

इंदीवर—सं०पु० [सं०] कमल।

इंदु—सं०पु०—१ चन्द्रमा। उ०—हालू कहियौ मंडोउर पूगियां भी द्रंग री देवी तौ इंदु रा आदांन अरथ ऊंचौ कर कीधा।—वं.भा.
२ देखो 'इंद'। १ की संख्या*।

इंदुक—सं०पु०—देखो 'अंदुक'।

इंदुजा—सं०स्त्री० [सं०] नर्मदा नदी।

इंदुमती—सं०स्त्री० [सं०] १ पूर्णिमा. २ राजा अज की पत्नी

इंदुवदना—सं०पु० [सं० इंदु+बदन] चन्द्रमुखी, सुंदरी।

इंदुवार—सं०पु०— १ सोमवार. २ ज्योतिष के अंतर्गत वर्ष कुंडली के तीसरे, छठे, नवें और बारहवें घर में क्रूर ग्रह होने पर होने वाला एक योग जो सोलह योगों के अंतर्गत एवं अशुभ माना जाता है।

इंद्र—सं०पु० [सं०] १ एक वैदिक देवता जो देवताओं का राजा माना जाता है। इसका स्थान अंतरिक्ष है और यह पानी बरसाता है। इसकी स्त्री का नाम शचि है। जयंत इसका पुत्र है।
पर्याय०—आखंडळ, कोसक, गोत्रभिदी, जंभराति, तुखाट, दिवराज, दिवसत, नंदन, नाकपति, परजापति, पाकमासन, पुलमजापति, मघवांन, मघवा, मरुतराट, व्रतवांन, सचीपति, सतमन सुरेसर, सहसनैण।
(रू०भे० इंदर; अल्पा० इंदरियौ)
मौ०—१ इंद्र री परी—अप्सरा, अप्सरा के समान सुंदर स्त्री. २ इंद्र री अखाड़ौ—इंद्र की सभा जिसमें अप्सरायें नाचती है। बहुत सजी हुई सभा जिसमें खूब नाच रंग होता है।
कहा०—इंद्र री मां तिसी फिरै—इंद्र की मां प्यासी फिरती है। सम्पन्न व्यक्ति का बुरे हाल रहना या दूसरों से याचना करना।
२ स्वामी, पति। उ०—मम करिसि ढील छिव हुए हेकमन जाइ जादवां इंद्र जत्र।—वेलि.
वि०—सम्पन्न, श्रेष्ठ, महान, प्रतापी।

इंद्रगोप—सं०पु०—वीरबहूटी नामक कीड़ा।

इंद्रजव—सं०पु० [सं० इंद्रयव] लंबे-लंबे जव के आकार के कुरैया के बीज (अमरत)

इंद्रजाळ—सं०पु० [सं० इंद्रजाल] १ माया जाल, धोखा, जादूगरी, मायाकर्म. २ पुरुषों की बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला।

इंद्रजाळक—वि०—इंद्रजाल संबंधी, इंद्रजाल का।
देखो 'इंद्रजाळ'।

इंद्रजीत—सं०पु०—१ रावण का पुत्र मेघनाद जिसने एक बार इन्द्र को पराजित कर दिया था. २ गरुड़ (नां.मा.)

इंद्रजीत-जेत—सं०पु०—मेघनाद पर भी विजय प्राप्त करने वाला, लक्ष्मण (नां.मा.)

इंद्रताळ—सं०स्त्री०—पन्द्रह मात्राओं की ताल।

इंद्रधनुख, इंद्रधनुस, इंद्रधांनक—सं पु० [सं० इंद्रधनुष] वर्षाकाल में सूर्य की विरुद्ध दिशा की ओर बादलों या वाष्पकणों पर सूर्य-प्रकाश के प्रतिबिंब पड़ने के कारण बादलों में दिखाई देने वाला सात रंगों से बना हुआ एक अर्धवृत्त। उ०—कपोळ गजां चोळ सिंदूर कैसं, ओपै इंद्रधांनख जैसा अरेस।—वचनिका

इंद्रध्वज—सं०पु० [सं०] इंद्र की पताका।

इंद्रपुरी—सं०स्त्री०—इंद्र की नगरी, अमरावती, स्वर्ग।
पर्याय०—देवपर, देवलोक, देवोकस, सरग, सुरपुरी, स्वरग।

इंद्रप्रस्थ—सं०पु०—१ हस्तिनापुर नामक एक प्राचीन नगर जिसे पांडवों ने खांडव वन जला कर बसाया था. २ दिल्ली।

इंद्रबधू—सं०पु०—वीरबहूटी। उ०—मंहदी कर कोमळ बूंद धरी, मनु कंज में इंद्रबधू बिथुरी।—ला रा.

इंद्रमंडळ—सं०स्त्री०—सात नक्षत्रों का समूह जो अभिजित से अनुराधा तक होता है।

इंद्रलुप्त—सं०पु०—बाल उड़ जाने का एक रोग, गंज रोग (अमरत)

इंद्रलोक—सं०पु० [सं०] स्वर्ग, वैकुंठ, अमरावती।

इंद्रवज्रा—सं०स्त्री०—रघुवरजस प्रकाश के अनुसार एक प्रकार का छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में प्रथम दो तगण फिर एक जगण तथा अंत में दो गुरु होते हैं।

इंद्रवाड़ी—सं०स्त्री० [सं० इंद्र+वाटिका] खंडीवन, इंद्र का बगीचा।

इंद्रविधु—सं०पु०—वीरबहूटी। (मि० इंद्रबधू)

इंद्रसांवरणी—सं०पु० [सं०] चौदहवें मनु का नाम।

इंद्रसुत—सं०पु०—इंद्र का पुत्र, जयंत, बालि।

इंद्रांण—सं०स्त्री [सं० इंद्राणी] १ देखो 'इंद्रांणी'। उ०- इण पर वारूं उरवसी, वारूं सिर इंद्रांण।—पा.प्र. २ इंद्रायण का फल. ३ देवी, दुर्गा।

इंद्रांणी—सं०स्त्री०—१ इन्द्र की पत्नी, शची।
पर्याय०—पुलमजा, यंद्रणी, सकप्रिया, सची।
२ इंद्रायण का फल या लता. ३ दुर्गा। उ०—देवी इंद्रांणी चंद्रांणी रनां-रांणी।—देवि.

इंद्रांणिक—सं०पु० [सं० इन्द्राणिक] शृंगार में एक आसन विशेष (कामशास्त्र)

इंद्रा–सं०स्त्री०—देखो 'इंद्राणी' (१)

इंद्रानुज–सं०पु०यौ० [सं०] १ विष्णु, नारायण, हरि. २ श्रीकृष्ण. ३ इन्द्र का छोटा भाई वामनावतार। उ०—**इंद्रानुज** री डंड जो, आवै हरतां आंच। उणरी नीसरणी हुए, इण गढ़ लागै सांच। —बां.दा.

इंद्रायणी–सं०स्त्री०—१ शचि, इन्द्र की पत्नी। उ०—इण वयण सची विलखी उवरि, इंद्र लखी **इंद्रायणी**।—रा.रू.

इंद्रावध–सं०पु० [सं० इन्द्रायुध] वज्र (नां.मा.)

इंद्रावरज–सं०पु० [सं०] ईश्वर (नां.मा.)

इंद्रावाहण–सं०पु०—१ हाथी, गज. २ इन्द्र का वाहन, ऐरावत।

इंद्रासण–सं०पु० [सं० इंद्रासन] १ इन्द्र का सिंहासन। उ०—तिण **इंद्रासण** बिण अिपत पियकर परसत पीठ।—बां.दा.

२ ऐरावत हाथी. ३ राजसिंहासन. ४ ठगण के प्रथम भेद का नाम जिसमें पांच मात्रायें क्रमशः ।SS होती हैं (डि.को.)

इंद्रि–वि०—पांच*।

सं०पु०—१ पांच की संख्या* २ देखो 'इंद्रिय'।

इंद्रिय, इंद्री–सं०स्त्री० [सं० इन्द्रिय] १ बाहरी विषयों का ज्ञान प्राप्त करने वाली शक्ति जो पांच मानी जाती है—चक्षु, श्रोत्र, रसना, नासिका और त्वचा. २ भिन्न भिन्न बाहरी कार्य करने के अंग या अवयव—वाणी, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ (ये कर्मेन्द्रिय कहलाती हैं) लिंगेन्द्रिय, मन, बुद्धि चित्त तथा अहंकार. ३ शिश्न, लिंग. ४ पांच की संख्या*।

इंद्रीजुलाब–सं०पु०—पेशाब लाने की दवा, मूत्र-विरेचन।

इंद्रोकौ–सं०पु०—एक बड़ा वृक्ष विशेष।

इंद्रौ–सं०स्त्री० [सं० इन्द्रिय] १ देखो 'इन्द्रिय'।

सं०पु० [सं० इंद्र] २ देखो 'इंद्र'।

उ०—**इंद्रौ** न धाते न मांसे न लोही।—ह.पु.वा.

इंधण–सं०स्त्री० [सं० इंधन] ईन्धन, जलाने की लकड़ी। उ०—आरणी अगनि अगर में **इंधण** आहुति घ्रत घण-सार अछेह।—वेलि.

इंधारी–सं०स्त्री०—१ अंधकार. २ आंखों के आगे अंधकार छा जाने का भाव, चक्कर आना।

वि०—अंधकारपूर्ण, अंधेरी।

कहा०—इंधारी रात में मूंग काळा—अंधेरी रात में मूंग काले (दिखाई देते हैं)। अज्ञान रूपी अंधकार में भले-बुरे सब एक से हो जाते हैं।

इंधारीजणी, इंधारीजबौ–क्रि०अ०—अंधकारमय होना।

उ०—देखतां देखतां वीजळी पळपळाटौ मारियौ। आभौ **इंधारीजण** लागौ।—वरसगांठ

इंधारौ–सं०पु०—अन्धकार।

इंयुं–अव्यय—यों। उ०—**इंयुं** कहि इंडौ उतारि नै हाट मांहे बैसि रह्या।—चौबोली

इंसाफ–सं०पु० [अ०] १ न्याय। उ०—खाविंद चहत खुद खलक खैर, गफ्फूर गैर **इंसाफ** गैर।—ऊ.का. २ फैसला, निर्णय।

इंस्पेक्टर–सं०पु० [अं०] निरीक्षण करने वाला, निरीक्षक।

इंहकारी–वि०—अहंकारी, गर्व करने वाला। उ०—इळ अवतारी उपगारी, अचड़ रहावै भड़ **इंहकारी**।—ल.पिं.

इ–सं०पु०—१ भेद. २ कुपित. ३ अपाकरण. ४ अनुकम्पा. ५ खेद. ६ संताप, दुःख. ७ भावना. ८ कामदेव. ९ गणेश. १० शिव. ११ सूर्य्य. १२ स्वामी कार्तिकेय. १३ पवित्रता. १४ ब्रह्मा. १५ बकरी. १६ सर्प. १७ इन्द्र. १८ चंद्रमा. (एकाक्षरी)

सर्व०—इस, इन। उ०—जेठ मास कै विखै **इ** भांति जळ-क्रीड़ा श्रीकृष्णजी करै छै।—वेलि. टी.

क्रि०वि० [सं० एव] जोर देने का शब्द ही। उ०—पूत सासरै पांच पांचु **इ** मोनै सूंपिया। जिण कुळ री आ जांच, सरम कठै रै सांवरा।—रांमनाथ कवियौ

अव्यय—१ निश्चयार्थक सूचक शब्द। उ०—पहिलुं **इ** जाइ लगन लै पुंहती, प्रोहित चंदेवरी पुरी।—वेलि.

२ पादपूर्त्यर्थ अव्यय शब्द। उ०—विधपणै मति कोइ वेसासौ, पांतरिया माता **इ** पिता।—वेलि.

वि०—व्यर्थ।

इअ, इए–सर्व०—यह। उ०—पूरे इतै प्रांमिस्यौ पूरौ, **इए** पोछौ अरथ।—वेलि.

अव्यय—इससे, इतने में।

इउं, इऊं–क्रि०वि०—ऐसे, इस प्रकार।

वि०—व्यर्थ।

इकंत–वि० [सं० एकान्त] अकेला, शून्य, निर्जन।

सं०पु०—एकांत।

इक–वि० [सं० एक] एक। उ०—सखी अमीणा कंथ रो, औ **इक** बडो सभाव।—हा.झा.

इकखरौ–सं०पु०—डिंगल गीत (छंद) का भेद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में अन्त में रगण युक्त १४ मात्राएँ होती हैं।

इकटक–क्रि०वि०—निस्पंद नेत्रों से देखना, टकटकी लगाना।

इकटकी–सं०स्त्री०—टकटकी।

इकट्ठौ, इकठौ–क्रि०वि०—एकत्रित।

वि०—एकत्रित किया हुआ, जमा, एकत्र। (स्त्री० इकट्ठी)

इकडंकी–सं०स्त्री०—एकछत्रता। उ०—**इकडंकी** गिण एक री, भूलै कुळ साभाव। सूरां आळस ऐस में, अकज गुमाई आव।—बी.स.

इकडंडी–सं०पु०—एकाधिकारी, वह जो अकेला ही बहुतों को दंड देने में समर्थ हो।

इकढाळियौ–सं०पु०—एक तरफ ढालू छत का बना घास-फूस का छोटा मकान।

इकतर–वि०—१ सत्तर और एक के योग के समान. २ इकट्ठा, एकत्रित।

संपु॰—इकहत्तर की संख्या। देखो 'इकोतर'।

इकतरफा डिगरी–संस्त्री॰—प्रतिवादी की अनुपस्थिति में वादी को प्राप्त होने वाली डिग्री।

इकतरफौ–वि॰ [फा॰] एक पक्ष का, पक्षपात ग्रस्त, एक रुख।

इकता–संस्त्री॰ ऐक्यता, मित्रता। उ॰—तज मन सारी घात, **इकतारी** राखै अधिक। वां मिनखां री बात, रांम निभावै राजिया। —किरपारांम

इकतार–वि॰—बराबर, एक रस समान। उ॰—तपी तपतें सुरता **इकतार**, धपी रसना रस अम्रतधार।—ऊ.का.

क्रि॰वि॰—लगातार, निरन्तर।

इकतारौ–संपु॰—१ केवल एक ही तार लगा हुआ सितार के ढंग का एक बाजा. २ इकहरे सूत का हाथ से बुना जाने वाला एक प्रकार का कपड़ा।

इकताळ–संपु॰—१ एक क्षण, एक पल। उ॰—बोलइ पिंगळ कुमरी बाळ न रहइ मात पखय **इकताळ**।—ढो मा. २ बारह मात्राओं की ताल।

इकताळी–क्रि॰वि॰—जल्दी, शीघ्र।

वि॰—चालीस और एक का योग।

संपु॰—१ इकतालीस की संख्या। देखो 'इकतालीस'।

२ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

इकताळीस–वि॰ [सं॰ एकचत्वारिंशत्, पा॰ एकचत्तालीसा, प्रा॰ एक-चत्तालीस, अप॰ एकतालीस] चालीस और एक के योग के समान।

संपु॰—चालीस और एक के योग की संख्या।

इकताळीसमौ–वि॰—जो क्रम में चालीस के बाद पड़ता हो। ४१ वां।

इकताळीसौ, इकताळो, इकताळौ–संपु॰—४१ वां वर्ष।

इकतियार–संपु॰ [अ॰ इख्तियार] अधिकार, सामर्थ्य।

इकतियारी–संस्त्री॰ [अ॰ इख्तियारी] अधिकार, प्रभुत्व।

इकतीस–वि॰ [सं॰ एकत्रिंशत्, पा॰ एकत्तीसा, प्रा॰ एक्कतीस, अप॰ एकत्रिस] तीस और एक के योग के बराबर।

संपु॰—तीस और एक के योग की संख्या, ३१।

इकतीसमौ–वि॰—जो क्रम में तीस के बाद पड़ता हो। ३१ वां।

इकतीसो, इकतीसौ–संपु॰—१ ३१ वां वर्ष. २ सोलह और पंद्रह पर विश्राम वाला घनाक्षरी नामक दंडक छंद।

इकत्यार–संपु॰ [अ॰ इख्तियार] अधिकार, सामर्थ्य।

इकत्र–क्रि॰वि॰, वि॰—एकत्र।

इकत्रीस–वि॰—देखो 'इकतीस'।

इकदम–क्रि॰वि॰ [फा॰ एकदम] एकदम, अकस्मात, यकायक, अचानक।

इकदरो–संपु॰—पुराने ढंग के बड़े-बड़े भवनों के नीचे का बना मकान, तहखाना (क्षेत्रीय)

इकदेसी–वि॰—एकदेशीय।

इकधारौ–संपु॰—जिसके केवल एक धार हो, एक धार का।

इकपदी–संस्त्री॰—मार्ग।

इकपोत्यौ–संपु॰—एक प्रकार का एक ग्रन्थि वाला लहसुन जिसके मूल की कुली एक ही होती है (अमरत)

इकबाळ–संपु॰ [अ॰ इक़बाल] १ एक बाल, स्वीकार। (प्रायः अपराध स्वीकार करने के लिए प्रयुक्त होता है।)

२ किस्मत भाग्य। उ॰—लागै मो **इकबाळ** सूं, नीसरणी गयणांग। इण गढ़ क्यूं नहिं लागसी, खिविया मोकर खाग।—बां.दा.

३ प्रताप।

इकमणौ–वि॰—एक मन, एक मत।

इकमात-भाई–संपु॰—सहोदर भाई। उ॰—अरु सूजोजी नै सातळजी **इकमात-भाई** हा।—द.दा.

इकमायौ–संपु॰ [सं॰ एक मातृक] सगा भाई, सहोदर भाई। उ॰—पछै राव बीकौ बीदौ **इकमाया-भाई** हा तिणां बीकानेर बसाई। —रा.वं.वि.

इकमायौ-भाई–संपु॰—सहोदर भाई।

इकमोला–वि॰ (ब॰व॰)—एक ही मूल्य के। उ॰—**इकमोला** हजारी तिकी सुनहरी रूपहरी सारवत दिरायजै।—जलाल बूबना री बात

इकयासियौ–संपु॰—इक्यासी का वर्ष।

इकयासी–वि॰ [सं॰ एकाशिति, प्रा॰ एक्कासीइ, अप॰ इकयासी] अस्सी और एक की संख्या के योग के बराबर।

संपु॰—अस्सी और एक की संख्या के योग की संख्या, ८१।

इकयासीमौ–वि॰—जो क्रम में अस्सी के बाद पड़ता हो।

इकरंगौ–विपु॰ (स्त्री॰ इकरंगी) एक जैसी, एक रंग की, एक समान। उ॰—धरम सुकाय दयानन्द धारयो, रात दिवस **इकरंगो**।—ऊ.का.

संपु॰—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

इकर–क्रि॰वि॰—एक समय, एक बार।

इकरखौ–वि॰—एक समान रहने वाला, सदा एक सा स्वभाव रखने वाला।

इकरथ–वि॰—व्यर्थ, बेकार, निष्प्रयोजन।

इकरदन–संपु॰ [सं॰ एकरदन] गणेश, गजानन (डिं.को.)

इकरवा, इकरवाचाप–संस्त्री॰—दीवार में लगाया जाने वाला एक प्रकार का सीधा पत्थर।

इकरस–वि॰—एक रंग का, एक समान।

इकरां–क्रि॰वि॰—एक दफे। उ॰—**इकरां** रांमतणी तिय रावण, मंद हरेगी दह कमळ।—महारांणां सांगा री गीत

इकरांणवौ–संपु॰—एक्कानवे का वर्ष।

इकरांणू–वि॰ [सं॰ एक नवति, प्रा॰ एक्कणउइ, अप॰ एक्कानवे] नब्बे और एक के योग के बराबर।

संपु॰—नब्बे और एक के योग की संख्या, ९१।

इकरांणूं'क–वि॰—एक्कानवे के लगभग।

इकरांणूमौ–वि०—जो क्रम में नब्बे के बाद पड़ता हो।

इकरार–सं०पु० [अ०] किसी काम को करने की स्वीकृति का निश्चय प्रतिज्ञा, वादा, ठहराव।

इकरारनांमौ–सं०पु० [अ० इकरार+फा० नामा] किसी प्रकार का इकरार और उसकी शर्तें लिखा हुआ पत्र, प्रतिज्ञा पत्र।

इकरारा–क्रि०वि०—एक दफा, एक बार। उ०—साई सर सरिता आई इकरारा, धोळा जळधर सूं धाई जळधारा।—ऊ.का.

इकलंग–सं०पु०—देखो 'इकलिंग'।

क्रि०वि०—लगातार निरन्तर। उ०—छिल छिल भर जाय सरवर ताळ, छिनयक चालौ परवा भांग, दोय घड़ी जे इकलंग चालौ।

—लो.गी.

इकळवाई–सं०स्त्री०—स्वर्णकारों का अंगूठी को बड़ी करने का एक औजार विशेष।

इकलांण–क्रि०वि०—१ एकान्त, निर्जन। उ०—डीगोड़ा डूंगर धोरां मांझ, बरसतौ भीणोड़ौ बिसरांम। जिकण में भींजे बा **इकलांण**, बिराजी सांयत बण जजमांन।—सांझ. २ एक दफा।

इकळाई–सं०स्त्री०—१ बढ़ई का एक औजार. २ मोची का एक औजार. ३ एक तह वाला दुपट्टा या चद्दर. ४ अकेलापन. ५ देखो 'इकळायौ'।

इकळायौ–सं०पु०—देखो 'इकळासियौ'।

इकलाळियौ–वि०—समान स्वभाव वाले। उ०—सारै साथ नै सग्ब वसत रौ परीसारौ हुवै छै, पांच पांच दस दस **इकलाळिया** दांइदा भेळा बैठा छै।—रा.सा.सं.

इकळास–सं०पु० [अ० इख़लास] मित्रता, मेल, प्रीति। उ०—मुख ऊपर मिठियास, घट मांही खोटा घड़ै। इसड़ां सूं **इकळास**, राखीजै नहिं राजिया।—किरपारांम

इकळासियौ–सं०पु०—वह ऊँट जिस पर एक ही सवार बैठ सके। (रू०भे० इकळायौ)

इकलिंग–सं०पु०—एकलिंग, शिव का एक रूप जो मेवाड़ के आराध्य देव हैं (डिं.को.)

इकलीम–सं०पु० [अ०] देश। उ०—मोलवी कराड़ै अरज काजी मुल्ला पाड़जै देव हर दळां कर पेल। मेछ्र वांछै जिका हिंद **इकलीम** मझ, खड़ौ राजा 'जसौ' वणै नह खेल।—राजा जसवंतसिंह री गीत

इकलोयण–सं०पु० [सं० एक+लोचन] कौआ (डिं.को.)

इकलौतो–सं०पु०—अपने माँ-बाप का इकलौता पुत्र। (स्त्री० इकलौती)

इकवीस–वि०—देखो 'इक्कीस'। उ०—हुरमखांनो लूट **इकवीस** पालत वीज वाहण रा भरि महाराज डेरै आंणी।—बां.दा.ख्या.

इकसंग–वि०—एक संग या साथ।

इकस–सं०स्त्री०—गर्व, घमंड। उ०—मन री मन रै मांहि, अकबर रै रहगी **इकस**। नरवर कीधी नांहि, पूरी रांण प्रतापसी।

—दुरसौ आढ़ौ

इकसठ–वि० [सं० एकषष्टि, प्रा० इकसट्ठि, अप० एकसट्ठि] साठ और एक के योग के समान।

इकसठमौ–वि०—जो क्रम में साठ के बाद पड़ता हो।

इकसठे'क–वि०—इकसठ के लगभग।

इकसठौ–सं०पु०—६१ वां वर्ष।

इकसमच्चै–क्रि०वि०—अकस्मात्, अचानक, एक साथ।

इकसांसियौ–वि०—एक सांस में सब काम करने वाला।

क्रि०वि०—एक सांस से, बहुत तेज। उ०—तरै जलड़ै कह्यौ, दोड़ियौ **इकसांसियौ** कुं जायं छः।—जलड़ा मुलड़ा भाटी री बात

इकसाखियौ–वि० [इक+साख=फसल+यौ-प्रत्यय] वह प्रान्त, वह गाँव या स्थान विशेष जहाँ केवल एक ही फसल (खरीफ) होती हो।

इकसार–वि०—एक सा, एक समान। उ०—आद अंत **इकसार**, धार हियै व्रह स्यांमध्रम।—जैतदांन बारहठ

क्रि०वि०—लगातार, निरन्तर।

इकसूत–वि०—एक साथ, इकट्ठा।

इकहतर–वि०—देखो 'इकोतर'।

इकांणमौ–वि०—१ ६१ वां. २ ६१ की संख्या का वर्ष।

इकांणू–वि०—नब्बे और एक के योग के बराबर।

सं०पु०—नब्बे और एक के योग की संख्या, ६१।

इकांणूमौ·वि०—देखो 'इकांणमौ' (१)।

इकांत–वि० [सं० एकांत] १ एकांत, निर्जन. २ अकेला।

इकांतरै, **इकांतरौ**–क्रि०वि०—एक दिन को छोड़ कर दूसरा दिन तथा निरन्तर यही क्रम।

सं०पु०—एक ज्वर का नाम जो एक दिन छोड़ कर आता है।

इकाबहादुर–वि०—परिवाररहित अकेला आदमी।

इकावणौ–सं०पु०—५१ वां वर्ष।

इकावन–वि०—देखो 'इक्यावन'।

इकावनौ–सं०पु०—५१ वां वर्ष।

इकयासियौ–सं०पु०—८१ वां वर्ष,।

इकियासी–वि० [सं० एकाशीति, प्रा० एक्कासीइ, अप० इकयासी] अस्सी और एक के योग के समान।

सं०स्त्री०—अस्सी और एक के योग की संख्या।

इकयासी'क–क्रि०वि०—इक्यासी के लगभग।

इकीयासीमौ–वि०—जो क्रम में अस्सी के बाद पड़ता हो।

इकीस–वि०—देखो 'इक्कीस'।

इकीसौ–सं०पु०—२१ वां वर्ष।

वि०- पूर्ण विश्वासी, खरा।

इकेलौ–वि० (स्त्री० इकेली) अकेला। उ०—अंचल गहतै घन रही, एक **इकेली** जोबनपुर।—वी.दे.

इकेवड़–सं०स्त्री०—एक धागे की रस्सी।

वि०– देखो 'इकेवड़ो'।

इकेवड़ियौ–वि०—देखो 'इकेवड़ौ' (अल्पा०)

इकेवड़ोताजीम–सं०स्त्री०—राजा-महाराजा द्वारा दिया जाने वाला आदर या सत्कार विशेष।

इकेवड़ौ–वि० (स्त्री० इकेवड़ी) एक परत का, इकहरा।

सं०पु०—वह व्यक्ति जिसकी कन्या या बहिन से उससे ऊँचे वंश वाले व्यक्ति व्याह कर तो लेते हैं किन्तु उस व्यक्ति के वंश में अपनी लड़की का व्याह नहीं करते।

इकोतर–वि० [सं० एकसप्तति, प्रा० एक्कसत्तरि, अप० इकोतरं] सत्तर और एक के योग के बराबर।

सं०पु०—सत्तर और एक के योग की संख्या। उ०—चौकड़ियौ **इकोतरां** इंद्रराज कराई।—केसोदास गाडण

इकोतरमौ–वि०—इकहत्तरवां, जो क्रम में सत्तर के बाद पड़ता हो।

इकोतरे'क–वि०—इकहत्तर के लगभग।

इकोतरो, **इकोतरौ**–सं०पु०— इकहत्तरवां वर्ष।

इकौ–सं०पु०– देखो 'इक्कौ'।

वि०—एक।

इक्क–वि०—एक।

इक्कबाळ–सं०पु० [अ० एकबाल] एक ग्रहयोग। जिसका जन्म उस समय हो जब सब ग्रह कंटक (१, ४, ७, १०) या पन कर (२, ५, ८, ११) में हो तब राज्य व सुख बढ़ाने वाला होता है। (ताजक ज्योतिष)

इक्कल–वि०—एक। उ०— खग्ग बळ विस्तरि अकब्बर से शत्रु अग्ग, **इक्कल** निवाह्यौ जिहं वेदधरम नत्ताकौ।– बालाबक्स बारहठ

इक्काणमौ, **इक्काणवौ**–वि०—९१ वां, जो क्रम में नब्बे के बाद पड़ता हो।

सं०पु०—९१ वां वर्ष।

इक्कावन–वि०—देखो 'इक्यावन'।

इक्की–सं०स्त्री०—एक प्रकार की कटार रखने की चमड़े की पेटी (या खीसा) जिसका पट्टा गले में डाल लिया जाता है तथा वह पेटी कमर के पास स्थित रहती है। (मि० पड़दड़ी)

इक्कीस–वि० [सं० एकविंशति, प्रा० एगवीस, अप० एकवीस] बीस और एक के योग के समान।

सं०पु०—बीस और एक के योग की संख्या।

इक्कीसमौ–वि०—जो क्रम में बीस के बाद पड़ता हो।

इक्कीसे'क–वि०—इक्कीस के लगभग।

इक्कीसौ–सं०पु०—इक्कीसवां वर्ष।

वि०—पूर्ण विश्वासी, खरा।

इक्कौ–सं०पु०—१ शस्त्र विद्या में प्रवीण बादशाही जमाने का वह मुसलमान योद्धा जो अकेला बड़े-बड़े काम कर सकता हो। उ०—लसकर सूं न्यारौ वहै, **इक्कौ** 'बेग खुसाळ'। हुवौ धकौ हरनाथ सूं, दृढ़ पण हाथ दुझाल।—रा.रू. २ अपने झुंड को छोड़ कर अलग हो जाने वाला पशु. ३ एक प्रकार की घोड़ा गाड़ी, तांगा. ४ किसी रंग की एक ही बूंटी वाला खेलने का ताश का पत्ता।

वि०—एक ही, अद्वितीय, अनोखा, अनुपम, बेजोड़। उ०—मुरधर में पातल मरद, **इक्कौ** रतन अमोल। लोकां ने तो लादसी, मरियां पाछें मोल।—ऊ.का.

इक्कोदुक्कौ–वि०—अकेला-दुकेला।

इक्खणौ, **इक्खबौ**–क्रि०स० [सं० ईक्षण] देखा जाना।

उ०—त्रिकाळग्य तत जांण वांणि जोतिस ततवेता, आचारिज रिख उग्र जिकै **इक्खज** गुण जेता।—रा.रू.

इक्खणौ, **इक्खबौ**–क्रि०स०—देखना। उ०—**इक्खत** जिम हिमकर उदै अंबुधि उफणाया।—वं.भा.

इक्यावन–वि० [सं० एकपंचाशत, प्रा० एक्कावण्ण, अप० एकावन] पचास और एक के योग के बराबर।

सं०पु०—पचास और एक के योग की संख्या।

इक्यावनमौ–वि०—जो क्रम में पचास के बाद पड़ता हो।

इक्यावनौ–सं०पु०—५१ वां वर्ष।

इक्यासी–वि०—देखो 'इकियासी'।

इक्ष्वाक, **इक्ष्वाकु**–सं०पु० [सं०] सूर्यवंश का एक प्रधान राजा जो वैवस्वत मनु के पुत्र थे। इन्होंने अयोध्या को राजधानी बनाया था (रांमकथा)

इखणौ–क्रि०स०—देखना। उ०—बदन बिलोके रांमचंद्र, **इखै** भूप अपार।—रांमरासौ

इखत्यार, **इखत्यारी**–सं०पु० [अ० इख्तियार] अधिकार, काबू, प्रभुत्व, सामर्थ्य।

इखधाळ–सं०पु०—तीर (डि.नां.मा.)

इखळास–सं०पु०—देखो 'इकळास'।

इखवाकि–सं०पु० [सं० इक्ष्वाकु] देखो 'इक्ष्वाकु'।

इखाचळ–सं०पु०—एक पौराणिक पर्वत।

इखु, **इखू**–सं०पु० [सं० इषु] बाण, तीर (ह.नां.)

इख्तियार–सं०पु० [अ०] अधिकार, काबू, सामर्थ्य।

इख्य–सं०पु० [सं० इष्य] वसंत ऋतु (डि.को.)

इख्यारत, **इख्यारथ**–वि०—व्यर्थ, निष्फल। उ०— विसकगाय अणखाय, मोह पाय अळसाय मति। जनम **इख्यारथ** जाय, रांम भजन बिन राजिया।—किरपारांम

इख्वाक–सं०पु० देखो 'इक्ष्वाकु'।

इगताळी, **इगताळीस**–वि० [सं० एकचत्वारिंशत्, प्रा० एक्कचत्तालीस, अप० एकतालीस] चालीस और एक के योग के बराबर।

सं०पु०—चालीस और एक के योग की संख्या।

इगताळीसमौ–वि०—जो क्रम में चालीस के बाद पड़ता हो, ४१ वां।

इगताळीसे'क–वि०—एकतालीस के लगभग।

इगताळीसौ, इगताळौ–सं०पु०—४१ वां वर्ष ।
इगतियार–सं०पु०—देखो 'इखतियार' ।
इगतीस–वि० [सं० एकत्रिंशत्, प्रा० एक्कतीस, अप० एकत्रीस] तीस और एक के योग के बराबर ।
सं०पु०—तीस और एक के योग की संख्या ।
इगतीसमौ–वि०—जो क्रम में तीस के बाद पड़ता हो ।
इगतीसे'क–वि०—३१ के लगभग ।
इगतीसौ–सं०पु०—३१ वां वर्ष ।
इगत्यार–सं०पु० [अ० इख्तियार] अधिकार, सामर्थ्य, प्रभुत्व, काबू । (रू०भे० इखतियार)
इगलांम–सं०पु० [अ० इगलाम] लड़कों के साथ अप्राकृतिक मैथुन, लौंडेबाजी, गुदा मैथुन (मा.म.)
इगलांमी–सं०पु० [अ० इग्लाम] गुदा मैथुन करने वाला, लौंडेबाज (मा.म.)
इगसट–वि०—देखो 'इगसठ' ।
इग्यूं–सं०स्त्री०—दीर्घ ई की मात्रा ।
इकसठ–वि० [सं० एकषष्ठि, प्रा० इकसट्ठि, अप० एकसट्ठि] साठ और एक के योग के बराबर ।
सं०पु०—साठ और एक के योग की संख्या ।
इकसठमौ–वि०—जो क्रम में साठ के बाद पड़ता हो ।
इकसठे'क–वि०—जो साठ और एक के योग के लगभग हो ।
इकसठौ–सं०पु०—६१ वां वर्ष ।
इगियार–वि०—देखो 'इगियारे' । उ०—राजा दित तिण वरस वरस इगियार सिंघ सुण ।—अज्ञात
इगियारमौ–वि०—जो क्रम में दस के बाद पड़ता हो ।
इगियारस–सं०स्त्री० [सं० एकादशी] मास के कृष्ण अथवा शुक्ल पक्ष की ग्यारहवीं तिथि, एकादशी ।
कहा०—इगियारस रै घरै बारस पांवणी—एकादशी के घर द्वादशी पाहुनी । एकादशी के दिन एक वक्त भोजन करने के बहाने खूब तर माल उड़ाना —व्रतादि के बहाने माल उड़ाने वालों के प्रति ।
इगियारे–वि० [सं० एकादशन्, प्रा० एक्कारस, अप० एग्यारह] ग्यारह, दस और एक के योग के बराबर ।
इगियारे'क–वि०—ग्यारह के लगभग ।
इगीयार–वि०—देखो 'इगियारे' ।
इगुणीस–वि०—देखो 'उगणीस' (वं.भा.)
इग्या–स०स्त्री० [स० आज्ञा] आज्ञा, हुक्म, आदेश । उ०—पीछै वीकोजी श्री जी री इग्या प्रमांण गांव चांडासर आया ।—द.दा.
इग्यार–वि०—देखो 'इगियारे' ।
इग्यारमौ–वि०—देखो 'इगियारमौ' ।
इग्यारस–सं०स्त्री०—देखो 'इगियारस' ।
इग्यारै–वि०—देखो 'इगियारे' ।
इग्यारौ–सं०पु०—ग्यारह की संख्या का वर्ष ।
इड़करी—देखो 'इडकरी' ।
इड़ा–सं०स्त्री० [सं०] १ शरीर के वाम भाग में रहने वाली इड़ा नाम की एक नाड़ी विशेष जो पीठ की रीढ़ से होकर नाक तक है । बांयी श्वास इसी से होकर आती है । (योग) २ दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो कश्यप ऋषि की पत्नी थी. ३ सरस्वती. ४ चंद्र पुत्र बुध की पत्नी जो वैवस्वत मनु की पुत्री और राजा पुरुरवा की माता थी. ५ दुर्गा, पार्वती ।
इड़ौ–क्रि०वि० (स्त्री० इड़ी) ऐसा ।
इचरज–सं०पु० [सं० आश्चर्य] आश्चर्य, अचंभा, विस्मय ।
उ०—सिव सूं उमंग पूछै सगत, इचरज अत आवत यहैं । ऊ कहौ मोहि प्रभु संत उर, रात दिवस किण विध रहैं ।—र.रू.
इचरजणौ, इचरजबौ–क्रि स०—आश्चर्य करना ।
इचरजवंत–वि०—आश्चर्यान्वित । उ०—इसी सुणि राजा इचरजवंत हुवौ ।—पलक दरियाव री बात
इच्छ–सं०स्त्री० [सं० इच्छा] लालसा, इच्छा, चाह, रुचि अभिलाषा ।
इच्छणौ, इच्छबौ–क्रि०स०—इच्छा करना ।
उ०—इच्छै धन गणिका अवर, धनवंतां घर धाय ।—वं भा.
इच्छना–सं०स्त्री० [सं० इच्छा] इच्छा, अभिलाषा । उ०—तर सूरय कह्यौ—आंबाई देवी मेवाड़ ईडर में गढ़ासंध छै, उठा जात बोलो, इच्छना करो, आधांन रहसी, तठा पछै जात करज्यो ।—नैणसी
इच्छा–सं०स्त्री०—वह मनोवृत्ति जो किसी सुखद वस्तु की प्राप्ति की ओर ध्यान को ले जाने वाली हो । लालसा, अभिलाषा ।
इच्छाभेदी–सं०पु०—जुलाब के लिये काम में आने वाली औषधि । (अमरत)
इच्छु–सं०पु० [सं० इक्षु] ईख, गुड़, ऊख ।
इच्छुक–सं०पु० [सं० इक्षु] ईख ।
वि० [सं० इच्छुक] इच्छा करने वाला, अभिलाषा करने वाला ।
इच्छू–देखो 'इच्छु' ।
इज–अव्यय—निश्चयार्थक सूचक शब्द ही ।
इजगर–सं०पु० [सं० अजगर] बड़ा व खूब मोटा सर्प की जाति का एक जन्तु, अजगर ।
कहा०—१ इजगर करे न चाकरी, पंछी करे न कांम । दास मलूका कह गये, सब के दाता रांम—आलसी व्यक्ति के लिये. २ इजगर पूछै बिजगरा, कहा करत हो मित । पड़ा रहत हां रेत में, हरी व रत है चित—आलसी व्यक्ति के लिये ।
इजतदार–वि० [फा० इज्जत+दार] प्रतिष्ठित, सम्मानित ।
इजरज–सं०पु० [सं० आश्चर्य] आश्चर्य, अचंभा ।
इजराय–सं०पु० [अ०] १ जारी करना. २ अमल में लाना, प्रयाग करना. ३ प्रचार करना ।
इजळकणौ, इजळकबौ–क्रि०अ०—छलकना, मर्यादा बाहर होना, तुच्छता प्रकट करना ।

इजळकौ–सं०पु०—छलकने की क्रिया या भाव।

इजळास–सं०पु० [अ०] १ बैठक, हाकिम की बैठक. २ मुकदमों के फैसले करने का स्थान, कचहरी, न्यायालय।

इजवाळणौ, इजवाळबौ–क्रि०स०—उज्ज्वल करना, चमकाना।

इजवाळियोड़ौ–भू०का०कृ०—उज्ज्वल, उज्ज्वल किया हुआ, चमकाया हुआ। (स्त्री० इजवाळियोड़ी)

इजहार–सं०पु० [अ०] १ प्रकट करना, प्रकाशन। उ०—जल्लाल जुल्म **इजहार** जाब, होयगौ कयामत में हिसाब।—ऊ.का.
२ अदालत के सामने दिया जाने वाला बयान या गवाही।

इजाजत, इजाजती–सं०स्त्री० [अ० इजाजत] १ आज्ञा, हुक्म. २ स्वीकृति, मंजूरी।
उ०—आपकी **इजाजती** चहत अग्ग, मुरधरा जांणकौ देहु मग्ग।—ऊ.का.

इजाफे, इजाफै, इजाफौ–सं०पु० [अ० इजाफा] १ बढ़ती तरक्की. २ व्यय के पश्चात् बचा हुआ धन, बचत।

इजार–सं०पु० [फा० इजार] पायजामा, सूथन।

इजारदार–सं०पु० [अ० इजार+फा० दार] ठेकेदार।

इजारबंद–सं०पु० [अ०] पायजामे या लँहगे के नेफे में उसे कमर से बाँधने के लिये पड़ा रहने वाला सूत या रेशम का जालीदार या सादा बँधन, नाड़ा।

इजारेदार–सं०पु० [अ० इजारे+फा० दार] ठेकेदार।

इजारौ–सं०पु० [अ० इजारा] उदरथ या किराये पर देने का भाव, अधिकार, इख्तियार।

इजं-विजं–वि०—१ एक दूसरे से अधिक. २ बराबर का, समान, सदृश्य. ३ भिन्न-भिन्न प्रकार के।

इज्जत–सं०स्त्री० [अ०] मान, प्रतिष्ठा, आदर।
क्रि०प्र०—करणी, गमणी, गमावणी, जावणी, राखणी, रे'णी, होणी।
मुहा०—१ इज्जत उतारणी—मर्यादा को नष्ट करना. २ इज्जत करणी—सम्मान करना, मर्यादा करना. ३ इज्जत खोणी—बेइज्जत होना. ४ इज्जत गमाणी—आबरू खोना. ५ इज्जत जाणी—बइज्जत होना. ६ इज्जत डुबोणी—इज्जत खराब करना, अप्रतिष्ठित करना. ७ इज्जत दो कौड़ी री करणी—अप्रतिष्ठा करना; इज्जत बिल्कुल बरबाद करना. ८ इज्जत पाणी—प्रतिष्ठा प्राप्त करना. ९ इज्जत बिगाड़ना—आबरू नष्ट करना, सतीत्व नष्ट करना. १० इज्जत मिळणी—बड़ा पद मिलना, प्रतिष्ठित होना. ११ इज्जत में बट्टो लागणौ—आबरू खराब होना. १२ इज्जत में बट्टो लगाणौ—इज्जत खराब करना. १३ इज्जत राखणी—इज्जत बचा लेनी. १४ इज्जत होणी—प्रतिष्ठा होना; आदर पाना।

इटियासी–वि०—देखो 'इठियासी'।

इटीडांड, इट्टी–सं०स्त्री०—गुल्ली।

इठंतर–वि० [सं० अष्टसप्तति, प्रा० अट्ठहत्तरि, अप० अठोत्तरि] सत्तर और आठ के योग के बराबर।
सं०पु०—सत्तर और आठ के योग की संख्या।

इठंतरमौ–वि०—जो क्रम में सतहत्तर (७७) के बाद पड़ता हो।

इठंतरे'क–वि०—जो सत्तर और आठ के योग के लगभग हो।

इठंतरौ–सं०पु०—७८ वाँ वर्ष।

इठत्तर–वि०—देखो 'इठंतर'।

इठयासी–वि०—देखो 'इठियासी'।

इठांणमौ–वि०—जो क्रम में सत्तानवे के बाद पड़ता हो।

इठांणवौ—सं०पु०—९८ वाँ वर्ष।

इठणूं–वि० [सं० अष्टनवति, प्रा० अट्ठाणउइ, अप० अट्ठानवे] जो नब्बे और आठ के योग के बराबर हो।
सं०पु०—नब्बे और आठ के योग की संख्या।

इठांणूक–वि०—अट्ठानबे के लगभग।

इठासी–वि०—देखो 'इठियासी'।

इठियासियौ–सं०पु०—८८ वाँ वर्ष।

इठियासी–वि० [सं० अष्टाशीति, प्रा० अट्ठासीइ, अप० अट्ठासी] जो अस्सी और आठ के योग के बराबर हो।
सं०पु०—अस्सी और आठ के योग की संख्या।

इठियासी'क–वि०—अट्ठासी के लगभग।

इठियासीमौ–जो क्रम में ८७ के बाद पड़ता हो।

इठसूं–क्रि०वि०—इधर से।

इठै–क्रि०वि०—यहाँ, इस जगह।

इडकरी–वि०—मस्त। उ०—पण भूंडण दारू रै मतवाळै ज्यूं **इडकरी** हुई। लोहियां सूं पूर हुयोड़ा डाढ़ाळौ अर भूंडण दोनूं अरबद नूं हालिया।—डाढ़ाळै सूर री बात

इडग–वि० [सं० अडिग] अडिग, अटल, निश्चल। उ०—तौ पद अत्रि-धांन प्रवाड़ा सूरत अरविंद **इडग** तंत इधकार।—र.रू.

इडांणी–सं०स्त्री०—कपड़े की बनी हुई छोटी गोल गद्दी जिसे बोझ उठाते समय सिर पर रक्खा जाता है, गेंडुरी।

इढ़यासी–वि०—देखो 'इठियासी'।

इढ़ै–क्रि०वि०—यहाँ, यों।

इण–क्रि०वि०—इधर।
सर्व०—इस, यह।
कहा०—१ इण कांन सुणी नै उण कांन काढ़ी (गई)—इस कान से सुन कर उस कान से निकाल देना—सुनी हुई बात का कोई असर न होने पर. २ इण पार कै उण पार—इस पार या उस पार; अत्यंत जोखिम के कार्य करने में महान हानि व महान लाभ दोनों ही हो सकते हैं. ३ इण मूंडै मसूर री दाळ—यह मुंह और मसूर की दाल; इस अवस्था में अमुक वस्तु की प्राप्ति की

भाषा व्यर्थ है (व्यंग्य). ४ इण सूं भागे तो काळी (पीळी) भींत है—इससे भागे जाना असम्भव है; इससे भागे सम्भव नहीं.
५ इण हात घोड़ी नै उण हात गधो—इस हाथ में घोड़ा और उस हाथ में गधा; स्नेह और डांट दोनों प्रयोग करने पर; भला और बुरा दोनों कर सकने की सामर्थ्य रखने पर. ६ इण हाथ लेणी नै उण हाथ देणी—इस हाथ लेना तथा उस हाथ देना; जो व्यक्ति कुछ देता है वही लेने का अधिकार रखता है और जो व्यक्ति कुछ लेता है उसे कुछ देना भी चाहिये; कार्य का प्रतिफल तुरन्त मिलेगा; इधर कार्य करो तथा प्रतिफल तैयार; उसी को मिलता है जो कुछ देता है।

इणगत–क्रि०वि०—इस प्रकार।

इणगी–क्रि०वि०—इस ओर, इधर। उ०—इयुं करतां बजार मांहे फिरै, कपड़ा मोलावै। **इणगी** उणगी जोवै, खबरदारी करै।
—चौबोली

कहा०—इणगी कूवौ उणगी खाड, गत कठै ही कोयनी—इधर कुआ और उधर खाई, कहीं भी गति नहीं है;' दोनों ओर विपत्ती या हानि !

इणघड़ी–क्रि०वि०—इस समय, ठीक इसी समय।

इणतोर–क्रि०वि०—इस प्रकार। उ०—तिण सकार **इणतोर** सतत गणिका समुभाई।—वं.भा.

इणभाय–क्रि०वि०— इस प्रकार, इस भांति ! उ०—कुळवंती सूं क्रीत री, उलटी गति **इणभाय**।—बां.दा.

इणरीत–क्रि०वि०—इस तरह, इस प्रकार। उ०—रात दिवस **इणरीत** प्रगट घड़ियाळ पुकारै।—र.रू.

इणबार–इस वक्त, इस बार।

इणबिचाळै–क्रि०वि०—इतने में।

इणविध–क्रि०वि०—इस तरह, इस प्रकार।

इणवीच–क्रि०वि०— इतने में।

इणहिज, इणहीज–सर्व०—१ यह ही. २ इसीके, इसके।
उ०—जोगिण जोगी सूं कहइ, सांभळि नाथ समथ्थ। का जीवाड़उ मारुवी, हूं पिण **इणहिज** सथ्थ।—ढो.मा.
३ इसने ही, इसने।

इणां–सर्व०—इन, इन्होंने। उ०—**इणां** तौ उहीज वेळा बंधुगढ़ रौ मारग लियौ सौ रात दिन कासीद खेय हालै ज्यूं चालिया।
—पलक दरियाव री बात

क्रि०वि०—यहां, इधर, इस ओर।

इणि–सर्व०—इस। उ०—डूंगरिया हरिया हुया, वणै भिंगोरचा मोर। **इणि** रिति तीनइ नीसरइ, जाचक चाकर चोर।—ढो.मा.
क्रि०वि०—इसमें।

इणिया-गिणिया–वि०—इने-गिने, कुछ, कतिपय।

इणियाळी–वि०—तीखा, नोंकदार (आंख के लिए)
उ०—अम्रित वैणी कांमणी सिणगार सझिया छै, **इणियाळा** काजळ ठांसिया छै।—रा.सा.सं.

इणी–सर्व०—इस, इसी (मि० इणी) उ०—मिनख जमारै आय, रांमजी रा गुण भूला। कहै दास सगरांम, **इणी** सम कांई सूला।
—सगरांमदास

सं०स्त्री०—१ नोक, सिरा।
कहा०—इणी चूकी, धार भागी—अनी चूकी, धार टूटी; ध्यान हटा कि हानि हुई।
[सं० अनीक] २ सेना की टुकड़ी या सेना का भाग। उ०—सु दखण्यां री फौज री दो **इणी** है। प्यादां री **इणी** रै बीचै तौ सावंतराय घोड़े असवार हुवौ—द.दा. ३ सेना। उ०—सेना तौ पण आप नूं समाचार मेलूं छूं अरु मोयल डावी **इणी** में लड़सी नै जीवणी में तुरक रहसी।—द.दा.

इणी-पांणी–सं०स्त्री०—साहस, शक्ति, सामर्थ्य। उ०—१ न सकियौ आंगमण तरै 'औरंग' नमै छिलंतै मछर पेखे अछायौ। कमंध कमंधां धणी मळै असहां कमळ **इणी-पांणी** धणी हुअे आयौ।—द.दा.
२ देखो 'अणी-पांणी'।

इत, इतकू–क्रि०वि०—१ इधर, इस ओर. २ यहां। उ०—तठा उपरांति करि नै राजांन सिलांमति फेर पातसाहजी हुकम कियौ। हकीकत **इत** कहै छै।—रा.सा.सं.

इतणौ–सर्व०—इतनौ।

इतफाक–सं०पु० [अ० इत्तफाक] १ मेल-मिलाप, सहमति, सहयोग।
२ मौका, अवसर। उ०—आखर **इतफाक** असा हुवा कै पातसाहजी का खजांना लाहौर सूं आवता था।—द.दा.
क्रि०प्र०—पड़णौ-होणौ।

इतबार–सं०पु० [अ० एतबार] विश्वास, भरोसा। उ०—१ तद आप कही-म्हांनै थारौ **इतबार** छै।—पदमसिंह री बात
उ०—२ कोयक कहै कुसागड़ी, धवळ न खांचै भार। इण वायक रौ एक ही, उर न करै **इतबार**।—बां.दा.

इतबारी–सं०स्त्री०—विश्वास करने का भाव या क्रिया।
वि०—१ विश्वासपात्र। उ०—आळै री कूंची जबरदार मोहण कन्है छै सो मांग लीजौ, मोहण **इतबारी** छै।
—पलक दरियाव री बात
२ विश्वास योग्य। उ०—साहणी जैमल निपट वडौ आदमी हुतौ, **इतबारी** लायक।—नैणसी

इतमांम–सं०पु० [अ० एहतमाम] १ इंतजाम, व्यवस्था, प्रबन्ध.
सं०स्त्री०—२ बादशाह की सवारी के आगे नकीब से की जाने वाली ध्वनि।
वि०—रोकटोक बिना। उ०—खासग्रांम **इतमांम** विण, तेड़ायौ 'अगजीत'। साह मनैं अंतर तई, वचने देखी प्रीत।—रा.रू.

इतमीनांन–सं०पु० [अ०] विश्वास, सन्तोष, भरोसा।

इतमीनांनी–वि०—भरोसे का, भरोसे संबंधी।

इतर–वि० [सं०] १ अपर, दूसरा, अन्य। उ०—स्वइच्छा दिच्छा तें इतर नहिं इच्छा सद सुखी।—ऊ.का.
२ नीच, पामर. ३ साधारण, सामान्य।
सं०पु० [फा० इत्र] इत्र, पुष्पसार।

इतरणौ, इतरबौ–क्रि०अ०—इतराना, घमंड करना, इठलाना, ऐंठना, ठसक दिखाना।
इतरणहार, हारौ (हारी), इतरणियौ–वि०—इतराने वाला।
इतराणौ, इतरावणौ, इतराबबौ–(रू०भे०)
इतरिग्रोड़ौ, इतरियोड़ौ, इतरयोड़ौ–भू०का०कृ०—इतराया हुआ।
इतरीजणौ, इतरीजबौ—इतराया जाना।
इतरीजिग्रोड़ौ, इतरीजियोड़ौ, इतरीज्योड़ौ–भू०का०कृ०—इतराया गया हुआ।

इतरत–वि० [सं० इतर] पृथक, अन्य, अतिरिक्त, सिवाय।

इतरदांन–सं०पु० [फा० इत्र+दान] इत्र रखने का पात्र।

इतराज–सं०पु० [अ० एतराज] १ विरोध, बिगाड़, नाराजी.
२ एतराज, आपत्ति।

इतराजी–सं०स्त्री०—एतराज।
वि०—एतराज संबंधी।

इतरांणौ, इतराबौ–क्रि०अ०—देखो 'इतरांणौ'।

इतरांयोड़ौ–भू०का०कृ०—इतराया हुआ, घमंड किया हुआ।
(स्त्री० इतरायोड़ी)

इतरावणौ, इतरावबौ–क्रि०अ०स०—देखो 'इतरणौ'।

इतरावियोड़ौ–भू०का०कृ०—इतराया हुआ। (स्त्री० इतरावियोड़ी)

इतरियोड़ौ–भू०का०कृ०—इतरा हुआ, इठला हुआ।
(स्त्री० इतरियोड़ी)

इतरे, इतरै–क्रि०वि०—इतने में। उ०—बाजोटां ऊतरि गादि बैठी, राजकुंग्ररि सिंगार रस। **इतरै** एक आली ले आवी, आंनन आगळि आदरस।—वेलि.

इतरौ–सर्व० (स्त्री० इतरी; बहु० इतरा) इतना।

इतरो'क–वि०—इतना सा।

इतळउ–वि०—इतना, इतनी मात्रा का। उ०—एकरिग वहिलइ जेसळ साथ, इम ग्रेवडि मांडी नरनाथ। **इतळउ** कहिइ मारहउ मांन, कहियउ चाचगदे राजांन।—ढो.मा.

इतवरी–सं०स्त्री०—असती, पुंश्चली, कुलटा स्त्री।

इतबारी–वि०—विश्वासपात्र, विश्वासयोग्य। उ०—अे दिलगीर हुइ डेरे गया। पछै आपरा **इतबारी** चाकर खवास पासवानां साथै इण नूं घणा ओळभा कहाड़िया।—नैणसी (मि० इतबारी)

इतां–वि०—१ इतने। उ०—सुजु करै ग्रहीरां मरिस सगाई, ओळांडै राजकुळ **इतां**।—वेलि.
सर्व०—इन्होंने। उ०—मुख **इतां** धणी छळ मारवां, मुहर अणी वध मेलिया।—रा.रू.

इति–ग्रव्यय०—समाप्तिसूचक शब्द।
सं०स्त्री०—समाप्ति, अंत।

इतियाचार–सं०पु० [सं० अत्याचार] अत्याचार, जुल्म।

इतिहास–सं०पु० [सं०] १ पूर्व वृत्तांत. २ वह वर्णन जो किसी प्रसिद्ध घटना या उससे संबंध रखने वाले पुरुषों, स्थानों आदि का कालक्रम मे किया जाय। तवारीख. ३ पुरुषों की बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला।

इतिहासी–वि०—१ ऐतिहासिक, इतिहास संबंधी। २ इतिहास जानने वाला।
उ० –लीधो हर लूटेह, भारत इतिहासी भवन। 'ओझा' विन ऊठेह, हिंदवां रै ज्वाळा हियै।—सांवळदांन आसियौ

इती–वि०स्त्री०—इतनी।

इतेई–क्रि०वि०—इतने में।

इतै–क्रि०वि०—इतने में. २ तब तक। उ०—सूर याहर चढ़ै चारणां सुरहरी, **इतै** जस जितै गिरनार आबू।—बां.दा.
३ अब तक. ४ इधर। उ०—अज्ज धरम रच्छक **इतै** रु जवनिस्ट उतै, घाट हल्दी रण भमावं भट भालां की।
– बालाबक्ष बारहठ

इतो'क–वि०—देखो 'इतोसोक'।

इतोलणौ, इतोलबौ–क्रि०स०—शस्त्र उठाना। उ०—इम कहिय असुरि आउध **इतोलि** पसरिस्यां देस गढ़ रूंधि प्रोळि।—रा ज.सी.

इतोसो'क–वि०—इतना सा, जरा सा।
कहा०—आभौ इतोसो'क दीसै—आकाश इतना-सा (बहुत छोटा) दिखाई देता है। संकुचित दृष्टि के लिये प्रयुक्त।

इतौ–वि०—इतना। उ०—**इतौ** पुकारचौजी नारायणजी परमेसरजी।
—मीरां.

इतौसौ–वि०—इतना सा।

इत्तला–सं०स्त्री० [अ० इत्तलाअ] सूचना, खबर।

इत्तेई–क्रि०वि०—इतने में।

इत्तौ–वि०—इतना। (बहु० इत्ता)
कहा०—इत्ता वरस दिल्ली में रह'र भाड़ ही भूंजी—इतने वर्ष दिल्ली में रह कर भाड़ ही भूंजी; अच्छे स्थान में रह कर कोई लाभ नहीं उठाया।

इत्थंतरी–ग्रव्यय—इस समय, ऐसे समय पर। उ०—नव जळ भरिया मग्गाड़ा, गयणि धड़क्कइ मेह। **इत्थंतरी** जइ आविसिइ, तइ रइ जांणिस्सिइ देह।—हेम

इत्थ–क्रि०वि० [सं०] ऐसे, यों, इस प्रकार, इस तरह। उ०—जिण राव त्रिणेही भवणपति सिद्ध 'लल्ल' इम उच्चरै। **इत्थ** चवत्थौ राव हुवै तौ दिव जळतौ कर धरै।—लल्ल भाट

इत्थसाल–सं०पु० [अ०] कुंडली के सोलह योगों में से एक जब एक वेगगामी ग्रह मंदगामी ग्रह से अंश में कम हो और परस्पर मुंह

देखते हो तब यह योग होता है (ताजक ज्योतिष)

इत्याद, इत्यादि, इत्यादिक, इत्यादिका, इत्यादीक–अव्यय [सं० इत्यादि] प्रकार, अन्य, प्रभृति, आदि। उ०—१ **इत्याद** अवधा दुख अकळ, सकळ विरोधी सुर धरम।—क.कु.बो.

उ०—२ **इत्यादिक** अज्जा कथितादिक ऊणी। पहुची प्रमदा पथ परमारथ पूणी।—ऊ.का.

इत्र–सं०पु० [अ०] अत्तर, पुष्पसार।

इथ–क्रि०वि०—यहाँ।

इथिये, इथियै–क्रि०वि०—यहाँ, इधर।

इदक–वि० [सं० अधिक] अधिक, ज्यादा।

इदकमास–सं०पु० [सं० अधिक+मास] प्रति तीसरे वर्ष आने वाला अधिक मास जो चांद्र वर्ष और सौर वर्ष को बराबर करने के लिये चांद्र वर्ष में जोड़ लिया जाता है, इसमें शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्या पर्यंत संक्रांति नहीं पड़ती; पुरुषोत्तम मास।

कहा०—काळ में इदक मास—अकाल में अधिक मास; विपत्ति में फिर आपत्ति आने पर।

इदकाई–सं०स्त्री०—अधिकता, विशेषता। (रू०भे० इधकाई)

इदकी–वि०—१ असाधारण, विशेष, बहुत। उ०—सांझड़ी दीसै घण रूपाळ, दुधारी वेळा **इदकी** जांण।—सांझ

(रू०भे० इधकी) २ विशेष (द.दा.)

इदकौ–वि० [सं० अधिक] (स्त्री० इदकी) अधिक, विशेष। उ०—गरभीजण असमांन बुगलियां मिळवा आई। **इदका** हुवा सुगन लेवतां मेघ विदाई।—मेघ०

इदत–वि०—प्रकाशमान।—पूगी जसवास समंद सत, पाजा **इदत** राजा सुकर अनूप। केलपुरा सारण पर काजा, राजा 'अमर' परीछत रूप।
—अज्ञात

इद्दत–सं०स्त्री० [अ०] चालीस दिनों का वह अशौच जो मुसलमान स्त्रियों को पति की मृत्यु के बाद रखना पड़ता है। इन दिनों वह दूसरे पुरुष से विवाह नहीं कर सकती।

इद्ध–वि०—प्रकाशित, दीप्त। उ०—सुत बीस हुवा जिण रै प्रसिद्ध। अनुजात गुणां सत-केतु **इद्ध**।—वं.भा.

इधक–वि० [सं० अधिक] अधिक, बहुत। उ०—बन के विहार अंजन कंवार, धुर मिळे धाय चित **इधक** चाय।—र.रू.

इधकजथा–सं०स्त्री०—डिंगल गीत (छंद) रचना का एक विशेष अलंकार जिसमें रूपकालंकार द्वारा वर्णन करके उस पर व्यतिरेक अलंकार लगाया जाता है।

इधकताई–सं०स्त्री०—विशेषता, अधिकता।

इधकमास, इधकमासौ–सं०पु०—देखो 'इदकमास'।

इधकाई, इधकाय–सं०स्त्री०—अधिकता, विशेषता। उ०—लघु तें दीरघ पुन पुलित, यां मात्रा **इधकाय**। त्यां छोटन बड किय 'पता', बड़े महांन बढ़ाय।—जैतदान बारहठ

इधकार–सं०पु०—देखो 'अधिकार'। उ०—प्रसध नांम **इधकार** जगजारै मांटी पणी। अतुर दातार कीरत उजाळा।—र.रू.

इधकारी–सं०पु०—देखो 'अधिकारी'।

इधकारौ–सं०पु०—मान, प्रतिष्ठा, इज्जत।

इधकेरौ–वि०—अधिक, विशेष। उ०—आद तू हीज आतमध इधकां **इधकेरौ**।—केसोदास गाडण

इधको, इधकौ–वि० पु०(स्त्री० इधकी)—बहुत, अधिक, विशेष।

उ०—नित नवली मौजां करै, नित नित नवली सेज। ढोलौ माळवण एकठा, **इधकै** इधकै हेज।—ढो.मा.

इधणहार–सं०पु०—लकड़हारा। उ०—चाला चउरास्या न लावी छइ वार। भाड़ी आवज्यौ **इधणहार**।—वी.दे.

इधराणौ, इधराबौ–क्रि०स०—उद्धार करना। उ०—इडर बळे वेद इधराया ताडै दळ सुरतांण तणा।—महाराणा सांगा री गीत

इधरायोड़ौ–वि०—उद्धार किया हुआ। (स्त्री० इधरायोड़ी)

इधरावणौ, इधरावबौ–क्रि०स०—देखो इधरांणौ'। (रू०भे०)

इनकम–सं०स्त्री० [अं०] आय, आमदनी, अर्थागम।

इनकार–सं०पु० [अ०] अस्वीकृति, नामंजूरी।

इनसांन–सं०पु० [अ० इंसान] मनुष्य।

इनसानियत–सं०स्त्री० [अ० इन्सानियत] मनुष्यता, मनुष्यत्व, भलमनसी।

इनसाफ–सं०पु० [अ० इंसाफ] १ न्याय, अदल. २ फैसला, निर्णय।

इनसालवेंट-वि०—दिवालिया।

इनांम–सं०पु० [फा० इनआम] पुरस्कार, पारितोषिक।

इनायत–सं०स्त्री० [अ० अनायत] १ कृपा, दया, अनुग्रह, एहसान।

२ देना क्रिया का भाव। उ०—पातसाह जहांगीरजी मुनसब **इनायत** कीयौ।—द.दा.

इनायतनांमौ–सं०पु०—कृपापात्र, वह पत्र या लेख जिसमें कृपापूर्वक कोई वस्तु दी जाने का उल्लेख हो।

इनियाउ, इनियाव–सं०पु० [सं० अन्याय] अन्याय, अत्याचार।

उ०—उभळियौ **इनियाव** सुजळ इळ ऊपर। एकोउदम फिरै न आज।
—अज्ञात

इनेक–वि०—अनेक, बहुत, कई।

इनै–सर्व०—इसे।

क्रि०वि०—इस ओर, इस तरफ।

इन्यांम–सं०पु०—देखो 'इनांम'। उ०—राजमती **इन्यांम** दी। मढ़ी है थांनीक चांपानेर।—वी.दे.

इफरात–सं०स्त्री० [अ०] अधिकता, बाहुल्य, ज्यादती।

इब–क्रि०वि०—१ अब। उ०—भूंडण विचार कीयौ—जाया पूत मरिया छै, डाढ़ाळा सारीखौ खाविंद मर गयौ **इब** कीसूं जीवणौ छै।
—डाढ़ाळा सूर री बात

२ इस प्रकार, ऐसे। उ०—आवियौ हुकम जोधांण **इब** द्रढ़ सुरतांण दिलेस री। हित सूझ सवायौ होयबा कर चाह्यौ 'दुरगेस'।
—रा.रू.

इवडौ–वि० (स्त्री० इवडी) इतना, ऐसा। उ०—संन्यासिए जोगिए तपसि तापसिए कांइ **इवडा** हठ निग्रह कीया।—वेलि.
(रू०भे० इवडौ)

इबारत–सं०स्त्री० [अ०] लेख, लेख-शैली, लिखा हुआ।

इबारती–वि०—गद्यात्मक।

इब्राहीमी–सं०पु० [अ०] इब्राहीम लोदी के समय जारी एक सिक्का विशेष।

इभ–सं०पु० [सं०] हाथी (स्त्री० इभी)
उ०—**इभ** कुंभ अंधारी कुच सु कंचुकी, कवच संभु कांम क कळह।
—वेलि.

इभकोस–सं०पु० [सं० इभकोष] तलवार की म्यान, आवरण (डिं.को.)

इभरमणौ–सं०पु० [सं० इभ=हाथी+रा० रमणौ=केलि करना]
हाथी से क्रीड़ा करने वाला सिंह। उ०—ऐ भल भड़ है आज रा, थाहर जासी थेट। चंगौ साव चखावसी, **इभरमणौ** आखेट।
—बां.दा.

इभीयाळियौ, इभीयाळौ, इभ्याळियौ–सं०पु०—मातृहीन एवं दुर्बल व गरीब बच्चा।
वि०—अशक्त, दया करने योग्य।

इम–क्रि०वि०—इस प्रकार, इस तरह, ऐसे।
उ०—कंत सूं ओळंबौ दियौ **इम** कांमणी। ऐण घट आज रा केम सहिया अणी।—हा.झा.

इमखार–सं०पु० गुप्तचर, गुप्तदूत।

इमतिहांन–सं०पु० [अ० इम्तहान] परीक्षा, जाँच।

इमदाद–सं०स्त्री० [अ०] मदद, सहायता।

इमदादी–वि० [अ० इमदाद] मदद पाने वाला।

इमरत–सं०पु० [सं० अमृत] अमृत, सुधा। उ०—पय मीठौ कर पाक, जो **इमरत** सींचीजिये। किरपारांम

इमरतियौ–सं०पु०—एक प्रकार का घोडा (शा.हो.)

इमरती–सं०स्त्री० [सं० अमृत] एक प्रकार की जलेबी जैसी मिठाई।

इमरस–सं०पु० [सं० अमर्ष] क्रोध, अमर्ष। उ०—रावनूं बेटी परणाई सगर नूं इण वात रौ घणौ **इमरस** आयौ, तरै सगर दरगाह गयौ।—नैणसी

इमरित–सं०पु० [सं० अमृत] अमृत। उ०—मीरां के प्रभु गिरधर नागर, **इमरित** कर दियौ जहर।—मीरां

इमली–सं०स्त्री०—१ लंबे एवं खट्टे फलों वाला एक बड़ा वृक्ष.
२ इसका फल जो खटाई के काम आता है।

इमांम–सं०पु० [अ० इमाम] १ वह व्यक्ति जो मुसलमानों के धार्मिक कृत्य कराता है. २ अली के बेटों की उपाधि. ३ अगुआ।

इमांमबाड़ौ–सं०पु०—ताजिया रखने या उसे दफन करने का अहाता।

इमि–क्रि०वि०—ऐसे, यों, इस प्रकार, इस भांति।
उ०—अनि पंखि बंधे चक्रवाक असंधे, निसि संधे **इमि** अहोनिसि।
—वेलि.

इमिया–सं०स्त्री० [सं० उमा] पार्वति, गौरी।

इमी–सं०स्त्री० [सं० अमृत] अमृत।
कहा०—धणी री आंखियां इमी वर्सै।—सच्चा स्वामी वही है जिसकी आँखों से प्रेम वर्षा करता है।

इम्रत, इम्रति–सं०पु० [सं० अमृत] अमृत, सुधा।

इयां–क्रि०वि०—१ ऐसे, इस तरह। उ०—**इयां** बळै देखि नै कह्यौ—भाभी जे हिवै ईंडौ थाहरै मुंहडा आगै आंणिस्यां तौ थारै मूंडा आगै जीमस्यां।—चौबोली. २ इधर। उ०—**इयां** दिसरां रै, उवै दिसरां रै हूं मारूं छूं।—चौबोली
सर्व०—३ इन। उ०—हरि कहतां श्रीक्रस्ण। हर महादेव। **इयां** बेऊं नै सेवैछै।—वेलि. टी.
कहा०—१ इयां तिलां में तेल कठै (कोयनी)—इन तिलों में तेल कहाँ; जहाँ से कुछ मिलने की आशा न हो; कंजूस के लिये प्रयुक्त.
२ इयां में रांड नहीं जिण्या जिका ही चोखा है—इनमें जिन्हें रांड ने नहीं जना (जो पैदा नहीं हुए) वे ही अच्छे हैं; सभी दुष्ट हैं।

इयाजी–सं०स्त्री०—सगे-संबंधियों की दासी या परिचारिका।

इयाळौ–वि० (स्त्री० इयाली) इधर का, इस तरफ का।

इयुं, इयूं–क्रि०वि०—ऐसे, इस प्रकार।

इयै, इयैं–सर्व०—इस। उ०—राजा नै कह्यौ—ठाकुरां, **इयैं** नै तौ म्हे भलीभांत जांणां छां।—पलक दरियाव री बात
कहा०—इयै कांन सुणी बियै कांन काढ़ी।—इस कान से सुनी उस कान से निकाली; सुनी हुई बात पर ध्यान नहीं देना.
२ इयै पार कै परलै पार—इस पार या उस पार; अत्यंत जोखिम के कार्य करने में महान हानि व महान लाभ दोनों ही हो सकते हैं.
३ इयै बात नै धूड़-धोबा—इस बात को धोबे भर कर धूळ (फेंको); इस बात को छोड़ो. ४ इयै रांम सूं मरै कोयनी—इस राम से नहीं मरता—अशक्त अथवा अवांछित व्यक्ति के लिये।

इरंडकाकड़ी–सं०स्त्री०—पपीता नामक एक प्रकार का फल या इसका वृक्ष।

इरकांणी–सं०स्त्री०—१ ऊँट के पैर का घुटने के ऊपर का भाग.
२ कोहनी।

इरकियौ–सं०पु०—वह ऊँट जिसके अगले पैर के ऊपरी भाग से वक्षस्थल पर रगड़ आने से जख्मी हो गया हो।

इरकी–सं०स्त्री०—१ कोहनी. २ ऊँट के पैर के घुटनों का ऊपर का भाग। उ०—इण भांत रा रबारी ऊंटां नै झालै छै। सू ऊंठ किण भांतरा छै? थापवी तळी रा, सुपवी नळी रा, नाळेर गोडां रा, बीलफळ **इरकी** रा, हथाळियै ईडर रा, ससा सेरी बगलां रा...।
—रा.सा.सं.

इरकुणी–सं०स्त्री०—हाथ और बाहु का संधिस्थल, कोहनी।
(मि० इरकी, इरकांणी)

इरखा–सं०स्त्री० [सं० ईर्ष्या] ईर्ष्या, डाह।

इरद-गिरद–क्रि०वि० [अ० इर्दगिर्द] चारों ओर, आसपास, इधर-उधर।

इरमद–सं०स्त्री० [सं० इरंमद] मेघज्योति, बिजली।

इरांणी, इरांनी–वि०—ईरान देश का, ईरान देश संबंधी।

इरा–सं०स्त्री० [सं०] १ बृहस्पति और उद्भिज की माता, कश्यप की स्त्री. २ पृथ्वी. ३ वाणी. ४ भाषा. ५ जल. ६ महुआ आदि से बनाई गई एक नशीली वस्तु जो पीने के काम आती है, मद्य।

इराकी–वि० [अ० इराकी] ईराक देश का, इराक देश संबंधी।
सं०पु०—घोड़ों की एक जाति, ईराक का घोड़ा (वं.भा.)

इरादित–क्रि०वि०—इरादे से, विचार से।

इरादौ–सं०पु० [अ० इरादा] १ विचार, संकल्प, मंशा. २ मित्रता, प्रेम।

इरावत–सं०पु० [सं०] १ एक पर्वत का नाम. २ एक सर्प का नाम. ३ नाग कन्या. ४ उलोपी से उत्पन्न अर्जुन का एक पुत्र।

इरावती–सं०स्त्री०—१ कश्यप ऋषि की कन्या जो उनकी भद्रमदा नामक स्त्री से उत्पन्न हुई थी. २ रंगून के पास समुद्र में मिलने वाली ब्रह्मदेश की एक नदी।

इरिण–सं०स्त्री०—बंजर भूमि।

इळ–सं०स्त्री० [सं० इला] पृथ्वी, भूमि। उ०—मुगती तणी नीसरणी मंडी, सरग लोक सोपान इळ।—वेलि.

इलकाब, इलकाब–सं०पु०—पदवी, उपाधि। उ०—बतळायौ बिगड़े विदर, और दियां इलकाब। बाट चलावण विदर नूं, कुलकौ बड़ी किताब।—बां.दा.

इलगार–सं०पु०—उत्साह, जोश, उमंग। उ०—उच्छब सूं इलगार सूं, आतुर सूं अनिमंध, यूं खड़ियां आयौ 'अभौ', अहि कूरमां कमंध।
—रा.रू.

इळगौ–वि० [सं० अलग्न] अलग, जुदा, पृथक, भिन्न, बेलाग।
उ०—'अजन' जोधपुर पांचम आयौ, असुरां अत सूं इळगौ अभायौ।
—रा रू.

इळचक्र–सं०पु०यौ० [सं० इलाचक्र] आकाश और पृथ्वी दोनों मिले हुए दृष्टिगोचर होने का वृत्ताकार स्थान क्षितिज. २ धूमिल बेला.
उ०—इळचक्र लगै उदियावणौ, महा सूर भंचगमणौ। भयंकर रूप लागै भुरज, वतन कोट भरे तणौ।—पा.प्र.

इळजाम–सं०पु० [अ० इलजाम] दोष, अपराध, अभियोग, दोषारोपण।

इळजौ–सं०पु०—मेंहदी। उ०—वीर स्त्री रा वचन नायण प्रतै—हे नायण आज पग मत मांड, इळजौ मत दे—वी.स.टी.—किसोरदांन

इळधणि–सं०पु० [सं० इला=पृथ्वी+रा० धणी=स्वामी] अधिपति, राजा, नृप।

इळपत–सं०पु० [सं० इला+पति] राजा।

इलपतौ–वि०—बदमाश, उत्पाती।

इळपुड़–सं०पु०—पृथ्वी तल। उ०—बाधै सिखर वडै लाधै अब। इळपुड़ नांम वधै अनमंध।—द.दा.

इलम–सं०पु० [अ० इल्म] १ विद्या, ज्ञान. २ जानकारी।

इळमदार, इलमी–वि० [अ० इल्म+फा० दार] १ विद्वान, पंडित ज्ञानी. २ चतुर।

इलम्म–सं०पु०—देखो 'इलम'। उ०—आबळी पढ़े साफी इलम्म। काबळी गुसै भरिया किलम्म।—वि.सं.

इलल्ला, इलल्लाह–सं०पु० [अ० इल्लिल्लाह] हे ईश्वर! या खुदा!
उ०—दियां हाथ दाढ़ी दिढं गाढ दक्खै, इलल्ला इलल्ला इलल्लाह अक्खै।—वचनिका

इलविला–सं०स्त्री० [सं०] १ कुबेर की माता व विश्वश्रवा की पत्नी का नाम. २ पुलस्त्य की स्त्री।

इळबीस–सं०पु०—१ वह शैतान जो आदम के पास रहता था, इसी ने आदम को बहकाया था और स्वर्ग से गिरवा दिया था। उ०—एक न चाहै और नूं, उभै दुखी व्है अंग। आदम नै इळबीस रौ, प्रगट विचार प्रसंग।—बां.दा.

इळा–सं०स्त्री० [सं० इला] पृथ्वी, धरती (अ.मा.)

इला–सं०स्त्री०—१ एक दूसरे को पकड़ने से संबंधित खेलों में किसी बच्चे द्वारा कुछ समय के लिए खेल से मुक्त होने का भाव अथवा इस हेतु उच्चारण किया जाने वाला शब्द। इस उच्चारण के बाद बच्चा वहीं बैठ जाता है और जब तक वापस खड़ा नहीं हो जाता उस पर खेल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता. २ हठ योग के अनुसार बायें अंग की ओर मानी हुई एक नाड़ी–इड़ा। (ह.पु.वा.)

इळाकंत–सं०पु० [सं० इला+कंत] पृथ्वी का पति, पृथ्वीपति, बादशाह, राजा। उ०—इळाकंत उच्चरै, पुत्र बळवंत परक्खै।—रा.रू.

इलाकौ–सं०पु० [अ० इलाका] १ कई गांवों की जमींदारी, रियासत. २ अधिकार क्षेत्र।

इलाज–सं०पु० [अ०] १ चिकित्सा. २ युक्ति, तदबीर, उपाय।
उ०—साहब लिखै सुजात सूं, करै सतावी काज। हुकम धरूं सिर सांमरौ, मैं फिर करूं इलाज।—रा.रू.
३ प्रबंध, इंतजाम।

इलाजी–सं०पु०—चिकित्सक, चिकित्सा करने वाला।

इळाथंभ–सं०पु० [सं० इला+स्तंभ] १ राजा। उ०—इळाथंभ अवतार अडर अणबीह अणंकळ, परम अंस सत पुरस आग रूपी दिन ऊजळ।—बखतौ खिड़ियौ २ शेष नाग।

इलापणौ, इलापबौ–क्रि०स० [सं० आलाप] देखो—'आलापणौ'।
उ०—गूंगा राग इलाप कर कोई राव रीझावै।—केसोदौस गाडण

इळापत–सं०पु० [सं० इला+पति] राजा, नृप।

इळायची–सं०स्त्री० [सं० एला+ची] १ बड़ी तीव्र सुगंध वाले बीजों के फल का एक सदा बहार वृक्ष. २ इस वृक्ष का फल जिसके बीज

पान के साथ या योंही खाये जाते हैं। एला
संपु०—३ एक प्रकार का घोड़ा।—शा.हो.

इळायचीदांणी—संपु०—इलायची के बीज।

इळायचौ—संपु०—एक विशेष प्रकार का बहुमूल्य कपड़ा (रा.सा.सं.)

इलालौ-विलालौ—वि०—रसिक, शौकीन, छैला।

इळावत—संपु०—१ देखो 'इरावत'।

इळाव्रत—संपु० [सं० इलावृत] जम्बू द्वीप के नौ खंडों में से एक। (गजमोख)

इलाही—संपु० [अ०] खुदा, ईश्वर।

इळि—संस्त्री० [सं० इला] पृथ्वी, धरती। उ०—आयौ इळि वसंत वधावण आई, पोइणि पत्र जळ एणि परि।—वेलि.

इली—संस्त्री०—१ कीटाणु विशेष जो बाजरी आदि अनाज या आटे में अधिक दिनों तक पड़ा रखने से उत्पन्न हो जाता है और इसे खराब कर देता है।

कहा०—इली पीस्यां पांणी नीकळै—अन्न कीट के पीसने पर पानी निकलता है (और कुछ हाथ नहीं आता) गरीब को सताने से कोई लाभ नहीं होता।

२ तलवार। उ०—इली वक्र पै रुद्र संख्या अंगारे ति ज्यां सिंह लंगूळ मूळ त्यौ मूळ तारे। —वं.भा.

इलूरौ—संपु०—एक प्रकार का पत्थर विशेष (रा.सा.सं.)

इलोजी—संपु०—१ मनुष्य की वह बड़ी एवं विशाल मूर्ति जो प्रायः व्यंग्य के रूप में फाल्गुण मास के उद्देश्य से रक्खी हुई होती है.
२ मूर्ख व्यक्ति।

कहा०—१ इलोजी घोड़ा रा पारखू—मूर्ख व्यक्ति के लिये जो कि घोड़ों की पहिचान न कर सकता हो. २ इलोजी घोड़ै चढ़िया नै वेगा हीज पड़िया—कोई कार्य न आने पर भी कार्य में हाथ डाल कर असफल होने वाले व्यक्ति के प्रति।

इलोळ—संस्त्री०—१ ढंग, चाल। उ०—आवै नहीं इलोळ, बोलण चालण री विवध, टीटोड्यां रै टोळ, राजहंस री राजिया। —किरपारांम

२ गति, तरंग, हिलोर। उ०—अनंग न अंग उमंग इलोळ, हरी पद संगम गंग हिलोळ।—ऊ.का.

इल्जांम—संपु०—देखो 'इळजांम'।

इल्म—संपु० [अ०] देखो 'इलम'। उ०—काबिल कलांम कहियत करीम, रहमांन इल्म रव्यत रहीम।—ऊ.का.

इल्लत—संस्त्री०—१ रोग, बीमारी. २ झंझट, बखेड़ा. ३ दोष, अपराध।

इल्ली—संस्त्री०—देखो 'इली'।

इल्वल—संपु०—एक असुर विशेष जो अपने छोटे भाई को भेड़ बना कर ब्राह्मणों को खिला देता था और बाद में जब उसका नाम लेकर पुकारता तो वह ब्राह्मणों का पेट फाड़ कर निकल आता था। इसे अगस्त्य मुनि मार कर पचा गये थे।

इल्वला—संस्त्री० [सं०] पाँच तारों का समूह जो मृगशिरा नक्षत्र के सिर पर रहता है।

इव—अव्यय [सं०] १ उपमावाचक शब्द जो समान, सदृश, तरह आदि का अर्थ देता है।

क्रिवि०—२ ऐसा, ऐसे। उ०—इव करतां बरस दोय तीन नूं बादसाह री कूच लाहोर नूं हुवौ।—राठौड़ अमरसिंह री बात
३ अब।

इवड़उ, इवड़ौ—वि० (स्त्री० इवडी) ऐसा। उ०—साहिब हूंसउ न बोलिया, मुझ सूं रीस ज आज। अंतरि आंमण दूमणा, किसउ ज इवड़उ काज।—ढो.मा.

वि०—इतना। उ०—रहिया हरि सही जांणियौ रुखमणि, कीध न इवड़ी ढील कई।—वेलि.

इवा—सर्वस्त्री०—वह। उ०—इवा नायण देखे तो कांसूं कुंवर तो मुवौ ताहरां फूलमती विचारियौ—।—चौबोली

इवै—क्रिवि०—अब। उ०—तद इयै कुंवर नूं कही इवै तूं बळ बांध अर राखस नूं मार नहीं तो आपां दिह नूं मारसी।—चौबोली

इश्वाक—संपु० [सं० इक्ष्वाकु] राजा इक्ष्वाकु। देखो 'इक्ष्वाकु' (रा.रा.)

इस—सर्व०—शब्द का विभक्ति के पूर्व आदिष्ट रूप।

[सं० इष] आश्विन मास (डिं.को.)

इसइ—अव्यय—ऐसे।

वि०—ऐसा, ऐसी। उ०—इसइ आरखइ मारुवी, सूती सेज विछाइ। साल्हकुंवर सुपनइं मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ।—ढो.मा.

इसकंदर—संपु०[यू०]—यूनान के सिकंदर बादशाह का नाम।

विवि०—देखो 'सिकंदर'। (रू०भे० असकंदर)

इसक—संपु० [अ० इश्क] मुहब्बत, प्रेम, चाह।

कहा०—१ इसक री मारी कुत्ती कादै में लुटै—इश्क की मारी कुतिया कीचड़ में लोटती है। प्रेम के खातिर हानि उठाना.

२ इसक रौ मारियौ फिरै ठिठकारियौ—इश्क का मारा-मारा फिरता है; इश्क का पागल गलियों में धक्के खाता फिरता है।

वि०—आशिक, माशूक।

इसकपेचौ—संपु० [अ० इश्कपेचां] एक प्रकार की बेल या लता जिसके फूल लाल रंग के होते हैं और पत्तियाँ सूत की तरह बारीक होती हैं। (रा.सा.सं.)

इसकी—वि०—प्रेमी, आशिक, रसिया, रसिक। उ०—भाड़ जोंक भक भेक, वारज में भेळा वसै। इसकी भंवरौ हेक, रस ले जांणै राजिया। —किरपारांम

इसकेल—संस्त्री०—मौज, खेल, क्रीड़ा।

इसडै—क्रिवि०—ऐसे, इस प्रकार। उ०—परब इसडै मुग्रौ नाथ रौ मांडि पग, ढीलड़ी तणा पग हुआ ढीला।

—हाडा राव सत्रसाल रौ गीत

इसडैसै—क्रिवि०—ऐसे। उ०—इसडैसै अहिनांण, चहुवांणौ चौथै चलण। डल डखती दीवांण, सुजड़ी आयौ सोभड़ौ।—अज्ञात

इसड़ो, इसड़ौ—वि०—ऐसा। (स्त्री० इसड़ी; बहु० इसड़ा, इसड़ां)

उ०—कूड़ा निलज कपूत, हियाफूट ढांढ़ा असल। इसड़ा पूत अऊत, रांड जणै क्यूं राजिया।—किरपाराम

इसट–वि० [सं० इष्ट] १ अभिलषित, चाहा हुआ. २ पूज्य, पूजित। सं०पु०—१ यज्ञादि कर्म, अग्निहोत्रादि शुभ-कर्म संस्कार. २ इष्टदेव। उ०—होम कराड़ि भणाड़ि विप्रां हद, जपि आवाहन सूर इसट जद।—वचनिका. ३ कुलदेव. ४ मित्र, प्रिय. ५ अधिकार।

इसतव–सं०स्त्री० [सं० ईशित्व] एक प्रकार की योग-सिद्धि।

इसपिरिट–सं०स्त्री०—एक प्रकार की खालिस शराब।

इसबगुळ–सं०पु० [फा० इसबगोल] फारसी की एक झाड़ी या पौधा जिसके गोल बीज हकीमी दवा के काम आते हैं।

इसलाम–सं०पु० [अ० इसलाम] देखो 'इस्लांम'।

इसांन–सं०पु० [अ० एहसान] अहसान, उपकार।

इसा–वि० [सं० इदृश] ऐसा, समान। उ०—प्रभुता मेरु प्रमांण, आप रहै रजकण इसा। जिकै पुरुख धन जांण, रवि मंडळ बिच राजिया।—किरपारांम

क्रि०वि०—देखो 'इसौ'।

इसाई–सं०पु०—देखो 'ईसाई'।

इसारत–सं०पु० [अ० इशारा] देखो 'इसारौ'। उ०—घेठां भड़ां इसारत धारै, वात करै उर घात विचारै।—रा.रू.

इसारौ–सं०पु० [अ० इशारा] १ संकेत, सैन. २ संक्षिप्त कथन, सूक्ष्म आधार. ३ गुप्त प्रेरणा।

इसिइं–वि०—ऐसी। उ०—परवत तउ नीझरण विछूटइं, भरिया सरोवर फूटइ। इसिइं वरसा काळि।—रा.सा.सं.

इसी–वि० [सं० इदृश] ऐसी। उ०—प्रभणंति पुत्र इम मात पिता, प्रति। अम्हां वासना वसी इसी।—वेलि.

इसु–सं०पु० [सं० इषु] बाण, तीर।

इसुध–सं०पु०—ठगण की पांच मात्राओं के तृतीय भेद का नाम (।।ऽ) (डिं.को.)

इसुधी–सं०पु० [सं० इषुधि] तूणीर, तरकश।

इसूं–वि०—ऐसा। उ०—लिखमी तणउं इसूं वरदांन, एह घरि खूटइ नहीं निधांन।—कां.दे.प्र.

इसूपळ–सं०स्त्री० [सं० इषूपल] एक प्रकार की तोप विशेष जो किले के फाटक पर रहती थी और जिसमें कंकड़-पत्थर डाल कर छोड़े जाते थे।

इसै–क्रि०वि०—इस तरह, इस प्रकार, ऐसे। उ०—सुग्रीवसेन नै मेघ पुहप सम, वेग बळाहक इसै वहंति। खंति लागो त्रिभुवनपति खेड़ै, धर गिरि पुर सांम्हा धावंति।—वेलि.

इसो, इसौ–वि० (स्त्री० इसी) (बहु० इसा) ऐसा। उ०—प्रभणंति पुत्र, इम मात पिता प्रति, अम्हां वासना वसी इसी।—वेलि.

कहा०—१ इसा कांई बांन (ब्याव) बिगड़ै है—ऐसे कौन मंगल कार्य बिगड़ते हैं; ऐसी कौनसी भारी हानि हो रही है कि उसकी आवश्यकता हो. २ इसौ चूतियौ सिकारपुर में लाधसी—ऐसे चूतिये शिकारपुर में मिलेंगे (मैं वैसा नहीं हूं); शिकारपुर मूर्खों के लिए प्रसिद्ध है. ३ इसौ बाड़ नै कांटो ही ना दिया—ऐसा बाड़ को काँटा भी मत देना; ऐसी दुष्ट संतान किसी को भी न मिले।

इस्ट–सं०पु०—देखो 'इसट'। उ०—इणां रै पण श्री नरसिंहजी रौ इसट ही थौ।—पलक दरियाव री बात

इस्टकर–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

इस्टकाळ–सं०पु० [सं० इष्टकाल] किसी घटना के घटित होने का ठीक समय (फलित ज्योतिष)

इस्टदेव, इस्टदेवता–सं०पु०—१ आराध्य देव, पूज्य देवता. २ कुल देवता।

इस्टांप, इस्टांम–सं०पु० [अं० स्टाम्प] १ मुद्रांक, मोहर, ठप्पा. २ सरकारी ठप्पा लगा हुआ कागज।

इस्टि, इस्टी–सं०पु० [सं० इष्ट+ई] १ इष्ट रखने वाला, जिसे इष्ट हो। उ०—तिहारी सस्टी पें अमिय कर वस्टी तन तजूं। कुदस्टी दिस्टी को भसम कर इस्टी हरि भजूं।— ऊ.का. २ पति (ह.नां.मा.)

इस्तहार–सं०पु० [अ० इश्तहार] १ विज्ञापन. २ नोटिस, सूचना।

इस्तिंजा–सं०पु० [अ०] मुसलमानों की वह प्रथा जिसके अनुसार वे पेशाब करने के बाद इंद्रिय पर लगी पेशाब की बूंदों को मिट्टी के ढेले से सुखाते हैं या पानी से धोते हैं।

इस्तिरी–सं०स्त्री०—धोए गए कपड़ों की सिलवटें दूर करने के लिए फेरा जाने वाला एक उपकरण जो गरम करने के बाद फेरा जाता है।

इस्तीफो–सं०पु० [अ० इस्तअफा] नौकरी छोड़ने की अर्जी, त्याग-पत्र।

इस्तीयार, इस्तीहार–सं०पु० [अ० इश्तहार] १ विज्ञापन. २ नोटिस, सूचना।

इस्तेमाल–सं०पु० [अ०] उपयोग, व्यवहार।

इस्त्री–सं०स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री।

इस्वी–सर्व०—इसकी। उ०—इस्वी औरत वालदा खाला पकरेगा, ताई चच्ची आदि ले सब बंद करेगा।—ला.रा.

इस्पंज–सं०पु०—समुद्रों के छोटे कीड़ों से बना मुलायम रूई की तरह एक पिंड जो द्रव पदार्थ (पानी आदि) के सोखने के उपयोग में लिया जाता है।

इस्यूं–क्रि०वि०—इस प्रकार से। उ०—इस्यूं प्रधांन कहइ तिणि समइ, सुरतांणी दळ कुण आंगमइ। जास तणउ भूतळि भड़वाय, जिणि वसि कीधा रांणा राय।—कां.दे.प्र.

इस्यौ–वि०—ऐसा।

इस्लांम–सं०पु० [अ० इस्लाम] १ मुसलमानी धर्म. २ मुसलमान। उ०—दरगाह सदर दोलत दराज, ताला बुलंद इस्लांम ताज। —ऊ.का.

इहंकार–सं०पु० [सं० अहंकार] अहंकार, गर्व, अभिमान।

इहंकारी—वि० [सं० अहंकारिन्] अभिमानी, अहंकारी।

इह—क्रि०वि० [सं०] १ इस स्थान में, यहाँ. २ इस समय. ३ इस प्रकार। उ०—हथळेवी क्रस्णजी आंगूठा सहित पाकड्यो जैसे हाथी सूंड सूं कमळ पाकड़ै। **इह** द्रस्टांत।—वेलि. टी.

सं०पु० [सं० अहि] १ सर्प. २ शेषनाग।

सं०स्त्री० [सं० ईहा] ३ इच्छा. ४ उपाय, चेष्टा।

सर्व०—१ यह। उ०—जड़ाव की टीको दीयो छै। मांनी **इह** टीको नहीं छै।—वेलि. टी. २ इस। उ०—रुखमणीजी तौ **इह** भांति छै। अर क्रस्णजी छै सु खवास पासवांन सब दूरि कीया छै।
—वेलि. टी.

वि०—ऐसी, ऐसा। उ०—माहरी लक्ष्मी **इह** सरीखी हुई।
—रा.सा.सं.

इहग—सं०पु०—देखो 'ईहग'।

इहड़ी—क्रि०वि०—इस प्रकार, ऐसे। उ०—कुळवंती पतीवरता किहड़ी, उधरै पख च्यारि जिसा **इहड़ी**।—वचनिका

वि०—देखो 'इहड़ो'।

इहड़ो, इहड़ौ—वि० (स्त्री० इहड़ी) ऐसा।

इहण—सं०पु०—देखो 'ईहग'।

इहनांण—सं०पु०—चिन्ह, संकेत, निशान।

इहलौकिक—वि०—इस लोक संबंधी, सांसारिक।

इहां, इह्यां—क्रि०वि०—यहाँ, इस ओर, इधर। उ०—दस मास उदरि धरि, वळे वरस दस जो **इहां** परिपाळै जिवड़ी।—वेलि.

सर्व०—इन। उ०—मैं तो **इहां** नूं जोधपुर रै पगां संचिया था सो हमें जोधपुर री आस तौ चूकी दीसै छै।—राठौड़ अमरसिंह री बात

इहि—सर्व०—इस। उ०—**इहि** विचि की संधि सु वयसंधि कहावै।
—वेलि.

इहै—सर्व०—१ इस। उ०—अरजण अर दुरजोधन सहाव मांगिवा कै काजि स्रीक्रस्णजी कन्हे आया। तब पणि **इहै** विधि हुई।
—वेलि. टी.

२ यह। उ०—वूठै उपरि वाह देण री **इहै** वेळा छै।—वेलि. टी.

इहो—क्रि०वि०—ऐसा, इस प्रकार। उ०—जु बळि वंधण **इहौ** जु संघ की बळि छै।—वेलि. टी.

वि०—ऐसा। उ०—सु रुखमणीजी की नासिका **इहो** दीप।
—वेलि. टी.

सर्व०—यह।

ई—वर्णमाला का चौथा स्वर जो 'इ' का दीर्घ रूप है। इसका उच्चारण स्थान तालू है।

ई—सर्व०—१ इस। उ०—जो बादसाह रा हुकम **ई** तरह का हीं जे है तौ और कैसी जगां मेलें।—अमरसिंह री बात

कहा०—१ ई हाथ दे ऊँ हाथ ले—इस हाथ दे उस हाथ ले। जैसा करता है वैसा फल तुरंत मिलता है. २ ई आंगळी रै आंगळी नेड़ी रहसी—इस उँगली के यह उँगली नजदीक रहेगी। पराये पराये ही रहेंगे और घर वाले घर वाले ही रहेंगे. २ यह।

वि०—व्यर्थ, योंही। उ०—**ई** जीणै सूं मरणी चोखौ, बुरो कैद को कांम।—डूंगजी जवारजी री पड़

ईंगुर—सं०पु० [सं० हिंगुल, प्रा० इंगुल] चीन आदि देशों में निकलने वाला चटकीली ललाई लिये हुए एक खनिज पदार्थ, हिंगुल।

ईंट, ईंटोड़ी—सं०स्त्री० [सं० इष्टका, पा० इट्ठका, प्रा० इट्ठआ] १ सांचे में ढला हुआ मिट्टी का लंबा चौकोर मोटा टुकड़ा जिसे जोड़ कर दीवाल बनाई जाती है. २ ईंट की आकृति का ताश का पत्ता।

ईंठौ—वि०—जूठा।

ईंडुणी—सं०स्त्री०—देखो 'ईंढांणी'।

ईंडौ—सं०पु०—१ देखो 'अंडो'। २ देवालयों के ऊपर शोभा के लिए चढ़ाया जाने वाला चाँदी, सोना व पत्थर का गोलाकार पदार्थ।

ईंढ—वि० [सं० ईदृश] समानता, बराबरी।

ईंढांणी, ईंढा, ईंढी, ईंढूणी—सं०स्त्री० [सं० इन्दु+धानी] बोझ उठाने हेतु सिर पर रक्खी जाने वाली गोल गद्देदार बनी एक वस्तु, इंडुआ। उ०—**ईंढी** कवडाळी माथै पर ओढी, छैली अलकावळ मुखड़ै पर छोडी।—ऊ.का.

ईंत—सं०स्त्री०—एक प्रकार का कीट या कीड़ा जो प्रायः पशुओं के शरीर से चिपक कर रहता है। उ०—चींचड़ **ईंता** बुगदोळा चेंठोड़ा, आंगे झोळी में टुकड़ा ऐंठोड़ा।—ऊ.का.

ईंद—सं०पु०—देखो 'इंद्र'। उ०—वीकाहर राजा **ईंद** वणि, खाफरां सिरे खिविया खड़गि।—रा.ज.सी.

ईंदण—सं०पु०—देखो 'ईंधण'।

ईंदरापुर—सं०पु० [सं० इंद्र+पुर] इंद्रपुरी, स्वर्ग।

ईंदा—सं०स्त्री०—परिहार राजपूतों की एक शाखा।

ईंदावटी, ईंदावाटी—सं०स्त्री०—ईंदा परिहारों का राज्य अथवा भूमि, यह जोधपुर के पश्चिम में स्थित है।

ईंदीवर—सं०पु०—कमल, जलज (ह.नां.)

ईंधण—सं०पु० [सं० इंधन] जलाने की लकड़ी या कंडा, जलावन।

ईंधणी, ईंधणौ—सं०स्त्री०—देखो 'ईंधण'। उ०—१ जेथ मळै तर मेखचा, गडे मळै तर मेख। जळै मळै तर **ईंधणा**, दळ चालक रो देख।—बां.दा.

उ०—२ बेचण बीनणियां **ईंधणियां** आंगे।—ऊ.का.

ईंधारौ—सं०पु०—देखो 'इंधारौ'।

ईंने—क्रि०वि०—इधर, इस तरफ।

सर्व०—इसे, इसको, इस।

ईंमी—सं०पु० [सं० अमृत] देखो 'अमी'।

ईंसू—सर्व०—इससे, उससे।

ई—सं०पु०—१ कामदेव. २ महादेव. ३ ईश्वर (एकाक्षरी)

४ कांच (एकाक्षरी) ५ टेढ़ापन (एकाक्षरी) ६ बगुला।

संस्त्री० [सं०] ७ लक्ष्मी (एकाक्षरी डिं.को.) ८ पुत्रवती स्त्री (एकाक्षरी) ९ बांझ स्त्री (एकाक्षरी) १० शंका (एकाक्षरी) ११ दुःख (एकाक्षरी) १२ स्मृति (एकाक्षरी) १३ उदासी (एकाक्षरी) १४ देखो 'ईस' (८), (१०)

वि०—लाल, अरुण (एकाक्षरी)

सर्व०—यह, इस। उ०—दुख वीसारण मनहरण, जउ ई नाद न हुंति। हियड़उ रतन तळाव ज्यउं, फूटी दह दिसि जंति।
—ढो.मा.

२ यही। उ०—दैवग्य तेड़ि वसुदेव देवकी, पहिलौ ई पूछै प्रसन।
—वेलि.

अव्यय [सं० हि] १ जोर देने का शब्द, ही। उ०—चंदण पाट, कपाट ई चंदण, खुंभी पनां, प्रवाळी खंभ।—वेलि. २ जोर देने का शब्द, भी। उ०—पांखड़ियां ई किउं नहीं, दैव अवाडू ज्यांह। चकवी कइ हइ पंखड़ी, रयणि न मेळउ त्यांह।—ढो.मा.

ईऊ—क्रि०वि०—ऐसे। उ०—भरै खजांना धरती भेदे, चोर कटक लेसी घर छेदे। वांट वांट कहियौ ईऊ वेदे, दीह गणणीया ताळी दे दे।
—ग्रोपो ग्राढ़ो

ईऊज—क्रि०वि०—ऐसे।

वि०—व्यर्थ।

ईए—सर्व०—इस, इसी, ये। उ०—किरि परिवार सकळ पहिरायौ, वरगि वरगि ईए वसत्र।—वेलि.

ईकंत—संपु० [सं० एकांत] एकांत, निर्जन, शून्य। उ०—पेख दळ दासरथ सेस नूं पयंपै सहोदर ! सिया ले तूझ साथै, ऊभ ईकंत नूं।
—र.रू.

ईक—वि०—एक। उ०—सुणि ! सहेली कहुं ईक बात। म्हाहरइ फरकइ छइ दांहिणो गात।—वी.दे.

ईकड़—संस्त्री०—एक प्रकार का पौधा जिसकी छाल से रस्सियां बुनी जाती हैं। इसके बीजों को पीस कर प्रायः निमोनिया में पट्टी बांधते हैं।

ईकरको—क्रि०वि०—लगातार। उ०—इगरो नगारो ईकरको दहबारी सूं जगन्नाथरायजी रा मंदिर तांई वजतो जाय। छत्र चमर ही उडता जावै।—बां.दा.ख्या.

ईकार—संपु०—'ई' अक्षर।

क्रि०वि०—एक बार, एक दफा।

ईकियासियौ—वि०—देखो 'इकियासियौ'।

ईकियासीमौ—वि०—जो क्रम में अस्सी के बाद पड़ता हो।

ईख—संस्त्री० [सं० इक्षु] मीठे रस वाले डंठलों वाली शर जाति की एक घास जिससे गुड़ और चीनी आदि पदार्थ बनाए जाते हैं।

ईखण—संस्त्री० [सं० ईक्षण] नेत्र, चक्षु। उ०—अरुण हुय मुख वरण ईखण, जुड़ण कजि भड़ बकै जण जण।—रा.रू.

ईखणौ, ईखबौ—क्रि०स० [सं० ईक्षण] देखना। उ०—ईखे पित मात एरिसा अवयव, विमळ विचार करै वीवाह।—वेलि.

ईखणहार, हारो (हारी), ईखणियौ—वि०—देखने या समझनेवाला।

ईखिग्रोड़ो, ईखियोड़ो, ईख्योड़ौ—भू०का०कृ०—देखा या समझा हुआ।

ईखद—वि० [सं० इषद] तनिक (अ.मा.)

ईखियोड़ौ—भू०का०कृ०—देखा हुआ। (स्त्री० ईखियोड़ी)

ईगीयार—वि०—देखो 'इग्यार'।

ईग्यारमउ—वि०—ग्यारहवां। उ०—दस बरस ईम नीगम्या। बरस ईग्यारमउ पहतऊ ग्राई।—वी.दे.

ईड़ा—संस्त्री० [सं०] स्तुति, प्रशंसा (मि० ईला)

ईचरज—संपु० [सं० आश्चर्य] आश्चर्य, अचंभा।

ईच्छतणौ, ईच्छतबौ—क्रि०स०—इच्छा करना, अभिलाषा करना।

ईच्छतियोड़ौ—भू०का०कृ०—इच्छा किया हुआ। (स्त्री० ईच्छतियोड़ी)

ईच्छया—संस्त्री० [सं० इच्छा] इच्छा, तृष्णा।

ईछणौ, ईछबौ—क्रि०स०—देखो 'इच्छतणौ'। उ०—ग्रावै जो अकलीम, सात हेक सुरतांण रै। नहीं जिकां दे नीम, ईछै लेवा ग्राठमी।
—बां.दा.

ईज—क्रि०वि०—निश्चयार्थक सूचक शब्द, ही।

ईजत—संस्त्री० [अ० इज्जत] प्रतिष्ठा, मान, इज्जत। उ०—ग्रोथै तेरस ऊजळी माह उजाळै पक्ख. ईंदावत ईजत सटै, गौ बासटै वरक्ख।—रा.रू.

ईजतदार—वि० [अ० इज्जत+फा० दार] प्रतिष्ठित, सम्मानित। उ०—जमींदार हुय जमीं करजदारी में कळगी। ईजतदार अंधार गरजदारी में गळगी।—ऊ.का.

ईजति—संस्त्री० [अ० इज्जत] मान, प्रतिष्ठा, इज्जत। उ०—जतन न करै रतन जिद रा जुडंतो, रतन ईजति तणा जतन राखै।
—पूरणदास महियारियो

ईटकोळ—संस्त्री०—१ गेंद व बल्ले से खेलने का एक खेल विशेष। २ एक प्रकार का क्षुप. ३ एक प्रकार की अर्गला विशेष जो बाहर व भीतर दोनों तरफ से लगाई जा सकती है।

ईठ—संपु० [सं० इष्ट] १ सखा, मित्र. २ इष्ट, प्रिय (पति)। उ०—सुण हाको रण आंगणैं, क्यूं न मरै धण ईठ। मूझ भरोसो दूध रो, जहर भजाड़ै पीठ।—वी.स.

ईठि—संस्त्री०—मित्रता, दोस्ती।

ईठी—संपु०—भाला (अ.मा.)

ईठियासियौ—संपु०—८८ वां वर्ष।

ईठियासी—देखो 'इठियासी'।

ईठियासीमौ—वि०—जो क्रम में मत्तासी के बाद पड़ता हो।

ईठे—क्रि०वि०—यहां।

ईड—संस्त्री०—१ समानता, बराबरी, तुल्यता (मि० ईडगरी)

उ०—'मांन' छत्रधार रैं म्राज छळतें मछर, **ईड** (ढ) म्राचार रैं कमरण म्रावै ।—मांनसिंहजी री गीत. २ द्वेष, शत्रुता ।

ईडक–सं०पु०—नगाड़ा, दुंदुभि (डिं.को.)

ईडगरौ–वि०—बराबर वाला, समान (मि० ईढ़गरौ)

ईडर–सं०पु०—१ ऊँट के वक्षःस्थल का स्थान विशेष जहां की चमड़ी खुरदरी एवं लगातार बैठने पर भूमि से रगड़ खाते खाते संवेदना-शून्य हो जाती है. २ एक पुरानी रियासत ।

ईडरियौ–सं०पु०—१ ईडर नगर निवासी । देखो 'ईडर' (२)
२ ईडर रियासत का राजा । देखो 'ईडर' (२)
३ वह ऊँट जिसके ईडर (देखो 'ईडर' (१)) में विकृति हो । (क्षेत्रीय)

ईडरौ–वि०— समान, बराबर ।

ईडै–क्रि०वि०—यहां (मेवात)

ईडौ–सं०पु०—१ ब्रह्मांड. २ हिरण्यगर्भ । देखो 'म्रंडौ' ।

ईढ़–सं०स्त्री०—१ बराबरी । उ०—वट तमाळ पीपळ विरख, म्ररजन समी म्रपार । **ईढ़** तजै पत्र एक री, सूरत पांचेई सार ।—रा.रू.
२ चेष्टावाली । उ०- साह कहै मिळतां समौ, म्रभैसाह महाराज । **ईढ़** तेरी तरवार सूं, मेरी लाज सकाज ।—रा.रू.
३ ईर्ष्या, द्वेष, डाह. ४ शत्रुता । उ०—मिलै न मीढ़ मीढ़ के म्ररीढ़ रीढ़ते म्ररी, करै न **ईढ़** म्रौर की उन्हें न ईढ़कौ करी ।
५ हठ, जिद । —ऊ.का.
वि०—बराबर, तुल्य, समान ।

ईढ़गरौ–वि०— बराबरी करने वाला, ईर्ष्यालु । उ०—कळिहरण **ईढ़गरा** इधकेरा, जोधांपति व्रत जेसलमेरा । धणी हजूर लड़ण पण धारै, 'जेसा' म्राया इष्ट जुहारै ।—रा.रू.

ईढ़वार, ईढ़रौ–वि०—बराबरी करने वाला, ईर्ष्यालु । उ०—देसोत देस देसाधिपति, एम छत्रपति म्रोळगै । पावै न भाग दरबार पह, **ईढ़वार** भूपां म्रगै ।—रा.रू.

ईढ़ांणी, ईढ़ूणी–सं०स्त्री०—देखो 'ईडांणी' । उ०—छबकाळी **ईढ़ांणी** धर सीस, चाली पिणघट ने पिणिहार । सांभ

ईण–सर्व०—इस । उ०—ए दिव [स] छइ पीउ ! म्राकरा । **ईण** दिव थी सुर नर हुम्रा छार ।—वी.दे.

ईणभव–सं०पु०—इहजगत, इस जन्म, इहलोक । उ०—उमर देखैला म्रविणासी **ईणभव** मोज उड़ावै ।—ऊ.का.

ईणि, ईणी, ईणै–सर्व०— इस । उ०— १ ज्यूं राजा रांणी मीळइ यूं **ईणि** कळि मीळजै सब कोई ।—वी.दे. उ०—२ बारली मांडळी सांघणा, रास प्रगास **ईणी** विधि होई ।—वी.दे. उ०—३ भूली है बइहनड़ी । **ईणै** वीसास । हूं नीव जांणू म्रळगी जास ।—वी.दे.

ईत–सं०स्त्री० [सं० ईति] १ वे उपद्रव जो खेती को हानि पहुँचाने वाले माने जाते हैं—१ म्रतिवृष्टि. २ म्रनावृष्टि. ३ टिड्डी दल. ४ चूहे. ५ पक्षियों की म्रधिकता. ६ दूसरे राजा की चढ़ाई. ७ म्रपने राजा द्वारा किया जाने वाला युद्ध ।
(मि० म्रतिवृष्टि म्रनावृष्टि मूषका सलभाः शुकाः । स्वचक्रं परचक्रं च सप्तते ईतयः स्मृताः ।) २ एक छोटा कीड़ा जो पशुम्रों के रोम्रों में धँस जाता है म्रौर उनका खून चूसा करता है ।

ईतर–वि०—१ इतराने वाला, शोख, गुस्ताख, ढीठ. २ नीच, निम्न श्रेणी का ।
सं०पु० [म्र० इत्र] इत्र, म्रतर, पुष्पसार ।

ईतरणौ, ईतरबौ–क्रि०म्र०—देखो 'इतरणौ' ।

ईतराणौ, इतराबौ, ईतरावणौ, इतरावबौ–क्रि०म्र०—देखो 'इतरणौ' ।
क्रि०स०—बच्चे को इतराना ।

ईतरियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'इतरियोड़ौ' (स्त्री० इतरियोड़ी)

ईति–सं०स्त्री०—[सं०] देखो 'ईत' (१)

ईद–सं०स्त्री० [म्र०] मुसलमानों का रोजा खत्म होने पर एक त्यौहार जो प्रायः द्वितीया या परिवा को होता है ।

ईदगा–सं०पु० [म्र० ईदगाह] मुसलमानों के ईद के दिन एकत्रित होकर नमाज पढ़ने का स्थान, ईदगाह ।

ईदगावळी–वि०—ईदगाह की, ईदगाह संबंधी । [रा०] म्रपंग ।

ईदगाह–सं०पु० [म्र०] देखो 'ईदगा' ।

ईदी–सं०स्त्री० [म्र०] किसी त्यौहार के दिन दिया जाने वाला तोहफा या उस त्यौहार की प्रशंसा में बनाई जाने वाली कविता (मा.म.)

ईदुलजुहा–सं०स्त्री० [म्र. ईद-उल-जुहा] बकरीद का नाम जो मुसलमानों का एक पर्व है ।

ईदुलफितर–सं०स्त्री० [म्र.ईद-उल-फितर] मुसलमानों का एक पर्व विशेष जिस दिन इनकें रोजा समाप्त होते हैं ।

ईधकाई–सं०स्त्री०—म्रधिकता, विशेषता ।

ईधणहार–देखो 'इधणहार' (रू०भे) । उ०—चाल्यौ उलीगांणौ नग्र मंझारी । म्राडी म्रावज्यौ **ईधणहार** ।—वी.दे.

ईनणी–सं०स्त्री० [सं० इन्धन+ई] जलाने की लकड़ी । उ०—पीस पीस पीसणौ हाथ घस गया हाथा सूं । लाय लाय **ईनणी** बाळ उड गया माथा सूं ।—ऊ.का.

ईनलौ–वि० (स्त्री० इनली) इधर का, इस म्रोर का ।
कहा०—ईनली छायां ऊंनै म्रायां सरै—इधर की छाया उधर म्राती ही है; दुख के पीछे सुख म्रौर सुख के पीछे दुख म्राता ही है.
२ ईनलो घाटौ ऊंनै गयौ—इधर का नुकसान उधर गया; एक म्रोर घाटा हुम्रा तो दूसरी म्रोर लाभ हुम्रा ।

ईम–सर्व०—इस । (रू०भे०—इम)
क्रि०वि०—इस प्रकार । उ०—धन हरिणाखी **ईम** कहई ।—वी.दे.

ईमरति–सं०स्त्री०—देखो 'ईमरती' ।
सं०पु० [सं० म्रमृत] म्रमृत, पीयूष ।

ईमान–सं०पु० [म्र० ईमान] १ धर्म, विश्वास, म्रास्तिक्य बुद्धि.
२ चित्त की सद्‌वृत्ति, म्रच्छी नीयत । उ०—सुभ स्वांमिधरम्म

सेवक सुसील, अनुसरण असुर ईमांन ईल ।—ऊ.का.

ईमानदार–वि० [फा० ईमानदार] १ विश्वासपात्र. २ सच्चा, जो लेन-देन या व्यवहार में सच्चा और पक्का हो. ३ सद्वृत्ति वाला ।

ईमी, ईम्रत–सं०पु०—देखो 'अमरत' ।

ईयां–सर्व०—इन ।

क्रि०वि०—१ ऐसे. २ यहाँ. ३ इधर ।

ईयेवळ–क्रि०वि०—इस तरफ ।

ईरखा–सं०स्त्री० [सं० ईर्ष्या] देखो 'ईरसा' ।

ईरखाळू, ईरखावाळ–वि०—देखो 'ईरसाळू' ।

ईरखौ–देखो 'ईरसा' ।

ईरण–सं०पु० [सं०] अग्नि, आग । उ०—दागै सम ईरण जीरण अद दाटै । कोणप बिरथीरण संकीरण काटै ।—ऊ.का.

ईरसा–सं०स्त्री० [सं०ईर्ष्या] दूसरे का उत्कर्ष न देख सकने की वृत्ति, डाह, जलन, कुढ़न, वैमनस्य ।

ईरसाळू–वि० [सं० ईर्ष्यालु] ईर्ष्या करने वाला, दूसरे का उत्कर्ष देख कर जलने वाला ।

ईरां–सं०पु०—देखो 'ईरांन' ।

ईरांण, ईरांन–सं०पु०—मध्यपूर्व का एक देश, ईरान, फारस ।

ईरांणी, ईरांनी–वि०—ईरान देश का, ईरान संबंधी ।

ईल–सं०स्त्री०—मर्यादा । उ०—सुभ स्वांमिधरम सेवक सुसील, अनुसरण असुर ईमांन ईल ।—ऊ.का.

ईला–सं०स्त्री०—स्तुति ! उ०—हीलाकर हिणके ईला हुय आधा, लीला भगवत री लीला नहिं लाधा ।—ऊ.का.

ईली–सं०स्त्री०—देखो 'इली' ।

ईलोजी–सं०पु०—देखो 'इलोजी' ।

ईव–क्रि०वि०—अब । उ०—ऐता दिन तुम कहां हूंता ? ईव किम बस सूं राज की खाट ।—वी.दे.

ईस–सं०पु० [सं० ईश] १ परमेश्वर (ह.र.) २ शिव, महादेव (अ.मा.) ३ प्रधान, बड़ा नेता. ४ राजा (अ.मा.) ५ पारा.

सं०स्त्री०—६ आर्द्रा नक्षत्र. ७ ग्यारह की संख्या*

८ खाट की वह लम्बी पाटी जो बाजू में रहती है ।

कहा०—१ ईस जिसा पाया रांड जिसा जाया—जैसी (पलंग की) पटिया वैसे उसके पाये, और जैसी स्त्री वैसे उसके पुत्र । माता-पिता के अनुरूप सन्तान होती है. २ छोडौ ईस बैठौ बीस—चारपाई या पलंग की पटिया छोड़ कर बैठने पर चाहे बीस आदमी बैठिए टूटने का डर नहीं है किन्तु पटिया के ऊपर एक भी आदमी के बैठने से पटिया टूट सकती है ।

९ किसी चौकोर पदार्थ की लम्बाई । उ०—तळाव रै खेवड़ां कुंवळ फूल नै रह्या छै । हजार पांवडा ईस छै । आठ सै पांवडा ऊपळौ छै । इण भांत रौ तळाव छै ।—रा.सा.सं. १० गाड़ी का एक तरफ का लंबे भाग का हिस्सा ।

वि०—लंबा । उ०—इसा रंग भू अंग रा अट्ट ऊंचा, सिटावै जिकां हेट पंखी समूचा । उदै हाट की बंगड़ा दंत ईसा, सुहावै लियां आर राका ससी सा ।—वं.भा.

ईसउ–वि०—ऐसा । उ०—सूं दिन कहै रूड़ा जोवसी । चतुर नागर ईसउ आंगण्यौ चंद ।—वी.दे.

ईसकौ–सं०पु० [सं० ईर्ष्या] ईर्ष्या, द्वेष, डाह ।

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ । उ०—थे इण रा रोजगार रौ ईसकौ करता जिकौ हमेस इणनै लाखां कोड़ां दीजै तोही इसौ रजपूत मिळै नहीं ।—जगदेव पंवार

ईसता, ईसति–सं०स्त्री० [सं० ईशित्व] आठ प्रकार की सिद्धियों में से एक जिससे साधक सब पर शासन कर सकता है (ह.नां.)

ईसत्स्प्रस्ट–सं०पु० [सं० ईषत्स्पृष्ट] वर्णों के उच्चारण में किया जाने वाला भीतरी प्रयत्न जिसके अनुसार जिव्हा, तालु, मूर्द्धा और दंत को कम स्पर्श करती है ।

ईसप–सं०पु०—राजा (अ.मा.)

ईसफुरति–सं०स्त्री० [सं० स्फूर्ति] स्फूर्ति, फुर्ती ।

ईसबगुळ, ईसबगोळ–सं०पु० [फा० इसबगोल] —देखो 'ईसबगुळ'

ईसबर–सं०पु०—देखो 'ईश्वर' (डिं.को.)

ईसर, ईसरजी–सं०पु०—१ प्रसिद्ध वीर मोयलवंशीय राजपूत ईश्वरदास जो गो-रक्षा के निमित्त युद्ध करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ. २ प्रसिद्ध राठौड़ वंशीय वीर जयमल का छोटा भाई ईश्वरदास मेड़तिया जो अकबर की सेना के साथ युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ. ३ ईश्वर (डिं.को.) ४ शिव, महादेव (डिं.को.) ५ स्वामी, मालिक. ६ ईश्वरभक्त महात्मा बारहट ईश्वरदास ।

ईसरता–सं०स्त्री०—देखो 'ईसता' (डिं.को.)

ईसरि, ईसरी–सं०पु० [सं० ईश्वर] १ देखो 'ईस्वर' ।

सं०स्त्री० [सं० ईश्वरी] २ देवी, शक्ति, दुर्गा (डिं.को.) ३ पार्वती (अ.मा.)

ईसरेस–सं०पु० [सं० ईश्वर] महादेव, शिव ।

ईसवर–सं०पु०—देखो 'ईश्वर' (अ.मा.)

ईसवरी–सं०स्त्री० [सं० ईश्वरी] पार्वती, उमा (रा.रा.)

ईसवरू–सं०पु० [सं० ईश्वर] देखो 'ईस्वर' (अंगीपुरांण)

ईसवी–वि० [फा०] ईसा से संबंधित ।

सं०पु०—ईसा की मृत्यु के बाद प्रचलित सन् या संवत् ।

ईससख–सं०पु० [सं० ईशसखा] कुबेर (डिं.को.)

ईससीस–सं०स्त्री० [सं० ईश-शीश] गंगा (अ.मा.)

ईसाणंद–सं०पु० [सं० ईश] १ शिव, महादेव (डिं.को.) २ हरिरस के रचयिता ईसरदास नामक एक भक्त कवि ।

ईसांण, ईसांन–सं०पु०—१ शिव (डिं.नां.मा., अ.मा.) २ राजा (अ.मा.) [फा० अहसान] ३ अहसान, उपकार ।

स्त्री०—४ गिरिजा, पार्वती (अ.मा.) ५ उत्तर और पूर्व के मध्य की दिशा। (अल्पा० इसांनड़ी)

ईसांनका—सं०स्त्री०—देवी, दुर्गा, पार्वती। उ०—वीसहथी वरदत उमा **ईसांनका**, गवरी मात गणेस कळहंकार का।—क.कु.बो.

ईसा—वि०—लंबा (वं.भा.)

क्रि०वि०—ऐसा ही।

सं०पु० [अं०] ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसामसीह. २ हल में लगा हुआ वह लकड़ा जो जूआ तक लगा रहता है, हरीसा।

ईसाई—सं०पु०—ईसामसीह द्वारा चलाये धर्म को मानने वाला क्रिस्तान।

ईसार—सं०पु० [सं०ईश+अरि] कामदेव (अ.मा.)

ईसालय—सं०पु० [सं० ईश+आलय] शिवालय, शिव मंदिर (ला.रा.)

ईसिता—सं०स्त्री० [सं० ईशिता] १ देखो 'ईसता' (डिं.को.) २ प्रधानता, प्रभुत्व, महत्व।

ईसीय—वि०—ऐसी। उ०—**ईसीय** न खाती कौ घड़इ। इसी अस्त्री नहिं रवि तळै दीठ।—वी.दे.

इसुर—सं०पु० [सं० ईश्वर] देखो 'ईस्वर'।

ईसुरी—सं०स्त्री० [सं० ईश्वरीय] शक्ति, दुर्गा, देवी। उ०—**ईसुरी** छाक ऐराक आरोगता। चोगता दया द्रग कुसळ चाता।—मे.म.

ईसौ—क्रि०वि०—देखो 'इसौ'। (स्त्री० ईसी) (बहु० ईसा) उ०—तुम विना यौ कोई और कोई भरतार म्हारे कारणै आंणसी। **ईसौ** अजोग्य छै।—वेलि. टी.

ईस्वर—सं०पु० [सं० ईश्वर] १ परमेश्वर, ईश्वर, क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से पृथक पुरुष विशेष (योगशास्त्र)

पर्याय०—अंतरजांमी, अखिलविहारी, अगोचर, अच्युत, अजर, अनंत, अनंतर, अपरंपर, अमर, अवणासी, अविगति, असरण-सरण, असुरवहण, आणंदकंद, आणंदघण, आदिवराह, कमलापति, करणाकर, करता, केसव, खरारि, गरुड़धज, गोविंद, घणनांमी, चक्रपांणी, चिदानंद, जगकारक, जगकारण, जगदीस, जगमूरति, जगहरता, ठाकुर, तारकअसवारी, तारग, त्रिगुणनाथ, दयाळ, दांमोदर, दासरथी, द्वारकेस, देतांदुयण, देवकीनंदन, देवांदेव, धणी, धरभार-उतारण, निरलेप, निरविकार, पतितउधारण, पदमनाभ, परमेसर, पुंडरीकाक्ष, पुरसपुरांण, प्रभु, बळभुज, बहुनांमी, बाळमुकंद, भगतवछळ, भगवांन, भयहर, भवतारण मोचनअघ, मोहण, रिसी-केस, लोकेसू, वांमण, विखकसेन, विसंभर, वीठळ, वैकंठविलासी, संकटहर, सरगुण, सारंगी, सुन्दर, स्रीधर, हरि।

कहा०—१ ईस्वर कीड़ी नै कण हाथी नै मण देवै—ईश्वर सब लोगों का पालन करता है. २ ईस्वर कूरी में भी घण नांखै—ईस्वर कूरी नामक कदन्न में घुन उत्पन्न कर देता है; ईश्वर बड़े व छोटे सबको आपत्ति में डाल कर परीक्षा लेता है।

२ शिव, महादेव. ३ स्वामी. ४ राजा. ५ धनी, धनवान. ६ समर्थ पुरुष। (रू०भे० ईसबर, ईसवर)

ईस्वरता—सं०स्त्री० [सं० ईश्वर+ता] प्रभुता, ईश्वरत्व। उ०—१ रचना ईश्वर री **ईस्वरता** रोचै। सम दम स्रद्धा बिण संभव नहिं सोचै। —ऊ.का.

उ०—२ वेस्या सुख भोगै पतिवरता व्याधी। इण सूं ईस्वररी **ईस्वरता** आधी।—ऊ.का.

ईस्वरप्रणिधांन—सं०पु० [सं० ईश्वरप्रणिधान] योगशास्त्र के अनुसार पाँच नियमों में से अंतिम जिसके अंतर्गत ईश्वर में अत्यंत श्रद्धा और भक्ति रक्खी जाती है।

ईस्वरी—सं०स्त्री० [सं० ईश्वरी] १ दुर्गा, भगवती, महामाया (रा.रू.) २ पार्वती (क.कु.बो.)

ईह—सं०स्त्री० [सं० ईहा] १ इच्छा। उ०—विस्रांम व्यूढ़ गोतीत गूढ़। निरगुण निरीह, आधार ईह।—ऊ.का. (मि० ईहा)

२ चेष्टा यत्न, उपाय।

सर्व०—यह।

ईहग—सं०पु० [सं०] १ कवि (डिं.को.) २ चारण (डिं.को.)

ईहड़ौ—वि०—ऐसा।

ईहण—सं०पु०—१ याचक (अ.मा.) २ कवि (ह.नां.) ३ चारण (वं.भा.)

ईहा—सं०स्त्री० [सं०] १ इच्छा। उ०—जड़ी कीलक अबळा निज जीहा, आंणे हणी धरै रण ईहा।—वं.भा. २ चेष्टा, यत्न, उपाय।

ईहित—वि० [सं०] इच्छित, अभिलषित।

उ—वर्णमाला का पाँचवाँ अक्षर जिसका उच्चारण स्थान ओष्ठ है।
उं-अव्यय—प्रायः अव्यक्त शब्द के रूप में प्रश्न, अवज्ञा, क्रोध, स्वीकृति आदि को सूचित करने के लिए प्रयुक्त होता है, हुं का सूक्ष्म रूप है।
उंगळ-सं०पु०—देखो 'आंगळ'।
उंगळी-सं०स्त्री० [सं० अंगुलि] अंगुली।
उंगीजणौ, उंगीजबौ-क्रि०अ०—ऊँघना, नींद लेना, झपकी लेना।
उंगीजियोड़ौ-भू०का०कृ०—ऊँघा हुआ। (स्त्री० उँगीजियोड़ी)
उंगणौ, उंगबौ-क्रि०अ०—देखो 'ऊंघणौ'।
उंघाणौ, उंघाबौ, उंघावणौ, उंघावबौ-क्रि०स०—देखो 'ऊंघाणौ'।
उंचणौ, उंचबौ-क्रि०स०—ऊँचाया जाना।
उंचाई, उंचास-सं०उ०लि०—ऊँचाई, बुलंदी, ऊँचापन।
उंछवंती-सं०पु०—वह घोड़ा जिसके एक दांत कम हो (अशुभ—शा.हो.)
उंठिया-सं०स्त्री०—शेर की एक जाति (अ.मा.)
उंठियौ-सं०पु०—१ ऊँट। २ उंठिया जाति का शेर।
उंडांण, उंडायत-सं०स्त्री०—गहराई।
उंडाळी-वि०—गहरी। उ०—नाभि उंडाळी छीण कटि चळ मिरगा नैणी। विधना रूप-गुमेज संवारी पे'ल सेलांणी।—मेघ०
उंडाई-सं०स्त्री०—गहराई।
उंण-सर्व०—उस।
उंणौ-वि० (स्त्री० उंणी) १ उदासीन, खिन्नचित्त।
[सं० ऊन] २ देखो 'ऊंणौ'।
उंणौ-पूणौ-वि०—१ अपूर्ण. २ अपरिपक्व (बालक)
उंतावळ, उंतावळू-सं०स्त्री०—उतावली, जल्दबाजी।
उंतावळौ-वि०—उतावला, जल्दबाज, अधीर।
उंदायलौ-सं०पु०—१ प्रायः भट्टी पर रक्खा जाने वाला बड़ा तवा. २ खपरेलों पर नरिया के स्थान पर औंधा रक्खा जाने वाला एक खपरैल।
उंधाड़कौ-वि०—उल्टा कार्य करने वाला।
उंधायलौ-सं०पु०—देखो 'उंदायलौ'।
उंधाहड़ौ-सं०पु०—वह घोड़ा जिसके अगले पैर उसके पिछले पैरों की अपेक्षा कुछ अधिक लंबे हों (शा.हो.)
उंधीखोपड़ी-सं०पु०—बुद्धिरहित, मूर्ख, नासमझ, जिद्दी।
उंबरण-सं०पु०—सफेद तने वाला एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसके फल नीबू के समान होते हैं।
उंबरी-सं०पु०—एक बड़ा काँटेदार वृक्ष जिसके पत्ते बड़े लंबे और आम के पत्तों के समान होते हैं।
उंबरौ-सं०पु०—१ हल चलाने से होने वाली बड़ी लकीर, सीता. २ देखो 'उमराव'। उ०—ऐसा वंस छत्रीस दरगह उंबरा। सामंद चंद दखिदक आरिख इंवरा।—वचनिका
उंबी-सं०स्त्री०—देखो 'ऊंबी'। उ०—उंबी सिंबी अंगुळी बहु सेकि बटक्कै। खाजे पूपी खल्लकै ताजे करि तक्कै।—वं.भा.
उंबार-सं०स्त्री०—झड़बेरी के काटे हुए पौधों के गुच्छों का पृथक रूप से रक्खा हुआ समूह।
उंबारणौ, उंबारबौ-क्रि०स०—देखो 'अंवारणौ'।
उंहूं-अव्यय—हाँ या हूँ का विलोम, नहीं।
उ-सं०पु०—शिव. २ ब्रह्मा. ३ प्रजापति. ४ नारद. ५ आधीन. ६ सूर्य्य. ७ सार. ८ स्वामी कार्तिक. ९ आशीर्वाद. १० रावण. ११ त्रिकाल, त्रिसंध्या. १२ त्रिगुण. १३ काल. १४ बिजली. १५ पार्वती (एकाक्षरी)
सर्व०—वह। उ०—मेघ पुहप सम उ बलाहिक (सम) महावेग सूं चालै छै।—वेलि.
अव्यय—संबोधनसूचक या रोषसूचक शब्द जिसका उपयोग अनुकम्पा, नियोग, पादपूरण प्रश्न और स्वीकृति में होता है।
उअंकार-सं०पु०—प्रणव मंत्र, ॐ, ओ३म्। (रा.ज.सी.)
उअर, उअरि, उअवर-सं०पु० [सं० उरस्] हृदय। उ०—१ लाखावत एक सारीखौ लाखां, महा सुअपे दाखै मछर। कूंडावत वाही चित्तौड़ा अणियाळी रणमल उअर।—अज्ञात
उ०—२ असपत राव तणै अमरावत, परिहंस इवडौ बिहूं परि। ना आयौ तौ खटके नागद्रहौ. आयां नह मावै उअरि।
—कल्यांणदास सौदौ
उअह-सं०पु० [सं० उदधि] सागर, समुद्र। उ०—रांमण मुग्गल राउ जइत रांम, संकरइ दइत हूइसी संग्रांम। असपत्ति उअह जइतउ अगत्थि, सोखसी सत्र करिमाळ सत्थि।— रा.ज.सी.
उआं-सर्व०—अ का विकारी रूप, उन। उ०—पिण नहीं उआं राजा रा सुख कहीजै छै।—रा.सा.सं.
उआरण-वि०—रक्षा करने वाला, बचाने वाला।
उआरणौ-सं०पु०—बलैया, न्यौछावर। उ०—सेमनां नमौ नागेन्द्र मेख, उआरणा लियां थारा अलेख।—पीरदांन लाळस
उआरणौ, उआरबौ-क्रि०म०—१ बलैया लेना. २ रक्षा करना. ३ न्यौछावर करना। उ०—अर वसुदेव देवकी स्रीक्रस्णजी कौ मुख देखि वार-वार पांणी उआरि पीयै छै।—वेलि. टी.
उआरणहार, हारौ (हारी), उआरणियौ-वि०—बलैया लिया हुआ या रक्षा किया हुआ।
उआरिओड़ौ, उआरियोड़ौ, उआरयोड़ौ—भू०का०कृ०।
उआरियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ बलैया लिया हुआ. २ रक्षा किया हुआ। (स्त्री० उआरियोड़ी)
उआळ-सं०पु०—देखो अवाळ' (१)
उईज-सर्व०—वही।
उकड़णौ, उकड़बौ-क्रि०अ०—१ निकलना. २ लटकना। उ० रिम सिर उकड़िया रहै विच पमंग पलांणां।—अज्ञात
उकड़णहार, हारौ (हारी), उकड़णियौ-वि०—निकला या लटका हुआ।

उकड़िग्रोड़ो, उकड़ियोड़ो, उकड़्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

उकड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ निकला हुआ. २ लटका हुआ। (स्त्री० उकड़ियोड़ी)

उकड़ू—सं०पु०—देखो 'उकड़ू' ।

उकटणौ उकटबौ—क्रि०स०—१ कसिया जाना, कमाना. २ क्रोध करना. ३ बार बार कहना. ४ स्थान छोड़ कर निकलना. ५ भागना. ६ तलवार निकालना ।

उकटणहार, हारौ (हारी), उकटणियौ—वि० ।

उकटियोड़ो, उकटियोड़ो, उकट्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

उकटियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ कसिया हुआ. २ क्रुद्ध. ३ भागा हुआ. ४ तलवार निकाला हुआ. ५ स्थान छोड़ कर निकला हुआ। (स्त्री० उकटियोड़ी)

उकट्ट—सं०पु०—१ जोश. २ एहसान । उ०—उण वेळा बळ ग्रागळा, दळ कमघज्ज दुबाह । उकट्टां बळ ऊससै, सीस उलट्टां साह ।—रा.रू.

उकठणौ, उकठबौ—क्रि०स०—कटार या तलवार को म्यान से बाहर निकालना । (मि० उकढ़णौ)

उकठणहार, हारौ (हारी), उकठणियौ—वि० ।

उकठयोड़ो, उकठग्रोड़ो, उकठ्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

उकडू—सं०पु० [सं० उत्कुतोरु] बैठने की एक मुद्रा विशेष जिसमें घुटने मुड़े रहते हैं, तलवे जमीन से पूरे-पूरे सटे रहते हैं तथा चूतड़ एड़ियों से लगे रहते हैं।

उकढ़णौ, उकढ़बौ—क्रि०अ०—१ निकलना. २ चमकना. ३ ग्राक्रमण करना । (मि० उकढ़णौ)

क्रि०स०—४ तलवार म्यांन से बाहर निकालना । उ०—ग्रावण कांम खाग उकढ़ियौ । चीता जिम कढ़ियौ चहुवांण ।

—बळवंतसिंह गोटड़ा रौ गीत

उकढ़णहार, हारौ (हारी), उकढ़णियौ—वि० ।

उकढ़िग्रोड़ो, उकढ़ियोड़ो, उकढ़्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

उकढ़िग्रोड़ौ—भू०का०कृ०—१ चमका हुआ. २ निकला हुआ. ३ तलवार म्यांन से निकला हुआ । (स्त्री० उकढ़ियोड़ी)

उकढ़्ढणौ, उकढ़्ढबौ—क्रि०अ०—१ ग्राक्रमण करना. २ शस्त्र निकालना. ३ प्रहार हेतु शस्त्र उठाना। उ०—१ नरुकनि ले सस्त्र हत्थो उकढ़्ढे । किधौं कोटतें सांवठे सेर कढ़्ढे ।—ला.रा.

उ०—चोड़ै खेतां बीजा चौजां मध्थै तूं ही चढै । वीर फौजां मथ्थै तूं ही उकढ़्ढे बांणासा ।—हुकमीचंद खिड़ियौ

उकत—सं०स्त्री० [सं० उक्ति] १ कथन, उक्ति, चमत्कृत कथन । उ०—उपमा इस ब्यंग धुन उकत, जुगत ग्रलंकृत प्रकास ।—क.कु.बो. (मि० उक्ति) २ साहित्य का एक ग्रंग विशेष । उ०—एळं उकत री रूप, ग्रंथ सौ नांम उचारै ।—र.रू.

उकताणौ, उकताबौ—क्रि०अ०—१ ऊबना, उकताना. २ खीजना, ग्रधीर होना. ३ जल्दी मचाना ।

उकताणहार, हारौ (हारी), उकताणियौ—वि०—उकताने वाला ।

उकतायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

उकतावणौ, उकतावबौ—रू०भे० ।

उकताग्रोड़ौ—भू०का०कृ०—उकताया हुआ । (स्त्री० उकतायोड़ी)

उकतावणौ, उकतावबौ—क्रि०अ०—देखो 'उकताणौ' ।

उकति—सं०स्त्री० [सं० उक्ति] कथन, उक्ति, चमत्कारपूर्ण कथन । (रू०भे० उकत, उगत)

उकतिवांन—वि० [सं० उक्तिवान] चमत्कारपूर्ण कथन कहने वाला, कथन करने वाला । उ०—कर लोल झूलत ग्रति चपळ कांन, विखई मन जांणिक उकतिवांन ।—रा.रू.

उकती—सं०स्त्री०—देखो 'उकति' ।

उकंतौ, उकतौ—वि०—तलवार लेकर हाथ उठाये हुए, प्रहार करते हुए । उ०—भभकियौ वळै भाराथ उकतौ भुजे, साथ हाकळि जंगळनाथ मारे ।—दूदौ वीठू

उकती—सं०स्त्री०—देखो 'उकति' । उ०—ग्रांणै मति ग्रनुसार उकती ग्रंकड़ा । 'बांकै' कही झमाळ, बिहारी बंकड़ा ।—बां.दा.

उकर—सं०पु०—तीर, बांण ।

उकरड़ी, उकरड़ौ—सं०स्त्री० [सं० उत्करी] कचरा, फूस ग्रादि गंदगी का ढेर, घूरा ।

कहा०—१ उकरड़ी धन वदतां कांई जेज लागै—देखो (५)

२ उकरड़ी पर किसी ग्रांबौ को हुवै नी—घूरे पर कौनसा ग्राम नहीं होता ? (घूरे पर भी ग्राम हो सकता है); बुरी जगह पर भी ग्रच्छी वस्तु पैदा हो जाती है; नीच कुल में भी सज्जन उत्पन्न होते हैं. ३ उकरड़ी पर मेह बरसै ग्रौर महलां पर ही बरसै—घूरे पर भी मेह बरसता है ग्रौर महलों पर भी बरसता है; सज्जन सबको समान दृष्टि से देखते हैं. ४ उकरड़ी पर सोवै'र महलां रा सपना ग्रावै—घूरे पर सोता है ग्रौर महलों के सपने ग्राते हैं; ग्रसंभव बातों की इच्छा करना. ५ उकरड़ी वधतां कांई वार लागै—घूरे को बढ़ते क्या देर लगती है ? खराब या ग्रनिष्ट वस्तु शीघ्र बढ़ती है. ६ उकरड़ी में रतन जनमै—घूरे में भी रत्न उत्पन्न हो सकते हैं; बुरी जगह पर भी ग्रच्छी वस्तु पैदा हो सकती है; नीच कुल में भी सज्जन उत्पन्न हो सकते हैं. ७ बेटी उकरड़ी धन है—लड़की घूरे के समान ही है, जिस प्रकार घूरे को बढ़ते देर नहीं लगती उसी प्रकार लड़की को भी बड़ी होते देर नहीं लगती; शीघ्र ही उसके विवाह की फिक्र करनी पड़ती है. ८ बेटी उकरड़ी रौ ग्रोटौ है—देखो 'बेटी उकरड़ी धन है' । (रू०भे० ग्रकूरड़ी, उकरड़ी, उकूरड़ी, उखरड़ी)

उकरास—सं०पु० [सं० उत्कट+ग्राशा, प्रा० उक्कडासा=उकरास] १ उपाय, मौका, ग्रवसर. २ 'चर-भर' नामक एक देशी खेल में ग्राने वाला एक दांव या ग्रवसर ।

उकळणौ, उकळबौ—क्रि०अ०—१ उबलना । उ०—मद विद्या धन मांन, ग्रोछा सौ उकळै ग्रवट । ग्राधण रै उनमांन, रैवे विरळा राजिया ।

—किरपारांम

२ क्रोध करना. ३ ऊपर उठना. ४ अकुलाना. ५ विकट रूप से होना (युद्ध) उ०—किरण तपै छै सु बरछी किरण हुई कळि कहतां लड़ाई उकळिवा लागी।—वेलि. टी.

उकळणहार हारौ (हारी) उकळणियौ—वि०।

उकळिग्रोड़ौ, उकळियोड़ौ, उकळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उकळाणौ, उकळाबौ—क्रि०प्रे०—**उकाळणौ, उकाळबौ**—क्रि०स०।

मुहा०—उकळता बूकणौ—त्वरा करना, अधीर होना।

उकलणौ, उकलबौ—क्रि०अ०—१ उधड़ना. २ दिमाग में शीघ्र चमत्कारपूर्ण उपज होना. ३ लिखे अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण करना।

उकलणहार, हारौ (हारी), उकलणियौ—वि०।

उकलिग्रोड़ौ, उकलियोड़ौ, उकल्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उकलाणौ—(स.रू.)

उकळाणौ, उकळाबौ, उकळावणौ, उकळावबौ—क्रि०स०—१ उबालना. २ क्रोध कराना. ३ व्याकुल कराना।

देखो 'उकळणौ, उकळबौ'—अ०क्रि०।

क्रि०अ०—व्याकुल होना। उ०—आवण कह गये अजहुं न आये, जिवड़ौ अति **उकळावै**।—मीरां

उकलाणौ, उकलाबौ, उकलावणौ, उकलावबौ—क्रि०स०—१ दिमाग में नई बात उपजाना. २ उधड़ाना. ३ लिखे अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण कराना।

उकलीजणौ, उकलीजबौ—भाव वा०।

उकळियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ उबला हुआ. २ क्रोध किया हुआ. ३ व्याकुल। (स्त्री० उकळियोड़ी)

उकलियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ उधड़ा हुआ. २ व्युत्पन्नमति से उत्पन्न। (स्त्री० उकलिग्रोड़ी)

उकस—सं०पु०—१ जोश. २ अभिलाषा, लालसा. ३ देखो 'ऊकस'।

उकसणौ, उकसबौ—क्रि०अ० [सं० उत्कर्षण] १ उभरना, ऊपर को उठना. २ निकलना, अंकुरित होना. ३ उधड़ना. ४ बैर रखना, शत्रुता करना. ५ जोश आना।

उकसणहार, हारौ (हारी), उकसणियौ—वि०।

उकसाणौ, उकसाबौ—क्रि०स०।

उकसाणौ, उकसाबौ—क्रि०स०—१ उभारना, ऊपर को उठाना. २ उकसाना, जोश दिलाना। (मि० उकसणौ) (रू भे. उकसावणौ)

उकसायोड़ौ—भू०का०कृ०—उकसाया हुआ। (स्त्री० उकसायोड़ी)

उकसावणौ, उकसावबौ—क्रि०स०—देखो 'उकसाणौ'।

उकसावणहार, हारौ (हारी), उकसावणियौ—वि०।

उकसावियोड़ौ—भू०का०कृ०।

उकसियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ उभरा हुआ. २ निकला हुआ, अंकुरित. ३ उधड़ा हुआ. ४ शत्रुता की हुई. ५ जोश आया हुआ। (स्त्री० उकसियोड़ी)

उकाब—सं०पु० [अ०] एक प्रकार का बड़ा गिद्ध, गरुड़।

उकाळणौ, उकाळबौ—क्रि०स०—१ उबालना. २ गिराना. ३ डिगाना.

उकाळणहार, हारौ (हारी), उकाळणियौ—उबालने, गिराने या डिगाने वाला।

उकाळिग्रोड़ौ, उकाळियोड़ौ, उकाळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

(क्रि.प्र.रू. उकळणौ)

उकाळियोड़ौ, उकाळियौ—वि०—अकुलाया हुआ, व्याकुल।

उ०—जी-रौ **उकाळियौ** असपताळ नाठौ। उठै गरीबां-री सुणाई कठै ही।—वरसगांठ

(स्त्री० उकाळियोड़ी)

उकाळी—सं०स्त्री०—किसी काष्ठादि औषधि का क्वाथ, काढ़ा।

उकाळौ—सं०पु०—१ उबाल. २ देखो 'अंकालौ' (क्षेत्रीय)

उकासणौ, उकासबौ—क्रि०स०—१ उकसाना, जोश दिलाना, उत्साहित करना. २ तंग करना। उ०—तठा उपरांत करिनै राजांन सिला-मति मांखि रा **उकासिया** सूग्रर भाखरां रा मोढ़ा फाड़ फाड़ नै निकळिया छै।—रा.मा.सं.

उकासियोड़ौ—भू०का०कृ०—उकसाया हुआ। (स्त्री० उकासियोड़ी)

उकीरौ—सं०पु०—वर्षाकाल में गोबर में पैदा होने वाला जीव।

उकील—सं०पु० [अ० वकील] देखो 'वकील' (रू.भे.)

उकुसणौ, उकुसबौ—क्रि०स०—१ उजाड़ना. २ उधेड़ना।

उकेकळ—वि०—मुक्त। उ०—अमर **उकेकळ** करौ एकरां, बोहौ नांमी जंपै बळराव।—महाराणा सांगा रौ गीत

उकेरौ—सं०पु०—एक बरसाती कीड़ा जो गोबर में उत्पन्न होकर उसे खराब कर देता है।

उकेलणौ, उकेलबौ—क्रि०स०—१ तह वा पर्त से अलग करना, उखेलना, उधेड़ना. २ नोचना।

उक्कंबणौ, उक्कंबबौ—क्रि०अ०—ऊँची गर्दन करना। उ०—**उक्कंबी** सिर हुध्थडा, चाहंती रस-लुब्ध। ऊंची चढ़ि चाग्गि जिउं, माग्गि निहाळइ मुब्ध।—ढो.मा.

उक्कति, उक्कती—सं०स्त्री०—देखो 'उकति'।

उक्त—वि० [सं०] कहा हुआ, ऊपर का कथित, पूर्वकथित।

उ०—परंतु प्रथ्वीराज रौ मंत्री उण रा **उक्त** रूप इंद्रजाळ रा उद्‌बंधण में न आयौ।—वं.भा.

सं०स्त्री० [सं० उक्ति] १ डिंगल साहित्य का छंद-रचना का एक नियम या ढंग विशेष।—र.रू. २ देखो 'उक्ति'।

उक्रणौ, उक्रबौ—क्रि०अ०—१ जोश बतलाना. २ सिंह का दहाड़ना।

उ०—सिंघ **उक्रतै** सांकळां मदन जड़िया रिप सारू।—पा.प्र.

उक्रणहार, हारौ (हारी), उक्रणियौ—वि०—जोश बतलाने वाला, दहाड़ने वाला।

उक्रमणौ, उक्रमबौ—क्रि०अ० [सं० उत्+क्रम्] कूदना, नृत्य करना, छलांग भरना। उ०—धरतीं सिर पौड़ धणू अमती। यम आवत केसर **उक्रमती**।—पा.प्र

उक्रयोड़ौ–भू०का०कृ०—जोश बतलाया हुआ। (स्त्री० उक्रयोड़ी)

उकसणौ, उकसबौ–क्रि०स० [सं० उत्कर्षणम्] ऊँचा करना।

उक्रमियोड़ौ–भू०का०कृ०—ऊँचा किया हुआ। (स्त्री० उक्रमियोड़ी)

उख–सं०पु० [सं० उक्षा] बैल (ह.नां., पाठांतर)

उखड़णौ, उखड़बौ–क्रि०अ० [सं० उत्कर्षणम्] १ किसी जमी या गडी हुई वस्तु का अपने स्थान से अलग हो जाना, उखड़ना, जड़ सहित अलग होना. २ किसी सुदृढ़ स्थिति से अलग होना, जमा या सटा न रहना. ३ चाल में भेद पड़ना (घोड़े के लिए।) ४ हटना, अलग होना. [सं० ऊषगम्] ५ क्रोध करना, आपे से बाहर होना. ६ स्वांस का यथोचित रूप से न चल कर अधिक वेग से और ऊपर नीचे चलना।

उखड़णहार, हारौ (हारी), उखड़णियौ–वि०—उखड़ने वाला।

उखड़ाणौ, उखड़ाबौ–प्रे०रू० **उखाड़णौ, उखाड़बौ**–स.रू.।

उखड़िग्रोड़ौ, उखड़ियोड़ौ, उखड़्योड़ौ–भू०का०कृ०।

उखड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—उखड़ा हुआ। (स्त्री० उखड़ियोड़ी)

सं०पु०—वह ऊँट जिसके टखने में कुछ कसर या अवगुण हो।

उखड़ाणौ, उखड़ाबौ–क्रि०प्रे०रू०—उखाड़ने के काम में प्रवृत्त करना।

उखणौ, उखबौ–क्रि०स०—बोझा सिर पर उठाना. २ ऊपर उठाना. ३ उत्तरदायित्व लेना. ४ नोचना. ५ प्रहार हेतु शस्त्र उठाना। उ०—आयौ खांडि खडग उखणियै, जण जण वाहै जुवौ जुवौ।

—श्रासो मंढ़ायच

उखणाणौ, उखणाबौ, उखणावणौ, उखणावबौ–स०रू०।

उखणा–सं०स्त्री० [सं० ऊषण] काली मिर्च (अ.मा.)

उखणाणौ, उखणाबौ, उखणावणौ, उखणावबौ–क्रि०स०—१ बोझा सिर पर रखवाना. २ ऊपर उठवाना. ३ उत्तरदायित्व डालना।

उखणायोड़ौ–भू०का०कृ०।

उखणियोड़ौ–भू०का०कृ०—बोझा सिर पर रक्खा हुआ, ऊपर उठाया हुआ। (स्त्री० उखणियोड़ी)

उखध–सं०पु० [सं० औषधि] औषधि, दवा। उ०—चतुरविध वेद प्रणीत चिकित्सा, ससत्र उखध मंत्र तंत्र सुवि।—वेलि.

उखरबिध, उखरबुध, उखरविध–सं०स्त्री० [सं० उषर्बुध] अग्नि, आग (ह.नां.)

उखरांटो, उखराटौ–वि०—बिना बिस्तर।

उखराळी–वि०—१ बिना बिस्तर की खाट. २ बिना बिस्तर बिछाये खाट पर सोने वाली स्त्री. ३ कुत्ते आदि पशुओं द्वारा अगले पैरों से रेत खोद कर बैठने के लिए किया गया गड्ढ़ा।

उखळ–सं०पु०—देखो 'ऊखळ'।

उखळणौ, उखळबौ–क्रि०अ०—उखड़ना. २ क्रोध करना।

उखळणहार, हारौ (हारी), उखळणियौ–वि०—उखड़ने या क्रोध करने वाला।

उखळिग्रोड़ौ, उखळियोड़ौ, उखळ्योड़ौ–भू०का०कृ०।

उखलणौ, उखलबौ–क्रि०अ०—देखो 'उकलणौ'। देखो 'उखड़णौ'।

उखळमेळौ–सं०पु०—देखो 'ऊखळमेळौ'।

उखळियोड़ौ–भू०का०कृ०—उखड़ा या क्रोध किया हुआ। (स्त्री० उखळियोड़ी)

उखलियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उकलियोड़ौ'। देखो 'उखड़ियोड़ौ'।

उखांखियौ–वि०—१ जोशीला, जोशपूर्ण. २ वीर, साहसी. ३ क्रुद्ध।

उखांणौ–सं०पु० [सं० उपाख्यान] उक्ति, कहावत, दृष्टांत।

उखा–सं०स्त्री० [सं० उषा] १ प्रभात, सवेरा, तड़का (डि.को.) २ अरुणोदय की लालिमा. [सं० उस्र] ३ गाय (अ.मा.) [सं० उषा] ४ अनिरुद्ध की पत्नी जो बाणासुर की कन्या थी। ५ रात्रि (डि.को.)

उखाड़–सं०पु० [सं० उत्खान] १ उखाड़ने की क्रिया या भाव। (यौ० उखाड़-पछाड़) २ पेंच रद्द करने की युक्ति या विधि, तोड़।

उखाड़णौ, उखाड़बौ–क्रि०स० [सं० उत्खातन] १ किसी जमी, गड़ी या बैठी हुई वस्तु को स्थान से अलग करना, जमा न रहने देना. २ हटाना, अलग करना. ३ क्रोध कराना. ४ नष्ट करना, ध्वस्त करना।

उखाड़णहार, हारौ (हारी), उखाड़णियौ–वि०—उखाड़ने वाला।

उखाड़िग्रोड़ौ, उखाड़ियोड़ौ, उखाड़्योड़ौ–भू०का०कृ०।

उखाड़-पछाड़, उखाड़-पिछाड़–सं०स्त्री०—१ उल्टी-सीधी बातें. २ उखाड़ने का भाव या क्रिया. ३ उपद्रव, उत्पात. ४ युद्ध. ५ उथल-पुथल (मि० भांगातोड़)

उखाड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—उखाड़ा हुआ। (स्त्री० उखाड़ियोड़ी)

उखापत, उखापति, उखापती–सं०पु० [सं० उषापति] १ कामदेव (अ.मा.) २ अनिरुद्ध।

उखारणौ, उखारबौ–क्रि०स०—देखो 'उखाड़णौ'।

उखारियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उखाड़ियोड़ौ'। (स्त्री० उखारियोड़ी)

उखि–सं०पु० [सं० उक्षा] बैल (ह.नां., पाठांतर)

उखेड़णौ, उखेड़बौ–क्रि०स० [सं० उत्खातन] देखो 'उखाड़णौ'।

उखेड़ाणौ, उखेड़वाणौ, उखेड़वाबौ–प्रे०रू०।

उखेड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—उखाड़ा हुआ। (स्त्री० उखेड़ियोड़ी)

उखेळ–सं०पु० [सं० उत्खेल] १ युद्ध, उत्पात। उ०—मरहठा करै सिर विलंद मेळ। अहमदाबाद मंडियौ उखेळ।—वि.सं. २ देखो 'ऊखेळ'।

उखेल–सं०पु०—१ उखाड़ने की क्रिया या भाव। कहा०—**उखेल** चीणा गऊं वावणौ—चने के पौधों को उखाड़ कर गेहूँ बोना; व्यर्थ की उखाड़-पछाड़ करना। २ कलह। उ०—खत्रियां मत दाखौ **उखेलां**, चूंडां मगतां जोड़ी चेळां। भाई सगा हुआ सह भेळां, वसुधा राखौ जसड़ी वेळां।

—पनजी आढ़ौ

उखेलणौ, उखेलबौ–क्रि०स०—१ उखाड़ना। देखो 'उखाड़णौ'।

२ कपाट खोलना । उ०—ताहरां भांणेज मांनधाता दीठौ देखां अपछरायां कह्यौ छै म्रे कोठार मतां खोलेज्यो सु हूं कोठार एक उखेलीस ।—चौबोली. ३ गड़ा हुआ पदार्थ खोद कर निकालना । उ०—द्रव्य उखेलीयौ छै । बारै काढ़ि मांडयौ छै ।—बेलि. टी.

उखेलियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उखाड़ा हुआ. २ खोला हुआ (कपाट) (स्त्री० उखेलियोड़ी)

उखेलौ–सं०पु०—देखो 'उखेल' ।

उखेवणौ, उखेवबौ–क्रि०स०—किसी देवता के यहां पूज्य व्यक्ति या वस्तु के सामने आग पर धूप आदि सुगंधित पदार्थ डाल कर धुआं उठाना, धूनी देना । उ०—साळगरांम सिला सुध सेविस, अगर चंदण धूप उखेविस ।—ह.र.

उखेवीजणौ, उखेवीजबौ–क्रि० कर्म वा०—धूनी दिया जाना । उ०—आरती उतारीजै छै । केसरि-चंदण चरचीजै छै । अग उखेवीजै छै ।—रा.सा.सं.

उखेवियोड़ौ–भू०का०कृ०—आग पर धूप आदि सुगंधित पदार्थ डाल कर धुंआ उठाया हुआ । (स्त्री० उखेवियोड़ी)

उखेळ, उखेळौ–सं०पु०—देखो 'ऊखेळ' ।

उगटणौ, उगटबौ–क्रि०अ० [सं० उद्घटन] १ उदय होना. २ कसिया जाना । (मि० उघटणौ)

उगटणहार, हारौ (हारी), उगटणियौ– उदय होने वाला, कसिया जाने वाला ।

उगटिग्रोड़ौ, उगटियोड़ौ, उगटयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

उगटियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उदय हुआ हुआ. २ कसिया हुआ । (स्त्री० उगटियोड़ी)

उगटौ–सं०पु०—देखो 'उबटौ' ।

उगट्टि–वि०— प्रगट, प्रत्यक्ष, उत्पन्न । उ०—जौ थे देखी मारुई, तउ अहिनांण उगट्टि ।—ढो मा.

उगणचाळीस—देखो 'गुणचाळीस' ।

उगणत्रीस—देखो 'गुणतीस' ।

उगणसाठि- देखो 'गुणसठ' ।

उगणाऊ–वि०—पूर्व दिशा का, पूर्व दिशा संबंधी । उ०—जखड़ै सोचियौ ब्याह तौ तीन छ:, तिकै उगणाऊ कै उतराधा छै नै माजी दखणाधू सासरो कह्यौ तिको किसी भांति ।—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात

उगणिस, उगणीस–वि० [सं० ऊनविंशति या एकोनविंशति, प्रा० एगूण-वीस, अप० एगुणविंस] दस और नौ के योग के समान ।

सं०पु०—दस और नौ के योग की संख्या ।

उगणीसमौ–वि०—जो क्रम में अठारह के बाद पड़ता हो ।

उगणीसे'क–वि०—उन्नीस के लगभग ।

उगणीसौ–सं०पु०—१९ वां वर्ष ।

उगणौ, उगबौ–क्रि०स०—देखो 'ऊगणौ' ।

उगणोतंरि–वि०—देखो 'गुणंतर' ।

उगत–सं०स्त्री० [सं० उद्गति] १ युक्ति, उपाय । उ०—मुक्त होवण री मन में मूरख उगत न आंणी रे ।—ऊ.का. २ उद्भव, उत्पत्ति, जन्म. ३ न्याय, नीति, ढंग. ४ हेतु, कारण. [सं० उक्ति] ५ उक्ति, कथन । उ०— नहीं उगत अभ्यास नह, गुर सूं लियौ न ग्यांन ।

—बां.दा.

[रा०] ६ डिंगल साहित्य का छंद रचना का एक नियम या ढंग विशेष ।

उगति, उगती–सं०स्त्री० [सं० उक्ति] देखो 'उकति' । उ०—सूर धीर निवाणे जळ ढूका, कहि दिखाई उगति ।—वचनिका

उगम–सं पु० [सं० उद्गम] १ उदय, आविर्भाव २ अंकुरित होने की क्रिया. ३ उत्पत्ति स्थान. ४ सूर्योदय का समय या प्रकाश. [रा०] ५ पशुओं में होने वाला एक प्रकार का रोग विशेष ।

उगमण–सं०स्त्री०—१ सूर्योदय की दिशा, पूर्व दिशा ।

२ देखो 'ऊगमण' ।

उगमणियौ—देखो 'ऊगमणियौ' ।

उगमणी—देखो 'ऊगमणी' ।

उगमणूं–क्रि०वि०—पूर्व दिशा की ओर ।

सं०पु०—पूर्व दिशा ।

उगमणौ–सं०पु०— पूर्व दिशा ।

वि०— पूर्व दिशा संबंधी ।

उगमणौ, उगमबौ–क्रि०अ० [सं० उदयगमन] देखो 'ऊगमणौ, ऊगमबौ' । उ०—सूरज पछिम किम उगमई ।— वी.दे.

उगमणहार हारौ (हारी), उगमणियौ–वि०—उगने वाला ।

क्रि०वि० पूर्व दिशा की ओर, पूर्व की दिशा में ।

उगरणौ, उगरबौ–क्रि०अ०—१ बचना । उ०—पीहर हंदी ढुंबणी, घाले नवले धन्न । मारू ढोलो उगरै, कहि समझावां वन्न ।—ढो.मा. २ उत्पन्न होना. ३ शेष रहना ।

उगरांटो, उगरांटी–वि०—देखो 'उखराळी' ।

उगरांमणौ, उगरांमबौ–क्रि०स० [सं० उद्ग्रहण] प्रहार हेतु शस्त्र उठाना ।

उगरांमियोड़ौ–भू०का०कृ०—प्रहार हेतु शस्त्र उठाया हुआ । (स्त्री० उगरांमियोड़ी)

उगराणौ, उगरावणौ, उगराबबौ–क्रि०स० [सं० उद्ग्रहण] १ वसूल करना. २ बदला लेना । उ०—थित अनरथ थायोह, पिड़ 'बूड़ौ' 'पाबू' पड़े । एकन उगरायोह, रै दावौ वांमे रह्यौ । -पा.प्र.

३ प्रहार हेतु शस्त्र उठाना ।

कहा०—उगरावियोड़ी तौ भंगी री ही कोनी रहै—उठाने के बाद तो शस्त्र का प्रहार पड़ेगा ही; विचारने के पश्चात कार्य पूरा होना ही चाहिये ।

उगरावियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ वसूल किया हुआ, बदला लिया हुआ. २ प्रहार हेतु शस्त्र उठाया हुआ । (स्त्री० उगरावियोड़ी)

उगराहणौ, उगराहबौ–क्रि०स०— देखो 'उगरावरणौ'। उ०—अजमेर रै थांणै री हकीकत सांभळ नै आदि वैर **उगराह** नूं असुरांण तुरकांण रा दळ राजांन ऊपरै विदा हुआ।—रा.सा.सं.

उगळ–सं०स्त्री० [सं० उद्गल] १ रुपये-पैसे की अधिकता. २ सामान की अधिकता. ३ आवश्यकता।

उगळणौ, उगळबौ–क्रि०अ० [सं० उदगलन] १ किसी वस्तु को वापिस मुंह द्वारा निकालना, उगलना. २ उल्टी करना, कै करना।

उ०—परघौ व्याल ज्यौं कीलनी वज्र किल्लौ मनूं भक्खि तारक्ष पीछे **उगळघौ**।—ला.रा.

३ छिपाने के लिए कही गई बात को प्रगट कर देना. ४ ग्रहण किया हुआ, पुनः लौटाना. ५ भीतर की वस्तु को बाहर निकाल देना।

उगळणहार, हारौ (हारी), उगळणियौ—उगलने वाला।

उगळाणौ, उगळाबौ–स०रू०—(प्रे.रू.)

उगळिप्रोड़ौ, उगळियोड़ौ, उगळयोड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊगळांची–वि०स्त्री० [सं० उत्कंचुकि] बिना कंचुकी पहिने हुए, नंगे स्तन वाली (स्त्री०) उ०—आधी **उगळांची** कांचळियां आधी, बिलिये चूड़ी बिन चींथरियां बांधी।—ऊ.का.

उगळांणौ–वि०— नंगा, बिना कपड़े पहिने हुए, निवस्त्र। उ०—आछा आछा जनवासी व्हैगा बनवासी। उठगा **उगळांणा** पाछा कद आसी। — ऊ.का.

उगळाणौ, उगळाबौ–क्रि०स०— १ मुख से निकलवाना, उगलाना २ इकबाल कराना, दोष को स्वीकार कराना. ३ पचे या हड़प किये हुए माल को निकलवाना।

उगळायोड़ौ–भू०का०कृ०—उगलाया हुआ। (स्त्री० उगलायोड़ी)

उगळियोड़ौ–भू०का०कृ०—उगला हुआ। (स्त्री० उगलियोड़ी)

उगळी–सं०स्त्री०—उल्टी, वमन। उ०—चुगली **उगळी** चीज है, चुगली है चरकीन। काग हुवै कै कूधरौ, इणरै रस आधीन।—बां.दा.

उगवणौ–क्रि०वि०—पूर्व दिशा की ओर।

उ०—उदैपुर आथमणौ पीछोलौ है **उगवणै** सहर वसै है। —बां.दा.ख्या.

उगवणौ, उगवबौ- क्रि०अ०— देखो 'ऊगणौ'।

क्रि०वि०—पूर्व दिशा की ओर।

उगवियोड़ौ–भू०का०कृ०— देखो 'उगियोड़ौ'। (स्त्री० उगवियोड़ी)

उगसाणौ, उगसाबौ–क्रि०स०—उकसाना। देखो 'उकसाणौ'।

उगसायोड़ौ–भू०का०कृ०— उकसाया हुआ। (स्त्री० उगसायोड़ी)

उगहणौ, उगहबौ–क्रि०अ०—देखो 'ऊगणौ'। उ०—मारू सी देखी नहीं, अण मुख दौ नैणांह। थोड़ी सौ भोळै पड़इ, दणयर **उगहंतांह**। —ढो.मा.

उगांची—देखो 'उगळांची'।

उगांण–सं०पु०—देखो 'ऊगांण'।

उगाई–सं०स्त्री०—१ वसूली. २ वसूल किया गया धन।

उगाड़–सं०पु०—१ समझ. २ खुलासा. ३ प्रकट करने की क्रिया या भाव. ४ उघाड़ने की क्रिया या भाव।

उगाड़णौ–सं०पु० [सं० उद्घाटन] देखो 'उघाड़णौ'।

उगाड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उघाड़ियोड़ौ'। (स्त्री० उगाड़ियोड़ी)

उगाड़ौ, उगाड़ौ-पुगाड़ौ–वि० [सं० उद्घाटित] देखो 'उघाड़ौ'। [सं० उद्घाटितउद्ग्रह]

उगाणौ, उगाबौ–क्रि स०—१ उगाना, उत्पन्न करना. २ अंकुरित करना. ३ उदय करना. ४ प्रकट करना. ५ वसूल करना. ६ तानना।

उगाणहार, हारौ (हारी), उगाणियौ–वि०—उगाने वाला।

उगायोड़ौ—भू०का०कृ०। उगावणौ—(रू.भे.)

उगाळ–सं०पु० [सं० उद्गार, प्रा० उगाल] १ पीक, थूक, खंखार. २ निचोड़ा हुआ पानी. ३ कै, वमन।

सं०स्त्री०—४ जुगाली।

उगाळणौ, उगाळबौ–क्रि०स०—१ मुंह से (शब्द) निकालना।

उ०—गाळ लुगायां गावही, नर मुख उचत न गाळ। अमल गाळ मनवार कर, का सुभ बचन **उगाळ**।—बां.दा.

२ देखो 'उगळणौ' ३ जुगाली करना (चौपाये गाय आदि पशुओं का)

उगाळदांन–सं०पु०—पीक, थूक या खँखार आदि के गिराने का बरतन, पीकदान।

उगाळियोड़ौ–भू०का०कृ०—उगला हुआ। (स्त्री० उगाळियोड़ी)

उगाळी–सं०स्त्री०—१ सूर्योदय। उ०—पीथल रै खिमतां बादळ री, कुण रोकै सूर **उगाळी** नै।—कन्हैयालाल सेठिया २ जुगाली।

उगाव–सं०पु०—१ उदय। उ०—तू आदत पलटै नरां, उलटै भांण **उगाव**।—मे.म. २ जुगाली।

उगावणौ, उगावबौ–क्रि०स०—देखो 'उगाणौ' (रू.भे.)

उगावियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उगायोड़ौ' (रू.भे.)

उगाह–सं०पु०—एक प्रकार का छंद विशेष जिसके प्रथम चरण में १५ मात्रायें तथा बाद में ११ मात्रायें होती हैं।

उगाहणौ, उगाहबौ–क्रि०स०—देखो 'उगाणौ' (५)

उगाहा–सं०स्त्री०—एक छंद विशेष जिसके प्रथम एवं तृतीय चरण में बारह-बारह तथा द्वितीय व चतुर्थ चरण में अठारह-अठारह मात्रायें होती हैं। इस प्रकार कुल साठ मात्रायें होती हैं। इसे प्राकृत भाषा में उद्गाथा भी कहते हैं।

उगाहियोड़ौ–भू०का०कृ०—उगाहा हुआ, वसूल किया हुआ। (स्त्री० उगाहियोड़ी)

उगाही–सं०स्त्री०—१ वसूल करने की क्रिया या वसूल करने का काम। उ०—सारा देस गांवां में **उगाही** बांध लीनी।—शि.वं. २ वसूल किया गया धन।

उगाहौ–सं०पु०—१ देखो 'उगाह' (र.ज.प्र.)

२ वसूल करने वाला, उगाहने वाला। उ०—एही तौ लेखागर हुआ थर भमर छै, एही उगाहा हुआ।—वेलि. टी.

उगियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उदय हुआ हुआ, उदित. २ उत्पन्न हुआ हुआ. ३ ऊगा हुआ। (स्त्री० उगियोड़ी)

उगुणी, उगूणी, उगूणो—देखो 'अगूणी'।

उगेरणौ, उगेरबौ–क्रि०स० [सं० उद्गीरण] (गीत या गायन) प्रारम्भ करना। उ०—बीवड़ियां थर बाळापण धीर, उगेरै 'वीरो' ऊंची राग।—सांझ

उगेरणहार, हारौ (हारी), उगेरणियौ–वि०—(गीत या गायन) प्रारंभ करने वाला।

उगेराणौ, उगेराबौ—प्रे०रू०।

उगेरिप्रोड़ौ उगेरियोड़ौ, उगेरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उगेराणौ, उगेराबौ–क्रि०प्रे०—दूसरे को गाने के लिये प्रेरित करना।

उगेरियोड़ौ–भू०का०कृ०—(गीत या गायन) प्रारम्भ किया हुआ। (स्त्री० उगेरियोड़ी)

उगेरे, उगैरै–अव्यय—इत्यादि, वगैरह। उ०—तुलछीरांम दळपति किलांणसिंघ नांम। पालबास बींजासी उगेरे पांच गांम।—शि.वं.

उगेळ–सं०स्त्री०—१ रक्षा, मदद. २ अधिकता, बाहुल्य।

उगेळणौ, उगेळबौ–क्रि०स०—रक्षा करना, बचाना। उ०—भांज दावादारां केतां मेलिया काळ रै भेट। रूकां वाय के वारां भेलिया हारां रंभ उगेळिया केतां केतां ठेलिया अठेला अंग। खेलिया अखेला खेल सिंघी जेत खंभ।—चैनजी सांदू

उगोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उदय हुआ हुआ, उदित. २ अंकुरित. ३ उत्पन्न हुआ हुआ। (मि० उगियोड़ौ) (स्त्री० उगोड़ी)

उग्गाह–सं०स्त्री० [सं० उद्गाथा, प्रा० उग्गाह] आर्या छंद का एक भेद जिसके विषम चरणों में बारह-बारह मात्रायें और सम चरणों में अठारह-अठारह मात्रायें होती हैं।

उग्र–वि० [सं०] १ प्रचंड, उत्कट, तेज, घोर। उ०—राजै दिन उग्र इसौ दसरथ, सुर नर सेव करै ग्रहि सथ।—रांमरासौ

२ क्रोधी. ३ कठिन. ४ भयानक।

सं०पु०—१ शिव, महादेव (अ.मा.) २ बच्छनाग (वत्सनाभ) ३ सूर्य. ४ एक वर्णसंकर जाति जो क्षत्रिय पिता और शूद्र माता से मानी जाती है. ५ बहुत ऊँचा स्वर (संगीत) उ०—सबद उग्र करनाळ सवाई। सुर वरधू तुरही सहनाई।—रा.रू.

उग्रकारी–वि०—१ भयंकर. २ वीर. ३ जबरदस्त काम करने वाला।

उग्रगंध–सं०पु० [सं०] जिसमें किसी प्रकार की कोई तेज गंध हो। लहसुन, कायफल, हींग आदि।

उग्रगंधा–सं०स्त्री०—१ अजवाइन. २ अजमोदा. ३ बच।

उग्रगती–सं०पु०—हंस (नां.मा.)

उग्रचंडा–सं०स्त्री० [सं०] भगवती देवी की एक मूर्ति विशेष जिसके अष्टादश भुजायें हैं और जो कोटि योगिनी परिवेष्ठित है, जिसकी पूजा आश्विन कृष्णा नवमी को होती है।

उग्रतप–सं०पु०—ऋषि, मुनि, तपस्वी (अ.मा.)

उग्रता, उग्रताई–सं०स्त्री०—१ तेजी, प्रचंडता. २ कठोरता. ३ शौर्य, तेज. ४ साहित्य में व्यभिचारी भावों के अंतर्गत एक भाव। उ०—निरवेद सपत संका निवार, मद-मोह उग्रता अपसमार।—क.कु.बो.

उग्रतारा–सं०स्त्री०—देवी की एक मूर्ति जिसका दूसरा नाम मातंगिनी है.

उग्रताळा–सं०पु० [सं० उग्र+अ० तालअ] भाग्यशाली, भाग्यवान।

उग्रधन, उग्रधनू–सं०पु० [सं०उग्र+धन्वन्] १ इंद्र (अ.मा.) २ शिव (ह.नां.)

वि० —तेज धनुषवाला।

उग्रतप–सं०पु० [सं० उग्रताप] ऋषि।

उग्रभ–सं०पु०—१ तेज. २ पराक्रम।

वि०—१ तेजस्वी. २ पराक्रमी।

उग्रभागी–वि०—भाग्यवान, तेजशाली, तेज भाग्य वाला।

उग्रसेण–सं०पु० [सं० उग्रसेन] आहुक का पुत्र और कंस का पिता मथुरा का राजा।

उग्रहणौ, उग्रहबौ–क्रि०स० [सं० उद्ग्रहणम्] १ छोड़ना, मुक्त करना। उ०—महदातार पयंपै माहव, बोल किसौ उचरां बियौ। ग्रहियां पछै उग्रहणौ गोविंद, कीजौ जिम मगरांम कियौ।—महारांणा सांगा रौ गीत

२ रक्षा करना। उ०—उग्रहण मंडोवर आंहपुरांह, छुडावण अहिप्पुर छहतरांह।—रा.ज.सी. ३ बदला लेना।

उग्रा–सं०स्त्री० [सं०] १ दुर्गा. २ कर्कशा स्त्री. ३ अजवाइन. ४ बच. ५ धनियाँ।

उग्रावणौ, उग्रावबौ–क्रि०स०—देखो 'उग्राहणौ'।

उग्राहणबेरी–सं०पु०—भाला (ना.डि.को.)

उग्राहणौ, उग्राहबौ–क्रि०स०—१ देखो 'उगरावणौ'। [सं० उदगरण] २ गर्जन करना। उ०—चउंड राउ उग्राहइ च्यारि चक्क, कोपिया साहि मेल्हइ कटक्क।—रा.ज.सी. [सं० उद्ग्राहण] ३ रक्षा करना. उ०—भेट दाव तणौ थकै आवै भिड़ण, चाळ बांधै नकी जुड़ण चाळौ। काळ दाढ़ां महा धरापुड़ काढ़तै कियौ गिड़ जेम उग्राह काळौ।—रावत मांनसिंह सलूबर रौ गीत। [सं० उद्ग्राहण] ४ छोड़ना।

उघड़णौ, उघड़बौ–क्रि०अ० [सं० उद्घटन] १ खुलना, आवरण-रहित होना, नग्न होना। उ०—१ गोरी पींडी पर उघड़ता गोडा, लबी वीखां दे लेतोडी लोडा।—ऊ.का.

उ०—२ कूड़ो किण नै रे! आपू अब ओळभो कोई उघड़या संचित पांण।—गीत रांमायण २ प्रकट होना, प्रकाशित होना, भंडा फूटना. ३ अपना परिचय देना।

उघड़णहार, हारौ (हारी), उघड़णियौ–वि०—आवरणरहित होने वाला, प्रकट होने वाला।

उघड़ाणौ, उघड़ाबौ—प्रे०रू०। उघड़ावणौ, उघड़ावणौ—प्रे०रू०।
उघड़िप्रोड़ौ, उघड़ियोड़ौ, उघड़योड़ौ—भू०का०कृ०।
उघड़ीजणौ, उघड़ीजबौ—भाव वा०।

उघड़ाणौ, उघड़ाबौ, उघड़ावणौ, उघड़ावबौ—क्रि०स० [सं० उद्घाटन] १ आवरणरहित कराना, खुलाना. २ प्रकट कराना, प्रकाशित कराना।
उघड़ाणहार, हारौ (हारी), उघड़ाणियौ—वि०।
उघड़ायोड़ौ—भू०का०कृ०।
उघड़ावणौ—(रू.भे.)

उघड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ आवरण हटा हुआ, नग्न. २ प्रकट, प्रकाशित। (स्त्री० उघड़ियोड़ी)

उघट—सं०पु० [सं० उत्कथन] १ ताल देना, सम पर आना (संगीत में ताल की जाँच के लिये मात्राओं की गणना करके नियमानुसार बोल बांधे जाते हैं और ताल दी जाती है, इसे उघटणौ कहते हैं।) उ०—कळहंस जांणगर मोर निरतकार, पवन ताळधर ताळपत्र। आरि तंतिसर भमर उपंगी, तीवट उघट चकोर तत्र।
—वेलि.
२ उछलने की क्रिया या भाव। उ०—मरीजीवउ पांणी तणउ, सालहू उघट नइ खाइ। दुख सहणा पुहरा दियण, कंत दिसाउरि जाइ।—ढो.मा.

उघटणौ, उघटबौ—क्रि०अ० [सं० उत्कथन, प्रा० उक्कथन] १ उदय होना. २ उभरना. ३ कसिया जाना. ४ उछलना (मि० उघट (२)) ५ क्रोध करना। उ०—मुगट उतार सुघट दसमुख रा, लेकर उघट धुजाई लंका।—र.रू.
उघटणहार, हारौ (हारी), उघटणियौ—वि०।
उघटिप्रोड़ौ, उघटियोड़ौ, उघटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उघरणौ, उघरबौ—क्रि०स०—प्रवेश करना। उ०—ओदी उघरै मिनख खोदवै ह्यारां भारी। कोलं कंवळी रेत, खांण री सुरगां सारी।
—दसदेव

उघराणौ, उघराबौ, उघरावणौ, उघरावबौ—देखो 'उगरावणौ'।
उ०—वे मांडव रा पातमाह रा चाकर छै, जेजियौ उघरावे छै।
—नैणसी

उघरावियोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'उगरावियोड़ौ'।
उघळणौ, उघळबौ—क्रि०स०—देखो 'उगळणौ'।
उघाई—सं०स्त्री०—देखो 'उगाही'।
उघाड़—सं०पु० [सं० उद्घाट] देखो 'उगाड़'।
उघाड़ौ—वि०—आवरणरहित, नंगा, नग्न। उ०—वीजळियां गळि बादळां, सिहरां माथै छात। कदै मिळं सूं सज्जना, करै उघाड़ै गात।
—जसराज

उघाणौ, उघाबौ—देखो 'उगाणौ'।
उघेरणौ, उघेरबौ—देखो 'उगेरणौ'।

उच्चड़—सं०पु०—१ बिना गढ़ा हुआ पत्थर. २ मूर्ख।

उड़द—सं०पु० [सं० ऋद, पा० उढ] एक पौधा जिसकी फलियों के दानों की दाल होती है।

उड़दपरणी—सं०स्त्री०—देखो 'उदयपरणी' (अमरत)

उड़दरेख, उड़दरेखा—सं०स्त्री० [सं० उर्ध्व रेखा] पैर के तलुवे की एक सीधी रेखा जो शुभ मानी गई है।

उड़दबिगण, उड़दबिभण, उड़दाबेगण, उड़दाबेगी—सं०स्त्री०—१ मुसलमानी काल की बादशाही दासी जो मर्दाने लिबास में रहती थी. २ उद्दंड स्त्री, शैतान स्त्री।

उड़दावौ—सं०पु०—घोड़े का एक खाद्य पदार्थ विशेष। उ०—तरै साहणी कह्यौ, जौ घोडां री जाबता, रातब उड़दावौ घास रौ जाबतौ करावौ तौ आपे भेळा रहां।—जगदेव पँवार री बात

उड़दी—सं०स्त्री० [अ० वर्दी] १ पोशाक, वेशभूषा. २ राज्य सरकार द्वारा किसी कर्मचारी वर्ग विशेष के लिये एक प्रकार का पहनावा विशेष।

उड़दू—सं०पु०—१ कोई बड़ा जलसा या कार्य. २ फारसी लिपि में लिखी जाने वाली, अरबी-फारसी-हिन्दी भाषाओं से उत्पन्न एक खिचड़ी भाषा. ३ लश्कर व छावनी का बाजार. ४ सेना, फौज।

उडांगर—सं०पु०—पक्षी। उ०—गगन मंडळ में बसै उडांगर ऊंचे आरंभ लागा।—ह.पु.वा.

उडी—क्रि०वि०—१ ऐसी. २ वैसी।

उड़ेदंड—सं०पु०—कसरत के अंतर्गत एक प्रकार का दंड जिसमें सपाट खींचते हुए दोनों पैरों को ऊपर फेंकते हैं।

उचंगौ—वि०—१ अजनबी. २ उठाईगिर, उचक्का। उ०—उडगे उचंगे बंके लफंगे चंगे मारग लागे, अभागे सभागे भये टोर दीनें टुच्चां कौ।—ऊ.का.

उचंडणौ, उचंडबौ—क्रि०स०—ऊपर फेंकना, उछालना। उ०—कवन उरग मणि लेत, कवन असमांन उचंडै। कवन बात कर गहैं, कवन 'लावै' जुद्ध मंडै।—ला.रा.

उच—अव्यय [सं० उच्च] उच्च, ऊँचा। उ०—पुनरवसु रिख उच ग्रह पंच।—रांमरासौ

उचकणौ, उचकबौ—क्रि०अ०—१ उचकना, ऊपर उठना, उछलना।
उ०—एक फिरत आतुर भ्रमित, विद्युत समचित वाग। उचकै पग पुगै अवनि, जांणिक लग्गै दाग।—रा.रू.
२ गुम होना, फरार होना। उ०—खीच मुफत री खाय, करड़ावण इकर घणां। लपर घणौ लपराय, रांड उचकसी राजिया।
—किरपारांम
उचकणहार, हारौ (हारी), उचकणियौ—वि०—उचकने वाला।
उचकाणौ, उचकाबौ, उचकावणौ, उचकावबौ—क्रि०स०।
उचकिप्रोड़ौ, उचकियोड़ौ, उचकयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उचावणौ, उचावबौ—देखो 'उचाणौ, उचाबौ'। उ०—कवन काळनि गहौं, कवन गिरि मेरु उचावै।—ला.रा.

उचासिरौ–सं०पु०—१ ऊँचा स्थान, उच्च श्रेणी. २ पूर्वजों का निकास-स्थान ।

उचित–वि०—१ योग्य, ठीक, मुनासिब, वाजिब. २ समीचीन ।

उचिता–सं०स्त्री०—प्रकृति (मि० उचितापति)

उचितापति–सं०पु०—ईश्वर । उ०—ग्रापरण दांन लंक **उचितापति**, भगत निवाजरण वभीखरण ।—ह.नां.

उचिस्रव, उचीस्रव–सं०पु०[सं० उच्चैः+श्रवस्] सफेद कानों और सात मुंह वाला इंद्र का सफेद घोड़ा जो समुद्र-मन्थन के समय निकला था (नां.मा.)

वि०—ऊँचा सुनने वाला, बहरा ।

उचूळ–वि० [सं० उच्चूल] ऊँचा । उ०—महा **उचूळ** मूळकं दुकूळ देह में नहीं । कहां सुगंध कंध बीचि गंध गेह में नहीं ।—ऊ.का.

उचेरौ–वि०—ऊँचा ।

उचैस्रव–सं०पु० [सं० उच्चैःश्रवा] इन्द्र का घोड़ा (अ.मा.)

उचौ–वि० [सं० उच्च] देखो 'ऊँचौ' । उ०—**उचै** गोळइ लांबइ नाक ।
—वी.दे.

उच्चंडणौ, उच्चंडबौ–क्रि०स०—फेंकना ।

उच्चंडियोड़ौ–भू०का०कृ०—फेंका हुआ । (स्त्री० उच्चंडियोड़ी)

उच्च–वि० [सं०] १ ऊँचा, श्रेष्ठ, महान. २ उन्नत, उत्तुंग. ३ उत्तम. ४ बड़ा ।

उच्चता–सं०स्त्री० [सं०] १ ऊँचाई, श्रेष्ठता, महानता. २ उत्तुंग होने का भाव. ३ उत्तमता. ४ बड़ाई ।

उच्चमन, उच्चमनौ–वि०—ऊँचे या उन्नत मन वाला, उदार हृदयी, महामना ।

उच्चय–सं०स्त्री०—१ कटिबंध, नाड़ा. २ साड़ी या धोती. ३ लहँगा ।

उच्चरण–सं०पु० [सं०] कंठ, तालु, जिव्हा आदि से शब्द निकलना, मुंह से शब्द फूटना ।

उच्चरणौ, उच्चरबौ–क्रि०स०—उच्चारण करना, बोलना ।

उ०—**उच्चरचौ** खांन सोही करचौ यौं मति कीमत मांनखां ।
मीरखां दारु योसिता भयौ, तार गहचौ असमांन खां ।
—ला.रा.

उच्चरणहार, हारौ (**हारी**), **उच्चरणियौ**–वि०—उच्चारण करने वाला ।

उच्चरिग्रोड़ौ, उच्चरियोड़ौ, उच्चरयोड़ौ–भू०का०कृ०—उच्चारण किया हुआ ।

उच्चरियोड़ौ–भू०का०कृ०—उच्चारण किया हुआ ।
(स्त्री० उच्चरियोड़ी)

उच्चळचित्त–वि० [सं० उच्चलचित्त] अस्थिर चित्त वाला । उ०—तेता मारू मांहि गुण, जेता तारा अम्भ । **उच्चळचित्ता** साजणां, कहि कयउं दाखउं सम्भ ।—ढो.मा.

उच्चाट–सं०स्त्री०—देखो 'उचाट' । उ०—घोड़ां भड़ां बंका घाट, भोकरण खळां दळ लग भाट । मसहां दळां देरण **उच्चाट**, तौ रजवाटजी रजवाट ।—क.कु.बो. २ उखाड़ने या नोचने की क्रिया ।

उच्चाटण, उच्चाटन–सं०पु०—तंत्र का एक अभिचार या प्रयोग जिसके अनुसार किसी के चित्त को कहीं से हटाना होता है ।

उच्चातुर–सं०पु० [सं०] राक्षस (नां.मा)

उच्चार–सं०पु० [सं० उत्+चर्+घञ्] मुंह से शब्द निकलना, बोलना, कथन ।

उच्चारण–सं०पु० [सं०] कंठ, ओष्ठ, जिव्हा आदि के द्वारा मनुष्यों का व्यक्त और विभक्त ध्वनि निकाल मुख से सस्वर व्यंजन बोलना, वर्णों या शब्दों के बोलने का ढंग, उल्लेख, कथन । उ०—ग्ररटीला रा बचन रौ तिरस्कार करि इरण रीति **उच्चारण** रौ प्रारंभ कीधौ ।
—वं.भा.

उच्चारणौ, उच्चारबौ–क्रि०स०—उच्चारण करना (मि० उचारणौ)

उच्चारियोड़ौ–भू०का०कृ०—उच्चारण किया हुआ, उच्चरित ।
(स्त्री० उच्चरियोड़ी)

उच्चित–वि० –देखो 'उचित' ।

उच्चीश्रवा, उच्चैश्रवा–सं०पु०– देखो 'उचिस्रव' (अ.मा.)

उच्चोळ–सं०पु० [सं० उल्लोच] चंद्रातप, वितान (डिं.को.)

उच्छटणौ, उच्छटबौ–क्रि०अ०—टूटना, टूट कर दूर पड़ना ।

उ० —छिकि टोप बाहुल **उच्छटै** कटिकाळि कंटक की कटै ।— वं.भा.

उच्छरंग–सं०पु०— प्रसन्नता , हर्ष, खुशी (अ.मा.) (मि० उछरंग)

उच्छरणौ, उच्छरबौ–क्रि०अ०स०—१ बड़ा होना. २ पोषण पाना. (मि० उछरणौ) ३ उछलना. ४ उच्चारण करना. ५ उखाड़ना. ६ देखो 'उछरणौ' (४)

उच्छरणहार, हारौ (**हारी**), **उच्छरणियौ**– वि० ।

उच्छरिग्रोड़ौ, उच्छरियोड़ौ, उच्छरयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

उच्छरियोड़ौ–भू०का०कृ०— १ बड़ा. २ पोषण पाया हुआ. ३ उछला हुआ. ४ उच्चारण किया हुआ, उच्चरित. ५ उखाड़ा हुआ. ६ देखो 'उछरियोड़ौ' ।

उच्छलग–सं०पु०—उत्सव । उ०—पैखवे सुर नर सयल पर धम धमत सुर **उच्छलग** ।— नैरगसी (रू.भे. उछलग)

उच्छळणौ, उच्छळबौ–क्रि०अ०—देखो 'उछलणौ' । उ०—वळे **उच्छळे** फेरियो संख पांणी, पुळै पाप जे आप सूं हूंत प्रांणी ।— रा.रू.

उच्छळियोड़ौ–भू०का०कृ०—उछला हुआ । (स्त्री० उच्छळियोड़ी)

उच्छव–सं०पु०– १ उत्सव, मंगल कार्य, धूम-धाम, त्यौहार, पर्व ।

उ०— ना **उच्छव** ना हळक दूमरणौ घरणौ लखावै । भांरण डूबतां पांरण म पोयरण पंख खिलावै ।—मेघ.

२ खुशी, उमंग, आनन्द, उत्साह । उ०– **उच्छव** सूं इळगार सूं, आतुर सूं अनिमंघ । यू खड़िया आयो 'अभो', ग्रहि कूरमां कमंध ।
—रा.रू.

उच्छवाह, उच्छाव, उच्छाह–सं०पु० [सं० उत्साह] १ उत्साह, जोश, हर्ष, उमंग। उ०—नांम नासुरुद्दीन साम्हैं चलावण रौ **उच्छाह** भी न धारियौ।—वं.भा. २ धूम-धाम उत्सव। उ०—देवी संघ सुरतांण काज सीधा, देवी क्रोड़ तेतीस **उच्छाह** कीधा।—देवि०

उच्छित–वि०—ऊँचा, उन्नत।

उचकनखोरा बाय–सं०पु०—वह घोड़ा जिसके नेत्रों मे आंसू गिरते हों (अशुभ—शा.हो.)

उचकाणौ, उचकाबौ, उचकावणौ, उचकावबौ–क्रि०स०—१ चलते समय पैर उठाना, पैर ऊंचा करना। उ०—डोळा हींडोळा होकर हुचकाती, अणवट ठोकर दे एडी **उचकाती**।—ऊ.का. २ उचकाना, ऊपर उठाना, कुदाना. ३ गुम करना, फरार करना।

उचकाणहार, हारौ (हारी), उचकाणियौ–वि०—उचकाने वाला।

उचकायोड़ौ—भू०का०कृ०।

उचकीजणौ, उचकीजबौ–कर्म वा०।

उचकियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उचका हुआ, कूदा हुआ. २ गुमा हुआ, फरार। (स्त्री० उचकियोड़ी)

उचक्क–वि० देखो 'उचक्कौ'।

उचक्कणौ, उचक्कबौ—देखो 'उचकणौ, उचकबौ'। उ०—खंड चटक्कै खुप्परी, लगि लुत्थि लटक्कं। सेलां मार सुमार व्है, असवार **उचक्कं**।—वं.भा.

उचक्कौ–वि०—१ ऊँचा (आवाज या शब्द) तेज। उ०—अतरै चकचक्कां सबद **उचक्कां**, आमुर कुक्कां ओद्रक्कां।—रा.रू.

सं०पु०—१ उचक कर चीजें ले भागने वाला, उचक्का, चोर, ठग. २ बदमाश. ३ छली, पाखंडी।

उचड़णौ, उचड़बौ–क्रि०अ०—१ सटी या लगी हुई किसी वस्तु का अलग होना, किसी स्थान से हटना. २ पृथक होना. ३ जाना, भागना।

उचड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—उचड़ा हुआ। (स्त्री० उचड़ियोड़ी)

उचजणौ, उचजबौ–क्रि०अ०—उछल कर वार करना, झपटना।

उ०—**उचजी** कुंभथळ थाप जड़की उरड़, तुरत कर एक सूं बर्जा ताळी।—बां.दा.

उचजियोड़ौ–भू०का०कृ०—उछल कर वार किया हुआ, झपटा हुआ। (स्त्री० उचजियोड़ी)

उचझणौ, उचझबौ–क्रि०स०—१ तलवार से युद्ध करना. २ तलवार उठाना, तलवार को म्यान से बाहर निकालना।

उचट–सं०स्त्री०—देखो 'उचट'।

उचटणौ, उचटबौ–क्रि०अ० [सं० उच्चाटन] १ जमी हुई वस्तु का उखड़ना, उचड़ना. २ चिपका या जमा न रहना. ३ अलग होना, पृथक होना, छूटना. ४ बिचकना, भड़कना. ५ विरक्त होना, उदास होना, मन न लगना। उ०—चित फाटा मन **ऊचटया**, रूठी गोरी रहइ गळिळाइ।—वी.दे. ६ भूलना (स.रू. 'उचटाणौ')

उचटाणौ, उचटाबौ–क्रि०स०—१ जमी हुई वस्तु को उखाड़ना. २ अलग करना, पृथक करना. ३ भड़काना, बिचकाना. ४ विरक्त करना, उदास करना. ५ भुलाना।

उचटियोड़ौ–वि०—उचटा हुआ। (स्त्री० उचटियोड़ी)

उचट्ट–सं०स्त्री० [सं० उच्चाट] १ मन का न लगना, विरक्ति, उदासीनता, उदासी। उ०—एक ज चारण पंथि सिरि, जोई करहा वट्ट। ढोलउ चलतउ देखि करि, तिणि मनि थयउ **उचट्ट**।—ढो.मा. २ उमंग, जोश. ३ उत्सव, जलसा।

उचणौ, उचबौ–क्रि०स०—१ उँचाया जाना, उठाना. २ कहना।

उ०—मळयाचळ सुतनु मळै मन मोरे, कळी कि कांम अंकुर कुच। तणौ दखिण दिसि दखिण त्रिगुण में ऊरध सास समीर **उच**।—वेलि.

उचत–वि०—बढ़िया, श्रेष्ठ, सुंदर. [सं० उचित] वाजिब, ठीक।

उ०—बाड़ लियाड़ै **उचत** पांच बिध, न्याय कनक कर मिसर नखै। रोर वराह समंद पैली रुख, रांम रवा कर रांम राखै।—महाराणा हमीर रौ गीत

उचरंग–सं०पु० [सं० उत्सव] १ उत्सव, जलसा. २ खुशी।

वि०—ऊँचा, उन्नत (मि० उछरंग)

उचरणौ, उचरबौ–क्रि०स०—उच्चारण करना। उ०—भाट विड़द तिहां **उचरै**।—वी दे. (मि० 'उच्चरणौ' रू.भे.)

उचरी–सं०स्त्री०—कीर्ति, यश, प्रशंसा। उ०—कीरत पतै कमंध री, ते प्रसरी वड तौर। भरी सभा रु विलायतां, **उचरी** रुकै न और।—जैतदांन बारहठ

उचळणौ उचळबौ–क्रि०अ०—चलायमान होना, कंपित होना। उ०—धर डुल्लिय परिभार, पहुमि बसवांन **उच्चळिळय**। हल मिळिळय परि जोर, शेष अहि फन पर सल्लिय।—ला.रा.

उचस्ट–वि० [सं० उचिष्ट] जूठा, जूठन (एकाक्षरी)

उचाट–सं०स्त्री०—१ चिंता। उ०—अरंदां **उचाट** हेक, प्रळै वाट ऊक। २ कै, वमन। -क.कु.बो.

उचांत उचांयत–सं०स्त्री० [सं० उच्च] ऊँचाई।

उचाकणौ, उचाकबौ–क्रि०स०—बिलगाना, अलग करना।

उचाट, उचाटण–सं०स्त्री० [सं० उच्चाट] १ वेदना, पीड़ा, व्यथा।

उ०—इक जोगी आणंद मइं, आव्यउ तिणहिज बाट। जांणौ स्रीपति भेजिया, भांजण साल्ह **उचाट**।—ढो.मा.

२ चिंता, व्याकुलता। उ०—अकबर हियै **उचाट**, रात दिवस लागी रहै।—दुरसौ आढ़ौ. ३ मन का न लगना। उ०—कुळ ने लागे काट खाट में जूता खावै। अंग में होय **उचाट**, जाट जोगी बण जावै।—ऊ.का. ४ विरक्ति, उदासीनता।

उचाटी–सं०स्त्री० [सं० उच्चाट] देखो 'उचाट'। उ०—भड़ मेळै दुरजणसल भाटी, असुरां सेन्या रहै **उचाटी**।—रा.रू.

उचाणौ, उचाबौ–क्रि०स०—१ ऊँचा करना. २ ऊपर उठाना. ३ (बोझा) उठाना (रू.भे. ऊचाणौ)

उचायोड़ौ–भू०का०कृ०—१ ऊँचा किया हुआ. २ ऊपर उठाया हुआ. ३ (बोझ) उठाया हुआ। (स्त्री० उचायोड़ी)

उचार–सं०पु० [सं० उच्चारण] उच्चारण।

उचारणौ, उचारबौ–क्रि०स० [सं० उच्चारण] १ उच्चारण करना, मुंह से शब्द निकालना, बोलना. २ बार-बार रटना, जपना।

उचारणहार, हारौ (हारी), उचारणियौ–वि०—उच्चारण करने वाला।

उचारिग्रोड़ौ, उचारियोड़ौ, उचारयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उचारिण–सं०पु० [सं० उत्तमर्ण (बहुरा) का कल्पित है-उच्च ऋण उसका अपभ्रंश] कुबेर (नां.मा.)

उचारियोड़ौ–भू०का०कृ० [सं० उच्चारण] उच्चरित, उच्चारण किया हुआ। (स्त्री० उचारियोड़ी)

उचाळउ–सं०पु०—देखो 'उछाळौ'। उ०—पूगळ देस दुकाळ थियुं, किणहीं काळ विसेसि। पिंगळ **ऊचाळउ** कियउ, नळ नरवर चइ देसि।—ढो.मा.

उचाळणौ, उचाळबौ–क्रि०स०—उछालना (रू.भे.)

उचाळौ–सं०पु०—देखो 'उछाळौ'। उ०—राव सुरतांण आपरा **उचाळा** भरनै नीसरियौ।—नैणसी

उच्छिस्ट–वि० [सं० उच्छिष्ट] जूठा।

सं०पु०—जूठन, जूठी वस्तु।

उच्छेदणौ, उच्छेदबौ–क्रि०स०—१ छेदन करना. २ तोड़ना. ३ उखाड़ना. ४ मर्यादा उल्लंघन करना।

उ०—'ग्रभौ' चालियौ ग्रासुरां सीस ऐसौ, जळनिद्ध **उच्छेदियां** बंध जैसौ।—रा.रू.

उच्छेदणहार, हारौ (हारी), उच्छेदणियौ–वि०—उखाड़ने या छेदने वाला।

उच्छेदिग्रोड़ौ, उच्छेदियोड़ौ, उच्छेदयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उच्छेदियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ छेदा हुआ. २ उखाड़ा हुआ, सीमा से बाहर हुआ हुआ। (स्त्री० उच्छेदियोड़ी)

उच्छेर–सं०पु०—देखो 'उच्छेर'।

उच्छृंखल–वि० [सं०] १ जो क्रमबद्ध न हो, ग्रंड-बंड, विशृंखल. २ स्वेच्छाचारी, निरंकुश. ३ उद्दंड, ग्रक्खड़।

उच्छाय–सं०पु० [सं० उत्+श्रि+ग्रक्] पर्वत, वृक्षादि की उच्चता, उच्च परिमाण।

उछंग–सं०पु० [सं० उत्संग] १ गोदी, क्रोड़, ग्रंक। उ०—ग्रधिपति **उछंग** सोभै 'ग्रभौ' राजत ज्यौं कंचन रतन, उर दियण मोद फिर ऊमरां, तात गोद प्रिय वरत तन।—रा.रू. २ मध्य भाग, बीच. ३ ऊपर का भाग।

वि०—निर्लिप्त, विरक्त।

उछंगति–सं०पु० [सं० उत्संग] गोद, क्रोड़। उ०—कुंवर मीळइ जाई बाप हुई। लई **उछंगति** भोज कुंवार।—वी.दे.

उछंछळौ–सं०पु० [सं० उच्चंचल] एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

उछंटी–वि०स्त्री०—१ ग्रधिक. २ बड़ी।

उछंडणौ, उछंडबौ–क्रि०स०—छोड़ना, त्यागना। उ०—बरमा काबुल वीर महाजुध मंडिया, ग्रर भग्गा ग्रलंगांण ग्राथांण **उछंडिया**।

—किसोरदांन बारहठ

उछंडियोड़ौ–भू०का०कृ०—छोड़ा हुआ। (स्त्री० उछंडियोड़ी)

उछ–सर्व०—उस, वह (रू.भे.)

उछइ–वि०—थोड़ा, ग्रोछा। उ०—ग्राज नीरालइ सीय पड़यौ, च्यारि पहूर मांही नूं मीळी ग्रंख। **उछइ** पांणी ज्यूं माछळी, जिव जागूं तिव उठु छूं झंखि।—वी.दे.

उछक-छाक–सं०पु०—लड़खड़ाने की क्रिया या भाव। उ०—सु कितरा एक तौ राजांन **उछक-छाक**, छकतां बकतां थड़थड़ता घूमता पड़ता घोड़ा ग्राया छै।—रा.सा.सं.

उछकणौ, उछकबौ–क्रि०ग्र०—१ ग्राक्रमण करना, छलांग मार कर प्रहार करना. २ नशा हटना, चेत में ग्राना, होश में ग्राना. ३ चौंक पड़ना (मि० 'उचकणौ')

उछकियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ ग्राक्रमण किया हुआ. २ नशा हटा हुआ, होश में ग्राया हुआ. ३ चौंका हुआ।

(स्त्री० उछकियोड़ी)

उछजणौ, उछजबौ–क्रि०स०—देखो 'ऊछजणौ, ऊछजबौ'।

२ जोश में ग्राना. ३ फूलना।

उछजियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ जोश में ग्राया हुआ. २ ग्राक्रमण हेतु शस्त्र उठाया हुआ। (स्त्री० उछजियोड़ी)

उछज्ज–वि०—उद्यत, कटिबद्ध. २ पूर्ण जोश में, जोशीला।

उछट–सं०स्त्री०—१ तरंग, लहर. २ चाल, गति. ३ उदारता, दानशीलता। उ०—रजवट वट घट राजतां, उग्रवट **उछट** ग्रमट्ट विकट पता ज्यूं करणवै, ग्रर ग्राथांण ग्रवट्ट।

—किसोरदांन बारहठ

वि०—ग्रधिक।

उछटणौ, उछटबौ–क्रि०स०—१ कूदना। उ०—इभ चाकर माकर **उछट** उडि ग्रासण ग्राया।—वं.भा. २ कटना, कट कर दूर पड़ना। उ०—विकट रहचट पलट नट गति, उलट झटपट **उछट** खगझट निपट ग्रघ दट दपट।—वं.भा.

उछट–सं०स्त्री०—१ इच्छा, चाह. २ प्रसन्नता. ३ स्वीकृति. ४ शक्ति।

उछब–सं०पु० [सं० उत्सव] १ उत्सव, जलसा. २ खुशी, प्रसन्नता.

उछरंग, उछरंगि–सं०स्त्री०—१ इच्छा, ग्रभिलाषा। उ०—वर 'साल-मेस' प्रांमण बळै, ग्राहिज रहै **उछरंग** रै।—भगवांनजी रतनू

२ उत्सव, जलसा। उ०—ग्रायौ भरथ ग्रवध ग्रभंग, मंडे पावड़ी उतमंग रइयत कीध ग्रत **उछरंग**, इम ग्रावास जाय उमंग।—र.रू. ३ हर्ष, ग्रानन्द, प्रसन्नता (ग्र.मा.)

उ०- उछरंग ग्रत विध वेद उत्तम, रचे मंडप रीत। सुत चार दसरथ तणा साथे, परणियां कर प्रीत।—र.रू.

वि० १ उत्सुक। उ०- उछरंग ग्रंग रिड़मल ग्रभंग, जोधाहर नाहर रूप जंग।—ऊका. २ ऊँचा, उन्नत। उ०—सीह छरा गजगाह सभ, मद भर हणै मतंग। कुळवट 'पता' कमंधरी, ग्रादू जुध उछरंग।—किसोरदान बारहठ

उछरंगणी, उछरंगबौ-क्रि०स०—१ भयंकर युद्ध करना, पराक्रम दिखाना. क्रि.ग्र.—२ उच्छृंखल होना। उ०—इक पहर काळ उछरंगियौ प्रळै ज्वाळ वर्णा खड़ग। 'रिणछोड़' 'कुसळ' मिळिया रवद, पमंग जितां बळ रोस पग।—रा.रू. ३ प्रसन्न होना, हर्ष करना।

उछरंजण-सं०पु० [सं० उत्सर्जन] दान (ह.नां.)

उछरजण त्याग-सं०पु० [सं० उत्सर्जनत्याग] दातार (ग्र मा.)

उछरणौ, उछरबौ-क्रि०ग्र०—१ जन्म लेना, उत्पन्न होना. २ उछलना, कूदना (रू.भे. ऊछरणौ) उ०—धरा धूम बित्थुरै, तोय ऊछरै सरोवर।—ला.रा. ३ पोषण पाना (रू.भे. ऊछरणौ, ऊछरबौ)

उ०—कनक कटोरां राखजे, भल सूरत भरियोह। क्यूं निबळौ व्है केहरी, उण पय उछरियोह।—बां.दा.

[सं० उत्सर्जन] ४ चरने के लिए मवेशियों का जंगल में जाना।

उछरणहार, हारौ (हारी), उछरणियौ-वि०।

उछराणौ, उछराबौ-स०रू०।

उछरिग्रोड़ौ, उछरियोड़ौ, उछरयोड़ौ-भू०का०कृ०।

उछराणौ उछराबौ-क्रि०स०- पशुग्रों को चराने निमित्त जंगल में हांकना। उ०—नांमै मांह गमाय कर एवड़ उछराया।

केसोदास गाडण

उछरियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ जन्म लिया हुग्रा, उत्पन्न. २ उछला हुग्रा. ३ पोषण पाया हुग्रा, पोषित. ४ चरने के निमित्त जंगल में मवेशी गया हुग्रा। (स्त्री० उछरियोड़ी)

उछरेळ-वि०- बलवान, जबरदस्त।

उछळंग-वि०- देखो 'उच्छृंखळ'। उ०—नाचै रंग पूतळी एक वावै तिण पर सुर उछळंग संख सबदह ऊलावै।—लल्ल भाट

उछळ-सं०स्त्री०—१ छलांग, कुदान. २ लाभ वाला हिस्सा या भाग। वि०—बढ़िया, श्रेष्ठ। (यौ० उछळपांती)

उछळकूद-सं०स्त्री० [सं० उच्छलकूर्द] १ खेल-कूद २ हलचल. ३ ग्रधीरता, चंचलता. ४ गड़बड़ी।

उछळग-सं०पु०— उत्सव (मि० उच्छळग)

उछळणौ, उछळबौ-क्रि०ग्र० [सं० उच्छलन] १ वेग से ऊपर उठना ग्रौर गिरना. २ झटके के साथ एक बारगी देह को इस प्रकार क्षण भर के लिए ऊपर उठा लेना जिससे पृथ्वी का लगाव छूट जाय. ३ कूदना. ४ ग्रत्यंत प्रसन्न होना, खुशी से फूलना. ५ रेखा या चिन्ह का स्पष्ट दिखाई देना, उभड़ना ६ जोश ग्राना।

उछळणहार, हारौ (हारी), उछळणियौ-वि०—उछलने वाला।

उछळाणौ, उछळाबौ—स०रू०।

उछळिग्रोड़ौ, उछळियोड़ौ, उछळयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उछाळणौ, उछाळबौ-स०रू०। **उछवाळणौ, उछवाळबौ**—(रू.भे.)

उछळपांती-सं०स्त्री०—लाभ वाला हिस्सा, ग्रधिक मात्रा वाला ग्रंश।

उछळवाणौ, उछळवाबौ-क्रि०म० (प्रे.रू.)—उछालने में प्रवृत्त करना।

उछळाणौ, उछळाबौ-क्रि०स० (प्रे.रू.)—उछालने में प्रवृत्त करना।

उछळायोड़ौ-भू०का०कृ०—उछालने में प्रवृत्त किया हुग्रा। (स्त्री० उछळायोड़ी)

उछळियोड़ौ-भू०का०कृ०—उछला हुग्रा। (स्त्री० उछळियोड़ी)

उछव-सं०पु० [सं० उत्सव] उत्सव, जलसा। उ०—राजा भीखमक कै ग्रनेक उछव होण लागा। ग्रनेक बाजा बाजै छै।—वेलि. टी.

रू०भे०—उच्छब, उच्छव, उच्छरंग, उछवाह, उछाव, उछाह।

उछवाळणौ, उछवाळबौ-क्रि०स०—फेंकना, उछालना, पराजित करना। उ०—ग्रसंख दळ दिली रा भुजां उछळावतौ। समर भर भीम दीठौ सबांही घेर विच वारहौ मंडोवर घातियौ मंडोवर घेर ग्रांबेर मांही—चुतरौ मोतीसर।

उछवाह-सं०पु० [सं० उत्सव] १ उत्सव, जलसा। २ उत्साह, उमंग। उ०- सज टोप सुभट सनाह, इम किये जुध उछवाह। घोड़ांम पाखर घाल, वप पीठ ढाल बिसाळ।—पे.रू.

उछांछळौ-वि०—चंचल, चपल।

उछांट-सं०स्त्री०—१ उत्कंठा, ग्रभिलाषा. २ प्रबलता. ३ बल, शक्ति. ४ वमन, उल्टी।

उछांवळौ-वि०—१ उन्मत्त, मस्त. २ मग्न. ३ नटखट।

उछाजणौ, उछाजबौ-क्रि०स०- उछालना। उ०—बाजता घंट विढुवै वळां, ऊरध सूंड उछाजता।—मे.म.

उछारक-सं०पु० [सं० उत्सारक] द्वारपाल, प्रतिहार (ह नां.)

उछाळ-सं०स्त्री० [सं० उच्छाल] १ ग्रनायास ऊपर उठने की क्रिया, फलांग, चौकड़ी, कुदान. २ वह ऊँचाई जहां तक कोई वस्तु उछल सकती है. ३ वमन, उल्टी, कै. ४ पानी का छींटा. ५ किसी पुण्य या शुभ कार्य के निमित्त न्यौछावर करके फेंके हुए रुपये का दान जो विवाह में दूल्हे के ग्रागे-ग्रागे उछाला जाता है। शोक के ग्रवसरों पर यह बिना न्यौछावर किये फेंका जाता है।

उछाळणौ, उछाळबौ-क्रि०स० [सं० उच्छालन] १ उछालना, ऊपर की ग्रोर फेंकना।

कहा०—१ उछाळ भाटौ करम में क्यों लेवणौ। या भाटौ उछाळ नै करम में क्यूं लेवणौ— स्वयं पत्थर उछाल कर उसे ग्रपने माथे क्यों लेना; स्वयं ग्रपनी ग्रोर से ग्राफत सिर पर नहीं लेना चाहिये।

२ प्रकट करना, प्रकाशित करना।

उछाळणहार, हारौ (हारी), उछाळणियौ-वि०—उछालने वाला।

उछाळिग्रोड़ो, उछाळियोड़ो, उछाळयोड़ो—भू०का०कृ०।

उछाळियोड़ो–भू०का०कृ०—उछाला हुआ। (रू.भे. उछाळयोड़ो) (स्त्री० उछाळियोड़ी)

उछाळौ–सं०पु०—१ उछालने की क्रिया या भाव। उ०—समदर देख्यौ सूरज कांनी, गरज्यौ तीर उछाळौ दे।—रेवतदांन

२ इमारत की कुरसी. ३ जागीरदार या शासक पर किसी कारण से नाराज होकर प्रजा का सामूहिक रूप से शासक के गाँव से पलायन करना व एक साथ मिल्कियत लेकर रवाना होना।

कहा०—१ गांम तो उछाळै ग्रायौ नै डूम कै म्हनैं तिवारी घालौ—गाँव तो शासक से नाराज होकर जा रहा है किन्तु डूम कहता है कि मेरा त्यौहार का नेग देते जाग्रो; हम पर तो विपत्ति ग्राई है किन्तु नीच व स्वार्थी व्यक्ति ग्रपना स्वार्थ ही सबसे पहले देखते हैं. २ पाडा नै उछाळा में ई लाभ है—भैंस के पाडे को इस उछाले में लाभ है क्योंकि बँधे न होने से उसे दूध मिलता है; किसी की विपत्ति में किसी को लाभ भी हो सकता है।

४ कमजोर व्यक्ति का क्रोध में पलायन. ५ जोश क्रोध.

६ वमन, कै, उल्टी. ७ जल या खाद्याभाव के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रयाण।

उछाव, उछाह–सं०पु० [सं० उत्साह] १ उत्साह, उमंग।

उ०—धमजग्र तोप उछाह की तंबूर ग्रंबक बज्जयं।—ला.रा.

२ हर्ष. ३ जोश। उ०-यौं सुनि राव उछाह के करै मुच्छ मिळाया।—वं.भा. ४ उत्सव, जलसा, ग्रानंदोत्सव।

उ०—राजा प्रोहित तेड़ियउ, जांइ ढोलउ ल्याव। सखियां मारू नूं कहइ, हुवउ ग्रणंद उछाव।—ढो.मा.

५ जैन लोगों की रथ-यात्रा। ६ इच्छा, उत्कंठा।

उछाही–वि०—१ उत्साही. २ ग्रानन्द मनाने वाला।

उछिस्ट–वि० [सं० उच्छिष्ट] भोजनावशिष्ट, जूठा।

उछीरौ–सं०पु० [सं० ग्रसृक] खून, रक्त। उ०—कांना रा करारा खमें हृथ्थ धारा उछीरा उधारा वहै वारवारा।—ना.द.

उछेट–सं०पु०—सीना।

उछेद–सं०पु० [सं० उच्छेद] खंडन, नाश।

उछेर–सं०पु०—१ वंश, ग्राल-ग्रौलाद, संतान. २ जंगल में मवेशियों के चरने जाने की क्रिया का भाव।

उछेरणौ, उछेरबौ–क्रि०स०—चराने के निमित्त पशुग्रों को जंगल में हाँकना या ले जाना।

उछेरियोड़ो–भू०का०कृ०—चराने के उद्देश्य से जंगल में गये हुए (मवेशी) (स्त्री० उछेरियोड़ी)

उछ्रित–वि०—उच्च, ऊँचा। उ०—ग्रर ग्रागै देवराज रौ रचियौ ग्राठ हात उछ्रित, ग्राठ हात लंबायत, बत्तीस पूतळी सहित।—वं.भा.

उजंक–वि०—१ निशंक, साहसी। उ०—नमौ सिसपाळ मनावण संक, जरासंध जीपण सेन उजंक।—ह.र. २. उद्दंड।

उजड़–वि०—देखो 'ऊजड़'।

उजड़णौ, उजड़बौ–क्रि०ग्र०—१ उखड़ना. २ ध्वस्त होना, नष्ट होना ३ वीरान होना, जन-शून्य होना. ४ बिखरना।

उजड़णहार, हारौ (हारी), उजड़णियौ—उजड़ने वाला।

उजड़वाणौ, उजड़वाबौ—प्रे०रू०।

उजड़ाणौ, उजड़ाबौ—प्रे०रू०।

उजड़िग्रोड़ो, उजड़ियोड़ो, उजड़योड़ो—भू०का०कृ०।

उजाड़णौ, उजाड़बौ—स०रू०।

उजड़वाणौ, उजड़वाबौ–क्रि०स० (प्रे.रू.)—किसी को उजाड़ने में प्रवृत्त करना।

उजड़ियोड़ो–भू०का०कृ०—उजड़ा हुग्रा। (स्त्री० उजड़ियोड़ी)

उजड़ौ–वि०—१ उजड़ा हुग्रा, वीरान. २ विनष्ट।

उजड–वि० [सं० उज्जड] ग्रप्रवीण, ग्रदक्ष।

उजड्ड–वि०—१ वज्र, मूर्ख. २ ग्रसभ्य, ग्रशिष्ट. ३ उद्दंड, निरंकुश।

उजड्डपण, उजड्डपणौ–सं०पु०—१ उद्दण्डता. २ ग्रसभ्यता, ग्रशिष्टता।

उजवार–सं०पु०—वजीर, मंत्री। उ०—प्रधांनां उजवारां विचार नै राजा सूं बीनती की—चौबोली

उजबक, उजबकी–सं०पु०—१ तातारियों की एक जाति (बां.दा.ख्या.) २ एक प्रकार की घास. ३ एक प्रकार का घोड़ा (रा.सा.सं.)

वि०—१ उजड्ड, बेवकूफ, मूर्ख, ग्रनाड़ी। उ०—कमळ ग्ररियां तणा घणा झटकां कटै। उजबकां दिसी जसवंत सी ऊलटै।

२ उद्दण्ड, ग्राततायी। —हा.झा.

क्रि०वि० विचित्र ढंग से, ग्रपूर्व ढंग से। उ०—वीर ग्रवसांण केवांण उजबक वहै, रांण हथबाह दुय राह रटियौ।

—गोरधन बोगसौ

उजब्बक, उजब्बकी–वि०—देखो 'उजबक'। उ०—कर मुच्छनि घल्ले किलम, यम बुल्ले उजब्बक। स्यांम काज पितु के बयर, हृदपै मरना हक्क।—ला.रा.

सं०पु०—देखो 'उजबक'।

उजमणौ–सं०पु० [सं० उद्यापन, प्रा० उज्जवरण] किसी ग्रंगीकृत व्रत की समाप्ति पर किया जाने वाला भोज ग्रथवा उत्सव जिसके पश्चात् उस व्रत को निरन्तर रखने की ग्रावश्यकता नहीं होती।

उजमणौ, उजमबौ–क्रि०ग्र०—१ वर्षा का होना, वर्षा की छटा छाना जिसके कारण ग्रत्यन्त शीत हो। उ०—उतर ग्राज स उजमी, पाळौ पड़ै विहांण। भाजै गात्र कुमारिग्रां, देखं मुगळ पठांण?—ढो.मा.

२ किसी ग्रंगीकृत व्रत की समाप्ति पर भोज ग्रथवा उत्सव करना, जिसके पश्चात् उस व्रत को निरन्तर रखने की ग्रावश्यकता नहीं होती।

उजमणहार, हारौ (हारी), उजमणियौ–वि०।

उजमिग्रोड़ो, उजमियोड़ो, उजमयोड़ो—भू०का०कृ०।

उजियोड़ो–भू०का०कृ०—(वह ग्रंगीकृत व्रत) जिसकी समाप्ति पर भोज

या उत्सव किया हुआ हो। (स्त्री० उजमियोड़ी)

उजयाळी–सं०पु० [सं० उज्ज्वल] १ चाँदनी, चंद्रिका, उजियाली. २ प्रकाश, रोशनी (रू.भे. उजुयाळी) (स्त्री० उजयाळी)

उजर–सं०पु०—१ विरोध, आपत्ति. २ विरुद्ध वक्तव्य, किसी बात के विरुद्ध सविनय कुछ कथन करना. ३ हक, स्वत्व, अधिकार, दावा। उ०—हूं **उजर** करूं, रांगा वांसै माथ चाढ़ै, वे कठैही उतरिया होय तौ काई काबाइत होय।—नैरासी

उजरत–सं०पु०—अपने अधिकार के प्रति उज्र न करने के लिए लिया या दिया जाने वाला द्रव्य।

उजरदारी–सं०स्त्री० [फा० उज्रदारी] किसी ऐसे मामले में उज्र पेश करना जिसके विषय में निर्णय हो चुका हो अथवा निर्णय होने वाला हो।

उजळ–वि० [सं० उज्ज्वल] १ दीप्तिमान, प्रकाशमान. २ श्वेत, शुभ्र (नां मा.) ३ स्वच्छ, निर्मल. ४ यशस्वी।

यौ०—उजळखाप, उजळजात, उजळदंती।

सं०स्त्री०– सरस्वती, शारदा (अ.मा.)

उजळणौ, उजळबौ–क्रि०अ० [सं० उज्ज्वल] उज्ज्वल होना, चमकना. क्रि०स०—उज्ज्वल करना, साफ करना, चमकाना।

उजळणहार, हारौ (हारी) उजळणियौ–वि०—उज्ज्वल होने या करने वाला।

उजळवाणौ उजळवाबौ—प्रे०रू०। **उजळाणौ, उजळाबौ**—प्रे०रू०।

उजळावणौ, उजळावबौ—प्रे०रू०।

उजळिग्रोड़ौ, उजळियोड़ौ, उजळ्योड़ौ–भू०का०कृ०—उज्ज्वल किया हुआ।

उजळता–सं०स्त्री० [सं० उज्ज्वलता] उज्ज्वलता।

उ०—सु पगि आपणी **उजळता** करि आकास मो मिळि गयो है।
—वेलि. टी.

उजळमौ–वि०—सफेद, उज्ज्वल (शा.हो.)

उजळवाणौ उजळवाबौ–क्रि०स० (प्रे.रू.)—उज्ज्वल करवाना, साफ करवाना, चमकवाना।

उजळवायोड़ौ–भू०का०कृ०—उज्ज्वल कराया हुआ, चमकाया हुआ। (स्त्री० उजळवायोड़ी)

उजळाई–सं०स्त्री० [सं० उज्ज्वलता] १ शौचादि से निवृत्त होकर गुदा द्वार को स्वच्छ करने की क्रिया, आबदस्त। उ०—तठै दिन ऊगै पोहर भींवाजी टेवटा लेवण नै गया। तठै **उजळाई** करण नै जळ सोझै।—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात. २ उज्ज्वलता, चमक, सफेदी।

उजळाणौ, उजळाबौ–क्रि०स० (प्रे.रू.)—उज्ज्वल कराना, चमकाना।

उजळाणहार, हारौ (हारी), उजळाणियौ–वि०—उज्ज्वल कराने वाला।

उजळायोड़ौ—भू०का०कृ०। **उजळावणौ, उजळावबौ**—रू.भे.।

उजळायोड़ौ–भू०का०कृ०—उज्ज्वल कराया हुआ, चमकाया हुआ। (स्त्री० उजळायोड़ी)

उजळावणौ, उजळावबौ–क्रि०स० (प्रे.रू.)—देखो 'उजळाणौ'।

उजळियोड़ौ–भू०का०कृ०—उज्ज्वल हुआ हुआ, उज्ज्वल किया हुआ। (स्त्री० उजळियोड़ी)

उजळौ–वि० [सं० उज्ज्वल] १ श्वेत, सफेद।

कहा०—उजळौ उजळौ ही दूध को हुवैनी—उजला उजला सभी दूध नहीं होता; ऊपर से अच्छे दिखाई पड़ने वाले सभी पदार्थ वास्तव में अच्छे हों यह बात नहीं होती।

२ स्वच्छ, निर्मल।

कहा०—१ उजळा रांम रांम करणा—केवल ऊपरी मन से अभिवादन करना। मन में वास्तविक आदर या स्नेह न रखते हुए अभिवादन करना।

३ प्रकाशमान।

पर्याय०—अवदात, उजळ, धमळ, पंडरु, पंडु, पिंड, विसद, सित, सिव, मुकल, सुचि, सुभ्र, स्वेत। (रू.भे. ऊजळौ)

उजळौ बग–वि०यौ० [सं० उज्ज्वल+बक] बगुले के समान श्वेत, अति उज्ज्वल।

उजळौ लोहड़ौ–सं०पु०—देखो 'ऊजळौ लोह'। उ०—पछै मानसिंघ चांपां बाई नै उदैसिंघ री बैर गरभवंती नूं **ऊजळे लोहड़े** मारी।
—नैरासी

उजवणौ, उजवबौ—देखो 'उजमणौ'।

उजवळ, उजवाळ–वि०—देखो 'उजळ'। उ०—बित वरसाळ खटू रित वरसै, मौज राव **उजवाळ** मुख।—क.कु.बो.

उजवाळक–वि०—उज्ज्वल करने वाला। उ०—कमधां कुळ ग **उजवाळक** नै। विरदाबुंग्र जोगिय बाळक नै।—पा प्र.

उजवाळणौ, उजवाळबौ, उजवाळिणौ, उजवाळिबौ–क्रि०स०—१ उज्ज्वल करना। उ०—कांन्ह हरी साकौ कियौ, **उजवाळियौ** उतन्न।
—रा.रू.

२ प्रकाशित करना. २ चमकाना।

उजवाळणहार, हारौ (हारी), उजवाळणियौ—उज्ज्वल करने वाला।

उजवाळिग्रोड़ौ, उजवाळियोड़ौ, उजवाळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उजवाळियोड़ौ–भू०का०कृ०—उज्ज्वल किया हुआ, प्रकाशित किया हुआ, चमकाया हुआ। (स्त्री० उजवाळियोड़ी)

उजवाळी–सं०स्त्री०—चाँदनी, ज्योत्सना।

वि०—१ उज्ज्वल, शुभ्र. २ शुक्ल पक्ष की, शुक्ल पक्ष सम्बन्धी।

उजवाळौ, उजवाळौ–सं०पु०—१ उजाला, रोशनी, प्रकाश।

उ०—१ पंखौ घर में पवन सूं, बचै दीप दुतिवंत। दीप हूंत दरसंत, घर में **उजवाळौ** घणौ।—बां.दा.

उ०—२ 'द्याळौ' जोगीदास रौ, **उजवाळौ** कुळ मत्त।—रा.रू.

२ तेज (अ.मा.)

वि०—१ श्रेष्ठ, उत्तम. २ उज्ज्वल करने वाला। उ०—प्रोठी हालै अगै, पीठ घूमर पमंगाळौ। आस धांन री उतन, साख तेरै **उजवाळौ**।
—पा.प्र.

उजा–सं०पु०—साहस, हिम्मत, पुरुषार्थ।
वि०—साहसी, शक्तिशाली। उ०—**उजा** बहादुर नर अडर, सांम धरम दिल साफ।—चिमनदांन रतनूं

उजागर–वि० [सं० उज्जार] १ प्रकाशित, जगमगाता हुआ। उ०—रूप के **उजागर** मनोज मन मोहियत—शि.वं. २ प्रसिद्ध, विख्यात। उ०—थांन **उजागर** थापियौ, नाजर दौलतरांम।—रा.रू. ३ उज्ज्वल करने वाला, अपने नांम या वंश को प्रसिद्ध करने वाला। उ०—आयस पाय अवधपत आळौ, गौ लंका कपि वंस **उजागर**।—र.रू.
४ समर्थ, शक्तिशाली। उ०—कळजुग रै कीच कळै रथ कीरत, नारा दत बळ थाका नर। 'देसल' भूप दूसरा 'देसल', धमळ **उजागर** झाल धुर।—क.कु.बो.
वि०—उदार। उ०—सांमां भूप गुणां बुधसागर, मौज **उजागर** मेर मन। अचरज क्यूं रहिया गुण एता, अण साढ़ा कर भूप तन।—क.कु.बो.
६ अद्भुत। उ०—एहवी **उजागर** पुरी एह, इक्ष्वाक वंस वाधै अछेह।—रांमरासौ
सं०पु०—१ प्रकाश। उ०—मांणक कण हीर अमीर मोकळा। जरद नील मण जुवा जुवा। अवर न तूझ सरीखौ 'ऊदा', देस **उजागर** 'जगा' दुवा।—अज्ञात. २ सूर्य (नां.मा.)

उजाड़–सं०पु०—१ उजड़ा हुआ स्थान, निर्जन, वीरान। उ०—नग्री सोनमेनी पछै गांम नांही। महा कासटा घोर उजाड़ मांही।—मे.म. २ नुकसान, हानि (द.दा.)
वि०—१ ऊसर. २ निर्जन, वीरान. ३ ध्वस्त, गिरा-पड़ा, नष्ट-भ्रष्ट, बरबाद। उ०—उण दिनां में कछवाहा अर लाडखानी नागौर नूं **उजाड़** करै।—राठौड़ अमरसिंह री बात

उजाड़णौ, उजाड़बौ–क्रि०स०—१ वीरान करना, जनशून्य करना. उ०—नें इम करड़ी तांण अंतक लोक **उजाड़ियौ**।—बां.दा. २ ध्वस्त करना, नष्ट करना। उ०—जे थे रांम भवन सूं काढ़ सौ, तौ थे आणंद अवध **उजाड़सौ**।—गी.रां. ३ बिगाड़ना, चौपट करना. ४ तितर-बितर करना. ५ उधेड़ना।
उजाड़णहार, हारौ (हारी), उजाड़णियौ—वि०—उजाड़ने वाला।
उजाड़िओड़ौ, उजाड़ियोड़ौ, उजाड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उजाड़पण, उजाड़पणौ–सं०पु०—उजाड़, बियाबान वीरान, बिना रास्ते।

उजाड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—उजाड़ा हुआ. (स्त्री० उजाड़ियोड़ी)

उजाथर–वि०—१ उजागर, प्रकाशमान. २ प्रसिद्ध. ३. वीर, बहादुर। उ०—चढ़िया हरि सुणि संकरखण चढिया, कटकबंध नह घणा किध। एक **उजाथर** कळहि एहवा, साथी सहु आखाढ़मिध।—वेलि.
सं०स्त्री०—१ तलवार।
सं०पु०—२ भार, बोझा ३ संकट।

उजार–सं०स्त्री०— १ मऊ शहर के पास बहने वाली एक नदी (नैणसी) [सं० उज्ज्वल] २ प्रकाश, रोशनी (ह.नां.)

उजारौ–सं०पु० [सं० उज्ज्वल] उजाला, प्रकाश, रोशनी।
उ०—मधकर दयाळ का सौ साहु भै न धारे, अंधकार जात जैसे भांण के **उजारे**।—रा.रू.

उजाळ–सं०पु०—१ उजाला या उज्ज्वल करने की क्रिया या भाव। उ०—अखई अभंग जोधां **उजाळ**। जोधहर अवर रिण खळां ज्वाळ।—रा.रू.
२ कीर्ति बढ़ाने वाला (ल.पि.) ३ प्रकाशमान, प्रकाश, रोशनी। उ०—बडाळ भुजाळ **उजाळ** विसन्न।—ह.र. ४ चरितार्थ. ५ हंस (अ.मा.)

उजाळउ–सं०पु०—प्रकाश। उ०—चउथ अंधारी (दि) नई मंगळवार, चंद **उजाळउ** घरि घरि बारि।—वी.दे.

उजाळक–वि०—उज्ज्वल करने वाला।

उजाळणौ–वि०—उज्ज्वल करने वाला। उ०—आहव सूरां आगळा, सुरतांणी हटमल्ल। महियव रीत **उजाळणा**, अमर तणा पीथल्ल।—रा.रू.

उजाळणौ, उजाळबौ–क्रि०स० [सं० उज्ज्वलन] १ उज्ज्वल करना, चमकाना। उ०—ऊंची रीत **उजाळणी**, खीची सुंदरदास।—रा.रू. २ प्रकाशित करना, जलाना. ३ नमकहलाल होना. ४ यश कमाना, कीर्तिवान करना।
उजाळणहार, हारौ (हारी), उजाळणियौ—उज्ज्वल करने वाला।
उजाळिओड़ौ, उजाळियोड़ौ, उजाळ्योड़ौ—भू०का०कृ०—उज्ज्वल करने वाला।

उजाळदान–सं०पु०—रोशनदान।

उजाळियौ, उजाळियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उज्ज्वल किया हुआ। २ प्रकाशित. ३ चमकाया हुआ। (स्त्री० उजाळियोड़ी)

उजाळी–सं०स्त्री०—घोड़े के आंखों पर डाली जाने वाली जाली।
वि०—१ प्रकाशमान. २ शुक्ल पक्ष का, शुक्ल पक्ष संबंधी। उ०—बीज **उजाळी** कारतिक, अडतीसै कुज वार। अचळ कथा राखी 'अजै', साखी कियौ संसार।—रा.रू.

उजाळौ–सं०पु०—१ रोशनी, प्रकाश, उजाला. २ अपने कुल और जाति में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति. ३ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)
वि०—उज्ज्वल करने वाला, प्रकाशमान।

उजाळोपख–सं०पु०—शुक्ल पक्ष।

उजास–सं०पु०—१ प्रकाश, रोशनी (यौ० उजासपख)
उ०—वरस तंयाळै चैत सुद पूनम परम **उजास**।—रा.रू.
२ कांति, दीप्ति (ह.नां.) ३ किरण (अ.मा.) ४ हंस (अ.मा.) ५ तेज (अ.मा.)

उजासड़ो, उजासड़ौ–सं०पु०—प्रकाश, रोशनी (अल्पा०)
उ०—मारू तू तौ मोहणी, सह सिणगार सपूर। महिलां मांहि **उजासड़ौ**, जांण क ऊगौ सूर।—ढो.मा.

उजासणो–सं०पु०—प्रकाश, रोशनी।

उजासणौ, उजासबौ–क्रि०स०अ०—१ प्रकाशित करना, चमकाना. २ प्रकाशित होना, चमकना। उ०—घिरत का कुंभ सींचै होम ज्यां **उजासै**।—रा.रू.

उजासणहार, हारौ (हारी), उजासणियौ–वि०—प्रकाशित करने या चमकने वाला।

उजासिओड़ौ, उजासियोड़ौ, उजास्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उजासी–सं०स्त्री०—प्रकाश, रोशनी (अ.मा.)

उजियार–सं०पु०—उजाला, प्रकाश।

उजियारौ, उजियाळौ–सं०पु० (स्त्री० उजियारी, उजियाळी) १ उजाला, प्रकाश। उ०—भूप उदार तिलक रघुकुळको चहुं पुर को **उजियाळौ**। —समान बाई। २ चांदनी, चंद्रिका.

वि०—कुल-कांतिवर्धक, रूप-गुणसम्पन्न।

उजियाळौ-पाख–सं०पु०यौ० [सं० उज्ज्वल पक्ष] शुक्ल पक्ष। उ०—चैत महीनौ **उजियाळौ-पाख**, नव दिन बीज लुकाई राख।

उजियास–सं०पु० [सं० उदय+आशा] प्रकाश, रोशनी। उ०—बीत चुकी अंधियारी रातां, आया दिन **उजियास** रा, मंडता जावै धरती माथै, पग-मंडणा इतिहास रा।—रेवतदांन

उजीण, उजीणी–सं०स्त्री० [सं० उज्जयिनी] उज्जैन का एक नाम (अ.मा.) देखो 'उज्जयिनी'।

उजीर–सं०पु० [अ० वजीर] १ मंत्री, दीवान। उ०—निजदळ छोड़ **उजीर**, नीसरयौ कायर परदळ कांनी।—ऊ.का. २ शतरंज की एक गोटी (स्त्री० उजीरणी)

उजुआळ–वि० [सं० उज्ज्वल] उज्ज्वल करने वाला।

उजुयाळौ–सं०पु० [स्त्री० उजुयाळी] १ रोशनी, प्रकाश, उजाला. २ चांदनी। उ०—ऊजळं आदरसगि निसि **उजुयाळी**, घणूं किसूं वाखांण घणं।—वेलि.

उजुर–सं०पु०—देखो 'उज्र'।

उजूबा–सं०पु० [अ० अजूबा] चमकदार छींटों वाला बेंगनी रंग का एक पत्थर।

उजेड़–वि०—बिगाड़ने वाला। उ०—एकलौ मुज्ज जांणै **उजेड़**, चढ़ आयौ खीची करे चेड़।—पा.प्र.

उजेड़णो, उजेड़बौ—देखो 'उजाड़णौ'।

उजेड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—उजाड़ा हुआ (स्त्री० उजेड़ियोड़ी)

उजेणी–सं०स्त्री० [सं० उज्जयिनी] उज्जैन नगर का प्राचीन नाम। देखो 'उज्जयिनी'।

उजेर, उजेरा, उजेरौ–सं०पु०—उजाला, प्रकाश।

वि०—प्रकाशयुक्त।

उजेळणो, उजेळबौ–क्रि०स०—देखो 'उजाळणौ'।

उजेळियोड़ौ–भू०का०कृ०—उज्ज्वल किया हुआ, चमकाया हुआ। (स्त्री० उजेळियोड़ी)

उजेळौ–सं०पु० [सं० उज्ज्वल] प्रकाश, चांदनी।

उजैणी–सं०स्त्री० [सं० उज्जयिनी] उज्जैन का प्राचीन नाम। देखो 'उज्जयिनी'

उजौ–सं०पु०—हिम्मत, साहस।

वि०—शक्तिशाली।

उजोत–सं०पु०—प्रकाश।

वि०—उज्ज्वल (ल.पिं.)

उज्जइणी, उज्जइणीपुर, उज्जयिनी–सं०स्त्री०—मालवा की प्राचीन राजधानी जो क्षिप्रा नदी के तट पर है (इसकी गणना सप्त पुरियों के अंतर्गत की जाती है (वं.भा.)

उज्जरौ–सं०पु०—एक जाति विशेष का घोड़ा। उ०—छत्रीस वरण तणा घोड़ा, किस्या-किस्या घोड़ा—**उज्जरा**, गह्वरा, कारा, तोरका, भारिजा। —कां.दे.प्र.

उज्जळ–क्रि०वि०—बहाव से उल्टी ओर, नदी के चढ़ाव की ओर।

वि०—१ उज्ज्वल, सफेद, उजला, दीप्तिमान। उ०—**उज्जळ**दंता घोटड़ा, करहड चढ़ियउ जाहि। तंइ घर मुंध कि नेहवी, जे कारणि मी खाहि।—ढो.मा. [सं० उज्ज्वल] २ निर्मल, स्वच्छ. ३ पवित्र, शुद्ध।

सं०पु०—शुक्ल पक्ष। उ०—सतरै संमत त्रिहोतरै, **उज्जळ** बीज प्रकास।—रा.रू.

उज्जळता–सं०स्त्री० [सं० उज्ज्वलता] १ कांति, दीप्ति, चमक. २ सफेदी. ३ स्वच्छता, निर्मलता।

उज्जळौ–वि० [सं० उज्ज्वल] (स्त्री० उज्जळी) उज्ज्वल, गौर वर्ण। उ०—मारुवणी मुहवरन आदित्ता हूं **उज्जळौ**।—ढो.मा.

उज्जीण, उज्जेण, उज्जैण, उज्जैणि, उज्जैणी, उज्जैन, उज्जैनी–सं०स्त्री०—देखो 'उज्जयिनी' (वं.भा.)

उज्झड़–वि०—१ झक्की. २ मनमौजी. ३ उद्धत, मूर्ख।

उज्झेल, उज्झेलत–सं०स्त्री०—तरंग लहर। उ०—तिलां तेल पोहप फुलेल, **उज्झेलत** सायर। अगनि काठ जोवन्न घट्ट, भगवट्ट सु कायर। —ह.र.

२ चमक, दमक। उ० घण माळ जिसी वण फौज घटा, छिब सेंल **उज्झेळ** सिळाव छटा।—क.कु.बो.

उज्यागर–वि०—देखो 'उजागर'। उ०—**उज्यागर** भाल खग करणहर आभरण, 'अमर' अकबर तणी फौज आयी। —पदमां सांदू

उज्यास–सं०पु०—देखो 'उजास'।

उज्र–सं०पु०—देखो 'उजर'। उ०—**उज्र** हो जापै वो ग्राहक गुजरगो। —गणेस पुरी.

उज्रदारी–सं०स्त्री०—देखो 'उजरदारी'।

उज्वळ–वि०—देखो 'उजळ'।

उज्वळण–सं०पु०—१ प्रकाश, दीप्ति. २ जलना, ज्वाला का ऊर्ध्वगमन. ३ स्वच्छ करने का कार्य।

उज्वळता—सं०स्त्री०—देखो 'उजळता'।
उज्वळा—वि०स्त्री०—निर्मल, शुभ्र, उज्ज्वल।
उज्वाळणो, उज्वाळबो—देखो 'उजवाळणो'।
उज्वाळियोड़ो—भू०का०कृ०—देखो 'उजवाळियोड़ो'।
उझकणो, उझकबो—क्रि०अ०—१ उचकना, उछलना, कूदना. २ ऊपर उठना, उभड़ना. ३ चौंकना, चमकना। उ०—उर आसुर तायां सबद अभायां। उझकै पायां असुहायां।—रा.रू.
उझकणहार, हारो (हारी), उझकणियो—वि०—उचकने वाला, उभड़ने वाला, चौंकने वाला।
उझकिओड़ो, उझकियोड़ो, उझक्योड़ो—भू०का०कृ०।
उझकियोड़ो—भू०का०कृ०—१ उचका हुआ. २ ऊपर उठा हुआ. ३ चौंका हुआ। (स्त्री० उझकियोड़ी)
उझक्कणो, उझक्कबो—क्रि०अ०—देखो 'उझकणो, उझकबो'। उ०—काय उझक्कै के कटै झरि पाय झझक्कै।—वं.भा.
उझड़—वि०—१ उजाड़, निर्जन, वीरान. २ बिना मार्ग, राहरहित। (रू.भे. उजड़)
उझड़णो, उझड़बो—क्रि०अ०—देखो 'उजड़णो'।
उझड़ियोड़ो—भू०का०कृ०—देखो 'उजड़ियोड़ो'
उझटैल—वि० [सं० उद्भट] योद्धा, वीर। उ०—गैण उचीश्रवा भांग खंचायो थटैल गीधां बंका इ जटैल पाठ बचायो बीरांण। उझटैल पटा काळी नचायो चामंडा आळी। पटैल बरूथां मारू मचायो पीठांण। —हुकमीचंद खिड़ियो
उझणो—सं०पु० [सं० उपढौकन, अप० उवढ़ोयन] दहेज। उ०—आंणो करो तद सांवतसी घणो ही विचारियो पिण बात बंधकाई बैसै नहीं। कुमरी नै उझणो दे मेलीजे।—द्वो.मा.
उझबक—सं०पु०—देखो 'उजबक'।
उझमणो—सं०पु०—देखो 'उजमणो'।
उझळ—सं०स्त्री०—देखो 'उझेळ'। (रू.भे. उज्झेल)
उझळणो, उझळबो—क्रि०अ०—१ छलकना, पानी का किनारों के ऊपर होकर बहना। उ०—सेन थाट चलै हमेसां उझळै जांणै सात सिंधू।—गिरवरदांन कवियो
२ छिछोरापन करना. ३ आवेग में आना। उ०—ना उझळणै जोग, बाळका नृत कर खेलै। हिवड़ै सेवै चोट, कदे ना पाछी मेलै। —दसदेव
४ हद से अधिक होना, मर्यादा के बाहर होना। उ०—उझळियो इनीयाव सुजळ इळ ऊपर, एको उदम फिरै नह आज। 'उदा' रांव निभावो आचां, जस जोड़ां वाळी हव ज्याज।—अज्ञात
५ पति को छोड़ कर अन्य पुरुष के साथ चले जाना।
मि० 'उधळणो'।
उझळणहार, हारो (हारी), उझळणियो—वि०।
उझळिओड़ो, उझळियोड़ो, उझळ्योड़ो—भू०का०कृ०।
उझळियोड़ो—भू०का०कृ०—१ छलका हुआ. २ आवेग में आया हुआ. (स्त्री० उझळियोड़ी)
उझळो—वि०—देखो 'उजळो'।
उझळळ—सं०स्त्री०—तरंग, लहर।
उझवणो, उझवबो—क्रि०स०—देखो 'उजमणो, उजमबो'।
उझांकणो, उझांकबो—क्रि०स०—झांकना, ऊपर से झांकना, ऊपर सिर उठा कर देखना।
उझांकियोड़ो—भू०का०कृ०—झांका हुआ। (स्त्री० उझांकियोड़ी)
उझाळो, उझाळौ—सं०पु०—उजाला, प्रकाश। उ०—नळ जद निरखी मारवी, जांणै बियो मयंक। उझाळो आनीर अळि, कोई नहीं कळंक। —द्वो.मा.
उझाळ—सं०स्त्री० [सं० ज्वाला] ज्वाला, आग की लपट।
उझाळणो, उझाळबो—क्रि०स०—बहाना, छलकाना। उ०—मेघ अवेखत पांण चवां तूं नीर उझाळै। देख पराई पीड़ मयाळू हिया पिघाळै।—मेघ०
उझेल, उझेल—सं०स्त्री० [सं० उत+हेलनम्=उद्धेलनम्=उझेल] तरंग, लहर। उ०—दानां री उझेळ बीक भोज ओळै जाय दुरै, वसू सिंध कानां री कीरती हुई वाद।—चैनजी
वि०—१ अपार, अधिक। उ०—१ काकै कुंभवाळै वैर काजा, सक्रजीत उझेळ साजा। कियण गो खळ कुंभ काजा, जाग ताजा जोम। —र.रू.
उ०—२ चका बूह कटै चढै, उडै सेल उझेळ। वीर फफूंडै वीस विध, खेंग हडूडै खेल।—क.कु.बो.
क्रि०वि०—पूर्ण जोश से। उ०—प्रहार सेल पिंजरै उझेळ खेंग पेलणी। सिलाव वेग जांण मेघ दांमणी सकेलणी।—रा.रू.
उझोळ—सं०स्त्री०—उछलने की क्रिया या भाव। उ०—बीजळ-मीट उझोळ पळकतो जुगनू जांणै, इतरो खीण उजास मेघला मो घर आंणै।—मेघ०
उटज—सं०स्त्री० [सं०] कुटिया, झोंपड़ी, पर्णकुटी।
उटड्या—सं०पु०—देखो 'ऊंटड़ो'।
उटपटांग—देखो 'ऊटपटांग'।
उठंग—सं०पु० [सं० उत्तंभ] तकिया (अ.मा.)
उठंतरी—देखो 'उठांतरी'।
उठ—सं०पु० [सं० उष्ट्र] देखो 'ऊंट'। उ०—ताहरां साहूकार हुआ बडो लवेस करि थाहेरंस करि वहिल उठ त्यार करि।—चौबोली
उठणो, उठबो—क्रि०अ० [सं० उत्थान] देखो 'ऊठणो'।
उठल्लू—वि०—१ एक स्थान पर न रहने वाला. २ आवारा. ३ बेठौर-ठिकाने का।
उठवाणो, उठवाबो—क्रि०स० (प्रे.रू.)—किसी से उठाने का काम कराना।
उठवायोड़ो—भू०का०कृ०—उठवाया हुआ। (स्त्री० उठवायोड़ी)

उठांण—सं०स्त्री० [सं० उत्थान] १ उठाना, उठने की क्रिया. २ बाढ़, बढ़ने का ढंग, वृद्धि. ३ गति की प्रारंभिक दशा. ४ प्रारम्भ. ५ खर्च, व्यय।

उठांणौ—सं०पु०- मृत्यु के हेतु शांति के लिए किया जाने वाला एक संस्कार विशेष।

उठांतरौ—सं०स्त्री०- १ उठाने की क्रिया का भाव. २ मौकूफ, खारिज, विसर्जित. ३ नाश. [सं० उत्थान्तरम्] ४ किसी जागीरदार की भूमि को राज्य द्वारा जब्त कर लिये जाने पर उस जागीरदार का प्रयत्न करके उस भूमि को वापस अपने अधिकार में लेने का तथा खालसा के आये हुए कर्मचारियों को हटाने के हेतु प्राप्त की हुई राजाज्ञा।

उठांमणी, उठांवणी—सं०स्त्री०—देखो 'उठावणी'।

उठाईगीर, उठाईगीरौ—वि०—आंख बचा कर चीजों को चुराने वाला, उचक्का, बदमाश, लुच्चा, ठग।

उठाउं—क्रि०वि०—वहां से, उधर से, उस ओर से।

उठाउ—वि०—उठाने वाला, उचक्का।

उठा—क्रि०वि०— उधर, वहां।

उठाक—वि०- -१ उठाने वाला।
सं०पु०—शीघ्रतापूर्वक उठाने की क्रिया का भाव।

उठाड़णौ, उठाड़बौ—क्रि०स० [सं० उत्थापनम्] १ उठाना। देखो 'उठाणौ, उठाबौ'। २ जोश दिलाना. ३ जीवित करना।
उठाड़णहार, हारौ (हारी), उठाड़णियौ—वि०—उठाने वाला।
उठाड़िप्रोड़ौ, उठाड़ियोड़ौ, उठाड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उठाड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—उठाया हुआ, जोश दिलाया हुआ। (स्त्री० उठाड़ियोड़ी)

उठाणौ, उठाबौ—क्रि०स०- १ उठाना, खड़ा करना, खड़ी स्थिति में करना. २ नीचे से ऊपर करना। उ०—सर धनुख उठाया धणी धाया रघुबर। गी.रां. ३ धारण करना, शिरोधार्य करना ४ जगाना, सचेत या सावधान करना. ५ निकालना. ६ कुछ समय तक ऊपर ताने या लिये रहना. ७ उत्पन्न करना.
उ०—तरह-तरह री बात मन में उठावै छै, भांजै छै।
- मूरे खींवं रो बात
८ बढ़ाना, उन्नत कर आगे बढ़ाना. ९ चढ़ाना. १० प्रारम्भ करना. ११ तैयार करना, उद्यत करना. १२ (इमारत) बनाने के लिये उत्तेजित या उत्साहित करना. १३ नियमित समय पर किसी दूकान या कार्यालय का बंद करना. १४ समाप्त करना, खतम करना, बंद करना. १५ दूर करना (किसी प्रथा या रीति आदि का उठाना). १६ खर्च करना, लगाना. १७ भाड़े या किराये पर देना. १८ भोग करना. १९ अनुभव करना.
२० (गंगाजल या कोई पुस्तक आदि) किसी वस्तु को हाथ में लेकर शपथ करना। उ०—तद मुरादसाह सूंस कोल कर दिल्ली आया, कुरांन उठायौ, आंण सांमळ हुवा।—पदमसिंह री बात
२१ उधार देना. २२ लगान पर (खेत आदि) देना. २३ जिम्मेदारी लेना. २४ सहना, बर्दाश्त करना. २५ स्वीकार करना. २६ प्राप्त करना. २७ खोलना (दरवाजा) उ०—दक्खिण रै द्वारपाळ महामूद सलख रा पत्र सुणतां ही अरर उठाय मांहि लीधा।
—वं.भा.
उठाणहार, हारौ (हारी), उठाणियौ—उठाने वाला।
उठणौ, उठबौ—अ.रू.।
उठावणौ, उठावबौ—रू.भे.।
उठाप्रोड़ौ, उठायोड़ौ—भू०का०कृ०।

उठाव—सं०पु०—१ देखो 'उठांण' २ मिहराब के पाट के मध्य बिंदु और झुकाव के मध्य बिंदु का अंतर।

उठावण—देखो 'उठावणी'।

उठावणी—सं०स्त्री०—१ जोश में तेजी के साथ लपकने की क्रिया, आक्रमण, हमला। उ०—म्हैं सारा जाय दोळा फिरिया सौ तिण में सूअरां इसी उठावणी कर आय भिळिया सो बंदूक तीर किंह री बहणे नहीं दियौ।—डाढ़ाळा सूर री बात.

उठावणौ—सं०पु०- १ मृत्यु के पश्चात शांति हेतु किया जाने वाला एक संस्कार विशेष. २ अंतिम संस्कार के बारहवें दिन में बिछाई जाने वाली बिछायत (जिस पर श्रद्धांजलि हेतु विभिन्न आने वाले लोग बैठते हैं) को १२ दिन बाद उठाना।

उठावणौ, उठावबौ—क्रि० —देखो 'उठाणौ'।
उठावणहार, हारौ (हारी), उठावणियौ—वि०—उठाने वाला।
उठाणौ, उठाबौ—रू.भे.।
उठाविप्रोड़ौ, उठावियोड़ौ, उठाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उठावियोड़ौ—भू०का०कृ०—उठाया हुआ। (स्त्री० उठावियोड़ी)

उठावौ—वि०—१ जिसका कोई स्थान नियत न हो. २ जो उठाया जाता हो।

उठी—क्रि०वि०—उस तरफ, उस ओर, वहां।

उठे—क्रि०वि०—उधर, वहां, उस तरफ।
कहा०- १ उठे कियौ नांनांणौ हो—वहां क्या ननिहाल था? किसी ऐसे स्थान में जाने पर जहां पर सभ्यता एवं शिष्टता का ध्यान रखते हुए आचरण करना पड़े. २ उठे कियौ परसाद बंटतौ हो—वहां क्या प्रसाद बँट रहा था? बिना लाभ के उद्देश्य से कहीं जाने पर।

उठेल—सं०पु०—फेंकने की क्रिया या भाव। उ०—समासम पेल धमाधम सेल, अनातम आतम ठेल उठेल।—रा.रू.

उठै—क्रि०वि०—वहां, उस ओर। उ०—उठै झाड़ कंडीर पाहाड़ ऐंडा। बणै मंथरां हालणौ पंथ बैंडा।—म.मे.

उडंकू—वि०—१ जो उड़ सके, उड़ने वाला. २ चलने-फिरने वाला, डोलने वाला।

उडंग, उडंड–सं०पु०—घोड़ा (डिं.को.)

वि० [सं० प्रचंड] १ प्रचंड. २ जबरदस्त।

उडंडांणी–सं०पु०—घोड़ा। उ०—पांणी पंथा काठीयांणी **उडंडांणी** चाक पींडा 'अड़सांणी' धार कीन्हा करांणी आरोह।

—महादान महड़ू

उडंत–सं०पु०—कुश्ती का एक पेंच विशेष।

वि०—उड़ता हुआ।

उडंबर–सं०पु० [सं० उदुंबर] गूलर।

उडंबरी–सं०स्त्री० [सं० उडुम्बर] एक प्रकार का तार वाला बाजा।

उड–सं०पु० [सं० उड्डु] तारा, नक्षत्र (अ.मा.)

उडगण, उडगन, उडगांण–सं०पु०—१ नक्षत्रगण, तारागण (डिं.को., ह.नां.)

उडगौ–वि०—उचक्का।

उडण–सं०स्त्री०—उड़ने की क्रिया। उ०—ग्रह **उडण** लेवाक ग्रहाड़ौ।

वि०—उड़ने वाला। —अज्ञात

उडणखटोलड़ो, उडणखटोलणी, उडणखटोलौ–सं०पु०—उड़ने वाला खटोला, विमान। उ०—उठै एक रोही हुंती तठै रोही मांहे एक सुथार घरवासीदार रहै सु **उडणखटोलणी** री हुनर जांणै।

—चौबोली

उडणछू–वि०—चंपत, गायब।

उडणौ–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

उडणौ, उडबौ–क्रि०अ० [सं० उड्डयन] १ वायु में होकर चिड़िया आदि पक्षियों का एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना।

कहा०- १ उडी'र फुर्र—उडी और फर्र; गप्प हाँकना; उड़ती बात कहना। २ उड़ो ऐ चिड़ियां सांवण आयो—अब तो उड़ो चिड़ियों क्योंकि सावन आ गया है। अनुकूल परिस्थिति होने पर कही जाती है।

२ वायु में ऊपर आकाश में उठना. ३ वायु में फैलना, छितराना. ४ फहराना, फरफराना. ५ इधर-उधर हो जाना. ६ तेज चलना, भागना. ७ झटके के साथ अलग होना, कट कर दूर जा पड़ना। (रू.भे. 'ऊडणौ') उ०—होकरै विचै हेकल बापू कारै पासां बेली सिरीहथां वाहै सार **उडै** सतां अंग।— जगौ'सांदू। ८ उधड़ना. ९ अलग या पृथक होना. १० गायब होना, खो जाना।

उ०—चुगल अपूरब चीज है, जिणनूं लीधौ जांण। अवरां कांने लागही, **उडही** अवरां प्रांण।—बां.दा. ११ खर्च होना.

१२ भोग्य वस्तु का भोगा जाना, आमोद-प्रमोद की वस्तु का प्रयोग या व्यवहार होना. १३ रंग आदि का फीका पड़ना, धीमा पड़ना. १४ मार पड़ना, शस्त्र-प्रहार होना। उ०—घणी लोह **उडियौ** राठोड़ नीठ पड़ियौ।—अमरसिंह री बात. १५ लगना.

१६ बातों में बहलाना, भुलावा देना, धोखा या चकमा देना.

१७ फलांग मारना, कूदना. १८ बारूद द्वारा मकान आदि का गिरना।

उडणहार, हारौ (हारी), उडणियौ–वि०—उड़ने वाला।

उडाणौ, उडाबौ—स०रू०।

उडावणौ, उडावबौ–स०रू०।

उडिग्रोड़ो, उडियोड़ो, उडयोड़ो—भू०का०कृ०।

वि०—उड़ने वाला। उ०—रांणा रायमल री बेटी प्रथीराज **उडणौ** कहांणी।—बां.दा.ख्या.

उडती बैठक–सं०स्त्री०—बैठने का एक भेद जिसमें दोनों पाँवों को समेट कर उठते-बैठते हुए आगे बढ़ना या पीछे हटना।

उडप–सं०पु०—१ नृत्य का एक भेद. २ नक्षत्रेश, चंद्र. ३ आकाश, नभ (ह.नां.)

सं०स्त्री० [सं० उडुप] ४ नौका, नाव।

उ०—धोवै नीर **उडप** पग धरजै, रज सिल उठी किसूं वनदार।

—र.रू.

उडपत, उडपति, उडपती–सं०पु० [सं० उडुपति] चंद्रमा, शशि।

(ह.नां., अ.मा.)

उडपथ–सं०पु०—आकाश, व्योम (डिं.को.)

उडमाळ–सं०पु०—तारे, सितारे, उडुगण।

उडराज–सं०पु०—चंद्रमा (अ.मा.)

उडळभरि, उडळभरी–सं०पु०—हाथी। उ०—**उडळभरि** पूजविया अंबर, भीम पहलका तणी भत।—मालौ सांदू

उडली–सं०स्त्री०—देखो 'उडंल'।

उडव–सं०पु० [सं० ओडव] रागों की एक जाति, वह राग जिसमें पांच स्वर लगें और कोई दो स्वर न लगें।

उडांण, उडांन–सं०स्त्री० [सं० उड्डयन] १ उड़ने की क्रिया या भाव।

उ०—सखी भरोसौ नाह रौ, सूनौ सदन म जांण। फूल सुगंधी फौज में, आसी भंवर **उडांण**।—बी.स. २ छलांग, कुदान।

३ एक दौड़ में तय की जाने वाली दूरी. ४ कवि तर्क।

उडांणसी–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

उडाऊ–वि०—१ उड़ने वाला. २ उड़ाने वाला. ३ अधिक व व्यर्थ व्यय करने वाला, अपव्ययी।

उडाक–वि०—१ उड़ने में निपुण, उड़ने वाला. २ देखो 'उडाऊ'।

उडाड़णौ, उडाड़बौ–क्रि०स०—१ उड़ाना। देखो 'उडाणौ'।

२ भगाना। उ०—उर कोप आंणे अप्रमांणे सिद्ध जांणे सद्दयं। आपै अखाड़ै गै **उडाड़ै** रूक झाड़े रद्दयं।—रा.रू.

३ संहार करना, काटना। उ०—खिति पड़िग्रो मोटौ खित्री, आधौ दळ **उडाड़ि**।— वचनिका

४ ध्वंस करना, नष्ट करना।

उडाड़णहार, हारौ (हारी), उडाड़णियौ—उड़ाने वाला।

उडाड़िग्रोड़ो, उडाड़ियोड़ो, उडाड़्योड़ो—भू०का०कृ०।

उडाड़ियोड़ो–भू०का०कृ०—१ उड़ाया हुआ. २ भगाया हुआ. ३ संहार किया हुआ। ४ ध्वंस किया हुआ। (स्त्री० उडाड़ियोड़ी)

उडाणय–वि०—उड़ते हुए। उ०—असंख जात पंखि बांण वेधजे **उडाणयं**।—रा.रू.

उडाणौ, उडाबौ–क्रि०म०—१ किसी उड़ने वाली वस्तु या पक्षी आदि को उड़ने में प्रवृत्त करना. २ वायु में ऊँचा उठाना. ३ हवा में छितराना या फैलाना. ४ झटके के साथ अलग करना, काट कर अलग फेंकना। उ०—सत्रु रौ सिर तौ चाचक **उडायौ**।—वं.भा. ५ हटाना, दूर करना. ६ गायब करना, चुराना. ७ हजम करना. ८ खाने-पीने की वस्तुओं को खूब खाना-पीना, भोग्य वस्तु को खूब भोगना, आमोद-प्रमोद की वस्तु का व्यवहार करना. ९ मारना, प्रहार करना. १० नष्ट या खर्च करना, बरबाद करना. ११ बात टालना, बातों में बहलाना. १२ चकमा देना, धोखा देना. १३ झूठ ही दोष लगाना. १४ निंदा करना, बुराई फैलाना. १५ वेग से दौड़ाना। उ०—अर केही बार बाजी नूं अठीरौ उठी **उडाय** बीच दीधौ।—वं.भा. १६ किसी विद्या या कला का उसके शिक्षक या आचार्य के न जानने पर सीख लेना. १७ गिराना, पटकना। उ०—इग रीति दौ ही गजां आप आपरा कलावां सूं आधोरणा नूं **उडाय** रोस में अंध होय समीप आवतां ही लोयण मिळाया।—वं.भा. १९ नाश करना, ध्वंश करना। उ०—अस खुरताळां गिरंद **उडावे**। सिंधू दाटण करज मही।—क.कु.बो.

उडाणहार, हारौ (हारी), उडाणियौ–वि०—उड़ाने वाला।

उडणौ, उडबौ—अ०रू०। **उडावणौ, उडावबौ**—रू०भे०।

उडायोड़ौ—भू०का०कृ०। **उडीजणौ, उडीजबौ**—भाव वा०।

उडायण–क्रि०वि०—द्रुत गति से घोड़े को दौड़ाना, घोड़े को हवा से बातें कराना।

उडायोड़ौ–भू०का०कृ०—उड़ाया हुआ। (स्त्री० उड़ायोड़ी)

कहा०—आं'री उडायोड़ी चिड़्यां रूंखां पर ही को बैठे नी—इनकी उड़ायी हुई चिड़ियां पेड़ों पर नहीं बैठतीं, (आकाश में ही उड़ती रहतीं हैं, या उनमें पेड़ों पर बैठने की सामर्थ्य नहीं क्योंकि असली नहीं होतीं) इनकी बड़ी बड़ी बातें कभी पूरी नहीं होतीं; ये कोरी बड़ी-बड़ी बातें बनाते हैं, उन्हें पूरी नहीं करते, अतः इनके कथन का भरोसा मत करो।

उडाळणौ, उडाळबौ–क्रि०स०—१ देखो 'उडेलणौ'। २ (कपाट) बंद करना।

उडाळणहार, हारौ (हारी), उडाळणियौ–वि०—उडेलने वाला या (कपाट आदि) बंद करने वाला।

उडाळिप्रोड़ौ, उडाळियोड़ौ, उडाळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उडाळियोड़ौ–भू०का०कृ०—उडेला हुआ, कपाट आदि बंद किया हुआ। (स्त्री० उडाळियोड़ी)

उडावणौ, उडावबौ–क्रि०स०—देखो 'उडाणौ'।

उडावणहार, हारौ (हारी), उडावणियौ–(स्त्री० उडावणी) वि०—उड़ाने वाला।

उडाविप्रोड़ौ, उडावियोड़ौ, उडाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उडावियोड़ौ–भू०का०कृ०—उड़ाया हुआ। (स्त्री० उडावियोड़ी)

उडि–सं०पु०—१ पक्षी। उ०—**उडि** बेध अकास हुवै उड़ता, छिक जाय लुलाय पखाळ छता।—मे.म. २ देखो 'उडी'।

उडियण–सं०पु० [सं० उडुगण] तारे, नक्षत्र। उ०—पतिसाह सेन दीवी परिक्ख, **उडियण** किरि आवइ अंतरिक्ख।—रा.ज.सी.

उडियांण–सं०पु०—१ आकाश, आसमान। उ०—१ देवी थांण **उडियांण** समसांण ठांमै।—देवि० २ ओढ़ने का वस्त्र। उ०—२ कट **उडियांण** लियां डमरू कर भांग धतूरा भोगी, अरक फूल जळ थोम उपासू, जय जय संकर जोगी।—क.कु.बो.

उडियोड़ौ–भू०का०कृ०—उड़ा हुआ। (स्त्री० उडियोड़ी)

कहा०—उडियोड़ी आबरू पाछी नहीं आवै—एक बार प्रतिष्ठा चली जाने पर वापस उसे प्राप्त करना बहुत कठिन है।

उडी–सं०स्त्री०—आकाश में उड़ने वाली, धूलि, रज। उ०—कड़ी बागतां बरम्मां पीठ पनागां ऊथड़ी केत, मागां काळ घड़ी देत पेंडा आसमेद। छड़ालां अभागां लागां **उडी** आसमांन छायौ, ऊपड़ी बाजंदां बागां यूं आवौ उमेद।—हुकमीचंद खिड़ियौ

उडीक–सं०स्त्री० [सं० उत्+ईक्षा=उदीक्षा] १ चिंता. २ इंतजार, प्रतीक्षा। उ०—सरब्बत चमू जुरे परब्बतं सरं परे। **उडीक** मांनके पती, चढ्यौ न क्यों जगत्पती।—ला.रा. ३ पूर्व और आग्नेय के मध्य की दिशा जो सूर्योदय के समय ही इस नाम से पुकारी जाती है।

उडीकणौ, उडीकबौ–क्रि०म० [सं० उदीक्षण] प्रतीक्षा करना, राह देखना। उ०—१ पिवजी बैठा ऐ माळवे, कोई घरां ऐ **उडीके** नार, मारूजी घर आवौ।—रा.लो.गी.

उ०—२ अवध **उडीके** जी मोरयां ज्यूं मेह नै।—गी.रां.

उडीकणहार, हारौ (हारी), उडीकणियौ—प्रतीक्षा करने वाला।

उडीकियोड़ौ—भू०का०कृ०।

उडोकाणौ, उडीकाबौ, उडीकावणौ, उडीकावबौ—स०रू०।

उडीकाणौ, उडीकाबौ, उडीकावणौ, उडीकावबौ–क्रि०स० (प्रे.रू.)—प्रतीक्षा कराना।

उडीकियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ प्रतीक्षा किया हुआ. २ प्रतीक्षित। (स्त्री० उडीकियोड़ी)

उडीनै–क्रि०वि०—वहाँ।

उडीचंद–सं०पु०—चंद्रमा (रा.रा.)

उडीयण–सं०पु०—तारे, नक्षत्र (रू.भे. उडियण) उ०—राजति राज-कुंअरि राय अंगण, **उडीयण** वीरज अंब हरि।—वेलि.

उडीसौ–सं०पु०—भारत का पूर्व में बिहार के दक्षिण में स्थित एक प्रांत, उत्कल।

उडु–सं०पु० [सं०] १ तारा, नक्षत्र (मि० उडु) २ पक्षी। [सं० उदक] ३ जल, पानी (मि० उडुप २)

वि०—सफेद, श्वेत* (डिं.को.)

उडुप–सं०पु० [सं०] १ चंद्रमा (अनेकार्थ) २ नाव, डोंगी (अनेकार्थ) ३ बड़ा गरुड़. ४ पक्षी (अनेकार्थ) ५ तारा, नक्षत्र (अनेकार्थ) ६ नाव चलाने वाला, नाविक (अनेकार्थ)

उडुपत, उडुपति–सं०पु० [सं०] १ चंद्रमा (ह.नां) २ प्रथम लघु फिर दो दीर्घ कुल पाँच मात्रा का नाम (ISS) (डिं.को.)

उडुपथ–सं०पु० [सं०] आकाश, गगन (अ.मा.)

उडुराज–सं०पु० [सं०] चंद्रमा।

उडुस–सं०पु०—खटमल (डिं.को.)।

उडू–सं०पु० [सं० उडु] तारा, नक्षत्र (डिं.को.)

उडूपथ–सं०पु०—आकाश गगन (ह.नां.)

उडेल–सं०पु०—हल की हाल के पीछे से लगाई जाने वाली छोटी लकड़ी जिससे हाल निकले नहीं।

उडेलणौ, उडेलबौ–क्रि०स०—१ ढालना, डालना, गिराना. २ रिक्त या खाली करना (तरल पदार्थ)

उडेलणहार, हारौ (हारी), उडेलणियौ–वि०—उडेलने वाला।

उडेलिओड़ौ, उडेलियोड़ौ, उडेल्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उडल–सं०पु०—घास-फूस (क्षेत्रीय)

उडेलभरी–सं०पु०—हाथी। उ०—**उडेलभरी** पूजि अंबर, भीम पहल का तणी भत।—मालौ सांदू

उडेलियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ ढाला या डाला हुआ, उँडेला हुआ. २ रिक्त या खाली किया हुआ (तरल पदार्थ) (स्त्री० उडेलियोड़ी)

उडै, उड़ै–क्रि०वि०—वैसे।

उडुणौ, उडुबौ–क्रि०अ०—देखो 'उडणौ'। उ०—जसवंत गुरड़ न उड्डही, ताळी त्रजड़ तणेह। हाकलियां ढूला हुवै, पंछी अवर पुणेह। —हा.झा.

उड्डियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उड़ियोड़ौ'।

उड्डीयन–सं०पु०—हठयोग की एक क्रिया। कहा जाता है कि इसके द्वारा योगी उड़ सकते हैं।

उढंग–वि०—अति ऊँचा।

उढंगी–वि०—बेढंगा, ऊँचे शरीर वाला।

उढ–सं०उ०लिं०—नव-विवाहित पुरुष या कन्या (वं.भा.)

उढा–सं०स्त्री०—नव विवाहिता स्त्री, नव-युवती (वं.भा.)

उण–सर्व०—१ उस। उ०—कूट कटाड़ी दे छुरी **उणही** कर तिण तास।—ढो.मा. २ वह।

उणईसमौ–वि०—उन्नीसवां। उ०—मूळ बरण **उणईसमौ** इक्कबीम मय आंन।—बां.दा.

उणगी–क्रि०वि०—उस ओर, उधर। उ०—इणगी **उणगी** जोवै, खबरदारी करै।—चौबोली

उणत–सं०स्त्री० [सं० ऊनत्व] १ कमी। उ०—माळी घड़ा हजार सदा सींचे जिम जांणौ, रुत आयां फळ होय सुण्यौ अगलौ ऊखांणौ। यूं जांण करी सेवा अठै मम **उणत** अजहू न मिटी तम, दोस नहीं 'अणदेस' तण नहचै बात नसीब री।—साहेबोजी सुरतांणियौ २ याद, स्मृति. ३ अभिलाषा, इच्छा।

उणमण–वि० [सं० उत्+मानस्] १ चिंतित, व्याकुल. २ उन्मन, उदासीन।

उणमणियौ, उणमणौ–वि०पु० (स्त्री० उणमणी)—१ उदास, खिन्न चित्त. उ०—खांधां पर खड़िया मैला मांख्यां सूं। **उणमणियां** जोवै झरती मांख्यां सूं।—ऊ.का. २ चिंतित, व्याकुल।

उणमुखता–सं०स्त्री०—१ उदासीनता. २ दीनता, गरीबी। उ०—छपनूं गावै गळ नैणां जळ छावै। अपणीं **उणमुखता** सनमुख दरसावै।—ऊ.का. ३ चिंता. ४ उत्सुकता।

उणमुखौ–वि०—उदासीन, चिंतित। (स्त्री० उणमुखी)

उणरउ–सर्व०—उसका। उ०—**उणरउ** जोबन बहिगयउ तूं किउं जोबनवंत।—ढो.मा.

उणहार–सं०पु०—देखो 'उणियार'। उ०—जवण हेक जेण री, आंख नाहर **उणहारै**।—मे.म.

उणां–सर्व०ब०व०—उन। उ०—हां हे आली भला है **उणां** रा भाग। —गी. रां.

उणारत–सं०स्त्री०—१ कमी, अभाव। [सं० ऊनत्व] २ चाह, इच्छा। उ०—थांरो भरतार तो कने छै बीजी थांनै किण बात री **उणारत** छै। —ढो.मा.

उणि–सर्व०—१ उसी। उ०—जउ जीव्या तउ आविस्यां, मुया त **उणिहिज** देस।—ढो.मा. २ उस। उ०—ज्यूं थारइ सांभर उगहइ। राजा **उणि** घरि उगहइ हीरा-खांन।—वी.दे.

उणिज–सर्व०—१ उसी. २ वही।

उणियारौ, उणियार–वि०—१ समान, बराबर, तुल्य। उ०—खत रिपिया लिख दे खेड़ेचा। अणलीधां लीधां **उणियार**। —द.दा.

२ अनुकूल. ३ उपयुक्त।

सं०स्त्री०—शक्ल, सूरत। (मि० उणियारौ)

उणियारौ–सं०पु० [सं० अनुहार] १ सूरत, शक्ल, आकृति, मुखाकृति। उ०—आंख्यां **उणियारोह**, निपट नहीं न्यारो हुवै, प्रीतम मो प्यारोह, जोती फिरूं रे जेठवा।—जेठवे रा सोरठा

कहा०—उणियारे उणियारे देस (मुलक) भरियौ है—समान हुलियों (वाले व्यक्तियों) से देश भरा है। एक ही आकार वाले अनेक व्यक्ति हो सकते हैं।

२ समानता, सादृश्य।

उणिहार, उणिहारौ–सं०पु० [सं० अनुहार] आकृति, सूरत, शक्ल। उ०—इहि जोड़ा **उणिहार**, जणणी फिर जाया नहीं। निकमी नाजुक नार, झुरती रैगी जेठवा।—जेठवे रा सोरठा

उणहि, उणहिज–सर्व०—उसी, वही।

उणी–सर्व०—१ उस। उ०—राय आंगणि रांणी फिरई। **उणी** सोळहमइ रांणी कउ उतारयौ मांन।—वी.दे.
२ उसकी. ३ उसी।

उणीयार, उणीहार, उणीहारइ, उणीहारउ–सं०पु०—आकृति, शक्ल। देखो 'उणियार' (रू.भे.) उ०—१ सत्रां सिर वीरम वाहै सार, आजौ को काळ तणौं **उणीयार**।—गो.रू.
उ०—२ जोगी कहइ सुणि धरह-नरेस। विण **उणीहारउ** कहांउ लहेस।
वि०—समान, सदृश। उ०—हिव होसी काच की कांमळी। दीस भूलउ रे प्रभु **उणीहार**।—वी.दे.

उणौ–सं०पु०—अपरिपक्व गर्भ।
वि० [सं० ऊन] देखो 'ऊणौ'।

उणौ-पूणौ–वि०पु०—अपूर्ण।

उण्यारै–सं०पु०—देखो 'अंवारियां'।

उण्यारौ–सं०पु०—१ देखो 'उणियारौ'. २ देखो 'उण्यारै'।

उतंक–सं०पु० [सं० उत्तंक] १ वेद मुनि के शिष्य एक ऋषि. २ गौतम ऋषि के एक शिष्य।
वि० [सं० उत्तुंग] ऊँचा।

उतंग–वि० [सं० उत्तुंग] १ ऊँचा, बुलंद। उ०—घने **उतंग** अंग के मतंग घूमते नहीं।—ऊ.का. २ श्रेष्ठ।
सं०पु०—सूर्य्य (अ.मा.)

उतंगह–सं०पु०—घोड़ा (ना.डिं.को.)

उत–उप० [सं०] एक उपसर्ग।
क्रि०वि०—१ वहीं. २ उधर, उस ओर। उ०—**उत** होम भूम विलोक आया, निडर राकस नीच।—र.रू.
सं०पु० [सं० पुत्र, प्रा० पुत्त] पुत्र, लड़का। उ०—मंडयौ नंदघर मेळ, व्रज में बंटै बधावणा। तट जमना रै तीर, रमियौ वसुदेराव **उत**।—रांमनाथ कवियौ

उतकंठ, उतकंठा–सं०स्त्री० [सं० उत्कंठा] प्रबल इच्छा, तीव्र अभिलाषा। उ०—ढोल पधारयउ कूवा कंठ, पिंगळ मनि अधिक **उतकंठ**।
—ढो.मा.

उतकंठित–वि० [सं० उत्कंठित] उत्सुक, उत्कंठायुक्त।

उतकट–वि० [सं० उत्कट] १ तीव्र, विकट, उग्र. २ मत्त।

उतकळ–सं०पु० [सं० उत्कल] १ उड़ीसा प्रांत. २ उड़ीसा का प्रधान नगर, जगन्नाथपुरी।

उतकळिका, उतकळी–सं०स्त्री० [सं० उत्कलिका] १ उत्कंठा. २ तरंग, लहर (डिं.को.) ३ फूल की कली (ह.नां.)

उतकव्ट–वि० [सं० उत्कृष्ट] उत्कृष्ट (अनेकार्थी)

उतकूं–क्रि०वि०—वहाँ।

उतणौ–वि०—उस मात्रा का, उतना।

उतथ्य–सं०पु० [सं०] १ अंगीरा के पुत्र एक मुनि विशेष. २ बृहस्पति के ज्येष्ठ सहोदर।

उतन, उतन्न–क्रि०वि०—उस तरफ, उस ओर।
सं०पु० [अ० वतन] वतन, जन्म-भूमि। उ०—पुन रा सदन बरण रा पाळक, देसल रतन **उतन** रा दीपक।—क.कु.बो.

उतपत, उतपती, उतपत्ती–सं०स्त्री० [सं० उत्पत्ति] उत्पत्ति, उद्भव, जन्म, पैदाइश। उ०—आद चहुवांण अनळकुंड री **उतपत**।
—नैणसी

उतपन, उतपन्न–सं०पु० [सं० उत्पन्न] उत्पत्ति, पैदाइश।
वि०—जन्मा हुआ, पैदा हुआ।

उतपनणौ, उतपनबौ, उतपन्नणौ, उतपन्नबौ–क्रि०अ०—उत्पन्न होना।
उ०—रसतर संधण लील राज बक बाळ विवन्नौ। तेण पाट तुड़तांण पछै अखई **उतपन्नौ**।—आसियौ मालौ
उतपन्नणहार, हारौ (हारी), उतपन्नणियौ–वि०—उत्पन्न होने वाला।

उतपळ–सं०पु० [सं० उत्पल] नील कमल, नील पद्म (ह.नां.)

उतपाणौ, उतपाबौ–क्रि०स०—उत्पन्न करना।

उतपात–सं०पु० [सं० उत्पात] १ उपद्रव, अशांति, हलचल, ऊधम। उ०—इन दिल्ली **उतपात**, वात विपरीत प्रगट्टं।—रा.रू.
२ आकस्मिक घटना. ३ आफत, दुःख (अ.मा.)
४ दंगा, शरारत. ५ दुष्टता।

उतपाती–वि०—१ उत्पाती, उपद्रवी। उ०—और वळे नाहर **उतपाती**, महा सजोर खगे मेवाती।—रा.रू. २ ऊधमी, शरारती।

उतपायोड़ौ–भू०का०कृ०—उत्पन्न किया हुआ। (स्त्री० उतपायोड़ी)

उतफुल–वि० [सं० उत्फुल्ल] विकसित, खिला हुआ, प्रफुल्लित (डिं.को.)

उतबंग, उतमंग–सं०पु० [सं० उत्तम+अंग] शिर, मस्तक (ह.नां. अ.मा.)
उ०—खेह नांख हैवर खुरां, अनराजां **उतबंग**। अलहणपुर आयौ अडर, औ सिधराव अभंग।—बां.दा.

उतम–वि० [सं० उत्तम] १ श्रेष्ठ, उत्तम, भला. २ प्रधान।

उतमतर–सं०पु० [सं० उत्तम+तरु] चन्दन का वृक्ष (ह.नां.)

उतम-दसा–सं०पु० [सं० दशा+उत्तम] दीपक (अ.मा., ह.नां.)

उतम-रस–सं०पु०यौ०—दूध (ह.नां.)

उतमि–वि० [सं० उत्तम] देखो 'उत्तम'।

उतरंग–सं०पु०—मकान के दरवाजे के ऊपर या नीचे लगाया जाने वाला पत्थर।

उतर–सं०पु०—१ उत्तर, जवाब. २ बदला. ३ दक्षिण के सामने की वह दिशा जिस ओर ध्रुव तारा स्थित है। उ०—दखिणा निळ आवती **उतर** दिसि, सापराध पति जिम सरति।—वेलि.

उतरण–सं०स्त्री०—उतरन, पहिने हुए पुराने कपड़े, उतरा हुआ वस्त्र।
सं०पु०—उतरने का काम।

उतरणौ, उतरबौ–क्रि०अ० [सं० अवतरण] १ ऊँचे स्थान से संभल कर नीचे आना। उ०—देखी भाट दीयौ दीरघायु, रेवंत थी **उतरियौ** राय।—ढो.मा. २ ढलना, अवनति पर होना. ३ ऊपर से नीचे आना. ४ शरीर के किसी हड्डी या उसके किसी जोड़ का अपने

स्थान से हट जाना. ५ कांति या स्वर का फीका पड़ना। उ०—लोगां घणी ही पूछी पण कही कांई ही नहीं। उणरौ चेहरौ उतर गयौ।—पदमसिंह री बात. ६ घट जाना, कम होना (प्रायः जल का) ७ उग्र प्रभाव या उद्वेग का दूर होना. ८ वर्ष, मास या नक्षत्र विशेष का समाप्त होना। उ०—करता मांचा दे लांचा कूतरिया। उतरता आसाढ़ां मूंढ़ा ऊतरिया।—ऊ.का.
९ थोड़े-थोड़े अंश में बैठ कर किये जाने वाले काम का पूर्ण होना. १० पहिनने का उल्टा, शरीर से वस्त्रादि पृथक करना.
११ खराद या सांचे पर चढ़ाई जाकर बनाई जाने वाली वस्तु का तैयार होना. १२ भाव का कम होना या घटना. १३ डेरा करना, टिकना, बसना, ठहरना। उ०—छयण परै तळाव आय उतरियौ छै।—सयणी री बात. १४ नकल होना, खिचना, अंकित होना. १५ बच्चों का मरना. १६ भर आना, संचारित होना (दूध उतरणौ) १७ भभके में खिंच कर तैयार होना.
१८ सफाई के साथ करना. १९ उचड़ना, उधड़ना. २० धारण की हुई वस्तु का अलग होना. २१ तौल में पूरा ठहरना.
२२ किसी बाजे की कसन का ढीला होना जिससे उसका स्वर विकृत हो जाय. २३ जन्म लेना, अवतार लेना. २४ आदर या शकुन के लिए किसी वस्तु का शरीर या सिर के चारों ओर घुमाना. २५ वसूल होना. २६ एकत्रित होना. २७ पद से हट जाना. २८ जागीरी जब्त होना।
कहा०—उतरियौ गांव डूंमां ने दीजै—राज्य द्वारा छीना हुआ गांव याचकों को दो (डूम=ऐक नाचने-गाने वाली याचक जाति, दमामी) कोई जाने वाली चीज दान करे तब। २९ अप्रिय होना।
क्रि०स०—३० पार करना (रू.भे. ऊतरणौ) उ०—अटक असरांण रा कटक सब ऊतरे, रहे तटवार हिंदवांण राजा।—देदो.
उतरणहार, हारौ (हारी), उतरणियौ—वि०—उतरने वाला।
उतराणौ, उतराबौ—प्रे०रू०। **उतारणौ, उतारबौ**—स०रू०।
उतरिओड़ौ, उतरियोड़ौ, उतरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उतर-पडूतर—सं०पु० [सं० उत्तर-प्रत्युत्तर] उत्तर-प्रत्युत्तर।

उतरपती—सं०पु० [सं० उत्तर+पति] उत्तर दिशा का स्वामी कुबेर (ह.नां.)

उतराणौ, उतराबौ—क्रि०प्रे०रू०—उतरवाना, उतारने का काम कराना।
उतरणौ, उतरबौ—अ०रू०।
उतरवायोड़ौ—भू०का०कृ०।

उतरस—सं०पु०—कुबेर (अ.मा.)

उतरांण—सं०पु०—उत्तर दिशा, उत्तरायण। उ०—अई बळ घटै दिखणांण दळ ज्यूं अरि। वडै उतरांण दिन विरद वधता।—क.कु.बो.

उतरा—सं०पु०—१ उत्तर दिशा. २ उत्तराषाढ़ा नक्षत्र।
सर्व०—उतने ही।

उतराई—सं०स्त्री०—१ ऊपर से नीचे आने की क्रिया. २ नदी के पार उतरने का कर या महसूल या मजदूरी (डिं.को.) ३ नीचे की ओर ढालू भूमि, ढाल।

उतराखाढ़ा—सं०स्त्री० [सं० उत्तराषाढ़ा] सत्ताइस नक्षत्रों में से एक नक्षत्र, उत्तराषाढ़ा।

उतराणौ, उतराबौ—क्रि०प्रे०रू० [सं० अवतारण] १ उतरने का काम कराना. २ उतराने का काम कराना.
क्रि०अ० [सं० उत्तरण] ३ पानी के ऊपर तैरना, पानी की सतह पर आना. ४ उफान या उबाल आना. ५ देख पड़ना, प्रकट होना।
६ सर्वत्र दिखाई पड़ना. ७ घमंड करना।

उतराणहार, हारौ (हारी), उतराणियौ—उतराने वाला।
उतरायोड़ौ—भू०का०कृ०—उतराया हुआ।

उतराद—सं०स्त्री० [सं० उत्तर] उत्तर दिशा। [सं० उत्तराहि] उत्तर दिशा की ओर।

उतरादौ—वि० [सं० उत्तराहि] उत्तर दिशा का, उत्तर दिशा संबंधी।
उ०—उतरादै पासे एक मोटौ वड़ छै सो थे वड़ ऊपर चढ़ज्यौ।
—पलक दरियाव री बात

उतराध—देखो 'उतराद'। उ०—दिस दिक्खण खेड़िया पीठ उतराध विचारे।—रा.रू.
वि० [सं० उत्तरार्ध] पीछे का आधा भाग।

उतराधी—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (अश्व-चिंतामणि)
क्रि०वि० [सं० उत्तराहि] उत्तर दिशा की ओर।

उतराधू, उतराधौ—वि० [सं० उत्तराहि] देखो 'उतरादौ'।
उ०—जखड़ै सोचियौ, व्याह तौ तीन छै तिके उगूणाऊ नै उतराधा छै नै माजी दखणाधू सासरौ कह्यौ, तिकौ किसी भांति।
—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात

उतराफाळगुणी, उतराफाळगुनी—सं०स्त्री०—सत्ताईस नक्षत्रों के अंतर्गत एक नक्षत्र विशेष (अ.मा.)

उतरायण—सं०पु० [सं० उत्तरायण] सूर्य के मकर रेखा से चल कर बराबर उत्तर की ओर बढ़ते रहने का छः मास का समय. २ देवताओं का दिन।

उतरायी—सं०स्त्री०—उतरना क्रिया या भाव, नाव आदि से उतारने या पार करने की मजदूरी (डिं.को.)

उतरारिख—सं०पु०—देखो 'उतरायण'।

उतराव—सं०पु०—उतार या ढालू भूमि।

उतरावणौ, उतराबबौ—क्रि०स०—देखो 'उतराणौ'।

उतरावियोड़ौ—भू०का०कृ०—उतराया हुआ। (स्त्री० उतरावियोड़ी)

उतरासण, उतरासणियौ—सं०पु०—मकान के द्वार पर छज्जे के नीचे लगाया जाने वाला सीधा व चौड़ा पत्थर जो प्रायः बाहर की ओर कुछ उठा हुआ होता है।

उतरासाडा—सं०स्त्री०—देखो 'उतराखाढ़ा'।

उतरियोड़ी–भू०का०कृ०—उतरा हुआ। (स्त्री० उतरियोड़ी)
उतरेस–सं०पु० [सं० उत्तर+ईश] कुबेर (अ.मा.)
उतरो, उतरोक–वि०—उतना।
उतळ–सं०पु० [सं० उत्+तल=प्रतिष्टायां] उदारता का आध्याहार, उदारता की आकांक्षा। उ०—हर पंथ अघहर पंथ ग्रहै हुय, प्रभा हुवंती समोप्रवाह। एक हमीर वहै कांकरिये, आज तुहाळं उतळ तियाह।—महाराणा हमीरसिंह री गीत
उतबंग–सं०पु० [सं० उत्तमांग] देखो 'उतबंग'। उ०—भवसि घड़ा बळि भाळि, वांमण ज्यूं वीठळ वधै। उतबंग जाइ ब्रह्मांडि अड़ै, पग सातमैं पयाळि।—वचनिका
उतसरजन–सं०पु० [सं० उत्सर्जन] दान, उत्सर्ग (डि.को.)
उतसारक–सं०पु० [सं० उत्सारक] प्रतिहार, द्वारपाल, चौबदार (डि.को.)
उतसाह–सं०पु० [सं० उत्साह] उत्साह।
उतसुक–वि० [सं० उत्सुक] उत्कंठित, अत्यन्त इच्छुक (डि.को.)
उतसूर–सं०पु० [सं० उत्सूर] संध्याकाल, शाम (डि.को.)
उतांन–वि० [सं० उत्तान] पीठ को पृथ्वी पर रख कर ऊपर सीधा (लेटना), चित।
उतांन-सहाय, उतांन-सहि, उतांन-सही–सं०पु० [सं० उत्तानशय] बालक (अ.मा., ह.नां.)
उतांनजात–सं०पु०—उत्तानपाद का पुत्र, ध्रुव।
उतांमळ, उतावळ–सं०स्त्री०—शीघ्रता, जल्दी।
क्रि०वि०—देखो 'उतावळी'। शीघ्र (ह.नां., अ.मा.)
उतांमळउ–वि०—उतावला, शीघ्रता करने वाला, जल्दबाज।
उ०—१ मारू मन चिंता धरइ, करहइ कंब लगाइ। करहउ उठथ्यू उतांमळउ, सालह अचंभै थाइ। ढो मा.
उ०—२ देखतां पथिक उतांमळा दीठा।—वेलि.
उताग्रह–वि०—शीघ्रता करने वाला। उ०—रिण काज उताग्रह चाळ करा, धज वंध उठावसु मेर धरा।—शि.सु.रू.
उताप–सं०स्त्री० [सं० उत्ताप] १ पीड़ा (अ.मा.) २ देखो 'उतापौ'।
उतापौ–सं०पु० [सं० उत्ताप] १ ज्वर, बुखार. २ पीड़ा. ३ उष्णता, ताप।
उतायळ–वि०—आतुर, जल्दबाज।
उतायळी–सं०स्त्री०—शीघ्रता, जल्दबाजी।
उतार–सं०पु०—१ उतरने की क्रिया, क्रमशः नीचे की ओर प्रवृत्ति. २ उतरने योग्य स्थान. ३ किसी वस्तु की मोटाई या घेरे का क्रमशः कम होना. ४ घटाव, कमी. ५ नदी में चल कर पार करने योग्य स्थान. ६ समुद्र का भाटा. ७ ढालू भूमि, ढाल. ८ उतारन, त्यक्त. ९ उतरायल, उतारा, न्योछावर, सदका. १० वह वस्तु या प्रयोग जिससे नशे या विष आदि का बल कम हो या दोष दूर हो. ११ नदी के बहाव की ओर. १२ अवनति, पतन।

उतारण–वि०—१ उतारने वाला. २ मिटाने वाला। उ०—गोविंद दहत्त उतारण ग्रब्ब।—ह.र.
सं०स्त्री०—१ मंत्र तंत्र विद्या के अनुसार पानी को शिर के चारों ओर घुमाना. २ लकड़ी की दस्तकारी।
उतारणौ–वि—उतारने वाला। उ०—ओपै बाड़ी अमल री, बैरी रंग बिरंग, एकौ रंग उतारणौ, जेठ न दीठी जंग।—वी.स.
उतारणौ, उतारबौ–क्रि०स०—१ ऊंचे स्थान से किसी नीचे स्थान में लाना. २ प्रतिकृति बनाना, (चित्रादि) खींचना, नकल करना. ३ लगी या चिपटी हुई वस्तु को अलग करना, उचाड़ना, उखाड़ना. ४ पहने हुए किसी वस्त्र को छोड़ना, पृथक करना. ५ ठहराना, टिकाना, डेरा देना, आश्रय दिलाना. ७ किसी वस्तु को मनुष्य के चारों ओर घुमा कर भूत-प्रेत की भेंट के रूप में चौराहे आदि पर रखना, उतारा करना. ७ निछावर करना, वारना. ८ वसूल करना. ९ किसी उग्र प्रभाव को दूर करना. १० पीना, घूंटना. ११ मशीन, खराद, सांचे आदि पर चढ़ा कर बनाई जाने वाली वस्तु को तैयार करना. १२ बाजे आदि की कसन को ढीला करना. १३ भभके से खींच कर तैयार करना या खौलते पानी में किसी वस्तु का सार निकालना. १४ निंदित या बदनाम करना, लोगों की नजरों से गिराना. १५ काटना, तोड़ना (फल-फूल आदि) १६ निगलना. १७ वजन में पूरा करना. १८ घी में सेंकना और निकालना (पूरी आदि) १९ उत्पन्न करना. २० हटाना, दूर करना। २१ पार ले जाना, नदी नाले के पार पहुंचाना। २२ राई नोन मिर्च इत्यादि को चारों ओर घुमा कर आग में डालना. २३ जागीरी जब्त करना. २४ पद से हटना.
२५ धारण की हुई वस्तु या भाव को अलग करना।
उ०—मुरादसाह नूं पकड़, तखत बैठांण पछै जबेह करायौ, कुरांन री सूंस उतारियौ।—पदमसिंह री बात
उतारणहार, हारौ (हारी), उतारणिऔ–वि०—उतारने वाला।
उतरणौ, उतरबौ—अ०रू०।
उतारिओड़ौ, उतारियोड़ौ, उतारयोड़ौ—भू०का०कृ०।
वि०—उतारने वाला।
उतारियोड़ौ–भू०का०कृ०—उतरा हुआ। (स्त्री० उतारियोड़ी)
उतारू–वि०—१ उद्यत, तैयार, तत्पर. २ उतरा हुआ. ३ उपयोग में लिया हुआ, उपयोग में आया हुआ। उ०—इसा करुणा रा वचन कहि घणी दीनता करी। स्त्री ठाकुरजी रै उतारू चंदण लगायौ।—पलक दरियाव री बात
उतारो, उतारौ–सं०पु०—१ किसी स्थान पर ठहरने, डेरा डालने या टिकने का कार्य। उ०—पहाड़ां रा मोरचा री मार सूं अळगौ उतारौ लियौ।—जगमाल मालावत री बात. २ ठहरने, डेरा डालने या टिकने का स्थान. ३ नदी का पार करना. ४ किसी

व्यक्ति के शरीर के चारों ओर कुछ खाने-पीने की सामग्री अथवा अन्य कोई वस्तु घुमा फिरा कर चौराहे आदि पर प्रेत-बाधा या रोग की शांति आदि के लिए रखना। देखो 'ऊतारो'।

५ इस उतारे की सामग्री. ६ पुस्तक की नकल, प्रतिकृति.

७ सूची, फेहरिस्त। उ०—तद कही–'थे जावौ, गांवां री उतारौ कर सताब मेलज्यौ, तिण माफिक लोगां नूं पटौ मेल देस्यां।

राठौड़ अमरसिंह री बात

उताळ–क्रि०वि०—१ ऊँचा, जोर से (आवाज या बोलना). २ शीघ्र, जल्द।

सं०स्त्री०—शीघ्रता, त्वरा। उ०—बाभी देवर नींद बस, बोलीजै न उताळ। चगतां घावां चौंकसी जे सुणसी बंबाळ।—वी.स.

उताळै–क्रि०वि०—जल्दी, शीघ्र। उ०—आगै उर पीड़ियां उताळै, विचित्र बुलाया सँभरवाळै।—रा.रू.

उताळो, उताळौ–वि०—१ आतुर. २ उतावला। उ०— सू लाहौर निबाब सचाळो, आवै मगि इब रांम उताळौ।—रा.रू.

उतावणौ, उतावबौ–क्रि०स०—१ डालना. २ ग्रहण करना।

उतावळ–सं०स्त्री०—१ जल्दी, शीघ्रता, अधीरता.

क्रि०प्र०—करणी, होणी।

२ चंचलता (ह.नां.) ३ वेग (अ.मा.)

क्रि०वि०—जल्दी, शीघ्र।

उतावळि, उतावळी–सं०स्त्री०—१ जल्दी, शीघ्रता, जल्दबाजी (ह.नां.) उ०—घणी उतावळि सउ परवरयउ, सोवनगिरि नेडउ संचरयउ।

—ढो.मा.

२ व्यग्रता, अधीरता. ३ चंचलता।

कहा०—१ उतावळो दो बार फिरै (दोड़ै)—उतावली में किये कार्य को दुबारा करना पड़ता है; जल्दबाजी में कोई काम ठीक नहीं होता और किये गये कार्य को वापस करना पड़ता है।

क्रि०प्र०—करणी, खाणी, पड़णी, होणी।

उतावळो, उतावळौ–वि० [सं० उद+त्वर] (स्त्री० उतावळी) १ जल्दी मचाने वाला, जल्दबाज। उ०—बहता वहै जी उतावळा रे, वे तौ झटक बतावे छेह।—मीरां. २ व्यग्र, आतुर, चंचल, अधीर।

कहा०—१ उतावळां री देवळ्यां हुवै, धीरां'रा गांव बसै—जल्दी करने वालों के पीछे देहरियां (स्मारक-पत्थर) बनती हैं,धैर्य्य रखने वालों के पीछे गांव बसते हैं; जल्दी करने से काम अधूरा होता है या ठीक नहीं होता; धीरज से काम अच्छा बनता है और स्थायी रहता है।

२ उतावळा सौ बावळा—जल्दबाज बावला होता है. ३ उतावळा सो बावळा, धीरा सौ गंभीर—जल्दी में किया काम पागलपन जैसा होता है, धीरज का काम स्थायी रहता है. ४ उतावळो सौ बार पाछो आवै—जल्दबाज जल्दी के मारे प्रत्येक बार कोई न कोई चीज भूल जाने के कारण सौ बार वापिस आता है। जल्दबाजी की निंदा।

क्रि०वि०—शीघ्र। उ०—त्रिभुवन कहतां स्रीक्रस्णजी खांति लागा, रथ घणौ उतावळा खेड़ै छै।—वेलि. टी.

उतावियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ डाला हुआ. २ ग्रहण किया हुआ। (स्त्री० उतावियोड़ी)

उतिम–सं०पु०—पांच सगण और अंत में ह्रस्व वर्ण का एक छंद विशेष (ल.पिं.)

उतीम–वि० [सं० उत्तम] उत्तम। उ०—गढ़ अजमेरां उतीम ठाई। राज करइ बीसळ-दे-राई।—वी.दे.

उतीमरस–सं०पु० [सं० उत्तम+रस] दुग्ध, दूध (ह.नां.)

उतै–क्रि०वि०—वहां, उधर, उस ओर।

सं०स्त्री० [सं० उत्तर] उत्तर दिशा।

उतोलणौ, उतोलबौ–क्रि०स० [सं० उत्तोलन] १ तौलना. २ प्रहार हेतु शस्त्र उठाना। उ०—भांजै चोक हरोळां अगि रा उतोलियां भालां, धकै तणौ मेलियां जगी री रीस धूत।—नवलजी लाळस

उतोलणहार, हारौ (हारी), उतोलणियौ—वि०।

उतोलिओड़ौ, उतोलियोड़ौ, उतोल्यांड़ौ—भू०का०कृ०।

उतोलियोड़ौ–भू०का०कृ०—तोला हुआ. २ प्रहार के हेतु शस्त्र उठाया हुआ। (स्त्री० उतोलियोड़ी)

उतौ–वि०—उतना।

उतौ'क, उतोसौ–वि०—१ उतना सा. २ उतना।

उत्कंठा–सं०स्त्री० [सं०] बड़ी प्रबल इच्छा, बिना बिलंब के किसी काम के करने की अभिलाषा, एक प्रकार का संचारी भाव।

उत्कंठित–वि० [सं०] उत्कंठायुक्त, चाव से भरा हुआ।

उत्कंठिता–सं०स्त्री० [सं०] संकेत स्थान पर प्रिय के न आने या न मिलने पर तर्क-वितर्क करने वाली नायिका, उत्सुका।

उत्कट–वि० [सं०] तीव्र, विकट, उग्र।

उत्कटासण–सं०पु०—योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन विशेष। दोनों पावों के अंगूठों को भूमि पर लगा कर दोनों एड़ियों को ऊँची रखने और दोनों पांवों के पंजे पर शरीर का बोझ आवे इस चाल से कुरसी पर बैठे हुये, इस प्रकार झुक कर खड़े रहने से उत्कटासन होता है।

उत्करस–सं०पु० [सं० उत्कर्ष] १ बड़ाई, प्रशंसा. २ श्रेष्ठता, उत्तमता। उ०—जठै मकुवांण कही जवनां रौ जाति स्वभाव आपरौ उत्करस जणावै।—वं.भा. ३ समृद्धि. ४ प्रभाव।

उत्करसता–सं०स्त्री०—१ देखो 'उत्करस' (१) (२) (३). २ प्रचुरता।

उत्कल–सं०पु०—उड़ीसा प्रांत का एक नाम।

उत्कळिका–सं०स्त्री० [सं०] देखो 'उतकळिका'।

उत्क्रमण–सं०पु० [सं०] १ क्रम का उल्लंघन. २ मृत्यु।

उत्क्रस्ट–वि० [सं० उत्कृष्ट] श्रेष्ठ, उत्तम, सर्वोत्तम।

उत्क्रस्टता–सं०स्त्री० [सं० उत्कृष्टता] बड़ाई, श्रेष्ठता, बड़प्पन।

उत्पात–सं०पु०—१ फलित ज्योतिष के अट्ठाइस योगों में से एक (ज्योतिष-बाळबोध) २ देखो 'उतपात'।

उत्संग–सं०पु०—घोड़ा, अश्व। उ०—हुकम मुगं रिणमाल हर, जोध

अडर जगिवार। रण जंगां कारण हुवा, उत्तंगां असवार।—रा.रू.
वि० [सं० उत्तुंग] ऊँचा।

उत्तंगो–वि०—१ ऊँचा. २ दीर्घ (अ.मा.)
सं०पु० [सं० उत्तुंग] देखो 'उत्तंग'।

उत्त–सं०पु० [सं० उत] आश्चर्य, सन्देह (वं.भा.)।
क्रि०वि०—उत, उधर, उस ओर।

उत्तन–सं०पु० [अ० वतन] वतन, देश, जन्म-भूमि। उ०—आंबेरी उत्तन बिना, अति मन रहै उदास। अरज करै 'अजमाल' सूं, उर सूं गरज धर आस।—रा.रू.

उत्तपत्त–सं०स्त्री० [सं० उत्पति] १ उत्पत्ति। उ०—हरिया माळी प्रगट हुय, पिड़ पहली उत्तपत्त।—पा.प्र. २ उत्पत्ति-स्थान।

उत्तप्त–वि० [सं०] १ खूब तपा हुआ, तप्त, संतप्त. २ दुःखी, पीड़ित, दग्ध ३ चिंतित।

उत्तमंग–सं०पु० [सं० उत्तमाङ्ग] शिर, मस्तक। देखो 'उत्तमांग'।
उ०—अर नरसिंहदेव नूं छिन्न-भिन्न होइ पड़तो देखि केही जवना नूं परेतपति री पुरी रा पाहुरा करि ऊही उत्तमंग आरिग मुहम्मदमाह रै उपायन कीधो।—वं.भा.

उत्तम–वि०—१ श्रेष्ठ, अच्छा, भला, पवित्र. २ प्रधान, मुख्य।
सं०पु०—१ श्रेष्ठ नायक. २ राजा उत्तानपाद का रानी सुरुचि से उत्पन्न पुत्र जिसे वन में एक यक्ष ने मार डाला था।

उत्तमगंधा–सं०स्त्री०—मालती (अ.मा.)

उत्तमतया–क्रि०वि०—भली-भांति, अच्छी तरह से।

उत्तमता, उत्तमताई–सं०स्त्री० [सं०] १ भलाई. २ उत्कृष्टता, श्रेष्ठता, खूबी।

उत्तमदसा–सं०स्त्री० [सं० उत्तम+दशा] १ ज्योति (अ.मा.)
२ श्रेष्ठ दशा या हालत।

उत्तमपद–सं०पु० [सं०] श्रेष्ठ पद, मोक्ष।

उत्तम पुरुष–सं०पु०—सर्वनाम के अंतर्गत वह पुरुष जो कथन कर रहा हो, बोलने वाले पुरुष को सूचित करने वाला, सर्वनाम।

उत्तमरस–सं०पु०—दूध (अ.मा.)

उत्तम संग्रह–सं०पु० [सं०] १ सम्यक् संग्रह. २ एकांत में पर स्त्री से आलिंगन।

उत्तमांग–सं०पु० [सं० उत्तमाङ्ग] शिर, मस्तक। उ०—सतांग बांग बांग स्वांग सारथी सर्ज नहीं। महारथी न उत्तमांग भारथी भजै नहीं।—ऊ.का.

उत्तमा–वि०—अच्छी, भली।

उत्तमाई–सं०स्त्री०—१ उत्तमता, श्रेष्ठता. २ पवित्रता।

उत्तमादूती–सं०स्त्री० [सं०] नायक या नायिका को मधुरालाप से मना लेने वाली श्रेष्ठ दूती।

उत्तमानायिका–सं०स्त्री०यौ० [सं०] पति के प्रतिकूल होने पर भी स्वयं अनुकूल बनी रहने वाली स्वकीया नायिका।

उत्तमोत्तम–वि० [सं०] सर्वश्रेष्ठ, परमोत्कृष्ट।

उत्तर–सं०पु०—१ दक्षिण दिशा के सामने की दिशा जिधर ध्रुव तारा रहता है. २ वह बात जो किसी प्रश्न या बात को सुन कर तत्समाधानार्थ कही गई हो। जव्वाब. ३ किसी कार्य या माँग के बदले किया जाने वाला कार्य। उ०—दाता जग माता पिता, दाता सांप्रत देव। दाता सरबस दांन दे, उत्तर एक अदेह।—बां.दा.
कहा०—१ हाथ री उत्तर देणी—कुछ न कुछ अवश्य देना चाहिये, उसकी मात्रा कितनी ही थोड़ी क्यों न हो।
४ बहाना, मिस, व्याज, हीला. ५ प्रतिकार, बदला. ६ नहीं, निषेधसूचक जव्वाब।
क्रि०प्र०—देणी, लेणी। उ०—कंपनी खून सुणियौ कहर, भड़ मुख उत्तर भाखियौ। पलटियौ देव दूजी दसा, जिणने रावत जोधे राखियौ।—कोठारिया रावत जोधसिंह रा छप्पय
कहा०—छाछ घालतां छाती फाटै, दूध घालणौ दोरौ। रोटी देतां रोज आवे, उत्तर देणौ सोरौ—छाछ डालते छाती फटती है, दूध डालना कठिन है, दूध देने पर रोना आता है; सबसे आसान काम नकारात्मक उत्तर देना है; किसी के द्वारा कुछ माँगने पर नकारात्मक उत्तर देना सबसे आसान है। कंजूस के प्रति व्यंग्य।
७ एक प्रकार का अलंकार विशेष। इसमें उत्तर सुनते ही प्रश्न का अनुमान किया जाता है या प्रश्नों का अप्रसिद्ध उत्तर दियो जाता है।
८ अभिमन्यु का साला, उत्तरा का भाई एवं विराट का पुत्र.
९ उत्तर दिशा की वायु। उ०—उत्तर आज स बज्जियउ, सीय पड़ेसी पूर। दहिसी गात निरध्धणां, घण चंगी घर दूर।—ढो.मा.
वि०—१ पिछला, बाद का. २ ऊपर का. ३ बढ़ कर, श्रेष्ठ।
४ तेज, शीघ्र चलने वाला।
क्रि०वि०—पीछे, बाद, अनन्तर, पश्चात्।

उत्तरकळा–सं०स्त्री०—पुरुषों की बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला।

उत्तरकाळ–सं०पु० [सं० उत्तरकाल]. १ पश्चात् काल. २ भविष्य, आगामी काल।

उत्तरकासी–सं०स्त्री० [सं० उत्तरकाशी] हरिद्वार के उत्तर में एक तीर्थ।

उत्तरकुरु–सं०पु० [सं०] जम्बू द्वीप के नव वर्षों में एक, एक जनपद या देश।

उत्तरकोसळ–सं०पु० [सं० उत्तरकोशल] अयोध्या के आसपास का देश, अवध प्रांत।

उत्तरकोसळा–सं०स्त्री० [सं० उत्तरकोशला] अयोध्या।

उत्तरक्रिया–सं०स्त्री० [सं०] १ अंत्येष्टि क्रिया. २ पितृ कर्म, श्राद्ध।

उत्तरणो, उत्तरबो–क्रि०अ०—देखो 'उतरणो'। उ०—उत्तर आजस उत्तरउ, सही पड़ंसी सीह। बाळ थरि किमि छंडियइ, जां नित चंगा दीह।—ढो.मा.

उत्तरदाता, उत्तरदायी–सं०पु० [सं०] जिम्मेदार, जवाबदेह, उत्तरदायो।

उत्तरदिकपति–सं०पु०—कुबेर (डिं.को.)

उत्तरदिसपती–सं०पु०—१ उत्तर दिशा की वायु, वायु (डिं.को.) २ कुबेर ।

उत्तरपंथी–सं०पु०—एक खास जाति का घोड़ा (शा.हो.)

उत्तरपख–सं०पु० [सं० उत्तरपक्ष] न्याय के अंतर्गत वह सिद्धान्त जिसके अंतर्गत पूर्व पक्ष या प्रथम किये हुए निरूपण या प्रश्न का खंडन अथवा समाधान किया जाय । जवाब की दलील ।

उत्तरपति–सं०पु०—१ उत्तर दिशा की वायु (डिं.को.) २ कुबेर ।

उत्तरपथ–सं०पु० [सं०] देवयान ।

उत्तरपद–सं०पु० [सं०] किसी यौगिक शब्द का अन्तिम शब्द ।

उत्तरफाळगुणी, उत्तरफाळगुनी–सं०स्त्री० [सं०] सत्ताइस नक्षत्रों के अन्तर्गत बारहवां नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी ।

उत्तरभाद्रपद–सं०स्त्री०—सत्ताइस नक्षत्रों के अंतर्गत छब्बीसवां नक्षत्र, उत्तराभाद्रपद ।

उत्तरमंद्र–सं०पु०—संगीत की एक मूर्छना ।

उत्तरमानस–सं०पु०—गया तीर्थ में एक सरोवर विशेष ।

उत्तरमीमांसा–सं०स्त्री० [सं०] वेदान्त दर्शन (शास्त्र)

उत्तरमोड़–सं०पु०—१ उत्तर दिशा का रक्षक. २ उत्तर दिशा का सिरमौर. ३ हिमालय पर्वत. ४ भाटी वंश अथवा भाटी वंश का व्यक्ति ।

उत्तरा–सं०स्त्री० [सं०] १ सताइस नक्षत्रों के अंतर्गत एक नक्षत्र २ विराट की एक कन्या जो अभिमन्यु को ब्याही गई थी । परीक्षित इसका पुत्र था ।

उत्तराखंड–सं०पु०—भारत के उत्तर का हिमालय के समीप का भाग या प्रान्त ।

उत्तराद–सं०पु०—उत्तर दिशा । (रू.भे. उतराद)

उत्तरादो, उत्तरादौ–क्रि०वि०—उत्तर दिशा की ओर (द.दा.)

उत्तराध–सं०पु०—देखो 'उतराद' ।

उत्तराधिकार–सं०पु० [सं०] किसी के मरने पर उसकी धन-सम्पत्ति का स्वत्व, विरासत ।

उत्तराधिकारी–सं०पु०यौ० [सं०] किसी के मरने पर उसकी सम्पत्ति का मालिक, वारिस ।

उत्तराधी–वि०—उत्तर दिशा की ओर का ।

उत्तराफाळगुणी–सं०स्त्री०—सताइस नक्षत्रों के अंतरगत एक नक्षत्र ।

उत्तराभाद्रपद–सं०स्त्री०—सताइस नक्षत्रों में से एक (अ.मा.)

उत्तराभास–सं०पु०यौ० [सं०] झूठा जवाब, अंड-बंड जवाब (स्मृति)

उत्तरायण–सं०पु० [सं०] देखो 'उतरायण' ।

उत्तरारध–सं०पु० [सं० उत्तरार्ध] पिछला भाग, पीछे का आधा भाग ।

उत्तरासाढ़ा–सं०स्त्री० [सं० उत्तराषाढ़ा] देखो 'उत्तराखाडा' ।

उत्तरी–सं०स्त्री०—उत्तर दिशा की वायु ।
सर्व०—१ इतनी. २ उतनी (मि० उतरो)

उत्तरोत्तर–क्रि०वि०यौ० [सं०] १ एक के बाद एक, क्रमशः, लगातार. २ एक के पश्चात् दूसरे का क्रम, आगे-आगे ।

उत्तान–वि० [सं० उत्तान] ऊर्ध्वमुख, चित, पीठ के बल सीधा ।

उत्तानपाद–सं०पु० [सं० उत्तानपाद] एक राजा जो स्वयंभुव मनु के पुत्र और प्रसिद्ध भक्त ध्रुव के पिता थे ।

उत्ताप–सं०पु० [सं०] १ गर्मी, तपन, उष्णता. २ कष्ट, वेदना, दुःख. ३ शोक, संताप ।

उत्तारणो, उत्तारबो–क्रि०स०—देखो 'उतारणो' (रू.भे.)

उत्तारो–सं०पु०—देखो 'उतारो' ।

उत्ताळ–वि०—१ उत्कट. २ भयानक. ३ श्रेष्ठ. ४ त्वरित. ५ ऊँची । उ०—चलत लोह उत्ताळ, सूळ सरगवा परिघ्घन । चलत सोर साबत, मनहुं डंडूर बूंद घन ।—ला.रा.
सं०स्त्री०—उतावळी, शीघ्रता, त्वरा ।

उत्ताळी–वि०—देखो 'उतावळी' । उ०—भागे भीच गोरा सिधांपरां रा जिहांन भाळी, दावौ तेगां झाट दे उत्ताळी दसू देस ।
—सूरजमल मीसण

उत्तावळी–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)
वि०—शीघ्रता करने वाला ।

उत्तिमंग–सं०पु० [सं० उत्तमाङ्ग] शिर, मस्तक ।
(मि० रू.भे. उतबंग, उतमंग, उतमांग, उतवंग)
उ०—ऊठिया कोपि ग्रामळिय ग्रंग, ग्राकासि ग्रड़ाविय उत्तिमंग ।
—रा.ज.सी.

उत्तमि–वि० [सं० उत्तम] उत्तम, श्रेष्ठ । देखो 'उत्तम' ।
उ०—राजा प्रोहित राखिजइ, जिणकी उत्तिम जाति । मोकळि घर रा मंगता, विरह जगावइ राति ।—ढो.मा.

उत्तीरण–वि० [सं० उत्तीर्ण] १ पार गया हुआ, पारंगत. २ मुक्त. ३ परीक्षा में कृतकार्य या सफल ।

उत्तुंग, उत्तुंगि–वि० [सं० उत्तुंग] बहुत ऊँचा, उच्च, उन्नत ।
उ०—सात भूमि मंदिर उत्तुंगि, मारवणी वासी मन रंगि । दासी तास पंचसइ पासि, मारू मनि आत पूगी आस ।—ढो.मा.

उत्तू–सं०पु० [फा०] एक प्रकार का औजार या यंत्र जिसे गरम करके कपड़ों पर बेलबूटों या चुन्नट के निशान डालते हैं, इस औजार से किया गया बेलबूटों का काम ।

उत्तेजक–वि० [सं०] उभाड़ने, बढ़ाने या उकसाने वाला, प्रेरक, वेग को तीव्र करने वाला ।

उत्तेजन, उत्तेजना–सं०स्त्री० [सं०] प्रेरणा, बढ़ावा, प्रोत्साहन, वेगों को तीव्र करने की क्रिया ।

उत्तेजित–वि० [सं०] प्रेरित, उत्तेजनापूर्ण, प्रोत्साहित, पुनः पुनः आवेशित ।

उत्तै–क्रि०वि०—१ उतनी दूरी तक, वहाँ तक २ उतने समय तक ।

उत्थथ–सं०पु०—उखड़ने की क्रिया या भाव । उ०—थिरा उत्थथ थत्थ तें, विथत्थ थत्थते वहें ।—ऊ.का.

उत्थपणौ, उत्थपबौ–क्रि०स०—मिटाना, नाश करना। देखो 'उथपणौ'।
उ०—निसि भरद्ध माधव नम्रते, राजाधि भ्रमल **उत्थपियौ**।
—ला.रा.

उत्थपणहार, हारौ (हारी), उत्थपणियौ–वि —नाश करने वाला।
उत्थपिग्रोड़ौ, उत्थपियोड़ौ, उत्थप्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उत्थपियोड़ौ–भू०का०कृ०—नाश किया हुआ, मिटा हुआ। (स्त्री० उत्थपियोड़ी)

उत्थलणौ, उत्थलबौ–क्रि०स०—देखो 'उथलणौ, उथलबौ'।
उ०—कवन भूमि **उत्थलहि**. कवन सर नीर मथावै।— ला.रा.
उत्थलणहार, हारौ (हारी), उत्थलणियौ–वि०।
उत्थलिग्रोड़ौ, उत्थलियोड़ौ, उत्थल्योड़ौ—भ०का०कृ०।

उत्थलियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उथलियोड़ौ'। (स्त्री० उत्थलियोड़ी)

उत्थवणौ, उत्थवबौ–क्रि०स० [सं० उत्थापन] १ अनुष्ठान करना. २ आरम्भ करना।

उत्थवियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ अनुष्ठान किया हुआ. २ आरम्भ किया हुआ। (स्त्री० उत्थवियोड़ी)

उत्थान–सं०पु० [सं० उत्थान] १ उठने का कार्य, उठान. २ आरम्भ. ३ उन्नति, बढ़ती. ४ समृद्धि।

उत्थान एकादसी–सं०स्त्री० [सं० उत्थान एकादशी] कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी—इसी दिन शेषशायी जाग्रत होते हैं; देवउठान एकादशी।

उत्थाप–सं०पु०—मिटाने या हटाने की क्रिया।
वि०—मिटाने वाला, उन्मूलन करने वाला।

उत्थापन–सं०पु० [सं०] १ ऊपर उठाना. २ तानना।

उत्थितविवेकासण–सं०पु० [सं० उत्थितविवेकासन योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन विशेष जिसमें मर्यादापूर्वक हाथों की पलथी मार कर खड़े होना होता है।

उत्पतित–वि०—ऊपर गया हुआ, उठा हुआ, ऊपर उठा हुआ।

उत्पत्ति–सं०स्त्री० [सं० उत्+पत्+क्ति] १ जन्म, उद्गम, पैदाइश, सृष्टि. २ शुरू, आरम्भ।

उत्पत्ति एकादशी–सं०स्त्री० [सं० उत्पत्ति एकादशी] मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी।

उत्पन्न–वि० [सं०] जन्मा हुआ, पैदा हुआ।

उत्पन्ना–सं०स्त्री० [सं०] अगहन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी। (मि० उत्पत्ति एकादशी)

उत्पळ–सं०पु० [सं०उत्पल] नील कमल, नील पद्म।

उत्पात–सं०पु० [सं० उत्+पत्+घञ्] १ उपद्रव, अशांति, हलचल. २ कष्टप्रद आकस्मिक घटना. ३ ऊधम, दंगा. ४ शरारत, दुष्टता।

उत्पातक–सं०पु० [सं०] कान में किसी भारी गहने के पहिन लेने से होने वाला एक रोग विशेष (अमरत)
वि०—उपद्रव या उत्पात करने वाला।

उत्पाती–वि० [सं० उत्पातिन्] उत्पात मचाने वाला, उपद्रवी, नटखट, शरारती, बदमाश, दुष्ट।

उत्पादक–वि० [सं०] उत्पन्न करने वाला, उत्पत्तिकर्ता।

उत्पादन–सं०पु० [सं० उत्+पद्+णिच्+अनट] उत्पन्न करना, पैदा करना, उपजाना।

उत्पीड़ण, उत्पीड़न–सं०पु० [सं० उत्पीड़न] तकलीफ, पीड़ा।

उत्प्रेक्षा–सं०स्त्री० [सं० उत्+प्र+ईक्ष+आ] १ उद्भावना. २ अनुमान. ३ आरोप. ४ उपेक्षा, सादृश्य. ५ साहित्य के अर्थालंकार का एक भेद विशेष जिसमें उपमान से भिन्न जानते हुए भी प्रतिभा बल से उपमय में उपमान की संभावना की जाय।

उत्प्रेक्षोपमा–सं०स्त्री० [सं०] उपमा का भेद एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक वस्तु के गुण का बहुतों में पाया जाना कहा जाता है।

उत्यम उजास–सं०पु०—दीपक (नां.मा.)

उत्यमतर–सं०पु० [सं० अति+उत्तम+तरु] चंदन (नां.मा.)

उत्रा–सं०स्त्री०—१ देखो 'उत्तरा'। उ०—रचै हथणापुर पंडवराज जळंतो उत्रा ग्रब्भ मझार।— ह.र. २ सत्ताइस नक्षत्रों के अंतर्गत एक नक्षत्र (नां.मा.)

उत्राग्रभ–सं०पु० [सं० उत्तरा+गर्भ] उत्तरा का पुत्र परीक्षित (ह.र.)

उत्राधी–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (अश्वचिंतामणि)

उत्सरंग–सं०पु०—उत्सव, उमंग। उ०—इसउ एक स्त्री सत्रुंजय तणउ विचारु महिमा नउ भंडारु मंत्रीस्वर मन मांहि जांणी **उत्सरंग** आंणी।—रा.सा.सं.

उत्सरग–सं०पु० [सं०उत्सर्ग] १ त्याग, छोड़ना. २ दान. ३ न्योछावर. ४ समाप्ति।

उत्सरजन–सं०पु० [सं० उत्सर्जन] १ त्याग, छोड़ना. २ दान. ३ वैदिक कर्म विशेष जो एक बार पौष में और एक बार श्रावण में होता है।

उत्सरपिणी–सं०स्त्री० [सं० उत्सर्पिणी] काल की वह गति या अवस्था जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श इन चारों की क्रम से वृद्धि होती है (जैन)।

उत्सव–सं०पु० [सं०] १ उछाह, मंगल कार्य, धूमधाम, प्रमोद विधान, मंगल समय. २ त्यौहार, पर्व. ३ यज्ञ, पूजा. ४ आनन्द, आनंद-प्रकाश. ५ जलसा। उ०—नव महिना पूरा हुवा, कुंवर जायौ, बधाई बंटी, गुळ बांटियौ, नारेळ बांटिया, बड़ा **उत्सव** हुआ।
—पलक दरियाव री बात

उत्सादन–सं०पु०—उबटन लगाना और हाथ-पैर-सिर आदि दबाने का कार्य। यह चौसठ कलाओं के अंतर्गत एक कला मानी जाती है।

उत्साह–सं०पु० [सं०] १ उमंग, जोश. २ साहस की उमंग, हिम्मत, वीर रस का स्थायी भाव।

उत्साही–वि०—उत्साहयुक्त, हौसले वाला, उमंगी, साहसी।

उत्सुक–वि० [सं०] उत्कंठित, अत्यन्त इच्छुक।

उत्सुकता–सं०स्त्री० [सं०] १ आकुलता, इच्छा, उत्कंठा. २ इष्ट बात की प्राप्ति में विलम्ब न सह कर तत्प्राप्ति के लिए सद्य तत्पर होना। ३ एक प्रकार का संचारी भाव।

उथ, उथक–क्रि०वि०—वहां। उ०—राजा भोज अगर री वास सूं उथ आयो।—चौबोली

उथकणौ–क्रि०अ०—कूदना, छलांग भरना। उ०—**उथक** हणमंत बहसिया आपा दिखळाया।—केसोदास गाडण

उथड़कणौ, उथड़कबौ–क्रि०अ०—१ गिरना पड़ना। उ०—**उथड़क** उरक धड़क हिला।—गो.रू.

क्रि०स०—२ गिराना, पटकना।

उथड़णौ, उथड़बौ–क्रि०अ०—गिरना। उ०—खगहत्त खड़त्त सजोस खिजै। **उथड़त** पड़त्त सधीर अजै।—पा.प्र.

उथड़णहार, हारौ (हारी), उथड़णियौ–वि०—गिरने वाला।

उथड़िओड़ौ,उथड़ियोड़ौ उथड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उथड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—गिरा हुआ। (स्त्री० उथड़ियोड़ी)

उथप–सं०पु०—देखो 'उत्थाप'।

उथपणौ, उथपबौ–क्रि०स० [सं० उथापन] देखो 'ऊथपणौ'।

उ०—मुगताहळ गजगांम समपै, थांन थांन पातां सिर थपै। यळ असहां गढ़ थांन **उथपै**, जग कव दवा जपै जस जपै।

—क.कु.बो.

उथपणहार, हारौ (हारी), उथपणियौ–वि०—मिटाने या नष्ट करने वाला, उखाड़ने वाला।

उथपिओड़ौ उथपियोड़ौ, उथप्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उथपथणौ, उथपथबौ–क्रि०स०—१ स्थापना करना २ उन्मूलन करना।

उथपियोड़ौ–वि०—मिटाया या नष्ट किया हुआ २ उखाड़ा हुआ। (स्त्री० उथपियोड़ी)

उथप्पणौ उथप्पबौ–क्रि०स०—देखो 'उथपणौ'।

उथप्पियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'ऊथपियोड़ो'। (स्त्री० उथप्पियोड़ी)

उथल–सं०स्त्री०—१ चाल, गति. २ मस्तिष्क में उपज की शक्ति।

उथलणौ, उथलबौ–क्रि०अ०—१ डगमगाना, डांवाडोल होना, चलायमान होना. २ उलट-पुलट होना. ३ पानी का उथला या कम होना। क्रि०स०—४ तले ऊपर करना, औंधाना, उलट देना, नीचे-ऊपर करना, इधर-उधर करना. ५ गिराना, मारना (रू.भे. 'ऊथल्लणौ')

उथलणहार, हारौ (हारी), उथलणियौ—वि०।

उथलिओड़ौ, उथलियोड़ौ, उथल्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उथलपथल, उथलपथल्ल, उथलपुथल, उथलपूथल–सं०स्त्री०—उलट-पुलट, उलट-फेर, क्रम भंग, इधर का उधर, हलचल।

वि०—उलटा-पुलटा, अंड-बंड। उ०—१ तीस बरस कुसती करी, पड़ गुड़ **उथलपथल्ल**।—ऊ.का.

उ०—२ वसुधा सिर घोर कळू वरतांणी, प्रथमी **उथलपुथल** पुड़ै।

—जवांनजी आढ़ौ

उथलियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ डगमगाया हुआ. २ उलट-पुलट हुआ. ३ नीचे-ऊपर या इधर-उधर हुआ. ४ गिरा हुआ, मारा हुआ। (स्त्री० उथलियोड़ी)

उथलौ–वि० [सं० उत्+स्थल] कम गहरा, छिछला।

मुहा०—उथलौ करणौ—खुलासा करना।

सं०पु०—१ उल्टा गिराने का भाव. २ मादा पशुओं में नर-संगम से गर्भ न रहने पर पुन: होने वाली उत्कट मैथुनेच्छा।

क्रि०प्र०—करणौ, खाणौ, देणौ।

उथल्ल–सं०स्त्री०—१ गिराने का भाव। उ०—खळां **उथल्लां** खगां बणै बगतर बरघल्लां।—ऊ.का. २ प्रत्युत्पन्न बुद्धि. ३ बल,शक्ति।

उथल्लणौ, उथल्लबौ–क्रि.अ.स.—१ देखो 'उथलणौ' २ गिराना, मारना. उ०—आहाड़ देस सगळउ **उथल्लि**, मेरा नइ चावा मारि मल्लि।

—रा.ज.सी.

उथापण–वि०—उन्मूलन करने वाला। उ०—प्रथम पाखरिया विना रहणौ नहीं। दूजो सबळां **उथापण**, तीजो निबळां थापण।

—रा.सा.सं.

उथांमणौ, उथांमबौ–क्रि०स०—१ उँडेलना. २ उखेलना, उन्मूलन करना। उ०—सोबोजी खोळौ **उथांमण** नै फौज ले आया।

—बां.दा.ख्या.

उथांमणहार, हारौ (हारी), उथांमणियौ–वि०—उँडेलने या उन्मूलन करने वाला।

उथांमिओड़ौ, उथांमियोड़ौ, उथांम्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उथांमियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उँडेला हुआ. २ उन्मूलित। (स्त्री० उथांमियोड़ी)

उथाप–सं०पु०—उन्मूलन, नाश। उ०—दुथणी जायौ कुण दिय, ऊभां पगां **उथाप**। तूं हिज आरंभै जिती, पार करै परताप।

—जैतदांन बारहठ

उथापण–वि०—स्थापित करने वाला। उ०—सबळ रायथांन **उथापण**, निरजोर राय सहाय करि थापण।—रा.रू.

उथापणौ, उथापबौ–क्रि.अ.स.—१ उन्मूलन करना, उलटना, मिटाना। उ० मन चिंता ढोला वसी, सांभळ ए कुवचन्न। हिव आयौ पाछौ वळै, इणै **उथाप्यौ** मन्न।—ढो.मा.

२ जब्त करना, छीनना। उ०—अै दस गांव दियोड़ा चारणां नूं मोटै राजा **उथापिया**।—बां.दा.

उथापणहार, हारौ (हारी), उथापणियौ–वि०—मिटाने या उन्मूलन करने वाला।

उथापिओड़ौ, उथापियोड़ौ, उथाप्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उथापना–सं०स्त्री०—नवरात्रि में अष्टमी का दिन।

उथापिथाप–वि०यौ०—स्थापित करने वाला व मिटाने वाला।

उ०—व्होरी एक स्योगढ़ में कुसाळीरांम हांतौ। जैपुर कौ **उथापिथाप** पूगौ धांम सौ तौ।—शि.वं.

उथापियोड़ो–भू०का०कृ०—मिटाया हुआ, उन्मूलित। (स्त्री० उथापिग्रोड़ी)

उथावो–वि०—उलटने वाला।

उथाल–सं०पु०—उन्मूलन, नाश।

उथालणो, उथालबो–क्रि०स०—देखो–'ऊथालगो'।

उथालणहार, हारो (हारी), उथालणियो–वि०—उथल-पुथल करने वाला।

उथालिग्रोड़ो, उथालियोड़ो, उथाल्योड़ो—भू०का०कृ०।

उथालियोड़ो–भू०का०कृ०—उलटा हुआ, उलट-पुलट किया हुआ, उखाड़ा हुआ। (स्त्री० उथालियोड़ी)

उथालो–वि०—१ उन्मूलन करने वाला।

सं०पु०—गर्भ गिराना (पशु)

उथि, उथियें–क्रि०वि०—वहां। उ०—हट्टम पट्टम वागीयउ, उथि न जंप्पउ जाइ। मारू सदा मुवास छइ, अंगह तगइ सुभाइ।—ढो.मा.

उथेड़णो, उथेड़बो–क्रि०स०—गिराना, मारना। उ०—सांकरसी चडियउ लोह सज्जि, काबिली उथेड़ण जट्टत कज्जि।—रा.ज.सी.

उथेल–वि०—उन्मूलन करने वाला।

सं०स्त्री०—देखो 'उथल'।

उथेलणो, उथेलबो–क्रि०स०—देखो 'उथालगो'। उ०—बोल्यो मूभ ऊभां ग्रांणि परदा कू उथेलै। धरती को भार सेसनाग नहीं झेलै।

—शि.वं.

उथेलियोड़ो–भू०का०कृ०—देखो 'उथालियोड़ो'। (स्त्री० उथेलियोड़ी)

उथेलो–सं०पु०—१ उलटने की क्रिया. २ गिराना. ३ पुनः स्मरण करना या चर्चा करना. ४ देखो–'उथलो'।

उथैं–क्रि०वि०—वहां।

उथेलणो—देखो 'उथेलगो'। उ०—उथेलै मातंगां धके दुरंगां उराट।

—क.कु.बो.

उथोपणो, उथोपबो–क्रि०स०—१ छीनना, जब्त करना. २ मिटाना. ३ देखो 'उथापगो'।

उथोपियोड़ो–भू०का०कृ०—१ छीना हुआ, जब्त किया हुआ. २ मिटाया हुआ। (स्त्री० उथोपियोड़ी)

उदंगळ–सं०पु० [फा० दंगल] १ उत्पात, उपद्रव। उ०—सींघासगि समेति पालड़ी का काट दीनां। सारो देस छूटचो जां उदंगळ फेरि कीनां।—शि.व. २ युद्ध. ३ झमेला, टंटा, बखेड़ा।

उ०—निरालिय नीति उदंगळ नांय, मुनी किय मंगळ जंगळ मांय।

—ऊ.का.

उदंड–वि०—१ भयंकर, डरावना. २ प्रचण्ड [सं० उद्दंड] ३ जिसे दंड का भय न हो, अक्खड़, निडर, निर्भीक. ४ उजड्ड, उद्दंड।

उदंडो–वि०—उद्दंड व्यक्तियों को दंड देने वाला। (स्त्री० उदंडा)

उ०—देवी दंडगी देव वैरी उदंडा, देवी वज्जया जया दैतां विखंडा।

—देवि.

उदंत–वि० [सं० अ+दंत] १ जिसके दांत जमे न हों, दांत-रहित. २ (वह ऊँट) जिसके युवावस्था के दांत न आये हों. [सं० उद्दंत] ३ बृहद्दंत, दंतुला, निकला हुआ दांत।

सं०पु०—वृत्तान्त, विवरण (डि.को.) उ०—एक समय सभा में महाभारत री उदंत चालतां बडे भाई प्रतापसिंघ मूंछ रै माथै हाथ दियौ।—वं.भा.

उदंबर–सं०पु०—१ ब्राह्मणों का एक वंश (बां.दा.ख्या.) २ अठारह प्रकार के कुष्ठों में से एक (अमरत)

उदंमर–सं०पु० [सं० उदुम्बर] तांबा (अ.मा.)

उद–सं०पु० [सं० युद्ध] युद्ध, लड़ाई (ह.नां.)

उदइगिरि–सं०पु०—उदयगिरि पर्वत। उ०—उदइगिरि जेम आदीत ओपि, कूंभिनी संमि आरुहिय कोपि।—रा.ज.सी.

उदई–सं०स्त्री०—चींटी के आकार का एक श्वेत कीड़ा जो लकड़ी कागज आदि में लग कर उसे खोखला और नष्ट कर देता है, दीमक।

कहा०—मूंडो लियो उदई री छांगी ज्यूं—उदई लगे कंडे के समान मुंह। कुरूप मुंह के लिये (व्यंग)।

उदकंजळि–सं०स्त्री०—जलांजलि, उदक क्रिया, जलतर्पण की क्रिया।

उ०—कजि उदकंजळि संज कराए, जमण सिनांन कियौ नृप जाए।

—रा.रू.

उदक–सं०पु० [सं०] १ जल, पानी, सलिल (डि.को.) उ०—ज्यां थारै तट जाय, उदर भर पीधौ उदक। मिनख जमारै है मांय, आया नह जगगी उदर।—बां.दा. २ शासन, पुण्य व दान में माफी की प्रदान की गई भूमि (डि.को.) ३ जल-संकल्प लेकर दी गई वस्तु।

उदक-अद्रि–सं०पु०—हिमालय पर्वत (डि.को.)

उदक क्रिया–सं०स्त्री० [सं०] मरे हुए मनुष्य को लक्ष्य करके जल देना, जल-तर्पण की क्रिया, तिलांजलि।

उदकघात–सं०पु०—पुरुषों की बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला।

उदकज–सं०पु० [सं०] १ मोती (अ.मा.) २ कमल।

उदकणो, उदकबो–क्रि०स०—१ किसी के निमित्त त्यागना. २ काम आना. ३ किसी धार्मिक कार्य के हेतु हाथ में जल लेकर संकल्प करना. ४ उछलना, कूदना।

उदकणहार, हारो (हारी), उदकणियो—वि०।

उदकिग्रोड़ो, उदकियोड़ो, उदक्योड़ो—भू०का०कृ०।

उदकधरा–सं०स्त्री०—जल संकल्प के द्वारा दी हुई दान की भूमि।

उदकपरीक्षा–सं०स्त्री०—शपथ देने की एक क्रिया विशेष जिसमें शपथ करने वाले को अपनी सत्यता को प्रमाणित करने के लिए पानी में डूबना पड़ता था, अब केवल गंगा जैसी पवित्र नदियों के जल को हाथ में ही लेना पड़ता है।

उदकवाद्य–सं०पु०—चौसठ कलाओं के अन्तर्गत एक कला।

उदकांणी–सं०स्त्री०—उदक (जल संकल्प) के द्वारा दी गई भूमि।

उदकियोड़ो–भू०का०कृ०—१ जल-संकल्प द्वारा दिया हुआ.

२ विचार दृढ़ किया हुआ। (स्त्री० उदकियोड़ी)

उदकी–सं०पु०—जल संकल्प द्वारा दान में दी गई भूमि या वस्तु को ग्रहण करने वाला। उ०—आंबादांन गांवां में किसांणां नै बसाया। **उदकी** भी यनांमी देसवासी चैन पाया।—शि.व.

उदक्क, उदक्कि–सं०पु०—जल, पानी। उ०—वाळियउ जोधि सुधरम्म वक्कि, आंजुळी पितर पोखिय **उदक्कि**।—रा.ज.सी.

उदगणौ, उदगबौ–क्रि०स० [सं० उद्गरण] उगलना। उ०—गौ खीर स्रवति रस धरा **उदगि** रति, सर पोहणिए थई सुस्री।—वेलि.

उदगम–सं०पु० [सं० उद्गम] १ उदय, आविर्भाव. २ उत्पत्ति स्थान. ३ किसी नदी के निकलने का स्थान. ४ पुष्प, सुमन. (अ.मा., ह.नां.)

उदगमन–सं०पु० [सं०] ऊपर जाना, ऊर्ध्वगमन।

उदगरगळ–सं०पु० [सं० उदर्गल] किसी स्थान पर कितने हाथ की दूरी पर जल है यह जानने की विद्या।

उदगरणौ,उदगरबौ–क्रि०स०—१ देने के लिए विचारना. २ संकल्प द्वारा छोड़ना।

उदगरणहार, हारौ (हारी), उदगरणियौ—वि०।

उदगर्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उदगाता–सं०पु० [सं० उद्गाता] यज्ञ के चार प्रधान ऋत्विजों में से एक जो सामवेद के मन्त्रों का गान करता है, सामवेदज्ञ।

उदगाथा–सं०स्त्री० [सं० उद्गाथा] आर्या छन्द का एक भेद जिसके विषम पदों में तो १२ और सम पदों में १८ मात्रायें होती हैं तथा विषम गणों में जगण नहीं रहता।

उदगार–सं०पु० [सं०] १ मन में काफी समय से रक्खी हुई बात को एकबारगी निकालना, मन की बातों को प्रकट करना. २ उबाल उफान. ३ वमन, कै. ४ डकार. ५ थूक. ६ बाढ़, आधिक्य।

उदगारणौ, उदगारबौ–क्रि०स०—१ बाहर निकालना, बाहर फेंकना. २ उभाड़ना, उत्तेजित करना, भड़काना. ३ डकार लेना. ४ कै करना।

उदगारणहार, हारौ (हारी), उदगारणियौ—वि०।

उदगारी–सं०पु० [सं० उद्गारिन्] वृहस्पति के बाहरवें युग का द्वितीय वर्ष (ज्योतिष)

उदगीत, उदगीति–सं०स्त्री० [सं० उद्गीत] आर्या छंद का एक भेद जिसके विषम पद में १२, दूसरे में १५, तथा चौथे में १८ मात्रायें होती हैं।

वि० [सं०] उच्च स्वर से गाया हुआ।

उदगीरणौ–क्रि०स०—उगलना। उ०—गौ खीर स्रवति रस धरा **उदगीरति**।—वेलि.

उदग्ग उदग्गनि, उदग्गिनि–वि०—१ ऊँचा, उन्नत। उ०—दुहुं ओर **उदग्गनि** खग्ग किये, दुहुं ओर तुरंगन वग्ग लिये।—ला.रा.

२ नंगी (तलवार) उ०—**उदग्ग** खग्ग मग्ग में विलग्ग अग्ग की गहे।—ऊ.का. ३ उग्र, प्रचंड।

उदग्रदंती–सं०पु०—लंबे दांतों वाला हाथी (डिं.को.)

उदघटणौ, उदघटबौ–क्रि०अ०—१ प्रकट होना. २ उदय होना. ३ निकलना।

उदघटियोड़ौ–भू०का०कृ०—प्रगट हुआ, उद्घटित हुआ। (स्त्री० उदघटियोड़ी)

उदघाटक–वि० [सं० उद्घाटक] १ प्रकाशक. २ खोलने वाला. ३ प्रकट करने वाला. ४ उदघाटन करने वाला।

उदघाटणौ, उदघाटबौ–क्रि०स०—प्रकट करना, प्रकाशित करना, खोलना।

उदघाटणहार, हारौ (हारी), उदघाटणियौ–वि०—प्रकट करने वाला, खोलने वाला।

उदघाटिओड़ौ, उदघाटियोड़ौ, उदघाट्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उदघाटियोड़ौ–भू०का०कृ०—प्रकट किया हुआ, प्रकाशित किया हुआ, खोला हुआ। (स्त्री० उदघाटियोड़ी)

उदघातक–वि० [सं० उद्घातक] १ धक्का मारने वाला, ठोकर लगाने वाला. २ आरम्भ करने वाला।

सं०पु०—नाटक में प्रस्तावना का एक भेद विशेष जिसमें सूत्रधार और नटी आदि की कोई बात सुन कर उसका और अर्थ लगता हुआ कोई पात्र प्रवेश करता है या नेपथ्य से कुछ कहता है।

उदणौ, उदबौ–क्रि०अ०—प्रकट होना, उदय होना। उ०—आणंद सु जु **उदौ**, उहास हास अति राजति ग्द रिखपंति रुख।—वेलि.

उदध, उदद्ध, उदध–सं०पु० [सं० उदधि] १ समुद्र (डिं.को.)

उ०—१ आगे पग राज खळक्क **उदद्ध**, गरज्ज पगां रज मोटा ग्रद्ध।
—ह.र.

उ०—२ अगसत विना **उदध** अवर रिख कमण अहारै।
—बुधजी आमियौ.

२ तालाब, झील (द.दा.)

उदधमत–वि० [सं० उदधि+मति] गम्भीर बुद्धि वाला। उ०—मजल के करे पूंहतौ नगर **उदधमत**, कही कागद समप हुतां मिळ हकीकत।
—रा.रू.

उदधि–सं०पु० [सं०] १ समुद्र, सागर।

उदधि खीर–सं०पु० [सं० उदधि+क्षीर] क्षीर समुद्र। उ०—मथे जवन दळ **उदधिखीर** मित, अचळ हुवौ तिल तिल मर अंचित।
—वं.भा.

उदधिमेखळा–सं०स्त्री० पृथ्वी, भूमि।

उदधिसुत–सं०पु० [सं०] समुद्र से उत्पन्न वस्तु, यथा—चंद्रमा, अमृत, शंख, धन्वंतरि, ऐरावत, कमल, कल्पवृक्ष, धनुष, आदि।

उदधिसुता–सं०स्त्री० [सं०] समुद्र की पुत्री—श्री (लक्ष्मी), रंभा, कामधेनु, मणि, वारुणी, सीप।

उदध्ध, उदध्धी–सं०पु० [सं० उदधि] समुद्र, सागर।

उदनमत, उदनवत–सं०पु० [सं० उदनवत्] समुद्र, उदधि (अ.मा.,ह.नां.)

उदनवांन-सं०पु० [सं० उदन्वान] समुद्र (अ.मा.)

उदनेर-सं०पु०—उदयपुर का एक नाम (रू.भे.)

उदबाह-सं०पु०—विवाह (डि.को.)

उदबुद-वि० [सं० अद्‌भुत] १ विचित्र, अद्‌भुत। उ०—जन हरिदास उदबुद कथा, परम गति गुरगमि लहिए।—ह.पु.वा.
[सं० उद्‌बुद्ध] २ विकसित. ३ प्रबुद्ध, चैतन्य।
सं०स्त्री०—माया-जाल। उ०—मंडणहारै मंड की उदबुद ऊपाई।
—केसोदास गाडण

उदबुधि, उदबुध-सं०स्त्री०—देखो 'उदबुद'। उ०—मन सज्जन तोसूं कहूं, समझि करो बिचार, यह कछु उदबुधि देखिये, दोय कहै करतार।—ह.पु.वा.

उदबेग-सं०पु० [सं० उद्वेग] १ घबराहट, भय. २ क्लेश।

उदभज-सं०पु०—देखो 'उद्भिज'। उ०—उदभज कहिजै रूंख, एही तो प्रजा हुई। सुसिर जु रिति जैंका राज मांहे।—वेलि. टी.

उदभट-वि० [सं० उद्‌भट] १ प्रबल (ह.नां.) २ श्रेष्ठ (ह.नां.) ३ दातार (अ.मा., ह.नां.)

उदभव-सं०पु० [सं० उद्‌भव] १ उत्पत्ति, जन्म, प्रादुर्भाव, पैदाइश (अ.मा., ह.नां.) २ बढ़ती, वृद्धि (ह.नां.)

उदभव-रतन-सं०पु०यौ० [सं० उद्‌भव रत्न] समुद्र, सागर (अ.मा.)

उदभावना-सं०स्त्री० [सं० उद्‌भावना] १ कल्पना, मन की उपज. २ उत्पत्ति. ३ प्रकाश।

उदभास-सं०पु० [सं० उद्भास] १ प्रकाश, दीप्ति, आभा. २ मन में किसी बात का उदय।

उदभिज-सं०पु० [सं० उद्भिज] वृक्ष, लता, गुल्म, वनस्पति आदि जो भूमि को फोड़ कर निकलते हैं, पेड़-पौधे। उ०—प्रज उदभिज सिसिर दुरीस पीड़नौ, ऊतर ऊथापिया असंत। —वेलि.

उदभूत-वि० [सं० उद्‌भूत] उत्पन्न, निकला हुआ।

उदभेद, उदभेदन-सं०पु० [सं० उद्‌भेद] १ फोड़ कर निकलना (पौधों के समान) २ प्रकाशन, प्रकट होना. ३ उद्‌घाटन।

उदभ्रांत-वि० [सं० उद्‌भ्रान्त] १ घूमता हुआ या चक्कर लगाता हुआ. २ भूला या भटका हुआ. ३ चकित, भौचक्का. ४ भ्रांतियुक्त, भ्रमित।

उदम-सं०पु० [सं० उद्दाम] १ वह पशु जिसके पैरों में बंधन नहीं डाला गया हो. २ उद्योग, प्रयास, प्रयत्न। उ०—ऊभळियौ इनीयाव सुजळ इळ ऊपर, एकौ उदम फिरै नह आज। 'उदां' राव निभावौ आचां, जस जोड़ां वाळी हव ज्याज। [सं० उद्यम] ३ उत्साह। उ०—क्रिस्णजी कौ आगम सुणि नगर मांहिं सहु किहीं लोगां नै उदम हुऔ छै।—वेलि. टी. ४ अध्यवसाय. ५ काम-धंधा, रोजगार. ६ मेहनत, परिश्रम।
वि० [सं० उद्दाम] स्वतंत्र, बंधनरहित। उ०—उदम असत गया उलंडे, लाज बंधण पग लागौ नीह।
—रावत रतनसिंह चूंडावत री गीत

उदमणौ, उदमबौ-क्रि०स०—खूब खर्च करना, मौज करना।
उदमणहार, हारौ (हारी), उदमणियौ—वि०।

उदमहर-सं०पु० [सं० उदुंबर] तांबा (ह.नां.)

उदमाद-सं०स्त्री०—१ उन्मत्तता, मस्ती. २ पागलपन, उन्माद. ३ शैतानी, शरारत, बदमाशी. ४ हर्ष, प्रसन्नता, आनंद। उ०—१ ऊपनौ चाव जग्ग जण उवर, मापै कुण उदमाद रौ।
—रा.रू.

उ०—२ जोद्धयां भड़ धूहड़ राव जुवै हर हूर रंभा उदमाद हुवै।
—गो.रू.

५ इच्छा, अभिलाषा। उ०—कव पूछै एम बताओ कोई जावां कर उदमाद जठै। देसड़लै नर रहधा अदेवा, कीरत रा वर गया कठै।
—अज्ञात

६ उमंग, उत्साह। उ०—पळचर उदमाद गयौ अंत पायौ, थांन वडो अहंकार थियौ। वांकौ भड़ 'सांगो' खग वाहौ, ग्रीध धपावण हार गयौ।
—सांगा री गीत

७ कामक्रीड़ा। उ०—सेजड़ल्यां रमतां सजन अर करता उदमाद, वालम कीजौ जी अवस, उण बिळा ने याद।—अज्ञात
[सं० उद्यम] ८ उद्योग, परिश्रम. ९ उमंग, जोश। उ०—बड़ा बोलतौ बोल उदमाद करतौ बिढ़ण। तोलतौ खाग भुज बढ़ण ताया।
१० एक प्रकार का घोड़ा विशेष (शा.हो.) —अज्ञात

उदमादणौ, उदमादबौ-क्रि०स०—व्यर्थ खर्च करना, द्रव्य लुटाना, दान करना।

उदमादियौ, उदमादी-वि०—१ उत्पाती, उपद्रवी. २ उन्मादी, मतवाला। उ०—अमल तूं उदमादिया, सैणां हूंदा सैण। था बिन घड़ी न आवड़ै, फीका लागै नैण।—अज्ञात ३ आमोद-प्रमोद करने वाला।

उदय-सं०पु० [सं०] १ निकलना, प्रगट होना (प्रायः ग्रहादि के लिये) २ वृद्धि, उन्नति, बढ़ती. ३ उद्‌गम स्थान. ४ उदयाचल. ५ उत्पत्ति. ६ प्रकाश. ७ मंगल. ८ उपज।

उदय अचळ-सं०पु० [सं० उदयाचल] उदयगिरी (डि.को.)

उदयकाळ-सं०पु०—प्रभात, प्रातःकाल।

उदयगिरि-सं०पु०यौ० [सं०] पूर्व की ओर एक कल्पित पर्वत जिस पर सूर्य प्रथम उदित होता है।

उदेयणौ, उदयबौ-क्रि०अ०—उदय होना।

उदयनक्षत्र, उदयनखत्र-सं०पु० [सं० उदय नक्षत्र] अगर कोई ग्रह किसी नक्षत्र पर दिखाई पड़े तो वह नक्षत्र उस ग्रह का उदय नक्षत्र कहलाता है।

उदयनयर-सं०पु०—उदयपुर का एक नाम।

उदयपरणी-सं०स्त्री० [सं० उदयपर्णी] उरद के जैसे पत्तों वाली एक जड़ी विशेष जो औषधि के प्रयोग में आती है (अमरत) (रू.भे. उड़दपरणी)

उदयपुर-सं०पु०—राजस्थान का एक प्रसिद्ध नगर।

उदयागिरि–सं०पु०—देखो 'उदयगिरि'। उ०—जग ग्ररध प्रकासति ग्रभ्र जुदै उदयागिरि जांणिक सूर उदै।—रा.रू.

उदयाचळ–सं०पु०—पूर्व की ओर एक कल्पित पर्वत जिस पर सूर्य प्रथम उदित होता है। उ०—भोज तरणइ नउंतइ मिळयौ, जांणे उदयाचळ उगइ छइ भांण।—वी.दे.

उदयातिथि–सं०स्त्री० [सं०] सूर्योदय काल में होने वाली तिथि (इस तिथि में ही स्नान, ध्यान, एवं अध्ययन आदि कार्य होने चाहिएँ।)

उदयावीतइ–सं०पु०—सूर्योदय। उ०—उदयावीतइ जांणी बात, वाचिगदे हम खेली घात।—कां.दे.प्र.

उदयापुर, उदयापुरी–सं०पु०—१ देखो 'उदयपुर'. २ सीसोदिया वंश के राजपूतों का उपटंक या पदवाचक शब्द. ३ उदयपुर का, उदयपुर सम्बन्धी।

उदर–सं०पु० [सं०] १ पेट, जठर (ह.नां.)

कहा०—उदर री खाडी समुंदर सूं ऊंडी है—उदर का गड्ढा समुद्र से भी अधिक गहरा है; उदर को रोजाना भोजन द्वारा भरते हैं फिर भी दूसरे दिन खाली मिलता है। २ किसी वस्तु के मध्य का भाग, मध्य, पेटा. ३ गर्भ।

उदरक–सं०पु० [सं० उदर्क] १ भविष्यकाल. २ भविष्य-परिणाम। उ०—ग्रर जळ जीमण ग्राखेट ग्रादि बिहार क्रीड़ा में सांमिळ रहि स्नेह रा उदरक रा ग्रनेक ग्रमोघफळ चाखिया।—वं.भा.

उदरग्नि–सं०स्त्री० [सं०] आग, अग्नि (नां.मा.,ह.नां.)

उदरज्वाळा–सं०स्त्री० [सं०] भूख, जठराग्नि।

उदरणौ, उदरबौ—देखो 'उधरणौ'।

उदरत्रांण–सं०पु० [सं० उदर+त्राण] उदर-रक्षक पेटी, कमर पेटी (डि.को.)

उदराग्नि–सं०स्त्री० [सं०] जठराग्नि, जठरानल।

उदरि, उदरिल, उदरी–सं०पु० [सं० उदर] देखो 'उदर'।

उ०—दस मास उदरि धरि वळे वरस दस जो इहां परिपाळै जिवड़ी।—वेलि.

वि०—बड़े पेट वाला, तांदू (डि.को.)

उदवांत–सं०पु० [सं० उद्वान्त] मद उतरा हुआ हाथी (डि.को.)

उदवेग–सं०पु० [सं० उद्वेग] देखो 'उद्वेग'।

उदस–सं०पु० [सं० उदश्वित] १ दही, दधि (मि० उदस्त)
२ सूखी खांसी।

उदसटियौ–वि०—बुद्धिहीन, मूर्ख।

उदस्त–सं०पु० [सं० उदश्वित] दही (ग्र.मा.)

उदांण–सं०पु०—१ उदावत शाखा के राठौड़. २ उदयपुर नगर।

उदांन–सं०पु० [सं० उदान] १ प्राणवायु का एक भेद विशेष जिसका स्थान कंठ कहा जाता है। इससे डकार और छींक आती है (ग्रमरत) २ सर्प विशेष।

उदांम–वि० [सं० उद्दाम] १ उद्दंड, शैतान। उ०—१ नमो स्रब कारण सारण स्यांम, उबारण गोकळ इंद्र उदांम।—ह.र. २ बंधनरहित। उ०—२ मास उलंघ उलंघे ग्ररबद, ग्रावध बंद उलंघ उदांम।
३ महान। —सादूळ ग्राढ़ौ

सं०पु०—वरुण।

उदात–वि० [सं० उदात्त] १ ऊँचे स्वर से उच्चारण किया हुआ. २ कृपालु, दयालु. ३ दाता, उदार (ह.नां.) ४ श्रेष्ठ (ह.नां.) ५ पवित्र, उज्वल। उ०—नाराजां उदात क्रीत भारामाल नंद। —क.कु.बो.

सं०पु०—१ वेदोच्चारण में स्वर का एक भेद जिसमें तालू आदि के ऊपरी भाग से उच्चारण किया जाता है. २ दान, त्याग. ३ दया।

उदाता–वि० [सं०] १ दाता. २ त्यागी. ३ उदार।

उदात्त–वि०—देखो 'उदात'।

उदाधि–सं०पु० [सं० उदधि] समुद्र, सागर। उ०—विहांगड़े ज उदाध्धयां, सर ज्यउं पंडुरियांह। कालर काझा कमळ ज्यउं, ढळिढळि ढेर थियांह।—ढो.मा.

उदायन–सं०पु० [सं० उद्यान] बाग, बगीचा।

उदार–वि०—१ दाता (ग्र.मा.) २ दानशील. ३ बड़ा, श्रेष्ठ(ह.र.) ४ ऊँचे दिल या हृदय का. ५ सरल, सीधा. ६ अनुकूल।

सं०पु०—१ शिव, महादेव (क.कु.बो.) २ एक काव्यालंकार जिसमें निर्जीव पदार्थों में श्रेष्ठता बतलाई जाती है. ३ प्रथम पांच ह्रस्व फिर एक लघु इस क्रम से २८ वर्ण का छंद विशेष (ल. पिं.)

उदारचरित–वि०—१ ऊँचे दिल वाला. २ उदार चरित्र वाला।

उदारचेता–वि० [सं० उदारचेतस्] १ उदार चित्त वाला. २ उच्च विचार वाला।

उदारता, उदारपण, उदारपणौ–सं०उ०लिं०—१ दानशीलता, फैय्याजी, वदान्यता. २ उच्च विचार. ३ कृपालुता (ह.र.)

उदाळौ–वि०—उन्मूलन करने वाला।

उदावत–सं०पु०—राठौड़ वंश के क्षत्रियों की एक उप शाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

उदावरत, उदावरत्त–सं०पु० [सं० उदावर्त] १ गुदा का एक रोग जिसमें कांच निकल आती है और मल मूत्र रुक जाता है, गुदा-ग्रह, कांच (ग्रमरत) २ एक प्रकार का रंग विशेष का घोड़ा। (शा.हो.)

उदास–वि० [सं०] १ जिसका चित्त किसी वस्तु से हट गया हो, विरक्त. २ झगड़े से अलग, निरपेक्ष, तटस्थ. ३ दुखी, रंजीदा, खिन्न, उदासीन।

उदासत–सं०पु०—तेज (ग्र.मा.)

उदासी–सं०पु० [सं० उदास+ई] १ विरक्त अथवा त्यागी पुरुष, संन्यासी. २ नानकशाही साधुओं का एक भेद विशेष. ३ बैरागी, एकांतवासी।

सं०स्त्री०—४ खिन्नता, दुःख। उ०—संकती कहै सुणौ सासूजी, इतरी कांय उदासी। मौ कंथ तणौ भरोसौ मोने, श्रौ कुसळ घर आसी।—अज्ञात

वि०—उदासीन, खिन्न चित्त। उ०—अरुजण हारियौ होय अबळ उदासी। दुरजोधन करसी मोहि दासी।—सिवदांन बारहठ

उदासीन–वि०—१ देखो 'उदास' २ ममतारहित. ३ वासनाशून्य।

उदासीनता–सं०स्त्री० [सं०] १ विरक्ति, त्याग. २ निरपेक्षता. ३ उदासी, खिन्नता।

उदासी बाजा–सं०पु०—एक प्रकार का फूंक कर बजाया जाने वाला बाजा।

उदाहरण–सं०पु० [सं०] १ दृष्टांत, निदर्शन, उपमा, मिसाल. २ तर्क के पांच अवयवों में से तीसरा जिसके साथ साध्य का साधर्म्य या वैधर्म्य होता है. ३ किसी सामान्य बात का उदाहरण से स्पष्टीकरण करने का एक प्रकार का अलंकार विशेष।

उदिचित–सं०स्त्री० [सं० उदश्वित] छाछ, तक्र (ह.नां.)

उदित–वि० [सं० उद्+इ+क्त] १ जो उदय हुआ हो, उद्गत, आविर्भूत, प्रकट, निकला हुआ. २ प्रकाशित, आलोकित।
उ०—अंतर निलंबर अबळ आभरण, अंगि अंगि नग नग उदित।
—वेलि.
३ उज्वल, स्वच्छ. ४ प्रफुल्लित, प्रसन्न. ५ कथित, कहा हुआ।

उदितजोवना–सं०स्त्री० [सं० उदित+यौवना] मुग्धा नायिका का एक भेद जिसमें तीन भाग यौवन और एक भाग लड़कपन हो। आगत-यौवना।

उदियणौ, उदियबौ–क्रि०अ०—उदय होना। उ०—एकरिण जीभ किसा कहूं, मारू-रूप अपार। जे हरि दियइ त पांमियइ, उदियइ इण संसार।—ढो.मा.

उदियांणौ–सं०पु०—देखो 'उदयपुर'।

उदियांन–सं०पु०—विकट एवं ऊबड़-खाबड़ वन। उ०—देखै सूरज रो दरस, हूं छै पवन हिलोळ। औ बाळक उदियांन में, कै कै करै किलोळ।
—पा.प्र.

उदियागिर–सं०पु०—देखो 'उदयगिरि'।

उदियाचळ–सं०पु०—देखो 'उदयाचळ'।

उदियाड़ौ–सं०पु०—बुरा समय, बरबाद होने का समय।

उदियापुर–सं०पु०—देखो 'उदयपुर'।

उदियावणौ–वि० (स्त्री० उदियावणी) भयप्रद, भयानक, भयावना। उ०—डळ चक्र लगै उदियावणौ महासूर भैचगमगौ।—पा.प्र.

उदियास–वि० [सं० उदास] खिन्न, उदासीन।

उदियासी—देखो 'उदासी'।

उदिर–सं०पु० [सं० उदर] पेट, उदर।

उदीच–वि०स्त्री० [सं०उत्+अ] १ उत्तर दिशा का, उत्तर दिशा संबंधी। २ ब्राह्मणों की एक शाखा। उ०—नै पूरब सूं बांभण उदीच वेदिया १००० तेड़ाइ नै गांव ५०० सूं सिद्धपुर दियौ।—नैणसी

उदीचि, उदीची–सं०स्त्री० [सं० उत्+अ] उत्तर दिशा (डि.को.)
उ०—कह्यौ स्वरूप प्राचि कौ प्रतीचि पंथ तू परयौ। अवाचि जांन आदरयौ उदीचि कौ अनादरयौ।—ऊ.का.

उदीपण, उदीपन–सं०पु०—देखो 'उद्दीपन'। उ०—लटालूंब द्रुम बन लता, कुस सटा चहुंकोर। उदीपण भूखण अटा, घटा मोर घणघोर।
—क.कु.बो.

उदीयापुर–सं०पु०—उदयपुर का एक नाम (रू.भे.)

उदीरण–वि०—दातार (अ.मा, ह.नां.)
सं०पु० [सं० उत्+इर्+अनट्] कथन, उच्चारण, कहना, वाक्य (ह.नां.)

उदीस्ट–सं०पु०—१ कोई दिया हुआ. २ छंद मात्रा प्रस्तार के भेद बतलाने की क्रिया विशेष।

उदुंबर–सं०पु० [सं०] १ तांबा (डि.को.) २ गूलर. ३ देहली, ड्योढ़ी. ४ नपुंसक. ५ कुष्ट का एक भेद विशेष (अमरत)

उदूखळ–सं०पु० [सं० उदूखल] ओखली, उखल (डि.को.)

उदूलहुक्मी–सं०स्त्री० [फा०] आज्ञा न मानना, आज्ञोल्लंघन, अवज्ञा।

उदे–सं०पु० [सं० उदय] उदयाचल पर्वत। उ०—पह फाटिय सूर उदे यूं पर यूं। फजरे अर 'पाळ' धरा फरि यूं।—पा.प्र.

उदेई–सं०स्त्री०—देखो 'उदई'।

उदेउदै–सं०पु०—रंग विशेष का घोड़ा (शा.हो.)

उदेक, उदेग–सं०पु० [सं० उद्वेग] उद्वेग, दुःख, चिंता। उ०—मन आमय मोड़ उदेक मिटै। पढ़तां विप तेज कळा प्रगटै।—पा.प्र.

उदेतिलक–सं०पु०—रंग विशेष का घोड़ा (शा.हो.)

उदेतुरंग–सं०पु०—रंग विशेष का घोड़ा (शा.हो.)

उदेदिन, उदेदीन–सं०पु०—एक प्रकार का रंग विशेष का घोड़ा (शा.हो).

उदेनेर, उदेनैर–सं०पु०—देखो 'उदयपुर'।

उदेबाज–सं०पु०—एक प्रकार का विशेष रंग का घोड़ा (शा.हो.)

उदेभांण–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

उदेरूप–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा।

उदेलसकर–सं०पु०—एक प्रकार का रंग विशेष का घोड़ा (शा.हो.)

उदै–सं०पु० [सं० उदय] १ उदय, उत्पत्ति। उ०—इक्खत जिम हिमकर उदै अंबुधि उफणाया।—वं.भा. २ वृद्धि, बढ़ती, उन्नति। ३ प्रकट होना. ४ उद्गम स्थान. ५ प्रकाश. ६ उदयाचल।
सं०स्त्री०—७ पूर्वदिशा। उ०—इसौ कुण अभंग लग उदै आथांण नूं। प्रसण जग आंगमै आज कूपांण नूं।—रामलाल बारहठ
८ भूमि, पृथ्वी (ना.डि.को)

उदैअद्र–सं०पु० [सं० उदय+अद्रि] उदयाचल पर्वत। उ०—उदैअद्र जौ बारमों भांण ऊगै। पबै अस्त सौ पूगियां नीठ पूगै।—मे.म.

उदैनयर, उदैनेर–सं०पु०—देखो 'उदयपुर'।

उदैसिघोत–सं०पु०—भाटी वंश की एक शाखा अथवा इस शाखा का व्यक्ति (बां.दा.ख्या.)

उदैसूर–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

उदोगर–सं०पु० [सं० उदयगिरि] उदयाचल पर्वत ।

उदोत–सं०पु० [सं० उद्योत] १ ज्योति (अ.मा.), प्रकाश ।
उ०—सु अंग अंग कै विखै, सु नग रतन उदोत करै छै ।—वेलि.टी.
२ उन्नति, वृद्धि, बढ़ती. ३ कांति, शोभा ।
वि०—१ प्रकाशित, उदित, प्रकट । उ०—गळ फेरि छुरी जैचंद गोत, अप्पनूं पोत करियै उदोत ।—ऊ.का. २ शुभ्र, उत्तम. ३ दीप्त ।

उदोतकर–वि०—प्रकाश करने वाला, चमकने वाला ।

उदोत-धांम–सं०पु०यौ०—दीपक (अ.मा.)

उदोता–वि० [सं० उद्योत] प्रकाश करने वाला ।

उदोति–सं०पु०—१ प्रकाश, उजाला, चमक, आभा, आलोक ।
उ०—पिया समीप रूपरासि दासि आसि पासियं, भरे प्रकास स्त्री उदोति दीप जोति भासियं ।—रा.रू.
सं०स्त्री०—२ उदय, वृद्धि ।
वि०—१ प्रकाशित. २ उदित, प्रकटित ।

उदौ–सं०पु०—१ भवितव्यता, होनहार, प्रारब्ध. २ उदय ।
उ०—इहां तौ चंद्रमा का उदौ, रुखमणी जी कौ मंद हास्य छै ।
—वेलि. टी.

उद्दंड–वि० [सं०] १ जिसे दण्ड का कुछ भी भय न हो, अक्खड़, निडर, निर्भीक. २ उजड्ड ।

उद्दंत–वि० [सं०] वृहदंत, दंतुला, निकला हुआ दाँत ।

उद्दम–सं०पु० [सं० उद्यम] १ काम-धन्धा, रोजगार । उ०—उत रेल तार उद्दम अपार, गौरव इत विद्या बिन गिंवार ।—ऊ.का.
२ उत्साह. ३ अध्यवसाय. ४ उद्योग, प्रयास, प्रयत्न, मेहनत ।
उ०—हळियां हळ संजोड़िया, गळियौ ग्रीखम गाढ़ । आळमुवां उद्दम कियौ आयौ धुर आसाढ़ ।—पा.प्र.

उद्दमी, उद्दम्मी–वि० [सं० उद्यमी] १ उद्योगी, प्रयत्नशील ।
उ०—पतिगाह पेखियौ 'अभौ' नरनाह अनम्मी, छभा गरब छीजवै सरब दांमै उद्दम्मी ।—रा.रू. २ उद्यम करने वाला ।

उद्दांन–सं०पु०—बंधन (डि.को.)

उद्दांम–वि० [सं०उद्दाम] १ बंधनरहित, स्वतन्त्र. २ निरंकुश (डि.को.) ३ उग्र, प्रबल. ४ उद्दंड. ५ गंभीर. ६ महान. ७ बिना कहा हुआ ।
सं०पुं०—१ वरुण. २ दंडक वृक्ष का एक भेद ।

उद्दालक–सं.पु० [सं०] १ एक प्राचीन आर्य ऋषि । इनका प्रकृत नाम आरुणि है, इनके पुत्र श्वेतकेतु थे. २ एक व्रत विशेष ।

उद्दित–वि० [सं० उदित] १ उदित. २ उद्यत, उद्धत ।

उद्दिम–सं०पु० [सं० उद्यम] १ प्रयत्न, परिश्रम. २ व्यवसाय. ३ पुरुषार्थ, उद्योग । उ०—दुरधर डंका दे बंका द्रढ़ धाया, उठिया उद्योगी उद्दिम उमगाया ।—ऊ.का.

उद्दिस्ट–वि० [सं० उद्दिष्ट] १ दिखलाया हुआ. २ इंगित किया हुआ, लक्ष्य. ३ अभिप्रेत, सम्मत ।
सं०पु०—पिंगल शास्त्र के अनुसार एक क्रिया विशेष जिसके द्वारा यह बतलाया जा सकता है कि कोई दिया हुआ छंद मात्रा प्रस्तार का कौनसा भेद है ।

उद्दीपक–वि० —उत्तेजना देने वाला, उद्दीपन करने वाला ।

उद्दीपन–सं०पु० [सं०] १ उत्तेजित करने की क्रिया या भाव, उभाड़ना, बढ़ाना, जगाना. २ प्रकाशन, उद्दीपन या उत्तेजित करने वाला पदार्थ. ३ रसों को उद्दीप या उत्तेजित करने वाले विभाव (बां.दा.)

उद्दीपित, उद्दीप्त–वि० [सं० उद्दीप्त] उत्तेजित ।

उद्देस–सं०पु० [सं० उद्देश्य] १ अभिलाषा, चाह, मंशा. २ हेतु, कारण. ३ अन्वेषण, अनुसंधान. ४ नाम निर्देशपूर्वक वस्तु-निरूपण । उ०—करता क्रिया जांण और करतब, बिध एही उद्देस विधेय ।—बां.दा. ५ मतलब, प्रयोजन. ६ प्रतिज्ञा (न्याय शास्त्र)

उद्देस्य–सं०पु० [सं० उद्देश्य] १ लक्ष्य, इष्ट, इरादा, मंशा । उ०—साह कहियौ म्हांरा अनामय रौ उद्देस करि आवै तिकां नूं साम्है जाइ हूंही समुभाइ पाछा मोड़ि आऊं ।—वं.भा. २ प्रयोजन, मतलब, तात्पर्य. ३ वह वस्तु जिसके विषय में कुछ कहा जाय, अभिप्रेतार्थ वह वस्तु जिस पर ध्यान रख कर कुछ कहा जाय या किया जाय ।

उद्दोत–सं०पु० [सं०] १ प्रकाश. २ उदय, वृद्धि ।
वि०—प्रकाशित, उदित, प्रकटित ।

उद्ध–क्रि०वि०—ऊपर । उ०—कढ़े हत्थि होदन के उद्ध कच्छी ।—वं.भा

उद्धणौ, उद्धबौ–क्रि०अ०—ऊपर उठना, फैल जाना ।

उद्धत–वि० [सं०] १ उग्र, प्रचण्ड. २ अक्खड़, धृष्ट, उजड्ड, प्रगल्भ, अनम्र । उ०—दलेलखांन तीन ही मुख्य सामंत दे'र आपरौ उद्धत अनीक दियौ ।—वं.भा. ३ निडर. ४ अभिमानी ।
सं०पु०—चालीस मात्रा का एक मात्रिक छंद विशेष जिसमें १०, १०, १०, १० पर यति होती है तथा इसमें गुरु लघु का नियम नहीं होता ।

उद्धतपण, उद्धतपणौ–सं०पु०—उद्दंडता, उद्धतता । उ०—उद्धतपण बीरम उठै, वहियौ हेत बुडोह ।—वं.भा.

उद्धरण–सं०पु० [सं०] १ किसी लेख या पुस्तक में किसी दूसरे लेख या पुस्तक के किसी अंश को ज्यों का त्यों रखना या दोहरा देना, अविकल रूप से नकल करना. २ फँसे हुए को निकालना, आंगा, उद्धार ।
वि०—उद्धार करने वाला । उ०—खत्रियांण मांण महि उद्धरण एक छत्रि आनम कहै । गायत्रि मंत्र गहलोतपुर तिहिं प्रताप सरणै रहै ।—अज्ञात

उद्धरणौ, उद्धरबौ–क्रि०स० [सं० उद्धरण] १ करना । उ०—रीत विविध मनुहार री, अति उद्धरी अथाह ।—रा.रू. २ धारण करना । उ०—उरध अंबर उद्धरण वेद अहमा गावाळण । दळ

दांणव निरदळण, अब्ब रांमण चौगाळण ।—जग्गौ खिड़ियौ

३ उद्धार करना. ४ अलग करना ।

क्रि०अ०—५ उद्धार होना, मुक्त होना । उ०—हरि हरि करि उद्धरे, बड़ो सेवग्ग बभीखण । हरि हरि करि उद्धरे, गजह सांमद धू अज्जण ।—जग्गौ खिड़ियौ

उद्धरणहार, हारौ (हारी), उद्धरणियौ—वि० ।

उद्धरयोड़ौ, उद्धरयोड़ौ, उद्धरयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

उद्धरियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ किया हुआ. २ धारण किया हुआ. ३ अलग किया हुआ. ४ उद्धार किया हुआ, मुक्त । (स्त्री० उद्धरियोड़ी)

उद्धरौ—वि०पु० (स्त्री० उद्धरी) १ उद्धार करने वाला. २ उच्च कोटि का. ३ निशंक ।

उद्धव—सं०पु० [सं०] १ उत्सव. २ यज्ञ की अग्नि. ३ आमोद-प्रमोद. ४ श्रीकृष्णजी के एक मित्र, ऊधो ।

उद्धार—सं०पु० [सं०] १ मुक्ति, छुटकारा, निस्तार. २ बचाव, रक्षण. ३ सुधार, उन्नति, दुरुस्ती. ४ देखो 'उधार' (डिं.को.)

उद्धारक—वि० [सं०] उद्धार करने वाला । उ०—**उद्धारक** आरयावरत वीर अगवांणी । गुर बिरजानंद समीप गयौ ब्रह्मग्यांनी ।—ऊ.का.

उद्धारणौ, उद्धारबौ—क्रि०स० [सं० उद्धार] १ उद्धार करना, छुटकारा देना, मुक्त करना. २ अलग करना. ३ उबारना ।

उद्धारणहार, हारौ (हारी), उद्धारणियौ—वि०—उद्धार करने वाला ।

उद्धारिओड़ौ, उद्धारियोड़ौ—उद्धारयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

उद्धारियोड़ौ—भू०का०कृ०—उद्धार किया हुआ । (स्त्री० उद्धारियोड़ी)

उद्धोर—सं०पु०—एक छंद विशेष जिसमें पहले दो जगण तथा एक लघु और फिर दो जगण व अंत में गुरु लघु होता है ।

उद्‌बंधण—सं०पु०—बंधन, फंदा, जाल । उ०—प्रथ्वीराज रौ मंत्री उणारा उक्त रूप इंद्रजाळ रा **उद्‌बंधण** में न आयौ ।—वं.भा.

उद्‌बोधक—वि० [सं०] १ बोध कराने वाला, चेताने वाला, जगाने वाला. २ प्रकाशित, प्रकट या सूचित करने वाला. ३ उत्तेजित करने वाला ।

उद्भिज—सं०पु० [सं०] देखो 'उदभिज' । उ०—अंडज्ज, स्वेदज्ज जरा **उद्भिज**, माया सब तूझ म भूलब मुज्झ ।—ह.र.

उद्‌भिद—सं०पु० [सं० उत्+भिद्+क्विप] देखो 'उद्‌भिज' ।

सं०स्त्री०—वृक्षादि लगाने की कला ।

उद्‌भेद, उद्‌भेदन—सं०पु० [सं०] देखो 'उदभेद' ।

उद्यत—वि० [सं०] १ तत्पर, प्रस्तुत. २ मुस्तैद, तैयार. ३ उठाया हुआ, ताना हुआ ।

उद्यम—सं०पु०—देखो 'उद्दम' । उ०—जस लाभ धीरज साहस धरण दया ग्यांन **उद्यम** करण । रिणि सूर दांन राजांन रा विधि बत्रीस लखण वरण ।—रा.सा.सं.

उद्यमी—वि०—उद्यम करने वाला, परिश्रम करने वाला ।

उद्यांन—सं०पु० [सं० उद्यान] १ बाग, बगीचा, उपवन. २ निर्जन वन.

उद्यापन—सं०पु०—१ किसी व्रत की समाप्ति पर किया जाने वाला कृत्य जैसे हवन गोदान आदि, समापन क्रिया. २ पल्लीवाल ब्राह्मणों के मृत्यु भोज में किया जाने वाला विष्णु यज्ञ ।

उद्यास—वि०—उदासीन, खिन्न चित्त, दुखी ।

उद्योग—सं०पु० [सं०] १ प्रयत्न, चेष्टा, प्रयास, परिश्रम. २ कामधंधा, रोजगार, अध्यवसाय. ३ उपाय ।

उद्योगी—वि०—१ प्रयत्नशील, परिश्रमी । उ०—दुरधर डंका दे बंका द्रढ़ धाया, उठिया **उद्योगी** उद्दिम उमगाया ।

२ उद्यम करने वाला ।

उद्योत—सं०पु० [सं०] १ प्रकाश, उजाला, चमक, झलक ।

उ०—जगमगत दीपक जोत, अति जोति पंति **उद्योत** ।—रा.रू.

२ सूर्य, भानु । उ०—कमल विकास **उद्योत** दिवाकर ।—क.कु.बो.

उद्योतवंत—वि०—जाज्वल्यमान, चमकयुक्त । उ०—प्रोहित मंत्रवी दीठौ तरै माथौ धूणियौ ज्योतिधारी कळाधारी **उद्योतवंत** दीसै छै ।

—जगदेव पंवार री बात

उद्योति, उद्योत—सं०उ०लिं०—चमक, रोशनी, कांति ।

उद्र—सं०पु० [सं०] १ उदबिलाव [सं० उदर] २ उदर, पेट (डिं.को.)

उ०—पह्लाद परतग्या राख्यां, हरणाकुस तणो उद्र विदारण ।

३ गर्भ । —मीरां

उद्रक—सं०पु० [सं० उद्+रेक् शंकायाम्+घञ्] १ भय, डर (ह.नां.) [सं० उद्+रिच+घञ्] २ आधिक्य (ह.नां.)

उद्रबट—वि०—बहुत, अधिक ।

उद्रा—सं०पु० [सं० उदर] उदर । उ०—कौण ऊंच कौण है सुद्रा, जामें भरे स एकै उद्रा ।—ह.पु.वा.

उद्राव—सं०पु०—भय, आतंक ।

उद्रावणौ—वि०—भयानक, बुरा, शोकसूचक । उ०—विप आय खंड विहंड हुवौ सबद न हतौ सुहावणौ । गूंजुए 'पाळ' लागै जको आज घणौ **उद्रावणौ** ।—पा.प्र.

उद्रिआंमण—वि०—भयंकर, भयानक । उ०—भर सांमण जांमण भादव री । **उद्रिआंमण** दांमण आ धव री ।—पा.प्र.

उद्रियावणौ—वि०—देखो 'उद्रावणौ' । उ०—सज खाग सबैई सासरौ आप हुवौ **उद्रियावणौ** । तोड़ जड़ राव धांधल तणौ पूगौ जायल पांमणौ ।—पा.प्र.

उद्रीधकौ—सं०पु०—वह बंदूक जो छूटने पर चलाने वाले के सीने में टक्कर मारती है । यह बंदूक का एक दोष माना जाता है ।

उद्रेक—सं०पु० [सं०] १ बढ़ती, अधिकता, वृद्धि, ज्यादती. २ उपक्रम. ३ उन्नति, उत्थान. ४ आरंभ ।

उद्वाह—सं०पु० [सं०] विवाह (डिं.को.)

उद्विग्न—वि० [सं०] उद्वेगयुक्त, व्यग्र, व्याकुल ।

उद्विग्नता–सं०स्त्री० [सं०] आकुलता, व्यग्रता, घबराहट।

उद्वेग–सं०पु० [सं०] १ मन की आकुलता, घबराहट, मनोवेग, चिंता. २ आवेश, जोश. ३ तीव्र वृत्ति, संचारी भावों में से एक।

उद्वेगी–वि० [सं०] १ उद्विग्न, उत्कंठित. २ भावनायुक्त, जोशीला. घबड़ाया हुआ।

उद्वेगौ–सं०पु० [सं० उद्वेग] देखो 'उद्वेग'। उ०—उर निस्वास प्रमुक्के भग्गौ ज्यास चीत साभ्रंमं। यौं चिंता **उद्वेगौ**, लग्गी अग्ग वंस प्रासांएं।—रा.रू.

उधड़णौ, उधड़बौ–क्रि०अ०—१ सिले हुए का खुलना. २ जमा या लगा न रहना, उखड़ना. ३ उजड़ना।

उधड़णहार, हारौ (हारी), उधड़णियौ—वि०।

उधड़िओड़ौ, उधड़ियोड़ौ, उधड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उधड़ाई–सं०स्त्री०—उधेड़ने की क्रिया या मजदूरी।

उधड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उधड़ा हुआ. २ उखड़ा हुआ. ३ उजड़ा हुआ। (स्त्री० उधड़ियोड़ी)

उधध, उधधपति–सं०पु० [सं० उदधि] उदधि, समुद्र (ह.नां.)

उ०—कुंजरां विभाड़ण झौक चक्रवत करां, रैण वक्र हुतौ विच जेण राह। समर रच पती नागांण हुय रूप सक्र, करै तक्र छांडियौ **उधध** कछवाह।—प्रथीराज सांदू

उधम–सं०पु०—देखो 'ऊधम'।

उधमणौ, उधमबौ–क्रि०स०—देखो 'ऊधमणौ, ऊधमबौ'।

उधमणहार, हारौ (हारी), उधमणियौ—वि०।

उधमिओड़ौ, उधमियोड़ौ, उधम्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उधमौ–वि०—खूब खर्च करने वाला, दातार।

उधर–क्रि०वि०—उस तरफ, दूसरी ओर।

उधरणौ, उधरबौ–क्रि०अ०—१ मुक्त होना, उद्धार होना। उ०—पद परस अहल्या ऊधरी, वण अछर वपु कीरत वरी।—र.रू.

२ उद्धार करना। उ०—सांई हुंदी सिर रजा, चित सांई चरणा। धू धरणा निरखणा, आपा **उधरणा**।—केसोदास गाडण

३ उधड़ना, उखड़ना. ४ निकल जाना. ५ उद्धार पाना।

उधरणहार, हारौ (हारी), उधरणियौ–(स्त्री० उधरणी)—वि०।

उधरिओड़ौ, उधरियोड़ौ, उधरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उधरत–सं०स्त्री०—वह ऋण जिसका हिसाब बहीखातों में नहीं लिखा जाता हो।

उधरती–सं०स्त्री०—उद्धार, मुक्ति, छुटकारा (ढो.मा.)

उधराणौ, उधराबौ–क्रि०अ० [सं० उद्धरण] १ हवा के कारण छितराना. २ तितर-बितर होना, बिखरना. ३ ऊधम मचाना. ४ उन्मत्त होना।

उधराणहार, हारौ (हारी), उधराणियौ—वि०।

उधरायोड़ौ—भू०का०कृ०।

वि०—१ मुक्त, छूटा. २ उखड़ा हुआ।

उधरियोड़ौ–भू०का०कृ०—उद्धार किया हुआ। (स्त्री० उधरियोड़ी)

उधरौ–वि०—देखो 'ऊधरौ'।

उधळणौ, उधळबौ–क्रि०अ० [सं० उद्धलन] देखो 'ऊधळणौ'।

उधसि, उधसी–सं०पु० [सं० ऊधस्यं] दूध (ह.नां)

उधांमणौ, उधांमबौ–क्रि०स०—१ वार करने के निमित्त शस्त्र उठाना. प्रहार करना। उ०—ऊधरै चाचरै सेल **उधांमियौ**, फौज रा थंभ पूठै अफेरा।—पहाड़खां आढ़ौ २ उंडेलना।

उधांमणहार, हारौ (हारी), उधांमणियौ–वि०—प्रहार करने वाला.

उधांमिओड़ौ, उधांमियोड़ौ, उधांम्योड़ौ—भू०का०कृ०।

वि०—उदासीन।

उधाड़–सं०पु०—कुश्ती का एक पेंच विशेष।

उधाड़णौ, उधाड़बौ–क्रि०स०—देखो 'उधेड़णौ'।

उधाड़णहार, हारौ (हारी), उधाड़णियौ–वि०—'उधेड़ने वाला।

उधाड़िओड़ौ, उधाड़ियोड़ौ, उधाड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उधाड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—'उधेड़ियोड़ौ'।

उधात–सं०पु०—अशुद्ध धातु। उ०—बणावै **उधातां** सातां पचावै अनेक विध। ज्यांसू रोग जावै कै ताव धावै सुजांण।—क.कु.बो.

उधार–सं०पु० [सं० उद्धार] १ उद्धार, मुक्ति। उ०—अर पाताळ थे म्हारी **उधार** कीयौ।—वेलि. टी.

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।

२ ऋण, कर्ज।

क्रि०प्र०—करणौ, चूकणौ, देणौ, लेणौ, होणौ।

कहा०—१ उधार घर री हार—उधार देना घर की हार है; उधार देना बुरा है. २ उधार दियौ'र गिरायक (ग्राहक) गमायौ—दिया और ग्राहक गँवाया, क्योंकि तगादे के डर से वह ग्राहक फिर उस दूकान की ओर नहीं जाता. ३ उधार दीजै दुसमण कीजै—उधार दीजिये और दुश्मन कीजिये; उधार लेने वाला बराबर चुका नहीं सकता अतः उससे लड़ाई हो ही जाती है. ५ उधार देवणौ लड़ाई मोल लेवणौ है—देखो 'उधार दीजै दुसमण कीजै'. ६ उधार पुधार घरे सिधार—उधार-पुधार मांगते हैं तो अपने घर जा; उधार नहीं देना चाहिए।

३ किसी की कुछ चीज का दूसरे के यहां केवल कुछ समय के लिए मंगनी के तौर पर व्यवहार में जाना। (रू.भे. उदार)

उधारक–वि० [सं० उद्धारक] उद्धार करने वाला। उ०—**उधारक** धारक लोक असेस, सुधारक तारक सेस विसेस।—ऊ.का.

उधारण–वि०—समुद्र, सागर (डिं.नां.मा.)

वि०—उद्धार करने वाला। उ०—पतित **उधारण** देव परम्म।—ह.र.

उधारणौ–वि० (स्त्री० उधारणी) उद्धार करने वाला। उ०—कारणौ

तीरथां मुर्द भारणी कळंक काट मांनवां उधारणी मुगत दाता माय ।
—गंगाजी रौ गीत

उधारणौ, **उधारबौ**—क्रि०स०—१ उद्धार करना । उ०—देवी तीरथ रै रूप अघ विखम टारै, देवी ईस्वरं रूप अधमं उधारे ।—देवि.

२ पावन करना, पवित्र करना ।

उधारणहार, हारौ (हारी), **उधारणियौ**—वि०—उद्धार करने वाला, पवित्र करने वाला ।

उधारिग्रोड़ौ, उधारियोड़ौ, उधारयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

उधारि—सं०स्त्री०—बाकी, कमी । उ०—एक दुरग उपेत आधी हूं अधिक इळा अपणाह अपराध संग्रह में उधारि न राखी ।—बं.भा.

उधारियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ उद्धार किया हुआ. २ पावन किया हुआ । (स्त्री० उधारियोड़ी)

उधारी—वि०—उद्धार करने वाला ।

सं०स्त्री०—१ उधार दी गई वस्तु. २ देखो 'उधार'.

३ बाकी, कसर (रू.भे. उधारि) ४ सुधार. ५ पीछे ।

उधाळ—वि०—औंधा । उ०—दयाळ क्रपाळ संभाळ करै, जिव भाळ कराळ विचाळ रखै । जठराळ उधाळ खुधाळ मरै, नभ नाभि माळ रसाळ भखै ।—करुणासागर

उधाळणौ, उधाळबौ—क्रि०स०—नाश करना, बरबाद करना, औंधा करना ।

उधाळणहार, हारौ (हारी), **उधाळणियौ**—वि०—नाश या बरबाद करने वाला ।

उधाळिग्रोड़ौ, उधाळियोड़ौ, उधाळयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

उधियार—सं०स्त्री०—देखो 'उधार' (२) उ०—रिड़मल नै हिंदाळ विचै रिण । आवां हथां न की उधियार ।

—राव रिड़मल रौ गीत

उधेड़णौ, **उधेड़बौ**—क्रि०स०—१ चीरना, काटना. २ लगाया हुआ वापस हटाना. ३ छितराना. ४ भंग करना. ५ सिला हुआ वापिस उखालना. ६ पर्त या तह को अलग करना. ७ खाल उतारना । उ०—तांह खाजरूग्रां उधेड़िग्रां रौ कासू एक बखांण बजाज री हाट बास्ते रा थांन रू री बरकी ।—रा.सा.सं ८ खोदना । उ०—आंगणै नीर पाताळ उधेड़िणौ कमठ वाराह चा मांण कळिया ।

—जोगीदास कवारियौ

उधेड़णहार, हारौ (हारी), **उधेड़णियौ**—वि०—उधेड़ने वाला ।

उधेड़ाणौ, उधेड़ाबौ, उधेड़ावणौ, उधेड़ावबौ—प्रे०रू० ।

उधेड़ीजणौ, उधेड़ीजबौ—कर्म वा० ।

उधेड़िग्रोड़ौ, उधेड़ियोड़ौ, उधेड़योड़ौ—भू०का०कृ०—उधेड़ा हुआ । (स्त्री० उधेड़ियोड़ी)

उधेड़बुन—सं०स्त्री०—१ सोच-विचार, ऊहापोह. २ युक्ति बांधना, उलझन को सुलझाना ।

उधेड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—उधेड़ा हुआ । (स्त्री० उधेड़ियोड़ी)

उधेरणौ, उधेरबौ—क्रि०स०—१ देखो 'उधेड़णौ'. २ देखो 'उधारणौ'

उधेरियोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'उधेड़ियोड़ौ' । (स्त्री० उधेरियोड़ी)

उधोर—वि०—उद्धार करने वाला ।

सं०पु०—१ श्रेष्ठ वीर [सं० उद्+धोरेय) उ०—कुळ उधोर प्रताप कहतां, पोढ़ी घणूं घणा ग्रद पाय ।

—महारांणा प्रतापसिंह रौ गीत

२ बारह मात्रा का एक छंद विशेष जिसके अंत में जगण होता है (र.ज.प्र.) । मतांतर से इसमें चौदह मात्रायें भी कही जाती हैं ।

उध्यांन—सं०पु० [सं० उद्यान] १ बाग, बगीचा, उपवन. २ निर्जन वन । उ०—कसमेरी कांनेह, कंथा नवरंगी कियां । एकल उध्यांनेह, 'पाव' विराजै पीपळी ।—पा.प्र.

उनंगणौ, उनंगबौ—क्रि०स०—प्रहार हेतु शस्त्र उठाना । उ०—पक्षपात विन महाप्रतापी निरभय तेग उनंगी ।—ऊ.का.

उनंगौ—वि० (स्त्री० उनंगी) [सं० नग्न] नंगा । उ०—१ अंगी रोस बे बे टूक फिरंगी करंतो आयौ । जंगी कारखांना माथै उनंगी जनेब ।

—किसनजी आढ़ौ

उ०—२ खगां उनंगां पिसण पाड़ि ऊभौ खड़ौ । कहूं इण भांति ढीली सखी कंथड़ौ ।—हा.झा.

उनंद्र—वि० [सं० उन्निद्र] निद्रारहित । उ०—ईख लंका क्षेत्रां त्रेता जुगेतां संग्रांम असौ, उरधरेत केता धू त्रनेता उनंद्र ।

—बदरीदास खिड़ियौ

उनगौ—वि०—देखो 'उनंगौ' ।

उनज—सं०पु० [सं० अनुज] कनिष्ठ, छोटा भाई (ह.नां.)

उनताळिस, उनताळीस—वि० [सं० ऊनचत्वारिंशत्, प्रा० एगूणचत्तालीस, अप० एगुणचालीस] तीस और नौ के योग के समान ।

सं०पु०—तीस और नौ के योग की संख्या ।

उनताळीसमौ—वि०—जो क्रम में अड़तीस के बाद पड़ता हो ।

उनताळीसौ—सं०पु०—उनचालीसवां वर्ष या साल ।

उनतीनाह—सं०पु० [सं० उन्नतिनाथ] गरुड़, पक्षीराज (डिं.को.)

उनतीस—वि० [सं० ऊनत्रिंशत्, प्रा० अउणत्तीस, अप० उणतीस] बीस और नौ के योग के समान ।

सं०पु०—बीस और नौ के योग की संख्या ।

उनतीसमौ—वि०—जो क्रम में अट्ठाइस के बाद पड़ता हो ।

उनतीसे'क—वि०—उनतीस के लगभग ।

उनतीसौ—सं०पु०—२९ वां वर्ष ।

उनत्थ—वि० [सं० उन्नाथ] बंधनरहित, स्वतंत्र । उ०—नाथिया उनत्थां नत्थां, विरुद्दां वठोठ नाथ । सिंह टोळा साथियां, सबोळा लीधा संग ।

—डूंगजी जवारजी रौ गीत

उनथ—वि०—देखो 'उनत्थ' (ल.पिं.)

उनथनथ—वि०—१ बंधनरहित, स्वतंत्र. २ बिना बंधन वालों को भी बंधन में करने वाला ।

उनमंबा–वि०—श्रेष्ठ, उत्तम। उ०—बोहत करंदा बंदगी, भगर्भ उनमंबा।—केसोदास गाडण [सं० उत्=परमहंस] परमानन्दस्वरूप उ०—संपत विपत न सुख दुख अंतर उनमंबा।—केसोदास गाडण

उनमणौ–वि० [सं० उन्मन] उदास, चिंतित। उ०—थारी साथ सहेल्यां उनमणी, वनखंड की ऐ कोयल, वनखंड छोड कठै चाली।—लो.गी.

उनमणौ, उनमबौ–क्रि०अ०—१ देखो 'ऊनमणौ'। २ उठना. ३ जन्म लेना।

उनमणहार, हारौ (हारी), उनमणियौ—वि०।

उनमिओड़ौ, उनमियोड़ौ, उनम्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उनमत, उनमत्त–वि० [सं० उन्मत्त] १ मतवाला, प्रमत्त, मदान्ध। उ०—मिळि समूह गायनी गमन उनमत्त करीसम। खरी भूप बसिकरन, भ्रांनि सब इन्द्रपरी सम।—ला.रा.

२ पागल (डिं.को.) (स्त्री० उनमत्ती)

उनमद–वि०—देखो 'उन्मत्त'।

उनमन–वि० [सं० उन्मन] १ उदास. २ व्याकुल।

उनमनि, उनमनी–सं०स्त्री० [सं० उन्मनी] हठ योग की पाँच मुद्राओं में से एक।

वि०—शांत। उ०—अवधू पांच तत्व पलटिया, सहज घरि आंणिबा प्रांण पुरुस लेवा पाली अरध अस्थांन मन उनमनि रंहिबा।

—ह.पु.वा.

उनमनौ–वि०—१ उदास. २ व्याकुल. ३ उन्मत्त. ४ अस्थिर। उ०—अगम अथाह थाह नहिं कोई, थाह न कोई पावे रे। जैसा भजन तिसा सब कोई, मन उनमनां बतावे रे।—ऊ.का.

उनमांन–सं०पु० [सं० अनुमान] १ अंदाजा, अटकल। उ०—मोरिया में खेति पड़धा सौ के उनमांन। हिंदू बाईस बीस और मुसलमांन।

—शि.वं.

२ न्याय के चार भेदों में से एक जिससे प्रत्यक्ष साधन के द्वारा अप्रत्यक्ष साध्य का भाव। देखो 'अनुमांन'।

वि०—१ समान, सदृश। उ०—मद विद्या धन मांन, ओछा सौ उकळे अवट। आधण रे उनमांन, रैवे विरळा राजिया।

—किरपारांम

कहा०—१ सांई हाथ कतरणी, राखेला उनमांन—ईश्वर के हाथ में कैंची है वह अनुचित किसी को बढ़ने नहीं देता; ईश्वर कर्मों के अनुसार फल देता है।

क्रि०वि०—अनुकूल, अनुसार। उ०—दे गज गांम कोड हैंवर द्रब, अभपत दत वतवं उनमांन।—हरिदास केसरिया

उनमाद–सं०पु० [सं० उन्माद] १ पागलपन, चित्त-विभ्रम, विक्षिप्तता. [रा०] २ उल्लास, प्रसन्नता. ३ तेतीस संचारी भावों में से एक जिसमें वियोगादि के कारण चित्त ठिकाने नहीं रहता।

उ०—उनमाद अंसुआ ग्लांन अंग।—क.कु.बो.

उनमादक–वि० [सं० उन्मादक] उन्मत्त करने वाला, पागल करने वाला, नशा करने वाला, चित्त-विभ्रम उत्पन्न करने वाला।

सं०पु०—कामदेव के पांच बाणों में से एक। उ०—आकरखण वसीकरण उनमादक परठि द्रविण सोखण सर पंच। चितवणि हसणि लसणि गति संकुचणि, सुंदरी धरि देहुरा संच।

—वेलि.

उनमादपण, उनमादपणौ–सं०पु०—उन्मत्तता, पागलपन (अमरत)

उनमुणौ–वि० (स्त्री० उनमुणी) [सं० उन्मन] १ उदास, चिंतित. २ मौन, चुप।

उनमुनी–सं०स्त्री०—हठयोग की एक मुद्रा।

उनमुनौ–वि० [सं० उन्मन] १ उदास, चिंतित (स्त्री० उनमनी)

उनमूळण–सं०पु०—देखो 'उनमूळन'।

उनमूळणौ, उनमूळबौ–क्रि०स० [सं० उन्मूलन] उखाड़ना, नष्ट करना।

उनमूळणहार, हारौ (हारी), उनमूळणियौ–वि०—उखाड़ने या नष्ट करने वाला।

उनमूळिओड़ौ, उनमूळियोड़ौ, उनमूळ्योड़ौ—भू का०कृ०।

उनमूळन–सं०पु०—उखाड़ने की क्रिया या भाव।

उनमूळियोड़ौ–भू०का०कृ०—उखाड़ा या नष्ट किया हुआ। (स्त्री० उनमूळियोड़ी)

उनसठ–वि० [सं० ऊनषष्टि, प्रा० एगूणसट्ठ, अप० उगुणसट्ठ] पचास और नौ के योग के समान।

सं०पु०—पचास और नौ के योग की संख्या।

उनसठमौ–वि०—जो क्रम में अट्ठावन के बाद पड़ता हो।

उनसठेक–वि०—उनसठ के लगभग।

उनसठौ–सं०पु०—उनसठवां वर्ष।

उनहणौ, उनहबौ–क्रि०अ०—उमड़ना, मेघघटा आना। उ०—आज धराऊ उनह्यौ आयौ घट घण पूर।—ढो.मा.

उनहीओ, उनहीओड़ौ–भू०का०कृ०—उमड़ा हुआ, वर्षा की घनघोर घटायें छाई हुई। उ०—उनहीओ वरसे नहीं, करे बपीहा संतोस। ते सजन अणदीठा भला, मिळते लेत न सोस।—ढो.मा.

उनांम–सं०पु०—वह खेत जहां वर्षा के जल द्वारा गेहूं या चना उत्पन्न होते हों।

उनाग–वि०—देखो 'उनंगौ'। (स्त्री० उनागी)

उ०—नाराजां उनागी खाल नभागी तराळ तेजां। राठौड़ां गनीमां बागी नराताळ रीठ।—हुकमीचंद खिड़ियौ

उनारण–सं०पु०—उष्ण पदार्थ।

उनाळ–सं०पु० [सं० उष्ण काल] १ उष्ण काल. २ अग्नि, आग।

उ०—१ पलीता उनाळ का सा लाय की लपटां।—क.कु.बो.

२ भुके किरमाळ उनाळ री झाळ।—क.कु.बो.

उनाळी, उनाळ–सं०उ०लिं०—१ रबी की फसल. २ वह वायु जो दक्षिण और पश्चिम के बीच में चलती है।

(मि० संमदरी, नैरतियौ) (समानार्थ—नागोरण—शेखावाटी)

वि०—ग्रीष्म ऋतु की, ग्रीष्म ऋतु सम्बन्धी।

उनाळू साख–सं०स्त्री०—१ रबी की फसल. २ रबी की फसल पर सरकार द्वारा प्रजा से लिया जाने वाला लगान विशेष।

उनाळौ–सं०पु० [सं० उष्णकाल] ग्रीष्म ऋतु।

उनि–सर्व —उन। उ०—तब एक कों पूछियौ—जु हों कौण ठौर छौ। तब उनि कह्यौ—जु देवता या स्त्री द्वारिकाजी छै।—वेलि. टी.

उनींदौ–वि० [सं० उनिद्र] नींद से भरा हुआ, ऊँघता हुआ।

उन्नत–वि० [सं० उत्+नम्+क्त] १ ऊँचा, उत्तुंग, ऊपर उठा हुआ (डिं.को.) उ०—अति उन्नत प्राकार भरत सामांन भ्रांत भ्रत।—ला.रा. २ श्रेष्ठ, उच्च।

उन्नतांस–सं०पु० [सं० उन्नतांश] चंद्रमा का वह छोर जो दूसरे से ऊँचा हो (फलित ज्योतिष)

उन्नता, उन्नति–सं०स्त्री० [सं० उन्नति] १ बढ़ती, तरक्की, वृद्धि। उ०—ईस ग्रसपति किसी उन्नति करै अवगति जिकूं सिर कति।
—रा.रू.

२ ऊँचाई, बढ़ाव. ३ समृद्धि।

उन्नतोदर–सं०पु० [सं०] १ चाप या वृत्त के खंड का ऊपर का तल, ऊपर को उठा हुआ. २ गणेश।

उन्नमित–वि०—उत्तोलित, ऊपर उठा हुआ, ऊर्ध्वकृत।

उन्नयन–सं०पु० [सं०] ऊर्ध्वप्रयाण, उत्तोलन, ऊपर ले जाना।

उन्नाब–सं०पु० [ग्र०] हकीमी दवाग्रों में डाला जाने वाला एक प्रकार का बेर।

उन्नाबी–वि० [ग्र० उन्नाब] उन्नाब के रंग का, कालापन लिए हुए लाल।

उन्नायक–वि०—ऊंचा करने वाला, उन्नत करने वाला।

उन्नाळौ–सं०पु० [सं० उष्णकाल] ग्रीष्म ऋतु (रू.भे. देखो 'उनाळौ')

उन्नासियौ–सं०पु०—उन्नासी का वर्ष।

उन्नासी–वि० [सं० ऊनाशीति, प्रा० एगूणासीइ, ग्रप० उगुणासी] सत्तर ग्रौर नौ के योग के समान।

सं०पु०—सत्तर ग्रौर नौ के योग की संख्या।

उन्नासी'क–वि०—उन्नासी के लगभग।

उन्नासीमौ–वि०—जो क्रम में ग्रठहत्तर के बाद पड़ता हो।

उन्नीसौ–सं०पु०—१६०० की संख्या, १६ वां वर्ष।

उन्मता–सं०स्त्री० [सं० उन्मत्तता] उन्मत्त होने का भाव, पागलपन, मतवालापन।

उन्मत्त–वि० [सं०] देखो 'उनमत्त' (रू.भे.)

उन्मथ–सं०पु० [सं० उन्मंथ] कर्णलुंच का एक रोग (ग्रमरत)

उन्मद–वि०—देखो 'उनमत्त' (रू.भे.)

उन्मनी–सं०स्त्री०—देखो 'उनमनी' (रू.भे.)

उन्मनौ–वि०—देखो 'उनमनौ' (रू.भे.)

उन्मांन–सं०पु०—देखो 'उनमांन' (रू.भे.)

उन्माद–सं०पु० [सं०] देखो 'उनमाद' (रू.भे.)

उन्मादक, उन्मादन–वि०—देखो 'उनमादक' (रू.भे.)

सं०पु०—कामदेव के पांच बाणों में से एक (वं.भा.)

उन्मादी–वि० [सं० उन्मादिन्] उन्मत्त, पागल, बावला।

उन्मीलित–वि० [सं०] खुला हुआ, प्रस्फुटित।

सं०पु०—एक प्रकार का ग्रर्थालंकार जहां दो पदार्थों के गुण (धर्म) समान हों ग्रौर एक का गुण दूसरे में विलीन होने पर भी किसी कारण से भेद की स्फुरणा हो जाय, वहां यह ग्रलंकार होता है।

उन्मेस–सं०पु० [सं० उन्मेष] १ विकास, खिलना. १ थोड़ा प्रकाश. ३ ज्ञान, बुद्धि. ४ पलक।

उन्याळौ–सं०पु० [सं० उष्णकाल] ग्रीष्म ऋतु, गर्मी का मौसम (क्षेत्रीय) (मि० उनाळौ)

उन्हउ–वि० [सं० उष्ण] उष्ण, गर्म। उ०—कपि जेम सुदिढ़ पह तीख कन्न वाजिन्न जेम उन्हउ वहन्न।—रा.ज.सी.

उन्हाळागम–सं०पु०—देखो 'उन्हाळ'।

उन्हाया–सं०स्त्री०—उष्णता, गर्मी। उ०—सूरज घांम संजोया जिम ग्रगनि उन्हाया।—केसोदास गाडण

उन्हाळ, उन्हाळउ, उन्हाळसी–सं०पु० [सं० उष्णकाल] गर्मी की मौसम, ग्रीष्म ऋतु। उ०—१ नैरत दिसा रौ ऊनौ पवन वाजियौ छै, उन्हाळसी प्रगटियौ छै। जेठ मास लागौ छै।—रा.सा.सं.

उ०—२ महापित्रनउ ग्रालउ, ग्राव्यौ उन्हाळउ। लूय वाजइ कांन पापड़ि दाझइ।—रा.सा.स.

उन्हाळ, उन्हाळौ–सं०पु० [सं० उष्णकाल] उष्णकाल, ग्रीष्म ऋतु, गर्मी की मौसम। उ०—कहि दिखावै किणि भांति। ग्रागबां ग्रातस झाळ। उन्हाळा प्रळै काळ।—वचनिका

उन्हू, उन्हौ–वि० [सं० उष्ण] (स्त्री० उन्ही) उष्ण, गर्म (डिं.को.)

उपंखी—पक्षी

उपंग–सं०पु०—१ एक प्रकार का बाजा (मि० उपंगी) २ उद्धव के पिता का नाम।

उपंगी–सं०पु०—१ नसतरंग बजाने वाला। उ०—कळहंस जांणगर मोर निरत कर, पवन ताळधर ताळपत्र। ग्रारि तंतिसर भमर उपंगी, तीवट उघट चकोर तत्र।—वेलि.

२ संगीत में एक प्रकार का तार वाद्य, इस वाद्य के नीचे तूंबे पर चमड़ा मंढ़ा होता है ग्रौर चमड़े में से एक तार डांड पर ग्राता है, डांड की खूंटी ढीली होती है जिसे मुट्ठी में पकड़ा जाता है ग्रौर तार को कसा या ढीला किया जाता है। दूसरे हाथ से तार पर ग्राघात करते हैं। इसमें स्वर ग्रौर ताल दोनों का काम होता है। (रू.भे. ग्रपंग, उपंग)

उप–उप०—शब्दों के पूर्व ग्राकर उनमें ग्रर्थान्तर या विशेषता कर देता है।

क्रि०वि०—निकट, समीप (ग्र.मा.)

उ०—सीता मुणे हरि मौ संग ग्रहदिस ग्रनुसरे, रीता ग्राय उप ग्राहराव सगळा कथ र रे।—र.ज.

उपकंठ, उपकंठइ–सं०पु०—किनारा, तट। उ०—संवत् १६६४ जेठ सुद ३ रवि रांम कह्यौ आगरै हवेली जमना रै उपकंठ।
—बां.दा.ख्या.

क्रि०वि०—निकट, समीप। उ०—आपरा बापलां रा जीवण रा जतन कराइ दक्खिण रा सहाय सहित दोही साहजादां अवंती रै उपकंठ केही मुकांम किया।—वं.भा.

उपकरण–सं०पु० [सं०] १ सामग्री, औजार. २ राज्य-सामग्री। उ०—समुद्रसेण रौ भेजियौ समस्त दंड रौ उपकरण वडाहरा दुक्ख रा जणावणहार उण ही बोध करनूं दीधौ।—वं.भा.

३ अप्रधान द्रव्य या वस्तु. ४ सोधक वस्तु. ५ राजाओं के छत्र आदि राज-चिन्ह. ६ परिच्छेद. ७ भोजन में चटनी आदि बाहरी पदार्थ. ८ पुष्प, धूप, दीप आदि पूजन की सामग्री।

उपकरता–सं०पु० [सं० उपकर्ता] उपकारक, उपकार करने वाला।

उपकार–सं०पु० [सं० उप+कृ+घञ्] १ भलाई, हित, नेकी. २ सलूक. ३ लाभ, फायदा।

उपकारक–वि० [सं०] उपकार करने वाला, उपकारी, हितकारक।

उपकारड़ो–सं०पु०—देखो 'उपकार' (अल्पा०)

उपकारिका–वि०—उपकार करने वाली।

सं०स्त्री०—राजभवन, तम्बू।

उपकारिता–सं०स्त्री० [सं०] भलाई, हित, नेकी।

उपकारी–वि० [सं० उपकारिन्] उपकार करने वाला, हितकारक। (रू.भे. उपकारू)

क्रि०वि०—लिये, वास्ते। उ०—धड़ चील्हां ग्रीधण्यां, कमळशंकर उपकारू।—मे.म.

उपकूपक–सं०पु०—वापिका (डि.को.) बावड़ी, सीढ़ियोंदार कुआ।

उपकृत–वि० [सं० उपकृत] जिसके साथ उपकार किया गया हो, कृतोपकार, कृतज्ञ। उ०—लग्यौ खादी उपकृत प्रमादी नहीं लख्यौ।
—ऊ.का.

उपक्रम–सं०पु० [सं०] १ कार्यारम्भ के पहले का आयोजन या अवस्था, आरम्भ (डि.को.) २ अनुष्ठान, उठान, तैयारी, भूमिका।

उपक्रमणिका–सं०स्त्री०—किसी पुस्तक या ग्रंथ की विषय-सूची।

उपक्रमणौ, उपक्रमबौ–क्रि०अ० [सं० उप+क्रम] उछलना, कूदना, छलांग मारना।

उपखांन–सं०पु० [सं० उपाख्यान] उपाख्यान, कथा।

उपखीण–सं०पु० [सं० उपक्षीण] शोकसूचक वस्त्र। उ०—पीव लगौ परदेसड़े घण ती धवळ हरेह, प्री उपखीणा पहरिया की कीजे ग्रहणेह।—ढो.मा.

उपगत–वि०—१ प्राप्त. २ स्वीकृत. ३ अंगीकृत. ४ ज्ञात, जाना हुआ.

उपगरणौ, उपगरबौ–क्रि०स०—१ ग्रहण करना, पकड़ना, लेना।

उ०—उमंग न अमंगळ मंगळ आठे, ईस न उतवंग उपगरियौ।
'सांमा' तणौ सरीर सिगळड़ौ आवधधारां ऊतरियौ।

२ उपकार करना। —ईसरदास बारहठ

उपगरणहार, हारौ (हारी), उपगरणियौ–वि०—ग्रहण करने वाला।

उपगरिओड़ौ, उपगरियोड़ौ, उपगर्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उपगरियोड़ौ–भू०का०कृ०—ग्रहण किया हुआ, पकड़ा हुआ। (स्त्री० उपगरियोड़ी)

उपगार–सं०पु० [सं० उपकार] १ मेहरबानी, सहायता, अनुग्रह (ह.नां.) २ देखो 'उपकार'।

उपगारी–वि० [सं० उपकार+ई] देखो 'उपकारी'। उ०—उपगारी दिल उजळै जगही कूं चलै।—केसोदास गाडण

उपगीत, उपगीति–सं०स्त्री० [सं०] आर्या छंद का एक भेद जिसके विषम पदों में १२ और सम पदों में १५ मात्रायें होती हैं।

उपगूहन–सं०पु० [सं० उप+गूह+अनट्] आलिंगन, भेंट, अंक में भरना (डि.को)

उपग्रह–सं०पु० [सं०] १ जो प्रधान ग्रह न हो, किसी बड़े ग्रह के चारों ओर घूमने वाला छोटा ग्रह. २ छोटा ग्रह, राहु, केतु.

३ फलित ज्योतिष में सूर्य जिस नक्षत्र के हो उसके पांचवां (विद्युन्मुख) आठवां (शून्य) चौदहवां (सन्निपात) अठाहरवां (केतु) इक्कीसवां (उल्का) बाईसवां (कम्प) तेईसवां (वज्रक) और चौबीसवां (निर्घात) नक्षत्र भी उपग्रह कहलाते हैं. ४ उपद्रव।

उ०—महा उपग्रह उपजइ, जै नर उलग इण महूरत जाई।

५ कैदी, बंदी (डि.को.) —वी.दे.

उपघात–सं०पु०—१ नाश करने की क्रिया. २ रोग, पीड़ा, व्याधि. ३ आघात. ४ आक्रमण। उ०—पातिसाहनी जोउ वात, देहरा सरि कीधउ उपघात। ब्राह्मण जई मूकावउं आज, जीवी किस्यूं करेवउ काज।—कां.दे.प्र. ५ कपट, छल।

उपड़णौ, उपड़बौ–क्रि०अ०—देखो 'ऊपड़णौ'। उ०—उत्तर दी भुइं जु उपड़इ, पाळउ पवन घणांह।—ढो.मा.

उपड़णहार, हारौ (हारी), उपड़णियौ—वि०।

उपड़ाणौ, उपड़ाबौ, उपड़ावणौ, उपड़ावबौ—स०रू०।

उपड़िओड़ौ, उपड़ियोड़ौ, उपड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उपड़ीजणौ, उपड़ीजबौ—भाव वा०।

उपड़ाखियौ–वि०—जोशीला, वीर। उ०—आज रा दळ राज रा कठी उपड़ाखिया डाखिया केहरी 'अजन' दूजा।—मेघराज आढ़ौ

उपड़ाणौ, उपड़ाबौ–क्रि०स०—१ उमड़ाना. २ उन्मूलन करना. ३ उभारना. ४ भार उठाना. ५ दौड़ाना. ६ व्यय कराना. ७ खर्च कराना।

उपड़ाणहार, हारौ (हारी), उपड़ाणियौ—वि०।

उपड़णौ, उपड़बौ—अ०रू०।

उपड़ायोड़ौ—भू०का०कृ०।

उपड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उमड़ा हुआ. २ उन्मूलित. ३ उठा या उभरा हुआ. ४ सूजा हुआ. ५ भार उठाया हुआ.

६ दौड़ा हुआ। (स्त्री० उपड़ियोड़ी)

उपचय–सं०पु० [सं०] १ उन्नति, बढ़ती. २ आधिक्य, वृद्धि. ३ संचय, संग्रह।

उपचार–सं०पु० [सं० उप+चर्+घञ्] १ व्यवहार, प्रयोग. २ इलाज, चिकित्सा, सेवा। उ०—काया कजि उपचार करंतां, हुवै सु बेनि जांति हुवि।—वेलि. ३ मुख्यतः सोलह माने जाने वाले पूजन के अंग या विधान। देखो वि०वि० 'सोड़सोपचार'।

उपचारक–वि०—१ उपचार करने वाला. २ सेवा या चिकित्सा करने वाला, चिकित्सक।

उपचारणौ, उपचारबौ–क्रि०स०—व्यवहार में लाना, काम में लाना, प्रयोग करना।

उपचारणहार, हारौ (हारी), **उपचारणियौ**–वि०—व्यवहार या काम में लाने वाला।

उपचारिश्रोड़ौ, उपचारियोड़ौ, उपचारयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उपचारियोड़ौ–भू०का०कृ०—व्यवहार या काम में लाया हुआ। (स्त्री० उपचारियोड़ी)

उपचारी–वि० [सं० उपचारिन्] उपचार या चिकित्सा करने वाला।

उपछंद–सं०पु०—चौबीस मात्राओं से अधिक मात्राओं के छंद विशेष। (र.ज.प्र.)

उपछर–सं०स्त्री० [सं० अप्सरा] अप्सरा, देवांगना। (रू.भे. देखो 'अपछरा'। उ०—चपळा गत चूंबीह, परी गई उपछर परै। आय आगळ ऊभीह। कमळादे नर वेखियां। —पा.प्र

उपज–सं०स्त्री०—१ उत्पत्ति, उद्भव, पैदावार. २ सूझ. ३ मनगढंत बात. ४ स्फूर्ति, स्फुरण. ५ बंधी हुई तानों के सिवा गाने में राग की सुन्दरता के लिए अपनी ओर से कुछ तानों को मिला देना।

उपजण–सं०पु०—जन्म (ह.नां.)

उपजणौ, उपजबौ–क्रि०अ० [सं० उत्पदन] १ उत्पन्न होना, पैदा होना. उ०—जे हरि देखतां जु कोई आणंद उपज्यौ।—वेलि. टी. २ अंकुरित होना. ३ जन्म लेना। उ —दळ कहतां सरीर ए जु बाळक जब उपजै छै तब कळि रौ जु वाउ लागी छै तब ही उह बाळक नूं भूख त्रिस लागी छै।—वेलि. टी.

उपजणहार, हारौ (हारी), **उपजणियौ**–वि०—उपजने वाला।

उपजाणौ, उपजाबौ, उपजावणौ, उपजावबौ—स०रू०।

उपजिश्रोड़ौ, उपजियोड़ौ, उपज्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उपजस–वि०—काला, श्याम*। (डिं.को.) सं०पु०—अपयश, अपकीर्ति।

उपजाऊ–वि०—जिसमें अच्छी और अधिक उपज हो, उर्वर।

उपजाणौ, उपजाबौ–क्रि०स०—उत्पन्न करना, पैदा करना, उगाना।

उपजाणहार, हारौ (हारी), **उपजाणियौ**–वि०—उपजाने वाला।

उपजाणौ, उपजाबौ—अ०रू०।

उपजायोड़ौ—भू०का०कृ०।

उपजायोड़ौ–भू०का०कृ०—उत्पन्न किया हुआ, उपजाया हुआ। (स्त्री० उपजायोड़ी)

उपजावणौ, उपजावबौ–क्रि०स० [सं० उत्पादन] देखो 'उपजाणौ, उपजाबौ'

उपजियोड़ौ–भू०का०कृ०—उपजा हुआ, उत्पन्न। (स्त्री० उपजियोड़ी)

उपजीविका–सं०स्त्री० [सं०] जीविकावृत्ति, जीवनोपाय, रोजी।

उपजीहा–सं०स्त्री०—दीमक (डि.को.)

उपज्जणौ, उपज्जबौ–क्रि०अ०—देखो 'उपजणौ'। उ०—सब्बां थी तुम्ह तुम्हां थी सम्भ, उपज्जै जेम प्रकासां प्रम्भ।—ह.र.

उपझूलण–सं०पु०—एक प्रकार का छंद (र.ज.प्र.)

उपटंक–सं०पु०—पदवी, खिताब। उ०—इण कारण मौक्तिकराज बहुवांण सोनगिरा एहौ उपटंक पावै।—वं.भा.

उपट–सं०पु०—१ दान. २ उदारता, वदान्यता। क्रि०वि०—ऊपर।

उपटणौ, उपटबौ–क्रि०अ०—१ आघात या दबाव या लिखने से पड़ने वाले चिन्ह या निशानों का आ जाना, उभरना. २ उखड़ना. ३ उमड़ना. उ०—ज्वाळा क्रोध उपटी चांपियौ काळा नाग जांणै। —हुकमीचंद खिड़ियौ ४ मर्यादा या हद से बाहर होना. ५ उछल आना. ६ उत्पन्न करना।

उपटणहार, हारौ (हारी), **उपटणियौ**— वि०।

उपटिश्रोड़ौ, उपटियोड़ौ, उपटयोड़ौ—भू०का०कृ०। (रू.भे. उपट्टणौ)

उपटयट–क्रि०वि०—ऊपर तक। उ०—सौ जांणै पाउस काळ री नदियां में उपटयट वेग रै अनुसार तटां बारै छळतौ महानद आय मिळियौ।—वं.भा.

उपटां–क्रि वि०—ऊपर। वि०—विशेष।

उपटियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उभरा हुआ. जोश में आया हुआ। (स्त्री० उपटियोड़ी)

उपट्टणौ, उपट्टबौ–क्रि०अ०—१ उत्पन्न होना। उ०—आवट्टिय जळ जोर, सोर दुहुं ओर उपट्टिय।—ला.रा. २ देखो 'उपटणौ'। उ०—उपट्टी आपगा यां बभक्कं श्रोण धारवाड़ा मारवाड़ा हक्कौ हक्कं बक्कै मार मार।—हुकमीचंद खिड़ियौ

उपणणौ, उपणबौ–क्रि०स०—देखो 'उफणणौ, उफणबौ'।

उपणियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उफणियोड़ौ'। (स्त्री० उपणियोड़ी)

उपणौ, उपबौ–क्रि०अ०—उत्पन्न होना। क्रि०स०—पैदा करना।

उपत–सं०स्त्री० [सं० उत्पत्ति] १ उत्पत्ति। उ०—तन दुराचार उपत तास पीड़ा संचारी को विलास।—क.कु.बो. २ जन्म (अ.मा.)

उपतणौ, उपतबौ–क्रि०अ०—कष्ट पाना, दुखी होना।

उपताप-सं०स्त्री० [सं०] बीमारी, व्याधि (ह.नां.)

उपतारा–सं०स्त्री०—१ क्षुद्र नक्षत्र. २ नेत्रगोलक।

उपत्ति–सं०स्त्री० [सं० उत्पत्ति] १ उत्पत्ति। उ०—उपत्ति खपत्ति प्रकत्ति प्रसंग, राजीवलोचन्न जांणै धुवरंग।—ह.र. २ उत्पत्ति स्थान।

उपत्यका–सं०स्त्री० [सं० उपत्यका] पर्वत के पास की भूमि, तराई, घाटी। उ०—जैत कहियौ कोणपकोण में अठा थी एक जोजन अचळ री **उपत्यका** रै आधार उपबसथ।—वं.भा.

उपदंस–सं०पु० [सं०] १ प्रायः लिंगेन्द्रिय पर दांत या नाखून लगने से होने वाला एक प्रकार का रोग जिसमें लिंगेन्द्रिय पर घाव हो जाता है, गर्मी, आतशक, फिरंग रोग. २ शराब के घूंट के बाद मुंह साफ करने व जायका ठीक करने के लिए खाये जाने वाले पदार्थ, गजक। उ०—ऊपर ही झेलि भद्रकाळी लोहित रूप आसव रा चसक रै साथ **उपदंस** करि पीधी।—वं.भा.

उपदरो, उपदरौ–सं०पु०—देखो 'उपद्रव' (रू.भे.) उ०—१ ताहरां देवीदास री बहू सासू कन्है जाय सरब हकीकत कही। इसौ सौ एक **उपदरौ** तूफान छै।—पलक दरियाव री बात

उ०—२ आडो नव कोट रौ नाथ आयौ अडर, आंबेर रा करै मत वात अनडी। सेवग बीच कोई **उपदरौ** पावसी, बैलसी रात रा हाय बनड़ी।—महाराजा मांनसिंह रौ गीत

उपदा–सं०स्त्री० [सं०] १ भेंट, उपायन, नजराना। उ०—अर आप आपरै उचित **उपदा** री भेंट करि राड़ि रौ रसिक जोरदार रक्षक जांणियौ।—वं.भा. २ दर्शन. ३ पीडा. ४ बाधा।

उपदिसा–सं०स्त्री० [सं० उपदिशा] दो दिशाओं के बीच की दिशा, कोण, विदिशा जो चार हैं–ईशान, आग्नेय, नैऋत्य वायव्य।

उपदिस्ट–वि० [सं० उप+दिश+क्त] जिसे उपदेश दिया गया हो, जिसके विषय में उपदेश दिया गया हो, ज्ञापित, कृतोपदेश।

उपदुहो, उपदूहो–सं०पु०—दोहा छंद का एक भेद विशेष जिसमें लघु गुरु का कोई नियम न हो (डिं.को.)

उपदेवता–सं०पु० [सं०] छोटे-मोटे देव (भूत-प्रेतादि)

उपदेस–सं०पु० [सं० उपदेश] १ हितकारी बात, शिक्षा, नसीहत, सीख. २ गुरु मंत्र।

उपदेसक–वि० [सं० उपदेशक] उपदेश करने वाला।

उपदेसकारी–वि०—१ उपदेशकर्ता. २ उपदेशप्रद।

उपदेसणौ, उपदेसबौ–क्रि०स०—उपदेश करना, उपदेश देना, सिखाना।

उपदेसणहार, हारौ (हारी), उपदेसणियौ-वि०—उपदेश करने वाला।

उपदेसिओड़ौ, उपदेसियोड़ौ, उपदेस्योड़ौ–भू०का०कृ०—उपदेश किया हुआ।

उपदेसियोड़ौ–भू०का०कृ०—उपदेश किया हुआ। (स्त्री० उपदेसियोड़ी)

उपदेस्य–वि० [सं० उपदेश्य] उपदेश के योग्य, उपदेशाधिकारी।

उपदेस्टा–वि० [सं० उपदेष्टृ] १ उपदेशकर्ता. २ आचार्य, शिक्षक।

उपदेहिका–सं०स्त्री०—दीमक (डिं.को.)

उपद्रव–सं०पु०—१ उत्पात, हलचल, गड़बड़। उ०—भूत-प्रेत समस्त **उपद्रव** बेलि पढतां भाजै।—वेलि. टी. २ विप्लव, गदर. ३ दंगा-फसाद, झगड़ा-बखेड़ा. ४ किसी प्रधान रोग के बीच में होने वाले अन्य प्रकार के विकार. ५ अत्याचार, अंधेर।

उपद्रवी–वि० [सं० उपद्रविन्] उपद्रव या ऊधम मचाने वाला, उत्पाती.

उपद्वीप–सं०पु० [सं०] छोटा द्वीप, जलमध्यवर्ती स्थान।

उपध–सं०स्त्री०—१ उपाधि. २ देखो 'उपधा'।

उपधांन–सं०पु० [सं० उपधान] १ ऊपर रखना या ठहराना. २ सहारे की वस्तु. ३ तकिया, उसीसा, सिहराना (अ.मा.)

उपधांनासण–सं०पु० [सं० उपधानासन] योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन जिसमें एक पांव को लंबा रखा जाता है और दूसरे पांव को गरदन के नीचे तकिये की नाई रख कर सीधा सोना होता है।

उपधा–सं०स्त्री० [सं०] १ व्याकरण के अनुसार किसी शब्द के अंतिमाक्षर के पूर्व का अक्षर. २ छल, कपट (डिं.को.) ३ उपाधि।

उपधात, उपधातु–सं०स्त्री० [सं० उपधातु] १ अप्रधान धातु जो या तो लोहे, तांबे आदि धातुओं का विकार या मैल है वा उनके योग से बनी है अथवा स्वतंत्र खानों से निकलती है—जैसे कांसा, सोना-मक्खी, तूतिया आदि. २ शरीर के अंदर रस से बना पसीना, चर्बी आदि (अ.मा.)

उपधि–सं०पु०—छल, कपट (ह.नां.)

उपधूमितयोग–सं०पु० [सं०] वह योग जिसमें यात्रा तथा शुभ कर्मों का निषेध होता है (फलित ज्योतिष)

उपनणौ, उपनबौ–क्रि०अ०—१ उत्पन्न होना, पैदा होना। उ०—वर प्रांति हुवां वर की वांछा करै छै तिहि समय परमेसर रा गुण भणि जिकाई इच्छा **उपनी** छै।—वेलि. टी. २ देखो 'उफणणौ, उफणबौ'।

उपनय–सं०पु०—१ उपनयन संस्कार। देखो 'उपनयण'। २ यज्ञोपवीत (डिं.को.)

उपनयण उपनयन–सं०पु० [सं० उपनयन] द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) या त्रिवर्ग का यज्ञ सूत्र के धारण करने का संस्कार, उपवीत संस्कार।

उपनह–सं०पु० [सं० उपनाह] वीणा की खूंटी (डिं.को.)

उपनांम–सं०पु० [सं०] १ दूसरा नाम, प्रचलित नाम। उ०—नगर नांम **उपनांम** निज तें चालक जैमींग। रुद्र महालय मूं किया, धर पुड़ सांचा धींग।—बां.दा. २ पदवी, उपाधि।

उपनाय–सं०पु० [सं० उपनयन] देखो 'उपनयण' (डिं.को.)

उपनायक–सं०पु० [सं०] नाटकों में प्रधान नायक या मित्र या सहकारी.

उपनाह-सं०पु० [सं०] १ सितार में तार बँधे रहने की खूंटी. २ मरहम पट्टी। उ०—चालुक्यराज रा सूरवीर लोहछक होय घूंमता लाधा जिकां रै उपनाह कराय नूजांन श्रारूढ़ श्रणिहलपुर बिदा किया।

उपनिभ-सं०पु० [सं०] कपट (ह.नां.) —वं.भा.

उपनिसत, उपनिसद-सं०पु० [सं० उपनिषद्] वेद की शाखाश्रों के ब्राह्मणों के वे श्रन्तिम भाग जिसमें ब्रह्म विद्या का निरूपण है (श्र.मा.)

उपनीत-वि०पु० [सं०] जिसका उपनयन संस्कार हो गया हो।

उपनीसत-सं०पु० [सं० उपनिषद्] उपनिषद। उ०—मत भेदन खेद खुबी मत की, सत चूंप चुभी उपनीसत की।—ऊ.का

उपनौ-वि०—उत्पन्न।

उपन्यास-सं०पु०—कल्पित कथा, कल्पित श्राख्यायिका।

उपन्नणौ, उपन्नबौ-क्रि०श्र० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न होना, पैदा होना। उ०—मारू देस उपन्निया, तांहका दंत सुसेत। कूंझ बचां गारंगियां, खंजर जेहा नेत।—ढो.मा.

उपन्नणहार, हारौ(हारी), उपन्नणियौ-वि०—उत्पन्न होने वाला।

उपन्निश्रोड़ौ, उपन्नियोड़ौ, उपन्न्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उपपत-सं०पु०—देखो 'उपपति' (डिं.को.)

उपपतनी-सं०स्त्री० [सं० उपपत्नी] १ वेश्या. २ रखैल।

उपपति-सं०पु० [सं०] वह पुरुष जिससे किसी दूसरे व्यक्ति की स्त्री प्रेम करे, जार, यार।

उपपुरांण-सं०पु० [सं० उपपुराण] पुराणों से छोटे श्रौर गौण पुराण। पुराणों के समान ये भी संख्या में श्रठारह हैं—सनत्कुमार, नारसिंह, नारदीय, शिव, दुर्वासा, कपिल, मानव, श्रौशनस, वारुण, कालिका, शांब, नंदा, सौर, पराशर, श्रादित्य, माहेश्वर, भार्गव, वाशिष्ठ।

उपबन-सं०पु०—देखो 'उपवन'।

उपबरतन-सं०पु० [सं० उपवर्तन] देश (वं.भा.)

उपबसथ-सं०पु० [सं० उपवसथ] १ गांव, बस्ती। उ०—श्रठा थी एक जोजन श्रचळ री उपत्यका रै श्राधार उपबसथ ऊमरथूणौ मंडप रो मकांन मरजी में मानियौ जाइतौ उठै रहियां।—वं.भा. २ यज्ञ करने के पहिले का दिन जिसमें व्रत श्रादि करने का विधान है।

उपबाह्य-सं०पु० राजा की सवारी का हाथी (डिं.को.)

उपभोग-सं०पु०—१ किसी वस्तु के व्यवहार का सुख, मजा लेना, काम में लाना, बरतना. २ सुख की सामग्री. ३ विलास।

उपमंत्री-सं०पु० [सं०] मंत्री के नीचे कार्य करने वाला मंत्री।

उपमजाणौ, उपमजाबौ-क्रि०स०—१ उपमर्दन करना। उ०—स्वांमी हद्द सांसौ पडद्यौ। झीणी हरखांणी उपमजाई।—वी.दे. २ उत्पन्न करना, पैदा करना।

उपमन्यु-सं०पु० [सं०] श्रापोद्धौम्य के शिष्य गोत्र प्रवर्तक एक ऋषि।

उपमांण, उपमान-सं०पु० [सं० उपमान] वह वस्तु जिससे किसी दूसरी वस्तु को उपमा दी जाय, जिसके समान या सदृश कोई वस्तु कही जाय। उ०—मह्रा श्रदभूत जचै उपमांण, जसोमति पूत नचै फण जांण।—मे.म.

उपमा-सं०स्त्री० [सं०] १ समानता, तुलना, सादृश्य. २ एक प्रकार का श्रर्थालंकार। इसमें दो वस्तुश्रों में उनके बीच भेद रहते हुए भी समान धर्म बतलाया जाता है। उ०—१ व्यंग जमक उकती धुन वेता, जेहा जुगती जथा जमाव। श्रलंकार उपमा गुण एता, रसवेता भूखण भुजराव।—क.कु.बो.

उ०—२ उपमा कवि ऊमर दै श्रमोल, ततकाल समय टंकार तोल।—ऊ.का.

उपमेय-वि० [सं०] १ जिसकी उपमा दी जाय. २ वर्णनीय।

उपमेयोपमा-सं०स्त्री० [सं०] एक प्रकार का श्रर्थालंकार। जहां उपमेय को जिस उपमान से उपमा दी जाय, उस उपमान को भी उसी उपमेय से उपमा दी जाय श्रर्थात् जहां तीसरे समान पदार्थ का श्रभाव हो वहां यह श्रलंकार होता है।

उपयंद्र-सं०पु० [सं० उपेन्द्र] १ इन्द्र के छोटे भाई, उपेन्द्र. २ वामनावतार. ३ विष्णु. ४ श्रीकृष्ण (श्र.मा.)

उपयम, उपयांम-सं०पु० [सं० उपयम्] विवाह (डिं.को.) उ०—१ उपयम दोय किया मुड़ि श्रातां, वसुधा श्रचळ करे जस बातां।—वं.भा.

उ०—२ श्ररु रोपाळ नूं न रुचै तौ कहणौ एक पत्नी रै एवज इच्छा रै प्रमांण उपयांम कीजै।—वं.भा.

उपयुक्त-वि० [सं० उपयुक्त] योग्य, उचित, ठीक, वाजिब।

उपयोग-सं०पु० [सं०] १ व्यवहार, प्रयोग, इस्तेमाल. २ लाभ, फायदा. ३ प्रयोजन. ४ श्रावश्यकता।

उपयोगिता-सं०स्त्री० [सं०] १ काम में श्राने की योग्यता या क्षमता. २ लाभकारिता।

उपयोगी-वि० [सं० उपयोगिन्] १ काम देने वाला. २ लाभकारी. ३ श्रनुकूल।

उपरंत-वि०—श्रधिक।

क्रि०वि०—उपरांत, पश्चात्, बाद में। उ०—लुगाई सूं रात में एक बार भोग करणौ, उपरंत करवा री श्राखड़ी।—रा.सा.सं.

उपर-वि० [सं० उपरि] ऊर्ध्व, ऊँचा।

उपरक्त-वि० [सं० उपरक्त] विपन्न, पीड़ाग्रस्त।

सं०पु०—राहुग्रस्त चंद्रमा या सूर्य।

उपरक्षण, उपरच्छण-सं०स्त्री० [सं० उपरक्षण] सेना की चढ़ाई (डिं.को.) चौकी, पहरा।

उपरणा-सं०पु०—विशेष प्रकार से बांधा जाने वाला बंधन जो एक विशेष प्रकार के बंध, देखो 'खिड़कियापाग' की रक्षा के लिए कसा जाता है।

उपरति-सं०स्त्री० [सं०] १ विषय से वैराग, विरति, उदासीनता, उदासी. २ मृत्यु, मौत. ३ त्याग, निवृत्ति, परित्याग।

उपरत्न—सं०पु० [सं०] कम दाम के रत्न, घटिया रत्न जैसे सीप, मरकत, मणि आदि।

उपरम—सं०पु० [सं०] १ अंतर्ध्यान, विलीन। उ०—रात घड़ी दोय पाछली हुती, तरै नाटक पूरौ हूण लागौ, तरै देहुरौ देवता उपरम करण लागा।—नैणसी २ विरति, वैराग्य।

उपरमणौ, उपरमबौ—क्रि०अ०—विलीन होना, अंतर्ध्यान होना।

उपरमाड़ी—क्रि०वि०—ऊपर ही ऊपर।

सं०स्त्री०—महाजनी गणित का प्रश्न हल करने का नियम जिसके सहारे से गणित के प्रश्न गुरु द्वारा आसानी से व शीघ्र हल किये जाते हैं।

उपरमाड़ौ—सं०पु०—देखो 'उपरवाड़ौ'।

उपरमियोड़ौ—भू०का०कृ०—विलीन हुआ, अंतर्ध्यान।

उपरलियां, उपरल्यां—सं०स्त्री०—एक प्रकार की लोक देवियाँ जिनकी संख्या सात मानी जाती है, तथा जिनके प्रकोप से विभिन्न वात रोग होना माने जाते हैं।

पर्याय०—बायां (बायांसा), वीजासणियां (वीजासण्यां), मवाड़ियां (मावलियां), मैलड़ियां (मैलड़्यां, मैल्यां)।

उपरवाड़ौ—सं०पु० [सं० उपरि+वाट] ऊपर का मार्ग, गुप्त मार्ग।

उपरवार—सं०पु०—नदी के किनारे के ऊपर की भूमि, बाँगर जमीन।

उपरस—सं०पु० [सं०] पारे के समान गुण करने वाले पदार्थ जैसे गंधक (वैद्यक)।

उपरांठ, उपरांठउ, उपरांठियौ, उपरांठौ—वि० (स्त्री० उपरांठी) १ पीठ फेर कर खड़ा हुआ। २ विमुख। उ०—ढोलइ करह पलांणियां सुंदरि सलूणी कज्ज। प्री मारवणी सामुहउ, म्हां उपराठउ अज्ज।
—ढो.मा.

३ उल्टे पैरों पीछे हटना। उ०—लोह देखियां वदन लुकावै, उपरांठौ आवै आरांण।—अज्ञात

उपरांत, उपरांति—क्रि०वि०—१ अनंतर, बादमें, पश्चात्।

उ०—नठा उपरांत करि नै राजांन सिलामत घोड़ा दौड़ीजै छै।
२ ऊपर से (ल.पिं.) —रा.सा.सं.

वि०—अधिक (अमरत) उ०—च्यार आदमी उपरांत राखण पावै नहीं।—कहवाट सरवहिया री वात

उपरांम—सं०पु० [सं० उपराम] निवृत्ति, विरति, उदासीनता, विराम, आराम।

उपरांयत—क्रि०वि०—देखो 'उपरांत'।

उपरा—क्रि०वि०—ऊपर। उ०—जोइ नै खणोतरा रै माथै हांडी देइ नै आधौ कीयौ। तितरै खोवै वेम भरी नै तरवार बाही सु हांडी उपरा बाजी।—चौबोली

उपराउपरी—क्रि०वि०—एक के पश्चात् एक, निरंतर (वं.भा.)

उपराबड़ी—सं०स्त्री०—चढ़ाऊपरी, प्रतिद्वंदिता, स्पर्द्धा।

उपराध—सं०पु० [सं० अपराध] अपराध, दोष।

उपरायण—क्रि०वि०—१ ऊपर से. २ शीघ्रतापूर्वक।

उपराळौ, उपराळौ—सं०पु०—१ पक्ष ग्रहण, सहायता, मदद।

उ०—न तो आंपणी जीव राखणी, न कोई उपराळौ तिण सूं आपां हवेली मांही लड़ां।—अमरसिंह री बात

उपरावटौ—वि०—१ गर्व से सिर ऊँचा करने वाला. २ अकड़ा हुआ, ऐंठा हुआ, जिसका सिर ऊपर तना हो।

उपरास—क्रि०वि०—ऊपर से ऊपरी। उ०—आई फौज उपरास, जिका आछी मत जांणौ। विळै साथ 'विसनेस', उणांरी खबरां आंणौ।
—पे.रू.

उपरि—क्रि०वि० [सं०] ऊपर। उ०—सूधी राव सेखाकी विछात्यां आंण लीनी। गादी कूंट उपरि खोलि बाळू मेल दीनी।—शि.वं.

उपरियाळ—वि०—एक से एक बढ़ कर।

उपरीजणौ, उपरीजबौ—क्रि०अ०—छोटे बच्चों का रोग विशेष से पीड़ित होना जिससे बच्चे को वमन भी होता है और दस्त भी लगते हैं।

उपरीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—रोग विशेष से पीड़ित बच्चा।
देखो 'उपरीजणौ'। (स्त्री० उपरीजियोड़ी)

उपरेचौ—सं०पु०—दरवाजे पर लगाया हुआ काष्ट का डंडा।

उपरोक्त—वि० [सं० उपर्युक्त] ऊपर कहा हुआ, पूर्वकथित, उल्लिखित।

उपरोध—सं०पु० [सं०] अटकाव, रुकावट, आच्छादन, ढकना, आड़।

उपलंगी—सं०पु० [सं० उपलांगी] पर्वत, पहाड़ (नां.मा.)

उपल—सं०पु० [सं०] १ पत्थर (ह.नां.) उ०—वानर री निरलज्जता, उपल कठणता लीध। वायस तणौ कुकंठ ले, कुकवि विधाता कीध।—बां.दा. २ ओला. ३ रत्न. ४ बालू. ५ घास विशेष (डि.को.)

उपलक्ष—सं०पु० [सं०] १ संकेत, चिन्ह. २ दृष्टि. ३ उद्देश्य।

उपलक्षक—सं०पु० [सं०] वह शब्द जो उपादान लक्षणा से अपने वाच्यार्थ के द्वारा निर्दिष्ट होने वाली वस्तु के अतिरिक्त प्रायः उसी कोटि की अन्यान्य वस्तुओं का भी बोध करावे।

उपलक्षण—सं०पु० [सं०] १ वह संकेत या चिन्ह जो बोध कराने वाला हो. शब्द की वह शक्ति जिससे उसके अर्थ से निर्दिष्ट वस्तु के अतिरिक्त प्रायः उसी प्रकार की अन्यान्य वस्तुओं का भी बोध होता है।

उपलक्षित—वि०—सूचक, चिन्हयुक्त, सूचित।

उपलब्ध—वि० [सं०] १ प्राप्त. २ जाना हुआ।

उपलब्धि, उपलब्धी—सं०स्त्री० [सं० उपलब्धि] १ प्राप्ति. २ बुद्धि. ३ ज्ञान (डि.को.) उ०—अर चोथौ हाथ कंठ रै लागौ देखि आप आपरी उपलब्धि रै अनुसार सारां ही जुदौ जुदौ भाव कहियौ।
४ अनुभव। —वं.भा.

उपलबधी—सं०स्त्री०—देखो 'उपलब्धी'।

उपली—वि०—ऊपर की। उ०—जाई करी बैठी चौखंडी, पहली बांची उपली ओळी।—वी.दे.

उपलेप—सं०पु० [सं०] १ लेप लगाना, लीपना. २ वह पदार्थ जिससे लेप करे।

उपलेपण, उपलेपन–सं०पु० [सं] लीपने या लेप लगाने का कार्य ।

उपळौ–सं०पु० [सं० उपरिल] देखो 'ऊपळौ' । उ०—हजार पांवडा ईस छै । ग्राठसं पांवडा उपळौ छै । इण भांत री तळाव छै । —रा.सा.सं.

उपलौ–वि०—ऊपर का । उ०—जीभ काटूं जिणी बोलियौ, थारौ नाक मरीखा उपलौ होठ ।—वी.दे.

उपव–सं०पु० [सं० उपमेय] उपमा के योग्य, उपमेय । उ०—पारस जात ग्रद ग्रात 'समांपत', उपव भूपां ख्यात उदात । सेवै छांह सात सुख सरसै, परसै भुज दरसै कव पात ।—क.कु.बो.

उपवन–सं०पु० [सं०] १ बाग, बगीचा, उद्यान (ग्र.मा.) २ छोटा जंगल, कृत्रिम वन ।

उपवरतन, उपवरतनी–सं०पु० [सं० उपवर्तनम्] १ देश । २ राज्य । (ग्र.मा., ह.नां.)

उपवसत–स०पु०—१ उपवास, व्रत (डि.को.) २ यज्ञ करने का पूर्व का दिन जिसमें व्रत ग्रादि करने का विधान है (वं.भा.)

उपवास–सं०पु० [सं०] भोजन का छोड़ना, फाको, लंघन, ग्रनशन ।

उपवासी–वि०—उपवासयुक्त, उपवास करने वाला, व्रती ।

उपवाह्य–सं०पु० [सं०] १ युद्ध योग्य हाथी (डि.को) २ देखो उपबाह्य

उपविद्या–सं०स्त्री० [सं०] शिल्पादि विज्ञान, कलाकौशल ।

उपविस–सं०पु० [सं०] हलका विष, कम तेज जहर जैसे ग्रफीम, धतूरा, कुचेला ।

उपविस्ट–वि० [सं० उपविष्ट] ग्रासीन, बैठा हुग्रा, ग्रासनस्थ ।

उपवीत–सं०पु० [सं०] यज्ञ-सूत्र, जनेऊ, उपनयन (वं.भा.)

उपवीत उतार–सं०पु०—शस्त्र या तलवार का वह प्रहार जो कंधे के एक छोर से कमर के दूसरे छोर तक (जैसे जनेऊ बांधी जाती है ठीक वैसे ही) काट देता है । (मि० जनेऊवढ़) उ०—चहुवांण ऊठि मूंछां रा हाथ सहित दाहिणै खांधै खग री प्रहार कियौ । प्रतापसिंघ तौ उपवीतउतार दोय टूक हुवौ ।—वं.भा.

उपवेद–सं०पु० [सं०] विद्याग्रों के वे शास्त्र जो वेदों से निकले हुए माने जाते हैं । प्रत्येक वेद के उपवेद हैं जो चार हैं—१ धनुर्वेद. २ गंधर्व-वेद. ३ ग्रायुर्वेद. ४ स्थापत्य ।

उपसंख्यान–सं०पु०—१ ग्रधोवस्त्र, नीचे का वस्त्र. २ साड़ी के नीचे का पहिनने का कपड़ा (डि.को.)

उपसंपादक–सं०पु० [सं०] किसी कार्य में मुख्य कर्ता का सहायक या उसकी ग्रनुपस्थिति में काम करने वाला व्यक्ति, सहकारी सम्पादक ।

उपसंहार–सं०पु० [सं०] १ समाप्ति, नाश. २ निष्कर्ष. ३ शेष. ४ किसी ग्रन्थ का ग्रंतिमाध्याय या भाग. ५ किसी ग्रंथ या लेख का ग्रन्तिम ग्रध्याय या भाग जिसमें उसका उद्देश्य या परिणाम संक्षेप में बतलाया गया हो ।

उपसणौ, उपसबौ–क्रि०ग्र०—१ फूलना. २ उभरना ।

उपसम–सं०पु० [सं० उपशम] १ इन्द्रिय-निग्रह, वासनाग्रों को दबाना. २ शांति. ३ प्रतीकार ।

उपसमन–सं०पु० [सं० उपशमन] शांत रखना, शमन, दमन, दबाना, निवारण ।

उपसय–सं०पु० [सं० उपशय] निदान पंचक के ग्रंतर्गत रोगज्ञापक ग्रनुमान ।

उपसरग–सं०पु० [सं० उपसर्ग] किसी शब्द के पूर्व लगाया जाने वाला वह शब्द या ग्रव्यय जिससे उक्त शब्द में किसी ग्रर्थ में विशेषता पैदा होती हो. २ रोग भेद. ३ उत्पात, उपद्रव. ४ ग्रपशकुन. ५ दैवी ग्रापत्ति. ६ पांच प्रकार के माने जाने वाले विघ्न (योग)

उपसरजन–सं०पु० [सं० उपसर्जन] १ ढालना. २ उपद्रव. ३ गौण वस्तु. ४ त्याग ।

उपसरपण–सं०पु० [सं० उपसर्पण] १ उपासना. २ ग्रनुवृत्ति ।

उपसास–सं०पु०—श्वास भरना, ग्राह, निश्वास । उ०—रघुपत जगत गिण उपसास राळै भांमणी, चिहुं ग्रोर भाळै तन विचाळै जो वर ।—र.रू.

उपसुंद–सं०पु०—सुंद नामक दैत्य का छोटा भाई ।

उपस्त्री-सं०स्त्री०—उपपत्नी, रखैली ।

उपस्थ–सं०पु० [सं० उप+स्था+क] १ नीचे या मध्य का भाग, पेड़ू । उ०—स्वारथ धरम न सिद्ध व्है, वणक मित्र कर लाख । व्है उपस्थ कच बाळियां, नहि ग्रंगार नहि राख ।—वां.दा. २ पुरुष चिन्ह, लिङ्ग. २ स्त्री चिन्ह, योनि ।

उपस्थळ–सं०पु० [सं० उपस्थल] चूतड़, कूल्हा, पेड़ू ।

उपस्थापण, उपस्थापन-सं०पु० [सं० उप+स्था+णिच्+ग्रनट] उप-स्थितकरणं, निकटग्रानयन ।

उपस्थित–वि०[सं०] १ समीप बैठा हुग्रा, निकटस्थ. २ विद्यमान, हाजिर, मौजूद. ३ वर्तमान ।

उपस्थिति–सं०स्त्री०[सं०] १ निकटस्थ होने का भाव. २ विद्यमानता, मौजूदगी ।

उपहत–वि० [सं०] १ नष्ट, बरबाद. २ बिगड़ा हुग्रा. ३ क्षत, ग्राघात प्राप्त ।

उपहार–सं०पु० [सं०] १ भेंट, नजर, सौगात । उ०—प्रथ्वीराज नूं ग्राप री पुत्री परिणाय लाखां रुपियां रा उपहार सहित विदा कियौ । —वं.भा.

क्रि०प्र०—करणौ, देणौ, लेणौ, होणौ ।

२ गीत, नृत्य. ३ सामग्री । उ०—उपयम रै उचित उपहार एक ठौ कराइ लग्न पूछियौ ।—वं.भा.

उपहारीभूत–सं०पु० [सं० उपहार] भेट, उपहार । उ०—ग्रर नागोर दंग री देस थांहरै काज उपहारी भूत लियौ जावसी ।—वं.भा.

उपहास–सं०पु० [सं० उप+हस्+घञ्] १ परिहास, हँसी, दिल्लगी, निंदा, बुराई । उ०—ससुर नहीं कोई सास, ग्रंध सभा नृप ग्रंध री । होणहार उपहास, देखौ भीखम द्रोण री ।—रांमनाथ कवियौ

वि० [सं०] उपहास के योग्य, निंदनीय ।

उपह्वर-सं०पु०—एकान्त, एकान्त स्थान। उ०—तिको मंत्र उपह्वर भी चार लोकांरा चतुरपणाथी चोड़ै आयौ थकौ पहली ही इसौ घाट घड़ता तीजा साहजादा औरंगजेब रै सहायक बणियौ।—वं.भा.

उपांग-सं०पु० [सं०] १ अवयव, अंग का भाग। उ०—जिकौ पण बळा विंध्य रा अधीस 'रांम' भूपाळ अंग उपांग सहित सुणीजै। २ प्राचीन काल का एक बाजा। —वं.भा.

उपांन उपांनत, उपांनह-सं०पु० [सं० उपानह] जूता (अ.मा., डि.को.)

उपाअणौ, उपाअबौ-क्रि०स०—पैदा करना, उत्पन्न करना (ल.पिं.)
उपाअणहार, हारौ (हारी), उपाअणियौ—वि०।
उपाइयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उपाऊ-सं०पु० [सं० उपाय] यत्न, उपाय।
वि०—उत्पन्न करने वाला।

उपाख्यांन-सं०पु० [सं० उपाख्यान] पुरानी कथा, वृत्तान्त।

उपाड़-सं०पु०—१ फोड़ा, फुन्सी, ग्रन्थी. २ खर्च. ३ उपाड़नौ क्रिया का भाव. देखो 'ऊपाड़'।

उपाड़णौ, उपाड़बौ, उपाड़िणौ, उपाड़िबौ-क्रि०स० [सं० उत्पादन] १ उठाना। उ०—ढाढी जइ प्रीतम मिळइ, यूं दाखविया जाइ। जोबण छत्र उपाड़ियउ, राज न बइसउ काइ।—ढो.मा.
२ उखाड़ना, उन्मूलन करना। उ०—१ क्रोध चंडाळ सदा संगि खेलै, ताका मूळ उपाड़ौ।—ह.पु.वा. उ०—२ औगुणग्राही जीव की, सुणौ संत इक बात। चंदण विरछ उपाड़ि, जहर तरवर जड़ राखै। —ह.पु.वा.
३ खर्च करना. ४ अधिकार में करना, जीतना। उ०—सत हर सारि संघारि, उपाड़ण अप्रड़ां।—महाराजा करणसिंह रौ गीत
५ आक्रमण करना. ६ बोझा उठाना. ७ भड़काना.
८ उचटाना। उ०—सुंदरि मौ सारौ नहीं, कुंवर वहेसी मग्ग। साहिब चित्त उपाड़ियौ, जिम केकांणां वग्ग।—ढो.मा.
उपाड़णहार, हारौ (हारी), उपाड़णियौ—वि०।
उपाड़िओड़ौ, उपाड़ियोड़ौ, उपाड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उपाड़ियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ उठाया हुआ. २ उखाड़ा हुआ. ३ खर्च किया हुआ. ४ अधिकार में किया हुआ, जीता हुआ. ५ बोझा उठाया हुआ. ६ भड़काया हुआ. ७ उचटाया हुआ।
(स्त्री० उपाड़ियोड़ी)

उपाड़ू-वि० [सं० उत्पाटन] १ अधिक खर्च करने वाला. २ जोशीला।

उपाड़ौ-सं०पु०—१ खर्च, व्यय. २ बोझ, वजन. ३ झड़बेरी के सूखे डंठलों का समूह जो काट कर सिर पर उठा कर ले जाया जाता है।

उपाणौ-सं०पु० [सं० उत्पन्न] १ आमदनी, आय. २ खर्च की गई रकम द्वारा उत्पन्न आय।

उपाणौ, उपाबौ-क्रि०स० [सं० उत्पादन] १ उत्पन्न करना, पैदा करना। उ०—बन मां आवि चोरिया ब्रहमा, त्रिकम नवा उपाया तार। —ह.नां.
२ उपार्जन करना, कमाना. ३ रचना। उ०—मंडणहारै मंडकी उवबुद उपाई।—केसोदास गाडण ४ सोचना।

उपादांन-सं०पु० [सं० उप+आ+दा+अनट्] १ स्वयंमेव कार्यरूप में परिणित होने वाला कारण. २ किसी वस्तु के तैयार होने की सामग्री।

उपादेय-वि० [सं०] १ ग्रहण करने योग्य, लेने लायक, ग्राह्य. २ उत्तम, श्रेष्ठ।

उपाध, उपाधि-सं०पु० [सं० उपधि] १ उपद्रव, अन्याय, छल-कपट। उ०—तिणां री सुरतांण रीसाय नै आंख काढी और ही उपाध करै तरै बूंदी रा उमराव सारा रांणा उदैसिंह कनै आया। —नैणसी
२ युद्ध. [सं० उपाधि] ३ उपाधि, खिताब. ४ आफत, विघ्न, बाधा। उ०—चित सूं आगम चितवै आ मजबूत उपाध। 'बंक' जुड़ै नह बांचियौ, इण कारण हूं आध।—बां.दा. ५ वह जिसके संयोग से कोई वस्तु और की और अर्थात् किसी विशेष रूप में दिखाई दे। उ०—बुध व्याधिय आधि उपाधिय में, सुध लाधिय सुन्य समाधिय में।—ऊ.का. ६ उपनाम।

उपाधिया, उपाध्याय-सं०पु० [सं० उपाध्याय] वेद-वेदांग का पढ़ाने वाला, अध्यापक, शिक्षक, गुरु. २ ब्राह्मणों का एक भेद।

उपानह-सं०पु० [सं०] जूता, पनही, पदत्राण।

उपाय-सं०पु० [सं०] १ पास पहुँचना, निकट आना. २ अभीष्ट तक पहुँचाने वाला. ३ युक्ति, तदबीर. ४ किसी दुश्मन पर विजय पाने की चार युक्तियाँ—साम, दाम, दण्ड, भेद. ५ उपचार, प्रयत्न. ६ चार*।

उपायक-सं०पु० [सं० उपाय] साधन, युक्ति, तदबीर।

उपायन-सं०पु०—भेंट, उपहार। उ०—परबत मेर रौ सीस खग री ओझाड़ दे'र भूतनाथ भैरव रै उपायन कियौ (वं.भा.)

उपारजण, उपारजन-सं०पु० [सं० उप+अर्ज+अनट्] १ लाभ करना, कमाना, पैदा करना. २ एकत्र करना, संचय करना।

उपालंभ, उपालंभन-सं०पु० [सं०] उलाहना, शिकायत, निंदा। उ०—सौ जांणू हालू नरेंद्र भी पावक में पत्नी रौ पहिली प्रवेस प्रमांण श्री विरुद्ध बिचारि आपरा अनुज नूं उपालंभ दीधौ। —वं.भा.

उपाळौ-क्रि०वि०—नंगे पैर। उ०—वन हैं बेटा विकट पथ चालणौ उपाळौ।—र.रू.

उपाव-सं०पु० [सं० उपाय] देखो 'उपाय'। उ०—पाटा पीड़ उपाव, तन लागां तरवारियां। वहै जीभ रा घाव, रती न ओखद राजिया।—किरपारांम

उपावण-वि०—उत्पन्न करने वाला। उ०—अलख तूंहीज आदेस, अमर नर नाग उपावण।—ह.र.

उपावणौ, उपावबौ-क्रि०स०—१ उत्पन्न करना, पैदा करना।

उ०—गांगौ गिणांक बूक बुझाकड़ ऊंची अकल उपाई नै। सेखसली नै कुण समझावै, बस इण पोपांबाई नै।—ऊ.का.

२ रचना करना, बनाना। उ०—१ विष पिंगळ ससीकळ वतावै, पाया कुळक तणी गत पावै। यूं पालवणी अरभ उपावै, दुत डिंगळ आवै दरसावै।—क.कु.बो.

उ०—२ आदि पुरुस आदेस, आदि जिण स्रिस्ट उपाई।—ह.र.

३ उपार्जन करना। उ०—जुवारी जुवा खेल कर कोई गरथ उपावै।—केसोदास गाडण

उपावणहार, हारौ (हारी), उपावणियौ—वि०—उत्पन्न करने या रचना करने वाला।

उपाविग्रोड़ौ, उपावियोड़ौ, उपाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उपाबियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ उत्पन्न किया हुआ. २ रचना किया हुआ। (स्त्री० उपावियोड़ी)

उपासंग—सं०पु० [सं०] तरकश (अ मा.)

उपास—सं०पु० [सं० उपवास] उपवास, लंघन. [सं० उपास्य] इष्टदेव, उपासना के योग्य।

उपासक—वि० [सं०] पूजा या आराधना करने वाला भक्त। उ०—उपासक जळ धर तणौ प्रतपी अचळ।—महाराजा मांनसिंह रौ गीत

उपासण, उपासन—वि०—उपासना करने वाला (पिं.प्र.)

सं०पु०—शुश्रुषा, सेवा, आराधना।

उपासणा, उपासना—सं०स्त्री० [सं० उपासना] पास बैठने की क्रिया, आराधना, पूजा, टहल। उ०—सगरब न्याय सासनां उपासना न आंन की।—ऊ.का.

उपासणौ, उपासबौ—क्रि०स० [सं० उपासन] उपासना करना।

उ०—गुण प्रकास गुणराज आस जिण काज उपास।—अज्ञात

उपासणहार, हारौ (हारी), उपासणियौ—वि०।

उपासनीय—वि० [सं०] सेवा करने योग्य, सेव्य, आराधनीय पूजनीय।

उपासरौ—सं०पु० [सं० उपाश्रय] जैन यतियों का निवास-स्थान।

कहा—१ उपासरा में चोकनी—उपाश्रय में कृषि के उपकरण किस प्रकार मिल सकते हैं? कोई वस्तु उसी स्थान पर मिलेगी जहां उसके प्रयोग की संभावना हो. २ उपासरे में कांगसिया जोवै है—उपाश्रय में बालों में कंघी करने का उपकरण कैसे मिल सकता है क्योंकि जैन यतियों के तो बाल होते नहीं, तब वे उपकरण क्यों कर रक्खेंगे। कोई वस्तु उसी स्थान पर मिलेगी जहां उसके प्रयोग की संभावना हो।

उपासी, उपासीक—वि० [सं० उपासिन] उपासना करने वाला, सेवक, भक्त, आराधक। उ०—१ विद्या दस च्यार प्रताप विनायक, पावै चरण उपासी।—क.कु.बो.

उ०—२ हरसोळाव रा सूरतसिंघ राम उपासीक है।—बां.दा.ख्या.

उपासु, उपासू—वि०—उपासना चाहने वाला, उपासना करने वाला।

उ०—कट उडियांण लियां डमरू कर, भांग धतूरा भोगी। अरक फूल जळ धोम उपासू, जय जय संकर जोगी।—क.कु.बो.

उपास्य—वि० [सं० उप+आस+य] उपासना या पूजा के योग्य, आराध्य, सेव्य, पूजनीय।

उपाहौ—सं०पु०—उपालंभ। उ०—धणी उपाहौ उलगइं, राव चलावौ धरा अचेत।—वी.दे.

उपिंद्र—सं०पु० [सं० उपेंद्र] ईश्वर (नां.मा.)

उपियलगाह—सं०पु०—एक छंद विशेष, एक वृत्त, गाह छंद का भेद विशेष।

उपूठौ—वि० [सं० आपृष्ठ] पीठ फेरा हुआ।

क्रि०वि०—पीठ की ओर।

उपेक्षण—सं०पु० [सं०] १ विरक्त होना, उदासीन होना. २ किनारा खींचना. ३ घृणा करना, तिरस्कार करना।

उपेक्षा—सं०स्त्री० [सं० उप+ईक्ष+अ(आ)] १ अस्वीकार. २ त्याग. ३ उदासीनता, विरक्ति. ४ लापरवाही. ५ घृणा, तिरस्कार।

उपेक्षित—वि० [सं० उप+ईक्ष+क्त] जिसकी उपेक्षा की गई हो, तिरस्कृत, निंदित, त्यक्त।

उपेट—वि०—सहित, साथ।

उपेत—वि० [सं० उप+इ+क्त] १ युक्त, सहित। उ०—१ अर आप रा रजपूतां उपेत पाहुणां नूंत मांनण रौ दुंदुभी दिवाइ वडै वेग साम्हौ चलायौ।—वं.भा.

उ०—२ स्वांमी सचेत, अति गुन उपेत। सेवक विसार, सौ लीन सार।—ऊ.का. २ एकत्रित।

उपेंद्रवज्रा—सं०पु०—रघुवरजसप्रकाश के अनुसार प्रथम जगण, तगण, जगण तथा अंत में दो गुरु वर्ण का एक छंद विशेष।

उपोदघात—सं०पु० [सं० उप+उत्+हन्+घञ्] १ किसी ग्रंथ के प्रारम्भ का वक्तव्य, प्रस्तावना, भूमिका. २ सामान्य कथन से भिन्न विशेष वस्तु के विषय में कथन।

उप्परि—क्रि०वि०—ऊपर।

उप्रवट, उप्रवाट—वि० [सं० उपरिवर्ती] अधिक, बहुत, विशेष।

उ०—१ कायरां चेत उड प्रेत जोगण किलक, उप्रवट भूभट विरदेत अड़िया।—तिलोकदांन बारहठ

उ०—२ घट सूं ओघट घाट, घड़ियौ अकबरिये घणौ। इळ चंनण उप्रवाट, परमळ उठी प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ

उफ—अव्यय [अ०] ओह, अफसोस।

उबडांखियौ—सं०पु०—१ भूखा सिंह. २ लुटेरा।

वि०—उद्दंड। उ०—रूकड़ां पांण उबडांखिया रोळिया, धोळिया धकाया दीह धोळे।—दल्लौ मोतीसर

उफणणौ, उफणबौ—क्रि०स० [सं० उद+फण=एतौ=उत्फणनम्] देखो 'ऊफणणौ, ऊफणबौ' (रू.भे.)

उफणतौ—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

उफणाणौ, उफणाबौ—देखो 'ऊफणाणौ, ऊफणाबौ (रू.भे.)

उफणियोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'ऊफणियोड़ौ'। (स्त्री० ऊफणियोड़ी)

उफतणौ, उफतबौ–क्रि०अ०—देखो 'ऊफतणौ'।

उफतियोड़ौ–वि०—तंग आया हुआ। उ०—पछे हूं उफतियोड़ौ दावौ ठकरावतौई होऊंला।—वरसगांठ (मि० ऊफतियोड़ौ)

उफरांटौ–वि०—१ पीठ फेरा हुआ. २ विरुद्ध (मि० उपरांठौ)

उफरांठउ–वि०—देखो 'ऊपरांठउ'। (रू.भे. 'ऊफरांठउ')

उफांण, उफांन–सं०पु० [सं० उत्+फेन] १ गर्मी पाकर फेन के साथ ऊपर उठना, उबाल. २ जोश, उबाल। उ०—नथी रजोगुण ज्यां नरां, वां पूरौ न उफांण। वे भी सुणतां ऊफणै, पूरा वीर प्रमांण।
३ आडम्बर. —वी.स.

उफांणणौ, उफांणबौ–क्रि०स०—देखो 'ऊफणाणौ, ऊफणाबौ'।

उफारवां–वि०—दिखावे में बड़ा दीखने वाला। उ०—सोनीजी आया उफारवां गैणा घड़ावण री सला ठैरी।—वरसगांठ

उबंध–वि०—देखो 'ऊबंध'।

उबंबर, उबंबरौ–वि० [सं० उपांबर] १ ऊंचा. २ वीर, बहादुर।
उ०—१ कुळवट खेती कमधजां, गज थट करण गहीर। उग्रवट 'पतौ' उबंबरौ, धर यूरप भट धीर।—किसोरदांन बारहठ
उ०—२ बाहुड़िया बांहाळ बे हिंदु उबंबरा।—गो.रू.
३ देखो 'ऊबंबर'।

उबकणौ, उबकबौ–क्रि०अ०—देखो 'ऊबकणौ'।

उबकौ–सं०पु०—देखो 'ऊबकौ'।

उबक्कणौ, उबक्कबौ–क्रि०अ०—देखो ऊबकणौ'।
उ०—उबक्कै अराबां आग, हूबक्कै जोधार अंग, (जठै) ताता जंगां पमंगां मेलिया निराताळ।—बुधसिंह सिढ़ायच

उबड़खाबड़-वि०—ऊंचा-नीचा, अटपटा, विषम।

उबड़णौ, उबड़बौ–क्रि०अ०—देखो 'ऊबड़णौ'।

उबड़ाक–सं०स्त्री०—ओकाई, मिचली, कै, जी की मिचलाहट।

उबड़ियौ–सं०पु०—रहँट के बीचोबीच का लोहे या लकड़ी का स्तम्भ।
वि०वि०—देखो 'ऊबड़ियौ'।

उबट–सं०पु० [सं० उद्वाट] देखो 'ऊबट'।

उबटण, उबटन, उबटणौ–सं०पु० [सं० उद्वर्त्तन] शरीर पर मलने के लिए सुगन्धित लेप। उ०—सखी हिळमिळ मंगळ गावौ, बनाजी रै उबटणौ मसळावौ।—समांन बाई

उबटणौ, उबटबौ–क्रि०अ०स०—१ कसिया जाना, कसैला होना.
२ रंग उड़ना (कपड़े का). उ०—ऊजळ मळ संकुळ पीठी उबटांणी, करड़े लोह साथे ऐरण कूटांणी।—ऊ.का. ३ उत्पन्न होना।
४ उबटन लगाना, मलना। देखो 'ऊबटणौ'।
उबटणहार, हारौ (हारी), उबटणियौ—वि०।
उबटियोड़ौ, उबटियोड़ौ, उबटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उबटियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ कसिया हुआ. २ रंग उड़ा हुआ (कपड़े का)
३ उबटन लगाया हुआ या मला हुआ। (स्त्री० उबटियोड़ी)

उबटौ–सं०पु०—ऊँट या घोड़े की जीन में तंग कसने के लिए बांधने की एक चमड़े की रस्सी। (मि० ऊबटौ)

उबद–सं०पु० [सं० अर्बुद] देखो 'अरबुद'।

उबरेलौ, उबरेळौ–सं०पु०—वर्षा का बंद होकर आकाश का साफ होना।
उ०—मेह बरसण लागौ अरु उबरेलौ दीनौ नहीं।—द.दा.

उबरांणणौ, उबरांणबौ–क्रि०स०—प्रहार हेतु शस्त्र उठाना।

उबळणौ, उबळबौ–क्रि०अ० [सं० उज्ज्वलम्] १ खौलना.
२ उफनना।
उबळणहार, हारौ (हारी), उबळणियौ—वि०—उबलने या उफनने वाला।
उबळिओड़ौ, उबळियोड़ौ, उबळयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उबळियोड़ौ–भू०का०कृ० [सं० उज्ज्वलित] उबला हुआ, खौला हुआ, उफना हुआ। (स्त्री० उबळियोड़ी)

उबांणणौ उबांणबौ–क्रि०स० [सं० उद्भरण] १ प्रहार हेतु शस्त्र उठाना (रू.भे. 'ऊबांणणौ)' २ खड़ा करना।
उबांणणहार, हारौ (हारी), उबांणणियौ–वि०—प्रहार हेतु शस्त्र उठाने वाला।
उबांणिओड़ौ, उबांणियोड़ौ, उबांण्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उबांणौ–वि० (स्त्री० उबांणी) १ नंगे पैर। उ०—पातसा री हजूर अमराव मंमूसाह, मीर गाभरू सु हरम री खुटक मै भुरगाव्यां पगां उबांणा सौ तीजै भाई नूं आपड़ियौ थौ सु आ बगी वात छै।
—नैणसी
२ नंगी तलवार किए हुए (रू.भे. ऊबांणौ) उ०—खैंगां खूर कीधां बंका सेखांणी उबांणै खांडै, ठांणै कंपू गाहटै, उठांणै ठांम ठांम।
३ नग्न। —डूंगजी जवारजी री गीत

उबांबरौ–वि० [सं० उपांबर] देखो 'ऊबांबरौ'।

उबाई–सं०स्त्री०—जंभाई।

उबाक–सं०स्त्री०—वमन, कै। उ०—आवै देख उबाक, थूक रा थेबा थाया। उतरया सूत अणूंत, मूंत रेला नह माया।—ऊ.का.

उबाड़–सं०स्त्री०—१ फाड़ने या चीरने की क्रिया का भाव।
(मि० ऊबाड़णौ) २ दरार।

उबाट–वि०—देखो 'उबट'।

उबार–सं०पु० [सं० उद्धारण] छुटकारा, उद्धार, निस्तार. २ रक्षा।
उ०—जळ तौ उआ अभ मझार, अनंत परीखत संत उबार।—ह.र.

उबारकौ–वि०—१ उबारने वाला. २ रक्षक।

उबारण, उबारणौ–वि०—रक्षा करने वाला, रक्षक। उ०—नमौ प्रहळाद उबारण प्रम्म।—ह.र. उ०—२ रजवाट खळां भड़ मारणा है, ब्रद ईहग नांम उबारणा है। —क.कु.बो.

उबारणौ, उबारबौ–क्रि०स० [सं० उद्धारक] १ उद्धार करना, छुड़ाना, मुक्त करना। उ०—१ उबारिय आप अगा अमरीख, सेवग्ग कियौ तैं आप सरीख।—ह.र.
२ रक्षा करना। उ०—हुए विलखर विलखर बखौ, आग भुभाय अंगार। पिसण मार सुत पिसण रौ, असमभ लियौ उबार।—बां.दा.

३ शेष रखना, बचाना। उ०—सती बळै जूझै सुभट, करै ग्रंथ कविराज। दाता माया ऊधमै, नांम उबारण काज।—बां.दा.

उबारणहार, हारौ (हारी), उबारणियौ–वि०—उबारने वाला।

उबरणौ, उबरबौ—अ०रू०।

उबारिग्रोड़ौ, उबारियोड़ौ, उबारयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उबारियोड़ौ–भू.का.कृ.—उबारा हुआ। (स्त्री० उबारियोड़ी)

उबारू–वि०—१ रक्षक, बचाने वाला. २ शेष रखने वाला।

उबारौ–सं०पु०—१ बचा हुआ, शेष, अवशिष्ट.

२ खर्च करने पर बचा हुआ सामान. ३ रक्षा, सहायता।

उबाळ–सं०पु०—१ जोश. २ उफान, उबलने का भाव।

उबाळणौ, उबाळबौ–क्रि०स०—१ आंच देकर किसी द्रव पदार्थ को खोलाना. २ जोश देना. ३ पसीजना। उ०—तउ पती न उबाळहौ। नीहंचइ सखी। ओळिग जाईणहार।—वी.दे.

उबाळणहार, हारौ (हारी), उबाळणियौ–वि०—उबालने वाला।

उबळणौ, उबळबौ—क्रि०अ०।

उबाळिग्रोड़ौ, उबाळियोड़ौ, उबाळयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उबाळियोड़ौ–भू०का०कृ०। उबाला हुआ (स्त्री० उबाळियोड़ी)

उबासी–सं०स्त्री०—मुंह के खुलने की एक स्वाभाविक क्रिया जो निद्रा या आलस्य के कारण प्रतीत होती है, जंभाई।

क्रि०प्र०—आणी, खाणी, लेणी।

उबाहणौ, उबाहबौ–क्रि०स०—१ ऊपर उठाना, प्रहार हेतु शस्त्र उठाना. २ पानी फेंकना, उलीचना. ३ उभरना।

उबाहणहार, हारौ (हारी), उबाहणियौ—वि०।

उबे–वि० [सं० उभय] दोनों, उभय।

उबेड़–सं०पु० [सं० उद्बेल्लनम्] कुये के पानी का उठाव, पानी का गहरापन।

उबेड़णौ, उबेड़बौ–क्रि०स०—१ उन्मूलन करना, उखाड़ना. २ सिले हुए कपड़े के टांके उखेलना. ३ तोड़ना. ४ चीरना।

उबेड़णहार, हारौ (हारी), उबेड़णियौ—वि०।

उबेड़िग्रोड़ौ, उबेड़ियोड़ौ, उबेड़योड़ौ—भू०का०कृ०।

उबेड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उखाड़ा या उन्मूलन किया हुआ. २ सिले हुए कपड़े के टांके उखेला हुआ. ३ तोड़ा हुआ. ४ चीरा हुआ। (स्त्री० उबेड़ियोड़ी)

उबेड़ौ–वि०—१ दाहिनी ओर से निकलने वाला (भेड़िया) २ दाहिनी ओर से बोलने वाला (तीतर)

उबेधा–वि०पु०—१ उद्दंड. २ उत्पाती. ३ दुष्ट. ४ असुर।

उबेल–सं०स्त्री०—१ मदद, रक्षा, (रू.भे. देखो 'ऊबेल')

उ०—बीकै दुरंग थापियो वांको, कांटां सरण उबेल करी।
—महाराजा करणसिंह

२ रक्षक, सहायक। उ०—हय हकि बीर आतुर यते, रज डंबर नभ छावियो। 'लावं' उबेल असुरां लड़ण, येम 'अरज्जन' आवियो।
—ला.रा.

उबेलण–सं०स्त्री०—सहायता, मदद (मि० 'उबेल'१)

उबेळणौ, उबेळबौ–क्रि०स०—१ बंटी हुई रस्सी के रेशों को वापस पृथक्-पृथक् करना, खोलना, उधेड़ना. २ मर्यादारहित करना।

उबेळणहार, हारौ (हारी), उबेळणियौ—वि०।

उबेळिग्रोड़ौ, उबेळियोड़ौ, उबेळयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उबेलणौ, उबेलबौ—रक्षा करना। उ०—जिकण नूं बूडतौ देखि पाछै सूं कुमार देवीसिंह जेरबंध काटणौ चींताइ नासादघ्न पांणी में पैसता नूं बाजी समेत उबेलियौ।—वं.भा.

उबेलणहार, हारौ (हारी), उबेलणियौ—वि०।

उबेलिग्रोड़ौ, उबेलियोड़ौ, उबेल्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उबेळयोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उधेड़ा हुआ. २ मर्यादारहित किया हुआ. ३ घेरा हुआ। (स्त्री० उबेळयोड़ी)

उबेल्योड़ौ–भू०का०कृ०—बचाया हुआ, रक्षा किया हुआ।

उबेलू–वि०—मदद करने वाला, सहायता करने वाला। उ०—दोनूं राठोड़ रांग बीर ख्याल खेलू। दोनूं बगरू के लेति माधव का उबेलू।—शि.वं.

सं०स्त्री०—मदद, सहायता। उ०—द्विज भयौ वेळू अजामेळू कांम-केळू बांम ए। जमदूत खेलू काळवेळू कंठमेळू ग्राम ए। सुत हेतहेलू नांमलेलू कर उबेलू सांम ए।—करुणासागर

उबै–वि० [सं० उभय] दो, दोनों।

उबैलौ—देखो 'उबेल'।

उब्बटणौ, उब्बटबौ–क्रि०अ०—१ देखो 'उबटणौ'. २ बिगड़ना, क्रोधित होना।

उब्बटणहार, हारौ (हारी), उब्बटणियौ—वि०।

उब्बटिग्रोड़ौ, उब्बटियोड़ौ, उब्बटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उब्बटियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ बिगड़ा हुआ, क्रोधित. २ देखो 'उबटियोड़ौ'। (स्त्री० उब्बटियोड़ी)

उभै–वि०—उभय, दोनों।

उभई–वि० [सं० उभय] दोनों, उभय।

उभड़णौ, उभड़बौ–क्रि०अ०—उभरना, आसपास की सतह से ऊँचा होना, बहकाना।

उभड़णहार, हारौ (हारी), उभड़णियौ—वि०।

उभड़िग्रोड़ौ, उभड़ियोड़ौ, उभड़योड़ौ—भू०का०कृ०।

उभड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—उभरा हुआ। (स्त्री० उभड़ियोड़ी)

उभभत–वि० [सं० अद्भुत] विचित्र। उ०—बीजळ हरा जतै यर बहिया, अजड़ां मांडे जेण तथ। पळ वरसंतै ग्रीध पोहंती, भाकर राता उभभत।—राव सुरतांण सिरोही री गीत

उभय–वि० [सं०] दो, दोनों। उ०—गुण गंध ग्रहित गिळि गरळ ऊगळित, पवण वाद ए उभय पख।—वेलि.

उभयवादी–वि० [सं०] वह जो स्वर और ताल दोनों का बोध कराने वाला वाद्य यथा वीणा।

उभयविपुळा–सं०स्त्री० [सं० उभयविपुला] आर्य्या छंद का वह भेद जिसके दोनों दलों के प्रथम तीन गणों में पाद पूर्ण नहीं होते।

उभरण, उभरांणौ–वि०—नंगे पैर वाला। उ०—समरण उवरण चरण घण सियपत बहत चरण उभरण बनवाट।—र.रू.

उभांखरौ–वि०—घुमक्कड़, भ्रमणशील। उ०—पहिरण-ओढ़ण कंबळा, साठे पुरिसे नीर। आपण लोक उभांखरा, गाडर-छाळी खीर। —ढो.मा.

उभांणौ, उभांणौ–वि० [सं० अनुपानह, प्रा० अणुवाण] (स्त्री० उभांणी) नंगे (पैर) उ०—फाटी तौ फूलड़ियां पांव उभांणे, चलतैं चरण घसै।—मीरां

उभांबरौ–वि०—ओजस्वी, वीर, तेजस्वी।

उभाड़–सं०पु० [सं० उद्भिदन] १ उठान, ऊँचाई. २ ओज।

उभाड़णौ, उभाड़बौ–क्रि०स०—१ उत्तेजित करना. २ उभारना। देखो 'उभारणौ'।

उभाड़दार–वि०—भड़कीला, उभरा हुआ।

उभार–सं०पु०—उभाड़, उठान।

उभारणौ, उभारबौ–क्रि०स०—१ भारी वस्तु को धीरे-धीरे ऊपर उठाना. २ (तलवार आदि शस्त्र) उठाना। उ०—दक्खण सूं आयौ फतौ, साहजादौ पहुंचाय। काळै सार उभारियां, चाळै लग्गौ आय।—रा रू. ३ उकसाना, उत्तेजित करना. ४ बचाना, रक्षा करना (रू.भे. उबारणौ) ५ (मूंछों पर) ताव देना। उ०—राजड़ कहै प्रलाप रौ, भड़ क्यौं सहै अमग्ग। मूंछ उभारै हत्थ सूं, जौ कर धारै खग्ग।—रा.रू. ६ उठाये हुए रखना। उ०—इसा सवेगा ऊठिया, मनु असमांन उभारे।—पदमसिंह री बात

उभारणहार, हारौ (हारी), उभारणियौ—वि०।

उभारिओड़ौ, उभारियोड़ौ, उभारयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उभारियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उठाया हुआ. २ उकसाया हुआ, उत्तेजित. ३ बचाया हुआ, रक्षा किया हुआ. ताव दिया हुआ। (स्त्री० उभारियोड़ी)

उभीकील–सं०स्त्री०—जमीन में खड़ी सीधी जड़, मूसला जड़। उ०—पीनणी अर पळूंड ऊंळी किरू किवाड़ां। ऊभीकील उखाड़ भेरणा जबर जुवाड़ा।— दसदेव

उभै–वि० [सं० उभय] उभय, दो, दोनों। उ०—उभै साचा अक्षर कहै रिख सिंभ भज। हरि भज हरि भज हरि भज हरि भज।—र.ज प्र.

उमंग–सं०स्त्री० [सं० उद्+मंग=चलना] १ चित्त का उभाड़, सुखद मनोवेग, उल्लास, उत्साह, जोश। उ०—साहु की बातें सुणें त्यौं-त्यौं उमंग प्रकासै, घिरत का कुंभ सींचै होम ज्यां उजासै।—रा.रू. २ अभिलाषा, इच्छा. ३ आनंद (अ.मा.) ४ रघुनाथरूपक के अनुसार डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सोलह सोलह मात्राएँ होती हैं और चारों तुकों का अंत में दीर्घ वर्ण सहित[illegible]कांत मिलता है. ५ रघुवरजसप्रकास के अनुसार डिंगल का गीत (छंद) विशेष जिसके प्रथम चरण के आदि में सगण गण सहित सोलह मात्राएँ होती हैं और शेष दवालों में अंत में दो दीर्घ वर्ण सहित चौदह चौदह मात्राएँ होती हैं तथा प्रत्येक दवाला के चतुर्थ चरण में वीप्सा लाया जाता है। इसका दूसरा नाम उवंग भी है।

उमंगणौ, उमंगबौ–क्रि०अ०—१ उमंगयुक्त होना, प्रसन्न होना. २ आवेश में आना. ३ उमड़ना। उ०—खळां खोण रंगे वहै खग्ग खग्गे, अकासे घटा आंण माळा उमंगे।—रा.रू.

उमंगणहार, हारौ (हारी), उमंगणियौ—वि०।

उमंगिओड़ौ, उमंगियोड़ौ, उमंग्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उमंगियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उमंगयुक्त, उल्लसित. २ आवेश में आया हुआ. ४ उमड़ा हुआ। (स्त्री० उमंगियोड़ी)

उमंगी–वि०—युवावस्था की तरंग से प्रभावित। उ०—पुमल विधा जोम उमंगी।

उमंडणौ, उमंडबौ–क्रि०अ०—१ उमड़ना, पानी आदि का ऊपर उठना. २ खौलना. ३ आवेश में आना. ४ बढ़ना, उभड़ना. ५ घटायें छाना।

उमंडणहार, हारौ (हारी), उमंडणियौ—वि०।

उमंडिओड़ौ, उमंडियोड़ौ, उमंड्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उमंडियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उमड़ा हुआ, पानी आदि का ऊपर उठा हुआ. २ खौला हुआ. ३ आवेश में आया हुआ. ४ बढ़ा हुआ. ५ घन-घटाओं से आच्छादित। (स्त्री० उमंडियोड़ी)

उमंत–वि० [सं० मत्त] मत्त, मदोन्मत्त, मदमस्त। उ०—मुखै बांधि खोलै किता रोस मत्ता, अनेके अने जोस दाखै उमंता।—रा.रू.

उमंदा–वि० [फा० उम्दा] अच्छा, बढ़िया।

उमगणौ, उमगबौ–क्रि०अ०—१ उमड़ना. २ उभड़ना. ३ भर कर ऊपर उठना. ४ उमंगयुक्त होना। उ०—सादर सांई नी आदर उमगाई, उडती परियां सी बरियां घर आई।—ऊ.का.

उ०—१ उमगे दांन ऊधमैं आचां रांम रांम मुखहूंत रटै।—र.रू.

२ सांवण में उमग्यौ मेरौ मनवा भणक सुणी हरि आवण की।—मीरां

उमगणहार, हारौ (हारी), उमगणियौ—वि०।

उमगिओड़ौ, उमगियोड़ौ, उमग्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उमगाणौ, उमगाबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०)—१ उमड़ाना. २ उभड़ाना. ३ भर कर ऊपर उठाना ४ उमंगयुक्त करना।

उमगाणहार, हारौ (हारी), उमगाणियौ—वि०।

उमगायोड़ौ—भू०का०कृ० (रू.भे. उमगावणौ)

क्रि०अ०—उमंगयुक्त होना, प्रसन्न होना। उ०—माता रा कुच हूंत मुख, लड़की हरख लगात। मूरख कांन लगाड़ मुख, एम युगल उमगात। —बां.दा.

उमगायोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उमड़ाया हुआ. २ उभाड़ा हुआ, उत्तेजित. ३ उमंगयुक्त किया हुआ। (स्त्री० उमगायोड़ी)

उमगावणौ, उमगावबौ–देखो 'उमगाणौ'।

उमगियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ उमड़ा हुआ. २ उभड़ा हुआ. ३ उमंगयुक्त। (स्त्री० उमगियोड़ी)

उमड़-सं०स्त्री०—१ बाढ़, बढ़ाव. २ भराव. ३ घिराव, धावा।

उमड़णौ, उमड़बौ-क्रि०अ०—१ द्रव पदार्थ का आधिक्य के कारण ऊपर उठना, उतरा कर बह चलना. २ उठ कर फैलना, छाना. उ०—अंबर में उमड़ी घटा, आभे अटकी आंख—बादळी। ३ घेरना. ४ आवेश में आना, जोश में होना।

उमड़णहार, हारौ (हारी), **उमड़णियौ**-वि०—उमड़ने वाला।

उमड़िओड़ौ, उमड़ियोड़ौ, उमड़चोड़ौ—भू०का०कृ०।

उमड़ियोड़ौ-भू०का०कृ०—उमड़ा हुआ। (स्त्री० उमड़ियोड़ी)

उमटणौ, उमटबौ-क्रि०अ०—उमड़ना। देखो 'ऊमटणौ, ऊमटबौ'। उ०—काळी अे काळायण उमटी अे पणिहारी अेलौ।—लो.गी.

उमणौ-वि०—उदासीन, खिन्न चित्त। उ०—आज दांन उमणौ, आज सरसत दुचती।—पहाड़ खां आढ़ौ

उमत-सं०स्त्री० [अ० उम्मत] १ किसी धर्म के विशेषत: पैगम्बर धर्म के समस्त अनुयायी. २ धर्म विशेष के अनुयायी। उ०—मोह सराब खराब है, छत उमत छाकी।—केसोदास गाडण

उमदगी-सं०स्त्री०—अच्छापन, खूबी।

उमदा-वि० [फा० उम्दा] उमदा, श्रेष्ठ, बढ़िया, अच्छा। सं०पु०—ऊँट (ना.डि.को.)

उमम-सं०स्त्री०—उमंग, उत्साह। उ०—आया पौढ़ी उमम घटा अद सोह घणीड़ै।—अज्ञात

उमया-सं०स्त्री० [सं० उमा] पार्वती, गौरी। उ०—उमया ईस उभै आहुड़िया 'किसनावती' तणै सिर काज।—गोरधन बोगसौ

उमयाइस्ट, उमयाबर-सं०पु० [सं० उमा+इष्ट] शिव, उमापति (अ.मा.)

उमर-सं०स्त्री० [अ० उम्र] १ अवस्था, वय, आयु। पर्याय०—आव, आवड़दा, आवरदा, आयुस, आयू, ऊमर। कहा०—उमर रा दिन ओछा करै—व्यर्थ में आयु गँवाता है। (अल्पार्थ—उमरड़ी) उ०—बता किम वरणूं वर्स आज, उमरड़ी भोळी तणौ सुहाग। २ एक प्रकार का वृक्ष विशेष। —सांझ

उमरांणौ-सं०पु०—ऊमरकोट का एक नाम। उ०—सेरसाह दिल्ली तखत, बैठौ बळ निज बाह। उमरांणै जद आवियौ, सरण हमाऊ साह।—बां.दा.

उमराव-सं०पु० [अ० अमीर का बहुवचन] १ सरदार. २ रईस., प्रतिष्ठित लोग। उ०—नन्हा मिनख नजीक, उमरावां आदर नहीं। ठाकर जिण नै ठीक, रण में पड़सी राजिया।—किरपारांम

उमरौ-सं०पु०—देखो 'उमराव'। उ०—अमे राठौड़ राजा तणा उमरा, जुड़ेवा पारकी छठी आगां।—अमरसिंह री बात

उमली-वि०—अफीमची। देखो 'अमली'।

उमस-सं०स्त्री०—१ उष्णता, गर्मी. २ वर्षा के पूर्व की वर्षासूचक गर्मी।

उमा-सं०स्त्री०—पार्वती (डि.को.) २ दुर्गा (अ.मा.) ३ अलसी (डि.को.)

उमाकवर, उमाकुमार-सं०पु० [सं० उमा+कुमार] १ कार्तिकेय (डि.को. २ गणेश (डि.को, अ.मा.)

उमागुरु-सं०पु० [सं०] हिमाचल पर्वत।

उमादे-सं०स्त्री०—एक मारवाड़ी लोक गीत।

उमाधव, उमापत, उमापति-सं०पु० [सं० उमा+पति उमा+धव] महादेव।

उमायौ-वि०—१ उत्कट अभिलाषा वाला, उमंगयुक्त. २ रुका हुआ।

उमाव-सं०पु० [सं०] उत्साह, उमंग (डि.को.) २ आवेश, जोश।

उमावड़ौ-सं०पु०—किसी की स्मृति में दुखी या उदासीन होने का भाव.

उमावर-सं०पु० [सं० उमा+वर] शिव, महादेव (क.कु.बो.)

उमावौ-सं०पु०—१ उत्साह, उमंग। उ०—स्यांम मिलण रौ घणौ उमावौ, नित उठ जोऊँ बाटड़ियां।—मीरां

उमास-सं०स्त्री० —उमंग। उ०—भड़क्कै दुआसां सेल तमासा संपेखै भांण। अच्छरां हुलासां हास नारदां उआस।
—राजा रायसिंह झाला री गीत

उमाह, उमाहउ-सं०पु० [सं० उत्साह] १ उत्साह, जोश, उमंग, उल्लास (डि.को.) उ०—ज झ बांत्रदि आखर जिके, आंणै सुकवि उमाह। ताहि मंझ कवि कहत हैं, न्यून मित्र निरनाह।—र.रू. २ याद, स्मरण (डि.को.) उ०—आज उमाहउ मो घणउ, ना जांणूं किव केण। पुरुख परायउ वीर वड, अहर फुरक्कइ केण।—ढो.मा.

उमाहड़, उमाहड़ौ-वि०—१ महत्वाकांक्षी. २ उत्सुक। उ०—पातसाही कटक मांहे घोड़ौ उपाड़ नांखियौ, कांनड़दे उमाहड़े मोहल बैठा देखै छै।—नैणसी

उमाहणौ, उमाहबौ, उमाहियणौ, उमाहियबौ-क्रि०अ०—१ उत्साहित होना। उ०—सूझ बोल नृपां मांह, ठीक आप रखे ठांह। आलमां कहे उमाह, वाह वाह वाह।—र.रू. २ उमंग से भरना, उमंगयुक्त होना। उ०—फागण मास सुहामणउ, फाग रमइ नव वेस। मो मन खरउ उमाहियउ, देखण पूगळ देस।—ढो.मा.

उमाहणहार, हारौ (हारी), **उमाहणियौ**-वि०—उत्साहित होने वाला, उमंग से भरने वाला।

उमाहिओड़ौ, उमाहियोड़ौ, उमाह्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उमाहियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ उत्साहयुक्त. २ अति उत्सुक, उत्कंठित।

उमाहौ-सं०पु०—१ उमंग. २ उत्साह. ३ अभिलाषा। वि०—१ उमंगयुक्त. २ उत्साह वाला।

उमियां-सं०स्त्री० [सं० उमा] उमा, पार्वती। देखो 'उमा'। उ०—तूं हमीर सारिसौ त्यागी, वर उमिया दीधौ सुबर।
—हरिदास केसरियौ

उमियापत, उमियापति, उमियावर–सं०पु० [सं० उमा+पति] महादेव, शिव ।

उमिरायत–सं०स्त्री० [अ० अमीर] १ रईसी, धनवानपन. २ उदारता. ३ नजाकत ।

उमीर–सं०पु० [अ० अमीर] १ अमीर, कार्याधिकार रखने वाला, सरदार । उ०—येम किलौ धारे सहद्, मारे किते उमीर ।—ला.रा. २ धनाढ्य. ३ उदार व्यक्ति. ४ नाजुक व्यक्ति ।

उमीरी–सं०स्त्री०—१ अमीर होने का भाव, धनाढ्यता, ठकुराई । उ०—उमीरी फकीरी बड़े एक आंटे, खुदा ने दई है किसी के न बांटे ।—ला.रा. २ उदारता. ३ नजाकतता ।

उमेद–सं०स्त्री० [फा० उम्मीद] आशा, भरोसा, आसरा ।

सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

उमेदवार–सं०पु० [फा० उम्मेदवार] १ वह व्यक्ति जो कोई काम सीखने या नौकरी पाने का प्रार्थी हो. २ वह व्यक्ति जो किसी पद पर चुने जाने के लिए खड़ा हो. ३ किसी परीक्षा में बैठने के लिए प्रार्थना-पत्र भेजने वाला प्रार्थी. ४ आशा या भरोसा रखने वाला. ५ एक प्रकार के रङ्ग विशेष का घोड़ा (शा.हो.)

उमेदवारी–सं०स्त्री० [फा०] उम्मीदवार होने का भाव ।

उमेस–सं०पु० [सं० उमा+ईश] १ शिव, महादेव. २ गुमान, गर्व, घमंड ।

उम्दा–वि०—देखो 'उमदा' ।

उम्मया–सं०स्त्री०—देखो 'उमा' । उ०—देवी उम्मया खम्मया ईस नारी ।—देवि.

उम्मयावर–सं०पु० [सं० उमा+वर] शिव, महादेव ।

उम्मर–सं०स्त्री०—देखो 'उमर' ।

उम्मी–सं०स्त्री० [सं० उम्बी] गेहूं या जौ के पौधे की कच्ची बाल जिसमें हरे दाने होते हैं ।

उम्मीद, उम्मेद–सं०स्त्री० [फा०] आशा, भरोसा, आसरा ।

उम्मेदवार–सं०पु०—देखो 'उमेदवार' । उ०—आदाब अरज्ज उम्मेदवार । परवरिसि करहु परवरदिगार ।—ऊ.का.

उम्मेदवारी–सं०पु०—देखो 'उमेदवारी' ।

उम्र–सं०स्त्री०—देखो 'उमर' (१)

उम्हाणौ, उम्हाबौ–क्रि०स०—१ उत्साहित करना. २ उमंगयुक्त करना, प्रसन्न करना । उ०—यौं मन फुल्ली मैंनका, यौं भ्रमर उम्हाया ।—वं.भा. देखो 'उमाहणौ, उमाहबौ'

उयबर–सं०पु०—तकिया (अ.मा.)

उयां–सर्व०—उन ।

उयै–सर्व०—इस । उ०—उयै दिसरां रै हू मारूं रू ।—चौबोली

उरंग–सं०पु० [सं० उरग] १ सर्प, सांप । उ०—कुरंग उरंग राता किए कारण, हाड बाजतै नाद हर ।—उडणा प्रथीराज री गीत २ स्तन, कुच (अ.मा.)

उरंगम–सं०पु०—सर्प, सांप ।

उर–सं०पु० [सं० उरस्] १ वक्षःस्थल, छाती (डिं.को.) २ हृदय, मन । उ०—मर मर घर घर नह फिरे, उर धर गिरधर नांम ।—ह.र.

उरक, उरख–सं०पु०—देखो 'वरक' (अमरत)

उरग–सं०पु० [सं०] सर्प, सांप (डिं.को.) उ०—विख मुख जास बसंत, मीठा बोलां हंस मरै । उरग तणौ कर अंत, मोर प्रकासै एह मत ।—बां.दा.

उरगाद–सं०पु०—गरुड़ ।

उरगाधीप–सं०पु० [सं० उरग+अधिप] शेषनाग ।

उरगारि–सं०पु० [सं० उरग+अरि] गरुड़ ।

उरगिणी–सं०स्त्री० [सं०] सर्पिणी, नागिन ।

उरड़–सं०स्त्री०—१ युद्ध, लड़ाई । उ०—उरड़ माचै पहल सूरज ऊगै, सायजादौ पनौ खड़ै घोड़ा सहल ।—महादांन महड़ू २ आक्रमण, टक्कर । उ०—आठ ही नगाराबंध हेकण उरड़, हीक धर ले गयौ बिया 'हामू' ।—रावत जसवंतसिंह चूंडावत री गीत ३ पराक्रम, साहस । उ०—उचजी कुंभथळ थाप जड़की उरड़, तुरत कर एकसूं बजी ताळी ।—बां.दा. ४ जोश, आवेग । उ०—उरड़ आखरां थाट घण लाट अरथां उकत ।—क.कु.बो. ५ उमंग । उ०—१ आवै चित जिण नै आदरतौ, अत रीझां देतां उरड़ । 'वीरम' तणा जसौ इण वारै, भेक उतारै किसौ भड़ ।

—सगतौजी सौदो

उ०—२ मिटै गांन गंद्रप, तांन स्रवणां रस तंताह, मिटै दांन सुन-मांन, उरड़ रीझां आडंबरह ।—पहाड़ खां आढ़ौ

६ जबरदस्ती धँसने की क्रिया का भाव । उ०—विहद रावरा दुरंद सुसबद दुरद बादळा, उरड़ मदमसत विरदां उजाळा ।—क.कु.बो. (मि० 'उरड़णौ, उरड़बौ') ७ ध्वनि विशेष । उ०—घड़ां गैघड़ां उरड़ वाज तोपां घड़क । केमरां सोक झड़ किलम कावां ।—अज्ञात ८ निर्भीकता, निडरता । उ०—बीरां दरबार री, उरड़ दीठां बण आवै । नरनाहर नरनाह, सुभड़ नाहर वरमावै ।—मे.म. ९ उत्कट इच्छा । उ०—रागां भागी रीझ, उरड़ भागी आसां री, असवारी भग आब, तेज भागी तासां री ।—बुधजी आसियौ १० शक्ति, बल । उ०—धकायौ रांण हूं मळण बण करड़धज, भड़ां हड़वड़ उरड़ धाव भाळी । मिट गई किसनगढ़ नाथ वाळी मुरड़, उरड़ लख साहिपुर नाथ आळी ।

वि०—अधिक, बहुत । —अमरसिंह सीसोदिया री गीत

उरड़णौ, उरड़बौ–क्रि०अ०—१ आगे बढ़ना । उ०—उरड़ सेन असपती पड़े झड़ सार अपारां, धड़ धारां ऊधड़ै, सेल व्हा वार प्रहारां ।

—रा.रू.

२ जोश से उमड़ना । उ०—१ सांमी इणी उरड़ियां सांमा, फौजां निरख न कीन्हा फेर ।—द.दा. उ०—२ अटक सूं लियां हिंदवांण

आयौ उरड़, मुरड़ पतसाह बीकांण मारू ।—देदौ. ३ साहस करना ।
उ०—उरड़ जाता वडा करेवा गरदवां, अभै पद वसै वे राज री ओट ।
—महाराजा मांनसिंह रौ गीत

उरड़णहार, हारौ (हारी), उरड़णियौ—वि० ।

उरड़िओड़ौ, उरड़ियोड़ौ, उरड़योड़ौ—भू०का०कृ० ।

उरड़ाउरड़–सं०स्त्री०—धींगा-धींगी, जबरदस्ती ।

उरड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ आगे बढ़ा हुआ. २ जोश से उमड़ा हुआ. ३ जबरदस्ती धँसा हुआ । (स्त्री० उरड़ियोड़ी)

उरड़ौ–सं०पु०—१ जबरदस्ती धँसने का भाव ।
वि०—जबरदस्ती धँसनेवाला ।

उरज–सं०पु० [सं० उरोज] १ स्तन, उरोज, कुच (अ.मा., डिं.को.)
उ०—करग मसळै उरज तोड़ै अंगियां कसां ।—बां.दा.
[सं० ऊर्ज] २ कार्तिक मास । उ०—उगणीसै बावन उरज, आठम कविबद ईस, चार बज्यां जसवंत चल्यौ, पूरा मिंट पैंतीस ।
—ऊ.का.

उरजन–सं०पु० [सं० अर्जुन] देखो 'अरजुन' (रू.भे.)

उरजमोत–सं०पु०—भाटी वंश की एक शाखा ।

उरजस–सं०पु० [सं० उर्जस्] १ अवसर, मौका (डिं.को.)
२ समर्थ, शक्तिशाली (वं.भा.)

उरण–सं०पु० [सं०] १ भेड़ा, मेंढ़ा. २ यूरेनस नामक ग्रह.
३ भेड़ के बाल, ऊन ।
वि० [सं० उऋण] ऋण से मुक्त, मुक्त, छुटकारा ।

उरणकी–सं०स्त्री०—छोटी भेड़, भेड़ (अल्पा०)

उरणियौ–सं०पु०—भेड़ का छोटा बच्चा, मेमना (अल्पा०) (क्षेत्रिय)

उरतळ–सं०पु० [सं० उर+तल] १ वक्ष:स्थल के नीचे का भाग ।
उ०—उरतळ बैरी आहणै, बिरचै बयण निबाह । हौदां ऊपर हंस गो, वारी बालम वाह ।—वी.म. २ स्तन ।

उरद–सं०पु० देखो 'उड़द' ।

उरदुत–सं०पु० [सं० उरोद्युति] स्तन (अ.मा.)

उरदू–सं०स्त्री० (तु० उर्दू) देखो 'उड़दू' ।

उरद्ध–सं०पु० [सं० उर्ध्व] १ बहुत उन्नत, ऊंचा । उ०—दिन जुध अत लग्गौ दुसह, अर भग्गौ निस अद्ध । ऊगे दिन चढ़ियौ अजौ, अड़ियौ कोप उरद्ध ।—रा.रू. २ आकाश । उ०—अति वेध विरुद्धां परस उरद्धां, किलंब दगंधां अधुकंदां ।—रा.रू.

उरद्धर–सं०पु० [सं० उर] हृदय, दिल । उ०—माग मुरद्धर देस रौ, लियौ उरद्धर ज्यास । घाट अनेकन संचरे, एक प्रभू री आस ।—र.रू.

उरद्धलोक–सं०पु०—देखो 'उरधलोक' (रू.भे.)

उरध–वि० [सं० ऊर्ध] १ ऊँचा (रू.भे. उरध) उ०—केई करभ महिस अज नर कितेक । अध उरध उठै झाळां अनेक ।—पा.प्र.
सं०पु०—आकाश, आसमान । उ०—पळ मास उरध ढक गिरध पंख, सर तीर पूर रव नर असंख ।—रा.रू.
क्रि०वि०—ऊपर । उ०—उरध अंबर उद्धरण वेद ब्रह्मा गावाळण दळ दांणव निरदळण अब्ब रांमण चौ गाळण ।—जग्गौ खिड़ियौ

उरधओक–सं०पु० [सं० उर्ध्व+ओक] अट्टालिका (अ.मा.)

उरधगत–सं०स्त्री०—१ उर्ध्व गति. २ स्वर्ग (अ.मा.) देखो 'ऊरधगति' ।
वि०—ऊँचा । उ०—मिळै सिंह बन मांहि, किण मिरगां अग-पत कियौ । जोरावर अति जाह, रहै उरधगत राजिया ।—किरपारांम

उरधगांमी–वि०—उर्ध्वगामी (अमरत)

उरधपिंड–सं०पु०—इन्द्र (अ.मा.)

उरधपुंड–सं०पु०—वैरागियों द्वारा सिर पर सफेद मिट्टी का लगाया जाने वाला खड़ा तिलक ।

उरधबाहू–सं०पु०—ऊँची भुजायें कर तपस्या करने वाला संन्यासी ।
उ०—मांहे जोगेसर पवन रा साझणहार त्रिकुटी रा चडावणहार धूम्रपांन रा करणहार उरधबाहू ठाठेसरी दिगंबर सेतंबर निरंजनी आकास मुनी ।—रा.सा.सं.

उरधमूळ–सं०पु० [सं० उर्ध्व+मूल] शिर (अ.मा.)

उरधरेख–सं०स्त्री० [सं० उर्ध्व+रेखा] देखो 'उड़दरेख' ।

उरधलिंग–सं०पु० [सं० उर्ध्व+लिंग] शिव, महादेव (अ.मा.)

उरधलोक–सं०पु० [सं० उर्ध्व+लोक] स्वर्ग, देवलोक (नां.मा.)

उरधसास–सं०पु० [सं० उर्ध्व+श्वास] ऊपर को चढ़ती हुई साँस ।

उरध्यांनी–सं०पु० [सं० उरो+ध्यानी] ऋषि (अ.मा.)

उरन–सं०स्त्री० [सं० उरण] ऊन । उ०—जगत मात जनमी जग जानी, मदिरा रुधिर छाक मनमानी । वेस्टित अरुन उरन के अंबर, तप मुख मनहु प्रात रातंबर ।—मे.म.

उरनेम–सं०स्त्री०—सती (अ.मा.)

उरप–सं०पु० [सं० उडुप] एक प्रकार का नृत्य विशेष (गोलाकार नृत्य)
उ०—आंगणि जळ तिरप उरप अलि पिअति, मरुत चक्र किरि लियत मरू ।—वेलि.

उरफ–सं०पु० [अ० उर्फ] चलता नाम, पुकारने का नाम ।

उरबरा–सं०स्त्री० [सं० उर्वरा] १ उपजाऊ भूमि (डिं.को.)
२ पृथ्वी. ३ एक अप्सरा ।

उरबसी–सं०स्त्री० [सं० उर्वशी] १ नारायण की जंघा से उत्पन्न, एक अप्सरा जिसे देख कर नर नारायण का तपोभंग करने वाली इन्द्र की अप्सरायें लौट गई थीं. २ अप्सरा (डिं.को.)

उरबाणौ–वि०—नंगे (पैर) उ०—जळ गजराज डूबतो जांणे, आया किसन पगे उरबांणे ।—र.रू.

उरबी–सं०स्त्री० [सं० उर्वी] भूमि, पृथ्वी (नां.मा., डिं.नां.मा.)

उरब्बसी–सं०स्त्री० [सं० उर्वशी] १ देखो 'उरबसी' (१)
२ अप्सरा (डिं.नां.मा.)

उरव्विय–सं०स्त्री० [सं० उर्वी] पृथ्वी, भूमि (रू.भे. उरबी)
उ०—डुली मनि मत्थ फनी फन चंपि, उरव्विय ताम थरत्थर कंपि ।
—ला.रा.

उरभांणौ–वि०—देखो 'उरबांणौ'।

उरमंडण, उरमंडन–सं०पु० [सं० उरोमंडन] स्तन (ह.नां.)

उरमळ–सं०पु०—अज्ञान। उ०—गाफिल जागी अभागन सोई, सास उसासे उरमळ धोई।—ह.पु.वा.

उरमळा–सं०स्त्री० [सं० उर्मिला] सीताजी की छोटी बहिन जो लक्ष्मण को ब्याही थी, सीरध्वज जनक की पुत्री।

उरमांडण–सं०पु०—उरोज, कुच, स्तन (डि.को.)

उरमिळा–सं०स्त्री० [सं० उर्मिला] देखो 'उरमला'।

उरळउ–वि०—१ उदार। उ०—अचपळउ अउब उरळउ उदधि, जांणइ जु पइसि नीसरिय जुद्धि।—रा.ज.सी. २ विशाल, विस्तीर्ण। ३ हल्का, शांत। उ०—बाबा बाळूं देसड़उ, जिहां डूंगर नहिं कोइ। तिणि चढ़ि सूकउं धाहड़ी, हीयउ उरळउ होइ।—ढो.मा.

उरळांण–सं०स्त्री०—१ अधिकता, विस्तृतता. २ खुला मैदान।

उरळाई–सं०स्त्री०—१ अवकाश, फुरसत। उ०—महाराज नूं उरळाई हुई तद हलकारां नूं पूछी।—पदमसिंह री बात। देखो–'उरळांण'

उरळी–वि०स्त्री०—देखो 'उरळौ' (पु०)

क्रि०वि०—इस तरफ की, इस ओर की।

कहा०—उरळी खुदा है—इस ओर पास में ही ईश्वर है, किसी सज्जन एवं उदार व्यक्ति के लिए।

सं०स्त्री०—हल के बीच के डंडे (हरिसा) के पीछे के छोर पर लगाई जाने वाली कीली।

उरलै-परलै–क्रि०वि०—इधर-उधर। उ०—बांटी जजमांन उरलै-परलै बाई के ओज्या चानिया जी।—लो.गी.

उरळो, उरळौ–वि०पु० (स्त्री० उरली) चौड़ा, खुला।

मुहा०—उरळौ होणौ—रोने के बाद हृदय को कुछ शांति मिलना।

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।

सं०पु०—१ ढील देने का भाव। उ०—करहां ठुह फींण बंधै कुरळा। अस ढीलिय पंथ किया उरळा।—पा.प्र. २ छितराने की क्रिया या भाव। उ०—दुहुं हाथां सूं केस पास जु उरळा करि धूप देवै छै। —वेलि. टी.

क्रि०वि०—१ इधर का. २ नजदीक।

उरवड़–सं०स्त्री०—१ सन्नद्ध होने की क्रिया या भाव। उ०—हुअत बंका भड़ां उरवड़ हलोहल। कसे किण ऊपरै वीर सांगौ कंगळ।—अज्ञात २ देखो—'उरव्वड़'।

उरवर, उरवरा–सं०स्त्री० [सं० उर्वर] १ उपजाऊ (भूमि) २ पृथ्वी।

उरवसियौ–सं०पु०—हृदयेश्वर, प्रेमी, पति। उ०—प्यारा थांसूं पलक ही, बांछूं नहीं वियोग। उरवसिया मुहि आवज्यो, रसिया थांरो रोग।—ऊ.का.

उरवसी–सं०स्त्री०—देखो 'उरवसी' (अ.मा.)

उरवांणौ–वि०—देखो 'उरबांणौ'।

उरवि–सं०स्त्री० [सं० उर्वी] देखो 'उरवी' (रू.भे.)

उरविज–सं०पु० [सं० उर्वीज] मंगल ग्रह।

उरवी–सं०स्त्री० [सं० उर्वी] पृथ्वी (अ.मा.)

उरवीजा–सं०स्त्री० [सं० उर्वीजा] सीता, जानकी जिसके विषय में कहा जाता है कि वह पृथ्वी से उत्पन्न हुई थी।

उरव्वड़–सं०स्त्री०—पशु समूह या सेना के तेज चलने पर होने वाली ध्वनि।

उरव्वड़णौ उरव्वड़बौ–क्रि०अ०—१ एक साथ भगना या घुसना। उ०—यम आवत जींद उरव्वड़ियं।—पा.प्र.

२ शीघ्र चलना. ३ आक्रमण करना ४ तड़फड़ाना।

उरव्वड़णहार, हारौ (हारी), उरव्वड़णियौ—वि०।

उरव्वड़िग्रोड़ौ, उरव्वड़ियोड़ौ, उरव्वड़्योड़ौ -भू०का०कृ०।

उरव्वड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ एक साथ भगा हुआ. २ आक्रमण किया हुआ. ३ तड़फड़ाया हुआ. ४ सन्नद्ध. (स्त्री० उरव्वड़ियोड़ी)

उरस–वि० [सं० उदरस] फीका, नीरस।

सं०पु०—१ आकाश. २ स्वर्ग। उ०—वरण कजि अपछरा बाट जोवै खड़ी। ज्यां भड़ां तणी भिल्लै उरसां भूंपड़ी।—हा.भा.

२ छाती, वक्षःस्थल, हृदय (डि.को.) ३ राक्षस, असुर [अ० उर्स ४ मुसलमान साधु या पीर आदि की निर्वाण तिथि या इस तिथि पर होने वाला उत्सव।

उरसथळी–सं०स्त्री० [सं० उर+स्थल+ई] वक्षःस्थल, सीना। उ०—ऊंचा ऊससिया अदभुत उरज उरसथळी।—र.हमीर

उरसरीतेग–सं०पु० [सं० उरस=आकाश+री=की तेग=तलवार] १ श्रेष्ठ, बहादुर, साहसी। उ०—जुड़े मुसायब 'मांन' नृप किया हेकण जमे, भे पड़ै अनेकां काळ केकां भमै। सरण सीची मरण जांण आतां समै, उरसरीतेग भाटी रसण आंगमै।—जसर्जा आढ़ौ २ रक्षक।

उरसाळ, उरसाळौ–वि० [सं० उरशल्य] हृदय में शूल की तरह चुभने वाला उरशल्य। उ०—भुज भळ हळ भाळोह। खग जळ हळ खांधां खवै। वीमोतर वाळोह, दोयण उरसाळौ दुलह।—पा.प्र.

उरस्थळ, उरस्थळि–सं०पु० [सं० उर+स्थल] १ वक्षःस्थल। उ०—१ अरोपित हार घणौ थियौ अंतर उरस्थळ कुम्भस्थळ आज।—वेलि.

उ०—२ हस्ती के कुम्भस्थळि अर रुकमणीजी कै उरस्थळि। तिसौ ही मोत्यां कौ हार रुक्मणीजी का कंठ कै विषै छै। —वेलि. टी.

२ कुच, स्तन। उ०—इण भांति री कांमणी त्यांरा उरस्थळ नारंगियां सारीखी अंणहार पाके वरन कोमळ कठोर।—रा.सा.सं.

उरहांणौ–सं०पु०—१ उलाहना, उपालंभ. २ देखो 'उरबांणौ'।

क्रि०वि०—इधर।

उरांणौ–वि०—नंगे (पैर)

उरा–क्रि०वि०—इधर की ओर। उ०—पह फाटिय लेसांय वित्तपरा।

अज 'पाल' है बाहड़मेर उरा।—पा.प्र.

वि०—थोड़ा, कम।

सं०स्त्री० [सं० उर्वी] पृथ्वी।

उराट—सं०पु०—१ हृदय. २ छाती, वक्षःस्थल (डिं.को.)

उराळ—सं०पु० [सं० उर+रा० प्र० आळ] उर, हृदय, वक्षःस्थल।

उरासेव—सं०पु०—पाश, बंधन (रा.रा.)

उराह—सं०पु०—काली पिंडलियों वाला श्वेत घोड़ा (डिं.को.)

उराहौ—सं०पु०—पाश, बंधन।

उरि—सं०पु० [सं० उर] १ उर, हृदय, मन। उ०—जग पवन विना तर पत्र ज्यों थिरि जुबान पण थप्पियौ, उरि तावि सही असपत्ति री पाछौ ज्याब न अप्पियौ।—रा.रू. [सं० अरि] २ शत्रु।

उ०—गढ़ां अगंजां गंजणा भिड़ भंजणा अभंग, हैमर उरि घर हक्किया बेऊं थाट बरंग।—महाराजा करणसिंह रौ गीत

उरिया—क्रि०वि०—इस तरफ, इस ओर।

उरी—सं०पु० [सं० उरस्] उर, हृदय। उ०—मरण जीवन छै पगतळइं। कनक कचोळी उरी भयौ भार।—वी.दे.

उरीस—सं०पु० [सं० उरस्] हृदय।

उरु—वि० [सं०] १ विस्तीर्ण, विशाल. २ बड़ा।

सं०पु० [सं उरु] जाँघ, जंघा।

उरुत्र—सं०पु० [सं०] घुटनों का कवच। उ०—सबाहुत्र उरुत्र जंघात्र संगी, चहै बंस चीलहा रहै एकरंगी।—वं.भा.

उरुद्धि—सं०पु० [सं० उरोधि] १ वक्षःस्थल. २ हृदय।

उ०—अचपळउ अउब उरळउ उरुद्धि, जांणइ जु पइसि नीसरिय जुद्धि।—रा.ज.सी.

उरुस्तंभ—सं०पु०—एक रोग विशेष (अमरत)

उरू—सं०स्त्री० [सं० उरु] जांघ, जंघा (रू.भे. उरु)

उरे—क्रि०वि०—इस तरफ, इस ओर।

उरेड़िणौ, उरेड़िबौ—क्रि०स०—ढकेलना। उ०—आयौ उरेड़ियां जोम री पटैल माथै धारे आंटा रवत्तेस दूर हूं तेड़ियौ कार्थ राग।

—बदरीदास खिड़ियौ

उरेड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—ढकेला हुआ। (स्त्री० उरेड़ियोड़ी)

उरेब—सं०पु० [सं० उर] हृदय, वक्षस्थल। उ०—उमंगै जोगणी काचां, धड़क्कै उरेब।—दुरगादत्त बारहठ

उरै—क्रि०वि०—इस ओर, इस तरफ, इधर। उ०—ऊगो हजार १० घोड़ौ लेनै कोयलापुर पाटण उरै कोस ६ दिखणाधी डेराउतारौ लीधौ।—कहवाट सरवहिया री बात

उरेब—सं०पु०—देखो 'उरेब'।

वि० [फा०] टेढ़ा, तिरछा, धूर्त्ततापूर्ण।

उरोज—सं०पु०—स्तन, कुच (ह.नां.)

उरौ—क्रि०वि०पु० [सं० उररी, ऊरी] १ क्रियाओं के पूर्व प्रयुक्त होने वाला एक सांकेतिक क्रिया विशेषण जो वाक्य के मुख्य भाव की ओर संकेत करता हुआ क्रियाओं पर प्रभाव डालता है। यह संस्कृत के उररी और ऊरी का अपभ्रंश रूप है। उ०—१ तरै सीसोदियां जांणियौ राठोड़ धरती उरी लेसी।—रा.वं.वि.

उ०—२ सोचै कंई, हाथ में पोथी उरी लै अर पढ़।—अज्ञात

२ वापस. ३ यहां, इधर।

उरोड़ौ—वि०—जबरदस्त, बलवान।

उलंगणौ, उलंगबौ—क्रि०स० [सं० उल्लंघन] १ लांघना, फांदना।

उ०—धिप सूतोय नींद मुरद्धर रा, गउ घाट उलंग हली गिर रा।

—पा.प्र.

२ न मानना, उल्लंघन करना. ३ यश-गान करना।

उ०—कुंवरजी रै झरोखै नीचै ओळंगु रात रा घणा सवार उलंगिया

—पलक दरियाव री बात

४ गायन गाना, गीत गाना। उ०—ओळंगुवां नै हुकम हुवौ। चारि पहर रात झरोखै उलंगिया।—पलक दरियाव री बात

उलंगणहार, हारौ (हारी), उलंगणियौ—वि०—लांघने वाला, उल्लंघन करने वाला।

उलंगिओड़ौ, उलंगियोड़ौ, उलंग्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उलंगियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ उल्लंघा हुआ, फांदा हुआ. २ उल्लंघन किया हुआ. ३ यश-गान किया हुआ. ४ गायन गाया हुआ। (स्त्री० उलंगियोड़ी)

उलंघणौ उलंघबौ—क्रि०स०—देखो 'उलंघणौ' (रू.भे.)

उ०—आस उलंघ उलंघै अरबद, आवध चंद उलंघ उदांम। वळै कमंध खत्रवाटवधारी, सांमा साझविया हरसांम।

—सादूळ दुरसावत आढ़ौ

उलंडणौ, उलंडबौ—क्रि०स०—१ त्यागना, छोड़ना। उ०—उदम असत गया उलंडे। लाज बधण पग लागी लीह।

२ उलंघन करना। —रावत रतनसिंहजी रौ गीत

उलंडणहार, हारौ (हारी), उलंडणियौ—वि०—त्यागने वाला।

उलंडिओड़ौ, उलंडियोड़ौ, उलंड्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उलंडियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ छोड़ा हुआ, त्यक्त. २ उल्लंघन किया हुआ। (स्त्री० उलंडियोड़ी)

उलंबे—क्रि०वि०—इस तरफ। उ०—पूरब में गंगा रै तट किलकंत्रा सूं बारह कोस उलंबे जांच चौड़ौ सहर वसायौ।—बां.दा.ख्या.

उलंभौ—सं०पु०—उपालंभ, उलाहना (शा.हो.)

उलक—सं०पु० [सं० उलूक] १ उल्लू, उलूक. २ अग्निपिंड, उल्का।

उलकपात—सं०पु० [सं० उल्कापात] रेखा के रूप में रात्रि में आकाश से गिरा हुआ तेज का समूह. २ उत्पति, विघ्न।

उलका—सं०स्त्री० [सं० उल्का] देखो 'उल्का' (डिं.को.)

उलकापात—सं०पु० [सं० उल्कापात] १ किसी उल्का का टूटना, लूक गिरना. २ उत्पात, विघ्न। उ०—उलकापात हुउ विकराळ, विखम धूम धूंधइ विराळ।—कां.दे.प्र.

उलकापाती–वि०—उत्पाती ।

उलक्कापात–सं०पु०—देखो 'उलकापात' । उ०—**उलक्कापात** री तारौ तूटौ ग्रासमांण ।—बुधसिंह सिंढायच

उळखणौ–वि०—प्रसिद्ध ।

उळखणौ, उळखबौ–क्रि०स० [सं० उपलक्षण, प्रा० उवलक्खण] पहिचानना, जानना । उ०—एक दिन मूरखौ बाजार गयौ हुवौ ताहरां पहिल की कुंवरी री छोकरी **उळखियौ** ।—चौबोली

उळखणहार, हारौ (हारी), उळखणियौ–वि०—पहिचानने वाला, जानने वाला ।

उळखाणौ, उळखाबौ, उळखावणौ, उळखावबौ—स०रू० ।

उळखिग्रोड़ौ, उळखियोड़ौ, उळख्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

उळखीजणौ, उळखीजबौ—कर्म वा० ।

उळखाणौ, उळखाबौ, उळखावणौ, उळखावबौ–क्रि०स०— पहिचान कराना ।

उळखियोड़ौ–भू०का०कृ०—पहिचाना हुग्रा, जाना हुग्रा । (स्त्री० उळखियोड़ी)

उळखीजणौ, उळखीजबौ–क्रि०ग्र०—पहिचाना जाना ।

उलख्खणौ, उलख्खबौ–क्रि०स०—देखो 'उळखणौ' (रू.भे.)

उलग, उलगइ उलगई–सं०स्त्री०—१ सेवा । उ०—तरै कंवर सगळी हकीकत कही नै हूं चाकरी करण नै नीकळियौ छूं । कोई मोटौ राजा, तिण री **उळग** करण सारू निकळियौ छूं ।

—जगदेव पंवार री बात

२ विरुद, स्तवन, गुण-कीर्तन. ३ परदेश विदेश ।

उ०—१ जै नर **उलग** ईण महूरत जाई ।—वी.दे.

२ कुंवर कहई सुणी ! सांभरया राव ! कांई स्वांमी तूं **उलगई** जाई ।—वी.दे.

उलगणौ, उलगबौ–क्रि०स०—१ गाना, गायन करना. २ गुण वर्णन करना, वंशावली पढ़ना ।

उलगाणौ–सं०पु०—वह प्रिय जो परदेश में हो, प्रवासी प्रियतम ।

उ०—तरै वीजळी रा चमका सूं पिउसंधी दीठौ, जांणियौ **उलगाणौजी** पधारिया ।—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात

उलगि, उलगी–सं०स्त्री०—१ परदेश, विदेश । उ०—१ कांमनि ग्रंग न ग्राळगेह, बरस दोई स्वांमी **उलगि** निवारि ।—वी.दे.

२ एकान्त । उ०—पांडयौ ऊसारै तेड़यौ छइ राई । छीनी **उलगी** मांई सूं कही ।—वी.दे.

उलच–सं०पु० [सं० उल्लोच] चंदोवा, वितान । उ०—सिंहासनि पाउ परठिउ छइ, मेघवना **उलच** बांध्या छइ ।—कां.दे.प्र.

उलचणौ, उलचबौ–क्रि०स०—देखो 'उलीचणौ' ।

उळजण–सं०स्त्री०—देखो 'उलभण' ।

उळजणौ, उळजबौ–क्रि०ग्र०—देखो 'उळभणौ' (रू.भे.)

उळजणहार, हारौ (हारी), उळजणियौ–वि०—उलभने वाला ।

उळजिग्रोड़ौ, उळजियोड़ौ, उळज्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

उळजाणौ, उळजाबौ, उळजावणौ, उळजावबौ—स०रू० ।

उळजाणौ, उळजाबौ–क्रि०स०—देखो 'उळभाणौ' । उ०—मांरौ थांरौ कर माया में, **उळज्योड़ा** उळजावै ।—ऊ.का.

उळजायोड़ौ–भू०का०कृ०—उलभाया हुग्रा । (स्त्री० उळजायोड़ी)

उळभणौ, उळभबौ–क्रि०ग्र०—१ फँसना, ग्रटकना । उ०—बाजी सांवळिया रा चरण डंरां रा तणांवां **उळभिया** जांणि कुमार दूदा री चाबक बहियौ ।—वं.भा. २ लपेट में पड़ना, लिपटना ।

उ०—सुक पिक मधुप ग्रनंत सुर, सखी वसंत ग्रनंत । तंत लता **उळभंत** तर, करै घाव रिण कंत ।—क.कु.बो. ३ काम में लीन होना. ४ तकरार करना, लड़ना, झगड़ना. ५ कठिनाई में पड़ना । ६ रुकना, ग्रटकना. ७ बल खाना, टेढ़ा होना. ८ प्रेम होना, ग्रासक्त होना ।

उळभणहार, हारौ (हारी), उळभणियौ–वि०—उलभने वाला ।

उळभिग्रोड़ौ, उळभियोड़ौ, उळभ्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

उळभाणौ, उळभाबौ, उळभावणौ, उळभावबौ—स०रू० ।

उळभाड़–सं०स्त्री०—१ उलभन, फँसान. २ ग्रटकाव. ३ फेर, चक्कर ।

उळभाणौ, उळभाबौ–क्रि०स०—१ उलभाना, फँसाना, ग्रटकाना ।

उ०—ऊंधा चूंधा कर फेरा **उळभावै**, बनड़ौ बनड़ी बर मनड़ौ मुरभावै ।—ऊ.का.

२ लिप्त रखना । उ०—**उळभाया** तन मन ग्राप ग्राप में, विहत सीत रुखुमिणी वरि ।—वेलि. ३ ग्रासक्त करना ।

उळभाणहार, हारौ (हारी), उळभाणियौ–वि०—उलभाने वाला ।

उळभायोड़ौ–भू०का०कृ०—उलभाया हुग्रा ।

उळभावणौ, उळभावबौ—रू०भे० ।

उळभायोड़ौ–भू०का०कृ०—उलभाया हुग्रा । (स्त्री० उळभायोड़ी)

उळभाव–सं०पु०—१ ग्रटकाव. २ झगड़ा, बखेड़ा. ३ चक्कर ।

उळभावणौ, उळभावबौ–क्रि०स०—देखो 'उळभाणौ' (रू.भे.)

उलट–सं०पु०—१ परिवर्तन. २ तब्दीली । उ०—क्रत **उलट** प्रगट किरि सुघट कंज ।—रा.रू. ३ उलटने की क्रिया या भाव ।

उलटणौ, उलटबौ–क्रि०ग्र०स०—१ नीचे का ऊपर ग्रौर ऊपर का नीचे करना, ग्रौंधा होना. २ पलटना. ३ पीछे मुड़ना. ४ घूमना. ५ उमड़ना, टूट पडना । उ०—पै **उलटयौ** सांमंद बीकपुरा, छात बिया वहग्या गह छंड ।—दुरसौ ग्राढ़ौ ६ ग्रस्त-व्यस्त होना । ७ विपरीत होना, विरुद्ध या क्रुद्ध होना, चिढ़ना. ८ नष्ट होना । ९ बेहोश या बेसुध होना. १० इतराना, घमंड करना. ११ गाय-भैंस ग्रादि का जोड़ा खाकर गर्भ न धारण करना ग्रौर फिर जोड़ा खाना. १२ नीचे का ऊपर ग्रौर ऊपर का नीचे करना, ग्रौंधाना. १३ पलटना. १४ पटकना, ग्रौंधा गिराना, उँडेलना. १५ लटकी हुई चीज को समेट कर ऊपर चढ़ाना. १६ ग्रंडबंड करना, ग्रौर का ग्रौर करना. १७ विपरीत या विरुद्ध करना. १८ उत्तर प्रत्युत्तर

देना. १६ बात दोहराना. २० बीज मारे जाने पर फिर से बोने के लिए जोतना २१ बेसुध या बेहोश करना. २२ कै या वमन करना. २३ नष्ट करना. २४ रटना, जपना।

उलटणहार, हारौ (हारी), उलटणियौ—वि०—उलटने वाला।

उलटाणौ, उलटाबौ, उलटावणौ, उलटावबौ—क्रि०प्रे०रू०, स०रू०।

उलटिग्रोड़ौ, उलटियोड़ौ, उलटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उलटीजणौ, उलटीजबौ—कर्म वा०, भाव वा०।

उलटीजिग्रोड़ौ, उलटीजियोड़ौ, उलटीज्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उलटपलट, उलटपालट, उलटपुलट—सं०स्त्री०—१ अदल-बदल. २ परिवर्तन, उलटफेर। उ०—घाव असहां देण घट घट, पहट हैथट **उलटपालट**।—क.कु.बो. ३ अव्यवस्था. ४ अस्तव्यस्त होने का भाव, गड़बड़ी।

उलटफेर—सं०पु०—१ अदल-अदल. २ परिवर्तन।

उलटाणौ, उलटाबौ—क्रि०स०—१ उलटाना, पलटाना. २ लौटाना. ३ अन्यथा करना या कहना. ४ पीछे फेरना. ५ उलटा करना. ६ भभके की क्रिया द्वारा शराब का औटाना।

उलटाणहार, हारौ (हारी), उलटाणियौ—वि०—उलटाने वाला।

उलटावणौ, उलटावबौ—रू०भे०।

उलटापलटी, उलटापलटौ—सं०पु०—देखो 'उलटपुलट'। उ०—छपने छोरा विधि कीनी कुलटाई। **उलटापलटी** कर दुनियां उलटाई।
—ऊ.का.

उलटायोड़ौ—भू०का०कृ०—उलटाया हुआ। (स्त्री० उलटायोड़ी)

उलटावणौ, उलटावबौ—क्रि०स०—देखो 'उलटाणौ'।

उलटियोड़ौ—भू०का०कृ०—उलटा हुआ। (स्त्री० उलटियोड़ी)

उलटी—सं०स्त्री०—कै, वमन।

वि०—विरुद्ध, क्रम विरुद्ध, विपरीत। उ०—मुणियौ धव जीवण मरण, है रांणी हरि हाथ। है अपजस **उलटी** हुवां, सौ पण छूटे साथ।—वं भा.

क्रि०वि०—वापस।

उलटी खड़ी—सं०स्त्री०—मालखंभ की एक प्रकार की कसरत।

उलटौ—वि०—१ औंधा. २ विपरीत. ३ क्रम विरुद्ध. ४ पीठ की ओर का।

क्रि०वि०—१ विरुद्ध क्रम से. २ बेठिकाने. ३ विपरीत न्याय से।

कहा०—१ उलटौ चोर कोटवाळ नै डंडै—उलटा चोर कोतवाल को दंड देता है; अपराधी होकर भी दूसरों को फटकारना. २ उलटा रांम रांम गळे पड़िया—भलाई के बदले बुराई मिलना।

सं०पु०—कलंक, दोष।

उलटणौ, उलटबौ—देखो 'उलटणौ, उलटबौ'। उ०—मारू चाली मंदिरां, चंदउ वादळ मांहि। जांणे गयंद **उलट्टियउ**, कज्जळ वन मह जाहि।—ढो.मा.

उलट्टियोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'उलटियोड़ौ'। (स्त्री० उलट्टियोड़ी)

उळणौ, उळबौ—क्रि०अ०—१ फलों का पकना. २ वृद्ध होना. ३ आंख की पलकों का अश्रुपात के कारण कच्चा पड़ना। उ०—अंजण मंजण बिन संत्रण द्रग **उळिया**।—ऊ.का.

उळणहार, हारौ (हारी), उळणियौ—वि०।

उळिग्रोड़ौ, उळियोड़ौ, उळयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उलत—सं०स्त्री०—अग्नि, आग (ना.डि.को.)

उलता—सं०स्त्री०—लाल, अरुण।

उलथौ, उलथौ—सं०पु० [अ० उल्था] अनुवाद। उ०—पहली ढोला-मारवणी री वात रौ **उलथौ** कुसळचंद कियौ छै।—ढो.मा.

उलथ्थिणौ, उलथ्थिबौ—क्रि०अ०—१ उलटना, पलटना. २ उतरना। उ०—आजूणउ धन दीहड़उ, साहिब कउ मुख दिट्ठ। माथा भार **उलथ्थियउ**, आंख्यां अमी पयट्ठ।—ढो.मा.

उलफत—सं०स्त्री० [अ०] प्रेम, मुहब्बत, प्यार, प्रीति।

उलमुक—सं०पु० [सं० उल्मुख] अंगारा, कोयला (डि.को.)

उलळणौ, उलळबौ—क्रि०स०अ०—१ कूदना. २ फांदना। उ०—पाराधिय काळ जिसा पुळता, अस अग्र न आयाइ **उलळता**।—पा.प्र. २ ढरकना, ढलना. ३ हमला करना. ४ हुलसना. ५ कमजोर होना, निर्बल होना. ६ कच्चा पड़ जाना. ७ वजन का संतुलन बिगड़ने से गाड़ी का पीछे की ओर झुकना।

कहा०—रांडां भांडां नै उलळिया गाडा—विधवा, भांड और गाड़ी जब तक ठीक चलते रहे तभी तक ठीक है, उलटने पर उन्हें वापस रास्ते पर लाना कठिन होता है।

उलळणहार, हारौ (हारी), उलळणियौ—वि०।

उलळिग्रोड़ौ, उलळियोड़ौ, उलळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उलळियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ कूदा या फांदा हुआ. २ ढरका हुआ. ३ हमला किया हुआ. ४ हुलसित. ५ कमजोर, निर्बल. ६ वजन का संतुलन बिगड़ने से पीछे की ओर झुका हुआ गाडा (स्त्री० उलळियोड़ी)।

उलळी—वि०—ढीली (लगाम आदि) उ०—वरहास खिड़इ **उलळी** वग्ग, कळहिवा क्रमइ कम्मांण क्रग्ग।—रा.ज.सी.

उळवइ—वि०—गुप्त, प्रच्छन्न। उ०—कइ परनारी गमन आचरयां कीधां पातिक पंच। खाधां धांन **उळवइ** बइसी, छोरू कीधां वंच।—कां.दे.प्र.

उलवण—वि० [सं०] १ प्रगट, स्पष्ट (डि.को.) २ प्रकाशित, रोशन।

उळवांणौ—वि०—नंगे (पैर)

उलहियणौ, उलहियबौ—क्रि०अ०—उमड़ना. देखो 'ऊलहणौ' (रू.भे.)

उलहौ—सं०पु०—उमंग।

वि०—उमंगयुक्त। उ०—रसबीर हुलस्य हिये **उलहौ**, दुलही चतुरंग निकौ दुलहौ।—ला.रा.

उलां—क्रि०वि०—इस तरफ। उ०—तद डाढ़ाळ कहीं—फते **उलां** री पैलां भाजे के **उलां** री मोड़ी नहीं का पैलां री मोड़ी नहीं।
—डाढ़ाळा सूर री वात

उलांगाणउ–वि०—प्रवासी, विदेशी। उ०—उलांगाणउ घरि चालियौ। सहू संदेसी नया उपरि पांन।—वी.दे.

उलांघणौ, उलांघबौ–क्रि०स०—१ लांघना, फांदना. २ अवज्ञा करना, न मानना, अवहेलना।

उलांघणहार, हारौ (हारी), उलांघणियौ—लांघने या उलंघन करने वाला।

उलांघिग्रोड़ौ, उलांघियोड़ौ, उलांघ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उलांघियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ लांघा या फांदा हुआ. २ अवज्ञा किया हुआ, न माना हुआ। (स्त्री० उलांघियोड़ी)

उलांडणौ, उलांडबौ–क्रि०स०—उलंघन करना, लांघना। उ०—ऊंडा टूंक उळांडिया, चूंखै में चमकी। जांण बूझतां बीजळी, जोड़ी भल वूंठी।—बादळी

उलांम–वि० [अ० अल्लाम] १ दुष्ट, बदमाश. २ नीच. ३ बातें बनाने वाला।

उला–क्रि०वि०—इस ओर। उ०—पैला खुदाय रंसणा पढ़ै, उला सगत उचारसां।—बखतौ खिड़ियौ

उलाअलबेली–वि०—यौवनोन्मत्त। उ०—ऊवे राजांन आलीजा आलीगारा नाह उलाअलबेलिग्रां रा पदमणीग्रां रा रमण मांणै छै।
—रा.सा.सं.

उलाक–सं०स्त्री०—वमन, कै।

उलाकणौ, उलाकबौ–क्रि०अ०—उल्टी करना, वमन करना।

उलाट–सं०पु०—धक्का, झटका।

उलाटणौ–क्रि०स०—धक्का देकर औंधा गिराना, पटकना।
उ०—पचासे'क धके चढ़िया त्यांनूं तूंड सूं उलाळतौ धूड़ सूं भेळा करतौ पाधरौ ही राव रै घोड़ा कन्है गयौ सौ तींनूं तूंड सूं उलाट दीन्हौ।—डाढ़ाळा सूर री बात

उला पैला–क्रि०वि०—इधर, उधर।

उलारौ–सं०पु०—चौताल के अंत में गाया जाने वाला पद।

उलाळ–सं०पु०— बोझ के कारण (गाड़ी आदि का) पीछे झुकने का भाव।

उलाळणौ, उलाळबौ–क्रि०स०—१ झुकाना. २ डिगाना. ३ उल्टा करना. ४ नाश करना, दूर फेंकना। उ०—मांगणहारां सीख दी, ढोलइ तिणहि ज ताळ। सोवन जड़ित सिंगार दे, नांख्यउ दळिद उलाळ।—ढो.मा. ५ उठाना. ६ ऊंचा करना. ७ प्रहार हेतु शस्त्र फेंकना। उ०—ऊभां ही उलाळ बिछूटी बरछी बाही।—डाढाळा सूर री बात. ८ तेज भगाना। उ०—थहै चटकै रटकै कंध थूळ, पमंग उलाळता ज्यां गज पूळ।—पा.प्र.
(रू.भे. ऊलाळणौ, ऊलाळबौ)

उलाळणहार, हारौ (हारी), उलाळणियौ—वि०।

उलाळिग्रोड़ौ, उलाळियोड़ौ, उलाळयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उलाळियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ झुकाया हुआ. २ डिगाया हुआ. ३ नष्ट किया हुआ. ४ ऊंचा किया हुआ. ५ प्रहार हेतु शस्त्र फेंका हुआ। (स्त्री० उलाळियोड़ी)

उलाळौ–सं०पु०—१ छलांग. २ पीछे को झुकने की क्रिया या भाव. ३ उछलने की क्रिया या भाव।

उलालौ–सं०पु०—देखो 'उल्लालौ'।

उलाळयौ–सं०पु०—चड़स या मोट को शीघ्र पानी में डुबाने के निमित्त उसके साथ बांधा जाने वाला वजनी पदार्थ विशेष।
कहा०—चड़सरै साथै उलाळयौ है—चड़स के साथ उसको डुबाने हेतु बँधा हुआ वजनी पदार्थ विशेष भी पानी में डूबता ही है। जिसका चोली-दामन का साथ है उसे हर स्थिति में सदैव साथ रहना ही पड़ता है।

उलावणौ, उलावबौ–क्रि०स०—१ पुकारना, बुलाना, आवाज देना।
उ०—न दै साद काय नारियण, साद दियै जी संत। आपण नांम उलावतां, धेनु (ही) कांन धरंत।—ह.र.
२ जपना, ध्वनि करना। (रू.भे. उल्लावणौ, उल्लावबौ)
उ०—रात दिवस हरि ह्रदै रहाविस, आठूं पहर अनंत उल्लाविस।
—ह र.
३ उपभोग करना, मौज करना।

उलावणहार, हारौ (हारी), उलावणियौ—वि०।

उलाविग्रोड़ौ, उलावियोड़ौ, उलाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उलावियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ पुकारा हुआ. २ जपा हुआ. ३ उपभोग किया हुआ। (स्त्री० उलावियोड़ी)

उलास–सं०पु० [सं० उल्लास] १ आल्हाद, प्रसन्नता या आनंद की उमंग।
उ०—पावस रुति झड़ मंडियौ, चातक मोर उलास। बीजळियां झबकै 'जसा', विरही अधिक उदास।—जसराज
[सं० आलस्य] २ आलस्य, सुस्ती।

उलासित–वि० [सं० उल्लसित] प्रसन्न, खुश, हर्षित, पुलकित।
उ०—बदन उलासित नेत्र बिसाळ।—ह.र.

उलाहणौ, उलाहनौ–सं०पु० [सं० उपालंभन, प्रा० उवालहन] किसी के अपराध, भूल आदि को उसे दुखपूर्वक जताना, शिकायत, गिला।
उ०—जब बळिभद्रजी आइ उलाहणौ दियौ तब क्रस्णजी लजाय के नीची द्रस्टि करि।—वेलि. टी.

उलिगण, उलिगणउ, उलिगांणइ, उलिगांणउ, उलिगांणौ–वि०—प्रवासी, परदेशी।
उ०—१ जिण सिरजइ उलिगण घर नारि। जाइ दिहाड़ऊ झूरितां।
—वी.दे.
उ०—२ उलिगणउ घरि राखज्यो। जु म्हांको प्रीय पाछौ बाहुड़इ।—वी.दे.
उ०—३ ज्यूं उलिगांणइ घरि मिल्यौ। गढ़ि उलिगाणइ कीधौ हौ वास।—वी.दे.
उ०—४ उलिगांणउं होई संचरयौ। देस उड़ीसइं पहुंता जाई।
—वी.दे.

उ०—५ खेत कमाती जाट ज्यूं। मई कांई सिरजी उळिगांणा घरि-नारि।—वी.दे.

सं०पु०—प्रवास, विदेश।

उळियोकाचर–सं०पु०—लड़कियों द्वारा गाया जाने वाला एक मारवाड़ी लोक गीत।

उलीग, उलीगांण, उलीगांणी–सं०पु०—१ देखो 'उलिगांणउ'।

उ०—सूरज पछिम किम उगमई? उलीग चालतां क्युं रह्यौ आजि?—वी.दे. २ देखो 'उलिगांणी'

उलीचणौ, उलीचबौ–क्रि०स० [सं० उल्लुंचन] पानी फेंकना, पानी उछालना।

उलीचणहार हारौ (हारी), उलीचणियौ–वि०—पानी फेंकने वाला।

उलीचिश्रोड़ो, उलीचियोड़ौ, उलीच्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उलीचियोड़ौ–भू०का०कृ०—पानी फेंका हुआ, पानी उछाला हुआ। (स्त्री० उलीचियोड़ी)

उलीपैली–वि०—१ इधर-उधर की। उ०—पछै सात्हकंवर तौ उलीपैली वात करनै ढोलाजी नखा परी उठी।—ढो.मा.

२ ऐसी-वैसी। उ०—राजूत्रां सूं कजियौ छै। उलीपैली बात न छै।—सूरे खींवे कांधळोत री बात

उलीसुली–वि०—भली-बुरी। उ०—सूधी बात म्हे तौ कहां छां थे तौ मांनौ उलीसुली, इठै म्हांकै कीज्यौ मती कोडी की नी श्रास।—अज्ञात

उलुकी–सं०स्त्री०—मछली (ह.नां.)

उलुक्क, उलूक–सं०पु० [सं० उलूक] १ उल्लू नामक पक्षी.

२ कणादि मुनि का एक नाम. ३ लूता के समान ही आकाश में फैला धूलि समूह या धूम्र। उ०—असि पाइ खेह ऊड़ी उलुक्क, गौ गहण विची मिळि गोधुळुक्क।—रा.ज.सी.

उलूत–सं०पु० [सं०] अजगर की जाति का एक सांप।

उलूपी–सं०स्त्री०[सं०] एक नाग की कन्या जो अर्जुन की पत्नी और बभ्रुवाहन की माता थी।

उलेटणौ, उलेटबौ–क्रि०स०—देखो 'उलटणौ, उलटबौ'।

उलेटणहार, हारौ (हारी), उलेटणियौ—वि०।

उलेटिश्रोड़ौ, उलेटियोड़ौ, उलेटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उलेटियोड़ौ–भू०का०कृ०—उलेटा हुआ। (स्त्री० उलेटियोड़ी)

उलेपासै–क्रि०वि०—इस ओर, इधर। उ०—हूमें कोई नै उलेपासै मतां आवण देज्यौ।—पलक दरियाव री बात

उलेळ–सं०स्त्री०—उमंग, जोश, तरंग, हिलोर।

उलै–क्रि०वि०—इस ओर।

उलौ–सं०पु० [सं० उर्ण] भेड़ का बच्चा, मेमना (क्षेत्रीय)

उलौ-पैलौ–वि०—१ इधर-उधर का (रू.भे. ऊलौ-पैलौ)

उल्का–सं०पु० [सं०] १ प्रकाश, चिराग, दीया. २ आकाश में चमकीले प्रकाश पिंड।

उल्कापात–सं०पु०—देखो 'उलकापात'।

उल्कामुख–सं०पु० [सं०] १ गीदड़. २ एक ऐसा प्रेत जिसके मुंह से अग्नि निकला करती है. ३ शिव।

उल्टी–वि०—देखो 'उलटौ'।

सं०स्त्री०—वमन, कै।

उल्लंग–सं०स्त्री०—पैंवार वंश के क्षत्रियों की एक शाखा।

उल्लंघणौ, उल्लंघबौ–क्रि०स०—देखो 'उलंघणौ'।

उल्लस–सं०पु० [सं० उल्लास] १ प्रकाश. २ हर्ष, आनन्द. ३ ग्रन्थ का एक भाग।

उल्लसण–सं०स्त्री०—हर्ष करना, रोमांच।

वि०—उत्कंठित, उल्लसित।

उल्लसणौ, उल्लसबौ–क्रि०स०—१ उत्कंठा करना। उ०—उमराव परस्सण उल्लसै, कोड़ां दरसण कारणै।—रा.रू. २ उल्लसित होना, प्रसन्न होना। उ०—अति मोद जुगिनि उल्लसै हर देवि।—अज्ञात

उल्लसणहार, हारौ (हारी), उल्लसणियौ—वि०।

उल्लसिश्रोड़ौ, उल्लसियोड़ौ, उल्लस्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उल्लसियोड़ौ–भ०का०कृ०—१ उत्कंठित. २ उल्लसित।

उल्लाळ–सं०पु०—एक मात्रिक अर्द्ध सम छंद। इस छंद में विषम चरणों में १५ और सम चरणों में १३ मत्रायें होती हैं।

उल्लाळौ–सं०पु०—धक्का। देखो 'उलाळौ'।

उल्लालौ–सं०पु०—प्रत्येक चरण में तेरह मात्राओं का एक मात्रिक छंद विशेष।

उल्लावणौ, उल्लावबौ–क्रि०स०—देखो 'उलावणौ, उलावबौ' (रू.भे)

उल्लावियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उलावियोड़ौ' (स्त्री० उल्लावियोड़ी)

उल्लास–सं०पु० [सं०] १ प्रकाश, चमक. २ हर्ष, आनंद।

उल्लासक–वि० [सं०] आनंदी, आनंद करने वाला।

उल्लू–सं०पु०—१ एक ऐसा पक्षी जिसे दिन में कुछ नहीं दीखता।

पर्याय०—अलूक, घूक, घूघू, दिवसअंध, रातराजा, राजा।

मुहा०—उल्लू बणाणौ=मूर्ख बनाना।

वि०—मूर्ख, बेवकूफ।

उल्लेख–सं०पु० [सं०] १ एक ही वस्तु का अनेक रूपों में दिखाई पड़ने के वर्णन का एक काव्यालंकार. २ चर्चा, जिक्र, वर्णन।

उल्लेखालंकार–सं०पु० [सं० उल्लेख+अलंकार] जहाँ एक पदार्थ का अनेक प्रकार से उल्लेख (वर्णन) किया जाय वहाँ यह अलंकार होता है (साहित्य)

उल्हण–सं०पु०—मध्य पात्र। उ०—उल्हण मींणा सो पूरव्यौ। भोजन भगति करइ तिणी ठाई।—वी.दे.

उल्हरणौ, उल्हरबौ–क्रि०स०अ०—उमड़ना, बरसना। उ०—भरि पावस सयणां पखै, उल्हरियौ जसराज। जाणूं छूं ले जाइसी, काढ़ि कळेजौ आज।—जसराज

उल्हवण–वि०—१ उल्लसित करने वाला। उ०—चंदण देह कपूर रस, सीतळ गंग-प्रवाह। मन-रंजण तन उल्हवण, कदे मिळैसी नाह।—ढो.मा.

उल्हसणौ, उल्हसबौ–क्रि०स०अ०—१ प्रसन्न होना। उ०—सांभळतां सरीर उल्हसइ, चउपई बंध इसी इग्यारसइ। ज्यारि खंड जिस्यां नवनीत, दूहा चउपई मधुरां गीत।—कां.दे.प्र.
२ छलांग भरना, चौकड़ी भरना। उ०—सु मोर ज्यूं तंडव करै छै, निकुली ज्यूं अंग भांजै छै, म्रग ज्यूं उल्हसै छै।—रा.सा.सं.
उल्हसणहार, हारौ (हारी), उल्हसणियौ–वि०—प्रसन्न होने वाला, छलांग भरने वाला।
उल्हसिग्रोड़ौ, उल्हसियोड़ौ, उल्हस्योड़ौ—भू०का०कृ०।

उल्हसियोड़ौ–भू०का०कृ०—प्रसन्न हुआ, छलांग भरा हुआ। (स्त्री० उल्हसियोड़ी)

उल्हास–सं०पु० [सं० उल्लास] १ हर्ष, आनंद (रू.भे. उल्लास) उ०—थे सिध्धावउ सिध करउ, पूजउ थांकी आस। वीछुड़तां ही माणसां, मेळउ दियउ उल्हास।—ढो.मा. २ चमक, प्रकाश. ३ ग्रंथ का एक भाग। ४ एक अलंकार विशेष (साहित्य)

उवंध–वि०—स्वतंत्र।

उवंबर–वि०—देखो 'ऊवंबर' (रू.भे.)

उवटण–वि०—१ प्रकट करने वाला. २ रचने वाला. ३ मलने वाला।

उवटणौ–सं०पु०—देखो 'उबटणौ' (रू.भे.)

उवटणौ, उवटबौ–क्रि०स०—सुगंधित पदार्थों के योग से शरीर मलना, मालिश करना।

उवर, उवरि–सं०पु० [सं० उर] १ हृदय, अंतःकरण। उ०—थरहरं कायरां उवर ढीला थियां—ह्य.झा. उ०—२ उवरि ग्यांन हरि भगति आतमा, जपै वेलि त्यां ए जुगति।—वेलि. उ०—३ तिरघो चहै भव पार तो, उवर धार हरि एक—र.रू
क्रि०वि०—ऊपर। उ०—सत्रु बारस बीतां उवरि सभीता।—रा.रू.
वि०—१ ऊंचा. २ दूसरा, अन्य।

उवह–सर्व०—१ उसे। उ०—कुण उवह तागै उमंडै, प्रथम दीपावै पांवडै।—रा.रू.
२ वह। उ०—अर उवह सोहाग की कांति मुख कै विखै जैसे प्रगट होइ छै।—वेलि. टी.
सं०पु० [सं उदधि] समुद्र। उ०—नृपत सुकळांग कोमंड सर नीछटण, उवह पत लंदन ते रूप उभेल।—किसोरदांन बारहठ

उवां–क्रि०वि०—वहां। उ०—साल्ह चलंतउ हे सखी, गउखै चढ़ि मइं दीठ। हियड़उ उवां ही सूं गयउ, नयण बहोड्या नीठ।—ढो.मा.
सर्व—उन्होंने।

उवांरणौ, उवांरबौ–क्रि०स०—न्योछावर करना. देखो 'अवारणौ'। उ०—अगनि धूप कै मिसि सरीर उवांरै छै। सूरज दीपक कै मिसि सरीर उवांरै छै।—वेलि टी. (क्वचित प्रयोग)

उवां–सर्व०—१ उन। उ०—जैसिंघजी रै खरच पड़िया उता देणा किया महाराज अभैसिंघजी उवां रुपयां में भंडारी रतनसिंघ नूं नै मनरूप नूं ओळ में सूंपिया।—बां.दा.ख्या.
२ उस। उ०—उवां मांहे विस छै तै कहूं छूं।—चौबोली
३ उसी, उन्हीं। उ०—ज्यां पग दीधा पागड़इ, वांग उवां ही हथ्थ।—ढो.मा.
४ वह। उ०—थे सिध्धावउ सिध करउ, पूजउ थांकी आस। मत वीसारउ मन थकी, उवां छइ थांकी दास।—ढो.मा.

उवाड़–सं०पु०—१ पद-चिन्ह, पहिचानने के लिये लगाया जाने वाला चक्कर. २ विचार।

उवाड़ौ–सं०पु० [सं० ऊधस] १ थन, गाय के थनों का स्थान. २ कुए पर बना हुआ पशुओं के पानी पीने का कुंड विशेष।

उवारणा–सं०पु०—बलैया, न्योछावर होने का भाव। उ०—कुंवर ऊठि मां कन्है गयौ। मां उवारणा लिया।—पलक दरियाव री बात

उवारणौ, उवारबौ–क्रि०स०—१ न्योछावर करना, वारना. २ रक्षा करना। उ०—देसपति उवारइ का दईव, जीवासणि भागी लेय जीव।—रा.ज.सी.
उ०—२ वीकउ वाखांणी जेणि वडरायां, मोटा गढ़ राखइ मंडळि। अपणउ गोकळ तणा उवारियउ, कान्ह प्रवाड़उ किस्यउ कळि।—चौथ बारहठ
उवारणहार, हारौ (हारी), उवारणियौ–वि०—न्योछावर करने वाला, रक्षा करने वाला।
उवारिग्रोड़ौ, उवारियोड़ौ, उवारयोड़ौ—भू०का०कृ०।

उवारियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ न्योछावर किया हुआ. २ रक्षा किया हुआ। (स्त्री० उवारियोड़ी)

उवारसी–सं०स्त्री०—मदद, सहायता।
वि०—मदद करने वाला, सहायक।

उवारौ–क्रि०वि०—रहित, बिना। उ०—छ हजारी जात, छ हजार असवार, त्यां मांहे पांच हजार उवारा उरदी।—नैणसी

उवासी–सं०स्त्री०—जंभाई (रू.भे. उबासी)

उवे–सर्व०—१ उन. २ वे, वह. ३ उस। उ०—तिका डबी कळदार उवे आळे मांही राखी।—पलक दरियाव री बात

उवेलणौ, उवेलबौ–क्रि०स०—रक्षा करना, मदद करना। उ०—सांभळै वचन मन खिजै 'क्रन' समोभ्रम, घरै अत फोज घणा मछर धायौ। 'जैतसी' वडै अब जाय गढ़ जोधपुर, उवेलण राव नै राव आयौ।—द.दा.
उवेलणहार, हारौ (हारी), उवेलणियौ–वि०—रक्षा करने वाला।
उवेलिग्रोड़ौ, उवेलियोड़ौ, उवेल्योड़ौ–भू०का०कृ०।

उवेलियोड़ौ–भू०का०कृ०—रक्षा किया हुआ, मदद किया हुआ। (स्त्री० उवेलियोड़ी)

उवेलौ–सं०पु०—१ रक्षा. २ सहायता, मदद. ३ विलंब, देरी।

उवै–सर्व०—१ वह, वे। उ०—रांति सखी इणि ताळ मइं, काइज कुरळी पंखि। उवै सरि हूं घरि आपणइ, बिहूं न मेळी अंखि।—ढो.मा.

२ उस, उन । उ०—उवै समै सवालखी विणजारौ सुजांण नायक पण उवै पांण उठै आय बैठौ छै ।—पलक दरियाव री बात (रू.भे. उवे)

उवो, उवौ–सर्व०—१ वह । उ०—सौ उवौ उण में सूं रिपिया ३५ या ३७ लाणे पहरणे में खरच करै नै बाकी कनै राखै ।
—सांई री पलक में खलक री बात

२ उस । उ०—म्हां सारी ही बेटे नै पूछियौ, तांहरै उवौ कह्यौ दोनूं ही म्हारा बाप छै ।—पलक दरियाव री बात

उस–सर्व०—विभक्ति लगने पर होने वाला 'वह' शब्द का रूप ।
सं०पु०—मादा पशुओं के स्तन ।

उसड़ौ–वि०—१ ऐसा. २ वैसा । उ०—कोई उसड़ौ कारीगर जुड़ै तौ देहरौ कराऊं ।—नैणसी (विलोम—इसड़ौ)

उसण–वि० [सं० उष्ण] १ उष्ण, गर्म (डिं.को.) उ०—वपि असह जळ सुख उसण, वल्लभ सूर कर हुइ सीतळ ।—रा.रू.
२ देखो 'उसन' (रू.भे.)

उसणणौ, उसणबौ–क्रि०स०—उबालना, पकाना ।
उसणणहार, हारौ (हारी), उसणणियौ–वि०—उबालने या पकाने वाला ।
उसणाणौ, उसणाबौ, उसणावणौ, उसणावबौ–स०प्रे०रू० ।
उसणिओड़ौ, उसणियोड़ौ, उसण्योड़ौ–भू०का०कृ० ।

उसणागम–सं०पु०—ग्रीष्म ऋतु (डिं.को.)
उसणाणौ, उसणाबौ, उसणावणौ, उसणावबौ–क्रि०प्रे०रू०—उबलवाना, पकवाना ।

उसणियोड़ौ–भू०का०कृ०—उबाला हुआ, पकाया हुआ (स्त्री०उसणियोड़ी)

उसतरौ–सं०पु०—उस्तुरा, छुरा, बाल साफ करने का एक उपकरण ।

उसताज–सं०पु०—१ युद्ध, लड़ाई । उ०—पड़ उसताज आहणे असपत । दुजड़े दंतौ खळां दुख ।—महारांणा अमरसिंह रौ गीत
[फा० उस्ताद] २ उस्ताद, गुरु । उ०—भावनगर को तुरक यम, सब तुरकन सिरताज । कुसती पटौ विनोट क्रत, सब येलम उसताज ।
—ला.रा.

उसताद–सं०पु० [फा० उस्ताद] १ गुरु, शिक्षक. २ रंडियों को गाने या बजाने की शिक्षा देने वाला व्यक्ति ।
वि०—१ चालाक, धूर्त. २ निपुण, दक्ष ।

उसन–सं०स्त्री० [सं० उष्ण] १ अग्नि (ह.ना., अ.मा.) २ गर्मी, उष्णता । उ०—सीत उसन बिरखा कहूं, जड़ चेतन बहो जाति ।—ह.पु.वा.
वि०—१ गर्म, तप्त. २ तेज, फुर्तीला ।

उसनरसम–सं०पु० [सं० उष्णरश्मि] रवि, सूर्य्य (अ.मा.)

उसना–सं०पु० [सं० उशनस्] १ शुक्र, (अ.मा.) २ शुक्राचार्य ।

उसमान–सं०पु० [अ० उसमान] मुसलमानी धर्म के अनुसार मुहम्मद के चार सखाओं में से एक ।

उसर—देखो 'ऊसर'
सं०पु० [सं० असुर] १ यवन, असुर । उ०—घुसत गुरगम मिळी सेन पण पांकियौ, भरतपुर फेर नह उसर भेटै ।—बां.दा.
सं०स्त्री०—२ किरण, रश्मि ।

उसरणौ, उसरबौ–क्रि०स०अ०—१ गर्म होते हुए या उबलते हुए पानी में पकाया जाने वाला अनाज का डालना. २ वर्षा का आना (रू.भे.) औसरणौ. ३ हटना, टलना. ४ बीतना, गुजरना. ५ भूलना. ६ पानी में उतराना. ७ चक्की के घेरे से पीसा हुआ आटा निकाला जाना. ८ आक्रमण करना. ९ देखो 'उसीसणौ' ।
उसरणहार, हारौ (हारी), उसरणियौ–वि० ।
उसारणौ, उसारबौ—स०रू० ।
उसरिओड़ौ, उसरियोड़ौ, उसरयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

उसरांण, उसरायण–सं०पु० [सं० असुर] यवन, मुसलमान । उ०— दूर थकांई देखतां, जद म्हैं लीना जांण । धर मुरधर रा धाड़वी, आपड़िं उसरांण ।—पा.प्र.

उसरियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ गर्म होते या उबलते हुए पानी में पकाने के उद्देश्य से डाला हुआ (अनाज आदि).. २ जोर से बरसा हुआ (मेह). ३ हटा हुआ, टला हुआ. ४ बीता हुआ, गुजरा हुआ. ५ भूला हुआ. ६ पानी में उतरा हुआ. ७ चक्की के घेरे से पीसा हुआ (आटा आदि निकाला हुआ). ८ आक्रमण किया हुआ । (स्त्री० उसरियोड़ी)

उसरू–सं०पु० [सं० असुर] असुर, राक्षस ।

उससणौ, उससबौ–क्रि०अ०—देखो 'ऊससणौ, ऊससबौ' (रू.भे.)

उसा–सं०स्त्री० [सं० उस्रा] १ गाय (अ.मा.). २ देखो 'ऊसा' ।
वि०—वैसा । उ०—कुण जावै कांबोज, मिसर अरब ऐराक मझ । भुज जेहो 'क्रन' भोज, अस रीझां बगसै उसा ।—बां.दा.

उसाकाळ–सं०पु० [सं० उषाकाल] प्रभात, तड़का भोर ।

उसाड़ौ–सं०पु०—थन, पशुओं के थन. देखो 'उआड़ौ' (रू.भे.)

उसापति–सं०पु० [सं० उषा+पति] अनिरुद्ध ।

उसारणौ, उसारबौ, उसारिणौ, उसारिबौ–क्रि०स०—१ चक्की के घेरे में से पीसा हुआ आटा आदि बाहर निकालना ।
कहा०—रात भर पीसियौ नै ढकणी में उसारियौ—रात भर पीसने पर भी ढक्कन में आटा निकाला; अधिक समय लगा कर बहुत कम काम करना ।
२ खींचना, निकालना (प्रायः कुये से जल आदि) । उ०—तुम्ह जावउ घर आपणइ, म्हांरी केही वात । दीहेदीह उसारिस्यां, भरिस्यां मांझिम रात ।—ढो.मा. ३ बनाना, रचना । उ०—दळपत कोट उसारिया, हुण तेरी बारी ।—पेसणौ ढाढ़ी
उसारणहार, हारौ (हारी), उसारणियौ–वि० ।
उसारिओड़ौ, उसारियोड़ौ, उसारयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

उसारियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ चक्की के घेरे से निकाला हुआ (आटा आदि) २ खींचा या निकाला हुआ (प्रायः कुये से जल आदि). ३ बनाया या रचा हुआ (स्त्री० उसारियोड़ी)

उसास-सं०पु०—१ सांस, श्वास, शरीरस्थ नाक से बाहर निकलने वाली वायु, निश्वास । उ०— नांम तुम्हीणौ हौ ! घणनांमी, सास उसास संभारिस स्वांमी ।—ह.र. २ दुःख वा शोकसूचक श्वास, उच्छ्वास, आह । उ०—१ कंवळा कूंपळ अधर कुम्हळिया घणी निसासां । कोरे मंजणि लूखी लट मुख हिलै उसासां ।—मेघदूत उ०—२ आलम सौं बगलगीरी मिळ आदर किया, अमपती सनाह खोल उर उसास लिया ।—रा.रू.

उसासौ-सं०पु०—देखो 'उसांस' (रू.भे.) उ०—ज्यांनै देख परणिहारियां रा सील सांमान खूटिया, कंवारियां जिके परणबा री हूंस करै है, परणियां जिके उसासा भरै है ।—र. हमीर

उसीनर-सं०पु० [सं० उशीनर] १ शिवि का पिता एक चन्द्रवंशी राजा. २ गांधार देश ।

उसीर-सं०पु०—१ तकिया (अ.मा.)

उसीरक-सं०स्त्री०—खसखस (डिं.को.)

उसीलौ-सं०पु० [फा० उसीला] १ वसीला, सम्बन्ध, जिससे कुछ लाभ या सहायता प्राप्त हो सके, जरिया. २ मदद, सहायता. ३ आश्रय ।

उसीस-सं०पु०— तकिया (अ.मा.)

उसीसणौ, उसीसबौ-क्रि०स० [सं० उद्शीर्षण, उच्छीर्षण] किसी कामना-निहित संकल्पसिद्धि के उद्देश्य से देवता के प्रति कोई वस्तु या द्रव्य रखना जो संकल्प (व्रत) पूरा होने पर वापस उठा ली जाती है अथवा देवता के ही निमित्त किसी कार्य या वस्तु बनवाने में खर्च करदी जाती है ।

उसीसियोड़ौ-भू०का०कृ०—किसी संकल्पसिद्धि के उद्देश्य से किसी देवता के प्रति रक्खा हुआ (पदार्थ या वस्तु आदि) ।
वि०वि०— देखो 'उसीसणौ, उसीसबौ' । (स्त्री० उसीसियोड़ी)

उसीसो, उसीसौ-सं०पु०— तकिया, सिरहाना । उ०—गोरण दिन गूती सखी, बाग़ा ढोल बिणास । बांह उसीसौ खींचियो, जागी पटक निसास ।—वी.स.

उसूल-सं०पु० [अ०] सिद्धान्त ।

उस्द्र-सं०पु०—ऊंट ।

उस्द्रग्रीव-सं०पु०—एक प्रकार का भगंदर रोग (अमरत)

उस्द्रासण-सं०पु० [सं० उष्ट्रासन] योग के चौरासी आसनों के अन्तर्गत एक आसन । इसमें उलटा सो कर दोनों पांवों को पीठ पर लाया जाता है । पीछे दाहिने पांव के अंगूठे को दाहिने हाथ से तथा बायें पांव के अंगूठे को बायें हाथ से पकड़ा जाता है और मुख तथा उदर का सम्यक प्रकार से आकुंचन किया जाता है । इससे गमन-शक्ति की वृद्धि होती है तथा भूख-प्यास सहन करने का बल आता है ।

उस्द्रस्रंगी-सं०पु० [सं० उष्ट्रश्रृंगी] एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

उस्ण-वि०—देखो 'उसण' ।

उस्णकटिबंध-सं०पु० [सं० उष्ण+कटिबंध] कर्क और मकर रेखाओं के बीच का पृथ्वी का हिस्सा (भूगोल)

उस्णता-सं०स्त्री० [सं० उष्णता] गर्मी, ताप ।

उस्णारस्म-सं०पु० [सं० उष्ण+रश्मि] सूर्य्य, भानु (नां.मा.)

उस्णासू-सं०पु० [सं० उष्ण+अंशु] सूर्य, भानु । उ०—कमध्वंसी त्रिस्णं कमलभव जिस्णू स्तुति करै । हिमांसू उस्णासू पदम पद पांसू सिर धरै ।—मे.म.

उस्तरी-सं०स्त्री०—धोबी या दर्जी का वह औजार जिसे गर्म करके कपड़े को धोने या सीने के बाद कपड़े की तह को जमा कर उसकी शिकन मिटाते हैं इस्त्री ।

उस्तरो-सं०पु०—बाल मूंडने का छुरा, उस्तुरा ।

उस्तादी-सं०पु० [फा०] गुरुआई, चतुराई, चालाकी, धूर्त्तता ।

उस्तुरौ-सं०पु०—देखो 'उस्तरो' ।

उस्रा-सं०स्त्री०—गाय (ह.ना.)

उह-सर्व०—वह ।

उहकाळणौ, उहकाळबौ-क्रि०स०—१ उछालना. २ डिगाना ।
उ०—केहीज लोभ राखिया तणा पतसाह उहकाळे । केहीज रंक राखिया महारोरवे दुकाळे ।—नैणसी ३ देखो 'उकाळणौ' ।

उहड़-सं०पु०—राठौड़ राजपूतों की एक शाखा ।

उहदेदार-सं०पु०—ओहदे पर स्थित व्यक्ति, ओहदेदार ।

उहदौ-सं०पु०—ओहदा, पद, स्थान ।

उहव-वि०—त्याज्य । उ०—उहव थयां नां कोई वह आवै, सुरियण मारग अन्य सह ।—महाराणा हम्मीरसिंह रौ गीत

उहां-क्रि०वि०—वहां, उधर । उ०—इहां सु पंजर मन उहां, जय जांणइ ना लोइ । नयणां आडा वींझ वन, मनह न आडउ कोइ ।
—ढो.मा.
सर्व०—१ उन । उ०—तद कुंवर उहां रजपूतां नुं कही ।—चौबोली
२ उन्होंने । उ०—तद उहां इण री बातां सुण इण रै पूरब जनम री बात जांण'र कही ।—डाढ़ाळा सर री बात

उहाळ-सं०पु०—बहती हुई जलधारा के साथ बहने वाला कूड़ा-करकट जो तट पर जम जाया करता है ।

उहास-सं०पु० [सं० उद्+भास] १ प्रकाश, चमक । उ०—आणंद सु जु उदौ, उहासहास अति, राजति रद रिखपंति रुख ।—वेलि.
२ विद्युत रेखा । उ०—ऊजळी दांमणी अणी वीजळी उहास ।
—क.कु.बो.

उहासत-सं०पु० [सं० उद्भासित] तेज, प्रकाश (अ.मा.)

उहासहास-सं०पु०—हास-परिहास ।

उहासियौ-वि०—१ उमंगयुक्त. २ जोश में आया हुआ ।

ऊंहि, उहि, उही-सर्व०—१ वही, वह । उ०— १ अर उहि कौ कारीगर जड़णहारौ कांमदेव हुऔ ।—वेलि टी. उ०—२ त्यूं राव री फौज ऐसी बिजळवाई गई सौ बाजे-बाजे लोग आध कोस तांई गयौ, उठा तांई मुंह सूं उही जवाब आयें आयें री रहियौ ।—डाढाळा सूर री बात
२ उस, उसी । उ०—अर उही दुख नैं दिन घटिया लागौ ।—वेलि टी.
क्रि०वि०—वहीं ।

उहीज–सर्व०—१ वही, निश्चयार्थकसूचक शब्द । उ०—वसता हरिया बाग बिच, होती रोस हजार । वसिया उहीज 'बांकला', माढू ग्राम मझार ।—बां.दा.

२ उसी ।—उ०—इणां तौ उहीज बेळा बंधुगढ़ री मारग लियौ ।
—पलक दरियाव री बात

उहुळ–सं०स्त्री० [सं० उल्लोल] लहर, तरंग ।

उहै–सर्व०—उस । उ०—तौ रुक्समणी जी छै सु चतुर छै, तिन रउ जु ऊरधसांसु उहै पवन हुवौ ।—वेलि टी.

ऊ

ऊ-सं०पु०—वर्णमाला का छठवां वर्ण, इसका लघु रूप 'उ' है। इसका उच्चारण ओष्ठ से होता है।

ऊं-सर्व०—१ उस।
कहा०—ई हाथ दे ऊं हाथ ले—इस हाथ से दे उस हाथ से ले। जैसा करता है वैसा फल तुरन्त मिलता है।
२ वह।
क्रि०वि०—१ ऐसे. २ उधर, उस तरफ।
सं०स्त्री०—१ छोटे बच्चों के रोने की ध्वनि।
सं०पु०—२ निषेधसूचक उच्चारित शब्द।
कहा०—अेके ऊं सूं काम सरै—एक सिर्फ निषेधात्मक ऊं करने से ही काम सफल हो जाता है। किसी काम के न करने के लिए अथवा वायदे में न फँसने के लिए प्रयुक्त होता है. ३ ब्रह्मा (ह.नां.)
अव्यय—से (करण व अपादान कारक का चिन्ह)

ऊंकार-सं०पु०—ॐ प्रणव मंत्र।

ऊंखळ-सं०पु०—देखो 'ऊंखळी' (डि.को.)

ऊंखळकूटौ-सं०पु०—ओखली में कूट कर निकाली जाने वाली बाजरी (अन्न विशेष)

ऊंखळी-सं०स्त्री० [सं० उलूखल] काठ वा पत्थर का बना हुआ गड्ढे-नुमा एक गहरा बरतन जिसमें धान वा किसी और अन्न को डाल कर भूसी अलग करने के लिए मूसल से कूटते हैं, ओखली (डि.को.)
कहा०—१ ऊंखळी में माथौ दियौ पछै घावां री कांई गिणती—ओखली में सिर दिया फिर चोटों की क्या गिनती करना।
२ ऊंखळी में सिर घाल्यां पछै मूसळ (चोटां) रौ कांई डर? ओखली में सिर डाला पीछे मूसल की चोटों का क्या डर; जब किसी काम में हाथ डाल दिया तो फिर विघ्न-बाधा या कष्टों की क्या परवाह करना।

ऊंग-सं०स्त्री०—देखो 'ऊंघ'।

ऊंगट, ऊंगठ, ऊंगठौ-सं०पु०—देखो 'अंगठ'।

ऊंगड़-वि०—अधिक नींद लेने वाला, निंद्रालु।

ऊंगण, ऊंगणियौ-सं०पु०—रहँट के जिस डंडे पर बैठ कर बैल हांके जाते हैं उस पर लगा हुआ सहारे का डंडा।
वि०—अधिक निंद्रा लेने वाला, निंद्रालु।

ऊंगणौ, ऊंगबौ-क्रि०अ०—देखो 'ऊंघणौ' (रू.भे.)

ऊंगळी-सं०स्त्री०—देखो 'उंगळी'।

ऊंगा-सं०स्त्री०—राठौड़ों की एक उप-शाखा।

ऊंगाळू-वि०—निंद्रालु, ऊँघने वाला।

ऊंगियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'ऊंघिओड़ौ'। (स्त्री० ऊंगियोड़ी)

ऊंगीजणौ, ऊंगीजबौ-क्रि०अ०—देखो 'ऊंघीजणौ, ऊंघीजबौ'।

उ०—बेल रै खोळे में घर सीस, कंवळा फूल रह्या ऊंगीज।—सांझ

ऊंगौ-सं०पु०—औंधे कांटेदार एक घास विशेष (क्षेत्रिय)

ऊंघ-सं०स्त्री०—हल्की नींद, झपकी, तन्द्रा।

ऊंघणौ-सं०पु०—नींद। उ०—विपत मन्त्र विपरीत, अधरम आळस ऊंघणौ। अपजस सोर अनीत, पैलां घर वांछै पिसण।—बां.दा.

ऊंघणौ, ऊंघबौ-क्रि०अ०—नींद में झूमना, तन्द्रालु होना, झपकी लेना।
उ०—अकबर घोर अंधार, ऊंघाणा हींदू अवर। जागै जग दातार, पोहरै रांण प्रतापसी।—प्रथ्वीराज राठौड़
ऊंघणहार, हारौ (हारी), ऊंघणियौ-वि०—ऊँघने वाला।
ऊंघाणौ, ऊंघाबौ—स०रू०। ऊंघवणौ—रू०भे०।
ऊंघिओड़ौ, ऊंघियोड़ौ, ऊंघ्योड़ौ—भू०का०कृ०।
ऊंघीजणौ, ऊंघीजबौ—भाव वा०।
कहा०—१ ऊंघती नै बिछावणौ लाधग्यौ—ऊँघती हुई को बिछौना मिल गया. २ ऊंघती नै मांचौ लाध्यौ—ऊँघती हुई को पलंग मिल गया; जो बातें चाहते हों वही हो जाना; इष्ट-कार्य करते समय अनुकूल साधन मिल जाना; काम करना नहीं चाहते हों उन्हें अनुकूल बहाना मिल जाना. ३ ऊंघियोड़ा व्है तौ जगावै पण औ तौ जागतौ घोरीजै—जो जान-बूझ कर नींद का बहाना कर रहा है उसे किस प्रकार से जगाया जाय।

ऊंघांणौ-वि०—निंद्रित, ऊँघता हुआ। उ०—अर प्रथ्वीराज रा वीरां अचांणक काछी मिळाय ऊंघाणौ बीर रस तत्काळ जगायौ।—वं.भा.

ऊंघाई-सं०स्त्री०—नींद, झपकी, तन्द्रा, ऊँघ।

ऊंघाकळौ-वि०पु०—निंद्रालु, निंद्रित। (स्त्री० ऊंघाकळी)

ऊंघियोड़ौ-भू०का०कृ०—ऊँघा हुआ, निंद्रा लिया हुआ।
(स्त्री० ऊँघियोड़ी)

ऊंघीजणौ, ऊंघीजबौ-क्रि०अ०—ऊँघा जाना, नींद लिया जाना।

ऊंच-वि० [सं० उच्च] १ उच्च, श्रेष्ठ. २ कुलीन।

ऊंचणौ, ऊंचबौ-क्रि०स० [सं० उच्चयन] बोझ उठाना। उ०—ऊंचण लागी नार नवेली, माथै ऊपर मटकी।—रेवतदांन
ऊंचणहार, हारौ (हारी), ऊंचणियौ-वि०—बोझ उठाने वाला।
ऊंचाणौ, ऊंचाबौ—क्रि०स०।
ऊंचिओड़ौ ऊंचियोड़ौ, ऊंच्योड़ौ—भू०का०कृ०।
ऊंचीजणौ, ऊंचीजबौ—कर्म०वा०—बोझ उठाया जाना।

ऊंचपण, ऊंचपणौ-सं०पु०—१ उच्चता, ऊँचाई। उ०—अवडौ सायर न ऊंडपण, अवडौ मेर न ऊंचपण।—किसनौ आढ़ौ
२ बड़प्पन का भाव।

ऊंचमोलौ-वि० [सं० उच्च+मूल्य] बहुमूल्य, कीमती। उ०—अत तुरंग ऊंचमोला अनेक, कल्लवाटभंज ता बंस केक।—वि.सु.रू.

ऊंचरतौ-वि० [सं० उच्चरितः] १ भाग्यशाली. २ महत्वाकांक्षी (स्त्री० ऊंचरती)

ऊंचळ-सं०पु० [सं० उच्चल] मन, अंतःकरण (ह.नां.)

ऊंचलौ-वि०—ऊपर का।

ऊंचवहौ-वि०—१ उर्द्धस्कंध. उ०—धांगी मांझळ घातिया, जमसैदांणी जांम। **ऊंचवहौ** ऊनड़ हुवौ, सिंध तणी घर सांम।—बां दा. २ बोझा उठाने वाला। ३ सहिष्णु।

ऊंचाई-सं०स्त्री०—१ उठान, ऊपर की ओर का विस्तार. २ बड़ाई, श्रेष्ठता।

ऊंचाणौ, ऊंचावौ-क्रि०स०—वजन उठाना, ऊँचा करना।

ऊंचणहार, हारौ (हारी), **ऊंचाणियौ**-वि०—वजन उठाने वाला, ऊँचा करने वाला।

ऊंचावणौ, ऊंचावबौ—रू.भे.। **ऊंचायोड़ौ**—भू०का०कृ०।

कहा०—ऊंचायोड़ौ कुत्तौ किती'क सिकार करै—किसी को ठेल-ठेल कर कितना कार्य कराया जा सकता है? कार्य मनुष्य अपनी इच्छा से करेगा तब ही ठीक होगा।

ऊंचापण-सं०पु०—१ ऊँचाई, बड़प्पन. २ उच्चकुल।

ऊंचास-सं०पु०—ऊँचाई।

ऊंचासरौ-सं०पु० [सं० उच्चाश्रय] निकास-स्थान। उ०—कमंध जादवां वैर कदोको, **ऊंचासरै** उजाळै आय। 'सीहै' 'लाखो' जांम साझियौ, जुग जासी पण बात न जाय।—राव सीहा री गीत।

वि०—वीर, उदार चित्त, श्रेष्ठ। उ०—कमर बांधियां तूण सारंग गहियां करां। सुकर खग दांन जेहांन **ऊंचासरा**।—रा ज.प्र.

ऊंचासिरौ-वि० [सं० उच्चशिरा] वह जिसका सिर ऊँचा रहता है, गर्वोन्नत। उ०—सुतन भाराथ जुध अनड़ **ऊंचासिरां**। लड़ण घड़ कुंवारी तू ज लाडौ।—अज्ञात

ऊंचियांण-सं०स्त्री०—बहुत अन्तर से गर्भवती होने वाली गाय या भैंस।

ऊंची-क्रि०वि०—ऊँचे पर, ऊपर।

ऊंचीतांण-सं०स्त्री०—महत्वाकांक्षा। उ०—है अकबर घर हांण, डांण ग्रहे नीची दिसट। तजै न **ऊंचीतांण**, पोरस रांण 'प्रतापसी'।

—दुरसौ आढ़ौ

ऊंचीधरा-वि०—१ महत्वाकांक्षी. २ उदारचित्त।

ऊंचीयांण-सं०स्त्री०—देखो 'ऊंचियांण' (रू.भे.)

ऊंचीसरौ-वि०—१ महत्वाकांक्षी. २ उदारमन, दातार। (मि० 'ऊंचासिरौ')

ऊंचीस्रवावाह-सं०पु० [सं० उच्चैश्रवः+वाह=घोड़ा] इंद्र, सुरेश (डि.को.)

ऊंचे-क्रि०वि०—१ ऊपर, ऊँचे पर. २ ऊपर उठा हुआ, ऊपर की ओर. ३ जोर से (ध्वनि)

ऊंचेरौ-वि०—ऊँचा।

ऊंचौ-वि० [सं० उच्च] १ ऊपर उठा हुआ, उन्नत, बुलंद. २ बड़ा, श्रेष्ठ।

कहा०—१ ऊंची दूकान फ़ीका पकवान। २ ऊंचा मकान फीका पकवान—दीखने में बड़ी दूकान किन्तु छोटी सी वस्तु भी नहीं मिलती जिसका नाम एवं कार्य उसके रूप के अनुसार न हो। ३—घणौ ऊंचौ चढ़णै नीचै पड़ै जणै उण रै उती ही ज्यादा लागै—अधिक उन्नति के बाद पतन होने पर उतना ही अधिक दुःख होता है। ४—ऊंचा चढ़ चढ़ देखौ घर घर ओही लेखौ—सब जगह यही हाल है, सुख-दुख सबको भोगना पड़ता है।

३ जिसका छोर नीचे तक न हो. ४ कुलीन।

मुहा०—ऊंचौ आवणौ (आवबौ)—समृद्ध होना, तरक्की करना, गुस्सा करना, विरोध बढ़ना।

ऊंचोड़ौ-वि०—ऊपर का, ऊँचा वाला।

ऊंझाडेह-वि०—औंधा। उ०—ऊंचा हूं नीचा हुवै, जे करनार करेह। बावड़ हंदे फूल ज्यूं, आवै **ऊंझाडेह**।—जलाल बूबना री बात

ऊंट-सं०पु० [सं० उष्ट्र, पा० उट्ठ] लंबी गरदन वाला एक ऊँचा पशु जो सवारी और बोझा लादने के काम में आता है।

पर्याय०—अणियाळौ, आंखरातंबर, उमदा, कंटकअसण, करह, करहौ, करेलड़ौ, काछी, कुळनास गघ, गघराव, गय, गिड़ंग, जमाद, जमीकरवत, जाखोड़ौ, जूंग, टोड, तोड़, दरक, दाशेरक, दुरंतक, पांगळ, पाकेट, पीडाढाल, प्रचंड, वासंत, भुणकमळौ, भूणमथौ, मयंद, सढ्ढौ सळ, सांढ़ियौ।

कहा०—१ ऊंट आरड़ताई पीलांणीजै है—ऊँट के दर्द से चिल्लाते हुए भी उस पर चारजामा कसा जाता है। जबरदस्ती काम कराना. २ ऊंट किसी धड़ बैठै—देखें ऊँट किस करवट बैठता है? देखें आगे चल कर क्या नतीजा होता है या कैसी परिस्थिति खड़ी होती है. ३ ऊंट कूदै ही कोयनी, बोरौ पैं'ली ही कूदण लाग ज्यावै—ऊँट कूदता नहीं, बोरे उसके पहले ही कूदने लगते हैं। सम्बन्धित व्यक्तियों की मौजूदगी में असंबंधित व्यक्तियों का पंचायती करना ठीक नहीं होता. ४ ऊंट खुड़ावै, गधौ डांभीजै—ऊँट खुड़ाता है, गधा दागा जाता है; अपराध कोई करे, फल कोई भोगे.

५ ऊंट खुड़ावै जद गधै रै डांभ देवै—ऊँट लँगड़ाता है तब गधे के दाग देते हैं; अपराध कोई करे दंड किसी को दिया जाय. ६ ऊंट चढ़ी गुड़ खाय—ऊँट पर चढ़ी हुई गुड़ खाती है। सबको दिखाते हुए कोई काम करना. ७ ऊंट चढ़ी भीख मांगै—ऊँट पर चढ़ी हुई भीख माँगती है। पास में सम्पन्न वस्तुओं के होते हुए भी भीख मांगना। भीख मांगते हुए भी ठाट-बाट रखना. ८ ऊंट चढ्यै नै कुत्तौ खाय—ऊँट पर चढ़े हुए को कुत्ता खा जाता है। ऊँट पर चढ़े हुए व्यक्ति तक कुत्ते का पहुँचना असम्भव है अतः असंभव बात; भाग्य खोटा होने पर असम्भव बात भी हो जाती है. ९ ऊंट चढ्यै नै दौ दीसै—ऊँट पर चढ़े हुए को दो दिखाई देते हैं? थोड़ी सी उन्नति में कुछ का कुछ हो जाना. १० ऊंट छोडै आकड़ौ बकरी छोडै कांकरौ—ऊँट केवल मदार वृक्ष को छोड़ता है,

किन्तु बकरी सब कुछ खा सकती है केवल कंकरों को छोड़ कर। उस व्यक्ति के लिए जो किसी बात से परहेज न करता हो ११ ऊंट तौ अरड़ावता हीज पलांणीजै (लादीजै)—मि० कहा० नं० (१) १२ ऊंट नै गुळ-पांणी सूं कांई हुवै ?—ऊँट को गुड़-पानी से क्या हो ? अधिक खाने वाले के लिये. १३ ऊंट नै ऊठतां ही ढांण नहीं घातणी—ऊँट को उठते ही तेज नहीं चलाना। किसी काम के प्रारंभ में ही अधिक तेजी नहीं दिखाना क्योंकि यह तेजी बराबर नहीं रह सकती और बाद में काम ढीला पड़ने लगता है. १४ ऊंट फिटकड़ी दियां ही अरड़ावै, गुड़ दियां ही अरड़ावै—ऊँट फिटकड़ी देते भी अरड़ाता है और गुड़ देते भी अरड़ाता है। दुःख और सुख दोनों ही में असन्तुष्ट रहने वाले के लिये. १५ ऊंट मरै जद लंका सांमी जोवै—ऊँट मरता है तब लंका (लंकियो) की ओर देखता है क्योंकि वह उसकी मातृ-भूमि है. १६ ऊंट री खोड़ ऊंट नै इज बोवै—१७ ऊंट री खोड़ ऊंट भुगतै—ऊँट की कमी या अवगुण स्वयं ऊँट को ही भुगतना पड़ता है क्योंकि ऊँट के दोष आदि का कुप्रभाव अन्य पशु घोड़ा, बैल, भैंस आदि के दोष की भाँति ऊंट के खरीददार या मालिक पर नहीं होता। खुद का किया हुआ खुद को ही भुगतना पड़ता है. १८ ऊंट री नस आंटी व्है तौ सीधौ दोखियौ ही कंई—१६ ऊंट रै ऊंट तेरी कुणसी कळ सीधी—ऊँट की सब कलें या अंग टेढ़े-बांके ही होते हैं; सब प्रकार के अवगुणी मनुष्य के लिये.

२० ऊंट री पीठ पर नहीं लदै सौ गळै में बंधै—जो ऊँट की पीठ पर नहीं लद सकता वह भार स्वयं सवार को उठाना पड़ता है। मातहत में कार्य करने वाले यदि कार्य नहीं करते तो स्वयं स्वामी को ही कार्य करना पड़ता है। ऊंट की पीठ पर लदने के बाद यदि कुछ शेष रह भी जाता है तो बेचारे के गले में ही बंधता है। गरीब को हर तरह से काम में लिया जाता है. २१ ऊंट रै गळवांणी सूं कांई हुवै—मि० कहा० नं० (१२) २२ ऊंट रै पेट में जीरा रौ बघार—ऊँट रै पेट में जीरै रौ बघार—ऊंट के पेट में जीरे का बघार, बहुत खाने वाले को थोड़ी चीज देना. २३ ऊंट रौ पाद जमी रौ न आसमांन रौ—ऊंट का पाद न जमीन का न आसमान का; जो किसी के काम का न हो उसके लिये; निकम्मे आदमी के अधूरे काम के लिये. २४ ऊंट लदण सूं गयौ तौ कांई पादण सूं ही गयौ ?—ऊंट लदने से गया तो क्या पादने से भी गया; पूर्ण अधिकार छिन गया तो क्या साधारण अधिकार भी न रह गया ? २५ ऊँट लांबौ तौ पूंछ छोटी—ऊंट लम्बा पूँछ छोटी; सब बातें मनचाही नहीं होतीं, कुछ कुछ कमी रह गई. २६ ऊंटां रै कुण छपरा छाया हा ?—ऊँटों के किसने छप्पर छाए थे अर्थात् वे तो खुले में ही रहते आये हैं; बिना वस्तु काम चलाने के लिये। (रू.भे. ऊंठ)

२ एक मारवाड़ी लोकगीत का नाम. ३ ओट, आड़, आश्रय।

उ०—ढालां री ऊंट देनै जीवतौ निलोहौ पकड़ि हजूर ले आवौ।

—वीरमदे सोनगरा री बात

ऊंटकंटाळी, ऊंटकंटाळउ, ऊंटकंटाळौ—सं०पु० [सं० उष्ट्रकंठ] एक कटारा नामक कँटीली झाड़ी जिसे ऊंट बड़े चाव से खाता है (अमरत)

ऊंटगाडी—सं०स्त्री—ऊँट द्वारा खींचा जाने वाला शकट या रथ।

ऊंटगाडीबलाली—सं०स्त्री०—एक प्रकार का सरकारी कर।

ऊंटड़ियामहादेव—सं०पु०—महादेव का एक तीर्थ-स्थान।

ऊंटड़ी—सं०स्त्री०—मादा ऊँट (अल्पार्थ)

ऊंटड़ौ—सं०पु०—१ गाड़ी के अग्र भाग में नुकीले भाग के नीचे लगाया जाने वाला लकड़ी का वह उपकरण जो उस समय जमीन पर टिका रहता है जब गाड़ी जमीन पर बिना बैलों आदि के छोड़ दी जाती है. २ ऊँट (अल्पा०) (रू.भे. ऊँटड़ौ, ऊँटहड़ौ)

ऊंटफोग—सं०पु०—जल वृक्ष के सहारे पसरने वाला एक प्रकार का फोग। वि०वि०—देखो 'फोग' (क्षेत्रिय)

ऊंटादेवी—सं०स्त्री०—एक देवी विशेष जिसकी पूजा प्रायः पुष्करणा ब्राह्मण करते हैं।

ऊंठ—सं०पु०—देखो 'ऊंट'।

ऊंठकंटाळौ—सं०पु०—देखो 'ऊंटकंटाळौ'।

ऊंठड़ौ—वि०—देखो 'ऊंट', 'ऊंटड़ौ'।

ऊंठियौ—एक प्रकार का जाति विशेष का सिंह (अ.मा.)

ऊंठेड़—सं०पु०—गौड़वंशी क्षत्रियों की एक उपशाखा।

ऊंठै—वि०—ऊँची। उ०—जहां कहीं ऊंठै चौ भुंह छै तठै भुंह उघाड़ी छै।—वेलि टी.

ऊंठौ—सं०पु० (स्त्री० ऊंठी) १ जूठन. २ तीन और आधे के योग की गुणनफल की क्रमागत सौ तक की गुणन-सूची।

वि०—जूठा, उच्छिष्ट। उ०—मैं तौ विजय में केवळ प्रमांण पावण रै काज या कीधी जिण थी ओर री ऊंठी कीरति रौ भोगणौ बीती होत्र बसुधेस्वर रा बंस नूं।—वं.भा.

ऊंठथामणी—सं०पु० [सं० उच्छिष्टास्थानं] मकान के बाहर ऐंठे बर्तन साफ करने का स्थान (क्षेत्रिय)

ऊंठथावड़ी—सं०स्त्री० [सं० उच्छिष्टस्तिका] व्यभिचारिणी स्त्री (क्षेत्रिय) उ०—क्यूं रे मोल्या उंठथावड़ा बूझवा वाळौ कुण छै रे तूं, म्हांको खुसी हांसे जैडे जावांगा हमेस।—ऊ.का. (पु० उंठथावड़ौ)

ऊंड—सं०स्त्री०—१ गहराई. २ वह नाली जो सिंचाई करने वाली मुख्य नाली से निकलती हो।

ऊंडळ—सं०स्त्री०—१ मोट (चरस) के ऊपर लगा हुआ लकड़ी का वह टुकड़ा जिससे रस्सा बाँधा जाता है।

वि० वि०—देखो 'कड़तू' नं० (२) २ बैलगाड़ी में नीचे लगाया जाने वाला लकड़ी का डंडा. ३ गोद। उ०—जोध बळै राजान रौ, भळै खवां कुळ भार। आभ सभा है ऊंडळे, दीठे दळ करार।

—रा.रू.

ऊंडवण, ऊंडांत, ऊंडांयण, ऊंडांयत, ऊडापण, ऊडापणौ—उ०लि०—गहराई. २ नीची भूमि। उ०—१ अवड़ौ सायर न ऊडवण अवड़ौ

मेर न ऊंचपण ।—किसनौ ग्राढ़ौ ३ गम्भीरता । उ०—मांन वडापण मेर, मांन **ऊंडायण** सागर ।—बुधजी ग्रासियौ

ऊंडाळकी, ऊंडाळकौ—सं०उ०लि०—१ वह नीची भूमि जहाँ वर्षा के दिनों में पानी एकत्रित हो जाता हो । पानी सूखने पर वहाँ प्रायः खेती की जाती है ।

वि०—गहरा ।

ऊंडियण—वि०—१ गहरा, ग्रथाह ।

ऊंडौ—वि० (स्त्री० ऊंडी) १ गहरा । उ०—ग्रागै ग्रावतां एक खाळ बारह हाथ की चोड़ी घणौ **ऊंडौ** ग्राडै ग्रायौ जठै कुमार दूदौ ।—वं.भा. २ गम्भीर. ३ ग्रगाध (डि.को.)

सं०पु० —तहखाना ।

ऊंडोड़ौ—वि०— जो गहरा व गंभीर हो । (स्त्री० ऊंडोडी) ।

ऊंण—ग्रव्यय [सं० ग्रधुना, प्रा० ग्रहुणा, पं० हुण, रा० ग्रांण] इस वर्ष, वर्तमान वर्ष ।

ऊंणत, ऊंणारत—सं०स्त्री०—ग्रभाव, कमी (र.ज.प्र.) उ०—पहलै जलम भोगिया प्राछत, संगम करण न लीधौ स्वाद । पूरण हूंस एम भव पूरै, **ऊंणारत** वाळी उदमाद ।

ऊंणौ—वि० (स्त्री० ऊंणी) १ प्राकृतिक जन्म ग्रवधि से पूर्व जन्म लेकर मृत्युप्राप्त शिशु, ग्रपूर्ण, ग्रधूरा. २ छोटा बच्चा । उ०—**ऊंणां** ऊरणियां खरसणियां ग्रोळै । डरड़ा नरड़ा बिण ग्ररड़ा दे टोळै ।
—ऊ.का.

ऊंताळ—सं०पु० [सं० उत्ताल] देखो 'उताळ' । उ० —ग्रायौ घणौ **ऊंताळ**, सरिया दे हेला समां । वणठां हेक न वाळ, मिनड़ी जाया मोतिया ।—रायसिंह

ऊंतावळ—सं०स्त्री०—देखो 'उतावळ' (रू.भे.)

ऊंतावळौ—वि०—देखो 'उतावळौ' ।

ऊंतोळणौ—क्रि०स०—संहार करना, मारना । उ०—सुरांपती हेके वज्र रोळिया पहाड़ सारा, सारा खळां हेके **ऊंतोळिया** चांदसींघ ।
—हुकमीचंद खिड़ियौ

ऊंत्तावळ—सं०स्त्री०—देखो 'उतावळ' ।

ऊंदर, ऊंदरियौ, ऊंदरौ—सं०पु० [सं० उंदुर] १ चूहा (ग्र.मा.)

कहा०—१ ऊंदरा थड़ियां करणौ—निर्धनता के लिये. २ (घर रा) ऊंदरा ही राजी व्है तौ कांम करणौ—घर का प्रत्येक प्राणी राजी हो तो काम करना. ३ ऊंदरे रै बिल में कौ घुसीजै नी. ४ ऊंदरे री बिल कौ जोईजै नी—तुम्हारी इच्छित वस्तु लाने के लिए चूहे के बिल में तो घुसा नहीं जा सकता या ढूंढ़ा नहीं जा सकता; ग्रनुचित कार्य कराने के बारे में या ग्रसंभव वस्तु की प्राप्ति के लिये.

५ ऊंदरौ ग्राप भी बिल में कौ मावै नी नै लारै भळै कांटा बांध लै—एक तो चूहा वैसे भी बिल में नहीं समाता ग्रौर ग्रपने साथ कांटे भी बांध कर ले ग्राता है; जहाँ स्वयं का भी प्रवेश कठिन हो वहाँ ग्रपने साथ किसी ग्रौर को ले जाना. ६ घर तौ घांचियां रा बळसी पण ऊंदरा ही सुख कांई पावसी—दूसरों को कष्ट में डालने वाला खुद भी सुखी नहीं रह सकता. ७ मिनी रै रोळ होवै ग्रर ऊंदरां रा घर जावै—सशक्त व समर्थ व्यक्तियों की दिल्लगी में निर्बल को कष्ट उठाना पड़ता है ।

२ ४६ लघु १ गुरु कुल ४७ वर्ण ग्रौर ४८ मात्राग्रों का दोहा नामक छंद विशेष ।

ऊंदरी—सं०स्त्री०—दाढ़ी मूंछें व शिर के बाल उड़ने का एक रोग विशेष (ग्रमरत)

ऊंदिरा—सं०पु०—घोड़ों की एक जाति विशेष ।

ऊंध—सं०स्त्री०—उत्तर ग्रौर वायव्य के मध्य की दिशा जिस ग्रोर सप्त ऋषि ग्रस्त होते है ।

ऊंधाड़कौ—वि०—उलटा काम करने वाला, विरुद्ध ग्राचरण करने वाला.

ऊंधायलौ—सं०पु०—१ किसी मिट्टी ग्रादि के पात्र में शकरकंद भर कर भूमि पर छोटे गड्ढे में उसे उलटा रख उस पर ग्राग जला कर उन्हें पात्र के ग्रंदर ही भाप से सेकने की क्रिया । यह क्रिया ग्रधिकतर लोग रहट से पानी निकालने के पात्र डब्बू (घड़) में ग्रधिक करते हैं. २ वह बड़ा तवा जिसे बड़े चूल्हे पर उल्टा रख कर रोटियाँ सेकी जाती हैं । इस पर एक साथ कुछ ग्रधिक रोटियाँ सेकी जा सकती हैं ।

ऊंधौ—वि०—१ ग्रौंधा । उ०—त्यां ऊपरि जोगण्यां का पत्र ऊंधा पड्या वह्या जाय छै ।—वेलि. टी.

कहा०—ऊंधौ पड्यौ ग्रंबर चाटै—ग्रौंधे मुंह पड़ा है फिर भी ग्राकाश छूने का प्रयत्न जारी है । ग्रसमर्थ होते हुए भी कठिन से कठिन कार्य करना; पराजित होते हुए भी विजय का लाभ लेना ।

२ उलटा, विलोम । (स्त्री० ऊंधी)

ऊंधौ-चूंधौ—वि०—१ उलटा-पुलटा. २ ग्रदल-बदल. ३ उलटा-सीधा । उ०—**ऊंधा-चूंधा** कर फेरा उळभावै, बनड़ौ बनड़ी बर मनड़ौ मुरभावै ।—ऊ.का.

ऊंन—सं०पु० [सं० ऊर्ण] १ भेड़ के रोयें. [सं० ऊन]

२ स्त्रियों के लिए एक छोटी सी तलवार ।

वि०—१ कम, थोड़ा, ग्रल्प. २ छोटा ।

ऊंनड़—सं०पु०—ऊंनड़ नाम का जामवंशीय (यादव) राजा जो ग्रपने समय का महान दातार था ग्रौर जिसने ग्रपने राज्य (सिंध) के सात ही भाग दान में दे दिये थे ।

ऊंनतभद्रा—सं०स्त्री०—दक्षिण की एक नदी, तुंगभद्रा ।

ऊंनाळू—वि० [सं० उष्णकाल+ऊ रा० प्र०] उष्णकाल का, गर्मी की ऋतु संबंधी ।

सं०पु०—रबी की फसल ।

ऊंनाळो, ऊंनाळौ—सं०पु० [सं० उष्णकाल] ग्रीष्म ऋतु । उ०—विण गंगा नय वार क्रमण बाधै **ऊंनाळै** ।—रा.रू.

ऊंनियौ—सं०पु०—भेड़ का जन्मजात छोटा बच्चा ।

ऊंनी—वि०—१ ऊन का बना, ऊन का। उ०—राती कांनी री पोतड़ियां रूड़ी। ऊंनी लोवड़ियां बगलां में ऊड़ी।—ऊ.का. २ गर्म, उष्ण। उ०—सांम धरम घर सांच, चाकर जेही चालसी। ऊंनी ज्यांनै आंच, रती न आवै राजिया।—किरपारांम

सर्व०—उसकी।

क्रि०वि०—उस ओर।

ऊंनै, ऊंनै—सर्व०—उसको।

क्रि०वि०—१ इस ओर, इधर. २ उस ओर, उस तरफ। उ०—ऊंनै राव सेखा को सतेजो लोग आयौ। ऊंनै खेत लूटघां तीर गोड़ां सांकड़ायौ।—शि.वं.

ऊंनौ—वि०—गर्म, उष्ण। उ०—संत दास री हुयगी सूंनौ, आंतां पांणी पायौ ऊंनौ।—ऊ.का.

ऊंब—सं०पु०—वर्षा ऋतु के वे बादल जिनमें बहुत कम जल होता है तथा क्वचित ही बरसते हैं। इनकी गति पश्चिम से पूर्व की ओर तथा दक्षिण से उत्तर की ओर होती है। उ०—ऊंबां जळ बळ कायरां, बिदरां कुळ विवहार। नहीं दवां निरधूमतां, ज्यूं अदवां उपगार।—बां.दा.

ऊंबर—सं०पु०—१ एक प्रकार का वृक्ष या उसका फल.

२ देखो 'उमराव'।

ऊंबरउ—सं०पु०—देखो 'उमराव'।

ऊंबरण—सं०पु०—सफेद तने का एक बड़ा वृक्ष जिसके फल तने व शाखाओं पर लगते हैं। फलों का आकार नीबू के समान होता है और स्वाद में मीठे होते हैं।

ऊंबरौ—सं०पु० [फा० उमराव] १ देखो 'उमराव'। उ०—अत सग्यांन ऊधरां सुमति ऊंबरां समापै।—रा.रू. २ जोती हुई जमीन में हल से खींची हुई लकीर।

कहा०—चोरां नै आडं ऊंबरै लौ कै साउकार किसौ ऊबै ऊंबरै आवसी—चोर को हल की आड़ी रेख पर भगाओ किन्तु साहूकार को कौनसी सीधी रेखा भागना होना; अगुआ अगर कोई टेढ़ा कार्य करता हो तो पीछे आने वालों को भी वैसा ही कष्ट उठाना पड़ेगा।

ऊंबा-लूंबा—सं०स्त्री०—वे फूंदे (धागों के गुच्छे) जो ऊंटों के बाजू में चारजामे में लटकाये जाते हैं। उ०—ऊंबा-लूंबा हूंत अनेसी, तर भड़ वळी वहीरां तैसी। ओपै पंथ कतारां ऐसी, जळधारां नदी सांवण जैसी।—रा.रू.

ऊंबी—सं०स्त्री०—गेहूं की बाल।

ऊंमस—सं०स्त्री०—तपन, गर्मी, ताप, उष्णता।

ऊंमट—सं०पु०—पँवार वंश की एक शाखा।

ऊंमर—सं०पु०—१ उमर या उमरसूमरा नामक एक जाति जिसने संवत् ११११ से १४०६ तक सिंध देश में राज्य किया (ढो.मा.)

२ उदुंबर, एक फल विशेष।

ऊंमी—सं०स्त्री०—देखो 'ऊंबी' (डि.को.)

ऊंळौ—वि०—उल्टा। उ०—तीं पछै ऊंळा हाथ री ओफड़ सूं नाहरराज सिपाह बळी री सीस उड़ायौ।—वं.भा.

ऊंही—सर्व०—उसी। उ०—इण रीति मूढ़ सगाळ सिंह रा सहाय सूं गजराज नूं गुड़ाय आपरै ही अधीन जांणि ऊंही गजराज री लूम बिभाग में सिंह नूं देण चहै।—वं.भा.

ऊंहु, ऊंहू—अव्यय—निषेधसूचक शब्द, नहीं।

ऊ—सर्व०—१ वह। उ०—जगदंबा कहियौ चाहै जिसौ कष्ट करौ भावना सुद्ध न होय जरैं ऊ कस्ट मातंग रा न्हांण जिम वृथा फळ बतावै।—वं.भा. २ उस।

सं०पु०—१ रक्षा. २ शिव. ३ ब्रह्मा. ४ मोक्ष. ५ चंद्रमा. ६ प्रधान. ७ पवन. ८ सूर्य. ९ पूर्ण निर्धनता, दारिद्रय. १० प्रेत. ११ अग्नि. १२ आकाश. १३ कुत्ता. १४ शेषनाग. १५ मुनि. १६ स्थल. १७ भाव।

वि०—१ मूर्ख. २ दातार. ३ सुखी. ४ व्यभिचारी. ५ लघु. (एका०)

अव्यय—करण एवं अपादान कारक का विभक्ति चिन्ह, से।

उ०—आप जिसा वीर रक्षक हुवा तौ अब म्हे ऊ प्रदेस लेण रौ संकळप तजियौ।—वं.भा.

ऊअर—सं०पु० [सं० उरस्] हृदय। उ०—वाह दे तुरां चढ़ राह न सकै वहण। 'विजावत' मांडियौ भाखरै बास। पाय तखत दिलीपुर नयर कीजै पहट। साह रै ऊअर मावै नहीं सास।—सुखजी खिड़ियौ

ऊअहे—क्रि०वि०—स्पर्श करते हुए, छूते हुए। उ०—काछि काछि वन कीधी काया। ऊलमि अंब ऊअहे घर आया।—आसौ बारहठ

ऊआरणौ, ऊआरबौ—क्रि०स०—१ बचाना, रक्षा करना। उ०—अदल लियौ वदलौ नकूं, राखै उबारी, राब यम मारियौ जांणजै रांण। केहरी जड़ी 'कांधळ' ऊअर कटारी, चूक मझ ऊआरी अचड़ चवांण।

—हररांम आसियौ

२ न्योछावर करना। उ०—लाखां द्रव ऊआरै उतारै लूण जड़ै लोहां।—पहाड़ खां आढ़ौ

ऊआरणहार, हारौ (हारी), ऊआरणियौ—वि०—बचाने या रक्षा करने वाला।

ऊआरिओड़ौ, ऊआरियोड़ौ, ऊआरचोड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊआरियोड़ौ—भू०का०कृ०—बचाया या रक्षा किया हुआ।

(स्त्री० ऊआरियोड़ी)

ऊईज—सर्व०—वही।

ऊएलै—अव्यय—इधर के। उ०—धरकियौ अचळ हिंदू धरम ऊएलै पह आज रा।—रा.रू.

ऊक—सं०पु०—बंदर (नां.मा.)

ऊकटणौ, ऊकटबौ, ऊकटिणौ, ऊकटिबौ—क्रि०स०—१ आगे बढ़ना।

उ०—अनेक ऊकटै मिटै कटै तुटै सु अंग में।—गा.रू. २ कसिया जाना. ३ प्रहार हेतु शस्त्र उठाना। देखो 'उकटणौ' (रू.भे.)

४ सूख जाना। उ०—उतर आज स उतरउ, ऊकटिया मागेह।

बेलां बेलां परिहरइ, एकल्लां मारेह ।—ढो.मा. ५ उत्पन्न होना, बढ़ना। उ०—**ऊकटै** खार धरवेढ़ डिगिया, सार फाटै गयण मेळ सांधो ।—अज्ञात

ऊकटणहार, हारौ (हारी), ऊकटणियौ—वि० ।

ऊकटिग्रोड़ो, ऊकटियोड़ो, ऊकटयोड़ो—भू०का०कृ० ।

ऊकटियोड़ो–भू०का०कृ०—१ आगे बढ़ा हुआ. २ कसिया गया हुआ. ३ प्रहार हेतु शस्त्र उठाया हुआ. ४ सूखा हुआ. ५ उत्पन्न हुआ. ६ बढ़ा हुआ । (स्त्री० ऊकटियोड़ो)

ऊकठिणौ, ऊकठिबौ–क्रि०अ०—देखो 'उकढ़णौ, उकढ़बौ' (रू.भे.) उ०—उत्तर आज स वज्जियउ, **ऊकठियइ** केकांण । कांमिण कांम कमेड़ि ज्यउं, हइ लागउ सींचांण ।—ढो मा.

ऊकठियोड़ो–भू०का०कृ०—देखो 'उकठियोड़ो' । (स्त्री० ऊकठियोड़ी)

ऊकठो–सं०पु०—ऊँट के चारजामे के साथ कसा जाने वाला चमड़े का फीता ।

ऊकडणौ, ऊकडबौ–क्रि०अ०—देखो 'उकढ़णौ' ।

ऊकडणहार हारौ (हारी), ऊकडणियौ—वि० ।

ऊकडिग्रोड़ो, ऊकडियोड़ो, ऊकडयोड़ो—भू०का०कृ० ।

ऊकडियोड़ो–भू०का०कृ०—देखो 'उकठियोड़ो' । (स्त्री० ऊकडियोड़ी)

ऊकड़ो, ऊकड़ौ–वि०—देखो 'उकडू' । उ०—आधो अंग प्रकास **ऊकड़ौ** गै जळ पीवै । तिण री करतां ध्यांन नीर जे थूं घण पीवै ।—मेघ.

ऊकढ़णौ, ऊकढ़बौ–देखो 'उकढ़णौ, उकढ़बौ' ।

ऊकढ़ियोड़ो–भू०का०कृ०—देखो 'उकढ़ियोड़ो' ।(स्त्री० ऊकढ़ियोड़ी)

ऊकतौ–वि०—१ कहने वाला, वर्णन करने वाला, रचने वाला. २ देखो 'उकतौ' ।

ऊकरड़–सं०स्त्री०—जबरदस्ती घँसने का भाव । उ०—**ऊकरड़** एक एकां पड़ै ऊपरै, नारि संभार सै कंत नाया । - राव जैतसी रौ गीत

ऊकरड़ी–सं०स्त्री०—देखो 'उकरड़ी' (रू.भे.)

ऊकरड़ीखत–सं०पु०—गांव का वह पंचायती खत जिसमें गांव के किसी सामूहिक कार्य के लिये खर्च व हिसाब लिखा जाता है ।

ऊकरड़ो–सं०पु०—देखो 'उकरड़ी' (पु० महत्त्व०) । उ०— रे ढांढां करि छांहड़ी, करइ करहां री कांणि । **ऊकरड़ै** डोका चुणे, सौ आप डंभायौ आंणि ।— ढो.मा.

ऊकळ–सं०पु०— देखो 'ऊखळी' ।

ऊकळणौ, ऊकळबौ- क्रि०अ०—देखो 'उकळणौ, उकळबौ' । उ०—रांम भरोसै **ऊकळै**, आदण ईसरदास । ऊकळता में औ रहै, राख बंदा बिसवास ।—ह.र.

मुहा०—ऊकळता बूकणौ—त्वरा करना, शीघ्रता करना ।

ऊकलणौ, ऊकलबौ- देखो 'उकलणौ, उकलबौ' ।

ऊकस–सं०पु०— उकसने की क्रिया या भाव । उ०—बिहुं थाट **ऊकस** बंधे बरकस, सरस जस काजि तरस साहस ।—रा.रू.

ऊकसणौ, ऊकसबौ–क्रि०अ०—देखो 'उकसणौ, उकसबौ' ।

उ०—चोटियाळी कूदै चौसठि चाचरि, थूं **ढळियै ऊकसै घड़** ।—वेलि.

ऊकसियोड़ो–भू०का०कृ०—देखो 'उकसियोड़ो' । (स्त्री० उकसियोड़ी)

ऊकाळणौ, ऊकाळबौ–क्रि०स०—देखो 'उकाळणौ, ऊकाळबौ' (रू.भे.)

ऊकाळियोड़ो–वि०—देखो 'उकाळियोड़ो' ।

ऊख–सं०पु० [सं० इक्षु] १ शर जाति की एक घास जिसके डंठलों में मीठा रस रहता है जिससे गुड़ और चीनी आदि पदार्थ बनाये जाते हैं, गन्ना (डिं.को) उ०—वेळा सायर वसत, दारु मझि अगिनि दिखावत । हवसि मांझि पैं होय, **ऊख** मधु रस उपजावत ।

— ईश्वरदास बारहठ

२ बन, जंगल (ह.नां.) ३ मादा पशुओं का स्तन । उ०—धेनूं चरतांड़ी धोरां खड़ धाती, **ऊखां** झरतोड़ी लोरां झड़ आती ।

—ऊ.का.

ऊखड़णौ, ऊखड़बौ–क्रि०अ०—देखो 'उखड़णौ, उखड़बौ' (रू.भे.) ।

ऊखड़ियोड़ो–भू०का०कृ०—देखो 'उखड़ियोड़ो' । (स्त्री० ऊखड़ियोड़ी)

ऊखणणौ, ऊखणबौ, ऊखणिणौ, ऊखणिबौ—देखो 'उखणणौ, उखणबौ' (रू.भे.)

ऊखणौ, ऊखबौ–क्रि.अ. सं०—१ उखड़ना । उ०—किलवां मोबा कंपिया, मिटी सलाह सताब । ज्यास विना जोधांण में, **ऊखे** मास नबाव । २ देखो 'उखणौ, उखबौ' । —रा.रू

ऊखध, ऊखधी–सं०उ०लि ०[सं० औषधि] १ औषधि । उ०—नायण फूलमती नुं कही एक हूं **ऊखध** जाणां छां तैमुं तैनुं बोहोत सुख हुसी ।—चौबोली २ वनस्पती । उ०—पीळांणी धरा **ऊखधी** पाकी ।—वेलि.

ऊखमल–सं०पु०—१ युद्ध । उ०—गळ भरै न ग्रीधण गूढ़ गळां, अजमल रौ करै न **ऊखमला** । अजमल रौ करसी ऊखमलां, गळ भरसी ग्रीधण गूढ़ गळां ।— करणीदांन कवियौ २ योद्धा, वीर ।

ऊखरस–सं०पु०—गन्ने का रस । उ०—अदतारां घर ऊख रस, नंह कारण मिसठांण ।—बां.दा.

ऊखळ–सं०पु० [सं० उदूखल या ऊलूखल] पत्थर या लकड़ी का पृथ्वी में गड़ा हुआ अलग पात्र जिसमें डाल कर भूसी वाले अनाजों की भूसी मूसल से कूट कर अलग करते हैं । उ०—हरै सदा नवनीत हद, पर घर दही सूं प्यार । बोलै **ऊखळ** बांधियौ, मधुरा वचन मुरार ।—क.कु.बो. कहा०—ऊखळ में माथो दियौ धमीड़ां रो कांई डर—ओखली में सिर दिया तो अब चोट का क्या डर । साहसपूर्वक किसी कार्य को करने का विचार ही कर लिया है तो उपस्थित होने वाली बाधाओं या होने वाली क्षति का क्या भय ।

ऊखलणौ, ऊखलबौ–क्रि०अ०—देखो 'उखड़णौ' । उ०—कळपतरू **ऊखलि** पड़ै 'जसौ' महा ध जांम । माळां गाळां ठांम महि तिको न सूझै तांम ।—हा.झा.

ऊखळमेळो–सं०पु०—१ युद्ध. २ उपद्रव, उत्पात । उ०—अधपती भीम कुमंत्री आंटै, विरड़ै तीजी वेळा । 'माधव' जिसा खिजायां माझी, मंडिया **ऊखळमेळा** ।—नवलजी लाळस

ऊखळी–सं०स्त्री०—१ देखो 'ऊखळ' २ चूल का पत्थर या लोहे की चूल।

ऊखांणो–सं०पु०—कहावत, उक्ति। उ०—१ सुणीजे ऊखांणो पुरांणो सयांणी।—ना.द. उ०—२ गोलां सूं न सरै गरज, गोला जात जबून, ऊखांणो सायद भरै, सौ गोलां घर सून।—बां.दा.

ऊखांखणौ–क्रि०अ०—कोप करना। उ०—ऊभो दिली सीस ऊखांखै 'जगा' तणो कसियां जरद। महलां तणा मरद अन महपत, मेवाड़ी मरदां मरद।—जोगीदास कुंवारियो

ऊखा–सं०स्त्री० [सं० उषा] १ सवेरा, अरुणोदय. २ बाणासुर की कन्या जो अनिरुद्ध को ब्याही गई थी (वेलि.)

ऊखाड़णौ, ऊखाड़बौ–क्रि०स०—देखो 'उखाड़णौ, उखाड़बौ'।

ऊखाड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उखाड़ियोड़ौ'। (स्त्री० ऊखाड़ियोड़ी)

ऊखेड़णौ, ऊखेड़बौ, ऊखेड़िणौ, ऊखेड़िबौ–क्रि०स०—देखो 'उखाड़णौ' उ०—एकां मूळ ऊखेड़िया, हेकां किया निहाल।—रा.रू.

ऊखेड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उखेड़ियोड़ौ'। (स्त्री० 'उखेड़ियोड़ी')

ऊखेळ–सं०पु०—१ युद्ध, समर। उ०—अत दिन चूक रचै मेवाड़ां, यम हल हुओ हुओ ऊखेळ। रिड़मल तेथ कह्यो रायां गुर, मन भुज बळां कटारी मेळ।—चांनण खिड़ियो २ झगड़ा, उपद्रव।
उ०—दिल साजनां दुमेळ, नीच संग ओछी निजर, अति सबळां ऊखेळ, पैलां घर बांचै पिसण।—बां.दा.

ऊखेलणौ, ऊखेलबौ–क्रि०स०—देखो 'उखाड़णौ, उखाड़बौ'।
उ०—पुहपां मिसि एक एक मिसि पातां, खाड़िया द्रव मांडिया ऊखेल।—वेलि.

ऊखेलियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उखाड़ियोड़ौ'। (स्त्री० उखेलियोड़ी)

ऊखेलो, ऊखेलौ–सं०पु०—युद्ध, समर। उ०—भूप अजीत रहै भो भेळी, इण बळ टळै खळां ऊखेलौ।—रा.रू. देखो 'उखेलौ'

ऊखोवा–सं०पु०—राठौड़ वंस की एक उपशाखा।

ऊगड़णौ, ऊगड़बौ–क्रि०अ०—देखो 'ऊघड़णौ, ऊघड़बौ'।

ऊगड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'ऊघड़ियोड़ौ'।

ऊगट–सं०पु०—उबटन, सुगंधित लेप। उ०—सखिए ऊगट मांजिणउ, खिजमति करइ अनंत। मारू तन मंडप रच्यउ, मिळण सुहावा कंत।—ढो.मा.

ऊगटणौ, ऊगटबौ–क्रि०अ०—१ देखो 'उगटणौ'।
[सं० उत्कृष्ट] २ उत्कृष्टता करना। उ०—करतां बहु कागद मुकता कर, कव बोहरौ यह अरज करै। खूबी करां ऊगटां खावां, सदा सबळ धुर गरज सरै।—गोगादांन

ऊगटियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उगटियोड़ौ'। (स्त्री० ऊगटियोड़ी)

ऊगटौ, ऊगठौ–सं०पु०—ऊँट या घोड़े के चारजामे के तंग कसने का चमड़े का चौड़ा फीता, रकाब बाँधने का चमड़े का फीता।

ऊगणौ, ऊगबौ–क्रि०अ०—१ उदय होना, निकलना, प्रकट होना।
उ०—सींगड़ियां ऊगण समै, बाछड़वां री बंक। खबर पड़ै धुर खेंचसी, औ तौ आडै अंक।—बां.दा.
कहा०—१ ऊगतां ही को तप्यौ नी जको आथमतां कांई तपसी—उगते ही नहीं तपा, वह अस्त होते क्या तपेगा; जो बचपन में ही प्रतापी नहीं हुआ वह बुढ़ापे में क्या होगा. २ ऊगतौ सूरज तपै—उगता हुआ सूर्य ही तपता है; बचपन में जो प्रतिभा दिखाते हैं वही प्रतिभावान होते हैं. ३ ऊगसी जको आथमसी—उगेगा वह अस्त होग; उन्नति के बाद अवनति आती ही है. ४ ऊगा सूर भागा भूर—सूर्य उदय हुआ और अंधेरा मिटा. ५ ऊगै सौ आथमे, जनमै सौ मर जाय—देखो 'ऊगसी जको आथमसी'. ६ ऊगौ'र पूगौ. ७ ऊगौ सोई पूगौ—उदय हुआ और अस्त को पहुँचा; शीतकाल के दिन के लिये।
२ अंकुरित होना, उपजना।
कहा०—ऊगतै धांन री पनोळ भी दीसै—उगते धान की पहिचान उसके अंकुरित पत्ते देखने से ही हो जाती है; होनहार के पहले से ही लक्षण मालूम हो जाते हैं।
३ नशा आना. ४ उत्पन्न होना।
ऊगणहार, हारौ (हारी), ऊगणियौ–वि०—उगने वाला।
ऊगाणौ, ऊगाबौ, ऊगावणौ, ऊगावबौ–स०रू०।
ऊगिओड़ौ, ऊगियोड़ौ, ऊग्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊगत–सं०स्त्री०—१ उदय होने की क्रिया या भाव. २ देखो 'उगत'।

ऊगम–सं०स्त्री०—देखो 'उगम'।

ऊगमण–सं०स्त्री०—१ उदय। उ०—१ ऊगमण भलौ आवीत आळौ।—अज्ञात
उ०—२ 'पातल' हरा ऊपरा पराभव, खळ खूटा तूटा खड़ग। पंडवनांमी नीठ पाड़ियो, लग ऊगमण नै आथमण लग।
२ पूर्व दिशा। —भीमसिंह सिसोदिया रौ गीत

ऊगमणियौ–वि०—उदय होने वाला, उगने वाला, पूर्व दिशा या पूर्व दिशा सम्बन्धी, पूर्व दिशा का निवासी।

ऊगमणौ–वि०—पूर्व दिशा सम्बन्धी।
सं०पु०—पूर्व दिशा।

ऊगमणौ, ऊगमबौ–क्रि०अ०—१ उगना, अंकुरित होना. २ उदय होना। उ०—१ उर नभ जितै न ऊगमै, औ संतोस अदीत। नर तिसना किसना निसा, मिटै इतै नह मींत।—बां.दा.
उ०—२ म्लेछां सरिसु भिड़िउ घणा घाए, पड़िउ ऊगमतइ सूरि।—कां.दे प्र.
ऊगमणहार, हारौ (हारी) ऊगमणियौ–वि०—उगने वाला।
ऊगमिओड़ौ, ऊगमियोड़ौ, ऊगम्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊगरणौ, ऊगरबौ–देखो 'उगरणौ, उगरबौ'।

ऊगळ–सं०स्त्री०—देखो 'उगळ'।

ऊगळणौ, ऊगळबौ–देखो 'उगळणौ'। उ०—१ गुण गंध ग्रहित गिळि गरळ ऊगळित, पवण वाद ए उभय पख।—वेलि.

उ०—२ खांय तड़च्छा खांन, थारा भयसां भारथ। असुरांणी आधांन, अवधि बिहूणा ऊगळै।—ला.रा.

ऊगळियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उगळियोड़ौ'। (स्त्री० ऊगळियोड़ी)

ऊगवण–सं०पु०—पूर्व दिशा। उ०—बूंदी कोस ६५ तथा ७०, ऊगवण था क्यूई आवे री दसोर दिसा हद।—नैणसी

ऊगवणौ, ऊगवबौ, ऊगव्वणौ–क्रि०स०अ०—१ देखो 'ऊगणौ'. २ सँवारना। उ०—करी मनांन ऊगव्या बाळ, कंठि धरी तुळसी नी माळ। —कां.दे.प्र.

ऊगवणहार, हारौ (हारी), ऊगवणियौ–वि०—उगने वाला, सँवारने वाला।

ऊगविओड़ौ, ऊगवियोड़ौ, ऊगव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊगारणौ, ऊगारबौ–क्रि०स०—बचाना, रक्षा करना। उ०—रही रही नइ लीधा घाउ, जीव ऊगारचा छांडी ठाउ।—कां.दे.प्र.

ऊगारणहार, हारौ (हारी), ऊगारणियौ–वि०—बचाने वाला।

ऊगारिओड़ौ, ऊगारियोड़ौ, ऊगारयोड़ौ–भू०का०कृ०—बचाया हुआ, रक्षित। (स्त्री० ऊगारियोड़ी)

ऊगाळणौ, ऊगाळबौ–क्रि०स०—देखो 'उगाळणौ, उगाळबौ'। उ०—तंत तणक्कइ पिउ पियइ, करहउ ऊगाळेह।—ढो.मा.

ऊगाळियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उगाळियोड़ौ' (स्त्री० ऊगाळियोड़ी)

ऊगूण, ऊगूणी, ऊगूणौ–सं०उ०लि०—१ पूर्व दिशा, सूर्योदय की दिशा. २ नवजात पौधे के पनपने के लक्षण।

वि०—पूर्व दिशा का, पूर्व दिशा सम्बन्धी।

ऊगेळ–सं०पु०—देखो 'उगेळ' (रू.भे.)

ऊगोड़ौ–भू०का०कृ० (स्त्री० ऊगोड़ी) देखो 'उगोड़ौ'।

ऊघड़–वि०—१ नग्न, खुला. २ स्पष्ट, खुलासा।

ऊघड़णौ, अघड़बौ–क्रि०अ०—देखो 'उघड़णौ, उघड़बौ'। उ०—ऐ बक मूनी ऊजळा, मीठा बोला मोर। पूछो सफरी पनग नूं, क्रत ऊघड़ै कठोर।—बां.दा.

ऊघड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उघड़ियोड़ौ' (स्त्री० ऊघड़ियोड़ी)

ऊघसणौ, ऊघसबौ–क्रि०अ० [सं० उद्घर्षण] किसी वृक्ष या पत्थर आदि से पशु का शरीर घर्षण करना, रगड़ना, घिसटना।

ऊघसणहार, हारौ (हारी), ऊघसणियौ—वि०।

ऊघसिओड़ौ, ऊघसियोड़ौ, ऊगसयोड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊघाई—देखो 'उगाही' (रू.भे.)

ऊघाड़—देखो 'उगाड़' (रू.भे.)

ऊघाड़णौ–वि०—१ खोलने वाला. २ आवरणरहित करने वाला. ३ काटने वाला। उ० ऊगै दिन अरियां कंमळ ऊघाड़णौ।—अज्ञात

ऊघाड़णौ, ऊघाड़बौ–क्रि०स० [सं० उद्घाटन] १ खोलना, आवरण हटाना, नग्न करना। उ०—मुनि घालै तप जोग बळ, सरग कपाटां हत्थ। वेही क्रपण कपाट नूं, ऊघाड़ण असमत्थ।—बां.दा. २ प्रकट करना. ३ भंडा फोड़ना।

ऊघाड़णहार, हारौ (हारी), ऊघाड़णियौ–वि०—उघाड़ने वाला।

ऊघाड़िओड़ौ, ऊघाड़ियोड़ौ, ऊघाड़योड़ौ–भू०का०कृ०—उघाड़ा हुआ।

ऊघाड़ळ, ऊघाड़ौ–वि०—१ नग्न, नंगा. २ खुला।

ऊघाड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ आवरणरहित किया हुआ, उघाड़ा हुआ. २ प्रकट किया हुआ। (स्त्री० ऊघाड़ियोड़ी)

ऊड़दावेगण–सं०स्त्री०—देखो 'उड़दावेगण' (रू.भे.)

ऊड़ी–वि०—१ ऐसी. २ वैसी। उ०—राती कांनी री पोतड़ियां रुड़ी, ऊनी लोवड़ियां बगलां में ऊड़ी।—ऊ.का. ३ समान, तुल्य।

ऊड़ीयंद–सं०पु० [सं० उडु+इंद] चंद्रमा।

ऊचड़णौ, ऊचड़बौ–क्रि०स०—ऊँचा फेंकना, उछालना। उ०—ऊचड़िया जु ते मरण अब 'ईसर' खळ खीजिये चढ़ावे खाग। गज दळ अेक धरण दिस गुड़िया, गज दळ अेक गया गैणाग।—ईसरदास मेड़तिया रौ गीत

ऊचरणौ, ऊचरबौ–क्रि०स० [सं० उच्चारण] कहना, उच्चारण करना (डिं.को.)

उ०—वारवधू ही हरण वित, नेह जणावै नैण। यूं सिर लेवा ऊचरै, वैरी मीठा वैण।—बां.दा.

ऊचरणहार, हारौ (हारी), ऊचरणियौ–वि०—कहने या उच्चारण करने वाला।

ऊचारिओड़ौ, ऊचारियोड़ौ, ऊचारयोड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊचारियोड़ौ–भू०का०कृ०—कहा हुआ, उच्चरित। (स्त्री० ऊचरियोड़ी)

ऊचवहौ–वि०—देखो 'ऊंचवहौ'। उ०—ऊचवहौ राइसिंघ अंगोभम, आखै राजकुमार इम। तूठा दाळिद जड़ां न तोड़ै, रूठा किम ओड़िसै रिम।—रूपसी लाळस

ऊचांर–वि०—१ बड़ा. २ ऊँचा, श्रेष्ठ। उ०—आतस अपार ऊचांर जस गैलाइत तक्कं गळी।—रा.रू.

ऊचाळउ, ऊचाळौ–सं०पु०—देखो 'उछाळौ' (३) उ०—मारू थांकइ देसड़इ, एक न भाजइ रिड्ड। ऊचाळउ क अवरसणउ, कइ फाकउ कइ तिड्ड।—ढो.मा.

ऊचीस्रव, ऊचीस्रवा–सं०पु० [सं० उच्चैःश्रवा] १ इन्द्र (अ.मा.) (मि० अधश्रवा) २ इन्द्र का घोड़ा (नां.मा., डिं.को.) ३ सूर्य का घोड़ा। उ०—गैण ऊचीस्रवा भांण खंचायौ अटैल ग्रीधां। बंका रु जटैल पाठ पढायौ बीरांण। ऊभटैल पटा काळी नचायौ चांमंडा आळी। पटैल बरुथां मारू मचायौ पीठांण। —महेसदास कूंपावत रौ गीत

ऊचेड़णौ, ऊचेड़बौ–क्रि०स०—१ उखाड़ना, उखेलना। उ०—सिंधु परइ सउ जोअणे, नीची खिवइ निहल्ल। उर भेदंती सज्जणां, ऊचेड़ंती सल्ल।—ढो.मा. २ उभारना, ऊपर उठाना।

ऊचेड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उखाड़ा हुआ. २ उभारा हुआ। (स्त्री० ऊचेड़ियोड़ी)

ऊचैस्रव–सं०पु० [सं० उच्चैःश्रवा] १ इन्द्र का घोड़ा. २ देखो 'ऊचीस्रवा' (रू.भे.)

ऊच्छकणौ, ऊच्छकबौ–क्रि०अ०—देखो 'उचकणौ, उचकबौ'।
उ०—कळ चाल खळां सिर ऊच्छकियौ, उरसां सुजांणे रा ऊतरियौ।
—गो.रू.

ऊच्छरणौ, ऊच्छरबौ–क्रि०स०—देखो 'उछरणौ, उछरबौ'।

ऊच्छरावर–वि०—योद्धा, युद्ध में वीर गति को पाने वाला।

ऊच्छरियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उछरियोड़ौ'।
(स्त्री० ऊच्छरियोड़ी)

ऊच्छेरणौ, ऊच्छेरबौ–क्रि०स०—देखो 'उछेरणौ, उछेरबौ'।

ऊछजणौ, ऊछजबौ–क्रि०स०—प्रहार हेतु (शस्त्रादि) उठाना।
उ०—१ खग ऊछजिये अभंग सांखलौ, वदे कलावत वीर वर।
—महेसदास कल्यांणदासोत सांखला री गीत
उ०—२ छोह घणौं ऊछज छरा, केहर फाड़ै डाच। ऐरावत कुळ ऊपरा, मीच मंडीजै नाच।—बां.दा.

ऊछटणौ, ऊछटबौ–क्रि०अ०—उछल या कट कर दूर पड़ना।
उ०—जिण नूं नवनीत रा पिंड री उपमांन भूत भेजी ऊछटी तिको ऊपर ही झेलि भद्रकाळी लोहित रूप आसव रा चसक रै साथ साथ उपदंस करि पीधी।—वं.भा.

ऊछरणौ, ऊछरबौ–क्रि०स०—देखो 'उछरणौ उछरबौ'।
उ०—आगै गयां सिकार ऊछरै, औ भी नांखै तुरंग उपाड़ि। ऊठी बाग पागड़ो उचकै, नीचौ पड़ै तुड़ावै नाक।—कपूत री गीत

ऊछरियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उछरियोड़ौ'। (स्त्री० ऊछरियोड़ी)

ऊछळणौ, ऊछळबौ–क्रि०अ० [सं० उच्छलन] देखो 'उछळणौ, उछळबौ'
उ०—घणी तरवारियां रा बाढ़ ऊछळै छै।—सूरे खींवे री बात

ऊछव–सं०पु०—देखो 'उछव'। उ०—पहिरावणी राजा करी। ऊछव गुडी भोज दुवारि।—वी.दे.

ऊछाछळ–वि०—चंचल, नटखट। उ०—म्रिघ ज्यों कूदता, नट ज्यों नाचता, कुलचता, अकुळणी रै नैण ज्यों ऊछांछळा, आपरी छाग्रां सूं डरपता।—रा.सा.सं.

ऊछाळौ–सं०पु०—देखो 'उछाळौ' (७) उ०—पिंगळ ऊछाळौ कियौ, आयौ पो'कर नीर। खड़ पांणी परघळ तिहां, हुवौ ज सुख सरीर।
—ढो मा.

ऊछाह–सं०पु०—देखो 'उछाह' (रू.भे.)

ऊछेर–सं०स्त्री०—संतति, संतान। उ०—कम हीमत कुळ काट, माभी मरण मलीण मत। कुळ ऊछेर कुवाट, पैलां घर वांछै पिसण।
—बां.दा.

ऊजड़–वि०—जनशून्य, निर्जन, उजाड़, वीरान। उ०—ऊंडा जळ सूकै अवस, नाळौ बन जळ जाय। छुगल तणां पगफेर सूं, वसती ऊजड़ थाय।—बां.दा.
कहा०—ऊजड़ गांव में एरंडियौ ही रूंख—ऊजड़ गांव में एरंड ही पेड़ गिना जाता है। विशेष योग्यता वाले व्यक्तियों के अभाव में थोड़ी योग्यता वाले भी आदर पाते हैं।

ऊजड़णौ, ऊजड़बौ–क्रि०अ०—देखो 'उजड़णौ, उजड़बौ'।
उ०—आण्यउं राउ घणउ अम्हे नडीउ, मारू देस घणू ऊजड़िउ।
—कां.दे प्र.

ऊजड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उजड़ियोड़ौ'। (स्त्री० ऊजड़ियोड़ी)

ऊजड़ौ–वि० [सं० उज्जडम] देखो 'उजड़ौ'।

ऊजटेल–वि०—चंचल, तेज।

ऊजड–वि०—देखो 'उजड्ड'।

ऊजडपण, ऊजडपणौ–सं०पु०—देखो 'उजड्डपण'।

ऊजम–सं०पु० [सं० उद्यम] कार्य, प्रयत्न, उद्योग, प्रयास।

ऊजमणौ, ऊजमबौ–देखो 'उजमणौ, उजमबौ'।

ऊजमियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उजमियोड़ौ'। (स्त्री० ऊजमियोड़ी)

ऊजळ–वि० [सं० उज्ज्वल] १ उज्ज्वल, सफेद। उ०—मारू मारू कळहयां, ऊजळ दंती नार।—ढो.मा. २ निर्मल, स्वच्छ. ३ पवित्र। सं०पु०—भाला।

ऊजळईपाख–सं०पु० [सं० उज्ज्वल+पक्ष] शुक्ल पक्ष।

ऊजळणौ, ऊजळबौ–क्रि०स०—१ उज्वल करना. उ०—पब्बै धारां पाग्रे मौत रळेगौ अमरां-पुरां, ऊजळै गौ गोत बूंदी समरां आथांण।
—दुर्गादत्त बारहठ
२ कीर्तिवान करना. ३ उद्धार करना।
क्रि०अ०—४ देखो 'उजळणौ'।

ऊजळदांन–सं०पु० [सं० उज्ज्वल+दान] कमरों में ऊपर की ओर दीवारों में बने झरोखे, रोशनदान।

ऊजळाई–सं०स्त्री०—देखो 'उजळाई'।

ऊजळियौ–वि०—देखो 'ऊजळौ' (स्त्री० ऊजळी)

ऊजळीनदी–सं०स्त्री०—लूनी नदी का एक नाम।

ऊजळौ–वि० [सं० उज्ज्वल] देखो 'उजळौ' (स्त्री० ऊजळी)

ऊजळोलोह–सं०पु०—१ तलवार. २ तेज तलवार का ऐसा प्रहार कि तलवार के रक्त लगे ही नहीं। उ०—फोज री घेरौ राखि दोइ-हजार बीरां थी दहिया बळराज नूं मांम्हां झेलि ऊजळोलोह चलायौ।
- वं.भा.

ऊजवणौ, ऊजवबौ–देखो 'उजवणौ' (रू.भे.)

ऊजवाळौ–सं०पु०—उजियाला, प्रकाश, उजाला।

ऊजाड़णौ, ऊजाड़बौ–देखो 'उजाड़णौ, ऊजाड़बौ'।

ऊजाड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उजाड़ियोड़ौ' (स्त्री० ऊजाड़ियोड़ी)

ऊजाळगर–वि०—१ उज्वल करने वाला, चमकाने वाला. २ निष्क-लंक करने वाला।

ऊजाळणौ, ऊजाळबौ–क्रि०स०—देखो 'उजाळणौ'।

ऊजाळियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उजाळियोड़ौ' (स्त्री० ऊजाळियोड़ी)

ऊजास—देखो 'उजास'।

ऊजासड़उ–वि०—१ उजाड़, निर्जन, सुनसान। उ०—थळ मथ्थइ ऊजासड़उ, थे इण केहइ रंग। धण नीजइ प्री मारिजइ, छांडि विडांणउ संग।—ढो.मा.

२ प्रकाश, रोशनी। देखो 'उजासड़ौ' (रू.भे.)

ऊजासह, ऊजासौ–सं०पु०—उजियाला, प्रकाश। उ०—सोळह कळा समाइ गयौ ससि, ऊजासहि आप आपरणै।—वेलि.

ऊझ–सं०स्त्री०—आँतड़ियों का वह मल जो शव के चीरने पर निकलता है। उ०—सौ बूकड़ा काढ़ि बारै ग्रीजां नै दीधा ग्रोर आंत ऊझ भेळा करि पेटी सैंठी बांधि ऊपरि हथियार बांध्या।

—वीरमदे सोनगरा री बात

ऊझड़–सं०पु०—उबट, ऊँचा-नीचा, विकट मार्ग। उ०—ऊझड़ चले न पैंडे जाय, भूखा रहे न धापि न खाय।—ह.पु.वा.

ऊझटेल–वि०—बिखरी हुई जटा वाला। उ०—गैण ऊचीस्रवा भांण खंचायौ थटैल ग्रीधां, बंकारू जटैल पाठ बंचायौ बीरांण। ऊझटैल पटा काळी नचायौ चांमंडा आळी, पटैल बरथां मारू मचायौ पीठांण।

—महेसदास कूंपावत रौ गीत

ऊझणउ, ऊझणौ–सं०पु०—पुत्री के द्विरागमन के अवसर पर दी जाने वाली धन-संपति-वस्त्रादि वस्तुएँ। देखो 'उझरणौ' (रू.भे.)

ऊझणउ, ऊझणौ, ऊझबौ-क्रि०स०—देखो 'उजमरणौ' (रू.भे.)

ऊझळ–वि० [सं० उज्ज्वल] देखो 'ऊजळ'।

सं०पु०—हिलोर, तरंग। उ०—संत तारण सतोळण प्रभु सहण री, महण री ऊझळ महरांण री मौज।—ग्रज्ञात

ऊझळणौ, ऊझळबौ–क्रि०अ०— १ देखो 'उझळणौ, उझळबौ'। उ०—पंथ निहारै पाहुणा, गीध बिहारै गैण। ग्रमल कचोळां ऊझळै, नींद बिछोड़ै नैण।—बी.स. २ उमड़ना, उफनना। उ०—जटा जूट सिर बन पट झलै, अंग अघट रजट ऊझळै।—र.ज.प्र.

३ वृद्धिप्राप्त होना, बढ़ना। उ०—ज्यां ज्यां बळ ऊझळया, उछव त्यां त्यां चित आया।—ग्र. ग्रगेंद्र

ऊझळियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो १ उझळियोड़ौ. २ उमड़ा हुआ. उफना हुआ. ३ वृद्धि प्राप्त किया हुआ।

ऊझारियौ–वि०—उज्वल। उ०—नळ जद निरखी मारवी, जांणे बियौ मयंक। ऊझारचौ अनीर अलि, कोई नहीं कळंक।—ढो.मा.

सं०पु०—प्रकाश, रोशनी, चमक।

ऊझाळ–सं०स्त्री०—समूह। उ०—ग्रहांपति गरद ऊझाळ छायौ गरक, थंडंबर रतनाळ नाग लाल थायौ।—ग्रज्ञात

ऊझेळ–सं०स्त्री०—१ देखो 'उझेल'। उ०—दिली साल सीसोदिया ढाल हिंदू दळां। ऊभै वातां भली पढी अणठेल। खांज री धारी ग्रमर वीज वाळी खटक, 'ग्रमर' री रीझ दरियाव री ऊझेळ।

—किसनौ दुरसावत आढ़ौ

२ तूफान, अंधड़। उ०—रवि ऊगै साहाबदी, खांन इनायत बेल। आसुर आयौ खेड़ियां, ज्यां सागर ऊझेळ।—रा.रू.

३ टक्कर, प्रहार। उ०—पत मेड़ता समर पतसाहां, ग्ररियां मह दांजतां ऊझेळ। वीरमदेव ग्रावतां वांसै, ग्रन रावां पावियौ ऊबेल।

—वीरमदेव मेड़तिया रौ गीत

ऊझेळणौ, ऊझेळबौ–क्रि०अ०—१ आनंद की तरंग में आना। उ०—खट ग्रन सीस मोटौ खत्री, इंद्र छोळां ऊझेळियौ। २ दान देना। —बुधजी आसियौ

ऊटपटांग–वि०—१ अटपटा, टेढ़ा-मेढ़ा, बेढंगा. २ बेमेल, असंबद्ध।

ऊठ–सं०पु० [सं० उट] १ तृण, तिनका. २ ऊर्ण, पत्ता. ३ शक्ति, बल। उ०—सथ ऊठ नकीबां सरल सह, रवि उदय आद सक्रिया रवद्।—रा.रू. [सं० उष्ट्र] ४ ऊँट।

सं०स्त्री०—५ उठने की क्रिया या भाव. ६ कान्ति, आभा।

ऊठणौ, ऊठबौ–क्रि०अ०—१ किसी पदार्थ, वस्तु या व्यक्ति के विस्तार के पहिले की अपेक्षा अधिक ऊँचाई तक पहुँचने की स्थिति या दशा को होना, ऊँचा होना. २ खड़ी स्थिति में होना।

कहा०—१ ऊठ बींद फेरा लै हाय रांम मौत दे—उठ दूल्हे फेरे ले, तो उत्तर देता है—हाय राम मौत दे; सब तैयारी लोगों ने करदी केवल फेरे लेना बाकी रहा पर आलसी दूल्हा यह भी आप नहीं करना चाहता; महा आलसी के लिये. २ ऊठाया कुत्ता कीती'क सिकार करै—उठाये हुए (अपने आप न उठे हुए) कुत्ते कितनी शिकार करते हैं? जिसके मन में उत्साह नहीं वह दूसरों के जबर-दस्ती खदेड़ने से क्या काम करेगा।

३ हटना. ४ जगना, बिस्तर छोड़ना. ५ उदय होना.

६ ऊँचाई तक ऊपर बढ़ना या चढ़ना ऊपर जाना या चढ़ना.

७ आकाश में छा जाना. ८ कूदना, उछलना. ९ सहसा आरंभ होना. १० जानना. ११ निकलना. १२ उत्पन्न होना, पैदा होना. १३ चैतन्य होना. १४ तैयार होना, उद्यत होना. १५ उन्नति करना. १६ किसी अंक या चिन्ह का स्पष्ट होना, उभड़ना. १७ उफनना, पांस बनना, खमीर आना, सड़ कर उफनाना. १८ किसी दूकान या कार्यालय का कार्य-समय पूरा होना या उसका बंद होना. १९ टूट जाना. २ चल पड़ना, प्रस्थान करना. २१ किसी प्रथा का दूर होना. २२ खर्च होना, काम में आना. २३ बिकना या भाड़े पर जाना. २४ याद आना, ध्यान पर चढ़ना. २५ किसी वस्तु का क्रमशः जुड़ जुड़ कर पूरी ऊँचाई तक पहुँचना, बनना (इमारत) २६ खतम या समाप्त होना, चलन या प्रयोग बन्द होना. २७ जवान (युवा) होना.

कहा०—ऊठी (ऊठती) जवानी मंझा ढीला—उठती जवानी में कमर ढीली; यौवन आने पर भी जो निर्बल और निरुत्साही हो उसके लिए कही जाती है।

२८ बढ़ना, कामोद्दीपन होना. २९ तन्दुरुस्त होना. ३० फल निकलना. ३१ देख पड़ना. ३२ फैलना. ३३ खिंचना. ३४ कटना. ३५ हिलना।

ऊठणहार, हारौ (हारी), ऊठणियौ–वि०—उठने वाला।

ऊठाणौ, ऊठाबौ, ऊठावणौ, ऊठावबौ—स०रू०।

ऊठियोड़ौ, ऊठियोड़ौ, ऊठयोड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊठीजणौ, ऊठीजबौ—भाव वा०।

ऊठतड़-सं०पु०—फुर्ती से उठने वाला, त्वरायुक्त काम करने वाला।

ऊठबैठ-सं०पु०—उठना, बैठना, संगति, साथ।

ऊठमणी, ऊठवणी-सं०स्त्री०—आक्रमण, हमला। उ०—पहिली तुरक तणी **ऊठवणी**, रणि वाउला विछूटा। घोड़े साट देई हींदूनी, फोज मांहि जइ फूटा।—कां.दे प्र.

ऊठांणौ, ऊठावण, ऊठावणौ-सं०पु०—१ मृत्यु के पश्चात् शांति हेतु किया जाने वाला एक संस्कार विशेष. २ अंतिम संस्कार के बारह दिन में बिछाई जाने वाली बिछायत (जिस पर श्रद्धांजलि हेतु विभिन्न आने वाले लोग बैठते हैं) को १२ दिन बाद उठाना।

ऊठियोड़ौ-भू०का०कृ०—उठा हुआ (स्त्री० ऊठियोड़ी)

ऊठी-सं०पु०—ऊँट पर सवार व्यक्ति। उ०—तरै **ऊठी** मुजरौ करि कागज हाथ दियौ नै अरज करिनै हाथ जोड़िनै कह्यौ।

—वीरमदे सोनगरा री बात

ऊडंगळ-सं०स्त्री०—तेज ध्वनि। उ०—रुड़ै कोस **ऊडंगळे** जोम राता, घटा जांणि आसाढ़ गाजे निघाता। मुखे बांधि खोलै किता रोस मत्ता, अनेके अने जोस दाखै उमंता।—रा.रू.

ऊडंड-सं०पु०—घोड़ा, अश्व (डिं.नां.मा.)

ऊडण-वि०—उडने वाला।

सं०पु०—वायुयान।

ऊडणखटोलड़ौ-सं०पु०—वायुयान, उड़नखटोला।

ऊडणभ्रमण-सं०पु०—एक रंग विशेष का घोड़ा।

ऊडणौ, ऊडबौ-क्रि०अ०—देखो 'उडणौ, उडबौ'।

ऊडवणौ, ऊडवबौ-क्रि०अ०—प्रहार करना। उ०—**ऊडवतौ** गुरिज गुरिज भुज आवहि, मत्र-घड़ जाजरतौ सनढ़।

—ईसरदास मेड़तिया री गीत

ऊढ़-सं०स्त्री०—१ देखो 'ऊढ़ा'।

सं०पु०—२ विवाहित पुरुष, दूल्हा. ३ विवाहित किन्तु पर-स्त्री से प्रेम करने वाला नायक।

ऊढ़णौ, ऊढ़बौ-क्रि०स०—देखो 'ओढ़णौ'। उ०—विणा अंकुर हुआं धरती नीली दीसै लागी सु मानो प्रथमी नीला वस्त्र **ऊढ़्या** छै।

वेलि. टी.

ऊढ़ा-सं०स्त्री० [सं०] १ विवाहिता स्त्री, दुलहिन। उ०—बैरी बाड़ै बासड़ौ, सदा खणंकै खाग। हेली कै दिन पाहुणौ, **ऊढ़ा** भाग सुहाग।

—वी.स.

२ विवाहिता किन्तु दूसरों के पति से प्रेम करने वाली नायिका।

ऊण-सर्व०—उस। उ०—बैरी तणा वखांण, सुण नह संग छिपावसी। पेमां कियौ पमांण, औ जौ है **ऊण** ओध री।—पा.प्र.

ऊणत-सं०स्त्री०—१ अभिलाषा, इच्छा। उ०—वीदग कुण मुंहगा कर वेठै, **ऊणत** नह मेटै नृप आंन।—जवांनजी आढ़ौ

२ अभाव, कमी, निर्धनता (पि.प्र.)

ऊणमनौ-वि० [सं० उन्मन] उदास, दुखित, खिन्न।

ऊणारत-सं०स्त्री०—देखो 'ऊणत' (१)

ऊणिया-सं०पु०—१ भाले की नोंक. २ हरावल।

ऊणियारौ, ऊणीयारौ-सं०पु०—१ आकृति, सूरत-शक्ल। उ०—पाड़ै पख प्रसण जीवां रौ पूठौ, ईखै जार वदन **ऊणीयार**। किसन कहै सत सूरत केहा, नर केहौ ताय केही नार।

—तेजसी खिड़ियौ

ऊणीयाळौ-सं०पु०—सूरत-शक्ल, आकृति।

ऊणीहार, ऊणीहारौ-सं०पु०—सूरत-शक्ल, आकृति।

ऊणौ-वि० (स्त्री० ऊणी) १ उदासीन, खिन्न। उ०—हिरदै **ऊणा** होत, सिर धूणा अकबर सदा। दिन दूणा टैंसोत, पूणा व्है न प्रतापसी। [सं० उष्ण] २ गर्म, उष्ण। —दुरसौ आढ़ा

अव्यय—का।

सं०पु०—देखो 'ऊंणौ'।

सर्व० (बहु० ऊणा) उसका। उ०—अर **ऊणां** रा बिबाहण री लोभी अंत्यज जांनूं एकठा बुलाइ सरवस ही मारूं।—वं.भा.

ऊतंग-वि० [सं० उत्तुङ्ग] बहुत ऊँचा, उत्तुङ्ग।

ऊत-वि० [सं० अपुत्र] १ निःसंतान, निपूता। उ०—भीम **ऊत** गयौ। भीम पछै कल्यांणमल हरराजोत जैसलमेर रावळ हुवौ।

२ मूर्ख, उजड्ड। —बां.दा.ख्या.

सं०पु०—निसंतान मर कर पिंडादि न पाने से भूत होने वाला।

ऊतक्रस्ट-वि० [सं० उत्कृष्ट] उत्कृष्ट, श्रेष्ठ, पवित्र, उच्च।

ऊतक्रस्टता-सं०स्त्री० [सं० उत्कृष्ट+ता] उत्कृष्टता, श्रेष्ठता, पवित्रता. उच्चता।

ऊतक्रस्टौ-वि०—देखो 'ऊतक्रस्ट'।

ऊतर-सं०पु०—देखो 'उत्तर'।

ऊतरणौ, ऊतरबौ-क्रि०अ०—देखो 'उतरणौ, उतरबौ'। उ०—१ आगै सयणी जी मूंछाळे मालदेव रै **ऊतरिया**।—सयणी री बात

उ०—२ उमंग न अमंगळ मंगळ आठे, ईस न उतवंग उपगरियौ। 'सांमा' तणौ सरीर सिगलड़ौ, आवध धारां **ऊतरियौ**।

—ईसरदास बारहठ

ऊतळीबल-वि० [सं० अतुल्य+बल] अतुल्य बलशाली, वीर, पराक्रमी।

ऊतारणौ, ऊतारबौ-क्रि०स०—देखो 'उतारणौ'। उ०—राय अंगणि रांणी फिरइ। उणी सोळहसइ रांणी कउ **ऊतारचौ** मांन।—वी.दे.

ऊतारौ-सं०पु०—देखो 'उतारौ'। उ०—१ सांधे मीरोंही तणौ, नांमी लिखमावास। राजा **ऊतारौ** कियौ, परगह सहित प्रकास।—रा.रू.

उ०—२ **ऊतारौ** तिणनै दीयौ, कियौ पंचांग पसाव। वळि पूछै तिणि भाट नै, कहि कोई दाव उपाव।—ढो.मा.

ऊताळ-वि०—अधिक, अत्यधिक।

ऊतावळि-सं०स्त्री०—देखो 'उतावळी'। उ०—ऊमर **ऊतावळि** करे, पल्लांणिया पवंग। खुरसांणी मूधा खयंग, चढ़िया दळ चतुरंग।

—ढो.मा

ऊतावळो—देखो 'उतावळो' (रू.भे.)। उ०—प्रावै तू ऊतावळो, पावै दास पुकार। धारण गिर ज्यूं थांमियो, बारण तारण बार।
—र.ज.प्र.

ऊतिम–वि० [सं० उत्तम] उत्तम, श्रेष्ठ।

ऊतोलणी, ऊतोलबौ—देखो 'उतोलणी, उतोलबौ'
उ०—निहंग ऊतोल भड़ राड़ रा नेजायता, सदा अड़पायता धाड़ सेरा।—अज्ञात

ऊतोलियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उतोलियोड़ौ'। (स्त्री० ऊतोलियोड़ी)

ऊत्तोल–वि०—अधिक, भरपूर (रू.भे. 'ऊताल')

ऊत्तर–सं०पु०—देखो 'उत्तर' (रू.भे.) उ०—जैसा हरी भंगवाट न जांणें, ऊत्तर करै न जांणें एक।—ईसरदास बारहठ

ऊथ–क्रि०वि०—वहां। उ०—तद रावळजी भालो घड़ायो—'एथ बैठा ऊथ वैरै थां'।—वीरमदे सोनगरा री बात

ऊथपणी, ऊथपबौ–क्रि०स०—१ मिटाना, नष्ट करना। उ०—साहां ऊथप थप्पणी, पह नरनाहां पत्त। राह दुहूं हद रक्खणी, 'अभैसाह' छत्रपत्त।—रा.रू. २ पराजित करना। उ०—दळ पैलां ऊथपे तेज ब्रह्मांहि उत्थपे, उत्तर दक्षिण पछिम पूरवता पांण पणप्पे।
—अज्ञात
३ उखाड़ना। उ०—वयण सगाई वेस, मिळ्यां सांच दोसण मिटै। किणयक समै कवेस, थपियौ सगपण ऊथपै।—र.रू.

ऊथपणहार, हारौ (हारी), ऊथपणियौ—वि०।

ऊथपिप्रोड़ौ, ऊथपियोड़ौ, ऊथप्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊथपियोड़ौ–भू०का०कृ०—मिटाया हुआ, नष्ट, पराजित किया हुआ, उखाड़ा हुआ। (स्त्री० ऊथपियोड़ी)

ऊथळणी, ऊथळबौ–क्रि०स०—उलटना, पलटना।
क्रि०अ०—देखो 'उथळणी'। उ०—घोरां घोरां घर घूघळ धुरधाई। थळ थळ ऊथळती बळती बुरकाई।—ऊ.का.

ऊथल-पथल, ऊथल-पुथल, ऊथल-पूथल–सं०स्त्री०—देखो 'उथल-पुथल'। उ०—कूरमा बिहूं रण पूठ प्रणफेर करि, रेण ऊथल-पथल हुती राखी।—पूरौ महियारियौ

ऊथापणी, ऊथापबौ–क्रि०स०—देखो 'उथापणी'। उ०—१ कइ अम्हे माय बाप नवि मान्या, वेद वचन ऊथाप्यां।—कां.दे.प्र.
उ०—२ दिल्ली ईस जिसा नरां नूं फेर ऊथाप देणी। दीनानाथ 'मेणी' वीस करां नूं प्रादेस।—नवलजी लाळस

ऊथापियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उथापियोड़ौ'। (स्त्री० ऊथापियोड़ी)

ऊथालणी, ऊथालबौ–क्रि०स०—१ उथल-पुथल करना, उलटना, पलटना। उ०—सांम तणै बळ सूरमा, रिमां गिणै तिल रज्ज। ऊथाले 'अजमाल' छळ, भाले प्रांण सकज्ज।—रा.रू.
२ पटकना, गिराना। उ०—दिखण ऊथाल जसराज जिसड़ा दुरस, प्रकासै लाल भंडा वरग पूर।—महाराजा मांनसिंह री गीत
३ मारना. ४ उखाड़ना।

ऊथालणहार, हारौ (हारी), ऊथालणियौ–वि०—उथल-पुथल करने वाला, उलटने वाला, पटकने या गिराने वाला, मारने वाला, उखाड़ने वाला।

ऊथालिप्रोड़ौ, ऊथालियोड़ौ, ऊथाल्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊथालियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उथल-पुथल किया हुआ, उलटा हुआ. २ पटका हुआ, गिराया हुआ. ३ मारा या उखाड़ा हुआ। (स्त्री० ऊथालियोड़ी)

ऊथि–क्रि०वि०—वहां।

ऊथेड़णी, ऊथेड़बौ–क्रि०स०—गिराना, पटकना, मारना। उ०—वैरायां ऊथेड़ण 'वीकै' हेक रचे पह सबळ हियौ। प्राये सीह तणी वह ऊपरि कुंजर चिहुं ग्रोडीर कियौ।—राव बीका रौ गीत

ऊथेलणी, ऊथेलबौ—देखो 'ऊथालणी, ऊथालबौ' (रू.भे.)
उ०—भ्रम जींद वदक उर छूगा मेल, अर कियौ गुडद अणियां ऊथेल।—पा.प्र.

ऊथेलणहार, हारौ (हारी), ऊथेलणियौ—वि०।

ऊथेलिप्रोड़ौ, ऊथेलियोड़ौ, ऊथेल्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊथेल्योड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'ऊथालियोड़ौ'। (स्त्री० ऊथेलियोड़ी)

ऊद–सं०पु०—१ देखो 'ऊदबिलाव' २ गाड़ी का वह मुख्य अंग जिस पर समस्त गाड़ी का वजन आधारित रहता है. ३ डोंडी पिटवाने की क्रिया, घोषणा (क्षेत्रिय)

ऊदक–सं०पु०—१ आतंक। उ०—घूण जे दुरंग फौजां लड़ंग हिक धकां। असुरची धरा मभ पड़ै नत ऊदकां।
२ जल। —रावत सारंगदेव (द्वितीय) कांनोड़ रौ गीत

ऊदण—देखो 'ऊद' (२)

ऊदबिलाव–सं०पु०—नेवले से कुछ बड़ा एक जंतु जो जल और स्थल दोनों में रहता है।

ऊदमाद—देखो 'उदमाद'। उ०—मिटै मोह ऊदमाद, मिटै आसय ऊधमवळ।—पहाड़ खां आढ़ौ

ऊदल–सं०पु०—महोबा नरेश परमाल के एक वीर सामंत।

ऊदळणी, ऊदळबौ–क्रि०स० [सं० उद्धलनम्] माता-पिता की इच्छा के विपरीत वयस्क अविवाहिता कन्या का या पति के विरुद्ध विवाहिता युवती का किसी पुरुष के साथ प्रेम-जाल में पड़ कर उसके साथ भागना या पलायन करना।
कहा०—१ ऊदळी रे लारै दायजौ—किसी युवती के पर पुरुष के साथ भाग जाने पर उसके घर वालों की ओर से उसे पुन: लाने की कोशिश में या अपनी मान-मर्यादा की रक्षार्थ किया जाने वाला खर्च। किसी हानिप्रद व्यय या अनिच्छा के व्यय के पीछे और किया जाने वाला खर्च. २ ऊदळी नै देस रळियामणौ—अपने कुटुम्ब या पति को छोड़ पर-पुरुष के साथ प्रेम-जाल में पड़ कर उसके साथ भाग जाने वाली युवती को समस्त देश सुन्दर प्रतीत होता है। मर्यादाहीन व्यक्ति को किसी प्रतिबंध का भय नहीं।

ऊदळवाळी-वि०स्त्री०—वह सयानी अविवाहिता कन्या या विवाहिता युवती जो पर-पुरुष के प्रेम में पड़ कर उसके साथ भागने को तैयार हो जाती है।

कहा०—१ ऊदळवाळी रांड बळींडे सांप बतावै—माता-पिता की इच्छा के विपरीत कोई वयस्क अविवाहिता कन्या या विवाहिता युवती पति के विरुद्ध किसी एरे-गैरे के प्रेम में पड़ कर घर छोड़ भागने को उद्यत अपने घर के छज्जे में सांप ही बताती है अर्थात् भागने के लिए अनेक बहाने बना देती है। दुष्ट व्यक्ति एनकेन प्रकारेण अपने कार्य की सिद्धि के लिये धोखा देने को तैयार रहता है।

ऊदाळ, ऊदाळू-वि०—उद्योगी, परिश्रमी।

उ०—वाताळू रौ विगड़ै नै ऊदाळू रौ सुधरै—अज्ञात

ऊदावत-सं०पु०— देखो 'उदावत'।

ऊदेई-सं०स्त्री०—देखो 'उदई' (रू.भे.)

ऊदोत-सं०पु०—देखो 'उदोत' (रू.भे.)

ऊदोसू-सं०पु०—एक प्रकार का शुभ रंग का घोड़ा (शा.हो.)

ऊद्रमणौ-क्रि०अ०—दौड़ना, भागना। उ०—अळगी ही नैड़ी की ऊद्रमते देठाळौ हुओ दळां दुह।—वेलि.

ऊधंगी-सं०स्त्री०—उत्पात या कलहप्रिय।

ऊध-सं०पु० [सं० ऊधस] १ मादा पशुओं के दूध देने का अवयव, थन। उ०—१ घां घां गुड़गी खा ऊधां री घेरी, विस में जुड़गी आ दूधां री बेरी।—ऊ.का.

उ०—२ लाडी लाखीणी धारां धूंधाती, पीवर ऊधां री पारां पय पाती।—ऊ.का. २ देखो 'ऊद' (२)

सर्व०—उस।

ऊधड़णौ, ऊधड़बौ-क्रि०अ०—१ देखो 'उधड़णौ, उधड़बौ'.

२ कटना, मरना। उ०—धम जगर मातौ धूधड़ै, असमरां धड़चा ऊधड़ै।—अज्ञात

ऊधड़ियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'उधड़ियोड़ौ'। (स्त्री० ऊधड़ियोड़ी)

ऊधड़ौ-वि०पु० (स्त्री० ऊधड़ी) १ बहुत, अधिक. २ सब, पूर्ण. ३ ठेका (काम या रुपयों का)।

क्रि०वि०—बिना हिसाब, बिना भाव-तौल के।

कहा०—इतरा ऊधड़ा मत चालौ—बेकार खर्च करने वालों को दी जाने वाली सीख।

ऊधम-सं०पु०—१ उपद्रव, उत्पात शैतानी। उ०—केई रजपूत बंदूकां री चोटां करै छै, घणौ ऊधम हुय रह्यौ छै।—द.दा.

२ युद्ध, लड़ाई। उ०—विण ग्रंठ रीठ उड्डै विखम, हम तम ऊधम हैमरां। सक फौज कीध रूकां सहित, जांण क लंका बंदरां।—रा.रू.

[सं० उद्यम] ३ परिश्रम, उद्योग। उ०—ऊधम करौ अनेक अथवा अण ऊधम रहौ। होसी नहचै हेक, रांम करै सौ राजिया।

—किरपारांम

ऊधमणौ-वि०—१ आमोद-प्रमोद या दानादि में धन खर्च करने वाला।

उ०—असमर समर अथी ऊधमणौ, मनड़ै अणं नथी अहमेव। वरणं अथी साभाव 'जवाना', भागीरथी तणौ जळ भेव।

—जसजी आढ़ौ

ऊधमणौ, ऊधमबौ-क्रि०स० [सं० उर्धमनन] १ दान करना।

उ०—सती वळै जूझै सुभट, करै ग्रंथ कविराज। दाता माया ऊधमै, नांम उबारण काज।—बां.दा.

२ आमोद-प्रमोद हेतु खूब खर्च करना। उ०—जिकां भलां धन जोड़ियौ, ऊधमियौ निज आच। कीरत पौहरै करन रै, बीदग ऊठै वाच।—बां.दा. ३ शुभाशुभ कर्मों के फलों के लिए दान करना। उ०—उमगे दांन ऊधमै आचां, रांम रांम मुख हूंत रटै।-—र.रू.

४ बहादुरी दिखाना। उ०—आप सरखा कमंध सेल मुंह ऊधमै, जोड़ चाहै खड़ग भीच जाकौ, 'पाल' रै ऊपरा काढियौ पागड़ौ, हुवै जोगणपुरा करै हाकौ।—अज्ञात

ऊधमणहार, हारौ (हारी), ऊधमणियौ— वि०।

ऊधमा-सं०पु०—जलसा, मौज, आनंद।

ऊधमी-वि०—उधम करने वाला, उपद्रवी, उत्पाती।

ऊधरण, ऊधरणौ-वि०—१ उद्धार पाने वाला. २ उद्धार करने वाला।

उ०—मरम तैं झालियौ मेटि पंडर मतौ, मछर तैं राखियौ तखत कुळ-मौड़। धन आंगी गमण 'गंग' कुळ ऊधरण, रोम कस सकस धन राव राठौड़।—राव चंद्रसेण राठौड़ रौ गीत

ऊधरणौ, ऊधरबौ-क्रि०अ०—१ देखो 'उधरणौ' २ उन्नत होना।

उ०—नीची न्यातां रा ऊंचा ऊधरिया, ऊंची जातां रा नीचा ऊतरिया।—ऊ.का. ३ वीर गति प्राप्त होना।

उ०—असुरां रोळ चोळ वन अवध आवध, गहि आतम अरिया। आवध धम धरती ऊदावत, आवध धारै ऊधरिया।

—महाराणा प्रतापसिंह रौ गीत

ऊधरौ, ऊधरौ-वि०—१ ऊँचा, उत्तुंग। उ०—अई चीत गढ़ ऊधरा, सकळ गढां सिरताज। तूं जूनौ परणै नवी, असुरां री अफवाज।

—बां.दा.

२ उत्कट, उन्नत। उ०—आया बाला ऊधरा, भाला झाल अभंग। रण पब्बै 'तेजै' जिसा, करण फतै रण जंग।—रा.रू.

३ दानशील, दानी, उदार. ४ बड़ा, श्रेष्ठ. उ०—अरज मांन अजमाल स्वाल सुण कांन मबंधां, धरौ विखौ ऊधरौ करौ जिन ढाल कमंधां।—रा.रू. ५ सरल, सीधा, अनुकूल।

सं०पु०—मस्तिष्क ऊपर उठाये हुए चलने वाला बैल।

ऊधस-वि० [सं० उर्ध्व] ऊँचा, उर्ध्व, उच्च। उ०—अरस लगि पड़ि निहस ऊधस, सूर अदरस धूम सपरस।—रा रू.

सं०पु० [सं० ऊधस्य] १ दूध (अ.मा., डिं.को.)

[सं०स्त्री०] २ सूखी खांसी. देखो उधार (रू.भे.)

ऊधारियौ-सं०पु०—उधार लेने या देने वाला। उ०—ऊमर लग ऊधार री, बांण न छोडै बस्त। जोर फिरावै जाचकां, ऊधारियौ अदत्त।

— बां.दा.

ऊधूल–वि०—वीर, उदार। उ०—चउंडराउ दिय ऊधूल चाउ, राउत ग्राप हे ग्राप राउ।—रा.ज.सी.

ऊधौ–सं०पु० [सं० उद्धव] श्रीकृष्ण के एक सखा, उद्धव।

कहा०—१ ऊधौ का लेणा न माधौ का देणा- -स्वाधीन मनुष्य जिसे किसी का लेना-देना नहीं. २ ऊधौ का लेणा न माधौ का देणा मगन रहणा—किसी से कोई लेन-देन या व्यवहार नहीं रखने वाला बेपरवाह ग्रौर सुखी रहता है।

ऊध्वनी–सं०स्त्री० [सं० उद्ध्वनि] ऊँची ध्वनि, तेज ग्रावाज।

उ०—धिमिद्ध मिद्ध ऊध्वनी न सिंजनी सुनी नहीं।—ऊ.का.

ऊनंग–सं०पु०—नंगी। उ०—चढ़ ऊभा चंगां भीड़े ग्रंगां ग्राचे खग्गां ऊनंगां।—रा.रू.

ऊनंत–वि०—उन्नत, ऊँचा। उ०—बेटी राजाभोज की, ऊनंत पयोहर बाळी वेस।—वी.दे.

ऊन–सं०पु० [सं० उष्ण] १ जोश, ग्रावेग, क्रोध. २ ज्वर, बुखार। सं०स्त्री०—३ भेड़-बकरी के बाल।

कहा०—लरड़ी माथै ऊन कुण भी को छोडै नी—जिस पर ग्रधिकार होता है उससे लाभ उठाने में कोई नही चूकता; गरीब या शोषित से शासक ग्रधिक कर ग्रादि वसूल करते हैं।

ऊनग्रधोड़ी–सं०स्त्री०—एक प्रकार का सरकारी कर जो भेड़ रखने वालों से ऊन व मरे हुए पशुग्रों के चमड़े पर वसूल किया जाता था।

ऊनकूल–वि० [सं० ग्रनुकल] मुताबिक, सहायक, दयालु।

ऊनड़–सं०पु०—१ राठौड़ों की एक उपशाखा. २ भाटी वंश की एक शाखा।

ऊनणौ, ऊनबौ, ऊनमणौ ऊनमबौ–क्रि०ग्र०—बादल, घटा ग्रादि का उमड़ना। उ०—१ स्रावण मासि ऊनया दीसइ, जेहवा काळा मेह। गयवर ठाठ चालंता दीसइ, जोतां नावइ छेह।—कां.दे.प्र.

उ०—२ ऊनमियउ उत्तर दिसइं, गाज्यउ गुहिर गंभीर। मारवणी प्रिउ संभरयउ, नयणे वूठउ नीर।—ढो.मा.

उ०—३ चहुं दिसि जळहर ऊनम्यौ, चमकी बीजळियांह।—जसराज

ऊनमियोड़ौ–भू०का०कृ० –उमड़ा हुग्रा। (स्त्री० ऊनमियोड़ी)

ऊनमत–वि०—देखो 'उनमत'।

ऊनरौ–सं०पु०—देखो 'ऊंदरौ' (रू.भे.)

ऊनली–वि०—उधर की, उस ग्रोर की।

ऊनवणौ, उनवबौ-- देखो 'ऊनमणौ, ऊनमबौ' (रू.भे.)

ऊनवियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'ऊनमियोड़ौ'। (स्त्री० उनवियोड़ी)

ऊनांगी–वि०स्त्री०—देखो 'ऊनंग' (रू.भे.) उ०—जोम गाडा वाळी ग्रळै काळा री ऊनांगी जठै। वाणी हाडावाळी नराताळा री बांगास।

—दुरगादत्त बारहठ

ऊनांम–सं०पु०—वह खेत जहाँ वर्षा के पानी से गेहूँ व चने ग्रादि होते हों।

ऊनागणौ, ऊनागबौ–क्रि०स०ग्र०—१ म्यान से तलवार निकालना।

उ०—खाग ऊनागियां खिवे माथे खळां, रांण रा दळां ग्रगवांण नगराज।—राव धायभाई नगराज गूजर रौ गीत

२ नग्न होना, ग्रावरणहीन होना।

ऊनागियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ म्यान से निकाली हुई (तलवार)

२ नग्न, ग्रावरणहीन।

ऊनागौ–वि०पु० (स्त्री० ऊनागी) १ नग्न, ग्रावरणहीन.

२ बदमाश।

ऊनाळ–सं०पु० [सं० उष्ण+काल] १ उष्णकाल, गीष्म ऋतु।

उ०—ग्राभूखणां हुई झलमां झायंती भांण ऊनाळ सी।

२ रबी की फसल। ---जवांनजी ग्राढ़ौ

ऊनाळ्–वि०—देखो 'उनाळू' (रू भे.)

ऊनाळौ–सं०पु० [सं० उष्ण+काल] ग्रीष्म ऋतु। उ०—ग्रौ ऊपर ऊनाळौ ग्रायौ, दीन जनां दोरौ दरसायौ।—ऊ.का.

ऊनियौ–सं०पु० [सं० ऊर्ण] भेड़ का बच्चा, मेमना।

ऊनी–वि०—ऊन का बना, ऊनसम्बन्धी (रू.भे. ऊंनी)

ऊनोतरतातप–सं०पु०-- क्रमशः प्रति दिन एक एक ग्रास भोजन घटाते जाने का जैनियों का एक व्रत।

ऊनौ–वि० [सं० उष्ण] गर्म, तपाया हुग्रा, उष्ण। उ०—उर जेज धरौ म करौ उरड़, ऊनौ तेज ग्रगन्न रौ।—रा.रू. (रू.भे. 'ऊंनौ') (स्त्री० ऊनी)

ऊन्हा–क्रि०वि०—उस तरफ। उ०—जोधौ ऊन्हा 'जैतसी', लोह वहंतौ लागि। किनि व भूठौ किमिरियौ, उहौ व्है बळती ग्राग।—रा.ज. रासौ

ऊन्हाळइ, ऊन्हाळउ–सं०पु० [सं० उष्णकाल] देखो 'उन्हाळ'।

उ०—कहिए माळवणी तणइ, रहियउ साल्ह विमास। ऊन्हाळउ ऊतारियउ, प्रगटयउ पावस मास।—ढो.मा.

ऊन्हाळागम–सं०पु० [उष्णकाल+ग्रागम] ग्रीष्म ऋतु (डिं.को.)

ऊन्हाळौ, (ह)–सं०पु० [सं० उष्णकाल] १ उष्णकाल।

देखो 'उन्हाळौ'। उ०—'ऊदा' धरती ग्रधिया, ग्राहव ग्राध सिवाय। चाळै वाघे सांम छळ, ज्यां ऊन्हाळै लाय।—रा.रू.

२ गर्मी का सूर्य।

ऊन्हौ–वि० [सं० उष्ण] गर्म, उष्ण। उ०—ऊन्हां डांभ दिवारिसी, डांभां थी मरि जाउं।—ढो.मा.

ऊप–वि० [सं० उपम ग्रथवा उपमित] सदृश, समान। उ०—ग्रंघ्रीयस खंभ किरि थंभ ऊप, ग्रनि भूप कोप बंधण ग्रनूप।—रा.रू.

क्रि०वि०—ऊपर। उ०—सगतांणी सांगांणी सतारां हूंत ग्रांणी सेना। तुरककांणी हिंदवांणी ऊप जैतसींग।

—ठाकुर जैतसिंह राठौड़ मेड़तिया रौ गीत

ऊपड़णौ, ऊपड़बौ–क्रि०ग्र०स०—१ उमड़ना। उ०—उत्तर ग्राज स उत्तरइ, ऊपड़िया सी कोट। काय दहेसइ पोयणी, काय कुंवारा घोट।

—ढो.मा.

२ उन्मूलन होना. ३ उठना, उभरना, निशान पड़ना, सूजन होना. ४ वापस उठना, उठना। उ०—पूरा थावां ऊपड़े, जुध सिरदार जवन्न। 'कांन्ह' हरी साकौ कियौ, उजवाळियौ उतन्न।—रा रू.
५ भार उठाना. ६ दौड़ना, तेज भागना। उ०—वागां ऊपड़े विखमी वार धड़कै ग्राकास धर। खरौ खेध वाजी खरा वहतै दुग्राह।
—जगौ सांदू
७ व्यय होना, खर्च होना. ८ शब्दोच्चारण होना, बोलना।
उ०—ज्यांरी जीभ न ऊपड़े, सेणां मांही सेत। वांरा कर किम ऊपड़ै, खळां फिरघां रणखेत।—बां.दा.
ऊपड़णहार, हारौ (हारी), ऊपड़णियौ—वि०।
ऊपड़ाणौ, ऊपड़ाबौ, ऊपड़ावणौ, ऊपड़ावबौ—स०रू०।
ऊपड़िग्रोड़ौ, ऊपड़ियोड़ौ, ऊपड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊपड़ियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ उमड़ा हुग्रा. २ उन्मूलित. ३ उठा या उभरा हुग्रा, सूजा हुग्रा. ४ वापस उठा हुग्रा. ५ भार उठाया हुग्रा. ६ दौड़ा हुग्रा. ७ खर्च किया हुग्रा ८ शब्दोच्चारण किया हुग्रा। (स्त्री० ऊपड़ियोड़ी)

ऊपजणौ, ऊपजबौ—[सं० उत्पद्यते, पा० उप्पज्जइ] देखो 'उपजणौ'।
उ०—परंतु मीणां रै ठाकुरपणौ रहियां तौ रजोगुण रा छक कौ न्हास ऊपजियौ।—वं.भा.

ऊपजस-सं०पु० [सं० ग्रपयश] ग्रपकीर्ति, निन्दा, ग्रपयश (रू.भे. उपजस)

ऊपजाणौ,ऊपजाबौ-क्रि०स०—देखो 'उपजाणौ, उपजाबौ' (रू.भे.)

ऊपटणौ, ऊपटबौ-क्रि०ग्र०—१ देखो 'उपटणौ, उपटबौ'।
उ०—कुळ भ्रात मंत्री सुत कटे, उर क्रोध रांवण ऊपटे।—र.रू.
२ बढ़ना, वृद्धि होना। उ०—हटियौ बळ हिंदवांण, ऊपटियौ बळ ग्रासुरां।—ला.रा.

ऊपटियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ बढ़ा हुग्रा, वृद्धि पाया हुग्रा.
२ देखो 'उपटियोड़ौ'। (स्त्री० ऊपटियोड़ी)

ऊपणणौ, ऊपणबौ—देखो 'ऊफणणौ, ऊफणबौ'।

ऊपणियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'ऊफणियोड़ौ'। (स्त्री० ऊपणियोड़ी)

ऊपनणौ, ऊपनबौ-क्रि०ग्र०स०—१ उत्पन्न होना, पैदा होना।
उ०—१ एक बरण में ऊपना, सूंम कहै इकसार। दोलत हुरै दकारियौ, दोलत थंभ नकार।—बां.दा.
उ०—२ गजटलां गाहिजै छै, वीरा रस ऊपनौ छै।—रा.मा.सं.
२ उपार्जन करना, पैदा करना। उ०—घोड़ी बेची लाख लाख ऊपना, बैठा साहिबी कीजै छै।—चौबोली
ऊपनणहार, हारौ (हारी), ऊपनणियौ-वि०—उत्पन्न होने वाला, उत्पन्न करने वाला।
ऊपनिग्रोड़ौ, ऊपनियोड़ौ, ऊपन्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊपनियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ पैदा हुग्रा. २ पैदा किया हुग्रा, उपार्जित (स्त्री० ऊपनियोड़ी)

ऊपनौ, ऊपनौ-सं०पु०—माल के विक्रय की ग्राय।

वि० (स्त्री० ऊपनी) जन्म लेने वाला, उत्पन्न होने वाला।

ऊपर-क्रि०वि० [सं० उपरि] १ ऊँचाई पर या ऊंचे स्थान पर.
२ ग्राकाश की ग्रोर. ३ ग्राधार या सहारे पर. ४ उच्च श्रेणी पर. ५ प्रकट में, देखने में।
कहा०—ऊपर माळा मांय कुदाळी—ऊपर से सज्जन भीतर हृदय में दुष्ट।
६ तट पर. ७ ग्रतिरिक्त. ८ परे. ९ प्रतिकूल।
सं०स्त्री०—१ सहायता, मदद, रक्षा। उ०—सहि कूरम जैसाह सूं, मिळिया ग्राय प्रथंम। ऊपर देख ग्रजीत री, ग्रालम लेख नरंम।
२ दया, कृपा, मेहरबानी। —रा.रू.
वि०—१ ग्रधिक, ज्यादा। उ०—केई खोखर जागीरदार ग्रादमी डेढ़ सौ सूं ऊपर कांम ग्राया।—सूरे खींवे री बात
२ प्रथम, पहले।

ऊपरछूंटली, ऊपरछूंटौ-वि० उ०लिं०—ऊपर की, ग्रतिरिक्त।

ऊपरट-वि०—विशेष, ग्रधिक। उ०—राखण साथ भड़ां रवताळा, ऊपरट खग चाळा ग्राचार।—माधोसिंह सीसादिया री गीत

ऊपरणी-सं०स्त्री०—१ पगड़ी के ऊपर बाँधी जाने वाली वस्त्र की कम चौड़ी पट्टी. २ ग्राबू के पास का एक प्रदेश (नैणसी)

ऊपरतळै-क्रि०वि०—लगातार, एक के ऊपर एक।

ऊपरनेत, ऊपरनैत-सं०स्त्री०—वह भेंट या धन जो इष्ट-मित्र, संबंधी ग्रादि के यहां शुभ या ग्रशुभ कार्य में सम्मिलित होने का निमंत्रण पाकर उसके यहां भेजा जाता है उसे 'नैत' कहते हैं किन्तु इसके बदले में निमन्त्रणकर्त्ता के यहां मौका पड़ने पर ग्रगर इससे कुछ ग्रधिक धन या भेंट वापस भेजा जाता है तो वह ग्रतिरिक्त धन 'ऊपर नैत' कहलाता है।

ऊपरळीपुळ, ऊपरळीवत-सं०स्त्री०—१ वर्षा ऋतु. २ वर्षा ऋतु के पहले या बाद का समय. ३ दैनिक ग्रवसर।

ऊपरलौ-वि० १ (स्त्री० ऊपरली) १ ऊपर का। उ०—नारी दास ग्रनाथ, पण माथे चढ़ियां पछे। हिय ऊपरलौ हाथ, राळघो न जावै राजिया।—किरपारांम
मुहा०—ऊपरलौ जांणै—ईश्वर ही जानता है।
२ बलवान (ग्रमरत)

ऊपरवट-सं०पु०—१ दोनों पक्षों में से एक पक्ष।
सं०स्त्री०—२ ग्रधिकता।
क्रि०वि०—बढ़ कर।

ऊपरवाड़ी-सं०स्त्री०—देखो 'उपरमाड़ी'।

ऊपरवाड़ौ-सं०पु०—१ देखो 'उपरवाड़ौ' २ मकान ग्रादि का पृष्ठ भाग। उ०—ऊपरवाड़े हेलौ मारियौ थे जागौ महाजन लोग ग्रौ।
—लो.गा.

ऊपरसांपर-सं०स्त्री०—१ निगरानी. २ मदद, सहायता।

ऊपरांठौ—देखो 'उपरांठौ'।

ऊपराऊपरी–क्रि०वि०—लगातार, एक के ऊपर एक। उ०—ग्रायी ऊपर ऊपरा, सुणी खबर सुरतांण। उर ग्रकुळाय पटक्कियौ, सीस खुदाय कुरांण।—रा.रू.

ऊपरवाड़–वि०—बढ़िया, श्रेष्ठ।

ऊपरि, ऊपरी–वि०—१ ऊपर का, ऊपर। उ०—पगि पगि पउळि पउळि हस्ती को गज-घटा, ती ऊपरि सात-सात सइ धनक-धर सांवटा।—वचनिका ग्रचळदास खीची. २ बाहरी, नुमाइशी, दिखावटी. ३ विदेशी, पराया।

सं०स्त्री०—मदद, सहायता। उ०—तुझ वीनवूं ग्रादि योगिनी, पाछां कटक ग्रांणि तूं ग्रनी। हमीरराय नी परि ग्रादरू, नांम ग्रम्हारउं ऊपरि करउं।—कां.दे.प्र.

ऊपरे, ऊपरै–क्रि०वि०—ऊपर, पर।

ऊपळी–सं०स्त्री०—१ बैलगाड़ी में मुख्य भाग चोडे तख्ते के नीचे लगाये जाने वाले लकड़ी के बड़े दो डंडों में से एक जिस पर गाड़ी का चौड़ा तख्ता टिका हुग्रा रहता है. २ खाट में लगाया हुग्रा छोटे वाला डंडा. ३ स्थान विशेष का चौड़ा भाग (रू.भे.)

ऊपळौ–सं०पु०—किसी वस्तु या चारपाई की चौड़ाई वाली पाटी।

ऊपल्हांणौ–वि०—बिना जीन या चारजामा वाला ऊँट या घोड़ा।

उ०—चिहुं गमे ऊपल्हांणा धाया, पातिसाह फुरमांणि। रांणा राय मलिक मुडोघा, खांन बोलावी ग्रांणइ।—कां.दे.प्र.

ऊपहरौ–वि०—विशेष, ग्रधिक। उ०—तेहे घोड़े किस्या किस्या खित्री चडिया। पंचवीस वरस ऊपहारा।—कां.दे.प्र.

ऊपांत–वि० [सं० उपांत्य] ग्रंत वाले के समीप का, ग्रन्तिम से पहिले का।

ऊपांततिथी–सं०स्त्री०यौ० [सं० उपान्त्य तिथि] मास की ग्रन्तिम तिथि से पहिले की तिथि चतुर्दशी, चौदस। उ०—तिके भादवी माह ऊपांततिथी, पड़ै माय रै पाय प्रथीप प्रत्थी।—मे म.

ऊपांन–वि०—क्रुद्ध, कुपित। उ०—ग्रर जद म्हाराजा ऊपांन हुई तद ए तीन्हे म्हारा छै।—चौबोली

ऊपाड़–सं०पु०—१ नाश. २ सूजन. ३ फोड़ा. ४ खर्च।

ऊपाड़णौ, ऊपाड़बौ—देखो 'उपाड़णौ, उपाड़बौ'।

उ०—वटपाड़ां घरपाड़ां वाळी, ग्राभ जड़ां नांखै ऊपाड़। कोय न गांज सकै कनियांणी, भीभ‌णियाळ तुहाळा भाड़।—बां.दा.

ऊपाड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उपाड़ियोड़ौ'। (स्त्री० ऊपाड़ियोड़ी)

ऊपाड़ौ—देखो 'उपाड़ौ' (रू.भे.)

ऊपाधिया–सं०पु०—एक ब्राह्मण जाति विशेष।

ऊपाव–सं०पु०—देखो 'उपाय'। उ०—वळि पूछै तिणि भाट नै, कहि कोई दाव ऊपाव।—ढो.मा.

ऊपावणौ, ऊपावबौ—देखो 'उपावणौ, उपावबौ'। उ०—बम्भीखण जरण करण सबळ दैतां संघारण। नव्व नाथनिमधियण त्रिविध लोकां ऊपावण।—ज.खि.

ऊपावियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उपावियोड़ौ'। (स्त्री० ऊपावियोड़ी)

ऊप्रवट—देखो 'उप्रवट' (रू.भे.)

ऊफणणौ, ऊफणबौ–क्रि०ग्र० [सं० उत्फणन] १ उबलना, उफान ग्राना, उबल उठना. २ ग्रनाज को हवा में उछाल कर साफ करना, फेन देना। उ०—ऊफणी ग्राडै छाज कठैक ? उरसां सुगनचिड़ी री पांख।—सांझ ३ उमड़ना। उ०—खणिया न छोड नाडां खटै, ऊफणिया छाडां उदधि।—वं.भा. ४ जोश में ग्राना.

उ०—नथी रजोगुण ज्यां नरां, वां पूरी न उफांण। वे भी सुणतां ऊफणै, पूरा वीर प्रमांण।—वी.स. ५ क्रोध करना।

उ०—ग्रति ग्रंबु कोपि कंवर ऊफणियौ, वरसाळू वाहळा करि।
—वेलि.

ऊफणणहार, हारौ (हारी), ऊफणणियौ—वि०।

ऊफणाणौ, ऊफणाबौ—क्रि०स० (प्रे रू.)

ऊफणिग्रोड़ौ, ऊफणियोड़ौ, ऊफण्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊफणाणौ, ऊफणाबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०) १ उफनने के लिए प्रेरित करना।

क्रि०ग्र०—२ ग्रगाड़ी बढ़ना। उ०—नारवंकां देवा निगळि ग्रग्गै ऊफणाया। इत नरउर नृप के सचिव चाळुक चंपाया।—वं.भा.

ऊफणियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उबला हुग्रा, उफान ग्राया हुग्रा. २ ग्रनाज को हवा में उछाल कर साफ किया हुग्रा. ३ जोश में ग्राया हुग्रा. ४ क्रोध किया हुग्रा। (स्त्री० ऊफणियोड़ी)

ऊफतणौ, ऊफतबौ–क्रि०ग्र०—तंग होना, हैरान होना, उकताना।

ऊफतणहार, हारौ (हारी), ऊफतणियौ—वि०।

ऊफतिग्रोड़ौ, ऊफतियोड़ौ, ऊफत्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊफतियोड़ौ–भू०का०कृ०—तंग या हैरान हुग्रा। (स्त्री० ऊफतियोड़ी)

ऊफरांठउ–वि०—देखो 'उपरांठउ'। उ०—बांधव पुत्र कळत्र, धन यौवन जांणे माया जाळ। जिणि दिनि हुइ दैव ऊफरांठउ, तिणि दिनि सहूइ ग्राळ।—कां दे.प्र.

ऊबंध, ऊबंधौ–वि० [सं० उद्बंधन] १ बंधनरहित, मर्यादा तोड़ने वाला, उदण्ड। उ०—१ मितर खांन सकबंध, कटक ग्रनमंध छिलै कर। ग्रसपत हद सांमंद, कीध ऊबंध परमेसर।—रा.रू.

उ०—२ 'सूजे' घर 'बाघौ' सकबंधी, बांधे पाय किया ऊबंधौ।
—रा रू.

२ ग्रपार, ग्रसीम। उ०—लखि फौज तुंग लड़ंग ऊबंध किर दधि ग्रंग।—रा.रू.

ऊबंबर, ऊबंबरौ, ऊबंबरी–वि०—१ देखो 'उबंबर, उबंबरौ'। २ शक्तिशाली, समर्थ। उ०—ग्राच फरस ग्रोपंत, विघन बन हत ऊबंबर।—र.ज.प्र. ३ ग्रोजस्वी, कांतिवान।

ऊब–सं०स्त्री०—१ कुछ समय तक एक ही दशा में रहने से चित्त की खिन्नता, उचाट. २ उद्वेग, घबराहट, ग्राकुलता. ३ देखो 'ऊंब' ४ लगातार न्यून मात्रा में बरसने वाले वे बादल

जिनकी गति पश्चिम से पूर्व की ओर अथवा दक्षिण से उत्तर की ओर होती है। उ०—ऊबा जळ नदियां लहर, बक पंगत भर बाथ। मोरां सोर ममोलियां, सांवरण लायौ साथ।—अज्ञात

५ खड़ा रहने का ढंग।

ऊबकणौ, ऊबकबौ—क्रि०अ०—१ वमन करना. २ जोश करना. ३ ऊँचा होना (रू.भे. उबकणौ) उ०—सहरा भी गहरा गुण भणी, सरै न थां बिन एक छण। गांवां वाहां ऊबक देखौ, सदा प्रेम माइतपण।—वसदेव

४ उगलना (रू.भे. उब्बकणौ, उब्बकबौ) ५ उमड़ना, द्रव वस्तु का आधिक्य के कारण ऊपर उठना, उतरा कर बह चलना।

उ०—तूटै सिर धड़ तड़फड़ै, जळ तुच्छै मच्छ जांण। सेल दुसारां नीसरै, केतां सह केकांण। केतां सह केकांण अटै रत ऊबकै, घट अंतर कढ घाव हजारां हूबकै।—किसोरदांन बारहठ

ऊबकणहार, हारौ (हारी), ऊबकणियौ—वि०।

ऊबकिओड़ौ, ऊबकियोड़ौ, ऊबक्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊबकियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ वमन किया हुआ. २ जोश किया हुआ. ३ ऊँचा उठा हुआ. ४ उगला हुआ ५ उमड़ा हुआ। (स्त्री० ऊबकियोड़ी)

ऊबकौ—सं०पु० ओकाई, मिचली, वमन के पूर्व की अवस्था।

ऊबड़खाबड़—वि०—ऊँचा-नीचा, अटपटा, विषम।

ऊबड़णौ, ऊबड़बौ—क्रि०अ०—१ उखड़ना, खुलना। उ०—बगतार कड़ियां ऊबड़, लड़ै भड़ै खग लाय।—अज्ञात २ फूलना, फूलने से टूटना. उ०—जिके सूर ढीला जरद ऊबड़ ही आरांण। मूंछ अणी भूहां मिळै, मुहगौ राखै मांण।—बां.दा. ३ उभरना ऊपर उठना।

उ०—जिम जिम कायर थरहरै, तिम तिम फैलै नूर। जिम जिम बगतर ऊबड़ै, तिम तिम फैलै सूर।—वी स.

४ फटना, दरार होना।

ऊबड़णहार, हारौ (हारी), ऊबड़णियौ—वि०।

ऊबड़िओड़ौ, ऊबड़ियोड़ौ, ऊबड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊबड़ियौ—सं०पु०—रहट से पानी निकालने के लिए बैलों के घूमने के चक्र के मध्य में खड़ा किया जाने वाला लोहे या काष्ठ का कुछ मोटा व मजबूत डंड जो कंगूरेदार चक्र के बीच में होकर निकलता है।

ऊबड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ उभरा हुआ, ऊपर उठा हुआ. २ फूला हुआ, फूलने से टूटा हुआ. ३ फटा हुआ. ४ उखड़ा हुआ, खुला हुआ। (स्त्री० ऊबड़ियोड़ी)

ऊबड़ी—सं०स्त्री०—एक प्रकार की घास।

ऊबछठ—सं०स्त्री० [सं० ऊर्ध्वषष्ठी] भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की षष्ठी तथा इस दिन स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला एक व्रत। इस दिन स्त्रियां सायंकाल से चंद्रोदय तक खड़ी रहती हैं। चंद्र-दर्शन के बाद भोजन करती हैं, चंद्रषष्ठी।

ऊबट—सं०पु० [सं० उदवृत्त] बिना मार्ग, विकट।

उ०—तौ भी महामूढ़ बारूणी रै बसीभूत अनेक उपद्रव मचाइ ऊबट ही बहियौ।—वं.भा. २ कठिन मार्ग, अटपटा रास्ता।

ऊबटणौ—सं०पु०—शरीर पर मलने के लिए तैयार किया हुआ उबटन, अभ्यंग। उ०—सखी हिळमिळ मंगळ गावौ, बनाजी नै ऊबटणौ मसळावौ।—समान बाई

ऊबटणौ, ऊबटबौ—१ देखो 'उबटणौ, उबटबौ' २ उत्पन्न होना। उ०—काट जिकां कुळ ऊबटै, आठवाट इतफाक। वां सबळां ही पुरसड़ां वैरी गिणै वराक।—बां.दा.

ऊबटौ—सं०पु०—ऊँट या घोड़े की जीन में तंग कसने के लिए बांधने की एक चमड़े की रस्सी।

ऊबणौ, ऊबबौ—क्रि०अ०—१ ऊबना. उकताना. २ घबराना. ३ देखो 'ऊभणौ, ऊभबौ'।

ऊबणहार, हारौ (हारी), ऊबणियौ—वि०।

ऊबिओड़ौ, ऊबियोड़ौ, ऊब्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊबता—सं०स्त्री०—हाथ ऊपर उठा कर खड़े हुए मनुष्य के बराबर की ऊँचाई और गहराई का एक माप। (मि० ताळ १०)

ऊबताळ—क्रि०वि०—यकायक। (रू.भे.-ऊभताळ) देखो-ऊबता।

ऊबर—सं०स्त्री०—देखो 'उमर'।

ऊबरणौ—सं०पु०—बचाव, रक्षा। उ०—भणी रयण रांणभड़ मबळ हाडां कुळ मरणौ। इण दुलही री ओट अनड 'हालू' ऊबरणौ।—वं.भा.

ऊबरणौ, ऊबरबौ—क्रि०अ० [सं० उर्वरण] १ उद्धार पाना, निस्तार पाना, मुक्त होना। उ०—जठै अहराव जिम भूप भागे जिके ऊबरै 'महेसर' मांन ओळै।—बां.दा. २ बचना, रक्षा पाना.

उ०—कहै पंथी जिण गांम धण, फाटक घर न जुड़ाय। अब तौ बूढ़ौ ऊबरै, सूर धणी समझाय।—वी.स. ३ अमर होना.

उ०—हव जेहल' रिख हाड, 'सोनंग' पळ जगदेव सिर। गुरु जस झंडा गाड, ऊबरिया इळ ऊपरा।—बां.दा.

४ शेष रहना, बाकी बचना।

ऊबरणहार, हारौ (हारी), ऊबरणियौ—वि०—उद्धार पाने वाला, शेष रहने वाला, बचने वाला, अमर होने वाला।

ऊबरिओड़ौ, ऊबरियोड़ौ, ऊबर्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊबराव—सं०पु०—देखो 'उमराव'। उ० माया रा ऊबराव बहोड़ा बीजै छै, कविराजा नां विदा कीजै छै।—रा.सा.सं.

ऊबरियौ—देखो 'ऊबड़ियौ' (रू.भे.)

ऊबरियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ उद्धार पाया हुआ. २ रक्षा पाया हुआ. ३ अमर. अवशिष्ट, शेष।

ऊबरौ—देखो 'उमराव'। (मि० 'ऊबराव')

ऊबह—सं०पु० [सं० उदधि] समुद्र। देखो 'उवह' (रू.भे.)।

ऊबांणणौ, ऊबांणबौ—क्रि०स०—देखो 'उबांणणौ, उबांणबौ' (रू.भे.)

उ०—ऊबांणे खग्गे अंगौ अंगे, आया जंगे उछरंगे।—रा.रू.

ऊबांणो, ऊबांणौ—देखो 'उबांणौ' (रू.भे.) उ०—चतुर फतौ माफी चहुवांणां, ग्राहवि लड़ण खगां **ऊबांणौ** ।—रा.रू.

ऊबांबर, ऊबांबरौ–वि० [सं० उपांबर] १ बलवान, साहसी, शक्तिशाली (डि.को.)

(मि० उबंबर, उबंबरौ–रू.भे.) उ०—१ बिरद धारियां भुजां भड़ लियां **ऊबांबरां** । हचै खळ ढाल पाखर जड़े हेमरां ।

—रावत सारंगदेव (द्वितीय) कानोड़ रौ गीत

उ०—२ फजर बाग धूंसां गजर बंद कटकां फरा, साकुरा त्यार त्यारां फरै मांतरा, ग्राज तरवारियां पाण **ऊबांबरा**, धणी रतळांम बळवंत भोगे धरा । जवांनजी ग्राढ़ौ

ऊबाऊब–क्रि०वि० —१ खड़े खड़े. २ ग्रचानक, यकायक ।

ऊबाड़णौ, ऊबाड़बौ–क्रि०स० [सं० उत्पादन] १ उखेड़ना, उन्मूलन करना । उ०—बांना ग्रंग धारणा भू जाहरां करेगौ बातां, उधरेगौ हाथा दंत बारणा **ऊबाड़** ।—सूरजमल मीसण २ खड़ा करना ।

ऊबाड़णहार, हारौ (हारी), ऊबाड़णियौ–वि०—उखेड़ने या उन्मूलन करने वाला, खड़ा करने वाला ।

ऊबाड़िग्रोड़ौ, ऊबाड़ियोड़ौ, ऊबाड़्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

ऊबाड़ियोड़ौ–भू०का०कृ० १ उखाड़ा हुग्रा, उन्मूलित. २ खड़ा किया हुग्रा । (स्त्री० ऊबाड़ियोड़ी)

ऊबाड़ौ–वि०—१ कुवचन कहने वाला. २ कुवचन ।

ऊबाणौ, ऊबाबौ–क्रि०स०—खड़ा करना (रू.भे. ऊभाणौ)

उ०—जठै कुमार दूदौ तौ महज में सांवळिया नै झपाई खाळ रै वार ग्राइ भाली **ऊबाइ** साम्हौ खड़ौ रहियौ ।—वं.भा.

ऊबारकौ–वि०—उबारने वाला (रू.भे. उबारकौ)

ऊबारणौ, ऊबारबौ—देखो 'उबारणौ' (रू.भे.)

ऊबारियोड़ौ—देखो 'उबारियोड़ौ' (स्त्री० ऊबारियोड़ी)

ऊबारौ—१ देखो 'उबारौ'. २ रक्षक । उ०—नीधां ग्रासतीक रेणसिंग ऊघारै घडा रौ लाडौ, **ऊबारौ** भड़ाळां नांम चाढ़ौ कुळां ग्रंब ।

—कमजी दधवाड़ियौ

ऊबास, ऊबासी, ऊबासौ—देखो 'उबासी' । उ०—मूंछां गाल्हड़िया सेडै में भरिया, **ऊबासा** लेवै मावा ऊतरिया ।—ऊ.का.

ऊबियोड़ौ–भू०का०कृ०—ऊबा हुग्रा, उकताया हुग्रा (स्त्री० ऊबियोड़ी)

ऊबियोबगार–सं०पु०—बिना छौंका हुग्रा साग ।

ऊबेछाज–सं०पु० [सं० उच्छूर्पण] नाज को साफ करने की एक क्रिया विशेष ।

ऊबेड़खंभ–वि०—बलवान, शक्तिशाली । उ०—खूटा पगाथी ग्रनथां दीहां ऊराथी **ऊबेड़-खंभ** । कपोळां बरा थी छूटा मंदा काळा कीठ ।

—पहाड़खां ग्राढ़ौ

ऊबेड़णौ, ऊबेड़बौ–क्रि०स०—उखाड़ना, उन्मूलन करना ।

उ०—धाड़ा राघव धुर धमळ, ग्रबनाड़ा ग्रणबीह । **ऊबेड़ण** जाड़ा ग्रमह, मुज घांसाड़ा सीह ।—र.ज.प्र.

ऊबेड़णहार, हारौ (हारी), ऊबेड़णियौ–वि०—उखाड़ने वाला, उन्मूलन करने वाला ।

ऊबेड़िग्रोड़ौ, ऊबेड़ियोड़ौ, ऊबेड़्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

ऊबेड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—उखाड़ा हुग्रा, उन्मूलन किया हुग्रा ।

ऊबेड़ौ—१ देखो 'उबेड़ौ' (रू.भे.). २ विरुद्ध, विपरीत ।

उ०—प्रसण बखांण करै जोधांपत, वडम तुहाळी साख वळै । ग्रै जौ जके बहै **ऊबेड़ा**, खांचां नळा राखिया खळै ।

—भैरूंदास खिड़ियौ

ऊबेल–सं०स्त्री०—१ मदद, सहायता । उ०—हरी पोकरी रै हुवौ जेम व्हीजै । कवी पात री मात **ऊबेल** कीजै ।—मे.म.

२ शरण, रक्षा । उ०—वीरमदेव ग्रावतां वांसे । ग्रन रावां पायौ **ऊबेल** ।—राठौड़ राव वीरमदेव मेड़तिया रौ गीत

३ रक्षक । उ०—सबळा विरद वहण सूजावत । ग्रबळा बळी ग्रचळ **ऊबेल** ।—ग्रज्ञात

ऊबेलणौ, ऊबेलबौ–क्रि०स०—१ उबारना, पार उतारना । उ०—उर दोनूं पख ग्रांगिया, मांई एकण सत्थ । ग्रवरंग नूं **ऊबेलणौ**, हिंदवांणी ग्रह हत्थ ।—रा.रू. २ रक्षा करना । उ०—डाकण भूत कुए पग डिगतां, कड़की बीज ग्रकासां । करतां याद मेहा मुत करणी, देव **ऊबेलौ** दासां ।—बां.दा.

ऊबेलणहार, हारौ (हारी), ऊबेलणियौ—वि० ।

ऊबेलिग्रोड़ौ, ऊबेलियोड़ौ, ऊबेल्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

ऊबेळणौ–क्रि०स०—देखो 'उबेळणौ, उबेळबौ' (रू.भे.)

ऊबेलियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उबारा हुग्रा, पार उतारा हुग्रा. २ रक्षा किया हुग्रा ।

ऊबोड़ौ–भू०का०कृ०—खड़ा हुग्रा ।

ऊब्हाणौ–वि० (स्त्री० उब्हांणी) देखो 'उबांणौ' (रू.भे.) उ०—प्रगट **ऊब्हांणै** पाय, ग्रायौ सोह जांणै यळा । सींधुर तणी सिहाय, कीधी धरणीधर 'किसन' ।—र.ज.प्र.

ऊभ–सं०स्त्री०—देखो 'ऊब' (३)

ऊभणौ, ऊभबौ–क्रि०ग्र०—१ खड़ा होना । उ०—वांणी सुण चहुवांण ग्रांण ऊभौ राय ग्रंगण ।—रा.रू. २ खड़ा रहना, ठहरना ।

उ०—नाग कन्या समेत सरभ ही ग्राय **ऊभे** ।—र.रू.

ऊभणहार, हारौ (हारी), ऊभणियौ–वि०—खड़ा होने वाला, ठहरने, वाला ।

ऊभिग्रोड़ौ, ऊभियोड़ौ, ऊभ्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

कहा०—१ ऊभा खेजड़ां वेझ थोड़ा ही पड़ै—खड़े हुए खेजड़ों की लकड़ी में छेद थोड़े ही बनाये जा सकते हैं, पहले उन्हें काटना होगा; जल्दी में कोई काम नहीं हो सकता. २ ऊभां पगां री सगाई है—खड़े पैरों की सगाई है; खड़े रह कर सामने काम करवाने से तुरंत हो जाता है नहीं तो हो भी सकता है ग्रौर नहीं भी हो सकता. ३ ऊभी ग्राई ग्राडी जाऊं—खड़ी-खड़ी ग्राई हूं किन्तु लेट कर जाऊंगी; सती

स्त्री मरने पर ही घर को छोड़ती है. ४ ऊभै लकड़े बेभ (तेल) की पड़ैनीं—देखो 'ऊभा खेजड़ा बेभ थोड़ा ही पड़ै'. ५ ऊभी मूतै सूती खावै, जिणरी दाळद कदे न जावै—खड़े-खड़े पेशाब करना और सोते-सोते खाना हानिकारक है. ६ ऊभी कागलौ उडावणी—जब दूसरे कार्य कर रहे हों तब उनके साथ खड़े होकर बेकार समय गँवाना।

ऊभसूक–वि०—वह वृक्ष जो खड़ा-खड़ा सूख गया हो।

ऊभाणौ, ऊभाबौ–क्रि०स०—खड़ा करना (रू.भे. ऊबाणौ)

ऊभापगां–क्रि०वि०—खड़े-खड़े, यकायक, उपस्थिति में।

ऊभियोड़ौ–भू०का०कृ०—खड़ा हुआ (स्त्री० ऊभियोड़ी)

ऊभीताळ–क्रि०वि०—तुरंत, उसी समय, शीघ्र, यकायक।

ऊभो, ऊभोड़ो, ऊभौ–वि० (स्त्री० ऊभी, ऊभोड़ी) १ ऊपर को सीधा उठा हुआ. २ खड़ा। उ०—सुणे सांम आगम्म ऊभी सहेली, हरेवा हरेवा हवेली हवेली।—ना द.

ऊमंड–सं०स्त्री० [सं० उन्मंडन] १ बाढ़, बढ़ाव. २ घिराव. ३ धावा. ४ आवेश।

ऊमंडणौ ऊमंडबौ—देखो 'उमड़णौ, उमड़बौ'।

उ०—मिरजौ नूरमली बळ मंडे, आयौ भाण सिरै **ऊमंडे**।—रा.रू.

ऊमंडियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उमड़ियोड़ौ' (स्त्री० ऊमंडियोड़ी)

ऊमंगणौ, ऊमंगबौ–क्रि०अ०—उमड़ना। उ०—सहेल्यां हे, आणंद ऊमंग्यो, म्हारे छाया है मुद मंगळ माल।—गी.रां.

ऊमटणौ, ऊमटबौ–क्रि०स०—उमड़ा। उ०—ऊलंबे मिर हुथ्थड़ा, चाहंदी रस लुध्ध। विरह महाघण **ऊमटयउ**, थाह निहाळइ मुध्ध।

—ढो.मा.

ऊमटणहार, हारौ (हारी), ऊमटणियौ–वि०—उमड़ने वाला।

ऊमटिप्रोड़ौ, ऊमटियोड़ौ, ऊमटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊमटियोड़ौ–भू०का०कृ०—उमड़ा हुआ। (स्त्री० ऊमटियोड़ी)

ऊमण–वि०—१ उत्कंठित, उत्सुक (डिं.को.) २ उदासीन, खिन्न चित्त.

ऊमणदूमणौ, ऊमणौ–वि० [सं० उन्मन] उदास, खिन्न चित्त।

उ०—सज्जण हरख न बोलिया, मुझ सां रीसा आज। का थे **ऊमणदूमणा**, कहौ स के वड काज।—ढो.मा.

ऊमतौ–वि०—उन्मत्त, मस्त। उ०—बेखता घूमता मदां वरता अखाड़ै वागा, छत्रधारी 'पता' वाळा ऊमता छंछाळ।—पहाड़ खां आढ़ौ

ऊमदा–वि०—देखो 'उमदा'।

ऊमर–सं०स्त्री०—१ देखो 'उमर'। उ०— आखी ऊमर आंरी कस आयो। छळ बळ मुतलब कर बस कर छिटकायो।—ऊ.का.

२ गूलर का वृक्ष, गूलर. ३ पंवार वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति. ४ देखो 'उमराव'।

ऊमरकोट–सं०पु०—१ पश्चिमी पाकिस्तान में सिंध प्रांत में भारत की सीमा पर स्थित एक भू भाग। इस भूगोल के एक नगर का नाम।

ऊमरड़–वि०—१ जोशपूर्ण, बलवान, शक्तिशाली। उ०—बाज नासां ठड़ड़ साज चढ़ुए वळा। ज्वाळ माळा धड़ड़ तोपखांनो अळा। करी भंळी भरड़ मुरड़ चढती कळा। अभपती **ऊमरड़** ऊरड़ मांणै इळा।

—जवानजी आढ़ौ

२ विरुद्ध। उ०—जोधपुर नाथ सूं रहै **ऊमरड़** जिता, चिता-नळ बाथ सूं भरण चाहै।—चिमनजी आढ़ौ

सं०पु०—साहस, हिम्मत।

ऊमरड़पण, ऊमरड़पणौ–सं०पु०—१ आतंक, जोश. २ निशंकता, निडरता। उ०—जोधपुर मांय **ऊमरड़पणौ** जमायौ असायौ रिड़मलां मोद 'ऊदा'।—नीबाज छत्रसिंह री गीत

ऊमरबराज–वि० [फा०] दीर्घजीवी, चिरायु।

ऊमरवाळौ–वि०—१ जीवनभर का, जीवनभर संबंधी. २ बड़ी आयु का।

ऊमरौ–सं०पु०—१ रईस। देखो 'उमराव'। उ०—उर दियण मोद फिर **ऊमरां**, तात गोद प्रियवरत तन।—रा.रू. २ हल की रेखा, सीता।

मुहा०—सूका ऊमरा काडणौ—बिना लाभ का काम करना।

ऊमस–सं०स्त्री०— देखो 'उमस'। उ०—**ऊमस** कर घ्रत माट गमावै, इंडा कीड़ी बाहर लावै। नीर विनां चिड़ियां रज नावै, तौ मेह वरसै घर मांह न मावै।—अज्ञात

ऊमहणौ, ऊमहबौ–क्रि०अ०—१ उमड़ना. २ उठना, उभरना. ३ उमंगित होना। उ०—जिण घण कारण **ऊमह्यौ**, तिण घण हंदा वेस।—ढो.मा.

ऊमणहार, हारौ (हारी), ऊमणियौ–वि०—उमड़ने या उठने वाला।

ऊमहिप्रोड़ौ, ऊमहियोड़ौ, ऊमह्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऊमाणौ, ऊमाबौ–क्रि०अ०—उमंगयुक्त होना। उ०—जुड़ैवा **ऊमाया** केवी आया जीं वार जेता। हुवा काळ रै भेट राजकंवार रै हाथ।

—मोडजी आढ़ौ

ऊमाह, ऊमाहो, ऊमाहौ—देखो 'उमाहौ' (रू.भे.)

ऊमिया–सं०स्त्री०—पार्वती। उ०—सिव **ऊमिया** पेमां सुलोचना तुज तणां अवतार त्यां।—पा.प्र.

ऊमी–सं०स्त्री०—देखो 'उम्मी'।

ऊमीणौ–सर्व०—हमारा।

ऊरंग—देखो 'उरग'। [सं० उर] हृदय।

ऊरंगी–वि०—खिन्नचित्त, उदास।

ऊर–सं०पु० [सं० उर] देखो 'उर'।

अव्यय—और। उ०—गरब करि ऊभौ छइ सामरथौ राव। मौ सरीखा नहीं **ऊर** भुवाळ।—वी.दे.

सं०पु०—१ जबरदस्ती. २ बहादुरी।

ऊरज–वि० [सं० ऊर्ज] बलवान, बली।

ऊरजस–सं०स्त्री० [सं० ऊर्जस] बल, शक्ति।

ऊरड़–सं०स्त्री०—देखो 'उरड़'। उ०—१ मिळण लोह धांकियौ **ऊरड़** मेहरी, दुकळ रानांखियौ धुरड़ ध्रब देहरी, गजब गत पांखियौ नाग

रण गेह री, केह री समोभ्रम डांखियौ केहरी ।—बदरीदास खिड़ियौ

उ०—२ सीसवर ऊरड़ भुज धारियां 'सेरसी' आग चख मल भड़े रारियां गरसी, फौज कर तरवारियां जठी फरा फेरसी। खूनियां मार तरवारियां खेरसी ।—बदरीदास खिड़ियौ

ऊरण–वि०[सं० उऋण] ऋणमुक्त, उऋण। उ०—१ जगत सूत मागध बंदी जण, आसावंत किया नृप ऊरण ।—रा.रू.

उ०—२ वांसू कब व्हां अब अगले भव ऊरण। ज्यारूं वरणां री सरणागत चूरण ।— ऊ.का.

सं०पु० [सं० ऊर्ण] मेढ़ा (डि.को.)

ऊरणनाभ–सं०स्त्री० [सं० ऊर्णनाभ] मकड़ी (अ.मा.)

ऊरणा–सं०स्त्री० [सं० ऊर्णा] १ ऊन. २ चित्ररथ नामक एक गंधर्व की स्त्री।

ऊरणियौ–सं०पु०—भेड़ का बच्चा (अल्पा०) उ०—ऊणां ऊरणियां खरसणियां ओळं। डरड़ा नरड़ा बिण अरड़ा दे टोळं ।—ऊ.का.

ऊरणी–सं०स्त्री०—१ भेड़. २ एक प्रकार का रोग विशेष जिससे होठों पर फुंसियां होती हैं।

ऊरणौ, ऊरबौ–क्रि०स०—१ युद्ध में घोड़े को ठेलना. २ चक्की में पीसे जाने हेतु अनाज डालना. ३ खेत में हल द्वारा अनाज बोना. ४ आक्रमण करना. ५ डालना, गिराना।

ऊरणहार, हारौ (हारी), ऊरणियौ—वि०।

ऊरिओड़ौ, ऊरियोड़ौ, ऊरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

(रू.भे. 'ओरणौ')

ऊरदध्वलोक–सं०पु०—देखो 'ऊरधलोक'।

ऊरध–वि० [सं० ऊर्ध्व] ऊँचा, उर्ध्व। उ०—ऊरध अकास पाताळ पास, सब ठोर सिद्ध परिकर प्रसिद्ध ।— ऊ.का.

ऊरधगति–सं०स्त्री० [सं० उर्ध्वगति] मुक्ति, ऊपर की ओर गति।

ऊरधतिक्त–सं०पु० [सं०] चिरायता का एक नाम।

ऊरधपाद–सं०पु० [सं० उर्ध्व+पाद] १ एक प्रकार का आसन विशेष. २ एक कीड़ा, शरभ।

ऊरधपुंड–सं०पु० [सं० ऊर्ध्वपुंड्र] ललाट पर किया जाने वाला खड़ा तिलक (वैष्णवी)

ऊरधबाहु–सं०पु० [सं० ऊर्ध्वबाहु] अपनी एक बाहु ऊपर उठा कर तपस्या करने वाला तपस्वी।

ऊरधरेखा–सं०स्त्री० [सं० उर्ध्वरेखा] हथेली की भाग्य-रेखा अथवा पैर के तलुवे पर खड़ी रेखा जो सौभाग्यसूचक मानी जाती है।

(मि० उड़दरेख।)

ऊरधलोक–सं०पु० [सं० उर्ध्वलोक] आकाश, स्वर्ग, बैकुण्ठ (डि.को.)

ऊरधधनुरासन–सं०पु० [सं० उर्ध्वधनुषासन] योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन जिसमें मुख को आकाश की तरफ रख कर दोनों हाथ और दोनों पैरों को जमीन पर लगा कर कमान जैसी आकृति की जाती है।

ऊरध्वसंयुक्तासन–सं०पु० [सं० उर्ध्वसंयुक्तासन] योग का एक आसन विशेष जिसमें वृक्षासन की तरह स्थिति करके दोनों पांवों की तली को गुदा के पास लाकर आमने-सामने भिड़ाया जाता है। इसे ऊर्ध्व-संयुक्तपादासन भी कहते हैं।

ऊरबौ–सं०पु०—१ उम्मेद, आशा, भरोसा. २ इज्जत।

ऊरमि–सं०स्त्री०—देखो 'ऊरमी'।

ऊरमिमाळी–सं०पु० [सं० उर्मिमाली] समुद्र।

ऊरमी–सं०स्त्री० [सं० ऊर्मी] १ लहर, तरंग। उ०—बुरेना दे सुरमी दहन खट ऊरमी दुसमनां। रवींदु पारातें स्रवत सुभधारा सुखमनां।

—ऊ.का.

२ पीड़ा दुःख. ३ छः की संख्या* ४ शिकन, कपड़े की सलवट।

ऊरवड़–सं०स्त्री०—१ देखो 'उरवड़' २ देखो 'उरव्वड़' (रू.भे.)

ऊरव्वड़णौ, ऊरव्वड़बौ–क्रि०अ०—देखो 'उरव्वड़णौ, उरव्वड़बौ' (रू.भे.)

ऊरस–सं०पु०—देखो 'उरस'।

ऊरा–क्रि०वि०—देखो 'उरा'।

ऊराहौ–सं०पु०—देखो 'उराह' (कां.दे.प्र.)

ऊरि–सं०पु० [सं० उरस] उरस्थल, वक्षस्थल। उ०—ऊरि चोड़ी कडि पातळी। मांहीलै कोयै जीमणी अंखी ।—वी.दे.

ऊरुज–सं०पु० [सं०] १ जंघा से उत्पन्न. २ वैश्य जाति।

ऊरुत्र–सं०पु०—घुटने और कमर के बीच के अंग का कवच, रान का कवच। उ०—सबाहुत्र ऊरुत्र जंघात्र संगी, चहे वंम चीलहा रहै एक रंगी। —वं.भा.

ऊरू–सं०पु० [सं० उरु] जंघा (रू.भे.)

ऊरूज–सं०पु० [सं० ऊर्ज] १ वैश्य (डि.को.) २ बल, शक्ति. ३ कार्तिक मास. ४ देखो 'उरुज'।

ऊरेड़ौ–सं०पु०—देखो 'उरड़ौ' (रू.भे.)

ऊळ–सं०स्त्री०— नेत्रों में होने वाला वातनाड़ी शूल।

ऊल–सं०स्त्री०—१ चमड़े के ऊपर का वह भाग जो घर्षण से उतर जाय. २ जिव्हा पर जमा हुआ मैल. ३ ऊपर की चमड़ी, झिल्ली।

ऊळखणौ, ऊळखबौ—देखो 'उळखणौ, उळखबौ' (रू.भे.)

उ०—देवीदास पण ऊभौ-ऊभौ देखि अर ऊळखिया।

—पलक दरियाव री बात

ऊळगणौ, ऊळगबौ—देखो 'उळगणौ, उळगबौ')

ऊलजलूल–वि०—१ असंबद्ध, अंड-बंड. २ नासमझ. ३ बेअदब, अशिष्ट, अनाड़ी।

ऊलटणौ, ऊलटबौ—देखो 'उलटणौ, उलटबौ'।

उ०—माह महारस मयण मब, अति ऊलटै अनंग। मौ मन लागौ मारवण, देखण पूंगळ ढ्रंग।—ढो.मा.

ऊलफैल–सं०पु०यौ०—१ उत्पात, उपद्रव. २ नखरा।

वि०—व्यर्थ, बहुत सा, बेकार।

ऊलरणौ, ऊलरबौ–क्रि०अ०—उमड़ना। उ०—घुमंट घटा ऊलर होई आई, दांमिन दमक डरावै।—मीरां

ऊलळणौ, ऊलळबौ—देखो 'उलळणौ, उलळबौ'।

उ०—वरहास खिड़इ ऊलळी वग्ग, कळहिवा क्रमइ कम्मांण क्रग। —रा.ज.सी.

ऊलळियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उलळियोड़ौ'। (स्त्री० उलळियोड़ी)

ऊलसणौ, ऊलसबौ–क्रि०अ०—१ वर्षा का बरसना शुरू होना, बरसना। उ०—काछि काछि वन कीधी काया। ऊळसि अंब उम्रह घर आया। २ शोभित होना, सोहना। —आसौ बारहठ

ऊलहणौ, ऊलहबौ–क्रि०अ०—१ उमड़ना। उ०—माह महारस मयण सब, अति ऊलहइ अनंग। मौ मन लागौ मारवण, देखण पूगळ द्रंग। २ उठना, उभरना। —ढो.मा.

ऊलहियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ उमड़ा हुआ. २ उठा हुआ, उभरा हुआ। (स्त्री० ऊलहियोड़ी)

ऊला–वि० —उल्टा। उ०—माया की छाया में बैठा, ऊला अरथ बिचारै।—ह.पु.वा.

ऊलाळणौ,ऊलाळबौ,ऊलाळिणौ,ऊलाळिबौ–क्रि०स०—१ देखो 'उलाळणौ'

उ०—१ प्रथम बोल परियां तण तेज सुध पाळिया। आज रा गैण लग कूंत ऊलाळिया।—सक्तावत करमसिंह री गीत

उ०—२ ऊलाळिया चढ़ाये अणियै, रोदज तैं मेवाड़ा रांण। —अज्ञात

२ फेंकना। उ०—आडा डूंगर वन घणा, तांह मिलीजइ केम। ऊलाळीजइ मूंठ भरि, मन सींचाणउ जेम।—ढो.मा.

ऊली–क्रि०वि०—इस ओर।

वि०—इस ओर की, इस तरफ की। उ०—रांम भजन सुख अगम है, ऐ सब ऊली दोड़।—ह.पु.वा.

सर्व०—इस। उ०—माराज फौज हजार ५००००० लेयनै आया सु तापी नदी री ऊली तरफ डेरा किया।—द.दा.

ऊलेप–सं०पु०—गर्व, दर्प। उ०—बीड़ै के साथ गुजरात का पटा अमीरां का ऊलेप अंबर सा फटा।—रा.रू.

ऊलौ–वि०—इधर वाले। उ०—ऐ राठौड़ हुवै ज्यां आगै, भिड़तां ऊला पैला भागै।—रा.रू.

ऊलोड़ौ–वि०—इधर वाला, इस तरफ का।

ऊलौ-पैलौ–वि०—इधर-उधर का। उ०—अरु कांधळजी रै नै सारंगखांन रै बडी जंग हुवौ, ऊलौ-पैलौ लोक पण कांम आयौ। —द.दा.

ऊल्क–सं०पु —उल्कापात।

ऊवकणौ–क्रि०अ०—मेघ का गर्जना। उ०—चळती कंठळि बीज चमक्कै, झड़ माचंतै सुकवि झणक्कै। 'ऊनड़' हुरा इंद्र ऊवक्कै, गुणियण मोकळ सिहड़ गहक्कै।—ईसरदास बारहठ

ऊवेभोउ–सं०पु०—उपालंभ। उ०—आज ऊलेभोउ भांजवा, या घन वीरा! धारइ हिये न समाई।—वी.दे.

ऊवट—देखो 'ऊवट्ट'।

ऊवटणौ–सं०पु०—उबटन। उ०—उर उमंग उत्तम ऊवटणौ, पूरण हित सूं पीठी कराय।—गी.रां.

ऊवट्ट–सं०पु०—१ आयु, उम्र, वय। देखो 'अवट' २।

२ उत्पथ, अटपटा व ऊबड़-खाबड़ मार्ग। उ०—खरौ जिगरिया खांन जिको उत्तर अपजोरै, पूरब सादित प्रगट तकौ ऊवट्ट निजतो रै। —रा.रू.

वि०—१ ऊबड़-खाबड़, बिना मार्ग। उ०—बारगिरी तेजी दिवराण, चालइ ऊवट वाट।—कां.दे.प्र.

ऊवडणौ, ऊवडबौ—वर्षा का बरसना या उमड़ना। उ०—ऊजळियां धारां ऊवडियौ, परनाळे जळ रुहिर पड़ै।—वेलि.

ऊवर, ऊवरि–सं०पु० [सं० उर] हृदय,उर, वक्षस्थल।

उ०—१ केहरी जड़ी कांधल ऊवर कटारी। चूक मझ उबारी अचड़ चहुवांण।—अज्ञात

उ०—२ सुजि हरि समरि ऊवरि करि सोध।—ह.नां.

ऊवलणौ, ऊवलबौ–क्रि०अ०—१ बचना, शेष रहना। उ०—जे जे तुरक नासी ऊवळ्या, एक ठांमि जई जंगलि मिळ्या।—कां.दे.प्र.

२ देखो 'उबलणौ, उबलबौ' (रू.भे.)

ऊवलियोड़ौ–भू०का०कृ०—बचा हुआ, शेष। (स्त्री० ऊवलियोड़ी)

ऊवस्स–वि० [सं० उद्वस=उद्वास] निर्जन, जन-शून्य। उ०—वसती करै निवास, फेर ऊवस्स वसाड़ै, नटबाजी मंडवै, पबै ऊपर जळ चाड़ै।—ज.खि.

ऊवहणौ ऊवहबौ–क्रि०अ०—१ बचना, जीवित रहना. २ ऊँचा होना। उ०—यळ न अनड़ ऊवहै आनका, नैणां दीसै सहै नवाय। —महारांणा लाखा री गीत

ऊवहियोड़ौ–वि०—१ बचा हुआ, जीवित (युद्ध में) २ ऊँचा हुआ। (स्त्री० ऊवहियोड़ी)

ऊवां, ऊवा–सर्व०—वे, उन्हें।

क्रि०वि०—वहां।

ऊवाड़ौ—मादा पशुओं के थन तथा थनों के ऊपर की थैली जिसमें दूध रहता है। (मि० उवाड़ौ) (रू.भे. उवाड़ौ, ऊआड़ौ, ऊहाड़ौ)

ऊवारणौ, ऊवारबौ—देखो 'उवारणौ' (रू.भे.)

ऊवाळ–सं०पु०—आदमी को गिरवी रक्खे जाने की प्रथा के अन्तर्गत गिरवी रक्खा गया मनुष्य। उ०—ऐ हिंदू है दगादार, जांणां आवै नावै, तिसै इण का चचा रांणकदे कूं ऊवाळ मांहे राखौ। —वीरमदे सोनगरा री वात

ऊवेलणौ, ऊवेलबौ–क्रि०स०—रक्षा करना। उ०—ऊंचे हाथि धाहि पोकारइ, बोलावइ, किरतार। आंणीवार किम्हइ ऊवेलइ, करइ अम्हारी सार।—कां.दे.प्र.

ऊवेलियोड़ौ–भू०का०कृ०—रक्षा किया हुआ। (स्त्री० ऊवेलियोड़ी)

ऊवेलौ–वि०—उऋण, ऋण-मुक्त। उ०—मोसूं ऊवेलोह तुरत

हुवौ जिग री तवां। भीम गजां मेळोह, करतौ जोय पाबू कमंध।—पा.प्र.

ऊवं—सर्व०—वे। उ०—**ऊवं** नर भलां मांनखे आया, ग्यांन घ्यांन हर रा गुण गाया।—अज्ञात

ऊवौ—सर्व० (बहु०–ऊवं) १ उस. २ वह। उ०—अभंग जंग भरत-खंड पारका ऊसर **ऊवं**।—बां.दा.

ऊस—देखो—'ऊवाड़ौ' उ०—धेनू चरतोड़ी धोरां खड़ धाती, **ऊसां** भरतोड़ी लोरां झड़ आती।—ऊ.का.

ऊसणागम—सं०पु० [सं० उष्णागम] ग्रीष्म ऋतु।

ऊसनउ—वि० [सं० अवसन्न] अवसन्न, उत्सुक, खिन्न। उ०—करहा वांमन रूप करि, चिहुं चलणे पग पूरि। तूं थाकउ हूं **ऊसनउ**, भुइं भारी घर दूरि।—ढो.मा.

ऊसमक—सं०पु० [सं० उष्मक] १ गरमी, ताप, तपन (डिं.को.) २ ग्रीष्म ऋतु (डिं.को.)

ऊसमेव—सं०पु० [सं० अश्वमेध] अश्वमेध यज्ञ।

ऊसर—सं०पु०—१ अनउपजाऊ भूमि (डिं.को.) २ असुर।

उ०—अभंग जंग भरतखंड पारका **ऊसर** ऊवं, मारका वजंद्र रै दुरंग मिळिया।—बां.दा.

वि०—कटु, कड़वा। उ०—**ऊसर** बैणां सूं ववती अळआरां, धूसर नैणां सूं ध्रवती जळधारां।—ऊ.का.

ऊसरणौ, ऊसरबौ—देखो 'उसरणौ, उसरबौ' (रू.भे.)

उ०—जग में **ऊसरियौ** खापरियौ जैं'री। बाल्हा बीछोडण बापरियौ बैरी।—ऊ.का.

ऊसरांण—देखो 'असुरांण'। उ०—रहच **ऊसरांण** दळ गया खग चढ़ै रथ। सथर जसवास जुग च्यार सुगरा।—ज.खि.

ऊसरियोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'उसरियोड़ौ'। (स्त्री० ऊसरियोड़ी)

ऊसस—सं०पु०—जोश, आवेग। उ०—बूड़ो **ऊसस** बोलियौ, असमर करग उठाय। तूं किण कज लेवै त्रिपट, हणियौ मैं वाराह।—पा.प्र.

ऊससणौ, ऊससबौ—क्रि०अ० [सं० उच्छ्वसन] १ जोश में आना।

उ०—**ऊससिय** वोमि लागउ अबोह, सांभळिग्रे कथिने जइतसीह।—रा.ज.सी.

२ उठना (जोश अथवा उमंग व हर्षसहित) उ०—अंग दसरथ मिळ **ऊससे** मोद अत, महीपत, महीपत, महीपत, महीपत।—र.रू.

ऊससणहार, हारौ (हारी), ऊससणियौ—वि०—जोश में आने वाला, जोश या हर्ष में उठने वाला।

ऊससियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ जोश में आया हुआ. २ जोश में या उमंग में आकर उठा हुआ। (स्त्री० ऊससियोड़ी)

ऊसा—सं०स्त्री० [सं० ऊषा] सूर्योदय के पहले की ललाई। उ०—बिहांणे पोयण पंथ पयांण, उगूणी **ऊसा** धरती आय।—सांझ

ऊसाकाळ—सं०पु० [सं० ऊषाकाल] प्रातःकाल, तड़का, सवेरा।

ऊसारणौ, ऊसारबौ—देखो 'उसारणौ, उसारबौ'।

ऊसारियोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'उसारियोड़ौ'। (स्त्री० ऊसारियोड़ी)

ऊसारौ—सं०पु० [सं० उत्सार] मकान का बरामदा। उ०—पांडवौ **ऊसारै** तेडवौ छइ राई। छीनी उळगी मांई सूं कही।—वी.दे.

ऊसासणौ, ऊसासबौ—क्रि०स० [सं० उच्छ्वास] तटों या किनारों को फोड़ कर निकलना, जलाशय का बंध तोड़ना या फोड़ना।

उ०—भरयां सरोवर पाळि **ऊसासी**, पापलि दीधा घाउ।—कां.दे.प्र.

ऊस्मवरण—सं०पु० [सं० ऊष्मवर्ण] वर्णमाला के स और ह अक्षर।

ऊह—सं०पु०—तर्क, विचार। उ०—आहव उछाह उर अधिक **ऊह**।
—ऊ.का.

ऊहड़—सं०पु०—राठौड़ों की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

ऊहरण—सं०पु०—लोहार का एक उपकरण विशेष जिस पर गर्म धातु रख कर पीट कर औजार आदि बनाते हैं (अमरत)

ऊहणौ, ऊहबौ—क्रि०अ० [सं० ऊह=तर्क] विचार करना।

उ०—करि औछाव कहाव करि, **ऊहवि** पति आंबेर। उर भायौ दूलह 'अभौ', पधरायौ नारेळ।—रा.रू.

ऊहवियोड़ौ—भू०का०कृ०—विचार किया हुआ। (स्त्री० ऊहवियोड़ी)

ऊहा—अव्यय [सं० ऊह] क्लेश या दुःखसूचक शब्द, ओह, विस्मयसूचक शब्द।

सं०पु०—१ अनुमान. २ विचार. ३ तर्क, दलील।

उ०—अर रांणे हम्मीर इण **ऊहा** री रीझ पर आपरा पोळिपात बारू नूं सांसणां रा सप्तक समेत बारह लाख राजतो मुद्रा रौ विभव दीधौ।—वं.भा. ४ किंवदंती, अफवाह।

ऊहाड़ौ—सं०पु०—देखो 'ऊवाड़ौ'। उ०—माती **ऊहाड़ां** दरसै मादळ सी, देई बीलोई बरसै बादळ सी।—ऊ.का.

ऊहाळ—सं०पु० [सं० ऊहावलि] जलधारा के साथ बहने वाला कूड़ा-कर्कट जो तट पर जम जाता है। उ०—'अजाहर' हसम दरियाव दीधी उभळ, अथ जळ विचै पड़ नाव ऊंधी। गडूथळ खावती **ऊहाळां** पड़ गयी, सतारा तणै ऊमराव सूधी।—पिरयाग सेवग

ऊहिज—सर्व०—वही।

ऊहौ—क्रि०वि०—उस तरफ।

सर्व० (स्त्री० ऊही) वह। उ०—अर नरसिंहदेव नूं छिन्न-भिन्न होइ पड़तौ देखि केही जवनां नूं परेतपति री पुरी रा पांहुणा करि **ऊही** उत्तमंग आंणि मुहम्मदसा रै उपायन कीधौ।—वं.भा.

ए

ए—राजस्थानी वर्णमाला का सातवां अक्षर जो संयुक्त स्वर (अ+इ) है और कंठतालव्य है ।

एंकारौ–सं०पु०—१ मनोमालिन्य । उ०—टीका रौ मालक तिको, जीकारौ मुख जास । उण सूं एंकारौ किसूं, मुख रेंकारौ हास । —बां.दा.

२ तूं कह कर पुकारने का आदररहित शब्द (मि० रेंकारौ, वि० जीकारौ)

अनु०— ३ बोलते-बोलते पर स्वभावानुसार अटकने पर मुंह से एं एं का निकलने वाला शब्द ।

सं०स्त्री०—१ ऐंट, गर्व. २ जूठन (रू.भे. ऐंठ)

कहा०—काबरियौ कुत्तौ मरियौ नै एंट सूं छूटा– हानि पहुँचाने वाले प्राणी के मरने पर या दूर हो जाने पर कही जाती है ।

एंडाळ–वि०—बहुत बड़े शरीर वाला, विशालकाय ।

एंडोबेंडौ–वि०—उल्टा-सीधा, टेढ़ा-मेढ़ा ।

मुहा०—एंडो-बेंडो सुणावणौ—फटकारना, भलाबुरा कहना ।

ऐंबुलेंस–सं०पु० [अं०] घायलों व बिमारों को अस्पताल पहुँचाने वाली वह गाड़ी जो इसी उद्देश्य से बनाई गई हो ।

ए–सं०पु०—१ विष्णु. २ शेष. ३ जीव. ४ सूर्य. ५ बालक. ६ द्विज ७ दानव. ८ बाण (एका०)

सं०स्त्री०—९ अनसूया. १० आमंत्रण. ११ अनुकंपा ।

सर्व०—ये, यह, इस । उ०—वागरवाळ विचारयउ, ए मति उत्तिम कीध । साल्ह-महल हूं ढूकड़ा, ढाढी डेरउ लीध ।—ढो.मा.

वि०—१ संबंधी. २ सिद्ध. ३ बुद्धिमान. ४ उद्यत. ५ द्वेषी.

अव्यय संबोधनसूचक शब्द, अरे, हे । उ०—हर बीसारे तूं सुवै, हर जागै तो कज्ज । ए ! अपराधी आतमा, ओगुण एह अलज्ज ।—ह र.

कहा०—१ ए मां माखी, कै बेटा उड़ाय दे । मां ! मां !! दोय है — बेटा मां से कहता है कि अरी माँ-माँ मक्खी आ बैठी । माँ कहती है कि मक्खी आ बैठी तो उड़ा दे । बेटा फिर कहता है, माँ माँ ये तो दो हैं–मैं कैसे उड़ाऊँ ? आलसी के लिए ।

एकंकार–सं०पु०—एकाकार । उ०—एकंकार ज रहियौ अळगौ, अकबर सरम अनैसौ—दुरसौ आढ़ौ

एकंग–वि०—एकांग, अकेला ।

एकंगी–वि०—जिसका स्वभाव सदा एक सा रहता हो ।

एकंगौ–वि०—एक रंग का, एक स्वभाव का ।

एकंत, एकंति, एकंथ–वि० [सं० एकान्त] १ अकेला. २ निराला. ३ एकान्त । उ०—एकंत उचित क्रीड़ा चौ आरंभ, दीठौ सु न किहि देव दुजि ।—वेलि. ४ निर्जन, सूना ।

एक–सं०पु०—सब से छोटी व प्रथम संख्या ।

पर्याय०—इक, पहल, मेक, हेक ।

मुहा०—१ एक आंख सूं देखणौ—एक सा समझना, एक सा व्यवहार करना. २ एक आध—कुछ थोड़े से. ३ एक-एक—बारी-बारी, अलग-अलग, हरएक. ४ एक एक खूंणौ छांण मारणौ—सब जगह खोजना. ५ एक-एक रा दौ-दौ करणा—दूना लाभ लेना, बहुत लाभ लेना. ६ एक कैणी नै दस सुणणी—न तो किसी को भला-बुरा कहो न उसका सुनो. ७ एक जबांन—पक्का वायदा, ठीक या निश्चित बात. ८ एक जबांन होणौ—पक्का वायदा करना, ठीक या निश्चित बात करना. ९ एक जांन—बिलकुल हिलेमिले, बहुत बड़े मित्र. १०—एक जांन करणी—मरना और मारना; एक जीव राखणौ—मित्रता या मेल बनाए रखना. ११ एकटक—बिना पलक गिराए. १२ एक तार—बराबर. १३ एक नै एक इग्यारै होवणौ—मेल से बहुत बल बढ़ जाता है. १४ एक पगतणौ ऊबौ रहणौ—काम करने को हर वक्त तैयार रहना. १५ एक पेट रा—सहोदर. १६ एक बात—पक्का वायदा, ठीक या निश्चित बात. १७ एक मां बाप रौ होणौ—मिल कर रहना; असल का होना; एक मां बाप का होना. १८ एकमुस्त—एक साथ; इकट्ठे. १९ एक री दस सुणाणी—एक के उत्तर में दस कहना; एक ताने के बदले में दस कड़े शब्द कहना. २० एक री दौ कैवणी—दुगुना बदला लेना. २१ एक रै लारै दूजौ—धीरे-धीरे; बारी-बारी से. २२. एक रौ इक्कीस करणौ—बढ़ाना; तिल का ताड़ करना. २३ एक लाठी सूं हांकणौ—सबके साथ एक सा व्यवहार करना; योग्य-अयोग्य, बड़ा-छोटा का विचार कर लेना चाहिये. २४ एक संचा में ढळणौ—एक ही शक्ल-सूरत के; एक स्वभाव के. २५ एक समांन हांणौ—बराबर होना. २६ एक सा दिन नीं जावणौ—दुख या सुख हमेशा नहीं रहना. २७ एक हाथ सूं ताळी नीं बाजणी—झगड़े में केवल एक पक्ष का दोष न होना. २८ एक ही भाव तोलणौ—सबको बराबर समझना. २९ एक होणौ—मेल कर लेना; अप्रतिम होना; एकला होना; अपने गुण और धर्म में अकेला होना ।

कहा०—१ एक आंख आंख में नहीं नै एक पूत पूत में नहीं—एक आंख और एक पुत्र नहीं के बराबर होते हैं; अगर एक ही आंख हो और वह भी किसी कारणवश दृष्टिरहित हो जाय तो आदमी पूरा अंधा हो जाता है । इसी तरह एक पुत्र ही हो और किसी कारणवश वह मर जाय तो आदमी निपूता हो जाता है. २· एक आंख में किसी खोलै नै किसी मींचै—एक आंख होने पर कौनसी खोले और कौनसी बंद रखे; एक ही संतान हो तो किससे प्रेम और किससे द्वेष

रखे ? ३ एक आंख को कांई मींचणौ नै कांई ऊघाड़णौ—एक आंख का क्या मींचना और क्या खोलना ? देखो 'एक आंख में किसी खोलै किसी मींचै'. ४ एक एक छांट (कण) सूं समुद्र भरीजै है—थोड़ा-थोड़ा करके भी बहुत सा किया जा सकता है. ५ एक काचर री बीज सौ मण दूध बिगाड़ै—एक काचर का बीज सौ मन दूध बिगाड़ देता है: एक ही नीच बहुत बिगाड़ कर सकता है; छोटी सी चीज से बहुत हानि हो सकती है. ६ एक घड़ी री नकटाई (नीचताई) दिन भर री बादसाही—थोड़ी सी निर्लज्जता से बहुत समय के लिये आराम हो जाता है. ७ एक घर तौ डाकण ही टाळै—एक घर तो डाकिनी भी टालती है; नीच से नीच व्यक्ति के भी कोई अपना होता है जिसको वह हानि नहीं पहुँचाता; नीच से नीच भी सबका नाश नहीं करता. ८ एक घर होळी नै एक घर दिवाळी करणौ—पक्षपात करना, भेद-भाव करना. ९ एक चंद्रमा नव लख तारा, एक सती नै नग्गर सारा—एक चंद्रमा एक ओर है और नौ लाख तारे एक ओर हैं। इसी प्रकार सती एक ओर है और सारा नगर एक ओर है, दोनों बराबर हैं। नौ लाख तारों में एक ही चंद्रमा होता है और सारे नगर में एक ही सती मिलता (मिलती) है; अनेकों में कोई एक ही महात्मा या प्रतापी होता है. १० एक तवै री रोटी कांई छोटी कांई मोटी—एक ही तवे की रोटियों में क्या तो छोटी और क्या मोटी, सब एक सी होती हैं। एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न भाग सब एक जैसे होते हैं; एक ही कुल या समूह के लोग बराबर होते हैं; एक मां की संतान एक से स्वभाव वाली होती है; समान घरों के सब लोग मेरे लिये बराबर हैं; जब कोई एक ही कुल के लोगों या एक ही पदार्थ के विभिन्न लोगों में एक की निंदा और दूसरे की प्रशंसा करे तब कही जाती है. ११ एक दांत रोटी टूटणौ—बहुत गाढ़ी मित्रता होना; अधिक प्रेम होना. १२ एक दिन पढ'र किसौ पंडित हू जासी—केवल एक दिन पढ़ कर ही पंडित नहीं बना जाता उसके लिए लम्बे समय तक अभ्यास की आवश्यकता होती है; एक दिन नहीं भी पढ़ोगे तो कोई हानि नहीं होगी; एक दिन यह काम नहीं भी करोगे तो कुछ बिगड़ेगा नहीं. १३ एक दिन पांवणौ दूजै दिन अणखावणौ—मेहमान एकाध दिन ही अच्छा लगता है, अधिक समय तक रहे तो बुरा मालूम होने लगता है; अतिथि को अधिक दिन नहीं रहना चाहिये. १४ एक दिन रौ पांवणौ दूजै दिन पई, तीजै दिन रया नै अकल कठै गई—पहले दिन मेहमान है; दूसरे दिन साधारण व्यक्ति है किन्तु अगर कोई तीसरे दिन भी ठहरता है तो उसकी अक्ल कहां चली गई ? अतिथि को अधिक दिन नहीं ठहरना चाहिये. १५ एक दिन पियो'र एक दिन तिसौ, ब्याव रौ दिन किसौ ?—एक दिन पानी पिलाता हूँ, एक दिन प्यासा रहता हूँ फिर बताओ विवाह का दिन कौनसा नियत करूँ (किस दिन विवाह करूँ) (वि०वि० दूर रेगिस्तान में जहां जल की अधिक कमी है और बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है वहां एक दिन जल एकत्र करने में लगाते हैं और पशुओं को भी पिलाते हैं फिर दूसरे दिन उनको प्यासा ही रखा जाता है। यह दिन 'तिस्या रौ दिन' कहलाता है। इस प्रकार कठिनता से जीवन-क्रम चलता रहता है तो फिर वहां विवाह और उत्सव का दिन कौनसा हो सकता है) जिसको काम से अवकाश नहीं मिलता उसका कथन; जो अवकाश न मिलने का बहाना करते हैं उनके लिये. १६. एक नकारौ सौ दुख हरै (टाळै)—एक बार इनकार कर देने से सब झंझट मिट जाते हैं, फिर लोग तंग नहीं करते; जो संकोचवश निश्चित उत्तर नहीं देता उसे लोग बराबर सताते हैं. १७ एक नन्नौ सौ दुख हरै (टाळै)—देखो 'एक नकारौ सौ दुख हरै'. १८ एक नारी ब्रह्मचारी—एक पत्नीव्रत पालन करना ब्रह्मचर्य पालन के समान ही है. १९ एक पंथ दौ काज—एक काम को करते समय दूसरा काम भी साथ ही बन जाना; एक उपाय से दो काम बनना. २० एक बंदरिया रूठ जाय तौ किसौ बंदराबन खाली हो जाय—एक बंदरिया रूठ जाय तौ कौनसा वृन्दावन खाली हो जाता है; एक व्यक्ति साथ न दे तो कौनसा काम नहीं बनता ? २१ एक बार कथा सुणी ग्यांन आयौ सरड़, बार-बार कथा सुणै, कांन है क दरड़ ?—ज्ञान आता है तो एक बार सुनने से ही आ जाता है; बार बार कथा सुने और ज्ञान भी न आवे तो सुनने वाले के कान हैं या खंदक ? कोई शिक्षा हृदय में बैठती है तो एक बार सुन कर ही बैठ जाती है, बार बार कहने-सुनने से क्या लाभ ? २२ एक बिरती महा (सदा) वैर—एक पेशे वालों में परस्पर बड़ा विरोध होता है. २३ एक मछळी सारौ समंद (तळाव) गींधावै (गींदौ करै)—एक नीच सबका बिगाड़ करता है; एक नीच की संगति सबको बिगाड़ देती है; घर का या साथ का एक भी आदमी बदनाम हो तो सबकी बदनामी होती है. २४ एक मण अकल, सौ मण इलम—एक मन बुद्धि सौ मन विद्या के बराबर है; विद्या की अपेक्षा बुद्धि बड़ी है. २५ एक मसखरी सौ गाळ—एक मसखरी करने वाले को सौ गालियां खानी पड़ती हैं. २६ एक मूंग री दौ फाड—एक मूंग के दो दल; समान गुण स्वभाव आदि के लिये; गाढ़े मित्रों के लिये प्रयुक्त. २७ एक मेह एक मेह करता बडेरा ही मर गया—एक वर्षा और हो तो अच्छा यह आशा बार बार करते हुए पूर्वज चले गए; आदमी को संतोष नहीं होता; संतोष ही परम धन है. २८ एक म्यांन में दौ तरवार कौ खटावै नी—एक ही स्थान पर समान स्वार्थ वाले दो प्राणी नहीं रह सकते. २९ एक रती बिन पाव रती—एक रती के बिना मनुष्य कौड़ी का है; एक प्रतिष्ठा के बिना मनुष्य किसी काम का नहीं; एक प्रतापी अथवा वांछित व्यक्ति के अभाव में सब घर शोभाहीन लगता है. ३० एक री दवा दौ—देखो 'एक रौ इलाज दौ, दौ रौ इलाज एक. ३१ एक रै पाप सूं नाव डूबै—एक के पाप से नाव डूबती है। एक दुष्ट सब किया-कराया नाश कर देता है. ३२ एक रौ इलाज दौ—देखो 'एक रौ इलाज दौ, दौ रौ इलाज

एक'. ३३ एक री इलाज (गुर) दौ, दौ री इलाज (गुर) चार (च्यार)—एक का इलाज दो दो का इलाज चार; कोई कितना ही मजबूत क्यों न हो अकेला दो की बराबरी नहीं कर सकता और इस प्रकार दो व्यक्ति चार की बराबरी नहीं कर सकते. ३४ एक रो दारू दौ—देखो 'एक री इलाज दौ, दौ री इलाज चार'. ३५ एक लरड़ी तूय गई तौ कई व्है—भेड़ों के झुण्ड में अगर एक भेड़ का गर्भ गिर भी जाय तो क्या फर्क पड़ता है; बड़ी मात्रा के लाभ में अगर कुछ हानि भी हो जाय तो भी कुछ अंतर नहीं पड़ता. ३६ एक वार जोगी, दो वार भोगी, तीन वार रोगी—योगी एक बार, भोगी दो बार तथा रोगी तीन बार शौच को जाता है; दो बार से अधिक शौच को जाना रोग का लक्षण है. ३७ एक बार ठगायां सूं सैंस बुध आवै—एक बार हानि सहने या ठोकर खाने पर ही आदमी भविष्य में अधिक सावधान बनता है. ३८ एक विरती महा वैर—देखो 'एक बिरती महा बैर'. ३९ एक सूंठ रै गांठिया सूं पंसारी को हुईजै नी—एक सूंठ के टुकड़े से पंसारी नहीं बना जा सकता; थोड़े से गुण से बड़ा नहीं हुआ जा सकता. ४० एक से दौ भला—एक से दो अच्छे; एक आदमी की अपेक्षा दो आदमी काम को अच्छी तरह कर सकते हैं; यात्रा में साथ होना अच्छा है. ४१ एक सूं नहीं, दोनूं आंख्यां सूं देखणौ—एक से नहीं दोनों आंखों से देखना चाहिए; समान बर्ताव रखना चाहिए. ४२ एक हाथ में गधौ नै एक हाथ में घोड़ौ—अधिक प्यार करने के साथ कभी-कभी झिड़क देना; निंदा करते करते कभी कुछ प्रशंसा भी कर देना. ४३ एक हाथ सूं ताळी कौ बाजै नी—एक हाथ से ताली नहीं बजती; कोई काम अकेले नहीं होता; लड़ाई-झगड़ा एक ओर से नहीं होता; एक ओर से अच्छा व्यवहार किए जाने पर ही दूसरी ओर से अच्छा व्यवहार किया जा सकता है; एक तरफा कोई बात नहीं बनती.

४४ एक घर में दौ (सात) मता, कुसळ कांय कूं होय—एक घर में अनेक मत हों तो कुशल कैसे हो? घर के सब लोग एक मत से न चलें तो घर नहीं चल सकता. ४५ एक डोरे पोयोड़ा—एक जैसी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त, समान मन वाले व्यक्तियों के लिये. ४६ एक पहिए रथ नहीं चालै—एक पहिए से रथ नहीं चल सकता; कोई काम अकेले नहीं होता।

(रू भे.—इक, हिक, हेक, हेकौ)

यौ०—एकटक, एकडंकी, एकतरफौ, एकतारौ, एकताळौ, एकथंभियौ, एकदंत, एकदम, एकनयण, एकपग, एकपत, एकपत्नीव्रत, एकबारगी, एकमत, एकमनौ, एकमेक, एकरंगौ, एकदम, एकरस, एकरूप।

२ अद्वितीय, अनुपम. ३ कोई, अनिश्चित. ४ एक ही प्रकार का, समान, तुल्य. ५ अकेला। उ०—एक उजाथर कळहि एहवा, साथी सहु आखाड़सिध।—बेलि.

एकइ–(प्रा०रू०)—एक ने। उ०—वीसूं सुणि ढोलउ कहइ, एकइ कहिसउ एम। मारवणी बूढी हुई, कहि सांची तूं केम।—ढो.मा.

२ एक ही। उ०—अस्त्री-चरित-गति को लहइ? एकइ आखर रस सबइ विणास।—वी.दे.

एकक–वि०—१ अकेला (डिं.को.) २ असहाय. ३ निराला।

एककारण–सं०पु०—शिव, महादेव (क.कु.बो.)

एककुंडळ–सं०पु०—शेषनाग (ह.नां.)

एकग–क्रि०वि०—एक साथ।

एकग्र–वि० [सं० एक+अग्+र] इकट्ठा। उ०—एकग्र होई नै हालिया।—चौबोली

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।

एकड़–सं०पु० [अ०] १ $1\frac{3}{5}$ बीघे या ४८४० वर्ग गज के बराबर का एक भूमि का नाप. २ देखो 'इकड़'।

एकचक्र–सं०पु०—१ सूर्य. २ सूर्य का रथ।

वि०—चक्रवर्ती।

एकचक्रा–सं०स्त्री०—एक प्राचीन नगरी जहां बकासुर का राज्य था।

एकचख–वि० [सं० एकचक्षु] एक आंख वाला, काना।

सं०पु०—दैत्य-गुरु शुक्राचार्य (मि. चखएक)

एकचित–वि० [सं० एकचित्त] एकाग्रचित्त, स्थितचित्त।

एकछत्र–सं०पु० [सं०] वह राज्य जिसमें किसी दूसरे का अधिकार या राज्य न हो।

क्रि०वि०—एकाधिपत्य के साथ।

एकज–सं०पु० [सं०] १ जो ब्राह्मण न हो. २ शूद्र. ३ राजा।

वि०—एकमात्र। उ०—तूं एकज प्रभ थया तुम्ह ब्रह्म, प्रपोटा अंबु तणा पर-प्रम्म।—ह.र.

एकटंगौ–वि०—जिसके केवल एक टांग ही हो, लँगड़ा।

एकटक–क्रि०वि०—लगातार देखते हुए, अनिमेष।

एकटकी–सं०स्त्री०—टकटकी, स्तब्ध दृष्टि।

एकट, एकठ–वि०—इकट्ठा, एकत्र। उ०—अमर किया भड़ एकठा, लियो उदैपुर लार।—रा.रू.

एकठड़ौ–वि०—एक साथ।

एकठा–वि०—१ एकत्रित। उ०—आदमी ठावा ठावा एकठा कर बड़ी जांन बणाय गयौ।—सूरे खींवे री बात

२ एक साथ। उ०—गोखां बैठा एकठा, माळवणी नै ढोल।—ढो.मा.

एकठो, एकठौ–वि० (स्त्री० एकठी) एकत्रित, इकट्ठा, शामिल।

उ०—गाम्राळ दोड़ै करै एकठी गोपियां, चीर खांचै धणौ हांस चाडै।—बां.दा.

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।

क्रि०वि०—एक साथ।

एकडंकी–सं०पु०—देखो 'इकडंकी' (रू.भे.) उ०—सीख्यौ बंकी पाठसाळा आला एकडंकी सीख्यौ।—ऊ.का.

एकड़ा–क्रि०वि०—एक स्थान पर । उ०—सचा सांई एकड़ा, जिण कीध पसारा ।—केसोदास गाडण

एक॰ाळ–सं०पु०—वह कटार जिसका बेंटा और फल एक ही लोहे का बना हो, एक लोहे का बना पूरा कटार ।

एकडो, एकड़ो–वि०—१ अकेला, एकाकी. २ एकत्रित, एक साथ । उ०—आंक सरब गुरु **एकडो**, जांणीजै विधि जोइ ।—ल.पि.

एकडाळ–वि०—एक मेल का, एक ही तरह का, समान, सदृश ।

एकढ़ाळियौ–सं०पु०—१ एक मंजिल का मकान (क्षेत्रीय) २—वह मकान जिसके एक तरफ ढाल हो ।

एकण–वि०—१ एक, एक ही । उ०—**एकण** रात विचै अनमंधां, कीधी तेड़ै खेड़ कमंधां ।—रा.रू. २ एक समान, तुल्य. ३ अद्वितीय ।

एकणमल्ल–वि०—बहुतों से अकेला ही युद्ध करने वाला । उ०—गयदंतौ पाडाखुरौ, **एकणमल्ल** अबीह । जिण बन कवळौ संचरै, तिण बन फेरै सीह ।—डाढ़ाळा सूर री बात

एकणसाथ–क्रि०वि०—१ यकायक, अकस्मात्. २ एकदम, एकसाथ । उ०—झूठा विप्र सास्त्र सब झूठा, झूठा जगत झुठाई । कोप विवसथा करमकांड री, **एकणसाथ** उडाई ।—ऊ.का.

एकणि–वि०—एक । उ०—ढोला वाहि म कंबड़ी, दसिए **एकणि** पूरि । जे साजण वीहंगडे, वीहंगडउ न दूरि ।—ढो.मा.

एकणिए–वि०—एक (ल.पिं.)

एकणी–वि०—एक (रू.भे. एकणि) उ०—पीवंती अंब **एकणी** पांणि, खइंगरू तास ऊंचास खांणि ।—रा.ज.सी.

एकतरफो–वि० [फा० इकतरफा] १ पक्ष का. २ पक्षपातग्रस्त. ३ एकरुखा ।

एकता–सं०स्त्री० [सं० ऐक्यता] १ ऐक्य, मेल । उ०—हेत एक जुग रूप हित, संधि विरूप स्वरूप । कारज में गुण **एकता**, भाव संध कव भूप ।—क.कु.बो. २ समानता ।
वि०—अद्वितीय, अनुपम ।

एकतारौ–सं०पु०—एक तार का सितार ।

एकताल–सं०पु० [सं० एकताल] समताल, एकस्वर ।

एकताळौ–सं०पु० [सं० एकताल] केवल तीन आघात वाला बारह मात्राओं वाला एक ताल ।

एकताळीस–वि० [सं० एकचत्वारिंशत, पा० एकचत्तालीसा] चालीस और एक के योग के बराबर ।
सं०पु०—चालीस और एक के योग की संख्या ।

एकताळीसमौ–वि०—जो क्रम में चालीस के बाद पड़ता हो ।

एकताळी'सेक–वि०—चालीस और एक के योग के लगभग ।

एकताळीसौ–सं०पु०—४१ वां वर्ष ।

एकत्र–क्रि०वि० [सं०] इकट्ठा, एक जगह । उ०—करुणा सत्र अदभूत हास सिंगार **एकत्र** वरण ।—क.कु.बो.
क्रि०प्र०—करणौ, होणौ ।

एकत्रित–वि० [सं०] जो इकट्ठा किया गया हो, संग्रहीत ।

एकथंभियौ–सं०पु०—वह महल जो एक स्तंभ के आकार का हो ।
वि०—एक थंबे के समान ऊँचा (रू.भे. इकथंभियौ)

एकदंडा–सं०पु० [सं० एकदंड] कुश्ती का एक पेंच ।

एकदंत, एकदंतौ–सं०पु० [सं०] गणेश, गजानन । उ०—**एकदंतौ** ! करूं वीनती । रास प्रगासुं बीसळ-दे-राई ।—बी.दे.

एकदम–अव्यय—१ यकायक, एकाएक. २ बिना रुके, लगातार. ३ फौरन, उसी समय । उ०—दिल्ली हूंत दुरूह, अकबर चढ़ियौ **एकदम** । रांण रसिक रणरूह, पलटै केम प्रतापसी ।—दुरसौ आढ़ौ ४ एक बारगी, एक साथ. ५ बिल्कुल, नितान्त ।

एकदसन–सं०पु०—१ एक की संख्या* २ हाथी विशेष. ३ गजानन, गणेश ।

एकदांई–क्रि०वि०—एक बार, एक समय ।
वि०—समवयस्क, बराबर आयु का ।

एकदा–क्रि०वि० [सं०] एक बार । उ०—**एकदा** प्रस्ताव राव जोधाजी दरबार कियां विराजै है ।—द.दा.

एकनयन–वि० [सं०] काना, एकाक्ष ।
सं०पु०—१ कौआ. २ कुबेर. ३ शुक्राचार्य ।

एकपग, एकपिंग–सं०पु० [सं० एकपिंग] कुबेर (अ.मा., ह.नां.)

एकपटा–वि०—एक पाट का, जिसकी चौड़ाई में जोड़ न हो ।

एकपत–सं०स्त्री० [सं० एक+पति] एक ही पति को चाहने व प्रेम करने वाली, पतिव्रता, सती ।

एकपत्नीव्रत–सं०पु० [सं० एक+पत्नी+व्रत] केवल एक ही स्त्री(पत्नी) से सम्बन्ध रखने का भाव ।

एकपादव्रक्षासण–सं०पु० [सं० एकपादवृक्षासन] योग के चौरासी आसनों के अन्तर्गत एक आसन जिसमें वृक्षासन की तरह उलटा होकर एक पांव लम्बा रक्खा जाता है तथा दूसरे पांव को लंबायमान कर पांव की जंघा के मूल में स्थापन करके स्थिर किया जाता है ।

एकबारगी–क्रि०वि० [फा० यकबारगी] १ एक ही बार में, बिल्कुल. २ अकस्मात् ।

एकबाळ सं०पु० [अ०] १ प्रताप, ऐश्वर्य. २ सौभाग्य. ३ इकबाल, स्वीकार ।
क्रि०प्र०—करणौ ।

एकमंडळ–सं०पु०—वह घोड़ा जिसके नेत्र की पुतली सफेद हो (अशुभ) (शा.हो.)

एकम–सं०स्त्री०—चन्द्रमास के प्रत्येक पक्ष की प्रथमा तिथि प्रतिपदा ।

एकमत–वि० [सं०] एक राय, समान परामर्श ।

एकमते, एकमतै–क्रि०वि०—एक सम्मति द्वारा, एकमत से ।

एकमनो–वि०—एकमत, संघटित, मन से एक ही भाव वाला । उ०—वात वात छेहि करइ सलाम, केता मलिक न आणउं नाम । **एकमनो** मारइ रजपूत, हींदू नउ छोडाव्यउ भूत ।—कां.दे.प्र.

एकमात्रिक–वि० [सं०] एक मात्रा का।

एकमुखी–वि० [सं०] एक मुंह वाला। (यौ० एकमुखी, रुद्राक्ष)
उ०—सुजांण ऊठ डेरै जाय, हरड़े एक सवा सेर री, समरणी **एकमुखी** रुद्राक्ष री आंण भेंट कीवी।—पलकदरियाव री बात

एकमेक–वि०—१ बराबर, समान, तुल्य. २ मिला हुआ, परस्पर मिला हुआ।
क्रि०वि०—परस्पर मिला हुआ, दो या दो से अधिक व्यक्तियों या वस्तुओं आदि का मिल कर एक होना। उ०—तरै जलाल बांह घाल, आलिंगन कर चुम्बन कियौ। मांहीमांही **एकमेक** हुइया।
—जलाल बूबना री बात

एकरंग, एकरंगौ–वि०—१ समान, तुल्य। उ०—तीं पर जोधपुर में राजसिंह खींपावत कूंपावत परधांन थौ सौ सारा अमरावां नूं **एकरंग** राखिया।—अमरसिंह री बात २ कपटरहित. ३ सब ओर से एक सा. ४ एकीभूत, आनन्दित।

एकरंगीभ्रांतिजथा–सं०स्त्री०—डिंगळ का एक अर्थालंकार विशेष जिसमें भ्रांतिमान अलंकार का समावेश हो (क.कु.बो.)

एकरंगौ–वि०—सदा एक ही प्रकृति में रहने वाला।

एक'र–क्रि०वि०—एक दफा, एक समय (मि० एकररा)
उ०—आंसूड़ा ढळकावं कायर मोर ज्यूं, रै म्हारा रतन राणा, **एक'र** तौ अमरांणै घोड़ौ फेर।—लो. गी.

एकरखी, एकरखौ–वि०—१ निरन्तर एक ही प्रकृति या स्वभाव से रहने वाला. २ सदा एक ही रूप या अवस्था में रहने वाला।
उ०—आ काया कर अंब **एकरखी** किम जावै, दोय लागू जम जरा रा वैरी जुग खावै।—ज.खि.

एकरदन–सं०पु० [सं०] गणेश (अ.मा.)

एकररा, एकररचौ—एक दफा, एक बार, एक समय। उ०—**एकररचौ** मिळि आय, साजन भीड़ै सांहयां। थिर मौ मनड़ौ थाय, जाइ जसा दुख जूजुवा।—जसराज

एकरवा–सं०पु०—एक तरफ से गढ़ा हुआ पत्थर।

एकरस, एकरसउ–वि०—एक ढंग का, समान, बरावर।

एकरसी–क्रि०वि०—१ लगातार. २ एक बार, एक दफा।
उ०—दूजे चार ठावा मांणस मेल्ह कहायौ—भाई, **ऐकरसी** मिळौ।
—पदमसिंह री बात

एकरसूं–क्रि०वि०—एक बार। उ०—धूतारा जोगी **एकरसूं** हंसि बोल।—मीरां

एकरां–क्रि०वि०—एक बार, एक दफे। उ०—अमर उकेकल करौ **एकरां**, बोहौनांमी जंपै बळराव।—महारांणा सांगा रौ गीत

एकरार–सं०पु० [अ०] १ स्वीकार. २ स्वीकृति. ३ प्रतिज्ञा, वायदा, कौल।

एकरियै, एकरू–क्रि०वि०—एक बार, एक दफा। उ०—बिलखा नै लागै महल-माळिया, हो म्हारा रतन रांणा, **एकरियै** अमरांणै पाछौ आव।—लो.गी.

एकरूप–वि०—१ समान आकृति का. २ ज्यों का त्यों, वैसा ही।
सं०स्त्री०—समानता, एकता।

एकलंगा–सं०पु०—कुश्ती का एक पेंच।

एकलंगाडंड–सं०पु०—एक प्रकार की कसरत या डंड।

एकल–सं०पु०—बड़ा सूअर, वराह (अ.मा.) उ०—सीह किसी साराह, सरभ रव सुणे सळक्कै, एकल की ओपमा, लड़ै भागै थह लुक्कै।—रा.रू.
वि०—१ अकेला ही, अनेकों से मुकाबला करने वाला वीर।
उ०—भड़ण हुआ लाखां दळ भेळा। गढ साखी वागी गजर। आखी अणी भूप **एकल** री। धणी नाथ राखी धजर।—महादांन महडू
२ अकेला। उ०—हरराज डोड बूंदी रा मीणां रौ **एकल** असवार घणी धरती रौ बीगाड़ करै।—नैणसी ३ अद्वितीय।

एकलउ–वि०—अकेला। उ०—जउ प्रछन्न आवइ **एकलउ**, पहिली आणउ कीधउ भलउ।—ढो.मा.

एकलखोरौ–वि०—१ सदा अकेला रहने वाला. २ स्वार्थी. ३ ईर्ष्यालु।

एकलगिड़–सं०पु०—वन में सदा अकेला ही बिचरण करने वाला सूअर।
उ०—जांगड़िए वडा राग माहै दूहा दिया, परिजाऊ दूहा। वेगड़ा सांड धवळ रा दूहा। **एकलगिड़** वाराह रा दूहा।—वचनिका

एकलड़ौ–वि० (स्त्री० एकलड़ी) अकेला। उ०—महि मोरां मंडव करइ, मनमथ अंगि न माइ। हूं **एकलड़ी** किम रहउं, मेह पधारउ माइ।—ढो.मा.

एकलत्तीछपाई–सं०स्त्री०—कुश्ती का एक पेंच।

एकलबैणौ–सं०पु०—डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसके विषम पद में १६ वर्ण और सम पदों में १४ वर्ण होते हैं। सम पदों के अंत में गुरु-लघु होता है और अन्य सब वर्ण लघु होते हैं। इसके प्रथम चरण में अठारह वर्ण होते हैं (र.रू.)

एकलमल–सं०पु०—परब्रह्म, विष्णु।
वि०—१ अकेला. २ अकेला ही कई योद्धाओं से लड़ने में समर्थ।

एकलवाड़–सं०पु०—बड़ा व शक्तिशाली सूअर। उ०—रिण रोहियौ घणौ राठौड़े, चीबौ **एकलवाड़** वर।—नैणसी

एकलव्य–सं०पु० [सं०] द्रोणाचार्य की मूर्ति को गुरु मान कर शस्त्राभ्यास करने वाला एक भील।

एकलापौ–सं०पु०—अकेलापन, अकेला होने या रहने का भाव।
वि०—अकेला।

एकलिंग–सं०पु० [सं० एकलिङ्ग] शिव का एक रूप जो गहलोत व सीसोदिया राजपूतों के कुलदेव माने जाते हैं (रू.भे. इकलिंग)

एकलि–वि०—एक (ल.पि.)

एकलियौ–वि०—१ अकेला. २ एक से संबंधित।
सं०पु०—एक बैल से चलाया जाने वाला हल।

एकलीम–सं०पु० [अ० अकलीम] देश, राज्य (मि० अकलीम)

एकलौ–वि० (स्त्री० एकली) अकेला, एकाकी। उ०—रहिस निरालंब एकलौ, तज काया मझ वास।—ह.र.

कहा०—एकला दोकला रौ थाग नहीं लागै—अकेले व्यक्ति से कोई काम आसानी से नहीं होता।

एकलोतौ–वि० (स्त्री० एकलोती) अपने माता-पिता का एक मात्र पुत्र।

एकल्लमल्ल—देखो 'एकलमल' (रू.भे.) उ०—एकल्लमल्ल दुभल्ल आंकल कहि कलहि अकळ।—ल.पि.

एकल्लौ—देखो 'एकलौ'। उ०—उत्तर आज स उत्तरउ, ऊकटिया सारेह। बेलां बेलां परिहरइ, एकल्लां मारेह।—ढो.मा.

एकवचन–सं०पु० [सं०] व्याकरण में वचन का एक भेद जो केवल एक का बोध कराता है।

एकवासा–सं०पु० [सं० एकवासस्] एक प्रकार के दिगंबर जैन।

एकवेणी–वि०स्त्री० [सं०] १ एक ही वेणी में बालों को समेटने वाली। २ विरहिणी. ३ विधवा।

एकव्रती–सं०स्त्री०—समान व्यवसाय।

कहा०—एकव्रती सदा वैर—समान व्यवसाय वालों में शत्रुता होती है।

एकसंग–सं०पु० [सं० एक+संग] १ सहवास. २ विष्णु।

एकसंथ–वि०—एकमत। उ०—सुकदेव व्यास जैदेव सारिखा, सुकवि अनेक ते एकसंथ।—वेलि.

एकसठि–वि०—देखो 'इकसठ' (रू.भे.)

एकसत्तावाद–सं०पु० [सं०] सत्ता ही प्रधान वस्तु मानने का दर्शन का सिद्धांत।

एकसफ–सं०पु० [सं० एकशफ] बिना फटे हुए खुरों वाले पशु यथा—घोड़ा गदहा आदि।

एकससियौ, एकसांस–क्रि०वि०—एक सांस से, बहुत जोर से या उग्र रूप से, बेतहाशा। उ०—छांह बांधा रहता, तिके एकससिया दौड़ता हांफण लागा।—जगमाल मालावत री बात

एकसो, एकसौ–वि० [फा० यकसो] एक जैसा, एक समान।

एकांग–वि० [सं०] एक ही अंग का, एक पक्ष का।

एकांगी–वि०—१ एक पक्ष का, एक ओर का. २ हठी।

एकांण–वि०—एक।

एकांणव–सं०पु०—इक्यावनवां वर्ष।

एकांणि–वि०—एक।

एकांणौ–सं०पु० [सं० एक+आसन] किसी विशेष त्यौहार, महत्वपूर्ण या इष्टदेव के नियत दिन पर केवल एक बार भोजन करने का एक व्रत। (रू.भे. एकासणौ)

एकांत–वि०—१ बिल्कुल अलग, निर्जन, सूना २ पृथक, अलग. ३ अकेला.

सं०पु०—सूना स्थान।

एकांतरकोण–सं०पु० [सं०] एक ओर का कोना।

एकांतरौ–सं०पु०—१ एक दिन छोड़ कर दूसरे दिन आने वाला ज्वर, एकाह्निक ज्वर. २ एक दिन छोड़ कर दूसरे दिन किया जाने वाला काम. ३ एक दिन को छोड़ कर दूसरा दिन।

एकांतवास–सं०पु० [सं० एकांतवास] सूने स्थान में अकेले रहना।

एकांतवासी–वि०—सूने स्थान में अकेला रहने वाला।

एकांतस्वरूप–वि० [सं० एकांतस्वरूप] निर्लिप्त, असंग।

एकांति–वि०—देखो 'एकांत'। उ०—एकांति कै विखै जु विधि छै।

सं०पु०—देखो 'एकंति' (रू.भे.) —वेलि. टी.

एकांती–सं०पु०—वह भक्त जो भगवत्प्रेम को अपने अंतःकरण में ही रखता है और प्रकट नहीं करता।

एकांयत–वि०—देखो 'एकांत'। उ०—अळगा एकांयत नीयत निरदावै, धूणी अवधूतां दूणी धुकावै।—ऊ.का.

एका–सं०स्त्री०—दुर्गा।

वि०—एक। उ०—वग्नरवाळ बंधांणी वल्ली, तरुवर एका बियै तरि।—वेलि.

एकाई–स०स्त्री०—१ एक का भाव, एक का मान. २ वह मात्रा जिसके गुणन या विभाग से दूसरी मात्राओं का मान ठहराया जाय. ३ अंक गणना में प्रथमांक या प्रथम स्थान।

एकाऊंट–सं०पु०—अकाउंट, लेखा।

एकाएक, एकाएकी–वि०—इकलौता, एकमात्र। उ०—सौ एकाएक बेटौ फेर कुंवर सरब राजा रौ भार संभाळ लियौ।

—पलक दरियाव री बात

क्रि०वि०—अचानक, अकस्मात्, यकायक। उ०—आडौ अडि एकाएक आपड़ै, वाग्यौ एम रुखमणी वीर। अबळा लेइ धणी भूमि आयौ, आयौ हूं पग मांडि अहीर।—वेलि.

एकाकार–सं०पु०—१ एक होने की दशा, एकमय होना. २ एकत्रित हो जाने की दशा।

एकाकी–वि० [सं० एकाकिन्] अकेला, तनहा। उ०—अरूं मैं एकाकी थुरन मत थाकी इन अगें।—ऊ.का.

एकाक्ष–वि० [सं०] काना, एक आंख ही धारण करने वाला।

सं०पु०—१ कौआ. २ शुक्राचार्य।

एकाक्षरी–वि०—एक अक्षर का।

सं०पु०—एक वृत्त जिसमें एक ही अक्षर का प्रयोग होता है।

एकाख—देखो 'एकाक्ष'।

एकागर–क्रि०वि०—एकाग्र, स्थिर।

एकागार, एकागारक, एकागारी–सं०पु० [सं० ऐकागारिक] १ चोर (अ.मा., ह.नां.) २ दुष्ट, नीच, पतित।

एकाग्र–वि० [सं०] १ एक ओर स्थिर, अचंचल. २ एक ही ओर ध्यान लगा हुआ. ३ योग के अनुसार चित्त की वृत्ति (रू.भे. एकग्र)

एकाग्रचित्त–वि०यौ०—जिसका मन एक ही ओर लगा हो व इधर-उधर न जाता हो स्थिर चित्त। उ०—मन सुध एकाग्रचित्त करि रुकमणीजी कौ।—वेलि. टी.

एकाग्रता–सं०स्त्री० [सं०] चित्त की स्थिरता, मनोयोग, अचांचल्य, ध्यानस्थैर्य।

एकातपत्र–वि० [सं०] सार्वभौम, एकछत्र, चक्रवर्ती।

एकात्मा–सं०स्त्री० [सं० ऐक्यता] एकता, अभेद, अभिन्नता, एकरूपता।

एकादस–वि० [सं० एकादश] ग्यारह।

सं०स्त्री०—चंद्रमास के प्रत्येक पक्ष की ग्यारहवीं तिथि।

सं०पु०—ग्यारह का अंक।

एकादसरुद्र—हनुमान (नां.मा.)

एकादसी–सं०स्त्री० [सं० एकादशी] १ चंद्रमास के प्रत्येक पक्ष की ग्यारहवीं तिथि जो पवित्र दिवस माना जाता है। प्राय: इस दिन उपवास रखा जाता है।

एकाधपत–सं०पु० [सं० एकाधिपत्य, एकाधिपति] १ पूर्ण प्रभुत्व. २ चक्रवर्ती, सम्राट। उ०— ताप थारै 'पदम' कमंध एकाधपत चोळ चख देख पतसाह चळियौ, साह दरगाह मैं वैर नव साहंसा ब्याज लीधां थकां वैर वळियौ।—राजा पदमसिंह बीकानेर रौ गीत

एकाबादर, एकाबाहदर–वि०—अकेला, एकाकी, जिसका कोई निकट सम्बन्धी न हो।

एकार–सं०पु० [सं० एकाकार] देखो 'एकाकार'।

वि०—१ एक समान, एक आकार का. २ एकाचार, भेदभाव-रहित।

क्रि०वि० [सं० एक-वार] एक समय, एक दफा। उ०—जासी हाट वात रह जासी जग, अकबर ठग जासी एकार। रे राखियौ खत्री ध्रम रांणै, सारौ लै वरतौ संसार।—प्रथ्वीराज राठौड़

एकारां, एकारूं–क्रि०वि०— एक समय, एक बार।

एकावन–वि०— देखो 'इक्यावन'।

एकावळहार–सं०पु०— अद्वितीय मूल्यवान हार जिसकी समता कोई दूसरा हार न कर सके।

एकावळि–सं०स्त्री०—१ एक अर्थालंकार विशेष जिसमें पूर्व २ वर्णित विशेष्य अर्थों में उत्तरोत्तर वर्णित अर्थों का विशेषण भाव से गृहीत-मुक्त-रीति पूर्वक स्थापन या निषेध किया जाय (साहित्य) २ एक लड़ी की माला या हार. ३ एक से सौ तक गिनती।

एकासणौ– देखो 'एकांगौ' (रू.भे.)

एकाश्रित–वि०— एक ही पर आश्रित, एक ही पर आधारित।

एकाकी–वि०—अकेला (डिं.को.)

एकाह्निक–वि०—एक दिन में समाप्त होने वाला, एक दिन का।

एकी–सं०स्त्री०—१ गुरु के पास से पेशाब करने के लिए कनिष्ठिका अंगुली उठा कर संकेत से आज्ञा मांगने की क्रिया या भाव।

२ इकाई। (यौ० एकीबेकी)

वि०—एक।

एकीकरण–सं०पु० [सं०] मिला कर एक करना।

एकीबेकी–सं०स्त्री०—इमली के चिश्रों या बीजों अथवा कौड़ियों से खेला जाने वाला एक प्रकार का खेल या जुआ, चुंचुरी।

वि०वि०—एक लड़का मुट्ठी में कुछ इमली के बीज (चिश्रां) छिपा लेता है और दूसरे से पूछता है—'एकी या बेकी' जिसका अर्थ होता है कि मुट्ठी के भीतर वाले चिश्रों की संख्या सम है या विषम? दूसरा लड़का ठीक-ठीक बतला देता है तो जीत जाता है और अगर सही नहीं बतला सकता तो हार कर उतने ही इमली के बीज जीतने वाले को देने पड़ते हैं जितने पहले वाले लड़के की मुट्ठी में होते हैं।

एकीस–वि० [सं० एकविंशति, प्रा० एक्कवीसा, अप० एकवीस] बीस और एक के योग के समान।

सं०स्त्री०—बीस और एक के योग की संख्या, इक्कीस।

एकीसमौ–वि०—इक्कीसवां, जो क्रम में बीस के बाद पड़ता हो।

एकीसार–वि०—एकसा, एक समान।

एकीसे'क–वि०—जो इक्कीस के लगभग हो।

एकीसौ–इक्कीसवां वर्ष।

एकूकी–वि०—प्रत्येक, हरएक। उ०— एकूकी अभसाह री, गोठां उठै गरत्थ। प्रगट इतै धन और पहु, सौ जिग करै समत्थ।—रा.रू.

एकेंद्रिय–सं०पु०—१ उचित और अनुचित दोनों प्रकार के विषयों से इंद्रियों को हटा कर मनमें लीन करना (सांख्य शास्त्र) २ वह जीव जिसके केवल एक ही इंद्रिय हो (जैन)

एके, एकै–वि०—एक। उ०—डार एकै पासै छै।—रा.सा.सं.

एकोकार—देखो 'एकाकार'।

एकोछत्र— देखो 'एकछत्र'।

एकोज–वि०—एक ही।

एकोतड़ौ–वि०—ऐक सौ एक।

सं०पु०—१ एक सौ एक की संख्या. २ देखो 'एकोतरौ' (२)

एकोतर–वि० [सं० एकसप्तति, प्रा० एक्कसत्तरि, अप० इकोतरं] सत्तर और एक के योग के समान।

सं०पु०—सत्तर और एक के योग की संख्या।

एकोतरमौ–वि०—जो क्रम में सत्तर के बाद पड़ता हो।

एकोतरसौ–वि०— एक सौ एक।

सं०पु०—१ एक सौ एक की संख्या. २ सात हजार एक सौ एक की संख्या।

एकोतरि—देखो 'एकोतर'।

एकोतरे'क–वि०—इकहत्तर के लगभग।

एकोतरौ–सं०पु०—१ इकहत्तरवां वर्ष. २ एक रुपया प्रति सैकड़ा प्रति मास ब्याज की दर।

एकोळाई–सं०स्त्री०—बढ़ई का एक औजार

एकौ–सं०पु०—१ देखो 'इकौ' २ एक्यता, संगठन।

वि०—१ देखो 'इक्कौ'. २ एक।

उ०—एकौ ही नांम अनंतरौ पैलै पाप प्रचंड।—ह.र.

एकोतरी—देखो 'एकोतरो'।

एक्काबांन-सं॰पु॰—एक्का हांकने वाला।

एक्काबांनी-सं॰स्त्री॰—एक्का हांकने का कार्य या इस कार्य की मजदूरी।

एक्को—१ देखो 'इक्को' २ देखो 'एको'।

एगरउ-सं॰स्त्री॰ [सं॰ एक] एक समय, एक बार। उ॰—एगरउ कळे-क्करउ, ढोली मेल्हे वग्ग। दीवा वेळा संचरूं, तउ वाळे चारे पग्ग। —ढो.मा.

एग्गारह—देखो 'अगियार' (रू.भे.) उ॰—हुवा प्रकट मांणिक्क हूं, एग्गारह ए भेद।—वं.भा.

एड़णी, एड़बौ-क्रि॰स॰—एकत्रित करना, झुंड बनाना। उ॰—भुरजां भुरजां बापूकारिया अेड़िया भड़ां। हलै हलौ जनेवां भेड़िया ठांम ठांम, नवां कोटां नाथ रा छेड़िया काळा नाग नांई, तें सीस नगारांबंध तेड़िया तमाम।—गोपालजी दधवाड़ियौ

एड़ै-छेड़ै-क्रि॰वि॰—इधर-उधर, आस-पास, ओर-छोर।

एड़ो-बेड़ो-क्रि॰वि॰—ऊपर-नीचे।

सं॰पु॰—एक गगरी पर दूसरी गगरी रखने की क्रिया या ढंग, इसी प्रकार एक वस्तु पर दूसरी वस्तु रखने या जमाने का कार्य।

एछी-सं॰स्त्री॰—आवड़ देवी की एक बहन का नाम।

एजुकेसन-सं॰पु॰ [अं॰] शिक्षा।

एजुकेसनळ-वि॰ [अं॰] शिक्षा का, शिक्षा संबंधी।

एजेंट-सं॰पु॰ [अं॰] ब्रिटिशकाल में किसी देशी रियासत में रहने वाला अंग्रेजी सरकार का प्रतिनिधि, प्रतिनिधि, दूत।

एडंक-सं॰पु॰ [सं॰ एडक] मेंढ़ा, भेड़ा।

एड-सं॰पु॰ [सं॰] नर भेड़। उ॰—मुख मंडि भिदुरनि रत्त किये। अज एड महिख्खन भक्ख दिये।—ला.रा.

सं॰स्त्री॰—एड़ी उ॰—तिरोहित रै राजा सिवसिंघ ऐराकी घोड़ा रै एड लगायी।—बां.दा.ख्या. (मि॰ एडी)

एडक-सं॰पु॰ [सं॰] मेंढ़ा, भेड़ा (डिं.को.)

एडगज-सं॰पु॰ [सं॰] पुवाड़, चकवड़ (डिं.को.)

एडवाइजर-सं॰पु॰ [अं॰] सलाहकार, परामर्शदाता।

एडवोकेट-सं॰पु॰ [अं॰] उच्च न्यायालय में बहस कर सकने वाला वकील।

एडवोकेट जनरल—उच्च न्यायालय में सरकार का पक्ष लेकर बोलने वाला वकील।

एडिटर-सं॰पु॰ [अं॰] सम्पादक।

एडिटरी-सं॰स्त्री॰—संपादक का कार्य, संपादन।

एडी-सं॰स्त्री॰—टखने के नीचे पैर के पीछे का गद्दीदार भाग, एड़।

क्रि॰प्र॰—घिसणी, देणी, मारणी, रगड़णी, लगाणी।

मुहा॰—१ एडी देणी—घोड़े को ठोकर देकर चलाना, ठोकर मारना, व्याघात पहुँचाना, बाधा देना. २ एडी घिसणी—कष्ट सहना, बहुत दौड़ना, बहुत प्रयत्न करना. ३ एडी चोटी री पसीनौ एक करणौ—बहुत परिश्रम या प्रयास करना. ४ एडी रगड़णी—देखो 'एडी घिसणी'।

कहा॰—डूंगां रै एडियां लगाय नै जावणौ—बिना रुके शीघ्र चले जाना।

एडौ-सं॰पु॰—१ हर्ष या शोक के समय किया जाने वाला भोज. २ ईर्ष्या, डाह, वैर।

एढौ-सं॰पु॰—१ एक बड़ा अवसर, विशेष अवसर, मौका। देखो 'एड़ौ' (१)

एण-सं॰पु॰ [सं॰] १ एक खास जाति का हरिण जिसके पैर छोटे, आंखें बड़ी होती हैं. २ हरिण। उ॰—राजति अति एण पदाति कुंज-रथ, हंसमाळ बंधि लास हय।—वेलि. ३ मृगचर्म।

सर्व॰—यह, इस। उ॰—एण समई यह आवियउ, बीसू तिणहीं वार। —ढो.मा.

सं॰पु॰ [सं॰ अयन] घर, मकान (रू.भे. 'ऐण')

एणपताका-सं॰पु॰ [सं॰] चंद्रमा (डिं.को.)

एणसार-सं॰पु॰ [सं॰] कस्तूरी, मृगमद। उ॰—सुगंध गंधसार एणसार मेघसार ए, सवास अंबरे लुबान डंबरे निसार ए।—रा.रू.

एणि-सर्व॰—१ इस। उ॰—विधि एणि वधावे वसंत वधाए, भालिम दिन दिन चढ़ि भरण।—वेलि. २ इसने। उ॰—एणि कवण सुभ क्रम आचरतां, जांणियै वेलि जपंति जगि।—वेलि.

सं॰पु॰ [सं॰ एण] हरिण (रू.भे एण)

एतत-सर्व॰ [सं॰] यह।

एतबार-सं॰पु॰ [अ॰] भरोसा, विश्वास।

क्रि॰प्र॰—उठणौ, करणौ, जमणौ, होणौ।

मुहा॰—१ एतबार उठणौ—विश्वास का हट जाना. २ एतबार जमणौ—विश्वास उत्पन्न होना।

एतराज-सं॰पु॰ [अ॰] विरोध, आपत्ति।

एतराजी-सं॰पु॰ [अ॰ एतराज] १ विरोध, आपत्ति. २ विरोध, बिगाड।

एतले, एतलै-वि॰—इतने।

क्रि॰वि॰—तब तक, अब तक।

एतलौ-वि॰ [सं॰ इयत] (स्त्री॰ एतली, बहु॰ एतला) १ इतना। उ॰—सूर प्रगटि एतला समपिया, मिळियां विरह विरहियां मेळ। —वेलि.

२ ऐसा।

एति, एती-सर्व॰—इस। उ॰—दीधा हीरा पाथरी, काल्ही आवही राजा एती वार।—वी.दे.

वि॰—इतनी। उ॰—सु परिण आपणी उजळता करि आकास सों मिळि गयौ है। एती विगति नहीं लाभै छै।—वेलि. टी.

एतेह-वि॰—इतना। उ॰—सुणे रूप वीचार एतेह सूनी, ढोटौ रूप मोरारि निब्वांण धूनी।—ना.द.

एतो, एतौ-वि॰ [सं॰ इयत्] (स्त्री॰ एती) (बहु॰ एता, ऐते) इतना।

उ०—मारू घूंघटि दिठ्ठ मइं, एता सहित पुरिंद। कीर, भमर, कोकिल, कमळ, चंद, मयंद, गयंद।—ढो.मा.

एथ, एथि, एथियै, एथी, एथीयै–क्रि०वि०—यहां, इस ओर, इधर।

उ०—१ ते माटे उतावळा, राज पधारौ एथ।—ढो.मा.

कहा०—एथ बैठा ओथ मारै—यहां बैठे वहां मारते हैं। अत्यंत धूर्त के लिए, अत्यंत भोले के लिए (परिहास में)

उ०—२ काछी करह बिधूं भिया, घड़ियउ जोइए जाइ। हरणाखी जउ हसि कहइ, आणिसि एथि विसाइ।—ढो.मा.

उ०—३ मैंगळ एथी आव मत, वाधां केरी वाट। साप अगूठा मेळ ज्यूं, कदियक हुसी कुघाट।—बां.दा.

एधस–सं०पु० [सं०] यज्ञ का ईंधन (डि.को.)

एधूळौ–सं०पु०—देखो 'ऐधूळौ' (रू.भे.)

एन–सं०पु० [सं० अयन] रास्ता (ह.नां.) [सं० एनस्] पाप (अ.मा.)

क्रि०वि० [अ०] ठीक, उपयुक्त।

एनांण–सं०पु०—लक्षण, चिन्ह।

एम–क्रि०वि० (प्रा०रू०) ऐसे, इस प्रकार। उ०—अम्हां मन अचरिज भयउ, सखियां आखइ एम। तइं अणदिट्ठा सज्जणां, किउं करि लग्गा पेम।—ढो.मा.

एमन–सं०पु० [सं० यवन] कल्याण और केदारा राग के मिलाने से बनने वाला संपूर्ण जाति का एक राग।

एम्रत–सं०पु० [सं० अमृत] देखो 'अमरत' (ह.नां.)

एरंडी–सं०पु० [सं० एरंड] १ रेंड-रेंडी का पौधा. २ एक प्रकार का ओढ़ने का रेशमी वस्त्र विशेष।

एरंडोळी–सं०पु० [सं० एरंड+फली] एरण्ड का बीज (अमरत)

एरण–सं०पु० [सं० आहरण] लोहे का वह चौकोर खंड जिस पर लुहार या सुनार गर्म धातु को रख कर पीटते हैं।

देखो 'अहरण' (रू.भे. ऐरण)

मुहा०—करड़े लो'साथे एरण कूटांणी—बुरी संगत का बुरा फल मिलता है। दुष्ट व्यक्ति को साथ या सहारा देने पर सज्जन को भी कष्ट उठाना ही पड़ता है।

एरस, एरस, एरसौ–क्रि०वि०—ऐसे, इस प्रकार। उ० चाहै धनेस निरखै चरस, इंद्र सराहै एरसा।—रा.रू.

वि०—ऐसा। उ०—अनंत वार भूखणे वणं वणाव एरसौ।—रा.रू.

एराक–सं०पु० [अ०] देखो 'एराक' (रू.भे.)

एराकी, एराकी—देखो 'ऐराकी' (रू.भे.) उ०—१ ऊंमर दीठा जावता, हळ हळ करइ कलूर। एराकी ओलंभिया, जइसइ केती दूर।—ढो.मा.

उ०—२ ऐसा एराका ऊपरै चढ़ै नाथ चीतोड़।—महादांन महड़ू

एरापत–सं०पु० [सं०ऐरावत] देखो 'एरापति' (नां.मा.)

एरावति–सं०स्त्री० [सं० ऐरावती] देखो 'ऐरावती' (रू.भे.)

एरिसौ, एरिसौ–वि०—१ इतना. २ ऐसा। उ०—ईसै पित मात एरिसा अवयव, विमळ विचार करै वीवाह।—वेलि.

एरी–वि०—ऐसी।

अव्यय—संबोधनसूचक शब्द।

एरेसौ–वि०—ऐसा।

एरोप्लेन–सं०पु० [अं०] वायुयान, हवाई जहाज।

एरौ–सं०पु०—बाजरी के सिट्टे से मिलते जुलते सिट्टे वाली एक घास जिसके सिट्टे को फोड़े-फुन्सियों पर लगाते हैं। इस घास से रहँट की माल बनती है।

एळ–सं०स्त्री० [सं० एला] इलायची।

[सं० इला] पृथ्वी, भूमि (रू.भे.)

एलची–सं०पु० [तु०] जो एक राज्य से दूसरे राज्य में संदेश ले जाता है, राजदूत।

सं०स्त्री०—इलायची। उ०—सौ घणी काळपी मिसरी रा भेळ सूं घणी एळची नै मिरचां रै भेळ बाह लागै थकै ऊजळा कपूरवासी गंगोदक पांणी सूं ऊजळै गळणै में भोळि भोळि भारीजै छै।

—रा.सा.सं.

एलम–सं०पु० [अ० इल्म] १ ज्ञान, विद्या, बुद्धि. २ हुनर।

उ० -कर चाप अठार टंकी करखै, परखासर एलम की परखै।

—मे.म.

एलमगीर–वि०—दक्ष, प्रवीण। उ०—टूंक मध्य आयौ तदन, मदन मदन परिसोर। एलमगीर अधीर उर, सब तुरकन पर तोर।

—ला.रा.

एलवळ, एलविळौ–सं०पु० [सं० ऐलविल] कुबेर (अ.मा.,ह.नां.)

एलांण–सं०पु०—१ निशान, चिन्ह, लक्षण। उ०—बड़ा पुरख रौ बांण, अदना रौ आदर करै। ओछां रा एलांण, चुभता बोलै चकरिया।

—मोहनलाल साह

एळा–सं०स्त्री० [सं० इला] पृथ्वी, भूमि। उ०—आलम कलम नवै-खंड एळा, केलपुरा री मींढ किसौ।—बारू सोदौ बारहठ

[सं० एला] इलायची।

एलाज–सं०पु० [अ० इलाज] इलाज, उपाय, युक्ति, तदबीर।

एलाबेला, एलाबेलौ–सं०पु०—सामने व सम्मुख न आकर इधर-उधर या पार्श्व से निकल जाना।

एळायची–सं०स्त्री०—देखो 'इलायची' (रू.भे.)

एळियौ, एळुवौ–सं०पु० [अ० एलुवा] घी कुमार का दूध या रस जो कुछ विशिष्ट क्रियाओं से सुखाया या जमाया जाता है—इसका उपयोग प्रायः रेचन के लिए किया जाता है।

मुहा० खारौ जांणै एळियौ— अत्यंत कड़ुवा के लिए।

एव, एव–क्रि०वि० [सं०] ऐसा ही, इसी प्रकार।

एवड़–सं०पु० [सं० अजपटल, प्रा० अयवडल, अ० अयवड़] १ भेड़ों या बकरियों का समूह। उ०—आडावळै आधोफरइ, एवड़ मांहि असत्र। तिण अजांण ढोलइ तणइ, मूरख भागइ मत्र।—ढो.मा.

कहा०—एवड़ में कुण जाई रै के बापू बे तो नारां सूं ही भूंडा—अधिक हानि पहुँचाने वाले के प्रति. २ भेड़ चराने वालों से लिया जाने वाला एक प्रकार का कर।

एवड़-छेवड़—क्रि०वि०—आसपास, इधर-उधर, किनारे पर, तट पर।
उ०—१ **अेवड़-छेवड़** सात सिलांम, वारी धण वारी औ हूंजा। वीच लिखी है, गोरी राजाजी री नोकरी जी राज।—लो.गी
उ०—२ **अेवड़-छेवड़** म्हारा कवर भनीजा, ज्यां बिच खेलै रूड़ा भांणजा।—लो.गी.

एवज—सं०पु० [अ०] १ प्रतिफल. २ प्रतिकार, बदला. ३ दूसरे के स्थान पर कुछ समय के लिये काम करने वाला, स्थानापन्न।

एवजांनो—सं०पु० [अ० एवज+रा०प्र०नो] प्रतिफल, बदला, प्रतिकार, परिवर्त्तन।
क्रि०प्र०—देणो, मिळणो, लेणो।

एवजी—सं०स्त्री० [अ० एवज+रा०प्र०ई] १ बदले में कार्य करने की क्रिया या भाव।
सं०पु०—२ किसी जगह पर कुछ समय के लिये कार्य करने वाला व्यक्ति।

एवड, एवडी, एवडउ, एवडु—वि०—१ इतना. २ ऐसा।
उ०—१ अलूखांन **एवडु** भडवाउ, किम चहूआंणे दीधउ दाउ।
—कां.दे.प्र.
उ०—२ **एवडउ** ताप गाढउ, भावइ करवउ टाढइ।—रा.ज.सी.

एवड़ो, एवढ़ो—वि०—ऐसा।

एवाड़ो—सं०पु०—भेड़ व बकरी के समूह को रखने का स्थान।

एवाळ—सं०पु० [सं० अजपाल, प्रा० अयवाल=एवाल] १ भेड़ें चराने वाला, गडरिया। उ०—ढोलइ करह विमासियउ, देखे वीस वसाळ। ऊंचे थळइ ज एकलो, वच्चाळइ **एवाळ**।—ढो.मा. २ किनारों पर आ जाने वाला पानी पर का कूड़ा-करकट, मैल आदि।

एवाळियो, एवाळो—सं०पु० [सं० अजपाळ] देखो 'एवाळ' (१)
उ०—छाळी हुंदा कांनड़ा, **एवाळां** आधीन। बस चुगलां रै सरब विध, कांन मठां द्रम कीन।—बां.दा.
कहा०—एवाळिये वाळी गूंज—निस्सार बात के लिये।

एवास—सं०पु० [सं० आवास] आवास, भवन।

एवासी—सं०पु० [सं० आवास+ई] निवास करने वाला, रहने वाला।
उ०—गाजिया नगारा गयण गाज। भूमि **एवासी** गया भाज।
—वि.सं.

एवाहो—सं०पु०—नेता, प्रधान। उ०—एक उजाथर कळहि **एवाहा**, साथी सह आखाड़सिध।—वेलि.

एवे—सर्व०—वे। उ०—कमधज लीनी काळवीं, जपिया वयण जठेह। वायक ते नर वाहिया, **एवे** 'पाळ' अठेह।—पा.प्र.

एस—अव्यय—सर्व०—यह। उ०—सुरजन हू कहियो सजे, अब मारो सुत एस।—वं.भा.

एसरब—सं०पु०—मुसलमानों के तीर्थ मक्का नामक नगर का नाम
(बां.दा. ख्यात)

एसिया—सं०पु०—पृथ्वी का वह भूखंड जिसमें भारत, चीन, अरब और कुछ रूस का पूर्वी हिस्सा है। एशिया।

एस्टीमेंट—सं०पु०—अंदाज, अनुमान, तखमीना।

एह—सर्व० [सं० एष] १ इस। उ०—लाजवती अंगि **एह** लाज विधि, लाज करंती आवै लाज।—वेलि. २ यह, ये।
उ०—सैसव सु जु सिसिर वितीत थयौ सहु गुण गति मति प्रति **एह** गिणि।—वेलि.
वि०—ऐसा। उ०—अंन दिन कियो पराक्रम ईसर, एकण किणहि न कीयो **एह**।—ईसरदास मेड़तिया रो गीत

एहड़लो—वि० (स्त्री० एहड़ली) १ ऐसा. २ व्यर्थ, फिजूल।
उ०—थांन बिनां थें यूंही गमाई, ऊमर **एहड़ली**।—ऊ.का.

एहड़ो—वि० (स्त्री० एहड़ी) ऐसा। उ०—घन पारेवा प्रीति, प्यारी विण न रहै पलक। ए मानवियां रीत, इसी 'जसा' न **एहड़ी**।
—जसराज
क्रि०वि०—ऐसा, इस प्रकार। उ०—**एहड़ी** सुण महाराज कहियो उठै, अपड़ खीची उरो भेज दीजो अठै।—जसजी आढ़ौ

एहज—वि०—१ इसी. २ सही।
सर्व०—यही।

एहतियात—सं०स्त्री० [अ०] १ सावधानी, चौकसी. २ परहेज।

एहवो—वि०—ऐसा (रू.भे. एहवौ) उ०—देखतां **एहवो** जंग धड़क्कै आगरो दिल्ली।—सूरजमल मीसण

एहनांण—सं०पु०—निशान, स्मृति, चिन्ह।

एहळो—वि० [सं० अफल] निष्फल, व्यर्थ, फजूल (देखो 'ऐहळो' रू.भे.)
उ०—घणा दिन **एहळा** गयाजी, दीठो नहिं दीठो नहिं दीदार।
—गी.रा.

एहवउ, एहवां, एहवूं, एहवो, एहवौ—वि०—ऐसा (प्रा०रू०)
उ०—१ **एहवउ** छळ चाचिगदे कीयउ, पिंगळ राजा परणावियउ।
—ढो.मा.
२ पिय खोटांरा **एहवा**, जेहा काती मेह।—ढो मा.
३ भर स्रावणि भाद्रवि भोगविजे, रुखमिणि वर **एहवी** रुख।
—वेलि.

एहसांण, एहसांन—सं०पु० [अ० अहसान] उपकार, कृतज्ञता। उ०—मांने तो **एहसांण** द्रमंके भांमण डरती। हळफळती धव अंग मिळै गळबत्थां भरती।—मेघ०
क्रि०प्र०—करणो, जताणो, जमाणो, मांनणो, राखणो, लेणो, होणो.
मुहा०—१ एहसांन उठाणो—देखो 'एहसांन लेणो'. २ एहसांन करणो—ऐसा काम करना जिससे करने वाले के प्रति किसी को आभारी या एहसानमंद होना पड़े, किसी के साथ भलाई या नेकी करना. ३ एहसांन जताणो—अपने किये उपकार या कार्य की

याद दिलाना. ४ एहसांन मांनणौ—शुक्रगुजार होना, आभारी होना. ५ एहसांन फरामोश होणौ—एहसान या आभार को भुला देने वाला होना. ६ एहसांन राखणौ—आभारी बनाना.

७ एहसांन लेणौ—शुक्रगुजार या ममनून बनना, एहसानमंद होना, आभारी होना।

यौ०—एहसानमंद।

एहसांनमंद–वि० [अ० अहसानमंद] उपकार मानने वाला, कृतज्ञ।

एहा–वि०—ऐसा। उ०—रांणी तौ कळजुग री रूप एहा अभिरूप अवनीस री तिरस्कार करि सुद्धांत···रै आस्रित अनेक जन रहै।

—वं.भा.

एहास–वि०—ऐसा। उ०—बहादुर अणि रा एहास वीर वणी रै कांम साधणसधीर।—पे.रू.

एहि–वि०—इस। देखो 'एही' (रू.भे.)

एहिज–वि०—१ ऐसी. २ यही, निश्चयार्थसूचक। उ०—एहिज परि थई भीरि कजि आयां, धनंज अनै सुयोधन।—वेलि.

एही–वि०—१ ऐसा. २ यह, यही। उ०—जल-क्रीड़ा क्रीड़ंति जगतपति, जेठ मासि एही जुगति।—वेलि.

एहु–वि०—१ यह. २ ऐसा. ३ इस (में) उ०—निंद्राबस जग एहु महानिसि, जांमिए कांमिए जागरण।—वेलि.

एहो, एहौ–वि०—१ ऐसा। उ०—१ रांण-महारांण एहो कियौ 'राजसी', तेण जळ न्हांण दुनियांण तरियौ।

—महारांणा राजसिंह री गीत

उ०—२ सांई एहा भीचड़ा, मोलि महूंगौ-वासि।—हा.झा.

अव्यय-संबोधनसूचक शब्द–हे, ए।

ऐ

ऐ—वर्णमाला का आठवां स्वर (संयुक्त स्वर) जिसका उच्चारण-स्थान कंठ-तालु है।

ऐं-ग्रव्यय—१ भली भांति न सुनी या समझी बात को फिर से कहलाने के लिये प्रयुक्त होता है. २ आश्चर्यसूचक शब्द।

ऐंचण-सं०स्त्री०—खिंचाव।

ऐंचणौ, ऐंचबौ-क्रि०स०—१ खींचना, तानना। उ०—नटालि दे भटालि की जटालि ऐंचते नृभं।—ऊ.का.

ऐंचणहार, हारौ (हारी), ऐंचणियौ—खींचने वाला, तानने वाला।

ऐंचिग्रोड़ौ, ऐंचियोड़ौ, ऐंच्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ऐंचतणौ, ऐंचतबौ—रू०भे०।

यौ०—ऐंचातांणौ।

ऐंचतणौ, ऐंचतबौ-क्रि०स०—देखो 'ऐंचणौ, ऐंचबौ' (रू.भे.)।

ऐंचातांणौ-वि०—तिरछी या सदा टेढ़ी निगाह से देखने वाला (क्षेत्रीय)

ऐंचियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ खिंचा हुआ. २ ताना हुआ.

ऐंटौ-वि०—जूठा।

सं०पु०—जूठन।

क्रि०प्र०—करणौ, खावणौ, नांखणौ, फेंकणौ, रेणौ, लेणौ, होणौ।

रू०भे०—ऐठ, ऐंठ।

यौ०—ऐंटो-चूंटो।

ऐंठ, ऐंठण-सं०स्त्री०—१ अकड़, ठसक, गर्व. २ द्वेष, विरोध, दुर्भाव. ३ जूठन (मि० ऐंटौ) उ०—अंग घणां आलंगियौ, अधर घणां री ऐंठ।—बां.दा.

ऐंठणौ, ऐंठबौ-क्रि०स०—१ जूठा करना. २ चखना. ३ मरोड़ना, बल देना। उ०—चटपट पिंजारण घट घट छुच्चेंठी। अटपट आंतां नैं तांतां जिम ऐंठी।—ऊ.का.

अ०—१ घमंड करना, अकड़ना. २ बल खाना. ३ तनना. ४ खिंचना।

ऐंठणहार, हारौ (हारी), ऐंठणियौ-वि०—ऐंठने वाला।

ऐंठाणौ, ऐंठावणौ, ऐंठावबौ—स०रू०।

ऐंठिग्रोड़ौ, ऐंठियोड़ौ, ऐंठयोड़ौ—भू०का०कृ०।

ऐंठीजणौ, ऐंठीजबौ—भाव वा०।

ऐंठवाड़ौ, ऐंठोड़ौ, ऐंठौ-सं०पु० [सं० उच्छिष्ट] १ जूठा. २ जूठन, उच्छिष्ट।

क्रि०प्र०—करणौ, खाणौ, चाटणौ, नांखणौ, फेंकणौ, होणौ।

मुहा०—ऐंठवाड़ौ चाटणौ—खुशामद करना।

ऐंठाणौ, ऐंठाबौ, ऐंठावणौ, ऐंठावबौ-क्रि०स०—जूठा कराना।

ऐंठाणहार, हारौ, (हारी), **ऐंठाणियौ**-वि०—जूठा कराने वाला।

ऐंठणौ, ऐंठबौ—अ०रू०। देखो 'ऐंठणौ, ऐंठबौ'।

ऐंठित-वि० [सं० उच्छिष्ट] जूठन, जूठा। उ०—भख ऐंठित बोर करां कर भीलण।—र.ज.प्र.

ऐंठियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ ऐंठा हुआ, अकड़ा हुआ. २ जूठा किया हुआ (स्त्री० ऐंठियोड़ी)

ऐंठौ-वि०—जूठा।

कहा०—ऐंठे हाथ ऊं कदे गिंडक नीं मारियौ—कृपण व्यक्ति जूठे हाथ से कुत्ते को भी नहीं मारता—संभव है हाथ पर लगे हुए भोजन-कण गिर न जांय और उन्हें कुत्ता खा ले। किसी को कुछ न देने वाले के लिए यह लोकोक्ति कही जाती है।

सं०पु०—जूठन।

यौ०—ऐंठो-चूंठो।

ऐंठोड़ौ-वि०—जूठा, उच्छिष्ट। उ०—चींचड़ ईंतां बुगदोळा चेंठोड़ा आंणें झोळी में टुकड़ा ऐंठोड़ा।—ऊ.का.

ऐंटो-चूंठौ, ऐंठो-चूंठौ, ऐंठो-छूंठौ-सं०पु०—जूठन, उच्छिष्ट पदार्थ। उ०—ऐंठे-चूंठे नै मींठो कर आंणें, दीठो अणदीठो दीठो कर जांणें।—ऊ.का.

ऐंडणौ, ऐंडबौ-क्रि०अ०—चलना। उ०—निज करमसोत पेंडै न बीह, उदावत ऐंडेगे अबीह।—ऊ.का.

ऐंड-बेंड-वि०—१ अंड-बंड, असंबद्ध, ऊटपटांग-प्रलाप अंट-संट। उ०—ऐंड-बेंड अड़ियल्ल नीठ दोय पेंड सरक्कै।—रा.रू. २ अनाप-सनाप. ३ अस्त-व्यस्त।

ऐंडौ, ऐंड़ौ-सं०पु०—(स्त्री० ऐंडी) १ अनुमान, अंदाजा. २ भोजन के लिए साथ ले जाया जाने वाला बालक।

वि०—१ ऊँचा-नीचा, दुर्गम, विकट, भयावह। उ०—उठै झड़ कंडीर पाहाड़ ऐंडा, बणैं मंथरां हालणौ पंथ बैंडा।—मे.म.

२ अकड़ा हुआ। उ०—स्यांम म्हांसूं ऐंडौ डोले हो, औरन सूं खेलै धमाळ।—मीरां

ऐंण-सर्व०—इस। उ०—मर जाय जदे जोखौ मिटे, औ धोको है ऐंण रो।—ऊ.का.

सं०पु० [सं० अयन] १ घर, मकान। उ०—सुणियां आगम सत्रु री, अरर जड़े निज ऐंण।—वं.भा. २ काल, समय।

सं०स्त्री०—गति, चाल।

ऐंद्र-सं०पु०—ज्योतिष शास्त्र के सत्ताईस योगों में से एक (ज्योतिष-बालबोध)

ऐंद्री-सं०स्त्री० [सं० ऐन्द्री] चौसठ योगिनियों में से अठावनवीं योगिनी.

ऐंळी-वि०—व्यर्थ, फजूल (मि० एळी)

ऐ-सं०पु०—१ ऊँट. २ कपि, बंदर. ३ असुर, राक्षस. ४ शिव. ५ कामदेव. ६ बालक. ७ आमंत्रण. ८ वचन. ९ बीज.

१० राजा. ११ विश्व. १२ कुम्हार.
सं०स्त्री०—१३ सरस्वती. १४ मुक्ति (एका०)
वि०-१ मूर्ख. २ व्यापक. ३ विषम. ४ पूज्य (एका०)
सर्व०—यह, ये। उ०—घर हरिया चर धापिया, मातै सांवण मास, पिण बोहळिया बापड़ा, ऐ घुर हूंत उदास।—बां.दा.
कहा०—ऐ देखौ कुदरत रा खेल—प्रकृति के कार्य अजीबोगरीब हैं, नियति के नियम अटल हैं।
अव्यय—संबोधनसूचक, हे! अरे! उ०—ऐ जो अकबर काह, सैंधव कुंजर सांवठा, बांसै तौ बहलाह, पंजर थया प्रतापसी।
—दुरसौ आढ़ौ
वि०—एकत्रित, एकसाथ, इकट्ठा।
ऐंके-सं०पु०—एकमत, एकराय।
ऐक्य-सं०पु० [सं०] एक का भाव, एकत्व, मेल, एकता।
ऐंड़ियो, ऐंड़ियौ-वि०—ऐसा।
ऐंड़ौ-वि० (स्त्री० ऐंड़ी) ऐसा, इस प्रकार का। उ०—अब ऐड़ौ दिहड़ौ कदे फेर होवैला के दरसण देवण री म्हां पर म्हेर होवेला।—गी.रा.
मुहा०—ऐड़ौ तेड़ौ अथवा ऐड़ौ वेड़ौ—साधारण तुच्छ नाचीज, ऐसा तैसा।
कहा०—१ ऐड़ी लाय कठै जो दीयौ कर देखै—सूर्य को दीपक दिखाना, प्रसिद्ध आदमी का परिचय देना. २ ऐड़ौ कांई लोह जड़ियो है—बहुत मजबूत के लिए प्रयुक्त।
ऐजन-अव्यय [अ०] तथा, तदेव।
ऐजनगाळौ-(स्त्री० ऐजन-गाळी) नखराला, छैल-छबीला।
ऐठति, ऐठित-वि०—उच्छिष्ट, जूठा पदार्थ। उ०—अम्ह कजि तुम्ह छंडि अवरवर आंणां, ऐठित किरि होमै अगनि।—वेलि.
ऐठ-पैठ-सं०स्त्री०—१ परिचय, जानकारी. २ विश्वास।
ऐठौ-वि०—जूठा। उ०—मोटां तणौ प्रसाद कहै महि, ऐठौ आतम सम अधम।—वेलि.
सं०पु०—जूठन।
ऐंढ़ौ-वि०—देखो 'ऐंडौ' (१)
सं०पु०—अवसर, मौका।
ऐढ़ौ-मेढ़ौ-वि०—तिरछा। उ०—बारै मास सांड टोरड़ा, ठोक धपटवौ धापियै। ऐढ़ा मेढ़ा आडो रवै, भेड़ खंजानो खापियै।—दसदेव
ऐण-सं०पु० [सं० अयन] घर, मकान। उ०—भोळा की डर भागियौ, अंत न पहुड़ै ऐण। बीजी दीठां कुळ बहू, नीचा करसी नैण।—वी.स.
२ देखो 'एण'. ३ देखो 'ऐन' (रू.भे.) उ०—बिरह बिथा कासूं री कह्यां पेठां करवत ऐण।—मीरां
क्रि०वि०—इस प्रकार।
सर्व०—इस। उ०—कंत सूं ओळंबौ दियौ इम कांमणी। एण घट आज रा केम सहिया अणी।—हा.झा.
ऐतराज-सं०पु० [अ० एतराज] देखो 'एतराज' (रू.भे.)
ऐतौ, ऐता, ऐतौ-वि०—इतना। उ०—ऐता दिन तुम कह्यां हूं ता।
—वी.दे.
क्रि०वि०—इतने में।
ऐथ, ऐथी-क्रि०वि०—यहां, इधर (रू.भे. 'एथ')
उ०—१ अत सीतल उतराद सूं, ऐथ बह्योड़ो आय। जळ सुरसरि अघ जाळतौ, करे विलंबन काय।—बां.दा.
उ०—२ मैंगळ ऐथी आव मत, वाघां केरी वाट। साप अंघूटा मेळ ज्यूं, कदियक हुसी कुघाट।—बां.दा.
ऐदी, ऐदी-वि०—देखो 'अहदी'।
ऐधूत-वि०—उन्मत्त, युद्ध में बावला।
ऐधूळौ-वि०—शौकीन, छैल-छबीला, मस्त। उ०—आंणी लेवण नै ऐधूळा आया, दरसण देवण नैं मोभी मुळकाया।—ऊ.का.
ऐन-सं०पु० [सं० अयन] घर, मकान (रू.भे. 'ऐण')
उ०—देखौ रांण 'लक्खन' अलाउदीन अंतकौ, ऐन दैन चाह्यौ पर रैन दैन चाह्यौ नां।—सूरजमल मीसण
वि०—१ अत्यंत ठीक, उपयुक्त. २ बिल्कुल. ३ पूरा।
ऐनक-सं०स्त्री०—आंख में लगाने का चश्मा।
ऐनांण-सं०पु०—१ चिन्ह, निशान. २ लक्षण, गुण।
क्रि०वि०—संकेत से।
ऐफेण-सं०स्त्री० [अ० अफयून] एक मादक वस्तु, अफीम।
ऐब-सं०पु० [अ०] १ अवगुण, बुराई। उ०—ओर की निहार ऐब आजलूं जियौ। आपनें किये कि ओर फोर तूं हियौ।—ऊ.का.
२ कलंक. ३ गुनाह, दोष। उ०—उत्तर देवै छोकरी, उत्तर देय न जांण। लाग्या छै कर छैल का, दरजी ऐब लगांण।
—जलाल बूबना री बात
ऐब-गैब-क्रि०वि०—१ अचानक. २ गुप्त रूप से, अजब-गजब, अनोखा।
ऐबाकी-वि०—१ जबरदस्त। उ०—हिंदू लागै पागड़ै, असुरां पड़ै दहल्ल। हेवै पण नाकी हरण, ऐबाकी अजमल्ल।—रा.रू.
२ विशाल।
ऐबात-सं०पु०—अहिबात, सौभाग्य।
ऐबी, ऐबीलौ-वि० [अ०] १ जिसमें ऐब हो, अवगुणी. २ दुष्ट. ३ दोषी. ४ विकलांग।
ऐमक-सं०पु० [अ० अहमक] बेवकूफ, मूर्ख। उ०—जिस ऐमक सें वीरासन बैठा न गया, पिछाड़ी कौ हाथ टेक कर अगाड़ी पैर फैला दिया।—दुरगादत्त बारहठ
ऐमो-क्रि०वि०—१ इधर, इस तरफ. २ ऐसे।
ऐयार-सं०पु० [अ० ऐय्यार] १ चालाक, धूर्त. २ छली, धोखेबाज. ३ मायावी।
ऐयास-वि० [अ०] १ ऐशो-आराम करने वाला, विलासी. २ विषयी, लंपट, इंद्रियलोलुप।
सं०पु०—विषय-विलास।

ऐयासी–सं०स्त्री० [अ०] विषया-सक्ति भोगविलास।
वि०—विलासी, भोगविलास में लिप्त।

ऐरण, ऐरन–सं०स्त्री०—देखो 'एरण'। उ०—लोहकार उताल, मनहु ऐरन घन गज्जिय। गजर मनहु घरियार, जांम पूरन प्रति बज्जिय। —ला रा.

ऐरपत, ऐरवात–सं०पु०—देखो 'ऐरापत' (अ.मा.) उ०—इंद्रलोक सूं तेत्रीस क्रोड़ि देवतांसहित इंद्रांणी अपछरां रै झूलरै इंद्र ऐरापत चढ़ि आया।—वचनिका

ऐरसौ–वि० (स्त्री० ऐरसा) ऐसा। उ०—१ ऊंधे पाघड़े काळरूपी असल्ली, बोलै पारसी ऐरसौ गल्लवल्ली।—वचनिका
उ०—२ इंद सची नह ऐरसौ, जो सुख प्रिया नरिंद।—रा.रू.

ऐराक–सं०स्त्री०—१ तलवार (डिं.को.) २ एक प्रकार का शराब, तीसरी बार औटायी जाने वाली शराब। उ०—सौ किण भांति रौ दारू—उलटै रौ पलटै, पलटै रौ ऐराक, ऐराक रौ वैराक वैराक रौ संदळी संदळी रौ कंदळी।—रा.सा.सं.
सं०पु०—३ एक प्रकार का युद्ध का बाजा। उ०—गहकिया ग्रीध टोळा गरूर। ग्रहकिया गंब ऐराक तूर।—वि.सं.
४ अरब देशोत्पन्न घोड़ा. ५ घोड़ा (डिं.को.) ६ ईराक देश।
उ०—जळनिध सहल जुग्रांण, सांमा तू बेड़ा सजै। भेचक पड़ै भगांण, मिसर अरब ऐराक मझ।—बां.दा. ७ मुसलमान।

ऐराक-राग–सं०पु०—सिंधु राग का एक नाम। उ०—रणं केब रूपा भेर धधक्कै, ऐराक-राग हुचक्कै गनीमां हूंत दूसरौ हमीर। —पहाड़खां आढ़ौ

ऐराकी–वि०—१ ईराक देश का, ईराक देश संबंधी. २ अरबी।
सं०पु०—१ घोड़ा. २ ईराक देशोत्पन्न घोड़ों की एक जाति या इस जाति का घोड़ा।
कहा०—देत हिमायत की गधी, ऐराकी के लात—सुसंरक्षण में रखी जाने वाली गधी अपने गर्व में अच्छे घोड़े के लात लगाने का साहस कर लेती है। साधारण या बुद्धिहीन व्यक्ति जिसके किसी बड़े आदमी का पक्ष हो तो वह विद्वान या योग्य पुरुष का तिरष्कार कर देता है।

ऐरापत–सं०पु०—१ ऐरावत हाथी।
पर्याय०—अभ्रमातंग, अभ्रमुवल्लभ, ऐरापत, ऐरापति, ऐरावत, ऐरावण, गजराज, पटाझर, भीगोरारि, सक्रवाह, सुभ्रदुति।
२ प्रथम लघु एवं दो दीर्घ इस प्रकार पांच मात्राओं का नाम।ISS (डिं.को)
वि०—स्वेत, सफेद (डिं.को.)*

ऐरापतड़ौ, ऐरापति–सं०पु० [सं० ऐरावत] १ इंद्र का हाथी, ऐरावत (नां.मा.) २ हाथी, गज। उ०—ऐरापति असवार इळ, सुजि सिंगार सिंदूर। पचरायौ गजराज सौ, श्री महाराज हजूर।—रा.रू.

ऐराब–सं०पु०—१ छोटी तोप. २ बादशाह को किश्त से बचाने के लिये किसी मोहरे को बीच में डाल देना (शतरंज)

ऐरावण–सं०पु० [सं०] ऐरावत हाथी। उ०—हस्ति चडिउ ऐरावण इंद्र, अंतरि देखइ सूरिज चंद।—कां.दे.प्र.

ऐरावत–सं०पु० [सं०] १ बिजली से चमकता हुआ बादल. २ इंद्र-धनुष. ३ पूर्व दिशा का दिग्गज. ४ इंद्र का हाथी. ५ हाथी।
उ०—पदमण महल पौढलां पहली, ऐरावत देलै इक आग।
६ बिजली (नां मा.) —महाराजा रायसिंह रौ गीत

ऐरावता, ऐरावती–सं०स्त्री० [सं० ऐरावती] बिजली, विद्युत (ह.नां.)

ऐरिसा–क्रि०वि०—एतादृश, इस प्रकार।

ऐरी भैंसौ–सं०पु० बिना बधिया किया हुआ भैंसा।

ऐरू–सं०पु०—छोटे-बड़े सब प्रकार के सर्प (यौ० ऐरू जांजरू)

ऐरू जांजरू–सं०पु०—सांप-बिच्छू आदि विषैले जंतु।

ऐरौ–सर्व०—इसका (रू.भे. ऐरै)

ऐळ, ऐल–सं०पु०—साधारण से साधारण क्षति मात्रा [सं० एल] १ इला नृप का पुत्र, पुरुरवा. २ बाढ़, प्रबल प्रवाह।

ऐलकार–सं०पु० [अ० अहल+फा० कार] कर्मचारी, सरकारी कर्मचारी।

ऐलकै–क्रि०वि०—इस समय। उ०—धुकंतां वयर अर कोट वाढै धकै, तसां उसरां घणी दयंतौ त्राह। पै'लकै गयौ ससपाळ मायौ पटक, पटक सर ऐलकै गयौ पतसाह।—कमोजी नाई

ऐलमंद–सं०पु०—किसी विभाग का प्रधान कर्मचारी।

ऐलांण–सं०पु०—निशान।

ऐळा–सं०स्त्री० [सं० इला] पृथ्वी, भूमि। उ०—ऐळा चीतोड़ सही घर आसी, हूं थारा दोखियां हरू।—बारूजी बारहठ

ऐळौ–वि० (स्त्री० ऐळी) [सं० अफल] व्यर्थ, फजूल, निरर्थक।

ऐल्या–सं०स्त्री०—देखो 'अहिल्या'।

ऐवहौ, ऐव्हौ–वि०—ऐसा (रू.भे.)

ऐवाकी–वि०—भयभीत करने वाला, शल्य रूप होने वाला शत्रु।
उ०—१ ऐराकी मागां किया, सुभट कजाकी सत्थ। ऐवाकी साहां 'अभौ', नाकी हिंदू समत्थ।—रा.रू.
उ०—२ धुजै केई धाड़वी, चोर धूजै चौताळै। ऐवाकी तज आंट, पड़्या सारा पिंड पाळै।—पे.रू.

ऐवाळ—देखो 'एवाळ' (रू.भे.) उ०—एक ऐवाळ तठै छाळियां चरावै छै।—ढो.मा.

ऐवाळियौ—देखो 'एवाळियौ' (रू.भे.)

ऐवास–सं०पु० [सं० आवास] आवास, मकान, निवास-स्थान।
उ०—जंगळ मैं मंगळ जबर, ऐ ऊंचा ऐवास।—चिमनदांन रतनू

ऐवेहे, ऐवैहे–सर्व०—वे। उ०—ऐवैहे जासी आज भार गाडां सिर घाते। रुको···रावळी अवस परभाते आवत।—पा.प्र.

ऐवो, ऐवौ–सर्व० (स्त्री० ऐवा) वह। उ०—सांम हुइ तणी मांगै सरी ऐवा जौ तोनैं अपै। जद कांम हुवोड़ौ जांणजै जरू सिद्ध गोरख जपै।—पा.प्र.
वि०—ऐसा।

ऐस-अव्यय [सं० ऐषमः] इस वर्ष, वर्तमान वर्ष या समय।
सं०पु० [अ० ऐश] आराम, चैन, विषय-विलास। उ०—१ ऐस अमल आरांम, सुख उछाह भेळा सयण। होका बिना हरांम, रंग री हुवै न राजिया।—किरपारांम
उ०—२ आळस जांगं ऐस में, वपु ढीलै विकसंत। सिधु सुरियां सौ गुणौ, कवच न मावै कंत।—वी.स.

ऐसे-वि०—इस प्रकार के। देखो 'ऐसौ'।
क्रि०वि०—इस प्रकार, इस तरह।

ऐसो, ऐसौ-वि०—इस तरह का, ऐसा, इसके समान। उ०—अंकुस सीस वर्ण गुण ऐसौ, जग वेधियौ मधा सनि जैसौ।—रा.रू.

ऐहड़ौ-वि०—ऐसा (रू.भे. ऐसौ)

ऐहडौ-वि०—१ विकट, दुर्गम. २ भयानक। उ०—हाकौ नाहर ऐहडौ, राह न पूगै रेत। जी मेहाई थांरा बाईसा री करीजै उबेल।
—मे.म.

ऐहमकाई-सं०स्त्री० [अ० अहमक+रा०प्र० आई] मूर्खता।
कहा०—घणी ऐहमकाई खोटी है—अधिक मूर्खता हानिकारक होती है।

ऐहरौ-वि०—ऐसा। उ०—पब्बनो नचंदो दइंदो प्रवेसं, अठे ऐहरौ गम्म एही अनेसं।—ना.द.

ऐहलांण-सं०पु०—निशान, चिन्ह, लक्षण। उ०—बेवी रै दीवांण, हव सह नर भेळा हुवा। इंद्र तणौ ऐहलांण, आजम बैठौ जींदरौ।—पा.प्र.

ऐहळौ-वि० (स्त्री० ऐहळी) [सं० असफल] व्यर्थ, निष्फल, बेकार।
उ०—ऐहळा जाय उपाय, आछोड़ी करणी अहर। दुस्ट किणी ही दाय, राजी हुवै न राजिया।—किरपारांम
(बहु० ऐहळा)

एहवौ-वि० (स्त्री० ऐहवी) ऐसा। उ०—वैरी 'सलख' वहै ज्यां वासै, ऐहवा तन री केही आस।—सलखा तीडावत री गीत

ऐहवात-सं०पु०—सौभाग्य-चिन्ह, अहिवात।

ऐहिक-वि० [सं०] इस लोक से संबंध रखने वाला, लौकिक, सांसारिक।

ऐहिज-सर्व०—यही, निश्चयार्थकसूचक। उ०—चूंडा हरा उधारण चौजां, मौजां ऐहिज 'मांन' महीप।—बां.दा.

ऐहौ-वि० (स्त्री० ऐही) ऐसा। उ०—१ सांम रै कांम ऐहा सधीर। रांम रै कांम हणवंत बीर।—वि.सं.
उ०—२ जग दुख हरण सरण जग जेहा, ऐहा रांम चरण अरव्यंद।
(बहु० एहा) —र.ज.प्र.

ओ

ओ—राजस्थानी वर्णमाला का नौवां संयुक्त (अ+उ) स्वर वर्ण जिसका उच्चारण कंठ और ओष्ठ है।

ओं-अव्यय—अंगीकार या स्वीकृतिसूचक शब्द हां, अच्छा, तथास्तु। सं०पु०—ओ३म् का सूक्ष्म रूप।

ओंकडौ–सं०पु०—कोल्हू के चारों ओर चक्कर लगाने वाले बैल की आंख पर बांधा जाने वाला उपकरण जो प्रायः चमड़े का होता है।

ओंकार–सं०पु० [सं०] १ प्रणव मंत्र कहलाने वाला परब्रह्मवाचक शब्द। यह बहुत पवित्र माना जाता है। उ०—ओ **ओंकार** अनंत आदि अविकार अपंपर। —रा.रू. २ सोहन पक्षी।

ओंकारनाथ–सं०पु० [सं०] शिव के माने जाने वाले द्वादश लिंगों के अंतर्गत एक लिंग जिनका मंदिर मानधाता ग्राम (मध्यप्रदेश) में है।

ओंगणौ, ओंगबौ–क्रि०स० [सं० आंजन] गाड़ी की धुरी में चिकनाई लगाना ताकि पहिया आसानी से घूमे।

ओंगणहार, हारो (हारी), ओंगणियौ–वि०—गाड़ी की धुरी में चिकनाई लगाने वाला।

ओंबली–सं०स्त्री०—१ इमली. २ गाड़ी की बाजू में लगाये जाने वाले हुक जिनमें रस्सा खींचते व बांधते समय अटकाया जाता है।

ओ–सं०पु०—१ ब्रह्मा. २ विष्णु. ३ शेषनाग. ४ बलराम (एका.) सर्व०—वह।

अव्यय—संबोधनसूचक शब्द।

ओअंहकार–सं०पु० [सं०] देखो 'ओंकार' (१)। उ०—अमर स्यंघासण वइसणइ, जीण दिन कंठ न **ओअंहकार**।—वी.दे.

ओअरी–सं०स्त्री०—देखो 'ओरी'।

ओइंचणौ, ओइंचबौ—देखो 'ओहीचणौ, ओहीचबौ'।

ओइचियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'ओहीचियोड़ौ'।

ओईजाळौ–सं०पु० [सं० अवधिजाल, प्रा० ओहीजाल] अस्त-व्यस्त पड़ी हुई काफी मात्रा में सामग्री अथवा वस्तुयें।

ओक–सं०पु० [सं०] १ घर, सदन (ह.नां.) उ०—वैर हर किंदरां **ओक** वसिया।—भगवानजी रतनू

२ स्थान, जगह. ३ नक्षत्रों या ग्रहों का समूह।

ओकई–सर्व०—उसके। उ०—साधन नळ प्यंगळ हुई। **ओकई** आंगणई सूकइ चंपकी माळ।—वी.दे.

ओकखग–सं०पु०—वृक्ष (अ.मा.)

ओकड़–सं०पु०—सप्तर्षि के अस्त स्थान की तरफ से आने वाला वायु जो फसल को हानि पहुँचाता है।

ओकड़ौ–सं०पु०—ऊँट के बारजामे के साथ कसा जाने वाला चमड़े का फीता (मि० ऊकठौ)

ओकणौ, ओकबौ–क्रि०स०—१ तीर छोड़ना या शस्त्र-प्रहार करना. २ क्रूर दृष्टि से देखना। उ०—अटी आक **ओकबौ** सधेस को भोकबौ जंगां। जती को मोकबौ नगां लंका सीस भाळ।

—हुकमीचंद खिड़ियौ

ओकर–सं०पु० [सं० अवकर] १ विष्टा, गू, गलीच (रू.भे. ओखर, ओखर) २ कुवाक्य, 'तू' कह कर पुकारने की क्रिया।

उ०—अतुळी बळ 'अमर' न सहियौ **ओकर**, साहि आलम आगळै सनाढ़।—केसोदास गाडण

ओकरणौ, ओकरबौ—पशुओं का विष्टा खाना।

ओकळ,ओकळी–सं०स्त्री०—१ अधिक भूखा रहने से बढ़ने वाली उष्णता. २ हवा के कारण ओट के सहारे धूलि-कणों का लंबायमान एकत्रित होना। उ०—ऊजळी उत्तम रेत, **ओकळी** सूं ले आवै।—दसदेव

ओका–सं०पु०—देवी का खप्पर। उ०—१ वेदां वरणी अलोका भेदां तुलजा तरणी बाळा। रंगे सूळ तोका **ओका** भरणी रगत।

—हुकमीचंद खिड़ियौ

उ०—२ घणा बाढ भाजै गइंदां घटका घाव। **ओका** स्रोण लेत काळी घंटका अतोल।—ईसरदास खिड़िया रौ गीत

ओकाई–सं०स्त्री०—वमन, कै (रू.भे. ओकारी)

ओकारांत–वि०—जिसके अंत में 'ओ' अक्षर या स्वर का समावेश हो।

ओकारी–सं०स्त्री०—वमन, कै।

ओकीरौ–सं०पु० [सं० अवकीट] गोबर में उत्पन्न होने वाला एक कीड़ा विशेष।

कहा०—ओकीरौ ही फण करै—अशक्त व्यक्ति सामना करने को तैयार हो जाय तब कही जाती है।

ओकूब–वि०—बुद्धिमान। उ०—चार भेद तिण रा चवै, कवियण बड़ **ओकूब**। समझ बेलियौ सोहणौ, खुड़द जांगड़ौ खूब।—र.रू.

ओकेळ–सं०स्त्री०—अधिक भूखा रहने से बढ़ने वाली उष्णता।

ओखंगो–वि०—टेढ़ा, तिरछा।

ओखंभणौ, ओखंभबौ–क्रि०स०—चलायमान करना, चलाना। उ०—ऊंमर दीठा जावता, हळहळ करइ करूर। ऐराकी **ओखंभिया**, जइसइ केती दूर।—ढो.मा.

ओखड़मल–सं०पु०—पराक्रमी, वीर पुरुष।

ओखडा–सं०पु०—नारियल का पुराना गूदा (गिरी) जिसका स्वाद बिगड़ जाता है।

ओखण–सं०पु०—ओखली में अनाज आदि कूटने का मोटा डंडा, मूसल। उ०—अकबर दळ आळ साबळां **ओखण**, जूझ कळह मातै रण जंग।

—महाराणा अमरसिंह रौ गीत

ओखद, ओखदि, ओखदी, ओखध–सं०पु०—औषधि, दवा।

उ०—१ पाटा पीड़ उपाव, तन लागां तरवारियां। वहै जीभ रा घाव, रती न **ओखद** राजिया।—किरपाराम

उ०—२ ऊभी करी ओखदी आंणे, धीर सांच मन जेम धरै।
—ईसरदास बारहठ

उ०—३ तूझ तणी ओखध घानंतर, केहै पछै आविस्यै कांम।
—ईसरदास बारहठ

कहा०—वाटियै ओखद नै मूडियै माथै री ठा की पड़ै नी—अपरिचित का कोई विश्वास नहीं।

ओखधपत, ओखधपति—सं०पु० [सं० औषधि+पति] चंद्रमा (डिं.को.)

ओखधी—सं०स्त्री० [सं० औषधि] देखो 'ओखध'। उ०—किता ओखधी वैद विद्या प्रकास।—अज्ञात

ओखधीस—सं०पु० [सं० औषधीश] चंद्रमा (नां.मा.)

ओखर—सं०पु०—विष्टा, गू (रू.भे. ओकर, औखर)

ओखराई—सं०स्त्री०—वह गाय जो विष्टा खाती हो या जो विष्टा खाने की आदी हो।

ओखरी—सं०स्त्री०—ओखली। देखो 'ऊखळ'।

ओखळणौ, ओखळबौ—क्रि०स०—प्रहार करना, चोट करना।

उ०—असवार एक जड़िया उठै ओखळिया भालां अरर।—वं.भा.

ओखळी—सं०स्त्री०—१ देखो 'ऊखळ' २ पहाड़ों के पास के नाले गड्ढे आदि. ३ देखो 'ओकळी' (रू.भे.) उ०—आडी ओखळियां खायोड़ा आधा, लाडां-कोडां में जायोड़ा लाधा।—ऊ.का.

ओखांण, ओखांणौ—सं०पु०—कहावत, उक्ति।

ओखागिर—सं०स्त्री० [सं० अवखाता=अवखा=कंदरा] गिरि-कंदरा, पहाड़ी, गुफा। उ०—थंडा अनेकां चकारां सुरां नाहरां सांबरां थोका, जूना खोखा थाहरां जाहरां भाळै जात। ओखागिरां रहंता खगेल विना धोका आळा, पूगै तूं ही अनोखा सिकारी प्रथीनाथ।
—महकरण महियारियौ

ओखापुरी, ओखामंडळ—सं०उ०लिं०—द्वारिका का एक नाम।

ओखाळ—सं०पु० [सं०] १ युद्ध, रण. २ विरेचन।

ओखाळमल—देखो 'अखाड़मल' (रू.भे.) उ०—वदळै डार गई दस वाटां, हुई लार अण पार हल। धकै चाढ सरदार धकाया, मार घणां ओखाळमल।—महाध्यांन महड़ू

ओखिद—देखो 'ओखध'। उ०—समंद सुतन, सुत-पवण, म्रिग सुत, ओखिद म्रित आपौ ऊदार।—ईसरदास बारहठ

ओखौ—वि० (स्त्री० ओखी) १ अटपटा, भद्दा। उ०—कोठार री कूंची मेल्ह जावौ, आगै कूंची ओखी लखी लागै छै—चौबोली

२ विकट, भयंकर, कठिन। उ०—भौ समुंद अपार देखां अगम ओखी धार।—मीरां

ओग—सं०स्त्री—१ दाह, जलन, उष्णता (रू.भे. ओघ)। उ०—सूज्या होसी नैण रैण दिन नीर बहंतां। झुळस्या अधर-मजीठ निसासां ओग सहंतां।—मेघ. २ देखो 'ओघ' (रू.भे.)

ओगड़-बोगड़—वि०—अस्त-व्यस्त, बेतरतीब।

ओगण—सं०पु० [सं० अवगुण] १ अवगुण, दुर्गुण। उ०—बोहळा ओगण तुछ गुण दिल मंझक मुधा।—केसोदास गाडण

२. दोष, अपराध. ३ हानि (औषधि या खाद्य पदार्थ के सेवन से). ४. बीमारी. ५ आफत, बाधा।

कहा०—नाकारौ सौ ओगण हरै—केवल एक नहीं कहने से अनेक तरह की आफत से बचा जा सकता है। मि० एक नन्नौ सौ रोग टाळै। (नन्नौ)

ओगणगारौ—वि० [सं० अवगुणकार] १ अवगुणी। उ०—म्हांनै गिणज्यौ मूढ अमलियां ओगणगारां।—ऊ.का.

२ बुरे कार्य करने वाला. ३ कृतघ्न।

ओगणी—वि०—१ अवगुणी. २ दोषी, अपराधी।

ओगणीस—वि० [सं० अनविंशति, प्रा० एकूनवीसइ, अप० एगुणविंस] देखो 'उगणीस।

ओगणौ—वि०—१ अवगुणी. २ कृतघ्न।

क्रि०अ०—१ तंग करना. २ घर्षण करना।

ओगत—सं०स्त्री०—अधोगति। देखो 'अगति'।

ओगतियौ, ओगतियौ—वि०—अधोगति को प्राप्त।

ओगनियौ, ओगनियौ—सं०पु०—स्त्री के कान का एक आभूषण विशेष, कर्णफूल। उ०—चळापळ ओगनियां री कोर, भोपणां किण भूलां री भार?—सांझ

ओगम—सं०स्त्री०—१ पशुओं का एक रोग विशेष. २ अनाज के अंकुर निकलना।

ओगळी—सं०स्त्री०—बाजरी के कटे हुए पौधों का खेत में किया गया ढेर।

ओगां—सं०पु०—एक प्रकार का पौधा विशेष जिसे अपामार्ग भी कहते हैं।

ओगाजणौ, ओगाजबौ—क्रि०अ०—गरजना। उ०—दावा गिरां दीरहां जे ओगाजै बंदूकां दारू।—अज्ञात

ओगाळ—सं०पु०—१ सींगधारी पशुओं का खाए हुए चारे को फिर से मुंह में लाकर धीरे-धीरे चबाना, जुगाली. २ ताना, व्यंग.

३ कलंक, अपयश, बदनामी। उ०—तरै मुखड़ै नै पिउसंधी नै जखड़ा री घणी सोच हुवौ, पिण झाली दागीपणैं, तिणरी ओगाळ री घणी फिकर हुई।—जखड़ै मुखड़ै भाटी री बात

ओगाळणौ, ओगाळबौ—क्रि०अ०—१ पशुओं द्वारा जुगाली करना.

२ वमन करना।

ओगाळणहार, हारौ (हारी), ओगाळणियौ—वि०—जुगाली या वमन करने वाला।

ओगाळिओड़ौ, ओगाळियोड़ौ, ओगाळयोड़ौ—भू०का०कृ०।

ओगाळियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ पशुओं द्वारा जुगाली किया हुआ.

२ वमन किया हुआ। (स्त्री० ओगाळियोड़ी)

ओगाळौ—सं०पु०—मवेशी के चराने के पश्चात् पीछे छोड़ा हुआ घास-फूस (ओगाळी)

ओगुण—सं०पु०—देखो 'ओगण'। उ०—ए! अपराधी आतमा, ओगुण एह अलज्ज।—ह.र.

ओगुणगारौ—वि०—देखो 'ओगणगारौ' (रू.भे.)

ओघ–सं०पु० [सं०] १ समूह, ढेर। उ०—करि मिळियौ अंतर कपट, ऊपर आदर **ओघ**।—वं.भा. २ संतोष. ३ बहाव, धारा।

ओघड़–सं०पु० —जोगियों का भेद विशेष जिसके व्यक्ति कान नहीं छिदवाते हैं. २ वह संन्यासी जो ज्ञान की परमावस्था को पहुँच चुका हो और अहं एको ब्रह्मोऽस्मि का पूर्ण रूप से अनुभव कर चुका हो।

वि०—निकृष्ट, घिनौना, घृणित।

ओघट–सं०स्त्री०—१ बुरी घटना. २ आपत्ति, विपत्ति. ३ मृत्यु। उ०—नारायण रै नांम सूं, प्रांणी करलै प्रीत। **ओघट** बणिया आतमा, चत्रभुज आसी चीत।—ह.र.

वि०—१ नहीं घटने योग्य, बुरा। उ०—घर घर **ओघट** घाट टाट निस दीह कुटावै।—ऊ.का. २ भयंकर, विकट। उ०—अर विखमदुरग **ओघट** घाट रै कारण आपरा घोड़ा सिपाह पाछा ही भजाया।—वं.भा.

ओघसणौ, **ओघसबौ**–क्रि०स० [सं० अवघर्षण] १ वृक्ष, दीवार या इसी प्रकार की कोई अन्य कड़ी वस्तु के साथ खुजली मिटाने के उद्देश्य से शरीर का घर्षण करना। उ०—हाथीआं रा कूंभाथळां भांजिआं सवामण मोती आंमल प्रमांण नीसरै, अढार भार बनसपती सूं **ओघसतां** थकां हुमला खाईनैं रहीआ छै।—रा.सा.सं.

२ जोश में भरना। उ०—तदनंतर पिता रा निदेस रै प्रमांण पात्र लोकां री पूंतारियौ उरस हूं **ओघसतौ** राजकुमार बळै बूंदी आयौ।—वं.भा.

ओघसणहार, हारौ (हारी), ओघसणियौ–वि०—शरीर घर्षण करने वाला, जोश में भरने वाला।

ओघसिओड़ौ, ओघसियोड़ौ, ओघस्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ओघसियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ घर्षण किया हुआ. २ जोश में भरा हुआ. (स्त्री० ओघसियोड़ी)

ओघौ–सं०पु०— जैनी साधुओं द्वारा हाथ में रक्खा जाने वाला झाड़न।

ओड़–क्रि०वि०— ओर, तरफ। उ०—पंसेरी इक पालड़ै, पुंगीफळ इक **ओड़**। ऊ तोलण सम कर उभै, आ चतुराई खोड़।—बां.दा.

वि०—समान, बराबर। उ०—अहनर सूर कह कवण **ओड़**, जयहत खग जोड़।—र ज.प्र.

ओड़ां–वि०—ऐसे। उ०—अहधारी **ओड़ां** गिणां, नर थोड़ां में नेक। भेक लियोड़ा में भला, कोड़ां मांही केक।—ऊ.का.

ओड़ियाळ, ओड़ौ–सं०पु०—१ ऊंट का एक रोग विशेष जिसमें उसके ईडर (छाती परका खुरदरा चिन्ह) पर फोड़ा हो जाता है.

२ इस रोग से पीड़ित ऊंट।

ओडू–सं०पु०—वह स्थान विशेष जहां रहँट या मोट आदि के द्वारा कुये से पानी निकल कर इकट्ठा होता है और वहां से खेत में सिंचाई हेतु जाता रहता है। बहुधा इस स्थान पर कुंड बना दिया जाता है।

ओड़ै–वि०—सदृश, समान, तुल्य। उ०—'ऊदा' जुध आधिया, वाध वाढिया वरदाई। मांझी भारमलोत, सार गोयंद सवाई। आस कम दृढ़ मन्न 'जसू' गोवरधन जोड़ै, रूकहथौ रघनाथ अभंग दुसासन **ओड़ै**।—रा.रू.

ओड़ौ–सं०पु०— देखो 'ओड़ौ' (रू.भे.)

ओचक्कणौ, ओचक्कबौ–क्रि०अ०—उचकना, लपकना (रू.भे. उचकणौ)

ओचाळौ—देखो 'उछाळौ'।

ओचाव–सं०पु० [सं० उत्सव] जलसा (रू.भे. उछाह, ओछाव, औछाह)

ओच्छौ–वि०—देखो 'ओछौ'।

ओछंडणौ, ओछंडबौ–क्रि०स०—त्यागना, छोड़ना। उ०—प्रांण प्रांण धुर तळ ओडविया, समजत **ओछंडिया** सकळ। जूना धमळ ओड भुज भूसर, बोहळिया छांडियौ बळ।—चतरभुज बारहठ

ओछंडणहार, हारौ (हारी) ओछंडणियौ–वि०—त्यागने वाला।

ओछंडिओड़ौ, ओछंडियोड़ौ, ओछंड्योड़ौ भू०का०कृ०।

ओछंडियोड़ौ–भू०का०कृ०—त्यागा हुआ, छोड़ा हुआ। (स्त्री० ओछंडियोड़ी)

ओछ–सं०स्त्री०—१ ओछापन, छोटापन. २ कमी. ३ क्षुद्रता।

ओछइ, ओछउ–वि० (प्रा०रू०) १ देखो 'ओछौ'। उ०—१ **ओछइ** पांणी मच्छ ज्यउं, वेलत थयउ विहांण।—ढो.मा.

उ०—२ बिवणउ बाधइ सज्जणां, **ओछउ** ओहि खळांह।—ढो.मा.

ओछणौ–वि०—क्षुद्रता प्रकट करने वाला। उ०—पाता बोधस अयाळा, बोले जोध 'मुकन्न'। स्यांम गरज्जां **ओछणा**, तिके अकज्जां तन्न।—रा.रू.

ओछव, ओछ्व–सं०पु० [सं० उत्सव] १ उत्सव, समारोह, जलसा। उ०—जोधा जैता कमा नै जादव, इळ मछरीक करे धव **ओछव**।—रा.रू.

२ प्रसन्नता, हर्ष। उ०—इम **ओछव** अधिको करी, आव्या निज आवास।—ढो.मा.

ओछांडणौ, ओछांडबौ–क्रि०स०—किसी वस्तु को खींच कर तानना, स्थित करना। उ०—ओपै हाट **ओछांडिया**, पाटंबर अणपार। बांणक जांणक वद्दळां, इंद्रधनुख उणहार।—रा.रू.

ओछाड़–सं०पु०—देखो 'औछाड़'। उ०—सगत सुखीकर सेवगां, अखिल जगत **ओछाड़**। महिसासुर ज्यूं मारजे, चुगल असूळां चाड़।—बां.दा.

ओछाड़णौ, ओछाड़बौ–क्रि०स०—देखो 'औछाड़णौ, औछाड़बौ'। उ०—अंग झूलां **ओछाड़ि**, दिया कसि मेघाडंबर।—मे.म.

ओछाड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'औछाड़ियोड़ौ' (स्त्री० ओछाड़ियोड़ी)

ओछाज–प्रहार करने हेतु शस्त्र उठाने का भाव। उ०—आहाड़ा कही रै माथै सेल रौ **ओछाज**।—रावत भीमसिंह रौ गीत

ओछापण, ओछापणौ–सं०पु०—१ ओछापन, हल्कापन. २ छोटापन. ३ कमी. ४ नीचता, क्षुद्रता।

ओछाबोली–वि०—१ अपशब्द कहने वाला. २ तुच्छ या हल्के शब्दों का उच्चारण करने वाला। उ०—छाती छोला छोड़ दे, **ओछाबोला** एह। अब तौ ढोलां चेति उर, गोला खावै गेह।—ऊ.का.

ओछाह-सं०पु० [सं० उत्साह] १ उत्साह, जोश, उमंग. २ हर्ष, प्रसन्नता. ३ उत्सव, जलसा।

ओछाहणो, ओछाहबो-क्रि०स०—आच्छादित करना, ढँकना।

उ०—हेमरां हींस नर लसकरी कह हुई, वहै सिंधुर कहर समर वेंडा।
आहाड़ां खंड रजमंडळ **ओछाहियो**, पहाड़ां अगम सर सुगम पेंडा।
—महाराजा जसवंतसिंह रौ गीत

ओछाहर-सं०पु०—देखो 'ओछाह' (रू.भे.)

ओछाहियोड़ो-भू०का०कृ०—ढँका हुआ, आच्छादित (स्त्री० ओछाहियोड़ी)

ओछी-वि०स्त्री०—छोटी। उ०—**ओछी** अंगरखियां दुपटी छिब देती, गोढ़ै बरड़ी जे पूरा गांमेती।—ऊ.का.

ओछीजणो, ओछीजबो-क्रि०अ० (भाव वा०) घटना, कम होना।

उ०—'ओपा' आ उमर **ओछांणी**, परबत हूंत विछूटा पांणी।
—ओपो आढ़ौ

ओछीजियोड़ो-भू०का०कृ०—कम या घटा हुआ। (स्त्री० ओछीजियोड़ी)

ओछीढांण-सं०स्त्री०—ऊँट की चाल विशेष।

ओछी नजर-सं०स्त्री०—१ अदूरदर्शिता. २ दूसरे को अपने से क्षुद्र समझते हुए डाली जाने वाली नजर।

ओछौ-वि० (स्त्री० ओछी) १ जो गहरा न हो, छिछला. २ शक्तिहीन, कमजोर. ३ तुच्छ, क्षुद्र, छिछोरा। उ०—मद विद्या धन मांन, **ओछा** सो उकळै अवट। आधण रै उनमांन, रैवे बिरळा राजिया।
—किरपारांम

४ ओछे री प्रीत नै बाळू री भींत—क्षुद्र व्यक्ति का प्रेम और बालू की दीवार एक समान होते हैं। क्षुद्र व्यक्तियों का प्रेम अधिक समय तक नहीं टिकता. ५ ठिगना, बौना. ६ छोटा। उ०—**ओछी** अंगरखियां दुपटी छिब देती।—ऊ.का.

क्रि०प्र०—करणौ, पड़णौ, होणौ।

कहा०—१ ओछी ओजरी में धांन नहीं पचै—छिछले व्यक्तियों के मन में बात पचतां नहीं, वे दूसरों द्वारा कही हुई कई गुप्त बातों को अन्य लोगों के सामने प्रकट कर देते हैं. २ ओछी गरदन दगैबाज—ओछी गरदन वाला दगाबाज होता है.

६ कम, अपूर्ण। (क्रि०प्र०—करणौ, पड़णौ, होणौ)

उ०—विवरण जो वेलि रसिक रस वंछौ, करौ करणि तौ मूझ कथ। पूरे इते प्रांमिस्यौ पूरो, इम्रं **ओछौ** अरथ।—वेलि.

मुहा०—ओछी काटणौ (बाढ़णौ)—बिना पूरी तरह किये जल्दी जल्दी समाप्त करना, कम करना।

कहा०—ओछी पूंजी कसम (धन-धणी) नैं खाय—थोड़ी पूंजी मालिक को खाती है। थोड़ी पूंजी से दुकानदारी या व्यापार में हानि होती है। (यौ०—ओछौ-मोछौ)

ओछौ-मोछौ-वि०—१ देखो 'ओछौ' २ काम चलाऊ।

ओज-सं०पु० [सं० ओजस्] १ बल, कौशल, प्रताप, पराक्रम।

उ०—या कुमणैती कंत री, और न पूगै **ओज**। चमठी खाली होवतां, नमठी चाली फौज।—वी.स.

२ उजाला, प्रकाश. ३ वीरता आदि का आवेश पैदा करने वाला एक काव्य गुण. ४ शरीर के भीतर के रसों का सार भाग, कांति [रा०] ५ पेट. ६ पशुओं के मरने पर उनके पेट में से निकलने वाला मैला. ७ उष्णता, गर्मी। उ०—जानि दिवाकर जेठ मैं बहु **ओज** बढ़ाया।—वं.भा.

ओजक-सं०स्त्री०—घबराहट, बेचैनी। उ०—साकुरां धमक पौड़ां धमक सांबळै, लगी **ओजक** जजक अजक लाखां।
—सुरतांणसींग रौ गीत

ओजको, ओजकौ, ओजग-सं०पु० [सं० अवजागर, उजागर] रात्रि भर जागृत रहने पर उत्पन्न थकावट, जागरण।

कहा०—नींद वेच'र ओजको लेणौ—वह कठिन कार्य करना जिसका फल उस कार्य की तुलना में बहुत कम मिले या बिल्कुल न मिले।

ओजगी-सं०पु०—रात्रि में जागरण करने वाला व्यक्ति।

ओजगौ-सं०पु०—देखो 'ओजकौ'।

ओजणो, ओजबो-क्रि०स० [सं० ओजस्] १ उपयुक्त होना, फबना, शोभायमान होना. २ अधिक आंच लगने से तली में कुछ चिपक जाने से द्रव या गाढ़े पदार्थ का कड़ुआ होना।

कहा०—काळी बऊ नैं ओजियोड़ो दूध तीन पीडी तांई लजावै—श्याम वर्ण की स्त्री तथा ओजा हुआ दूध का असर तीन पीढ़ी तक रहता है।

ओजर-सं०पु०—पेट।

ओजरी-सं०स्त्री [सं० अवजरी] पेट के अंदर का वह अवयव जहाँ खाद्य पदार्थ खाये जाने के बाद रस बनने तक स्थित रहते हैं, पेट।

ओजरौ-सं०पु०—देखो 'ओजर' (रू.भे.)

ओजळा-सं०पु० (बहु व.) वे गेहूँ या जौ जो भूमि की तरी के कारण अपने आप बिना पानी पिलाये ही अंकुर निकाल देते हैं।

ओजागणो, ओजागबो-क्रि०अ०—जागरण, जागृत रहना, नींद न लेना।

उ०—तिसियां टळवळियांह, आधी राति **ओजागियां**। लाधौ लू आथ्यांह, जळ सरीखौ जेठवौ।—जेठवौ

ओजास-सं०पु० [सं० उद्भास, प्रा० उब्भास] १ प्रकाश, रोशनी।

उ०—अटक कटकां सत्रां अंतक अरक तक **ओजास**।—ल.पि.

क्रि०प्र०—करणौ, पड़णौ, होणौ। २ स्पष्टता।

ओजासणो, ओजासबो-क्रि०स०—प्रकाश देना, प्रकाशित करना।

अ०—प्रकाश होना, प्रकाशित होना।

ओजासियोड़ो-भू०का०कृ०—प्रकाशित (स्त्री० ओजासियोड़ी)

ओजूं-क्रि०वि०—१ फिर, पुनः, दुबारा. २ अब भी।

ओजौ-सं०पु०—मिस, बहाना, हीला।

ओजोळो-सं०पु०—बढ़ई का एक औजार।

ओझ-सं०स्त्री०—देखो 'ओज' (५), (६)।

ओझक-सं०स्त्री०—चौकन्ना होने का भाव।

ओझकणो, ओझकबो-क्रि०अ०—एकाएक डर जाने या पीड़ादि का अनुभव होने पर झटके से कांपना या हिलना, चौंकना।

उ०—माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा रांण प्रताप। अकबर सूतौ ओझकै, जांण सिरांणै सांप।—प्रथ्वीराज राठौड़

ओझकियोड़ौ–भू०का०कृ०—चौंका हुआ (स्त्री० ओझकियोड़ी)

ओझकौ–सं०पु०—१ स्मृति. २ देखो 'ओजकौ' (रू.भे.)

उ०—ना बाबा रे! कुण नींद वेच'र ओझकौ मोल लेवै।—वरसगांठ

ओझल–सं०स्त्री०—लचक। उ०—बळवंत तक तोलिया, धर ओझल वळ खाया।—केसोदास गाडण

ओझड़–वि०—१ भयंकर। उ०—आहवि झड़ां ओझड़ां ऊडै, राव चहुवांण तणै सिरि रीठ।—तीकमदास खिड़ियौ

२ अपार, असंख्य, अथाह।

सं०पु०— प्रहार, चोट। उ०—तीं पछै ऊंळा हाथ री ओझड़ सूं नाहर-राज सिपाह बळी रौ सीस उडायौ।—वं.भा.

ओझड़ी–सं०स्त्री०—उदर, पेट. देखो 'ओझरी'। उ०—हुरलां खहकां ओझड़ी, झबरक्कां फट्टं।—लूणकरण कवियौ

ओझड़ौ–सं०पु०—१ झटका. २ पेट की थैली। उ०—राव री जांघ तौ बच गई पण घोड़े रौ काळजौ बूकड़ा आंतड़ा ओझड़ा फाट काछ जावतौ नीसरियौ।—डाढ़ाळा सूर री बात

ओझण, ओझणौ–सं०पु० [सं० उपधन] कन्या को गौने के समय अथवा अन्य महत्वपूर्ण अवसर पर सीख देते समय दिया जाने वाला सामान, गौने का सामान। उ०—तिकौ सासरै गयौ। घणी खुस्याळी हुई। बधाई बांटी...। घरां री सीख मांगी। तरै झालां ओझणां री तयारी कीनी।—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात

ओझर–सं०पु० पेट, उदर।

ओझरी–सं०स्त्री०—१ पेट की थैली, पेट. २ उदरस्थ वह मल जो शव को चीरने पर निकलता है।

ओझळ–सं०पु० [सं० अवरुन्धन, प्रा० ओरुज्झन] १ ओट, आड़।

उ०— जंपू हिव ओझळ राख जीव न, पोढयौ तू साखां डाळां पत्र।

२ गुप्त. ३ अदृश्य। —ह.र.

ओझळणौ, ओझळबौ–क्रि०अ०—१ कूदना, फांदना। उ०—ओझळै अचीतौ रांन लागां उमंग। प्रतीतौ वरम याळां भमंग पूत।

—लिछमणसिंह सीसोदिया रौ गीत

२ चौंकना। उ०—हसावै भड़ां ताखड़ां लंघि हाथी, उडै पाव ज्यूं ताव दाझै इळा थी। छुवंता भळ ओझळै आप छाया, जिके अंबु अप्पित के वायु जाया।—वं.भा.

३ मिटना, नाश होना। उ०—सुर मुरलोक वदै सीसोदा, प्राछत सह ओझळै परा। होतां भेट समा राव हिन्दू, हुआ पाप संग्रांम हरा।

—दुरसौ आढ़ौ

ओझळणहार, हारौ (हारी), ओझळणियौ–वि०—कूदने या फांदने वाला, मिटने वाला, नाश होने वाला।

ओझळा–सं०स्त्री०—अग्नि की लपट।

ओझलांणौ— देखो 'ओझण, ओझणौ' (रू.भे.)

ओझाड़–वि०—उबड़-खाबड़।

सं०पु०—१ प्रहार, चोट, टक्कर। उ०—इतरै में आप ओझाड़ वाही सो उणरा दोय बटका हुवा और आप बागे री दावण खींच फाड़ नांखी।—पलक दरियाव री बात (रू.भे. ओझड़)

ओझाड़णौ, ओझाड़बौ–क्रि०स०—१ चीरना, फाड़ना। उ०—तुंड रै जोर हाथी पाड़िया, फेट दे घोड़ा सवार पाड़िया, डाढ़ां सूं सूरवीरां ने ओझाड़िया, झटकौ दे हेटा न्हांकिया।—वी.स. टीका

२ प्रहार रोकना। उ०—ओझाड़ियौ ढाल हूंता, नाराज झाड़ियौ आचां।—फतेसिंह महडू

ओझाड़णहार, हारौ (हारी), ओझाड़णियौ–वि०—चीरने वाला, प्रहार रोकने वाला।

ओझाड़िओड़ौ, ओझाड़ियोड़ौ, ओझाड़योड़ौ—भू०का०कृ०।

ओझाड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—चीरा हुआ, प्रहार रोका हुआ। (स्त्री० ओझाड़ियोड़ी)

ओझाट—देखो 'ओझाड़'। उ०—तरै इकी मण दोय री सांग बाही सौ सांग रांमदासजी ढाल सूं ओझाट सूं टाळ दीधी।

—रा.मा.मं.

ओझाळ–सं०स्त्री०—आग की लपट।

ओझावौ–सं०पु०—झलक। उ०—कहियौ यही ओझावौ पड़ियौ छै। खुण खाड नै बूरौ।—चौबोली

ओझौ–सं०पु०—खतरा।

ओट–सं०स्त्री०—१ आड़, रोक, जिससे सामने की वस्तु न दिखाई दे। उ०—१ लुकाती दिवलौ अंबर ओट, निरखवा आई औ संसार।

—सांझ

उ०—२ ओट उस ही की पकड़िए, उस ही का सरणा।

—केसोदास गाडण

२ बाधा, रोक, व्यवधान. ३ दोष (अ मा.) ४ शरण, पनाह, रक्षा, सहारा। उ०—१ तरै न लागै ताव, ओट तुहाळी आवियां। नदी हुई तूं नाव, भव सागर भागीरथी।—बां.दा.

उ०—२ क्रत दत कोट किया हूं यधकौ, हरि नग ओट रहांणौ।

—र.ज.प्र.

५ किसी वस्त्र का वह छोर जो किंचित मोड़ कर सिलाई किया गया हो, गोट, किनार।

ओटणी–सं०स्त्री०—कपास और रूई को पृथक करने की चरखी का एक काष्ट का डंडा जिसके लोहे के डंडे के साथ घूमने से रूई पृथक होती है।

ओटणौ, ओटबौ–क्रि०स० [सं० आवर्त्तन] १ कपास का चरखी में दबा कर रूई और बिनौलों को अलग करना. २ पुनरुक्ति करना.

३ पीसना, दलित या चूर्ण करना. ४ कष्ट देना. ५ किसी वस्त्र के छोर को किंचित मोड़ कर सिलाई करना. ६ गाड़ना, धूलि, या राख आदि में दबाना. ७ ओढ़ना।

ओटणहार, हारौ (हारी), ओटणियौ—वि०—ओटने वाला।

ओटवणौ, ओटवबौ—रू०भे०।

ओटाणौ, ओटाबौ, ओटावणौ, ओटावबौ—क्रि०प्रे०रू०।

ओटिओड़ौ, ओटियोड़ौ, ओटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

ओटपौ—वि०—विचित्र, अद्भुत, अनोखा। उ०—दंती हींडोळै झरोखां हेटै खुंभाळां झाटका देतां। फरै आज हजारी धाटका फौजां फाड़। रोळा जीप चाळागारा ओटपा घाटका राजा। काळा झोक लागै मेद पाट का कवाड़।—माधोसिंह सीसोदिया री गीत

ओटबडांग—वि०—उटपटांग, अंटसंट।

ओटवणौ, ओटवबौ—क्रि०स०—१ देखो 'ओटणौ'। उ०—मग सागर तजि सुद्ध भंमर कुण बंडौ घल्लै, अहि कसण ओटवै कमण रसण कर झल्लै।—रा.रू. २ अधिकार में करना, दबाना। उ०—अतुळीबळ 'जैतै' आपांणी, धड़ां तळै ओटबौ धर।

—सूजौ नगराजोत

ओटबौ—वि०—देखो 'ओटपौ' (रू.भे.)

ओटवियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ ओटा हुआ २ दबाया हुआ. ३ अधिकार में किया हुआ। (स्त्री० ओटवियोड़ी)

ओटि—सं०पु० [सं० उट] १ घास-फूस. २ आड़, ओट, व्यवधान।

ओटौ—सं०पु०—देखो 'ओठौ'।

ओटीजट—सं०स्त्री०—ऊँट के बाल।

ओटौ—सं०पु०—१ जलाशयों में अधिक जल आ जाने से ऊपर छल कर बह निकलने की क्रिया।

कहा०—बेटी ऊखरड़ी रौ ओटौ है—लड़की घूरे और तालाब के ओटे के समान है। जिस प्रकार घूरे को बढ़ते और पानी आने पर तालाब को भर कर पानी बाहर बहने में देर नहीं लगती उसी प्रकार लड़की को भी बड़ी होते या यौवन से छलकते देर नहीं लगती, शीघ्र ही उसके विवाह की फिक्र करनी पड़ती है।

क्रि०प्र०—निकळणौ, बेणौ, होणौ।

२ जलाशयों का वह नियत स्थान जिधर से उनकी समाने की सामर्थ्य से अधिक जल आ जाने पर बह कर बाहर निकल जाया करता है, परिवाह. ३ परदे के उद्देश्य से बनाई जाने वाली पतली दीवार, आड़, ओट. ४ रक्षा, बचाव। उ०—वेद पढ़े बिन समुझि बावरा, दे मत सूना दोटा। ऊमरदांन भला इक इसमें, अवरां सुभ का ओटा।—ऊ.का. ५ सहारा, शरण. ६ ऊँचा स्थान।

उ०—ग्रिह काज भूलिग्या ग्रहि ग्रहि ग्रहगति, पूछीजै चिंता पड़ी। मन अरपण कीधै हरि मारग, चाहै व्रज ओटै चडी।—वेलि.

७ विषय (रू.भे. ओठौ) ८ देव विशेष का छोटा चबूतरा।

ओठंगौ—सं०पु० [सं० अवष्टम्भ] सहारा, अटकन।

ओठंभ—सं०पु० [सं० अवष्टम्भ] १ आश्रय. उ०—सिर दूंढाहड़ थंभ, अनम समोवड़ नम्मिया। अधपतियां ओठंभ, भूलां किम भीमेण रा।

—अंबादान रतनूं

२ सहायक, रक्षक। उ०—विरधां तरुण बेलकां वासै, धर बाहर ओठंभ धांटाळ।—दोलो बारहठ

ओठ—सं०पु० [सं० ओष्ठ] होंठ, अधर (ह.नां.)

ओठम—सं०पु०—१ आश्रय, सहारा. २ शरणस्थल, रक्षा का स्थान। उ०—कुरंद विभाड़ धाड़ कैलपुरा, आई पचे न रीझ उर। अडर··· न करन वीकम इम, पातां ओठम सायपुर।—अज्ञात

वि०—१ सहायक, मददगार. उ०—निरधारां ओठम धणनामी।

—र.ज.प्र.

२ रक्षक। उ०—अमर सुजाव धरा रा ओठम, कळह अकारा फतेह करै। नरां तुरां थारा माधव नृप, सारा हिंदुसथांन सरै।

—माधोसिंह सीसोदिया री गीत

ओठारू—सं०पु०—ऊँट या सांडनी। उ०—गायां वा भैंसियां वा ओठारू बळध घणा आया।—द.दा.

ओठावणौ, ओठावबौ—क्रि०स०—ऐंठा करना, ऐंठाना, दृष्टांत देना।

ओठावणहार, हारौ (हारी), ओठावणियौ—वि०—ऐंठाने वाला।

ओठाविओड़ौ, ओठावियोड़ौ, ओठाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ओठियौ—सं०पु०—ऊँट पर सवार व्यक्ति।

कहा०—ओठियै नै पोठियौ भोळायौ (ओठियां रा पोठिया कहीं भोळावौ हो)—ऊँट पर सामान ले जाने वाले को सामान लदा बैल सौंप दिया। एक का दूसरे को और दूसरे का तीसरे को काम करने वाले के लिए।

ओठी—सं०पु० [सं० औष्ट्रिक] १ ऊँट पर सवारी करने वाला, ऊँट-सवार। उ०—या ही छै ओठी. राजाजी री सींव, तालर थोड़ा ओ ओठी सरवर मोकळौ।—लो.गी. २ राज्य सरकार द्वारा नियुक्त वह व्यक्ति जो ऊँट पर डाक, पत्र आदि लाने या ले जाने के लिए अथवा किसी व्यक्ति को बैठा कर लाने ले जाने के लिए नियुक्त किया गया हो। (मि० सुतरसवार) उ०—देस रा लोगां नूं फरमाय राखियौ थौ जे अहदी आवै तिण नूं खारा पांणी और भुरट वाळै मारग ल्यावणौ। पाछा लोटती बखतां दरबार सूं ओठी देता जिकां नूं आही जे फुरमावता।—पदमसिंह री बात. ३ ऊँट पर सवारी करने वाले डाकू, लुटेरे आदि। उ०—१ ओठी हाले अगे, पीठ घूमर पमंगळौ। आसथांन रौ उतन, साम तेरे उजवाळौ।—पा.प्र.

उ०—२ मुलतांन रै मारग रौ धाड़ौ आवै सो रात-दिन असवार ओठी दौड़बौ करै।—सूरे खींवे कांधळोत री बात

(ओठीड़ौ—अल्पा०)

ओठीपौ—सं०पु०—१ किसी राज्य सरकार का ऊँट पर डाक, पत्र अथवा किसी व्यक्ति को बैठा कर लाने ले जाने का कार्य या इस कार्य के लिए ऊँट के पालन-पोषण व सम्हालने का काम. २ लूट का माल।

ओठीबाळदौ—सं०पु०—बैल और ऊँटों का समूह (अस्वाभाविक)

कहा०—ओठी बाळदौ करणौ—अनमेल विवाह के लिए जिसमें वर और वधू की आयु में बहुत अधिक अंतर हो।

ओठेभ—देखो 'ओठम'। उ०—कवळ पत लूंटण बैण कह्या। रवि अंसिय ओठेभ आय रह्या।—पा.प्र.

ओठै—क्रि०वि०—वहां। उ०—तद ब्राह्मण कही ओठै हूं एक विद्या सीखूं छूं।—चौबोली

ओठौ—सं०पु०—१ भाव, विषय. २ उद्देश्य, अभिप्राय. ३ अवसर, मौका. ४ ऊंट, दृष्टांत।

कहा०—१ ओठा ही कदेई जांवण पड़ै (ओठा कदेई आथणी मिळै ?)—ऊँटणी का दूधक भी जमता ही नहीं। उस व्यक्ति के लिए जो कभी किसी के काम न आवै. २ ओठौ हौ अर ओखर हिलग्यौ—ऊँट सब वस्तुयें तो खाता ही है, एक गलीच बाकी था सो उससे भी हिल गया; पतित आदमी के और अधिक पतन पर कही जाती है।

५ उल्टे, विरुद्ध, विपरीत। उ०—ओठा दिन आयाह, खोटा मग कैरव खड़्या। जुध पंडव जायाह, सा'य जिताया सांवरा।

—रामनाथ कवियौ

ओडंडी—वि०—जो दंडित नहीं किया जाय।

ओडंडीस—वि० [सं० ऊद्दंडीश] बलवान, जबरदस्त। उ०—जोमंगी भंडीस ज्याग आयौ ज्यूं चंडीस जायौ, राजपत्री आयौ ज्यूं थंडीस। ब्याळरेस ओडंडीस असीसतौ लांगड़ौ कपीस आयौ, कोडंडीस कसीसतौ आयो गुड़ाकेस।—हुकमीचंद खिड़ियौ

ओड—सं०पु०—१ कुए पर बैलों को बांधने के लिए बनाया हुआ घास-फूस का मकान. २ एक जाति विशेष जिसके व्यक्ति पत्थर निकालने या मिट्टी खोदने का कार्य करते हैं. ३ इस जाति का व्यक्ति।

कहा०—ओड खंदेई हेटै कद आवै—ओड जाति का व्यक्ति कभी खदान में दबता नहीं क्योंकि वह मिट्टी या खदान खोदने में अभ्यस्त होता है। निपुण या होशियार व्यक्ति किसी के चंगुल में नहीं फँसता।

क्रि०वि०—तरफ, ओर (रू.भे. ओड़)

वि०—समान, तुल्य।

ओडकआवणी, ओडकआवबौ—क्रि०अ०—गर्भ धारण करने के निमित्त भेड़ का ऋतुमती होना।

ओडण—सं०स्त्री०—१ ढाल। उ०—ओडण पुड़ येक येक पुड़ असमर, हाते मूंठज हात लिया।—महारांणा खेता री गीत

२ आलय, घर. ३ खजाना, निधि. ४ ओढ़ने का वस्त्र (रू.भे. ओढ़ण)

ओडणौ—सं०पु०—देखो 'ओढ़णौ'।

ओडणौ, ओडबौ—क्रि०स०—१ देखो 'ओढ़णौ'। उ०—धवळ पयंपे रे धणी, की दुमनौ धर भार। ओडै धण री आवगी, करूं पहाड़ां पार।—वी.स. २ झेलना, सहन करना।

उ०—१ भल बाहौ बाहौ भड़ां, आय खड़ौ हूं एक। आवध म्हारी ओडियां, बणै न बार बिबेक।—वी.स.

उ०—२ पूगै हौदे पोढियौ, ओडै घाव अथाह। कुच भौऊं गजकुंभ नूं, नाहर भीड़ै नाह।—वी.स. ३ ओट लेना, आड लेना।

उ०—भागीजै तज भीतड़ा, ओडै जिम तिम अंत। किण दिन दीठा ठाकरां, काळा दरड़ करंत।—वी.स.

ओडणहार, हारौ (हारी), ओडणियौ—वि०।

ओडाणौ, ओडाबौ, ओडावणौ, ओडावबौ—स०रू०।

ओडिओड़ो, ओडियोड़ो, ओड्योड़ो—भू०का०कृ०।

ओडब—सं०स्त्री०—१ ढाल, फलक। उ०—कर ओडब करवाळ मैं, 'अभमन' अहनांणै। चकर विसन कर चाळवण, पर पक्ख प्रमांणै।

—मोडजी आसियौ

२ रागों की एक जाति, पाँच स्वर वाला एक राग।

ओडवणौ, ओडवबौ—क्रि०स०—१ देखो 'ओढ़णौ' (रू.भे.)

उ०—ओडव चाप ऊठियौ नरम्रंद, जहूंगम वायौ खांच जुम्रौ। उड गयौ सांवळ कर ओघौ, मौत विना धवळंग मुओ।—नवलजी लाळस

२ रथ आदि में बैलों को जोतना। उ०—आंण आंण धुरतळ ओडविया, समजत ओछंडिया सकळ। जूना धमळ ओड भुज झूसर, बोहळिया छांडियो बळ।—चतुरभुज बारहठ

ओडाणौ, ओडाबौ—क्रि०स०—देखो 'ओढ़ाणौ' (रू.भे.)

ओडायोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'ओढ़ायोड़ौ'। (स्त्री० ओडायोड़ी)

ओडाळणौ, ओडाळबौ—क्रि०स०—१ कपाट बंद करना. [सं० अवधारणं]

२ अधिकार में करना।

ओडाळणहार, हारौ (हारी), ओडाळणियौ—वि०—कपाट बंद करने वाला, अधिकार में करने वाला।

ओडाळिओड़ो, ओडाळियोड़ो, ओडाळयोड़ौ—भू०का०कृ०।

ओडाळियोड़ौ—भू०का०कृ०—(कपाट) बंद किया हुआ, अधिकार में किया हुआ। (स्त्री० ओडाळियोड़ी)

ओडांवणी, ओडावणी—सं०स्त्री०—कन्या के पिता व संबंधियों द्वारा दूल्हे के पिता, भाई व संबंधियों को दिया जाने वाला सिरोपाव या खिलअत।

ओडावणौ, ओडावबौ—क्रि०स०—देखो 'ओढ़ाणौ' (रू.भे.)

ओडावियोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'ओढ़ायोड़ौ' (रू.भे.)

(स्त्री० ओडावियोड़ी)

ओडियौ—सं०पु०—छोटी डलिया (अल्पा०)

ओडी—सं०स्त्री०—१ मवेशियों को चारा आदि डालने के लिए लोह अथवा बांस की बनी टोकरी, डलिया, टोकरी। उ०—ईंढी कवडाळी माथै पर ओडी। छैली अलकावळ मुखड़ै पर छोडी।—ऊ.का.

२ कुए पर बैलों को बांधने के लिए बनाया हुआ घास-फूस का गोलाकार मकान।

क्रि०वि०—तरफ, ओर।

ओडू—सं०पु०—देखो 'ओड़ू' (रू.भे.)

ओडै, ओडैं—सं०पु०—शरण में रहने का भाव, शरण। उ०—सिध रा सावक, चहुवांणां रा पुत्र और कोई रै ओडै न रहसी।—वं.भा.

वि०—समान, बराबर। उ०—खळ नाग देखै खाग चंच तें सवाई, सूरजमल जगनाथ के सवाई पाथ के से ओडै।—रा.रू.

ओडौ—सं०पु०—१ पशुओं के लिए चारा मापने का एक उपकरण, बड़ा टोकरा, खौचा (स्त्री० ओडी) २ आड, शरण, पनाह।

उ०—पड़ै डहोळा छातियां, नजर पड़ंतां नाह। आवै आवै ऊपरै, ओडौ हेर सिपाह।—बी.स.

ओढण–वि०—१ रक्षक। उ०—गढ़वी गांगौ गाविजै, स्यांम न मेल्है साथ। ओढ़ण अनिकारां नरां, हालां रा पण हाथ।—हा.झा.

सं०पु०—१ ओढ़ने का वस्त्र। उ०—ग्रह पुहप तणौ तिणि पुहपित ग्रहणौ, पुहप ई ओढ़ण पाथरजि।—वेलि.

सं०स्त्री०—२ ढाल। उ०—खग रूपी भड़ दाहिणै, घणै पराक्रम जांण। भुज ओढ़ण भूपाळ रै, वांमै तिकै बखांण।—रा.रू.

ओढणियौ—देखो 'ओढणौ' (अल्पा०) उ०—बाबर बीखरिया ओढणिये आडै। डाबर नयणां री टाबर वय डाडै।—ऊ.का.

ओढणी–सं०स्त्री०—(प्रायः विधवा) स्त्रियों के ओढ़ने की चादर (वस्त्र) जो प्रायः रंगीन होती है, उपरैनी। उ०—सिंघां सिर नीचा किया, गाडर करै गलार। अधपतियां सिर ओढणी, तौ सिर पाघ 'मलार'। —अज्ञात

ओढणौ–सं०पु०—स्त्रियों के ओढने का वस्त्र।

ओढणौ, ओढबौ–क्रि०स० [सं० आ+वह+क्त=ओढ नाम धातु ओढणौ] १ शरीरांग को वस्त्र आदि से आच्छादित करना, पहिनना। उ०—पहिरण-ओढण कंबळा, साठे पुरिसे नीर। आपण लोक उभांख रा, गाडर-छाळी खीर।—ढो.मा. २ धारण करना। उ०—राजोधर बळरांम रौ, कांधौ धर कमधज्ज। थळ आये बळ ओढणौ, गढपत्ती छळ कज्ज।—रा.रू. ३ रक्षा करना. ४ अपने ऊपर लेना, जिम्मेदारी लेना।

ओढ़णहार, हारौ (हारी), ओढणियौ–वि०—ओढ़ने वाला।

ओढाणौ, ओढाबौ, ओढावणौ, ओढावबौ—स०रू०।

ओढिओड़ौ, ओढियोड़ौ, ओढ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ओढव—देखो 'ओडव' (१) (रू.भे.)

ओढवणौ, ओढवबौ–क्रि०स०—देखो 'ओढणौ' (रू.भे. ओडवणौ)

ओढांमणी, ओढांवणी, ओढावणी—देखो 'ओडांवणी' (रू.भे.)

ओढाड़णौ, ओढाड़बौ—देखो 'ओढाणौ' (रू.भे.)

ओढाणौ, ओढाबौ, ओढावणौ, ओढावबौ—१ कपड़े से आच्छादित करना, पहिनना. २ ढांकना. ३ जिम्मेदारी देना।

ओढाणहार, ओढावणहार, हारौ (हारी), ओढाणियौ, ओढावणियौ–वि०—ओढ़ाने वाला।

ओढायोड़ौ, ओढावियोड़ौ—भू०का०कृ०।

ओढौ–वि०पु० (स्त्री० ओढी) १ विकट, टेढ़ा। उ०—ईढगरां कहियौ इम 'उदा', सुर न हालै मीढ सत। ओ तौ पंथ तिहारौ ओढौ, गोकळ वाळा पंथ गत।—अज्ञात २ भयंकर, भयावना। उ०—ओढौ वह गयंदां आफळतौ, असहां नह पलतौ अटल।—चांवंडदांन दधवाड़ियौ

सं०पु०—१ मौका, अवसर. २ देखो 'ओडौ'।

ओण–सं०पु०—१ देखो 'ओरण' २ देखो 'ओयण' (३)

उ०—महि मंडळ पदम पै ओपिया मंडळी। ओळगू अंत रै जिमी असमांण। रिख तणा ओण पाहार जिही रिदै, अवन जगदीस चै 'दलौ' जमरांण।—दळपतराय सींघोत रौ गीत

ओतपोत–वि०—इतना उलझा हुआ कि सुलझाना असंभव हो, बहुत मिला-जुला। उ०—अनंत वार भूखणे वणे वणाव एरसौ, जड़ाव जोति ओतपोत भूप रूप में जिसौ।—रा.रू.

ओतार– [सं० अवतार] देखो 'अवतार'।

ओतारौ–सं०पु०—पड़ाव, डेरा। उ०—पेखे पुर-वासियां घणी अगजीत धरा री, जादम 'गोयंद' तणै बाग कीधौ ओतारौ।—रा.रू.

ओताळ–सं०स्त्री०—जल्दी, शीघ्रता, उतावल। उ०—ज्यांरा द्रग कब जीतिया, सोह पंकज सींवाळ। पड़ही लहरां मिस पगां, त्यां हंदा ओताळ।—बां.दा.

ओताळिणौ, ओताळिबौ–क्रि०स०—प्रहार करना। उ०—हिन्दुवै राव ओताळियौ लोह हद, रगत मेछां तणै नदी राती। —मांनसिंह सक्तावत रौ गीत

ओतु–सं०स्त्री० [सं०] बिलाव (डि.को.)

ओतोळणौ, ओतोळबौ, ओतोळिणौ, ओतोळिबौ–क्रि०स०—झोंकना। उ०—बांकड़ै भांण रै बळ, रे वाळिया। उरां ऊपरी खेंग ओतोळिया। करमसी सगतावत रौ गीत

ओथ–क्रि०वि०—वहां। उ०—साथ हुई नै हालिया। आगै जाळ रौ रूंख हुतौ ओथ जाइनै ऊभा रहिया।—सयणी री बात

ओथणौ, ओथबौ–क्रि०अ०—अस्त होना, अवसान होना। २ बुरे दिन आना, दुर्भाग्य आना. [सं० अस्तुत्थ, प्रा० अहुसत्थ, अ० अहुत्थ=अउत्थ] ३ उकता जाना, उबना।

ओथियै–क्रि०वि०—वहां, उस जगह (रू.भे. ओथ]

ओद–सं०पु०—वंश, खानदान, औलाद। उ०—कोड़ पसाव पेख जग कहियौ, अधपत यों दाखै इण ओद। खीमुख सपथ करै अडसी सुत, सोदां नह बिरचै सीसोद।—बारूजी बारहठ

ओदक–सं०पु०—डर, भय, आतंक। उ०—मरहट्ठ मन भीरु हैं जब बाजि उठाया, तब ही पायन लग्गि है ओदक अकुळाया।—वं.भा.

वि०—भयभीत, डरा हुआ। उ०—ओदक अमीर पल्लटियौ एम तूटते तार नगहार जेम।—वि.सं.

ओदकणौ, ओदकबौ–१ चौंकना, चमकना, झिझकना। उ०—ठहरै जीव न ठाहि, आहि पुकारै ओदकै, मेछां रा घट मांहि, भाय लगाई 'भारथै'। —ला.रा.

२ डरना, भयभीत होना। उ०—अलड़ अलंगे ओदकै, भारथ खग भिड़वाव। तौ ऊभां 'करनेस' तण, पण न लागे दाव। —पदमसिंह री बात

ओदण–सं०पु०—गाड़ी के मुख्य (थाटे) तख्ते के नीचे लंबे लकड़ी के वे दो डंडे जिस पर समस्त गाड़ी का वजन आधारित रहता है।

ओदध–सं०पु० [सं० उदधि] समुद्र। उ०—ओदध कळ आर जळ नासत भरियौ जबर।—नवलजी लाळस

ओदन-सं०पु० [सं०] अन्न। उ०—भिच्छा मंगनहार का, जिन **ओदन** खाया। ते प्रभु कौं पहुंचै नहीं, असि त्रास डराया।—वं.भा.

ओदनिक-सं०पु० [सं० ओदनिक] रसोईदार, रसोइया (डिं.को.)

ओदरकणौ, ओदरकबौ-क्रि०अ०—डरना, भयभीत होना। (मि० ओद्रकणौ)

ओदरकणहार, हारौ (हारी), ओदरकणियौ-वि०—डरने वाला।

ओदरकिओड़ौ, ओदरकियोड़ौ, ओदरक्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ओदसा-सं०स्त्री० [सं० अपदशा] १ बुरी दशा। उ०—सुख-संपत अर **ओदसा**, सब काहू को होय। ग्यांनी काटै ग्यांन सूं, मूरख काटै रोय। २ फूहड़ स्त्री। —अज्ञात

ओदादार-सं०पु० [अ० उहृद+फा० दार] पदाधिकारी, ओहृदेदार। उ०—**ओदादार** आगै छा जकां नैं दूरि कीना मोटा कांम छोटा आदम्यां नें सौंप दीना।—शि.वं.

ओदी-सं०स्त्री०—शिकार करने के हेतु छिप कर बैठने का स्थान. २ युद्ध में खोदा गया गड्ढा. ३ सेंध। उ०—**ओदी** उघरै मिनख, खोदवै ब्यारां भारी। कोळं कंवळी रेत, खांण री सुरंगां सारी। —दसदेव

ओदीच-सं०पु०—देखो 'अवधीच'।

ओदीचा-सं०पु०—पुरोहित ब्राह्मणों का एक भेद विशेष जो अपने को उद्दालिक ऋषि की संतान कहते हैं। ये देवड़ा क्षत्रियों के पुरोहित हैं।

ओदीजणौ-क्रि०अ०—अधिक आंच लगने से तली में कुछ चिपक जाने से द्रव या गाढ़े पदार्थ का कड़ुआ होना (रू.भे. 'ओजणौ')

कहा०—हिलायां बिनां ओदीजै—बिना समुचित सावधानी के कार्य के बिगड़ने की संभावना रहती है।

ओदूं-देखो 'उदम' (१)

ओदौ-सं०पु० [अ० उहृद] पद, अधिकार-पद।

वि० [रा०] अधिक आंच लगने से तली में कुछ चिपक जाने से द्रव या गाढे पदार्थ का कड़ुआ होने की क्रिया या भाव अथवा इस प्रकार कड़ुआ हुआ पदार्थ।

ओद्रकणौ, ओद्रकबौ-क्रि०अ०—डरना, चौंकना, झिझकना।

उ०—१ उर **ओद्रकै** सास अभ्यास आंणे, वडा जूह पूंतारिआ पील वांणे। गंडां मारि बैसारिआ नीठ गज्जं, रुआमाळ फेरै करै झाड़ि रज्जं।—वचनिका

उ०—२ कुदता उडता कूदता, **ओद्रकता** वप आप 'जेहो' तोखै जाचणां, साहण इसा समाप।—बां.दा.

ओद्रक, ओद्रकौ-सं०पु०—१ आतंक, भय, धाक। उ०—सामंद्र डहोळा **ओद्रकां**, जांण हिलोळां हल्लियौ। आलम्म भड़ां अजमल्ल रा, घांण-मथांणे घल्लियौ।—रा.रू.

ओद्राव, ओद्राव, ओद्रावौ-सं०पु०—डर, भय, आतंक। उ०—१ जवनां रा जोर सूं हिंदुस्थान मैं **ओद्राव** पड़तां प्रतिहार नाहरराज मंडोवर सूं बलाव प्रत्यंतराज रै अधीन बणियौ।—वं.भा.

उ०—२ जिकां जिकां **ओद्रावा** पड़तां लारै जेण लागी, तिकां तिकां कायरां करेण लागी ताय।—सूरजमल मीसण

ओद्रास-सं०पु०—संहार, नाश।

ओद्राह-सं०पु०—भय, डर, आतंक।

ओध-सं०पु०—१ देखो 'ओदण'। उ०—कट **ओध** अरि त्रिय ईस कटी, घण हांसुअ थाळ कटे घरटी।—गो.रू. २ वंश, गोत्र।

ओधकणौ, ओधकबौ-क्रि०अ०—एकाएक उठ बैठना, चौंकना।

ओधकियोड़ौ-भू०का०कृ०—एकाएक उठ-बैठा हुआ, चौंका हुआ। (स्त्री० ओधकियोड़ी)

ओधण-सं०पु०—देखो 'ओदण'। उ०—बड़कै **ओधण** बंधिया, पैसे पई पताळ। सोच करै नह सागड़ी, धवळ तणी दिस भाळ।—बां.दा.

ओधवार, ओधवाळ-वि०—उत्तम वंश का, श्रेष्ठ, कुलीन।

उ०—सलेस जोभड़ा हमें, तमांम साख साख रा। पमंग **ओधवाळ** जंग-चाळ सीस पाखरा।—पा.प्र.

ओधदार-वि० [अ० उहृद+फा० दार] पदाधिकारी।

ओधायत-सं०पु० [अ० उहृद+रा० प्र० आयत] पदाधिकारी, ओहृदेदार, हाकिम। उ०—रथूं के धमसांण जिरूकूं देख लजावै सुधाभुंजू के विमांण, अवरही कारखांने तिस तिसके **ओधायत** अपनी-अपनी जिन सूं ले आय।—र.रू.

ओधार, ओधारौ-सं०पु०—देखो 'उधार'। उ०—**ओधार** मिळसी जित्तै तौ इयां ईं गुड़कतो रैसी।—वरसगांठ

कहा०—ओधार पोधार, थारै घरे सिधार—उधार मांगता है तो तेरे घर जा; उधार व्यवहार नहीं करना चाहिये।

ओधि-वि०—चालाक, धूर्त्त।

सं०पु०—वंश, गोत्र। उ०—गड़दनी विकिरि सत्थोर गत्त, सप्फरी छोह के लंक सत्त। जांबुअउ **ओधि** सापत्त जीह, आरुहिय तेणि आसउ अबीह।—रा.ज.सी.

ओधूळ, ओधूळौ-वि०—१ वीर, उदार (रू.भे. 'ऊधूल') २ मस्त। उ०—मीणां रा सौ ऊंठ पचास घोड़ा तिका इणहीज कांम ऊपर रहै। ग्यारूं तरफां रौ माल आवै सौ खावै, धूपटा कीजै, **ओधूळा** वहै।—सूरे खींवे कांधळोत री बात

ओधे-सं०पु०—१ अधिकार. २ ठाकुरजी का रसोइया (वल्लभ संप्रदाय)

ओधौ-देखो 'ओदौ' (रू.भे.)

ओनाड़, ओनाड़ौ—देखो 'अनड़' (डिं.को.) उ०—१ जिस सायत परदळ के विगाड़, निजदळ के किवाड़, जंग के जैतवार, अंगू के आचू के उदार।—र.रू.

उ०—२ राड़ौ फैलतां सामुद्र रूप अथागां कूरमां फोजां। **ओनाड़ौ** पटैल घुसे ग्राह ज्यां अठेल।—हुकमीचंद खिड़ियौ

ओप-सं०स्त्री०—१ दीप्ति, चमक, कांति। उ०—चीत उदार आदमां चंवरी, आप तणै कुळ चाढ़ण **ओप**।—अज्ञात. २ शोभा, छवि. ३ पालिश. ४ उपमा धारण करने वाला। उ०—इम राज करै अज नंद अयोध्या, नेत बंधी निखतैत। जंगां जीत तपोबळ जालम, **ओप** बड़ै अखडैत।—र.रू. ५ जिरह, कवच.

वि०—समान । उ०—लख हेली धण री धणी, करै न जुड़ियौ कोप । पैंतीसां पग धींसतौ, आवै डूंगर ओप ।—वी.स.

ओपची–सं०पु०—कवचधारी योद्धा ।

ओपटल–सं०पु०—ऊपर का होंठ (ह.नां.)

ओपण–सं०स्त्री०—कांति, दीप्ति, शोभा (मि० ओपण-धारा)

ओपण-धार–सं०पु०—दीपक (ह.नां.)

ओपणाणौ, ओपणाबौ–क्रि०स०—१ चमकाना. २ शान पर चढ़ाना, धार पैनी करना । उ०—तिकां री भालोड़ आगले पासे सूं बाहर दीसै छै भळभळाट करती । इयां नूं खींवौ सातवें रै सातवें दिन ओपणी सूं ओपणावै छै तींसूं भळका मारै छै ।—सूरे खींवे कांधळोत री बात

ओपणी–सं०स्त्री०—१ एक विशेष प्रकार का पत्थर जिससे सोने पर चमक लाने हेतु घिसाई की जाती है. २ शस्त्र पैना करने का उपकरण, शान । उ०—तिकां री भालोड़ आगले पासे सूं बाहर दीसै छै, भळभळाट करती । इयां नूं खींवौ सातवें रै सातवें दिन ओपणी सूं ओपणावै छै तींसूं भळका मारै छै ।

—सूरे खींवे कांधळोत री बात

३ चमक, कांति. ४ शोभा. ५ कवच, जिरह ।

ओपणौ, ओपबौ–क्रि०स०—१ चमकाना, प्रकाशित करना. २ पालिश करना. ३ साफ करना ।

क्रि०अ०—झलकना, चमकना. २ शोभायमान होना, फबना, शोभा देना । उ०—१ ओपै बाड़ी अमल री, बैरी रंग बिरंग । एकौ रंग उतारणौ, जेठ न दीठौ जंग ।—वी.स.

ओपत–सं०स्त्री० [सं० उत्पत्ति] १ आय, आमदनी । उ०—कामेतियां कन्हां ओपत खपत सुणि नवौ वीमाह करि अर महल मांहै पधारै ।

—सयणी री बात

२ धन, संपत्ति । उ०—ओपत साथां मिळै अलेखै, लूट तणी विगती कुण लेखै ।—रा.रू.

ओपती–वि०स्त्री०—उचित, शोभित, फबती (पु० ओपतौ)

ओपन–सं०स्त्री०—एक प्रकार की अंगूठी जिसमें बहुमूल्य जवाहरात जड़े रहते हैं ।

ओपनी—देखो 'ओपणी' ।

ओपम–सं०स्त्री० [सं० उपमा] १ उपमा । उ०—मिथळेस कुंवरि सीता सुतन, कवि एती ओपम कहत ।—र.ज.प्र. २ शोभा, सुंदरता. उ०—जप पात तूं अठ जांम, रविवंस ओपम रांम ।—र.ज.प्र.

३ आभूषण और जेवर । उ०—तोसूं कमण रमै तलवारां, कांकण हत्थ लोहमा कमाड़ । उजळ नूमळ नाक रौ ओपम, मोती पहलेगौ मेवाड़ ।—अज्ञात

वि०—सुंदर, शोभायमान ।

ओपमा—देखो 'उपमा' । उ०—जैसें रिखीस्वर राति अर दिन की संधि संध्या-वंदण तठधा होइ । रिखिस्वर की ओपमा कुचां नूं दी ।—वेलि. टी.

ओपमाणौ, ओपमाबौ–क्रि०स०—उपमा देना । उ०—वेख छटा जिणवार दी कव ओपमाया, जांण अहै मुख राती जुग चंद छुडाया ।

—ह.ना.

ओपर–सं०स्त्री०—सहायता, मदद, रक्षा । मि० 'ऊपर' ।

क्रि०वि०—ऊपर, ऊँचे स्थान में ।

ओपरौ–वि०पु० (स्त्री०ओपरी) १ अजनबी, अपरिचित । उ०—जोगी हुय गळिये कोट गया, वे आगला ओपरा आदमी नें गांव में रहण दे नहीं सु वे चरचा सुण नै मास १ गांव एक रै बैस रह्या ।—नैणसी २ टेढ़ा, व्यंग्य. ३ भयंकर, भयावह । उ०—सजे ओपरा टोप सोभा सिघाळी, जिके भीड़ियां दंस नागोद जाळी ।—वं.भा.

ओपवणौ, ओपवबौ–क्रि०अ०—देखो 'ओपणौ' । उ०—दसतांन सारवट बंध दिया, ओयणे दोय मोजा ओपविया ।—गो.रू.

ओपवणत–सं०पु०—होंठ, ओष्ट (ह.नां.)

ओपहरौ–वि०—भयंकर, भयावह । उ०—जग थाट पंचायण देणगरौ, आयौ धिख माथै ओपहरौ ।—गो.रू.

ओपावणौ, ओपावबौ–क्रि०स०—चमकाना, शोभायुक्त करना, प्रकाशित करना ।

क्रि०अ०—शोभा देना, शोभित होना ।

उ०—जुग पार पखै गा मुझ जोवंतां, राजि कन्है रहती दिन राति । आज स हार विचै ओपावै, जूना देव नवी आ जाति ।

—ठाकुरसी जगनाथोत सांमोर

ओपियोड़ौ–भू०का०कृ०—शोभित । (स्त्री० ओपियोड़ी)

ओफ–अव्यय—पीड़ा, खेद व शोकसूचक शब्द ।

ओबरड़ौ, ओबरौ–सं०पु०—१ पक्की कोठरी । देखो 'ओरौ' ।

उ०—ओ रातौ मांय धरमी ओबरा, ओ रातौ पिलंग बिछायओ, अठे गोगोजी धरमी पोढिया, मींडळ ढोळै छै वाव ओ ।—लो.गी.

२ दूध दही आदि रखने का पींजरा ।

ओबासणौ, ओबासबौ–क्रि०अ०—जँभाई लेना । उ०—जे बाळौ तौ सीह, नळा आकासह नांखै । ओबासै ऊससै ढांण कोटां नूं धांखै ।

—मालो आसियौ

ओबासी–सं०स्त्री० [सं० उश्वास] जँभाई (मि० 'उबासी' रू.भे.)

ओम (ओ३म्)–सं०पु० [सं०] प्रणव मंत्र, ओंकार ।

ओमकार–सं०पु०—१ प्रणव मंत्र. २ ईश्वर, परब्रह्म ।

उ०—अथ ओमकार अक्षर उचार, निस दिवस नांम रट रांम रांम ।

—ऊ.का.

ओमदोचा, ओमधीच–सं०पु०—देखो 'अवधीच' ।

ओमली–सं०स्त्री०—इमली । देखो 'आंमली' ।

ओमाहणौ, ओमाहबौ–क्रि०अ०—१ उत्सुक होना । उ०—भूप छभा भूपाळ, बदन दरसण ओमाहै । मिळ भेटै मुख राग, 'सतौ' निज भाग सराहै ।—रा.रू. २ याद करना ।

ओमाहणहार, हारौ (हारी), ओमाहणियौ–वि०—उत्सुक होने वाला, याद करने वाला ।

ओमाहिओड़ो, ओमाहियोड़ौ ओमाह्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ओमाहौ–सं०पु०—उत्साह, उमंग, उत्सुकता। उ०—अमल मंगायौ अरज कर, मांग लई तरवार। मिरजौ ओमाहौ करै, चाहै सौ मनुहार। —रा.रू.

ओय–अव्यय—पीड़ा, खेद या शोकसूचक शब्द।

ओयड़ौ–सं०पु०—१ खलिहान में अनाज को पूर्ण रूप से साफ कर लेने के बाद बंटवारे के समय जागीरदार व उसके द्वारा भेजे गये प्रतिनिधि जो बंटवारा करने तथा अपना लगान लेने जाता है, कृषकों द्वारा सब के लिए सम्मिलित रूप से की जाने वाली गोठ. २ खलिहान में अनाज की देख-रेख करने के लिए जागीरदार द्वारा भेजे जाने वाले व्यक्ति के लिये कृषकों द्वारा क्रम से दिया जाने वाला भोजन या भोज्य सामग्री. ३ गांवों में सरकारी कार्य हेतु आने वाले सरकारी छोटी श्रेणी के कर्मचारी के लिए गांव वालों की तरफ से अपनी अपनी बारी से दिया जाने वाला भोजन. ४ गांव की गायें आदि चराने वाले को रात्रि के समय गांव वालों द्वारा दिया जाने वाला भोजन।

ओयण–सं०पु०—१ शूद्र. २ देखो 'ओरण'। उ०—लड़ालूम डालघां लमूटै, जांणै झबरख झूंटणा। ओयण में लसकर लुगायां, खाणा चुगणा चूंटणा।—दसदेव ३ पैर, पांव, चरण (अ.मा.)

उ०—१ 'वीजा' हर हिंदवां भांण ताळा विलंद, आंण सुण कमण ओयण उठावै। पांण राखै जिकै प्रांण छोडै प्रसण, पांण जोड़ै जिकै अभै पावै।—चिमनजी आढ़ौ

ओयाळौ–वि० (स्त्री० ओयाळी) [सं० आज्ञापाल] किसी से दब कर रहने वाला, दबैल (मि० हेटवाळियौ) (रू.भे. ओइयाळौ)

कहा०—ओयाळै नै ओळबौ नै दूखता नै ठे(ह)—दबैल व्यक्ति और दुःख चोट आदि से पीड़ित व्यक्ति को क्रमशः उपालम्भ और चोट आदि पर ठेस लगने का कष्ट सहन करना ही पड़ता है कारण कि दबैल को उपालम्भ और दुखी को ठेस अनायास प्राप्त हो ही जाती है।

ओर–सं०पु०—१ नियत स्थान के अतिरिक्त शेष विस्तार, तरफ, दिशा. २ किनारा, पक्ष, छोर, सिरा. ३ आरंभ, आदि. ४ स्वीकार, मंजूर।

क्रि०वि०—तरफ।

वि०—दूसरा, अन्य। उ०—तेजाळ जागिया कमंध तोर, आगिया दबै भूपाळ ओर।—वि.सं.

ओरडर–सं०पु० [अं० ऑर्डर] आज्ञा, आदेश, हुकम।

ओरड़ी–सं०स्त्री०—मकान में सामान रखने का छोटा कमरा।

उ०—एक तौ अंध्यारी ढोला ओरड़ी रे, कोई दूजी हो अंध्यारी दूजी हो अंध्यारी जी रात, हांजी ढोला रात, अब घर आय जा।—लो.गी.

ओरठै–क्रि०वि०—और स्थान, अन्य स्थान, दूसरी जगह।

उ०—औरां रा कर ओरठै, पड़ियां पाड़ै बांग।—वी.स.

ओरण–सं०पु० [सं० उपारण्य, प्रा० उवारण] एक प्रकार का वह जंगल अथवा गोचर भूमि जो किसी देवी या देवता के अर्पण करदी जाती है तथा उसके पश्चात् उस भूमि पर उत्पन्न वृक्ष की लकड़ी भी कोई नहीं काट सकता (धार्मिक)

ओरणौ–सं०पु०—१ स्त्रियों के ओढ़ने का वस्त्र, ओढ़नी. २ हल के साथ बांधी हुई बांस की नली जिसमें किसान अनाज बोने के लिए डालते हैं (क्षेत्रीय) ३ खेत में अनाज बोने का एक प्रकार का ढंग। देखो 'ओरणौ'।

ओरणौ, ओरबौ–क्रि०स०—१ (युद्ध आदि में) झोंकना। उ०—पैला सुणिया पांचसै, घर में तीर हजार। आधा किया सिर ओरसी, जे खिजसी जोधार।—वी.स. २ अनाज को पीसने के लिए चक्की में या पकने के लिए पकाए जाने वाले पात्र में डालना।

ओरणहार, हारौ (हारी), ओरणियौ—वि०।

ओरिओड़ौ, ओरियोड़ौ, ओरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

ओरतौ–सं०पु० [सं० उरस्ताप] १ पछतावा, पश्चात्ताप। उ०—वणक कहै वापार विध, सीखी गुरु सूं सोझ। ऊंट मुआं नहिं ओरतौ, कापड़ ऊपर बोझ।—बां.दा. २ वहम, संदेह।

ओरवणौ, ओरवबौ—देखो 'ओरणौ, ओरबौ' (रू.भे.)

उ०—चोधारां लाल, लाल खग चोरंग, वयंड थंडां ओरवै वाज। फौजां कहर तमर पर फाड़ै, रव जम जळहळियौ जसराज। —चावंडदांन बारहठ

ओरस–सं०स्त्री०—लज्जा, खेद। उ०—एक राड़ भव मांह अवस्थी, ओरस आंणै केम उर। 'माल' तणा केवा कज मांगा, 'सांगा' तूं सालै असुर।—जमणोजी सोदौ

ओरिया–क्रि०वि०—इधर, इस ओर।

ओरियौ–सं०पु०—१ देखो 'ओरौ' (अल्पा०)

२ देखो 'ओरीसौ' (अल्पा०)

ओरियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ (युद्ध आदि में) झोंका हुआ. २ पीसने के लिये चक्की में या पकने के लिए पकाए जाने वाले पात्र में डाला हुआ अनाज। (स्त्री० ओरियोड़ी)

ओरी–सं०स्त्री०—१ सामान रखने का छोटा कमरा (पु० ओरौ)

२ बैठक का छोटा कमरा. ३ शीतला के समान हल्के दानों वाला प्रायः बच्चों को होने वाला एक रोग विशेष।

ओरीसौ–सं०पु० [सं० अवघर्ष] पूजा के निमित्त केसर या चंदन आदि घिसने का पत्थर का छोटा चकला। उ०—सू केसर चंदण रा सूकड़ा सूं जेसळमेर रा ओरीसां में होसनाक जुवांन घसै छै। —रा.सा.सं.

ओरू–क्रि०वि०—और, फिर, पुनः। उ०—ओरूं अकल उपाय, कर आछी भूंडी न कर। जग सह चाल्यौ जाय, रेला की ज्यूं राजिया। —किरपारांम

ओकणौ–सं०पु०—वर्षा के अभाव में कुये से पानी निकाल कर खेत की भूमि में तरी पहुँचाने की क्रिया जिससे भूमि आसानी से जोती जा सके।

ओरेभ-सं०पु०—केवट (प्र.मा.)

ओरो-सं०पु० [सं० अपवरक, प्रा० अववरअ, अप० अउवर, रा० ओरो] १ सामान रखने के हेतु घर का स्टोर रूम. २ वह कमरा जिसमें रोशनी हेतु बहुत कम खिड़कियां हों। उ०—राव सुरतांण नुं संहर बंद करि काळघरी गयो नै आपरा रजपूत २ कन्हैं राख गयो, कह गयो-'सुरतांण नूं इण ओरा मांहे थी बारै नीसरण मत देज्यो'। —नैणसी

ओळंग, ओळंगणो-सं०पु०—१ पहिचान, जानकारी, परिचय. २ बुलावा (लड़की के ससुराल से या मायके से) उ०—१ पहली ओळंग हुंजामाह:, ससरेजी ने मेल।—लो.गी. उ०—२ अबके ओळंगाणे पनामारू. देवरजी ने भेज। अब के चोमासे प्यारा अठे ही रहो।—लो.गी.

ओळंगू-सं०पु०—गवैया, ढोली। उ०—सिरपाव दे कुंवर री सारां ही नै भळावण दीवी। ओळंगू दिन बारह तांई मसांण में उळंगिया। तेरवें दिन राजा तखत बैठो।—पलक दरियाव री बात

ओलंडणो, ओलंडबो-क्रि०स०—उल्लंघन करना।

ओलंडियोड़ो-भू०का०कृ०—उल्लंघन किया हुआ। (स्त्री० ओलंडियोड़ी)

ओळंदी-सं०स्त्री० [सं० उपनंदिनी] नववधू के प्रथम बार ससुराल जाने पर उसके साथ जाने वाली सखी।
कहा०—ओळंदी किणने पीसने घालै—महमान के रूप में आए हुए या मौज के लिए घूमने वाले व्यक्ति से किसी परिश्रम के कार्य में सहायता पाने की आशा रखना व्यर्थ है।

ओळंब-सं०पु० [सं० अवलंब] १ सहारा, आश्रय, अवलंब, आधार. २ देखो 'ओळंबो' (रू.भे.)

ओळंबो, ओळंभ, ओळंभो-सं०पु० [सं० उपालंभ] उलाहना, उपालंभ।
उ०—१ आज धरा-दस ऊनम्यउ, काळी घड़ सखरांह। उवा धण देसी ओळंबा, कर कर लांबी बांह।—ढो.मा.
उ०—२ कंत सूं ओळंबो दियो इम कांमणी। ऐण घट आज रा केम सहिया अणी।—हा.झा. २ कलंक। उ०—सातळ सोम पछै समियांणो. कमधै दीध न कळह करि। हवड़ां निज कुळ तणो ओळंभो, माल हरै टाळियो मरि।—दुरसो आढ़ो

ओळ-सं०पु०—१ वह व्यक्ति जो गिरवी रहे (प्राचीन मुगलकालीन प्रथा), जमानती व्यक्ति।
सं०स्त्री०—२ हल द्वारा जमीन में खींची गई रेखा, सीता।
उ०—थापै एक अवर नह थापै, सीह कटारी हाथ समापै। 'उदो' उदक धरा उथापै, 'अखवी' एको ओळ न आपै।—दुरसो आढ़ो
३ पंक्ति, रेखा, लकीर। उ०—चमू देख सो गुणी जै ऊपर चखां, वइंड नाखिया वांमी ओळ रा वांनैत।—अज्ञात ४ पैतृक-संस्कार, वंश-गुण। उ०—आप रा थण री दूध पावण सूं घर री वीर ओळ वणी रहै।—वी.स. टी.
मुहा०—१ ओळ मत छोड़जो—पैतृक गुण नहीं छोड़ना चाहिए.
२ घर री ओळ—वंश-परंपरा का गुण।
५ लिखावट।

वि०—बराबर, समान, तुल्य। उ०—बिसरावै कुण कंथ कांमणी मेघ निरखती, जिकी न परबस होय अमीणी ओळ बिलखती।—मेघ०
क्रि०वि०—तरह, भांति।

ओळ, ओळइ-सं०स्त्री०—आड़, ओट, परदा।
क्रि०वि०—ओट में, आड़ में। उ०—कूंझड़ियां कुरळाइयां, ओळइ वइगि करीर। सारहुनी जिउं सल्हियां, सज्जण मंझ सरीर।—ढो.मा.

ओळखणो, ओळखबो-क्रि०स० [सं० उपलक्षणम्] देखो 'ओळखणो' (रू.भे.)
उ०—खीची कुमार नूं ओळखियो जरैं ही पाछो आइ कही—इसड़ा संकट सूं बचावै जिको मारण री तो संकळप भी लावै नहीं।—वं.भा.

ओळख, ओळखण, ओळखणी-सं०स्त्री०—पहिचान, परिचय, जानकारी।
उ०—१ विचारिय जांण वलीघ विसेख, अपे अंग ओळख लोहिय एक।—पा.प्र. उ०—२ ओळखणी आयै नहीं, ताहरां आंख्यां सूं ही सलाम कीवी।—पलक दरियाव री बात

ओळखणो-वि०—प्रसिद्ध, मशहूर, परिचित।

ओळखणो, ओळखबो-क्रि०स०—पहिचानना, जानना। उ०—इतरा में फकीर आंण दुवा करी। सारा ऊठ रांम रांम करी। ओळखियो तो केही नहीं पण फकीर जाजळमांन सो तपस्या वाळो मांणस आंनी न रहै।—सूरे खींवे री बात
ओळखणहार, हारो (हारी), ओळखणियो-वि०—पहिचानने वाला।
ओळखाणो, ओळखाबो, ओळखावणो, ओळखावबो-क्रि०स०—पहिचान कराना, परिचित कराना।
ओळखिओड़ो, ओळखियोड़ो, ओळख्योड़ो-भू०का०कृ०—पहिचाना हुआ, जाना हुआ।

ओळखांण, ओळखांणत-सं०स्त्री०—१ परिचय, जान-पहिचान, जानकारी. २ प्रसिद्धि।
वि०—परिचित।

ओळखाणो, ओळखाबो, ओळखावणो, ओळखावबो-क्रि०स० (प्रे०रू०) परिचित कराना, जानकारी कराना। उ०—पवन रूप पसरंत नहीं आपा ओळखावै, आप रहै एकंत पुरुष जांण न पावै।—पा.प्र.
ओळखणो, ओळखबो—स०रू०।
ओळखायोड़ो—भू०का०कृ०।
ओळखिउ-रू०भे०—(प्राचीन)

ओळक्खणो, ओळक्खबो-क्रि०स०—देखो 'ओळखणो' (रू.भे.)
उ०—माथइ सुंदरि जोगिणी, मारवणी सू प्यार। तिण जोगी ओळखिया, ढोलउ मारू-नार।—ढो.मा.

ओळग-सं०स्त्री०—१ स्मृति, याद। उ०—इत न्यारा बैठा रहां, साह लोग री कांण। ओळग नैड़ी सज्जणा, भावैं जांण म जांण।
—जलाल बूबना री बात
२ यश, विरुद, कीर्ति. ३ स्तुति। उ०—आवै पग ओळग छांह अलाह।—ह.र. ४ टहल, सेवा (ह.नां., पाठांतर) ५ विदेश, परदेश। उ०—ओळग चाल्यो धन कउ नाह, सहू अंतेवरी झूरई राउं।—वी.दे.

क्रि०वि०—अलग, दूर। उ०—पंथी एक संदेसड़उ, भल मांणस नइ भक्ख्य। आतम तुझ पासइ अछइ, **ओळग** रूड़ा रक्ख।—ढो.मा.

ओळगण–सं०स्त्री०—१ यश, विरुद, कीर्ति. २ प्रवास।

उ०—इहर राजा **ओळगण,** थांने जांण न देस। एथ बैठा ही आभरण, मोल महंगा लेस।—ढो.मा.

वि०—यशगान करने वाली, कीर्ति-गायक।

ओळगणौ, ओळगबौ–क्रि०स०—१ यशगान करना, स्तुति करना।

उ०—अड़सांणी तोनै ओळगियां, की नृप बियां **ओळगण** कांम।

—किसनौ आढ़ौ

२ (ढोली आदि द्वारा) गायन करना। उ०—आघा पड़वां **ओळगण,** जांगड़ जीमण जाग। रण झड़तां भड़ दूर कौ, सुणसी सींधू राग।

३ चलना, प्रवास करना। —वी.स.

ओळगणहार, हारौ (हारी), ओळगणियौ—वि०।

ओळगिओड़ौ, ओळगियोड़ौ, ओळग्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ओळगि–सं०पु०—परदेश, विदेश, प्रवास। उ०—कुसळ **ओळगि** करि बाहुड़ां। अमावस कौ दिन पहुंतौ छइ आय।—वी.दे.

ओळगियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ प्रशंसा या विरुद गाया हुआ. २ (ढोली आदि द्वारा) गायन किया हुआ. ३ प्रवास किया हुआ। (स्त्री० ओळगियोड़ी)

ओळगियौ–वि०—१ प्यारा, परिचित. २ परदेशी।

उ०—म्हारा **ओळगिया** घर आज्यौ जी।—मीरां

ओळगी–सं०पु०—देखो 'ओळगि'। उ०—सदी मतवाळा ज्युं घलई, तिणी घरी **ओळगी** कांई करेसतौ।—वी.दे.

ओळगुवौ, ओळगू–सं०पु०—१ वंशावली के साथ वंश-कीर्ति पढ़ने वाला गायक, गवैया। उ०—तठा उपरायंत **ओळगुवां** वाजदारां नै इनांम दीजै छै। —रा.मा.सं. २ स्तुति। उ०—वूठा मेह **ओळगू** वळिया, कवी हुलास वरद्ध कूंपळिया प्याला मद पीवण पातळिया, एक वार आयौ अलवलिया।—किसनजी आढ़ौ

ओळग्ग—देखो 'ओळग'। उ०—पखाळै तीरथ अड़सठ पग्ग, इंद्रादिक देव करै **ओळग्ग**।—ह.र.

ओळग्गणौ, ओळग्गबौ—देखो 'ओळगणौ' (रू.भे.)

उ०—**ओळग्गं** रांम ज आपौ आप, बिखै त्यां पंच सकै नंह व्याप।

ओळग्गियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'ओळगियोड़ौ'। (स्त्री० ओळग्गियोड़ी)

ओलज, ओलझ–सं०स्त्री० [रा० ओ+सं० लज्जा] लज्जा, शर्म, लिहाज

उ०—घट घट घणनांमी स्वांमी सुरराई, अंतरजांमी हुय **ओलज** नह आई।—ऊ.का.

ओलण–सं०पु० [सं० आलेपन] भोजन करते समय रोटी के साथ लगा कर खाया जाने वाला द्रव या गाढ़ा पदार्थ जैसे शाक, दूध, दही आदि। उ०—१ घर घर मांही घूम लाख विधि **ओलण** ल्यावै, हसै खलक मुख हेर पलक भर चैन न पावै।—ऊ.का.

उ०—२ आतीं **ओलण** नै अंबक दक आयौ।—ऊ.का.

ओलणौ, ओलबौ–क्रि०स०—१ मिलाना, मिश्रित करना. २ भोजन को द्रव पदार्थ या शाक, दूध, दही आदि में डुबाना या मिलाना.

क्रि०अ०—३ छिपना, गुम होना।

ओलणहार, हारौ (हारी), ओलणियौ—वि०।

ओलिओड़ौ, ओलियोड़ौ ओल्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ओळबौ, ओळभौ, ओळमौ—देखो 'ओळंबौ' (रू.भे.)

उ०—१ अगाड़ी थूं जा आगड़ौ फीटा पड़े फिटोळबा। एक ने एक देखौ अबै आपस देवे **ओळंबा**।—ऊ.का. उ०—२ वीर पुरस री स्त्री लहारी नै **ओळभौ** देती कह रही छै।—वी.स. टी.

उ०—३ महमद घड़ाद्यो जी सुसराजी सवा लाखां री रखड़ी म्हारी सासूजी के पास ध्यांन दे'र सुणियौ जी थारी भवड़ देछै **ओळमा**।—लो.गी.

ओळमोळा–वि०—समान, तुल्य।

ओलरणौ, ओलरबौ–क्रि०अ०—बादल का झुक कर बरसना, वर्षा का शुरू होना, तेज वर्षा होना। उ०—धांसू ढोल्हरिया सखियां घणि-याळी। आंसू **ओलरिया** अंखियां अणियाळी।—ऊ.का.

ओलांडणौ, ओलांडबौ–क्रि०स० [सं० उल्लंघन] उल्लंघन करना, छोड़ना।

उ०—सजु करै अहीरां सरिस सगाई, **ओलांडे** राजकुळ इता।—वेलि.

ओळा, ओला–सं०पु० [सं० उपल] १ वृष्टि के हिम-पाषाण पत्थर, ओले (डिं.को.)

उ०—केहर कुंभ विदारियौ, गजमोती खिरियाह। जांणे काळा जळद सूं, **ओळा** ओसरियाह।—बां.दा. २ बिनौला. ३ मिश्री के लड्डू। उ०—खुटिया लखनऊ का, गटा कनोज का, पेड़ा मथुरा का, **ओळा** सिकंदरा का अदभुत हुवै है।—बां.दा. ४ वज्र.

५ सहारा, आश्रय, मदद. ६ आड़, रोक, शरण। उ०—दारण 'कमा' लूंबिया दोळां, आंनै लिया दिवाळां **ओळा**।—रा.रू.

कहा०—अबै ओळा (ओला) क्यूं लेवौ हौ—अब किसकी शरण लेते हो। अब डर कर किसी की आड़ क्यों लेते हो?

क्रि०वि०—इस तरफ, इधर। उ०—दळ **ओला** पैला दुहूं, लत्थौ-बत्थ हुवाह। जेथ मुवा जे जीविया, जे जीविया मुवाह।—बां.दा.

ओळा, ओळ–वि०—सब, समस्त।

ओलाटणौ, ओलाटबौ–क्रि०अ०—लोटना। उ०—एक नवि रहइ पुहर नइ घड़ी, एक **ओलटइ** आडी पड़ी।—कां दे.

ओलाणौ–सं०पु०—मिस, बहाना।

ओलाणौ, ओलाबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०)—मिलवाना, मिश्रित करवाना। ('ओलणौ' का प्रेरणार्थक रूप)

ओलाद–सं०स्त्री०—देखो 'औलाद'। उ०—असली री **ओलाद,** खून करयां न करै खता। वाहे वदवद वाद, रोढ़ दुलातां राजिया।

—किरपारांम

ओळा-दोळा, ओळा-बोळा–क्रि०वि०—चारों ओर।

सं०स्त्री०—चौतरफ।

ओळा-भोळा–वि०—समान, बराबर, सदृश, तुल्य, समता ।

ओलायोड़ौ–भू०का०कृ०—मिलवाया हुआ, मिश्रित कराया हुआ । (स्त्री० ओलायोड़ी)

ओलाळ–सं०पु०—वर्षा के दिनों में नन्ही-नन्ही बून्दों में होने वाली क्षणिक वर्षा (क्षेत्रीय)

ओळावो–सं०पु०—बहाना, मिस । उ०—लादी भारी नै ओळावो लेती, दुरभख बारी नै बोळावो देती ।—ऊ.का.

ओळि–सं०स्त्री०—देखो 'ओळी' । उ०—सात-सात ओळि पाइक की बैठी, सात-सात ओळि पाइक ।—वचनिका अचळदास खीची री

ओळिया–सं०पु०—एक प्रकार का गेहूँ बोने का ढंग विशेष अथवा इस ढंग से बोये हुए गेहूँ ।

ओलियोड़ौ–भू०का०कृ०—मिलाया हुआ, मिश्रित किया हुआ । (स्त्री० ओलियोड़ी)

ओळियो–सं०पु०—१ लिखने के लिए कागज, कोरा कागज. २ लिखा हुआ लंबा कागज. ३ वह व्यक्ति जो ऋण के बदले किसी के यहां गिरवी रह जाता है या रक्खा जाता है (प्राचीन प्रथा-विशेष) उ०—मेड़ता री लणियो तिलोकचंद जिण रुपया तीन हजार आपरा घर सूं दिखणियां नूं देनै पुरोहित हरजीवण, भंडारी सोभाचंद नै मुहणोत ग्यांनमल, मुंहता बांकीदास बगेरै जोधपुर रा मुसद्दी आगरै ओळिया हुता ज्यांनूं छुड़ाया ।—बां.दा.

ओलियो–सं०पु० [अ० 'वली' का बहु०] संत और महात्मा लोग, सिद्ध । उ०—तोड़ जोड़ तदबीर में, कसर न राखे काय । आप अकबर ओलियो, गढ़ वो लियो न जाय ।—बां.दा.

ओळींवणो, ओळींवबो–क्रि०स०—१ देखो 'ओहींवणो'. २ उलीचना । ओळींवणहार, हारौ (हारी), ओळींवणियो—वि० । ओळींवियोड़ौ, ओळींवियोड़ौ, ओळींव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

ओलींडणो, ओलींडबो–क्रि०स०—१ ऊपर चढ़ना. २ उल्लंघन करना, लांघना. ३ पशुओं का संभोग करना ।

ओलींडियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ ऊपर चढ़ा हुआ. २ उल्लंघन किया हुआ, लांघा हुआ. ३ पशुओं द्वारा संभोग किया हुआ । (स्त्री० ओलींडियोड़ी)

ओलींदी—देखो 'ओलंदी' (रू.भे.)

ओळी–सं०स्त्री०—१ पंक्ति, रेखा. २ लिखावट. ३ हल द्वारा भूमि पर खींची जाने वाली रेखा, सीता ।

ओली–क्रि०वि०—इस ओर । उ०—ओली तट हिंदू असां, पिड़ सिंधू पारांह । किण सांमल करसो कळह, सोढां सिरदारांह ।—पा.प्र.

ओलीकानी–क्रि०वि०—इस तरफ, नजदीक ।

ओलीजणो, ओलीजबो–क्रि०स०—मिलाया जाना, मिश्रित किया जाना ।

ओलीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—मिलाया गया हुआ । (स्त्री० ओलीजियोड़ी)

ओळी-बोळी–क्रि०वि०—१ चारों ओर. २ आस-पास ।

ओळुंबो–सं०पु०—१ बिच्छू के डंक मारने पर उत्पन्न वेदना. [सं० उपालंभ] २ उलाहना, उपालंभ ।

ओळूं, ओळूंड़ी–सं०स्त्री० [सं० अवलय] देखो 'ओळू' ।
उ०—१ मन तूटयौ आसा मिटी, नैणां खूटयौ नीर । ओळूं कर कर आपरी, सूक्यौ सकळ सरीर ।—अज्ञात
उ०—२ ऊंची तौ खिवै ढोला बीजळी, नीची तौ खिवै छै निवांण, ओजी ओ गोरी रा लसकरिया ओळूंड़ी लगायर कोठै चाल्या ।—लो.गी.

ओळूंबी—देखो 'ओलींदी' (रू.भे.)

ओळूंबो—देखो 'ओळुंबो' (रू.भे.)

ओळू, ओळूड़ी–सं०स्त्री [सं० अवलय] १ याद, स्मृति । (ओळूड़ी, ओल्यूड़ी—अल्पा०) उ०—१ सांकड़ै मारगिये सरमाय, घूंघटै ओळूडी अटकाय । गई धण सरवरियै री तीर, भुकी भट काळी लट छिटकाय ।—सांझ उ०—२ ऊभी आंगणियै बोळूडी आवै, गद गद मुरळी सुर ओळूड़ी गावै ।—ऊ.का. २ वियोग की अवस्था में गाया जाने वाला एक लोक गीत. ३ पुत्री को ससुराल विदा देने के पश्चात् गाया जाने वाला गीत ।

ओळूवाळ, ओळूवाळो–वि०—उत्कंठित, इच्छान्वित, उत्सुक (डिं.को.)

ओळे–क्रि०वि०—१ शरण में, आड़ में. २ ओट में, आड़ में । उ०—उत्तर आज स उत्तरउ, पड़सी वाहळियांह । उर ओळे प्री राखियइ, मुंधा काहळियांह ।—ढो.मा.

ओले–क्रि०वि०—देखो 'ओलै' (रू.भे.)
कहा०—ओलै सूवै नै ऊनो खावै जिण घर वैद कदै नीं आवै—सदैव किसी छत के नीचे या किसी की ओट में सोने वाला और नित्य ताजा भोजन करने वाला कभी रोगी नहीं हो सकता ।

ओलंड़ौ–वि०—१ जूठा. २ स्थान-स्थान पर जूठा करने वाला, खाने के उद्देश्य से जगह-जगह पर मुंह डालने वाला ।

ओळै-दोळै–क्रि०वि०—१ चारों ओर. २ आस-पास ।

ओळै–क्रि०वि०—देखो 'ओळे' । उ०—१ सखी अमीणो साहिबो, जमसूं मांडै जंग । ओळै अंग न राख ही, रण रमिया दे रंग ।—बां.दा.

ओलै—इस ओर । उ०—दिल्ली में राज करतां इण तैमूर काबळ रै अधीस आपरी विस्वासपात्र मुगल रमजांनबेग करलोया रै ओलै तट पेलियो ।—वं.भा.

ओळोदोळो–क्रि०वि०—१ चारों ओर. २ आसपास ।

ओळो–सं०पु०—१ ओट, बचाव, आड़ । उ०—धरा री लोभ नह रिदा में धारियो, अंग री ताकियो नहीं ओळो । कंपनी कैद सूं भ्रात ने काढ़ियो, रात आधी समै करै रोळो ।—बुधजी आसियो
२ शरणस्थल, सहारा. ३ सर्दी की ऋतु में पशुओं को सर्दी से बचाने के निमित्त बनाया गया स्थान. ४ मिश्री का लड्डू. ५ वृष्टि के हिम-पाषाण पत्थर । उ०—उड दळां भळां बोळां अनेक, ओळा जिम गोळा रीठ एक ।—वि.सं.
पर्याय०—असण, करक, गड़ो ।

६ लज्जाजनक कार्य करने के पश्चात् मुंह छिपाने का भाव ।

मुहा०—ओलो लेणी—१ ओट लेना, आड़ लेना. २ शरण लेना ।

ओळी-ओळ–सं०स्त्री० [अनु०] पंक्तिबद्ध, पूर्ण, पूरा (खेत)

ओल्यूं—देखो 'ओळू' ।

ओल्हरणौ, ओल्हरबौ–क्रि०अ० [सं० उद+लहरी=उल्लहरणम्] तरंग का उठना, लहर उठना । उ०—**एको समंद इसौ ओल्हरियौ**, सात समंद जग हुवा समास । देसी तौ आसीम घणा दिन, सूरजदेव तणौ सपतास ।—महाराणा राजसिंह रौ गीत

ओल्हौ—देखो 'ओळी' (रू.भे.)

ओवडणौ, ओवडबौ–क्रि०अ०—१ पड़ना, गिरना । उ०—धर जांग सेहर अंब धारा **ओवडै** अणपार ।—रा.रू. २ बरसना ।

उ०—आवरत मेघ सम **ओवडै**, घड़ी पंच वग्गी खड़ग ।—रा.रू.

ओवडियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ गिरा हुआ. २ बरसा हुआ । (स्त्री० ओवडियोड़ी)

ओवण—देखो 'ओरण' (रू.भे.)

ओवरकोट–सं०पु० [अं०] प्राय: जाड़े में पहना जाने वाला घुटनों तक लंबा कोट ।

ओवरसियर–सं०पु० [अं०] इमारतों, सड़कों आदि व इन पर कार्य करने वाले मजदूरों पर निगरानी रखने वाला इंजीनियरी मुहकमो का एक कार्यकर्त्ता ।

ओवौ–सं०पु०—हाथी फंसाने का गड्ढा ।

ओसंकणौ, ओसंकबौ–क्रि०अ०—पराजित होना, हारना । उ०—असुर ग्यादळ **ओसंकै** घण घावां बक्की ।—वी.मा.

ओसंकणहार, हारौ (हारी), ओसंकणियौ–वि०—पराजित होने वाला.

ओसंकिओड़ौ, ओसंकियोड़ौ, ओसंक्योड़ौ–भू०का०कृ०—पराजित, हारा हुआ ।

ओस–सं०स्त्री० [सं० अवश्याय] १ हवा में मिली हुई भाप जो रात्रि में जलकणों के रूप में पदार्थों पर पड़ी हुई प्रातःकाल में दिखाई देती है. शबनम ।

कहा०—ओस रौ पांणी है—**ओस का जल है; अत्यन्त अल्प व निरर्थक वस्तु के लिए ।** [रा०] २ पर्व विशेष पर किसी अमांगलिक कार्य के हो जाने से पर्व के न मानने की प्रतिज्ञा ।

क्रि०वि०—अवश्य । उ०—फौजां फेरौ राव री, हूं आयौ कर रोस । भाग्यां भड़ न कहावस्यौ, दूध लजास्यौ **ओस** ।

ओसण–वि०—कड़ुआ, अप्रिय, कटु (डिं.को.)

ओसणणौ, ओसणबौ–क्रि०स०—(आटा आदि) गूंधना ।

ओसणियोड़ौ–भू०का०कृ०—गूंधा हुआ ।

ओसता, ओसथा–सं०स्त्री० [सं०] अवस्था, उम्र, आयु ।

उ०—**अब** ज्यों ज्यों **ओसता** बढ़ी, त्यों त्यों वप वाढ़ा ।

—हिंगळाजदांन कवियौ

ओसधि, ओसधी—देखो 'ओखधी' ।

ओसधीस—देखो 'ओखधीस' (नां.मा.)

ओसर–सं०पु०—१ मृतक के पीछे बारहवें दिन किया जाने वाला भोज (यौ० ओसर-मोसर) [सं० अवसर] २ अवसर, मौका ।

उ०—कद आसी पाछौ भलै यौ **ओसर** या बार ।—सगरांमदास

कहा०—१ ओसर चूकी डूमणी गावै ताळ-बेताळ—**अवसर चूकी हुई डूमनी ताल-बेताल गाती है; अवसर निकल जाने के बाद काम** ठीक-ठीक उत्साह से नहीं होता. २ ओसर **चूक्यां मोसर** कोनी मिळै—गया हुआ समय दुबारा हाथ नहीं आता ।

[सं० असुर] ३ असुर, राक्षस (मि० ओसुर)

ओसरणौ, ओसरबौ–क्रि०अ०—जोर से बरसना (मि० उसरणौ-रू.भे.)

उ०—१ आंखड़ी **ओसरियौ** नंह नीर, जांणियौ भूख भाग रौ मेळ ।

—सांभ

उ०—२ फौजां तणा अबोळा फिरिया, ओळां जिम गोळा **ओसरिया** ।

—वरजूबाई

ओसरियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'उसरियोड़ौ' । (स्त्री० ओसरियोड़ी)

ओसरौ–सं०पु०[सं०अवसर] १ एक दिन छोड़ कर आने वाला ज्वर (अमरत) २ किसी कार्य के लिए वह अवसर जो कुछ अंतर देकर क्रमश: प्राप्त हो, पारी ।

ओसळ–वि०—बराबर, समान, तुल्य । उ०—मंगण मंगण सूं पद पद रद पीसै, डूमां देसोतां दळ **ओसळ** दीसै ।—ऊ.का.

ओसळणौ, ओसळबौ–क्रि०अ०—भयभीत होना, भगना । उ०—असतौ नर ज्येता नर **ओसळिया**, चलिया अनळ हुवा धकचाळ । मेक भुजां मांडी मेवाड़ा, तौ विण कुण मांडै रंणताळ ।—ओपौ आढ़ौ

ओसवाळ–सं०पु०—जैन धर्म को मानने और प्राय: व्यापार करने वाली एक जाति विशेष अथवा इस जाति का व्यक्ति ।

ओसांण–सं०पु०—१ अहसान, अनुग्रह, उपकार । उ०—समझदार सुजांण, नर ओसर चूकै नहीं । ओसर रौ **ओसांण**, रहै घणा दिन राजिया ।—किरपारांम

२ अवसर, मौका । उ०—सो सगळो साथ छींट-छींट कण-कण कर दियो । **ओसांण** खता हुइ गया । घोड़ो मांणस जे धके चढ़ियो सोही गुड़ भेळो हुवो ।—डाढ़ाळा सूर री बात ३ विश्राम ।

ओसाणौ, ओसाबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०)—गूंधने के लिए प्रेरित करना, गूंधाना ('ओसणणौ' का प्रे०रू०)

ओसाप–सं०पु०—१ शौर्य, पराक्रम । उ०—ऊझळै अमाप भुजां **ओसाप** धराज आळौ, राजा आज वाळौ, खांपां न मावै आरांण ।

—लिछमणसिंह सीसोदिया रौ गीत

२ साहस, हिम्मत । उ०—खींवौ, विजौ धाड़वी **बडा दौड़ा बडा** चोर । विजौ सोभित वसै । खींवौ नाडोळ वसै, वेहूं'रा **ओसाप बडा** ।

—चौबोली

३ शक्ति । उ०—**ओसाप** कायरां भागी, सूरां लाज लगी अगी ।

—फतौ महडू

४ दान। उ०—सोन न मौज समक्ख्ण कविभरणां दालिद्र कप्पणणं, प्रोसाप तेज, प्रताप, प्रविचळ, पहवि जस पस्सरं।—ल.पिं.

५ कीत्ति, महिमा। तनों मनों यार नै गलड़ी ढाढ़ी गावै। प्रागै प्रोसाप परवाड़ा वूडां रा, दातारां रा, मांगणगरां रा सुणावै।

—जलाल बूबना री बात

६ एहसान, उपकार।

प्रोसारौ–सं०पु०—दालान, बरामदा, प्रोसारा का छाजन, सायबान।

प्रोसास–सं०पु०—निश्वास।

प्रोसियाळौ–वि०—१ प्राश्रित, निर्भर। उ०—**प्रोसियाळा** प्रमे, टोडा-भ्रल टळियां नहि, मेणीयात राख्यां मे, जांमोकांमी जेठवा।

२ दबेल (रू.भे. प्रोयाळौ)

प्रोसीजणौ, प्रोसीजबौ–क्रि० भाव वा०—गूंधा जाना।

प्रोसीसौ–सं०पु० [सं० उपशीर्ष] सिरहना, तकिया (डिं.को.)

उ०—सोना रौ पिलंग कसणां कसियौ छै सौ कैसोहेक सोभायमांन दीसै छै? जांणै खीर-समुद्र रा भ्राग छै। **प्रोसीसा** गींडवा कैसा विराजै छै।—रा.सा.सं.

प्रोसुर–सं०पु० [सं० प्रसुर] प्रसुर, राक्षस। उ०—तज गया गहबळ खायतापां, भभक **प्रोसुर** भागिया। उण ठोड़ जिण रा रिखां, प्राश्रम जाग घूमर जागिया।—र.रू.

प्रोसौ–सं०पु० [सं० प्रवसव] प्रांखों में डालने का सुरमा, प्रंजन।

प्रोहं–सर्व०—१ वही. २ मैं। उ०—**प्रोहं** सोहं प्रखया प्रभया, प्राइ प्रजया विजया उमया।—देवि.

प्रोह–प्रव्यय—प्राश्चर्य, खेद या उपेक्षासूचक शब्द।

प्रोहड़णौ, प्रोहड़बौ–क्रि०स० [सं० प्रवहिडनम्] १ हटाना, ठेलना।

उ०—देख सखी धव री दया, पैलां उर दळ चाढ़। प्राडै भालै **प्रोहड़ै**, प्रावै कांकड़ काढ़।—वी स. २ रोकना, मना करना।

क्रि०प्र०—३ पीछे हटना, हार खाना। उ०—प्रौर मुवा सुण **प्रोहड़ै**, बरसां पांच बिचाळ। घर में मायड़ घातियौ, बटकै पूचां बाळ।—वी.स.

प्रोहड़णहार, हारौ (हारी), प्रोहड़णियौ—वि०।

प्रोहड़िप्रोड़ौ, प्रोहड़ियोड़ौ, प्रोहड़योड़ौ—भू०का०कृ०।

प्रोहड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ हटाया या ठेला हुप्रा. २ रोका या मना किया हुप्रा. ३ पीछे हटा या हार खाया हुप्रा।

(स्त्री० प्रोहड़ियोड़ी)

प्रोहड़ौ–सं०पु० [सं० प्रवहेडनम्] १ टोकना, टोकने की क्रिया या भाव।

उ०—बाभी हेकण बैर में, बोळविया दस बीस। प्रब तौ देवर **प्रोहड़ौ**, संचै भार न सीस।—वी.स. २ प्रादर योग्य पुरुष को किसी बात का दिया गया कटु उत्तर (रू.भे. प्रप्रोड़ौ, प्रउड़ौ, प्रवड़ौ, प्रोड़ौ)

प्रोहट—देखो 'प्रोट' (रू.भे.)

प्रोहटणौ, प्रोहटबौ–क्रि०स० [सं० प्रवटंक] १ प्राच्छादित करना, ढंकना।

उ०—जेसळगिर चाढ़ संसारी जांणै, सोहड़ तरंगम करे सज। उदया-सीह भला **प्रोहटिया**, रिम गढ़ कटकां तणी रज।

—महारांणा उदयसिंह री गीत

२ हटाना। उ०—बांणां बांण बाजै गोळा चौसटां सबीर वकै, वाहाहरां मील भाजै छाजै पखां बोल। जठी तठी भार पड़ै मीरजां **प्रोहटै** जठी, तठी तठी राजा प्राडौ प्रोडजै सतोल।—प्रज्ञात

३ (वर्षा प्रादि का) थमना, रुकना। उ०—प्रायौ प्रासोज मेह **प्रोहटिया**, प्रन थटिया पुरहेक वकी। जळ चौ नदी रुकी भीमाजळ, रूपा नदियां नहीं रुकी।—महारांणा भीमसिंह री गीत ४ पीछे लौटना (मि० प्रोहट्टणौ)

प्रोहटणहार, हारौ (हारी), प्रोहटणियौ—वि०।

प्रोहटिप्रोड़ौ, प्रोहटियोड़ौ, प्रोहटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

प्रोहटियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ प्राच्छादित किया हुप्रा. २ हटाया हुप्रा. ३ (वर्षा प्रादि) थमा या रुका हुप्रा. ४ पीछे लौटा हुप्रा।

(स्त्री० प्रोहटियोड़ी)

प्रोहट्टणौ, प्रोहट्टबौ–क्रि०स०—देखो 'प्रोहटणौ' (रू.भे.)

उ०—प्रांणे खबर फिरे **प्रोहट्टां**, वाटां दूत थया नट-वट्टा।—रा.रू.

प्रोहथणौ, प्रोहथबौ—१ प्रस्त होना। देखो 'प्रोथणौ' (रू.भे.)

२ बुरे दिन प्राना. ३ भागना, पराजित होना (मि० **प्रौहथणौ**) (क्वचित प्रयोग)

प्रोहथिप्रोड़ौ–भू०का०कृ०—१ प्रस्त. २ बुरे दिनों से ग्रस्त.

३ भागा हुप्रा। (स्त्री० प्रोहथियोड़ी)

प्रोहदेदार–सं०पु० [प्र० उहद+फा० दार] किसी प्रच्छे पद पर काम करने वाला, पदाधिकारी।

प्रोहदौ–सं०पु० [प्र० उहद] पद, स्थान, प्रोहदा।

प्रोहरियौ–सं०पु०—१ देखो 'प्रोरियौ' (रू.भे.)

[सं० प्राश्रम] २ मकान, घर। उ०—पारकियै **प्रोहरियै** पड़िया, न मिळै वस्त्र न प्रावै नींद। वींद रुकमणी तणौ न वांदियौ, वांदे न्याय पराया वींद।—प्रोपौ प्राढ़ौ

प्रोहसणौ, प्रोहसबौ–क्रि०प्र० [सं० उद्भास, प्रा० उहास] प्रकाशमान होना, प्रकाशित होना। देखो 'प्रोहोसणौ' (रू.भे.)

प्रोहाड़ौ–सं०पु०—सीसोदिया वंश का प्राहाड़ा शाखा का व्यक्ति।

प्रोहार–सं०पु० [सं० प्रवधार] वह कपड़ा या परदा जो रथ या पालकी के ऊपर डाला जाता है।

प्रोहाळ–सं०पु० [सं० ऊहावलि प्रथवा ऊहालि] १ पानी के साथ बहने वाला कूड़ा-करकट. २ पानी के ऊपर का मैल, काई।

उ०—प्रजड़ मेवाड़ रायजीप मालवतणा, तुरक दळ रहचिया रायमल तीर। प्रसर घड़तोड़ **प्रोहाळ** मुंह ऊतरे, नदी नदियां मिळै रातड़ौ नीर।—महारांणा रायमल रौ गीत

प्रोहासणौ, प्रोहासबौ–क्रि०स०—धूप प्रादि सुगंधित पदार्थ जलाना।

प्रोहि–प्रव्यय—प्राश्चर्य या खेदसूचक शब्द। उ०—भागंतां दळ भाजिया, दारा कासिम दोहि। पुळिया टोडा जोधपुर, प्रादि घणां भड़ **प्रोहि**।—वं.भा.

सर्व०—निश्चयार्थकसूचक सर्वनाम, यही। उ०—मत जांणे प्रिउ नेह गयउ, दूर विदेस गयांह। बिवणउ बाधइ सज्जणां, ओछइ ओहि खळांह।—ढो.मा.

ओहिज—सर्व०—निश्चयार्थकसूचक सर्वनाम, यही। उ०—**ओहिज** साहिब सब री सांमी, चरणां में चित धरले।—गी.रा.

ओही—सर्व०—यही।

ओहीचणौ, ओहीचबौ—क्रि०स०—किसी संकल्प-सिद्धि के लिए देवता के प्रति कोई वस्तु रखना, जो संकल्प (व्रत) पूरा करने या होने पर उठाली जाती है तथा उसके बदले रुपये जो संकल्प करते समय निश्चित कर लिए जाते हैं, देवता के अर्पण कर दिये जाते हैं।

ओहीचणहार, हारौ (हारी), **ओहीचणियौ**—वि०।

ओहीचियोड़ौ, ओहीचियोड़ौ, ओहीच्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ओहीनौ—सं०पु०—कहावत, उक्ति, किंवदंती।

वि० [सं० अवहीन] न्यून। उ०—औरंग कपै सघण **ओहीनौ**, करण तणा इम जगत कहै। रेणा(णां) अंब सुणै ते रार्खं, राजा हिंदू धरम रहै।—राजा अनूपसिंह बीकानेर रौ गीत

ओहोड़ौ—देखो 'ओहड़ौ'।

ओहोसणौ, ओहोसबौ—क्रि०अ० [सं० उद्भास] उदय होना, प्रकाशित होना, उद्भासित होना। उ०—अखैराज अरक **ओहोसियौ**, नर नरंद भंजेव निस। कळकळै किरण दीपै कमळ, दस ही दस चरवार दिस।

—मालौ आसियौ

औ

औ—राजस्थानी वर्णमाला का दसवां स्वर। अ+ओ का संयुक्त वर्ण जो कंठ और ओष्ठ से बोला जाता है।

औंकार-सं०पु०—भयानक स्थान। उ०—बजाजी प्रेत बूढ़ा वर्ण, केइ केइ निस चिरतां करै। देख औंकरै हस डंहकळा बाळक 'झरड़ी' नह डरै।—पा.प्र.

औंगणो, औंगबो—देखो 'ओंगणो' (रू.भे.)

औंठभण—देखो 'ओठंभ' (रू.भे.)

औंस—देखो 'आउन्स' (रू.भे.)

औ-सं०पु०—१ परब्रह्म. २ अभिमान (एका०) ३ अनन्त, निस्वन अव्यय—[रा०] १ पशुओं को ठहराने के लिए उच्चरित शब्द अरे, औ. २ और. ३ आव्हाहन, संबोधन, विरोध, निर्णय-सूचक शब्द. ४ चिरविस्मृत विषय का यकायक याद आने पर उच्चारण किया जाने वाला शब्द।

सर्व०—१ वह. २ यह। उ०—रथ थंभि सारथी विप्र छंडि रथ, औ पुर हरि बोलिया इम।—वेलि.

कहा०—औ भौ मीठो तो आगलो भौ किण दीठो—इस जीवन में आराम से रहना चाहिए, अगले जन्म की परवाह नहीं करना चाहिए।

३ उस। उ०—बादळ छायो है चंद्रमा। औ की गात उघाड़्या जोवन पूर।—वी.दे.

औकात-सं०स्त्री० [अ० 'वक्त' का बहुवचन] हैसियत, बिसात, सामर्थ्य।

औखंगी-वि० [सं० अभिषङ्ग] १ देखो 'ओखंगी' (रू.भे.) २ भयंकर, भयावह। उ०—वीर नाद औखंगी बिहंदा बाज बाहुड़ंदा, रोखंडी जुड़ंदा नां मुड़ंदा संधीरांण।—हुकमीचंद खिड़ियो

औख-वि०—जबरदस्त, शक्तिशाली। उ०—भूखा मांस अहारी भाखै, विलखे रंग ऊचारै वांणी। वांको चालण फोज विहंडण, औख विडंग गयो अमरांणी।—सुखजी खिड़ियो

औखणणो, औखणबो-क्रि०स०—बिना पानी डाले अनाज का कूटना जिससे उसका उपरि छिलका दूर हो जाय।

औखणहार, हारौ (हारी), औखणियौ—वि०।

औखणिओड़ो, औखणियोड़ौ, औखण्योड़ौ—भू०का०कृ०।

औखद, औखध—देखो 'ओखद'। उ०—१ दांन सरीखौ दूसरौ, औखद नह अदभूत। हेक थको सारा हरै, महारोग मजबूत।—बां.दा.

उ०—२ बिध चूका बैद न जांणै बेदन, औखध लहै न पीड़ अथाह।

—महारांणा राजसिंह रो गीत

औखधीईस, औखधीस-सं०पु० [सं० औषधि+ईश] चंद्रमा (अ.मा.)

औखर-सं०पु०—विष्टा, मल। देखो 'ओकर' (रू.भे.)

औखळणो-सं०पु० [सं० अपस्खलन] भिड़ने वाला, टक्कर लेने वाला, बहादुर, वीर। उ०—सींगाळा औखळणा जिण कुळ हेक न थाय, जास पुरांणी वाड़ ज्यूं, जिण जिण मथै पाय।—हा.झा.

(रू.भे. अवखलणो)

औखांणो-सं०पु० [सं० उपाख्यान] कहावत, उक्ति। उ०—अनै वडै विरघ ऊपजतै भागा छै। तौ औ औखांणो साचो छै।—वेलि.

औग-सं०स्त्री०—उष्णता, गर्मी। देखो 'ओग' (रू.भे.)

औगण—देखो 'ओगण' (रू.भे.) उ०—मैं तो हूं बहु औगणहारी, औगण चित मत दीजोजी।—मीरां

औगत-सं०स्त्री० [सं० अपगति] देखो 'अवगति'.

वि०—१ देखो 'अवगत.' २ अधोगति, दुर्गति।

औगाढ़-वि० [सं० उद्+गाढ़] १ प्रबल, समर्थ, शक्तिशाली।

उ०—१ बरस सितरियै वीततां, उतरतां आसाढ। जोगणपुर लेगो जवन, अजन तणौ औगाढ़।—रा.रू. उ०—२ हवा मांण मता री कै गास भू मंदरां हतो यंदरां मंदरां वास वसाया औगाढ़।—चैनजी सांदू

२ अथाह, बहुत गहरा. ३ दृढ़, मजबूत।

औगाळ—देखो 'ओगाळ' (रू.भे.)

औगाळणो, औगाळबो—देखो 'ओगाळणो' (रू.भे.)

औगाळबंध-सं०पु०—पशुओं का एक रोग विशेष जिसमें वह जुगाली करना बंद कर देता है।

औगाळी—देखो 'ओगाळी' (रू.भे.)

औगाहणो, औगाहबो-क्रि०अ० [सं० अवगाहन] अवगाहना, पार पाना। उ०—जन हरिदास औगण यह त्रिविधि ताप तन ताहि, सब सुमिरत स्रवणां सुण्यां सब देख्या औगाहि।—ह.पु.वा.

औगुण-सं०पु० [सं० अवगुण] देखो 'ओगण' (रू.भे.)

उ०—गुण री नहिं गरज चोज कर औगुण चुणस्यां।—ऊ.का.

औगुणगारौ-वि०—उपकार को न मानने वाला, कृतघ्नी।

उ०—औगुणगारा और, दुखदाई सारी दुनी। चोदू चाकर चोर, रांधे छाती राजिया।—किरपारांम

औगुणगाळौ-वि०—अवगुणों का नाश करने वाला, वीर। उ०—अब तो मांन बहादर वाळा, रे औगणगाळा रजपूत।

—बळवंतसिंह गोहड़े रो गीत

औगुन—देखो 'ओगन' (रू.भे.)

औगो-सं०पु० [सं० ओघ] देखो 'ओघो' (रू.भे.)

औघ-सं०स्त्री०—१ मकान के भीतर की गर्मी या उष्णता (मि० हुड़तपो) सं०पु०—२ समूह, राशि (अ.मा.) उ०—अघ औघ खयंकर स्री सिव संकर, ध्यांन महेसुर धारियै जी।—क.कु.बो.

औघट-सं०पु०—दुर्गम पथ, भयंकर। उ०—वट वाटे घाट औघटे रण

वन, जळ थळ महियळ अजर जरे। चेलक चाड आप रायां रण, करणी सदा सहाय करे।—चांनण खिड़ियौ

वि० [सं० अव+घट्ट=घाट] १ अवघट, विकट, कठिन, दुर्गम।

उ०—१ उलट थट गिरवार ओघट, सहल भूप सिकार।—क.कु.बो.

२ पांव न चाले पंथ दुहेलो, आडा ओघट घाट।—मीरां

२ अद्‌भुत, विचित्र।

ओघटघाट—देखो 'ओघट' (१)

सं०स्त्री०—हिचकिचाहट, संकल्प-विकल्प।

ओघड़-सं०पु० [सं० अघोर] १ देखो 'ओघड़' (रू.भे.) २ देखो 'अघोरी' ३ शिव का एक रूप. ४ सोच-विचार न करने वाला, मनमौजी व्यक्ति।

वि०—अटपटा, अंडबंड, उलटा-पुलटा।

ओघाट-सं०पु०—भयंकर स्थान। उ०—अरावां निबावां किग्रा थट्ट अग्गै, पबै गाहिजै घाट ओघाट पग्गै।—वचनिका

ओघौ-सं०पु० [सं० ओघ] एक प्रकार का झाड़न विशेष जिसे जैनी संन्यासी प्राय: अपने पास रखते हैं।

ओड़—देखो 'ओड़' (रू.भे.)

ओड़ौ-सं०पु०—आदरणीय व्यक्ति को उसकी किसी बात के बीच बीच में टोकना, उपालंभ।

ओचट-सं०स्त्री०—१ कठिनाई, विकट स्थिति, संकट।

क्रि०वि०—अचानक, भूल से, सहसा।

ओचाळौ—देखो 'उछाळौ' (रू.भे.)

ओछंडणौ, ओछंडबौ—१ देखो 'ओछंडणौ' (रू.भे.) २ झूलना।

ओछंडणहार, हारौ (हारी), ओछंडणियौ—वि०।

ओछंडिओड़ौ, ओछंडियोड़ौ, ओछंड्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ओछ-वि०—तनिक, कम, किंचित (अ.मा.) उ०—ओछ अधक तुक असम अे, वीदग गद्य बखांण।—र.ज.प्र.

सं०स्त्री०—१ अभाव. २ नीचता, लघुता, हीनता।

ओछडणौ, ओछडबौ—१ देखो 'ओछंडणौ' (रू.भे.)

२ गाड़ी के पहियों का स्थान से आगे खिसकना।

ओछब—देखो 'उछब' (रू.भे.)

ओछाड़-सं०पु० [सं० अवच्छद, प्रा० ओच्छड] १ उफान, उबाल. २ उमंग, तरंग. ३ भोग लगाते समय देवमूर्ति के समक्ष लटकाया जाने वाला परदा. ४ भोजन ढकने का वस्त्र, खानपोश, आच्छादन वस्त्र। उ०—महल काठ चुणि विमळ पहल रूई घ्रत पूरित, ओप सदळ ओछाड़ अमळ परिमळ आकूरित।—रा.रू.

५ रक्षक। उ०—एक देस ओछाड़, इसा अप्रंक अणंकळ। अंस रूप अम्मरां, जोध रिणमाल महाबळ।—रा.रू.

सं०स्त्री०—६ छाया (मि० ओछाड़—रू.भे.)

ओछाड़णौ-सं०पु०—आच्छादन, ढक्कन।

ओछाड़णौ, ओछाड़बौ-क्रि०स०—१ आच्छादित करना, ढँकना।

उ०—झंडा ओछाड़ै गयण, वसुधा पाड़ै वाह। तौ भी तोरण बींद तिम, धीरौ धीरौ नाह।—वी.स. २ रक्षा करना।

ओछाड़णहार, हारौ (हारी), ओछाड़णियौ—वि०।

ओछाड़िओड़ौ, ओछाड़ियोड़ौ, ओछाड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ओछाड़ियोड़ौ, ओछायौ-भू०का०कृ०—१ आच्छादित किया हुआ, ढंका हुआ। उ०—वीजळि दुति दंड मोतिए वरिखा, झालरिए लागा झड़ण। छत्रे अकास एम ओछायौ, घण आयौ किरि वरण घण।

—वेलि.

२ रक्षा किया हुआ। (स्त्री० ओछाड़ियोड़ी)

ओछारणौ, ओछारबौ-क्रि०वि०—१ गुप्त रूप से उठाना, चुराना.

२ मन खराब करना, मन चुराना।

ओछाह-सं०पु० [सं० उत्साह] १ उत्साह, जोश, उमंग. २ प्रसन्नता, हर्ष. [सं० उत्सव] ३ उत्सव। उ०—१ उदयापुर आयौ अजन, 'अमर' कियौ ओछाह। असुरां क्रम घटियौ इळा, सुण सुर धरम सलाह।—रा.रू. उ०—२ भावसिंघ 'सबळा' का 'मांडण' सवाई ओछाह सी लागै जाकूं 'साह' की लड़ाई।—रा.रू.

ओज-सं०पु० [सं० ओजस्] १ देखो 'ओज' (रू.भे.)

[सं० अवद्य, प्रा० अउज्ज] २ मरे हुए जानवर के पेट में से निकला हुआ मल. ३ पशु की वे आँतें जो पका कर खाई जाती हैं।

उ०—आंत ओज भेजी असत, नैण नळी भख नेह। आंमिख नर नांखै उदर, आंणै हरख अछेह।—बां.दा.

ओजार-सं०पु० [अ०] लोहार या बढ़ई आदि कारीगरों के हथियार या उपकरण।

ओजास-सं०पु० [सं० उद्‌भास] प्रकाश, उजाला, रोशनी।

उ०—जळै सहर पुर जास निसा ओजास निहारे, साह प्रळै संपेखि सोच मद मोच संभारे।—रा.रू.

ओजौ—देखो 'ओजौ' (रू.भे.) उ०—१ तई हव दाखूं ओजौ तन्न, करे दत ऊपर देवण कन्न।—अज्ञात उ०—२ दिली थापै उथापै संग्रांमां ओजौ नथी आखै।—सायबौ सुरतांगियौ

ओझड़-सं०पु०—१ तलवार का तिरछा प्रहार।

(मि० अवझड़, अवझाड़—रू.भे.) उ०—खांडां री खाटखड़ि झाट-खड़ि झाटझड़ि डंडाहड़ि खेलीजै। पातिसाहां री गजघड़ा झड़ां ओझड़ां मारि ठेलीजै। पातिसाहां रै छत्र घाउ कीजै।—वचनिका

२ धक्का, मुठभेड़, टक्कर।

वि०—भयंकर। उ०—बंवड़ा चौवड़ा बेध पड़ बाबरां। ओझड़ां झड़ां तूटै छड़ां असम्मरां।—अज्ञात

क्रि०वि०—लगातार, निरंतर।

ओझड़णौ, ओझड़बौ-क्रि०अ० [सं० अवझट] तलवारों का तिरछा प्रहार होना, ऐसे तिरछे प्रहारों से युद्ध करना, भिड़ना। उ०—चोटियाळी कूदै चौसठि चाचरि, धू ढळियै ऊकसै धड़। अनंत अनै सिसुपाळ ओझड़ै, झड़ मातौ मांडियौ झड़।—वेलि.

ओझाड़णौ, औझाड़बौ—क्रि०स०—१ चीरना, काटना, संहार करना। उ०—तुंडां गज फेटां तुरी, डाढ़ां भड़ ओझाड़। हेकण कौळे घूंधिया, फौजां पाथर पाड़।—बी.स. २ आड करना, प्रहार या आक्रमण रोकना। उ०—**औझाड़ियौ** ढाल हूंत नाराज झाड़ियौ आचां, मारू 'पते' फते पाई पाड़ियौ मयंद।—अज्ञात ३ अस्त-व्यस्त करना।

ओझाड़णहार, हारौ (हारी), ओझाड़णियौ—वि०।

ओझाड़िओड़ौ, ओझाड़ियोड़ौ, ओझाड़योड़ौ—भू०का०कृ०।

ओझाड़योड़ौ—भू०का०कृ०—१ चीरा या काटा हुआ, संहार किया हुआ. २ रोका हुआ (प्रहार). ३ अस्त-व्यस्त किया हुआ। (स्त्री० ओझाड़ियोड़ी)

औटणौ, औटबौ—क्रि०स०—१ दूध आदि को आंच पर चढ़ा कर गाढ़ा करना, खौलाना, उबालना। २ देखो 'ओटणौ' (रू.भे.)

औटणहार, हारौ (हारी), औटणियौ—वि०।

औटाणौ, औटाबौ, औटावणौ, औटावबौ—स०रू० (प्रे०रू०)

औटिओड़ौ, औटियोड़ौ, औटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

औटीजणौ, औटीजबौ—भाव वा०।

औटाणौ, औटाबौ—देखो 'औटणौ' का प्रे०रू०।

औटाळ—वि०—बदमाश, धूर्त।

औटावणौ, औटावबौ—देखो 'औटणौ' का प्रे०रू०।

औटियोड़ौ—भू०का०कृ०—औटाया हुआ। (स्त्री० औटियोड़ी)

औटौ—सं०पु०—देखो 'ओटौ' (रू.भे.) २ मकान की चौड़ी दीवार जिस पर सामान रखा जा सके (क्षेत्रीय)

औठम—देखो 'ओठम' (रू.भे.)

औठौ—सं०पु०—१ सहारा. २ देखो 'ओहड़ौ' (रू.भे.)

औड—क्रि०वि०—१ तरफ, ओर। उ०—१ सित चमर ढुळै दहूं **औड** सूं लाखां दरब लुटाविया।—अज्ञात उ०—२ जब रुकमणजी रुखमइयं **औड** देख्यं छै।—वेलि. २ प्रकार, तरह। उ०—महिपत घणां जोड़ गढ़ माया, हय गय बांधे **औड** हजार।—क.कु.बो.

सं०पु०—देखो 'ओड़, ओड' (रू.भे.)

औडव—सं०पु०—पांच स्वरों का एक राग (संगीत)

औडीसौ—सं०पु०—उड़ीसा नामक एक प्रांत।

औडर—वि०—जिधर मन आवे उधर ही ढल जाने वाला, मनमौजी।

औढाळ—सं०पु०—गाड़ी का ढलुवां भाग।

औढौ—वि०पु० (स्त्री० औढी)—देखो 'ओढौ' (रू.भे.)

उ०—१ बीजां कलां पांतरै अमीरदोलौ नेर बैठौ, न जावै भळियौ **औढौ** कलौ रायां नेर।—बां.दा. उ०—२ अमर किया भड़ एकठा, लियौ उदैपुर लार। रांणौ राठौड़ां कनै, आयौ **औढौ** वार।—रा.रू.

औण—सं०पु० [सं० अयन] १ देखो 'ओरण' २ देखो 'ओयण' (रू.भे.) उ०—गैल **औण** रज परसत रीझी नारी गोतम।—र.ज.प्र.

औतार—देखो 'अवतार' (रू.भे.) उ०—१ दस **औतार** दसूं ए देसी, औरां ओर चढ़ावे। सो बाजीगर भला क नाहीं, एक कूं करे गमावे।—ह.पु.वा.

उ०—२ रतन कुंवर सिर रांणियां, 'अनो' कांन **औतार**। जोड़ी अविचळ करोड़ जुग, कर कायम करतार।—पदमसिंह री बात

औतारी—देखो 'अवतारी'। उ०—ओ सुरगुण रौ घाट घणी, निरगुण **औतारी**। कहै दास सगरांम, गुरां की महिमा भारी।—सगरांमदास

औतारौ—देखो 'उतारौ' (रू.भे.) उ०—यौं गढ़ सिर राजै 'अजन', निज घर घर नूर। **औतारौ** जैसिघ री, दीनौ सागर मूर।—रा.रू.

औत्तमि—सं०पु० [सं०] चौदह मनुओं में से तीसरा मनु।

औथि—क्रि०वि०—वहां, उस तरफ।

औदनिक—सं०पु० [सं०] सूपकार, रसोइया।

औदसा—वि०—फूहड़ स्त्री, कुभार्या।

औदात—वि० [सं० अवदात] श्वेत, गौर।

औदादार [अ० उहद+फा० दार] देखो 'ओदादार'।

औदायत—देखो 'ओदायत' (रू.भे.)

औदीच—देखो 'ओमधीच' (मा.मा.)

औदीच्य—सं०पु० [सं०] गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति।

औदुंबर—सं०पु०—अठारह प्रकार के कुष्टों में से एक (अमरत)

औदौ—सं०पु० [अ० उहद] ओहदा, काम, पद, अधिकार।

औद्रकणौ, औद्रकबौ—देखो 'ओद्रकणौ'। उ०—थर्कै जीह चुकै कंध कायरां **औद्रकै** थोक, जरकै बरकै जमो थरकै जंजीर।—पहाड़खां आढ़ौ

औद्राह, औद्राहौ—सं०पु०—भय, आतंक। उ०—अरि **औद्राहां** उड गया, कई ताळ विमाळा।—वी.मा.

औध—सं०स्त्री०—१ अवध, अयोध्या (र.ज.प्र.) २ अवधि, सीमा, निर्धारित समय।

औधकणौ, औधकबौ—क्रि०अ०—डरना, चौंकना, चमकना (मि० ओद्रकणौ) उ०—धीर नगारौ राज रौ, गह भरियौ गाजै। दोखियां रा मन **औधकै**, सोखियां रा छाजै।—अज्ञात

औधकियोड़ौ—भू०का०कृ०—डरा हुआ, चौंका हुआ। (स्त्री० औधकियोड़ी)

औधमौहरौ—सं०पु०—ऊंचा मुंह करके चलने वाला हाथी।

औधूळियौ—वि०—१ मस्त, उन्मत्त. २ बेपरवाह।

औधेदार—सं०पु० [अ० ऊहद+फा० दार] अफसर, ओहदेदार।

औधेस—सं०पु०—श्री रामचंद्र (र.ज.प्र.)

औधौ—देखो 'ओदौ'।

औनाड़, औनाड़ौ—देखो 'अनड़' (रू.भे. ओनाड़)

उ०—१ धरै धोक खत्रवाट खुरसांण चाढ़े धकै। एक एकाध पत वडौ **औनाड़**।—रावत मांनसिंह सलूंबर रो गीत

उ०—२ इतरा भड़ **औनाड़**, पड़िया राजा पाखती। राजा ऊभौ 'रतनसी', पाखैतरां पहाड़।—वचनिका

ग्रोमींबौ–वि०—जागृत ।

ग्रोपत—देखो 'ग्रोपत' (रू.भे.) उ०—घात छात सब दिल्ली जांणी, संपन **ग्रोपत** थई विहांणी ।—रा.रू.

ग्रोपनी—देखो 'ग्रोपणी' (रू.भे.)

ग्रोपम–सं०स्त्री०—१ उपमा. २ सजावट, तैयारी । उ०—जादवां चौक जवांन, समपरा वित खाटरा सुजस । सभै दलै सांमांन, जोड़ए **ग्रोपम** जांन रा ।—गो.रू. ३ वह वस्तु जिसकी उपमा दी जाय, उपमेय । उ०—छप्पन कुळ **ग्रोपम** छोगाळौ ।—क.कु.बो.

वि०—उपमा के योग्य, जिसकी उपमा दी जाय । उ०—कुळ **ग्रोपम** कोट करम रौ, धरिग्रौ ग्रवतार धरम रौ ।—ल.पिं.

ग्रोपमा—देखो 'उपमा' । उ०—**ग्रोपमा** ग्रनेक भाखा खटां रा उचार ।
—क.कु.बो.

ग्रोमाह–सं०पु०—उत्साह, उमंग, उत्सुकता ।

ग्रोमाहणौ, ग्रोमाहबौ–क्रि०ग्र०—उत्साहित होना, उत्सुक होना ।

उ०—भूप छभा भूपाळ, वदन दस्सरा **ग्रोमाहै** । मिळ भेटे मुख राग, सतौ निज भाग सराहै ।—रा.रू.

ग्रोयण—देखो 'ग्रोयरा' । उ०—**ग्रोयण** मत चौवीस होय जिरा रोळा ग्राखत ।—र.ज.प्र.

ग्रोरंग–सं०पु० [ग्र०] सिंहासन ।

वि०—भिन्न रंग ।

ग्रौ'र–सं०पु०—पशु का वह मल जो उसके मरने के बाद निकलता है ।

ग्रोर–वि० [सं० ग्रपर, प्रा० ग्रवर] १ ग्रन्य, दूसरा, भिन्न ।

कहा०—१ ग्रोर बात खोटी, सिरे दाळ रोटी—ग्रौर बात खोटी, सब से बड़ी दाल रोटी; पेट भरना सब से मुख्य है. २ ग्रोर रंग कच्चा, मुश्की रंग पक्का—ग्रौर रंग कच्चे, मुश्की रंग पक्का; मुश्की रंग की प्रशंसा; पक्की लगन वाले व्यक्ति के लिये. ३ ग्रोर सांग सोरा, सती ग्राळौ सांग दोरौ—दूसरे स्वांग सब ग्रासान, सती वाला स्वांग कठिन; रुपयों का काम रुपयों से ही निकलता है बातों से नहीं ।

२ ग्रधिक, ज्यादा ।

ग्रव्यय—१ पुनः फिर. २ संयोजक शब्द, ग्ररु ।

ग्रोरठै–सं०पु०—ग्रन्यत्र, ग्रन्य स्थान । उ०—कमौ मूमळ खड़ग सांमौ मेलियौ । डावड़ी **ग्रोरठै** परणायी ।—बां.दा.

ग्रोरणी–सं०पु०—१ ग्रोढ़नी. २ रबी की फसल में बीज बोने का एक ढंग विशेष जो कठोर भूमि को प्रथम पानी पिला कर तर करने के बाद जोत कर बोया जाता है ।

ग्रोरणौ, ग्रोरबौ–क्रि०ग्र०—१ वर्षा का प्रारंभ होना ।

क्रि०स०—देखो 'ग्रोरणौ' (रू.भे.) उ०—बेटौ रावळ सबळ रौ, राजौ धर तिरा वार । ग्रस जाडां विच **ग्रोरियौ**, भल्ले खग्ग दुधार ।
—रा.रू.

ग्रोरत–सं०स्त्री० [ग्र०] १ स्त्री, ग्रौरत, पत्नी. २ नारी, महिला ।

ग्रोरतौ–सं०पु० [सं० उरस्ताप] पश्चाताप, दुःख ।

ग्रोरस–सं०पु० [सं०] १ बारह प्रकार के पुत्रों में से सर्वश्रेष्ठ पुत्र जो धर्मपत्नी से उत्पन्न हो । सवर्णा स्त्री से स्वपुत्र. २ देखो 'ग्रोरस' ।

ग्रोरहकणौ, ग्रोरहकबौ–क्रि०ग्र०—वीररसपूर्ण राग का होना ।

उ०—केई ढोल कंसाळ धरा ब्रहमंड धड़कै, सुरणाये सालळै राग सींधू **ग्रोरहकै** ।—ग्रज्ञात

ग्रोरां–क्रि०वि०—फिर ।

सर्व०—दूसरा, ग्रन्य । उ०—मन सूं भगड़ै मोर, **ग्रोरां** सूं. भगड़ै पछै । त्यांरा घटे न तौर, राज कचेड़ी राजिया ।—किरपारांम

ग्रोराळ–वि०—भयंकर, प्रचंड । उ०—ग्रतग भाळ **ग्रोराळ**, जगि विकराळ मांभि जिरा ।—भगवांनजी रतनू

ग्रोरावौ, ग्रोरासौ–सं०पु० [सं० ग्रवरोध] उद्दंड बैल, भैंस, भैंसा, गाय ग्रादि को बांधने का वह लम्बा रस्सा जिससे वे बांध कर खेत ग्रादि में चरने के लिए छोड़ दिये जाते हैं ।

ग्रोरियौ—देखो 'ग्रोरीसौ' (रू.भे.)

ग्रोरूं–क्रि०वि०—ग्रौर भी ।

ग्रोरों–क्रि०वि०—फिर । उ०—**ग्रोरां** पांच सातां तौ दिनां भी फेरि जींस्यां. ग्रोरां देह दूजी पाय दारू फेरि पीस्यां ।—शि.वं.

ग्रोळंग, ग्रोळंगू–सं०पु०—गायन ग्रादि का व्यवसाय करने वाली ढोली ग्रादि जाति का व्यक्ति । उ०—घरगौ ग्राडंबर सूं जाय परगीज्यौ । बड़ा रंगरळी हुवा । घरगौ धन खरचियौ । कुंवरजी रै भरोखै नीचे **ग्रोळंगु** रात रा घरा सवार उळंगिया । बड़ी निवाजस व्ही । लाख-पसाव कियौ ।—पलक दरियाव री बात

ग्रोळंभौ–सं०पु० [सं० उपालंभ] उपालंभ । उ०—ऊभी दइ छइ **ग्रोळंभा**, करि लागइ ग्ररि मोड़ पूलइ वांह ।—वी.दे.

ग्रोळ—देखो 'ग्रोळ' । उ०—१ पछै पंवारां सूं सगाई देरगी कीवी । २५ सांवठी दी । एक भाई **ग्रोळ** रह्यौ ।—नैरगसी

उ०—२ नांज दिखावै नारियरा, ग्रौ दन वादळ **ग्रोळ** । कथ सारै किरतार रै, बेटा पहल म बोल ।—पा.प्र.

ग्रोळग–सं०पु०—परदेश, विदेश । देखो 'ग्रौळग' (रू.भे.)

उ०—निहचई **ग्रोळग** चालगहार । डावउ करेवउ करकरइ ।—वी.दे.

ग्रोळगणौ, ग्रोळगबौ–क्रि०स०—स्तुति करना, प्रशंसा करना ।

उ०—**ग्रौळगं** चंद ग्रने रवि इंद्र ।—रांमरासौ

ग्रोळगि, ग्रोळगी—देखो 'ग्रौळग' । उ०—१ मईभर थांगउ बइसणइ राई चहुवांगा ! **ग्रोळगि** नीवार ।—वी.दे. उ०—२ चंद्र बदन बिलखी फिरइ, स्नेह तुठी राजा **ग्रोळगी** मेलही ।—वी.दे.

ग्रोळभौ–सं०पु० [सं० उपालंभ] उपालंभ (मि० ग्रोळंबौ–रू.भे.)

ग्रोलरणौ, ग्रोलरबौ—देखो 'ग्रोलरगौ' । उ०—छाती धड़कै छैल घराऊ **ग्रोलरै**, वैरी पपइया पीउ पीउ मत बोलरै ।—महादांन महड़ू

ग्रोलस–क्रि०वि०—इर्द-गिर्द, चौतरफ । उ०—सात ताखड़ी साहुजांनी तोल री खून भूंडरा रा डील मांही रहियौ । तठा पाछै सारोही साथ **ग्रोलस** बैठ रहियौ ।—डाढ़ाळा सूर री बात

औलाडणौ, औलाडबौ–क्रि०स०—उलटना । उ०—थरहरै पाखरां वाजते घूघर, दीह सूझै नहीं खेहरै डंबरे । रूधियौ वळौ रायसींघ रै लसकरै, डूंगरै घणा औलाडिया डूंगरे ।—राजा रायसिंह री गीत

औलाद–सं०स्त्री० [अ०] संतान, संतति, नस्ल ।

उ०—१ इण री मां दरियाव कन्है चरै थी सो दरियायी घोड़ा री औलाद थी ।—सूरे खींवे री बात

कहा०—खेत विगड़ै तौ खाद देवै पण औलाद विगड़ै तौ किसी खाद देवै—खेत बिगड़ने पर उसमें अच्छी खाद द्वारा सुधार किया जा सकता है किन्तु संतान के बिगड़ने पर कोई इलाज नहीं; बिगड़ी हुई संतान कुल को ले डूबती है ।

औलियौ–सं०पु०—सिद्ध पुरुष (मुसल०) देखो 'ओलियौ' (रू.भे.)

औळि–सं०स्त्री० [सं० अवलि] पंक्ति, लाइन । उ०—आई करी बैठी चौखंडी, पेहली बांची उपली औळि ।—वी.दे.

औलूंदी—देखो 'ओलुंदी' ।

औळू—देखो 'ओळू' (रू.भे.)

औळै–क्रि०वि०—आड़ में । उ०—बांका मेहासधू म बीसरै, संकट हरै सांभळै साद । गढ़वाड़ा गढ़ औळै गाजै, मढ रै औळै गढ़ां अजाद ।

—बां.दा.

औल्यूंड़ी—देखो 'ओळू' (अल्पा०)

औवनाड़—देखो 'ओनाड़' (रू.भे.)

औवात–सं०पु०—वियोग । उ०—राज पिछं हूं पिण जीवती रहूं नहीं नै दो तीन पौ'र री औवात देखूं नहीं । पिण माथौ देस्यूं । तरै जगदेव कह्यौ–टाबरां रौ किसौ सूल होसी ।

—जगदेव पंवार री बात

औसणणौ, औसणबौ—देखो 'ओसरणौ' (अमरत–रू.भे.)

औसत–सं०पु० [अ०] बराबर का पड़ता, समष्टि का सम विभाग ।

वि०—सामान्य, माध्यमिक, साधारण ।

औसध—देखो 'ओखध' (रू.भे.)

उ०—एक तौ ससत्र करम जासौं चीरै । पाछै दागै । दूजो प्रकार औसध अनेक प्रकार का ।—वेलि. टी.

औसर–सं०पु० [सं० अवसर] देखो 'ओसर' (रू.भे.)

उ०—समझणहार सुजांण, नर औसर चूकै नहीं । औसर रौ अवसांण, रहै घणां दिन राजिया ।—किरपारांम

औसरणौ, औसरबौ—देखो 'ओसरणौ' (रू.भे.)

औसरि, औसरी—१ देखो 'ओसारौ' [सं० अवसर] २ अवसर, मौका । उ०—तिळोतमा अंगणा सची उरवसी सरोतरि सुरपती सेवतां ईंद्र न धरै तिण औसरि ।—रा.रू.

औसांण, औसांन–सं०पु० [सं० अवसर] १ अवसर, मौका ।

(मि० ओसांण–रू.भे.) उ०—दादाजी आज उदास कठै हुआ । तद वीरमदेजी सारी हकीकत कही तठै भीमराजजी कयौ ये 'औसांण चूका ।

—द.दा

कहा०—१ औसांण आवै जकौ ही हथियार—वक्त पर याद आवे वही हथियार है । वक्त पर याद आई हुई बात या कार्य ही काम आता है. २ औसांण बड़ी चीज है—अवसर बड़ी चीज है; सुन्दर अवसर पर बेढंगी बात भी बन जाती है । [अ० एहसान] २ एहसान, उपकार । उ०—अश्वपसुता पति हूंत कहै कथ औसांन रा । सवागण दांन रा दयण सागे ।—रामलाल आसियौ

कहा०—औसांण बड़ी चीज है—उपकार करना उत्तम कार्य है ।

औसाप—१ देखो 'ओसाप' (रू.भे.) उ०—'बूडौ' अर 'जींदौ' बहू यळ मोटै औसाप । आगै आगै कुळ्ळियां, सगतां दियौ सराप ।—पा.प्र. २ उपकार, एहसान । उ०—वाळ वदळौ कळस वाड़ ज बीकपुर, मीढ़ नह मिटायौ थयौ अणमाप । चंद दुरियंद लग बात रहसी अछड़, अवनपत कियौ हद औसाप ।—देवराज रतनू

औसार–सं०पु० [अ० आसार] दीवार की मोटाई या चौड़ाई (रू.भे. असार) उ०—कोट री सफील ऊंची गज १६ औसार गढ़ री महलायत हेठै गज २० और गज १० कोट और पड़कोटै रै बीच छै ।

—द.दा.

औसास—देखो 'ओसास' (रू.भे.) उ०—औसास भुयंग झड़तां के अथग ।—भगवांनजी रतनू

औस्था–सं०स्त्री० [सं० अवस्था] अवस्था, आयु, उम्र । उ०—गोपाळ पूछियौ–छोरी री क्या औस्था है ?—वरसगांठ

औहथणौ, औहथबौ–क्रि०अ० [सं० अपस्थित] १ भगना, पराजित होना, हारना । उ०—माटीतण तणौ अरी घाइ मिळतां हुवि्ण समहरि अंतर हुवौ । अरिजण गोपि-ग्रहणि औहथियौ, महिराउणि गो-ग्रहणि मुवौ ।—भरमौ रतनू २ अस्त होना, मिटना ।

औहथणहार, हारौ (हारी), औहथणियौ–वि०—भगने या पराजित होने वाला ।

औहथिओड़ो, औहथियोड़ौ, औहथ्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

औहथियोड़ौ–भू०का०कृ०—भयभीत, पराजित, अस्त ।

(स्त्री० औहथियोड़ी)

औहरी—देखो 'ओरी' (रू.भे.)

औहिज–सर्व०—निश्चयार्थकसूचक सर्वनाम, यही । उ०—आडौ अंवळौ क्यूं फिरै, धवळौ बापूकार । औहिज पार उतार ही, धळ सांमै अौ भार ।—बां.दा.

क

क—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश व राजस्थानी वर्णमाला तथा देवनागरी लिपि का प्रथम व्यञ्जन जिसका उच्चारण कंठ से होता है। इसे स्पर्श वर्ण कहते हैं।

कं—सं०पु० [सं०] १ कार्य, काम. २ कामदेव. ३ शिर (ह.नां., अ.मा.) ४ सुख ५ जल (ह.नां.) ६ स्वर्ण (अ.मा.) ७ कमल. ८ दूध. ९ दुःख. १० विष.

सं०स्त्री०—११ अग्नि (एकाक्षरी)

वि०—शुभ (एकाक्षरी)

कंइ—सर्व०—देखो 'कंई' (रू.भे.) उ०—आ कंइ देरी आज, करी इती ते कानड़ा।—अज्ञात

कंइयां—क्रि०वि० [सं० कियत] १ कब तक. [सं० कथम] २ कैसे। उ०—कंइयां हूं कुमारड़ी, कंइयां हूं परिणेसि। सासू संदै आंगणै, वीजा बहू कहेसि।—सयणी री बात

कंई—सर्व० [सं० किम्] जिज्ञासासूचक एक प्रश्नवाचक सर्वनाम, क्या। उ०—हित अमल कियां भूंडी हुई, अकल कठेगी आप री। इण मांय कंई गाडी अही, बडी हेमांणी बाप री।—ऊ.का.

मुहा०—१ कंई कहणी (कैंणी) है?—प्रशंसासूचक वाक्य, क्या कहना है. २ कंई चीज है—नाचीज अथवा तुच्छ वस्तु के लिये अथवा उत्तम वस्तु की प्रशंसा के संबंध में. ३ कंई जांणूं—ज्ञात नहीं, कुछ नहीं जानता. ४ कंई जावै—क्या हानि होती है, कुछ नुकसान नहीं. ५ कंई पड़ी है—कुछ गरज नहीं, क्या जरूरत है? कहा०—कंई वांवळिया खांगा कर लेई—मेरा क्या बिगाड़ लोगे; मेरा कुछ भी नुकसान नहीं किया जा सकता। चिढ़ कर किसी रुष्ट हुए व्यक्ति के प्रति।

वि०—१ बहुत अच्छा. २ कितना. [सं० किंचित्] ३ जरा, तनिक, थोड़ा (रू भे. कंईक)

कहा०—कंई घोड़ै री घट्टी तो कंई सवार री ई घट्टी—परस्पर अन्योन्याश्रित वस्तुओं में से एक को हानि पहुँचने पर दूसरे को भी अवश्य कुछ न कुछ हानि पहुँचती है।

कंईक—वि०—जरा, तनिक, थोड़ा।

सर्व०—क्या।

कंक—सं०पु० [सं० कंकि=गतौ] १ श्वेत चील। (स्त्री० कंकी) उ०—मिलत ग्रीध मंडळी खिलत झुंड खेचरी, करंत कंक कुंडळी भजंत स्रोण भूचरी।—अज्ञात २ एक प्रकार का मांसाहारी पक्षी जिसके पर प्राय: तीर में लगाये जाते हैं। उ०—कंक कंकी अत चील कुलंगां, अंबरधर सर छेदे अंगां।—रा.रू.

३ बक, बगुला. ४ यमराज. ५ नरकंकाल। उ०—दुबळी हुइ खरीय कंक।—वी.दे. ६ बाण, तीर। उ०—कसीस अढार टंकां ऊपड़ी परीर कंकां, झड़ी बीर बंकां सीस असंकां भूसांण।—दुरगादत्त बारहठ ७ क्षत्रिय (राजा) उ०—सळ सळै कमठ पीठ फण लचक सेसरा, दहल पड़ कंक हक बकै दसूं देस रा। पांण तज संक अनमी भरै पेसरा, नमक किण सिर बंधे कमर 'सगतेस'रा।—रांमलाल बारहठ ८ शृगाल. ९ कौआ. १० युद्ध. ११ सूर्य (नां.मा.) १२ शिव, महादेव (क.कु.बो.) १३ युधिष्ठिर का एक नाम जब वे राजा विराट के यहां ब्राह्मण बन कर रहे थे (अ.मा.) १४ कंस के एक भाई का नाम।

वि०—१ तंग. २ थका हुआ. ३ एक की संख्यासूचक*।

कंकआळण—देखो 'कंकाळण' (रू भे.) उ०—लटियाळिय जोगण साथ लियां। कंकआळण रूप विरूप कियां।—पा.प्र.

कंकड़—सं०पु० [सं० कर्कर] १ पत्थर का छोटा टुकड़ा, कण, रवा. २ जवाहरात का अनगढ़ टुकड़ा।

कंकड़ीलो—वि०पु० (स्त्री० कंकड़ीली) [सं० कर्करिल] कंकड़युक्त (भूमि या रास्ता) कंकरीला।

कंकट—सं०पु० [सं०] १ कवच (डि.को.) २ असुर, राक्षस। उ०—महामाया मा मह्यळी, कंकट करण अकाज। जिके कोप लंका जळी, राकस बिगड़े राज।—र.ज.प्र.

वि०—दुष्ट, आततायी।

कंकण—सं०पु० [सं०] १ हाथ में कलाई पर धारण करने का एक भूषण विशेष, कड़ा. २ लोहे का एक कड़ा जिसे अकाली लोग पहनते हैं. ३ दूल्हे के दाहिने तथा वधू के बायें हाथ और पैर में धारण करने का सूत का रंगीन डोरा जिसमें कोड़ी, लाख, लोहे की कड़ी, मरोड़फली व जायफल बँधे रहते हैं (रीति-रस्म) ४ एक प्रकार का षाडव राग. ५ छंद-शास्त्र में चार मात्राओं का समूह, चौकल (पिं.प्र.) ६ डिंगल का वेलिया सांणोर गीत का एक भेद जिसके प्रथम द्वाले में ४८ लघु ८ गुरु कुल ६४ मात्रायें तथा शेष के द्वालों में ४८ लघु ७ गुरु कुल ६२ मात्रायें होती हैं (पिं.प्र.)

वि०—कुटिल* (डिं को.)

कंकणी, ककणीय—सं०स्त्री० [सं० कंका] अेषनी। उ०—काय उताळी ककणी, जे मद पीवण जेज। कंत समप्पै हेकलो, कटकां ढाहि कळेज।—वी.स.

(रू.भे. कंकनीय)

कंकतक—सं०पु० [सं०] सींग या धातु आदि की दांतेदार वस्तु जिससे बाल सुलझाये व सँवारे जाते हैं। केश-मार्जक (डिं.को.)

कंकनीय—देखो 'कंकणी' (रू.भे.) उ०—हरांमखोर चोर की कुहक्क दे हरावनी। कराळ कंठ कंकनीय डंक्कनी डरावनी।—ऊ.का.

कंकपत्र—सं०पु० [सं०] तीर, बाण (अ.मा., डिं.को.)

कंकर–सं०पु०—१ देखो 'कंकड़'। [सं० किंकिर] २ नौकर, दास, सेवक।

कंकरीट–सं०स्त्री० [अं० कांक्रीट] १ छोटे-छोटे कंकरों का समूह. २ प्रायः गच पीटने के लिए छत पर डाला जाने वाला एक प्रकार का मसाला जो कंकड़ों से युक्त होता है।

कंकरीलौ—देखो 'कंकड़ीलौ' (रू.भे.)

कंकला–सं०स्त्री० [सं० कम्+कला] शोभा (अ.मा.)

कंकांणी—देखो 'कंकणी' (रू.भे.) उ०—कंकांणी चंपै चरण, गीधांणी सिर गाह। मौ बिण सूतौ सेज री, रीत न छंडै नाह।—वी.स.

कंका–सं०स्त्री० [सं०] १ एक मांसाहारी पक्षी, ग्रीधनी (मि० कंकणी) २ एक प्रकार की सफेद चील जिसके पंख प्रायः बाणों में लगाये जाते थे (मि० कंक) उ०—गीध कळेजौ चील्ह उर, कंकां अंत बिलाय। तौ भी सौ धक कंत री, मूंछां भ्रूंह मिळाय।—वी.स. ३ राजा उग्रसेन की लड़की जो कंस की बहिन थी एवं वसुदेव के भाई को ब्याही गई थी।

कंकाड़ौ—देखो 'कंकेड़ौ' (रू.भे.)

कंकाळ–सं०पु० [सं० कंकाल] १ अस्थिपंजर, ठठरी। उ०—भूख भचीड़ा फिरै खावती, नाचै भूमै सौ सौ ताळ। सुगन-चिड़ी सूरज ने पूछ्यौ, गिरजां ने पूछ्यौ कंकाळ।—रेवतदांन २ युद्ध, कलह. ३ सिंह (ना.डिं.को.)

कंकाळण–सं०स्त्री०—दुर्गा का एक रूप (मि० कंकग्रालग-रू.भे.) वि०—कलहप्रिय, झगड़ालू।

कंकाळमाळी–सं०पु० [सं० कंकालमालिन्] महादेव, शिव। सं०स्त्री० [सं० कंकालमालिनी] पार्वती, दुर्गा।

कंकाळी–सं०स्त्री०—१ कलहप्रिय स्त्री, झगड़ालू स्त्री. २ दुर्गा, भैरवी (डिं.को.) ३ जगदेवपँवार के समय की एक विदुषी स्त्री।

कंकाळौ–सं०पु०—कलहप्रिय व्यक्ति। (स्त्री० कंकाळण, कंकाळी)

कंकूपत्री–सं०स्त्री० [सं० कुंकुमपत्री] विवाह आदि शुभ अवसरों पर दिया जाने वाला मांगलिक निमंत्रण पत्र (रू.भे. कूंकूंपत्री)

कंकूदमांन, कंकूदवांन–सं०पु० [सं० ककुदमान्] बैल (ह.नां., पाठांतर)

कंकेड़, कंकेड़ौ–सं०पु०—मध्यम ऊँचाई का एक प्रकार का कांटेदार वृक्ष (अल्पा० कंकेड़ियौ)

कंकेळी–सं०पु० [सं० कंकेलि] अशोक वृक्ष (डिं.को.)

कंकोड़–सं०पु०—नागों के नव वंशों में से एक या इस वंश का नाग।

कंकोळ–सं०पु०—एक प्रकार का वृक्ष जो शीतल चीनी के वृक्ष का भेद माना जाता है। इसके फल शीतल चीनी से बड़े व कठोर होते है (अमरत)

कंखणी–सं०स्त्री०—१ कलहप्रिय स्त्री. २ देवी का एक रूप जो भयानक माना जाता है।

कंखबर–सं०पु०—पीले वस्त्र। उ०—चाल्यौ प्रोहित मालगिर देस, वस्त्र कंखबर अरि भला वेस।—वी.दे.

कंग–सं०पु० [सं० कङ्कट] कवच, जिरहबख्तर (डिं.को.)

कंगड़ारीराय–सं०स्त्री०—कांगड़ा की ज्वालामुखी, देवी का एक नाम।

कंगड़ौ–सं०पु०—पंजाब प्रान्त का एक पहाड़ी प्रदेश जहाँ एक छोटा ज्वालामुखी पर्वत है। यह ज्वालामुखी देवी के नाम से प्रसिद्ध है।

कंगण, कंगन–सं०पु०—१ हाथ में कलाई में पहिनने का एक आभूषण, कंकण. २ तलवार की मूठ के सबसे ऊपरी गोल गुम्बजदार भाग के नीचे उठे हुए गोल भाग को संकड़ा कर गर्दननुमा बना हुआ भाग।

कंगार, कंगारौ–सं०पु०—१ दीवार का ऊपर का किनारा (क्षेत्रीय)

कंगळ–सं०पु० [सं० कङ्कट] कवच। उ०—दमंगळ बिण दुमनौ रहै, जड़ै न कंगळ जंत। सखी बधावौ त्यां भड़ां, जेथ जुड़ीजै कंत।—वी.स.

कंगलौ–वि० [सं० कंकाल] १ कंगाल, निर्धन, दरिद्र। उ०—गदगद वांणी द्रग पांणी गळळाटा। कंगला बंगळां में कीना कळळाटा। २ असक्त, कमजोर। —ऊ.का.

कंगवौ–सं०पु०—खड़ी फसल में पौधे में ही अनाज के दानों के विकीर्ण होने की क्रिया। पौधे में अनाज के विकीर्ण होने का एक रोग विशेष।

कंगस–सं०पु०—१ कवच. उ०—कसमस कंगस तुरस कटै, छड़ उभ्रस आतस तीर छूटै।—गो.रू. २ मांसाहारी पक्षी।

कंगसी—देखो 'कांगसी'।

कंगाल–वि० (स्त्री० कंगालण) [सं० कङ्काल] निर्धन, दरिद्र. अकाल से पीड़ित।

कहा०—कंगाल री काळजौ पोलौ (काचौ)—कंगाल का कलेजा कच्चा; गरीब को हिम्मत नहीं होती।

कंगाली–सं०स्त्री०—निर्धनता, गरीबी, दरिद्रता।

कंगी–सं०स्त्री० [सं० कंकती] १ कंघे के आकार का कपड़ा बुनने का एक उपकरण जो कपड़ा बुनते समय मजबूती के लिए ठोकने के काम आता है। (रू.भे. कांघसी). २ देखो 'कांगसी'।

कंगूर–सं०पु०—१ मुकटमणि. २ आभूषण पर कंगूरे के आकार का दाना, गहनों में छोटा रवा. ३ देखो 'कंगूरौ'। उ०—अन भुरजाळौ भुरज सा, गढ़ चीतौड़ कंगूर।—बां.दा.

कंगूरौ–सं०पु० [फा० कुंगरा] १ शिखर, चोटी. २ थोड़े थोड़े फासले से किले की दीवार पर बने हुए बुर्ज जहाँ से सिपाही लड़ते हैं।

कंगो, कंगौ, कंघो, कंघौ–सं०पु० [सं० कंकतक] १ बाल साफ करने की लकड़ी, सींग या धातु की दाँतेदार वस्तु।

पर्याय०—कंकतक, कांघसियौ, केसमारजन, प्रसाधन।

२ करघे में भरनी के तागों को कसने का एक यंत्र।

कंचकी–सं०पु० [सं० कंचुकि] १ सर्प, सांप (अ.मा.) सं०स्त्री०—२ अंगिया, चोली।

कंचण–सं०पु० [सं० कंचन] १ स्वर्ण, सोना। उ०—कोई कुकवि जीभ सूं, बांछै रसमय बांण। कंचण बांछै काढ़णो, सौ लोहा री खांण। —बां.दा.

मुहा०—कंचण बरसणौ—बहुत धन प्राप्त होना, शोभा देना.

२ धतूरा।

कंचणी–सं०स्त्री० [सं०] १ वेश्या, नर्तकी। उ०—बांग प्रभु कंचणी संचणी पतबरत, लाय प्रति प्रंचणी झेल लीधी। नंचणी जात परपंचणी हुई नहं, कंचणी बात प्रखियात कीधी।—अज्ञात

२ एक जाति जिसकी स्त्रियाँ प्रायः वेश्यावृत्ति की होती हैं अथवा इस जाति की स्त्री।

कंचन–सं०पु०—१ मुसलमान कंचनी वेश्याओं के बाप व भाई।

२ देखो 'कंचण' (डि.को.)

सं०स्त्री०—३ देखो 'कंचणी'।

कंचनगिर–सं०पु० [सं० कंचनगिरि] १ सुमेरु पर्वत (ह.नां.)

२ जालोर में स्थित एक पर्वत का नाम।

कंचनवरन–वि० [सं० कांचन+वर्ण] सुनहरा।

कंचनसिखर- सं०पु० [सं० कांचनशिखर] सुमेरु पर्वत (अ.मा.)

कंचनी–सं०स्त्री०—देखो 'कंचणी' (रू.भे.) [सं० कांचनी] २ हल्दी (अ.मा.)

सं०नपु०लिं०—३ नामर्द, नपुंसक, नाजर (मा.म.)

कंचरी–सं०स्त्री०—मुसलमान वेश्याओं का एक भेद।

कंचळी, कंचवउ—देखो 'कांचळी' (रू.भे) (रू.भे. कंचुवउ)

कंचवौ–सं०पु० [सं० कंचुकी] देखो 'कंचुकी'। उ०—घट तज गयो घरेह, जोबन रा करती जतन। कंचवौ कंध धरेह, महळ फिरौ पग मोकळै।—अज्ञात

कंची–सं०पु०—१ कौआ। २ देखो 'कंचकी'।

कंचु–सं०स्त्री० [सं० कंचुकि] कंचुकी।

कंचुक–सं०स्त्री० [सं०] १ कंचुकी। उ०—मैलौ मत अदतार मन, रुच जस तणीं रहै न। तन काळौ विसहर तणौ, कंचुक सेत सहै न।
—बां.दा.

२ अंगिया (डि.को.) ३ घुटने तक होने वाला कचुक के आकार का कवच (डि.को.) ४ अचकन।

कंचुकी–सं०स्त्री० [सं०] १ अंगिया, चोली।

सं०नपु०लिं० [सं०] २ वे नपुंसक या हिजड़े व्यक्ति जो प्रायः अंतःपुर की रक्षा के लिये नियुक्त किये जाते हैं। ३ सांप, भुजंग (ह.नां.)

४ वह घोड़ा जिसका घुटने पर का एक पैर सफेद हो (अशुभ–शा.हो.)

कंचुळी— देखो 'कांचळी' (डि.को.)

कंचुवउ–सं०स्त्री० [सं० कंचुकि] कंचुकी, अंगिया।

उ०—१ सज्जण चाल्या हे सखी, नयणे कीयौ सोग। सिर साड़ी गळि कंचुवउ, हुवउ निचोवण जोग।—ढो.मा.

कंचुवी—देखो 'कंचुकी' (रू.भे.)

कंचुवौ–सं पु० [सं० कंचुकि] कंचुकी, चोली, अंगिया (डि.को.)

उ०—बीजळियां बळुळि लिवै, डावा डूंगर मज्झ। गळा उतारै कंचुवौ, नयणै लोपी लज्ज।—जसराज

कंचूकी—देखो 'कंचुकी'। उ०—बिजुळियां चहळावहळि, आभग आभय कोडि। कद रे मिळउंली सज्जना, कस कंचूकी छोडि।—ढो.मा.

कंज–सं०पु० [सं०] १ ब्रह्मा. २ कमल (ह.नां., डि.को.)

३ चरण की एक रेखा. ४ अमृत. ५ सिर के बाल. ६ शोथ.

७ महादेव. ८ फूल (अ.मा.)

वि०—लाल, रक्तवर्ण (डि.को.)

कंजकल्यांणी–सं०स्त्री० [सं० कंजकलिका, प्रा० कंजकलिआ] कमलकली।

कंजज–सं०पु० [सं०] ब्रह्मा, विधि (नां.मा.)

कंजर–सं०पु०—१ पिछड़ी एवं परिगणित जातियों के अंतर्गत गिनी जाने वाली एक भारतीय जाति विशेष। इस जाति के व्यक्ति प्रायः गाने-बजाने का कार्य करते हैं. २ इस जाति का व्यक्ति।

कंजरी–सं०स्त्री०—१ मुसलमान वेश्याओं का एक प्राचीन नाम (मा.म.)

२ कंजर जाति की स्त्री। देखो 'कंजर'।

कंजविकास–सं पु० [सं०] सूर्य्य (ना.मा.)

कंजारी–सं०पु० [सं० कंजारि] चंद्रमा (अ.मा.)

कंजासण–सं०पु० [सं० कंजासन] ब्रह्मा, विधि (नां.मा.)

कंजुलिक–सं०पु० [सं० किंजल्क] किंजल्क। उ०—कमळ सरूपी या मुख मांहे। कमळ मांहे कंजुलिक हुऐ तैसें ए मांहे दंत। दुति कहतां सोभा कांति।—वेलि. टी.

कंजूस–वि०—कृपण, सूम।

कंझ–सं०पु०—क्रौंच पक्षी। देखो 'कुंज'।

कंझणी, कंझवौ–क्रि०अ०—शौच पूरी तरह साफ न आने के कारण की जाने वाली जोर की ध्वनि जो शौच लाने के लिए की जाती है।

उ०—अमल री पिंक लागी अटळ, सुख लूटै वे सुलखणां। सवेरा सांझ दोनूं समै, कांझ कंझ नै कुलखणां।—ऊ.का.

कंटक–सं०पु० [सं०] १ कांटा. २ बाधा. ३ कष्ट. ४ किसी पेड़ या पौधे का कड़ा तथा नुकीला अंकुर. ५ ज्योतिषियों के अनुसार जन्म-कुण्डली में पहला, चौथा, सातवां व दसवां स्थान. ६ अंकुर.

७ लोहे का अंकुर. ८ असुर, राक्षस (पि.प्र.) ९ रावण (अ.मा.)

१० वाम मार्ग का विरोधी व्यक्ति. ११ शत्रु।

वि०—१ दुष्ट। उ०—विहद हदी रहम देख जमदूत दहलै, कटक काळ न काप ही सांई सांभळै।—केसोदास गाडण २ नास्तिक.

३ दयाहीन, कठोर हृदय. ४ खोटा. ५ बाधक।

कंटकग्रसण–सं०पु०—१ ऊँट (डि.को.) २ विष्णु.

सं०स्त्री०—३ देवी।

कंटकारी–सं०पु०—१ श्री रामचंद्र का एक नाम (अ.मा.)

सं०स्त्री०—२ उपानह, जूती।

कंटकि, कटकी–सं०पु० [सं० कंटक] १ कांटा. २ राक्षस, असुर (रा.रा.)

३ कांटे वाला वृक्ष।

वि०—१ दुष्ट. २ पापी. ३ दुरात्मा।

कंटाळउ, कंटाळौ–वि०—कंटीला, कांटे वाला।

सं०पु०—देखो 'ऊटकटाळौ'। उ०—करहा नीरूं जउ चरइ, कंटाळउ नइ फोग। नागरवेलि किहां लहइ, थारा थोबड़ जोग।—ढो.मा.

कंटाळियौ–सं०पु०—बोझा ढोने का ऊंट का एक प्रकार का चारजामा—क्षेत्रीय (मि० भारपिलांण)

कंटी–सं०स्त्री०—भूमि पर छितराने वाला एक प्रकार का क्षुप विशेष ।

कंटीली–वि०स्त्री० [सं० कंटक] कंटकायुक्त, काँटेदार, कँटीली ।

कंटेस्वरी–सं०स्त्री०—सोलंकी वंश की एक कुल-देवी का नाम (बां.दा.)

कंटोळिया–सं०पु०—गोखरू या कंटी का फल जिस पर काँटे होते हैं ।

कंठ–सं०पु० [सं०] १ गला, ग्रीवा, टेंटुआ, कंठगत वह नली जो भोजन जाने अथवा आवाज निकालने के लिये प्रयुक्त होती है ।

उ०—गंठ जोड़ अछर भूलाल गंठ, कदमां अंग्रावळ वरमाळ कंठ ।
—वि.सं.

मुहा०—१ कंठ करणौ—कंठस्थ कर लेना. २ कंठ खुलणौ—आवाज निकलना. ३ कंठ फूटणौ—ठीक-ठीक शब्द निकलना, गले की घाँटी का निकलना. ४ कंठ बैठणौ—आवाज भारी होना, गले का बैठ जाना. ५ कंठ राखणौ—याद रखना. ६ कंठ रौ हार बणणौ. ७ कंठ रौ हार होणौ—बहुत प्रिय होना, सदा साथ रहना. ८ कंठ सूखणौ—गला सूखना ।

२ आवाज, शब्द-स्वर, ध्वनि. ३ स्वर. ४ अनुप्रास. ५ तलवार की मूठ पर पकड़ने के स्थान के ऊपर लगाई जाने वाली वृत्ताकार चकरी, तलवार के कटोर के नीचे का गर्दननुमा गोल भाग। देखो 'कटोर' (२)

वि०—१ सुस्वर* (डिं.को.) २ बेंगन के समान रंग का* (डिं.को.)

कंठक—देखो 'कंठ' ।

कंठत्राण–सं०पु० [सं०] युद्ध में रक्षा के लिए गले में लगाई जाने वाली लोहे की जाली या पट्टी ।

कंठपाहिड़ा–सं०पु०—सोलंकी वंश की एक शाखा ।

कंठमणि–सं०स्त्री० [सं०] घोड़े के कंठ में गले के बगल में होने वाली भौंरी (चक्र) यह शुभ मानी जाती है ।

कंठमाळा–सं०स्त्री०—गले में होने वाला एक रोग विशेष जिसमें गले में लगातार छोटी फुड़ियाँ निकलती हैं; कुछ विद्वानों के अनुसार बगल, पेडू या जंघों में भी ग्रंथियाँ हो जाती हैं (अमरत)

कंठळ, कंठळि, कंठळी–सं०स्त्री०—१ घनघटा, मेघघटा ।

उ०—ऊनमियउ उत्तर दिसइ, काळि कंठळि मेह। हूं भीजूं घर-अंगणइ, पिउ भीजइ परदेह ।—ढो.मा.

२ कंठ का एक आभूषण ।

कंठलौ–सं०पु०—गले का आभूषण विशेष ।

कंठसरी–सं०स्त्री० [सं० कंठश्री] १ गले में स्त्रियों के पहनने का एक आभूषण । उ०—हरिणाळी कंठ अंतिरख हूंती, बिंब रूप प्रगटी बहिरि । कळ मोतियां सुसरि हरि कीरति, कंठसरी सरसती किरि ।
—वेलि.

कंठसूळ–सं०स्त्री०—घोड़े के कंठ या गले में होने वाली भौंरी (अशुभ)

कंठस्थ–वि० [सं०] १ कंठाग्र, जबानी याद. २ गले में अटका हुआ, कंठगत ।

कंठाग्र, कंठाग्रहण–सं०पु०—आलिंगन । उ०—जिउं मन पसरइ चिहूं दिसइ, जिम जउ कर पसरंति । दूरि थकां ही सज्जणां, कंठाग्रहण करंति ।
—ढो.मा.

वि० [सं० कंठाग्र] कंठस्थ, जबानी याद ।

कंठाळ, कंठाळक–सं०पु० [सं० कंठाल] ऊँट ।

कंठाळौ–वि०—१ बलवान. २ गवैया, सुंदर व मीठी आवाज वाला. ३ देखो 'कंठाळक' (रू.भे.)

कंठि, कंठिय–सं०स्त्री०—१ तट, कगार । २ देखो 'कंठी' (रू.भे.)

कंठिराव–सं०पु० [सं० कंठिरव] सिंह, व्याघ्र । उ०—प्रगल्भ कंठ पेल देत कंठ कंठिराव को, दुहत्थ हत्थ ठेल देत हत्थले प्रदाव को ।
—ऊ.का.

कंठी–सं०स्त्री० [सं.] १ कंठ का एक आभूषण. २ तुलसी आदि के मनियों की छोटी माला जिसे प्रायः वैष्णव पहिनते हैं. ३ रक्त-चंदन के छोटे दानों को सूत के धागे में बांधा जाने वाला गुरु का चिन्ह ।

मुहा०—१ कंठी देणी—चेला मूंडना. २ कंठी बांधणी—चेला बनाना; संसार से विरक्त होना; बिना सोचे-विचारे चेला बनाना. ३ कंठी लेणी—चेला बनाना, साधू बनाना ४ तोते आदि पक्षियों के गले की रंगीन रेखायें. ५ तलवार के म्यान का ऊपर का वह भाग जो मुंहनाल के नीचे होता है और कुछ उठा हुआ सा होता है ।

कंठीबंध–सं०पु०—वह व्यक्ति जो अपने गुरु के चिन्ह-स्वरूप गले में कंठी धारण करता हो ।

कंठीर–सं०पु० [सं० कंठीरव] सिंह, व्याघ्र (ह.नां.)

कंठीरण, कंठीरणी–सं०स्त्री० [सं० कंठीरव] सिंहनी ।

कंठीरल–सं०पु० [सं० कंठीरव] सिंह । उ०—पटायत लाख रा ज्यूंही थहै वजेपुर, उदेपुर भाकरां गमर आंणे । कंठीरल 'मघा' थारे जसा ठाकरां, तीस खट साख रा मूंछ तांणे ।— अज्ञात

कंठीरव, कंठीरवौ–सं०पु० [सं० कंठीरव] सिंह (अ.मा.)

कंठौ–सं०पु०—१ बड़े बड़े मनिकों वाला कंठ में धारण करने का एक आभूषण विशेष. २ देखो 'कंठी' ३ गला, कंठ ।

कंड–वि०—१ चालाक, धूर्त्त. २ आडंबर से रहने वाला, ढोंगी. ३ सुवृत्त* (डिं.को.)

कंडाळ–सं०पु० [सं० करनाल, फा० करनाय] तुरही नामक वाद्य ।

कंडोर–वि०—१ भयंकर, भयानक. २ अधिक खाने वाला, पेटू. ३ बड़ा अफीमची ।

कंडील–सं०स्त्री० [अ० कंदील] मिट्टी, अबरक व कागज की बनी ऊपर के मुंह वाली लालटेन ।

कंडुकर–सं०पु०—कपिकच्छु नामक लता, कंउच (अ.मा.)

कंडू, कंडूय, कंडूया–सं०स्त्री० [सं० कंडूया] खुजली (अमरत)

उ०—१ धाड़वियां अजको धणी, भागी भड़ न भिड़ाय । जे कर कंडू ऊतरै, पौढै अंग भिड़ाय ।—वी.स.

उ०—२ सुणतां हाकौ धव सखी, मूंछ मुहारां छूय । एकण लाखां

आंगमे, मेटी कर कंडूय।—वी स. उ०—३ इण रीति अनेक धूंकळ करि भुजा री कंडूया भागि न जांणि जगमाल कुमार ग्रहमदाबाद रा ग्रधीस नूं पांहुणौ नूंतियौ।—वं.भा.

कंण—देखो 'कण'।

कंणदोरौ—सं०पु०—करधनी, मेखला।

कंणयर—सं०स्त्री० [सं० कनियर] कनेर का गुल्म ग्रथवा उसका पुष्प। उ०—पहि भवंतौ जो मिळै, तौ थे कहिजो बत्त। धण कंणयर री रे कंब ज्यूं, सूखी तोहि सुरत्त।—ढो.मा.

कंत—सं०पु० [सं० कांत] १ पति। उ०—सेल घमोड़ा किम सह्या, किम सहिया गजदंत। कठिन पयोहर लागतां, कसमसतौ तू कंत।—हा.झा.

२ ईश्वर (ह.नां.) ३ स्वामी. ४ सात मात्राओं का एक मात्रिक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण के अंत में जगण होता है।

कंतड़ौ—सं०पु० [सं० कांत] पति। उ०—सखी ग्रमीणौ कंतड़ौ, ग्रंगि ढीलौ ग्राचंत। कड़ी ठमंकै बगतरां, नड़ी नड़ी नाचंत।—हा.झा.

कंतहरख—सं०स्त्री० [सं० कांत+हर्ष=ग्रानंद] शय्या (ग्र.मा.)

कंता—सं०स्त्री० [सं० कांता] स्त्री, पत्नी। उ०—निमिख पळ वसंति मारिखौ ग्रहोनिसि, एकण एक न राखै ग्रंत। कंत गुणे वसि थायौ कंता, कांता गुणि वसि थायै कंत।—वेलि.

कंतारक—सं०पु० [सं० कांतार] वन, जंगल (ग्र.मा., नां.मा.)

कंतुकी—सं०स्त्री०—केतकी। उ०—सुखमनि परम सिंध में झूले, ता हति कंवळ कंतुकी फूले।—ह.पु.वा.

कंतेर—सं०पु०—१ खलिहान में ग्रनाज के पौधों को कुचल कर उन्हें साफ करने के लिए बनाये गये ढेर के नीचे जमा हुग्रा भूसा. २ एक कंटीला वृक्ष विशेष जिसके पत्ते नींबू के पत्तों के सदृश होते हैं।

कंतौ—देखो 'कंत' (रू.भे.)

कंथ—सं०पु० [सं० कांत] १ पति, स्वामी। उ०—विहसतै सहस बळ कड़ी जाय ऊबड़ै। घाट घड़ कंथ रै जरद ढीलौ घड़े।—हा.झा.

(ग्रल्पा० कंथड़ो) २ देखो 'कंत' (रू.भे.) ३ शिव।

कंथकोट—सं०पु०—पश्चिमी पाकिस्तान का एक स्थान विशेष।

कंथड़—सं०पु०—१ नाथ सम्प्रदाय का एक सिद्ध संन्यासी (ग्रलूदास) २ देखो 'कंथ'।

कंथड़ो, कंथड़ौ—सं०पु०—पति ('कंथ' का ग्रल्पा०) उ०—कंथड़ा झालि किरमाळ केड़ो करां, सारझड़ वरण सौ सोक सैलां सरां।—हा.झा.

कंथा—सं०स्त्री० [सं०] पुराने चिथड़ों को जोड़ कर बनाया हुग्रा पहिनने का वस्त्र विशेष जिसे प्रायः गरीब व्यक्ति ग्रथवा संन्यासी पहिनते हैं, गुदड़ी। उ०—वुत केसर ग्राड भभूत दीध। कंथा नवरंगी सिलह' काध।—वि.सं.

कंथाधार—सं०पु०—१ संन्यासी. २ शिव, महादेव।

कंथौ—देखो 'कंथ' (रू.भे.)

कंद—सं०पु० [सं०] १ बिना रेशे की गूदेदार जड़ यथा—शकरकंद, गाजर, मूली ग्रादि। उ०—मास दोय रा हुवा ग्रौर डूंगर में ग्राग लागी। वनस्पती, कंद मूळ, घास व फळ फूल सह बळिया।

—डाढ़ाळा सूर री वात

(यौ० ग्राणंदकंद, कंदमूळ, सकरकंद) २ जमाई हुई चीनी, मिश्री. (यौ० कळाकंद, गुळकंद) ३ दुख, उदासीनता (पिं.प्र.) [सं० स्कंध] ४ कंधा. उ०—कर कोप दंत चौ मुरड़ कंद।

—करणीरूपक.

[सं० कंद] ५ प्रत्येक चरण में चार यगण ग्रौर एक लघु सहित तेरह वर्ण का वर्णिक वृत्त विशेष (पिं.प्र.) ६ छप्पय छंद के ७१ भेदों में से २६ वाँ भेद जिसमें ४२ गुरु ६८ लघु ११० वर्ण ग्रौर १५२ मात्रायें होती हैं। इसका दूसरा नाम कमल भी है. [सं० कुंद] ७ नौ निधियों के ग्रंतर्गत एक निधि. ८ कलंक. ९ श्यामता, कालापन। उ०—केम कळंक लागै निकळंक, 'जालम' तूझ तणा रव जेम। कंद वाळा न हुए समंद कण, हुए न दागळ ग्रंग हेम।

—चतुरोजी सोदौ

१० मेघ, वारिद (मि० जलद)। उ०—तन कंद स्यांम सुभावनं। पट पीत विद्युत पावनं।—र.ज.प्र. ११ जड़-मूल। उ०—विमुहा करण साह दळ, मुहकम का हरियंद। सोच निवेडण नियदळां, खळां उखेलण कंद।—रा.रू. १२ समूह (ह.नां, ग्र.मा.)

वि०—मूर्ख (ह.नां, ग्र.मा.) (मि० जथाजात)

कंदक—सं०पु०—वितान, चंदोवा (डिं.को.)

कंदचर—सं०पु०—सुग्रर (ग्र.मा.)

कंदण, कंदन—सं०पु० [सं० कंदन] १ नाश, ध्वंश. २ शिव, महादेव (क.कु.बो.). ३ युद्ध (ह.नां, ग्र.मा.)

कंदप—सं०पु० [सं० कंदर्प] कामदेव (एकाक्षरी)

कंदपीड़नासण, कंदपीड़नासन—सं०पु०—चौरासी ग्रासनों के ग्रंतर्गत एक ग्रासन। इसमें दोनों पाँवों के पंजों के पार्श्व को मिला कर नाभि के नीचे कंद दबे इस चाल से रक्खा जाता है ग्रौर दोनों घुटनों को सटा कर जंघा के निम्न भाग को भूमि पर लगा कर बैठा जाता है। इससे कुंडलिनी जागृत होती है ग्रौर सुषुम्ना का मार्ग शुद्ध होकर प्राण वायु का संचार होता है। सावधानी न रखने से इस ग्रासन में पैर उतर जाने की संभावना है।

कंदमूळ—सं०पु० [सं० कंदमूल] १ लंबी, मोटी ग्रौर गूदेदार जड़ वाला तीन चार हाथ ऊँचा एक पौधा. २ कंद ग्रौर मूल।

कंदर—देखो 'कंदरा'।

कंदरप—सं०पु० [सं० कंदर्प] १ कामदेव (ह.नां.) २ प्रद्युम्न का पुत्र, श्रीकृष्ण के पौत्र ग्रनिरुद्ध का एक नाम (वेलि.)

वि०—कुत्सित दर्प वाला, ग्रभिमानी।

कंदरपग्रह—सं०पु०यौ० [सं० कंदर्प+ग्रहन] त्रयोदशी। उ०—सम चउदह सत्रह समै, सिसिर चरण ग्रवसांण। ग्रसित तपा कंदरपग्रह, चढ़ियौ इम चहुवांण।—वं.भा.

कंदरा–संoस्त्रीo [संo] गुफा, गुहा (डिं.को.)

कंदराकर, कंदराकार–संoपुo [संo] पर्वत, पहाड़ (डिं.को.)

कंदरी–संoस्त्रीo [संo कंदरा] गुफा, कंदरा, गुहा ।

कंदळ–संoपुo—१ नाश, संहार, विध्वंस । उo—अजमेर हुवा नर एसला, नवलक्खी उग्रह लिया । सीलंत पांण सुरतांण सूं, कंदळ सुरतांणी किया ।—मालो आसियौ २ युद्ध, कलह । उo—कांणांणौ कंदळ हुवौ, जांणै सकळ जिहांन । ऊबरियौ मांभी 'अखौ', मारै पड़दळ खांन —रा.रू. ३ शोरगुल. ४ सोना, स्वर्ण (नां.मा.) ५ टुकड़ा. ६ भाटी वंश की एक शाखा या इस शाखा का एक व्यक्ति (बां.दा.) ८ समूह (ह.नां.)

कंदळी–संoस्त्रीo [संo कंद] १ ध्वजा (अ.मा., ह.नां.) २ देववृक्ष (अ.मा.) ३ छठी बार निकाला गया बहुत तेज शराब । उo—तठा उपरांति करि नै राजांन सिलामति दारू रौ पांणीगो मंडियौ छै सो किण भांति रौ दारू–ऊलटै रौ पलटै नै पलटै रौ ऐराक, ऐराक रौ बैराक, बैराक रौ संदळी, संदळी रौ कंदळी, कंदळी रौ कहर ।—रा.सा.सं. ४ एक प्रकार का हरिण. ५ युद्ध, समर । उo—केहरी तणा जमरांण मचंतै कंदळी, दुम्रे कर जोड़ियां खड़ी दोहां । पुकारै जवांनी नेस दिस पधारौ, लाजि आखै हमें वाजि लोहां ।—लिखमीदास व्यास

कंदारौ–संoपुo—पथ, रास्ता । उo—वरण साधू निज नांम विसारौ, छळ धारौ मद छाक । नरक पधारौ देय नगारौ, तिरण कंदारौ ताक ।
—ऊ.का.

कंदाळ–संoपुo [संo स्कंधालय] धनुष (नां.मा.)

कंदीजणौ–क्रिoअo—किसी गीली वस्तु यथा घास, कटी हुई फसल, मिर्च, फल आदि जो एक स्थान पर एकत्रित हों या इनकी सुखी अवस्था में कारण विशेष से इनमें नमी प्रवेश होने पर उपयुक्त ताप और हवा के प्रभाव में विकृत होना, सड़ान उत्पन्न होना ।

कंदीजियोड़ौ–भूoकाoकृo—नमीयुक्त पदार्थ जो उपयुक्त ताप और हवा के प्रभाव में विकृत हुआ हो, सड़ा हुआ ।

कंदुक–संoपुo [संo] गेंद । उo—जिण अरभक लाड में मत्त, एकण दिन कंदुक री क्रीड़ा करतां आघात रौ अपराध मांनि कोई ग्राम्य स्त्री रा कहण हूं फूंफा समुद्रसिंह नूं आप रा बाप रौ मारणहार जांणियौ ।
—वं.भा.

कंदुकतीरथ–संoपुo [संo कंदुकतीर्थ] ब्रज का वह स्थान जहाँ श्रीकृष्णजी गेंद खेला करते थे, कंदुकतीर्थ ।

कंदूड़ौ–संoपुo—ज्वार या तिलहन के पौधों अथवा घास का गंज ।

कंदोई–संoपुo [संo कांदविक] हलवाई ।

कंदोराबंद–विo—१ वह जिसके कंदोरा (मेखला) धारण की हुई हो. २ प्रति पुरुष और बालक, प्रति व्यक्ति । वि.वि.—सामूहिक भोज आदि के अवसर पर केवल पुरुषों और बालकों को आमंत्रित करने के लिए कंदोराबंद निमंत्रण दिया जाता है । इसका अभिप्राय यह होता है कि कंदोरा बांधने वाले अर्थात् पुरुष और बालक, क्योंकि करधनी बालक के ही बांधी जाती है, इस भोज में सम्मिलित हो सकते हैं । कहीं-कहीं विवाह-भोज आदि के शुभ अवसर पर कंदोराबंद अर्थात् करधनी धारण करने वाले को दक्षिणा या भेंट भी दी जाती है ।
—(हिंदू)

कंदोरो, कंदोरौ—देखो 'कणदोरौ' (रू.भे.)

कंदौ–संoपुo—बंदूक के पीछे का चौड़ा लकड़ी का हिस्सा ।

कंद्रप–संoपुo [संo कंदर्प] १ कामदेव (डिं.को.) २ पौरुष, पुंसत्व । उo—विना पूंजी वौपार, विना ओळखियां धीजै । क्रीत सुणै विन दांन, विना कंद्रप परणीजै ।—ओपो आढ़ौ

कंध–संoपुo [संo स्कंध] १ कंधा । उo—विसरियां विसर जस बीज बीजिजै, खारी हाळाहळां खळांह । त्रूटै कंध मूळ जड़ त्रूटै, हळधर कां वाहतां हळांह ।—वेलि. [संo] २ गर्दन, ग्रीवा (अ.मा.) उo—तन धरि धरि मरि मरि गया, हरि हरि भजै न भेद । सद्गति सुख जांणै नहीं, तहां कंध का छेद ।—ह.पु.वा. ३ डाली ।

कंधक–संoपुo—१ गर्दन, गला (ह.नां.)

कंधड़क–संoपुo [संo स्कंध] कंधा । उo—कंधड़क दड़क बड़क कड़ी, सिंधुड़क सड़क बहै सुजड़ी ।—गो.रू.

कंधर–संoपुo [संo स्कंध] १ कंधा । उo—जब लग पातल खाग भल, सिर कंधर उससंत ।—किसोरदांन बारहठ [संo] २ तालाब (अ.मा.)

कंधरूढ़ा–संoस्त्रीo [संo स्कंधरूढ़ा] स्कंधरूढ़ा नामक एक देवी । उo—काळीका जग क्रतौ कंधरूढ़ा कौमारी । कमळा बाळा कळा पळा प्रमहंस पियारी ।—नैणसी

कंधाळधुर–संoपुo—बैल (डिं.नां.मा.)

कंधुर, कंधौ–संoपुo [संo स्कंध] कंधा । उo—लसै पति पद्धर पिट्ठ निसंक कसै कर बग्गनि कंधुर बंक । गुहै कच यालन के भरि बत्थ, सितासित पीत कनादिक सत्थ ।—ला.रा.

मुहाo—१ कंधौ देणौ—मदद करना, लाश की टिकटी कंधे पर रखना. २ कंधौ पकड़ नै चालणौ—दूसरों के सहारे काम करना, बहुत कमजोर होना. ३ कंधा सूं कंधौ भिड़णौ—बहुत भीड़ होना, एक मत या एक राय होना ।

कंनीर–संoस्त्रीo [संo कर्णेर] एक प्रकार का फूलदार वृक्ष (डिं.को.)

कंप–विo [संo कम्प्र] १ अधीर, चंचल (अ.मा.)

संoपुo—१ दोष, कलंक (ह.नां.) २ कंपकंपी ३ घास की महीनतम धूलि. ४ लश्कर, डेरा. ५ शृंगार के सात्विक अनुभावों में से एक. ६ भय, डर. ७ कंपायमान होने की क्रिया या भाव ।

कंपकंपी–संoस्त्रीo—१ कांपने की क्रिया या भाव, थरथराहट. २ महीनतम धूलि-कण ।

कंपटुयण–संoपुo—कपिकच्छु नामक लता, कंउच (अ.मा.)

कंपण—देखो 'कंपन' (ह.नां.) (रू.भे.)

कंपणी–संoस्त्रीo [अंo कंपनी] १ देखो 'कंपनी' (रू.भे.) । २ अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी (ऐतिहासिक) ३ कँपकँपी, थरथराहट ।

कंपणी, कंपबौ–क्रि०अ०—१ कांपना. २ भयभीत होना, आतंकित होना।

कंपणहार, हारौ (हारी), कंपणियौ–वि०—कांपने वाला।

कंपिओड़ौ, कंपियोड़ौ, कंप्योड़ौ—भू०का०कृ०।

कांपणौ, कांपबौ—(रू.भे.)

कंपत--देखो 'कंपित' (रू.भे.)

कंपन–सं०पु०—कंपित होने की क्रिया या भाव, थरथराहट, भय, आतंक। उ०—तोरी धाक मांन के जवाहर अजांणबाहु, गोरे जीव जीवन की आसते छुट्यो करै। चौंक उठै रैण चैन नींद नांहीं, कंपनी कळंजे मांय कंपन उठयौ करै।—डूंगजी रौ कवित्त

कंपनी–सं०स्त्री—बहुत से मनुष्यों का एक साथ व्यापार या व्यवसाय के निमित्त संस्था के रूप में बद्ध होने की क्रिया या भाव।

कंपाणौ, कंपाबौ–क्रि०स० ('कंपणौ' का प्रे.रू.) १ हिलाना, डुलाना. २ डराना।

कंपाणहार, हारौ (हारी), कंपाणियौ–वि०— हिलाने डुलाने या डराने वाला।

कंपायोड़ौ—भू०का०कृ०।

कंपावे–सं०स्त्री०—पँवार वंशोत्पन्न एक देवी का नाम (बां.दा. ख्या.)

कंपाळ–सं०पु० [सं० कपाल] सिर के ऊपर का हिस्सा, कपाल। उ०—विसाळ गोळ कावळी, कंपाळ झंपती बहै।—ऊ.का.

कंपावणौ, कंपावबौ—देखो 'कंपाणौ' (रू.भे.)

कंपास–सं०पु० [अं०] १ दिशाओं का ज्ञान कराने का एक प्रकार का यंत्र विशेष. २ एक प्रकार का अन्य यंत्र विशेष जिसमें पैमाइश में लैन डालते हैं. ३ बढ़ई का एक औजार विशेष।

कंपित–वि० [सं०] १ कांपता हुआ, चंचल। उ०—वेदोगत धरम विचारि वेदविद, कंपित चित लागा कहण। हेकरिण सुत्री सरिस किम होवै, पुनह पुनह पांणिग्रहण।—वेलि. २ भयभीत, डरा हुआ ('कंपत' रू.भे.)

कंपियोड़ौ–भू०का०कृ०—कांपा हुआ, कंपित। (स्त्री० कंपियोड़ी)

कंपी–सं०स्त्री०—१ कंपन, थरथराहट. २ कँपकँपी. ३ घास की महीनतम धूलि।

कंपु, कंपू–सं०पु०—१ सेना, फौज। उ०—१ कंपू मार तेगां तीजी ताळी सो कुरंगी कीधी, जका बाद नौरंगी प्रजाळी भुजां जोम।
—गिरवरदांन कवियौ

उ०—२ लाग खाई पूरे पाटां खहै कंपू खेध लागा, वहै खाटां घायलां निराटां भीमवार।—बां.दा. २ सेना का खेमा या पड़ाव. ३ जनसमूह, समुदाय. ४ धूलि-कण।

कंब–सं०स्त्री०—१ छड़ी। उ०—पही भमंतउ जउ मिळइ, कहे अम्हीणी बत्त। धण कंणयर री कंब ज्यउं, सूकी तोइ सुरत्त।
—ढो.मा.

कंबड़ी–सं०स्त्री०—छड़ी (रू.भे. कंब) उ०—सड़-सड़ वाहि म कंबड़ी, रांगां देह म चूरि। बिहुं दीपां बिचि मारुई, मो थी केती दूरि।
—ढो.मा.

कंबर, कंबळ, कंबळि, कंबळी–सं०उ०लि०[सं० कंबल] ऊन का बना ओढ़ने का मोटा वस्त्र, कम्बल। उ०—१ परवाह न पाट पटंबर की, अब चाह सु कंबर अंबर की।—ऊ.का. उ०—२ पहिरण-ओढण कंबळा, साठे पुरिसे नीर। आपण लोक उभांखरा, गाडर-छाळी खीर।
—ढो.मा.

उ०—३ कोई कोमळ वसत्रे कोई कंबळि, जण भारियौ रहंति जगि।
—वेलि.

(अल्पा० कंबळियौ, कांबळियौ)

कंबाइय–सं०स्त्री०—छड़ी, बेंत। उ०—सांझी बेळा सांमहळि, कंठळि थई अगासि। ढोलइ करह कंबाइयउ, आयउ पूगळ पासि।—ढो.मा.

कंबु, कंबू–सं०पु० [सं० कंबु] १ शंख (ह.नां.) उ०—१ रसा भारहारी भुजा च्यार राजै। सरोजादि कंबू गदा चक्र साजै।—रा.रू.
उ०—२ ग्रीवा कंबु कपोत गरब्बां गाळही।—बां.दा.
२ हाथी (अ.मा., ह.नां.) ३ घोंघा।

कंबोज–सं०पु० [सं०] १ घोड़ा (डिं.को.) २ प्राचीन काल में इस नाम से पुकारा जाने वाला अफगानिस्तान का एक भाग. ३ इस भाग में उत्पन्न घोड़ा।

कंभ–स०स्त्री०— हाथ में रखने की पतली चुटकनिया, छड़ी। उ०—कव गयौ जदन वन कंभ काज। मन अभय एकलौ डयांन माज।—पा.प्र.

कंभी–सं०स्त्री०—पिघले हुए सोने या चाँदी का बनाया हुआ वह ठोस रूप जो लोहे के पात्र (रेजे) में डाल कर लंबी डंडी के समान बनाया जाता है।

कंमधेस–सं०पु० [सं० कवंध+ईश] राठौड़वंशी क्षत्रिय।

कंमन–वि० [सं० कमनीय] सुन्दर, मनोहर (ह.नां)

कंमळा–सं०स्त्री०—देखो 'कमळा'। उ०—प्रति छांह वधै मधि दिन पछै, ऋति मनीति ग्रह कंमळा। गुण रूप एम 'अगजीत' ग्रह, कँवर 'अभौ' वाधै कळा।— रा.रू.

कंमाळ–सं०स्त्री०—मुण्डमाला। उ०—किलकारी काळी किलकिलै, कंमाळ धारक विळकुळै।—र.रू.
[अ० कमाल] कमाल।

कंमास–सं०पु०—पृथ्वीराज चौहान का कैमास नामक एक प्रसिद्ध सामंत।

कंमेड़ौ–सं०पु०—कपोत। उ०—जैसे कपोत कहतां कमेड़ा का कंठ की स्याह लीक देखीयै।—वेलि. टी.

कमेर—देखो 'कुबेर'।

कंवर–सं०पु० [सं० कुमार] १ लड़का, बेटा, पुत्र। उ०—दीयै सू निज कंवर देखियौ, हियौ लियौ दुलराई नै।—ऊ.का.
२ वह लड़का जिसका पिता जीवित हो. ३ स्वामी कार्तिकेय. ४ राजकुमार।

कंवरकलेवौ–सं०पु०—१ विवाह के समय तोरण-द्वार पर दूल्हे के आने पर उसे कराया जाने वाला भोजन. २ विवाह के दूसरे दिन प्रातः-काल दूल्हे को कराया जाने वाला भोजन।

कंवरपद, कंवरपदी—देखो 'कुंवरपदी'। उ०—ग्रै पदमसिंघजी भाई केसरीसिंघजी पेट सूं ई ग्रालमगीर रै ताबै हुता कंवरपदै थकां।—द.वा.

कंवराणी—सं०स्त्री०—१ वह पुत्र-वधू जिसका श्वसुर जीवित हो. २ राजकुमार की पत्नी।

कंवरापति—सं०पु०—राजकुमार। उ०—यर दसूं दसा रा छोड़ भागे उतना, करै कुण समर फरंगांण मांनै कथन। महाबळ ग्राज रौ यसौ घोळै मथन। 'रतन' कंवरांपति कडण चवदै रतन।—जवांनजी ग्राढ़ौ

कंवराईपणौ—सं०पु०—कुमारावस्था। उ०—कंवराईपणौ में तौ हमीरौ धांम पूगौ। जेंकी पूठि भैरूंसिंह फेरघौ भांण ऊगौ।—शि.वं.

कंवरियौ—सं०पु०—कुमार। देखो 'कुंवर' का ग्रल्पा०

कंवरी—सं०स्त्री० [सं० कुमारी] १ ग्रविवाहिता कन्या. २ पुत्री। उ०—कंवर सिनांन करइ किरमाळां, कंवरी भाळां न्हांण करइ।

—ग्रज्ञात

३ राजकन्या. ४ बारह वर्ष तक की कन्या. ५ दुर्गा। उ०—देवी कंटकां हाकणी वीर कंवरी।—देवि.

कंवळ—सं०पु० [सं० कमल] १ कमल (डि.को.) उ०—परदेसां प्री ग्रावियउ, मोती ग्रांण्या जेण। घण कर कंवळां भालिया, हसि करि नांख्या केण।—ढो.मा. २ मस्तक. ३ भ्रमर।

वि०—कोमल। उ०—सांघ प्रभात ठोरडू ठरै, कंवळ धंवळ कंवळासड़ा। गटामाटी गुड़ै बाळका, हरख बरफ हिवळासड़ा।—दसदेव

कंवळाइजणौ, कंवळाइजबौ—क्रि०ग्र०—मुरझाना, कुम्हलाना। उ०—छोटेड़े वीरै री, गवरां दे, नानकड़ी सी नार, राय ग्रभूतड़ी कंवळाइजे कंवळ केरै फूल ज्यौं।—लो.गी.

कंवळापति—सं०पु० [सं० कमला+पति] विष्णु, लक्ष्मीपति। उ०—निज पुरि नगर बसै कंवळापति, सकळ सिरोमणि स्वांमी।—ह.पु.वा.

कंवळासड़ौ—वि०—कोमल। उ०—सांघ प्रभात ठोरडू ठरै, कंवळ धंवळ कंवळासड़ा। गटामाटी गुड़ै बाळका, हरख बरफ हिवळासड़ा।—दसदेव

कंवळियौ—सं०पु०—कामला रोग।

कंवळी—सं०स्त्री०—१ दरवाजे या खिड़की के चौखट के सहारे उसकी मजबूती के लिये दीवार में लगाया जाने वाला गढ़ा हुग्रा खड़ा पत्थर. २ मुख्य दरवाजे के ग्रांतरिक ग्रन्य दरवाजे या खिड़कियों के ग्रगल-बगल में भीतर की ग्रोर लगाया जाने वाला पत्थर।

कंवळौ—सं०पु० (स्त्री० कंवळी) १ बड़े दरवाजे की चौखट के ग्रगल-बगल में बाहर की ग्रोर लगाया जाने वाला सीधा खड़ा पत्थर या द्वार के दोनों तरफ की दीवार का भाग। उ०—कंवळै ऊभौ काळ, ग्राठ पहर चौमठ घड़ी। देव दनुज दिगपाळ, चलता होवै चकरिया।

—मोहनलाल साहू

२ सफेद रंग का गिद्ध विशेष जिसकी चोंच पीली होती है. ३ बिना मात्रा का ग्रक्षर।

वि०—कोमल, मुलायम। उ०—सांझ री रातौ ग्रांचळ छोड, चांनणी में कुण मांडै रास। कंवळी किरणां चोकर भेख, करै किम परियां घरा वि..स।—सांझ

कंवाड़—सं०पु० [सं० कपाट] १ कपाट, दरवाजे के पल्ले (डि.को.)। उ०—ग्रर ग्रातंक री ग्रवाई सूं जठी तठी रा गढां रा कंवाड़ां रै भावै जंजीर घलाया।—वं.भा. २ रक्षक। उ०—१ दंती हींडौळै भरोखां हेठै खुंभाळां भाटका देता। फरै बाज हजारी घाट का फौजां फाड़ रोळा जीप चाळागारा ग्रोटपा घाटा का राजा। काळा भोक भागै मेद पाटका कंवाड़।—माधोसिंह सीसोदिया रौ गीत। उ०—२ जिण रीति भाई नै पाळौ हुवौ देखि मारवधरा रौ कंवाड़ कनक प्रतिहार ग्रसि रौ ग्राघात दे'र प्रथीराज रा ग्रस्व रौ ग्रंस उड़ायौ।—वं.भा.

कंवाड़ी—सं०स्त्री०—१ छोटी कुल्हाड़ी. २ छोटा कपाट, छोटा दरवाजा।

कंवार—सं०स्त्री—१ कुमारावस्था। २ देखो 'कंवर'. ३ कुमारी।

कंवारछळ—सं०पु० [सं० कौमारांचल] कुमारावस्था, (यह केवल वेश्याग्रों की लड़कियों के लिये प्रयुक्त होता है)

मुहा०—कंवारछळ उतारणौ—किसी वेश्या की लड़की के साथ किसी पुरुष का प्रथम बार समागम किया जाना।

कंवारड़ौ—देखो 'कंवारौ' (ग्रल्पा०)।

कंवारपणौ—सं०पु० [सं० कुमार+रा० प्र० पणौ] कुमारावस्था।

कंवारी—वि०स्त्री०—१ ग्रविवाहित. २ देखो 'कुमारी'।

कंवारीघड़, कंवारीघड़ा—सं०स्त्री० [सं० कुमारी+घटा] युद्धारम्भ के पूर्व की सुसज्जित सेना। उ०—कंवारी-घड़ा झेलणा जंग काळा, रिसाला ग्रछी ग्रच्छ रा बच्छ वाळा।—ग्रगया ग्रगेंद्र

कंवारीजांन—सं०स्त्री—विवाह के पहले (प्राय: एक दिन पहले) वधू के यहां जाने वाली बारात ग्रथवा इस बारात को दिया जाने वाला भोज (पुष्टिकर ब्राह्मण)

कंवारीभात—सं०स्त्री०—कन्या के पिता द्वारा कन्या के पाणिग्रहण के पूर्व बरातियों को दिया जाने वाला भोज।

कंवारीलापसी—सं०स्त्री०—कन्या के पिता द्वारा कन्या के पाणिग्रहण के पूर्व बरातियों को दिया जाने वाला वह भोज जिसमें लपसी बनाई गई हो।

कंवारौ—वि० [सं० कुमार] (स्त्री० कंवारी) १ ग्रविवाहित। उ०—१ खाटी कुळ री खोवणा, नेपै घर घर नींद। रसा कंवारी रावतां, बरती कौ ही बींद।—वी.म.

कंवारौ भात—देखो 'कंवारी भात'।

कंविद—स०पु० [सं० कवीन्द्र] श्रेष्ठ कवि, महाकवि।

कस—सं०पु० [सं०] १ उग्रसेन का पुत्र व श्रीकृष्ण का मामा, मथुरा का एक राजा जो श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया था. २ कांसे का पात्र. ३ पीने का पात्र. ४ झांझ-मंजीरा. ५ कसीस नामक धातु (डि.को.)

कंसनिकंदण, कंसनिकंदन—सं०पु०यौ० [सं० कंस+निकदन] १ श्रीकृष्ण. (ग्र.मा.) २ विष्णु (ह.र.)

कंसरौ—सं०पु०—कांसी-पीतल के बर्तन बनाने का व्यवसाय करने वाली एक जाति विशेष का व्यक्ति (कां.दे.प्र.)

कंसळौ—सं०पु०—कनखजूरा (क्षेत्रीय)

कंसविधुंसी–सं०स्त्री० [सं० कंस+विध्वंशी] बिजली, विद्युत (नां.मा.)

कंसार–सं०पु० [सं० कं=जल=सारं यत्र] १ देखो 'कसार'।

कहा०—घी बिना लूखौ कंसार, टाबर बिना लूखौ संसार—घी बिना कसार रूखा, सन्तान बिना संसार रूखा; संतान ही संसार का सच्चा ग्रानन्द है [सं० कंस+ग्ररि] २ श्रीकृष्ण (ग्र.मा.)

कंसाळ–सं०पु०—काँसी नामक मिश्रित धातु का बना हुग्रा युद्ध में बजाने का बाजा। उ०—पड़ी भेळ प्रासाद देव नइ, भागां कूंचीं ताळां। हळहळ करी पोळि मांहि पइठा, लीया ढोल कंसाळां।—कां.दे.प्र.

कंसास—[सं० कं=सुख=स्यति] देखो 'कंस'। उ०—वळि भरियउ वासा करइ वेड़ि, कम्रूहवउ जांणि कंसास केड़ि।—रा.ज.सी.

कंसासुर—देखो 'कंस' (१) उ०—नमो मुर-मेघ-मरद्दण मल्ल, कंसासुर काळ संखासुर सल्ल।—ह.र.

क–सं०पु० [सं०] १ ब्रह्मा. २ विष्णु. ३ सूर्य्य. ४ ग्रग्नि. ५ प्रकाश. ६ कामदेव. ७ दक्षप्रजापति. ८ वायु. ९ राजा. १० यम. ११ ग्रात्मा. १२ मन. १३ शरीर. १४ काल. १५ धन. १६ मोर. १७ शब्द. १८ जल. १९ ग्रंथि, गांठ. २० शिर, मस्तक. २१ सुख. २२ केश. २३ बन. २४ निवास. २५ दास. २६ ज्योतिषी (डिं.को., ह.नां.मा., एकाक्षरी)

ग्रव्यय—१ ग्रथवा, या। उ०—१ तैं ग्रहल्या तारीह, सिला हुती पति स्राप सूं। वरती मौ वारीह, सौवैं क जागै सांवरा।

—रामनाथ कवियौ

उ०—२ वाघ क नाग क छेड़िया, ग्राग वग्राग क खग्ग।—रा.रू. ३ संबंधकारक का चिन्ह, का, के, की. ४ बिना, रहित।

कग्रण–सं०पु० [सं० कथन] कथन।

कइ–ग्रव्यय—१ संबंधकारक का चिन्ह, का, के, की। उ०—पांखड़ियां ई किउं नहीं, दैव ग्रवाडू ज्यांह। चकवी कइ हइ पंखड़ी, रयणि न मेळउ त्यांह।—ढो.मा. २ ग्रथवा, या। उ०—कागळ नहीं क मसि नहीं, लिखतां ग्राळस थाइ। कइ उण देस संदेसड़ा, मोलइ वडइ विकाइ।—ढो.मा.

क्रि०वि०—कब। उ०—दैवग्य तेड़ि वसुदेव देवकी, पहिलौ ई पूछै प्रसन। दियौ लगन जोतिख ग्रथ देखे, कइ परणै रुखमणि क्रिसन।—वेलि.

सर्व० [सं० किम्] क्या। उ०—संदेसे ही घर भरयउ, कइ ग्रंगणि कइ बार। ग्रवसि ज लग्गा दीहड़ा, सेई गिणइ गंवार।—ढो.मा.

कइक–वि०—कई, बहुत। उ०—ग्रावै कइक चीतिया, ग्रणचीतिया ग्रनेक।—बां.दा.

कइकांण–सं०पु०—घोड़ा। उ०—एही भली न करहला, कळहळिया कइकांण। कां ग्री रांगां ग्रांग करि, कांइ ग्रचंती हांण।—ढो.मा.

कइबा–वि०—कैसा। उ०—कै वा देवी देवां थरी? कै वा चंद्र बदन उणीहार? कइबा देवळ-पूतळी? ईसीय छइ प्रभुजी ग्रमारड़ी नार।

—वी.दे.

कइयक–सर्व०—किसी। उ०—सांवण पहले पाख में, जे तिथ ऊणी काय। कइयक-कइयक देस में, टाबर वेचै माय।—वर्षा-विज्ञान

क्रि०वि०—कहीं।

कइयां–क्रि०वि०—कैसे, क्यों।

सर्व०—कई। उ०—पांच पांन को बीड़ो फेरयौ, ज्वारसिंघ सिरदार। कयां चढ़ायौ तेजरी, कइयां रै चढ़गी ताप।

—डूंगजी जवारजी री पड़

कइर–सं०पु० [सं० करील] रेगिस्तान की एक कँटीली भाड़ी, करील। उ०—करहा इण कुळि गांमड़इ, किहां स नागरवेलि। करि कइरां ही पारणउ, ग्रइ दिन यूंही ठेलि।—ढो.मा.

कईक–वि०—१ थोड़ा, नाम मात्र, कुछ। उ०—कर जांणी तौ कईक भलाई कीजौ, लाभ मिनख तन लीजौ लोय।—ग्रोपौ ग्राढ़ौ

२ कई, ग्रनेक।

कई—१ देखो 'कइ' (रू.भे)

क्रि०वि०—२ कभी। उ०—रहिया हरि सही जांणियौ रुखमणी, कीध न इवड़ी ढील कई। चिंतातुर चित इम चिंतवती, थई छींक तिम धीर थई।—वेलि.

सं०स्त्री०—खेतों में निराई करने तथा भूमि खोदने का एक ग्रौजार विशेष (कृषि)

कईक—देखो 'कइक' (रू.भे.) उ०—सुरतांण रै कईक दिन परगणौ मलहारणौ पिरण रह्यौ।—बां.दा.

कईवरत, कईवरतक–सं०पु० [सं० कैवर्तक] मल्लाह। उ०—ग्रोदध कळ ग्रार, जळ नासत भरियौ जबर। पातां बेड़ा पार, कईवतरक 'माधौ' करै।—ग्रज्ञात

कउण–सर्व०—१ क्या. २ कौन। उ०—पुत्रे जाग्रे कउंण गुण, वाजइ तूर ग्रनंत।—रा.ज.सी.

कउ–सं०स्त्री०—१ वह छोटा सा कुंड जिसमें तापने के लिए ग्राग जलाई जाय, ग्रलाव, कौडा. २ संन्यासियों की धूनी।

सर्व०—१ क्या। उ०—लोभी ठाकर ग्रावि घरि, कांई करइ विदेसि। दिन दिन जोबण तन खिसइ, लाभ किसा कउ लेसि।—ढो.मा.

२ कोई। उ०—मेहां बूठां ग्रन वहळ, थळ ताढ़ा जळ रेस। करसण पाका कण खिरा, तद कउ वळण करेस।—ढो.मा.

ग्रव्यय—संबंधकारक का चिन्ह, का, के, की। उ०—तिही राजा रै पांच पुत्र छठी पुत्री। एक कउ नांम रुकम।—वेलि. टी.

कउग्रो–सं०पु० [सं० काक] कौग्रा। उ०—कउग्रा दिऊं बधाइयां, प्रीतम मेळइ मुज्झ। काढ़ि कळेजउ ग्रापणउ, भोजन दिउंली तुज्झ।—ढो.मा.

कउण–सर्व०—कौन। उ०—रहि रहि मूरख न बोलि ग्रयांण। कउण देसी तोहि मंडव धार।—वी.दे.

कउतिग, कउतिग्ग–सं०पु० [सं० कौतुक] १ कुतूहल. २ कौतुक, विनोद। उ०—ढाल कजि कियउ धड़धड़उ ढोइ, जगतोइ रहइ कउतिग्ग जोइ।

—रा.ज.सी.

कउतेय–सं०पु० [सं० कौंतेय] कुंती पुत्र—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव व कर्ण। (अ.मा.)

कउवौ—देखो 'कउग्रौ' (रू.भे.)

कऊ—देखो 'कउ' (रू.भे.)

कऊवौ—देखो 'कउग्रौ' (रू.भे.)

ककखट–वि०—कड़ा, कठोर, सख्त, दृढ़।

ककड़ीजोग—देखो 'करकटजोग'।

ककड़ौ–सं०पु०—१ दाढ़ी या मूंछों के लाल रंग के बाल. २ ज्योतिष में एक योग।

ककट–सं०पु०—१ क्रोध में दांत किटकिटाने का भाव।

ककसौ–सं०पु० [सं० कक्ष, कक्षा] १ ग्रहों का भ्रमण करने का मार्ग, २ परिधि. ३ बराबरी, समान, तुलना. ४ श्रेणी. ५ देहली, ड्योढ़ी. ६ कांछ-कँछोटा।

वि०–बराबर तुल्य समान।

ककी–सं०पु० [सं० केकी] १ मादा कौग्रा. २ मोर, मयूर (डिं.को., ह.नां.)

ककोलक–सं०पु०–कवच (वं.भा.)

ककुद–सं०पु० [सं० ककुद्] बैल के कंधे का कूबड़, डिल्ला।

ककुदमान–सं०पु०—बैल (अ.मा.)

ककुभ–सं०स्त्री०—दिशा (अ.मा.) (रू.भे. ककुभा)

ककुभा–सं०स्त्री० [सं०] १ दिशा. २ धर्म की पत्नी जो दक्ष की पुत्री थी. ३ संपूर्ण जाति की मालकोंस राग की पांचवीं रागिनी (संगीत)

ककुभाळी–वि०—दिशाओं से आने वाली (आंधी)। उ०—काळी पीळी सह सीळी ककुभाळी, कांठळ कावळती बावळ बळवाळी।—ऊ.का.

ककेंड़ौ–सं०पु०—१ कर्कोटक, कती का गूंद (अमरत) २ देखो 'कंकेड़ौ' (रू.भे.)

ककोड़ौ–सं०पु० [सं० कर्कोट] १ एक प्रकार का लता-फल जिसका शाक बनाया जाता है (अमरत)

ककौ, कक्कौ–सं०पु०—क वर्ण।

कहा०—१ कक्कै री टांग ऊंची व्है कै नीची—अक्षर-ज्ञान के अभाव वाले व्यक्ति के लिए प्रयोग में लाई जाती है. २ तेरै कका भेळा व्है जणै सिरमाळी रोटी भेळो व्है—श्रीमाली ब्राह्मण बहुत देरी से भोजन करते हैं।

सर्व०—कोई। उ०—वरळदंतौ ककौ मूरख, ककौ निरधन ताल कौ।

कक्खट–वि०—कठोर, कड़ा (डिं.को.)

कक्ष–सं०स्त्री० [सं०] १ बगल, कांख. २ दर्जा, श्रेणी।

सं०पु०—३ वन, जंगल (डिं.को.)

कख–सं०पु०—१ आंख का कोना। उ०—कख काजळ जळ चलै रार डांसियां रतंबर।—पा.प्र.

[सं० कक्ष] २ जंगल (ह.नां.) ३ कसौटी, जांच, परीक्षा. ४ एक पत्थर विशेष।

कखती-मगरी–सं०स्त्री०—एक प्रकार की तलवार।

कखवा–सं०पु० [सं० कक्षवान या कक्षवाह] वन, जंगल (अ.मा., नां.मा.)

कग–सं०पु० [सं० काक] कौग्रा। उ०—इण सनमंध संसार दा, जिम कोयल कगे।—केसोदास गाडण

कगड़ौ–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़े का रंग विशेष या इस रंग का घोड़ा

कगण्ण–सं०पु०—कर्ण। उ०—अरिजण जेम कगण्ण असाध, अनमी जोध तणा उतराध।—रा.ज.रासौ

कगल–सं०पु० [सं० काक] काग, कौग्रा।

कगल्ल–सं०पु० [सं० कंकट] कवच, जिरहबख्तर। उ०—दुंद सुणे मगरे दिसा, संद तणौ अत सल्ल। नूरमली जोधांण सूं, चढ़ियौ भीड़ कगल्ल।—रा.रू.

कगवा–सं०स्त्री०—१ एक प्रकार की ज्वार जो रंग में सफेद होती है किंतु उसका आटा श्याम रंग का होता है (क्षेत्रीय) २ ज्वार की फसल का एक रोग विशेष जिसमें ज्वार का दाना विकृत हो जाता है। पीसने पर उसका आटा काले रंग का होता है।

कग्ग–सं०पु० [सं० काक] कौग्रा (रा.रा.) (मि० कग्गौ)

कग्गर–सं०पु० [फा० कागज] कागज, पत्र। उ०—बुल्लौ दै कग्गरहि छत्र भग्गत भुव भग्गी। अब निवारि निदरिय पिक्खि पब्बय दव लग्गी।—वं.भा.

कग्गळ–सं०पु० [फा० कागज] १ कागज-पत्र। उ०—लिखि कग्गळ कछवाह दिय, लय धावन निज हत्थ। आतुर धावन आंनि के, दिय नवाब के हत्थ।—ला.रा. २ कवच (मि० कगल्ल)

कग्गौ–सं०पु० [सं० काक] कौग्रा। उ०—हंसां घर हंसा हुए, कग्गां कग्गा होय।—हंसप्रबोध

कड़–सं०स्त्री० [सं० कटि] १ कटि, कमर (अ.मा.) उ०—सज्जण चाल्या हे सखी, दिस पूगळ दोड़ेह। सायधण लाल कबांण ज्यउं, ऊभी कड़ मोड़ेह।—ढो.मा. २ तरवट, पक्ष। उ०—झालौ पूछै ठाकुरां, पड़ियौ की कड़ न्याय। कासुं दिखावां मुंहडौ, राव कन्है इब जाय।—डाढ़ाळा सूर री बात। ३ तट, किनारा। उ०—१ कीरत पूगी समंद कड़ां—नवलजी लाळस। उ०—२ कड़ दध जिण सुजस कहजे, भिड़ै खळ भंजे।—र.ज.प्र.

कड़क–सं०स्त्री०—१ क्रोध, कोप, गुस्सा। उ०—सभै भड़ सलह चख हुवां अमलां सड़क, जोड़ रा काळजा बड़क जावै। सुण कड़क कठीनै पातळा सिंह री, खळ जठी तठीनै धड़क खावै।—महादांन महडू २ विजली (डिं.को) ३ बिजली की आवाज या बंदूक की गर्जना। उ०—नाळियां कड़क भुज भड़ाळां अड़क नभ, धरा पुड़ धड़क ग्रह धड़ै धुरा। कड़ा बरमां बड़क रड़क बंब कावळा, भमर किण सिर असी कड़क भूरा—रावत अमरसिंह री गीत। ४ शक्ति, सामर्थ्य. ५ कड़ापन. ६ हड्डियों के टूटने व मोड़ने से होने वाली आवाज।

कड़कड़–सं०स्त्री०—१ देशी ढंग से तैयार की गई बड़े-बड़े ढेलों वाली शक्कर, खांड (मुरसी खांड—क्षेत्रीय) २ देखो—कड़क्कड़।

कड़कड़ी–सं०स्त्री०—१ जोश, आवेग या क्रोध के पूर्ण आवेग में दांतों को परस्पर टकराने की क्रिया का नाम। उ०—इतरणी बात सुणी जद लोटचौ, तन-मन लागी लाय। छिरणी-हथोड़ा लेय लोहियौ, पड़चौ कड़कड़ी खाय।—डूंगजी जवारजी री पड़। २ शक्ति।

कड़कणौ, कड़कबौ–क्रि०अ०—१ क्रोध में दांत पीसना. २ क्रोध में गरजना। उ०—बे बुनियाद कुबोल कहि बकवाद बधारै, तामें कणेठी **कड़कियौ** बळ जेठी वारै।—पदमसिंह री बात

कहा०—मुळकतो नर नै कडकती नार खराब घणी व्है है—बार बार हँसने वाला आदमी तथा क्रोधीले स्वभाव की स्त्री बुरी होती है।

३ गरजना। उ०—गात सुहातां नीर हठीली लार म छोड़े। **कड़क** घमंकां मांड डरपती दडकं दौड़ै।—मेघ० ४ बिजली का गरज के साथ चमकना। उ०—दुसमण **कड़कै** दामणी, छाती धड़कै छैल।
—महादांन महड़ू

५ तेज आवाज से बोलना। उ०—**कड़कै** निघातां हाक जहेड़ी कपीस कीसी, वर्णै माधोसींघ हाथां एहड़ी बंदूक।
—माधोसींघ सीसोदिया रौ गीत

कड़कणहार, हारौ (हारी), कड़कणियौ–वि०—कड़कने वाला।

कड़काणौ, कड़काबौ–स०रू०—प्रेरणार्थक प्रयोग।

कड़कियोड़ौ, कड़ाकियोड़ौ, कड़क्योड़ौ—भू०का०कृ०।

कड़कनाळ–सं०स्त्री०—शत्रु सेना को भयभीत करने के लिए छोड़ी जाने वाली एक प्रकार की तोप जिससे बड़ा भयानक शब्द होता है।

कड़कम–सं०स्त्री०—पुरुषों के कान में पहिना जाने वाला एक आभूषण।

कड़काणौ, कड़काबौ–क्रि०स०—'कड़कणौ' का प्रे०रू०। देखो 'कड़कणौ' उ०—उलटौ काय न मार ही, पंचायण भैमंत। कड़तळ दळां उपाड़ि, करि **कड़काय** कंत।—हा.झा.

कड़कियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ कड़का हुआ. २ कुपित. ३ गर्जना किया हुआ (स्त्री० कड़कियोड़ी)

कड़केत–सं०पु—भाटों की एक शाखा (मा.म.)

कड़कोल्यौ–सं०पु० [सं० कटु+कुल्य] १ देखो—'ठोलौ'। २ देखो—'कड़कौ' (१) (रू.भे.)

कड़कौ–सं०पु०—१ अंगुलियों को चटखाने से होने वाली आवाज. २ ताकत, बल. ३ जोर का शब्द. ४ युद्ध के समय गाया जाने वाला गीत. ५ बिजली. ६ साधारण दोहा कविता. ७ लंघन, उपवास (अमरत) (रू.भे. 'कड़ाकौ')

कड़क्क–सं०स्त्री०—देखो 'कड़क' उ०—दूठ घणोई दाखियो, पूठ न दी पर पक्क। मूंठ खड़ग हथ मेलतां, कीधी ऊठ **कड़क्क**।
—भगतमाळ

कड़क्कड़–सं०स्त्री०—१ देखो 'कड़कड़' [अनु०] २ एक ध्वनि विशेष। उ०—**कड़क्कड़** वाजि घड़ां किरमाळ, बड़ब्बड़ भाजि पड़ंत बंगाळ।
—वचनिका

कड़क्कणौ, कड़क्कबौ–क्रि०अ०—देखो 'कड़कणौ' (रू.भे.)

उ०—१ हैजमां **कड़क्कै** बीज जंगी हौदां रंगी हाडै, जड़क्कै फरंगी सीस बरंगी जनेब—दुरगादत्त बारहठ। उ०—२ **कड़क्कै** कंध कह कह काळ, रुळै पळ खोण मचै रिणताळ।—रा.ज. रासौ

कड़ख–सं०स्त्री०—किनारा, तट।

कड़खणौ, कड़खबौ–क्रि०स०अ०—१ आक्रमण करना. २ हुल्ला करना। उ०—काबिली थाट भुंय ग्रासिया **कड़खिया**, कितौ कूड़ौ कटक जगत कहियौ।—राव चन्द्रसेण राठोड़ रौ गीत।

कड़खणहार, हारौ (हारी), कड़खणियौ—वि०।

कड़खीजणौ, कड़खीजबौ—भाव वा०।

कड़खीजियोड़ौ—भू०का०कृ०।

कड़खियोड़ौ, कड़ाखियोड़ौ, कड़ख्योड़ौ—भू०का०कृ०।

कड़खौ–सं०पु०—१ नदी का कुछ ऊंचा उठा हुआ तट. २ एक छंद विशेष (र.ज.प्र.)

कड़ड़–सं०स्त्री० [अनु०] बड़े काष्ठ के धीमे-धीमे टूटने पर होने वाली आवाज या ध्वनि. २ बिजली की गर्जना। उ०—पड़ड़ पड़ड़ बूंदां पड़ै, गड़ड़ गड़ड़ घण गाज। कड़ड़-कड़ड़ बीजळ करै, धड़ड़-धड़ड़ धर आज।—वादळी

कड़ड़णौ–क्रि०अ०—कड़कड़ाहट की तेज आवाज का होना। उ०—अड़ड़ वाज गोळां उरड़ थळ चां ऊपरा, भड़ाभड़ वळोवळ खाग भड़की। अरि घड़ ऊपरां 'दळै' अस ओरियो, कड़ड़ियौ आभ काय बीज कड़की।—वीरमियौ मूळौ

कड़ड़ाट—देखो 'कड़ड़'।

कड़च–क्रि०वि०—शीघ्र, जल्द। उ०—कोळू सूं आया **कड़च**, रूक वजावण राड़। तूटा सांवत तीन सौ, ओला पैला आड़।—पा.प्र.

कड़चणौ, कड़चबौ—देखो 'कड़छणौ' (रू.भे.)

कड़चणहार, हारौ (हारी), कड़चणियौ—वि०।

कड़चीजणौ, कड़चीजबौ—भाव० वा०।

कड़चीजियोड़ौ—भू०का०कृ०।

कड़चियोड़ौ, कड़ाचियोड़ौ, कड़च्योड़ौ—भू०का०कृ०।

कड़च्छ–सं०पु०—बंध।

वि०—सुसज्जित, सन्नद्ध।

कड़च्छा–सं०स्त्री०—कटाक्ष। उ०—नेउर पक्खर नाद त्यों, बिबि ओर बढ़ाया। तिक्ख **कड़च्छा** सज्ज यों, सित भल्ल सजाया।—वं.भा.

कड़छणौ–सं०पु०—कमरबंद. २ अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होने का भाव।

कड़छणौ, कड़छबौ–क्रि०अ०—१ कटिबद्ध होना, तैयार होना, सन्नद्ध होना। उ०—वैरी **कड़छै** बांकला, करै अहोणौ काज। रांम तार गिरवर रची, पांणी ऊपर पाज।—बां.दा. २ प्रहार करने हेतु या मारने हेतु तेजी से लपकना। उ०—कुमळिया पीड़ सिर विकट आग्राज कर, **कड़छियौ** कांन नटराज काळौ।—बां.दा.

कड़छलौ, कड़छल्यौ–सं०पु०—१ बड़ा करछुल (अमरत) २ छोटा कड़ाहला।

कड़ढियोड़ौ-भू०का०कृ० [सं० कटिच्छन्न] १ सन्नद्ध. २ प्रहार करने हेतु लपका हुआ। (स्त्री० कड़ढियोड़ी)

कड़जोड़ौ-सं०पु०—कवच, सनाह।

कड़ढ़णौ, कड़ढ़बौ-क्रि०स०—(म्यान से तलवार आदि) निकालना। क्रि०अ०—निकलना।

कड़ढ़णहार, हारौ (हारी), कड़ढ़णियौ—वि०।

कड़ढ़ियोड़ौ, कड़ढ़ियोड़ौ, कड़ढ़योड़ौ—भू०का०कृ०।

कड़ढ़ियोड़ौ-भू०का०कृ०—निकाला या निकला हुआ। (स्त्री० कड़ढ़ियोड़ी)

कड़ढ़ीजणौ, कड़ढ़ीजबौ-क्रि०अ०—निकाला जाना या निकला जाना।

कड़ढ़ीजियोड़ौ-भू०का०कृ०—निकाला गया या निकला गया हुआ। (स्त्री० कड़ढ़ीजियोड़ी)

कड़ढ़ौ-सं०पु०—खड्ड, गर्त।

कड़तल-सं०स्त्री० [सं० कटि+तल] १ तलवार, खड्ग. २ झाला राजपूतों का विरुद। उ०—उलटौ काय न मार ही, पंचायण मैमंत। कड़ताळ दळां उपाड़ि करि, कड़काय चाळौ कंत।—हा.भा.

कड़तू-सं०स्त्री०—कटि, कमर। देखो 'कड़' (रू.भे.)

कड़तोड़ौ-सं०पु०—१ ईश्वर, परमात्मा. २ वह बैल जिसके कमर पर एक विशेष प्रकार की भौंरी (चक्र) हो (अशुभ)

वि०यौ० [कड़=कटि, तोड़ौ=तोड़ने वाला] कमर तोड़ने वाला। उ०—सिवाणे गढ़ सीह लंकौ है, सरापियळ जायगा है। औ किलौ कड़तोड़ौ है जिणसूं राजवियां रै रहण योग्य नहीं।—बां.दा. ख्या.

कड़थल-सं०पु०—१ संहार, नाश. २ देखो 'कड़तल' (रू.भे.)

कड़दौ-सं०पु०—१ कीचड़. २ किसी द्रव पदार्थ के नीचे तली में जमने वाला कीच. ३ सोने-चाँदी के साथ मिलाया जाने वाला विजातीय धातु।

कड़पौ-सं०पु० [सं० कर-प्राप्त] गेहूँ की फसल कटने के समय मजदूरों को मजदूरी के अतिरिक्त दिया जाने वाला कटे हुए गेहूँ का पुआल जो हथेलियों के संपुट में समा सके।

कड़प्रोथ-सं०पु० [सं० कटि+प्रोथ] नितंब, कूल्हा (डिं.को.)

कड़बंध-सं०पु० [कड़=कटि+बंध] १ कमर में पहनने का एक भूषण। उ०—छक कड़बंध सुचंगां छाजै, पट अंगां राजै पुण पीत। —र.रू.

सं०स्त्री०—२ करधनी. ३ कमरबंध. ४ तलवार।

कड़ब-सं०स्त्री०—ज्वार के पके हुए डंठल जो गाय भैंस को चराने के लिए ही काटे जाते हैं। कड़बी।

कड़बचेन-सं०स्त्री०—अलग-अलग टुकड़े जोड़ कर बनायी जाने वाली जंजीर।

कड़बांध-सं०स्त्री०—१ मूंज की करधनी जो यज्ञोपवीत के समय ब्रह्मचारी लंगोटी के साथ धारण करता है. २ कमरबंध. ३ तलवार।

कड़बोड़ी-सं०स्त्री०—ज्वार के सूखे डंठलों की भरी हुई गाड़ी।

कड़ब्बणौ, कड़ब्बबौ-क्रि०अ०—प्रकुपित होना। उ०—नमटटपी भुज्ज सभी निरवांण। कड़ब्यौ कोप सभी केवांण।—रा.ज. रासौ

कड़ब्बणहार, हारौ (हारी), कड़ब्बणियौ-वि०—प्रकुपित होने वाला।

कड़ब्बियोड़ौ, कड़ब्बियोड़ौ, कड़ब्बयोड़ौ—भू०का०कृ०।

कड़ब्बीजणौ, कड़ब्बीजबौ—भाव वा०।

कड़मूळ-सं०स्त्री० [सं० कलि-मूल] सेना, फौज (अ.मा.)

कड़लियौ-सं०पु०—१ मिट्टी का बना बर्तन विशेष. २ मिट्टी का बना दीपक। उ०—ठोड़ ठोड़ ठांवड़ा वरतै, बणिया कूंडा कड़लिया। रूप विगाड़ै लेण माटी, कुणिया ऊंडा दरड़िया।—दसदेव

कड़लोला-सं०पु० [सं० कटिलोलन] थकावट के बाद कुछ कमर सीधी करने का भाव, विश्राम। उ०—तिण सूं अठै घोड़ां नै सास खवावां नै म्हे पिण घड़ी येक कड़लोला करां। पछै आघा चढ़िस्यां। —जैतसी ऊदावत री वात

कड़लौ-सं०पु० [सं० कटक] स्त्रियों द्वारा पैरों में धारण करने का एक आभूषण विशेष।

कड़वाई-सं०स्त्री०—कड़ुआपन, कठोरता। उ०—सोकड़ल्यां वच मांहि करै कड़वाइयां।—बां.दा.

कड़ापण, कड़वापणौ-सं०पु०—१ कड़ुआ होने का भाव या धर्म. २ कटुता। उ०—धूंध न चूकै डूंगरां, कड़वावण नींबांह। प्रीत न चूकै सज्जणा, देस विदेस गयांह।—अज्ञात

कड़वास-सं०पु०—१ कड़ुआपन. २ कटुता। उ०—सम्मण वै फळ कुण सा, जो पाकै कड़वास। काचा लगै सुवावणा, गड़्डर करै मिठास।—समन

कड़वीरोटी-सं०स्त्री०—वह मोटे आटे की रोटी जो किसी के यहाँ मृत्यु होने के दिन बनाई जाती है। उस दिन भोजन नहीं बनता। प्रायः वह पड़ोसियों या संबंधियों के यहाँ से आ जाता है।

कड़वौ—देखो 'कड़वौ' (रू.भे.) उ०—पैंड पैंड ज्यांरा पिसण, त्यां रा कड़वा वैण।—बां.दा.

कड़वौ तेल-सं०पु०—सरसों का तेल (अमरत)

कड़ाई-सं०स्त्री० [सं० कटाह] १ लोहे का खुला चौड़े मुँह का छिछला बरतन विशेष जिसके किनारे पर पकड़ने के लिए कड़े लगे रहते हैं। प्रायः इसमें हलुआ आदि बनाया जाता है।

मुहा०—१ कड़ाई करणी—कड़ाही में कोई पदार्थ बनाना २ कड़ाही में पकाया या बनाया गया पदार्थ। उ०—करूं कड़ाई चाव से, तेरी दुरगा माय।—लो.गी. [सं० कटु] ३ कठोरता। ४ देखो 'कराई' (रू.भे.) ५ पैर के तलुए का एक फोड़ा विशेष. (मि० छणाई)

कड़ाऊ-सं०पु०—दीवार की चुनाई में लगाया जाने वाला खड़ा, सीधा व चौड़ा पत्थर।

कड़ाकंद—देखो 'कळाकंद' (रू.भे.) उ०—मनै तो बाबूजी ! खाली कड़ाकंद ही दिया। देखियो क बेटो किसो क चोखो खाऊ है।—वरसगांठ

कड़ाकड़–सं०स्त्री० [अनु०] ध्वनि-विशेष।

कड़ाछी–सं०स्त्री०– कलछी, बड़ा व गहरा चम्मच (अमरत)

कड़ाजूड़, कड़ाभूड़, कड़ाजूभ, कड़ाभूभ–वि०—१ युद्धार्थसन्नद्ध. २ सुसज्जित कटिबद्ध। उ०—१ लड़ैवा अड़ै गैरा अफैरा लीधा, दुबाहां भड़ां पागड़ै पाव दीधा। तयारी हुवां सिह आखेट तांई, कड़ाजूड़ ऊभा कहै जेज कांई।—अगया अगेंद्र। उ०—२ संवत् १७६५ रा काती सुद १ आठ हजार कड़ाजूभ सिपाही घोड़ा सवार हौ सइयद गैरत खां हसन खां हुसेन खां सहे आया।—बां.दा.ख्या.

कड़ाबंध–वि०—१ घिरा हुआ, आवेष्टित. २ घेरा हुआ. ३ सुसज्जित। उ० लोह लाठ कड़ाबध संधी खड़ै आभ लागा, नागां घड़ा घड़ाबंध आहुडै नघात।—हुकमीचंद खिड़ियौ

कड़ाबीणो, कड़ाबीन–सं०स्त्री० [तु० क़ुराबीन] एक प्रकार की चौड़े मुंह वाली बंदूक। उ०– हाथियां माथै जंगी हौदा, जंगी हौदां में तमंचा कड़ाबीणा, तीर, कबांण, जाळियां सिपाह बैठा।—बां.दा. ख्या.

कड़ाभीड़–वि०—कवचादि से सुसज्जित।

सं०स्त्री०—जमघट, भीड़-भाड़।

कड़ाय–सं०पु० [सं० कटाह] लोहे का खुला चौड़े मुंह का छिछला बरतन विशेष जिसके किनारे पर पकड़ने के लिए कड़े लगे रहते हैं। प्राय: इसमें हलुवा आदि बनाया जाता है। (अल्पा० कड़ायलौ)

कड़ायलियौ, कड़ायलौ–सं०पु०—१ छोटी कड़ाही. २ मिट्टी का बना छोटा दीपक।

कड़ायौ–सं०पु०—१ छोटी कड़ाही. २ एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसके तने का रंग लाल होता है। इसके गोंद का रंग सफेद होता है। इसकी लकड़ी से तलवार व छुरियां के म्यान आदि बनते हैं।

कड़ाळ–सं०पु०—कवच। उ०—ऊबड़ैत कड़ाळा प्रनाळा हल्ले खळक्कै स्रोण वाळा। अटक्कै छड़ाळां भुजां गैरागां अड़ैत।—अज्ञात

कड़ाव–सं०पु० [सं० कटाह] देखो 'कड़ाय' (रू.भे.) उ०—तथा रिण समै हाथी चानरा माथै ढाल बांधै छै सो वा कड़ाव होवै जेड़ी होवै छै। वी.स.टी.

कहा० –राम ! मौत दे तौ सीरा रै कड़ाव में—हे ! ईश्वर, मृत्यु यदि दे भी तो हलवे के कड़ाव में देना। अर्थात मौत यदि हो भी तो आनन्द उपभोग करते हुए ही हो। आनन्द-काल में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाना अच्छा लगता है। कारण कि विपदा या यातना सहन करना बड़ा कठिन होता है।

कड़ावलौ–सं०पु० [सं० कटाह+रा० प्र० लौ] छोटी कड़ाही।

कड़ावौ—देखो 'कड़ाय' (रू.भे.) उ०—देखै क्या है, भट्ट खुदिया खुदाया त्यार है। कड़ावा पड़िया है, पंच अर रसोइया खड़ा है।

—वरसगांठ

कड़ाह, कड़ाहौ—देखो 'कड़ाय' उ०—तेल रौ कड़ाहौ उकळै छै।

—चौबोली

कड़ि–सं०स्त्री० [सं० कटि] १ कटि, कमर।

उ०—१ जातौ पिंगळराइ नै गयौ श्रंतेवर मांहि। सूती ऊमा देवड़ी, कड़ि नीचै वहि जाय।—ढो.मा. उ०—२ उरि चोड़ी कड़ि पातळी। माहोलै कोयै जीमणी आंखी।—वी.दे.

२ अधखिला पुष्प, कलि। उ०—कस्तूरी कड़ि केवड़ो, मस्तक जाय महक्क। मारू दाड़म फूल जिम, दिन-दिन नवी डहक्क।—ढो.मा.

३ कंकण, कड़ा। उ०—घोड़ा बैसक्यौ हांसला, कड़ि सोनहरी हाथै जोड़ी।—वी.दे.

कड़िबांधी–सं०स्त्री०—कटार जो कमर पर बांधी जाती है।

उ०—कड़िबांधी तणौ भरोसो करता, तीन च्यार लागी तरवारि।

—कल्यांणदास जाडावत

कड़िय–सं०स्त्री०—कटि, कमर।

कड़ियल— देखो 'कड़ियाळ'।

कड़ियां–सं०स्त्री०—१ स्त्रियों द्वारा पैरों में पहनने का एक जेवर विशेष। [सं० कटि] २ कमर। उ०—लटकै खावंद रै अड़ियां उर खारी, पतळी कड़ियां री कड़ियां बिन प्यारी।—ऊ.का.

३ गोद। उ०—पछै आप आय मोहनसिंहजी नूं संभाळ कड़ियां चाढ़ लिया, ड्योढ़ी रै बाहिर लेय आया।—पदमसिंह री बात

४ लोहे की कड़ी।

कड़ियाळ–सं०पु०—१ कवचधारी योद्धा। उ०— घरा कटै समर कड़ियाळ घांण। पड़ियाळ पखै पांडीस पांण।—पा.प्र.

२ कवच (डिं.को.)

कड़ियाळी–सं०स्त्री०—१ हाथ में रखने का लोहे की कड़ियों से युक्त एक प्रकार का डंडा या शस्त्र विशेष. २ घोड़े की लगाम।

कड़ियाळौ–सं०पु०—अमलताश का वृक्ष।

कड़ियौ–सं०पु०—१ पत्थर की चुनाई का कार्य करने वाला व्यक्ति. उ०—कवि कड़िया रोपै काळा थिरि, रिध मांडै ताइ सथिर रहै।

—यादव लाखा फूलांणी रौ गीत

२ छोटा (प्राय: गेहूँ का) खेत।

कड़िहि–सं०स्त्री० [सं० कटि] कमर, कटि। उ०—तरुआरां रै सोनहरी मूंटि, करड़ां खेड़ां घालइ पूंठि। कड़िहि कटारी हीरे जड़ी, पाड़सूत्रनी छूद दावड़ी।—कां.दे.प्र.

कड़ी–सं०स्त्री०—१ हाथों या पैरों में पहिनने का धातु का जेवर विशेष. २ वस्त्र अटकाने के लिए लम्बी कील में लगा पतला गोला. ३ लगाम. ४ गीत या छंद का एक पद या चरण. ५ कवच. ६ कमर। ७ हुक्का. ८ एक प्रकार का मोटा रस्सा।

वि०—१ कठोर. २ भयंकर. ३ तेज। देखो 'कड़ौ'।

कड़ी-कड़ी–सं०स्त्री० [अनु०] दो बकरों या मेढ़ों को परस्पर लड़ाने के निमित्त जोश दिलाने का शब्द।

कड़ीड़–सं०पु०—१ प्रहार, चोट. [अनु०] २ प्रहार से उत्पन्न ध्वनि।

कड़ीवस–वि०—१ ग्रीष्म ऋतु. २ शीत ऋतु।

कडूंब–सं०पु० [सं० कुटुम्ब] कुल, वंश, खानदान (डिं.को.)

उ०—बाप गयौ ले माहिरी, काकौ जात कड़ूंब। तोहि मचाई छोकरै, बैरी रै घर बूंब।—वी.स.

कड़ूंब-वाळ—सं०पु०—१ किसान, कृषक (डिं.को.) २ वह व्यक्ति जिसका कुटुम्ब बड़ा हो।

कड़ूंबौ—देखो 'कड़ूंब' (रू.भे.)

कड़ुऔ—वि० [सं० कटु] (स्त्री० कड़वी) १ कटु, अप्रिय। उ०—मारू देस उपन्नियां, सर ज्यउं पध्धरियांह। कड़ुवा बोल न जांणही, मीठा बोलणियांह।—ढो.मा. २ स्वाद में तीक्ष्ण, छः प्रकार के रसों में से एक. ३ तीक्ष्ण प्रकृति वाला. ४ एक बड़ा वृक्ष।

कड़ेचा—सं०पु०—सीसोदिया वंश की एक शाखा।

कड़ेली—सं०स्त्री०—वह बकरी जिसके पैर सफेद हों।

कड़ै—क्रि०वि०—पास, नजदीक, निकट। उ०—कळ मेलांय कीरत निध कड़ै। सत्रवां पिड़ राड़ रचौ चवड़ै।—पा.प्र.

सं०पु०—समय। उ०—बगतर कड़ियां उबड़ै, लड़ै भड़ै खग लाय। तिण दिन देवां तेमड़ा, संगट कड़ै सहाय।—अज्ञात

कड़ैली—सं०स्त्री०—बाजरे-मक्की की रोटी सेंकने के लिए मिट्टी का बना एक प्रकार का तवा विशेष (मि० कैलूड़ी)

कड़ोलियौ—सं०पु०—१ कड़ा (अल्पा०) २ एक प्रकार का बैल जिसकी दोनों आंखों में वलय के आकार की कुंडली हो (अशुभ)

कड़ौ—सं०पु०—१ अर्द्धमंडलाकार बनाने के उद्देश्य से किया जाने वाला दो पत्थरों का जोड़. २ आवेष्टन. ३ पैर या हाथ में पहना जाने वाला धातु का मंडलाकार आभूषण. ४ मोच करोत का एक भाग अथवा उपकरण. ५ मकान की छत के ऊपर डाले जाने वाले कंकड़ों के साथ मिलाया जाने वाला चूना. ६ समूह, झुंड। उ०—हिय आगळ दोवड़ तोड हड़ौ। कूंदियळ वळावळ बांध कड़ौ।—पा.प्र. ७ तट, किनारा। उ०—तै करी इसी ऊफेल 'साहिब' तणा, अघट चित राख तै अछड़ ऊगी। परवरी बात अखिआत सारी प्रथी, पांगळी समंद रा कड़ां पूगी।—आईदांन लाळस जुडियौ

वि० (स्त्री० कड़ी) १ कटु, अप्रिय।

मुहा०—१ कड़ी कड़ी कैणी. २ कड़ी कड़ी सुणाणी—खरी-खोटी सुनाना. ३ कड़ौ बोलणौ—कठोर शब्दों में कोई कटु बात कहना। २ कठोर, कड़ा।

मुहा०—१ कडी निजर (आंख) राखणी—कठोर दृष्टि रखना, अच्छी तरह देखभाल करना. २ कड़ौ पड़णौ—कठोर दिल बनना; अभिमान करना. ३ सहनशील, धीर. ४ तेज. ५ कर्कश. ६ असह्य।

कड़ोट—सं०पु०—पंक्ति के उलटने की क्रिया या भाव (र.ज.प्र.)

कड़ोमौ—देखो 'कड़ूंबौ'। उ०—जोधौ चंद्रभांण एम बोल्यौ ऊठि जावौ। सारां लाडखान्यां का कड़ोमां नै सुणावौ।—शि.वं.

कच—सं०पु० [सं०] १ केश, बाल, रोम (अ.मा., डिं.को.)

उ०—बंध्यौ मच्छ जिण बार, मांण दुजोधन मेटियौ। खैंचे कच उण बार, थां पारथ बैठ्यां थकां।—रांमनाथ कवियौ

२ चोटी (क.कु.बो.) ३ सूखा फोड़ा या जख्म. ४ झुंड. ५ अंगरखे का पल्ला [अनु०] ६ कुचलने का शब्द।

[सं० कुच] ७ स्तन, थन (ह.नां.)

वि०—१ श्याम* (डिं.को.) २ कच्चा। उ०—फुट वांनरेण कच नाळिकेर फळ, मज्जा तिकरि दधि मंगळीक।—वेलि.

कचकबरी—सं०स्त्री०—बालों में शृंगार के उद्देश्य से पुष्प गूंथने की क्रिया।

कचकोळी—सं०स्त्री०—स्त्रियों द्वारा हाथ पर धारण करने की कांच की चूड़ी।

कचनार—सं०पु० [सं० कांचनार] १ एक प्रकार का बड़ा वृक्ष। लाल व सफेद फूलों के हिसाब से इसके दो भेद होते हैं (अमरत)

२ इस वृक्ष का पुष्प। उ०—किलंगी पर कचनार, सीस बनड़ा के सोवै।—लो.गी.

कचन्नी—सं०स्त्री०—देवी, महामाया। उ०—धवा धवळगर धव धू धवळा, क्रसना कुब्जा कचन्नी कमळा।—देवि.

कचबोड़ी—सं०स्त्री०—स्त्रियों (प्राय: जाट स्त्रियों) द्वारा हाथ में पहनने का एक गहना विशेष जिसमें लाक्षा के संयोग से कांच के टुकड़े जड़े रहते हैं। उ०—चूड़ौ चमकीलौ कचबोड़ी चमकै। दांमण दमकीली दामणि सी दमकै।—ऊ.का.

कचमेड़ी—सं०स्त्री०—रंगमहल।

कचर—सं०स्त्री०—१ कुचलने, पीटने या चूर-चूर करने का भाव।

उ०—करै घर पार की आपणी जिकै नर। केवियां सीस खग-पांण करणा कचर।—हा.झा. २ कूड़ा-कचरा।

कहा०—कचरै सूं कचरौ वधै—कूड़े से कूड़ा बढ़ता है; सफाई रखनी चाहिए।

३ कोल्हू में अध-कचरे किए हुए तिल।

कचरकौ—सं०पु०—कचूमर, चकनाचूर।

कचरघण कचरघम—सं०पु०—१ संहार, नाश (रू.भे. 'कचरघांण')

२ कीचड़।

वि०—कीचड़मय।

कचरघांण—सं०पु०—१ अत्यंत कीचड़. २ संहार, नाश, ध्वंस।

उ०—१ महमूद मीर निरखे निबळ, कचरघांण घमसांण करि। मंडियौ तखत दिल्ली मुगळ, कातर बंस पठांण करि।—वं.भा.

उ०—२ जठै घणा रा कचरघांण में आपरा अनीक रा पट द्रव रा प्रवाह में पड़ियौ। नबाब कासिमखांन समेत कुमार दारासाह भी ठहरण न पायौ।—वं.भा.

कचरणौ, कचरबौ—क्रि०स०—१ मसलना. २ कुचलना। उ०—कोड़ भड़ कचरिया राजमल कोपियै, जुड़ण मोटा करै कुंभ जायौ।

—महाराणा रायमल री गीत

कचरणहार, हारौ (हारी), कचरणियौ—वि०—कुचलने या मसलने वाला।

कचरिग्रोड़ो, कचरियोड़ो, कचरयोड़ो—भू०का०कृ०।

कचरीजणो, कचरीजबो—भाव वा०।

कचराबो(ह)-सं०पु०—संहार, ध्वंश। उ०—कंध कबंध पड़घा रणि दीसइ, कीधउ कचराबोह। सोमनाथ मूकाव्यउ राउळि, पद्मइ पला-ळियां लोह।—कां.दे.प्र.

कचरियोड़ो-भू०का०कृ०—१ मसला हुआ. २ कुचला हुआ, रौंदा हुआ. (स्त्री० कचरियोड़ी)

कचरोळो—१ देखो 'कचरौ'. २ शोरगुल, हल्ला-गुल्ला।

कचरो-सं०पु० [सं० कच्चर] १ कूड़ा-करकट. २ बिना पका खरबूजा।

कचलूण-स०पु०—एक प्रकार का नमक (ग्रमरत)

कचहड़ी-सं०स्त्री०—१ ग्रदालत, न्यायालय. २ राज सभा, दरबार।

कचाई-स०स्त्री०—१ कच्चापन. २ कमजोरी. ३ ग्रनुभवहीनता।

कचारा-सं०स्त्री०—कांच की चूड़ियाँ बनाने का व्यवसाय करने वाली एक जाति विशेष (मा.म.)

कचारो-सं०पु०—कचारा जाति का व्यक्ति।

कचिया-सं०स्त्री०—कंचुकी। उ०—कुरती कचिया मखतूलन की, उर माळ चमेलिय फूलन की।—ला.रा.

कचीनकल-सं०स्त्री० [कच्ची+नकल] वह बही जिसमें माल के क्रय-विक्रय का हिसाब होता है (वाणिज्य)

कचीरोकड़-सं०पु० [कच्ची+रोकड़] वह बही जिसमें व्यापारी ग्रपनी दैनिक ग्राय-व्यय का हिसाब रखता है।

कचूर-सं०पु०—हल्दी की जाति का एक पौधा जो ग्रौषधियों में प्रयुक्त होता है, नरकचूर (ग्रमरत)

कचेड़ी, कचेंड़ी-सं०स्त्री०—१ न्यायालय, ग्रदालत. २ राजसभा, दर-बार, कचहरी।

कचोट-वि०—बुरी चोट, कुघात। उ०—छटा सतकोट कचोट छड़ाळ, बिसारत चेतन नेत बिड़ाळ।—मे.म.

कचोळ, कचोळउ, कचोळड़ो-सं०स्त्री० (स्त्री० कचोळड़ी) [सं० क+ चोलक] १ कटोरा, प्याला। उ०—१ कनक काया घट कूं कूं लोल। कठीगा पयोहर हेम कचोळ।—वी.दे. उ०—२ बाबा म देसइ माळवां, वर कूंआरि रहेसि। हाथि कचोळउ सिरि घड़उ, सीचंतीय मरेसि।—ढो.मा. २ निंदा, ग्रपवाद।

कचोळी-सं०स्त्री०—१ तश्तरी. २ कटोरी. ३ एक प्रकार का हथियार। उ०—फिरे डम्भरी सेन नाही फरस्सी, कचोळी कटारी न कस्सी सकस्सी।—ना.द. ४ चिलम के नीचे के भाग में लगाया जाने वाला धातु का हिस्सा. ५ काच की बनी चूड़ी विशेष।

कचोळो-सं०पु० [सं० क+चोलक] १ कटोरा। उ०—१ भाग नाग भारिया, कई ऊभळ कचोळा। दरा केसर घोळिया, होद लेवै हीलोळा।—मे.म.

कचौ—देखो 'कच्चौ'।

र-वि० [सं०] १ मलिन, दूषित (डि.को.) २ ग्रस्वस्थ।

३ देखो 'कचर'।

कच्ची कुड़क, कच्ची कुड़की-सं०स्त्री०—प्राय: महाजनों द्वारा मुकदमे के फैसले से पहले जारी कराई गई कुड़की जो इसलिए कराई जाती है कि मुद्दालेह ग्रपना माल-ग्रसबाब इधर-उधर न कर दे।

कच्चौ-वि० (स्त्री० कच्ची) १ कच्चा, ग्रपक्व, ग्रपरिपक्व। उ०—तेरा एक भाला हींग नोऊं म्होर कच्ची, तेरा एक भाला की सही सें राव सच्ची।—शि.वं.

२ कायर, डरपोक (मि० 'काचौ' रू.भे.)

कच्छ-सं०पु० [सं० कक्ष] १ कांख, बगल. २ सूखी घास. ३ जंगल. ४ भूमि. ५ घर. ६ कांख का फोड़ा. ७ पाप, दोष. ८ कांछ, कछौटा. [सं० कच्छ] ९ जलप्राय देश, ग्रनूप देश. १० नदी ग्रादि के किनारे की भूमि, कछार. ११ गुजरात के समीप का एक प्रदेश. १२ इस प्रदेश का घोड़ा. १३ धोती की लांग. १४ छप्पय का एक भेद जिसमें ५३ गुरु ४६ लघु ९ वर्ण ग्रौर १४२ मात्रायें होती हैं. [सं० कच्छप] १५ कछुग्रा. १६ विष्णु के चौबीस ग्रवतारों में से एक। उ०—मच्छ कच्छ बाराह महमहगी नारसिंह बांमन नारायण।—ह.र. १७ कुबेर की नव-निधियों में से एक निधि. [सं० कच] १८ बाल, केश। उ०—नमणी खमणी बहु-गुणी, सुकोमळी जु सु कच्छ।—ढो.मा. १९ तट, कूल (डि.को.)

कच्छकुळ-सं०पु०—कछवाह वंश, क्षत्रियों का एक वंश।

कच्छप-सं०पु० [सं०] १ कछुग्रा. २ विष्णु के चौबीस ग्रवतारों के ग्रंतर्गत एक ग्रवतार. ३ कुबेर की नौ निधियों में से एक निधि। (डि.को.)

कच्छपवंस-सं०पु०—क्षत्रियों के ग्रंतर्गत कछवाहा वंश।

कच्छपी-सं०स्त्री०—सरस्वती की वीणा, कच्छुवी। उ०—भवांनी नमो कच्छपी स्वांन भासा। भवांनी नमो ऐन ईसांन ग्रासा।—मे.म.

कच्छियो-सं०पु०—देखो 'कच्छप' (१) उ०—कांछियो कर कर रच्छी रुळ जावै।—ऊ.का.

कच्छी-सं०स्त्री०—१ जांघिया. २ एक प्रकार की तलवार.

स०पु०—३ कच्छ देश का निवासी. ४ कच्छदेशोत्पन्न घोड़ा।

कछ-सं०पु० [सं० कच्छप] १ कच्छप, कछुग्रा। उ०—मछ कछ होय जळां डोल्यौ, तौ कूं ग्रजहुं न ग्राई लाज।—ह.पु.वा.

२ देखो 'कच्छ'. ३ जांघ, पैरों व पेट का संधि-स्थल. ४ दोहा नामक छंद का १५ वां भेद जिसमें ८ गुरु ग्रौर ३२ लघु होते हैं (पि.प्र.) ६ वन, जंगल (ह.नां.)

वि०—कुछ, तनिक।

कछणो-सं०पु०—चमड़े की रस्सी। उ०—नै भैरूं हेला टसका करतां मांहे जगदेव ग्रापरा कछणा सूं भैरूं नै ग्रपूठी मसकां बांधियौ नै थिरमां मांहे गांठड़ी बांधि कांधौ करिनै ग्रापरै डेरै ल्याया।

—जगदेव पंवार री बात

कछणो, कछबो-क्रि०ग्र०—ग्रस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होना, कसना।

उ०—सिलहखानां ऊघड़ै, वह भड़ कछै दुवाह। कटकां बिहूं हुंकळ कळळ, हुए सनाह सनाह।—वचनिका

कछवाव–सं०पु०—पेड़ू के संधिस्थल व अण्डकोश पर होने वाला एक प्रकार का दद्रू रोग (अमरत)

कछनी–सं०स्त्री०—१ कछोटा. २ जांघिया।

कछप—१ देखो 'कच्छप' (रू.भे.) (अ.मा., ह.नां.) २ दोहे का एक भेद (र.ज.प्र.) ३ नव-निधियों में एक निधि (ह.नां.)

कछर–सं०पु० [सं० कृच्छ्र] १ दु:ख, क्लेश, पीड़ा (डिं.को.) [सं० कृच्छ्र] २ पामा का दु:ख।

कछव—देखो 'कच्छप' (रू.भे.) उ०—तदि हुवौ मांन हर अडिग 'माहव' तणौ, साह सेना तदि पड़ै सांसै। कछव वांसै पलट करै किम, वसुह ची मांड बिहूं भड़ां वांसै।—पूरौ महिहारियो

कछवाह–सं०पु०—क्षत्रियों की एक शाखा, वंश या इस वंश का एक व्यक्ति।

कछवी–सं०स्त्री०—चोटी पर कंधे के पीछे प्रकट होने वाला घोड़े का एक रोग विशेष (शा.हो.)

कछाट–सं०स्त्री०—कठिनता से दूध देने वाली गाय या भैंस।

कछियांणी–सं०स्त्री०—देवी, देवी का एक अवतार।
वि०—कच्छ प्रदेश की, कच्छ प्रदेशसंबंधी।

कछियौ–सं०पु०—जांघिया, कच्छा।
वि०—रसिक। उ०—झुकती माळ झलेब क तुर रा टांकिया, लट-कण छोगा लूंब दुसाला नांखिया। कळह झगाम गहणौ जोतक सावरो, जांणै कछियौ कांन क मुगट जड़ाव रो।—महादांन महड़ू

कछी–सं०पु०—कच्छ प्रदेश का उत्पन्न घोड़ा।

कछौ–सं०पु०—ऊंट (मि० 'काछी')

कछोटियौ, कछोडियौ–सं०पु०—१ पंवार या पंवार वंश की कछोटिया शाखा का व्यक्ति। उ०—कछोटिया लोग ओछा अधका बोल बोलै। —राठौड़ अमरसिंह री बात

कछ्छ—देखो 'कच्छ'। उ०—साहिब कछ्छ न जाइयइ, तिहां परेरउ रंग। भीभळ नयण सुवंक धण, भूलउ जाइसि संग।—ढो.मा.

कज–क्रि०वि०—लिये, वास्ते, निमित्त। उ०—१ दोय निखंग अभंग जुध, दोय कबांण खड़ग्ग। अंग अप्रबळ जंग कज, संग न चल्लै मग्ग।—रा.रू. उ०—२ रण भाजै कर रेव, जीवण कज केता जिकौ। दीधौ सिर जगदेव, मही जस राखण मोतिया।—रायसिंह सांदू
सं०पु० [सं० क+ज] १ बाल, केश, रोम (डिं.को.) २ ब्रह्मा, विधि. उ०—राघव रट-रट हरख कर, मट-मट अघ दळ महत। जनम-मरण भय हरण जन, कज भव हर रिख कहत।—र.ज.प्र.
[फा०] ३ टेढ़ापन, दोष. ४ काम, कार्य।

कज-जोनी–सं०पु० [सं० कंजयोनि] ब्रह्मा, विधि (नां.मा.)

कजड़ौ–सं०पु० [सं० कार्य+रा० प्र० ड़ौ] कार्य, काम।

कजळ–सं०पु० [सं० कज्जल] दीपक के धुयें की जमी हुई कालिख जो प्राय: आंखों में लगाई जाती है। काजल, अंजन। उ०—आठम प्रहर संभा समै, धण ठव्वै सिणगार। पांन कजळ पाखर करै, फूलां को गळिहार। —ढो.मा.

कजळधंक–सं०पु०—दीपक, चिराग, ज्योति (अ.मा., नां.मा.)

कजळियौ–वि०—श्याम, काला।
सं०पु०—देखो 'काजळ'

कजळी–सं०स्त्री० [सं० कदली] १ केला, कदली (डिं.को.) २ केले की फली. ३ एक प्रकार का हिरन. ४ एक साथ पिसे हुए पारे और गंधक की बुकनी. ५ ठंडे अंगारे के ऊपर की राख. देखो 'कजळी बन'।

कजळीजणौ, कजळीजबौ–क्रि०अ०—(अंगारों का) ठंडा पड़ना, दहकते हुए कोयलों के ऊपर राख का जमना।

कजळीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—ऊपर राख आदि जमा हुआ बुझा हुआ अंगारा। (स्त्री० कजळीजियोड़ी)

कजळीतीज–सं०स्त्री०—भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की तृतीया जिस दिन स्त्रियां प्राय: उपवास रखती हैं।

कजळी बन, कजळी बन–सं०पु० [सं० कदली वन] १ केले का जंगल. २ आसाम का एक वन जहां हाथी बहुत होते हैं। उ०—कजळी बन अळगौ घणौ, अळगौ सिंघळ दीप। किम इण वन लै केहरी, कुंभाथळ री कीप।—बां.दा.

कजळौ—देखो 'कजळ' (रू.भे.)

कजा–सं०स्त्री० [अ० कज़ा] १ मृत्यु, मौत. २ बदकिस्मत, दुर्भाग्य. ३ आफत। उ०—मजा हीण अनभड़ हूंता चळ विचळ चित मरम कजा खत्रवट पड़ी नरम कांटै।—रावत अरजुणसींघ री गीत

कजाई–सं०स्त्री०—घोड़े के चारजामे और साज का एक उपकरण।

कजाओ–सं०पु०—ईंट पकाने की भट्टी।

कजाक–वि० [अ० कज़ाक] १ मारने वाला, हिंस्र। उ०—तन गरुड़ जव अस ताक, क्रिति काळ सुभट कजाक। हित सुहड़ प्रति खग हूंत, कळ सोर धानुख कूंत।—रा.रू. २ आततायी। उ०—कीधी घण परदेस कजाकां, दळलाखां सिर घाव दिया। तौ जुध विना अमावड़ तौ ने, बावड़ आवे भोज बिया।—अज्ञात
३ लुटेरा। उ०—ऊगी दिन अंधाधुंध आक, किहूं ताक ६ घर दखले कजाक। अहदी डंरिन पै अधम आय, दुख देत खुदा खुद लगत दाय।—ऊ.का. ४ बलवान। उ०—बदी जो करै तौ खुदा की सजा है, सदा नेक रहना इनों में मजा है। मियां एक मस्सूरखां नाम जाकै, बड़े तेजवांन सबों में कजाकै।—ला.रा. ५ भयंकर.
६ योद्धा। उ०—भुटै क्रोध मारहट्टां पनागां डांणां रा भाज, कंठीर डांखिया 'जगा' रांण रा कजाक।—अज्ञात

कजाकणि, कजाकणी–सं०स्त्री०—साकिनी, पिशाचिनी।
उ०—कजाकणि डाकणि कढ्ढि कळेज, जिमावत साकणि जूह अजेज। —मे.म.

कजाकी–वि० [अ० कज्जाकी] १ नीच, पतित। उ०—नबी हुओड़ा

नीच डबी भर लेवै डाकी, बैठ सभा रै बीच करै मनवार **कजाकी**।

—ऊ.का. २ देखो 'कजाक'। उ०—बंदूकां छूटतां मेह बूठतां गोळियां वाळा, प्रांण काचां रांघड़ां खूटतां बेहुं पास। **कजाकी** संभायौ धणी जोधांण रूठतां किलो। भ्रारांण तूटतां थांभौ लगायौ भ्रयास।

—गोपाळजी दधवाड़ियौ।

कजावौ–सं॰पु॰ [फा॰ पजाव] १ ईंट पकाने की भट्टी. २ ऊँट का वह चारजामा जिसके दोनों भ्रोर आदमी बैठने की जगह भ्रौर भ्रसबाब रखने की जाली लगी रहती है।

कजि–सं॰स्त्री॰ [सं॰ कार्य] १ काम, कार्य। उ०—ढोलउ किम परचइ नहीं, सहु रहिया समभाइ। के पुंळिया पूगळ दिसि, के कोही **कजि** काइ।—ढो.मा. २ युद्ध, झगड़ा टंटा (मि॰ कजियौ)

वि॰—लाचार, बेबस।

क्रि॰वि॰—लिए, निमित्त। उ०—१ धरती **कजि** वडा वडा धरपति करता भ्राया तिसौ कियौ।—राजा गांगा वाघावत री गीत

उ०—२ बरण कजि भ्रपछरा बाट जोवै खड़ी, ज्यां भड़ां तणी झिल्लै उरसां झूंपड़ी।—हा.झा.

कजियाखोर–वि॰—लड़ाई-झगड़ा करने वाला, कलहप्रिय।

कजियौ–सं॰पु॰—१ युद्ध। उ०—इतरै में नागौर भ्रौर बीकानेर भ्रापस में **कजियौ** हुवौ।—राठौड़ भ्रमरसिंह री बात २ झगड़ा-फिसाद, कलह। उ०—१ गंवारां एकल रै खग होसी, इण रै तौ खग नहीं दीसै। काल्ह ये इण सूं ही **कजियौ** कर भागिया ?

—डाढ़ाळा सूर री बात

उ०—२ **कजिया** री कीजै मुंह काळी, कजिया में नित नवौ कळेस।

—बां.दा.

कजी–वि॰—लाचार, बेबस। उ०—तरै सुजांणसाह भ्रायौ। **कजी** होय नै सुखपाळां के रथां मांहे सांखलियां बैसांण नै मझनीयौ।

—कहवाट सरवहिया री बात

सं॰पु॰—१ देखो 'कजि'. २ हानि, नुकसान. ३ दोष।

उ०—किले 'रैण' वाळै माया भ्रासुरां न लागै **कजी**, एवजी फाटकां था पाहली चक्रियांण।—बां.दा.

कजे, कजै—देखो 'कज्जै'। उ०—कर साज सिंभू रुंडमाळ **कजे**, विकराळ तुरी खुरताळ बजै।—गो.रू.

कज्ज–सं॰पु॰ [सं॰ कार्य] काम, कार्य। उ०—जेहा सज्जण काल्ह था, तेहा नांही भ्रज्ज। माथि त्रिसूळउ नाक सळ, कोइ विणट्ठा **कज्ज**।

—ढो.मा.

क्रि॰वि॰—लिए, वास्ते। उ०—गुपत्ती कती संगि गद्दा गुरज्जं, कसै भ्रावधां भीसछै झुज्झ **कज्जं**।—वचनिका

कज्जळ–सं॰पु॰ [सं॰ कज्जल] १ देखो 'काजळ' (भ्र.मा.)

उ०—**बळ कज्जळ** सरजीव कना भ्रसताचळ भ्रग्रज, कना सेव कारणै देव सुत भ्राया दिग्गज।—रा.रू.

२ कदली, केला का वृक्ष (मि॰ कज्जळ वन)

कज्जळ वन—देखो 'कजळी वन'। उ०—मारू घाली मंदिरां, चंदउ वादळ मांहि। जांणे गयंद उलट्टियउ, **कज्जळ-वन** महं जाहि।

—ढो.मा.

कज्जा—देखो 'कज्ज' (रू.भे) उ०—साहिब भ्राया हे सखी, **कज्जा** सहु सरियांह। पूनिम-केरे चंद ज्यूं, दिसि च्यारे फळियांह।—ढो.मा.

कज्जि—देखो 'कज्ज'। उ०—सांकरसी चडियउ लोह सज्जि, काबळी उधेड़ण जइत **कज्जि**।—रा.ज.सी.

कज्जै–सं॰पु॰—कार्य।

क्रि॰वि॰—लिये, निमित्त। उ०—कर सिलह 'गोगोय' वैर **कज्जै**, सिव जांणि सिधंतर भेख सज्जै।—गो.रू.

कट–सं॰स्त्री॰ [सं॰ कटि] १ कमर, कटि (भ्र.मा.)

उ०—१ क्रम हंस गत भ्रगराज **कट**, रस उरज नख कपोल रट।
गह गंध धज चख एण गुण, भ्रळ भ्रकुट यंदु भ्रभाळ।

—क.कु.बो.

उ०—२ परगट **कट** तट तड़त पट, सरस सघण तन स्यांम।

—र.ज.प्र.

२ मेखला, करधनी. ३ हाथी की कनपटी, हाथी का गंड-स्थल (डिं.को.) ४ कटने की क्रिया या भाव. ५ चटाई. ६ शव, मुर्दा।

कटक–सं॰पु॰ [सं॰] १ सेना, फौज। उ०—कारण **कटक** न कीध, सखरा चाहीजै सुपह। लंक विकट गढ़ लीध, रींछ-वांनरां राजिया।

—किरपारांम

२ कंकण, कड़ा (डिं.को.) ३ समूह, झुंड।

उ०—भ्रा भ्रोपमा देवै है सारा ही कव लोकां रौ **कटक**, पिण इण मुख री कठै चंद्रमा में चटक।—र. हमीर

४ लूटेरों का गिरोह. ५ राज-शिविर. ६ समुद्री नमक. ७ पहिया, चक्र. ८ मेखला. ९ नितम्ब, चूतड़ (डिं.को.) १० इस नाम का उड़ीसा में स्थित एक नगर (ऐतिहासिक) ११ पहाड़ के बीच का भाग (डिं.को.) १२ चूड़ीदार का गहना. १३ सेंधा नमक. १४ घास की चटाई. १५ काबुल की एक नदी का नाम (बां.दा.ख्या.)

कटक ईस–सं॰पु॰ [सं॰ कटक + ईस] सेनानायक, सेनापति।

कटकटाहट–सं॰स्त्री॰ [भ्रनु॰] ध्वनि विशेष।

उ०—राक्षसां रा रास कुणपां रा कपाळां रा **कटकटाहट** चितारा भ्रंगारां करि चित्र विचित्र बडौ भ्रद्भुत चरित देखियौ।

—वं.भा.

कटकड़ी–सं॰स्त्री॰ [सं॰ कटक] फौज, सेना (भ्रल्पा॰)

कटकड़ौ–सं॰पु॰—सोने चांदी के तारों पर खुदाई करने का सांचा।

कटकण–वि॰—क्रोधी (स्त्री॰)

कटकणौ, कटकबौ–क्रि॰ भ्र॰—१ कड़कना। उ०—क्रोध झाळा विषम खगां रटके, **कटके** तोप सूरां सळक बांण ताळा। भ्रसा चाळ्हा विना

तने भूरा अभंग, आळगे नहीं आराध आळा ।—हुकमीचंद खिड़ियौ
२ बिजली का कौंधना. ३ क्रोध करना. ४ आक्रमण करना, हमला करना ।
कटकणहार, हारौ (हारी), कटकणियौ—वि० ।
कटकाणौ, कटकाबौ, कटकावणौ, कटकावबौ—स०रू० ।
कटकिप्रोड़ौ, कटकियोड़ौ, कटक्योड़ौ—भू०का०कृ० ।
कटकीजणौ, कटकीजबौ—भाव वा० ।

कटकबंध–सं०पु०—सुसज्जित सेना या समुदाय । उ०—चढ़िया हरि सुणि संकरखण चढ़िया, कटकबंध नह घणा किध ।—वेलि.

कटकारौ–सं०पु०—'कहाँ' शब्द का भाव (कठे जावौ हो) प्रायः कहीं रवाना होते समय इसका उच्चारण अशुभ समझा जाता है ।

कटकि–सं०स्त्री० [सं० कटक] कटक. सेना । उ०—परवळ पिण जीपि पदमणी परणे, आणंद उभै हुआ एकार । वहतै कटकि मांहि वादो वदि, वाधण लागा वधाइहार ।—वेलि.

कटकिया–सं०पु०—व्यवसाय के निमित्त वजन उठा कर ग्राम-ग्राम घूमने वाली जाति बिसाती ।—कां.दे.प्र.

कटकियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ कड़का हुआ. २ क्रोध किया हुआ. ३ आक्रमण किया हुआ । (स्त्री० कटकियोड़ी)

कटकेस–सं०पु०—सेनापति (वं.भा.)

कटकौ–सं०पु०—१ अंगुलियों या किसी अंग के चटखाने से उत्पन्न शब्द । उ०—आंगळियां कटका करूं, पाई तळां सूं गाभीश्र रात ।—वी.दे. २ टुकड़ा, खंड, हिस्सा । उ०—कटका कादव नाह, नीर विजोगे जे हुआ । फिट काळजा काळा, सजन विन साजा रह्या ।—ढो.मा.

कटक्क—देखो 'कटक' (रू.भे.) उ०—दीवांण तणा फिरिया दरक्क, कळळिया ठाहि ठाहे कटक्क ।—रा.ज.सी.

कटक्कट–सं०स्त्री०—दाँतों को कटकटाने की ध्वनि । उ०—रट्टकत एकल होफर सूर । कटक्कट बाजत डाढ़ करूर ।—पा.प्र.

कटक्क–सं०स्त्री० [सं० कटक] सेना, फौज (रू.भे. 'कटक')

कटखड़ी–सं०स्त्री०—काठ का बना कुये से पानी निकालने का एक प्रकार का बर्तन (क्षेत्रीय)

कटणी–सं०स्त्री०—१ आभूषणों की खुदाई में गहरा छिद्र खोदने का औजार विशेष. २ पेट के ऐंठन की पीड़ा, मरोड़ा ।

कटणौ, कटबौ–क्रि०अ०—१ किसी धारदार औजार से टुकड़े होना. २ मोहित होना. ३ समाप्त होना, बीतना. ४ दूर होना. ५ गलत सिद्ध होना. ६ जलन होना ।
मुहा०—कट कट नै मरणौ—जान देना, आपस में झगड़ना ।
७ झेंपना. ८ व्यर्थ व्यय होना. ९ लिखावट का रद्द होना ।
कटणहार, हारौ (हारी), कटणियौ–वि०—कटने वाला ।
कटाणौ, कटाबौ, कटावणौ, कटावबौ—स०रू० ।
कटिप्रोड़ौ, कटियोड़ौ, कट्योड़ौ–भू०का०कृ०—कटा हुआ ।
कटीजणौ, कटीजबौ–भाव वा०—कटा जाना ।

कटफाड़–सं०पु० [सं० काष्ठ+रा० फाड़] जलाने के उद्देश्य से कुछ लंबोतरी चीरी हुई लकड़ी ।

कटमी–सं०स्त्री०—निंदा, बुराई ।

कटमेखळा–सं०स्त्री०—करधनी, मेखला । उ०—कट-मेखळा जड़ाव री सोहै छै ।—रा.सा.सं.

कटवण–वि०—बुरा करने वाला । उ०—सौ बैरी कटवण मिळे, मस्तक लिख्या सौ होय । लेख लिख्या कूं बाळका, मेट न सक्कै कोय ।—अज्ञात
सं०स्त्री०—किसी की बात काटने का भाव या क्रिया ।

कटवळ–सं०पु०—मूंग, मोठ, ग्वार आदि वे अनाज या द्विदल जो कठोर माने जाते हैं और बाजरे के बाद बोये जाते हैं ।

कटवाड़–सं०स्त्री०—काँटों का अहाता । उ०—एकह पुत्र कलित्र मावीत्र कटवाड़ संबंधा ।—केसोदास गाडण

कटवी–सं०स्त्री०—निंदा, बुराई ।

कटसेली–सं०स्त्री०—कटसरैया (अमरत)

कटहड़ौ–सं०पु०—१ कठघरा (रू.भे.) २ राजा महाराजा या बादशाह के सिंहासन के इर्द-गिर्द बनी काष्ठ की प्रवेष्टिनी । उ०—साह रौ जोध जोतां समंद, कठहड़े चढ़ण मलफै कमंद ।—वि.सं.

कटहळ–सं०पु०—१ बड़े भारी व काँटेदार फलों वाला एक वृक्ष विशेष जिसमें फूल नहीं आते. २ इस वृक्ष का फल ।

कटांकड़ि–सं०स्त्री०—प्रहार की ध्वनि । उ०—रणि राउत वावरइ कटारी, लोह कटांकड़ि ऊडइ । तुरक तणा पाखरिया तेजी, ते तरूआरे गूडइ ।—कां.दे.प्र.

कटा–सं०स्त्री०—१ कटारी. २ कत्लेआम (मा.म.)

कटाईजणौ, कटाईजबौ–क्रि०अ०—१ कटा जाना. २ पीतल आदि के बरतनों में अम्ल पदार्थ का कसिया जाना. ३ अपनेआप जंग लगना ।

कटाईजियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ कटा हुआ. २ कसिया हुआ. ३ जंग लगा हुआ । (स्त्री० कटाईजियोड़ी)

कटाकट–सं०स्त्री०—१ सर्दी अनुभव होने से दाँत की कटकटाहट । उ०—ठंड सूं अंग थरत्थरै, दंत कटाकट थाय ।—किसोरसिंह
२ कटना या काटना क्रिया का भाव ।

कटाकटि–सं०स्त्री०—१ प्रहार की ध्वनि । उ०—रणि राउत वावरइ कटारी, लोह कटाकटि ऊडइ । तुरक तणा पाखरिया तेजी, ते तरूआरे गूडइ ।—कां.दे.प्र. २ देखो 'कटाकट' ।

कटाक्ष—१ देखो 'कटाच्छ' (रू.भे.) उ०—गवाक्ष तैं अगाक्ष की कटाक्ष ते निगै नहीं । धिराभ चंद्रसाळ चंद्रसाळ पै थिगै नहीं ।—ऊ.का.
२ नेत्र, नयन (ना.डि.को.)

कटाड़णौ, कटाड़बौ–देखो 'कटाणौ' (रू.भे.) उ०—कूटि कटाड़ी इणि करह, हिव नरवर नेड़ेह ।—ढो.मा.

कटाड़ी–सं०स्त्री०—कटारी । उ०—कूट कटाड़ी दे छुरी, उणहीं कर

तिण तास । चारण तूं देखह जिसा, कहिज्यउ ऊंमर पास ।—ढो.मा.

कटाच्छ, कटाछ, कटाछि–सं०पु० [सं० कटाक्ष] १ तिरछी चितवन, भावपूर्ण दृष्टि, नेत्रों से संकेत । उ०—१ करणा हाव·**कटाछ** नार तर हूंत समी निज ।—पा.प्र. उ०—२ तिं माहि एक बार **कटाछि** करि देखै छै अर बहुड़ि द्रस्टि दुरावै छै ।—वेलि. टी.

२ वक्र दृष्टि. ३ व्यंग्य: आक्षेप ।

वि०—अति तीक्ष्ण (डिं.को.)

कटाणौ, कटाबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०)—कटाना । देखो 'कटणौ' का सकर्मक व प्रेरणार्थक रूप ।

कटाणहार, हारौ (हारी), कटाणियौ—कटाने वाला ।

कटायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

कटायत–वि०—वीर गति को प्राप्त होने वाला । उ०—बंटायत आवधां भाट खांवद विया, दोयणां आंटायत खाग दूझै । जटायत यळा रण **कटायत** हुयजै, पटायत पटहथा पाट पूजै ।—राव रतनसिंघ रौ गीत

कटायोड़ौ–भू०का०कृ०—कटाया हुआ । (स्त्री० कटायोड़ी)

कटार–सं०स्त्री०—१ देखो 'कटारी'. २ ढोलियों की एक शाखा विशेष (मा.म.)

कटारड़ौ–सं०पु०—प्राय: वर्षा ऋतु में होने वाला पौधा विशेष जिसे ऊँट अधिक खाता है (क्षेत्रीय)

कटारढ़, कटारढ़ौ–सं०पु०—१ कटार. २ कटार के समान पैने दाँतों वाला यथा–सिंह, सूअर । उ०—सबदां गैणाग जमी गुंजाड़ै पाहाड़ सारा, पछाड़ै मसूदानाथ नौ हत्था पटैत । डाला मथा बाबरैल जोसेल **कटारढ़ा**, धूबे प्रळै काळ चखां थाहरां सधींग ।—देवीसिंघ रौ गीत

कटारमल–सं०पु०—१ कटारी रखने वाला योद्धा. २ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

कटारियाभांत–सं०पु०—नीले रंग पर लाल बूटियों वाला एक कपड़ा विशेष जो प्राय: घाघरा या लंहगा आदि के काम आता है ।

कटारी–सं०स्त्री० [सं० कट्टार] एक बालिश्त लम्बा, तिकोना और दुधारा हथियार ।

पर्याय०—अणियाळी, अभियांमणी, कटार, कुंतळमुखी, कोरट, जमडाढ़, त्रिजड़, दुजड़ी, दुधारी, दुवजीह, दुवधारी, धाराळी, बाढ़ाळ, बाढ़ाळी, बिजड़ी, महिखजीह, सुजड़ी, हृथ्थहेक ।

कटाळी–सं०स्त्री०—भूरंगिणी, भटकटैया (अमरत)

देखो 'कटयाळी' (रू.भे.)

कटाव–सं०पु०—१ काटने या कटने की क्रिया या भाव. २ भूमि का क्षरण. ३ नवमीं बार उलट फर भट्टी से निकाला हुआ अत्यन्त तेज शराब (रा.सा.सं.) ४ देखो 'कटणी' २ ।

कटाह—देखो 'कड़ाय' (रू.भे.)

कटि–सं०स्त्री० [सं०] कटि, कमर । उ०—धर धर शृंग, सधर सुपीन पयोधर, घणी खीण कटि अति सुघट । पदमणि नाभि प्रियाग तणी परि, त्रिबळि त्रिवेणी ओणि तट ।—वेलि.

कटिकाळी–सं०स्त्री०—कड़ियों की पंक्ति (बं.भा.)

कटिग्रह–सं०पु०—कमर में होने वाला एक रोग विशेष (अमरत)

कटिबंध–सं०पु०—कमरबंध । उ०—हड्डोति हाजरि भई **कटिबंध** कसाया ।—बं.भा.

कटिमेखळा–सं०स्त्री०—करधनी, मेखला ।

कटियोड़ौ–भू०का०कृ०—कटा हुआ । (स्त्री० कटियोड़ी)

कटियौ–सं०पु० [सं० कर्तन] १ काटने की क्रिया का भाव. २ छोटा बारदाना ।

कटिसजियौ–वि० [सं० कटि+सजित:] कटिबद्ध, सन्नद्ध, तैयार ।

कटी–सं०स्त्री० [सं० कटि] देखो 'कटि' (अ.मा.) (रू.भे.)

उ०—**कटी** सु छीन केहरी प्रवीन पायका नहीं ।—ऊ.का.

कटीजणौ, कटीजबौ–क्रि०अ०—१ कटा जाना. २ कसिया जाना. ३ अपने आप जंग का लगना. ४ पेट में ऐंठन चलना, मरोड़ा चलना । (मि० 'कटणौ')

कटीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ कटा हुआ. २ कसिया हुआ. ३ अपने आप जंग लगा हुआ । (स्त्री० कटीजियोड़ी)

कटीर–सं०स्त्री० [सं० कटि] कटि, कमर (अ.मा.) (अल्पा०)

कटु, कटुक–वि० [सं०] १ कड़ुआ. २ कसैला. ३ अप्रिय, कठोर । उ०—भूप म्है नटै जद **कटुक** कथ भाखिया ।—र.ज.प्र

कटूंबर–सं०पु०—मध्य आकार का एक वृक्ष जिसके फल खट-मीठे होते हैं और फलों की चटनी बड़ी स्वादिष्ट होती है, कवीठ कैंथा (अमरत)

कटूंबरी—देखो 'कटूंबर' (रू.भे.)

कटूकफळ–सं०पु०—बेहड़ा नामक फल या वृक्ष (अ.मा.)

कटूम–सं०पु०—कुटुम्ब ।

कटेड़ौ–सं०पु० [सं० काष्ठ+हिंड] १ बच्चों को सुलाने का झूला. २ हाथी का चारजामा (क्षेत्रीय) ३ प्राय: खिड़कियों पर लगने वाला झूलता हुआ तख्ता (पाटिया) जो अंदर की तरफ होता है और बैठने के काम आता है ।

कटेल–वि०—१ कटे हुए. २ वीरगति प्राप्त ।

कटेड़ौ–सं०पु०—कठघरा (रू.भे. 'कटहड़ौ')

उ०—'करण' रै पदम जिम साहरै **कटैड़ै**, वदूं जो कोई तरवार वाहै ।—द.दा.

कटैत–वि०—१ वीर, योद्धा. २ वीर गति प्राप्त ।

कटोर–सं०पु०—१ कटोरा । देखो 'कटोरौ' । उ०—सज्जणिया ववळाइ कइ, गउखे चढ़ी लहक्क । भरिया नयण **कटोर** ज्यउं, मुंधा हुई डहक्क ।—ढो.मा. २ तलवार की मूठ पर पकड़ने के स्थान के ऊपरी भाग पर लगाई जाने वाली गोल वृत्ताकार चकरी जिससे मजबूती से पकड़ने के लिए हाथ को सहारा मिलता है ।

कटोरड़ौ–सं०पु०—कटोरा, प्याला (अल्पा०)

कटोरदांन–सं०पु०—भोजन आदि रखने का धातु या मिट्टी का ढक्कनदार बर्तन विशेष ।

कटोरी-सं०स्त्री०—१ पुष्पदल के बाहर की ओर हरी पत्तियों की प्यालीनुमा आकृति. २ देखो 'कटोरौ'।

कटोरौ-सं०पु० (स्त्री० कटोरी) चौड़ी पेंदी, खुले मुंह का गहरा बर्तन विशेष जो प्राय: धातु का होता है। बड़ा प्याला।

कट्ट-सं०स्त्री० [सं० कटि] कटि, कमर। उ०—सही न दीठी मारवी, एठां सहित प्रगट्ट। हंस चलणी सस वदनी, केहर जेही कट्ट।—ढो.मा.

कट्टक—देखो 'कटक'। उ०—कट्टकां रांम रै माथै आयौ कुंभ क्रन।
—र.रू.

कट्टणौ कट्टबौ—देखो 'कटणौ' (रू.भे.)

कट्टाधार-वि०—कटारी धारण करने वाला, योद्धा।

कट्टार—देखो 'कटार'।

कट्टि-सं०स्त्री० [सं० कटि] देखो 'कटि' (रू.भे.)
उ०—जो थे देखी मारुइ, तउ अहिनांण उगट्टि। चंदा जेहइ मुख कमळि, केहरि जेहइ कट्टि।—ढो.मा.

कट्टिणणौ, कट्टिणबौ—देखो 'कटणौ'।

कट्टण-वि०—कृपण, कंजूस। देखो 'कठिण'।

कटघाळी-सं०स्त्री०—भटकटैया नामक छोटा और कांटेदार क्षुप जो औषधि-प्रयोग में काम आता है (अमरत)

कठंजरौ-सं०पु० [सं० काष्ठपंजर] काठ का बना कटघरा या पिंजरा।
उ०—तद भाट मेंगळ जठै कठंजरौ छै तठै गयौ।
—कहवाट मरवहिया री वात

कठ-सं०पु० [सं० काष्ठ] काठ, काष्ठ।

कठकारौ—देखो 'कटकारौ' (रू.भे.)

कठकालर-सं०स्त्री०—कठोर और कंकरीली भूमि जहां घास-फूस तथा खेती न होती हो।

कठचित्र, कठचीत्र-वि०—काठ में चित्रित। उ०—आरंभ मैं कियौ जेणि उपायौ, गावण गुणनिधि हूं निगुण। किरि कठचीत्र पूती निज करि, चीत्रारे लागी चित्रण।—वेलि.
सं०पु० [सं० काष्ठचित्र] लकड़ी मे खुदा हुआ चित्र।

कठट्ठणौ, कठट्ठबौ—देखो 'कठठणौ' (रू.भे.)
उ०—कतारां कठट्ठै चलै जूंग काळा, वहै वादळा जांणि भाद्रव्ववाळा।
—वचनिका

कठठ, कठठठ-सं०स्त्री० [अनु०] सेना के प्रस्थान या बोझ से लदे हुए शकट आदि के चलने से होने वाली ध्वनि विशेष (मि० 'कठठणौ')
उ०—कठठ दळ कूच खैराड़ पर करायौ।—स्यामजी बारहठ

कठठणौ, कठठबौ—क्रि०अ०—१ निकलना. २ बाहर आना. ३ कठठठकी ध्वनि करते हुए चलना. ४ जोश में आकर चलना।
उ०—कठठी बे घटा करे काळाहणि, समुहे आंमहौ सामुहे। जोगिणि आवी आडंग जांणे, वरसै रत बेपुड़ी वहै।—वेलि.

कठठणहार, हारौ (हारी), कठठणियौ—वि०।

कठठिओड़ौ, कठठियोड़ौ, कठठयोड़ौ—भू०का०कृ०।

कठठीजणौ, कठठीजबौ—भाव वा०।

कठठौ-वि०—१ बलवान। उ०—मरहठा कठठा हठा जठा तठा हुंत मिळ, तूजीहां बछठा''' ''सांमठा नत्रीठ।—पहाड़ खां आढ़ौ
२ कठोर।

कठट्ठणौ—देखो 'कठठणौ' (रू.भे.) उ०—विजड़ी जड़ भाथळ बांध विनै कड़ भीड़ कठट्ठत 'पाल' कनै।—पा.प्र.

कठण-वि० [सं० कठिन] १ कठिन, कड़ा, दृढ़। उ०—बड़ौ कठण पण पिता कियौ, कोई रंच न कियौ विचार।—गी.रां.
२ कठोर, मजबूत (डि.को.) ३ निष्ठुर. ४ मुश्किल।
उ०—कठण रीत रजपूत कुळ, खाग कमाई खाय।—बां.दा.
४ तीक्ष्ण।

कठणकाचळी-सं०पु०—नारियल (अ.मा.)

कठणता-सं०स्त्री०—कठिनता, कठोरता। उ०—वांनर री निरलज्जता, उपल कठणता लीध। वायस तणौ कुकंठ ने, कुकबी विधता कीध।
—बां.दा.

कठणी-सं०स्त्री० [सं० कठिनी] सफेद मिट्टी (डि.को.) खड़िया मिट्टी।

कठन—देखो 'कठण' (रू.भे.) उ०—प्रीत निभावण कठन है, प्रीत करो मत कोय। भांग भखण है सहज पण, लहरां मुसकल होय।
—अज्ञात

कठपींजरौ-सं०पु० [सं० काष्ठपंजर] काठ का बना पिंजरा।
उ०—मैंगळ 'ऊगा' नै कहै, कठपींजरै 'कैवाट'। छाती ऊपर सेलड़ा, माथा ऊपर वाट।—कहवाट सरवहिया री वात

कठपूतळी-सं०स्त्री० [सं० काष्ठपुत्तली] १ कठपुतली, काठ की बनी पुतली. २ तार द्वारा नचाई जाने वाली गुड़िया।

कठपूतळौ-सं०पु० (स्त्री० कठपूतली) १ दूसरे के कहने पर काम करने वाला व्यक्ति. २ देखो 'कठपूतळी'।

कठबंध, कटबधण-सं०पु०—हाथी के गर्दन का रस्सा (डि.को.)

कठमडळ, कठमंदिर-सं०पु०—चिता (रा.रा.) उ०—पति संग 'कुमाळ' दृढ़ धार पण, सतवंतसील सलूलवा। कठमंडळ धसण जिण दिन कियौ, जिण ज्वाळा मक्ष भूलवा।—अरजुणजी बारहठ

कठरूप-वि०—बदसूरत, कुरूप।

कठवर—देखो 'कटुंबर' (अमरत)

कठवळ—देखो 'कटवळ' (रू.भे.)

कठसरी-सं०स्त्री० [सं० कंठश्री] गले में बांधने का एक प्रकार का जेवर विशेष, कंठी।

कठसेडी-सं०स्त्री०—वह गाय या भैंस जिसका दूध दुहते समय कठिनता से निकले। उ०—काया कठसेडी मठसेडी कांपै, ढांगी बेलां नै तेलां नै ढांपै।—ऊ.का.

कठसेली-सं०स्त्री०—काले व पीले पुष्प का पौधा विशेष (अमरत)

कठहड़ौ-सं०पु०—देखो 'कटहड़ौ' (रू.भे.)

कठां-क्रि०वि०—कहां।

कठांई–क्रि०वि०—कहीं भी। उ०—बात **कठांई** जाहिर मतां करो। —पलक दरियाव री बात

कठांजरौ, कठांतरौ–सं०पु०—१ काठ का पिंजरा. २ रसोईघर में खाद्य पदार्थ आदि रखने के लिए लोहे या लकड़ी का हवादार पिंजरा।

कठा–क्रि०वि०—कहां। उ०—आया तौ **कठा** सूं कठी नै फेरि जावौ। पूछ्यौ लाडखान्यां गांव नांव तौ बतावौ।—शि.वं. २ कैसे।

कठाई–सं०स्त्री०—उष्णता के कारण ओठों पर जमने वाली पपड़ी। यह प्रायः गरमी या खुश्की से जम जाती है।

क्रि०वि०—कहीं, कहीं भी (रू.भे. 'कठांई')

कठाऊं–क्रि०वि०—कहां से (रू.भे.)

कठालक, कठाताई–क्रि०वि०—कहां तक। उ०—इच्छ्यां जिकां बात अरस सूं आंणं, कयां **कठालक** जीव ह्वीज जांणं।—र.रू.

कठाती–क्रि०वि०—कहां से (क्षेत्रीय)

कठामठौ–सं०पु०—कृपण, कंजूस।

कठालग–अव्यय—कहां तक।

कठासूं–क्रि०वि०—कहां से।

कठाही–क्रि०वि०—कहीं। उ०—घोड़ौ छै, रथ पालकी छै। **कठाही** रौ राजा छै। सोने रूपे रा छड़ीदार छै।—पलक दरियाव री बात

कठि–क्रि०वि०—देखो 'कठी'।

कठिण, कठिन–वि०—देखो 'कठण'। उ०—१ **कठिण** वेयरिण कोकिल मिसि कूजति, वनसपती प्रसवती वसंति।—वेलि.

उ०—२ कामिणि कुच **कठिन** कपोल करी करि, वेस नवी विधि वांणि वखांणि।—वेलि.

कठिणाऊं–क्रि०वि०—कहां से, किधर से।

कठियळ–सं०पु०—खड़ाऊ। उ०—**कठियळ** दिय सिर धरिय प्रणाम कर, मिल गय बळ निज नगर मझार।—र.रू.

कठियारा–सं०पु०—१ एक पिछड़ी हुई जाति विशेष जिसके व्यक्ति लकड़ी काटने व बेचने का व्यवसाय करते हैं. २ मुसलमानो के अंतर्गत मुर्दा जलाने के लिये लकड़ियां बेचने वाली एक जाति विशेष (मा.म.)

कठियारौ–सं०पु०—कठियारा जाति का व्यक्ति (स्त्री० कठियारी)

कठियावाड़ी–सं०पु०—काठियावाड़ में उत्पन्न घोड़ा। उ०—दिक्खण-वाड़ी देस रा, **कठियावाड़ी** खास। खेराड़ी बड़ खेत रा, बैराड़ी बरहास। —पे.रू.

कठी–क्रि०वि०—कहां, किस तरफ, किधर। उ०—पीनो धारै पांण, हेकण वळ'ए हाकड़ो। रे कछ धरणी रांण। आज **कठी** गी आवड़ा। —पा.प्र.

कठीक–क्रि०वि०—१ कहां. २ कहीं. ३ किधर। उ०—ऊदा नूं मिस करनै **कठीक** दिन ब्यारे'क सिकार नूं ले नीसरौ।—नैणसी

कठीड़–सं०पु०—काठ का हुक्का।

कठीण—देखो 'कठण' (रू.भे.)

कठीनै–क्रि०वि०—किस तरफ, किधर कहां। उ०—आया तौ कठा सूं **कठीनै** फेरि जावौ. पूछ्यौ लाडखान्यां गांव नांव तौ बतावौ।—शि.वं.

कठीयांणौ–सं०पु० (स्त्री० कठीयांणी) काठियावाड़ में उत्पन्न घोड़ा।

कठूकड़ा–सं०पु०—सोलंकी वंश के क्षत्रियों की एक शाखा।

कठूमर–सं०पु०—जंगली गूलर जिसके फल छोटे-छोटे और फीके होते हैं।

कठै–क्रि०वि०—कहां, किधर। उ०—तद पूछियौ जसोधर कहे **कठै** ऊतरियौ छै।—रा वं वि.

कहा०—कठै राजा भोज कठै गांगलौ तेली—जब दो व्यक्तियों या वस्तुओं में बहुत अंतर हो।

कठैई, कठैईक–क्रि०वि०—१ कहीं २ कहीं भी। उ०—नहीं हरदांन रै सरीखो सांच रौ बोलण वाळौ मैं दूजौ **कठैई** नहीं देखूं छूं। —पलक दरियाव री बात

कहा०—१ कठैई जावौ पईसां री खीर है—सभी जगह पैसे की जरूरत पड़ती है. २ कठैई वावै कठैई ऊगै—कहीं बोता है कहीं उगता है; ऐसे व्यक्ति के लिए जो अभी एक और जगह थोड़ी देर पीछे दूसरी जगह तथा और थोड़ी देर पीछे तीसरी जगह दिखाई पड़े। अस्थिर अथवा बेपता आदमी के लिए।

कठैक–क्रि०वि०—१ कहीं २ कहीं पर। उ०—ऊफणी आडै छाज **कठैक** ? उरसां सुगन-चिड़ी री पांख।—सांझ

कठैथी–क्रि०वि०—१ जहां कहीं भी। उ०—जीत लीधी जमी **कठैथी** जेण री, पराजै हुई नांह फतै पाई।—र.रू.

कठैय–क्रि०वि०—कहीं। उ०—खेतां ओ खेता, मां मेरी, मैं फिरी, **कठैय** न लाध्यौ खेत।—लो.गी.

कठोछ–सं०पु०—चंद्रवंशी क्षत्रियों की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति (बां.दा. ख्यात)

कठोर–वि०—१ कड़ा, कठोर, सख्त, दृढ़. २ निष्ठुर, निर्दय. ३ तीक्ष्ण।

कठोळ–सं०पु०—देखो 'कटवळ' (रू भे)

कठौंतरौ–सं०पु० [सं० काष्ठान्तर] रसोईघर में भोजन या खाद्यपदार्थ रखने का जालीदार पिंजरा।

कठौती–सं०स्त्री० [सं० काष्ठपात्री] काठ का बना आटा गूंधने का बर्तन परात।

कढ़–सं०पु०—१ पानी का बहाव. २ पानी के बहाव से बनने वाला नाला. ३ जंगल. ४ खलिहान में गेहूं निकालते समय भूसी के गिरने का स्थान.

सं०स्त्री०—५ कच्चा घास-फूस का मकान. ६ नमकीन ऊसर भूमि।

कढ़णौ, कढ़बौ–क्रि०स०अ०—१ निकलना। उ०—तद फेर आगै **कढ़िया**, फेर ही पहुंच वळै बीजे रेढ़े घेरियौ।—डाढ़ाळा सूर री बात २ निकलना. ३ म्यान से तलवार निकालना. ४ खेत की लकड़ी आदि काट कर साफ करना। उ०—वाढै फोग खेतड़ा **कढ़ै**, सींवां वाड़ बणावता। टापी टाटा टेर वाती, फळसां छांट छवावता। —दसदेव

[सं० क्वथ] ४ दूध औटाना।

कढ़णहार, हारो (हारी), कढ़णियौ—वि०।

कढ़ाणी, कढ़ाबौ, कढ़ावणौ, कढ़ावबौ—प्रे०रू०।

कढ़िप्रोड़ो, कढ़ियोड़ो, कढ़योड़ौ—भू०का०कृ०।

कढ़ीजणौ, कढ़ीजबौ—कर्म वा०; भाव वा०।

कढ़मांणी–सं०स्त्री० [सं० क्वथ] दूध गरम करने का बर्तन।

कढ़ाई–सं०स्त्री० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] १ आंच पर चढ़ाने का लोहे का बड़ा गोल बरतन. २ इस बरतन में बनाया हुआ भोजन।

कढ़ाणौ, कढ़ाबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०)—१ निकलवाना. २ दूध को औटवाना (मि० 'कढ़णौ')

कढ़ार–सं०पु०—कोल्हू के ऊपर चारों ओर लगे हुए चार तख्ते।

कढ़ावणी—देखो 'कढ़ांमणी' (रू.भे.) उ०—घट घड़कलिया माट, मंगळिया मटकी हांडा। झोवा कूंज कुंडाळ, कढ़ावणी ढकण खांडा। २ निकलवाना क्रिया का भाव। —दसदेव

कढ़ावणौ, कढ़ावबौ–क्रि०स०प्रे०रू०—देखो 'कढ़ाणौ' (रू.भे.)

कढ़ियोड़ौ, कढ़ियौ–भू०का०कृ०—१ निकला हुआ. २ औटाया हुआ (दूध, मट्ठा आदि). ३ निकाला हुआ (स्त्री० कढ़ियोड़ी)

कढ़ी–सं०स्त्री० [सं० क्वथिता] बेसन, छाछ या दही को औटा कर बनाया जाने वाला साग।

मुहा०—कढ़ी बिगाड़णी—काम बिगाड़ना।

कहा०—कढ़ी में कोयला—अनमेल वस्तुओं का संयोग; अच्छे के साथ बुरे का संयोग।

कढ़ीजणौ, कढ़ीजबौ–क्रि०अ० [सं० क्वथ] १ निकाला जाना. २ औटाया जाना। देखो 'कढ़णौ'।

कढ़ीणौ–सं०पु०—कढ़ाई में तल कर निकाले गये पकवान आदि।

कणंकण—देखो 'कण-कण'।

कण–सं०पु० [सं०] १ अनाज का दाना। उ०—जिकां न दीधौ जनम भर, हेको कण दुज हत्थ। नहिं बैसीजै नाव में, सायर सूंमां सत्थ। —बां.दा.

मुहा०—कण खूटणौ—१ आयु कम होना. २ बुद्धि का ह्रास होना. ३ निर्धनता आना।

कहा०—१ कण देखियां मण री ठा पड़ै—अनाज के ढेर में से केवल एक कण को देख कर पूरे ढेर की किस्म के बारे में जानकारी हो जाती है. २ कीड़ी नै कण नै हाथी नै मण सांवरियो देवै—चींटी को अनाज का दाना जो उसका पर्याप्त आहार है और हाथी को मन भर अर्थात् उसके लिए पर्याप्त आहार ईश्वर दे ही देता है। ईश्वर प्रत्येक को उदरपूर्ति के लिए आवश्यक आहार दे ही देता है. ३ कीड़ी नै कण ही भारी व्है है—चींटी के लिए अनाज का एक दाना उठाना भी कठिन होता है। गरीब व्यक्ति को साधारण व्यय का बोझ भी असह्य होता है. ४ घणा जायां कुळ मैणियां घणा वूठां कण हांण—अधिक संतान होने से कुल उज्ज्वल नहीं होता बल्कि कलंकित होने की पूर्ण सम्भावना होती है तथा अधिक वृष्टि से फसल सुधरती नहीं परंतु नष्ट ही होती है अतः अति सर्वत्र वर्जयेत्। २ अनाज। उ०—खेती नींपजै तहां तो कण आवै। सु बडा बडा जोधा मारया सु एही मानुं कण लीया।—वेलि. यौ० कणकोठार

३ सार, तत्व।

मुहा०—कण बायरी होणी—सारहीन होना, बुद्धिहीन होना.

४ गुंजाइश. ५ खंडित अंश, किनका, रवा। उ०—आलम मोरा औगुणां, साहिब तूझ गुणांह। बूंद-बिरक्खा रैण कण, थाघ न लब्भी त्यांह।—ह.र.

कहा०—१ कण कण जोड़यां मण जुड़ै—थोड़ा थोड़ा करने से बहुत अधिक हो जाता है. २ गधै रो गूण में कणां रो फरक रै मणां रो को रै'नी—थोड़ी वस्तु के अनुमान या तोल में थोड़ा ही फरक हो सकता है अधिक नहीं।

६ बूंद, कतरा, सीकर। उ०—भूरै मुखड़ै पर स्वेदण कण भारी। पहुंची पोळद्ध में प्रीतम री प्यारी।—ऊ.का. ७ जैसलमेर राज्य में भाटीवंशीय शासकों द्वारा कृषि उपज में से लिया जाने वाला अनाज का निश्चित भाग. ८ मोती, हीरा आदि जवाहिरात। उ०—बाजु सोई बाज डसण बिध बिजड़ी, वेध चंच साबळ वढ़ण। हंस जेम गाळिया राव हाडै, कछवाह कोड़िक कण।—अज्ञात

९ राजा कर्ण. १० चावल का महीन टुकड़ा, अंश. ११ भाग, हिस्सा। उ०—परंतु आपरै रासि संचय करि सहायक नूं कण देण री अधिकाई मुणीजै।—वं.भा. [सं० कनक] १२ सोना, स्वर्ण। उ०—१ कंकर पथर वींटियो कुनण, जिण तिण पूछै तोछ जळ। सुरावत तूं है कण साचौ, आभूखण नव कोट इळ। —सिवसिंघ उदावत री गीत

उ०—२ कणै कळस भळ हूळै, डंड ऊडंड संभारै।—लल्ल भाट

यौ०—कणगढ़, कणगिर, कणगढ़।

[सं० रणकण शब्दे] १४ बांण, तीर (अ.मा.) उ०—धरै रोस धज धमळ आचकां कण आछटै।—प्रतापसिंघ म्होकमसिंघ री वात

१४ युद्ध, रण. १५ साहस, हिम्मत। उ०—जुड़ण भूप जुध काज चख चोळ धीटी निजर, समर सिरताज भड़ विमुख सरकै। कटारी जड़ै महाराज धारै कण, थरहरै अरि अगराज थरकै। —क.कु.बो.

[सं० क्वण] १६ पायल की ध्वनि. १७ भिक्षा, भिक्षा में प्राप्त वस्तु। उ०—कर एक कणं कर बिये कटारी, सुचवै 'झरड़ौ' 'जींद' सना। बाबौ ही मांगूं वाहि बिनै कर, काको ही मांगूं तूझ कन्हा। —झरड़ा राठौड़ री गीत

१८ बुद्धि. १९ उत्तम किस्म का वह नाज जो बोने के लिए ही बीज के रूप में सुरक्षित रखा जाता है। उ०—भूसर भायां गळ आवड़ कढ़ झांखै, नभ नभ सावढ़ नै नायां कण नांखै।—ऊ.का.

यौ०—कणलांचो।

सर्व०—१ किस । उ०—फजर ताता भड़ज झांप खाता फरै । कवर कण (किण) ऊपर कमरबंधी करै ।—जवांनजी म्राढ़ौ २ कौन ।

कणइट्ठ, कणएठिय, कणएठी–सं०पु० [सं० कनिष्ठ] अनुज, छोटा भाई ।

उ०—१ कळि काळि परीक्रम ए करग्र, देखियइ दुवापुर दिख्या दन्न । **कणइट्ठ** कन्हा घर 'लूणक्रन्नि', मारुग्रइ राइ ली मोटरमन्नि ।
—रा.ज.सी.

उ०—२ **कणएठी** जांणै भिड़त का, जिण जेठी छूटो जगत जळा ।
—पा.प्र.

कणक–सं०स्त्री०—१ गेहूँ की एक किस्म ।

सं०पु०—[सं० कनक, प्रा. कणग्र] २ सोना, स्वर्ण ।

उ०—कणक कटोरां इम्रत भरयां, पीवतां कूण नटया री । मीरां रै प्रभु हरि अविनासी, तण मण स्यांम पटया री ।—मीरां

कण-कण–सं०पु०—टुकड़े-टुकड़े, खंड-खंड ।

अनु० [सं० क्वण] ध्वनि विशेष ।

क्रि०वि०—तितर-बितर । उ०—कोप कर कीधा अर **कण-कण**, 'नींबा' हरा निकळंक नरेस ।—दुरगादास रौ गीत

कणकती–सं०स्त्री०—देखो 'कंदोरौ' (रू.भे.)

कणकतीबंद—देखो 'कंदोराबंद' (रू.भे.)

कणकामण–सं०पु०यौ०—जादू-टोना, वशीकरण ।

कणकी–सं०पु०—१ किनका, रवा, जर्रा, अति सूक्ष्म टुकड़ा. २ योग्यता. ३ साहस. ४ शक्ति, बल । मि० 'कण' (नं. ५,१५)

कणक्कण—देखो 'कण-कण' । उ०—पिण मैं वचन प्रमांण पांण खग तोल धरां पग । आलम दळ आगै, करां रण खळै **कणक्कण** ।
-- रा.रू.

कणगज–सं०पु०—गज का, करंज, कंट कफला (अमरत)

कणगती–सं०स्त्री०- स्त्रियों के कटिप्रदेश पर धारण करने का आभूषण, करधनी ।

कणगिर–सं०पु० [सं० कनकगिरि] १ सुमेरु पर्वत. २ जालोर का पर्वत ।

कणगूगळ, कणगूगळी–सं०उ०लिं०—दानेदार एक प्रकार का गुग्गुल विशेष (अमरत)

कणगेट्यौ–सं०पु०—छिपकली की जाति का जंतु जो दिन में कई बार रंग बदलता है, गिरगिट (डिं.को.)

कणचाळ–सं०पु०—युद्ध ।

कणछणौ, कणछबौ–क्रि०स०—१ काटना मारना. २ जोश में आक्रमण करना ।

क्रि०अ०—देखो 'कंभणौ' ।

कणज–सं०पु०—एक प्रकार का छोटा वृक्ष विशेष जिसके तने का रंग सफेद होता है । इसके पत्ते पीपल के पत्ते के समान होते हैं किन्तु उनके समान नोंकदार नहीं होते ।

कणडोर–सं०पु०—विवाह के समय दूल्हे और दुल्हिन की रक्षा के उद्देश्य से उनके हाथ और पैर में बाँधा जाने वाला धागा । उ०—दासियां दौड़ आगू दखे, साथ विराजो सांगणी । **कणडोर** छोड पूजा करण, 'पाल' पधारो आंगणी ।—पा.प्र.

कणणंकणौ, कणणंकबौ, कणणणौ, कणणबौ–क्रि०अ०स०—१ वीरों को युद्धार्थ उत्तेजित करने के लिए जोशपूर्ण ध्वनि करना, बिरुदाना ।

उ०—ठणणंक घंट गदळां ठहे, गणणंकै पळचर गयण । हणणंक हींस हैगांम हय, जय **कणणंकै** बंदिजण ।—वं.भा.

२ सिंह का पूर्ण मस्ती में चलते हुए जोशपूर्ण ध्वनि विशेष करना, दहाड़ना । उ०—तठा उपरांत करिनै राजांन सिलामति बडा सिकारी सिंघळी, सादूळ, पटाळा, केहरी, नवहथा, कंठीरीग्रा, रींछीग्रा, तेलिग्रा, तींदूळा, लकीरिग्रा, बघेरिग्रा, चीतरा. भांति भांति रा, जाति जाति रा नाहर सांकळै जड़िग्रा । रहड़ग्रै गाडै बैठा, कसता, **कणणता**, बूंबाड़ा करता वहै छै ।—रा.सा.सं. ३ वीरों का जोशपूर्ण ध्वनि करना ।

उ०—१ मतवाळा घर्मै नहीं, नह घायल **कणणाय** । बाळ सखी उ द्रंगड़ो, भड़ बापड़ा कहाय ।—हा.झा. उ०—२ सूरा बचन सुणेह, 'दला' तणा 'देपाळदे' । केहर ज्यूं **कणणेह**, आभ छिबंतो ऊठियोह ।
—गो.रू.

कणणाट–सं०स्त्री०—१ सिंह की क्रोध या जोशपूर्ण दहाड़. २ वीरों की जोशपूर्ण आवाज. ३ बक-झक ।

कणदोराबंद—देखो 'कंदोराबंद' (रू.भे.)

कणदोरौ–सं०पु० [सं० कटि+दोरक = प्रा० कडिदोरग्र] १ चाँदी या सोने का बना शृंखलानुमा जेवर जो स्त्रियों के कटि प्रदेश पर धारण किया जाता है । मेखला, करधनी. २ छोटे लड़कों की कमर में बाँधा जाने वाला धागा ।

कणपांण–वि०—श्रेष्ठ, बढ़िया ।

सं०स्त्री०—बहुत अधिक पैनी बढ़िया लोहे वाली तलवार विशेष ।

कणमणणौ, कणमणबौ–क्रि०अ०—हिलना, डोलना, कुनमुनाना, गुनगुनाना । उ०—मारू तो इण **कणमणइ**, साल्हकुमर बहुसाद । दासी तद दीवाधरी, सांभळिया पड़साद ।—ढो.मा.

कणमुठी–सं०स्त्री०—मुट्ठी भर वह अनाज जो अनाज पीसते समय निकाल लिया जाता है । इसका उपयोग धर्मार्थ किया जाता है ।
(सीरवी)

कणय–सं०पु० [सं० कनक, प्रा० कणग्र] स्वर्ण, सोना । उ०—तुलि बैठो तरणि तेज तम तुलिया, भूप **कणय** तुलता भू भांति ।—वेलि.

कणयर–सं०स्त्री०—कनेर का पौधा या पुष्प । उ०—जंघ सुपत्तल करि करि कुंभळ. झीणी लंब प्रलंब । ढोला एही मारुई, जांणि क **कणयर** कंब ।—ढो.मा.

कणयाचळ–सं०पु० [सं० कनकाचल] १ सुमेरु पर्वत, स्वर्णगिरि. २ मारवाड़ राज्यान्तर्गत जालोर के पास का एक पर्वत का नाम ।

उ०—**कणयाचळ** अगि जांणइ, ठांम तणउं जाबाळि । तहीं लगइ जगि जाळहुर, जंण जंपइ हणि काळि ।—कां.दे.प्र.

कणलांची–सं०पु०—१ देखो 'कण' (१६) २ देखो 'लांची'।
कणलाल–सं०पु०—अनार (अ.मा.)
कणवार–सं०स्त्री०—'कणवारियौ' का पद तथा उसको मिलने वाला वेतन, शहनगी। देखो 'कणवारियौ'।
कणवारियौ–सं०पु० [सं० कणवारक या कणवारी] जागीरदार की ओर से नियुक्त वह व्यक्ति जो जागीरदार के अधीनस्थ भूमि में बोई जाने वाली खेती व उसकी उपज की देखरेख रखता है व जागीरदार के यहाँ छोटे-मोटे कार्य करता है।
कणसारौ–सं०स्त्री०—अनाज भरने के लिए बाँस की खपच्चियों का बना हुआ वह कोठा जो ऊपर से गोबर या मिट्टी से लेप दिया जाता है।
कणसि, कणसी—एक प्रकार का शस्त्र विशेष। उ०—खेड़ां खांडां पड़पां जूजूआं, भाला सांगि कटारी। भागे **कणसि** पड़ी तरुयारि, म्लेछ मांकड़ा मारी।—कां.दे.प्र.
कणां–क्रि०वि—कब।
कणांई–क्रि०वि०—कभी। उ०—छोरा कणांई सांड पासी दौड़ै **कणांई** लकड़ियां सांभै।—बरसगांठ
कणांकलो–वि०—कभी का।
कणा–सं०स्त्री० [सं० कृष्ण] पीपल (अ.मा.)
कणाउळि–सं०स्त्री०—भिक्षा का पदार्थ, भिक्षा। उ०—बांमै पांणि **कणाउळि** बाळै, पांणि बियौ जमदढ़ परठेय।—भरड़ा राठौड़ री गीत
कणाद–सं०पु०—वैशेषिक शास्त्र के रचयिता एक मुनि जिनको उलूक भी कहते हैं।
कणापोच–सं०पु०यौ०—बोई हुई फसल में सिंचाई कार्य के पूर्व सिंचाई की सुविधा के लिए क्यारियाँ व उनमें पानी पहुँचाने के लिए बनाई जाने वाली नालियों का कार्य।
कणारी–सं०स्त्री०—झींगुर।
कणारौ—देखो 'कणसारौ' (रू.भे.)
कणिआगरौ–सं०पु०—क्षत्रियों की चौहान वंश की सोनगरा शाखा का व्यक्ति। उ०—वीरति खाग वजाइ, वन अरितर बाळै बडा। गौ 'मधुकर' **कणिआगरौ**, सूरिज जोति समाइ।—वचनिका
कणियर–सं०स्त्री०—कनेर का पौधा तथा उसका पुष्प (अ.मा.)
कणियांणू–वि०—शक्तिशाली, बुद्धिमान।
कणियागर, कणियागरौ, कणियागिर–सं०पु०—१ देखो 'कणिआगरौ'। उ०—घणी भंवर वाजियौ कवर, खींवड़ौ फतांणी। रिण लड़ै पड़ै **कणियागरौ**, विकट जोध दोलौ वळै।—बखतौ खिड़ियौ
२ जालोर के पर्वत का नाम. ३ सुमेरु पर्वत।
कणियाचळ–सं०पु० [सं० कनकाचल] देखो 'कणियागर' (२, ३)
कणियौ–सं०पु० (बहु० कणिया) १ पतंग का वह डोरा जिसका एक छोर कांप और ठड्डे के मेल पर और दूसरा पुछल्ले के कुछ ऊपर बांधा जाता है। इस तागे के ठीक बीच में उड़ाने वाली डोरी बाँधी जाती है, कन्ना. २ पाये में लगी आड़ी लकड़ी के सहारे व मजबूती के लिए लगाया जाने वाला लोहे का कीला विशेष. ३ कुयें से पानी निकालने की गिर्री के मध्य में लगी लोहे की कील जो धुरी का काम करती है। इसके सहारे गिर्री गोल घूमती है।
कणी–सं०स्त्री०—१ लकड़ी का वह गोल मोटा लंबा लट्ठा जो खपरैल या छाजन की लंबाई के बल रहता है. २ कनेर का वृक्ष अथवा उसका पुष्प (अ.मा.) ३ चावलों के छोटे-छोटे टुकड़े. ४ चूल्हे पर जौ को कूट कर पकाया जाने वाला खाद्य विशेष. ५ टुकड़ा, किनका। उ०—खोटै टोटै नग **कणियां** बीखरगी। माहव मोटै दुख जाटणियां मरगी।—ऊ.का.
मुहा०—कणियां बिखरणी—ध्वस्त-व्यस्त होना।
सर्व०—१ किस। उ०—मैं अबळा बळ नांहि, गोसाईं राखौ अबकै लाज। राव री होइ **कणी** रे जाऊं, हे हरि हिवड़ा री साज।—मीरां
२ कौन।
कणीक–सर्व०—किसको।
कणी-कुंड–सं०पु०—एक तीर्थ-स्थान विशेष (क.कु.बो.)
कणीसक–सं०पु० [सं० कणिश] भुट्टा, बाल (गेहूँ आदि की) (डिं.को.)
कणूको–सं०पु० (बहु० कणूका) १ अनाज का कण। उ०—आनंद सहत एक रस पीवे, करम **कणूका** डारै।—ह.पु.वा.
२ अनाज. ३ शक्ति, बल. ४ बुद्धि. ५ कण, छोटा टुकड़ा, रवा। वि०वि०—देखो 'कण'।
कणे–क्रि०वि०—कब।
सर्व०—किस।
कणेई–अव्यय—कभी। देखो 'कणांई' (रू.भे.)
कणेगढ़–सं०पु०—१ जालोर का किला. २ सुमेरु पर्वत।
कणेठिय, कणेठी, कणेठौ–सं०पु० [सं० कनिष्ठ] छोटा भाई (डिं.को.)
उ०—१ गध राव उडावत खेंग घणा, तिण वार **कणेठिय** 'पाल' तणा।—पा.प्र. उ०—२ विडंगाळ झांप आडावळै, कर पावै अंगार वळ। **कणेठौ** 'पाल' रूपक करण, आगौ जेठी आप बळ।—पा.प्र.
वि०—१ हीन, निकृष्ठ. २ छोटा। उ०—बे बुनियाद कुबोल, कहि बकवाद बघारै, तामें **कणेठी** कड़किया, बळ जेठी धारै।—गोरधन लक्ष्मीदासोत चारण
कणेर–सं०स्त्री०—एक प्रकार का बड़ा पौधा। इसकी पत्तियां लंबोतरी होती हैं। लाल व सफेद फूलों के कारण इसके दो भेद होते हैं। कनेर। यह देववृक्ष भी माना जाता है (अ.मा.)
कणेरी-पाव–सं०पु० [सं० कृष्णपाद] नाथ संप्रदाय के एक महात्मा का नाम।
कणेई–क्रि०वि०—कभी। उ०—इयां गम मोकळी ही पण **कणेई-कणेई** तौ छेड़ते ही कपड़ां सूं बारै आय जातौ।—बरसगांठ
कणंगढ़–सं०पु०—१ जालोर का किला. २ लंका। उ०—वर्भीखण जोय **कणंगढ़** बैठौ, मारु सूं प्रसन्न थियौ मुरार। वडां मेव कीधां राव वींका, सेवग वडा हुवै संसार।—राव वींका री गीत

कर्णगिरी—देखो 'कणियाचळ'।

कर्णठी—देखो 'कणेठी' (रू.भे.) उ०—राजा राव दोनूं हरीपुर के खेत पोडचा। राजा के **कर्णठी** वार 'ऊदै' खेत छोडचा।—शि.वं.

कणौ–सं०पु०—१ सीमा, हद (खेत आदि की) २ खेत की सीमा पर डाले जाने वाले कँटीले झड़बेरी के डंठल. ३ सिंचाई की सुविधा के लिए खेत में क्यारियाँ बनाने के लिए हल से खींची हुई रेखा जो पूरे खेत में लगभग बराबर फासले पर होती है।

वि०वि०—इस रेखा को खींचते समय हल के साथ भूमि से लगता हुआ गोल चपटा पत्थर बाँधा जाता है जिससे कि हल से खुदती हुई रेत की छोटी-मेढ़ बनाती है। (यौ० कणापीच)

क्रि०वि०—कब।

कण्णउज्ज–सं०स्त्री० [सं० कन्नोज] कन्नोज का प्राचीन नाम (प्रा.रू., वं.भा.)

कत–क्रि०वि०—१ कहाँ. २ कब।

सं०पु०—२ मूंछ की कतरन विशेष. २ कतावट।

कतई–क्रि०वि०—नितांत, बिलकुल (रू.भे. 'कतेई')

कतक–सं०पु०—केतकी का पुष्प। उ०—प्रीय मु अधिकउ प्रेम, रयणि दिवस रंगय रमइ। मोह्य (उ) मधूकर जेम, कुसम जांणि **कतक** तणय।—ढो.मा.

कतखुदाई–सं०स्त्री० [फा०] पारसी धर्म के अनुसार की जाने वाली सगाई।

कतरण–सं०पु०—१ कटे हुए कपड़ों के छोटे टुकड़े. २ काटने (प्रायः कपड़ा, कागज आदि) की क्रिया या भाव। उ०—**कतरण**, सीवण, केवटण, लै दरजी चित चोर। रजधांनी तंबू रचै, ते नरनायक मोर।—अज्ञात

कतरणी, कतरनी–सं०स्त्री०—कैंची (डिं.को.)

मुहा०—जीभ कतरणी ज्यूं चालणी—बहुत जल्दी जल्दी बोलना, सबको काटते चलना।

कतरणौ, कतरबौ–क्रि०स०—१ काटना (प्रायः कपड़ा, कागज आदि) २ मारना, संहार करना।

कतरणहार, हारौ (हारी), कतरणियौ–वि०—काटने या संहार करने वाला।

कतराणौ, कतराबौ, कतरावणौ, कतरावबौ—प्रे०रू०।

कतरिग्रोड़ौ, कतरियोड़ौ, कतरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

कतरीजणौ, कतरीजबौ–कर्म वा०—काटा जाना, संहार किया जाना।

कतराक–वि० [सं० कियत्] कितने।

कतराणौ, कतराबौ, कतरावणौ, कतरावबौ–क्रि०प्रे०रू०—कतरने या काटने के लिए प्रेरित करना। देखो 'कतरणौ'।

कतराहेक–वि०—कितने। उ०—इण भांत **कतराहेक** नीसरणियां चढ़े छै, तिकां नूं मांहिला भालां सूं साझै छै।

—प्रतापसिंघ म्होकमसिंघ री बात

कतरीक–वि०स्त्री०—कितनी (पु० कितरोक)

कतरीजणौ–कर्म वा०—१ कतरा जाना, काटा जाना. २ संहार किया जाना।

कतरीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—काटा या संहार किया गया हुआ। (स्त्री० कतरीजियोड़ी)

कतरेकहेक–वि०—कितने। उ०—सूरयवंस रै विखै स्री रामचंद्र रौ अवतार लिए थी **कतरेकहेक** पीढ़ियां इणां री गहरवार गोत्र कहांणी।—नैणसी

कतरौ–सं०पु० (बहु० कतरा) १ काटा हुआ, टुकड़ा या खंड. २ बूंद।

वि०—कितना। (स्त्री० कतरी) उ०—गुण **कतरा** पातल गुणां, मत सत रा महाराज। सुधरिया जतरां सुभट, अतरां फरक न आज।

—अज्ञात

कतल–सं०स्त्री० [अ० कत्ल] वध, हत्या, संहार। उ०—१ हुरम रहै वस हिंदवां, मैं जाऊं अणचीत। **कतल** कबीला जो करै, तो वस नांहि प्रतीत।—रा.रू. उ०—२ कर लहसकर कीधा **कतल**, पार पखै परमार। हूबा रुढै देवरज, धारा काळीधार।—बां.दा.

कतल-आम—देखो 'कतलै-आम'। उ०—मुल्ला काजी मंगहु मयाद, फतवा लीजै मेटन फसाद। सबकी है मालेकम सलांम, अब जल्दी कीजै **कतल-आम**।—ऊ.का.

कतलत–सं०पु०—वध, संहार। उ०—जगपत जोम जिहाज, कुळ जोइयां **कतलत** करत। है विसटाळ आज, दाखै कुण मेलत दलां' (गो.रू.)

कतलै-आम–सं०पु०यौ० [अ० कत्लेआम] सर्वसाधारण का वध।

कतळळ–सं०स्त्री० [अ० कत्ल] वध, हत्या। उ०—हुई अप्रमांण अचांणक हल्ल। कुंभी हय सैयद सेख **कतळळ**।—मे.म.

कतवारी–सं०स्त्री०—सूत कातने वाली। उ०—नागजी, तड़क-तड़क मत तोड़, रे! वैरी, **कतवारी** रै तार ज्यूं, ओ नागजी।—लो.गी.

कताई–वि०—कितने। उ०—टेक 'छींपा' तणी देख दुख टाळियो, छांन बंधवाळियो नकू छांना। वरतियो रह्यौ मेटण चिंता बांणियो, **कताई** करूं बाखांण कांना।—ब्रह्मदास दादूपंथी

सं०स्त्री०—सूत कातने का कार्य अथवा इस कार्य की मजदूरी।

कतार–सं०स्त्री० [अ० क़ितार] १ पंक्ति, लाइन. २ काफला।

उ०—१ ऊंठां री **कतार** धोरै कनै सूं हो'र निकळ रही ही।

—वरसगांठ

उ०—२ थळ **कतार** लांघण थटै, ले जिहाज जळ अंत। भोळीढाळी बोणणी, बेटा घूत जणंत।—बां.दा.

कतारियौ–सं०पु०—वह व्यक्ति जो ऊँटों के काफिलों द्वारा एक देश से दूसरे देश में माल लाने ले जाने का कार्य करता हो।

कतियांणी–सं०स्त्री० [सं० कात्यायनी] १ आठ प्रकार की रणपिशाचिनी योगिनियों में से एक. २ कत गोत्र में उत्पन्न स्त्री. ३ दुर्गा. ४ गिरजा, पार्वती (अ.मा.) ५ कषाय वस्त्र धारण करने वाली अधेड़ विधवा।

कतिया-सं०स्त्री०—एक प्रकार की छुरी।

कतियौ-सं०पु०—घातु काटने का लोहे का एक औजार विशेष।

कती-वि०—कितनी। उ०—वरिट्ठ में बरिट्ठ जे बहेक तिन्न साळि तें, गरिट्ठ में गरिट्ठ ते गुरे कती गजाळि तें।—ऊ.का.

सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का शस्त्र। उ०—कसे हाथळां टोप मोजा क्रगल्लं, जमद्दाढ़ वांमै जिकै खाग ढल्लं। गुपत्ती कती संगि गद्दा गुरज्जं, वसै आवधां त्रीस छै भुज्झ कज्जं।—वचनिका

२ छोटी तलवार. ३ कटारी. ४ एक प्रकार की कतरनी जिसका उपयोग सोनार करते हैं।

कतीन-सं०पु०—एक प्रकार का शस्त्र विशेष जो कती या कातीन से बनावट में भिन्न होता है।

कतीयांणी—देखो 'कतियांणी' (रू.भे.)

कतीरांमपुरी-सं०स्त्री०—एक प्रकार की तलवार।

कतूळ, कतूहळ-सं०पु० [सं० कुतूहल] १ कौतुहल, उत्सुकता। उ०—कवर कतूहळ केळ, केळ चढ़त चोगणी चाव।—र. हमीर

२ आश्चर्य, अचंभा। उ०—यादव रावळ स्री हरिराज, जोड़ी तास कतूहळ काज।—ढो.मा.

कतेई-अव्यय [अ० कतई] नितांत, बिल्कुल।

कतेड़-वि०—सूत आदि कातने में निपुण।

कतेब-सं०पु० [सं० कात् ब्रह्मणः तेपते क्षरतीति कतेपो वेदः] वेद। उ०—१ उर पतसाह उचाट अत, वाट अटक्की देख। मिरच हुतासण होमिया, मंत्र कतेब विसेख।—रा.रू. उ०—२ सिर्घा आगम चार वेद कतेब कहंदे।—केसोदास गाडण

कतोवई, कतोवईव-क्रि०वि०—१ शायद. २ कदाचित्। उ०—कवळ कियां जिण में कसर, राखी रती न रंच। आलीजो अळसै अज्यूं, कतोवईव कदंच।—र. हमीर

कतौ-वि०—कितना।

कत्तरणी, कत्तरनी—देखो 'कतरनी' (रू.भे.)

कत्तळी-सं०स्त्री०—संहार, ध्वंश।

उ०—छछोहां भड़ाळां पेखै, आभै गिरवांण छायौ। कत्तळी वार में आयौ करंतौ कुवाद।—गीत डूंगजी रौ

कत्तिन-सं०स्त्री०—एक प्रकार का शस्त्र विशेष (मि० 'कती')

उ०—जडे झक्कडी टोप नाही जरद्दा, गुपत्तिन कत्तिन छत्तिन गद्दा।
—ना.द.

कत्तियांणी—देखो 'कतियांणी'। उ०—देवी व्रज्ज विमोहणी वोम वांणी, देवी तोतळा गूंगळा कत्तियांणी।—देवि.

कत्ती—देखो 'कती' (रू.भे.)

कत्तीबिमतवार-सं०स्त्री०—एक प्रकार का शस्त्र।

कत्तौ-वि०—कितना (मि० 'कतौ')

कत्थ—१ देखो 'कथ' (रू.भे.) उ०—आया दूत उतावळा, सुणी अर्जै समरत्थ। भ्रम पड़ियौ मोटां भड़ां, कोटां पूगी कत्थ।—रा.रू.

२ कहावत।

कत्थणी, कत्थबौ—देखो 'कथणी' (रू.भे.)

कत्य-सं०पु० [सं० कृत्य] अंतिम संस्कार तथा उसके बाद के कृत्य। उ०—राजा नुं सत्यां साथै मजल पहुंचायो, राजा रौ कत्य कीयौ।
—चौबोली

कत्यांणी—देखो 'कतियांणी'।

कत्रवाकी-सं०पु०—वह घोड़ा जिसका रंग पीला हो किन्तु चारों पैर सफेद हों।—शा.हो.

कथ-सं०स्त्री [सं० कथा] १ कथा, बात। उ०—१ कूड़ा पुजारी कूड़ी कथ कीन्ही, देवण कांनां में पंजीरी दीन्ही।—ऊ.का. उ०—२ सरस पुराणां बीच सुणी थी, किसन सुदामा तणी कथ।—बां.दा.

२ वृतान्त, हाल, विवरण। उ०—कहे 'महेस' 'महेस' सुणो कथ, गात अडोळै फिरूं गळै। विष माळा रुंड मेर वणाऊं, मसतक जो साबूत मिळै।—उम्मेदजी सांदू ३ वचन, शब्द। उ०—काहिल बांण कूक अग कीधी, दौड़ 'लछण' आग्या मौ दीधी। भूप मैं नटे जव कटुक कथ भाखिया।—र.ज.प्र. [सं० कथश्लाघायाम्] ४ कीर्ति, यश। उ०—१ राखण कथां बीच दोय राहां, मांगण चित वधारण मोद।
—रणसिंह सीसोदिया रौ गीत।

उ०—२ पंच पुत्र ताइ छठी सुपुत्री, कुंअर रुकम कहि विमळ कथ। रुकम बाहु अनै रुकमाळी, रुकम केस नै रुकम रथ।—वेलि.

[सं० कत्थ्य] ५ धन, द्रव्य (ह.नां) ६ कहावत. ७ बकभक।

कथक-वि० [सं०] १ नाचने गाने वाला (मा.म.) २ कथा करने वाला। उ०—कवि पंडित गायक कथक, मंत्री गज भड़ मल्ल। तौ दरबार जिता तिता, जग चावा 'जेहल्ल'।—बां.दा.

कथण—देखो 'कथन'।

कथणी-सं०स्त्री—१ कहने की क्रिया या भाव, उक्ति, कथन। उ०—जरै मनमा मथणी मथ जांण, करै कथणी कथ कै गुजरांण।—ऊ.का.

कहा०—कथणी सूं करणी दोरी—कहने से करना कठिन होता है।

२ बातचीत. ३ कहने का ढंग या रीति. ४ बकवाद, हुज्जत।

कथणी, कथबौ-क्रि०स०—१ कहना। उ०—स्रीपति इणी कुण की कति छै जु तुहारो गुण कथै।—वेलि टी. २ जपना. ३ वर्णन करना। उ०—कथूं केम ईसर कहै, खांण सकळ व्रत खेत। बांणी स्रवणां मन बसी, निगम अगोचर नेत।—ह.र.

४ काव्य-रचना करना।

कथणहार, हारो (हारी), कथणियौ—वि०।

कथिओड़ो, कथियोड़ो, कथ्योड़ो—भू०का०कृ०।

कथीजणौ, कथीजबौ—कर्म वा०।

कथन-सं०पु०—१ कथा, वृतांत, बात. २ वचन, शब्द, बोल। उ०—रहणा इकरंगाह, कहणा नहि कूड़ा कथन। चित उज्ज्वळ चंगाह, भला ज कोइक भैरिया।—राजा बलवंतसिंह

३ हुक्म। उ०—करै कुण समर फरंगांण मांनै कथन।
—जवांनजी आढ़ौ

कथा–सं०स्त्री० [सं०] १ किस्सा, कहानी, वार्ता. २ विवरण, वृत्तान्त. ३ धर्म विषयक चर्चा.
क्रि०प्र०––करणी, वांचणी, सुणणी।
४ व्याख्यान, प्रसंग।

कथित–वि०—कहा हुआ।

कथियोड़ो–भू०का०कृ०—कहा हुआ। (स्त्री० कथियोड़ी)

कथीजणो, कथीजबो–कर्म वा०—कहा जाना। देखो 'कथणो'।

कथीर–सं०पु०—जस्ता नामक एक प्रसिद्ध धातु (अ.मा.)

कथ्थ—देखो 'कथ' (रू.भे.) उ०––सउदागर राजा सुं कहै, सुणउ हमारी कथ्थ। मारवणी छांनी रही, से माळवणी तथ्थ।—ढो.मा.

कथ्थणो, कथ्थबो—देखो 'कथणो'। उ०—कहि सूवा, किम आवियउ, किहींक कारण कथ्थ। तूं माळवणी मेल्हियउ, किनां अम्हींणइ सथ्थ।—ढो.मा.

कदंच–क्रि०वि०—कभी। उ०—कवळ कियो जिण में कसर, राखी रती न रंच। आलीजो अळसै अज्यूं, कतौ दईव कदंच।—र. हमीर

कदंब–सं०पु० [सं० कद्+अंब] १ एक प्रसिद्ध सदा बहार पेड़, कदम।
पर्याय०—कदम, गंध, तूल, देवांनिनंग, नींप, मदरा, सुवासमद, हरप्रिय।
२ समूह, ढेर, झुंड (अ.मा.) उ०—गंगा री सहस्र धारा रै समांन केही धाराधरां री ऊजळी धारा कंकटां रा कदंब में कढ़ण लागी।
३ सेना, फौज। —वं.भा.

कदंबरी–सं०स्त्री० [सं० कादंबरी] मदिरा।

कद–क्रि०वि०—कब। उ०—१ दीवाळी होळी दसरावै, गौरि लहूर गवाड़ा। असवारी थारी कद आसी, मिणधारी मेवाड़ा।—अज्ञात
२ कभी। उ०—पोढ़िया रयण जेम प्रतमाळी, कद ही न सकियो काढ़ि।—धरमो

[illegible]सं०पु० [अ० कद] ऊँचाई।

कदई–क्रि०वि०—कभी। उ०—रांणी मन रूड़ोह, विध यण तरह विचारियो। कंथो तो कूड़ोह, हव कदई साचो हुवै।—पा.प्र.

कदक–सं०पु० [सं० कदकं] १ तंबू, डेरा, खेमा (डि.को.) २ चंदोवा, वितान (डि.को.)

कदकोई–वि०—कभी का।

कदको–वि०—कभी का।

कदच–क्रि०वि०—कदाचित्, शायद।

कदतांणी–क्रि०वि०—कब तक।

कद-धव–सं०पु० [सं० कदध्वा] कुमार्ग, कुपथ (डि.को.)

कदन–सं०पु०—१ दुख (अ.मा.) २ युद्ध (अ.मा.) ३ नाश, ध्वंश।
उ०—सकुनी जीते सार, घण अम्रत बिख घोळियो। होणहार री हार, करसी भारत रो कदन।—रांमनाथ कवियो

कदम–सं०पु० [अ०] १ डग, पांव (डि.को.) २ गति. ३ घोड़े की एक चाल विशेष. ४ देखो 'कदंब' (१) ५ राजस्थानी का एक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सगण, नगण, रगण होते हैं और अंत में लघु होता है (ल.पिं)

कदमखंडिया–सं०पु०—रामावत साधुओं की एक शाखा विशेष (मा.म.)

कदमूं—देखो 'कदम' (रू.भे.) उ०—कळ कदमूं के लंगर भारी, कनक की हूंस, जवाहर के जेहर, दीपमाळा की रूस, भालू के आडंबर चहुं तरफ कूं भाखे।—र.रू.

कदम्म—देखो 'कदम'। उ०—बह हरोळ जळ बीज, कीच चंदोळ कदम्मां। थाट जांण थाटियौ, पुन: दस आठ पदम्मां।—मे.म.

कदयक—देखो 'कदियक' (रू.भे.)

कदयांई–वि०—कभी का।

कदर–सं०स्त्री० [अ० कद्र] १ मान, प्रतिष्ठा. २ हाथ या पैर में कांटा या कंकड़ चुभने से होने वाली गांठ (अमरत)

कदरज–वि० [सं० कदर्य] १ नीच कुलोत्पन्न, पतित (क.कु.बो.)
२ कायर. ३ कृपण। उ०—अरथात कायर सूंब कदरजां रुपिया भेळा कीधा है। प्रजा री खून चूसने और वांरा गहणा कराया है।
—वी.स. टी.
सं०स्त्री० [सं०] धूलि, मिट्टी। उ०—धर कदरज कदरज विरछ, भी कदरज फळ पात। जन हरिदास ता विरछ कुळ, विपति नदी बहि जात।—ह.पु.वा.

कदरदांन–सं०स्त्री० [अ० कद्र+फा० दां] कदर जानने या करने वाला, गुणग्राहक।

कदरदांनी–सं०स्त्री० [अ० कद्र+फा०दां रा०+नी] गुणग्राहकता।

कदळीखंड—देखो 'कजळी बन'। उ०—पट्टकूल पट्टणी देस भोगी धर दक्षण। कुंजर कदळीखंड विप्र तेरोतरी विचक्षण।—ढो मा.

कदळी–सं०पु० [सं०] केले का पेड़ या केला। उ०—१ गिर नीलम पसवाड़ किलोळां हेत सुहावै। हेम कदळिया चौफेरी में रुड़ां लखावै।
—मेघ.
उ०—२ हंस चलण कदळीह जंघ, कटि केहर जिम खीण। मुख सिसहर खंजर नयण, कुच स्रीफळ कंठ वीण।—ढो.मा.

कदवद–वि० [सं० कद्वद] मूर्ख (ह.नां.)

कदा-क्रि०वि०—१ कब. २ कभी. उ०—कहै मुज्झ मिटै नह सोच कदा, सुज जींद सरांणै साल सदा।—पा.प्र.

कदाक-क्रि०वि०—कदाचित्, शायद। उ०— राहू कदाक न आयो तो, चकोर तो आवसी। जावसी न आग माथै, चहरा ने चूंथ जावसी।
—अज्ञात

कदाच, कदाचित–क्रि०वि० [सं० कदाचित्] कभी, शायद। उ०—त्यांह कै संकोचि पूछ्यो न जाय पर मन मांहि डर छै कदाचित यौं कहैं जु नाया। ज्यौं-ज्यौं ब्राहमण नजीक आवै छै त्यौं-त्यौं रुखमणीजी ब्राह्मण का मुख की धारणा ताकै छै।—वेलि टी.

कदापि–क्रि०वि० [सं० कदा+अपि] किसी समय भी, हरगिज।
उ०—निरापराध लोक पै कदापि कोपते नहीं, क्रमाळ लोक-लोक ठीक लीक-लीक लोपते नहीं।—ऊ.का.

कदास–क्रि०वि०—कदाचित्, कभी, शायद (रू.भे.) उ०—प्रांखियां प्रकास सांमी लागोड़ी, कदास भगवांन प्रबेई निवाजे, गउवां रै भाग री वरसै, कदास प्रबेई इंदर राजा तूठै।—वरसगांठ

कहा०—कदास डाळी निंव जाय—कदाचित् डाली झुक जाय; संभव है सफलता मिल जाय; संभव है प्रच्छे दिन लौट प्रावें।

कदि—देखो 'कदि' (रू.भे.)

कदियक–क्रि०वि०—१ कब. २ कभी। उ०—मँगळ ऐथी प्राव मत, बाघां केरी वाट। साप प्रंगूठा मेळ ज्यूं, कदियक हुसी कुघाट।—बां.दा.

कदियाक–क्रि०वि०यौ०—किस दिन, कब।

कदी–क्रि०वि०—१ कभी, किसी दिन। उ०—किसूं गणावं पीढ़ियां ख्यात सारी कहे. दुनी प्रब प्रब प्रगट सुजस दीधौ। कदी ही कियौ नह रूसणौ, कुचामण सामधम सदा कीधौ।—बां.दा. ख्यात

२ कब. उ०—बीजुळियां चहळावहळि, प्राभइ प्राभइ एक। कदी मिळूं उण साहिबा, कर काजळ की रेख।—ढो.मा.

कदीक–क्रि०वि०—कभी।

कदीको–वि०—कभी का।

कदीम–क्रि०वि० [प्र० बहु० कुद्मा] प्राचीन काल से, परंपरा से, सदैव। उ०—यळ सारी यम ऊचरै, कमसळ प्रौध कदीम। म्हां ऊभां इज म्हाह री, सारंग दाबै सीम।—पा.प्र.

वि०—पुराना, प्राचीन।

कदीमी–वि० [प्र० कदीम] प्राचीन, परंपरा का, पुराना। उ०—जणां सगळा प्ररज करी–सरकार हम तो कदीमी नौकर हैं, ऐसा प्राज क्या हुवा?—पदमसिंह री बात

कदीरो–वि०—कभी का।

कदीसेक–क्रि०वि०—कभी, प्रायः, कभी-कभी।

कदू–सं०पु० [फा०] लौकी या घीया नामक तरकारी, कद्दू।

कदे, कदेइक, कदेई—देखो 'कदै' (रू.भे.) उ०—मारू सनमुख तेड़िया, दियण संदेसा कज्ज। कहउ कदे थे चालिस्यउ, कांइ विहांणइ प्रज्ज।—ढो.मा.

कदेईन–क्रि०वि०—कभी भी।

कदेक–क्रि०वि०—कब तक। उ०—कदेक सपनां मांय, सायधण प्रांण मिळांणी। धण लेतौ गळबत्थ, पसारूं उरसां पांणी।—मेघ.

कदेकण–क्रि०वि०—कभी।

कदेकरो, कदेको–वि०—कभी का।

कदेय–क्रि०वि०—कभी। उ०—कदेय न प्रावै सायबौ म्हारी कदेय न प्रावै बीर। मारो ए रतना दासी कागलिया रै तीर।—लो.गी.

कदेरोई, कदेरो–वि०—कभी का।

कदेव–सं०पु०—कृपण, कंजूस।

कदेहिक, कदेहीक–क्रि०वि०—कभी। उ०—तरै कंवाटजी कह्यौ, भांणेज, म्हांरो देह, म्हारा रजपूत, ज्यांसूं प्रोर कर प्रमल करणौ किसी भारी बात छी, पिण कदेहीक बणसी जद कहिस्यां।

—कहवाट सरहविया री बात

कदै–क्रि०वि०—कभी। उ०—१ जनक सुता रै स्नांन जेथ रौ निरमळ पांणी। गहरी बिरखां-छांह जाय न कदै बखांणी।—मेघ.

उ०—२ कदै इणे पण म्हारौ कथन न लोपियौ। एक पलक म्हांसूं प्राघौ न रह्यौ।—पलक दरियाव री बात

कहा०—१ कदैई सुपनौ साचौ करणौ'क नहीं?—कभी सपना सच्चा करना या नहीं। प्रनेक बार कहने पर काम न कर दिखलाने वाले के लिये। जब कोई प्रनेक बार कहने के बाद एक बार काम करदे। २ कदै गाडी चीलां पर तौ कदै खरबूजां में ही सही—प्रच्छे प्रौर बुरे समय प्राते ही रहते हैं। ३ कदै गाडी नाव पर तौ कदै नाव गाडी पर। कदै गाडी नाव में नै कदै नाव गाडे में—कभी गाड़ी नाव पर तो कभी नाव गाड़ी पर; जब विभिन्न परिस्थितियों के व्यक्ति परस्पर सहायता करें; दो भिन्न परिस्थितियों के व्यक्तियों का परस्पर भाग्य-परिवर्तन; कभी एक का दोष तो कभी दूसरे का। ४ कदै घी घणां, कदै मुट्ठी चिणा—कभी खूब घी से चकाचक माल प्रौर कभी केवल मुट्ठी भर चने; संसार में सभी दिन एक से नहीं होते; जो कुछ ईश्वर दे उसी से संतोष करना चाहिये। ५ कदै तौ मरिया न कदै सुरग गया—कब मरे प्रौर कब स्वर्ग गये; बिना करनी के केवल कथणी करने पर। ६ कदै दिन बडा, कदै रात बडी—कभी दिन बड़े प्रौर कभी रात बड़ी; समय सदा एक-सा नहीं रहता; कभी एक का दांव, कभी दूसरे का। ७ कदै न घोड़ा हींसिया कदै न खांच्या तंग, कदै न रांडघां (गांडू) रण चढ़घा, कदै न बाजी बंब—कायर प्रौर डरपोक प्रादि से सहायता की प्राशा न रखनी चाहिये। दान न मिलने पर कंजूस यजमान के लिये याचक जातियों के लोगों का कथन।

कदैई–क्रि०वि०—कभी।

कदैईसेक–क्रि०वि०—कभी-कभी।

कदैक–क्रि०वि०—कभी।

कदोकोई, कदोको–वि०—कभी का। उ०—कमंध जादवां वैर कदोको, ऊंचा सरै उजियाळै प्राय।—प्रज्ञात

कदो–वि०—काला, श्याम, कृष्ण।

कद्दन–वि० [सं० कदन] कटा हुप्रा, नष्ट, ध्वस्त। उ०—गरद्दन कद्दन केक मुगल्ल। छटे खग वेख क मेख छगल्ल।—मे.म.

कद्रदांन–वि० [प्र० कद्र+फा० दांन] गुणग्राहक (रू.भे. 'कदरदांन')

कद्रदांनी—देखो 'कदरदांनी' (रू.भे.)

कधरा–सं०स्त्री०—परिहार वंश की एक शाखा।

कधी–क्रि०वि०—कभी। उ०—कंत मचाड़ै नहं कधी, काचां रै घर कूक। मुड़ै विरोळै माझियां, रोळै सोणित रूक।—वी.स.

कध्यौ–भू०का०प्र०—'करणौ' क्रिया का भू०का०प्र०, किया। उ०—चढ़ै सिंघ चामुंड कमळ हुंकारव कध्यौ, डरो चरंतो देख प्रसुर भागियो प्रवध्यौ।—प्रज्ञात

कन–प्रव्यय—१ या, प्रथवा। उ०—भूपां मिण जेहो भारांणी, लाखौ कन लाखो फूलांणी।—क.कु.बो. २ प्रोर, तरफ।

सं०पु० [सं० कर्ण] १ कान. २ राजा कर्ण. ३ श्रीकृष्ण।
उ०—करतो कहा न हुवै कन, नारायण पंकज नयरण।—मलूदास

कनग्रज्ज, कनउज्ज, कनग्रोज—देखो 'कन्नोज'।

कनग्रोजो—वि०—कन्नोज नगर का, कन्नोज नगर संबंधी (प्रायः यह राठौड़ क्षत्रियों के लिए प्रयुक्त होता है)

कनक—सं०पु०[सं०] १ स्वर्ण, सोना (ग्र.मा.) २ धतूरा (डिं.को.) ३ एक प्रकार का घोड़ा।—शा.हो. ४ छप्पय छंद का एक भेद जिसके अनुसार २१ गुरु और ११० लघु से १३१ वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं (र.ज.प्र.) ५ एक वर्णिक छंद जिसमें एक रगण एवं एक जगण के क्रम से १४ वर्ण होते है तथा अंत में लघु होता है (ल.पिं.) ६ वेलिया सांणोर नामक छंद का एक भेद विशेष जिसके प्रथम द्वाले में ४४ लघु व १० गुरु सहित ६४ मात्रायें होती हैं तथा शेष द्वालों में ४४ लघु ६ गुरु सहित कुल ६२ मात्रायें होती हैं (पिं.प्र.)
वि०—पीला, पीत॰ (डिं.को.)

कनककेसर—सं०पु० [यौ०] एक प्रकार का रंग विशेष का घोड़ा। (शा.हो.)

कनकगढ़—सं०पु०यौ०—१ जालोर का किला या गढ. २ लंका।

कनकगिर—सं०पु०यौ० [सं० कनक+गिरि] १ सुमेरु पर्वत (ग्र.मा., नां.मा.) २ जालोर का पर्वत (मि. 'कणियाचळ')

कनकपसाव—सं०पु०—एक प्रकार का घोडा विशेष (शा.हो.)

कनकप्यार—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा हो.)

कनकबीज—सं०पु०—एक प्रकार का घोडा (शा.हो.)

कनकलता—सं०स्त्री०यौ० [सं० कनक+लता] स्वर्णलता नामक एक लता।

कनकवरीसण—सं०पु०यौ० [कनकवर्षण] सूर्य पुत्र कर्ण।
(मि० 'कनकस्रवण')

कनकवेलि, कनकवेली—सं०स्त्री०यौ०—स्वर्णलता नामक एक बेल।
उ०—रांमा अवतार नाम ताइ रुखमणि, मांन-सरोवर मेरुगिरि।
बाळकति करि हंस चो बाळक, **कनकबेलि** बिहु पांन किरि।
—वेलि.

कनकस्रवण—सं०पु०यौ०—सोने का दान करने वाला राजा कर्ण।
उ०—रयण दियण पाताळ न राखै, **कनक स्रवण** रूधो कविळास।
महि-पुड़ि गज-दातार ज मारै, विसन किसै पुड़ि मांडूं वास।
—दुरसो ग्राढ़ो

कनकाचळ—सं०पु०—१ सुमेरु पर्वत (ग्र मा., नां.मा.) २ जालोर का पर्वत।

कनखळ—सं०पु०—१ हरिद्वार से तीन मील दूर एक तीर्थ स्थान.
२ कोलाहल, शोरगुल।

कनड़—सं०पु० [सं० कृष्ण] श्रीकृष्ण।

कनड़ी—सं०स्त्री०—एक राग विशेष (मीरां)

कनड़ो—सं०पु०—१ वस्त्र का छोर. २ देखो 'कन्हड़ो' (रू.भे.)
[सं० कर्ण] ३ कान।

कनन—वि० [सं०] जिसके केवल एक ग्रांख हो, काना (डिं.को.)

कनपड़ी—सं०स्त्री०—कान और ग्रांख के बीच का भाग, कनपटी।

कनपटो—देखो 'कनफड़ो'।

कनपट्टी, कनफड़ी—सं०स्त्री०—कान और ग्रांख के बीच का भाग, कनपटी
उ०—फीका चं'रा पड फीका द्रग फेरै, हाहा ऊंडा दिन मूंडा भय हेरै।
किडकी कारायण **कनफड़ियां** कूटी, तिड़गी तारायण सौ पुरसां तूटी।
—ऊ.का.

कनफड़ो—सं०पु०—१ कानों को छिदवा कर उनमें बिल्लोर की मुद्रा पहिनने वाले गोरखपंथी योगी। कनफटा साधु. २ देखो 'कनपट्टी'।

कनफूल—सं०पु० [सं० कर्णफूल] कर्णफूल के समान ही किन्तु उससे कुछ भिन्न बनावट का ललाट से कान तक का धारण करने का स्त्रियों का ग्राभूषण।

कनबज्ज—सं०पु०—कन्नोज का एक पुराना नाम।

कनमूळ—सं०पु०—कान के पास होने वाली ग्रंथि (रोग)

कनलो—वि०—पास का, निकट का। उ०—हुमायूं दिल्ली ग्राय तखत बैठो। कितोईक **कनलो** देस जबत कियो। सिकंदरसाह लाहौर रा पहाड़ां में पैठो।—बां.दा. ख्यात

कनवज—सं०पु०—कन्नोज नगर का प्राचीन नाम।

कनवजियो—सं०पु०—कन्नोज का, कन्नोज संबंधी, राठोडवंशी क्षत्रिय।

कनवज्ज—सं०पु०—कन्नोज का प्राचीन नाम विशेष।

कनवत—सं०पु०—घोड़े के कान, घोड़े के कानों के रहने का ढग।

कनसट—वि० [सं० कनिष्ट] छोटा।
सं०पु—छोटा भाई।

कनसळाई, कनसळो—देखो 'कांनसळाई'।

कनसुरि, कनसूरो—सं०पु०—कान के पास का हिस्सा, कनपटी।

कनस्ट—सं०पु० [सं० कनिष्ट] छोटा भाई (ग्र.मा.)

कनांत—देखो 'कनात'। उ०—जूंनी ले **कनांतां** तेल सींची ग्रागि जाळी।
रूई राळ सारी तेल घी सौं सींचि राळी।—शि व.

कना—क्रि०वि०—१ पास, निकट (देखो 'कनै')। उ०—तिकै राजावां **कनां** सूं मूंढ़ा सूं चुगावै नै चुगतो जेज करै तो लांबा पिरांणी।
[मं० किंवा] २ या, अथवा. —कहवाट सरवहिया री बात.
उ०—कोप रूद्र-माळ का विहंगां नाथ जूटो **कना**, रूठो गोरां माथै प्रळै काळ को सो रूप।—गिरवरदांन कवियो. ३ मानो।
उ०—मनु संजुति लोकेस, **कना** रवि हूंत प्रजापति। कै रघुवीर कुवार, लियां ग्रवधेस प्रभा जुति।—रा.रू.

कनाग्रण—सं०पु०—घोड़े के कान। उ०—प्रसण ज्यों मुख बांको कीग्रा थकां **कनाग्रण** मिळी ग्रांजार सूं छिनाळ मुख बांको करि रही।
रा.सा.सं.

कनाई—सं०पु०—कन्हाई, श्रीकृष्ण। उ०—बधाई-बधाई जसोदा बधाई, करै मोरळी नाद ठाढ़ो **कनाई**।—ना.द.

कनात—सं०स्त्री [तु० कनात] १ किसी जगह को घेर कर ग्रोट करने

वाला मोटे कपड़े का पाल, पर्दा करने का कपड़ा। उ०—घड़च कनातां धार सूं, गी रहवास मझार। नूरमली लख ल्हासतै, मौर झली तलवार।—रा.रू. २ छोर, किनारा।

कनाय—देखो 'कनात'। उ०—कनाणां पड़दां तांणीजै छै। चोहबचा मांहि जळ केळरा रंग तरंग मांणीजै छै।—रा.सा सं.

कनार-सं०स्त्री०—१ घोड़े का एक रोग विशेष जिसके कारण खांसते समय नाक में से गाढ़ा या पतला श्लेष्मा निकलता है, घोड़े का जुकाम। (शा.हो.) २ देखो 'किनार', या 'किनारी'।

कनारी-सं०स्त्री०—देखो 'किनारी' (रू.भे.) उ०—लाल चोमणै मांमा मोचा, लाल कनारी जोड़ौ। लाल पाघड़ी रातौ वागौ, रातै महियै घोड़ौ।—डूंगजी जवारजी री पड़

कनारौ-सं०पु० [फा० किनारा] १ तीर, तट (डि.को.) २ छोर. ३ हाशिया।

कनिग्रांन-सं०पु०—छोटा भाई (ह.नां.)

कनियरसौ-सं०पु० [सं० अकनीयस्] तांबा (अ.मा.)

कनियांण, कनियांणि, कनियांणी-सं०स्त्री०—करनी देवी का एक नाम। उ०—मेलै फौज कामरां मिरजो, ऊ जंगळधर आयौ। केवी तै भांजे कनियांणी, जैतराव जीतायौ।—बां दा.

कनियांन-सं०पु०—छोटा भाई (ह.नां.)

कनिसट, कनिस्ट-सं०पु० [सं० कनिष्ठ] छोटा भाई (ह.नां.)

कनी-सं०स्त्री०—१ देखो 'कणी'. २ सेना, फौज (अ.मा.) [सं०] ३ कन्या, पुत्री। उ०—काका अजय तणी कनी प्रभावती करिपेस बूंदी नृप बरसिंह अपणायौ नए एस।—वं.भा. [रा०] ४ हीरे का बहुत छोटा टुकड़ा।

कनिअस-सं०पु० [सं० अकनीयस्] ताम्र. तांबा (ह.नां.)

कनीपाव-सं०पु० [सं० कृष्णपाद] नाथ संप्रदाय की काळबेलिया जाति के गुरु कृष्णपाद।

कनीयस-सं०पु०—तांबा (ह.नां.)

कनीर-सं०पु०—कनेर का वृक्ष या उसका पुष्प (अमरत)

कनूर, कनूरौ-सं०पु० [सं० कर्ण] १ कर्ण, कान. २ कनपटी।

कनेठ-सं०पु० [सं० कनिष्ठ] अनुज छोटा भाई। उ०—की कह भ्रात कनठ! नांम रेखा की लहजै।—र.ज.प्र.

कनै-क्रि०वि० [सं० कर्ण] १ पास। उ०—वाघ विधूंमै वाह रां आरण खरा उपाड़। सींन्हाया सूणिया नहीं, वाघां कनै विगाड़।—बां.दा.

कहा०—कनै कोड़ी कोनी, नांव किरोड़ीमल—पास में तो कौड़ी ही नहीं और नाम करोड़ीमल; नाम के अनुसार गुण नहीं हो तो व्यंग में यह कहावत कही जाती है।

२ साथ, साथ में। उ०—असवार १५० विजै कनै था, रावत कनै तो साथ घणो थो पिण बिजौ जीतो।—नैणसी ३ निकट, समीप।

कनैयौ-सं०पु० [सं० कृष्ण] १ श्रीकृष्ण. २ एक प्रकार का छोटा पक्षी जो अपना घोंसला बड़े विशेष ढंग से बनाता है। यह प्राय: सायंकाल को झुंड बना कर आकाश में उड़ता है। उ०—जळहर ऊंचा आविया, बोल रह्या अळ काग। देण वधाई मेहरी, रह्या कनैया भाग।—बादळी

कनोई—देखो 'कंदोई' (रू.भे.)

कनोजियौ, कनोजौ-सं०पु० (स्त्री० कनोजी) १ कान्यकुब्ज ब्राह्मण. २ राठौड़ क्षत्रिय।

वि०—कन्नोज का, कन्नोज संबंधी।

कनोती, कनौती-सं०स्त्री०—घोड़े के कान या कान की नोंक।

उ०—बरचि दीप बेत्रड़ा, कळी केवड़ा कनोती। लंकी चजर अलोळ, बजरमणि मोल बिचोती।—मे.म.

कन्न-सं०पु० [सं० कर्ण] १ कान, कर्ण। उ०—वेसे विचित्र सिंदूर अन्न. कूंडी कपाळ के छाज कन्न।—रा.ज.सी. [सं० कृष्ण] २ श्रीकृष्ण [सं० कर्ण] ३ कुंतीपुत्र कर्ण। उ०—समासम पेल धमाधम सेल, अनातम आतम ठेल उठेल। अमाप तठै बळ खाग अजन्न, कनोज घणी जु कळा जिम कन्न।—रा.रू.

कन्नि,कन्नी-सं०पु० [सं० कर्ण] कान, कर्ण। उ०—केसरि कन्निन्न सांभळि कन्नि, वाउळि कि वन्नि लागउ वहन्नि।—रा.ज.सी.

कन्नौज-सं०पु०—उत्तर प्रदेश का एक प्रसिद्ध शहर (ऐतिहासिक)

पर्याय०—कन्याकुब्ज, कानकुबज, पांडवनगर।

कन्नौजियौ—देखो 'कनोजियौ' (रू.भे.)

कन्नौती—देखो 'कनोती'।

कन्न-सं०पु० [सं० कर्ण] कान। उ०—करहा लंब कराड़िआ, बे बे अंगुळ कन्न। राति ज चीन्ही वेलड़ी, तिण लाखीणा पन्न।—ढो.मा.

कन्यका—१ देखो 'कन्या' (अ.मा.) (रू.भे.) उ०—कन्यका तरुण वड़ चमतकार। घर लियौ कठण पण हृदय धार।—पा.प्र.

२ पृथ्वी (अ.मा.)

कन्या-सं०स्त्री० [सं०] १ बेटी, पुत्री. २ लड़की, अविवाहिता स्त्री. अक्षतयोनि बालिका. ३ बारह राशियों के अंतर्गत एक राशि.

मुहा०—कन्यारासी होणौ—चौपट या निकम्मा होना।

४ पांच की संख्या. ५ दिशा (अ.मा.)

कन्याकाळ-सं०स्त्री० यौ०—१ कन्या का कुंआरा रहने तक का समय. २ रजोदर्शन से पूर्व की अवस्था। उ०—आपरा पुत्रां रौ संबंध कियौ चाहै सौ राजकुमार रा प्रसय में तुलै तौ कन्याकाळ रौ प्रतिक्रम जांणि अठै ही बिवाह करूं।—वं.भा. ३ कन्याओं का अभाव जिससे पुरुष अविवाहित रह जाय।

कन्याकुबज-सं०पु० [सं० कान्यकुब्ज] १ कन्नोज (डि.को.) २ ब्राह्मणों की जाति विशेष, कनवजिया. ३ कान्यकुब्ज देश में वास करने वाला।

कन्यादांन-सं०पु०यौ० [सं० कन्यादान] १ विवाह में वर को कन्या देने की रस्म. २ इस अवसर पर कन्या को दिया जाने वाला दान या संकल्प। उ०—म्हांरै कन्यादांन रा कळ री चाह जांणि गमार अत्यंत ही आणंद मैं ऊफणिया न मावसी।—वं.भा.

कन्याबळ-सं०पु० [सं० कन्याबलि] कन्या के विवाह के दिन बड़े-बूढ़ों

द्वारा किया जाने वाला उपवास। रात्रि को पाणिग्रहण संस्कार के बाद ही भोजन किया जाता है। उ०—लाख जग्य राजसू लाख असमेघ करीजै। लाख भार मोवना, लाख कन्यावळ लीजै।—अलूदास

कन्ह–सं०पु [सं० कृष्ण] १ श्रीकृष्ण। उ०—कन्ह आरती कन्ह आरती, मंढ़ हुवै नैयर द्वारामति।—ईसरदास बारहठ २ पृथ्वीराज का चाचा, एक सामंत (ऐतिहासिक) या, अथवा।

कन्हइ–क्रि०वि०—१ पास, नजदीक। उ०—मइं घोड़ा बेच्या घणा, रहियउ मास चियारी। राति दिवस ढोलई कन्हइ, रहतइ राज-दुवारि।—ढो मा २ अगाड़ी। उ०—सउदागर राजा कन्हइ, कहियउ एक विचारि—ढो.मा.

कन्हड़, कन्हड़ौ–सं०पु०—१ एक राग विशेष। उ०—कलंग परज कन्हड़ां, सुरांसवाद सुघड़ां। निवास सात नाळियं, त्रिग्रांम मूळ ताळियं।—रा.रू. २ श्रीकृष्ण

कन्हर–सं०पु० [सं० कृष्ण] श्रीकृष्ण। उ०—कियो मनु बाडव सिंधु प्रलोप, कियो मनु कंस पै कन्हर कोप। भरी मनु सिंघ करीनि पै डग्ग, अरज्जन येम लग्यौ जुध मग्ग।—ला.रा.

कन्हा–क्रि०वि० –पास, निकट, नजदीक। उ०–दुरवेस कन्हा गरहावि देस। नमि कोट विची न रहिय नरेस।—रा.ज.सी.

कन्है–क्रि०वि०—समीप, निकट, पास। उ०—कमधां धणी हुकम नव कोटां, मिळिया सुपह कन्है पह मोटां।—रा.रू.

कन्हैयो–सं०पु०— १ एक पक्षी विशेष। (रू.भे. 'कनैयो') २ श्रीकृष्ण।

कप–सं०पु० [सं० कपि] १ बंदर, लंगूर (अ.मा) उ०—ले बनवास हराय महाछळ, कप हैज्जम अणपार कस।—र.रू.

[अं० कप] २ प्याला।

कपड़–सं०पु०—देखो 'कपड़ौ' (डिं.को.) उ०—हुसनाकां तरकसां सूं मैंण कपड़ री खोळी उतारि लीधी छै। कबांणा चाक कीजै छै।

—रा.सा.सं.

कपड़कोट–सं०पु०यौ०—१ पहिनने के कपड़े या वस्त्र. २ खेमा, तंबू।

कपड़छांण–सं०पु०—किसी बारीक कुटे-पिसे चूर्ण को कपड़े से छानने की क्रिया या भाव, कपड़छन।

कपड़णो, कपड़बो–क्रि०स०—देखो 'पकड़णौ' (रू.भे.)

कपड़णहार, हारौ (हारी), कपड़णियौ–वि०—पकड़ने वाला।

कपड़ाणो, कपड़ाबो, कपड़ावणो, कपड़ावबो—स०रू०।

कपड़िग्रोड़ो, कपड़ियोड़ो, कपड़योड़ो—भू०का०कृ०।

कपड़ीजणो, कपड़ीजबो—कर्म वा०।

कपड़दार–सं०पु०—कपड़े सीने वाला दर्जी।

कपड़माटी, कपड़मिट्टी–सं०स्त्री०—औषधि व धातु फूंकने के लिए उस पर कपड़े से गीली मिट्टी लपेटने की क्रिया (अमरत)

कपड़-सिवार–सं०पु०—दर्जी (डिं.को.)

कपड़ा–सं०पु०—१ कपड़े का बहुवचन। देखो 'कपड़ौ'. २ रजस्वला स्त्री का दूषित रक्त. ३ रक्त-प्रदर नामक स्त्रियों का रोग विशेष।

क्रि०प्र०—'पडणा'।

कपड़ाग्रायोड़ी–वि०स्त्री०—रजस्वला, ऋतुमती।

कपड़ाणो, कपड़ाबो–क्रि०स०—१ पकड़ाना। देखो 'पकड़णौ'. २ कपड़ा लपेट कर पलंग की पट्टी को पाये में फंसा कर मजबूत करना।

कपड़ारोकोठार–सं०पु०—राजा-महाराजाओं का वह विभाग जिसके अंतगर्त कपड़ों की देखभाल एवं उनका संग्रह रक्खा जाता था।

कपड़ियोड़ो–भू०का०कृ०—पकड़ा हुआ (स्त्री० कपड़ियोड़ी)

कपड़ौ–सं०पु० [सं० कर्पट] १ वस्त्र, पट।

पर्याय०—अंबर कपड़, करपट, चीर, चैल, दुकूल, पट, पूंगरण, बसतर, वसण।

२ सिला हुआ वस्त्र, पोशाक।

क्रि०प्र०—उतारणौ, पैरणौ, फाटणौ, होणौ।

मुहा० १ कपड़ा उतरवाणौ सबकुछ ले लेना; बेइज्जत करना. कपड़ा उतारणा— कुछ भी न छोड़ना, सबकुछ ले लेना

कहा०—१ कपड़ा सपेत'र घोड़ा कमेत—कपड़ा सफेद और घोड़ा कमेती रंग का उत्तम होता है. २ कपड़ा फाट गरीबी आई, जूती फाटी चाल गमाई—कपड़े फटे और गरीबी आई, जुती फटी और चाल बिगड़ी. ४ कपड़ौ कै तूं म्हारी इज्जत राख हूं थारी राखूं—कपड़ा कहता है कि तुम मेरी इज्जत रक्खो, मैं तुम्हारी रक्खूंगा; कपड़ों को खूब सावधानी से रखना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से कपड़े अच्छे रहते हैं और अच्छे कपड़ों से आदमी की इज्जत होती है।

यौ०—कपड़ा-लत्ता।

कपट–सं०पु० [सं० क+पट्+अल्] १ अपने इष्ट-साधन के हेतु हृदय की बात छिपाने की वृत्ति, छल, प्रतारण, दुराव, छिपाव।

२ धोखा।

पर्याय०—कूट, कूड़, कैतव, छदंभ, छंद, छदम, छळ छेतरण, ठग, तोत, दंभ, द्रोह, परवाद, मनद्रंद्द, विपद, विपदेस, व्याज।

क्रि०प्र०—करणौ, राखणौ।

३ बहत्तर कलाओं के अंतगर्त एक कला।

कपटता–सं०स्त्री०—धूर्तता, छल, धोखा।

कपटी–वि०पु० (स्त्री० कपटण) छली, धोखेबाज, कुटिल (डिं.को.)

पर्याय०—अनृजु, कुहक, जाळिक, धूरत, निकत, वंचक, सठ।

कपणियो–सं०पु०—मिट्टी का बना कच्चा पात्र जिसे दीपक पर रख कर काजल बनाया जाता है।

कपणो–वि०—देखो 'कप्पणौ'।

कपणो, कपबो–क्रि०प्र०—१ कटना। उ०—किरमाळ झड़े तन त्रांण कपै, झळके किर दांमण मेघ वपै।—रा.रू. २ कम होना.

३ नाश होना, मिटना। उ०—धन मात पिता जिण बंस धर, कळूख तिकां दरसण कपै। कवि किसन कहै धन नर तिकै, जिके रसण रघुबर जपै।—र.ज.प्र. [सं० कंप] ४ कंपायमान होना.

क्रि०स०—५ नाश करना, मिटाना।

कपहार, हारौ (हारी), कपणियौ—वि० ।

कपाणौ, कपाबौ, कपावणौ, कपावबौ—क्रि०स०—प्रे०रू० ।

कपिग्रोड़ौ, कपियोड़ौ, कप्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

कपीजणौ, कपीजबौ—कर्म वा० ।

कपतांन–सं०पु० [अं० कैप्टेन] देखो 'कप्तान'। उ०—कायमखां कपतांन से करि बातें चब्बी, सेख इनायत खांन के भुज पलटण डब्बी ।
—ला.रा.

कपरदी, कपरदोस–सं०पु० [सं० कपर्दी और दोषकर्पर] शंकर, शिव (ग्र.मा., क.कु.बो.)

कपरौ–सं०पु०—१ नमक पैदा होने की भूमि. २ पानी के पड़ाव का स्थान ।

कपळ–सं०पु० [सं० कपिल] सांख्य शास्त्र के प्रवर्तक एक मुनि जिन्होंने राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को भस्म कर दिया था। इनको विष्णु का पांचवा अवतार भी माना जाता है ।

वि०—पीला, पीत ।

कपळदेव, कपळमुनि—देखो 'कपळ' ।

कपळरंग–सं०पु०यौ० [सं० कपिल+रंग] पीला रंग ।

कपळा–सं०स्त्री० [सं० कपिला] १ काले रंग की सीधी गाय. २ सफेद, पीली या गौर वर्ण की गाय। उ०—कपळा कवळी नै बारै पुचकारै, लाखर लाखर ऐ ग्राखर मन मारै ।—ऊ.का.

३ गाय (ह.नां.)

कपसाथ–सं०पु०—बंदरों के साथ रहने वाले, श्रीराम (ग्र.मा.)

कपांण–सं०स्त्री० [सं० कृपाण] १ कृपाण, कटार. २ तलवार, खड्ग (ह.नां.)

कपाट–सं०पु० [सं०] १ पट, द्वार, किवाड़, दरवाजे के पल्ले । उ०—चंदण पाट कपाट ई चंदण, खुंभी पनां प्रवाळी खंभ ।
—वेलि.

२ रक्षक । उ०—जठै संगर रौ भार ग्रापरै माथै ग्रोढि गुरजर धरा रौ कपाट होय ग्रापरा बारह सै बांनैतां समेत काठी भ्रणदेव चंद्रहासां रा चौड़ा बाढ़ चखावण रै काज प्रथ्वीराज रा बीरां रै थोभ लगाय लड़ियौ ।—वं.भा.

कपाणौ, कपाबौ—देखो 'कपावणौ' (रू भे.)

कपायौ–सं०पु० [सं० कर्पास] १ कपास का बीज जो दूध बढ़ाने के निमित्त मादा मवेशियों को खिलाते हैं. २ पैर के तलवे में होने वाला क्षत या रोग कष्टसाध्य माना जाता है. ३ मस्तिष्क के अंदर का सार भाग ।

कपाळ–सं०पु० [सं० क+पाल्+ग्रण] सिर के ऊपर का हिस्सा, मस्तक (डि.को.)

मुहा०—१ कपाळक्रिया करणी—चिता के कुछ जल जाने पर सिर फोड़ कर एक क्रिया करना जिसमें कपाळ पर घी की धारा भी उंडेली जाती है. २ कपाळ खुलणौ—सिर फट जाना; भाग्य खुलना. ३ कपाळ फूटणौ—सिर फूट जाना; ग्रभाग्य ग्राना.

(यौ० कपाळक्रिया) २ ललाट, भाल. ३ भाग्य. ४ घड़े ग्रादि के नीचे या ऊपर का भाग. ५ मिट्टी का भिक्षा-पात्र । उ०—ग्ररण नेत कपोळ ग्रांणण, भसम धूसर उरग भूषण । गणपति सुत देवतागण, करग जास कपाळ ।—केसोदास गाडण

६ यज्ञों में देवताग्रों के लिये पुरोडाश पकाने का बर्तन ।

कपाळकिरिया, कपाळक्रिया–सं०स्त्री—चिता के कुछ जल जाने पर सिर फोड़ कर की जाने वाली एक क्रिया जिसमें घी की धारा भी उंडेली जाती है ।

कपाळभ्रत–सं०पु० [सं० कपालभृत] शिव, महादेव (ग्र.मा.)

कपाळिया–सं०पु०—राठौड़ वंश के क्षत्रियों की एक शाखा ।
—बां.दा. ख्यात

कपाळियौ–सं०पु०—राठौड़ वंश की कपाळिया शाखा का व्यक्ति ।

कपाळी–वि०पु०—जो हाथ में कपाल धारण करता है ।

सं०पु०—शिव, महादेव (डि.को.) उ०—सेल भचक्कं संकुळं, ग्रति धाय उबक्कं, सीस कपाळी संग्रहै, काळी सु किलक्कै ।—वं.भा.

२ देखो 'कपाळ' (पु०)

कपाळेस्वर–सं०पु० [सं० कपालेश्वर] मारवाड़ के चोहटन ग्राम में स्थित एक शिवलिंग ।

कपालोंडो–सं०स्त्री०—ऊंट के सिर में होने वाली ग्रंथी का एक रोग विशेष ।

कपावणौ, कपावबौ–क्रि०स०—१ कटाना ।

कपावणहार, हारौ (हारी), कपावणियौ—वि० ।

कपणौ—क्रि०ग्र० ।

कपिग्रोड़ौ, कपियोड़ौ, कप्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

कपावियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ कटाया हुग्रा (स्त्री० कपावियोड़ी)

कपास–सं०पु० [सं० कर्पास] १ एक पौधा जिसके डोडे से रूई निकलती है. २ इस पौधे से निकाली गई रूई जिसमें बिनौले भी होते हैं।

कहा०—१ कातियौ पींजियौ कपास हुयग्यौ—किया कराया सब बेकार चले जाने पर. २ पराये मांस सुई कपास सूं ई सोरी जावै—दूसरों को पीड़ा पहुंचाना सहज है किन्तु पीड़ा सहन करना कठिन है। ३ बिनौला ।

कहा०—कुत्तौ कपास में कांई समझै—कुत्ते को कपास का क्या ज्ञान। जो जिस वस्तु का कभी उपयोग नहीं करता उसे उस विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं होता। जो व्यक्ति किसी वस्तु का उपयोग नहीं करता उसके विषय में बातचीत करता है तब ग्रन्य व्यक्ति उसके प्रति व्यंग में यह कहावत कहते हैं ।

कपासिया–सं०पु०—देखो 'कपासियौ' (१)

कपासियारंग–सं०पु०—कपास के फूल के रंग से मिलता-जुलता रंग ।

कपासियौ–सं०पु०—१ कपास के बीज, बिनौला (बहु० कपासिया) २ मस्तिष्क के ग्रंदर का सार भाग. ३ हाथ या पैर में बेर के ग्राकार की होने वाली ग्रंथी या गांठ विशेष ।

कपासी–सं०स्त्री०—एक प्रकार का झाड़ या छोटा वृक्ष।

कपिंद–सं०पु०—सिंह। उ०—राड़ीगारो रूक बागां लेले खळां तूछ रैळ। जोरावर दूझरैळ **कपिंद** गै जूह।—हुकमीचंद खिड़ियो

कपि–सं०पु० [सं०] १ बन्दर. २ हनुमान (नां.मा.) ३ सुग्रीव।

कपिकेत–सं०पु०यौ० [सं० कपिकेतु] अर्जुन जिसके रथ की ध्वजा पर हनुमानजी विराजते हैं। उ० सायर जळ **कपिकेत** सर, पंचाळी चय चीर। यांसूं मौजां आप री, बधती 'जहेळ' वीर।—बां.दा.

कपित्थ–सं०पु० [सं०] कैथे का वृक्ष (डि.को.)

कपिधाय–सं०पु०यौ०—अर्जुन (अ.मा.)

कपिधुज, कपिधुजा–सं०पु०यौ० [सं० कपिध्वज] १ अर्जुन (मि. 'कपिकेत', ह.नां.) २ अर्जुन के रथ की पताका।

कपिपत्त–सं०पु० [सं० कपि+पति] सुग्रीव (रा.रू.)

कपिरथ–सं०पु०यौ०—१ अर्जुन (मि. 'कपिकेत') २ श्रीराम।

कपिराय–सं०पु० [सं० कपि+राट्] १ सुग्रीव. २ हनुमान।

कपिळ–वि०—पीलापन लिए हुए मटमैला रंग का।
सं०पु०—१ पीलापन लिए हुए मटमैला रंग (डि.को.) २ अग्नि. ३ कुत्ता. ४ चूहा. ५ शिव, महादेव ६ वानर, कपि. ७ देखो 'कपळ' (१) (ह.नां.) ८ सफेद रंग की गाय. ९ दक्ष कन्या जो पुंडरीक नामक दिग्गज की पत्नी है. १० कामधेनु. ११ शिलाजीत।

कपिळा–सं०स्त्री० [सं० कपिला] १ सफेद रंग की गाय. २ पीलापन लिए हुए मटमैले रंग की गाय। उ०—देइस हाथ कउ मूंदड़उ, सोवनसिंगी नई **कपिळा** गाई।—बी.दे.

कपिळेसु, कपिळ्ळ—देखो 'कपळ' (१) (रू.भे.) (ह.र.)

कपी–सं०पु०—१ सूर्य, भानू (डि.को.) २ देखो 'कपि'।

कपीकेत—देखो 'कपिकेत' (ह.नां., पाठांतर)

¹**कपीमुखो**–वि०—जिसका मुख बंदर के समान हो। उ०—जोड़ाळ मिळइ जमदूत जांघ, काइरा **कपीमुखो** क्रोध। कुवरत्त केवि काळा किरिट्ट, गड़दनी गोळ गांजा गिरिट्ट।—रा.ज.सी.

कपीराज, कपीराय–सं०पु० [सं० कपि+राट्] १ हनुमान. २ सुग्रीव. ३ बालि. ४ सूर्य (रू.भे. 'कपिराय')

कपीळ–सं०पु०—बंदर। उ०—**कपीळा** हणू देवां दळां सिव सगत, नाग दळ सेस सिर भार न सहियो। गरब गाळण तणी ठोड़ अब गाळियो, कुळी खट तीस धिन 'पदम' कहियो।—ब्र.दा.

कपीळा–सं०स्त्री०—१ मध्यप्रदेश की एक नदी. २ देखो 'कपळा'।

कपीस, कपीस्वर–सं०पु० [सं० कपीश, कपीश्वर] वानरों का राजा यथा–सुग्रीव, अंगद, हनुमान आदि (डि.को.)

कपूत–वि० [सं० कुपुत्र] बुरा लड़का, दुराचारी पुत्र।
कहा०—कपूत बेटो खांद नै तो अरथ आवेला. २ कपूत पूत खांद नै कांम आवै—कपूत बेटा बाप की अरथी को कन्धा देने के काम में आता है; कपूत और किसी काम का नहीं होता। नालायक आदमी भी कभी न कभी कुछ न कुछ काम आता ही है. ३ कुळ में कपूत एक ही घणो—एक कपूत पुत्र अपने कार्यों से सारे कुल को कलंकित कर देता है।

कपूती–सं०स्त्री० [सं० कुपुत्र+रा०प्र०ई] कपूत का कार्य, दुष्टता, कपूत होने का भाव।

कपूर–सं०पु० [सं० कर्पूर] १ दालचीनी के जाति का पेड़ों से निकला हुआ एक सफेद रंग का जमा हुआ सुगंधित ठोस पदार्थ।
पर्याय०—करपूर, करपूरक।
कहा०—पेट पूर मांगै कपूर नी मांगै—पेट सबसे पहले रोटी चाहता है।
२ कपूर के रंग से मिलते-जुलते रंग का घोड़ा (शा.हो.)
३ लखपत पिंगल के अनुसार सोलह वर्णों का एक छंद विशेष जिसमें प्रथम एक गुरु फिर दो लघु और अंतिम वर्ण दीर्घ हो।
वि०—१ श्वेत* २ काला* (डि.को.)

कपूरियो–सं०पु० (बहु० 'कपूरिया') अंडकोश का मांस।

कपूरी–सं०पु०—१ एक प्रकार का सुगंधित कड़ुआ पान जिसे प्रायः मनुष्य खाया करते हैं। उ०—अरोगे अघाये किया आचमणं, **कपूरी** ग्रहे पांन बीड़ा क्रमणं।—नां.द. २ एक प्रकार के शुभ रंग का घोड़ा (शा.हो.)

कपेलो–सं०पु०—लाल मिट्टी (अमरत)

कपेस—देखो 'कपीस'।

कपोत–सं०पु० [सं०] १ कबूतर (डि.को.) २ पंडुकी. ३ चिड़िया पक्षी।
वि०—बेंगनी रंग का*।

कपोतवाय–सं०स्त्री०—घोड़े का एक रोग विशेष जिसके कारण घोड़े के नलों (मूत्र थैली) में सूजन आ जाता है (शा.हो.)

कपोळ–सं०पु० [सं० कपोल] गाल। उ०—१ **कपोळे** मिळै रूप ओपै अलक्कां। प्रभू पेखतां मेख भूलै पलक्कां।—रा.रू. २ हाथी की कनपटी, गंडस्थल।

कप्पड़, कप्पड़ो—देखो 'कपड़ो'। उ०—कप्पड़ जीण कमांण-गुण, भीजइ सब हथियार। इण रुति साहिब ना चलइ, चालइ तिके गिमार।
—ढो.मा.

कप्पणो–वि० [सं० कल्पनः] काटने वाला, नष्ट करने वाला। उ०—क्या वरि भोज करन पर दुक्ख कप्पणो, सासण साहण लाख पसाउ समप्पणो।—ल.पि.

कप्पणो—देखो 'कप्पणो' (रू.भे.)
कप्पणहार, हारो (हारी), कप्पणियो—वि०।
कप्पिओड़ो, कप्पियोड़ो, कप्योड़ो—भू०का०कृ०।

कप्पाट—देखो 'कपाट' (रू.भे.)

कप्पाळ—देखो 'कपाळ'। उ०—सत्त लोक उप्पर सिकैं धरसत्त धमक्कै। परि अट्ठो दिकपाळ के कप्पाळ कसक्कै।—वं.भा.

कप्पोळ—देखो 'कपोळ' (रू.भे.)

कफ—सं०पु० [सं०] १ वैद्यक के अनुसार शरीर में एक धातु जिसके रहने का स्थान आमाशय, हृदय, कंठ, सिर और संधियां है। यह एक दोष माना जाता है। उ०—आधिभूतक, आधिदेव, आध्यातम, पिंड प्रभवति कफ वात पित।—वेलि. २ खांसने पर मुंह में आने वाला बलगम।

कफणि, कफणी–सं०स्त्री० [सं० कफोणी] १ देखो 'कफोणी' (डिं.को., रू.भे.) २ देखो 'कफनी'।

कफत–वि० [अ० कफ्त] अयोग्य।

कफन–सं०पु० —शव पर ओढ़ाने का कपड़ा।

कफनी–सं०स्त्री० [फा०] बिना सिला हुआ साधुओं के पहनने का एक कपड़ा जिसके बीच में सिर जाने के लिये एक छेद रहता है।
उ०—कर कफनी कोपीन कर, कर करवा भर आब। अब मक्का जैबो उचित, नवणौ नहीं नबाब।—ला.रा.

कफळ–सं०स्त्री० [सं० कफल] सुपारी (अ.मा.)

कफोणी–सं०स्त्री० [सं० कफोणि] हाथ और बाहु के जोड़ की हड्डी, कुहनी। उ०—फटै मुंडन फांक ज्यों दारिम दरक्कै। कंध कफोणी कर कटै करकोच करक्कै।—वं.भा.

कबंज–सं०पु० [अ० कब्जा] देखो 'कब्जौ' (रू.भे.)

कबंध–सं०पु० [सं० कवंध] १ युद्ध में शिर कट जाने पर भी युद्ध करते रहने वाला धड़। कहा जाता है कि इस समय वक्ष-स्थल पर नये नेत्र खुल जाते हैं। उ०—बिना सिर सत्रुदळ काट न्हांखियौ सौ आंरै आंखियां सीस पर ही कै हियां में उघड़ी ही जरणै कबंध कही छै।—वी.स.टी. २ जल, पानी (ह.नां., अ.मा.) ३ एक दानव का नाम जो देवी का पुत्र था। इसका मुंह इसके पेट में था। कहते हैं कि इन्द्र ने इसको एक बार वज्र से मारा इससे इसके शिर और पैर पेट में घुस गये। इसे पूर्व जन्म का विश्वासु गंधर्व लिखा है। रामचंद्रजी से दण्डकारण्य में इसका युद्ध हुआ था। रामचंद्रजी ने इसको मार डाला।

कब–सं०पु० [सं० कवि] कवि, काव्यकार।
क्रि०वि०—किस समय।

कबज—देखो 'कब्जौ' । उ०—घूंघटड़ो हट सूं घणो, खोलंतां कर ल्यांत। केसरिये ली कबज में, भुवन मदन प्रिय भांत।—अज्ञात

कबजी–सं०स्त्री० [अ० कब्ज] मलावरोध, मल के रुकने का एक रोग।

कबजो–सं०पु० [अ० कब्जा] देखो 'कब्जौ'।

कबडाळो–सं०पु०—एक प्रकार का सर्प जिसके शरीर पर काले और सफेद धब्बे होते हैं. २ कौड़ियों से युक्त बना ऊंट का एक आभूषण.
वि०—चितकबरा।

कबडियो–सं०पु०—एक प्रकार का पक्षी विशेष।

कबडी–सं०स्त्री०—१ लड़कों का एक खेल विशेष जो दो दल बना कर खेला जाता है। कबड्डी। [सं० कपर्दिका] २ कौड़ी (रू.भे. 'कवडी') ३ छाती के नीचे बीचों-बीच की वह छोटी हड्डी जिस पर नीचे की दोनों पसलियां मिलती हैं।

कबडो–सं०पु० [सं० कपर्दिका] बड़ी कौड़ी।

कबर–सं०स्त्री० [अ० कब्र] वह चबूतरा या स्थान पर लगा पत्थर जिसके नीचे जमीन में कोई मुर्दा दफनाया गया हो (मुसल०)
उ०—के गोळां के गोळियां, के तरवारां वार। मरै पड़ै कबरां मही, बीबा मंसबदार।—बां.दा.

कबरसतान–सं०पु० [अ० कब्रिस्तान] वह स्थान जहां पर मुर्दे गाड़े जाते हों (मुसल०)

कबराजा–सं०पु० [सं० कविराज] १ कविराजा, कवीन्द्र (डिं.को.) २ वैद्यों की उपाधि. ३ चारणों की उपाधि।

कबरी–सं०स्त्री० [सं०] चोटी, वेणी (संवारी हुई) उ०—गिणका री जे नर ग्रहे, कबरी डंड करेण। खाग ग्रहे किमि दळण खळ, तेज विहीणा तेण।—बां.दा.

कबरी–सं०पु०—एक पक्षी विशेष।
वि०—चितकबरा।

कबल–सं०पु०—ग्रास, कौर (डिं.को)

कबलेजहांन–सं०पु० [अ० किबलेजिहान] विश्व में पूजनीय, विश्ववंद्य।
उ०—कबलेजिहांनिआं पातसाह सिलांमति राजांनकुमार खट भाखा निवास छै। चवदै विद्यां रौ जांणहार छै।—रा.सा.सं.

कबल्लो–सं०पु०—१ घोड़ा. २ सुअर (मि० 'कवळो')

कबांण–सं०पु०—१ लंबी टहनियों वाला एक क्षुप. २ धनुष।
उ०—बे बे कबांण भूथांण बंध, असमान छिबत रोसांण अंध।
—वि.सं.
३ पत्थरों या ईंटों के जोड़ की धनुषाकार गोल महराब।

कबांणी–सं०स्त्री०—१ बढ़ई के सियार नामक औजार को घुमाने का एक उपकरण, कमानी।

कबांणीकतियो–सं०पु०—बढ़ई का एक औजार।

कबांणीदार–वि०—धनुषाकार।

कबांणीदारछाजो–सं०पु०यौ०—मकान के दरवाजे के ऊपर लगाये जाने वाले वे पत्थर जो दीवार से कुछ बाहर निकले हुए होते हैं और जिनका आकार धनुषाकार होता है।

कबाड़–सं०पु०—चोगा। उ०—दीधा ताजी मात गयंद। कबाड़ पइहराइ नव लखी।—वी.दे.

कबाड़णौ, कबाड़बौ–क्रि०स० [सं० कपाटनम्] चतुराई व कौशल से कुछ प्राप्त करना।
कबाड़णहार, हारौ (हारी), कबाड़णियौ–वि०—चतुराई व कौशल से प्राप्त करने वाला।
कबाड़ौ—वि०।
कबाड़ियोड़ो, कबाड़ियोड़ौ, कबाड़चोड़ौ—भू०का०कृ०।

कबाड़ी–वि०—१ बेचने के उद्देश्य से जंगल में लकड़ी काटने वाला।

उ०—अगे अग्रवांणी बजै खग्ग वांणी, कबाड़ी सकट्टां कटे जांण कट्टां ।—रा.रू. २ बेकाम रद्दी वस्तुओं का व्यापारी. ३ होशियार, निपुण. ४ प्रपंची. ५ चतुराई व कौशल से कुछ प्राप्त करने वाला ।

कबाड़ो—सं०पु०—१ मकान या कृषि संबंधी काष्ठ की सामग्री. २ बेकार की रद्दी सामग्री. ३ होशियारी व धूर्तता का कार्य. ४ प्रपंच. ५ उपद्रव, गड़बड़ ।

कबाब—सं०पु०—सींखों पर भुना हुआ मांस । उ०—छळती हिक मूंगिण मराब छकै । भर धूंण पुलाब कबाब भखै ।—मे.म.

कबाबी—वि०—सींखों पर भून कर मांस बेचने या खाने वाला ।

कबाबौ—सं०पु०—देखो 'कबाब' । उ०—उभै दुंब आचरै एक करि कंब कबाबे, चंपै चंगुळ ग्रीव तजै दुर जीव सितावे ।—रा.रू.

कबाय—सं०पु०—प्राचीन काल का एक प्रकार का कपड़ा विशेष (मा.म.)

कबि—सं०पु० [सं० कवि] १ काव्यकार, कवि. २ ब्रह्मा (डिं.को.)

कबिका—सं०स्त्री० [सं०] लगाम । उ०—कबिका देत कुरंग गति छबिका छक छाया । रवि का मन रिझवाय कै पबिका जब पाया ।—वं.भा.

कबी—क्रि०वि०—कभी ।

सं०स्त्री० [सं०] १ लगाम । उ०—कबी लेह जे राचिया रेह कूदै, सजै डांण लंबा अगां मांण सूदै ।—वं.भा.

सं०पु०—२ कवि (रू.भे.)

कबीर—सं०पु०—एक प्रसिद्ध निर्गुणपंथी महात्मा जो जाति के जुलाहे माने जाते हैं ।

कबीरपंथ—सं०पु०—महात्मा कबीरदास द्वारा चलाया हुआ मत ।

कबीरपंथी—महात्मा कबीर के अनुयायी, कबीरपंथ को मानने वाला ।

कबीरी—सं०स्त्री०—उदरपूर्ति के लिये किया जाने वाला छोटा-मोटा कार्य, धंधा ।

कबीलौ—सं०पु०—१ कुल, वंश । उ०—कबीले रा आदमी चाळीस कांम आया ।—सूरे खींवे री बात. २ कुटुम्ब । उ०—म्हारे कबीले रा सारा जांणै छै । सगाई कर परणाया छै सु संसार जांणै छै ।

—पलक दरियाव री बात

३ रनिवास की स्त्रियां रानी के सहित (रू.भे. 'कवीलौ')

४ एक प्रकार का गूलर से मिलता-जुलता वृक्ष ।

कबुडी—क्रि०वि०—कभी ।

कबुव—सं०पु०—शुभ रंग का घोड़ा (शा.हो.)

कबू—क्रि०वि०—कब ।

कबूड़ो—सं०पु० [सं० कपोत] कबूतर (अल्पा.)

कबूठांण—सं०पु० [सं० कुंभिस्थान] हाथी को बांधने का स्थान ।

कबूतर—सं०पु० [फा०] (स्त्री० कबूतरी) १ एक प्रसिद्ध निरामिष पक्षी, कपोत.

पर्याय०—आंखांलाल, कलरव, डेकड़, परेवड़ो, पारावत, होलड़ ।

कहा०—कबूतर नै कूवौ ही दीसै—टेव पड़ जाने पर फिर मनुष्य वही काम करता है ।

२ कबूतर के रंग का घोड़ा ।

कबूतरखांनौ—सं०पु०—१ वह स्थान जहां कबूतर पाले जाते हों. २ अनाथआश्रम ।

कबूतरियाछींट—सं०स्त्री०—प्रायः स्त्रियों के लहंगा आदि बनाने के काम आने वाला एक प्रकार का कपड़ा विशेष ।

कबूल—वि० [अ० कुबूल] स्वीकार, अंगीकार, मंजूर । उ०—लुळ डाळी तर लोभ रै, भूलै रहिया भूल । देणौ दांन कबूल नहं, क्रपणां मरण कबूल ।—बां.दा.

कबूलणौ, कबूलबौ—क्रि०स०—स्वीकार करना, मंजूर करना, अंगीकार करना । उ०—पगे लगायौ मैं चाकरी कबूली ।

—कहुवाट सरवहिये री बात

कबूलणहार, हारौ (हारी), कबूलणियौ—वि०—स्वीकार करने वाला ।

कबूलिओड़ो, कबूलियोड़ो, कबूल्योड़ो—भू०का०कृ० ।

कबूलायत—सं०स्त्री०—कबूल करने की क्रिया, स्वीकृति । उ०—उठां छैलां री कबूलायत कर पाछौ हांसी रा पीरां री जारत करणे नूं आयौ ।

—सूरे खींवे री बात

कबूलियोड़ो—भू०का०कृ०—स्वीकार किया हुआ ।

(स्त्री० कबूलियोड़ी)

कबूली—सं०स्त्री० [अ० कबूल] १ स्वीकृति. २ चावलों के साथ नमकीन मसाले तथा आलू, रतालू, मांस आदि डाल कर बनाया जाने वाला खाद्य-पदार्थ विशेष ।

कबोल—सं०पु० [सं० कु+बोल] कुवाक्य, दुर्वचन ।

कब्बर—देखो 'कबर' (रू.भे.)

कब्जौ—सं०पु० [अ० कब्जा] १ अधिकार, स्वत्व, कब्जा ।

मुहा०—कब्जौ ऊठणौ—अधिकार चला जाना, अधिकार न रहना ।

क्रि०प्र०—करणौ, राखणौ, गमाणौ, जाणौ, लेणौ, होणौ ।

२ मेहराब. ३ स्त्रियों के पहनने का ब्लाउज. [अ०] ४ मूठ दस्ता ।

मुहा०—कब्जा माथै हाथ धरणौ—तलवार पकड़ना, दूसरे को तलवार न निकालने देना ।

५ किवाड़ या संदूक में जड़े जाने वाले लोहे या पीतल के दो चौखूंटे टुकड़े, पकड़ ।

कब्ब—देखो 'कव्य' । उ०—नमो सेस सांयत नमो हव कब्ब हुतासण ।

—ह.र.

कब्बरौ—वि०—चितकबरा ।

कमंडळ—सं०पु० [सं० कमंडलु] धातु, मिट्टी, तुमड़ी, दरियाई नारियल आदि का बना संन्यासियों का जल-पात्र ।

कमंध, कमंधज—सं०पु० [सं० कवंध] १ राठौड़ वंश के क्षत्रिय । (रू.भे. 'कमध्वज') उ०—जिण वंस मही सिध पाल जगा । चहुंआंण कमंधज आद सगा ।—पा.प्र.

२ एक राक्षस जिसको श्रीराम ने जीवित ही भूमि में गाड़ दिया था ।

कमंधज—१ देखो 'कबंध'। उ०—जुध जूंझ हुवो, धड़ सीस जुम्रो। हव पाल **कमंधज** रूप हुग्रो।—पा.प्र. २ राठौड़ वंश के क्षत्रिय।

कम—वि०—थोड़ा, न्यून, अल्प।

सर्व०—१ कौन. २ किस।

क्रि०वि०—कैसे। उ०—मुरडाळा दीसै मुरझांणा, हरियौ डाळ रह्यौ कम हेक।—रघुनाथ भादासींगोत रौ गीत

कमग्रसल—वि० [फा० कम+असल] वर्णसंकर, दोगला।

कमक—सं०पु०—आभूषण (ग्र.मा.)

कमकमौ—देखो 'कुमकुमौ' (रू.भे.)

उ०—**कमकमौ** गुलाब तै कै पांणी तळाउ भरयौ छै।—वेलि. टी.

कमख—सं०पु० [सं० कल्मष, प्रा० कम्मख] पाप (ग्र.मा.)

कमखरची, कमखरचीलौ—वि०—कम खर्च करने वाला, मितव्ययी।

कमखाब—सं०पु० [फा०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जिस पर बेल-बूटे हो।

कमचीरी—सं०स्त्री०—एक प्रकार का धारदार शस्त्र जो तलवार से कुछ मिलता-जुलता होता है।

कमजोर—वि० [फा० कमजोर] अशक्त, दुर्बल, निर्बल। उ०—जां दिनां खंडेले भूप ऊदौ **कमजोर**। कासली ठिकांणै राव दीपां कौ तोर।
—शि.वं.

कहा०—कमजोर गुस्सा ज्यादा, मार खांणे का इरादा—कमजोर को अधिक गुस्सा आता है और परिणामतः हानि उठाता है. २ कम-जोर गुस्सौ घणौ, कमजोर नै गुस्सौ भारी—कमजोर को बहुत क्रोध आता है। कमजोर बात-बात में क्रोध करता है. ३ कमजोर री जोरू सगळां री भाभी—कमजोर व्यक्ति की स्त्री से सब मजाक करते हैं क्योंकि उससे कोई नहीं डरता; कमजोर को सब सताते हैं।

कमजोरी—सं०स्त्री० [फा० कमजोरी] निर्बलता, अशक्ति।

कमज्या—सं०स्त्री० [सं० कर्मार्जन] १ कर्म। उ०—पाप पुन्न री पूर अनादी चलियौ आवै, **कमज्या** जेड़ी करे भली भूंडी भुगतावै।
—ऊ.का.

२ पूर्व जन्म कृत कार्य, प्रारब्ध। उ०—मूंछां सेडे मांय भरी चिपके भीनोड़ी, अगली कोई ऊघड़ी कठण **कमज्या** कीनोड़ी।—ऊ.का.

कमट्ठ, कमठ—सं०पु० [सं० कमठ] १ कच्छप, कछुआ (ह.नां.)

उ०—चहूं चक्क चळचळिय सेस चळचळिय सहस सिर। **कमठ** पीठ कळमळिय थहग दळमळिय सुचर थिर।—र.रू.

२ धनुष, कमान (मि० 'कमठौ') उ०—चढ़े सिंध के भावनग्री मुसल्ले, करां ले **कमट्ठे** बयं केक झुल्ले।—ला.रा. ३ एक दैत्य. ४ एक प्रकार का बाजा।

कमठांण, कमठांणौ—सं०पु० [सं० कुंभिस्थान] १ मकान आदि बनाने का बड़ा कार्य। उ०—प्रसारांण राजेस **कमठांण** कीधा अकळ, कोड़ जुग लगां नह जाय कळिया। पाळ जोय हेम रा गरभ गळिया पहल, टाळ जोय समंद रा गरभ टळिया।—जोगीदास कवारियौ २ हाथी बांधने का स्थान. ३ शरीर का ढांचा, शरीर की बनावट।

उ०—एह विचारी आतमा पर हाथ विकांणा, भांजै गाफल हेक मैं काया **कमठांणा**।—केसोदास गाडण

कमठाकंत-हरी—सं०पु०—विष्णु का कच्छपावतार। उ०—हित सूं **कमठाकंत-हरी**, सेवै पुळक सरीर। वदन छिपावण देह बिच, ते मांगै तदबीर।—बां दा.

कमठाधररूप—सं०पु०—विष्णु का कच्छपावतार (ह.र.)

कमठाळ—सं०पु०—१ हाथी. २ धनुषधारी, योद्धा, वीर।

उ०—**कमठाळ** हटाळ डळां कळता। वह लावैय पीठ वसै वळता।
३ भील। —पा.प्र.

कमठाळय—देखो 'कमठाळ'। उ०—दुल्हे परणेचित बोध दिया, **कमठा-ळय** आप जुहार किया।—पा.प्र.

कमठासुर—सं०पु० [सं० कमठ] कच्छप (जिसकी पीठ पर भूमि का स्थित होना माना जाता है)

कमठी—सं०पु० [सं० कमठ] १ कच्छप, कूरम। उ०—मचकै फुणाटां चैल लचकै **कमठी** मौर।—अज्ञात २ छोटा धनुष।

कमठेस—सं०पु०—विष्णु का कच्छपावतार।

कमठौ—सं०पु० [सं० कमठ] १ धनुष. २ मकान आदि बनाने का कार्य।

कमण—सर्व०—कौन। उ०—राखियौ निजपुर राय, सुरराय जेण सुहाय। जग **कमण** फेरै जाब, कळ अकळ सेर नवाब।—रा.रू.

२ किस। उ०—१ आई आवौ ज्यूं व्रन बाहर आवीजै, देवी साद समरियां दीजै। बळ तज **कमण** पुकारूं बीजै, काछराम मो ऊपर कीजै।
—पिरथीराज राठौड़

उ०—२ राठवड़ उरड़ दीसै ज जजर रूप रा, पांण केवांण धारै **कमण** ऊपरा।—अज्ञात

वि०—कितनी।

कमणीगर—सं०पु०—धनुष बनाने वाला।

कमणैत—देखो 'कमनैत'। उ०—छीदा छीदा आछा आछा **कमणैतां** रा हाथां सूं तीर सरणकै छै।—प्रतापसिंघ म्होकमसिंघ री वात

कमत—सं०स्त्री० [सं० कुमति] कुमति, दुर्बुद्धि।

कमतर—सं०पु०—१ धंधा, कार्य, पेशा, व्यवसाय। उ०—आग्रौ भाभी आघा आग्रौ, अठे **कमतर** हुवौ चावौ।—र. हमीर २ सामग्री।

कमतरी—सं०पु०—धंधा करने वाला, मजदूर, काम करने वाला।

उ०—धमक धमक घण बजै हथोड़ा, **कमतरियां** रा बाजा। काची नींद भिचक मत जाजे, ऐ सपनां रा राजा।—रेवतदांन

कमती—वि०—कम, अल्प। उ०—अबै आपां-नै कुण हीणा समझ सकै है ? अबै किणी सूं **कमती** को रैवां नीं।—वरसगांठ

कमदणी—सं०स्त्री० [सं० कुमुदिनी] रात्रि में खिलने वाला कमल, कमलिनी। उ०—पंथी एक संदेसड़इ, लग ढोलइ पैहचाइ। धण कंमळांणी **कमदणी**, मिसहर ऊगइ आइ।—ढो.मा.

कमद्धज, कमधज, कमधजियौ, कमधज्ज, कमधांणी, कमध्वंज—सं०पु०—राठौडवंशी क्षत्रिय। उ०—नरनाथ रमणि सनेम, परखंत **कमधज** प्रेम।—रा.रू.

कमन–वि० [सं०] १ विषयी, कामुक, कामी (डिं.को.) २ सुंदर, बढ़िया (ग्र.मा., ह.नां.)

सं०पु०—१ कामदेव (ग्र.मा., ह.नां.) २ ब्रह्मा (डिं.को.)

कमनसीब–वि० [फा०] हतभाग्य। उ०—ग्रौर आपरा नौकर ऐसा कुण कमनसीब छै जो ऐसी बात सुणनै पाछा रहै।

—पलक दरियाव री बात

कमनीय–वि० [सं०] सुंदर (ग्र.मा., ह.नां.)

कमनेत, कमनैत–वि० [फा० कमान+ऐत] तीर चलाने वाला, तीरंदाज, योद्धा। उ०—१ क्या ग्रच्छे कमनेत थे तीरां सिर तुट्टै, फिर उसदे तूनीर नैं सब तीरनि खुट्टै।—ला.रा. उ०—२ ढुंढारै दळ डाहिबे बळ ग्रप्प बनाया। बे बे तुग्गस बंधि के कमनेत कसाया।

—वं.भा.

कमबोलो–वि०—कम बोलने वाला, मितभाषी।

कमभिख्यण–सं०पु० [सं० कर्माभीक्ष्ण या कर्माभीरण] यम (ग्र.मा.)

कमर–सं०स्त्री० [फा०] १ पेट ग्रौर पीठ के नीचे पेडू तथा चूतड़ के ऊपर का भाग, देह का मध्य भाग, कटि।

मुहा०—१ कमर कसणी—प्रस्तुत होना, तैयार होना, दृढ़ निश्चय करना। २ कमर नै कस नै बांधणी—दृढ़ निश्चय करना।

३ कमर खोलणी—ग्रपने दृढ़ निश्चय को बदलना, हिम्मत हारना, ग्राराम करने लगना। ४ कमर झुकणी—वृद्ध हो जाना, थक जाना। ५ कमर टूटणी—उत्साहहीन होना, ग्रसहाय होना, भारी दुख पड़ना। ६ कमर ठोकणी—हिम्मत बाँधना। ७ कमर तोड़णी—सहारा छीन लेना, बहुत बड़ी विपत्ति में डालना। ८ कमर पकड़ नै ऊठणी—बहुत निर्बल होना। ९ कमर पकड़ नै बैठणी—विपत्ति-ग्रस्त होना, ग्रति दुखी होना। १० कमर बांधणी—काम के लिये तैयार होना। ११ कमर लचकणी—कमर का लचकना, नखरे करना। १२ कमर सीधी करणी—ग्राराम करना, कमर टेढ़ी कर या कमर झुका कर देर तक काम करने के बाद खड़ा होकर या बैठ कर कमर को ग्राराम देना।

कहा०—कमर रो मोल है तरवार रो मोल कोयनीं—तलवार का कोई मूल्य नहीं किन्तु मूल्य उस तलवार को बांधने वाले व्यक्ति का है। ग्रच्छी वस्तु भी कभी बुरे व्यक्ति के हाथ में पड़ कर बेकार हो जाती है। बेकार वस्तु के ग्रच्छे हाथों में पड़ने पर उसका मूल्य या उपयोगिता बढ़ जाती है।

कमरकोह–सं०पु०—ग्रफ्रीका का एक पर्वत जहाँ से नील नदी निकलती है (बां.दा. ख्यात)

कमरखोलाई–सं०स्त्री०यौ०—किसी हाकिम के द्वारा किसी गाँव में दौरा करते समय हाकिम के निजी खर्च के लिये जनता से वसूल किया जाने वाला एक प्रकार का प्राचीन कर विशेष।

कमरखाप–सं०स्त्री०यौ०—कमर तक ऊँची उठी हुई दीवार में लगाया जाने वाला चौड़ा पत्थर।

कमरदुकूळ–सं०पु०यौ० [सं० कमर+दुकूल] कटिबंधन, कमरबंद (डिं.को.)

कमरपटो, कमरपट्टो–सं०पु० [फा० कमर+सं० पेटिका] कमरबंध, कमरकस, पेटी।

कमरपेटी–सं०स्त्री०—कटि प्रदेश पर धारण करने का कवच।

कमरबंद—देखो 'कमरबंध' (रू.भे.)

कमरबंदो–सं०पु०—१ देखो 'कमरबंध'. २ सिर पर बाँधने का बड़े ग्ररज का साफा।

कमरबंध–सं०पु०—कटिबंधन, कमरकस, पेटी। उ०—केसरिया, बादळाई पारचो, कबळ, बागा, कपडो, कमरबंध पाग सब नूं बंधाई।—जलाल बूबना री बात

कमरबंधी–सं०स्त्री०—१ कटिबद्ध होने का भाव। उ०—फजर ताता भिडज झांफ खाथा फिरै, कंवर किण ऊपरै कमरबंधी करै।

—जवांनजी ग्राढ़ो

कमरबंधौ–सं०पु०—१ देखो 'कमरबंध' (रू.भे.)· २ सिर पर बाँधने का बड़े ग्ररज का साफा।

कमरांसखोका–वि०—कटिबद्ध, तैयार।

कमरी–सं०पु०—१ वात रोग. २ ऊँट को होने वाला एक प्रकार का वात रोग जिससे ऊंट बड़ी कठिनता से उठता-बैठता है. ३ इस रोग से पीड़ित ऊँट।

सं०स्त्री० [फा०] ४ एक प्रकार की कुरती. ५ ग्रंगरखी।

कमरो–सं०पु० [लैटिन–कैमेरा] हवादार बैठक की कोठरी, कोठरी।

कमळ–सं०पु० [सं० कमल] १ जल का एक सुंदर फूल वाला पौधा तथा उसका फूल।

पर्याय०—ग्रंबज, ग्रंबुज, ग्ररविंद, इंदीवर, उतपळ, कंज, कंवळ, कुवळय, कुसेसय, कोकनद, खरदंड, जळज, जळजनम, जळरुह, जळरूह, तांमरस, नळणी, नाळीन, नीरज, पंकज, पंकेरूह, पदम, पुंडरीक, पोयण, पोहकर, महोतपळ, राजीव, वारज, विसप्रसून, सतपत्र, सरसीरुह, सरोज, सारंग, सुधारस।

मुहा०—कमळ खिलणौ—प्रसन्न होना।

२ कमल के ग्राकार का पेट के दाहिनी ग्रोर होने वाला एक मांस-पिंड. ३ ब्रह्मा. ४ शिव. ५ मस्तक (ह.नां.) उ०—कमळ ग्ररियां तणा घणा झटकां कटै। उजबकां दिसी जसवंतसी ऊलटै।

—हा.झा.

६ जल (ह.नां.) ७ ग्राकाश. ८ एक प्रकार का मृग. ९ राजस्थानी में योग ग्रौर तंत्र के माने जाने वाले चक्र को कमल कहते हैं। ये संख्या में ग्राठ होते हैं यद्यपि हिंदी-संस्कृत में ये छः माने जाते हैं। राजस्थानी में माने जाने वाले ग्राठ कमल निम्नलिखित हैं—ग्रनाहत, ग्राग्याचक्र, ब्रह्मरंध्र, भंवरगुफा, मणिपुर, मूळाधार, विसुद्ध, स्वाधीष्ठांन. १० डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसके प्रथम चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। तत्पश्चात् दो चरण प्रत्येक १४ मात्राग्रों का होता है। ग्रंतिम चतुर्थ चरण में दस मात्रायें होती

हैं. ११ छप्पय छंद का २१ वां भेद जिसमें ४२ गुरु ६८ लघु सहित ११० वर्ण या १५२ मात्राएं होती हैं (र.ज.प्र.) १२ प्रत्येक चरण में सत्रह मात्राओं का एक छंद विशेष (ल.पि.) १३ डिंगल के वेलिया सांणोर छंद का भेद विशेष जिसके प्रथम द्वाले में २४ लघु २० गुरु कुल ६४ मात्रायें होती हैं। इसी क्रम से दूसरे द्वालों में २४ लघु १९ गुरु कुल ६२ मात्रायें होती हैं (पिं.प्र.) १४ मछली (अनेकार्थी) १५ चंद्रमा (अनेकार्थी) १६ शंख (अनेकार्थी) १७ मोती. १८ समुद्र (ना.डि.को.) १६ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.) सं०स्त्री०—२० पृथ्वी (मि० 'कमळि')

वि०पु० (स्त्री० कमळा) श्वेत॰ (डि.को.) २ रक्त वर्ण, लाल॰ ३ कोमल (डि.को.)

कमळकोसरौ–वि०—पीत, पीला॰ (डि.को.)

कमळगट्टौ–सं०पु०—कमल के बीज, कमलगट्टा (अमरत)

कमळज–सं०पु०—ब्रह्मा (ह.नां.)

कमळजूण, कमळजोण, कमळोजणी, कमळजोनी—देखो 'कमलयोनि'।

कमळणी–सं०स्त्री० [सं० कमलिनी] १ कमल का फूल. २ छोटा कमल। उ०—जिम मधुकर नइ कमळणी, गंगासागर वेळ। लुबधा ढोलउ-मारवी, कांम-कतूहळ केळ।—ढो.मा.

कमळतनभौतू–सं०पु०यौ० [सं० कमल+तन] १ चन्द्रमा (डि.को.)

कमळदळ–सं०पु०—देखो 'कमल' (१०) उ०—काया मांही कमळदळ, तहां बसै भगवंत। जन हरिदास खेलै तहां, कोइ-कोइ विरळा संत।
—ह.पु.वा.

कमळनयण, कमळनियण–सं०पु०यौ० [सं० कमलनयन] १ जिसके कमल के समान आंखें हों. २ विष्णु (ह.नां.)

कमळपूजा–सं०स्त्री०—देवी को प्रसन्न करने के निमित्त अपना स्वयं का सिर काट कर अर्पण करने की क्रिया। उ०—म्हारा बाप रौ बैर वळै गैचंद हाथ आवै तौ हूं कमळपूजा करनै स्री सचियायजी नूं माथौ चढ़ाऊं।—नैणसी

(रू.भे. 'कंवळपूजा')

कमळभव, कमळभू–सं०पु०—ब्रह्मा। उ०—१ क्रतध्वंसी विस्णूं कमळभव जिस्णू स्तुति करै।—मे.म. उ०—२ "कमळनयण कमळाकर कमळा प्रांणेस कमळकर केसौ। तन कमळ भातेसं जे मुख चार कमळा कमळभू जंपै।—र.ज.प्र.

कमळयोनि–सं०पु०यौ० [सं०] ब्रह्मा। उ०—दोऊ दयत महादुख दीनो, कमळयोनि तब सुमरन कीन्हौं।—मे.म.

कमळरंग–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

कमळविकास, कमळविकासण–सं०पु०यौ०—सूर्य जो कमल को विकसित करता है (ह.नां., क.कु.बो.)

कमळसनाळ–सं०स्त्री०यौ०—कमल की डंडी।

कमळसुतन–सं०पु० [सं० कमल+सुत] ब्रह्मा (डि.को.)

कमळसुरंग–सं०पु०—रंग विशेष का घोड़ा। (शा.हो.)

कमळा–सं०स्त्री० [सं० कमला] १ लक्ष्मी. (अ.मा.) २ देवी, शक्ति. उ०—काळीका जग क्रतौ कंसरूका कौमारी। कमळा बाळा कळा पळा प्रमहंस पियारी।—मालौ आसियौ. ३ धन-संपत्ति, ऐश्वर्य. ४ महामाया. ५ एक वर्णिक वृत्त. ६ एक नदी का नाम. ७ अंत गुरु की चार मात्रा का नाम ।।ऽ (डि.को.) ८ वधू के छिबकी आने पर औरतों द्वारा बधावे के स्वरूप गाये जाने वाले गीत (पुष्करणा ब्रा.)

कमळाएकादशी–सं०स्त्री०यौ०—चैत्र शुक्ला एकादशी।

कमळाकंत–सं०पु०यौ० [सं०] १ श्रीकृष्ण. (अ.मा.) २ विष्ण ३ राजा

कमळाकर–सं०पु०—१ विष्णु। उ०—कमळनयण कमळाकर कमळा प्रांणेस कमळाकर केसौ—र.ज.प्र. २ छप्पय छंद का ४६ वां भेद जिसमें २५ गुरु और १०२ लघु से १२७ वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं।

कमळाणौ, कमळाबौ–क्रि०अ०—कुम्हलाना, मुरझाना।

कमळाणहार, हारौ (हारी), कमळाणियौ–वि०—कुम्हलाने या मुरझाने वाला।

कमळायोड़ौ—भू०का०कृ०।

कमळीजणौ—भाव वा०।

कमळापत, कमळापति–सं०पु०यौ० [सं० कमला+पति] १ विष्णु. २ श्रीकृष्ण।

कमळावणौ, कमळावबौ—देखो 'कमळाणौ' (रू.भे.)

कमळासण, कमळासन–सं०पु०यौ० [सं० कमलासन] ब्रह्मा (डि.को.)

कमळि–सं०स्त्री०—१ कमल. २ पृथ्वी। उ०—पीथल हूरौ अभंग मोटै पह, छळ पह परियां तणै छळि। पग देसी 'मधकरौ' पयंपै, कमळां पाळटियै कमळि।—अज्ञात

कमळि-चख–सं०पु०यौ० [सं० कमल+चक्षु] १ जिसके नेत्र कमल के समान हों. २ विष्णु (पिं.प्र.)

कमळिणी, कमळिनी–सं०स्त्री०—१ कमल. २ छोटा कमल।

(मि० 'कमळणी'—रू.भे.)

कमळियौ–सं०पु० [सं० कामला] रक्त की कमी के कारण होने वाला एक रोग विशेष, कामला।

कमळीक–सं०पु०—नागों के नौ वंशों में से एक वंश या इस वंश का नाग (गजमोख)

कमळीजणौ, कमळीजबौ–क्रि० भाव वा०—कुम्हला जाना।

कमळौ–वि० [सं० कोमल] १ कोमल, मुलायम. २ देखो 'कंवळौ'।

कमसल–वि०यौ० [कम+असल] वर्णसंकर, दोगला।

कमसीस–सं०पु० [सीस+कम] शिरस्त्राण, शिर का कवच।

उ०—कोटां कूटां अर कमसीसां, जुड़ै न 'चांदौ' जगीसां। जे जुड़सी चांदौ जगीसां, कोट न कूट न कमसीसां।
—चांदा मेड़तिया रौ गीत

कमहल–सं०पु०—बादल (अ.मा.)

कमांण–सं०पु० [फा० कमान] १ धनुष, कमान। उ०—वहिलउ आए

बल्लहा, नागर चतुर सुजांण। तुझ विण धण विलखी फिरइ, गुण बिन लाल **कमांण**।—ढो.मा. २ कमाई। उ०—बांका धीरज धरण सूं, व्है नहिं कुंजर हांण। की घर घर भटका करै, कूकर अधिक **कमांण**। —बां.दा.

३ मेहराब. [अं० कमाण्ड] ४ आज्ञा, आदेश. ५ फौजी नौकरी।

कमांणी–सं०स्त्री०—राजस्थान की एक प्राचीन जाति (कां.दे.प्र)

कमान—देखो 'कमांण' (रू.भे.) उ०—दिली को नांम सुण **कमान** कूं खांचै, मोरे फुरमांण हासी तें वाचै।—रा.रू.

कमांमी–सं०पु० [अं० कमांडर] फौज का अफसर। उ०—फरासीस कोम को फिरंगी एक नांमी, जंगी हज्जार बीस फोज को **कमांमी**। —शि.वं.

कमा–सं०स्त्री०—करमसोत नामक राठौड़ों की शाखा।

कमाई–सं०स्त्री०—१ कमाने का कार्य, व्यवसाय. २ कमाया हुआ धन। उ०—करै **कमाई** कोय, दीपक ज्यूं सांमी दियै। जीमण सीरा जोय, मुलमुल पैरण मोतिया।—रायसिंह सांदू

वि०—उपार्जित। उ०—कठण रीत रजपूत कुळ, खाग **कमाई** खाय। और कमाई आदरै, गोलौ झगड़ै गाय।—बां.दा.

कमाऊ–वि०—कमाई करने वाला, उपार्जन करने वाला।

कहा०—१ कमाऊ पूत आवै डरतौ, अणकमाऊ आवै लड़तौ—कमाऊ बेटा डरता-डरता घर में आता है और न कमाने वाला लड़ता-लड़ता आता है। कमाऊ को घर की चिंता बनी रहती है कि कहीं पीछे से कुछ अनिष्ट न हो गया हो और अणकमाऊ को कलह से ही मतलब होता है। २ घणा खाऊ नै कम कमाऊ री नहीं बावड़ै—अधिक व्यय करने वाले व कम कमाने वाले मनुष्य को कष्ट उठाना पड़ता है।

कमागर–सं०स्त्री०—एक जाति विशेष जो शस्त्र बनाने का काम करती है।

कहा०—काकर कूट **कमागरां**, तसकर बेजारांह। ऊंट लदण कवेसरां, तोटौ छै घरांह—पत्थर का कार्य करने वाला, शस्त्र बनाने वाला, चोर, बुनकर, ऊंट पर लकड़ी बेचने या ऊंट को किराये फेरने वाला और कवि ये छः सदा निर्धन ही रहते हैं।

कमाड़–सं०पु० [सं० कपाट] १ कपाट (डिं.को.) २ रक्षक।

कमाणौ, कमाबौ–क्रि०स०—१ उपार्जन करना, रुपया कमाना।

कहा०—आप कमाया कांमड़ा किणनै दीजै दोस—अपने किये गये कार्यों के प्रति दूसरों को दोष देना व्यर्थ है। २ कमावै तौ वर नहीं तौ आधड़ौ मर—कमाता है तो पति है, नहीं तो दूर जाकर मर। स्त्री को कमाऊ पति ही अच्छा लगता है। ३ कमावै तौ वर, नहीं जणै माटी रौ ही ढळ—कमाता है तो पति है, नहीं तो मिट्टी का ढेला है। ४ कमावै धोती आळा खा ज्याय टोपी आळा—कमाते हैं धोती वाले, खा जाते हैं टोपी वाले। हिन्दुस्तानी कमाते हैं और उनका रुपया अंगरेज ले जाते हैं. २ सुधारना, काम लायक बनाना।

कहा०—गम्योड़ी खेती नै कमायोड़ी चाकरी बराबर—बिगड़ी हुई खेती और सुधरी हुई नौकरी दोनों बराबर हैं। नौकरी कितनी ही अच्छी तरह क्यों न की जाय लाभकारिणी नहीं होती।

३ कम कराना, घटाना। ४ मांस पकाने के लिये साफ-सुथरा करना। ५ सुधारना या काम के योग्य बनाना (चमड़ा)

कमाणहार, हारौ (हारी), कमाणियौ–वि०—कमाने वाला।

कमायोड़ौ—भू०का०कृ०।

कमावणौ, कमावबौ—रू०भे०।

कमायचौ–सं०पु०—एक प्रकार का वाद्य विशेष।

कमायौ—देखो 'कमाई' (रू.भे.) उ०—औ धंधौ थे छोडौ भंवरजी और करांला कमायौ।—लो.गी.

कमायोड़ौ–भू०का०कृ०—उपार्जित, कमाया हुआ। (स्त्री० कमायोड़ी) उ०—आयुस रौ किंही भरोसौ नहीं तौसूं **कमायोड़ौ** क्यूं गमावौ। —डाढ़ाळा सूर री वात

कमाळ–सं०पु० [अ०] १ परिपूर्णता, पूरापन, पर्याप्तता. २ निपुणता, कुशलता. ३ अद्भुत कर्म. ४ कारीगरी।

वि० – अद्भुत।

कमालालया–सं०पु०—विष्णु।

कमाळी–सं०पु०—१ मुसलमान, मुगल व्यक्ति. २ शिव, महादेव (डिं.को.) उ०—जुटै जद्दुरांण उभै अप्रमांण, हुई वीरहक्कं **कमाळी** किलक्कं। —रा.रू.

३ भैरव. ४ ठीकरा लेकर भीख मांगने वाला. ५ द्वार के ऊपर का काठ।

कमावणौ–वि० (स्त्री० कमावणी) कमाने वाला।

कमावणौ, कमावबौ—देखो 'कमाणौ' (रू.भे.) उ०—समझाऊं सौ बार, समज री घाटौ मांई। जगत **कमावण** जाय, मुरड़ बैठौ घर मांई।—ऊ.का.

कमी–सं०स्त्री० [फा० कम] १ न्यूनता. २ हानि, घाटा।

कमीज–सं०पु० [फा० कमीज] एक प्रकार का कुर्ता जो प्रायः लंबी बाहों का होता है।

कमीण–सं०पु०—१ कुछ जातियां विशेष अथवा इन जातियों के व्यक्ति जो कुछ विशेष संस्कारों जैसे विवाह, जन्म, मरण इत्यादि पर नेग के अधिकारी होते हैं और उसके बदले हमेशा नेग देने वाले व्यक्ति को अपनी सेवायें प्रदान करते हैं। (यौ० कमीण-कारू)

वि०—१ नीच, क्षुद्र. २ तुच्छ बुद्धि वाला।

कमीहण—देखो 'कमीण' (रू.भे.)

कमुद–सं०पु० [सं० कुमुदिनी] चंद्रमा को देख कर खिलने वाला कमल, कमोद। उ०—**कमुद**-जन बिकस सकुचै कमळ कंस कुंभ, भावका चकोरां नयण भायौ।—बां.दा.

कमेड़ी–सं०स्त्री०—१ पंडुक जाति की एक चिड़िया जो सफेद कबूतर और पंडुक से उत्पन्न होती है। फाखता. २ पशुओं के सींग का एक रोग विशेष।

कमेड़ो–सं०पु०—१ एक प्रकार का पौधा विशेष जिसके सफेद फूल आते हैं और जिसे ऊंट बड़े चाव से खाता है. २ नर पंडुक पक्षी. ३ चक्कर आना।

कमेत–सं०पु०—कमेत रंग का घोड़ा (शुभ)

कमेतधारी–सं०स्त्री०—एक प्रकार की तलवार।

कमेतविलंग–सं०पु०यौ०—एक प्रकार का शुभ रंग का घोड़ा (शा.हो.)

कमेतसोनहरी–सं०पु०—एक प्रकार का शुभ रंग का घोड़ा (शा.हो.)

कमेतीय–सं०पु०—लाल रंग का घोड़ा।

कमेर–सं०पु० [सं० कुबेर] कुबेर। (ह नां.)

कमैत–देखो 'कमेत' (रू.भे.)

कमैरो–सं०पु०—किसान के कृषि संबंधी कार्य करने वाला मजदूर या नौकर (क्षेत्रीय)

कमोद—१ देखो 'कुमुद'। उ०—तिण सहर री पाखती सलिता सरोवर कमोद जळ कमळ संजुगत विराजमांन दीसै छै।—वचनिका

सं०पु०—२ एक रंग विशेष का घोड़ा. ३ तेरहवीं बार उलट कर बनाया गया एक प्रकार का शराब (रा.सा.सं.) ४ एक प्रकार का बढ़िया चावल। उ०—तथा उपरांयत सीरोपुड़ी वर्ण छै। सोहिते सारु देवजी भी जोयजै छै। विरंजै सारु चोखा मंगायज छै। पुलाव सारु कमोद वीणीजै छै।—रा.स.सं.

कमोदण—देखो 'कमुद' (रू.भे.)

कमोदणहितू–सं०पु० [सं० कुमुदिनी+हितू] चंद्रमा (डिं.को.)

कमोदणि, कमोदणी, कमोदनी—१ देखो 'कमुद' (रू.भे.) २ चांदनी।

कमोदी–सं०पु० [सं० कुमुदिन्] चंद्रमा, चांद (ना.डिं.को.)

कम्मर–सं०स्त्री० [अ० कमर] कटि, कमर। उ०– इसी वह तेग सदा अगजीत, सजे नर कम्मर पेम सजीत।—पे.रू.

कम्मरसूत–सं०पु० [अ० कमर+सं० सूत्र] करधनी (डिं.को.) (मि० 'कणदोरौ')

कम्मल—देखो 'कमळ' (रू.भे., ह.नां.)

कम्मांण—देखो 'कमांण' (रू.भे.)

कम्मेड़ी–सं०स्त्री०—देखो 'कमेड़ी' (रू.भे., डिं.को)

कम्युनिजम–सं०पु०—एक सिद्धान्त जिसके अनुसार किसी संपत्ति आदि पर समष्टि का अधिकार हो, साम्यवाद।

कम्युनिस्ट–सं०पु०—किसी संपत्ति आदि पर समष्टि के अधिकार होने के सिद्धान्त का अनुयायी, साम्यवादी।

कय–सं०स्त्री०—कनपटी।

कयकांण–सं०पु०—घोड़ा, अश्व। मुड़े.बिसनेस तजे भड मांण, कमंध जहांक गयौ कयकांण।—पे.रू.

कयर–सं०पु० [सं० करील] करील का वृक्ष। उ०—जिण भुइ पन्नग पीयणा, कयर कंटाळा रूंख। ओके फोगे छांहड़ी, हूंछां भांजइ भूख।—ढो.मा.

कयळास—देखो 'कैळास' (रू.भे.)

कयळी–सं०स्त्री [अ० काहिली] शराब पीने के पश्चात् उत्पन्न थकान, सुस्ती।

कयां–क्रि०वि०—क्यों, कैसे।

कयांहीक–वि० [सं० कीदृश] १ कैसा. २ कितने। उ०—जद खीजी बोलिया—कयांहीक दिनां फळ भुगतियौ। विण तौ प्रतापसिंघजी कह्यौ।—बां.दा. ख्यात

कयागरौ–वि०—आज्ञाकारी।

कयामत–सं०स्त्री० [अ०] १ मुसलमानों, ईसाइयों और यहूदियों के मत के अनुसार सृष्टि का वह अंतिम दिन जब सब मुर्दे उठ कर खड़े होंगे और ईश्वर के सामने उनके कर्मों का लेखा रखा जायगा. २ प्रलय. ३ हलचल, खलबली।

कयास–सं०पु० [अ०] १ अनुमान. २ सोचविचार. ३ ध्यान। उ०—करवाळ ढाल दिस कर कयास, ओळंदे है नहिं अनायास। —ऊ.का.

कयाहिक–क्रि०वि०–कभी।

कयूंयेक–वि०—कुछ (अमरत)

कयौ–सर्व०—कौनसा।

करंक–सं०पु०—अस्थिपंजर। उ०– दादू हंस मोती चुगै, मानसरोवर न्हाय। फिर-फिर बैसे बापड़ा, काग करंकां आय।—दादूदयाळ

करंकउ–सं०पु० [अनु०] पशु के बोलने का शब्द या ध्वनि। उ०—सजि कसणा करि लाज ग्रहि, चढ़ियउ साल्हकुमार। करह करंकउ स्रवण सुणि, निद्रा जागी नार।—ढो.मा.

करंकडइ, करंकड़ौ–सं०पु०—१ अस्थिपंजर। उ०—ढोला मिळिसि म वीसरिसि, नवि आविसि नालेसि। मारू-तणइ करंकडइ, वाइस ऊडावेसि।—ढो.मा. २ रीढ़ की हड्डी।

करंगळ–सं०पु०—कवच (मि० 'कग्गळ')

करंड–सं०पु० [सं०] १ बांस की पिटारी (छबड़ा)। उ०—कंत न छेड़ ठाकुरां, काळो जांगा करंड। डग भोगी रा जहर थी, दूजो की जमदंड। —वी.स.

(अल्पा० 'करंडियौ') २ लकड़ी की पिटारी जिसमें देवी की मूर्ति रक्खी जाती है। उ०—कनवज हुना करंड लाग हट 'पेथड़' लायौ। थप नागांणै थांन पाट पत इय वर पायौ।—पा प्र.

करंडव–सं०पु० [सं० कारंडव] हंस या बतख की जाति का एक पक्षी। उ०– प्रगटयौ वरस पंचोतरौ, मांवग सघण मराय। माह करंडव पंखि पर, दुमुखि रहे चख लाय।—रा.रू.

करंडियौ–सं०पु० [अल्पा०] १ देखो 'करंड'. २ मिठाई या फल आदि रखने की बांस या घास की बनी पिटारी।

करंडौ—देखो 'करंड' (रू.भे.)

करंद्रराज–सं०पु०यौ [सं० करि+इंद्र+राज] १ एरावत. २ हाथी, गजराज। उ०—दियै घूमै मचोळा मातंगां व्रंद व्रंद दोळा, वहंतां करंद्रराज दोळा भ्रंग व्रंद।—बां.दा.

करंबित–सं०पु० [सं० निकुरुम्बित] फूलों का ढेर, फूलों का गुच्छा। उ०—कबरी किरि गुंथित कुसुम करंबित, जमुरा फेरा पावन्न जग। —वेलि.

कर–सं०पु० [सं०] १ हाथ. (अनेकार्थी). [सं० करी] २ हाथी. (डि.को.) [सं०] ३ हाथी की सूंड. (डि.को.) ४ झरना. (डि.को.) ५ किरण (अ.मा.ह.नां.) ६ कर, महसूल, लगान। उ०—दीजै तिहां डंक न दंड न दीजै, ग्रहरिण म वरि तरु गांनगर। करग्राही परवरिया मधुकर, कुसुम गंध मकरंद कर।—वेलि. ७ विषयवासना (अनेकार्थी) ८ रहंट का लकड़ी का मोटा उपकरण जो चक्र के मध्य चक्र के ऊपरी हिस्से को रोकने में सहायक होता है।

अव्यय०—से। उ०—जब निजांममूळ नें हंसार की तरफ से बहुत सा लस्कर अेकठा किया अरु वडा किला कूं जोर दिया जिस कर सामांन बंधा हूवा।—द.दा.

करकंधू–सं०पु० [सं० ककंधु या कर्कंधू] बदरी वृक्ष या उसका फल। उ०—रघुवर भीली कर रे, बिलकुल सीताबर रे। रुचि करकंधू फळ रे, जमि हसि पीधौ जळ रे।—र.ज.प्र.

करक–सं०पु० [सं०] १ कमंडलु, करवा. २ दाड़िम, अनार. ३ मौलसिरी. ४ कचनार. ५ नारियल की खोपड़ी. ६ करील का वृक्ष. ७ पृथ्वी के विषुवत्‌रेखा के उत्तर या दक्षिण में २३½ अक्षांश पर निकलने वाली कल्पित रेखायें (भूगोल). ८ बारह राशियों के अंतर्गत एक राशि. ९ एक लग्न. १० दर्पण. ११ अग्नि. १२ केंकड़ा. [सं०] १३ वृष्टि के हिमपाषाण, ओला (नां.मा., डि.को.) १४ शक्ति, बल। उ०—कंथा करक न छोडिये, हिरण किसा घी खाय। आक बटूकै पवन भखै, घोड़ां आगळ जाय।—अज्ञात

[सं० सर्क] १५ श्वेत रंग का घोड़ा (डि.को.) १६ खेत. १७ रह रह कर उठने वाली पीड़ा, चीस, दर्द. १८ खटक, खटकन [सं० करंक] १९ सूखी हड्डी। उ०—कुत्ते दीठी करक जरख दिस खर रुख खांची। ढोल पड्यौ ढोर कागलां दीठी कांची।—ऊ.का.

करकड़ौ–सं०पु०—१ रीढ़ की हड्डी. २ अस्थिपंजर। उ०—ढोला मिळीस ना वीसरै, मनां आवी सनेस, मारूतणै करकड़ौ, बाइस उडावेस।—ढो.मा.

करकट–सं०पु० [सं० कर्कट] १ केंकड़ा, गिरगिट (डि.को.) २ कर्कराशि. ३ एक प्रकार का सारस. ४ लौकी, घीया. ५ कमल की मोटी जड़. ६ कूड़ा-करकट. ७ घास-फूस।

करकटणौ, करकटबौ–क्रि०अ०—कटना, मरना। उ०—घड़ी बिच्यारि घणउं दळ थोम्यउं, वीर वावरइ लोह। तुरक बचा मूंगळ करकटिया, ऊपरि पड्या समोह।—कां.दे.प्र.

करकटजोग, करकटयोग–सं०पु०—फलित ज्योतिष के अंतर्गत एक योग जिसमें षष्ठी शनिवार को, सप्तमी शुक्रवार को, अष्टमी गुरुवार को, नवमी बुधवार को, दशमी मंगलवार को, एकादशी सोमवार को और द्वादशी रविवार को हो।

करकटिका, करकटी–सं०स्त्री०—ककड़ी (डि.को.)

करकणौ, करकबौ–क्रि०अ०—१ कराहना, दर्द से चिल्लाना. २ फटना। उ०—वैदां मरम न जांणां री म्हारो हिवड़ो करकां जाय। मीरां व्याकुळ बिरहणी री, प्रभु दरसण दीज्यो आय।—मीरां

३ कसकना, दर्द करना। उ०—पेंच मुदपाड़ पर 'बादरौ' पिलाड़ी, कबर रै लीलाड़ी मांय करकै। हार गा बियां सुं हिलै न हिलाड़ी, सिलाड़ी तो विना नहीं सिरकै।—ऊ.का.

करकणहार, हारौ (हारी), करकणियौ—वि०।

करकाणौ, करकाबौ—स०रू०।

करकिओड़ौ, करकियोड़ौ, करक्योड़ौ—भू०का०कृ०।

करकर–सं०स्त्री० [सं० कर्कर] १ समुद्री नमक. २ हड्डी (डि.को.) ३ कंकर सहित महीन धूलि। उ०—कच्छीयौ करकर रच्छी रुळि जावै। तडफै मच्छी तळ पच्छी पुळ जावै।—ऊ.का.

४ करीर का वृक्ष (डि.को.)

करकस–वि० [सं० कर्कश] १ कठोर, कड़ा (डि.को.) २ क्रूर, तेज।

करकाळ–सं०पु०—सर्प, सांप।

करका—सफेद, श्वेत (डि.को.)

करकारू–सं०पु०—कुम्हड़ा (डि.को.)

करकियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ कराहा हुआ. २ फटा हुआ. ३ दर्द किया हुआ, कसक किया हुआ।

(स्त्री० करकियोड़ी)

करकोच–सं०पु० [सं० कर+कवच] हाथ का कवच, दस्ताना। उ०—फट्टै मुंडन फांक ज्यों दारिम दरक्कै। कंध कफोणी कर कटै करकोच करक्कै।—वं.भा.

करक्कणौ—देखो 'करकणौ' (रू.भे.) उ०—कंध कफोणी कर कटै, करकोच करक्कै।—वं.भा.

करख–सं०पु० [सं० कर्ष] १ खिचाव. २ हठ. ३ क्रोध. ४ एक तौल. ५ दुःख (डि.को.)

करखणौ—देखो 'करसणौ' (रू.भे.)

करखधज–सं०पु०—दीपक (नां.मा)

करखिणौ–क्रि०स० [सं० कर्ष] खींचना। उ०—करखि प्रांण केवियां दसा अमरखि दुरवंछां। सुरिख बांण सासत्र जांण सुरं तारिख यंछां।—रा.रू.

करखिणहार, हारौ (हारी), करखिणियौ—वि०।

करखिओड़ौ, करखियोड़ौ, करख्योड़ौ—भू०का०कृ०।

करग–सं०पु०—१ हाथ, कर (ह.नां., अ.मा.) उ०—कांमणि करग सु बांण कांम रा, दो सु वकणा तण किरि डोर।—वेलि. २ महसूल, कर. ३ कटारी. ४ तलवार।

करगसा–सं०स्त्री० [सं० कर्कशा] झगड़ालू, कलह-प्रिय।

कहा०—मरदां नै बोया जरदै, बळदां बोदी चार। घर नै बोयौ करगसा नै बरसप्रसवणी नार—मर्दों को तंबाकू ने डुबोया तथा घर

को कलहप्रिय या प्रति वर्ष प्रसव करने वाली स्त्री ने डुबोया। कलहप्रिय स्त्री या प्रति वर्ष प्रसव करने वाली स्त्री घर का नाश कर देती है।

करगि, करग्गा—देखो 'कर' (१)। उ०—१ गहड़ घड़-कांमणी करै पांणी-ग्रहण, करगि खग वाहतो जुवा जूसण कसण।—हा.झा.

उ०—२ पिंड प्रांण छूटसी नाड़ तूटसी करग्गां, धरा सेज धारसी करे सुख सेज ग्रळग्गां।—ज.खि.

करग्राही—वि०—कर (हाथ) ग्रहण करने वाला। उ०—दीजै तिहां डंक न दंड न दीजै, ग्रहणि म वरि तरु गांनगर। करग्राही परवरिया मधुकर, कुसुम गंध मकरंद कर।—वेलि.

करड़—सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का घास विशेष जिसे घोड़े चाव से खाते हैं २ कटि, कमर। उ०—चौड़ी पीठ सांकड़ी छाती, करड़ उघाड़ी लूंधा कांन।—अज्ञात

वि०—मजबूत। उ०—नाह नीठि पड़िसी खेत मांझी निवड़। गयंद पड़िसी गहर करड़ घड़ भड़ गहड़।—हा.झा.

करड़को—सं०पु०—१ किसी कठोर वस्तु को या कंकर को दाँतों से चबाने से होने वाली आवाज. २ दाँतों से काटने की क्रिया या भाव. ३ इस प्रकार काटा हुआ स्थान।

करड़दंतो—वि०—कठोर दाँतों वाला। उ०—वांधलौ तजारौ सौ किण नूं जी पाकां पाकां वरीआंमां जोधारां करड़दंतां, अजराइळां खीवरां डांणां दूलोडा कीग्रां लोह घरड़ां लोहानां लोली लेतां काट रै ऊगरै है।—रा.सा.सं.

करड़धज—वि०—१ जबरदस्त, बलवान, शक्तिवान। उ०—धकायौ रांण हूं मिळण वण करड़धज, भड़ां हड़वड़ उरड़ घाव भाळी। मिट गई किसनगढ़नाथ वाळी मुरड़, उरड़ लख साहपुर नाथ आळी।

—अमरसिंघ सीसोदिया रौ गीत

२ ऐंठ कर चलने वाला, अभिमानी।

करड़पटीलो, करड़बटीलो—वि०—चितकबरा। उ०—पतळी केळू कांमड़ी है, सरस सुवांणी डाळियां। छांट छोळ लै'रां लपेटां, करड़-पटीली बाळियां।—दसदेव

करड़मरड़—सं०स्त्री० [अनु०] १ चूं चरमर की ध्वनि. २ रौब. ३ गर्व, अकड़।

करड़वाळ—सं०पु० दाढ़ी के वे बाल जो कुछ श्वेत तथा कुछ काले हों।

करड़ांण—सं०स्त्री०—१ गर्व, अभिमान. २ कठोरता।

करड़ाई—सं०स्त्री०—१ कटुत्व, कड़वापन. २ घमंड, अभिमान।

करड़ाट—सं०स्त्री०—१ एक ध्वनि विशेष।

सं०पु०—२ गर्व, घमंड. ३ कड़ापन।

करड़ाणो, करड़ाबो—क्रि०अ०स०—१ अकड़ना, ऐंठना. २ दाँतों से काटना, कुचलना (रू.भे.)

करड़ापण, करड़ापणो—सं०पु०—१ कठोरता. २ गर्व, अभिमान।

करड़ावण—सं०स्त्री०—देखो 'करड़ापण'। उ०—पड़बै पोढ़ंतांह, करड़ावण सैं कोई करै। धारां में धंसतांह, ग्रांसू आवै ईलिया।

—लाळस सी चारण

करड़ावणो, करड़ावबो—क्रि०अ०स०—१ अकड़ना, ऐंठना. २ दाँतों से काटना, कुचलना।

करड़ीछाकां—अव्यय— रात्रि में १० या १०½ बजे का समय (क्षेत्रीय)

करड़ू—वि०—अनाज का वह दाना जो पकाने से अन्य दानों के साथ पूरी तरह पक न सके अथवा भिगोने से अन्य दानों के साथ भीग न सके।

करड़ीमूठ—सं०स्त्री०—१ कृपणता, कंजूसी. २ कठोरता।

वि०—कृपण, कंजूस।

करड़ो—वि०पु० [सं० कृड घनत्वे कर्त्तरि अच्=कर्ड = करड़ो] १ कठोर। उ०—ऊजळ मळ संकुळ पीठी उबटांणी। करड़ै लौ साथै ऐरण कूटांणी।—ऊ.का. २ कठिन। उ०—जोड़ै तांणौ जगत में, कर कर करड़ा काम। विवनौ जीवै वांणियौ, नांणा री सुण नांम।—बां.दा. ३ भयंकर, संकटापन्न। उ०—वीसहत सहायक वर्ण करड़ी वगत। मावड़ी सदामद जोगमाया।—नंदजी मोतीसर ३ गहन. ४ ठोस. ५ दृढ़, ६ रूखा, उग्र. ७ निष्ठुर. ८ क्लिष्ट, मुश्किल. ९ कसा हुआ, चुस्त।

सं०पु०—१ एक प्रकार का घोड़ा विशेष जो अरबी और तुरकी जाति के जोड़ से उत्पन्न होता है। २ सुर्ख व सफेद रंग का घोड़ा।

—बां.दा.ख्या.

३ एक प्रकार का सर्प। उ०—काळा पटां काबरां करड़ा, परड़ां टाळै गोगा पीर।—ग्रासौ गाडण ४ हाथ की उंगलियों से पकड़ा जाय उतना घास या वस्तु।

करड़ोलकड़, करड़ोलक्कड़—वि०यौ०—१ लकड़ी के समान कड़ा. २ ऐंठा हुआ।

करज—सं०पु० [सं०] १ नाखून, नख (ह.नां., अ.मा.)

[अ० कर्ज] २ उधार, ऋण, कर्ज। उ०—हरि हीरौ घर मांही भूलौ, करज बहोत सिर कीयौ।—ह.पु.वा.

[सं०] ३ प्रकाश (नां.मा.)

करजड़ो—देखो 'कर्ज' (अल्पा०)

करजदार—सं०पु० [फा० कर्जदार] जिसने कर्ज लिया हो, ऋणी।

करजदारी—सं०स्त्री०—कर्ज लेने या देने का भाव, लेनदारी, ऋण। उ०—जमीदार हुय जमी करजदारी में कळगी।—ऊ.का.

करजवांन—वि० [अ० कर्ज+फा० वान] कर्जदार, ऋणी।

करजायत—सं०पु० [अ० कर्ज+रा० प्र० आयत] लेनदार, ऋण देने या लेने वाला।

करजेरीरसम—सं०स्त्री०—एक प्रकार का सरकारी टैक्स।

करजो—देखो 'करज'। उ०—निस दिन निरभै नींद, सपने में ग्रावै न सुख। दुनिया में नर दीन, करजे सूं हुवै किसनिया।—अज्ञात

करझड़ी—सं०स्त्री०—क्रौंच पक्षी।

करट—सं०पु० [सं०] १ कौग्रा (डि.को.) २ हाथी का कपोल (डिं.को.)

३ दुष्ट मनुष्य. ४ कट्टर नास्तिक।

करठाळ, करठाळग-सं०स्त्री०—१ तलवार (अ.मा.)

सं०पु०—२ भाला। उ०—१ धर खावड़ बूढ़ोय राज धरै। करठाळ पवू धकचाळ करै।—पा.प्र. उ०—२ काळ लंकाळ करठाळ जड़ियो कमंध, वहै विकराळ रगताळ वांई। भाळ छकडाळ चगताळ चुनाळ भिद ताळ गौ भाळ भर धरण तांई।—तेजसी खिड़ियौ

करडंड-सं०पु०—तीर (डिं.नां.मा.)

करडांण—देखो 'करड़ांण'।

करडाई—देखो 'करड़ाई'।

करडाणौ, करडाबौ—देखो 'करड़ावणौ'।

करडापण, करडापणौ—देखो 'करड़ापण'।

करडावणौ, करडावबौ—देखो करड़ावणौ'।

करडावणहार, हारौ (हारी), करडावणियौ—वि०।

करडायोड़ौ—भू०का०कृ०।

करडू—देखो 'करड़ू' (रू.भे.)

करडौ—देखो 'करड़ौ' (रू.भे.)

करडौलकड़, करडौलक्कड़—देखो 'करड़ौ-लक्कड़' (रू.भे.)

करण-सं०पु०[सं०] १ हथियार. २ इंद्रिय. ३ देह (डिं.को.) ४ क्रिया. ५ कार्य. ६ स्थान. ७ हेतु. ८ कायस्थों का एक भेद (मा.म.) [सं० कर्ण] ९ कान (अ.मा., डिं.को.) १० कुन्ती के गर्भ से कुमारावस्था में उत्पन्न सूर्य्य का पुत्र।

पर्याय०—अंगराज, अरकज, करन, चंपाधिप, भांणसुतन, रविसुत, राधातनय, राधेय, सूततनय।

११ डिंगल कोष के अनुसार दो गुरु मात्रा का नाम ऽऽ.

१२ हाथ. १३ छप्पय छंद का एक भेद जिसमें ६७ गुरु १८ लघु से ८५ वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं. १४ व्याकरण में तीसरा कारक. १५ ज्योतिष में तिथियों का एक विभाग. १६ धनुष। १७ गणित ज्योतिष की एक क्रिया. १८ सूर्य की रश्मि, किरण. १९ समूह (अ.मा.)

करणअस्त्र-सं०पु० [सं० कर्णास्त्र] धनुष (अ.मा.)

करणकंडू-सं०पु० [सं० कर्ण+कंडू] कान का एक रोग (अमरत)

करणाकार-सं०पु० [सं० करुणाकार] ईश्वर। उ०—जोई जिसौ फळ मांगे छै तैनें तिसौ दे छै। करणकार केसू कहतां।—वेलि. टी.

करणकारण-सं०पु०—कारणरूप, ईश्वर। उ०—नम सच्चिदानंद भक्त-वत्सल भय हरता, सास्वत असरण सरण करणकारण जगकरता।
—ऊ.का.

करणत्रांण-सं०पु० [सं० करण=शरीर+त्राण=रक्षक] सिर, मस्तक। (डिं.को.)

करणनाद-सं०पु० [सं० कर्णनाद] कान का एक रोग जिससे कान में निरंतर एक ध्वनि सुनाई पड़ती है (अमरत)

करणपत्रभंग-सं०पु०—कानों में पहनने के गहने बनाने का कार्य। ६४ कलाओं के अंतर्गत एक कला।

करणपसाव-सं०पु० [सं० कर्ण+प्रसाद] सुनने का भाव, ध्यान देने का भाव। उ०—अरज एक ऊचरण, चरण छूवण हूं चाऊं। पाऊं करणपसाव, समर न करण समभाऊं।—मे.म.

करण-पांण-सं०पु०—तीर, बाण (अ.मा.)

करणपाक-सं०पु० [सं० कर्णपाक] कान का एक रोग (अमरत)

करणपित-सं०पु० [सं० कर्णपिता] सूर्य, भानु (क.कु.बो.)

करणपिसाचिनी-सं०स्त्री० [सं० कर्णपिशाचिनी] एक प्रकार की साधना जिसमें साधक से कोई प्रश्न करने पर तुरंत उसका समाधान वहीं उसी समय कर दिया जाता है।

करण-पुरी-सं०स्त्री०—चंपापुरी का एक नाम (डिं.को.)

करणपोत-सं०पु० [सं० पोत-करण] भाला (ना.डिं.को.)

करणफूल-सं०पु० [सं० कर्णफूल] १ कान में पहना जाने वाला स्त्रियों का एक आभूषण विशेष (अ.मा.) २ एक प्रकार का पुष्प विशेष। (अ मा.)

करण-बिवाह-सं०पु०—पति (डिं को.)

करणमूळ-सं०पु०—कान के मूल में होने वाली ग्रंथि या गाँठ विशेष। (अमरत)

करणरस-सं०पु०—देखो 'करुणारस' (रू.भे.) उ०—तिके सती अंगनि सनांन करि नै सरग भोग रा सुख मांणे छै। पूठे करणरस कीजे छै। जगवासी लोग छै त्यांनां करणरस ऊपनौ छै।—रा.सा.सं.

करणरोगवाय-सं०पु०—घोड़े का एक रोग विशेष जिसके कारण उसके कान में सूजन आ जाती है (शा.हो.)

करणलंब-सं०पु०यौ० [सं० कर्ण+लंब] लंबे कानों वाला, गधा। (अ.मा., ह.नां.)

करणसत्र-सं०पु०यौ० [सं० कर्ण+शत्रु] अर्जुन (अ.मा.)

करणसूळ-सं०पु० [सं० कर्णशूल] कान का रोग विशेष जिससे कान में शूल चलता है (अमरत)

करणसोच-वि०—कायर, डरपोक (डिं.को.)

करणस्राव-सं०पु० [सं०] कान का एक रोग विशेष जिससे कान के भीतर पीब बहने लगता है (अमरत)

करणहार-वि०—करने वाला।

सं०पु०—ईश्वर। उ०—उदार पारब्रह्म करणहार करतार जगतगुरु अंतरजामी।—ह पु.वा.

करणानिधांन-सं०पु० [सं० करुणानिधान] १ दयासागर, दया करने वाला. २ ईश्वर। उ०—करणानिधांन जगियौ कहै, बहुनांमी वह बूझि इण। कळजुग्ग इसा मांहे किसन, राखे पत्त राधारमण।
—ज.खि.

करणामई, करणामय-सं०पु० [सं० करुणामय] करुणामय, ईश्वर। २ एक प्रकार का वृक्ष व उसका फल (डिं.को.)

करणाकर-वि० [सं० करुणाकर] दया करने वाला। उ०—द्रोपत दुखियारीह, पुकारी अबळापणै। मदती हर म्हारीह, करणाकर करस्यौ करां।—रांमनाथ कवियौ

सं०पु०—१ विष्णु (नां.मा.) २ ईश्वर (ह.नां.)

करणाटक–सं०पु०—१ दक्षिण भारत का एक प्रदेश. २ ब्राह्मणों का एक भेद विशेष (मा.म.)

करणापत–सं०पु० [सं० किरणाधिपति] सूर्य, भानु। उ०—पिता जमराज खटतीस करणाधपत, ओपियौ जगत कीधां उजाळौ। धोयतौ ग्राग बरियांम जोधां धणी, प्रसण प्रघळे चलै ज्यूं हिज पाळौ।
—नाथौ सांदू

करणामय—देखो 'करुणामय' (रू.भे.) उ०—ग्रर पाताळ थे म्हारौ ऊधार कीयौ। करणामय कह्यौ तौ तदि थांने कुणै सीख दीधी हुती।
—वेलि. टी.

करणाळ–सं०पु०—१ सूर्य (रू.भे. 'करनाळ') २ करनी देवी. ३ एक वाद्य विशेष। उ०—बींद चढ़े जीमें बळां, बज करणाळ सुवेस।—र.रू.

करणावटी–सं०पु०—१ बीकानेर राज्य का एक प्रदेश।

करणि–सं०पु० [सं० कर्णिका] १ कर्णिकार पुष्प, कनेर का फूल। उ०—कणियर तरु करणि सेवंती कूजा, जाती सोवन गुलाल जत्र।
—वेलि.

२ कनक. ३ कार्य, करनी। उ०—विवरण जौ वेलि रसिक रस वंछौ, करौ करणि तौ मूझ कथ।—वेलि.

क्रि०वि०—करने के लिए। उ०—मूळ ताळ जड़ ग्ररथ मंडहे, सुघिर करणि चढ़ि छांह सुख।—वेलि.

करणिका–सं०स्त्री० [सं० कर्णिका] १ सूंड के आगे की नोंक (डिं.को.) २ उँगुली का सिरा।

करणिकार–सं०पु०—१ कनेर का वृक्ष (डिं.को.) २ कनक चंपा पेड़।

करणियौ—देखो 'किरणियौ' (रू.भे.)

वि०—करने वाला। देखो 'करणौ'।

करणी–सं०स्त्री०—१ कार्य, करतूत, करनी। उ०—विद्या वेदों में वैदिक विध वरणी ग्रपणी करणी सूं जग पार उतरणी।—ऊ.का.

कहा०—१ करणी ग्रापो-ग्राप री, कुण बेटा कुण बाप—ग्रपनी-ग्रपनी करनी है, कौन तो बेटा है ग्रौर कौन बाप है। कोई किसी का बाप या बेटा नहीं, सब ग्रपनी-ग्रपनी करनी के ग्रनुसार जन्म लेकर उसका फल भोगते हैं। सब ग्रपनी करनी का फल भोगते हैं, बेटा या बाप कोई भी उसमें हिस्सा नहीं बँटा सकते। ग्रपनी करनी काम देती है, बेटे की करनी बाप के या बाप की करनी बेटे के काम नहीं ग्रा सकती. २ करणी जिसी भरणी—जैसी करनी वैसी भरनी—करनी के ग्रनुसार फल भुगतना पड़ता है। जैसा करता है वैसा पाता है।

२ खुरपी. ३ लीला, रचना। उ०—कुदरती किरतार की करणी बळिहारै।—केसोदास गाडण ४ मृतक-संस्कार. ५ हथिनी. ६ जीवन को सार्थक बनाने की दिनचर्या। उ०—ऐड़ी करणी कर चलौ, लारै हसी न होय।—ग्रज्ञात ७ चाल-चलन, व्यवहार। उ०—करणी सूं क्या काम है, दरसण सूं है कांम।—ग्रज्ञात

८ चूने का कार्य व पलस्तर लगाने का एक ग्रौजार जिससे लिपाई का भाग समतल किया जाता है, करनी। उ०—नीर पड़ लोही सौ लागै, घावां गारौ माफवै। करणी सूं कारीगर कूटै, वाफघोड़ा नै दाफवै।—दसदेव ९ एक वृक्ष विशेष। उ०—कणेर ग्रक्ष करणी सेवंत्री, कूजा जाय सोवन जाइ।—वेलि. टी. १० एक देवी जिसका प्रमुख मंदिर बीकानेर से १६ मील दूर देशनोक नामक गाँव में स्थित है।

वि०वि०—इसका जन्म संवत् १४४४ में 'सुवाप' गाँव के निवासी मेहा चारण के यहाँ हुग्रा था। इसका विवाह 'साठीका' गाँव के बीठू चारण देपा के साथ हुग्रा था। इसका स्वर्गवास संवत् १५९५ में माना जाता है।

पर्याय०—ग्रायी, कनियांणी, करणी, देसणोकपत, महियासधू।

करणीगर–सं०पु०—करने वाला, कर्त्ता, ईश्वर, प्रभु। उ०—१ जांण प्रवीण 'विजो' जस-ग्राहग, करणीगर सह विधि कियौ। क्रम कायरां लखण ग्रपणां रा, सु तौ न जांणै सरवहियौ।—ईसरदास बारहठ

उ०—२ करणीगर रूड़ा करै, करत विलंब न काय। मार उपावै मेदिनी, मुहुरत हेकण मांय।—ह.र.

करणेजप–वि० [सं० कर्णेजप] १ दुष्ट, खल. २ चुगलखोर (डिं.को.)

सं०पु०—सर्प, साँप।

करणोत–सं०पु०—राठौड़ों की एक उपशाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

करणोद— देखो 'करणाद' (रू.भे.)

करणौ–वि०—करने वाला। उ०—दळां खेंगराणौ करणौ नांम जगि दाखां।—ल.पिं.

सं०पु०—एक प्रकार का वृक्ष व उसका फल।

करणौ, करबौ–क्रि०स०—किसी कार्य को करना, निबटाना या समाप्ति की ग्रोर ले जाना।

कहा०—१ करंता सौ भुगंता, खिणंता सो पड़ंता—जो जैसा कार्य करता है उसको वैसा ही फल मिलता है। बुरे कामों का फल बुरा ही होता है। २ कर भला तौ व्है भला—जो दूसरों का भला करता है उसका भला ग्रवश्य होता है। ग्रच्छे कामों का फल सदा ग्रच्छा होता है। ३ करण मत्तै होवै जिणरै सारा सैज है—दृढ़ निश्चय से हरएक काम सरल हो जाता है। ४ करणा है सौ करलौ भाई, काळा केसां तांई—जब तक बाल काले हैं तब तक जो कार्य करना है वह करलो। युवावस्था में ही कार्य कर लेना चाहिये ग्रन्यथा बुढ़ापे में कुछ भी नहीं किया जा सकेगा। ५ करता उस्ताद न करता सागिरद—ग्रभ्यास ही बड़ी चीज है। ६ करसी सौ भरसी—करेगा सो भरेगा। जो काम करता है वही उसका फल पाता है। ७ करौ पाप खाग्रो धाप—इस युग में पापकर्म से पेट सहज भरता है। मेहनत से व ईमानदारी से पैसा कठिनता से कमाया जाता है। ८ करेगा पाप सौ खावेगा धाप, करेगा धरम सौ फांड़ेगा करम—जो पाप करेंगे उन्हें पूरा खाने को मिलेगा ग्रौर जो धर्म करेंगे वे ग्रपनी

किस्मत को रोयेंगे। संसार में धर्म की अपेक्षा कुछ समय के लिए अधर्म से कमाई हो सकती है। ९ करेगा सौ पावेगा, बंदा रोटी खावेगा— जो बुरा काम करेगा वही उसका फल भोगेगा, हम तो मौज उड़ावेंगे। जो स्वयं बुरा काम नही करता उसकी उक्ति। जो दूसरों से बुरे काम करा कर उसके बल पर स्वयं मौज करता है उसके लिये। १० करै जिमा भुगतै—जैसा करता है वैसा भोगता है। करनी के अनुसार फल मिलता है। ११ करै तौ डर नही करै तौ कांय का डर —जो बुरा काम करता है उसी को दंड मिलता है, जो नहीं करता वह दंड से क्यों डरे। १२ करै तौ डर, नहीं करे तौ डर—क्योंकि कभी-कभी नहीं करने पर भी धोखे से दंड मिल जाता है (अथवा न करने पर भी दुनिया बुराई करने लगती है) १३ करै सो भरै—देखो कहावत (६) १४ करौ पाप, खाम्रो धाप—देखो (८) १५ करो बेटा फाटका बेचौ घर का बाटका—हे बेटे, फाटका (जुआ) करो और (फलस्वरूप) घर के थाली लोटे भी बेच डालो। फाटके (जुए) की निंदा। १६ करौ सेवा पावौ मेवा—सेवा कार्य की प्रशंसा। १७ करौला बंदगी तौ पावोला चंदगी—किसी की सेवा करने से कुछ न कुछ लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

१८ करयौ सो कांम, भज्यौ सो रांम—किया वही काम और भजा वही राम-भजन। काम को और राम भजन को तुरंत कर डालना चाहिये। १९ करयौ स कांम, वींध्यौ स मोती—किया सो काम, वेधा सो मोती। काम कर डाला सो हो गया, नहीं किया सो रह गया। काम को तुरंत कर डालना चाहिये।

भूतकालिक प्रयोग—**कीध, किधौ (कीधी)**।

कध्धी, कध्धौ (क्वचित् प्रयोग)

कनि, कन्हौ, कीनौ, कीन्ह, कीन्हा, कोन्हौ—क०भे०भू० प्रयोग।

करणहार, हारौ, (हारी), करणियौ—वि०— करने वाला।

कराणौ, कराबौ, करावणौ, करावबौ—क्रि०स०—कराना।

करायोड़ो, करावियोड़ो—भू०का०कृ०।

करिग्रोड़ो, करियोड़ो, करयोड़ो—भू०का०कृ०।

करीजणौ, करीजबौ—कर्म वा०—किया जाना।

करणील—सं०पु० [अं० कर्नल] फौज का बड़ा अफसर।

करतब—सं०पु० [सं० कृ=करना+तव्य=कर्तव्य] १ कर्तव्य।

उ०—१ दतब करतब ये दोढ़ा दरसाता। सारी प्रथवी ये मोढ़ा सरसाता।—ऊ.का. उ०—२ मेछां आगळ माथ, निवै नहीं नर-नाथ रौ। सौ करतब समराथ, पाळै रांगा प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ

२ किये हुये कार्य, काम, प्रारब्ध। उ०—भगवत करता ने करतब भुगतावे। पिछला पापां रा पांमर फळ पावै।—ऊ.का.

३ धर्म. ४ उपाय. ५ जादू. ६ हुनर.

[सं० कृ = हिंसा करना+तव्य, कर्तव्य] ७ छल, कपट, पाप कर्म। उ०—थाया संपत थाट, भवर कंवर सुख भोगवै। म्हैं की आळै माट, करतब री गं.भी 'करन'।—अज्ञात. ८ दान। उ०—मोसर किम भूलै राव मारू, तौ सिरखा देसोत तिके। जोई करतब तणौ न जूसा, जोई घोड़ा खड़ै जके।—ओपौ आढ़ौ

[सं० कृ० = छितराना+तव्य, करितव्य] ९ विस्तार, फैलाव।

करतमकरता—सं०पु०—सर्वाधिकारी। उ०—तैसें परमेस्वर करतम-करता मुनें उपायौ।—वेलि.

करतरी—सं०स्त्री०—१ कैंची (डिं को.) उ०—मिळै मोहरां चोहरां पंति मोती, कळा करतरी जीत पावै कमोती।—वं.भा. २ कटारी. (वं.भा.) ३ बाण का अंतिम या पिछला भाग जिसमें पर लगे रहते हैं (डिं.को.) ४ एक प्रकार का शस्त्र विशेष (अ.मा.)

करतळ—सं०पु०—१ सिंह का पंजा. २ अंत गुरु की चार मात्रा का नाम ॥ऽ ३ छप्पय छंद का ४५ वां भेद जिसमें २६ गुरु और १०० लघु से १२६ वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं (र.ज.प्र.)

करतव्व— देखो 'करतब'। उ०— रढ़रांण भांण रतन्न, करतव्व भारथ क्रन्न। नरनाह जे मुख नीर, अहवंत ग्यांनगहीर।—वचनिका

करता—सं०पु० [सं० कर्ता] १ काम करने वाला. २ रचने या बनाने वाला, निर्माता. ३ ईश्वर। उ०—करता जो लिखिया कूंकूं रा, काजळ तणा करै नहिं कोय।—भीखजी रतनू. ४ व्याकरण के अंतर्गत प्रथम कारक जिससे क्रिया के करने वाले का बोध हो.

५ श्रीकृष्ण (अ.मा.)

सं०स्त्री०—६ देवी, दुर्गा (क.कु.बो.) ७ पार्वती।

वि०—करने वाला। उ०—भगवत करता ने करतब भुगतावै। पिछला पापां रा पांमर फळ पावै।—ऊ.का.

करतापण, करतापणौ—सं०पु०—१ कर्तृत्व, रचना। केहर रै हाथळ करी, कीधी रात वराह। सूर काज कीधौ सुजड़, विध करतापण वाह।—बां.दा. २ प्रभुता, अधिकार, स्वामित्व. ३ कारीगरी, दक्षता।

करतापुरस, करतापुरिस, करतापुरस—सं०पु० [सं० कर्ता+पुरुष] रचना करने वाला, ईश्वर। उ०—१ काळ हरण करतापुरिस, सुमरंतां गुण एह। चित मांहि बित ले रहौ, ज्युं बहोरि न धरिये देह।—ह.पु.वा. उ०—२ क्रम अक्रम भ्रम्म अधरम कपट, ऐ नेड़ा मत आंण अंग। पढ़ नांम रिदै करतापुरस, 'जगा' एक अवगत जग।—ज.खि.

करतार—सं०पु० [सं० कर्तार] १ ईश्वर. २ विधाता.

वि०—३ रचना करने वाला।

करताळ, करताळीक—सं०स्त्री० [सं० करताड] १ तलवार, खड्ग (ह.नां.) उ०—आंण किलै मां ऊतरै, कमंध पेम किरनाळ। इतरै बागी आवता, काळां री करताळ।—पे.रू. २ प्रथम गुरु ढगण के भेद का नाम ऽ।. ३ एक प्रकार का वाद्य विशेष।

करताळी—सं०स्त्री०—हाथ द्वारा बजायी जाने वाली ताली।

उ०—छोह करताळियां चिड़कला छहुंही। अभंग जसवंत जुध गुरड़ नह उडुही।—हा.झा.

करताबर—सं०पु०—ईश्वर। उ०—'ओझा' भल ओप्योह, हीये भारत

हार ज्यूं। करताबर कोप्योह, हार हरघौ इतिहास रौ।
—सांवळदांन आसियौ

करतूत, करतूति, करतूती–संस्त्री० [सं० कर्तृत्व] १ काम, कार्य। उ०—तौर मजबूत मजबूत दौर भूमितळ, गौर मजबूत मजबूत करतूती में।—ऊ.का. २ कर्तव्य. उ०—कुळ करतूति कहां लौ करिहौ, जांमि जांमि जांमू फिरि मरिहौ।—ह.पु.वा. ३ कपट, धोखा, चाल, छल।

करतोया, करतोयार–संस्त्री० [सं०] जलपाईगोड़ी के जंगलों से निकलने वाली एक नदी जो बहुत पवित्र मानी जाती है (वं.भा., डिं.को.)

करद–संपु० [सं० कर्दम] १ कीचड़। उ०—धकधके स्रोण मिळ करद धूर, हकबके कात्र बकबकै हूर।—पे.रू. २ कर देने वाला. ३ सहारा देने वाला।
संस्त्री० [सं० कर+दाप=लवने] ४ तलवार। उ०—पटकूं मूंछां पांण, कै पटकूं निज तन करद। दीजे लिख दीवांण, इण दो महली वात इक।—प्रथवीराज राठौड़ २ कृपाण, कटार।

करदम–संपु० [सं० कर्दम] १ कूड़ा-करकट. २ कीचड़ (डिं.को.)

करदमेस्वर–संपु०—काशी में स्थित शिव का एक मंदिर (बां.दा.ख्या.)

करद्द—देखो 'करद' (रू.भे.) उ०—गळां गूध भखै गीध उडै के अंत्राळां ग्रहे। कराळां बराळां भाळां सेलाळां करद्द।—अज्ञात

करद्दम—देखो 'करदम' (रू.भे.)

करधणी, करधनी–संस्त्री० [सं० कटि+धुनी=कड+धुनी] मेखला, कमर में पहनने का गोलाकार भूषण। उ०—करधणियां री झणक सांझ नित नाच करंतां। धाकी कंवळी बांह रतन-जुत चंवर बुळंतां।
—मेघ.
पर्याय०—कंदोरौ, कटक, कम्मरसूत, कळाप, मेखळा, रसण।

करधार–संस्त्री० [सं०] शस्त्र। उ०—पड़िया करधारां जहर पाय, इंद्र रा वज्र कोड़ेक आय।—वि.सं.

करन–संपु० [सं० कर्ण] देखो 'करण' (रू.भे.) उ०—कुरंद विभाड़ धाड़ केलपुरा, आई पछे न रीझ उर। अडर हवर न करन वीकम इम, पातां ओठम सायपुर।—हुकमीचंद खिड़ियौ

करनाटकीधोप–संस्त्री०—एक प्रकार की तलवार।

करनल, करनला, करनल्ल–संस्त्री०—करणी देवी का एक नाम (रू.भे.) उ०—नखायुध हाकलियौ करनल्ल। चराचर स्रष्टि थई हलचल्ल।
—मे.म.

करनाब–संपु०—एक प्रकार का वृक्ष (क.कु.बो.)

करनादे–संस्त्री०—करणी देवी का एक नाम।

करनाळ–संपु० [अ० करनाय] १ एक प्रकार का वाद्य विशेष, भोंपू उ०—सबद उग्र करनाळ सबाई, सुर वरधू तुरही सहनाई।—रा.रू. २ एक प्रकार का बड़ा ढोल. ३ एक प्रकार की तोप. ४ सूर्य (डिं.को.) ५ पंजाब का एक प्रसिद्ध नगर।

करनाळि, करनाळी–संस्त्री०—१ वाद्यविशेष। उ०—सही जांणि गाजै सघण, वरधू दमांम करनाळि बह—वया.च.

करनी—देखो 'करणी' (रू.भे.)। उ०—विरदाय बडे ससियां वरनी, कहि जाय नहीं जिनकी करनी।—ऊ.का.

करनैल–संपु० [अं० कर्नल] १ फौज का एक अफसर.
संस्त्री०—२ करणी देवी का एक नाम।

करनौ–संपु०—एक प्रकार का वृक्ष विशेष (ग.मो.)

करन्न–संपु०—१ देखो 'करण'। उ०—गढ़पति मिळै उजेणिगढ़, राजा 'जसौ' 'रतन्न'। रांम लक्खमण राठवड़, फिर दुरजोध करन्न। २ धनुष। —वचनिका

करन्नला–संस्त्री०—श्री करणी देवी का एक नाम (रू.भे.) उ०—तुही हुई करन्नला तरण त्यारनी, नरिंद्र सेख बंदी फंद तू निवारनी।—मे.म.

करन्नी—देखो करणी' (रू.भे.)। उ०—जिका आवड़ा देख जेसांण जिल्ले, करन्नी तिका द्रंग देसांण किल्ले।—मे.म.

करपट–संपु० [सं० कर्पट] १ पुराना कपड़ा। उ०—पथ्या पाटण दे भिक्षयाटण भाजी, रथ्या करपट ले चरपटवत राजी।—ऊ.का. २ कपड़ा, वस्त्र (डिं.को.)

करपण–संपु०—कपड़े सीते समय कपड़े के बचे हुए छोटे टुकड़े।
वि० [सं० कृपण] कंजूस, कृपण (डिं.को.) उ०—करपण नृप रहै ताकता केहा, पट्ट सांसै हाकता पड़ै। कीरत राह डाकता काछी, खेड़ेचौ आखता खड़ै।—दुरगादत्त बारहठ

करपणता–संस्त्री [सं० कृपणता] १ कंजूसी. २ दीनता (डिं.को.)

करपत–संपु०—लकड़ी चीरने का लोहे का एक औजार जिसमें दांते लगे रहते है, आरा।

करपत्रक—देखो 'करपत' (रू.भे.) (डिं.को.)

करपत्री–संस्त्री०—एक प्रकार का शस्त्र विशेष (अ.मा.)

करपर–संपु०—कंजूस, सूम (डिं.को.)

करपल्लव–संपु० [सं०] हाथ की उँगली। उ०—करपल्लव कहतां हाथां की आंगुळी किसी छै नरम जिसा फूल इसी।—वेलि. टी.

करपहिणणौ–संपु०—गौना (श्रीमाली ब्राह्मण)

करपांण, करपांन–वि० [सं० कृपण] कृपण, कंजूस।
संपु० [सं० कलपान अथवा कृपाण] बाण, तीर (अ.मा.)

करपा–संस्त्री० [सं० कृपा] कृपा, दया, अनुग्रह (डिं.को.)

करपाळ–वि० [सं० कृपालु] दयालु, कृपालु।

करपास–संपु० [सं० कर्पास] कपास (डिं.को.)

करपूर, करपूरक–संपु० [सं०] १ कर्पूर (डिं.को.) २ चंद्रमा।

करब–संपु० [सं० करे भाति इति करभ] वन (ह.नां.)

करबळ–संपु०—शिकार के निमित्त सिंह की खबर देने वाला।

करबळौ–संपु० [अ० करबला] १ अरब का वह स्थान जहां हुसैन मारे गये थे. २ वह स्थान जहां ताजिये दफनाये गये हों (मुसल०)

करबाळ–संस्त्री०—तलवार। उ०—करबाळ ढाल दिस कर कयास। ओलंदेहै नहिं अनायास।—ऊ.का.

करबीरक–सं०पु० [सं०] श्मशान (डिं.को.)

करबुर–वि० [सं० कर्बुर] १ चितकबरा (डिं.को.)
सं०पु०—१ धतूरा (डिं.को.) २ सोना, स्वर्ण (अ.मा., ह.नां.)
३ राक्षस (डिं.को.)

करबो–सं०पु० [सं० करम्भ] दले हुए अनाज को पका कर छाछ के मिश्रण से बनाया जाने वाला एक प्रकार का पेय पदार्थ।

करभ–सं०पु० [सं० कलभ] १ ऊँट (अ.मा.) २ हाथी, हाथी का बच्चा. ३ हथेली का मणिबन्ध से कनिष्ठिका तक का भाग।
उ०—नितंबणी जंघ सु करभ निरूपम, रंभ खंभ विपरीत रुख।—वेलि.
४ दोहा नामक एक छंद विशेष जिसमें १६ लघु १६ गुरु कुल ३२ वर्ण और ४८ मात्रायें होती हैं (र.ज.प्र.)
वि०—१ बेंगनी रंग का* (डिं.को.) २ क्रूर।

करभाजन–सं०पु०—नौ योगेश्वरों में से एक योगेश्वर।

करभूसण–सं०पु० [सं० कर+भूषण] हाथ या कलाई में पहनने का एक प्रकार का गहना, कंगन।

करमंदो–सं०पु०—छोटा कांटेदार एक प्रकार का क्षुप जिसका फल मीठा होता है।

करम–सं०पु० [सं० कर्म] भाग्य, प्रारब्ध।
मुहा०—१ करम टेढ़ो होणो—भाग्य बुरा होना, बदकिस्मत होना. २ करम ठोकणो—भाग्य को दोषी ठहराना. ३ करम फूटणो—भाग्यहीन होना, बुरे दिन आना. ४ करम उदै होणो—भाग्य चेतना।
कहा०—१ करम कारी नहीं लागण दै जद कांई हुवै ?—भाग्य पैबंद नहीं लगने देता तब क्या हो सकता है ? भाग्य साथ न दे तो क्या हो सकता है ? भाग्य भलाई न होने दे तो प्रयत्न व्यर्थ है. ३ करम की ढोलकी बाजी—भाग्य विपरीत होने पर गोपनीय कार्य भी प्रकट हो जाता है. ४ करम छिपे न भभूत रमायां (लगायां)—राख रमाने पर भी (साधु हो जाने पर भी) करम नहीं छिपता। साधु हो जाने पर भी भाग्य पीछा नहीं छोड़ता। साधु हो जाने पर भी भले-बुरे काम करने की जो प्रकृति पड़ जाती है वह नहीं छिपती.
५ करम फूट नै कांकरा निकळिया—भाग्यहीन के सदा विफलता ही हाथ लगती है. ६ करम नै छांवळी तो साथे री साथे है—मनुष्य के कर्म और छाया सदैव साथ रहती है। कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है, वे मिट नहीं सकते. ७ करम फूट नै चोडाळ हुय गया है—भाग्यहीन होना। बुरे दिन आना. मूर्खता का कार्य करने पर व्यंग्य. ८ करम फूटां नै कारी नीं लागे—हर एक चीज को सुधारा जा सकता है किन्तु प्रतिकूल भाग्य को अनुकूल नहीं बनाया जा सकता. ९ करम फूटयोड़ै नै भाग-फूटयोड़ो सौ कोसां री अंवळाई खा'र मिळै—कर्म फूटे के पास भाग फूटा सौ कोस का चक्कर खाकर भी पहुँच जाता है। भाग्यहीन के पास भाग्यहीन अपने आप सहज में ही पहुँच जाता है। जैसे को तैसा सहज में ही मिल जाता है. १० करम फूटयो रै केसवा, गूंदी रै लाग्या लेसवा—गूंदी जैसे छोटे फल वाले पेड़ पर भी जब लिसोड़े लग जाते हैं तब कैसे काम चल सकता है। थोड़ी हैसियत पर बड़ा आडम्बर नहीं चल सकता। ११ करम में कांकरा लिखियोड़ा नै हीरा चावै—भाग्यहीन व्यक्ति का अच्छी वस्तु की आशा करना व्यर्थ है. १२ करम में तौ कागला रौ पग (पंजो) है—भाग्य तो विपरीत है, अतः कैसे अच्छी वस्तु की प्राप्ति की आशा की जा सकती है. १३ करम रा कोढ़ कठै जाय—दुष्कर्म के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली यातना भुगतनी ही पड़ती है. १४ करम रेख ना मिटै करो कोई लाखूं चतराई—भाग्य की रेखा नहीं मिटती, चाहे कोई लाखों चतुराई करले। कितनी ही चतुराई हो भाग्य में जो लिखा है सो तो होता ही है। १५ करम ही रांडयो तो कई करै बापड़ो पांडयो—किसी व्यक्ति का भाग्य ही ठीक न हो तो ज्योतिषी आदि क्या कर सकते हैं. १६ काळा करम रा घोळा धरम रा है—जो कुछ अच्छी वस्तु की प्राप्ति है वह धर्म के कारण है तथा बुरा फल बुरे भाग्य के कारण है. १७ गाबां फाटां कारी लागै, करम फूटां नै कारी नीं लागै—फटे हुए कपड़े के पैबंद लगाये जा सकते हैं किन्तु विपरीत भाग्य को अनुकूल नहीं बनाया जा सकता. १८ जाट पढ़ियोड़ो है'क हाते करम फोड़ जैड़ो है—अधूरी विद्या भी कभी-कभी हानि या बुरे भाग्य का कारण बन जाती है. १९ फूटा करम फकीर रा भरी चिलम गुड जाय—भाग्य विपरीत होने पर भरी हुई चिलम भी उलट जाती है। बुरे भाग्य के कारण अच्छी वस्तु भी बुरी हो जाती है. २० बिगड़िये कांम नै कारी लागै पण फूटोड़ै करम नै नीं लागै—बिगड़ा हुआ कार्य सुधारा जा सकता है किन्तु विपरीत भाग्य को अनुकूल नहीं बनाया जा सकता. २१ रूप रोवै करम खाय, रूप री धणियांणी पांणी नै जाय—रूपवती स्त्री रोती है किन्तु भाग्यवती बैठी-बैठी खाती है। रूपवान से भाग्यवान होना अच्छा है।
२ दुष्कर्म, पाप। उ०—संगत कीजै साध की, हठ कर कीजै मोह।
करम कटै 'काळू' कहै, तिरै काठ संग लोह।—काळू
३ संचित कर्म। उ०—चेतन बंध्या मन सूं मन करमे बंध्या।
—केसोदास गाडण
४ काम, कार्य. ५ मृतक-संस्कार. ६ ललाट, माथा।
मुहा०—करम खुलणो—प्रारब्ध खुलना, सिर टूटना।
कहा०—करम में खाज हालै है—सजा के योग्य कार्य करने पर।
७ मनोरथ, अभिलाषा. ८ कर्तव्य. ९ यज्ञ. १० वह शब्द जिसके वाच्य पर क्रिया का फल गिरे।
सं०स्त्री०—लक्ष्मी (अ.मा., नां.मा.)

करमक—वि०—अच्छे चाल-चलन या कर्म वाला।
सं०पु०—शुद्धाचरण (डिं.को.)

करमकमाई–सं०स्त्री०यौ०—१ भाग्य और परिश्रम. २ पूर्व संचित अच्छे कर्मों का फल।

करमकर–सं०पु०—दास, सेवक, अनुचर (डिं.को.)

करमकल्ला-सं०स्त्री०—एक प्रकार की बंद गोभी जिसमें केवल कोमल पत्तों का बंधा हुआ संपुट होता है। इसकी प्रायः सब्जी बनाई जाती है।

करमकांड-सं०पु० [सं० कर्मकांड] १ यज्ञादि के विधान का शास्त्र. २ जप यज्ञ आदि धार्मिक कृत्य।

करमकांडी-सं०पु०—१ यज्ञ, जप आदि धार्मिक कृत्य करने वाला. २ ब्राह्मण।

करमगत-सं०स्त्री०—कर्म-गति, भाग्य की गति, भवितव्यता।
उ०—दुतिया चांद मजीठ रंग, साध-वचन प्रतिपाळ। पाहण रेख'र करमगत, ऐ नहिं मिटत जमाल।—जमाल

करमचंदियौ-सं०पु०—१ सिर, मस्तक, ललाट. २ भाग्य।

करमचड़ी, करमछड़ी-सं०स्त्री०—तलवार (डिं.को.)

करमजाळ-सं०पु०यौ०—कर्म के बंधन। उ०—रांम-रस प्याले रा पीवण-हार, दया धरम रा पाळणहार, करम-जाळ रा भोडणहार, तापस अस्टांग जोग रा साभणहार सांत-रस मांहे गळतांण होइनें रहिया छै।—रा सा.सं.

करमजोग-सं०पु० [सं० कर्मयोग] १ सिद्धि और असिद्धि में समान भाव रख कर कर्तव्य कर्म का साधन. २ भावी, भवितव्यता, दैवयोग।

करमट-वि० [सं० कर्मठ] कार्यकुशल, कर्मनिष्ठ। उ०—सिंहमल सिळकिया करमट कूदिया, कटकां हुई ज हालोहाल।—अमरसिंह री बात

करमट्ठौ—देखो 'करमठौ' (रू.भे.) (डिं.को.)

करमठ—देखो 'करमट'।

कर-मठ-वि०—कृपण, कंजूस।

करमठोक-वि०—हतभाग्य, बदनसीब।

करमठौ-वि०—कंजूस, कृपण, सूम (रू.भे. 'करमट्ठौ')

करमणा-सं०स्त्री० [सं० कर्मन्] कार्य, काम।

करमदौ-सं०पु०—छोटा झाड़ीदार एक प्रकार का गुल्म।

करमध्वज-सं०पु० [सं० कर्मध्वज] १ अपने कर्म से पहिचाना जाने वाला. २ राठौड़ों के लिए प्रायः प्रयुक्त होने वाला एक शब्द।

करमबंध-सं०पु० [सं० कर्मबंधन] कर्म से जन्म ग्रहण करने के भाव।
उ०—जीहा जप जगदीसवर, धर धीरज मन ध्यांन। करमबंध निकरम-करण, भव-भंजण भगवांन।—ह.र.

करमर-सं०स्त्री०—तलवार (डिं.को.)

करमसाखी-सं०पु० [सं० कर्म-साक्षी] दिनेश, सूर्य्य (ह.नां., डिं.को.)

करमसियेत, करमसीहोत, करमसोत—राठौड़ों की एक उपशाखा अथवा इस उपशाखा का व्यक्ति।

करमहीण-वि० [सं० कर्म+रा० प्र० हीण] हतभाग्य, अभागा, भाग्यहीन।
कहा०—१ करमहीण को नहीं मिळै भली वस्तु को भोग, पके दाख वैसाख में होत काग गळ रोग—भाग्यहीन को अगर अच्छी वस्तु मिल भी जाय तब भी वह उसका उपयोग नहीं कर सकता। वैशाख मास में किशमिश पकती है किन्तु उसी समय कौए के गले में रोग हो जाता है इससे वह किशमिश नहीं खा सकता. २ करमहीण खेती करै बळद (ब) मरै कै काळ (कन सुखाड़ौ) पड़ै—भाग्यहीन खेती करता है तो या तो बैल मर जाते हैं या अकाल पड़ता है। भाग्यहीन जिस किसी भी काम में हाथ डालता है उसी में असफलता मिलती है।

करमांतरी-सं०पु०—मृत्योपरांत क्रियाकर्म करने वाला ब्राह्मण, महाब्राह्मण।

करमांबाई-सं०स्त्री०—ईश्वरभक्त एक जाटनी।

करमाळ-सं०स्त्री०—१ तलवार। उ०—वाजतां त्रंबाळां के करमाळां झाळां बीच। नेज बाजां नराताळां संभरी नरेस।—हुकमीचंद खिड़ियौ

करमाळी-सं०स्त्री० [सं०] १ तलवार। उ०—निराटां सोर झाळां भटक नाळियां, ठेल अस कटक चौड़ै मंडण ठाळियां। तड़छ खल वाढ़िया खाय रणताळियां, कर फतै बावड़ै रंगे करमाळियां।
सं०पु०—२ सूर्य्य। —रावत संग्रांमसिंघ री गीत

करमाळौ-सं०पु०—एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसके पत्ते लाल चंदन के पत्तों के समान होते हैं। इसके फूल पीले तथा फल फली के आकार के होते हैं। फली का गूदा विरेचक होता है। अमलतास।

करमी-वि० [सं० कर्मिन्] १ कार्य करने वाला, कार्यनिष्ठ, कर्मठ. २ अन्याय और अत्याचार करने वाला। उ०—स्यांमध्रमी नृप रौ सदा, करूं न नरमी काय। करमी आया काळिया, (ज्यांरी) गरमी देहुं गमाय।—पे.रू. ३ भाग्यशाली (ल.पिं.)

करम्म—देखो 'करम' (रू.भे.) उ०—कवि जगा राखि द्रिढ़ जीव करि, मिटै न लेख करम्म रौ।—ज.खि.

करम्माळ-सं०स्त्री०—१ तलवार (डिं.को.) (रू.भे. 'करमाळ', 'किरमाळ')
सं०पु०—सूर्य, भानु।

करम्मोत—देखो 'करमसोत'।

कररावणौ, कररावबौ-क्रि०अ०—१ कराहना। उ०—धुरराय मलू करतां घुरियां। कररायवडां लड़ कोचणियां।—पा.प्र.
२ चिल्लाना।

करळ-वि० [सं० कराल] भयंकर। उ०—धुबै मैंगळ अकळ कांठळां सरळ धर, अरळ सबळ भरळ करळ ऊगो।—अज्ञात
सं०पु० [सं०] १ हथेली का अग्र भाग. २ मुष्टिका में समा सकने वाला पदार्थ, मुष्टिका भर। उ०—स्यांम कटि कटिमेखळा समरपित क्रिसा अंग मापित करळ। भावी सूचक थिया कि भेळा, सिंघरासि ग्रहगण सकळ।—वेलि.

करळव-सं०पु०यौ० [सं० कलरव] १ मृदु, मधुर स्वर. २ जनसमूह का अस्पष्ट शब्द. ३ कूजन, गुंजन. ४ करुणाजनक ध्वनि।
उ०—कूंझड़ियां करळव कियउ, धरि पाछिले वणेहि। सूती साजण संभरया, द्रह भरिया नयणेहि।—ढो.मा.

करळावणी, करळाबबौ—देखो 'करराविणौ'।

करळौ–सं०पु०—१ देखो 'कड़पौ' २ युवा ऊंट (क्षेत्रीय) उ०—झूठी मूठी जांन बणालो, भूठो जांन री बीन। चुग चुग करलां कूंची मांडो, चुग चुग घुड़लां जीण।—डूंगजी जवारजी री पड़
३ देखो 'कुल्ला'।

करवट–सं०स्त्री० [सं० करवर्त] पार्श्व पर हाथ के बल लेटने की मुद्रा।

करवत, करवती–सं०स्त्री० [सं० करपत्र] लोहे का बना लकड़ी चीरने का बढ़ई का एक औजार, आरी। उ०—कूंभड़ियां करळव कियउ, घरि पाछिले दरंगि। सूती साजण संभरया, करवत बूही अंगि।
—ढो.मा.
कहा०—करवत आवतो बैरे न जावती बैरे—आरी जाते और आते दोनों समय काटती है। सब प्रकार से हानिप्रद वस्तु के प्रति।

करवतीमगरी–सं०स्त्री०—एक प्रकार की तलवार विशेष जिसके दोनों ओर पैनी धार होती है परंतु एक ओर आरा की धार जैसी दांतेदार धार होती है।

करवत्त—देखो 'करवत' (रू.भे.)

करवर—देखो 'करवरौ' (रू.भे.)

करवरसणौ–वि०—जिसका हाथ अधिक बरसता हो, जिसके हाथ मे अधिक खर्च होता हो, अधिक दान देने वाला। उ०—काछ दृढ़ा करवरसणा, मन चंगा मुख मिट्ठ। रण सूरा जग वल्लभा, सौ मैं विरळा दिट्ठ।—ऊ.का.

करवरौ–सं०पु०—साधारण फसल का जमाना।
कहा०—आसाढ़े धुर अस्टमी, चंद्र उगंतौ जाय। काळौ व्है तौ करवरौ, धोळौ व्है तौ सुगाळ।—आषाढ़ कृष्णा अष्टमी के चंद्रमा को देखो। यदि वह काले बादलों में आवृत्त है तो साधारण जमाना होगा। यदि सफेद बादलों में है तो जमाना अच्छा होगा। २ धुर आसोज अमावसां जे आवै सनिवार। समौ होसी करवरौ पिंडत कहै विचार—यदि आश्विन की अमावस्या को शनिश्चर हो तो पंडितों की राय है कि वर्ष साधारण होगा।

करवलौ–सं०पु०—ऊंट। उ०—लूंग लुळी डाळियां हेरै, एवड़ आयां झट झड़ै। धपा धाड़वी करवलां नै, लूंग लुटा भीणी पड़ै।—दसदेव

करवांण–सं०स्त्री०—तलवार (डिं.नां.मा.)

करवांन, करवांनक–सं०पु०—एक प्रकार का पक्षी विशेष (रा.सा.सं.)

करवाचौथ–सं०स्त्री०—कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी। इस दिन स्त्रियां सौभाग्य के लिये व्रत करती हैं और सायंकाल को मिट्टी के करवे से चंद्रमा को अर्घ्य देती हैं।

करवाळ–सं०स्त्री० [सं० कृपाण] तलवार (डिं.नां.मा.) उ०—पूगी नीठ पिछांणियौ, किसूं बुलायौ काळ। कै पग मंडो ठाकुरां, कै छंडो करवाळ।—बी.स.

करवाळक, करवाळा–सं०स्त्री०—तलवार (ह.नां., डिं.नां.मा.)

करवीराक्ष–सं०पु० [सं०] खर राक्षस का एक सेनापति जिसे श्रीराम ने मारा था (राम कथा)

करवौ–सं०पु० [सं० करक] १ धातु या मिट्टी का जल-पात्र विशेष, शिकोरा। उ०—कर कफनी कोपीन कर, कर करवा भर आब। अब मक्का जैबौ उचित, नवणौं नहीं नबाब।—ला.रा.
२ देखो 'करवरौ' (रू.भे.) ३ ऊंट। उ०—करवा चाल उतावळौ रै दिन थोड़ो घर दूर।—लो.गी. ४ बाजरी के सिट्टे में होने वाला एक कीड़ा विशेष जो बाजरी के कच्चे दानों को ही खा जाता है।

करश–सं०पु०— [सं० कर्ष] १ तोल, बाट (डिं.को.)
वि० [सं० कृश] २ दुबला, पतला, क्षीण (डिं.को.) ३ अल्प, सूक्ष्म।

करसक–सं०पु० [सं० कृषक] कृषक, किसान (डिं.को)

करसण–सं०स्त्री० [सं० कृषि] १ खेती, कृषि, कषि-कार्य। उ०—पोह कीरत बीज खेत रजपूती, दाह सत्रां उर खात दियौ। हळ झालौ करतां वड हाळी, करसण आरंभ गजब कियौ।—वरजूबाई
कहा०—करसण जठै ई दरसण—कृषि सब कार्यों में उत्तम है।
२ बागवानी का कार्य. ३ कृषक की स्त्री। उ०—करसण करसणियां किलकारौ करियौ।—ऊ.का.
सं०पु० [सं० कृषक] ४ कृषक, किसान. ५ खींचने की क्रिया या भाव। (मि० 'करसणौ')

करसणियौ–सं०पु०—कृषक, खेतिहर।
वि०—खींचने वाला।

करसणी–सं०स्त्री—१ किसान की स्त्री।
सं०पु०—२ किसान, कृषक, काश्तकार। उ०—गुजरात में करसणी ···गिणै।—बां.दा. ख्यात

करसणीक–सं०पु० [सं० कृषक] कृषक, किसान।

करसणौ, करसबौ [सं० कर्षणम्] १ मनमुटाव होना (द.दा.)
२ खींचना, तानना। उ०—नीठि छुटै आकास पोस निसि, प्रौढ़ा करसणि पंगुरिणि।—वेलि.

करसपति–सं०पु०— इन्द्र।

करसल–सं०स्त्री०—१ पत्थर की चौकियों की फर्श. २ दीवार की नींव के ऊपर का वह हिस्सा जो भूमि से सटा हुआ होता है।

करसलौ–सं०पु०—ऊँट, शुतुर। उ०—बींझा काचा करसला, म्हे छां कड़वी बेल। म्हे नीरां थे चर जावसौ, निपटै जासी खेल।
—बींझा सोरठ री वात

करसांण–सं०पु०—कृषक, किसान (डिं.को.)

करसाख–सं०स्त्री० [सं० करशाखा] उँगली (ह.नां.)

कर-सीकर–सं०पु० [सं० कर-शीकर] हाथी की सूंड का पानी (डिं.को.)

करसुक, करसूक–सं०पु०—१ नाखून (ह.नां., अ.मा.) २ किसान, कृषक (डिं.को.)

करसोड़ी–सं०स्त्री०—१ ऊँटनी।

करसौ–सं०पु०—१ ऊँट. २ बाजरी के सिरटे में होने वाला एक कोड़ा विशेष, जो बाजरी के कच्चे दानों को ही खा जाता है।
[सं० कृषक] ३ कृषक, किसान (डिं.को.)

करहंचा–सं०पु०—प्रथम चार लघु और फिर एक जगण का छंद विशेष (पिं.प्र.)

करह–सं०पु० [सं० कलभ] १ ऊँट (ना.डिं.को.) २ ऊँट का बच्चा। उ०—काछी करह बिथूंभिया, घड़ियउ जोइए आइ। हरणाखी जउ हसि कहइ, आंणिसि एथि विसाइ।—ढो.मा.

[सं० कलभ] २ हाथी का बच्चा. ३ फूल की कली. ४ दोहा नामक छंद का सातवां भेद जिसमें १६ गुरु वर्ण और १६ लघु वर्ण सहित ४८ मात्रायें होती हैं (पिं.प्र.)

करहउ–सं०पु०—देखो 'करह' (१,३)। थां सूतां म्हे चालिस्यां, एह निचिंती होइ। रइबारी ढोलउ कहइ, करहउ आछउ जोइ।—ऊ.का.

करहलउ–सं०पु० [सं० करभ] ऊँट। उ०—किणि गळि घालूं घूघरा, किणि मुखि वाहू लज्ज। कवण भलेरउ करहलउ, मूंध मिळावइ अज्ज।—ढो.मा.

करहलौ–सं०पु० [सं० करभ] ऊँट। उ०—काची कळी न हेळियो, गुणे न रीझवियोह। हेली थारो करहलो, गहमाती गमियोह।

—जलाल बूबना री बात

करहा–सं०स्त्री०—राठौड़ों की तेरह शाखाओं में से एक शाखा।

करहौ–सं०पु० [सं० करभ] ऊँट (डिं.को.) उ०—कांकर करहौ गार गज, थळ हैंवर थाकंत। त्रहूं ठौड़ हेकण तरह, चंगो धवळ चलंत।

(स्त्री० करही) —बां.दा.

करां–क्रि०वि०—कब। उ०—द्रौपत दुखियारीह, पूकारी अबळापणें। मदती हर म्हारीह, करणाकर करस्यौ करां।—रामनाथ कवियो

करांई–वि०—कभी का।

क्रि०वि०—कभी।

(यौ०—करांई-करांई)

करांक–सं०स्त्री०—कौख में होने वाली ग्रंथी (क्षेत्रीय)

क्रि०वि०—कब।

करांकियौ–सं०पु०—बाजरी के पौधे के डंठल की ग्रंथी में से निकलने वाला अंकुर जहाँ सिरटा उत्पन्न होता है।

करांगणी–सं०स्त्री०—कंगनी नामक एक अन्न।

करांगी–सं०पु०—एक प्रकार का कवच (कां.दे.प्र.)

करांचणौ, करांचबौ–क्रि०स०—मारना, संहार करना।

करांचणहार, हारौ (हारी), करांचणियौ— मारने या संहार करने वाला।

करांचाणौ—क्रि०स०।

करांचिओड़ौ, करांचियोड़ौ, करांच्योड़ौ—भू०का०कृ०।

करांचाणौ, करांचाबौ–क्रि०स०—मरवाना, संहार कराना।

करांचियोड़ौ–भू०का०कृ०—मारा या संहार किया हुआ

(स्त्री० करांचियोड़ी)

करांचीजणौ, करांचीजबौ–कर्म वा०—मारा जाना, संहार किया जाना।

करांचीजियोड़ौ–भू०का०कृ०— मारा गया हुआ (स्त्री० करांचीजियोड़ी)

करांछ–सं०स्त्री०—छलांग।

करांमत, करामत, करामात–सं०स्त्री० [अ० करामात] करामात, चमत्कार। उ०—आसल अनै करांमत अबको, भागीरथ सरखो कुळभांण। कर अखियात राखियौ कमधज, सुजड़ौ रै श्रोळै सुरतांण

—दुरगादास री गीत

करा–सं०स्त्री०—सीसोदिया वंश की एक शाखा।

कराइयोड़ौ–भू०का०कृ०—कराहा हुआ, चिल्लाया हुआ।

(स्त्री० कराइयोड़ी)

कराई–सं०स्त्री०—१ घास का वह ढेर जो सुरक्षित रखने के उद्देश्य से कांटों या खपच्चियों आदि से ढक दिया गया हो. २ कराने की क्रिया या मजदूरी. ३ देखो 'कड़ाई' (रू.भे.)

कराखी–सं०स्त्री०— आदमी के पहनने के वस्त्र में वह भाग जो बगल में लगाया जाता है।

कराग–सं०पु० [सं० कराग्र] १ हाथ का अगला भाग. २ उँगलियों का सिरा।

करागी–सं०स्त्री०—तलवार (मि० 'करग')

कराड़–वि०—१ तेज. २ अधिक, बहुत।

सं०पु० [सं०] १ बनिया, वैश्य, महाजन (डिं.को.)

२ देखो 'कराड़ौ (रू.भे.)

सं०स्त्री०—३ हद, सीमा। उ०—इण कह्यौ, 'हूं क्युं जाट पटेल थौ नही सु चारण दिया? हमें पाछा मांगियां दूं' तरे वात कराड़ बारै हुई।—नैणसी

कराड़णौ, कराड़बौ–क्रि०स० [प्रे.रू.] करवाना (करणौ का प्रेरणार्थक रूप)

कराड़ौ–सं०पु०—१ किनारा, तट। उ०—१ सौ किण भांति तळाव जांणे दूसरौ मांनसरोवर रातासीएके रड़ि रै माथै पांड रौ नीर पवन रौ मारिश्रौ कराड़ै फीण आछंटतौ ठेपां खाइनै रहिया छै।

—रा.सा सं.

उ० -२ थळ ची सरत सरद रत आगम। ठहर किया जळ ठांम थळै। वसु रूपा धार मेवाड़ा। वहै कराड़ा तोड़ वळै।

—महारांणा भीमसिंह री गीत

कराटौ–सं०पु०—अग्नि पर अधिक सेंकी हुई रोटी।

कराणौ–क्रि०स०—करवाना।

कराणहार, हारौ (हारी), कराणियौ—वि०।

करायोड़ौ—भू०का०कृ०।

कराबीण, कराबीणी, कराबीन–सं०स्त्री० [तु० क़राबीन] १ चौड़े मुंह की पुरानी बंदूक. २ कमर में बांधने की एक छोटी बंदूक।

उ०—तीर तोपां कराबीणां दूरबीणां लाया तोल, बोल फेर उडाया पाखांण तेल बांण।—बां.दा.

उ०—२ सेर बच्चा कराबीणी खंजर कटार। सिरोही असील तेग बाहे असवार।—शि.वं.

करामत- देखो 'करामात'।

करामति, करामती, करामतीवत–वि०—देखो 'करामाती'।

सं०पु०—सिद्ध, जिसमें कुछ चमत्कार हो (ल.पिं.)

करामात–सं०स्त्री० [ग्र० करामत का बहु०] चमत्कार, करिश्मा।

उ०—पातिसाह ईश्वर की जात, चौरासी पीरां की **करामात**। हिंदू मुसलमांन सलांम कर ठाढे, एक तें एक सुमेर से गाढे।—रा.रू.

करामाती, करामातीक–वि०—करामात या चमत्कार करने व दिखलाने वाला सिद्ध। उ०—तठे 'बूड़ो' तौ राज करै अर पाबू बरस पांचेक मांही पण **करामातीक**।—पाबूजी री वात

करायोड़ौ–भू०का०कृ०—कराया हुआ (स्त्री० करायोड़ी)

करार–सं०पु० [ग्र०] १ कौल, इकरार, वादा। उ०—तद रावजी कयौ—हूं जोधपुर जाय पूजनीक चीजां मेल देसूं। पाछे पूजनीक चीजां रो **करार** कर रावजी जोधपुर पधारिया।—द.दा. २ नदी का किनारा. ३ ताकत। उ०—करि मन धीर **करार**, विलवै कांइ विरही थयौ सयणे न लही सार, जावण दै परहा जसा।—जसराज

४ धैर्य। उ०—नैण भरया जावै नहीं, तज्यौ न जाय **करार**। दोय पुरुस री प्रीत रै, एकण ऊपर भार।—ग्रज्ञात

करारमदार–सं०पु०यौ०—कौल-करार, इकरार, वादा।

करारौ–वि० (स्त्री० करारी) १ समर्थ, शक्तिशाली, जबरदस्त।

उ०—किसनावत रण कुंभ **करारौ**, रांम सुजाव सुजांण ग्रकारौ।

—रा.रू.

२ दृढ़चित्त. ३ जोशीला. ४ कड़ा, कठोर। उ०—**करारा** जाब पतसाह सुं करंतौ छाकियौ बैर ग्रसमांन छागौ।—बलू चांपावत रौ गीत

५ दृढ़, मजबूत। उ०- मेवाड़ थकां पूरब खंड मातहै, ग्राइयौ सगत हरा उनमांन। जग परदेस जीतवा जावै, मरवा गयौ **करारौ** 'मांन'।

—मांनसिंह रौ गीत, दुरसौ ग्राढ़ौ

६ भयानक, भयंकर। उ०—'कला' हराजुध वार **करारी**, जुध जीपण ग्रवसांण जिता। पिता कहै साबास पूत नै, पूत कहै साबास पिता।

—बळरांम गौड़ रौ गीत

७ कठिन, दुस्वर। उ०—कहतां गरथ न लागै कोई, करतां घणौ **करारौ**। साव इसौ भोळं वोसरनै, चाखौ तौ चितारौ।—ग्रज्ञात

सं०पु० (स्त्री० करारी) १ मजबूती, दृढ़ता. २ विश्वास ३ किनारा ४ कौग्रा. ५ खूब ग्रधिक सेंकने से जो कड़ा हो गया हो।

कराळ–वि०—भीषण, भयानक। उ०- हाग्गडदि हुवै ग्रालम हैकंपे, कागुड़दि कयामत जांण **कराळ**।—र.रू.

सं०पु०—१ गाड़ी या छकड़े का ग्रग्र भाग. २ देखो 'कराळदंतौ'।

कराळक–सं०पु० [सं० करालक] वृक्ष (नां.मा., ग्र.मा.)

कराळकुमळ–सं०पु०—वह घोड़ा जिसका नीचे का जबड़ा लम्बा हो। (शा.हो.)

कराळतेज–सं०पु०—वह घोड़ा जिसके मुंह की ठुड्डी मोटी ग्रौर लंबी हो (ग्रशुभ, शा.हो.)

कराळदंतौ–सं०पु०—बड़े-बड़े दांतों वाला घोड़ा जो ग्रशुभ माना जाता है (शा.हो.)

कराळिक–सं०पु०—वृक्ष (ह.नां.)

कराळी–वि०स्त्री०—भयावना, भयंकर, कराल।

सं०स्त्री०—भूमि को समतल बनाने के लिये धातु या लकड़ी का चौकोर उपकरण।

कराळु, कराळ—वि० [सं० कराल] भयंकर, कराल। उ०—कोपे **कराळू** ग्रंध जाळू बंध वाळू बोल ए। सब में गोपाळू है दयाळू मार डाळूं कोल ए।—दयाळदास

कराळौ–वि० [सं० कराल] १ कराल, भयंकर। उ०—धमक वाज धर धुज सोर वाळी धधक, यळा धक ग्रताळी बहोत लीधौ। कमाळी चंद री तरह 'बखतै' कमंध, **कराळी** सेन विच दुरंग कीधौ।

२ विकट. ३ कठोर। —पीरदांन ग्राढ़ौ

करावणौ, करावबौ–क्रि०प्रे०रू०—देखो 'कराणौ' (रू.भे.)

करावनौ–वि०—भयंकर, भयानक। उ०—डरै न सिंघ डोल ते स्व डोलते डरावने, करोळ टोळ-टोळ कोळ-कोळ ते **करावने**।—ऊ.का.

करावळ–सं०पु० [तु० करावळ] सेना के मध्य का भाग (द.दा.)

करिंद–सं०पु०—हाथी (डिं.को.)

करि–स०पु० [सं० कर] हाथ। उ०—जंग सुपत्तळ **करि** कुंग्रळ, झीणी लंब-प्रलंब। ढोला एही मारुई, जांणि क कणयर-कंब।—ढो.मा.

ग्रव्यय—करण या ग्रपादान कारक का विभक्ति चिन्ह से।

उ०—१ सुंदर सूळ सील कुळ **करि** सुध, नाह किसन सरि सूझै नाह।

—वेलि.

उ०--२ राजा युवनास्वर रै पुत्र नहीं। तीयै **करि** राजा सचीत रहै।

—चौबोली

उ०—३ जिण घोर समय में सस्त्रां रा प्रहार **करि** व्याकुळ हुवौ नबाब रण मस्तखांन तौ कुमार भोज नूं ले'र एक गरत्त में त्रणां रा समूह रै हेठै दबी रहियौ।—वं.भा.

करिंग—देखो 'करांग'।

करिछप–सं०पु०—कामदेव (ग्र.मा.)

करिणी–सं०स्त्री०—हथिनी (वं.भा.)

करिबत–सं०स्त्री०—करोत, ग्रारा।

करिमार–सं०स्त्री०—१ कृपाण. २ तलवार। उ०—समचै एम सधर नर सीहौ, **करिमारि** धुणंतौ सु-करि।—सीहा-निरवांण रौ गीत

करिमाळ–सं०स्त्री०—तलवार, खड्ग (मि० 'करमाळ') उ०—सोहिली भोमि वांका सुभट्ट। झूझार दियइ **करिमाळ** झट्ट।—रा.ज.सी.

करिया–सं०पु०—[ब.ब.] कुए में चड़स उतारने व निकालने के लिये उसके वजन को संतुलित रखने व मोट को कुए की दीवार से दूर रखने के लिए कुए के बाहर लगाये जाने वाले ढांचे के ग्राजू-बाजू लगे लम्बे लट्ठ। ये दो होते हैं जिनके ऊपरी सिरे पर मोट निकालने की गिर्री लगी हुई होती है।

करियोड़ौ–भू०का०कृ०—किया हुआ (स्त्री० करियोड़ी)

करियौ–सं०पु०—ऊँट का बच्चा या छोटा ऊँट।

करिवांण–सं०स्त्री० [सं०कृपाण] कृपाण, तलवार।

उ०—ग्रीव तोड चाल्यौ तुरीय पलांण। सीगरिण जोड़लियां करिवांण।
—वी.दे.

करिसण–सं०स्त्री०—देखो 'करसण'। उ०—सरवर नदि सवण कोडि बहु करिसण, मांडै माप अधिक मंडळ।—हरिसूर बारहठ

करींद–सं०पु०—हाथी, गज। उ०—जळि बळि तन मन छार, ग्रंत दोन्यूं पख छीजे। कांम करींद करि कुबुधि के, जि बह कीया कै काजै।
—ह.पु.वा.

करी–सं०पु० [सं०] हाथी, गज (डिं.को.) २ छत पाटने की शहतीर. ३ कृषक की स्त्री (क्षेत्रीय) ४ पथ्य, परहेज।

ग्रव्यय—करण या ग्रपादान कारक का विभक्ति चिन्ह, से।

उ०—रानि रुळंतां थया दिन घणा, ढोली नयरि गया उलगाणा। ग्रलूखांन ग्रंधारूं करी, वस्त्र एक मुखि ग्रंतरि धरी।
—कां.दे.प्र.

करीजणौ, करीजबौ–क्रि० कर्म वा०—किया जाना।

करीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—किया गया हुग्रा। (स्त्री० करीजियोड़ी)

करीट–सं०पु० [सं० किरीट] शिरोभूषण, मुकुट, ताज (डिं.को.)

करीटी–सं०पु० [सं० किरीटी] १ ग्रर्जुन (डिं.को.) २ इन्द्र (ह.नां.)

करीठ–वि०—ग्रत्यंत काला। उ०—ग्रंग बळीठं रोस धीठं रत्रदीठं नैण ए। काळा करीठं ढाल पीठं खाग रीठं दैण ए।—पा.प्र.

करीनि, करीनी—देखो 'करिणी' (रू.भे.) उ०—बिमांन व्योम तैं भुरै ग्रनेक रंभ उत्तरैं। महेस मुंडमाळ कौ, चल्यौ करीनि खाल कौ।
—ला.रा.

करीब–क्रि०वि० [ग्र० क़रीब] १ पास, समीप। उ०—हौ गरीब वह गरीब हीय तैं हरचौ। काळ कौ गरीब कौ करीब नां करचौ। २ लगभग।
—ऊ.का.

करीबौ–वि० [ग्र० क़रीब] पास का, निकट का।

करीम–सं०पु०—ईश्वर का एक विशेषण, ईश्वर।

वि०—१ दयालु, कृपालु. २ उदार, दाता।' उ०—काबिल कलांम कहियत करीम, रहमांन इल्म रय्यत रहाम।—ऊ.का.

करीमार–सं०पु०— हाथी ग्रादि को मारने वाला, सिंह (डिं.को.)

उ०—खरेस सार रे मूंढ़ै काळ हेत फेट खावै, हार करीमार रै। मरे स घालै हाथ।—रावत भीमसिंह सळूंबर रो गीत

करीमौ—देखो 'करीम'।

करीर, करीरौ–सं०पु०—१ बांस का नया बल्ला. २ करील का वृक्ष (डिं.को.) उ०—कूंभड़ियां कुरळाइयां, ग्रोळह बइसि करीर। सारहली जिउं सल्हियां. सज्जण मंझ सरीर।—ढो.मा.

करील–सं०पु० [सं० करीर] बिना पत्तियों का एक कांटेदार वृक्ष।

करीवर–सं०पु० [सं० करी] हाथी, गज (डिं.नां.मा.)

करीस–सं०पु० [सं० करीष] १ उपला, कंडा (डिं.को.)

[सं० करीश] २ हाथियों में श्रेष्ठ हाथी, गजराज।

करीसाग–सं०स्त्री० [सं० करीषाग्नि] उपलों की ग्रग्नि (डिं.को.)

करु–सं०पु०—१ खेत में लगाया जाने वाला हिंदवाणी व इंद्रायण के फलों का ढेर. २ एक प्रकार का घास विशेष।

करुण–सं०पु० [सं०] १ दूसरों के दुःख के ज्ञान से उत्पन्न होने वाला मनोविकार या दुःख. २ साहित्य के नौ रसों के ग्रंतर्गत एक प्रमुख रस. देखो 'करुणारस' ३ ईश्वर, परमेश्वर।

करुणा–सं०स्त्री० [सं०] १ देखो 'करुण'. २ कृपा, मेहरबानी (ग्र.मा.) ३ दया. ४ प्रियजनों का वियोगजनित दुःख।

करुणाकर, करुणाकरण, करुणाकरि–सं०पु०—करुणानिधान, ग्रत्यंत दया करने वाला। उ०—१ दुज्ज रांम रघुरांम दमोदर, क्रसन बुद्ध कळकी करुणाकर।—ह.र. उ०—२ रांमा ग्रवतारी वहे रणि रावण, किसी सीख करुणाकरण।—वेलि.

करुणानिधांन, करुणानिध, करुणानिधि–सं०पु०—१ दया के सागर, दयानिधि. २ ईश्वर। उ०—बारज द्रग बारद वरण, गहर धरण गुणगाथ, करुणानिध ग्रकरण करण, नमो नमो रघुनाथ।—र.रू.

करुणानिलय–सं०पु० [सं०] दया के घर, ईश्वर का एक विशेषण।

उ०—नित निरविकार निरभय निपुण, नारायण करुणानिलय।
—ऊ.का.

करुणामय, करुणामै–वि०—करुणाकर, दयालु, कृपालु। उ०—हरि हुए वराह, हुए हरिणाकस, हूं ऊधरी पताळ हूं। कहो तई करुणामै केसव.सीख दीध किण तुम्हां सूं।—वेलि.

करुणारस–सं०पु० [सं०] साहित्य के नौ रसों के ग्रंतर्गत एक रस जिसका ग्रालंबन बंधु या इष्ट मित्र का वियोग, उद्दीपन मृतक का दाह या वियुक्त पुरुष की किसी वस्तु का दर्शन, उसका गुण श्रवण ग्रादि तथा ग्रनुभाव भाग्य की निंदा, ठंडी सांस निकालना, रोना-पीटना ग्रादि है।

करुणासागर—देखो 'करुणानिधांन'।

करुप, करुपक–वि० [सं० कुरुप] १ कुरूप, बदसूरत. २ बेढ़ंगा, बेडौल।

करुवौ— देखो 'करवौ' (रू.भे.)

करूंदौ–सं०पु०—छोटे बेर के समान खट्टे फलों वाला एक कंटीला झाड़।

करू—देखो 'करु' (रू.भे.)

करूकणौ, करूकबौ–क्रि०ग्र०—कौए का बोलना। उ०—नित नित ग्राय करूकै म्हारी नीमड़ली रै बीच, मारौ ए रतनादे दासी कागलिया रै तीर—लो.गी.

करूर–वि० [सं०क्रूर] १ भयंकर, भयानक। उ०—ऊतरियौ राजा 'ग्रजन', कोपी राड़ करूर। उवर हरक्खै ग्रापरां, नरां परक्खै नूर।
—रा.रू.

२ निर्दयी, क्रूर, निष्ठुर। उ०—ग्रसैहो बदग्रां बांणी बोलतौ पुलस्य ग्रंसी, क्रोधाळ त्रसूळ तसां तोलतौ करूर।—र.रू.

३ कठोर। उ०—पदमासण आसण जोगपूर, क्रोध में हुतासण तप करूर—वि.सं.

करें–क्रि०वि०—कब।

करेंकौ–वि०—कभी का।

करेजौ–सं०पु० [अ० कलेजा] कलेजा, यकृत।

करेणपती–सं०पु० [सं० करी+पति] हाथी (डि.को.)

करेणू–सं०स्त्री० [सं०] हथिनी (डि.को.) उ०—सुणी कीरती छाकवाळै सवादी, बिनां नारि हालै नथी कील बादी। करी गैल तौ एक दीधी करेणू, बळे डाकदारां सजे लंब बेणू।—वं.भा.

करेणूपती–सं०पु०—हाथी (डि.को.)

करे-रौ-रोग–सं०पु०—पशुओं का एक रोग विशेष जिससे उनके अगले पैरों के मूल स्थान पर दर्द होता है। इसके कारण पशु घास खाना व पानी पीना तक छोड़ देते हैं।

करेलड़ौ–सं०पु०—१ ऊँट (डि को.) २ एक राजस्थानी लोक गीत।

करेलियौ, करेलौ–सं०पु०—१ करील का वृक्ष। उ०—करहा चरी करेलिया, पांन चीतारि म रोय। सरवर लाभै सिरजियौ खूहडीय मुंह खोय।—ढो.मा. [सं० करेला] २ तरकारी के काम में आने वाला एक प्रकार का कटु फल।

कहा०—करेलौ नै नीम चढ़ियौ—करेला और नीम चढ़ा। स्वयं दुष्ट तो है ही और उस पर फिर दुष्टों का साथ। इससे अधिक दुष्ट होने की ही संभावना होती है।

करेवौ–सं०पु०—कौआ। उ०—धन हरिणाखी ईम कहई, निहचई ओळग चालणहार। डावउ करेवउ करकरइं, महा अपसूकन होज्यौ ए! भुंवाळ।—वी.दे.

करैं–क्रि०वि०—कब (रू.भे. 'करें')

करैक–क्रि०वि०—१ कभी. २ कभी-कभी. ३ कब तक।

करैवौ–सं०पु०—१ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.) २ देखो 'करेवौ'

करोई–सं०स्त्री०—वक्षःस्थल की हड्डी। उ०—करोई काळजो छेद भटकी कहर, खळ सबळ ढाहियौ अचळ खीची।

—भरड़ा राठौड़ री गीत

करोट–सं०पु०—१ सहायता, रक्षा। उ०—नरपत दळ भारत निरख, करवा देस करोट। आयौ जोधांणै 'अभौ', मन भायौ नवकोट।

—रा.रू.

२ करवट (रू भे. 'करौट')

करोटि–सं०स्त्री० [सं०] मस्तक की हड्डी (डि.को.)

करोड़–वि० [सं० कोटि]सौ लाख की संख्या के बराबर।

मुहा०—करोड़ां में एक—अमूल्य, चुनी हुई।

कहा०—करोड़ दिवाळ्यां राज करौ—बहुत दिन जियो और सुखी रहो का आशीर्वादात्मक वाक्य।

सं०पु०—सौ लाख की संख्या, १००००००० ।

करोड़पती–सं०पु० [सं० कोटिपति] जिसके पास करोड़ों रुपये हों, अत्यन्त धनी व्यक्ति।

करोड़ी–सं०पु०—बादशाही कर वसूल करने वाला व्यक्ति (प्राचीन) उ०—हजरत रै दाय आवै तिण जागीरदार नूं दीजै, आवै करोड़ी भेजीजै, राव हुकमी चाकर छै।—नैणसी

करोड़ीधज, करोड़ीमल–सं०पु०—करोड़पति।

करोत–सं०पु० [सं० करपत्र] लोहे का बना लकड़ी चीरने का एक दांतेदार औजार विशेष। उ०—घर करोत अवधूत, बहुत मजबूत महाबळ।—मे.म.

कहा०—करोत, कुलाड़ी, कपटी नर, मिळ्यां नै बिछड़ावै। सुई, सवागी, चतुर नर बिछड़यां नै मिळावै—करोत और कुल्हाड़े की तरह कपटी मनुष्य मिले हुए मनुष्यों में फूट डालता है। सुई, सुहागे की तरह चतुर व्यक्ति लड़ने वालों में मेल स्थापित कराता है। (अल्पा० 'करोतियौ')

करोतियौ—देखो 'करोत' (अल्पा.)

करोती–सं०स्त्री०—देखो 'करोत'।

करोतौ—देखो 'करोत'।

करोल–सं०पु० [तु० क़रौली] १ वह आदमी जो शिकार को घेर कर लाता है। उ०—दूसरे ही दिन बादसाह सिकार नूं हालियौ और जलाल नूं आपरै साथ लियौ। करोलां रै साथ सिकार खेलै छै।

—जलाल बूबना री बात

२ बन-रक्षक (डि.को.)

वि० [सं० कराल] भयंकर, डरावना।

करोली—सं०स्त्री० [तु० क़रौली] एक प्रकार का छुरा जिससे जानवरों का शिकार करते हैं या शत्रुओं को मारते हैं।

करौ–सं०पु० [सं० कृषक] (स्त्री० करी) १ किसान, कृषक. २ एक प्रकार का कीड़ा जो बाजरी व ज्वार के सिट्टे में अनाज के दानों को नाश कर देता है. ३ मोट खींचने के लिये काष्ठ के लम्बे लट्ठों के सिरे पर जो कुए के ऊपर रहते हैं गिर्री की धुरी रखने के लिये किया जाने वाला गड्ढा।

करौट–सं०पु०—करवट (मि० 'करोट'—रू.भे.) उ०—कांकड़ त्रंबक त्रहकिया, ऊठौ खुलियौ कोट। सुणतां नाहर आळसी, सूतौ बदल करौट।—वी.स.

करौळ–सं०पु० [तु० क़रौली] देखो 'करोल' (रू.भे.) उ०—हलौ करौलां तबलां, बाज घेरियौ गिरंद हिंदू।—अज्ञात

वि० [सं० कराल] भयंकर, डरावना।

करौली–सं०स्त्री० [तु० क़रौली] १ शिकार का पीछा करना. २ एक प्रकार का छुरा जिससे जानवरों का शिकार करते या शत्रु को मारते हैं।

कळंक–सं०पु० [सं० कलंक] १ दाग, धब्बा, अपयश, लांछन।

मुहा०—१ कळंक लागणौ—बदनाम होना. २ कळंक लगाणौ—बदनाम करना, लांछन लगाना।

कहा०—कळंक री टीकौ लागणौ ही है—जब लाचारी से कोई बुरा

काम करना पड़े, तब चाहे अच्छा काम करो चाहे बुरा, कलंक तो लगेगा ही।

२ दोष. ३ पाप (अ.मा.)

वि०—काला, श्याम (डिं.को.)

कळंकी-वि० [सं० कलंकित] १ दोषी, दोषयुक्त। उ०—मिळण धरै पण जैतमाल सवियांण सहर का। पात कळंकी पीठवो निकळंकी करका।—दुरगादत्त बारहठ. २ अपराधी, पापी।

सं०पु० [सं० कल्कि] विष्णु का अंतिम चौबीसवां अवतार। कल्कि-पुराण के अनुसार यह कलियुग के अंत में होगा। उ०—कळंकी निकळंक नाथ तू सब कळज पांणह।—केसोदास गाडण

कलंग-सं०स्त्री०—१ एक राग विशेष (संगीत) २ एक पक्षी विशेष. ३ हिंदवानी. ४ कलिंग देश. ५ एक वर्षा ऋतु के अंत में होने वाला पतिंगा जैसा कीट जिसका दूसरा नाम राजस्थानी में भींगी है (डिं.को.)

कलंगी-सं०स्त्री०—पगड़ी में सजाने का एक आभूषण, शिरोभूषण।

कलंडर-सं०पु०—अंग्रेजी तिथि-पत्रक।

कलंदर-सं०पु० [अ०] १ सूफी शाखा के एक प्रकार के मुसलमान वियोगी साधू। उ०—कुतब गौस अबदाळ सूफी अनै कळंदर पीर-जादा मिळै सांझ परभात।—महाराजा जसवंतसिंह रौ गीत

२ योगी. ३ रीछ बंदर आदि को नचाने वाला. ४ दारिद्रय, निर्धनता।

कलंदरी-सं०पु०—एक प्रकार का तीर विशेष (अ मा.) उ०—कलंदरी तीर सूं जाजम रौ डोरौ कट जाय (क कु बो)

कलंब-सं०पु० [सं०] १ बाण, तीर (ह.नां., डिं.नां.मा.) २ लोहे के वे नुकीले कीले जो कपाटों में जड़े रहते हैं। उ०—अर आपरी आऊरे बळ ऊबरिया अंग नुं कंवाड़पणा में गाढ़ो करण कलंब रूप कांटां में जड़ियौ।—वं.भा.

कळ-सं०पु० [सं० कल] १ यश. २ शान्ति, चैन, सुख। उ०—प्रीत कियां सुख ना मोरी सजनी, जोगी मित न कोई। रानि दिवस कळ नाहिं पड़त है, तुम मिळियां बिन मोई।—मीरां

मुहा०—कळ पड़णौ—चैन होना, शान्ति से बैठना।

३ संतोष. ४ विश्राम. ५ यंत्र, पुर्जा. ६ दुःख, संकट (अ.मा.) ७ कळह, झगड़ा (अ मा.) उ०—कळ चडै जोय चंदजसनांमो करै। मरद साचा जिकै आय अवसर मरै।—हा.झा.

८ प्रभाव, दबाव।

कहा०—कळ सूं कळ दबै—किसी आदमी से कोई काम कराना हो तो उस पर जिनका दबाव पड़ता हो उनसे दबाव डलवाना चाहिये तभी काम बन पाता है।

९ युद्ध, रण। उ०—भुज बुहवां बळ बीस भुज, कळ दस माथा काट। तैं दीधौ दसरथ तणा, दस सिर धर दहवाट।—बां. दा.

१० कलियुग। उ०—जोवरणों इंद कहै गुण आडां, खिण वरसै विलरै खिण। 'जसवंत' हरा तूझ चित जोतां, कळ बिच दीजै मीढ़ किसै।
—अज्ञात

११ कथा, वृत्त, वृतान्त. १२ शत्रु, दुश्मन। उ०—पातल हरा निमौ पुरसातन, कळ दळ सबळ कळासै। उरड़ै फौज धजा बिच आधी, गुण की गजां गरासै।—नाहरसिंह आसियौ

१३ वीर्य. १४ राक्षस, दैत्य, दानव—(अनेका.)

१५ संसार, जगत। उ०—१ कळ में बुधवंता करै, सांपड़ विमळ सरीर। पांण न मूढ़ पखाळही, नदी बहंते नीर।—बां.दा.

उ०—२ कळ माया खाया केतां ही, खांन 'कमाले' माया खाही।
—कमा विहारी रौ गीत

१६ वंश, कुल. १७ 'रघुवर जस प्रकास' के अनुसार टगण के ६ वें भेद का नाम (रू.भे. 'कळि') १८ कपट, छल (ह.नां.) १९ उपद्रव (अनेका.) २० कामदेव (अ.मा.) २१ योद्धा (अ.मा.) २२ अव्यक्त मधुर ध्वनि, कल-कल की ध्वनि. २३ कला. २४ तरकीब, युक्ति, ढंग।

कहा०—कळ सूं होवै सो बल सूं नहीं होवै—जो कार्य तरकीब से होता है उसमें शक्ति-प्रयोग व्यर्थ है। शक्ति मात्र से ही हरेक कार्य नहीं हो सकता, उपाय की भी जरूरत होती है।

२५ कांति, दीप्ति। उ०—अवधेस उभंग जीपण जंग कोटि अनंग धारि कळं।—र.ज.प्र. २६ कृपा, दया (अ.मा.) २७ समय, बेला. २८ शक्ति, बल, ताकत। उ०—प्रांणे आयोड़ी जळ में जळ पीणी। कांणी घूंघट में कळपै कब हीणी।—ऊ.का.

२९ बंदूक का घोड़ा। [सं० कला] ३० छंद शास्त्रानुसार मात्रा यथा त्रिकळ, चौकळ।

वि०—१ मनोहर, सुन्दर, प्रिय। उ०—छैल छबीले नवळ कांन्ह संग स्यांमा प्रांण पियारी, गावत चार धमाळ राग तंह दे दे कळ करतारी।—मीरां २ मधुर. ३ तंदुरुस्त, स्वस्थ. ४ काला, श्याम।

क्रि०वि०—प्रकार, तरह भांति। उ०—अहतै सत डौर 'जगा' छत्रिमां गुर, बोह मोजां बिध अतुळ बळ। ऊडी जग ऊपर आहाड़ां, कीरत गूडी तणी कळ।—महारांणा जगतसिंह रौ गीत।

कल-क्रि०वि० [सं० कल्य] १ आगामी या आने वाला दूसरा दिन. २ बीता हुआ दिन।

कळअगळौ, कलआगळौ-वि० [सं० कलि+रा० अगळौ] युद्ध में अग्रणी, सेनापति। उ०—कळ चाळी कळअगळी, रूपौ रांमचंदोत। अमी उबारण आपणां, मेछां कारण मौत।—रा.रू.

कळकंठ-वि०—मधुर कण्ठ वाली, मधुरभाषिनी।

सं०स्त्री०—कोयल। उ०—रवि बैठौ कळसि थियौ पालट रितु, ठरे जु डहकियौ हेम ठंठ। ऊडण पंख समारि रहे अलि, कंठ समारि रहे कळकंठ।—वेलि.

कळकंटी-सं०पु०—पक्षी (अ.मा.)

कलक-सं०स्त्री०—१ आवाज, ध्वनि, हल्ला-गुल्ला। उ०—कलक भेंक सगत पियण काळ रा, दलेसां साल रा ताप देणा।—रांमलाल आढ़ौ

कळकणो, कळकबो—क्रि०अ०—१ प्रकाशमान होना. २ गर्म होना. ३ खौलना. ४ आवाज करना. ५ कड़कना, गरजना. ६ संतप्त होना।

कळकणहार, हारो (हारी), कळकणियो—वि०।

कळकिओड़ो, कळकियोड़ो, कळक्योड़ो—भू०का०कृ०।

कलकतो—सं०पु०—कलकत्ता नामक शहर।

कहा०—कलकत्ते रो धारो, बाप सूं बेटो न्यारो—बड़े शहरों में बेटा बाप से भी अलग रहता है। आधुनिक सभ्यता का यही ढंग है।

कळकळ—सं०स्त्री०—१ गर्म होने या खौलने की क्रिया या भाव. [अनु०] २ खौलते हुए पदार्थ से उत्पन्न ध्वनि. ३ कोलाहल, शोर, चिल्लाहट, अशान्ति। उ०—चाळकयराज रा एक भाई दोय पुत्र मारि गुजर रा कटक में **कळकळ** मचायो।—वं.भा.

कलकल—सं०स्त्री० [अनु०] १ मधुर अस्पष्ट ध्वनि. २ पानी के प्रवाह से उत्पन्न ध्वनि।

कळकळणो, कळकळबो—क्रि०अ०—१ चमकना। उ०—१ **कळकळिया** कुंत किरण कळि ऊकळि, वरजित विसिख विवरजित वाउ। धमि-धड़ि धबकि धार धारूजळ, सिहरि सिहरि समखे भिळाउ।—वेलि.

उ०—२ तरु संतोस तणेह, नर छाया बैठा नहीं। **कळकळती** किरणेह, बांका भटके लोभ वन।—बां.दा. २ देखो 'कळकणो' (रू.भे.) ३ कष्ट से पीड़ित होना।

कळकळाट—सं०पु०—१ कलह लड़ाई. २ दुःख, कष्ट, संकट।

कळकळाणो, कळकळाबो—क्रि०स०—१ चमकाना. २ गर्म करना, खौलाना. ३ तंग करना, कष्ट देना. 'कळकळणो' का स०रू०।

कळकळो—सं०पु०—कलह, लड़ाई, टंटा।

वि०—उष्ण, गर्म।

कळका—सं०स्त्री० [सं० कलिका] कौंच नामक लता या उसकी फली (अ.मा.)

कलकार—सं०स्त्री०—१ हर्ष-ध्वनि. २ आवाज, चिल्लाहट, ध्वनि, शोर। उ०—**कलकार** वीर वांणी कजाक, हलकार दुहूं बळ बाज हाक।—वि.सं. ३ पुकार।

कळकाळ—सं०स्त्री०—कटारी।

कळकी—सं०पु० [सं० कल्कि] विष्णु का चौबीसवां अवतार जो कलियुग के अंत में संभल (मुरादाबाद) में कुमारी कन्या के गर्भ से होगा (पौराणिक)

कळको—सं०पु०—द्रव पदार्थ का आंच पर पूर्ण गर्मी प्राप्त करने का शब्द।

कलक्क—सं०स्त्री०—ध्वनि, आवाज। देखो 'कलक' (रू.भे.)

कळक्कणो—देखो 'कळकणो' (रू.भे.) उ०—हुव मुक्ख ललक्क **कळक्क** हली। नब लक्ख थई चख लक्ख लली।—पा.प्र.

कळखारी—वि०—झगड़ालू, कलहप्रिय। उ०—कालर खेत कसूत हळ, घर **कळखारी** नार। मैला जिण रा कापड़ा, नरक-निसांणी च्यार।

कळचाळ—सं०पु०—देखो 'कळचाळो' (रू.भे.) उ०—महकीय चील पंखी **कळचाळ**। महकीय रंभ गळे चंप माळ।—गो.रू.

कळचाली—सं०स्त्री०—दासी (अ.मा.)

कळचाळो—सं०पु० [सं० कलि+रा० चाळो] १ युद्ध। उ०—चांपा करण मुर्द **कळचाळा**। साथ वळे राठौड़ सिघाळा।—रा.रू.

२ युद्धप्रिय, योद्धा, वीर। उ०—१ **कळचाळो** कळ अग्गळो, रूपो रांमचंदोत। अमी उबारण आपणी, मेछां कारण मोत।—रा.रू.

उ०—२ दमंगळ पळ चावां बद देतो, झाटक प्रसण मेल खग झाळ। चितारे तोने **कळचाळा**, किलव रंभ बाबर किरणाळ।

—रूपसींग पीपाड़ा री गीत

३ छेड़छाड़. ४ उत्पात, उपद्रव।

कळजुग—सं०पु० [सं० कलियुग] १ चार युगों में से अंतिम युग, कलि-काल. २ बुरा समय।

कळजुगियो, कळजुगी—वि० [सं० कलियुगी] १ कलियुग का, कलियुग-संबंधी। २ दुराचारी, पापी।

कळझळ—सं०स्त्री०—कलह। उ०—हुंसा उडग्या, घर री लाज डूबगी, टेवकी टूटगी, घर में **कळझळ** मचगी।—वरसगांठ

कळण—सं०स्त्री०—१ 'कळणो' क्रिया या भाव। देखो 'कळणो'. २ मूंग मोठ, उर्द आदि द्विदल अनाज की दाल जो भिगो कर पीसने के काम ली जाती है। उससे हलुवा, बड़ियां आदि बनाये जाते हैं। ३ कष्ट, दुःख. ४ दलदल, वह महीन बालू रेत जहां कोई वस्तु या पैर अंदर धंस जाय। उ०—सरधा घटगी सेंग, बेग बिरधापण वळियो। निकळण रो रथ नहीं **कळण** ऊंडी में कळियो।—ऊ.का.

कळणो, कळबो—क्रि०अ०—१ नाश होना, मिटना। उ०—१ आंण तै नीर पाताळ उथेड़िया, कमठ वाराह चा मांण **कळिया**। सेस गळिया गुमर गंगजळ सालुळे, महण परवाह परवाह मिळिया।

—जोगीदास कवारियो

उ०—२ असी रांण राजेस कमठांण कीधो अकळ, कोड़ जुग लगां नह जाय **कळिया**। पाळ जोय हेम रा गरब गळिया पहल, टाळ जोय समंद रा गरब टळिया।—जोगीदास कवारियो

२ दल दल या कीचड़ में फँसना। उ०—**कळियां** कूंळां री कादे में कळगी। विसहर संगत सूं पीपळियां बळगी।—ऊ.का.

क्रि०स० [सं० कलनम्] ३ भीगे हुए द्विदलों को पीसना. ४ डूबना, सराबोर होना। उ० —**कळिया** दुख सागर जन काढ़ै, विपत रोग अघ आगर बाढ़ै।—र.ज.प्र.

कळणहार, हारो (हारी), कळणियो—वि०।

कळिओड़ो, कळियोड़ो, कळ्योड़ो—भू०का०कृ०।

कळीजणो, कळीजबो—भाव वा०, कर्म वा०।

कळत—सं०स्त्री० [सं० कलत्र] देखो 'कळत्र' (अ.मा.)

कळतकंठ—सं०पु० [सं० कलित कंठ] पपीहा (अ.मा.)

कळतरो—सं०पु०—लोहे की तगारी।

कळतांन–सं०पु०—१ महीनतम पीसने की क्रिया. [सं० कलित+स्थान] २ कपड़ा।

कळतीतर–सं०पु०—तीतर से बड़ा एक प्रकार का पक्षी विशेष जिसके वक्षःस्थल का रंग श्याम होता है।

कळत्र, कळत्र–सं०स्त्री० [सं० कलत्र] १ स्त्री, पत्नी (अ.मा.) (रू.भे.) उ०—तु अजमेरां राजियौ। पुत्र कळत्र सहू परिवार।—वी.दे. २ कटि, कमर (अ.मा.)

कळदार–वि०—यांत्रिक जिसमें कुछ यंत्र आदि या कल-पुरजे हों। उ०—कुंवरजी वसतां महल रै आळै कळदार में राखी। —पलक दरियाव री बात

सं०पु०—चांदी या धातु का बना रुपए का सिक्का। उ०—कळजुग में कळदार विन, भायां पड़ियौ भेव। जिण घर आयौ जोर में, दरसण आवे देव।—ऊ.का.

कळधन–सं०पु० [सं० कला=बत्ती+इंधन=कलेन्धन] ज्योति, दीपक (अ.मा.)

कळधारण–सं०पु०—इंद्र।

कळधूत, कळधोत, कळधौत–सं०पु० [सं० कलधौत] १ सोना (ह नां., अ.मा.) २ चांदी (अ.मा.)

कलन–सं०स्त्री०—कटि, कमर (अ.मा.)

कळपंत–सं०पु०—देखो 'कळपांत'। उ०—१ कूरमां समै कळपंत ज्यौं प्रांण देण परवारिया। अत वार जेम अम्रत मिळै 'अजै' तेम ऊबारिया। —रा.रू.

उ०—२ जग कळपंत तणी पर जसवंत, फेरा लहर कहर फिरियौ। लोह धार गैणाग लागतां, अौरंग धू जिम ऊबरियौ। —महेसदास आढ़ौ

कळपंतणौ, कळपंतबौ–क्रि०अ० [सं० कल्पन] रोना, विलाप करना, बिलखना (मि० 'कळपणौ') उ०—रांणी रोवंतीय, सुपियारी सांमी चलां। कंवरी कळपंतीय, ऐवासा सूं ऊतरै।—पा.प्र.

कळपंतणहार, हारौ (हारी), कळपंतणियौ—रोने या बिलखने वाला।

कळपंतिओड़ो, कळपंतियोड़ो, कळपंत्योड़ो—भू०का०कृ०।

कळपणौ, कळपबौ—रू०भे०।

कळपंतियोड़ो–भू०का०कृ०—रोया या बिलखा हुआ, विलाप किया हुआ। (स्त्री० कळपंतियोड़ी)

कळप–सं०पु० [सं० कल्प] १ कलफ. २ वेद के छः अंगों में से एक (डिं.को.) ३ रोग निवृत्ति की एक युक्ति. ४ ब्रह्मा का एक दिन या समय का एक विभाग जो ४३२०००००००० वर्षों का माना जाता है। उ०—बीते पल ही कळप बराबर, जिके दिवस किमि जावै।—र.रू ५ खिजाब. उ०—केस कळप तजियौ सकळ, भजियौ कजियौ भूप। बजियौ इण गुण ब्रद्ध बय, सजियौ तरुण सरूप।—वं.भा. ६ कल्पवृक्ष (अनेका.) उ०—घुरै सुहांणी गाज, म्रदंगां ताळ धमंकै। कळप तणा रसराज, पियंतां कांम दमंकै। —मेघ.

७ कपट (अनेका.) ८ दिन (अनेका.) ९ बुद्धि (अनेका.) १० प्रकाश (अनेका.) ११ युद्ध (अनेका.) १२ रथ (अनेका.) [सं० कल्प] १३ प्रलय (डिं.को.)

कळपणौ, कळपबौ–क्रि०अ० [सं० कल्पन] १ विलाप करना, बिलखना, रोना। उ०—आंणं आयोड़ी जळ में जळ पीणी। कांणी घूंघट में कळपै कळहीणी। २ दुखी होना, कुढ़ना, चिढ़ना।

कहा०—गायां चूंगे गांम री, सोच करै स्यारी। धांन धणी रौ ऊपड़ै, कळपै कोठारी।—जो पराये दुख दुबला होता है।

कळपणहार, हारौ (हारी), कळपणियौ—बिलखने या रोने वाला, कुढ़ने वाला, संकल्प करने वाला।

कळपाणौ, कळपाबौ, कळपावणौ, कळपावबौ—स०रू०।

कळपिओड़ो, कळपियोड़ो, कळप्योड़ो—भू०का०कृ०।

कळपीजणौ, कळपीजबौ—भाव वा०।

कलपणौ, कलपबौ–क्रि०अ० [सं० कल्पन] कल्पना करना।

कलपणहार, हारौ (हारी), कलपणियौ—वि०।

कलपिओड़ो, कलपियोड़ो, कलप्योड़ो—भू०का०कृ०।

कलपत–सं०पु०—दोष, कलंक।

कळपतर, कळपतरु, कळपतरू, कळपतरोवर, कळपद्रुम–सं०पु०यौ० [सं० कल्पतरु] कल्पवृक्ष (अ.मा.,नां.मा.) उ०—कळपतरु ऊखलि पड़ै, 'जसौ' महा धू जांम। माळां गाळां ठांम महि, तिकौ न सूझै तांम। —हा.झा.

कलपना–सं०स्त्री० [सं० कल्पना] अध्यारोप, रचना, कल्पना, उद्भावना। उ०—१ ए बध्या सौ कलपना तिस आतम दसा।—केसोदास गाडण उ०—२ आसा त्रसना कलपना केतां आग लगाई।—केसोदास गाडण

कलपनी–सं०स्त्री० [सं०] कैंची, कतरनी (डिं.को.)

कलपबेलि—देखो 'कलपवेलि'।

कलपबिरख–सं०पु०यौ० [सं० कल्पवृक्ष] कल्पवृक्ष (रू.भे.)

कलपवेलि–सं०स्त्री०यौ०—कल्पवृक्ष। उ०—कळि कलपवेलि वेळि कांमधेनुका, चिंतामणि सोमवल्लि चत्र।—वेलि.

कळपव्रख, कळपव्रछ, कळपब्रिख, कळपब्रिछ–सं०पु०यौ० [सं० कल्पवृक्ष] कल्पवृक्ष। उ०—१ आप जसा करतौ नह अंजसै, बेल अमें तू कळपव्रख।—संकर बारहठ। उ०—२ कळपव्रख संतान पारिजाति हरिचंदण। तर मंदार दुवार, आंण ऊगा सुख अप्पण।—रा.रू.

पर्याय०—कलपतर, कलपद्रुम, द्रुमपत, पत्रीस, पारजात, मंदार, सुखस्यायक, सुरतर, सुरसंपति, स्रगसुखदा, हरिचंदण।

कळपांत, कळपांतर–सं०पु०यौ० [सं० कल्पांत] प्रलय, युगांतकाल, ब्रह्मा का दिवसावसान। उ०—पुरांण में कळपांतर मांनै, पूरब मीमांसा में होणाहार मांनै, वेदान्त में ईस्वरेच्छा मांनै।—बां.दा.

कळपाणौ, कळपाबौ–क्रि०स० [सं० कल्पन] १ विलाप कराना, सताना, दुःख देना। उ०—१ निसचर ! तूं कळपासी जो म्हने, रावण ! तूं कळ पासी नांय।—गी.रां. उ०—२ करसा कळपाया बरसा नहिं बूठी।—ऊ.का. २ कुढ़ाना. ३ संकल्प कराना।

कळपाणहार, हारौ (हारी), **कळपाणियौ**—वि० ।

कळपायोड़ौ— भू०का०कृ० ।

कळपायोड़ौ—भू०का०कृ०—१ सताया हुआ. २ कुढ़ाया हुआ ३ संकल्प कराया हुआ । (स्त्री० कळपायोड़ी)

कळपित—वि० [सं० कल्पित] जिसकी कल्पना की गई हो, मनगढ़ंत, नकली ।

कळपियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ विलाप किया हुआ, सताया हुआ, दुखित. २ कुढ़ा हुआ. ३ संकल्पित । (स्त्री० कळपियोड़ी)

कळपीजणौ, कळपीजबौ—क्रि० भाव वा०—१ विलाप किया जाना, सताया जाना. ३ कुढ़ा जाना. ४ संकल्प किया जाना ।

कळबल्ली—वि०स्त्री०—करुणाजनक पुकार, कोलाहल । उ०—**कळबल्ली** बांगी कढ़ै. भ्रमि भीरु भटक्कै । पाय भ्रटक्कै पग्गड़ां, लागि लुथ्थि लटक्कै ।—वं.भा.

कळबांणी—सं०स्त्री०—देखो 'कळवांणी' (रू.भे.)

कळबी—सं०पु०- एक जाति विशेष जिसके व्यक्ति प्रायः खेती करते हैं । (रा.रू., मा.म.)

कळबच्छ—सं०पु० [सं० कल्पवृक्ष] कल्पवृक्ष । उ०—**कळबच्छ** म्हाराज रा सेवकां को । बण्यौ राखीजै बूडसू भूप बांकौ ।—मे म.

कळबच्छपता—सं०पु० [सं० कल्पवृक्षपिता] समुद्र (डि.को.)

कलभ—सं०पु० [सं०] १ करभ, हाथी या ऊँट का बच्चा. २ हाथी (डि.को.) ३ धतूरे का पेड़. ४ शीघ्रता (ग्रनेका.) ५ आश्रय (अनेका) ६ शकुन (अनेका.) ७ पाप (अनेका.) ८ आकाश (अनेका.) ९ भादों मास (अनेका.)

कलम—सं०पु० स्त्री०—१ किसी पेड़-पौधे की वह टहनी जो कहीं अन्यत्र लगाने के लिये काटी जाय ।

मुहा०—कलम करणौ—काटना, छांटना ।

२ लेखनी ।

मुहा०—१ कलम घिसणी—बराबर लिखते रहना. २ कलम चलणी—लिखना, अच्छा कलम होना जो ठीक लिखे. ३ कलम चलाणी—लिखना, तेज लिखना. ४ कलम-तोड़णी—मार्मिक बात लिखना, ज्यादा लिखना. ५ कलम फेरणी—गलत लिखे हुए को काटना. ६ कलमबंद करणौ—नोट कर लेना, लिख लेना. ७ कलम में जोर होणौ—लिखने में प्रभाव होना. ८ कलम री जीभ—कलम का वह भाग जिससे लिखते हैं. ३ मान, प्रतिष्ठा. ४ कलमा पढ़ने वाला मुसलमान (डि.को.) उ०—रंजै कर धूंकळ रवताळौ, ग्रर हाथळ भंजै ग्रलम । सजै जाय जठी सादूळौ, कुण गंजै हिंदू **कलम** ।—नवलजी लाळस. ५ सोने के आभूषणों में नगीना जड़ने के लिए स्थान बनाने का औजार. ६ रंग भरने की बालों की कूंची. ७ कान के ऊपर के कनपटियों के पास के बाल ।

कलमकसाई—सं०पु०यौ० [अ०] लिख पढ़ कर या अपनी लेखनी द्वारा दूसरों को हानि पहुँचाने वाला ।

कलमख—सं०पु० [सं० कल्मष] १ पाप (ह.नां.) २ मैल. ३ नरक का एक भेद ।

वि०—१ पापी. २ मैला ।

कळमत—सं०पु०—युद्ध । उ०—वित देवळ वाळोह, लागू 'जींदौ' लेवसी । वीरौ मौ वाळोह, **कळमत** (च) घणौ करावसी ।—पा.प्र.

कळमळणौ, कळमळबौ—क्रि०अ०—१ भुंझलाना. २ कुलबुलाना. ३ कराहना. ४ अपने अंगों को घुमाना ।

कळमस—सं०पु० [सं० कल्मष] १ देखो 'कलमख' (डि.को.) वि०—२ श्याम, काला, मैला । उ०—भूरा भाखड़ भीजिया, **कळमस** काळा स्याह । जांणं हाथी राज रा, छूट्या रोही मांह ।

—वादळी

कलमांछात—सं०पु०— बादशाह । उ०—देव ताळियां रांम जुध देखे, रजवट वरद बिनै रखपाळ । **कलमांछात** छात कूंपा रौ, छूटा पटां लड़ै छंछाळ ।—जग्गौ खिड़ियौ

कलमांण—१ देखो 'कलमौ' २ बादशाह. ३ मुसलमान (डि.को.)

कलमायण—सं०पु०—मुसलमान । उ०—लोहां लोड़ बोड़ (छो) दळ लागा, सर आवरत संभ्रमिया सार । काळं थाट तणं **कलमायण**, काळं वार अहार किया ।—महेसदास आढ़ौ

कळमाष—वि० [सं० कल्माष] कबरा, श्यामवर्ण का (डि.को.)

कलमी—सं०स्त्री०—१ श्याम रंग की घोडी । उ०—**कलमी** ग्रस देवळ दैण कीयूं । लोवडी प्रतपाळ यूं वैण लियं ।—पा प्र.

सं०पु०—२ एक प्रकार का ग्राम जो काट कर खाया जाता है ।

कलमीसोरौ—सं०पु०—साफ किया हुआ शोरा जिसमें कलमें होती हैं । यह शोरा साधारण शोरे से अधिक साफ और तेज होता है ।

कलमुख—देखो 'कलमख' (अ.मा.)

कळमूळ—सं०पु० [सं० कलिमूल] १ सेना, फौज (ह.नां.) २ कलह का मूल, झगड़े का मुख्य कारण, योद्धा । उ०—वात गरै विचित्रां तणै, मेड़तियौ सादूळ आयौ दळ अजमाल रै, मन अणकळ **कळमूळ** ।—रा रू. ३ युद्ध का मुखिया, सेनापति । उ०—हाथां मच्छर केवांण हुबियां, सुरतांणां माथै यर सूळ । ऊसरां थाट काट आवटियौ, मंगळ जुध ठरियौ **कळमूळ** ।—केसोदास गाडण

कलमेपाक, कलमेपाख—सं०पु०—१ पवित्र कलमा. २ कलमा पढ़ कर पवित्र होने वाला (मुसल०)

कलमौ—सं०पु० [अ० कल्मः] १ वह वाक्य जो मुसलमान धर्म का मूल मंत्र है यथा-'ला इला लिल्लिल्लाह । मुहम्मद उर्रसूलिल्लाह ।' उ०—पठांण, सैद, मुगळ, उजबका मुसलमांन आकीनदार, त्रीस सीपारा रा पढ़णहार, पांच वखत निमाज रा करणहार, सुध **कलमे** रा पढ़णहार ।—रा.सा.सं.

२ कलमा पढ़ने वाला मुसलमान । उ०—घाल्या घण सघळां ही वक्ष घमोड़, (जांणं) **कलमा** मिळ ताज्यां में छाती कूटबै ।

—किसोरसिंह बारहठ

कलम्म—देखो 'कलम'।

कळयुग—देखो 'कलजुग'। उ०—प्रधानां उजदारां विचार नै राजा सुं बीनती की। महाराज हिवै कळयुग आयौ।—चौबोली

कल-रव-सं०पु०—१ कपोत, कबूतर (डिं.को.)
सं०स्त्री०—२ सुन्दर आवाज, कल-ध्वनि (डिं.को.)
३ ऊसर भूमि।

कळळ-सं०स्त्री०—१ युद्ध का कोलाहल। उ०—ऊठि अछंगा बोलणा, कांमणि आखै कंत। ऐ हल्ला तौ ऊपरां, हूंकळ कळळ हुवंत।
—हा.झा.

(यौ० हूंकळ-कळळ) २ ध्वनि विशेष. ३ नक्कारा, युद्ध का बाजा. ४ घोड़ों के हिनहिनाहट की आवाज। उ०—१ हैदळ कळळ पायदळ हूंकळ, सीसोदै खड़तै संनड़।
—महाराणा लाखा री गीत

उ०—२ घूघरमाळ घोड़ां री वाज रही छै, हींस कळळ होफ हुइनै रही छै।—रा.सा सं.

कळळणौ कळळबौ-क्रि०अ०स०—१ सेना का कोलाहल होना। उ०—भड़ां भड़िज विलहीजइ भारी, काबिल कळळइ सेन कंधारी।—रा.ज.सी.
२ घोड़ों का हिनहिनाना, सेना का कोलाहल करना। उ०—हिन्दुआं तुरक्कां दुबिय हक्क, करिमाळ वाजि कळळिय कटक्क।—रा.ज.सी.

कळळस—देखो 'कळळ'। उ०—तीर अखत ढाल गज तोरण। चहूं दिस कळळस मंगळाचार। चवरी बडौ पेखियौ चखतै। 'करण' कळोधर राजकवार।—किसनजी आढ़ौ

कळळ-हूंकळ—देखो 'हूंकळकळळ' (रू.भे.)। उ०—कळळ-हूंकळ अवसि खेति सूरा करै। धीरपै सुहड़ रिण चलण धीरा धरै।
—हा झा.

कळळाट, कळळाटौ कळळाहट-सं०पु०—शोकसूचक ध्वनि, हाहाकार। उ०—१ गदगद बांणी द्रग पांणी गळळाटा। कंगला बंगलां में कीना कळळाटा—ऊ.का.। उ०—२ थिर आसोज बेद मग थाटौ, लंपट बाळि रावण कुळ लाटौ। भंवतां करम जोग पड़ भाटौ, काती में मचगौ कळळाटौ।—ऊ.का.। उ०—३ दुख वीचख ऊतर राव दियौ। कळळाहट चारण साद कियौ।—पा.प्र.

कळवकळ-वि०—घबराया हुआ, भयभीत। उ०—कळवकळ सबळ दळ भळळ साबळ करां, येळापत कीध जळ किसा खळ ऊपरां।
—महादांन महडू

कळवणौ, कळवबौ—देखो 'कलपणौ' (रू.भे.)

कलवर-सं०पु० [सं० कलेवर] शरीर।

कळवरी-सं०स्त्री०—रहंट के माल की दोनों लड़ों को समान दूरी पर रखने के लिये उनमें लगाई जाने वाली काष्ठ की पतली कीलियां। 'कलोरी' (रू.भे.)

कळवांणी-सं०स्त्री०—१ गंदा पानी. २ लोहे की किसी वस्तु को जल के अंदर कई बार घुमा कर मंत्रित किया हुआ जल, यह प्रायः रोग-मुक्ति के लिये पिलाया जाता है (टोटका). ३ जल पात्र में हाथ डाल कर पानी को गंदा करने की क्रिया।

कळवख, कळवख्ख, कळवछ-सं०पु० [सं० कल्पवृक्ष] कल्पवृक्ष (रू.भे.)

कळवछकेळी-सं०पु०—इन्द्र (ना.डिं.को.)

कळस-सं०पु० [सं० कलश] १ घड़ा, गगरा, कुंभ। उ०—प्रति अंब मोर तोरण अजु अंबुज, कळी सु मंगळ कळस करि।—वेलि.
२ मंदिर, चैत्य आदि का शिखर जो प्रायः पीतल या पत्थर आदि का होता है. ३ चोटी, सिरा. ४ प्रधान अंग. ५ श्रेष्ठ व्यक्ति. ६ कोहल मुनि के मत से नृत्य की एक वर्तना. ७ काव्य या काव्य ग्रंथ की समाप्ति पर उपसंहार के ढंग पर रची हुई कविता या काव्य. ८ देवी का अर्चित जल जो भक्त लोग पान करते हैं. ९ प्रत्येक चरण में २० मात्रा का मात्रिक छंद विशेष (ल.पिं.)
१० डिंगल का एक छंद जिसके प्रथम द्वाले में २० लघु, २२ गुरु कुल ६४ मात्रायें होती हैं तथा इसी क्रम से शेष द्वालों में २० लघु और २१ गुरु कुल ६२ मात्रायें होती हैं (पिं प्र.) ११ सुवृत* (डिं.को.)
१२ कुंभ राशि। उ०—रवि बैठौ कळसि थियौ पालट रितु, ठरे जु ढहकियौ हेम ठंठ।—वेलि.

कळसभव-सं०स्त्री० [सं० कलशभव] घट से उत्पन्न कहे जाने वाले अगस्त्य ऋषि।

कळसाजांन-सं०स्त्री०—विवाह में कन्या पक्ष की ओर से दिया जाने वाला भोज विशेष जिसमें कलसे के जल द्वारा बरातियों को स्नान कराने के पश्चात भोजन कराया जाता था। आजकल यह प्रथा उठ सी गई है। (पुष्करणा ब्राह्मण)

कळसियौ-सं०पु०—१ लोटे के आकार का पानी पीने का छोटा जल-पात्र २ बैलों की पीठ पर का उठा हुआ गोल भाग, ककुद. ३ तलवार की मूठ के ऊपर गोल आकृतियुक्त लगाया जाने वाला एक उपकरण।

कळसी-सं०स्त्री०—१ देखो 'कळसियौ'. २ आठ मन अनाज का एक माप. ३ मिट्टी का बना बड़ा जल-पात्र जिसमें करीब तीन कळस जल समा जाता है।

कळसौ-सं०पु०—१ देखो 'कळसियौ'. २ देखो 'कळस'।

कळहंस, कळहंसक-सं०पु०[सं० कलहंस] १ हंस। उ०—बनमय सदन वसंत अलोक वणाविया। गुण सुक पिक कळहंस मोरां गाविया।
—बां.दा.

२ राजहंस। उ०—कळहंस जांणगर मोर निरतकर, पवन ताळधर ताळ पत्र।—वेलि. ३ श्रेष्ठ राजा. क्षत्रियों की एक शाखा.
५ परमात्मा. ६ ब्रह्मा।
वि०—सुस्वर* (डिं.को.)

कळहंत-सं०पु० [सं० कलि+हंत] युद्ध। उ०—किये नरूकम किलम भिड़ि, किते जुद्ध उन्मत्त। प्रथम 'मांन' 'जगतेस' की, कहूं केळि कळहंत।—ला.रा.

कळह–सं०पु० [सं० कलह] १ झगड़ा, लड़ाई, युद्ध (अ.मा.)
उ०—तास वरणागिये दीठि मन हुतणी । मलफियौ सांमहौ **कळह** बेढ़ीमणी ।—हा.झा.
कहा०—१ कळह रौ मूळ—झगड़ालू व शरारती व्यक्ति के लिये । २ कळह सूं कळसा रौ पांणी जाय परौ—कलह की निंदा ।
२ विवाद ३ रास्ता. ४ कपट, छल (ह.नां.)
वि०—५ काला, श्याम॰ (डिं.को.)

कळहक्रित–सं०स्त्री० [सं० कलहकीर्ति] युद्ध-प्रशंसा, युद्ध की कीर्ति ।

कळहगुर–वि० [सं० कलह+गुरु] युद्ध-वीर, योद्धा । उ०—**कळहगुर** दांनगुर हालियौ 'कलावत', लाख ऊपर कवण वाग लेसी ।
—दुरगौ आढ़ौ

कळहण, **कळहणि**–सं०पु० [सं० कलह+रा० प्र० ण, णि] १ देखो 'कळह' (अ.मा., डिं.को.) उ०—१ मुहता प्रधांन घाम्रे मिळेय, कुरखेत कीध **कळहण** करेय ।—रा.ज.सी. उ०—२ सूजा जेम अभनमौ 'सूजौ', **कळहण** गजां कळेगौ । धड़ धजवड़ां भळेगौ, मनसा जोत मळेगौ ।—अज्ञात २ दलदल, कीचड़ ।

कळहप्री॰–वि० [सं० कलहप्रिय] जो कलहप्रिय हो ।
सं०पु०—नारद ।

कळहप्रेमा–सं०स्त्री०—युद्धप्रिया, महाकाली, रणपिशाचिनी ।
उ०—देवी खेचरी भूचरी भद्रखेमा, देवी पद्मणी सांभणी **कळहप्रेमा** ।
—देवि.

कळहबरीस–सं०पु० [सं० कलह+वर्षी] योद्धा । उ०—साहण समंद सेन सीसोदा, रांणां तोसूं राय रिम । अरथ बरीस करै सिर ऊपर, **कळहबरीस** न करै किम ।—महारांणा कुंभा रौ गीत

कळहळ—सं०पु०—कोलाहल, हलागुल्ला । उ०—१ छिन छिन वाट हेरता छाया, हुय **कळहळ** घोड़ा हींसाया ।—वरजूबाई उ०—२ आज नहीं 'जोरौ' धर ऊपरै, **कळहळ** कांकळ हुवै कठै ।
२ कलकल की ध्वनि । —जोरजी चांपावत रौ गीत

कळहळणौ, **कळहळबौ**–क्रि०अ०—१ कोलाहल करना । उ०—एही भली न करहला, **कळहळिया** कड्डकांण । का, प्री, रागां प्रांण करि, कांइ अचंती हांण ।—ढो.मा. २ चमकना, दमकना । उ०—**कळहणै** अगतरी टोपरी झरहरी, घमघमे घूघरां पाखरां छरहरी ।—द.दा.

कळहारी–सं०स्त्री०—एक विषैला पौधा जिसका प्रयोग औषधियों में किया जाता है (अमरत)

कळहि–सं०पु० [सं० कलह] युद्ध । उ०—एकणि हणे अनेक, किसना उत मातै **कळहि** ।—अज्ञात

कळहिल–सं०पु० [सं० कटुहिल] शत्रु, दुश्मन । उ०—लखपति विरदाळ, **कळहिल** काळ ।—ल.पिं.

कळहिवा–सं०पु० योद्धा । उ०—वरहास खिड़इ ऊलळीवग्ग, **कळहिवा** झमइ कम्मांण झग्ग ।—रा.ज.सी.

कळही—देखो 'कळसी' (रू.भे.)

कळहीणौ–वि०यौ० [सं० कला+हीन] अशक्त, कमजोर, दुर्बल ।
उ०—कांणो घूंघट में कळपै **कळहीणौ** ।—ऊ.का.

कलां–वि० [फा०] बड़ा (प्रायः गांवों के नाम के साथ प्रयुक्त होता है ।)
उ०—खुड्द छोटा नूं कहै, **कलां** वडा नूं कहै ।—बां.दा.ख्यात

कलांतर–सं०पु०—ब्याज, रुपये का महसूल (डिं.को.)

कलांम–सं०पु० [अ० कलाम] १ बातचीत, कथन । उ०—काबिल **कलांम** कहियत करीम, रहमांन इल्म रव्वत रहीम ।—ऊ.का.
२ वाक्य, वचन. ३ प्रतिज्ञा, वादा. ४ उज्र, एतराज ।

कला–सं०स्त्री० [सं० कला] १ अंश, भाग. २ चंद्रमा का सोलहवाँ भाग : चंद्रमा की सोलह कलायें निम्नलिखित हैं—१ अम्रता (अमृता), २ मानदा, ३ तुस्ठि (तुष्ठि), ४ पुस्टि (पुष्टि), ५ प्रीति, ६ रति, ७ ज्योत्सना, ८ स्री (श्री) ९ पूरणा (पूर्णा), १० लज्जा, ११ स्वधा, १२ हंसवती, १३ रात्रि, १४ छाया, १५ वांमा (वामा) १६ आभा (कांति) अंतिम सात कलाओं के स्थान पर । कहीं-कहीं निम्नलिखित कलायें भी पायी जाती हैं—१० पूसा (पूषा) ११ ध्रति (धृति) १२ ससनी (शशनी) १३ चंद्रिका, १४ अंगदा, १५ पूर्णाम्रता और १६ कांति ।
३ सूर्य का बारहवाँ भाग । सूर्य के बारह नाम कहे जाते हैं । (वि०वि० देखो 'सूरज') जिनके तेज को कला कहते हैं ये भी बारह हैं—१ तपणी (तपिनी), २ तापणी (तापिनी), ३ बोधनी (बोधिनी), ४ संभिनी ५ कालंदी (कालिंदी), ६ सोसणी (शोषणी), ७ वेरणी, ८ आकरसणी (आकर्षणी), ९ वैसणवी (वैष्णवी), १० विस्णु-विद्या (विष्णु विद्या), ११ ज्योत्सना, १२ हिरण्या । अंतिम नौ कलाओं के स्थान पर कहीं-कहीं पर निम्नलिखित कलायें भी मिलती हैं—४ धूम्रा, ५ मरीचि, ६ ज्वालिनी, ७ रुचि, ८ सुषुमा, ९ भोगदा, १० विस्वा (विश्वा), ११ धारिणी और १२ क्षमा ।
४ सामर्थ्य, शक्ति । उ०—अड़ाभीड़ वंकां भड़ां कोप ओपै, **कळा** जांणि त्यांरी न कौ प्रांण कोपै ।—रा.रू. ५ कामदेव (ह.नां.)
६ विभूति, तेज. ७ चंद्रमा (नां.मा.) ८ शोभा, छटा, प्रभा, कांति (ह.नां.) उ०—१ कलाहरौ चढ़ती **कळा**, जीपण जंग भाराथ । केहरी अटक न ऊतरै, साहजहां रै साथ ।—रा.रू.
उ०—२ विसवामित्र किसोर वय, अनंग रूप अपार । कहै जनक अदभुत **कळा**, कुण ए राजकुमार ।—रांमरासौ. ९ स्त्री का रज. १० शरीर की सात विशेष झिल्लियाँ जो मांस, रक्त, मेद, कफ, मूत्र, पित्त और वीर्य को अलग-अलग रखती हैं (चिकित्सा शास्त्र) ११ तीस काष्टा का समय का एक विभाग (ज्यो.) १२ राशि के तीसवें अंश का साठवाँ भाग (ज्यो.) १३ वृत्त का डिग्री १८०. वाँ भाग (ज्यो.) १४ कौतुक, लीला, खेल. १५ छल, धोखा, कपट.
१६ अग्नि-मंडल का एक भाग । अग्नि-मंडल के कुल दस भाग होते हैं । इसके दस भागों के नाम ये हैं—१ धूम्रा, २ अरचि (अर्चि) ३ उस्मा (उष्मा), ४ ज्वलिनी, ५ ज्वालिनी, ६ विस्फुलिंगिनी,

७ श्री (श्री), ८ सुरूपा, ९ कपिला और १० हव्यकव्यवहा।

१७ छंदशास्त्र में मात्रा (पिंगल) १८ मनुष्य के शरीर के सोलह आध्यात्मिक विभाग जो पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां, पांच प्राण और मन या बुद्धि से कहे जाते हैं. १९ तंत्र के अनुसार वर्ण या अक्षर. २० नटों की एक कसरत जिसमें वह सिर नीचे करके उलटता है.

(यौ० कळाबाजी)

२१ ढंग, युक्ति, करतब, चतुराई। उ०—चुप मत साधै वादळी, कह दे सागण वात। म्हैं लखली तेरी कळा, सैंण सिखाई घात।—वादळी

२२ किसी कार्य को उत्तम ढंग से करने का कौशल, हुनर, फन।

उ०—अमाप तठै बळ खाग 'अजन्न', कनोज घणौ जु कळा जिम 'क्रन्न'।—रा.रू.

वि०वि०—पुरुषों के विविध वैभवपूर्ण प्रतिभा-वैचित्र्य के प्रकार जिनकी संख्या ७२ मानी जाती है—१ लेखन, २ पठन, ३ गणित, ४ गीत, ५ नृत (नृत्य), ६ वाद्य, ७ व्याकरण, ८ काव्य, ९ छंद, १० अलंकार, ११ नाटक, १२ साटक, १३ नखच्छेद्य, १४ पत्रच्छेद्य, १५ आयुधाभ्यास, १६ गजारोहण, १७ तुरगारोहण, १८ गजशिक्षा, १९ तुरगमशिक्षा, २० रत्नपरीक्षा, २१ पुरुस (पुरुष) लक्षण, २२ स्त्री लक्षण, २३ पसु लक्षण (पशु लक्षण), २४ मंत्रवाद, २५ यंत्र-तंत्रवाद, २६ रसवाद, २७ विसवाद (विषवाद), २८ गंधवाद, २९ विद्यानुवाद, ३० युद्धवाद, ३१ नियुद्धवाद, ३२ तरकवाद (तर्कवाद), ३३ संस्क्रत (संस्कृत), ३४ प्राक्रत (प्राकृत), ३५ उत्तर कला, ३६ प्रत्युत्तर कला, ३७ देस-भासा, ३८ कपट, ३९ वित्तग्यांन (वित्तज्ञान), ४० विग्यान (विज्ञान), ४१ सिद्धांत, ४२ वेदांत, ४३ गारुड़, ४४ इन्द्रजाल, ४५ विनय, ४६ आचारिविद्या (आचार्य विद्या), ४७ आगम, ४८ दान, ४९ ध्यान, ५० पुराण, ५१ इतिहास, ५२ दरसन संस्कार (दर्शन संस्कार), ५३ खेचरी, ५४ भ्रमरी, ५५ वाद, ५६ पातालसिद्धि, ५७ धूरत संबल (धूर्त शंबल). ५८ वृक्ष चिकित्सा, ५९ सरवकरणी (सर्वकरणी), ६० कास्ठघटन (काष्ठघटन), ६१ क्रत्रिम मणि करम (कृत्रिम मणि कर्म), ६२ वांणिज्य (वाणिज्य), ६३ वैस्य करम (वैश्य कर्म), ६४ चित्र करम (चित्र कर्म), ६५ पासांण करम (पषाण कर्म), ६६ नेपथ्य करम (नेपथ्य कर्म), ६७ धरम करम (धर्म कर्म), ६८ धातु करम (धातु कर्म), ६९ रसवती करम (रसवती कर्म), ७० हसित, ७१ प्रयोगोपाय, ७२ केवली विधि कला।

कामशास्त्र के अनुसार ६४ कलायें मानी गई हैं जो निम्नलिखित हैं। १ गीत, २ वाद्य, ३ नृत्य, ४ नाट्य, ५ आलेख्य, ६ विसेसकच्छेद्य, ७ तंडुलकुसुमवलिविकार, ८ पुस्पास्तरण (पुष्पास्तरण), ९ दसनवसनांगराग (दशनवसनांगराग), १० मणिभूमिका करम (मणिभूमिका कर्म, ११ सयन रचना (शयन रचना), १२ उदक वाद्य, १३ उदक घात, १४ चित्रयोग, १५ माल्यग्रंथविकल्प, १६ केसेखरापीड़-योजन (केश-शेखरापीड़-योजन), १७ नेपथ्य योग, १८ करण पत्र भंग (कर्ण पत्र भंग), १९ गंधयुक्त, २० भूसण भोजन (भूषण भोजन), २१ इंद्रजाल, २२ कौचुमार योग, २३ हस्तलाघव, २४ चित्र साकापूप भक्ष्य विकार क्रिया (चित्र शाकापूप भक्ष्य विकार क्रिया, २५ पांनकरसरागासव भोजन, २६ सूची करम (सूची कर्म), २७ सूत्र करम (सूत्र कर्म), २८ प्रहेलिका, २९ प्रतिमाला, ३० दुरवाचक योग (दुर्वाचक योग), ३१ पुस्तक वाचन, ३२ नाटिकाख्यायिका दरसण (नाटिकाख्यायिका दर्शन), ३३ काव्यसमस्यापूरति (काव्यसमस्यापूर्त्ति), ३४ पट्टिका-वेत्र-बाणविकल्प, ३५ तरक करम (तर्क कर्म), ३६ तक्षण, ३७ वास्तु, विद्या, ३८ रूप्यरत्नपरीक्षा, ३९ धातुवाद, ४० मणि राग ग्यांन (मणि राग ज्ञान), ४१ आकार ग्यांन (आकार ज्ञान), ४२ व्रक्षायुरवेद योग (वृक्षायुर्वेद योग), ४३ मेष-कुक्कुट-लावक-युद्धविद्या, ४४ सुक-सारिका-प्रळापण (शुक-सारिका-प्रलापन), ४५ उत्सादन, ४६ केसमारजन कौसळ (केसमार्जन कौशल) ४७ अक्षर मुस्टिका कथन (अक्षर मुष्टिका कथन), ४८ म्लेच्छित कलाविकल्प, ४९ देस भासा ग्यांन (देश भाषा ज्ञान), ५० पुस्प सकटिका निमित्त ग्यांन (पुष्प शकटिका निमित्त ज्ञान), ५१ यंत्र मात्रिका (यंत्र मातृका), ५२ धारण मात्रिका (धारण मातृका), ५३ संपाठ्य, ५४ मानसी काव्य-क्रिया, ५५ क्रियाविकल्प, ५६ छलितक योग, ५७ अभिधांन कोस छंदोग्यांन (अभिधान-कोष-छंदोज्ञान), ५८ वस्त्रगोपना, ५९ द्यूत विसेस (द्यूत विशेष), ६० आकरसण क्रीडा (आकर्षण क्रीड़ा), ६१ बाल क्रीड़ा करम (बाल क्रीड़ा कर्म), ६२ वैनायिकी विद्याग्यांन (वैनायिकी विद्या-ज्ञान), ६३ वैजयिकी विद्या-ग्यांन (वैजयिकी (विद्या-ज्ञान), ६४ वैतालिकी विद्या-ग्यांन (वैतालिकी विद्या-ज्ञान)।

यौ०—कळाकुसळ, कळावंत।

२३ बंदूक चलाने के प्रकार जो बारह माने गये हैं—१ पहले देख कर फिर 'माखी' मिला कर बंदूक का निशाना लगाना, २ दौड़ते हुए पर निशाना लगाना, ३ उछलते हुए पर निशाना लगाना, ४ रात्रि में निशाना लगाना. ५ तेज हवा में निशाना लगाना, ६ छिप कर लक्ष्यवेध करना, ७ शब्द पर निशाना लगाना, ८ नेत्र बंद कर निशाना लगाना, ९ दर्पण में देख कर निशाना लगाना, १० बंदूक को कंधे पर रख कर पीठ की ओर निशाना लगाना, ११ आकाश में फेंके हुए किसी पदार्थ को वापस भूमि पर गिरने से पहले निशाना लगाना, १२ दौड़ते हुए किसी ऐसे व्यक्ति पर निशाना लगाना जो स्वयं दौड़ रहा हो।

२४ कली। उ०—जाई सहर के राजा री कुंवरी पंचकळी नै मिल्यौ, चंपै री कळा सूं तुलती।—चोबोली. २५ दीपक की बत्ती (मि० 'कळेंधन') २६ दीपक (अ.मा.) २७ ब्याज (डि.को.)

कळाइण—सं०स्त्री०—काली मेघ की घटा। उ०—ऊपर बगला पावस बैठा छै सु किसाहेक सोहे छै, जांणै कळाइण कागोलड़ नाखती आवै छै।—रा.सा.सं.

कळाइणो, कळाइबो–क्रि०अ०—१ कोलाहल करना. २ जोर जोर से विलाप करना, रोना । उ०—मारू-मारू **कळाइयां**, उज्जळदंती नारि । हसनइ दे हुंकारड़उ, हिवड़उ फूटणहारि ।—ढो.मा.

कळाइणहार, हारौ (हारी), कळाइणियौ—वि० ।

कळाइग्रोड़ो, कळाइयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

कळाइयोड़ौ–भू०का०कृ०—१ कोलाहल किया हुआ. २ जोर जोर से विलाप किया हुआ । (स्त्री० कलाइयोड़ी)

कलाइयौ–सं०पु०—न्योछावर ।

कळाई–सं०स्त्री [सं० कलाची] १ हाथ की कोहनी के नीचे का वह भाग जो हथेली के ठीक ऊपर होता है । मणिबंध, गट्टा ।

मुहा०—कळाई पकड़णी—१ पत्नी बनाना; किसी स्त्री का सतीत्व नष्ट करने के लिये उसका हाथ पकड़ना ।

३ कोठरी. ४ वह बड़ा आंगन जिसके चारों ओर कोठरियां हों ।

क्रि०वि० [रा०] तरह, प्रकार, भांति । उ०—१ संध **कळाई** नयण सर, गुण पापेणि ताणेह । मारू मीर च बाव ज्यूं, नह चूके बांणेह ।—ढो.मा.

उ०—२ रूठियां धुंधळीनाथ **कळाई** ऊजळी रूकां, मारवाड़ां दिल्ली ने मिळाई धूड़ मांय ।—नवलजी लाळस

कळाकंद–सं०पु०यौ० [फा०] खोये और मिश्री की बनी बरफी, एक मिठाई ।

कलाक–सं०पु० [अं० क्लॉक] १ समय का विभाग ।

सं०स्त्री०—२ घड़ी ।

कळातरौ–सं०पु० १ मकड़ी. २ देखो 'कातरौ' ।

कलाद–सं०पु० [सं०] स्वर्णकार (डिं.को.)

कळाधर–सं०पु० [सं० कलाधर] १ चंद्रमा. २ शिव. ३ कलावंत, कलाविद् ।

वि०—१ बलवान, शक्तिशाली. २ वंशज (मि. 'कळोधर')

कळाधारी–वि०—१ कलाविद्, कलावंत. २ शक्तिशाली (द.दा.) ३ वंशज ।

कळाधिप–सं०पु०—चंद्रमा । उ०—कळदार **कळाधिप** भेट किए, दिल सूं निज सीत प्रसाद दिए ।—ऊ.का.

कळानिध, कळानिधि, कळानिधी–सं०पु०—१ चंद्रमा (ह.नां.,अ.मा.) उ०—कित गयौ **कळानिधि** हिय कुमदणी हितकारी ।—ऊ.का.

२ कलाविद् ।

कलानृतमंडी–सं०पु०—मोर, मयूर (नां.मा.) .

कळाप–सं०पु० [सं० कलाप] १ समूह, ढेर, झुंड (ह.नां., अ.मा.) २ मोर की पूंछ. ३ पयाल. ४ भुट्टा. ५ तीर, बाण. ६ कमरबंद, पेटी. ७ करधनी (डिं.को.) ८ चंद्रमा. ९ भौंरा, भ्रमर (नां.मा.) १० वेद की शाखा. ११ अर्द्धचंद्राकार एक प्रकार का अस्त्र. १२ भूषण (डिं.को.) १३ प्रपंच, प्रयत्न । उ०—हा हा दिये घरोघर हेला, पुरजण हिये प्रळापा । जियं जकै नांहि जियं जांण जग, किये अनेक **कळाप** ।—ऊ.का. १४ विलाप । उ०—अबही मेली हेकली, करही करइ **कळाप** । कहियउ लोपी सांमि-कउ, सुंदरि लहां सराप ।—ढो.मा. १५ तर्कश, तूणीर (अनेका.)

कलापक–सं०पु०—हाथी की गर्दन पर महावत के पैर रखने का रस्सा । (डिं.को.)

कळापाती–वि०—उत्पाती, नटखट. २ चंचल ।

कळापी–सं०पु० [सं० कलापिन्] मोर, मयूर (नां.मा., अ.मा.)

कलाबतू–सं०पु० [तु० कलाबतून] एक प्रकार का तार जो सोने चांदी आदि से मढ़ कर रेशम पर चढ़ा कर बटा जाय । उ०—लाहौर री पिसौरी घणी बनात मुखमल री लपेटी थकी, घणी **कळाबतू** सूं गुंथी थकी पैहरजै छै ।—रा.सा.सं.

कळाबाज–वि०—कला करने वाला, नट ।

कळाबाजी–सं०स्त्री०—नट-क्रिया, खेल कला ।

कलाबातू—देखो 'कलाबतू' (रू.भे.)

कलाबौ–सं०पु०—१ कपाट के ऊपर की चूल फँसाने का गड्ढा. २ देखो 'कुलाबौ' ।

कलायखंज–सं०पु०—एक प्रकार का वात रोग जिसमें रोगी के संधि-स्थानों की नसें ढीली पड़ जाती हैं (अमरत)

कळाय, कळायण, कळायर—देखो 'कळाइण' (रू.भे.)

उ०—१ वत्तीस आखड़ी रौ निवाहणहार. वैरियां विभाड़णहार, परभोमपंचायण, घणदियण, जसलियण, **कळाय** रौ मोर सूंघै भीनै गात ।—रा.सा.सं. उ०—२ आज **कळायण** ऊमटी, छोडै खूब हलूस, सौ सौ कोसां बरससी, करसी काळ विघूंस ।—वादळी

कळायस–सं०पु० [सं० कालायस] देखो 'काळायस' (रू.भे.)

कलार–सं०स्त्री०—घास का संग्रह करने के उद्देश्य से किया गया लंबोतरा ऊंचा ढेर जिससे प्रायः कांटों या खपच्चियों आदि से ढंक दिया जाता है. २ देखो 'कलाळ' (रू.भे.) उ०—रंगकार तेलार बिनु, बिनु **कलार** दरवेम । सारबंध 'लावै' असुर, पुर नहि करत प्रवेस ।—ला.रा.

३ एक प्रकार का वृक्ष विशेष (क.कु.बो.) ४ एक प्रकार का पुष्प (अ.मा.)

कलारी–सं०स्त्री०—जमीन को खोद कर समतल बनाने का एक उप-करण । देखो 'कराळी' (रू.भे.)

कलाळ–सं०पु०—१ एक जाति जो हिन्दुओं व मुसलमानों दोनों में पाई जाती है । इसके व्यक्ति प्रायः शराब बेचने का व्यवसाय करते हैं ।

२ इस जाति का व्यक्ति (डिं.को.)

कलाळी–सं०स्त्री०—१ कलाल जाति की स्त्री ।

कहा०—कलाळी रै घरै दूध पीवै तोई कैवै के दारू पीवै—नीच व्यक्ति की संगत से प्रायः भला व्यक्ति भी बुरा या नीच समझ लिया जाता है ।

[सं० कलवान] २ एक प्रकार का सुगंधित पौधा । यह उन स्थानों

पर होता है जहां वर्षा में गड्ढों में पानी भर जाता है (रा.सा.सं.)
३ एक मारवाड़ी लोकगीत । यह प्रायः दामाद के आने पर गाया जाता है । ४ शराब, मद्य (रा.सा.सं.)

कळालीक-सं०पु०—भ्रमर, भौंरा (अ.मा.)

कळावंत-सं०पु० [सं० कलावान] १ कलाकार. २ संगीतज्ञ, गवैया. ३ कलाबाज, नट ।
वि०—कलाओं का ज्ञाता ।

कलाव-सं०पु० [सं० कलापक, प्रा० कलावग्र] १ हाथी की गरदन । उ०—बीर महावत बंदि, पीर पैगंबर पावां । ऊचकि बंदर एम, कूद बैठिया **कलावां** ।—मे.म. । २ मोर का पंख फैलाना । उ०—सुरंगा मोरां किया **कलाव**, सायधण हिवड़ो घूमर खाय ।—सांझ

कळाव, कळावरण-सं०स्त्री०—वह रेतीली भूमि जहां कोई पैर रखते ही अंदर धंसने लगता हो, दलदल ।

कलावत-सं०पु०—१ देखो 'कलावंत'. २ देवड़ा वंश के क्षत्रियों की एक शाखा का व्यक्ति (बां.दा. ख्यात)

कळावान-वि० [सं० कलावान्] १ देखो 'कलावंत'. २ शक्तिशाली, समर्थ । उ०—विध करणी धिनधिन **कळावान** ।
—करणीरूपक

कलावो—देखो 'कलाव' । उ०—सिंह रो वार होतां ही इणरा कुंभी रै **कलावै** चामुंडराज रो चंद्रहास झड़ियो ।—वं.भा.

कळास-वि०—समान, तुल्य ।
सं०पु० [सं० कलास] कछुआ (अ.मा.)

कळासणो, कळासबो-क्रि०अ०स०—१ कुश्ती लड़ना, मल्लयुद्ध करना. २ मारना, संहार करना । उ०—पातल हरा निमो पुरमातन, कळ-दळ सबळ **कळासै** ।—नरसिंह आसियो

कळाहीण-वि०—१ निर्बल, अशक्त. २ कलारहित ।

कलिंग-सं०पु०— १ पुरुषों के सिर का आभूषण विशेष, कलगी । उ०—कंवरजी री **कलिंग** एक नजर कीवी ।—पलक दरियाव री बात
२ एक प्रदेश का नाम. ३ एक पक्षी विशेष. ४ भ्रमर. ५ हिंदवानी नामक फल. ६ तरबूज ।

कलिंगड़ा-सं०पु०— एक राग विशेष (संगीत) .

कलिंद-सं०पु० [सं०] सूर्य । उ०—सांपड़ि खीरसमंद, दुरंग संबारिया । धारा फेरण **कलिंद**, तनूंजा धारिया ।—बां.दा.
(यौ० कलिंद-तनूजा) २ वह पहाड़ जहां से यमुना नदी निकलती है ।

कलिंदा-सं०स्त्री० [सं० कलिंद+जा] यमुना नदी ।
वि० [रा०] शीतल* (डिं.को.)

कळि-क्रि०वि०—१ लिये. २ भांति, तरह ।
सं०पु० [सं० कला] १ छंदशास्त्र के अनुसार मात्रा का नाम. २ कला (पिं.प्र.) ३ कलह, युद्ध, लड़ाई (अ.मा.) । उ०—**कळि** टोडो चाळुक बस कीधो, लल्ला जवन मारि जिण लीधो ।—वं.भा.
४ कलियुग । उ०—रावां रावत धीरपो, नाहीं भाजै जाव । करस्यूं साको एकली, राखूं कळि में नाव ।—डाढ़ाळा सूर री बात
५ क्लेश, दुःख. ६ शिव. ७ पाप. ८ योद्धा, सूरमा (ह.नां.) ९ देखो 'कळो' (रू.भे.) १० टगण की छः मात्राओं के नवें भेद का नाम ऽऽ।। (डिं.कों.) ११ बहेड़ा का वृक्ष (अ.मा.)
वि०—काला, श्याम* (डिं.को.)

कळिअळ-सं०पु०—१ करुण रव. २ मधुर ध्वनि । उ०—कुंझड़ियां **कळिअळ** कियउ, सुणी उ पंखइ वाह । ज्यांकी जोड़ी बीछड़ी, त्यां निसि नींद न आइ ।—ढो.मा.

कळिकछ-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा जिसका मुख तथा चारों पैर श्वेत तथा अन्य शरीर काले रंग का होता है (शा.हो.)

कळिकरणोत-सं०पु०—भाटी वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति ।

कळिका-सं०स्त्री०—१ एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ८ लघु वर्ण और अंत में एक गुरु कुल नौ वर्ण होते हैं (पिं.प्र.) २ कली ।

कळिकारक-सं०पु०—नारद मुनि (डिं.को.)
वि०—कलहप्रिय ।

कळिचाळ, कळिचाळो-वि०—योद्धा, बहादुर, वीर । उ०—वांकिम वींद मेड़ता वाळा, चक्रवति जतनि चढ़े **कळिचाळा** ।—रा.रू.
सं०पु०—युद्ध ।

कळिजुग—देखो 'कळजुग' । उ०—**कळिजुग** पाप ज अवतरयो, राजि के कारण विणसस लंक ।—बी.दे.

कळिजुगि, कळिजुगी-सं०पु०—कलियुग । देखो 'कळजुग' । उ०—असतां भड़ां तखत इम आखै, **कळिजुगि** अमर न हूवो कोइ ।—अज्ञात
वि०—कलियुग का, कलियुग संबंधी ।

कळिज्जणो, कळिज्जबो-क्रि०स०—पहिचानना । उ०—दीसइ विवहच-रीयं, जाणिज्जइ सयण दुज्जण सहावो । अप्पांण च **कळिज्जइ**, हुंडिज्जइ तेण पुहवीए ।—ढो.मा.

कळित-वि० [सं० कलित] १ सुंदर, मनोहर, विकसित ।
[सं० कलत्र] २ स्त्री । उ०—पूत **कळित** परवार में, सकळ रहे उळझाय । सूवारथ का सब को सगा, अंति अकेला जाय ।—ह.पु.वा.
३ कटि, कमर (अ.मा.)

कळित-कंठ-सं०पु० [सं० कलितकंठ] चातक (अ.मा.)

कळित्र-सं०स्त्री० [सं० कलत्र] १ पत्नी. २ स्त्री (ह.नां.) उ०—एकह पुत्र **कळित्र** मावात्र कटवाड़ संबंधा ।—केसोदास गाडण. २ कटि, कमर (ह.नां.)

कळिपंत-सं०पु० [सं० कल्पांत] देखो 'कळपांत' । उ०—जांणे **कळिपंत** काळ रो समद उलटीयो छै ।—रा.सा.सं.

कळिपतर-सं०पु० [सं० कल्पतरु] कल्पवृक्ष । उ०—ज्योति अति घरि-घरि जागी, इळी नीली अति अंब । केई ऊगा **कळिपतर**, अन निपिज्जे सै अंधि ।—ग्या.च.

कळिद्रुम, कळिब्रछ-सं०पु० [सं० कलिद्रुम, कलिवृक्ष] बेहड़ा (अ.मा.)

कळिम–सं०पु०—१ कलियुग. उ०—ससनेही सयणां तणां, **कळिमां** रहिया बोल ।—ढो.मा. २ पाप ।

कळमळणौ, कळमळबौ–क्रि०अ०—कंपायमान होना । उ०—कमठ पीठ कळमलिय थहरण दळमलिय सुचर थिर ।—र.रू.

कळियंक—देखो 'कळीयंक' (रू.भे.)

कळियळ–सं०पु०—१ कलरव. २ क्रौंच पक्षियों का कलरव । उ०—तिरिण दिन जाए प्राहुराउ, **कळियळ** कुरभड़ियांह ।—ढो.मा.

कळियसी–वि०—कलियुग का, कलियुग संबंधी, कलियुगी । (मि० कळीयसी—रू.भे.)

कलियांण–सं०पु० [सं० कल्याण] १ विष्णु (डिं.को.) २ ईश्वर (डिं.को.) ३ कल्याण, मोक्ष (डिं.को.) [रा०] ४ एक घोड़ा विशेष । उ०—रायमहल दीयउ छइ **कलियांण**, भमर पलारांयौ देव हइं ।—वी.दे. ५ एक राग विशेष. ६ जल, पानी ।

कळियार–सं०स्त्री० [सं० कलिचार] सेना (अ.मा.)

कळियुगि–सं०पु०—कलियुग । उ०—**कळियुगि** मांहि कांन्हा चहूआंण, तुं ते अलावदीन सुरतांण ।—कां दे.प्र.

वि०—कलियुग संबंधी, कलियुग का, कलियुगी ।

कळियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ फँसा या धँसा हुआ. २ सराबोर । ३ नष्ट. ४ लुप्त । (स्त्री० कळियोड़ी)

कळियौ–सं०पु०—'कळसौ' का अल्पार्थ, छोटा जल-पात्र ।

कळिरव–सं०स्त्री० [सं० कलरव] कलरव, मधुरव । उ०—एक भरड बीजी **कळिरव** करइ, तीजी घरी पीवजे ठंडा नीर ।—वी.दे.

कळिराज–सं०पु०—कलियुग । उ०—संभ घोर अंधकार **कळिराज** छायौ सत, जोर सत कियौ अवछन गवन जास ।

—उम्मेदसिंह सीसोदिया रौ गीत

कलिळ–सं०पु०—पाप (ह.नां.)

कळिहण–सं०पु० [सं० कलह] युद्ध, कलह । उ०—कर सत्र ग्रहे डसरण खळ **कळिहण**, काढ़ी अरिणयाळी कुळ-भांण ।—हरिसूर बारहठ

कळिहारी–वि०स्त्री० [सं० कलह+रा०प्र० हारी] कलहप्रिय, झगड़ालू । उ०—लूखौ भोजन भू सुवरण, घर **कळिहारी** नार । चौथा फाटघा कापडा, नरक निसांणी च्यार ।—अज्ञात

कळी–सं०स्त्री० [सं० कलिका] १ बिना खिला हुआ पुष्प, कलिका । उ०—१ कळी **कळी** कुसमां ऊझावै, बांण पाथ कळी ।—अज्ञात

उ०—२ संग सखी सीळ कुळ वेस समांणी, पेखि **कळी** पदिमरणी परि ।—वेलि.

[सं० कलिता] २ पत्थर का फूंका हुआ भाग जो प्रायः दीवारें आदि पोतने के काम आता है । उ०—महि मंडळ भींतड़ा क्रीत सूं मीढ़तां । **कळी** पालट हुवै जाहि केता ।—अज्ञात. ३ नाइयों का नाक के बाल उखाड़ने का एक उपकरण. ४ छबि, शोभा. ५ वृक्ष (अ.मा.) ६ गप्प । उ०—टाबर भाठौ नीर ढोवै, कर कलोळ मेलै **कळी** । अंधेड़ा थारी माटी सूं, राजी दुनियां दूबळी ।—दसदेव. ७ मिट्टी का बना बड़ा पात्र जो प्रायः गाड़ी पर लाद कर पानी लाने के काम आता है. ८ बीज. ९ बाल, केश. १० छंद में टगण का एक भेद ऽऽ।। (डिं.को.) ११ शिव. १२ युद्ध. १३ स्त्रियों के लहंगे का एक पाट या हिस्सा. उ०—चंपा चंपेली की चतुर, सोहै माळी साथ । केसर लंहगां की कळ्यां, हितू छैल के हाथ ।—अज्ञात

कहा०—जीजी नाचै, हूं ई नाचूं; जीजी रै तौ साढ़ा तीन सौ कळी रौ गागरौ नै थारै भुआजी भुरराट करै—अपनी अवस्था भूल कर सामर्थ्य से बाहर दूसरे की नकल करने का प्रयत्न करना ।

१४ कीर्ति. १५ प्रकाश. १६ छंद शास्त्र में मात्रा का नाम. १७ कला. १८ जस्त या रांगे का बना हुक्का ।

वि०—१ अनर्थ करने वाला. २ अद्भुत कार्य करने वाला. ३ काम-क्रोधाधि-विकारग्रस्त. ४ काला, श्याम. ५ समान, सदृश. उ०—मुग्धरी माता कुरळावै कुरजां **कळी** ।—उदयराज उज्ज्वल

क्रि०वि०—तरह, प्रकार, भांति । उ०—काळ अगन घ्रत **कळी** पिंड इक दिन पीघळसी ।—ऊ.का.

कली–सं०स्त्री०—१ चमक-दमक. २ वह लेप जो चमकाने या रंग चढ़ाने के लिये किसी वस्तु पर चढ़ाया जाय, कलई, जैसे—बर्तनों पर कली, काच पर कली ।

कळीकोठार–सं०पु० [सं० कलिता+कोष्ठागार] वह सरकारी महकमा जिसमें मकानों की मरम्मत व सफेदी का जमाखर्च रहता था ।

कळीजणौ, कळीजबौ–क्रि०भाव वा०—१ दलदल या कीचड़ में फँसा या सराबोर हुआ जाना. २ भीगे हुए द्विदलों का पीमा जाना. ३ नष्ट होना, नाश होना, लुप्त होना । उ०—जम देसंतर जावही, रूपंतर बळवंत । काळंतर न **कळीजणौ**, जेहा तूं जांणंत ।—बां.दा.

कळीजणहार, हारौ (हारी), कळीजणियौ—वि० ।

कळिजिओड़ौ, कळिजियोड़ौ, कळिज्योड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'कळणौ' ।

कळीट–वि०—काला-कलूटा ।

कळीदार–वि—१ जिसमें कळी हो । देखो 'कळी' २ (स्त्रियों का वह लहँगा) जो पाट या हिस्सेवार काट कर सिलाई किया गया हो ।

कलीदार–वि०—जिसमें कलई की हुई हो ।

कळीयंक–सं०पु० [सं० कलंक] दोष, कलंक । उ०—कोप करै कीधा अर कण कण, 'नींबा' हरा निकळंक नरेस । **कळीयंक** सबद न लागौ कोई । असुरे सुरे कियौ आदेस ।—दुरगादास राठौड़ रौ गीत

कळीयसी—देखो 'कळियसी' (रू.भे.) । उ०—कवी प्रभाव कल्पना, कुजल्पना **कळीयसी** । अनिच्छ जीव अघतं हरीच्छ सौ बळीयसी ।

—ऊ.का.

कलीळ–सं०पु० [सं० कलिल] पाप (ह.नां.)

कलीलिया–सं०स्त्री०—१ पंवार वंश की एक शाखा ।

कलीव–सं०नपु० [सं० क्लीव] नपुंसक, हिजड़ा (अनेका.)

कळूंदौ—देखो 'कळोंदरौ' ।

कळुआर–सं०पु०—कलियुग । उ०—ओदक **कळुआर** जळनासत भरियौ जवरा ।—अज्ञात

कलुख–संपु० [सं० कलुष] १ कलंक, दोष (डिं.नां.मा.) २ पाप (ह.नां., अ.मा.) ३ मलिनता ।

कलुखी–वि०—१ पापी. २ दुष्ट ।

संपु०—कलियुग ।

कलुल–संपु०—पाप (ह.नां.)

कलुस–संपु० [सं० कलुष] १ देखो 'कळुख' (रू.भे., डिं.को.) २ गदला पानी (डिं.को.)

कळुंजी–संपु० [सं० कालाजाजी] प्रायः दक्षिण भारत में होने वाला एक पौधा विशेष जो मसाले के महीन काले दाने की कलियों का होता है । स्याहजीरा ।

कळुंबौ–संपु० [सं० कुटुम्ब] कुटुम्ब, कबीला (मि० 'कड़ूंबौ' रू.भे.)

कळू–संपु० [सं० कलि] १ कलियुग । उ०—झोले पवन कळू झपटांणौ, घन संचरण अभळाख धरै । सुजस लेण आखेपन सारूं, कांमातुर आखेप करै ।—अज्ञात २ बुरा समय ।

कळूकाळ–संपु० [सं० कलि+काल] कलियुग ।

कलूरौ–संपु—एक घास विशेष ।

कळूस—देखो 'कळुख' (ह.नां., रू.भे.)

कळेधन–संपु० [संकला+इन्धन] दीपक (अ.मा.)

कळेज, कळेजउ–संपु० [सं० कलेजा] देखो 'काळजौ' । उ०—काय उताळी कंकणी, जे मद पीवण जेज । कंत समप्पै हेकलौ, कटकां ढाहि कळेज ।—वी.स. उ०—२ कउआ दिऊं बधाइयां, प्रीतम मेळइ मुज्झ । काढ़ि कळेजउ आपणउ, भोजन दिऊंली तुज्झ ।—ढो.मा.

कळेजी–संस्त्री०—१ कलेजा. २ कलेजे का मांस जो विशेष स्वादिष्ट व सुपाच्य माना जाता है ।

कळेजौ—देखो 'काळजौ' । उ०—भरि पावस सयणां पखै, उल्हरियौ जसराज । जांणू छूं ले जाइसी, काढ़ि कळेजौ आज ।—जसराज

कलेवड़ौ–संपु०—कलेवे का अल्पार्थ । देखो 'कलेवौ' । उ०—लुळी लुगायां भेळा करै, आखे साल कलेवड़ौ । बाळक बीजां साथ खोड़ी खै, मुरधर रौ मेवड़ौ ।—दसदेव

कलेवर–संपु० [सं०] १ शरीर, देह (अ.मा.) । उ०—कमळ समांन कलेवर कोमळ, कठण बाट बन री भारी ।—गी.रां.

२ आकृति, आकार ।

कलेवौ–संपु० [सं० कल्यवर्त, प्रा० कल्लवट्ट अथवा कल्यवाह] १ प्रातःकाल किया जाने वाला हल्का भोजन, जलपान, नाश्ता ।

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ ।

२ यात्रा के लिये घर से चलते समय साथ में बांधा जाने वाला भोजन, पाथेय ।

कलेस–संपु० [सं० क्लेश] १ दुःख, वेदना । उ०—कजिया रौ मुंह काळौ, कजिया में नित नवौ कळेस ।—बां.दा. २ कलह, झगड़ा. ३ परिश्रम. (डिं.को.)

कळै—देखो 'कलह' (रू.भे.)

कळैगारौ–विपु० (स्त्री० कळैगारी) [सं० कलहकार] कलहप्रिय, झगड़ालू ।

कलौंबरौ–संपु०—लोहे का एक उपकरण जो बैलगाड़ी के तख्ते के पीछे की ओर दोनों बाजू में नीचे लगा रहता है जिसके सहारे चक्र के बाहर की ओर धुरी के सहारे के लिये लगाई जाने वाली पैंजनी के सिरे को खींच कर बांधा जाता है ।

कलोड़ौ–संपु० [सं० कलोढ़] छोटा बैल (मि० 'किलोड़ौ', 'किल्होड़ौ' रू.भे.) उ०—कमळ झाड़ै पड़ै न चालै कलोड़ा, छांड भाजै भरै जीव छेला । 'अजा' रा पूजीया भांड कांधी अबै, बेगड़ा तांड तौ जिसी वेळा ।—हरनाथसिंह चांपावत री गीत

कळोधर–संपु०—१ कुल या वंश को धारण करने वाला, पुत्र (डिं.को.) उ०—भालां तणौ पांणगौ भारी, कुंभ कळोधर ज तैं कियौ । तण अपहार बेवलां तोड़े, गोरी सेन अचेत गियौ ।

—उडणा प्रथीराज री गीत

कलोरी—देखो 'कलवरी' (रू.भे.)

कलोळ–संपु० [सं० कल्लोल] आमोद-प्रमोद क्रीड़ा, केलि ।

उ०—१ टाबर भाठौ नीर ढोवै, कर कलोळ मेलै कळी ।—दसदेव

उ०—२ अनेक भांत रा पसु पक्षी कलोळ करै छै ।

—डाढ़ाळा सूर री वात

कलोळिया–संस्त्री०—पंवार वंश की एक शाखा (बां.दा.ख्यात)

कळौंजी—देखो 'कळूंजी' (रू.भे., अमरत)

कलौ–संपु०—१ हाथों के सोने या चांदी के गहने बनाने का एक औजार विशेष. २ फेफड़ा.(डिं.को.) ३ युद्ध (रू.भे. 'कळह')

कल्ड–संस्त्री—एक प्रकार की उत्तम घास जिसे घोड़े बड़े चाव से खाते हैं ।

कल्ड़ू–संपु०—१ रहंट की माल के सिरों को गूंथने के लिये काम में लाया जाने वाला लकड़ी का गुटका २ देखो 'करड़ू'

कल्पंत—देखो 'कळपांत' । उ०—किता तैं बार बिखै कल्पंत । बांधी ले संग प्रथी बळवंत ।—ह.र.

कल्प–संपु० [सं०] १ वेद का एक अंग जिसमें यज्ञादि करने का विधान है. २ वैद्यक के अनुसार रोग निवृत्ति की एक युक्ति. ३ एक प्रकार का नृत्य. ४ समय का एक विभाग । इसे ब्रह्मा के एक दिन के बराबर माना जाता है जो १४ मन्वंतर या ४३२००००००० वर्ष का होता है ।

कल्पणौ, कल्पबौ—देखो 'कळपणौ' (रू.भे.) उ०—हरि सुख छांडि साहि सुख कोड़ी, कल्पत गया किता सिर कूटि ।—ह.पु.वा.

कल्पत–संपु०—१ द्वेष, वैर । उ०—खून कियां जांणै खलक, हाड वैर जौ होय । बणै सगाई वयण तौ, कल्पत रहै न कोय ।—र.ह.

कल्पण, कल्पना–संस्त्री० [सं० कल्पना] १ रचना, बनावट, मनगढ़ंत बात. २ इंद्रियों के सामने अनुपस्थित वस्तुओं के स्वरूप को उपस्थित करने की एक शक्ति ।

कल्पांत–संपु० [सं०] देखो 'कळपांत ।

कल्पित–संपु०—दुष्ट हाथी (डिं.को.)

वि०—कल्पना किया हुआ।

कल्पी–वि० [सं०] १ कल्पना करने वाला. २ काव्यशास्त्र का रचयिता।

कल्मौ—देखो 'कलमौ' (रू.भे.) उ०—**कल्मां** नहि भरि है पांन कांन, मारेहु न ह्वै हैं मुसलमांन।—ऊ.का.

कल्यांण–सं०पु० [सं० कल्याण] १ मोक्ष। उ०—सबद बतावै हेकठा तब होय **कल्यांण**।—केसोदास गाडण २ एक प्रकार का छंद (ल.पिं.) ३ एक शुद्ध राग जो संपूर्ण जाति का होता है। यह श्री राग का सातवां पुत्र माना जाता है। उ०—भणंत स्री विनोदयं, **कल्यांण** केक मोदयं। खंभायची पटं गयं, वगेसरी विहंगयं।—रा.रू.

कल्यांण-कळस–सं०पु०यौ० [सं० कल्याणकलश] मांगलिक कलश (जैन)

कल्यांणकुंवर–सं०स्त्री०—पंवारवंशोत्पन्न एक देवी का नाम। (बां.दा. ख्यात)

कल्यांणी–सं०स्त्री० [सं० कल्याणी] सौभाग्यवती स्त्री, सधवा।

कल्यांणोत–सं०पु०—कछवाहा वंश की एक शाखा या व्यक्ति। (बां.दा. ख्यात)

कल्ल–सं०पु०—एक प्रकार का घास विशेष।

कल्लयांण–सं०पु० [सं० कल्याण] देखो 'कल्यांण'। उ०—पयंपै ईसर जोड़ पांण, क्रपा हिव मूझ करौ **कल्लयांण**।—ह.र.

कल्लर–सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो शकरकंद की फसल, मिट्टी के बर्तन और मिट्टी के बने अन्य पदार्थों को खराब या नष्ट कर देता है २ खट्टा और पतला छाछ मिला एक प्रकार का पेय पदार्थ। उ०—माहव सूम मिळाव मत, ऐड़ा घरां हिसाब। के हल्लर फल्लर करै, पावै **कल्लर** राब।—बां.दा. ३ युद्ध में बजाया जाने वाला बाजा विशेष (वं.भा.) उ०—त्रंब त्रहक्कै **कल्लरं** वर बंब बजाया, सहनाइन लग्गी ललक सिंधु सुणाया।—वं.भा.

कल्लौ—देखो 'किलौ'।

कल्हण–सं०पु०—१ युद्ध (मि० 'कळहण' रू.भे.) २ संस्कृत का एक प्रसिद्ध प्राचीन पंडित।

कल्हार–सं०पु० १ पुष्प (ह.नां.) २ श्वेत कमल. ३ सुगंधित कमल।

कळ्है–सं०पु० [सं० कलि] कलह, युद्ध (रू.भे.)

कल्होड़ौ–सं०पु०—छोटा बैल। उ०—इणि परि वांदिवा आव्या कुणही जो तस्या वहिलई **कल्होड़ा** कुण ही पल्लांण्या आसण होड़ा। —रा.सा.सं.

कवंद–सं०पु० [सं० कवींद्र] कविराज, श्रेष्ठ कवि (अ.मा.) उ०—सरब **कवंद** सिहाय, हो अड्डार वरणा। रावळ राजा रज्जिया, अन राजा राणां।—लूणकरण कवियौ

कवंध—देखो 'कबंध'।

कव–सं०पु० [सं० कवि] १ देखो 'कवि' (अ.मा.) २ बृहस्पति (अ.मा.) [सं०] ३ घोड़ा (अ.मा.)

कवक–सं०पु० [सं० कवल] १ ग्रास, निवाला. २ वादा, वचन। क्रि०वि०—१ कभी २ कब. ३ कैसे।

कवच–सं०पु० [सं०] १ आवरण. २ छाल. ३ योद्धाओं के पहनने का लोहे की जाली का एक पहिनावा, जिरहबख्तर। उ०—इम कुंभ अंधारी कुच सु कंचुकी, **कवच** संभु कांम क कळह।—वेलि.

कवचदीप–सं०पु० [सं० क्रौंच-द्वीप] पुराणों के अनुसार पृथ्वी के सात बड़े खंडों में से एक, क्रौंच-द्वीप (रा.रू.)

कवजौ—देखो 'कबजौ' (रू.भे.)

कवडाळौ–वि० (स्त्री० कवडाळी) १ कपर्दिकाओं (कौड़ियों) से युक्त। उ०—ईंढ़ी **कवडाळी** माथे पर ओढी, छैली अलकावळ मुखड़ै पर छोडी। —ऊ.का.

२ उमंगयुक्त (मि. 'कोडाळौ' रू.भे.)। उ०—सिर सेली वाळी हीर जड़्यौ, मुख **कवडाळौ** रतन जड़्यौ।—लो.गी.

सं०पु०—एक पक्षी विशेष।

कवडियौ–सं०पु०—कौड़ियों के आकार की छोटी-छोटी छितियों वाला सर्प विशेष।

कवडी–सं०स्त्री०—१ देखो 'कवड्डी' (रू.भे.) २ कौड़ी, कपर्दिका। उ०—प्रीतम-हूती बाहिरी, **कवडी** ही न लहांइ। जब देखूं घर आंगणइ लाखे मोल लहांइ।—ढो.मा.

कवडौ, कवड्ड–सं०पु०—१ कपर्दिका के रंग का घोड़ा विशेष (शा.हो.) २ कौड़ी, कपर्दिका। उ०—कसूमल छोळ भरै नड खड्ड, करद्दम आमिख हड्ड **कवड्ड**।—मे.म.

कवड्डी—देखो 'कवडी'। उ०—एकइ वन्न वसंतड़ा, ए वड अंतर काय। सिंघ **कवड्डी** ना लहै, गयवर लाख विकाय। —अचळदास खीची री वचनिका

कवण–सर्व०—कौन, क्या, प्रश्नवाचक सर्वनाम जिसके द्वारा अभिप्रेत व्यक्ति या वस्तु पूछी जाती है। उ०—१ कवि पार तूझ ईसर कहै, काळीका जांणै **कवण**।—देवि. उ०—२ कर जोड़ एम ईसर कहै, कर पूजा जांणै **कवण**।—ह.र.

कवत–सं०पु० [सं० कवित्त] दंडक के अंतर्गत ३१ अक्षरों का एक वृत्त (छंदशास्त्र)। उ०—रिझाइ गावै नूप **कवत** कर, केइ गावै करतार —पा.प्र.

कवता–सं०स्त्री० [सं० कविता] कविता।

कवरजा–सं०पु० [सं० कविराजा] कविराजा, श्रेष्ठ कवि।

कवररस–सं०पु० [सं० कमल-रस] हंस (अ.मा.)

कवरांगुर–सं०पु० [सं० कुमार+गुरु] १ प्रधान राजकुमार. २ राजकुमार का गुरु।

कवरांणी–सं०स्त्री०—राजकुमार की धर्मपत्नी।

कवरांपत, कवरांपति–सं०पु०—युवराज। उ०—यर दसूं दसा रा छोड भागै उतन, करै कुण समर फिरंगांण मांनै कथन। महाबळ आज रौ असौ धोळै मथण, 'रतन' **कवरांपति** कढ़ण जवदै रतन। —जवांनजी आढ़ौ

कवराय, कवराज, कवराजा–सं०पु० [सं० कवि+राट्] कविराजा, श्रेष्ठ

कवि (अ.मा.) उ०—कांम पड़ै कद कोट, भाग जद अहै अमरावां। कांम पड़ै कायबां, भाग जद अहै कबरावां।—वि.सं.

कवल—सं०पु०—१ वादा, प्रतिज्ञा, कौल, इकरार। उ०—म्हे तौ लीयौ कवल कराय हौ रघुनंदजी, अब देतां फाटे हीयौ हो रघुवरजी। —गी.रा.

२ कौर, ग्रास। उ०—नीला मौ पहली पड़ै, कीध उतावळ कांय। वाल्हा कवलां पाळियौ, पड़तौ मूभ पुगाय।—वी.स.

कवळ—सं०पु० [सं० कमल] १ कमल। उ०—मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चरण ही कवळ रखाय।—मीरां २ सूअर (डिं.को.) (मि. कवळौ) ३ वराहावतार। उ०—आखा दखण सुमेळ उखेलै, ताखा लियां सांमध्रम तीख। धणी ज तूं फबियौ राखण धर, खीवर कवळ रदन सारीख।—किसनौ आढ़ौ ४ सफेद रंग का सूअर।

कवळधात—सं०पु० [सं० कमलधाता] सूर्य्य (अ.मा)

कवळापति—सं०पु० [सं० कमला+पति] विष्णु। उ०—ससिहर कै घरि सूर समावै उलटि, उलटि कवळ कवळांपति पावै।—ह.पु.वा.

कवलास—सं०पु० [सं० कैलास] कैलास पर्वत (रा.रा.)

कवलियौ—सं०पु०—सोने चाँदी के आभूषणों पर खुदाई करने का स्वर्णकारों का एक औजार विशेष।

कवळी—सं०स्त्री०—१ एक प्रकार की गाय। यह शुभ मानी जाती है (ह.नां) उ०—कपळा कवळी ने बारै पुचकारै लाखर-लाखर ऐ आखर मन मारै।—ऊ.का. २ देखो 'कंवळी'।

कवळौ—सं०पु० १ देखो 'कंवळौ' २ बैल।

[सं० कोल] ३ सूअर। उ०—इण कवळै (वाराह) तं ड रै जोर हाथी पाड़िया, फेट दे घोड़ा सवार पाड़िया, डाढ़ां (दातड़ी) सूं सूरवीरां नै ओफाड़िया, झटकौ दे हेटा न्हांकिया।—वी.स.टी.

४ वीर, योद्धा, सूर। उ०—मांटीपणौ तुहाळौ 'माना', रहियौ घणूं घणा दिन रोस। कोस हेक मरवा जावै कुण, कवळौ गयौ हजारां कोस।—दुरसौ आढ़ौ

वि०—देखो 'कंवळौ'।

क्रि०वि०—पास, निकट।

कवलसी—सं०पु० [सं० कैलास] कुबेर (ह नां.)

कवसळ—सं०स्त्री० [सं० कौशल्या] कौशल्या (रू.भे.)

कवसळेंद्र—सं०पु० [सं० कौशलेंद्र] श्री रामचन्द्र (र.ज.प्र.)

कवसल्या—सं०स्त्री० [सं० कौशल्या] दशरथ की पटरानी जो श्री रामचंद्र की माता थी (र.रू.)

कवांण, कवांन—सं०पु० [फा० कमान] १ धनुष। उ०—सुणतांई जोधारपुर चोगड़द तूटे, कवांण के चल्ले तें सायक से छूटे।—र.रू.

२ एक प्रकार का फैलने वाला कांटेदार पौधा (अमरत)

कवांरपाठौ—सं०पु०—एक प्रकार का क्षुप जो खारी रेतीली भूमि व नदी के किनारे पर अधिक होता है, धी-कुंवार

कवाड़—सं०पु० [सं०कपाट] कपाट (डिं.को.)

कवाड़पण, कवाड़पणौ—सं०पु०—रक्षकपन, रक्षा करने का भाव। उ०—अर आपरी आऊ रे वळ ऊबरिया अंग नूं कवाड़पणा में गाढ़ौ करण कलंब रूप कांटा में जड़ियौ।—वं.भा.

कवाड़ियौ—सं०पु० [सं० कुठार] १ छोटी कुल्हाड़ी (अल्पा.)

कहा०—१ इण कवाड़िया माथै ओई डांडौ—बुरे स्वभाव वाले समान व्यक्तियों के मिलने पर।

२ कीं तौ कवाड़ियौ भोंटौ अर कीं धव चीकणौ—कुछ तो कुल्हाड़ा ही भोंटा है और कुछ कटने वाली लकड़ी भी चिकनी है अतः कट नहीं सकती। थोड़ी बहुत कमी दोनों ओर होने पर कही जाने वाली कहावत। ३ पग मैं कवाड़ियौ क्यों बावणौ—अपने हाथों अपनी हानि करना अच्छा नहीं।

२ छोटा कपाट (अल्पा०)

कवाड़ी—सं०स्त्री०—१ छोटी कुल्हाड़ी (अल्पा.) २ छोटा कपाट. ३ आड़ी व खड़ी लकड़ियों को जोड़ कर बनायी गयी रोक।

कवाड़ौ—सं०पु०— कुल्हाड़ी।

कवाज—सं०स्त्री [अ० कवायद] १ सेना का युद्धाभ्यास, लड़ने वाले सिपाहियों की युद्ध नियमों के अभ्यास की क्रिया, कवायद. २ नियम, कायदा।

कवाद—सं०पु०—१ देखो 'कवाज' (रू.भे.) बंकौ भाराथां पाराथ गाथ असत्रां जुगाद वेता, ससत्रां कवाद जेता धारियां सधीर।—क.कु.बो.

[सं० कवि] २ कवि.

[रा०] ३ सींग के टुकड़ों का बना धनुष या कमान। उ०—उम बिरयां मुलतांन खां मूंछां कर घल्लै। ऐंचि कवादे टंक तोलि जब्बू कहि बुल्लै।—ला.रा.

कवादू, कवादू—वि०—जिसे कवायद का अभ्यास हो। उ०—संथा वीर विद्या कवादू ससत्रां आभ लागा सूर। जवां दूजमथी जोम अथागा जरूर। —दादूपंथीया रौ गीत

कवार—सं०पु० [सं० कुमार] १ कुमार। उ०—रिम वीर सहायत की रण री, अत दीह कवार लिछम्मण री।—पा.प्र.

[सं० कुंभकार] २ कुम्हार, कुंभकार।

कवारपाठौ—सं०पु०— धी-कुंआर (अमरत)

कवारी-घड़ा—देखो 'कंवारी-घड़ा' (रू.भे.)

कवारौ—वि०पु० [सं० कुमार (स्त्री० कवारी) अविवाहित। (रू.भे. 'कवारौ')

कविंद—सं०पु० [सं० कवि+इंद्र] काव्यकार, श्रेष्ठ कवि (पिं.प्र.)

कवि—सं०पु० [सं०] १ काव्यकार, कविता बनाने वाला।

कहा०—१ कवि, चतारौ, पारधी, नृप, वेस्या अर भट्ट यां से कपट न कीजिये, यांरा रच्या कपट्ट—कवि, चित्रकार, शिकारी, राजा, वेश्या और कथाभट्ट इनसे कभी कपट नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये स्वयं इतने कपटी होते हैं कि मानो कपट ही इनका रचा हुआ हो। २ जठै न पोंछै रवि उठै पोंछै कवि—जहां सूर्य भी नहीं पहुँचता वहां

कवि की कल्पना पहुँच जाती है। कवि की प्रशंसा के लिये।
२ वाल्मीकि (अ.मा.) ३ व्यासदेव. ४ सूर्य (डिं.को.) ५ पंडित. ६ शुक्र, शुक्राचार्य (अ.मा.) ७ ब्रह्मा (रू.भे. 'कवि')

कवियरण-सं०पु० [सं० कवि+जन] कवि, कविजन (रू.भे.) । उ०—प्रणकळ विमळ कहै तवि कवियण, घण सत अतंत दंत महंत घण।—ल.पिं.

कविईलोळ-सं०पु०—डिंगल का एक गीत (छंद) जिसके प्रत्येक पद में १६ मात्रायें तथा अंत में सगण होता है। बाद के दो तुक प्रथम दो तुकान्त के उलट-पलट शब्द होते हैं।

कवित-सं०पु०—१ देखो 'कविता'. २ छप्पय छंद का नाम. ३ इकतीस अक्षरों का एक वृत्त। इसमें ८,८,८,७ के विराम से ३१ वर्ण होते हैं। अंत में गुरु होता है। इसे मनहरन भी कहते हैं।
कहा०—कवित सोवै भाट नै, खेती सोवै जाट नै—जो जिसका कार्य हो वह उसी को शोभा देता है।

कविता-सं०स्त्री०—मनोविकारों पर प्रभाव डालने वाला रमणीय वर्णन, काव्य-रचना की शक्ति।
कहा०—कविता तौ कूवै पड़ी, चूल्है पड़ी चतुराई। 'राघौ' चेतन यूं कहै, कमाई जिको खाई—कविता व चातुर्य्य सब बेकार है, मनुष्य का पेट पैसा कमाने से भरता है। कविता पर व्यंग।

कविताई—देखो 'कविता'

कविति-सं०पु०—१ देखो 'कवित'
सं०स्त्री०—२ देखो 'कविता'

कवियण-सं०पु० [सं० कविजन] कवि, कविजन (रू.भे.)
उ०—पायौ किण धनवंत पद, दांमै डावड़ियांह। कवियण किण पायौ कुरब, मांगै मावड़ियांह।—बां.दा.

कविरजा, कविराज, कविराजा, कविराव-सं०पु० [सं० कवि+राट्] १ श्रेष्ठ कवि. २ राजा-महाराजाओं द्वारा चारण कवियों को दिया जाने वाला पद या उपाधि. ३ इस पद या उपाधि को पाने वाला कवि. ४ श्रेष्ठ वैद्य।

कविळास, कविळासि, कविळासी-सं०पु० [सं० कैलास] १ तिब्बत की सीमा में स्थित कैलाश पर्वत जो शिव का निवास-स्थान माना जाता है। उ०—१ माथै मुकट सोना तणौ, राजा इंद्र सभा मांहे कविळास।—वी.दे. उ०—२ कविळास सूं सिंघवाहणी चंडी सहित ईसर त्रिखभ चढ़ि आया।—वचनिका
२ कैलास पर्वत पर निवास करने वाला शिव. ३ कैलास पर्वत का स्वामी, कुबेर. (ह.नां.,नां.मा.)

कविळौ—देखो 'कवळौ' (रू.भे.)

कवींद, कवींद्र-सं०पु० [सं० कवींद्र] श्रेष्ठ कवि। उ०—नाहर तणौ अगंजी नूभै नर, करै न समजत दूजा कोय। काज सुधारण सदा कवींदां, हाटक रा आलंकृत होय।—नींबोळ सरूपसिंह री गीत

कवी—१ देखो 'कवि' (रू.भे.)
सं०स्त्री० [सं०] २ घोड़े की लगाम। उ०—चकेली कवी अब्बती प्रभ थावै, विसाखा सुची रिच्छका लाव नावै।—वं.भा.

कवीग्रण—देखो 'कवियरण' (रू.भे.)

कवीट—देखो 'कटूंबर' (अमरत)

कवीयंद-सं०पु० [सं० कवींद्र] श्रेष्ठ कवि, कवींद्र। उ०—जिसा हाका मालम सोह जांणै, तू राखै कवीयंदां तीख।
—नींबोळ सरूपसिंह री गीत

कवीयण, कवीयांण-सं०पु०—देखो 'कवियण' (रू.भे.)। उ०—पनंग तणौ दूर कर पासौ, कवीयण 'आसौ' एम कहै।—आसौ गाडण

कवीलौ-सं०पु०—१ रनिवास की स्त्रियां। उ०—पदमसिंघजी रा कवीला वसी घणा ले कूंपावतां रै गया।—बां.दा.ख्यात
२ देखो 'कबीलौ' (रू.भे.)

कवीसर-सं०पु० [सं० कवीश्वर] कवीश्वर, कविराज।

कवू—देखो 'कऊ' (रू.भे.)

कवेरजा-सं०स्त्री०—दक्षिण की कावेरी नदी। उ०—कांठै नदी कवेरजा, खेमा खड़ा कियाह।—बां.दा.

कवेल-सं पु० [सं०केवल्य] श्रीकृष्ण (अ.मा.)

कवेळा-सं०स्त्री० [सं० कु+वेला] बुरा समय, कुसमय।

कवेलू-सं०पु०—खपरैल।

कवेळौ-सं०पु०—बुरा समय, कुसमय।

कवेस, कवेसर, कवेसुर-सं०पु० [सं० कवि+ईश, ईश्वर] कवींद्र, कविराज, श्रेष्ठ कवि (अ.मा.) उ०—पंगी काज कवेसां पमंगी करै पेस।
—अज्ञात

कवौ-सं०पु०—कौर, ग्रास, निवाला।
क्रि०प्र०—देणौ, लेणौ।
कहा०—मूंडै आयौ कवौ नहीं गमावणौ—मुंह तक आया हुआ कौर नहीं छोड़ना चाहिये। जो वस्तु मिलने को हो उसको छोड़ना उचित नहीं।

कव्यंद-सं०पु० [सं० कवीन्द्र] महाकवि, कवीन्द्र। उ०—वरवीरं छंद कह यम कव्यंद।—र.ज.प्र.

कव्य-सं०पु०—वह अन्न जो पितरों के निमित्त दिया जावे।
उ०—द्विजन्म पाय हव्य कव्य हव्य वाट में दहे।—ऊ.का.

कव्वाल-सं०पु०—१ मुसलमानों में गाने-बजाने वाली एक जाति विशेष. २ कव्वाली गाने वाला।

कव्वाली-सं०स्त्री०—१ एक गीत जो प्रायः सूफियों की मजलिस में गाया जाता है. २ इस धुन में गाई जाने वाली कोई गजल। यह प्रायः समूह में गाई जाती है. ३ मुसलमान पीरों की स्मृति में गाये जाने वाले विशिष्ट पद्धति के सामूहिक गीत।

कस-सं०पु०—१ सार, निचोड़, तत्व। उ०—आखी ऊमर आंरौ कस आयौ, छळ बळ मुतळब बस कर छिटकायौ।—ऊ.का.
क्रि०प्र०—काढ़णौ, खींचणौ, लेणौ।

२ किसी आर्द्र पदार्थ को पीस कर निकाला हुआ सार।

क्रि०प्र०—काढ़णौ, खींचणौ।

३ एक सुगंधित तृण विशेष, खस (रू.भे., डिं.को.) ४ प्रायः प्रातः-काल या सायंकाल होने वाले छोटे छोटे छितराये हुए बादल-खंड। उ०—हुवौ थिर समदर आभौ जाण। कसां में घुळै कसुंबल रंग। —सांझ

५ शक्ति, ताकत। उ०—जैमल घणौ कस मांहे कहै 'मसालां' घणी करो, मसालां हाथियां ऊपर झालनै चडी।—नैणसी

[सं० कसा] ६ चाबुक, कोड़ा।

सं०स्त्री० [सं० कषः] ७ कसौटी. ८ कंचुकी बांधने की डोरी। उ०—बीजुळियां चहळावहळि, आभय आभय कोडि। कद रे मिळऊंली सज्जनां, कस कंचूकी छोडि।—ढो.मा.

वि०—थोड़ा, कम।

कसक-सं०पु०—१ कासीस नामक धातु (डिं.को.) २ दर्द।

कसकणौ, कसकबौ-क्रि०अ०—१ कसकना, दर्द करना। उ०—जग 'राजड़' अलंग सूं जड़ियौ पंजर, कसकै पंजर पसार। हाथ न लागौ जठै हाड़को, गाज इलाज नहीं संसार।—महारांणा राजसिंह रौ गीत

२ भागना. ३ खसकना ४ लचकना। उ०—बेतरफ भड़ वेढिंग रा जूटा हंगांमी जंग रा, धसमसक घरणी कसकै कूरम, ससक नामा सेस।—र.रू.

कसकणहार, हारौ (हारी), कसकणियौ—वि०।

कसकाणौ कसकाबौ—स०रू०।

कसकिग्रोड़ौ, कसकियोड़ौ, कसक्योड़ौ—भू०का०कृ०।

कसकस-सं०पु०—कसक, पीड़ा, चुभन।

कसकाणौ, कसकाबौ-क्रि०स० ('कसकणौ' का स.रू.) १ कसकाना. २ भगाना. ३ खसकाना. ४ लचकाना।

कसकाणहार, हारौ (हारी), कसकाणियौ वि०।

कसकायोड़ौ—भू०का०कृ०।

कसकावणौ, कसकावबौ—रू०भे०।

कसट-सं०पु० [सं० कष्ट] १ कष्ट, पीड़ा (डिं.को.) २ संकट। उ०—कसट सहियौ जिको हाल मालुम कियौ, हाल कहियौ अतै व्हाल हुयगौ।—मे म. ३ प्रसव-वेदना।

कसटणौ, कसटबौ-क्रि०अ०—१ कष्ट से पीड़ित होना. २ प्रसव-पीड़ा से ग्रस्त होना।

क्रि०स०—३ कष्ट देना।

कसटणहार, हारौ (हारी), कसटणियौ—वि०।

कसटिग्रोड़ौ, कसटियोड़ौ, कसटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

कसटि—देखो 'कसट'। उ०—पूजियै कसटि भंगि वनसपती, प्रसूतिका होळिका प्रब।—वेलि.

कसटियोड़ी-भू०का०कृ०स्त्री० [सं० कस्टित] प्रसव-पीड़ा से ग्रस्त।

कसटियोड़ौ-भू०का०कृ०—कष्ट से पीड़ित। (स्त्री० कसटियोड़ी)

कसण-सं०पु० [सं० कृशानु] १ आग, अग्नि, हुतासन। उ०—बिण रवि बोम कसण ज्योति बिण, धाराहर बिण जसी धर।—अज्ञात

२ कंचुकी का बंधन। उ०—नाग फणां का तड़कली, छोटि कसण पयोहर खींची।—वी.दे. ३ बंधन, कसन। १ उ०—गहड़ घड़ कांमणी करै पांणी ग्रहण, करगि खग वाहतौ जुवा जूसण कसण।—हा.झा.

उ०—२ कांमणियां तणै तांणियै कसणै मोहै दूजां तणा मण(न), 'राजड़' रांण रहै रळियावत, कसियां जरदाळै कसण।

—जोगीदास कवारियौ

कसणका, कसणक्क-सं०पु०—कवच। उ०—कसणक्क झणक्क बड़क्क कड़ा, पिडक्क थड़क्क दड़क्क पुड़ा।—पा.प्र.

कसणा, कसणियौ—देखो 'कसण' (२, ३)

कसणी-सं०स्त्री०—१ रगड़ कर परीक्षा करने का काला पत्थर विशेष, कसौटी। उ०—जन हरिदास अहरणि घण कसणी, तब हरि हाथ पसारै।—ह.पु.वा. २ कष्ट, तकलीफ. ३ ऊंट के चारजामे के ऊपर का बंधन (क्षेत्रीय) ४ बंध. ५ कंचुकी बांधने की डोरी।

कसणौ-सं०पु०—१ देखो 'कसणी'। उ०—कामणियां तणै तांणियै कसणै। मोहै बीजां तणा मण (न)। 'राजड़' रांण रहै रळियावत, कसियां जरदाळै कसण।—जोगीदास कवारियौ २ गरदन, सिर. ३ कवच का हुक।

कसणौ, कसबौ-सं०पु०—वह रस्सी या फीता जिससे किसी वस्तु को कस कर बांधते हैं। कसन, कसना। उ०—सजि कसणा करि लाज ग्रहि, चढ़िग्रउ साल्हकुमार।—ढो.मा.

कसणौ, कसबौ-क्रि०स०—१ मजबूत बांधना। उ०—कसिया जरद घणी धर कारण, जस रसिया रूकां जमरांण।

—आंबेर प्रतापसिंह रौ गीत

२ कसौटी पर कसना, कसौटी पर लेना। उ०—घड़ अहरण रतन 'जसौ' घण घाअे, दोमझि कसे कसवटी दीध। सोअन जड़त जिसा नह सोभा, लोह लगा अंग सोभा लीध।—रांमौ आसियौ

३ भींचना, दबाना. ४ कटिबद्ध होना, सन्नद्ध होना। उ०—काळ सकळ जग काटवा, कस ऊभौ केवांण।—ह.र. ५ कसमसाहट करना। उ०—भांति भांति रा जाति जाति रा नाहर सांकळै जड़िया रहड़ए गाडे बैठा कसता, कणणता, बूंबाड़ा करता वहै छै।

—रा.सा सं.

६ धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाना। उ०—करै पंच निवाज वाचै कुरांण कुलाधम्म रत्ता कसंता कबाणं।—वचनिका ७ साज आदि रख कर सवारी तैयार करना. ८ पुरजों को मजबूती से बैठाना. ९ रस्सी, तार आदि के खिंचाव से तन कर तैयार होने वाले वाद्यों को चढ़ाना, बजाने के लिए तैयार करना।

क्रि०अ०—१० कसैला होना, कसिया जाना. ११ बंधन के तनने से बंधी हुई वस्तु का अधिक दब जाना।

कसणहार, हारौ (हारी), कसणियौ—वि०।

कसाणौ, कसाबौ, कसावणौ, कसावबौ—स०रू० ।

कसिम्रोड़ौ, कसियोड़ौ, कस्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

कसीजणौ, कसीजबौ—कर्म वा० भाव वा० ।

कसतूरियौ–वि०—१ कस्तूरी का, कस्तूरी संबंधी. २ कस्तूरा के रंग का ।

सं०पु०—कस्तूरी के रंग से मिलता-जुलता एक प्रकार का घोड़ा । —शा हो.

कसतूरियौम्रग, कसतूरियौम्रघ–सं०पु० [सं० कस्तूरीमृग] वह मृग जिसकी नाभि में कस्तूरी निकले ।

कस्तूरी–सं०स्त्री० [सं० कस्तूरी] एक प्रसिद्ध सुगंधित द्रव्य जो एक विशेष प्रकार के मृग की नाभि से निकलता है । मृगमद ।

कसन–सं०पु० [सं० कृष्ण] १ श्रीकृष्ण (डि.को.) २ विष्णु (डि.को.)

वि०– श्याम, काला ।

कसनाग, कसनागर, कसनागरौ–सं०पु०—अफीम (डि.को)

कसनावास–सं०पु० [सं० कृष्ण + वास] पीपल का पेड़ (डि.को.)

कसप–सं०पु० [सं०कश्यप] एक वैदिककालीन ऋषि जो महर्षि मरीचि के पुत्र और सृष्टि के पिता थे । दिति और अदिति इनकी स्त्रियाँ थीं । उ०—सुरपत रै अजन कसप रै सूरज, तमहर रै क्रन ऊंची तांण ।—मेघराज म्राढ़ौ

कसपतनु–सं०पु०यौ० [सं० कश्यप + तनु] गरुड़ (ना.डि.को.)

कसपरजबाळी–सं०स्त्री०—भूमि, पृथ्वी (डि.को.)

कसब–सं०पु०—पेशा, धंधा. २ व्यभिचार से पैसा कमाने का कार्य. ३ वेश्यावृत्ति ।

कसबन–सं०स्त्री०—वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्री ।

कसबी–सं०स्त्री०—ऊँट पर चारजामा कसने के लिये पट्टा या मोटा फीता । उ०—ढोलउ करहउ सज कियउ, कसबी घात पलांण । सोवन-वांनी घूघरा, चालणरइ परियांण ।—ढो.मा.

कसबोई, कसबोय, कसबोह–सं०स्त्री० [फा० खुशबू] सुगंध (डि.को.) उ०—झुक-झुक गोडी लार झमक रमझोळ की, पटा छूट कसबोह भमर भणंके परां ।– महादांन महडू

कसबौ–सं०पु० [अ० कसबा] १ बड़ा गांव, कस्बा । उ०—कसबा नोल-गड कै तौ जमीं की सांकड़ाई, समरथसिंघजी का कैर कांकड़ की अड़ाई ।—शि.वं.

२ एक प्रकार का सरकारी लगान. ३ देखो 'कसबोय' (रू.भे.)

कसम–सं०पु० [अ०] १ शपथ, सौगंध ।

क्रि०प्र०—काढ़णी, खाणी, घालणी, देणी, लेणी ।

[अ० खसम] २ शौहर, पति ।

कसमल–सं०पु० [सं० कश्मल] पाप (ह.नां.)

कसमलप्रिय–सं०पु०यौ० [सं० कुसुम + प्रिय] भौंरा (ह.नां.,अ.मा.)

कसमसणौ, कसमसबौ–क्रि०अ०—१ हिचकिचाना. कसमसाहट करना, कुलबुलाहट करना । उ०– सेल घमोड़ा किम सह्या, किम सहिया गजदंत । कठिण पयोहर लागतां, कसमसतौ तू कंत ।—हा.झा.

२ किसी कार्य को करने में असमर्थता प्रकट करना. ३ उत्कंठित होना. ४ बेचैन होना, घबराना ५ दबना. ६ कंपायमान होना, कांपना ।

कसमसणहार, हारौ (हारी) कसमसणियौ—वि० ।

कसमसाणौ, कसमसाबौ—स०रू० ।

कसमसिम्रोड़ौ, कसमसियोड़ौ, कसमस्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

कसमसाट–सं०पु०—१ हिचकिचाहट. २ कसमसाहट ।

कसमस्सणौ, कसमस्सबौ—१ देखो 'कसमसणौ' (रू.भे.)

उ०—कसमस्से कौ रंभ सेस नागिंद्र सलस्सलि । सात समंद गिर म्राठ, तांम धर मेरु टळट्ळि ।—वचनिका

कसमार–सं०पु०—किसी बंधन के दो सिरों को मिला कर बांधने या कसने की अंकुसी, बकसुआ (मि० 'बक्कल' अं०)

कसमीर–सं०पु०— भारत के उत्तर में स्थित एक प्रदेश, काश्मीर ।

कसमीरज–सं०स्त्री० [सं० काश्मीरज] काश्मीर में उत्पन्न होने वाली केसर (ह.नां.,अ.मा.)

कसमीरसी–सं०स्त्री०—सरस्वती, शारदा (अ.मा.)

कसमीरी–सं०स्त्री०—सरस्वती (अ.मा.)

वि०—काश्मीर का, काश्मीर संबंधी ।

कसमेरि, कसमेरिय, कसमेरी–वि०— काश्मीर का, काश्मीर संबंधी ।

कसर–सं०स्त्री० [अ०] १ कमी, न्यूनता । उ०—कसरां करता में राई नह काई, कसरां करमां में भुगतां रे भाई ।—ऊ.का.

क्रि०प्र०—म्राणी, करणी, घालणी, पडणी, राखणी, रैणी, होणी ।

मुहा०—कसर काढ़णी, कसर निकाळणी—कमी को पूरी करना ।

कहा०—सींग री कसर पूंछ में निकळणी—एक की कमी दूसरे से पूरी होने पर ।

२ वैर, द्वेष ।

क्रि०प्र०—राखणी, होणी ।

मुहा०—१ कसर काढ़णी, कसर निकाळणी—बदला लेना.
२ कसर पड़णी—मनमुटाव होना ।

३ हानि, घाटा ।

क्रि०प्र० —करणी, होणी ।

४ नुक्स, दोष ।

क्रि०प्र०—करणी, होणी ।

कसरत–सं०पु० [अ०] शरीर को बलवान बनाने के लिए दण्ड-बैठक आदि परिश्रम के कार्य, व्यायाम ।

वि०—अधिकता, ज्यादती ।

कसरायत–सं०स्त्री० [अ० कसर] १ कसर ।

सं०पु०—२ एक प्रकार का सरकारी कर ।

वि०—किसी प्रकार की कमी न रखने वाला ।

कसरियौ–सं०पु०—लकड़ी की चौड़ाई, ऊँचाई या समतल देखने का एक औजार (बढ़ई)

कसरौ-सं०पु०—निशान, चिन्ह ।

कसवटी—देखो 'कसौटी'। उ०—घड़ महरण रतन 'जसौ' घण घाये, दोमझि कसे कसवटी दीध । सोव्रन जड़त जिसौ नह सोभा, लोह लगा अंग सोभा लीध ।—रांमो प्रासियौ

कसवर-सं०पु० [सं० कस=गतौ=कस्वर] द्रव्य, धन (नां.मा.)

कसस्सणौ, कसस्सबौ-क्रि०प्र०—जोश में एक साथ चलना । उ०—भड़ भिड़ज्ज गज घज्ज धड़ा चतुरंग कसस्सं ।—वचनिका

कसा-सं०स्त्री०—घमंड, अभिमान । उ०—दोयणां च्यार दिन चहौ जीवण दसा, तज कसा रहौ महाराज ताबै—चिमनजी आढ़ौ

कसाइलौ-सं०पु०—१ कसैला होने का भाव । उ०—मीठा मोळा खाटा खारा कड़ुआ कसाइला भांति भांति रा खटरस सवाद लीजै छै ।
—रा.सा.सं.

२ निर्धनता (मि. 'कसालौ' रू.भे.)

कसाई-सं०पु० [अ० कसाई] १ वधिक, बूचड़ ।

मुहा०—कसाई रै खूंटा सूं बांधणौ—निर्दयी के अधिकार में देना ।

कहा०—१ कसाई नै गाय बेचणी—दुष्ट के हाथ में सीधे व्यक्ति को सौंप देना. २ कसाई रोवै मांस नै बकरौ रोवै जीव नै—इस संसार में सब अपने स्वार्थ को रोते हैं, दूसरे के हित-अहित का उन्हें कोई ध्यान नहीं रहता. ३ कसायां रै घर में तौ मांस इज हात आई—बुरे व्यक्तियों के पास तो बुरी बातें ही मिलती हैं. ४ बिगड़ियोड़ौ वांणियौ कसाई बराबर—अगर बनिया बुरा हो जाता है तो आसामियों को बधिक के समान चूस-चूस कर मार डालता है ।

२ मुसलमानों की एक जाति विशेष जिसके व्यक्ति प्रायः मांस का व्यवसाय करते हैं ।

वि०—क्रूर, निर्दयी ।

कसाईखांनौ-सं०पु०—वह स्थान जहां पशु काटे जाते हों, बूचड़खाना ।

कसाईवाड़ौ-सं०पु०—१ कसाइयों का मुहल्ला. २ बूचड़खाना ।

कसाणौ, कसाबौ-क्रि०स० १ कसाना, 'कसणौ' क्रिया का स.रू. । देखो 'कसणौ' ।

क्रि०अ०—२ कटिबद्ध होना, सन्नद्ध होना । उ०—गोवद्धन कर लेगण कौ, जिम कन्ह कसाया । जांणि जटासुर जंगमैं, भुज भीम वजाया ।
—वं.भा.

कसाणहार, हारौ (हारी), कसाणियौ—वि० ।

कसायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

कसाय, कसायलौ-वि० (स्त्री० कसायली) [सं० कषाय+रा० प्र० लौ] कसैला. कसिया हुआ ।

कसार-सं०पु० [सं०] गुड़ या चीनी मिला घी में भुना हुआ आटा । उ०—लाडू करूं कसार कौ, करड़ी में राखूं पात । दिन-दिन तौ दुख से काढूं हूं, बैरिन हो गई रात—लो.गी.

कसारा-सं०स्त्री०—कांसी, पीतल आदि धातुओं के बर्तन बनाने व बेचने का व्यवसाय करने वाली एक जाति, ठठेरा ।

कसारी-सं०स्त्री०— झींगुर ।

कसारौ-सं०पु०—१ देखो 'कसार' । उ०—आसोजां में खीर न खायी, काती कियो कसारो हो राम ।—लो.गी. २ कसारा जाति का व्यक्ति ।

कसालदार-वि०—निर्धन, कंगाल ।

कसालौ-सं०पु०—१ निर्धनता (डिं.को.) उ०—बापड़ी छोरी काळीधार डूबगी, बाप आंधी अर सासरै पी'रै दोनूं घरां में कसालौ—वरसगांठ २ संकट । उ०—बनस्पति, कंदमूळ, घास व फळ-फूल सह बळिया । नीली पाती न रही । डाढ़ाळी नै भूंडण दिन बड़ा कसाला में काढ़ै ।
—डाढ़ाळा सूर री बात

कसिपु-सं०पु० [सं कशिपु] शय्या, पलंग (डिं.को.)

कसियौ-सं०पु०—देखो 'कस्सी' (अल्पा.) उ०—कसी क्वाड़ गंडासी कसिया, डांडा दांती दांतियां । ग्याता क्याड़ी गाड पंजाळी, खेब खूब पड़ै खातियां ।—दसदेव

वि०—कटिबद्ध, तैयार, सन्नद्ध । उ०—कुळ थारौ रण पौढ़णौ, मोनूं कहती माय । प्राणां गाहक पेखियौ, कसियौ बरजै काय ।
—वी.स.

कसियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ कसा हुआ. उ०—निरबळ चोरां डर बसियोड़ा नैड़ा, दुरबळ मोरां पर कसियोड़ा डेरा ।—ऊ.का.

२ सन्नद्ध, कटिबद्ध ।

कसी-सं०स्त्री०—१ सोना चांदी आदि धातुओं की जांच के लिए एक प्रकार का काला पत्थर. २ देखो 'कस्सी'. ३ एक प्रकार का शस्त्र ।

[अ० खस्सी] ४ बधिया होने या करने का भाव (प्रायः पशुओं के)

सर्व०—१ कैसी. २ कौनसी ।

कसीजणौ, कसीजबौ-क्रि०अ०—१ कसैला होना, कसिया जाना.

क्रि०स० (भाव वा०) २ देखो 'कसणौ' । उ०—राज रौ जोधपुर ऊपर नकारौ कसीजै; का चित्तौड़ ऊपर कसीजै, का अणहिलवाड़ा ऊपर, का भुजकच्छ ऊपर, का थटंभखर पर, का जाळौर ऊपर नकारौ कसीजै ।—डाढ़ाळा सूर री बात

कसीजणहार, हारौ (हारी), कसीजणियौ—वि० ।

कसीजिअोड़ौ, कसीजियोड़ौ, कसीज्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

कसीजियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ कसिया गया हुआ. २ कसा गया हुआ । (स्त्री० कसीजियोड़ी)

कसीनाळौ-सं०पु०—दीवार के सहारे नीचे उतरने वाला वह नल जो छत का पानी बाहर निकालने के लिए लगाया जाता है (क्षेत्रीय)

कसीस कसीसक-सं०पु०—१ स्त्रियों के ओढ़ने का वस्त्र । उ०—मूंगी तौ बिका दधूं ग्वाळा बीरा काळधौ रै कसीस, सूंघौ तौ करा दधूं रे चुड़लौ हसती दांत रौ ।—लो.गी. [सं० कासीस] २ एक रंग विशेष. ३ कासीस नामक धातु विशेष (डिं.को.)

कसीसणौ, कसीसबौ-क्रि०स०—१ कसा जाना. २ प्रत्यंचा चढ़ाना

उ०—सीतारांम ग्रारति सुणि, ईस पिनाक उपाड़ि। लीला पांणी ग्रखं दळे, चाप कसोसं चाडि।—रांमरासो

कसुंबो–सं०पु०—१ पानी में गलाया हुआ अफीम. २ लाल रंग।

कसुटी—देखो 'कसौटी'। उ०—सालिहोत्र जेहनी **कसुटी**, तेहवा कोडि केकांण। गढ़ जाळहुर भणी सांचरीउ. साव दळइ सुरतांण।

—कां.दे.प्र.

कसूंबल–वि०—लाल।

सं०पु०—लाल रंग। उ०—हुवो थिर समदर ग्राभो जांण, कसां में घुळ **कसूंबल** रंग।—सांझ

कसूंबलिया–सं०पु०—राठोड़वंशीय क्षत्रियों की एक उपशाखा (बां.दा.ख्यात)

कसूंबो–सं०पु०—१ पानी में गलाया हुआ अफीम (रू.भे. 'कसुंबो') उ०—इतरै में सारां **कसूंबो** पीयो, कुरळा कर बैठिया, गल्हां करै छै।—सूरे खींवे री वात २ लाल रंग। उ०—माटा फूट मजीठ **कसूंबा** कढ़िढ़या, चोड़ै सूता खेत सुरंग रंग चढ़िढ़या।

— किसोरदांन बारहठ

३ एक प्रकार का क्षुप जिससे लाल रंग निकाला जाता था.

४ एक प्रकार का रंग विशेष का घोड़ा (शा.हो.)

वि०—लाल रंग का।

कसूंभी–वि०—कुसुम के समान लाल रंग का।

कसूंभो—देखो 'कसूंबो'। उ०—इण भांति री मेळवणी जोळी जोळी मंगाड़ीजे छै, **कसूंभै** रै वास्तै मिसरी कोरा मांटां में गळीजै छै।—रा.सा.सं.

कसूंमल–वि०—कुसुम के समान लाल। उ०—ग्रलमित देखि'र जळै ग्रंग में, रांड **कसूमल** रंग।—ऊ.का.

कसूंणी–सं०पु० [सं० कु+शुकुन] ग्रपशुकुन। उ०—पहलो तो पग 'जोरै' पागड़ै में दीनो रै, काळै मूं की कोयलड़ी **कसूंणी** बोली रे।

—लो.गी.

कसूत–वि०—सीधा न चलने वाला। उ०—कालर खेत **कसूत** हळ, घर कळखारी नार। मैला जिण रा कापड़ा, नरक निसांणी च्यार।

—ग्रज्ञात

कसूम–सं०पु० [सं० कुसुम] फूल, पुष्प।

वि०—लाल (मि० 'कसूंमल')

कसूमल–वि०—देखो 'कसूंमल' (रू.भे.) उ०—कहो **कसूमल** साड़ी रंगावां, कहो तो भगवां भेस।—मीरां

कसूर–सं०पु० [ग्रं० कुसूर] १ गुनाह, ग्रपराध. २ दोष, बुराई, ग्रवगुण।

कसेल–वि०—योद्धा, वीर।

कसोणो, कसोबो–क्रि०स०—१ बिछाना। उ०—महल मांहे पैठो ग्रागै ढोलियो बिछायो छै। ऊपरि सेज बिछावणा **कसोया** छै।—चोबोली २ कसना।

कसो–सं०पु०—चमड़े सूत रेशम ऊन ग्रादि की पतली डोरी या फीता जो प्रायः कंचुकी बांधने या पारजामा कसने ग्रादि के काम ग्राता है।

सब०—कौनसा।

वि०—कैसा।

कसौटण–सं०पु०—१ कसौटी पर कसने का भाव. २ दुःख।

कसौटी–सं०स्त्री०—१ सोने-चांदी ग्रादि धातुग्रों की जांच करने का एक प्रकार का काला पत्थर विशेष. २ परख, जांच। उ०—ग्रो तो नेह **कसौटी** सांवरो, सुख सोन लकोटी सीय।—गी.रां.

कसौटो–सं०पु०—१ कष्ट, दुःख. २ संकट।

कस्ट–सं०पु० [सं० कष्ट] १ दुःख, कष्ट, पीड़ा (ग्र.मा.) २ संकट, ग्रापत्ति।

कस्टणो, कस्टबो–क्रि०ग्र०—देखो 'कसटणो' (रू.भे.) उ०—सूल सामांन मामूर कुं न छै सु उठै धारू री मा **कस्टी** रात री।—नैणसी

कस्टणहार. हारो (हारी), कस्टणियो—वि०।

कस्टिग्रोड़ो, कस्टियोड़ो, कस्टयोड़ो—भू०का०कृ०।

कस्टम–सं०पु०—चुंगी।

कस्टम ड्यूटी–सं०स्त्री०—विदेश से ग्राने वाले माल पर लगने वाला महसूल।

कस्टाणो, कस्टाबो–क्रि०स०—दूसरों को कष्ट देना, पीड़ा पहुँचाना। 'कस्टणो' का सकर्मक रूप।

कस्टाणहार, हारो (हारी), कस्टाणियो—वि०।

कस्टायोड़ो—भू०का०कृ०।

कस्टियोड़ी–वि०स्त्री०—देखो 'कसटियोड़ी' (रू.भे)

कस्टी–वि०—दुखित, पीड़ित। उ०—भई **कस्टी** यांमा व्यसन मन भांमा सुत भरै—ऊ.का.

कस्टीजणो, कस्टीजबो–क्रि०भाव वा०—१ कष्ट पाया जाना. २ प्रसव-वेदना से पीड़ित हुआ जाना। 'कसटणो' का भाव वा०य रूप।

कस्टीजणहार, हारो (हारी), कस्टीजणियो—वि०।

कस्टीजिग्रोड़ो, कस्टीजियोड़ो कस्टीज्योड़ो—भू०का०कृ०।

कस्टीजियोड़ी–भू०का०कृ०— प्रसव वेदना से पीड़ित।

कस्टीजियोड़ो–भू०का०कृ०—कष्ट पाया हुआ, पीड़ित।

(स्त्री० कस्टीजियोड़ी)

कस्तूरियो–वि०—देखो 'कसतूरियो' (रू.भे.) उ०—इतरै **कस्तूरिया** मृग जिसा लाल नेत्र कियां घूमतो थको ग्रावै छै।—जलाल बूबना री वात

कस्तूरी–सं०स्त्री—देखो 'कसतूरी' (रू.भे.)

कस्तो–वि०—कम।

कस्मेर–सं०पु० [सं० काश्मीर] देखो 'कसमीर'।

उ०—देवी कांमरू पीठ ग्रघ्घोर कूंडै, देवी खखरै मेर **कस्मेर** खंडै।

—देवि.

कस्यप–सं०स्त्री० [सं० कशिपु] शय्या, पर्यंङ्क (ग्र.मा.)

कस्यपसुत, कस्यपसुतन–सं०पु०—१ सूर्य्य, (नां.मा.) २ गरुड़ (ग्र.मा.)

कश्यपस्यात्मज, कश्यपात्मज–सं०पु०—१ सूरज (अ.मा.) २ गरुड़ (नां.मा.)

कस्स–सं०स्त्री० [अ० कसर] कसर, कमी, न्यूनता।

कस्तूरी—देखो 'कसतूरी' (रू.भे.)

कस्सारी—देखो 'कसारी' (रू.भे.)

कस्सी—देखो 'कसी' (रू.भे.) उ०—१ फिरै डम्मरी सेन नाही फरस्सी, कचोळी कटारी न **कस्सी** सकस्सी।—ना.द.

उ०—२ स्वारथ परै खंधड़ खईसा खदका झेलै। **कस्सी** सेलै सबै पीड़ विन पइसै धेलै।—दसदेव

कह–सं०पु०—१ कोलाहल, शोरगुल। उ०—१ हेका **कह** हेका हीलो-हळ, सायर नयर सरीख सद।—वेलि. उ०—२ हेक तरफ द्वारिकाजी कौ **कह** कहतां सोर नगर रा लोकां सुणै।—वेलि. टी.

२ कलकल की ध्वनि. ३ कथा।

कहक–सं०स्त्री० [सं० कुहुक] १ मोर, कोकिल, चकोर आदि पक्षियों का कूजन, कलरव, ध्वनि विशेष. २ बिजली का कौंधना।

उ०—साकुरां घमक सुरतांण सण सतां सिर, चमक आकास अक **कहक** चपळा।—वीरमियो मूळो

कहकहाहट–सं०स्त्री०—जोर की हँसी, ठट्ठा। उ०—चौकि चौकि ऊपरि चित्रमाळी हुई रहियौ **कहकहाहट**।—वेलि.

कहड़ौ–वि० (स्त्री० कहड़ी) कैसा। उ०—ताहरां देवीदास सांभळ नै पूछियौ स्वांमीजी औ दूहौ **कहड़ौ** कह्यौ।—पलक दरियाव री बात (रू.भे. 'कैं'ड़ौ')

कहण–सं०स्त्री० [सं० कथन] १ कहना क्रिया का भाव।

उ०—**कहण** सुणण हय चढ़ क्रमण, साहंस धरण समझ्झ।

—जैतदांन बारहठ

२ उक्ति, कथन, वचन, वाक्य (डिं.को.) ३ कहावत।

कहणनुं–क्रि०वि०—किसलिए, क्यों। उ०—सीरोही रा धणी रावळा चाकर छै, सगां नै अगताऊ दीवांण वात **कहणनुं** करै।—नैणसी

कहणार–वि०—कहने वाला (रू.भे. 'कहणहार')

कहणावत–सं०स्त्री०—कहावत, लोकोक्ति।

कहणी–सं०स्त्री०—१ कहने का भाव या ढंग। उ०—**कहणी** प्रभु रीझै न कछु, रहणी रीझै रांम।—ऊ.का.

कहा०—कहणी सूं करणी दोरी—कोई बात कह देना सरल है किन्तु उसको क्रियात्मक रूप देना कठिन है. २ कहावत।

कहणौ–सं०पु० [सं० कथन] १ अपयश. २ डांट-फटकार. ३ आज्ञा, हुकुम. ४ कथन।

कहणौ, कहबौ–क्रि०स० [सं० कथ] १ बोलना, व्यक्त या प्रगट करना, उच्चारण करना। उ०—रहबौ हिम्मतहार, **कहबौ** औ कारज कठण।

—जैतदांन बारहठ

मुहा०—१ कहणा में आणौ—बहकावे में आना, आज्ञा मानना.

२ कहणौ-सुणणौ—डांटना-फटकारना, समझाना-बुझाना।

कहा०—१ कयां किसौ कूवे में पड़ीजै—दूसरों के कहने के अनुसार नहीं चला जा सकता. २ कयां सूं कुंभार गधै माथै थोड़ौ ही चढ़ै—दुराग्रही, कहना न मानने वाले के लिये. ३ कहणौ सोरौ करणौ दोरौ—कोई बात कह देना सरल है किन्तु उसको क्रियात्मक रूप देना कठिन है. ४ कहत हूं धीयड़ली नै सुणै है भउड़ली—आदमी को किसी अन्य आदमी को सुनाने के उद्देश्य से कोई बात कहने पर. ५ कह'र धूड़ में नांखणौ है—जिस पर कहने-सुनने का कोई असर न हो उसके लिये. ६ कह वात ज्यूं कटै रात—नींद न आने पर कहानी कहने से रात्रि आसानी से कटती है, लोक-कथाओं में पक्षियों के वार्तालाप का अनुप्रास. ७ कह्यौ नहीं मांनै, जकै रौ काळौ मूंढ़ौ लाल पग—जो किसी का कहना नहीं मानता उसके प्रति घृणा।

२ समझाना (रू.भे. 'कैं'णौ') (यौ० कहणौ-सुणणौ—डांट-फटकार)

कहणहार, हारौ (हारी), कहणियौ—वि०।

कहाणौ, कहाबौ—स०रू०।

कहावणौ, कहावबौ—स०रू०।

कहिओड़ौ, कहियोड़ौ, कह्योड़ौ- भू०का०कृ०।

कहीजणौ कहीजबौ—कर्म वा०।

कहनांण–सं०पु०—कहने योग्य वचन. २ कथन।

कहबत–सं०पु०—१ वचन, कथन (डिं.को.) कथा, वार्ता. ३ दृष्टान्त. अपयश कलंक।

कहर–सं०स्त्री० [अ० कह्र] १ विपत्ति, आफत. २ प्रलय।

उ०—सहर लूटंतौ सदा तूं देस करतौ सरद, **कहर** नर पड़ी थारी कमाई। उज्यागर झाल खग जैत'हर आभरण, अमर अकबर तणी फौज आई।—पदमा सांदू. ३ पीठ की हड्डी, रीढ़ की हड्डी।

उ०—हट करै प्रसण रै आज 'धांधल' हरा, सुकर लग जतु प्रतमाळ सीची। करोई काळजौ छेद भटकी **कहर**, खळ सबळ वाहियौ अचळ खीची।—झरड़ा राठौड़ रौ गीत

[सं० क=सुखं, हृ=हरणं] ४ दर्द, कष्ट. ५ युद्ध. उ०—कलम तणौ दळ घणौ कटांणौ, सारो कचवांणौ सहर। बूंबाड़ौ पड़ियौ बाजारै, कीधौ राजा रै **कहर**।—दुरगादास राठौड़ रौ गीत. ६ कोप, क्रोध। उ०—केलपुर जगत जस समंद सातां कथां, दसहतां भड़ां तोड़ण समर दांत। 'भीम' तण **कहर** वजराग वाळी भटक, भीम तण महर सांमंद लहर भांत।—किसनो आढ़ौ. ७ विष, जहर. ८ रोब.

उ०—**कहर** रांणा तणी बार मझ एकठा प्रसण रालै नको हंस पांणी।—महारांणा प्रतापसिंह रौ गीत. ९ तलवार. १० दुर्भिक्ष, अकाल. ११ शत्रु, दुश्मन. १२ कुआ. १३ नक्कारा नामक वाद्य. १४ सातवीं बार उलटा कर बनाया गया शराब।

उ०—तठा उपरांति करि नै राजांन सिलामती दारू रौ पांणीगौ मंडिऔ छै सौ किण भांति रौ दारू, उलटै रौ पलटै, पलटै रौ गेराक, गेराक रौ वैराक, वैराक रौ संदली, संदली रौ कंदली, कंदली रौ **कहर**, कहर रौ जहर···।—रा.सा.सं. १५ भय। उ० नेजौ नेजां

ऊपरा ओरै तेज तुरंग। कहर वरिणयरा 'चंद' को, मुहर ग्रणी रण जंग।

१६ वीर हाक, जोशपूर्ण ध्वनि। उ०—हणतौ मेंगळ हाथि, करतौ मुख हाकां कहर। कुंभकरण सिर केविग्रां, भाटी गौ भाराथि। —वचनिका

वि०—१ भयावह, भयंकर। उ०—है हैकार पुकार जहइ, रांम-रांम भणि रांम। घणूं कहर वीती घड़ी, जहर लहर विधि जांम। —वचनिका

उ०—२ कहर सुरपत कोप कीनौ, सात दिन ग्रसराळ। नीर बूठौ हुवौ नेक न, बिरज वंकौ वाळ।—भगतमाळ

२ जबरदस्त, महान। उ०—जग कळपंत तणी पर जसवंत, फेरा लहर कहर फिरियौ। लोह धार गैणाग लगातां, 'ग्रोरंग' धू जिम ऊबरियौ।—महेसदास ग्राढ़ौ. ३ बहुत अधिक, अत्यधिक।

उ०—१ कहर भूख काढ़णी, गिणै दुख किसा गुणीजै। कहूं बात यह कंवर स्रवण बे भ्रात सुणीजै।—र.रू.

उ०—२ करि कोप दळां प्रारंभ कहर, धंधींगर ग्रागे धरे। मांडिग्रौ मुगल्ल मारुग्रे, रिण 'ग्रोरंग' जमराज रे।—वचनिका

४ तीव्र, तेज. ५ उग्र। उ०—ग्रोछौ केम कहां ऊदावत, ग्रकबर कहर तणौ तप ईख। ग्रकबर सूं रहियौ ग्रणनमियौ, गुरतांण ग्राहियां सारीख।—महारांणा प्रतापसिंह री गीत

कहरवा-सं०पु०—ग्राठ मात्रा का ताल विशेष (संगीत)

कहरी-सं०पु०—एक प्रकार का शुभ रंग का घोड़ा (शा.हो.)

कहवत-सं०पु०—१ देखो 'कहावत' (रू.भे.)

उ०—कहवत दुनियां मांझ कहांणी, एक पंथ दोय काज ग्रगै।

२ कथन, वचन (डि.को.) —बां दा.

कहवौ-सं०पु० [ग्र० कहवा] एक पेड़ का बीज जिसके चूरे को चाय की तरह पीते हैं (ग्रमरत)

कहांणी, कहांनी-सं०स्त्री० [सं० कथानिका] १ किस्सा, ग्राख्यायिका, गल्प। उ०—भगळ भागवत पेट भरण री कुटिळ कहांणी रे।

२ झूठी बात, मनगढंत बात। —ऊ.का.

कहांरेक, कहांरेके-क्रि०वि०—१ कभी. २ कभी न कभी।

उ०—ताहरां हरदांन फेर ग्ररज कीवी तौ म्हांरी थकी कोठार में राखजौ, म्हे डूंब ल्यां, कहांरेके म्हे भांग पी नै मोय रहसां, गमाय देवां।—पलक दरियाव री बात

कहाडणौ, कहाड़बौ-क्रि०स० (प्रे०रू०) कहलवाना। उ०—भैंचके वात सुण जेहवां भाइयां, कायरां सरै नह गरज कांई। भाइयां काज सिर ग्रागमै भारथां, भलाई कहाड़ै जिकै भाई।—बुधजी ग्रासियौ

कहाणौ-क्रि०स०—कहलाना।

कहार-सं०पु०—एक जाति विशेष जिसके व्यक्ति प्रायः पालकी ग्रादि उठाने या पानी भरने का कार्य किया करते हैं।

कहाव-सं०स्त्री०—१ कहावत, उक्ति। उ०—काली हूंदा कळस री, कमंधां भड़ां कहाव। सांमहां भालां संचरै, पाछा धरै न पाव। —किसोरदांन बारहठ

२ संदेश, खबर। उ०—पीछै पांडू बेटै नकोदर नूं बुलाय नै कयौ कै म्हांरी तौ ग्रवस्था व्रद्ध है ग्ररु मलकी रौ कहाव ग्रायौ है, सू तू जाय लाव।—द.दा. ३ वचन, शब्द. ४ ग्रपयश, कलंक।

कहावत, कहावति-सं०स्त्री०—१ कही हुई बात, लोकोक्ति, उक्ति। उ०—या कहावति छै। जैरै लाख द्रव्य होइ तेहरै लाख ऊपरि दीवौ बळै छै। ग्रर कोड़ि द्रव्य होइ तैरै कोड़ि ऊपरि धजा बंधाई छै।—वेलि. टी

कहा०—कहावतां रौ काकौ—कहावतों में प्रवीण व्यक्ति के लिए।

२ वचन. ३ ग्रपयश, कलंक।

कहि-सर्व०—किस।

कहिम-ग्रव्यय—चाहे। उ०—कहिम मेर डोलहै, कहिम जळ हळ है, सायर। कहिम चंद लुक्कि है, कहिम छैहल देवायर। कहिम बीस ग्रहमंड गाट छेडै है कागळ। कहिम सपत पाताळ चळै जाय हूंत ग्रणच्चळ। खड़हडै इंद्र काळंतरै, पड़ै रुद्र ब्रहमा पड़ै। रूपक्क नांम रायसिंघ रौ तौ ही जरा न ग्रांमड़ै।—खींवौ सूरोत ग्रासियौ

कहिर-सं०पु० [सं० क+धर=कंधरा] गर्दन। उ०—सजन मिळिया हे सखी, कासुं भगत करेस। ग्रहिरां कहिरां पयोहरां, रमतां ग्राड न देस।—ढो.मा.

कही-सर्व०—१ कई २ किसी। उ०—सगणी तणा संदेसड़ा, कही जु दीन्हा ग्रांणि। ससिवदनी कइ कारणइ, हुई पलांणि पलांणि। —ढो मा.

कहीका-क्रि०वि०—कहीं। उ०—कहीका ग्रजरायलां रावतां हाथ री छूटी बरछी वाही।—डाढ़ाळा सूर री वात

कहीजणौ, कहीजबौ-क्रि०कर्म वा०-कहा जाना। उ०—कछवाहौ राजावत फतैसिंघ मूळी कहीजतौ।—बां.दा. ख्यात

कहीयौ-भू०का०कृ०—१ कहा हुग्रा, कथन, कहना।

सं०पु०—२ ग्राज्ञा, हुक्म।

कहुं-क्रि०वि०—कहीं। उ०—धुनि वेद सुणति कहुं सुणति संख धुनि। नद भल्लरि नीसांण नद—वेलि.

कहुकणौ, कहुकबौ-क्रि०ग्र० [सं० कुहुक] १ पक्षी का मधुर स्वर में बोलना. ऊंट का बोलना। उ०—रैबारण रा कह्या सूं ढोलोजी राजी हुवा। वळै ग्रागा खड़िया जाता थका करहा नै कांब वाही तद करहौ कहूकियौ।—ढो मा.

कहुवौ-सं०पु०—देखो 'कहवौ' (ग्रमरत)

कहूं-क्रि०वि०—कहीं (रू.भे. 'कहुं')

कहूकणौ, कहूकबौ—देखो 'कहुकणौ' (रू.भे.)

कहूको-स०पु० [सं० कुहुक] १ पक्षी का मधुर स्वर. २ कोयल की बोली। उ०—नमळा खळक्कै नीर प्रघळा ग्रसंखां नाळा, वळोवळी कुंजां तणा जहूका बणत। नांचती ग्रंब रा डाळ कोयलां कहूका नाद, सिखंडी टहूका जठै नित रा सुणंत।—महाराजा मांनसिंह

कहूर-सं०पु०—मोठ, ग्वार ग्रादि के फूल।

का–अव्यय—का, के आदि संयोजक अव्यय। उ०—त्रूटै कंध मूळ जड़ त्रूटै, हळधर का वाहतां हळांह।—वेलि.

काइ–सर्व० [सं० किम्] क्या (रू.भे. 'कांई') उ०—संन्यासिए जोगिए तपसि तापसिए, काइ इवड़ा हठ निग्रह किया।—वेलि.

क्रि०वि०—क्यों, कैसे। उ०—मारू नं आखइ सखी, आज स काइ उदास। कांम-चित्रांम जु दिट्ठ मइं, रूप न भूलइ तास।—ढो.मा.

वि०—कुछ।

काइक–सर्व०—क्या।

क्रि०वि०—कुछेक, तनिक।

काइणी–सं०स्त्री०—प्लेग की गांठ।

काइणौ–सं०पु०—किसी अंग का झटके आदि के कारण जोड़ के स्थान से किसी ओर तन जाना या किसी ओर ऐसा मुड़ जाना कि शीघ्र सीधा न हो। मुरक, मोच, मुरड़।

काई—देखो 'कांई' (रू.भे.) उ०—राजा दोनां री हकीकत पूछी सो आगै झगड़िया तिकौ हीज झगड़ौ ठीक **काई** पड़े नहीं।

—पलक दरियाव री बात

काईक–वि०—कुछ। उ०—ताहरां राजा ब्रह्मभांण कह्यौ—तूं ही **काईक** पुण्य कर।—पलक दरियाव री बात

कांक—देखो 'कंक' (१) (रू.भे.) २ देखो 'कांख' (रू.भे)

कांकड़–सं०पु० [सं० कंकट] १ सीमा, सरहद। उ०—पैलां **कांकड़** पीव घर, बीच बुहारे खेत। पण पग पाछा देण री, हुलसै अच्छर हेत।—वी.स. २ जंगल, वन।

कहा०—१ कांकड़ को गोटियौ गांम में माजनौ पाड़ै—जंगल में रहने वाले आदमी से मित्रता करने पर वह असभ्यतापूर्ण व्यवहार कर प्रतिष्ठा भंग करता है. २ कांकड़ बाण्यां फारगती अर गांव में ज्यूं का त्यूं—महाजन डरपोक व्यक्ति होता है अतः कहीं कर्जदार व्यक्ति से डराये धमकाये जाने पर तो नम्रता से कह देता है कि मेरा कोई लेन-देन बाकी नहीं परन्तु ज्यों ही अपने सुरक्षित स्थान पर आता है तो फिर वही कर्ज पूरा का पूरा मांगने के लिए तैयार हो जाता है। प्रतिकूल परिस्थिति में जो बहुत सीधा व भला बनता है पर अनुकूल परिस्थिति में उद्दंड हो जाता है, ऐसे स्वार्थी व डरपोक व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होने वाली कहावत।

३ क्षेत्रफल।

कांकड़-डोरड़ौ, कांकड़-डोरणौ–सं०पु० [सं० कंकणदोरक] देखो 'कांकण' (२)

कांकड़ेल–सं०पु०—१ सरहद पर रहने वाला. २ वीर, योद्धा।

कांकण–सं०पु० [सं० कंकण] १ कंगन, कंकण. २ दूल्हे व दुल्हिन के पैर व हाथ में बांधा जाने वाला रंगीन सूत का वह मांगलिक धागा जिसमें लोहे की छोटी कड़ी, लाख व कपर्दिका आदि गुंथी रहती हैं। (यौ० कांकणडोरौ) ३ युद्ध। उ०—**कांकण** समै कुबेलियां, सरकण तणौ सुभाव। निगण फिर रोपै नहीं, पाव घड़ी ही पाव।

—बां.दा.

कांकणछोड, कांकणछोडणौ–सं०पु०—विवाह की वह रस्म जब वर वधू का एवं वधू वर के हाथ व पैर में बंधा सूत का धागा खोलती है। (देखो 'कांकण')

कांकड़डोरड़ौ, कांकणडोरौ–सं०पु० [सं० कङ्कण-दोरक] देखो 'कांकण' (२)

कांकणस, कांकणियौ–सं०पु०—स्त्रियों की चोटी में गुंथी ऊन की डोरी। उ०—एक नमायां तुंड अंस, उर लगि चिबुक अनोप। वण **कांकणस** जवार विधि, पांन कलंगी ओप।—रा.रू.

कांकणी–सं०स्त्री० [सं० कंकण] प्रायः चांदी का बना एक आभूषण जिसे स्त्रियां कलाई में धारण किया करती हैं (ऊ.का.)

कांकर–सं०स्त्री० [सं० कर्कर] १ कंकड़ीली भूमि। उ०—**कांकर** करहौ गारगज, थळ हैंवर थाकंत। ऋहूं ठौड़ हेकण तरह, चंगौ धवळ चलंत।

—बां.दा.

२ देखो 'कांकरौ'। उ०—ताळ सूक परपट भयौ, हंसा कहूं न जाय। प्रीत पुराणी कारणै, चुग-चुग **कांकर** खाय।—अज्ञात

३ मीठे फलों वाला झाड़ीनुमा एक प्रकार का छोटा पौधा, इसके फूल गुलाबी रंग के होते हैं।

क्रि०वि०—कैसे। उ०—इसी बात म्हांसूं कही न जावै, म्हां तो परतख्ये दरसण किया सो इसी बातां **कांकर** कहां।

—पलक दरियाव री बात

कांकरड़ी–सं०स्त्री०—कंकरी, छोटा कंकर। उ०—पांणीड़े जातां गोरी का सायबा धण पर **कांकरड़ी** कुण बायी म्हारा राज।—लो.गी.

कांकरी–सं०स्त्री० [सं० कर्कर] छोटा कंकर (अल्पा०)

कांकरोली–सं०स्त्री०—नाथद्वारे से नौ मील दूर उदयपुर डिविजन में स्थित एक कस्बा जो तीर्थ-स्थान माना जाता है।

कांकरौ–सं०पु० [सं० कर्कर] पत्थर या चिकनी ठोस मिट्टी का छोटा टुकड़ा, कंकड़। उ०—ओ कुंवर खरच करतौ देखै क्युं नहीं, रुपीयौ **कांकरौ** बराबर कर खरचै।—चौबोली

कहा०—१ करम फूट नै कांकरा निकळिया—किसी की मूर्खता या बदकिस्मती पर. २ कांकरा कंवळा हुवै तौ स्यालिया कद छोडै—अगर कोई लाभ सहज में ही प्राप्त होता तो उसे कौन छोड़ेगा? ३ कांकरां नै हाथ घालतां रुपिया हाथ आवै—किसी भाग्यवान आदमी को बिना परिश्रम स्वतः धन मिलता है, भाग्यवान आदमी अगर हानिकारक वस्तु में भी हाथ डालता है तो वह भी लाभकारक हो जाती है ४ कांकरै री देवी जकौ पंसेरी री खासी—जो दूसरे को हानि या चोट पहुँचाता है उसे वापस बड़ी हानि या चोट अवश्य मिलती है।

कांकळ–सं०पु० [सं० किंकल अथवा कंकालय] १ युद्ध। उ०—मचियै **कांकळ** मदत री, वीर न देखै वाट। एक अनेकां सूं हिचै, छाती वजर कपाट।—बां.दा. २ सरहद (रू.भे. 'कांकड़')

कांकी, कांकै–सर्व०—किसकी, किसके।

कांख–सं०स्त्री० [सं० कुक्षि] १ बगल, बाहुमूल. २ उदर. ३ गर्भाशय।

कांगड़ो–सं०पु०— पंजाब का एक पहाड़ी जिला।

कांगणी–सं०स्त्री०—१ 'मालकांगणी' नामक एक बेल जिसके बीजों से तेल निकाला जाता है. २ 'मालकांगणी' नामक एक कदन्न।
कहा०—मत वायजौ कांगणी, घर घर मिट्टी मांगणी—ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे बाद में कठिनाई उठानी पड़े।
वि०वि०—कांगणी नामक अनाज बोने के बाद में हानि उठानी पड़ती है क्योंकि वह अत्यंत सस्ता होता है।

कांगणौ–सं०पु० [सं० कंकण] देखो 'कांकण' (१) उ०—तूं तौ बांधै लाडा **कांगणौ**, सोनी कौ घड़ियौ कांगणौ।—लो.गी.

कांगरू, कांगरूदेस–सं०पु०—देखो 'कांमरूप' (डिं.को.)

कांगरौ–सं०पु० [सं० कंगुरू] १ बुर्ज। उ०—के दरवाजां **कांगरां**, ऊभा भड़ अरड़ींग, भला चीत भुरजाळ रा, आभ लगाया सींग।—बां.दा.
२ कंगूरा। उ०—परघळां आसणां रा **कांगरं** थूवग मोटे पूठै रा छोटै पींडां रा छै।—रा.सा.सं.

कांगसियौ–सं०पु०—१ कंघा. २ कंघे की प्रशंसा में गाया जाने वाला एक मारवाड़ी लोक गीत. ३ तबली में वह स्थान जहाँ चमड़े का हिस्सा फटा रहता है।

कांगसी–सं०स्त्री० [सं० कङ्कती] स्त्रियों के बालों को सँवारने के लिये एक विशेष प्रकार का बना कंघा, कंघी। उ०—किया रवाना दोलती, वीसलनंद विगोय। क्रपण हिया मंह **कांगसी**, नहिं फेरे नर-जोय।
—बां.दा.
मुहा०—हिया में कांगसी फेरणी—हृदय में सोच-विचार करना।
कहा०—उपासरे में कांगसिया जोवै—जहां किसी वस्तु के मिलने की बिल्कुल संभावना न हो, वहाँ उस वस्तु को ढूंढ़ना या पाने की आशा करना।

कांगाई–सं०स्त्री०—१ दरिद्रता, कंगालपन. २ याचकता. ३ नीचता. ४ बुरा स्वभाव. ५ झगड़ा।

कांगापण, कांगापणौ–सं०पु०—१ दरिद्रता, कंगालपन. २ याचकता. ३ नीचता।

कांगीरोळौ–सं०पु०यौ०—फिसाद, झगड़ा-टंटा, कलह।

कांगौ–वि० [सं० कंकाल] १ कंगाल, दरिद्र. २ बुरे स्वभाव वाला. ३ याचक, भिखारी।
कहा०—घणां कांगां माळवौ ई मूंगौ—भिखमंगे बहुत हो जाने पर मालवा जैसे उपजाऊ प्रांत में भी भिक्षा अप्राप्य हो जाती है। मांग बहुत अधिक बढ़ने पर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध वस्तु की भी कमी अनुभव होने लगती है।
४ कलह करने वाला।

कांग्रेस–सं०स्त्री० [अं०] वह महासभा जिसमें विभिन्न स्थानों के प्रतिनिधि एकत्र होकर परस्पर विचार-विनिमय करते हैं।

कांग्रेसी–सं०पु० [अं० कांग्रेस+रा०प्र०ई] महासभा का सदस्य।
वि०वि०—देखो 'कांग्रेस'।

कांच–सं०स्त्री० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] गुदेंद्रिय का वह भीतरी भाग जो किसी किसी के टट्टी जाते समय बाहर निकल आती है।
मुहा०—१ कांच निकळणी—किसी आघात या परिश्रम से बुरी दशा होना. २ कांच निकाळणी—अथक परिश्रम कराना, बेदम करना।
कहा०—गी तो गळी करावण नैं नैं कांच कडाय नैं आई—एक विपत्ति मिटाने के उद्देश्य से कहीं जाकर दूसरी विपत्ति मोल लेने पर।

कांचणियौ–सं०पु०—वह जो कब्ज के कारण टट्टी जाते समय जोर लगावे।

कांचणौ, कांचबौ–क्रि०अ०—कब्ज के कारण शौच के समय कुछ जोर लगा कर पाखाने उतारने का प्रयत्न करना।

कांचळ–सं०स्त्री० [सं० कञ्चुकः] छोटे कीटाणु व सर्प आदि के तन पर से उतरने वाली खोली। उ०—फाको टांगां टिरै कातरो तारै **कांचळ**,चरचरियां रौ चांद फिड़कलां फबतौ हांचळ।—दसदेव

कांचळ-अचळ–सं०पु०यौ० [सं० काञ्चन+अचल] सुमेरु पर्वत (ह.नां.)
२ देखो 'कांचळी' (रू.भे.)

कांचळियौ–देखो 'कांचळी' (अल्पार्थ) उ०—भीनै **कांचळिये** घम घम डग भरती, धसळां देतोड़ी धम धम पग धरती।—ऊ.का.

कांचळियौपंथ–सं०पु० [सं० कंचुकीपथ] वाम मार्ग का एक भेद।
वि०वि०—ऐसा कहा जाता है कि इस पंथ के अनुयायी स्त्री-पुरुष एक स्थान पर इकट्ठे होकर माँस-मद्य का सेवन करके सब उपस्थित स्त्रियों की कंचुकी इकट्ठी करके एक घड़े में डाल देते हैं। उपस्थित समुदाय का प्रत्येक अनुयायी पुरुष उस घड़े में हाथ डाल कर एक कंचुकी निकाल लेता है। जिस पुरुष के हाथ में जिस स्त्री की कंचुकी आती है वह उसीके साथ संभोग करता है। इसे चोली मार्ग भी कहते हैं।

कांचळी–सं०स्त्री० [सं० कञ्चुकः] १ सर्पादि के शरीर का ऊपर का वह झिल्लीदार चमड़ा जो प्रति वर्ष गिर जाता है। केंचुली।
उ०—जरें हाथ वाळा पड़्या माथा जाचां, पड़ी सांप री **कांचळी** सूत्र काचां।—ना.द. [सं० कञ्चुलिका] २ स्त्रियों के वक्षःस्थल पर पहिनने का एक वस्त्र जिससे वे अपने स्तन कसती हैं, कंचुकी।
उ०—अंग में नहीं मावै पिया **कांचळी** जी हिवड़े नहीं मावै हार।
—लो.गी.

कांचळौ, कांचवउ, कांचवौ–सं०पु० [सं० कंचुक] देखो 'कांचळी' (महत्व०) (रू.भे.) उ०—१ सासू पूछै हे बहू, तोहि न आवै लाज। काल सिवायौ **कांचळौ**, सौ क्यूं फाटयौ आज।
—जलाल बूबना री बात
उ०—२ उठी उठी गोरि करि सिंगार, लाखणउ **कांचवउ** नवसर हार।—वी.दे. उ०—३ सती माता तेरौ **कांचवो** रांणी सींम्यौ छै मंगळ वारां जी।—लो.गी.

कांचि, कांची–सं०पु०—१ कौग्रा. २ करधनी, मेखला (ग्र.मा.) ३ सप्तपुरियों के ग्रंतर्गत एक पुरी। उ०—देवी कहां द्वारामती **कांचि** कासी देवी सातपुरी परम्मां निवासी।—देवि.

कांचीपद–सं०स्त्री० [सं०] कमर, कटि (डि.को.)

कांचु, कांचुग्रौ, कांचू–सं०पु० [सं० कंचुक] कंचुकी, चोली (डि.को.) उ०—१ गळि पइहरचौ टंकाउळि हारि, पहिरि पदारथ **कांचु** वड। —वी.दे.

उ०—२ सुरतांत-ममय हुवौ छै, महलां री हवा मांणीजै। **कांचुग्रां** री कस छूटी—रा.सा.सं. उ०—३ सोपारी सा कठोर कुच वाटळा तीखा **कांचू** वीच विराजि छै।—रा.सा.सं.

कांचौ–सं०पु०—कौग्रा।

कांछा–सं०स्त्री० [सं० कांक्षा] १ इच्छा ग्रभिलाषा, चाह (डि.को.) २ लोभ।

कांजर, कांजरियौ–सं०पु० (स्त्री० कांजरी) कंजर नामक जाति का व्यक्ति।

कहा०—कांजर की कुत्ती कठै जावतो व्यावै—कंजर की कुतिया न जाने कहां जाकर प्रसव करे। ग्रनिश्चित स्वभाव वाले व्यक्ति के लिये।

कांजिक, कांजी–सं०स्त्री० [सं० कांजिकम्] मट्ठा मिला कर खट्टा किया हुग्रा एक प्रकार का पेय पदार्थ जो मंदाग्नि व ग्रजीर्ण के रोगियो के लिये ग्रोषधि के रूप में प्रयुक्त होता है (डि.को.) उ०—पुरख स्रवण प्यालो भरै, चुगली **कांजी** चाड। मन पय हिय प्याला महां, बेगो दिये बिगाड़।—बां.दा.

कांजणौ, कांजबौ–क्रि०प्र०—देखो 'कंझणौ, कंझबौ' (रू.भे.)

कांझर–वि०—नीच।

सं०पु०—देखो 'कांजर' (रू.भे.)

कांट–सं०स्त्री० [सं० कंटक] १ 'भुरट' नामक घास के महीन कांटे. २ ग्वार, मोठ ग्रादि निकालने के बाद शेष रहा फली का भूसा। (क्षेत्रीय)

कांटकटीलौ–वि० ग्रनु०—कँटीला।

कांटकांटाळी, कांटकिटाळी–वि०—कांटों से परिपूर्ण। उ०—सांड टोरड़या टोड, कोड कर **कांटकिटाळी**। लफलफ लेता बुगाळ, सूंत खेजड़ली डाळी।—दसदेव

कांटरखी–सं०स्त्री०—पगरक्षिका, जूती (ग्र.मा.)

कांटा काढ़णियौ—देखो 'कांटो काढ़णियौ' (रू.भे.)

कांटाळ, कांटाळौ–सं०पु० [सं० कंटक] १ एक प्रकार का घास जिसे प्राय: ऊंट खाते हैं. २ सिंह। उ०—ग्राळ भयंकर कांन ग्रलवै टाळै नहीं, कांई **कांटाळ** खळ नाहरां हियै खेड़ेचौ ग्राठूं पोहर करे गढ़ ग्राळा।—राव रायपाळ री गीत ३ वीर, योद्धा। उ०—परगह थट लियां सीच रै प्राक्रम, रवताळै गाढ़ा पग रोप। कियौ ग्रमल रजवट **कांटाळै**, ग्रांटाळै ठाकुर ग्रासोप।—गिरवरदांन सांदू

४ सांप, बिच्छु ग्रादि।

वि०—कंटीला, कांटों से युक्त।

कांटाबेढ़–सं०पु०—वह मकान जिसके चारों ग्रोर कांटों का ग्रहाता बना हुग्रा हो। उ०—सायर तणी सरस साई दळ, मरिवा चलण मांडियां मेढ़। माझी मेर 'नगो' मोरवळी, विढ़ियौ रहियौ **कांटाबेढ़**। —दूदौ ग्रासियौ

कांटियौ–सं०पु०—लोहे का एक उपकरण जो नीचे से दोनों ग्रोर हुक के ग्राकार में मुड़ा होता है ग्रौर गाड़ी के ऊपरी मुख्य चौड़े तख्ते (थाटे) के दोनों ग्रोर लगे डंडों की बाजू में लगाया जाता है. २ हँसली की हड्डी. ३ हँसिया. ४ हृदय, दिल. ५ कफन।

कांटी–सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का भूमि पर छितराने वाला क्षुप, इसके फूल पीले व बैंगनी होते हैं। उ०—साटी घास सिनावड़ौ जी, बेकरियो नै **कांटी**। सळियौ खेत करै नीं जद तक, खेती बधै न लांठी। —रेवतदांन

२ बहुमूल्य पदार्थ तथा ग्रोषधियां तोलने का छोटा तराजू. ३ मांडी। वि०—समान, सदृश, बराबर। उ०—रूपसिंह केहर का केहर के **कांटै**, लड़ाई के पाये धन वधाई बांटे।—रा.रू.

कांटौ–सं०पु० [सं० कंटक] १ पेड़-पौधों या घास का कड़ा तथा नुकीला टुकड़ा, कंटक, कांटा।

क्रि०प्र०—गडणौ, चुभणौ, धँसणौ, निकळणौ, नीसरणौ, लागणौ। मुहा०—१ कांटा बिछावणा. २ कांटा बोना—ग्रनिष्ट करना, बाधा पैदा करना. ३ कांटा सौ खटकणौ—बुरा लगना, ग्रखरना. ४ कांटां माथै रेंवणौ (लोटणौ)—कष्ट में दिन बिताना. ५ कांटां में उळझणौ—संकट में पड़ना. ६ कांटां में खींचणौ—ग्रावश्यकता से ग्रधिक प्रशंसा करना, बहुत कष्ट देना. ७ कांटां में घसीटणौ—देखो 'कांटां में खींचणौ'. ८ कांटां में फसणौ—कठिनाई में पड़ना. ९ कांटां में हाथ जाणौ—झंझट या उलझन में फँसना. १० कांटौ खटकणौ—संदेह होना, बुरा लगना, ग्रखरना. ११ कांटौ चुभणौ—परेशान होना. १२ कांटौ चुभोणौ—परेशान करना. १३ कांटौ निकळणौ—बाधा या वेदना का मिटना. १४ कांटौ निकाळणौ (काढ़णौ)—संदेह दूर करना, पीड़ा कम करना।

कहा०—१ ग्रापरा कांटा ग्रापनै ईज भागै—खुद के बिछाए हुए कांटे खुद को ही चुभते हैं। दूसरों का बुरा करने वाले का खुद का बुरा पहले होता है. २ कांटै सूं कांटौ निकळै—देखो 'कांटौ कांटै नै काढ़ै'. ३ कांटै सूं कांटौ काढ़णौ—जैसे का तैसा उत्तर देना। जैसे का इलाज तैसे से ही हो सकता है. ४ कांटौ कांटै नै काढ़ै—कांटे से कांटा निकलता है, जैसे का इलाज तैसे से ही हो सकता है। २ लोहे का नुकीला टुकड़ा. ३ लोहे का मुड़ा हुग्रा ग्रंकुड़ा. ४ सर्प-बिच्छू ग्रादि विषैले जन्तु. ५ बिच्छू का डंक. ६ वह सुई जो तराजू की डांडी के मध्य भाग में लगाई जाती है ग्रौर जिसके बिल्कुल सीधे रहने से तौल बराबर ठीक माना जाता है. ७

तराजू जिसमें ऐसी सुई लगी रहती है।

मुहा०—१ कांटै री तौल—ठीक-ठीक, न कम न बेश. २ कांटै में तुलणौ—बहुत मँहगा होना।

८ स्त्रियों के नाक में पहनने का एक आभूषण विशेष (मि० 'लूंग' (२), ९ बाधा. १० कष्ट. ११ राक्षस।

वि०—दुष्ट, आततायी। उ०—वीके दुरंग थापियौ वांकौ, **कांटौ** सरण उबेळ करौ।—महाराजा करणसिंह

कां'टौ–सं०पु०—१ दरवाजे की कुंडा।

कांटौ काढ़णियौ–सं०पु०—१ एक प्रकार का चिमटे के आकार का छोटा औजार जिसके आजू-बाजू में नुकीले सुइये लगे रहते हैं। इसकी सहायता से शरीर में गड़ा कांटा निकाला जाता है. २ कांटा निकालने वाला।

कांठळ–सं०स्त्री०—घनघटा, बादलों की घटा। उ०—काळी **कांटळ** में दांमणियां दमकी। चित में कांमणियां विरहानळ चमकी।—ऊ.का.

कांठळि–सं०स्त्री०—१ देखो 'कांठलौ' (रू.भे.) २ देखो 'कांठळ'। उ०—काळी करि **कांठळि** ऊजळ कोरण धारै स्रावण धरहरिया।
—वेलि.

कांठलियौ–सं०पु० [सं० कंठल] सोने की कंठी (मि० 'कांठलौ')
उ०—म्हारी धुड़की नैं तो **कांठलियौ** घणो सुहावै है।—वरसगांठ

कांठळी– देखो 'कांठळ' (रू.भे.) उ०—काळी-काळी **कांठळी**, उजळी कोरण जोय। उत्तर दिस में ऊठियौ, जांण हिंवाळौ होय।—बादळी

कांठलौ–सं०पु० [सं० कंठल] स्त्रियों के गले में पहिनने का एक प्रकार का आभूषण, कंठुला। उ०—आगै बहुली जोगणी बैठी हुती तिण आपरा गळा रौ **कांठलौ** एक जड़ाव रौ 'माल्दे' नूं दीयौ।—नैणसी

कांठायत–वि०—१ नदी के किनारे पर रहने वाला. २ अरावली पहाड़ पर निवास करने वाला।

कांठै–क्रि०वि०—पास, नजदीक, निकट। उ०—१ भाखर **कांठै** वाघ भड़ाला। डाकर सुण मेवास डरै।—इन्दरसिंघ राठौड़ रौ गीत
उ०—२ सूतौ थाहर नींद सुख, सादूळौ बळवंत। वन **कांठै** मारग वहै, पग-पग हौल पड़ंत।—बां.दा.

कांठैलियौ–सं०पु० [सं० कंठ = पास] पहाड़ों के निकट रहने वाली एक जाति का व्यक्ति। यह जाति प्रायः लूट-खसोट से जीवन-निर्वाह करती है।

कांठौ–सं०पु०—१ सरहद, सीमा. २ किनारा, तट (नदी)
उ०—उरै गजराज रेवा नदी रै **कांठै** दुह ऊपरै पांच सै हाथी रै हलकै लीजां मोड़ी खबर करि नै रहीआ छै।—रा.सा.सं.

क्रि०वि०—पास, नजदीक।

कांड–सं०पु० [सं०] १ घटना, बुरी घटना. २ किसी ग्रंथ का विभाग जिसमें एक पूरा प्रसंग हो, खंड, प्रकरण, परिच्छेद. ३ धनुष के बीच का मोटा भाग. ४ बांण, तीर (डि.को.) ५ हाथ या पैर की सीधी लंबी हड्डी (अमरत)

वि०—कुत्सित, बुरा।

कांड-पट–सं०पु० [सं० काण्डपटः] पर्दा, यवनिका (डि.को.)

कांडी–सं०पु० [सं० काण्डीर] १ भील आदि जाति के व्यक्ति जो प्रायः धनुष-बांण रखते थे. २ धनुष।

कांडौ–सं०पु० [सं० काण्ड] १ कलह, टंटा, लड़ाई. २ देखो 'कांडी'।

कांण–सं०स्त्री०—१ मान, प्रतिष्ठा इज्जत। उ०—हुवै प्रथम धन हांण, घणौ तन पांण घटावै। कोई न राखै **कांण**, मांण परतीत मिटावै।—ऊ.का. २ लोकलज्जा, मर्यादा। उ०—गोला सूं कीजै गुसट, ऊभी गिणका आंण। लोपी छाकां लेण नूं, काका वाळी **कांण**।
—बां.दा.

[सं० काण] ३ तराजू में पदार्थों को तोलते समय खाली तराजू में किसी एक तरफ पलड़े का झुकाव।

४ बड़ाई, महत्व। उ०—प्रांण छतै जीवै पुरुस, कांसूं ज्यांरी **कांण**। प्रांण गयां जीवै पुरुस, ज्यां जीवणौ प्रमांण।—बां.दा.

५ किसी मृत प्राणी के संबंधियों से नियत अवधि के अंदर समवेदना प्रकट करने के निमित्त जाना (यौ० कांण-मखांण) ६ एक आंख से काना होने का भाव. ७ एक आंख वाला (डि.को.) ८ संकोच. ९ हद, सीमा. [सं० कर्णक] १० लकड़ी तथा फल आदि में कीड़े पड़ जाने का वनस्पति का एक रोग विशेष जिससे लकड़ी व फल खोखले होकर तथा सड कर बेकाम हो जाते हैं।

[सं० काण] ११ फलित ज्योतिष के अट्ठाईस योगों में से एक योग (ज्योतिषबालबोध)

क्रि०वि०—लिये, वास्ते।

कांणकुरब–सं०पु०यौ०—मान, प्रतिष्ठा। उ०—अर बेटा नूं कहीया मांणमां रौ जसौ हूं मांन करतौ तींसूं सवायौ **कांण-कुरब** राखज्यौ—सूरे खीवे री वात

कांणणरांण–सं०पु० [सं० कानन+राट्] वनराज, सिंह। उ०—महाबळ **कांणणरांण** मलंग, दारू मभ जांण क्रसांण दमंग।—मे.म.

कांणम—देखो 'कांण' (३)

कांणाद–सं०पु०—१ कणाद ऋषि (वं.भा.) २ वैशेषिक शास्त्र (वं.भा.)

कांणि–सं०स्त्री०—मान, प्रतिष्ठा। उ०—काळी नाग री **कांणि** राखी न कांई, बकी बाळ मुंडी चडावेन बाई।—ना.द.

कांणियर–सं०पु०—१ कनियर या कनेर का पौधा. २ कनक चंपा का पौधा।

कांणी–सं०स्त्री०—देखो 'कांणि' (रू.भे.) 'कांणौ' का स्त्री० लिंग।

कां'णी–सं०स्त्री—कहानी।

कांणी दीवाळी–सं०स्त्री०—दीवाली का पहला दिन, रूपचतुर्दशी।

कांणठौ–सं०पु०—दाढ़ और चौके के मध्य का दांत विशेष। चौप्पड़

कांणौ–वि० (स्त्री० कांणी) [सं० कण=निमीलने+घञ् काण] १ एक नेत्र वाला।

मुहा०—१ कांणी रै ब्याव नै सौ जोखा—जहां कोई भी त्रुटि हो

वहां बड़ा भय रहता है. २ कांणी कोडी नी होणी—बिल्कुल कंगाल होना।

कहा०—१ एक तिल तिकोई कांणी—थोड़ी तो वस्तु वह भी खराब. २ कांणा कांणा राड़ काहे री कै आंख रै डोळे री—ओछे आदमी निरर्थक वस्तुओं के लिए लड़ पड़ते हैं. ३ कांणा कुबमादी व्है—काना मनुष्य चालबाज होता है. ४ कांणा खोड़ा कायरा, सिर सूं गंजा होय—काना, लँगड़ा, भूरी आँखों वाला एवं गंजा व्यक्ति कभी भले नहीं होते. ५ कांणा नै कांणौ नी कीजै, कह बतळाजे सैण। हळवै हळवै पूछजै, थांका कांसूं फूटया नैण—काने को काना नहीं कहना चाहिए, बल्कि उसे मित्र कह कर संबोधन करना चाहिए तथा धीरे-धीरे उसे पूछना चाहिए कि आपकी आंख किस तरह चली गई। सदा मृदु आचरण से काम निकालना चाहिए. ६ कांणा नै कंवै अर बाडौ लाजै—काने को कहते हुए टेढ़ा देखने वाला भी लज्जित होता है अर्थात् बड़े अपराध वाले को उसका अवगुण कहने पर छोटे अपराध वाला स्वयं लज्जित होता है. ७ कांणी पीठ में पड़ै—किसी स्थान के लिए प्रयोग होने वाला जो रास्ते से बहुत दूर कोने में पड़ता हो. ८ कांणी बाई छाछ घाल. ९ कांणी रांड छाछ घाल, मीठो घणो बोल्यौ बेटा दूध घाल सूं—जिससे काम निकालना हो उससे कड़वे वचन बोलने से बात नहीं बनती। उससे मीठा बोलना चाहिये १० कांणी रौ काजळ भी सरायौ—किसी के साधारण पहनावे या लाभ की भी काफी प्रशंसा करने पर. ११ कांणी रौ काजळ ही कौ सुवावै नी—किसी के साधारण पहनावे को या लाभ को जब कोई टोके तब यही जाती है. १२ कांणौ कागलौ कद कुंड में पड़ै—चालाक व धूर्त व्यक्ति अपनी हानि कभी नहीं होने देता. १३ कांण्यौ कजरौ कायरौ, चपट मुखौ मुख भूर। ओछी गरदन दांतलौ, तासूं रीजै दूर—काना, कजरी आँखों वाला, भूरी आँखों वाला, चपटे मुँह वाला, भूरी मूंछों वाला, ओछी गरदन वाला तथा जिसके दांत बाहर निकले हुए हों इनसे सदा दूर रहना ही उचित है।

यौ०—कांणी-कोचर, कांणी-कोचरी, कांणी-कोजी, कांणी-कोलर, कांणी-घूंघटौ।

२ जिसका कुछ भाग कीड़ों ने खा लिया हो, कच्चा (फल आदि के लिये)

यौ०—कांणी-काचौ, कांणी-कुरलौ, कांणी-कोचर, कांणी-कोचरौ, कांणी-कोजौ, कांणी-कोलर।

सं०पु०—१ शुक्राचार्य्य. २ देखो 'कांइणौ'।

कांणीघूंघट, कांणीघूंघटौ-सं०पु०—दो अंगुलियों की मुद्रा से घूँघट को इस प्रकार से स्थित करना कि आंख के अतिरिक्त चेहरा बिल्कुल न दीखे। उ०—आंणी आयोड़ी जळ में जळ पीणी, कांणघूंघट में कळपै कळहीणी।—ऊ.का.

कांणीसूकर-वि०—शुक्राचार्य के समान एक आंख वाला, काना।

कांन्हड़ौ-सं०पु० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह+रा० प्र० ड़ो] श्रीकृष्ण। उ०—जनम जनम रौ कांन्हड़ौ म्हारी प्रीति बुझाय।—मीरां

कांत-वि० [सं०] सुंदर, अच्छा (ह.नां.)

सं०स्त्री० [सं० कांति] १ शोभा, प्रभा। उ०—की हीरा कणियांह अलोकिक कांत री, पूछे कौ कथ कुंद कळी रै पांत री।—बां.दा. २ यश।

सं०पु० [सं०] ३ पति, प्रियतम। उ०—हालू रा अनुज रोपाळ री पत्नी आपरा कांत नूं इण रीति भणियौ।—वं.भा.

कांतमणि-वि०—श्वेत* (डिं.को.)

कांतर-सं०पु०—वरुण (ह.नां.)

कांतलोह—सं०पु०[सं०] एक प्रकार का बढ़िया लोहा। उ०—तुरंग दोय गजराज पैंताळीस कांतलोह मय खग, च्यारि रंगदार चांमर साथ दे'र सारंगदेव नूं गजनबी विदा कीधौ।—वं.भा.

कांता-सं०स्त्री०—१ सुंदर स्त्री. २ पत्नी (डिं.को.)

कांतार-सं०पु० [सं०] सघनवन, महावन (ह.नां.)

कांति-सं०स्त्री० [सं०] १ रोशनी. २ दीप्ति, शोभा। उ०—अर उवह सोहाग की कांति मुख के विखै जैसे प्रगट होइ छै।—वेलि. टी.

कांतिलोह-सं०पु०—देखो 'कांतलोह'।

कांती-सं०स्त्री० [सं० कांति] १ देखो 'कांति' (रू.भे.) उ०—सुंदरता लज्जा, प्रीति, सरसती, माया, कांती, क्रिया मती।—वेलि. टी. २ रुकमणी की एक सहचरी (वेलि.)

कांतेर-सं०स्त्री०—एक प्रकार की कांटेदार झाड़ी।

कांतेरण-सं०स्त्री०—एक प्रकार की फैलने वाली कांटेदार झाड़ी।

कांतौ-सं०पु०—देखो 'कांत' (३)

कांथड़ी-सं०स्त्री० [सं० कंथा] संन्यासियों के पहिनने-ओढ़ने की गुदड़ी जो चिथड़ों को जोड़ कर बनाई जाती है, कंथड़ी। उ०—जे पहिरइ मुद्रा कांथड़ी, आवइ जती जोगी कापड़ी।—कां.दे.प्र.

कांदसीक-वि० [सं० कान्दिशीक] भयभीत, भयद्रुत। उ०—प्रहरण ता कांदसीक प्रतिपच्छी बने, पदग्रस्त बुल्लत विलोकि रक्त नाळां को।—वालाबख्श बारहठ

कांदौ-सं०पु० [सं० कंद] प्याज (डिं.को.) उ०—औगण सह कर एकठा, बिदुर बणायौ बेह। जा मझ कांदा छोत जिम, छिदरां रौ नह छेह।—बां.दा.

कहा०—१ कांदे रा छूंतरा उतारणा चोखा कोनी—तकरार या विवाद को बढ़ाने से कोई लाभ नहीं होता, उसको शीघ्र निपटा देना अच्छा होता है. २ कांदे रा छूंतरा उतारै जिता ही उतर जावै—चाहने पर तकरार या विवाद को बढ़ाना सरल है।

[सं० स्कंध] २ कंधा (रू.भे.)

कांध-सं०स्त्री० [सं० स्कंध] १ कंधा. २ शवयात्रा में शव के ले जाने के उपकरण में कंधा लगाने का भाव। उ०—पातसाह आपरी जणणी नूं कांध दियौ।—बां.दा.

मुहा०—कांध देणी—मृत व्यक्ति की अर्थी को उठाने में सहयोग देना, शवयात्रा में शामिल होना।

कांधमल-वि० [सं० स्कंध+मल्ल] १ योद्धा, वीर। उ०—'मालदे' दूसरा तूझ भय कांधमल, जीव हात लहरण हीये जकिये। केवियां देवड़े किया घर कंदरे, तन रहण प्रतीतां तणै तकिये।—दुरसौ आढ़ौ २ सहायता करने वाला, सहायक।

कांधल-सं०पु०—१ सोलंकी वंश के क्षत्रियों की एक शाखा अथवा इस शाखा का व्यक्ति. २ राठौड़ वंश की एक उप-शाखा या इस उप-शाखा का व्यक्ति (बां.दा. ख्यात)

कांधलोत-सं०पु०—राठौड़ों की एक उप-शाखा जो राव रिड़मल के पुत्र कांधल से प्रारम्भ हुई मानी जाती है या इस शाखा का व्यक्ति।

कांधाळ-वि० [सं० स्कंध+आलु] बड़े कंधे वाला, बहादुर, वीर। उ०—घुणियाळ बांहाळ वेटाळ घुबं, हटियाळ कांधाळ अकाळ हुबं। —पा.प्र.

कांधिया-सं०पु० [सं० स्कंध+रा० प्र० या अथवा स्कांधिक] १ गिरासिया जाति के मृतक के उद्देश्य से बारहवें दिन दिया जाने वाला भोज जिसमें मक्की का दलिया और बकरे का मांस बनाया जाता है. २ देखो 'कांधियौ'।

कांधियौ-सं०पु० [सं० स्कांधिक] वह व्यक्ति जो किसी के शव को श्मशान ले जाने के उद्देश्य से सीढ़ी में अपना कंधा लगाता हो। (बहु० 'कांधिया')

कांधी-सं०स्त्री० [सं० स्कंध] कंधा (अमरत)

कांधेलौ, कांधोटौ-सं०पु०—१ सर्दी के समय घोड़े की पीठ पर ओढ़ाया जाने वाला एक वस्त्र विशेष. २ कंधे का सहारा।

कांधोधरौ-वि०—१ बड़े कंधों वाला, वीर. २ सहायक (रा.रा.)

कांधौ-सं०पु० [सं० स्कंध] कंधा। उ०—गळियोड़ा सब गात, गजब कांधा गळियोड़ा।—ऊ.का.

कहा०—कांधा माथै छोरौ नै गांव में ढंढ़ोरौ—कंधे पर बालक के होते हुए भी उसे गांव में ढूंढते फिरना। बेखबर व्यक्ति को अपने पास की वस्तु का भी ध्यान नहीं रहता है।

कांन-सं०पु० [स० कर्ण] १ श्रवणेन्द्रिय, कर्ण, कान।

पर्याय०—करण, कांनड़ा, गोस, ध्रुनिग्रह, धुनीग्रह, पिंजूस, वाइकचर, सबदग्रह, सरवरण, सांभळण, सुणण, सुरति, स्रव, स्रवण, स्रुति, स्रोत।

मुहा०—१ कांन उठाणा—सुनने के लिए तैयार होना, होशियार होना. २ कांन कतरणा—होशियारी में खूब बढ़ा-चढ़ा होना, धोखे में डाल देना. ३ कांन काटणा—देखो 'कांन कतरणा'. ४ कांन खड़ा करणा—होशियार होना. ५ कांन खड़ा होणा—ध्यान आना, होशियार होना. ६ कांन खाणा (खावणा)—बार-बार कहना, हल्ला करना. ७ कांन खुलणा—सचेत होना, भविष्य के लिए सावधान होना. ८ कांन खोलणा—सचेत करना, सावधान करना. ९ कांन दबणा—दबाव पड़ना. १० कांन दबाणा—दबाव डलाना. ११ कांन देणा—ध्यान से सुनना. १२ कांन पकड़णौ—सावधान करना, न करने का प्रण लेना, अपराध स्वीकार करना, साधारण सजा देना, जबरदस्ती कराना, दबाव डालना. १३ कांन पकड़'र निकाळ देणौ—अपमान से निकालना, डांट-डपट कर निकालना. १४ कांन पड़ी अवाज नी सुणीजणी—बड़ा शोर होना. १५ कांन पाकणा—सुनते सुनते ऊब जाना. १६ कांन फाटणा—तेज आवाज से परेशान होना १७ कांन फूंकणा-शिकायत करना, चेला बनाना. १८ कांन भरणा—शिकायत करना. १९ कांन माथै जूं नी रेंगणी—तनिक भी ध्यान न देना, लापरवाह होना. २० कांन माथै हाथ धरणौ (रखणौ)—सहम जाना, अजानकारी बतलाना. २१ कांन में ठेठी लगाणी—न सुनाई देना. २२ कांन में डालणौ (घालणौ, न्हांखणौ)—लापरवाही से बता देना, कह देना. २३ कांन में तेल डाल'र बैठणौ—सुनी-अनसुनी करना, लापरवाह होना. २४ कांन में पड़णौ—सुनाई देना. २५ कांन में फूंकणौ—देखो 'कांन भरणा'. २६ कांन में रूई घाल'र बैठणौ—सुनी-अनसुनी करना, लापरवाह होना. २७ कांन लगाय नै सुणणौ—प्रत्येक शब्द को ध्यान से सुनना. २८ कांन लगाणा—ध्यान देना, ध्यान से सुनना. २९ कांनाफूंसी करणी—धीरे-धीरे बात करना, छिप-छिप कर आलोचना करना. ३० कांनां में आंगळी घालणी—जान-बूझ कर न सुनना. ३१ कांनां रा पड़दा फाटणा—तेज आवाज से परेशान होना. ३२ कांनां रौ काचौ होणौ—सुनी बात या शिकायत का जल्दी विश्वास करने वाला होना, सुन कर कह देने वाला होना. ३३ कांनां रौ मैल निकळवाणौ—सुनने योग्य होना (व्यंग्य) ३४ कांनां सूं कांम लेणौ—इधर-उधर सुन कर अपना हित-अहित समझ कर निर्णय या कार्य करना. ३५ कांनोकांन खबर नी होणी—बिल्कुल पता न चलना।

कहा०—१ अंधारै में किसौ कांन में कवौ जावै—अंधेरे में कौनसा ग्रास मुंह के बजाय कान में चला जायगा। अभ्यास हो जाने पर कोई काम अंधेरे में भी किया जा सकता है। उचित वस्तु या विशेष अंग अपना उचित स्थान स्वयं खोज लेते हैं. २ कांन अर आंख में च्यार आंगळ रौ फरक है—सुनी हुई बात का कम विश्वास करना चाहिए क्योंकि सुनी हुई बात व देखी हुई बात में बहुत फर्क होता है. ३ कांनां खूस'र हाथ मे आग्या—मूर्खता का काम करने पर. ४ कांन फड़ावौ तौ लादूवास जावौ—जो कार्य जिस जगह का होता है वह वहीं ठीक तरह से संपन्न हो सकता है. ५ कांन लिया है रतोर रा व्है ज्यूं—बड़े कानों के प्रति व्यंग्य. ६ कानां मांधे कंइ बांदरा मूत्या है—आवाज देने पर भी किसी के नहीं सुनने पर. ७ कांनां में कंइ ठेठी घाल राखी है—आवाज देने पर भी किसी की नहीं सुनने पर. ८ कांनां री लोळ अर पेट की झोळ बढ़ावौ जतरी बढ़ै—कान के नीचे का भाग और पेट की झोल जितनी बढ़ाई जायगी उतनी ही बढ़ जायगी. ९ कांनिया मांनिया कुर्र, थूं चेला

हम गुरट्—किसी को बहकाने या अपने प्रभाव में लाने पर, बच्चों को बहकाने के लिए।

[सं० कृष्ण] २ श्रीकृष्ण। उ०—तूं ही ज **कांन** गवाळियौ, तूं कंस कहांणा।—केसोदास गाडण

३ बंदूक की नली के ऊपर का लोहे का अवयव जिस पर टोपी रखी जाती है, लूंग. ४ वह गाय जो बच्चा न देती हो (पवित्र) (मि० 'कांन गाय')

कांनकुचरणियौ–सं०पु०—धातु का बना छोटी कलछीनुमा कान से मैल निकालने का एक उपकरण।

कांनकुब्ज–सं०पु० [सं० कान्यकुब्ज] १ कन्नोज (डिं.को.)

२ ब्राह्मणों का एक भेद।

कांनखजूरौ–सं०पु०—कनखजूरा नामक एक कीड़ा (अमरत)

कांनगाय–सं०स्त्री०—वह गाय जो ऋतुमती नहीं होती व गर्भ धारण नहीं करती (पवित्र)

वि०—बुजदिल कायर।

कांनड़, कांनड़ौ–सं०पु० [सं० कृष्ण] १ श्रीकृष्ण, ईश्वर (ह.नां.)

उ०—मांनस अंतहकरण ह्रदै मझि सदा समरि **कांनड़** समथ।

—ह.नां.

[सं० कर्ण+रा० प्र० ड़ौ] २ कान, कर्ण। उ०—छाळी हुंदा **कांमड़ा**, एवाळां आधीन। बस चुगलां रै सरब विध, कांन सठां इम कीन।

३ वस्त्र का छोर। —बां.दा.

कांनजी–सं०पु० [सं० कृष्ण] श्रीकृष्ण। उ०—गाज ऊंडी करै मेघ आया गयण, नागरी **कांनजी** घरे नाया।—बां.दा.

कांनजी आटम, कांनजी आठम–सं०स्त्री० [सं० कृष्ण+अष्टमी] भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी। इस दिन श्रीकृष्ण का जन्म हुआ माना जाता है।

कांनझड़–सं०स्त्री०—कानों से सुन कर याद की गई कविता।

वि०—श्रुतिनिष्ठ।

कांनन–सं०पु० [सं० कानन] वन, जंगल (अ.मा.)

कांननचारी–सं०पु० [सं० काननचारिन्] ऋषि (अ.मा.)

वि०—वन में विचरण करने वाला।

कांननभूखौ–सं०पु०—हरिण (अ.मा.)

कांनपसाव–सं०पु० [सं० कर्णप्रसाद] 'सुनना' क्रिया का भाव, कर्णगोचर। उ०—कीरत थारौ कुळ किसौ, सगी गोत सुभाव। कुळ म्हारौ कमळा कहै, कीजै **कांनपसाव**।—लछमी कीरत संवाद

कांनफाड़–सं०पु०—१ वह संन्यासी जो कान छिदवा कर उनमें मुद्रा या कुंडल धारण करता हो। उ०—गोदड़ **कांनफाड़** जोगी जंगम सोफी संन्यासी संसार नूं भागा थका फिरै।—रा.सा.सं.

२ नाथ संप्रदाय का संन्यासी।

कांनली–क्रि०वि०—ओर की, तरफ की। उ०—दरबार **कांनली** तो थे जमाखातर राखजो।—द.दा.

कांनवौ, कांनव्हौ–सं०पु० [सं० श्रीकृष्ण] श्रीकृष्ण (रू.भे.)

उ०—किणे न दीठो **कांनवौ**, सुण्यौ न लीला संध। आप बंधांणा ऊखळै, बीजा छोडण बंध।—ना.द.

कांनस–सं०स्त्री०—१ अर्द्धवृत्ताकार का भाव. २ लोहे को साफ व चिकना बनाने का एक औजार. ३ मकान की दीवार के बाहर व भीतर दोनों ओर निकाली हुई लगभग तीन चार इंच चौड़ी पट्टी।

कांनसळाई, कांनसळायौ–सं०स्त्री०पु०—कनखजूरा नामक एक विषैला कीड़ा।

कांनहीयौ–सं०पु० [सं० कृष्ण] श्रीकृष्ण (रू.भे.)

कांनाकड़मत–सं०स्त्री०—ओ की मात्रा।

कांनाफूसी–सं०स्त्री०—१ धीरे-धीरे की जाने वाली बातें. २ छिप-छिप कर की जाने वाली आलोचना. ३ फुसफुसाहट।

कांनामात–सं०स्त्री०—व्यंजनों के लगाई जाने वाली खड़ी पाई की मात्रा यथा—ा

कांनावत–सं०पु०—सीसोदिया वंश के क्षत्रियों की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति (बां.दा.ख्यात)

कांनासरिया–सं०स्त्री०—राठौड़ों की एक उपशाखा जो राव मल्लिनाथजी के पुत्र जगमालजी से आरंभ हुई मानी जाती है।

कांनिया–क्रि०वि०—तरफ, ओर। उ०—खसै चहुं **कांनिया** प्रसारै।

—बखतो खिड़ियौ

कांनियौ—देखो 'कांन' (अल्पा.)

कांनी–क्रि०वि०—१ तरफ, ओर। उ०—समदर देख्यौ सूरज **कांनी**, गरज्यौ तीर उछाळी दे।—रेवतदांन

सं०स्त्री०—१ किनारा. २ वस्त्र का छोर।

कांनू–सं०पु० [सं० कृष्ण] १ श्रीकृष्ण (रू.भे.) उ०—कै बाई, थांने ईसर वर हेरां, तौ कै **कांनू** वर हेरां औ रांम।—लो.गी.

२ किनारा. ३ अलग, पृथक होने का भाव। उ०—लिछमीबर छांनूं **कांनूं** ले लीनूं। दीनन बंधू हुय दीनन दुख दीनूं।—ऊ.का.

कांनूगोई–सं०स्त्री०—१ कानून जानने का भाव. २ कानून का कार्य या पद।

कांनूगौ–सं०पु०—१ जमीन के बंदोबस्त विभाग का एक कर्मचारी विशेष. २ कानून जानने वाला व्यक्ति।

कांनूड़ौ–सं०पु० [सं० कृष्ण+रा० प्र० ड़ौ] श्रीकृष्ण। उ०—सखी म्हारै **कांनूड़ौ** कळेजे की कोर।—मीरां

कहा०—कानूड़ौ कुळ में आयौ, रात बड़ी दिन छोटौ लायौ—भाद्रपद मास की कृष्ण जन्माष्टमी से रातें बड़ी होने लगती हैं तथा दिन घटने लगता है।

कांनून–सं०पु० [अ०] राज्य के नियम, विधि, विधान, कानून।

कहा०—१ कांनून न कायदौ अर बडा हुकम में फायदौ—नियम कानून को दूर रख कर खुशामद से काम बनाने पर (मेवाड़)

२ कानून रा पग कागदां तांई—कानून का महत्व केवल कागजों पर

ही होता है; प्राय: दोषी व अपराधी व्यक्ति द्वारा येन केन प्रकारेण कागजों में अपनी निर्दोषिता की खानापूरी करवा लेने पर.

कानून की कार्यवाही केवल कागजों में ही चलती है। केवल अपनी मनमानी करने वाले और उजड्ड व्यक्ति की धारणा ऐसी होती है। उसे कानून के महत्व में विश्वास न होकर उसे अपनी मनमानी में विश्वास होता है।

कांनूनन–क्रि०वि०—कानून के अनुसार, नियमानुसार।

कांनै–क्रि०वि०—१ तरफ, ओर. २ पास. ३ दूर। उ०—विरह दरद उरि अंतरि मांही, हरि बिन सब सुख कांनै हौ।—मीरां

कांनोता–सं०पु०—मिरासियों की एक जाति विशेष (मा म.)

कांनौ–सं०पु०—१ 'आ' की मात्रा का चिन्ह. २ बरतन के मुंह का छोर. ३ पार्श्व, बगल, किनारा। उ०—राजड़ कियौ रांण छळ रूड़ौ, कांनौ दे नीसरूं कठै। अरि घोड़ौ फेरण किम आवै, तोरण घोड़ौ लियौ तठै।—नरु अमरावत बारहठ रौ गीत

मुहा०—१ कांनौ देणौ—दूर करना, अलग करना या छोड़ना.

२ कांनौ लेणौ—दूर होना, किनारा करना, अलग होना।

कहा०—मूरख रौ कांनौ लेणौ चोखौ है—मूर्ख व्यक्ति से दूर रहना ही अच्छा है।

[सं० कृष्ण] ४ श्रीकृष्ण। उ०—टेक छींपा तणी देख दुख टाळियौ, छांन बंधवाळियौ नहीं छांना। वरतियौ रह्यौ मेटण चिंता वांणियै, किताई करूं बाखांण कांना।—ब्रह्मदास दादूपंथी

क्रि०वि०—दूर, अलग, पृथक।

कांन्सल–सं०पु० [अं० कांसल] १ राजदूत. २ वाणिज्य-दूत।

कांन्ह–सं०पु० [सं० श्रीकृष्ण] (रू.भे.) उ०—अपणउ गोकुळ तणउ उवारियउ, कांन्ह प्रवाड़उ किस्यउ कळि।—चौथ बारहठ

वि०—श्याम वर्ण, धूमिल, हल्का काला। (डिं.को.)

कांन्ह कंवर–सं०पु०यौ० [सं० कृष्ण+कुमार] श्रीकृष्ण।

उ०—कांन्ह कंवर सौ वीरौ मांगां, राई सी भोजाई।—लो.गी.

कांन्हड़–सं०पु० [सं० कृष्ण] श्रीकृष्ण (पिं.प्र.) उ०—सुजि बळिभद्र कांन्हड़ सकज।—ह.नां.

कांन्हड़ी–सं०स्त्री०—दीपक राग की पत्नी मानी जाने वाली एक रागिनी (संगीत)

कांन्हड़ौ–सं०पु० [सं० कृष्ण] श्रीकृष्ण (रू.भे.) उ०—रटियौ हरि गजराज, तज खगेस धायौ तठै। आ कंइ देरी आज, करौ इती तैं कांन्हड़ा।—रांमनाथ कवियौ [सं० कर्णाट] एक राग जो मेघ राग का पुत्र माना जाता है। इसमें सातों स्वर लगते हैं (संगीत)

कांन्हरौ, कांन्हौ–स०पु० [सं० कृष्ण] १ श्रीकृष्ण। उ०—जमना किनारै कांन्हा धेनु चरावां, बंसी बजावां मीठी वांणी।—मीरां

२ श्रीकृष्ण के वंशज, यादव।

कांन्हावत–सं०पु०—राठौड़ों की एक उपशाखा जो राव चूंडा के पुत्र कांन्ह से प्रारंभ हुई मानी जाती है।

कांन्ही–क्रि०वि०—तरफ, ओर (रू.भे. 'कांनी') उ०—तद मोहनसिंह नूं छोड़ कईंक तखत री पूठ कांन्हीं खड़ा था।—पदमसिंह री बात

कांन्हू–सं०पु० [सं० कृष्ण] श्रीकृष्ण (डिं.को.)

कांन्है–क्रि०वि०—१ पास, निकट. २ तरफ, ओर।

कांन्हौ–सं०पु० [सं० कृष्ण] १ श्रीकृष्ण. २ 'आ' की मात्रा का नाम (मि० 'कांनौ')

कांप–सं०स्त्री०—तालाबों का पानी सूखने पर ऊपर पपड़ी की तरह जमी रहने वाली बहुत महीन मिट्टी (क्षेत्रीय)

कांपणी–सं०स्त्री०—१ कँपकँपी। उ०—पाखती नेत्र झळमळाट करै छै राव नै कांपणी छूटी।—डाढ़ाळा सूर री बात २ एक रोग विशेष जिसके कारण शरीर हमेशा कांपता रहता है।

कांपणौ, कांपबौ–क्रि०अ० [सं० कंप] १ हिलना, कांपना. २ डरना, थर्राना। उ०—कांपिया उर कायरां असुभ कारियौ गाजंते नीसांणे गड़ड़ै।—वेलि.

कांपणहार, हारौ (हारी), **कांपणियौ**—वि०।

कांपाणौ, कांपाबौ—प्रे०रू०।

कांपिओड़ो, कांपियोड़ौ, कांप्योड़ौ—भू०का०कृ०।

कांपळिया–सं०स्त्री०—चौहान वंश के क्षत्रियों की एक शाखा (नैणसी)

कांपाणौ, कांपाबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०)—१ हिलाना, कंपाना.

२ डराना, भयभीत करना।

कांपियोड़ो–भू०का०कृ०—हिलाया हुआ, कांपा हुआ, डरा हुआ। (स्त्री० कांपियोड़ी)

कांपीजणौ, कांपीजबौ–क्रि० भाव वा०—१ हिला जाना, कांपा जाना.

२ डरा जाना, भयभीत हुआ जाना।

कांब–सं०स्त्री० [सं० कंब] हरे वृक्ष की ताजी छड़ी। उ०—लांबी कांब चटक्कड़ा, गय लंबावइ जाळ। ढोलउ अजे न बाहुड़इ, प्रीतम मी मन साल।—ढो.मा.

कांबड़–सं०पु०—चमार जाति का याचक।

कांबड़ी–सं०स्त्री०—छड़ी (मि० कांब' रू भे.) उ०—बांवळि कांई न सिरजियां, मारू मंझ थळांह। प्रीतम बाढ़त कांबड़ी, फळ सेवंत करांह।
—ढो.मा.

कांबड़ौ–सं०पु०—कपड़ा बुनने के निमित्त उपयोग में ली जाने वाली लंबी, पतली, हल्की लकड़ी, छड़ी या सरकंडा।

कांबल—देखो 'कंबल'। उ०—कोई कोमळ नरम वसत्रां करि अर कोई कांबला करि।—वेलि. टी.

कांबळियौ, कांबळी—सं०पु०स्त्री०—देखो 'कंबळ' (अल्पा०)

कहा०—ज्यूं ज्यूं भीजै कांबळी त्यूं त्यूं भारी होय—ज्यों ज्यों कंबल भीगता है त्यों त्यों भारी होता है; संपत्ति बढ़ने के साथ लालच या अभिमान भी बढ़ता है। किसी बात या विवाद को अधिक बढ़ाने से वह उत्तरोत्तर अधिक हानिकारक या कष्टदायक होता जाता है।

कांबळौ—देखो 'कंबळ' (महत्व०)

कांबीजणो, कांबीजबो–क्रि० अ०—१ पशुओं के पेट में मरोड़ा चलना. २ मादा पशुओं का ऋतुमती होना व प्रबल कामेच्छा करना।

कांबोज–सं०पु० [सं०] १ घोड़ा. २ एक देश का नाम।

कांबोजौ–सं०पु०—कांबोज प्रदेश का घोड़ा (डिं नां.मा.)

कांम–सं०पु० [सं० काम] १ कामदेव। उ०—बादळ काळा वरसिया, अत जळ माळा आंण। कांम लगौ चाळा करण, मतवाळा रंग मांण। —बां.दा.

यौ०—कांमकळा, कांमकांता, कांमकेळि, कांमक्रीड़ा, कांमदहण, कांमबांण, कांमरिपु, कांमसखा, कांमसर, कांमशास्त्र, कामारि।

२ शिव, महादेव. ३ इच्छा, मनोरथ (अनेकार्थ)

यौ०—कांमतरु, कांमधेनु।

४ इंद्रियों की स्व-विषयों की ओर प्रवृत्ति (कामशास्त्र)

५ मैथुनेच्छा (अनेका०).

मुहा०—कांम में आंधौ होणौ—कामेच्छा को विवेकहीन होकर पूर्ण करने का प्रयत्न करना।

यौ०—कांमज्वर, कांमवती, कांमवांन कांमातुर, कांमी, कांमुक, कांमोद्दीपन।

६ चार पदार्थों में से एक. ७ आशा.

[सं० कर्म, प्रा० कम्म] ८ वह जो किया जाय, कार्य, व्यापार।

क्रि०प्र०—करणौ, देणौ, लेणौ, होणौ।

मुहा०—१ कांम अटकणौ—कार्य में वाधा उपस्थित होनी, हर्ज होना. २ कांम आंणौ—युद्ध में मारा जाना. ३ कांम करणौ—असर करना, संभोग करना, प्रयत्न में कृतकार्य होना. ४ कांम चलणौ—काम चालू रहना. ५ कांम चलाणौ—कार्य चालू रखना, किसी न किसी तरह करते रहना. ६ कांम तमांम करणौ—मार डालना, कार्य पूरा करना. ७ कांम तमांम होणौ—मारा जाना, मरना, कार्य पूरा होना. ८ कांम देखणौ—कार्य की देखभाल या जाँच करना. ९ कांम बणणौ—मामला या कार्य सधना.

१० कांम बिगड़णौ—मामला या कार्य बिगड़ जाना. ११ कांम लागणौ—काम जारी होना, किसी कार्य में नियुक्त होना किसी वस्तु के निर्मित करने का अनुष्ठान होना. १२ कांम लेणौ—कार्य्य कराना।

कहा०—१ कांम करणौ मन रौ जांणियौ—अपने मन और विवेक के अनुसार ही कार्य करना चाहिये. २ कांम करवू आपणा हाथ में है, आळवू रांम ना हाथ में है—काम का फल ईश्वर के भरोसे छोड़ कर ही काम करना चाहिये. ३ कांम करै ऊधौदास, जीम ज्याय माधोदास—जब कार्य कोई करता है और लाभ कोई उठाता है.

४ कांम करौ जोई विचारी ने करौ—सोच-विचार करके ही कार्य करना उचित है. ५ कांम करघा जके कांमण करघा—कार्य करने वाला सबको वशीभूत कर लेता है. ६ कांम की बेळ्यां लाकड़ी खाबा ने अर चावै छै ताकड़ी—जो कार्य कुछ न करे किन्तु खाने के लिए बहुत मांगे उसके लिए. ७ कांम के दो कूंचौ अर मांन्या ने लौ ऊंचौ—काम छोड़ो और बच्चे को लो (व्यंग्य), अधिक कामकाजी मनुष्य बच्चों को खिलाने में अधिक समय नहीं दे सकता.

८ कांम प्यारौ (वालौ) है चांम प्यारौ कोयनी—काम करने वाला आदमी अच्छा लगता है, केवल रूप-रंग अच्छा होने से अच्छा नहीं लगता। सब काम को प्यार करते हैं, शरीर को कोई प्यार नहीं करता. ९ कांम भोळायौ जांणै माथै में सोट री दी है—काम करने में अनिच्छा प्रगट करने वाले के प्रति. १० कांम मां कांम नी वदावणौ—हाथ में लिए हुए काम को शीघ्र समाप्त कर देना चाहिए, अधिक नहीं बढ़ाना चाहिये. १० कांम मोटौ है नांम मोटौ नी—कार्य्य से ही किसी व्यक्ति का महत्व आंका जाता है. १२ कांमरै नांव ताव चढ़ै—कार्य करने से जी चुराने वाले व्यक्ति के लिये.

१३ कांम हुवण सूं पहली हीं सिकोतरा बोल जाय—कार्य संपादन (पूर्ण) होने से पहले ही सफलता अथवा असफलता के चिन्ह प्रकट होने पर. १४ किणौ सोई कांम नै भजियौ सोई रांम—काम करने से ही होता है। काम को शीघ्र निपटाना अच्छा होता है.

१५ थोथै कांम कूटीजै थाळी कळजुग राळी भांग कुवै—बेकार के निरर्थक कार्य के प्रति।

यौ०—कांमकाज, कांमचलाऊ, कांमचोर, कांमदार, कांमधंधौ, कांमधांम।

९ प्रयोजन, मतलब, उद्देश्य।

मुहा०—कांम करणौ—मतलब निकालना, अर्थ साधना।

२ कांम चलणौ—कार्य-निर्वाह होना, अर्थ सिद्ध होना. ३ कांम निकळणौ—अपना प्रयोजन पूरा होना, जरूरत पूरी होना.

४ कांम निकाळणौ—अपना मतलब साधना. ५ कांम पड़णौ—जरूरत होना. ६ कांम बणणौ—मतलब सिद्ध होना. ७ कांम रौ—जो मतलब का हो, जिससे कोई उद्देश्य सिद्ध हो. ८ कांम होणौ—जरूरत पूरी होना, मतलब सिद्ध होना.

१० सरोकार, गरज, वास्ता, लगाव।

मुहा०—१ किं'री सूं कांम पड़णौ—किसी से वास्ता होना.

२ कांम राखणौ—सरोकार या लगाव रखना. ३ कांम सूं कांम राखणौ—केवल अपने कार्य से सरोकार रखना।

कहा०—१ कांम जतरै काकोजी दूज्यूं आगा बळौ दारोजी—लोग जब तक अपनी गरज समझते हैं तब तक ही खुशामद करते हैं.

२ कांम सरघां दुख वीसरघा वैरी हुयग्या वैद—गरज निकल जाने पर अपना उपकार करने वाले के प्रति कृतज्ञ न होने पर।

११ व्यवहार, उपयोग, इस्तेमाल।

मुहा०—१ कांम आंणौ—उपयोग में आना, सहायक होना.

२ कांम देणौ—उपयोगी होना. ३ कांम लेणौ—इस्तेमाल करना.

४ कांम में लेणौ—उपयोग करना. ५ कांम रौ—उपयोगी (वस्तु)

[सं० कर्म] १२ रोजगार, कारोबार।

क्रि०प्र०—करणौ, चलणौ, होणौ।

मुहा०—१ कांम खुलणौ—कोई नया रोजगार या कारोबार आरंभ होना. २ कांम चमकणौ—किसी कारोबार में वृद्धि व प्रसिद्धि होना. ३ कांम बिगड़णौ—रोजगार नष्ट होना, व्यापार में घाटा आना. ४ कांम माथै जाणौ—अपने रोजगार की जगह जाना. ५ कांम सीखणौ—किसी रोजगार या व्यवसाय की शिक्षा लेना।

कहा०—कांमां ज्यांरा धांमा, करै ज्यांनै छाजै—जिस कार्य का जो अभ्यस्त है अथवा जिसका जो काम है वह उसी में सफलता पाता है, नया व्यक्ति हानि उठाता है।

१३ रचना, कारीगरी. १४ बेल-बूटे आदि नक्काशी का कार्य. (यौ० कांमदार)

१५ पदवी. १६ बादल (अ.मा.) १७ पृथ्वी (डिं.नां.मा.) १८ वीर्य. १९ यथेष्ट वार्ता. २० स्वीकार. २१ विष्णु. २२ तृष्णा (अनेका०) २३ छड़ी (दसदेव)

वि०—काला।

कांमअंकुर, कांमअंकूर–सं०पु०—स्तन, कुच जो कामदेव के अंकुर-स्वरूप माने जाते हैं. कामदेव को जाग्रत करने वाले स्थान।

उ०—मळयाचळ सुतनु मळै मन भौरै, कळीकि **कांमअंकूर** कुच।
—वेलि.

कांमकला–सं०स्त्री० [सं० कामकला] १ कामदेव की स्त्री. २ मैथुन, रति।

कांमकांता–सं०स्त्री० [सं० कामकान्ता] कामदेव की स्त्री, रति।

कांमकांमा–सं०स्त्री०—भवानी, दुर्गा जो सब इच्छाओं की पूर्ति करने वाली है।

कांमका–सं०स्त्री०—कामिनी, स्त्री (ह.नां.)

कांमकाळ–सं०पु० [सं० कामकाल] महादेव, शिव।

कांमकी–सं०स्त्री०—१ गनिका, वेश्या (अ.मा.) २ स्त्री, नारी (ह.नां.)

कांमकेळि–सं०स्त्री०यौ० [सं० कामकेलि] रति, मैथुन।

कांमकेळू–सं०पु०—कामलोलुप, विषयी। उ०—द्विज भयौ वेळू अजा-मेळू **कांमकेळू** वांमु ए। जमदूत खेलू काळ वेळू, कंठमेळू ग्रांम ए।
—करुणासागर

कांमकौतूहळ–सं०पु०—रति-क्रीड़ा, संभोग। उ०—जलाल हमेसां महल गयौ रहै, खूब **कांम-कौतुहळ** करै।—जलाल बूबना री बात

कांमख–सं०पु०—पति, भर्ता (अ.मा.)

कांमखांनी–सं०पु०—एक मुसलमान जाति जो पहले हिन्दुओं के अंतर्गत थी।

कांमगा–सं०स्त्री० [सं० कामगौ] कामधेनु (रू.भे.)

कांमड़िया–सं०स्त्री०—१ चमड़े को कमाने व शुद्ध करने का व्यवसाय करने वाली एक जाति विशेष. २ तंदूरे पर गाने-बजाने का कार्य करने वाली एक याचक जाति विशेष (मा.म.)

कांमड़ी–सं०स्त्री० [सं० कंबिका] छड़ी। उ०—इतरै में खींवे रै हाथ में **कांमड़ी** थी सो अपूठे हाथ सूं बाही सो टाबर कूकियौ।
—सूरे खींवे री वात

कांमड़ीकसौ–सं०पु०—वह ऊंट जो चुटकनिया के प्रहार से चलता हो।

कांमचलाऊ–वि०—जिससे किसी प्रकार का काम निकल सके, कुछ अंशों में काम देने वाला।

कांमचोर–वि०—काम से जी चुराने वाला।

कांमछंद–सं०पु०—प्रत्येक चरण में दो गुरु वर्ण का वर्णिक छंद विशेष (पिं.प्र.)

कांमजुर–सं०पु० [सं० काम+ज्वर] अत्यधिक कामेच्छा के कारण एक प्रकार का होने वाला ज्वर, कामातुर होने का भाव।

कांमठ–सं०पु०—धनुष। उ०—**कांमठां** सूं तीर छूटियां मुंह आगै आंगा-आंगा पड़णै लागिया।—डाढ़ाळा सूर री वात

कांमठक–सं०पु० [सं० कामठक] धृतराष्ट्र के वंश का एक नाग जो जनमेजय के सर्प यज्ञ में मारा गया था।

कांमठड़ी, कांमठी–सं०स्त्री० [सं० कंबिका] चाबुक, छड़ी।

उ०—१ **कांमठड़ी** मत वाया ओ पातळिया, गवरल रा दिन च्यार।
—लो.गी.

उ०—२ आली तोडी **कांमठी** लूं दारचो लें, सड़कायी दोय'र च्यार जाजो मरवो लैं।—लो.गी.

कांमठौ–सं०पु०—धनुष का वह भाग जो चंद्राकार होता है और जिस पर प्रत्यंचा चढ़ाने से पूरा धनुष बनता है। उ०—सब आदमी भला भला तीरंदाज धणी जळंध री धांमण रा **कांमठा** सुही रा तीर छै।—डाढ़ाळा सूर री वात

कांमड़उ, कांमड़ौ–सं०पु० [सं० कर्म] १ काम, कार्य. २ प्रयोजन।

उ०—१ मारवणी तूं अति चतुर, हीयइ चेत गिमार, जउ कंता मूं **कांमड़उ**, करहउ कांबे मार।—ढो.मा.

उ०—२ सूरां अर सतवादियां, धीरा एक मनांह। दई करैसी **कांमड़ा**, अरंड फळै सी तांह।—चौबोली

कांमण–सं०स्त्री० [सं० कामिनी] १ कामवती स्त्री, सुंदरी, युवती स्त्री (अ.मा.) उ०—नागा फिरै निराट, लोहड़ां री सांकळ लगै। छाती मिटै न छाट, माया **कांमण** मोतिया।—रायसिंह सांदू

[सं० कार्मणं] २ दूल्हे के विवाह-मंडप में आने पर गाया जाने वाला एक मारवाड़ी लोकगीत. ३ किसी को वश में करने का एक प्रकार का वशीकरण मंत्र (अ.मा.)

कहा०—बाई रा कांमण किया सवाग नै, पड़ गया दुवाग नै—भला करने के उद्देश्य से किये गये किसी कार्य का बुरा फल निकलना।

४ मालकोश राग की एक रागिनी (संगीत) ५ कड़ी उमस के कारण धातु के पात्र में पड़ने वाली श्यामता लिए हुए हल्की झांई। यह वर्षासूचक मानी जाती है। उ०—कांसी **कांमण** दौड़, आभौ लील रंग लावै।—वर्षा-विज्ञान ६ गुड़, नमक आदि पदार्थों में उमस के कारण नमी आने का भाव।

कांमणगर, कांमणगारी–वि०स्त्री० [सं० कार्मणकारी] पुरुषों पर वशीकरण मंत्र का प्रयोग करने वाली। उ०—प्रीतम **कांमणगारियां**, थळ थळ बादळियांह। घण बरसंतइ सूकियां, लू सूं पांगुरियांह।—ढो.मा.

कांमणगारौ–सं०पु० [सं० कार्मणकार] स्त्रियों पर वशीकरण मंत्र का प्रयोग करने वाला। उ०—म्हे नहिं जांणां म्हांरा ग्वाळया **कांमणगारा** राज।—लो.गी.

कांमणहार–वि०—१ जादू-टोना आदि करने वाला.
२ वशीकरण मंत्र का प्रयोगकर्ता।

कांमणि, कांमणी–सं०स्त्री० [सं० कामिनी] १ सुन्दर स्त्री, कामवती स्त्री (ह.नां.) उ०—१ ऊठि अढंगा बोलणा, **कांमणि** आखै कंत। ऐ हल्ला तौ ऊपरां, हूं कळ कळळ हुवंत।—हा.झा. उ०—२ बांचै हर हर बांण, कनक न रांचै **कांमणी**। जोगी अहड़ा जांण, मन सै जीता मोतिया।—रायसिंह सांदू

कांमणीमोहणा–सं०पु०—चार रगण(ऽ।ऽ)युक्त बीस मात्रा का छंद विशेष।

कांमतर, कांमतरु–सं०पु० [सं० कामतरु] कल्पवृक्ष (डिं.को.)

कांमतिथ–सं०स्त्री० [सं० कामतिथि] त्रयोदशी (इस तिथि को कामदेव का पूजन होता है)

कांमद–वि० [सं० कामद] मनोरथ पूर्ण करने वाला।

कांमदक, कांमदमणी–सं०पु०—एक मणि का नाम।

कांमदहण–सं०पु० [सं० कामदहन] शिव, महादेव (डिं.को.)

कांमदांनी–सं०स्त्री०—वह बेल-बूटा जो बादले के तार या सलमे-सितारे से बनाया जाय।

कांमदा–सं०स्त्री० [सं० कामदा] कामधेनु।

कांमदार–सं०पु० [अ० कामदार] १ बड़े जागीरदार, सेठ, राजा के यहां प्रबंधकर्ता।
पर्याय०—कांमेती, दीवांण. मंत्री, मुसायब, सचिव।
२ प्रमुख कर्मचारी, कारिंदा।
वि०—कारचोबी जिस पर जरदोजी या तार के कसीदे का काम हो, जिस पर कलाबूत आदि के बेल-बूंटे हों।

कांमदुधा, कांमदुहा–सं०स्त्री०—कामधेनु।

कांमदेव–सं०पु० [सं० कामदेव] १ नर व मादा को संभोग की प्रेरणा करने वाला एक देवता।
पर्याय०—अकाय, अणगंज, अतन, अतळीवळ, अनंग, अनिनज, अवप, आतमज, कंदरप, कळा, कांम, जराभीर, दिनदूलह, दरपक, नवरंग, पंचसर, पुसपचाप. प्रद्युमन, मदन, मनमथ, मधुदीप, मनसिज, मनहर, मनोज, मनोद्रव, मीनकेतन, रमानंदन, रितपती, विखमांजुध, संबरारि, समर, हरि।

कांमधंधौ–सं०पु०यौ०—काम, रोजगार, व्यवसाय।

कांमधज–सं०पु०यौ० [सं० कामध्वज] वह जो कामदेव की पताका पर हो, मछली।

कांमधनि–सं०स्त्री० [सं० कामधेनु] कामधेनु (रू.भे.)

कांमधरम–सं०पु०यौ० [सं० काम+धर्म] विषय-वासना।
उ०—स्यांम धरम कुळ धरम न साजै, **कांमधरम** अभियास करै। भरमा भरमी पीड़ भोगवै, मांचै गरमी हूंत मरै।—बां.दा.

कांमधीठ–सं०स्त्री० [सं० कामदृष्टि] नेत्र, नयन (ना.डिं.को.)

कांमधुक, कांमधेन, कांमधेनि, कांमधेनु, कांमधेनुका–सं० स्त्री०—कामधेनु नामक देव गाय (अ.मा., ह.नां.)

कांमना–सं०स्त्री० [सं० कामना] इच्छा। उ०—ताहरां स्री लक्ष्मीजी फेर अरज कीवी, इयें रे मन में कांईक **कांमना** छै।
—पलक दरियाव री बात

कांमनि—देखो 'कांमणी' (रू.भे.) उ०—किल कंचन **कांमनि** त्याग करै, धन संच प्रपंच न रंच धरै।—ऊ.का.

कांमपाळ–सं०पु०—१ बलराम (अ.मा., ह.नां.) २ श्रीकृष्ण।

कांमबळ–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

कांमबांण–सं०पु० [सं० कामबाण] कामदेव के पांच बाण—मोहन, उन्मादन, संतपन, शोषण और निश्चेष्टकरण। वंश भास्कर के अनुसार कामदेव के पांच बांण ये हैं—आकरसण (आकर्षण), मोहण (मोहन) द्रावण, उनमादण, बसीकरण। किन्तु वेलि क्रिसन रुकमणी री में इनको इस प्रकार दिया गया है—आकरसण (आकर्षण), वसीकरण (वशीकरण), उन्मादक, द्रविण, सोखण। कामदेव के फूलों के पांच बाण ये हैं—लाल कमल, अशोक, आम, चमेली और नील कमल।

कांमभूरुह–सं०पु० [सं० कामभूरुह] कल्पवृक्ष (डिं.को.)

कांमयाब–वि० [फा० कामयाब] सफल, कृत-कृत्य, कृतकार्य।

कांमयाबी–सं०स्त्री० [फा० कामयाबी] सफलता, कृतकार्यता।

कांमरस–सं०पु० [अं० कॉमर्स] व्यापार, वाणिज्य।

कांमरिपु–सं०पु०यौ० [सं० काम+रिपु] शिव, महादेव।

कांमरिया–सं०स्त्री०—रामावत साधुओं की एक शाखा (मा.म.)

कांमरी–सं०स्त्री०—कम्बल (अल्पा.)

कांमरुचि–सं०पु०—एक शस्त्र जिसे विश्वामित्र ने श्रीरामचंद्र को दिया था। इसके द्वारा ही श्रीराम शत्रुओं के अस्त्रों को विफल कर देते थे।

कांमरू–सं०पु०—१ आसाम का प्राचीन नाम, कामरूप.
सं०स्त्री०—२ आसाम की एक प्रसिद्ध देवी।

कांमरूदेस–सं०पु०—आसाम का प्रदेश जिसका प्राचीन नाम कामरूप था (मा.म.)

कांमरूप–सं०पु०—१ देखो 'कांमरूदेस' (डिं.को.) २ देवता।

कांमरूपी–वि०—इच्छानुसार रूप धारण करने वाला।

कांमळ–सं०स्त्री० [सं० कम्बल] १ देखो 'कांबळ'. २ गाय-बैल आदि की गरदन के नीचे लटकने वाला चमड़ा। उ०—बैठी बाछड़ियां चाखड़ियां चाटै, **कांमळ** नै चकियां चकियां सूं काटै।—ऊ.का.

कांमलता–सं०स्त्री० [सं० कामलता] १ कांमवल्लरी नामक एक लता विशेष।

कांमळा-सं०पु०—एक वर्णिक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में प्रथम पाँच लघु फिर एक रगण सहित कुल आठ वर्ण होते हैं (पिं.प्र.)

कांमळियौ-सं०पु०—छोटा कंबल (अल्पा०)

कांमळी-सं०स्त्री०—१ कम्बल (अल्पा०) २ एक बड़ा वृक्ष. ३ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

कांमळौ-सं०पु०—१ ऊन का एक वस्त्र विशेष, कम्बल. २ रक्त-विकृतिजन्य एक रोग विशेष (अमरत)

कांमवन-सं०पु० [सं० कामवन्] वह वन जहां महादेव ने कामदेव को भस्म किया था।

कांमवांन-वि० [सं० कामवान्] कामी, विषयी।

कांमवाळ-वि०—विषयी, कामी (डिं.को.)

कांमव्रच्छ-सं०पु० [सं० काम+वृक्ष] कल्पवृक्ष। उ०—उमा तात अंबु हेम पबै मळं यंद्र ईस, देव ताळ वघ दांणा छूटियां दंताळ। **कांम-व्रच्छ** जात सौ कहांणा बीच च्यारूं कूंटां, प्रतपै छत्रम्रां पाळ रांणै चढ़ौ छौ पाळ।—बां.दा.

कांमसखा-सं०पु० [सं० काम सखा] वसंत ऋतु।

कांमसास्त्र-सं०पु० [सं० काम शास्त्र] वह विद्या या ग्रन्थ जिसमें स्त्री पुरुषों के परस्पर समागम, क्रीड़ा व आलिंगन आदि व्यवहारों का वर्णन हो, कोक शास्त्र।

कांमसुत-सं०पु० [सं० कामसुत] प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का एक नाम।

कांमही-सं०स्त्री०—एक चारणकुलोत्पन्न देवी जो गौड़ वंश के राजपूतों की कुल देवी मानी जाती है।

कांमांग-सं०पु०—आम वृक्ष (अ.मा.)

कांमाखी-स०स्त्री० [सं० कामाक्षी] १ आसाम में स्थित देवी की एक मूर्ति (तंत्रशास्त्र) २ दुर्गा।

कांमागनि, कांमागनी, कांमाग्नि, कांमाग्नी-सं०स्त्री० [सं० कामाग्नि] काम की ज्वाला। उ०—कांमिणि कांमि तणी **कांमागनि**, मन लाया दीपकां मिसि **कांमाग्नि**।—वेलि.

कांमातुर-वि० [सं० कामातुर] काम-पीड़ित, संभोग की इच्छा से व्याकुल। उ०—रांमा अभिरांमा **कांमातुर** रोवै, हड़गज हुड़दंगी सेजां में **सोवै**।—ऊ.का.

कांमारि-सं०पु० [सं० काम+अरि] महादेव, शिव।

कांमवांन-वि० [सं० कामवान्] संभोग या समागम की इच्छा करने वाला, समागम का अभिलाषी। (स्त्री० कांमवती)

कांमि-वि० [सं० कामी] १ कामी, कामुक, विषयी। उ०—**कांमि** कांमि तणी कांमागनि, मन लाया दीपकां मिसि।—वेलि. २ लंपट, व्यभिचारी।

सं०पु०—१ चकवा. २ कबूतर. ३ चंद्रमा. ४ सारस।

कांमिकाएकादसी-सं०स्त्री०—श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी।

कांमिण, कांमिणी-सं०स्त्री० [सं० कामिनि] देखो 'कांमणी' (रू.भे.) उ०—गढ़ नरवर अति दीपता, ऊंचा महल अवास। घरि **कांमिण** हरणाखियां, किसउ दिसावर तास।—ढो.मा.

कांमिनी-सं०स्त्री० [सं० कामिनी] देखो 'कांमणी' (रू.भे.) उ०—क्रस्णजी का जुदा जुदा रूप देखण लागा, **कांमिनी** कहई कांम आयो, सत्रू कहण लागा काळ आयौ।—वेलि. टी.

कांमियौ-वि०—विषयी, कामी।

कांमी-वि०—देखो 'कांमि' (रू भे) उ०—१ जांणै घर कुच निरख देव मन **कांमी** जागा।—मेघ. उ०—२ **कांमी** फिर वांमी क्रपण, जादूगर नर चार। रात दिवस पड़दे रहै, पड़दां सूं हिज प्यार।—बां.दा.

सं०पु०—१ देखो 'कांमि'. २ एक प्रकार का शुभ लक्षण का घोड़ा (शा.हो.) ३ पति (ह.नां.)

कांमुक-वि० [सं० कामुक] १ विषयी, कामी. २ इच्छुक।

सं०पु० [सं० कमुक] १ बादल (नां.मा., ह.नां.) २ पति (ह.नां.)

कांमू-वि०—१ कार्य-कुशल. २ काम-काज वाला, जिसके पास कार्य अधिक हो. ३ उपयोग में आने वाला. ४ कामुक, विषयी. ५ गर्भ धारण करने वाली (गाय)

कांमेड़ौ-वि०—कार्य करने वाला।

कांमेट तेज-सं०पु०—एक प्रकार का अशुभ घोड़ा (शा.हो.)

कांमेत, कांमेती, कांमंती-सं०पु० (स्त्री० कांमेतण) प्रधान, कामदार, प्रबंधक (मि० कांमदार (१)) उ०—ठग **कांमंती** ठोठ गुर, चुगल न कीजे सेण। चोर न कीजे पाहरू, ब्रहसपती रा वैण।—बां.दा.

कांमोद-सं०पु० [सं० कुमुद] १ देखो 'कमोद' २ विष्णु. ३ संपूर्ण जाति का एक राग जो मालकोस का पुत्र माना जाता है (संगीत)

सं०स्त्री०—३ चांदी, रूपा।

कांमोद्दीपण, कामोद्दीपन-सं०पु०—संभोग की इच्छा का उत्तेजन।

कांमौ-सं०पु०—काम, कार्य। उ०—साख रौ संणगार सांमो, निधु राखण अमर नांमो करै। खत्रवट तणौ **कांमौ**, राजहंस राजांन।
—ल.पिं.

कांयंगियौ-सं०पु०स्त्री०—कंघा।

कांय-क्रि०वि०—किसलिए। उ०—भरमै तो लागै नहीं, लगै तो भरमै **कांय**।—ह.पु.वा.

सर्व०—१ किस. २ क्यों। उ०—बप तौ केहरियाह, हरिया कथ दाखै हमैं। **कांय** रे 'केहरियाह', रज रज सरिया कर रखे।—अज्ञात

अव्यय—या। उ०—जी मांहरो जिव जाय है, कीरप नेक करोह। काय हो काढ़ौ काळजौ, हो **कांय** प्रांण हरो।—र. हमीर

सं०पु०—एक प्रकार का देशी खेल (क्षेत्रीय) उ०—**कांय** खेलता खूब हरखता बाळ हठीला, चढ़ता पड़ता प्रेम छोटका छैल छबीला।
२ कौए की आवाज। —दसदेव

कांयक-वि०स्त्री०—कुछ, किंचित।

कांयगौ-सं०पु०—रहंट की माल के साथ घूमने वाले घेरे में लगी हुई पटड़ी का वह भाग जो चंद्राकार लकड़ी के बाहर निकला हुआ होता है।

कांयणी—देखो 'काइणी' (रू.भे.)

कांयरौ—सर्व०—१ क्या. वि० २ किस काम का । उ०—बै पंच **कांयरा** है, पंच हुवै जका तौ समाज नै चोखै रस्ते चलावै ।—वरसगांठ

३ काहे का । उ०—तरै वीरमजी कयौ—बारै कोस ढोल सुणीजै छै सौ **कांयरौ** ढोल छै ।—रा.वं.वि.

कांव—सं०स्त्री०—१ लंबी-पतली टहनी, छड़ी, चुटकनिया ।

उ०—ग्रर ऊंची छींछ ऊछळ छै सु जांणै प्रवाळी की **कांवां** छै ।
—वेलि. टी.

ग्रनु०—कौवे के बोलने का शब्द ।

कांवर—सं०पु०—कुमार । उ०—एक एक सूं ग्रागळा **कांवर** ग्राठूं किरणाळा ।—भगवांन रतन

कांवळी—सं०स्त्री०--चील ('मि० कांवळौ') (डिं को.)

कांवळौ—सं०पु० (स्त्री० कांवळी) १ एक प्रकार का सफेद रंग का गिद्ध जिसकी चोंच पीली होती है (रू.भे. 'कंवळौ')

२ एक प्रकार का बड़ा कौग्रा । उ०—ऊपर उडता फेरी फिरै, गगन चीलड़ी-**कांवळा** ।—दसदेव

कांस-सं०पु० [सं० काश] एक घास विशेष जो प्राय: ढालू भूमि में होती है (ग्रमरत)

कांसी—सं०स्त्री० [सं० कांस्य] तांबे ग्रौर जस्ते के समिश्रण से बनी एक धातु जिसके प्राय: बर्तन, घंटे व घड़ियाल ग्रादि बनाये जाते हैं ।

कांसु, कांसू—क्रि०वि०—कैसे । उ०—लोक बाहुड़ियौ, खीमौ बोलीयौ—साहजी घोड़ी रौ **कांसु** सूल ।—चौबोली

सर्व०—१ किससे. २ कौनसा ।

कांसैलीज—सं०स्त्री०—बिजली (ग्र.मा.)

कांसौ—सं०पु० [सं० कांस्य] १ देखो 'कांसी'. २ कांस्य-पात्र.

३ किसी भोज में ग्रामंत्रित व्यक्ति के न ग्राने पर उसके घर पर परोस कर भेजा जाने वाला भोजन. ४ भोजन का भाग ।

कांहि, कांहिक—क्रि०वि०—कैसे ।

वि०—कुछ ।

कांहिणनू—क्रि०वि०--किसलिये । उ०—तरै रांणै कह्यौ—थे ग्रठै **कांहिणनू** रहौ, उरा ग्रावौ ।—नैणसी

कांही—वि०—कुछ । उ०—बाघ छाळी बिन्है वाट सूधा वहै, कोई मारै नहीं जोर **कांही** ।—संकर बारहठ

सर्व०—१ क्या । उ०—तथा हे काल्ही (बावळी) ग्राज म्हारौ पती जुद्ध करसी सौ लोही पीणौ, ग्रौ छोटौ खप्पर **कांही** लीधौ ।

२ किसी । —वि.स.टी.

क्रि०वि०—कहीं । उ०—सज्जण चाल्या हे सखी, पड़हउ वाज्यउ द्रंग । **कांही** रळी बधांमणा, कांही ग्रवंळउ ग्रंग ।—ढो मा.

का—सं०पु०—१ शेषनाग (क.कु.बो.) २ दिन (क.कु.बो.)

३ रथ (क.कु.बो.) ४ प्रकाश (क.कु.बो.) ५ निरादर (क.कु.बो.)

सं०स्त्री०—६ पृथ्वी ।

वि०—१ ग्रल्प. २ कायर ।

सर्व०—१ क्या । उ०—वळि माळवणी बीनवइ, हुं ग्री दासी तुझ्झ । का चिंता चित ग्रंतरै, सा ग्री दाखउ मुझ्झ ।—ढो.मा. २ कोई ।

उ०—कइ मारुवणी सुधि सुणी, कइ का नवली वत्त ।—ढो.मा.

ग्रव्य०—या, ग्रथवा । उ०—साहिब रहउ न राखिया, कोड़ि प्रकार कियांह । का थां कांमिण मन वसी, का म्हां दूह वियाह ।—ढो.मा.

कहा०—का केई नै कर लेणौ का केई रो हो रै'णौ—या तो किसी को ग्रपना बना लेना चाहिए या किसी का बन जाना चाहिए । इसके बिना संसार में गति नहीं ।

काग्रंतार—सं०पु० [सं० कांतार] १ गहन वन, जंगल (ह.नां.)

२ भयानक स्थान. ३ एक प्रकार की ईख ।

काग्रंति, काग्रंती—सं०स्त्री० [सं० कांति] १ एक छंद विशेष जिसके चारों चरणों में मिला कर २५ लघु ग्रौर १६ दीर्घ वर्णों से कुल ५७ मात्रायें होती हैं (ल.पिं.) २ कांति, शोभा ।

काइ—सर्व०-- १ क्यों । उ०—ढाढ़ी जइ प्रीतम मिळइ, यूं दाखविया जाइ । जोबण छत्र उपाड़ियउ, राज न बइसउ **काइ** ।—ढो.मा.

२ कोई । उ०—सीयाळइ तउ सी पड़इ, ऊन्हाळइ लू बाइ । वरसाळइ भुइं चीकणी, चालण रत्ति न **काइ** ।—ढो.मा.

काइक—सर्व०—कोई । उ०— बाबहिया प्रिउ प्रिउ न कहि, प्रिय कौ नांम न लेह । **काइक** जागइ विरहणी, प्रीउ कह्यां जिउ देह ।
—ढो.मा.

काइब—सं०पु० [सं० काव्य] काव्य, कविता ।

काइम—वि०—देखो 'कायम' (रू.भे.) । उ०—**काइम** कमंध ग्रिद धजाबंद, मौजां समंद ग्राचार इंद ।—वचनिका

सं०पु०—लखपत पिंगल के ग्रनुसार एक छंद विशेष ।

काइमौ, काइम्मौ—वि०—१ स्थिर करने वाला, कायम करने वाला.

२ ग्रसक्त, निर्बल ।

सं०पु०—ईश्वर ।

काइयरत, काइरता—सं०स्त्री० [सं० कातरता] कायरता । उ०—किरण तपै छै सु वरछी किरण हुई कळि कहतां लड़ाई उकळिवा लागी । **काइरता** थी सु दूरी करी ।—वेलि. टी.

काइर, काइरौ—१ देखो 'कायर' (रू.भे.) २ देखो 'कायरौ' (रू.भे.)

उ० जोडाळ मिळइ जमदूत जोध, **काइरां** कंपीमुक्खी सक्रोध ।
—रा.ज.सी.

काई—सं०स्त्री०—१ जल में होने वाली बारीक घास. २ पानी पर ग्राने वाला मैल. ३ मैल, पंक । उ०—चपटा दांतां पर **काई** चढ़ियोड़ी ।—ऊ.का.

वि०स्त्री०—१ थकित, क्लांत. २ तंग. ३ कुछ । उ०—ग्रथिर ग्रादि मंडांण, न कौ दीसै थिरताई । काळ ग्रास संसार, ग्रास जीवणौ न **काई** ।—केसोदास गाडण

सर्व०—१ कोई । उ०—चोटी वाळी चमक लोयणां लागणी, फण-धर जिसड़ै फैल नवी **काई** नागणी ।—र. हमीर

२ किसी। उ०—सु उबे ज्यारै ही वीर काई पातिसाहरी चोरी गया हुंता।—चौबोली

काउ—सर्व०—१ कौन. २ क्या।

काक—सं०पु०—१ कौग्रा (डिं.को.) उ०—कुकड़ा रौ गुण कांम, काक गुण भक्षण कीनौ।—ऊ.का. २ बोतल का ढक्कन, काग, कार्क. ३ काका, चाचा।

वि०—श्वेत, काला* (डिं.को.)

काककंठ*—वि०—धूम्रवर्ण (डिं.को.)

काकड़—सं०पु०—१ कंकर. २ कच्चे बद्रीफल।

काकड़ा—सं०पु०—कपास के बीज।

काकड़ासिंगी—सं०स्त्री० [सं० कर्कटश्रृंगी] 'काकड़ा' नामक पेड़ में लगा हुआ एक प्रकार का टेढ़ा पीला अंकुर जो दवा के काम में लिया जाता है।

काकड़ियौ—सं०पु०—१ छोटा कंकर (ग्रल्पा०)

मुहा०—काकड़ियौ काडणौ—लाभ प्राप्त करना।

२ छोटी ककड़ी।

काकड़ी—सं०स्त्री० [सं० कर्कटी] ककड़ी।

कहा०—१ काकड़ी फाटै ज्यूं फाटणौ—शरीर में खूब हृष्ट-पुष्ट होने पर. २ काकड़ी रै चोर नै मुक्की री मार—साधारण अपराधी को दंड भी साधारण दिया जाना चाहिए।

काकड़ौ—सं०पु० [सं० कर्कट, प्रा० कक्कड] १ एक वृक्ष विशेष (ग्रमरत) २ एक प्रकार का हरिण।

काकनदी—सं०स्त्री०—जैसलमेर के लुद्रवा नामक गांव के पास बहने वाली एक नदी।

काकपद—सं०पु० [सं०] वह चिन्ह जो छूटे हुए शब्दों के स्थान को बतलाने के लिए पंक्ति के नीचे लगाया जाता है।

काकपुसट—सं०स्त्री० [सं० काकपुष्ट] कोयल, कोकिला (डिं.को.)

काकब—सं०पु०—ग्रांच पर ग्रौटा कर खूब गाढा किया हुआ गन्ने का रस जो गुड़ से पतला किन्तु शहद के समान होता है।

काकबळी—सं०स्त्री० [सं० काकबलि] भोजन का वह ग्रंश जो श्राद्ध के दिनों में कौवों को खिलाया जाता है।

काकबांझड़ी—सं०स्त्री० [सं० काकवंध्या] वह स्त्री जो केवल एक संतान प्रसव करने के बाद सदैव के लिए वंध्या हो गई हो।

काकभुसुंडी—सं०पु० [सं० काकभुशुंडि] एक ब्राह्मण जो लोमश के शाप से कौग्रा हो गये थे ग्रौर राम के बड़े भक्त थे।

काकर—सं०स्त्री० सं० कर्कर] १ कपड़े धोने की सिला।

सं०पु०—२ कंकर (रू.भे.)

काकरी—सं०स्त्री०—१ छोटी व महीन कंकरी. २ पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े।

काकरेची—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

काकरौ—सं०पु० [सं० कर्कर] कंकड़ (रू.भे.)

काकळ—सं०पु०—युद्ध, संग्राम। उ०—ऊदौ हुरी तणौ दळ ग्रागळ, करमसीयोत जीपवा काकळ।—रा.रू.

काकलहरी—सं०स्त्री०—एक जड़ी विशेष।

काकस—सं०स्त्री०—पति या पत्नी के चाचा की स्त्री, चचेरी सास (क्षेत्रीय)

काकसरौ—सं०पु०—पति या पत्नी का चाचा, चचेरा ससुर (क्षेत्रीय)

काका—सं०स्त्री०—१ भाटी वंश की एक शाखा. २ मसी. ३ काकोली।

काकाई—वि०—चचेरा।

काकातुग्रौ—सं०पु०—तोते की जाति का एक प्रकार का सफेद रंग का बड़ा पक्षी।

काकालका—सं०स्त्री० [सं० काकालिका] हरड़े (ग्र.मा.)

काकाह—सं०पु०—सफेद घोड़ा (डिं.को.)

काकींडौ—सं०पु०—गिरगिट नामक जन्तु। उ०—माफळि भूप मतंगा घणा मद मोख खोख घूमंता, ताकि वाडि विलगा काकींडा नैव डोलंति।—रांमरासौ

काकी—सं०स्त्री०—१ चाचा की स्त्री, चाची (पु०—काकौ) २ कौए की मादा।

काकीबडियां—सं०स्त्री०—पिता के छोटे या बड़े भाई की स्त्रियां। उ०—भल नूंती रे म्हारे काका बाबां री जोड़, काकी-बडियां रो झाभौ झूलरौ जे।—लो.गी.

काकीसासू—सं०स्त्री०—पति या पत्नी के चाचा की स्त्री, चचेरी सास।

काकीसुसरौ—सं०पु०—पति या पत्नी का चाचा, चचेरा ससुर।

काकुसथ, काकुस्त, काकुस्थ—सं०पु० [सं० काकुस्थ] श्री रामचन्द्रजी। उ०—काकुसथ खळदळ भसम कर, साधार सरण सभेव।—र.ज.प्र. २ सूर्यवंशी एक राजा (रांम कथा)

काकुस्थकुळ—सं०पु० [सं० काकुस्थ+कुल] श्री रामचंद्र (ग्र.मा.)

काकू—सर्व०—१ किससे. २ किसको। उ०—ग्रपणे करम को वो छै, काकूं दीजै रे ऊधो।—मीरां

काकोजी—सं०पु०—चाचा (मि. 'काकौ')

काकोदर, काकोधर—सं०पु० [सं० काकोदर, स्त्री० काकोदरी] सांप, सर्प (ह.नां., ग्र.मा., डिं.को.) उ०—काकोदरां माथै खगांधीस ज्यूं, काढ़वा कंवा, लागो केड़ै बाढ़वा हजारां जंगी लाट।

—गिरवरदांन कवियौ

काकोरौ—सं०पु०—छोटा कंकर (रू.भे. 'कांकरौ')

काकौ—सं०पु०—१ पिता का छोटा भाई, चाचा।

कहा०—१ काका नी खाटकाई खावा सारू साराई ग्रांख्यां में खटकै—काका की संपत्ति को खाने के लिये सबकी ग्रांखें लगी रहती हैं. २ काका हाथ केड़ा (केरड़ा) नी वळावणा—बछड़ों को वापिस फेरने के लिये चाचा से नहीं कहना चाहिये; बड़े लोगों से नीचे दर्जे का कार्य न कराना चाहिये ग्रपितु उसे स्वयं कर लेना चाहिये. ३ काकौ करै भतीज नै गांड फाटती गोठ—जब संकट ग्राता है तब

बड़ा आदमी भी छोटों की खुशामद करने लगता है।

२ कौआ (डि.को.)

काख–सं०स्त्री० [सं० कक्ष] बाहुमूल, देखो 'कांख' (रू.भे.) उ०—छोटी दीवड़ियां काखां तळ छाले।—ऊ.का.

कहा०—काख उठायां काळजो दीखणो—दरिद्र होना।

काखबिलाय–सं०स्त्री० [सं० कक्ष+अलात्] बगल (कांख) में होने वाला फोड़ा (मि. 'काखोळाई')

काखेयक–सं०स्त्री० [सं० कौक्षेयक] तलवार (अ.मा.)

काखोळाई–सं०स्त्री० [सं० कक्षालात] कांख में होने वाला एक प्रकार का फोड़ा, बगलगंध, कंखवार।

काग–सं०पु० [अं० कॉर्क] १ बोतल या शीशी आदि के मुंह बंद करने का कॉर्क या ढक्कन।

[सं० काक] २ देखो 'काक' (रू.भे., डि.को.)

[फा० कागज] ३ पत्र, चिट्ठी.

वि०—सतर्क।

कागड़ो–सं०पु०—१ एक प्रकार के विशेष रंग वाला घोड़ा (शा.हो.)

२ गाड़ी के आगे का नुकीला भाग।

कागज–सं०पु० [फा० कागज] देखो 'कागद' (रू.भे.)

कागजीनींबू–सं०पु०—१ नींबू की एक जाति. २ इस जाति का नींबू।

कागजीबादाम–सं०पु०—बादाम की एक किस्म अथवा इस किस्म का बादाम।

कागजीसबूत–सं०पु० [फा०] लिखित प्रमाण।

कागड़दि, कागड़दी–वि०—कठोर। उ०—हागगड़दि हुवै आलम हैकंप, कागड़दि कयामत जांण कराळ।—र.रू.

कागडोड–सं०पु०—द्रौण काक।

कागण–सं०स्त्री०—१ ज्वार की फसल में होने वाला एक रोग विशेष जिसमें ज्वार के भुट्टे पर सफेद-सफेद पदार्थ दिखाई देता है और भुट्टे में दाना नहीं पड़ता. २ कागज, पत्र। उ०—कागण गळि लेखण भगी, मसि ढुळि हुई खुवार। मारू हंदा साल्ह पिव, अजेन पूछी सार।—ढो मा.

कागणी–सं०स्त्री०—मालकांगणी नामक औषधि (अमरत)

कागद–सं०पु० [फा० कागज] १ सन, रूई, पटुए आदि को सड़ा कर बनाया हुआ महीन पत्र जिस पर अक्षर लिखे या छापे जाते हैं।

कहा०—१ कागद री किस्ती किता दिन चालै—क्षणभंगुर वस्तु या न टिकने वाली चीज अधिक नहीं चलती। झूठी बात अधिक नहीं निभती. २—कागद री हांडी चूल्हे को चढ़ै नी—धोखे का कार्य सफल नहीं होता।

२ प्रामाणिक लेख, दस्तावेज.

मुहा०—१ कागद काळो करणो—व्यर्थ का कुछ लिखना. २ कागदी घोड़ा दौड़ाना—लिखापढ़ी करना।

कहा०—कागद होवै तो बांच लूं, पी करम न बांच्यो जाय—भाग्य को पढ़ा नहीं जा सकता, भाग्य का पता नहीं चलता।

३ जामाता को गाया जाने वाला लोक गीत।

कागदबाई–सं०स्त्री०—कागजों पर की जाने वाली लिखा-पढ़ी (द.दा.)

कागदियो–सं०पु० [फा० कागज] देखो 'कागद' (अल्पा०)

कागदी–वि०—कागज का, कागज से सम्बन्धित।

सं०पु०—१ देखो 'कागजीनींबू'. २ देखो 'कागजीबिदाम'।

कागदीजवान–सं०पु०—कमजोर पुरुष, निर्बल व्यक्ति।

कागदीनींबू—देखो 'कागजीनींबू' (रू.भे)

कागदीबिदाम—देखो 'कागजीबिदाम' (रू.भे.)

कागनर–सं०पु०—प्रायः अरावली पहाड़ के पास होने वाला एक पौधा जिसका दांतुन बढ़िया होता है।

कागबांझ, कागबांझड़ी–सं०स्त्री० [सं० काकवंध्या] देखो 'काकबांझड़ी' (रू.भे.)

कागभसुंड, कागभुसंड, कागभुसुंड–सं०पु० [सं० काकभुशुंड] एक ब्राह्मण ऋषि जो लोमश के शाप से कौआ हो गये थे और राम के बड़े भक्त थे। उ०—अहो निस कागभुसुंड आराध, पढ़ै तौ नांम सदा प्रहळाद।—ह.र.

कागमुखीसंडासी–सं०स्त्री०—एक प्रकार की संडासी जिसके अगले दोनों भाग आपस में नहीं मिलते।

कागमुखो, कागमुहो–सं०पु०—वह मकान जो आगे से तीखा व लंबा हो।

वि०—कौये के मुख के समान।

कागर–सं०पु० [फा० कागज] कागज, पत्र (रू.भे.)

कागळ–सं०पु० [फा० कागज] देखो 'कागद' (रू.भे.) उ०—कागळ नहीं क मसि नहीं, लिखतां आळस थाइ। कुण उण देस संदेसड़ा, मोलइ बड़इ विकाय।—ढो.मा.

कागलिया–सं०पु० (ब.ब.) घन घटा के अग्र भाग में चलने वाले छोटे-छोटे बादल के खंड जो बड़ी तेजी से चलते हैं।

कागलियो–सं०पु० [सं० काकलक] १ मुंह के भीतर तालू और गले के बीच में ऊपर उठा हुआ मांसल भाग। यह कुछ मुड़ा हुआ होता है तथा इसका बढ़ जाना एक रोग है। गलतुंडिका. २ कौआ (अल्पा०) उ०—नित नित आय करूकै म्हारी नीमड़ली रे बीच, मारो ए रतनादे दासी कागलिया रै तीर।—लो.गी.

कागळी–सं०स्त्री०—चिट्ठी, पत्र, कागज। उ०—जीवन घड़ीय ते नवि रहई, जिण सूं कागळी हुआ वैहार।—वी.दे.

कागलो–सं०पु० [सं० काक] कौआ, वायस (डि.को.)

मुहा०—१ कागला उडाणा—बेकार कार्य करना, किसी की प्रतीक्षा करना. २ कागला ज्यूं नजर राखणी—बहुत तेज नजर रखना. ३ कागला बोलणा—सुनसान होना, जन-शून्य होना. ४ कागलै आळी सीख—सिखाने वाले से सीखने वाले का अधिक चतुर होना.

कहा०—१ अवगुण तो कागलो देखै—कौए की दृष्टि हमेशा बुरी वस्तु पर रहती है। सदा दूसरों के अवगुण देखने वाले के प्रति.

२ करम में तौ कागला री पंजी है--बदकिस्मत व्यक्ति के लिए. ३ काग पड़ै कुत्ता भुसै—सूने घर या गाँव के लिये. ४ काग मोती दै नहीं नै चिड़ी रोती रै' नहीं—दोनों पक्षों द्वारा अपने हठ पर दृढ़ रहने पर. ५ कागलां री दुरासीस सूं ऊँट थोडा ही मरै—किसी के बुरे चिंतन करने से बुरा नहीं होता. ६ कागलां रै कीं हुवै तौ उड़तां दीखै ही नी— देखो कहा० (२०) ७ कागलां रै ही कोई हंस होवै—बुरे व्यक्ति के संसर्ग से बुरा व्यक्ति ही उत्पन्न होगा; बुरे वातावरण में पल कर कोई व्यक्ति अच्छा नहीं होता; जब पिता व पुत्र दोनों बुरे हों तब कही जाती है. ८ कागलां रौ मूंडौ सदा भिस्टा में हीज रैवै—उस व्यक्ति के प्रति जो सदा दूसरों की निंदा ही करता रहता है. ९ कागलौ ई दाखां नै मुंडौ धोवै--अलभ्य या असंभव वस्तु की प्राप्ति की निरर्थक आशा रखने पर कही जाती है. १० कागलौ कोयल एक वरण कुंण किणनै कै—कौआ और कोयल एक ही रंग के होते हैं अतः कौन किसको कहस कता है। दो समान बुरे व्यक्तियों के प्रति. ११ कागलौ कोयल ने कैवे के थूं काळी है-- कौआ कोयल से कहता है कि तू तो काली है। दोषपूर्ण लोगों द्वारा दूसरों के दोष बताने पर १२ कागलौ छः महीना सूं बोलै पण कांव कांव इज बोलै—दुष्ट या बुरा व्यक्ति कभी दुष्टता या बुराई नहीं छोड़ता. १३ कागलौ तीर सूं डरै ज्यूं डरै—बहुत डरने पर. १४ कागलौ नाक लेय गयौ—किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं की मानहानिजनक कार्य किया जाता है और दूसरों के समक्ष शिर ऊंचा नहीं कर सकता तब अन्य लोगों द्वारा उसके प्रति व्यंग्य के रूप में यह कहावत कही जाती है. १५ कागलौ हंस री चाल चालै—अयोग्य व्यक्ति के द्वारा योग्य व्यक्ति की बराबरी करने पर. १६ कागलौ हंस री चाल सीखतौ सीखतौ घर री चाल भूलग्यौ--कौवा हंस की चाल चलने गया पर अपनी स्वयं की चाल भूल गया। अयोग्य व्यक्ति द्वारा योग्य व्यक्ति की नकल करने पर.

१७ कागा किसका धन हरै, कोयल किसकूं देत, मधुर शब्द के कारणै जुग अपणौ कर लेत—मीठे वचनों से सारे संसार को वश मे किया जा सकता है. १८ कागा कुत्ता कुमांणस घणा—कौए और कुत्ते दोनों बुरे होते है। दुनियां में बुरे व्यक्ति अधिक होते हैं, सज्जन थोड़े होते हैं. १९ कागां रै वागा होवै तौ उड़तां ही घेर पड़ै—निर्धन व्यक्ति के पास कुछ धन-संपत्ति होने की आशंका की जाती है तब वह स्वयं कहता है कि यदि कुछ माल होता तो चाल ढाल से ही स्पष्ट प्रतीत हो जाता है : धन-सम्पत्ति का पास में होना किसी की चाल-ढाल प्रकट कर देती है. २० कास्मीर में किसा कागला कौ होवे नी—काश्मीर में कौनसे कौए नहीं होते अर्थात् गंदगी और दुष्ट-जन सर्वत्र ही मिलते हैं. २१ कुटिया में काग पड़ै—जन-शून्य या सुनसान स्थान के लिये. २२ कुळ में कागलौ पैदा हुवौ—अच्छे कुल में बुरे व्यक्ति के जन्म लेने पर. २३ जठै देखै जठै ई कागला काळा ईज व्है—कौए सब जगह काले होते हैं (रू.भे. काग)

कागल्यौ—१ देखो 'कागलियौ' (रू.भे.) २ देखो 'कागोलड़' (रू.भे.)

उ०—कांठळ ऊठी एकै पाखती, कागल्या नांखती दीठौ जोईजै घटा रौ वणाव।—र. हमीर

कागवांझ, कागवांझ—देखो 'काकबांझड़ी' (रू.भे.)

कागवाय, कागवाव–सं०पु०—ऊँटों में होने वाला एक प्रकार का रोग जिसके कारण ऊँट बेचैनी से बार-बार उठता-बैठता है।

कागवौ–सं०पु०—गाड़ी के अगाड़ी का तीखा नोंकदार वह भाग जो लोहे से जड़ा होता है और जिसके चौड़े भाग पर जूआ बाँधा जाता है। (मि० 'सुगनी')

कागारोटी–सं०स्त्री०— एक प्रकार की बरसाती घास विशेष।

कागोलड़–सं०पु०—मेघ-घटा के अगाड़ी के सफ़ेद छोटे-छोटे बादल।

उ०—ऊपर बगला पावस बैठा छै सु किसाहेक सोहै छै, जांणै काळाइण कागोलड़ नांखती आवै छै।—रा.सा.सं.

कागौ–सं०पु०—१ कौआ। उ०—गोरी ए बैठी झूरै मैड़ियां, स्यांम समंदरां जी पार। काळा रै कागा एक सनेसौ पिव ने जाय कहौ।
—लो.गी.

२ जोधपुर नगर के पास काकभुशुंडी का एक स्थान। यहां शीतला माता का मंदिर है।

कहा०—कागै रौ कोढ़ियौ बैठै ज्यूं कांई बैठौ है—सुस्त एवं बुरे ढंग से बैठने वाले व्यक्ति के प्रति।

कागोळ–सं०स्त्री०—भोजन का वह अंश जो श्राद्ध पक्ष में कौओं को खिलाया जाता है।

काड़ालौ–सं०पु०—कटाह। उ०—करि भुंजाई चाढ़ि काड़ाला, विधि-विधि सह भोजन्न वडाळा।— वचनिका

काच–सं०पु० [सं०] १ दर्पण, आतशी शीशा, आरसी। उ०—आणंद वर्ण काच मैं अगि, भांमिणी मोतिए थाळ भरी।—वेलि.

कहा०—काच, कटोरा, नैण, धन, मन, मोती, फूटै टूटै ज्यांका सांधा नी लागै—काच, बड़ा प्याला, आँख, धन, मन और मोती के टूट जाने या फूट जाने पर इनके जोड़ नहीं लग सकती।

२ जांघ. ३ नेत्रों का एक रोग विशेष जिसमें नेत्रों की रोशनी के आगे एक पर्दा सा छा जाता है।

वि०—कृष्ण वर्ण, काला# (डि.को.)

काचड़कूटौ कांचड़गारौ–वि०यौ० (स्त्री० काचड़कटी. काचड़गारी) चुगल-खोर, पिशुन, निंदक। उ०—काचड़गारां ऊपरा, रांम तणी है रीस। काचड़गारा कूड़चा, बिगड़ै बिसवाबीस।—बां.दा.

काचड़ौ–सं०पु०—१ निंदा, अपयश. २ चुगली। उ०—करै चाड पर काचड़ा, अठी उठी सूं ईख। पग बिच हाडक परछिया, तिणसूं स्वांन सरीख।—बां.दा.

यौ०—काचड़कूटौ।

काचबीड़ी–सं०स्त्री०—काच के छोटे-छोटे टुकड़े लगा कर लाख का बना एक प्रकार का गहना जिसे प्रायः जाट जाति की स्त्रियां अपने हाथों में पहनती हैं।

कांचमै–वि० [सं० काच+मय] काच का बना हुआ। उ०—आणंद वणे कांचमै अंगणि, आंमिणी मोतिए थाळ भरि।—बेलि.

काचर–सं०पु०—छोटी ककड़ी जो प्रायः स्वाद में कुछ खट्टी होती है। उ०—काचर, केळी, आंमफळ, पीव, मित्र, परधांन। इतरा तो पाका भला, काचा ना'वै कांम।—अज्ञात

कहा०—१ काचर रौ बीज मणांबंध दूध विगाड़ै—थोड़ी सी बुराई सारी अच्छाइयों का नाश कर देती है; एक मछली सारे तालाब को गंदा कर देती है. २ काचर रौ बीज है—महादुष्ट एवं बुरे व्यक्ति के लिये. ३ दीवाळी रा दीया दीठा, काचर बोर मतीरा मीठा—दीपावली के बाद काचर, बेर और तरबूज (हिंदवानी) मीठे होते हैं तथा हानिप्रद नहीं होते।

काचरियौ–सं०पु०—१ देखो 'काचरौ' (अल्पा.) २ वर्षाकाल में बाजरी आदि के खेतों में होने वाली छोटी ककड़ी। उ०—सांवण महिने बाजर लागी, नीनांणा रौ नाह। काचरियां री वेलां टाळौ, वाह रे सांई वाह।—लो.गी.

कहा०—काचरियां विनां किसा व्याव अटकै—छोटी-मोटी वस्तुओं के लिये बड़े काम नहीं अटका करते।

काचरी–सं०स्त्री०—१ छोटी-छोटी खट्टी ककड़ियों को काट कर सुखाये गये छिलके। इनका प्रायः शाक भी बनाया जाता है। २ देखो 'काचर'।

काचरौ—देखो 'काचर'।

काचळ–वि०—काच का, काच संबंधी। उ०—काचळ कातरिया बाजू में काठा, भुजतळ भेटै जां भेटै अथ माठा।—ऊ.का.

वि०—कायर, डरपोक।

काचौ–वि०—१ अपरिपक्व, जो पूरा पका न हो. २ अपूर्ण, अधूरा. ३ नीच, पतित. ४ कमजोर. ५ अस्थिर, जो दृढ़ न हो. ६ जो आंच पर पकाया न गया हो. ७ कायर, डरपोक।

उ०—कंत मचाड़ै नंह कधी, काचां रै घर कूक। मुड़ै विरोळै मांभियां, रोळै सोणित रूक।—वी.स.

८ असत्य, झूठ। उ०—१ बोलै सांचा बोल, काचा न आरै करै। तिण मांणस रा तोल, मेर प्रमांणै मोतिया।—रायसिंह सांदू

उ०—२ साचा लेख लिख्या उण सांई, काचा करणहार न दीसै कोई।—ओपोआढ़ो

९ निकृष्ट। उ०—ना कीजौ सैणां नरां, काचौ बीजौ कांम। राखे लाजा संत री, राजा साचौ रांम।—र.ज.प्र.

काचोकुररौ–सं०पु०यौ०—वह वर्ष जिसमें फसल कुछ कम हो अथवा अच्छी न हो।

वि०—अधपका, कच्चा।

काच्छिलौ–वि०यौ०—कच्छ देश का, कच्छ देश संबंधी।

सं०पु०—कच्छ देश का निवासी चारण। उ०—चारण कच्छ देसां जाति काच्छिला कहाया।—शि.वं.

काछ–सं०पु०—१ धड़ और जांघ का संधि-स्थल जो सामने की ओर पेड़ू के नीचे होता है। उ०—घोड़े रौ काळजौ बूकड़ा आंतड़ा ओझड़ा फाट काछ आवतौ नीसरियौ।—डाढ़ाळा सूर री वात

२ लंगोट। उ०—काछ दृढ़ा कर बरसणा, मन चंगा मुख मिट्ठ। रण सूरा जग वल्लभा, सौ हम चाहत दिट्ठ।—ऊ.का.

३ अंडकोश. ४ जांघों के पीछे ले जाकर खोंसा जाने वाला धोती का छोर, लांग. ५ घुटनों के ऊपर तक पहना जाने वाला पाजामा-नुमा कपड़ा. ६ जल के पास की भूमि. ७ कच्छ देश.

उ०—जेहल आज जुहारियौ, काछ नरेस कुंवार।—बां.दा.

८ कच्छ देशोत्पन्न आवड़ देवी का एक नाम. ९ सैणी देवी का एक नाम. १० कच्छ देश का घोड़ा।

काछड़ियौ–सं०पु०—नवजात गाय का बच्चा।

उ०—बैड़ां व्यायोड़ी खेड़ां में खांसै, कोमळ काछड़िया वाछड़िया बांसै।—ऊ.का.

काछजती–वि०—जितेन्द्रिय।

काछणौ, काछबौ–क्रि०स०—पहनना। उ० पीतांबर कट काछनी काछे, रतन जटित माथे मुकट कस्यौ।—मीरां

काछद्रढ़, काछद्रढ़ौ–वि०—जितेन्द्रिय। उ०—काछद्रढ़ा कर बरसणा, मन चंगा मुख मिट्ठ। रण सूरा जग वल्लभा, सौ मैं विरळा दिट्ठ।
—ऊ.का.

काछनी–सं०स्त्री०—१ छोटी कछिया, धोती, कछोटा। उ०—पीतांबर कट काछनी काछे, रतन जटित माथे मुकट कस्यौ।—मीरां

२ कटि, कमर (ह.नां.)

काछपंचाळ, काछपंचाळी–सं०स्त्री०—१ एक देवी विशेष जिसका जन्म कच्छ प्रदेश में हुआ माना जाता है. २ देवी, दुर्गा।

काछपाक–वि०—जितेन्द्रिय (मि० 'काछवाचू')

काछब–सं०पु० [सं० कच्छप] देखो 'काछबौ'। उ०—काछब पूछघो माछळी, कांई चूक पड़ी कै घाटौ पड़ियौ।—रेवतदांन

काछबियौ–सं०पु० [सं० कच्छप] १ देखो 'काछबौ' (अल्पा.)

उ०—काछबियौ कूद कूवै पड़ै जी म्हांरा राज।—लो.गी.

२ दामाद के आने पर गाया जाने वाला एक लोक गीत।

काछबौ–सं०पु० [सं० कच्छप] १ कछुआ।

पर्याय०—कच्छप, कमठ, काछिबौ, कूरम, कोड़पग, गुपतिपंचअंग, चतुरगति, पांणीजीवा।

२ एक लोकगीत जो ऊमरकोट के पंवार राजा काछब की प्रशंसा में गाया जाता है. ३ देखो 'कच्छप' (२)।

काछराय–सं०स्त्री०—१ कच्छ देश की सैणी देवी जो शक्ति का अवतार मानी जाती है. २ आवड़देवी का एक नाम।

काछवाचू–वि०—जितेंद्रिय। उ०—जंगू के जैतवार, अंगू के ओनाड़, आबू के उदार, काछवाचू के अडोळ, अणी के मोहरै।—र.रू.

काछवौ–सं०पु०—देखो 'काछबौ' (रू.भे.)

काछिबो–सं०पु०—१ देखो 'काछबो' (रू.भे.) (ह.नां.)

२ कच्छप के पीठ के रंग से मिलता-जुलता घोड़ा (शा.हो.)

काछियो–सं०पु०—घुटनों के ऊपर तक पहिना जाने वाला पाजामानुमा अधोवस्त्र।

काछी–वि०—कच्छ देश का, कच्छ देश संबंधी।

सं०स्त्री०—१ एक जाति विशेष.

सं०पु०—२ घोड़ा (डिं.को.) उ०—करपण नृप रहै ताकता केई, पह सांसै हाकता पड़ै। कीरत राह डाकता काछी, खेड़ेचो भाखता खड़ै।—दुरगादत्त बारहठ ३ ऊंट (ना.डिं.को.)

काछीकुरंग–सं०पु०—कच्छ प्रदेश में उत्पन्न हरिन के रंग का घोड़ा विशेष (शा.हो.)

काछीकुरियो–सं०पु०—ऊंट।

काछीमंगळ–सं०पु०—वह घोड़ा जिसका रंग जामुन के सदृश हो और पांव सफेद हों (शा.हो.)

काछु–सं०पु०—१ पड़ू और जांघ के जोड़ या उसके नीचे तक का स्थान. २ जांघों के पीछे ले जाकर खोंसा जाने वाला धोती का छोर, लांग। उ०—रंग देऊं वां नरां काछु रा पूरा काठा, रंग देऊं वां नरां माछु देवण हिय माठा।—ऊ.का.

काछेल–सं०स्त्री०—काछेला चारणों में जन्म लेने वाली देवी विशेष।

वि०—कच्छ देश का, कच्छ देश संबंधी।

काछला–सं०स्त्री०—१ चारणों की एक शाखा (मा.म.)

२ कच्छ देश की, कच्छ देश संबंधी।

काछौ–सं०पु०—डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसके प्रथम द्वाले के प्रथम चरण में ४४ मात्रायें क्रमश: १८, १४ और १२ के विराम से होती हैं। प्रत्येक विराम के अंत का वर्ण लघु एवं तुकांत होता है। दूसरे चरण में क्रमश: ९, ७, १० के विराम से कुल छाईस मात्रायें होती हैं। तीसरे और चौथे चरण में क्रमश: अट्ठाईस व छाईस मात्रायें होती हैं। प्रथम द्वाले के अतिरिक्त अन्य द्वालों में ४०, २६, २८ और २६ के क्रम से कुल चार चरण होते हैं।

काज–सं०पु० [सं० कार्य] १ कार्य, काम। उ०—ग्रिह काज भूलिग्या ग्रहि ग्रहि ग्रह गति, पूछीजै चिंता पड़ी।—वेलि. २ व्यवसाय. ३ प्रयोजन, मतलब, उद्देश्य. ४ पहिनने के वस्त्र में वह छेद जिसमें बटन या घुंडी आदि फँसाई जाती है. ५ सोलह संस्कारों के अंतर्गत संपन्न किया जाने वाला कोई संस्कार।

यौ०—काजकिरियावर।

क्रि०वि०—लिये, निमित्त। उ०—आगळि पित मात रमंती अंगणि, कांम विरांम छिपाड़ण काज।—वेलि.

काजकिरयावर–सं०पु०—सोलह संस्कारों के अंतर्गत विभिन्न संस्कार संबंधी महत्वपूर्ण कार्य।

काजकिरयावरी–वि०—सोलह संस्कारों के अंतर्गत विभिन्न संस्कार संबंधी महत्वपूर्ण कार्य करने वाला।

काजक्यावर–सं०पु०—देखो 'काजकिरयावर' (रू.भे.)

काजमैन–सं०पु०—मुसलमानों का एक तीर्थ-स्थान (बां.दा. ख्यात)

काजळ–सं०पु० [सं० कज्जल] १ दीपक के धुंये की जमी हुई कालिख जो आंखों में लगाई जाती है, अंजन। उ०—आजळ चख बेगम अंसुपात, जमना जळ काजळ बहत जात।—वि.सं.

पर्याय०—अंजण, कज्जळ, दीय-सुत, नैणसनेह, पाटणमुखी, मोहणगती।

क्रि०प्र०—करणौ, घालणौ, देणौ, पाड़णौ।

कहा०—१ कांणी रौ काजळ नहीं सुवावै—दूसरे का जरा भी उत्कर्ष न देख सकने वाले के प्रति. २ काजळ सूं कांई आंख भारी ह्वै है—बड़ी वस्तु के लिये छोटी सी वस्तु का भार नगण्य है।

२ श्यामता लिये रंग विशेष की गाय। उ०—बूरी सीणी सुर भीणी बतळावै, माडी काजळ लख आजळ मतळावै।—ऊ.का.

वि०—काला, कृष्ण वर्ण* (डिं.को.)

काजळकर–सं०पु०—काजल उत्पन्न करने वाला, दीपक (डिं.को.)

काजळगिर, काजळगिरि–सं०पु० [सं० कज्जलगिरि] काला पहाड़ नामक एक काल्पनिक पर्वत।

काजळधजा–सं०पु०यौ० [सं० कज्जलध्वज] दीपक (डिं.को.)

काजळियातीज–सं०स्त्री०—भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की तृतीया जिस दिन प्राय: स्त्रियां सुहाग के उद्देश्य से व्रत रखती हैं। उ०—जइ तूं ढोला नाविय‍उ, काजळिया री तीज।—ढो.मा.

काजळियौ–वि०—श्यामल, कृष्ण वर्णका।

सं०पु०—१ ओढ़ने का एक काला वस्त्र. २ शृंगार-रसपूर्ण एक लोक गीत. ३ आंख का अंजन, सुरमा, काजल (अल्पा.)

उ०—किणी दिस साज सजावै रंग, ऊघड़ै काजळियै री कोर।

—सांझ

काजळी–सं०स्त्री०—१ काली घन-घटा. २ देखो 'काजळियातीज'।

उ०—तीजे घरि घरि मंगळचार चिहुं दिसी कांमनी करई हो सयंगार। रमइ सहेली काजळी घरि घरि, कांमनी मंडइ छइ खेल।—वी दे.

काजळीतीज—देखो 'काजळियातीज' (रू.भे.)

काजा, काजि—देखो 'काज' (रू.भे.)

उ०—१ दिखावै कसा नागबाळा दिवाजा, बणी बात साका बंधी कोय काजा।—ना.द. उ०—२ मुगति काजि संभरियो माहव, कीरति काजि संभरै कवि।—अज्ञात

काजियांरीकजा–सं०स्त्री०—मुसलमान कसाइयों से लिया जाने वाला एक प्रकार का प्राचीन कर।

काजी–सं०पु० [अ० क़ाज़ी] मुसलमानों के धर्म-कर्म, रीति-नीति एवं न्याय की व्यवस्था करने वाला अधिकारी। उ०—मुल्ला काजी मंगहु मयाद, फतवा लीजै मेटन फसाद।—ऊ.का.

कहा०—काजीजी! दुबळा क्यों? सहर रै सोच में—दुनिया भर

की व्यर्थ की चिंता करने वाले के प्रति. २ काजीजी री कुत्ती कैनैठा (किणनै ठा) कठै जावती व्यावसी—घर-घर भटकने वाले मनुष्य या ग्राहक पर. ३ काजीजी री कुत्ती मरी जद सगळा बैठरण गया, काजीजी मरया जद कोय को गयौ नी—जब तक मनुष्य के पास अधिकार होता है तभी तक लोग उसका आदर करते हैं।

काजू—सं०पु०—एक प्रकार का वृक्ष व उसका फल जिसे भून कर लोग खाते हैं। इसकी गिनती सूखे मेवों में की जाती है।

काजै—क्रि०वि०—लिए। उ०—घड़जै घसजै बप्पड़ा, तौ काजै हथियार।
—डाढ़ाळा सूर री वात

काट—सं०पु० [सं० किट्ट] १ जंग, लोह-कीट, मुरचा. २ कलंक, दोष। उ०—कुळ में लागै काट, खाट में जूता खावै। अंग में होय उचाट, जाट जोगी बरण जावै।—ऊ.का. २ ऐब, अवगुरण।
उ०—कमनीय करे कूं कूं चौ निज करि, कळंक धूम काढ़े बे काट।
—वेलि.
३ कपट, छल. ४ वैर. ५ क्रोध. ६ ताश के खेल में तुरप का रंग. ७ किसी वस्तु में कमी-वेशी. ८ खंडन. ९ पाप।
उ०—कारणी तीरथां मुदै झारणी कळंक काट, मांनवां ऊधारणी मुगत दाता माय।—गंगाजी री गीत

काटक—सं०पु० [सं० कटक] १ सेना, फौज. २ वेग से किया गया आक्रमरण. ३ क्रोध, कोप। उ०—काबरड़ी काटक करै, कुळ दी झाटक कांण। ताखा दाटक बखत तरण, जस खाटक घरण जांण।
—कविराजा करणीदांन
वि०—१ क्रोधी. २ जबरदस्त, शक्तिशाली।

काटकड़—सं०स्त्री० [अनु०] कटाकट की ध्वनि। उ०—लोहड़ां तरणी काटकड़ ऊडी, यंत्रि पुहुतउ सूर। समरंगरिण नीसांण घूसक्यां, रणकाहल रणतूर।—कां.दे.प्र.

काटकणौ, काटकबौ—क्रि०अ०—१ कड़कना. २ क्रोध करना. ३ तेज गति से आक्रमरण करना। उ०—मदां भूतां गजां हाथळां झाटके कुंबाथळां माथै, काटकै सांमहा धूतां अवाहां करूप।—अज्ञात
काटकणहार, हारौ (हारी), काटकणियौ—वि०।
काटकिओड़ौ, काटकियोड़ौ, काटक्योड़ौ—भू०का०कृ०।
काटकीजणौ, काटकीजबौ—भाव वा०।

काटकीजणौ, काटकीजबौ—क्रि० भाव वा०—१ कड़का जाना. २ क्रोध किया जाना. ३ तेज गति से आक्रमरण किया जाना।

काटकूटौ—सं०पु०—युद्ध, लड़ाई, मारकाट। उ०—काटकूटौ मचै जोगरणी किलकिलै, ऊपटां थटां अरि मार आयौ।—मूळौ बीरंमियौ

काटखड़ी—देखो 'कटखड़ी' (रू.भे.)

काटण—सं०स्त्री० [सं० कर्त्तन] काटने की क्रिया या भाव।
वि०—१ काटने वाला. २ नीच, दुष्ट।

काटणौ, काटबौ—क्रि०स० [सं० कर्त्तन, प्रा० कट्टन] १ काटना, कतरना. २ पीसना. ३ किसी शस्त्र से खंड करना. ४ रगड़ना. ५ निकालना. ६ कम करना. ७ छिन्न-भिन्न करना. ८ घाव करना. ९ डंक मारना. १० डसना. ११ भाग लगाना (गणित, भिन्न में) १२ फाड़ना. १३ रद्द करना।
काटणहार, हारौ (हारी), काटणियौ—वि०—काटने वाला।
काटाणौ, काटाबौ—स०रू० (प्रे०रू०)
काटिओड़ौ, काटियोड़ौ, काटयोड़ौ—भू०का०कृ०।
काटीजणौ, काटीजबौ—क्रि० भाव वा०।

काटळ—वि०—१ जंग लगा हुआ, मुरचायुक्त। उ०—सूरा रण सांकै नहीं, हुवै न काटळ हेम। टूक करै तन आपरणौ, काच कटोरां जेम।
२ कपटी. ३ नीच, दुष्ट।

काटियोड़ौ—भू०का०कृ०—काटा हुआ। (स्त्री० काटियोड़ी)

काटी—सं०पु०—१ तगड़ा व हृष्ट-पुष्ट बैल. २ जंग, मुरचा।
उ०—पांडव क्रस्ण समीप था, गळया हिमाळै जाय। लोहां कूं पारस मिळै, तो क्यूं काटी खाय।—ह.पु.वा.

काटीजणौ, काटीजबौ—क्रि० कर्म वा०भाव वा०—१ काटा जाना. २ कसीजा जाना, कसैला होना।

काटीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ काटा गया हुआ. २ कसीजा हुआ, कसैला हुआ। (स्त्री० काटीजियोड़ी)

काटौ—सं०पु०—वह धन या रुपया जो ऋरण देते समय ऋरण की लिखावट के समय ही मूलधन में से काट लिया जाता है। उ०—सब धन जाटां री काटां रै सारू, बो'रा चोरां री कोई नहीं वा'रू।—ऊ.का.

काठ—सं०पु० [सं० काष्ठ] सूखी लकड़ी काष्ठ। उ०—संगत कीजै साध की, हठ कर कीजै मोह। करम कटै काळू कहै, तिरै काठ संग लोह।—काळू कवि
कहा०—१ काठ री हांडी एक ही वार चढ़ै—कपट या धोखा एक ही बार हो सकता है, फिर मनुष्य सचेत हो जाता है. २ काठ समांणी छोडी पड़ै—जैसी लकड़ी होगी वैसा ही उसका छिलका उतरेगा। जैसा आदमी होगा वैसा ही उसका कार्य होगा। कम धन वाले से अधिक धन दान में मिलने की आशा करना व्यर्थ है.
२ शव को जलाने के लिए इकट्ठी की जाने वाली लकड़ियां.
३ चिता। उ०—१ आ काठां चढ़सी अवस, धरणीधर दे धोक। सठ मन मांनै सुधरसी, पातर सूं परलोक।—बां.दा.
उ०—२ सठ गणका री वात सुण, आलोचै नह एम। चाह घणां चरणां चढ़ी, काठां चढ़सी केम।—बां.दा.
४ देववृक्ष (अ.मा.) ५ कैदी या अपराधी को शारीरिक यातना पहुँचाने के लिए सजा देने का काष्ठ का मोटा भारी लट्ठा जिसके एक सिरे पर गढ्ढा बना होता है जिसमें अपराधी का पैर फँसा दिया जाता है और इस प्रकार दृढ़ कर दिया जाता है कि वहां से वह किसी भी प्रकार से निकल नहीं सकता (मि० 'खोड़ो' (१))
६ नाव, डोंगी (डिं.को.)
वि०—कठोर* (डिं.को.)

काठकाट–सं०पु०—१ लकड़ी काटने वाला, लकड़हारा. २ बढ़ई (डि.को.) १ जंग खाने वाला।

काठगढ़–सं०पु०—लकड़ी का बना किला। उ०—करी वाळि बांध्या केकांग, पालह दीधां मयगळ ठांग। ठांमि ठांमि फौज राहवी, भला काठगढ़ खाई नवी।—कां.दे.प्र.

काठगणगोर–सं०पु०—एक प्रकार का छोटा वृक्ष विशेष।

काठगुणो–सं०पु०—दीवार की चुनाई करने वालों का एक मापदंड जो समकोण की आकृति का होता है।

काठड़ियो–सं०पु०—भैंस का बच्चा (क्षेत्रीय)

काठपैरी–सं०स्त्री०—काष्ठ की बनी चकरी। उ०—अचळ जुध कुंजरां ढाल ऊथाळणी, भरां करणी तंडळ प्रथी आदीत। 'अजा' हर तनै चसमां दियै अखंडळ, रख मंडळ काठपैरी तणी रीत।—जवांनजी आढ़ौ

काठभखण–सं०स्त्री० [सं० काष्ठ+भक्षण] लकड़ी को भक्षण करने वाली अग्नि (डि.को.)

काठभ्रमणी—देखो 'काठपैरी'। उ०—बीजळां झाट पर थाट भांजण बढ़ै, लाख खत्रवाट भुज बरद लीधां। असी लख थाट चौ खूंद फेरै प्रगट, काठभ्रमणी तणी भांत कीधां।—तेजसी खिड़ियौ

काठमंदिर—देखो 'काठमंदर' (रू.भे.)

काठमांडू–सं०पु० [सं० काष्ठ+मंडप, प्रा० कट्ठ+मंडप] नैपाल की राजधानी जहां लकड़ी के मकान अधिक बनाये जाते हैं।

काठसेडी, काठसेड़ी–सं०स्त्री०—वह गाय या भैंस जिसका दूध कठिनता से निकलता हो।

काठा–सं०पु०— १ बादाम की एक किस्म. २ गेहूँ की एक किस्म जिसका प्रायः दलिया बनाया जाता है। (मि. 'काठिया') ३ ढोलियों की एक शाखा विशेष (मा.म.)

काठि–सं०पु०—काठियावाड़ की एक जाति विशेष।
वि०—काठियावाड़ की, काठियावाड़ संबंधी।

काठियांण, काठियांणी–सं०पु०—काठियावाड़ का घोड़ा।
वि०—काठियावाड़ का, काठियावाड़ संबंधी।

काठिया–सं०पु०—अधिक वर्षा होने से वर्षा के पानी को भूमि के सोख लेने के पश्चात् उस भूमि में बोया जाने वाला गेहूँ या इस प्रकार बोने से फसल के रूप में उत्पन्न होने वाला गेहूँ।

काठियावाड़–सं०पु०—१ गुजरात का एक भाग. २ घोड़ा (डि.को.)

काठियावाड़ी–वि०—काठियावाड़ का, काठियावाड़ संबंधी।
सं०पु०—काठियावाड़ में उत्पन्न घोड़ा।

काठियौ—देखो 'काठिया'।

काठी–सं०स्त्री०—१ घोड़े, ऊँट आदि के पीठ पर कसने का चारजामा. २ सिर पर उठाया जा सके उतना लकड़ी का गट्ठा (क्षेत्रीय) ३ शरीर का गठन. ४ लकड़हारा. ५ तलवार या कटार की म्यान. ६ काठियावाड़ की एक जाति. ७ एक राजपूत वंश अथवा इस वंश का व्यक्ति (द.दा.)
वि०स्त्री०—देखो 'काठौ' (पु०)

काठीयांण–सं०पु०—काठियावाड़ में उत्पन्न घोड़ा।

काठीवाड़—देखो 'काठियावाड़' (रू.भे.)

काठोड़ौ–वि०—१ मजबूत. २ कठोर. ३ तंग. ४ संकुचित।

काठोतरी–सं०स्त्री०—आटा गूंदने की लकड़ी की परात।

काठौ–सं०पु०—१ कृपण, कंजूस. २ देखो 'काठा' (२)
वि० (स्त्री० काठी) १ पूरा, पूर्ण।
मुहा०—काठौ धापणौ—पूर्ण तृप्त होना, अघाना।
२ मजबूत, दृढ़। उ०—सींगण कांइ न सिरजियां, प्रीतम हाथ करंत। काठी साहंत मूठि-मां, कोडी कासी-संत।—ढो.मा.
३ कठोर। उ०—तजै नाग री सेज ईस जद मिळण करावै। करती काठौ जीव इता दिन वांम बितावै।—मेघ०
मुहा०—दिल काठौ करणौ—दिल को कठोर बनाना, शीघ्र दयार्द्र न होना।
कहा०—काठै में भाठौ'र गीलै में गोबर—बिना व्रत-नियम वाले सर्वभक्षी पर व्यंग्य।
४ तंग। उ०—कर में कांकणियां जसदा गळ काठी। अदभुत मोरां पर लुढ़तोड़ी आठी।—ऊ.का. ५ मोटा (कपड़ा)
६ संकुचित।

काड–सं०पु०—शिश्न, उपस्थ।

काडणौ, काडबौ–क्रि०स०—१ निकालना. २ आवरण हटा कर किसी वस्तु को प्रकट करना. ३ खोल कर दिखाना. ४ किसी वस्तु को अन्य वस्तु से अलग करना. ५ कढ़ाई में तल कर निकालना. ६ ऋण लेना।
काडणहार, हारौ (हारी), **काडणियौ**—वि०।
काडाणौ, काडाबौ, काडावणौ, काडावबौ—स०रू०।
काडिओड़ौ, काडियोड़ौ, काड्योड़ौ—भू०का०कृ०।
काडीजणौ, काडीजबौ—कर्म वा०।

काडियोड़ौ–भू०का०कृ०—निकाला हुआ। (स्त्री० काडियोड़ी)

काडीजणौ, कडीजबौ–क्रि० कर्म वा०—निकाला जाना।

काडीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—निकाला गया हुआ। (स्त्री० काडीजियोड़ी)

काडौ–सं०पु० [सं० क्वाथ] काष्ठादि औषधियों को पानी में उबाल कर या औटा कर बनाया हुआ पेय पदार्थ, क्वाथ।

काढ़–सं०स्त्री०—निकालने की क्रिया या भाव।

काढ़णौ, काढ़बौ–क्रि०स०—१ देखो 'काडणौ' (रू.भे.)
उ०—ऊंडा पांणी कोहरे, दीसइ तारा जेम। ऊसारंतां थाकिस्यइ, कहउ काढ़िस्यइ केम।—ढो.मा. २ बेल-बूटे बनाना या नक्काशी का काम करना।
काढ़णहार, हारौ (हारी), **काढ़णियौ**—वि०।
काढ़ाणौ, काढ़ाबौ, काढ़ावणौ, काढ़ावबौ—स०रू०।
काढ़िओड़ौ, काढ़ियोड़ौ, काढ़्योड़ौ—भू०का०कृ०।
काढ़ीजणौ, काढ़ीजबौ—कर्म वा०।

काढ़ाक–वि०—निकालने वाला। उ०—बखतेस वाळा वळां बाढ़ाक बांण सा बागो हुवो बूंड्डी हूं'लो दलो क़ाढ़ाक ही कोट।
—चांवंडदांन महड़ू

काढ़ेबी–वि०—निकालने वाली।
सं०स्त्री०—एक देवी विशेष।

काढ़ौ—देखो 'काडौ' (रू.भे.)

काणंखी–सं०स्त्री०—जिसके केवल एक आंख हो, कानी।

कात–सं०स्त्री०—१ धातु या लोहा काटने का एक प्रकार का औजार जिसे कतिया भी कहते हैं।
सं०पु०—२ भेड़ों की ऊन कतरने का लोहे का एक औजार विशेष. ३ काटने का ढंग या क्रिया. ४ कातने का ढंग या क्रिया. ५ काता हुआ धागा।

कातक–सं०पु० [सं० कार्तिक] कार्तिक मास। देखो 'काती'।
उ०- कातक सुद एकादसी, बादळ विजळी होय। तौ असाढ़ में भड्डुली, बरखा चोखी होय।—वर्षाविज्ञान

कातकसांम–सं०पु०—स्वामी कार्तिकेय। उ०—पगां हणुमंत करंत प्रणांम, सोहै पग आगळ कातकसांम।—ह.र.

कातकी–वि०—कार्तिक मास की, कार्तिक मास संबंधी।
सं०स्त्री०—कार्तिक मास की पूर्णिमा।

कातणौ, कातबौ–क्रि०स०—चरखे, तकली या अन्य किसी उपकरण से रूई या ऊन बंट कर तागा बनाना। उ०—माय तौ कातै ए बाई कातणौ, कात वणावै थारै बो' रंग चूंनड़ी।—लो.गी.
कहा०—१ काती-कपासी सांन पूणी करदी—कियेकराये कार्य को बिगाड़ने पर. २ काती-पींजी सांन कपास करदी—कियेकराये कार्य को बिगाड़ने पर. ३ कात्या ज्यांरा सूत, जाया ज्यांरा पूत—सूत उसी का है जो उसे कातता है और पुत्र उसी का है जिसे जिसने जन्म दिया है। दूसरे लड़कों की अपेक्षा अपना खुद का पुत्र ही अधिक सेवा कर सकता है। ४ कात्योपींज्यौ (वीख्यो) कपास हुवग्यो—किये-कराये कार्य के बिगड़ने पर।
कातणहार, हारो (हारी) कातणियौ—वि०।
कातणौ, कातबौ, कातावणौ, कातावबौ—स०रू०।
कातिओड़ो, कातियोड़ौ, कात्योड़ौ—भू०का०कृ०।
कातीजणौ, कातीजबौ—कर्म वा०।

कातर—१ देखो 'कतियौ' (रू.भे.)
सं०स्त्री०—२ कैंची. ३ ऊंट या भेड़ आदि के बाल काटने का एक उपकरण।
वि०—१ कायर, डरपोक (डि.को.) उ०—भयौ दुहुं ओर भयानक सद्द, परयौ उन्मत्त मतंगनि मद्द। भयौ उर सूरन के उछरंग, थरत्थर कंपिय कातर अंग।—ला.रा. २ अधीर, व्याकुल।

कातरठी—देखो 'काठोतरी' (रू.भे.)

कातरियौ–सं०पु०—१ स्त्रियों के भुजा पर धारण करने का एक आभूषण विशेष। उ०—काचळ कातरिया बाजू में काठा, भुजतळ भेटै जां मेटै अघ माठा।—ऊ.का. २ गाड़ी के पहिये में लगाया जाने वाला वृत्ताकार लोहे का घेरा।

कातरौ–सं०पु०—वर्षा में उत्पन्न होने वाला एक जन्तु विशेष जो फसल को हानि पहुँचाता है। उ०—फाको टांगां टिरै कातरौ तारै कांचळ। चरचरियां री चांद फिड़कलां फबतौ हांचळ।—दसदेव

कातरघा–सं०पु०—हजामत (डि.को.)

कातळ–वि० [अ० क़ातिल] हत्यारा। उ०—आगरै हवेली साहजहां अटकियौ, हुवौ कुळ कातळ करण हेवा। इसौ चकतौ जिको मन मही आवटै, कमंध सूं सकै नहीं मांड केवा।—महाराजा जसवंतसिंह री गीत
सं०स्त्री०—१ बनजारा जाति के व्यक्तियों द्वारा हाथ में रखने का लकड़ी का एक शस्त्र विशेष (मा.म.) २ पर्त, परत. ३ पत्थर का चपटा खंड।

कातळी–सं०स्त्री०—शरीर की बनावट, शरीर का ढांचा।

कातिक, कातिग, कातिग्ग–सं०पु० [सं० कार्तिक] कार्तिक मास।
(रू.भे., डि.को.) उ०—दीधा मणि मंदिरै कातिग दीपक, सुत्री समांणियां मांहि सुख।—वेलि.

कातियोड़ौ–भू०का०कृ०—काता हुआ (स्त्री. कातियोड़ी)

कातियौ, कातीयौ–सं०पु०—जबड़े की हड्डी, जबड़ा।

काती–सं०पु० [सं० कार्तिक] आश्विन के बाद और मार्गशीर्ष के पहले पड़ने वाला कार्तिक मास (डि.को.)
कहा०—१ काती दिन बाती—कार्तिक मास का दिन बातें करते-करते ही बीत जाता है। कार्तिक मास में दिन छोटे होते हैं.
२ काती नं सगरधू सारू कांम आवै—कार्तिक मास का संग्रह किया हुआ सब काम आता है।

कातीन–सं०पु०—एक प्रकार का शस्त्र विशेष।

कातीरौ, कातीसरौ–सं०पु०—वह फसल जो कार्तिक में काटी जाय, खरीफ की फसल।

कात्यांणी, कात्यायणी–सं०स्त्री० [सं० कात्यायिनी] १ कषाय वस्त्र धारण करने वाली स्त्री. २ अधेड़ आयु की विधवा. ३ नौ दुर्गाओं के अंतर्गत मानी जाने वाली एक दुर्गा. ४ पार्वती, उमा (ह.नां.) ५ चौसठ योगिनियों के अंतर्गत नवीं योगिनी।

कात्र–वि० [सं० कातर] कायर। उ०—धकधकै स्रोण मिळ करद धूर, हकबकै कात्र बकबकै हूर।—प्रे.रू.

काथ–सं०पु०—१ शरीर। उ०—दीधौ धन उपदंस ले, कीधौ काथ कुढंग। गणिका सूं राखै गुसट, रसिया तोने रंग।—बां.दा.
[सं० कथा] २ वृत्तांत, कथा। उ०—करण अप्रबळां त्रहूं मंडळ काथ।—अज्ञात ३ चरित्र. ४ शीघ्रता. ५ वैभव। उ०—पोढ़ी नाथ ठगीजियौ, वेहू रा आखरां पांण। केई दिलीं घरांणा बीखेर देतौ काथ।—नवलजी लाळस
क्रि०वि०—शीघ्र।

काथरटी—देखो 'काठोतरि' (रू.भे.)

काथरौ–वि०—१ शीघ्रता करने वाला. २ स्थिर रहने वाला।

उ०—सेसादि अंगद साथरा, कप हाकेल जुध **काथरा**।—र.रू.

काथली–सं०स्त्री०—मटकी, मिट्टी का घड़ा (क्षेत्रीय)

काथौ–सं०पु०—खैर की लकड़ियों का काढ़ा जो सुखा कर जमा लिया जाता है। यह प्रायः पान में खाया जाता है।

वि०—१ जबरदस्त, बलवान। उ०—धनुष किय भंग मद मर्ल फरसा धरण, कीसपत बाळसा ढळै **काथा**।—र.रू.

२ शीघ्रता करने वाला. ३ तेज। उ०—ईख भांण.भ्रारांण तमासौ तुरी तांण ऊभौ, बारंगां विवांण हुक्कै, **काथा** मगां बोम।
—बुधजी सिढ़ायच

४ व्यग्र, उतावला। उ०—दक्षणियां री ग्रामद सुण महाराजा बखतसिंघजी **काथा** पड़िया तद महाराज गजसिंहजी नूं बुलाया।
—मारवाड़ रा ग्रमरावां री वारता

क्रि०वि०—शीघ्र, तेज। उ०—कांत ग्रंगां तायौ एम चलायौ सक्रोध **काथं**।—महाराजा कल्यांणसिंह रौ गीत

कादंब–सं०पु० [सं०] १ कदंब का वृक्ष. २ मेघ, बादल. ३ राजहंस. ४ बाण, तीर. ५ ईख. ६ एक प्राचीन राजवंश।

कादंबनी–सं०स्त्री०—मेघमाला।

कादंबरी–सं०स्त्री० [सं०] शराब (डिं.को.)

कादंबांणी, कादंबिणी, कादंबिनी–सं०स्त्री०—मेघमाला (डिं.को.)

उ०—जिकण महापातक माथै ले'र ग्राधी पातसाही रौ लोभ दे प्रतीची रा पति ग्रापरा ग्रनुज मुरादसाह नूं मिळाइ पाउस री **कादंबिनी** रै ग्रनुकार ग्रापरौ ग्रनीक तणियौ।—वं.भा.

कादम–सं०स्त्री० [सं० कादम्बिनी] १ मेघमाला। उ०—दस गोरख नांम जपै दन में, क्रमियौ सिध बाळक **कादम** में।—पा.प्र.

सं०पु० [सं० कर्दम] २ कीच, कीचड़, पंक। उ०—बसू मांस **कादम** मचै ग्रसत परवत वर्ण, रुधिर मिळ सरतपत हुवौ रातौ।—र.रू.

कादमियौबुखार–सं०पु०—एक प्रकार का जीर्ण ज्वर।

कादमी–सं०स्त्री०—१ कमजोरी के कारण ग्रथवा बुखार की ग्रवस्था में होने वाला पसीना. २ वह रकम जो किसी ग्रच्छे खेत को केवल रबी की फसल के लिए किसी को देने पर ली जाती है। हासिल (देखो 'हासिल') वसूल करने के नियम इस पर ज्यों के त्यों लागू होते हैं।

कादर–वि० [सं० कातर] कायर, डरपोक, भीरु (डिं.को.)

कादरिया–सं०स्त्री०—मुसलमान सूफियों का एक संप्रदाय विशेष।

कादरी–सं०स्त्री०—पहिनने का एक वस्त्र विशेष। उ०—हळवळ करै **कादरी** पहरै, ऊपर बांधै पाघ प्रमेळ। वरतहार जिसौ वाड़ी रौ, मूठी ग्रनै ताड़ी रौ मेळ।—कपूत रौ गीत

कादव–सं०पु० [सं० कर्दम] कीचड़, पंक (मि० 'कादम' रू.भे.)

उ०—१ भागां झाड़ बीड़ थिउं पाधर, **कादव** कीधां पांणी। डूंगर तणां सिखर जिम चालइ, तिम हाथी सुरतांणी।—कां.दे.प्र.

उ०—२ कटका **कादव** नाह, नीर विजोगे जे हुग्रा, फिट काळजा कालाह, सज्जन विन साजा रह्या।—ढो.मा.

कादागौ–सं०स्त्री० [सं० कर्दम+गोधा] गोह के ग्राकार का मोटा एक प्रकार का जंतु जो कीचड़ में रहना पसंद करता है।

कादिम–सं०पु० [सं० कर्दम] कीचड़, पंक (मि० 'कादम' 'कादव' रू.भे.)

उ०—नदियां, नाळा, नीझरण, पावस चढ़िया पूर। करहउ **कादिम** तिळकस्यइ, पंथी पूगळ दूर।—ढो.मा.

कादू, कादौ–सं०पु० [सं० कर्दम] कीचड़, पंक (डिं.को.)

उ०—१ माया का **कादू** मंड्या, कळ्या सु निकसै नांहि। ग्ररस परस होय मिळि रह्या, ज्यूं माखी गुड़ मांहि।—ह.पु.वा.

उ०—२ कळियां कूळां री **कादे** में कळगी। विसहर संगत सूं पीपळियां बळगी।—ऊ.का.

काद्रवेय–सं०पु० [सं०] नाग, सर्प (डिं.को)

काप–सं०पु०—वस्त्रादि काटने का कार्य।

कापड़–सं०पु०—कपड़ा (रू.भे.) उ०—**कापड़** चोपड़ पांन रस, दे सह खांचे दांम। वणक मित्र जद बांकला, कीधौ इणसूं कांम।—बां.दा.

कापड़छांण–वि०—महीन कपड़े से छना हुग्रा (चूर्ण) (ग्रमरत)

कापड़िया–सं०स्त्री०—भाटों की एक शाखा जो मजीरे बजा-बजा कर ग्रपने यजमानों की पीढ़ियां गाते हैं (मा.म.)

कापड़ी–सं०स्त्री०—१ गनगौर का उत्सव मनाने वाली ग्रविवाहिता कन्या। उ०—थारै बाहर गावै **कापड़ी**, भीतर गावै गीत।—लो.गी.

२ भाटों की एक शाखा (मा.म.)

वि०—कपड़े पहिने हुए। उ०—मारवणी सुझ कारणै, तजिया देस विदेस। पहलां हुता **कापड़ी**, हवै जोगी रै वेस।—ढो.मा.

कापड़ौ–सं०पु०—१ कपड़ा, वस्त्र। उ०—लूखौ भोजन भू सुवण, घर कळिहारी नार। चौथा फाट्या **कापड़ा**, नरक-निसांणी च्यार।
—ग्रज्ञात

२ टुकड़ा। उ०—प्रथीपुड़ सांकड़ौ मेर है **कापड़ौ**, वोहळौ जास सुबास बहै।—ग्रज्ञात

कापण–वि०—१ काटने वाला। उ०—मन रा महरांण समापण मोजां, **कापण** दीनां तणां कुरंद।—र.रू.

२ मिटाने वाला. ३ संहार करने वाला।

कापणी–वि०—काटने वाला (पि.प्र.)

कापणौ, कापबौ-क्रि०स०—१ मारना, संहार करना। उ०—उथापै गनीमां थांणा सूरां सीम थाप ऊभौ। जोधपुरा **काप** ऊभौ भीम झाड़ झोड़।—बदरीदांन खिड़ियौ २ काटना। उ०—संभारियां संताप, वीसारियां न वीसरइ। काळजा बिचि **काप**, परहर तूं फाटइ नहीं।—ढो.मा. ३ मिटाना, नष्ट करना। उ०—**कापै** रोर कवंदां सामंद तटां क्रीत।—दुरगादत बारहठ ४ कम करना. ५ खंड-खंड करना. ६ व्यय करना, खर्च करना। उ०—रांमण नह सोनौ दियौ, लहि सोनां री लक। क्रन दिन सोनौ कापियौ, बिण ही लंका वंक।—बां.दा.

कापणहार, हारौ (हारी), कापणियौ—वि० ।
कापाणौ, कापाबौ, कापावणौ, कापावबौ—क्रि०स० प्रे०रू० ।
कापिप्रोड़ौ, कापियोड़ौ, काप्योड़ौ—भू०का०कृ० ।
कापीजणौ, कापीजबौ—कर्म वा० ।

कापथ–सं०पु० [सं०] कुपथ, कुमार्ग (डिं.को.)

कापरौ–सं०पु०—कपड़ा, वस्त्र (रू.भे.)
वि०—मिटाने वाला, नाश करने वाला । उ०—करण पसावां लाख पातां कुरंद कापरा, सुजस प्रणमाप रा हेक सायै ।
—तिलोकजी बारहठ

कापाळ–सं०पु० [सं० कापाल] प्रठारह प्रकार के कुष्ठों के अंतर्गत एक कुष्ठ रोग (प्रमरत)

कापाळिक–सं०पु०—मद्य-मांस खाने वाले व नर-कपाल रखने वाले एक प्रकार के तांत्रिक साधु, अघोरी । उ०—द्वादस गुरु, द्वादस सिस्य, जुमलै चोबीस कापाळिक हुवा है ।—बां.दा. ख्यात

कापियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ काटा हुआ. २ संहार किया हुआ. ३ कम किया हुआ. ४ टुकड़े-टुकड़े किया हुआ. ५ व्यय किया हुआ, खर्च किया हुआ । (स्त्री० कापियोड़ी)

कापिल—देखो 'कपिल' (वं.भा.)

कापुर–वि०—१ तुच्छ । उ०—उण पुळ प्रमरापुर कापुर उर प्रायौ, मुरधर मंडळ तळ महिमंडळ मायौ ।—ऊ.का. २ नीच ।

कापुरख, कापुरस, कापुरुस–वि०—१ कायर । उ०—मीहगि हेकौ सीह जगि, छापरि मंडै प्राळि । दूध विटाळण कापुरस, बोहळा जणै सियाळि ।—हा.झा. २ कृपण, कंजूस । उ०—प्रासव झड़ी न लग्गही, भड़ां छकावण भाळ । कर नह जांणै कापुरस, मावड़िया मतवाळ ।—बां.दा. ३ नीच, पतित । उ०—प्रर नीच क्रव्याद रा कुळ नूं दुहिता देण री किण मूढ़ कही छै । जिण रीति मुकुंद रा मंदिर नूं बिहाय खेत्रपाळ पूजण री स्रद्धा किसौ कापुरुस चित धरै ।—वं.भा.

काफर–वि० [प्र० काफिर] १ मुसलमानों के प्रनुसार उनसे भिन्न धर्म को मानने वाला । उ०—सहर में रोळाटौ ! हिन्दु मसलमांनां रौ दंगौ कांनी कांनी ।......लारै मारौ काफर नै, मारौ काफर नै रौ हाकौ ।—वरसगांठ २ ईश्वर को न मानने वाला, नास्तिक । उ०—मीर प्रकब्बर साह सूं, बोले ग्यांन संजुत्त । काफर साहां प्रवगुणी, गौ प्रांणी करतुत्त ।—रा.रू.

काफरी–सं०स्त्री०—एक प्रकार की बहुमूल्य बंदूक । उ०—काफरी बंदूकां दूरपला री दिखण में बोह-मोली ठावा बहादुरां कनै पावै ।
बां.दा. ख्यात

काफलौ–सं०पु० [प्र० काफिलः] कहीं जाने वाले यात्रियों का समूह । उ०—डाकू-ठहरौ यारां ! बौ देखौ सामनै सूं काफलौ प्राय रयौ है ।—वरसगांठ

काफी–सं०पु० [पं०] १ कहवा. २ एक राग विशेष (ह.पु.वा.)
वि०—प्रचुर, बहुत ।

काफूरी–सं०न०पु०—ख्वाजासरों का एक भेद विशेष जिसके अंडकोश बचपन में ही मसल डाले जाते हैं (मा.म.)

काबर–सं०स्त्री०—एक प्रकार का पक्षी विशेष ।
कहा०— काबर रा कुण सुगन पूछै—साधारण व्यक्ति की गिनती कौन करे ।

काबरड़ौ–सं०पु०—चितकबरा सांप । उ०—काबरड़ा काटक करै, कुळ दी भाटक कांण । ताखा दाटक 'बखत' तण, जस खाटक धण जांण ।
—कविराजा करणीदान
वि०—चितकबरे रंग का ।

काबरियौ–वि०—चितकबरे रंग का ।
सं०पु०—१ कबरा कुत्ता ।
कहा०—काबरियौ मरियौ नै ऐंठ सूं छूटा—कबरा कुत्ता मर गया और जगह जगह जूठन से हम बच गये क्योंकि सब जगह मुंह लगा कर जूठा कर देता था । हानिकर व्यक्ति के मरने पर.
२ एक प्रकार का सर्प ।

काबरी–सं०स्त्री०—१ हल्की श्यामता लिए लाल रंग और सफेद रंग की गाय. २ काले रंग की छोटी चिड़िया जिसका मध्य भाग सफेद होता है (क्षेत्रीय)
वि०—चितकबरे रंग की ।

काबरौ–वि०—१ देखो 'काबरियौ' २ चितकबरा ।
सं०पु०—एक प्रकार का चितकबरा सर्प विशेष । उ०—काळां पटां काबरां करड़ां परड़ां टाळै गोगा पीर । -प्रासौ गाडण

काबल–सं०स्त्री०—१ प्रटक के पास सिंधु नदी में गिरने वाली काबुल नदी. २ अफगानिस्तान की राजधानी काबुल ।

काबलियौ-सं०पु०—१ मुसलमान, यवन । उ०—पड़ै लड़ै प्रणपार, प्रड़ै चड़ै सांम्है प्रणी । कमंधे काबलिये किप्रो, प्राहिव घोर प्रंधार ।
—वचनिका
२ काबुल का निवासी । उ०—चोइस तो पूरबिया काटया, सोळा चोकीदार । सित्तर तो काबलिया काटया, ठारा मुगळ पठांण ।
—डूंगजी जवारजी री पड़
वि०—काबुल का, काबुल संबंधी ।

काबली–वि०—काबुल का, काबुल संबंधी ।
सं०पु०—काबुल देशोत्पन्न घोड़ा ।

काबा–सं०स्त्री०—१ पंवार वंश की एक शाखा (नैणसी)
२ एक जाति विशेष जो लूट-खसोट का कार्य करती थी । प्रर्जुन के साथ गोपियों को इनके द्वारा लूटने की कथा प्रसिद्ध है (प्राचीन)
३ चूहों की एक जाति विशेष । इस जाति विशेष के चूहे प्राय: देशनोक के करनी माता के मंदिर में अधिक पाए जाते हैं.
४ छोटा बच्चा (स.भं.)

काबाड़ी—देखो 'कबाड़ी' । (रू.भे.) उ०—काबाड़ी नित काटता, झीक कुहाड़ां झाड़ । हव नाहर वसणौ हुई, बन कुदरत री बाड़ ।—बां.दा.

काबिज–वि० [अ० काबिज़] जिसका किसी वस्तु पर अधिकार या कब्जा हो, अधिकारी ।

काबिल–सं०पु०—१ काबुल नगर (रू.भे.) उ०—दीठौ सगळउ दक्षण देस, चतुर नारि तनि चंचळ वेस। माळव नइ **काबिल**, मुकरांण, कासमीर, हुरमुज, खुरसांण ।—ढो.मा.

वि०—१ योग्य, लायक । उ०—**काबिल** कलांम कहियत करीम । रहमांन इल्म रय्यत रहीम ।—ऊ.का.

२ विद्वान, पंडित ।

काबिली—देखो 'काबली' । उ०— **काबिली** थाट भुंय ग्रासिया कड़खिया, कितौ कूड़ो कटक जगत कहियौ ।—अज्ञात

काबिलीयत–सं०स्त्री० [अ०] १ योग्यता, लियाकत. २ विद्वता, पांडित्य ।

काबी–सं०स्त्री० [फा० काबा] कुश्ती का एक पेंच जिसमें खिलाड़ी विपक्षी के पीछे जाकर एक हाथ से उसके जांघिये का पिछौटा पकड़ कर तथा दूसरे हाथ से उसके एक पैर की नली पकड़ कर खींच लेता है ।

काबुक–सं०पु० [फा०] कबूतरों का दरबा, कबूतरखाना ।

काबुल–सं०स्त्री०—१ अफगानिस्तान की राजधानी, एक नगर. २ इस नगर के पास बहने वाली एक नदी ।

काबुली—देखो 'काबली' ।

काबू–सं०पु० [तु०] अधिकार, वश, जोर ।

मुहा०—काबू करणौ—अधिकार में करना, वशवर्ती करना. २ काबू पाणौ—स्वत्व होना, अधिकार होना. ३ काबू होणौ—देखो 'काबू पाणौ' अधिकार में आना, वशवर्ती होना ।

कामंख्या–सं०स्त्री [सं० कामाक्षा] आसाम की एक प्रसिद्ध देवी, कामाख्या ।

कामंदक–सं०पु०—एक प्राचीन मुनि जो शास्त्रों के ज्ञाता एवं नीतिकार थे (वं.भा.)

कामांग–सं०पु० [सं०] आम (अ.मा.)

काय–सं०स्त्री०—१ देखो 'काया'। उ०—**काय** निपाप करिस इम केसव, दंडवत करे तूझ दयतां-दव।—ह.र. २ मूलधन. ३ समुदाय।

क्रि०वि० [सं० किम्] क्यों। उ०—बहै बनास तूं **काय** रातै बरण, जळ अधक पूछियौ गंग जमण ।—अज्ञात

अव्यय—१ या, अथवा। उ०—उत्तर आज स उत्तरइ, ऊपड़िया सीकोट । **काय** दहेसइ पोयणी, काय कुंवारा घोट ।—ढो.मा.

२ क्योंकि। उ०—कळपै अकबर **काय**, गुण पूंगीधर गोड़िया। मिणधर छाबड़ मांय, पड़ै न रांण प्रतापसी ।—दुरसौ आढ़ौ

सर्व० [सं० किम्] १ क्या। उ०—उलटो **काय** न मार ही, पंचायण मैमंत्त । कड़तळ दळां उपाड़ि करि, कड़ काय चाळी कंत ।—हा.झा.

[सं० कोऽपि] २ कोई। उ०—गात सवारण में गये, ऊमर **काय** अजांण । आखर प्रांण अमूक हो, खाख हुसी भळ खांण ।—बां.दा.

३ किस, कौनसा, कौनसी। उ०—**काय** बात री फिकर है ।

वि०—थोड़ा-बहुत, कुछ। उ०—हियौ ज डुळ डुळ जाय, बेकर री बेरी ज्यूं । कारी न लागै **काय**, जीव डिगायां जेठवा ।

वि०—काया संबंधी, दैहिक (अमरत)

कायजे–वि०—सवारी के लिए पूर्ण सज्जित (घोड़ा)

वि०वि०—यह शब्द उन घोड़ों के लिये प्रयुक्त होता है जो सवारी के लिये पूर्ण रूप से सज्जित हों और उनकी लगाम उनके चारजामे में अटकादी गई हो जिससे सवार होते ही व्यक्ति लगाम को शीघ्र हाथ में ले सके ।

उ०—१ दासी दास रथां पद दंती, कोतल चंचल **कायजे** ।—र.रू.

उ०—२ घोड़ा **कायजे** ही खड़ा छै ।—जलाल बूबना री बात

कायथ–सं०पु० [सं० कायस्थ] १ लेखक का व्यवसाय करने वाली एक प्रसिद्ध जाति विशेष, कायस्थ (मा.म.) २ काया में स्थित जीवात्मा ।

कायथण–सं०पु०—१ मलबा. २ वैभव, ऐश्वर्य ।

सं०स्त्री०—३ कायस्थ जाति की स्त्री ।

कायथा–सं०स्त्री० [सं० कायस्था] हरीतकी, हर्रे (ह.नां.)

कायदाई–सं०स्त्री० [अ० कायद+ई] कायदा संबंधी, नियमानुसार ।

उ०—जैपुर आंगिण सेवै **कायदाई** बात कीनी । जैपुर भूप 'जैसे' तीन वारी दादि दीनी ।—शि.वं.

कायदौ–सं०पु० [अ० कायदः] १ नियम, चाल, दस्तूर, विधान. २ क्रम, करीना. ३ मान, प्रतिष्ठा, इज्जत । उ०—सु राजाभोज रै घरे आया, घणा **कायदा** किया, अनेक भांति री भक्ति हुई ।—चौबोली

कहा०—आपरो कायदौ आपरै हाथ अपनी इज्जत की रक्षा करना मनुष्य के ही हाथ की बात है । अगर अच्छा कार्य या बर्ताव करोगे तो प्रतिष्ठा होगी और बुरा कार्य करोगे तो प्रतिष्ठा चली जायगी ।

कायदौ-कुरब–सं०पु०यौ०—मान, प्रतिष्ठा इज्जत, आदर । उ०—खास चौकी मांहि राखिया, बड़ी महरबांनी । **कायदोकुरब**, मुलाहिजो दीयौ ।—डाढ़ाळा सूर री बात

कायफळ–सं०पु० [सं० कट्फल] एक वृक्ष जिसकी छाल दवा के काम आती है । यह हिमालय के आसाम की पहाड़ियों में तथा बर्मा में बहुत होता है ।

कायब–सं०पु० [सं० काव्य] १ देखो 'काव्य' (रू.भे.) उ०—औगण इरांणी कटक, कुकवी नादरसाह । **कायब** हंदी दळ कटै, रसण तेग बदराह ।—बां.दा. २ शुक्र (अ.मा.) ३ कवि. ४ बह रोला छंद जिसके चारों पदों में ११ वीं मात्रा ह्रस्व हो ।

कायबौ–सं०पु०—१ काव्य. २ कविता ।

कायम–वि० [अ०] १ स्थिर, ठहरा हुआ. २ मुकर्रर, निश्चित. ३ स्थापित, निर्धारित ।

क्रि०वि०—अधिकार में । उ०—अरु सारंगखांन कांधळजी आगै भाज नीसरियौ नैं कवरजी स्री वीकेजी री फते हुई । अरु आप द्रोण-पुर **कायम** कीयौ ।—द.दा.

कायममुकांम–वि०—१ देखो 'कायम' २ स्थानापन्न, एवजी ।

कायमांन–सं०स्त्री० [सं० कायमान] घास-फूस की झोंपड़ी (डिं.को.)

कायमौ–वि०—१ अशक्त, अयोग्य. २ दुर्बल निर्बल. ३ कायर।

कायम्म—देखो कायम' (रू.भे.) उ०—जप आसिस पद्धरि छंद जोड़, कायम्म राज नृप जुग करोड़।—वि.सं.

कायर–वि० [सं० कातर] १ कमजोर. २ डरपोक, भीरु।

पर्याय०—करणसोच, काचौ, कातर, कादर, डरपण, पसकण, पोच, भीरु। अल्पा० 'कायरड़ौ।'

कायरड़ौ—देखो 'कायर' (अल्पा.) उ०—सूर छतीसी सांभळै, सूरां तणौ सकाज। 'बांका' रा वायक सुणै, कायरड़ा किण काज।

—बां.दा.

कायरता–सं०स्त्री० [सं० कातरता] भीरुता, डरपोकपन। उ०—कायर छाती रा डूंगजी ! थूं कायरता मत लाव, सात दिनां के भीतर थांनै, घर ले ज्याऊं छुडाय।—डूंगजी जवारजी री पड़।

कायरी–सं०स्त्री०—१ कायरता. २ कोप, क्रोध। उ०—खाय कायरी फिरंगी बोल्यौ, सुणौ संतरयां बात। ए मोडा तौ कपटी कोनी, नांय कपट की घात।—डूंगजी जवारजी री पड़

कायरौ–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

वि० (स्त्री० कायरी) भूरी आँखों वाला।

कहा०- कांणा, खोड़ा, कायरा नै सिर सूं गंजा होय, इण सूं जब बात करौ, तब हाथ में डंडा होय—काना, लंगड़ा, भूरी आँखों वाला और गंजा व्यक्ति कभी अच्छे नहीं होते।

कायल- सं०पु० [अ०] १ जो तर्कवितर्क से सिद्ध बात को मान ले। कबूल करने वाला. २ किसी बात या सिद्धान्त का मानने वाला। उ०— थावै गज कायल खाय सथाप, झुकै घट घायल आय झुवाप।

वि०—१ डरपोक. २ तंग, हैरान। उ०—कोई सिरदार रै लघु भाई विखौ कर नीकळियौ सो ठिकांणा नै कायल कीधौ।

—वी.स.टी.

३ पीड़ित।

कायली–सं०स्त्री० [अ० काहिली] १ सुस्ती, आलस्य. २ थकावट. ३ कमजोरी. ४ लज्जा, ग्लानि। (मि० 'काहिली')

[सं० काहेऽऽनय] ५ मटकी (डिं.को.)

कायस–सं०स्त्री०—१ चिढ़ने से होने वाला दुख या कष्ट. २ डाह, जलन. ३ बकझक।

कायसथा–सं०स्त्री० [सं० कायस्था] हरीतकी, हर्रे (ह नां.)

कायस्थ–सं०पु०—१ लेखक का व्यवसाय करने वाली एक जाति विशेष अथवा इस जाति का व्यक्ति।

सं०स्त्री० [सं० कायस्था] २ हरीतकी, हर्रे (अ.मा.)

कायस्था–सं०स्त्री० [सं०] हर्रे, हरीतकी (ह.नां.)

काया–सं०स्त्री०—१ शरीर, तन, देह (ह.नां.)

कहा०—१ काया नै भी कूटण रौ, माया नै भी लूटण रौ—शरीर को मार का डर होता है तथा माया को लुटने का डर रहता है। शरीर मार से डरता है. २ काया राख धरम—शरीर की रक्षा करने के उपरांत ही धर्म करना उचित है।

२ एक प्रकार की छुरी विशेष।

कायाकल्प–सं०पु० [सं०] औषधि के प्रभाव से वृद्ध शरीर को भी सुंदर एवं युवा बनाने की क्रिया।

काया-गद-हरणी–सं०स्त्री०— हर्रे, हरीतकी (नां.मा.)

कायाघाळौ–सं०पु०—युद्ध।

कायाजळ–सं०पु०—नेत्र, नयन (ना.डिं.को.)

कायाधर, कायाधार–सं०पु०—मनुष्य (अ.मा., ह.नां.)

कायापलट–सं०पु०—१ भारी हेर-फेर, बहुत बड़ा परिवर्तन. २ शरीर का नया रूप धारण करना।

कायालज–सं०स्त्री०—नेत्र, नयन (ना.डिं.को.)

कायौ–वि०पु० (स्त्री० कायी) तंग, हैरान। उ०—पांणी ग्यांन किणी नहिं पायौ. कूकै लोक हुऔ अति कायौ।—ऊ.का.

कारंजौ–सं०पु०—एक वृक्ष विशेष।

कारंड–सं०पु० [सं०] हंस की जाति का एक पक्षी।

कार–सं०स्त्री० [सं० कारा] १ सीमा, मर्यादा। उ०—कळजुग चलै न कार, अकबर मन आंजस गुहीं। सतजुग सम संसार, परगट रांण प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ

मुहा०—१ कार खींचणी—मर्यादा बाँधना. २ कार छोडणी—मर्यादा छोड़ना. ३ कार लोपणी—मर्यादा लाँघना।

कहा०— बाड़ बांधियोड़ी नहीं रैवै कार बांधियोड़ी रै'सी—रक्षा की अपेक्षा रक्षा करने के विचार को मान्यता देना। मर्यादा की प्रशंसा।

२ काम, कार्य।

कहा०—कार नै कार सिखावै—काम करने से ही मनुष्य काम करना सीखता है।

३ लकीर, रेखा। उ०—जिण घर धवळ धार री कार, करूं मिनखां रौ कितरौ मोल।—सांझ ४ मदद, सहायता. ५ दूत, चर, हरकारा. ६ एक शब्द जो वर्णमाला के अक्षरों के आगे लग कर उनका स्वतंत्र बोध कराता है जैसे चकार, लकार, मकार इत्यादि।

[अनु०] ७ एक अनुकरणात्मक शब्द जो अनुकृत ध्वनि के साथ लग कर उसका संज्ञावत बोध कराता है—जैसे फूत्कार, फुफकार, सिसकार आदि।

वि०—लाभप्रद।

कार-आमद–वि०—उपयोगी, काम में आने वाला।

कारक–सं०पु०—१ व्याकरण में संज्ञा या सर्वनाम शब्द की वह अवस्था जिसके द्वारा किसी वाक्य में उसका क्रिया के साथ संबंध प्रकट होता है. २ विधाता, विधि। उ०—कांनकटी नकटी कुळटा कर, कारक नै नथ कुंडळ कीनै।—ऊ.का.

प्रत्यय—शब्दों के पीछे लगने वाला एक प्रत्यय जो करने वाले का अर्थ देता है—जैसे हांणीकारक

कारकदीपक–सं०पु० [सं०] एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें कई क्रियाओं का अन्वय एक ही कर्ता के साथ प्रकट किया जाय।

कारकून–सं०पु० [फा० कारकुन] १ इंतजाम करने वाला, प्रबंधकर्ता. २ कारिंदा।

कारख–सं०स्त्री० [सं० कालुष्य] राख, भस्मी, कारिख। उ०—कुंवरसी कही जे फेर बरधियौ तौ हूं पेट खाय मरस्यूं, कारख घाल स्यांमी हुय जावसूं।—कुंवरसी सांखला री वारता

कारखांनौ–सं०पु० [फा० कारखानः] १ वह स्थान जहां व्यापार के लिये कोई वस्तु बनाई जाती-हो।

क्रि०प्र०—खोलणौ।

२ कारबार, व्यवसाय।

क्रि०प्र०—फैलाणौ।

३ खजाना, कोष, धनागार। उ०—१ अरु पातसाहजी भींवराजजी ऊपर बडा महरवांन हुवा नै खरचो रा रिपिया कारखांनै सूं हजार तीन दराया।—द.दा. उ०—२ साह कह्यौ—चाळीस हजार-री गहणौ थौ, डबा था, राजा कह्यौ—चाळीस थैली कारखांनै सूं काढ़ देवौ, माल सागी पैदास कर देयीस तौ मांग लेयीस, अर सीरौ मंगाय ज्यूं म्हे देखां।—राजा भोज अर खापरघा चोर री वात ४ वह राजकीय स्थान जहां रत्न, जवाहिरात व आभूषण आदि रक्खे जाते हों अथवा बनाये जाते हों। जवाहिरखाना (द.दा.) ५ किसी सरदार, रानी आदि का वह निजी मकान जहां उसका निजी स्टाफ रहता हो। यह मकान व्यक्ति के तात्कालिक निवास-स्थान से अलग ही होता है, जहां स्टाफ के साथ उसके स्वयं की ठहरने की भी व्यवस्था होती है (मि. 'नोहरा') उ०—१ तिणसूं नापौ बांणक लगाय बहुण बणाई, राखी बंधाई, बेस दिया, हमेसां आप उणरै महल रै कारखांनै जावै छै, बातां करै छै सो राजी कर लीन्ही—नापै सांखले री वारता। उ०—२ थांन दोय बाफते रा, थांन दोय मामूली सेल्हा पांच अव्वल ले आई। दरजी नूं भरमल रै कारखांनै में बैसाणिया।

—कुंवरसी सांखला री वारता

६ विभाग, डिपार्टमेंट। उ०—कह कारखांना गिणत कुण-कुण, संभ्रमै तिहुं लोक सुण-सुण। विसद जग उजवाळ विरदां, सत्रां साभ्रण सूर।—र.रू.

कारगर–वि० [फा०] प्रभावजनक, असर करने वाला।

कारगुजार–वि० [फा०] १ अपने कर्तव्य का भली प्रकार पालन करने वाला. २ कार्यकुशल।

कारचोभ–सं०पु० [फा० कारचोब] जरी के तारों से कसीदा निकालने का कार्य (रा.सा.सं.)

कारचोभी–वि० [फा० कारचोबी] जरदोजी का। उ०—भडोंची बाफते री घणै कलाबूत रेसम रै कारचोभी रै कांम री।—रा.सा.सं.

कारज–सं०पु० [सं० कार्य्य] १ काम, कार्य (रू.भे.) उ०—लोग घरां रा कारज भूलिगा—वेलि.टी. २ मृत्युभोज. ३ कर्तव्य. ४ अंतिम संस्कार। उ०—सारा लोक-अमराव भेळा होय आय उण देह रौ कारज कीयौ।—पलक दरियाव री वात

कारजियौ—देखो 'कारज' (अल्पा.)

कारट–सं०पु०—१ एक जाति विशेष जिसके व्यक्ति मृतक व्यक्ति के क्रियाकर्म-संस्कार आदि कराते हैं और मृत्यु-कृत्यों का दान भी ग्रहण करते हैं। ये अपने को ब्राह्मणों के अंतर्गत मानते हैं (मा.म.) २ इस जाति का व्यक्ति (अल्पा. 'कारटियौ') (मि० 'तारक') कहा०—कारटिया रौ टक्कौ ठाकुरद्वारै नी चढ़ै—बुरे व्यक्ति की कमाई का पैसा भगवान भी ग्रहण नहीं करते। बुरी कमाई की निंदा। ३ बच्चों द्वारा खेल में परस्पर धोखा या भुलावा देने की क्रिया, रोंगटी।

[अं० कॉर्ड] ४ पोस्ट कार्ड।

कारटियौ–सं०पु०—देखो 'कारट'(२) (अल्पा.)

कारटून–सं०पु०—वह हास्यपूर्ण कल्पित बेढब चित्र जिससे किसी घटना या व्यक्ति के संबंध में किसी गूढ़ रहस्य का ज्ञान होता हो।

कारड–सं०पु०—देखो 'कारट' (४) (रू.भे.)

कारण–सं०पु० [सं०] १ वजह, सबब, हेतु (डिं.को.) २ जिसके विचार से कुछ किया जाय या जिसके प्रभाव से कुछ हो (डिं.को.) ३ जिससे कार्य की सिद्धि हो. ४ प्रयोजन. ५ निदान (डिं.को.)

६ प्रमाण. ७ तांत्रिकों की परिभाषा में पूजन के उपरांत का मद्यपान. ८ विष्णु. ९ शिव. १० श्रीकृष्ण (अ.मा.)

११ मान, प्रतिष्ठा। उ०—बड़ी रीझ-मौजां सिरपाव पावै, कुंवर री बडी मेहरवांनी, बडौ कारण राखै।—पलक दरियाव री वात

१२ गौरव। उ०—कारण कीरतसिंघ रौ, स्री 'अगजीत' निहाळ। सरण अभै कीधौ मियां, लीधौ वीत संभाळ।—रा.रू.

कारणइ—देखो 'कारणै' (रू.भे.) उ०—पर-मन-रंजन कारणइ, भरम म दाखिस कोइ। जेही दीठी मारुवी, तेही आखे मोइ।

—ढो मा.

कारड़ी–सं०स्त्री०—मजदूरी। उ०—निकमाळै निकमा फिरै, ना लगै कूवटां कारड़ी।—दसदेव

कारणकरण–सं०पु०यौ०—सृष्टि का कारणस्वरूप, ईश्वर।

कारणमाळा–सं०स्त्री०—काव्य में एक अर्थालंकार जहां एक पदार्थ का दूसरा पदार्थ उत्तरोत्तर (शृंखला-बद्ध विधान-पूर्वक) कारण भाव से वर्णित किया गया हो।

कारणसरीर–सं०पु०यौ०—वेदांत में अणुवाद के अनुसार सुषुप्तावस्था का वह कल्पित शरीर जिसमें इन्द्रियों के विषय-व्यापार का अभाव रहता है, पर अहंकार आदि का संस्कार मात्र रह जाता है जिससे जीवात्मा केवल सुख ही सुख का अनुभव करता है। यह शरीर वास्तव में अविद्या ही है, इसे आनन्दमय कोश भी कहते हैं।

करणि—देखो 'कारण'। उ०—खांन भणइ-कुणि कारणि आव्या, कहउ तुम्हारउं काज। कहइ प्रधान-राउळ आएसइ, कटक जोएस्यूं आज।—कां.दे.प्र.

कारणीक-वि०—१ बुद्धिमान, चतुर। उ०—वडो धनरथ हुंण लागो, तरै लाखा रै घर मांहै कारणीक मांणस था तिकां आडेची नूं घणो हठ कर बळती नूं राखी।—नैणसी २ काम करने वाला. ३ कारण उत्पन्न करने वाला. ४ विचित्र, अद्भुत, विख्यात।
उ०—स्रीकळस हाथी सिधराव जैसिंघ रै दळ वादळ आसुफदौळा रै स्रीप्रसाद नैपाळ रा राजा रै जस तिलक उदयपुर फते मुमारख जोधपुर अै हाथी वडा कारणीक हुआ।—बां.दा. ख्यात

कारणै-क्रि०वि०—हेतु, निमित्त, कारण से, वास्ते। उ०—मन अग चै कारणै मदन चौ, वागुरि जांणि विसतारण।—वेलि.

कारणोपाधि-सं०पु० [सं०] ईश्वर (वेदान्त)

कारतक-सं०पु० [सं० कार्तिकेय] १ स्वामी कार्तिकेय.
[सं० कार्तिक] २ कार्तिक मास। उ०—कारतक महिना मांय, सौनै सियाळौ मांभरै। टाढड़ीयुं तन मांय, ओढ़ण दे आभप रा धणी।
—जेठवे रा सोरठा

कारतबीरज, कारतवीरज-सं०पु०—कृतवीर्य का पुत्र सहस्रबाहु (डिं.को.)

कारतिक-सं०पु० [सं० कार्तिक] १ कार्तिक मास (डिं.को.)
२ स्वामी कार्तिकेय।

कारतूस-सं०पु०—बंदूक में भर कर चलाने की एक नली जिसमें गोली-बारूद भरा रहता है। उ०—कारतूस घन युद्ध कर सुम्भा लगं थग्गे, एक पलीती कालिका दहूं ओर नि दग्गे।—ला.रा.

कारत्तिक-सं०पु० [सं० कार्तिक] कार्तिक मास। देखो 'काती'।
[सं० कार्तिकेय] स्वामी कार्तिकेय।

कारनीक-वि०— देखो 'कारणीक' (रू.भे.) उ०—नरेंद्र के सुरेंद्र के धराधरेंद्र के धतू। अकारनीक आप नांहि कारनीक हौ क्रतू।
—ऊ.का.

कारबार-सं०पु० [फा०] १ काम-काज. २ व्यवसाय, पेशा, व्यापार।

कारबारी-वि०—१ कामकाज करने वाला. २ व्यवसाय या पेशा करने वाला।

कारमी-वि०स्त्री०—१ कमजोर, अशक्त. २ कायर. ३ व्यर्थ, बेकार, असत्य। उ०—मन्है जांणतै मेलियौ, विसहर ऊपर पाव। होवौ माया कारमी, भावै सांची थाव।—बां.दा. ख्यात। (पु०—कारमौ)

कारमुकासण, कारमुकासन-सं०पु० [सं० कार्मुकासन] योग के चौरासी आसनों के अतर्गत एक आसन विशेष। इसमें पाँवों की स्थिति पद्मासन की तरह रख कर दोनों हाथों को सीधा कर दाहिने हाथ से दाहिने पाँव के अंगूठे को तथा बांयें हाथ से बाँयें पाँव के अंगूठे को पकड़ा जाता है। पीछे शरीर, गरदन तथा शिर को समान रख के बैठा जाता है। इससे शरीर में उष्णता आती है तथा अपानवायु का उर्ध्व आकर्षण होता है।

कार-मुख-सं०पु० [सं० कार्मुक] १ अर्जुन (अ.मा.) २ धनुष।

कारमौ-वि०पु०—१ व्यर्थ, निकम्मा। उ०—जोवन कारमौ विहांणै उठ जासी।—ओपौ आढ़ौ २ कायर, डरपोक। उ०—देठाळौ हुआं कारमा डिगिया, पूगा कुसळ पगां रै पांण।—तेजसी खिड़ियौ
सं०पु०—कुपुत्र।

कारय, करज-सं०पु० [सं० कार्य] १ कार्य, काम. २ कारण. ३ प्रयोजन, उद्देश्य।

कारयारथी-वि०—अपना कार्य सफल करने की इच्छा रखने वाला।
उ०—कुलीन क्रितग्य साधू कारयारथी सामोपाय करणौ।
—बां.दा.ख्यात

कारवांन-सं०पु० [फा० कारवां] यात्रियों का दल या समूह, काफिला।
उ० कतार कारवांन के अगार आवती नहीं, प्रजा पुकार द्वार पै पगार पावती नहीं।—ऊ.का.

कारस-सं०स्त्री० [सं० कारीष] देखो 'कारा' (४)

कारसकर-सं०पु० [सं० कारस्कर] पेड़, वृक्ष (ह.नां., नां.मा.)

कारसाजी-सं०स्त्री० [फा० कारसाजी] १ काम बनाने या सँवारने की क्रिया. २ भीतरी या छिपी हुई कार्रवाई, चालाकी।

कारा-सं०स्त्री०—१ बंधन, कैद। उ०—इण रीति केही जवनां रा प्रांण देह रूप कारा सदन रा बंदीवांन छुडाय सहाबुद्दीन री सभा मैं सारंगदेव टूक टूक होय झड़ियौ।—वं.भा. २ कारागार, कैदखाना. ३ पीड़ा, क्लेश. [सं० कारीष] ४ पशुओं के बंधने के स्थान पर उनके पैरों से बन जाने वाला गोबर का महीनतम चूर्ण (क्षेत्रीय)

कारागार, काराग्रह-सं०पु० [सं० कारागृह] बंदीगृह, कैदखाना, जेल।

काराग्रह-राखस-सं०पु०—इन्द्र (ना.डिं.को.)

कारायण-सं०पु०—१ मस्तिष्क. २ भाग्य, नसीब। उ०—किड़की कारायण कनफड़ियां कूटी, तिड़गी तारायण सौ पुरसां तूटी।—ऊ.का.

कारासदन-सं०पु०यौ० [सं०] बंदीगृह, कारागृह जेलखाना।
मि० 'कारा' (१)

कारिंदौ-सं०पु०—दूसरे की ओर से काम करने वाला कर्मचारी, गुमाश्ता।

कारिज-सं०पु० [सं० कार्य्य] देखो 'कारज' (रू.भे.)
उ०—मुवेस्या कारिज सिधम होइ, मुनेसर मन बंधै फंद मांहि।
—रांमरासौ

कारिमौ-वि०—देखो 'कारमौ' (ह.नां.) उ०—अवसर वुहौ जात आतमा। करि कारिमा फिटा सह कांम। राघव तणा जोडि गुण रूपक, मारण दळिद्र वखांरण मांम।—ह.नां.

कारियौ—एक प्रत्यय जो शब्दों के आगे लग कर शब्द का कर्ता अर्थ बनाता है; करने वाला। उ०—कांपिया उर कायरां असुभकारियौ गाजतै नीमांणै गड़ड़ै।—वेलि.

कारी-सं०स्त्री०—१ इलाज, समाधान, उपाय, तरकीब। उ०—हियौ ज डुळ डुळ जाय, बेकर री बेरी ज्यूं। कारी न लागै काय, जीव डिगायां जेठवा।
क्रि०प्र०—लागणी, होणी।
कहा०—१ कारी करम सारी—भाग्य के अनुसार ही इलाज या उपाय होता है. २ घर फाटयै ने कारी नी लागै—घर फटे को

कारी नहीं लगती है; घर में फूट पड़ जाने से उसका नाश हो जाता है. ३ थांरा सूं कारी लागै तौ लगाग्रो नी—ग्रगर ग्राप कुछ उपाय कर सकते हो तो कीजिये. ४ विगड़ियै कांम नै कारी लागै पण फूटोड़ै करम नै नी लागै—बिगड़ा हुग्रा काम सुधारा जा सकता है किंतु बिगड़ी हुई तकदीर को नहीं सुधारा जा सकता; भाग्य प्रबल है.
२ टूटे-फूटे बर्तन, वस्त्र या किसी ग्रन्य वस्तु को दुरुस्त करने के लिए लगाया जाने वाला तुर्प या पैबंद.
क्रि०प्र०—देणी, लगाणी, लागणी।
यौ०—कारीकूरपण, कारीकुरपौ।
३ ग्रांख का ग्रॉपरेशन ।
क्रि०प्र०—करणी, होणी।
४ एक प्रत्यय जो शब्दों को ग्रागे लगा कर शब्द का कर्ता ग्रर्थ बनता है (ल.पिं)
५ हस्तकौशल में दक्ष व्यक्ति (डिं. को.) मि० 'कारीगर'।

कारीगर–वि० [फा०] हाथ से काम बनाने में दक्ष, निपुण।
उ०—कीधै मधि मांणिक हीरा कुंदण, मिळिया कारीगर मयण ।
—वेलि.
सं०पु०—१ हाथ से ग्रच्छा कार्य करने वाला व्यक्ति. २ पत्थर, लकड़ी, धातु ग्रादि से ग्रच्छी व विशाल वस्तुएं बनाने वाला शिल्पकार।

कारीगरी–सं०स्त्री० [फा०] हाथ से ग्रच्छे ग्रच्छे कार्य करने की कला. २ पत्थर, लकड़ी, धातु ग्रादि से ग्रच्छी व विशाल वस्तुएं बनाने की कला। हाथ से काम बनाने की दक्षता।

कारीस–सं०स्त्री० [सं० कारीष] उपलों का चूरा (डिं.को.) (रू.भे. 'कारा')

कारुणसिंध–वि० [सं० करुणा+सिंधु] करुणासागर, दयानिधि।
उ०—नृप दासरथनंद, सौ कारुणसिंध।—र.ज.प्र.
सं०पु०—ईश्वर।

कारू–सं०पु० [सं० कारु] १ भील, चमार, मीना ग्रादि छोटी गिनी जाने वाली जातियों के व्यक्ति।
वि०—१ कार्य करने वाला (डिं.को.) २ नीच, पतित।

कारूनारू–सं०पु०यौ०— देखो 'कारू'। उ०—कमारा ग्रांबहिडा सवई, चालइ कारूनारू नवई।—कां.दे.प्र.

कारौ–सं०पु०—१ कलह, झगड़ा-फिसाद। उ०—दिन रात दार कारा करै, बहै कळेजा बीच रे। जो पैला हूं जांणतौ, नेड़ो न जातो नीच रै।
— ऊ.का.
२ निंदा, ग्रपकीर्ति। उ०—भारौ सिरहर डूंगरां, कारौ वेकाणांह। मांझी खेंगौ वंकड़ो, नमै न सुरताणांह।—बां.दा.ख्यात
३ शिकायत. ४ एक जाति विशेष का घोड़ा (कां.दे.प्र.)

काळंतर–क्रि०वि०यौ० [सं० कालांतर] कुछ काल के ग्रनन्तर, काफी समय के बाद। उ०—खड़हड़ै इंद्र काळंतरै, पड़ै रुद्र ब्रह्मा पड़ै। रूपक्क नांम रायसिंघ रौ, तोही जरा न ग्रांमड़ै।—नैणसी

काळंबार–सं०पु०—काला सर्प। उ०—हे ठाकुरां म्हारा खामंद नै मत छेड़ौ, ग्रौ फिरंड में दबियोड़ौ काळंबार छै सो इण भोगी (फण वाळा) रा जहर-क्रोध सूं बचनै दूजौ कोई जमदंड मरण री उपाय बच नै नहीं छै।—बी.स.टी.

काळंदी–सं०स्त्री० [सं० कालिंदी] यमुना नदी (डिं.को.)

काळंद्री–सं०स्त्री० [सं० कालिंदी] १ यमुना नदी जो कलिंद पर्वत से निकली हुई मानी जाती है। उ०—जु सुमेर पाखती काळिंद्री फिरै छै।
२ श्रीकृष्ण की एक पत्नी। —वेलि. टी.

काळंद्री-सोवर–सं०पु० [सं० कालिंदी+सहोदर] यमराज (ह.नां.)

काळ–सं०पु० [सं० काल] १ यमराज, महाकाल (डिं.को.)
कहा०—१ ग्रंजळ बडौ बळवंत है, काळ बडौ सिकारी है—भावी प्रबल है, होनहार ग्रवश्य होता है; मनुष्य की इच्छा का कोई मूल्य नहीं.
२ वैरी ग्रावतौ दीसै पण काळ ग्रावतौ को दीसै नी—शत्रु को ग्राता हुग्रा देखा जा सकता है परन्तु यमराज को ग्राता हुग्रा नहीं देख सकते। मृत्यु का कोई भरोसा नहीं, न मालूम कब ग्रा जाय।
२ मौत, मृत्यु।
मुहा०—१ काळ ग्राणौ—मृत्यु ग्राना. २ काळ करणौ—मरना।
उ०—१ काळ कणी देख्यौ है?—मौत को किसी ने नहीं देखी। उससे कोई बच कर नहीं रह सकता. २ काळ कणी नै ग्राडौ ग्रावै है?—मौत किसी की सहायता नहीं करती, वह सब को खाती है. ४ काळ के ताळ नी लागै—मौत ग्राने में समय नहीं लगता; मृत्यु को कोई नहीं रोक सकता. ५ काळ सिकार—शिकार का होना शिकारी पर नहीं बल्कि जानवर की मृत्यु होने पर निर्भर है।
३ ग्रंतिम समय. ४ शनि ग्रह. ५ शिव. ६ विष्णु.
७ लोहा. ८ सर्प, सांप (ह.नां.) ९ ग्रकाल, दुष्काल।
कहा०—१ काळ को पड़बो ग्रर बाप को मरबो—मुसीबत पर मुसीबत का ग्राना बड़ा कष्टदायक होता है. २ काळ पड़ै जणै पी'र नै सासरै माथै पड़ै—बुरा समय ग्राता है तब चारों ग्रोर से ग्राता है।
३ काळ में इधक मास—ग्रकाल में ग्रधिक (मल) मास होने पर; विपत्ति में विपत्ति ग्राने पर. ४ काळ रा काचरा'र सुकाळ का बोर—ग्रकाल में तो काचरे (एक प्रकार की छोटी ककड़ी) ग्रौर सुकाल में बेर बहुत होते हैं, क्योंकि झाड़ियों को जंगल में भी पर्याप्त पानी मिल जाता है. ५ काळ बागड़ सूं ऊपजै बुरौ बांमण सूं होय—मरुभूमि से ग्रकाल उत्पन्न होता है ग्रौर ब्राह्मण से बुराई उत्पन्न होती है (ब्राह्मणों की निंदा. ६ काळ बिगोवै कोनी, बाळ बिगोवै—ग्रकाल ग्रर्थात् ग्रभाव में बदनामी नहीं होती किन्तु छोटे बच्चे शीघ्र रोटी न मिलने पर बदनामी करने लगते हैं.
१० समय (ह.नां.) ११ सिंह (ना.डिं.को.)
वि०—१ काला (ह.नां.) २ क्रूर. ३ तीन की संख्या* (डिं.को.)

काल–सं०पु० [सं० कल्य] ग्रागामी ग्राने वाला दूसरा दिन।
कहा०—१ काल कण देखी है—'कल' किसने देखा है; भविष्य की

कोई नहीं जानता. २ काल करै सो आज कर आज करै सो अब—किसी भी कार्य को शीघ्र कर डालना चाहिये, उसे भविष्य पर नहीं छोड़ना चाहिये. ३ काल की जोगरा पत्तर में पावै—नये व्यक्ति द्वारा पुराने व्यक्तियों की बराबरी या नकल करने पर. ४ काले कठी उच्छेयो—बेकार की अनिश्चित बात पूछने पर. ५ काले री काले देखीसी (गई)—भविष्य की चिंता वर्तमान में करना उचित नहीं। आलसी व्यक्तियों के प्रति।

काळ-अंजणी-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा जिसके सीने पर श्याम रंग की भौंरी होती है—शा.हो. (अशुभ)

काळआखरी-सं०पु०—१ मृत्यु-संदेश लाने वाला व्यक्ति. २ वह पत्र जिसमें किसी के मरने की खबर हो।

काळउ—वि० (प्रा० रू०) देखो 'काळौ'। उ०—सज्जरिणयां वउळाइ कइ, मंदिर बइठी आइ। मंदिर काळउ नाग जिउं, हेलउ दे दे खाइ।—ढो.मा.

काळकंधता-सं०पु० [सं० कालस्कंध] तमाल पत्र (अ.मा.)

काळक-सं०स्त्री० [सं० कालिका] १ दुर्गा, देवी।

सं०पु०—२ यमराज. ३ काल, मृत्यु, मौत।

काळकड़ी-वि०स्त्री०—काले रंग की।

काळका-सं०स्त्री० [सं० कालिका] १ कालिका देवी। उ०—प्याला ले कराळ काळका सी स्रोरा पीय।—हुकमीचंद खिड़ियौ

२ कश्यप ऋषि की पत्नी जो दक्ष प्रजापति की पुत्री थी. ३ हरीत की, हर्रे, हड़ (नां.मा.)

वि०स्त्री० [सं० कालिका] श्याम रंग की। उ०—उंची नीची सरवरिया री पाळ, जठे नै मिळ टोडी-टोडड़ा। साथीड़ां रै चढ़रा टोड, पाबू धणी रै चढ़रा केसर काळका।—लो.गी.

कालकी-वि०स्त्री०—पगली।

काळकी-वि०स्त्री०—श्याम रंग की।

काळकूट-सं०पु० [सं० कालकूट] १ विष, जहर (डि.को.) २ एक महा भयंकर विष. ३ काला बच्छ नाग. ४ सींगिया जाति का एक पौधा।

काळकोट-सं०पु०—यमराज। उ०—काळकोट ऊप्रांजतो ऊठियो लोयणां कोप, नरवेषा दोयणां खंभ गाजतो नृसींग।—बदरीदास खिड़ियौ

काळख-सं० स्त्री० [सं० कलुष] कालिमा, कलंक, दोष।

क्रि०प्र०—लगाणी, लागणी।

काळग-सं०स्त्री० [सं० कलुष] १ क़ल्मष, पाप। उ०—नमो निकळंकिय नाथ नरेह, नमो कलि काळग नास करेह।—ह.र.

२ देखो 'काळख'।

काळगत-सं०स्त्री०यौ०—समय की गति, समय का फेर।

काळ-चकर, काळचक्र-सं०पु०यौ० [सं० कालचक्र] समय का चक्र, समय का फेर।

काळचाळही, काळचाळो-सं०पु०यौ०—१ युद्ध। उ०—जीवणो चहै घव तद मन भागड़े। चखासी खांगड़ी काळचाळौ।—रांमलाल आसियौ

२ युद्धोन्मत्त योद्धा। उ०—पूरहय बवळ री धाट मैंवट पियो। काळचाळो चखां चोळबोळां कियो।—हा.झा.

काळचिड़ी, काळचीड़ी-सं०स्त्री०—काले रंग की एक चिड़िया विशेष।

काळज-सं०पु०—कलेजा। देखो 'काळजो' (रू.भे.) उ०—अरड़ाळ बंबावत गाढ़ जठै, उर में धिक काळज भाळ उठै।—पा.प्र.

काळजवन-सं०पु०यौ०—१ कालयवन. २ गोपाली नामक एक अप्सरा के गर्भ से महर्षि गर्ग के संयोग से उत्पन्न तथा यवनराज द्वारा पालित पुत्र। यह जरासंध का मित्र था और श्रीकृष्ण से लड़ा था।

उ०—क्रन मरतै दुरजोघ गयो क्रमि, भीकम काळजवन आगै तिमि।

—वचनिका

काळजियो-सं०पु०—कलेजा (अल्पा०)

काळजीवण-सं०पु०—मृत्यु को जीतने वाला।

काळजीबो, काळजीभो-सं०पु०—वह व्यक्ति जिसकी जिव्हा काली हो (अशुभ)

वि०—सदा अशुभ बातें कहने वाला। जिसकी कही अशुभ बातें प्रायः सच हो जांय।

काळजो-सं०पु० [सं० कलेज] शरीर में रक्त संचालन को नियंत्रण में रखने वाला बांयी ओर का एक अवयव दिल, कलेजा, जिगर।

मुहा०—१ काळजो उछळणो—घबड़ाहट होना, मुग्ध होना.

२ काळजो कटणो—आंतों में छेद होना, मार्मिक चोट होना, बुरा लगना, डाह भरना. ३ काळजो काढ़णो—अमूल्य या प्रिय वस्तु ले लेना, माहित करना, सर्वस्व ले लेना, बहुत दुःख देना.

४ काळजो काढ़ नै देणो—सबसे प्रिय या बहुत बड़ी वस्तु देना.

५ काळजो खाणो—बहुत तकाजा करना, परेशान करना.

६ काळजो चीर नै दिखाणो—पूर्ण विश्वास देना, कोई कपट न रखना, स्पष्ट कहना. ७ काळजो छळणी होणो—व्यथा के कारण हृदय का निर्बल होना. ८ काळजो छेदणो—कटु बात कहना, चुभती कहना, कुछ कह कर किसी का जी दुखाना. ९ काळजो जळाणो—कष्ट देना, चुभती बात कह कर दुःख पहुँचाना.

१० काळजो टूटणो—उत्साहहीन होना. ११ काळजो ठंडो करणो—संतोष पहुँचाना, शांति देना. १२ काळजो ठंडो होणो—संतोष होना, शांति मिलना. १३ काळजो तर होणो—तरावट आना, हृदय को शांति मिलना. १४ काळजो तोड़'र कमाणो—परिश्रम से रोजी कमाना. १५ काळजो थर थर कांपणो—हृदय धड़कना, डरना. १६ काळजो दाब'र बैठणो—जी मसोस कर रह जाना, सब्र कर लेना १७ काळजो दाब'र रोणो—हृदय को दबा कर रोना, रुक रुक कर रोना. १८ काळजो दाबणो—विपत्ति पड़ने पर दिल कड़ा करना, धैर्य्य धारण करना. १९ काळजो धक धक करणो—भयभीत होना. २० काळजो धड़कणो—दिल का डर से थर्राना. २१ काळजो धड़काणो—डरा देना. २२ काळजो निकळणो—बहुत दुःख होना, बहुत कष्ट कर परिश्रम करना, बहुत

प्यारी चीज का जाना. २३ काळजो पत्थर (भाटो) करणी—कठोर बनना, हिम्मत करना. २४ काळजो पत्थर (भाटो) रो होणी—दिल कड़ा होना, कठोर हृदय होना. २५ काळजो पसीजणी—दया आना. २६ काळजो पांणी होणी—दया आना. २७ काळजो फाटणी—डाह होना, हृदय में दुःख होना. २८ काळजो बधणी—उत्साह होना. २९ काळजो बळणी—दुःख होना. ३० काळजो बाळणी—कष्ट देना, चुभती बात कह कर दुःख पहुँचाना. ३१ काळजो बैठणी—हृदय में दहशत होना, जोश का कम होना. ३२ काळजो सुन्न होणी—हृदय धक से हो जाना. ३३ काळजो हाथ भर रो होणी—उत्साह होना, हिम्मत वाला होना, सहन शक्ति होना. ३४ काळजा रो टुकड़ो—अति प्यारा. ३५ काळजै सूं लगाणी—मारे प्यार के छाती से लगा लेना।

कहा०—काळजो मोरां लारे सूं काड लेणी—आतंक प्रकट करने के लिए कही जाने वाली कहावत।

काळझांपी—सं०पु०—मृत्यु से झड़प करने वाला, योद्धा, वीर, सुभट।

उ०—झालै किसो तो विनां पयाळ जातो काळझांपा, लाडली पंगुळी 'चांपा' अंगुळी लगाय।—सूरजमल मीसण

काळणि—सं०स्त्री०—अंधकार। उ०—करम काळणि कानें करे, ब्रह्म अगनि में जारि। जन हरिदास अमावस वरत, कोई करसी साथ बिचारि।—ह.पु.वा.

काळबंध—सं०पु०—फलित ज्योतिष का एक योग।

काळबार—सं०पु०—१ सांप (डि.को.) २ काला सर्प।

काळबूत—सं०पु०यौ०—यमदूत।

काळद्री—सं०स्त्री० [सं० कालिन्दी] यमुना नदी (रू.भे.)

काळनाळ—सं०पु०—वह घोड़ा जिसका तालु श्याम रंग का हो—(शा.हो.) (अशुभ)

काळप—सं०स्त्री०—१ अकाल या दुष्काल होने का भाव या अवस्था।

उ०—काळप चाबी कर भावी भुज भेटी, मोटा मोटां री मावीती मेटी।—ऊ.का.

२ दया, करुणा।

कालप—सं०स्त्री०—पागलपन।

काळया—सं०स्त्री०—ईंदा पड़िहार वंश की उपशाखा।

काळपी—सं०स्त्री०—मिश्री का एक भेद। यह बढ़िया किस्म की मानी जाती है। उ०—आधूंआध काळपी मिसरी मिळायोड़ी, कोरी गागरां मांही घालियां थकां राजेस्वरां रै मुंहडै आगै मनुहारां सूं पायजे छै।—रा.सा.सं.

काळ पूंछियो—वि०—शैतान, जबरदस्त।

सं०पु०—१ काली पूंछ का सर्प. २ पूंछ के काले बालों का बैल (अशुभ)

काळपूंछी—सं०स्त्री०—वह भैंस जिसके पूंछ के छोर के बाल काले रंग के हों (अशुभ)

वि०—काली पूंछ वाली।

काळब—सं०पु०—१ वह घोड़ा जिसका समस्त शरीर सफेद हो किंतु पैरों का रंग श्याम हो (शा.हो.) २ यमदूत।

काळबूट—सं०पु० [फा० कालबुद्र] चमारों का लकड़ी का वह ढांचा जिस पर चढ़ा कर जूता सीते हैं।

काळबेलियो—सं०पु०—१ एक जाति विशेष का व्यक्ति जो सर्प पकड़ने या उनका जहर निकालने का व्यवसाय करता है. २ सँपेरा।

काळबंतक—सं०पु० [सं० कालवृन्तक] उरद की तरह का एक मोटा अन्न विशेष (डि.को.)

काळम—सं०स्त्री०—कालिमा, दोष, कलंक।

कालम—सं०स्त्री०—पागलपन। उ०—काला जीव मती कर कालम, कालम कियां सरै की कांम। देणहार हाथे दे देसी, राजी हुवै जिकण दिन रांम।—भीखदांन रतनू

काळमा—सं०स्त्री०—१ पँवार राजपूतों की एक शाखा विशेष। [सं० कालिमा] २ कलंक।

काळमी—सं०स्त्री०—श्याम रंग की घोड़ी। (प्रायः यह वीर पाबू राठौड़ की घोड़ी के लिए प्रयुक्त होता है।) उ०—करण अखियात चढियो भलां काळमी, निवाहण बैण भुज बांधियां नेत।—बां.दा.

काळमुंह, काळमुखो—सं०पु०—वह घोड़ा जिसका शरीर और कान सफेद रंग के हों और मुंह और मस्तक का रंग काला हो (शा.हो.) (अशुभ)

काळमुहा—सं०स्त्री०—१ पँवार वंश की एक शाखा (बां.दा.ख्यात)

काळमुहो—देखो 'काळमुखो' (शा.हो.)

काळमूक—सं०पु० [सं० कालमूक अथवा कालमुक्] अर्जुन (अ.मा.)

काळमेछ—सं०पु०यौ०—हरिवंश के अनुसार यवनों का एक राजा जिसने जरासंध के साथ मथुरा पर आक्रमण किया था। कालयवन

उ०—लाखां बीच आपा' नूं भूपाल 'विजै' भार लीधो। गोपाळ ज्यूं कीधो काळमेछ ने गुड़द।—हुकमीचंद खिड़ियो

कालमोख—सं०स्त्री०—दाख, द्राक्ष (अ.मा.)

काळयौ—वि०—काला, श्यामवर्ण। उ०—मूंघो तो विकादधूं रे, ग्वाळा वीरा, काळयौ रे कसीस, सूंघो तो करादधूं रे चुड़लो हसती दांत रो।—लो.गी.

कालर—सं०स्त्री०—१ घास आदि के संग्रह का सुरक्षित रखने के उद्देश्य से किया गया ढेर. २ एक प्रकार का कीड़ा जो प्रायः पत्थर या मिट्टी में लगता है. ३ स्त्रियों के पैरों में धारण करने का एक प्रकार का चाँदी का या सोने का बना आभूषण. ४ खराब जमीन। उ०—देख विरांणे निवांण कूं, क्यूं उपजावै खीज। कालर अपणी ही भली, जामे निपजै चीज।—अज्ञात. ५ कीचड़, पंक।

उ०—बिहांगड़े ज उवाध्यां, सर ज्यउं पंकुरियांह। कालर काभा कमळ ज्यउं, ढळि ढळि ढेर थियांह।—ढो.मा.

काळरयण—सं०स्त्री०यौ [सं० काल रात्रि] १ दीपावली की रात.

२ शिवरात्रि, कालरात्रि. ३ ब्रह्मा या प्रलय की रात जिसमें सब सृष्टि लय की दशा में रहती है. ४ भयावनी अंधेरी रात्रि ।

काळरात, काळरात्री—सं०स्त्री०यौ०—१ देखो 'काळरयण' ।

२ चौसठ योगिनियों के अन्तर्गत बाईसवीं योगिनी ।

कालरीजणौ—क्रि०अ०—कालर नामक कीड़ा लगने से मिट्टी, पत्थर आदि की बनी दीवार व वस्तुओं पर से पपड़ी उतरना ।

काळ-रौ-चरखौ—वि०—वह जो मरने मारने में तनिक भी हिचकिचाता न हो ।

काळव—सं०पु० [सं० काल] महाकाल, मृत्यु, मौत । उ०—कलमां काळव ग्रहणे कोटां, ईखे मोकळ आयौ ।—महाराणा मोकळ रौ गीत

कालवा—सं०स्त्री०—घोड़े की एक जाति विशेष (रा.ज.सी.)

काळवी—सं०स्त्री०—देखो 'काळमी' (रू.भे.) उ०—काळवी पर त्यार पलांण कियौ, दुत वाळ समार लगांम दियौ ।—पा.प्र.

काळवी—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

काळस—सं०स्त्री० [सं० कालुष्य] कालिमा, कलंक, दोष ।

उ०—आळस न राख्यौ अंग, निराळस चाल्यौ नेक। काळस न लागी काय, सालस सफाई तें ।—ऊ.का.

काळसेय—सं०पु० [सं० कालेशयम्] १ दही (नां.मा.)

सं०स्त्री०—२ छाछ (अ.मा., ह.नां)

काळांण—सं०पु०—१ एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसकी लकड़ी मजबूत होती है । इसके फूल गुलाबी रंग के होते हैं ।

सं०स्त्री०—२ मेघघटा, घनघटा ।

काळा—सं०स्त्री०—१ पँवार वंश की एक शाखा (बां.दा.ख्यात)

काळाआखरियौ, काळाआखरी—सं०पु०—मृत्यु की सूचना देने वाला पत्र या व्यक्ति । उ०—पग अगा मन पूठनै, काळौ वदन कियोह । आयौ काळाआखरी, ओठीड़ौ अइयांह ।—पा.प्र.

कालाई—सं०स्त्री०—१ पागलपन. २ मूर्खता ।

काळाकंबळ—सं०स्त्री०—१ श्री करणीदेवी का एक नाम. २ काली ऊन का बना कम्बल ।

काळाकेस—सं०पु०—१ गुप्तेन्द्रिय के पास उगने वाले बाल. (मि० 'काळाबाळ') २ युवावस्था के बाल ।

काळाखरी, काळाखरियौ—देखो 'काळाआखरी' (रू.भे.)

काळागर—सं०पु०—अफीम (डिं.को.)

काळागळ, काळाग्नी—सं०स्त्री०—१ योगियों के अग्निकुंड की आग. २ मृत्यु की अग्नि. ३ काल, मौत ।

कालापणौ—सं०पु०वि०—पागलपन (अमरत)

काळाबाळ—सं०पु०यौ०—गुप्तेन्द्रिय के आसपास के केश, गुप्तेन्द्रिय के बाल । उ०—इतरै में सेरसिंह बरछी उहां बाही सो काळाबाळां बगल लागी ।—मारवाड़ रा अमरावां री वारता

काळायण—सं०पु०—१ प्रायः वर्षा ऋतु में गाया जाने वाला एक लोक-गीत.

सं०स्त्री०—२ श्याम मेघघटा ।

काळायस—सं०पु० [सं० कालायस] लोह (ह.नां., डिं.को.)

काळाहणि—वि० [सं० काल+अयन] प्रलयकारिणी । उ०—कठठी बे घटा करे काळाहणि, सम्मुहे आमही सांमुही ।—वेलि.

सं०स्त्री०—श्याम रंग की मेघ-घटा ।

काळिगड़ौ, काळिंगौ—सं०पु०—१ एक राग विशेष (ऊ.का.)

२ तरबूज के आकार का वर्षा ऋतु में होने वाला मरुस्थल का एक लता-फल विशेष, हिंदुआनी. ३ पक्षी विशेष ।

उ०—काळिंगड़ौ कू कू करै, करत कोयलड़ी सोर । पपैया तू बोल रे, जित म्हारे आलीजे भंवर रौ मुकाम ।—लो.गी.

काळिंदार—सं०पु०—काला सर्प ।

काळिंद्री—सं०स्त्री० [सं० कालिन्दी] यमुना नदी (ह.नां.) उ०—कंठ पोत कपोत किकहुं नीलकंठ, वडगिरि काळिंद्री वळी ।—वेलि.

काळिका—सं०स्त्री०—१ शक्ति, देवी, चंडिका, काली देवी. २ दुर्गा. ३ कालिख. ४ स्याही मसि. ५ शराब. ६ आंख की पुतली. ७ चार वर्ष की कन्या. ८ दक्ष की कन्या. ९ हर्रे, हरीतकी (ह.नां.)

काळिक्का—देखो 'काळिका' (रू.भे.)

काळिज, काळिजौ—देखो 'काळजौ' (रू.भे.) उ०—अवज्झड़ त्रिज्झड़ भड्ड असंध, कटै कर कोपर काळिज कंध ।—वचनिका

काळियार—सं०पु०—काले रंग का हरिण, कृष्ण मृग ।

वि०—कपटी, धूर्त ।

काळियौ—सं०पु०—१ अफीम । उ०—ऊठगी उम्मेद बैठण ऊठण भेद न पैला भालियौ । बहु गरथ दे'र बांघी विषय करणौ अनरथ काळियौ ।—ऊ.का. २ काली नाग । उ०—इण चरण काळियौ नाथ्यौ, गोपलीला करण ।—मीरां ३ श्रीकृष्ण. ४ शिरीष जाति का एक बड़ा वृक्ष. ५ साधारण घास ।

वि०—काला, श्याम वर्ण (अल्पा०) उ०—करहा काळी काळिया, भुइं भारी घर दूर । हथड़ा कांइ न खंचिया, राह गिळंतइ सूर ।

—ढो.मा.

कालियौ—वि०—देखो 'कालौ' (अल्पा०)

काळींगड़ौ, काळींगौ—देखो 'काळिंगड़ौ' (रू.भे.) ।

काळींदर—सं०पु०—काला सर्प । उ०—फबतौ आयुस स्री माधव फुरमायौ, कांतीचंदर नै काळींदर खायौ ।—ऊ.का.

वि०—श्याम रंग का, काले रंग का ।

काळी—सं०पु०—१ कालीदह का सर्प जिसे श्रीकृष्ण ने नाथा था ।

उ०—कांन न जपियौ नाथण काळी, ठौड़ विन पग हाथ ठरै ।

—ओपौ आढ़ौ

२ अफीम (डिं.को.)

सं०स्त्री०—३ भवानी, काली माता (अ.मा.)

वि०—१ काला, कृष्ण वर्ण (डिं.को.) उ०—काळी कंठळि बादळी, वरसि ज मेलहइ वाउ । प्री विण लागइ बूंदड़ी, जांणि कटारी घाउ ।

—ढो.मा.

२ जबरदस्त । उ०—नार तणं काजळ नीलांबर, हरख करै मन राव हियै । मूछां वळ घातै मेवाड़ो, काळी घड़ा वणाव कियै ।
—महाराणा राजसींघ रो गीत

काली–वि०स्त्री० (पु० कालो) पगली, पागल ।

काळीकंठौ–सं०पु०—एक जाति विशेष का घोड़ा (कां.दे.प्र.)

काळीकांठळ–सं०स्त्री०यौ०—श्याम घटा । उ०—**काळीकांठळ** में दांमणियां दमकी, चित में कांमणियां विरहानळ चमकी ।—ऊ.का.

काळीचकर–सं०स्त्री० [सं० कालिका+चक्र] कालिका देवी का एक अस्त्र विशेष ।

काळीजीरी–सं०स्त्री० [सं० वनजीरक] एक पेड़ की बोंडी के बीज जो दवा के काम आते हैं ।

काळीताली–सं०स्त्री०—एक प्रकार की लाग विशेष जो अकाल पड़ने पर भी वसूल की जाती थी ।

काळीदमण–सं०पु०—काली नाग को दमन करने वाले श्रीकृष्ण ।
उ०—करी मुख रदन **काळीदमण** काढ़िया । मही मूळी कढ़ी जांण माळी ।—बां.दा.

काळीदह, काळीदाह, काळीदौ, काळीद्रह–सं०पु०—वृन्दावन के पास यमुना नदी का एक दह या कुंड जिसमें काली नामक नाग रहा करता था ।

काळीधार, काळीध्रह—देखो 'काळीदह' । उ०— **काळीध्रह** काळी नथे, क्रसना तीर क्रसन ।—अ.मा.

काळीनदी–सं०स्त्री०—एक नदी का नाम ।

काळीपीळी–वि०—१ अशुभ एवं भयंकर. २ तेज एवं गहरी आंधी के लिए प्रयुक्त विशेषण जिसके आगे पीलापन होता है तथा पीछे कालापन ।

काळीबुई–सं०स्त्री०—काले रंग की बुई, एक घास विशेष ।

काळीबोळी–सं०स्त्री०—भयंकर तूफान, झंझावात ।
वि०—१ अंधेरी. २ अशुभ एवं भयंकर ।

काळीमिरच–सं०स्त्री०—गोल मिर्च ।

काळीमूसळी–सं०स्त्री०—एक प्रकार का क्षुप जिसमें बहुत छोटे-छोटे फूल होते हैं (अमरत)

काळीरात–सं०स्त्री०—१ कालरात्रि. २ अंधेरी रात्रि ।
उ०—मूरख भगतां सोर मचायौ, **काळीरात** जरख कुरळायौ ।
—ऊ.का.

काळीसिंध–सं०स्त्री०—चंबल की एक सहायक नदी का नाम ।

काळीसीतळा–सं०स्त्री०—एक प्रकार की चेचक जिसमें फुन्सियों का रंग पहले लाल और पीछे काला होता है ।

काळीसुतन–सं०पु०—गणेश, गजानन (डिं.को.)

काळुऔ–सं०पु०—एक जाति विशेष का घोड़ा (कां.दे.प्र.)

काळूंडी–सं०स्त्री० [सं० कालतुण्ड+रा०प्र०ई] कलंक, बदनामी, अपयश ।

कालूंभा–सं०स्त्री०—मांगणियार जाति का एक भेद विशेष (मा.म.)

कालूऔ—देखो 'कालुऔ' (रू.भे.)—शा.हो.

काळूस–सं०स्त्री० [सं० कालुष्य] १ कलंक. २ गदलापन. ३ पाप ।

काले–क्रि०वि०—देखो 'काल' (रू.भे.)

कालेज–सं०पु०—१ पंवार वंश की एक शाखा. २ इस शाखा का व्यक्ति. [अं० कॉलेज] ३ वह पाठशाला जहां प्रवेशिका से आगे स्नातक आदि की पढ़ाई की व्यवस्था हो ।

काळेजौ—देखो 'काळजौ' (रू.भे.) उ०—नागणी लेती तोप रै अभिमुख धकावै जिण तरह **काळेजा** करां में लीधां प्रांणां री दुरभिक्ष पटकता ।—वं.भा.

कालेट–सं०पु०—ढोली (मिरासी) जाति की एक शाखा (मा.म.)

कालेयक–सं०पु०—[सं०] केसर (ह.नां., अ.मा.)

काळेरौ–सं०पु०—काले रंग का हरिण ।

कालै–क्रि०वि०—कल ।

काळोवा', काळोवाव–सं०पु०—पशुओं में होने वाला एक प्रकार का वात रोग जिसमें उनका खून सूख जाता है और पशु मर जाता है ।

काळौ–सं०पु०—१ काला सर्प । उ०—भागीजै तज भीतड़ा, ओडै जिम तिम अत । किण दिन दीठा ठाकरां, काळा दरड़ करंत ।
—वी.स.

कहा०—काळा री पूंछ माथै पग देवणौ—काले सांप की पूंछ पर पैर रखना; किसी भयंकर एवं क्रोधी व्यक्ति को छेड़ने पर ।

२ हाथी (डिं.को.) ३ काला रंग । उ०—पट दे साबू पूर, खूब चढ़ाय सोधन करै । धोयां होवै न दूर, **काळौ** लागौ किसनिया ।

४ अफीम (डिं.को.) उ०—**काळा** में कोडाय, चाहि खायौ कर चाळा । मोड़ा उघड़या मींत, चिरत थारा चिरताळा ।—ऊ.का.

५ काले रंग का पदार्थ. ६ श्रीकृष्ण. उ०—अब छोगाळा ऊठ, काळा तू प्रतपाळ कर । पांचाळी री पूठ, चढ़ रखवाळी सांवरा ।
—रांमनाथ कवियौ

७ कलंक. उ०—दूधां बोतल भरेह, दुनियां सह दारू कहै । संगत रा फळ एह, **काळौ** लागै किसनिया । ८ कृष्ण वर्ण का, भैरव देव. ९ अपयश का कार्य । उ०—**काळौ** वीसळदे कियौ, दरब सिला तळ दे'र । विमळ कियौ वछराज पह, अरब समपि अजमेर ।—बां.दा.

वि०—१ योद्धा, वीर, बहादुर । उ०—भागै भीच गोरा सिंधां परा रा जिहांन भाळी, दावौ तेगां झाट दे उत्ताळौ दसूं देस । तीसूं नींद न आवै, कंपनी लगाड़ै ताळा, **काळौ** हियै न मावै अंगजी 'कुसळे'स' ।
—सूरजमल मीसण

२ कपटी, धूर्त. ३ श्याम रंग का, काले रंग का, काले रंग संबंधी ।

मुहा०—काळा कोसां—बहुत दूर, लम्बा मार्ग. २ काळौ पीळौ होणौ—क्रोधित होना ।

कहा०—१ इण सूं आगै काळी भींत है—किसी बात की हद या सीमा निर्धारण पर. २ काळा काळा किसनजी(बाप) रा साळा—

जब काले आदमी की बुराई की जाती है तो उसके द्वारा कहा जाता है. ३ काळां की लारां धोळो रैवै तौ रूप नहीं तौ गुण तो लेवै—काले के साथ सफेद रहता है तो रूप नहीं किन्तु गुण तो अवश्य ही आ जाते हैं। संगत के असर पड़ने पर. ४ काळा माथै दूजो रंग को चढ़ैनी—काले रंग पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता। उस व्यक्ति के प्रति जिस पर किसी दूसरे का प्रभाव न पड़े. ५ काळा मूंडा री कूंतरी, हंस हंस लावा लेय। मौ बीती तौ बीतसी, काती आवण देह—किसी की विपत्ती में हँसने वाले के प्रति; आफत कभी न कभी सब पर आती है. ६ काळियो गोरियै कनै बैठै, रंग नहीं अकल तो आवै ही—देखो कहावत नं० ३. ७ काळी ऊन कुमांणसां चढ़ै न दूजो रंग—काली ऊन और दुष्ट व्यक्तियों पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता; दुष्ट की दुष्ट प्रकृति नहीं बदल सकती. ८ काळी कयां ही ढीकै अर गोरी कयां ही ढीकै—दोनों ओर हाँ में हाँ मिलाने वाले व्यक्ति पर. ९ काळी कुत्ती काळो मूंत थनै भींटै थारो मूंत—कुत्ते से सम्बन्ध रखने वाला उसका ही बेटा होता है। जब किसी से पूर्ण असहयोग करने की बात होती है तब यह कहावत कही जाती है.

१० काळी चीज खायां सूं पेट काळो थोड़ो ईज व्है—काली वस्तु खाने से पेट काला नहीं होता अर्थात् जो वस्तु निकल जाने वाली है उसका असर स्थायी नहीं रहता. ११ काळी बऊ नै ओजियोड़ो दूध तीन पीढ़ी तांई लजावै—काली बहू और ओजा हुआ दूध तीन पीढ़ी तक लजाता है. १२ काळी रातां काळा तिळ खादा हैं, जे एवां पूरा करवा है—काली रात्रि में काले तिल खाये जिसे अभी पूरा करना है। किसी का कष्टपूर्ण कार्य जब स्वीकार करना ही पड़ता है तब तब यह कहावत कही जाती है. १४ काळो आखर भेंस बरोबर—अनपढ़ व्यक्ति के लिए. १५ काळो तो किसन भगवांन रो रंग है—काले रंग की प्रशंसा. १६ काळो मूंडो लीला पग—बुरे काम करने वाले का तिरस्कार. १७ काळो सांप आडो आयो है—अपशकुन हो जाने पर यह कहा जाता है. १८ जठै देखै जठै ई कागला काळाइज व्है—कौये सब जगह काले होते हैं. १९ धोळै ऊपर काळा मंडणा—सफेद के ऊपर काले अक्षर लिखे जाना, अनपढ़ व्यक्ति के ऋण लेने पर बनियें द्वारा ऋण-पत्र लिखने के प्रति।

४ नीला. ५ अशुभ या भयंकर (यौ० काळो ऊन्हाळो)

६ जबरदस्त, महान। उ०—वारधेस जोम गाज गाळिया त्रकूट-बासी, राजचील जाळिया तारखी तेज रूंस। कुमखी कुळेसां इंद्र ढाळिया गिरंद काळा, वीर 'सिवा' वाळै रिमां राळिया विधूंस।

—हुकमीचंद खिड़ियो

काळो-वि०—उन्मत्त, पागल। उ०—तीर लागियां सूं इसो काळो हुवो सो राव रै हाथी रै आगलै पग रै मुरचै री सांध में खग री दीवी सो मुरचै रो खालड़ो मांस हाड जाय रड़कियो।

—डाढ़ाळा सूर री वात

काळीकट, काळोकीट काळीकीट, काळोकुट—वि०यौ०—अत्यंत काला। उ०—कपड़ा काळाकीट नीठ उठ उठ नीरोयै।—ऊ.का.

काळो खेत-सं०पु०यौ०—वह कृषि भूमि जहाँ सिंचाई के साधनों का अभाव हो तथा केवल वर्षा के कारण ही फसल उत्पन्न होती हो।

काळो जीरो-सं०पु०यौ०—श्याम वर्ण का जीरा (अमरत)

काळो जुर-सं०पु०यौ०—काला ज्वर (अमरत)

काळो तुड-वि०—अत्यन्त गहरा काला।

काळो धतूरो-सं०पु०यौ०—काले बीज व फलों वाला एक प्रकार का बहुत विषैला धतूरा।

काळो ध्रह-वि०यौ०—अत्यन्त गहरा काला।

सं०पु०—कालीदह नामक यमुना का कुंड।

काळो नमक-सं०पु०—काले रंग का एक प्रकार का बनावटी नमक।

काळोनी-सं०स्त्री०—काले मुंह वाली भेड़।

काळो पांणी-सं०पु०—१ अंग्रेजी काल में दिया जाने वाला एक कठोर दंड जिसके अनुसार दंडित व्यक्ति को अंडमान व निकोबार द्वीप समूह में भेज दिया जाता था। उ०—सात दिनां की बोली लिखदी, काळै पांणी ले जाय, मिळणो व्है तौ मिळो रावजी, फेर मिळण का नांय।—डूंगजी जवारजी री पड़

काळो पांणी-सं०पु०—शराब, मदिरा।

काळो भजरंग, काळो भूंछ, काळो मिट-वि०—अत्यन्त गहरा काला।

उ०—काळा भूंछ तेड़िया भोई, गाडे लिंग चडाव्यउं। आगळि घणी जोतरी ओयळ, ढीली भणी चलाव्यउं।—कां.दे.प्र.

काळो मूंडो-सं०पु०यौ०—काला मुंह, कोई बुरा कार्य करने का कलंक।

मुहा०—१ काळो मूंडो करणो—कुकर्म या पाप या कलंककारी कार्य करना. २ काळो मूंडो होणो—कलंकित या बदनाम होना।

काळो लूण—देखो 'काळो नमक'।

काल्ह, काल्हि, काल्है—देखो 'काल' (रू.भे.) उ०—१ जेहा सज्जण काल्ह था, तेहा नांही अज्ज। माथि त्रिसूळउ नाक सळ, कोइ विणट्ठा कज्ज।—ढो.मा. उ०—२ करहा, चरि चरि म चरि, चरि चरि चरि म झूर। जे वन काल्हि विरोळियउ, ते वन मेल्हे दूर।

—ढो.मा.

उ०—३ बीज हुकम प्रमांण कियो, देस रजपूत छै, तिणनै काल्है फेरा दिरावस्यां।—जगदेव पंवार री वात

काल्हो-वि० (स्त्री० काल्ही) पागल। उ०—ठाला भूला ठोठ कुबुध नहिं छोडै काल्हा। पुण्य गया परवार, व्यसन जद लागा वाल्हा।

—ऊ.का.

कावड़-सं०स्त्री०—१ पुस्तक के आकार की काष्ठ की पट्टियों का बना वह ढांचा जिसमें प्राचीन सिद्धि प्राप्त पुरुष व धर्मात्माओं की प्रतिमायें होती हैं. २ इन प्रतिमाओं को दिखाये जाते समय पढ़ी जाने वाली कविता. ३ बोझा उठा कर ले जाने के लिए तराजू के आकार का एक ढांचा. ४ कुबड़ा।

वि०—१ कुटिल. २ बुरा।

कावड़ि-सं०स्त्री०—एक जाति विशेष (कां.दे प्र.)

काबड़ियौ-सं०पु०—१ कावड़ (देखो 'कावड़' (१)) दिखाने वाला अथवा दिखाते समय कविता पढ़ने वाला. उ०—रात दिवस भीची रहै, मूठी मावड़ियांह। ज्यांरै धन किण विध जुड़ै, कीरत **काबड़ियांह**।—बां.दा.

२ वह व्यक्ति जो तराजू के आकार के ढांचे में बोझा उठा कर ले जाय।

कावतरौ-सं०पु०—कपट, छल, धोखा।

कावय—देखो 'काव्य' (रू.भे.)

कावर-सं०स्त्री०—एक पक्षी विशेष जिसका मांस कुक्कर खांसी वाले को खिलाया जाता है (डि.को.)

कावरआळौ-वि०—१ कपटी, चालाक। उ०—सज्जण सेरी सांकडी, **कावरआळौ** लोग। नैणां मुजरौ मांनजे, नांहि मिळण री जोग।

२ धूर्त। —जलाल बूबना री वात

कावळ-वि०—बुरा, निकृष्ट। उ०—बाइयां मत **कावळ** वैण बकौ, धुर आज हुसी मोय हूं त धकौ।—पा.प्र.

यौ०—आवळ-कावळ।

मुहा०—आवळ-कावळ बोलणौ—अपशब्द कहना, अश्लील गालियां निकालना।

कावळयार-वि०—१ कपटी. २ चालाक, धूर्त।

कावळयारी-सं०स्त्री०—चालाकी, धूर्त्तता।

कावळाई-सं०स्त्री०—१ बदमाशी. २ कुटिलता।

कावळियार, कावळियाळ-वि०—१ उत्पात करने वाला, विघ्न करने वाला. २ कुटिल, बदमाश. ३ पाखंडी. ४ दोषी. ५ खोटा।

कावळियौ-वि०—१ उल्टा, विरुद्ध. २ देखो 'कावळियाळ'।

कावळी-सं०पु०—१ काबुल देशोत्पन्न एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

सं०स्त्री०—२ तरंग, हिलोर (ह.नां.)

कावळौ-वि०—१ भयंकर. उ०—नाळियां कड़क भुज भडाळां अड़क नभ, धरा पुड़ धड़क अह धड़ै धूरा। कड़ा बरमां बड़क रुड़क गंव **कावळा**, भमर किण सिर असी कड़क भूरा।

—रावत अमरसिंह री गीत

सं०पु०—युद्ध में बजाया जाने वाला बाजा विशेष। उ०—कांम रा जोध बांना भरर कुंजरां, विकट भाट **कावळां** सबद वागौ। अरियणां पछट सीमाड़ धर ऊचंडं। अरि नह मंडैसी सार आगै।—अज्ञात

काविल—१ देखो 'काबिल' २ देखो 'काबुल' (रू.भे.)

कावेरी-सं०स्त्री०—१ एक नदी का नाम (अ.मा.) २ वेश्या. ३ हल्दी. ४ संपूर्ण जाति की एक रागिनी (संगीत)

कावौ-सं०पु० [फा० कावा] घोड़े को एक वृत्त में चक्कर देने की क्रिया या ढंग. २ चक्कर, फेरा। उ०—जत धार जावौ करे **कावौ** खबर लावौ खोद।—र.रू.

काव्य-सं०पु० [सं०] १ वह वाक्य या रचना जिससे चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो. २ वह पुस्तक जिसमें कविता हो. ३ चौबीस मात्राओं का एक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण की ग्यारहवीं मात्रा लघु होती है (डि.को.) ४ बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला।

कास-वि०—श्वेत, सफेद* (डिं.को.)

सं०स्त्री०—१ खांसी का रोग।

सं०पु०—२ एक तृण विशेष।

कासग-सर्व०—किसकी। उ०—सरग इंद्र सलहियै राव पायाळै वासग। मात लोक नूं राव कहां ओपम **कासग**।—नैणसी

कासगर-सं०पु०—पूर्वी तुर्किस्तान का एक शहर।

कासटिया—देखो 'कसारा' (मा.म.)

कासत—देखो 'कास्त' (रू.भे.)

कासतकार—देखो 'कास्तकार'।

कासप—सं०पु०—कश्यप ऋषि।

कासपी-सं०पु० [सं० काश्यपि] १ गरुड़ (डिं.को.) २ सूर्य।

कासब—देखो 'कासप' (रू.भे.)

कासब-सुतन-सं०पु०यौ०—सूर्य, भानु (डिं.को.)

कासबांणी-सं०पु०—१ सूर्य्य। उ०—ईसरांणी चढ़घो पांणी सादांणी मेवाड़ आतां, **कासबांणी** हींदवै अंगांणी तोल कीग।—अज्ञात

२ गरुड़. ३ गरुड़ का बड़ा भाई।

कासमिर, कासमीर-सं०पु०—काश्मीर।

कासमीरी-वि०—काश्मीर का, काश्मीर प्रदेश संबंधी।

सं०पु०—काश्मीर देश में उत्पन्न घोडा (शा.हो.)

कासमेरी-वि०—देखो 'कासमीर'।

सं०स्त्री०—१ एक देवी का नाम. २ एक प्रकार का मोटा ऊनी कपड़ा जो काश्मीर में बुना जाता है।

कासर-सं०पु० [सं० कासार] तालाब (अ.मा)

कासळक, कासळकौ-सं०पु०—वह ऊँट जो मस्ती में हो और दांतों को परस्पर टकरा कर ध्वनि करता हो।

कासलीवाळ-सं०पु०—दधीचि ब्राह्मणों का एक भेद (मा म.)

कासार-सं०पु० [सं०] तालाब। देखो 'कासर' (डिं.को.)

उ०—छूटी आसारां **कासारां** छिलती। पड़ती परनाळां पहुवी, पिलपिलती।—ऊ.का.

कासारी-सं०स्त्री० [सं० कासर+ई] भैंस, महिषी। उ०—सुरभी **कासारी** सुख लेगी, देई वीलोई दोई दुख देगी।—ऊ.का.

कासि—देखो 'कासी' (रू.भे.)

कासिका-सं०स्त्री०—वामन और जयादित्य रचित पाणिनीय व्याकरण पर एक प्रसिद्ध वृत्ति ग्रंथ।

कासिद-सं०पु०—१ पत्रवाहक, संदेशवाहक (डिं.को.) उ०—अमरसिंहजी कन्है **कासिद** गया सौ सारा समाचार मालूम हुवा।

—अमरसिंह री वात

२ इरादा करने वाला (मा.म.)

कासिप—सं०पु० [सं० कश्यप] १ कश्यप ऋषि (रू.भे.) [सं० कच्छप] २ कछुमा।

कासिप-सुतन, कासिपी—सं०पु० [सं० कश्यप-सुत] १ सूर्य. २ गरुड़ (ह.नां.)

कासिब—देखो 'कासिप' (१)

कासींद—देखो 'कासिद' (रू.भे.) उ०—कमंध प्रगंजी वमनै कहियो, वड दाता कीरत चो वींद। वाक तुहाळी करंडी वाळो, काळो भूंबाऊं कासींद।—ग्रोपो ग्राढ़ो

कासींदी—सं०स्त्री०—१ संदेशवाहक अथवा पत्रवाहक का पद. उ०—करी हमाली कौल, कासींदी बावन करी। तें 'मांना' नभ तोल, ग्रवी जिका घर वीदगां।—अज्ञात २ इस कार्य की मजदूरी

कासी—सं०स्त्री०—१ वाराणसी नामक शहर का प्राचीन नाम जिसकी गिनती तीर्थों के अंतर्गत की जाती है (ग्र.मा.)
पर्याय०—वाणारस, वाणारसि, वाराणसी, सिवपुरी।
२ कास रोग, खांसी।
वि०—खूब, बहुत। उ०—सींगण कांइ न सिरजियां, प्रीतम हाथ करंत। काठी साहंत मूठि-मां, कोडी कासी संत।—ढो.मा.

कासीकरवट, कासीकरवत, कासीकरोत—सं०पु० [सं० काशी करपत्र] १ काशी का एक तीर्थस्थान। यहां प्राचीन समय में लोग आरे से अपने को चिराया करते थे. २ वह आरा जिससे मनोरथ या मोक्ष के लिए बनारस में जाकर महादेव के समक्ष कटा जाता था।

कासीका—देखो 'कासी' (१)

कासीद, कासीदक—देखो 'कासिद' (रू.भे.) (डिं.को.) उ०—कासीदां अगाऊ आंणि सेवा नै सुणाई।—शि.वं

कासीदी—देखो 'कासींदी'।

कासीदौ—देखो 'कासिद' (रू.भे.)

कासीपत, कासीपति—सं०पु०—शिव, महादेव।

कासीफळ—सं०पु०—कुम्हड़ा, कद्दू।

कासीस, कासीसक—सं०पु० [सं०] कासीस नामक धातु (डिं.को.)

कासुं, कासूं—क्रि०वि०—१ कैसे, किम प्रकार। उ०—करहा कहि कासूं करां जो ए हुई जकाह। नरवर-केरा मांणसां, कारं कहिस्यां जाह।—ढो.मा. २ किस कारण। उ०—बहु बंधाळू ग्राव घरि, कासूं करइ वदेस। संपत सघळी संपजे, ग्रा दिन कदी लहेस।—ढो मा. ३ क्या? उ०—१ हमें जो रावजी रै ख्यांत लागी तो इण पसू रो कासूं।—डाढ़ाळा सूर री वात उ०—२ तद इण आपरा थुरमा रो दुसालो ढोलिये सूं उठाय ग्रोढ़ायो। पायल आपरी उतारी पड़ी थी सो उठाय पग में घाली। तद कुंवरसी कही—कासूं करो छो।—कुंवरसी सांखला री वारता

कासू—क्रि०वि०—देखो 'कासूं' (रू.भे.)
सं०स्त्री०—१ बरछी (वं.भा.) २ शक्ति नामक शस्त्र (डिं को.)

कासौ—सं०पु० [फा० कासः] प्रायः मुसलमान फकीरों के पास रहने वाला दरियाई नारियल का भिक्षा-पात्र (मा.म.)

कास्टघटन—सं०पु०—बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला।

कास्टफळ—सं०पु० [सं० काष्टफलं] दारू, द्राक्षा (ग्र.मा.)

कास्टा—सं०स्त्री०—१ देखो 'कस्ट'. २ दिशा (ग्र.मा.)
वि०—कष्टदायक। उ०—नग्री सोनमेनी पछै गांम नांही, महा कासटा घोर ऊजाड़ मांही।—मे.म.

कास्ठ—सं०पु० [सं० काष्ठ] १ लकड़ी, काठ. २ ईंधन।

कास्ठा—सं०स्त्री० [सं० काष्ठा] १ अवधि, हद. २ उत्तम. ३ चोटी या ऊंचाई. ४ उत्कर्ष. ५ अठारह पल का समय या कला का ३० वां भाग. ६ चंद्रमा की एक कला. ७ दिशा (वं.भा.)

कास्त—सं०स्त्री० [फा० काश्त] कृषि, खेती।

कास्तकार—सं०पु० [फा० काश्तकार] कृषक, खेतिहर, किसान।

कास्मीरौ—देखो 'कासमीरौ' (शा.हो.)

कास्याबंत—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा जो अशुभ माना जाता है। (शा.हो.)

काह—सं०स्त्री० [सं० काश] नदियों के किनारे कीचड़ में उत्पन्न होने वाला एक प्रकार का घास।
क्रि०वि०—१ कहां से। उ०—महातत तुझ न जांणै माहु, कियो तुझ केण अयो तू काह।—ह.र. २ या, अथवा।
सर्व०—कौनसा। उ०—ग्राडो समद अथाह, अधबिच में छोडी अठै। कहोजी कारण काह, जोगण करगौ जेठवा।

काहण—क्रि०वि०—क्यों, किसलिए।

काहर—सं०पु०—कहार नामक एक जाति जिसके व्यक्ति प्रायः पालकी उठाने का कार्य करते हैं, इस जाति का व्यक्ति।

काहरऊ—सं०पु०—काढ़ा, क्वाथ। उ०—पंच सखी मिळी बइठी छइ आई। काहरऊ पीवौ न ऊलद खाई।—वी.दे.

काहरां—क्रि०वि०—कब। उ०—राजा सूं काहरां मेळिस्यो, कह्यो जी, वेगो ही मेळिस्यां।—सयणी री वात

काहल—सं०पु०—१ युद्ध के समय बजाया जाने वाला एक प्रकार का बड़ा ढोल। उ०—भिड़यां कटक रिण काहल वाजइ, वाहइ खांडाधार। सांतळमीहि सांफळउ जीतूं, मारिया म्लेछ अपार।—कां.दे.प्र.
२ दो लघु के गणण के द्वितीय भेद का नाम (डिं.को.)
३ शीघ्रता। उ०—हालण रै वास्ते सारो लोक ग्रातुर छै। महाराज निपट काहल करै छै।—पलक दरियाव री वात

काहळणौ—क्रि०अ०—१ भयभीत होना (र.ज.प्र.)
२ कम्पायमान होना।

काहलाई—सं०स्त्री०—पागलपन। उ०—घड़ी दोय रात गयां हूं हाते ही आऊं छूं। थे काहलाई मतां करज्यो।—पलक दरियाव री वात

काहलि—वि० [अ० काहिल] १ डरपोक, कायर. २ काहिल, सुस्त. ३ अधीर।

काहुल्यां—सं०पु०—१ पंवार या पंवार वंश की एक शाखा. २ इस शाखा का व्यक्ति।

काहाड़णौ, काहाड़बौ—क्रि०स०—कहलाना। उ०—सुरतांणोत लियण ग्रद सबळौ। सबळां खळां उतारण सीस। मुड़वा तूझ तणौ मेड़तिया, दुवयण न कहाड़े जगदीस।—बां.दा.

काहिक—सर्व०—कौनसी, किस। उ०—ग्रावै तो सपूत छां, ज्यूं त्यूं कर पेट भरां छां, पिण काहिक ठौड़ छौ।—नैणसी

काहिल—क्रि०वि०—तंग, परेशान। उ०—में बादसाह सलामत री मरजी देख ग्ररज करसूं, तुम काहिल मतां करौ।—ग्रमरसिंह री वात

वि० [ग्र० काहिल] १ सुस्त, ग्रालसी. २ घायल। उ०—काहिल बांण कूक ग्रग कीधी, दौड़ लछण ग्राग्या मो दीधी।—र.ज.प्र.

काही—सर्व०—किसी।

काहुल—देखो 'काहल' (रू.भे.) उ०—खिवै फळ साबळ नागा खाग, रुड़ै दळ काहुल सिंधवराग।—वचनिका

काहुळणौ, काहुळबौ—क्रि०ग्र० [सं० क्रोध विह्वलम्] १ भिड़ना, युद्ध करना। उ०—लिए रस जोधा जोम लंकाळ, कमधज काहुळिया किरणाळ।—गो.रू. २ कोप करना, क्रोध करना।

उ०—१ समरै न जिके नर सांमळियौ, क्रत ग्रंत जिकां सिर काहुळियौ। क्रत ग्रंत करै की काहुळियौ, समरै जिके नर सांमळियौ।—र.ज.प्र. उ०—२ सक भड़ बचन सुणेह, काहुळियौ 'वीरमा' कमंध। मयंद तणै सिर मेह, ग्रावै जांण ग्रगाजियौ।—गो.रू.

काहू—सर्व०—१ क्या। उ०—सांभळ वित समपै नहीं, बडकां तणां बखांण। काहू जिकां कुलीणता, उर मांझल तू ग्रांण।—बां.दा. २ कैसा. ३ कोई. ४ किसी।

वि०—कुछ। उ०—कोई काहू पाव ही, देही काहू दांन।—बां.दा.

काहूल—देखो 'काहल' (रू.भे.) उ०—चौरंग वार ग्रचळ चूंडावत, वागौ काहूल चारूं वळ।—ग्रज्ञात

काहे, काहेर—क्रि०वि०—क्यों। उ०—१ तौ बादसाह फरमाई-मना कर देवौ। ग्रभी काहे कौ सीख देणी है।—ग्रमरसिंह री वात

उ०—२ मुंहता रा बेटा राति चार पहर मारग चालिया। काहेर नहीं सुं किसी संचीताई।—चौबोली

काहेली—सं०स्त्री० [सं० काहेऽऽलय] १ मटकी (डिं.को.) २ शराब का नशा उतरने के बाद की कमजोरी ग्रथवा खुमारी।

कि—सर्व० [सं० किम्] क्या। उ०—कि कहिसु तासुं जसु ग्रहि थाको, कहि नारायण निरगुण निरलेप।—वेलि. टी.

किउंकि—वि०—१ कुछ। उ०—तिण करि नै सुरसरि वेलि बराबर नहीं किउंकि वेलि ग्रधिकी।—वेलि. टी. २ क्योंकि।

किंकण, किंकणी—सं०स्त्री० [सं० किंकिणी] करधनी, मेखला (ग्र.मा.) उ०—किंकण रणकै कमर री, ससि वदनी री सेज।—र. हमीर

किंकर—सं०पु० [सं० किङ्कर] १ दास, सेवक (ग्र.मा.) उ०—जगपत दीधो जोय, रूपनगर 'नवलेस' रै। किणी ठिकांणै कोय, मींढ न किंकर मोतिया।—रायसिंह सांदू २ राक्षसों की एक जाति।

क्रि०वि०—कैसे (रू.भे. 'कीकर')

किंकरि, किंकरी—सं०स्त्री०—दासी, सेविका (ग्र.मा.) (पु० 'किंकर')

किंगार—सं०स्त्री० [सं० कगार (कगाल)] कगार, किनारा, तट (किसी जलाशय या नदी का) उ०—जळ थळ थळ जळ हुइ रह्यउ, बोलइ मोर किंगार। सांवण दूभर हे सखी, किहां मुझ प्रांण ग्राधार।

—ढो.मा.

किंचित—वि०—थोड़ा, कुछ।

किंचुळ—सं०पु० [सं० किञ्चुलुक] केंचवा (डिं.को.)

किंजळक, किंजळिक—सं०पु० [सं० किञ्जल्क] १ केसर. २ पराग, पुष्परज। उ०—१ कुंकुम ग्रखित पराग-किंजळक-प्रमुदित ग्रति गायति पिक।—वेलि. उ०—२ कुंकु ग्रर ग्रखित चाहीयै तहां पराग ग्रर किंजळिक।—वेलि. टी.

किंदर—सं०पु० [सं० किन्नर] १ देखो 'किन्नर' (रू.भे.)

सं०स्त्री० [सं० कंदरा] २ कंदरा, पहाड़ी-गुफा।

किंदरग्रह—सं०पु०यौ० [सं० कंदरा+गृह] १ वह जिसका घर कंदरा में हो. २ सिंह (ना.डिं.को.)

किंदू—सं०पु०—कटे हुए ग्रनाज के पौधों का या घास का गोलाकार बनाया हुग्रा ढेर (ग्रल्पा० 'किंदूड़ौ')

किंदूड़ौ—देखो 'किंदू' (ग्रल्पा०)

किंधू—ग्रव्यय—१ या, ग्रथवा. २ मानो।

किंनरेस—सं०पु० [सं० किन्नर+ईश] कुबेर (ह.नां.)

किंना—देखो किना' (रू.भे.) उ०—कोपै हणूं ग्रासुरां विभाड़वा ग्रागियौ किंना, सिंधुरां पाड़ेवा, सूतौ जागियौ सादूळ।

—सूरजमल मीसण

किंपाक—सं०पु०—एक प्रकार का वृक्ष विशेष। उ०—वैरी रा मीठा वचन, फळ मीठा किंपाक। वे खाधां वे मांनियां, हुवा ग्रतांत खुराक।

—बां.दा.

किंपुरखेस, किंपूरखेसर, किंपुरुख—सं०पु० [सं० किंपुरुषेश] कुबेर (ह.नां.) [सं० किंपुरुषेश्वर] किन्नर (ह.नां.)

किंपुरस—सं०पु०—किन्नर। देखो 'किन्नर' (डिं.को.)

किंपुरसेस—सं०पु० [सं० किंपुरषेश] कुबेर (डिं.को.)

किंबाड़ी—सं०स्त्री० [सं० कपाट+रा०प्र०ई] १ कपाट (ग्रल्पा०) २ बंधन। उ०—प्रकट परम गुरु पारब्रह्म, परम सनेही सोय। ग्राप दिखावै ग्राप कूं, करम किंबाड़ी होय।—ह.पु.वा.

किंबदंती—सं०स्त्री०—दंतकथा, जन-श्रुति।

किंवाड़—सं०पु० [सं० कपाट] १ द्वार की चौखट पर जड़े हुए लकड़े के पल्ले, कपाट. २ रक्षक। उ०—बजरंगी किंवाड़ भू मेवाड़ भुजा डंड बंका, बरणां बिभाड़ वीरभद्र सौ बंकाड़।

—हुकमीचंद खिड़ियौ

किंवाड़ी—१ देखो 'किंवाड़' (१) (ग्रल्पा०) २ देखो 'किमाड़ी'।

किंसारी—देखो 'कसारी' (रू.भे.)

किंसुक-संपु० [सं० किंशुक] १ पलाश, ढाक (डिं.को.) २ तोता, सुग्गा (ग्र.मा.)

वि०—लाल* (डिं.को.)

किंसुख-संपु०—देखो 'किंसुक' (रू.भे.) उ०—कंत संजोगरिए किंसुख कहिया, विरहरिए कहे पळास बन।—वेलि.

वि०—कुछ।

किंही-सर्व०—किसी। उ०—फतह कर ऊभा रहिया सो तौ कदेक किंही री ग्रासंग कोई हुई नहीं।—डाढ़ाळा सूर री वात

कि-संपु०—१ कृष्ण (एका०) २ इंद्र (एका०) ३ सूर्य (एका०) ३ शिकारी (एका०) ४ गुरण (एका०) ५ विचार (एका०)

संस्त्री०—६ लक्ष्मी (एका०) ७ ग्रग्नि (एका०) ८ निंदा (एका०) ९ जुगुप्सा (एका०)

वि०—१ प्रसन्न (एका०) २ तुच्छ (एका०) ३ वृथा (एका०)

सर्व०—क्या। उ०—" उज्जळ ता घोटड़ा, करहड चढ़ियउ जाहि। तइं घर मुंध कि नेहवी, जे कारणि सी खाहि।—ढो मा.

ग्रव्यय—१ मानों। उ०—वाघ ग्रवित किरण हि वतळायो, प्रळै समो फिर ग्रंतक ग्रायो। सिव चै नयरा कि ग्राग सिळग्गी, ज्वाळा सेस फणे फिर जग्गी।—रा.रू. २ या ग्रथवा। उ०—सरसती न सूझै ताइ तूं सोझै, वाउवा हुग्रौ कि वाउळौ।—वेलि.

३ कैसे, किस प्रकार। उ०—जगदंबा जहं ग्रवतरी, सो पुर वरणि कि जाय। रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख, नित नूतन ग्रधिकाय।—ग्रज्ञात

किग्रइ-(प्रा०रू०)—'करणौ' का वर्तमानकालिक कृदंत रूप करते हुए। उ०—जिम जिम मन ग्रमले किग्रइ, तार चढ़ती जाइ। तिम तिम मारवरणी-तरणइ, तन तरणापउ थाइ।—ढो.मा.

किग्रावरी—देखो 'किरियावरी' (रू.भे.)

उ०—कौंग्रर भोज करंत किग्रावरी पूर तपि परिपाळणौ।—ल.पिं.

किउं, किऊ-क्रिवि०—१ क्यों। उ०—तइं ग्ररादिट्ठा सज्जरणां, किउं कर लग्गा पेम।—ढो.मा.

कहा०—किउं पग छोडौ हो—हार मान कर कार्य या स्थान छोड़ने पर. २ किउं भुंडा व्है भांणजा जियां रा मांमा मतवाळा—जिनके मामा मतवाले हों उनके भानजे क्यों बुरे हो सकते हैं.

२ कैसे, किस प्रकार।

वि०—कुछ। उ०—पांखड़ियां ई किउं नहीं, दैव ग्रवाडू ज्यांह। चकवी कइ हइ पंखड़ी, रयरिए न मेलउ त्यांह।—ढो.मा.

किकनौ-संपु०—पतंग (रू.भे. 'किनकौ')

किकर-क्रिवि०—कैसे। उ०—यो खरड़ो करड़ो घणो, किकर बणै बणाव।—सगरांमदास (रू भे. 'कीकर')

किकौ-संपु०—१ लड़का, पुत्र।

किखि-संपु० [सं० कीश] बंदर। उ०—कहां जेठ दिनकपू, कहां खद्योत खिसाया। कहां सिंह गजरिपु, कहां किखि दुब्बळ काया।—बं.भा.

वि० [सं० कृश] दुर्बल, कृश।

किड़क-संस्त्री०—१ पशुग्रों को हाकने के निमित्त की जाने वाली ध्वनि. २ ताकत, बल, शक्ति।

किड़कणौ, किड़कबौ—देखो 'कड़कणौ' (रू.भे.) उ०—ग्रखंट ग्रजकौ ग्रावियौ, ताता खड़ै तोखार। काळा भिड़िया किड़क नै, धीब लियौ खग धार।—ग्रज्ञात

किड़कणहार, हारौ (हारी), किड़कणियौ—वि०।

किड़काणौ, किड़काबौ—स०रू०। देखो 'कड़काणौ'।

किड़किग्रोड़ौ, किड़कियोड़ौ, किड़क्योड़ौ—भू०का०कृ०।

किड़किड़ी-संस्त्री०—१ क्रोध में दांत पीसने की क्रिया या भाव।

क्रि०प्र०—खाणी, पड़णी।

२ सर्दी के कारण दांत किटकिटाने का भाव।

किड़कियोड़ौ-भू०का०कृ०—कड़का हुग्रा। देखो 'कड़कियोड़ौ' (स्त्री० किड़कियोड़ी)

किड़णौ, किड़बौ-क्रि०स०—घास-फूस की छत छाने के लिए पहले व्यवस्थित रूप से लकड़ियां या खपच्चियां लगाना।

किड़ी—देखो 'कीड़ी' (रू.भे.)

किड़ीनगरौ—देखो 'कीड़ीनगरौ' (रू.भे.)

किचकारी-संस्त्री०—१ पशुग्रों को हांकने के निमित्त मुंह से की जाने वाली किचकिच की ध्वनि. २ देखो 'किचकिच' (२)

किचकारौ-संपु०- (ग्रनु०)—१ देखो 'किचकारी' (रू.भे.) २ देखो 'किचकिच'

किचकिच-संस्त्री० (ग्रनु०)—१ पशुग्रों को हांकते समय की जाने वाली ध्वनि विशेष. २ लजालु स्त्रियों द्वारा नकारात्मक उत्तर देते या किसी का ध्यान ग्रपनी ग्रोर ग्राकर्षित करने के उद्देश्य से की जाने वाली ध्वनि विशेष ३ विवाद, तकरार।

किचकिचावणौ, किचकिचावबौ-क्रि०स०—क्रोध में दांत पीसना।

किचकिचाहट-संस्त्री०—१ क्रोध में दांत पीसने की क्रिया या भाव. २ विवाद, तकरार।

किचकिची-संस्त्री०—१ ग्रत्यन्त क्रुद्ध होने का भाव।

क्रि०प्र०—खाणी।

उ०—तरवार तांणी किचकिची खाई, परण कांई सोच'र पाछौ बैठ गयौ।—वरसगांठ २ किसी वस्तु या पदार्थ (जिसमें घी की मात्रा कुछ ग्रधिक हो) के बार-बार सेवन के उपरांत या ग्रधिक सेवन से होने वाली ग्ररुचि।

किचरणौ, किचरबौ-क्रि०स०—रौंदना, कुचलना।

किचरणहार, हारौ (हारी), किचरणियौ—वि०।

किचराणौ, किचराबौ, किचरावणौ, किचरावबौ—स०रू०—प्रेरणार्थक प्रयोग।

किचरियोड़ौ, किचरियोड़ौ, किचरयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

किचरीजणौ, किचरीजबौ—कर्म वा० ।

कहा०—कंई आपरी आंगळी किचरीजी—क्यों आपको कोई पीड़ा पहुँची ?

किचरियोड़ौ–भू०का०कृ०—कुचला हुआ । (स्त्री० 'किचरियोड़ी')

किचळावणौ, किचळावबौ–क्रि०अ०—रद्द होना । उ०—कर कर हूं भांडा सासए किचळावै, बाजै मूंभाड़ा बासए बिचळावै ।—ऊ.का.

किटकड़ौ–सं०पु०—सिर, मस्तक, खोपड़ी (क्षेत्रीय) ।

किटकिट—देखो 'किचकिच' (रू.भे.)

किटिभ–सं०पु०—मत्कुए (डि.को.)

किट्टी–सं०स्त्री० [सं० किट्ट] कान का मैल (क्षेत्रीय)

किठड़ै–क्रि०वि०— कहाँ, किस जगह । उ०—किठड़ै सूं बीज मंगावियौ ए है के...भोळी किठड़े रे वाग लगावियौ ए ।—लो.गी.

किए–सर्व० [सं० किम्] १ किस । उ०—किण संग खेलूं होळी, पिया तज गये हैं अकेली ।—मीरां

कहा०—१ किए-किए रै मूंडै हाथ दे—दुनिया बहुत बड़ी है, कोई कुछ आलोचना करता है कोई कुछ, किसी को आलोचना करने से रोका नहीं जा सकता. २ किए री तेलए नै किए री पळी—किस की तेलन और किस का टीपरा । विशेष कोई संबंध न होने पर. ३ किए री मा अजमो खायो है—कौन मेरे मुकाबले में आयगा अथवा मेरे मार्ग में बाधा उपस्थित करेगा, इतनी हिम्मत किसमें है. ४ किए रै ही छात चूवै, किए रै ही छपरो चूवै—किसी की छत टपकती है तो किसी का छप्पर टपकता है; कुछ न कुछ कमजोरी प्रायः प्रत्येक मनुष्य में हो सकती है क्योंकि आखिर मनुष्य मनुष्य है. ५ किए रौ ही हाथ चालै नै किए रौ ही मूंडौ चालै—किसी का हाथ चलता है व किसी का मुँह चलता है; कोई मुँह से गालियाँ निकालता है तो किसी को पीटने का अभ्यास होता है. ६ किणी बात री मार खोटी—चुभते हुए शब्द अधिक तकलीफ देते हैं ।

२ किसने । उ०—कहौ तई करुणामै केसव, सीख दीध किण तुम्हां सूं ।—वेलि.

कहा०—किए पीळा चावळ दिया हा—किसने आपको निमंत्रण दिया था । बिना कहे या बिना निमंत्रण आने के बाद किसी प्रकार का झगड़ा हो जाने पर ।

३ कौन ।

सं०पु० [सं० किए] किसी वस्तु के लगने, चुभने व रगड़ पहुँचने का चिन्ह या निशान (मि० 'आईठांए') उ०—हथळेवै ही मूठ किण, हाथ विलग्गा माय । लाखां बातां हेकलो, चूड़ो मो न लजाय ।—वी.स.

४ जख्म ठीक होते समय आने वाला कठोर भाग (डि.को.)

किएकती–सं०स्त्री०—करधनी ।

किएको–सं०पु०—१ कए, खंड, टुकड़ा. २ पतंग (रू.भे.) ३ शक्ति, बल ।

किएकणौ, किएकबौ, किएकावणौ, किएकावबौ–क्रि०अ०—रोनी सूरत लिए बार-बार चिढ़ना. २ कृपएता दिखाना. ३ पछतावा करना ।

किएकणौ, किएकबौ–क्रि०अ०—कब्ज या किसी अन्य कारए से मल न उतरने पर टट्टी जाते समय कुछ जोर लगाते हुए मुँह से टसक के समान आवाज निकलना ।

किएयक–सर्व०—१ किसी । उ०—बोहरौ किणयक मुगळ रौ, वराक दिली मझ बास । दांम लिया उए बोल दस, असपत औरंग पास । २ कोई । —बां.दा.

क्रि०वि०—कभी । उ०—वयए सगाई वेस, मिळ्यां सांच दोसन मिटै, किणयक समै कवेस, थपियौ सगपए ऊथपै ।—र.रू.

किएसारी—देखो 'कसारी' (रू.भे.)

किएहिक–क्रि०वि०—किसी प्रकार । उ०—सांवरिया हंस पड़्यौ है फंद में, लाल म्हारा रै किणहिक भांति निकाळ ।—गी.रां.

किएहेक–सर्व०—किसी । उ०—गंगोदक री कावए भरिनै आएतौ हुतौ, सु किणहेक सहर वटाऊ थकौ ।—नैएसी

किए–क्रि०वि०—किधर ।

किएारौ–सं०पु०—अनाज का बखार जो बांस या लकड़ी की खपच्चियों से बनाया जाता है । इसे प्रायः ऊपर से लेप दिया जाता है ।

किणि–सर्व०—१ किस. २ कौन ।

किणियन–सर्व०—किसी ने ।

किणियाणी—देखो 'किनियांणी' (रू.भे.)

किणियौ–सं०पु०—१ मोट के सूंड की रस्सी से घूमने वाली चकरी की धुरी २ लोहे का कीला ।

किणी–सर्व०—देखो 'किणि' (रू.भे.) उ०—हलोज किणी रै नंह हली हली न किए रै हत्थ । मूरति मेहाई तणी, आई गयणे पत्थ ।
—करणीरूपक

किणीक–सर्व०—१ किस । उ०—कारए किणीक बोल, मारै काय आपए मरै ।—नैणसी २ कोई ।

क्रि०वि०—कभी ।

किणीयक–सर्व०—कोई । उ०—तिका हुई विसधी तरै, वसुधा हुआ बखांए । मूंडा आगळ 'माल' रै, किणीयक कीधी आंए। —वी.मा. (रू.भे, 'किणियक') ।

किणै–सर्व०—किस, किसको । उ०—किणै न दीठौ कांनवौ, सुण्यौ न लीला संध । आप बंधाणा ऊखळै, बीजा छोडए बंध ।—ना.द.

किणौ–सर्व०—किसका । उ०—लुटै साथ जांणै अमीढ़ार लीधौ, किणौ वेएनाद सजीवन्न कीधौ ।—ना.द.

कित–क्रि०वि०—कहाँ, किधर । उ०—१ कित है बंबई उडिया कळकतौ, माढू मुरधरिया करियौ मिळ मत्तौ ।—ऊ.का.

उ०—२ कांई करूं कित जाऊं री सजनी नैए गुमाया रोय ।
—मीरां

वि०—कितने ।

कितएक–सर्व०—कितने ।

कितणा–वि०—कितने ।

कितनेक–वि०—कितने ही, बहुत ।

कितमक–सं०स्त्री० [फा० किस्मत] किस्मत, भाग्य । उ०—कितमक लीख्या सो भोगवी, विण भोग्यां नहीं छूटसी पाप ।—वी.दे.

कितरउ–सर्व०—कितना । उ०—मु बूढ़ा हुम्रां को वेसास को मत करो, देखो माता पिता कितरउ चूकै छै ।—वेलि.

कितराइक–वि०—१ कुछ. २ कितने ही । उ०—पछे कितराइक दिन ने राखायच हालीयो ।—रा.वं.वि.

कितराई–वि०—कितने ही ।

कितराक, कितराहेक–वि०—कितने । उ०—यो सुख दिन कितराक भ्रागळी मजल ।—सगरांमदास

कितरी–वि०—देखो 'कितरो' (स्त्री०)

कितरी'क–वि०—कितनी । उ०—रांमदासजी पूछियो सांढ़ियां लारै कितरी'क छै ।—रा सा.सं.

कितरे'क–वि०—कितना, कितने ।

कितरोइक, कितरो'क–वि०—कितना । उ०—खबर मंगाई जे उहांरै कितरो'क लोक कुण कुण कांम भ्रायो ।—सूरे खींवे री वात

कितरो–वि० (स्त्री० कितरी) कितना ।

कितव–सं०पु० [सं०] १ छली, कपटी. २ दुष्ट. ३ जुम्रारी ।

कितां, किता–वि०—कितने । उ०—दे दे दरसण दोड़, किता घर सूना कीना ।—ऊ.का.

किताइक, किताई, कित‍ाईक, किताएक, किता'क–वि०—कितने ही ।
उ०—१ टेक छीपा तणी देख दुख टाळियो, छांन बंधवाळियो नकू छांना । वरतियो मेटण चिंता वांणियो, किता'क करूं बाखांण कांना ।—ब्रह्मदास दादूपंथी उ०—२ उत्तर में कुंतळपुर जठै राज कियो किताइक पीढ़ी ।—बां दा.
उ०—३ किता'क काळ पछै भ्रठी बंबावदा रै नरेस हालू भ्रनेक उपाय करि थाको ।—वं.भा.

किताब–सं०स्त्री० [भ्र०] १ पुस्तक ।
मुहा०—१ किताब चाटणी—प्रकांड विद्वान होना; किताब को बिल्कुल कंठस्थ करना. २ किताब रो कीड़ो—हर घड़ी पुस्तक पढ़ने वाला; केवल लिखी हुई बात जानने वाला ।
२ रजिस्टर. ३ बहीखाता. [भ्र० खिताब] ४ पदवी, खिलभ्रत, उ०—फकीर कूं रीझै तो नांमदार की किताब धरै ।—रा.रू.

किताबी–वि० [भ्र० किताब+रा०प्र०ई] पुस्तक का, पुस्तक संबंधी ।
मुहा० —१ किताबी कीड़ो—हर घड़ी पुस्तक पढ़ने वाला, केवल लिखी हुई बात जानने वाला. २ किताबी ग्यांन—ऐसा ज्ञान जो प्रयोग, भ्रनुभव या जीवन से न मिल कर किताबों से मिला हो ।

कितायक, किताहिक, किताहीक–वि०—कितने ही । उ०—पछै किताहीक बरसां 'माहोमांह' लड़ बांपा रै हाथ सजन रह्यो ।—बां.दा ख्यात.

कितिइक, कितिक, कितियक–वि०—कितनी । उ०—सूर प्रताप हरि जाप, धणी सेवग साधारे । मांनव कितिइक बात, तोय ऊपर गिर तारे ।—जग्गो खिड़ियो

किती–वि०—कितनी । उ०—सर सोय पड़े हुय हूंक भड़े, कळ सोर किधी जुध बोल किती ।—रा.रू.

कितीइक, कितीक, कितीयक–वि०—१ कितनी । उ०—१ केन कहतां कुणै मोकळ्यो, कितीक दूर थैं भ्रायो छै ।—वेलि. टी.
उ०—२ विसन्न निपाय कितीइक बार, ब्रह्म्मा हाथ दियो बोपार ।
—ह.र
उ०—३ भ्रह नर सुर हाजर होय ऊभा, मह मांनव कितीयक मात ।
—भ्रोपो भ्राढ़ो
२ बहुत, कितने ही ।

कितूहळ—देखो 'कौतूहळ' (रू.भे.) उ०—मथुरा मांहि वरतिया मंगळ, घण कितूहळ घरोघरि ।—ह.नां.

कितेएक, कितेक, कितेयक, कितरेक—१ देखो 'कितीइक' (रू.भे.)
२ कितने । उ०—तद हरंजी कितेएक एक सूं देसणोक भ्राय नै स्री करणीजी री दरसण कियो ।—द.दा.

कितै कितेएक, कितैक–क्रि०वि०—कहां, किधर ।
वि०—कितने ।

कितो–वि०—१ कितना । उ०—करण इक राह पतसाह खसियौ कितो, प्रथी जोगणपुरी दाखवै पांण ।—महाराज भ्रनूपसिंह री गीत
२ कितने ही, बहुत ।

कितोइक–वि०—कितना ही । उ०—हुमायूं दिली भ्राय तखत बैठो । कितोइक कनलो देस जबत कियो ।—बां.दा.ख्यात.

कितोएक, कितो'क, कितोयक–वि०—कितना । उ०—१ तुम जळो हम उड चलें, जीणो कितो'क काळ ।—भ्रज्ञात
उ०—२ धवळघां री चाली ऊंतावळी, सहर वीकाणो कितोयक दूर ।
—लो.गी.

कितोसोक–वि०—थोड़ा सा, कितना सा ।

कित्त—देखो 'कित' (रू.भे.)

कित्ती–सं०स्त्री० [सं० कीर्ति] कीर्ति, यश, बड़ाई ।
वि०—कितनी (रू.भे.)

कित्तो–वि०—कितना (रू.भे.) देखो 'कितो' ।

कित्तोएक, कित्तोक, कित्तोयक–वि०—देखो 'कितोक' (रू.भे.)
उ०—वातां हुणै रै बाद गोपाळ मीठास सूं पूछियो-थारै माथै कित्तोक करजो है ।—वरसगांठ

किथा–सर्व०—क्या । उ०—तज भरमल भ्ररज कीवी जे भ्रापनूं तो इण जीव सूं कांम छै, बीजा जीव म्हारै किथा करणा छै ।—कुंवरसी सांखला री वारता
क्रि०वि०—कहां ।

किधिए, किधियै, किधीय, किधीय–क्रि०वि०—कहां (क्षेत्रीय)

उ०—माय लट रे कमाय घर आविया, माय किथीयै सैणां री घीव।—लो.गी.

किथे, किथो–क्रि०वि०—कहाँ (क्षेत्रीय)

किदारा—देखो 'केदारा' (रू.भे.)

किधर–क्रि०वि०—किस ओर, किस तरफ, कहाँ।

किधुं, किधूं, किधू–अव्यय—१ अथवा, या तो. २ मानो।

उ०—मनु हंस का सा विलास, किधुं हरजू का हास, किधुं सरद पुंन्युं का सा उजास।—रा.सा.सं.

किन–सर्व०—कौन, 'किस' का बहुवचन।

क्रि०वि०—१ कहाँ. २ अथवा, या। उ०—दूरा नयर कि कोरण दीसै, धवळागिरि किन धवळ हर।—वेलि.

किनक–सं०स्त्री०—पतंग (रू.भे.)

किनको–सं०पु० [सं० कणिक] १ छोटा दाना. २ अन्न या चावल का टूटा हुआ दाना. ३ कणमात्र वस्तु. ४ देखो 'किनक'।

किनर—देखो 'किन्नर' (रू.भे.) (अ.मा.)

किनरपत, किनरपती–सं०पु० [सं० किन्नर+पति] कुबेर (अ.मा.)

किनरेस–सं०पु०—कुबेर (नां.मा.)

किनां, किना–क्रि०वि०—१ या, अथवा। उ०—संप्रति ए किना, किना ए सुहिणौ, आयौ कि हूं अमरावती।—वेलि.

२ मानो। उ०—१ उठावै करां पोगरां दे उछाळा, किनां लागणा नाग पैनाग काळा।—वं.भा. उ०—२ चाप नमायौ रांमचंदि, दुनि अन भूप नमे दुरि। प्रभू खांचियौ पिनाक, किना मन जांनकी।

—रांमरासौ

सर्व०—१ क्या। उ०—संप्रति ए किना, किना ए सुहिणौ।—वेलि.

२ किसका।

किनारी–सं०स्त्री० [फा० किनारा] सुनहला या पतला गोटा जो कपड़ों के किनारे पर लगाया जाता है।

किनारौ–सं०पु० [फा० किनारा] (स्त्री० किनारी) १ लंबाई के बल की कोर. २ नदी या जलाशय का तीर।

पर्याय—कच्छ, कनारौ, कूल, तट, तीर, पुलिन, प्रतीर, रोधस।

मुहा०—१ किनारौ करणौ—त्याग देना, अलग हो जाना.

२ किनारै करणौ—दूर करना. ३ किनारै लागणौ—पार होना, सफल होना।

कहा०—नदी किनारै रूंखड़ां जद तद होय विणास—नदी के किनारे के वृक्ष कभी न कभी पानी द्वारा तट के काटे जाने के कारण अवश्य नष्ट होंगे; हानिकारक व्यक्ति के साथ रहने से कभी न कभी हानि अवश्य होती है।

३ समान अथवा कम असमान लंबाई-चौड़ाई वाले पदार्थ के चारों ओर का वह भाग जहाँ से उसके प्रस्तार या फैलाव का अंत होता है. ४ कपड़े आदि में किनारे का वह भाग जो भिन्न रंग अथवा बनावट का होता है। हाशिया, बॉर्डर. ५ किसी ऐसी वस्तु का सिरा व छोर जिसमें चौड़ाई न हो, छोर. ६ पार्श्व, बगल।

किनियांणी–सं०स्त्री०—श्री करनी देवी का एक नाम।

किनिया—देखो 'कन्या' (रू.भे.)

कहा०—कूं कूं नै किनिया देणी—अत्यंत गरीबी के कारण केवल कुंकुम से सत्कार कर कन्या का पाणिग्रहण कर देना।

किनियावळ—देखो 'कन्यावळ' (रू.भे.)

किनै–सर्व०—किसको।

क्रि०वि०—किस तरफ।

किन्नर–सं०पु०[सं०] १ घोड़े के समान मुख वाले एक देवता जो संगीत में अत्यंत कुशल होते हैं (डिं को.) उ०—कीचक बांसां मांझ पवनियो मीठो जंपै, किन्नर-भामां कंठ जीत रा गीत पयंपै।—मेघ०

पर्याय०—अस्वमुखा किंपुरुख, तुरंगबदन।

२ गाने-बजाने का व्यवसाय करने वाली एक जाति।

किन्नरी–सं०स्त्री०—किन्नर देव जाति की स्त्री। उ०—लखी वरत सुरी अचरज लगी नार पन्नगी किन्नरी।—रा.रू. ३ एक प्रकार का तंबूरा. ४ सारंगी।

किन्ना–सं०स्त्री० [सं० कन्या] कन्या, पुत्री। उ०—अभय करें रख ओटं करवै विवाह किन्ना, किन्ना व्याहे कोडलौ जु किन्यावळ लेवै।

—र.रू.

अव्यय—या। उ०—काढ़ी दळा सी मंगळा प्रळै समंदां ऊजळी किन्ना। खळां धू अरठी जञ गे थंडां खाणास।—तेजरांम आसियौ

किन्या–सं०स्त्री० [सं० कन्या] देखो 'कन्या' (रू.भे) उ०—कोट एक जिग कियां कोट किन्या परणायां, कोट रिक्ख निमंत्रियां कोट दीनां विप्र गायां।—जग्गौ खिड़ियौ

किन्याबळ—देखो 'कन्यावळ' (रू भे.) उ०—किन्ना व्याहे कोडलौ जु किन्याबळ लेवै।—र.रू.

किन्यारास, किन्यारासी–सं०स्त्री० [सं० कन्या+राशि] १ बारह राशियों के अंतर्गत एक राशि।

किन्यावळ—देखो 'कन्यावळ' (रू.भे.)

किप–सं०पु० [सं० कपि] देखो 'कपि' (रू.भे.) उ०—किप हड़मत विना समंद कुण कूदे।—तेजसी खिड़ियौ

किपण—देखो 'क्रपण' (रू.भे.)

किफायत–सं०स्त्री० [अ० क़िफायत] १ कमखर्ची, मितव्ययिता. २ बचत. ३ काफी या अलम् का भाव।

किफायती–वि०—१ किफायत संबंधी, किफायत का. २ कम खर्च करने वाला, मितव्ययी।

किबलाई–सं०स्त्री० [अ० क़िबला] पश्चिम दिशा।

किबलौ–सं०पु० [अ० किबला] १ वह दिशा जिधर मुँह करके मुसलमान नमाज पढ़ते हैं, पश्चिम दिशा. २ मक्का नामक पवित्र स्थान (मुसल०) ३ पूज्य व्यक्ति. ४ पिता।

किबलानुमा–सं०पु० [फा० क़िबलानुमा] पश्चिम दिशा को बताने वाला एक यंत्र (प्राचीन)

किवाड़ि–सं०स्त्री०—कपाट, किंवाड़ । उ०—सायन ऊभी टेकि किवाड़ि, रतन-कुंडळ केसिर तिलक लीलाड़ ।—बी.दे.

किम–सर्व०—क्या ।

क्रि०वि०—कैसे । उ०—मन सरिसो धावतो मूढ़मत, पहि किम पूजै पांगुळो ।—वेलि.

वि०—कौनसा ।

किमकरि–क्रि०वि०—कैसे ।

किमत्र–क्रि०वि०—कैसे । उ०—धरिया सु उतारै नव तन धारै, कवि ते वाखांणण किमत्र ।—वेलि.

किमाड़–सं०पु० [सं० कपाट] कपाट, किंवाड़ । उ०—कंठ जनोई पाटकी, रगत चंदन की पीळी किमाड़ ।—बी.दे.

किमाड़ी–सं०स्त्री० [सं० कपाट+रा०प्र०ई] दरवाजे पर बनी हुई काष्ठ व तारों की एक छोटी फाटक जो प्रायः कुत्ते आदि जानवरों को घर में प्रवेश न होने देने के लिए बनाई जाती है ।

किमि–क्रि०वि० [सं० किम्] कैसे, किस प्रकार । उ०—गयण मग आकुळी फिरै किमि ग्रीभणी ।—हा.झा.

वि०—कम । उ०—कहां वीस कळ एक किमि, मेर पाय मरजाद ।
—ल.पि.

किमेर—देखो 'कुबेर' (रू.भे.)

किम्मत—देखो 'कीमत' (रू.भे.)

किम्हइ–क्रि०वि०—कैसे । उ०—ऊंचे हाथि धाहि पोकारइ, बोलावइ किरतार । आंणीवार किम्हइ ऊवेळइ, करइ अम्हारी सार ।
—कां.दे.प्र.

कियंकर–सं०पु० [सं० किंकर] देखो 'किंकर' (रू.भे.)

उ०—त्रय ताप संताप दुखाप सुखंकर, पाप कियंकर लार लगा । जिय छाप कळाप बिलाप भयंकर, बाफ हुतंकर अत्यु अगा ।
—करुणासागर

कियां–क्रि०वि०—१ क्यों. २ कैसे । उ०—चोपदार अरज कीवी–ईसी वात सुण महाराज कियां बैसि रहै ।—पलक दरियाव री वात

कहा०—१ आंधी में मोर चालै ज्यूं कियां चालै है—डगमगाते एवं लड़खड़ाते हुए चलने पर. २ कियां करै जांणै नातै आयोड़ी ढेढ़णी करै—निर्लज्ज नखरे करने पर । बार-बार हँसने पर (स्त्रियों के लिए) ३ कियां देखै जांणै कागलो नींबोळी कांनी देखै—ललचाई हुई नजर से टकटकी लगा कर देखने वाले के प्रति (व्यंग्य). ४ कियां देखै जांणै गैली बजार कांनी देखै—अज्ञानवश आश्चर्य-चकित होने वाले पर व्यंग. ५ कियां नाचै जांणै हंसराज री घोड़ी नाचै—अति चंचल पर व्यंग. ६ कियां फिरै जांणै विगड़ियोड़ै ब्याव में नाई फिरै—असफल प्रयत्न करने वाले पर व्यंग ।

३ किधर ।

किया–क्रि०वि०—१ देखो 'कियां' (रू.भे.) २ किधर, कहाँ ।

कियारथ–वि०—१ कृतकृत्य, सफल मनोरथ, संतुष्ट.

उ०—स्री हरि नांम संभारि कांम अभिरांम कियारथ ।—रा.रू.

२ कुशल, निपुण, होशियार ।

कियारी–सं०स्त्री० [सं० केदार] क्यारी । उ०—बिमळ प्रवाह गंग गांम बासह, घणी कियारी कवत घणा ।
—महारांणा हमीरसिंह रौ गीत

कियारौ–सं०पु० [सं० केदार] क्यारी, केदार ।

कियावर—१ देखो 'किरियावर' (रू.भे.) उ०—१ वीरम भाई बंकड़ौ, ज्यूं भेटौ जगमाल । वत कियावर चावा दुनी, साहां उर रा साल ।—वी.मा. उ०—बैठौ सूर तखत गजबंधी, सीम जिते सांमंद्रां संधी । सार कियावर उरै सकोयी, क्रत सम विक्रम भोज न कोयी ।
—रा.रू.

कियाह–सं०पु०—लाल रंग का घोड़ा (शा.हो.)

क्रि०वि०—कहाँ ।

किये–क्रि०वि०—कहाँ ।

कियोड़ौ–भू०का०कृ०—किया हुआ । (स्त्री० कियोड़ी)

कियौ–सं०पु०—१ कहने का कार्य. २ आदेश ।

सर्व०—कौनसा ।

किरंटी–सं०पु० [सं० किरीटी] १ इंद्र. २ अर्जुन ।

किरंड–सं०पु० [सं० करंड] देखो 'करंड' (रू.भे.) उ०—तब कह्यौ 'करनला' बचन ताप, भ्रो किरंड उठाय रे धरो आप ।
—रामदांन लाळस

किरंडौ–सं०पु०—सांप, सर्प ।

किर–अव्यय—मानो । उ०—ओपै आय अनंत बळ, सुतन विचारू साथ । किर सिव ऊपर आवियौ, जाळंधर भाराथ ।—रा.रू.

सं०पु०—१ निश्चय । उ०—जिम धारौ खूनी जिकौ, किर बळभद्र कबंध । अठै विवाहण आंणियौ, सरणैं मैं बळ सिंध ।—वं.भा.

[सं० किरि] २ सूअर, वराह (नां.मा.)

सं०स्त्री०—३ किरण (नां.मा.) ४ पृथ्वी, भूमि ।

किरइ–सं०स्त्री०—काष्ठ की वह लकड़ी जो पानी खींचने व अरहट की माल या रस्से को जोड़ने के काम आती है ।

किरक–सं०स्त्री०—१ दर्द. २ अस्थियों की पीड़ा ।

किरकटौ–सं०पु०—गिरगिट । उ०—स्याह लाल पीळी मधि रेख, यहु मन करै किरकटा भेख ।—ह.पु.वा.

किरकर–सं०स्त्री० [सं० कर्कर] देखो 'किरकिर' (१) उ०—किरकर भोजन कर जोजन जुळ जावै । घर घर निरमळ जळ बेकळ धुळ जावै ।—ऊ.का.

किरकांट, किरकांटियौ, किरकांटयौ, किरकांठियौ, किरकांठौ–सं०पु०—गिरगिट (डिं.को.)

कहा०—किरकांटियौ बदले ज्यूं रंग बदळणौ—बार-बार रंग, स्वभाव या बर्ताव आदि बदलना, स्थिर होकर एक बात पर जमे नहीं रहना ।

किरकिर-सं०स्त्री० [सं० कर्कर] महीनतम, धूलिकण। उ०—करणी में किरकिर, धरणी में घिर-घिर फिर-फिर सिर फोड़ंदा है।—ऊ.का.
कहा०—धणी सैणप में किरकिर पड़ै—आवश्यकता से अधिक होशियारी से हानि की सम्भावना रहती है। अधिक होशियारी से हानि होने पर कही जाती है।

किरकिरौ-वि० (स्त्री० किरकिरी) कँकरीला, कँकड़दार जिसमें महीन व पतले कड़े रवे हों। उ०—थे उस्ताद किसौ पीसणौ उठाय लाया, मजौ किरकिरौ कर दियौ।—वरसगांठ
मुहा०—किरकिरी होणी—कार्य खराब हो जाना, मजा बिगड़ जाना।
सं०पु०—बड़े व मोटे लोहे में छेद करने का लोहारों का एक औजार।

किरकोळ-सं०स्त्री०—परचून व फुटकर सामान।

किरको-सं०पु०—१ टुकड़ा, खंड, कण। उ०—उडै पग हात किरका हुवै अंगरा, बहै रत जेम सांवण बहाळा।—र.रू.
२ शक्ति, बल, ताकत. ३ साहस उ०—आक वटूकै पवन भखै, तुरियां आगळ जाय। किरको भलो रे कंथड़ा, हिरण किसा घी खाय।

किरखी-सं०स्त्री० [सं० कृषि] खेती, कृषि।

किरग-सं०पु० [सं० करटी] हाथी।

किरड़कांट-सं०पु०—गिरगिट (क्षेत्रीय)

किरड़णौ, किरड़बौ-क्रि०स०—दांतों से काटना। उ०—रीसां बळतौ किरड़ खायगौ, नैनौ रूप कियौ विकराळ।—रेवतदान

किरड़ा-सं०स्त्री० [सं० क्रीड़ा] खेल, क्रीड़ा। उ०—किरड़ा कर रिमझोळ डोळ डाळयां रंग घोळै।—दसदेव

किरड़ियौ—देखो 'किरड़ौ'। उ०— जांणै हीरा पनड़ा झड़ै, चोर रंग फोर किरड़िया।—दसदेव

किरड़ौ-सं०पु०—१ गिरगिट. [सं० करटी] २ हाथी।

किरड़-सं०पु०—१ काष्ठ की वह कील जो रहट की पानी खींचने की माल या रस्से को जोड़ने के काम आती है. २ वे अन्न के दाने जो पकने पर भी कठोर बने रहते हैं।

किरड़ौ-सं०पु०—गिरगिट। उ०—किरड़ा कर रिमझोळ डोल डोळयां रंग घोळै।—दसदेव (अल्पा० 'किरड़ियौ')

किरच-सं०स्त्री०—१ एक प्रकार की सीधी तलवार जो नोंक के बल सीधी भोंकी जाती है. २ नुकीला टुकड़ा या कण।
(यौ० किरच-किरच, खंड-खंड)

किरची-सं०स्त्री०—१ रेशम का लच्छा. २ लंबा टुकड़ा जो चौड़ाई में कम हो किन्तु लंबा काफी हो. ३ छोटा टुकड़ा या कण। उ०—तलवार मांणसां रै नीचै दबी, वींरो म्यांन किरची किरची हो गयौ।—डाढ़ाळा सूर री वात
मुहा०—किरची-किरची होणी—खंड-खंड होना।

किरचौ-सं०पु० (स्त्री० किरची) टुकड़ा, खंड, कण। उ०—पड़ै तौ काच री सीसी ज्यूं किरचा किरचा हुय जावै।—रा.सा.सं.

किरट, किरठ-वि०—श्याम, काला (ह.नां., नां.मा., अ.मा.)

किरड़—देखो 'किरड़' (रू.भे.)

किरण-सं०स्त्री०—ज्योति की अति सूक्ष्म रेखायें जो प्रवाह के रूप में सूर्य, चंद्र, दीपक आदि प्रज्वलित पदार्थों से निकल कर फैलती हुई दिखाई पड़ती है, रोशनी की लकीर, प्रभा, रश्मि (डिं.को.)
पर्याय—अंसु, अरितिमर, उजास, कर, किर, गौ, छबि, जोति, जोतर, दीपति, दुति, प्रभा, भानु, भा, भास, मयूख, मरीचि, मरीचिका, रसम, रुच, वसू, विभा।

किरण-उजळ-सं०पु० [सं० किरण+उज्ज्वल] चाँद, चंद्र (ना.डिं.को.)

किरणकेतु-सं०पु० [सं०] सूर्य्य।

किरणझाळ-सं०पु०—तपता हुआ सूर्य। उ०—किरणझाळ झळहळै, अंब अंबर ओहासै। सपत दीप सारीख, वदन उद्योत विकासै।
—नैणसी

किरणपत, किरणपति, किरणपती-सं०पु० [सं० किरण+पति] सूर्य्य।
उ०—१ किरणपत आथवियौ कहै सुण सुद तरण।—द.दा.
उ०—२ किरणपति सुवासव वर गिरपत कहां एतला थोक देवां अमेळा।—जैसळमेर री गीत

किरणबाळ-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

किरणमाळी-सं०पु० [सं० किरणमाली] सूर्य।

किरणरूप-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

किरण-सेत-सं०पु० [सं० किरण श्वेत] चंद्र चाँद (ह.नां.)

किरणांपत, किरणांपति, किरणांपती, किरणांर-सं०पु० [सं० किरण+पति] सूर्य्य। उ०—१ दरसाव महासुर 'पाल' दियौ, किरणांपत जांण उद्योत कियौ।—पा.प्र. उ०—२ चले रत खाळ रणताळ दुंद माचियौ, खेंग किरणांर देखण समर खांचियौ।—र.रू.

किरणाळ-सं०पु०—१ योद्धा, वीर। उ०—सुकनी रा साद दलौ संभरै, किरणाळ सूतौ सुख नींद करै।—गो.रू.
[सं० किरण+आलु] २ सूर्य्य (रू. भे. 'किरणाळौ')
वि०—तेजस्वी। उ०—लिए रस जोधा जोम लंकाळ, कमधज काहुलिया किरणाळ।—गो.रू.

किरणालर-सं०पु०—सूर्य्य।

किरणाळौ-सं०पु०—सूर्य। उ०—सिंघ अजा सांमल सलल पीवै इकथाळा, तसकर दबै उलूक ज्यूं ऊगां किरणाळा।—र.रू.
वि०—तेज वाला, तेजस्वी। उ०—साथै जोधाहरो सचाळो, किरतावत 'सूजौ' किरणाळौ।—रा.रू.

किरणि-स०स्त्री० [सं० किरण] देखो 'किरण'। उ०—पथिक वधू द्रिठि पंख पंखियां, कमळ पत्र सूरिज किरणि।—वेलि.

किरणियौ-सं०पु०—१ छाता. २ संकेत करने का उपकरण।
उ०—सो जठै ठाकुरसिंह झालौ किरणिया दियां ललकार करै छै।—डाढ़ाळा सूर री वात

३ राजा महाराजाओं की सवारी निकलते समय या गद्दी पर दरबार में बैठते समय उनके सेवक द्वारा उनके पीछे रखा जाने वाला एक बड़ा वृत्ताकार पंखा जिसका घेरा व डंडा बड़ा होता है और उसके मध्य में सूर्य की प्रतिमा चित्रित या अंकित होती है (व.दा.)

किरणौ, किरबौ—क्रि०अ०—परिपक्व बाजरी के सिरटों के आपसी संघर्षण से बाजरी के दानों का निकल कर गिरना।

किरत—वि० [सं० कृत] कृत किया हुआ।

सं०पु०—१ नितंब के ऊपर का हिस्सा। उ०—कट्टं किरत नितंब के जिम कच्छप जक्कें। कटि जंघा सत्थी कट्टं हत्थी हनि हक्कें।
—वं.भा.

२ कार्य, काम. ३ जाल, प्रपंच। उ०—कूड़ा घर रा कार, कूड़ा माया रा किरत। सार वसत संसार, वीठळ भजणौ वसतिया।
—समेळजी बारहठ

किरतगुणी—वि० [सं० कृतघ्नी] किए हुए उपकार को न मानने वाला।

किरतब—देखो 'करतब' (रू.भे.) उ०—ज्यांरा मोटा भाग जग, मोटा किरतब मन्न। यां हुंदी आसा करै, खैराती खट अन्न।—बां.दा.

किरतबी—वि०—१ कर्तव्य करने वाला. २ छली, कपटी. ३ करतब संबंधी (देखो करतब')

किरतब्ब—देखो 'करतब' (रू.भे.) उ०—बीराध वीर हेलां हमीर, मधुकर सुतन्न किरतब्ब क्रन्न।—वचनिका

किरतार—देखो 'करतार' (रू.भे.) उ०—चंदा तौ किए खंडियउ, मौ खंडी किरतार। पूनिम पूरउ ऊगसी, आवंतइ अवतार।—ढो.मा.

किरतारथ—वि०यौ० [सं० कृतार्थ] सफल, कृतार्थ। उ०—उपकारी जीव रै दरसण सूं हिंदू आपनै किरतारथ हुया समझै।—वरसगांठ

किरति, किरतियां, किरती, किरतीयु—सं०स्त्री० [सं० कृत्तिका] सत्ताईस नक्षत्रों में से तीसरा नक्षत्र। इस नक्षत्र में छः तारे हैं, कृत्तिकाएँ। उ०—आभै ऊपर हंसै किरतियां मन बिलमावै बोरी।—रेवतदान
कहा०—किरती एक झबूकड़ौ, ओगण सह गळियाह—कृत्तिका नक्षत्र में अगर एक बार भी बिजली चमक जाय तो अकाल नहीं होगा।

किरतू—सं०पु०—काष्ठ की वह कील जो दो रस्सों को जोड़ने के निमित्त उनके बीच में डाली जाती है।

किरत्यां—देखो 'किरतियां'। उ०—चांद चढ़चौ गिगनार सूरज किरत्यां ढळ रहियौ। महलां बैठी मोती पोती रात जगी री।
—लो.गी.

किरन—देखो किरण' (रू.भे.)

किरनाळ—सं०पु०—सूर्य्य, भानु (डिं.को.) उ०—नमौ दिवसेस विचार ब्रहम्म, नमौ किरनाळ नमौ सुखरम्म।

किरपण—वि० [सं० कृपण] कृपण, कंजूस। उ०—किरपण मरै न मूकै माया, काठी करि रासै कसि काच।—ह पु.वा.

किरपांण, किरपांणी—सं०स्त्री० [सं० कृपाण] तलवार, कृपाण।

वि०—मजबूत, दृढ़।

किरपा—सं०स्त्री० [सं० कृपा] कृपा, मेहरबानी, दया (ह.नां., रू.भे.)

उ०—१ किरपा कर मोहि दरसण दीज्यौ, सब तक सीर बिसारी।
—मीरां

उ०—२ म्हारा मारू नै जाय कीज्यौ, म्हां अबळा पर किरपा कीज्यौ।—लो.गी.

किरपाळ—वि० [सं० कृपालु] कृपालु, दयालु। उ०—बांकौ एक न होवै बाळ, सुत चौ नाम लियां निसतारै, कर पर गिरधारै किरपाळ।
—भगतमाळ

किरबांण, किरबांन—सं०स्त्री० [सं० कृपाण] तलवार, कृपाण।

उ०—'बीजबार' गढ़पति लखै, कर झल्ली किरबांन।—ला.रा.

(रू.भे. 'किरवांण')

किरम—सं०पु० [सं० कृमि] कीट, कीड़ा (डिं.को.)

किरमची—वि०—मटमैला लिये हुए करोंदिया रंग की। उ०—अणथाग बेग केई भंवर अंग, रेसमी पोत किरमची रंग।—पे.रू.

सं०पु०—१ मटमैला लिये हुए करोंदिया रंग. २ स्याही लिये लाल रंग का घोड़ा।

किरमर—सं०स्त्री०—१ तलवार, कृपाण (ह.नां.)

उ०—'कूंपा' किरमर झल्लियां, फतमल विजपालोत। हुटै न जंगे सांम छळ, मिटै न मेछां मौत।—रा.रू. २ मुसलमान।

किरमाळ—सं०स्त्री० [सं० करवाल:] १ तलवार (डिं.को.)

उ०—कंधड़ा झालि किरमाळ केड़ो करां। सार झड़ वरण सो सोक सैलां सरां।—हा.झा. २ सूर्य, भानु। उ०—१ आंण किलै मां ऊतरै, कमध 'पेम' किरमाळ। इत्तरै बागी आवतां, काळां री करताळ।
—पे.रू.

उ०—२ मह जैसे मेटै तिमिर, रसम परस किरमाळ।—र.रू.

किरमाळौ—सं०पु० [सं० कृतमाल] अमलतास (अमरत)

किरमिज—सं०पु०—१ एक प्रकार का रंग. २ किरिमदाने का चूर्ण. ३ किरमिजी रंग का घोड़ा (रू.भे. 'किरमची')

किरमिजी—वि० [सं० कृमिज] १ किरमिज के रंग का, मटमैलापन लिये हुए करोंदिया रंग का. २ चितकबरा।

किरमिर—सं०पु० [सं० किर्मीर] १ भीम का एक नाम (ह.नां.)

मि. 'सबळ' (४)

[सं० किर्मीर:] २ एक राक्षस का नाम जिसको भीम ने मारा था।

किरम्माळा—सं०स्त्री०—तलवार। (मि० 'किरमाळ' रू.भे.)

किरळी—सं०स्त्री०—चीत्कार, चिल्लाहट। उ०—इसौ कहि किरळी कीधी।—जखड़ा मुखड़ा भाटी री वात

किरळक—सं०पु०—किलकारी, आवाज।

किरळावणौ, किरळाबबौ—क्रि०अ०—चिल्लाना। ऊभी नै किरळावै कायर मोर ज्यूं जी म्हारी नार।—लो.गी.

किरवांणी—सं०स्त्री० [सं० कृपाण] तलवार, खग। उ०—गोपीनाथ

अनोप कोप वाहै किरवांणी। खासी नै सादूळ चढ़ा चूरै चगयांणी।
—रा.रू.

किरसांण–सं०पु० [सं० कृषक] किसान, कृषक। उ०—वगत वटावा हेत, खेत किरसांणां तांई।—दसदेव

किरसांणी—देखो 'किरसांण'।

वि०—कृषक संबंधी, कृषक का।

उ०—किरसांणी धंधो करतां री हाथी री सी साथळां।—दसदेव

किरांणो–सं०पु० [सं० क्रयण] नमक, मसाले, हल्दी आदि वे चीजें जो नित्य के व्यवहार में आती और पंसारियों के यहां मिलती हैं।

किरांत–सं०स्त्री० [सं० क्रांति] शोभा, प्रकाश।

किरांनी–सं०पु० [अं० क्रिश्चियन] १ वह मनुष्य जिसके माता-पिता में से एक या दोनों ईसाई हों. २ अंग्रेजी दफ्तर का क्लर्क।

किराड़–सं०पु०—१ वैश्य वर्ण या इस वर्ण का व्यक्ति, बनिया, बनिया का निंदासूचक शब्द। उ०—सीडां करसण सूंपियो, बांनरड़ां नूं बाग। माल कराड़ां सूंपियो, ज्यांरा फूटा भाग।—बां.दा.

२ नदी का किनारा, तट। उ०—मेह मथारै बरसियो, नदी किराड़ां मार। घोड़ा हींस न भल्लिया, सीस किराड़ां मार।—बां.दा.

किराड़ी–सं०स्त्री०—पशुओं का एक चर्म रोग विशेष जिससे पशु के शरीर पर छोटी-छोटी ग्रंथियां हो जाती हैं। (शा.हो.)

किराड़ू–सं०पु०—१ बाड़मेर के पास का एक स्थान विशेष २ बाड़मेर प्रदेश का एक प्राचीन नाम।

किराड़ो–सं०पु०—किनारा, कूल, तट (किसी जलाशय या नदी का)

किरात–सं०पु० [सं०] १ एक प्राचीन जंगली जाति, भील।

उ०—केहर हाथळ घाव कर, कुंजर ढिगलो कीध। हंसां नग हर नूं लुचा, दांत किरातां दीध।—बां.दा. २ एक देश का प्राचीन नाम जो हिमालय के पूर्वीय भाग तथा उसके आसपास में माना जाता था.

३ चिरायता।

किरातपत, किरातपति–सं०पु० [सं० किरातपति] शिव।

किरातारजुणीय–सं०पु० [सं० किरातार्जुनीय] भारवि कृत १८ सर्गों का एक महाकाव्य।

किरातासी–सं०पु० [सं० किरताशी] गरुड़।

किरातिणी–सं०स्त्री०—१ किरात जाति की स्त्री. २ जटामासी।

किराती–सं०स्त्री० [सं०] १ किरात जाति की स्त्री. २ दुर्गा. ३ स्वर्ग की गंगा. ४ चंवर डुलाने वाली स्त्री।

किरायणो, किरायबो–क्रि०अ०—१ चिल्लाना. २ कराहना. ३ रोनी सूरत लेकर बार-बार चिढ़ना।

किरायतो–सं०पु०—प्याज के बीज जो काले रंग के महीन दानों के समान होते हैं तथा आचार आदि में काम आते हैं (अमरत)

किरायेदार–सं०पु०—वह जो किसी की कोई वस्तु भाड़े पर ले। कुछ दाम देकर किसी दूसरे की वस्तु कुछ काल तक काम में लाने वाला।

किरायो–सं०पु० [अ० किराया] वह दाम जो दूसरे की कोई वस्तु काम में लाने के बदले में उस वस्तु के मालिक को दिया जाय, भाड़ा।

किरावर—देखो 'किरियावर' (रू.भे.)

किरावळ–सं०पु० [तु० करावल] १ लड़ाई का मैदान ठीक करने के लिये आने जाने वाली फौज. २ बंदूक से शिकार करने वाला आदमी।

किरि–अव्यय—मानो। उ०—१ बाळकति करि, हंस चौ बाळक। कनक वेलि बिहुं पांन किरि।—वेलि. उ०—२ पतिसाह सेन दीवी परिक्ख, उडियण किरि आवइ अंतरिक्ख।—रा.ज.सी.

सं०स्त्री०—१ परहेज. २ तने का मध्यवर्ती कठोर भाग।

किरिच री गोळी–सं०पु०—एक प्रकार का जहाजी गोला जिसके भीतर लोहे के टुकड़े, कीलें या छर्रे भरे रहते हैं।

किरिट्ठ, किरिठ–वि०—अत्यंत काला। उ०—कुवरत्त केवि काळा किरिट्ठ, गड़दनी गोळ गांजा गिरिट्ठ।—रा.ज.सी.

किरिण–सं०स्त्री० [सं० किरण] रश्मि, किरण (ह.नां.)

किरियांणो–सं०पु०—पौष्टिक पदार्थों का बना पाक, अवलेह, लड्डू आदि।

किरिया–सं०स्त्री० [सं० क्रिया] १ काम. २ कर्त्तव्य. ३ मृत व्यक्ति के उद्देश्य से श्राद्धादि कर्म। उ०—तीजै दिन तइयो करि, फूल चुगाई गंगाजी में बहिर किया, किरिया कराई।

४ देखो—'क्रिया'। —पलक दरियाव री वात

किरियाकरम–सं०पु० [सं० क्रियाकर्म] अंतिम संस्कार, दाहकर्म।

उ०—म्हारै खनै कंई रुघो-चुघो हो जिको दादी रै ओसर, बाप रै किरियाकरम अर चूंदरी जिंदोग्रो में लेखै लाग चुको हो।—वरसगांठ

किरियावर–सं०पु० [स० क्रिया+वर] १ एहसान. २ सोलह संस्कारों के अंतर्गत विभिन्न संस्कार संबंधी महत्वपूर्ण कार्य।

(मि. 'काजकिरियावर')

उ०—हूं भगती हररीह, किरियावर वंका करै। घरवट जिण घर-रीह, बिगड़ै कदै न बसतिया।—समेळजी बारहठ

किरियावरो–वि०—१ एहसान रखने वाला, या करने वाला। यशस्वी, कीर्तिवान. ३ सोलह संस्कारों के अंतर्गत विभिन्न संस्कार-संबंधी महत्वपूर्ण कार्य करने वाला (मि. 'काजकिरियावरो')

किरिराज–सं०पु०—१ बड़ा हाथी. २ दस दिग्गजों में से अंजन नामक दिग्गज।

किरी–सं०स्त्री०—१ तने का या काष्ठ का भीतर का ठोस भाग. देखो 'किरि' (रू.भे.)

किरीट–सं०पु० [सं०] एक प्रकार का शिरोभूषण, मुकुट।

किरीटी–सं०पु० [सं० किरीट] १ मुकुट, किरीटी. उ०—किरीटी कुंडळ सोभै कांन।—ह.र. [सं० किरिटिन] २ इंद्र. ३ अर्जुन (ह.नां.) ४ राजा. ५ वह जो किरीट (मुकुट) पहने हो. ६ मुर्गा। उ०—क्रीड़ाप्रिय पोकार किरीटी, जीवित प्रिय घड़ियाल जिम।—वेलि. ७ मोर, मयूर. ८ प्रत्येक चरण में आठ भगण सहित २४ वर्णों का वर्णिक वृत विशेष (पिं.प्र.)

किर्ड–सं०पु०—१ हिन्दुवाणी का ढेर. २ मकान के छाजन के नीचे सहारे के लिये लगाई जाने वाली लकड़ी । उ०—पीमड़ी भर पळूंड ऊंखळी किर्ड किवाड़ां, ऊभी कील उखाड़ फेरणा जबर जुवाड़ां ।
—दसदेव

किरोई—देखो 'करोई' (रू.भे.)

किरोड़–वि० [सं० कोटि] देखो 'करोड़' (रू.भे.)

किरोड़ी–सं०पु०—बादशाह या सरकार की ओर से मालगुजारी उगाहने वाला या वसूल करने वाला । उ०—विजैरांम कांम आयौ, सांभर रा किरोड़ी सूं वेढ़ हुई तठै···।—नैणसी

वि०—करोड़, कोटि । उ०—अब मोहबत कोण कांम की, गिरधर बिना हुं नगोड़ी । लोग कहै काळी कांमळी वाळी, म्हारै तो लाख किरोड़ी ।—मीरां

किरोध–सं०पु०—देखो 'क्रोध' (रू.भे.)

किरोळी–सं०स्त्री०—रहँट की माल में लगाई जाने वाली लकड़ी की छोटी-छोटी कीलियां ।

किरौ–सं०पु०—अंगारे व राख का मिश्रित ढेर ।

किलंका–सं०स्त्री—किलकारी, आवाज ।

किलंग–सं०पु०—१ विष्णु का चौबीसवां अवतार, कल्कि अवतार । उ०—किता तें फेरा जीत किलंग, जुगोजुग कीध दइत्तां जंग ।—ह.र. २ कलिंग देश का निवासी । उ०—सेन रिजमट असंख पलटणां तणै संग, भड़ तिलंग बंग किलंग तणा भिळिया ।—बां.दा.

किलंगदईत–सं०पु० [सं० कलिंगदैत्य] कलिंगदैत्य नामक राक्षस ।

किलंगी–सं०स्त्री०—१ एक शिरोभूषण, शिर का तुर्रा । उ०—ढोलाजी नै पिण कड़ा मोती जनेऊ किलंगी अमोलक वसतां दीधी ।—ढो.मा. २ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

किलंगौ–सं०पु०—एक प्रकार का पुष्प विशेष । उ०—तठा उपरांयत माळी फूलां री छाबां आंण हाजर कीजै छै सु फूल किण भांत रा छै ? हजारा नौरंग तुररौ मेंहदी किलंगौ सोनजुहीं इसकपेचौ ।
—रा.सा.सं.

किलंब, किलंबि–सं०पु० [अ० कलमा] यवन, मुसलमान । उ०—१ अरज करै 'अणजीत' सूं, पेस धरै लख पाग । कांकांणी आए किलंब, वळिया पाए लाग ।—रा.रू. उ०—२ किलंबी छात सुख कियौ राति मुख गुज्जर चायौ, प्रात गजर वज्जियां फजर दीवांण बुलायौ ।—रा.रू.

किलंबांराइ, किलंबांराइ, किलंबांराय–सं०पु० [अ० कलमा+सं० राज] बादशाह, यवन-सम्राट (मि० 'किलंब')

किळ–अव्यय—१ निसंदेह, निश्चय ही, जरूर । उ०—जंतु भखै अथवा जळै, कै पड़ियौ रह जाय । किळ भिसटा भसमी क्रमी, इण नर तन सूं थाय ।—बां.दा. २ उसी प्रकार, वैसे ही । उ०—मेछां हूंदा मुलक में, जे मावड़ियौ जाय । महबूबां री मिसल में, किळ सरदार कहाय ।—बां.दा.

किलक–सं०स्त्री०—१ किलकने की क्रिया, हर्ष-ध्वनि । उ०—घुमड़ै काठळ आय घडी घनघोर की, ललकां कोयल लार किलकां मोर की ।—म.दा.भा. २ कलरव. ३ किलकारी. ४ कोलाहल ।

किलकणौ, किलकबौ–क्रि०अ०—१ किलकारी मारना, हर्षध्वनि करना, कलरव शब्द करना. २ किलोल करना, क्रीड़ा करना । उ०—चेली अरु चेला मांडै मेळा, कांम विकळ किलकंदा है ।—ऊ.का.

किलका–सं०स्त्री०—किलकारी ।

किलकार, किलकारी–सं०स्त्री०—१ वह गंभीर और अस्पष्ट स्वर जिसे लोग आनंद और उत्साह के समय मुंह से निकालते हैं ।

उ०—१ काळ में इव पातल कमंध, करै कांम किलकार । मन में आछो समज लै, सब रोवौ संसार ।—ऊ.का. उ०—२ ढुळकिया एवड़ धोरे ओट, सुणीजै किलकारी उण पार ।—सांझ २ चीख, चिल्लाहट. ३ किसी को जोर से पुकारने के लिये की जाने वाली आवाज ।

किलकारौ–सं०पु०—देखो 'किलकारी' (रू.भे.) उ०—हरकण छाई दिस चिळकारी हरियौ, करसण करसणियां किलकारौ करियौ ।—ऊ.का.

किलकिंचित–सं०पु० [सं०] संयोग शृंगार के ११ हावों में से एक ।

किलकिलणौ, किलकिलबौ–क्रि०अ०—खिलखिलाना, हर्षध्वनि करना । उ०—झिलै वीर भैरव भार किलकिलै भवांनी ।—अज्ञात

किलकिला–सं०स्त्री०—१ किलकारी, हर्षध्वनि. २ इसी नाम की एक बड़ी तोप । उ०—राजांन सिलांमती किलकिला नाळी छूटी सु गोळां री अवाज सूं धरती धमकीनै रही छै ।—रा.सा.सं.

३ समुद्र का वह भाग जहां की लहरें भयंकर शब्द करती हैं ।

४ जलाशयों में मछलियों आदि पर झपट्टा मार कर आक्रमण करने वाली एक प्रकार की चिड़िया विशेष । उ०—१ ऊंडै द्रह किलकिला ज्यूं फूलधारां विचि उड़ि पड़ा ।—वचनिका उ०—२ निज धणी धरै जकौ आखर नीवटै, किलकिला जिसा अमराव जुड़सी कठै । जुध फिरंग जाचमी फेर फौजां जठै, ऊदहर 'मांन' नै याद आसी उठै ।
—सुरतांणसींघ ऊदावत री गीत

किलकिलाहट–सं०स्त्री०—१ खिलखिलाहट, हँसी. २ हर्षध्वनि ।

किलकिली–सं०स्त्री०—१ गुदगुदी । उ०—तेज घट अमीरां नरां वदळी तरह, छिली खत्रवट निरख हिंदुआं छात । कमधजां धणी चढ़ी भुजां किलकिली, हलचली दिली जमदढ़ दियौ हाथ ।
—बखतौ खिड़ियौ

किलकौ–सं०पु०—एक प्रकार का तीर, बाण विशेष (अ.मा.) उ०—चंद्राकार आंकड़ा गिलोलबंध बांण चुगगा, ताता गजां किलकौ गयंदां गंजै तोर ।—क.कु.बो.

किलक्क—देखो 'किलक' (रू.भे.) उ०—हुई किलक्क वीर हक्क पै उच्चक हैमरै ।—रा.रू.

किलक्कणौ, किलक्कबौ–क्रि०अ०—देखो 'किलकणौ' (रू.भे.)

उ०—सेल भचक्कै संकुळै अति घाय उबक्कै, सीस कपाळी संग्रहै काळी सु किलक्कै ।—वं.भा.

किळवू–सं०पु०—एक प्रकार का पक्षी।
किलणौ, किलबौ—देखो 'कीलणौ'।
किलब, किलबांइण, किलम–सं०पु० [अ० कलमा] कलमा पढ़ने वाला। यवन। देखो 'कलमौ' उ०—१ **किलबां** सोबा कंपिया, मिटी सलाह सताब। ज्यास बिना जोधांण में, ऊखे सास नबाब।—रा.रू.
उ०—२ **किलबांइण** चंचळ कळा, वध सोच खड़ब्भड़ आठ वळा।
—रा.रू.
उ०—३ खूम हुकम सिरदार खां, सोजत नयर सिहाय। **किलम** अगांमी क्रमधजां, सांमौ वग्गो आय।—रा.रू.
किलमांण–सं०पु०—१ कलमा पढ़ने वाला, यवन। उ०—**किलमांण** मीर हिक मन्न कीध, दइवांण पांण जम डाढ़ दीध।—वि.सं.
२ मुसलमान धर्म का धार्मिक मूल मंत्र।
किलमांणनाथ, किलमांणपत, किलमांणपति, किलमांणराय–सं०पु०—यवन-सम्राट। उ०—१ डेरा बाग मभ जाय दीध, **किलमांणनाथ** ने खबर कीध।—शि.सु.रू. उ०—२ **किलमांपत** भेटे कारीगर, कारी घाव निहाव कर।—महारांणा अमरसिंह री गीत
किलमांयण—देखो 'किलमांण' (रू.भे.) उ०—जुलफ़कार कर मेलियौ, आवै जौ अभिरांम। **किलमांयण** आगै कदे, छोडूं नह संग्रांम।—पा.प्र.
किलमी—देखो 'किलमांण' (रू.भे.) देखो 'किलम' (रू.भे.)
किलमीर–सं०पु०—मुसलमान, यवन। उ०—**किलमीर** मीर अमराव तांम, कीध सिलहत काज सांम।—शि.सु.रू.
किलम्म–सं०पु०—१ कलमा पढ़ने वाला, यवन, मुसलमान।
उ०—आवळी पढ़ै साफी इलम्म, कावळी गुसै भरिया **किलम्म**।
—वि.सं.
२ कलमा। देखो 'कलमौ' (रू.भे.)
किललोळ–सं०स्त्री०—केलि, क्रीड़ा। उ०—ठाकुर आया, ठाकुर केळ करै, **किललोळ** करै।—लो.गी.
किलवांक–सं०पु०—काबुल देशोत्पन्न एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)
किलवांण, किलवांणी–वि०स्त्री०—मुसलमानों की, यवनों की।
उ०—कमंधां घड़ा पूरै **किलवांणी**, पड़ियौ चाढ़ मुरद्धर पांणी।
—रा.रू.
किलवायण–सं०पु० [अ० कलमा+रा०प्र० आयण] देखो 'किलमांण' (रू.भे.)
किलविख–सं०पु० [सं० किल्विष] कल्मष, पाप (ह.नां.)
किलांण—१ देखो 'कल्यांण'। उ०—जप जीहा जगदीस, केसव क्रस्ण **किलांण** कह।—ह.र. २ बादल (नां.मा., अ.मा.)
किलांणी–सं०स्त्री० [सं० कल्यांणी] १ पार्वती. २ देवी, दुर्गा (क.कु.बो.)
किलाबार—देखो 'किलेदार' (रू.भे.)
किलाबंदी–सं०स्त्री० [फा०] १ दुर्ग-निर्माण. २ व्यूह-रचना.
३ शतरंज के खेल में बादशाह को सुरक्षित घर में रखना।

किलावौ–सं०पु०—१ स्वर्णकारों का एक औजार. २ हाथी के गले में पड़ा हुआ रस्सा व बंधन जिसमें पैर फँसा कर महावत हाथी को चलने आदि का इशारा करता है।
किलास–सं०स्त्री०—कक्षा (रू.भे.) उ०—छोरौ गुलाब रौ फूल है अर अंगरेजी री तीजी **किलास** में भणै है।—वरसगांठ
किलि–अव्यय—निश्चय। उ०—जोधे ऊन्हा जैतसी, लोह वहंता लागि। **किलि** वे भूठौ किमिरियौ, ऊहौ वै बळती आगि।—रा.ज. रासौ
किलिच्छ, किलिच्छ–सं०पु०—१ असुर, मुसलमान। उ०—१ कमध्य तणी धर कम्मर हीण। करेवा भंग **किलिच्छ** कुलीण।
—रा.ज. रासौ
उ०—२ नमट्टयौ भुज्ज खत्री निरवांण। कड़क्यौ कोप सभी केवांण। तणी धर बाहर ऊंची तांण। **किलिच्छा** केसरि भंजण कांण।
—रा ज. रासौ
किलियांण—देखो 'कल्यांण' (रू भे.)
किलिविख–सं०पु०—देखो 'किल्विख'।
किलेदार–सं०पु०—दुर्गाध्यक्ष, गढ़पति।
किलोड़ौ–सं०पु०—छोटा बैल (मि० 'किळोहड़ौ' रू.भे.)
किलोळ–सं०स्त्री० [सं० कल्लोल] १ कल्लोल, मौज, आनंद, आमोद-प्रमोद। उ०—गिर नीलम पसवाड़, **किलोळां** हेत सुवावै।—मेघ.
२ केलि, क्रीड़ा। उ०—१ लहरीस सीस हिलोळ, केमच्छ कच्छ **किलोळ**।—रा रू. ३ तरंग, हिलोर उ०—२ ढोल्यौ तौ डगमग करै जी वनां म्हारा तकियौ करै **किलोळ**।—लो.गी.
किलोहड़ौ–सं०पु०—छोटी आयु का बैल (रू.भे. 'लो'ड़ौ, कल्होड़ौ')
उ०- वयूं नह धवळी जोतियौ, तैं सागड़ी गिंवार। काढ़ै जीभ **किलोहड़ा**, खंध न झालै भार।—बां.दा. (मि० 'नारकियौ')
किलौ–सं०पु० [अ० किलाऽ] लड़ाई के समय बचाव का एक सुदृढ़ स्थान, दुर्ग, गढ़ (ह.नां.)
पर्याय०—अरसाल आसेर, कल्लौ, बरण, वप्र।
मुहा०—१ किलौ टूटणौ—कठिन काम आसान होना, बहुत कठिन काम होना. २ किलौ जीतणौ—बड़ा भारी काम करना, किसी कठिन कार्य या समस्या को हल कर लेना।
किलौड़न, किलौरन—देखो 'किलोहड़ौ' (रू.भे.) उ०—बंध **किलौरन** बंधन के बिधि, अंघन आरसि ओपत ऐसे।—ऊ.का.
किल्यांण—देखो 'कल्यांण' (रू.भे.) (ह.नां.)
किल्लणौ, किल्लबौ–क्रि०स० [सं० कील] १ देखो 'कीलणौ'.
उ०—कै दारुन अहि **किल्लि** काळबेलिन बसि कीन्हौ।—ला.रा.
२ देखो 'खीळणौ' (रू.भे.)
किल्लादार—देखो 'किलेदार' (रू.भे.) उ०—मोबतसिंघ नांमी राजवी का मैं कहा तौ, **किल्लादार** किल्ला 'सापरा' में रहा तौ।—शि.वं.
किल्लाहर–सं०पु०—पुष्प (ह.नां.)
किल्लेदार—देखो 'किलेदार' (रू.भे.)

किल्लो—देखो 'किलो' (रू.भे.) उ०—पाछो मारि किल्ला की बुरज में कैद कीनां।—शि.वं.

किव–क्रि०वि०—क्यों, किस कारण। उ०—प्राज उमाहउ मी घणउ, ना जाणूं किव केण।—ढो.मा.

सं०पु०—कवि, काव्यकार (डिं.को., रू.भे.)

किवळी–प्रव्यय—केवल।

सं०पु०—बिना मात्रा का व्यंजन। उ०—किवळी पिच्छू कहैं लहू लघु अंक लहावैं, गिणै छंद बस गुरु कवी लघुचार कहावैं।—र.रू.

किवांण–सं०स्त्री० [सं० कृपाण] खड्ग, तलवार। उ०—प्रठी सूं लोहांन प्राजांनबाहु किवांण झाड़ि बीर प्रतिहार रा। मतंगज री मस्तक करण ताळ हुलावतौ तोड़ियौ।—वं.भा.

किवाड़—देखो 'किवाड़' (रू.भे., डिं.को.)

किवाड़ी—देखो 'किमाड़ी' (रू.भे.)

उ०—प्रब हम रांम भजन सुख पाया, कांम किवाड़ी जड़ी जतन सूं मोह मता मुरझाया।—ह.पु.वा.

किस–सर्व०—विभक्ति लगने के पूर्व 'कौन' और 'क्या' का रूप।

किसइ–वि०—कौनसा।

क्रि०वि०—किस प्रकार।

उ०—कागळ नहीं क मसि नहीं, नहीं क लेखणहार। संदेसा ही नाविया, जीवुं किसइ प्राधार।—ढो.मा.

किसउ–वि०—१ कौनसा। उ०—प्रंतरि प्रांमणदूमणा, किसउ ज इवडउ काज।—ढो.मा.

२ कैसा। उ०—हूं चालवं बुद्धि प्रांपणी, जाळोरउ गढ़ नालूं खणी। सूर ऊगंतई दीवड किसउ, सांम्हा गुरड़ भुयंगम किसउ।—कां.दे.प्र.

किसड़ी, किसड़ी'क–वि०—कैसी। उ०—भंडण सारा समांचार पूछिया—जे डाढ़ाळा सो जायगा किसड़ीक छै।—डाढ़ाळा सूर री वात

किसड़े–वि०—१ कौनसा। उ०—तने किसड़े गढ़ री मारग वालो लागै रै धन मोरिया।—लो.गी.

वि०—२ कैसा।

किसड़ो–वि० (स्त्री० किसड़ी) १ कैसा। उ०—१ देखो प्राद प्रनाद सूं, राजी हूं स्रीरांम। संतां रा संसार में, किसड़ा सारै कांम।—भगतमाळ

उ०—२ राई बिना ए किसड़ो रायतो।—लो.गी.

सर्व०—२ कौनसा।

किसणौ–सं०पु०—कृष्ण (रू.भे., प्रल्पा.) उ०—पण भुरधर माखण ना मिळै, किसणै प्रोढ़यौ कांमळौ। प्ररज गरज विलखा करै, जद मुजरौ विरखा सांभळौ।—दसदेव

किसत–सं०स्त्री० [फा० किश्त] देखो 'किस्त'। उ०—च्यार किसत कीधी चलू, दिक्खण हंदै राह।—रा.रू.

किसतूरियौ म्रग—देखो 'कसतूरियौ म्रग' (रू.भे.)

किसतूरी, किसथूरी–सं०स्त्री० [सं० कस्तूरिका] एक सुगंधित द्रव्य जो एक प्रकार के मृग की नाभि से निकलता है, कस्तूरी।

उ०—१ प्रंबजसुत नूं प्रोळभौ, दुखी हुए जग दीध। जांणी जिण री जीभ में, किसतूरी नंह कीध।—बां.दा.

उ०—२ दळ चंपक जाय तुळछी दम्मा, कपूर किसथूरी कुमकुम्मा।—बारहठ ईसरदास

किसन–सं०पु० [सं० कृष्ण] १ श्रीकृष्ण (रू.भे.) उ०—विप्र सुदांमा बार, कोड़ां धन लायौ किसन। वधण चीर विसतार, सरदा घटगी सांवरा।—रांमनाथ कवियौ २ अर्जुन. ३ ईश्वर.

४ विष्णु (डिं.नां.मा.) ५ एक असुर जो इंद्र द्वारा मारा गया था.

६ कोयल. ७ कौप्रा।

वि०—श्यामवर्ण, काला।

किसनताळ, किसनताळू–सं०पु०—१ वह घोड़ा जिसका तालु काला हो (अशुभ) २ काले तालू वाला हाथी।

किसन-वरण–सं०पु० [सं० कृष्ण वर्ण] श्याम, कृष्ण, काला (ह.नां.)

किसनहर–सं०पु०—वर्षा ऋतु में गाया जाने वाला एक लोक गीत।

किसना–सं०स्त्री० [सं० कृष्णा] १ कृष्णा नदी (रू.भे.) २ द्रौपदी.

३ दुर्गा, देवी।

वि०—काली, श्याम। उ०—नर तिसना किसना निसा, मिटै इते नह मीन।—बां.दा.

किसनागर–सं०पु० [सं० कृष्णाकार] अफीम (डिं.को.)

किसना-मिख–सं०पु० [सं० कृष्ण-मुख] लोह (ह.नां.)

किसनावत–सं०पु०—१ भाटी राजपूत वंश की एक शाखा (व.दा.)

२ इस शाखा का व्यक्ति।

किसनियौ—देखो 'श्रीकृष्ण' (प्रल्पा०)

किसन्न–सं०पु० [सं० कृष्ण] श्रीकृष्ण। उ०—नव उच्छव नर नार, नवल सिंगार वसन्न। गीता में प्रग भास, कह्यौ मम रूप किसन्न।—रा.रू.

किसब–सं०पु० [प्र० कस्ब] १ वेश्यावृत्ति, व्यभिचार.

२ वह धन जो वेश्यावृत्ति या ऐसे ही प्रन्य कार्यों द्वारा प्राप्त किया जाय. ३ गुण प्रकट करने का भाव, व्यवसाय, धंधा।

उ०—खिलवत हास खुमामदी, सुरका दुरकी संग। किसब लियां ए कुकवियां, माहव हूंता मांग।—बां.दा.

किसबण, किसबन–सं०स्त्री०—१ कस्ब कमाने वाली, पतुरिया, वेश्या।

उ०—बड़ा बड़ा किसमणियां रा तायफा लारै है, तिके राग रंग उचारै है।—र.हमीर ३ व्यभिचारिणी स्त्री।

किसमत—देखो 'किस्मत'। उ०—फोरी किसमत सूं पग पग फेरी।—ऊ.का.

किसमिस–सं०स्त्री० [फा० किशमिश] सुखाया हुआ छोटी लंबा बेदाना अंगूर, दाख। उ०—प्रांब ईख किसमिस बिदांम, याहर रसना लेर।—ह.पु.वा.

किसमिसी-वि० [फा० किशमिशी] १ किशमिश का. २ किशमिश के रंग का।
सं०पु०—१ देखो 'किसमिस'। उ०—पिस्तां सूं ना प्रेम, कोड काजू री कोनी। नोजा लागै निकांम, किसमिसी भावै कोनी। —दसदेव
२ एक प्रकार का शुभ रंग का घोड़ा (शा.हो.)

किसब—देखो 'किसब' (रू.भे.)

किसांक-वि०—कैसा।

किसांण-सं०पु० [सं० कृषाण, प्रा० किसान] कृषक, किसान।
उ०—घटत घटत सब यूं घटया, ज्यूं किसांण का लोह।—ह.पु.वा.

किसांणन-वि०—काला, श्याम।

किसांणनरक-वि०—काला, कृष्ण वर्ण (डि.को.)

किसांन—देखो 'किसांण' (रू.भे.)

किसाक, किसाकउ-वि०—१ कौनसा। उ०—लोभी ठाकुर आवि घरि, कांई करइ विदेसि। दिन-दिन जोवण तन खिसइ, लाभ किसाकउ लेसि।—ढो.मा. २ किसका।
क्रि०वि०—कैसे।

किसायक-वि०—किस प्रकार का। उ०—गज घेर किसायक घाव घलौ, हय न्हांक भीलां घड़ खूंध हल्लौ।—पा.प्र.

किसारी—देखो 'कसारी' (रू.भे.)

किसाहिक, किसाहीक, किसाहेक-क्रि०वि०—कैसे। उ०—१ ऊपर बगला पावस बैठा छै, सूं किसाहिक सोहै छै।—रा.सा.सं.
उ०—२ रेसम री वाग डोरां सूं आंण हाजर कीजै छै सो किसाहेक घोड़ा छै।—रा.सा.सं.

किसी, किसीक, किसीयक—देखो 'किसौ'। उ०—१ ग्याति किसी राजवियां ग्वाळां किसी, जाति कुळपांति किसी।—वेलि.
उ०—२ तरें एक 'छत्रु' नांवै दासी तिण दिल री लगन जांणी बात री धुन पिछांणी तिका छत्रु किसीयक।—र. हमीर

किसीस-सं०पु० [सं० कीश] हनुमान। उ०—करां जोड रूप कीस, सांम पाय नांम सीस। बांध चाळ महावीर, कूदियौ किसीस।—र.रू.

किसूं-सर्व०—क्या। उ०—किसूं सफीलां भुरज री, काहू बजर कपाट। कोटां नूं निधड़क करै, रजपूतां रौ थाट।—बां.दा.
वि०—१ कैसा. २ कौनसा। उ०—की ईरां ऐराक की, किसूं केच मकरांण। पेत तुरंगा धाट जिम, बांका घाट बखांण।—बां. दा.
क्रि० वि०—किसी प्रकार, किसी तरह।

किसूक-सर्व०—कोई।

किसोइक, किसोईकी, किसोक, किसोयक-वि०—१ कौनसा. २ किसका।

किसोर-वि० (स्त्री० किसोरी)[सं० किशोर] ग्यारह से पंद्रह वर्ष तक की अवस्था वाला या अवस्था से संबंधित। उ०—वय किसोर ऊतरै, जोर जोबम परगट्टै। अणमायौ अंब मैं ति, किरि रत्नाकर तट्टै। —रा.रू.
सं०पु०—१ ग्यारह से पंद्रह वर्ष तक की आयु का बालक. २ पुत्र, बेटा (यौ. नन्दकिसोर) ३ घोड़े का बच्चा (डि.को.)
४ लखपत पिंगल के अनुसार प्रत्येक चरण में तीस मात्रा का एक मात्रिक छंद विशेष (ल.पिं.)

किसोरया-सं०पु०—१ एक पक्षी विशेष. २ एक जड़ी विशेष (अमरत)

किसोरस्यासिंघाड़-सं०पु०—एक प्रकार का सिंघाड़ा (अमरत)

किसौ-वि० (स्त्री० किसी) १ कौनसा, कौन। उ०—ताहरां राजा कहै छोड़ा मांहे किसौ गुण छै।—चौबोली
कहा०—१ किसी चोटी काटी है?—किसी के अधीन थोड़े ही हैं, कौनसे किसी के शिष्य हैं २ किसी थारी खीर खायी है—किसी का लिहाज तभी किया जा सकता है जब कालान्तर में उसने भी अपना उपकार किया हो. ३ किसी देवर माथै बेटी जिणी है—दूसरे के भरोसे कोई काम नहीं उठाया या रक्खा जाता.
४ किसी सांभर सूनी हुवै है—कौनसी कमी हुई जाती है.
५ किसी सिंधूड़ी सूनी हुवै है—कौनसी कम हुई जाती है. ६ किसौ चोरी रो माल है—कौनसा चोरी का माल है; किसी वस्तु या माल के जायज मालिक होते हुए भी डरते रहने पर. ७ किसौ तमासौ है—हँसी-मजाक को छोड़ कर कार्य की गम्भीरता पर ध्यान देना चाहिए. ८ किसौ नानेरौ है—कौनसा ननिहाल है। किसी कार्य के सहज में ही बन जाने की मिथ्या आशा पर व्यंग्य।
२ किसको।
सर्व०—कैसा।
सं०पु० [अ० किस्स] देखो 'किस्सौ' (रू.भे.)

किसौ'क-वि०—कैसा। उ०—देख सखी म्हारौ पती, किसौक अजको (चंचल) छै।—वी.स. टी.

किंस्किंध, किंस्किंधा-सं०स्त्री० [सं० किष्किंधा] १ मैसूर के आस-पास के देश का प्राचीन नाम
सं०पु०—२ इस प्रदेश का पर्वत, किष्कंध. ३ रामायण का एक कांड।

किस्टांन, किस्टांण-सं०पु०—ईसाई मत का अनुयायी। उ०—बेटा भणग्या अंगरेजी र बण गया किस्टांण।—वरसगांठ

किस्त-सं०स्त्री० [अ०] १ पूरा ऋण एक साथ न देकर कुछ विभागों व खंडों में दिया जाने का एक ढंग. २ इस प्रकार चुकाया जाने का एक भाग. ३ ऋण के किसी भाग को चुकाने का निश्चित समय।
[फा० किश्त] १ पराजय, हार। उ०—इनकी फौज किस्त खा गई।—राठौड़ अमरसिंघ री वात २ शतरंज के खेल में बादशाह का किसी मोहरे के घात में पड़ना, शह।

किस्तबंदी-सं०स्त्री० [फा०] थोड़ा-थोड़ा करके रुपया देने का ढंग विशेष।

किस्तवार-सं०पु० [फा० किश्त+वार] पटवारियों का वह कागज जिसमें खेतों का नम्बर, रकबा आदि दर्ज रहता है।
क्रि०वि०—१ किस्त के ढंग से. २ हर किश्त पर, प्रत्येक किश्त पर।

किस्ती–सं०स्त्री० [फा० किश्ती] नाव, नौका।

कहा०—कागद री किस्ती किता दिन चलै—कागज की नाव भला कितने दिन चल सकती है। झूठी एवं बिना आधार की बात का स्थायी असर नहीं होता।

किस्तीनुमा–वि०—नौका के आकार का।

किस्म–सं०स्त्री० [अ० किस्म] १ प्रकार, भेद. २ तरह, भांति. ३ ढंग, तर्ज, चाल।

किस्मत–सं०स्त्री० [अ०] प्रारब्ध, भाग्य, तकदीर।

मुहा०—१ किस्मत उलटणी—अभाग्य आना, कुअवसर आना, काम में सफलता न मिलना. २ किस्मत खुलणी, किस्मत चमकणी—नाम फैलना. ३ किस्मत जागणी, किस्मत दौड़णी—सुअवसर आना, भाग्य खुलना. ४ किस्मत पलटणी—भाग्य फिरना, भाग्य का अच्छे से बुरा या बुरे से अच्छा होना. ५ किस्मत फिरणी—देखो 'किस्मत पलटणी'. ६—किस्मत फूटणी—बुरा समय आना, अभागा होना. ७ किस्मत बिगड़णी—देखो 'किस्मत उलटणी'. ८ किस्मत में लिखियोड़ो पूरौ होणौ—भाग्य का लिखा बुरा या अच्छा फल मिलना. ९ किस्मत में लिखियोड़ो होणौ—होनहार का होना, जो लिखा है वही होगा।

कहा०—किस्मत रौ घाटौ—बुरे दिन आना, काम में सफलता न मिलना।

किस्मतवर–वि० [फा०] भाग्यवान।

किस्मती–वि०—१ भाग्यवान. २ किस्मत का, किस्मत संबंधी।

सं०स्त्री० देखो 'किस्मत'।

किस्यउ, किस्या–वि० (प्रा०रू०) १ कैसा (रू.भे.) २ कौनसा।

क्रि०वि०—कैसे। उ०—सुखासण चाल्या, कंठालीया किस्या, भंडार भरीया।—कां.दे.प्र.

किस्याक, किस्यूं, किस्योक—देखो 'किस्या' (रू.भे.) उ०—तव प्रधांन पूछ्यां चहुग्रांण, किस्यूं वचन कहा क्यूं सुरतांण।—कां.दे.प्र.

किस्सौ–सं०पु० [अ० किस्सः] १ कहानी, कथा, आख्यान. २ वृतांत, समाचार, हाल. ३ कांड, झगड़ा, तकरार।

किहड़ौ–वि० (स्त्री० किहड़ी) कौनसा, कैसा। उ०—कुळवंति पती-वरता किहड़ी, उधरै पख च्यार जिसी इहड़ी।—वचनिका

किहां–क्रि०वि०—कहां, किधर। उ०—आंवण दूभर हे सखी, किहां मुझ प्रांण आधार।—ढो.मा.

किहांण–सर्व०—किस। उ०—ताहरां कह्यौ राजपांणी मांहि किहांण नूं आऊं।—सयणी री वात

किहांणनूं–क्रि०वि० (प्रा०रू०) किसलिए।

किहाड़ौ–सं०पु०—घोड़े की एक जाति विशेष (कां.दे.प्र.)

उ०—पांणीपंथा नइ खुरसांणी, एक तुरकी तुरंग। सूडापंखा नइ किहाड़ा, एक नीलड़ा सुरंग।—कां.दे.प्र.

क्रि०वि०—कैसा।

किहिक–सर्व०—कोई।

वि०—१ कुछ, जरा। उ०—राखो रे किहिक रजपूती, मरद हिंदू की मुस्सलमांण।—बां.दा. २ किस। उ०—कहि सूवा किम आवियउ, किहिक कारण कथ्य।—ढो.मा.

किहि–सर्व०—१ किसी। उ०—१ किहि करगि कुमकुमौ कुंमकुम, किहि करि, किहि करि कुसुम कपूर करि।—वेलि. उ०—२ एकंत उचित क्रीड़ा चौ आरंभ दीठौ सुन किहि देव दूजी।—वेलि. २ कोई।

किहिकै—देखो 'किहिक' (रू.भे.)

किहीक—देखो 'किहिक' (रू.भे.)

कीं–वि०—किंचित्, जरा।

सर्व०—किस। उ०—तद असवार दोय हलकारा चढ सांम्हां आय बात कीवी, कीं रौ साथ छै हो ठाकुरां।—सूरे खींवे री बात

कहा०—कींकी रांड मरै अरै कींके सपनेउ आवै—किसकी स्त्री मरे और किसके स्वप्न में आवे। अनावश्यक कष्ट किसी को नहीं सहना चाहिए।

कींक–वि०—कुछ, जरा, किंचित।

कींकर–क्रि०वि०—कैसे, किस प्रकार। उ०—१ भीखम मात प्रभाव, मात गंग कींकर मनै। सो पखहीण सभाव, सेवट सिटग्या सांवरा।
—रांमनाथ कवियौ

उ०—२ जीण मेरी बाई ये! मुखड़ौ दिखाऊं (अब) कींकर जाय।
जामण की ये जायी! कांई बताऊं ये मायड़ बाप नै।
—लो.गी.

कींकू–सं०पु०—कुंमकुम।

कींकूपत्री–सं०स्त्री०यौ०—विवाह का निमंत्रण-पत्र, कुंमकुम-पत्रिका।

कींजरौ, कींझरौ–सं०पु०—१ कलंक, दोष. २ कुल-कलंक. ३ लांछन।

कींट–सं०पु०—१ बच्चा, शिशु. २ फल।

कींठे, कींठै, कींडै–क्रि०वि०—कहां से (क्षेत्रीय) उ०—कींठै आया छो जावो छो कींठै।—ऊ.का.

कींदू, कींदूड़ौ—देखो 'किंदू' (रू.भे.) (स्त्री०कींदूड़ी)

कींहीं–वि०—कुछ। उ०—दिनां नं जावतां वेळा कींहीं नहीं लागै—डाढाळा सूर री वात

की–सं०पु०—१ घोड़ा. २ हाथी. ३ सर्प. ४ वृषभ. ५ गुलाबी रंग. ६ व्यभिचारी पुरुष. ७ पुरुष. ८ बांस. ९ कुल. १० क्रोध (एका०)

सं०स्त्री०—११ पृथ्वी १२ कमला. १३ चींटी. १४ जिह्वा. १५ कुबुद्धि (एका.) [अं०] १६ किसी ग्रंथ की कुंजी।

अव्यय—विभक्ति 'का' का स्त्री०।

क्रि०—'करणौ' क्रिया के भूतकालिक रूप 'कियौ' का स्त्री०।

अव्यय—या, अथवा।

सर्व०—क्या। उ०—केहरि छोटौ बहुत गुण, मोडै गयंदां मांण। लोहड़ बड़ाई की करै, नरां नखत परमांण।—हा.झा.

वि०—कौनसा, कौनसी।

कहा०—१ की जेठ सारू हीज बेटी आई है—दूसरे के भरोसे कोई काम नहीं उठाया या रक्खा जाता. २ की डोकरियां कांम, राज कथा सं राजिया—बुढ़ियों को राज्यकार्य से कौनसा मतलब, बिना मतलब किसी कार्य में हस्तक्षेप करने पर।

कीउं, कीऊं—क्रि०वि०—क्यों।

वि०—कुछ। उ०—नहचळ अत कठण रहण नारे ना, आदम काळ नहीं आंरे आ। खाट म दाट कीऊं खारे खा, गिर जळ म दिहाड़ा गारे गा।—ओपी आढ़ौ।

कीऊंक, कीऊक—वि०—कुछ।

कीकट—सं०पु० [सं०] निर्धनता, कंगाली (डि.को.)

वि०—निर्धन, कंगाल।

कीकर—सं०पु० [सं० किंकिराट] बबूल का पेड़ (अल्पा. 'कीकरियौ')

क्रि०वि०—कैसे, किस प्रकार। उ०—बोळौ बगनौ हुयग्यौ कीकर, धरती हेली पाड़ै।—रेवतदांन

कीकरियौ—सं०पु०—१ देखो 'कीकर' (अल्पा.) २ अंग्रेजी बबूल का वृक्ष. ३ देखो 'कांकरियौ' (रू.भे.)

कीकस—सं०पु० [सं०] १ अस्थि, हड्डी (डि.को.) उ०—जहां अंब फळ अच्छ तहां नींब फळ न पांमस, जहां चीणी पकवांन तहां कीकस रय मांनस।—करमसी खींवौ आसियौ २ क्षुद्र कीट (डि.को.)

कीकौ—सं०पु० (स्त्री० कीकी) पुत्र, लड़का, शिशु।

कहा०—किण रा कीका री कणदोरी ढीली हुई है—किसी कार्य-विशेष में किसको गरज पड़ी है। किसका स्वार्थ है जो कार्य हो। अधिक स्वार्थ (गरज) के स्थान पर प्रयोग में आने वाली कहावत।

कीड़—सं०स्त्री० [सं० क्रीड़ा] केलि, क्रीड़ा। उ०—दादो ज सारंग देवरी, पतखोर पंजर पीड़। मरजाद तज प्रथिराज मैहलां, करीं जिण रित कीड़।—पा प्र.

कीड़ापरबत—सं०पु० [सं० कीट पर्वत] दीमक द्वारा बनाया मिट्टी का भीटा, वल्मीक (डि.को.)

कीड़ी—सं०स्त्री० [सं० कीटी] १ चिउँटी, चींटी, पीपिलिका।

उ०—जवन अतक तन क्रपण धन, अनकण कीड़ी आंण। धरती में ऊंडो धरै, जांण भलौ निज जांण।—बां.दा.

मुहा०—कीड़ियां लागणी—जी उकताना, शरारत करना, शरारत करने की इच्छा होना, त्वरा करना।

कहा०—१ कीड़ी कैवै क मां गुड़ री भेली ल्यावूं, मा कैवै क बेटी थारी कमर ही कैवै है नी—अपनी शक्ति के बाहर कोई कार्य करने के प्रयत्न पर. २ कीड़ी नै कण, हाथी नै मण—ईश्वर सबको निर्वाह के योग्य भोजन देता है. ३ कीड़ी नै पंसेरी बावणी—देखो कहावत ४. ४ कीड़ी नै पंसेरी री मारणी—कमजोर पर अधिक बल प्रयोग अथवा व्यंग्य कसना अच्छा नहीं. ५ कीड़ी नै मूत री रेलो ही भारी व्है है—कमजोर एवं सामर्थ्यहीन पुरुष को छोटा सा एवं साधारण संकट भी सहन करना कठिन होता है. ६ कीड़ी संचै तीतर खाय, पापी को धन परळै जाय—चींटियों का इकट्ठा किया हुआ तीतर खाते हैं और पापी का धन दूसरे ले जाते हैं; पाप का कमाया हुआ धन पापी के काम नहीं आता; पाप का धन बुरे कामों में नष्ट होता है. ७ हाथी वेग चढ़ै नै कीड़ी वेग ऊतरै—बुखार के लिए प्रयुक्त जो प्रायः तेजी से चढ़ता है किन्तु चींटी की चाल के समान धीरे-धीरे उतरता है।

२ ज्वार के पौधों में लगने वाला एक कीड़ा।

कीड़ीनगरौ—सं०पु० [सं० कीटी+नगरम्] १ भूमि में बना हुआ चींटियों के रहने का स्थान जिसे चींटियां स्वयं भूमि खोद कर एवं पोली करके बनाती हैं. २ चींटियों का झुंड. ३ अंगुलिपर्व या पैर की तली पर होने वाला एक प्रकार का शोथयुक्त दीर्घस्थायी रोग। इसकी सूजन में चिकनाहट एवं एक समानता होती है जो संपूर्ण हड्डी को प्रभावित करती है किन्तु पीब पड़ने के लक्षण नहीं दिखते। प्रायः उस स्थान में से काले-काले दाने निकलते हैं।

कीड़ी-री-खाल—सं०स्त्री०—१ कुलांचें खाकर खेला जाने वाला एक प्रकार का बच्चों का खेल विशेष. २ असंभव अथवा कठिन कार्य।

मुहा०—कीड़ी री खाल निकाळणी—कठिन कार्य करना।

कीड़ौ—सं०पु० [सं० कीट, प्रा० कीड] १ छोटा उड़ने या रेंगने वाला जंतु, कृमि।

मुहा०—१ किताब रौ कीड़ौ—हर घड़ी किताब लेकर पढ़ने वाला, केवल लिखी हुई बात जानने वाला. २ कीड़ा पड़णा—बुरा फल मिलना, सड़ जाना. ४ कीड़ौ काटणौ—जी उकताना, शरारत करना, शरारत करने की इच्छा होना।

कहा०—करम रा कीड़ा नै धरम रा घसीड़ा—जो केवल ऊपरी बनाव-ठनाव से साधु या सज्जन मालूम पड़े उसके लिए।

२ मकोड़ा. ३ गिरगिट. ४ सांप. ५ जूं. ६ खटमल ७ थोड़े दिन का बच्चा. ८ पशुओं का रक्त विकार का एक रोग जो पहले फुंसी के समान होकर धीरे-धीरे नासूर बन जाता है। दो तीन वर्ष बाद प्रायः वह मिट जाता है।

कीच—सं०पु० [सं०] १ पंक, कीचड़, दलदल। उ०—कीच निहारयां कनै, भैंस री चळणूं भारी। पैल बळद पग प्रगट, खिसै नह दीठां खारी।
—ऊ.का.

२ वह पानी जिसे मेथी को भिगो कर तैयार किया जाता है। इससे सोने के आभूषणों पर सोने के कण चिपकाए जाते हैं.

३ देखो 'कीचक'।

वि०—काला, श्याम* (डि.को.)

कीचक—सं०पु० [सं०] १ राजा विराट का साला और उसकी सेना का नायक जिसे भीम ने अज्ञातवास के समय मार डाला था.

२ कीचड़, पंक।

वि० [सं०] खोखला बांस। उ०—कीचक बांसां मांझ पवनियौ मीठौ जंपै, किन्नर भांमां कंठ जीत रा गीत पयंपै।—मेघ.

कीचक-मारण–सं०पु०—भीम (अ.मा., डिं.को.)

कीचकरी, कीचकार, कीचकारि–सं०पु० [सं० कीचक+अरि] कीचक को मारने वाले भीमसेन (ह.नां., अ.मा.)

कीचड़–सं०पु०—गीली मिट्टी, पंक, कीची, दल-दल (अल्पा. 'कीचड़ो')
उ०—आपज्यौ मती वांरा चरण, कांप-कांप री कीचड़ौ। फांफ री दे'र मुख फेरज्यौ, खांप खांप री खीचड़ौ।—ऊ.का.
पर्याय०—करदम, कादौ, गारौ, चीखलौ, चीखिल्लक, जंबाळ, पंक।
मुहा०—कीचड़ में पड़णौ, कीचड़ में फसणौ—दुःख में पड़ना, गंदे मनुष्यों के व्यवहार में फँसना।

कीचल—देखो 'कीचड़' (रू.भे.)

कीट–सं०पु० [सं०] १ रेंगने या उड़ने वाला छोटा जंतु।
उ०—मकोड़ी कीट पतंग मुगाळ, भिखंग तुंही ज तुंही ज भुमाळ। —ह.र.
२ बच्चा. [सं० किट्ट] ३ लोह पर लगने वाला जंग (मि. 'काट') ४ तैल या घी के बर्तन के ऊपर या पेंदे में जमने वाला मैल, जमी हुई मैल।

कीटी–सं०स्त्री०—१ दूध के द्वारा बनाया जाने वाला खोवा।
उ०—भूरी कीटी रा आसी भव भटका, गुडळी छाछां रा सपने में गुटका।—ऊ.का. २ कीट-क्रीड़ा। उ०—दीपक वरत करै सो दीवौ, सो वरखा धण भरै सर। कीटी भ्रंग करै सं। मधुकर, धरपत सो दत दुरद घर।—अज्ञात

कीटौ—देखो 'कीट' (रू.भे.)
वि०—काला, श्याम।

कीठ–सं०पु०—१ लोहे का शिरस्त्राण. २ देखो 'कीटौ' (रू. भे.)
वि०—अत्यन्त काला या श्याम।

कीठे, कीठै–क्रि०वि०—कहाँ।

कीणौ–सं०पु० [सं० क्रयण] प्रायः देहात में शाक तरकारी आदि खरीदने के बदले दिया जाने वाला थोड़ा सा अनाज।

कीत–सं०स्त्री० [सं० कीर्ति] कीर्ति, यश।

कीतवर, कीतवर–वि०—उदार, यशस्वी। उ०—वसू साधार भोख लागै कीतवर, अभंग पारथ अत इळा राजो 'अमर'। —विसनदास बारहठ

कीतावत–सं०पु०—गहलोत वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति (नैणसी)

कीती–सं०स्त्री० [सं० कीर्ति] कीर्ति, यश। उ०—पूरब पछिम उत्तर दखिण कीती रेणे खळभळे, अखैराज अरक ओव्हासियौ हुय नरंद हाळोहळे।—मालौ आसियौ

कीधौ–क्रि०—'करणौ' क्रिया का भूतकालिक रूप विशेष 'कियौ' का पु० रूप, (स्त्री० कीधी) उ०—कापड़ चोपड़ पांन रस, दे सहु खांची दांम। बकण मित्र जद बांकला, कीधौ इण सूं कांम।—बां दा.

कीन–क्रि०—'करणौ' क्रिया का भूतकालिक रूप, किया।

कीनास–सं०पु० [सं० कीनाश] १ यम, यमराज (ह.नां., नां.मा.)
२ एक प्रकार का बंदर।
वि०—गरीब, निर्धन। उ०—समरण त्रास कीनास सरोसौ, भारी राघव तणौ भरोसौ।—र.ज.प्र.

कीनीयांणी–सं०स्त्री०—श्री करणीदेवी का एक नाम।

कीनूं–क्रि०—'करणौ' क्रिया का भू० का० रूप, किया। उ०—तन मन धन सब अरपण कीनूं, छाडी छै कुळ की लाज।—मीरां

कीनै–सर्व०—किसको।

कीनौ—'करणौ' क्रिया का भू० का० रूप—'किया'। उ०—म्हारी कांई जांणै गुवाळियौ, बेदरदी पीड़ पराई। जनमत ही कुळ त्यागन कीनौ, बन बन धेनु चराई।—मीरां

कीप–सं०पु०—१ कीचड़, पंक. २ रस, आनंद। उ०—कजळी बन आघो घणौ, अळगौ सिंघळ दीप। किम इण बनले केहरी, कूंभाथळ री कीप।—बां.दा.
वि०—काला। उ०—काळा जळ रा कीप, बाहण आंणै पारखिण। —बां.दा.

कीपला–सं०स्त्री० [सं० करपीठ, प्रा० करपीड=कीपला] छोटा सिक्का विशेष। उ०—स्री जी ऊमेदसिंघजी देसूरी सैल करण पधारता जद भमरा वा कीपलां री कावड़ां जळेव वैति गांव रा डावड़ा मांगता ज्यांनै कीपलां भमरा दिरीजता।—बां.दा.ख्यात

कीमखाब–सं०पु०—एक प्रकार का चमकीला वस्त्र विशेष। इसमें धागों के साथ सोने-चाँदी के पतले तार भी डाले जाते हैं। उ०—छूटै मेछ के तोप तंबू कनातं, लटै अंबरं कीमखाब बनातं।—ला रा.

कीमत–सं०पु० [अ०] दाम, मूल्य।
क्रि०प्र०—करणी-देणी-मांगणी-लेणी-होणी।
मुहा०—कीमत ठै'राणी—दाम ठीक करना।

कीमति, कीमती–वि० [अ० कीमती] १ अधिक दामों का, बहुमूल्य।
उ०—बेकीमती कीमति कहा, भज परपंच पख तजि दोय।—ह.पु.वा.
२ परीक्षक (ल.पिं.)

कीमियागर–वि० [अ०+फा०] रसायन बनाने वाला, रासायनिक परिवर्तन में प्रवीण।

कीमियागरी–सं०पु० [अ०+फा०] रसायन बनाने की विद्या।

कीमियौ–सं०पु० [अ०] १ रासायनिक क्रिया.
२ देखो 'किमियांगर'।

कीमौ–सं०पु० [अ० कीमा] बहुत छोटे-छोटे टुकड़ों में कटा हुआ खाने के लिये हड्डीरहित गोश्त।

कीयौ–वि०—कोनसा।
कहा०—१ कीया मुसलमांनां रा हिंदू कर देही—किसी कठिन कार्य करने वाले के प्रति. २ कीयौ दूबळै घर व्याव है—किसी समर्थ एवं धनवान व्यक्ति के किसी कार्य के प्रति।

कीर–सं०पु०—१ धीवर. २ केवट, खेवटिया, पार लगाने वाला।

उ०—महादिय मांन करी गुह मीत, तारे सह कीर कुटुंब सहीत। —ह र.

३ पालकी आदि उठाने वाले कहार (मा.म.) ४ बहेलिया. [सं०] ५ शुक, तोता। उ०—मोती ग्रहियां चांच मझ, जांणक कीर जरूर।—बां.दा.

कीरड़णी, कीरड़बी–क्रि०स०— देखो 'किरड़णी' (रू.भे.) उ०—परचो सावत पाय, कावो हुड दांतां कीरड़। आयस बैठो आय, पाछो आसण पीपळी।—पा.प्र.

कीरड़ियोड़ी–भू०का०कृ०—दांतों से चबाया या काटा हुआ। (स्त्री० कीरड़ियोड़ी)

कीरणी–सं०स्त्री०—कीर, धीवर या भील जाति की स्त्री। उ०—सिसिया तें गौतम वडौ तपोतम, व्यास कीरणी निपजाया। —पा.प्र.

कीरणीयूं–सं०पु०—छाता।

कीरतंभ–सं०पु० [सं० कीर्ति+स्तम्भ] कीर्ति-स्तम्भ, स्मृति-स्तम्भ।

कीरत–सं०स्त्री० [सं० कीर्ति] १ कीर्ति, यश, बड़ाई (डिं को.)

पर्याय०—कीत, कीरती, पंगी, पांगळी, प्रभता, प्रभा, सतरंगी, सुजस, सुसबद, सेतरंगी, सोभा।

कहा०—कीरत हंदा कोटड़ा पाड़्या नहीं पड़ंत—कीर्ति के किले गिराने से नहीं गिरते; यश का कभी नाश नहीं होता।

२ सीता की एक सखी. ३ राधा की माता।

वि०—१ श्वेत, सफेद (डिं.को.) २ उज्ज्वल।

कीरतका–सं०स्त्री० [सं० कृत्तिका] देखो 'किरतियां'। उ०—सम्मत सतरौ अड़सटौ, महिसुध फागुण मास। कहिज नखत्र किरतका, तिथ सप्तमी प्रकास।—पा प्र.

कीरतथंभ–सं०पु०—वह स्तम्भ जो किसी की कीर्ति को स्मरण कराने के लिये बनाया जाय। कीर्ति-स्तम्भ, स्मृति-स्तम्भ।

कीरतन–सं०पु० [सं० कीर्त्तन] १ कथन, यश, वर्णन. २ भगवान संबंधी भजन और कथा आदि। उ०—कहण तणौ तिणि तणौ कीरतन, स्रम कीधां बिणु केम सरै।—वेलि.

कीरतनियौ, कीरतन्यौ–सं०पु० [सं० कीर्त्तन] १ ईश्वर संबंधी भजन और कथन सुनाने वाला. २ कीर्तन करने वाला। उ०—कीरतन्या काचै मतै, जपै न केवळ रांम।—ह.पु वा. ३ एक वैष्णव मतावलंबी जाति विशेष जिसके व्यक्ति कृष्ण या रामलीला करते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमते हैं (मा.म.)

कीरतबर–सं०पु० [सं० कीर्ति+वर] १ कीर्ति पाने वाला व्यक्ति, दातार। उ०—कीरतबर 'जेहो' कुंवर, जाड़ेचां घर जोत।—बां.दा. २ त्यागी।

कीरतराय, कीरतवंत, कीरतवर–वि०—कीर्ति पाने वाला, यशस्वी। उ०—इस लेखे और अनेक हुआ कीरतबर का। जिसदी गल्लां उबरी सब आलम सिरका।—दुरगादत्त बारहठ

कीरति–सं०स्त्री० [सं० कीर्ति] देखो 'कीरती'। उ०—जोधांण प्रसणै छात जोधां, 'अभो' कीरति ऊजळी।—रा.रू.

कीरतिथंभ—देखो 'कीरतथंभ' (रू.भे.) उ०—भ्रमी गढ़ चीतौड़ रौ, बेढ़ी छै बळवंत। आदर सूं रहसी इळा, कीरतिथंभ कहंत। —उदयराज ऊजळ

कीरतिवांन–वि० [सं० कीर्तिवान] १ यशस्वी, नेकनाम. २ विख्यात।

कीरतिस्तंभ—देखो 'कीरतथंभ' (रू.भे.)

कीरती–सं०स्त्री० [सं० कीर्त्ति] १ देखो 'कीरत' (रू.भे.) २ गाहा छंद का भेद विशेष जिसके चारों चरणों में १४ गुरु और १६ लघु वर्ण सहित ५७ मात्रायें हों (ल.पिं.)

कीरत्ती–सं०स्त्री० [सं० कीर्ति] कीर्ति, यश (रू.भे.) उ०—वरण इंद सिव ब्रह्म धरम नारद धवपत्ती, 'अजन' धिन्न उच्चारि करै इण पर कीरत्ती।—रा.रू.

कीरथंब, कीरथंभ— देखो 'कीरतथंभ'।

कहा०—सूनी नाडी रौ कीरथंब व्है ज्यूं—आसपास के समाज से अलग अकेले खड़े व्यक्ति के लिए जो अस्वाभाविक व भद्दा मालूम देता हो।

कीरसब्दा–सं०स्त्री० [सं० कीरशब्दा] चतुर्दश ताल का एक भेद (संगीत)

कीरीटी–सं०पु० [सं० किरीटी] देखो 'करीटी' (रू.भे.)

कीरीत–सं०स्त्री० [सं० कीर्ति] कीर्ति, यश।

कील–सं०स्त्री०—१ जड़। उ०—ऊभी कील उखाड़ भेरणा जबर जुवाड़ा।—दसदेव २ आटा पीसने की चक्की की खूंटी जो दोनों पाटों के बीच उनको अलग रखने के लिए होती है.

कीलक–सं०पु० [सं] १ कील. २ लोहे या काठ की मेख. २ खूंटी. ३ कांटा. ४ खूंटा. ५ तंत्र के अनुसार एक देवता. ६ अन्य मंत्र की शक्ति को नष्ट करने वाला मंत्र।

कीलणौ, कीलबौ–क्रि०स० [सं० कील=बंधने] १ मंत्रों द्वारा वश में करना. २ मजबूत करना, बंधन में दृढ़ करना। उ०—गरथ जमी विच गाडिया, केते कांम कीलै।—केसोदास गाडण

३ देखो 'खीलणौ'।

कीलणहार, हारौ (हारी), कीलणियौ—वि०।

कीलिओड़ौ, कीलियोड़ौ, कील्योड़ौ—भू०का०कृ०।

कीला–सं०स्त्री० [सं० क्रीड़ा] १ केलि, क्रीड़ा, खेल, कौतुक। उ०—लिया सार सिंगार गोचार लीला, करै आज रौ जम्मुना तट्ट कीला।—ना.द. २ निसांणी छंद का भेद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में ग्यारह गुरु और एक लघु हो (पिं.प्र.) ३ अग्नि, आग, आंच (डिं.को.)

कीलानंद–सं०पु०—प्रत्येक चरण में छः यगण का वर्णिक वृत्त विशेष (पिं.प्र.)

कीलापति–सं०पु० [सं०] सूर्य, भानु। उ०—प्रभणै किरण पेखि कीलापति, देखै मीढ़ण तणौ दुह दाव। नंद 'हमाऊ' रीस न नांमै, सीस न नांमै 'सिंघ' सुजाव।—महारांणा प्रताप री गीत

कीलाल–सं०पु० [सं०] १ पानी, जल, वारि।
[सं०] २ अमृत।
[सं०] ३ शहद (मि. 'कीलालप')
कीलालप–सं०पु०—भ्रमर (ह.नां.)
कीलित–वि० [सं०] १ कील से जड़ा हुआ (डि.को.) २ मंत्र से स्तंभित या बँधा हुआ।
कीलियौ–सं०पु०—मोट के बैलों को हांकने वाला या जोतने वाला।
वि०वि०—जोतते समय वह मोट की कीली जोड़ता है अतः उसे कीलियौ कहते हैं।
उ०—थे तौ वरण जाज्यौ कीलिया मारूजी, मैं पातळड़ी पिणियार।
—लो.गी.
कीली–सं०स्त्री०—चक्र के मध्य की कील जिस पर वह घूमता है।
कीलोड़ौ–सं०पु०—सुन्दर छोटा बैल।
कीलौ–सं०पु०—बड़ी कील।
कीवौ—'करणौ' क्रिया का स्त्री. लि. भूतकालिक प्रयोग।
कीस–सं०पु० [सं० कीश] १ बंदर (अ.मा.) २ चिड़िया. ३ गाय या भैंस का प्रथम बार दूहा गया दूध (अमरत) (मि. 'गृतौ')
क्रि०वि०—कैसे, किस प्रकार। उ०—मूझ अचंभौ हे सखी, कंत बखांणू कीस। बिण माथै दळ बाढ़ियौ, आंख हियै कै सीस।
—वी.स.
कीसउ–वि०—कैसा। उ०—राज-कुळी महूरत कीसउ, म्हां तौ ओळग चालस्यां आज।—वी.दे.
कीसक–सं०पु० [सं० कीकस] हड्डी, अस्थि (डि.को.)
कीसबर–सं०पु० [सं० कीसवर] हनुमान। उ०—बंद वीर बजरंग कीसबर मंगळकारी, समर मात सरसती विमळ कविता विसतारी।
—र.रू.
कीसुं–सर्व०—कैसा, क्यों।
कीसौ–वि० (स्त्री० कीसी) १ कैसा २ कौनसा। उ०—निरगुणा थारौ कीसौ हौं वेसास।—मीरां
कीहां–क्रि०वि०—कहाँ।
कीहुंक–वि०—कुछ, थोड़ा, जरा, किंचित।
कुं–क्रि०वि०—क्यों। उ०—तरै राजा कह्यौ, इणरी खबर ल्यावौ, कुं गावै छै नै कुं रोवै छै।—जगदेव पँवार री वात
वि०—कुछ। उ०—थारी बैहन नूं तौ बचिया रा घोड़ां री पूंछ बंधाईस, तरै इणाही कुं कह्यौ।—नैणसी
कुंअर–सं०पु०—कुमार। उ०—पंच पुत्र ताइ छठी सुपुत्री, कुंअर रुकम कहि विमळ कथ।—वेलि.
सं०स्त्री०—कुमारी (रू.भे.) उ०—कुंअर उभै कुसधज री, सत्र धन भरथ समथ।—रांमरासौ
कुंअरी–सं०स्त्री०—कुमारी। उ०—राजति राज कुंअरि राय अंगण, उडीयण वीरज अंब हरि।—वेलि.
कुंअळ–सं०पु० [सं० कमल] कमल। उ०—अंब सुपत्तळ करि कुंअळ, कीणी लंब-प्रलंब।—ढो.मा.
कुंआर–सं०पु०—कुमार। उ०—कीयौ हरण पण जानकी, कंत दसरथ कुंआर।—रांमरासौ
कुंआरमग–सं०पु० [सं० कुमार+मार्ग] १ आकाश गंगा।
उ०—उतमंग किरि अंबर आधौ आधि, मांग समारि कुंआर मग।
—वेलि.
वि०वि०—कुछ लोगों का विश्वास है कि इस मार्ग से अविवाहित व्यक्ति रात्रि को नमक ढोते हैं. २ शिशुमार चक्र।
कुंआरी–वि० स्त्री० [सं० कुमारी] कुमारी, अविवाहिता। उ०—रही कुंआरी राइ कुंअरी, सुर नर खपै प्रसिद्ध।—रांमरासौ
सं०स्त्री०—पिंगल प्रकाश के अनुसार निसाणी छंद का एक भेद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में ८ गुरु और ७ लघु वर्ण हों।
कुंआरौ–वि०पु० [सं० कुमार] जिसका विवाह न हुआ हो, अविवाहित।
कुंई–कुंईक वि०—कुछ। उ०—तोनै कुंईक कहणौ छै सु कहीस।
—नैणसी
कुंऔ—देखो 'कूवौ' (रू.भे.)
कुंकण–सं०पु०—एक प्राचीन देश विशेष का नाम। उ०—कुंकण नै केदार दीप सिंघल माले री।—नैणसी
कुंकम–सं०पु०—१ हाथी (ना.डि.को.) २ कुंकुम (रू.भे.)
[सं० कुंकुम] ३ केसर (ह.नां.)
कुंकलाण–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)
कुंकुम–सं०पु०—१ केसर (डि.को.) २ लाल रंग की बुकनी, रोली।
कुंकुमी–वि०—कुंकुम के रंग का, केसरिया रंग का। उ०—केतां छादन कुंकुमी रणमोद रचाया।—वं.भा.
कुंगळ–सं०पु०—कवच, जिरहबख्तर (डि. को.) (रू.भे. 'कग्गाळ')
कुंचवउ—कंचुकी, चोली, अंगिया। उ०—आसालूंध उतारियउ, धण कुंचवउ गळांह। घूमइ पड़िया हंसड़ा, भूला मांनसरांह।—ढो.मा.
कुंचित–वि०—वक्र, टेढ़ा (डि.को.)
कुंज–सं०पु० [सं०] १ वह स्थान जिसके चारों ओर घनी लतायें छाई हों। वृक्ष-वीथि।
पर्याय०—कुंजभवन, तरकुंज, लुकवेस, विजुळ, विटुळरथी, विटपसटी।
[सं०] २ हाथी का दाँत. ३ नौ ग्रहों में से एक, मंगल (नां.मा.)
४ कमल (अ.मा.) ५ क्रौंच पक्षी। उ०—कड़िगां सुंवै पांणी मैं पैठां पगां रा नख भाखै छै, दूध रै भोळावै विलाव वासीजै छै। ऊपर कुंजां सारसां गहकनै रही छै।—रा.सा.सं.
लाल, रक्त वर्ण*।
कुंजक–सं०पु० [सं० कंचुकी] अंतःपुर में आने-जाने वाला ड्योढ़ी पर का चौकीदार या चोबदार (डि.को.)
कुंजकुटीर–सं०स्त्री० [सं०] वह कुटिया जो चारों ओर से लताओं से छाई हुई हो।

कुंजगळी–सं०स्त्री०—बगीचों में लताओं से छाया हुआ पथ. २ पतली तंग गली।

कुंजड़ा–सं०स्त्री०—सब्जी बोने व बेचने वाली एक जाति विशेष।

कुंजड़ौ–सं०पु०—'कुंजड़ा' जाति का व्यक्ति।

कुंजटियौ–सं०पु०—घिसा हुआ तिनकों का छोटा झाड़ू।

कुंजबिहारी–सं०पु०—१ कुंजों में विहार करने वाले श्रीकृष्ण (डिं.को.) २ ईश्वर (नां.मा.)

कुंजमाळा–सं०स्त्री० यौ०—वन-फूलों की माला-उ०—हाथ में सोने री चिटियौ धूजी रमण खेलण नै चाल्या, पांव पींजणियां गळै कुंज-माळा।—लो.गी.

कुंजर–सं०पु० [सं०] १ हाथी (डिं नां.मा.) २ एक नाग का नाम. ३ बाल, केश. ४ एक पर्वत (राम-कथा) ५ छप्पय का इक्कीसवां भेद, जिसमें ५० गुरु, ५२ लघु से १०२ वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं।
वि०—श्रेष्ठ, उत्तम।

कुंजर-असण, **कुंजर-असन**, **कुंजरखार**–सं०पु०यौ० पीपल का पेड़ (डिं.को, अ.मा.)

कुंजरच्छाय–सं०स्त्री०यौ० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक योग।

कुंजराराति, **कुंजरारि**–सं०पु०यौ०—सिंह।

कुंजरारोह–सं०पु० [सं० कुंजर+आरोह] हाथीवान, महावत।

कुंजरासन–सं०पु०यौ० [सं० कुंजराशन] अश्वत्थ, पीपल (डिं.को.)

कुंजळ–सं०पु० [सं० कुंजर] १ हाथी (रू.भे.) २ छाछ, मठा (डिं.को.)

कुंजविहारी–सं०पु०यौ० [सं०] देखो 'कुंजबिहारी' (अ.मा.)

कुंजी–सं०स्त्री० [सं० कुंचिका] १ चाबी, ताली. २ वह पुस्तक जिससे किसी दूसरी पुस्तक का अर्थ खुले।

कुंजौ–सं०पु० [अ० कूजा] १ पुरवा, चुक्कड़. २ सुराही।

कुंझ–सं०स्त्री०—क्रौंच पक्षी। देखो 'कुंज' (रू.भे)
(अल्पा० 'कूंझड़ी, कूंझड़ी) उ०—१ कुंझड़ियां कळिअळ कियउ, सुणिऊ पंखइ वाइ। ज्यांकी जोड़ी बीछड़ी, त्यां निसि नींद न आइ।
—ढो.मा.
उ०—२ कुंझां घऊ नइ पंखड़ी, थांकउ विनउ वहेसि। सायर लंघी प्री मिळउं, प्री मिळि पाछी देसि। - ढो.मा.

कुंट–सं०पु० [सं० कुट] वृक्ष (ह.नां.)

कुंटब—देखो 'कुटंब' (रू.भे.)

कुंठ–वि० [सं० कुंठत्व] १ जो चोखा व तीक्ष्ण न हो. २ मूर्ख, स्थूल बुद्धि का (अ.मा.) [सं० कुट] ३ वृक्ष (ह.नां.)

कुंठित–वि० [सं०] १ जिसकी धार तीक्ष्ण न हो, कुंद. २ मंद, बेकाम, निकम्मा।

कुंड–सं०पु०—१ चौड़े मुंह का गहरा बर्तन. २ छोटा जलाशय, हौज। ३ अग्निहोत्र करने का एक गड्ढा या धातु का पात्र. ४ लोहे का टोप जो युद्ध के समय सिर पर धारण किया जाता था, कूंड, खोद. ५ शिव. ६ एक नाग. ७ ज्योतिष के अनुसार चंद्रमा के मंडल का एक भेद. ८ अग्नि, आग. ९ वह संतान जो पति की जीवितावस्था में ही पर-पुरुष के संसर्ग से उत्पन्न हुई हो।

कुंडकीट–सं०पु० [सं०] १ चार्वाक मत को मानने वाला. २ पतित ब्राह्मणी का पुत्र।

कुंडदामोदर–सं०पु०—द्वारका के पास का एक तीर्थ-स्थान।

कुंडळ–सं०पु० [सं०कुंडल] १ सोने या चाँदी का बना हुआ कान का एक मंडलाकार आभूषण (अ.मा) २ बाली, मुरकी (कान की), संन्यासियों के कान का भूषण. ३ कोल्हू के चारों ओर लगा हुआ गोलबंद. ४ वह मंडल जो कुहरे व बादली में चंद्रमा वा सूर्य के किनारे दिखाई पड़ता हो. उ०—सारी स्रस्टी मे कुंडळ छळ करियौ, भारी हा हा रव भूमंडळ भरियौ।—ऊ.का. ५ वह कुंडलाकार गोल लकड़ी या लोहे का छड़ जो मोट के मुंह पर बंधी रहती है। गोंडरा. ६ शेषनाग (अ.मा.) ७ सर्प (ह.नां.) ८ नाभि. ९ छंद में वह मातृक गण जिसमें केवल दो मात्राएँ हों पर अक्षर एक ही हो. १० बाईस मात्राओं का एक छंद. ११ आँख का गड्ढा। उ०—अेकौं न लाधै चाचरै केस, आंखां रा कूंडळा ऊंडा।—अज्ञात

कुंडळणी–सं०स्त्री० [सं० कुंडलिनी] १ तंत्र और उसके अनुयायी हठ-योग के अनुसार एक कल्पित वस्तु जो मूलाधार में सुषुम्ना नाड़ी की जड़ के नीचे मानी गई है. २ हाथी की सूंड. ३ डिंगल का एक छंद विशेष। इसमें प्रथम आर्या छंद होता है, बाद के चार पद काव्य छंद के होते हैं। आर्या के चौथे पद का अंतिम शब्द काव्य छंद के प्रथम पद में आता है और आर्या छंद का प्रथम पद काव्य छंद के चौथे पद के अंत में उलट कर आता है; अर्थात् आर्या का प्रथम शब्द और काव्य का अंतिम शब्द एक ही होना चाहिये।
(रू.भे.—कुंडळनी, कुंडळिनी)

कुंडळपुर–सं०पु० [सं० कुण्डिनपुर] विदर्भ देश का एक प्राचीन नगर।

कुंडळभद्द, **कुंडळमहभद्द**–सं०पु० [सं० कुंडलभद्र, कुंडलमहाभद्र] कुंडल-दीप का अधिपति देवता का नाम (जैन)

कुंडळाकार–वि० [सं० कुंडलाकार] १ गोल, मंडलाकार, वत्ताकार. २ कूंडल के आकार का, चंद्राकार।

कुंडळिका–सं०स्त्री०—डिंगल का एक छंद विशेष जिसमें प्रथम एक दोहा तथा बाद में रोला छंद होता है।

कुंडळिणी, **कुंडळिनी**—देखो 'कुंडळणी' (रू.भे.)

कुंडळियौ–सं०पु० [सं० कुंडळिका] १ मंडलाकार रेखा, गोल घेरा. २ डिंगल का एक छंद विशेष। यह चार प्रकार का माना गया है। (१) झड़उलट—इसमें प्रथम दोहा, फिर बीस-बीस मात्रा के चार पद होते हैं। चौथे पद को पाँचवें में उलट दिया जाता है। (२) राज-वट—इसमें प्रथम दोहा, फिर २४ मात्रा के छः पद होते हैं। प्रथम और अंतिम पद का चौथे और पाँचवें पद का सिंहावलोकन होता है। (३) शुद्ध कुंडळियौ—इसमें प्रथम एक दोहा और फिर २४ मात्रा के चार पद होते हैं। चौथे और पाँचवें पद में सिंहावलोकन होता है

और प्रथम पद के आदि के शब्द तथा अंतिम पद के अंत के शब्द एक से होते हैं। (४) कुंडळियौ दोहाळ—इसमें प्रथम एक दोहा तथा बाद में चौबीस-चौबीस मात्राओं के छः पद होते हैं। दोहे के चौथे पद का पांचवें पद में सिंहावलोकन होता है। प्रथम पद और अंतिम पद एक ही होते हैं। रघुवरजसप्रकाश के अनुसार 'शुद्ध कुंडळियौ' के बाद ही एक दोहा रख दिया जाय। दोनों के लक्षण मिलते-जुलते हैं।

कुंडळियौ-दोहाळ-सं०पु०यौ०—'कुंडळियौ' छंद का एक भेद. देखो 'कुंडळियौ'।

कुंडळी-सं०स्त्री० [सं० कुंडली] १ जलेबी. २ कुंडलिनी. (देखो कुंडळणी') ३ कचनार. ४ जन्मकाल के ग्रहों की स्थिति बताने वाला एक चक्र जिसमें बारह घर होते हैं. जन्मपत्री।

उ०—क्रपण हुए मर कुंडळी संपत बांटे नांहि। कहियौ चोड़ै कुंडळी, मरतां भारथ मांहि।—बां.दा. ५ सांप के बैठने की मुद्रा विशेष। [सं० कुंडलिन्] ६ सर्प, (अ.मा., ह.नां.) उ०—क्रपण हुए मर कुंडळी, संपत बांटै नांहि। कहियौ चोड़ै कुंडळी, मरतां भारथ मांहि। —बां.दा

७ भैंस के सींगों की कुंडलीकार बनावट अथवा ऐसे बनावट वाले सींगों वाली भैंस। मुर्रा भैंस. ८ विष्णु. ९ मोर. १० धनुष. उ०—कुंडळी अढारटंकी नाळियां धमक्के कोम।—हुकमीचंद खिड़ियौ ११ एक प्रकार का वाद्य विशेष। उ०—सुधा कुंडळी खंजरी चंग सोहै, वजे चंग मिरदंग सोभा विमोहै।—रा.रू.

१२ लोहे में छेद करने का औजार. १३ अंगूठी के ऊपर लगाया जाने वाला वह चौकोर घेरा जिसमें चौकोर नगीना लगाया जाता है. १४ मवेशियों के लगाया जाने वाला वृत्ताकार दाग विशेष. १५ वृद्धावस्था के कारण आंखों की पुतलियों के चारों ओर एक प्रकार की सफेद धारी पड़ जाने का रोग विशेष.

कुंडळीक-सं०पु०—सुदर्शन चक्र (नां.मा., अ.मा)

कुंडसूरज-सं०पु०—सूर्य कुंड नामक द्वारिका के पास का एक तीर्थ-स्थान।

कुंडापंथ-सं०पु०—वाम मार्ग के अंतर्गत एक संप्रदाय विशेष।

कुंडापंथी-सं०पु०—'कुंडापंथ' नामक संप्रदाय का अनुयायी। देखो 'कुंडापंथ'।

कुंडारी-सं०स्त्री०—चंद्रमा के चारों ओर कभी-कभी पाया जाने वाला वृत्त विशेष जो वर्षागम का सूचक माना जाता है।

कुंडाळ-सं०स्त्री०—१ वृत्ताकार चिन्ह. २ चंद्रमा या सूर्य के चारों ओर होने वाला गोल चक्र। उ०—चाहे चाल भालाळ विचोळ लियौ, किरणालर झाळ कुंडाळ कियौ।—पा.प्र. ३ चौड़ मुंह का बना मिट्टी का बर्तन विशेष।

कुंडाळियौ, कुंडाळौ-सं०पु० [सं० कुंड] १ गोल चक्र, गोल घेरा, वृत्त। उ०—लोभ रै कुंडाळै में आज, उडाई आभै तांई खंख।—सांझ

२ घोड़े को वृत्ताकार गोल दौड़ाने की क्रिया (मि० 'कावौ') उ०—तरै खुरी कराय कुंडाळै फेरनै सिराड़ौ विरायौ।

—कहवाट सरवहिया री वात

३ किसी वस्तु के चारों ओर केवल मात्र अपना अधिकार जताने के लिए खींचा गया वृत्त. ४ मिट्टी का या लोहे का बना हुआ चौड़े मुँह का एक गहरा पात्र जिसमें पानी, अनाज आदि रक्खा जाता है.

५ नगारा, नक्कारा।

कुंडिक-सं०पु० [सं०] धृतराष्ट्र के एक लड़के का नाम।

कुंडियौ-सं०पु० [सं० कुंड] देखो 'कूंडियौ' (रू.भे.)

कुंडी-सं०पु०—१ घोड़ा (डि.को.) २ मच्छी पकड़ने का यंत्र (अ.मा.)

कुंडोदर-सं०पु० [सं०] महादेवजी का एक गण।

कुंडौ—देखो 'कूंडौ' (रू.भे.)

कुंण-सर्व०—कौन। उ०—कवण देस तइं आविया, किहां तुम्हारउ वास। कुण ढोलउ कुंण मारवी, राति मल्हाया जास।—ढो.मा.

कुंत-सं०पु० [सं०] भाला, बरछी। उ०—कळ कळिया कुंत किरण कळि ऊकळि, वरजित विसिख विवरजित वाउ।—वेलि.

कुंतग्ग-सं०पु० [सं० कुंताग्र] भाले की नोंक या अनी।

कुंतग्रह-सं०पु० [सं० कुंतग्रह] योद्धा, वीर।

कुंतळ-सं०पु० [सं० कुंतल] १ सिर के बाल, केश (अ.मा.) २ बरछी (डि.नां.मा.) ३ संपूर्ण जाति का एक राग (संगीत) ४ वेश बदलने वाला, बहुरूपिया. ५ एक देश का नाम जो कोंकण और बरार के बीच में था।

कुंतळमुखी-सं०स्त्री०—कटार (डि.नां.मा.)

कुंता—१ देखो 'कुंती' (रू.भे.) उ०—किता बेर पांडव ऊपर कीध, लाखा-ग्रह कुंता काढ़ लीध।—ह र. २ पंवार वंश की एक शाखा (बं.भा.)

कुंतिभोज-सं०पु० [सं०] कुंती (पृथा) को गोद लेने वाला एक राजा।

कुंती-सं०स्त्री०—[सं०] पांडु की पत्नी जो युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन की माता थी, पृथा. [सं० कुंत] भाला, बरछी।

कुंतळ-सं०पु० [सं० कुंतळ] देखो 'कुंतळ' (रू.भे.) उ०—लंक लचकि कुच उचकि, नृत्य गति वक सरळ चलि। डुलि कुंडळ चख चलित उरझि कुंतळ हारावळि।—ला.रा.

कुंथु-सं०पु० [सं०] वर्तमान अवसर्पिणी (काल) का सत्रहवां अर्हत् (जैन)

कुंद-सं०स्त्री० [सं०] १ कुबेर की नौ निधियों में से एक निधि (डि.को., ह.नां.)

२ जूही की तरह सफेद फूलों का एक पौधा। उ०—१ लसै अंद सानंद कुंद गुलाब, निरक्खे हुवै इंद्रवाड़ी निराब।—रा.रू.

उ०—२ केवड़ा कुसुम कुंद तणा केतकी, स्रम सीकर मिरझर स्रवति।—वेलि. ३ एक पर्वत का नाम. ४ नौ की संख्या. ५ विष्णु।

वि०—[फा०] १ कुंठित, गुठला. २ स्तब्ध. ३ उदास. खिन्न।

४ श्वेत, सफेद॰ (डिं.को.)

कुंदण—१ देखो 'कुंदन' (रू.भे.) २ कुंदन के समान रंग वाला घोड़ा (शा.हो.)

कुंदणपुर, कुंदणपुरी—देखो 'कुंडळपुर' (रू.भे.)

कुंदन—संपु० [सं० कुंदन] स्वच्छ स्वर्ण, बढ़िया सोना। उ०—कढ़ि सोहै तरवार कटारी, झलकि रहे मणि कुंदन भारी।—रा.रू.

वि०—१ खालिस. २ स्वच्छ, बढ़िया. ३ स्वर्णिम, सोने का बना। उ०—कुंदन तन होमै कुळवंती, कीधा चंदनांमा कुळवंती।
—वचनिका

कुंदनपुर—देखो 'कुंडळपुर'।

कुंदनसाज—संपु०—सोने के स्वच्छ पत्तर बनाने या जड़ने वाला।

कुंदम—संपु०—कुंद का पुष्प. देखो 'कुंद'। उ०—लीला पोयण पांण केसड़ां कुंदम राजै, लोध रजा भल भांमणियां रै मुखड़े साजै।
—मेघ.

कुंदलता—संस्त्री० [सं०] छब्बीस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसे सुख भी कहते हैं।

कुंदाळ—संपु०—एक प्रकार का शस्त्र विशेष। उ०—अंबुवाळ छोगाळ खंगाळ अणी, करवाळ कुंदाळ धनंक तणी।—पा.प्र.

कुंदी—संस्त्री०—१ धुले हुए या रंगे हुए कपड़ों को तह करके उनकी सिकुड़न और रुखाई दूर करने तथा तह जमाने के लिये उसे लकड़ी से कूटने की क्रिया. २ ठोंक-पीट. ३ देखो 'कुंदौ' (रा.सा.सं.)

कुंदीगर—संपु०—कुंदी (देखो 'कुंदी' (१)) करने वाला।

कुंदेरणौ, कुंदेरबौ—क्रिस०—१ छीलना. २ खरोंचना. ३ कुरेदना।

कुंदेरियोड़ो—भू०का०कृ०—१ छीला हुआ. २ खरोंचा या कुरेदा हुआ। (स्त्री० कुंदेरियोड़ी)

कुंदौ—संपु०—१ बंदूक के पीछे का लकड़ी का चौड़ा भाग, कुंदा. २ आभूषणों में मोती आदि पिरोने के लिये लगाया हुआ गोल घेरा। वि०—मजबूत।

कुंनण—देखो 'कुंदन' (रू.भे.)

कुंबंध-बंधु—संपु० [सं० कुमुद-बंधु] चंद्र, चंद्रमा (नां.मा.)

कुंब—संपु०—१ रावण का भाई, कुंभकरण (अल्पा.)
२ देखो 'कुंभ' (रू.भे.)

कुंबाण—संपु० [अ० कमान] १ धनुष, कमान।
संस्त्री०—२ कुटेव, बुरी आदत।

कुंबाथळ—संपु० [सं० कुंभस्थल] हाथी का गंडस्थल। उ०—मदां भूतां गजां हाथळां झाटकै कुंबाथळां माथै, काटकै सांमहा धृता अवाहां कल्प।—अज्ञात

कुंबारियौ—देखो 'कुंभारियौ' (रू.भे.) उ०—कुंबारिया कुळी बारै ज्यांनै लाज कासूं। मूछाळा राज सा काळा मांनै गीत मंत्र।
—करणीदांन कवियौ

कुंबी—संस्त्री० [सं० कुंभी] १ कायफल. २ कुंभी, जलकुंभी. ३ कुंभ नामक वृक्ष (देखो 'कुंभ')

कुंबौ—देखो 'कुंब' (रू.भे.)

कुंभ—संपु० [सं० क = (जल) का उम्भ = (भरण)] १ मिट्टी का घड़ा, कलश। उ०—रलेसरां जळ री कुंभ चोक मांहे मेल्यौ छै।
—रा.वं.वि.

२ हाथी के सिर के दोनों ओर उभरे हुए भाग। उ०—इभ कुंभ अंधारी, कुच सु कंचुकी, कवच संभु कांम क कळह।—वेलि.

३ एकादसवीं राशि जो बारह राशियों के अंतर्गत मानी जाती है। ४ प्राणायाम के तीन भागों में से एक. ५ हर बारहवें वर्ष पर पड़ने वाला एक मेला जो हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक चार स्थानों पर प्रति तीसरे वर्ष क्रम-क्रम से प्रत्येक स्थान पर भरता है और इस प्रकार प्रत्येक स्थान पर वह बारहवें वर्ष होता है। इनमें प्रयाग का सर्वाधिक महत्व है. ६ गुग्गुल. ७ वर्तमान अवसर्पिणी के उन्नीसवें अर्हत (जैन) ८ संपूर्ण जाति का संध्या समय गाया जाने वाला एक राग (संगीत) ९ प्रह्लाद का पुत्र एक दानव. १० कुंभकरण (रामकथा) उ०—कुंभ उठ्या रीस करि सीस गयण लगाया—केसोदास गाडण ११ कुंभकरण का पुत्र एक राक्षस. १२ एक वानर (रामकथा)

[सं० कुंभज] १३ अगस्त्य ऋषि. १४ मोर, मयूर (अ.मा. ह.नां.) १५ हाथी. १६ हाथी का मस्तक। उ०—फबै सवा मण मुकत-फळ, मैंगळ कुंभ मझार। पिण हाथळ बळ सूं हुवौ, सीह वणै सरदार।—बां.दा. १७ धन (अ.मा., ह.नां.) १८ आर्या गीत या खंधाण (स्कंधक) का भेद विशेष (पिं.प्र.)

कुंभकंदन—संपु०—श्री रामचंद्र (नां.मा.)

कुंभक—संपु० [सं०] सांस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखने का प्राणायाम का एक भाग।

कुंभकरण—संपु०—रावण का भाई एक राक्षस (रामकथा)

कुंभकदन—संपु०—१ ईश्वर (नां.मा) २ कुंभकरण को मारने वाले, श्री रामचंद्र।

कुंभकरन्न—देखो 'कुंभकरण' (रू.भे.) उ०—रुदां रिणि भूकि करंत रतन्न', कपीदळ जांणि कि कुंभकरन्न।—वचनिका

कुंभकळस—संपु०—१ एक प्रकार का घोड़ा (शुभ)—शा.हो.
२ देखो 'कूंभकळस'।

कुंभकार—संपु० [सं०] १ मिट्टी के पात्र बनाने वाला कुम्हार (डिं.को.)
२ कुक्कुट, मुर्गा।

कुंभकारी—संस्त्री०—१ कुलथी, मैनसिल. २ कुम्हार की स्त्री।

कुंभक्रन, कुंभक्रन्न—देखो 'कुंभकरण' (रू.भे.)

कुंभगढ़—संपु०—मेवाड़ का कुंभलमेर नामक किला।

कुंभज—संपु० [सं०] १ घड़े से उत्पन्न मनुष्य यथा—अगस्त्य, वशिष्ठ और द्रोणाचार्य। उ०—कुंभज कह कहीं जी सियावर सुण सहे, बंदे पग बहे जी गैली बन गहे।—र.रू. २ रावण का भाई कुंभकरण। कुंभज सूता नींद भर, किण सकस जगाया। नासै मोह गमाय कर, एवड़ उछराया।—केसोदास गाडण

कुंभजात—देखो 'कुंभज'।

कुंभथळ-सं०पु०—कुंभस्थल, हाथी का गंडस्थल। उ०—उणजी कुंभथळ वाप जड़की उरड़, तुरत कर एक सूं बजी ताळी।—बां.दा.

कुंभदासी-सं०स्त्री० [सं०] कुटनी, दूती, कुंभिका।

कुंभनरक—देखो 'कुंभीपाक' (पौराणिक)

कुंभनी-सं०स्त्री० [सं० कुम्भिनी] १ धरती, पृथ्वी (ह.नां., नां.मा.) २ मच्छी फसाने का यंत्र (अ.मा.)

कुंभला-सं०स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।

कुंभसंधि-सं०पु० [सं०] हाथी के सिर के दोनों कुंभों के बीच में होने वाला गड्ढा।

कुंभसंभव-सं०पु० [सं०] अगस्त्य मुनि का एक नाम।

कुंभस्थळ कुंभस्थळि-सं०पु०—हाथी का गंडस्थल। उ०—यहां घणौ फरख पड़यौ श्री हस्ती कै कुंभस्थळि अर रुखमणीजी कै उरस्थळि।—वेलि.

कुंभहनु-सं०पु० [सं०] रावण के दल के एक राक्षस का नाम।

कुंभांणी-सं०स्त्री०—कछवाहा वंश की एक शाखा (बां.दा. ख्यात)

कुंभाथळ-सं०पु०—हाथी का गंडस्थल। उ०—कुंजर पाय बांधिया केवी, कुंभाथळ चाढ़िया कबी।—अज्ञात

कुंभार-सं०पु० [सं० कुंभकार] १ एक जाति विशेष जिसके व्यक्ति प्राय: मिट्टी के बर्तन आदि बनाते हैं।
(स्त्री० कुंभारण, कुंभारी) २ इस जाति का व्यक्ति, कुम्हार। उ०—खर पर लदै कुंभार, ऊंट भर भाड़ लावै।—दसदेव
पर्याय०—कुंभकार, कुलाळ, कूंभार, कोलाळी, घटकार, चक्कर-जीवत, परजापत।
कहा०—१ कुंभार कुंभारी सूं को नावड़ै (पड़पै) नी जरै गधेड़ा रा कांन मरोड़ै—बलवान से वश न चले तब निर्बल पर गुस्सा उतारने पर. २ कुंभार फूटा हांडा में हीज खावै है—बनाने वाला अपनी वस्तुओं का अधिक उपयोग नहीं करता। देखो कुभार फूटी में रांधै' ३ कुभार फूटी में रांधै—संपन्न व्यक्ति के घर में भी बेपर-वाही अथवा अविचार से अशोभनीय कार्य हो जाते हैं. कुंभार रै घरे फूटी हांडी—देखो कहावत २ और ३. ५ निकमौ कुंभार घड़ै नै भांगै—निकम्मा आदमी बेकार के कार्य किया करता है; शून्य मस्तिष्क शैतान की उपज है।

कुंभारियौ-सं०पु०—१ सिंदूरी रंग का एक विषैला सर्प। २ देखो 'कुंभार' (अल्पा०)

कुंभि-सं०पु० [सं० कुंभी] १ हाथी (डिं.को.) २ मगर. ३ एक विषैला कीड़ा. कुंभ संक्रांति। उ०—सूरज कळमि बैठो सु कुंभि आयौ।—वेलि. टी.

कुंभिक-सं०पु० [सं०] एक प्रकार का नपुंसक (अमरत)

कुंभिका-सं०स्त्री० [सं०] १ कुंभी. २ वेश्या. ३ कायफल. ४ आंख का एक रोग. ५ एक रोग जिसमें लिंग पर जामुन के बीज की तरह फुंसियां होती हैं, सूक रोग।

कुंभिनी-सं०स्त्री० [सं०] भूमि, पृथ्वी (अ.मा.)

कुंभिला-सं०स्त्री०—राक्षसों की एक देवी।

कुंभी-सं०पु०—[सं०] १ हाथी (वं.भा., अ.मा.) उ०—सिंह रौ वार होतां ही इण रा कुंभी रै कळाबै चांमुंडराज रौ चंद्रहास भड़ियौ।—वं.भा. २ मगर। उ०—नित गुघळावण नीर, कुंभी सम अकबर क्रमी। गोहिल रांण गंभीर, पण गुघळै न प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ ३ एक विषैला कीड़ा. ४ बच्चों को क्लेश देने वाला एक राक्षस (रोग विशेष) ५ सर्प (अ.मा.) ६ कुंभीपाक, नरक. ७ कायफल का पेड़. ८ छोटा घड़ा (ह.नां.) ९ हंडिया (डिं.को.)

कुंभीक-सं०पु० [सं०] १ एक प्रकार का नपुंसक. २ जलकुंभी. ३ पुन्नाग वृक्ष।

कुंभीधान्य-सं०पु० [सं०] घड़ा व मटका भर अन्न जिसे कोई गृहस्थ या परिवार ६ दिन (किसी के मत से साल भर) खा सके।

कुंभीधान्यक-सं०पु० [सं०] 'कुंभीधान्य' रखने वाला। देखो 'कुंभीधान्य'।

कुंभीनस-सं०पु० [सं०] १ क्रूर सांप (ह.नां.) २ एक प्रकार का विषैला कीड़ा. ३ रावण।

कुंभीपाक-सं०पु० [सं०] १ एक प्रकार का नरक जिसमें मांस भक्षण के लिये पशु-पक्षी मारने वाले लोग खौलते हुए तेल में डाले जाते हैं (ह.नां.) उ०—जिणरी संगति रै प्रभाव सूं स्वरग लोक रौ मारग मुद्रित कराय कुंभीपाक रौ निवास भाळियौ—वं.भा. २ एक प्रकार का सन्निपात।

कुंभीपाळक-सं०पु०—हाथीवान, फीलवान, महावत (डिं.को.)

कुंभीपुर-सं०पु० [सं०] हस्तिनापुर का एक प्राचीन नाम (ह.नां.)

कुंभीमुख-सं०पु० [सं०] चरक के अनुसार एक प्रकार का फोड़ा।

कुंभीर-सं०पु० [सं०] १ नक्र या नाक नामक जल जंतु, मगर. २ एक प्रकार का कीड़ा।

कुंभीरासण, कुंभीरासन-सं०पु० [सं० कुंभीरासन] योग में एक प्रकार का आसन जिसमें भूमि पर चित लेट कर एक पैर को दूसरे पैर पर और दोनों हाथों को माथे पर रख लेते हैं।

कुंभेण—देखो कुंभकरण'। उ०—हणे कुंभेणसा जोधपुर श्री हथां, करै कुंण तेण परमांण काया।—र.रू.

कुंभेर-सं०स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसके पत्ते पीपल के पत्तों से मिलते-जुलते होते हैं। खंभारी, गंभारि (अमरत)

कुंभेण—देखो 'कुंभकरण' (रू.भे.) उ०—तब अहंकारी कोपियौ, कुंभेण जगाया।—केसोदास गाडण

कुंभोदर-सं०पु० [सं०] महादेव के एक गण का नाम।

कुंभोलूक-सं०पु० [सं०] एक प्रकार का उल्लू जो बहुत बड़ा होता है।

कुंभौ-सं०पु०—१ मिट्टी का बरतन. २ कुंभकर्ण. ३ अगस्त्य मुनि।

कुंमळाणौ, कुंमळाबौ-क्रि०स०—१ कुम्हलाना, मुरझाना। उ०—सखियां रासी सूं कहइ, मारू-मन-भांणी। साल्हकुंमर पासइ विना, पदमिणि कुंमळांणी।—ढो.मा. २ सुस्त होना।

कुंमळाणहार, हारौ (हारी), कुंमळाणियौ—वि० ।
कुंमळायोड़ौ–भू०का०कृ० ।

कुंमळायोड़ौ–भू०का०कृ०—कुम्हलाया हुआ (स्त्री० कुंमळायोड़ी)

कुंमुंद–सं०स्त्री० [सं० कुमुदिनी] कुमुदिनी । उ०—कंज कल्यांणी विकसरण लागी, भंवराळी विकसरण लागी । ओसकरण वरसरण लागा, कुंमुंद मंद वरसरण लागा ।—र. हमीर

कुंयरी–सं०स्त्री०—कुमारी । उ०—कुंयरी कोडाळी बेटड़ी, वळी मेळावउ कवरण वळोमरिण ।—कां.दे.प्र.

कुंयुई–क्रि०वि०—क्यों ।

कुंरब—देखो 'कुरब' (रू.भे.)

कुंवर–सं०पु०—१ राजकुमार. २ पुत्र, लड़का. ३ वह बालक जिसका पिता जीवित हो ।

कुंवरकलेवौ—१ देखो 'कंवरकलेवौ' (रू.भे.)
२ इस अवसर पर गाया जाने वाला लोक-गीत ।

कुंवरपद, कुंवरपदौ–सं०पु०—कुमारावस्था (जबकि पिता जीवित हो)

कुंवरी–सं०स्त्री०—कुमारी (पु० कुंवर)

कुंवरेस–सं०पु० [सं० कुमार+ईश] ज्येष्ठ पुत्र । उ०—सूरां आगळ सांमरै झुंझार हुवाई, नंद गुमांन 'बिजैस'कै कुंवरेस कहाई ।
—मोडजी आसियौ

कुंवळ–सं०पु०—१ कमल । उ०—तळाव रै छेवड़ां कुंवळ फूलनै रह्या छै ।—रा.सा.सं. २ देखो 'कंवळौ' (रू.भे.) उ०—सपना में ओ मारूजी दीपक जो देख्यौ, कुंवळां री केळ रळावरणी जी ।
—लो.गी.

कुंवाड़–सं०पु०—कपाट, किंवाड़ (डिं.को.)

कुंवार–सं०पु०—१ एक ग्रह विशेष जिसका प्रभाव बालकों पर पड़ा करता है (अमरत) । २ अग्नि ।
[सं० कुमार] ३ आश्विन मास । उ०—सुख लेतां मुरधर सुपह, वीतौ मास कुंवार ।—रा.रू.
[सं० कुमार] ४ वह बालक जिसका पिता जीवित हो (डिं.को.)
५ पांच वर्ष का बालक. ६ पुत्र. ७ युवराज. ८ स्वामी कार्तिकेय. ९ तोता. १० सनत्कुमार. ११ क्वारपन, क्वारापन ।

कुंवारी–सं०स्त्री० [सं० कुमारी] कुमारी, कन्या ।
वि०—अविवाहिता । उ०—तद फूलमती कही, हूं कुंवारी छूं ।
—चौबोली

कुंवारीघड़ा—देखो 'कंवारीघड़ा' (रू.भे.) उ०—सती रा नाळेर तोरण रा आखा कुंवारीघड़ा रा बींद गाहड़ रा गाडा । रा.सा.सं.

कु–सं०स्त्री० [सं०कु:] १ पृथ्वी (डिं.नां.मा.) उ०—कु अत्थ भ्रमावत हत्थ कपांन, दिखावत संकर कौ प्रति दांन ।—वं.भा. २ तट ।
सं०पु०—३ पोखर, ताल. ४ हृदय. ५ सरस शब्द (एका.)।
वि०—तनिक (एका.) ।
उप० [सं०] एक उपसर्ग जो संज्ञा के पहले लग कर विशेषण का काम देता है, जिससे उसमें नीच, कुत्सित आदि का भाव आ जाता है ।

कुअर–सं०पु० [सं० कु+अरि] १ वैरी, शत्रु. [सं० कुमार] २ राजकुमार. ३ देखो 'कुमार' ।

कुअरि–सं०स्त्री० [सं० कुमारी] १ कुमारी, लड़की. २ कन्या, पुत्री. राजकन्या ।

कुअवर–सं०पु० [सं० कुमार] कुमार ।

कुआड़ियौ—देखो 'कवाड़ियौ' ।

कुआड़ौ–सं०पु० (स्त्री० कुआड़ी) कुठार, कुल्हाड़ा ।

कुआर–सं०पु० [सं० कुमार, प्रा० कुवार] १ देखो 'कुंवर (रू.भे.)
२ आश्विन मास ।

कुआरउ–वि०—अविवाहित, कुमार । उ०—अजइ कुआरउ बप्पड़ा, नहीं ज कांमिरण मोह ।—ढो.मा.

कुआरौ–वि०—१ आश्विन मास का, आश्विन संबंधी.
(स्त्री० कुआरी) २ अविवाहित ।

कुआळौ–वि०—कुये पर कार्य करने वाला ।

कुइलौ- सं०पु०—कोयला (रू भे.) उ०—ढाढ़ी एक संदेसड़उ, प्रीतम कहिया जाइ । सा धरण बळि कुइला भई, भसम ढंढ़ोळिसि आइ ।
—ढो.मा.

कुईजबौ, कुईजबौ—देखो 'कुयीजरणौ' (रू.भे.)

कुओ—देखो 'कूवौ' (रू.भे)

कुकड़लौ–सं०पु०—१ दामाद को संबोधित कर गाया जाने वाला एक लोक गीत. २ देखो 'कूकड़ौ' (रू.भे.)

कुकड़ी–सं०स्त्री०—१ सूत की लच्छी. २ काले कानों वाली भेड़ । ३ मुर्गी ।

कुकड़ौ–सं०पु० [सं० कुक्कुट] १ मुर्गा । उ०—कुकड़ा री गुरण कांम, काक गुरण भक्षरण कीनौ ।—ऊ.का. २ एक राजस्थानी लोक गीत ।

कुकर–सं०पु० [सं० कुक्कर] कुत्ता, श्वान (ह. नां.)
(अल्पा.–कुकरड़ौ, कुकरियौ)

कुकरड़ी–सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का पौधा जिसका भुट्टा ऊपर से लाल और नीचे से सफेद होता है । इसके बीज श्याम रंग के अत्यंत महीन दानों के समान होते हैं (अमरत) २ कुतिया (अल्पा.)

कुकरम–सं०पु० [सं० कुकर्म] बुरा कार्य, खोटा काम, पाप, कुकृत्य ।

कुकरमी–सं०पु० [सं० कुकर्मिन्] १ बुरे कार्य करने वाला, पापी, आचरणहीन. २ व्यभिचारी ।

कुकरियौ–सं०पु०—कुत्ते का पिल्ला ।

कुकरी-नेपाळी–सं०स्त्री०—एक प्रकार का शस्त्र विशेष ।

कुकव, कुकवि, कुकवी–सं०पु० [सं० कु+कवि] १ बुरा कवि ।
उ०—किल सोभरण मुख भूभ वयरण केरण, सुकवि कुकवि भ्रालरणी न रूप ।—वेलि.

कुकस–सं०पु०—अभक्ष्य पदार्थ, निकृष्ट पदार्थ । उ०—करण संचइ कुकस भखइ, अति चतुराई राजा गढ़ ग्वाळेर ।—वी.दे.

कुकसाई–वि०—१ नीच. २ निर्दयी, निठुर. ३ वधिक, हत्यारा।
कुकांम–सं०पु० [सं० कु+कार्य] देखो 'कुकरम'।
कुकाई–सं०स्त्री०—चिल्लाहट, पुकार।
कुकाऊ–वि०—पुकारने वाला, चिल्लाने वाला। उ०—घरण ढोल कुकाऊ भरा घुरसी, फजरै पर 'जायलियौ' फरसी।—पा.प्र.
कुकुंदर–सं०पु० [सं०] १ चूतड़ पर का गड्ढ़ा. २ कुकरौंधा।
कुकुदक–सं०पु० [सं० ककुद] कूबड़ (बैल का) (डिं.को)
कुकुदवान–सं०पु०—बैल, वृषभ (ह.नां.)
कुकुभ–सं०पु० [सं०] १ एक राग का नाम (संगीत) २ एक मात्रिक छंद जिसके सोलह और चौदह के विराम से तीस मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में दो गुरु होते हैं (पिंगळ)
कुकुभा–सं०स्त्री०—एक राग (संगीत) (मि. 'कुकुभ')
कुकुर–सं०पु० [सं०] १ यदुवंशी क्षत्रियों की एक जाति. २ एक प्रदेश जहाँ कुकुर जाति के क्षत्रिय रहते थे. ३ एक सांप. ४ कुत्ता।
कुकुरखांसी–सं०स्त्री०—सूखी खांसी का बच्चों का एक रोग जिसमें कफ नहीं गिरता (मि. 'खुलखुलियौ')
कुकूळ–सं०पु० [सं० कुकूल] तुषाग्नि (डिं.को.)
कुकुत्स–सं०पु० [सं० काकुत्स्थ] १ श्री रामचंद्र (नां.मा.) २ श्री रामेश्वर।
कुकोह–सं०पु० [सं० कु+क्रोध] १ बुरा या अनुचित क्रोध। उ०—कृतांत भांत कोह में, कुकोह कोहि को कढ़े।—ऊ.का. [सं० कुध्] २ पर्वत (डिं.को.)
कुक्क–सं०स्त्री०—१ कूक. २ त्राहि-त्राहि की पुकार। उ०—आसुर के अंतहपुरनि, परी अचांणक कुक्क।—ला.रा.
कुक्कटवाहणी–सं०स्त्री०—बहीचरा देवी जिसका वाहन मुर्गा माना जाता है।
कुक्करखांसी—देखो कुकुरखांसी' (रू.भे.)
कुक्कुट–सं पु० [सं०] मुर्गा (डिं.को.)
कुक्कुटकपाद–सं०पु० [सं०] एक पर्वत का प्राचीन नाम जो गया से आठ कोस उत्तर पूर्व में है।
कुक्कुटव्रत–सं०पु० [सं०] भादों शुक्ला सप्तमी को होने वाला एक व्रत।
कुक्कुटसिखा–वि० [सं० कुक्कुट+शिखा] लाल, रक्तवर्ण* (डिं.को.)
कुक्कुटासण, कुक्कुटासन–सं०पु०—योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन जिसमें पद्मासन की तरह बैठ कर दोनों हाथों को जंघा और घुटनों के बीच में घुसा कर उसी के बल से समस्त शरीर को ऊँचा उठा कर तोला जाता है। पांव की स्थिति बदलने से इसका दूसरा प्रकार भी होता है। इससे आलस्य व तंद्रा का नाश होता है तथा जठराग्नि की वृद्धि होती है।
कुक्कुर–सं०पु० [सं०] १ कुत्ता. २ यदुवंशियों की एक शाखा। ३ एक मुनि।

कुकत्त–सं०पु० [सं० कु+कृत्य] कुकर्म, पाप।
कुक्ष–सं०पु० [सं०] पेट, उदर।
कुक्षि–सं०स्त्री० [सं०] १ पेट. २ कोख।
कुक्षिभेद–सं०पु० [सं०] वृहत्संहिता के अनुसार ग्रहण के सात प्रकार के मोक्ष के भेदों में से एक।
कुख–सं०स्त्री० [सं० कुक्षि] १ कोख, बच्चादानी. २ उदर, पेट. ३ प्यास।
कुखि—देखो 'कुक्षि' (रू.भे.)
कुखिभेद—देखो कुक्षिभेद' (रू.भे.)
कुखेत–सं०पु० [सं० कुक्षेत्र, प्रा० कुखेत्त] बुरा स्थान, कुठौर।
कुख्यात–वि० [सं०] निंदित, बदनाम।
कुख्याति–सं०स्त्री० [सं०] निंदा, बदनामी।
कुगंध–सं०स्त्री०—बदबू, दुर्गन्ध।
कुगति, कुगती–सं०स्त्री० [सं० कुगति] दुर्गति, दुर्दशा, बुरी हालत (डिं.को.)
कुगात–वि०—बेडौल, बुरा शरीर।
कुघट, कुघाट–सं०पु० [सं० कु+घट] १ बुरा शरीर, बेडौल, बेढ़ंगा, कुरूप. २ नाश। उ०—सांप अंगुठा मेळ ज्यूं, कदियक हुसि कुघाट।—बां.दा.
वि०—बुरा, कुरूप, भद्दा।
कुघाटौ–वि०—देखो 'कुधाट'।
कुघात–सं०पु० [सं० कु+घात] १ कुअवसर, बेमौका. २ छल-कपट।
कुड़–सं०पु०—एक प्रकार का लोहे का यंत्र जिससे हरिण आदि पकड़े जाते हैं, फंदा। उ०—कांकळ छोडै कूदियौ, भागळ पौरस भंग। कीधा जांणै काढ़मां, कुड़ नीसरै कुरंग।—बां.दा. (मि० कुड़क' (४))
कुड़क, कुड़की–सं०स्त्री०—१ जुर्माना या कर्जा चुकाए जाने के लिए नियमानुसार ऋणी की संपत्ति को जब्त करने की क्रिया. २ अमर-बकरे के कान में डाली जाने वाली कड़ी. ३ कान का एक जेवर विशेष. ४ जानवरों को मारने के लिए फँसाने का एक प्रकार का फंदा (नटिया) (क्षेत्रीय) ५ मुर्गे के अंडे देना बन्द करने का भाव. ६ नागों के नौ वंशों में से एक या इस वंश का नाग (ग मो.)
कुड़की-अमीन–सं०पु०—वह राजकीय कर्मचारी जो नियमानुसार किसी की संपत्ति को कुर्क करे।
कुड़कुड़ती–सं०स्त्री०—एक प्रकार की चिड़िया। उ०—चटकं चीर निचोय नारघां कुड़कुड़ती सी कांपती।—दसदेव
कुड़कौ–सं०पु०—१ किसी कठोर या कड़ी वस्तु के चबाने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि. २ देखो 'कुड़क' (४)
कुड़चियौ–सं०पु०—चम्मच, करछुल (अल्पा०)
कुड़ची. कुड़च्छी, कुड़छी–सं०स्त्री०—बड़ा व गहरा चम्मच। (रू.भे. 'कुड़चियौ')

कुड़णो, कुड़बौ–क्रि०अ०—१ झुकना (वृद्धावस्था से) उ०—मड़ियौ कुड़ियौ मेर संग सड़ियौ न सुहावै, पड़ियौ रहे परेत दैत ज्यूं दांत दिखावै।—ऊ.का.

२ अनाज के डंठलों का पक कर मुड़ जाना या झुक जाना।

कुड़ती–सं०स्त्री०—चोली के ऊपर कुर्ते की आकृति से कुछ मिलता-जुलता स्त्रियों का एक वस्त्र। उ०—अंगिया लेलो कबजा लेलो कुड़ती ले घर जावौ।—लो.गी

कुड़तो–सं०पु०—कुर्ता, कमीज। उ०—मुलायमूंगी रेजी को सींयूं कुड़तो सटको लगाय घूंगी।—लो.गी.

कुड़बड़ो–सं०पु०—चरस के बीच में लगाई जाने वाली लकड़ी।

कुड़मल–सं०पु०—१ कली, मुकुल. २ एक नरक।

कुड़ळपति–सं०पु०—कुंडिनपुर का राजा, शिशुपाल।

कुड़ियोड़ो, कुड़ियौ–भू०का०कृ०—झुका हुआ (वृद्धावस्था या पकने से) (स्त्री० कुड़ियोड़ी)

कुड़ो–वि०—झूठा, असत्यवादी, झूठा, मिथ्या।

कुचंदन–सं०पु० [सं०] १ रक्तचंदन. २ बक्कम, कुंकुम)

कुच–सं०पु० [सं०] स्तन, छाती उरोज।

वि०—१ संकुचित. २ अति तीक्ष्ण* (डि.को.) ३ कठोर ४ कृपण, कंजूस।

कुचक्र–सं०पु० [सं०] षड़यंत्र।

कुचक्री–सं०पु० [सं० कुचक्रिन्] षड़यंत्रकारी।

कुचमाद–सं०स्त्री०—१ चालाकी, धूर्तता. २ बदमाशी।

कुचमादी–वि०—१ चालाक, धूर्त. २ बदमाश।

मुहा०—कुचमादियां रौ कोथळी—बहुत धूर्त एवं बदमाश व्यक्ति के लिये।

कुचरकी, कुचरड़ी–सं०स्त्री०—छोटा या पतला ईंधन (अल्पा.)

कुचरड़ो–सं०पु०—निंदा, अपयश, अपकीर्ति। उ०—इब हीं जे बहीर होयस्यां तो सै लोक कुचरड़ो करस्यै जे रिजाळी थी सो किही रै साथै परी गई।—कुंवरसी सांखला री वारता।

कुचरणो, कुचरबो–क्रि०स० खुरचना, करोंचना, करोना।

कुचरणहार, हारो (हारी), कुचरणियो–वि०।

कुचराणो, कुचराबो, कुचरावणो, कुचरावबो–क्रि०स०—प्रे०रू०।

कुचरायोड़ो—भू०का०कृ०।

कुचरिओड़ो, कुचरियोड़ो, कुचरयोड़ो–भू०का०कृ०।

कुचरीजणो, कुचरीजबो—क्रि० कर्म वा०।

कुचरीजिओड़ो, कुचरीजियोड़ो, कुचरीज्योड़ो—भू०का०कृ०।

कुचराणो, कुचराबो–क्रि०स०—'कुचरणो' का प्रेरणार्थक रूप। देखो 'कुचरणो'।

कुचरियोड़ो–भू०का०कृ०—खरोंचा हुआ, कुरेदा हुआ। (स्त्री० कुचरियोड़ी)

कुचरी–सं०स्त्री०—छोटा व पतला ईंधन।

मुहा०—कुचरी करणी, तंग करना।

कुचरीजणो, कुचरीजबो–क्रि० कर्म वा०—खरोंचा जाना, कुरेदा जाना. देखो 'कुचरणो'।

कुचळणो, कुचळबो–क्रि०स०–किसी चीज पर सहसा ऐसी दाब पहुँचाना जिससे वह बहुत दब कर विकृत हो जाय, मसलना. २ पैरों से रोंदना।

कुचळणहार, हारो (हारी), कुचळणियो—वि०।

कुचळाणो, कुचळाबो, कुचळावणो, कुचळावबो—क्रि०प्रे०रू०।

कुचळायोड़ो—भू०का०कृ०।

कुचळिओड़ो, कुचळियोड़ो, कुचळ्योड़ो—भू०का०कृ०।

कुचळीजणो, कुचळीजबो—क्रि० कर्म वा०।

कुचळीजिओड़ो, कुचळीजियोड़ो, कुचळीज्योड़ो–भू०का०कृ०।

कुचळियोड़ो–भू०का०कृ०—कुचला हुआ। (स्त्री० कुचळियोड़ी)

कुचांमणी–सं०पु०—कुचामन का एक प्राचीन सिक्का विशेष।

कुचार–वि०—१ दुष्ट, नीच, उद्दंड. उ०—विध सुणत कोयणा चख विकार, चारणां सीस धिकियौ कुचार।—रांमदांन लाळस

२ कुमार्गी। उ०—चले कुचार बार कौ सुचार में चलावनी।

—ऊ.का.

सं०स्त्री०—१ बदमाशी, शैतानी. २ कुचाल. ३ बुरा आचरण, दुष्टता।

कुचाल—देखो 'कुचार'। उ०—१ सालै निस दिन समझणो, चालै चाल कुचाल।—ऊ.का. २ उ०—दे धरणी दातार सूं, मांगै हठ कर माल। कूड़ा बोलै कृतघणी, कुकवि अनंत कुचाल।

—बां दा.

कुचाली–वि०—१ कुमार्गी, बुरे आचरण वाला. २ दुष्ट, पाजी. बदमाश।

कुचाव–सं०पु०—बुरी उमंग, बुरी चाह। उ०—चित में दुस्ट कुचाव, औ निलज लायौ अठै। अब गिरधर झट आव, साय करण नै सांवरा।—रांमनाथ कवियौ।

कुचिल–वि०—१ वक्र, बाँका, टेढ़ा, तिरछा. २ कुटिल, छली।

कुचिल–वि०—कुचाल चलने वाला, कुमार्गी। उ०—हूं अहा कुचिल कुदरसनि, सकति सुहागन होय (ह.पु.वा.)

कुचील–वि० [सं० कुचेल] १ मैले वस्त्र वाला, मलिन. २ दुष्ट. ३ गंदा, मैला। उ०—सिवरी कुल भील कुचील सरीरी, चाखत बोर रसील संचे। गहावत ढील करी नह गोविंद, वीच अंगीर मंजार वंचे।—भगतमाळ ४ नीच, पतित। उ०—धूत बजारी धरम री, हिय न मांनै हील। मन चलाय खांपण मही, काढ़ै नफौ कुचील।

—बां.दा.

कुचीलणी–वि०स्त्री०—मैली-कुचैली, गंदी, मलिन। उ०—नीच कुल ओछी जात, अति ही कुचीलणी।—मीरां

कुचीलो–सं०पु०—एक प्रकार का मध्यम आकार का वृक्ष। इसका फल

नारंगी के सदृश होता है जिसमें आधा इंच व्यास के चिपटे गोल बीज होते हैं, इन्हें भी कुचीला कहते हैं (ग्रमरत)

कुसुमार-सं०पु० [सं०] काम शास्त्र के एक प्रधान ग्राचार्य (काम सूत्र)

कुचेन-सं०पु० [सं० कु+चैन] दुःख, व्याकुलता। उ०—चैन को कुचेन में गमावनौ चाहौ।—ऊ.का.

कुचेला-सं०स्त्री०—सीसोदिया वंश की एक शाखा।

कुचेलौ—१ देखो 'कुचीलौ' (रू.भे.) २ बुरा शिष्य।

कुचेस्ट-वि० [सं० कुचेष्ट] जिसकी चेष्टायें बुरी हों।

कुचेस्टा-सं०स्त्री० [सं० कुचेष्टा] १ बुरी चेष्टा, कुप्रयत्न, बुरी चाल. २ चेहरे का बुरा भाव।

कुचोप-वि०—खराब, बुरा। उ०—चवियौ मुख वायक ग्रत कुचोप, करणला चढ़ै ताय महा कोप।—रांमदांन लाळस

सं०पु०—ग्रसुर।

कुच्चडढ़ौ-वि०—कूंची के समान दाढ़ी वाला। उ०—चढ़े कुच्चडढ़े मिखा हीन मत्थे इरांनी ग्ररब्बी तुरक्की चिगत्थे।—ला.रा.

कुछ-वि० [सं० किंचित्, प्रा० किंची] थोड़ी संख्या व मात्रा का, जरा, थोड़ा सा।

मुहा०—१ कुछ कैणौ—भला-बुरा कहना. २ कुछ न चलणौ—वश न चलना, कोई उपाय न लगना. ३ कुछ रौ कुछ—उलटा. ४ कुछ सूं कुछ हो जाणौ—बहुत बड़ा परिवर्तन हो जाना. ५ कुछ होणौ—किसी लायक हो जाना, विशेष बात।

सर्व० [सं० कश्चित्. प्रा० कोचि] कोई।

सं०पु० [सं० कुश] कुश।

कुछेक-वि०—कुछ, जरा सा।

कुज-सं०पु० [सं०] १ मंगल ग्रह (ग्र.मा.) २ वृक्ष. ३ नरकासुर। सर्व०—कोई।

वि०—१ लाल, रक्त वर्ण (डि.को.) २ कुछ।

कुजकोई-वि०—१ सामान्य, हरएक, साधारण. २ तुच्छ, छोटा, निम्न। उ०—कुजकोई चुंमरण करै, गणका हंदो गाल। कुजकोई खावण करै, मावड़ियां रौ माल।—बां.दा.

कुजळपणा-सं०स्त्री०—बकवाद। उ०—कवी प्रभाव कल्पना, कुजळपना कलीयसी।—ऊ.का.

कुजवार-सं०पु०—मंगलवार। उ०—पाछौ ऊमर थूंणै जाइ ग्रासाढ़ क्रस्ण नवमी कुजवारां रा लगन पर गोळवाळ री पुत्रियां रौ विवाह चालुकराज रा कंवरां रै साथ कर दीधौ।—वं.भा.

कुजस-सं०पु० [सं० कु+यश] कुयश, ग्रपयश, निंदा। उ०—बांके ग्रंथ बणावियौ, कायर कुजस निकेत।—बां.दा.

कुजा-सं०स्त्री०—सीता, जानकी (डि.को.)

कुजात-सं०स्त्री०—१ बुरी जाति, ग्रोछी ग्रथवा नीच जाति।

उ०—१ काछबिये री जात कुजात, बाइजी म्हारा ग्रो।—लो.गी.

उ०—२ मिळ जात कुजात जमात नहीं, निज घात कथा विन बात नहीं।—ऊ.का.

२ पतित पुरुष।

कहा०—कुजात मनायां माथै चढ़ै—नीच जाति का व्यक्ति मनाने से सिर चढ़ता है। नीच की खुशामद करने से वह ग्रौर ग्रकड़ता है।

३ बकरी।

कुजाब-सं०पु०—गाली, ग्रपशब्द। उ०—सू लोदी रा ग्रादमियां कुजाब कयौ तिण पर झगड़ौ हुवौ—द.दा.

कुजास्टम-सं०पु० [सं० कुजाष्टम्] फलित ज्योतिष के ग्रनुसार एक योग जो जन्मकुंडली के चक्र में मंगल के ग्राठवें स्थान पर होने से होता है (ग्रशुभ)

कुजीव, कुजीवौ-सं०पु०—नीच, बुरा जीव। उ०—कुजीव कुसंग कहां कुसळात, विजोगण पीव सजोगण वात।—ऊ.का.

कुजोग-सं०पु० [सं० कुयोग] १ कुसंग, कुमेल, बुरा संयोग. २ बुरा ग्रवसर, ग्रशुभ योग। उ०—रोग को भवन ज्यूं, कुजोग को समन जांणै।—ऊ.का.

कुज्जौ-सं०पु० [फा० कूजा] १ मिट्टी का प्याला. २ मिश्री की बड़ी डली।

कुटंब-सं०पु० [सं० कुटुंब] १ परिवार, कुटुम्ब। उ०—ग्रहादिय मांन करी गुह मीत, तारे सह कीर कुटंब सहीत।—ह.र. २ वंश, कुल। (यौ० कुटंब-कबीलौ)

कुटंबजातरा, कुटंबजात्रा-सं०स्त्री०—संन्यास लेने के पश्चात् एक बार पुन: ग्रपने कुटुंब में भिक्षार्थ जाने की क्रिया या प्रथा। उ०—म्हारो राजस्थांन रौ पाटण गांव छै नै माता भाई छै, थे कहौ तौ कुटंबजात्रा करि ग्राऊं।—जखड़ा मुखड़ा भाटी री वात

कुटंबविरोध-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (ग्रशुभ)—शा.हो.

वि०—वंश या कुटुम्ब में विरोध उत्पन्न करने वाला।

कुट-सं०पु० [सं०] १ घर, गृह. २ कोट, गढ़. ३ कलश. ४ पत्थर तोड़ने का घन. ५ वृक्ष (ग्र.मा., ह.नां.) ६ पर्वत।

सं०स्त्री० [सं० कुष्ठ, प्रा० कुट्ठ] ७ एक बड़ी मोटी झाड़ी। इसकी जड़ें बहुत काम ग्राती हैं।

कुटक-सं०पु०—१ विष, जहर, माहुर. २ एक ग्रौषधि विशेष. ३ हल के नीचे हलवानी के पीछे लगने वाली लकड़ी (डि.को.) ४ एक प्रकार की लता की जड़ (वैद्यक) ५ खट्टा टुकड़ा।

कुटकको—देखो 'कुटकौ' (रू.भे.)

कुटकणौ, कुटकबौ-क्रि०स०—कठोर व कड़ी वस्तुग्रों को चबाना।

कुटकी-सं०स्त्री० [सं० कटुका] १ पश्चिमी ग्रौर पूर्वी घाटों में तथा ग्रन्य पहाड़ी प्रदेशों में होने वाला एक क्षुप। इसकी जड़ में गोल-मोल बेडौल गांठें पड़ती हैं जो ग्रौषधि के काम ग्राती हैं. २ टुकड़ा।

उ०—मांणक मोती परत न पहरूं म्हैं तो कबकी नटगी, गहणौ म्हारै माळा दोवड़ी ग्रौर चंदण की कुटकी।—मीरां.

कुटकौ-सं०पु०—१ खंड विभाग. २ छोटा टुकड़ा, कण।

कुटज-सं०पु० [सं०] १ कुरैया, कर्ची. २ ग्रगस्त्य मुनि. ३ द्रोणाचार्य का एक नाम।

कुटणी—देखो 'कुटनी' (रू.भे.)

कुटनी-सं०स्त्री० [सं० कुट्टनी] १ स्त्रियों को बहका कर उन्हें पर-पुरुष से मिलाने वाली अथवा एक का संदेशा दूसरे तक पहुँचाने वाली स्त्री, दूती, चुगलखोर. २ वह हथियार जिससे कुटाई की जाय. ३ कूटे जाने की क्रिया।

कुटबहाड़ा-सं०पु०—सोलंकी वंश की एक शाखा।

कुटम—देखो 'कुटंब'।

कुटळ-वि० [सं० कुटिल] १ वक्र, टेढ़ा. २ कुटिल, कपटी, छली। उ०—अकबर कुटळ अनीत, और विटल सिर आदरै। रघुकुळ उत्तम रीत, पाळै रांण प्रतापसी।—दूरसौ आढ़ौ ४ पीत, श्वेत और लाल नेत्रों वाला।

कुटळपण-सं०स्त्री०—टेढ़ापन. २ खोटाई, छल, कपट।

कुटळाण, कुटळाई-सं०स्त्री०—कुटिलता, छल, कपट।

कुटाई-सं०स्त्री०—कूटने का कार्य अथवा इस कार्य की मजदूरी।

कुटाड़ो-सं०पु०—लकड़ी का वह उपकरण जिस पर रख कर भूसा महीन-महीन काटा जाता है। अहुटरण (क्षेत्रीय)

कुटाणो, कुटाबो-क्रि०स० (प्रे०रू०) १ कूटने की क्रिया कराना. २ कूटने में तत्पर करना।

कुटाणहार, हारो (हारी), कुटाणियो—वि०।

कुटायोड़ो—भू०का०कृ०।

कुटावणो, कुटावबो—रू०भे०।

कुटावियोड़ो—भू०का०कृ०।

कुटीजणो—क्रि० कर्म वा०।

कुटायोड़ो-भू०का०कृ०— कुटाया हुआ (स्त्री० कुटायोड़ी)

कुटार-सं०स्त्री०—समय पर दूध न देने वाली गाय या भैंस।

कुटावणो, कुटावबो—देखो 'कुटाणो' (रू.भे.)

कुटावियोड़ो—देखो 'कुटायोड़ो'। (स्त्री० कुटावियोड़ी)

कुटास-सं०स्त्री०—खूब मार-पीट अथवा कूटने का भाव।

कुटि-सं०स्त्री०—१ गंडासा (क्षेत्रीय) २ देखो 'कुटी' (रू.भे.)

कुटिया-सं०स्त्री०—पर्णशाला, झोंपड़ी।

कहा०—कुटिया में काग पड़ै—बिल्कुल निर्जन एवं सुनसान स्थान के लिए।

कुटियोड़ो-भू०का०कृ०—कूटा हुआ। (स्त्री० कुटियोड़ी)

कुटिळ-वि० [सं० कुटिल] १ वक्र टेढ़ा, तिरछा (डिं.को.) २ क्रूर, दुष्ट (डिं.को.) ३ कपटी, दगाबाज (अ.मा.) ४ चंचल (डिं.को.) ५ वह जिसका रंग पीला व आँखें सफेद हों। सं०पु० [सं०] तगर का फूल (अ.मा.)

कुटिळकीट-सं०पु० [सं० कुटिल-कीट] साँप।

कुटिळता-सं०स्त्री० [सं० कुटिलता] १ टेढ़ापन. २ खोटाई. ३ धोखेबाजी, छल-कपट।

कुटिळा-सं०स्त्री० [सं० कुटिला] १ सरस्वती नदी. २ एक प्राचीन लिपि।

कुटिळाई-सं०स्त्री० [सं० कुटिल+ई] देखो 'कुटिळता'।

कुटी-सं०स्त्री० [सं०] १ घास-फूस से बनाया हुआ घर, पर्णशाला, कुटिया, झोंपड़ी. २ घास के कटे हुए छोटे-छोटे टुकड़े (मि. 'कूतर')

कुटुंब-सं०पु० [सं० कुटुम्ब] परिवार।

कुटुंबी-सं०पु० [सं० कुटुम्बिन्] परिवारजन, कुटुंब के लोग, नाते-रिश्तेदार।

कुटुम—देखो 'कुटुंब'।

कुटेव, कुटैव-सं०स्त्री०—बुरा अभ्यास, खराब आदत।

कुट्टण-वि०—१ पाजी, दुष्ट, बदमाश। उ०—जे जलाल कुसळ रह गयो सो बादसाह फरास सूं रिसायो—कुट्टण जलाल जैसा फेर कहां मिळता ?—जलाल बूबना री वात २ मारने वाला. ३ सिंध के मुसलमानों में दी जाने वाली एक गाली।

कुट्टिम-सं०पु० [सं० कुट्टिमम्] १ वह भूमि जिस पर कंकड़, पत्थर वा ईंटें बैठाई गई हों, पक्का फर्श (डिं.को.) २ अनार, दाड़िम।

कुट्टी-सं०स्त्री०—कूट-काट कर महीन किया हुआ भूसा (क्षेत्रीय)

कुठांम-सं०पु०—कुठौर, बुरा स्थान। उ०—विद्या बिंदु सनेह धन, नाखौ ऐ न कुठांम, ऐ उरण ठोडां नाखिये, जे आवै फिर कांम।
—अज्ञात

कुठार-सं०पु०—१ देखो 'कुटार' (रू.भे.) [सं०] २ कुल्हाड़ी। उ०—धड़ढड़ बेधड़ वज्जहि धार, कड़क्कड़ आठकि काठ कुठार।—रा.रू. ३ परशु. ४ नाश करने वाला।

कुठोड़, कुठौड़, कुठौर-सं०स्त्री०—१ बुरा स्थान. २ गुप्तांग।
कहा०—कुठौड़ खायी नै सुसरौ जी वैद—गोप्य स्थान पर चोट या काटे जाने का ससुर से इलाज कैसे कराया जाय; जब साधन होते हुए भी उनसे काम लेना संभव न हो; अज्ञान वा धोखे से हानि उठाने तथा निरुपाय होने पर।

कुडंड-सं०पु०—कोदण्ड, धनुष। उ०—रमानाथ रीसं करंतै कसीसं, कुडंड अचूकं कियो टूक-टूकं।—र.ज प्र.

कुड-सं०स्त्री० —चट्टान, शिला। उ०—पड़ै रिरिण उच्छळि एम प्रवंग, कुडां चढ़ि जांरिण विनांरिण कुरंग।—वचनिका

कुडकौ—देखो 'कुड़कौ' (रू.भे.)

कुडचियौ, कुडचौ—देखो 'कुड़चौ' (रू.भे.)

कुडांबड़ी-सं०स्त्री०—गेंद से खेला जाने वाला एक प्रकार का देशी खेल।

कुडाळी-सं०स्त्री०—मिट्टी का बना चौड़े मुँह का खुला बर्तन।

कुडाव-सं०पु०—बुरा अवसर, कुदाव। उ०—१ म्हे यम जांणियौ महाराजा, कोयक डाव कुडाव करूं। मार महेव बंध किया मिरजै, मिरजौ मारै पछै मरूं।—तेजसी खिड़ियो उ०—२ चौपड़ रमवा लागियाजी म्हांरा राज, पड़ गया डाव कुडाव, मारवणीजी जीतिया जी म्हांरा राज।—लो.गी.

कुडी-सं०पु०—१ खलिहानों में रक्खी हुई साफ किए हुए अनाज की ढेरी.

२ देखो 'कुडांवड़ी' ३ इंद्रयव का वृक्ष, कुरैया (ग्रमरत)
वि०—देखो 'कुड़ी' (रू.भे.) उ०—तरै रावजी रा दिल में कुडी खतरी पड़ियौ।—रा.वं वि.

कुडघापट्टी—सं०स्त्री०—१ घोड़े को गोल चक्र में दौड़ाने का ढंग विशेष। उ०—फटै कोट थोड़ा जिकां चोट फेटां, चलै सीम हूं कुडघापट्टी चपेटां।—वं.भा. २ इंद्रयव का वृक्ष, कुरैया (ग्रमरत)

कुढंग—सं०पु०—१ बुरा ढंग, कुचाल. २ खराब। उ०—दीधौ धन उपदंस ले कीधौ काय कुढंग।—ऊ.का.
वि०—१ बुरे ढंग का, बेढंगा, भद्दा, बुरा।
उ०—बोदा कपड़ा बहुत रंग, सींवणहार कुढंग। धड़हड़ टांका ऊधड़ै, घण मोड़ंती ग्रंग।—जलाल बूबना री बात

कुढंगी—वि० (स्त्री० कुढंगण) १ कुमार्गी, चरित्रहीन. २ बेढंगा।
उ०—ऊमरदांन निज ग्ररथ उडावण, कर मत बात कुढंगी।—ऊ.का.
३ कुरूप, भद्दा।

कुढ—सं०स्त्री०—१ देखो 'कुढ़न' २ देखो 'कढ़'।

कुढड़ी—देखो 'कुढ़'।

कुढ़ण—सं०स्त्री०—१ भीतर ही भीतर रहने वाला क्रोध, चिढ़.
२ वह दुःख जो दूसरे के ग्रनिवार्य कष्ट को देख कर हो।

कुढ़णौ, कुढ़बौ—क्रि०ग्र० [सं० क्रुद्ध, प्रा० कुढो] १ भीतर ही भीतर क्रोध करना, मन ही मन खीजना। उ०—कुढ़ कुढ़ काया नै माया बिन मोसै, रोती कड़ियां दे ग्रांतड़ियां रोसै।—ऊ.का.
२ शरीर को समेट कर चलना। उ०—कुढ़ता उडता कूदता, ग्रोद्रकता वप ग्राप। जेहौ तोखै जाचणां, साहण इसा समाप।
—बां.दा.
३ बुरा मानना. ४ डाह करना, जलना, चिढ़ना. ५ मसोसना।
कुढ़णहार, हारौ (हारी), कुढ़णयौ—वि०।
कुढ़ाणौ कुढ़ाबौ—क्रि०स०।
कुढ़िग्रोड़ौ, कुढ़ियोड़ौ, कुढ़योड़ौ—भू०का०कृ०।

कुढ़न—देखो 'कुढ़ण' (रू.भे.)

कुढब—वि०—१ बुरे ढंग का. २ कठिन, दुस्तर।

कुढ़ाणौ, कुढ़ाबौ—क्रि०स०—१ क्रोध दिलाना, चिढ़ाना, खिजाना.
२ दुखी करना, कलपाना. ३ उँडेलने का कार्य कराना।
कुढ़ाणहार हारौ (हारी), कुढ़ाणियौ—वि०।
कुढ़ायोड़ौ—भू०का०कृ०।

कुढ़ायोड़ौ—भू०का०कृ०—१ क्रोध दिलाया हुआ, चिढ़ाया हुआ.
२ उँडेला गया हुआ। (स्त्री० कुढ़ायोड़ी)

कुढ़ावणौ, कुढ़ावबौ—देखो 'कुढ़ाणौ' (रू.भे.)

कुढ़ावियोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'कुढ़ायोड़ौ'।

कुढ़ियौ—सं०पु०—कुयें पर काम करने वाला।

कुढ़ीजणौ, कुढ़ीजबौ—क्रि० भाव वा०—१ कुढ़ा जाना, खीझा जाना.
२ उँडेला जाना।

कुढ़ीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ कुढ़ा हुआ. २ उँडेला गया हुआ।
(स्त्री० कुढ़ीजियोड़ी)

कुण—सर्व०—१ कौन। उ०—स्रीपति कुण सुमति तूझ गुण जु तवति।
—वेलि.
२ किस। उ०—ताहरां रांणी पूछियौ, जु महाराज कुण वास्ते हसिया।—चौबोली
सं०पु० [सं० क्वण] ३ शब्द, ग्रावाज (ह.नां.)

कुणका—सं०पु०—नाज, ग्रनाज।
मुहा०—कोठी में कुणका होणा—ग्राय होना।

कुणकाई—सं०स्त्री०—माता, मां (व्यंग, ग्रपमानसूचक)

कुणकियौ—सं०पु०—पिता (व्यंग, ग्रपमानसूचक)

कुणकुण—सं०पु०यौ०—कुनकुनाहट।

कुणकुणाट—सं०स्त्री०—कलह (प्रायः कौटुम्बिक कलह)

कुणकुणौ—वि० [सं० कदुष्ण, प्रा० कउण्ह] कुछ गरम (पानी), गुनगुना।

कुणकुणौ, कुणकुणबौ—क्रि०ग्र०—विलाप करना, दुखी होना।

कुणकौ—सं०पु०—ग्रन्न का दाना। उ०—सेठजी कांम काढ़'र उत्तर दे दियौ, घर में कुणकौ ई कोयनी।—वरसगांठ

कुणछल्यौ—सं०पु०—छोटी कढ़ाई। उ०—देणी करदौ चिमचा मांस दुरूह, कुलमी सूं मांग्या दो हांडी कुणछल्या।—ग्रज्ञात

कुणणाणौ, कुणणाबौ—क्रि०ग्र०—भुनभुनाना।

कुणणायोड़ौ—भू०का०कृ०—भुनभुनाया हुआ (स्त्री. कुणणायोड़ी)

कुणन—सं०पु० [सं० क्वणन] शब्द (ग्र.मा.)

कुणप—सं०पु० [सं०] मृत शरीर, शव (डिं.को.) उ०—महीपणौ पाइ जीवता कुणप नूं सारोही संसार हाडां री दांन लेणहार कहै।—वं.भा.

कुणबी—सं०पु०—एक जाति विशेष जिसका व्यवसाय खेती है।
(मि. कळबी, पटल)

कुणबौ—सं०पु० [सं० कुटुंब, प्रा० कुडुंब] कुटुम्ब, परिवार, खानदान।

कुणरियौ—सं०पु०—बालक की दर्दपूर्ण ग्रावाज (ग्रमरत)

कुणसोड़ौ—वि० [स्त्री० कुणसोड़ी] कौनसा।

कुणि—सर्व०—कौन, किस। उ०—खांन भणइ कुणि कारणि ग्राव्या, कहउ तुम्हारउ काज।—कां.दे.प्र.

कुणीवरा—सं०स्त्री०—सोलंकी वंश की एक शाखा।

कुणे'क—सर्व०—कोई।

कुणेन—सर्व०—किसको। उ०—भाटी कहै कुणेनूं भाखूं, रहूं कुसळ तौ भेळी राखूं।—रा.रू.

कुणै—सर्व०—१ कौन. २ किसको।

कुण्यां—सर्व०—किस ('कुण' का बहु.) उ०—ग्रो ग्रे बांदी, बूभां थांनै बात, गीत कुण्यां घर गावै जी राज।—लो.गी.

कुत—सं०स्त्री०—१ वर्षा ऋतु में होने वाला एक प्रकार का छोटा मच्छर.
२ एक प्रकार का घास-विशेष।

कुतक-सं०पु०—डंडा। उ०—कुतक खिदर धव काठ रा, विदर पजावण वेस। तौ पिण हाजर राखणा, घण मेखचा हमेस।—बां.दा.

कुतकौ-सं०पु० (स्त्री० कुतकी) छोटी लाठी, सोंटा, डंडा।

उ०—वतळायौ विगड़ै विदर, ग्रौर दिये इलकाब। वाट चलावण विदर नूं, कुतकौ बडी किताब।—बां.दा.

कहा०—कुतकौ बड़ी किताब के लाठां ही लटका करै—डंडे के भय से सब दबते हैं।

कुतड़ौ-सं०पु० (स्त्री० कुतड़ी) कुत्ता (ग्रल्पा०) उ०—कांजरां तणी कुतड़ी कदै 'मोकम' सूर न मारिया।—ग्ररजुणजी बारहठ

कुतबबौ-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

कुतप-सं०पु० [सं० कुतुप] दिन का ग्राठवां मुहूर्त जो मध्याग्ह के समय में होता है।

कुतब, कुतब्ब-सं०पु० [ग्र० कुत्ब] १ एक प्रकार के मुसलमान महात्मा या ऋषि जिनके सुपुर्द कोई बड़ा इलाका होता है। उ०—कुतब गौस ग्रवदाळ सूफी ग्रनै कळंदर। पीरजादा मिळै सांझ परभात।
—राजा जसवंतसिंह रौ गीत

२ कुतुबमीनार (रू.भे.) ३ ध्रुवतारा।

कुतर-सं०स्त्री०—१ एक प्रकार की कपड़ों में चिपक जाने वाली घास। उ०—कुकव हूंत ग्राछौ कुतर, ऊगै चंदण पास। लहि चंदण सोरभ लहै, चंदण रा गुण रास।—बां.दा. २ बाजरी या ज्वार के सूखे डंठलों को महीन-महीन टुकड़ों में काटने की क्रिया ग्रथवा महीन-महीन टुकड़ों में काटा हुग्रा घास (मि० 'कुटी')

वि०—नीच, दुष्ट। उ०—लियां रहीं दस मास लग, उदर दुखां उतरांह। दुख जिण जणणी नै दियै, काळौ मुह कुतरांह।—बां.दा.

कुतरक-सं०स्त्री० [सं० कुतर्क] १ बुरा तर्क, बेढंगी दलील. २ बकवाद वितंडावाद। उ०—कुतरक गरक चरक कौ ग्रलरक लौं भुसा करयौ।
—ऊ.का.

कुतरकी-वि० [सं० कुतर्की] व्यर्थ तर्क करने वाला वितंडावादी।

कुतरड़ौ-सं०पु० (स्त्री० कुतरड़ी) कुत्ता, श्वान (ग्रल्पा.)

कुतरवेड़-सं०पु०—कुत्तों का समूह।

कुतरौ-सं०पु० (स्त्री० कुतरी) १ कुत्ता, श्वान. २ नीच, कायर।

उ०—ग्राखड़ियां ग्रळगी रहै, कुतरां कापुरसांह।—बां.दा.

कुतवार-सं०पु०—१ वह पुरुष जो बंटाई के लिए खेत की फसल का कनकूत करे. २ कोतवाल।

कुतवारी-सं०स्त्री०—कोतवाल का कार्य या पद।

कुतारीफ-सं०स्त्री०—ग्रपयश, बदनामी।

कुतियौ-सं०पु० (स्त्री० कुत्ती) कुत्ता, श्वान।

कहा०—कुतियौ कादा में कळणौ—ग्रापत्ति या संकट में फँसने पर।

कुतुक—देखो 'कौतुक' (डि.को.)

कुतुबनुमा-सं०पु०—दिशा का ज्ञान कराने वाला एक यंत्र।

कुतूहल-सं०पु०—१ कुतूहल, कौतुक (डि.को.) विनोदपूर्ण उत्कंठा. २ क्रीड़ा. ३ ग्राश्चर्य।

कुतौ—देखो 'कुत्तौ' (ग्र.मा.)

कुत्तर—देखो 'कुतर' (रू.भे.)

कुत्तौ-सं०पु०—भेड़िया, लोमड़ी ग्रादि की जाति का घर की रक्षा करने के लिए पाला जाने वाला एक हिंसक पशु, कुत्ता, श्वान। पर्याय०—ग्रस्तमुख, कुत्तौ, कुरकुर, कूकर, कूकरौ, कूतरौ, कौळेयक, खेतळग्रस, खेतळरथ, ग्रामसीह, ग्रहग्रग, चक्र, जागर, जिम्याप, जीभप, टेगड़ौ, तंदुल, पुरोगत, मुसण, मंजारखळ, मंडळ, ग्रगदंस, रतकील, रतपरस, रतसांई, रमनलिटि, रातजगण, रितपरस, रितसांई, लट्टौ, लेखिराति, वळतपूंछ, वाळध सारमेय, साळाग्रक, सुन, सुनक, स्वांन।

मुहा०—१ कुत्ता री कपाळी होणी—सदा बकझक करने वाले के प्रति. २ कुत्ता री तरह चढ़ बैठणौ—गुर्रा कर या बहुत नाराज होकर टूट पड़ना. ३ कुत्ता री पूंछ—ग्रपना कटु स्वभाव न छोड़ने वाला. ४ कुत्ता री मौत मरणौ—बुरी मौत मरना. ५ कुत्ता रौ दिमाग (भेजौ) होणौ—बहुत बकझक करने वाले के प्रति. ६ कुत्तौ काटणौ—बेवकूफी करना, पागल होना. ७ कुत्तौ होणौ—वफादार होना, गंदा रहने वाला होना।

कहा०—१ ग्रांधी पीसै कुत्ता खावै—जहां ग्रंधाधुंधी चलती हो; जहां ग्रंधेरखाता हो; जब कोई व्यक्ति ग्रपने लाभ या उपार्जित धन या संपत्ति की ठीक-ठीक व्यवस्था न करे ग्रौर दूसरे लोग उसको उड़ावें. २ ऊंचाया कुत्ता कैड़ोंक सिकार करै—किसी को ठेल-ठेल कर कितना कार्य कराया जा सकता है; कार्य मनुष्य ग्रपनी इच्छा से करेगा तब ही ठीक होगा. ३ कागा कुत्ता कुमांणस घणा—कौए, कुत्ते ग्रौर दुष्ट व्यक्ति बहुत होते हैं; दुनिया में बुरे व्यक्ति ग्रधिक होते हैं, सज्जन थोड़े होते हैं. ४ कुतड़ौ कंवै क गाडी म्हारै ही पांण चालै—ग्रयोग्य व्यक्ति के इस कथन पर कि सब मेरा किया हो होता है, एक व्यंग. ५ कुत्तां रै संप हुवै तौ गंगाजी नहाय ग्रावै—जिन लोगों में परस्पर मतैक्य नहीं होता उन पर. ६ कुत्ता (कुतरां) कांच भाळल्यू, भची मुवौ दग्या मांय—कुत्ते ने काच देखा तो संसार भर में भोंकता-भोंकता मर गया; मूर्ख व्यर्थ की बातों से दुःख उठाते हैं. ७ कुत्ता थारी कांण कै थारै धणी री कांण—दुष्ट का कोई लिहाज नहीं रखता किन्तु उसके परिवार वालों की सज्जनता का लिहाज करके ही उसे क्षमा प्रदान की जाती है. ८ कुत्ता थारी कांण कै थारै मालक (धणी) री कांण—देखो कहावत (७) ९ कुत्ता (कूतग) माते कूतरा पाड़ी नै चेटी हरकी जाहें—ग्रापस में लड़ा कर दूर चले जाने वाले के लिये यह कहावत कही जाती है. १० कुत्ता मारतौ फिरणौ—व्यर्थ घूमते फिरना; ग्रावारागर्दी करना. ११ कुत्ता रै पांण गाडी चालणी—दूसरों के भरोसे कार्य चलना; व्यर्थ ही ग्रपने व्यक्तित्व को महत्व देना. १२ कुत्तारोळ करणौ—छिछोरापन करना. १३ कुत्तालड़ाई करणी—व्यर्थ की बातों पर लड़ाई करनी. १४ कुत्ता ही खीर को खावैला नी—कोई भी नहीं पूछेगा;

किसी के अड़ने पर उसके द्वारा भयंकर हानि पहुँचाने की धमकी. १५ कुत्ती आळा कूकरिया है—अधिक संतान होने पर. १६ कुत्ती गई नै गळांमणी ई लेगी—कुत्ती स्वयं भी गई और साथ में गले का पट्टा भी ले गई। किसी के द्वारा दुहरी हानि पहुंचाने पर. १७ कुत्ती जाया कूकरिया एके डोरे ऊतरिया—किसी समाज के सभी व्यक्ति दुर्गुणी हों तब. १८ कुत्ती ही गई नै पटियौ ही ले गई—देखो कहावत (१७) १९ कुत्तै आळी जूण पूरी करणी—बेकार का जीवन व्यतीत करना. २० कुत्तै नै नै छोटे टाबर नै दुरकारियोड़ौ ही भलौ—कुत्ते और छोटे बालक दोनों को दुत्कारना ही अच्छा; मूर्खों को पास नहीं फटकने देना चाहिये. २१ कुत्तै नै मूंढै लगावणौ चोखौ कोनी—कुत्ते को मुंह लगाना अच्छा नहीं. २२ कुत्तै नै रोटी नांखी व्है तौ भुसतौ तौ सहां—अगर कुछ उपकार करते तो उसका प्रतिफल अवश्य मिलता. २३ कुत्तै री पूंछ तौ बांकी री बांकी रैवै—जिस आदमी की बुरी आदत किसी प्रकार न छूटे. २४ कुत्तै री पूंछ दस बरस जमी में राखी, निकाळी तौ फेर आंटी'र आंटी—देखो कहावत (२३) २५ कुत्तै री पूंछ सदा आंटी री आंटी—देखो कहावत (२३) २६ कुत्तै रै मूंडै में जांणै कोई खळ पड़ी है—दुष्ट व्यक्ति का बोलना बन्द करने के लिए।

२७ कुत्तै रौ सिर खल्लै जोगौ—मूर्ख या ताड़ना के योग्य होने पर; जैसे को तैसा. २८ कुत्तै वाळी नींद—शीघ्र जगने या सावधान होने वाली नींद. २९ कुत्तौ कपास में कई समझै—कुत्ता कपास में क्या समझे? ३० कुत्तौ नारेळ रौ कांई करै—कुत्ता नारियल का क्या करे। बिना विशेषता समझे किसी वस्तु पर अधिकार या संपर्क रखने पर. ३१ कुत्तौ होयनै को भूमियौ नी—कुत्ता होकर भी भौंकता नहीं; जब मनुष्य अपना कर्तव्य पूरा नहीं करता. ३२ पीळियौ कुत्तौ राजी व्है जणै तौ मूंडौ चाटै नै रीस में व्है जणै पींडी पकड़ै—पीला कुत्ता जब प्रसन्न होता है तब तो मुंह चाटता है किंतु गुस्से में होने पर काटने दौड़ता है। ऐसे व्यक्ति के लिये जो शीघ्र प्रसन्न होता हो और शीघ्र नाराज होता हो अथवा प्रसन्न होने पर खूब फायदा पहुंचाता हो किन्तु क्रुद्ध होने पर हानि भी खूब पहुंचाता हो. ३३ पेट तौ कुत्तौ ही पाळै है—पेट तो कुत्ता भी भर लेता है। निकम्मे व्यक्तियों के लिये।

रू०भे०—कुतरड़ौ, कूतरौ। (अल्पा. कुतड़ौ)

कुत्र—क्रि०वि०—कहाँ पर। उ०—कस्मात्-कस्मिन् किल मित्र किमरथ, केन कारण परियासि कुत्र।—वेलि.

कुथ—सं०पु० [सं० कुथ:] १ गिलाफ, खोल (डिं.को.) २ कुश, दर्भ (डिं.को.)

कुथपणौ, कुथपबौ—क्रि०अ०—१ विलोम होना, विपरीत होना. २ खराब होना।

कुथपियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ विलोम हुआ हुआ, विपरीत. २ खराब। (स्त्री० कुथपियोड़ी)

कुथांन—सं०पु० [सं० कु+स्थान] कुठौर, बुरी जगह। उ०—थांन को कुथांन थांन मांन नीसरयौ, होय सो सुथांन हा विहांन बीसरयौ।—ऊ.का.

कुथाल—वि०—१ विपरीत, उल्टा. २ खराब।

कुथि—सं०पु०—सूर्यवंशी एक राजा (रांमकथा)

कुथंतौ—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

कुदतार, कुदतौ—वि०—१ कृपण, कंजूस. २ नीच।

कुदरत—सं०स्त्री०—१ शक्ति. २ प्रकृति, माया. ३ महिमा. ४ प्रभुत्व।

कुदरतपत, कुदरतपति—सं०पु०—ईश्वर, प्रभु।

कुदरता—सं०स्त्री० [अ० कुदरत] माया, ईश्वरीय शक्ति। उ०—जिण राति पैदास की सो कायम कुदरता।—केसोदास गाडण

कुदरती—वि०—१ प्राकृतिक. २ स्वाभाविक. ३ दैवी, ईश्वरीय। उ०—कुदरती किरतार की करणी बळिहारै।—केसोदास गाडण

कुदरसणी, कुदरसनी—वि०—देखने में अशुभ। उ०—हूं ब्रह्म कुचिल कुदरसनी, सकत सुहागन होय।—ह.पु.वा.

कुदांन—सं०पु०यौ० [सं० कु+दान] १ बुरा दान (लेने वाले के लिए) २ कुपात्र अथवा अयोग्य व्यक्ति को दान. ३ कूदने की क्रिया. ४ उतनी दूरी जितनी एक बार कूदने में पार की जा सके. ६ पैर की जूती (अ.मा.)

कुदाणौ, कुदाबौ—क्रि०प्रे०रू०—कूदने के लिए प्रवृत्त करना।
कुदाणहार, हारौ (हारी), कुदाणियौ—वि०।
कुदायोड़ौ—भू०का०कृ०।

कुदात—वि०—कृपण, कंजूस।

कुदार—सं०स्त्री० [सं० कु+दारा] १ बदचलन स्त्री, पतिता। उ०—कार को बिगार सोच लार सै कियौ, दार तैं कुदार पैर पोच में दियौ।—ऊ.का.

कुदाळ—सं०पु०—१ लोहे का बना खोदने का एक औजार जो प्राय: एक हाथ लंबा और चार अंगुल चौड़ा होता है। २ वह घोड़ा जिसका ऊपर का जबड़ा लम्बा हो (शा.हो.)

कुदाळतेज—देखो 'कुदाळ' (२)

कुदाळी—सं० स्त्री०—देखो 'कुदाळ' (१) (अल्पा०)

कुदाळौ—देखो 'कुदाळ' (१)

कुदाव—सं०पु० [सं० कु+दाव] १ बुरा दांव, कुअवसर. २ बुरा पेंच।

कुदिन—सं०पु० [सं०] १ आपत्ति का समय, बुरे दिन. २ एक सूर्योदय से लेकर दूसरे सूर्योदय के मध्य का दिन का परिमाण. ३ वह दिन जिसमें ऋतु-विरुद्ध या इसी प्रकार की और कष्ट देने वाली घटनायें हों।

कुदिस्टी—सं०स्त्री० [सं० कुदृष्टि] बुरी दृष्टि, बदनिगाह, पापभरी नजर।

कुदीळ—देखो 'कुदाळ' (अल्पा०) उ०—धर धूजत पाय धनंक धरं, कर जोड़ कुदीळ खड्ग करं।—पा.प्र.

कुदेव—सं०पु० [सं० कु:+देव] १ भूदेव, ब्राह्मण.

[सं० कु+देव] २ राक्षस, दैत्य ।
कुद्दाळ-सं०पु०—भूमि खोदने का औजार विशेष (डिं.को.)
कुद्रस्टी— देखो 'कुदिस्टी' (रू.भे.)
कुधन-सं०पु० [सं० कु+धन] १ खोटा धन, बुरी कमाई का पैसा ।
कुधर-सं०पु० [सं० कुः+ध्र] १ पहाड़, पर्वत (डिं.नां.मा.)
[सं० कुः+धर] २ शेषनाग ।
कुधान-सं०पु० [कु+धान] बुरा अनाज ।
कुधार-वि०—क्रुद्ध, क्रोधी । उ०—जवांनहि सीह जदीस जुधार, चढ्यौ 'किनकेस' तणोह कुधार ।—शि.सु.रू.
कुधिक-वि० [सं० क्रुद्ध] क्रुद्ध ।
कुधी-वि० [सं०] मंदबुद्धि, मूर्ख ।
कुनकबाज-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा हो.)
कुनख-सं०पु०—प्रायः नाखून के मध्य में होने वाला एक प्रकार का फोड़ा विशेष जिससे नाखून हमेशा के लिए नष्ट हो जाता है (अमरत)
कुनटी-सं०स्त्री० [सं०] मैनशिल, मनःशिल (डिं.को.)
कुनण-सं०पु० [सं० कुंदन] १ स्वर्ण, सोना (ह.नां., अ.मा.) २ अच्छे और साफ सोने का पतला पत्तर जिसे लगा कर गहनों पर नगीने जड़े जाते हैं । खालिस सोना.
[अं० कुनैण] ३ कुनैन (औषधि) देखो 'कुनैन' (रू.भे.)
कुनणपुर, कुनणापुर-सं०पु० [सं० कुंदनपुर] १ एक प्राचीन नगर जो शिशुपाल की राजधानी थी (महाभारत) २ लंका का एक नाम (डिं.को.)
कुनणेचा-सं०पु०—एक राजपूत वंश ।
कुनफौ-सं०पु०—नुकसान, हानि ।
कुनबी-सं०पु० [सं० कुटुंबी] १ हिन्दुओं की एक जाति जो प्रायः खेती करके अपना पेट पालती है (मा म.) २ इस जाति का व्यक्ति । (रू.भे. 'कुणबी')
कुनबौ-सं०पु० [सं० कुटुंब] कुटुम्ब, परिवार, खानदान ।
कुनर-सं०पु० [सं० कु+नर] बुरा एवं नीच व्यक्ति (वं भा.)
कुनांम-सं०पु०—अपयश, बदनाम । उ०—गांम गांम ग्रांम मैं कुनांम तें करचौ, नांम कौ विदांम साथ धांम नां धरचौ ।—ऊ.का.
कुनाभि-सं०पु०—धन, द्रव्य (डिं.को.)
कुनार-सं०स्त्री० [सं० कु+नारी] पतिता स्त्री, व्यभिचारिणी ।
उ०—गुण विन चंदण लाकड़ी. गुण विन नार कुनार ।—अज्ञात
कुनाव—देखो 'कुनांम' । उ०—रूप कूं कुनाव नाव नांव तौ रह्यौ ।
—ऊ.का.
कुनैं-क्रि०वि०—किस तरफ ।
कुनैन-सं०पु० [अं० क्वनिन] एक अंग्रेजी औषधि जो मलेरिया की रामबाण दवा मानी जाती है ।
कुन्नण—देखो 'कुनण' (रू.भे.)
कुन्याय-सं०पु० [सं० कु+न्याय] १ अन्याय. २ पक्षपातपूर्ण न्याय ।
उ०—बोल्यौ सादूळसिंघ भाई मांनुल्ला, बाळक पै तेग बाही सो कुन्याय सल्ला ।—शि.वं.
कुपंथ-सं०पु०—कुमार्ग ।
कुपंथी-वि०—कुमार्गी ।
कुपड़ी-सं०स्त्री० [सं० कुतुपिका] देखो 'कुपी' (रू.भे.)
कुपछि-सं०पु० [सं० कुपथ्य] कुपथ्य । उ०—सो फीकौ पीवै नहीं कुपछि पड़्या सब कोय ।—ह पु वा.
कुपथ-सं०पु० [सं० कुपथ्य] १ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक भोजन.
[सं०] २ बुरा रास्ता, कुमार्ग ।
कुपथ्य— देखो कुपथ' (१) (रू भे.)
कुपळी-सं०स्त्री०—कोंपल । उ०—दब का दाधा कुपळी मेल्ही, जीभ का दाधा न पांगुरई ।—वी.दे.
कुपह-सं०पु० [सं० कुप्रभु] १ दुष्ट राजा, अन्यायी राजा । उ०—जग मुगति भुगति दाता जगा, दांन मांन वंछित दिये । पारथै किसूं मेळग कुपह, प्रभू नाथ पारथिये ।—ज.खि.
[सं० कुपथ] २ कुपथ, कुमार्ग । उ०—१ नर देही नर धारि कुपह उरभात है ।—ह.पु वा. उ०—२ हरि पर हटि चाल्या कुपह गळी में ते दोय फंध ।—ह.पु.वा.
कुपातर-वि०—१ अयोग्य, कुपात्र । उ०—कह-कह थाकौ थनै हाय मन हाय कुपातर ।—सगरांमदास
२ कपूत । उ०—लड़ै माहेस हरियंद गया लाज हूं । रहा कुळ कुपातर विगाडण राज हूं ।—महादांन महडू
३ वह जिसे दान देना शास्त्रों में निषिद्ध है ।
कुपाती-वि०—कुपथगामी, नीच, पामर । उ०—थाट भड़ अगै नर सुरग वासी थिया । रांडिया कुपाती लूंड लारै रह्या ।—महादांन महडू
कुपात्र—देखो 'कुपातर' (रू.भे.)
कुपाळी-सं०स्त्री० [सं० कपाल] कपाल, खोपड़ी ।
कुपि—देखो 'कुप्पी' ।
कुपियोड़ौ-भू०का०कृ०—क्रुद्ध, कुपित । उ०—दीठौ छै रावत रौ रूठ सुभाव कुपियोड़ौ कुळवंत बिच करसी कावळी—किसोरसिंह बार्हस्पत्य
कुपियौ-सं०स्त्री०—१ देखो 'खुफिया' २ कुप्पी. ३ सुराहीनुमा मिट्टी का बना जल-पात्र विशेष ।
कुपी-सं०स्त्री० [सं० कुतुप] १ छोटे संकरे मुंह वाला मिट्टी या धातु का बना एक पात्र विशेष. [अं० कीफ] २ द्रव पदार्थों को ठीक तरह से तंग मुंह के बरतन में डालते समय लगाई जाने वाली चोंगी ।
कुपीच-सं०पु०—१ कष्ट, संकट, यातना । उ०—अठै मालजादियां रा घर था, थां माहे घणी कुपीच होसी ।—चौबोली. २ कुपथ्य ।
कुपुरिस-सं०पु०—कायर व्यक्ति (रू.भे. 'कापुरस')
कुप्पी—देखो 'कुपड़ी' ।
कुफंड-सं०पु०—धूर्तता, पाखंड, ठगी ।
कुफंडी-वि०—पाखंडी, ठग, धूर्त ।

कुबंग, कुबंगी–वि०—विरुद्ध । उ०—राजा आंणी पार री, अंग कुबंगी जीत । राजा पग बांधै रसा, राजा कुळ री रीत ।—वी.स.

कुबड़ौ–वि० (स्त्री० कुबड़ी) जिसकी कमर झुकी हुई हो, जिसके कूबड़ निकला हुआ हो ।

कुबज–वि०—१ नीच, नीचा. २ टेढ़ा, वक्र. ३ कुबड़ा (डि.को.)
सं०पु०—एक वायु रोग जिससे पीठ टेढ़ी हो जाती है, कुबड़ा रोग ।

कुबजक–सं०पु०—कुंज, कूजा नामक वृक्ष विशेष । उ०—ताळ साळ मालिका बकुल कुबजक खरजूरी बोलसरी माधुरी निगर भरहरी सनूरी ।—रा.रू.

कुबजका, कुबजा, कुबजीका, कुबज्जा, कुबज्या–सं०स्त्री० [सं० कुब्जिका] १ दुर्गा का एक नाम. २ आठ वर्ष की कन्या. ३ कंस की एक कुबड़ी दासी जो श्रीकृष्ण पर प्रेम रखती थी । उ०—१ अहिल्या रेस दियौ तैं अंग, सरीर कुबज्जा कीध सु चंग ।—ह.र.
उ०—२ मीरां के प्रभु कब र मिलेंगे, कुबज्या आइ कांई याद ।
—मीरां

कुबणंत–सं०पु०—बाण विद्या में निपुण धनुर्धारी । उ०—कहती कै दीठौ सखी, मिळतौ बांण समांण । कुबणंतां कर कंपिया, वळै न छूटा बांण ।—वी.स.

कुबत–सं०स्त्री०—१ बुरी बात । उ०—कर कढ़िढ्य किरवांण, कुबत मुखते खळ कढ़िढ्य ।—ला रा. [अ० कुव्वत] २ बुद्धि ।

कुबद–सं०स्त्री० [सं० कुबुद्धि] १ चालाकी, धूर्तता, नीचता ।
उ०—परियां तणौ न हालै पेंडै । हालै कुबद बिचार हीयै । दांनां मिनख न राखै डेरां, दांनां विण कुण सीख दियै ।—बां.दा.
२ कुबुद्धि, मूर्खता ।

कुबदी–वि० [सं० कुबुद्धि] १ धूर्त, चालाक. २ नीच, शैतान ।
उ०—तामें खटके मामले सूं सला संभारे, कुबदी क्या जांणै किया मियां मन हारे ।—पदमसिंह री वात २ नटखट. ३ पाखंडी.

कुबदीड़ौ–देखो 'कुबदी' (अल्पा०)

कुबध–सं०स्त्री०—१ देखो 'कुबद' (रू.भे.) उ०—भेख धारतां कीदी भूंडी कुबधां केहड़लो ।—ऊ.का.

कुबधमूळ–सं०पु०—चोर (ह नां.)
वि०—बदमाश, कळहप्रिय, चालाक, धूर्त ।

कुबधिड़ौ, कुबधी–वि०—१ देखो 'कुबदी' (रू.भे., अल्पा०)
२ चोर (अ.मा.)

कुबळय–वि०—नीला, आसमानी (डि.को.)

कुबळयापीड़–सं०पु०—एक हाथी का नाम । इसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिए द्वार पर रक्खा था ।

कुबळयासव–सं०पु० [सं० कुवलयाश्व] सूर्यवंशी राजा धुंधमार का एक नाम (सू. प्र.)

कुबस–वि०—अमांगलिक, अशुभ ।

कुबांण–सं०स्त्री०—१ कुटेव, बुरी आदत. २ कुत्सित वाणी ।
उ०—बांणी हर बीसार कर, बंधे आन कुबांण ।—ह.र.
सं०पु० [अ० कमान] ३ धनुष, कमान । उ०—पाथ घाटां अंग रूपी कुबांणां नवाई पांणां । सत्राटां पौढ़ियौ थाटां सवाई 'सोभाग' ।
—हुकमीचंद खिड़ियौ

कुबाक–सं०पु० [सं० कुवाक्य] कुवचन, टेढ़ा बोल, कटुवचन, गाली ।

कुबाड़ौ–वि०—अपशब्द उच्चारण करने वाला ।

कुबिज्या–देखो 'कूबजा' (रू.भे.)

कुबुद–देखो 'कुबद' (रू.भे.)

कुबुध–देखो 'कुबुद' (रू.भे.) उ०—परमेस्वर आ किसी उपाध की, मोनूं किसी कुबुध आई ।—नैणसी

कुबेणी–सं०स्त्री० [सं० कुबेनी] १ मछली फँसाने का यंत्र (डि.को.)
२ शिकार की मछली रखने की डलिया ।

कुबेर–सं०पु० [सं० कुबेर] यक्षों का राजा एक देवता । ये महर्षि पुलस्त्य के पोते और ऋषि विश्रवा के पुत्र थे । कुरूप होने के कारण कुबेर कहलाये । इनके ३० पैर व ८ दांत माने जाते हैं । ये चतुर्थ लोकपाल हैं तथा भारद्वाज की कन्या देववर्णिनी इनकी माता है । नौ निधियों के ये भंडारी हैं ।
पर्याय०—अलकापत, उतरपत, उत्तरदिकपती, एकपिंग, एळविळी, कमळासी, कमेर, किंनरेस, किंपुरखेसर, कुमेर, कुवेर, जखराट, जखाधीस, जच्छप, दसतोदर, धनईस, धनंद, धनाधिप, नरधरमा, नरवाहण, निधि-ईसवर, पौलस्त, वैश्रवण, सितोदर, हरसखा ।

कुबेरतळाई–सं०पु०—एक प्रकार का अशुभ रंग का घोड़ा (शा.हो.)

कुबेरियां–सं०स्त्री०—कुसमय । उ०—करहो कंथ कुबेरियां, सुगणी मारू संग । वांसै ऊमर सूमरौ, ताता खड़े तुरंग ।—ढो.मा.

कुबेरी–सं०स्त्री०—१ कुबेर की स्त्री. २ दुर्गा का एक नाम ।
उ०- देवी कौमारी चामुंडा बिजैकारी, देवी कुबेरी भैरवी क्षेमकारी ।
३ लक्ष्मी । —देवि.

कुबेळा–सं०स्त्री०—असमय, कुसमय ।

कुबलौ–वि०पु० (स्त्री० कुबेनण) १ बुरा आदमी. २ बैरी, दुष्ट ।

कुबैण–सं०पु० [सं० कु+वचन] कुवचन, बुरे वचन । उ०—जिण कुबैण सहियौ जिकौ, रहियौ बैठो राव । लाल सु चुप अग्रज लखे, ऊफणियौ अणमाव ।—वं.भा.

कुबोध–सं०पु० [सं० कु+बुद्धि] कुबुद्धि, मूर्खता, ज्ञानाभाव ।
वि०—दुर्बोध ।

कुबोल–सं०पु०—अपशब्द, कटुवचन, कुवचन । उ०—बे बुनियाद कुबोल कहि, बकवाद बधारे । तामें कणेठी कड़किया, बळ जेठी वारे ।
—पदमसिंह री वात

कुबोलौ–वि०पु० (स्त्री० कुबोली) अपशब्द बोलने वाला (ह नां.)

कुबौ–वि०—कुबड़ा, मुड़ा या झुका हुआ (अंग) (अमरत)

कुब्ज–सं०पु०—१ वायु-विकार से होने वाला एक प्रकार का रोग जिससे छाती या पीठ टेढ़ी होकर उभर जाती है. २ इस रोग का रोगी (अमरत)

कुभख्ख-सं०पु० [सं० कु+भक्ष्य] न खाने योग्य पदार्थ।

कुभट-वि०—कायर, डरपोक। उ०—केइकां सुभटां विना कुभटां फगटां कीनी।—अज्ञात

कुभरो-सं०पु०—एक प्रकार का वृक्ष (रा.सा.सं.)

कुभारजा-सं०स्त्री० [सं० कु+भार्या] बुरी पत्नी, कलहप्रिय स्त्री।

कुमंखो-वि०—क्रोध करने वाला। उ०—बारधेस जांम गाज गाळिया अकूटबासी। राजबील जाळिया तारखी तेज रूंस। कुमंखो कुळेसां इंद्र ढाळिया गिरंद काळा। वीर 'सिवा' वाळै रिमां राळिया विधूंस।
—हुकमीचंद खिड़ियौ

कुमंख्या-सं०स्त्री०—आसाम की कामाख्या देवी (रू.भे.)

कुमंत्री-सं०पु० [सं० कु+मंत्री] धूर्त्त एवं बुरा मंत्री, बुरा सलाहकार। उ०— आगै 'भीम' कुमंत्री आंटै, विरड़ै तीजी वेळा। 'माधव' जिसा खिजाया रिड़मल, मंडिया ऊखळ मेळा।— नवलजी लाळस

कुमंद—देखो 'कुमद'।

कुमकी-सं०स्त्री० [तु० कुमक] वह हथिनी जो हाथियों को पकड़ने में सहायता करने के लिए सिखाई गई हो।

कुमकुमई-सं०पु०—गुलाबजल। उ०—छांटा पांणी कुमकुमई, बीभ्रण बीझ्या वाइ। हुई सचेती माळवी, प्री आगळि विललाइ।
—ढो.मा.

कुमकुमो-सं०पु० [तु० कुमकुमा] १ लाख आदि का बना हुआ एक प्रकार का पोला, गोल या चिपटा लट्टू जिसमें अबीर और गुलाल भर कर होली पर लोग एक दूसरे पर मारते हैं. २ कुंकुम। उ०—पाग सुरंगी पीव री, लाल प्रिय सुरंग। केसर भीना कुमकुमै, पुसबां भरिया पिलंग. ३ सिंदूर. ४ रंग विशेष का घोड़ा (शा.हो.) ५ गुलाब। उ०— वसत्र जु पहिरया छै सु कुमकुमो कहतां गुलाब।—वेलि. टी.

कुमकुमी-सं०स्त्री०—उन्मत्तता, मस्ती।

कुमकुम्मो— देखो 'कुमकुमो' (रू.भे.) उ० दळ चंपक जाय तुळछी दम्मा, कपूर किसथूरी कुमकुम्मा।—ईसरदास बारहठ

कुमख्ख, कुमख-सं०स्त्री०—१ कोप, क्रोध, गुस्सा। उ०—पातल सुपह धपावसी, रातळ भूख म रखख। अरियां चा दळ ऊपरै, मारू तणी कुमख्ख।—प्र.प्र. २ हीरा (अ.मा.)

कुमखा-स०स्त्री०—कुदृष्टि, प्रकोप।

कुमजा-सं०स्त्री० [सं० कर्म+जा वा कर्मन्+अजा, शक] भाग्य, प्रारब्ध उ०—गायां भैंस्यां रो कर दीनो गाटो, लज्जा कुमजा रो ले लीनो लाटो।—ऊ.का.

कुमट, कुमटियो-सं०पु०—एक प्रकार का कांटेदार वृक्ष जिसके फल फलीनुमा लगते हैं। उन फलियों के बीज को 'कुमट' या 'कुमटिया' कहते हैं। इनका शाक बनाया जाता है।

कुमणा-सं०स्त्री०—कोप, क्रोध। उ०—किण कुमणा सूं ओ कारण, बेग बतांणो हे ए माय।—गी.रां.

कुमणैती-सं०पु०—कमनैती, बाण-विद्या में कुशलता। उ०—या कुमणैती कंत री, और न पूगै ओज। धमठी खाली होवतां, नमठी चाली फोज।—वी.स.

कुमत, कुमति, कुमती-सं०स्त्री० [सं० कु+मति] दुर्बुद्धि, उल्टी मति। उ०—१ गयां कुमत लयां साधां संगत, स्यांम प्रीति जग सांची।
—मीरां

उ०—२ अभिमांनी कुमती रे निसचर कुमती। म्हारा प्रांणां रा प्रीतम सूं बिछवो थे कीयो।—गी.रां.

कुमद-सं०पु० [सं० कुमुद] १ कोका, लाल कमल. २ देखो 'कुमददंती' (वं.भा.)

कुमदणी—देखो 'कुमुदणी' (रू.भे.) उ०—आरसी उरसां निरखै रूप, कुमदणी हंस हंस पोवै हार।—सांझ

कुमददती-सं०पु० [सं० कुमुद+दंतिन्] नैऋत्य दिशा का दिग्गज (ग.मो.)

कुमदनि, कुमदनी-सं०स्त्री०— रात्रि में चंद्रमा की रोशनी में विकसित होने वाली कोई, कुमुद।

कुमदबंधु-सं०पु० [सं० कुमुदबंधु] चंद्रमा, चाँद (ह.नां., अ.मा.)

कुमया-सं०स्त्री०—कोप, नाराजगी, गुस्सा। उ०—जु रांणी इणसूं इतरी कुमया करै छै।—नैणसी

कुमर-सं०पु०—कुमार, कुंवर, राजकुमार। उ०—संग रांम लक्ष्मण कुमर दसरथ, धरम व्रत रिण धीर।—र.रू.

कुमरक-सं०पु० [सं० कुवरक] बुरा व भयानक गड्ढा। उ०—धुनाय धूलि अकरधां कुमरक में धसा करियो।—ऊ.का.

कुमरांणी-सं०स्त्री०—१ राजकुमार की धर्मपत्नी। उ०— चंदांणि कुमरांणी नूं आधांन सहित पिउहर ही मेल्हि आयो।—वं.भा. २ राजकुमारी।

कुमरि—१ देखो 'कुंवरी' २ राजकन्या।

कुमरिया-सं०स्त्री०—हाथियों की एक जाति जो उत्तम मानी जाती है।

कुमरी— देखो 'कुंवरी' (रू भे)

कुमलय-सं०पु०—कमल (अ.मा.)

कुमळाणो, कुमळाबो-क्रि०अ०—कुम्हलाना, मुरझाना, सूखना। उ०—ऊगतां अनेक कहतां उदार, प्रफूळत कमळ कवि मुख अपार। जोवतां कुमुद कुमळाइ जाइ, सुणतां ज कुकवि चख घर समाइ।
—सू.प्र.

कुमळाणहार, हारो (हारी), कुमळाणियो—वि०।

कुमळायोड़ो—भू०का०कृ०।

कुमळावणो, कुमळावबो—क्रि०स० (रू०भे०)

कुमळीजणो, कुमळीजबो—भाव वा०।

कुमळीजियोड़ो—भू०का०कृ०।

(स्त्री० कुमळीजियोड़ी)

कुमळायोड़ो-भू०का०कृ०—कुम्हलाया हुआ, मुरझाया हुआ।

(स्त्री० कुमळायोड़ी)

कुमळावणौ, कुमळावबौ—देखो 'कुमळाणौ' (रू.भे.) उ०—कविजन वन्द कंवळ कुमळाया, गीत कुकवि जणु स्याळां गाया।—ऊ.का.

कुमळावियोड़ौ—भू०का०कृ०—कुम्हलाया हुआ, मुरझाया हुआ। (स्त्री० कुमळावियोड़ी)

कुमलिआपीड़—देखो 'कुवळियापीड़'। उ०—कुमलिआपीड़ सिर विकट आग्राज कर, कड़छियौ कांन नटराज काळौ।—बां.दा.

कुमांण—वि०—१ दुष्ट, क्रूर, निर्दयी. २ कपटी, बुरा।

कुमांणस—सं०पु० [सं० कु+मानस] १ बुरा मनुष्य, नीच व्यक्ति. २ अयोग्य या पतित व्यक्ति. ३ कुपात्र।

कहा०—कुमांणस सूं पांनौ पड़ै जद कोड़ विघन हुवै—कुपात्र से प्रसंग पड़ने पर अनेक उत्पात या बाधाएं उपस्थित होती हैं।

४ राक्षस। उ०—उलिगणां गुण वरणतां कुकठ कुमांणसां जिण कहई रास।—वी.दे.

कुमांति—सं०स्त्री० [सं० कु+मौत] अकाल मृत्यु, बुरी मौत।

कुमानेतण—वि०—वह स्त्री जिसका पति उसका मान न रखता हो।

कुमाई—देखो 'कमाई' (रू.भे.) उ०—पियारी नार गोरी की कुमाई सूं पूरा ना पड़ै।—लो.गी.

कुमाणौ, कुमाबौ—क्रि०स०—उपार्जन करना। देखो 'कमाणौ' (रू.भे.) उ०—जिकण रा सीलणां में सहियौ न जाइ इसड़ा अनेक अनरथ कुमाइ मनमत्तै बहै तिकण रौ अंत तौ इमड़ौ खटावै।—वं.भा.

कुमायोड़ौ—भू०का०कृ०—कमाया हुआ, उपार्जित। (स्त्री० कुमायोड़ी)

कुमार—सं०पु० [सं०] १ पांच वर्ष की आयु का बालक, बालक (ह.नां.) २ पुत्र, बेटा. ३ युवराज. ४ राजकुमार. ५ स्वामी कार्तिकेय (मिघ०) ६ सनक, सनंदन, सनत्, सुजात आदि ऋषि जो सदा बालक ही रहते हैं (पौराणिक) ७ एक ग्रह जिसका उपद्रव बालकों पर होता है (अमरत) ८ मंगल-ग्रह. ९ एक प्रजापति।

वि०—अविवाहित, कुंआरा।

कुमारक—देखो 'कुमार'।

कुमारग—सं०पु० [सं० कुमार्ग] १ बुरा मार्ग, बुरी राह।

पर्याय०—अपथ, ऊबट कदधव, कापथ, बिपथ।

२ अधर्म।

कुमारगगामी—वि० [सं० कुमार्ग+गामिन्] १ कुपंथी, कुमार्गी. २ अधर्मी।

कुमारगी—वि० [सं० कुमार्गिन्] १ बदचलन, कुचाली. २ अधर्मी।

कुमारड़ी—सं०स्त्री०—१ अविवाहिता कन्या, कुमारी।

उ०—कद हूं कवी कुमारड़ी, कहि नै कद परिणेसि। कदहूं वाजूं कोटड़ै, वीजा बहू कहेसि।—सयणी री वात।

२ कुम्हार जाति की स्त्री (अल्पा०)

कुमारपण, कुमारपणौ—सं०पु०—१ कुमारावस्था. २ कौमार्यावस्था। उ०—पहली जैतारण रै सांखलै राजा महराज कुमारपणै नरबद हूं आपरी बड़ी पुत्री रौ संबंध कीधौ।—वं.भा.

कुमारमग—सं०पु०—आकाश गंगा।

वि०वि०—देखो 'कुंआरमग'।

कुमारमहि, कुमारमही—सं०पु०—मंगल (अ.मा.)

कुमारिका—सं०स्त्री०—कुमारी, कन्या।

कुमारिकाखेत्र, कुमारिकामंडळ—सं०पु० [सं० कुमारिकाक्षेत्र] वह स्थान जहां वर्ण-व्यवस्था हो, भारतवर्ष। उ०—जिण समय रा कोविद लोग अवंती अधीस रा दीधा अन्न रा आस्रय विनां कुमारिकामंडळ कवण रहै।—वं.भा.

कुमारिल भट्ट—सं०पु० [सं०] शंकर भाष्य और अन्य स्रोत सूत्रों के टीकाकार एक प्रसिद्ध मीमांसक।

कुमारी—सं०स्त्री० [सं०] १ बारह वर्ष तक की कन्या. २ घीकुंआर। ३ श्यामा पक्षी. ४ सीताजी का एक नाम. ५ पार्वती (क.कु.बो.) ६ दुर्गा. ७ चमेली. ८ भारत के दक्षिण का एक अंतरीप।

वि०—अविवाहिता।

कुमारी पूजन—सं०पु०—एक प्रकार की पूजा जो देवी के पूजन के समय होती है और जिसमें कुमारी बालिकाओं का पूजन करके उन्हें मिष्ठान्न आदि दिया जाता है (तंत्र)

कुमारौ—देखो 'कुमार' (रू.भे.)

कुमी—देखो 'कमी' (रू.भे.) उ०—जिण समय राठौड़ चंद्रहास चलावण में कुमी न कीधी।—वं भा.

कुमीठ—सं०स्त्री०—कुदृष्टि।

कुमुख—सं०पु० [सं०] १ रावण का दुर्मुख नामक एक योद्धा. २ सूअर।

वि०—भद्दे चेहरे वाला, जिसका चेहरा देखने में अच्छा न हो।

कुमुद—सं०पु०—१ कोका, कमल २ विष्णु. ३ एक दैत्य. ४ एक द्वीप. ५ आठ दिग्गजों में एक दिग्गज का नाम (वं.भा.) ६ एक केतु तारा।

कुमुदणी—सं०स्त्री० [सं० कुमुदिनी] १ रात्रि में चंद्रमा की रोशनी में विकसित होने वाली कोई, कुमुद। उ०—दिपै अलील कुंड में खिली कुमुदणी, नमामि मात इंदरा 'समंद' नंदणी।—मे.म. २ वह स्थान जहां कुमुद हो।

कुमेड़ियौ—सं०पु०—एक छोटी जाति का हाथी।

कुमेत—देखो 'कुमैत' (रू भे.)

कुमेर—देखो 'कुबेर' (१) (रू.भे.) (ह नां.) उ०—सोभन अवास सोभा सुमेर कोटक भंडार समसर कुमेर।—सू.प्र. २ पाठ नामक एक लता (अ.मा.)

कुमेळ—सं०पु०—अनबन, द्वेष, दुश्मनी, वैमनस्य (ह.नां.)

कुमैत—सं०पु०—१ घोड़ों का एक रंग जो स्याही लिए लाल होता है, लाखी. २ इस रंग का घोड़ा (शा.हो.)

कुमौज—सं०पु० [सं० कु+फा० मौज] १ नाखुशी. २ कष्ट. ३ सस्ता एवं बुरा मनोरंजन। उ०—विभीचारी विभचार, कर कुळ भ्रम खोय कुमौज। छूट गया इण खलक में, खुड़कौ हुवौ न खोज।—ऊ.का.

कुमौत-सं०पु०—बेमौत, अकाल मृत्यु ।

कुम्म-सं०पु० [सं० कुर्म, प्रा० कुम्म] १ कच्छप, कछुआ. २ कछवाहा वंश (वं.भा.)

कुम्मट—देखो 'कुमट' ।

कुम्मांथळ—देखो 'कुंभाथळ' । उ०—गो काळो कुम्मांथळां, काळ गजां सिर काळ ।—वचनिका

कुम्मेद—देखो 'कुमैत' (रू.भे.) उ०—घोड़ा सात सौ अबलख, समदा-भंवर गंगाजळ संजब कुम्मेद और गुलदारी फुलवारी तयार कराया ।—जलाल बूबना री वात

कुम्मेर—देखो 'कुबेर' (रू.भे.) उ०—आविया वरुण कुम्मेर इंद्र । —सू.प्र.

कुम्हळणौ, कुम्हळबौ-क्रि०अ०—कुम्हलाना, मुरझाना । उ०—कंवळा कूंपळ अधर कुम्हळिया घणी निसासां, कोरे मंजरिण लूखी लट मुख हिले उसासां ।—मेघ०

कुम्हळाणौ, कुम्हळाबौ—देखो 'कुमळाणौ' (रू.भे.) उ०—मुखड़ौ कुम्हळायौ भोजन विण भारी ।—ऊ.का.

कुम्हळायोड़ौ-भू०का०कृ०—कुम्हलाया हुआ । (स्त्री० कुम्हळायोड़ी)

कुम्हारियौ-सं०पु०—१ अत्यंत जहरीला एक सर्प विशेष. २ देखो 'कुम्हार' (अल्पा०) उ०—बाई ऐ म्हारै घरे है टीपरिणयां री कांम, कुम्हारिया री बेटौ बती झेलसी ।—लो.गी.

कुयीजणौ, कुयीजबौ-क्रि०अ० [सं० कुथ्-पूती भावे] सड़ना, खमीर उठना ।

कुयीजियोड़ौ-भू०का०कृ०—सड़ा हुआ, खमीर उठा हुआ । (स्त्री० कुयीजियोड़ी)

कुयोग-वि०—कुअवसर, बुरा अवसर, बुरा मौका । उ०—प्रयोग हूं कुयोग में यथा नियोग कीजिये ।—ऊ.का.
सं०पु०—बुरा संयोग, कुअवसर ।

कुरं-सं०पु०—कोख (पि.प्र.)

कुरंग-सं०पु० [सं०] १ हरिन, मृग (अ.मा.) २ कुम्मैत रंग का घोड़ा (शा.हो.) ३ संसार (अनेका०) ४ पतंग (अनेका०)
वि०—१ बुरे रंग का, बदरंग । उ०—दळप्पति दोमझि दूध दुरंग, कियौ कमरौ' जिण भांजि कुरंग ।—रा.ज.रासो
[सं० कु+रंग] २ असुहावना. उ०—हंस कर बोली माळवरिण, सांभळ कहै कंत सुरंग । सगळा देस सुहांमणा, मारू देस कुरंग ।
३ चंचल* (डिं.को.) —ढो.मा.

कुरंग, कुरंगाण-सं०पु० [सं० कुरंग] हेरिण, मृग. देखो 'कुरंग' (१) (रू.भे.)

कुरंगि, कुरंगी—देखो 'कुरंग' (रू.भे.) उ०—१ सुंदरि सोवन वरण तसु, अहर अलत्ता रंगि । केसरि लंकी खीण कटि, कोमळ नेत्र कुरंगि । —ढो.मा.
उ०—२ लछी रा वचन सांभळ कमळ लोयणां, लोयणां कुरंगी लियां लारा ।—र.रू.

कुरंज-सं०पु० [सं० क्रौंच] क्रौंच पक्षी ।

कुरंब-सं०पु०—दारिद्रय, निर्धनता, कंगाली । उ०—मन रा महाराण समापण मोजां, कापण दीनां तणा कुरंब ।—र.रू.

कुरंबा, कुरंब्रा-सं०स्त्री०—दरिद्रता, निर्धनता ।

कुरंब-सं०स्त्री०—इज्जत, प्रतिष्ठा, सम्मान । उ०—पारख स्री रांण करै अत प्रभता, अंग आरख दरसाय । धन धन भूप 'अमर' छत्रधारी, येळा कुरंब सदाय ।—अज्ञात

कुरंभ-सं०पु० [सं० निकुरंभ] समूह (अ.मा.)

कुरंभौ-सं०पु० [सं० कूर्म] १ कछुआ. २ कछवाहा वंश । उ०—लाखां हाडां गोड़ री, कुरंभा आडी लीक ।—नवलजी लाळस

कुरम-सं०पु०—१ क्षत्रियों के अंतर्गत कछवाहा वंश. २ इस वंश का क्षत्रिय. ३ कछुआ (अ.मा.)

कुरंमी-वि०—क्षत्रियों के कछवाहा वंश का या कछवाहा वंश संबंधी ।

कुरंम्म—देखो 'कुरम' (रू.भे.)

कुर-सं०पु०—कौरव (अल्पा.) उ०—कुर पंडव जीहा अमर, कळ रक्खण कथ्थां ।—द.दा.

कुरक—देखो 'कुड़क' (रू.भे.)

कुरकअमीन—देखो 'कुड़क-अमीन (रू.भे.)

कुरकनांमौ-सं०पु०—अदालत का वह परवाना जिसके अनुसार कुर्क अमीन किसी की जायदाद कुर्क करता है ।

कुरकांट, कुरकांठ-सं०पु०—फैले हुए अंगूठे और बंद मुट्ठी की लम्बाई का माप ।

कुरकी—देखो 'कुड़की' (रू.भे.)

कुरकर-सं०पु०—१ कुत्ता, श्वान (डिं.को.) [अनु०] २ किसी खरी वस्तु के दब कर टूटने का शब्द ।

कुरकुरी-सं०स्त्री०—घोड़े का एक रोग विशेष जिसमें उसका पाखाना और पेशाब बंद हो जाता है (शा.हो.)

कुरकुरौ-वि०—दरदरा, मोटा ।
कहा०—कुरकुरा पीसै झरझरा पोवै जिण रा मांटी रात्यूं रोवै—फूहड़ स्त्री के प्रति ।

कुरख-सं०पु०—१ क्रोध । उ०—समहर भर थटै 'बाहदर' असमर, कटै वैरहर भर कुरख । जगा खून आवटै त्रिया जां, सर चौसट ऊछटै सुरख ।—कविराजा करणीदांन
२ कवच को बंद करने के हुक ।
[सं० कुलक्षय] ३ शत्रु (अ.मा.) उ०—फैलं दळ अकळ सबळ संघ फूटा, कांकळ बळ जूटा कुरख । राड़ी तेग डाढ़ घर राखी, राजा घर बाराह रुख ।—चांवंडदांन दधवाड़ियौ. ५ राजा, नृप (मि. 'भूपाळ')

कुरखेत, कुरखेतर-सं०पु० [सं० कुरुक्षेत्र] एक अति प्राचीन पुण्य-स्थान । यह अंबाला और दिल्ली के बीच में स्थित है । महाभारत का युद्ध यहीं हुआ था । कुरुक्षेत्र । उ०—कनक दांन कुरखेत, विरधि ग्रुरिण वासुर-वासुर ।—रा.रू.

कुरड़-सं०स्त्री०—१ पीठ । उ०—सुजड़ भवकाव जड़ कुरड़ परवाह सक, हूठ ऊमरड़ सत्रां होम देहा ।—कविराजा करणीदांन
२ पंवार वंश की एक शाखा ।

कुरड़ौ-सं०पु०—१ अरबी और तुर्की जाति के घोड़ा-घोड़ी के जोड़ से उत्पन्न एक दोगली जाति का घोड़ा (शा.हो.) २ देखो 'कुरळौ' (रू.भे.) उ०—संकर सागर हुयायौ सुरड़ा, करण मिळै नहीं पांणी कुरड़ा ।
—ऊ.का.

कुरवणौ, कुरवबौ-क्रि०स०—देखो 'खुरवणौ' (रू.भे.)

कुरचिल-सं०पु० [सं० कुरचिल्लः] केंकड़ा (डि.को.)

कुरछी-सं०स्त्री०—कलछी, चम्मच ।

कुरज-सं०स्त्री०—१ क्रौंच पक्षी । उ०—सासूजी नै कहियौ कुरजां पगे-लागणा, छोटे से देवरिये नै प्यार कहीज्यौ—ए उडती कूजरियां ।
२ एक राजस्थानी लोक गीत । —लो.गी.

कुरजणियौ, कुरजणौ-सं०पु०—१ एक राजस्थानी लो.गी. २ एक प्रकार की बरसाती घास ।

कुरजीत-सं०पु०—युधिष्ठिर (अ मा.)

कुरझ-सं०पु०—देखो 'कुरज' (रू.भे.) (अल्पा. 'कुरझड़ी')
उ०—जिणि दीहे पाळउ पड़इ, माथउ त्रिड़इ तिलांह । तिणि दिन जाए प्राहुणउ, कळियळ कुरझड़ियांह ।—ढो.मा.

कुरझण-सं०स्त्री०—१ क्रौंच पक्षी । उ०—पेखो पड़ी पलंग पर कुरझण कुरळाती । कियौ गजब कांय कवरजी मूंधा मुरझाती ।
२ देखो 'कुरजणी' (रू.भे.) —र. हमीर

कुरझी-सं०स्त्री०—देखो 'कुरज' । उ०—चुगइ चितारइ, भी चुगइ, चुगि-चुगि चित्तारेह । कुरझी बच्चा मेल्हि कइ, दूरि थकां पाळेह ।
—ढो.मा.

कुरट-वि०—काला, श्याम । उ०—काजळ सा काळा कुरट, बादळ झबकै बीज । थळ पर थळ सथापणा, प्रेमासकत पसीज ।—अज्ञात

कुरटणौ, कुरटबौ-क्रि०स०—कुतरना, दांतों से छोटा सा टुकड़ा काटना ।
कुरटणहार, हारौ (हारी) कुरटणियौ—वि० ।
कुरटाणौ, कुरटाबौ, कुरटावणौ, कुरटावबौ—प्रे०रू० ।
कुरटायोड़ौ—भू०का०कृ० ।
कुरटियोड़ौ, कुरठियोड़ौ कुरटयोड़ौ—भू०का०कृ० ।
कुरटीजणौ, कुरटीजबौ—कर्म वा० ।

कुरटाणौ, कुरटाबौ, कुरटावणौ, कुरटावबौ-क्रि०स० [प्रे०रू०] कुतरने का कार्य कराना । देखो 'कुरटणौ' ।

कुरटियोड़ौ-भू०का०कृ०—कुतरा हुआ, दांतों से छोटे-छोटे टुकड़े किया हुआ (स्त्री० कुरटियोड़ी)

कुरड—देखो 'कुरड़' (रू.भे.)

कुरडौ—'कुरड़ौ' (रू.भे)

कुरणा-सं०स्त्री०—१ करुणा. २ हल्का बुखार ।

कुरणाटौ-सं०पु०—१ बक-झक करने की क्रिया. २ दर्द में रह रह कर कराहना ।

कुरत-सं०स्त्री० [सं० कु+ऋतु] बेमौसम ।

कुरती—देखो 'कुड़ती' । उ०—कुरती कचिया मखतलन की, हर माळ चमेलिय फूलन की ।—ला.रा.

कुरबसियौ-वि०—कुलक्षणों वाला । उ०—क्रूर उनाळै हुरियां पतां, चिड़कोल्यां चग चग करै । कुरबसिया कुत्ता बिल्ला चढ़, रेळ रंग रळ भंग भरै ।—दसदेव

कुरबातळी-सं०स्त्री०—एक प्रकार का पक्षी विशेष । उ०—पंचे देखिनै कह्यौ कुरबातळी रा इंडा ल्यावै तैंरी वडाई ।—चौबोली

कुरनस-सं०पु० [तु० कुर्नुश] झुक कर प्रणाम करना । उ०—तद पातिसाहजी वीरमदेजी नै फुरमायौ, कंवरजी, हम तुमारै तांई हमारी लड़की साह-बेगम दीधी, कुरनस करौ ।
—वीरमदे सोनगरा री वात

कुरपण-सं०पु०—कपड़े या चमड़े का वह अनावश्यक भाग जो उपयोग करते समय छोटे-छोटे टुकड़ों में रह जाता है ।
वि० [सं० कृपण] कंजूस ।

कुरपत-सं०पु० [सं० कौरव+पति] कौरवपति दुर्योधन ।
उ०—कुरपत के मेवा कहर, चित नाही धारे । बिलकुल खाधी विदुर घर, भाजी भलकारे ।—भगतमाळ

कुरपौ-सं०पु०—चमड़े या कपड़े का छोटा सा बेकार टुकड़ा ।

कुरब-सं०पु०—इज्जत, प्रतिष्ठा, सत्कार । उ०—१ बावन पिड़गनां तौ रायसल नै साहि दीनां, सारा पंचझारी का मुनासब कुरब कीना ।
—शि.वं.
उ०—२ अवल उकील नूं जी आदर कुरब दे अवधेस ।—र.रू.

कुरबक-सं०पु० [सं० कुरवक] अड़ूसे की तरह का कांटेदार एक प्रकार का पौधा । उ०—कुरबक अच्छा वाड़ माधवी कुंज सुरागी ।
—मेघ.

कुरबरा-सं०स्त्री०—इज्जत, प्रतिष्ठा (मा.म.)

कुरबांण-वि० [अ० कुरबान] जो न्योछावर किया गया हो, जो बलिदान हो गया हो अथवा किया गया हो । उ०—सुपियारी रानळ सहिज, भालाळो जिम भांग । इण जोड़ी रै ऊपरै, कोड़ करूं कुरबांण ।
—पा.प्र.

कुरबांणी,कुरबांनी-सं०स्त्री०—१ किसी देवता आदि के लिए किसी जीव को बलिदान करने की क्रिया, कुरबान करने का काम ।
उ०—लागी फेट किस्त की लखिये, हुई इते बड़ हाणी । तीखे पग कौ एक तोरड़ौ, कियौ प्रथम कुरबांणी ।—ऊ.का.
२ त्याग, उदारता ।

कुरबव —देखो 'कुरब' (रू.भे.)

कुरम—देखो 'कूरम' (रू.भे.) उ०—कुरमां नाथ जंगां धार आंटीपणै, सांमी फौजां फाढी पणै हरांमी सधींग ।—महाराजा मांनसींघ रौ गीत

कुरमदन-सं०पु०—स्वर्ण, सोना (ह.नां.)

कुरराज-सं०पु० [सं० कुरुराज] कौरवराज, दुर्योधन ।

कुररि-सं०स्त्री० [सं० कुररी] १ मादा भेड़ (डिं.को.) २ एक पक्षी विशेष।

कुररियौ—देखो 'कुरियौ-काचौ'।

कुररी-सं०स्त्री०—१ क्रौंच पक्षी. २ आर्य्या छंद का एक भेद जिसके चारों चरणों में मिला कर ४ गुरु और ४९ लघु वर्ण सहित ५७ मात्रायें होती हैं. ३ देखो 'कुररि'।

कुररौ—१ देखो 'कुरियौ-काचौ'. २ कटु, अप्रिय। उ०—दळपत कन्हीरांमोत बात डेरै बैठे कही सो किहीं जाय रांमसिंह नूं कही जो कन्हीरांमोत बखतसिंहजी सूं मिळियोड़ौ छै। तद रांमसिंहजी कुररौ जबाब दियौ।—मारवाड़ रा अमरावां री वारता

कुरळ-वि०—लाल रंग का, लाल।

सं०पु०—लाल रंग।

कुरळणौ, कुरळबौ-क्रि०अ०—१ कराहना, दर्द से व्याकुल होकर ध्वनि करना। उ०—राति जु सारस कुरळिया, गुंजि रहे सब ताळ। जिणकी जोड़ी बीछड़ी, तिणका कवण हवाल।—ढो.मा.

२ चीखना चिल्लाना। उ०—१ कुरळै केकी सी काया कुम्हळांणी।—ऊ.का.

उ०—२ धीरपतियां सूतौ धणी, कुरळै चकवी काय। देखीजै मुण दीहरै, सुख दा जांम सिवाय।—वी.स. ३ कलह करना. ४ कलरव करना, किल्लोल करना. ५ रुदन करना, विलाप करना। उ०—बांह अडोळी कुरळै बीबी, वर सहु दूदै वहिया।

—राठौड़ दूदै जोधावत री गीत

७ व्याकुल होना (रू.भे. 'कुरळाणौ')

कुरळाट-सं०पु०—रुदन, विलाप, व्याकुल।

कुरळाणौ, कुरळाबौ, कुरळावणौ, कुरळावबौ-क्रि०अ०—देखो 'कुरळणौ'। उ०—मूरख भगतां सोर मचायौ, काळी रात जरख कुरळायौ।

—ऊ.का.

कुरळौ-सं०पु० [सं० कुरल:] कुल्ला, गरारा। उ०—दांतण कुरळा दुहूं ऊठि नह करै अभागी, अग छागी असळाख लाखां माख्यां मुख लागी।—ऊ.का.

कहा०—भैंस किसौ कुरळौ करै जिकौ सेर घी देवै—प्राय: प्रातःकाल दातुन-कुल्ला न करने वाले व्यक्ति कहा करते हैं।

कुरवंसी-सं०पु० [सं० कौरव+वंशी] कौरववंशी, कौरव।

कुरवाबरत-सं०पु०—घोड़े का अशुभ चिन्ह (शा.हो.)

कुरसी-सं०स्त्री [अ०] १ एक प्रकार की चौकी जिसके पाये कुछ ऊँचे होते हैं और जिसमें पीछे की ओर सहारे के लिये पटरी या इसी प्रकार की कोई चीज लगी रहती है. २ वह चबूतरा जिसके ऊपर इमारत या इसी प्रकार की कोई चीज बनाई जाती है। यह आस-पास की भूमि से कुछ ऊँची होती है. ३ पीढ़ी, पुश्त (यौ. कुरसीनांमौ) ४ पद (रू.भे. खुरसी)

कुरसीनांमौ-सं०पु० [अ० कुरसीनामा] वह पत्र जिसमें वंश-परम्परा लिखी हुई हो, वंश-वृक्ष, पुश्तनामा।

कुरसीबंध-वि०—प्रतिष्ठित। उ०—ये सगळा भला मांणस छौ पक्का पूरा छौ, कुरसीबंध छौ।—सूरे खींवे री वात

कुरस्तौ-सं०पु०—कुमार्ग, बुरी राह।

कुरहा-सं०पु०—राठोड़ों के प्रसिद्ध तेरह वंशों के अन्तर्गत एक वंश (बां.दा. ख्यात)

कुरहावणौ, कुरहावबौ-क्रि०स० [सं० कुश्लाघनम्] १ नापसंद करना. २ बदनाम करना. ३ अपयश देना. ४ घृणा करना।

कुरांड-सं०स्त्री०—बदचलन स्त्री।

कहा०—कुरांड कांचळियां सूं ई मूंगी—व्यभिचारिणी स्त्री के प्रति; उस कार्य के प्रति जिसमें लाभ की अपेक्षा मूल पूंजी की भी जाने की या हानि की संभावना हो।

कुरांण-सं०पु० [अ० कुरान] अरबी भाषा में लिखा मुसलमानों का धर्म-ग्रन्थ कुरान। उ०—अमेसर तोरा पांय अळोय, कुरांण पुरांण न जाणै कोय।—ह.र.

कुरांणिन, कुरांणी-सं०पु०—कुरान पर विश्वास करने वाला, मुसलमान उ०—कर पाठ कुरांणी सिलह कीध, चल चढ़े सकळ नीसांण दीध।—शि.सु.रू.

कुरांपिंड-सं०पु०—चावल या आटे के बने पिंड (कर्मकांड)

उ०—फेर कंवर रा कुरांपिंड भराया, रोहणी कुंड तरपण किया।

—पलक दरियाव री वात

कुरावणौ, कुरावबौ—देखो 'कुरहावणौ' (रू.भे.)

कुराह-सं०स्त्री० [सं० कु+फा० राह] १ कुमार्ग, बुरी राह।

उ०—बदलाह सलाह बधारत क्यूं, पद ताह कुराह पधारत क्यूं।

—ऊ.का.

[सं० कु+श्लाघा] १ अपयश, अपकीर्ति २ निंदा।

कुराही-वि०—कुमार्गी, बदचलन, दुराचारी। उ०—कहै जसकरन द्रव्य हरन उपाय विन कुटिल कुराही गण दुरजन उदास भौ।

—जसकरण

कुरिंद, कुरियंद-सं०पु० [सं० कुध्र] १ पहाड़. २ दारिद्रय, कंगाली (डिं.को.) उ०—घर अरि नांन्हा सिंघ घातिया, कुरिंद तठै जाइ बास करि।—दुरसौ आढ़ौ

३ भील. [सं० कुरुद्रेन्द्र] ४ रुद्र, महादेव। उ०—बे जुटाळा जोध तेगां चाळा नरा ताळा बागा, क्रोध ज्वाळा माळा जागा किरीटी कुरिंद।

—हुकमीचंद खिड़ियौ

वि०—दरिद्र, निर्धन।

कुरियौ—१ देखो 'कुरियौ-काचौ'।

सं०पु०—२ ऊँट का छोटा बच्चा।

कुरियौ-काचौ-वि०पु०यौ०—जब वर्षा की कमी के कारण अनाज बहुत कम या साधारण हुआ हो (वर्ष)

कुरी-सं०पु०—१ शत्रु। उ०—आंबानेर वीकपुर बेहूं में, नर कुरीयां उतारण नीर।—अज्ञात २ वर्षा ऋतु में होने वाली एक घास विशेष।

कुरीजणी, कुरीजबो–कर्म वा०—खींचा जाना। उ०—रेवा नद रळकीज पड़ी है विंध्य पठारां, जाणै रेख बणत कुरीजी गै सिणगारां—मेघ.

कुरीति–सं०स्त्री०—कुप्रथा। उ०—भलाई कंई कैवी, कुरीति तो घणी छायगी। 'कठै' है कुरीति ? पिता-पूरखी रीत पर चालणी कोई कुरीति है।—वरसगांठ

कुरु-ईस–सं०पु०—१ युधिष्ठिर (डि.को.) २ देखो 'कुरुईस' (रू.भे.)

कुरुख—१ देखो 'कुरख' (रू.भे.) २ नाराजगी।

कुरुखेत, कुरुखेत्र, कुरुखेत्रि—देखो 'कुरखेत'। उ०—जो फळ नारायण दीठइ नेत्रि, जे फळ हुइ दांनि कुरुखेत्रि।—कां.दे.प्र.

कुरुगट्ट–सं०पु० [सं० कुक्कुट] मुर्गा। उ०—कागारि कन्न कुरुगट्ट कंध, वइंगणा वेस लुहमणीबंध।—रा.ज.सी.

कुरुजंगळ–सं०पु०—पांचाल देश के पश्चिम का एक देश (प्राचीन)

कुरुदेव, कुरुईस–सं०पु०—भीष्म (डि.को.)

कुरूड़ो–सं०पु०—कुये पर काम करने वाला।

कुरूप–वि० [सं०] बदसूरत, भद्दा, बेडौल।

कुरूपत–सं०पु०—कौरवपति, दुर्योधन। उ०—करण महाबळ करण अगै कुरुपत उच्चरणौ।—पा.प्र.

कुरूपता–सं०स्त्री०—कुरूप होने का भाव।

कुरेभो–सं०पु०—व्यंजन। उ०—दे देसां नूं दडूली डेरां लार, इकठो ही कुरेभो थांनै आपसां।—किसोरसिंह बार्हस्पत्य

कुरेस, कुरेसी–सं०पु०—अरब के मुसलमानों की जाति विशेष (बां.दा.ख्यात)

कुरोगी–वि०—बुरे रोग से पीड़ित। उ०—भोगिय मोख कुरोगिय भोजन, जोगिय जोखत जोवत जैसे।—ऊ.का.

कुलंक–सं०पु० [फा० कुलंग] १ लाल सिर और मटमैले रंग के शरीर वाला एक पक्षी। उ०—बहरी अमख हित पंख बळ, गहै कुलंक प्रसंक गत।—रा.रू.

कुलंग–सं०पु०—१ देखो 'कुलंक'. उ०—कंक कंकोअ्रत चील कुलंगा अंबर चर सर छेदे अंगा।—रा.रू. २ कौआ। उ०—आज कुलंग भ्रमण तिण ऊपर, लाग जिनावर लोटे।—र.रू.

सं०स्त्री०—३ शैतानी, बदमाशी (वि. कुलंगियो)

मुहा०—कुलंगियां रो काको है—अत्यन्त शैतान व्यक्ति के लिये।

कुलंजन–सं०पु० [सं०] १ अदरक की तरह का एक पौधा जो बरमा, मलाया द्वीप और चीन आदि में होता है। इसकी जड़ मुख की दुर्गन्ध को दूर करती है. २ पान की जड़, नागरबेल का मूल (अमरत)

कुळ–सं०पु० [सं० कुल] १ वंश, घराना, खानदान, जाति।

उ०—सींगाळो अवखल्लणी, जिण कुळ हेक न थाय। जास पुरांणी वाड़ जिम, जिण-जिण मत्थै पाय।—हा.झा.

यौ०—कुळ-ऊधोर, कुळ-कंटक, कुळ-करता, कुळ-कळंक, कुळ-कांण, कुळ-काट, कुळ-कुठार, गुळ-गुरु, कुळ-तिलक, कुळ-देव कुळ-देवता, कुळ-देवी, कुळ-धर्म, कुळ-धारक, कुळ-पति, कुळ-भूखण।

२ समूह, समुदाय (अ.मा.)

यौ०—कविकुळतिलक, कविकुळभूखण।

३ तंत्र के अनुसार प्रकृति, काल, आकाश और वायु आदि पदार्थ। ४ संगीत में एक ताल. ४ तीन लघु के ढगण के तृतीय भेद का नाम (डि.को.)

कुल–वि० [अ०] समस्त, सब, सारा, पूरा।

कुळ-ऊधोर–वि०—कुल का उद्धार करने वाला, वंश का मान बढ़ाने वाला। उ०—जांणे 'लाखो' गुण जुगति, धरपति कुळ-ऊधोर।—ल.पिं.

कुळकंटक–सं०पु०—अपने कुकृत्यों से वंश वालों के लिए कंटक रूप होने वाला, अपने वंश वालों को दुखी करने वाला।

कुळक–सं०स्त्री०—खुजली, पीड़ा।

कुळकत–सं०स्त्री०—गायन की मधुर और सुरीली ध्वनि। उ०—रागां वारा राळ, खांमिगं नै दे मोसा। ठंडी रूड़ी रात, सुणीजै कुळकत कोसां।—दसदेव

कुळकरता, कुळकरत्ता–सं०पु० [सं० कुलकर्त्ता] वंश का आदि पुरुष या संस्थापक, कुलपति।

कुळकांण–सं०स्त्री०—कुल की प्रतिष्ठा, कुल की मर्यादा।

कुळकाट–वि०—१ कुल में कलंक लगाने वाला। उ०—कम हीमत कुळकाट, माझी मरण मलीण मत। कुळ ऊधोर कुवाट, पैलां घर वांछै पिसण।—बां.दा. २ कुल का नाश करने वाला।

कुळ-किसब–सं०पु० [सं० कुलकश्यप] सूर्य वंश। उ०—राति दिन मांमला किया सजको रहै, दोयणा जळा भंज दळा दाटी। दूठ कुळ-किसब री अजब दूजा 'दला'।—उम्मेदसिंह सीसोदिया रो गीत।

कुळकुंडळिणी, कुळकुंडळिनी–सं०स्त्री० [सं० कुलकुण्डलिनी] तंत्र के अनुसार एक शक्ति, सारा संसार जिसका एक अंश है।

कुळकुळी—देखो 'खुळखुळी' (रू.भे.)

कुलखण—देखो 'कुलक्खण'।

कुलखणो–वि०पु० [सं० कुलक्षण+रा०प्र० औ] (स्त्री० कुलखणी) १ बुरे लक्षण वाला, अवगुणी. २ दुराचारी। उ०—कुलखणां मांय मोटी कमर, आदत खोटी आंगणी।—ऊ.का.

कुळखय, कुळखयक, कुळखायक–सं०स्त्री०—१ मछली (ह.नां., अ.मा.)

वि०—अपने कुल का ही क्षय करने वाला।

कुलक्खण–सं०पु० [सं० कु+लक्षण] बुरा लक्षण, बुरा चिन्ह, कुचाल, अवगुण, ऐब।

वि०—देखो 'कुलखणो' (रू.भे.)

कुळगांम, कुळगांव–सं०पु०—छोटा गाँव।

(अल्पा० 'कुळगांमड़ियो', 'कुळगांवड़ियो')

कुळगुंचियो–सं०पु०—१ एक प्रकार का पौधा जिसका बीज कंकड़ के समान कठोर होता है. २ चिकना कंकड़।

कुळगुर, कुळगुरु–सं०पु०यौ० [सं० कुल+गुरु] १ वंश का गुरु. २ वंश की वृत्ति करने वाला ब्राह्मण।

कुलड़, कुलड़ौ-सं०पु० [सं० कुम्भक] (स्त्री० कुलड़ी) दूध-दही रखने का मिट्टी का पात्र विशेष। उ०—१ **कुलड़** कटोरदांन कचोळा लोटा ऊंखळ माटड़ी।—दसदेव उ०—२ नव लख सोरठ नाथ तैं, कीनो **कुलड़ौ** त्रपत।—पा.प्र.

कहा०—१ कुलड़ी मांये कण नी नैं कागा भाई नूतूं—कुल्हड़ी में तो कण भी नहीं है और कहता है कि मैं काका भाई को निमंत्रित करूं। अन्न के बिना भोजन नहीं हो सकता. २ कुलड़ी में गुड़ गाळणौ—छिप कर कार्य करना. ३ कुलड़ी में गुड़ किताक दिन गळै—छिप कर कार्य कितने दिन तक किया जा सकता है? ४ कुलड़ी में गुड़ नी फोड़णी आवै—कोई बड़ा कार्य गुप्त रीति से नहीं किया जा सकता. ५ घी ढुळियौ तोई कुलड़ी रै परवांण—किसी की हानि उसकी सामर्थ्यानुसार होने पर।

(अल्पा० 'कुलड़ियौ')

कुलच-सं०पु०—बुरे लक्षण, कुलक्षण, अवगुण, ऐब।

कुळचाळौ-सं०पु० [सं० कुलाचार] १ कुल व वंश की मर्यादा के अनुसार किया जाने वाला कार्य. २ युद्ध। उ०—चढ़ असहां करणा **कुळचाळा**, धर दुमहां उर धोख।—अज्ञात

कुलचौ-सं०पु०—वह ऊंट जिसके पीछे के पैर का मुरचा उतरा हुआ हो और जो लंगड़ा चलता हो।

कुलच्छणवंत-वि०—देखो 'कुलखणौ' (रू.भे.) उ०—छोडे जे निज छांह नूं, चाळा बहु चाहंत। पवनां सूं बायां पड़ै, त्रिदर **कुलच्छणवंत**।—बां.दा.

कुलच्छणौ-वि० (स्त्री० कुलच्छणी) देखो 'कुलखणौ' (रू.भे.) उ०—कड़कै बीज **कुलच्छणी**. गाजै घणा गंभीर। · वादळी

कुलछ, कुलछण—देखो 'कुलखण' (रू.भे.)

कुळजा-सं०स्त्री०—पुत्री (अ.मा.)

कुलट-वि० [सं०] १ बहुत पुरुषों से प्रेम करने वाली, व्यभिचारिणी, बदचलन. २ नृत्य के समय पैरों को रखने का ढंग।

उ०—द्रीवछड़ द्रीवछड़ अक्र पग धरंती **कुलट** नट वटा ज्यूं मक्र करंती।—गिरवरदांन सांदू. ३ देखो 'कुलटा' (३)

कुलटा-सं०स्त्री० [सं०] १ बहुत पुरुषों से संभोग कराने वाली, पतिता व्यभिचारिणी स्त्री। उ०—चंद्रकिरणि **कुलटा** सु निसाचर, द्रवहित अभिसारिका द्रिठ।—वेलि. २ वेश्या, पतुरिया (डिं.को.) ३ घोड़े की एक चाल विशेष. ४ टेढ़ी आकृति. ५ नाच, नृत्य. ६ जमीन, भूमि (अ.मा.)

वि०—चंचल* (डिं.को.)

कुलटाई-सं०स्त्री०—नीचता, कुटिलता, बुराई। उ०—सपने छोरा विधि कीनी **कुलटाई**, उलटा पलटी कर दुनियां उलटाई।—ऊ.का.

कुळणौ, कुळबौ-क्रि०अ०—टीस मारना, दर्द करना।

कुलत-सं०स्त्री०—१ बुरा स्वभाव, खराब आदत. उ०—भड़वा भड़वापणूं चुगलिया चुगली चासी, ठग ठग लेसी ठोठ **कुलतिया** कुलत करासी।—ऊ.का. २ बुरी आदत।

कुलतियौ-वि०—१ नीच, पतित. २ ऐबी. ३ बुरे स्वभाव या बुरी लत वाला।

कुळत्थ, कुळथ-सं०पु० [सं० कुलत्थ] देखो 'कुळथी' (डिं.को.)

कुलथथनौ-सं०पु०—जाति विशेष का घोड़ा (कां.दे.प्र.)

कुलथा-सं०स्त्री०—घोड़े की एक जाति विशेष (कां दे.प्र.)

कुळथी-सं०स्त्री०—उरद की तरह का एक मोटा अन्न जो प्रायः बरसात में ज्वार के साथ बोया जाता है।

कुळथौ-सं०पु०—देखो 'कुळथी' (रू.भे.) २ जाति विशेष का घोड़ा (कां.दे.प्र.)

कुळदातरी-सं०स्त्री०—श्याम रंग की एक चिड़िया विशेष।

कुळदीत-सं०पु० [सं० आदित्य कुल] सूर्यवंशी राजा रामचंद्र का एक नाम (डिं.को.)

कुळदेव, कुळदेवता-सं०पु०यौ० [सं० कुलदेव] (स्त्री० कुळदेवी) वह देवता जिसकी पूजा किसी कुळ में परंपरा से होती आई हो।

उ०—**कुळदेवी** थापन करै, जात गया री जाय। सरब ठिकांणै विदर सै, कुळ में मूढ़ कहाय।—बां.दा.

कुळधर-सं०पु० [सं० कुलधर] कुल का नाम रखने वाला, पुत्र, बेटा (डिं.को)

कुळधरम-सं०पु०यौ [सं० कुल+धर्म] वंश-मर्यादा, कुल का धर्म, कुल-कर्तव्य।

कुळधारक—देखो 'कुळधर'।

कुळध्रम—देखो 'कुळधरम' (रू.भे.) उ०—विभचारी विभचार कर, **कुळध्रम** खोय कुमोज।—ऊ.का.

कुळनक्षत्र, कुळनखत्र-सं०पु०—तंत्र के अनुसार भरणी, रोहिणी, पुष्य, मघा उत्तरा-फाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, उत्तर भाद्रपद—ये सब नक्षत्र।

कुळनायिका-सं०स्त्री०यौ० [सं० कुलनायिका] वाम मार्ग के अन्तर्गत वे स्त्रियां जिनकी पूजा कौल लोग चक्र में करते हैं यथा—नटी, कापालिनी, वेश्या, धोबिन, नाइन, ब्राह्मणी, शूद्रा, अहीरिन और मालिन।

कुळनाक, कुळनास-सं०पु०—ऊंट (डिं.को.)

कुळनासी-वि०पु०स्त्री०यौ०—कुल का नाश करने वाली। उ०—लोग कह्यां मीरां बावरी, सासु कह्यां **कुळनासी** री।—मीरां

कुलप—देखो 'कुलफ' (रू.भे.)

कुळपत, कुळपति-सं०पु०यौ० [सं० कुलपति] १ घर का मालिक, सरदार. २ वंश की मर्यादा व प्रतिष्ठा का रक्षक. ३ वह अध्यापक जो विद्यार्थियों का भरण-पोषण करता हुआ उन्हें शिक्षा दे. ४ विश्वविद्यालय का चांसलर। ५ महंत।

कुळपांति-सं०पु०—वंश, कुल। उ०—ख्याति किसी राजवियां ग्वाळां, किसी जाति **कुळपांति** किसी।—वेलि.

कुळपाजा, कुळपाजू-सं०स्त्री०यौ०—वंश की मर्यादा, कुल की प्रतिष्ठा।

उ०—सुमित्रा का मंत्री सेद सहूरकार सागर लाजू का कोठार **कुळपाजू** के आगर।—र.रू.

कुलक-सं०स्त्री०—१ ताला। उ०—देवळ जिए देव अभवै, तहां कुलक जड़ै न खोलै। २ पालतू चीतों की आँख पर बांधने की पट्टी विशेष। उ०—इण डार करोला मुंहडै आगे, आंए काढ़ियौ छै। तिकां ऊपर चीता छूटै छै। कुलकां दूर कीजै छै। तमासौ वण रह्यौ छै।
—रा.सा.सं.

कुलफी-सं०स्त्री—१ पेंच. २ टीन या किसी और धातु अथवा मिट्टी आदि का बना हुआ चोंगा जिसमें दूध आदि भर कर बर्फ जमाते हैं। ३ उपर्युक्त प्रकार से जमा हुआ दूध, मलाई या कोई पदार्थ।

कुळबधू-सं०स्त्री०यौ० [सं० कुलवधू] कुलवती स्त्री, कुलीन स्त्री, मर्यादा से रहने वाली स्त्री।

कुळबसणौ-सं०पु० [अनु०] छोटे-छोटे जीवों के हिलने-डोलने की आहट।

कुळबसणौ, कुळबसबौ-क्रि०अ०—१ छोटे-छोटे जीवों के हिल-डोल कर आहट करना, चंचल होना. २ व्याकुल होना।

कुळबहू—देखो 'कुळबधू' (रू.भे.) उ०—म्हारौ कंवर घर री चांनणी, कुळबहुवां दिवले री जोत—सहेल्यां आंबौ मोरियौ।—लो.गी.

कुळबाहिरौ-वि०—कुलहीन, नीच कुल का, जिसके कुल का कोई पता न हो। उ०—बात बुरी मिळ मित्र री, कुळबाहिरा करंत।—बां.दा.

कुलबै-क्रि०वि०—गुप्त रूप से। उ०—१ कुलबै लगै गुरां री कूंची, खट ताळा खुल जावै।—ऊ.का. उ०—२ तद वीरमदेजी 'कूंपै' अर 'जैतै' सूं मुलाकात करी कुलबै।—द.दा.

कुळभऊ—देखो 'कुळबधू'। उ०—म्हारै बेटा पोतां को जोड़ हर राखौ म्हारै कुलबहुवां रौ झूमखौ।—लो.गी.

कुळभांण-सं०पु० [सं० कुल+भानु] १ वंश का सूर्य, कुलदीपक. २ सूर्य्य वंश।

कुळमंड-सं०स्त्री०—अग्नि (नां.मा.)

कुळमी-सं०पु०—राजस्थान की कृषि-कार्य करने वाली एक जाति या इस जाति का व्यक्ति।

कुलय, कुलया-सं०स्त्री० [सं० कुल्या] छोटी नदी, नदी (ह.नां.)

कुळराईजणौ, कुळराईजबौ-क्रि०भाव वा०—व्याकुल होना, मुर्झाना। उ०—दैपाळ निराठ दिलगीर हुओ, कूकारोळ सूं कुळराइज गयौ।
—पलक दरियाव री वात

कुलल-सं०पु० [सं० कलिल] पाप (अ.मा.)

कुळलीक-सं०स्त्री०यौ—कुल की मर्यादा। उ०—बांझ नारि कुळलीक विधुंसक, कहत नपुंसक केता।—ऊ.का.

कुळवंत-वि० [सं० कुलवान्] कुलीन, श्रेष्ठ वंश का। उ०—बैरी री ही बत्तड़ी, करै नहीं कुळवंत। बात बुरी मिळ मित्र री, कुळ बाहिरा करंत।—बां.दा.

कुळवंति, कुळवंती-सं०स्त्री०—कुलीन स्त्री, वंशम-र्यादा का पालन करने वाली स्त्री। उ०—कुळवंती सूं प्रीत रौ, उलटौ है आचार। वा न तजै घर आपरौ, जग इणरौ संचार।—बां.दा.

कुळवट, कुळवट्ट, कुळवट्टड़ी-सं०स्त्री० [सं० कुल-वृत्ति] १ कुल की रीति, वंश की मर्यादा। उ०—पळवट थांन सथाप्यौ कुळवट, किनियांणी मां कुळवट किनियांणी।—मे.म. उ०—२ दै बोळावौ जास दिस, जावै अंतक जेम। सादूळौ बन साहिबो, कुळवट छाडै केम।—बां.दा. उ०—३ जोधा देखै सामछळ, आ जोधां कुळवट्ट। खग न वगै पाधरी, तां लग्गै ऊवट्ट।—रा.रू. उ०—४ आदू चाडां आगळा, गुणी पयंपै गीत। राठौड़ां कुळवट्टड़ी 'पत्तौ' रखण प्रवीत।—किसोरदांन बारहठ

कुळवधू, कुळवहू—देखो 'कुळवधू' (रू.भे.) उ०—आंगणियां री चोक बौ कंवर तुम्हारौ जी, राजा कुंभ-कळस थांरी कुळबहू राज।—लो.गी.

कुळवांन-वि० [सं० कुलवान्] कुलीन।

कुळवाट—देखो 'कुळवट' (रू.भे.)

कुळवै-क्रि०वि०—गुप्त रूप से (रू.भे. 'कुळबै') उ०—तद कंवर स्री वीरमजी कुळवै आपरौ आदमी मेलनै बाघै कांधळोत नूं बुलायौ।
—द.दा.

कुळसंकुळ-सं०पु० [सं० कुलसंकुल] एक नरक का नाम।

कुळस-सं०पु० [सं० कुलिश] वज्र। उ०—पांण मरकट हुलस गुरज रिमसिर पड़ै, झट कुळस हूंतगिर जांण टोळा झड़ै।—र.रू.

कुळसणौ-वि० [सं० कु+लक्षण] (स्त्री० कुळसणी) कुलक्षण वाला, बुरा, शैतान, नीच। उ०—पड़जौ कुळसणियां वौ'रां पर पटकौ, गै'णां गांठा रौ ठग करग्या गटकौ।—ऊ.का.

कुळसार-सं०पु०—कुलधर्म, कुलरीति।

कुळसुद्ध, कुळसुध्ध-सं०पु०वि०—उच्च कुल, श्रेष्ठ कुल, कुलीन, अच्छे कुल का। उ०—पावस मास विदेस प्रिय, घरि तरुणी कुळसुध्ध। सारंग सिखर निसद करि, मरइ सकोमळ मुध्ध।—ढो.मा.

कुळस्रेस्ठ-सं०पु०—कायस्थों का एक भेद विशेष।
वि०—कुलीन, श्रेष्ठ कुल का।

कुळस्वासणी-सं०स्त्री०—पुत्री (अ.मा.)
वि०वि०—देखो 'सवासणी'।

कुळहांणी-वि०—कुल-विनाशक, वंश का नाश करने वाला। उ०—पुळियौ नह चाप कथ तौ पांणी, धांम जनक मिळिया रज-धांणी। हतौ कठै पोरस कुळहांणी, अब तैं सिया दगौ कर आंणी।
—र.रू.

कुळांच, कुळांछ-सं०स्त्री०—छलांग, कूदना।
मुहा०—कुळांच खांणी—कह कर वचनों से फिर जाने पर।
कहा०—बांदरौ बूढ़ौ व्है पण कुळांछ खावणी को भूलै नी—बंदर बुड्ढा हो जाता है किन्तु छलांग मारना नहीं भूलता; मनुष्य की प्राकृतिक आदतें आयु अधिक हो जाने पर भी विस्मृत नहीं होतीं।

कुळाकुळ-सं०पु० [सं० कुलाकुल] तंत्र के अनुसार कुछ निश्चित नक्षत्र, वार और तिथियाँ।

कुळाच—देखो 'कुळांच'। उ०—दैत्यदमनी खुसी हुई, महताज पाई। इसी कुळाचां मारी सु माळा टूट पड़ी।—पंचदंडी री वारता

कुळाचणौ, कुळाचबौ-क्रि०अ०—छलांग मारना, कूदना।

कुळाछ—देखो 'कुळांच' (रू.भे.) उ०—पंजुरै उलटी **कुळाछ** खेल नै पाछणा री हळवीसी लगाई।—नैरासी

कुळातरौ–सं०पु०—१ मकानों में दीवारों पर सफेद रंग का जाल बना कर रहने वाला पतली टांगों वाला एक प्रकार का जंतु, मकड़ी. २ देखो 'कातरौ' (रू.भे.)

कुळाध्रम, कुळाध्रम्म—देखो 'कुळधरम' (रू.भे.) उ०—करै पंच निवाज वाचै कुरांणं, **कुळाध्रम्म** रत्ता कसंता कबांणं।—वचनिका

कुळाबौ–सं०पु०—१ कपाट के ऊपर की चूल को ठहराने का लोहे का बना कड़ा. २ हुक्के के जलपात्र के ऊपर लगाई जाने वाली सुराही-नुमा नलिका के ऊपरी गर्दननुमा पतले भाग पर लगाया जाने वाला बंध. ३ तलवार की मूठ पर 'थोला' और 'कटोर' को जोड़ती हुई एक तरफ लगाई जाने वाली धनुषाकार लोह-शलाका जो तलवार को पकड़ते समय हाथ के बाहर की ओर रहती है।

कुळावतौ–सं०पु०—मकड़ी (अ.मा.) (रू.भे. 'कुळातरौ')

कुलाळ–सं०पु० [सं० कुलाल:] १ मिट्टी के बरतन बनाने वाला, कुम्हार (डिं.को.) २ ब्रह्मा, विधाता (नां.मा.) ३ देखो 'कुलावळ' (रू.भे.)

कुलालच–सं०पु०—अत्यन्त लालच, अतिशय लोभ (बुरा)

कुलालची–वि०—अत्यन्त लालची, अतिशय लोभी (बुरा)

कुलाळी–सं०स्त्री०—१ दूरबीन (डिं.को.) २ देखो 'कुलाळ' (रू.भे.)

कुळावळ–सं०स्त्री०—हाथ, टंगड़ी या गर्दन में कहीं दर्द होने के कारण उनको संचालित करने वाले संधि-स्थानों के पूर्ण खुल कर कार्य न कर सकने से संबन्धित उरुमूल, कांख या कर्णमूल आदि में से किसी स्थान पर होने वाली ग्रंथी। दर्द मिटने या तपाने से वह प्राय: स्वयमेव मिट जाया करती है।

कुळाह–सं०पु० [सं० कुलाह] १ भूरे रंग का घोड़ा जिसके पैर घुटने से खुर तक काले हों (शा.हो.) २ डिंगल कोश के अनुसार घुटने श्वेत व पीत रंग का घोड़ा (डिं.को.)

कळाहळ–सं०पु०—कोलाहल, शोरगुल। उ०—ग्वाळ बाळ सब करत **कळाहळ**, जय-जय सबद उचारे।—मीरां

कुलिंग, कुलिंगक–सं०पु०—१ एक प्रकार की नर चिड़िया जो चमकीली होती है. २ चटक चिड़ा (डिं.को.)

कुलिंजन—देखो 'कुलंजन' (अमरत)

कुळि–वि० [सं० कुल] कुल, वंश। उ०—माहोमाह मूंझ मांडिस्यइ, **कुळि** कलंक, माहरइ लागि स्यइ।—ढो मा.

कुळिकजोग–सं०पु० [सं० कुलिकयोग] फलित ज्योतिष का एक योग जिसके अनुसार प्रतिपदा को शनिवार, द्वितीया को शुक्रवार, तृतीया को गुरुवार, चतुर्थी को बुधवार, पंचमी को मंगलवार, षष्ठी को सोमवार तथा सप्तमी को रविवार होता है।

कुळिगांमड़ौ–सं०पु०—१ छोटा गाँव (रू भे. कुळगांम) उ०—करहा इण **कुळिगांमड़इ** किहां स नागरवेलि। करि कइरां ही पारणउ, अइ दिन येही ठेलि।—ढो.मा. २ अपने वंश का गाँव।

कुळिमंड–वि०—कुलरक्षक।
सं०स्त्री०—अग्नि, आग (रू.भे. 'कुळमंड')

कुळियौ–सं०पु०—१ आकाश में आच्छादित धूल का गुब्बारा। उ०—जद नीसर दौड़ गाळ चढ़ियौ सो देखै तौ घोड़ी अजमेर साम्ही जावै छै सो खेह री **कुळियौ** दीसणे लागियौ।—सूरे खींवे री वात २ स्त्री व पुरुष के गुप्तेन्द्रिय के आगे का उभरा हुआ भाग।

कुलिर–सं०पु० [सं०] देखो 'कुलीर'।

कुळिस–सं०पु० [सं० कुलिश] १ हीरा. २ वज्र (अ.मा.) ३ बिजली, गाज. ४ कुठार. ५ ईश्वरावतार रामकृष्णादि के चरणों का एक चिन्ह जो वज्र के आकार का माना जाता है।

कुळिसकोण–सं०पु०—छ: की संख्या*।

कुळिसधर–सं०पु० [सं० कुलिशधर] इंद्र।

कुळिसी–सं०स्त्री० [सं० कुलिशी] आकाश के मध्य मानी जाने वाली एक वेदोक्त नदी।

कुळी–सं०पु० [तु० कुली] १ मजदूर, भारवाहक, बोझा ढोने वाला. [सं० कुल] २ कुल, वंश, गोत्र। उ०—गरब गाळण तणी, ठौड़ अब गाळियौ। **कुळी** छतीस धिन पदम कहियौ।—पदमसिंह री वात ३ पुष्प, फल. ४ गूदा, ५ बीज, दाने। उ०—दंत जिसा दाड़म **कुळी**, सीस फूल सिणगार।—ढो.मा. ६ तरबूज के आकार के लता-फल (हिंदवानी) तथा इन्द्रायण नामक लता-फल के बीज जिनको शुद्ध कर के रोटी बना कर खाई जाती है।

कुळीक–वि० [सं० कुली+रा०प्र०क] वंश का, वंश-सम्बन्धी।
उ०—यम करण उपद्रव खळ **कुळीक**, आयो निसंक लावा नजीक।
—ला.रा.

कुलीण–वि० [सं० कुलीन] उत्तम कुल में उत्पन्न, अच्छे घराने का।

कुळीणता–सं०स्त्री०—कुलीनता, उत्तम कुल में होने का भाव।
उ०—सांभळ वित समपै नहीं, बडकां तणां बखांण। बाहू जिका **कुलीणता**, उर मांझल तू आंण।—बां.दा.

कुळीनस–सं०पु० [सं० कुलीनस] पानी, जल (ह.नां.,अ.मा.)

कुलीर–सं०पु० [सं०] केंकड़ा (डिं.को.)

कुळेस–सं०पु० [सं० कुलिश] देखो 'कुलिस' (रू.भे.)
उ०—बारधेस जोम गाज गाळिया अकूट बासी, राजचील जाळिया तारखी तेज रूस। कुमंखी **कुळेसां** इंद्र ढाळिया गिरंद काळा, वीर सिवा वाळै रिमां राळिया वधूंस।—हुकमीचंद खिड़ियौ

कुलोक–सं०पु० [सं० कु+लोक] १ बुरा आदमी। उ०—लड़ै नहीं सुलोक तें **कुलोक** तें लड़चा करै।—ऊ.का. २ बुरा संसार।

कुल्यंकषा, कुल्यकर, कुल्या–सं०स्त्री० [सं० कुल्यंकषा अथवा कुल्या] नदी (अ.मा.)

कुल्लूक–सं०पु० [सं०] मनुसंहिता के प्रसिद्ध टीकाकार जो दिवाकर भट्ट के पुत्र थे।

कुल्लौ–सं०पु० [सं० कुरल:] १ मुंह को साफ करने के लिए उसमें पानी लेकर और इधर-उधर हिला कर फेंकने की क्रिया, गरारा.

२ उतना पानी जितना एक बार मुंह में लिया जाय (रू.भे. 'कुरळौ')

कुल्हड़, कुल्हड़ी-संपु० [सं० कुल्हर] (स्त्री० कुल्हड़ी) पुरवा, चुक्कड़।

कुल्हाड़ौ-संपु० [सं० कुठार] (स्त्री० कुल्हाड़ी) एक औजार जिससे बढ़ई आदि पेड़ काटते और लकड़ी चीरते हैं, कुठार।

कुवंक-संपु०—टेढ़ापन, बांकापन।

कुवड़ी-संस्त्री०—छोटा कुआ।

कुवच, कुवचन-संपु० [सं० कु+वचन] १ कुवाक्य, बुरे शब्द. २ कटुवचन। उ०—जे संतोस सुमेर, चढ़ बैठा मानव चतुर। देख नवै ज्यां देर, कुवचन सर लागै कठे।—बां.दा.

कुवज—१ देखो 'कुब्जा'।

संपु०—२ कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा।

कुवजा—देखो 'कुब्जा' (रू.भे.) उ०—कुवजा नारद विदर री, विवरां संजुत वात। हरि रा दासां ज्यूं हुए, दासां नूं सुख दात।—बां.दा.

कुवट-संपु० [सं० कु+वट] बुरा रास्ता, कुपथ।

कुवटौ-संपु०—कुआ (दसदेव)

कुवत—देखो 'कुवत' (रू.भे.)

कुवयण—देखो 'कुवचन' (रू.भे.) उ०—अरिजण स्रवण कुवयण, तजे समझण दियण लघुपण दाव।—रा.रू.

कुवरपद, कुवरपदौ—देखो 'कुंवरपद, कुंवरपदौ' (रू.भे.)

उ०—कछवाहा मांनसिंह भगवंतदासोत नूं कुंवरपदै फौज दे मेलियौ हुतौ।—नैणसी

कुवलय-संपु० [सं०] कमल (ह.नां.) नीली कोई, नील कमल।

कुवळयापीड़—देखो 'कुबळयापीड़' (रू.भे.)

कुवळयास्व-संपु० [सं० कुवलयाश्व] १ धुंधुमार राजा का एक नाम (सू.प्र.) २ एक घोड़ा जिसे ऋषियों का विध्वंस करने वाले पातालकेतु को मारने के लिए पृथ्वी पर भेजा था (पौराणिक)

कुवळी-संस्त्री० [सं० कुवली] बेरी (डिं.को.)

कुवा-संस्त्री०—दक्षिण की कावेरी नदी का एक प्राचीन नाम। (बां.दा. ख्यात)

कुवांण-संस्त्री० [अ० कमान] १ धनुष. [सं० कृपाण] २ तलवार. [सं० कुवाणी] ३ कुवाक्य, कुवचन।

कुवांरी—देखो 'कंवारी' (रू.भे.)

कुवाड़ियाफाड़-वि०—१ बिना सोचे-समझे अंट-संट बोलने वाला, कुवोचर करने वाला. २ सदा खरी-खरी एवं सच्ची कटूक्तियां कहने वाला देवह—

कुवाड़ियौ, कुवाड़ौ-संपु० (स्त्री० कुवाड़ी) १ कुल्हाड़ा (रू.भे.) २ एक कीड़ा विशेष जो अनाज में लग कर उसे नष्ट कर देता है।

कुवाच-संपु० [सं० कुवचन] कुवचन, अपशब्द। उ०—पुण गुण नाच कुवाच प्रकासै, नकटौ काच निहार।—ऊ.का.

कुवाट-संपु० [सं० कपाट] कपाट (डिं.को.)

वि०[सं०] कुमार्ग, कुपथ।

कुवाटीवाट-संपु०—शत्रु (अ.मा.)

कुवाव-संपु०—वर्षा को हानि पहुँचाने वाली विरुद्ध हवा।

उ०—जे कदास कुवाव पड़ै तो हाथां वासण छूटजै। जाळी टूं टम में ना काढ़ं, भाग मरू रा फूटजै।—दसदेव

कुवियण, कुवीयण—देखो 'कुवचन' (रू.भे.)

कुवेर—देखो 'कुबेर' (रू.भे.)

कुवेराचळ-संपु०—कैलाश पर्वत का एक नाम।

कुवेळा-संस्त्री०—१ कुसमय, अनुपयुक्त समय, असमय. २ संकट का समय, आपत्तिकाल। उ०—चिंता में बुध परखिये, टोटे परख त्रियांह। सगा कुवेळा परखिये, ठाकर गुन्हा कियांह।—अज्ञात

कुवौ-संपु० [सं० कवल] १ कौर, ग्रास (डिं.को.)

[सं० कूप] २ कुआ, कूप।

कुव्वत—देखो 'कुवत' (रू.भे.)

कुसंग, कुसंगत-संस्त्री० [सं० कुसंग] बुरे लोगों का साथ, बुरी सोहबत।

कुसंगी-वि०—कुसंग करने वाला बुरा, नीच। उ०—प्रथम विचार पाप कौ पापी, करमत करमत मीत कुसंगी।—ऊ.का.

कहा०—संगी सौ मिळजौ पण कुसंगी एक भी न मिळजौ—बुरी वस्तु की थोड़ी सी प्राप्ति भी बुरी है।

कुसंप-संपु०—द्वेष, परस्पर का वैमनस्य, अनबन, विरोध, शत्रुता (ह.नां.)

कुसंस्कार-संपु० [सं०] अंत:करण में अयथार्थ वा निषिद्ध बात का प्रभाव जिससे बुद्धि ठीक निश्चय न कर सके वा मन अच्छे कामों की ओर न जाय, बुरा सस्कार।

कुस-संपु० [सं० कुश] १ कांस की तरह की एक घास जिसकी पत्तियां नुकीली, तीखी और कड़ी होती हैं। दाभ, डाभ, दर्भ (डिं.को.)

पर्याय०—कुष, डाभ, दरभ।

२ जल. ३ सात द्वीपों में से एक द्वीप. ४ लोहे का लंबा व नुकीला कीला जिससे गड्ढे खोदे जाते हैं. ५ फाल, कुसिया, कुसी (हल की)

कुसकंडिका-संस्त्री० [सं० कुशकंडिका] वेदी पर वा कुंड में अग्नि-स्थापना करने की आनुष्ठानिक क्रिया जिसका विधान भिन्न-भिन्न है। इसमें होम करने वाला कुशासन पर बैठ कर दाहिने हाथ में कुश लेकर उसकी नोंक से वेदी पर रेखा खींचता जाता है।

कुसड़ौ-संपु०—कुये पर काम करने वाला (क्षेत्रीय)।

कुसताळु-संपु०—वह घोड़ा जिसके मस्तक की मांग में और सीने में श्याम रंग के चकत्ते हों और संपूर्ण शरीर किसी एक ही रंग का हो। (अशुभ—शा.हो.)

कुसती—देखो 'कुस्ती' (रू.भे.)

वि० [कु+सती] कुलटा, पतिता।

कुसतीबाज—देखो 'कुस्तीबाज' (रू.भे.)।

कुसदीप, कुसद्दीप-संपु० [सं० कुशद्वीप] सात द्वीपों में से एक जो चारों ओर घृत-समुद्र से घिरा है (पौराणिक)

कुसद्धज, कुसधुज, कुसध्वज-संपु० [सं० कुशध्वज] राजा जनक के

छोटे भाई सीरध्वज जिनकी कन्यायें भरत और शत्रुघ्न को ब्याही थीं। कुशध्वज (रामरासौ)

कुसनेही–वि० [सं० कु+स्नेह+ई] कपटी, छली, झूठा मित्र।
उ०—ससनेही समदां परइ, वसत हिया मंझार। कुसनेही घर आंगणइ, जांण समंदां पार।—ढो.मा.

कुसब–वि० [सं० कु+शुभ] अमांगलिक, अशुभ।

कुसम–सं०पु० [सं० कुसुम] १ फूल, पुष्प (अ.मा.) उ०—दिपि कनक तोरण द्वार, सम कुसम माळ सिंगार।—रा.रू.
२ एक प्रकार का लाल फूल. ३ रजोदर्शन. ४ आंख का एक रोग (मि० 'फूलौ' २,३) ५ प्रत्येक चरण में ८ मात्रा का मात्रिक छंद विशेष (ल.पिं.)

कुसमक—देखो 'कुसम' (रू.भे.) उ०—कुसमक तारां ब्रंद हुलास, हिय करै, दसतन धरिया काय सुधा घर दूज रै।—बां.दा.

कुसमव–सं०पु०—पेड़, वृक्ष (अ.मा., नां.मा.)

कुसमळप्रिय–सं०पु०—भौंरा, भ्रमर (नां.मा.)

कुसमसर–सं०पु० [सं० कुसुमशर] कामदेव। उ०—नाता ममंद पलै अन नारी, सुलभ समोभ्रम कुसमसर। सुणियौ ज्यौ वेखियौ संपेखण, वेखियौ ज्यौ वांछियौ वर।—पदमां सांदू

कुसमांडा–सं०स्त्री० [सं० कुशमांडा] १ नौ दुर्गाओं में से एक।
उ०—त्रतीया तुही चंद्रघंटा तवीजै, चतुरथी तुही कुसमांडा चवीजै।
—मे.म.
२ शिव के अनुचर. ३ कुम्हड़ा।

कुसमांण–सं०पु० [सं० कुसुम] पुष्प, फूल। उ०—किनर असमांण कुसमांण बरखा करै, गंधरब गांण वाखांण गावै।—मे.म.

कुसमाक–सं०पु० [सं० कुसमाकर] वसंत (अ.मा.)

कुसमाव–सं०स्त्री०—१ फूल वाले वृक्ष या पौधे २ धूर्तता, चालाकी।

कुसमायुध–सं०पु० [सं० कुसुमायुध] कामदेव। उ०—कुसमायुध कहतां कांमदेव तें कै उदै करि केळि विलास।—वेलि टी.

कुसमाळय–सं०पु० [सं० कुसमालय] भौंरा, भ्रमर।

कुसमालिया–सं०स्त्री०—राठौड़ राव मल्लिनाथजी के पुत्र मांडण के वंशज राठौड़ों की एक उपशाखा।

कुसमावळत–सं०पु० [सं० कुसुमावर्त] वसंत (अ.मा.)

कुसमावळी–सं०पु० [सं० कुसुमावलिट्] भ्रमर, भौंरा (अ.मा.)

कुसमाहिम–सं०पु०—चंपा (अ.मा.)

कुसमित–वि०—प्रफुल्लित। उ०—कुसमित कहतां फूली, कुसमायुध कहतां कांमदेव तें कै उदै करि केळि विलास।—वेलि.

कुसमै–सं०पु० [सं०कु+समा, कु+समय] कुसमय, असमय। उ०—समै कुसमै सर सारत सार, पुकारत आरत वंत पुकार।—ऊ.का.

कुसम्मौ–सं०पु० [सं० कु+समय] १ दुर्भिक्ष, दुष्काल. २ कुसमय, असमय।

कुसराणी, कुसरावौ, कुसरावणी, कुसरावबौ–क्रि०स० [सं० कु+श्लाघनम्] निंदा करना, अपयश देना। उ०—दरीखाना री बगत बडा इतमांम बणावै, करै निंदा पार की रीत पैलां कुसरावै।—अरजुनजी बारहठ

कुसरावियोड़ौ–भू०का०कृ०—अपयश दिया हुआ, निंदित।
(स्त्री० कुसरावियोड़ी)

कुसळ–वि० [सं० कुशल] १ चतुर, दक्ष, निपुण। उ०—कर बाथ बाथ अकबर कुसळ, 'बीद' हरे सभिया विहंग।—रा.रू. २ श्रेष्ठ, भला.
३ क्षेम, मंगल, खैरियत। उ०—मन सुद्धि जपंता रुखमिणि मंगळ, निधि संपति थाइ कुसळ नित।—वेलि.
पर्याय०—अधेय, अभय, क्षेम, भव्य, भव्यक, भावक, मंगळ, भद्र, ससउ, ससत, सिव, सुभ।
४ शिव का एक नाम।

कुसळखे, कुसळखेम–सं०पु०यौ० [सं० कुशलक्षेम] राजी-खुशी, खैरियत (ह.नां., अ.मा.)
उ०—मया करीनै मूकज्यौ, कुसळखेम ना लेख। लीलापति लखजौ, वळी समाचार।—ढो.मा.
पर्याय०—अभय, खेम, भद्रसेव, भवक, भव्य, भावक, मंगळ, सुभद्र, सुसत, सेव।

कुसळता–सं०स्त्री० [सं० कुशलता] १ चतुराई, निपुणता, दक्षता.
२ योग्यता. ३ खैरियत, कुशलक्षेम।

कुसळ-पांग–सं०पु० [सं० शुक्लापांग] मयूर, मोर (ह.नां.)

कुसळसमाध–सं०स्त्री० [सं० कुशल+समाधि] कुशलक्षेम, कुशल-मंगल।
उ०—यूं कहि निछरावळ मेल, हजूर मांही बुलाय, मिळ हाथ फेर, कुसळसमाध पूछ सीख दीवी।—जलाल बूबना री वात

कुसळा, कुसळाई–सं०स्त्री० [सं० कुशल] कुशल-क्षेम, खैरियत।
उ०—आव नहीं आदर नहीं, नहिं भगति नहिं प्रेम। हंस कुसळा पूछै नही, खड़ा न रहियै खेम।—अज्ञात

कुसळात, कुसळाता, कुसळातौ, कुसळायत—देखो 'कुसळता' (रू.भे.)
उ०—१ कुसळात पूछ इम हेत कीध, देवौ रसाळ जवाहर दीध।
—वि.सं.
उ०—२ सुख सूं बैठी सदन में, क्यूं पूछौ कुसळात।—बां.दा.
उ०—३ सांप्रत पूछी नह किणही कुसळाता, अंन-अंन करतोड़ी मरगी अंनदाता।—ऊ.का. उ०—४ बिजूं हस बोलतौ, (जदै) घणा दिनां सूं मिळतौ। कुसळायत पूछतौ, अमल रूपेटां गळतौ।
—अरजुणजी बारहठ

कुसळी–सं०स्त्री० [सं० शकुली] मछली (ह.नां., अ.मा.)

कुसवावळ–सं०स्त्री० [सं० कुसुमावलि] कुसुम, पुष्प, फूल (नां.मा., अ.मा.)

कुससथळी, कुसस्थळी–सं०स्त्री०—द्वारका का एक नाम।
उ०—कुससथळी हूंता कुंदणपुरि, किसन पधारया लोक कहंति।
—वेलि.

कुसागड़ी–सं०पु० [सं० कु+शाकटिक] वह गाडीवान जो बैलों को हांकने में निपुण न हो। उ०—कोयक सकट कुसागड़ी, भार विसेस भरंत।

धवळ बडप्पण आपरै, खांचे लै निबहंत ।—बां.दा.

कुसाग्र—वि० [सं० कुशाग्र] तीव्र, तेज, नुकीला, पैना । उ०—कुसाग्र तीव्र बुद्धि कौ समग्र व्यग्र तें करी ।—ऊ.का. (यौ० कुसाग्रबुद्धि)

सं०पु०—कोरड़ा, चाबुक ।

कुसामद—देखो 'खुसामद' (रू.भे.) उ०—करै कुसामद कूर, करै कुसामद कूकरा । दुरस कुसामद दूर, पुरस अमोल प्रतापसी ।—दुरसौ आढ़ौ

कुसामदी—देखो 'खुशामदी'। उ०—काचै कूड़ कुसामदी जे वाचै नाराज । साचै जस 'परतापसी', मन राचै महाराज ।

जैतदांन बारहठ

कुसावरत—सं०पु० [सं० कुशावर्त] हरिद्वार के पास एक तीर्थ का नाम ।

कुसासन—सं०पु० [सं० कुश+आसन] १ कुश नामक घास का बना आसन ।

[सं० कु+शासन] २ बुरा शासन ।

कुसिक—सं०पु० [सं० कुशिक] १ एक प्राचीन आर्य वंश. २ हल का फाल (डिं.को.)

कुसियौ—देखो 'कुस' (३)

कुसी—सं०स्त्री०—१ घास काटने का एक औजार. २ वीणा ।

उ०—कुसी रिखराज करै झणकार, धजाबंध पत्र भरै रत्र धार ।

—मे.म.

[सं० कुशी] ३ हल का फाल. ४ देखो 'खुसी' (रू.भे.)

उ०—खाणा पीणा खरचणा, ऐस कुसी आरांम । करणा हौ सो कर लेवौ, काळा केसां कांम ।—अज्ञात

कुसीक—क्रि०वि०—खुशी से, प्रसन्नता से । उ०—लाखां पातां बेरड़ा रूपगां, नही लुभै सनातनां दोधा त्याग इरादा कुसीक । वास गैस नाग 'मघा' केड़ रा कुसाळ बापौ, लोपै नांज सोभाग अजादां मंत्रां लीक ।—कविराजा करणीदांन

कुसील, कुसीलौ—वि० [सं० कु+शील] दुराचारी, पतित, जो शीलवान न हो, बुरा । उ०—दोनां रै एक-एक थप्पड़ धर'र बोली—रांडघा कुधन अर कुसीलौ, भाई री बराबरी करसी, क्यों ।—वरसगांठ

कुसुंम, कुसुंमी—वि० [सं० कुसुंम] कुसुम के रंग का, लाल ।

कुसुम—१ देखो 'कुसम' (डिं.को.) २ छप्पय छंद का ६७ वां भेद जिसमें ४ गुरु और १४४ लघु से १४८ वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं (र.ज.प्र.) ३ छंद शास्त्र में ठगण का छठा भेद जिसमें मात्रा का क्रम ।ऽ।। से चलता है (डिं.को.)

वि०—१ लाल, रक्तवर्ण* (डिं.को.) २ कोमल (डिं.को.)

कुसुमायुध—सं०पु०यौ० [सं०] कामदेव । उ०—कुसुमति कुसुमायुध ओटि केलि क्रत, तिहि देखे थिउ खीण तन ।—वेलि.

कुसू—सं०पु०—केंचुआ (डिं.को.)

कुसूमल—वि०—देखो 'कुसुमी' ।

कुसेसय—सं०पु० [सं० कुशेशय] कमल (ह.नां, अ.मा.)

कुस्तमकुस्ता—सं०पु०—गुत्थमगुत्था, लड़ाई, मुठभेड़ ।

कुस्ती—सं०स्त्री० [फा० कुश्ती] दो आदमियों का परस्पर एक दूसरे को बलपूर्वक पछाड़ने या पटकने के लिए लड़ना, मल्लयुद्ध ।

मुहा०—१ कुस्ती करणी—संभोग करना (बाजारू) २ कुस्ती लड़णी—मल्लयुद्ध करना ।

कुस्तीगीर—सं०पु०—मल्लयुद्ध करने वाला, पहलवान । उ०—कुस्तीगीर जेठी एक दिल्ली मांझ आयौ ।—शि.वं.

कुस्तीबाज—वि० [फा० कुश्तीबाज] कुश्ती लड़ने वाला, पहलवान ।

कुस्तौ—सं०पु० [फा० कुश्तो] वह भस्म जो धातुओं को रसायनिक क्रिया से फूंक कर बनाया जाय, भस्म ।

कुस्त्री—सं०स्त्री० [सं० कु+स्त्री] बुरी पत्नी, कलहप्रिय स्त्री ।

कुस्याळी—सं०स्त्री०—खुशहाली, प्रसन्नता, हर्ष । उ०—बागा बादिस्यांहां के कुस्याळी का नगारा, दोनूं दीन हाजरि चाकरी में आंण सारा ।

—शि.वं.

कुस्रती—सं०स्त्री० [सं० कुसृति] माया, धूर्तता, ठगाई, इंद्रजाल, बाजीगरी (डिं.को.)

कुस्वारथ—वि०—अहित, बुरा । उ०—जाड़ेची नूं घणौ हठ कर बळती नूं राखी, पिण जाड़ेची कहे 'थे म्हारौ कुस्वारथ करौ छौ ।

—नैणसी

कुस्सम—देखो 'कुसम' (रू.भे.) उ०—प्रिय सूं अधिकउ प्रेम, रयणि दिवस रंगय रमइ । मोह्यउ मधूकर जेम, कुस्सम जांणि कतक-तणय ।

—ढो.मा.

कुहू—सं०स्त्री० [सं० कुहू] १ मधुर स्वर, मधुर ध्वनि. २ कोयल की बोली. [सं० कुहू] ३ अमावस्या । उ०—छिपा कुहू रात दिह अंधकार गैण छायौ ।—हुकमीचंद खिड़ियौ

सं०पु०—४ कुबेर (डिं.को., ह.नां.)

कुहक—सं०पु० [सं०] १ माया, धोखा, इन्द्रजाल का खेल (डिं.को.) २ धूर्तता, मक्कारी. ३ मेंढ़क. ४ नाग विशेष. ५ बारूद से चलने वाला एक अस्त्र (मि० कुहकबांण) उ०—अतवर से गोळा असमांणां, कुहक बांण झड़ तीर कबांणां ।—रा.रू.

६ मुर्गा (डिं.को.) ७ देखो 'कुहुक' (रू.भे.)

कुहकणी—सं०स्त्री०—कुहकने वाली, कोयल ।

कुहकणौ, कुहकबौ—क्रि०अ०—१ कोयल का बोलना. २ पक्षियों का कूजना । उ०—मोर कुहकै छै, डेडरा डहकै छै, भाखरां रा नाळा बोलनै रह्या छै ।—रा.सा.सं.

कुहकबांण—सं०पु०—१ एक प्रकार का बाण जो बांस की पट्टियां जोड़ कर बनाया जाता है. २ अग्निबाण । उ०—हथनाळि हवाई कुहकबांण हुवि, होइ वीरहक गेगहण ।—वेलि.

३ एक प्रकार की तोप (रा.सा.सं.)

कुहुक्क—१ देखो 'कुहक' (रू.भे.) २ ध्वनि विशेष । उ०—हरांमखोर चोर कौ कुहुक्क दे हरावणी, कराळ कंठ कंकणीय डंकणी डरावणी ।—ऊ.का. ३ ताल के साठ भेदों में एक भेद (संगीत)

४ भय, डर।

कुहड़ि-सं०स्त्री० [सं० कुहा] देखो 'कूड़' (रू.भे.)

उ०—सारह चलंतइ परठिया, आंगण वीखड़यांह। कुहा केरी कूड़ ज्यूं, हिवड़ै होय रहियाह।—ढो.मा.

कुहटाऊ-सं०पु०—हुक के समान एक उपकरण। उ०—तठा उपरांति करि नै राजांन सिलामति अतरा मांहै तरकसां रा कुहटाऊ बीड़िया छै।—रा.सा.सं.

कुहणि-सं०स्त्री० [सं० कफोणी] कोहनी।

कुहन-वि० [सं०] ईर्ष्या करने वाला, मक्कार, धोखेबाज (डिं.को.)

सं०पु० [सं०] १ चूहा, मूसा (अ.मा.) २ मिट्टी का बर्तन (ह.नां.) ३ सांप।

कुहनी-उड़ाम-सं०स्त्री०—कुश्ती का एक पेंच जिसमें फुर्ती से कुहनी के झटके से प्रतिद्वंदी के हाथों को पकड़ कर रद्दा दिया जाता है।

कुहर-सं०पु० [सं० कुहू] १ वह अमावस्या जिसमें चंद्रमा बिलकुल नहीं दिखाई दे. २ अमावस्या की अधिष्ठात्री देवी. ३ प्लक्ष द्वीप की एक नदी. ४ अंधेरा. [सं० कुं भूमि हरति त्यजतीति कुहरं अधोमुखनम्] ५ पाताल (डिं.नां.मा.) ६ कुहरा. उ०—कलि मचंड असात उठै मेचक कुहर रण भैचक संक व्ही रात रांणी। वीथरतौ तेण दिन जाप 'सूजा' बिया जग दुरिद तणौ आताप जांणी।

७ कुआ। —उम्मेदसिंह सीसोदिया रौ गीत

कुहाड़उ, कुहाड़ौ-सं०पु० [सं० कुठार] कुल्हाड़ा, फरसा।

उ०—कुहाड़ां मार जिहाज बटका करै।—द.दा.

वि०—१ विध्वंसक. २ विरुद्ध।

उ०—असमर साझि अजीम नूं, थयौ कुहाड़ौ साह।—रा.रू.

कुहींक-वि०—कुछ। उ०—लक्ष्मीजी भगवांन सूं अरज कीवी—देवीदास थांहरौ निज भगत है, इणनूं कुहींक दीजै।—पलक दरियाव री वात

कुही-सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का शिकारी पक्षी। यह प्रायः पक्षियों का शिकार करने के लिए पाला जाता है। उ०—तठा उपरांति करिनै राजांन सिलामति बाज कुही सिकरा, सींचांणा, जुररा तुमती हुसनाकां सार वांना रा हाथां ऊपर सूं सगगाट करता छूटै छै।—रा.सा.सं.

२ एक जाति विशेष का घोड़ा। उ०—काळवा कुही करड़ा कियाह, हांसला हरेवी नइ हलांह।—रा.ज सी.

कुहुक—देखो 'कुहक' (रू.भे.)

कूं-अव्यय—द्वितीया विभक्ति—को। उ०—आकां कूं रखवाळ कर कोई आंबा खावै।—केसोदास गाडण

वि०—१ कुछ. २ कोई।

कूंअर—देखो 'कुंअर' (रू.भे.)

कूंआरी—देखो 'कुंआरी' (रू.भे.)

कूंकड़ो-सं०पु०—१ ऊँट के मस्तक का एक रोग. २ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.) ३ मुर्गा।

कूंकण—१ देखो 'कुंकण' (रू.भे.) २ पंवार वंश की एक शाखा अथवा इस शाखा का व्यक्ति।

कूंकणी-किचळो-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा विशेष (शा.हो.)

कूंकणो, कूंकबो-क्रि०अ०—देखो 'कूकणो' (रू.भे.) उ०—ताहरौ फूलमती विचारियौ जु हमै कूंकां तौ आपां रौ अठै कोई नहीं।—चौबोली

कूंकम—देखो 'कुंकुम' (रू.भे.) उ०—करै तिलक अत्यु का तिलक कूंकम वीसारै।—रा.रू.

कूंकावटी-सं०स्त्री० [सं० कुंकुम+पुटी] कुंकुम का पात्र।

उ०—हे कंकू तौ भरी अच्चा रांणी रै कूंकावटी।—लो.गी.

कूंकूं-सं०पु० [सं० कुंकुम] देखो 'कुंकुम' (रू.भे.)

कूंकूंपत्री-सं०स्त्री०—विवाह का निमंत्रण-पत्र।

कूंख, कूंखि, कूंखी-सं०स्त्री० [सं० कुक्षि] १ कोख, गर्भाशय।

उ०—१ लालच लिखिया बहुनड़ी, सांमहै हीयड़इ डावी कूंखी।

—वी.दे.

उ०—२ हरियौ-हरियौ कांई करौ अे, हरी अे वन में तौ दूब। हरियौ सूरज जी रौ घोड़लौ, हरी बहू रेणादे री कूंख।—लो.गी.

कूंगचौ, कूंगसौ-सं०पु०—इमली का बीज, चिआं।

कूंगौ-सं०पु०—इमली का बीज, चिआं।

वि०—निर्धन, कंगाल। उ०—कोड़ां-कोड़ी ले कळियोड़ा कूंगा।

—ऊ.का.

कूंच-सं०स्त्री०—१ कूच, रवानगी, प्रयाण। उ०—जोधपुर लेवण नूं मंडोवर सूं कूंच कियौ।—मारवाड़ रा अमरावां री वारता

२ एक प्रकार का वृक्ष. ३ देखो, कूच' (रू.भे.)

कूंच की फळी-सं०स्त्री०—कौंच की फली (अमरत)

कूंचला-सं०पु०—भोजन चबाने के दांत विशेष जो अगाड़ी के दांतों के और डाढ़ों के बीच में होते हैं (मि. कांणेठा)

कूंची-सं०स्त्री०—१ चाबी, ताली। उ०—कुलबै लगे गुरां री कूंची, खट ताळा खुल जावै।—ऊ.का. २ कटी हुई मूंज या बालों का गुच्छा जिससे चीजों का मैल साफ करते हैं अथवा उन पर रंग फेरते हैं। ३ चित्रकार की रंग भरने की कूंची. ४ ऊँट का चारजामा।

उ०—चुग-चुग करलां कूंची मांडौ, चुग-चुग घुड़लां जीण।

—डूंगजी जवारजी री पड़

१ ऊँट का उपस्थ या शिश्न. ५ लोहे का वह टेढ़ा छड़ जिसको किवाड़ के छेद में डाल कर बाहर से भीतर की अर्गला या सिटकनी खोलते हैं। अंकुसी।

कूंचीकस-सं०स्त्री०—चाबियां लटकाने के लिए करधनी के साथ बंधा कड़ी व श्रृंखला लगा एक उपकरण।

कूंज-सं०पु०—१ क्रौंच पक्षी (रू.भे. 'कुंज') उ०—आयी आयी मा पीवरियै री ए कूंज, आय र बैठी मा नीमड़ीजी।—लो.गी.

२ एक प्रकार का मिट्टी का बर्तन। उ०—घट घड़कलिया माट, मंगळिया मटकी हांडा। झोवा कूंज कुंडाळ, कढ़ावणी ढकण खांडा।

—बसदेव

३ देखो 'कूंज' (रू.भे.)

कूंजड़ा—सं०स्त्री०—सब्जी बोने व बेचने वाली एक जाति विशेष।

कूंजड़ि, कूंजड़ी—सं०स्त्री०—क्रौंच पक्षी। उ०—प्रतबंब गिरां सिखरां पड़ियां, कळळै नभ मारग कूंजड़ियां।—पा.प्र. २ कुंजड़ा जाति की स्त्री। उ०—केथां बेचण बोर कूंजड़ी, दाखां छिब दरसाई।
—ऊ.का.

कूंजड़ौ—सं०पु० [कुंज+अट=कुंजट—शक.] कुंजड़ा जाति का व्यक्ति।

कूंजणौ, कूंजबौ—देखो 'कूजणौ'। उ०—कई जात रा तत्र पत्राळ कूंजै, गहक्कै सिवा साद सादूळ गूंजै।—मे.म.

कूंजा-बरदार—सं०पु०—पानी पिलाने वाला सेवक। उ०—चीणी चाकर किसनसिंघ रौ कूंजा-बरदार कांम आयौ।—बां.दा.ख्यात

कूंजी—देखो 'कुंजी' (रू.भे.)

कूंझ, कूंझड़ी—सं०स्त्री०—क्रौंच पक्षी। उ०—१ कूंझा एकणि संगि, ताळि चरंती दिट्ठियां।—ढो.मा. उ०—२ कूंझड़ियां करळव कियउ, घरि पाछिले वणेहि। सूती साजण संभरया, द्रह भरिया नयणेहि।
—ढो.मा.

उ०—३ किणहीं अवगुण कूंझड़ी, कुरळी मांझिम रत्त।—ढो.मा.

कूंट—सं०स्त्री०—१ दिशा, कोना, कोण (डिं.को.) उ०—सावण तौ लहरयौ भादवे रे बरसै च्यारूं कूंट।—लो.गी.

उ०—२ जीण मेरी बाई ए! बैठयौ बौ बादस्या चादर तांण।
मेरी मां की जाई! च्यार सुपारी ये कूंटां मेलदी।
—लो.गी.

सं०पु०—२ किनारा, छोर. ३ ऊंट के पैर का बंधन।

उ०—ढोलइ मनह विमासियउ, सांच कहइ छइ एह। करह झेकि दोनूं चढ़या, कूंट न संभाळेह।—ढो.मा.

कूंट-कूंटाळौ—वि०—१ चित्रित. २ कोनेदार।

कूंटणौ, कूंटबौ—क्रि०स०—१ ऊंट का एक पैर मोड़ कर बांध देना जिससे वह चरता चरता अधिक दूर न जा सके। उ०—ऊमर साल्ह उतारियउ, मन खोटइ मनुहारि। पग सूं ही पग कूंटियउ, मुहरी झाली नारि।—ढो.मा.

कूंटियौ—वि०—एक पैर मोड़ कर बांधा हुआ (ऊंट)

सं०पु०—१ लकड़ी आदि छीलने व काटने का एक उपकरण.

२ 'कूंटौ' का अल्पा०। देखो 'कूंटौ'।

कूंटौ—सं०पु० [सं० कुंठ] १ दरवाजे की चौखट में लगा हुआ कोंढ़ा जिसमें सांकल फँसाई जाती है और ताला लगाया जाता है.

२ किवाड़ में लगी हुई सांकल जो किवाड़ को बंद करने के लिए कुंडे में फँसाई व डाली जाती है, कुंडी. ३ जंजीर की कड़ी।

कूंठ—सं०पु० [सं०कुंठ] देखो 'कूंट' (रू.भे.)

कूंठौ—देखो 'कूंटौ' (रू.भे.)

कूंड—सं०स्त्री० [सं० कुंड] १ सिर को बचाने के लिये लोहे की एक ऊंची टोपी जिसे लड़ाई के समय पहनते थे, खोद. २ कुंड, हौज।

कूंडळ—सं०पु०—१ ढोल पर लगाया जाने वाला गोल कड़ा।

२ देखो 'कुंडळ' (रू.भे.) उ०—कूंडळां झोक नग जड़त कूंडा, अभंग कमंध तणौ गुमर उतारियौ।—अज्ञात

कूंडळी—सं०स्त्री०—१ लोहे की पत्ती के अंदर सुराख करते समय नीचे रखे जाने वाले औजार. २ देखो 'कुंडली' (रू.भे.)

कूंडळौ—सं०पु०—गोल घेरा, वृत्त। उ०—जैं तळै कूंडळौ मांडियौ, ए लूम्यां री डोरी।—लो.गी.

कूंडापंथ—देखो 'कुंडापंथ' (रू.भे.)

कूंडापंथी—देखो 'कुंडापंथी' (रू.भे.)

कूंडाळियौ—देखो 'कुंडाळियौ' (रू.भे.)

कूंडाळौ—देखो 'कुंडाळौ' (रू.भे.)

कूंडियौ—सं०पु० [सं० कुंड] १ वृत्ताकार गोल घेरा, वृत्त. २ सूर्य, चंद्रमा आदि के चारों ओर होने वाला चक्र. ३ मिट्टी का बना हुआ चौड़े मुंह का एक गहरा पात्र जिसमें पानी, अनाज आदि रखा जाता है. ४ घोड़े को वर्त्तुलाकार घुमाने की क्रिया. ५ इस प्रकार घूमने से होने वाला वर्त्तुलाकार चिन्ह।

कूंडी—सं०पु० [सं० कुंड] १ घोड़ा (डिं.को.)

स्त्री०—१ पत्थर वा मिट्टी का कटोरे के आकार का बरतन जिसमें लोग दही, चटनी आदि रखते हैं. ३ अग्निहोत्र करने का स्थान. ४ जंजीर की कड़ी।

कूंडौ—सं०पु० [सं० कुंड] १ चौड़े मुंह का एक गहरा बर्तन जिसमें अनाज आदि रखा जाता है. २ गोल घेरा, वृत्त. ३ किसी वस्तु के चारों ओर केवल मात्र अपना अधिकार रखने के लिये खींचा गया एक वृत्त।

कूंढ़ी—सं०स्त्री०—गोल घूमे हुए सींगों वाली भैंस।

कूंण—सर्व०—कौन (रू.भे. 'कुण')

सं०पु०—कोना, दिशा।

कूंणी—सं०स्त्री० [सं० कफोणी] कोहनी (देखो 'खूंणी') (क्षेत्रीय)

कूंत—सं०स्त्री० [सं० कुंती] १ पांडु-पत्नी, कुंती। उ०—सत ओढय सीताय कूंत सती, जिण वार टळै जुध 'पाल' जती।—पा.प्र.

२ करामात, चमत्कार. ३ तंत्र. ४ अनुमान, अंदाज. ५ अक्ल, बुद्धि. ६ भाला, बरछी (डिं.को.) उ०—धौळै दिन वागा धकै, तोलै कूंत खड़ग। आम्हां साम्हां आहुड़ै, विडंग उपाड़ै वग।—रा.रू. ७ इज्जत, प्रतिष्ठा। उ०—१ गल राखण निज जड़ गमण, कुळ वधारण कूंत। पिड़ आंगमण में पौढ़ियो, तेवा पूत सपूत। पा.प्र.

उ०—२ आघा जातां मुंडौ ले'र पाछाई न आवणौ छौ, करे सारां भेळा क्यूं गमावणौ छौ कूंत। आबरू थावंतो वटे पीवणौ सही छौ आक, जीवणौ नहीं छौ घणौ जावतां 'असूंत'।
—दलजी महडू

८ कीर्ति, यश (अल्पा. 'कूंतड़ी')

कूंतड़ौ—देखो 'कूंत' (अल्पा०) उ०—चीतै घण सैलांण कूंतड़ौ इण विध आंणै, संख पदमण बार पेखता मो घर जांणै।—मेघ.

कूंतणौ, कूंतबौ—क्रि०स०—अनुमान करना, अंदाजा करना, किसी वस्तु को बिना गिने, नापे या तौले उसकी संख्या, मूल्य या परिमाण आदि का अनुमान करना। उ०—कुन्नण पीतळ कूंत, एक रीत कर आदरै। हे उण ठाकर हूंत, भाखर सखरी भैरिया।—राजा बळवंतसिंह

कूंतणहार, हारौ (हारी), कूंतणियौ—वि०।

कूंताणौ, कूंताबौ, कूंतावणौ, कूंतावबौ—क्रि०स०प्रे०रू०।

कूंतियोड़ौ, कंतियोड़ौ, कूंत्योड़ौ—भू०का०कृ०।

कूंतीजणौ, कूंतीजबौ—क्रि० कर्म वा०।

कूंतळ—सं०पु०—बाल, केश (डि.को.)

कूंतहर—सं०पु०—भाला, बरछी। उ०—हणु तुमर केहर कूंतहर, कर करत दुय दसमुख चकर।—र.रू.

कूंता—देखो 'कुंती' (रू.भे.) उ०—गंधारी न जुड़ी थारी गति, जुड़ी न कूंता थारि जोड़ि।—गोरधन बोगसौ

कूंताई—देखो 'कूंती'।

कूंताणौ, कूंताबौ—क्रि०स० (प्रे०रू०)—अनुमान कराना, अंदाज लगवाना किसी वस्तु को बिना नापे-तौले उसकी संख्या, मूल्य या परिमाण आदि का अनुमान करवाना।

कूंताणहार, हारौ (हारी), कूंताणियौ—वि०।

कूंतायोड़ौ—भू०का०कृ०।

देखो 'कूंतणौ' (स.रू.)

कूंतायोड़ौ—भू०का०कृ०—अनुमान कराया हुआ, अंदाज लगवाया हुआ। (स्त्री० कूंतायोड़ी)

कूंति, कूंती—सं०स्त्री०—१ देखो 'कुंती'. २ भाला, बरछा। उ०—चउंडहार सांमी कूंति चाडि, ऊतरा सेन नांखिया उपाड़ि।—रा.ज.सी.

कूंतौ—सं०पु०—वस्तु को बिना गिने, नापे या तौले उसकी संख्या, मूल्य या परिमाण का अनुमान करने की क्रिया का कार्य।

मुहा०—करड़ा कूंता करणा—मेरा आप क्या बिगाड़ लेंगे। आपस में वैमनस्य होने पर विरोधी को कही जाती है।

कूंब—सं०स्त्री०—गोल लकड़ी के बने चक्र पर लंबा पड़ा रहने वाला लट्ठा जिसके एक सिरे पर बैल जोते जाते हैं।

कूंबौ—सं०पु०—१ घास का छोटा ढेर. २ देखो 'कंदूड़ौ' (रू.भे.)

कूंन—सर्व०—कौन। देखो 'कुण' (रू.भे.)

कूंपळ—सं०पु० [सं० कुपल्लव] १ वृक्ष आदि की छोटी, नई और मुलायम पत्ती, अंकुर। उ०—सुणि ढोला करहउ कहइ, मो मनि मोटी आस। कइरां कूंपळ नवि चरूं, लंघण पड़इ पचास।—ढो.मा. २ देखो 'कूंपळी' (२) उ०—अरियां उअरि बिचै धसि आघी, कूंपळे चरे कटारी।—नरसिंह आसियौ

कूंपळणौ, कूंपळबौ—क्रि०अ०—वृक्ष आदि की छोटी, नई और मुलायम पत्ती का अंकुरित होना। उ०—कूंपळतौ हूं देवदार बळवात पयांणै, सौरभ रस रंजाट घरा दिस दिखण आणै।—मेघ. (मि० 'पांगरणौ')

कूंपळी—सं०स्त्री०—१ कोंपल। उ०—पांन झड़ंता देख कर, हूंसीज कूंपळियांह। मो बीती तो बीतसी, धीरी बापड़ियांह।—अज्ञात २ छाती के नीचे बीचोंबीच की वह छोटी हड्डी जिस पर सबसे नीचे की दोनों पसलियां मिलती हैं. ३ लकड़ी का बना कुप्पी के आकार का बहुत छोटा पात्र जिसमें स्त्रियां काजल रखती हैं।

उ०—म्हैं नै ढोलौ झूंबियां, म्हांनूं आवी रीस। चोवा करै कूंपळै, ढोली साहिब सीस।—ढो.मा.

कूंपळौ—सं०पु०—कोंपल।

कूंपलौ—देखो 'कूपलौ'

कूंपा—सं०स्त्री०—१ सीसोदिया वंश की एक शाखा. २ राठौड़ वंश की एक शाखा।

कूंपावत—सं०पु०—राठौड़ राव रिड़मल के पुत्र कूंपाजी के वंशज, राठौड़ों की एक उप-शाखा. २ इस शाखा का व्यक्ति।

कूंपी—सं०स्त्री०—कुप्पी। उ०—हेम की कूंपी मयण की मुंध सा धन समरई जीम मात गयंद।—बी.दे.

कूंपू—सं०पु०—सेना। उ०—लाहोर रौ राजा सिख रणजीतसिंह जिण रै दो कूंपू एक तिलंगांरौ।—बां.दा. ख्यात (मि० 'कंपू')

कूंबरी—वि०—कोमलांगी। उ०—सैज सूखासण कूंबरी, राजमती बीसलदे जांग।—बी.दे.

कूंभ—सं०पु०—१ मोर, मयूर. २ देखो 'कुंभ' (रू.भे.)

कूंभकळस—सं०पु०यौ०—विवाह आदि में बँधाने के काम आने वाला मांगलिक कलश। उ०—आंगणियां रौ चोक बौ कंवर तुम्हारौ जी राज, कूंभ-कळस थांरी कुळबहू राज।—लो.गी.

कूंभक—देखो 'कुंभक' (रू.भे.)

कूंभली—सं०पु०—रावण का भाई 'कुंभकर्ण'।

कूंभाथळ—देखो 'कुंभाथळ' (रू.भे.) उ०—कूंभाथळ मोताहळां, भरिया वप गिर भांत। चंद्रवरण गज रतन मैं बंगड़ बणिया दांत।

—बां दा.

कूंभार—सं०पु०—देखो 'कुंभार' (रू.भे.,डि.को.)

कूंभावत—सं०पु—रामावत साधुओं की एक शाखा (मा.म.)

कूंभिला—सं०स्त्री०—एक देवी का नाम। उ०—कूंभिला पूजण लगौ कूंवर कुंभकरण जागि।—स.प्र.

कूंभीपाक—देखो 'कुंभीपाक' (रू.भे.)

कूंभौ—देखो 'कूंभौ' (रू.भे., डि.को.)

कूंम—सं०स्त्री०—कौम, जाति। उ०—सबै कूंम में यह नरूके बुरे हैं, जुरे जंग में यह कहूं ना मुरे हैं।—ला.रा.

कूंयरी—देखो 'कुंअरी (रू.भे.) उ०—कूंयरी भणइ तात अवधारि, हूंतउ कान्ह देव भरतारि।—कां.दे.प्र.

कूंळ—सं०पु०—१ कमल। उ०—कळियां कूंळां री कादै में कळणी,

बिलहर संगत सूं पीपळियां बळगी।—ऊ.का. २ मध्यप का छोटा ग्राम।

कूंळी—देखो 'कंवळी' (रू.भे.)

कूंवर—देखो 'कुंवर' (रू.भे.)

कूंवरकलेवौ—देखो 'कुंवर-कलेवौ' (रू.भे.)

कूंवळी-वि०—कोमल। उ०—केळि गरभ जीसी कूंवळी, कूंकूं चंदन कीधां खोळी।—वी.दे.

कूंस-वि०—दुष्ट। उ०—सगळी बात सुणी, पिण जोर कोई चालै नहीं। महेवा रै भाड़ां खेह लगाय नै कूंस ले गयौ।

—जगमाल मालावत री वात

कू-सं०पु०—१ कुग्रा. २ राजा. ३ कुंभ. ४ कारण. ५ द्रव्य. ६ कार्य. ७ प्रकाश (एका०)

सं०स्त्री० [सं० कुः] ८ भूमि (एका.) ९ कूजने का शब्द.

वि०—१ गंभीर. २ मंद (एका.)

अव्यय—द्वितीयाविभक्ति चिन्ह—को। उ०—उदार मेरु शक्ति हेरु जोग के समाध कू।—पा प्र.

कूग्रति-सं०स्त्री० [ग्र० कूग्रत] बुद्धि।

कूईजणौ, कूईजबौ—देखो 'कुईजणौ' (रू.भे.)

कूईजियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'कुईजियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० कूईजियोड़ी)

कूग्रौ-सं०पु० [सं० कूप] कूप, कुग्रा (रू.भे. 'कूवौ')

कूक-सं०स्त्री० [सं० कूजन] १ लंबी सुरीली ध्वनि. २ पुकार।

उ०—१ गई पुकारां जोधपुर, कूक गई ग्रजमेर। सुणी इनायत ग्रसत खां, वणी जमात जु फेर।—रा.रू.

उ०—२ चित जे मत व्है चळ विचळ। भज भज नहचळ भाय। कूक करै जिण दिन कुटंब, स्रीवर करै सहाय।—र.ज प्र.

३ रुदन। उ०—कूक करूं तौ जग हंसै, चुपके लागै लाय। ऐसे कठण सनेह को, किण विध करूं उपाय।—ग्रज्ञात ४ कराह, चीख, त्राहि-त्राहि की ग्रावाज। उ०—वाड़ करी रुखवाळ नै, वाड़ खेत नै खाय, राजा डंडै रैत नै, कूक किसे घर जाय।—ग्रज्ञात

५ मोर या कोयल की बोली. ६ हल्ला।

उ०—कूक फजर कटकां करी, धरी न किलमूं धीर। सब दिन रोजे सम गयौ, बढ़ी विसम कळ पीर।—ला.रा.

कूकड़-सं०पु० [सं० कुक्कुट] कुक्कुट, मुर्गा। उ०—चौथे प्रहरै रैण कै, कूकड़ मेल्ही राळि। धण संभाळै कंचुवौ, प्री मूंछां रा बाळि।—ढो.मा.

कूकड़कंध, कूकड़कंधौ-वि०—मुर्गे की गर्दन के समान ग्राकृति वाला घोड़ा (रा.ज.सी., पे.रू.)

कूकड़ळी-सं०स्त्री०—एक प्रकार का पौधा जिसके पत्तों का शाक बनता है।

कूकड़लौ-सं०पु० [सं० कुक्कुट] १ मुर्गा. २ दामाद के लिए ससुराल में गाया जाने वाला एक गीत (रू.भे. 'कुकड़लौ')

कूकड़ियौ-सं०पु०—१ देखो 'कोकड़ौ'। उ०—चोखो बण्यौ वमड़की तेरी, कूकड़िये री लार, चाल रे बरखला हाल, रे बरखला।—लो.गी. २ देखो 'कूकड़ीयौ' (रू.भे.) उ०—कंध धनु क्रम कूकड़ियौ निस दीह तता तुरगांण तता।—किसनौ दधवाड़ियौ

कूकड़ी-सं०स्त्री०— देखो 'कुकड़ी' (रू.भे.) उ०—मोहर-मोहर री कातूं भंवरजी कूकड़ी जी, हां जी ढोला रोक रुपयिये री तार।

—लो गी.

कूकड़ियौ-सं०पु०—१ देखो 'कोकड़ौ'. २ मुर्गे. ३ मुर्गे की गरदन के समान गरदन वाला घोड़ा।

कूकड़ू-सं०स्त्री०—परिहार राजपूत वंश की एक शाखा।

कूकड़ेसर रौ कुंड-सं०पु०—चित्तौड़गढ़ के ग्रंदर एक तीर्थस्थान

(बां.दा.ख्यात)

कूकड़ौ-सं०पु० [सं. कुक्कुट]—१ पीतल का गोल गोला जिसमें पानी भर कर सोने-चांदी को गलाया जाता है. २ मुर्गा।

कहा०—१ कूकड़ा के तौ बखेरा में ही लाभ—मुर्गे को तो ग्रन्न के बिखर जाने में ही फायदा है जिससे कुछ दाने चुगने को मिलें; चालाक व्यक्ति दूसरों की फूट में लाभ उठाते हैं. २ कूकड़ौ बोलै जठैई परभात नहीं होवै— देखो कहावत ३. ३ कूकड़ो हूं जठे ईंज दन ऊगै—जब कोई व्यक्ति ग्रनावश्यक ग्रहंकार करता है तब यह कहावत कही जाती है। मुर्गे की बांग प्रभात के होने की सूचक है; प्रभात का कारण नहीं है।

३ गाय या ऊंट के होने वाला एक रोग जिसमें उनके कंठ में फफोला हो जाता है जिससे उसका श्वास रुक जाता है। यह रोग प्रायः ग्रसाध्य माना जाता है. ४ मटकी बजाते हुए दामाद को गाया जाने वाला एक राजस्थानी लोकगीत।

(मि० 'कूकड़लौ')

कूकणा-सं०स्त्री०—पंवार वंश की एक शाखा (बां.दा. ख्यात)

कूकणौ, कूकबौ-क्रि०ग्र०—१ शोर करना, हल्ला-गुल्ला करना. २ रुदन करना, विलाप करना। उ०—पूगौ 'पातळियाह', हातळिया जोड़त हुवा, कूकै काबलियाह। बाबलिया तें बोविया।—जुगतीदान देथौ

३ चिल्लाना। उ०—दिली लखै दिगदाह, विगत हित साह विचारी। खर भूकै रव खैंग, स्वांन कूकै सुलहारी।—रा.रू. ४ फरियाद करना। उ०—किण ठिग हूकां म्हे किण ठिग कूकां।—ऊ.का.

कूकणहार, हारौ (हारी) कूकणियौ—वि०।

कूकाणौ, कूकाबौ—क्रि०स०।

कूकिग्रोड़ौ, कूकियोड़ौ, कूक्योड़ौ—भू०का०कृ०।

कूकर-सं०पु० [सं० कुक्कुर] कुत्ता, श्वान (ह.नां.) उ०—बांका धीरज धरण सूं, हूं नहिं कुंजर हांण। की घर-घर भटका करै, कूकर ग्रधिक कमांण।—बां.दा.

कूकरखांसी-सं०स्त्री०—प्रायः बच्चों को होने वाला सूखी खांसी का एक रोग (मि. 'खुलखुलियौ')

कूकरड़ौ-सं०पु० (स्त्री० कूकरड़ी) देखो 'कूकर' (अल्पा.)

कूकरभांगरौ-सं०पु०—बरसात की मौसम में उत्पन्न होने वाली जड़ी विशेष, ककरौंधा (अमरत)

कूकरियौ, कूकरौ-सं०पु०—कुत्ते का पिल्ला, कुत्ता (डिं.को.)

उ०—गह भरियौ गजराज, मद छकियौ चालै मतै। कूकरिया बेकाज, रोळ भुसै क्यूं राजिया।—किरपारांम

कूकबौ-सं०पु०—त्राहि-त्राहि की आवाज, दर्द या दुखभरी चिल्लाहट।

उ०—लूगड़िया हुतां त्यां ऊपर लोही रा छांटा नाखिया, पछै घर मांहे पैस कूकबौ कियौ।—नैणसी

कूकस-वि०—१ नीच, दुराचारी. २ बुरा, खराब। उ०—१ गुळ चावळ तंदुलिया दूध सींझति सहित सकराया, कण कूकसां सहेता राबड़िया नैव सर्वति।—रांमरासौ उ०—२ कूकस खावै नित धावै कण काढ़ै।—ऊ.का.

कूका-सं०स्त्री०—नानकशाही संप्रदाय की एक शाखा।

कूकाऊ-वि०—कष्ट मिटाने के लिये आर्तनाद व पुकार करने वाला।

उ०—वाजै महमद बेगड़ौ, पतसाहां पतसाह। कर आई कूकाऊआं, धोळै दिन री धाह।—वी.भा.

कूकाणौ, कूकाबौ-क्रि०स०—'कूकणौ' का स.रू.। देखो 'कूकणौ'।

कूकारोळ, कूकारोळौ-सं०पु०—१ देखो 'कूकबौ'. २ रुदन, विलाप।

उ०—दैपाळ निराठ दिलगीर हुवौ, कूकारोळ सूं कुळराइज गयौ।
- पलक दरियाव री वात

कूकियोड़ौ-भू०का०कृ०—रुदन या विलाप किया हुआ, चिल्लाया हुआ, शोर किया हुआ (स्त्री० कूकियोड़ी)

कूकियौ-सं०पु०—चीत्कार, चिल्लाहट, दर्दभरी पुकार।

उ०—सूरजमल दोड़नै पूरणमल नूं पाड़ियौ। उण कूकया किया, तरै रांणौ उण रा ऊपर नूं चले आयौ—नैणसी

कूकवि-वि० [सं० कुकवि] बुरा कवि, दुष्ट कवि।

कूकी-सं०स्त्री०—लड़की।

कूकीजणौ कूकीजबौ-क्रि०भाव वा०—रुदन किया जाना, विलाप किया जाना। उ०—देखै तौ कांम आयोड़ां नूं दाग दिरीजै छै, घायल संभाळ बहीर किया था जे कूकीजै छै।—डाढ़ाळा सूर री वात

कूकुल-सं०पु०—बर्फ, तुषार।

कूकौ-सं०पु०—१ शिशु, लड़का. २ दर्दभरी पुकार, कूक।

उ०—तरै भैरूं बळहीण हुवौ नै भैरूं कूका किया, मनै छोडि। आज पछै इण महिल कदे नाऊं।—जगदेव पँवार री वात

कूख—देखो 'कूंख' (ह.नां., अ.मा.) उ०—देव कळा धन मात देवकी, कूख नीपना नंद कुमार।—ह.नां.

कूखजळी—देखो 'कोखजळी'।

कूखड़ली-सं०स्त्री० [सं० कुक्षि] कोख (अल्पा०) उ०—मा मोरी कुण्यां ये के आगे करूं पुकार, कूखड़ली वैरण हुई।—लो.गी.

कूखधारण-सं०स्त्री० [सं० कुक्षि-धरण] माता (अ.मा.)

कूखि-सं०स्त्री० [सं० कुक्षि] उदर, पेट (अमरत)

कूड़-सं०पु० [सं० कूट] १ झूठ, मिथ्या, असत्य।

पर्याय०—अठीक, अणाल, अनरथ, अनिरित, अलीक, असिति, आळपंपाळ, कूड़, खोटीकथ, झूठ, मिथा, विकळ, वितथ, व्रथा।

कहा०—१ कूड़ रा पग काचा व्है—झूठ के पैर कच्चे होते हैं। झूठ अधिक देर तक नहीं ठहर सकता. २ कूड़ रा पग तीन व्है—झूठ के तीन पैर हैं। झूठ लंगड़ा होता है। झूठ अधिक देर तक टिक नहीं सकता।

२ हाथ से पकड़ कर खाली किए जाने वाले मोट के कुए पर लाव की चकरी (भूंण) पर लगाया जाने वाला सीधा पत्थर जिस पर पैर रख कर मोट की लाव खींचते हैं. ३ रहँट के मध्य स्तंभ को स्थिर रखने के लिए मध्य चक्र के ऊपर लगाया हुआ काष्ठ का लंबा डंडा. ४ कुबड़ापन. ५ ऊँट व बैल आदि के पीठ का ऊपर उभरा हुआ भाग। कूबर, ककुद. ६ ऊँट के चमड़े का बना घी, तेल आदि रखने का बड़ा पात्र. ७ कपट, छल (अ.मा.) उ०—१ तद बेलौ चढ़ियौ सो नापै नै सारुड़े आय पहुंचियौ। कही साबास छै। मोसूं तैं भलौ कूड़ कियौ।—नापा सांखला री वारता

उ०—२ तठै दूत रूप राजा कहै छै। मारग ओहिज छै। सखरौ छै। यूं कही तरै कवरी जांणियौ दूत मोसूं कूड़ करयौ। दूत आप रै घरै जाय छै।—पंचदंडी री वारता

कूड़चौ-वि० (स्त्री० कूड़ची) मिथ्याभाषी, असत्यवादी।

उ०—काचड़ गारां ऊपरा, रामतणी है रीस। काचड़गारा कूड़चा, बगड़ै बिसवाबीस।—बां.दा.

कूड़लौ-वि० (स्त्री० कूड़ली) मिथ्याभाषी, असत्यवादी।

कूड़ापण-सं०पु०—झूठापन, असत्यता, मिथ्यावादिता। उ०—आपरा अंगज रौ कूड़ापण दिखावण रै काज बेस बदलण नै म्हांरौ पण कूड़ापण ही प्रमांणौ।—वं.भा.

कूड़ाबोलौ-वि०पु० (स्त्री० कूड़ाबोली) असत्यवादी, मिथ्याभाषी।

कूड़ियौ-सं०पु०—१ मोट को कुये से बाहर निकालने के समय लाव से जो लकड़ी का गोल चक्कर (भूंण) घूमता है उसकी धुरी रखने की लकड़ी (मि० 'करियां') उ०—भूंण गिड़गिड़ी बंध्या कूड़िया, लाख चड़स भर लावै।—रेवतदांन [सं० कुतुप] २ ऊँट के चमड़े या लोहे का बना कुप्पा जिसमें तेल घी आदि रखा जाता है।

कूड़ौ-वि०पु० (स्त्री० कूड़ी] १ झूठा, मिथ्यावादी, निकम्मा।

उ०—२ रहणा इकरंगाह, कहणा नहिं कूड़ा कथन।—किरपारांम

२ शैतान, जबरदस्त। उ०—१ काबिली थाट भुय आसिया कड़खिया, कितौ कूड़ौ कटक जगत कहियौ।—अज्ञात

उ०—थारै मुलक में भक्ति नहीं छै, लोग बसै सब कूड़ौ।—मीरां

सं०पु०—१ कूड़ा-करकट कचरा। उ०—कूड़ै उतारै सुकवि, गाढ़ी महनत गीत। खाल उतारै खांत सूं, इसड़ौ कुकव अनीत।—बां.दा.

यौ०—कूड़ो-कचरो, कूड़ो-करकट ।

[सं० कुतू] २ ऊँट के चमड़े या लोहे का बना कुप्पा जिसमें तेल, घी आदि रक्खा जाता है । ३ बुरा समय. ४ कूआ (क्षेत्रीय)

कहा०—कूड़ा मांयं उतारी नै नेज वाढ दी—कुये में उतार कर रस्सी काट दी; विश्वासघात करने पर यह कहावत कही जाती है ।

कूड़ो-करकट-सं०पु०—घास-फूस, कचरा, कूड़ाकरकट ।

कूच-सं०स्त्री० [तु०] १ प्रस्थान, रवानगी । उ०—मेळै सगह दळां पह मोटां, कीधौ कूच घणी नव कोटां ।—रा.रू. २ ठुड्डी पर की नुकीली दाढ़ी । उ०—तेहे घोड़े किस्या किस्या क्षत्री चढ़िया । पंचवीस वरस ऊपहरा आकरणांत मूंछ नाभि प्रमांण कूच ।—रा.सा.सं

कूचबंधिया-सं०स्त्री०—एक पिछड़ी जाति विशेष ।

कूचा-सं०पु० [फा०] छोटा रास्ता गली ।

कूचील-वि०—गंदा मैला (अनेका.)

कूचीलौ-सं०पु० [सं० कच्चीर] दवा के काम में आने वाले विषैले बीजों का एक वृक्ष अथवा उसके बीज, कुचला ।

कूचौ-सं०पु०—घास, भूसा । (यौ० कूचौ-पांणी)

कूजणौ, कूजबौ-क्रि०अ०—कोमल और मधुर शब्द करना, चहकना, कलरव करना । उ०—कठिण वेयणि कोकिल मिसि कूजति, वनसपती प्रसवती वसंति ।—वेलि.

कूजा-सं०पु०—१ मोतिया या बेले का फूल । उ०—कणियर तरु करणि सेवंती कूजा, जाती सोवन गुलाब जत्र ।—वेलि.

सं०स्त्री०—२ क्रौंच पक्षी (क्षेत्रीय)

कूजित-वि०—ध्वनित (डिं को.)

कूट-सं०पु० [सं०] १ अनाज आदि की राशि या ढेरी. २ हथौड़ा. ३ लकड़ी के म्यान में छिपा हुआ हथियार. ४ छल, फरेब, कपट (ह.नां., डिं.को.) ५ अगस्त्य मुनि का एक नाम. ६ गुप्त वैर. ७ नगर का द्वार. ८ गुप्त रहस्य. ९ वह हास्य या व्यंग्य जिसका अर्थ गूढ़ हो. १० आंखों के ऊपर का भाग. ११ नकल, चिढ़ाने का भाव । उ०—लोह चणां रै चाबणै दांत बिहूणा थाय । इण पर भोळा आवणो, जम री कूट कढ़ाय ।—बी.स. १२ किनारा, छोर (रू.भे. 'कूंट') १३ शिखर । उ०—कट्या घण सज्जळ छज्जळ कांन, सिर गिर कज्जळ कूट समांन ।—मे.म. १४ ऊँट के पैर का बंधन (रू.भे. 'कूंट') उ०—चारण ढोलइ नूं कहइ, किस गुण आया राज । ऊपर थे बिन्हे चढ़्या, करह कूट किण काज ।—ढो.मा. १५ पहाड़ (नां.मा.)

यौ०—हेमकूट, चित्रकूट ।

१६ वृक्ष (अ.मा.)

सं०स्त्री०—१७ कूट नाम की औषधि ।

१८ काटने-कूटने या पीटने आदि की क्रिया. १९ कुटी, झोंपड़ी ।

वि०—१ झूठा छलिया, कपटी. २ कृत्रिम बनावटी, नकली.

३ कुटिल, दुष्ट । उ०—कूठ असी दै रेस, ऊठ महाभड़ ऊठ अब । कूट गहै छै केस, ढूठ अकोदर देख रे ।—रामनाथ कविया

कूटजुद्ध-सं०पु० [सं० कूट+युद्ध] कपट का युद्ध, छलयुद्ध । उ०—घर मारग मैं कूटजुद्ध करण रा स्थांन जांणिया जिके टळाइ दीधा ।
—वं.भा.

कूटणौ, कूटबौ-क्रि०स०—१ ऊपर से लगातार बलपूर्वक आघात पहुँचाना, मारना, पीटना ।

मुहा०—१ कूट-कूट नै भरणौ—ठसाठस भरना, अच्छी तरह भरना. २ कूट-पीस नै पेट पाळणौ—किसी तरह कड़ी मेहनत करके जीवन-निर्वाह करना ।

२ सिल, चक्की आदि में टाँकी से छोटे-छोटे गड्ढे करना या दांत निकालना । (मि० टांचणौ)

कूटणहार, हारौ (हारी) कूटणियौ—वि० ।

कूटाणौ, कूटाबौ, कूटावणौ, कूटावबौ—प्रे०रू० ।

कूटिओड़ो, कूटियोड़ो, कूट्योड़ो—भू०का०कृ० ।

कूटीजणौ, कूटीजबौ—क्रि०कर्म वा० ।

कूटीजिओड़ो, कूटीजियोड़ो, कूटीज्योड़ो—भू०का०कृ० ।

कूटनीति-सं०स्त्री०यौ० [सं०] दांव-पेंच की नीति या चाल ।

कूटपाठ-सं०स्त्री० [सं०] मृदंग के चार वर्णों में से एक वर्ण (संगीत)

कूटळ, कूटळौ-सं०पु०—१ फूस, कचरा, कूड़ा-करकट । उ०—कोल काळज्यो थोथौ करै लगै न कारी कड़ री । फूस कूटळै वरड़ा भरै, होड हुवै ना धड़ री ।—दसदेव २ रद्दी कागजों या रद्दी कागजों की बनी लुगदी का ढेर । उ०—थांरै कनै काकंजी-रा कागज-पत्तर हावैला ? घणी ही कूटळौ है ।—वरसगांठ

कूटावणौ, कूटावबौ-क्रि०स० [प्रे०रू०] देखो 'कुटाणौ' (रू.भे.)

कूटि-सं०स्त्री०—ऊँट के पैर का बंधन । उ०—कूटि कंटाड़ी इणि करह, हिव नग्वर नेड़ेह । ऊंमर सुणि मुझ वीनती, घोड़ा म मारेह ।
—ढो.मा.

कूटियउ-सं०पु०—पैर में बंधन डाला हुआ ऊँट । उ०—ऊंमर सुणि मुझ वीनती, दउड़ि म मार तुरंग । करिहउ लंघियउ कूटियइ, आडावळ अरवंग ।—ढो.मा.

कूटियोड़ौ-भू०का०कृ०—कूटा हुआ । (स्त्री० कूटियोड़ी)

देखो 'कूटणौ' का भू०का०कृ० ।

कूटियौ—देखो 'कूडियउ' (रू. भे.)

कूटौ-सं०पु०—१ कागज या चिथड़े या टाट के टुकड़ों आदि को पानी में भिगो कर सड़ा कर बनाई गई लुगदी. २ देखो 'कूंटौ' ।

कूठोड़—१ देखो 'कुठोड़' (रू.भे.) २ कुमार्ग, कुपंथ, बुरा स्थान । उ० आपां बिनां कदे एकलौ नहीं जातौ, नै अमलांचाक पोसाक कर आज अकेलौ ही मुळकतौ थकियौ चालियौ सो भलौ नहीं । कूठोड़ जाय छै ।—जलाल बूबना री वात

कूडौ-सं०पु०—खलिहान में पड़ा अनाज का ढेर । उ०—वणक कहै आवै वसत, कै कूडै कै गूण । चेळै पड़ै सो होय सुध, सैंमर पड़ै सो

लूण ।—बां.दा.

कूण–सर्व०—देखो 'कुण' (रू.भे.) उ०—बाबहिया मिळ पंखिया, बाढ़त दह दह लूण। पिउ मेरा मई प्रीउ की, तूं प्रिय कहइ स **कूण** ।—ढो.मा.

सं०स्त्री०—दिशा, कोना ।

कूणन–सं०स्त्री० [सं० क्वणन] शब्द, ध्वनि (ह.नां.)

कूणिका–सं०स्त्री० [सं०] वीणा, सितार, सारंगी वा चिकारा आदि तंत्री बाजों की तार बांधने की खूंटी विशेष जिसे समय समय पर मरोड़ कर तार को ढीला या कड़ा किया करते हैं ।

कूणी–सं०स्त्री० [सं० कफोणि, प्रा० कहोणि, अ० कोहणी, रा० कूणी, खूणी] हाथ और बाहु के जोड़ की हडडी, कुहनी ।

कूणौ–सं०पु०—कोना । उ०—जळ सो प्यारी जीव है, कण सी कोमळ काय । कुण से **कूणै** वादळी, राखी बीज छिपाय ।—वादळी

कूत–सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का छोटा मच्छर. २ एक प्रकार का घास विशेष ।

कूतणौ, कूतबौ—देखो 'कूंतणौ' (रू.भे.)

कूतर—१ देखो 'कुतर' (रू.भे.) २ कुत्ता ।

कूतरड़ा—देखो 'कुतर' (अल्पा०)

कूतरड़ौ–सं०पु० (स्त्री० कूतरड़ी) कुत्ता (अल्पा०)

कूतरियौ–सं०पु०—१ घास की महीन कुट्टी काटने वाला ।

उ०—करता मांचा दे लांचा **कूतरिया,** ऊतरता आसाढ़ां मूंढ़ा ऊतरिया ।—ऊ.का. (स्त्री० कूतरी) २ कुत्ता (अल्पा०)

कूतरौ, कूथरौ–सं०पु० (स्त्री० कूतरी) कुत्ता (अल्पा०) उ०—चुगली उगली चीज है चुगली है चरकीन । काग हुवै कै **कूथरौ,** इण रै रस आधीन ।—बां.दा.

वि०—नीच, दुष्ट ।

कूदणी–सं०स्त्री०— बच्चों का एक खेल विशेष ।

कूदणौ–वि०—कूदने वाला । उ०—फूटरिया हिरणी जणे, बोह **कूदणौ** थट्ट । ज्यांरा मांही बांकड़ौ, थांभै रावं थट्ट ।—डाढ़ाळा सूर री वात

सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

कूदणौ, कूदबौ–क्रि०अ० [सं० कूर्दनं] १ उछलना, फांदना, जान-बूझ कर ऊपर से नीचे की ओर गिरना, कूदना । उ०—अंबा सिर सूदत **कूदत** एम, तजै गिरि स्रंग प्लवंग तेम ।—मे.म. २ अत्यन्त प्रसन्न होना. ३ किसी काम या बात के बीच में सहसा आ मिलना वा दखल देना. ४ लांघ जाना ।

मुहा०—गाय कूदणी—गाय का दूध देना बंद करना ।

कूदणहार,हारौ (हारी), कूदणियौ—वि० ।

कूदाणौ, कूदाबौ, कूदावणौ, कूदावबौ—स०रू० ।

कूदिओड़ौ, कूदियोड़ौ, कूदयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

कूदीजणौ, कूदीजबौ—भाव वा० ।

कूदायत–सं०स्त्री०—कूदने या छलांग मारने का भाव ।

कूदाल–सं०पु०—खोदने का एक प्रकार का औजार, कुदाली (डिं.को.)

कूधर–सं०पु० [सं० कुध्र] पर्वत (डिं.नां.मा.)

कून–सर्व०—देखो 'कुण' (रू.भे.)

कूप–सं०पु०—कुआ । देखो 'कूवौ' (रू.भे.) उ०—मित ज ओगण मित का, अनत नहीं भाखंत । कूप छांह ज्यूं आपणी, हीये में ही राखत ।—अज्ञात

कूपली–सं०पु०—देखो 'कूंपली' (३) उ०—१ हे काजळ री भरियौ ए जच्चा राणी रै **कूपली** ।—लो.गी. उ०—२ **कूपली** किणरी ढुळियौ आज गुदळती धण असमांनी ढाल ।—सांझ

कूपार–सं०पु० [सं० कूपार] समुद्र (डिं.नां.मा.)

कूबड़–सं०स्त्री० [सं० कुब्ज] १ पीठ का टेढ़ापन, रोग के कारण पीठ का उभर कर टेढ़ा होने का भाव. २ किसी चीज का टेढ़ापन. ३ नाथ संप्रदाय का एक प्रसिद्ध संन्यासी । उ०—मैं हूं रे गोरख तूं झरड़ा लख, मैं नह औगड़ मैं नह **कूबड़** ।—पा.प्र.

कूबड़ी–सं०स्त्री०—कुब्जा नामक दासी जो श्रीकृष्ण पर अत्यन्त प्रेम-भाव रखती थी ।

कूबावत–सं०पु०—वैष्णव संप्रदाय की एक शाखा अथवा इस शाखा का व्यक्ति (बां.दा.ख्यात)

कूबियौ, कूबौ–वि० (स्त्री० कूबी) १ जिसका मुंह टेढ़ा या मुड़ा हुआ हो. २ कुबड़ा ।

कूभटौ–सं०पु०—एक प्रकार का कंटीला वृक्ष विशेष जिसकी फली के बीजों का शाक बनाया जाता है । उ०—खोड़ै खील्हैरी रा चारिया-फुरणियां रै बैसणहार **कूभटै** कंकेड़ै रा सुरड़णहार, आयबे रा चरण-हार ।—रा.सा.सं.

कूम–सं०स्त्री० [अ० कौम] जाति, वर्ण ।

कूमंत—देखो 'कुमैत' (रू.भे.) (शा.हो.)

कूमेतकसमीरी–सं०पु०—एक प्रकार का शुभ रंग का घोड़ा, कुमैत-कश्मीरी (शा.हो.)

कूमेव–सं०पु०—एक प्रकार के शुभ रंग का घोड़ा (शा.हो.)

कूमोत देखो 'कुमोत (रू.भे.) उ०—कहणे लाग्यौ जे मोनूं मारै ही तो हाथ सूं मार, तरवार सूं मार पण **कूमोत** क्यूं कर मारै छै ।

—सूरे खींवे री वात

कूयां–सर्व०—कोई भी । उ०—म्हारा री गिरधर गोपाळ, दूसरां न **कूयां** । दूसरां नां कूयां साधां सकळ लोक जूयां ।—मीरां

कूर–वि० [सं० क्रूर] १ निर्दयी, क्रूर, नीच । उ०—सम्मन संपत विपत में, जे भूरै ते **कूर** । मासा घटै न तिल वधै, जे विध लिख्या अंकूर ।—सम्मन २ खोटा. उ०—दुजीह **कूर** मूरकौ प्रदूर दूरसी दहैं. विधांन वक्र चक्र तें प्रचक्र चूरती वहैं ।—ऊ.का. ३ कुमार्गी, बुरा, दुष्ट. ४ भयंकर, डरावना. ५ झूठा, असत्य । उ०—करै कुसामद **कूर,** करै कुसामद कूकरा । दुरस कुसामद दूर, पुरस अमोल प्रतापसी ।—दुरसौ आढ़ौ

कूर-कपूर–सं०पु०—एक प्रकार का खाद्य-पदार्थ । उ०—खाजै खड़क

सालणै वडी कूर-कपूर तळी पापड़ी।—कां.दे.प्र.

कूरड़ी—सं०स्त्री०—कूड़ा-करकट का ढेर (क्षेत्रीय) (रू.भे. प्रकूरड़ी, ऊकरड़ी)

कूरपर—सं०स्त्री०—कोहनी, कुहनी (डि.को.)

कूरम—सं०पु० [सं० कूर्म] १ कच्छप, कछुआ (रू.भे. 'कुरम'-ह.नां.) २ पृथ्वी. ३ प्रजापति का एक अवतार. ४ नाभिचक्र के पास की नाड़ी. ५ विष्णु का दूसरा अवतार. ६ एक राजपूत वंश, कछवाहा. उ०—हाडा कूरम राठवड़, गोखां जोख करंत। कहज्यौ खांनाखांन नै, बनचर हुआ फिरंत।—महाराणा अमरसिंह ७ शरीरस्थ दस वायुओं में से १ जिसका निवास आँखों में है और जिसके प्रभाव से आँखें खुलती हैं और बंद होती हैं. ८ तन्त्र के अनुसार एक मुद्रा. ९ छप्पय का एक भेद जिसमें ५३ गुरु ४६ लघु कुल ९९ वर्ण व १५२ मात्राएँ होती हैं।

कूरमचक्र—सं०पु० [सं० कर्मचक्र] तांत्रिक लोगों द्वारा बनाया जाने वाला एक प्रकार का चक्र जिससे शुभाशुभ का शकुन और फल जाना जाता है।

कूरमद्वादशी—सं०स्त्री० [सं० कूर्मद्वादशी] कच्छपावतार होने की तिथि, पौष शुक्ला द्वादशी।

कूरमपुरांण—सं०पु० [सं० कूर्मपुराण] अठारह पुराणों के अन्तर्गत एक पुराण।

कूरमबंस—सं०पु०—कछवाहा वंश।

कूरमा—सं०स्त्री० [सं० कूर्मा] एक प्रकार की वीणा।

कूरमासण, कूरमासन—सं०पु०[सं. कूर्मासन] योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन। इसमें दोनों पावों की एड़ियों से गुदा को दबा कर दोनों पावों के पंजों को थोड़ा पिछले पैर की तरफ रख कर बैठा जाता है। इससे अपान सहित वीर्य का उर्ध्वगमन होकर शारीरिक बल की वृद्धि होती है। इसका नाम गोमुखासन भी है, क्योंकि पीछे की तरफ गौ के मुख के सदृश आकृति बना कर बैठा जाता है।

कूरम्म—देखो 'कूरम' (रू.भे.) उ०—नमौ मच्छ माधव कच्छ कूरम्म, पतित्त उधारण देव परम्म।—ह.र.

कूरिम—सं०पु०—कछवाहा वंश का राजपूत। उ०—हिंदू तांम हकारिआ, सिंध जसौ जैसिंघ। किया विदा कूरिम कमंध।—वचनिका

कूरि—सं०पु०—एक प्रकार का घास।

कूरौ—सं०पु०—प्राय: मेवाड़ की तरफ होने वाला एक अनाज विशेष जिसके दानों की रोटियां गरीब लोग खाते हैं।

कहा०—कूरा करसा खाय गेहूं जीमै वांणियां—जहाँ बनियें संपन्न हैं वहाँ किसान गरीब हैं।

कूळ—सं०पु० [सं०कूल] १ किनारा, तट, तीर (डि.को.) २ सैना का पीछे का भाग. ३ बड़ा नाला. ४ तालाब।

क्रि०वि०—समीप, पास।

कूळातरौ—सं०पु०—१ होंठ का एक रोग विशेष जिसमें होंठ पर एक प्रकार का जहरीला फोड़ा हो जाता है. २ देखो 'कातरौ' (३)

कूलीर—सं०पु०—केंकड़ा।

कूलौ—देखो 'कूल्हौ' (रू.भे.)

कूल्यस—सं०पुं० [सं० कुलिश] वज्र (नां.मा.)

कूल्हणौ, कूल्हबौ—क्रि०स०—तिरछी निगाहों से देखना, एक आँख कुछ छोटी कर के लक्ष्य की तरफ स्थिर नजरों से देखना। उ०—घोड़ां री पूठ तखतां ऊपर बैठा छै, आंख्यां आडी कूल्है छै।—रा.सा.सं.

कूल्हर—सं०स्त्री०—घी में भुना हुआ आटा जिसमें शक्कर मिला कर खाते हैं। उ०—नणदल कूल्हर खाय, वारी ए लूम्यां री डोरी।
—लो.गी.

कूल्ही—सं०स्त्री०—आँखों पर लगाई जाने वाली पट्टी विशेष (रा.सा.सं.)

कूल्हौ—सं०पु०—कांख के नीचे कमर में पेडू के दोनों ओर निकली हुई हड्डियाँ।

कूवड़ी—सं०स्त्री०—छोटा व सँकरा कुआ (अल्पा०) उ०—काळै भाटै कूवड़ी, अे रातै छै पिणिहार, भिलो म्हारी चूनड़ी ए।—लो.गी.

कूवाळी—वि०स्त्री०—कुये की, कुयें संबंधी। उ०—ऊंटां री लावबौ छोड़दौ, मारूजी लेल्यौ कूवाळी चौथ।—लो.गी.

कूवौ—सं०पु० [सं० कूप] पानी के लिये पृथ्वी में खोदा हुआ गहरा गड्ढ़ा, कूप।

मुहा०—१ कूवा में गिरणौ (पड़णौ)—कष्ट में फँसना. २ कूवा में फेंकणौ—जाने देना, बर्बाद करना, जन्म बेकार करना. ३ कूवे हीं भांग पड़णी—सभी लोगों का नशे में चूर होना; सबका पागल या मूर्ख होना; सबकी बुद्धि मारी जाना. ४ कूवौ खोदणौ—कठिन परिश्रम करके जीवन-यापन करना; दूसरे को गिराने के लिये कुछ करना. ५ कूवौ चलाणौ—खेत को कुएँ के पानी से सींचना।

कहा०—१ कूवा री डेडरियौ—कुये का मेंढक; संकुचित विचारों के आदमी के लिये. २ कूवौ-कूवौ नहीं मिळै पण आदमी-आदमी सौ वार मिळै-मिळै—एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से कभी न कभी जरूर मिलता है; मनुष्य का काम मनुष्य से कभी न कभी अवश्य पड़ता है. ३ कूवै में हुवै तौ खेळी में आवै—भीतर कुछ तत्व हो तो बाहर आवे; पास में कुछ हो तो दें. ४ कूवै री छाया कूवै में रैवै—गंभीर आदमी अपने मन की बात मन में ही रखता है; उस आदमी के प्रति जिसकी संपत्ति या विद्या किसी दूसरे के काम न आवे।

सर्व०—कौन।

कूसमांड—सं०पु०—कुम्हड़ा (डि.को.)

कूह—सं०स्त्री० [सं० कुहू] १ देखो 'कुहर'

सं०पु०—२ कुबेर।

केंकड़ौ—सं०पु० [सं० कर्कट, प्रा० ककट] एक प्रकार का जंतु, पानी का कीड़ा जिसके आठ टाँगें और दो पंजे होते हैं।

केंडौ—सं०पु०—बढ़ई का एक औजार।

केंद्र—सं०पु० [सं०] १ किसी वृत के ठीक बीच का बिंदु. २ ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों के केंद्र. ३ फलित ज्योतिष के अनुसार कुंडली में पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान. ४ बीच का स्थान।

केंबच-सं०स्त्री०—एक प्रकार की लता व उसकी फली ।

के-सं०पु०—१ रत्न. २ स्थान. ३ मयूर. ४ प्राण (एका.)
वि०—कुछ । उ०—ढोलउ किम परचइ नहीं, सहु रहिया समभाइ । के पुळिया पूंगळ दिसी, के कांही कजि काइ ।—ढो.मा.
सर्व०—कौन । उ०—सज्जणिया सावण हुया, भड़ि उलटी भंडार । विरह-महारस ऊमटइ, के ता कहूं संभार ।—ढो.मा.
वि०—कितने ही, कई । उ०—नारायण रा नाम री, मोड़ी पड़ी पिछांण । के दिन बाळापै गया, के दिन गया अजांण ।—ह.र.
प्रत्यय—संबंधकारक का विभक्ति चिन्ह 'का' का बहुवचन ।
उ०—पहिलइ पोहरे रैंण के दिवला अंबर डूल । धण कसतूरी हुइ रही, प्रिय चंपा रौ फूल ।—ढो.मा.

केइक-वि०—कई, कितने ही । उ०—गुड़ा हेटै बाड़मेर हेटै केइक गांव ।
—बां. दा. ख्यात

केई-वि०—कई, कितने, अनेक । उ०—इहवयोड़ा डोलै केई, डोफा गाफल जनम गमावै ।—ऊ.का.
कहा०—केई बायां नौ कांकड़ियां नौ मैल खादौ है—कई स्त्रियों के कंकण का मैल खाया है; रोटी बनाते समय कंकण आटे से छूते हैं जिससे उनका मैल आटे में छूटता है; बहुत अनुभवी के लिए कही जाती है ।
सर्व०—किसी ।
कहा०—केई री जीभ चालै केई रा हाथ चालै—कोई गाली देता है कोई पीट डालता है; जो गाली देता है वह मार खाता है ।

केईक-वि०—१ कितने ही. २ कुछ । उ०—जैमलजी रा मांणस गिररी वावरै समेळ केईक दिन रह्या ।—बां दा. ख्यात

केकंध-सं०पु० [सं० किष्किंध] १ मैसूर के आसपास के देश का प्राचीन नाम. [सं० किष्किंधा] २ किष्किंधा पर्वत-श्रेणी. ३ किष्किंधा पर्वत की गुफा ४ रामायण का एक कांड ।

केक-सं०पु० [सं० केकी] मयूर, मोर ।
सर्व०—किसी । उ०—दुरै दिखालै केक काळै अचळ पाळै ऊपरै । दीठा दगाळै तेण ताळै, वय बडाळै वीर ।—र.रू.
वि०—१ कुछ । उ०—उण परबत पर केक बिताया दिनड़ा दोरा, ढळियौ भुजबंद हाथ रूप रंग पड़िया फोरा ।—मेघ.
२ कितने ही, कई, बहुत । उ०—छत्री कुळ भरम छेक, कायर कर देत केक । टारत नहिं एक टेक, पाव को पुजाता ।—अज्ञात

केकय-सं०पु० [सं०] १ एक प्राचीन देश का नाम. २ दसरथ के ससुर और केकयी के पिता का नाम ।

केकयी-सं०स्त्री० [सं०] १ केकय देश की स्त्री. २ दशरथ की एक स्त्री जो कि भरत की माता थी ।

केकांण-सं०पु० (स्त्री० केकांणी) घोड़ा (ना.डि.को.) उ०—उत्तर आज स वज्जियउ, ऊकठियइ केकांण । कांमिण कांम कमेड़ि ज्यउं, हइ लागउ सींचांण ।—ढो.मा.

केका-सं०स्त्री०—मादा मोर, मयूरिनी । उ०—केकी केका तजि ठेका दे ठेरण ।—ऊ.का.

केकिंदा, केकिंधा—देखो 'केकंध' (रू.भे.)

केकी-सं०पु० [सं० केकिन्] १ मोर, मयूर (ह.नां.) उ०—सुटेर सुणै घनस्याम री, हिवड़ै में है केकी समाय ।—गी.रां.
२ सुस्वर* (डि.को.)

केगई—देखो 'केकयी' (रू.भे.)

केगर-सं०पु०—एक प्रकार का बड़ा वृक्ष । इसके तने का रंग श्याम होता है तथा इसकी लकड़ी मंदिर की ध्वजा के दंड के काम आती है ।

केगहि, केगही—देखो 'केकयी' (रू.भे.)

केड़-सं०पु०—१ वंश । उ०—सहर बसायौ तिण रा केड़ रा कपाळिया कहीजे छै ।—रा.वं.वि.
मुहा०—केड़ रौ होणौ—वंशज होना ।
२ पीछा । उ०—करस्यइ केड़ि मारैस्यइ हींदू अबैले फिरतार ।
—कां.दे.प्र.

केड़ै-क्रि०वि०—१ पीछे । उ०—हे पणिहारी बापड़ी, जहरी सूं वर जाय, केड़ै कटकां लूंबिया, लायक मरसी आय ।—हा.झा.
२ बाद में, पश्चात् । उ०—अर प्रभात हुवां केड़ै गरभवती पत्नी आप रा अनुगां नूं काठां चढ़ण रौ निदेस दे'र धणी रा अंचळ सूं अंचळ जोड़ियौ ।—वं.भा.

केड़ौ-सं०पु०—घास-फूस का समूह, घना घास (क्षेत्रीय)
क्रि०वि०—पीछा । उ०—कंथड़ा भालि किरमाळ केड़ौ करां, सारभण वरण सो सोक सेलां सरां ।—हा.झा.

केच-सं०पु०—एक देश का नाम । उ०—की इरां ऐराक की, किसूं केच मकरांण । खेत तुरंगा धाट जिम, बांका धाट बखांण ।
—बां.दा.

केचवाळ-सं०स्त्री०—परिहार राजपूत वंश की एक शाखा (बां.दा ख्यात)

केण-सर्व०—१ कौन. २ किस, किसने । उ०—महानत तूझ न जांणै माह, कियौ तुझ केण आयौ तू काह ।—ह.र.
क्रि०वि०—किस कारण, किसलिए । उ०—आज उमाहउ मो घणउ, ना जांणू किव केण । पुरख परायउ वीर वड, अहर फुरकई केण ।
—ढो.मा.

केणिका-सं०स्त्री०—खेमा (डि.को.)

केत-सं०पु० [सं० केतु] १ केतु. नौ ग्रहों में से एक । उ०—करै चख नाहर राहर केत, नेत-त्रण भाळ डरै निसनेत ।—मे.म.
[सं०] २ घर. ३ जगह, स्थान. ४ केतु, ध्वजा (अ.मा.)
उ०—कड़ौ बागतां बरम्मां पीठ पनागां ऊघड़ी केत ।
—हुकमीचंद खिड़ियौ

केतक-सं०पु० [सं०] केतकी, केवड़ा (डि.को.) ।
वि०—१ कितने. २ बहुत ।
क्रि०वि०—किस कदर ।

केतकी–सं०स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का सुगंधित फूलों का छोटा झाड़ या पौधा (डिं.को.) २ यात्रा में साथ रखने का जल-पात्र. ३ केवड़ा ४ श्वेत सुगंधित पुष्प। उ०—केवड़ा कुसुम कुंद तरणा केतकी स्रम सीकर निरझर स्रवति।—वेलि.

केतन–सं०पु० [सं] १ निमंत्रण, आह्वान. २ ध्वजा (डिं.को.) ३ चिन्ह. ४ घर, स्थान।

केतमक–सं०पु० [सं० मक्र+केतु] कामदेव। उ०—लोभांगी नवोढ़ा नेह निसा एक चोळा लेती, भासै भ्रंग अचोळा सचोळा लेती भाव। करां केतमक रै लचोळा लेती, तूजी कना नक्र रै मचोळा सं हचोळा लेती नाव।—र. हमीर

केतलउ–वि०—कितना।

केतली–सं०स्त्री०—यात्रा में साथ रक्खा जाने वाला एक विशेष प्रकार का जलपात्र जो ऊपर से कपड़े द्वारा मढ़ा होता है।

सर्व०—कितना।

केतलौ–वि०—कितना। उ०—कुण जांणै संगि हुआ केतला, देस-देस चा देसपति।—वेलि.

केतसाली–सं०स्त्री० [अ० कहतसाली] १ दुष्काल, अकाल. २ वह वर्ष जिसमें अकाल पड़ा हो।

केतां, केता–वि०—कितने, कितना। उ०—१ तूटै सिर धड़ तड़फड़ै, जळ तुच्छै मछ जांण। सेल दुसारां नीसरै केतां सह केकांण।

—किसोरदांन बारहठ

उ०—२ रांम भणंतां रे ह्रिदा, कह केता गुण होय।—ह.र.

केताई–वि०—कितने ही।

केतिय–वि०—कितने ही।

केती–वि०—कितनी। उ०—आडा डूंगर भुंइ घणी, सज्जण रहइ विदेस। मांगी-तांगी पंखुड़ी, केती वार लहेस।—ढो.मा.

क्रि०वि०—कहां तक।

केतु–सं०पु० [सं०] १ ध्वजा, पताका, निशान. २ दीप्ति, प्रकाश. ३ एक राक्षस का कबंध (पौराणिक) ४ एक प्रकार का तारा जिसके साथ प्रकाश की एक पूंछ दिखाई देती है। पुच्छल तारा. ५ नौ ग्रहों के अन्तर्गत एक ग्रह (अ.मा.)

केतुकुंडळी–सं०स्त्री० [सं० केतुकुंडली] फलित ज्योतिष के अनुसार बारह कोष्ठों का एक चक्र जिससे प्रत्येक वर्ष का स्वामी निकाला जाता है।

केतुमांन–वि० [सं० केतुमान्] तेजवान, तेजस्वी, बुद्धिमान।

सं०पु०—हरिवंश के अनुसार काशीराज दिवोदास के वंश का एक राजा।

केतुमाळ–सं०पु० [सं० केतुमाल] जंबू द्वीप के नौ खंडों में से एक खंड (पौराणिक)

केतुव्रक्ष–सं०पु० [सं० केतुवृक्ष] पुराणानुसार मेरु के चारों ओर के पर्वतों पर लगे वृक्षों के नाम।

केतुहळ–सं०पु० [सं० कुतूहल] कौतुक, कौतूहल।

केतू–सं०पु०—१ देखो 'केतु' (अ.मा.) २ झंडा, पताका (ह.ना.) ३ धड़। उ०—खड़ी लांगड़ो वीर धीराधि खेतू, करै रागड़ां खागड़ां राहु केतू।—मे.म.

वि०—१ विनाशक. २ श्रेष्ठ।

केतूड़ौ—देखो 'केतु' (अल्पा०) उ०—ज्यूं बुध सहू केतूड़ै री सूं करै रुखाळी चांदलै री।—लो.गी.

केतेऊ–वि० [सं० कियत्] कितना।

केतेक–वि०—कितने।

सं०पु०—केतकी, केवड़ा (डिं.को.)

केथ, केथि–क्रि०वि०—कहां, किधर। उ०—१ ते माटे ऊतावळा, राज पधारो एथ। निजर दौलत निज सांम नी, पांमीजै कही केथ।—ढो.मा.

उ०—२ करहा पांणी खंच पिउ, त्रासा घणा सहेसि। छीलरियउ ढूकीसि नहि, भरिया केथि लहेसि।—ढो मा.

केथी, केथे–क्रि०वि०—१ देखो 'केथ' (रू.भे.) उ०—चूक हुआं के नर चीतारै, वाहै कई पड़तां वाढ़। पोढ़िया रयण ज्यूं हो प्रतमाळी, केथी कोय न सकियौ काढ़।—अज्ञात २ कहीं। उ०—मोळी पांणी लाज, साचण बीछड़ियां समी। जाइ स्याऊं जसराज, कोई जो केथी कहै।—जसराज ३ कहां। उ० —जाळंधर दसकंध जुरासंध जेहा, केथी गया न जांणौ कोय।—ओपो आढ़ौ

केथौ–सं०पु०—एक प्रकार का कँटीला वृक्ष जिसके फल खट्टे होते हैं, कपित्थ।

क्रि०वि०—यथा।

केदार–सं०पु०—१ केदारनाथ नामक एक तीर्थ. २ मेघ राग का चौथा पुत्र (संगीत)

केदारनट–सं०पु०—षाडव जाति का एक संकर राग विशेष (संगीत)

केदारनाथ–सं०पु०—उत्तराखंड में हिमालय में स्थित एक तीर्थ-स्थान।

केदारि देखो 'केदार' (रू.भे.) उ०—जे फळ पामइ गंगा द्वारि, जे फळ हुई भेटि केदारि।—कां दे.प्र.

केदारी–सं०स्त्री०—१ दीपक राग की पांचवीं रागिनी (संगीत) २ एक जाति विशेष।

केदारेस्वर–सं०पु०—काशी में स्थित शिव का एक मंदिर (बां.दा.ख्यात)

केदारौ–सं०पु०—एक राग विशेष (संगीत) (मि० 'केदारी')

केन–सं०पु० [सं०] एक प्रसिद्ध उपनिषद जिसका पहला मंत्र 'केनेषित केन' शब्द से आरंभ होता है।

केबत–सं०स्त्री०—कहावत, लोकोक्ति।

केबांण–सं०स्त्री० [सं० कृपाण] तलवार (डिं.को.)

केबी–सं०पु०—शत्रु, रिपु, वैरी। उ०—इळा नभ भाळ पाताळ खप उपावण, कंपावण काळ विकराळ केबी।—खेतसी बारहठ

केम–क्रि०वि० [सं० किम्] किस प्रकार, कैसे। उ०—डोलइ मन चिंता हुई, चारण वचन सुणेह। हिव आव्यउ पाछउ वळइ, करहा केम करेह।

—ढो.मा.

केमद्रुम-सं०पु० [यू० केमोड्रोमस्] ज्योतिष में चंद्रमा का एक योग जो उस समय होता है जबकि चंद्रमा वाली राशि के आगे या पीछे वाली राशि पर कोई और ग्रह न हो।

केमर-सं०पु० [सं० कार्मुक] धनुष।

केमरी-सं०पु०—१ धनुष २ झाड़ीनुमा छोटा वृक्ष।

केमि-क्रि०वि० [सं० किम्] कैसे। उ०—नाह महूंगा दियण भूंपड़ा निभै नर, जावसी कड़तलां केमि जरसी जहर।—हा.झा.

क्रि०वि०—कहाँ।

केरकेयक-वि०—कई। उ०—मौत आय केयक मरै, केक करै अपघात।

—पा.प्र.

केयुर, केयूर-सं०पु० [सं०] बांह में पहनने का एक आभूषण।

(मि० 'भुजबंध') उ०—पुणचा जड़त जड़ाउ पुणची, कळ आजांन भुजा केयूर।—र.रू.

केरंटी-सं०पु० [सं० किरीटिन्] किरीटी, अर्जुन।

केरंठी-सं०पु० [सं० केरंठी[१ मकर, मत्स्य २ मछली।

(यौ० केरंठीकुंडळ) उ०—मीर मुगट सिर जास कांत केरंठी कुंडळ, वसन पीत तन स्याम गळै माळा गुंजाहळ।—जग्गो खिड़ियो

केर-अव्यय—संबंध-सूचक अव्यय—का, की, के। उ०—पहिर पूछै खोलणी, पेई भूखण केर। हेडवियां भाभी हंसी, नणद कनै नाळेर।

—वी.स.

सं०पु०—१ एक कांटेदार वृक्ष तथा उसके बीज, करील।

उ०—आवै तौ म्हारी निजर दूं धरती में गाड, ऊपर कांटा केर का सकै न कोई काड।—सगरांमदास

२ वंशज। उ०—आंखड़ियां रतनाळियां, मूंछ अवट्टां फेर। जिण भय कांपै गज्जणी, ओ गीदांणी केर।—नैणसी ३ नारियल (अ.मा.)

केरक-सं०पु० [सं०] हाथी।

केरकुमटियौ-सं०पु०—१ लड़कियों द्वारा गाया जाने वाला एक गीत.

२ कैर व कुम्मट आदि वृक्ष अथवा उनके बीज।

केरड़-सं०पु०—मरुभूमि में होने वाला एक प्रकार का पत्तेविहीन कांटेदार वृक्ष व उसके फल, करील।

केरड़ियौ, केरड़ौ—१ देखो 'केरड़' (रू.भे.)

(स्त्री० केरड़ी) २ गाय का छोटा बछड़ा। उ०—ढांढा तांभाड़ै केरड़िया ढींकै।—ऊ.का.

केरपा-सं०स्त्री० [सं० कृपा] कृपा, मेहरबानी, दया (ह.नां.)

केरल-सं०पु० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रांत (पा.प्र.)

केरली-सं०पु०—केरल देश का निवासी।

वि०—केरल का, केरल संबंधी।

केरव-सं०पु०—रहँट पर बैलों के घूमने के चक्र पर लगा हुआ पत्थर या पाट जिसके नीचे से लाट निकलती है।

केरांटी-सं०पु०—देखो 'केरंठी' (रू.भे.) उ०—कन्ह आगै पंच दीपक जळै, केरांटी कुंडळ झळमळै।—ईसरदास बारहठ

केरा-अव्यय—१ संबंधसूचक अव्यय—के। उ०—१ डूंगर-केरा वाहळा, ओछां नरां सनेह। वहता वहइ उतावळा, झटक दिखावइ छेह।—हा.झा. उ०—२ चंदण केरा नाग ज्यूं, लपटाई रहीजै हो।—मीरां २ जैसा, समान। उ०—ज्यां आगै फेरजै, बड़ा लाखीक बछेरा। ज्यां दरगह नित दिपै, कोड़ सुख इंद्रह केरा।

—जग्गो खिड़ियो

केरी-अव्यय—संबंधसूचक अव्यय—की। उ०—कागां केरी चांच ज्यूं, चुगलां केरी जीह। विसटा ज्यूं परची बुरी, चूंथै सबही दीह।

—बां.दा.

वि०—समान, तुल्य, बराबर।

सं०स्त्री०—१ आम का कच्चा और छोटा नया फल. २ लकड़ी का एक बित्ता लंबा पतला छड़ जिसमें जुलाहे (बाना बुनने के लिए) रेशम लपेटते हैं. ३ एक लकड़ी जिस पर नेवार बुन कर लपेटी जाती है।

केरूं, केरू-सं०पु०—कौरव (महाभारत) उ०—१ घटि घटि रांवण लंका द्वार, घटि घटि केरूं सेनि अपार।—ह.पु.वा.

उ०—२ केरू सकळ संहारिया, करम कंस रा फाड़।—सगरांमदास

केरे-अव्यय—१ संबंधसूचक अव्यय—के। उ०—प्रीतम बीछुड़ियां पछइ, मुई न कहि जइ काइ। चोळी केरे पांन ज्यूं, दिन दिन पीळी थाइ।

—ढो.मा.

केरौ-अव्यय—१ संबंधबोधक अव्यय—का। उ०—मतना मेरी माता ए, मतना कर जीवण केरौ सोच। मेरी रातादेई, जीवण री चित्या ए कुळ में हूं करूं।—लो.गी. २ तरह, भाँति, जैसे।

सर्व०—किसका।

केरोसिन-सं०पु० [अं०] मिट्टी का तेल।

केळ-सं०पु०—१ भाला. २ कामदेव (ह.नां.)

सं०स्त्री० [सं० केलि] ३ केलि, क्रीड़ा। उ०—१ दरखतां ऊपर मोर कुहक रहया छै, सुवा केळ करै छै।—रा.सा.सं.

उ०—२ जिम मधुकर नइ कमळणी, गंगासार वेळ। लुबधा ढोलउ मारुती, कांम कतुहळ केळ।—ढो.मा. ४ मैथुन, संभोग, स्त्री-प्रसंग। उ०—भारथ मत कर भांमणी, मो भारथ नह मेळ। बापी कूप बताव विस, कै कर म्हांसूं केळ।—बां.दा.

[सं० कदली] ५ केला नामक फल व उसका वृक्ष (डिं.को.)

उ०—केळ रहे नित कांपती, कायर जणै कपूर। सीहण रण सांकै नहीं, सीह जणै रण सूर।—बां.दा.

सं०स्त्री० [सं० कदली] ६ कोंपल। उ०—१ रांमजी चाल्या ए नंदजी कौ लाल, दांतण लाया जी काची केळ रा।—लो.गी.

उ०—२ वसंतपंचमी पछै नीकळै काची केळां।—दसदेव

७ किसी वृक्ष की शाखा या डाली. ८ मांगलिक अवसरों पर घर के द्वार के दोनों ओर की दीवारों पर विभिन्न रंगों से बनाये हुए केले के चित्र। उ०—सपना में औ मारुजी दीपक जो देख्यौ, कुंवळां री केळ रळावणी जी।—लो.गी.

केलड़ी—सं०स्त्री०—मिट्टी का बना तवा।

केलण—सं०पु०—भाटी वंश की एक शाखा (बां.दा.ख्यात)

केलणावटी—सं०स्त्री०—जैसलमेर राज्यान्तर्गत 'केलण' भाटियों के राज्य की भूमि।

केलणोत—सं०पु०—भाटी वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

केलपुर—सं०पु०—१ सीसोदिया वंश का राजपूत. २ उदयपुर राज्य के अंतर्गत एक ग्राम।

केलपुरी—सं०स्त्री०—१ देखो 'केलपुर'. २ सीसोदिया वंश की कन्या।

केलपुरौ—देखो 'केलपुर' (रू.भे.) उ०—मेलै जोगिण पुरौ महादळ, केलपुरौ उखेळ करै।—महाराणा प्रताप री गीत

केळरसक्यारी—सं०स्त्री०—काम-क्रीड़ा का साधन, योनि (र. हमीर)

केळवणौ, केळवबौ—क्रि०स०—सुधार करना।

केळवर—सं०पु० [सं० कलेवर] शरीर, देह, ढांचा।

केलवा—सं०स्त्री०—सीसोदिया वंश की एक शाखा।

केळवियोड़ौ—भू०का०कृ०—सुधार किया हुआ। (स्त्री० केळवियोड़ी)

केळा—सं०स्त्री० [सं० केलि] १ रस, क्रीड़ा, भोग, आनंद।

उ०—भूखण आभूखण मनसा भरियोड़ी, वेळा मन वंछित केळा करियोड़ी।—ऊ.का.

सं०पु०—२ एक प्रकार का घोड़ा विशेष (रा.सा.सं.)

केळास—देखो 'कैलास'।

केळि—सं०स्त्री० [सं० केलि] १ देखो 'केळ' (३, ४, ६, ७)

उ०—१ केळि कहतां क्रीड़ा त्यें कौं घणौ सुख पायौ।—वेलि. टी.

उ०—२ मांन सरोवर सकळ सुख तहां बैठा केळि करइ।—ह.पु.वा.

केळिग्रभ—सं०पु० [सं० कदली + गर्भ] कदली-गर्भ, केले का तना।

उ०—गति गयंद, जंघ केळिग्रभ, केहरि जिम कटि लंक।—ढो.मा.

केळिग्रह—सं०पु०—क्रीडा-स्थल, रतिगृह, शयनागार। उ०—सखियां आगै जाय, केळिग्रह कहतां रहस्य मंदिर सयन मंदिर तिहिंको आंगण मारजण कहतां संवारियौ। वेलि. टी.

केळिनि, केळिनी—सं०स्त्री० [सं० कदली] कदली, केले का वृक्ष या फल।

उ०—पंथी एक संदेसड़इ, लग ढोलइ पैंहच्यांइ। जंघा-केळिनि फळि गई, स्वात जु बरसउ आइ।—ढो.मा.

केळियौ—सं०पु०—अंकुर निकलता हुआ कोमल पौधा (क्षेत्रीय)

केळी—देखो 'केळि' (अमरत)

केलू, केलूड़ौ—सं०पु० (स्त्री० केलूड़ी) खपरैल।

केलूड़ौ—देखो केळ' (५) उ०—बीराजी केळूड़ा री कांम ए रेजा थांरी जांन में रे।—लो.गी.

केलोड—सं०पु०—तंवर वंश के क्षत्रियों की एक शाखा।

केळौ—सं०पु० [सं० कदल, प्रा० कयल] १ गज सवा गज लंबे पत्ते वाला एक कोमल पेड़ जिसके फल लंबे, गूदेदार व मीठे होते हैं। यह तने के ऊपर ही लगता है। कदली।

पर्याय०—कंजळी, कदली, केळ, गुच्छफळा, भांनुफळा, मोचा, रंभा।

२ छोटा शमी वृक्ष। उ०—सूका केळा काट टाप अर गायां भैंसां। लेत झूंपड़ी लेत अमित आणंद संदेसां।—दसदेव

केवच—देखो 'कूंच'।

केवड़ौ—सं०पु० [सं० कविका] १ केतकी से कुछ बड़ा सफेद रंग का पौधा (डिं.को.) उ०—हाथ बसंती केवड़ो जी कंई करे भंवर सूं हेत, बादळी बरसे क्यूंनी ए, बीजळी चमकै क्यूंनी ए।—लो.गी.

२ इस पौधे का फूल. ३ इसके फूल से उतारा हुआ सुगंधित फूल का आसव (यौ० केवड़ा-जळ) ४ एक लोक गीत का नाम. ५ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.) ६ केवड़ा नामक वृक्ष।

केवट—सं०पु० [सं० कैवर्त्त, प्रा० केवट्ट] १ मल्लाह, पार लगाने वाला. २ एक वर्णसंकर जाति।

केवटणौ, केवटबौ—क्रि०स०—१ निभाना. २ बटोरना.

उ०—हाट वसै भूखी हसै, हाथ धरै कण हांण। कमर कसै जर केवटण, नहतर सैंज सवांण।- बां.दा. ३ सुधारना.

उ०—कतरण सीवण केवटण, लै दरजी चित चोर। रजधांनी संबू रचै, ते नरनायक ग्रोर।—अज्ञात

४ मांस को पकाने के योग्य कमा कर तैयार करना. ५ संभालना. ६ देखभाल करना, हिफाजत करना. ७ मितव्ययिता करना. (यौ० घर-केवटू) ८ कमाना।

केवटणहार, हारौ (हारी), केवटणियौ—वि०।

केवटाणौ, केवटाबौ, केवटावणौ, केवटावबौ—प्रे०रू०।

केवटिप्रोड़ौ, केवटियोड़ौ, केवटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

केवटीजणौ, केवटीजबौ—क्रि० कर्म वा०।

केवटीजिप्रोड़ौ, केवटीजियोड़ौ, केवटीज्योड़ौ—भू०का०कृ०।

केवटियौ—देखो 'केवट' (अल्पा०)

केवटियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ निभाया हुआ. २ सुधारा हुआ. ३ संभाला हुआ. ४ हिफाजत किया हुआ. ५ कमाया हुआ. ६ बटोरा हुआ। (स्त्री० केवटियोड़ी)

केवटू—वि०—१ निभाने वाला. २ सुधारने वाला. ३ मांस को कमा कर पकाने योग्य बनाने वाला. ४ मितव्ययी. ५ बटोरने वाला।

केवत—सं०पु०—१ कहावत, किंवदंती. २ अपयश, कलंक।

केवळ—सं०पु०—१ विष्णु (ह.नां.) २ श्रीकृष्ण (अ.मा.) ३ कल्याण. ४ एक छंद विशेष जिसमें एक तगण, एक जगण, एक यगण और अंतिम दसवां वर्ण दीर्घ होता है (ल.पिं)

वि०—१ मात्र, सिर्फ. २ एक मात्र। उ०—सुनाथ निपावण केवळ संत, चितायां ब्रह्मा हंस चरित्त।—ह.र.

३ शुद्ध, पवित्र।

केवळगत—सं०स्त्री० [सं० कैवल्य गति] चार प्रकार की मुक्तियों में से एक मुक्ति (अ.मा.)

केवळग्यांन—सं०पु० [सं० कैवल्य ज्ञान] १ त्रिविध दुखों की अत्यन्त निवृत्ति (सांख्य) २ विशेषदर्शी आत्मभाव की भावना अर्थात्

अहंकार की निवृत्ति (योगशास्त्र) ३ अद्वितीय ब्रह्मभाव की प्राप्ति (वेदांत) ४ दुःख की अत्यंत मुक्ति (न्याय)

केवळी-वि०—ज्ञानी। उ०—बाठ घड़ोई बरतण भांडा, कोस मुसायब केवळी। नर सेवक देव कुवांरा, चुके विरंडी देवळी।—दसदेव

केवळीविधिकळा-सं०स्त्री०—पुरुषों की बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला।

केवांण, केवांणी-सं०स्त्री० [सं० कृपाण] तलवार (ह.नां.) कृपाण, कटार।

उ०—जगपत्ती उण जोस मैं, रत्ती आग समांण। वनसपत्ती खळ जाळवा, करतत्ती केवांण।—रा.रू.

केवा-सं०पु०—१ दुःख, कष्ट, आपत्ति। उ०—सदव्रत करतोड़ी वरणा-स्त्रम सेवा, काढ़े मरतोड़ी रेवातट केवा।—ऊ.का. २ द्वेष, शत्रुता। उ०—सूरा बचन सुणेह, सांवण रा साचा सबद। दारण गोगादे, केवा काढ़ण कोपियौ।—गो.रू.

केवाड़-सं०पु०—कपाट। देखो 'किवाड़' (रू.भे.)

केवाट-सं०पु० [सं० किंवृत्तम्] (बाहु०) वृतांत, समाचार, खबर, विवरण।

केवियं, केवी-सं०पु०—१ शत्रु, रिपु। देखो 'केबी' (रू.भे) (ह.नां.)

उ०—१ करै धर पार की आपणी जिके नर, केवियां सीस खगपांण करणा कचर।—ह्य.झा.

उ०—२ वेच धवळ आवतड़ी, कांनां लाग कहंत। जिको मित मत जांणजे, केवी जांणं कंत।—बां.दा.

उ०—३ कांमिणि कहि कांम काळ कहि केवी, नारायण कहि प्रवर नर।—वेलि.

क्रि०वि०—कैसा, कैसी।

केवौ-सं०पु०—१ प्रतीकार, बदला, वैर। उ०—मांगेहू लेसी माय औ केवा उधरावसी।—पा.प्र. २ देखो 'केवा'।

केस-सं०पु० [सं० केश] १ सिर के बाल।

कहा०—१ केसां नै काटयां किसा मुड़दा हौळा हुवै— बाल काटने से कौन से मुर्दे हल्के हो जाते हैं; बड़ी एवं अधिकांश बुराइयों के रहते छोटी सी बुराई को दूर करने के यत्न बेकार हैं. २ नाई-नाई केस किता कै सांमै आय पड़ी—हे नाई ! मेरे सिर पर कितने केश हैं। (नाई उत्तर देता है) जितने भी हैं वे सब कटने पर तुम्हारे सामने आ जायेंगे; अभी भेद खुल जायगा; उतावला न बन कर थोड़ी प्रतीक्षा करनी चाहिए तब तक भेद आप ही आप प्रगट हो जाता है।

२ शेर या घोड़े के गले पर के बाल। (यौ० काळाकेस)

३ विश्व. ४ सूर्य्य. ५ विष्णु. ६ केसी नामक दैत्य जिसे कृष्ण ने मारा था (पि.प्र.)

केसकाट-सं०पु०—नाई, नापित (डिं.को.)

केसकार-सं०पु०—१ बाल काटने वाला, नाई, हज्जाम. २ बालों को सँवारने वाला।

केसट-सं०पु० [सं० केशट] कामदेव के पाँच बाणों में से शोषण नामक बाण।

केसबंध-सं०पु० [सं० केशबंध] नृत्य में हाथों को घुमाने का एक ढंग या क्रिया विशेष जिसमें हाथों को कंधे पर से घुमाते हुए कमर पर लाते हैं और फिर ऊपर सिर की ओर ले जाते हैं।

केसवाळ, केसवाळी-सं०स्त्री० [सं० केश+आवलि] १ घोड़े की गर्दन के बालों की पंक्ति (डिं.को.) २ घोड़े की अयाल पर धारण कराने का जालीनुमा आभूषण। उ०—केसवाळी रंग रंग री गुंथीजै छै, अगाड़ी पछाड़ी खोलजे छै।—रा.सा.सं.

केसमारजन-सं०पु०—कंघा (डिं.को.)

केसमारजनकौसळ-सं०पु०—बालों का मलना और तेल लगाना जो चौसठ कलाओं के अंतर्गत मानी जाने वाली एक कला है।

केसर-सं०पु० [सं०] १ फूलों के अन्दर बीचोबीच बाल की तरह पतले-पतले सींके या सूत. [सं०] २ ठंडे देशों में होने वाला एक पौधा जिसका केसर स्थायी सुगंध के लिए प्रसिद्ध है, जाफरान।

पर्याय०—कसमीरज, काळेक, काळेयक, कुंकम, कुंकुम, कुंकुमकाय, कूंकूं, केसर, गुड़वरण, गुड़बरणी, चंदण, दीपक, देववलभा, देव-वल्लभ, धीर, पिसुण, पीत, बाहलीक, मंगळकरण, मंगळकरणी, रकत, रगत, लोहूत, लोहित, वन्हिसिख, वाहलीकजा, संकज, संकोच, सुगन्ध।

३ घोड़े, सिंह आदि जानवरों के गर्दन पर के बाल, अयाल.

४ नाग केसर. ५ बकुल. ६ मौलश्री. [सं०] ७ स्वर्ग.

८ देववृक्ष (अ.मा.)

वि०—लाल, रक्तवर्ण* (डिं को.)

केसरबाई-सं०स्त्री०—मेहा चारण की पुत्री एक देवी जो करणी देवी की बड़ी बहिन थी।

केसरि—देखो 'केसरी' (रू.भे.)

केसरिपूत-सं०पु०—केशरी के पुत्र, हनुमानजी।

केसरियाकंवर-सं०पु०—१ राजस्थान के एक लोक देवता जो गोगाजी के आत्मीय पुत्र माने जाते हैं। इनको नागरूप माना गया है। भाद्र-पद मास के शुक्ल पक्ष की नवमीं को इनका पूजन किया जाता है.

२ पति (प्रायः इस अर्थ में यह शब्द केवल लोक गीतों में प्रयुक्त होता है)

केसरियानाथ-सं०पु०—जैनियों का एक तीर्थ-स्थान (बां.दा.ख्यात)

केसरियौ-सं०पु०—१ अफीम. उ०—तिण भांत री केसरियौ, पोतां घोळियौ मनुहारां हुवै छै।—डाढ़ाळा सूर री वात २ रसिक नायक।

उ०—१ घूंघटड़ो हट सूं घणौ, खोलंतां कर ख्यांत। केसरियै ली कबज में, भुवन मदन प्रिय भांत।—अज्ञात उ०—२ जीमण नै केसरिया बालमजी औ सियाळे घरे पधार।—लो.गी.

वि०—केसरिया रंग का, केसरिया संबंधी।

मुहा०—केसरिया करणौ—युद्ध में मरने के लिए तैयार होना।

केसरी-सं०पु० [सं० केसरिन्] १ सिंह (अ.मा.) २ घोड़ा (डिं.को.) ३ नाग केसर. ४ पुन्नाग. ५ बिजौरा नींबू. ६ हनुमानजी के पिता का नाम. ७ एक प्रकार का बबूला।

वि०—केसरिया रंग का, लाल।

केसरीनंदन, केसरीनंदनि, केसरीपूत–सं०पु०—केसरी के पुत्र हनुमान। (डि.को.)

केसरीसिंघोत सं०पु०—१ राठौड़ राव मालदेव के पौत्र केसरीसिंह के वंशज, राठौड़ों की एक उप शाखा. २ इस शाखा का व्यक्ति।

केसलुंच–सं०पु० [सं० केशलुंच] सिर के बाल नोंचने वाला, जैन यति।

केसव–सं०पु० [सं० केशव] १ विष्णु का एक नाम। उ०—केसव करुण किलांण कह, अलख अजोणी ईस।—ह.र. २ श्रीकृष्ण का एक नाम. उ०—तूं तणा अनैं तूं तणी त्री, केसव कहि कुण सकै क्रम।—वेलि. ३ ब्रह्मा. ४ परमेश्वर. ५ विष्णु के चौबीस मूर्ति-भेदों में से एक।

केसवराइ–सं०पु० [सं० केशव+राट्] श्रीकृष्ण (नां.मा.)

केसवाळी—देखो 'केसबाळी' (रू.भे.) उ०—जीण मांडै छै। केसवाळी रंग रंग री गूंथीजै छै।—रा.सा.सं.

केसवौ–सं०पु० [सं० केशव] १ विष्णु की चौबीस मूर्तियों में से एक. २ श्रीकृष्ण. ३ विष्णु।

केससेखरापीड़-योजन–सं०पु०—शिर पर पुष्पों से अनेक प्रकार की कारीगरी करना। चौसठ कलाओं के अन्तर्गत एक कला।

केसिनी–सं०स्त्री० [सं० केशिनी] १ जटामासी. २ सुन्दर व बड़े बालों वाली स्त्री. ३ एक अप्सरा. ४ रावण की माता का एक नाम।

केसियौ–सं०पु०—शिर के आजू-बाजू बालों में लगाया जाने वाला फूल।

वि०—रसिक (मि० 'लाल केसियौ')

केसी–सं०पु० [सं० केशिन्] १ एक असुर जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था. २ घोड़ा. ३ सिंह. ४ एक यादव का नाम।

वि०—१ किरण वा प्रकाश वाला. २ अच्छे बालों वाला।

केसू–सं०पु०—१ पलाश का वृक्ष, टेसू। उ०—पुहप करणि करि केसू पहिरे वनसपती पीळा वसन।—वेलि. (केसूड़ौ-अल्पा०)

केसूल केसूलौ–सं०पु०—१ ढाक के फूल, पलाश का पुष्प. २ देखो 'केसू' (रा.सा.सं.)

केहइ–वि०—१ कौनसा, किस। उ०—थळ मथ्थइ ऊजासड़उ, थे इण केहइ रंग। धण लीजइ अी मारिजइ, छांडि विडांणउ संग।—ढो.मा.

केहड़ली–वि०—कैसी। उ०—भेक धारतां कीदी भूंडी, कुबधां केहड़ली। —ऊ.का.

केहड़ौ–वि० (स्त्री० केहड़ी) कैसा।

केहर–सं०पु० [सं० केसरी] १ सिंह, शेर। उ०—जिण मारग केहर बुवौ, रज लागी तिणांह। ते खड़ ऊभा सूकसी, नह चरसी हिरणांह. —बां.दा.

[सं० केसर] बाल, केश। उ०—मूछा केहरी री केहर, लीजिया नामराज री मणि माडांणी फाटकि लेण री बळ होय तौ म्हांरा प्रस्थांन री राह रोकण री सलाह छै।—वं.भा.

केहरि, केहरी–सं०स्त्री०—१ करणी देवी की बहिन केसर बाई। देखो 'केसरबाई'।

सं०पु०—२ देखो 'केसरी'। उ०—१ बढ़ावत केहरि केहरि बाग, मखायुध गाजत भाजत नाग।—मे.म. उ०—२ केहरी जेम रण करण काज, केहरी मुक्ख मोड़ण सुबाज।—वि.सं.

केहवि–वि०—कैसी।

केहवौ–वि०—कौनसा। उ०—आकुळ थ्या लोक केहवो अचिरज, वंछित छाया ए विहित।—वेलि.

केहा–वि०—कैसा।
क्रि०वि०—कैसे।

केहि, केही–सर्व०—१ किस। उ०—रंग है किण धण री कुण वीर, केहि पथ रंग रजवौ नित आय।—सोफ २ क्या।

वि०—१ कौनसा. २ कैसा, कैसी। उ०—१ तुम्ह जावउ घर आपणइ, म्हांरी केही वात। दीहे-दीहे उसारिस्यां, भरिस्यां मांझिम रात। —ढो.मा.

उ०—२ केहो कीजे दुक्ख, केही आरति आंणियै। सिरज्यां पाखै सुक्ख, जिम तिम ही न मिळै जसा।—जसराज

३ कई, बहुत।

केहेक–सर्व०—कुछ। उ०—ताहरां सारा गोळ कर प्यादा मुंह आगे लेय असवार केहेक डावा, केहेक जीवणा नेय कह्यो। —डाढ़ाळा सूर री वात

केहौ–वि०—१ कैसा। उ०—वैद तणी बंसावळी, केहौ वाचण कांम। महा रोग जांमण मरण, निगम लिये तौ नाम।—ह.र.

२ कौनसा। उ०—हुवैं बि तेजी ऐकठा, केहौ काढ़ै कांन। ए हिंदू आराहड़ो, तू मुग्गळ असमांन।—रा.ज.रासौ
सर्व०—क्या।
क्रि०वि०—क्यों।

कैंकी–सर्व०—किसकी। कैंकी रोवै बैन-भांणजी, कैंकी रोवै माय। बंध में बैठ्यो कहै डूंगजी, सुण रे लोटया जाट।—डूंगजी जवारजी री पड़

कैंची–सं०स्त्री० [तु०] १ बाल, कपड़े आदि काटने या कतरने का उपकरण, कतरनी. २ कैंची की तरह एक दूसरे के ऊपर तिरछी रक्खी हुई दो सीधी तीलियां वा लकड़ियां. ३ वे दो तिरछी लकड़ियां जो सहारे के लिए छपर के बहुए में लगी हुई हों. ४ कुश्ती का एक पेंच. ५ मालखंभ की एक कसरत।

कैंडे–क्रि०वि०—कहां (क्षेत्रीय)

कैंत–सं०पु०—कपित्थ का वृक्ष (डि.को.)

कैंपा–सं०पु०—इमली का बीज (क्षेत्रीय)

कैंवार–सं०स्त्री० [सं० कीर्ति+वार=ढेर] कीर्ति, यश। उ०—सूरति संभाति तांई करै, करै कवि पात्र ताहरा कैंवार।—ल.पिं.

कै–सं०नपुं०—१ हिंजड़ा, क्लीव।

सं०पु०—२ मद (एका०) ३ पुरुष (एका०) ४ वायु।

सं०स्त्री०—५ सरस्वती. ६ वाणी. [अ० कै] ७ कै, वमन, उल्टी (एका०)

वि०—१ बलवान. २ पवित्र. ३ नम्र (एका०)
[सं० कति, प्रा० कइ] ४ कितने, कितना। उ०—कै मण घाल्या छै कोयला वो म्हांमेरा राज म्हेल में जी।—लो.गी.
अव्यय [सं० किम्] या, अथवा। उ०—आपै ही जणावसी, भलौ ज होसी वग्गि। कै मांगिण दरसावियां, कै ऊछजियां खग्गि।—हा.झा.
कहा०—१ कै घोड़ा घोड़ां में कै घोड़ा चोरां में—हानि-लाभ की परवाह न करके किसी काम में जुट जाने पर कही जाती है.
२ कै ते खाये मोट पणाये, कै खाये बैरपणाये। कै खाये मांनपणाये, तीन बाते चोड़ दिये ते वो है देवपणाये मांये—मनुष्य बड़प्पन की भावनाओं से, दूसरों की शत्रुता से, और अभिमान की भावना से आलस्यवश ही दुःख पाता है एवं नीचे गिरता है, तीनों को छोड़ने पर वह देवस्वरूप होता है. ३ कै ते चोतो हूनू करै कै करै सोनो—या तो चूना सूनापन पैदा कर देता है या फिर सोने जैसा संपत्तिशाली; घर बनवाने का कार्य सोच-समझ कर प्रारंभ करना चाहिए. ४ कै ते धन धणी खाय, कै धन धणिये खाय—धन का स्वामी धन का उपयोग करता है नहीं तो फिर धन पड़ा रहने से वह स्वामी को खा जाता है. ५ कै ते भार मां झेलै नै कै जमी झेलै—या तो भार मां ही उठाती है या जमीन ही; मां को पुत्र के लिए बहुत कष्ट उठाना पड़ता है. ६ कै तो रोकै पांणी नै कै रोकै दांणी—मनुष्य को या तो नदी, वर्षा आदि के कारण रुकना पड़ता है या कहीं कर (जकात) देना पड़ता हो वहां रुकना पड़ता है। इन दोनों की स्वीकृति के बिना आगे नहीं जाया जा सकता.
७ कै हंसा मोती चुगै, कै निरणा रह (भूखां मर) जाय—महान् व्यक्ति अपना सिद्धान्त कभी नहीं छोड़ते; स्वाभिमानी व्यक्ति स्वयं नष्ट हो जाते हैं किन्तु अपना स्वाभिमान नहीं छोड़ते।
सर्व०—किस। उ०—इसै तळाव आया, घोड़ा पाया। डेरो दीठो। कह्यो रै औ कै रो डेरो छै।—सयणी री वात

कैई-वि०—कई, कितने ही। उ०—करामात री बात साखात कैई, सता मात री चंद्र कूपादि सेई।—मे.म.

कैक-वि०—कई, कितने।

कैकळ-सं०स्त्री०—एक प्रकार का गारा। उ०—धोळख रूप सरूप धवळ माटी गाग्ळी, कैकळ काळे रंग, डागळां नाखण हाळी।—दसदेव

कैड़ो-वि० (स्त्री० कैड़ी) कैसा। उ०—कहो(नी) मारूजी थांरा मनड़ा री बात, कैड़े नै उणियारे गोरी थांरी फूटरी।—लो.गी.

कैटभ-सं०पु० [सं०] मधु नामक दैत्य का छोटा भाई जिसे विष्णु ने मारा था।

कैटभकंदन, कैटभकदन, कैटभाजित-सं०पु० [सं०] कैटभ नामक दैत्य को मारने वाले, ईश्वर (नां.मा., अ.मा.)

कैण-सं०पु०—चमड़े की बनी छोटी रस्सी जो चरस के ऊपरी हिस्से में कसी जाती है।

कैणा, कैणावत-सं०स्त्री०—१ कहावत. २ किंवदंती।

कैंणी-सं०स्त्री०—१ कहने का ढंग. २ कहने का भाव, कथनी।
उ०—दाता गुण ग्याता दूखण न देणूं, रैणी कैंणी सूं मू भूखण रैंणूं।—ऊ.का. ३ किंवदंती ४ कहावत।

कैंणो, कैंबो-क्रि०स०—देखो 'कहणो' (रू.भे.)

कैतन-सं०पु०—ध्वजा, झंडा (ह.नां.)

कैतव-सं०पु० [सं०] १ धोखा, कपट (अ.मा., ह.नां.) २ जुआ.
३ बहाना. ४ वैदूर्य मणि. ५ धतूरा. ६ मूंगा. ७ चिरायता।

कैतवापनति-सं०स्त्री० [सं० कैतवापन्हुति] वह अर्थालंकार जिसमें उपमेय का निषेध कैतव, व्याज, मिस आदि शब्दों के अर्थ द्वारा किया जाय।

कैतसाली-सं०स्त्री० [अ० कहत-साली] अकाल, दुष्काल। उ०—जेती भूमि भैरूं रावराजा की दुहाई, कीनूं राज जेतै कैतसाली भी न आई।
—शि वं.

कैतूहळ-सं०पु० [सं० कौतूहल] देखो 'कौतूहळ'। उ०—मिटै रंग राग चहल, हासरांमत कैतूहळ।—पहाड़खां आढ़ौ

कैथ-क्रि०वि०—कहां (क्षेत्रीय) उ०—नह बहमन नौसेरवां, अफरासयाब न ऐथ। फरेदून नमरूद फिर, कयूमरस गौ कैथ।—बां.दा.
सं०स्त्री०—कपित्थ का वृक्ष (डि.को.)

कैद-सं०स्त्री० [अ०] १ बंधन, अवरोध. २ कारावास, जेल।
पर्याय०—अटक, जेर, बंध, रुकत, रोकण।
३ किसी प्रकार की शर्त, अटक या प्रतिबंध।

कैदखानो-सं०पु० [फा० कैदखाना] वह स्थान जहां कैदी रक्खे जाते हों, बंदीगृह, जेलखाना।

कैदतनहाई-सं०स्त्री०—वह कैद जिसमें कैदी को बहुत ही छोटी और तंग कोठरी में अकेले रखा जाय, कालकोठरी।

कैदमहज-सं०स्त्री० [अ०] ऐसी कैद जिसमें कैदी को किसी प्रकार का परिश्रम या काम न करना पड़े, सादी कैद।

कैदारी-सं०पु०—भाटों की एक शाखा। प्रातःकाल भीगे हुए कपड़े ओढ़ कर गांवों में फेरी देने वाले भाट। इन्हें वासुदेवा भी कहते हैं।
रू.भे.–'केदारी' (म.मा.)

कैदी-सं०पु० [अ०] जो कैद किया गया हो, बंदी।
पर्याय०—उपग्रह, ग्रह, ग्रहक, प्रग्रह, बंदी।

कैदीखांनो—देखो 'कैदखांनो' (रू.भे.)

कैधों-अव्यय—१ या, अथवा. २ मानो।

कैन-वि०—कौन, कौनसा।

कैन, कैने-सर्व०—किसको। उ०—साच कहो थे कोण छो, अर पाताळ कैनूं पासै, राख हर नमस्कार करो छो।—चोबोली

कैप-सं०स्त्री० [अं०] टोपी।

कैफ-सं०पु० [अ० कैफ] १ नशा मद. २ अफीम (डि.को.)

कैफियत-सं०स्त्री० [अ०] १ समाचार, हाल, वर्णन, विवरण, तफसील.

कैम-सं०पु०—एक वृक्ष विशेष।

कैमखांनी-सं०पु०—एक जाति जो पहले राजपूत थी किन्तु अब मुसलमान है। इनके बहुत से रीति-रिवाज राजपूतों से मिलते-जुलते हैं। (बां.दा. ख्यात)

कैमर, कैमरी-सं०पु०—धनुष। उ०—१ कैमरां मार हिक वार कोध, दूसरां खिलै चाढ़ण न दीध।—वि.सं. उ०—२ जड़ जमदढ़ जीमणै, कमर जड़कै केवांणां। कियो पूर कैमरी, भोड़ ऊपरा भाथारी। —बखतो खिड़ियो

कैमल-सं०पु० [सं० क्रमेलक] ऊंट।

कैयां-क्रि०वि०—किस प्रकार, कैसे।

कैर-सं०पु०—मरुभूमि में होने वाला एक प्रकार का पत्तविहीन कांटेदार वृक्ष व उसके फल, करील।

कहा०—१ कैर आलो भी बळै नै सासू सीधी ई लड़ै—कैर की लकड़ी गीली भी जल जाती है तथा सास अगर सीधी भी हो तोभी बहू से लड़ती है; सास कैसे भी अच्छे स्वभाव की क्यों न हो, वह बहू से अवश्य लड़ती है; सास की बुराई. २ कैर री कांटो वढ़घो साढ़ी सोळै हाथ—करील का कांटा बढ़ा साढ़े सोलह हाथ; बहुत गप्प कहने वाले पर. ३ थारै मूंडै नै कैर रो कांटो—तेरे मुंह के लिए कैर का कांटा; जैसे कैर का कंटक चुभ कर कष्ट देता है वैसे ही तेरे शब्द लोगों को कष्ट देते हैं; बुरे वचन कहने वाले के लिये कि तेरी जीभ में कैर वृक्ष के कांटे लगें. ४ मौका री छाया कैर री ही भली, बिना मौके बड़लो भी चोखो नहीं—मौका पड़ने पर कैर वृक्ष की छिछली छाया भी अच्छी लगती है और बिना काम के वटवृक्ष की घनी छाया भी बेकार है; समय पर जो काम आ जाय वही ठीक है।

अल्पा०—'केरड़ियो, कैरड़ो'।

कैरड़ियो—देखो 'कैर' (अल्पा०)

कैरव-सं०पु०—१ कौरव (महाभारत) उ०—व्यास बिगाड़घो वंस, कैरव निपज्या जेण वंस। असली व्है ता अंस। सरम न लेता सांवरा। [सं०] २ कुमुद। —रांमनाथ कवियो

कैरव-बळण-सं०पु०—भीम (ह.नां.)

कैरवि, कैरवी-सं०स्त्री० [सं० कैरविणी] १ कुमुदिनी।

सं०पु०—२ चंद्रमा।

कैरी-सं०स्त्री० [सं० केकरी] १ आम का कच्चा और छोटा नया फल। उ०—केळी, कैरी कांमणी, पीव मित्र परधांन। इतरा तो पाका भला, काचा ना'वै कांम।—अज्ञात

सं०पु०—२ वह बैल जिसकी एक आंख में वलय के आकार की कुंडली हो (अशुभ) ३ एक प्रकार का घोड़ा जिसकी एक आंख निर्मल हो तथा दूसरी आंख में चक्र हो (शा.हो.)

वि०—भूरे रंग की, ललाई मिले सफेद रंग की (आंख)

सर्व०—किसकी (पु० कैरी)

कैरीकबूतर-सं०पु०—रंग विशेष का एक घोड़ा (शा.हो.)

कैरूंदो-सं०पु०—एक प्रकार का खट्टे फलों वाला पेड़ व उसका फल।

कैरूड़ी-सं०स्त्री०—मिट्टी का छोटा सा पात्र जिसमें स्त्रियां व्रत आदि की कहानियां सुनाते समय गेहूं या बाजरा भर देती हैं और पूजा कर स्त्रियों को भेंटस्वरूप अर्पित करती हैं।

कैरो-सं०पु०—कौरव।

सर्व० (स्त्री० कैरी) किसका। उ०—अजैपाळ बोलियो—रे तूं बाप कैरो, कुणनै बेटो कहै छै।—पलक दरियाव री बात

कहा०—१ कैरा जायोड़ा कैनै दुख दे—विदेशी अथवा अवांछित व्यक्तियों के प्रति. २ कैरी मां (सेर) सूंठ खाई है—किसी कार्य को करवाने के लिए लोगों को उकसाने की उक्ति।

कैलड़ी-सं०स्त्री०—मिट्टी का बना रोटी सेंकने का तवा।

कैलपुर, कैलपुरो—देखो 'केलपुर' (रू.भे.) उ०—कळहरिए सूं कीतियां कैलपुरो, चाढ़ै साह नरो वड चीत। —नारायणदास सक्तावत

कैळास-सं०पु० [सं० कैलास] १ हिमालय की एक चोटी का नाम जो तिब्बत में है। यह शिवजी का निवास-स्थान माना जाता है (पौराणिक) २ स्वर्ग।

कैळासउथाळ-सं०पु०—रावण (अ.मा.)

कैळासनृप-सं०पु० [सं० कैलास+नृप] महादेव, कैलाशपति (डिं.को.)

कैळासपत, कैळासपति, कैळासपती-सं०पु० [सं० कैलास+पति] महादेव, शिव (डिं.को., अ.मा.)

कैळासपुरी—देखो 'कैळास' (रू.भे)

कैळासी-सं०पु०—१ कैलास निवासी, महादेव. २ कुबेर।

कैळि——देखो 'केळ'। उ०—जंघस्थळ जिसौ करभ कहीजै, दूसरा द्रस्टांत जिसउ कैळि को पेड़ होय।—बेलि. टी.

कैलू-सं०पु०—खपरैल। उ०—१ जियै मारग आयो हुतो तीयै ही मारग अपूठो उतरियो। कैलू ज्यूं हुता त्यूंहीज दिया।—चौबोली उ०—२ पड़वो कैल्हूयां सु छायो।—चौबोली

कैवच—देखो 'कैंवच' (रू.भे) (नां.मा.)

कैवणो, कैवबो—देखो 'कहणो' (रू.भे.)

कैवणहार, हारो (हारी), कैवणियो—वि०।

कैवाणो, कैवाबो—स०रू० (प्रे०रू०)

कैवावणो, कैवावबो—(प्रे०रू०)

कैवियोड़ो, कैवियोड़ो, कैव्योड़ो—भू०का०कृ०।

कैवीजणो, कैवीजबो—कर्म वा०।

कैवत-सं०स्त्री०—१ कहावत. २ किंवदंती।

कैवल्य-सं०पु० [सं०] १ शुद्धता. २ एकता. ३ त्रिविध दुःखों की अत्यंत निवृत्ति को कैवल्य माना जाता है और विवेक को उसका एक मात्र साधन बतलाया है (सांख्यशास्त्र) ४ योगशास्त्र में विशेषदर्शी आत्म-भाव की भावना अर्थात् अहंकार की निवृत्ति को कैवल्य बताया है।

कैवा–सं०पु० [सं० कष] १ कसर, दोष, कमी. २ कलंक. ३ अवगुण।

कैवाणौ, कैवाबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०)—कहलाना। उ०—दसकंधर भ्राता, बुध के दाता, वचन विधाता, कैवाता। सो नाह सुहाता, परजळ गाता, उरले लाता, मुरझाता।—भगतमाळ

कैवायोड़ौ–भू०का०कृ०—कहलाया हुआ। (स्त्री० कैवायोड़ी)

कैवार–सं०पु०—१ डिंगल का वह गीत (छंद) विशेष जिसके विषम चरणों में १६ मात्रायें और सम पदों में ६ मात्रायें और तुकांत में गुरु हो. २ प्रत्येक चरण में २२ मात्रा का एक मात्रिक छंद विशेष (ल.पिं.)

सं०स्त्री० [सं० कीर्ति+वर] ३ स्तुति, यश, कीर्ति।

उ०—१ कापियां ज्यां कमळ कीरती कारण, खत्रियां आगै कहै खंगार। कळिजुग तणा संतोखी कवियण, करै गरथ दीने कैवार।—खंगार रायमलोत सींधल री गीत उ०—२ धवळ सरीखो धवळ है, की कीजे कैवार। जेतौ भार भळावियै, तेतौ खंचणहार।—बां.दा.

कैवावणौ, कैवावबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०)—कहलाना (रू.भे. 'कैवाणौ')

कैवीजणौ, कैवीजबौ–क्रि० कर्म वा०—कहा जाना।

कैवौ–सं०पु०—युद्ध, कलह, टंटा-बखेड़ा। उ०—पूजीजे धूहड़ प्रतक, प्रगट मांड लख पाळ। कैवा लेवण कड़खियौ, 'पाल' अनै रांयपाळ।—पा.प्र.

कैसिकनिसाद–सं०पु० [सं० कैशिकनिषाद] संगीत में एक विकृत स्वर जो तीव्र नामक श्रुति से आरम्भ होता है और जिसमें तीन श्रुतियाँ लगती हैं।

कैसिकपंचम–सं०पु० [सं० कैसिकपंचम] संदीपनी नामक श्रुति से आरम्भ होने वाला संगीत में एक विकृत स्वर जिसमें चार श्रुतियाँ लगती हैं।

कैसिकी–सं०स्त्री० [सं० कैशिकी] नाटक की प्रमुख चार वृत्तियों में से एक। वि०वि०—यह वृत्ति ऐसे नाटकों में पाई जाती है जिसमें शृंगाररस की बाहुल्यता हो। अधिकांशतया ऐसे नाटकों में स्त्री पात्र होते हैं और गीत, नृत्य, भोग-विलास और वाद्य इत्यादि का अधिक प्रदर्शन किया जाता है।

कैसियर–सं०पु० [अं०] खजाची।

कैसो'क–वि०—कैसी। उ०—तद डाढ़ाळ कही—जायगा कैसो'क बनाऊं जांणै दूसरो सरग हीज छै।—डाढ़ाळा सूर री वात

कैसोहेक–वि०—कैसा। उ०—सोना रो पिलंग कसणां कमियो छै, सो कैसोहेक सोभायमान दीसै छै।—रा सा.सं.

कैहलवौ–सं०पु०—खपरैल (मि० 'कैलू' रू.भे.)

कैहवत—देखो 'कैवत' (रू.भे.) उ०—कैहवत सारै ही कहै, है जाहर आहाल। कहूं जिकां री कोटड़ी, धणी जिकां रै पाल।—पा.प्र.

कैही–वि०—१ कैसा, कैसी। उ०—तांम धारै मगज धांम सुरतांणिया, कुसळ वाळा करां कीत कैही।—सुरतांणसिंह री गीत

२ कौनसी. ३ कई।

कोंकण–सं०स्त्री०—परशुराम की माता रेणुका का एक नाम।

कोंकणियार–सं०पु०—रहट पर समय निश्चित करने के लिये लकड़ी के चक्र के मध्य में खड़े स्तंभ पर डोरे व पतली रस्सी के गट्टे लगाने की लकड़ी की कीली।

कोंकणी–सं०स्त्री० [सं०] १ कोंकण देश की भाषा जो आर्य और द्राविड़ भाषा के मेल से बनी है. २ चांदी का एक प्रकार का हाथ का कंगन।

कोंकर–क्रि०वि०—१ क्योंकर. २ कैसे।

कोंचा–सं०पु० [सं० कच=बंधने] बहेलियों की चिड़िया फँसाने की लासा लगी हुई लंबी छड़।

कोंण–सर्व०—कौन। उ०—गिरधर रूसणां जी कोंण गुन्हां, कछु इक औगुण काढ़ो म्हांमैं म्हे भी सुणां।—मीरां

को–सं०पु०—१ शोक. २ सोना. ३ चातक. ४ बालक. ५ क्रोध. ६ बाज पक्षी (एका.) ७ देखो 'कोपांन'. ८ मोट, चरस।

वि०—१ कोई। उ०—१ न को आवइ पूगळइ, सहु को नरवर जाइ। मारू-तणा संदेसड़ा, बगड़ बिचा हू खाय।—ढो.मा.

उ०—२ अकरम करम उपाय कर, जागविया तें जीव। जगपत को जांणै नहीं, गत थारी हैग्रीव।—ह.र. २ कौन। उ०—एक गात एती वात, एक साथ एक हाथ। करबौ विख्यात ऐसो, दूसरौ दिखात को।—जैंतदांन बारहठ ३ कुछ। उ०—वीरसमद वडो तळाव छै, तठै पातसाहजी को दिन रह्या।—नैणसी ४ कितना, कितने।

क्रि०वि०—कभी नहीं।

कहा०—मरौ मा जीवौ मासी को घी घालौ को गोडा हालै, माता मर जाय, मासी जीवती रहे—न मासी घी डालेगी और न चलने की स्फूर्ति होगी जो युद्ध में जा सकूं।

अव्यय—संबंधसूचक अव्यय—का। उ०—छोडत न छिपी निध छीन लेत मध्य छिपा, छाये छळ वंचक न खात हात हात को।

—जैंतदांन बारहठ

कोइ, कोइक–सर्व०—कोई। उ०—ताळि चरंतइ कुंझड़ी, सर संधियउ गँमार। कोइक आखर मनि बस्यउ, ऊडी पंख संभार।—ढो.मा.

कोइट, कोइटौ—देखो 'कोयटौ' (रू.भे.)

कोइन–सं०स्त्री० [अं० क्वीन] रानी, सम्राज्ञी।

कोइयक–सर्व०—कोई।

कोइयन–सर्व०—कोई।

यौ०—कोई नहीं। उ०—ए मा हींडे हींडण गयी आज मैं कोइयन हींडे हिंडायी।—लो.गी.

कोइयौ–सं०पु०—सूत या ऊन आदि का लच्छा।

कोइल–सं०स्त्री० [सं० कोकिल] १ कोयल। उ०—आंबा की डाळि कोइल इक बोलै, मेरो मरण अरु जग केरी हांसी।—मीरां

२ छप्पय छंद का १६ वां भेद जिसमें ५२ गुरु ४८ लघु कुल १०० वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं (र.ज.प्र.)

कोई-सर्व० [सं० कोपि, प्रा० कोवि] १ ऐसा एक (मनुष्य या पदार्थ) जो अज्ञात हो, न जाने कौन एक, ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो.
२ बहुतों में से चाहे जो एक।
कहा०—१ कोई गावै होळी री, कोई गावै दिवाळी री—असंबद्ध वार्तालाप पर; जब कहने वाला कुछ कहे परन्तु दूसरा उसका कुछ दूसरा ही उत्तर दे तब कही जाती है. २ कोई चालै चाकरी ताज्यौ तुरक तयार—अयोग्य व्यक्ति के प्रत्येक काम करने को उद्धत रहने पर व्यंग्य. ३ कोई बाबौ आवै नै कोई ताळी बाजै—न तो बाबा आवै और न ताली बजे; साधन न होने के बहाने काम न करने पर.
४ कोई जीम'र राजी व्है कोई जीमा'र राजी व्है—कोई खा कर प्रसन्न होता है तो कोई खिला कर. ५ कोई पूछै न ताछै हूं लाडे री भूवा—बिना पूछे-ताछे किसी बात या कार्य के बीच में कूद पड़ने पर. ६ कोई फिरै डाळ डाळ, हूं फिरूं पात-पात—चतुर आदमी से गुप्त भेद या चालाकी छिपाई नहीं जा सकती।
क्रि०वि०—१ एक भी. २ लगभग, करीब-करीब।

कोईक-सर्व०—१ देखो 'कोई' (रू.भे.) उ०—उतारै कोईक सेवक इसी आं संतां री आरती।—ऊ.का. २ किस, किसी।
उ०—जरै उठा ही सूं पीठहव भुवा रौ भवन छोडी कोईक प्रतीतां री जमाति रै साथ बेड़ी रै बळ।—वं.भा.

कोईकौ-वि०—कोई सा।

कोईरौ-वि० [सं० कोथी, प्रा० कोही] १ तुच्छ विचार या सिद्धांत वाला व्यक्ति. २ मन ही मन कुढ़ने वाला, बुरा चाहने वाला।

कोईली—देखो 'कोयल' (रू.भे.) उ०—वनखंड काळी कोईली, बइसती अंब कइ चंप की डाळि।—वी.दे.

कोईलौ-सं०पु०—कोयला। उ०—ऊंडा तहखानां मांहे खैर कोईलां री मकालां जगाड़ीजै छै।—रा.सा.सं.

कोउ, कोऊ-सर्व०—कोई।
सं०स्त्री० [सं० कुपक] अग्निकुंड। देखो 'कउ' (१) (रू.भे.)

कोऊक-सर्व०—कोई।

कोक-सं०पु० [सं०] (स्त्री० कोकी) १ चकवा पक्षी (डिं.को.)
उ०—दिन सकुचीजै कोक नद, कोक न कोकी संग।—बां दा.
२ रति-शास्त्र का ज्ञाता एक पंडित. ३ काम-शास्त्र।
उ०—१ मळी तदि साध सुरमण कोक मनि, रमण कोक मनि साध रही।—वेलि. उ०—२ दंपति प्रवीन रति कोक विधि, दिन छिनदा संभोग रत।—ला.रा. ४ संगीत का छठा भेद जिसमें नायिका, नायक, रस, रसाभास, अलंकार, उद्दीपन, आलंबन, समाज और समाजादि का ज्ञान आवश्यक होता है।
सर्व०—कोई।

कोककळा-सं०स्त्री० [सं० कोककला] १ रति-विद्या, काम-कला, रति-शास्त्र। उ०—भोगे कोककळा बळे, गुणकळा चिंतामणी साकळा।
२ संभोग, रति। —रा.सा.सं.

कोकड़-सं०पु० [सं० कौकुट] १ बाल-बच्चे. २ पीलू वृक्ष के सूखे फल।

कोकड़ियौ-सं०पु०—देखो 'कोकड़ी' (१, २) (अल्पा०)

कोकड़ी-सं०स्त्री० [सं० कुक्कुटी] १ कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा जो कात कर तकले पर से उतारा जाता है. २ इस उतारे हुए या इस प्रकार अन्य विधि से बनाए गए सूत की लच्छी. ३ मदार का डोडा या फल. ४ पीलू वृक्ष के सूखे फल जो पशुओं को खिलाए जाते हैं. ५ बंध, बंधन। उ०—लकड़ी रा कूंदा छै, रूपै री तारां रा, कोकड़ी सीरम, सपेतै रा बंध छै।—रा.सा.सं.

कोकणौ, कोकबौ-क्रि०स०—१ कच्ची सिलाई करना, कच्चा करना.
२ प्रहार हेतु शस्त्र उठाना. ३ बुलाना। उ०—कोकै पांडवौ अरी परधांन, दीधौ छै जब तिहां चउगुणउ मांन।—वी.दे.
३ भाले से छेदना, मारना। उ०—बांध चाळा चौ तरफां रोकियौ थाहरां बीच, चढ़े इंद्र अटा हूं विलोकियौ सचाळ। भीम नाद अथा-जतौ तोकियौ गैणाग भुजा, लाग खैटै रायजादै कोकियौ लंकाळ।
—अज्ञात

कोकदेव-सं०पु०—कोकशास्त्र या रतिशास्त्र का रचयिता एक काश्मीरी पंडित।

कोकन-सं०पु०—दक्षिण भारत का एक प्रदेश (रू.भे.-'कोंकण')

कोकनद-सं०पु० [सं०] १ लाल कमल। उ०—मकरंद तंबोळ कोकनद मुख मझि, दंत किंजळक दुति दीपंति।—वेलि. २ कमल (ह.नां.)
३ श्वेत कमल जो चंद्रमा उदय होने पर खिलता है। उ०—कोकन सिर खड़िया कटक, तैं सिधराव अभंग। दिन सकुचीजै कोकनद, कोकन कोकी संग।—बां.दा.

कोकर-सं०पु०—कंकड़ (रू.भे.) उ०—रोड़ा पत्थर ईंट चिपावै माटी गारै, कोकर खोरा खड़ी वाटड़ी संचै सारै।—दसदेव

कोकरड़ी-सं०स्त्री०—१ वह बकरी जिसके कान छोटे होते हैं.
२ देखो 'कोकड़ी' (अल्पा०)

कोकरी-सं०स्त्री०—हल के जुए के मध्य में लगाई जाने वाली काष्ठ की कीली।

कोकरौ-सं०पु०—रहंट में बैलों को जोतने के जुए के मध्य में लगी हुई लोहे की कील।

कोकळ-सं०पु० [सं० कौकुट] बाल-बच्चों का परिवार (प्रायः अभावा-वस्था में अधिक संतान के लिए यह प्रयुक्त होता है)
उ०—छिन छिन खाती विष चढ़ती निज छाती, मोकळ चाकळ में कोकळ नह माती।—ऊ.का.

कोकल-सं०स्त्री० [सं० कोकिल] कोयल। उ०—ग्रीवा मोरसी, बोली कोकल सी, अधर प्रवाळी, दांत दाड़मी कुळी।—रा.सा.सं.

कोकला-सं०स्त्री० [सं० कोकिला] १ कोयल. उ०—सुरं कलीप कोकला कनक कुंभ से स्थणं।—पा.प्र. २ बिना छिलका उतारी हुई सूखी ककड़ी के छोटे खंड।

कहा०--धूड़धांणी नै कोकलापांणी—नि:सार कार्य या फल के लिए।

कोकव–सं०पु० [सं०] पूरवी बिलावल, केदारा, मारू और देवगिरी से मिला कर बनाया गया एक संकर राग (संगीत)

कोकसार, कोकसास्त्र–सं०पु० [सं० कोकशास्त्र] कोक कृत रतिशास्त्र, कामशास्त्र।

कोका–सं०पु० [अं०] १ दक्षिणी अमेरिका का एक वृक्ष जिसकी सुखाई हुई पत्तियां चाय या कहवे की भांति शक्तिवर्द्धक समझी जाती हैं. (रा०) २ कंकड़।

कोकारी–सं०स्त्री०—१ चीत्कार. २ तेज आवाज।

कोकाह–सं०पु० [सं०] सफेद रंग का घोड़ा (डिं.को.)

कोकिल–सं०स्त्री० [सं०] १ कोयल (डिं.को.) २ छप्पय का १९ वां भेद जिसमें ५२ गुरु, ४८ लघु, अर्थात् १०० वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं. ३ जलता हुआ अंगारा. ४ बावन युद्ध-प्रिय वीरों में से एक (वं.भा.)

कोकिला–सं०स्त्री० [सं०] कोयल।

कोकिलासण, कोकिलासन–सं०पु०—चोरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन जिसमें पद्मासन की तरह बैठ कर दाहिने पांव के अंगूठे को दायें हाथ से तथा बांयें पांव के अंगूठे को बांयें हाथ से इस तरह पकड़ा जाता है कि पीछे ठेउनी पर बोझ पड़े। इसी चाल से शरीर को सामने झुका कर ठेउनिओं को पृथ्वी पर टिकाया जाता है।

कोकींव—देखो 'कोकीन' (रू.भे.)

कोकी–सं०स्त्री०—चकवी (देखो 'कोका' पु०) उ०—कोकन सिर खड़िया कटक, ते सिधराव अभंग। दिन सकुचीजै कोकनद, कोक न कोकी संग।—बां.दा.

कोकीन–सं०स्त्री० [अं० कोकेन] कोका नामक वृक्ष की पत्तियों से तैयार की हुई एक प्रकार की औषधि जो गंधहीन और सफेद रंग की होती है। यह कुछ अंगों को सुन्न करने के काम में आती है।

कोको–वि०—थोथा, खोखला, पोला।

कोख–सं०पु० [सं० कुक्षि, प्रा० कुक्खि] १ उदर, जठर, पेट. २ पसलियों के नीचे पेट के दोनों ओर बगल का स्थान. ३ गर्भाशय।

कोखजळी–सं०स्त्री० [सं० ज्वलित-कुक्षि] वह स्त्री जिसके संतान होकर मर जाती हो।

कोखबंद–सं०स्त्री०—बांझ, बंध्या।

कोखयक–सं०स्त्री० [सं० कौक्षेयक] तलवार, कृपाण (ह.नां)

कोखा–सं०पु०—खलिहान में गेहूं साफ करते समय गेहूं के साथ गिरने वाला वह मोटा भूसा जिसमें अनाज कुछ अंशों में शेष रह जाता है।

कोखियक—देखो 'कोखयक' (रू.भे.) (अ.मा.)

कोगत–सं०स्त्री० [सं० कौतुक] हंसी-मजाक, दिल्लगी।

कोगति, कोगती–वि० [सं० कौतुहकी] दिल्लगी करने वाला, मसखरा। सं०स्त्री०—बुरी गति, अधोगति।

कोड़–वि० [सं० कोटि] करोड़, कोटि। उ०—कोड़ दरब दीधौ कनै, सवा कोड़ पहु सींग। श्रीकांणी वाता वडा, उभै हुआ अरडींग।—बां.दा.

सं०पु० [सं० क्रोड़] १ दोनों बांहों के बीच का भाग, वक्षःस्थल, गोद. [सं. कोटि] २ करोड़ की संख्या।

कहा०—कुमांणसां कोड़ विघन है—बुरा व्यक्ति करोड़ों विघ्नों का कारण बन जाता है।

३ सूअर (नां.मा.)

कोड़पसाव–सं०पु० [सं० कोटि प्रसाद] करोड़ रुपयों के मूल्य का पुरस्कार। उ०—उर वधत हरख अमाप, सुण-सुण स्रवै कोड़पसाव।
--र.रू.

कोड़वरीस–सं०पु०—करोड़ रुपयों के मूल्य का पुरस्कार या दान देने वाला व्यक्ति। उ०—वसुधा कोड़वरीस, कुण थारी समवड़ करै।
—पा.प्र.

कोड़ि–वि० [सं० कोटि] १ करोड़। देखो 'कोड़'। उ०—साहिब रहउ न राखिया, कोड़ि प्रकार कियांह। का थां कांमिण मन वसी, का म्हां दूहवियाह।—ढो.मा. २ देखो 'कोड़' (रू.भे.)

कोडिक–सं०पु० [सं० कोटिक] कसाई (डिं.को.)

कोड़िटंकावळी–वि०—करोड़ रुपये के मूल्य का। उ०—राज कीउयौ घरि आपणइ, रांणी नइ दीयौ कोड़िटंकावळी हार।—वी.दे.

कोड़ियौ—देखो 'कोडियौ' (रू.भे.)

कोड़ी–सं०पु० [सं० क्रोड़] १ सुअर (डिं.को.)

सं०स्त्री०—२ बीस की संख्या।

वि० [सं० कोटि] करोड़ रुपये का। उ०—कमाळा लदे लक्ख त्यां द्रव्व कोड़ी, सकट्टां लठां भार ज्यौ टांस जोड़ी।—रा.रू.

कोड़ीआळ–सं०पु० [सं० क्रोडपाल] सूअर।

कोड़ीक, कोड़ीग–वि० [सं० कोटिक] १ करोड़, अगणित, बहुत. २ करोड़ रुपए का, अमूल्य। उ०—१ सिरदार सुतन अहरण समर, राज लाज राखे रह्यौ। कोड़ीक नग' सेरो' कमंध, गांठ हूंत छूटै गयौ।
—पहाड़खां आढ़ौ

उ०—२ कियौ जुड़ै मूघड़ै कूरम, जड़ सार वप जुवौ जुवौ। कीमत लाख फतावत कहतां, हमैं रतन कोड़ीक हुवौ।
—रांमो आसियौ

कोड़ीदड्ढौ–सं०पु० [सं० क्रोडदंत] १ सूअर. २ वराहवतार।

कोड़ीधज–सं०पु० [सं० कोटिध्वज] १ करोड़पति। उ०—कोड़ीधज व्यापारी रहै।—चौबोली २ एक घोड़ा विशेष (वी.दे.)

वि०—करोड़ के मूल्य का, मूल्यवान। उ०—सूंप्या वागा सावटू, कोड़ीधज केकांण। आम्हा साम्हा आपिया, प्रीत घर्ड परिमांण।
—ढो.मा.

कोड़ू, कोड़ेक–वि०—१ करोड़. २ करोड़ के लगभग।

उ०—पड़िया करक्षारां जहर पाय, इंद्र रा वज्र कोड़ेक आय।
—वि.सं.

सं०स्त्री०—करोड़ की संख्या ।

कोच-सं०पु० [अं०] १ एक प्रकार की चार पहियों की घोड़ागाड़ी. २ गद्देदार बढ़िया पलंग ।

[सं० कवच] ३ कवच, बख्तर । उ०—सुण हेली हीलै सहज, लेणी पहवै लोच । कंत सजंतां सौ गुणी, कड़ी बजंतां कोच ।

—बी.स.

कोचबकस, कोचबक्स, कोचबगस-सं०पु०यौ० [अं० कोच+बॉक्स] घोड़ा-गाड़ी में वह ऊँचा स्थान जिस पर हाँकने वाला बैठता है ।

कोचर—१ देखो 'कोचरी' । उ०—भाय अमंगळ ग्रंब भुकाई, कोचर कंठ कुसंप कुकाई ।—ऊ.का.

सं०पु०—२ दांतों में होने वाला सुराख. ३ छेद, सुराख. ४ कोटर ।

कोचरणौ, कोचरबौ-क्रि०स० [सं० कूर्चन] देखो 'कुचरणौ' (रू.भे.)

कोचरियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'कुचरियोड़ौ' (स्त्री० कोचरियोड़ी)

कोचरी-सं०स्त्री०—शमी के पोले हिस्से में निवास करने वाला एक मादा पक्षी जिसके बोलने पर लोग शकुनों पर विचार करते हैं । यह उल्लू की प्रकृति व आकृति की होती है किन्तु आकार में उससे छोटी होती है । दिन में यह देख नहीं सकती । उ०—सासूजी मनै बांवो तीतर बोल्यो, एक डाळी बोली कोचरी ।—लो.गी.

पर्याय०—देवी, भैरवी, भवांनी, चीबरी ।

कोचवांन-सं०पु० [अं० कोचमैन] घोड़ा-गाड़ी हाँकने वाला ।

कोची-सं०स्त्री०—सप्त पुरियों के अंतर्गत एक तीर्थ, कांची (अ.मा.)

कोचीन-सं०पु०—दक्षिण भारत की एक प्राचीन रियासत जिसका विलय केरल प्रांत में हो चुका है ।

कोज-सर्व०—कोई । उ०—कुरांण पुरांण वचांण न कोज, हुतौ ज हुतौ ज हुतौ ज हुतौ ज ।—ह.र.

कोजळिया-सं०पु०—बिना धोया हुआ कलप लगा लट्ठा (कपड़ा) जिसको ओढ़ने के काम में लेते हैं (पुष्करणा ब्राह्मण)

कोजौ-वि० [सं० कु+ओज] १ कुरूप, भद्दा, बदसूरत. २ बुरा, अनिष्टकर (यौ० कोजौ-कुररौ)

कोजौ-कुररौ-वि० [यौ०] बदसूरत, भद्दा, बेढ़ंगा ।

कोझौ-वि० (स्त्री० कोझी) देखो 'कोजौ' (रू.भे.) उ०—काळी कांणी कोझी कांमण, अपणी परणी आछी । अबछर आभ अवर अरधंगा, पदमण धरिये पाछी ।—ऊ.का.

कोट-सं०पु० [सं० कोट्ट] १ दुर्ग, गढ़, किला । उ०—चाचरै गयण चक-चूर चोट, कांगरा अंबारथ भुरज कोट ।—वि.सं.

कहा०—कोट रूंधै जकां रा—किले उन्हीं के पहले होते हैं जिनका उन पर पहले कब्जा होता है ।

२ शहरपनाह, प्राचीर. ३ राजमंदिर । [सं० कोटि] ४ समूह, यूथ, जत्था । [सं० कोटि] ५ करोड़ की संख्या । उ०—महामत महण जसनाथ मुनि बालमीक, कोट सत विरत रघु नाथ कीधौ ।

—र.रू.

[अं०] ६ कमीज या कुरते के ऊपर पहना जाने वाला अंग्रेजी ढंग का एक पहनावा जिसका सामना बटनदार होता है ।

[सं० कोटर] ७ बिल ।

[अं० कोर्ट] ८ ताश के खेल में एक साथ सात हाथ जीतने से हुई एक प्रकार की जीत जिसमें विपक्षी को एक भी हाथ बनाने का अवसर नहीं दिया जाता ।

९ नगर, शहर ।

यौ०—अमरकोट, स्याळकोट ।

कोटक-सं०पु० [सं० कोटिक] कोटि, करोड़ (अनेका.)

वि०—करोड़ । उ०—सोभन प्रवास सोभा सुमेर, कोटक भंडार समसर कुमेर ।—सू.प्र.

कोटड़िया-सं०स्त्री०—राठौड़ राव मल्लिनाथजी के पुत्र जगमाल के वंशज राठौड़ों की एक उपशाखा ।

कोटड़ी-सं०स्त्री० [सं० कोट्ट+रा०प्र०ड़ी] १ किसी छोटे जागीरदार का भवन या कचहरी । उ०—बिना पोटळी वांणियौ, बिना सींग रौ बैल । कदियक आवै कोटड़ी, छिपतौ-छिपतौ छैल ।—बां.दा.

कहा०—मिंदर रै आगै सूं नै कोटड़ी रै लारै सूं बैणौ—मन्दिर के सामने से और राज-भवन या कचहरी के पीछे से निकलना चाहिये; राजभवन या छोटे जागीरदारों से दूर ही रहना अच्छा है ।

२ छोटी जागीर । उ०—सू तिणां रै अवलाद री आंबेर री धरती मैं बारै कोटड़ी है ।—द.दा. ३ महमानों के ठहरने का स्थान.

४ बैठक का स्थान । उ०—इतरै में भरमल ऊठ आपरी एक कोटड़ी खड़ी कीवी थी उणमें जा बैठी ।—कुंवरसी सांखला री वारता

५ मर्दानी बैठक । उ०—बिजयसिंहजी बीकानेर पधार दरबार री कोटड़ी में बैठा रहिया ।—मारवाड़ रा अमरावां री वारता

कोटड़ीक—देखो 'कोटड़ी' । उ०—जेसौ आंगिण फळसा कोटड़ीकां नै बुलाया, हेलौ दे'र सारां कोटड़ीकां नै जगाया ।—शि.वं.

कोटड़ीखरच-सं०पु०यौ०—जनता से जागीरदारों द्वारा वसूल किया जाने वाला एक प्रकार का कर ।

कोटड़ीवाबौ-सं०पु०यौ०—मेहमांनवाजी, मेजबानी, आतिथ्य ।

कोटड़ौ—देखो 'कोट' (अल्पा०)

कोटचक्र-सं०पु०यौ० [सं०] युद्ध से पहले अपने दुर्ग का शुभाशुभ परिणाम जानने के लिये प्रयोग में लाया जाने वाला एक प्रकार का तांत्रिक चक्र ।

कोटपाळ-सं०पु०यौ० [सं० कोट्टपाल] दुर्गरक्षक, किलेदार ।

कोटबबर-सं०पु०यौ०—युद्ध में कटे हुए वीरों के शिरों का ढेर ।

उ०—जैसांणी दुरजण तिलोक सज के समहर का, वरदातां सिर बोलिया चुण कोटबबर का ।—दुरगादत्त बारहठ.

कोटर-सं०पु० [सं०] १ पेड़ का खोखला भाग. २ दुर्ग के आस-पास का रक्षा के लिये लगाया जाने वाला कृत्रिम वन ।

कोटरा-सं०स्त्री०—बाणासुर की माता का नाम ।

कोटरी—देखो 'कोटड़ी' (४,५) (रू.भे.)

कोटवाळ—सं०पु० [सं० कोट्टपाल] १ दुर्गरक्षक, किलेदार. २ कोतवाल।
कहा०—अपूठो चोर कोटवाळ नै डंडै—उल्टा चोर कोतवाल को दंड देता है; अपराधी होते हुए भी दूसरों को फटकारने पर।
३ संन्यासियों का बड़ा चिमटा. ४ पींजारा जाति का एक गोत्र। (मा.म.)

कोटवाली—देखो 'कोतवाली' (रू.भे.)

कोटवा—सं०स्त्री०—राठोड़ों की एक उपशाखा (बां.दा. ख्यात)

कोटसलेम—सं०पु०—वह दुर्ग या स्थान जहाँ राजा, जागीरदार अथवा उसके बंधु कैद किये जाते हों, सलेमकोट। उ०—नेकुं पुत्र भतीज सम, जग ग्रहि मंत्री जेम। पुर दिल्ली कीधा पकड़, दाखल कोटसलेम।
—रा.रू.

कोटारियौ—देखो 'कोठारियौ' (रू.भे.)

कोटि—सं०स्त्री० [सं०] १ धनुष का सिरा. २ किसी अस्त्र की नोंक या धार. ३ वर्ग, श्रेणी, दरजा. ४ उत्कृष्टता, उत्तमता. ५ समूह, जत्था।
सं०पु०—६ अग्र भाग। उ०—१ अर दैव रै परतंत्र प्रतापसिंघ अरिसिंघ दोही गयंदां रै बीच आया। उ०—२ एक तरफ तट दुरगम, एक तरफ ह्रद अगाध, देखि दोही वीरां मूंछां रा अग्र भुंहारां री कोटि लिया अर अस्वमेध सत्र रा फळ देणहार दोही गजां रै सांम्है पेंड दिया।—वं.भा.
७ जलाशय का वह स्थान जहां लोग जल-पात्र भरते हैं, घाट।
उ०—वपु नील मझि इम बखांण, जगमगत घटा मझ छटा जांण।
त्रिय कोटि कोटि इम सरजु तीर, नग झटित भरत घट हेम नीर।
—सू.प्र.
वि०—करोड़। उ०—नमो लख कंद्रप कोटि लावन्न, नमो हरि मारण रूप मदन्न।—ह.र.

कोटिक—वि० [सं० कोटि+क] १ करोड़. २ असंख्य, बहुत अधिक।
सं०पु० [सं० कुट कौटिल्ये] १ मांस बेचने वाला, कसाई (डिं.को.) २ खटीक।

कोटिज्या—सं०स्त्री० [सं०] ग्रहों की स्पष्टता के लिये बनाये हुए एक प्रकार के क्षेत्र का एक विशेष अंश।

कोटितीरथ—सं०पु०यौ० [सं० कोटि+तीर्थ] एक तीर्थ विशेष।

कोटिफळी—सं०स्त्री०यौ० [सं० कोटिफली] गोदावरी नदी के सागर संगम के निकट का एक प्रसिद्ध तीर्थ।

कोटिस—सं०पु०—ढेले तोड़ने का एक उपकरण हेंगा, पटेला (डिं.को.)

कोटी—सं०स्त्री०—१ कोना (डिं.को.) २ देखो 'कोटि' (रू.भे.)
क्रि०वि०—भांति, प्रकार।

कोटीक—देखो 'कोटिक' (रू.भे.) उ०—देवी सहस्त्रं लखं कोटीक साथै, देवी मंडणी जुध मैखास माथै।—देवि.

कोटीर—सं०पु० [सं०] मुकुट (डिं.को.)

कोटेचा—सं०स्त्री०—राठौड़ों की एक उपशाखा।

कोटेसर, कोटेस्वर—सं०पु० [सं० कोटीश्वर अथवा कोटेश्वर] शिव, महादेव का एक रूप (ह.नां.) उ०—उण ठौड़ कोटेसर महादेव छै, लठै बांभण विजयदत्त पुत्र अरथ सेवा करै छै।—नैणसी

कोट्ट—देखो 'कोट'।

कोट्टवी—सं०स्त्री० [सं०] १ बाणासुर की माता. २ नंगी स्त्री. ३ दुर्गा।

कोठ—सं०पु० [सं०] १ मंडलाकार होने वाला एक प्रकार का कोढ़।
[सं० कोष्ठ] २ कोठा, खाना। उ०—कर सम बेबे कोठ अंत यक अंक भरीजै।—र.ज.प्र.
वि० [सं० कुठ] १ जिससे कोई वस्तु कूंची वा चबाई न जा सके. २ कुंठित।

कोठड़ी—देखो 'कोटड़ी' (रू.भे.)

कोठई—क्रि०वि०—कहां। उ०—म्हे हंस वायो, म्हारी गोरड़ी घण, थारै कोटईस लागी, म्हारा राज।—लो.गी.

कोठलियौ—सं०पु०—१ मिट्टी की बनी हुई छोटी कोठी, बुखार।
उ०—चूनौ सुरखी सरब, अरबगण बरतण भांडा। कोठी कोठलिया, चिणीजै चेजारां रा।—दसदेव

कोठाकुवाळ—सं०पु०—हाथियों की वह बिमारी जिनमें उनकी भूख मारी जाती है।

कोठार—सं०पु०—१ अन्न, धनादि रखने का स्थान या भंडारघर, कोष।
उ०—१ ताहरां हुरदांन फेर अरज कीवी, तो म्हांरी थकी कोठार में राखजो।—पलक दरियाव री वात उ०—२ अमिट भड़ां बळ अंग में, कोठारां सामांन। सांमध्रमी ठाकुर सको, दिय रंग दुनियांन।—बां.दा.
सं०स्त्री० [सं० कुठार] २ कुल्हाड़ी।

कोठारियौ—सं०पु०—१ देखो 'कोठार' (रू.भे.) २ दीवार या किसी अन्य स्थान में बनाया हुआ कुछ रिक्त स्थान जो सामानादि रखने के काम आता है। उसके छोटे से मुंह का दरवाजा होता है. ३ रसोईघर का वह बंद कोठा जिसमें पकाया हुआ भोजन, घी या तेल आदि रक्खा जाता है।

कोठारी—सं०पु०—भंडार का प्रबंध एवं पदार्थों का संग्रह करने वाला अधिकारी, भंडारी।
कहा०—गायां चूंगै गांम री, सोच करै स्वारी। धान धणी रौ ऊपड़ै, कळपै कोठारी—जब व्यय किसी का हो किन्तु फिक्र कोई अन्य करे।

कोठाळियौ—देखो 'कोठारियौ' (रू.भे.)

कोठी—सं०स्त्री०—बड़ा पक्का मकान, हवेली, बंगला. २ बड़ी दुकान जिसमें थोक की बिक्री होती हो. ३ अनाज रखने का कुठला, बखार, गंज।
कहा०—१ कोठी में घाल्यां ही को जीवै नी—कोठी में डालने पर भी नहीं जीते; अभागे व्यक्ति के लिये; आयु समाप्ति पर कही जाने वाली कहावत. २ कोठी में दांणा है जिते तौ कोई डर कोनी—

खाने को जब तक है तब तक कोई फिक्र नहीं; उम्र है तब तक तो कोई डर नहीं. ४ बंदूक में वह स्थान जहाँ बारूद ठहरती है ५ म्यान की साम. ६ मिट्टी या धातु का बना सामान आदि रखने का बड़ा पात्र. ७ कुआ, कूप. ८ कोल्हू में वह स्थान जहाँ पेरने के लिये तिल आदि डाले जाते हैं।

कोठीवाल-सं०स्त्री०—एक प्रकार की बंदूक जिसके बारूद रहने के स्थान में कुछ खराबी होती है।

कोठीवाली-सं०स्त्री०—१ कोठी चलाने का काम. २ कोठीवाल अक्षर। देखो 'कोठीवाळ' (२)

कोठीवाळ-सं०पु०—१ वह जिसके यहाँ कोठी चलती हो, महाजन, साहूकार, बड़ा कारोबारी. २ बिना शीर्ष रेखायें और मात्राओं के महाजनी अक्षर।

कोठे, कोठेड़े-क्रि०वि०—कहाँ। उ०—१ ओ ए बांदी बंभा थानें बात, कोठे म्हांरी जच्चा रांणी पोढ़े जी राज।—लो.गी.

उ०—२ प्यारी धण पै नींबूड़ा कुण बाया म्हारा राज, म्हे हंम बाया जी गोरी धण प्यारी, थांरै कोठेड़ै सी लागी म्हारा राज।
—लो.गी.

कोठेसर, कोठेस्वर-सं०पु०— महादेव, शिव (ह नां.)

कोठै- देखो 'कोठे' (रू.भे.) उ०—मारो चाहे छांडो रांणा, नांहि रहूं मैं बरजी। सुगना साहिब सुमरतां रे, म्हैं थांरै कोठै खटकी।—मीरां

कोठौ-सं०पु० [सं० कोष्ठक] १ बड़ी कोठरी, चौड़ा कमरा. २ भंडार, कोष, बहुत सी वस्तुओं को संग्रह करने का स्थान. ३ मकान में छत वा पाटन के ऊपर का कमरा, अटारी।

मुहा०—कोठे माथै बैठणो—रंडी बनना, वेश्या होना।

४ उदर, पेट, आमाशय। उ०—कोठो राखै साफ, उदर रा रोग मिटावै। जठै नहीं है नीम, कोढ़णी कब्जी जावै।—दसदेव

मुहा०—१ कोठो बिगड़णो—बदहजमी होना. २ कोठो साफ होणो—मन में कुछ बुरा भाव न होना; पेट साफ होना।

कहा०—कोठै री बात होठै आयी रैवै—मन की बात कभी न कभी होंठों पर आ ही जाती है; कपट कभी न कभी प्रकट हो ही जाता है. २ कोठै सोइ होठै—जो पेट में होती है वह होंठों पर आती है; साफ दिल वाले व्यक्ति के लिये।

क्रि०प्र०—बिगड़णो।

५ गर्भाशय।

६ खाना, घर (जैसे चौपड़ री कोठी) (ल.पिं.) ७ किसी एक अंक का पहाड़ा जो एक खाने में लिखा जाता है. ८ शरीर वा मस्तिष्क का कोई भीतरी भाग जिसमें कोई विशेष शक्ति रहती है. ९ कुये के पास पानी निकाल कर भरने का हौज, कुंड। उ०—खाली खेळी में बाजै खणणाटा, भाजै धापड़ लै कोठा भरणाटा।—ऊ.का.

१० अनाज रखने का बखार।

कोठ्यार—देखो 'कोठार' (रू.भे.) उ०—आदमी डेढ़ सौ घायल डोळी घाल ल्याया था, सो पाटा चोपड़ खावण नूं सरकार रा कोठ्यार सूं पावै छै.—डाढ़ाळा सूर री वात

कोडंड-सं०पु० [सं० कोदण्ड] १ धनुष, कमान (डिं.को.)

उ०—वळै भीमै अजन वगा रण वाट रा, सिहायक पाट रा अकां सायो। जिण मही थाट रा भार कोडंड अकी, अवै भुज खाट रा तणै आयो।—रावत दुलेसींग री गीत

कोडंड-धर-सं०पु०—धनुषधारी, योद्धा।

कोडंडी, कोडंडीस-सं०पु० [सं० कोदण्ड+ईश] १ अर्जुन का गांडीव धनुष। उ०—जोमंगी भंडीस ज्याग आयो ज्यूं चंडीस जायो, राजपत्री आयो घंडीस व्याळ रेस। ओडंडीस असीसतो लांगड़ो कपीस आयो, कोडंडीस कसीसतो आयो गुड़ाकेस।—हुकमीचन्द खिड़ियो

२ बड़ा धनुष. ३ धनुष (डिं.को.)

कोड-सं०पु०—१ उत्साह. उ०—नरपति आयो देस नूं, कुंवर उजागर कोड। 'मुहकम' बीकानेर नूं, गो कूचेरी छोड।—रा.रू.

२ हर्ष, उमंग. उ०—१ सात सहेली आपां हिळमिळ भूलां, म्हारे मन कोड ज छायो।—लो.गी. उ०—२ कमधज कछवाहां घरे, आयो नृप अभसाह। कोड सलूणा कूरमे, उर दूणा ओछाह।
—रा.रू.

३ अभिलाषा, उत्कंठा चाह। उ०—१ आज तो मन में पीहर कोड, याद उण सरवरिये री पाळ।—सांझ उ०—२ प्यारा आज्यो पावणां, प्यारी धण रै देस। साजन म्हांरा पिहर में, थांरा कोड हमेस।—अज्ञात [सं० कुड=बाल्ये+घञ] ४ लाड, प्यार, दुलार। उ०—लाडे कोडे लाडणो, लाडी परण्यो जेह। विसमय पांम्यो अति घणो, देखी कुंमरी तेह।—ढो.मा. ५ शौक.

[सं० क्रोड] ६ सूअर, वराह. [सं० कोटि] ७ करोड़ की संख्या. [सं० कुष्ठ] ८ देखो 'कोढ़' (रू.भे.) [रा०] ८ सत्कार।

कोडयाळी जंवार-सं०स्त्री०—एक प्रकार की ज्वार। उ०—भूर निपजायी ए मोठ'र बाजरी, जांणे कोडयाळी ज्वांर।—लो.गी. (रू.भे. 'कोडयाळी जवार')

कोडाणो-क्रि०स०—हर्ष करना, उमंग करना। उ०—काळा में कोडाय, चाहि लायो कर चाळा। मोड़ा उघड़्या मींत, चिरत थारा चिरताळा
—ऊ.का.

कोडायतौ-वि०—१ सुखद मनोवेग वाला, उल्लासपूर्ण। उ०—चैत में कमनीय सांगरी, लोग लगै कोडायता। ओपण अचार ओलवै, रळै रंगीला रायता।—दसदेव २ जोशीला, उत्साह एवं प्रेमयुक्त।

कोडाळो-वि० (स्त्री० कोडाळी) १ स्वागत करने वाला. २ प्यार करने वाला. ३ उमंगयुक्त। उ०—कुंयरि कोडाळी बेटड़ी वळी, मेळावउ कवण वळामणि।—कां.दे.प्र.

सं०पु०—१ एक प्रकार का धब्बेदार सर्प. २ ऊंट के गले में बांधने का एक आभूषण. ३ छोटा शंख।

कोडि-सं०स्त्री०—१ किनारा, तट, कोर। उ०—बीजुळियां बहळाबहळि,

ग्राभय ग्राभय कोडि। कदरे मिळतंली सज्जना, कस कंचुकी छोडि।
२ देखो 'कोडी' (रू.भे.) —ढो.मा.

कोडियाळ-सं०पु० [सं० क्रोड़पाल] १ सूअर. २ वराह अवतार।
उ०—ग्रोढी यह गयंदां ग्राफळतौ ग्रसहां नह पलतौ ग्रठेल। विसब रूक रद पांए बहोड़ी कमधज कोडियाळ कळ।—चांवडदांन दधवाड़ियौ

कोडियाळी-सं०स्त्री०—बैलों के गले में पहनाई जाने वाली कोडियों की माला विशेष।

कोडियौ-सं०पु०—१ देखो 'कोढ़ियौ' (रू.भे.) २ कुम्हार का एक उपकरण।
वि०वि०—यह एक चपटा पत्थर का टुकड़ा होता है जो मिट्टी के पात्र का ग्राकार बढ़ाने ग्रथवा सँवारने के काम ग्राता है। पात्र के भीतर की ग्रोर दाहिने हाथ में इस उपकरण को रख कर दूसरे हाथ में एक लंबोतरा लकड़ी के टुकड़े को लेकर मिट्टी के पात्र को हल्के-हल्के बाहर की ग्रोर से पीटते हैं जिससे मिट्टी दब कर कुछ ग्रधिक फैल जाती है एवं सँवरती है।

कोडौ-वि०—१ प्रसन्न, हर्षयुक्त। उ०—सींगण कांइ न सिरजियां, प्रीतम हाथ करंत। काठी साहंत मूठि मां, कोडौ कासी संत।—ढो.मा.
२ श्वेत, सफेद (डि.को.) ३ ग्रभिलाषी, उमंगयुक्त।
उ०—पड़वै नह पोढ़ी उर कोडी विलखै ग्रखां, चंवर वीच छोडी किम कर सोढ़ी कांमणी।—रांमनाथ कवियौ
सं०स्त्री०—१ कौडी, कर्पादिका. २ ग्रांख का डेला। उ०—पीळी कोडी रा डोळा पळकाता।—ऊ.का.

कोडीको, कोडीलो-वि०—उमंगयुक्त, हर्षित। उ०—कागद मेहलां जंवाइयां थानैं, ग्रोठी ल्हैने थे म्हारैं ग्रायजो। ग्रो कोडीला जवाइयां दिन दस पावणा।—लो.गी.

कोडे, कोडै-वि०—उत्साहयुक्त, जोशसहित।
क्रि०वि०—उत्सुकता से। उ०—एक पोहर लड़ियौ बळ ग्रोडे, नमणां भोम विसावण कोडे।—रा.रू. २ कहां. ३ पास, निकट।
कहा०—कोडे जो कांम ग्रावै, सोना नी लंका छेटी है—पास हैं वही काम ग्राता है; सोने की लंका दूर है।

कोडौ-सं०पु०—१ एक प्रकार का धब्बेदार सर्प. २ बड़ी कर्पादिका।
मुहा०—कोडौ मेलणौ—काम बिगाड़ना।
३ बच्चा, बालक. ४ मन ही मन की कुढन या जलन. ५ वर्षा की छोटी-छोटी बूंदें। (रू.भे. 'कोड़ौ'—क्षेत्रीय)

कोडयाळी-सं०स्त्री०—एक प्रकार की चिड़िया (क्षेत्रीय)

कोडयाळी ज्वार—देखो 'कोडयाळी जँवार' (रू.भे.)

कोढ़-सं०पु० [सं० कुष्ठ] एक प्रकार का संक्रामक ग्रौर पुश्तानुक्रमिक रक्त ग्रौर त्वचा संबंधी रोग। इसका रोगी घृणित एवं ग्रस्पृश्य समझा जाता है, कुष्ठ।
कहा०—कोढ़ में पांव व्हेगी—एक दुख के साथ दूसरे दुख के ग्राने पर।

कोढ़ण, कोढ़णी-सं०स्त्री०—कुष्ठ रोग से पीड़ित स्त्री।
वि०—दुष्टा। उ०—कोठी राखै साक, उदर रा रोग मिटावै। जठै नहीं है नीम, कोढ़णी कवजी जावै।—दसदेव

कोढ़ा-सं०स्त्री०—सीसोदिया वंश के क्षत्रियों की एक शाखा।

कोढ़ियौ, कोढ़ी-सं०पु० (स्त्री० कोढ़ण) कुष्ठ रोग से पीड़ित व्यक्ति।
वि०—दुष्ट।
कहा०—१ कोढ़िये रौ टक्को ठाकुरदुवारै को चढ़ै नी—दुष्ट व्यक्ति की सेवा भगवान भी स्वीकार नहीं करते. २ कोढ़िये रौ सवासणी मार्थै मन चालै—दुष्ट व्यक्ति ग्रपनी बहन-बेटी पर भी कुदृष्टि डालने से नहीं चूकते. ३ कोढ़ियौ विसवद्दौ व्है है—दुष्ट ग्रादमी हमेशा जहर फैलाया करता है।

कोण-सर्व०—१ किस। उ०—रिम ग्राभन छोडुग्रा फेर रसा, दुर जासिय जींदोय कोण दसा।—पा.प्र. २ कौन। उ०—ग्राज सखी हम यूं सुण्यौ, पौ फाटत पिय गोण। पौ ग्रर हिवड़ै होड है, पहली फाटै कोण।—ग्रज्ञात
सं०पु०—१ कोना (डि.को.) २ एक बिंदु पर मिलती या कटती हुई दो रेखाग्रों के बीच का ग्रंतर (रेखा गणित) ३ दिशा (डि.को.) ४ दो दिशाग्रों के बीच की दिशा-विदिशा।
उ०—जैत कहियौ कोणप कोण में ग्रठा थी एक जोजन ग्रचळ री उपत्यका रै ग्राधार उपवसत।—वं.भा.
५ हाथ की उंगुली के सिरे पर धारण करने की सितार बजाने की नखिया।—वं.भा. (रू.भे. 'कोनन')

कोणदंड-सं०पु०—वह दंड नामक कसरत जो घर के कोने में दोनों ग्रोर की दीवारों पर हाथ रख कर की जाती है।

कोणप-सं०पु० [सं० कोणप] १ राक्षस, ग्रसुर, दैत्य (डि.को.)
२ शव, मुर्दा। उ०—दाणं सम ईरण जीरण छद दाटै. कोणप बित्थीरण संकीरण काटै। बाल्हा बन्ही बिन बाल्हां विसरावै, घर ग्रंतेस्टी कर परमेस्टी धावै।—ऊ.का.

कोणपकोण-सं०पु०—नैऋत्य। उ०—जैत कहियौ कोणपकोण मैं, ग्रठा थी एक जोजन ग्रचळ री उपत्यका रै ग्राधार उपवसथ।
—वं.भा.

कोणलंग-सं०पु०—वह घोड़ा जो चलते हुए लंगड़ाता है (ग्रशुभ—शा.हो.)

कोणसंकु-सं०पु० [सं० कोणशंकु] सूर्य की वह स्थिति जबकि वह न तो कोणवृत्त में हो ग्रौर न उन्मंडल में हो।

कोणस्त-सं०पु०—शनिश्चर (ग्र.मा.)

कोणाकोणी-ग्रव्यय [सं०] एक कोने से दूसरे कोने तक।

कोणाघात-सं०पु० [सं०] एक लाख डुडुकों के ग्रौर दस हजार ढोलों के एक साथ बजने की ग्रावाज।

कोत-सं०पु०—बंदूकों का जूड़ा, एक साथ खड़ी की गई बंदूकों का ढेर।

कोतक-सं०पु० [सं० कौतुक] कौतुक, कुतूहल, खेल, तमाशा, क्रीड़ा, विनोद। उ०—१ निसा कोतक लगौ 'रैण' जुध निरखवा ऐण रथ रोक चंद्र गैण ऊभौ।—रयणसिंह सीसोदिया रौ गीत

उ०—२ देस-वेस सह को दियँ, सूरां नूं स्याबास। ज्यांरी कोतक देख जुध, हुवै अमिद्रां हास।—बां.दा.

कोतकी, कोतगी–वि० [सं० कौतुकी] कौतुक करने वाला, कौतुकी।
उ०—जटी ज्यूं कोतगी वीर नाच री लखैवा जंगां, खळां अंगां भखेवा डाच री अजखेद।—हुकमीचंद खिड़ियो

कोतणो, कोतबो—देखो 'कूंतणो' (रू.भे.) उ०—भ्रोठम जग बळवंत आपरी, अघळी जस कोतै अप्रमाद।
—महाराजा बळवन्तसिंह रतलाम री गीत

कोतल–सं०पु० [फा०] १ सजा-सजाया घोड़ा जिस पर कोई सवार न हो, जलूसी घोड़ा। उ०—समाचार सांढ़िया आय मालम कर जावै, हुरवलां फेर कोतल हलै सजिया मुजरा जोत रा।—अरजुणजी बारहठ
२ राजा की सवारी का घोड़ा. ३ वह घोड़ा जो आवश्यकता के समय के लिए साथ रखा जाय। उ०—राव बीसलदे रै घोड़ो बीजों कोतल हाजर थौ, सो आंण हाजर कियो।—डाढ़ाळा सूर री वात
वि०—खाली सजा हुआ, बिना काम का।

कोतवाळ–सं०पु० [सं० कोट्टपाल] १ पुलिस का प्रधान अधिकारी, नगर-रक्षक, पुलिस कप्तान।
[रा०] २ कुत्ता. ३ साधु का लम्बा चिमटा।

कोतवाळी–सं०स्त्री०—१ पुलिस के 'कोतवाल' का कार्यालय.
२ कोतवाल का पद।

कोता–वि० [फा० कोतह] १ छोटा। उ०—सिकल का बेदुरुस्त, सूरत का खराब, किसमत का कोता, दिन का महताब।—दुरगादत्त बारहठ
२ कम, अल्प। उ०—नरां नागां सुरां नार, जूज जीत लीध जार। धपै न कोता बुधवार, है गिंवार है गिंवार।—र.रू.

कोताई–सं०स्त्री० [फा० कोताही] १ कमी, अल्पता, खामी। उ०—हठ दुरुस्त ऊ छै। मतो जिण कांम रो करै तिण सूं किणी रै मनै कियां मनै न होय। उण कांम में काहली कोताई न करै।—नी प्र.
२ छोटाई, भूल, गफलत।

कोताखानी–सं०स्त्री०—एक प्रकार की विशेष बनावट वाली कटार।
उ०—ग्रोडा री अढ़ाई, भोगळी री कोताखांनी, पाडाजीभी घणं सोनै में भकोळी थकी।—रा.सा.सं.

कोताड़ी–सं०स्त्री०—छोटे कानों की बकरी (क्षेत्रीय)

कोतिक, कोतिक्क—देखो 'कोतक' (रू.भे.) उ०—१ कोतिक लखे हुए विकराळ, दीरघ रद किया। सालुळ वणे चंड सरीर खावण कज सिया।—र.रू. उ०—२ इसा गज्ज घंटाळ घंटा अपारं, त्रिण्हे लोक कोतिक्क देखंत त्यारं।—वचनिका

कोतिग—देखो 'कोतक' (रू.भे.) उ०—कोतिग आव्या देवता, कोतिग आव्या इंद्र विमान।—वी.दे.

कोतिल—देखो 'कोतल' (रू.भे.) उ०—चपल कोतिल कळळ चंचळ विहद मदगळ भ्रमर अळवळ।—र.रू.

कोतुक—देखो 'कोतक' (रू.भे.) (डिं.को.)

कोतुहळ, कोतूहळ–सं०पु० [सं० कौतूहल] १ कौतुक, खेल (डिं.को.)
उ०—रिख कहै सुणि रांम जोभरण, जोसी जनक जिग कोतूहळ कांम।—रांमरासो २ उत्सुकता।

कोथळी–सं०स्त्री०—१ छोटी थैली (कोथलड़ी–अल्पा०)
उ०—एक कोथलड़ी द्रब दिइयो, विनायक लाडलै की माय नै।
—लो.गी.
२ संबंधियों, रिश्तेदारों या कन्या के ससुराल थैली में कुछ भर कर भेजना. ३ थैली भरी सामग्री। (मह० कोथळो)

कोथळो–सं०पु०—१ बड़ा थैला (अल्पा० कोथळियो)
उ०—सांम होई ताहरां बहियां नै संभाई कोथळो गुमास्ता रै हाथ दियो।—पलक दरियाव री वात
२ विवाह में कन्या के पिता द्वारा अपने सब भाई-सगों को बुला कर वर-वधू को गहना तथा १००) और वर के भाई-बंदों के वेशभूषा कराने की एक प्रथा (जाट)

कोथी–सं०स्त्री०—(तलवार के) म्यान के सिरे पर लगा हुआ धातु का छल्ला या टुकड़ा, म्यान की साम।

कोदंड–सं०पु० [सं०] धनुष। उ०—हेर हियो हरसायो, बजर समान कठिन कोदंड रो।—गी.रां.

कोद–सं०स्त्री०—१ दिशा, कोना। उ०—हठी जूट तें मेरू के कूट हल्लै, चहु कोद सप्तोद के स्रोत चल्लै।—वं.भा. २ नोंक।
उ०—गहे कोद कट्टार की पार गोदै, खुरां बाजिके घुम्मिके भूम्मि खोदै।—वं.भा.
क्रि०वि०—ओर, तरफ।

कोदाळ–सं०पु०—१ एक प्रकार का घोड़ा जो अशुभ माना गया है।
२ कुदाली। (शा.हो.)

कोदाळी, कोदाळो—देखो 'कुदाळी'। उ०—किरमर धार करग कोदाळे, खेत कळोधर रिण खिणियो।—अज्ञात

कोदू–सं०पु०—कोंदा नामक अनाज विशेष जो हल्के दर्जे का माना जाता है।

कोनम—देखो 'कोण' (४) उ०—यौं राग न पाया प्रमुद यौं सिंधु न न्हाया, यौं कोनम लाया करन यौं मुट्ठि मिळाया।—वं.भा.

कोनी–क्रि०वि०—नहीं, कभी नहीं। उ०—जैपर मिळी जोधपुर मिळगी, मिळगी बीकानेर। दोय पगां नै जागां कोनी, भाई होग्या लैर।—डूंगजी जवारजी री पड़

कोनीयो–सं०पु०—चौकोर चीज को मजबूत करने हेतु लगाई हुई लोहे या धातु की लंबी पत्ती।

कोन्यां–क्रि०वि०—देखो 'कोनी'। उ०—वनवारी हो लाल, कोन्यां धारै सारै।—लो.गी.

कोप–सं०पु० [सं०] १ क्रोध, गुस्सा, रोष।
पर्याय०—अमरख, कुप, क्रुध, क्रोध, छोह, जाजुळ, तायळ, ताव, धुव, धोम, मछर, रीस, रुट, रोस।

२ रूठने का भाव. ३ शृंगार रस में नायिका का नायक के प्रति बनावटी कोप।

कोपणी, कोपबो–क्रि०अ० [सं० कुप] कोप करना, क्रोध करना, नाराज होना। उ०—१ उठे सुण अंगद वयण, विग्रह कज रघुबीर। ओपै गज घड़ ऊपरां, कोपै जांण कंठीर।—र.रू. उ०—२ कोपियं छाकियं चहर अड़ अहर करि, फुरळतै पिसण घड़ फेरवी अफिर फिरि।—हा.झा.

कोपभवन–सं०पु० [सं०] वह स्थान जहां कोई मनुष्य क्रोध कर के या अपने घर के प्राणियों से रूठ कर रहे।

कोपर–सं०पु०—१ पत्थर का छोटा टुकड़ा (अल्पा० कोपरियौ) २ मकान के तोरण द्वार के दोनों ओर लगाये जाने वाले चपटे पत्थर।

सं०स्त्री० [सं० कूर्पर] ३ कोहनी। उ०—अवजभड़ त्रिज्भड़ भड़ असंध, फटै कर कोपर काळिज कंध।—वचनिका ४ घुटना।

कोपरियौ—देखो 'कोपर' (१) (रू.भे.)

कोपरी—१ देखो 'कोपर' (३) (रू.भे.) उ०—दतकुळी अंगुळी करी कोपरी कपाळां, वीच खेत विखरी फरी विहरी किरमाळां।—रा.रू. २ लकड़ी की बनी वस्तुओ के किनारों की खूबसूरती बढ़ाने का औजार।

कोपरौ—देखो 'खोपरौ' (रू.भे.)

कोपवाळ–सं०पु०—क्रोधी व्यक्ति, गुस्सैल।

कोपांन–सं०पु० [सं० कोशपान] अभियुक्त के न्याय-निर्णय की एक प्राचीन परिपाटी, इसमें अभियुक्त किसी देव विशेष को साक्षी कर समाज के सम्मुख देवकलश का जल-पान करता है। विश्वास के अनुसार अगर वह वास्तव में अभियुक्त है तो देव का कोप-भाजन बनेगा।

कोपाणी, कोपाबो–क्रि०स० [प्रे०रू०] १ क्रोध कराना, गुस्से के लिये प्रेरित करना. २ कोशपान कराना।

कोपानळि–सं०स्त्री०—क्रोधाग्नि। उ०—आगइ रुद्र घणइ कोपानळि, दंत्य सवे तइं बाळया। तइं प्रथ्वी मांहि पुण्य वरताव्यां, देवलोकि भय टाळया।—कां.दे.प्र.

कोपायत–वि०—क्रुद्ध। उ०—इसी खबर नगर रा लोगां राजा सूं की। तद राजा कोपायत होय दूत मेलिया।—पचदंडी री वारता

कोपियोड़ौ–भू०का०कृ० [सं० कुपितः] क्रोध किया हुआ। (स्त्री० कोपियोड़ी)

कोपि, कोपी–वि०—क्रोधी, गुस्सैल।

सं०पु०—संकीर्ण राग का एक भेद।

कोपीन–सं०स्त्री० [सं० कौपीन] ब्रह्मचारी या संन्यासियों आदि के पहनने की लंगोटी, चीर, काछा।

कोपीणी—देखो 'कोपांन' (रू.भे.)

कोफळा–सं०पु०—१ बकरी, बकरा. २ सूखे हुए छोटे-छोटे ककड़ियों के टुकड़े।

कोफ्त–सं०पु० [फा०] १ लोहे पर सोने या चांदी की पच्चीकारी. २ पके हुए मांस का विशिष्ट प्रकार का सालन।

सं०स्त्री०—३ रंज, दुःख, खेद, परेशानी, हैरानी।

कोफ्तगरी–सं०स्त्री० [फा०] लोहे के बरतनों या हथियारों पर सोने या चांदी की पच्चीकारी करने का काम।

कोफ्तौ–सं०पु० [फा० कोफ्ता] कटे हुए मांस या बेसन व मसाले का जामुन के आकार का किन्तु उससे बड़ा एक प्रकार का चरपरा पदार्थ जिसके अन्दर अदरक, पुदीना, खसखस, भुना चने का आटा आदि भर देते हैं।

कोबिद—देखो 'कोविद' (रू.भे.) उ०—जिण समय रा कोबिद लोग अवंतीअधीस रा, दीधा अन्न आस्रय बिनां कुमारिकामंडळ में कवण रहै।—वं.भा.

कोबीदार–सं०पु० [सं० कोविदार] कचनार का वृक्ष (डिं.को.)

कोमंकी, कोमंखी–वि० [सं० कोपांकी, मा. कोबंक्री, रा० कोमंकी, कोमंखी] १ क्रोध का चिन्ह वाला, क्रोधी। उ०—केवांणां कोमंकी वागौ आंटीलौ कमंध।—हुकमीचंद खिड़ियौ २ क्रोधी स्वभाव वाला. ३ योद्धा। उ०—कोमंखी अतूठा क्रोध रूप जोध केवांणा सूं।

—अज्ञात

सं०पु०—तेजी से घोड़े उठाने की क्रिया (डिं.को.)

कोमंड–सं०पु० [सं० कोदंड] १ धनुष (अ.मा.) उ०—१ वीरम कोमंड पकड़ियो, जम घालण बध्थे।—वीरमायण उ०—२ जबर इसौ कुण जोमंड, मो ऊभां संकर चौ कोमंड तांण भीच कुण तोड़ै।

२ भौंह। —वी.मा.

कोमंत—देखो 'कुमति' (रू.भे.)

कोम–सं०पु० [सं० कूर्म, प्रा० कुम्म, रा० कौम] १ कछुआ. २ कूर्मावतार, कच्छपावतार। उ०—महा क्रोधंगी गनीमां हूंता, हुचकै नरींद 'माधौ'। भूचकै भूलोक बाधौ, चकै कोम भार।—हुकमीचंद खिड़ियौ [अ० कौम] ४ जाति, वर्ण। उ०—मन अकबर मजबत, फूट हींदवां बेफिकर काफर। कोम कपूत, पकड़ूं रांण प्रतापसी।

[सं० कोदंड] ५ धनुष। —दुरसौ आढ़ौ

कोमका–सं०स्त्री० [सं० कूर्म, प्रा० कुम्म] कछुआ, कच्छप।

कोमळ–वि० [सं० कोमल] १ मुलायम, मृदु। (यौ० कोमळचित्त) २ सुकुमार, नाजुक। उ०—पावस मास विदेस पिय, घरि तरुणी कुळ सुध्ध। सारंग सिखर निसद्द करि, मरइस कोमळ मुध्ध।

—ढो.मा.

३ कच्चा. ४ सुंदर, मनोहर. ५ संगीत में स्वर का एक भेद।

कोमळता–सं०स्त्री० [सं० कोमलता] १ मुलायम व कोमल होने का भाव. २ शोभा (अ.मा., नां.मा)

कोमळा—देखो 'कोमळ' (रू.भे.)

कोमाच–सं०पु०—१ एक प्रकार का चमकीला काच. २ सफाई। उ०—काच हुलम कोमाच, नाच पातर नखराळी।—मे.म.

कोमारी—सं०स्त्री० [सं० कुमारी] १ कुमारी. २ अविवाहिता।

कोय—सर्व०—१ कोई। उ०—कर क्रीड़ा लोयण स्रवण, बियो न भावै कोय।—ह.र. २ किसी को। उ०—सावूळो आपा समो, बियो न कोय गिणंत। हाक बिडांणी किम सहै, घण गाजियं मरंत। —हा.झा.

वि०—कुछ। उ०—धोय धोय तन चख जळधारां, रोय रोय नर नारी। जोय जोय थाका जग जांमी, कोय न लागी कारी।—ऊ.का.

कोयक—सर्व०—कोई, कोई सा। उ०—कोयक सकट कुसागड़ी, भार विसेस भरंत। धवळ पड़प्पण आपरै, कांधै लियां बहंत।—बां.दा.

कोयटो—सं०पु० [सं० कूपोत्थर, प्रा० कुवट्ठा] वह कुआ जिस पर चरस द्वारा सिंचाई होती हो।

कोयण—सं०पु० [सं० कोचन] १ आंख का कोना। उ०—१ लोवण लागणिया तणिया लज वाळा। कोयण काजळिया रळिया रजवाळा। —ऊ.का.

उ०—२ ओयण अडग नृपत 'राजड़' अंग। दोयण जोयण खगदहण। ललना जयो झरहरै लोयण, कोयण धार अंगार कण। —कविराजा करणीदांन

[सं० कोचन] २ आंख का डेला. ३ नेत्र, नयन। उ०—चठठा भेंभीत रठा दुघटा कोयणां चोळ, ऊभै घटा जठा सक्र गाथ मैं अनूप। लंगरां रठठा बे पठठा आडी लीह, रांण वाळा भूठा फील जूटा असै रूप।—पहाड़खां आढ़ो [सं० कोपन, मा. कोवण, रा० कोयण] ४ शत्रु। उ०—है थट सुभट हमल हालावै, कोयण कटक सावता केव। वरसंघ वाळ अजेपुर वळियो, विक्रमादीत जैत हथ वेव। —चांनण खिड़ियो

कोयनी—अव्यय—नहीं। उ०—कठै नांव जाळोटिया है, कठंक पील प्रेम रा। सीबी सोणी किकर कोरूं, कनै कोयनी कैमरा।—दसदेव

कोयन—देखो 'कोयण' (रू.भे) उ०—धखि लोयन कोयन खून भरै. दहुघां उन्मत्त मतंग अरै।—ला रा.

कोयनळ—देखो 'कोपानळ'। उ०—मुनीस महेस कोयनळ मंज, प्रसिद्ध महाबळ तेजस-पुंज।—ह.र.

कोयर—सं०पु० [सं० अकूपार, कूपार] कूप, कुआ।

कोयल—सं०स्त्री० [सं० कोकिल] काले रंग की एक चिड़िया जो कौवे से कुछ छोटी होती है और मैदानों में वसंत ऋतु के आरंभ से वर्षा ऋतु के अंत तक रहती है। मीठी बोली के लिए यह संसार में प्रसिद्ध है। कोकिला।

पर्याय०—कोकल, दुतसुर, परभ्रत, पिक, भरवत, रगत द्रग।

कहा०—१ कागा किसका लेत है, कोयल किसकूं देत। मीठी वांणी सुणाय कै, जग अपणा कर लेत—कौआ किसी का क्या लेता है और कोयल किसी को क्या देती है, फिर भी लोग कोयल से खुश रहते हैं; मीठी बोली से सब खुश रहते हैं. २ कोयल कागलो एक रंग, बोल्यां खबर पड़ै—कोयल और कौवे का रंग एक ही होता है, बोलने से उनका भेद प्रकट होता है। (अल्पा० 'कोयलड़ी')

२ सफेद और नीले फूलों वाली एक लता जिसकी पत्तियां गुलाब की पत्तियों से मिलती-जुलती होती हैं; अपराजिता (रा.सा.सं.)

२ एक प्रकार का राजस्थानी लोक गीत जिसे लड़की को ससुराल के लिए विदा करते समय गाया करते हैं. ४ लड़कियों द्वारा रात्रि में गाया जाने वाला एक लोक गीत।

कोयलक—सं०पु० [सं० कौलकेय] कुत्ता, श्वान (ह नां.)

कोयलड़ी—देखो 'कोयल' (रू.भे.) उ०—वरज बढ़ी ना ऐ बागां मांयली कोयल जी राज, कोयलड़ी वरजी न ऐ जाय, वारी घण वारी ओ हंजा।—लो.गी.

कोयलारांणी—सं०स्त्री०—१ लक्ष्मी। उ०—रिध सिध दियण कोयला-रांणी, बाळा बीज-मंत्र ब्रहमांणी।—ह.र. २ एक देवी विशेष।

कोयलिया—देखो 'कोयल' (अल्पा०) उ०—आंम की डाळ कोयलिया बोलै, बोलत सबद उदासी।—मीरां

कोयली—सं०स्त्री०—१ कोयल (रू.भे) उ०—अमरांणे में बोलै सूवा मोर, बागां में बोलै छै काळी कोयली।—लो.गी. २ बाहुमूल के नीचे पीठ में उठने वाली वात विकार की गांठ. ३ लकड़ी का वह टुकड़ा जो रस्सी या रस्से के सिर पर अटकाने या फंसाने हेतु लगाया जाता है।

कोयलो—सं०पु० [सं० कोकिल] १ धधकते हुए अंगारों को बुझाने पर अवशिष्ट अंश जिसे वापस जलाने के काम में लिया जाता है.

२ जलाने के काम में आने वाला एक प्रकार का खनिज पदार्थ।

मुहा०—कोयला माथै छाप लगांणी—मामूली खर्चों में कंजूसी करना।

कहा०—१ कोयला खावै जकां री काळी मूंडो व्है—बुरे काम करने वाले की बदनामी होती है. २ कोयला खासी जकं री काळो मूंडो होसी—देखो कहावत (१) ३ कोयलां री दलाली में काळा हाथ—बुरे काम में सहयोग देने वाले की बदनामी होती है; जब कुछ लाभ के बजाय कुछ हानि सहन करनी पड़े. ४ दूध में धोयां कोयला किसा धोळा व्है—दूध में धोने पर भी कोयले सफेद नहीं होते; उस बुरे व्यक्ति के प्रति जिस पर समझाने का कोई असर न हो. ५ रांम री गत हीरा रो भाई कोयलो है—असमान गुणों या रूपरंग वाले व्यक्तियों अथवा पदार्थों के एक साथ होने या रहने पर।

कोयी—सर्व० —कोई।

कोयो—सं०पु० [सं० कोच] १ आंख का कोना (अमरत)

२ आंख की पुतली. [सं० कुच] ३ रस्सी या धागे का समेटा हुआ लच्छा।

कोरंभ—सं०पु० [सं० कूर्म] १ कछुआ. २ वराह अवतार।

उ०—कसमस्सै कोरंभ सेस नागिंद्र सळस्सळि।—वचनिका

३ कछवाहा क्षत्रिय।

कोर–सं०स्त्री० [सं० कोटि] १ किनारा, सिरा, छोर।

उ०—१ चळापळ ग्रोगनियां री **कोर**, भोपणा किण भूलां री भार।—सांझ उ०—२ काजळ टीकी विण फीकी द्रग **कोरां**।
—ऊ.का.

मुहा०—काळजा री कोर—बहुत प्यारा।

कहा०—लाडू री कोर की खारी नै की मीठी—लड्डू के सब दाने मीठे होते हैं; खुद की सब संतान प्यारी लगती है; समान प्यार किये जाने वाले व्यक्तियों के लिये।

[सं० कोटि] २ सीमा। उ०—जेठुए खेमे जोर, कुण तेण चंपे **कोर**। जिण पेख जवन सजोस, सुज गयो तजि गढ़ सोस।—रा.रू.

[सं० कोटि] ३ पंक्ति, कतार। उ०—दुहुं ग्रोर बनी चतुरंग ग्रनी, दुहुं ग्रोर करीन कि **कोर** बनी।—ला.रा. ४ दृष्टि. ५ कोना. ६ ग्रंतराल।

[सं० कोटि] ७ हथियार की धार. ८ द्वेष, बैर, वैमनस्य. ९ दोष, ऐब, बुराई. १० सोने या चाँदी के महीन तारों के साथ बनी हुई पतली लंबी गोट जो स्त्रियाँ वस्त्रों पर लगाती हैं। उ०—१ विहद **कोर** गोटा बणी, पातर रै पोसाक। परणी फाटा पूंगरण बैठी फाड़ बाक।—ऊ.का. उ०—२ सरवर पांणीड़ नै मैं गयी, ग्रेलो भीजै म्हांरै साळूड़ै री **कोर**, वाला जो।—लो.गी.

कोरकसर–सं०स्त्री०यौ०—दोष, त्रुटि, ऐब, कमी।

कोरगोटौ–सं०पु०यौ०—सुनहले या रुपहले बादले का बना हुआ पतला फीता। देखो 'कोर' (१०) उ०—बीखरै डाबर नैणां लाज, चमकै चोखो **कोरां-गोट**।—सांझ

कोरड़–सं०पु०—१ एक प्रकार का घास. २ देखो 'कोरड़ू'।

कोरड़ी–सं०स्त्री०—१ देखो 'कोटड़ी' (रू.भे.) २ एक प्रकार का घास (कां.दे.प्र.)

कोरडू–सं०पु०—मूंग, मोठ, ग्वार ग्रादि वे ग्रनाज या द्विदल जो कठोर माने जाते हैं ग्रौर बाजरे के बाद बोए जाते हैं। उ०—थारै करलां नै **कोरड़** घलाय, एक बार ग्राज्यौ, जवांईजी म्हारै घर पांवणा।
—लो.गी.

कोरड़ौ–सं०पु०—१ एक छोटा डंडा या दस्ता जिसमें चमड़ा या सूत ग्रादि बट कर लगाया जाता है ग्रौर जो मनुष्यों या जानवरों को मारने के काम में ग्राता है, चाबुक, दुर्रा। उ०—ज्यां तो गायां के ए खीची मारै **कोरड़ौ**।—लो.गी. २ उत्तेजक बात. ३ मर्मस्पर्शी बात.

४ कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी के दाहिने पैंतरे पर खड़े होने पर बायें हाथ की कोहनी से उसकी दाहिनी रान दबाते हैं ग्रौर दाहिने हाथ की कलाई से उसका दाहिने पैर का गुट्टा उठा कर दोनों हाथों को मिला कर जोर कर के उसे चित्त गिरा देते हैं।

क्रि०वि०—केवल, मात्र, सिर्फ। उ०—पहली प्रतोळी में पैठतां ही मांहिला चोक में हाडा पड़िहारां रै ग्रघांणक **कोरड़ौ** लोह बाजियौ।
—वं.भा.

कोरट–सं०पु० [ग्रं० कोर्ट] १ ग्रदालत, कचहरी।

[रा०] २ कटार (डि.नां.मा.)

कोरट-ग्रॉफ-वारड्स–सं०पु०यौ० [ग्रं० कोर्ट ग्रॉफ वार्ड्स] वह सरकारी विभाग जिसके द्वारा किसी ग्रनाथ, विधवा या ग्रयोग्य मनुष्य की सारी जायदाद का प्रबंध होता है।

कोरट इंसपेक्टर–सं०पु०यौ० [ग्रं० कोर्ट इंसपेक्टर] पुलिस की ग्रोर से फौजदारी ग्रदालतों में मुकद्दमे की पैरवी करने वाला पुलिस का कर्मचारी।

कोरटपीस–सं०पु०यौ० [ग्रं० कोर्टपीस] १ चार ग्रादमियों में खेला जाने वाला एक प्रकार का ताश का खेल।

कोरटफीस–सं०स्त्री०यौ० [ग्रं० कोर्ट+फी] ग्रदालती रसूम, न्यायशुल्क।

कोरटमारसल–सं०पु०यौ० [ग्रं० कोर्ट मार्शल] फौजी ग्रदालत जिसमें सेना के नियमों का भंग करने वाले, सेना छोड़ कर भागने वाले तथा बागी सिपाहियों का विचार होता है।

कोरटसिप–सं०स्त्री०यौ० [ग्रं० कोर्ट+शिप] एक पाश्चात्य प्रथा जिसके ग्रनुसार पुरुष किसी स्त्री को ग्रपने साथ विवाह करने के लिए उद्यत करता है तथा ग्रपने ग्रनुकूल करता है, कन्या-संवरण।

कोरण–सं०पु०—काले बादलों के किनारे श्वेत बादलों का भाग।

उ०—१ दूरा नयर कि **कोरण** दीसै, धवळागिरि किना धवळहर।
—वेलि.

उ०—२ **कोरण** सुभट घटा थट कटकै, ग्रजड़ां हथ दांमणी तप। सूर तणी घरहरै नरेसुर, वनपत यर खै करण वप।
—देवराज रतनू

कोरणावटी–सं०स्त्री०—मारवाड़ राज्यान्तर्गत एक प्रदेश।

कोरणी–सं०स्त्री० [सं० कोटनी. प्रा० कोडनी, रा० कोरणी] १ चित्रकारी. २ पत्थर पर खुदाई का काम, संगतराशी, नक्काशी.

३ एक प्रकार की सिर की हजामत विशेष।

कोरणीदार–वि०—चित्रयुक्त। उ०—छदन **कोरणीदार** फूटरा कूंट कुंटाळा। उत कोयल रैवास कागलां रा इत ग्राळा।—दसदेव

कोरणौ, कोरबौ–क्रि०स० [सं० कोटनम्] १ चित्रकारी करना.

२ ग्राडी-टेढ़ी रेखायें खींचना. ३ पत्थर पर खुदाई का कार्य करना।

कोरणहार, हारौ (हारी), कोरणियौ– वि०।

कोरवावणौ, कोरवावबौ—क्रि०स० प्रे०रू०।

कोराणौ, कोराबौ, कोरावणौ, कोरावबौ—क्रि०स०।

कोरिग्रोड़ौ, कोरियोड़ौ, कोरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

कोरनौ—देखो 'कोरणौ' (रू.भे.)

कोरपांण, कोरपांणी–सं०पु० [सं० कटे वर्षाऽऽवरणयोः, स्वार्थंणिच् सर्व धातुभ्य इन्, काटि] मांड लगा, बिना धुला (कपड़ा)

सं०स्त्री० [सं० कोर पान] २ रबी की फसल में ग्रनाज बोने के बाद प्रथम बार कुए ग्रादि से सींच कर फसल को पिलाये जाने की क्रिया।

कोरम–सं०पु० [ग्रं०] किसी सभा आदि के संचालन व कार्य-निर्वाह के लिए सदस्यों की आवश्यक उपस्थिति संख्या. [सं० कूर्म] कच्छपावतार। उ०—कोरम हूंदा रूप तूं मुरदेत मुरांणा।
—केसोदास गाडण

कोरमौ–सं०पु०—१ खलिहान में अनाज को साफ करते समय वह अवशिष्ट भाग जिसमें अनाज व भूसा रह जाता है. २ मूंग, मोठ और चने की दाल को साफ करने के पश्चात् बचा महीन व चूरे के समान भाग. [तु० कोरमा] ३ अधिक घी में भुना हुआ एक प्रकार का मांस जिसमें जल का अंश या शोरबा बिल्कुल नहीं होता।
वि०—चित्रित।

कोरव–सं०पु०—कौरव (रू.भे.)

कोरवांण—देखो 'कोरपांण' (२)

कोरस–सं०पु० [ग्रं० कोर्स] १ पाठ्यक्रम. २ सामूहिक गायन।

कोराई–सं०स्त्री०—१ रूखापन, रुखाई. २ चित्रकारी करने का कार्य, नक्काशी. ३ चित्रकारी करने की मजदूरी।

कोराड़ौ–सं०पु०—आकाश से बादलों के हट जाने पर रूखा दृश्य।
उ०—असाढ़ कोराड़ौ ऊतरयौ, मैयल पतळयौ मेह। दळ नै ठाढ़क देह, जीवन लाभै जेठवा।

कोराणौ, कोराबौ–क्रि०स०—१ चित्रकारी कराना. २ नक्काशी कराना।

कोरायोड़ौ–भू०का०कृ०—चित्रकारी या नक्काशी कराया हुआ।
(स्त्री० कोरायोड़ी)

कोरावणौ, कोरावबौ–क्रि०स०—देखो कोराणौ' (रू.भे.)

कोरावियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'कोरायोड़ौ' (स्त्री० कोरावियोड़ी)

कोरियोड़ौ–भू०का०कृ०—चित्रकारी या नक्काशी किया हुआ।
(स्त्री० कोरियोड़ी)

कोरीजणौ, कोरीजबौ–क्रि० कर्म वा०—चित्रकारी या नक्काशी किया जाना।

कोरौ–वि० (स्त्री० कोरी) १ जो बरता न गया हो, जिसका व्यवहार न हुआ हो। उ०—मिस्री काळपी गंगा पार री मंगाय कोरा घड़ां में भिजोयजै छै।—रा.सा.सं. २ नया, अछूता।
यौ०—कोरौ-काचौ।
मुहा०—कोरौ जबाब—सूखा उत्तर।
३ जिससे जल स्पर्श न हुआ हो।
कहा०—कोरौ रियौ रे सींदड़ा सदा सोर के संग—तेल भरने के बर्तन को संबोधन कर के कहा गया है कि तुझ में बारूद भरने से तू कोरा का कोरा रह गया, अर्थात् तूने सूखी वस्तु के साथ रहने से कोई लाभ नहीं उठाया।
४ जिस पर कुछ लिखा या चित्रित न किया गया हो। ५ सादा, साफ, खाली।
कहा०—कोरै आभै बीजळी पड़णी—असंभाव्य या अनहोनी बात पर। ६ रहित, वंचित. ७ दोष से रहित, बेदाग, निष्कलंक।
८ शुष्क, रूखा, रूखे स्वभाव का।
यौ०—कोरौ-मोरौ।
९ उदासीन. १० अनपढ़, अशिक्षित, मूर्ख. ११ वह बच्चा जिस पर बच्चों के संक्रामक रोगों (शीतला, कुक्कुरखांसी आदि) का प्रभाव न पड़ा हो।

कोरौ-गोफियौ—एक प्रकार का शस्त्र विशेष।

कोरौ-मोरौ–वि०—बिल्कुल कोरा।

कोलंबक–सं०पु० [सं० कोलम्बक] वीणा का तूंबा और डंडा (डिं.को.)

कोल–सं०पु० [सं०] १ सूअर, वराह (अ.मा.) २ वराहावतार।
उ०—कंपै कोल तुंडा कासबांणी छायौ वाय कूंडा।
—हुकमीचंद खिड़ियौ
३ पुरु वंशी आक्रीड़ नामक राजा के पुत्र का नाम. ४ एक प्रदेश का प्राचीन नाम. ५ देखो 'कौल' (रू.भे.)
सं०स्त्री०—६ काली मिर्च (अ.मा.) ७ सेम की तरह की एक लता जिससे सेम सी ही पत्तियां, फूल और फलियां लगती हैं, कौंच (अ.मा.) ८ छोटी नाव (डिं.को.) ९ एक जंगली जाति।

कोलक–सं०पु० [सं०] १ अखरोट का पेड़. २ कालीमिर्च।
(डिं.को., अ.मा.)
[रा०] ३ एक प्रकार का छोटा लंबा औजार जिसकी सतह पर दाने होते हैं, इससे रेती और आरी तेज की जाती है
५ देखो 'कौल'।

कोळखेम–सं०स्त्री० [सं० कुशलक्षेम] कुशल-क्षेम, आनंद-मंगल।

कोळगिरी–सं०पु० [सं० कोलगिरि] दक्षिण भारत का कोलाचल नामक पर्वत, इसे आजकल कोलमलय कहते हैं।

कोळजोळियौ—देखो 'खोळजोळियौ' (रू.भे.)

कोलणौ, कोलबौ–क्रि०स०—खोदना, गहरा करना। उ०—ओदी उपरै मिनख खोदवै थ्यारां भारी कोलै कंवळी रेत खांण री सुरंगां सारी।
—दसदेव

कोळमुखी–सं०स्त्री०—सूअर के समान मुख वाली तोप। उ०—मातंग भुजंग नाहर मगर, कोलमुखी बाहर कढ़ी।—मे.म.

कोळांण–सं०स्त्री०—एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसके फूल गुलाबी रंग के होते हैं। इसकी लकड़ी मजबूत होती है।

कोळांमण–सं०स्त्री०—भूरे रंग के बादल जो प्रायः वर्षा ऋतु में होते हैं। उस समय प्रायः ठंडी-ठंडी हवा चलती रहती है।

कोलात, कोलायत–सं०पु० [सं० कपिलपद] कपिल मुनि के आश्रम का स्थान जो बीकानेर के पास कोलायत नाम से प्रसिद्ध है।

कोळायत–सं०स्त्री०—कुशलक्षेम।

कोलाल, कोलालक–सं०पु० [सं० कुलाल] १ कुम्भकार, कुम्हार. २ ब्रह्मा।
उ०—त्रिविध संसार उपाविया कोलालक भंडा।—केसोदास गाडण

कोलाळी–सं०पु० [सं० कुलाल] १ ब्रह्मा (ह.नां.) २ उल्लू.

३ जंगली मुर्गा. ४ कुम्हार (डिं.को.) ५ एक प्रकार का पक्षी विशेष (डिं.को.)

कोलाहट–सं०पु० [सं०] नृत्य में प्रवीण वह मनुष्य जिसके अंग खूब टूटे हों, जो अंगों को खूब मोड़ सकता हो, जो तलवार की धार पर नाच सकता हो और जो मुंह से मोती पिरो सकता हो।

कोळाहळ–सं०पु० [सं० कोलाहल] बहुत से लोगों की अस्पष्ट चिल्लाहट, शोर, हल्ला, ध्वनि, आवाज। उ०—१ सु इहां पंखी बोलै छै सु जांणं बंदीजना को कोळाहळ होइ छै।—वेलि.

उ०—२ इक डंकियो बाजतो जावै, कोळाहळ होय रहियो छै, पोड़ां सूं जमी बाजै छै।—कुंवरसी सांखला री वारता

कोलियौ–वि०—१ तिरछी निगाह से देखने वाला. २ छोटी आंख वाला।

कोळी–सं०स्त्री०—१ जंगली जातियों के अंतर्गत एक जाति विशेष।

उ०—'अंजन' कमोई ऊपरा, असहां जांण उतन्न। पुर होळी जिम घेरियौ, कोळी खीम करन्न।—रा.रू.

सं०स्त्री०—२ काठियावाड़ की एक शासक जाति या इस जाति का व्यक्ति (वि.सं.)

कोली–सं०स्त्री०—तिरछी निगाह।

कोळीकांदौ–सं०पु०—औषध के काम आने वाली गोभी या गरम गोभी नाम की घास।

कोळीवाड़–सं०स्त्री०—मकड़ी (अ.मा.)

कोळू–सं०स्त्री०—मारवाड़ राज्यान्तर्गत पश्चिम का एक स्थान जहाँ पर प्रतिज्ञा वीर पाबू राठौड़ का स्मारक स्थान है। यहां पर पाबूजी के भक्तों का वर्ष में एक बार बड़ा भारी मेला लगता है।

कोलेयक–सं०पु० [सं० कौलकेय] कुत्ता (ह.नां.)

को'ळै–वि०—कुशल, कुशलपूर्वक (यौ० कोळखेम)

कोळौ–सं०पु०—१ कुष्मांड, एक गोल फल जिसका शाक बनाया जाता है, कुम्हड़ा। [सं० कोल] २ सूअर (डिं.को.)

कोलौ–वि०—तिरछी आंख वाला।

कोल्हू–सं०पु०—१ तेल निकालने या ऊख पेरने का एक यंत्र जो कुछ-कुछ डमरू के आकार का और बहुत बड़ा होता है. २ खपरैल।

उ०—पड़वै चढ़ि नै एकै वाती विचला कोल्हू उतारिया।—चौबोली

कोवस–सं०पु० [सं० को-वंश्य] पितरों को बलि देते समय कौए को पुकारने का शब्द।

कोविद–सं०पु०—१ पंडित, विद्वान (डिं.को.) २ कवि (अ.मा.)

कोस–सं०पु० [सं० क्रोश] १ प्रायः दो मील की दूरी का एक नाप.

[सं० कोश (कोष)] २ पंचपात्र नामक पूजा का बरतन. ३ तलवार, कटार आदि का म्यान। उ०—अदतां केरी अथ ज्यूं, कायर री किरमाळ। कोड़ पुकारां कोस सूं, नह पावै निकाळ।—बां.दा. ४ वह ग्रंथ जिसमें अर्थ या पर्याय के शब्द इकट्ठे किये गये हों. ५ अंडकोष. ६ ज्योतिष में एक योग जो शनि और वृहस्पति के साथ किसी तीसरे ग्रह के आने से होता है. ७ खोली, आवरण। उ०—कनक कोस सींगां सजे, रजत खुरां अभिरांम। इम गोगण दीधौ अधिप, निवत उबारण नांम।—वं.भा.

[सं० कोष] ९ संचित धन, खजाना।

[रा०] १० कपट (ह.नां., अ.मा.) ११ मोट, चरस।

उ०—किरसांणां हळ छोडिया, लीन्हा लाव'र कोस। कूवां कूंडां बेरियां, पूगा जीवं मसोस।—बादळी

[सं० कोश] १२ अंडा (डिं.को.)

कोसक–सं०पु० [सं० कौशिक] १ कौशिक, विश्वामित्र (डिं.को)

उ०—एकण दिहाड़ै मुनिराज अजोध्या कोसक आवण कीधौ।

—र.रू.

२ एक राग विशेष (संगीत) ३ इन्द्र (नां.मा.)

कोसकार–सं०पु० [सं० कोशकार] १ म्यान बनाने वाला. २ शब्दकोश बनाने वाला।

कोसणौ, कोसबौ–क्रि०अ०स०—१ विलाप करना. २ छीनना, लूटना।

कहा०—कोस्यां पाछै डूमड़ो भागी बारा कोस—लुट जाने के बाद ढोलन डर के मारे बारह कोस तक भागी; कमजोर हृदय वाले व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक डर लगता है।

३ भला-बुरा कहना।

कोसणहार, (हारौ) हारी, कोसणियौ—वि०।

कोसाणौ, कोसाबौ—स०रू०।

कोसिओड़ौ, कोसियोड़ौ, कोस्योड़ौ—भू०का०कृ०।

कोसीजणौ, कोसीजबौ—भाव वा०।

कोसनायक–सं०पु० [सं० कोशनायक] कोषाध्यक्ष, खजांची।

कोसपति–सं०पु० [सं० कोशपति] कोषाध्यक्ष।

कोसळ–सं०पु० [सं० कोशल] १ अयोध्या का एक नाम।

सं०स्त्री०—२ देखो 'कौसल्या' (रू.भे.) उ०—जनमे कोसळ मात जदि रांमचंद्र अवतार।—सू.प्र. २ चतुरता, दक्षता।

कोसल्य—देखो 'कौसल्या' (रू.भे.) उ०—वधै मात कोसल्य आए वधाए।—सू.प्र.

कोसल्यानन्दण, कोसल्यानन्दन–सं०पु०—कौशल्या के पुत्र, श्री रामचंद्र।

कोसातकी–सं०स्त्री०—तोरई (डिं.को.)

कोसाध्यक्ष–सं०पु० [सं० कोषाध्यक्ष] कोष का अध्यक्ष, खजांची।

कोसिक–सं०स्त्री० [सं० कौशिक] १ मज्जा, गूदा (डिं.को.)

२ देखो 'कोसक' (रू.भे.)

कोसी–सं०स्त्री० [सं० कौशिकी] १ एक नदी जो नेपाल के पहाड़ों से निकल कर चंपारन के पास गंगा में मिलती है। इसका बहाव बहुत तेज है. २ एक राग विशेष (मीरां)

[सं० कोशी] ३ फली (डिं.को.)

कोसीटौ—देखो 'कोयटौ', रू.भे.। उ०—गांवां कोसीटा २०० हुवै, बीजा गांव सारा इकसाखिया।—नैणसी

कोसीद-संपु० [सं० कौसीद्यम्] आलस्य, सुस्ती (डिं.को.)।

कोसीस-संपु० [सं० कपि-शीर्षक, प्रा० कविसीस, अप० कवसीस, रा० कोसीस] १ किला या गढ़ की दीवार में थोड़ी-थोड़ी दूर पर त्रिकोणाकार स्थान, कंगूरा। उ०—तिरण गढ़ मांहे बावड़ी कूग्रा तळाव जळ बहुळ धान घ्रित तेल लूण खड़ ईंधण अमल कपड़ो घणो अपार संचो किग्रो छै। कोट भुरजां रा कोसीस नै धमळहर धमळगिर पहाड़ ज्यौ बादळां रा किरण सरीखा उजळा सीकोट सो निजरि आवै छै।—रा.सा.सं. २ शिखर। उ०—कोट कोसीसा ग्रंत न पार, देव-नयर छइ रूवड़उ।—वी.दे. ३ कोशिश, यत्न, परिश्रम।

कोसे'क-वि०—एक कोस के लगभग। उ०—पाव कोसे'क गया जद डाढ़ाळो बोलियौ।—डाढ़ाळा सूर री वात

कोसेय-संपु० [सं० कौशेय] रेशम। उ०—सिरोरूह कोसेय काळा सरीखा, तियौ ग्रांक भ्रू बांकड़ा नेत तीखा।—मे.म.

कोसौ-संपु०—१ कोल्हू में से खली को हटाने का लोह का बड़ा छड़. २ पत्थर हटाने का बड़ा लोह का छड़. ३ बादल का बरसने के बाद का शेष जल। उ०—विरखा काठी राखलै, मत नां कोसौ भाड़। पाका पांनां मत करै, ग्रोळां री बौछाड़।—वादळी

कोस्तब-संपु० [सं० कौस्तुभ] एक मणि का नाम।

कोह-संपु० [फा०] १ पर्वत, पहाड़।
[सं० कोशपान] २ किसी प्रकार के अपराध या दोष के कलंक की मुक्ति के हेतु देव विशेष का नाम लेकर पीया जाने वाला जल।
[सं० क्रोध] ३ क्रोध, गुस्सा। उ०—बिमोह मोह-मोह में, विद्रोह द्रोहिपें बढ़ै। कृतांत भांत कोह में, कु कोह कोहिकौ कढ़ै।—ऊ.का.
संस्त्री० [रा०] ४ धूलि, रज। उ०—रांण दिस हालिया ठांण ग्रारांण रुख, कोह ग्रसमांण चढ़ भांण-ढंका।—र.रू.
[सं० कुहू] देखो 'कुह' (३, ४) (रू.भे.)

कोहक-संस्त्री०—मोर की तेज आवाज।
उ०—भर फूल फळित ग्रढ़ार भार, जुथ करत भ्रमर भणहरण गुंजार। मिळि करत तंब छत्र कोहक मोर, सुक चात्रिग कोकिल करत सोर।—सू.प्र.

कोहकाफ-संपु० [फा० कोह+ग्र० काफ़] यूरोप और एशिया के मध्य का पहाड़।

कोहनूर-संपु० [फा० कोहे+ग्र० नूर] १ एक प्रसिद्ध हीरा जो आकार में साधारण हीरों से काफी बड़ा है। कहते हैं कि यह राजा कर्ण के पास था और पीछे मालवे के राजा वीर विक्रमादित्य के पास था। तत्पश्चात् इस हीरे को गोलकुंडा के बादशाह को सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में ग्वालियर के राजा ने दिया। करनाल के युद्ध के पश्चात् सन् १७३९ में यह नादिरशाह के हाथ लगा और उसी के वंशज शाह सुजा से महाराजा रणजीतसिंहजी ने इस ही को प्राप्त किया। आखिर में ब्रिटिश साम्राज्य में यह हीरा अंग्रेजों के हाथ लगा और दूसरे ही वर्ष सन् १८५० में इंगलैंड की महारानी विक्टोरिया को अर्पित हुआ और आज भी यह अंग्रेजों के राजकोश में सुरक्षित है। प्रारम्भ में इस हीरे को संसार का सबसे बड़ा हीरा समझा जाता था और इसका वजन ३१९ रत्ती था किन्तु अब दुबारा जांच करने पर इसका वजन केवल १०२½ रत्ती ही रह गया है. २ मुसलमानों का एक तीर्थ-स्थान (बां.दा.ख्यात)

कोहमंड-संपु० [सं० कोदंड] धनुष।

कोहमा-संस्त्री०—रजकण, धूलि। उ०—कोहमा चढंका भांण, उडै रैण ग्रीध कंका। ग्रसंका ग्रारांण बीच, छंडै जीव ग्रास।
—हुकमीचंद खिड़ियौ

कोहर-संपु० [सं० ग्रकूपार] कूप, कुग्रा (क्षेत्रीय) उ०—सो 'नापौ' कोहर ऊपर खड़ो छै। कोहर तेवायो सो वारा ग्राठ नौ नीसरिया। दसनौ वारौ खांचतां नाको खुस गयौ।—नापा सांखला री वारता

कोहा-सर्व०—कौन। नागहारी मोहा संच्चै वैताळ समोहा नच्चै महाकाळ होहा तच्चै कोहा मच्चै मीच।—हुकमीचंद खिड़ियौ

कोहिक-सर्व०—कोई। उ०—आ खबर मांनसिंघ दूदावत नुं सीरोही था कोहिक आयौ हुतौ तिरण कही हुंती।—नैणसी

कोहिर—देखो 'कोहर' (रू.भे.) उ०—पड़पण कोहिर पर कोहिर पड़ जावै।—ऊ.का.

कोहीरौ-वि० [सं० क्रोधीला या कोधी, प्रा० कोही] १ तुच्छ विचार या सिद्धांत वाला २ मन ही मन कुढ़ने वाला तथा बुरा चाहने वाला।

कोहेलुबानांन-संपु०—मुसलमानों का एक तीर्थ-स्थान (बां.दा.ख्यात)

कौंग्रर—देखो 'कुंग्रर' (रू.भे.) उ०—कौंग्रर भोज करंन, किग्रावरी पूर तपी परिपाळणी। —ल.पिं.

कौंकुम-संपु० [सं०] तीन पूंछ वा चोटी वाले लाल रंग के पुच्छल तारे। बृहत् संहिता के ग्रनुसार इनकी संख्या ६० मानी जाती है।

कौंच, कौंछ कौंछि-संस्त्री० [सं० कच्छु] एक प्रकार की लता विशेष, कौंच (ग्रमरत)

कौंण-सर्व०—कौन। उ०—स्वामीजी ! मन कै कौंण राह, कौंण चाल कौंण मूळ कौंण डाळ। —ह पु वा.

कौंतयस-संपु० [सं० कौंतेय] कुंती पुत्र युधिष्ठिरादि (ह.नां.)

कौंपळ-संपु०—१ कोंपल। उ०—रहै उमा भुज वीटियौ, नव कौंपळ रै रंग। ग्रादर पावै कंठ उग, सूर तणौ उतमंग।—बां.दा.

कौंभ-संपु० [सं०] सौ वर्ष का पुराना घी (वैद्यक)

कौंसलर-संपु० [ग्रं०] परामर्शदाता, सलाह देने वाला।

कौंसिल-संस्त्री० [ग्रं०] १ कुछ लोगों की वह बैठक जो किसी विषय पर विचार करने के लिए की गई हो. २ शासक को परामर्श देने के लिए बनाई गई कुछ लोगों की सभा।

कौ-संपु०—१ वृषभ. २ नर. ३ कामदेव. ४ यम. ५ यश. ६ कार्य (एका०)
वि०—घृष्ट।

सर्व०—कोई। उ०—तांम सूझै न को, ठांम धवळह तणा। धणा ग्रन राइयां, रूक रावै घणा।—हा.झा.

अव्यय—संबंधसूचक प्रत्यय—का। उ०—आठम प्रहर संझा समै, धण ठव्वै सिणगार। पांन कजळ पाखर करै, फूलां को गळिहार। —ढो.मा.

कौड़ि—वि० [सं० कोटि] करोड़। उ०—सुणत सुणत सुणि सुणि प्रसुणि, कथत कथत गये कौड़ि।—ह.पु.वा.

कौड़ियाळी—वि० (स्त्री० कौड़ियाळी) कौड़ी के रंग का, कपर्दिका से जड़ा हुआ।

सं०पु०—१ कोकई रंग. २ एक विषैला सर्प।

कौड़ियौ, कौड़ीयौ—सं०पु०—खंजरीट नामक एक प्रकार का पक्षी।

उ०—इसा जु खंजरीट कहतां कौड़ीया, सोई गतिकार हुआ। —वेलि.

कौच—सं०पु० [सं० कवच] कवच, जिरह-बख्तर। उ०—हूं हेली अच-रज कहूं, घर में बाथ समाय। हाको सुणतां हुलसै, मरणो कौच न माय।—वी.स.

कौचुमार—सं०स्त्री० [सं०] कुरूप को सुन्दर बनाने की विद्या, चौसठ कलाओं के अन्तर्गत एक कला।

कौडी—सं०स्त्री० [सं० कपर्दिका] १ घोंघे जैसा अस्थिकोश में रहने वाला समुद्री कीड़ा. २ इस कीड़े का अस्थिकोश जो सबसे कम मूल्य के सिक्के की भाँति उपयोग में लिया जाता था।

मुहा०—१ कौडी कांम रौ नहीं होणौ—बेकार, कुछ भी काम का नहीं. २ कौडी-कौडी चुकाणी—कर्ज का पैसा-पैसा चुका देना. ३ कौडी नी पूछणी—एकदम बेकार समझना; मुफ्त में भी न लेना. ४ कौडी-कौडी नै तरसणौ—पास में रुपया-पैसा बिल्कुल न होना. ५ कौडी-कौडी लेणी—पूरा लेना; हिसाब में कौड़ी-कौड़ी तक ले लेना. ६ कौडी रौ—बेकार; बेइज्जत; गिरा हुआ. ७ कौडी रौ करणौ—बरबाद कर देना; इज्जत बिगाड़ डालना. ८ कौडी रौ तीन होणौ—कुछ कदर न होना; बहुत सस्ता होना।

कहा०—१ कौडी-कौडी करयां लंक लागै—थोड़ा-थोड़ा करके ही अधिक होता है. २ कौडी-कौडी नै कंजूस, रुपया रौ दातार—कौड़ी-कौड़ी के लिये कंजूस, पर रुपयों को उड़ाने वाला. ३ कौडी-कौडी संचता रुपियौ हुवै—थोड़ा-थोड़ा करने से बहुत हो जाता है. ४ कौडी साटै हाथी जावै—कम मूल्य की वस्तु के बदले अधिक मूल्य की वस्तु का आदान-प्रदान।

३ आँख का डेला. ४ वक्षस्थल के नीचे बीचोबीच का वह भाग जहाँ पसलियों की हड्डियां मिलती हैं।

कौण—सर्व०—देखो 'कौन'। उ०—देखै भीखम द्रोण, जेठ करण देखै जठै। को' हुर वरजै कौण, लाज रुखाळा लाज लै। —रांमनाथ कवियौ

कौणे—किसने। उ०—प्रीतम कूं पतियां लिखूं, विसुर-विसूर। ये तुमको कौणे कही, या पर डारत घूर।—अज्ञात

कौतग—देखो 'कौतक' (रू.भे.)

कौतल—देखो 'कोतल' (रू.भे.) उ०—पदि झुलति कौतल पाय, जिण निरख नट नमि जाय।—रा.रू.

कौतिक, कौतिग कौतुक—देखो 'कोतक' (रू.भे.) उ०—१ तव अरक रथ थरक कौतिक, उदधि रण प्रथाह।—सू.प्र. उ०—२ व्रज मांही कौतिग भया, हरिजन खेलै फाग।—ह.पु.वा.

कौतूहळ—सं०पु० [सं० कौतूहल] १ कुतूहल, उत्सुकता. २ डिंगल के वेलिया सांणोर छंद का एक भेद जिसके प्रथम द्वाले में २२ लघु २१ गुरु कुल ६४ मात्रायें होती हैं (पिं.प्र.)

कौन—सर्व० [सं० किम्] व्यक्ति या वस्तु की जिज्ञासासूचक प्रश्नवाचक सर्वनाम।

कौनस—सं०पु०—बढ़ई का एक औजार।

कौफ—सं०पु० [फा० खौफ] आतंक, भय।

कौफरी—वि०—काफिर की, काफिर संबंधी। उ०—फरमांण कमरबुत कौफरी, रकम जवाहिर ऊंच रिध।—रा.रू.

कौम—सं०स्त्री० [अ० कौम] जाति, वर्ण।

कौमार—सं०पु० (स्त्री० कौमारी) देखो 'कुमार'। उ०—अजै नृपत उण वार, नूर कौमार परक्खे। एम धकै दशरत्थ, जेम स्रीरांम निरक्खे।—रा.रू.

कौमारी—सं०स्त्री० [सं०] चौसठ योगिनियों में से छप्पनवीं योगिनी।

कौमियत—सं०स्त्री० [अ०] जातीयता, कौम का भाव।

क्रि०वि०—कौम के संबंध में।

कौमी—वि०—जातीय, कौम संबंधी।

कौरवदळण—सं०पु०—भीम (ह.नां.)

कौल—सं०पु०—१ वायदा, प्रण, वचन, कथन। उ०—१ किण वास्ते थारा जवांनी रा दिन छै, समय कांम रै जोर रौ नै कळंक लागण रौ छै। तूं कौल देय सो थारै आछा घरांणे री बेटी लाऊं।—नी.प्र.

उ०—२ जे कुंवरजी स्रावण री तीज रौ कौल कर आया छै सो उठै गयो रहसी।—कुंवरसी सांखला री वारता

उ०—३ प्रभू सूं कौल पाळियो तो प्रभू पण तुरत ही किरपा कीवी। —नी.प्र.

क्रि०प्र०—करणौ, देणौ, लेणौ, होणौ।

मुहा०—१ कौल बांधणौ—वचन देना, प्रतिज्ञाबंध होना. २ कौल रौ धणी; कौल रौ पक्को; कौल रौ पूरौ—जो कहे उसे पूरा करने वाला. ३ कौल माथै जमणौ—कही हुई बात पर जमा या अड़ा रहना।

यौ०—कौल-करार।

कौळ—१ सूअर। उ०—तुंडां गज फेटां तुरी, डाढ़ां मढ़ ओछाड़। हेकण कौळै घूंदिया, फौजां पाथर पाड़।—वी.स. २ वराह अव-तार। उ०—जइतसी राउ जंगमां जोळ, कांपियउ सेस कूरम्म कौळ। —रा.ज.सी.

३ बड़ा चूहा। उ०—फिरड़ा कर रिमझोळ डोळ डाळयां रंग घालै, ऊंदरियां री ग्रोळ कौळ बिल जड़ां टंटोळै।—दसदेव ४ विलाप, रुदन, ग्रश्रुपात। उ०—ढोलौ चाल्यौ हे सखी, ग्रांबा केरी भोळ। हिउ हेमजळ होइ रह्यौ, नयणे मंडी कौळ।—ढो.मा. ५ उत्तम कुल में उत्पन्न. ६ वाममार्गी।

वि०—१ काला, श्याम (डिं.को.) २ पैतृक [सं० कौल] ३ ग्रच्छे कुल में उत्पन्न, कुलीन।

कौलका—सं०स्त्री० [सं० कोलक] काली मिर्च (ग्र.मा.)

कौळखेम—सं०स्त्री०यौ० [सं० कुशल क्षेम] ग्रानन्द, कुशलता, प्रसन्नता, राजीखुशी।

कौलनामौ—सं०पु०यौ०—इकरारनामा। उ०—जोर दीधौ फिरंगी लिखायो कौलनामौ जठै, ग्राप-रंगी चूंडा तें मेवाड़ राखी ग्रोट।
—राघोदास सांदू

कौलयक—सं०पु० [सं० कौलेयक] कुत्ता (ग्र.मा.)

कौलव—सं०पु० [सं०] ज्योतिष के ग्रंतर्गत ग्यारह करणों में से तीसरा करण। इस करण में जन्म लेने वाला विद्वान ग्रौर गुणी होता है। इसके देवता मित्र हैं।

कौला—सं०स्त्री० [सं० कोला] पिप्पली (ग्र.मा.)

कौसक—सं०पु० [सं० कौशिक] इंद्र (ना.डिं.को)

कौसक-वाहण सं०पु० [सं० कौशिक+वाहन] १ हाथी (ना.डिं.को.) २ ऐरावत।

कौसकी—सं०स्त्री० [सं० कौशिका] एक नदी का नाम। उ०—विसवा-मित्र विहूम वड़ नदी कौसकी नांम।—रांमरासौ

कौसतब—सं०पु० [सं० कौस्तुभ] कौस्तुभ मणि।

कौसया—सं०स्त्री०—कुश की शय्या।

कौसलि, कौसल्या—सं०स्त्री० [सं० कौशल्या] राजा दशरथ की ज्येष्ठ रानी, कौशल्या (रांमकथा)

कौसांबी—सं०स्त्री० [सं० कौशांबी] एक बहुत प्राचीन नगर (ऐतिहासिक)

कौसिक—सं०पु० [सं० कौशिक] १ विश्वामित्र। उ०—कौसिक रिख जग काज रै, जाचिया स्त्री रघुराज रै।—र.ज.प्र. २ इन्द्र (ह.नां.)

कौसिकी—सं०स्त्री० [सं० कौशिक] १ एक रागिनी (संगीत) २ काव्य में एक वृत्ति—जहाँ करुणा, हास्य ग्रौर भृंगार रस का वर्णन हो ग्रौर सरल वर्ण ग्रावे उसे कौशिकी वृत्ति कहते हैं (बां.दा.) [सं० कौषिकी] ३ एक देवी जिनकी उत्पत्ति काली के शरीर से उत्पन्न हुई थी. ४ चौंसठ योगिनियों में से त्रेपनवीं योगिनी।

कौसिलिया—देखो 'कौसल्या' (रू.भे.)

कौसीतकी—सं०स्त्री० [सं० कौषीतकी] १ ग्रगस्त्य की एक स्त्री का नाम. २ ऋग्वेद की एक शाखा।

कौसेय—वि० [सं० कौशेय] रेशम का, रेशमी।

कौसैया—वि०—देखो 'कौसेय'।

सं०पु० [सं० कु+शय्या] बुरी शय्या। उ०—लगे ना कौसैया मलिन सुभ सैया मन लगी। पढ़ौंरा पारादी नहिन चित चौराधिक पर्गे।
—ऊ.का.

कौस्तुभ—सं०पु० [सं०] १ समुद्र-मंथन के समय प्राप्त एक मणि जिसे भगवान विष्णु ग्रपने वक्षस्थल पर धारण करते हैं. २ तंत्र के ग्रनु-सार एक प्रकार की मुद्रा।

क्यउ, क्यऊं—क्रि०वि०—१ क्यों. २ कैसे, किस प्रकार। उ०—चोर मन ग्राळस करि रहइ, जाचक रहइ लुभाइ। राज्यंद जे नर क्यऊं रहइ, माल पराया खाइ।—ढो.मा.

क्यव—सं०पु० [सं० कवि] देखो 'कवि' (रू.भे.)

क्यवराज—देखो 'कविराज' (रू.भे., डिं.को.)

क्यां—क्रि०वि०—१ कैसे, किस प्रकार। उ०—एम सुजायत खान नूं, लिखियो ग्रवरंग साह. झूठ सफी खां झालिया, सो क्यां हुवै निबाह। २ क्यों। —रा.रू.

सर्व०—१ एक प्रश्नवाचक शब्द जो उपस्थित या ग्रभिप्रेत वस्तु की जिज्ञासा करता है।

कहा०—१ क्या करै नर बांकड़ा, जद थैली का मुंह सांकड़ा—पैसे न हों तो मनुष्य क्या करे. २ क्यांरी कुपाळी है—बकवादी के प्रति। २ किस. ३ कौन।

क्यांमखांनी—देखो 'कैमखांनी' (रू.भे.)

क्यांमळकुळ—देखो 'कैमखांनी'। उ०—क्यांमळकुळ घूंकळ कियो, किण पै निजरि करूर। ग्राज फतैपुर ऊथपां, जैपुर किसी जरूर।—शि वं.

क्यांर—क्रि०वि०—कैसे। उ०—क्यांर बणावां बउ री जी पाळ, क्यांर सिंचावां हरिये रूंख नैं।—लो.गी.

वि०—कैसा।

क्यांहरी—क्रि०वि०—१ कैसी. २ किस बात की। उ०—ग्रार पहिलां मांहीज घोड़ी ग्रांणी म्हां पहिल की थांनु वडाई क्यांह री।—चौबोली

क्यांहि—सर्व०—किस। उ०—कह्यौ ना जी यु नहीं चार हैंसां करिस्यां, कह्यौ जी क्यारि क्यांहि रा।—चौबोली

क्यांहीक—वि०—कुछ (ग्रमरत)

क्या—देखो 'क्यां'।

क्याड़ी—देखो 'किमाड़ी' (रू.भे.) उ०—कसी क्वाड़ गंडासी कसिया डांडा दाती दांतियां, ग्याता क्याड़ी गाड पंजाळी खेब खब पड़ खातियां।—दसदेव

क्यावर—देखो 'क्यावर' (रू.भे.)

क्यावरी—वि०—देखो 'क्यावरी' (रू.भे.)

क्यारा—सर्व०—किसके। उ०—क्यारा कागद होसी वे कांम मांमै फोड़ा क्यूं।—ढो.मा.

क्यारौ—सं०पु० [सं० केदार] (स्त्री० क्यारी) १ बगीचों में थोड़े-थोड़े ग्रंतर पर पतली मेंढ़ों के बीच की भूमि जिसमें पौधे लगाए जाते हैं। उ०—तिण दिन तीजणियां निरखी तन त्यारी, कंचन बेली सी केसर री क्यारी।—ऊ.का. २ सिंचाई के लिए खेत में बनाए गए विभाग।

कहा०—क्यारा सुं क्यारी पी गयौ—साथ रहने वाले सब बुरे व्यक्तियों के लिए।

३ नमक जमाने के लिए स्थान का छोटा विभाग।

क्यावर-सं०पु०—१ कार्य, काम, बड़ा उत्तम कार्य। उ०—मिटै दांन सुनमांन उरड़ रीभ्रां आडंबर, मिटै लाड मांगणां करम धरम सत क्यावर।—पहाड़खां आढ़ौ २ दान (डि.को.) उ०—१ पाछै तूंवर परणिया, स्त्री दूलह अभसाह। तनया जोरावर तणी, क्यावर गंग प्रवाह।—रा.रू. उ०—२ प्रांण गांठ जेते पुखत, इण तन मांझल एह। क्यावर ते ते नांम कर, दांम गांठ मत देह।—बां.दा. ३ अहसान. ४ उदारता, यश, गौरव। उ०—दत्त क्यावर दौढ़ा सदा, प्रथमी पर परमार। आ गादी अमरांण री, साबत रखै सुप्यार।—पा.प्र.

क्यावरि, क्यावरी, क्यावरौ—देखो 'क्यावर'। उ०—पह समराथ हाथ जग ऊपरि, क्यावरि करण करम रौ कोट।—ल.पि.

वि०—१ अहसान करने वाला, अहसान रखने वाला. २ यशस्वी. ३ दातार।

क्युं क्यु-सर्व०—कोई। उ०—हुं किसी भांति बोलूं, बात कहीस तौ हुंकारौ देतौ तौ सारीखौ बीजौ क्युं नहीं।—चौबोली

क्रि०वि०—क्यों।

क्युंहक, क्युंही-वि०—कुछ। उ०—रांणौ कुंभौ क्युं हीरौ क्युंही बोलै तद कुंभलमेर रहता सु गढ़ ऊपर ठौड़ मामा कुंडळ छै।—नैणसी

क्यूं-वि०—कुछ। उ०—१ असल रौ मजौ क्यूं और है, निकमूं आणंद नकल रौ।—ऊ.का. उ०—२ दूजे दिन बखतसिंहजी रौ सरीर क्यूं बेचैन हुवौ।—मारवाड़ रा अमरावां री वारता

क्रि०वि०—क्यों। उ०—नर नारी सूं क्यूं जळइ, नर सूं नारि जळंत।—ढो.मा. २ किसी व्यापार या घटना के कारण की जिज्ञासा करने का शब्द. ३ कैसे, किस कारण। उ०—जन मीठा बोला जिके क्यूं जग बस न करंत।—बां.दा.

कहा०—१ क्यूं आंधो नूं तै'र क्यूं दो जिमावणा—ऐसा कार्य क्यों करना जिसमें हानि उठानी पड़े. २ क्यूं रांड कह अर निपूती सुणणी—जैसा कहोगे वैसा सुनोगे।

क्यूंई, क्यूंईएक, क्यूंक-वि०—कुछ। उ०—१ रिसीस्वर चालण रौ विचार कीयौ, तरै क्यूंई बापा नै देण रौ विचार कीयौ।—नैणसी उ०—२ उमर पिण जिके ब्रह्मा री पावै, तद क्यूंक कहणी में आवै।—र.रू.

क्रि०वि०—कैसे, किस प्रकार। उ०—१ ऊभां सीहां केस इक, कर लेणी मुसकल्ल। पांण छतै क्यूंकर पड़ै, ऊभां सीहां खल्ल।—बां.दा.

उ०—२ थाहौ छौ पण जाळोर एक घड़ी मांही लेयस्यूं। राखसे क्यूंकर।—मारवाड़ रा अमरावां री वारता

क्यूंकि, क्यूंकै-क्रि०वि०—क्योंकि। उ०—हे सरस्वती म्है म्हारा हृदय मैं मन री जांणी उखी लायौ हूं क्यूंकि वीर पुरसां री कीरती गाय नै प्रगट करणा सारू।—वी.स.टी.

क्यूंही, क्यूंहीएक, क्यूंहीक, क्यूंहेक-वि०—कुछ, कुछ भी। उ०—१ तद केसरीसिंह नकीब नूं तौ क्यूंही कही नहीं अर परभात नूं बकसी सलावत खां कन्है गयौ।—अमरसिंह री बात उ०—२ कितरोइक ऊपर गहणौ, क्यूंहीक रोकड़ दियौ, तद बांमण डावड़ा नूं ले घर गयौ।—नैणसी

क्रि०वि०—कैसे भी।

क्योंकर, क्योंकरि-क्रि०वि०—कैसे, किस प्रकार, किस कारण। उ०—१ कुंवर फुरमायौ आज क्योंकर मिळीजसी, महाराजा तौ बंधुगढ़ बिराजिया।—पलक दरियाव री वात उ०—२ नी पत्र दियौ इण वारी, क्योंकर स्यांम म्हांने विसारी।—लो.गी.

क्योंहिक, क्योंही—देखो 'क्यूंही' (रू.भे.) उ०—१ उणरै ढिग कोई रहै आदमी, तौ क्योंहिक कसर कुमाई मैं।—ऊ.का. उ०—२ जै साहूकार नै आदमी आयां री खबर हुई तौ कहीं परदेस मेल देसी; पछै क्योंही वटसी नहीं।—पलक दरियाव री वात

क्यों—देखो 'क्यूं' (रू.भे.)

क्रंगवा-सं०स्त्री०—पँवार या पँवार वंश की एक शाखा।

क्रंभी-सं०स्त्री०—क्रौंच पक्षी (रू भे. क्रुंभी')

क्रंत—देखो 'कांति'। उ०—१ कंचण जवहर क्रंत विविध सिंगार बडाई।—बां.दा. उ०—२ कंचण खंभ मंडित कीन वरणण छबि कारां। झळहळ क्रंत पूर झळूस मुगता झालरा।—बां.दा.

क्रंदन-सं०पु० [सं०] १ रोना, विलाप। उ०—क्रंदन की कूक मूक नभ को विलोड़ रही अंधकार भासे हा ! संसार उन बिन है। २ युद्ध-समय वीरों का आह्वान।—केसरीसिंह बारहठ

क्रंन-सं०पु० [सं० कर्ण) राजा कर्ण। उ०—रांमण नह सोनौ दियौ, लहि सोना री लंक। क्रंन दत सोनौ कापियौ, बिणही लंका बंक।—बां.दा.

क्रंम-सं०पु०—कार्य, कृत्य। उ०—दहियौ कांम कियौ क्रंम दारण।—भ्रं.पु.

क्रकच-सं०पु० [सं०] १ ज्योतिष में एक अशुभ योग जबकि वार और तिथि की संख्या का जोड़ १३ होता है. २ करील का वृक्ष. [सं०] ३ आरा, करवत (डि.को.) उ०—करवाळ रूप क्रकचां मैं अंग रा फाचरा उडाइ सेलां रा सालां करि पाछौ जुड़ाई खेत पड़ियौ। ४ एक नरक।—वं.भा.

क्रकचच्छद-सं०पु०—केवड़ा, केतकी (डि.को.)

क्रकवाकू-सं०पु० [सं० कुकुवाकुः] मुर्गा (डि.को.)

क्रख-सं०स्त्री० [सं० कृषि] खेती, कृषि। उ०—सूकत क्रख अळहर सबद, लगां अगन रंग लाल।—पा.प्र.

क्रग–सं०स्त्री० [सं० करग] १ तलवार, खड्ग (डि.को.) २ हाथ, हस्त (रू.भे. 'करग')

क्रगलियू–सं०पु०—कवच। उ०—किय टोप रंगावळ क्रगलयू, सज हाथळ सींह सरक्कथि यूं।—पा.प्र.

क्रगल्ल–सं०पु०—कवच। उ०—कसै हाथळां टोप मोजा क्रगल्लं, जमद्दाढ़ वांमै जिकै खाग ढल्लं।—वचनिका

क्रग्ग–सं०पु० [सं० कराग्र] १ हाथ। उ०—कूंपावत कान्ह अजांन क्रग्ग, सुत एम मांम नृप छळ सुमग्ग।—रा.रू.

[सं० करग] २ तलवार। उ०—सुज सिंघ सही सुज सिंघ सत, एह न आरख आवरां। काय वात न मांनै पर किणी, क्रग्ग दीघ जळतौ करां।—मालौ आसियौ

क्रण–सं०पु० [सं० कर्ण] दानवीर कर्ण जो कुन्ती के कुमारावस्था में ही गर्भ से उत्पन्न हुए थे (रू.भे.)

क्रतंत–सं०पु० [सं० कृतांत] १ अंत या समाप्त करने वाला. २ यमराज, काल (अ.मा., नां.मा.) ३ पूर्व जन्म कृत शुभाशुभ कर्मफल. ४ मृत्यु. ५ पाप. ६ देवता. ७ शनिवार. ८ भरणी नक्षत्र. ९ दो की संख्या*

क्रत–सं०पु० [सं० कृत्य] १ कृत्य, कार्य, काम। उ०—१ अरक दिखण मग अयन, मास अगहन गुण मंडत। क्रत मंगळ पख क्रस्न, उदय आणंद अखंडत।—रा.रू.

यौ०—क्रतगुण।

२ शुभ कार्य, अच्छा कार्य। उ०—गरढ़ी गंघारीह, जिणनै पूछौ जाय नै। सो कहसी सारीह, क्रत अक्रत री कैरवां।—रांमनाथ कवियौ

३ कर्त्तव्य. [सं० कृत = हिंसायाम्] ४ कपट, छल, धोखा। उ०—ऐ बक मुनि ऊजळा, मीठा बोला मोर। पूछौ सफरी पनंग नूं, क्रत उघड़ै कठोर।—बां.दा.

[सं० कृतिन्, कृती] ५ कवि (अ.मा.) ६ पंडित, विद्वान व्यक्ति (ह.नां.) ७ देवता (अ.मा.) (मि० विबुध, सुमनस) ८ सतयुग. (यौ०—क्रतजुग)

सं०स्त्री० [सं० कीर्ति] ९ कीर्ति। उ०—मीठा कहे जांणियौ मींठां, कमधज धन ताहरी क्रत। बीकाहरा रैण विसतरियौ रे, अत भोहण मांहे अम्रत।—अज्ञात

क्रतमाळा–सं०स्त्री० [सं० कृतमाला] दक्षिण देश की एक छोटी नदी का नाम (बां दा.)

वि०—१ किया हुआ, संपादित. २ बनाया हुआ, रचित।

क्रतका–सं०पु० [सं० कृत्तिका] देखो 'क्रतिका' (नां.मा.)

क्रतकाकुमार–सं०पु०यौ० [सं० कृतिका+कुमार] स्वामी कार्तिकेय (अ.मा.)

क्रतकानंद–सं०पु०यौ० [सं० कृतिका+नंद] स्वामी कार्तिकेय (ह.नां., नां.मा.)

क्रतकासुत, क्रतकासूत–सं०पु०यौ० [सं० कृतिका+सुत] स्वामी कार्तिकेय (अ.मा., ह.नां.)

क्रतगुण–वि०—१ गुण करने वाला, भला करने वाला, उपकारक। [सं० कृतघ्न] २ कृतघ्न। उ०—राजा निकट मुकन तन रावत, क्रतगुण खीची 'सिवौ' कलावत।—रा.रू.

क्रतघण, क्रतघणी, क्रतघन, क्रतघनी, क्रतघ्नी–वि० [सं० कृतघ्न] दूसरे के उपकार को न मानने वाला, कृतघ्न। उ०—१ कीधोड़ी उपगार नर, क्रतघण मांनै नहीं। लांणतियां ज्यां लार, रजी उडावौ राजिया।
—किरपाराम

उ०—२ दे धरणी दातार सूं, मांगे हठ करमाल। कूड़ा बोलै क्रतघनी, कुकवि अनंत कुचाल।—बां.दा.

क्रतजुग–सं०पु० [सं० कृतयुग] सतयुग।

क्रतनुखार–सं०पु० [सं० तुषारकृत्] इंद्र (अ.मा.)

क्रतधंती, क्रतधुंसी क्रतध्वंसी–सं०पु०—शिव, महादेव (अ.मा.) उ०—क्रतध्वंसी विस्णूं कमळभव जिस्णू स्तुति करै, हिमासू उस्णासू पदम-पद पांसू सिर धरै।—मे.म.

क्रतपूर–वि०—कांतियुक्त, शोभायुक्त। उ०—कंचण खंभ मंडित कीन वरणण छबि करां, झळहळ क्रतपूर झळूस मुगता झालरां।—बां.दा.

क्रतब—देखो 'करतब'। उ०—लोभ कर धणी नै कपट कर संग लियौ, किसूं सारां मिळै क्रतब आछौ कियौ।—स्यांमजी बारहठ

क्रतभुज–सं०पु० [सं० क्रतु+भुज] देवता (ह.नां.)

क्रतमुख–वि० [सं० कृत+मुख] १ कुशल. २ पुण्यात्मा (डि.को.)

क्रतवरमा–सं०पु० [सं० कृतवर्मा] १ राजा कनक का पुत्र और कृतवीर्य्य का भाई. २ जैन मतानुसार वर्त्तमान अवसर्पिणी के तेरहवें अर्हत् के पिता।

क्रतवासा–सं०पु० [सं० कृतिवासस्] शिव, महादेव (क.कु.बो., नां.मा.)

क्रतवीरज क्रतवीरय–सं०पु० [सं० कृतवीर्य्य] राजा कनक का पुत्र और कृतवर्मा का भाई।

क्रतांत–सं०पु० [सं० कृतान्त] देखो 'क्रतंत' (डि.को.) उ०—दुस्सासेण माथ रौ क्रतांत रोध धायौ दूठ जेठी पाराथ रौ किनां भाराथ रौ जोध।
—हुकमीचंद खिड़ियौ

क्रतान–सं०स्त्री० [सं० कृत्वन्न] अग्नि (ह.नां.)

क्रताअंत–सं०पु० [सं० कृतान्त] १ यमराज (ह.नां.) २ नाश करने वाला. ३ पाप।

क्रतारथ–वि० [सं० कृतार्थ १ जिसका कार्य सिद्ध हो चुका हो, कृतकार्य, कृतकृत्य, संतुष्ट, सफल। उ०—आपणा मन स्युं आलोच ब्राह्मण आलोचै लागौ, जु रुखमणीजी क्रतारथ होस्यें, हौं तौ क्रतारथ हुऔ। —वेलि.टी.
२ दक्ष, कुशल, होशियार।

क्रति–सं०स्त्री० [सं० कृति] १ काम, कार्य (मि० क्रत, १) २ रचना। [सं० कृतिन्, कृती] ३ पंडित, विद्वान व्यक्ति (डि.को.) (मि० क्रत, ६) [सं० कृत्या] ४ जादू, टोना, उपचार। उ०—मिळी अंब साख प्रसाख रसमय अमिति मंजुर मंजुरे। रसहीन अनि तर सरब रेणा सीत छळ क्रति संचरे।—रा रू.

क्रतिका-सं०स्त्री० [सं० कृतिका] सताइस नक्षत्रों के अंतर्गत तीसरा नक्षत्र ।

क्रतिकासुत-सं०पु० [सं० कृतिका सुत] कृतिका नक्षत्र से उत्पन्न होने वाले शिव के ज्येष्ठ आत्मज जिन्हें चंद्र-पत्नी कृत्तिका ने अपने पय से पाला था । ये देवताओं के सेनापति थे । षडानन । (ह.नां., डिं.को.)

क्रती-वि० [सं० कृती] १ पंडित. २ कवि (ह.नां., अ.मा.)

क्रतु-सं०पु० [सं०] १ निश्चय, संकल्प. २ इच्छा, अभिलाषा. ३ विवेक, प्रज्ञा. ४ इंद्रिय जीव. ५ विष्णु. ६ आषाढ़. ७ पुण्य, धर्म. ८ ब्रह्मा के एक मानस पुत्र जो सप्त ऋषियों में से हैं. ९ सतयुग जो १७२८००० वर्ष का होता है. [सं० क्रतुः] १० यज्ञ (डिं को.)

क्रतुध्वंसी-सं०पु०यौ० [सं०] दक्ष प्रजापति का यज्ञ नष्ट करने वाले, शिव ।

क्रतुपसु-सं०पु० [सं० क्रतुपशु] घोड़ा, अश्व ।

क्रतुभक्षण-सं०पु०—देवता, सुर (डिं.को.)

क्रतू-सं०पु० [सं० कृतम्] १ सतयुग । उ०—अगहन मास क्रतू ग्यौ आखौ, पौ त्रेता जुग बीतौ पाखौ । द्वापुर माघ महीनौ दाखौ, रसा सिधायौ आ चित राखौ ।—ऊ.का. [सं० क्रतु] २ होम, यज्ञ, हवन (डिं.को.) ३ देखो 'क्रतु' (रू.भे.) उ०—नरेंद्र के सुरेंद्र के धरा धरेंद्र के धतू, अकारनीक आप नांहि कारनीक हौ क्रतू । —ऊ.का.

क्रतिकांजि-सं०पु० [सं०] वह शकटाकार तिलक जो अश्वमेध यज्ञ में घोड़े के लगाया जाता था ।

क्रत्तिका-सं०स्त्री० [सं० कृत्तिका] देखो 'क्रतिका' (रू.भे.)

क्रत्य-सं०स्त्री०—देखो 'क्रतिका' (रू.भे.) उ०—क्रत्यां री भूंबखौ पून्य रै चंद सो मुख, थाकौ हंस असील वंस ।—रा.सा.सं.

क्रत्या-सं०स्त्री० [सं० कृत्या] एक देवी विशेष जो मारण कर्म के लिए विशेष रूप से पूजी जाती है. २ एक राक्षसी जिसे तांत्रिक लोग अपने अनुष्ठान द्वारा उत्पन्न किसी शत्रु के नाश या संहार करने के लिए भेजते हैं. ३ अभिचार. ४ दुष्टा व कर्कशा स्त्री ।

क्रत्रिम-मणि-कर्म-सं०पु०—पुरुषों की बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला ।

क्रन-सं०पु०—१ कर्त्ता, करने वाला. [सं० कर्ण] २ कुन्ती-पुत्र कर्ण । उ०—महाभारत रै विखै क्रन कहीजै, किना लंकापति कुंभेण कहीजै ।—वचनिका ३ कान. ४ समकोण त्रिभुज में समकोण के सामने की भुजा (रेखागणित)

क्रनतात-सं०पु० [सं० कर्णतात] सूर्य्य (नां.मा.)

क्रनाळ-सं०स्त्री०—बंदूक । उ०—काळियां तणी बाजी क्रनाळ, तद चढ़ी सेन नह लगी ताळ ।—पे.रू.

क्रन्न—देखो 'क्रन' (रू.भे.) उ०—पगां नित पूजै पांडव पंच, सेवै पग क्रन्न देवै सुख संच ।—ह.र.

क्रस्ना-सं०स्त्री० [सं० कृष्णा] यमुना नदी । उ०—क्रस्ना तट गोपी-किसन सरद निसा राकेस ।—ह.नां.

क्रप-वि० [सं० कृप] दयालु ।
सं०पु०—कृपाचार्य्य ।

क्रपण-सं०पु० [सं० कृपण] १ कंजूस, सूम । उ०—क्रपणां अस भावै कठै, गुरु विमुखां नूं ग्यांन । असुरां दया न ऊपजै, चंचळ चित्तां ध्यांन ।—बां.दा. २ कायर, डरपोक । उ०—अठी सतारौ आवगी, दुभल अठी भड़ दोय । मंडियौ समहर मेड़तै, क्रपण न रहियौ कोय । ३ क्षुद्र, नीच । —महेसदास कूंपावत री गीत

क्रपणता-सं०स्त्री० [सं० कृपणता] कंजूसी ।

क्रपणासय-सं०पु० [सं० कृपणाशय] कंजूसी । उ०—दुरभिख निकटासण किणनै नह दीधौ, नकटै नकटापण क्रपणासय कीधौ ।—ऊ.का.

क्रपन-वि०—देखो 'क्रपण' (रू.भे.)

क्रपया-क्रि०वि० [सं० कृपया] कृपापूर्वक, अनुग्रहपूर्वक । उ०—गो तिमर गच्छ सूझंत स्वच्छ, दरसण दयाळ क्रपया क्रपाळ ।—ऊ.का.

क्रपर, क्रपरदोस-सं०पु० [सं० कर्परी और कर्परदोस] शिव महादेव । उ०—क्रपरदोस क्रसांन रेता उरधलिंग उदार ।—क.कु.बो.

क्रपाण-सं०पु० [सं० कृपाण] १ तलवार, कटार (ह.नां.) २ दंडक वृत्त का एक भेद ।

क्रपाणक-सं०पु० [सं० कृपाणक] तलवार, कटार ।

क्रपाणिका-सं०स्त्री [सं० कृपाणिका] छोटी तलवार, कटार ।

क्रपाणी-सं०स्त्री० [सं० कृपाणी] १ कटार. २ कैंची (डिं.को)

क्रपा-सं०स्त्री० [सं० कृपा] १ बिना किसी प्रकार की आशा के अन्य की भलाई या हित करने की इच्छा वा वृत्ति, अनुग्रह, दया । उ०—यूं कही दीनता करी तौ कुबेर क्रपा करि कही । स्राप तौ मिटै नहीं, भोगियां हीज सरसी ।—डाढ़ाळा सूर री वात २ क्षमा, माफी ।

क्रपाचारय-सं०पु० [सं० कृपाचार्य] गौतम के पौत्र, शरद्वत के पुत्र और द्रोणाचार्य के साले एक ऋषि ।

क्रपानिधांन-सं०पु० [सं० कृपानिधान] १ कृपा करने वाला. २ ईश्वर । उ०—मनीसि गोन मांन है न होनहार हांन की । जहां न कोन जांन क्रपा क्रपानिधांन की ।—ऊ.का.

क्रपानिधि-सं०पु० [सं० कृपानिधि] १ दयालु, मेहरबान. २ देखो 'क्रपानिधांन' ।

क्रपापात्र-सं०पु० [सं० कृपापात्र] वह व्यक्ति जिस पर कृपा हो, कृपा का अधिकारी । उ०—ख्वास पासवांन क्रपापात्र भ्रत्य रास्ट्र भर, सुघर सुचाळ सभ्य सबकौ सुहायौ तूं ।—ऊ.का.

क्रपाराम-सं०पु० [सं० कृपाराम] खिड़िया गोत्र के प्रसिद्ध चारण कवि जिन्होंने अपने सेवक राजिये को संबोधित कर दोहे लिखे हैं । इनके लिखे 'राजियै के सोरठे' प्रसिद्ध हैं ।

क्रपाळ-वि० [सं० कृपालु] दयालु, कृपालु, कृपा करने वाला ।

उ०—कपाळ बिसाळ सिधाळ किसन, कडाळ भुजाळ उजाळ बिसन। —ह.र.

कपाळता–सं०स्त्री० [सं० कृपालुता] मेहरबानी, दया का भाव।
उ०—करी बुरी सु पायली, अबै बुरी करूं नहीं। क्रपाळ की कपाळता, सकाळ तैं डरूं नहीं।—ऊ.का.

कपाळी–सं०पु० [सं० कपाली] महादेव, शिव। उ०—सुनूर सूर संभके निसंभ से हुंसे नचे, कपाळि काळिका अगें न बाळि बाळिका बचे। —ऊ.का.

कपासिंधु–सं०पु० [सं० कृपासिंधु] १ विष्णु. २ ईश्वर. ३ श्रीकृष्ण (अ.मा.)
वि०—कृपासागर, दयालु।

कपी–सं०स्त्री० [सं० कृपी] १ अश्वत्थामा की माता और द्रोणाचार्य की पत्नी जो कृपाचार्य की बहिन थी।

कपीट–सं०पु० [सं० कृपीटम्] नीर, जल (ह.नां.)

क्रम–सं०पु० [सं०] १ पैर रखने की क्रिया, चलने की क्रिया।
उ०—क्रम क्रम ढोला पंथ कर, ढांण म चूके ढाल। आ मारू बीजी महल, आखइ झूठ ऐवाळ।—ढो.मा. २ वस्तु. ३ पद, चरण (डिं.को.)
उ०—दूलह हुइ आगै पाछै दुलहणि, दीन्हा क्रम सूणहर दिसि। —वेलि.
४ वस्तुओं या कार्यों के परस्पर आगे पीछे आदि होने के नियम. ५ नियम, शैली, प्रणाली. [सं० कर्म] ६ कार्य, लीला। उ०—तूं तणा अनै तूं तणी तणा त्री, केसव कहि कुण सके क्रम।—वेलि. ७ सिलसिला, अनुक्रम. ८ किसी कार्य के एक अंग को पूरा करने के उपरांत दूसरे अंग को पूरा करने का नियम. ९ वैदिक विधान. १० कर्म, कार्य। उ०—एणि कवण सुभ क्रम आचरतां, जांणियै वेलि जपंति जगि।—वेलि. [सं० कर्म] ११ ललाट, भाल.
१२ हद, सीमा, मर्यादा। उ०—मेर डिगत सायर क्रम लोपत, अरक मिटत इळ तजत अहि।—महेस कल्यांणमलोत
१३ प्रारब्ध। उ०—क्रम कमाई-भूगतिय, किस हुंदा सारा। —केसोदास गाडण
[सं० कृव् हिंसायाम्] १४ पाप, दुष्कृत, कुकर्म. १५ दाह-संस्कार, मृतक-संस्कार. १६ गति, चाल, गमन। उ०—क्रम हंस गत अग-राज कट, रस उरज नरपा कपोळ रट। गह गंध धज चख एण गुण, अळ भ्रकुटयंदु अभाळ।—क.कु.बो.

क्रम-क्रम–क्रि०वि०—१ धीरे-धीरे, शनैः-शनैः. २ क्रमशः।
उ०—क्रम क्रम तीरथ कीध, धन भ्रम नेकी धारणा। लेटे लाहो लीध, मिनख जमारै मोतिया।— रायसिंह सांदू

क्रमगत–सं०स्त्री० [सं० कर्म+गति] प्रारब्ध, होनहार।
उ०—क्रमगत पूछूं तौ कनै, गोविंद हूं ज गिंवार।—ह.र.

क्रमजा–सं०स्त्री०—लाख (डिं.को.)

क्रमण–सं०पु०—१ पैर, पाँव (डिं.को.) २ पारे के अठारह संस्कारों में से एक. ३ कार्य, काम. ४ उल्लंघन. ५ गमन।
उ०—कटक सजे कीधौ क्रमण, सो इम नृप समुझाइ।—वं.भा.

क्रमणा–सं०पु० [सं० कर्मणा] कर्म्म। उ०—मनसा वाचा क्रमणा मांही, नरहर तो बिण राखिस नांही।—ह.र.

क्रमणौ, क्रमबौ–क्रि०अ० [सं० क्रम्] १ जाना। उ०—चौथे मंगळ रांमचंद, सुरतरणी स्रीरांम। आगै क्रमि आंणि अनंति, सीतावांम सू अंगि।—रांमरासौ २ चलना. उ०—सुणि स्रवणि वयण मन मांहि थियौ सुख, क्रमियौ तासु प्रमांण करि।—वेलि.
३ वार करना। उ०—वरहास खिड़इ ऊलळी वग्ग, कळहियां क्रमइ कम्मांण क्रग।—रा.ज.सी.
क्रमणहार, हारौ (हारी), क्रमणियौ—वि०।
क्रमिग्रोड़ौ, क्रमियोड़ौ, क्रम्योड़ौ—भू०का०कृ०।

क्रमनांसा–सं०स्त्री० [सं० कर्मनाशा] कर्मनाशा नाम की एक नदी।

क्रमपाठ–सं०पु० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार जिसमें संहिता और पाद दोनों को मिला कर पाठ करते हैं।

क्रमपासी–सं०पु० [सं० कर्म+पाशी] यमराज (ह.नां.)

क्रमबधण–सं०पु०—१ पाप. २ दुष्कर्मों का प्रतिफल।

क्रमसंन्यास–सं०पु० [सं०] वह संन्यासी जो क्रम से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम में रह चुकने के बाद लिया जाय।

क्रमसाखी–सं०पु० [सं० कर्मसाक्षिन्] १ सूर्य्य (नां.मा.) (क.कु.बो.)

क्रमसोत–सं०पु०—राठौड़ों की एक शाखा (रा.रू.) करमसींहोत।

क्रमहीणौ–वि० [सं० कर्महीन] (स्त्री० क्रमहीणी) अभागा।

क्रमांणक–सं०पु०—घोड़ा (डिं.को.)

क्रमाळ–सं०स्त्री० [सं० करवाल] १ खड्ग, तलवार।
[सं० करवाल] २ नख, नाखून।

क्रमाळी–सं०स्त्री० [सं० क्रमेलक] मादा ऊँट, ऊँटनी।

क्रमि–सं०पु० [सं० कृमि] १ कीड़ा, कृमि. २ पेट का एक रोग जिसमें आँतों में छोटे-छोटे सफेद कीड़े पैदा हो जाते हैं।

क्रमिक–क्रि०वि० [सं०] १ क्रमयुक्त, क्रमागत. २ परम्परागत।

क्रमिक्रमि–क्रि०वि०—क्रमशः, धीरे-धीरे, क्रमानुसार। उ०—दिन जेही रिणी रिणाई दरसणि, क्रमिक्रमि लागा संकुडिणि।—वेलि.

क्रमिजा–सं०स्त्री० [सं० कृमिजा] लाह, लाख, लाक्षा (डिं.को.)

क्रमी–सं०पु० [सं० कृमि] देखो 'क्रमि'। (रू.भे.)

क्रमुक–सं०पु० [सं०] १ सुपारी का पेड़ (डिं.को.) २ नागरमोथा. ३ कपास का फल. ४ शहतूत का पेड़।

क्रमुक्रमि–सं०पु०—कदम, डग।
क्रि०वि०—देखो 'क्रम-क्रम' (रू.भे.)

क्रमेल, क्रमेलक–सं०पु० [सं०] ऊँट, शुतुर (डिं.को.)

क्रम्म—देखो 'क्रम'। उ०—देवी पुण्य रूपं देवी प्रम्भ रूपं, देवी क्रम्म रूपं देवी ध्रम्म रूपं।—देवी.

क्रय–संoपुo [संo] मोल लेने की क्रिया, खरीदने का कार्य।
उo—दो ही तरफ रा वीरां प्रास्थान रूप बाजार में, प्राणां रा क्रय विक्रय रूप व्यापार मचायौ।—वं.भा.

क्रव्य–संoपुo [संo] मांस, गोश्त (डिं.को.)

क्रव्याद–संoपुo [संo] १ मांसाहारी. २ चिता की आग. ३ राक्षस।
उo—अर नीच क्रव्याद रा कुळ नूं दुहिता देण री किण मूढ़ कही छै।—वं.भा.

क्रव्यादराक्षस–संoपुo—ढूंढ़ नामक राक्षस।

क्रस–विo [संo कृश] १ दुबला, पतला, कृश, क्षीण. २ अल्प (डिं.को.)
संoस्त्रीo [संo कृषि] खेती, कृषि। उo—ज्यौं क्रस भंजै तन गळै, घण गोळक तन लग्ग।—रा.रू.

क्रसक–संoपुo [संo कृषक] १ कृषक, खेतिहर. २ हल का फाल।

क्रसण–विo [संo कृष्ण] श्याम, काला (अ.मा.)
संoपुo [संo कृष्ण] १ यदुवंशी वसुदेव के पुत्र, श्रीकृष्ण. २ वेदव्यास. ३ अर्जुन. ४ कोयल. ५ कृष्ण पक्ष, अंधेरा पक्ष. ६ कलियुग. ७ लोहा. ८ छप्पय छंद का एक भेद जिसमें २२ गुरु और १०८ लघु कुल १३० वर्ण या १५२ मात्रायें अथवा २२ गुरु १०४ लघु कुल १२६ वर्ण या १४८ मात्रायें होती हैं। रघुवरजसप्रकाश के अनुसार ५१ वाँ भेद जिसमें २० गुरू और ११२ लघु से कुल १३२ वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं।

क्रसणद्वैपायन–संoपुo [संo कृष्णद्वैपायन] देखो 'क्रसनद्वैपायन' (रू.भे.)

क्रसणपक्ष, क्रसणपख–संoपुo [संo कृष्ण पक्ष] कृष्ण पक्ष, अंधेरा पक्ष।

क्रसणबरण–विo [संo कृष्ण वर्ण] काला, श्याम (ह.नां.)

क्रसणसखा–संoपुo [संo कृष्ण+सखा] अर्जुन (ह.नां.)

क्रसणा—देखो 'क्रसना' (रू.भे.)

क्रसणाचळ–संoपुo [संo कृष्णाचल] १ रैवतक पर्वत (प्राचीन द्वारका इसी पर्वत पर थी) २ नीलगिरी पर्वत।

क्रसणाभिसारिका–संoस्त्रीo [संo कृष्णाभिसारिका] वह अभिसारिका नायिका जो अंधेरी रात में अपने प्रेमी के पास संकेत-स्थान में जाय।

क्रसणास्टमी–संoस्त्रीo [संo कृष्णाष्टमी] भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी, इस दिन श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था।

क्रसन–संoपुo [संo कृष्ण] १ देखो 'क्रसण' (रू.भे) २ भौंरा (अ.मा.)

क्रसनद्वैपायन–संoपुo [संo कृष्णद्वैपायन] पाराशर के पुत्र, वेदव्यास, पाराशर्य्य।

क्रसनपक्ष, क्रसनपख—देखो 'क्रसण पक्ष'। उo—मधु मास क्रसनपख द्वादसी, बुध प्रकास जग जांणियौ।—रा.रू.

क्रसनबरण—देखो 'क्रसणबरण' (रू.भे.)

क्रसनसखा–संoपुo [संo कृष्णसखा] अर्जुन (अ.मा.)

क्रसना–संoस्त्रीo [संo कृष्णा] १ द्रौपदी (अ.मा.) २ पीपल (अ.मा.) ३ यमुना (ह.नां.) ४ दक्षिण की एक नदी. ५ काली दाख. ६ काली देवी. ७ पार्वती (क.कु.बो.) ८ अग्नि की सात जिव्हाओं में से एक. ९ एक योगिनी।

क्रसनापित–संoपुo [संo कृष्णापिता] सूर्य, भानु (क.कु.बो.)

क्रसनाफळा–संoस्त्रीo [संo कृष्णफला] काली मिर्च (अ.मा.)

क्रसनी–संoस्त्रीo [संo कर्षणी] बिजली (नां.मा.)

क्रसन्न—देखो 'क्रसण' (रू.भे.) उo—अरोगे अघाये किया प्रावमन्न, कपूरी ग्रहे पांन बीड़ा क्रसन्न।—ना.द.

क्रसभाव–संoपुo [संo कृश+भाव] दुबलापन, कृशता। उo—भाखै सहियां भाळ लियां क्रसभाव नै, चित पिय कोमळ ताय बधावै चाव नै।—बां.दा.

क्रसांण, क्रसांन–संoस्त्रीo [संo कृशानु] १ आग, अग्नि (नां.मा.)
उo—थियौ सदय सुण निज थुई, टीटभ हूंत क्रसांन।—बां.दा.
संoपुo [संo कृषक] २ किसान, हलधर। उo—पड़ सीस विना लोटै पठांण, फिर ज्वार सिरै ढूका क्रसांण।—रा.रू.

क्रसांनद्रग, क्रसांनरेता–संoपुo [संo कृशानदृग, कृशानरेतस्] शिव, महादेव (अ.मा.) उo—क्रपर दोस क्रसांनरेता, उरधलिंग उदार।
—क.कु.बो.

क्रसानु–संoस्त्रीo [संo कृशानु] अग्नि, आग (डिं.को.)

क्रसिक–संoस्त्रीo [संo कुशी] लोहे की वह कील जिससे हल चलते समय जमीन खुद कर पोली हो जाती है (डिं.को.)

क्रसी–संoस्त्रीo [संo कृषि] खेती, काश्त, कृषि।

क्रसीकारी–संoपुo—काश्तकार।

क्रस्ट, क्रस्टि, क्रस्टी–संoपुo [संo कृष्टि] पंडित, कवि (ह.नां., अ.मा.) (डिं.को.)

क्रस्ण–संoपुo [संo कृष्ण] १ श्रीकृष्ण। २ अर्जुन. ३ कृष्ण पक्ष.
संoस्त्रीo [संo कृशानु] ४ अग्नि, आग (ह.नां.)

क्रस्णपिंगळा–संoस्त्रीo [संo कृष्णपिंगला] चौंसठ योगनियों में से उन्नीसवीं योगिनी।

क्रस्णमाग्रज–संoपुo [संo कृष्णाग्रज] बलभद्र, बलराम (अ.मा.)

क्रस्णमुख–संoपुo [संo कृष्णमुख] लोहा (अ.मा.)

क्रस्णला–संoस्त्रीo [संo कृष्णला] घुगची, गुंजा (डिं.को.)

क्रस्णवरतमा–संoस्त्रीo [संo कृष्णवर्त्मन्] अग्नि, आग (ह.नां.)

क्रस्णा–संoस्त्रीo [संo कृष्णा] १ यमुना नदी (अ मा.) २ देववृक्ष (अ मा.) ३ देखो 'क्रसणा' (रू.भे.)

क्रस्न–संoपुo [संo कृष्ण] १ शनिश्चर (अ.मा.) २ देखो 'कृष्ण'।

क्रस्नवरतमा—देखो 'क्रस्णवरतमा' (रू.भे., अ.मा.)

क्रहकणौ, क्रहकबौ–क्रिoअo—भूत-प्रेतादि का युद्ध के समय प्रसन्न होना।
उo—क्रहकै वीर वैताळ करूर, अहकै राग सिंधू रिणतूर।—गो.रू.

क्रहक्कह, क्रहक्रह–संoपुo [अनुo] प्रसन्नता से जोर से हँसने की क्रिया या

ध्वनि, अट्टहास । उ०—१ क्रहक्कह ज्योति हसंति कपोळ, तणी रंग सोहै मुखित तंबोळ ।—रा.ज. रासो उ०—२ कड़कै कंध क्रहक्कह काळ, रुळै पळ मोण मचै रिणताळ ।—रा.ज. रासो.

क्रहक्रहणौ, क्रहक्रहबौ—क्रि०अ० [अनु०] देखो 'क्रहकणौ' (रू.भे.)

क्रहक्कह—सं०स्त्री०—१ चमक-दमक. २ प्रभा, कांति. ३ देखो 'क्रह-क्रह' ।

क्रहूका—सं०पु०—ऊँट के बोलने का शब्द । उ०—थाकउ करह क्रहूका करइ, थळ भारी पग माठा भरइ ।—ढो.मा.

क्रांलीतेज—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा जिसके अगले पैर के घुटने पर भौंरी हो (अशुभ—शा.हो.)

क्रांत—सं०स्त्री० [सं० कांति] १ कांति, छवि, शोभा । उ०—हिंदू मुस्सलमांण खड़ा दीवांण विचाळै, किया दीप सम क्रांत कंवर नागेंदर काळै ।—रा.रू.

वि०—१ भयभीत. २ दबा या ढका हुआ. ३ जिस पर आक्रमण हुआ हो. ग्रस्त. ४ सुन्दर, मनोहर (ह.नां.)

क्रांति—सं०स्त्री० [सं०] १ उलटफेर, फेरफार, उपद्रव, विद्रोह.

[सं० कांति] २ कांति, आभा, सोभा (ह.नां.) उ०—छिपै मेघ सोभा इसी भाल छाजै, रवीपंत द्वै कुंडळै क्रांति राजै ।—रा.रू.

३ वह कल्पित वृत्त जिस पर सूर्य भूमि के चारों तरफ परिभ्रमण करता है (खगोल) ४ खगोलीय नाड़ी मंडल से किसी नक्षत्र की दूरी (खगोल)

क्रांतिवृत—देखो 'क्रांति' (३)

क्रांतिसाम्य—सं०पु० [सं०] ज्योतिष में ग्रहों की तुल्य क्रांति ।

क्रांमत, क्रांमति, क्रांमती—सं०स्त्री० [सं० कांति] १ चमत्कार, करामात । उ०—कर कर क्रांमती जी खोये जैथ हथ जस खंभ ।—र.रू.

[सं० कांति] २ कांति, दीप्ति, शोभा (अ.मा) उ०—रे कुळ भांण भांण नृप राघव, कौड़क भांण लियां मुख क्रांमत —र.ज.प्र.

उ०—२ वड विना क्रांमति न को वीरति, पिंड हुई मत जाय संपत्ति ।—रा.रू.

क्रायंती—सं०स्त्री० [सं० कांति] १ कांति, दीप्ति, चमक ।

उ०—आभूखणां हुई भलम क्रायंती भांण उन्हाळ सी ।

—नवलजी लाळस

[सं० क्रांति] २ देखो 'क्रांति' (रू.भे.)

क्रायक्रांय—सं०पु० [अनु०] कौये की बोली, कांव-कांव ।

मुहा०—क्रांय-क्रांय करणी—बेकार की बकवास करना ।

क्राइस्ट—सं०पु०—ईसामसीह ।

क्राउन—सं०पु० [अं०] १ राजमुकुट, ताज. २ छापे के कागज का नाप १५"×२०" ।

क्राथ—सं०पु० [सं०] १ एक नाग का नाम. २ एक बंदर (रामकथा)

क्रासळक, क्रासळक्क—सं०स्त्री०—मस्ती में आए हुए ऊँट के मुँह चलाने पर दांतों के परस्पर की टक्कर से होने वाली ध्वनि । उ०—तनै दाखवै जोसवाळी तरक्कां, करै दांत भालावता क्रासळक्कां ।—रा.रू.

क्राह—सं०पु०—बैल आदि पशुओं को बांधने की रस्सी, पाश ।

उ०—वाह दे राव दळ ठाह छाडाड़िया, क्राह घाते किया साह कांनै ।

'कला' अरि दाह हयवाह सिर केवियां, महा रिम राह पतिसाह मांनै ।—महेस बारहठ

क्राहि—सं०स्त्री०—क्रंदन, दुखभरी आवाज । उ०—क्राहि भाय कूकसी सयण सायण सुत नारी, काया हूसी अकज सबै माया दुपियारी ।

—अ.खि.

क्रिकेट—सं०पु० [अं०] एक प्रकार का अंग्रेजी ढंग का गेंद का खेल जो ग्यारह-ग्यारह आदमियों के दो पक्षों में खेला जाता है, गेंद, बल्ला ।

क्रिखी—सं०स्त्री० [सं० कृषि] खेती, काश्त ।

कहा०—क्रिखी नासी'र पसु मर गया, दूधां बरसो मेह—कृषि सूख जाने पर व पशु मर जाने पर कितनी भी वर्षा हो किसी काम की नहीं होती; समय निकलने पर आवश्यक वस्तु की प्राप्ति व्यर्थ होती है ।

क्रिगल—सं०पु०—कवच, जिरहबख्तर । उ०—पिंड बहुरूप कि भेख पालटै, केसरिया ठाहे क्रिगल ।—वेलि.

क्रित—सं०पु० [सं० कृत्य] देखो 'क्रत' । उ०—१ विसतरी वात दिसि दिसि विदिस, क्रित अभूत पंखां किया ।—रा.रू. उ०—२ लौ या बिरियां लाख, घर थांरी थे ही धणी । निंदित क्रित हकनाक, कुरुकुळ भूखण मत करो ।—रांमनाथ कवियौ उ०—३ केहरि तणी धारिये कुळ क्रित, दळ सूरत पूरियौ दुकाल ।

—राजाउत हरिसिंह राठौड़ री गीत

क्रितकत—वि०—१ किया हुआ. २ कृतकृत्य ।

क्रितघण—वि०—उपकार को न मानने वाला, कृतघ्न ।

क्रितब—देखो 'करतब' (रू.भे.)

क्रित-मन—सं०पु० [सं० क्रतुमनाः] इन्द्र (ह.नां.)

क्रिताअंत—सं०पु० [सं० कृतांत] यमराज (ह.नां.)

क्रितारथ—वि० [सं० कृतार्थ] कृतार्थ, सफल, संतुष्ट । उ०—हिव रुखमणी क्रितारथ हुइस्यै, हुआै क्रितारथ पहिलौ हूं ।—वेलि.

क्रितारथी—अव्यय—लिये, निमित्त । उ०—ऊभी सहु सखिए प्रसंसिता प्रति, क्रितारथी प्री मिळण क्रत ।—वेलि.

क्रिति—१ देखो 'क्रत' (रू.भे) उ०—रंग सुरंग वण गजराज, क्रिति अभ्रत होत अकाज ।—रा.रू. २ किया हुआ कार्य, रचना ।

क्रितिघन—सं०पु० [सं० किन्तुघ्न] १ ज्योतिष के ग्यारह करणों में से एक करण का नाम (ग.मो) २ देखो 'क्रनघन' (रू.भे.)

क्रितीयां—देखो 'किरतियां' (रू.भे.) उ०—चतुरंगी रायजादी क्रितीयां री झूंबिखौ. मोतीआंरी लड़ी हुवै तिणि भांति री ।—रा.सा.सं.

क्रिपण—वि० [सं० कृपण] १ देखो 'कपण' (रू.भे.)

२ क्षुद्र, तुच्छ, दीन । उ०—मुख कहि क्रसन रुखमिणि मंगळ, कांई रे मन-कळपसि क्रपणा ।—वेलि.

क्रिपा—देखो 'क्रपा' (ह.नां.) उ०—सुंदरता लज्जा प्रीति सरसती, माया कांती क्रिपा मति ।—वेलि.

क्रि०प्र०—करणी, मांनणी, होणी।

क्रियानाथ-वि०—कृपालु, दयालु।

सं०पु०—ईश्वर।

क्रिपाळ—देखो 'क्रपाळ' (रू.भे.)

क्रिमि—देखो 'क्रमी' (रू.भे.)

क्रिमिकोंड-सं०पु० [सं०] चोल देश के एक राजा का नाम। यह कट्टर शैव था।

क्रिमिभक्ष-सं०पु० [सं०] एक नरक का नाम।

क्रिमी-सं०पु० [सं० क्रमि] देखो 'क्रमी' (रू.भे.)

क्रियमांण-सं०पु०—१ वह जो किया जा रहा हो. २ कर्म के चार भेदों में से एक। उ०—**क्रियमांण** मिलांन भोगांन संचित्तय, प्रांणि बसांन सुधांन जका।—करुणासागर

क्रिया-सं०स्त्री० [सं०] १ किसी प्रकार का व्यापार, कर्म. २ प्रयत्न, चेष्टा, हिलना-डोलना. ३ अनुष्ठान, आरंभ. ४ व्याकरण का वह अंग जिससे किसी व्यापार का होना या करना पाया जाय. ५ शौच आदि कर्म, नित्यकर्म. ६ श्राद्ध आदि प्रेत कर्म. ७ प्रायश्चित्त आदि कर्म. ८ उपाय, उपचार. ९ न्याय या विचार का साधन. १० मृतक-संस्कार. ११ मृत्यु के बाद तीसरे, नवें, ग्यारहवें तथा बारहवें दिन किये जाने वाले संस्कार।

क्रियाकरम-सं०पु०यौ० [सं० क्रिया+कर्म] १ मृत्यु के पश्चात् ग्यारहवें दिन किया जाने वाला संस्कार. २ मरणोतर संपन्न किये जाने वाले कर्म।

क्रियाकांड-सं०पु०यौ० [सं०] वह शास्त्र जिसमें यज्ञादि का विधान हो, कर्मकांड।

क्रियाजोग-सं०पु०यौ० [सं० क्रिया+योग] पुराणों के अनुसार देवताओं की पूजा करना और मंदिर आदि बनवाना।

क्रियातिपत्ति-सं०पु० [सं०] एक प्रकार का काव्यालंकार जिसमें प्रकृत से भिन्न कल्पना करके किसी विषय का वर्णन किया जाता है।

क्रियाफळ-सं०पु०यौ० [सं० क्रियाफल] १ वेदांत के अनुसार कर्म के चार प्रकार के फल—उत्पत्ति, आप्ति, विकृति और संस्कृति. २ यज्ञ आदि से होने वाला फल या पुण्य।

क्रियावर—देखो 'किरियावर' (रू.भे.)

क्रियाविकळप-सं०स्त्री०यौ०—१ क्रिया के प्रभाव को पलटने का कार्य. २ चौसठ कलाओं के अंतर्गत एक कला।

क्रियाविदग्धा-सं०स्त्री०यौ० [सं०] नायक पर किसी क्रिया द्वारा भाव प्रकट करने वाली नायिका।

क्रियाविसेसण-सं०पु०यौ० [सं० क्रिया+विशेषण] वह शब्द जिससे क्रिया के किसी विशेष काल, भाव या रीति आदि का बोध हो। (व्याकरण)

क्रियासक्ति-सं०स्त्री०यौ० [सं० क्रिया+शक्ति] ईश्वर से उत्पन्न वह शक्ति जिससे ब्रह्मांड की सृष्टि का होना माना जाता है।

क्रियासून्य-सं०पु० [सं० क्रिया+शून्य] कर्महीन।

क्रियास्नांन-सं०पु० [सं० क्रियास्नान] स्नान की एक विधि (धर्मशास्त्र) इस विधि के करने से तीर्थ-स्नान का फल होता है।

क्रिस-वि० [सं० कृश] देखो 'क्रस' (रू.भे.) उ०—हिम बाधि हिमरित निसा हरणे, दिवस **क्रिस** गुणि देखिये।—रा.रू.

क्रिसन—देखो 'क्रसन' (रू.भे.) उ०—महल खवास निवास मन, **क्रिसन** दरस्सण काज।—रा.रू.

क्रिसनवरतमा-सं०स्त्री०यौ० [सं० कृष्णवर्त्मन्] अग्नि (ह.नां.)

क्रिसना—देखो 'क्रसना' (ह.नां.)

क्रिसनागर, क्रिसनागरौ-सं०पु०—१ अफीम (डिं.को.) २ सुगंधित पदार्थ। उ०—उवै कांमणी घणै **क्रिसनागर**, कस्तूरी अंबर अंतर सांधे सं् गरकाब हुई थकी।—रा.सा.सं.

क्रिसांण-सं०स्त्री० [सं० कृशानु] १ अग्नि.

सं०पु० [सं० कृषक] २ किसान, कृषक। उ०—कण गंज पुंज **क्रिसांण** करसण, धरै उद्यम धारणा। वधि आस ज्यास निवास वहरां, अवनि धांन अपारणा।—रा.रू.

क्रिसांन, क्रिसांनु-सं०स्त्री० [सं० कृशानु] अग्नि, आग।

क्रिसा—देखो 'क्रस'। उ०—स्यांमा कटि कटिमेखला समरपित, **क्रिसा** अंग मापित करळ।—वेलि.

क्रिसोदरीय-वि०स्त्री०यौ० [सं० कृशोदरी] जिसका पेट पतला हो।

उ०—निसास-रोज आंननी, उरोज धारनी नहीं। **क्रिसोदरीय** कांमिनी, बिभा बयोधरी नहीं।—ऊ.का.

क्रिस्टांन—देखो 'क्रिस्तांन' (रू.भे.)

क्रिस्णताळ-सं०पु० [सं० कृष्ण+तालु] वह घोड़ा जिसका तालु काला हो (शा.हो.)

क्रिस्णागर, क्रिस्णागरौ-सं०पु०—१ देखो 'क्रिसणागर' (रू.भे.) २ एक सुगंधित पदार्थ। उ०—सोकि बिन्हे महलि आपणे, **क्रिस्णागर** वासित धूपणे।—ढो.मा.

क्रिस्तांन-सं०पु० [सं० क्रिश्चियन्] ईसा के मत पर चलने वाला, ईसाई।

क्रिस्तांनी-वि०—१ ईसाइयों का, ईसाई मत का. २ ईसाई मत के अनुसार।

क्रीड़णौ, क्रीड़बौ-क्रि०अ०—खेलना। उ०—१ कसतूरी गारि कपूर इंट करि, नवै विहांणै नवी परि। कुसुम कमळ दळ माळ अलंक्रित, हरि क्रीड़े तिणि धवळ हरि।—वेलि. उ०—२ करि इक **क्रीड़ौ** वळ वांम करि, कीर सु तसु जाती **क्रीड़ंति**।—वेलि.

क्रीड़ा-सं०स्त्री० [सं०] १ कल्लोल, केलि, आमोद-प्रमोद।

उ०—कथां तुंही कंथ **क्रीड़ा** तुंही कांम, रमाड़ मो पग्ग लाधो हिव रांम।—ह.र. २ संभोग, रति, क्रीड़ा. ३ ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक (संगीत)।

क्रीड़ाप्रिय-वि०यौ० [सं०] विलासी, रतिक्रीड़ा का प्रेमी।

क्रीट-सं०पु० [सं० किरीट] १ शिरोभूषण. २ मुकुट के ऊपर धारण किया जाने वाला आभूषण।

क्रीत–वि० [सं०] खरीदा या मोल लिया हुआ।
सं०पु०—१ मनु के अनुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से एक जो मोल लिया गया हो।
सं०स्त्री० [सं० कीर्ति] २ यश, कीर्ति, प्रशंसा। उ०—कुळवंती सूं क्रीत री, उलटी है आचार। वा नं तजै घर आपरो, जग इए री संचार।—बां.दा. ३ शोभा।

क्रीतक—देखो 'क्रीत' (१)

क्रीतड़ी–सं०स्त्री० [सं० कीर्ति] कीर्ति, यश, प्रशंसा (अल्पा०)

क्रीतथंभ–सं०पु०—कीर्तिस्तंभ, स्मृतिस्तंभ।

क्रीतपाळ–सं०पु०—राठौड़ों की एक उपशाखा।

क्रीती—देखो 'क्रत' (रू.भे.)

क्रीला— देखो 'क्रीड़ा' (रू.भे.) उ०—कछ मछ अनेक क्रीला करंत, नव हंस बाळ खंजन नचंत।—सू.प्र.

क्रुंचपद–सं०पु०—एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, मगण, सगण, भगण फिर चार नगण तथा अंत में एक गुरु सहित २५ वर्ण होते हैं (पि.प्र.)

क्रुंझि, क्रुंझी–सं०स्त्री०—क्रौंच पक्षी। उ०—सा धण क्रुंझि बचाह ज्यउं, लंबी थई तुं कंध।—ढो.मा.

क्रुंभनी–सं०स्त्री० [सं० कुंभिनी] जमीन (अ.मा.)

क्रुद्व, क्रुध–वि० [सं०] कोपयुक्त, क्रोधित। उ०—१ जांमवंत क्रुध भळ भळ हळी।—सू.प्र. उ०—घणै क्रुधि तेनूं हणूमांन धायौ।
—सू.प्र.

क्रुधांगणी–सं०स्त्री०—क्रोधाग्नि, कोपानल। उ०—क्रुधांगणी निस्संभा सुर भसम संभा सुरक्रती, अई इंदू अंबा जयति जगदंबा भगवती।
—मे.म.

क्रुधार–वि०— क्रोधी, कोप करने वाला।

क्रुमुक–सं०स्त्री० [सं० क्रमुक] सुपारी।

क्रुलथीओ–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा विशेष (शा.हो.)

क्रूंझ क्रूझड़ी–सं०स्त्री०—क्रौंच पक्षी। (क्रुंझ–रू.भे.)

क्रूर–वि० [सं०] १ परपीड़क, निष्ठुर, निर्दयी. २ तीक्ष्ण, तीखा. ३ उष्ण, गरम. ४ नीच, बुरा. ५ घोर।
सं०पु० [सं०] १ ज्योतिष में विषम राशियाँ. २ केतु, मंगल, रवि, राहु और शनि ये पांच ग्रह जिन्हें पाप-ग्रह भी कहते हैं।

क्रूरवंती–सं०स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

क्रूरद्रक–सं०पु० [सं० क्रूरद्दक्] १ शनिग्रह. २ मंगलग्रह।
वि०—दुष्ट, खल।

क्रेता–सं०पु० [सं०] १ खरीदने वाला, मोल लेने वाला, खरीददार. २ सतयुग। उ०—उमंडै राकेस थंड तारका ज्यूं क्रेता आळा।
—हुकमीचंद खिड़ियौ

क्रेय–वि०—खरीदा जाने योग्य। उ०—क्रेय औ विक्रेय कथा काज तैं करयौ, क्रेय की विक्रेय साज लाज नां मरयौ।—ऊ.का.

क्रोंच–सं०पु०—हिमालय की एक पर्वत श्रेणी का नाम। उ०—पेख्यां हलक हिमाळ सारस बार पयांणे, क्रोंच रंध्र प्रखियात पारस कीरत प्रांणे।—मेघ.

क्रोड़–सं०स्त्री० [सं०] १ आलिंगन में दोनों बाहों के बीच का भाग, वक्षःस्थल, गोद।
[सं०] २ सूअर. ३ वराहावतार। उ०—खूब बजाई खग्ग नै, धारा धमचक्कं। कुक्के क्रोड़ कराहिकं कमठेस मचक्कं।—वं.भा.
वि० [सं० कोटि] करोड़। उ०—अहीराव नै दावड़ा एह आडा, गुणां वेद जोतां कही क्रोड़ गाडा।—ना.द.

क्रोड़पग–सं०पु० [सं० क्रोड़+रा० पग] कछुआ (ह.नां.)

क्रोड़ीधज—देखो 'कोड़ीधज' (रू.भे.)

क्रोधंगी–वि०—अत्यधिक क्रोध करने वाला, क्रोधी, गुस्सैल।
सं०पु०—वीर, योद्धा (डिं.को.) उ०—क्रोधंगी हमीर वाळी वांमणी केवांण।—तेजरांम आसियौ

क्रोध–सं०पु० [सं०] १ किसी अनुचित और हानिकारक कार्य को होते हुए देख कर उत्पन्न होने वाला चित्त का वह तीव्र उद्वेग जिसमें उस हानिकारक कार्य करने वाले से बदला लेने की इच्छा होती है, कोप, रोष. २ कृष्ण पक्ष। उ०—सम्मत अठार सौ मास क्रोध, जुध्धे गुण चालिस रचय जोध।—शि.सु.रू.

क्रोधझाळा–सं०स्त्री०यौ० [सं० क्रोध+ज्वाल] क्रोधाग्नि।
उ०—क्रोधझाळा विसम खगां रटके, कटके तोप सूरां सळक बांण ताळा। असा चाळहा बिनां तने भूरा अभंग, आळगे नहीं भाराथ आळा।—हुकमीचंद खिड़ियौ
वि०— क्रोधी, गुस्सैल।

क्रोधतावत–वि०—क्रोध में तप्त, क्रुद्ध। उ०—वांण सुण त्रंबाळ वावत, तांण मूंछां क्रोधतावत। गहर सुत चा विरद गावत, रंग रावत रंग रावत।—र.रू.

क्रोधभवन–सं०पु०यौ० [सं०] कोपभवन।

क्रोधवंत–वि०—गुस्से से भरा हुआ, कुपित।

क्रोधवस–क्रि०वि० [सं० क्रोधवश] क्रोध के वशीभूत होकर।
सं०पु०—एक राक्षस का नाम।

क्रोधवसा–सं०स्त्री० [सं०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या और कश्यप प्रजापति की आठ पत्नियों में से एक।

क्रोधानळ–सं०स्त्री०यौ० [सं० क्रोध+अनल] क्रोधाग्नि, कोपानल।
उ०—सजियौ क्रोधानळ बियो सीह, दावानळ दमगळ तीन दीह।
— वि सं.

क्रोधार, क्रोधाळ–वि०—क्रुद्ध। उ०—१ अळं साधवा फूटियौ सिंध वारध के लोप पाजां, करी धू पटेत हके छूटियौ क्रोधार।
—जालमसिंह मेड़तिया रौ गीत
उ०—२ भालाळ क्रोधाळ स्यूं वैण भणे, मिळ मूंछ बृहाळ रोसाळ मुणै।—गुलाबसिंह महडू

क्रोधी–वि० [सं०] क्रोध करने वाला, गुस्सावर।
सं०पु०—क्रोध नामक संवत्सर।

क्रौंचदीप–सं०पु०—पौराणिक सात महाद्वीपों में से एक महाद्वीप।

क्रौंचदार–सं०पु० [सं० क्रौंचदार] स्वामी कार्तिकेय का एक नाम (ह.नां, अ.मा.)

क्रौंचार–सं०पु० [सं० क्रौंचारि] स्वामी कार्तिकेय (ह.नां.)

क्रौंची–सं०स्त्री० [सं०] कश्यप ऋषि की ताम्रा नामक पत्नी से उत्पन्न पांच कन्याओं में से एक।

क्रौड़—देखो 'क्रोड़' (अ.मा.)

क्लब–सं०पु० [अं०] वह समिति जो कुछ लोगों द्वारा साहित्य, विज्ञान, राजनीति आदि सार्वजनिक विषयों पर विचार करने अथवा आमोद-प्रमोद के लिए संघटित की गई हो।

क्लरक–सं०पु० [अं० क्लर्क] किसी कार्यालय का लेखक, मुंशी, मुहर्रिर।

क्लांत–वि० [सं०] थका हुआ, श्रांत।

क्लांति–सं०स्त्री० [सं०] १ परिश्रम. २ थकावट।

क्लाक–सं०स्त्री० [अं०] दीवार में लगाने योग्य बड़ी घड़ी।

क्लिस्ट–वि० [सं० क्लिष्ट] १ क्लेशयुक्त, दुखी. २ कठिन, मुश्किल, जो कठिनता से सिद्ध हो।

क्लीब–वि०पु० [सं०] १ षंढ, नपुंसक, नामर्द. २ डरपोक, कायर।

क्लेदन–सं०पु०—पांच प्रकार के कफ में से एक (अमरत)

क्लेस–सं०पु० [सं० क्लेश] दुःख, कष्ट, व्यथा, वेदना।

क्लोरोफारम–सं०पु० [अं० क्लोरोफार्म] एक प्रसिद्ध तरल औषधि जिसकी विचित्र मीठी गंध से व्यक्ति अचेत हो जाता है (चिकित्सा-शास्त्र)

क्वण–सं०पु० [सं०] १ वीणा का शब्द. २ घुंघरू का शब्द।

क्वांर–सं०पु० [सं० कुमार] १ कुंवर. २ कुमार।

क्वांरौ–वि० (स्त्री० क्वांरी) कुमार, अविवाहित। उ०—मीरां रे प्रभु मिळज्यो माधो, जनम जनम री **क्वांरी**।— मीरां

क्वाड़–सं०पु०—१ कुल्हाड़ी। उ०—कसी **क्वाड़** गंडासी कसिया, डांडा दांती दांतियां।—दसदेव २ देखो 'किमाड़' (रू.भे.)

क्वाथ–सं०पु० [सं०] काढ़ा। उ०—काढ़ौ पांणीभरां घूंटियो गुजराती में, कमजोरी **क्वाथ** पीड़ होयां छाती में।—दसदेव

क्वार–सं०पु०—आश्विन मास। उ०—अगहन काती **क्वार**, लावण्यां देत मजूरी। पोह माघ फागणां, चायना खळियां पूरी।—दसदेव

क्षण–सं०पु० [सं०] १ काल या समय का बहुत छोटा भाग. २ काल, अवसर, समय, वक्त।

क्षणदाकार–सं०पु० [सं०] चंद्रमा।

क्षणभंगुर–वि० [सं०] शीघ्र नष्ट होने वाला, अनित्य। उ०—सदा **क्षण-भंगुर** जांण सरीर, सखा सुखसागर सूं कर सीर।—ऊ.का.

क्षणिक–वि० [सं०] एक क्षण रहने वाला, क्षणभंगुर।

क्षणिकता–सं०स्त्री० [सं०] क्षणिक का भाव, क्षणभंगुरता।

क्षतज–वि० [सं०] १ क्षत से उत्पन्न. २ लाल, सुर्ख।
सं०पु०—एक प्रकार की खांसी जो क्षत रोग में होती है।

क्षत्रजोग–सं०पु० [सं० क्षत्रजोग] ज्योतिष में एक प्रकार का योग।

क्षत्रवृद्धि–सं०पु० [सं० क्षत्रवृद्धि] तेरहवें मनु के पुत्र का नाम।

क्षत्रवट–सं०पु०—क्षत्रियत्व, क्षत्रियपन।

क्षपणक–वि० [सं०] निर्लज्ज।
सं०पु०[सं०] १ बौद्ध संन्यासी या भिक्षुक. २ नंगा रहने वाला जैन यती. ३ वीर विक्रमादित्य की सभा के नौ रत्नों में से एक जो कवि था और जिसने अनेकार्थ ध्वनिमंजरी नामक एक कोश की रचना की थी।

क्षपाकर–सं०पु० [सं०] १ चंद्रमा. २ कपूर।

क्षपानाथ–सं०पु० [सं०] चंद्रमा।

क्षमा–सं०स्त्री० [सं०] १ दूसरे द्वारा पहुँचाये हुए कष्ट को चुपचाप सह लेने और उसके प्रतिकार या दंड की इच्छा नहीं करने की मनुष्य के चित्त की एक वृत्ति, सहनशीलता, माफी. २ पृथ्वी (मि० 'क्षमाप') रू.भे.—खमया, खमा, खम्मया, खम्या, खम्मिया।
३ दक्ष की एक कन्या. ४ दुर्गा का एक नाम।

क्षमाजुक्त–सं०स्त्री०यौ० [सं० क्षमा+युक्त] क्षमायुक्त।

क्षमाप–सं०पु०—१ भूमि और जल। उ०—**क्षमाप** वन्हि वायु व्योम तू खपावणी।—मे म.

क्षयी–सं०पु० [सं०] १ क्षयरोग (अमरत)
[सं०] क्षय रोग से पीड़ित, रुग्ण (अमरत)

क्षांताकारी–वि० [सं० क्षांतिकारी] १ क्षमा करने वाला। उ०—नमौ **क्षांताकारी** अजरजरहारी जरि नमौ।—ऊ.का. २ सहनशील, शांत।

क्षार–सं०पु० [सं०] १ दाहक, जारक या विस्फोटक औषधियों को जला कर या खनिज पदार्थों को पानी में घोल कर रसायनिक क्रिया से साफ करके बनाया हुआ नमक. २ मोखा नामक वृक्ष की पत्तियों के क्षार से बनने वाली एक प्रकार की औषधि (अमरत) ३ नमक. ४ सज्जी, खार. ५ भस्म, राख. ६ सुहागा. ७ शोरा.
वि०—खारा।

क्षारपंचक–सं०पु०—पांच प्रकार के क्षार का समूह—पलाश, मूली, जव, सज्जी और चना।

क्षिति–सं०स्त्री० [सं०] पृथ्वी। उ०—बावन दुरंग बंके विविध, सब **क्षिति** छोगौ छत्रपति।—ला.रा.

क्षीण–वि० [सं०] दुबला, पतला, कृश।

क्षीणपण, क्षीणपणौ–सं०पु०—अशक्ति, निर्बलता, कृशता (अमरत)

क्षीरोदधि–सं०पु० [सं०] क्षीरसागर।

क्षुणी–सं०स्त्री० [सं० क्षोणी] पृथ्वी (डिं.को.)

क्षुधा–सं०स्त्री० [सं०]-भोजन करने की इच्छा, भूख। उ०—**क्षुधा** प्यासा त्रासा, दुसह कर आसा दुख लगें।—ऊ.का.

क्षेत्रपाळ–सं०पु० [सं०] १ खेत का रखवाला. २ एक प्रकार के भैरव जो संख्या में ४६ हैं. ३ किसी स्थान का प्रधान प्रबन्धकर्ता. ४ द्वारपाल।

क्षेत्रफळ–सं०पु० [सं०] लंबाई और चौड़ाई के घात या गुणन से माना जाने वाला किसी क्षेत्र का वर्गात्मक परिमाण। वर्ग-परिमाण। (गणित)

क्षेप–सं०पु० [सं०] १ फेंकना. २ ठोकर. ३ निंदा, बदनामी. ४ अक्षांस. ५ कलंक. ६ दूरी. ७ बिताना, गुजारना।

क्षेपणी–सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का शस्त्र विशेष. २ नाव का डांडा, वल्ली (डि.को.)

क्षेमंकरी—एक चिड़िया का नाम।

क्षेमकरण–सं०पु० [सं० क्षेमकर्ण] अर्जुन का एक पौत्र जो जनमेजय का सखा था।

क्षेमकल्याण–सं०पु०—संगीत के अंतर्गत एक संकर राग जो हमीर और कल्याण के संयोग से बनता है।

क्षेमकारी–सं०स्त्री०—१ सफेद गले की एक चील. २ एक देवी उ०—देवी कौमारी चामुंडा बिजैकारी, देवी कुबेरी भैरवी क्षेमकारी।—देवि.

क्षेमासण, क्षेमासन–सं०पु०—योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन जिसमें प्रथम पलथी मार कर पीछे दोनों हाथों की ठेउनी को जांघ के मूल में रख कर करतलों का संपुट करके बैठा जाता है।

क्षेमेंद्र–सं०पु० [सं०] काश्मीर का एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि, ग्रंथकार और इतिहासकार।

क्षोणा–सं०स्त्री० [सं० क्षोणी] पृथ्वी (नां.मा.)

क्षोणिप–सं०पु० [सं०] राजा।

क्षोणी–सं०स्त्री०—पृथ्वी, जमीन।

क्षोहण, क्षोहणी–सं०स्त्री०—अक्षौहिणी। उ०—असीय सहहस सजे करि मैंमत्त। पंच क्षोहण जे कइ मिळइ नरिंद।—वी.दे.

ख

ख—वर्णमाला के क वर्ग का दूसरा वर्ण। इसका उच्चारण कंठ से होता है।

खंकार—देखो 'खंखार' (रू.भे.)

खंख-सं०स्त्री० [सं० खं=आकाश+अंक] वायु में धूलिकणों का समूह, गर्दिश जिसके मुंह व नाक में जाने से घुटन सी अनुभव होती है। उ०—भळगा उडै खंख रा गोट, टोकरां टणमणती टणकार।

—सांभ

क्रि०प्र०—आणी, उडणी, छाणी, भरीजणी, लागणी।

खंखर, खंखरो-वि०—१ बहुत पुराना (वृक्ष), जिसके पत्ते आदि झड़ गये हों, अतिवृद्ध। उ०—झड़ पत्र वधूळांय दोट जुवा, हव भंखर खंखर रूंख हुवा।—पा.प्र. २ जो आकर्षक न हो. ३ जहां जाने से भय उत्पन्न होता हो, वीरान, निर्जन, उजाड़।

खंखळ, खंखाड़-सं०स्त्री० [सं० खंखोल] आंधी। उ०—हीमाळा उतहीज, सुजड़ी साही 'सोभड़ै'। ढील यहां रिमहा घड़ी, खंखळ बळको खीज।—नैणसी

खंखाट-सं०स्त्री० (अनु०) [सं० खंक+आहट] तेज आंधी की ध्वनि।

खंखार, खंखारो-सं०पु०—१ गाढ़ा थूक या कफ जो खखारने से निकले, कफ, बलगम. २ दूसरों को सावधान करने के लिए या कफ निकलते समय गले से खरखराहट की निकली हुई ध्वनि।

खंखाळ-सं०स्त्री० [सं० खंख+आल] देखो 'खंखळ' (रू.भे.)

खंखेरणौ, खंखेरबौ-क्रि०स०—१ झकझोरना, पकड़ कर हिलाना. २ झाड़ना. ३ जलती हुई चिता में शव को कुछ इस प्रकार से ठीक करना जिससे वह भली प्रकार पूर्ण रूप से जल जाय।

खंखेरणहार, हारौ (हारी), खंखेरणियौ—वि०।

खंखेरिओड़ौ, खंखेरियोड़ौ, खंखेरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

खंखेरीजणौ, खंखेरीजबौ—कर्म वा०।

खंखेरियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ झकझोरा हुआ. २ झाड़ा हुआ। (स्त्री० खंखेरियोड़ी)

खंखोळणौ, खंखोळबौ-क्रि०स० [सं० क्षालन] १ हल्का धोना, थोड़ा धोना, प्रक्षालन करना. २ स्नान करना. ३ किसी वस्तु आदि को पानी में डाल कर अथवा किसी बर्तन में पानी डाल कर धोने के उद्देश्य से हिलाना-डुलाना। उ०—फेर बादळा खंखोळ उणहीज तळाव रै पांणी सूं छांण भरजै छै।—रा.सा.सं.

खंखोळणहार, हारौ (हारी), खंखोळणियौ—वि०।

खंखोळिओड़ौ, खंखोळियोड़ौ, खंखोळयोड़ौ—भू०का०कृ०।

खंखोळीजणौ, खंखोळीजबौ—कर्म वा०।

खंखोळियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ हल्का धोया हुआ. २ स्नान किया हुआ. ३ किसी वस्तु को पानी में डाल कर हिलाया-डुलाया हुआ। (स्त्री० खंखोळियोड़ी)

खंखोळी-सं०स्त्री० (पु० खंखोळौ) स्नान, नहाने का कार्य।

क्रि०प्र०—खाणी, लेणी।

खंग-सं०पु० [सं० खड्ग] १ तलवार. २ देखो 'खग'।

खंगवाळौ-सं०पु०—देखो 'खूंगाळी' (रू.भे.) उ०—सांप पिटारा रांणाजी भेज्या, कोई द्यौ मीरां ने जाय। कर खंगवाळौ मीरांबाई पहरियौ, कोई हो गयौ नौसरहार।—मीरां

खंगापति, खंगापती—देखो 'खगांपत' (रू.भे.)

खंगारोत-सं०पु०—१ राठौड़ राव जोधाजी के पौत्र व जोगाजी के पुत्र खंगार के वंशज राठौड़ों की एक उपशाखा. २ कछवाह वंश की एक उपशाखा।

खंगाळ-स०पु०—तीर (डिं.नां.मा.)

खंगाळणौ-वि०—संहार करने वाला, नाश करने वाला।

खंगाळणौ, खंगाळबौ-क्रि०स०—संहार करना, नाश करना। उ०—खीचो राव सत्रू खंगाळण, गाढ़ौ जोर दळां बळ घालण।

—पा.प्र.

खंगेल-सं०पु०—लंबे दांत वाला हाथी।

खंच-सं०स्त्री०—१ तंगी, कमी, खिचावट।

क्रि०प्र०—आणी, करणी, पड़णी, होणी।

२ शत्रुता, विरुद्धता, वैमनस्य, मनमुटाव. ३ तिरछापन. ४ भौंहों की धनुषाकार स्थिति. ५ खींचातांणी। उ०—पण दरवाजै मांही खंच करतां एक घड़ी लागी, सो दरवाजै रै एक गेह में राजू खां री सवारी री घोड़ी खड़ी।—सूरे खींवे री वात ६ दृढ़ता से की गई मनुहार।

खंचणौ, खंचबौ-क्रि०स०अ० [सं० कर्ष] १ खींचना। उ०—धवळ सरीखो धवळ है की कीजै कैवार। जेतौ भार भळावियौ, तेतौ खंचण हार।

—बां.दा.

२ खींचा जाना. ३ चिन्ह बनाना. ४ तंगी या कमी सहन करना।

खंचणहार, हारौ (हारी), खंचणियौ—वि०।

खंचिओड़ौ, खंचियोड़ौ, खंच्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खंचीजणौ, खंचीजबौ—कर्म वा०, भाव वा०।

खंचमास-सं०स्त्री०—अर्द्धमंडलाकार पत्थर की चपटी गढ़न।

खंचाणौ, खंचाबौ-क्रि०स० ['खंचणौ' का प्रे०रू०] १ खिंचवाना. २ चिन्ह बनवाना।

खंचाणहार, हारौ (हारी), खंचाणियौ—वि०।

खंचायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खंचाईजणौ, खंचाईजबौ—कर्म वा०।

खंचियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ खींचा हुआ. २ अंकित किया हुआ। (स्त्री० खंचियोड़ी)

खंच—देखो 'खंजा' (रू.भे.)
खंजक-वि० [सं०] पंगु।
सं०पु०—पैर जकड़ जाने का एक रोग।
खंजन-सं०पु० [सं०] एक बहुत सुन्दर पक्षी जो बहुत चंचल होता है। सुन्दर आँखों के लिये प्रायः इसकी उपमा का प्रयोग किया जाता है। उ०—अनुरंजन खंजन अंजन में, झपके लपके मिथ अंकन में।
—ऊ.का.
वि०—काला, श्याम* (डि.को)
खंजनासण, खंजनासन-सं०पु० [सं०खंजनासन] याग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन जिसमें गोमुखासन की तरह दोनों पावों की स्थिति करके दोनों हाथ के पंजे पर शरीर का बोझ आवे। इस प्रकार शरीर को सहज नीचे झुका कर बैठा जाता है।
खंजर-सं०पु० [फा०] १ एक प्रकार का शस्त्र (अ.मा.) उ०—मंजरां कळेजां सेल मार, पंजरां खंजरां करै पार।—वि.सं.
[सं० खञ्ज+स्वा०प्र०र] २ खंजन पक्षी। उ०—मुख सिसहर खंजर नयण, कुच स्रीफळ कंठ वीण।—ढो.मा.
खंजरी-सं०स्त्री० [सं० खंजरीट=एक ताल] १ डफली के आकार का एक वाद्य विशेष, खंजड़ी। उ०—सुधा कुंडळी खंजरी चंग सोहै, बजै चंग मिरदंग सोभा विमोहै।—रा.रू. २ देखो 'खंजर'।
(अल्पा० स्त्री०)
खंजरीट-सं०पु० [सं०] १ खंजन पक्षी। उ०—विधि पाठक सुण सारस रसबंध्रक, कोविद खंजरीट गतिकार।—वेलि. २ एक प्रकार का ताल (संगीत)
खंजरीर-सं०पु० [सं० खजरीट] एक पक्षी विशेष, खंजन।
खंजा-सं०पु०—एक मात्रिक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में चालीस मात्रायें होती हैं तथा अंत में रगण होता है (र.ज.प्र.)
खंड-सं०पु० [सं०] १ भाग, टुकड़ा, हिस्सा।
मुहा०—खंड-खंड करणौ—चकनाचूर करना।
२ देश, मुल्क (डि.को.) उ०—रांम-रांम रटतौ रहै, आठूं पोहर अखंड। सुमिरण सा सोदा नहीं, निरख देख नव खंड।—ह.र.
३ रत्नों का एक दोष विशेष. ४ शक्कर। उ०—खायौ जाय खंड में, न खायौ जाय गुळ में।—ऊ.का. ५ काला नमक. ६ दिशा. ७ वन (ह.नां., नां.मा.) ८ मंजिल. ९ महादेव (क.कु.बो., नां.मा.) १० ग्रंथ का परिच्छेद या विभाग। उ०—पदमनाभ पंडित मति कही, बीजा खंड समापति हुई।—कां.दे.प्र. ११ तलवार. १२ मांस (क्षेत्रीय) १३ नौ की संख्या-बोध* (डि.को.)
खंडकाव्य-सं०पु०यौ० [सं०] वह काव्य जिसमें काव्य के संपूर्ण अलंकार या लक्षण न हों, बल्कि कुछ ही हों।
खंडखीण—देखो 'खडपीण' (रू.भे.)
खंडण-सं०पु० [सं०] १ तोड़ने-फोड़ने की क्रिया, भंजन. २ छेदन। उ०—तैसोह मंडण बीक तण, खळ खंडण खग धार।—रा.रू.
३ किसी बात को अयथार्थ प्रमाणित करने की क्रिया, निराकरण।
खंडणौ, खंडबौ-क्रि०अ०—खंडित होना, कम हो जाना। उ०—रांम राजा बीजौ ही भाई हुवै जाहनूं कहा उजाड़ कियौ मारियौ सो अठै जद माथ खंड गयौ।—आंमेर रा धणी री वात
क्रि०स०—२ खंडन करना, तोड़ना. ३ नष्ट करना. ४ संहार करना। उ०—खागि ऊछाजियै खंडे रिण अरि दळां, सूर प्रगटाहियै सो सरां सावळां।—हा.झा. ५ किसी बात को अयुक्त ठहराना, निराकरण करना. ६ साथी को छोड़ा कर अकेला करना।
उ०—चंदा तौ किण खंडियउ, मौ खंडी किरतार। पूनम पूरउ ऊगसी, आवंतइ अवतार।—ढो.मा. ७ कीमत निश्चित करना।
खंडणहार, हारौ (हारी), खंडणियौ—वि०।
खंडिओड़ौ, खंडियोड़ौ, खंड्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खंडीजणौ, खंडीजबौ—भाव वा०, कर्म वा०।
खंडत-वि० [सं० खंडित] १ टूटा हुआ, भग्न। उ०—मूंछ केस खंडत नहीं, नाक न खंडत कोर। पड़ी पुळंतां पाघड़ी, सुकलीणी तज सोर।—बां.दा. २ अपूर्ण।
खंडपति-सं०पु०यौ० [सं०] राजा।
खंडपरस, खंडपरसु-सं०पु०यौ० [सं० खंडपरशु] १ शिव, महादेव (क.कु.बो., नां.मा.)
२ परशुराम. ३ विष्णु. ४ राहु. ५ दांत टूटा हुआ हाथी।
खंडपीन-सं०स्त्री०—मछली (अ.मा., ह.नां.)
खंडपूरी-सं०स्त्री०यौ० [रा० खंड=शक्कर+सं० पूलिका] मेवे और मसाले के साथ चीनी भरी हुई पूरी।
खंडप्रळय-सं०पु०यौ० [सं०] चतुर्युगी या ब्रह्मा का एक दिन बीत जाने पर होने वाला प्रलय (पौराणिक)
खंडप्रस्तार-सं०पु० [सं०] संगीत में एक प्रकार का ताल।
खंडफण-सं०पु० [सं०] एक प्रकार का सांप।
खंडबड, खंडबिहंड-सं०पु० [सं० खंड] विध्वंश, नाश।
वि०—१ अपूर्ण. २ दो टूक। उ०—खगां रा खेल्ह में खंडबिहंड होर बिमांणां बैठा।—वं.भा.
खंडमेरु-सं०पु० [सं०] पिंगल की वह रीति जिसके द्वारा मेरु या एकावली मेरु के बनाये बिना ही मेरु का काम निकल जाता है।
खंडर-सं०पु०यौ० [सं० खंड+रा० घर=र] टूटे तथा गिरे हुए मकान का अवशिष्ट भाग, जीर्णशीर्ण भाग, खंडहर। (मि० 'ढंढेर')
खंडरणौ, खंडरबौ-क्रि०स०—संहार करना, नाश करना।
उ०—बह मुगलां बिरदैत, खागै खंडरतौ खळां। खासां खुंदानिम तणा, वांनै गौ वांनैत।—वचनिका
खंडळ-सं०पु० [सं० खंड] १ देखो 'खंड'।
[सं० खंडल] २ योद्धा, वीर, खड्गधारी योद्धा।
खंडव—देखो 'खांडव' (रू.भे.)
खंडबाळियौ-सं०पु०—खदान में पत्थर तोड़ने का काम करने वाला व्यक्ति।

खंडविहंड—देखो 'खंडविहंड'। उ०—१ मंडी ग्रास मळे छंछट्टण खंडग्रुगां चितंगी। कित्ती **खंडविहंड** जिती हारथरि सुरतांणी।—रा.रू.
उ०—२ चवडं खगधारां धकै चाढ़। विप किया **खंडविहंड** बाढ़।
—पा.प्र.

खंडहिणौ, खंडहिबौ—क्रि०स०—देखो 'खंडणौ' (रू.भे.)

खंडा—सं०स्त्री० [सं० खंड] तलवार। उ०—उलग जांण की परीय तौ सार, राज नी गती जिसी **खंडाग्नि** धार।—वी.दे.

खंडाक—वि०—संहार करने वाला।

खंडाखीण, खंडापीण—सं०स्त्री० [सं० क्षुद्राण्डपीन] मछली (ह.नां)

खंडार—देखो 'खंडर' (रू.भे.) उ०—गांव हाड़ोती री हुयनै भाग **खंडार** गढ़ चांवळ भेळी हुई।—नैणसी

खंडाळी—सं०स्त्री० [सं० खंडाली] १ तेल मापने का एक परिमांण. २ काम की इच्छा रखने वाली स्त्री. ३ देवी. ४ दुर्गा।

खंडाळौ—सं०पु० [सं० खंड+रा०प्र० ग्राळौ] खड्गधारी योद्धा, वीर। उ०—जोसेल कंवारी घड़ा, छैल केळ मार्थ। **खंडाळां** निराळां एम दूसरौ खूमांण।—बुधसिंह सिंढ़ायच

खंडाहुळ—सं०स्त्री० [सं० खंड+ग्रवळी] नंगी तलवारों की पंक्ति।
उ०—वीस कोम दिस वांम वीस दाहणै तरक्कै, जाळंधर सांमहौ करै बेमुहौ सरक्कै। होळी **खंडाहुळां** रहै दोळी दीहाड़ी, रजण लग्गौ ग्रांण जांण खंडीवन वाड़ी।—रा.रू.

खंडिक—सं०स्त्री० [सं०] कांख, कक्ष।

खंडित—[सं०] देखो 'खंडत' (रू.भे.)

खंडिता—सं०स्त्री० [सं०] अपने नायक को रात को किसी अन्य नायिका के पास रह कर सवेरे आने पर उसमें संभोग के चिन्ह देख कर कुपित होने वाली नायिका।

खंडिनी—सं०स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

खंडिवन—देखो 'खांडव' (रू.भे.) उ०—घूणै खग घूहड़ लागा ध्रीग्राग, उडै पड़ जांण **खंडिवन** ग्राग।—गो.रू.

खंडी—१ देखो 'खांडव' (रू.भे.) २ देखो 'खंड' (रू.भे.)
सं०स्त्री०—३ भूमि, पृथ्वी (ग्र.मा.) ४ एक प्रकार का व्यंजन विशेष जिस पर शक्कर का पुट दिया हुआ हो। उ०—खाजे पूपी खल्ल के ताजे करि तक्कै। खुरमा **खंडी** खुप्परी, चक्खै धमचक्कै।
—वं.भा.
वि०—खंडित।

खंडीवन—देखो 'खांडव' (रू.भे.)

खंडीवनखावक—सं०पु०यौ०—अग्नि, आग (डि.को.)

खंडेलवाळ—सं०पु०—१ वैश्यों की एक शाखा. २ ब्राह्मणों की एक शाखा जो पहले व्यापार करती थी।

खंडौ—सं०पु० [सं० खंड] १ तलवार. २ पत्थर का वह बड़ा टुकड़ा जो दीवार चुनते समय चुनाई के उपयोग में लिया जाता है.
३ देखो 'खंड' (रू.भे.)

खंणंकौ—सं०पु० [अनु०] १ लोहे, पीतल आदि के बर्तनों के गिरने से उत्पन्न झनझाहट, खनखनाहट।
[सं० खनक] २ चूहा।

खंणखंण—सं०स्त्री० [अनु०] देखो 'खंणंकौ' (१) (रू.भे.)

खंत—सं०स्त्री०—१ दाढ़ी. २ अभिलाषा, इच्छा। उ०—सुण सुंदर ढोलौ कहै, भाजै मन री भ्रंत। मौ मारू मिळवा तणी, खरी विलग्गी **खंत**।—ढो.मा. ३ देखो 'खत' (रू.भे.)

खंतराव—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खंति—सं०स्त्री०—१ लगन। उ०—**खंति** लागौ त्रिभुवनपति खेई, घर गिरि पुर सांम्हा धावंति।—वेलि. २ अभिलाषा (मि० 'खंत') उ०—सुणि सुंदरि सच्चउ चवां, भांजइ मन की भ्रांति। मौ मारू मिळवा तणी, खरी विलग्गी **खंति**।—ढो.मा.
वि०—अधीर।

खंतै, खंतौ—क्रि०वि०—शीघ्र, जल्द। उ०—ऊजळ दंता उंठिया, **खंतै** खड़ियौ जाय। वौ घर मुधज केहवी, तिण कारण सिदाय।—ढो.मा.

खंदक—सं०स्त्री० [अ०] १ शहर या किले के चारों ओर खोदी हुई खाई. २ खदान. ३ गर्त, बड़ा गड्ढा।

खंदाखिणौ—देखो 'खंधौ' (रू.भे.) उ०—व्यावां घर दोगण दिपणा, मुरधर में माटी तणा। चांद चकरिया रेल कोरण, सिर सूणा **खंदाखिणा**।—दसदेव

खंदाखोळ—सं०स्त्री०—मूर्खतापूर्ण छेड़छाड़ या उच्छृंखलता, गदहमस्ती।

खंदौ—देखो 'खंधौ' (रू.भे.)

खंवौ—देखो 'खंधौ' (रू.भे.)

खंध—सं०पु० [सं० स्कंध] १ गले और बाहुमूल के बीच का देह-भाग, कंधा। उ०—**खंध** वसण रण हाथ खग, घोड़ा ऊपर गेह। घर रुखवाळौ बिन धरण, गिणै न त्रण सम देह।—जैतदांन बारहठ
मुहा०—खंधौ देणौ—१ सहारा देना, २ शवयात्रा में जाना।
२ गरदन। उ०—कळिया गाडा काढ़ ही, जाडा **खंध** जियांह। रहे नचीतौ सागड़ी, ज्यां कळ जोत दियांह।—बां.दा. ३ काव्य छंद का एक भेद (पिं.प्र.)

खंधांण—सं०पु०—गाहा छंद का भेद विशेष जिसके प्रथम चरण में १२, द्वितीय चरण में २०, तृतीय चरण में १२ और चतुर्थ चरण में २० कुल ६४ मात्रायें होती हैं (पिं.प्र.)

खंधावार—सं०पु० [सं० स्कंधावार] १ राजधानी। उ०—१ मुहु करमा नै आपरा छट्ठा सहोदर नूं जाळोर री दुरग दीधौ, जठै **खंधावार** जमाय मौक्तिकराज नै पुरुरवा प्रियव्रत रै समांन राज कीधौ।—वं.भा. उ०—२ स्वामी रै अनुकूळ समस्त ही **खंधावार** रौ भार आप-आप रै अनुकूळ वहै।—वं.भा. २ फौज, सेना।

खंधार—सं०स्त्री० [सं० स्कंधावार] देखो 'खंधावार' (रू.भे.) (अमा., ह.नां.)
उ०—खट कोटि थाट राजत **खंधार**, पमंगां लघु किंकरां न कौ पार।
[सं० खंड+पाल] राजा, सरदार। —सू.प्र.

खंधारी, खंधारो–सं०पु०—कंधार में उत्पन्न घोड़ा (रा.रू.)
वि०—कंधार का, कंधार संबंधी।

खंधी–सं०स्त्री० [सं० स्कंधक] ऋण वा देन चुकाने का वह ढंग जिसमें सब रुपया एक बारगी न दिया जाकर, बल्कि उसके कई भाग कर के प्रत्येक भाग के चुकाने के लिये अलग-अलग समय निश्चित किया जाय, किश्त। उ०—इत्तै में खंधी म्राळं म्हाराज म्राय'र घोटी घुमायी, क्यों—कठीनै री त्यारी करी हो।—बरसगांठ

खंधीवाळ—देखो 'खांधीवाळ' (रू.भे.)

खंधेड़, खंधेड़ो–सं०पु०—मिट्टी की खान, मिट्टी खोदने का स्थान।
उ०—कुलड़ कटोरदांन, कचोळा, लोटा ऊंखळ माटड़ी। साह खंधेड़ दास प्रजापत, न्यांही नगरां हाटड़ी।—दसदेव

खंधो–सं०पु० [सं० स्कंध] १ कंधा (रू.भे.)
[रा०] २ मकान की चौड़ाई की दीवार के वे भाग जो टाट के सुभीते के लिए लंबाई की दीवार से त्रिकोण के आकार के अधिक ऊँचे किये जाते हैं और जिन पर लकड़ी का वह लंबा बड़ा और मोटा लट्ठा रक्खा जाता है जिसे बंडेर कहते हैं. ३ मकान के दरवाजे के बाहर ओट के लिये बनाई गई वह दीवार जिससे बाहर का कोई व्यक्ति सीधे रूप से दरवाजे के भीतर नहीं देख सकता। यह पर्दा-प्रथा रखने वाले व्यक्तियों के दरवाजे के बाहर होती है।

खंब–सं०पु० [सं० स्कंभ] १ खंभा, स्तंभ। उ०—धरण धूज द्रगपाळ दस कोस नागींद्र धड़क, म्रड़ ब्रहमंड सबद गड़ड़ ऊठै। बड़ड़ खंब खडड़ हक हड़ड़ वांणी विखम, रद कड़ड़ असुर म्रंत करण रूठै।
—ब्रह्मदास दादूपंथी
२ सहारा, आश्रय। उ०—जग अवलंब खंब सतजुग रा, दिवपुर वसतां 'सिवा' हुआ।—रांमलाल बारहठ
[सं० स्कंध] ३ कंधा।
[रा०] ४ बल, टेढ़ा होने का ढंग या क्रिया, तिरछापन।
क्रि०प्र०—आणी, पड़णी, निकळणी, होणी।
५ पहाड़ की तलहटी का मध्य भाग।

खंबायची–सं०स्त्री०—खम्माच राग (संगीत)

खंबो–सं०पु० [सं० स्कंभ] १ स्तंभ, खंभा।
[सं० स्कंध] २ कंधा।

खंभ—१ देखो 'खंब' (रू.भे.) उ०—कंचण खंभ मंडति कीन वरणण छवि करां।—बां.दा.
सं०स्त्री० [रा०] २ गुफा, कंदरा. ३ पहाड़ की तलहटी का मध्य भाग। उ०—राव सुरतांण सीरोही छोड़ दी, भाखर री खंभ झाली।
[सं० कुंभी] ४ हाथी (ना.डिं.को.) —नैणसी

खंभट–सं०पु० [सं० कर्म+भट] नौकर, सेवक।

खंभात–सं०स्त्री० [सं० स्कंभावती] गुजरात के पश्चिम प्रान्त का एक प्रदेश अथवा नगर।

खंभायच, खंभायची—देखो 'खम्माच' (रू.भे.) उ०—१ अंगे अंतर केसरां, सुरां खंभायच सार।—रा.रू. उ०—२ भैरांत सी बिलोदयं, कल्यांण केक मोदयं। खंभायची पटंगयं, बगेसरी विहुंगमं।—रा.रू.

खंभायत—देखो 'खंभात' (रू.भे.)

खंभारो–सं०पु०यौ० [रा० खंभ=हाथी+आ'रो=आश्रय] हाथी के रहने का स्थान। उ०—वेहू एम जूटिया बंधव पिंडबळी प्रणहारा, खूटा मदझर जुग जांण खंभारा।—र.रू.

खंभूठांणो–सं०पु० [सं० कुंभी+स्थान] हाथियों के बांधने का स्थान।
उ०—हाथियों के हलके खंभूठांण, तै खोलै अरापत के साथी भद्र-जाति के टोळै।—र.रू.

खंभो–सं०पु० [सं० स्कंभ] १ स्तम्भ, थंभा।
[सं० स्कंध] २ कंधा। उ०—पवित्र खंभां बे करिस एण पर, अंक दिवाड़ संख चक्र ऊपर।—ह.र.

खंवद–सं०पु० [फा० खाविंद] पति, मालिक, स्वामी (रू.भे.)

खंवो–सं०पु० [सं० स्कंध] १ कंधा। उ०—सिवो खंवां नम थंभणी, भीमो भुजां उदार।—रा.रू.
मुहा०—खंवो देणो—सहारा देना, बोझ उठाने में सहयोग देना, शव-यात्रा में अर्थी में कंधा लगाना।
२ रहँट के मध्य स्तंभ का वह मध्य का भाग जो कंगूरेदार बड़े चक्र में फसाया जाता है।

खंसणौ, खंसबौ–क्रि०अ० [सं० कष=हिंसायाम्] १ मस्ती करना.
२ युद्ध करना।
[सं० कास] ३ खांसना. ४ प्रयत्न करना। उ०—ना जीहा पै वीमुहा, नृसंघ सीर जे नथ। केता कव-जन खंस गया, अरि केता भारथ।—द.दा. ५ रगड़ खाना।
खंसणहार, हारो (हारी), खंसणियो—वि०।
खंसाणो, खंसाबो, खंसावणो, खंसावबो—क्रि०स०।
खंसिओड़ो, खंसियोड़ो, खंस्योड़ो—भू०का०कृ०।
खंसीजणो, खंसीजबो—भाव वा०।

ख–सं०पु०—१ गड्ढा, गर्त. २ निर्गम, निकास. ३ छेद, बिल. ४ इंद्रिय. ५ कुआ. ६ आकाश. ७ स्वर्ग. ८ मुख. ९ कर्म. १० बिंदु. ११ ब्रह्मा. १२ शब्द. १३ सुख, आनन्द. १४ पहाड़. १५ कमल (एका०) १६ सूर्य (ह.नां.) १७ प्रलय (डिं.को.)
सं०स्त्री०—१८ खाई. १९ पृथ्वी. २० लक्ष्मी (एका०)

खइंग–सं०पु० [फा० खिंग] घोड़ा। उ०—तांणावि तंग चडिया तुरेह, खख खड़ह खोगि खइंगां खुरेह।—रा.ज.सी.

खइस–सं०पु० [सं० ख+शीर्ष] देखो 'खईस' (रू.भे.)।

खई–सं०स्त्री०—कँटीली झाड़ियों का वह ढेर जो बई (देखो 'बई') के सहारे सिर पर उठा कर लाया जाता है (मि० 'मथारी')

खईस–वि०—१ पापी, दुष्ट. २ नीच. ३ कठोर परिश्रमी।
उ०—स्वारथ परै खंधेड़, खईसां खदका झेलै। कस्सी सेलै सबै, पीड़

बिन पहसं घेलं ।—दसदेव

सं०पु० [सं० ख+शीर्ष] ४ बिना सिर का भूत व प्रेत ।

उ०—खेजड़ी मांय निकस्यो खईस, सो जूटी मांगा गैणाग सीस ।

—करणीरूपक

खकर–सं०पु०[सं० खांक = आकाश+कर = किरण, कांति] मोर (नां.मा.)

खकार–सं०पु०—१ 'ख' वर्ण. २ देखो 'खंखार' (रू.भे.)

खक्खड़—देखो 'खखड़' (रू.भे.)

खख–सं०स्त्री० [फा० खाक] १ भस्म, राख. २ धूलिकण, रज ।

खखड़–सं०पु० [सं० ख+खंड] १ आकाश । उ०—हल चल्लिय हिंदवांन, खखड़ जुग्गनि खिलखिल्लिय ।—ला.रा. २ जबरदस्त, शक्तिशाली, प्रचंड ।

वि० [सं० खक्खट] वृद्ध ।

खखड़धज–स०पु० [स० कुक्कुट+ध्वज] १ प्रचंड, बलशाली. [सं० खक्खट] २ वृद्ध. बुजुर्ग ।

खखपती–वि०यौ० [फा० खाक+सं० पति] कंगाल, निर्धन, दरिद्र ।

खखाटी–सं०स्त्री० अनु०] शुष्क कांस (खांसी) तथा इससे उत्पन्न होने वाली ध्वनि ।

खगंद्र–सं०पु० [सं० खगेंद्र] गरुड़ । उ०—तेज हाक नीर पूर पाथोद पाड़िया तसां, नगां उतारिया ज्यूं खगंद्र बधं नेत। पबं पंख बड़ूजा झाड़िया बोम वज्र पाठ, खळां थाट दूजं 'दलं' बकारिया खेत । •

—हुकमीचंद खिड़ियो

खग–सं०पु० [सं०] १ पक्षी (डिं.को.)

वि०वि०—इस शब्द के आगे पत, पति जोड़ने मे गरुड़ का अर्थ होता है ।

यौ०—खगईसवर खगपथ, खगराज, खगराव, खगांधर, खगांधीस, खगांराज, खगाधिप, खगिंद्र. खगेंद्र, खगेसर ।

२ मोर (नां.मा.) ३ देवता (डिं.को.) ४ बादल. ५ तारा. ६ चंद्रमा. ७ ग्रह. ८ गरुड़ (अ.मा.) ९ सूर्य (क.कु.बो, डिं.को.) [सं० खड्ग] १० खड्ग, तलवार (डिं.को) उ०—फौज घटा खग दांमणी, बंद लगइ सर जेम । पावस पिउ विण वल्लहा, कहि जीवीजइ केम ।—ढो मा.

यौ०—खगखेल, खगचाळी, खगझल्ल, खगधर, खगमेळ, खगवाट, खगवाही [रा०] ११ बाण, तीर (अ.मा.)

उ०—खगां झाट समराट लोहलाठ भाजण खळां, तीख खंत्रवाट घर वाट तोरा ।—रावत जोधसिंह री गीत १२ सुअर के निकले हुए दांत जिनसे वह शत्रु पर प्रहार करता है । उ०—राव रा घोड़ा रै तंग री ठौड़ खग लगायो सो घोड़ो ब्यारू पगां ऊपड़ गयो ।

—डाढ़ाळा सूर री वात

१३ भोजन चबाने के ऊंट के दांत विशेष जो आगे के दांतों के और डाढ़ों के बीच में होते हैं. १४ रज, धूलि (अ.मा.)

१५ गिद्धनी (डिं.को.) (रू.भे.–'खग्ग')

खगईसवर–सं०पु०यौ० [सं० खगेश्वर] गरुड़ (ह.नां.)

खगखेल–सं०पु० [सं० खड्ग+खेल] युद्ध, लड़ाई । उ०—हमां चहुवांण अलावद हेल, खांगी-बंध जैत रच्यो खगखेल ।—मे.म.

खगचाळी–सं०पु० [सं० खड्ग+रा० चाळी = उपद्रव] युद्ध ।

उ०—चखि पेखं साह धरा खगचाळी जिद विना कळ नींद जुई ।

—रा.रू.

खगझलो, खगझल्ल–वि०यौ० [सं० खड्ग+रा० झल्ल] १ तलवार हाथ में रखने वाला, योद्धा, वीर. २ शक्तिशाली, समर्थ ।

खगट–वि० [सं० खड्ग+अट शक–खड्गट] १ उदार. २ दातार (ह.नां.)

खगणी, खगबो–क्रि०स० [सं० खंडन] नाश करना । उ०—क्षधा प्यासा त्रासा दुसह कर आसा दुख खगे ।—ऊ.का.

खगणहार, हारौ (हारी), खगणियौ—वि० ।

खगिओड़ो, खगियोड़ो, खग्योड़ो—भू०का०कृ० ।

खगीजणो, खगीजबो—कर्म वा० ।

खगधर–वि०यौ० [सं० खड्ग+धारिन्] तलवार धारण करने वाला, योद्धा, वीर । उ०—लख लोहां पड़ खगधर लागो, भागो रे नभ मारग भागो ।—र.रू.

खगधार–सं०पु०यौ० [सं० खड्ग+धारा] १ तलवार.

२ देखो 'खगधर' (रू.भे.)

खगपंथ–सं०पु०यौ० [सं० खग+पथ] आकाश (अ.मा.)

खगपत, खगपति, खगपती–सं०पु०यौ० [सं० खगपति] पक्षीराज, गरुड़ (डिं.को.)

खगपथ—देखो 'खगपंथ' (रू.भे.)

खगमेळ–सं०पु०यौ० [सं० खड्ग+मेल] युद्ध । उ०—दाटक अनड़ दंड नह दीधो, दोयण घड़ सिरदाव दीयो । मेळ नह कीयो जाय बिच महलां, केळपुरे खगमेळ कीयो ।– दुरसो आढ़ो

खगराज, खगराजा, खगराय, खगराव–सं०पु०यौ० [सं० खग+राट्]

१ पक्षीराज, गरुड़ (डिं.को.) उ०—कटठं थट किलकता तणा खगराव कळ, बाज पंख कूंत चंच जत वरणे ।—बां.दा.

खगरूप–सं०पु०यौ० [सं० खग = गंधर्व = किन्नर+रूप) एक प्रकार का घोड़ा विशेष (शा.हो.)

खगवाट–स०पु०यौ०—युद्ध, समर । उ०—थाट निराट अहाड़ां थहतो, झाट खगां खगवाट झलू ।—बलू चांपावत री गीत

खगवाह, खगवाहो–वि०यौ० [सं० खड्ग+रा० वाहो] १ तलवार चलाने वाला, योद्धा, वीर । उ०—१ विदा किया भाटी खगवाहा, बेली साथं कमंध दुबाहा ।—रा.रू. उ०—२ पळचर उदमाद गयो अंत पायो, थांन वडो अहंकार थियो । बांको भड़ 'सांगो' खगवाहो, ग्रीध धपावण हार गयो ।—सांगा री गीत

२ बलि पशु का सिर काटने वाला. ३ राजपूत जाति का व्यक्ति ।

कहा०—मण वावां मांणो नीपजं, खगवाहां रा खेत—राजपूतों द्वारा एक मन अनाज बोने पर केवल पांच सेर उत्पन्न होता है; राजपूत

खेती की ओर ध्यान नहीं देते क्योंकि उनका मुख्य कार्य युद्ध है।

खगांघर–सं०पु०यौ० [सं० खग+रा० घर] पक्षियों का घर, पेड़। (नां.मा., ह.नां.)

खगांघर–सं०पु०यौ० [सं० खग+धारिन्] वृक्ष, पेड़।

खगांधीस–सं०पु०यौ० [सं० खग+अधीश्वर] गरुड़। उ०—मातंग हेरि मांनहु अगीस, मांनहु पनग्ग लखि खगांधीस।—ला.रा.

खगांपत, खगांपति–सं०पु० [सं० खग+पति] गरुड़। उ०—वागां प्राच-रत पवन महाराज वखतै विढए, सरोसर तोलतां पांण अवसांण। नगांपत क्रूरमांनाथ चलतां नगां, खगांपत हुओ अवछाड़ खूमांण।

—हुकमीचंद खिड़ियौ

खगांराज—देखो 'खगराज' (रू.भे.)

खगाट–सं०स्त्री० [सं० खड्ग] १ खड्ग, तलवार। उ०—१ आसथांन मुरधर इळा, खाटी पांण खगाट।—अज्ञात उ०—२ वेध धरती तणै खगाटां वाजिया, उभै राठौड़ छत्रधर अरोड़ा।—पहाड़खां आढ़ौ

सं०पु०—योद्धा, वीर।

खगाधिप–सं०पु० [सं० खग+अधिप] पक्षीराज, गरुड़। उ०—पीळी पखराळ तुरंग न पंत, खगाधिप अनंत खिलंत।—अज्ञात

खगारण–सं०पु०यौ० [सं० खग+रमण=भर्ता, पति] गरुड़। उ०—आरोह खगारण धाय धरारण, चक्र चलारण काज कियौ।

—करुणासागर

खगाळी–वि०यौ० [सं० खड्ग+रा०प्र० आळी] खड्ग धारण करने वाली। सं०स्त्री०—देवी।

खगिंद, खगिंद्र—देखो 'खगेंद्र'। उ०—गिरंद कछवाह होतां कदम चलत गत, खगिंद्र दूजे 'दले' ढांकिया खेत।—अनूपरांम कवियौ

खगि–सं०पु० [सं० खड्ग] तलवार। उ०—खत्रवट खगि त्यागी सुयण मिणि साव खरौ।—ल.पिं.

खगींद्र–सं०पु० [सं० खगेन्द्र] गरुड़। उ०—धावां गुडाकेस पखै कार्टे कौ करिंद्र घड़ा, जे खगींद्र पाखै नाग दार्ट कौ जुधांन।

—कीरतसिंह खिड़ियौ

खगूं–सं०स्त्री०—देखो 'खगि' (रू.भे.)

खगेंद्र–सं०पु०यौ० [सं०] गरुड़। उ०—अनळ बळ प्रबळ वहतां अकळ अजावत, सिखर उड पड़ै गज धजां समेत। गिरंद कछवाह होतां कदम चलत गत, खगेंद्र दूजा दला छबै रणखेत।—अज्ञात

खगेल—देखो 'खगैल' (रू.भे.)

खगेस-अर–सं०पु०—[सं० खगेस+अरि] शेषनाग (अ.मा.)

खगेस, खगेसर–सं०पु० [सं० खग+ईश, सं० खग+ईश्वर] पक्षीराज गरुड़ (डिं.को.) उ०—रटियौ हरि गजराज, तज खगेस धायौ तठै।

—रांमनाथ कवियौ

खगैल–सं०पु० [रा० खग+प्र० एल=वाला] १ सूअर। उ०—औखा गिरां रहता खगैल बिना धोका आळा, पूगै तू ही अनोखा सिकारी अधीनाथ।—मेहकरण महियारियौ (मि० 'खग'—१२)

२ योद्धा।

खगोळ–सं०पु० [सं० खगोल] १ आकाश-मंडल. २ आकाश के नक्षत्र, ग्रह, तारे व अन्य पदार्थों के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने की विद्या।

खग्ग–सं०स्त्री० [सं० खड्ग, प्रा० खग्ग] देखो 'खग'। (रू.भे.) उ०—अनंक खग्ग बग्ग तें सु अंख खोलते नहीं, पटादि खेल पेलके सटा समाळते नहीं।—ऊ.का. (यौ० खग्गबग्ग)

खग्गबग्ग–सं०पु०यौ० [सं० खड्ग+बग्ग=बजना] तलवार का युद्ध। उ०—आजे मींत अमल्ल खग्ग-बग्गां खणकारां, पिड़ सींधू सुर पड़ै भड़ां कानां भणकारां—ऊ.का.

खग्गवांणी–सं०स्त्री०यौ० [सं० खड्ग+वाणी] १ तलवार की झनझनाहट। उ०—मथांणे मटल्ले मही जांण हल्लै। अगे अप्रवांणी बजै खग्गवांणी।—रा.रू.

[सं० खग+वाणी] २ पक्षियों का कलरव।

खग्गवारी–सं०स्त्री० [सं० खड्गपालि] तलवार की धार। उ०—वहै खग्गवारी, करग्गे कटारी। तुटे मुंड तुंड, कळा नाट कुंड।—रा.रू.

खग्गि, खग्गी–सं०स्त्री० [सं० खड्ग] १ तलवार। उ०—आपै ही जांणावसी, भलो ज होसी वग्गि। कै मांगिए दरसावियां, कै ऊछळियां खग्गि।—हा.झा. २ पश्चिम के मुसलमानों का एक नृत्य।

खग्रास–सं०पु० [सं०] ऐसा ग्रहण जिसमें सूर्य्य या चंद्र का सारा मंडल छिप जाय; पूर्ण ग्रहण।

खड़–सं०स्त्री० [सं०] १ घास। उ०—ते खड़ ऊभा सूकसी, नह चरसी हिरणांह।—बां.दा.

कहा०—१ खड़ कटाओ चावै गेलै चलाओ—चाहे घास कटाओ चाहे रास्ते चलाओ; उतने ही समय में चाहे कुछ भी कार्य करा लो। २ झड़ जठैई खड़—जहां मंद-मंद हल्की वर्षा होगी वहीं अधिक घास होगी; मंद-मंद हल्की वर्षा की फुहारों की प्रशंसा।

सं०पु०—२ श्योनक, लोध, सोनापाठी वृक्ष. ३ एक ऋषि का नाम। ४ वन, जंगल। उ०—धेनूं चरतोड़ी धोरां खड़ धाती, ऊखां झर-तोड़ी लोरां झड़ आती।—ऊ.का.

सं०स्त्री० [रा०] ५ चलाने या हांकने की क्रिया या भाव. ६ चाल में चलने की गति।

खड़क–सं०स्त्री०—१ जलाशय या नदी का तट, जलाशय का बांध. २ चिंता। उ०—चंदू री मां नै खड़क लागी, बै मांगा तांगा करण सरू किया।—वरसगांठ ३ एक प्रकार का खाद्य पदार्थ।

उ०—खाजे खड़क सालणे वडी, कूर कपूर तळी पापड़ी।—कां.दे.प्र.

खड़कणौ, खड़कबौ–क्रि०अ०अनु० [सं० खिट] १ 'खड़-खड़' शब्द होना. २ ढोल का बजना (मि० 'खड़वकणौ') ३ ध्वनि करते हुए जल-प्रवाह का बहना। उ०—पावस पड़िनै रहीआ छै, परनाळ खाळ पहाड़ खड़कीआ छै।—रा.सा.सं. ४ देखो 'खटकणौ'।

क्रि०सं०— ५ तह पर तह लगाना।

खड़कणहार, हारौ (हारी), खड़कणियौ—वि०।

खड़काणी, खड़काबौ, खड़कावणी, खड़कावबौ—क्रि०स०।
खड़कियोड़ौ, खड़कियोड़ो, खड़क्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खड़कीजणी, खड़कीजबौ—भाव वा०, कर्म वा०।
खड़क्कणी, खड़क्कबौ—रू०भे०।

खड़काचर—सं०पु०—छोटी-छोटी गोल या अंडाकार ककड़ियां। देखो 'काचर'।

खड़काणी, खड़काबौ—क्रि०स०—'खड़कणी' का स० रूप। देखो 'खड़कणी'।

खड़कारौ—सं०पु० [अनु०] १ आवाज. २ इशारा, कटाक्ष। उ०—कहो कुंवर केहो करूं, भोजाई री भाव। चखां खड़कारा हुवै, सुणै सुरां री राव।
—कुंवरसी सांखला री वारता

खड़कौ—सं०पु० [अनु०] १ खड़-खड़ की ध्वनि. २ किसी जलाशय या नदी का तट। उ०—उठै घर पांणी में कैगा सूं खड़का माथै जांणिया। इगाहीज तरै वैरी नै पांमणा कया सो पांमणा नहीं दुसमण है।—वी.स.टी. (रू.भे. 'खड़क')
३ मृत्यु-भोज के बाद बजाया जाने वाला ढोल, इस ढोल की आवाज। उ०—विभीचारी विभचार कर, कुळ धरम खोय कुमोज। खूट गया इण खलक में, खड़कौ हुवौ न खोज।—ऊ.का.

खड़क्कणी, खड़क्कबौ—देखो 'खड़कणी' (रू.भे.)
उ०—घर घोड़ी पिव अचपळौ, वैरी बाड़ै बास। नित उठ ढोल खड़क्कबै, कद चुड़लै री आस।—वी स.

खड़क्खड़ [अनु०] देखो 'खड़खड़'। उ०—भड़ां घड़ भंजि व्हांणे बि बि भग्ग। खड़क्खड़ ढल्ल झड़ज्झड़ खग्ग। —वचनिका

खड़ख—देखो 'खड़क' (रू.भे.)

खड़खड़—सं०स्त्री० [अनु०] पदार्थों या शस्त्रों के परस्पर टकराने की ध्वनि। उ०—हाथ पग धूजै धड़धड़, उर दांत हाड गोडा खड़खड़।
—वचनिका

खड़खड़णी, खड़खड़बौ—क्रि०अ०—'खड़खड़' की ध्वनि करना।
खड़खड़ाणी, खड़खड़ाबौ—स०रू०

खड़खड़ाट, खड़खड़ात—सं०स्त्री० [अनु०] ध्वनि विशेष। उ०—पीठ बड़-बड़ात कूरम छटा प्रळै री। मही खड़खड़ात हैजम मचोळां।
—बां.दा.

खड़खड़ियौ—सं०पु० [रा० खड़खड़णी] १ पालकी, पीनस. २ एक प्रकार की छोटी सवारी की गाड़ी जिसे घोड़े खींचते हैं; तांगा, इक्का।

खड़खड़ी, खड़खड़ी—सं०स्त्री०पु० [अनु०] कंपायमान होने का भाव या क्रिया, कँपकँपी।

खड़खावणी, खड़खावबौ—क्रि०स० [अनु०] खड़-खड़ की ध्वनि कराना।

खड़खाड—देखो 'खड़खीण' (रू.भे., ह.नां.)

खड़ख्खड़—देखो 'खड़खड़' (रू.भे.) उ०—खड़ख्खड़ जोड़ खड़क्कै खग्ग।—रा.ज. रासौ

खड़ग—सं०स्त्री० [सं० खड्ग] १ तलवार, कृपाण (डिं.को.)
२ एक प्रकार का गेंडा जिसके मुख के अग्र भाग पर सींग निकला हुआ होता है, इसका दूसरा नाम गेंडा हाथी भी है (डिं.को.)
(रू०भे० 'खड़गी')

खड़ग-खेल्ह—सं०पु०यौ० [सं० खड्ग+रा० खेल] युद्ध। उ०—अर सिंह देव भी साथ ही हेठै आय खड़ग-खेल्ह मचाय महाप्रळय रा महानट री आभा धरी।—वं भा.

खड़गधर—वि०यौ० [खड्ग+धारिन्] तलवार धारण करने वाला योद्धा, वीर। उ०—धर वाहरू प्रताप खड़गधर, सुज बीसरै न पाखर सेर।
—पीथोजी आसियौ

खड़गधारणी—वि०स्त्री०यौ० [सं० खड्ग+धारिन्] तलवार धारण करने वाली।
सं०स्त्री०—दुर्गा (डिं.को.)

खड़गधारी—वि० [सं० खड्ग] देखो 'खड़गधर' (रू.भे.)

खड़गरूप—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खड़गसाही—सं०पु०—मारवाड़ राज्य का एक प्रकार का प्राचीन सिक्का।

खड़गसिध—वि०यौ० [सं० खड्ग+सिद्ध] वीर, योद्धा। उ०—धरा उजवाळियां दीपियौ खड़गसिध।—महाराजा करमसिंह रौ गीत

खड़गहत, खड़गहथ—वि० [सं० खड्ग+हस्त] १ योद्धा, वीर, खड्ग-धारी। उ०—खत्रवाट खत्री धुर होये खड़गहथ, ब्राह्मण तें साचविये इम।—हरीसूर बारहठ
२ तलवार से आहत।

खड़गी—१ देखो 'खड़ग' (२) (डिं.को.)
[सं० खड्गिन्] २ योद्धा।

खड़ग्ग—देखो 'खड़ग' (रू.भे.) उ०—प्रवाहै खड़ग्ग झड़ै हत्थ पग्गं, लहै जांण आरा धरं काठ लग्गं।—रा.रू.

खड़ड़—सं०स्त्री० [अनु०] ध्वनि विशेष। उ०—खड़ड़ नर हड़ खपर खड़खड़।—र.ज.प्र.

खड़ड़णौ—क्रि०अ०—हड़बड़ाना, घबराना। उ०—गड़ड़ते सोर भरि जोरमातो गहण। खड़ड़ते कायरे लोह खिलते।—महाराजा करण-सिंह रौ गीत

खड़ड़ाट—देखो 'खड़खड़ाट' (रू.भे.)

खड़चर—सं०पु०—पशु। उ०—धूजे सीस ईस भजि भाई, खड़चर रखे पड़े मति खाई।—ह.पु.वा.

खड़चराई—सं०स्त्री०—मवेशी रखने वालों से लिया जाने वाला लगान विशेष।

खड़जंत्र—सं०पु० [सं० षड्यंत्र] षड्यंत्र, धोखा, गुप्त चाल, कपटपूर्ण आयोजन।

खड़णी—सं०स्त्री० [सं० खेटनम्] १ खेत जोतने की क्रिया या भाव. २ जोतने योग्य भूमि. ३ किसी वाहन के चलाने की क्रिया या ढंग।

खड़णी, खड़बौ–क्रि०स० [सं० खेटनम्] १ चलाना, हाँकना।
उ०—'घर-घर सूं भीसर नै घोड़ौ, खाली ऊजड़ खड़िया है।—ऊ.का.
२ खेत को जोतना।
क्रि०अ० [रा०] ३ मरना।
खड़णहार, हारौ (हारी), खड़णियौ—वि०।
खड़ाणौ, खड़ाबौ, खड़ावणौ, खड़ावबौ—क्रि०स० प्रे०रू०।
खड़िग्रोड़ौ, खड़ियोड़ौ, खड़योड़ौ—भू०का०कृ०।
खड़ीजणौ, खड़ीजबौ—कर्म वा०, भाव वा०।
खड़बोखड़, खड़बोखड़ौ–सं०पु०—वह वर्ष जिसमें चारे का अभाव हो। दुर्भिक्ष, दुष्काल। उ०—पाधर रा बादसाह बड़ा भोकाई सो एक बरस इहां गांवां में खड़बोखड़ सो हुवौ।—सूरे खींवे री वात
खड़पीण—देखो 'खडपीण' (रू भे.)
खड़बड़–सं०स्त्री० [अनु०] १ खट-खट का शब्द, व्यतिक्रम, उलटफेर, हलचल. २ लड़ाई, वैमनस्य, झगड़ा।
खड़बड़णौ, खड़बड़बौ–क्रि०अ०—१ आतुरता करना, उतावला होना। उ०—सौ पांवडा आघा गया तरै रावळा सातवीसी रजपूत खड़बड़ीया जुद्ध करण नै तद ठाकरां कही माफ करावौ।—वी.स.टी.
२ लड़ाई होना या करना। उ०—खाग झट उरड़ पड़ ढालड़ा खड़बड़ें, रीस चढ़ सोहड़ आयध अगुट रड़वड़ें।
—सुरतांणसिंह नीबाज रौ गीत
३ सतर्क होना. ४ चौंकना. ५ विचलित होना।
खड़बड़णहार, हारौ (हारी), खड़बड़णियौ—वि०।
खड़बड़ाणौ, खड़बड़ाबौ—क्रि०स० प्रे०रू०।
खड़बड़िग्रोड़ौ, खड़बड़ियोड़ौ, खड़बड़योड़ौ—भू०का०कृ०।
खड़बड़ीजणौ, खड़बड़ीजबौ—क्रि० भाव वा०।
खड़बड़ाट, खड़बड़ाहट–सं०स्त्री० [अनु०] ध्वनि विशेष। उ०—वहलां रा वांस पइयां रो खड़बड़ाट हुय नै रह्यौ छै।—रा.सा.सं.
खड़बड़ियौ–भू०का०कृ० [अनु०] १ खड़-खड़ शब्द किया हुआ.
२ झगड़ा किया हुआ। (स्त्री० खड़बड़ियोड़ी)
खड़बड़ी–सं०स्त्री० [अनु०] देखो 'खड़बड़' (रू.भे.)
खड़बूजौ, खड़बूझौ—देखो 'खरबूजौ' (रू.भे.)
खड़बौ–सं०पु०—१ किसी गाढ़ी चीज की जमी हुई मोटी तह, जमा हुआ कतरा, थरकन. २ हिंदवानी का विकृत फल।
खड़भड़, खड़भड़—देखो 'खड़बड़'। उ०—१ फिलबांइण चंचळ पाय कळा, विध सोच खड़भड़ आठवळा।—रा.रू. उ०—२ बूर पड़ि जंबूर विहु थड़, भुरज बीछड़ि पड़ै खड़भड़।—रा.रू.
खड़भड़णौ, खड़भड़बौ–क्रि०अ०—देखो 'खड़बड़णौ' (रू भे.)
उ०—जठी तठी नूं कर कर जुरड़, खिल खावण खड़भड़िया है।
—ऊ.का.
खड़भड़ाट—देखो 'खड़बड़ाट' (रू.भे.)
खड़भड़ियोड़ौ—देखो 'खड़बड़ियौ' (रू.भे.)
खड़भड़ी—देखो 'खड़बड़ी' (रू.भे.)
खड़वा–सं०स्त्री० [सं० खिट] १ जोती अथवा बोई हुई जमीन.
२ पशु की चाल. ३ यात्रा।
खड़सल–सं०स्त्री०—चार पहियों का रथ विशेष जिसका टप गुम्बजदार होता है। उ०—बनाती झूलां घातियां रहकळां इकां खड़सलां जूता छै, सु हालियां थकां घोड़ां री मांम पाड़ै।—रा.सा.सं.
खड़हड़—देखो 'खड़बड़' (रू.भे.) उ०—खड़ड़ नरहड़ खपर खड़हड़।
—र.ज.प्र.
खड़हड़णौ, खड़हड़बौ–क्रि०अ०—लड़खड़ाना। उ०—माळवणी कउ तन तप्यउ, विरह पसरियउ अंगि, । ऊभी थी खड़हड़ पड़ी, जांणे डसी भुयंगि।—ढो.मा. २ ध्वनि होना। उ०—तांणवि तंग चढ़िया तुरेह, खड़खड़इ खोगि खइंगां खुरेह।—रा.ज.सी. ४ गिरना.
उ०—१ सखी अमीणौ साहिबौ, बोह जूंभो बळवंड। सो बांमै भुजडंड सूं, खड़हड़तौ ब्रहमंड।—बां.दा. उ०—२ कांगरा खागा थका विराजै छै जांणे आकासलोक नूं गिळण नूं दांत दिया छै। ऊंची निजरि करि जोइजै तो माथा री मुगट खड़हड़ै।
—रा.सा.सं.
५ बिजली चमकना।
खड़हड़णहार, हारौ (हारी), खड़हड़णियौ—वि०।
खड़हड़िग्रोड़ौ, खड़हड़ियोड़ौ, खड़हड़योड़ौ—भू०का०कृ०।
खड़हियौ, खड़हीयौ—देखो 'खड़ियौ' (रू.भे.) उ०—भजन भेव जांणे कछु नांही, कुबधि खड़हीया काखां मांही।—ह.पु.वा.
खड़ाऊ–सं०स्त्री०—पैर में पहनने की तलुये के आकार की काष्ठ की पटरी, पादुका।
खड़ाक–वि०—सीधा, खड़ा। उ०—भड़ता महमंद बेग भांजियौ सींग खड़ाक वेगड़ा सांड।—तेजसी खिड़ियौ
खड़ाखड़–सं०स्त्री० [अनु०] १ ध्वनि विशेष। उ०—तरवारियां री खड़ाखड़ बाज रही छै। नबाब पण खड़ौ खड़ौ देख रह्यौ छै।
—पदमसिंह री वात
२ प्रहार या प्रहार से उत्पन्न होने वाली ध्वनि विशेष।
उ०—अर बरछियां री धमाधम लेणी होवै, तरवारियां री खड़ाखड़ सहणी होवै सो म्हारै सागै आवौ।
—कुंवरसी सांखला री वात
खड़ाखड़ी–क्रि०वि०—१ खड़े-खड़े. २ एकाएक। उ०—सो डेरा करो इम तरह खड़ाखड़ी क्यूंकर चलणा होय।
—दूलची जोइये री वारता
सं०स्त्री०—खटपट, शत्रुता, वैमनस्य।
खड़ाखर–सं०पु० [सं० षडाक्षर] छः वर्ण या अक्षर (र.ज.प्र.)
खड़ाणौ, खड़ाबौ–क्रि०स० [सं० खेटनम्] ('खड़णौ' का प्रे०रू०)
१ चलवाना, हाँकने का कार्य दूसरों से करवाना. २ भूमि को जुतवाना।

खड़ाणहार, हारौ (हारी), खड़ाणियौ—वि० ।

खड़ायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

खड़ाईजणौ, खड़ाईजबौ—कर्म वा० ।

खड़ावणौ, खड़ावबौ—(रू.भे.)

खड़ाबूज—देखो 'खाडाबूज' (रू.भे.)

खड़ावणौ, खड़ावबौ—क्रि०स० प्रे०रू०—देखो 'खड़ाणौ' (रू.भे.)

खड़िक–वि० [सं० खटी = खड़िया मिट्टी जो प्रायः श्वेत होती है] सफेद, श्वेत (डिं.को.)

खड़िणौ, खड़िबौ देखो 'खड़णौ' (रू.भे.)

खड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ चलाया हुआ, हाँका हुआ. २ जोता हुआ । (स्त्री० खड़ियोड़ी)

खड़ियौ–सं०पु०—१ कपड़े का बना हुआ कंधे पर रखने का ब्राह्मणों का भिक्षा माँगने का झोला, थैला. २ दोनों कंधों पर लटकाया जाने वाला बड़ा थैला ।

खड़ीड़–सं०स्त्री० [अनु०] भारी वस्तु के गिरने की अनुकरणात्मक ध्वनि ।

खड़ीडंकी–सं०स्त्री०—मालखंभ की एक कसरत ।

खड़ीण–सं०पु०—वह नीची जमीन जहाँ वर्षा ऋतु में पानी भर जाता है तथा सूखने के बाद उस भूमि को हल चला कर जोतते हैं ।

उ०—'जेहळ' ताळ खड़ीण व्है, तरवर लाकड़ होय । हरम दहै बूंढ़ा हुवै, जस अविकारी जोय ।—बां.दा.

खड़ौ–वि० [सं० खड्क] (स्त्री० खड़ी) १ धरातल से समकोण पर स्थित, सीधा ऊपर को उठा हुआ. २ पृथ्वी पर पैर रख कर टाँगों को सीधा कर अपने शरीर को ऊंचा किया हुआ प्राणी. ३ प्रस्तुत, उपस्थित. ४ तैयार, सन्नद्ध, उद्यत. ५ प्रारंभ, जारी. ६ घर, दीवार आदि ऊँची वस्तुओं के विषय में स्थापित, निर्मित. ७ जो उखाड़ा अथवा काटा न गया हो. ८ बिना पका, कच्चा. ९ समूचा, पूरा. १० जिसमें गति न हो, ठहरा हुआ. ११ चैतन्य. १२ तालाब आदि की मिट्टी की जमी हुई मोटी तह ।

खचत–वि० [सं० खचित] १ जड़ित, जड़ा हुआ. २ लिखित. ३ बनाया हुआ. ४ चित्रित ।

खचर–सं०पु० [सं०] १ पक्षी. २ आकाश में विचरण करने वाले. ३ देखो 'खच्चर' (रू.भे.) (स्त्री० खचरांणी) ४ राक्षस ।

खचाखच–क्रि०वि० [अनु] बहुत भरा हुआ, ठसाठस ।

मुहा०—खचाखच भरणौ—खूब ठूंस ठूंस कर भरना ।

खच्चर–सं०पु०—गधे और घोड़ी के संयोग से उत्पन्न पशु, जिसके कान गधे के समान होते हैं । मजबूती व बोझा ढोने में यह घोड़े से भी अधिक शक्ति रखता है ।

पर्याय०—वेगसर, वेसर ।

खज–सं०पु० [सं० खाद्य, प्रा० खज्ज] खाद्यपदार्थ, भक्ष्यपदार्थ ।

उ०—मांनसरोबर मांय, बुग मुराळ भेळा वसै । खज अपणौ ही खाय, भाग प्रमांणे भैरिया ।—महाराजा बळवंतसिंह

खजक–सं०पु० [सं० खजक:] मथनी, मथदंड (डिं.को.)

खजमत–सं०स्त्री० [अ० खिदमत] १ हजामत. यौ०—खजमत-खूंटी । २ देखो 'खिदमत' (रू.भे.)

खजर–वि०—क्रोध से पूर्ण, क्रुद्ध । उ०—खजर उभै धख मही रै अगन भटकै अजर, गाज घण जु ही रै बाज धुंसां गजर । खोटहड़ कही रै अदन ऊभौ खजर, नहीं रै जुहारण जिसौ आवै नजर ।

—बदरीदास खिड़ियौ

खजलौ–सं०पु०—एक प्रकार का पकवान जिसे खाजा भी कहते हैं ।

खजांनची–सं०पु० [अ० खजान:+फा० ची] खजाने का अफसर, कोषाध्यक्ष । उ०—बादसाह चाही कौल आपरौ पाळजै सो खजांनची नूं तेड़ नै कही—नकद खजाने रौ लेखौ करौ ।—नी.प्र.

खजांनासार–सं०पु० [अ० खजान:+सं० सार] संपत्ति, धन-दौलत (ह.नां.)

खजांनूं, खजानौ–सं०पु० [अ० खजान: खिजान:] १ वह स्थान जहाँ धन संग्रह करके रक्खा जाय, धनागार, कोष । उ०—खतम खुसी अनखूट खजांना, निरमळ चंदमुखी ग्रह नार ।—र.रू.

२ मूठ के समीप तलवार का वह भाग जहाँ से तलवार की चपटाई या चौड़ाई शुरू होती है । यह भाग वहाँ तक होता है जहाँ तक कि तलवार की धार आरंभ होती है ।

खजाणौ. खजाबौ–क्रि०स० [सं० खिद्यते, प्रा० खिज्जइत] १ खिजाना, चिढ़ाना. २ क्रोधित करना ।

खजार–सं०स्त्री०—गर्भवती न होने वाली बकरी ।

खजित–सं०पु० [सं०] एक प्रकार के शून्यवादी बौद्ध ।

खजीनौ—देखो 'खजांनौ' (रू.भे.) उ०—करियो प्रभुजी की बात सब दिन, करो प्रभुजी की बात रे । हस्ती घोड़ा महल खजीना, दे दोलत पर लात रे ।—मीरां

खजूर–सं०उ०लिं० [सं० खर्जूर] एक प्रकार का पेड़ जो गरम देशों में समुद्र के किनारे या रेतीले मैदानों में होता है । इस जाति के पेड़ सीधे खंभे की तरह ऊपर चले जाते हैं । इसके फल स्वादिष्ट होते हैं ।

पर्याय०—खिजूर, खोडिया, जगभख, जायंति, ताळ, त्रणद्रुम, पड़व, परपत्रावळि पिचकिच ।

कहा०—पीतळणी नै फेर खजूर रौ— फिसलना बुरा है किन्तु खजूर वृक्ष से फिसल जाना और भी बुरा है; अत्यधिक पतन व हानि पर । अल्पा० 'खजूरड़ी' ।

खजूरड़ी, खजूरि—देखो 'खजूर' (रू.भे.) उ०—१ कारी कुटका वरसाळै में टळै ऊंटां मजूरड़ी । ढोलौ अर आंगळी देवण, मांडण खूब खजूरड़ी ।—दसदेव उ०—२ ढालि खजूरि पूठि ढळकावै, गिरिवर सिणगारिया गय ।—वेलि.

खजूरियौ—१ देखो 'खजूर' (रू.भे.) २ देखो 'खजूरियौबावळ' ।

खजूरियौबावळ–सं०पु०यौ० [सं० खर्जूर+बर्बुर:] एक प्रकार का बबूल का वृक्ष जो खजूर के वृक्ष के समान ऊँचा होता है ।

खटंग–सं०पु० [सं० षट्+अंग] वेद के छः अंग—शिक्षा, काव्य, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष ।

खट-वि० [सं० षट्] छः। उ०—वेद च्यारि खट अंग विचार, जांणि चतुरदस चौसठ जांणि।—वेलि.

संपु०—दो चीजों के परस्पर टकराने या किसी कड़ी चीज के टूटने से उत्पन्न शब्द।

क्रि०वि०—शीघ्र, जल्दी।

मुहा०—खट सूं—तत्काल, तुरंत।

खटअंग-संपु०यौ०—देखो 'खटंग' (रू.भे.)

खटक-संस्त्री०—१ खटकने का भाव, खटका. २ दर्द, वेदना, कष्ट, तकलीफ. ३ द्वेष, पुराना बैर. ४ कसक, टीस। उ०—जातां सुरग कळपतर जीवा, खटक हियै सुण नांय खटी।

—रामलाल बारहठ

५ प्रहार। दिली साल सीसोदिया ढाल हिंदू दळां, उभै वातां भली पढ़ी प्रणठेल। खीज थारी 'भ्रमर' वीज वाळी खटक, 'भ्रमर' री रीभ दरियाव री उभेल।—किसनो आढ़ौ

खटकण—देखो 'खटकळ'।

खटकणौ, खटकबौ-क्रि०अ०—१ खटकना, कसकना. २ शरीर में किसी कांटे आदि के गड़ने या कंकरी, तिनका आदि बाहरी चीजों के आ पड़ने के कारण रह-रह कर पीड़ा होना। उ०—ओ तौ रांम सदा थांरा नैण में, ओतौ खटकै न घाल्यां नैण में।—मी.रा.

३ बुरा मालूम होना। उ०—खटकै खत्रवेध सदा खेहड़तौ, दिन प्रत दाखंतौ खत्रदाव। अकबर साह तणौ ऊदावत, रांण हियै चरणां अनराव।—पीथौ आसियौ

मुहा०—आंख में खटकणौ—अप्रिय लगना।

४ विरक्त होना. ५ डरना. ६ प्रहार होना। उ०—भर तुरकां रा हाडां पर हाडां रा खारा खंग खटकिया।—वं.भा. ७ परस्पर झगड़ा होना. ८ किसी प्रकार के अनिष्ट या उपकार का अनुमान होना. ९ अनुपयुक्त जान पड़ना, ठीक न जान पड़ना. १० कष्ट देना, बाधा पहुँचाना।

कहा०—खटके कणाने नै खटकारे कणाये—दुख किसी से होता है और दुख दिया किसी को जाता है; दुख देने वाले को उसका बदला चुका कर किसी अन्य को कष्ट दिया जाता है तो यह कहावत कही जाती है।

११ खट-खट शब्द होना।

कहा०—अरट खटकै बा'रै मास इंदर री एक झड़ी—रहँट जिस कार्य को बारहों मास करता है उसको इंद्र केवल एक झड़ी में पूरा कर देता है।

खटकणहार, हारौ (हारी), खटकणियौ—वि०।

खटकाणौ, खटकाबौ, खटकावणौ, खटकावबौ—प्रे०रू०।

खटकिओड़ौ, खटकियोड़ौ, खटक्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खटकीजणौ, खटकीजबौ—भाव वा०।

खटकरम-संपु० [सं० षट्कर्म] ब्राह्मणों के छः कर्म—यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान देना और दान लेना।

खटकरमी-संपु० [सं० षट्कर्म्मा] षटकर्म करने वाला, ब्राह्मण।

खटकळ-संस्त्री०—दरवाजे पर कुत्ते आदि जानवरों के प्रवेश से बचाव के लिये लगाई जाने वाली छोटी फाटक।

खटकळा-संपु० [सं० षट्कला] संगीत के ब्रह्मताल के छः भेदों में से एक।

खटकांमुख-संपु० [सं० खटकामुख] १ नृत्य के अंतर्गत की जाने वाली एक चेष्टा. २ तीर चलाने का एक आसन।

खटकाणौ-वि०—कसक पैदा करने वाला।

खटकाणौ, खटकाबौ-क्रि०स०अ० ('खटकणौ' का प्रे०रू०) १ खट-खट शब्द कराना या करना. २ शंका उत्पन्न कराना या करना. ३ देखो 'खटकणौ' प्रे०रू०।

खटकियोड़ौ-भू०का०कृ०—खटका हुआ (स्त्री० खटकियोड़ी)

खटकूणौ-संपु० [सं० षट्कोणी] वज्र (नां.मा.)

खटकोण-संपु० [सं० षट्कोण] १ छः कोने वाली वस्तु, जिसके छः कोने हों. २ वज्र।

खटकौ-संपु०—१ खटका, चिंता, फिक्र, आशंका, भय, डर।

क्रि०प्र०—पड़णौ, मिटणौ, लागणौ, होणौ।

२ खट-खट शब्द. ३ किसी प्रकार का पेंच, कील या कमानी जिसकी सहायता से किसी प्रकार का आवरण खुलता या बंद होता हो अथवा इसी प्रकार का कोई और कार्य होता हो.

क्रि०प्र०—दबाणौ, लगाणौ।

४ किवाड़ की चिटकिनी।

खटक्कणौ, खटक्कबौ—देखो 'खटकणौ' (रू.भे.)

खटक्कियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'खटकियोड़ौ' (रू.भे.)

खटखट-संस्त्री० [अनु०] १ खट-खट का शब्द. २ झंझट, झमेला, झगड़ा, तकरार।

खटखटाणौ, खटखटाबौ-क्रि०स०—१ खट-खट का शब्द करना. २ किसी वस्तु को ठोकना या पीटना, खड़खड़ाना. ३ स्मरण कराना।

खटड़-संपु०—सोलंकी वंश के क्षत्रियों की एक शाखा अथवा इस शाखा का व्यक्ति।

खटचक्कर, खटचक-संपु० [सं० षट्चक्र] शरीर के भीतर कुंडलिनी के ऊपर छः चक्र, यथा—१ आधार २ स्वाधिष्ठान ३ मणिपूरक ४ अनाहत ५ विसुद्धि ६ प्रज्ञा। उ०—यूं ही खटचक्कर भेद प्रभाव, पछै त्रिपुटी तुरिया पद पाव।—ऊ.का.

खटचरण, खटचलण-संपु०यौ० [सं० षट्चरण] भौंरा, भ्रमर।

उ०—विसे खटचलण कळिया कदम वृंद वार वाहां, कई आठ मासां बळण।—बां.दा.

खटजती-संपु०यौ० [सं० षट्यति] छः यति—लक्ष्मण, हनुमान, भीष्म, भैरव, दत्त और गोरख।

खटणी-संस्त्री० [सं० खटिका] खड़िया मिट्टी (डिं.को.)

खटणो, खटबो–क्रि०स०अ०—१ समाना। उ०—१ खणियां न होड नाडां खटै ऊफणियां हाडां उदधि।—बं.भा.

कहा०—पतळी छाछ खटै नहीं पांणी—पतली छाछ में और अधिक पानी नहीं समा सकता; जिसका आधार ही कमजोर हो उसके लिए किसी प्रकार बोझ सहन करना कठिन होता है।

२ पर्याप्त होना. ३ जरूरत होना. ४ प्राप्त करना, उपार्जन करना. उ०—आखै एम 'ओपलो' आढ़ो, खूनी कासूं लाभ खटै। लाहरी डमरा डसरा तालारी, मेलूं जद मो दाझ मिटै।—ओपौ आढ़ो ५ जीतना. ६ निभना. ७ सहन होना. ८ हजम होना।

खटणहार, हारौ (हारी), खटणियौ—वि०।

खटाणी, खटाबो, खटावणी, खटावबो—प्रे०रू०।

खटिओड़ो, खटियोड़ो, खटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

खटीजणो, खटीजबो—क्रि० कर्म वा०, भाव वा०।

खटताळ–सं०पु० [सं० षट्ताल] मृदंग का एक ताल जो आठ मात्राओं का होता है।

खटत्रीस–वि० [सं० षट्+त्रिंशत्] देखो 'छत्तीस'।

खटदरसण–सं०पु० [सं० षट्+दर्शन] १ छः प्रकार के दर्शन—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसा, उत्तर मीमांसा और योग. २ ये छः प्रकार के समूह—ब्राह्मण, जोगी, जंगम, भाट, संन्यासी और साध। उ०—खटदरसण सब ठगि खाया, बाजी का भरम न पाया।

—ह.पु.वा.

(रू.भे.–खटबरण, खटवरण) २ छः की संख्या*।

खटदरसणी–सं०पु०यौ० [सं० षड्दर्शन+रा० प्र० ई] १ षटदर्शन का ज्ञाता, पंडित। उ०—खटदरसणी रहै तिण नगरी रै विखै राजा भोज राज करै।—चौबोली २ देखो 'खटदरसण' (२)

खटपट–सं०स्त्री० [अनु०] १ अनबन, वैमनस्य, लड़ाई-झगड़ा।

उ०—उस दिन भिस्ती अर भिस्तन में कुछ खटपट हो गई सो दरवाजे रा किंवाड़ था सो जुड़िया नहीं।

—पलक दरियाव री वात

मुहा०—खटपट होणी—लड़ाई-विरोध होना।

२ दो कठोर वस्तुओं के टकराने का शब्द. ३ खट-पट का शब्द. (रू.भे.–खटखट) ४ काम, कार्य (रू.भे.–खटपटौ)

खटपटणी, खटपटबो–क्रि०अ०—टकराने से खट-खट की ध्वनि।

उ०—विकराळ काळ मुगळी अजाग, खटपटी आंण रण बीच खाग।

—वि.सं.

खटपटियौ–वि०यौ०—१ लड़ाकू, झगड़ालू. २ प्रपंची।

खटपटी–वि०—१ प्रपंची. २ झगड़ालू।

खटपटौ–सं०पु०—काम, कार्य।

खटपद–सं०पु०यौ० [सं० षट्पद] १ भौंरा, भ्रमर (ह.नां.)

२ छः की संख्या*।

खटपदी–सं०स्त्री०यौ० [सं० षट्+पदी] १ जूं (डिं.को.)

२ वह प्राणी जिसके छः पैर हों. ३ छप्पय छंद जिसमें छः चरण होते हैं. ४ भ्रमरी, भौंरी।

खटबरण, खटवरण—देखो 'खटदरसण' (२) (रू.भे.)

खटभाख, खटभाखा–सं०स्त्री०यौ० [सं० षट्+भाषा] छः भाषायें—

१ संस्कृत २ प्राकृत ३ शौरसेनी ४ प्राच्या ५ आवन्ती ६ नागरापभ्रंश।

उ०—पगां बिदिया सह जोड़ै पांण, बळै पग तौ खटभाख बखांण।

—ह.र.

खटमल–सं०पु० [सं० खट्वा+मल] मटमैले उन्नाबी रंग का एक प्रसिद्ध कीड़ा जो गरमी में मैली खाटों. कुरसियों और बिस्तरों आदि में उत्पन्न होता है, उड़स।

पर्याय०—किटिभ, मतकुण, मांकड़, मांकण।

खटमली–वि०—खटमल के रंग का, गहरा उन्नाबी या खैरा रंग का।

खटमाल, खटमाता, खटमातुर–सं०पु०यौ० [सं० षाण्मातुर] स्वामी कार्तिकेय जिनका पालन छः कृतिकाओं द्वारा किया गया था (अ.मा., नां.मा.)

खटमिट्ठौ–वि०यौ०—देखो 'खटमीठौ' (रू.भे.)

खटमिठौ, खटमीठौ–वि०यौ०—कुछ खट्टा और कुछ मीठा, जिसमें खट्टा और मीठा दोनों स्वाद हों।

खटमुख–सं०पु०यौ० [सं० षट्+मुख] जिसके छः मुंह हों, स्वामी कार्तिकेय (डिं.को., ह.नां.)

खटरस–सं०पु०यौ० [सं० षट्रस] १ छः प्रकार के रस या स्वाद—खट्टा, खारा, कडुवा, कसैला, मीठा, तीखा। उ०—मुरधर थया बधांमणा, गौमरि खार विकार। खटरस भोजन बामणां, घर-घर मंगळाचार।

—रा.रू.

२ इन सब रसों का मिश्रण, एक आचार. ३ खटाई।

उ०—हरदी जरदी ना तजै, खटरस तजै न आंम। असली गुण का ना तजै, गुण कूं तजै गुलांम।—अज्ञात ४ देखो 'खटरास'।

खटराग–सं०पु०यौ० [सं० षट्राग] १ संगीत के छः राग—भैरव, मलार, श्रीराग, हिंडोल, मालकोस और दीपक. २ बखेड़ा, झंझट. ३ वैमनस्य, झगड़ा।

मुहा०—१ खटराग करणी—झंझट करना. २ खटराग फैलाणी—आडंबर बढ़ाना; झंझट बढ़ाना. ३ खटराग पड़णी—बाधा उपस्थित होना; झंझट पड़ना. ४ खटराग मचाणी—देखो 'खटराग करणी'।

४ छः की संख्या* (डिं.को.)

खटरास–सं०पु०—मनमुटाव, मनोमालिन्य।

क्रि०प्र०—पड़णी होणी।

खटरित, खटरितु–सं०स्त्री० [सं० षट्ऋतु] छः प्रकार की ऋतुएं

खटरिपु–सं०पु० [सं० षड्रिपु] १ काम-क्रोधादि मनुष्य के छः विकार. २ शरीरधारी या जीवधारी के छः विकार—उत्पत्ति, शरीर-वृद्धि, बालपन, प्रौढ़ता, वृद्धता और मृत्यु।

खटरौ–वि०—ठिंगना, नाटा।

खटबदन–सं०पु० [सं० षट्+बदन] स्वामी कार्तिकेय (अ.मा.)

खटवरण—देखो 'खटदरसण' (२)

खटवांग-सं०पु० [सं० खट्वाङ्ग] १ एक शस्त्र का नाम जिसे महादेव रखते हैं. २ एक सूर्यवंशी पौराणिक राजा. ३ चारपाई का पाया या पाटी. ४ तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा।

खटवांगी-सं०पु० [सं० खटवाङ्ग=शिव का एक अस्त्र+रा०प्र०ई] शिव, महादेव।

खटवाटी-सं०स्त्री०—प्रण, जिद, हठ। उ०—पातसाह री बेटी हुती सु खटवाटी ले पड़ी, धांन खाय न पांणी पीवै।—नैणसी

खटव्रम—देखो 'खटदरसण' (२)

खटसास्त्र-सं०पु० [सं० षट्+शास्त्र] हिन्दुओं के प्रसिद्ध छः शास्त्र। देखो 'खटदरसण' (१)

खटसास्त्री-वि० [सं० षट्शास्त्री] षटशास्त्र का ज्ञाता, पंडित।

खटाई-सं०स्त्री०—१ खट्टापन, अम्लता।

मुहा०—१ खटाई करणी—बिगाड़ना. २ खटाई में नांखणौ—दुविधा में छोड़ देना, बीच में झंझट पैदा करना. ३ खटाई में पड़णौ—कुछ ठीक न होना, रुक जाना, बीच में कोई व्याघात या झंझट आ जाना।

२ वह वस्तु जिसका स्वाद खट्टा हो. ३ कपट, छल. ३ वैमनस्य, वैर, मनमुटाव।

खटाऊ-वि०—१ प्राप्त करने वाला। उ०—सरग गयौ कहियौ सगतावत खत्रवट बरद खटाऊ। नाग तणैं मुख जकौ गुळ नीपजै, वौ गुळ देउं वटाऊ।—ओपौ आढ़ौ २ सहन करने वाला. ३ निभाने वाला. ४ समाने वाला।

खटाक, खटाखट-क्रि०वि०—१ खट से, जल्दी, शीघ्र।

सं०स्त्री० [अनु०] किसी वस्तु के निर्माण आदि में औजारों के प्रहार की ध्वनि।

खटाखरी-सं०स्त्री० [सं० षड्क्षरी] वैष्णवों में रामानुज संप्रदाय का मुख्य मंत्र।

खटाणौ, खटाबौ-क्रि०स०—१ निभाना। उ०—नह वीरा त्रण झूंपड़ै, धाड़ौ एथ खटाय। थाबै दादुर थाप री, काळा रै फण काय।—बी.स. २ निभाना. ३ सहन करना. ४ प्राप्त करना, उपार्जन करना. ५ समाना. ('खटणौ' का स०रू०; देखो 'खटणौ')

६ समझ में आना।

खटापट, खटापटी—देखो 'खटपट' (रू.भे.)

खटायत-वि०—देखो 'खटाऊ'। उ०—खाग झड़ उरड़ पड़ ढालड़ा खड़भड़ै, रोस चढ़ सोहड़ आपुड़ अगुट रड़वड़ै। खटायत बरद सुरतांण सांम्हां खड़ै, लाख रौ पटायत न्याव हण विध लड़ै।—किसनो आढ़ौ

सं०पु०—धैर्य्य।

खटायौ—देखो 'खटासियौ' (रू.भे.)

खटाळौ-सं०पु० [सं० खट्वासन] टूटा-फूटा व जीर्ण-शीर्ण व्यर्थ का सामान।

कहा०—चलती री नांम गाडी, रुकियौ तो खटाळौ—किसी मशीन की उपादेयता तभी तक है जब तक वह ठीक कार्य करती है, रुकी और बेकार।

खटाव-सं०पु०—१ निर्वाह, गुजर. २ सहनशीलता, सहिष्णुता, धैर्य। उ०—आखर एक दिन रांमसा आंख लाल कर'र कै दियौ, अबै म्हारै खटाव कोनी।—वरसगांठ

कहा०—खटाव बिनां बटाव नहीं—धैर्य का फल सदा अच्छा होता है।

खटावण-सं०पु०—१ धैर्य्य, शांति. २ रुकने या ठहरने का भाव. ३ खट्टा या अम्ल पदार्थ. ४ निर्वाह, गुजर।

खटावणौ, खटावबौ-क्रि०स०—१ देखो 'खटाणौ' (रू.भे.)

उ०—१ पिण पातसा हीरा रैहण हारा सु गायां मारै, सु हिंदुवां रै खटावै नहीं।—नैणसी २ समझ में आना। उ०—२ अर आप जिसा राजकुमार री इण तरह अठा लग आवणौ अरथ-बिहूणौ खटावै नहीं।—वं.भा.

खटावियोड़ौ-भू०का०कृ०—सहन किया हुआ, गुजर या निर्वाह किया हुआ (स्त्री० खटावियोड़ी)

खटास-सं०पु०—१ द्वेषभाव, दुश्मनी, शत्रुता, अनबन (ह.नां.) २ अम्लता।

खटासियौ-सं०पु०—पशुओं के कमर के जोड़ की हड्डियों के नीचे एक थैली विशेष।

खटि-सं०स्त्री० [सं० खटिका] खड़िया मिट्टी (डिं.को.)

खटिक—देखो 'खटीक' (रू.भे.)

खटियाई—देखो 'खटाई' (रू.भे.)

खटी-वि० [सं० षट्+रा० प्र० ई] जो क्रम में छठवें स्थान पर हो।

उ०—खटी मात कात्यायणी तू बिख्याता, रखै सातमौ रूप तू काळ-रात्री।—मे.म.

खटीक-सं०पु० [सं० खट्टिक] १ हिन्दुओं के अंतर्गत फल तरकारी बोने और बेचने का व्यवसाय करने वाली एक जाति अथवा इस जाति का व्यक्ति २ चमड़ा बेचने वाली एक जाति विशेष।

खटीकण-सं०पु०—दही जमाने के लिए दूध में अथवा खटाई के लिए शाक में डाला जाने वाला खट्टा पदार्थ।

खटूंबर-सं०पु०—एक मध्याकार का वृक्ष जिसके फलों की चटनी बड़ी स्वादिष्ट होती है।

वि०—खट्टा।

खटैत-वि०—योद्धा, वीर।

खटोलड़ी, खटोलणी-सं०स्त्री०—१ छोटी खाट, खटिया. २ देखो 'खटोली'।

खटोली-सं०स्त्री० [सं० खट्वा] १ छोटी खाट, खटिया. (अल्पा० 'खटोलड़ी') २ वाहन, सवारी। उ०—अर नायण ऐ बैस अर उठा सु खटोली ना कही खटोली बाजणी हंड जेथ जावे तेथ म्हारै कुंवर री पिंड।—चौबोली ३ वायुयान।

खटोलो–सं०पु०—खाट। उ०—एकज **खटोलो** वो राज दोय जणां माची छै भींचा जी भींच।—लो.गी.
(अल्पा०—खटोलड़ो, खटोलणी, खटोली)

खट्ट—देखो 'खट' (रू.भे.)

खट्टणो, खट्टबो—देखो 'खटणो' (रू.भे.) उ०—मइगळां नीर पायउ मसट्टि, खेड़ेचउ आयउ जइत खट्टि।—रा.ज.सी.

खट्टाखक–वि०—बहुत अधिक खट्टा।

खट्टू–सं०पु०—जैसलमेर का एक प्रकार का पीला पत्थर।

खडंगी–सं०पु० [सं० षडांग] षडांग, षटशास्त्र (डिं.को.)

खडंजा–सं०पु०— ईंटों की खड़ी चुनाई (फर्श पर)

खड–सं०पु०—वन (अ.मा.)

खडखाटी–सं०स्त्री०—घास के ऊपर लिया जाने वाला एक सरकारी कर विशेष।

खडखीण–सं०स्त्री० [सं० षडक्षीण] मछली (अ.मा.)

खडग—देखो 'खड्ग' (रू.भे.)

खडगी, खडगो–सं०पु० [सं० खड्ग] वह गेंडा जिसके नाक की हड्डी पर एक प्रकार का अत्यन्त पैना सींग होता है (डिं.को.)

खडजंत्र—देखो 'खड़जंत्र' (रू.भे.)

खडपीन–सं०स्त्री० [सं० क्षुद्राण्डपीन] मछली (ह.नां)

खडबो—देखो 'खड़बो' (रू.भे.)

खडबा—देखो 'खड़बा' (रू.भे.)

खडहंड–सं०पु०—घोडा।

खडांत–सं०स्त्री०—१ नीची भूमि।
[सं० गर्त, अप० गड्ड] २ गड्ढा।

खडाखर—देखो 'खड़ाखर' (रू.भे.)

खडाबूज—देखो 'खाडाबूझ'।

खडाळ–सं०पु०—१ जैसलमेर के अंतर्गत एक प्रदेश। उ०—जेसळमेर सूं **खडाळ** पश्चिम में है।—बां.दा. ख्यात
[सं० षडाल] २ ४६ क्षेत्रपालों में से ४७ वां क्षेत्रपाल।

खडाळी–सं०स्त्री०—१ सिंधी जाति का एक भेद. २ खडाल का निवासी।

खडियाळो–सं०पु०—वह घोड़ा जिसके अधिक दांत हों (शा.हो.)

खडी–सं०स्त्री [सं० खटिका] खड़िया मिट्टी (डिं.को.)
पर्याय०—कठणी, खटणी, खटि, खड़िया, खड्डी, पांडू।

खडोड़–सं०पु० [अनु०] भारी वस्तु के गिरने की ध्वनि, शब्द, ध्वनि।

खडुओ–सं०पु०—सिर का साफा (क्षेत्रीय)

खडूलो–सं०पु० (स्त्री० खडूली) एक प्रकार का भूमि-कंद जो वर्षा ऋतु में होता है (क्षेत्रीय)

खडो, खड्ड–सं०पु० [सं० खात्] खड्डा, गड्ढा। उ०—कहा जांणू केहि **खड्ड** में, जाय पड़ेंगे हड्ड।

खड्डू–सं०पु०—मध्य आकार का वृक्ष विशेष।

खणंक–सं०पु० [अनु०] १ एक ध्वनि विशेष. २ तलवार के प्रहार की ध्वनि।

खणंकणो, खणंकबो–क्रि०अ० [अनु०] १ खड़कना, खनकना, शस्त्रों की ध्वनि उत्पन्न होना। उ०—**खणंके** खडगं पड़ै हत्थ पग्गं, कती धार कंसी जरी दंत जैसी।—रा.रू. २ खन-खन की आवाज होना।

खण–सं०पु०—१ किसी कार्य को सिद्ध करने के लिए उसकी पूर्ति-पर्यन्त धारण किया गया व्रत, प्रण। उ०—काजळ टीकी को धारी धण **खण** लियो।—लो.गी.
क्रि०प्र०—लेणो।
[सं० क्षण] २ क्षण। उ०—पण **खण** भर में उणियारो उतर ग्यो, सोचण लागी—इसै रूप री भेंट किणनै देऊंला—बरसगांठ
३ समय, वक्त।
[सं० खंड) ४ खंड, मंजिल। उ०—महला रा बणाव हुई नै रहियो छै, सु कही छै ममांणी पखांण रा महल सात **खणा** आमास चुणिआ थका।—रा.सा. सं. ५ घर, दराज. ६ कोठा, कोष्ठक. ७ एक विषैला जंतु।

खणक–सं०पु० [सं० खनक] १ चूहा, मूसा (ह.नां) २ कनछ, कवच (अ.मा.)
वि०—नितान्त सूखा।
यौ०—सूखो खणक।

खणका–सं०स्त्री० [सं० क्षणिका] बिजली (नां.मा.)

खणकारो–सं०पु० [अनु०] खटका, दो पदार्थों के परस्पर टकराने से उत्पन्न ध्वनि, खटका। उ०—आजे मींत अमल्ल खग-बगां **खणकारा**, पिड़ सींधू सुर पड़ै भड़ां कांनां भणकारा।—ऊ.का.

खणकण, खणखण, खणखणाट, खणखण–सं०पु० [अनु०] १ खनखना-हट, खन-खन की ध्वनि. २ शस्त्रों के टकराने से उत्पन्न ध्वनि।
उ०—तरवार **खणखण** तूट तण, पण मंत्र भणभण रसण पण।
—र.रू.
३ द्रव पदार्थ का उबाल या उबाल के समय की ध्वनि।

खणखणणो, खणणखबो—देखो 'खणंकणो' (रू.भे.)

खणणाट, खणणाटो, खणखणाहट–सं०पु० [अनु०] देखो 'खणखण'।
उ०—१ **खणखणाहट** पाखरां, नाद भणणाहट नेवर। पट जेवर पह-राय, किया सिणगार कलेवर।—मे.म. उ०—२ पड़तो काच परेह, विण **खणणाटो** बाजियो। आपांणै तन एह, अहियो जद पोरस घणो।—पा.प्र.

खणणो, खणबो–क्रि०स० [सं० खन्] १ खोदना। उ०—ईरामियां धन वास्तै दिली री जायगावां प्रति ऊंडी **खणी**।—बां.दा.ख्यात
२ टीका लगाना (शीतला)

खणत–वि०—नीचा, अधम (अ.मा.)

खणदा–सं०स्त्री० [सं० क्षणदा] रात्रि (नां.मा.)

खणनाडिका–सं०स्त्री० [सं० क्षणो नाडिका] धर्म घड़ी, शुभ समय, मांगलिक समय।

खणभंगुर–वि०—देखो 'क्षणभंगुर' (रू.भे.)

खणस, खणसौ–संपु०—१ शत्रुता, दुश्मनी. २ अप्रसन्नता. ३ खटक।

खणाणौ, खणाबौ–क्रि०स० ('खणणौ' का प्रे०रू०) १ तालाब कुआं आदि खुदवाना। उ०—कंवर प्रथीसिंघजी री मा ज्यां तळाव खणायौ, बंधाय नांव जांनसागर, कोई लोग सेखावतजी री तळाव कहै।—बां.दा.ख्यात २ टीका लगवाना (शीतला)

खणिज–संपु० [सं० खनिज] १ खदान। उ०—मुरड़ मेट लाल अर पीळी खणिज खंभेड़ो खलक री।—दसदेव
[अ० खिज़ान:] २ खजाना।

खणियोड़ौ–भू०का०कृ०—खोदा हुआ (स्त्री० खणियोड़ी)

खणीजणौ खणीजबौ–क्रि० कर्म वा०—१ खोदा जाना.
उ०—तितरै सहर विचै एक तळाव खणीजतौ थौ तिण में कीरत-थंभ नीसरियौ।—चौबोली २ शीतला का टीका लगाया जाना।

खणोतरौ–संपु०—जमीन खोदने का औजार। उ०—जोई नै खणोतरा रै माथै हांडी देई नै आधौ कियौ।—चौबोली

खतंग–वि०—१ निशंक, निडर, साहसी। उ०—पैलां वागां झल्लियां, ऊलां देख तुरंग। बूठा बांण दुहूं दळां, छूटा मूठ खतंग।—रा.रू.
[सं० क्षत+अंग=क्षतांग] २ पराक्रमी, बहादुर। उ०—खळ कटै सहेता जरद खगां खतंग, खळंक घावां रतंग दरद खायै।
—रावत गुलाबसिंह चूंडावत रौ गीत
३ आश्चर्यजनक. ४ श्रेष्ठ। उ०—गुरु हुंदा वायक खतंग, इंदर अधमले।—केसोदास गाडण ५ स्त्री व संतानरहित व्यक्ति.
६ तीक्ष्ण, तेज। उ०—रूड़ौ जोबन रूप रंग, त्रिया अंग सीतंग। सुंदर तेरा वरस में, खंजन नैन खतंग।—पना वीरम री वात
७ घायल। उ०—फौ फरड़ फरड़क नद फरक, हुय विढ़क हैक-हक वीरहर, खित गहक सूर खतंग।—र.रू.
संपु० [सं० नक्षत्रांगण, अप० नखतांगण] १ आकाश। उ०—बाज धोम नाळियां, बांण बाजिया निहंगे। चिला-बाज तूझियां, सोक बाजिया खतंगे।—बखतौ खिड़ियौ २ विष-बाण (अ.मा.) उ०—दीठी रूपाळी म्हैं ही घणियां पिण इसी यां ही लोयणां री अणियां, जिण भांत खतंग रा बांण लागा थका हरै हीज प्रांण।—र. हमीर
[रा०] ३ घोड़ा। उ०—खुरसांणी मकुरांणी खतंग, पतिसाह तणा छूटइ पवंग।—रा ज सी. ४ अभिमान। उ०—खूबी न रही काय खतंगां खंजनां, नेही व्है मुनिराज, विसारि निरंजनां।—बां.दा.
५ एक विशेष प्रकार का कबूतर।
[सं० क्षत+अंग] ६ किसी अवयव को क्षति पहुंचने का भाव।

खत–संपु० [अ० खत] १ पत्र, चिट्ठी (यौ० खत-किताबत)
२ लिखावट। उ०—दरसावै जग नं दया, पाप उठावै पोट। हित में चित में हाथ में, खत में मत में खोट।—बां.दा. ३ दस्तावेज, ऋणपत्र।
मुहा०—१ खत लिखणौ—दस्तावेज लिख कर रुपया उधार लेना, २ खत फाड़णौ—कर्जा चुका देना।
४ दाढ़ी, दाढ़ी के बाल।
[सं० क्षिति, प्रा० खिति] ५ पृथ्वी, जमीन (डिं.को.) ६ क्षत्रियत्व। उ०—पेखै आप तणा पुरसोतम, रोहणीयाळ तणे बळ रांण। खत बेचियौ जठै अनखत्रियां, खत राखियौ जठै खुमांण।—दुरसौ आढ़ौ
[सं० क्षत] ७ घाव, जख्म।
[रा०] ८ मकानों की छतों के नीचे सुंदरता के लिये चतुर्भुजाकार की रेखा।

खतकस–संपु०—बढ़ई का एक औजार।

खतजात–संपु० [सं० क्षतजात] रुधिर, खून (रू.भे.–खितजात)

खतनौ, खतणौ–संपु० [अ० खितान, खत्न] मुसलमानों की एक रस्म जिसमें उनके मूत्रेंद्रिय के अगले भाग का बढ़ा हुआ चमड़ा काट दिया जाता है, सुन्नत।

खतबही—देखो 'खाताबही' (रू.भे.)

खतमंडौ–संपु०—एक प्रकार का बैल जिसके पूंछ के बाल सफेद और श्याम दोनों साथ-साथ हों (शा.हो., अशुभ)

खतम–वि० [अ० खत्म] १ पूर्ण, समाप्त, अंत।
क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।
२ अत्यन्त। उ०—खतम खुसी अनखूट खजानां, निरमळ चंदमुखी ग्रह नार।—र.रू.

खतमाळ–संपु० [सं० खतमाल] धुआं (डिं.को.)

खतमेटण–संपु०—लाख, लाह, लाक्षा (डिं.को.)

खतम्म—देखो 'खतम' (रू.भे.) उ०—पातल रै तन ओपिया, तुकमा रूप खतम्म। पा.प्र.

खतर–संपु० [अ० खतर] देखो 'खतरौ' (रू.भे.)

खतरनाक–वि०यौ० [अ० खतर+फा० नाक] १ भयानक, डरावना। उ०—खतरनाक ख्वाब में मनै पीरां फरमाई।—मे.म.
२ धोखेबाज, कपटी. ३ खतरा या हानि पहुंचाने वाला, खूंखार।
४ वीर, बहादुर।

खतरी, खतरेटौ—देखो 'खत्री'।

खतरौ–संपु० [अ० खतर] डर, भय, खौफ, आशंका। उ०—पांचो आठो दस पनरी खूपड़िया, सतरै बीसं हय खतरै में खड़िया।
—ऊ.का.

खता–संस्त्री० [अ० खता] १ कसूर, अपराध। उ०—बणक खता रा कांम में, ओ दरसावै खैर। नाई नूं दीधी मुहर, बाळण टाकर बैर।—बां.दा. २ धोखा, फरेब. ३ भूल-चूक, गलती.
उ०—झांमर राड़ हुई जद सारा सिरदारां री असवारी में वेसी घोड़ा हुता, उवां खता कीवी।—बां.दा.ख्यात ४ धक्का.
उ०—कोपिया 'मांन' सूं जोर चालै किसौ, पहूतां अंत विण खता पाई।—गोपाळ बरड़ाउत ५ दंड, सजा.

उ०—'फता' जिसौ धणी को फबही, खता न देतौ खून खरै।
—अज्ञात

७ झगड़ा-फिसाद। उ०—असली री ओलाद, खून करयां न करै खता। वाहे वदवद वाद, रोढ़ हुलातां राजिया।—किरपारांम

खतावण, खतावणी–सं०स्त्री०—वह बही या रजिस्टर जिसमें खातेवार अलग-अलग हिसाब दरसाया गया हो।

क्रि०प्र०—करणी, मांडणी।

खतावणौ, खताबबो–क्रि०स० [फा० खत = पत्र + आवणौ] खातेवार आय या व्यय का विवरण लिखना।

खतावियोड़ौ–भू०का०कृ०—खातेवार आय या व्यय का विवरण लिखा हुआ। (स्त्री० खतावियोड़ी)

खति–सं०स्त्री० [सं० क्षति] क्षति, हानि, नुकसान, कमी, घाटा।

खतिया–सं०पु०—लोह-कीट, जंग।

खती—१ देखो 'खति'. २ तलवार का वह चपटा भाग जो मूठ के नीचे होता है, जिस पर प्राय: खुदाई व सोने का काम भी किया जाता है। इस भाग के नीचे से तलवार की धार आरंभ होती है। (मि० 'खजांनौ' २)

खतीब–सं०पु० [अ० खतीब] खुतबा पढ़ने वाला, लोगों को संबोधन कर के कुछ कहने वाला (मा.म)

खतेड़—देखो 'खातरोड़' (रू.भे.)

खतोणी—देखो 'खतावणी' (रू.भे.)

खतौ–सं०पु०—१ सफेद रंगमिश्रित काले रंग का ओढ़ने का घटिया ऊनी या सूती वस्त्र विशेष।

खत्थै–वि०—उतावला। उ०—खग तोलै मग आरत खत्थै, चौड़ै दाबी बात चकत्थै।—रा.रू.

खत्यौ—१ देखो 'खतौ'। उ०—खत्या खेसलिया भाखलिया खांधै, बेफड़ दांमोदर थामोदर बांधै।—ऊ.का.

२ मुसलमानों का अधोवस्त्र। (रू.भे. 'खथीऔ')

खत्र–सं०पु० [सं० क्षत्र:] १ क्षत्रियत्व, वीरता। उ०—खत्र बेचिया अनेक खत्रियां, खत्रवट थिर राखी खूमांण।—पृथ्वीराज राठौड़

[रा०] २ शत्रु, दुश्मन। उ०—खत्र नाहरां विचै खेड़ेचौ, आठूं पोहर करै गिड़आळ।—रावळ मलीनाथ रौ गीत

३ युद्ध। उ०—खत्र घणा किया आगे ही खत्रियै, कहियै प्रथ्वी अनाथ किम।—कांधल चूंडावत रा गीत

खत्रणी–सं०स्त्री०—क्षत्राणी।

खत्रदाव, खत्रधोड़, खत्रवट, खत्रवाट—सं०पु०—क्षत्रियत्व, बहादुरी। उ०—१ खटकै खत्रवेध सदा खेहड़तौ, दिन प्रत दाखंतौ खत्रदाव।—पीथौ आसियौ उ०—२ मोजां घण महण भंग-हर मंडण, भ्रू धारण धरियै खत्रधोड़। रावां वडां तणी रुखमांगद, रीत उजाळै राव राठौड़।—राठौड़ रुकमांगद करणोत राजाउत रौ गीत उ०—३ मुहीयड़ दळां दळ मुहरि दन मंडयण, धार भर आवरण खत्रधोड़। ऊजळां कमळ वीदाहरा अतुळबळ, मांनीजै तू जिसा म्याम कुळ मौड़।—राठौड़ कूंपा जयमलोत रौ गीत

उ०—४ खत्रवट तोल्ह खेड़ेचा, वाहर तणी न भाजै वेढ़। जरद तणै डीलां जोधपुरी, हैवर तणै पलांणां हेठ।
—माधौसिंह महेचा रौ गीत

उ०—५ खत्रवाट खत्री धुर होय खड़ग हथ।—हरीसूर बारहठ

उ०—६ खाग त्याग खत्रवाट, पूरौ रांण प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ

खत्रवेध–सं०पु०—युद्ध, आहव। उ०—खटकै खत्रवेध सदा खेहड़तौ, दिन प्रत दाखंतौ खत्रदाव।—पीथौ आसियौ

खत्रांणी–सं०स्त्री०—१ क्षत्रिय जाति की स्त्री. २ खत्री जाति की स्त्री।

खत्रि–सं०पु० (स्त्री० खत्रिणी) देखो 'खत्री'। उ०—जपै नागपूत्री खत्रि रूप जोती, महाभद्र जाती तणौ कांन मोती।—ना.द.

खत्रिध्रम–सं०पु०यौ० [सं० क्षत्रिय + धर्म] क्षत्रियत्व, क्षत्रिय धर्म।

खत्रिय–सं०पु० [सं० क्षत्रिय, प्रा० खत्तिय] क्षत्रिय। उ०—नहीं तू विप्र नहीं तू बैस, नहीं तू खत्रिय सूद्र न खैस।—ह.र.

खत्रियांण–सं०पु०—क्षत्रिय। उ०—करण वाखांण। दुनियांण धिन-धिन कहै, धरम खत्रियांण भुज अमर धारू।—द.दा.

खत्री–सं०पु० [सं० क्षत्रिय, प्रा० खत्तिय] (स्त्री० खत्रांणी) १ हिन्दुओं में क्षत्रियों के अंतर्गत पंजाब में बसने वाली एक जाति विशेष। इस जाति के लोग प्राय: व्यापार करते हैं. २ इस जाति का व्यक्ति. ३ क्षत्रिय, राजपूत। उ०—खत्री दुज बैस गया सुद्र खोज—ह.र. (रू०भे०-खत्रि, खत्र)

खत्रीठ–सं०पु०—राजपूती, क्षत्रियत्व। उ०—खांगड़ां विरुद साजण खत्रीठ, रांगड़ा वजावै खाग रीठ।—पे.रू.

खत्रीपण, खत्रीपणौ–सं०पु० [सं० क्षत्रिय + रा०प्र० पण] क्षत्रियत्व, शौर्य। उ०—हिंदूनाथ दिली चे हाटे, 'पतौ' न खरचै खत्रीपण।
—प्रथ्वीराज राठौड़

खत्रीयांवट, खत्राळै, खत्रीवट, खत्रीवाट–सं०पु०—क्षत्रियत्व।

उ०—१ अळै होवै भड़ भिड़ज रिणताळ, लेखा पखै खत्रीपत भीम आवाहतें खाग।—चतरौ मोतीसर उ०—२ हाथां अवसि हुए वसि हाथां, वाहे अणी खत्रीले वाढ़।—हरीसूर बारहठ

उ०—३ मन भावै चलै खत्रीवट मारग, वीरत दावै धड़ा वरै। राजा पति 'जसौ' महाराजा, कमंध सुहावै जेम करै।—नाथौ सांदू

खत्रेस–सं०पु०यौ० [सं० क्षत्रिय + ईश] योद्धा।

खत्रोट–सं०स्त्री० [सं० क्षत्रियत्व] देखो 'खत्रवट'। उ०—धरे कंसरे तुंबळी तात थाठी, तदा ताहरी केथ खत्रोट त्राठी।—ना.द.

खथीऔ—देखो 'खत्यौ' (रू.भे.) उ०—खथीआ पहरण पगखळां, लोवड़िआं नळतांन।—पा.प्र.

खदंग–सं०पु० [फा० खदंग] बाण, तीर (अ.मा.)

खद–सं०पु० [सं० क्षुद्र] मुसलमान, यवन।

रू०भे०—खद्द, खद्दन, खद्दाह, खड, खद्राळ (अल्पा—खदड़ौ)

खबकौ-सं०पु०—१ चोट, प्रहार. उ०—स्वारथ परै लंघेड़ खाईसां खबका झेलै।—दसदेव २ कष्ट, दुख. ३ मस्ती। ४ खदबद की ध्वनि। देखो 'खदबद'।

खबखब—देखो 'खदबद' (रू.भे.)।

खबड़ौ—देखो 'खद' (ग्रल्पा०)

खबबब-सं०पु० [ग्रनु०] ध्वनि विशेष जो प्राय: किसी ग्रनाज या गाढ़े पदार्थ के उबलने से उत्पन्न होती है।

खबबबणौ, खबबबबौ, खबबबाणौ, खबबबाबौ-क्रि०ग्र० [ग्रनु०] खदबद-खदबद की ध्वनि उत्पन्न होना। देखो 'खदबद'।

खबराळ-सं०पु०—मुसलमान।

खबबब—देखो 'खदबद' (रू.भे.) उ०—खबबब सीजै बाजरो, कोई लथपथ सीजै दाळ, मीठो खीचड़ौ।—लो.गी.

खबबबणौ-क्रि०ग्र०—ग्रनाज इत्यादि का सीझते वक्त ध्वनि करना। उ०—जब तक हांडी खबबबै, तब तक सीजी नाय। सीजी तब ही जांणिये, नाचै कूदै नाय।—ग्रज्ञात

खबीब-सं०पु० [फा० खिदेव] बादशाह।

खद्द, खद्दन, खद्दाह, खद्दाहू—देखो 'खद' (रू.भे.) उ०—१ चढ़्यौ मोजदारं दिवानं खद्दं, हयं पाव मंडे करीके हवद्दं।—ला.रा. उ०—२ तदन खद्दन के हियें परचौ ग्रचांणक सोर।—ला.रा.

खद्ध—देखो 'खद' (रू.भे.)

खद्योत-सं०पु० [सं०] १ जुगनू। उ०—रवि समांन खद्योत सेस जळ साप समीसर।—पा.प्र. २ सूर्य।

खद्राळ-सं०पु०—मुसलमान।

खध्ध—देखो 'खाधौ' (रू.भे.) उ०—तिण वेळां कंठ रोकियउ, जांणंक सिधी खध्ध।—ढो.मा.

खनंक-सं०स्त्री० [ग्रनु०] देखो 'खणंक' (रू.भे.) उ०—खनंक खग बग तै सु ग्रंख खोलते नहीं।—ऊ.का.

खनंकणौ, खनंकबौ—देखो 'खणंकणौ'।

खननंक-सं०पु० [ग्रनु०] खन-खन की ध्वनि विशेष, झंकार। (मि० 'खणंक')

खनै-क्रि०वि०—पास, निकट। उ०—बाबू सा'ब! कै खनै वंचै है ग्राठ ग्रांना।—बरसगांठ

खप-सं०स्त्री०—१ 'खपणौ' क्रिया या भाव. २ संहार, नाश. ३ देखो 'खपत'।

खपड़ौ-सं०पु० [सं० खर्पर, प्रा० खप्पट] मिट्टी का वह बर्तन जिसमें भिक्षा मांगी जाती है, खप्पर।

खपणौ, खपबौ-क्रि०ग्र० [सं० क्षेपण] १ किसी प्रकार व्यय होना, काम में ग्राना, लगना, समाप्त होना। उ०—दुसासण क्रम गंगेव दुजांण, खपै कुरखेत ग्रढार ग्रखोण।—ह.र. २ चल जाना, गुजारा होना, निभना. ३ परिश्रम करना, प्रयत्न करना. उ०—१ रही कुंग्रारी राइ कुंग्ररी, सुर नर खपै प्रसिद्ध।—रांमरासौ उ०—२ तप करि कांई खपौ करौ कांई, तीरथ खनियां तीरथ धार। खग वेढौ ग्रखियण दळां विचदीसै, 'सादूळ' कहियौ सरग।—खेतसी लाळस. ४ परेशान होना, तड़फना. ५ सनक होना. ६ तंग होना, दिक होना।

खपणहार, हारौ (हारी), खपणियौ—वि०।

खपाणौ, खपाबौ, खपावणौ, खपावबौ—स०रू०।

खपिग्रोड़ौ, खपियोड़ौ, खप्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खपीजणौ, खपीजबौ—क्रि० भाव वा०।

खपत-सं०स्त्री० [सं० क्षपति] १ समावेश, समाई, गुंजाइश. २ माल की कटती या बिक्री. ३ संहार, नाश. ४ सनक. ५ खर्च. ६ परिश्रम, प्रयत्न, मेहनत। उ०—खेजड़ा री खपत हुग्रा है, वीर सती ग्रर सेवड़ा।—दसदेव

खपती, खपत्ति—देखो 'खपत' (रू.भे.) वि० [ग्र० खब्ती] १ सनकी, विक्षिप्त, पागल. [रा०] २ नाश, संहार। उ०—उपत्ति-खपत्ति-प्रकत्ति-प्रसंग, राजीव-लोचन्न ग्रांणै धुवरंग।—ह.र.

खपर—देखो 'खपड़ौ' (रू.भे.)

खपरखौ-सं०पु०—एक जाति विशेष का घोड़ा (शा.हो.)

खपरियौ-सं०स्त्री० [सं० खर्परी] १ भूरे रंग का एक खनिज पदार्थ। यह ग्रांख के ग्रंजन ग्रौर सुरमे ग्रादि में भी पड़ता है (ग्रमरत) २ ग्रनाज में लगने वाला कीड़ा (मि० 'खापरियौ') (रू.भे. 'खपरचौ')

खपरी-सं०स्त्री०—हिंदवानी के फल को फोड़ने या काटने से होने वाले दो विभागों में से कोई एक।

खपरचौ-सं०पु०—देखो 'खपरियौ' (रू.भे.)

खपाऊ—वि०—संहार करने वाला. २ खपाने वाला. ३ परिश्रम करने वाला।

खपाक-क्रि०वि० [ग्रनु०] शीघ्रता से, झट से।

खपाणौ, खपाबौ-क्रि०स० [सं० क्षेपण] १ किसी प्रकार व्यय करना, काम में लाना, लगाना. २ नाश करना, मारना। उ०—हजरत की क्रपा ग्रा हुई जो घर सारौ खपाव दियौ।

—गौड़ गोपाळदास री वात

३ गुजारा करना, निभाना. ४ परिश्रम कराना, प्रयत्न कराना. ५ तंग करना, दिक करना, परेशान करना।

खपाणहार, हारौ (हारी), खपाणियौ—वि०।

खपायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खपाईजणौ, खपाईजबौ—कर्म वा०।

खपाणौ—ग्र०रू०।

खपायोड़ौ-भू०का०कृ०—१ व्यय किया हुग्रा. २ नष्ट किया हुग्रा. ३ गुजारा किया हुग्रा. ४ परिश्रम कराया हुग्रा. ५ परेशान किया हुग्रा। (स्त्री० खपायोड़ी)

खपावणी, खपावबौ–क्रि०स०—देखो 'खपाणी' (रू.भे.) उ०—बारै आय अर बोलिया– जावौ जावौ भाई ! क्यूं माथौ खपावौ हो।
—वरसगांठ

खपियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ खपा हुआ. २ परिश्रम किया हुआ. ३ खर्च किया हुआ। (स्त्री० खपियोड़ी)

खपीड़ू–सं०पु० [सं० क्षपति] हानि, नुकसान. २ अत्यन्त वृद्ध।

खपुआ–सं०स्त्री०—एक प्रकार की छोटी किस्म की मुगलकालीन तलवार जो प्राय: पुरस्कार आदि में दी जाती थी (वीरविनोद)

खपुर–सं०पु० [सं०] १ गंधर्व मंडल जो कभी-कभी आकाश में उदय होता है और जिसके उदय होने से अनेक शुभाशुभ फल माने जाते हैं. २ राजा हरिश्चन्द्र की पुरी. ३ बाघ नख।

खप्पर–सं०पु० [सं० खर्पर] देखो 'खपड़ौ' (रू.भे.) उ०—बीर नाच रहिया छै, जोगण ढाक बजावै छै, खप्पर भरै छै।—सूरे खींवे री वात

कहा०—खाय पीय नै खप्पर नई फोड़णौ—जिससे लाभ प्राप्त हो उसकी प्रत्युत्तर में हानि करना अच्छा नहीं होता; जिसकी खाना उसी की निन्दा करना सर्वथा अनुचित है।

रू०भे०—खपड़ौ, खप्र, खफर, खप्पफर, खाफर।

खप्पराक, खप्पराळी–सं०पु० [सं० कर्पर+रा०प्र० आयक, सं० कर्पर+रा०प्र० आळी] खप्पर धारण करने वाली काली देवी जिसमें वह रुधिर-पान करती है। उ०—चढ़ढ़ा करत खप्पराक चंडी राग बज अयराक।—र ज.प्र.

खप्फा–वि० [अ० खफ़ा] देखो 'खफा' (रू.भे.) उ०—खप्फा होवै खलक पर डप्फा डावां डोल।—ऊ.का.

खप्र–सं०पु०—देखो 'खप्पर' (रू.भे.) उ०—कितेक खप्र खोपरी बणाय जुग्गनी चुनी।—ला.रा.

खप्राळी–वि० [सं० कर्पर+रा०प्र० आळी] देखो 'खप्पराळी' (रू.भे.) उ०—क्रपाळी कोपाळी भ्रकुटि मतवाळी गहभरी, खगाळी खप्राळी चवसठि मुद्राळी सहचरी।—मे.म

खफगी–सं०स्त्री० [फा० ख़फ़गी] १ अप्रसन्नता, नाराजगी. २ क्रोध, कोप।

खफत–सं०पु० [अ० ख़ब्त] १ पागलपन, सनक. २ देखो 'खपत' (रू.भे.)

खफनी–सं०स्त्री०—कफन। उ०—खपनी खफन सरिखी, पहरै विरळा कोई।—ह.पु.वा.

खफर–सं०पु० [सं० कर्पर] १ देखो 'खपड़ौ' (रू.भे.) २ मुसलमान।

खफसूरत–वि० [फा० खूबसूरत] सुंदर, मनोहर।

खफा–वि० [अ० ख़फ़ा] १ अप्रसन्न, नाराज, नाखुश. २ क्रुद्ध।

खप्फर–सं०पु०—देखो 'खपड़ौ' (रू.भे.)

खप्फा–वि० [अ० ख़फ़ा] देखो 'खफा' (रू.भे.)

सं०पु०—कुश्ती का एक पेंच।

खबड़दारी–सं०स्त्री०—देखो 'खबरदारी' (रू.भे.)

खबदौ–सं०पु०—१ छोटा गड्ढा (मि० 'खबोचियौ' अल्पा०) २ क्रिया. ३ बाधा. ४ झगड़ा, दंगा।

खबर–सं०स्त्री० [अ० ख़बर] १ समाचार, वृत्तांत, हाल। उ०—अविस्वास री हद करणी लोक विचारणौ, जासूस आप रा साथ बैरी रा लस्कर उण रा साथ रै पाया हेत विरोध री पूरी खबर लेणी।—नी.प्र.

क्रि०प्र०—आणी, करणी, देणी, भंजणी, लेणी, होणी।

२ संदेश, सूचना, जानकारी।

क्रि०प्र०—आणी, करणी, देणी, भेजणी, लाणी, होणी।

उ०—उण वक्त खबर गुजरात आय, असपति अमल दीन्हौ उठाय।
—वि.सं.

मुहा०—१ खबर उडणी—अफवाह फैलना. २ खबर फैलणी—अफवाह होना, सूचना प्रसारित होना।

३ सुधि। उ०—खिण खिण ले जग ची खबर, जबर सगत जगदीस।
—बां.दा.

मुहा०—खबर लेणी—लालन-पालन करना, पता लगाना, सुधि लेना, देख-भाल करना, दण्ड देना, मारना, बुरी दशा पर ख्याल करना।

४ पता, खोज।

खबरदार–वि० [फा० खबरदार] १ होशियार, सजग, चैतन्य, सावधान, सचेत। उ०—आगमूं के जागणर मब हुग्रर खबरदार।—र.रू.

क्रि०प्र०—करणी, रहणी, होणी।

२ प्रवीण, दक्ष। उ०—मो बरसां पनरह मांहे हुवौ तिकौ बडौ रापूत, नामे-लेखे विणज-व्यापार मांहे बहोत खबरदार।
—पलक दरियाव री वात

सं०पु०—संदेशवाहक। उ०—दिस अस्ट खबर कज खबरदार, प्रेरिया सिद्ध गुटका प्रकार।—रा.रू.

खबरदारी–सं०स्त्री० [अ० ख़बर+फा० दार+रा०प्र०ई] सावधानी, होशियारी, सतर्कता। उ०—कदाचित कोई उरो ही आंण लागै तो थां सावधांन रहिज्यौ, घणी खबरदारी राखज्यौ।
—कुंवरसी सांखला री वारता

खबरनवेस–सं०पु० [अ० ख़बर+फा० नवीस] संदेश या समाचार पहुँचाने वाला, संदेशवाहक।

खबरि–सं०स्त्री० [अ० खबर] १ देखो 'खबर' (रू.भे.) उ०—खिांत हूंता आयां खबरि, आया दरि उमराव।—रा.रू.

२ परीक्षा, जाँच। उ०—खोटै खरै री खबरि करदे।—चौबोली

खबरी–सं०पु० [फा० खबरी] दूत, संदेशवाहक। उ०—इतरी सुण जे बादसाह रा खबरी था तिकां बादसाह नूं खबर लिख मेल्ही।
—आमेर रा धणी री वारता

खबीड़णौ, खबीड़बौ–क्रि०स० [सं० ख+वेष्टन:, प्रा० ख+विट्टण] १ पीटना, मारना. २ पूर्ण भरना।

खबीड़ौ–सं०पु० [सं० खवेष्टन] १ प्रहार, चोट. २ धोखा खा जाना. ३ धचका. ४ सदमा।

खबीस—वि० [ग्र० खबीस] १ पापी. २ नीच, दुष्ट. ३ भयंकर।
सं०पु०—दैत्य, दानव।

खबोचियौ—सं०पु० [सं० खपोटक] छोटा खड्डा।

खबौ—सं०पु० [सं० स्कंध] कंधा, स्कंध।

खभोळौ—सं०पु०—चोट। उ०—पजावगर री प्रीत, खंघेड़ी खातर राखै। खाय खभोळा खूब, पीड़ पावै ग्रंग ग्राखै।—दसदेव

खमंकणौ, खमंकबौ—क्रि०स० [सं० खमंकि+मंडन] चमकना, दमकना।

खमंत, खांमणा—सं०पु०यौ० [सं० क्षमत-क्षमापन] जैनियों का ग्रापस में किया जाने वाला एक ग्रभिवादन (इसका ग्रर्थ है 'मेरे किए हुए ग्रपराध क्षमा करो')

खम—सं०पु०[सं० क्षम, फा० खम] १ संतोष. २ समर्थ. ३ टेढ़ापन, बल।

खमकरौ—सं०पु०—'क्षमा-क्षमा' का सूचक शब्द।

खमकरी—सं०स्त्री०—१ (प्रायः घोड़े का) चंचलता के साथ हिलना-डोलना. २ किसी कार्य में व्यग्रता करना।

खमण—देखो 'खमा' (रू.भे.) उ०—बीदग विरची बीनड़ी, हठ गाढ़ी ले हल्ल। नमरा खमण छोडै नहीं, जोड़े कर 'जेहल्ल'।—बां.दा.

खमणी—सं०स्त्री०—सहनशीलता. २ क्षमाशीलता। उ०—नमरणी खमणी बहुगुरणी, सगुरणी ग्रनइ सियाइ।—ढो.मा.

खमणौ, खमबौ—क्रि०स०[सं० क्षमरण] १ क्षमा करना। उ०—रीत ग्रनरीत फैलियो रांवरग, खमियो नहीं ग्रभायां खांमण।—रा.रू.
२ सहन करना। उ०—न खमै ताप हजार नर, जुदौ जुदौ डर जाग। केहर गड्डै क्रोध कर, गाजे गिर गयणाग।—बां.दा.
३ फल भोगना. ४ झेलना. ५ देखो 'खिवणौ' (रू.भे.)

खमल—सं०स्त्री०—ग्रग्नि, ग्राग (ह.नां.)

खमता—सं०स्त्री० [सं० क्षमता] १ क्षमता, सामर्थ्य. २ सहनशीलता।

खमदाह—सं०पु०यौ० [सं० क्षम+दाह] कष्ट सहन कर सकने का भाव।

खमया—सं०स्त्री०[सं० क्षमत्री] १ देखो 'खमा'। २ देखो 'खम्मया' (रू.भे.)

खमसा—सं०पु० [ग्र० खमसः] १ एक प्रकार की गजल जिसके प्रत्येक बंद में पांच चरण होते हैं. २ संगीत में एक प्रकार की ताल।

खमा—सं०स्त्री० [सं० क्षमा] १ देखो 'क्षमा'। उ०—बिजै मातरी जातरी लोक बोलै, खमा बैंग ऊचारता नैंग खोलै।—मे.म.
२ राजाग्रों, महाराजाग्रों, सम्राटों एवं ग्रपने ग्राश्रयदाताग्रों को किया जाने वाला ग्रभिवादन. ३ दामाद को गाया जाने वाला एक गीत. ४ पृथ्वी (डिं.नां.मा.)

खमाई—सं०स्त्री०—१ सहनशीलता। उ०—बादसाह री बड़ी समझ भारी खमाई, देख सगळा चाकरी में एक मना हुवा।—नी.प्र.
२ क्षमाशीलता। उ०—क्रोध जेर नरमी भारी खमाई रे न होय तो हर एक बजन करतूत सूं रीस पकड़ै तरै तहकीत मिनख मारघा जाय देस में खूबी नहीं रहै।—नी.प्र.

खमाखम खमाखमा—सं०स्त्री०यौ०—देखो 'खमा' (२)।

खमाणौ, खमाबौ—क्रि०स० [सं० क्षमापरण] सहन करना।

खमायची—सं०पु०—१ जामाता को गाया जाने वाला एक प्रकार का गीत (मि० 'खमा'-२) २ एक राग विशेष (संगीत)

खमार—सं०पु० [ग्र० खुमार] खुमार, मादकता। उ०—माटी मद वेचड़ खमार, चउद सहस चालइ चमार।—कां.दे.प्र.

खमीर—सं०पु०—१ प्रकृति, स्वभाव, ग्रादत. २ नशा. [ग्र० खमीर] ३ ग्रनन्नास ग्रादि को सड़ा कर तैयार किया एक पदार्थ. ४ गूंदे हुए ग्राटे का सड़ाव।

खमीरौ—सं०पु० [ग्र० खमीर] चीनी या शीरे में पका कर बनाई हुई ग्रौषधि।
वि०—खमीर उठा कर बनाया या खमीर मिलाया हुग्रा।

खम्मया—देखो 'क्षमा' (रू.भे.) उ०—देवी उम्मया खम्मया ईस-नारी, देवी धाररणी मुंड त्रिभुम्रधारी।—देवि.

खम्माच—सं०स्त्री०—मालकोस राग की दूसरी रागिनी (संगीत)

खम्माच कान्हड़ा—सं०पु०यौ०—संपूर्ण जाति का एक संकर राग (संगीत)

खम्माच टोरी—सं०स्त्री०यौ०—संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो खंभावती ग्रौर टोरी से मिल कर बनी है।

खम्मिया—देखो 'क्षमा' (रू.भे.) उ०—महा खम्मिया मद्ध सुं

खम्या—सं०स्त्री—क्षमा, माफी (रू.भे.) २ ग्रार्या या गाहा छंद का भेद विशेष जिसमें कुल २२ दीर्घ वर्ण ग्रौर १३ ह्रस्व वर्ण कुल ५७ मात्रा का एक छंद विशेष (ल.पिं.) [सं० क्षमा] ३ पृथ्वी (ग्र.मा.)

खम्याख्यात—सं०स्त्री०—पृथ्वी (ग्र.मा.)
ग्रह मोटा, खरो हेक तूं ही बिया सर्व खोटा।—ना.द.

खयंकर—वि० [सं० क्षय+कर] संहार करने वाला।

खयंग—सं०पु० [फा० खिंग] १ घोड़ा। उ०—खुरसांणी सूघा खयंग चढ़िया दळ चतुरंग।—ढो.मा. २ तलवार. ३ नाश, संहार।

खय—सं०पु० [सं० क्षय] १ विनाश, क्षय। उ०—वडेरां जिकां खय करण होता विदा।—महाराज मांनसिंह री गीत
२ क्षय रोग. ३ प्रलय, नाश (डिं.को.)

खयकर—सं०पु०—नाश, संहार।

खयकार—सं०पु० [सं० क्षय] नाश, संहार। उ०—कियौ न सळ खयकार, काळैली ग्रनरथ कियौ।—पा.प्र.

खयक—सं०पु०—चौहान वंश की एक शाखा।

खयण—वि० [सं० क्षय+रा० ण] नाश करने वाला (ह.नां.)

खयपग्रगिर—सं०पु०यौ०—वज्र (ग्र.मा.)

खयानत—सं०स्त्री० [ग्र० खयानत] १ धरोहर रक्खी हुई वस्तु न देना ग्रथवा कम देना, गबन, बेईमानी। उ०—जिकूं प्रभू बंदा नूं दी छै सो ग्रमानत छै तिरण में खयानत योग्य नहीं।—नी.प्र.
२ विचार (मा.म.)

खयःबळ—सं०पु०यौ० [सं० क्षया+बल] नाश करने की ताकत।

खयाल—सं०पु० [ग्र० खयाल] १ देखो 'ख्याल' (रू.भे.) उ०—है हिरस जोधपुर हरन हाल, खालसौ करन खाली खयाल।—ऊ.का.

२ एक विशिष्ट गायकी। इस गायकी में राग को अपने विशिष्ट रूप में पूर्ण स्वतंत्रता से विकसित किया जाता है। इसके दो ही भाग हैं स्थाई एवं अन्तरा। इसमें क्षुद्रतान एवं गिटकरी का प्रयोग होता है। ख्याल दो प्रकार के होते हैं—छोटा एवं बड़ा। आलाप-प्रधान एवं विलंबित लय में बड़ा ख्याल एवं तान-प्रधान एवं द्रुतलय में छोटा ख्याल गाया जाता है।

खयालत—देखो 'खयानत' (रू.भे.)

खर–सं०पु० [सं०] (स्त्री० खरांणी) १ गधा (देखो 'गधो')

कहा०—खर घघ्घू मूरख पसू, सदा सुखी प्रिथिराज—गधा, उल्लू, पशु और मूर्ख सदा सुखी रहते हैं। मूर्ख व्यक्ति को प्रपंचों में नहीं पड़ना पड़ता और न लोग घेरे रहते हैं। उसे किसी प्रकार की चिंता नहीं होती। मूर्ख व्यक्ति के लिये।

२ बगला. ३ कौआ. ४ रावण का भाई एक राक्षस (रामकथा) ५ तृण, तिनका, घास. ६ गरमी, उष्णता (ह.नां.) ७ साठ संवत्सरों में से २५वां संवत्. ८ छप्पय छंद का बीसवां भेद जिसमें ५१ गुरु और ५० लघु से १०१ वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं। (र.ज.प्र.)

वि०—१ तेज, तीक्ष्ण. २ कड़ा, कठोर (डिं.को.) ३ घना, मोटा. ४ हानिकर. ५ बंगनी रंग का. ६ धूम्र वर्ण* (डिं.को.) ७ उष्ण, गर्म (डिं.को.)

खरईस–सं०पु०यौ० [सं० खर+ईस] कुम्हार। उ०—एक अघेली रै अरथ, खूम सुतन खर-ईस, लुळ-लुळ कह 'लालू' लईं, बाळूं लाख बरीस।—अज्ञात

खरउ–क्रि०वि०—निश्चय ही। उ०—मो मन खरउ उमाहियउ, देखण पूंगळ देस।—ढो.मा.

खरक–सं०स्त्री०—१ वायव्य-उत्तर और पश्चिम के मध्य की एक दिशा। उ०—इणां आगै मांणच रा मगरा कोस खरक मांहे भील बसै। —नैणसी

२ कपड़ा बुनने का जुलाहे का एक औजार. (देखो 'खिरक'–रू.भे.)

खर-कर–सं०पु० [सं० खर, तेज, तीक्ष्ण+कर=किरण] सूर्य, भानु।

खरकूंता—देखो 'खिरक' (रू.भे.) (ना.मा.)

खरकोण–सं०पु० [सं० खरक्वाण] तीतर पक्षी। उ०—धरे छत्र संभरधणी, रांमचंद्र नर राज। किया गरद खरकोण सा, वैरी गण जिण बाज।—वं.भा.

खरखर–सं०स्त्री०—एक प्रकार की लाग जिसे जागीरदार अपने किसान से पैसे या श्रम के रूप में लेते थे।

खरखरावणौ, खरखराबौ–क्रि०स० [अनु०] देखो 'खुरखुराणौ' (रू.भे.)

खरखरियौ–सं०पु०—जो जागीरदार के खेत में बिना मजदूरी लिये कार्य करे, एक प्रकार की खरखर की लगान में काम करने वाला व्यक्ति। देखो 'खरखर'।

खरखोबरियौ–सं०पु०—वृक्ष का खोखला भाग। उ०—खरखोबरिया मांय, गोहिरा सांप गजब रा। भ्रड़ फांखड़ जड़ जाय, उरणिया बड़ै गजब रा।—दसदेव

खरगड़ी–सं०पु०—एक प्रकार का सरकारी लगान।

खरगू, खरगो, खरगोस–सं०पु० [सं० खर+गो] शशक, खरहा।

पर्याय०—दांत्यौ, सस, सुसकल्यौ, सुसल्यौ, सुसौ।

कहा०—रावळी पोळ ऊं खरगो कदे पाछा आवै—कमजोर व्यक्ति एक बार ताकतवर आदमी के चक्कर में फँसने के पश्चात् निकल नहीं सकता।

खरड़–सं०स्त्री० [अनु०] १ शस्त्र-प्रहार की ध्वनि. २ अफीम की डलिया के ऊपर का मैल, अफीम का बुरादा। उ०—पोतौ पांड्यौ रहै अगाड़ी मं कूं आगै, खळ बटियां री खरड़ छुरी सूं छालण लागै।—ऊ.का. ३ बड़ी दरी, जाजम। उ०—पांनां फूलां जी मंडप छाइयां, लंबा तीखा जी खरड़ बिछाइयां।—लो.गी.

खरड़क–सं०स्त्री० [अनु०] रगड़। उ०—कटारी बरछी रौ दावौ नहीं, सूअर री दातरड़ी लागै तो खरड़क न ऊतरै।—रा.सा.सं. (रू.भे. 'खरड़को')

खरड़कणौ, खरड़कबौ–क्रि०अ० [अनु०] १ टकराना, टकरा कर ध्वनि करना। उ०—भाजै छड़ां खरड़कै भाला, पड़ै न पिड़ देतौ पसर। —नैणसी

[अनु०] २ चुभना। उ०—गया ज गळती रात, पर जळती पाया नहीं, से साजन परभात खरड़किया खुरसांण ज्यूं।—ढो.मा.

३ घसीट कर लिखना. ४ कसकना। उ०—नह पलटै खरड़कै अहोनिस, घड़ दुरवेस घड़ै घण घाव। 'सांगा' हरौ तणै आलम साह, पात रिदै महपत अनपाव।—पीथौ आसियौ

खरड़कौ–सं०पु० [अनु०] १ ध्वनि विशेष. २ रगड़ से उत्पन्न ध्वनि. ३ रगड़, घर्षण।

खरड़णौ, खरड़बौ, खरड़िणौ, खरड़िबौ–क्रि०स०—१ कुचलना. २ कुचल कर मैल दूर करना. ३ घसीट में लिखना. ४ गंदे पदार्थों से कपड़े व शरीर को गंदा करना. ५ खरोंचना.

६ वेदना से तड़फना। उ०—आघा आघा ऊचरै, राउत तेथ हरौळ। पग खरड़ै हळवळ पड़ै, बोलै गळबळ बोल।—वी.स.

खरड़णहार, हारौ (हारी), खरड़णियौ—वि०।

खरड़िओड़ौ, खरड़ियोड़ौ, खरड़योड़ौ—भू०का०कृ०।

खरड़ीजणौ, खरड़ीजबौ—कर्म वा०।

खरड़ौ–सं०पु०—१ एक प्रकार की लाग जो पट्टा किये हुए मकानों के निवासियों से जागीरदार वसूल करता था. २ वह लंबा या बड़ा कागज जिसमें कोई भारी हिसाब या विवरण लिखा हो.

३ ऋण, कर्ज। उ०—जनम जनम में करज कियौ है माथै करड़ौ, मिनख कियौ महाराज काट दे क्यूं नहीं खरड़ौ।—सगरांमदास

४ देखो 'खरड़' (२) ५ किसी औसर के अवसर पर समीपवर्ती गांवों के स्वजातीय बंधुओं को निमंत्रित करने के लिए भेजा जाने वाला इतलानामा या सूचनापत्र।

खरच-सं०पु० [फा० खर्च] १ किसी कार्य में कोई वस्तु का लगना, व्यय।
क्रि०प्र०—आणी, करणी, चलणी, देणी, पड़णी लागणी, लेणी, होणी।
मुहा०—१ खरच उठाणी—खर्च का भार सहन करना; खर्च बंद कर देना. २ खरच चलावणी—खर्च के लिए रुपया देना; गृहस्थ निभाना. ३ खरच में घालणी—व्यय में लिखना. ४ खरच में नांखणी—खर्च करने पर मजबूर करना. ५ खरच में पड़णी—व्यय करने को लाचार होना।
कहा०—खरच रा भाग मोटा—कंजूसी की निंदा।
२ वह धन जो किसी काम में लगाया जाय।

खरची-सं०स्त्री० [फा० खर्च+रा० ई] १ देखो 'खरच'।
कहा०—खरची खूटी यारी टूटी—लोग दोस्ती तभी तक रखते हैं जब तक पास में पैसा होता है।
२ वह धन जो किसी को निर्वाह के लिए दिया जाय, निर्वाह भत्ता।

खरचीलौ-वि० [फा० खर्च+रा०प्र० इलौ] १ बहुत अधिक व्यय करने वाला. २ जिसमें बहुत खर्च होता हो।

खरचौ—देखो 'खरच'।
कहा०—लाडी और गाडी रौ खरच बराबर व्है—स्त्री का व्यय एक बैल गाड़ी के रखने के व्यय के बराबर होता है।

खरजूर—देखो १ 'खजूर' (रू.भे.) [सं० खर्जूर] २ चांदी (अ.मा.) ३ हरताल।

खरजूरवेध-सं०पु० [सं० खर्जूरवेध] ज्योतिष में एक प्रकार का योग जिसमें विवाह होना वर्जित है।

खरजूरी—देखो 'खरजूर' (रू.भे.)

खरडवौ-सं०पु०—गेहूँ की फसल में होने वाला एक घास विशेष।

खरडौ—देखो 'खरड़ौ' (रू भे.)

खरण-सं०स्त्री०—१ चूल्हे पर चढ़ाये हुए पानी भरे बर्तन से उबाल आने के पहले आने वाली ध्वनि. २ तलवारादि की धार पैनी करने का उपकरण, सान।

खरणियौ—देखो 'खरसणियौ'।
कहा०—पाछी रै सांमौ खरणियौ दे जदे पाछी भल्लै, ईं भल्लै कोनी—जैसे को तैसा।

खरणी-सं०स्त्री०—१ चोरी के माल का पता प्राप्त करने की नीयत से चोरों को गुप्त रूप से दिया जाने वाला धन।
[सं० क्षीरका] २ मौलश्री वृक्ष तथा उसका फल।
[रा०] ३ राजाओं द्वारा दिया जाने वाला कर (मि० 'चौथ', ४,५)
उ०—भरै खरणी जिकै किसा भूपाळ।—उमेदजी सांदू

खरणौ-सं०पु० [सं० क्षरण] वंश, कुल, गोत्र। उ०—धवळ रूप धरियौ धरम, सिव धवळै असवार। कांमधेन खरणौ धवळ, क्यूं नह भाली भार।—बां.दा.

खरणौ, खरबौ-क्रि०अ० [सं० क्षरण] १ वीर गति को प्राप्त होना। उ०—खगधारां बखतेस खरै।—बखतौ खिड़ियौ २ गिरना, पड़ना।

खरतर-सं०पु०—१ तेजस्वी होने का भाव। उ०—खरच खत्रवट खाटमा, खरतर जांण पिछांण। ऊदल में हा एकठा, डांण मांण अरु पांण।—डूंगरसी भाटी

खरतरगछ-सं०पु०—वह संप्रदाय जिसमें तेज की तीक्ष्णता हो (जैन) उ०—तपागछ में तेरै बैसणा है, खरतरगछ में इग्यारै बैसणा है।
—बां.दा.

खरतरौ-वि० [सं० खर = तेज] तेज, तीक्ष्ण।

खरदंड-सं०पु०—कमल (ह.नां.)

खरदांवणौ-सं०पु०—हाथ की उंगलियों में धारण करने का स्त्रियों का एक आभूषण।
कहा०—लाडी जी मांगै खरदांवणौ, दौ रांड रै दांवणौ—वधू खर-दांवणा की मांग करती है, इसके 'दामणा' दो—बिना अवसर के कोई पदार्थ नहीं मांगना चाहिए नहीं तो उसका मिलना तो दूर रहा उलटा दंड सहन करना पड़ेगा।

खरदुखर, खरदूखण-सं०पु०यौ० [सं० खर+दूषण] रावण के भाई खर और दूषण नामक दो राक्षस (रांमकथा)

खरधरौ-वि०पु० (स्त्री० खुरधरी) खुरदरी (अमरत)

खरध्वंसी-सं०पु० [सं० खरध्वंसिन्] १ श्रीरामचंद्र (अ.मा.) २ श्रीकृष्ण (नां.मा.)

खरपट-वि० [सं० खर्पट] अति वृद्ध।

खरपौ-वि० [सं० कर्पट] अति वृद्ध।
सं०पु०—देखो 'खुरपौ'।

खरब-सं०पु० [सं० खर्व] १ सौ अरब की संख्या. २ नव निधियों के अंतर्गत एक निधि (अ.मा.)
वि०—१ सौ अरब. २ नीच, बुरा। उ०—गरब में अखरब खरब गरब ना गरधौ, परब में विपख पख बासना भरधौ।—ऊ.का. ३ नाटा, बौना, वामन. ४ छोटा, लघु।

खरबसाख-वि०—नाटा (डिं.को.)

खरबूजौ-सं०पु० [फा० खर्बुजा] ककड़ी की जाति की एक बेल जिसके फल गोल, बड़े, मीठे और सुगंधित होते हैं। इसके बीज प्राय: नदियों के किनारे लगाये जाते हैं। चैत से आषाढ़ तक इसमें फल लगते हैं। इसके बीज ठंडाई के साथ पीस कर पीये भी जाते हैं।
कहा०—खरबूजै नै देख'र खरबूजौ रंग बदळै—दूसरे को देख कर लोग उत्साहित होते हैं। संग रहने का प्रभाव अवश्य पड़ता है।

खरमौ-सं०पु० [अ० खुरमा] देखो 'खुरमौ' (रू.भे.)

खररर-सं०स्त्री० [अनु०] १ ऊँचे स्थान से खिसक कर गिरने से उत्पन्न ध्वनि।

खरकप-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खरळ–सं०स्त्री०—१ देखो 'खरक', एक दिशा।
उ०—खरळ दिसा खांखळी, तवै तीतर दिस उतर।—नैणसी
[सं० खल] २ पत्थर, धातु, कांच या काष्ठ की गोल या लंबोतरी कूंडी जिसमें दस्ते से औषधियाँ कूटी जाती हैं, खल। उ०—नुकरा नान्हा निपट खरळ कर पीवै खोटो, पैलै भव रौ पाप महा ऊघड़ियो मोटौ।—ऊ.का.

खरळकणौ–सं०पु० [अनु०] ध्वनि विशेष।

खरळकणौ, खरळकबौ, खरळक्कणौ, खरळक्कबौ–क्रि०अ०—१ ध्वनि करना, खड़कना। उ०—भाय दाय क्रमि भरै पाय लंगर खरळक्कै, ऐंड बेंड अड़ियल्ल नीठ दोय पैंड सरक्कै।—रा.रू. २ खिसकना।

खरळायत–सं०पु०—झाला वंश के क्षत्रियों की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

खरळी–सं०स्त्री०—१ स्नान. २ खेत में पानी देने के लिए बनाई गई नहर (क्षेत्रीय) ३ बरबादी, नाश. ४ हानि।

खरव—देखो 'खरब' (रू.भे.) (ह.नां.)
वि० [सं० खर्व] १ जिसका अंग भग्न या अपूर्ण हो. २ छोटा, लघु. ३ वामन, नाटा, बौना (डि.को.)

खरवड़–सं०पु०—१ एक प्राचीन राजपूत वंश. २ परिहार वंश की एक शाखा।

खरवांस–सं०पु० [सं० खर=हानिकारक+मास] पूस और चैत का महीना जब कि सूर्य धन और मीन राशि में होता है। इन महीनों में मांगलिक कार्य करना वर्जित है।

खरवा—देखो 'खुराई' (रू.भे.)

खरविता–सं०स्त्री० [सं० खर्विता] १ वह अमावस्या जिसमें चतुर्दशी भी मिली हुई हो. २ वह तिथि जिसका काल-मान पहले दिन की तिथि के काल-मान से कुछ कम हो।

खरसंडियौ–सं०पु०—एक प्रकार का बैल। उ०—खरसंडिया खेरूं करै, गोर दड़के सांड। नारा गोधा बाछड़ा, मचमच होवै टांड।—वादळी

खरसणियौ–सं०पु०—शमी, करील, कुमट आदि के वृक्ष जो काट कर खेत की मेंड़ पर लगाये जाय। उ०—ऊणा ऊरणिया खरसणियां ओळै, डरड़ा नरड़ा बिण अरड़ा दे टोळै।—ऊ.का.

खरसणौ–सं०पु०—एक प्रकार का बिना तने का, लंबी व गहरी जड़ का क्षुप विशेष।

खरसांण–सं०स्त्री०—१ अस्त्रों की धार पैनी करने का उपकरण, सान. २ तलवार. ३ मुसलमान (मि० 'खुरसांण')
वि०—गोल, वृत्ताकार* (डि.को.)

खरसुमौ–सं०पु०—जिस घोड़े के सुम गधे के सुम की भांति बिल्कुल खड़े हों।

खरहंड–सं०पु० [सं० शरत्+खंड] १ चिता। उ०—सिंघण चाळवियां, खरहंड मांय खंखेरियां। रांणा राख थयां, वीसरमां जद 'बाघ' नै।—आसो बारहठ
२ घोड़ा। उ०—खरहंड फौज अगन खूंदालम, नर ईंधण प्रजळै भीमेस। राजा खीर न यंथ राखियौ, नीर प्रजळियौ खेड़नरेस।—अज्ञात
[सं० खर=तेज हिंड=गति] ३ सेना। उ०—चौअउड़ अणी चंचळि चड़ेय, खरहंड लेय आयउ खड़ेय।—रा.ज.सी. ४ मुसलमान. ५ युद्ध में शस्त्रों से टुकड़े-टुकड़े करना। उ०—खगधारां खरहंड गनीमा गेरणा, तोपां सिर तोखार चणै बळ चेरणा।
—किसोरदांन बारहठ

खरहन–सं०पु० [सं०] सेना (ह.नां.)

खरहुड—देखो 'खरहंड' (रू.भे.) उ०—खड़े सेन खरहुड धूंण लीधी धर धारह, परमारां वळ पहट दीध प्रसणां पाहारह।—नैणसी

खरांदक–सं०पु० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।

खरांसु–सं०पु० [सं० खरांशु] सूर्य।

खराई–सं०स्त्री० [सं० खर+रा० ई] खरा होने का भाव।
उ०—अपणै माहि अकल नह ऐसी, खुद ही लखै खराई नै।—ऊ.का.

खराखर, खराखरी–वि०—१ पक्का। उ०—नहीं तूं ई बोल खराखरी—लेणौ-देणौ।—वरसगांठ २ कठिन, मुश्किल. ३ दृढ़।
सं०स्त्री०—१ दृढ़-निश्चय. २ कठिनाई।

खराड़णौ, खराड़बौ–क्रि०स० [सं० खर+अदन] खिलाना।

खराड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—खिलाया हुआ (स्त्री० खराड़ियोड़ी)

खराड़ौ–सं०पु०—पशुओं का एक रोग विशेष जिसमें उनके मुँह और खुर में दाने निकल आते हैं और मुँह से लार टपकती है। सारा बदन गरम हो जाता है। यह रोग संसर्ग से बहुत जल्द फैलता है।
यौ०—खराड़ौ-मुराड़ौ।

खराणौ, खराबौ–क्रि०स०—खराना, पक्का करना, दृढ़ करना।
उ०— फेर हरमाळा नै खराय ठीक पूछियौ, ताहरां हरमाल कह्यौ—न मांनौ तौ थे जावौ, चौकस देखौ।—पलक दरियाव री वात

खराद–सं०पु० [अ० खरात, फा० खराद] १ एक औजार जिस पर चढ़ा कर लकड़ी या धातु आदि की सतह चिकनी और सुडौल की जाती है।
सं०स्त्री०—२ खरादने का भाव, ढंग, बनावट, गढ़न।
वि० [सं० खराप्त] खरापन पाया हुआ।

खरादणौ, खरादबौ–क्रि०स०—खराद पर चढ़ा कर किसी वस्तु को साफ और सुडौल करना, कांट-छांट कर सुडौल बनाना।
खरादणहार, हारौ (हारी), खरादणियौ—वि०।
खरादिओड़ौ, खरादियोड़ौ, खरादयोड़ौ—भू०का०कृ०।

खरादियोड़ौ–भू०का०कृ०—खराद पर चढ़ा कर सुडौल बनाया हुआ। (स्त्री० खरादियोड़ी)

खरादौ—देखो 'खराती' (२) (रू.भे.)

खरापण, खरापणौ–सं०पु०—१ खरा होने का भाव, दृढ़ता. २ सत्यता, सच्चाई. ३ उन्मत्तता।

खराब–वि० [अ० ख़राब] १ बुरा, निकृष्ट, हीन।
मुहा०—खराब करणौ—बरबाद करना, बिगाड़ना।

२ दुर्दशाग्रस्त. ३ पतित, मर्यादाभ्रष्ट।

मुहा०—खराब करणी—किसी स्त्री का सतीत्व भंग करना।

खराबी-सं०स्त्री० [अ० खराबी] १ बुरापन, दोष, अवगुण।

मुहा०—खराबी में पड़णी—बुरी दशा में होना. २ दुर्दशा, दुरावस्था।

मुहा०—खराबी में डालणी—दुख पहुँचाना, हानि पहुँचाना.

३ गंदगी, गलीच।

खराबौ-सं०पु० [अ० खराब] १ खराब करने या होने का भाव.

२ हानि, नुकसान. क्षति।

खरारि, खरारी-सं०पु० [सं० खर+अरि] १ श्रीरामचन्द्र.

२ श्रीकृष्ण. ३ बलराम. ४ विष्णु. ५ ईश्वर (अ.मा.)

खरारौ-सं०पु० [सं० खुरारी] एक विशेष प्रकार के घास का बना झाड़ू।

खरास-सं०स्त्री० [फा० खराश] प्रायः छिलन आदि के कारण हो जाने वाला हल्का घाव, खरोंच।

क्रि०प्र०- आणी, पड़णी, लागणी, होणी।

खरियळ-वि०—१ खरी कमाई करने वाला. २ खरी कमाई खाने वाला।

खरींटी—देखो 'खरंटी' (क्षेत्रीय)

खरीको, खरीखौ-वि० (स्त्री० खरीकी, खरीखी) १ छलछिद्रशून्य, सच्चा.

२ स्पष्ट वक्ता।

खरिघाहि-सं०पु०—विश्वास। उ०—तद इयं रै मन खरीघाहि हंतौ तद उठै इयं नूं राखी।—चौबोली

खरीटिया-सं०स्त्री०—बकरी की जाति विशेष।

खरीतौ-सं०पु० [अ० खरीत] १ थैली. २ खीसा. जेब. ३ वह बड़ा लिफाफा जिसमें किसी बड़े अधिकारी की ओर से मातहत के नाम आज्ञा-पत्र आदि भेजे जांय।

खरीद-सं०स्त्री० [फा० खरीद] १ मोल लेने की क्रिया, क्रय.

२ मोल लिया हुआ पदार्थ।

खरीदणौ, खरीदबौ-क्रि०स० [फा० खरीदना] मोल लेना, क्रय करना।

खरीदणहार, हारौ (हारी), खरीदणियौ—वि०।

खरीदाणौ, खरीदाबौ, खरीदावणौ, खरीदावबौ—क्रि०प्रे०रू०।

खरीदिग्रोड़ौ, खरीदियोड़ौ, खरीदयोड़ौ—भू०का०कृ०।

खरीदीजणौ, खरीदीजबौ—कर्म वा०।

खरीददार, खरीदार-सं०पु० [फा० खरीददार] १ मोल लेने वाला, ग्राहक.

२ चाहने वाला, इच्छुक।

खरीदारी-सं०स्त्री० [फा०] खरीदने की क्रिया या भाव।

खरीदियोड़ौ-भू०का०कृ०—खरीदा हुआ। (स्त्री० खरीदियोड़ी)

खरीदौ-वि०—खरीदने वाला। उ०—लादां लकड़ी जगै, नीकळै न्याई लपटां। खनै खरीदा खड़ा, वांनकी निरखै कपटां।—दसदेव

खरुखानळ-सं०पु० [सं० खरुखानल] ४९ क्षेत्रपालों में से अठारहवां क्षेत्रपाल।

खरूंट-सं०पु०—फोड़े-फुन्सी या घाव आदि के ठीक होकर सूखने पर ऊपर जमने वाली पपड़ी, खुरंट। उ०—जाळ छाल बाळ बुरकाया, राख खरूंट ले उतरै।—दसदेव

मुहा०—खरूंट उखेलणी; खरूंट छोलणी—पुरानी बातों को याद कर वैमनस्य उत्पन्न करना; पिछले अवगुणों को प्रकाश में लाना।

खरेड़ी-सं०स्त्री०—घास-फूस का कच्चा छप्पर (प्रायः इसके नीचे कपास रक्खा जाता है।

खरेटौ—देखो 'खरोटौ'।

खरेबरकत, खरेलाभ-सं०पु०यौ०—अनाज आदि तौलते अथवा मापते समय तौलने वाले द्वारा प्रारंभ में उच्चरित शब्द, गिनती के प्रारंभ में शुभ लाभ की कामना से एक के स्थान पर उच्चारण किया जाने वाला शब्द।

खरै-क्रि०वि०—निश्चय। उ०—पिड़ आंगण आज खरै पड़णी।

—पा.प्र.

खरैंटी-सं०स्त्री० [सं० खरयष्टिका] अष्टवर्ग की एक औषधि विशेष। देखो 'खिरेंटी' (अमरत)

खरैबरकत—देखो 'खरेबरकत' (रू.भे.)

खरोंच-सं०स्त्री० [सं० क्षुरण] नख आदि लगने या और किसी प्रकार छिलने का हल्का चिन्ह, खराश।

खरोड़ी-सं०स्त्री०—घास से भरी हुई गाड़ी।

खरोट—१ देखो 'खरोंच' (रू.भे.) उ०—लागां कुसुम सरीस बप, ज्यांरै पड़ै खरोट। हद नाजक हिरणांख्खियां, है मांझल हमरोट।

—बां.दा.

२ देखो 'खुरंट' (रू.भे.)

खरोटिया-सं०पु०—रामावत साधुओं का एक भेद विशेष (मा.म)

खरोटौ-सं०पु० [सं० कर+उत्था, प्रा० करोट्ठा] १ देखो 'खरोंच'.

२ एक प्रकार की लाग जो जागीरदार अपनी प्रजा के अलावा अन्य मवेशी मालिकों से वसूल करता है जो कुछ समय के लिए उनकी भूमि पर ठहराते हैं. ३ ग्रामवासियों से ही वसूल की जाने वाली एक प्रकार की लाग जो गाँव-हित में व्यय की जा सकती है.

(मि० 'ऊकरड़ीखरच, गोचरी')

४ आंगन आदि लीपने के लिए गोबर के साथ मिलाई जाने वाली मिट्टी जो 'मुरड़' से कुछ निम्न श्रेणी की होती है।

खरोदक-सं०पु० [सं० क्षीरोद] १ समुद्र. २ श्वेत वस्त्र।

उ०—दीया खरोदक पइहरणाइ राजा कुंवर बसांणी आंणी।

—बी.दे.

खरौ-वि० (स्त्री० खरी) १ तेज, तीखा. २ विशुद्ध, बिना मिलावट का, खालिस।

मुहा०—१ खरौ उतरणौ—कसौटी पर विशुद्ध सिद्ध होना.

२ खरौ खोटौ—भला बुरा. ३ खरौ खोटौ परखणौ—अच्छे-बुरे की पहिचान होना. ४ मन मां खरौ खोटौ होणौ—चित्त चलायमान होना, मन डिगना, बुरी नियत होना।

कहा०—खरी खोटी रांम जांणै—अच्छा-बुरा तो ईश्वर ही जानता है; अच्छे बुरे की पहिचान करना कठिन होता है।
यौ०—खरी-खोटी।
३ सेंक कर कड़ा किया हुआ, करारा। ४ सच्चा। उ०—आडा डूंगर बन घणा, खरा पियारा मित्त। देह विधाता पंखड़ी, मिळि मिळि आवउं नित्त।—ढो.मा.
मुहा०—खरौ उतरणौ—सच्चा साबित होना।
५ जो झुकाने या मोड़ने से टूट जाय, कड़ा. ६ छल-छिद्रशून्य, साफ, ईमानदार।
मुहा०—१ खरौ आसांमी—चटपट दाम देने वाला आदमी।
२ खरौ आदमी—ईमानदार आदमी; साफ साफ कहने वाला आदमी।
७ नकद (दाम)
मुहा०—रुपया खरा होणा—रुपए मिलने का निश्चय होना।
कहा०—खरी मजूरी चोखा दांम—मजदूरी की प्रशंसा।
८ लाग लपेट न रखने वाला, स्पष्टवक्ता. ९ अप्रिय सत्य।
मुहा०—खरी खरी सुणाणी—स्पष्ट बात कहना चाहे वह बुरी क्यों न लगे।
१० पक्का। उ०—१ खरौ जिगरिया खांन जिको उत्तर अपजोरै, पूरब सादित प्रगट तको ऊवट निज तोरै।—रा.रू.
उ०—२ बादसाह मुळक नै फरमाई जे म्हारी तरवार मोसूं ही खरी पियासी छै।—नी.प्र.
११ गहरा गेहुँआ या श्यामल (शरीर का)
यौ०—खरौ रंग।
१२ महान, जबरदस्त। उ०—वागां ऊपाड़ै विखमी वार, धड़कै आकास धर। खरौ खेध वाजी, खरा वहसै दुवाह।—जगौ सांदू

खळ—वि० [सं० खल] १ क्रूर, दुष्ट, दुर्जन, नीच। उ०—१ मत जांणे प्रिउ नेह गयउ, दूर विदेस गयांह। बिवणउ बाधइ सज्जणां, ओछउ ओहि खळांह।—ढो.मा. उ०—२ खिज्जि कह्यौ रे जनक तुल्य खळ, सजव होहु रक्खस नृप बीसळ।—वं.भा. २ चुगलखोर.
३ कपटी, धोखेबाज. ४ शत्रु, विरोधी। उ०—हरि समरण रस ममझण हरिणाखी, चात्रण खळ खगि खेत्र चढ़ि।—वेलि.
५ मूर्ख।
सं०पु० [सं०] १ सूर्य्य. २ रावण (अ.मा.) ३ राक्षस (अ.मा.) (यौ० खळसाल) ४ खलिहान. ५ खरल. ६ तिलों से तेल निकालने के पश्चात् बचा हुआ काला-काला सा पदार्थ जिसे दूध बढ़ाने के उद्देश्य से पशुओं को खिलाया जाता है। उ०—खळ गुड़ अणकूंताय, एक भाव कर आदरै। ते नगरी-हूं ता, रोही आछी राजिया।
—किरपारांम
कहा०—१ खळ गुड़ एक ई भाव—जहां ऊपर का कोई अधिकारी देखने वाला नहीं होता है वहां 'अन्धेर नगरी अबूझ राजा' की तरह गुड़ और खली एक ही भाव बिकते हैं—अव्यवस्थित शासन सत्ता पर व्यंग्य. २ तेल तिलां सूं उतरिया तौ खळ सूं कई सिनेस—तेल को तिलों से निकलने के पश्चात् खली से क्या स्नेह रह जाता है।
७ अफीम की डलिया के ऊपर का मैल, अफीम का बुरादा।
उ०—खळ बटियां री खुरड़ छुरी सूं छालण लागै।—ऊ.का.
८ युद्धभूमि। उ०—खळ प्रबळ पाड़ पड़ियौ खळै, जस प्रकास राखै जरू। तज छोत मरण उपजण तणी, मिळै जोत भीमंगरू।—रा.रू.
यौ०—खळसाल।

खलक—सं०पु० [अ० खल्क] १ सृष्टि के प्राणी या जीवधारी, जगत, दुनिया। उ०—१ सांई टेढ़ी अंखियां, बैरी खलक तमांम। टुकि यक झोला महर का, लक्खूं करै सलांम।—अज्ञात उ०—२ जिको बादसाह प्रभू री आग्या मांने छै उणरी आग्या खलक मांनै।—नी.प्र.
२ भीड़, झुंड।

खळकट—सं०पु०—संहार, विध्वंस। उ०—खळकट सूं खळां सावरत खांडो, खांडो कदे न राखै खाप। खांडा बळि राखै खूमांणौ, प्रथमी खांडा तणी प्रताप।—महारांणा प्रताप रौ गीत

खळकणौ, खळकबौ—क्रि०अ०—१ बहना, धार के रूप में प्रवाहित होना। उ०—जस किलक वकवक मुख जपिक, भुव खळक रुधरक भभक भक।—र.रू. २ कलकल ध्वनि करना. ३ छलकना।
उ०—खळकियां स्रोण तांय बौह घट-खाळियां, रिण भड़ां सीस यूं बैठि रतनाळियां।—हा.झा. ४ निकलना। उ०—सो तीर खैंचतां भाले सूं कमरबंधो बढ़ गयो सो सारा तीर खळक नै पाखती पड़िया।—सूरे खींवे री वात ५ खड़कना, खनकना।
खळकणहार, हारौ (हारी), खळकणियौ—वि०।
खळकाणौ, खळकाबौ, खळकावणौ, खळकावबौ—क्रि०स०।
खळकिओड़ौ, खळकियोड़ौ, खळक्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खळकीजणौ, खळकीजबौ—भाव वा०।

खलकत—देखो 'खलक' (रू.भे.) उ०—ललकत जांझळियां बाजण नै लागी, भूखां मरतोड़ी खलकत पड़ भागी।—ऊ.का.

खळकाणौ, खळकाबौ—देखो 'खळकावणौ' (रू.भे.)

खळकाळ—सं०पु०—१ तलवार (नां.मा., अ.मा.) २ श्रीरामचन्द्र. ३ श्रीकृष्ण।

खळकावणौ, खळकावबौ—क्रि०स० ['खळकणौ' का प्रे०रू०] १ खड़काना, खनकाना. २ खौलाना ३ बंधन में डालना. ४ प्रहार करना. ५ पानी बहाना. ६ ढहाना।
'खळकणौ' का स०रू०। देखो 'खळकणौ'।

खळकी—सं०स्त्री०—स्नान।

खळकुलीक—वि० [सं० खल+कुल+रा० क] दुष्ट, क्रूर, नीच।
उ०—यम करत उपद्रव खळकुलीक, आयौ निसंक 'लावा' नजीक।
—ला.रा.

खळकौ—सं०पु०—१ कुर्ता, झग्गा. २ पानी के प्रवाह से उत्पन्न कल-कल की ध्वनि. ३ नाला, प्रवाह. ४ स्नान।

खलकौ—देखो 'खिलकौ' (रू.भे.)

खळक्क—देखो 'खळक' (रू.भे.)

खळक्कणौ, खळक्कबौ—देखो 'खळकणौ' (रू.भे.) उ०—जिण दीहे-वण हुर वरइ, नदी खळक्कइ नीर। तिण दिन ठाकुर किम चलइ, धण किम बांधइ धीर।—ढो.मा.

खळखट—देखो 'खळकट' (रू.भे.) उ०—खळां सबळां भंज खळखट, बिजै कर रण वार।—र.ज.प्र.

खळखळ-सं०पु० [अनु०] [सं० कलकल] पानी के बहाव से उत्पन्न ध्वनि, कलकल।

खळखळणौ, खळखळबौ-क्रि०अ०—१ कल-कल करते जल की धारा का बहना। उ०—परनाळां पांणी पड़ै, नाळा चळवळियाह। पोखर आस पुरावणा, खाळा खळखळियाह।—बादळी

खळखळौ-वि० (स्त्री० खळखळी) १ अधिक, विशेष. २ काफी, ठीक. ३ उदारतापूर्ण।

खळखल्ल-सं०स्त्री० [अनु०] १ हँसने की आवाज, खिलखिल। उ०—मुड़ै गिड़-कंध मदंध मुगल्ल, ख्याली रिखराज हुंसै खळखल्ल। —मे.म.

२ देखो 'खळखळ' (रू.भे.)

खळखायक-वि० [सं० खल = दुष्ट+रा० खायक = खाने वाला] दुष्टों का संहार करने वाला। उ०—खळखायक साहिक जना, दीनबंधु देवाधि। द्याळबाळ सरणागती, तुमसे पति हम व्याधि। —करुणासागर

सं०पु०—विष्णु।

खळखेदू-वि०—शत्रु को नष्ट करने वाला।

खळख्खळ—देखो 'खळखळ' (रू.भे.) उ०—भळब्भळ सूळ भुजां भळ-कंत, खळख्खळ खून नदी खळकंत।—मे.म.

खळगट—देखो 'खळकट' (रू.भे.)

खलड़ी-सं०स्त्री० [सं० खल्ल] १ छाल. २ चमड़ा (रू.भे. 'खालड़ी') (रू.भे. 'खल्लड़')

खळचणौ, खळचबौ-क्रि०स०—मारना, नाश करना। उ०—खळचिया धरा खगां मुह खेंग रै, असुर ची अरथ कै घर अयांणौ। —महारांणा सांगा रौ गीत

खळचियोड़ौ-भू०का०कृ०—मारा हुआ, नाश किया हुआ। (स्त्री० खळचियोड़ी)

खळजारण-सं०पु० [स० खल+जारण] १ दुष्टों का संहार करने वाला. २ सुदर्शन चक्र (नां.मा.)

खळणौ, खळबौ-क्रि०अ० [सं० स्खलन] १ डुलना, विचलित होना, डिगना. २ अधीर होना. ३ बिगड़ना. ४ गिरना. ५ पथ-भ्रष्ट होना. ६ मरना।

कहा०—खळ खळिया'र विघन टळिया—दुष्ट व्यक्ति के मरते ही विघ्न स्वयमेव मिट जाते हैं।

क्रि०स०—७ संहार करना। उ०—१ प्रसण अखांण करै जोधा-पत, वडम तुहाळी साख वळै। ऐ जी वहै उवेडा, खांडां तळै राविया खळै।—भैरूंदास खिड़ियौ उ०—२ ऊजळै चित बरियां उरड़ खळै सत्र वोळो खगां जूटिया भला बेवे जबर ईसरोत राजा अगां। —बखतौ खिड़ियौ

खळणहार, हारौ (हारी), खळणियौ—वि०।

खळाणौ. खळाबौ—प्रे०रू०।

खळिओड़ौ, खळियोड़ौ, खळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खलता-सं०स्त्री० [सं० खल्ल+ता] दुष्टता, नीचता। उ०—१ फिदा-हुसन सूं खलता कीवी राव राजा बखतावरसिंह।—बां.दा. ख्यात उ०—२ चंदर विभचारी, ऐल्या नारी, खळता जारी पतखारी। रिस साप सहारी, अघगत धारी, वरस हजारां सिल भारी। —भगतमाळ

खळता—देखो 'खलीतौ' (रू.भे.)

खलथांन-सं०पु० [सं० खल+स्थान] खलिहान।

खळवट-सं०पु० [सं० खल+वट = टुकड़ा] १ युद्ध. २ संहार। उ०—खित कारणै करै नित खळवट, खेटै कटक तणा खुरसांण। —प्रथ्वीराज राठौड़

खळवत-सं०स्त्री०—१ मेल, मिलाप. २ गोष्ठी। उ०—बौ:रा बळ बिहूणां तिल खळवत तरजै, बूढ़ी चेली नै साधू ज्यौं बरजै।—ऊ.का.

खळवधकर-सं०पु०यौ [सं० खल+वध+कर] महादेव, शिव (अ.मा.)

खळबळ-सं०स्त्री० [अनु०] १ हलचल, शोर, हल्ला. २ कुलबुलाहट. ३ अशांति, बेचैनी, घबराहट।

क्रि०प्र०—पड़णी, मचणी।

(रू०भे०—खळबळी, खळभळ, खळभळाट, खळभळाहट, खळभळी, खळब्भळी)

खळबळणौ, खळबळबौ, खळबळाणौ, खळबळाबौ-क्रि०अ०—१ खलबल शब्द करना. २ खौलना. ३ हिलना-डोलना, विचलित होना. ४ खड़बड़ाना।

खळबळी, खळभळ-सं०स्त्री० [अनु०] देखो 'खळबळ' (रू.भे.) उ०—१ सागर तीर वीराज्या स्वामी, लंका मांय खळबळी जांमी। —गी.रां.

उ०—२ कांकळ योरप कळ विकळ, खळभळ मच नव खंड। —किसोरदांन बारहठ

खळभळणौ, खळभळबौ-क्रि०अ० [अनु०] १ देखो 'खळबळणौ'। उ०—मार-मार विस्थार वार ऊठियौ विकांमै, खुरसांण खळभळै निहंग सा वच्चा नासै।—नैणसी २ भयातुर होना, उतावला होना। उ०—लोक सहू पालखियइ मिळया, देखी कटक देस खळभळया।—ढो.मा.

खळभळाट, खळभळाहट-सं०स्त्री० [अनु०] देखो 'खलबल' (रू.भे.)

खळभळिलणौ, खळभळिलबौ-क्रि०अ०—चमकना।

उ०—वीजळियां खळभळिलयां, श्रामै श्रामै कोडि। कदे मिळेसूं सज्जनां, कसकंचुकी छोडि।—जसराज

खळभळी—देखो 'खळबळी' (रू.भे.)

खळब्भळ—देखो 'खळबळी' (रू.भे.) उ०—खळब्भळ होय श्रसतां खांम, जपै भड़धार मुखं जै रांम।—रा.ज. रासौ

खलल–सं०स्त्री० [श्र० ख़लल] १ रोक, श्रवरोध, बाधा, विघ्न।

उ०—उसने विचारी—परभात बादसाह रै बिनां बादसाही में खलल पड़सी।—सांई री पलक

क्रि०प्र०—नांखणो, पड़णो, होणो।

२ गलती, भूल. ३ हंसी, मजाक. ४ कमी। उ०—श्रावै घर करै एक पग ऊभा, खातर खलल पड़यां व्है खीज।—चंडीदांन सादू

खळळ–सं०स्त्री० [श्रनु०] १ द्रव पदार्थ या पानी के प्रचंड प्रवाह से उत्पन्न ध्वनि। उ०—खळळ चळवळ सरित खळहळ। –र.ज.प्र.

२ जंजीरों की ध्वनि।

खळळाट–सं०स्त्री० [श्रनु०] देखो 'खळळ' (रू.भे.)

खळवट–सं०पु०—युद्ध।

खळसेरणो, खळसेरबो–क्रि०स०—१ काटना. २ जलती हुई लकड़ी से झटक कर श्रंगारे श्रलग करना. ३ दाह-संस्कार के समय कपाल-क्रिया करना. ४ मोठ, मूग, ग्वार श्रादि को हिला कर व उछाल कर फलियों से श्रलग करना।

खळसाल–सं०पु० [सं० खल-शल्य] १ युद्ध. (श्र.मा.) २ रावण (श्र.मा.) ३ वज्र (श्र.मा.) ४ श्रीरामचंद्र (मि० 'खल', २)

५ विष्णु (मि० 'खळ' ३)

खळहळ–सं०स्त्री० [स० कलकल] जल-प्रवाह से उत्पन्न शब्द, कल-कल। उ०—वळ वळ कंठ विलासं हार, भुजंग गंग सिर खळहळ। —रा.रा.

खळहळणो, खळहळबो–क्रि०श्र०—१ कल-कल की श्रावाज करते हुए पानी का बहना। उ०—१ भूरा भुरजाळा श्रंबुद भळहळिया, खाळा नदनाळा वाळ्हा खळहळिया।—ऊ.का. उ०—२ धुरि श्रसाढ़ धडुकया मेह, खळहळिया खाळ्यां वहि गई खेह।—वी.दे.

२ खल-खल की ध्वनि होना या करना।

उ०—श्रसि पायगा रह्या श्राफळता। मदझर खळहळता मैमंत।—प्रिथीराज राठौड़

खळहाणो, खळहाबो–क्रि०श्र०—१ नष्ट होना.

क्रि०स०—२ विध्वंश करना, नाश करना।

खळहियोड़ो–भू०का०कृ०—पथभ्रष्ट, पतित, मर्यादाभ्रष्ट।

(स्त्री० खळहियोड़ी)

खळांखळां–वि०—खंड-खंड, टुकड़े-टुकड़े। उ०—डोह घड़ चोवड़ा फतह जंग खळांखळां, खत्री गुर रौ छएल करै नत धूंकळां।—श्रज्ञात

खळांहळ–सं०स्त्री०—जल-प्रवाह की कलकल की ध्वनि। उ०—पाव खळांहळ गंग पुनीता, की तारै श्रघ कोड़ै।—र.ज.प्र.

खलांण—देखो 'खलधांन' (रू.भे., क्षेत्रीय)

खळांत–सं०पु० [सं० खल+श्रंत] १ दुष्टों का संहार. २ शत्रुश्रों का नाश, संहार। उ०—खळांत कांत व्है खपा, दुवांत खेरते नहीं। सुगिद्ध नी धपा धपा, श्रपा श्रखेरते नहीं।—ऊ.का.

खळांभयंकर–सं०पु०—ईश्वर, परमेश्वर (नां.मा.)

खळांहळणो–क्रि०श्र०—द्रव पदार्थ का गतिमान श्रवस्था में ध्वनि करना।

उ०—रळतळि नीर जिहीं रहिराळ, खळहळि जांणि कि माझव खाळ।—वचनिका

खळाक–सं०पु० [सं० स्खलन] १ किसी रोग के मिटने पर उस रोग-संबंधित परहेज तोड़ने का शब्द या भाव. २ कपड़ा बुनने में नली चलाने से उत्पन्न शब्द. [सं० खल] ३ कुछ श्रमजीवी जातियों के व्यक्तियों को उनकी वर्ष भर की बेगार, सेवा-टहल श्रादि के बदले फसल में से दिया जाने वाला एक नियत एवं बंधा हुश्रा भाग। इसमें फड़को' से कुछ कम श्रनाज होता है (मि० 'फड़को')

खळाट–सं०पु० [सं० खल] १ शत्रु, वैरी. २ दुष्ट, खल।

खळाडळा–वि०—देखो 'खळांडळां'। उ०—फौजां देख न कांधी फौजां, दोयण किया न खळाडळा।—श्रां.दा.

खलास–वि० [श्र०] १ छूटा हुश्रा, मुक्त. २ समाप्त, खतम।

क्रि०प्र०—करणो, होणो।

खलासी–सं०स्त्री०—१ मुक्ति, छुटकारा, छुट्टी।

सं०पु०—२ वह व्यक्ति जो किसी यंत्र द्वारा चलने वाले वाहन के चालक की सहायता करे, यान की सफाई करे एवं यान में शक्ति प्रदान करने वाला पदार्थ यथा पैट्रोल, कोयला श्रादि डाले।

खलि–सं०पु० [सं० स्खलि] पाप, दोष। उ०—भंणै गुण तूझ तणा भगवांन, जावै खलि त्यांहे तणा श्रैमांन।—ह.र.

खलित–वि० [सं० स्खलित] १ चलायमान, चंचल. २ गिरा हुश्रा।

सं०पु० [श्र० खिलश्रत] खिलश्रत, राजा की श्रोर से सम्मान में मिलने वाला वस्त्र। उ०—सिरपेच, मोतियां री माळा, खलित, तरवार, हाथी, पालकी, इतरी निवाजस भेजी।—जलाल बूबना री वात

सं०पु० [सं० स्खलित] वीर्य्यपात (श्रमरत)

खलियोड़ो–भू०का०कृ०—१ चलचित्त. २ निर्धन।

३ भूखा. ४ डांवाडोल. ५ गिरा हुश्रा, भ्रष्ट।

(स्त्री० खलियोड़ी)

खलियौ–सं०पु० [सं० खल्ल+इयौ] जूता, पादरक्षिका।

खळीगंणो, खळीगंबो–क्रि०स०—खाली करना, उँडेलना। उ०—हुकंड कठीनै हालिया, डबी खळीगण डेण।—ऊ.का.

खळी–सं०स्त्री० [सं० खल] १ ग्वार, मोठ श्रादि के फूस का श्रोस ढेर. २ मिचलाहट। उ०—मुंहडै मिळकरणी रहै खळि उकारी रहै।—कुंवरसी सांखला री वारता

वि०—१ दुष्ट, खल, पापी. २ शत्रु । उ०—तौ पण भेटै पातला, भेटै बे सुखभाण । खग मेठै जेता खळी, जाय भेटै जमराण ।
—किसोरदांन बारहठ

सं०स्त्री०—गिलहरी ।

खळीगणौ, खळीगबौ–क्रि०स०—१ खोलना. २ खाली करना. ३ उंडेलना ।

खलीतौ–सं०पु० [अ० खरीत:] १ थैली, जेब. २ वह बड़ा लिफाफा जिसमें आज्ञा-पत्रादि भेजे जांय, खरीता ।

वि०—खाली, रिक्त । उ०—सोवै खाय करै नहैं सुक्रत, खोवै दीह खलीता ।—र.रू.

खलीन–सं०स्त्री० [सं०] लगाम । उ०—देत खलीना दोरपै नचि कंध नमाया, जंग पलानै डारिकै कसि तंग मिळाया ।—वं.भा.

खलीफा–सं०पु० [अ० खलीफ:] १ अध्यक्ष. २ अधिकारी. ३ कोई बूढ़ा व्यक्ति, खुर्राट. ४ हज्जाम, नाई. ५ उत्तराधिकारी. ६ मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी जो समस्त मुसलमानों के सर्व-प्रधान नेता माने जाते हैं ।

खलीळू–सं०स्त्री० [सं० खलीन] लगाम ।

वि० [रा०] योद्धा, वीर, जबरदस्त । उ०—अभंग पाथ हातां जसा खलीळू आंगमण, कह हर नर का जळं भड़ै कांमू ।—अज्ञात

खळू–वि० [सं० खल] पाजी, दुष्ट, नीच । उ०—नरांनाथ सजात वेपात नीची, खळू आंणियां केम जा मात खीची ।—किसोरदांन बारहठ

खले–सं०पु० [सं० खल्ल] जूती, पनही । उ०—जिण धणी विसारिया, सिरतिणादो खले ।—अज्ञात

खलेची–सं०स्त्री० [सं० स्खलीति] बुकचे जैसी सिली हुई छोटी थैली जिसमें किताबें, कपड़े आदि रक्खे जाते हैं ।

खलेचौ–सं०पु०—बुकचे जैसा सिला हुआ बड़ा थैला । (मि० 'खलेची' अल्पा०)

खळौ–सं०पु० [सं० खल] १ खलिहान, वह स्थान जहां फसल काट कर रखी, मांडी व बरसाई जाती है । अनाज और भूसा यहीं अलग किए जाते हैं । उ०—बळभद्र खळे खलां सिर बैठी, चारी पळ ग्रीधणी चिड़ ।—वेलि. २ राशि, ढेर. ३ खलिहान में तैयार किया हुआ अनाज. ४ संहार, ध्वंस ।

खलो—१ जूती, पादरक्षिका (अ.मा.) २ राज्य की तरफ से मिलने वाला भोजन (क्षेत्रीय)

खल्तौ—देखो 'खलीतौ' (रू.भे.)

खळ्योड़ौ—देखो 'खळहियोड़ौ' (रू.भे.)

खल्ल–सं०स्त्री० [सं०] १ चमड़ा । उ०—१ धरती म्हांरी म्हे धणी, ढाहण नेजा ढल्ल । किम कर पड़सी ठाकरां, ऊभा सीहां खल्ल ।
—अज्ञात

उ०—२ ऊभा सीहों केस इक, कर लेणा मुसकल्ल । पांण छतै क्यूं कर पड़ै, ऊभा सीहां खल्ल ।—बां.दा. २ जूता ।

वि० [सं० खल] १ दुष्ट. २ शत्रु । उ०—भड़ खल्ल कमल्ल बगल्ल भड़ं, धड़ लल्ल पगल्ल नहल्ल धड़ं ।—किसोरदांन बारहठ ३ भाषा ।

खल्लड़–सं०पु० [सं० खल्ल+रा० ड़] १ चमड़ी, खाल । उ०—पो खल्लड़ खो, हवा काळजै मांय सूं बड़ै नीसरै । २ जूता ।
—बरसगांठ

खल्लासर–सं०पु० [स०] ज्योतिष में दसवां योग ।

खल्ली–सं०पु० [सं०] चौरासी प्रकार के वात रोगों में से एक जिसमें रोगी के हाथ पैर मुड़ जाते हैं (अमरत)

खल्लीट–सं०पु० [सं०] वह रोग जिससे सिर के बाल झड़ जाते हैं, गंज ।

खल्लौ–सं०पु० [सं० खल्ल] जूता । उ०—मरण दे रांण नै, बोदो खल्लौ है आ रांड मरसी तो दूवै री मां बीजी आसी ।—बरसगांठ

खल्व, खल्वाट–सं०पु० [सं०] वह रोग जिससे सिर के बाल झड़ जाते हैं, गंज ।

खल्ही–सं०पु० [सं० खल्ल] सूखी पुरानी जूती ।

खवणौ, खवबौ–क्रि०स०अ०—१ खोना, व्यतीत करना । उ०—मन जांणै चढूं हाथियां माथै, खुर रगड़तां जनम खवै । नर री चीती बात हुवै नह, हर री चीती बात हुवै ।—ओपो आढ़ौ २ चमकना ।

खवांखांच–वि० [सं० स्कंधखचित्] कंधे तक (प्राय: यह स्त्रियों द्वारा पहने जाने वाले हाथीदांत के चूड़े के लिये प्रयुक्त होता है ।)

उ०—खवांखांच चूड़ै खांवद रै, उणहिज चूड़ै गई यळा ।—बां.दा.

खवांनी–सं०पु० [अ० खवानीन] 'खान' का बहु० । 'खान' की उपाधि रखने वाले लोग बड़े-बड़े सरदार । उ०—ईरांनी जस आखतां, मिळै खवांनी आय । प्रीत घणी आंबेरपति, कोटा घणी सवाय ।
—रा.रू.

खवाड़णौ, खवाड़बौ, खवाणौ, खवाबौ–क्रि०स० ('खाणौ' का प्रे०रू०) १ खिलाना. २ खाने के लिये प्रेरित करना । उ०—आ कुण जांणै गाथ अनोखी, खळ गुळ साथ खवाई ।—ऊ.का.

खवाब–सं०पु० [अ० ख्वाब] स्वप्न ।

खवायोड़ौ–भू०का०कृ०—खिलाया हुआ (स्त्री० खवायोड़ी)

खवार, खवारी–सं०स्त्री० [फा० ख्वारी] १ बरबादी, नाश ।

उ०—हुय धुरळ एम हंसी हंसार, खोसनै कियौ सरसौ खवार ।
—प्रे.रू.

२ धोखा, बुरा काम. ३ बदनामी । उ०- हूं पत तूझ गुणां बळिहारी, खाली बातां कीध खवारी ।—र.रू.

खवावणौ, खवावबौ–क्रि०स० [सं० खाद] 'खवाणौ' का प्रेरणार्थक रूप ।

खवास–सं०पु० [अ० खवास] १ राजाओं और रईसों आदि का खिदमतगार । उ०—जणां महलां खवासां सगळा अरज कराई—जे थणा दिनां सूं सब री इच्छा थी ।—सांई री पलक २ हज्जाम, नाई.

सं०स्त्री०—४ दासी, सेविका. ५ उप-पत्नी, रखैल औरत ।

उ०—१ गूजरां री नटणी उमेदी नूं उमट अचळसिंघ खवास कीवी ।
—बां.दा. ख्यात

उ०—२ हुवै वसी री वांणियौ, पातर हुवै खवास । हुवै कीमियागार ठग, निश्च हर जावै नास ।—बां.दा.

खवासण-सं०स्त्री०—१ नाई जाति की स्त्री. २ रखैल स्त्री (राजाओं व रईसों के)

खवासवाळ-सं०स्त्री०यौ० [फा० खवास+सं० बाला] १ देखो 'खवास' (५)

उ०—महाराजा अभयसिंहजी संवत् १८७५ आसाढ़ सुदी ५ नूं अजमेर मांही देवलोक हुआ । स्री पोहकरजी ऊपर दाह हुवौ । जोधपुर नूं आसाढ़ सुदी ६ नूं खबर आई । मोहिल सं खवासवाळ लुगायां सती हुई ।—मारवाड़ रा अमरावां री वारता

२ रखैल स्त्री की संतान (राजा-महाराजा)

खवासि—देखो 'खवास' । उ०—इणि भांति सूं च्यारि रांणी त्रिहि खवासि गंगाजळ सिनांन करि ।—वचनिका

खवासी-सं०स्त्री० [अ० खवास+रा० ई] १ खवास का कार्य, खिदमतगारी, चाकरी, सेवा, टहल । उ०—लारै खवासी में मुखनस बैठो मोरछड़ करै है ।—द.दा. २ इस कार्य के लिये मिलने वाली मजदूरी. ३ हाथी के होदे या गाड़ी आदि में पीछे की ओर वह स्थान जहाँ खवास बैठता है. ४ दासी, सेविका. ५ नाई जाति की स्त्री ।

खवीस-सं०पु० [अ० खवीस] सिर कटा हुआ प्रेत या भूत ।

उ०—हुवै खवीसां हाक जोगणियां वाळै जमै ।—पा.प्र.

खवैयौ-वि०—१ खाने वाला. २ (नाव) चलाने वाला ।

खवौ-सं०पु० [सं० स्कंध] कंधा, भुजमूल ।

खसंग-सं०पु० [सं० ख+संग] हवा, वायु । उ०—हुवै रथ चक्रित देव निहंग, खहा व्रत मेघ कि वेग खसंग ।—रा.रू.

खस-सं०स्त्री० [फा० खस] एक प्रकार की सुगंधित घास की जड़, गांडर घास की जड़ (अमरत)

खसकणौ, खसकबौ-क्रि०अ० [अनु०] १ धीरे-धीरे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना. २ अपने स्थान से इधर-उधर हट जाना. ३ सरकना, खिसकना. ४ विचलित होना ।

खसकणहार, हारौ (हारी), खसकणियौ—वि० ।

खसकाणौ, खसकाबौ, खसकावणौ, खसकावबौ—क्रि०स० (प्रे०रू०)

खसकिग्रोड़ौ, खसकियोड़ौ, खसक्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खसकीजणौ, खसकीजबौ—क्रि० भाव वा० ।

खसकाणौ, खसकाबौ-क्रि०स०—१ धीरे-धीरे एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना. २ अपने स्थान से इधर-उधर हटाना. ३ सरकाना, खिसकाना. ४ विचलित करना ।

खसकाणहार, हारौ (हारी), खसकाणियौ—वि० ।

खसकायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

खसकाईजणौ, खसकाईजबौ—कर्म वा० ।

खसकायोड़ौ-भू०का०कृ०—खसकाया हुआ (स्त्री० खसकायोड़ी)

खसकियोड़ौ-भू०का०कृ०—खिसका हुआ (स्त्री० खसकियोड़ी)

खसखस-सं०स्त्री० [सं० खस्खस] पोस्त का दाना जो आकार में सरसों के बराबर और सफेद रंग का होता है ।

खसखसिया, खसखसी-वि०—खसखस का, खसखस की भाँति ।

सं०पु०—खसखसयुक्त भांग । उ०—खसखसिया छांण'र मंडळी मस्त हो'र ग़ुलछर्‌रां उडावण लागी ।—बरसगांठ २ कंठ की खरखराहट ।

खसड़कौ-सं०पु० [अनु०] रगड़, खरोंच ।

खसण-सं०स्त्री०—१ खसकने की क्रिया या भाव. २ लड़ाई, युद्ध ।

वि०—युद्ध करने वाला ।

खसणौ, खसबौ-क्रि०अ०—१ भिड़ना, युद्ध करना । उ०—१ खांन अनात खस जोधांणै, नूरमली पाली रै थांणै ।—रा.रू.

उ०—२ खसै खुरसांण मरुधर रांण ।—रा.ज. रासौ

उ०—३ 'जसा' रा डीकरा विण गढ़ जोधपुर खत्री अन खसै सूखता खावै ।—बां.दा.

२ खुजली मिटाने के लिए दीवार आदि से रगड़ खाना (पशु)

उ०—१ झंखड़ खसता ग्रच्छ दवानळ दपटां झाळै, झूमर काळी सुराधेण रा पूंछ दझाळै ।—मेघ.

३ प्रयत्न करना, कोशिश करना । उ०—मींणा री एकल असवार घणी धरती रो बिगाड़ करै, तरै मींणा घणा ही खस थाका ।—नैणसी

४ खसकना । उ०—हले थाट दखणाद लग टल तोपां हसत, खसत मद मींढ़ रा नरां खागां ।—अज्ञात ५ गिरना, ढह पड़ना ।

उ०—काळी सेत व्रन पालटै पड़ै जोखिम खसै खूभी हुवै मंडप खांगी ।
—राव गांगौ

खसणहार, हारौ (हारी), खसणियौ—वि० ।

खसिग्रोड़ौ, खसियोड़ौ, खस्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खसपोस-सं०पु० [फा० ख़स-पोश] घास का आच्छादन, घास का मकान आदि के ऊपर का पाटन । उ०—जैसी भींतर बिछायत वैसो ही ढोलियौ, वैसी ही खसपोस ऊपर नूं हवादार जाळी ।
—कुंवरसी सांखला री वारता

वि०—घास से ढंका हुआ, घास से पाटा हुआ ।

खसबोई, खसबोय, खसबोह, खसबौ-सं०स्त्री० [अ० खुशबू] सुगंध, खुशबू । उ०—१ तठै भला भला भोगी भंवर होसनाक खसबोई लेण नै ऊभा रहै ।—जगदेव पंवार री वात उ०—२ वीस वीस पांवडा खसबोय रा डोरा छूटै छै, जांणै गांधी हाट पसारी छै ।
—रा.सा.सं.

उ०—३ उबटणौ करै छै, पीठी सिनांन करै छै, खसबौ लगावजै छै ।—रा.सा.सं.

खसम-सं०पु० [अ०] पति, खाविंद, स्वामी ।

मुहा०—खसम करणौ—किसी को पति के रूप में ग्रहण करना ।

कहा०—खावै-पीवै खसम री, गीत गावै वीरा रा—कृतज्ञता न मानने वाले के प्रति ।

खसर-सं०पु० [सं० ख+शर] युद्ध । उ०—खसर करता तिके असर सहु खंडिया, जीविया तिके त्रिणी लेइ जीहै ।
—धरमवरधन उपाध्याय

खसरो-सं०पु० [अ०] १ पटवारी का एक कागज जिसमें प्रत्येक खेत का नंबर, रकबा आदि लिखा रहता है. २ किसी हिसाब-किताब का कच्चा चिट्ठा. ३ सिर का मैल ।

खसाखस-सं०स्त्री०—१ कलह, युद्ध. २ वैमनस्य । उ०—रायमल नै सूरजमल घणी ही खसाखस रही, सूरजमल घणी धरती गिरवा सूधी लीयां रहै ।—नैणसी

क्रि०वि० [अनु०] देखो 'खचाखच' (रू.भे.)

खसियो-वि० [अ० खस्सी] जिसके अंडकोश निकाल दिए गए हों । बधिया, नपुंसक (पशु)

खसूं-खसूं-सं०स्त्री० [अनु०] खांसते समय होने वाली ध्वनि ।
उ०—एक डोकरी जिकी री आंखियां में सास हो, घड़ी-घड़ी खसूं-खसूं करती करती दोरी दोरी बोली ।—वरसगांठ

खसेरण-सं०स्त्री० [सं० ख+क्षरण] रजकण, धूलिका ।

खसोटा-सं०पु०—कुश्ती का एक पेंच ।

खसौ-सं०पु०—संहार, नाश ।

खस्ता-सं०स्त्री० [फा० खस्त:] १ भिड़ंत, टक्कर. २ सटाने का कार्य.

खस्म—देखो 'खसम' (रू.भे.) उ०—दुनिया दुरसि भूलो दीन, वा खस्म की कछू खबरि नांही और की आधीन ।—ह.पु.वा.

खहंड-सं०पु० [सं० खंड] १ खंड, विभाग. २ अश्व, घोड़ा ।
उ०—खहंड जूथ बळवंड सझै झुंड भड़ ततखरा, जवनथंड वहंड खागां जरींदा । सीहरा सांकळा जेम नव सहंसा, औपियो कंठ जोधार 'इंदा' ।—अज्ञात

खह-सं०पु० [सं० ख] १ आकाश, व्योम (अ.मा.) उ०—पड़ि खाळ थळ थळ ताळ पूरित खह सरूप अखेहयं ।—रा.रू.
२ धूलि, रेत ।

खहक—प्रहार । उ०—हुरलां खहकां ओभड़ी, झबरका फहे ।—द.दा.

खहण, खहणि-सं०पु०—युद्ध (रू.भे. 'खसण')
उ०—१ अखंड भड़ डाक वागी महण, तटाका, रिमां घड़ वहण आसक चहण रंभ । असम रा वहण मातां खहण अखाड़ा, खागड़ो कमंध धाड़ा अडीखंभ ।—कविराजा करणीदान

खहणो-सं०स्त्री०—युद्ध करने का भाव ।

खहणौ, खहबौ-क्रि०स०अ०—१ भिड़ना । उ०—खहो साथ जेता करै दुरग खोळा, महो रै अहो साथ देता मखोळां ।—वं.भा.
२ युद्ध करना । उ०—लाग खाई पूरे पाटां खहै कंपू खेध लागा, वहै खाटां घायलां निराटां भीमवार ।—बां.दा. ३ पशुओं का शरीर की खाज मिटाने के लिए किसी पेड़ या दीवार से शरीर का घर्षण करना. ४ गिरना. ५ स्पर्श करना, रगड़ खाना ।
उ०—समंर धुबे आंवाट होय नाद सिंधु सबद, खहण लागे गयण गुमस खागे ।—अज्ञात

४ देखो 'खसणी' (२) (मि० 'खसणी')

खहवळ-सं०पु० [सं० ख] आकाश, गगन । उ०—भिलत सार झळहळ सोर कळमळ, धरण खहवळ धड़हड़े ।—रा.रू.

खहसुधार-सं०पु० [सं० क्षत+सुधार] घी (अ.मा.)

खहावत-सं०पु० [सं० खेह+आवृत्त] धूलि से आच्छादित ।
उ०—हुवे रथ चक्रित देव निहंग खहावत मेघकि वेग खसंग ।
—रा.रू.

खहोड़णौ, खहोड़बौ-क्रि०स०—मारना ।

खहोजणौ, खहोजबौ-क्रि०भाव वा० ('खहणौ' का भाव वा०) युद्ध किया जाना, लड़ा जाना, लड़ना, भिड़ना ।

खहेड़-वि०—बलवान, जबरदस्त ।

खां [फा० खान] प्राय: मुसलमानों के नाम के आगे प्रयुक्त होने वाला शब्द । यह शब्द इतना प्रचलित हो गया है कि यह प्राय: प्रत्येक मुसलमान के संबोधन के लिए प्रयुक्त कर दिया जाता है ।

खांकोळाई-सं०स्त्री० [सं० कक्ष+अलात्] बगल में होने वाली ग्रंथि विशेष (अमरत)

खांख-सं०स्त्री० [सं० कक्ष, प्रा० कक्ख] बाहुमूल के नीचे की ओर का गड्ढ़ा, कांख, बगल ।
कहा०—१ खांख में कटारी चोर नै घोचां सूं मारै. २ खांख में छुरी'र चोर नै मूक्यां री मार—अपने पास में वस्तु के होते हुए भी उसका उपयोग न करना मूर्खता है. ३ खांख में टाबर नै सै'र में ढंढोरो—पास में कोई वस्तु होने पर भी उसका ज्ञान न होना और उसे चारों ओर ढूंढते फिरना. ४ खांखां मांय सूं हसौ निकळै है—बहुत अधिक खिलखिला कर हँसने वाले के प्रति. ५ खांख में खांणी नै अंतर मोलावै—अपनी सामर्थ्य से अधिक कार्य करने पर । (पैसे संबंधी)

खांखर, खांखरी-सं०स्त्री०—१ एक बार ही बच्चा देने वाली ऊँटनी.
२ एक प्रकार का शस्त्र विशेष (अ.मा.)
३ वृद्धा, बूढ़िया ।

खांखळ-सं०स्त्री०—१ आकाश में छा जाने वाली गर्द ।
देखो 'खंख' । उ०—सूरज खांखळ रतन सळ, पोहमी रिण जळ पंक । कायर कटक कळंक, कुकवी सभा कळंक ।—बां.दा. २ अभिलाषा ।
उ०—ज्यूं ब्याव में दारू पी नै मन री खांखळ काढ़ी ।—बां.दा.
मुहा०—खांखळ काढ़णी—इच्छापूर्ति करना ।

खांखळणौ, खांखळबौ-क्रि०स०—आकाश का धूलि से आच्छादित होना.
उ०—गैण बीच ऊभी खांखळ जोय, जगत रो भेक अधूरी मान ।
—सांक

खांखळियोड़ौ-भू०का०कृ०—गर्द या धूलि से आच्छादित ।
(स्त्री० खांखळियोड़ी)

खांखळियो-वि०—(ऐसा दिन) जब आकाश में खूब गर्द छाई हुई हो ।

उ०—गूडळियौ तोड़ गंग जळ, खांखळियौ तोड़ दीह। खरो विलाती खीमड़ो, सांकळियौ तोड़ सीह।—आभल-खींवजी री वात

खांखोळणौ, खांखोळबौ—देखो 'खंखोळणौ' (रू.भे.) उ०—किण भांत रा हुक्का छै? सोनै रा, रूपै रा, विदरी, खांखोळ ठाढ़ा पांणी सूं भरजै छै।—रा.सा.सं.

खांगौ-वि०—वृद्ध।

सं०पु०—वीर पुरुष। उ०—चावे चिहुरायै चुंडावत, श्रौ खांगे कीधौ अलग।—अज्ञात

खांगड़ौ-वि०—१ अक्खड़, उद्दंड. २ योद्धा, वीर (डिं.को.) ३ टेढ़ा।

सं०पु०—राठौड़ों का उपमावाचक शब्द। उ०—आपरै भरोसै राग जांगड़ो दिराय ऊभो, साथ ऊभो जनेबां खांगड़ौ 'मांनसींग'। —नवलजी लाळस

खांगारौ-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खांगीबंध-सं०पु०—वह व्यक्ति जो तिरछा साफा बांधे (यह प्राय: राठौड़ों के लिये प्रयुक्त होता है।) उ०—लंघी अजाद दध लहर लेत, खांगीबंध चढ़िया वीर खेत।—वि.सं.

खांगौ, खांघड़ौ, खांघौ-वि० (स्त्री० खांगी) १ टेढ़ा, बांका, तिरछा, वक्र। उ०—१ कळी सेत ग्रन पालटै पड़े जोखिम कळस, खसै खूंभी हुवै मंडप खांगौ।—राव गांगौ

कहा०—कई बांवळिया खांगा कर लेई—तू मेरा क्या कर सकता है (विरोध होने पर)

यौ०—खांगौ-बांकौ।

२ वीर, बहादुर।

सं०पु०—राठौड़ वंशीय क्षत्रियों के लिए प्रयुक्त होने वाला वीरता-सूचक शब्द।

खांच-सं०स्त्री० [सं० खच] १ बाहुओं पर स्त्रियों द्वारा धारण किया जाने वाला चूड़ा जो सुहाग-चिन्ह माना जाता है. २ आग्रह, मनुहार (मा.म.)

खांचणौ, खांचबौ-क्रि०स०—देखो 'खींचणौ' (रू.भे.)

खांचणहार, हारौ (हारी), खांचणियौ—वि०।

खांचाणौ, खांचाबौ—क्रि०स०।

खांचिग्रोड़ौ, खांचियोड़ौ, खांच्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खांचातांण, खांचातांणी—देखो 'खींचतांन' (रू.भे.) उ०—१ बड़ै भार जूपै वहे, करै न खांचातांण। जब तू तांडै धवळ जिम, तौ तांडणौ प्रमांण।—बां.दा. उ०—२ पीवण नै घट में नहीं पांणी, तिरिया पुरसां खांचातांणी।—ऊ.का.

खांचौ-सं०पु०—१ दो वस्तुओं के बीच की जगह, संधि, जोड़. २ खींच कर बनाया हुआ निशान, गठन, खचन. ३ मकान आदि का आगे निकला हुआ भाग, कोना. ४ तनाव, खींचने की क्रिया या भाव।

खांट-सं०स्त्री० [सं० घट = घाट] आसानी से दूध न दुहने देने वाली गाय।

उ०—खांट बुआ दिन रात रहे खुस, लात लई पय पात न पीनै। —ऊ.का.

कहा०—खांट गाय आप रौ दूध को देवैनीं दूजी री ढोळाय दे—दुष्ट गाय अपना दूध नहीं देती और अन्य का दूध ढुला देती है; दुष्ट न स्वयं लाभ पहुँचाता और न दूसरों को पहुँचाने देता है।

खांड-सं०स्त्री० [सं० खंड] बिना साफ की हुई चीनी, कच्ची शक्कर।

उ०—विणजारी ए लोभण गुड़ डळियां में जाय, चिमठ्यां रे चिमठ्यां जावै खांडड़ी।—लो.गी.

कहा०—१ खांड खायां गांड गळै—अधिक मीठा नहीं खाना चाहिये. २ खांड गळै जद सगळा आय ज्यावै, गांड गळै जद कोई को आवै नी—खाने में या संपत्ति में सब साथ देते हैं किन्तु कष्ट में या विपत्ति आने पर कोई साथ नहीं देता. ३ खांड में खायौ जाय ना कोई गुळ में खायौ जाय—किसी भी प्रकार वश में न किये जा सकने पर।

(अल्पा०—खांडड़ी)

खांडणोत-वि०—संहार करने वाला, मारने वाला। उ०—अर खांडणोत बळ बुध असंक, छज मांडणोत हरियंद निसंक।—शि.सु.रू.

खांडणौ-सं०पु०—चावल व अनाज आदि ऊखल में कूटने का उपकरण, मूसल।

खांडणौ, खांडबौ-क्रि०स० [सं० खंड] १ (अनाज आदि को) मूसल से कूटना। उ०—तीजस तुसणां तिल तिन खांडे, तीन-गुणां आगे पग मांडे।—ह.पु.वा. २ मारना, काटना, संहार करना। उ०—खग-धारां गोरा सिर खांड़ूं, बैरी दळ पाड़ूं भर बाथ।—चंडीदांन मीसण

खांडणहार, हारौ (हारी), खांडणियौ—वि०।

खांडिग्रोड़ौ, खांडियोड़ौ, खांड्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खांडण्यू—देखो 'खांडणौ' (रू.भे., डिं.को.)

खांडबारस, खांडबारौ-सं०पु०—मृत्यु के बारहवें दिन मृतक के निमित्त किया जाने वाला मृत्युभोज तथा इस भोज पर संबंधियों या मित्रों द्वारा दिया जाने वाला रुपया।

खांडभील-सं०पु०—एक पहाड़ी जाति विशेष (नैणसी)

खांडरणौ, खांडरबौ-क्रि०स०—काटना, मारना। उ०—जोगी मंडळ खूर, रतनौ कमधज रूपसी। विढ़तां सुरबंधव वर्ण, खांडर तौ खळ खूर।—वचनिका

खांडल्यू-सं०पु० (स्त्री० खांडाळी) खंडित सींग का सींगधारी पशु।

खांडव-सं०पु० [सं०] एक प्राचीन वन जिसे अर्जुन ने जलाया था, नंदनवन (महाभारत)

खांडहळ-सं०स्त्री० [सं० खड्ग] तलवार (डिं.को.)

खांडावेळराय-सं०पु०—चारण-वंशोत्पन्न एक देवी जिसका दूसरा नाम खूबड़ देवी है।

खांडाधर, खांडाधार, खांडायत-सं०पु० [सं० खड्ग+धारिन्] तलवार-धारी योद्धा। उ०—१ साथि विकट जोध्रु, खांडाधर मुहल

आगिळइ आव्यउ ।—कां.दे.प्र. उ०—२ हण्या हबसी खांडाधार ।
—कां.दे.प्र.

उ०—३ सवा लाख खांडायत सरसु, पाखरीए केकांणे । समीभ्रांणे राउळ कान्हड़दे, आव्यू छडे पीयांणे ।—कां.दे.प्र.

खांडाळी—सं०स्त्री० (पु० खांडल्यू) टटे हुए सींगों वाली गाय अथवा भैंस (रू.भे. 'खांडी')

खांडियौ—सं०पु० [सं० खंडित] १ टूटे हुए सींगों वाला पशु ।

कहा०—खांडियौ भेंडइ धराड़ो घालै, हींगालल्या ना हींग भागै—बिना सींग वाले बैल और मुड़ सींग वाली गायें सहायता के लिए जोर की आवाज करती हैं और सींग वालों के सींग टूटते हैं । साधन-हीन व्यक्ति अपने संकटकाल में साधन-सम्पन्न व्यक्तियों को लड़ा कर साधनहीन कर दिया करते हैं ।

२ एक कृषि उपकरण ।

वि०—जिसका कोई अंग या हिस्सा टूट गया हो ।

खांडीव—देखो 'खांडव' (रू.भे.) उ०—कान्हर मारन कंस, हरी हिरणाक्ष विदारण । हर मारण मनमत्थ पारथ खांडीव प्रजारण ।
—ला.रा.

खांडु—देखो 'खांडौ' (रू.भे.) उ०—आगइ अह्म वरांसउ वीतउ, हिवडां छळ नवि छांडुं । असपति ना दळ सांह्मउ चाल्यउ, लेइ ऊघाडउं खांडूं ।—कां.दे.प्र.

खांडेराउ—वि०—खड्गधारी योद्धा । उ०—घण अहिरण घण घाउ सांम्है चाचरि साबवां वाहै साहै वीठलौ खांडौ खांडेराउ ।
—वचनिका

खांडेल, खांडेलौ—सं०पु० [सं० खंग] १ देखो 'खांडौ' (रू.भे.)

उ०—तरवार उडै हुय टूक ताळ, खांडेल रमै किरबंध खाळ ।
—पा.प्र.

२ होली जलने के दिन प्रत्येक घर से उस पर डाले जाने वाले छोटे-छोटे लकड़ी के डंडे जिन्हें गांव का खाती रीति-अनुसार प्रत्येक घर में दे जाता है (हिन्दू)

कहा०—होळी आळा खांडेला है—बेकार वस्तु; उस वस्तु के प्रति जिसकी कोई उपयोगिता न हो ।

३ देखो 'खडूलौ'. ४ जंगली जमीकंद जो आलू की तरह का होता है और वर्षा ऋतु में होता है ।

खांडौ—सं०पु० [सं० खड्ग] १ खड्ग, तलवार, दुधारी तलवार (डिं.को.)

उ०—खांडा हंदी धार सिर, हुसियार हलंदा ।—केसोदास गाडण

कहा०—खांडे री धार बैणी है—बहुत कठिन कार्य के प्रति, खतरनाक कार्य के प्रति ।

२ टूटे हुए सींगों का पशु (स्त्री० खांडी)

वि० (स्त्री० खांडी) जिसका कोई अंग या हिस्सा टूटा हुआ हो, भग्न, अपूर्ण, खंडित । उ०—पूनम पूरौ ऊगसी, रती न खांडौ होय । उळगांणा री गोरड़ी, बैठी निरमळ होय ।—अज्ञात

यौ०—खांडौ-खोबरौ ।

खांडौखोबरौ—वि०—टूटा हुआ, भग्न ।

खांण—सं०पु०—१ भोजन, भोजन की सामग्री (ह.नां.)

यौ०—खांण-पांण, खान-पान ।

२ भोजन करने का ढंग ।

सं०स्त्री० [सं० खानि] ३ वह स्थान जहां से धातु, पत्थर आदि खोद कर निकाले जांय, खदान. ४ आधार स्थान, उत्पत्ति स्थान ।

उ०—देवी ब्रह्म तूं विस्णु अज रुद्र रांणी. देवी वांण तूं खांण तूं भूत प्रांणी ।—देवि.

कहा०—खांण व्है जैड़ा नीपजै—कोई वस्तु अपने स्थान के अनुसार ही उत्पन्न होती है ।

५ जहां कोई वस्तु बहुत सी हो, खजाना. ६ चार प्रकार की सृष्टि—उद्भिज, स्वेदज, अंडज और जरायुज । उ०—चौरासी लख च्यार खांण परठै परमांण ।—केसोदास गाडण

७ कूओं में पानी की कमी होने पर अन्दर से निकाला जाने वाला मलबा ।

खांणकी—सं०स्त्री०—रिश्वत, घूस ।

खांणखंडौ, खांणखंवौ—वि०पु०—भोजन-प्रिय, (स्त्री० खांणखंडी)

खांणघर—सं०पु० [सं० खानि+गृह = घर] लोहा (अ.मा.)

खांणास—वि०—१ खाने वाला । उ०—रैणां डंड अडंडा गवावै भींच वाघरा का, खागरा का भूरडंडां अरंद्रां खांणास ।
—गिरवरदांन कवियौ

२ नाश करने वाला ।

खांणि, खांणी—सं०स्त्री० [सं० खानि] १ खान, उत्पत्ति-स्थान, खदान.

२ प्रकार, ढंग । उ०—च्यारि खांणिका जीव सब, गरक फरक बिसतार ।—ह.पु.वा.

खांणूंकरण—सं०पु०—हलवाई (डिं.को.)

खांणेराव—सं०पु० [फा० खान+सं० राट्] बादशाह ।

खांण्य—देखो 'खांण' (रू.भे.) उ०—राजा खांण्या भोगवौ, रसला चोथ सवाय ।—रा रू.

खांत, खांति—सं०स्त्री० [सं० ख = इंद्रिय (मन) इसका अन्त = निश्चय]

१ विचार, ध्यान, ख्याल । उ०—१ सरकार रौ लोग खासखेळी सो तमासगीर गयौ हुतौ सो खांत राख कजियौ न कियौ ।
—डाढ़ाळा सूर री वात

उ०—२ त्रिभुवन कहतां स्रीक्रसणजी खांति लागा रथ घणी उतावळा खेडै छै ।—वेलि. टी. २ दक्षता, चतुराई ।

उ०—कूडै ऊतारै सुकवी, गाढ़ी महनत गीत । लाल उतारै खांत सूं, इसड़ो कवि अनीत ।—बां.दा. ३ इच्छा, रुचि ।

उ०—१ मद लेतां आखै मती, भोळी चाबुक भांत । छकियौ लाखां खांगसी, खाती डाहळ खांत ।—वी.स. उ०—२ एक खांति पूरवउ अम्हारी, कटक चिहुं दिसि जोल्यूं ।—कां.दे.प्र.

४ व्यवस्था। उ०—मेड़तिया पण सज सारी साथ लेय सहर कोट रै दरवाजे बाहर आया खड़ा रहिया। फौज री खांत करै छै सो उहां पग दोय अणी कीवी।—मारवाड़ रा अमरावां री वारता

५ उमंग। उ०—संसारी रा टूकड़ा, नव-नव आंगुळ दांत। सीरा लाड लापसी, खावै कर कर खांत।—सगरांमदास

६ लगन। उ०—१ कोड़ अघ ओघ जिगा नांम अरघै कटै। रे 'किसन' खांत कर क्यूं न तिणनै रटै।—र.ज.प्र. उ०—२ ढोला मन प्रति चिंता घणी, खांति घणी मारुवणी तणी।—ढो.मा.

७ सावधानी. ८ बुद्धि. ९ भेद, भिन्नता। उ०—सो कोई सबब सूं चुगलां रा चित्त में खांत पड़ी।—नी.प्र.

क्रि०वि०—१ गौर से, ध्यान से २ विचारपूर्वक।

उ०—अरि खांत अकब्बर ऊपरै, इसी भांत ऊरव्वडा।—रा.रू.

खांतिलो, खांतीलो–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

वि०—१ चतुर, होशियार। उ०—हमकै नै ऊनाळै खांतोला, घर वसो जी म्हांरा राज।—लो.गी. २ बुद्धिमान।

खांद—देखो 'खांध' (रू.भे.)

खांदियौ–सं०पु० [सं० स्कंध+रा० इयौ] १ शव को कन्धे पर रख कर उठाने वाला. २ शव-यात्रा में सम्मिलित होने वाला।

कहा०—१ खांदियौ खांद दियै ते खाइन जाय खवड़ावीने ने जाय—मरे हुए व्यक्ति को कोई कंधे पर उठा कर यथास्थान ले जाने में योग देगा तो मृत्यु-भोज को खाकर जायगा कुछ खिला कर नहीं; कोई कुछ आशा में ही कार्य करने को तैयार होता है.

२ खांदियौ खांद दे लारै थोड़ंई बळै—मरे हुए व्यक्ति को लोग कन्धे पर उठा कर श्मशान तक ले जायेंगे उसके साथ जलेंगे नहीं; इसी तरह सहायक से स्वयं की तरह हानि सहने की आशा करना व्यर्थ है।

खांदेड़ी—देखो 'खांधेड़ी' (रू.भे.)

खांध–सं०स्त्री० [सं० स्कंध] १ शव को श्मशान भूमि तक उठा कर ले जाने का भाव या क्रिया।

कहा०—कपूत पूत खांध नै कांम आवै—बेटा कपूत भी हो तो भी कन्धा देने के काम तो आता ही है।

२ देखो 'खांधेड़ी' (रू.भे.)

खांधड़ौ–सं०पु० [सं० स्कंध] कन्धा। उ०—मूंढ़ो खांधो मेल हाथ खांधड़ो हिलावै, सीस धरणि दिस सिथळ मुरड़ खांधड़ो मिळावै।

—ऊ.का.

खांधोवाळ, खांधीवाळौ–वि०—किश्तों पर रुपया कर्ज देने वाला।

खांधेड़ी–सं०स्त्री०—मिट्टी खोदने का स्थान, मिट्टी की खदान।

खांधौ–सं०पु० [सं० स्कंध] बाहू का ऊपरी भाग जो हँसली से जुड़ा रहता है, कन्धा, पीठ। उ०—नरेस स्री सुरजन पुत्र रौ खांधौ थापलि ह्रदय हूं लगाइ बिस्वासियौ।—वं.भा.

मुहा०—खांधौ थापणौ—शाबाशी देना।

खांन—१ देखो 'खांण' (रू.भे.) २ कुए में एकत्रित मिट्टी, कचरा आदि।

खांनखांना–सं०पु० [फा० खानेखान] १ सरदारों का सरदार.

२ मुगल राज्य में मुसलमानों को दी जाने वाली उपाधि।

खांनगी–वि० [फा०] जिससे बाहर वालों का कुछ संबंध न हो, निज का, आपस का, घरेलू।

खांनड़ौ–वि०—वीर, बहादुर।

सं०पु० [तु० खान+रा० प्र० ड़ौ] मुसलमान, यवन।

उ०—खारो मीठै सूं सरस है, भलै वतेरा पांनड़ा। देम विदेस दुवायां वणी, खुसी डाकघर खांनड़ा।—दसदेव

खांनजादौ–सं०पु० [तु० खान+फा० जादः] (स्त्री० खांनजादी)

१ अमीर का पुत्र, ऊँचे घराने का पुत्र। उ०—बीबी खांनजादी नै कुळी की त्रास दीनी।—शि.वं. २ अच्छी जाति के वे हिन्दू जिन्होंने मुसलमानों के राज्यकाल में मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया था. ३ मुसलमान शाहजादा। उ०—लई दीनतई रहे खांनजादे कहै कहै खो गये मेच्छ बंरे विवादे।—ला.रा.

खांनदांन–सं०पु० [फा० खानदान] वंश, कुल, घराना।

खांनदांनी–वि० [फा० खानदानी] १ ऊँचे वंश का, अच्छे कुल का.

२ वंश-परंपरागत, पुश्तैनी, पैतृक।

खांनदेस–सं०पु० [फा० खानदेश] बम्बई प्रांत का एक प्रदेश।

खांनपांन–सं०पु०यौ०—१ खाना-पीना खाने-पीने का ढंग या क्रिया.

२ खाने-पीने का संबंध।

खांनबहादुर–सं०पु० [फा० खानबहादुर] भारत सरकार द्वारा मुसलमानों व पारसियों को दिया जाने वाला एक खिताब (ब्रिटिश काल में)

खांनबाज–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खांनसांमौ–सं०पु० [फा० खानसामा] अंग्रेजों, मुसलमानों आदि का भंडारी या भोजन बनाने वाला। उ०—तद बादसाह खांनसामे नूं फुरमाई—जे खजांने सूं नकदी दिरावौ, जे रिसाला तयार कर देवौ।

—जलाल बूबना री वात

खांनांणौ–सं०पु०—१ भोजन. २ भोजन-योग्य पदार्थ. ३ यवनों का प्रदेश। उ०—खांनांणे खंडे खड़ग बळ खाधो, लाधो औ अद आज सलाह।—द.दा.

खांनाखराब–वि०यौ० [फा० खानःखराब] १ चौपट करने वाला.

२ आवारा. ३ पथभ्रष्ट. ४ दोगला. ५ जिसका सब कुछ नष्ट हो गया हो अभागा।

खांनाजंगी–सं०स्त्री० [फा० खानाजंगी] आपस की लड़ाई, युद्ध।

उ०—राठोड़ नरसिंघदास कला रायमलोत री सूरसिंघ सुंदरदास रांमसिंघोत आंसूं भाव का खांनाजंगी हुई।—बां.दा. ख्यात

खांनाजाद–वि०यौ० [फा० खानाजाद] १ घर में पैदा या पाला-पोसा हुआ. २ सेवक, गुलाम, दास (ह.नां.) उ०—जोधांणे री नायबी, जो आपै पतसाह। खिजमत खांनाजाद री, तो देखै दोद राह।

—रा.रू.

खांनातलासी–सं०स्त्री० [फा० खानातलाशी] किसी खोई, छिपी या मन-चाही चीज के लिये मकान के अंदर छानबीन करना।

खांनापुरी–सं०स्त्री०यौ० [फा० खाना+सं० पूर्ण] किसी चक्र या सारणी के कोठों में यथास्थान संख्या या वाक्य आदि लिखना, नक्शा भरना।

खांनाबदोस–वि० [फा० खानाबदोश] बिना स्थायी घर-बार वाला।

खांनाभार–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खांनाबधार–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खांनासुमारी–सं०स्त्री० [फा० खानाशुमारी] किसी गांव या नगर आदि के मकानों की गिनती का कार्य।

खांनी–क्रि०वि०—तरफ, ओर।

खांनेड़ी—देखो 'खांधेड़ी' (रू.भे.)

खांनेजाद–सं०पु० [फा० खानाजाद] देखो 'खांनाजाद' (रू.भे.)

उ०—दरसण करि भेंट कीवी अर अरज करण लागौ—खांनेजाद री प्रतिग्या आप राखी रहसी।—पलक दरियाव री वात

खांनौ–सं०पु० [फा० खानः=गृह, घर] १ वंश, कुल।

मुहा०—खांनौ खराब होणौ—वंश या कुल के व्यक्तियों का खराब होना।

२ आलय, घर, मकान।

यौ०—कारखांनौ, डाकखांनौ दवाखांनौ।

३ अलमारी, मेज आदि में चीजें रखने के लिए पटरियों या तख्तों के द्वारा किये गये विभाग या खंड. ४ सारणी या चक्र का विभाग, कोष्टक।

खांप–सं०स्त्री०—१ गोत्र, वंश. २ वर्ण भेद, जाति। उ०—चांपज्यौ मती बांरा चरण, कांप-कांप री कीचड़ौ। फांफरी दे'र मुख फेरज्यौ, खांप खांप रौ खीचड़ौ।—ऊ.का.

खांपण–सं०स्त्री० [अ० क़फन] शव ढंकने का वस्त्र, कफन।

उ०—धूत बजारी धरम री, हियें न मांनें हील। मन चलाय खांपण मही, काढ़ै नफौ कुचील।—बां.दा.

कहा०—खांधै खांपण लेणी—मरने के लिए हर समय प्रस्तुत रहना, मरने से न डरना।

खांपणियौ–वि०—१ मारने वाला, नाश करने वाला. २ शव को वस्त्र से ढंकने वाला।

खांपाछेक–सं०पु०—सर्वनाश, सत्यानाश, संहार।

खांपौ–वि०—कलह-प्रिय, लड़ाकू (यौ०—खांपौ-खरड़ौ, खांपौ-खीलौ) घोचौ (लकड़ी का बेकार टुकड़ा)

खांपौखरड़ौ, खांपौखीलौ–वि०यौ०—१ लड़ाकू, कलह-प्रिय. २ दुष्ट. सं०पु०—स्वतंत्र मिजाज का छोटे वैभव का राजपूत जो टंटा-फिसाद करने में हिचकता नहीं।

खांबी—देखो 'खांभी'।

खांभ—देखो 'खंभ' (रू.भे.)

खांभणौ, खांभबौ–क्रि०स०—मारना, नाश करना। उ०—खड़गबळ खांभिया किता 'खेताहरै', सींधुरां लहसकरां सहस सुरतांण।

—महारांणा सांगा री गीत

खांभिणौ, खांभिबौ–क्रि०स० [सं० स्कंभ] १ रोकना। उ०—रखवा तणां खांभिया रहिया, दहवारी थांभिया दळ।—अज्ञात

२ देखो 'खांभणौ' (रू.भे.)

खांभी–सं०पु०—लाव में कीली जड़ने वाला व लाव से जुते बैलों को हाकने वाला। उ०—गोसी थारौ नांव कासू कही, जी नूरौ छै, खांभी नूं कही हाकल मार थारौ नांव कासू, उण कही जी जमाल छै।

—नापे सांखले री वारता

खांमंद–सं०पु० [अ० ख़ाविंद] पति, स्वामी।

खांम–सं०पु० [सं० स्कंभः] १ संधि को जोड़ने का कार्य. २ मुहरबंद करना, किसी पदार्थ द्वारा किसी बर्तन का मुंह बंद करने का कार्य।

क्रि०प्र०—करणी, देणी, लगाणी, होणी।

३ खान। उ०—ओ कुण सींचै कूवड़ी ए, ओ कुण काढ़ै छै खांम।—लो.गी. ४ दल, सेना। उ०—खळभळ होय असतां खांम, जपै भड़ धार मुखै जै रांम।—रा.ज. रासौ ५ पहाड़ का समीपवर्ती स्थान, कन्दरा। उ०—सहर छोटी सो भाखरी री खांम, आगवारै वडौ मैदांन, ऊनाळी निपट धणी।—नैणसी

खांमखा, खांमखामी–क्रि०वि० [फा० ख्वाह+म+ख्वाह] नाहक, व्यर्थ में।

खांमचाई–सं०स्त्री०—चतुराई, हस्तकौशल।

खांमची–वि०—हस्तकौशल में प्रवीण, निपुण, दक्ष।

खांमचीपण, खांमचीपणौ–सं०पु०—हस्तकौशल, दक्षता, चतुराई।

खांमण–सं०पु० [सं० स्कंभन्] देखो 'खांम' (१, २)

उ०—रीत अनीत फैलियौ रावण, खमियौ नहीं अभायां खांमण।

—रा.रू.

खांमणियौ–सं०पु०—१ छोटा गड्ढा. २ चूल्हे के अग्र भाग (आगड़) की बनी दीवार में बर्तन रखने निमित्त बनाया हुआ स्थान।

वि०—मुहरबंद करने वाला, रोकने वाला (क्षेत्रीय)

खांमणौ–सं०पु०—कद।

उ०—छोरी री मासी हंस'र कयौ–पण कंवरजी रौ खांमणौ ओछौ है अर छोरी दोलड़ै हाड है।—वरसगांठ

खांमणौ, खांमबौ–क्रि०स० [सं० स्कंभन] गीली मिट्टी, आटे या अन्य किसी पदार्थ से किसी पात्र का मुंह बंद करना।

खांममोती–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खांमिंद–सं०पु० [अ० ख़ाविंद] देखो 'खामंद' (रू.भे.)

खांमी–सं०स्त्री० [फा० ख़ामी] १ कच्चापन. २ कमी, अभाव।

उ०—खटकै उर खांमीह, नांमी नृप कम नीपजै।—अज्ञात

क्रि०प्र०—करणी, नांखणी, पड़णी, भरणी, होणी।

खांमेड़ौ–सं०पु०—लाव से कीली जोड़ने तथा निकालने वाला।

उ०—मोड़ौ मत कर तेवण वाळा, जाखोड़ौ अरड़ावै। खीली खोलदे खांमेड़ौ, वारौ भरियौ बोलै रे।—रेवतदांन

खांमोखांम ,खांमोखा—देखो 'खांमखा' (रू.भे.)

खांमोस–वि० [फा० खामोस] चुप, मौन ।

क्रि०प्र० —करणौ, रै'णौ, होणौ ।

खांमोसी–सं०स्त्री० [सं० खामोशी] मौन, चुप्पी ।

खांवंद, खांविंद—देखो 'खांविंद' । उ०—नायक तीजी नार रो, मो दुखदायक मार । धरणीधर खांवंद धकै, परणी करै पुकार ।
—बां.दा.

खांसड़ौ–सं०पु०—जीर्ण-शीर्ण जूता, फटा जूता ।

खांसणौ, खांसबौ–क्रि० [सं० कासनम्, प्रा० खांमना] कफ या और कोई अटकी हुई चीज निकालने या केवल शब्द करने के लिए वायु को झटके के साथ कंठ से बाहर निकालना ।

खांसी–सं०स्त्री० [सं० कास] १ कफ या और कोई अटकी हुई चीज निकालने या स्वाभाविक रूप से अपने आप निकलने या केवल शब्द करने के लिए वायु को झटके के साथ कंठ से बाहर निकालने से उत्पन्न शब्द या क्रिया. २ इसी प्रकार का एक रोग ।

खा–सं०स्त्री०—१ खाई. २ पृथ्वी. ३ लक्ष्मी (एका०)

सं०पु०—४ पहाड़. ५ कमल (एका०)

खाअड़ौ—देखो 'खांसड़ौ' (रू.भे.)

खाइयाळ–वि०—१ खाने वाला. २ कपटी. ३ दुष्ट ।

खाई–सं०स्त्री० [सं० खानि, प्रा० खाइ] वह गड्ढा जो किसी गाँव, किले, बाग या महल आदि के चारों ओर रक्षा के लिए खोदी गई हो, खंदक उ०—पेट कपूत सपूत परखियौ, खोद न दीनी खाई मै ।—ऊ.का.

पर्याय०—खातिका, परिखा ।

कहा०—१ आगै खाडौ लारै खाई—जब आगे-पीछे दोनों ओर खतरा हो. २ खाई करै उपाई—खाई रक्षा का उपाय करती है ।

खाउकड़ौ—देखो 'खाऊ' (अल्पा०)

खाऊ–वि०—१ बहुत खाने वाला, पेटू । उ०—मनै तौ बाबूजी ! खाली कड़ाकंद ही दिया, देखियौ'क बेटौ किसौ'क चोखौ खाऊ है ।
—वरसगांठ

मुहा०—आटा रौ खाऊ—आलसी व्यक्ति के लिए ।

कहा०—घणखाऊ नै कम कमाऊ री कदे नहीं बावड़ै—अधिक खाने वाला व कम कमाने वाला सुखी नहीं रह सकता ।

(अल्पा० 'खाउकड़ौ') (मि. 'चाऊ')

२ मुंह से काटने वाला (बुरी आदत)

खाओ, खाबो—सूरत, शक्ल, आकृति ।

खाक–सं०स्त्री० [फा० खाक] १ धूल, मिट्टी. २ राख, भस्म ।

मुहा०—खाक करणौ—नष्ट करना, जला डालना ।

[रा०] ३ पृथ्वी, भूमि (ना.डिं.को.) ४ देखो 'खांख' ।

कहा०—१ खाक ऊगाड़ियां काळजौ दीसै—बहुत निर्धन के प्रति । २ खाक जळ सो जळ, बांह बळ सो बळ—जरूरत होने पर या हर समय बगल में लटकती केतली का पानी ही काम में आता है, उसी तरह हर समय या मौका पड़ने पर खुद की भुजाओं का बल ही सहायता करता है ।

वि०—तुच्छ, अकिंचन ।

खाकरोब–सं०पु० [सं० खाकरोब] झाड़ू देने वाला, भंगी (डिं.को.)

खाकलौ—देखो 'खाखलौ' (रू.भे.)

खाकी–सं०पु०—१ राख या भस्मी लगाने वाले साधू या संन्यासी. २ वैरागी साधुओं का एक संप्रदाय या इस संप्रदाय का साधु (मा.म.) ३ शिव, महादेव (नां.मा.) (रू.भे. 'खाखी')

वि०—मिट्टी के रंग का भूरा ।

खाकौ–सं०पु० [फा० खाक] १ चित्र आदि का डौल, ढाँचा, नकशा, मानचित्र. २ किसी काम का तखमीना. ३ कच्चा चिट्ठा, मसौदा (रू.भे. 'खाखौ')

खाख—१ देखो 'खाक' (३) (डिं.को.) उ०—ज्यांरै खाख बिछावणी, ओढ़ण नै आकास । ब्रह्म पोख संतोख वित, पूरण सुख त्यां पास ।—बां.दा.

२ देखो 'खाक' (२) उ०—पग पग जम डाका पड़ै, बांका धार विवेक । हुत भुक बिच जळ खाख है, उडणौ है दिन एक ।—बां.दा.

[सं० कक्ष] ३ देखो 'खांख' (रू.भे.) उ०—हरड़ बहेड़ा आंवळा, घी सक्कर में खाय । हाथी दाबै खाख में, साठ कोस ले जाय ।—अज्ञात

खाखड़ियौ—देखो 'काकड़ियौ' (रू.भे.)

खाखड़ी—देखो 'काकड़ी' (रू.भे.)

खाखण–सं०स्त्री०—राख या भस्मी लगाने वाली स्त्री ।

खाखबलाई—देखो 'खांकोळाई' (रू.भे.)

खाखर—देखो 'खाखरौ' (१) (महत्व)

खाखरियौ—१ देखो 'खाखरौ' (१) (अल्पा०) २ पलाश ।

खाखरौ–सं०पु० [सं० खरखर] १ चना, मोठ आदि की बनी हुई पतली रोटी. २ गेहूँ के आटे की ठंडी सूख कर कड़ी हुई रोटी. ३ पलाश का वृक्ष (अल्पा० 'खाखरियौ')

कहा०—१ खाखरा के तौ तीन का तीन पांन—ढाक के तो वर्षा ऋतु आने पर भी एक डंठल में तीन पत्ते ही लगते हैं । स्थिर भाग्य वाले संपत्ति और विपत्ति में समान रहते हैं. २ खाखरा नी खळी हूं जांणे जग ना सवाद—पलास की गिलहरी डाल-पक आम के स्वाद को क्या जाने ? निम्न श्रेणी का व्यक्ति उच्च श्रेणी की वस्तु का अनुभव नहीं रखता ।

४ ऊँट के चमड़े का एक पोला उपकरण जिसमें कंकड़ डाल कर लकड़ी के सहारे लटका कर खेत में पक्षी उड़ाने के लिए बजाते हैं. [फा० खाक+रा० प्र० रौ] ५ होली का दूसरा दिन, धुलेंडी. ६ दीपावली के दूसरे दिन गोवर्द्धन पूजा के त्यौहार पर गाय अथवा भैंस के मस्ती अथवा उन्माद पर आने का भाव या क्रिया ।

खाखलौ-सं०पु०—गेहूं व जौ के डंठलों के महीन-महीन टुकड़े जो गेहूं का दाना निकालने पर बच रहते हैं। यह पशुओं का खाद्य है, भूसी।

यौ०—खाखला-पांणी।

खाखी—१ देखो 'खाकी' (रू.भे.) उ०—जटा कनफटा जोगटा, खाखी पर घन खावणा। मरुधर में कोड़ां मिनख, करसा एक कमावणा। —ऊ.का

सं०पु०—२ बड़ा अफीमची (क्षेत्रीय)

खाखोळाई—देखो 'खांकोलाई' (रू.भे.)

खाखीबिलखौ-वि०पु० (स्त्री० खाखीबिलखी) १ व्याकुल, बेचैन २ उदासीन, खिन्न।

खाखौ—देखो 'खाकौ' (रू.भे.)

खाग-सं०पु० [सं० खड्ग] तलवार (डिं.को.) उ०—खाग प्रातस प्रथाह दे लंक दाह, सिय वयणं सार सुण समाचार।—र.रू.

खागड़ेल, खागड़ौ-सं०पु०—१ सूग्रर. २ योद्धा, वीर।

खागचाळौ- देखो 'खगचाळौ' (रू.भे.) उ०—हुवै फैल धरण हैकंप हुवै, चढ़ तुरां करै कुण खागचाळौ।—जवांनजी आढ़ौ

खागधारी-वि०—देखो 'खगधर' (रू.भे.)

खागबंद-वि०यौ० [सं० खड्ग+फा० बंद] योद्धा, वीर। उ०—खंडेलै नहीं हणूं गोविंद खागबंद, बखत इण खेतड़ी नहीं 'बखतौ'। —गोपाळदांन खिड़ियौ

खागबळ-सं०पु०यौ० [सं० खड्ग+बल] तलवार का बल, बहादुरी।

खागरणी-सं०स्त्री०—संहार करने वाली, तलवार। उ०—रतवाह वजावण खागरणी, तेउ वाजन सूरांय वाज तणी।—पा.प्र.

खागवळ-सं०पु०—१ तलवार, कृपाण। उ०—बीज नहीं ऐ खागवळ, बूंद नहीं ऐ बांण। घटा नहीं या कांम की, आई फौज अचांण।—अज्ञात २ देखो 'खागबळ' (रू.भे.)

खागवाहौ—देखो 'खगवाहौ' (रू.भे.) उ०—दुरत गत डांण ऊसरांण सर दयंतौ, लयंतौ फुरळबौ थाट लाहौ। सुतन 'गज-बंध' सुरकांमणी संपेखै, विवांणा थांभिया खागवाहौ।—महाराज जसवंतसिंह री गीत

खागाट-सं०पु० [सं० खड्ग] तलवार, खड्ग।

खागि—देखो 'खाग' (रू.भे.)

खागैल-वि० [सं० खग+ऐल] १ सूग्रर। उ०—गैंदंतौ खागैल गिड़, कंघौ गिणै न कोय। मांडांणै इण मारगां, आवै जो मर जाय।

सं०पु०—२ ऊंट. ३ योद्धा —हिंगळाजदांन कवियौ

खाड़ैती-सं०पु०—१ गाडी हांकने वाला। उ०—खाड़ैती खोलिया खिड़क खासा रथ खांनां। सिणगारचा सिंदणां मिळण मांमां मिजमांनां।—मे.म. २ हल चलाने वाला।

खाज-सं०स्त्री० [सं० खर्जु] १ एक रोग जिसमें शरीर बहुत खुजलाता है, खुजली।

मुहा०—१ खाज उठणी—कामातुर होना, सहवास की इच्छा होना, मार खाने की इच्छा होना. २ खाज चालणी—कोई कार्य करने की इच्छा होना, कुछ पाने की इच्छा होना. मैथुन की इच्छा होना, मार खाने की इच्छा होना. ३ खाज मिटणी—संभोग से स्त्री का तृप्त होना, अच्छी तरह पिटना।

कहा० —खाज खिणियां भागै—कार्य करने से होता है।

[सं० खाद्य] २ खाद्य-पदार्थ। उ०—हमें जो रावजी रै खांत लागी तो इण पसूं रो कासूं। औ तौ आपरौ खाज हीज है।

—डाढ़ाळा सूर री बात

वि०—१ निकम्मा. २ डरपोक, कायर. ३ दीन।

खाजटणौ, खाजटबौ-क्रि०स०—खाना, भक्षण करना (क्रोध में शब्द को बिगाड़ कर कहने का प्रयोग)

खाजरवाई-सं०स्त्री०—मांस के लिए मारे गए बकरे, हिरन आदि पशुओं की खाल अलग करने की क्रिया।

खाजरू-सं०पु०—बलि का बकरा, मांस के लिए मारा जाने वाला बकरा।

क्रि०प्र०--करणौ, कराणौ, चढ़ाणौ, होणौ।

उ०—अरु वनमाळीदास लिखमीनाथजी रै मिंदर कनै खाजरू कराया। —द.दा.

मुहा०—खाजरू करणौ—बलि देना, मांस के लिए बकरे को मारना।

खाजल्यौ-सं०पु०—बूढ़ा घोड़ा।

खाजि—देखो 'खाज' (रू.भे.) (अमरत)

खाजौ-सं०पु० [सं० खाद्य, प्रा० खज्ज] १ भक्ष्य वस्तु, खाद्य. २ बारीक मैदे आदि से बनाई जाने वाली एक मिठाई व पकवान जो पूरी की शक्ल का होता है किन्तु पूरी के समान फूलता नहीं।

उ०--मोनो घड़ै सुनार, कंदोई खाजा करै। भोगै भोगणहार, करम प्रमांणै 'किसनिया'।

खाट-सं०स्त्री० [सं० खट्वा] १ चारपाई, खटिया, पलंग।

उ०—१ सोई सज्जण आविया, जांह की जोती बाट। थांभा नाचइ घर हंसइ, खेलण लागी खाट।—ढो.मा.

उ०—२ सांभ पड़ै दिन आथवै, जद खातण लावै खाट। कोई ए करूं थारी खाट नै, म्हारै मारूड़ै बिना किसौ ठाठ।—लो.गी.

खाटक-वि०—खट-खट की आवाज करने वाला. २ प्राप्त करने वाला, प्राप्तकर्त्ता। उ०—कावरड़ा काटक करै. कळदी झाटक कांण। ताखा दाटक 'बखत' तण, जस खाटक घण जांण।

—कविराजा करणीदांन

३ महान. ४ वीर, प्रचंड, योद्धा। उ०—घोड़ा घोड़ा स्यूं। पाळा पाळा स्यूं। खड्ग तणा खाटक। खेड़ां तणा झाटक।—कां.दे.प्र.

५ टक्कर. प्रहार. ६ जबरदस्त। उ०—कपण बराटक पावियां, नाटक करै निलज्ज। सुण जाचक खाटक करै, सब दिन फाटक सज्ज।—बां.दा.

सं०स्त्री०—खटक, कसक, दर्द ।

खाटकणी, खाटकबौ–क्रि०स० [सं० खट] १ प्राप्त करना. २ प्रहार करना. ३ कोप करना । उ०—करतौ दाव घाव काटकतौ, रीस चखां खाटकतौ रोळ । झळ भुज ऊंच मूंछ झाटकतौ, चाटकतौ पंजा चखचोळ ।—महाराजा मानसिंह री गीत

खाटकाई–सं०स्त्री०—पिता की बची हुई संपत्ति, जायदाद ।

खाटखड़, खाटखड़ि–सं०स्त्री०—१ खटखट की ध्वनि. २ पदार्थों के परस्पर टकराने से होने वाली ध्वनि । उ०—१ दारू रा दांव बीच-बीच लीजै छै, गोळियां री खाटखड़ लागनै रही छै ।—रा.सा.सं. उ०—२ तरवारां रा छणकार हुय रह्या छै । चोरंगां री खाटखड़ हुयनै रही छै ।—रा.सा.सं. उ०—३ खांडां री खाटखड़ि झाटझड़ि डंडाहड़ि खेलीजै ।—वचनिका

खाटडूखली–सं०पु०यौ० [रा० खाट+डूखली] बिना तनी हुई खाट, ढीली चारपाई ।

खाटण, खाटणौ–वि० (स्त्री० खाटणी) १ खाने वाला. २ प्राप्त करने वाला । उ०—रंदौ ही होवै मती, मती वसूलौ मित्त । होवै करवत सारिसौ, बांटण खाटण वित्त ।—अज्ञात

खाटणौ, खाटबौ–क्रि०स० [सं० खट्] १ प्राप्त करना.
उ०—आप आपरा मालिक रौ लवण ऊजाळौ दिखाय स्वरगलोक रा सुख खाटिया ।—वं.भा. २ उपार्जन करना, अर्जित करना, कमाना । उ०—१ बीसळदे बेसूर, खाटी पण खाधी नहीं । कीदी घात करूर, माया उण में मोतिया ।—रायसिंह सांदू
उ०—२ सादूळौ बन साहिबौ, खाटै पग पग खून । कायरड़ा इण कांम नूं, जंबक कहै जबून ।—बां.दा.

खाटणहार, हारौ (हारी), खाटणियौ—वि० ।

खाटाणौ, खाटाबौ, खाटावणौ, खाटावबौ—प्रे०रू० ।

खाटिप्रोड़ौ, खाटियोड़ौ, खाटयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

खाटीजणौ, खाटीजबौ—कर्म वा० ।

खाटणोत—देखो 'खाटण' (रू.भे.)

खाटम, खाटमा–सं०स्त्री०—१ उपार्जन. २ धन-लक्ष्मी ।
उ०—नहचळ मत कठण रहण ना रे ना, प्रादम काळ नदी आ रे आ । खाटम दाट(म) कीऊं खा रे खा, गिर जळ जेम दिहाड़ा गा रे गा ।—ओपौ आढ़ौ
मुहा०—खाटमा खाटणी—धन प्राप्त करना (व्यंग्य) ।
३ कीर्ति, यश ।

खाटरौ–वि०—बौना, ठिगना, नाटा । उ०—तारां तेजसी कयौ—औ तौ खाटरौ है नै करमचंद डीघौ है ।—द.दा.

खाटली–सं०पु०—चारपाई, खाट (अल्पा०)

खाटियौ, खाटियोड़ौ–भू०का०कृ०—प्राप्त किया हुआ, प्राप्त । उ०—रख पिता पाट धूहड़ सुराय, खाग री खाटियौ आप खाय ।—पा.प्र.

खाटी–वि० (पु० खाटौ) खट्टी, अम्ल (मि० 'खाटौ')

सं०स्त्री०—१ कीर्ति, यश. २ वैभव ।

खाटूंल–सं०पु०—पहाड़ी जंगलों में पैदा होने वाला एक छोटा वृक्ष जिसके पत्ते खुशबूदार होते हैं ।

खाटौ–वि० (स्त्री० खाटी) खट्टा, अम्ल, तुर्श, कच्चे आम या इमली के स्वाद का सा । उ०—पलटी लूंकी देय पळाटा, खाटा अंग्रे कुण खाया ।
—ऊ.का.

मुहा०—१ खाटी-मीठी बातां सुणणी—भली-बुरी बातों को बर्दाश्त करना, बुरा-भला सुनना. २ खाटौ खाणौ—अप्रसन्न रहना, मुंह फुलाना. ३ खाटौ होणौ—अप्रसन्न होना. ४ मन खाटौ होणौ—दिल टूट जाना. ५ मन खाटौ-मीठौ होणौ—मन में लालच होना. ६ खाटी छा नै राबड़ी से खोणौ—बिगड़े हुए कार्य को और भी बिगाड़ना ।

यौ०—खाटौ-मीठौ, खाटौ-चूकौ, खाटौ-तूड़, खाटौ-बड़छ ।

सं०पु०—१ छाछ, मट्ठा ।

कहा०—कंई खाटौ मोळौ व्है—ऐसा क्या अनर्थ हुआ जाता है (कुछ देरी होने पर) ।

२ बेसन के द्वारा बनाई जाने वाली कढ़ी । उ०—खाटौ खीच सोगरौ लाजै, मीठोड़ी गळवांणी । चौमासे रा गुड़ला बादळ, पालर बूठा पांणी ।—रेवतदान

कहा—१ खीच ऊपर खाटौ इज व्है—कोई वस्तु अपनी समान जाति की वस्तुओं में ही शोभा पाती है ।

कहा०—२ रंदायी खीर नै रांदियौ खाटौ, पांमणां री मन जरै ई फाटौ—बिना मन किसी की मेहमाननवाजी करने पर ।

(खाटड़ियौ, खाटोड़ौ—अल्पा०)

खाटौतूड़, खाटौबड़छ, खाटौबड़स–वि०यौ०—अत्यंत खट्टा । उ०—बंगाळै ए बोर, रसै ना मुरधर जेड़ा । खाटाबड़स निकांम, गिटै ना सूर गदेड़ा ।
—दसदेव

खाट्योड़ौ—देखो 'खाटियोड़ौ' (रू.भे.)

खाड–सं०स्त्री० [सं० खात = खड्ड] गड्ढा, गर्त । उ०—उण ऊपर रेवड़ छाळियां रा नीसरतां किणी री पग खाड में पड़ै ।—नी.प्र.

कहा०—१ खाड खिणै जिके नै कूवौ त्यार है—जो दूसरे का बुरा करता है उसका खुद का बुरा होता है. २ खाड सूं निकळ नै कूवै में पड़णौ—एक आफत से निकल कर दूसरी आफत में गिरना ।

खाडखौ–सं०पु०—ऊबड़-खाबड़ भूमि, ऊँची-नीची भूमि । उ०—मांड ऊंट बकरियां बेली, खड़ौ चरावै खाड़खौ ।—दसदेव

खाडरौ–सं०पु०—देखो 'खाड' (रू.भे.) उ०—भूंडण चीलहरां नूं लियां नळां, खाडरां, रूंखां, झाड़ां री भंगी रै ओल्है चालै ।
—डाढ़ाळा सूर री वात

खाडव–सं०पु० [सं० षाड्व] शास्त्रीय संगीत की जाति जिसमें केवल छः स्वर ही उपयोग में लिये जाते हैं ।

खाडाबूज, खाडाबूक–वि० [सं० खात = खड्ड+रा० बूक] जमीदोज,

भूमिगत। उ०—पछै मूळराज री मा नूं खाडाखूब करने बीजै दिन राजपूत आप बळ किया था।—नैणसी

खाडाळ-सं०पु०—जैसलमेर राज्य का एक भू-खंड (बां.दा. ख्यात)

खाडाळियौ-वि०—खाडाल का, खाडाल संबंधी (देखो 'खाडाळ')
सं०पु०—खाडाल प्रदेश का ऊंट। उ—काछी ओदला छपरी जाळोरी बगरू बलोची सिववाड़िया खाडाळिया—और ही अनेक जात-भांत रा ऊंट छै।—रा.सा.सं.

खाडाळी-सं०स्त्री०—भैंस। उ०—खुंडी पाडी रा लाडी चल खोळै, धमती खाडाळी काळी दिन धोळै।—ऊ.का.
वि०—खाडाळ संबंधी, खाडाळ का।

खाडियौ-भू०का०कृ०—गड़ा हुआ। उ०—पुहपां मिसि एक-एक मिसि पातां, खाडिया द्रव मांडिया ऊखेलि।—वेलि.
सं०पु०—खड्डा (अल्पा.)

खाडी-सं०स्त्री०—१ वह नीची भूमि जिसमें वर्षाकाल में पानी भर जाता हो. २ समुद्र। उ०—ओघड़ प्रतीतां री जमाति रै साथ बेड़ी रै बळ खाडी लांघि हिंगुळाज देवी रै धांम पूगियौ।—वं.भा.

खाडू-सं०पु०—भैंसों का समूह। उ०—१ तद भरमल अरज कीवी जे इठा सूं कोस सवा ऊपर म्हारै भैंसां रो खाडू छै—उठै तीज रै दिन म्हैं हर भांत आयस्यूं।—कुंवरसी सांखला री वारता

खाडूकर-सं०पु०—भैंसों के समूह की देख-रेख करने वाला।
उ०—भरमल कही-जे आपणै खाडू मांहे सूं दूध मण एक रोजीना री प्रोहित नूं मेल देवै, खाडूकरां नूं कहिदेजे—नाघा कदे नहीं करै।—कुंवरसी सांखला री वारता

खाडेली-सं०स्त्री०—संगमरमर या चीनी का बना चपटा, गोल या चौरस पात्र जिसमें सोने-चांदी की वस्तुओं में जोड़ लगाने का मसाला तैयार किया जाता है (स्वर्णकार)

खाडौ-सं०पु० [सं० खात = खड्ड] गड्ढा, गर्त। उ०—पूरवासाढ़ा में खाडा में पड़िया, अगले अनरथ रा अंकुर ऊघड़िया।—ऊ.का.
मुहा०—१ खाडा में नांकणौ—किसी को धोखा देना, घाटा पहुँचाना. २ खाडा में पड़णौ—कष्ट में पड़ना, असमंजस में पड़ना, कठिनाई में पड़ना. ३ खाडौ खोदणौ—हानि करना, नुकसान पहुँचाना, किसी को नीचा दिखाने या गिराने का उपाय करना. ४ खाडौ पड़णौ—गड्ढा हो जाना, कमी पड़ना. ५ खाडौ भरणौ—कमी को पूरा करना, गड्ढे को भरना, रूखा-सूखा खा कर पेट भरना, विरोध दूर करना।
यौ०—खाडौ-खड़बौ, खाडौ-खोचरौ।

खाण-सं०पु० [सं० खादन, प्रा० खाअन] भोजन, खाद्य सामग्री।

खाण-वि० [सं० खादनः] १ खाने वाला, भक्षण करने वाला. २ काटने वाला (मि० 'खावणौ')

खाणौ, खाबौ-क्रि०स० [सं० खादन्, प्रा० खाअन] खाने की क्रिया करना, खाना, भोजन करना।
मुहा०—१ खाणौ जैर करणौ—क्रोधित होकर भोजन के समय कोई विघ्न या बाधा डाल निरानन्द करना।
कहा०—१ खा गुड़—अवसर पर शीघ्रता से अनुचित लाभ उठाने वाले व्यक्ति पर व्यंग्योक्ति. २ खाई खोई नै मांहीनै रोयौ—खाने में व्यर्थ का अपव्यय कर निर्धनता में पीछे सिर पीटना, बिना विचारे अंधाधुंध व्यय करने के बाद में पछताना पड़ता है. ३ खाऊं तौ खाडो पड़ै, नी खाऊं तौ रोड़ी बळै—खाता हूं तो कमी पड़ती है और नहीं खाता हूं तो नष्ट होता है। उपयोग में नहीं लाने पर जो वस्तु नष्ट होती हो तो उसका उपयोग करना ही उत्तम है.
४ खा जावै नै खाडा कूट जावै—उस व्यक्ति के प्रति जो पर-स्त्री से संभोग के अतिरिक्त उसका धन भी हथिया ले। कृतघ्न होना.
५ खातां पीतां हर मिळै तौ हमकूं कहियौ—खाते-पीते अर्थात् ऐश करते समय भगवान मिलें तो हमें कहना। बिना कष्ट उठाये लाभ की इच्छा करने वालों के लिए व्यंगोक्ति. ६ खातां पीतां ही मूंडौ दूखै—खाने जैसे सरल कार्य करने में भी नजाकत दिखाने वाले के लिए व्यंगोक्ति; स्वस्थ व्यक्ति जब साधारण कार्य करने में असमर्थता प्रकट करता है तब कहा जाता है. ७ खातौ जाय'र खप्पर फोड़तौ जाय—कृतघ्न के प्रति. ८ खाध करै उपाध—भर पेट भोजन मिल जाय तो शून्य मस्तिष्क में शैतान उपजता है. ९ खाय जिण री ही फोड़ै—कृतघ्न के प्रति. १० खाय हंगिया कदे न धाधा—खाते ही जो शीघ्र पाखाने जाता है वह कभी तृप्त नहीं होता; भोजन के बाद शीघ्र ही पाखाना जाना बुरा है. ११ खायां किसा खाडा पड़ै है—खाने-पीने से क्या कमी पड़ती है? भोजन का व्यय अन्य व्ययों के अनुपात से कम होता है।
१२ खाय पी'र लारै पड़णौ—हाथ धोकर पीछे पड़ना.
१३ खाया सो ऊबरिया दीया सो ही सथ्थ—जीवन-काल में जो धन भोगा गया अर्थात् जिसका उपयोग किया वही बचत में रहा और जो कुछ परोपकार में दिया वही पुण्य कर्म का सहारा रहा। धन का उपयोग करना या परोपकार में व्यय करना ही सही उपयोग है. १४ खायौ रै परड़ोटियौ कै काळिंदार कठा सूं लाऊं—हुई तो साधारण घटना परन्तु इसे विशाल या महत्वपूर्ण घटना का रूप कैसे बनाया जाय।
यौ०—खातौ-कमातौ, खातौ-पीतौ।
खाणहार, हारौ (हारी), खाणियौ—वि०।
खवाड़णौ, खवाड़बौ, खवाणौ, खवाबौ—प्रे०रू०।
खाद्यौ, खाबौ, खाधौ—भू०का०प्र०।
खायोड़ौ—भू०का०कृ०।
खाईजणौ, खाईजबौ—कर्म वा०।
खावणौ, खावबौ—रू०भे०।

खात—१ देखो 'खाद' (रू.भे.) २ वह मार्ग विशेष जो चोर चोरी करने के उद्देश्य से दीवार में बनाते हैं; सेंध।

खातक—सं०पु० [सं०] छोटा तालाब, तलैया (डिं.को.)

खातमौ—सं०पु० [अ० खातिम] १ अंत, खात्मा, समाप्ति. २ मृत्यु ।

खातर—सं०स्त्री०—१ खाद. २ विश्वास, भरोसा । उ०—आंपे भेळा ही घोड़ियां ल्यां पछै थांरी खातर हुवै तौ घोड़ी टोळ ज्यौ । —जखड़ा मुखड़ा भाटी री वात

३ इच्छा, मर्जी । उ०—तरै ऊ बचन सांभळ पिउसंघी कह्यौ—कूटरा मूंडका क्या आधी हमारी है, आधी तुमारी है । तठे क्यूं चड़भड़ची रजपूतां रौ साथ । तरै भींवैजी कह्यौ—आपरी खातर आवै स्यूं करौ ।—जखड़ा मुखड़ा भाटी री वात ४ दया, कृपा.

५ आदर, सम्मान । उ०—कोड़ बचन खातर कियां, पातर नह करै प्रीत । आथ देख अकुलीरा नूं, मांडै करलै मीत ।—बां.दा. ६ ध्यान, विचार ।

क्रि०वि०—लिये, वास्ते । उ०—१ रसिया रौ तन रोग सूं, सड़ जावै नह सोच । हेम रजत खातर हुवै, पातर लोच पलोच ।—बां.दा.

उ०—२ तेरै खातर जोगरा हूंगी, करवत लूंगी कासी । मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चरण कंवळ की दासी ।—मीरां

खातरजमा—सं०स्त्री०यौ०—देखो 'खातिरजमा' । उ०—व्यास नूं फेर सिरदारां दबायौ, जे थां रहौ जे सारां रौ खातरजमा रहसी ।

(क्रि०प्र०—राखणी) —अमरसिंह री वात

खातरदारी— देखो 'खातिरदारी' ।

क्रि०प्र०—करणी, रै'णी, होणी ।

खातरी—सं०स्त्री० [फा० खातिर] १ सम्मान, आदर, आवभगत ।

उ०—तद परधानां सूंस सपत कर जगमाल री हर भांत खातरी करी । नैणसी २ तसल्ली, इतमिनान, संतोष ।

उ०—खातरी नजर भर करहु खोज, हम है न सजा लायक हनोज । —ऊ.का.

३ सेवा, बंदगी. ४ विश्वास, भरोसा । उ०—कल्याणसिंघजी कयौ—घणी आछी बात है, कागद थांरी खातरी रौ आछौ तरै लिख देसां ।—द.दा.

खातरोड़—सं०स्त्री०— बढ़ई के काष्ठ आदि का काम करने का स्थान ।

खाता, खाताई—देखो 'खाथाई' (रू.भे.)

खाताबई, खाताबही, खातावई, खातावही—सं०स्त्री०यौ०—वह बही या किताब जिसमें प्रत्येक व्यापारी या आसामी आदि का हिसाब मिति-वार और व्यौरेवार लिखा हो ।

खातिर—देखो 'खातर' । उ०—जिण समय कोल कियौ माल दरवेसां नूं देयस्यूं तरै सिपाहियां नूं खातिर में आंणिया था ।—नी प्र.

खातिरजमा—सं०स्त्री० [अ०] संतोष, इतमीनान, तसल्ली ।

उ०—कुंवरसी कही—थे खातिरजमा राखौ, थांहरै खांवदां नूं कहावौ जे आय कर मिळ लेवौ ।—कुंवरसी सांखला री वारता

खातिरदारी—सं०स्त्री० [अ० खातिर+फा० दारी] सम्मान, आदर, आवभगत ।

क्रि०प्र०—करणी, राखणी, होणी ।

उ०—हातम महमांन री खातिरदारी कीवी, आछी ठौर उतारियौ । पछै मेहमांन नूं सुवाण्यौ, आंप बाहिर गयौ ।—नी.प्र.

खाती—सं०पु० (स्त्री० खातण, खातणी) लकड़ी का इमारती काम करने वाली जाति विशेष या इस जाति का व्यक्ति, बढ़ई ।

वि०वि०—सुथार और खाती दोनों जातियों का व्यवसाय एक होते हुए भी ये अपने आप में कुछ भिन्नता मानते हैं । ये दोनों ही अपने आपको विश्वकर्मा के वंशज मानते हैं । जो खाती लोहे का काम करते हैं वे लुहार-खाती कहलाते हैं ।

खातीचिड़ौ, खातीचोड़ौ—सं०पु०—१ एक प्रकार का पक्षी विशेष जिसके सिर पर तुर्रा होता है और वह पेड़ों की शाखाओं व तनों पर अपनी चोंच मार कर कीड़े खाता है; कठफोड़ा. २ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खातून—सं०स्त्री० [तु० खातून] भले घर की स्त्री, भद्र महिला ।

उ०—विलायत में खातून जन्नत रौ नांम आंख मींचनै लेवै । —बां.दा.ख्यात

खातोड़—सं०स्त्री०—वह स्थान जहां बढ़ई बैठ कर नित्य अपनी लकड़ी का कार्य करता है । उ०—खाती री खातोड़ गूंजता जावै गाजी, लाधौ जो लुहार रांमजी मिळग्यौ राजी ।—ऊ.का.

खातौ-पीतौ—वि०यौ०—संपन्न, मध्यम वर्ग का ।

खातौ—सं०पु०—१ वह बही या किताब जिसमें प्रत्येक आसामी या व्यापारी रुपयों के लेन-देन का हिसाब मितीवार और व्यौरेवार रखता है. २ मद, विभाग. ३ आय-व्यय और लेन-देन की बही का लेख. ४ रहट को चलाने के लिए बैठने वाले काष्ठ के डंडे के मध्य का पका हुआ भाग जहां मध्य स्तम्भ (ऊबड़ियौ) सटा हुआ रखता है. ५ खांचा, कटा हुआ स्थान ।

क्रि०वि० (स्त्री० खाती) तेज, शीघ्र, उतावला, द्रुतगामी ।

उ०—चढ़ पमंग उमंग खाता चलाय, उण वखत मिळै 'भैरव' सूं आय ।—पे.रू.

खात्र—सं०उ०लि—खाद ।

खात्रोड़—देखो 'खातोड़' (रू.भे.)

खाथाई, खाथाळ, खाथावळ—सं०स्त्री०—तीव्रता, शीघ्रता, त्वरा ।

खाथौ—वि०पु० (स्त्री० खाथी) उतावली, शीघ्रगामी, तेज ।

उ०—फोरै खाथा नै गाळी फटकारै, तोरै जातां नै हाळी ततकारै । —ऊ.का.

क्रि०वि०—तेज, शीघ्र ।

खाद—सं०उ०लि [सं० खाद्य] १ वह पदार्थ जो भूमि में उसे अधिक उप-जाऊ बनाने के लिए व उत्तम फसल प्राप्त करने के लिए डाला जाता है ।

वि०वि०—घास, फूस, पत्तियां, डंठल, कूड़ा-करकट, कीचड़, पशु-पक्षियों का मल-मूत्र तथा मृत शरीर आदि सभी को गड्ढे में सड़ा-

गला कर अच्छी खाद के रूप में तैयार किया जाता है। अनेक क्षारों से भी खाद बनाई जाती है।

कहा०—१ खाद दे तो होवै खेती नहीं तो रहै नदी की रेती—खाद देने से ही उत्तम खेती की आशा की जा सकती है नहीं तो वह खेत केवल रेत की नदी के रूप में रहता है। अच्छी खेती के लिए खाद आवश्यक है. २ खाद अर पांणी कै करै निगांणी—कोरे परिश्रम से कुछ नहीं होता; खेती के लिए खाद एवं पानी की भी अत्यंत आवश्यकता होती है।

२ देखो 'खाध' (रू.भे.)

खादण, खादन—सं०पु० [सं० खादन्] १ भोजन, भक्षण (ह.नां.)

२ दांत (डिं.को.)

सं०स्त्री०—खाने की क्रिया, भाव या ढंग।

खादर—सं०स्त्री०—१ वह नीची भूमि जिसमें वर्षा का पानी बहुत दिनों तक रुका रहता हो, कछार, तराई। उ०—गेहूंडा निपजै खादर में, नित बरसै मेहा बागड़ में।—लो.गी. २ पशुओं के चरने की जगह, चरागाह।

खादरौ—सं०पु० [सं० खातक] खड्डा, पोखर, छोटा गड्ढा।

कहा०—आदरा भरै खादरा, पुनरवसु भरै तळाव—आर्द्रा नक्षत्र में यदि थोड़ी मामूली वर्षा हो जाती है तो पुनर्वसु नक्षत्र में खूब अधिक वर्षा होने की आशा की जा सकती है (कृषि कहावत)

खादी—सं०स्त्री०—एक प्रकार का मोटा सूती कपड़ा।

खादोकड़ो—वि० (स्त्री० खादोकड़ी) भोजन-प्रिय, अधिक खाने वाला, पेटू।

खादौ—भू०का०प्र०—'खाणौ' का भूतकालिक रूप, खाया (स्त्री० खादी) (रू.भे. 'खाधौ')

खाद्य—सं०पु० [सं० खाद्य] १ खाने की सामग्री, खाद्य। उ०—आपणै देस में बाजरी रौ ही खाध हौ अर आ भाव में ई सस्ती मिळती ही।
—वरसगांठ

२ खाने का व्यय. ३ खाने की इच्छा, रुचि।

खाधोकड़—वि० महत्त्व० (स्त्री० खाधोकड़ी) १ अधिक भोजन करने की रुचि रखने वाला, भोजन-भट्ट, पेटू. २ चटोरा, चट्टू (रू.भे. 'खादोकड़ो')

खाधौ—भू०का०प्र० (स्त्री० खाधी) देखो 'खादौ' (रू.भे.)

उ०—१ सी तारक खळ दुस्ट नै, स्वांमी कारतिक खाधौ।—र.ज.प्र.

उ०—२ म्हारा तौ घर में मही घणेरौ, हरि चोर दधि खाधौ री।
—मीरां

खाप—सं०स्त्री०—१ खड्ग, तलवार। उ०—माथै सत्रां खापा घावै गमावै जिहांन माथै। दसुं दसा सोभाग छवायो···।
—कमजी दधवाड़ियौ

२ म्यान, कोष। उ०—खळकीय खाग हळकीय खाप।—गो.रू.

मुहा०—खापां बारै होणौ—युद्धार्थ तलवार को म्यान से बाहर करना, अति क्रोधित होना, आपे से बाहर होना।

३ म्यान के आजू-बाजू की दो पट्टियों में से एक।

वि०—अति उज्ज्वल, स्वच्छ * (डिं.को.)

खापगा—सं०स्त्री० [सं० ख+आपगा] गंगा नदी (अ.मा.)

खापड़ौ—देखो 'खाप' (रू.भे.) उ०—खेल आरांण रै न मावै खापड़ां, फैल दिखरांण रै फिरंग पाळै।—रांमलाल आढ़ौ

खापट—सं०स्त्री०—१ बांस की पट्टी. २ कुछ चौड़ाईयुक्त पतला लम्बा पत्थर।

खापटा-रौ-कोठार—सं०पु०—जवाहरखाना (प्राचीन)

खापटौ—सं०पु०—१ दूर से फेंका जाने वाला एक अस्त्र विशेष (पा.प्र.)

२ पत्थर का एक लंबा-चौड़ा व पतला खंड, पतली शिला।

खापन—देखो 'खाप' (रू.भे.) उ०—खणणंकिय खापन खाग तजी, सरणंकिय गिद्धनि पंख सजी।—ला.रा.

खापर—सं०पु०—मुसलमान। उ०—१ गहग्गह ग्रिघणी मंगळ गाइ, जोधा घर जीपण खापर जाइ।—रा.ज.सी. उ०—२ जोधार जीपण खापर जूंग, तुरंगे जीण कसे भड़ तूंग।—रा.ज.सी.

खापरियौ—सं०पु० [सं० खर्पर] १ धूर्त. २ चोर। उ०—जग में ऊमरियौ खापरियौ जै'री, बाल्हा बीछोड़ण खापरियौ बैरी।
—ऊ.का.

[रा०] ३ अनाज में लगने वाला एक प्रकार का कीड़ा जो अनाज को नष्ट कर देता है. [सं० खर्परी] ४ भूरे रंग का एक खनिज। यह प्राय: वैद्यक की औषधियों में प्रयुक्त होता है। उ०—खापरियां बंधाऊं कूवा बावड़ी(जी) ढोला, मोतीड़ा बंधाऊं (रे) तळाव जंवाइयां री ओळखी।—लो गी.

खापरी—सं०स्त्री०—खड़िया मिट्टी का बना एक प्रकार का मसाला जिसमें सोने के टुकड़े डालने पर गोल बन जाते हैं (स्वर्णकार)

खापरयौ—देखो 'खापरियौ' (रू भे.)

खापी—सं०स्त्री०—आवश्यकता, जरूरत।

खापौ—सं०पु०—१ कील, मेख. २ देखो 'खाप' (रू.भे.)

खाफर—वि०पु० [अ० काफ़िर] देखो 'काफ़िर' (रू.भे.)

सं०पु० [सं० खर्पर] १ देखो 'खपड़ौ' (रू.भे.) २ मुसलमान।

उ०—१ खाफरां जइत वाहइ खड़ग्ग, वासदे जांणी वन्नै विलग्ग।
—रा.ज.सी.

उ०—२ धार खग चकर घण भगत करण धरे, भांज खाफर मगर भुजां भांमी।—द.दा.

खाबकौ—सं०पु०—१ शाही दरबार. २ राजा व रानी की वह मजलिस जिसमें केवल उनके कृपा-पात्र ही उपस्थित हों. ३ वह स्थान जहां इस प्रकार की मजलिस हो. ४ राजा रानी का शयनागार। उ०—आधा चारण खाबकां, बीड़ी मौज बटंत। दूरा केम दकालणां, हूंचकतां भड़ हंत।—बी.स.

खाबड़—सं०स्त्री०—१ ऊबड़-खाबड़. २ ईडर रियासत की भूमि।

खाबड़िया—राठौड़ों की एक उपशाखा जो जोधपुर के महाराजा राव मालदेव के पुत्र जगमाल से आरम्भ मानी जाती है।

खाबड़ौ-सं०पु०—पानी भरा छोटा गड्ढा। उ०—बाबेली ए खींवै-खींवै भरिया है तळाव, वरसै ने भरिया श्रो नाडा खाबड़ा। —लो.गी.

खाबेड़ी-वि०पु०—प्रत्येक कार्य बाएं हाथ से करने का अभ्यस्त।

खाबोचियौ-सं०पु०—१ छोटा गड्ढा. २ योनि (बाजारू)

खाबौ-वि० (स्त्री० खाबी) १ (वह बैल या भैंसा) जिसका एक सींग ऊपर तथा दूसरा नीचे मुड़ा हुआ हो. २ ऐंचाताना. ३ वीर, बलवान (स.भं.) ४ बांया।

सं०पु०—तिरछा देखने का भाव या क्रिया।

खायक खायजावौ-वि०पु०—१ खाने वाला। उ०—१ हैवर गैवर गांव फौज फरहर बहौ पायक, बहौ जोधा दरबार खसै श्रावूं भी खायक। —ह.पु.वा.

उ०—२ मतां सायक तूं सदा, दुमहां खायक देव। केसव तौ वरणन करूं, भल गुरु दीनौ भेव।—भगतमाळ

खायस-सं०स्त्री० [फा० ख्वाहिश] इच्छा, चाह, लालसा। उ०—जहां श्रंब फळ श्रच्छ तहां नींब फळ न पांमस। जहां चीगी पकवांन तहां कीकस रय मांनस। जहां जायसूं जपे तहां श्रादर नह पायस। जहां उपायस बोहत तहां बोहतेरौ खायस।—खींवौ करमसी श्रासियौ

खायोड़ौ-भू०का०कृ०—खाया हुआ। (स्त्री० खायोड़ी)

खार-सं०पु० [फा०] १ क्रोध, कोप, गुस्सा। उ०—सांवरा जळहर गाज सुण, खीजै उर धर खार। जग सूं उलटा जांणणा, वाघां तणा विचार।—बां.दा.

क्रि०प्र०—ऊघड़णौ, करणौ, घालणौ, होणौ।

मुहा०—खार खाणौ—क्रोध करना, रुष्ट होना।

२ ईर्ष्या, द्वेष, डाह। उ०—बंध्यौ मछ जिण बार मांण दुजोधन मेटियौ। खैंचै कच उण खार, थां पारथ बैठ्यां थकां। —रांमनाथ कवियौ

क्रि०प्र०—करणौ, काढणौ, पड़णौ, भांगणौ, मेटणौ।

मुहा०—१ खार काढणौ—प्रतिशोध लेना. २ खार मेटणौ—वैमनस्य दूर करना।

३ कांटा, कंटक. [सं० क्षार] ४ रज, धूलि. ५ राख।

६ देखो 'क्षार' (रू.भे.) ७ खारापन. ८ श्रम्लता.

[रा०] ९ बंदूक की नाल में पड़ी हुई तिरछी व सीधी धारियां जिन पर छोटी-छोटी बिंदियां होती हैं।

खारक-सं०पु० [सं० क्षारक, प्रा० खारक] १ खजूर के पेड़ का सूखा फल, छुहारा. २ देव वृक्ष (श्र.मा.)

खारकभरियोतोडियौ-सं०पु०—लड़कियों द्वारा गाया जाने वाला गीत।

खारकियाबोर-सं०पु०—छुहारे के श्राकार के बेर।

खारखंध, खारखंधौ-वि०—प्रति क्रोधित, शत्रुता का भाव लिये हुए।

उ०—१ करण तणै विढतै बंधव-कज, खळ दळ कीधा खारखंध। —द.दा.

उ०—२ लड़वा सर धांधळ दाव लखौ, अड़भावत कीधिय खारखंधौ। —पा.प्र.

खारड़िया-सं०स्त्री०—सीरवी नामक काश्तकार जाति का एक भेद।

खारड़ौ-सं०पु०—१ जूता, पगरखी. २ सूखा हुश्रा पुराना जूता।

खारथ-सं०स्त्री० [सं० क्षार+स्थल, प्रा० खरथ] १ वह भूमि जिसमें कुछ क्षार का मिश्रण होता है श्रौर वहां कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। उ०—क्रपणां री मतवाळ की, करसण खारथ खेत।—बां.दा.

वि०—बेकार।

खारथियौ-सं०पु०—खारे पानी से उत्पन्न गेहूं।

वि०—खारा, कड़वा।

खारज-वि० [श्र० खारिज] १ बाहर किया हुश्रा, निकाला हुश्रा, बहिष्कृत. २ रद्द किया हुश्रा. ३ भिन्न, श्रलग।

खारण-सं०पु०—श्रजवायन (वी.मा.) उ०—जरणी किणी न खायौ जापै, खारण खाटौ खारौ। हमस हलावणहार दिली सूं, है कोई तेड़ण-हारौ।—श्रज्ञात

खारभंगणा, खारभंजण, खारभंजणा, खारभमणा-सं०पु०—१ श्रफीम सेवन (महफिल में) के पश्चात सेवन किया जाने वाला मीठा पदार्थ. २ गजक, चुरकन।

पर्याय०—श्रवदंस, उपदस, चखण, नुकळ, भंजणूं, मदपश्रसण।

खारवाळ-सं०पु०—१ एक प्रकार का देशी खेल. २ नमक का व्यवसाय करने वाली जाति या उस जाति का व्यक्ति।

खारवौ-सं०पु०—पानी व कीचड़ के मध्य श्रधिक रहने पर पैरों में होने वाला चर्म-विकार विशेष।

खारसमुद-सं०पु० [सं० क्षारसमुद्र] लवणोद, समुद्र।

खारास-सं०पु० [सं० क्षार+रा० स] खारापन, तीखापन, कड़वापन।

खारिक—देखो 'खारक' (रू.भे.) उ०—खारिक दाख नाळीयर नीलां, फांफळ श्रनइ खिजूरां।—कां.दे.प्र.

खारियौ-सं०पु०—१ बाजरी के सूखे हुए डंठल. २ चने के पौधे के सूखे पत्ते।

[सं० क्षारिकम्] ३ क्षारयुक्त पदार्थ।

वि०—क्षारयुक्त।

खारी-सं०स्त्री०—१ छोटी चौकोर डलिया। उ०—खारी नांणूं म्है खारी भर चारै, श्रपणी प्यारी पर प्राणांतक वारै।—ऊ.का.

२ बनास की सहायक नदी (नैणसी) ३ बाजरी के सूखे डंठल.

४ एक प्रकार का खराब नमक।

वि०—देखो 'खारौ' का स्त्री०।

खारीमाट-सं०पु०—नील का रंग तैयार करने का एक ढंग।

खारीलूण-सं०पु०—जमीन पर खारे पानी से जमाया हुश्रा नमक (श्रमरत)

खारीलौ-वि०पु० (स्त्री० खारीली) क्रोधी, गुस्सैल।

खारीवा-सं०पु० [सं० क्षीरवाह] केवट (श्र.मा.)

खारोटियौ—देखो 'खारौ' (१ पु०) (श्रल्पा०) उ०—सगळा हारिया-थकि-

य'र भूखां मरै। माथै खारोटिया, जकां में थोड़ो सांमांन'र पूर पूळी।
—बरसगांठ

खारोळ—देखो 'खारोळ' (रू.भे.)

खारो-वि० [सं० क्षार] (स्त्री० खारी) १ नमक या क्षार के समान स्वादयुक्त, कटु, कड़वा। उ०—बिमरियां विसर जस बीज बीजिजै, खारी हाळाहळां खळांह।—वेलि.

कहा०—खारा खाई जकै मीठा भी खाई—जो कड़वे का स्वाद लेगा उसे मीठा भी मिलेगा; दुख के बाद ही सुख की अनुभूति होती है; कष्ट भुगतने के बाद ही सुख-प्राप्ति सम्भव है।

२ चुभने वाला, अप्रिय, कटु (प्राय: वचन) उ०—बोल्यौ खांन मांनुल्ला हिया में रोस कीनूं, सादो बोलतां की साथ्रि खारो जाव दीनूं।—शि.व.

क्रि०प्र०—कैंणो, बोलणो, लागणो, सुणणो।

कहा०—खारी बोलै मावड़ी मीठा बोलै लोग—चुभने वाली बातें तो हितैषी ही कहते हैं, दूसरे लोग तो केवल सुहावनी बातें ही करते हैं, चाहे वे गलत रास्ते पर ले जाने वाली ही क्यों न हों।

३ अनिष्टकर, अहितकर। उ०—भांगड़ खारा खून कर, तू आंण न डर तार। अो ऊभो अड़सी हरो, हांमू बगसणहार।—बां.दा.

४ अरुचिकर। उ०—म्हारै घर आज्यो प्रीतम प्यारा, तुम बिन सब जग खारा।—मीरां ५ संकटयुक्त, संकटमय। उ०—माहाराज अोघेस आधार संतां, वार खारी रखैं लाज वेखो।—र.ज.प्र.

६ जोशीला. ७ क्रूर। उ०—माझी मीर बलक्की मल्लं, मीर सैद पट्ठांण मुगल्लं। खारी और सजोर बुखारी, धर काबली विलाति खंधारी।—रा.रू. ८ क्रोधी, गुस्सेबर. ९ कड़ा, कठोर।

उ०—१ ज्यूं तावड़ो खारो घणो पड़ै।
२ आज खारा घणा दौड़ाया। १० तेज।

उ०—१ ज्यूं गाडी खारी घणी दौड़ै।
२ ऊंट खारा घणो दौड़ै।

११ भयंकर, भयावह। उ०—जरदपोसां कड़ा भीड़ रोसां जड़ै, पोह बगत नकीबां तणा हाका पड़ै। धार थारी दसत सतारी घड़घड़ै, राज री नगारी आज खारो रड़ै।—महादांन महड़ू

सं०पु०—१ चार कोने वाला बड़ा टोकरा जिसमें मवेशियों को घास चराया जाता है। (अल्पा०—खारी, खारोटिगो)

२ चने के पौधे की पत्तियां व डंठलों का मिला हुआ भूसा जिसे जानवर बड़े चाव से खाते हैं. ३ संभोग, मैथुन (वैद्यक प्रयोग परहेज के लिए)।

यौ०—खारो-खाटो।

खारोळ-सं०पु०—१ नमक का व्यवसाय करने वाली एक जाति अथवा उस जाति का व्यक्ति. २ एक प्रकार का देशी खेल।

खाळ-सं०पु०—१ नीची भूमि. २ मोरी. ३ पानी के प्रवाह से कट कर जमीन में बने गहरे खड्डे।

क्रि०प्र०—चालणी, पड़णी।

४ नाला, छोटी नदी। उ०—आगै आवतां एक खाळ बारह हाथ को चौड़ो घणी ऊंडो आडै आयो अठै कुमार दूदो तो सहज में सांवळिया ने भंपाई खाळ रै बार आइ भालो उबाह सांम्हौ खड़ो रहियो।
—वं.भा.

५ कबड्डी आदि खेलों में परस्पर विरुद्ध खिलाड़ियों के खेलने का स्थान।

खाल-सं०स्त्री० [सं० खल्ल] चमड़ा, त्वचा। उ०—सुकवि कुकवि इसी सुणी, हरखै कहिया जाब। करसी न म्हारा कवित रा, खाल उतार खराब।—बां.दा.

क्रि०प्र०—उतारणी, उधेड़णी, काडणी, पाड़णी।

मुहा०—खाल उधेड़णी—कड़ी सजा देना, अधिक पीटना।

सं०पु०—देखो 'ख्याल' (रू.भे.)

खालक-सं०पु० [अ० खालिक] १ सृष्टिकर्ता, ईश्वर। उ०—पूतळियां न हंदियां, क्या आदम गंदै। ऐ भी खेलण जांणियां, उस खालक हंदै।

२ कौतुक। —केसोदास गाडण

खालड़, खालड़ो—१ देखो 'खाल'।

कहा०—खालड़ा री देवी नै खालड़ा री पूजा—चमड़े की देवी की पूजा जूते से ही होनी चाहिए; जो जिस योग्य हो उसे वैसा ही सत्कार मिलना चाहिए।

२ जूता, सूखा जूता।

वि०—वृद्ध, बुड्ढा। उ०—खालड़ खेंखारो घर घाटो खेवै। दोसत अोधारो आटो नह देवै।—ऊ.का.

खालत-सं०पु०—सोलंकी वंश की एक शाखा या इस शाखा का राजपूत।

खालपिया-सं०पु०—एक मुसलमान जाति जो चमड़ा रंगने का कार्य करती है।

खालर—देखो 'खोमणी'।

खालसाई-वि०—खालसा संबंधी (देखो 'खालसौ') राज्य का, सरकारी।

यौ०—खालसाई चाकर, खालसाई डावड़ी।

खालसाजमीनभाड़ो-सं०पु०यौ०—खालसा की जमीन पर लिया जाने वाला एक प्रकार का सरकारी कर।

खालसौ-सं०पु० [अ० खालिस] १ राजा की निजी और जाती—भूमि और जायदाद। उ०—हैं हिरस जोधपुर हरन हाल, खालसौ करन खाली खयाल।—ऊ.का.

क्रि०प्र०—करणी, होणी।

२ सिक्खों का एक संप्रदाय, खालसा. ३ इस संप्रदाय का व्यक्ति।

खाला-सं०स्त्री० [अ० खाल:] १ माता की बहिन, मौसी।

उ०—इस्दी औरत वालदा खाला पकरेगा, ताई चच्ची आदि ले सब बंद करेगा।—ला.रा. २ गनिका, वेश्या (अ.मा.)

खाळाय—देखो 'खाळौ' (रू.भे.) उ०—तिम नाळाय खाळाय नीर तजै, बरसाळाय काळाय डूक बजै।—पा.प्र.

खालिक, खालिकि–सं०पु० [अ० खालिक] १ ईश्वर, सृष्टिकर्ता।
उ०—खसो खबरि खालिक की पाई, सींधूड़ै बाजै सहनाई।—ह.पु.वा.
२ संसार।

खाळियौ–सं०पु०—पानी की नाली। उ०—खळकिया स्रोण तांय वोह घट खाळियां। रिण भड़ां सीस यूं बैठि रतनाळियां।—हा.झा.
अल्पा०—खाळी।
महत्व०—खाळ।

खाली–वि०—१ जिसके अंदर कुछ न हो, रिक्त, शून्य। उ०— उत्तर नूं खाली कहै, उर ज्यां बडो अंधेर। उत्तर दिसा सुमेर है, उत्तर मांहि कुबेर।—बां.दा.
पर्याय०—रिकतक, रीतौ, रिकत, सूनूं।
क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।
मुहा०—१ खाली पेट—बिना कुछ खाये-पीये, भूखा. २ खाली होणौ—रिक्त होना।
कहा०—१ खाली तजारा मांजै चोकी—रीते छिलकों पर पहरा अर्थात् साधारण वस्तु पर कड़ी निगरानी रखना मूर्खता है. २ खाली बासण घणा खड़खड़ावै (खड़बड़ीजै)—रिक्त बर्तन टकराने पर अधिक आवाज करते हैं। गुणहीन व्यर्थ बढ़-बढ़ कर बातें बनाते हैं।
२ जिस पर कुछ न हो। ज्यूं खाली घोड़ौ. ३ रहित, विहीन।
मुहा०—१ खाली हाथ—व्यय करने के लिये पास में रुपये-पैसे न होना, बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के, बिना भेंट-उपहार के, बिना कुछ लिये-दिये. २ खाली होणौ—रुपया-पैसा पास में न होना।
कहा०—खाली हाथ मूंडा सामौ नी जावै—खाली हाथ कभी मुंह की ओर नहीं जाता; निर्धनता में कुछ भी खर्च नहीं किया जा सकता।
४ जिसे कुछ काम न हो, जो किसी कार्य में न लगा हो।
मुहा०—१ खाली बैठणौ—बिना रोजगार के बैठना. २ खाली होणौ—बेकार होना।
कहा०—१ खाली बैठां उतपात सूझै—निठल्ले बैठे ऊधम सूझता है, अर्थात् बिना कार्य नहीं बैठना चाहिये, कुछ न कुछ कार्य करते ही रहना चाहिये. २ खाली बैठां बिचै बेगार भली—खाली अर्थात् कार्यरहित बैठने की अपेक्षा बेगार करना अच्छा होता है; मनुष्य को कुछ न कुछ कार्य करते रहना चाहिये।
५ जो व्यवहार में न हो, जिसका काम न हो (वस्तु) ६ व्यर्थ, निष्फल।
मुहा०—१ बात खाली जाणी—कही हुई बात निष्फल होना, झूठा सिद्ध होना. २ वार खाली जाणौ—निशाना ठीक न बैठना, बेकार होना।
७ अशुभ. (यौ०—खाली दिस) जिसके पेट में गर्भ न हो (पशु)
सं०स्त्री०—तबला मृदंग आदि बजाने में ताल का वह स्थान जो खाली छोड़ दिया जाता है।
क्रि०वि०—केवल, सिर्फ।

खाळी–सं०स्त्री०—१ नाला, छोटा नाला. २ गंदे पानी को बाहर निकालने की मोरी।

खालीखोपण–सं०स्त्री०—आभूषणों पर नक्काशी करने का एक औजार।

खालीबावळ–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खाळू–सं०पु०—१ कबड्डी के खेल का मुखिया, खेल-नायक।
कहा०—खाळू पड़ियौ नै खेल बिखरियौ—मुखिया हारा और खेल समाप्त हुआ अर्थात् नायक के गिरते ही या हारते ही बाजी चली जाती है।
२ टोली-नायक। उ०—'विक्कम' सांड ऊससइ वग्गि, खाळुआं खट्टकइ हियइ खग्गि।—रा.ज.सी.

खालेड़–वि०—१ खाली, रिक्त. २ आवारा।
सं०स्त्री० [रा० खाली+ऐड = बहरा, मूक] १ उपाय करने पर भी कुछ हाथ न लगने का भाव. २ शिकार में कुछ हाथ न आना।

खालेड़णौ–क्रि०स०—मरे हुए पशुओं की खाल उतारना।

खालेड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—खाल उतारा हुआ।

खालौ–वि०पु० (स्त्री० खाली) रिक्त, खाली।

खाळौ, खाळयौ–सं०पु०—१ गंदा पानी निकलने का निकास-स्थान, गंदा नाला, मोरी. २ नाला उ०—१ भूरा भुरजाळा अंबुद भळहळिया, खाळा नदनाळा वाळहा खळहळिया।—ऊ.का.
उ०—२ धुरि आसाढ़ घडूक्या मेह, खळहळया खाळया बह गई खेह।
—वी.दे.

खावंद—देखो 'खाविंद' (रू.भे.) उ०—साथ रा मांणसां देख कही—ओहो, आज तौ म्हारौ खावंद बारहहजारी हौ आयौ।
—अमरसिंह री वात

खावण–सं०पु०—१ खाद्य पदार्थ, भोजन. २ खाने की क्रिया या ढंग।

खावणखंडौ, खावणखंदौ–वि० (स्त्री० खावणखंडी) देखो 'खाणखंडौ' (रू.भे.)

खावणौ–वि०—१ खाने वाला. २ हजम करने वाला. ३ नाश करने वाला। उ०—नह डाकी अरि खावणौ, आयां केवळ बार। वधा वधी निज खावणौ, सो डाकी सरदार।—बी.स.

खावणौ, खावबौ—देखो 'खाणौ' (रू.भे.)
कहा०—१ खादे भूख जाय दीठे भूख न जाय—भूख खाना खाने से ही मिटती है केवल खाद्य सामग्री के देखने से नहीं; कार्य करने से ही होता है वार्तालाप से नहीं; २ खाय तौ डाकण नी खाय तौ डाकण—खाये तब भी डायन नहीं खाय तब भी डायन; बुरा व्यक्ति भला कार्य करने पर भी बुरा ही समझा जाता है. ३ खावण नै खोखा पैरण नै चोखा—खाने को भले ही खेजड़ी के सूखे फल ही मिलें परन्तु पहिनने को वस्त्र उच्च कोटि के चाहिएँ; आधुनिक युग के उन युवकों के लिए व्यंगोक्ति है जिनके पास उनकी अकर्मण्यता के

कारण खाने को तो कुछ है ही नहीं और केवल भड़कीले वस्त्र धारण कर फिरते रहते हैं. ४ खावण पीवण नै खेमली नाचण नै मगराज—काम करने के वक्त पर कोई और और मौज उड़ाने के लिए कोई और. ५ खावण पीवण नै दीयाळी कूटीजण नै छाज—खाने-पीने को दीवाली और पिटने को छाज; परिश्रम कोई करे मौज कोई और उड़ाये. ६ खावणो मनचायो नै पैरणो परचायो—खाना मन का चाहा और पहनना पर का चाहा; खाना तो मन की रुचि का हो परन्तु पहनाव समाज की रुचि का होना चाहिए. ७ खावतो पीवतो मरै जके री कोई कांई करै—जो खाता-पीता हुआ भी मरे तो उसका कोई अन्य भी क्या करे; सावधानी रखते हुए भी कोई कार्य बिगड़ जाय तो उसका क्या उपाय. ८ खावा नी वेळा आगो कांम नी वेळा पाछो—खाने के समय आगे और काम के समय पीछे; आनन्द चाहने वाले किन्तु आलसी व्यक्ति के प्रति कही जाती है. ९ खावै जकी ही थाळी में हिंगै—जिस थाळी में खाना उसी में ही हगना। उपकार न मानना, कृतघ्न होना. १० खावै जकी हांडी नै फोड़ै—जिस हंडिया (पात्र) में खाना उसी को फोड़ना; उपकार न मानना, नमकहराम होना. ११ खावै जकी हांडी में ही छेकला करै—मि० कहा० (१०) १२ खावै जठै ही ढोळै—मि० कहा० (१०, ११) १३ खावै जकै री गावै—जिसका खाता है उसी का गाता है; पालन-पोषण करने वाले का उपकार मानना, कृतज्ञ होना. १४ खावै जिती भूख, लेवै जिती नींद—खावे जितनी ही भूख और ली जाय जितनी ही नींद; भूख व नींद की कोई सीमा नहीं. १६ खावै पीवै जिकण नै खुदा देवै—जो खाता पीता है उसे खुदा देता है; कंजूसी की निंदा; संपत्ति का उपयोग करना चाहिए, भोगने से उसका नाश नहीं होता; खर्च के लिए ईश्वर देता है. १७ खावै सूर कुटीजै पाडा—खाते हैं सूअर और पिटते हैं पाडे (भैंसे); अपराध कोई करता है और दण्ड किसी को प्राप्त होता है; अव्यवस्था पर व्यंगोक्ति।

खावणहार, हारो (हारी), खावणियो—वि०।

खवाड़णो, खवाड़बो, खवावणो, खवावबो—क्रि०स०, प्रे०रू०।

खायोड़ो—भू०का०कृ०।

खावीजणो, खावीजबो—कर्म वा०।

खावतो-पीवतो—देखो 'खातो-पीतो' (रू.भे.)

खावाळ—वि०—खाने वाला।

खाविंद—सं०पु० [फा०] पति, स्वामी, मालिक।

(रू.भे.—खांमिंद, खावंद, खाविंद।

खावो—देखो 'खाग्रो' (रू.भे.)

खास—वि० [अ० खास] १ विशेष, मुख्य, प्रधान। उ०—छबीलो घणो खास आवास छाजै। लखे घाट स्वराट रो पाट लाजै।—वं भा.

मुहा०—१ खास कर—विशेषतः. २ खास-खास—चुनिंदे, मुख्य। २ निजी, निज का, आत्मीय, प्रिय. ३ विशुद्ध, ठेठ।

[सं० कास] ४ खांसी।

खासखेळी—मंडली। उ०—खासखेळी रा लोग था त्यांनै बादसाह कहियो—मेरा बेटा जलाल खून रै ऊपर खून करै है।

—जलाल बूबना री बात

खासड़ो—सं०पु०—जता (रू.भे.—'खाग्रड़ो')

खासजात—सं०पु०—मुख्य आफीसर, प्रधान (नैणसी)

खासणो—क्रि०अ०—खांसना।

खासपहाड़—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खासबाड़ो, खासावाड़ो—सं०पु० [अ० खास+सं० वाट:=वेष्टन, घेरा] मुख्य घेरा, मुख्य दल। उ०—१ सातूं ही सामंत खासबाड़ा नूं तोड़ि गजां रा गोळ में जावता जकिया।—वं.भा. उ०—२ मारे अगी हरोलां बेहारे गी इळा तमासां, हकारै वकारै भूप धारै जंत्र ह्रास। वाधीयो चाटकै तुरी बगतेस खासावाड़ै, बगतेस खासावाड़ै भाटकै बांणास।—कविराजा करणीदांन

खास-नवीस [अ० खास+फा० नवीस] जो राजाओं या बादशाहों को हर बात की सूचना देता हो (नैणसी)

खासाडोबड़ा—सं०पु०—विवाह पर भोज हेतु बनाया जाने वाला एक पकवान विशेष। उ०—पूरी कचोरी खासाडोबड़ा जी वनाजी थांनै रांमजी मिळया, एजी थांनै भुजिया तांर छटाय, वनाजी थांनै रांमजी मिळया।—लो.गी.

खासियत—सं०स्त्री० [अ०] १ स्वभाव, प्रकृति, आदत, गुण। २ विशेषता, प्रधानता।

खासी—वि०स्त्री० [अ०] १ 'खासो' का स्त्री०लि० २ राजा की खास तलवार, ढाल, बंदूक या घोड़ी।

खासो—सं०पु० [अ० खास:] १ राजा का भोजन. २ राजा की सवारी का घोड़ा या हाथी. ३ एक प्रकार का सफेद सूती वस्त्र, मलमल. उ०—खासा पट खरजूर सुभूसण सार नै, दीधी दौलत पूर बधाई-दार नै।—र.रू. ४ वह अस्तबल जहां बादशाह या राजा के खास निजी घोड़े या हाथी रक्खे जाते हों. ५ प्रकृति, स्वभाव।

वि०पु० (स्त्री० खासी) १ अच्छा, भला, उत्तम. २ मध्यम श्रेणी का, सुडौल, स्वस्थ। ३ अधिक, बहुत।

खाहड़ो—सं०पु०—फटा जूता, जीर्ण जूता।

खाहणो—क्रि०स०—देखो 'खाणो' (रू.भे) उ०—उज्जळता घोटड़ा कर-हइ चढ़ियउ जाहि, तई घर मुंध केहवी जे कारण सी खाहि।

—ढो.मा.

खाही—सं०स्त्री० [सं० खनि, प्रा० खाई] गांव, नगर या गढ़ आदि की रक्षा के लिये चारों ओर बना नहर की भांति गड्ढा।

खाहेड़ियो—सं०पु०—सारथी, कोचवान। उ०—करहा चरै करेलियां पांन चितार म रोय। सरवर लाभ सरीजियो, खाहेड़ियां मुंह खोय।

—ढो.मा.

खिंग—सं०पु० [फा०] वह सफेद रंग का घोड़ा जिसके मुंह पर पट्टा और

चारों सुम गुलाबीपन लिए सफेद हों (शा.हो., डि.को.)
(रू.भे. 'खइंग')

खिजर–सं०पु० —खंजन, पक्षी। उ०—चंद वदरिए चंपक वरणि, ग्रहर उलला रंगि। खिजर नयणी खीण कटि, चंदन परमळि ग्रंगि।
—ढो.मा.

खिटोर–सं०पु०—व्यर्थ में तंग करने या कष्ट देने का भाव।
(मि० 'खोड़ीलाई')

खिडणौ, खिडबौ–क्रि०ग्र०—१ जाना। उ०—भीड़ एक-एक कर खिडगो।—वरसगांठ २ भेजना. [सं० खंड] ३ देखो 'खंडणौ' (रू.भे.)

खिडाणौ, खिडाबौ, खिडावणौ, खिडावबौ–क्रि०स०—१ भेजना। उ०—गरब गुलाल चरण तळि चूरया, ग्ररग ग्रबीर खिडाया।
—ह.पु.वा.

[सं० खंडन] २ खंडित करना। उ० इतरै में व्यामजी कह्यौ—हवेली न् तोपखानें सूं खिडाय देयसे, पछै लोग जखमी होयसे तो बेतरह कांम ग्रास्यां।—ग्रमरसिंह री वात

खिदाणौ, खिदाबौ, खिदावणौ, खिदावबौ–क्रि०स०—भेजना।
उ०—बिलंब न करौ खिदावतां, मारू तन मुरभांग। म्हैं थांनै कहिया सही, पदमण तणा ग्रहिनांण।—ढो.मा.

खिमता–सं०स्त्री०—क्षमा।

खिमिया–सं०स्त्री० [सं० क्षमा] देखो 'क्षमा'।

खियाळ–वि०—वह ऊँट जिसके ग्रगले पैरों द्वारा जोड के स्थान पर चलते समय शरीर के साथ रगड खाते-खाते घाव हो जाता हो।

खियाळो–सं०पु०—कोयला (क्षेत्रीय)

खिवण–सं०स्त्री०—१ बिजली, दामिनी (ह.नां.) २ बिजली की चमक. ३ भाला (ना.डि.को.)

खिवणौ, खिवबौ–क्रि०ग्र०स०—१ चमकना। उ०—ऊंडौ गाज्यौ धर खिव्यौ, सहीज बरसण हार। जाय मिळीजै सज्जनां लंबी बांह पसार।
—जसराज

२ देवताग्रों के ग्रागे सुगंधित पदार्थ का ग्रग्नि-भोग देना।

खिवणहार, हारौ, (हारी), खिवणियौ—वि०।

खिवाणौ, खिवाबौ, खिवावणौ, खिवावबौ—क्रि०स०, प्रे०रू०।

खिविग्रोड़ो, खिवियोड़ौ, खिव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खिवीजणौ, खिवीजबौ—कर्म वा० भाव वा०।

खिवियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ चमका हुग्रा. २ देवता के समक्ष ग्रग्नि-भोग दिया हुग्रा। (स्त्री० खिवियोड़ी)

खि–सं०पु० [सं० खिन्] इन्द्र (ह.नां.)

खिग्राति–सं०स्त्री० [सं० ख्याति] १ प्रसिद्धि, ख्याति. २ इतिहास, तवारीख। उ०—१ जगण पाइ ग्रावै जुगम, खट ग्राखरां खिग्राति। मांनि छंद सूं मालती, रांम समर दिन राति।—पिंगळप्रकास
उ०—२ एकणि ता छावीस वरण लगि ग्रांणि जै ज्यांरी जाति खिग्राति इसी विध जांणीजै।—पिंगळप्रकास

खिखिंध–सं०पु० [सं० किष्किंध] १ दक्षिण देश के एक पहाड़ का नाम, किष्किंध पर्वत. २ बीहड़ भूमि।

खिखेरू–वि०—छितराने वाला, तितर-बितर करने वाला, फैलाने वाला।

खिड़क–सं०स्त्री०—दरवाजा, द्वार, कपाट। उ०—खाड़ेत्यां खोलिया खिड़क खासा रथ खांनां।—मे.म.

खिड़कणौ, खिड़कबौ–क्रि०स०—तह पर तह जमाना, एक पर दूसरी ग्रौर फिर उस पर ग्रन्य इसी क्रम से किन्हीं वस्तुग्रों को व्यवस्थित ढंग से जमाना।

खिड़कणहार, हारौ (हारी), खिड़कणियौ—वि०।

खिड़कवाणौ, खिड़कवाबौ—प्रे०रू०।

खिड़काणौ, खिड़काबौ, खिड़कावणौ, खिड़कावबौ—क्रि०स० प्रे०रू०।

खिड़किग्रोड़ो, खिड़कियोड़ौ, खिड़क्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खिड़कीजणौ, खिड़कीजबौ—कर्म वा०।

खिड़कियापाग, खिड़कियाबंद–सं०स्त्री०—मारवाड़ी पगड़ी या शिर का पेचा बांधने का एक ढंग विशेष जिसमें ऊपर की ग्रोर कुछ भाग खुला रहता है।

खिड़कियोड़ौ–वि०—तह पर तह लगा कर जमाया हुग्रा।
(स्त्री० खिड़कियोड़ी)

खिड़की–सं०स्त्री० [सं० खिट्] १ दरवाजा, द्वार के कपाट।
उ०—दुसमणां लाभ दांना दहण, खुली न कांनां खिड़कियां। नर परम धरम बूझै नहीं, हुक्को सूझै हिड़कियां।—ऊ.का.
मुहा०—कांनां री खिड़की खुलणी—ज्ञान होना, ग्रनुभव महसूस होना।

खिड़णौ, खिड़बौ–क्रि०स०—१ टीका लगाना. २ तितर-बितर होना, बिखर जाना। उ०—हाथी तो ग्रापो ग्रांप ही खिड़ दूर जाय ऊभा रहिया।—डाढ़ाळा सूर री वात ३ कूग्रा खोदना. ४ तह पर तह लगा कर वस्तु ग्रादि को ढंग से जमाना।

खिड़णहार, हारौ (हारी), खिड़णियौ—वि०।

खिड़ाणौ, खिड़ाबौ, खिड़ावणौ, खिड़ावबौ—प्रे०रू०।

खिड़िग्रोड़ो, खिड़ियोड़ौ, खिड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खिड़ीजणौ, खिड़ीजबौ—कर्म वा०।

खिड़ाणौ, खिड़ाबौ–क्रि०स०—१ (टीका) लगवाना. २ कूग्रा खुदवाना। उ०—माधव साधन ग्ररठ मंडायौ, खारौ मुख लै घणौ खिड़ायौ।—ऊ.का. ३ भगाना, तितर-बितर कराना।

खिड़ाणहार, हारौ (हारी), खिड़ाणियौ—वि०।

खिड़ायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खिड़ावणौ, खिड़ावबौ—रू०भे०।

खिड़ाईजणौ, खिड़ाईजबौ—कर्म वा०।

खिड़ायोड़ौ–भू०का०कृ०—१ (टीका) लगवाया हुग्रा. २ खुदवाया हुग्रा।
(स्त्री०—खिड़ायोड़ी)

खिड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ (टीका) लगा हुग्रा. २ खुदा हुग्रा।
(स्त्री०—खिड़ियोड़ी)

खिचड़ी-सं०स्त्री० [सं० कृसर] चावल व मूंग की दाल का मिश्रित हलका भोजन।
क्रि०प्र०—करणी, खाणी, पकाणी, रांधणी, सींजणी।
मुहा०—१ खिचड़ी पकाणी—गुप्त भाव से सलाह करना. २ ढाई चावळ री खिचड़ी रांधणी—सामान्य सम्मति के विरुद्ध अपने मत से कोई कार्य करना।
खिजणौ, खिजबौ-क्रि०अ० [सं० क्षीज] देखो 'खीजणौ'। उ०—१ पैं'ला सुणिया पांच सै, घर में तीन हजार। आधा किण सिर ओरसी, जे खिजसी जोधार।—वी.स. उ०—२ खिजमत करतां खिजै छैल छूटै चंडाळी।—ऊ.का.
खिजमत-सं०स्त्री०—१ सिर अथवा दाढ़ी के बाल काटने अथवा छांटने की क्रिया, हजामत. २ देखो 'खिदमत'। उ०—पछै द्रोब री पोट फिटी करनै ठांणियौ हुय रयौ, घणी खिजमत करै।—नैणसी
खिजमतदार-सं०पु०यौ० [अ० खिदमत+फा० दार] खिदमतगार, सेवक, सेवा करने वाला।
खिजमति, खिजमती-सं०स्त्री० [अ० खिदमत] १ सेवा ,टहल. २ हजामत. ३ देखो 'खिजमतदार'।
खिजाब-सं०पु० [अ० खिज़ाब] सफेद बालों को काला करने की औषधि।
खिजावणौ, खिजावबौ-क्रि०स०—देखो 'खिजाणौ' (रू.भे.)
उ०—अैसौ देख अचूंभौ आवै, पावै कवण भलाई पार। र'यौ रिभावणहार लंकपुरी, हरिपुर गयौ खिजावण हार।—भगतमाळ
खिजियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'खीजियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० खिजियोड़ी)
खिजूर—देखो 'खजूर' (रू.भे.)
खिजूरयौ—१ देखो 'खजूरियौ' (रू.भे.) २ एक प्रकार का घोड़ा।
खिज्जणौ, खिज्जबौ, खिझिणौ, खिझिबौ-क्रि०अ०—देखो 'खीजणौ' (रू.भे.)
खिझियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'खीजियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० खिझियोड़ी)
खिटणौ, खिटबौ-क्रि०अ० [सं० खिट्] १ क्रोध करना। उ०—गळि अमलदार तिरणूं गिणै, मरणूं डूबि सुमांणसां। खळजाति सिरड़ि मन में खिटै, मिटै न टिरड़ि कुमांणसां।—ऊ.का. २ द्वेष करना, डाह करना। उ०—खूटळ पै खिटियौ खास गंधळी न गांधी तैं, कूरन तैं कटघौ नाह, दुसमण तैं दटघौ नाह।—ऊ.का.
खिटणहार, हारौ (हारी), खिटणियौ—वि०।
खिटवाणौ, खिटवाबौ—प्रे०रू०।
खिटाणौ, खिटाबौ, खिटावणौ, खिटावबौ—क्रि०स०।
खिटिश्रोड़ौ, खिटियोड़ौ, खिटचोड़ौ—भू०का०कृ०।
खिटीजणौ, खिटीजबौ—भाव वा०।
खिटाणौ, खिटाबौ-क्रि०स०—१ गुस्सा दिलाना, क्रोध कराना. २ द्वेष कराना, डाह कराना।
खिटाणहार, हारौ (हारी), खिटाणियौ—वि०।
खिटायोड़ौ—भू०का०कृ०।
खिटाईजणौ, खिटाईजबौ—कर्म वा०।
खिटावणौ, खिटावबौ—रू०भे०।
खिटायोड़ौ-भू०का०कृ०—क्रोध कराया हुआ (स्त्री० खिटायोड़ी)
खिटावणौ, खिटावबौ-क्रि०स०—देखो 'खिटाणौ' (रू.भे.)
खिटियोड़ौ-भू०का०कृ०—क्रुद्ध किया हुआ, कुपित (स्त्री० खिटियोड़ी)
खिडुलौ-सं०पु०—जंगली जमीकंद।
खिणंक-सं०पु०—१ चूहा. २ गोदने वाला. [सं० क्षणिक] ३ क्षण भर रहने वाला, क्षणभंगुर।
खिण-सं०स्त्री० [सं० क्षण] क्षण, पल। उ०—मन मिळियोड़ा तिकां माढ़वां, जीभ करै खिण मांह जुवा।—बां.दा.
स्त्री० [सं० क्षणिका] बिजली (अ.मा.)
खिणक-सं०पु० [सं० क्षणिक] १ क्षण, पल। उ०—माभी खिणक मिजाज, बे अदबी सातू विसन। लोभ घणौ कम लाज, पैलां घर बांछै पिसण।—बां.दा.
वि०—२ अनित्य, क्षणभंगुर (रू.भे. 'खिणंक')
खिणकर-सं०पु०—सिंह (ना.डि.को.)
खिणका-सं०स्त्री० [सं० क्षणिका] बिजली (अ.मा., ह.नां.)
खिणणौ, खिणबौ-क्रि०स० [सं० खन् विदीर्णे] १ टीका लगाना. २ खुजलाना. ३ खोदना।
कहा०—१ खिणियौ डूगर निकळियौ ऊंदर—खोदा पहाड़ निकला चूहा; बहुत अधिक परिश्रम का बहुत थोड़ा फल मिलना. २ खिणै जिकौ पड़ै—जो खोदता है वही खड्डे में गिरता है अर्थात् करनी का फल मिलता ही है।
खिणणहार, हारौ (हारी), खिणणियौ—वि०।
खिणवाणौ, खिणवाबौ, खिणाणौ, खिणाबौ, खिणावणौ, खिणावबौ—प्रे०रू०।
खिणिश्रोड़ौ, खिणयोड़ौ, खिणघोड़ौ—भू०का०कृ०।
खिणीजणौ, खिणीजबौ—कर्म वा०।
खणणौ, खणबौ, खिड़णौ, खिड़बौ—(रू०भे०)
खिणदा, खिणदर-सं०स्त्री० [सं० क्षणदा] रात्रि (ह.नां.)
खिणबाळी-सं०स्त्री०यौ० [?] भूमि (ना.डि.को.)
खिणभंग-वि०—क्षणभंगुर, अनित्य, थोड़े समय के लिए।
खिणमंत-क्रि०वि० [सं० क्षणमात्र] क्षण मात्र, थोड़े समय के लिए।
उ०—मा जांणमि मित्र तुम्हं निसिवासर वीसरेण। खिणमंत जइ व कंवयांण सूरं चंद जहा चकोरेण।—ढो.मा.
खिणमपि-क्रि०वि० [सं० क्षण+अपि] क्षण भर भी।
खिणमवि-क्रि०वि०—तत्क्षण, उसी समय।
खिणवाणौ, खिणवाबौ, खिणाणौ खिणाबौ-क्रि०स०('खिणणौ' का प्रे०रू०) १ तुड़वाना। उ०—पण हाथी पोळ में मायौ नहीं तद दरवाजौ

खिणवाय नै मांय लियौ।—द.दा. २ टीका लगवाना.
३ खुजलवाना. ४ खुदवाना।
खिणाणहार, हारौ (हारी), खिणाणियौ—वि०।
खिणायोड़ौ—भू०का०कृ०।
खिणाईजणौ, खिणाईजबौ—कर्म वा०।
खिणाड़णौ खिणाड़बौ—(रू०भे०)।
खिणायोड़ौ—भू०का०कृ०—१ टीका लगवाया हुआ. २ खुदवाया हुआ. ३ तुड़वाया हुआ. ४ खुजलवाया हुआ।
(स्त्री० खिणायोड़ी)
खिणारौ—सं०पु०—१ चेचक का टीका लगाने वाला. २ खोदने वाला।
खिणावणौ, खिणावबौ—देखो 'खिणाणौ (रू.भे.)
खिणावणहार, हारौ (हारी), खिणावणियौ—वि०।
खिणवावणौ, खिणवावबौ—प्रे०रू०।
खिणाविग्रोड़ौ, खिणावियोड़ौ, खिणाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खिणावीजणौ खिणावीजबौ—कर्म वा०।
खिणि—सं०स्त्री० [सं० क्षण] देखो 'खिण' (रू.भे.)
खिणियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ टीका लगाया हुआ. २ खुदा हुआ.
३ टूटा हुआ. ४ खुजलाया हुआ। (स्त्री० खिणियोड़ी)
खिणे, खिणेय—देखो 'खिण' (रू.भे.)
खित—सं०स्त्री० [सं० क्षिति] १ पृथ्वी, धरती, भूमि (अ.मा.)
उ०—खित पड़ियौ न पळचरां खाधौ, पावक घट सकियौ न प्रजाळ।
२ हानि नुकसान। —अर्जुन गौड़ रौ गीत
सं०पु० [सं० क्षि = क्षये = क्षित] ३ धन, द्रव्य (अ.मा.)
४ घोड़ा (ना.डि.को.)
खितग—सं०स्त्री०—गंगा।
खितजात—सं०पु० [सं० क्षतजात] रुधिर, खून (अ.मा.)
खित-डसण—सं०पु०—भाला, बरछी (ना.डि.को.)
खितधर, खितधारी खितनाथ, खितपति—सं०पु० [सं० क्षितिधर]
१ राजा, नृप। उ०—१ प्रचंड खितधर कियण पाधर।—रा.रू.
उ०—२ खटतीसूं वंस तणा खितधारी, विग्रह रूप बरारा है।
—र.रू.
उ०—३ खितपति आ सुणतां खबरि, अजन हुवौ असवार।
—रा.रू.
खितपुड़—सं०पु०—पृथ्वी-तल। उ०—आयौ फेर इकावनौ, 'काजम' लह्यौ निदांन। नायब हुवौ नबाब रै, खितपुड़ लसकर खांन।
—रा.रू.
खितरुह—सं०पु० [सं० क्षितिरुह] वृक्ष (अ.मा., नां.मा.)
खितबा—सं०पु० [अ० खुत्ब] तारीफ, प्रशंसा। उ०—अकबर साह जलाल दी, खितबे वळी खुदाय। बाजदार कर बंदगी, ताजदार हो जाय।—बां.दा.

खितवाट—सं०स्त्री०—क्षत्रीपन, क्षत्रियत्व।
खिताब—सं०पु० [अ०] पदवी, उपाधि। उ०—महाराज नूं खिताब बादसाह इनायत राज राजेंद्र महाराज सिरोमणि रौ दियौ।
—मारवाड़ा रा अमरावां री वात
खिति—सं०स्त्री० [सं० क्षिति] पृथ्वी, धरा, धरती। उ०—जांगळ अउ सरणाइ घाति जग्ग, खिति मिती नदी साहइ खडग्ग।—रा.ज. रासौ
खितिज—सं०स्त्री०—क्षितिज। उ०—खितिज री छाती लग लीलाण, धरा में दीसै घणौ सुगाळ।—सांझ
खितिरू—देखो 'खितरुह' (रू.भे.) उ०—करै सिर हारहर नचै नारद कहर, खिति पुड़ मचै चहुवै दसा खेद।—अज्ञात
खिती—देखो 'खिति' (रू.भे.)
खित्रवट—देखो 'खित्रीवट'। उ०—भुज धरण बंका बिरद अणभंग तीरख खित्रवट तेह।—र ज.प्र.
खित्री—देखो 'खत्री' (रू.भे.) उ०—सूरां सुभट खित्री तणं धरे घोड़ा पाठव्या, छत्रीस वरण तणा घोड़ा।—कां.दे.प्र.
खित्रीवट—सं०पु०—क्षत्रियत्व, बहादुरी, वीरता। उ०—खित्रीवट जे साहस धीर मालदेव छइ लहुठऊ वीर।—कां.दे.प्र.
खिदमत—सं०स्त्री०—सेवा, टहल। उ०—जैपुर रा सारा उमराव जैपुर राज री खिदमत में रहै।—बां.दा. ख्यात
खिदमतगार—सं०पु०—सेवक, नौकर। उ०—तौ इण फेर अरज कीवी—जे आ तौ कुंवरजी नै फरमावै आपरै खिदमतगार घणा छै।
—कुंवरसी सांखला री वारता
खिदर—सं०पु०—खैर का वृक्ष। उ०—कुतक खिदर धव काठ रा, विदर पजावण वेस। तौ पिण हाजिर राखणा, धण मेवचा हमेस।—बां.दा.
खिनणी—सं०स्त्री०—बिजली, विद्युत (ह.नां., अ.मा.)
खिनाणौ, खिनाबौ—क्रि०स०—भेजना। उ०—नणदल बाई नै सासरियै खिनाय, वागी धण वारी अौ लंजा।—लो.गी.
खिनाणहार, हारौ (हारी), खिनाणियौ—वि०।
खिनावणौ, खिनावबौ—प्रे०रू०।
खिनायोड़ौ—भू०का०कृ०।
खिनाईजणौ, खिनाईजबौ—कर्म वा०।
खिनायोड़ौ—भू०का०कृ०।
खिनावणौ, खिनावबौ—देखो 'खिनाणौ' (रू.भे.)
उ०—नणदल बाई तोड़चा बड़ रा पांन, देवरियै छिनगारै तोड़ी साटकी। नणदल बाई नै सासरियै खिनाय, देवर नै खिनावौ राजाजी री चाकरी।—लो.गी.
खिनावणहार, हारौ (हारी), खिनावणियौ—वि०।
खिनाविग्रोड़ौ, खिनावियोड़ौ, खिनाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खिनावीजणौ, खिनावीजबौ—कर्म वा०।
खिनावियोड़ौ—देखो 'खिनायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० खिनावियोड़ी)
खिपा—सं०स्त्री० [सं० क्षिपा] रात्रि (नां.मा.)

खिप्र—क्रि०वि० [सं० क्षिप्र] शीघ्र (ह.नां.)

खिमज—सं०स्त्री०—१ भाला (ना.डिं.को.) २ बिजली (ह.नां.)

खिमणौ, खिमबौ—क्रि०अ०—१ सहन करना। उ०—पहु गोधळिया पास, आळूधा अकबर तणी। रांणौ खिमै न रास, प्रघळी सांड प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ

२ क्षमा करना. ३ चमकना. ४ झुकना. ५ फल भोगना. ६ मंडराना, चक्कर लगाना।

मुहा०—काळ खिमणौ—मौत घूमना अर्थात् संकट में फँसना।

खिमणहार, हारौ (हारी), खिमणियौ—वि०।

खिमाणौ, खिमाबौ, खिमावणौ, खिमावबौ—क्रि०स०।

खिमिओड़ौ, खिमियोड़ौ, खिम्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खिमीजणौ, खिमीजबौ—भाव वा०।

खिमत, खिमता—सं०स्त्री० [सं० क्षमता] १ सहनशीलता. २ क्षमा. उ०—खिमत करै जिम खांन, वीरम जिम अवळौ बहै।—गो.रू.

खिमद, खांवदा—सं०पु०—जैन यतियों में मृत्यु के उपरांत संबंधियों या मित्रों द्वारा सहानुभूति प्रकट करने के लिए आने की रस्म विशेष।

खिमा—सं०स्त्री० [सं० क्षमा] १ क्षमा. २ सहिष्णुता, सहनशीलता।

खिमारूप—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा।

खिमावंत—सं०पु० [सं० क्षमावान्] क्षमावंत, दयावान, कृपालु। उ०—हळधर बंधव गोकुळ बाळ, खिमावंत साधुव दुष्ट खंगाळ।

—ह.र.

खिमिया—सं०स्त्री० [सं० क्षमा] १ क्षमा, माफी. २ दुर्गा का एक नाम।

खिमियोड़ौ—भू.का.कृ.—१ सहन किया हुआ. २ क्षमा किया हुआ. ३ क्रुद्ध। (स्त्री० खिमियोड़ी)

खिम्या—सं०स्त्री० [सं० क्षमा] १ सहन-शक्ति. २ क्षमा. ३ दुर्गा। उ०—भई अकल मौ भिसट कह्या कूवचन आई नै, सगत खिम्या रा समझ विरद वडकी बाई नै।—पा.प्र.

खियात—देखो 'ख्यात' (रू.भे.)

खियाल—देखो 'ख्याल' (रू.भे.)

खियळ—देखो 'खियाळ' (रू.भे.)

खियौ—सं०पु०—१ तिल्ली, प्लीहा. २ खिस्सा, जेब।

खिरक—सं०स्त्री०—लगभग दो अंगुल चौड़ी चिकनी पटरी जो करघे में दो खूंटियों पर अटका कर खड़ी रखी जाती है और जिस पर ताना फैला कर बुनने का कार्य किया जाता है, खर-करवट।

खिरका—सं०स्त्री० [अ० खिरक] १ मुसलमान फकीरों के ओढ़ने की गुदड़ी. २ साधु, त्यागी (मा.म.)

खिरकोळियौ, खिरकोळी—सं०पु०—वह खूंटा जिस पर ताना फैलाने की दो अंगुल चौड़ी चिकनी पट्टी खरकवट खड़ी लगाई जाती है (जुलाहा)

खिरजूर—सं०पु० [सं० खर्जूर] १ चांदी, रौप्य (ह.नां.)

२ देखो 'खजूर' (रू.भे.)

खिरणियौ—वि०—१ टूट कर गिरने वाला. २ वीर गति प्राप्त करने वाला।

खिरणी—देखो 'खरणी' (रू.भे.)

खिरणौ, खिरबौ—क्रि०अ० [सं० क्षरण] १ स्वतः टूट कर गिरना, सूखने या पकने पर (जैसे फूल, फल आदि) २ वीर गति को प्राप्त होना. ३ गिरना। उ०—मेहा वूठां अन बहुळ, थळ ताढ़ा जळ रेस। करसण पाका कण खिरा, तद कउ वळण करेस।—ढो.मा.

खिरणहार, हारौ (हारी), खिरणियौ—वि०।

खिराणौ, खिराबौ, खेरणौ, खेरबौ—क्रि०स०।

खिरिओड़ौ, खिरियोड़ौ—भू०का०कृ०।

खिरीजणौ, खिरीजबौ—क्रि० भाव वा०।

खिराज—सं०पु० [अ०] राजस्व, कर, मालगुजारी।

खिरियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ सूख कर या पक कर गिरा हुआ. २ मरा हुआ (स्त्री० खिरियोड़ी) ३ वीर गति प्राप्त।

खिरेटी—सं०स्त्री० [सं० खरयष्टिका] बला, बीजबंद।

खिरोड़ा—सं०पु०—विवाह के दिन कन्या-पक्ष की ओर से वर-पक्ष को पापड़, वड़ी कैर, सांगरी, खेलड़ा, वनपापड़, काचरी आदि सूखे साग एवं कुछ रोकड़ रुपये भेजने की एक प्रथा जिसके साथ विवाह का लग्न पत्र भी भेजा जाता है (पुष्करणा ब्राह्मण)

खिल—सं०स्त्री० [सं०] १ बिना जुती हुई जमीन को साफ कर प्रथम बार खेती हेतु जोतने की क्रिया. २ नया खेत। उ०—बरसौ खेतां-माळ खिलां री सौरम जिण में।—मेघ.

खिलअत—सं०स्त्री० [अ०] वह वस्त्र आदि जो किसी बड़े राजा या बादशाह की ओर से सम्मानसूचनार्थ किसी को दिया जाता है।

खिलकत—सं०स्त्री० [अ० खिल्कत] १ सृष्टि, संसार. २ बहुत से लोगों का समूह, भीड़।

(रू.भे. 'खलकत')

खिलकौ—सं०पु०—१ हंसी, मजाक, दिल्लगी. २ खेल, तमाशा।

खिलखिल—सं०पु० [अनु०] १ जोर से हँसने से उत्पन्न ध्वनि. २ अट्टहास (मि० 'खिलखिलणौ')

खिलखिलणौ, खिलखिलबौ—क्रि०अ० [अनु०] खिलखिला कर हँसना, जोर से हँसना। उ०—खेतपाळ खिलखिलै करै हूंकार बकेसर।—पा.प्र.

खिलखिलाट—सं०स्त्री०—खिलखिल की ध्वनि।

खिलजी—सं०स्त्री०—१ अफगानिस्तान की सरहद पर रहने वाले पठानों की एक जाति. २ नायक जाति के मुसलमानों का एक भेद।

खिलणियौ—वि०—खिलने वाला, विकसित होने वाला।

वि०—खिला हुआ, शोभित होने वाला।

खिलणौ, खिलबौ—क्रि०अ० [सं० स्खल] १ खिलना, विकसित होना. २ प्रसन्न या शोभित होना. ३ ठीक जंचना. ४ खेलना, खेल करना। उ०—फाड़ंतौ फौजां अफिर, घूमाड़ंतौ घाए घड़। भवाड़ंतौ 'वीक' भलौ, खिलंतौ निघात खेल।—दूदौ सुरतांणोत बीठू

खिलणहार, हारौ (हारी), खिलणियौ—वि०।

खिलाणौ, खिलाबौ, खिलावणौ, खिलावबौ—क्रि०स०, प्रे०रू०।

खिलिप्रोड़ौ, खिलियोड़ौ, खिल्योड़ौ—भू०का०कृ० ।
खिलीजणौ, खिलीजबौ—भाव वा० ।

खिलत—देखो 'खिलग्रत' (रू.भे.) उ०—पीछे भाटियां वात ठहरायी तद राव लूणकरणजी देवीदासजी नूं **खिलत** ग्रनायत करी ।—द.दा.

खिलवत, खिलवत-सं०स्त्री०—१ साथ रहने का भाव, संग. २ हँसी-मजाक. ३ सभा-समाज. ४ खिलवाड़. ५ मैत्री. ६ केलि-क्रीड़ा । उ०—हमैं कुरळा किया, पांनां रा बीड़ा लिया जठै कुंवर री दिल **खिलवत** सारू जांणियौ ।—र. हमीर

[ग्र० खिलवत] ७ एकान्त, शून्य स्थान । उ०—दिल भी कही **खिलवत** करौ, जे मसलत री बात कहां ।—नी.प्र.

वि०—निजी, निज का, खानगी । उ०—**खिलवत** हास खुसामदी, सुरका दुरकी संग । किसब लियां ये कुकवियां, माहव हूं ता मांग ।
—बां.दा.

खिलवाड़-सं०स्त्री०—खेलवाड़, खेल, तमाशा, क्रीड़ा, कौतुक ।

खिलावणौ, खिलावबौ-क्रि०स० [सं० 'खिलणौ' का प्रे०रू०] प्रफुल्लित करना या कराना । उ०—पाबासर जळ पीय पोयण हेम **खिलावै**, ऐरावत मुख ग्रांचळती घण मेह जतावै ।—मेघ.

खिलस-सं०स्त्री०—हँसी, मजाक, दिल्लगी ।

खिलसणौ, खिलसबौ-क्रि०स०—१ क्रीड़ा करना, खेलना. २ हँसी करना. ३ खुश होना ।

खिलसियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ क्रीड़ा किया हुग्रा. २ खेला हुग्रा. ३ युद्ध किया हुग्रा । (स्त्री० खिलसियोड़ी)

खिलाई-सं०स्त्री०—भोजन की क्रिया, खाने या खिलाने का काम ।

खिलाड़—देखो 'खिलाड़ी' (रू.भे.)

खिलाड़ी-वि० [सं० खेल] १ खेलने वाला, खेल में दक्ष. २ जादूगर ।

खिलाणौ, खिलाबौ-क्रि०स०—१ खिलाना, किसी को खेल में नियोजित करना. २ भोजन कराना. ३ विकसित करना. ४ प्रसन्न करना ।

खिलाणहार, हारौ (हारी), खिलाणियौ—वि० ।
खिलाईजणौ, खिलाईजबौ—कर्म वा० ।
खिलायोड़ौ—भू०का०कृ० ।
खिलणौ—ग्र० रू० ।
खिलावणौ, खिलावबौ—रू०भे० ।

खिलाफ-वि० [ग्र० खिलाफ] जो ग्रनुकूल न हो, विरुद्ध, विपरीत ।

खिलाफत-सं०स्त्री० [ग्र० खिलाफ+रा० प्र० त] विरुद्धता, प्रतिकूलता, मनमुटाव ।

खिलायोड़ौ-भू०का०कृ०—१ खिलाया हुग्रा. २ भोजन कराया हुग्रा. ३ प्रसन्न कराया हुग्रा । (स्त्री० खिलायोड़ी)

खिलावणौ, खिलावबौ—देखो 'खिलाणौ' (रू.भे.)
खिलावणहार, हारौ (हारी), खिलावणियौ—वि० ।
खिलाविग्रोड़ौ, खिलावियोड़ौ, खिलाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।
खिलावीजणौ, खिलावीजबौ—कर्म वा० ।
खिलणौ—ग्र०रू० ।

खिलावियोड़ौ—देखो 'खिलायोड़ौ' । (स्त्री० खिलावियोड़ी)

खिलाहर-वि०—१ योद्धा, वीर. २ खेलने वाला. ३ खिलाने वाला ।

खिलियार-वि०—१ खिलाड़ी । उ०—ग्रहंकार ग्रठी ग्रभमल ग्रमांन, **खिलियार** उठी सिर विलंद खांन ।—वि.सं.

खिलीजणौ, खिलीजबौ-क्रि० ग्र० ('खिलणौ' का भाव वा०) १ खिल जाना. २ खेला जाना. ३ प्रसन्न होना. [सं० कील] ४ बंधन में डालना. ५ मंत्रों द्वारा वश में होना ।
खिलीजणहार, हारौ (हारी), खिलीजणौ—वि० ।
खिलीजिग्रोड़ौ, खिलीजियोड़ौ, खिलीज्योड़ौ—भू०का०कृ० ।
खिलणौ—ग्र० रू० ।

खिलीजियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ खेला गया हुग्रा. २ विकसित, प्रसन्न । मंत्रों द्वारा वश में किया हुग्रा । (स्त्री० खिलीजियोड़ी)

खिलोरी-सं०पु० [सं० खिलचारी] भेड़-बकरी चराने वाला ।

खिलौना-सं०पु०—काठ, मोम, मिट्टी, लकड़ी या लोहे ग्रादि की बनी हुई कोई मूर्ति या इसी प्रकार की कोई वस्तु जिससे बालक खेलते हैं ।

खिल्लत—देखो 'खिलग्रत' (रू.भे.) उ०—सुभ **खिल्लत** एवं बसन सुरंगी, ग्रसि खंजर सर पेच कलंगी ।—रा.रू.

खिल्ली-सं०स्त्री०—१ हँसी, हास्य, दिल्लगी, मजाक. २ देखो 'खील' (रू.भे.)

खिल्लौ, खिल्ल-वि०—प्रफुल्ल, प्रसन्न, विकसित । उ०—मन मिळिया तन गड्डिया, दोहग दूरि गयाह । सज्जण पांणी खीर ज्यूं, **खिल्लौ खिल्ल** थयाह ।—ढो.मा.

खिवण-सं०स्त्री०—१ बिजली (नां.मा.) २ भाला (ना.डि.को.)

खिवणी-सं०स्त्री०—बिजली, विद्युत । उ०—नव घण घटा बरसती थाकी, भार ग्रठारह पाई । चित **खिवणी** गाजे गत ग्रायौ, वसुधा गगन समाई ।—ह.पु.वा.

खिवणौ, खिवबौ-क्रि०ग्र० [सं० क्षिव्] देखो 'खिमणौ' (रू.भे.)
उ०—सिधु परइ सउ जेग्रणे, नीची **खिवइ** निहल्ल । उर भेदंती सज्जणां, उचेड़ंती सल्ल ।—ढो.मा.

खिवणहार, हारौ (हारी), खिवणियौ—वि० ।
खिवाणौ, खिवाबौ, खिवावणौ, खिवावबौ—क्रि०स०, प्रे०रू० ।
खिविग्रोड़ौ खिवियोड़ौ, खिव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।
खिवीजणौ, खिवीजबौ—भाव वा० ।

खिवाणौ, खिवाबौ-क्रि०स०—चमकाना ।

खिवायोड़ौ—देखो 'खिमायोड़ौ' । (स्त्री० खिवायोड़ी)

खिवियोड़ौ—देखो 'खिमायोड़ौ' । (स्त्री० खिवियोड़ी)

खिसकणौ, खिसकबौ-क्रि०ग्र०—देखो 'खसकणौ' (रू.भे.)

उ०—टांगड़ी झरे लागां टलै पड़ै खिसकि नै पागड़ो। नागड़ो तोई देखौ निलज अमल न छोडै आगड़ो।—ऊ.का.

खिसकणहार, हारौ (हारी), खिसकणियौ—वि०।

खिसकाणौ, खिसकाबौ, खिसकावणौ, खिसकावबौ—क्रि०स०, प्रे०रू०

खिसकिओड़ौ, खिसकियोड़ौ, खिसक्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खिसकीजणौ, खिसकीजबौ—भाव वा०।

खिसकाणौ, खिसकाबौ–क्रि०स०—देखो 'खसकाणौ' (रू भे.)

उ०—ढोलौ चाल्यौ हे सखी, बाज्या विरह निसांण। हाथे चूड़ी खिस पड़ी, ढीला हुवा संधांण।—ढो.मा.

खिसकाणहार, हारौ (हारी), खिसकाणियौ—वि०।

खिसकायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खिसकाई खिसकाईजबौ—कर्म वा०।

खिसकणौ—अक०रू०।

खिसकावणौ, खिसकावबौ—रू०भे०।

खिसकायोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'खसकायोड़ौ' (स्त्री० खिसकायोड़ी)

खिसकावणौ, खिसकावबौ–क्रि०स०—देखो खसकाणौ' (रू भे.)

खिसकावणहार, हारौ (हारी), खिसकावणियौ—वि०।

खिसकाविओड़ौ, खिसकावियोड़ौ खिसकाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खिसकावीजणौ, खिसकावीजबौ—कर्म वा०।

खिसकणौ—अक०रू०।

खिसकियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'खसकियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० खसकियोड़ी)

खिसणौ, खिसबौ–क्रि०अ० [अनु०] १ पीछे हटना। उ०—देखै अकबर दूर, घेरी दे दुसमण घड़ा। सांगाहर रण सूर, पैर न खिसै प्रतापसी।

—दुरसौ आढ़ौ

२ खिसकना, सरकना, हटना। उ०—जोत लिंग थौ सु उपाड़नै आला चावां मांहे बांध नै गाडे मांही घातियौ सु महादेव ठोड़ ती खिसै नहीं।—नैणसी ३ फिसलना. ४ क्रोध करना. ५ खिसियाना, फीका पड़ना। उ०—खिसियौ न किरंड, सब गा खिसाय।

—रामदांन लाळस

६ भागना। उ०—मांझी जिके हुता गढ़ मांहै, खिसिगा आये मरण खिरै।—महेमदास कल्यांणदास री गीत ७ भिड़ना।

उ०—मगज अत मनां री खांन दौलत मिटै खिसै दरियाव भाव खांगो।

—अज्ञात

खिसणहार, हारौ (हारी), खिसणियौ—वि०।

खिसाणौ, खिसाबौ, खिसावणौ, खिसावबौ—क्रि०स०, प्रे०रू०।

खिसिओड़ौ, खिसियोड़ौ, खिस्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खिसीजणौ, खिसीजबौ—भाव वा०।

खिसांण, खिसांणौ–वि०—लज्जित, खिसियाया हुआ, शर्मिन्दा।

उ०—हमैं प्रथीराज खिसांणौ पड़ियौ, सुवगढ़ री वाड़ियां में डेरा कियां बैठौ रहै।—द.दा.

खिसाणौ, खिसाबौ, खिसावणौ, खिसावबौ–क्रि०स०—१ पीछे हटाना, पराजित करना. २ खिसकाना. ३ क्रोध करना। उ०—कहां जेठ दिनकर कहां खद्योत खिसाया, कहां सिंह गज रिपु कहां किखि दुब्बळ काया।—वं.भा. ४ झेंपाना, लज्जित या शर्मिन्दा करना।

खिसाणहार, हारौ (हारी), खिसाणियौ—वि०।

खिसायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खिसाईजणौ, खिसाईजबौ—कर्म वा०।

खिसणौ—अक०रू०।

खिसिणौ, खिसिबौ–क्रि०अ०—देखो 'खिसणौ' (रू.भे.) उ०—१ मांझी जिके हुता गढ़ मांहै, खिसिगा आये मरण खरै।—अज्ञात

उ०—२ आसल कमध लूण उजवाळै, खिसियौ नहीं वंदै चहुं खूट।

—अज्ञात

खिसियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ लज्जित हुआ हुआ. २ पीछे हटा हुआ. ३ खिसका हुआ. ४ खिसियाया हुआ. (स्त्री० खिसियोड़ी)

खिसौ–सर्व०—कौनसा।

सं०पु०—जेब, खिस्सा।

खींचणौ, खींचबौ–क्रि०स० [सं० कर्षणम्] १ किसी वस्तु को इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर करना कि वह गति के समय अपने आधार से लगी रहे, घसीटना. २ किसी कोष, थैले, म्यान आदि में से किसी वस्तु को बाहर निकालना. ३ किसी ऐसी वस्तु को छोर या बीच से पकड़ कर अपनी ओर बढ़ाना जिसका दूसरा छोर दूसरी ओर अथवा नीचे-ऊपर हो।

मुहा०—१ खींचातांण—खींचातान; किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये दो व्यक्तियों का एक दूसरे के विरुद्ध उद्योग. २ पीड़ खींचणी—कष्ट दूर करना; औषध आदि देकर या सहारा देकर दर्द मिटाना. ३ हाथ खींचणौ—हाथ हटा लेना; किसी कार्य से अपना सहयोग हटा लेना.

४ आकर्षित करना. ५ बलपूर्वक किसी ओर ले जाना. ६ सोखना, चूसना. ७ भभके से अर्क, शराब आदि टपकाना. ८ किसी वस्तु के गुण या तत्व को निकाल लेना. ९ कलम से रेखा आदि डालना, लिखना. १० चित्रित करना ११ रोक रखना. १२ व्यापार का माल मंगाना।

खींचणहार, हारौ (हारी), खींचणियौ—वि०।

खींचाणौ खींचाबौ, खींचावणौ खींचावबौ—प्रे०रू०।

खींचिओड़ौ, खींचियोड़ौ, खींच्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खींचीजणौ खींचीजबौ—कर्म वा०।

खींवणौ, खेंचणौ—रू०भे०।

खींचतांण खींचतांन,–सं०स्त्री०—१ किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए दो व्यक्तियों का एक दूसरे के विरुद्ध उद्योग. २ खींचा-खींची. ३ क्लिष्ट कल्पना द्वारा किसी शब्द या वाक्य आदि का अन्यथा अर्थ करना।

खींचाणो, खींचाबो–क्रि०स० ('खींचणो' का प्रे०रू०) खींचने के कार्य में प्रवृत्त करना, खींचने का कार्य दूसरे से करवाना।

खींचाणहार, हारो (हारी), खींचाणियो—वि०।

खींचायोड़ो—भू०का०कृ०।

खींचाईजणो, खींचाईजबो—कर्म वा०।

खींचाताण, खींचाताणी—देखो 'खींचताण' (रू.भे.)

खींचायोड़ो–भू०का०कृ०—खेंचाया हुआ। (स्त्री० खींचायोड़ी)

खींचावणो, खींचावबो—देखो 'खींचाणो' (रू.भे.)

खींचावणहार, हारो (हारी), खींचावणियो—वि०।

खींचावियोड़ो, खींचावियोड़ो, खींचाव्योड़ो—भू०का०कृ०।

खींचावीजणो, खींचावीजबो—कर्म वा०।

खींचीजणो, खींचीजबो–क्रि०कर्म वा०—खींचा जाना, घसीटा जाना।

खींचीजियोड़ो–भू०का०कृ०—खींचा गया हुआ।
(स्त्री० खींचीजियोड़ी)

खींजो–सं०पु० [अ० कीस:] जेब, खिस्सा।

खींटणो, खींटबो–क्रि०अ० [सं० खिट्] देखो 'खिटणो' (रू.भे.)
उ०—आवद्धि टोपि ऊभरी अग्गि, खींटिया थाट बे बे खड़ग्गि।
—रा.ज.सी.

खींटणहार, हारो (हारी), खींटणियो—वि०।

खींटाणो, खींटाबो—क्रि०स०।

खींटियोड़ो, खींटियोड़ो, खींट्योड़ो—भू०का०कृ०।

खींटीजणो, खींटीजबो—भाव वा०।

खींटयोड़ो—देखो 'खिटियोड़ो' (रू.भे.)

खींटीजणो, खींटीजबो–क्रि० भाव वा०—चिढ़ना, क्रोधित होना।

खींटीजियोड़ो–भू०का०कृ०—चिढ़ाया हुआ। (स्त्री० खींटीजियोड़ी)

खींप–सं०स्त्री०—एक प्रकार का जंगली मरुस्थली पौधा जिसका तना पतला व समूह में होता है और उसके पत्तियां नहीं होतीं। इसके तने से रस्से, खाट, चटाई आदि बुनते हैं। यह मकान छाने के भी काम आता है। उ०—१ खींपा खींप मुरट बुई बरणावे, भुरट लांपड़ो लूळ गजब बेलां गरणावे।—दमदेव उ०—२ खींपां तणा पुरांणा खोलड़, थारे हियं न उतरिया 'हरपाळ'।
—दूदो आसियो

(अल्पा०— खींपड़ियो, खींपड़ो) (महत्व० 'खींपड')

खींपसा–सं०पु०—राठोड़ राव आसथान के पुत्र खींपसा के वंशज, राठौड़ों की एक उप-शाखा।

खींपोळी–सं०स्त्री०—'खींप' नामक पौधे की फली देखो 'खींप'।

खींया–सं०स्त्री०—राठौड़ों की एक उप-शाखा।

खींयाळ–सं०पु०—१ वह ऊँट जिसके अगले पैरों के पास और ईडर के मध्य का चमड़ा मोटा होकर बढ़ा हुआ हो और रगड़ खाता हो, ऊँट का एक दोष।

खींवली–सं०स्त्री०—गले में धारण करने का आभूषण विशेष।

उ०—गळा रै परवांण थारै खींवली ल्यावै तो तिलड़ी री सीख थारी आलीजो लगावै।—लो.गी.

खींसियाळ—देखो 'खींयाळ' (रू.भे.)

खी–सं०पु०—१ विधि. २ शृगाल. ३ कामदेव. ४ कुशल-क्षेम। [सं० खिन्] ५ इन्द्र (ह.नां.) (मि० 'नाकी')
सं०स्त्री०—६ अप्सरा (मि० खीवर')

खीआं–सं०स्त्री०—हानि, क्षति।

खीड़णो, खीड़बो—देखो 'खिड़णो' (रू.भे.)

खीड़योड़ो—देखो 'खिड़ायोड़ो (रू.भे.) (स्त्री० खीड़ायोड़ी)

खीड़ावणो, खीड़ावबो—देखो 'खिड़ाणो' (रू.भे.)

खीड़ावियोड़ो—देखो खिड़ायोड़ो'। (स्त्री० खीड़ावियोड़ी)

खीच–सं०पु० [सं० कृसर] गेहूँ के साथ कुछ मूंग या बाजरी के साथ कुछ मोठ को कूट कर उनके छिलकों को अलग कर फिर उबाल कर पकाया गया एक प्रकार का खाद्य पदार्थ।
क्रि०प्र०—करणो कूटणो, खाणो, खावणो, घालणो, रांधणो।
कहा०—१ खीच ऊपर खाटो इज व्है—खीच के साथ कढ़ी होती है; एक वस्तु का अन्य के साथ समुचित संयोग. २ खीच ऊपर खाटो देख जमाई नाटो—अपने स्तरानुकूल सम्मान प्राप्त न होने पर मनुष्य अपना अपमान अनुभव करता है।

खीचड़—देखो 'खीच' (महत्व वा०) उ०—दोय घड़ी तो खीचड़ रांध्यो सारो कुटंब जिमायो, मेरा स्यांम लटको आयो जी।—लो.गी.
२ जाल, करील, नीम आदि वृक्षों का बौर. ३ बेर के वृक्ष पर होने वाला विकृत पदार्थ।

खीचड़ी–[सं० कृसर]—१ दाल और चावल का मिश्रित पकाया हुआ खाद्य-पदार्थ। उ०—खुस खाणा है खीचड़ी, मांहे टुकियक लूंण। मांस पराया खाय के, गळो कटावै कूंण।—ह.पु.वा.
कहा०—१ खीचड़ी पापड़ खावतां ही पुणचो उतरै—खिचड़ी खाने से ही हाथ का पहुँचा उतर जाता है; निर्बल या सुकुमार के लिए व्यंग; अधिक नाजुकता के लिए व्यंगोक्ति. २ खीरां मेली खीचड़ी टीलो आयो टच्च (टप्प)—खिचड़ी को पकने पर चूल्हे से उतार कर अंगारों पर रखा ही कि खाने के लिए 'टीला' (व्यक्ति विशेष) आया और चट आसन लगा कर बैठ गया; कार्य अथवा परिश्रम के समय तो लुप्त रहना और जब लाभ लेने का अवसर हो तो उसके लिए शीघ्र उपस्थित हो जाना।
२ अर्द्ध वृद्ध होना. ३ बालों का कुछ अंश में सफेद होना.
४ मिश्रित. ५ गड़बड़. ६ एक प्रकार का मारवाड़ राज्य द्वारा लिया जाने वाला प्राचीन लगान. ७ जैनियों में विवाह के समय दिया जाने वाला एक भोज।

खीचड़ो—देखो 'खीच' (अल्पा०) उ०—गाढ़ी कावै जिसी छाछ री है छिब न्यारी। रंधै खीचड़ो खूब चूंटिये रै उणियारी।—दसदेव

खीचणो, खीचबो—देखो 'खींचणो'।

खीचणहार, हारौ (हारी), खीचणियौ—वि० ।

खीचाड़णौ, खीचाड़बौ, खीचाणौ, खीचाबौ, खीचावणौ, खीचावबौ—प्रे०रू० ।

खीचिग्रोड़ौ, खीचियोड़ौ, खीच्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खीचीजणौ, खीचीजबौ—कर्म वा० ।

खीचाणौ, खीचाबौ—क्रि०स० ('खींचणौ' का प्रे०रू०) देखो 'खींचाणौ' (रू.भे.)

खीचायोड़ौ—देखो 'खींचायोड़ौ' । (स्त्री० खींचायोड़ी)

खीचावणौ, खीचावबौ—देखो 'खींचाणौ' (रू.भे.)

खीचावियोड़ौ—देखो 'खींचायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० खीचावियोड़ी)

खीचि—देखो 'खीची' (रू.भे.)

खीचियोड़ौ—देखो 'खींचियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० खीचियोड़ी)

खीचियौ-सं०पु० [सं० क्षार = खार+चित्, क्षीर+चित्] ज्वार, मंडवा गेहूँ आदि अनाज के चून में साजी या क्षार मिला कर बनाया जाने वाला पतला रोटीनुमा एक खाद्य पदार्थ जिसे सुखा कर रख लिया जाता है और फिर कभी भी उसे सेंक कर खाया जाता है। इसका प्रयोग अधिकतर भोजन के अंत में किया जाता है ।

खीची-सं०पु०—चौहान वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति ।

खीचीवाड़ौ-सं०पु०—खीची चौहानों का प्राचीन राज्य । उ०—जायल राजथांन कियौ सूं गोरा रा पोतरा खीचीवाड़ै गया।—नैणसी

खीज-सं०स्त्री० [सं० क्षीज] १ कोप, क्रोध । उ०—अंबर री अगराज सूं, केहर खीज करंत। हाक धरा ऊपर हुवै, केम सहै बळवंत।—बां.दा.

२ खीजने का भाव, खिझलाहट, चिढ़ । उ०—आयौ पावस आज रौ, गयण झबक्कै बीज । विरही मन मंहै 'जसा', खिण खिण आवै खीज ।—जसराज ३ शीतकाल में ऊंट में आने वाली मस्ती ।

खीजणौ, खीजबौ-क्रि०अ० [सं० क्षीज] १ खीजना, चिढ़ना, भुंझलाना. २ क्रोध करना, क्रुद्ध होना. ३ शीतकाल में ऊँट का मस्ती में आना, उन्मत्त होना।

खीजणहार, हारौ (हारी), खीजणियौ—वि० ।

खीजाड़णौ, खीजाड़बौ, खीजाणौ, खीजाबौ, खीजावणौ, खीजावबौ—क्रि०स०, प्रे०रू० ।

खीजिग्रोड़ौ, खीजियोड़ौ, खीज्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खीजीजणौ, खीजीजबौ—क्रि० भाव वा० ।

खीजरौ-सं०पु०—रंग विशेष का घोड़ा (शा.हो.)

खीजाणौ, खीजाबौ-क्रि०स०—१ खिजाना, चिढ़ाना. २ क्रोध कराना. ३ ऊँट को मस्ती में लाना ।

खीजाणहार, हारौ (हारी), खीजाणियौ—वि० ।

खीजाईजणौ, खीजाईजबौ—कर्म वा० ।

खीजायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

खीजाड़णौ, खीजाड़बौ, खीजावणौ, खीजावबौ—रू०भे० ।

खीजणौ—अक० रू० ।

खीजायोड़ौ-भू०का०कृ०—१ क्रुद्ध किया हुआ. २ चिढ़ाया हुआ. ३ मस्ती में लाया हुआ । (स्त्री० खीजायोड़ी)

खीजाळ-वि०—१ क्रोध करने वाला. २ आतंक जमाने वाला । उ०—लहैरी महैरांण भूपाळ 'लच्छौ' असौ दूसरौ रीझ खीजाळ अच्छौ ।—मे.म.

खीजावणौ, खीजावबौ—देखो 'खीजाणौ' (रू.भे.)

खीजावणहार, हारौ (हारी), खीजावणियौ—वि० ।

खीजाविग्रोड़ौ, खीजावियोड़ौ, खीजाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खीजावीजणौ, खीजावीजबौ—कर्म वा० ।

खीजणौ—अक० रू० ।

खीजियोड़ौ, खीजोड़ौ-भू०का०कृ०—१ कुपित, क्रोधित. २ खीजा हुआ. ३ मस्ती में आया हुआ (ऊंट) (स्त्री० खीजियोड़ी, खीजोड़ी)

खीझ—देखो 'खीज' (रू.भे.)

खीटणौ, खीटबौ-क्रि०अ०—देखो 'खिटणौ' (रू.भे.) उ०—सूरज चांद तांम समासै, खरै आप वाजियौ खरौ। हेकां सिर खीटै बाबर हर, हेकां 'अमर' 'संग्राम' हरौ।—महाराणा प्रतापसिंह रौ गीत

खीटणहार, हारौ (हारी), खीटणियौ—वि० ।

खीटवाणौ, खीटवाबौ—प्रे०रू० ।

खीटाणौ, खीटाबौ, खीटावणौ, खिटावबौ—क्रि०स० ।

खीटिग्रोड़ौ, खीटियोड़ौ, खीट्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खीटीजणौ, खीटीजबौ—भाव वा० ।

खीटाणौ, खीटाबौ-क्रि०स०—देखो 'खिटाणौ' (रू.भे.)

खीटाणहार, हारौ (हारी), खीटाणियौ—वि० ।

खीटाईजणौ, खीटाईजबौ—कर्म वा० ।

खीटायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

खीटणौ—अक० रू० ।

खीटायोड़ौ-भू०का०कृ०—क्रुद्ध किया हुआ, चिढ़ाया हुआ । (स्त्री० खीटायोड़ी)

खीटावणौ, खीटावबौ—देखो 'खिटाणौ' (रू.भे.)

खीटावणहार, हारौ (हारी), खीटावणियौ—वि० ।

खीटाविग्रोड़ौ, खीटावियोड़ौ, खीटाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खीटावीजणौ, खीटावीजबौ—क्रि० कर्म वा० ।

खीटणौ—अक०रू० ।

खीटियोड़ौ-भू०का०कृ०—खीजा हुआ, चिढ़ा हुआ, क्रुद्ध । (स्त्री० खीटियोड़ी)

खीटोर—देखो 'खींटोर' ।

खीण-वि० [सं० क्षीण] १ दुर्बल, निर्बल, कृश । उ०—थांसी सायब खीण दूमणी मिळवा खाती । उमगै अंबक नीर निसासां चांम चुळाती ।—मेघ.

२ क्षीण, सूक्ष्म । उ०—विलासै धरणी खीण उजास, पाथरै सांवळ सेजां रैण ।—सांझ ३ उदासीन, चिंतित. ४ पतला, कृश ।

उ०—हंस गवण कदळी सुजंघ, कटि केहरी जिम खीण । मुख ससिहर खंजन नयण, कुच स्रीफळ कंठ वीण ।—वेलि.

खीणता–सं०स्त्री० [सं० क्षीणता] दुर्बलता, निर्बलता, कृशता ।

खीणौ–वि०पु० (स्त्री० खीणी) देखो 'खीण' (रू.भे.)

खीदल–सं०पु०—ढोली जाति की एक शाखा विशेष ।

खीमखाप–सं०पु०—एक प्रकार का बढ़िया जरीदार रेशमी वस्त्र।

खीप—देखो 'खींप' (रू.भे.)

खीवर, खीमर—देखो 'खीवर' (रू.भे.)

खीय–सं०पु०—भाटीवंशीय राजपूतों की एक शाखा ।

खीर–सं०पु० [सं० क्षीर] १ दूध (ग्र.मा.)

सं०स्त्री०—२ दूध में चावल डाल कर पकाया हुआ मीठा खाद्य पदार्थ । चावल के स्थान पर कोई दूसरा खाद्य पदार्थ यथा ग्रालू, शकरकन्द, प्याज ग्रादि भी काम में लिये जा सकते हैं ।

क्रि०प्र०—खाणी, पकाणी, पुरसणी ।

कहा०—१ खीमला-खीमला ! खीर मीठूं, खायं जणायं खबर—खीमले-खीमले ! खीर मीठी, तो खाये जिसे स्वाद का ज्ञान; वास्तविक उपयोग किये बिना किसी वस्तु के गुण-दोष नहीं जाने जाते.

२ खीर में मूसळ—ग्रसंगत साथ, योग्य या समुचित वस्तुयें ही एक दूसरे के साथ शोभा देती हैं ।

३ पानी. ४ ग्रार्यगीत या खंधांणा (स्कंधक) का भेद विशेष ।

खीरकंठ–सं०पु० [सं० क्षीरकंठ] बालक (ह.नां.)

खीरकाकोळी–सं०स्त्री०—एक प्रकार की ग्रौषधि विशेष (ग्रमरत)

खीरड़ी–सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का पौधा विशेष. २ देखो 'खीर' (२) (ग्रल्पा०)

खीरज–सं०पु० [सं० क्षीरज] दधि, दही (ह.नां.)

खीरदध–स०पु० [सं० क्षीरोद] समुद्र, क्षीर-सागर (ना.डिं.को.)

उ०—दधां विधाता दुजां खीरदध, भूपां सिधां जांनुकी भूप ।
—र.ज.प्र.

खीरदधि, खीरपत, खीरपति, खीरपती–सं०पु० [सं० क्षीरपति] समुद्र । (ग्र.मा.)

खीरसंध, खीरसमंद, खीरसमुद्र–सं०पु० [सं० क्षीरसिंधु, क्षीरसमुद्र] क्षीर-सागर । उ०—सित कुसुमां गूंथी सुखद, वेणी सहियां वंद । नागणि जांणे नीसरी, सांपड़ि खीरसमंद ।—बां.दा.

खीरसागर–सं०पु० [सं० क्षीरसागर] १ क्षीर-सिंधु, दूध का समुद्र. २ खीर या द्रव्य पदार्थ परोसने का एक नालीयुक्त गहरा व चौड़ा बर्तन ।

खीरो–सं०पु० [सं० क्षरण] १ ग्रंगारा, जलता हुग्रा कोयला.

२ एक प्रकार की लकड़ी. ३ छोटी ग्रायु का बैल, वह बैल जिसके दूसरी बार दांत न ग्राये हों (क्षेत्रीय)

खीरोद–सं०पु० [सं० क्षीरोद] सागर, समुद्र ।

खीरोळियौ–सं०पु०—१ एक प्रकार का जंगली प्याज. २ ग्राटे की खीर ।

खील–सं०स्त्री० [सं० कील] १ लोहे या काष्ट की मेख, कील, खूटी ।

क्रि०प्र०—उखेड़णी, गाडणी, ठोकणी, लगावणी ।

२ शरीर पर होने वाला कठोर ग्रौर नुकीला फोड़ा, फुंसी.

३ रहट के उपकरण (ऊबड़ियों) को खड़ा रखने हेतु ग्राजू-बाजू में दो काष्ट के डंडे लगाए जाते हैं । उनके सहारे के लिए खड़ी की जाने वाली पत्थर या लकड़ी का स्तंभ. ४ चक्की के दो पाटों के बीच की विशेष बनावट की कीली जिसके ग्राधार पर ऊपर का पाट घूमता है. ५ देखो 'कील' ।

खीलण–सं०पु०—१ वस्त्र के दो टुकड़ों को परस्पर जोड़ने की क्रिया या भाव. २ ग्रंकुश. ३ मंत्रों द्वारा वश में करने की क्रिया ।

खीलणौ, खीलबौ–क्रि०स० [सं० कील बंधने] १ वस्त्र के दो टुकड़ों को टांकना. २ मंत्रों द्वारा भूत-प्रेत, सर्प ग्रादि को वशीभूत करना या बंधन में डालना. ३ बांधना. ४ जूती गांठना ।

खीलणहार, हारौ (हारी), खीलणियौ—वि० ।

खीलाणौ, खीलावणौ—क्रि०स० ।

खीलिग्रोड़ौ, खीलियोड़ौ, खील्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खीलीजणौ, खीलीजबौ—कर्म वा० ।

खीलोड़ौ—भू०का०कृ० ।

खीलहरी–सं०पु०—१ बकरी चराने वाला, गडरिया ।

उ०—किसे बोकड़ा खोरड़े खीलहरी रा चारिग्रोड़ा, सौ ऊठां बिसै बोकड़ा मसकां री भांति सौ लिड़ाई नै घातिग्रा छै ।

२ देखो 'खीलोरी' । —रा.सा.सं.

खीलाड़णौ, खीलाड़बौ–क्रि०स० [सं० कील] १ बंधन में डालना या डलाना. २ दो वस्त्रों को हाथ से सिला कर जुड़वाना, टंकवाना.

३ कीलाना ।

खीलाड़णहार, हारौ (हारी), खीलाड़णियौ—वि० ।

खीलाड़िग्रोड़ौ, खीलाड़ियोड़ौ, खीलाड़्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खीलाड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ बंधन में डाला हुग्रा. २ टंकवाया हुग्रा. ३ मन्त्रों द्वारा वशीभूत किया हुग्रा ।

(स्त्री० खीलाड़ियोड़ी)

खीलाणौ, खीलाबौ—देखो 'खीलाड़णौ' (रू.भे.)

खीलाणहार, हारौ (हारी), खीलाणियौ—वि० ।

खीलायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

खीलायोड़ौ—देखो 'खीलाड़ियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० खीलायोड़ी)

खीलावणौ, खीलावबौ—देखो 'खीलाड़णौ' (रू.भे.)

खीलावणहार, हारौ (हारी), खीलावणियौ—वि० ।

खीलाविग्रोड़ौ, खीलावियोड़ौ, खिलाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खीलावीजणौ, खीलावीजबौ—कर्म वा० ।

खीलावियोड़ी—देखो 'खीलाड़ियोड़ी' (रू.भे.) (स्त्री० खीलावियोड़ी)

खीलियोड़ी-भू०का०कृ०—१ टांका हुआ, कीला हुआ २ मन्त्रों द्वारा वशीभूत किया हुआ, बांधा हुआ। (स्त्री० खीलियोड़ी)

खीली—देखो 'खील' (रू.भे.)

खीलीखांनी-सं०पु०—लकड़ी का कार्य करने का कारखाना, बढ़ई का कारखाना। (रू.भे. 'कीलीखांनी')

खीलोखापो-वि०पु०यौ०—देखो 'खांपो-खरड़ी' (रू.भे.)

खीलोड़ौ—देखो 'खीलियोड़ो' (रू.भे.) (स्त्री० खीलोड़ी)

खीलोरी, खील्योरी, खील्हैरी—देखो 'खीलहरी' (रू.भे.)

उ०—ढोला खील्योरी कहइ, सुणी कुड़ंग। वैण। 'मारू' 'म्हांजी' गोठणी, से मारू' दा सैण।—ढो.मा. २ मूर्ख, मूढ़।

उ०—इसो सुणनै वीरमदेवजी जांणियो सगपण में खोटा-खाधा रावळ में लखण खीलोरी रा है।—वीरमदे सोनगरा री वारता

खीव-सं०पु० [सं० क्षीव्] योद्धा, शूरवीर।

खीवण-सं०स्त्री०—स्त्रियों के नाक का एक आभूषण (रू.भे. 'खेंवण')

खीवर-सं०पु० [सं० ख+रा.प्र.ई+वर अथवा सं० क्षीव=मस्त] अप्सरा को वरण करने वाला, योद्धा, वीर। उ०—खीवरां हाथ बांणाखास, बहनीक जांण रोकी बनाम।—वि.सं.

खीवसा-सं०पु०—राव सिंहा के वंश में राठोड़ों की एक उपशाखा।

खीस-सं०पु०—प्रसव के बाद प्रथम निकाला हुआ गाय या भैंस का दूध (क्षेत्रीय)

खीसणौ, खीसबौ-क्रि०अ० [सं० क्षीष्] १ नाश होना. २ गिरना, खसकना. ३ कोप करना। उ०—खुरमखांन दराब खीसिया, अहामिया आंबाट।—अज्ञात

खीसणहार, हारौ (हारी), खीसणियौ—वि०।

खीसाणौ, खीसाबौ, खीसावणौ, खीसावबौ—क्रि०स०।

खीसिग्रोड़ौ, खीसियोड़ौ, खीस्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खीसीजणौ, खीसीजबौ—भाव वा०।

खीसाणौ, खीसाबौ-क्रि०स०—१ गिराना, खसकाना. २ नाश करना. क्रुद्ध करना।

खीसाणहार, हारौ (हारी), खीसाणियौ—वि०।

खीसाईजणौ खीसाईजबौ—कर्म वा०।

खीसायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खीसणौ -अक०रू०

खीसायोड़ौ-भू०का०कृ०—१ गिराया हुआ. २ क्रुद्ध किया हुआ। (स्त्री० खीसायोड़ी)

खीसावणौ, खीसावबौ—देखो 'खीसाणौ' (रू.भे.)

खिसावणहार, हारौ (हारी), खीसावणियौ—वि०।

खीसाविग्रोड़ौ खीसावियोड़ौ, खीसाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खीसावीजणौ, खीसावीजबौ—कर्म०वा०।

खीसणौ—अक०रू०।

खीसाड़ियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'खीसायोड़ौ'। (स्त्री० खीसाविओड़ी)

खीसियोड़ौ, खीसोड़ौ-भू०का०कृ०—१ युद्ध किया हुआ. २ नष्ट. ३ गिरा हुआ. ४ कुपित। (स्त्री० खीसियोड़ी)

खीसौ-सं०पु० [अ० कीसः] १ जेब, पाकिट, गिरह।

कहा०—खीसौ तर तौ भावै ज्यूं कर—जेब तर है तो मनचाहा कर; पैसा पास में हो तो सबकुछ किया जा सकता है।

२ थैला, खलीता. ३ होठों से बाहर निकले हुए दांत या ऐसे दांत वाला व्यक्ति।

खुंजाळणौ, खुंजाळबौ-क्रि०स०—देखो 'खुजाळणौ' (रू.भे.)

खुंडारसींग-सं०पु०—वृत्ताकार मुड़े हुए पशुओं के सींग।

खुंडी-सं०स्त्री०—घूमे हुए या मुड़े हुए सींगों वाला (पशु)। उ०—खुंडी पाडी रा लाडी चल खोळै।—ऊ.का.

खुंद-सं०पु०—देखो 'खूंद' (रू.भे.) उ०—दृढ़ वात नेम लखि रक्खियो, खुंद थांन खेमंगुरु।—रा.रू.

खुंदवाणौ, खुंदवाबौ-क्रि०स० ['खूंदणौ' का प्रे०रू०] रौंदना, कुचलवाना।

खुंदाळ-वि०—पैरों तले रौंदने वाला।

खुंदालिम-सं०पु०—१ बादशाह। उ०—बह मुगळां विरदैत, खागै खड़रतौ खळां। खासां खुंदालिम तणा, वांने गो वांनैत।—वचनिका २ यवन। उ०—खुंदालिम करि खोध, वसुधा ऊपर वाजिआ।

—वचनिका

खुंभी-सं०स्त्री०—लोहे या पत्थर के गोल या चौकोर स्तम्भ को खड़ा करने के लिये उसके सहारे हेतु उसके नीचे लगाया जाने वाला आधार, आधारशिला। उ०—चन्दण पाट कपाटइ चन्दण, खुंभी पनां प्रवाळी खम्भ।—वेलि.

ख-सं०पु०—१ कामदेव. २ विकल व्यक्ति. ३ दुखी. ४ उल्लू. ५ सिखावन. ६ स्थान. ७ ब्रह्मा. ८ खद्योत (एका०)

खुगाहड़ौ-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा विशेष।

खुड़क-सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का पशुओं में, विशेषतया ऊंटों में, होने वाला संक्रामक रोग जो भयंकर माना जाता है. २ जलाशय या नदी का तट।

खुड़कणौ, खुड़कबौ-क्रि०अ० [अनु०] खड़खड़ की ध्वनि होना। उ०—खुड़कै गायां हूंदा सांठ, सुणीजै बंसी री झणकार।—सांझ

खुड़कियौ—देखो 'खुड़क' (अल्पा०)

खुड़कौ-सं०पु० [अनु०] १ आहट, आवाज, खटका। उ०—भरमल दा घणी चतुर हीज थी सो पगां री खुड़कौ सुणतां हीज जगाया।

—कुंवरसी सांखला री वारता

२ मृत्यु के पश्चात् द्वादशे की सम्पूर्ण क्रिया होने के बाद शोक-समाप्ति हेतु सांकेतिक ढोल बजाने की क्रिया या इस अवसर पर इस प्रकार बजे हुए ढोल की आवाज (रू.भे. 'खड़कौ')

३ देखो 'खुड़क'।

खुड़खोज-सं०पु०यौ०—नामोनिशान, अस्तित्व।

खुड़व–सं०पु०—१ संहार, नाश। उ०—भतजींद वदक उर छुरी मेल, ग्रर कियौ **खुड़व** ग्रणियां उथेल।—पा.प्र.
२ देखो 'खुरद' (रू.भे.)

खुड़दबीन—देखो 'खुरदबीन' (रू.भे.)

खुड़दसांणोर–सं०पु०—डिंगल साहित्य के जांगड़े गीत (छंद) का एक भेद जिसके अंत में ह्रस्व होता है एवं प्रत्येक चरण में १३ मात्रायें होती हैं।

खुड़दा–सं०स्त्री० [फा० खुर्द] १ छोटी-मोटी वस्तु. २ छोटा सिक्का, रेजगी।

खुड़दाफरोस, खुड़दियौ–सं०पु०यौ० [फा० खुरदाफरोश] फुटकर चीजें बेचने वाला, छोटी-मोटी वस्तुयें बेचने वाला। उ०— ऐ दलाल ऐ **खुड़दिया**, हूंडीवाळ बजाज। ऐ हिज करै पसारटौ, केवळ धन रै काज।—बां.दा.

खुड़ा–सं०पु०—पहाड़ों में होने वाला वृक्ष विशेष जो कड़ुग्रा ग्रधिक होता है।

खुड़ाणौ, खुड़ाबौ, खुड़ावणौ, खुड़ावबौ— देखो 'खोड़ाणौ (रू.भे.)

खुड़ियौखातौ–सं०पु०—१ पक्षी विशेष जिसकी चोंच लम्बी होती है. २ लड़कियों द्वारा गाया जाने वाला एक लोक गीत।

खुड़ी—१ देखो 'खोड़ी' (रू.भे.) २ टखने के नीचे पैर की गद्दी का बाहर की ग्रोर निकला हुग्रा भाग, एडी।

खुचणौ, खुचबौ–क्रि०ग्र०—१ धँसना, फँसना. २ चुभना. ३ चलना, ग्राना (ग्रवज्ञा)
खुचणहार, हारौ, (हारी), खुचणियौ—वि०।
खुचाणौ, खुचाबौ, खुचावणौ, खुचावबौ—क्रि०स०।
खुचिग्रोड़ौ, खुचियोड़ौ, खुच्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खुचीजणौ, खुचीजबौ—भाव वा०।

खुचाणौ, खुचाबौ–क्रि०स०—१ धँसाना. २ चुभाना।
खुचाणहार, हारौ (हारी), खुचाणियौ—वि०।
खुचवावणौ, खुचवावबौ—प्रे०रू०।
खुचायोड़ौ—भू०का०कृ०।
खुचाईजणौ, खुचाईजबौ—कर्म वा०।
खुचणौ—ग्रक० रू०।

खुचायोड़ौ–भू०का०कृ०—१ चुभाया हुग्रा. २ धँसाया हुग्रा. ३ चलाया हुग्रा। (स्त्री० खुचायोडी)

खुचावणौ, खुचावबौ—देखो 'खुचाणौ' (रू.भे.)

खुचियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ चुभा हुग्रा. २ धँसा हुग्रा. ३ चला हुग्रा (ग्रवज्ञा) (स्त्री० खुचियोड़ी)

खुजळणौ, खुजळबौ–क्रि०स०—खुजलाना, हाथ से खुजली मिटाना।
खुजळणहार, हारौ (हारी), खुजळणियौ—वि०।
खुजळाणौ, खुजळाबौ, खुजळावणौ, खुजळावबौ—क्रि०स०, प्रे०रू०।
खुजळिग्रोड़ौ, खुजळियोड़ौ, खुजळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खुजळीजणौ, खुजळीजबौ—कर्म वा०।

खुजळाणौ, खुजळाबौ–क्रि०स० ('खुजळणौ' का प्रे०रू०) खाज खुजलवाना, कुचरवाना।

खुजळायोड़ौ–भू०का०कृ०—खुजलाया हुग्रा। (स्त्री० खुजळायोड़ी)

खुजळावणौ, खुजळावबौ—देखो 'खुजळाणौ' (रू.भे.)

खुजळी–सं०स्त्री०—१ खाज, खुजलाहट. २ एक प्रकार का चर्म रोग जिससे शरीर में खुजलाहट चलती है और छोटी-छोटी फुंसियां निकल ग्राती हैं।

खुजाणौ, खुजाबौ—देखो 'खुजाळणौ' (रू.भे.)
खुजाणहार, हारौ (हारी), खुजाणियौ—वि०।
खुजायोड़ौ—भू०का०कृ०।
खुजाईजणौ, खुजाईजबौ—कर्म वा०।
खुजावणौ, खुजावबौ—रू०भे०।

खुजायोड़ौ—देखो 'खुजळायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० खुजायोड़ी)

खुजारणौ, खुजारबौ—देखो 'खुजाणौ' (रू.भे.)

खुजारियोड़ौ–भू०का०कृ०—खुजाया हुग्रा। (स्त्री० खुजारियोडी)

खुजाळ–सं०स्त्री०—खुजली, खाज।
क्रि०प्र०—खिणणी, चलणी, चालणी।

खुजाळणौ, खुजाळबौ–क्रि०स०—ग्रंग के किसी भाग पर किसी कारण से सुरसुरी चलने पर नाखून ग्रादि से उसे रगड़ना, खुजलाना, कुचरना, सहलाना।
खुजाळणहार, हारौ (हारी), खुजाळणियौ—वि०।
खुजाळिग्रोड़ौ, खुजाळियोड़ौ, खुजाळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खुजाळीजणौ, खुजाळीजबौ—कर्म वा०।
खुजाणौ, खुजाबौ, खुजावणौ, खुजावबौ—रू०भे०।

खुजाळि—देखो 'खुजाळ' (रू.भे.)

खुजाळियोड़ौ—देखो 'खुजायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० खुजाळियोड़ी)

खुजावणौ, खुजावबौ—देखो 'खुजाळणौ' (रू.भे.)
खुजावणहार, हारौ (हारी), खुजावणियौ—वि०।
खुजाविग्रोड़ौ, खुजावियोड़ौ, खुजाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खुजावीजणौ, खुजावीजबौ—कर्म वा०।

खुजावियोड़ौ—देखो 'खुजायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० खुजायोड़ी)

खुटक–सं०स्त्री०—१ खटका. २ ग्राशंका. ३ चिंता. ४ त्रुटि, गलती।

खुटणौ, खुटबौ–क्रि०ग्र०—१ खुलना, बंधनमुक्त होना. २ समाप्त होना। उ०—हे ! पणिहारी मत कहै, खोड़ो सूग्रर जाय। धव रै घर खुटसी कोई, नाहक मरसी ग्राय।—डाढ़ाळा सूर री वात
खुटणहार, हारौ (हारी), खुटणियौ—वि०।
खुटावणौ, खुटावबौ—प्रे०रू०।
खुटाणौ, खुटाबौ, खुटावणौ, खुटावबौ—क्रि०स०।
खुटिग्रोड़ौ, खुटियोड़ौ, खुट्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खुटीजणी, खुटीजबो—भाव वा० ।

खुटाणी, खुटाबो–क्रि०स०—१ समाप्त करना. २ बंधनमुक्त करना ।

खुटाणहार, हारो (हारी), खुटाणियो– वि० ।

खुटायोड़ो—भू०का०कृ० ।

खुटाईजणी, खुटाईजबो—कर्म वा० ।

खुटणो – अक० रू० ।

खुटायोड़ो–भू०का०कृ० —१ समाप्त किया हुआ. २ बंधनमुक्त किया हुआ । (स्त्री० खुटायोड़ी)

खुटाईजणी, खुटाईजबो - देखो 'खुटाणी' (रू.भे.)

खुटावणहार, हारो (हारी) खुटावणियो—वि० ।

खुटाविग्रोड़ो, खुटावियोड़ो, खुटाव्योड़ो—भू०का०कृ० ।

खुटावीजणी, खुटावीजबो – कर्म वा० ।

खुटिया–सं०पु०— एक प्रकार का खाद्य पदार्थ जो लखनऊ में बनता है । उ०—खुटिया लखनऊ को, गटा कनोज को, पेड़ा मथुरा को, ग्रोळा सिकंदराबाद को अद्भुत हुवै छै ।—बां.दा.

खुटियोड़ो–भू०का०कृ०—समाप्त. २ बन्धनमुक्त । (स्त्री० खुटियोड़ी)

खुटोड़ो—देखो 'खूटोड़ो' (रू.भे.) (स्त्री० खुटोड़ी)

खुडो - देखो 'खुड्डो' । उ०—सो ठाकुरद्वारो इण खुडे ऊपर ग्राय चढ़ियो ।—नांपा सांखळा री वात

खुड्डी –१ देखो 'खोड़ी'. २ देखो 'खुड्डो' ।

खुड्डो–सं०पु० [सं० खात = खड्ड] १ मुर्गा-मुर्गियों को रखने का कटघरा, दड़बा. २ मुखद्वार (गुफा ग्रादि का) उ०– जो नीसर जायसी तो खोह रा खुड्डा नजीक छै, जिणां में बड़ जासी तो भूडा पड़सै । ३ ऊँची भूमि । —डाढ़ाळा सूर री वात

खुड्डी—१ देखो खोडी'. २ वह गड्ढा जो कुतिया ग्रपने बच्चे देने के लिये प्रसव के पूर्व खोद कर तैयार रखती है ३ गहराई में बना हुआ छोटा घर. ४ गुफा ।

खुणखुणियो–सं०पु० [ग्रनु०] १ बच्चों का एक खिलौना विशेष जिसमें ककर होने से उसे हिलाने पर ग्रावाज होती है. २ योनि (बाजारू)

खुणखियो, खुणचो–सं०पु०—हाथ की उंगलियों को परस्पर के समान सटा कर ग्रंगूठे को बीच में रखने पर चम्मचनुमा बनी हुई हथेली की ग्राकृति तथा इस ग्राकृति में समाने वाला पदार्थ ।

खुणणी, खुणबो–क्रि०स०—देखो 'खिणणी' (रू.भे.) उ०—ठोड़-ठोड़ ठांवड़ा वरतै वणिया कूंडा कड़ालिया । रूप विगाड़ै लैण माटी, खुणिया ऊंडा दरड़िया ।—दसदेव

खुणणहार, हारो (हारी), खुणणियो—वि० ।

खुणिग्रोड़ो, खुणियोड़ो, खुण्योड़ो—भू०का०कृ० ।

खुणीजणी, खुणीजबो—कर्म वा० ।

खुणस–सं०पु०—खुनस, क्रोध, गुस्सा. रीस । उ०—मनी संकाणी मारवी, खुणसउ राखइ कंत । हूंमतां प्री सूं बीनवइ, सांभळि प्री विरतंत ।—ढो.मा.

खुणाणी, खुणाबो–क्रि०स० ('खुणणी' का प्रे०रू०) देखो 'खिणाणी' (रू.भे.)

उ०—ताहरां राजा खुणाय खित कढ़ावी ।—चौबोली

खुणियोड़ो–भू०का०कृ०—खुदा हुआ (स्त्री० खुणियोड़ी)

खुतराळी–सं०स्त्री०—पशुओं के पैर खुरचने की क्रिया जिससे धूलि पीछे की ओर फेंकी जाती है ।

खुथो–सं०पु०—बकरी के बालों के बने हुए मोटे वस्त्र जो गाड़ी में गेहूँ की भूसी व बदरी पत्र (पालो) ग्रादि भर कर लाने के लिये उसके ग्राजू-बाजू में लगाये जाते हैं, का ग्रग्र भाग जो गाड़ी के ग्रागे के भाग में खड़े दो डंडों के बीच में उठा होता है ।

खुदंग–सं०पु०—एक देश का नाम । उ०—छाछ कबांण खुदंग सर, समसेरां ईरांन । ग्रांणं ग्रस ऐराक सूं, थटण घणी धन थांन ।—बां.दा.

खुद–ग्रव्यय [फा०] स्वयं, ग्राप ।

खुदकास्त–सं०स्त्री०यौ० [फा० खुदकाश्त] वह जमीन जिसे उसका मालिक स्वयं जोते व बोये ।

खुदकुसी–सं०स्त्री०यौ० [फा० खुदकुशी] ग्रात्म-हत्या, ग्रपने हाथों ग्रपने ग्राप मारने की क्रिया ।

खुदगरज–वि०यौ० [फा० खुद+ग्र० गरज] ग्रपना स्वयं का मतलब साधने वाला, स्वार्थी ।

खुदगरजी–सं०स्त्री० [फा० खुद+ग्र० गरज+रा० ई] स्वार्थपरता । वि०—स्वार्थी, मतलबी ।

खुदड़णी, खुदड़बो - क्रि०स० [सं० क्षुदिर] कुचलना, रौंदना ।

खुदड़णहार, हारो (हारी), खुदड़णियो—वि० ।

खुदड़िग्रोड़ो, खुदड़ियोड़ो, खुदड़योड़ो—भू०का०कृ० ।

खुदड़ियोड़ो–भू०का०कृ०—कुचला हुआ (स्त्री० खुदड़ियोड़ी)

खुदणी, खुदबो–क्रि०ग्र०— खुदना, खोदा जाना । उ०—खुदी ए खुदायो, हां ए बाई थारो भरयो ए भिनोळा खाय, भीलणवाळी बाई गांव रा सागरे ।—लो.गी.

खुदणहार, हारो (हारी) खुदणियो—वि० ।

खुदिग्रोड़ो, खुदियोड़ो खुदयोड़ो—भू०का०कृ० ।

खुदीजणी, खुदीजबो—भाव वा०

खुदबखुद–वि० [फा० खुद+ब+खुद] स्वयं, ग्रपनेग्राप, ग्राप खुद ।

खुदमुख्तार–वि० [फा० खुद+ग्र० मुख्तार] जिस पर किसी का दबाव न हो, ग्रनिरुद्ध, स्वतंत्र, स्वच्छंद ।

खुदमुख्तारी–सं०स्त्री० [फा० खुद+ग्र० मुख्तार+रा०+ई] स्वच्छंदता, स्वतंत्रता ।

खुदवाई–सं०स्त्री०—१ खुदवाने का भाव. २ खुदवाने की क्रिया. ३ खुदवाने की मजदूरी ।

खुदवाणी, खुदवाबो–क्रि०स०—('खोदणी' का प्रेरणार्थक रूप) खुदवाना, खोदने का कार्य कराना ।

खुदवाणहार, हारो (हारी), खुदवाणियो—वि० ।

खुदवायोड़ो—भू०का०कृ० ।

खुदणौ—अक० रू० ।

खुदवायोड़ो–भू०का०कृ०—खुदवाया हुआ । (स्त्री० खुदवायोड़ी)

खुदा–सं०पु० [फा०] ईश्वर, परमात्मा, स्वयंभू ।

कहा०—१ खुदा जेहड़ा फरेश्ता—जैसा खुदा वैसा फरिश्ता; उपयुक्त वस्तु के मेल के लिये प्रयुक्त होता है (मि०—नकटा देव सुरड़ा पुजारा) २ खुदा देगा तो छप्पर फाड़ कर देगा—ईश्वर चाहे तो येन-केन प्रकारेण सहायता कर ही सकता है. ३ खुदा री महर तौ लीला लहर—यदि ईश्वर की कृपा है तो सर्व कुशल है; परमात्मा की कृपा से सब आनन्द हो जाते हैं ।

खुदाई–सं०स्त्री० [फा० खुदाई] १ ईश्वरता.

उ०—घट-घट नूर खुदाय दा भरपूर खुदाई ।—केसोदास गाडण

२ संसार, सृष्टि । [रा०] ३ खोदने का कार्य अथवा भाव. ४ खोदने की मजदूरी ।

खुदाणौ, खुदाबौ–क्रि०स०—देखो 'खुदवाणौ' (रू.भे.)

खुदाणहार, हारौ (हारी), खुदाणियौ—वि० ।

खुदायोड़ो—भू०का०कृ० ।

खुदाईजणौ, खुदाईजबौ—कर्म वा० ।

खुदणौ—अक० रू० ।

खुदाय–सं०पु० [फा० खुदा] १ ईश्वर, स्वयंभू । उ०—महचळ नांम खुदाय दा कुछ और न बाकी ।—केसोदास गाडण [फा० खुदाई] २ खुदाई, सृष्टि ।

खुदायोड़ो–भू०का०कृ०—खुदाया हुआ, खोदने का कार्य कराया हुआ । (स्त्री० खुदायोड़ी)

खुदाळ–सं०पु०—१ रथ. २ सूर्य का रथ, वाहन ।

खुदालम–सं०पु० [फा० खुदा+आलम] १ बादशाह. २ योद्धा, वीर । वि०—विद्रोही, द्रोही, उपद्रवी ।

खुदावंद–सं०पु० [फा०] खुदा, ईश्वर, मालिक ।

खुदावणौ, खुदावबौ–क्रि०स० ['खुदणौ' का प्रे०रू०] खुदाने का कार्य दूसरे से कराना, खुदवाना ।

खुदावणहार, हारौ (हारी), खुदावणियौ—वि० ।

खुदाविओड़ो, खुदावियोड़ो, खुदाव्योड़ो—भू०का०कृ० ।

खुदावीजणौ, खुदावीजबौ—कर्म वा० ।

खुदणौ—अक० रू० ।

खुदिया–सं०स्त्री० [सं० क्षुधा] भूख, क्षुधा (अल्पा०)

खुदियारत—देखो 'खुधियारत' (रू.भे.)

खुदोखुद—देखो 'खुदबखुद' (रू.भे.)

खुधा, खुधा–सं०स्त्री० [सं० क्षुधा] भोजन करने की इच्छा, भूख, क्षुधा । उ०—खुधा न भाजै पांणियां, त्रखा न छीजै अन्न । मुकत नहीं हर नांव बिन, मांनव साचै मन्न ।—ह.र.

खुधार, खुधाळ, खुधावंत– [सं० क्षुधा+आलुच] भूखा, क्षुधित ।

उ०—१ अन्तथ नत्थ नत्थ ले अनत्थ को निभाय ले, रिझै करे निहाल रे, खिजे खुधाळ खायले ।—ऊ.का. उ०—[सं० खुधावंत] २ पळ चर साकणि डाकणि प्रेत, खुधावंत भुख लिये रिण खेत ।—वचनिका

खुधियारत–वि० [सं० क्षुधार्त] भूखा, क्षुधा से पीड़ित । उ०—खंड-खीर घ्रत मेळ घणी खुधियारत खायो ।—अलूदास कवियो

खुध्या—देखो 'खुधा' (रू.भे.) उ०—सीत उसन खुध्या त्रखा, मांनि अमांनि पख पोखै । ममत मनोरथ सोच पोच संगि सांसो सोखै ।

—ह.पु.वा.

खुनियायौ—देखो 'खुन्यायौ' (रू.भे)

खुनी—देखो 'खूनी' (रू.भे.)

खुन्यायौ–वि०—हलका, उष्ण, हलका गर्म जो नितांत ठंडा न हो ।

खुपणौ खुपबौ–क्रि०अ०—चुभना, कील-कांटे आदि का धंसना, गड़ना ।

खुपणहार, हारौ (हारी), खुपणियौ—वि० ।

खुपवाणौ, खुपवाबौ—प्रे०रू० ।

खुपाणौ, खुपाबौ, खुपावणौ, खुपावबौ—क्रि०स० ।

खुपिओड़ो, खुपियोड़ो, खुप्योड़ो—भू०का०कृ० ।

खुपीजणौ, खुपीजबौ—भाव वा० ।

खुपाणौ खुपाबौ–क्रि०स०—चुभाना, कील-कांटा आदि को धँसाना ।

खुपाणहार, हारौ (हारी), खुपाणियौ—वि० ।

खुपायोड़ो—भू०का०कृ० ।

खुपाईजणौ, खुपाईजबौ—कर्म वा० ।

खुपणौ—अक० रू० ।

खुपायोड़ो–भू०का०कृ०—चुभाया हुआ । (स्त्री० खुपायोड़ी)

खुपावणौ, खुपावबौ—देखो 'खुपाणौ' (रू.भे.)

खुपावणहार, हारौ (हारी), खुपावणियौ—वि० ।

खुपाविओड़ो, खुपावियोड़ो, खुपाव्योड़ो—भू०का०कृ० ।

खुपावीजणौ, खुपावीजबौ—कर्म वा० ।

खुपणौ—अक० रू० ।

खुपावियोड़ो–भू०का०कृ०—चुभाया हुआ, धँसाया हुआ । (स्त्री० खुपावियोड़ी)

खुपियोड़ो–भू०का०कृ०—चुभा हुआ, धँसा हुआ । (स्त्री० खुपियोड़ी)

खुपरी–सं०स्त्री०—१ खोपड़ी । उ०—सू ढाल कट घोड़ै री कनोती माथै पड़ी सूं घोड़े री कनोती नै माथै री खुपरी दूर हुई ।—द.दा.

२ देखो 'खपरी' (रू.भे.)

खुफिया–वि०—गुप्त, पोशीदा, छिपा हुआ ।

यौ०—खुफिया पुलिस ।

खुफियौ–सं०पु० [अ० खुफीय:] गुप्तचर, भेदिया ।

खुब–सं०स्त्री०—भाप से कपड़े धोने की धोबी की भट्टी ।

खुबक–सं०पु०—घोड़ों का एक रोग विशेष जिसके कारण घोड़े के गले में ग्रंथी हो जाती है (शा.हो.)

खुबणौ, खुबबौ—देखो 'खुपणौ' (रू.भे.)
खुबणहार हारौ (हारी), खुबणियौ—वि०।
खुबवाणौ, खुबवाबौ—प्रे०रू०।
खुबाणौ, खुबाबौ खुबावणौ, खुबाबबौ—क्रि०स०।
खुबिप्रोड़ौ, खुबियोड़ौ, खुब्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खुबीजणौ खुबीजबौ—भाव वा०।
खुबाणौ खुबाबौ—देखो 'खुपाणौ' (रू.भे.)
खुबायोड़ौ—देखो खुपायोड़ौ'। (स्त्री० खुबायोड़ी)
खुबावणौ, खुबाबबौ-क्रि०स०—देखो 'खुपाणौ' (रू.भे.)
खुबावणहार, हारौ (हारी), खुबावणियौ—वि०।
खुबाविप्रोड़ौ, खुबावियोड़ौ, खुबाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खुबावीजणौ, खुबावीजबौ—कर्म वा०।
खुबणौ—अक० रू०।
खुबावियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'खुपावियोड़ौ' (रू.भे.)
(स्त्री० खुबावियोड़ी)
खुबियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो खुपियोड़ौ' (स्त्री० खुबियोड़ी)
खुभणौ खुभबौ-क्रि०प्र०—देखो 'खुपणौ' (रू.भे.) उ०—चढ़ि आभ छड़ाळ चमक चुभी, खुरताळ घमक पताळ खुभी।—मे.म.
खुभणहार, हारौ (हारी), खुभणियौ—वि०।
खुभवाणौ, खुभवाबौ—प्रे०रू०।
खुभाणौ खुभाबौ, खुभावणौ, खुभावबौ—क्रि०स०।
खुभिप्रोड़ौ, खुभियोड़ौ, खुभ्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खुभीजणौ, खुभीजबौ—भाव वा०।
खुभाणौ-क्रि०स०—देखो 'खुपाणौ'। उ०—सू ग्रो वचन जाहर हुवौ अरु ग्रोरंग सुणियौ तद दिल में खुभाय रख्यौ थौ।—द.दा.
खुभाणहार, हारौ (हारी), खुभाणियौ—वि०।
खुभायोड़ौ—भू०का०कृ०।
खुभाईजणौ, खुभाईजबौ—कर्म वा०।
खुभणौ—अक० रू०।
खुभायोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'खुपायोड़ौ' (रू.भे.)
(स्त्री० खुभायोड़ी)
खुभावणौ, खुभावबौ-क्रि०स०—देखो 'खुपाणौ' (रू.भे.)
खुभावणहार, हारौ (हारी), खुभावणियौ—वि०।
खुभाविप्रोड़ौ खुभावियोड़ौ, खुभाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।
खुभावीजणौ, खुभावीजबौ—कर्म वा०।
खुभणौ—अक० रू०।
खुभावियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'खुपायोड़ौ' (रू.भे.)
(स्त्री० खुभावियोड़ी)
खुभियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'खुपियोड़ौ' (रू.भे.)
(स्त्री० खुभियोड़ी)
खुमरी-सं०स्त्री०—एक चिड़िया विशेष (वेलि.)

खुमांणी-सं०स्त्री०—एक प्रकार का मेवा विशेष। उ०—कारक ना खुस करै, खुमांणी दाय न आवै। खारी वणी विदांम, दांम अखरोट लगावै।—दसदेव
खुमार, खुमारी-सं०पु० [अ० खुमार] १ नशे के उतार की अवस्था जिसमें हल्का सिर दर्द और हल्की ऐंठन होती है. २ मद, नशा, उन्माद ३ नशे की अवस्था। उ०—इसै समइयै में धूप तपै छै, रात रा अमलां री खुमारियां देसोतां राजानां नै तिस लागै छै।
—रा.सा.सं.
४ वह दशा जो रात भर जागने से होती है। उ०—अलबेली अलसांण, निपट खुमारी नींद की।—अज्ञात
[रा०] ५ गर्मी की ऋतु में भिगो कर ओढ़ने का कपड़ा।
खुरंट-सं०पु० [सं० क्षुर = खरोचना + अंड] घाव के ऊपर सूख कर जमा हुआ मवाद, सूखे घाव के ऊपर जमी पपड़ी।
पर्याय—किण, अणपद।
क्रि०प्र०—आवणौ, उखेड़णौ, उखेलणौ, कुचरणौ।
मुहा०—खुरंट उखेड़णौ—घाव की पपड़ी उखेड़ना—घाव को ताजा करना; चुभने वाली विस्मृत बातों को पुनः दोहराना।
कहा०—लारला खुरंट उखेलणा—दुःखे घाव को ताजा करना। किसी को चुभने वाली भूली हुई बात को पुनः दोहराना।
खुर-सं०पु० [सं०] १ चौपायों के पैर की कड़ी टाप जो बीच में से फटी होती है। गाय, भैंस आदि सींग वाले चौपायों के पैर का निचला छोर जो खड़े होने पर पृथ्वी पर पड़ता है। सफ। (अल्पा० खुरड़ौ)
२ नख नामक गंध द्रव्य।
[रा०] ३ पैर, चरण। उ०—मन जांणै चढूं हाथियां माथै, खुर रगड़तां जनम खवै। नर री चीती बात हुवै नह, हर री चीती बात हुवै।—ओपो आढ़ो ४ तीर, बाण (अ.मा., डिं.नां.मा.)
खुरखुराणौ, खुरखुराबौ, खुरखुरावणौ, खुरखुराववौ-क्रि०प्र० [अनु०] खुर खुर शब्द करना, गले में कफ के कारण घरघराहट होना, खुरखुरा मालूम होना।
[सं०]—किसी पदार्थ को खौलते घी या तेल में भून कर कड़ा करना।
खुरखुरौ-सं०पु०—पशु की चाल विशेष।
वि०—जो चिकना न हो, खुरदरा।
खुरखू-सं०स्त्री०—पृथ्वी (डिं.नां.मा.)
खुरड़णौ, खुरड़बौ—देखो 'खुरचणौ' (रू.भे.)
खुरड़ियोड़ौ—१ देखो खुरचियोड़ौ'। (स्त्री० खुरड़ियोड़ी)
२ छटपटाया हुआ।
खुरचण-सं०स्त्री० [सं० कूर्चनम्] १ खुरच कर या कुरेद कर एकत्रित की हुई वस्तु. २ पकाते या औटाते समय बर्तन के तले में चिपक जाने वाला खाद्य पदार्थ का वह अंश जो बाद में कुरेद कर निकाला जाय।
मुहा०—खुरचण खूटणी—बची-खुची सामग्री का भी समाप्त हो जाना।

खुरचणियौ, खुरचणौ–सं०पु०—खुरचने या कुरेदने का छोटा उपकरण ।

खुरचणौ, खुरचबौ–क्रि०स० [सं० क्षुरणं] कुरेदना, किसी जमी हुई वस्तु को उसके आधार पर से कुरेद कर अलग करना ।

खुरचणहार, हारौ (हारी), खुरचणियौ—वि० ।

खुरचाणौ, खुरचाबौ, खुरचावणौ, खुरचावबौ—क्रि०प्रे०रू० ।

खुरचिग्रोड़ौ, खुरचियोड़ौ, खुरच्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खुरचीजणौ, खुरचीजबौ—कर्म वा० ।

खुरचणी–सं०स्त्री०—१ छेनी की तरह का एक औजार जिससे ठठेरे बरतन छीलने का कार्य करते हैं. २ चमारों का एक औजार. ३ 'खुरचणौ' का अल्पा० । खुरचने का छोटा औजार ।

खुरचियोड़ौ–भू०का०कृ०—कुरेदा हुआ, खुरचा हुआ । (स्त्री० खुरचियोड़ी)

खुरजी–सं०स्त्री०—घोड़े पर दोनों ओर लटकने वाला झोला जिसे जरूरी सामान रखने के लिए घुड़सवार सवारी के समय अपने साथ रखता है ।

खुरणोल–सं०स्त्री०—आकाश में उड़ कर छा जाने वाली रज, धूलि ।

खुरतार, खुरताळ, खुरताळि खुरताळु–सं०स्त्री०यौ० [सं० क्षुरत्राण] १ खुर या सुम का आघात, टाप । उ०—१ गिर छीजे खुरताळ, पहवि थळ भिखर पलट्टै । पड़े अपंथे पंथ, अगह तुट्टै सर खुट्टै ।
—रा.रू.

२ घोड़े के सुम के नीचे लगाई जाने वाली लोहे की 'नाल' ।
उ०—१ हयं सफ सारन की खुरतार, खनंकित पाहन अग्गि उपार ।
—ला.रा.

उ०—२ खुरताळु के झमके सत सिंपा के सिळाव आउ जाउ में चक्री निरत करवे में हूर ।—र.रू. ३ जूतों की मजबूती के लिए उसके तले, एडी अथवा पंजे के नीचे लगाई जाने वाली लोहे की नाल ।

खुरद–वि० [फा० खुर्द] छोटा, लघु । उ०—खुरद छोटा नूं कहै, कलां वडा नू कहै ।—बां.दा.ख्यात.

खुरदबीन–सं०स्त्री० [फा० खुर्दबीन] एक विशेष प्रकार का छोटी वस्तु को बड़े आकार में देखने का यंत्र ।

खुरदम–सं०पु०—गधा, खर (अ.मा., ह.नां.)

खुरदाफरोस–सं०पु० [फा० खुर्दाफरोश] छोटी बड़ी फुटकर चीजें बेचने वाला ।

खुरप–सं०पु०—गधा. खर (अ.मा.)

खुरपी–सं०स्त्री० (पु० खुरपौ) १ लोहे का बना एक छोटा औजार जिसके एक सिरे पर पकड़ने के लिए लकड़ी का हत्था लगा रहता है । यह औजार घास को छीलने व भूमि गोड़ने के काम में आता है. २ चमारों का चमड़े को छीलने का औजार ।

खुरपौ–सं०पु० [सं० क्षुरप] १ लोहे का बना एक उपकरण जो कढ़ाई में हलुआ वगैरह बनाते समय हिलाने या खुरचने के काम में आता है. (स्त्री० खुरपी] २ देखो 'खुरपी' (अल्पा०) ३ तलवार ।

मुहा०—खुरपौ म्यांन करणौ—तलवार म्यान में रखना अर्थात् चुप रहना ।

खुरफौ—देखो 'खुरपौ' (रू.भे.)

खुरबांणी—देखो 'खूबांनी' (रू.भे.)

खुरभी–सं०पु०—१ छोटा बछड़ा. २ कायर, कमजोर ।

खुरमुरी–सं०स्त्री०—किसी कार्य के लिए कटिबद्ध या तैयार रहने का भाव ।

खुरमौ–सं०पु० [अ० खुरमा] १ चूरमा बनाने के उद्देश्य से तले हुए आटे की बाटी जिनको चूर कर चूरमा बनाया जाता है. २ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खुररांट–वि०पु० [सं० खुरींट] १ बूढ़ा, वृद्ध. २ अनुभवी. ३ चालाक, कांइयां ।

खुररौ–सं०पु० [सं० क्षुरक] १ घोड़े तथा अन्य पशुओं की पीठ का मैल उतारने का एक उपकरण तथा इस उपकरण द्वारा मैल उतारने की क्रिया । उ०—कंवर दिन आथमियै सहिर मांहे आय खांणां दांणां री कीधी नै टको एक देय नै घोड़ां रै खुररौ करायौ ।
—जगदेव पंवार री वात

२ ऊपर से नीचे तक पत्थर या ईंटों से भूमि समतल बना कर यातायात योग्य निर्मित की गई ढलुआ जमीन ।

खुराळियौ–सं०पु०—गाड़ी से खाद ढोते समय गाड़ी पर लगाया जाने वाला एक उपकरण ।

खुरासनी–सं०स्त्री०—एक प्रकार की तलवार ।

खुरसळी–सं०स्त्री०—चौपाए पशुओं के खुर ।

खुरसांण–सं०स्त्री०—१ तलवार । उ०—गया गळंती राति पर, जळती पाया नहीं । से सज्जण परभाति, खड़, हड़िया खुरसांण ज्यूं ।—ढो.मा. सं०पु०—२ यवन, मुसलमान (डि.को.) ३ घोड़ा (अ.मा.) ४ तीर (डि.नां.मा.) ५ सेना (अ.मा.) ६ बादशाह.
उ०—खित कारणै करै नित खळवट, खटै कटक तणा खुरसांण ।
प्रसणां सोण अहोनिस 'पाताल' खग सावरत रहै खुमांण ।
—महारांणा प्रतापसिंह री गीत

७ शस्त्र पैना करने का एक औजार । उ०—१ तीर री लोह तब ही तेज होइ जब खुरसांण चढ़ाइयै ।—वेलि. टी २ सच्चा सतगुरु खुरसांण खांडा दुधारा ।—केसोदास गाडण ८ देखो 'खुरासांण' (रू.भे.)

खुरसांणज–सं०पु०—तीर (डिं.नां.मा.)

खुरसांणियौ–सं०पु०—शान पर शस्त्र पैना करने वाला ।

खुरसांणी–वि०—२ खुरसान देश का निवासी । उ०—ऊमर ऊतावळि करइ पल्लांणियां पवंग, खुरसांणी सूधां खयंग चढ़िया दळ चतुरंग ।
—ढो.मा.

२ मुसलमानी । उ०—खुरसांणी खाफर खेड़ खसि, प्रारम्भ कियउ उतराधिप्रति ।—रा.ज.सी.

सं०पु०—खुरसान देश का घोड़ा ।

खुरसांन—देखो 'खुरसांण' । उ०—दूजे बंध लोहे रो जिण अंग नूं दीजै-सौ सोहांन खुरसांन सूं घिसियौ जाय ।—नी.प्र.

खुरसाड़ौ—सं०पु०—पशुओं के खुरों में होने वाला एक रोग विशेष ।

खुरसी—सं०स्त्री०—१ कुर्सी, बैठासन. २ पद, ओहदा. उ०—अमावड़ वनां में हुई लोथां अनंत चढ़े, घोड़ां वात दिगंत चाली । साथ रा दिरांणा हजारां माहिबां, खुरसिया हजारां हुई खाली ।—बां.दा.

क्रि०प्र०—बैठणौ

३ मकान आदि का आधार ।

क्रि०प्र०—माडणा ।

खुरसीबंध—देखो 'कुरसीबंध' । उ०—तत प्रत नेह तार मत तांणी, आरतवंत दया तो आंणी । जे म्हांनै खुरसीबंध जांणी, मारू आय महलां रंग माणौ ।—सियाळा रौ गीत

खुरहरौ—देखो 'खुररौ' (रू.भे.)

खुराई—सं०स्त्री०—१ वह रस्सी जिससे पशुओं के दोनों पैर परस्पर बांध दिए जाते हैं. २ एक प्रकार का फंदा जो उद्दंड बैल को पकड़ने के लिए काम में लिया जाता है ।

खुराक—सं०स्त्री० [फा० खुराक] १ भोजन, आहार. २ औषधि की एक समय की मात्रा ।

खुराकी—सं०स्त्री०—वह नकद दाम जो खुराक के लिए दिए जायें ।

वि०—अधिक खाने वाला । उ०—खोजर बडो खुराकी, जिण खायौ आपा सरीखौ डाकी ।

खुराड़ियौ, खुराड़ौ—देखो 'खराड़ौ' (रू.भे.)

खुराट—वि०—दक्ष, चतुर ।

खुराफत—सं०स्त्री० [अ०] १ बेहूदी व भद्दी बात, गाली-गलौज.

२ झगड़ा, बखेड़ा, उपद्रव ।

क्रि०प्र०—करणी, सूझणी, होणी ।

खुरासांण—सं०पु०—१ फारस देश का एक बड़ा सूबा । यह अफगानिस्तान के पश्चिम में आया हुआ है. २ मुसलमान, यवन (डिं.को) ३ सेना, फौज (अ.मा.) ४ बादशाह. ५ मुसलमान. ६ खुरासांण देश का घोड़ा विशेष । उ०—बणै लूम झूमां हुवा सज्ज बाजी, तुखारी खुरासांण भाड़ेज ताजी ।—वं.भा.

खुरासांणी—देखो 'खुरसांणी' (रू.भे.)

खुरी—सं०स्त्री० [सं० खुर+रा०प्र०ई] १ चुराए गए पशुओं को पुनः लौटाने के लिए दिया जाने वाला गुप्त धन. २ पशुओं द्वारा भूमि खोदने की क्रिया । उ०—खुरियां करता खूंद हुवै तुरियां हांकारां ।

—ऊ.का.

३ मौज, आनन्द । उ०—स्त्री माताजी करै तौ पठांणा नै भूंडा दिखाय नै घोड़ियां ल्यावां नै खुरी करां ।—जखड़ा मुखड़ा भाटी री वात

४ घोड़े को फेरने की क्रिया विशेष ।

सं०पु०—५ खुर वाला पशु ।

मुहा०—खुरी करणी, खुर पटकना—१ उतावला होना. २ तंग करना ।

६ खुर, सुम. (बहु० खुरिया) ७ घोड़ा ।

खुरौ—सं०पु०—१ फर्श. २ देखो 'खुररौ' (रू.भे.) ३ शिर पर बालों की जड़ों में जमने वाला मैल ।

खुळखुळाणौ, खुळखुळाबौ—क्रि०स०—खेल में कोड़ियां या पासे को हाथ में लेकर नीचे गिराने के पहिले हिलाना ।

खुलखुलियौ—सं०पु०—बच्चों को होने वाला एक प्रकार का रोग जिसमें उन्हें बार बार खांसी चलती है । कुक्कर खांसी ।

खुळखुळी—सं०स्त्री०—१ अव्यवस्था. २ खांसी की खरखराहट. ३ शीघ्रता, उतावल, जल्दबाजी. ४ गुदगुदी, सिहरन. ५ कामोद्योतक सिहरन ।

खुलणौ, खुलबौ—क्रि०अ० [सं० खुड, खुल = भेदने] १ खुलना । किसी वस्तु के जुड़े हुए या सटे हुए भागों का इस प्रकार अलग होना कि उसके अंदर या पार तक आना जाना या वस्तु का रखना आदि हो सके । मध्य के अवरोध या आवरण का दूर हटना. २ किसी बंधी हुई वस्तु आदि का छूटना. ३ दरार होना, छेद होना, फटना ।

उ०—अर सोढे सारंगदेव चामुंडराज रै चाचरै चंद्रहास झाड़ियौ तिण सूं टोप रा दो टूक होय मस्तक रौ चौथौ अंस खुलियौ ।

—वं.भा.

४ ऐसी वस्तु का तैयार होना जो बहुत दूर तक लकीर के रूप में आगे बढ़ती हुई चली गई हो और जिस पर किसी वस्तु का आना-जाना हो. ५ किसी कार्यालय, दफ्तर, दूकान या कारखाने आदि का नित्य का कार्य आरम्भ होना. ६ बांधने वाली या जोड़ने वाली वस्तु का हटना बंधन का छूटना, जोड़ हटना. ७ ऐसे नये कार्य का आरम्भ होना जिससे सर्वसाधारण या अनेक लोगों का कार्य आदि के दृष्टिकोण से सम्बन्ध हो सके. ८ किसी क्रम का चलना या जारी होना. ९ शिकार किये गये पशु की चमड़ी का उतरना ।

उ०—तठा उपरायत बाकरा उणहीज दरख्तां सूं टांगणा कीजै छै । बाकरा खुलै छै ।—रा.सा.सं. १० किसी गुप्त या गूढ़ बात का प्रकट होना ।

मुहा०—बात खुलणी—गुप्त रहस्य खुल जाना ।

११ फबना, सुहावना जान पड़ना, अच्छा लगना. १२ हृदय की बात को सच्चे रूप में प्रकट करना, किसी बात को साफ-साफ कहना, भेद बताना ।

खुलणहार, हारौ (हारी), खुलणियौ—वि० ।

खुलवाणौ, खुलवाबौ, खुलवावणौ, खुलवावबौ—प्रे०रू० ।

खुलाणौ, खुलाबौ, खुलावणौ, खुलावबौ—क्रि०स० ।

खुलिओड़ौ, खुलियोड़ौ, खुल्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खुलीजणौ, खुलीजबौ—भाव वा० ।

खुळणौ, खुळबौ–क्रि०अ०—चौसर आदि खेलों में कोड़ी-पासे आदि का हाथ में हिल कर गिरना ।

खुलमखुला–क्रि०वि०—खुले आम, जाहिर, प्रकाश्य रूप से । (मि० 'चौड़े-धाड़े')

खुलवायोड़ौ–भू०का०कृ०—१ खुलवाया हुआ. २ बंधन-मुक्त कराया हुआ. ३ आरम्भ कराया हुआ (स्त्री० खुलवायोड़ी)

खुलाणौ, खुलाबौ–क्रि०स० ('खुलणौ' का प्रे०रू०) देखो 'खुलावणौ' (रू.भे.) उ०—मदझरां भारथ रौ टकां नह मुलावै, खाग बळ खुलावै फीलखांना ।

खुलाणहार, हारौ (हारी), खुलाणियौ —वि० ।

खुलायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

खुलाईजणौ, खुलाईजबौ—कर्म वा० ।

खुलणौ—अक० रू० ।

खुलावणौ, खुलावबौ—रू०भे० ।

खुळाणौ, खुळाबौ–क्रि०स०—चौसर आदि खेल में कोड़ी या पासे आदि को हाथ में लेकर हिला कर डालना या हाथों के बीच या मुट्ठी में लेकर हिलाना ।

खुलायोड़ौ–भू०का०कृ०—१ खुलाया हुआ. २ बंधन-मुक्त कराया हुआ. ३ आरम्भ कराया हुआ । (स्त्री० खुलायोड़ी)

खुळायोड़ौ–भू०का०कृ०—चौसर खेल में कोड़ी अथवा पासे को हाथ से हिला कर खेला हुआ । (स्त्री० खुळायोड़ी)

खुलावणौ, खुलावबौ–क्रि०स० ('खुलणौ' का प्रे०रू०) १ खुलाना, खुलवाना. २ आरम्भ कराना. ३ बंधन-मुक्त करवाना. ४ बंधन हटवाना ।

खुलावणहार, हारौ (हारी), खुलावणियौ—वि० ।

खुलावियोड़ौ, खुलावियोड़ौ, खुलाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खुलावीजणौ, खुलावीजबौ—कर्म वा० ।

खुलणौ—अक० रू० ।

खुळावणौ, खुळावबौ–क्रि०स०—देखो 'खुळाणौ' (रू भे.)

खुळावणहार, हारौ (हारी), खुळावणियौ—वि० ।

खुळावियोड़ौ, खुळावियोड़ौ, खुळाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खुळावीजणौ, खुळावीजबौ—कर्म वा० ।

खुळणौ—अक० रू० ।

खुलासाळ–सं०स्त्री०यौ० [रा० खुला+सं० शाला] मकान में कमरों के आगे के भाग में बनाई जाने वाली खुली शाला जिसके कोई द्वार नहीं होती, ऊपर छत होती है । बरामदा, खुला बरंडा ।

खुलासौ–सं०पु० [अ० खुलासा] १ सारांश, संक्षेप. २ निबटारा, फैसला ।

वि०—खुला हुआ, अवरोधरहित, साफ-साफ, स्पष्ट ।

—खाळे–क्रिया वि०—देखो 'खुलमखुला' ।

खुलेपगां–वि०—स्वतंत्र, आजाद, मुक्त. २ उच्छृंखल ।

खुलौ–वि० (स्त्री० खुली) १ बंधनरहित. २ आवरणरहित ।

उ०—खुली आथणियां साथणियां खाती, फूली-फूली फिर फूंखाळी गाती ।—ऊ.का. ३ अवरोधहीन, स्वतंत्र, स्वच्छंद ।

२ स्पष्ट, प्रकट । (स्त्री० खुली)

खुळौ–वि० [सं० स्खलित] पतित, पथभ्रष्ट । उ०—रुळ्या खुळ्या रजपूत बिरांमण मिळगा बिटळा । वैस्य मिळ गया विकळ सुद्र कुळ रळगा सिटळा ।—ऊ.का.

खुल्लमभुल्ल–वि० [सं० क्षुल्लकंज] १ अव्यवस्थित. २ अंडबंड

सं०पु०—सामान, अटाला ।

खुल्लणौ, खुल्लबौ–क्रि०अ०—देखो 'खुलणौ' (रू.भे.)

खुल्लमखुल्ला—देखो 'खुलमखुला' (रू.भे.)

खुल्हणौ, खुल्हबौ—देखो 'खुलणौ' । उ०—१ अनिबंध चमू वणि चतुर अंग, महिनाथ हुकम खुल्लिय मतंग ।—रा.रू. उ०—२ तठा उपरायंत बाकरा उणहीज दरखतां सूं टांगणा कीजै छै । बाकरा खुल्है छै ।—रा.सा.सं.

खुवाड़ियौ—देखो 'कुवाड़ियौ' (रू.भे.)

खुवाणौ, खुवाबौ–क्रि०स०—खिलाना । उ०—१ खाणौ ब्यांरौ खात, खुवाणौ निज उणियारौ । लेणौ जांणौ नोज, दिराणौ कारज ज्यांरौ ।—दसदेव उ०—२ जो म्हारौ कांम सुधरे तौ जितरी नकद खजांना में छै सारी फकीरां नूं बांटूं, भूखां नूं खुवाय देऊं ।

—नी.प्र.

खुवार–सं०पु० [फा० ख्वार] १ खराबी. २ नशा. ३ नाश, ध्वंस । उ०—जिणां कपट मूं धणी रौ परव छोडियौ तिणां नूं मारिया खुवार किया ।—नी.प्र. ४ अनर्थ । उ०—मोडा टोडा बाकरा, चोथी विधवा नार । इतरा तौ भूखा भला, धाया करै खुवार ।

—प्राचीन

वि०—खराब । उ०—सो उण री कबर नदी रै रेलै सूं नेड़ै थी मो एक समय मेह इसौ घणौ आइयौ, रेलौ इसौ जोर सूं आवियौ जे धोर नूं खुवार करै ।—नी प्र.

खुस–वि० [फा० खुश] प्रसन्न, मगन, मुदित, आनन्दित, अच्छा ।

क्रि०प्र०—करणौ, रे'णौ, होणौ ।

खुसकी—देखो 'खुस्की' (रू.भे.)

खुसखत–वि० [फा० खुशखत] जिसकी लिखावट संदर हो, सुंदर अक्षर लिखने वाला ।

खुसखबरी–सं०स्त्री० [फा० खुशखबरी] शुभ समाचार, प्रसन्न करने वाला समाचार, अच्छी खबर ।

खुसदिल–वि० [फा० खुशदिल] १ प्रसन्न चित, प्रत्येक दशा में आनंदित रहने वाला. २ हंसोड़, मसखरा ।

खुसनवीस–सं०पु०यौ० [फा० खुशनवीस] सुन्दर अक्षर लिखने वाला, सुन्दर लिखावट वाला ।

खुसनवीसी-सं०स्त्री० [फा० खुशनवीसी] सुन्दर अक्षर लिखने की कला।
खुसनसीब-वि० [फा० खुशनसीब] सौभाग्यवान, खुशकिस्मत।
खुसनसीबी-सं०स्त्री० [फा० खुशनसीबी] सौभाग्य।
खुसनुमा-वि० [फा० खुशनुमा] जो देखने में भला मालूम हो, सुन्दर, मनोहर।
खुसबू-सं०स्त्री० [फा० खुशबू] सुगंधि, सौरभ।
(रू०भे०-खुसबोय, खुसबोह)
खुसबूदार-वि० [फा० खुशबूदार] सुगंधियुक्त, सुगंधित।
खुसबोय, खुसबोह-वि०—देखो 'खुसबू'। उ०—१ जीम चळू कर पांन आरोगियां पछै खुसबोय लगाई।—कुंवरसी सांखला री वारता
उ०—२ जाहर जस खुसबोह जुत, सुदता कुसम सुसोह। कांटां सूं भूंडी क्रपण, वप अपजस बदबोह।—बां.दा.
खुसमिजाज-वि० [फा० खुशमिजाज] सदा प्रसन्न रहने वाला। देखो 'खुसदिल'।
खुसरंग-वि० [फा० खुशरंग] चटकीले रंग वाला, सुन्दर रंग वाला।
खुसहाल-वि० [फा० खुशहाल] १ अच्छी स्थिति वाला, सुखी, सम्पन्न।
उ०—जद महाराज फरमाई जे इण बखत इसी वात कुछ नहीं दोनूं ही जे खुसहाल छां।—पदमसिंह री वात २ प्रसन्न, खुश।
उ०—बरमाळा गळै पहराई खुसहाल होय घर कूं चाली।
—पंचदंडी री वारता
खुसहाली-सं०स्त्री० [सं० खुशहाली] १ उत्तम दशा, अच्छी हालत।
उ०—उठ जद महाराज कही—वरासी जिण दिन दीसी जासी, अबार तो कोई खुसहाली री बातां होवण देवौ।
—सूरे खींवे री वारता
२ प्रसन्नता। उ०—ईब तो घणौ उछाह व मंगळ हुवौ, सारै सहर मांहीं खुसहाली हुई छै।—कुंवरसी सांखला री वारता
खुसामंदी—देखो 'खुसामदी'। उ०—स्वतंत्र मन्त्र तन्त्र से, युरोपियन बदा बदी। खराब अज्ज अज्ज के, खुसामंदी खुसामंदी।—ऊ.का.
खुसामद-सं०स्त्री० [फा० खुशामद] दूसरे को प्रसन्न करने के लिए की जाने वाली झूठी प्रशंसा, चाटुकारी, चापलूसी।
कहा०—खुशामद कौ ताजा रुजगार—खुशामद करने से अच्छी आमद होती रहती है।
खुसामदगोय-वि०—खुशामद करने वाला। उ०—राजा पातसाह कनै खुसामदगोय अवस्य रहै, आं कनां सूं खुसामदगोय दूर होण रौ उपाय ही नहीं, अब्बुलफजल कहै।—बां.दा. ख्यात
खुसामदी-वि०—१ चापलूसी करने वाला, चाटुकारी करने वाला, अपने स्वार्थ के लिए किसी अन्य की झूठी प्रशंसा करने वाला।
सं०स्त्री०—चापलूसी, चाटुकारी। उ०—खिलावत हास खुसामदी, सुरका सुरकी संग। किसब लियां ए कुकवियां, माहव हूता मांग।
—बां.दा.
खुसाळ—देखो 'खुस्याळ' (रू.भे.) उ०—कीधौ हार सुधारतां, सिव तिण बार खुसाळ।—रा.रू.
खुसाळी—देखो 'खुस्याळी' (रू.भे.) उ०—जे म्हे थारळा रै कुसळ-खेम सूं परण आया छां। रावजी खुसाळी मांनज्यौ।
—कुंवरसी सांखला री वारता
खुसियाळ—देखो 'खुस्याळ' (रू.भे.) उ०—दाखी अरज दुरग मां, सब खळ करी संघार। साहब मन खुसियाळ सूं, जीवै साल हजार।
—रा.रू.
खुसियाळी—देखो 'खुस्याळी' (रू.भे.) उ०—पिणियारयां खुसयाळी कर दे, घर में ताल भराई रे।—लो.गी.
खुसिहाळ—देखो 'खुस्याळ' (रू.भे.)
खुसिहाळी—देखो 'खुस्याळी' (रू.भे.)
खुसी-सं०स्त्री० [फा० खुशी] हर्ष, आनन्द, प्रसन्नता।
खुसुरफुसुर-सं०स्त्री०—चुपके-चुपके कान में करने की गुप्त बात, कानाफूसी।
खुस्क-वि० [फा० खुश्क] १ जो तर न हो, सूखा, जिसमें रसिकता न हो [सं० शुष्क] २ रूखे स्वभाव वाला।
खुस्की-सं०स्त्री० [फा० खुश्की] १ रूखापन, शुष्कता, नीरसता।
क्रि०प्र०—आणी, लाणी, होणी।
२ स्थल व भूमि. ३ पैदल चलने का कार्य. ४ अकाल, अवर्षण।
खुस्याळ-वि० [फा० खुशहाल] १ आनंदित, प्रसन्न, खुश।
उ०—१ खैरादियां दा दिल खुस्याळ दिल पाक तिरंदा।
—केसोदास गाडण
२ महाराज घणा खुस्याळ हुवा नै फुरमायौ।
—जगदेव पंवार री वात
२ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)
खुस्याळवळ, खुस्याळबाग-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)
खुस्याळी-सं०स्त्री०—खुशी, प्रसन्नता, आनंद। उ०—१ इतरौ कही मारग चाल्यौ तिको सासरै गयौ, घणी खुस्याळी हुई, बधाई बांटी।
—जखड़ा मुखड़ा भाटी री वात
उ०—२ रावजी नै रसाळ मेली। घणौ हेत हुवौ। परवांना रावजी बांचीया। खुस्याळी हुई।—वीरम दे सोनगरा री वात
खुहम-सं०पु०—तीर (डिं.नां.मा.)
खूंकियौ, खूंकौ-वि०—जिसका हाथ टूटने के उपरांत वापिस जोड़े जाने पर कुछ टेढ़ा रह गया हो।
खूंखाट-सं०स्त्री०—तेज आंधी या प्रचंड तूफान की आवाज। उ०—आंधी खूंखाटा करती उठ आवै। फदके फफाटा चेता चूळ जावै।—ऊ.का.
खूंखाणौ-क्रि०स० [अनु०] १ तीव्र ध्वनि करना। उ०—आठूं पो'रां गकसी, मूं सूं मूंसातीह। बांडी यूं बटका भरै, खूं खूं खूंखातीह।
—वादळी
२ तीव्र गति करना।
खूंखार-वि० [फा० खूंख्वार] १ रक्त पीने वाला. २ डरावना,

भयंकर. ३ क्रूर, निर्दयी।

सं०पु०—नाश। उ०—हिमायत ग्रदल री जे नहीं होवै तौ सबळा निबळां नूं मार खूंखार करै।—नी.प्र.

खूंगाळी-सं०स्त्री०—गले में पहिनने का सोने या चांदी का ग्राभूषण विशेष जो हंसुली की हड्डी के पास रहता है। उ०—खोळा टंकघोड़ा गळ में खूंगाळी, जळ जुत ठोडी पर टिमकी जंघाळी।—ऊ.का.

खूंगाळौ-सं०पु० देखो 'खूंगाली'। उ०—मुद्राळा 'प्रताप' कोट साबूत राखियो, मारू सादूळा पटैत वाळा खूंगाळा सारीख।—महादान महडू

खूंच-सं०स्त्री०—गधे की गति या चाल।

खूंचणौ-सं०पु०—दोष, ग्रवगुण, ऐब।

खूंजियौ, खूंजीयौ-सं०पु०—जेब, गिरह, पाकिट। (मह० खूंजो)

खूंजो—देखो 'खूंजियौ' (रू.भे.)

उ०—बैंणव बीजणियां बंधण बिगताळ, लट्ठै धोती रा खूंजा लटकाळ।—ऊ.का.

खूंट-सं०पु० [सं० खंड] १ छोर, कोना. २ भारी चौकोर या लम्बा गोल पत्थर जो मकान की मजबूती के लिए कोनों पर लगाया जाता है. ३ ग्रोर, तरफ. ४ भाग, हिस्सा. ५ चुनने का कार्य या क्रिया।

खूंटणी-सं०स्त्री०—चुनने (तोड़ने) की क्रिया, चुनने की स्थिति।

खूंटणौ—देखो 'खुरंट' (रू.भे.)

खूंटणौ, खूंटबौ-क्रि०स० [सं० खुट छेदने] चुनना, तोड़ना, पौधे पर से फूल फल ग्रादि हाथ से तोड़ना।

खूंटणहार, हारौ (हारी), खूंटणियौ—वि०।

खूंटाड़णौ, खूंटाड़बौ, खूंटाणौ, खूंटाबौ, खूंटावणौ, खूंटावबौ—प्रे०रू०।

खूंटिग्रोड़ौ, खूंटियोड़ौ, खूंटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

खूंटीजणौ, खूंटीजबौ—कर्म वा०।

खूंटा-सं०पु० (एक व० 'खूंटो') १ पंवार या पंवार वंश की एक शाखा २ ज्वार या बाजरी ग्रादि की फसल कटने के बाद पीछे खड़े रहने वाले सूखे डंठल।

खूंटाउखेड़-वि०—वंश का नाश करने वाला, निकम्मा।

खूंटाउपाड़, खूंटाऊपाड़-वह घोड़ा जिसके वक्षस्थल पर भौंरी (चक्र) हो (शा.हो.)

खूंटागाड-सं०स्त्री०—घोड़े के घुटने के नीचे होने वाली भौंरी जो शुभ मानी गई है (शा.हो.)

खूंटाचिटकण-सं०पु०—वह बैल जिसके ग्रपने बंधन स्थान से चलने पर थोड़ी देर के लिए पैर से चट चट शब्द निकलता है।

खूंटाडांणचराई-सं०स्त्री०—एक प्रकार का सरकारी कर जो मवेशियों की चराई के संबंध में लगाया था।

खूंटाणौ, खूंटाबौ-क्रि०स० ('खूंटणौ' का प्रे०रू०) चुनवाना, तुड़वाना, पौधों से फल, फूल ग्रादि से तुड़वाना।

खूंटाणहार, हारौ (हारी), खूंटणियौ—वि०।

खूंटायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खूंटाईजणौ, खूंटाईजबौ—कर्म वा०।

खूंटापाड़-सं०स्त्री०—घोड़े के जांघ की संधि की नली पर होने वाली भौंरी जो ग्रशुभ मानी गई है (शा.हो.)

खूंटायोड़ौ-भू०का०कृ०—चुनवाया हुग्रा। (स्त्री० खूंटायोड़ी)

खूंटारोप-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा जो शुभ माना गया है (शा.हो.)

खूंटाळौ-वि०—खम्भोंयुक्त।

खूंटावणौ, खूंटावबौ—देखो 'खूंटाणौ'।

खूंटवाड़णौ, खूंटवाड़बौ—प्रे०रू०।

खूंटाणहार, हारौ (हारी), खूंटावणियौ—वि०।

खूंटाविग्रोड़ौ, खूंटावियोड़ौ, खूंटाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खूंटावीजणौ खूंटावीजबौ—कर्म वा०।

खूंटावियोड़ौ—देखो 'खूंटायोड़ौ' (रू.भे.)

खूंटी-सं०स्त्री०—१ लकड़ी की कील।

क्रि०प्र०—गाडणी, ठोरणी, लगाणी।

मुहा०—खूंटी खींच'र सोवणी, खूंटी तांण'र सोवणौ—चद्दर ग्रादि को इस प्रकार ग्रोढ़ कर व तान कर सोना कि एक सिरा सिर के नीचे दबे एवं दूसरा सिरा पैरों के नीचे दबे तथा दोनों सिरों के बीच का कपड़ा खब तना हुग्रा हो। निश्चिंत होकर सोना।

२ मेख की ग्राकार का छोटा लकड़ी का टुकड़ा जो किसी चीज में ग्रन्य चीजों को ग्रटकाने के लिए लगाया जाता है. ३ बाजरी या ज्वार के पौधे का वह सूखा डंठल जो फसल काट लेने पर खेत में गड़ा रह जाता है. ४ बालों के कड़े ग्रंकुर जो मूंडने के बाद बच रहते हैं या मूंडने के बाद थोड़े-थोड़े फिर निकल ग्राते हैं।

मुहा०—खूंटी उखेड़णी, खूंटी निकाळणी—ऐसा मूंडना कि बाल की जड़ तक न रह जाय।

खूंटीउखाड-सं०पु०—घोड़े की एक भौंरी जो पैरों में पुट्ठों के पास होती है ग्रौर जिसका मुंह ऊपर की ग्रोर होता है (शा.हो.)

खूंटीगाड-सं०पु०—घोड़े की एक भौंरी जो पैरों में पुट्ठे के ऊपर होती है ग्रौर जिसका मुंह नीचे की ग्रोर होता है (शा.हो.)

खूंटो-सं०पु०—१ बड़ी मेख जिसको भूमि पर गाड़ कर उसमें किसी पशु को बांधते हैं। कोई लकड़ी जो भूमि पर खड़ी गड़ी हो ग्रौर जिसमें कोई वस्तु बांधी या ग्रटकाई जाय।

क्रि०प्र०—उखेड़णौ, उखेलणौ, गाडणौ, ठोरणौ।

कहा०—१ खूंटे हार गळै बीजो हूं करै—स्वयं खूंटा ही बंधी रस्सी को निगल जाय तो ग्रन्य कोई क्या करे। जब रक्षक ही भक्षक बन जाय तब कही जाती है. (मि० बाड़ खेत नै खाय) २ खूंटे रै पांण बछड़ौ कूदै—खूंटे के बल पर बछड़ा कूदता है। बछड़ा ग्रपने मालिक के बल पर ही कूदता है। कोई सामान्य व्यक्ति किसी समर्थ व्यक्ति के बल पर ही कुछ बोलता है या करता है. ३ खूंटो चोखो चाइजै—खूंटा ग्रच्छा होना चाहिए।

पशुओं के विक्रय के समय कही हुई उक्ति कि खरीददार अच्छा होना चाहिए जिससे उस पशु का पालन ठीक हो सके. ४ खूंटौ कोरड़ौ किने हाथ है—खूंटा और कोरड़ा (चाबुक) का अधिकार किसके हाथ है ? अर्थात् खूंटा बैल के मालिक और चाबुक घोड़े के मालिक के अधिकार में ही होती है, अतः खूंटा और चाबुक स्वामित्व-संपन्नता का प्रतीक है।

२ बाजरी या ज्वार आदि की फसल कटने के बाद खेत में खड़ा सूखा डंठल।

मुहा०—खूंटौ काडणौ—खूंटा निकालना अर्थात् किसी बात की जड़ का पता लगाना। मन की जानकारी करना। मूल का पता लगाना।

खूंडियौ—सं०पु०—हाथ में रखने की छड़ी जिसका ऊपरी भाग कुछ गोलाकार रूप में मुड़ा हुआ हो (रू.भे. 'गेडियौ') हॉकी (अंग्रेजी)

खूंडी—सं०स्त्री०—आंटेदार या मुड़े हुए सींगों वाली (भेंस)।

खूंणी—सं०स्त्री० [सं० कफोणी] हाथ और बाहु के जोड़ की हड्डी, कोहनी। उ०—झणकै झालरियौ झूमरिया झटकै, लूमी भींगां री **खूंणी** तळ लटकै।—ऊ.का.

खूंणौ—सं०पु० [सं० कोण] कोना।

मुहा०—खूंणै बैठणौ—कोने में बैठना। विधवा होना।

उ०—सुण सुण बीरा धाड़वी, आलं देखौ और। घर री **खूंणै** झूरसी, चख मग आतां चीर।—वी.स.

खूंद—सं०पु० [फा० खाविंद] १ बादशाह। उ०—१ ओवतां बिया मंडळीकां वारिज जिहीं, जुगल हूं राखियो न की जूवौ। 'जेतसी' अभि नमौ **खूंद** जगनाथ चै. हियै भ्रगु लात री भांत हूवौ।

—दळपतसिंह रायसिंहोत रौ गीत

उ०—२ सालै मझ दीह रयण मझ सालै, अकुळावै पावै दुख अंग।

खूंद हिये लागौ खूमांणा, भालौ तूझ तणौ अणभंग।

—महारांणा राजसिंह प्रथम रौ गीत

२ स्वामी, मालिक। उ०—ताका भाई हरकिसनचंद चित का उदार,खूंद के विखै में व्रत मेर के प्रकार।—रा.रू. ३ रौंदने की क्रिया का भाव। उ०—खुरियां करता खूंद हुवै तुरियां होकारा।

—ऊ.का.

४ कष्ट, तकलीफ. ५ योद्धा। उ०—घड़हड़ीये सुणे बाजते ढोले, हव बाजी कळपंत हुवा। धूहड़ ऊलटते धवळागिर, खूंद पखे कुण धरे खवा।—बारहठ नरहरदास

खूंदणौ—क्रि०स०—पैरों से कुचलना, रौंदना।

खूंदणहार, हारौ (हारी), खूंदणियौ—वि०।

खूंदवाणौ, खूंदवाबौ—प्रे०रू०।

खूंदाड़णौ, खूंदाड़बौ, खूंदाणौ, खूंदाबौ, खूंदवावणौ, खूंदवावबौ

—क्रि०स० प्रे०रू०।

खूंदियोड़ौ, खूंदियोड़ौ, खूंदयोड़ौ—भू०का०कृ०।

खूंदीजणौ, खूंदीजबौ—कर्म वा०।

खूंदलम, खूंदलमौ—देखो 'खूंदालम' (रू.भे.) उ०—सील खग अभिनमौ 'माल' साहां तई। सेल दळ बंगाळां धिखै चख रीस। चापड़ै काट 'गजबंध' हरी चढ़ावै, संकरी पाट **खूंदलमां** सीस।

—महाराजा अजीतसिंह रौ गीत

खूंदाड़णौ, खूंदाड़बौ—क्रि०स० ('खूंदणौ' का प्रे०रू०) रौंदने का कार्य अन्य से करवाना रौंदाना, कुचलवाना। उ०—पाताळ रांण प्रवाड़ मल, बांकी घड़ा विभाड़। खूंदाड़ै कुण है खुरां, तौ ऊभां मेवाड़।

—प्रिथीराज राठौड़

खूंदाड़णहार, हारौ (हारी), खूंदाड़णियौ—वि०।

खूंदाड़िओड़ौ, खूंदाड़ियोड़ौ, खूंदाड़योड़ौ—भू०का०कृ०।

खूंदाड़ीजणौ, खूंदाड़ीजबौ—कर्म वा०।

खूंदाड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—रौंदाया हुआ, कुचलाया हुआ।

(स्त्री० खूंदायोड़ी)

खूंदाणौ, खूंदाबौ—क्रि०स० ('खूंदणौ' का प्रे०रू०) देखो 'खूंदाड़णौ' (रू.भ.)

खूंदाणहार, हारौ (हारी), खूंदाणियौ—वि०।

खूंदायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खूंदाईजणौ, खूंदाईजबौ—कर्म वा०।

खूंदावणौ, खूंदावबौ—रू०भे०।

खूंदायोड़ौ—भू०का०कृ०—रौंदाया हुआ, कुचलाया हुआ।

(स्त्री० खूंदायोड़ी)

खूंदालम, खूंदालिम—सं०पु०—१ बादशाह। उ०—१ रांणी जणै स गढ़ गढ़ राजा, **खूंदालम** खीजायौ। दावा हाकण हार दिली सूं, जसवंत अंटी जायौ।—अज्ञात उ०—२ रोहणियाळ सर्फ रायां गुर, घाये असुर उतारै घांण। अबळा बाळ न धारै आडी, **खूंदालम** घातै खूमांण।—महारांणा सांगा रौ गीत २ मुसलमान. ३ सहनशील, सहिष्णु (डि.को.) ४ सहनशीलता (डि.को.) ५ अधिक विनीत होना. ६ वीर, बहादुर। उ०—पर गढ़ लेणा रोप पग, अरि सिर देणा तोड़। धरा हूंत नहीं धापणौ, **खूंदालमां** न खोड़।

—बां.दा.

खूंदावणौ, खूंदावबौ—देखो 'खूंदाड़णौ' (रू.भे.)

खूंदावणहार, हारौ (हारी), खूंदावणियौ—वि०।

खूंदाविओड़ौ, खूंदावियोड़ौ, खूंदाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खूंदावीजणौ, खूंदावीजबौ—कर्म वा०।

खूंदावियोड़ौ—देखो 'खूंदावियोड़ौ'। (स्त्री० खूंदाड़ियोड़ी)

खूंदियोड़ौ—भू०का०कृ०—रौंदा हुआ, कुचला हुआ।

(स्त्री० खूंदियोड़ी)

खूंन—देखो 'खून' (रू.भे.) उ०—एक चित्र ऊजळा चले सुभ नीत रसत्तं, एक खूंन छळवांन वहै कोलाहळ मत्तं।—रा.रू.

खूंनणौ, खूंनबौ—देखो 'खूंदणौ' (रू.भे.) उ०—जालमसिंह कहीजे बात तौ आही घणी हुई छै जो थां मारवाड़ रौ मुलक खूंनियौ छै।

—मारवाड़ा रा अमरावां री वारता

खूंनी—देखो 'खूनी' (रू.भे.) उ०—बाळी बरत न बाढ़, कुमे मा'ला काछवा। बिन खूंनी मत मार, कांमण थारी काछबा।—र.रा.

खूंबो, खूंभी—१ एक प्रकार का भूमि के मैल से उत्पन्न बिना पत्ते का सफेद पौधा जिसका शाक बनता है। यह पौधा वर्षा में स्वतः उत्पन्न होता है। भूंफोड़ २ शिखर, गुम्बज। उ०—बळी सेत व्रन पालटै, पड़ै जोखिम कळस। खसै खूंभी हुग्रै मंडप खांगो।
—राव गांगा री गीत

खूंमांण—सं०पु०—रावल 'खुम्मान' के वंशज सीसोदिया राजपूत।

खूंसड़ो—देखो 'खासड़ो' (रू.भे.)

खू—सं०पु०—१ कविजन. २ बृहस्पति. ३ सूर्य. ४ जीव. ५ किनारा. ६ पृथ्वी के जीव (एका०)
वि०—खूब, बहुत, अधिक। उ०—पांचो ग्रने दस पनरो खू पीड़िया सतरै बीसै हय खतरै में पड़िया।—ऊ.का.

खूऊ—सं०पु०—सूग्रर, शूकर।

खूड़—देखो 'खूड' (रू.भे.)

खूजियो—देखो 'खूंजियो' (रू.भे.)

खूट—सं०स्त्री०—चुक जाने का भाव, समाप्त होने का भाव, खत्म।
उ०—पाबू रा पराधियां, कीनी ग्रावट कूट। पड़िया पूरा पांच सौ, खीची रण में खूट।—पा.प्र.

खूटणो, खूटबो—क्रि०ग्र०—१ समाप्त होना, चुक जाना। उ०—पुर जोधांण, उदैपुर, जैंपुर, पह थांरा खूटा परियांण।—बां.दा.
२ मरना। उ०—बूटी लापड़ गीचांबर बिन बूटी, खांडी बांडी सब खावण बिन खूटी।—ऊ.का.
कहा०—खूटी नैं बूटी कोनी—मौत के लिए कोई दवा नहीं। मृत्यु ग्रवश्यम्भावी है।
३ बंधनमुक्त होना। उ०—जूंनी यह मिळतां हद जूटी, खूनी सिंह सांकळां खूटी।—वरजू बाई ४ हारना। उ०—खळ कर जोर तांण पग खूटा, उठै रांण कपि बांण उचारै।—र.रू.
५ फहरना। उ०—ग्रोहीज खूटा झंडा मिळण कज ग्रावियो, बळै बाजावियो जेत बाजा। कमर दी खांन यस ऊसह ग्ररजां करे, राखिया मुदीकर यसह राजा।—कविराजा करणीदांन
खूटाणहार, हारो (हारी), खूटाणियो—वि०।
खूटाणो, खूटाबो, खूटावणो, खूटावबो—क्रि०स०।
खूटिग्रोड़ो, खूटियोड़ो, खूटघोड़ो—भू०का०कृ०।
खूटीजणो, खूटीजबो—भाव वा०।

खूटल—वि०—निर्लज्ज, बेशर्म। उ०—मलेच्छन तें सिट्यो नाह, सूरन तें मिट्यो नाह। खूटल पै खिटघो खास, गंध ली न गांधी तें।
—ऊ.का.

खूटवण—वि०—समाप्त या संहार करने वाला।

खूटाड़णो, खूटाड़बो—देखो 'खूटाणो' (रू.भे.)

खूटाड़ियोड़ो—देखो 'खूटायोड़ो' (रू.भे.) (स्त्री० खूटाड़ियोड़ी)

खूटाणो, खूटाबो—क्रि०स०—समाप्त करना, खतम करना, चुकाना।
खूटाणहार, हारो (हारी), खूटाणियो—वि०।
खूटायोड़ो—भू०का०कृ०।
खूटाईजणो, खूटाईजबो—कर्म वा०।
खूटणो—ग्रक० रू०।

खूटायोड़ो—भू०का०कृ०—१ समाप्त किया हुग्रा. २ निकम्मा, हलकी लगाया हुग्रा। (स्त्री० खूटायोड़ी)

खूटावणो खूटावबो—देखो 'खूटाणो' (रू.भे.)
खूटावणहार, हारो (हारी), खूटावणियो—वि०।
खूटाविग्रोड़ो, खूटावियोड़ो, खूटाव्योड़ो—भू०का०कृ०।
खूटावीजणो, खूटावीजबो—क्रि० कर्म वा०।
खूटणो—ग्रक० रू०।

खूटावियोड़ो—देखो 'खूटायोड़ो'। (स्त्री० खूटावियोड़ी)

खूटियोड़ो—भू०का०कृ०—१ समाप्त, चुका हुग्रा. २ निकम्मा, गया-बीता। (स्त्री० खूटियोड़ी)

खूटोड़ो—वि० (स्त्री० खूटोड़ी) १ समाप्त. २ मृत. ३ निकम्मा।

खूटो—वि०—भूखा। उ०—मांस मिळै नह तो मर जावै, खूटो सिंह घास नहिं खावै।—ग्रज्ञात

खूड—१ देखो 'कूड़' (२)। उ०—खूंटा खड़ा वळा हूंचिया, हालां सूं हळ ठांभिया। तिरधर ग्रर संतीर साळां, खूड भूण थम पाटिया।—दसदेव
२ हल चलने से निकलने वाली रेखा, सीता।

खूण—सं०पु० [सं० कोण] १ कोना. २ नदी में होने वाला पानी का गड्ढा जो नदी के बहाव के बाद जल से भरा रहता है. ३ पहाड़ की गुफा, मांद।

खूणियो—सं०पु०—१ रहट के गड्ढे के दोनों किनारों में से एक जिसमें दूसरा चक्र घूमता है. २ देखो 'खूणो' (ग्रल्पा०)

खूणीदार—वि०—जिसका कोना हो, कोणधारी, कोने वाला।

खूणूं—सं०पु०—१ कोना. २ छोर।

खूणो—सं०पु०—१ कोना।
कहा०—सातूं खूणा राजी व्है तो कांम करजो—घर के सब सदस्य खुश हों ग्रथवा सहमत हों तो करना।
२ दीवारों के ग्रापस में मिलने का स्थान। उ०—तद एकण खूणं उवा बीजी पण मोजड़ी पड़ी दीठी।—चौबोली ३ दो दिशाग्रों के बीच की दिशा।

खूद—देखो 'खूंद' (रू.भे.) उ०—भद्र जाती चुणे सीस मोती ग्रोण पंका भळै, खात मोती मुराळी नसंकां चुगे खूद।—बद्रीदास खिड़ियो

खूदणो, खूदबो—क्रि०स०—१ खोदना, कुरेचना। उ०—ढोला ग्रामण दूमणउ, नख ती खूदइ भीति। हम थी कुण छइ ग्रागळी, बसी तुहारइ चीति।—ढो.मा. २ देखो 'खूंदणो' (रू.भे.)

खूदालम, खुदालम—देखो 'खूंदालम'। उ०—तद हुवो घाल जळ मांस ग्रास। खूदालम वाळो ग्रंब खास।—वि.सं.

खून–सं०पु० [फा०] १ रक्त, रुधिर, लहू ।

क्रि०प्र०—काढ़णी, देणी पीणी, बहाणी, मिळणी ।

मुहा०—१ खून उतरणी—गुस्से से आंख व मुंह लाल होना. २ खून उबळणी—क्रोध होना, गुस्सा आना, जोश आना. ३ खून ठंडो पड़णी—खून ठंडा होना, डर जाना, भयभीत हो जाना. ४ खून देणी—बलि होना. ५ खून पीणी—मारना. बहुत कड़ा कष्ट देना. ६ खून रो पांणी करणी—अधिक परिश्रम करना । पसीना बहाना ।

२ वध, हत्या, कत्ल ।

क्रि०प्र०—करणी, होणी ।

मुहा०—खून करणी—हत्या करना, मार डालना ।

कहा०—खून रै बदळै फांसी—मृत्यु के अपराध पर फांसी का दंड प्राप्त होगा ही । प्रतिशोध की भावना के प्रति ।

यौ०—खून-खराबो ।

३ अपराध, गुनाह । उ०—चारण कह्यो जे ठाकुरां ऊंठ खोड़ावै नै बेकं जिण ऊपर चढ़िया सो इसी करहा में कांसू खून छै ।—ढो.मा.

खून री लिप–सं०स्त्री०—रक्त-प्लीहा ।

खूनि, खूनी–वि० [फा०] १ मार डालने वाला, हत्यारा, कातिल, घातक. २ अपराधी, गुनहगार । उ०—साह तणा खूनी सबळ, आय बचै इण ठोड़ । श्रो सातू इकलीम में, चावो गढ़ चीतोड़ ।—बां.दा. ३ अत्याचारी, जालिम । उ०—मूनी गाफल हुय रहै, खूनी जुल-मांणा ।—केसोदास गाडण ४ क्रुद्ध, कुपित । उ०—जूनी थह मिळतां हद जूटो खनी सिंह सांकळां खूटो ।—बरजूबाई

स०पु०—१ वह जिसमें से खून निकले, बवासीर. २ सिंह ।

खूब–वि० [फा०] १ अधिक, बहुत. २ अच्छा, भला, उत्तम ।

क्रि०वि० [फा०] पूर्ण रीति से, अच्छी तरह से ।

खूबकलां–सं०स्त्री० [फा०] फारस देश के मांजिदरा नामक प्रांत में उत्पन्न होने वाली एक प्रकार की घास के बीज जो पोस्त के दानों के समान और गुलाबी रंग के होते हैं ।

खूबख्याल–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खूबड़—देखो 'खूबड़ी' ।

खूबड़खाबड़–वि०यौ०—जो समतल न हो, ऊबड़-खाबड़, ऊंचा-नीचा ।

खूबड़ी–सं०स्त्री०—माधा की पुत्री खूबड़ जो देवी का अवतार मानी जाती है ।

खूबरंग–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खूबसुरंग–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

खूबसूरत–वि० [फा० खूबसूरत] सुआकृति, सुन्दर आकृति वाला, रूप-वान, सुन्दर ।

खूबसूरती–सं०स्त्री० [फा० खूबसूरती] सुन्दरता, सौन्दर्य ।

खूबानी–सं०स्त्री० [फा० खूबानी] एक प्रकार का मेवा जिसे जरदालू भी कहते हैं । इसका पेड़ अधिकतर काबुल की पहाड़ियों में होता है । इसके फल सुखा लिये जाते हैं और ताजे भी खाये जाते हैं ।

खूबी–सं०स्त्री० [फा० खूबी] १ अच्छाई, अच्छापन. २ गुण, विशे-षता, विलक्षणता । उ०—खूबी न रही काय खलंगां खंजनां, मेही है मुनिराज विसारि निरंजनां ।—बां.दा. ३ आनन्द, मौज ।

उ०—१ करतां बहु कागद मुकता कर, कव बोहरी यह अरज करै । खूबी करां ऊगटां खावां, सदा सबळ धुर गरज सरै ।

—महाराजा पदमसिंह री गीत

उ०—२ इतरै राखस बारणै मांहै नीचो सिर कर वड़तो हुतो अर कुंवर खड़ग बाह्यो तैसुं राखस मारीयो । इवै ए राखस मार आपरो सहर कर खूबी करै छै ।—चौबोली ४ शांति ।

उ०—क्रोध जेर नरमी भारी खमाई रै न होय तौ हर एक बचन करतूत सूं रीस पकड़ै तरै तहकीक मिनख मारचा जाय देस में खूबी नहीं रहै ।—नी.प्र.

खूम–सं०पु०—१ यवन, मुसलमान । उ०—खूम हुकम सिरदार खां, सोजत नयर सिहाय ।—रा.रू. २ हिस्सा, विभाग । उ०—बेत सहर मांहि पसाइता खावै छै, खूम उण रा छै ।—नैणसी

३ एक प्रकार का सूती साफा जो सिंधी मुसलमान धारण करते हैं ।

खूमकोस—देखो 'खूमपोस' ।

खूमचो–सं०पु० [फा० ख्वान्चा] १ वह बड़ा चौड़ा पात्र जिसमें मिठाई या और कोई अन्य खाने-पीने की वस्तुयें बेचने के लिये भरी रहती हैं. २ वह थाल या ठेला आदि जिसमें सामग्री रख फेरी वाले मिठाई आदि बेचते हैं ।

खूमपोस–सं०पु०—मिठाई या अन्य पकवान अथवा भोजन का थाल ढकने के लिये बना हुआ कपड़े का आवरण विशेष ।

खूमांण—देखो 'खूमांण' (रू.भे.)

खूमांणी–वि०—भयंकर, अनिष्टकारी । उ०—खूमांणी बांणी बणाइ ख्यांत, भैरव चहचांणी तिणाइ भांत ।—वि.सं.

खूर–सं०पु०—१ घोड़ा । उ०—खेड़ंचे खड़िया थाट खूर, सत्रवां काळ विकराळ सूर ।—वि.सं. २ फौज, दल (ह.नां.) उ०—कटकां रा खूर पड़िनै रहीआ छै, हाथी लड़ावीजै छै ।—रा.सा.सं. ३ समूह, झुंड । उ०—१ खळ दळ सबळ लूंबिया खूर, पातळ तणा मोहर उदयापुर ।—दयारांम चारण री गीत उ०—२ भय मेट दासे विरद भासे खळां त्रासे खूर'।—र.ज.प्र. ४ बाण, तीर ।

(रू०भे०—खुर)

वि०—घना, अधिक । देखो 'खुर' ।

खूरदम–सं०पु०—गधा, गर्दभ (ह.नां.)

खूरन–सं०स्त्री० [सं० क्षुर] हाथियों के पैरों के नाखूनों की एक बीमारी जिसमें नाखून फट जाते हैं ।

खूराक—देखो 'खुराक' (रू.भे.)

खूसणो, खूसबो–क्रि०स०—१ छीनना. २ ठूंसना ।

खूसाणो, खूसाबो, खूसावणो, खूसावबो–क्रि०स०—१ छिनवाना. २ ठूंसाना ।

खूसियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ छीना हुआ. २ ठूंसा हुआ।
(स्त्री० खूसियोड़ी)

खूह-सं०पु०—कुआ, कूप। उ०—पांणी अटके खूह पर, कट वरत किरंमर। सोह हुआ मेहा सदू, अड़िया भुज अंबर।
—जूंझारसिंह मेड़तियौ

खें-खें-सं०स्त्री० [अनु०] देखो 'खें-खें' (रू.भे.)

खेंग-सं०पु०—१ पशुओं की पहिचान के लिए दागा हुआ चिन्ह.
[फा० खिंग] (स्त्री० खेंगरण) २ घोड़ा। उ०—रज सूं नर-वंदण रेवतियूं हुय खेंगण धूपउ खंवतियूं।—पा.प्र.

खेंगड़ौ—देखो 'खांगड़ौ' (रू.भे.)

खेंगरणौ, खेंगरबौ-क्रि०म०अ०—नाश करना मारना, संहार करना।
उ०—खळ खेंगरण वडा ब्रिद खाटण, वैरां सूं चाळवण विरोध।
सांमि सनाह दुवाहा सांमत, जगि जणियार कळोधर जोध।
—सुजांनसिंह राठौड़ री गीत

खे-सं०पु०—१ कवि. २ पक्षी. ३ दुख, खेद. ४ सभा-द्वार. ५ नभचर. ६ तलवार. ७ प्राण. ८ शिव (एका०)
९ आकाश (रू.भे.—खं) (डिं.को.) १० धूलि, गर्द.
क्रि०प्र०—उडणी, पड़णी, लागणी।
कहा०—खे देख'र घोड़ा मत बाढ़ौ—धूलि या गर्द को उड़ते देख कर किसी सेना के भय से घोड़ों को उलटा भगाना। केवल सन्देह मात्र से भयभीत नहीं होना चाहिए।
११ राख. १२ धधकते हुए अंगारों का ढेर जो गोल बाटी सेंकने के लिए उपले जमा कर एवं जला कर तैयार की जाती हो।
क्रि०प्र०—घालणी, पड़णी, लगाणी।

खेड़णौ, खेड़बौ—देखो 'खेणौ' (रू.भे.)

खेई—देखो 'खई' (रू.भे.)

खेखी-सं०पु०—बड़ा अफीमची, अधिक अफीम खाने वाला।

खेगाळ-सं०पु०—१ बहुत तेज वेग। उ०—वपगाती ठाडोळ तूठजै बार खेगाळां, दुखियां मेटण दुख विड़द घण संपत वाळां।—मेघ.
२ देखो 'खोगाळ' (१)

खेड़-सं०स्त्री०—१ विशाल भोज. २ खेत की जुताई. ३ दूरी या मंजिल तय करने की क्रिया या भाव। उ०—विजौ हरराज री असूरौ, ए नीसरिया सू किता एक दिनां मूं खेड़ कर अजांणजक आया।
—द.दा.
४ एकत्रित करने की क्रिया या भाव। उ०—बेटा नरसींघदास भी घणी बुरी मांनियौ, काढ़ दीयौ। कह्यौ 'मोनूं मुंहडौ मत दिखावै।' तिण ऊपर चूंडावतां रा साथ सुं मेघ तेड़ा मेलिया, बडी खेड़ करी। बड़ा-बड़ा राजपूत ठाकुर चूंडावत आय भेळा हुवा।—नैणसी

खेड़णौ, खेड़बौ-क्रि०प्र०—१ चलना। उ०—पाळा मत वहै सहै अत पाळौ, जात तणौ पथ मांगण जात। गायौ नहीं सत हरण गंधारी, खेड़ै न्याव अंबारी रात।—ओपौ आढ़ौ २ चलाना, हांकना।
उ०—खांति लागौ त्रिभुवनपति खेड़ै, वर गिरिपुर सांम्हा आवंति।
—वेलि

खेड़णहार, हारौ (हारी), **खेड़णियौ**—वि०।

खेड़िओड़ौ, खेड़ियोड़ौ, खेड़योड़ौ—भू०का०कृ०।

खेड़ीजणौ, खेड़ीजबौ—भाव वा०, कर्म वा०।

खेड़पत, खेड़पति, खेड़ातौ, खेड़पत्ति-सं०पु०—राठौड़ या राठौड़ राजा।
उ०—१ धड़हड़इ ढोल धूजइ धरत्ति, पड़ियालगि वरसई खेड़पत्ति।
—रा.ज.सी.
उ०—२ माहेमोत हरि मन भांणं, खेड़पती साथै खूमांणं।—रा.रू.

खेड़ा-सं०पु०—१ सोलंकी वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति.
२ कण। उ०—खागां दळै पड़ै हुय खेड़ा, अकस घसै सहसां अरेड़ा।
—रा.रू.
३ वह वर्षा जो कुछ-कुछ दिनों के अंतर पर होती है।

खेड़ाऊ-सं०पु०—अकाल पड़ने पर मवेशियों को लेकर अन्य प्रदेशों की ओर चारे-पानी की खोज में जाने वाला। (मि० 'गोळू')
उ०—सांवण सूकौ पड़ियौ, हमें हूं कठै जाऊं। कासूं खाऊं। गांव री तौ वयूं आयौ ही नहीं और आयौ जिकौ खेड़ाऊ खा गया। हळ म्हारै जुपिया नहीं।—सुंदरदास भाटी री वारता
देखो 'खड़णौ' (रू.भे.)

खेड़ी-सं०स्त्री० [सं० खेडी] एक प्रकार का पक्का लोहा जिसके हथियार बनाये जाते हैं फौलाद। उ०—तोड़ी वा लोवां री लगांम, जांमण की ए जाई, खेड़ी रा तोड़ घा ए दुबकी दांवणा।—लो गी.

खेड़ू-वि०—हांकने वाला, चलाने वाला। उ०—ताता दोय धोरी जोतरिया, भंवर ऊजळ दोउ पाख भला। बाजै जीहा पाटली विध-विध, इण रा खेड़ू आप अलाह।—ओपौ आढ़ौ

खेड़ेच, खेड़ेचउ, खेड़ेचौ-सं०पु०—राठौड़ राजपूत। उ०—१ खेड़ेचउ नगराज चडि खेधि खलवा हअउं सउं सत्रवेधि।—रा.ज.सी.
उ०—२ मंहै कंवर जैत महवेचौ, खग ऊधरै नरै खेड़ेचौ।—रा.रू.

खेचर-सं०पु० [सं० खेचरी] १ नभचारी। उ०—खिळै मिळ खेचर भूचर ख्याल, हले संग जोगण देख हवाल।—पे.रू. २ सूर्य-चंद्रादि ग्रह. ३ तारागण. ४ देवता. ५ विमान. ६ पक्षी. ७ बादल. ८ भूत-प्रेत. ९ राक्षस. १० शिव. ११ कसीस (डिं.को.)
१२ चौसठ भैरवों के अंतर्गत एक भैरव।
सं०स्त्री०—१३ अप्सरा. १४ वायु. १५ रण-पिशाचिनी, दुर्गा।
उ०—गैमरां हैमरां नरां पाड़ि राड़ि दीध गग, दूसरा केहरी खिले खेचरां दुवाह। सो सरां खंजरां बरां करा परा फूटै सेल, ऊपरा अच्छरां करै रिख्खरा उछाह।—राठौड़ किसनसिंह

खेचरी—१ देखो 'खेचर'. २ देखो 'खेचरी मुद्रा'. ३ देखो 'खेचरी-गुटिका'. ४ पुरुषों की ७२ कलाओं में से एक. ५ युद्धप्रिय योगिनी, देवी। उ०—आप लोहां रूपछर हूंस वरियौ, सिवमाळा खेचरि रत सरियौ। 'आसा' हरौ सरां आचरियौ, सुजि हरि जोति मुगति सांचरियौ।—राठौड़ गोकुल सुजांनसिंहोत रौ गीत

खेचरीगुटका, खेचरीगुटिका–सं०स्त्री०यौ०—तांत्रिकों के मतानुसार एक प्रकार की योग-सिद्धि की गोली। ऐसा माना जाता है कि इस प्रकार की गोली मुंह में रखने से आकाश में उड़ने की शक्ति आ जाती है।

खेचरीमुद्रा–सं०स्त्री० [सं०] १ जबान को उलट कर तालू से लगाने और दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच मस्तक पर लगाने की योग-साधन की एक मुद्रा जिसके साधन से मनुष्य को किसी प्रकार का रोग नहीं होता. २ दोनों हाथों को एक दूसरे पर लपेट लेने की तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा।

खेचल–सं०पु०—१ कष्ट, परिश्रम, तकलीफ। उ०—हूं सगळां को मुदी छूं नै माळवै सिधू घणी **खेचल** करै नै दुख दै छै।

—कहवाट सरवहिये री वात

२ तंग करने की क्रिया का भाव। उ०—स्त्री जी रै द्वारै रसत मोल गयी, उदयपुर सूं सो स्त्रीजीद्वारा सूं **खेचल** करणी।—बां.दा.ख्यात

खेचलणौ, खेचलबौ–क्रि०स०—कष्ट देना, तकलीफ पहुँचाना।

खेचाई–सं०स्त्री०—१ द्वेष. २ शत्रुता. ३ व्यंग. ४ मखौल।

खेचौ–सं०पु०—१ द्वेष. २ शत्रुता. ३ व्यंग. ४ मखौल।

खेज–सं०पु०—खाद्य पदार्थ। उ०—नैण दीठां क्या हुवै, जे नह मेळौ थाय। पेट पड्यां ही धापियै, ऊवै **खेज** गमाय।

—जलाल बूबना री वात

खेजड़–सं०पु० ('खेजड़ी' का महत्व० शब्द) देखो 'खेजड़ी'।

उ०—जेठ महीनै धूप पड़ैली, तावड़िये री ताह। **खेजड़** चढ़ड़'र खोखा खामां, वाह रे मांई वाह।—अज्ञात २ पँवार वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

खेजड़लौ, खेजड़ियौ– देखो 'खेजड़ी' (अल्पा०) उ०—**खेजड़लां** री छांग ठूंठ भेळा कर राखै, ठूंठ लगावै ढिग्ग जिग्ग जांभौ कर नाखै।

—दसदेव

खेजड़ी–सं०स्त्री०—रेगिस्तान का छोटी पत्तीदार एक कंटीला वृक्ष, शमी का वृक्ष। उ०—**खेजड़ियां** नै बावळियां नै बाजरियां रा पूंख, तीन तिलोकी सूं होवै निराळा मुरधर थारा रूंख।

—लो.गी.

कहा०—१ खड़े खेजड़ां बेज काडणौ—सीधे खड़े वृक्ष में छेद नहीं हो सकता। अर्थात् असम्भव कार्य को करने का प्रयास करना व्यर्थ है. २ सुंवाळी खेजड़ी सोरी चढ़ीजै—बिना कांटे वाले शमी के वृक्ष पर आसानी से चढ़ा जा सकता है। अर्थात् सीधे व सरल व्यक्ति को हर कोई दबा सकता है। (खेजड़, खेजड़ौ— महत्व०) (खेजड़लौ, खेजड़ियौ—अल्पा०)

खेजड़ौ–सं०पु०—देखो 'खेजड़ी'।

कहा०—गांव गांव खेजड़ी नै गांव गांव गोगौ—गांव गांव में सर्प हैं तो उपचार हेतु गांव गांव में खेजड़ी भी उपलब्ध है। जहां दर्द है वहां दवा भी है।

खेट–सं०पु० [सं०] १ बारह ग्रह. २ घोड़ा. ३ ढाल. ४ चमड़ा. ५ एक प्रकार का अस्त्र. ६ युद्ध, संग्राम।

खेटक–सं०पु० [सं०] १ बलदेवजी की गदा. २ ढाल। उ०—भाणां पोस नत्रीठ, गीठ **खेटक** खग पाणां।—मे.म. ३ योद्धा, वीर. ४ शक्तिशाली, समर्थ।

खेटकी–सं०स्त्री०—१ ढाल।

सं०पु०—२ योद्धा, वीर।

खेटणौ, खेटबौ–क्रि०स०—संहार करना, नाश करना। उ०—खित कारणै करै नित खळवट, **खेटै** कटक तणा खुरसांण।

—प्रिथीराज राठौड़

खेटर, खेटरखल–सं०पु०—फटा हुआ या सूखा हुआ पुराना जूता।

उ०—**खेटर** खल मूंडा छिपियोड़ा छाती, गोडा गळियोड़ा छिपियोड़ी चाती।—ऊ.का.

खेटावणौ, खेटावबौ–क्रि०स० [सं० खेट] १ पराजित करना।

उ०—दिलीनाथ सहता दिली दळ, चार वार चढ़ आया। सातूं चौकी मार साह री, खंडेचै **खेटाया**।—महाराजा अजीतसिंह री गीत

२ क्रुद्ध करना।

खेटाणहार, हारौ (हारी), खेटाणियौ—वि०।

खेटायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खेटाईजणौ, खेटाईजबौ—कर्म वा०।

खेटायत–वि० [सं० खिट] योद्धा, वीर।

खेटायोड़ौ–भू०का०कृ०—१ पराजित. २ क्रोधित किया हुआ। (स्त्री० खेटायोड़ी)

खेटावणौ, खेटावबौ– देखो 'खेटाणौ' (रू.भे.)

खेटावणहार, हारौ (हारी), खेटावणियौ—वि०।

खेटाविप्रोड़ौ, खेटावियोड़ौ, खेटाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खेटावीजणौ, खेटावीजबौ—कर्म वा०।

खेटावियोड़ौ—देखो 'खेटायोड़ौ'। (स्त्री० खेटावियोड़ी)

खेटौ–सं०पु० [सं० खेट] १ युद्ध। उ०—१ सुभ्रर वीर सूं उपजियौ छै, तीसूं थारा बाप सरीखौ होय और राव सूं **खेटौ** करे।

—डाढ़ाळा सूर री वात

उ०—२ बंधू कुंभ जेहौ अनै मेघ बेटौ। खंवां जोड़ि मोनूं करै कोण **खेटौ**।—सू.प्र. २ द्वेष, ईर्ष्या।

खेड–सं०पु० [सं० खिट्, खेट] १ युद्ध, समर। उ०—वड़ वड़ बीच भड़ांन विचै दस्तांन झड़ंदै, सिर देदार मादार सिर हक **खेड** हुवंदै।

—पा.प्र.

२ तीर, बाण (डिं.नां.मा.)

खेडार–वि०—देहाती, ग्रामवासी।

खेडूर–वि०—जबरदस्त योद्धा, बहादुर।

खेड़ेच—देखो 'खेड़ेच'।

खेडौ–सं०पु०—खड्ग, तलवार (ना.डिं.को.)

खेणौ, खेबौ–क्रि०स० [सं० खेवृ] १ नाव खेना, नाव चलाना.

२ कालक्षेप करना, समय बिताना. ३ पार करना. ४ देव-पूजन के लिए गंध द्रव्यों को जला कर धूपदान करना ।

उ०—ज्यां तो गायां के ग्रे चारण, तूं खेनी गूगळ धूप ।—लो.गी.

खेत-सं०पु० [सं० क्षेत्र] १ वह भूमि खंड जिसे उसमें जुताई कर अनाज आदि बोने व फसल उत्पन्न करने के योग्य बनाया गया हो। जुताई किया हुआ भू भाग । जोतने-बोने की जमीन ।

क्रि०प्र०—खड़णो, जोतणो, बावणो, बोवणो ।

मुहा०—खेत कमावणो; खेत कमाणो – खेत में खाद आदि डाल कर उसमें अच्छी जुताई करना । खेत को उपजाऊ करना ।

२ खेत में खड़ी फसल ।

मुहा०—खेत भिळणो— खड़ी फसल में पशुओं का प्रवेश होना ।

कहा०—१ खड़ै ज्यांरा खेत नै चढ़ै ज्यांरा घोड़ा—खेत उसी का जो उसकी जुताई करे और घोड़ा उसी का जो उस पर चढ़ाई करे, अर्थात् खेत जोतने वाले का और घोड़ा सवार का. २ खेत खळै नाडो घरे आयां पछै किवाड़ आडो—किसानों से खेत या खलिहान से अनाज लेना सरल है परन्तु उनके घर पहुँचने के बाद वहाँ से निकलवाना कठिन है ।

वि०वि०—भारतीय किसान की गरीब स्थिति होने के कारण वह प्रायः व्यापारी वर्ग से अनाज व रकम उधार लेकर ही अपनी खेती व जीविका चला पाता है । ये व्यापारी वर्ग के लोग अपनी रकम वसूली के लिये प्रायः खलिहान में अनाज तैयार होने पर रकम के स्थान पर अनाज लेने वहीं पहुँच जाते हैं, कारण कि वहाँ से वे सरलता-पूर्वक ला सकते हैं । इसी सम्बन्ध में यह उक्ति कही गई है। ३ खेत में पड़गी खाळी, धांन में पड़ग्यो काग्यो । बडा बेटा पै पड़ी बीजळी, तबलो भंवरी खाग्यो—खेत में पानी की नाली पड़ गई जिससे खाद व मिट्टी बह गई, खड़ी फसल के धान में काग्या (पौधे में अनाज का विकीर्ण होना) पड़ गया, बड़े लड़के पर बिजली गिर गई तथा काठ के बर्तन भंवरी खा गई; दुर्भाग्यशाली कृषक की दशा का वर्णन; बद-किस्मती से सब उलटा ही उलटा होता है. ४ खेत बिगड़ै तो खाद देवै पण ओलाद बिगड़ै तो किसो खाद देवै—खेत उपजाऊ न हो तो उसमें खाद आदि डाल कर उपजाऊ बनाया जा सकता है परन्तु सन्तान यदि बिगड़ जाय तो उसे सुधारने हेतु कौनसी खाद दी जा सकती है । अर्थात् बिगड़ी सन्तान का सुधारना अत्यन्त कठिन हो जाता है. ५ खेतां मांय हाल कराळ, घेर मांय रांड लड़ाक, खळां मांय तोण पांन— खेत में तिरछा लगने वाला हल, घर में झगड़ालू स्त्री और खलिहान में अनाज पर पड़ने वाली भूसी ये सब हाथ से ही सुधारनी पड़ती हैं. ६ बांध कुदाळी खुरपी हाथ, लाठी हुंमुग्रा राखै साथ । काटै घास औ खेत निरावै, सो पूरा किसांन कहावै—जो कुदाली व खुरपी अपने हाथ में रखता हो, लाठी-हुंमिया अपने साथ रखता हो और जो अपने हाथ से घास काटे और खेत में निराई करे वही पूरा किसान कहलाता है । अर्थात् किसान वही जो स्वयं हाथ से खेती करे. ७ लेनै बैठ गयो जांणे बांबी खेत बीज लेनै बैठो—अउपजाऊ खेत बीज को अपने में ही लुप्त कर लेता है अर्थात् कोई पौधा उत्पन्न नहीं करता । यह कहावत ऐसे ही व्यक्ति के लिये व्यंगोक्ति है जो किसी वस्तु को लेकर हमेशा के लिये छुपा लेता है, उसके किसी प्रतिरूप को भी प्रकट नहीं करता. ८ हळ हळां खेत फाड़ला—अच्छे हाल वाले हल से ही जुताई अच्छी हो सकती है ।

२ किसी चीज के, विशेषत: पशुओं आदि के उत्पन्न होने का स्थान या देश । उ०—दिखवण वाड़ी देस रा, काठयावाडी खास । खैराड़ी वड खेत रा, वैराड़ी बरहास ।—पे.रू. ३ युद्ध-स्थल, रणक्षेत्र, समर भूमि । उ०—१ जसवंत बीड़ो झालियो, ओरंगसाह ऊपर । आया खेत उजीण रै, दळ लियां भयंकर ।—द.दा. उ०—२ पवै पंख वजूजा बोम वज्रपात, खळां थाट दूजै 'दलै' बभाड़िया खेत ।

—हुकमीचंद खिड़ियो

मुहा०—खेत हारणो—युद्ध हारना ।

४ श्मशान-भूमि. ५ वंश, खानदान. ६ तलवार की धार का वह मध्य का भाग जहाँ से उसका प्रहार होता है. ७ पृथ्वी (नां.मा.)

खेतगर-सं०पु०—१ योद्धा, वीर. २ किसान ।

खेतड़ो-सं०पु० [सं० क्षेत्र] १ देखो 'खेत' (अल्पा०) उ०—मेहां खोड़ खाळियां मिळै फवै खेतड़ो फाड है ।—दमदेव २ कुम्हारों की एक खेतड़ा शाखा का व्यक्ति (मा.म.)

खेतजीव-सं०पु०—किसान, कृषक (डि.को.)

खेतपाळ-सं०पु० [सं० क्षेत्रपाल] १ राठौड़ राव धूहड़ के पुत्र खेतपाल के वंशज, राठौड़ों की एक उपशाखा या इस शाखा का व्यक्ति । २ देखो 'खेतरपाळ' (रू.भे.)

खेतर—देखो 'खेत' (रू.भे.) उ०—सैं'र तणी सीम में कहूं खेतर काळां रा, चरणा तणा धांन में विड़ग जायल वाळां रा ।—पा.प्र.

खेतरपाळ-सं०पु० [सं० क्षेत्रपाल] १ क्षेत्ररक्षक, खेत का रखवाला. २ देवता विशेष जिनके ४९ भेद माने गए हैं । ये इस प्रकार हैं— १ अजर. २ अजर. ३ अस्त्रवार. ४ आपकुंभ. ५ इंद्रस्तुति ६ ईड़ाचार. ७ उक्त. ८ उन्माद. ९ एकदस्ट्रक (एकदंष्ट्रक) १० ऐरावत. ११ ओदबंधु. १२ ओखधीस (ओषधीश) १३ काळ १४ खल्खानळ. १५ गामुख्य. १६ घटाद (घण्टाद) १७ चंड-वारण (चण्डवारण) १८ छटाटोप. १९ जटाळ. २० झंगोव (झङ्गोव) २१ टंगपांणि (टङ्कपाणि) २२ ठांणबंधु (ठाणबन्धु) २३ डांमर (डामर) २४ ढकारव. २५ नड़िहेह. २६ दंतुर (दन्तुर) २७ धनद. २८ नतिक्कात २९ नमण (क्र्मन) ३० नरस्चर (नरश्चर) ३१ प्रचंडक (प्रचण्डक) ३२ फटकार. ३३ भंग (भङ्ग) ३४ मेघासुर. ३५ युगांतक. ३६ रिमुक (ऋमुक) ३७ रिसिसूदन (ऋषिसूदन) ३८ रोधक. ३९ लंबोस्ठ (लम्बोष्ठ) ४० लवारवण (लवार्णव) ४१ लुपक (लुपक)

४२ लुप्तकेस (लुप्तकेश) ४३ वसुगण. ४४ वीरसंख (वीरशङ्ख) ४५ सूकनंद (शूकनन्द) ४६ सड़ाल (षड़ाल) ४७ सुनामा (सुनामा) ४८ स्थिर. ४९ हुंबुक।

(रू.भे.—क्षेत्रपाळ, खेतपाळ, खेतल, खेतलौ, खेत्तरपाळ)

खेतल—सं०पु० [सं० क्षेत्र+पाल] १ एक प्रकार का भैरव. २ द्वारपाल. ३ देखो 'खेतरपाळ' (रू.भे.) ४ किसी स्थान का प्रधान प्रबंधकर्त्ता।

खेतलप्रस—सं०पु०—श्वान, कुत्ता (अ.मा.)

खेतरलथ, खेतलवाहण—सं०पु०—कुत्ता, श्वान (ह.नां.) उ०—खेतल-वाहण खड़खड़ै, चुड़लै चांमरियाळ।—नैणसी

खेतलोजी—देखो 'खेतरपाळ' (रू.भे.)

खेतसीयोत—सं०पु०—राठौड़ राव रिड़मलजी के पौत्र जगमाल के पुत्र खेतसी के वंशज।

खेतिहर—सं०पु० [सं० क्षेत्रधर] खेती करने वाला, किसान, कृषक।

खेती—सं०स्त्री० [सं० क्षेत्र] १ खेत में अनाज बो कर उत्पन्न करने का कार्य, कृषि, काश्तकारी।

मुहा०—खेती हेती—खेती स्नेह और सहयोग के बल पर ही सफल होती है।

कहा०—१ खेती कणाये नी पूगवा दिये—खेती किसी को नहीं पहुँचने देती अर्थात् अन्य धन्धों की अपेक्षा खेती करना ही सब से अधिक लाभप्रद समझा जाता है. २ खेती करै तो राख गाडी, राड़ करै तो बोल आडौ—खेती करनी है तो पास में गाड़ी रख और लड़ाई करनी है तो टेढ़ा बोल; लड़ाई के लिए विरुद्ध बोलने की आवश्यकता रहती है उसी प्रकार खेती के लिए गाड़ी रखने की नितान्त आवश्यकता है. ३ खेती खसमां सेती, खेती धणियां सेती—खेती तो मालिक के हाथ से ही सुधरती है. ४ खेती नी खाडौ खेती ईज भराय है—कृषि में रहने वाली कमी तो कृषि करने पर ही पूरी हो सकती है. ५ खेती बळदां की अर राज घोड़ां कौ—राज्य के लिए जिस प्रकार घुड़सवार सेना आवश्यक है उसी प्रकार खेती के लिए बैल आवश्यक है। बिना बैल के खेती सम्भव नहीं. ६ गम्योड़ी खेती अर कमायोड़ी चाकरी बराबर—बिगड़ी हुई खेती और सुधरी हुई नौकरी बराबर ही होती है। खेती की प्रशंसा। ८ बळदमार खेती नहीं करणी चाईजै—ऐसी खेती से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता जिसमें बैलों से इतना काम लिया जाय कि वे काम देते देते मर जांय। सामर्थ्य या शक्ति से अधिक परिश्रम करना हानिकारक है।

यौ०—खेतीबाड़ी, खेतीपाती।

२ खेत में खड़ी फसल।

खेतीगर—सं०पु०—१ कुम्हारों की एक जाति विशेष. २ इस जाति का कुम्हार. ३ खेती करने वाला, किसान।

खेतीपाती—सं०स्त्री०यौ०—कृषि-कार्य, काश्तकारी।

खेतीबळ—सं०पु० [सं० कृषिबल] किसान, खेतिहर (डिं.को.)

खेतीबाड़ी, खेतीबाड़ी—सं०स्त्री०यौ०—कृषि, काश्त, खेती का धंधा।

खेतु—सं०पु० [सं० क्षेत्र] १ युद्धस्थल। उ०—वरणू वरणू के बिलास, खेतु में कायम, फारसी से मंजुल।—र.रू.

२ देखो 'खेत' (रू.भे.) ३ क्षेत्रपाल।

खेतू—सं०पु० देखो 'खेतु' (रू.भे.) उ०—खड़ो लांगड़ो बीर बीराधी खेतू, करै रागड़ा छागड़ा राह केतू।—मे.म.

खेत्तर—देखो 'खेत' (रू.भे.)

खेत्तरपाळ—देखो 'खेतरपाळ' (रू.भे.)

खेत्र—सं०पु० [सं० क्षेत्र] १ रण-क्षेत्र। उ०—पिड़ि नीपनौ कि खेत्र प्रवाळी सिरा हंस नीसरै सति।—वेलि. २ श्मशान, मरघट (डिं.को.) ३ देखो 'खेत' (रू.भे.)

खेत्रज—सं०स्त्री०—१ सोलंकी वंश की एक आराध्य देवी का नाम (बां.दा.ख्यात)

सं०पु०—२ क्षेत्रज-सन्तान।

खेत्रपाळ—देखो 'खेतरपाळ' (रू.भे.) उ०—जिण रीति मुकुंद रा मंदिर नूं बिहाय खेत्रपाळ पूजण री स्रद्धा किसौ कापुरुष चित्त धरै।—वं.भा.

खेत्राड़ौ—देखो 'खोत्राड़ौ'। उ०—भांजै भोमि गुढ़ौ भिलवाड़ौ, वांकिम माळ चरै वेडाय। पगां हेठ पांहुकरण पूंगळ, खेत्राड़ै खगां बळ खाय।—राव मल्लिनाथ रौ गीत

खेत्रि, खेत्री—सं०स्त्री० [सं० क्षेत्र] देखो 'खेत' (रू.भे.) उ०—१ जइ तूं ढोला नावियउ, कइ फागुण कइ चैत्रि। तउ म्हें घोड़ा बांधिस्यां, काती कुड़िया खेत्रि।—ढो मा. उ०—२ अंबर कहतां आकास जाय लागी, खेत्री छै जु किसांण त्यां खेत्री रौ उद्यम कियौ छै।—वेलि.

२ रणक्षेत्र।

खेद—सं०पु० [सं०] १ अप्रसन्नता, रंज, खिन्नता. २ कष्ट, पीड़ा।

उ०—१ बुरहानपुर में राजा जैसिंघजी रांम कह्यौ, पक्षपात हुऔ हो, दोय महिना खेद रही।—द.दा. उ०—२ बांका भोजन नह रुचैज्यांरै वप ज्वर खेद।—बां.दा. ३ डाह, ईर्ष्या, द्वेष. ४ ग्लानि, घृणा. ५ थकान। उ०—रात रौ ओजगौ खेद थी सो दोनूं ही पोढ़ रहिया।—कुंवरसी सांखला री वारता

खेदणौ, खेदबौ—क्रि०अ० [सं० खेट] १ भागना. २ शिकार के पीछे दौड़ना।

क्रि०स०—३ भगाना, खदेड़ना। उ०—सुरहल रै तेरी खेदयां जाय, वारी म्हारा 'गूगा' भल रही औ।—लो गी. ४ तंग करना, कष्ट पहुंचाना।

खेदणहार, हारौ (हारी), खेदणियौ—वि०।

खेदिओड़ौ खेदियोड़ौ, खेद्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खेदीजणौ, खेदीजबौ—भाव वा०, कर्म वा०।

खेदाई—सं०स्त्री०—१ खदेड़ने का कार्य या भाव, खदेड़ने की मजदूरी. २ वैमनस्य. ३ डाह, ईर्ष्या।

खेदित–वि० [सं०] दुःखित, खिन्न।

खेदियोड़ो–भू०का०कृ०—भगाया हुआ, खदेड़ा हुआ, पीछा किया हुआ। (स्त्री० खेदियोड़ी)

खेदो–सं०पु० [सं० खेद] १ डाह, ईर्ष्या, द्वेष। उ०—आयौ कांकांणी 'अजन', धर खेदौ कमधज्ज।—रा.रू. २ पीछा। उ०—साथै फोज कछवाहां री थी सो आणंदसंघजी रै साथे खेदौ कियौ।—रा.वं वि. ३ जिद्द, हठ. ४ किसी बनैले पशु को मारने या पकड़ने के लिये घेर कर उपयुक्त स्थान पर लाने का कार्य. ५ शिकार, आखेट।

खेध–सं०पु०—१ विरोध। उ०—१ 'रांण' अनै 'अमरेस' रै, वळै प्रगटयौ वेध। मन फाटौ खाटा चितां, खूटै दाध न खेध।—रा.रू.

उ०—२ छके जोम सूं जाय जमरांण सा छेड़िया, लड़े अरि रेड़िया खेध लागा।—रा.रू. २ युद्ध, रण।

उ०—वागां ऊपड़ै विखमी वार धड़क्कै आकास धर, खरौ खेध वाजी खरा वहतै दुवाह।—जगौ सांदू ३ क्रोध. ४ वाद-विवाद।

५ देखो 'खेद' (रू.भे.)

खेधाऊ–वि०—१ क्रोध करने वाला। उ०—कियौ आप सुं आप आलोच कांनै, रमै साप खेधाऊ सूधौ न मांनै। ना.द. २ ईर्ष्या रखने वाला।

खेधी–सं०पु०— शत्रु, बैरी, दुश्मन (ह.नां., अ मा.)

खेधौ—देखो 'खेदौ'। उ०—धूहड़ियौ बीजां ही धांखै, रस खेधै हुग्रौ राठौड़।—रावळ मल्लीनाथ रौ गीत

खेप-सं०स्त्री० [सं० क्षेप] १ आतंक, भय, डर. २ गाड़ी, नाव आदि की एक बार की यात्रा। मोटौ दाता मांगियौ, तोटौ भागै तेण। कीजै सायर खेप किल, जुड़ै जवाहर जेण।--बां.दा. ३ उतनी वस्तु जितनी एक बार में ले जाई जाय. ४ नर भेड़ों का समूह.

५ खजाना, माल-मिलकियत। उ०—विविध बांणी नर भाखै, खेप घरि आई खोवै।— ह.पु वा.

खेपणी-सं०स्त्री०— नाव चलाने की बल्ली, डांड (डि.को.)

खेब—देखो 'खेप' (रू.भे.)। उ०—ग्याता क्याड़ी गाड पंचाळी, खेब खूब पड़ै खांतियां।—दसदेव

खेवट-सं०पु० [सं० क्षेपक] मल्लाह, नाविक। उ०—जसौ दधि खेवट हींण जिहाज।—रांमरासौ (रू०भे०-खेवट)

खेम-सं०पु० [सं० क्षेम] १ सुरक्षा, प्राप्त वस्तु की रक्षा. २ कुशलता, आनन्द-मंगल। उ०—अणघाव रह्या केई खेम अंग, रजपूत हुआ केई चोळ रंग।—पा.प्र.

खेमकरी, खेमकल्यांणी–सं०स्त्री० [सं० क्षेमकर+ई] श्वेत रंग की चील (चील्ह) जो परम मांगलिक और आदि शक्ति का रूप मानी जाती है।

खेमकुसळ–वि०यौ० [सं० क्षेम+कुशल] कुशल-क्षेम, राजी-खुशी, आनंद-मंगल। उ०—इण भांत सूं खेमकुसळ थी पीहरे गई, माइतां सूं मीळी।—रीसाळू री वात

खेमखाप–सं०पु०—एक भड़कीला सुनहला वस्त्र विशेष।

खेमटो–सं०पु०—बारह मात्राओं का एक ताल जिसमें तीन आघात और एक खाली होता है।

खेमा–सं०स्त्री० [सं० क्षमा] भूमि, पृथ्वी (ह.नां.) [सं० क्षेत्र] खेत (ह.नां.)

खेमो–सं०पु०—[अ. खेमा] तंबू, डेरा। उ०—पहु चाळक धनवंतपुर, लांठै लूट लियाह। कांठै नदी कवेरजा, खेमा खड़ा कियाह।—बां.दा.

खेमाळ–सं०स्त्री० [सं० क्षेम+अल्] तलवार

खेयारा–सं०पु० [सं० खचार] नक्षत्र (नां.मा.)

खेजर–सं०स्त्री० [सं० खर्जूर] चाँदी (ह.नां.)

खेरण–वि० [सं० क्षरण] नाश करने वाला।

सं०पु०—१ बचा-कुचा चूरा सा अवशिष्ट पदार्थ. २ वार, प्रहार, चोट, दाव. ३ (आटा छानने की) चलनी. ४ सफेद तने का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष।

खेरणिया–सं०पु०—हिन्दुओं के अंतर्गत लुहारों का एक भेद जिसके व्यक्ति प्रायः सिकलीगर का कार्य करते हैं।

खेरणियो–सं०पु०—१ छोटी चलनी. २ 'खेरणिया' जाति का व्यक्ति। देखो 'खेरणिया' ३ अनाज को छान कर साफ करने का उपकरण।

खेरणी–सं०स्त्री०—१ सफेद रंग के तने का एक बड़ा वृक्ष जिसके पत्ते पीपल के पत्तों के समान होते हैं। इसके तने से दूध निकलता है, इसके फूल सफेद तथा फल फलीनुमा होते हैं। २ चलनी।

खेरणो—देखो 'खेरणियो' (रू.भे.)

खेरणौ, खेरबौ–क्रि०स० [सं० क्षरण] १ गिराना, टपकाना। उ०—जांणिक बाछरू है मेल्ही गाई, नयन ते आंसू खेरिया। —वी.दे.

२ उखाड़ना, पटकना. ३ वृक्ष आदि को खूब हिलाना जिससे उसके पत्ते या पके फल आदि अपने आप नीचे गिर जाय.

४ किसी जमी हुई चीज को उखाड़ना। उ०—मेर मरजाद रणजीत आखाड़मल, खेर दीधा डसण जबर खेटै।—बां.दा.

५ संहार करना, मारना।

खेरणहार, हारौ (हारी), खेरणियौ— वि०।

खेराणौ, खेराबौ, खेरावणौ, खेराववौ— प्रे०रू०।

खेरिओड़ौ, खेरियोड़ौ, खेरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

खेरीजणौ, खेरीजबौ—कर्म वा०।

खेराणो–क्रि०स०—१ गिरवाना. २ पकवाना. ३ उखाड़ना. ४ संहार करवाना. ५ पेड़ आदि को हिला कर पत्ते फल आदि गिरवाना।

खेरावा–सं०पु०—राठौडों की १३ प्रमुख शाखाओं में से एक शाखा। (ग.वं.वि.)

खेरायोड़ो–भू०का०कृ०—१ गिरवाया हुआ, टपकवाया हुआ, झड़वाया हुआ. २ संहार कराया हुआ। (स्त्री० खेरायोड़ी)

खेरावणी, खेरावबौ—देखो 'खेराणी'।

खेरावणहार, हारौ (हारी), खेरावणियौ—वि०।

खेराविप्रोड़ौ, खेरावियोड़ौ, खेराव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खेरावीजणौ, खेरावीजबौ—कर्म वा०।

खिरणौ—अक० रू०।

खेरावियोड़ौ—देखो 'खेरायोड़ौ'। (स्त्री० खेरावियोड़ी)

खेरी—१ देखो 'खेड़ी' २ एक प्रकार का पुष्प। उ०—इमकपेचौ, खेरी, कोयल, मालती······, और ही अनेक भांत रा फूलां री माळा किलंगी छड़ी सेहरा गूंथिया छै।—रा.सा.सं.

खेरूं, खेरू—सं०पु०—१ नाश, ध्वंश। उ०—मेले सेन्या दंतां मारण, पांणी ऊपर बांधे पाजं। कीधौ खेरूं सीता कारण, रांणे लंकपती चौ राजं।—पि.प्र. २ क्रोध। उ०—सगळा घूमरौ कियां ऊभा राव री डील संभाळै, सै और डाढ़ाळौ निलोह थकियौ परळै पासै जाय ऊभौ खेरूं करै छै।—डाढ़ाळा सूर री वात

वि०—विध्वस्त बरबाद, विकृत।

खेरौ—सं०पु० [सं० क्षरण] १ किसी वस्तु का टूटा हुआ सूक्ष्म भाग, अवशिष्ट कण।

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।

खेल—सं०पु० [सं०] वह साधारण मनोरंजक कृत्य जो स्वयं की इच्छा से, बिना किसी विवशता के, केवल चित्त की उमंग से दिल बहलाने या व्यायाम के लिए किया जाय। इसमें प्रायः हार-जीत भी होती है।

क्रि०प्र०—करणौ, खेलणौ, जीतणौ मांडणौ, बिखरणौ, हारणौ।

मुहा०—खेल बिगड़णौ—खेल खराब होना, रंग में भंग होना।

कहा०—१ खेल खतम पैसा हजम—खेल समाप्त हुआ अतः खेल देखने के लिए जो पैसा दिया वह हजम। कार्य-समाप्ति पर।

२ खेल खिलाड़यां रा अर घोड़ा असवारां रा—खेल खिलाड़ियों का और घोड़ा सवार का। साहसी व अनुभवी पुरुष को ही सफलता मिलती है. ३ मांझी मरिया नै खेल वीखरिया—टोलीनायक के मरते ही खेल की समाप्ति हो जाती है। (मि०—खाळ पडियौ नै खेल वीखरियौ)

२ बहुत हल्का या तुच्छ कार्य।

कहा०—डावै हाथ रौ खेल है—बांये हाथ का खेल है; बहुत तुच्छ या साधारण कार्य के लिये।

३ काम-क्रीड़ा, केलि, विषय-विहार। उ०—खागी लागै खेल, बाळां नै बूढ़ां तणी। मनां न होवै मेळ, जोड़ी विना रे जेठवा।

४ किसी प्रकार का अभिनय, तमाशा।

मुहा०—खेल करणौ—किसी काम को अनावश्यक समझ कर हँसी में उड़ाना, कौतुक करना, तमाशा करना, मजाक या दिल्लगी करना,

५ कोई अद्भुत कार्य, विचित्र लीला।

खेळ—१ देखो 'खेळी' (१) उ०—हिरणां भाली आखड़ी, ताकै कूवा खेळ। तिस मरता धिगता फिरै, छूटयौ हिरण्यां मेळ।

—बादळी

२ कुल-भेद। उ०—पणी पठांणां री बावन खेळ है।—बां.दा ख्यात

खेलकबूतरी—सं०स्त्री० [सं० खेलकपोत+रा०प्र०ई] कुलांचें खाने का एक खेल। यह खेल प्रायः नट किया करते हैं।

खेलड़ौ—सं०पु० [सं० क्ष्वेलृ] देखो 'खेलरौ' (रू०भे०)

खेलण—सं०पु० [सं० खेल] खेल, क्रीड़ा, कौतुक।

खेलणौ—वि० [सं० खेल] खेलने में दक्ष, खिलाड़ी।

खेलणौ, खेलबौ—क्रि०अ० [सं० खेल] १ केवल चित्त की उमंग से अथवा मन बहलाने या व्यायाम के लिये इधर-उधर उछलना, कूदना, दौड़ना आदि।

मुहा०—खेलणौ-खाणौ- आनंद से दिन व्यतीत करना, निश्चिंत होकर चैन से दिन काटना।

२ काम-क्रीड़ा करना, समागम करना।

क्रि०स०—३ ऐसी क्रिया करना जो केवल मन-बहलाव या व्यायाम आदि के लिये की जाती है। इसमें कभी-कभी हारजीत का भी विचार किया जाता है।—ज्यूं दड़ी खेलणौ, चौपड़ खेलणौ। ४ किसी वस्तु को लेकर अपना जी बहलाना, उसे इधर-उधर हिलाना।

५ अभिनय करना, नाटक या स्वांग रचना।

यौ०—खेल-तमासौ।

खेलणहार, हारौ (हारी), खेलणियौ—वि०।

खेलाड़णौ, खेलाड़बौ, खेलाणौ, खेलाबौ, खेलावणौ, खेलावबौ—क्रि.स. ('खेलणौ' का प्रे०रू०)

खेलिप्रोड़ौ, खेलियोड़ौ, खेल्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खेलीजणौ, खेलीजबौ—भाव वा०, कर्म वा०।

खेलतमासौ—सं०पु०यौ० [सं० खेल+अ० तमाशा] खेल व तमाशा, अभिनय।

खेलर, खेलरौ—सं०पु० [सं० क्ष्वेलृ] प्रायः टिंडी, हिंदवानी, बरसाती ककड़ी (काचर) आदि को काट कर सुखाया हुआ टुकड़ा। यह सूख कर कड़ा एवं सिलवटें आदि धारण कर लेता है। रेगिस्तान के उन गांवों में जहां बारहों मास हरी सब्जी उपलब्ध नहीं होती है, वहां वर्षा की ऋतु में उपरोक्त सब्जियां आदि के टुकड़े काट कर सुखा लिया करते हैं। इनका साग वहां के लोग बड़े चाव से खाते हैं।

मुहा०—सूख नै खेलरौ होणौ—सूख कर अत्यन्त कृशकाय होने पर।

खेलवाड़—सं०पु० [सं० केलि] खेल, क्रीड़ा, तमाशा, मन-बहलाव का कार्य, दिल्लगी।

खेळा—सं०स्त्री० [सं० केलि] क्रीड़ा, खेल, कौतुक। उ०—पग रणमस्त पटैत भोज भाई करि भेळा, अण अवसर इम आइ खोलि दीधी डर खेळा।—वं.भा.

खेलाई—सं०स्त्री० [सं० खेल+रा०प्र० आई] खेलने का कार्य, खेलाने की मजदूरी।

खेलाड़—देखो 'खेलाड़ी' (रू.भे.)

खेलाड़णौ, खेलाड़बौ—क्रि०स० ('खेलणौ' का प्रे०रू०) देखो 'खेलाणौ' (रू.भे.)

उ०—तब बोली चंपावती, साल्हकुंवर री मात। रे बाजारण छोहरी, कांइ खेलाड़इ घात।—ढो.मा.

खेलाड़ी—वि० [सं० खेल+रा०प्र० आड़ी] १ खेलने वाला, क्रीड़ाशील, खेलने में दक्ष. २ विनोद. ३ खेल में सक्रिय भाग लेने वाला. ४ तमाशा करने वाला, अभिनय करने वाला. ५ ईश्वर। (मह०—खेलाड़)

खेलाणौ, खेलाबौ—क्रि०स० ('खेलणौ' का प्रे०रू०) किसी अन्य को खेल में लगाना, खेल में सम्मिलित करना, जी बहलाना।

खेलाणहार, हारौ (हारी), खेलाणियौ—वि०।

खेलायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खेलाईजणौ, खेलाईजबौ—कर्म वा०।

खेलावणौ, खेलावबौ—रू०भे०।

खेलायोड़ौ—भू०का०कृ०—खेलाया हुआ।

खेलार—वि०—देखो 'खेलाड़ी' (रू.भे.) उ०—१ वस प्रांणी सब करम रै, करम सु प्रेरणहार। नाच नचावै त्यां नचै, ज्यां पुतळी खेलार।—रा.रू.

उ०—२ 'तिसौ खेलार अगंजी जैसिंघ तणौ, हाथ बळ चहोड़ै खळां सिरहार।—जयसिंघ आंमेर रा धणी री वारता

खेलावणौ, खेलावबौ—क्रि०स०—देखो 'खेलाणौ' (रू.भे.) उ०—नाचै खेलावण मेलावण नांही, जोवण जोगी वा बेळा जग मांही।—ऊ.का.

खेलावणहार, हारौ (हारी), खेलावणियौ—वि०।

खेलाविओड़ौ, खेलावियोड़ौ, खेलाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खेलावीजणौ, खेलावीजबौ—कर्म वा०।

खेळी—सं०स्त्री०—१ मवेशियों के लिए पानी पीने का बना हुआ कुंड। वि०वि०—यह प्रायः दो प्रकार की बनी होती है।—(१) कुए के पास आयताकार बनी हुई जो केवल पशुओं के पानी पीने के लिए होती है। उ०—देख अजे तक खाली पड़िया, कूंडी कोठा खेळी। —रेवतदांन

(२) घरों के सामने या पास में रहने वाली वर्गाकार, आयातकार या गोळ बनी हुई जिसमें गृहणियां पानी एवं झूठा भोजन जानवरों के खाने-पीने या चाटने के लिए डाल देती हैं।

२ सहेली, सखी. ३ मस्त स्त्री।

खेळू—वि०—मुख्य, प्रधान।

खेलूर—वि० [सं० क्ष्वेल् = रा० खेलरौ = सूखा हुआ] अति वृद्ध।

खेळौ—सं०पु०—१ मूर्ख, नासमझ, पागल। २ मस्त।

खेल्ह—देखो 'खेल' (रू.भे.) उ० अर छोटा छही सोदरां होळी रा हुळियार जिम खगां री खेल्ह मंडियौ जुवौ जुवौ।—वं.भा.

खेल्हणौ, खेल्हबौ—देखो 'खेलणौ' (रू.भे.)

खेव—देखो 'खेप'। उ०—भेटया रुद्र न लाई खेव, नगर भणी पधराव्या देव।—कां.दे.प्र.

खेवट—सं०पु० [सं० कैवर्त] १ नाव पार लगाने वाला, मल्लाह, मांझी। उ०—मिट आग तप मिट जाय, साकंप सीत सवाय। द्रढ़ पोत खेवट दांम, तट धरी गुदरी तांम।—रा.रू. २ परिश्रम, प्रयत्न। ३ नाव चलाने एवं मिट्टी खोदने का कार्य करने वाली एक जाति।

खेवटियौ—सं०पु० [सं० कैवर्त = रा० खेवट+रा० प्र० इयौ] नाव खेने वाला, नाव चलाने वाला। पार उतारने वाला। उ०—खेवटियौ बण नै खेड़ेचा अटकी नाव उतारौ।—सिवसींघ ऊदावत री गीत

पर्याय०—ओरेभ, खारीवां, डालाअंग, दधभेदी, दधविधि, दूरतेरी, नाकवा, नावांहांकण।

खेवटणौ, खेवटबौ—क्रि०स०—नाव को खेना या पार लगाना।

खेवटणहार, हारौ (हारी), खेवटणियौ—वि०।

खेवटिओड़ौ, खेवटियोड़ौ, खेवट्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खेवटीजणौ, खेवटीजबौ—कर्म वा०।

खेवण—देखो 'खीवण' (रू.भे.)

खेवणी—सं०स्त्री०—नाव का डंडा, बल्ली (डि.को.)

खेवणौ, खेवबौ—देखो 'खेणौ' (रू.भे.)

खेवणहार, हारौ (हारी), खेवणियौ—वि०।

खेवाड़णौ, खेवाड़बौ, खेवाणौ, खेवाबौ, खेवावणौ, खेवावबौ—प्रे०रू०

खेविओड़ौ, खेवियोड़ौ, खेव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खेवीजणौ, खेवीजबौ—कर्म वा०।

खेवर—सं०स्त्री०—चौहान वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति.

खेवाई—सं०स्त्री० [सं० खेव्+रा० प्र० आई] १ नाव खेने का कार्य या इस कार्य को करने की मजदूरी. २ देव-पूजन हेतु गंध द्रव्यों को जला कर धूप दान हेतु सुगंधित धुंआं करने का कार्य या उसका व्यय।

खेवाड़णौ, खेवाड़बौ—क्रि०स० ('खेणौ' क्रिया का प्रे०रू०) १ नाव चलाना. २ व्यतीत कराना. ३ पार कराना. ४ देव-पूजन के लिए गंध द्रव्यों को जला कर धूपदान कराना।

खेवाड़णहार, हारौ (हारी), खेवाड़णियौ—वि०।

खेवाड़िओड़ौ, खेवाड़ियोड़ौ, खेवाड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खेवाड़ीजणौ, खेवाड़ीजबौ—कर्म वा०।

खेवाणौ, खेवाबौ—देखो 'खेवाड़णौ'।

खेवायोड़ौ—देखो 'खेवाड़ियोड़ौ'। (स्त्री० खेवायोड़ी)

खेवावणौ, खेवावबौ—देखो 'खेवाड़णौ' (रू.भे.)

खेवावणहार, हारौ (हारी), खेवावणियौ—वि०।

खेवाविओड़ौ, खेवावियोड़ौ, खेवाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खेवावीजणौ, खेवावीजबौ—कर्म वा०।

खेवियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ नाव चलाया हुआ. २ धूपदान किया हुआ. ३ व्यतीत किया हुआ। (स्त्री० खेवियोड़ी)

खेवौ—वि०—नाव चलाने वाला। उ०—सदा एक रांणी-अती धरम-सेवी, खरा जुद्ध सिंधू बिचै नाव खेवौ।—वं.भा.

खेस–सं०पु० [फा० खेश] देखो 'खेतलौ'। उ०—ठावा नांमी महाजन जे था तिणां नूं खेस मेलिया।—कुंवरसी सांखला री वारता

वि० [रा०] नष्ट, ध्वंस। उ०—देख कहूँ सको देस, खत्री बीज गयौ खेस।—र.रू.

खेसणौ, खेसबौ–क्रि०स०—१ छीनना. २ पीछे हटाना. ३ धक्का देना. ४ नष्ट करना। उ०—सकल साचै मतै दळ दोखियां दळां, सूर रिण म्राहुड़े खेसै खळां।—ह.पु.वा.

५ युद्ध करना। उ०—खेतळ रिणी खेसइ खुरासांण, जुध धमइ मत्त गइजूह जांण।—रा.ज.सी. ६ हराना, पराजित करना।

उ०—खगे नगे खळां खेसे, पगे राखी पातसाही।

—दूदौ सुरतांणोत वीठू

खेसणहार, हारौ (हारी), खेसणियौ—वि०।

खेसिग्रोड़ौ, खेसियोड़ौ, खेसयोड़ौ—भू०का०कृ०।

खेसीजणौ, खेसीजबौ—कर्म वा०।

खेसलियौ, खेसलौ–सं०पु०—[फा० खेस] सूत, ऊन व दोनों का मिश्रित एक मोटा वस्त्र जो ओढ़ने के काम में लिया जाता है। इसकी बनावट एक विशेष प्रकार की होती है।

खेसवणौ, खेसविणौ —देखो 'खेसणौ' (रू.भे.)

उ०—१ धरां दस लाग पिया घेरै रै, खेसवियां अचळै खागै रै।

—अचळसिंह सक्तावत रौ गीत

उ०—२ खेसि ग्रोरंग पहल बिखौ मेटे खत्री राखियौ देस दुई बार रांणै।—पतौ ग्रासियौ।

खेसियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ छीना हुआ. २ पीछे हटा हुआ. ३ युद्ध किया हुआ. ४ संहार किया हुआ। (स्त्री० खेसियोड़ी)

खेसोत–वि०—संहार करने वाला, नाश करने वाला।

खेसौ–सं०पु०—१ एक प्रकार का अशुभ घोड़ा (शा.हो.)

२ बैर. ३ डाह, द्वेष (मि० 'खेदौ')

खेह–सं०स्त्री० [सं० ख+ईह=चाहना] १ धूल, रज, मिट्टी, गर्द (अ.मा.) उ०—ढोल वळाव्यउ हे सखी, झीणी ऊड़इ खेह।

—ढो.मा.

मुहा०—खेह करणी—भाग जाना। उ०—कहर री दीठां कला, खळ दळ करसी खेह। लूंबा भड़ नह लगियां, लूम्रां न कांनी लेह। बा.दा.

२ खाक, राख, भस्म। उ०—देह खेह होइ जाय जीव अपणौ करि बूझै।—ह.पु.वा. ३ पंवार वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति. ४ देखो 'खे' (११) (रू.भे.)

खेहड़णौ, खेहड़बौ–क्रि०अ०—अपने कर्त्तव्य पर चलना, कर्त्तव्य निभाना। उ०—खटकै खत्रवेध सदा खेहड़तौ, दिन प्रत दाखंनौ खत्रदाव।

—पीथोजी ग्रासियौ

खेहटियौ विनायक–सं०पु०यौ०—विवाह के मुहूर्त के अवसर पर लाई जाने वाली गणेश की मिट्टी की बनी मूर्ति। उ०—बीजै दिन वीरमती नै पीठी कराई खेहटियौ विनायक थाप्यौ।

—जगदेव पंवार री वात

खेहडंबर, खेहडंभर—देखो 'खेहाडंबर' (रू.भे.)

खेहड़ली–सं०स्त्री०—भस्म, राख (अल्पा०) उ०—मरियां सूं सूंनी मिळ जासी खूनी खेहड़ली।—ऊ.का.

खेहड़ौ—देखो 'खेह'।

उ०—वरवा धरा थाट क्रमै वनडौ, खळ थाटां ये पीठ लियां खेहड़ौ।

—प.प्र.

खेहरी–सं०स्त्री० [सं० क्षार] १ धूलि, गर्द. २ राख. [सं० केसरी] ३ सिंह, शेर।

खेहाट–सं०स्त्री० [सं० ख+ईह+रा० प्र० आट] आकाश में उड़ कर चारों ओर छा जाने वाले धूलि-कण, गर्द, रंजी।

खेहाडंबर, खेहारव, खेहारवण–सं०पु० [सं० ख+ईह+आडंबर, ख+ईह+रव] १ तूफान, प्रचंड आंधी जिसमें आकाश धूल से आच्छादित हो जाय. २ गर्द। उ०—१ खेहाडंबर खर अंबर अरड़ावै, धरणी तळ धूणै गरदब गरड़ावै।—ऊ.का. उ०—२ धूंग्रा रव वव धोम, खेहारव डंबर खरा। क्रमते रोद्राइण किम्रो, वोम विचाळै वोम।

—वचनिका

उ०—३ सुतन कलियांग माहण दध सम चढ़ै उरभियां थाट खेहारवण ऊपड़ै।—द.दा.

खेंकार—देखो 'खंखार' (रू.भे.)

खेंखाड़, खेंखाट–सं०स्त्री० [अनु०] झंझावात की ध्वनि। तेज हवा चलने से उत्पन्न ध्वनि।

खेंखार–सं०पु० [अनु०] १ खंखार, बलगम. २ खांसने पर होने वाली हलकी ध्वनि. उ०—खळ खार खेंखार न बोल खमै, नह कोय किणी पर टांक नमै।—पा.प्र.

३ संहार, वध, नाश, विध्वंश।

खेंखारौ–सं०पु० [अनु०] देखो 'खंखार'। उ०—वळै गढ़ मांहि खेंखारौ करनै पोढ़े।—वीरमदे सोनगरा री वात

खें-खें–सं०स्त्री० [अनु०] तेज वायु के चलने से उत्पन्न शब्द, झंझावात में वायु वेग का शब्द या ध्वनि। उ०—अंचळ उलटाती कुलटाकृति आवै, खें-खें करतोडी मरतोड़ा खावै।—ऊ.का.

खेंग–सं०पु० [फा० खिंग] (स्त्री० खेंगण) देखो 'खिंग'।

उ०—खर भूकै रव खेंग, स्वांन कूकै सुख हारी।—रा.रू.

खेंगारौ—देखो 'खेंखार'।

खेंगाळ–सं०पु०—संहार, नाश, वध। उ०—जुध भारथ दसरथ सुत जीपण, खर दुबर असुरां खेंगाळ।—ह.नां.

वि०—नाश करने वाला संहार करने वाला। उ०—नमौ कुंभेण तणा भुजकाळ, नमौ कुळ-राकस-बंस खेंगाळ।—ह.र.

खेंगाळौ–वि०—संहार करने वाला।

खेंच–क्रि०स०—खिंचाव, तनाव।

खेंचणौ, खेंचबौ–क्रि०स०—देखो 'खींचणौ'। उ०—बंध्यौ मच्छ जिण बार, मांण दुजोधन मेटियौ। खेंचै कान उण वार, था पारथ बैठया थकां।—रांमनाथ कवियौ

खंचणहार, हारौ (हारी), खंचणियौ—वि० ।

खंचवाणौ, खंचवाबौ, खंचवावणौ, खंचवावबौ—प्रे०रू० ।

खंचाणौ, खंचाबौ, खंचावणौ, खंचावबौ—प्रे०रू० ।

खंचियोड़ौ, खैंचियोड़ौ, खंच्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खंचीजणौ, खंचीजबौ—कर्म वा० ।

खींचणौ, खींचबौ—रू०भे० ।

खंचातांण, खंचातांणौ—देखो 'खींचातांण' (रू.भे.) उ०—दस जूता दस जूतणा, दस पाखती वहंत । हेकण धवळा बायरा, खंचातांण करंत ।
—बां.दा.

खंचियोड़ौ-भू०का०कृ०—देखो 'खींचियोड़ौ' (रू.भे.)
(स्त्री० खंचियोड़ी)

खंडूर-वि० [सं० खिट्] शक्तिशाली, बलवान, प्रचण्ड, योद्धा ।

खंण-सं०पु०—१ क्षय नामक रोग. २ नाश, विनाश ।

खंपांण-सं०पु०—१ मुसलमान. २ सहार, नाश ।
वि०—वृद्ध ।

खं-सं०पु०—१ शिव. २ नंदीगण. ३ भाई. ४ लड़का (एका०) [सं० क्षय] ५ नाश, संहार, क्षय । उ०—तोपां रणताळ रै सकज भूपाळ संवारी, खं अकाळ खाटणी काळ थाटणी करारी ।—मे.म.

खंकार-वि० [सं० क्षयकार] नाश, ध्वंस । उ०—कुळ जोइयां खंकार, जग 'गोगा दे' जनमियौ ।—गो.रू.
सं०पु०—१ नाश, संहार. २ आकाश (डि.को.)

खंकारी-वि० [सं० क्षयकारी] विनाशक, संहार करने वाला ।

खंकाळ, खंखाळ-सं०पु० [सं० क्षय+अल] १ नाश, संहार ।
उ०—कुळ जोइयां खंकाळ, दीसै तू जायौ "दला" ।—गो.रू.
२ युद्ध, संग्राम ।
वि०—संहार करने वाला ।

खंगमल-सं०पु०—घोड़ा (ना.डो.)

खंगरणौ-वि०—संहार करने वाला, नाश करने वाला । उ०—दळां खंगरणौ करणौ नांम जगे दाखौ । ल.पिं.

खंगरणौ, खंगरबौ-क्रि०स०—संहार करना, मारना, ध्वंस करना ।

खंगाळ-वि०—संहार करने वाला, संहारक । उ०—सुपातां करैवा पाळ उजाळ तेरे ही सखां, मेछ दळां खंगाळ लंकाळ पळां मंड ।
—पहाड़ खां आढ़ौ
सं०पु०—संहार, ध्वंस ।
(रू०भे०—खोकाळ, खोगाळ)

खंगोल-सं०पु०—आसमान, गगन । उ०—भूगोळ करंते थाळ सतारी उथेल भालां । खंगोळ लसंते हाथ दांधौ अर्द्धखंभ ।
—अजीतसिंघ चूंडावत रौ गीत

खंड़नरेस-सं०पु०—१ राठौड़ राजा. २ राठौड़ राजपूत की पदवी ।

खंड़ौ—देखो 'खेड़ौ' (रू.भे.)

खंड़ैच-सं०पु०—राठौड़ क्षत्री । उ०—खंड़ैचे खड़िया थाट खूर, सत्रवां काळ विकराळ सूर ।—वि.सं.

खैड़ौ-सं०पु० [सं० खेट] १ छोटा गांव । उ०—ऊजड़ खैड़ा फिर वसैं, निरधनियां धन होय । गया न जोबन बावड़ै, मुआ न जीवै कोय ।—अज्ञात २ गांव के पास वाले खेत. ३ बरं (ततैया) का छत्ता. ४ मृत्योपरांत किया जाने वाला एक प्रकार का भोज. ५ एक प्रकार का सरकारी कर ।

खैंण—देखो 'खंण' (रू.भे.)

खैंपांणा, खैफांण—देखो 'खंपांण' (रू.भे.)

खैबर-सं०पु०—भारत व अफगानिस्तान के बीच हिमालय पर्वत में पश्चिम की ओर एक दर्रा ।

खैमांन-स०पु० [सं० क्षयवान्] नाश । उ०—भणै गुण तूझ तणा भगवांन, जावै खळि त्यांह तणा खैमांन ।—ह.नां.

खैयंग-सं०पु० [फा० खिग] घोड़ा (रू.भे. 'खेंग')

खैर-सं०पु० [सं० खदिर] १ एक प्रकार का बबूल जाति का वृक्ष विशेष जो प्रायः बड़ा होता है ।
कहा०—खैर रौ खूंटौ होणौ—खैर वृक्ष की लकड़ी का खूंटा होना अर्थात् दृढ़ता धारण करना ।
२ इस वृक्ष की लकड़ियों के छोटे २ टुकड़ों को उबाल कर बनाया हुआ रस जो पान के साथ खाया जाता है, कत्था ।
[फा० खैर] ३ प्रसन्नता । उ०—बणिक खता रा कांम मैं, औ दरसावै खैर । नाई नूं दीधी मुहर, वाळण टाकर वैर ।—बां.दा.
४ दान । उ०—चहुं ओर झळा वध तौर चहुं चक, खैर दियै कव रोर खंडै ।—चिमनजी कवियौ ५ पुण्य । उ०—खैर कौ न चूंन खायौ, मैं'र कौ भरयौ उमायौ ।—ऊ.का. ६ कुशल, मंगल, क्षेम ।
उ०—खोसां मार मनावौ खैर ।—चिमनजी कवियौ
अव्यय—कुछ चिंता नहीं, अस्तु ।

खैरखाह-वि० [फा० खैरख्वाह] भलाई चाहने वाला ।

खैरखाही-सं०स्त्री० [फा० खैरख्वाही] शुभचिंतन, भलाई ।

खैरख्वा—देखो 'खैरखाह' (रू. भे.)

खैरसार-सं०पु०—खैर वृक्ष का रस, कत्था (अमरत)

खैरा-सं०पु०—पंवार या पंवार वंश की एक शाखा ।

खैराइत—देखो 'खैरात' (रू.भे.) उ०—सत धरम रा राखणहार खैराइतां रा करणहार चैन सूं वसै छै ।—रा.सा.सं.

खैराइती—देखो 'खैरायती' (रू.भे)

खैराड़ा-सं०स्त्री०—सोलंकी वंश की एक शाखा ।

खैरात-सं०स्त्री० [अ०] दान, पुण्य । उ०—जलाल दोय लाख रिपिया खैरात किया । बूबना निछरावळ मेली ।—जलाल बूबना री वात .

खैराती-वि०—खैरात लेने वाला, दान-पुण्य लेने वाला ।
उ०—ज्यांरा मोटा भाग जग, मोटा किरतब मन्न । वां हूंदी आसा करै, खैराती खटव्रन्न ।—बां.दा.
सं०पु०—खराद का काम करने वाली एक जाति व उस जाति का व्यक्ति ।

२ खैरात करने वाला, खैरात संबंधी, दान का, पुण्य का।

खैराद–सं०पु० [फा० खर्राद] वह उपकरण जिसके द्वारा लकड़ी या धातु की वस्तुओं को उस पर चढ़ा कर चिकना किया जाता है, खर्राद।

खैरादी–सं०पु० [अ० खर्रात से, फा० खर्राद+रा०प्र०ई] १ शेख सैयद आदि से मिल कर बनी हुई एक मुसलमान जाति जो लकड़ी या दांत को खर्रात पर उतारने का कार्य करती है या इस जाति का व्यक्ति. २ बढ़ई।

वि०—दान-पुण्य करने वाला।

खैरायत, खैरायती—देखो 'खैरात' (रू.भे.)

वि०—खैरात लेने वाला, दान लेने वाला। उ०—राजहूंत कहियो वड रिड़मल, खैरायतां हवै नहि खेचल।—अज्ञात

खैरियत–सं०स्त्री० [फा०] कुशलता, आनन्दमयता, भलाई, कल्याण।

[फा० खैरात] दान-पुण्य। उ०—साह अजैपाळ घरै आय घणी खैरियत करी।—पलक दरियाव री वात

खैरी–सं०पु०—१ एक फूल विशेष (अ.मा.) २ एक वृक्ष विशेष जिसकी लकड़ी मजबूत समझी जाती है. ३ देखो 'खेड़ी'।

खैरी गूंद–सं०पु०यौ०—खैर वृक्ष का गोंद।

खैरूं—१ देखो 'खेरू' (रू.भे.) २ गाय बैल आदि का मस्ती में खुर से धूल को पीछे की ओर उछालने का कार्य। उ०—खरसंडिया खैरूं करै, गोर दड़ूकै मांड। नारा गोधा वाछड़ा, मच-मच होवै टांड।

—बादळी

खैरौ–सं०पु०—क्रोध में देखने का भाव।

वि०—कुटिल, क्रोधीला।

मुहा०—खैरौ झेलणौ—दुश्मनी कायम रखना।

खैसचार–सं०पु० [सं० ख+चर] आकाशचारी पक्षी।

खैसवणौ–क्रि०अ०—हराना, मारना। उ०—ग्रामि संग्रामि झूंझार माल्है गहड़ अरि घड़ा खैसवै आप न खिसै अनड़।—हा.झा.

खैह—देखो 'खेह' (रू.भे.) उ०—भाल घांचौ फेरियौ खैह री हूंत छायौ भांण, बांघलौ केहरी 'चैन' घेरियौ बलाय।—सूरजमल मीसण

खोंखों–सं०पु० [अनु०] खांसने का शब्द, खांसने के समय होने वाली ध्वनि।

खोंगाह–सं०पु० [सं०] पीलापन लिये सफेद रंग का घोड़ा (डिं.को.)

खो–सं०पु०—१ खंजन. २ सूर्य. ३ पुण्य. ४ सम्मान. ५ भय. ६ नाश, संहार (एका०) ७ गर्त, गड्ढा।

कहा०—खो री माटी खो में रैवै—गड्ढे की मिट्टी गड्ढे में ही रहती है। १ प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर ही उचित व भली प्रतीत होती है. २ वस्तु का एक तरफ या एकान्त में रहने के कारण उपयोग में नहीं आना।

८ 'खो' नामक देशी खेल जिसमें दो दल खेलते हैं। एक दल के खिलाड़ी पंक्ति बना कर कुछ-कुछ फासले से बैठते हैं जिसमें क्रम से एक को छोड़ दूसरे का मुख पहिले वाले से विपरीत दिशा में होता है। दूसरा दल इनके बीच के फासले में खड़ा रहता है तब बैठी हुई टोली का खिलाड़ी अन्य टोली के खिलाड़ियों को छूने की कोशिश करता है, इसी समय अवसर देख वह अपनी टोली के अन्य खिलाड़ी को पीछे से 'खो' शब्द कह कर विपरीत टोली के खिलाड़ियों को छूने के लिये भगाता है। इसी प्रकार खेलते-खेलते बैठी वाली टोली दूसरी टोली के सब खिलाड़ियों को छू लेती है तो खेल बदल जाता है।

खो'—देखो 'खोज'।

खोओ–सं०पु०—दूध को औटा कर बनाया गया मावा, खोया।

खोको–सं०पु०—१ लकड़ी के तख्तों की पेटी जो खाली व पुरानी हो. २ शमी वृक्ष की सूखी फली।

खोखर–सं०पु०—१ राठौड़ राव छाडोजी के पुत्र खोखर के वंशज राठौड़ों की एक उपशाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

२ जाटों की एक शाखा (गोत्र) या इस गोत्र का व्यक्ति।

खोखरिया–सं०स्त्री०—परिहार वंश की एक शाखा जो रैबारी (गडरिया) हो गये।

खोखलौ–वि०—खोखला, शून्य, पोला।

खोखाळणौ–क्रि०स०—खोखला करना, पोला करना।

खोखालणहार, हारौ (हारी), खोखालणियौ—वि०।

खोखाळिओड़ौ, खोखाळियोड़ौ, खोखाळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खोखाळियोड़ौ–भू०का०कृ०—खोखला किया हुआ।

(स्त्री० खोखाळियोड़ी)

खोखौ–सं०पु०—१ शमी वृक्ष की सूखी फली जो खाई भी जाती है।

कहा०—खोखा खा पांणी पी काली डोकरी रोवै की—पगली बुढ़िया! व्यर्थ में रोती क्यों है? शमी की फली खा कर ऊपर से पानी पी ले। जो कुछ प्राप्त होता है उसे ही खा-पी कर संतोष करना चाहिए, व्यर्थ में दुखित होने से क्या लाभ? २ एक प्रकार का देशी खेल। देखो 'खो' (८)

खोगळ–सं०स्त्री०—मांद, गुफा (क्षेत्रीय)

खोगसोगी–सं०पु०—वह अशुभ घोड़ा जिसके पैरों के तलुवों में भौंरी होती है। —शा. हो.

खोगाळ–सं०पु०—१ संहार, नाश।

कहा०—१ पाडा-पाडा लड़ै नै रूंखां री खोगाळ; २ सांड-सांड आथड़ै बांठां री खोगाळ—पाडों या सांडों का लड़ना और वृक्षों का नष्ट होना; बड़ों या सामर्थ्यशाली व्यक्तियों की लड़ाई में गरीबों की व्यर्थ में हानि होना।

२ खोखलापन. ३ गुफा, मांद, कंदरा।

खोगीड़, खोगीर–सं०पु० [फा० खोगीर] वह ऊनी कपड़ा जो घोड़े के चारजामे के नीचे लगाया जाता है। खुगीर। उ०—सक्तिसिंह सवार बाही सो पेमसिंह घोड़ौ फेरते रै लागी। सो घोड़ै रै खोगीर बढ़'र रोही री हाडी घोड़ै री बैठ गई।—मारवाड़ रा अमरावां री वारता

मुहा०—खोगीर री भरती में देणौ—समूची आय को किसी बड़े व्यय की पूर्ति के प्रयत्न में खर्च करना।

खोड़-सं०स्त्री०—१ ऐब, अवगुण, दोष। उ०—हाथां ठालो हालणो, जाभी संपत जोड़। मौत सरीखो मिनख रै, खलक मही नहिं खोड़।
यौ०—खोड़खाड़, खोड़खाड़। —बां.दा.
मुहा०—१ खोड़ भालणी—दोष ढूंढ़ना. २ खोड़ मेटणी—अवगुण हरना, गलती मिटाना।
कहा०—ऊंट री खोड़ ऊंट भुगतै—ऊँट को अपने ही दोष या अवगुण से उत्पन्न होने वाले कष्ट को स्वयं को ही भुगतना पड़ता है। अपने ही अवगुणों का दुष्फल स्वयं को ही भुगतना पड़ता है।
२ धूर्तता, चालाकी। उ०—पंसेरी इक पालड़ै, पुंगीफळ इक ओड़; ऊ तोलण सम कर उभै, आ चतुराई खोड़।—बां.दा.
३ न्यूनता, कमी, कसर। उ०—पीथळ धोळा टमंकिया, बहुली लागी खोड़। पूरे जोबन पदमणी, ऊभी मूंह मरोड़।
—प्रथ्वीराज राठौड़
४ शरीर, तन (मि० 'खोळ' २) उ०—१ नींद आबा पावै न छै, म्हारी खोड़ तो अठै छै, जीव नलवरगढ़ में छै, थे धीरज बंधाओ छौ।—ढो.मा. ५ कलंक। उ०—चौड़ै लीक छाप माथै वडां री न धारी चाल, खोटी सला विचारी लगाई कुळां खोड़।
—दलजी महड़ू

खोड़उ—देखो 'खोड़ो'।

खोड़की-वि०स्त्री०—लंगड़ी।
सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का बच्चों का खेल।
यौ०—खोड़की टांग।
२ एक प्रकार का बैलों को होने वाला रोग विशेष जिससे उनका एक पैर सूज जाता है। यह संक्रामक रोग होता है। इसमें मृत्यु शीघ्र होती है।

खोड़खाड़, खोड़खाड़, खोड़खंबाड़-सं०स्त्री०यौ०—ऐब, अवगुण, दोष।

खोड़चौ-सं०पु०—वह काष्ठ का बड़ा मोटा टुकड़ा जिसके बीच में लोहे का चौड़ा व मोटा ठोस गुटका, जिस पर लुहार लोहा कूटते हैं या सुनार स्वर्ण चांदी कूटते हैं, लगाया जाता है।
वि०—लंगड़ा।

खोड़ाणो, खोड़ाबो-क्रि०अ० [सं० खोल्] लंगड़ाना।
मुहा०—खोड़ खोड़ाणो—किसी के कार्य की नकल करना। देखादेखी कार्य करना।
खोड़ाणहार, हारो (हारी), खोड़ाणियो—वि०।
खोड़ायोड़ो—भू०का०कृ०।
खोड़ाईजणो, खोड़ाईजबो—भाव वा०।
खोड़ावणो खोड़ावबो—रू०भे०।

खोड़ायोड़ो—भू०का०कृ०—लगड़ाया हुआ. (स्त्री० खोड़ायोड़ी)

खोड़ावणो, खोड़ावबो—देखो 'खोड़ाणो' (रू.भे.)
खोड़ावणहार, हारो (हारी), खोड़ावणियो—वि०।
खोड़ाविओड़ो, खोड़ावियोड़ो, खोड़ाव्योड़ो—भू०का०कृ०।
खोड़ावीजणो, खोड़ावीजबो—भाव वा०।

खोड़ावियोड़ो—देखो 'खोड़ायोड़ो'। (स्त्री० खोड़ावियोड़ी)

खोड़ियाळ-सं०स्त्री०—चारण वंश में उत्पन्न एक देवी।
वि०—कार्य में बाधा डालने वाला, टंटा फसाने वाला।

खोड़ियौ-वि० [सं० खोल्] लंगड़ा।
सं०पु०—१ हनुमान. २ कंधा।
कहा०—खोड़िया ढीला मेलो अदर अदर फरय्ये कांम न चालै—कन्धे ढीले करो, केवल हलके २ घूमने से काम नहीं चलता।

खोड़ी-सं०स्त्री०—खेत की मेढ़ में आने-जाने हेतु बनाया जाने वाला संकरा मार्ग। यह इस प्रकार बनाया जाता है कि इसके द्वारा केवल मनुष्य ही आ जा सकता है, पशु खेत में प्रवेश नहीं कर सकता।
२ देखो 'खोडियाळ'। (रू. भे.—खोडी)

खोड़ीलाई-सं०स्त्री०—१ नाहक तंग करने, छेड़ने या बाधा डालने का भाव या कार्य, व्यर्थ का कष्ट. २ शैतानी, शरारत, दुष्टता।

खोड़ीलो-वि०पु० (स्त्री० खोड़ीली) १ व्यर्थ में तंग करने वाला.
२ चिड़चिड़े स्वभाव का. ३ व्यर्थ की बाधा डालने वाला.
४ वह जिसकी उपस्थिति या जन्म के कारण अनिष्ट होने की संभावना हो।

खोड़ू—देखो 'खोड़ो'।

खोड़ो-सं०पु० [सं० खोल्] १ कैदी के पैरों में डाला जाने वाला एक काठ का उपकरण जिससे वह चल फिर नहीं सकता। उ०—धन लोड़ै तोड़ै धरम, विध विध जोड़ै वात। जड़ सनेह खोड़ै जड़ण, गिणका मोड़ै गात।—बां.दा. २ देखो 'खोड़चौ' (३)
वि० (स्त्री० खोड़ी) लंगड़ा।
कहा०—खोड़ी वऊ वायदो करै अर सात जणां टांग जमावै—लंगडी बहू कूड़ा-करकट डालने का कार्य करती है तो सात आदमियों को उसका उपचार करना पड़ता है अर्थात् ऐसे व्यक्ति से कार्य कराना निष्फल सा होता है जिसके काम करने पर दूसरों को उसकी सहायता करना पड़ता है।

खोज-सं०स्त्री०—१ अनुसंधान, तलाश, शोध। उ०—देस बिगाड़णो राव रो, फेर विनासी फौज। डर बैठां कांसूं हुवै, राजा लाग्या खोज।
— डाढ़ाळा सूर री बात
क्रि०प्र०—करणी, लागणी, होणी।
सं०पु०—२ पदचिन्ह।
उ०—परतल जंबक पेखियां, कोय न जावै भाग। सीहां केरा खोज सूं, मांनीजै डर माग।—बां.दा.
क्रि० प्र०—देखणी, पड़णी, मिळणी।
कहा०—मैंगळ हुंदा खोज में, सब ही खोज समाय—हाथी के पद-चिन्ह में दूसरे सब पद-चिन्ह समा जाते हैं। कोई बड़ा कार्य या प्रभाव छोटे-मोटे कार्यों या प्रभावों को अपने में समा लेता है।
३ चिन्ह, निशान, पता।
मुहा०—खोज जाणो—१ वंश निर्मूल होना, वंश या कुल काश्रा

होना. २ खोज मिटाणी—नष्ट करना, नाश करना।

खोजक–वि०—खोज करने वाला, अनुसंधानकर्ता।

खोजणौ, खोजबौ–क्रि०स०—तलाश करना, पता लगाना, ढूंढ़ना।

उ०—ढोलइ चढि पड़ताळिया, डूंगर दीन्हा पूठि। खोजे वावू हथ्थड़ा, धूड़ि भरेसी मूठि।—ढो.मा.

खोजणहार, हारौ (हारी), खोजणियौ—वि०।

खोजाड़णौ, खोजाड़बौ, खोजाणौ, खोजाबौ, खोजावणौ, खोजावबौ—स०रू० प्रे०रू०।

खोजिओड़ौ, खोजियोड़ौ, खोज्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खोजीजणौ, खोजीजबौ—कर्म वा०।

खोजाड़णौ, खोजाड़बौ, खोजाणौ, खोजाबौ–क्रि०स० ('खोजणौ' का प्रे०रू०) ढूंढ़ाना, तलाश करवाना, पता लगवाना।

खोजायोड़ौ–भू०का०कृ०—ढूंढ़वाया हुआ, तलाश कराया हुआ। (स्त्री० खोजायोड़ी)

खोजावणौ, खोजावबौ—देखो 'खोजाणौ'।

खोजावणहार, हारौ (हारी), खोजावणियौ—वि०।

खोजाविओड़ौ, खोजावियोड़ौ, खोजाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खोजावीजणौ, खोजावीजबौ—कर्म वा०।

खोजावियोड़ौ—देखो 'खोजायोड़ौ'। (स्त्री० खोजावियोड़ी)

खोजी–सं०पु०—१ खोजने वाला, ढूंढ़ने वाला. २ पद-चिन्हों को पहिचानने वाला। पद-चिन्ह विशेषज्ञ. (मि० 'पागी') ३ वह ऊंट जिसके जन्म से ही अंडकोश की गोली न हो।

खोजौ–सं०पु० [फा० ख्वाजा] १ वह नपुंसक व्यक्ति जो मुसलमानी हरमों में द्वार-रक्षक या सेवक की भांति रहता था. २ बकरी के बालों का बना हुआ मोटा कपड़ा जिसमें किसान लोग प्रायः घास, भूसी भर कर गाड़ी भरता है. ३ नपुंसक. ४ वह ऊंट जिसके जन्म से ही अंडकोश की गोली नहीं है।

खोज्यौ–सं०पु०—एक प्रकार का छोटा थैला जिसे खेत बोते समय किसान अनाज से भर कर अपनी कमर में बांध कर आगे लटकाता है और हल चलाता हुआ मुट्ठी भर भर कर हल के चोंगा में बोने के लिए अनाज डालता है।

खोटंगी–वि० [सं०खोट+अंगिन्] (स्त्री० खोटंगी) १ छली, कपटी, धूर्त. २ अंगहीन, अंगभंग।

खोट–सं०स्त्री० [सं० क्षोट] १ भूल, अशुद्धि, गलती।

मुहा०—१ खोट अणावणी—लिखने में भूल करवा देना. २ खोट अणीजणी—दृष्टिदोष आदि से लिखने में भूल हो जाना. ३ खोट आंणणी (आवणी)—लिखने में अशुद्धि हो जाना, भूल हो जाना. ४ खोट ओटणी—लिखने में आई हुई अशुद्धि को छुपाना, दबाना, भूल प्रकट न होने देना. ५ खोट ओळखणी—लिखी हुई भूल को जान लेना, भूल निकालना, ऐब को मालूम करना. ६ खोट उघाड़णी—किसी की भूल को प्रकाश में लाना. ७ खोट उतारणी—प्रतिलिपि करने में अशुद्ध लिखना. ८ खोट कबाड़—देखो 'खोट खबाड़'. ९ खोट करणी—लिखने में भूल करना, गलत लिखना. १० खोट काडणी—किसी के लिखे हुए में भूल निकालना, भूल पकड़ना, किसी के स्वभाव में दोष निकालना. ११ खोट कोरणी—अशुद्ध चित्रकारी करना, पत्थर व लकड़ी पर की जाने वाली चित्रकारी में अशुद्धि करना. १२ खोट खबाड़—भूलचूक, किसी वस्तु के निर्माण में भूल और टेढ़ापन. १३ खोट खोजणी—अशुद्धि खोजना, भूल खोज कर निकालना. १४ खोट गावणी—निंदा करना, किसी की भूल को बार-बार कहते रहना. १५ खोट घोखणी—अशुद्ध उच्चारण का अभ्यास करना, अशुद्ध रटना. १६ खोट चलाणी—भूल को किये जाना. १७ खोट चाढ़णी—बही आदि में रकम की संख्या भूल से गलत लिखना, गलत इंदराज करना. १८ खोट चावणी (चावणी)—बातों ही बातों में या नजर बचा कर अपनी भूल को किसी के सामने नहीं आने देना, भूल को नजर-अंदाज करना. १९ खोट छापणी—अशुद्ध छापना, छपाई के कार्य में भूल करना २० खोट जपणी—अशुद्ध जप करना, मंत्र आदि का अशुद्ध उच्चारण करना २१ खोट जांचणी—अशुद्धि की जांच करना, भूल जांचना. २२ खोट जांणणी—भूल का अनुभव करना, भूल को समझना. २३ खोट जोवणी—भूल का पता लगाना, भूल तलाश करनी, अशुद्धि ढूंढ़ना, त्रुटि निकालना. २४ खोट झालणी—त्रुटि पकड़ना, भूल का पता लगाना. २५ खोट टाळणी—जान-बूझ कर त्रुटि को चलाना, भूल को आगे नहीं आने देना. २६ खोट टूकणी—अशुद्ध लिखना, अशुद्ध प्रतिलिपि करना. २७ खोट ताड़णी—भूल को समझ लेना. २८ खोट तांणणी—समझते हुए भी भूल को निरन्तर किये जाना. २९ खोट थोपणी—भूल स्वीकार करने के लिये बाध्य करना. ३० खोट दाझणी (दागणी)—जिस जगह से भूल हुई हो उसे वहीं से मिटा देना. ३१ खोट दाबणी—भूल को दबा देना, भूल को प्रकट नहीं होने देना. ३२ खोट धरणी—अशुद्ध लिखना, किसी अंक को गलत रखना. ३३ खोट धोवणी—निंदा करना, भूल सुधारना. ३४ खोट निकळणी—किसी लिखित कार्य में त्रुटि आना, भूल नजर आना. ३५ खोट निकाळणी—त्रुटि निकालनी, अशुद्धि निकालना, भूल बताना. ३६ खोट न्यारणी—भूल के ऊपर विचार करना. ३७ खोट पकड़णी—त्रुटि को पहचानना, अशुद्धि पकड़ना, भूल बताना. ३८ खोट पारखी—भूल अथवा अशुद्धि की जांच करने वाला. ३९ खोट पांखणी—भूल को किये जाना, भूल को लिये चलना ४० खोट पोतणी—भूल को मिटा देना, अशुद्धि छिपाना. ४१ खोट बताणी—लिखने आदि में की हुई भूल को निकाल कर बताना. ४२ खोट बाड़णी—व्यापार आदि में नासमझी से ऐसा अव्यवहारिक कार्य कर लेना जिससे हानि उठानी पड़े. ४३ खोट बोधणी—गलत उपदेश देना, गलत सलाह देना. ४४ खोट

बोलणी—अशुद्ध बोलना, अशुद्ध पढ़ना. ४५ खोट भरणी—स्त्रियों द्वारा आंगन में चित्रित किये जाने वाले साखिये (स्वस्तिक) में गलत चित्रण करना व उनमें गलत रंग भरना. ४६ खोट भांपणी—भूल को जान अथवा समझ लेना. ४७ खोट भाळणी—अशुद्धि ढूंढ़ना, त्रुटि देखना, भूल खोजना. ४८ खोट भोगणी—भूल का दंड भुगतना. ४९ खोट मंडावणी—अशुद्ध लिखवाना. ५० खोट मांडणी—अशुद्ध लिखना, अशुद्ध प्रतिलिपि करना. ५१ खोट मानणी—भूल को स्वीकार करना, त्रुटि मानना. ५२ खोट रहणी—लिखने के कार्य में अशुद्धि रह जाना, भूल रह जाना. ५३ खोट राखणी—भूल रखना, अशुद्धि करना. ५४ खोट रै'णी—देखो 'खोट रहणी' (रू.भे.) ५५ खोट रौ म्यार काढ़णी—भूल का पता लगाना कि वह किस प्रकार और कहाँ हो गई. ५६ खोट लाधणी—लिखने के कार्य या हिसाब आदि में भूल का पता लगाना. ५७ खोट लावणी—अशुद्धि करना, स्मृतिजन्य पाठ को गलत लिखना, लिखावट के कार्य में त्रुटि रखना. ५८ खोट लिखणी—लिखने के कार्य में अशुद्धि करना, प्रतिलिपि करने में अशुद्ध लिखना. ५९ खोट वाचणी—अशुद्ध पढ़ना. ६० खोट वारणी—भूल को सुधारना, भूल नहीं होने देना. ६१ खोट विचारणी—अशुद्ध सोचना, गलत सोचना. ६२ खोट सोचणी—अपनी भूल पर विचार करना, अशुद्धि को सोचना. ६३ खोट सोधणी—भूल को सुधारना अशुद्धि को ठीक करना, अशुद्धि ढूंढ़ कर निकालना. ६४ खोट हलाणी—जान या अनजान में की हुई भूल को (नहीं सुधारकर) उसी प्रकार चलाते रहना. ६५ खोट हालणी—अशुद्धि का चलना। ६६ खोट हुणी (होवणी)—लिखने के कार्य में भूल आदि हो जाना, अशुद्ध लिखा जाना।

यौ०—खोट-आळी, खोट-कबाड़, खोट-खबाड़, खोट-चूक, खोट-नि'अार, खोट-पारखी, खोट-पीणी, खोट-माळो, खोट-रखो, खोटवाळो, खोट-हाळो।

२ वह निम्न कोटि की वस्तु जो किसी विशुद्ध या उच्च कोटि की वस्तु में अर्थ-लाभ की दृष्टि से मिलाई जाय अथवा इस प्रकार की मिलावट।

मुहा०—१ खोट घड़णी—गढ़ने के कार्य में विजातीय वस्तु मिला कर तैयार करना. २ खोट घालणी—विशुद्ध वस्तु में विजातीय या निम्न कोटि की वस्तु को मिलाना. ३ खोट नांखणी—देखो 'खोट घालणी' ४ खोट परखणी—मिलावट की जाँच करना, विशुद्धि का पता लगाना. ५ खोट बरतणी (बरताणी)—मिलावट की वस्तु का व्यवहार करना. वस्तु में मिलावट करके बेचना. ६ खोट-बरतीजणी—मिलावट का आम प्रचार हो जाना, कृत्रिम वस्तुओं का अधिक व्यवहार में आना. ७ खोट भेळणी—विशुद्ध व उत्तम वस्तु में निम्नकोटि की वस्तु मिलाना. ८ खोट मेलणी—किसी विशुद्ध वस्तु के अंदर कृत्रिम वा निकृष्ट वस्तु को रख देना. ९ खोट मेळणी—देखो 'खोट-भेळणी' १० खोट राळणी—देखो 'खोट घालणी' (रू.भे.)
११ खोट वापरणी—देखो 'खोट बरतणी' (रू.भे.)

यौ०—खोट-परखो, परखो, खोट-परखणियौ, खोट-पारखी।

३ कपट, छल। उ०—१ रांणौ मन में घणी खोट राखै छै।
—नैणसी

उ०—२ दरसावै जग नूं दया, पाप उठावै पोट। हित में चित में हाथ में, खत में मत में खोट।—बां.दा.

मुहा०—१ खोट आवणी—मन में कुटिलता व्यापना. २ खोट ओळखणी—किसी की धूर्तता या कपट को जान लेना. ३ खोट घड़णी—दगा करना, छल करना. ४ खोट ताड़णी—छल को समझ लेना, कपट जान जाना. ५ खोट तेवड़णी—दगा करने का विचार करना, कपट करने का निश्चय करना. ६ खोट धारणी—कपट धारण करना, छल विचारना. ७ खोट भांपणी—कपट को जान लेना, कुटिलाई समझ लेना. ८ खोट राखणी—कपट वृत्ति रखना. ९ खोट वांछणी—दगा देने की इच्छा करना या रखना। १० खोट वापरणी—छल-कपट उत्पन्न होना, मन में कुटिलता व्यापना।

कहा०—रांम नांम तौ रटियौ नहीं, मन में राखी खोट। ऊनाळा रौ तावड़ौ, माथै मण री (मोटी) पोट—राम का नाम तो लिया नहीं, केवल छल-कपट का ही व्यवहार किया, तब मुक्ति कैसे प्राप्त हो। जिस प्रकार ग्रीष्म की कड़ी धूप में मन भर का बोझा हो उसी प्रकार मनुष्य जीवन में सद्कर्म के स्थान पर छल-कपट का व्यवहार कष्ट-दायक ही होता है।

४ पाप। उ०—अंतरि खोट तहां हरि नांही, ताते बूडा परळा मांही।—ह.पु.वा. ५ कमी, हानि।

मुहा०—१ खोट खमणी—हानि सहन करना. २ खोट खाणी (खावणी)—कसर भुगतना, हानि उठाना. ३ खोट खाटणी—हानि उठाना. ४ खोट जरणी—हानि को सहन करना. ५ खोट-जीरवणी—हानि से विचलित नहीं होना. ६ खोट नांखणी—घाटा डालना. ७ खोट पड़णी—(व्यक्ति) की कमी होना, हानि होना. ८ खोट पाड़णी—कमी डालना, हानि पहुँचाना. ९ खोट पूरी करणी—किसी कमी को पूरा करना, धन-हानि की पूर्ति करना. १० खोट भरणी—कमी की पूर्ति करना. ११ खोट भोगणी—हानि व कमी को सहन करना. १२ खोट मारणी—किसी वस्तु या व्यक्ति के अभाव से होने वाली हानि को भुगतना, कमी या घाटे को सहन करना. १३ खोट वारणी—कमी को दूर करना. १४ खोट वेठणी—कमी को सहन करना. १५ खोट सरणी—कमी का निभ जाना. १६ खोट साजणी—कमी या घाटे के समय किसी को सहायता देना।

यौ०—खोटभंगी।

६ दोष, ऐब। उ०—१ लाखाळ् गुळ खिमन में, खग कुळ माहि बकोट, मावड़िया मिनखां मंही, यां तीनां मांही खोट।—बां.दा.
उ०—२ अपणा करम ही को खोट, दोस कांई दीजे री आली।
—मीरां

मुहा०—१ खोट ओटणी—दोष छिपाना. २ खोट काडणी—किसी के स्वभाव में दोष निकालना. ३ खोट खोजणी—दोष ढूंढ़ना ४ खोट खोलणी—दोष प्रकट करना, भेद प्रकट करना. ५ खोट जोवणी—किसी में दोष ढूंढ़ना. ६ खोट ढाटणी—किसी के दोषों को छिपाना. ७ खोट ढाकणी—दोष छिपाना. ८ खोट ढाबणी—अपने में दोष बनाये रखना. ९ खोट ताकणी—दूसरे में दोष देखना, दूसरे के दोषों की खोज करना. १० खोट थोपणी—अपना दोष दूसरे पर डालना. ११ खोट दाटणी (दाबणी)—दोषों को छिपाना. १२ खोट रोपणी—दोष लगाना, दोषारोपण करना.

यौ०—खोटपाखौ, खोटकरमौ।

७ अपराध।

मुहा०—१ खोट खाटणी—अपकीर्ति प्राप्त करना. २ खोट ढूकणी—अपराध लागू होना. ३ खोट मांगणी—छल, कपट, व्यभिचार आदि कार्यों में रत रहना।

८ कलंक।

मुहा०—१ खोट पोतणी—कलंक को मिटाना, कलंक को साफ करना. २ खोट लगणी—कलंक लगना, लांछन लगना।

९ काम से जी चुराने का भाव।

मुहा०—खोट-खावणौ—कामचोर होना।

यौ०—खोट-परांगौ, खोट-पीणौ।

१० असत्य, झूठ। उ०—सुणतां इतरी बात कुमळ मौ भांमण जांणै। खलक बकै जे खोट बैं'म उर कदे न आंणै।—मेघ०

वि०—१ लंगड़ा. २ झूठा, असत्य। उ०—संसार भगळ विद्या सकळ, खोट साच दीसै खरो। जाये न किणी लिखियौ जगा, ऐमो लेख अलख रो।—ज. खि. ३ नाशवान।

खोटअंगौ—वि०यौ० (स्त्री० खोटअंगी) १ छली, कपटी, धूर्त. २ अंगहीन।

(रू०भे०—खोटंगौ, खोटींगौ)

खोटआळौ (स्त्री० खोटआळी) देखो 'खोटमाळौ' (रू.भे.)

खोटकबाड़—सं०स्त्री०यौ०—देखो 'खोटखबाड़'।

खोटकरमौ, खोटकरमौ—वि०यौ० [सं० क्षोट+कर्मिन्] १ दूषित कर्म करने वाला, पापी. २ छली, कपटी. ३ व्यभिचारी।

(स्त्री० खोटकरमी)

खोटखबाड़—सं०स्त्री०—१ भूल-चूक. २ किसी वस्तु के निर्माण में भूल और टेढ़ापन।

खोटड़—वि०—बलवान, शक्तिशाली।

खोटण—सं०स्त्री०—बाजरी या ज्वार की पकी हुई बालों को अनाज के दानों को पृथक करने के लिये पीटने का डंडा।

खोटणौ—क्रि०स०—ठोकना, पीटना।

खोटपखौ, खोटपखौ, खोटपाखौ—वि० [सं० क्षोट+पक्षिन्] १ जिसका पक्ष खोटा हो, दूषित. २ कपटी।

खोटपण—देखो 'खोटापण'।

खोटमाळौ—वि० (स्त्री० खोटमाळी) वह वस्तु जिसकी कल (मशीन) बिगड़ गई हो।

खोटमौ, खोटबौ—सं०पु०—१ गुप्तांग के बाल. २ शौच जाने का कार्य।

मुहा०—खोटवां करणौ, खोटवां काढ़णौ—गुप्तांग के बाल साफ करना. २ खोटवा वाळणौ जावणौ, खोटवा काढ़णौ—शौच जाना, प्रातःकाल नित्यकर्म से निपटना।

खोट-रखौ—वि०—कपटी, धूर्त, छली।

खोटहड़—सं०पु०—वीर, बहादुर। उ०—उभै चख मही रै अगन भटकै अजर, गाज घण जुही रै बाज धूसां गजर। खोटहड़ कही रै अदन ऊभौ खजर, नहीं रै जुहारण जिसो आवै नजर।—बद्रीदास खिड़ियौ

खोटहड़ियौ—वि०—१ विस्तृत. २ फूला हुआ। उ०—भादवै री गाज ज्यूं आवाज करतां, साठीका रै भमण ज्यूं चसळका करतां, भागै गाडै ज्यूं बठठाट करता, आगळै झाग नांखता खोटहड़ियै रा गोभै रा झूठै कूप रा कळसिमा कपोळां रा।—रा.सा.सं.

खोटाई—सं०स्त्री०—१ बुराई, दुष्टता, क्षुद्रता. २ कपट, छल।

खोटापण, खोटापणौ—सं०पु०—१ हीनता का भाव, क्षुद्रता. २ कपट, छल।

खोटी—क्रि०वि०—इन्तजार में व्यर्थ समय गँवाना।

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।

मुहा०—१ खोटी करणौ—विलम्ब कराना, प्रतीक्षा में खड़ा रखना. २ खोटी होणौ—इन्तजार करना, व्यर्थ समय गंवाना।

खोटीकथ—सं०पु०यौ०—असत्य, झूठा कथन (ह.नां.)

खोटीपौ—सं०पु०—इन्तजार में व्यर्थ समय गँवाने का भाव, विलंब।

खोटौ—वि० (स्त्री० खोटी) १ जिसमें कोई दोष अथवा ऐब हो।

मुहा०—१ खोटौ कमाणौ—बुरे कार्यों से पैसा कमाना. २ खोटौ खाणौ—रूखा-सूखा खाना. ३ खोटौ रुपियौ—वह दोष-युक्त सिक्का जिसकी कीमत नहीं मिलती हो, अनुचित रूप से प्राप्त किया हुआ धन।

यौ०—खोटौ-खरौ।

२ बुरा, अनुचित। उ०—१ वेहा लिख खोटा वग्गा, रेहा हीणा रहंत। पात अखेहा धन लहै, जेहा धन जहयंत।—बां.दा.
उ०—२ दियै चहीलै चालतां, आर गाळ इक दोय। भाड़ेतां खोटौ हुवै, धवळ न खोटौ होय।—बां.दा.

मुहा०—खोटौ समौ—बुरा समय।

कहा०—१ खोटा ना खटका मसांणां माथै निकळै—बुरे व्यक्तियों से बदला श्मशान में लिया जाता है; बुरे व्यक्तियों की निंदा दाह-

क्रिया के समय श्मशान में की जाती है. २ खोटा नूं खरं करै जणां नौ नांम आदमी—खोटे को खरा कर दे अर्थात् बिगड़े हुए बुरे को सुधार कर भला बनावे वही वास्तविक मनुष्य है. ३ खोटी खरी वगत में कांम आवै—बुरा समझा जाने वाला व्यक्ति भी कभी-कभी कठिनाई पड़ने पर बहुत काम आता है. ४ खोटौ खाणौ नै खरौ कमाणौ—साधारण भोजन एवं ईमानदारी से व्यवसाय करना व धन कमाना—ये दोनों कार्य आदमी को ऊंचा उठाते हैं।

३ झूठा, असत्य।

कहा०—खोटे खत में साख कुण घालै—झूठी बात में गवाही कौन दे सकता है? झूठे दस्तावेजों में गवाही नहीं भरनी चाहिये, झूठी बात में हाँ में हाँ नहीं मिलानी चाहिये।

४ काम से जी चुराने वाला, अड़ियल। (मि. 'पैल(२) माठौ'(२))

कहा०—खोटौ बळद बुचकारी सूं राजी—अड़ियल बैल पुचकारने से खुश रहता है; क्योंकि पुचकारना बैल के लिये कार्य बंद करने का संकेत है ठीक इसी तरह कामचोर व्यक्ति प्रसन्नदायक बात अथवा काम बंद करने के संकेत की प्रतीक्षा में रहता है।

५ विकट, भयंकर। उ०—देखो सूरमां री सूरापणौ कितरौ खोटौ है सो वांरी श्रीयां रा अजब अनोखा चूड़ा ऊतरतां जेज ही नहीं लागै।—वी.स.टी. ६ भाग्यहीन, अभागा।

खोटीखरी-वि०यौ०—भलाबुरा, अच्छाबुरा।

खोटोड़ौ—देखो 'खोटौ' (अल्पा०)

खोड—१ देखो 'खौड' (२) २ नाश होने वाली वस्तु।

उ०—अधम खळ ओलंब, अक्रम कोटे आलू जिस। जम दड़्ढा मझ पड़िस, खोड माया खोसाड़िस।—ज.खि.

३ जंगल। [सं० खोड] ४ शंख (ह.नां.) (अ.मा.)

५ शरीर। उ०—तद जोगी रांगै री देह पडी थी, उण रै कांन में फूंक मारी तौ उवा खोड ऊठ खड़ी हुई।—नापे सांखले री वारता

खोडस—देखो 'सोडस' (रू.भे.)

खोडसकळा—देखो 'सोडसकळा' (रू.भे.)

खोडसोपचार-सं०पु० [सं० षोडशोपचार] पूजा के सोलह अंग।

१ आवाहन, २ आसन, ३ अर्घ्यपाद्य, ४ आचमन, ५ मधुपर्क, ६ स्नान, ७ वस्त्राभरण, ८ यज्ञोपवीत, ९ गंध (चंदन) १० पुष्प, ११ धूप, १२ दीप, १३ नैवेद्य, १४ तांबूल, १५ परिक्रमा और १६ वंदना।

खोडि-सं०स्त्री०—कमी, न्यूनता।

खोडियौ—देखो 'खूंडियौ' (रू.भे.)

खोडौ-सं०पु०—१ फसल बोने के बाद खेत में सिंचाई के निमित्त बनाई जाने वाली क्यारी. २ खेतों या बगीचों में थोड़े थोड़े फासले पर पतली मेढ़ों की बीच की वह भूमि जिसमें पौधे लगाए जाते हैं.

३ नमक की क्यारी।

खोण, खोणि, खोणी-सं०स्त्री० [सं० क्षोणि] पृथ्वी, धरा (नां.मा.)

उ०—एको ही नांम अनंत रौ, पलै पाप प्रचंड। जब तिल जेती ज्वाळ नळ, खोणी दहै नव खंड।—ह.र.

खो'णौ, खो'बौ—देखो 'खोसणौ' (रू.भे.)

खोणौ, खोबौ-क्रि०स० [सं० क्षेपण] १ गंवाना, नष्ट करना।

उ०—खोयौ आसुरी धरम, आपौ बिगोयौ तैं मीरखांन।
—नवलजी लाळस

२ नाश करना। उ०—सोनारी झूरै कहै, रे ठाकुर कुळ खोय। मूझ घड़ाई खोवणौ, तूझ मड़ाई होय।—वी.स.

खोणहार, हारौ (हारी), खोणियौ—वि०।

खोयोड़ौ—भू०का०कृ०।

खोईजणौ, खोईजबौ—कर्म वा०।

खोवणौ, खोवबौ—रू०भे०।

खोतरणौ, खोतरबौ-क्रि०स०—कुरेदना।

खोतरणहार, हारौ (हारी), खोतरणियौ—वि०।

खोतरावणौ, खोतरावबौ—क्रि०स०, प्रे०रू०।

खोतरिओड़ौ खोतरियोड़ौ, खोतरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

खोतरीजणौ, खोतरीजबौ—कर्म वा०।

खोतराणौ, खोतराबौ, खोतरावणौ, खोतरावबौ-क्रि०स० (प्रे०रू०) कुरेदने का कार्य करवाना।

खोतरावणहार, हारौ (हारी), खोतरावणियौ—वि०।

खोतरायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खोतराविओड़ौ, खोतरावियोड़ौ, खोतराव्योड़ौ-भू०का०कृ०। (स्त्री० खोतरावियोड़ी)

खोतरावियोड़ौ-भू०का०कृ०—कुरेदा हुआ। (स्त्री० खोतरावियोड़ी)

खोतलौ-सं०पु०—वह ऊँट जिसके शरीर के बाल उड़ गए हों।

खोतौ-सं०पु०—१ ऊन के अंदर का मैल. २ गधा (क्षेत्रीय) वि०—जाति-च्युत।

खोथाड़ौ-सं०पु० [सं० क्षोणि त्रोड़] १ सूअर. २ वीर, बहादुर।

उ०—भांजै भोम गुढौ भिलवाड़ौ, वांकिम माल चरै वेडाय। पगां हेठ पोकरण पूगळ, खोत्राड़ै खागां बळ खाय।
—रावळ मलीनाथ रौ गीत

खोथ-सं०स्त्री०—ऊँट या बकरी का एक रोग विशेष जिससे उनके शरीर के बाल उड़ जाते हैं।

खोथौ-सं०पु०—१ नपुंसक, हिजड़ा. २ बिना साफ किया हुआ ऊन का गुच्छा. ३ 'खोथ' रोग से पीड़ित ऊँट या बकरी। (रू०भे०—खोतलौ)

खोद-सं०पु० [फा० खोद] लोहे का बना टोप जिसे योद्धा लड़ाई के समय पहिनते थे, शिरत्राण (वं.भा.)

खोदणौ, खोदबौ-क्रि०स० [सं० खन्] १ खोदना, किसी स्थान को गहरा करने के लिए वहाँ की मिट्टी आदि को हटाना, गड्ढा करना.

२ खोद कर उखाड़ना या गिराना।

३ किसी पदार्थ पर तीक्ष्ण या पैने औजार से चिन्ह, अंक या बेल-

बूटे आदि बनाना, नक्काशी करना।

खोदणहार, हारौ (हारी), खोदणियौ—वि०।

खोदाड़णौ, खोदाड़बौ, खोदाणौ, खोदाबौ, खोदावणौ, खोदावबौ—क्रि०स०, प्रे०रू०।

खोदिम्रोड़ौ, खोदियोड़ौ, खोद्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खोदीजणौ, खोदीजबौ—कर्म वा०।

खुदणौ—अक० रू०।

खोदरड़ो–सं०पु०—गृहस्थी सम्बन्धी कार्य जिनका तांता लगा ही रहता है और समाप्त होने का नाम ही न ले एवं जिसे अनिच्छा से पूरा करने का प्रयत्न करना ही पड़ता है, घरेलू कार्य।

खोदवाणौ, खोदवाबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०) खोदने के कार्य में लगाना, खोदने का कार्य कराना, नक्काशी करवाना।

खोदा—देखो 'खुदा' (रू.भे.)

खोदाई–सं०स्त्री०—१ खोदने का कार्य. २ खोदने की मजदूरी. ३ नक्काशी का कार्य अथवा इस कार्य की मजदूरी. ४ शैतानी, उत्पात।

खोदाड़णौ, खोदाड़बौ, खोदाणौ, खोदाबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०) खुदाना, खोदने का कार्य दूसरे से करवाना।

खोदाणहार, हारौ (हारी), खोदाणियौ—वि०।

खोदायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खोदाईजणौ, खोदाईजबौ—कर्म वा०।

खोदायोड़ौ–भू०का०कृ०—१ खुदवाया हुआ. २ नक्काशी कराया हुआ। (स्त्री० खोदायोड़ी)

खोदावणौ, खोदावबौ—देखो 'खोदाणौ'।

खोदावणहार, हारौ (हारी), खोदावणियौ—वि०।

खोदाविम्रोड़ौ, खोदावियोड़ौ, खोदाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खोदावीजणौ, खोदावीजबौ—कर्म वा०।

खोदावियोड़ौ—देखो 'खोदायोड़ौ'। (स्त्री० खोदावियोड़ी)

खोदियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ खुदा हुआ, खुदाई का कार्य किया हुआ. २ वह वस्तु जिस पर खुदाई का कार्य किया गया हो। (स्त्री० खोदियोड़ी)

खोदीजणौ, खोदीजबौ–क्रि०अ० (भाव वा०) खोदा जाना।

खोदीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—खोदा गया हुआ।

खोदौ, खोदयौ—देखो 'खौदौ' (रू.भे.) (रू०भे०—खांदियौ)

खोध–सं०पु०—क्रोध, गुस्सा। उ०—खुंदालिम करि खोध, वसुध ऊपरि वाजिआ।—वचनिका

खोनेड़ी–सं०स्त्री० [सं० खन्] किसी प्रकार की मिट्टी की खदान।

खोपड़ी–सं०स्त्री० [सं० कर्पर] १ सिर की हड्डी, कपाल, मस्तक। पर्याय०—कपाल, करपर।

मुहा०—१ ऊंधी खोपड़ी रौ—औंधी खोपड़ी का, बिना अकल का, मूर्ख. २ खोपड़ी खाऊं खाऊं करै—शैतानी करने वाले को डांट-फटकार के रूप में भय दिखाने के लिए कहा जाता है. ३ खोपड़ी खावणी—सिरपच्ची करना, दिमाग खाना, परेशान करना।

(रू०भे०—खोपी)

२ बूढ़ी गाय (व्यंग्य) (अल्पा०)

खोपड़ौ–सं०पु०—१ सिर की हड्डी, कपाल. २ सिर. ३ नारियल. ४ गरी का गोला।

(रू०भे०—खोपरौ) ५ बूढ़ा बैल (व्यंग्य) (अल्पा०)

खोपणौ, खोपबौ–क्रि०स०—१ रोपना, गाड़ना। उ०—कर कर काम-तीजी खोपै जैत हथ जस खंभ।—र.रू. २ चुभाना, खुभाना, धँसाना।

खोपणहार, हारौ (हारी), खोपणियौ—वि०।

खोपाणौ, खोपाबौ, खोपावणौ, खोपावबौ—प्रे०रू०।

खोपिम्रोड़ौ, खोपियोड़ौ, खोप्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खोपीजणौ, खोपीजबौ—कर्म वा०।

खुपणौ—अक० रू०।

खोपरौ—देखो 'खोपड़ौ' (रू.भे.) उ०—हणे कुंभेण सा जोध स्री हाथां, करै कूग तेण परमांण काया। जगत सारौ अजूं साख दे जिकण री, खोपरौ गुळ चा भीम खाया।—र.रू.

खोपरेल–सं०पु०—नारियल का तेल।

खोपरो, खोपरौ–सं०पु०—१ देखो 'खोपड़ौ' (रू.भे.) २ नारियल की सूखी हुई गिरी के दो बराबर भागों में से एक भाग।

कहा०—खाटी खाटौ खोपरौ सोपारी नै तेल, जे थारै गावणौ है तो इतरा आधा मेल—गाने के लिये यदि राग को ठीक रखना है तो खटाई अर्थात खट्टी चीज, नारियल, सोपारी व तेल आदि की वस्तु का प्रयोग त्याग देना चाहिये।

खोपावणौ, खोपावबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०) रोपने या चुभाने का कार्य करवाना।

खोपावणहार, हारौ (हारी), खोपावणियौ—वि०।

खोपाविम्रोड़ौ, खोपावियोड़ौ, खोपाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खोपावीजणौ, खोपावीजबौ—कर्म वा०।

खोपावियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ रोपवाया हुआ, गड़वाया हुआ. २ चुभवाया हुआ। (स्त्री० खोपावियोड़ी)

खोपो, खोपौ–सं०पु०—१ वृद्ध व कृश बैल. २ देखो 'खोपड़ौ' (स्त्री० खोपी)

खोबाबाजी–सं०स्त्री०—चुल्लू में गला हुआ अफीम भर कर पीने व पिलाने की क्रिया या अफीम की मान-मनुहार। उ०—अमलां खोबा-बाजियां मचे भड़ां मनुहार। जांगड़िया दूहा दियै, सिंधू राग मल्हार।—बां.दा.

खोबो, खोबौ–सं०पु०—१ अंजली. २ देखो 'अंजळी'। उ०—मिळियां

मन खोबां अमल, पातं भोजन पांन । भड़ घोड़ा अजका सदा, जिण री हुकम जहांन ।—वी. स.

खोभ-सं०पु० [सं० क्षोभ] १ घबराहट, भय. २ रंज, शोक. ३ क्रोध। उ०—आळ बाळ करता फिरै, साध होण की सोभ । पैलै मनि देखै पतित, मन अपणा की खोभ ।—ह.पु.वा. ४ फिक्र ।

खोभणौ, खोभबौ-क्रि०अ०—क्रोध करना, कुपित होना ।

खोम-सं०पु०—बुर्ज (डि.को.)

खोमणी-सं०स्त्री०—सोने या चांदी की गोली बनाने का लोहे का एक औजार । (रू.भे.—खालर)

खोय-सं०पु०—दोष, एक कलंक । उ०—'मांणेरा' मत रोय, मत कर रत्ती अंखियां । कुळ में लागै खोय, मरतां मांन संभारिये ।

—मांणेरा यादव री दूहो

खोयण-सं०स्त्री०—अक्षोहिनी सेना । उ०—खपिया जठै अठारै खोयण, आधी रहिया तेण अवाह । चौसठ खफर पूरिया चुळवळ, हेकण कमंध तणी हतवाह ।—प्रथीराज जैतावत री गीत

खोयौ—देखो 'खोग्रो' (रू.भे.)

खोर-सं०पु०—बाल काटने का कार्य, क्षौर-कर्म । उ०—रतन आभरण भूखण छाडयां, खोर किया सिर केस ।—मीरां

सं०स्त्री०—कूटनी ।

वि० [फा० खूर] यह शब्दों के अन्त में आकर करने वाला या खाने वाला अर्थ देता है, यथा—हरामखोर, नशाखोर, चुगलखोर आदि ।

[रा०] लंगड़ा ।

खोरड़ो, खोरड़ौ-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

वि०—वृद्ध । उ०—यंद कियो गज खोरड़ौ, संकर ओढ़ी खाल । तो विण कुण दै 'नाथ' तण, सुंदर गज 'सत्रसाल' ।

—सत्रसाल हाडा री गीत

खोराक—देखो 'खुराक' (रू.भे.)

खोराकी—देखो 'खुराकी' (रू.भे.)

खोरी—देखो 'खोड़ी' (रू.भे.)

खोरौ—देखो 'खोरो' (रू.भे.)

खोळ-सं०स्त्री०—१ पर्वतों के बीच में गुफा की तरह का एक मार्ग जिससे लोग अन्दर से आ जा सकें. २ शरीर, गात । उ०—कुंवर री जीव नीसरियौ सो देईदास री खोळ सी ठाकरां रै खोळ में पड़ी थी ।—पलक दरियाव री वात ३ अंक, गोद. ४ आवरण, गिलाफ । उ०—जोगी बइठौ पउलइ जाई, बभूतसर सी खोळ कराई ।—वी.दे. ५ कीड़ों का ऊपरी चमड़ा जो समय-समय पर बदलता है. ६ विवाह के अवसर की एक प्रचलित रस्म जिसमें भांवरे पड़ने के पश्चात दुलहन जब दूल्हे के साथ बारात ठहरने के स्थान पर प्रथम बार जाती है तो वर पक्ष की ओर से मेवा, मिश्री आदि से उसकी गोद भरी जाती है । इसे शुभ माना जाता है । ७ सिंह की मांद ।

खोलड़-सं०पु०—खंडहर, पुराना मकान । उ०—सीपां तणा पुराणा खोलड़, थारै हिये न ऊतरिया हरपाळ ।—दूदो आसियौ

(अल्पा० 'खोलड़ियौ') (मह० 'खोलड़ौ')

खोलड़ो, खोलड़ौ—१ देखो 'खोलड़' । उ०—खमै न डोकर तणौ खोलड़ौ, धरपत हसती तणौ धको ।—अज्ञात

खोळजोळियौ-सं०पु०—विवाह के समय वधू द्वारा पहिने जाने वाले वे कपड़े जो उसके ननिहाल द्वारा भेजे जाते हैं ।

खोळण-सं०पु०—बर्तनों आदि की धोवन ।

कहा०—आंधै कुत्तै रै खोळण भी खीर—अंधे कुत्ते के लिए धोवन (बर्तनों आदि के धोने का पानी) भी खीर है । अर्थात् अज्ञानी और असमर्थ व्यक्ति के लिए साधारण बात भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है ।

यौ०—खोळण-खाळण ।

खोळणौ, खोळबौ—देखो 'खंखोळणौ' (रू.भे.) उ०—तोलंतौ सोहै त्रजड़ खोळंतौ, खोणी खळां रै । रोळंतौ छड़ाळो, राजा टंटोळंतौ टाळ ।—दूदौ सुरतांणोत वीठू

खोळणहार, हारौ (हारी), खोळणियौ—वि० ।

खोळिओड़ो, खोळियोड़ो, खोळयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

खोळीजणौ, खोळीजबौ- कर्म वा० ।

खोलणौ, खोलबौ-क्रि०स० [सं० खुड, खुल = भेदने] १ किसी वस्तु के मिले या जुड़े हुए भागों को एक दूसरे से इस प्रकार अलग करना कि उस खुले भाग के अंदर या उसके पार तक आना जाना और टटोलना, देखना आदि हो सके. २ अवरोध आवरण को दूर करना. ३ ऐसी वस्तु जो हटाना या इधर-उधर करना जो किसी दूसरी चीज को छिपाए हुए हो । दरार करना, छेद करना. ४ बांधने या जोड़ने वाली वस्तु को अलग करना. ५ किसी बंधी हुई वस्तु को मुक्त करना. ६ किसी क्रम को चलाना या जारी करना. ७ ऐसी वस्तुओं को तैयार करना जो दूर तक रेखा के रूप में चली गई हों और जिस पर किसी का आना-जाना हो. ८ कोई ऐसा नया कार्य आरंभ करना जिसका लगाव सर्वसाधारण या बहुत से लोगों के साथ हो. ९ किसी कारखाने, दुकान, दफ्तर आदि का दैनिक कार्य आरम्भ करना. १० किसी गुप्त या गूढ़ बात को प्रकट या स्पष्ट कर देना. ११ किसी को अपने मन की बात कहने के लिए उद्यत करना. १२ भ्रष्ट करना । उ०—राजा उदियादीत रै लोहड़ा बेटा री अंतेउर छूं और पाछली सगळी मांड नै बात कही । मोनै छळ करनै मालजादी रांडां ल्याई । पछै म्हारी धरम खोलण नूं गोलो आयो, तरै गोला नै मारियो ।—जगदेव पंवार री वात

१३ शिकार किए गए पशु का चमड़ा उतारना । उ०—तठा उपरांयत सुवर खोलजै छै । साटां उतारजै छै सु कुण भांत रा दीसै छै जांणे रंगरेज री हाट खुली छै । जुदौ देगचां में वणायजै छै ।

—रा.सा.सं.

खोलणहार, हारौ (हारी), खोलणियौ—वि० ।

खोलाड़णौ, खोलाड़बौ, खोलाणौ, खोलाबौ, खोलावणौ, खोलावबौ—क्रि०स०, प्रे०रू० ।

खोलिग्रोड़ौ, खोलियोड़ौ, खोल्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खोलीजणौ, खोलीजबौ—कर्म वा० ।

खुलणौ—ग्रक० रू० ।

खोळाड़णौ, खोळाड़बौ, खोळाणौ, खोळाबौ—क्रि०स० ('खोळणौ' का प्रे०रू०) प्रक्षालन कराना, बर्तन आदि धुलवाना ।

खोळाणहार, हारौ (हारी), खोळाणियौ—वि० ।

खोळायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

खोलाड़णौ, खोलाड़बौ, खोलाणौ, खोलाबौ—क्रि०स० ('खोलणौ' का प्रे०रू०) खोलने का कार्य अन्य से करवाना, खुलवाना ।

खोलाणहार, हारौ (हारी), खोलाणियौ—वि० ।

खोळात, खोळायत, खोळायती—सं०पु० [सं०] १ गोद लिया हुआ पुत्र, दत्तक पुत्र. २ दत्तक या गोद लेने वाला माता पिता ।

खोळायोड़ौ—भू०का०कृ०— बर्तन में पानी डाल कर हिला कर धोया हुआ, प्रक्षालन किया हुआ (स्त्री० खोळायोड़ी)

खोलायोड़ौ—भू०का०कृ०—खुलवाया हुआ (स्त्री० खोलायोड़ी)

खोळावणौ, खोळावबौ—देखो 'खोळाणौ' (रू.भे.)

खोलावणौ, खोलावबौ—देखो 'खोलाणौ' (रू.भे.)

खोळावियोड़ौ—देखो 'खोळायोड़ौ' (रू भे.) (स्त्री० खोळावियोड़ी)

खोलावियोड़ौ—देखो 'खोलायोड़ौ' (रू.भे.)

खोळियोड़ौ—भू०का०कृ०—प्रक्षालन किया हुआ, बर्तन आदि पानी डाल कर हिला कर धोया हुआ (स्त्री० खोळियोड़ी)

खोलियोड़ौ—भू०का०कृ० —खुला हुआ, खोलने का कार्य किया हुआ, खोला हुआ (स्त्री० खोलियोड़ी)

खोळियौ—सं०पु०—गात, शरीर। (रू०भे०—खोळ)

खोळींडी—सं०स्त्री— खेत में बीज बोते समय कमर में बांधी जाने वाली वह थैली जिसमें बीज के दाने रखे रहते हैं तथा उसमें से चलते हुए बीज हल के पास बंधी नलिका में डालते रहते हैं ।

खोळी—सं०स्त्री०—१ गिलाफ, ग्रावरण. २ कंधे के दोनों ग्रोर लटकाई जा सकने वाली कपड़े की थैली जिसके दोनों ग्रोर लम्बी थैली होती है ग्रौर बीच से खुली होती है (रा.सा.सं.) (मि० 'रखी') ३ ऊंट के चारजामे की रकाब की रस्सी के ऊपर का कपड़ा ।

खोळीजणौ, खोळीजबौ—क्रि०स०, कर्म वा०—प्रक्षालन किया जाना, बर्तन आदि का पानी डाल कर हिला कर धोया जाना ।

खोलीजणौ, खोलीजबौ—क्रि०स०, कर्म वा०—खोला जाना ।

खोळीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—बर्तन आदि में पानी डाल कर हिला कर धोया हुआ । प्रक्षालन किया गया हुआ (स्त्री० खोळीजियोड़ी)

खोलीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—खोला गया हुआ (स्त्री० खोलीजियोड़ी)

खोळौ—सं०पु०—१ अंक, गोद । उ०—मिनखां नूं पय माय, तूं पावै किण तरह रौ। जणणी खोळै जाय, पय फिर नहिं पीणौ पड़ै ।
—बां.दा.

कहा०—खोळै मांयलै नै छोड़'र पेट मांयलै री ग्रास करणी—गोद वाले बच्चे को छोड़ कर पेट वाले अर्थात् गर्भस्थ शिशु की आशा रखना । प्रत्यक्ष या निश्चित वस्तु को छोड कर अनिश्चित की आशा करना ।

यौ०—खोळौ-फोळौ ।

२ कुर्ता या धोती का सामने की ओर नीचे लटकने वाला भाग जो कोई वस्तु आदि रखने हेतु झोलीनुमा बनाया जाता है ।

उ०—खत्रवट धरम सदा थां खोळै ।—रा.रू.

कहा०—गांव कनै ग्राय नै खोळा टांकणा—गांव के समीप आकर बहादुरी बताना, कायर के प्रति ।

३ भेंस (क्षेत्रीय) ४ पर्वत के अन्दर की गुफा ।

खोवणौ—वि०—१ नाश करने वाला, मिटाने वाला । उ०—हिवै मरै खळ हात, खगधारां कुळ खोवणा । सूंपै हेकण साथ, सिर वित घर वसुधा सुजस ।—बां.दा. २ गुमाने वाला । उ०—खाटी कुळ री खोवणा, नेपै घर-घर नींद । रसा कंवारी रावतां, बरसी को ही बींद ।—वी.स.

खोवणौ, खोवबौ—क्रि०स०—१ देखो 'खोणौ' (रू.भे.) उ०—सोनारी झूरै कहै, रे ठाकुर कुळ खोय । मूझ घड़ाई खोवणा, तूझ मढ़ाई होय ।
—वी.स.

२ देखो 'खोसणौ' (रू.भे.)

खोवणहार, हारौ (हारी), खोवणियौ—वि० ।

खोवाड़णौ, खोवाड़बौ, खोवाणौ, खोवाबौ, खोवावणौ, खोवावबौ—प्रे०रू० ।

खोविग्रोड़ौ, खोवियोड़ौ, खोव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

खोवीजणौ, खोवीजबौ—कर्म वा० ।

खोवाखूंदौ—सं०पु०यो०—लूट-खसोट, मारकाट ।

खोवाड़णौ, खोवाड़बौ, खोवाणौ, खोवाबौ—क्रि०स० ('खोणौ' का प्रे०रू० गुमवाना ।

खोवणहार. हारौ (हारी), खोवणियौ—वि० ।

खोवायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

खोवाईजणौ, खोवाईजबौ—कर्म वा० ।

खोवायोड़ौ—देखो 'खोमायोड़ौ' । (स्त्री० खोवायोड़ी)

खोविग्रोड़ौ—१ देखो 'खोसियोड़ौ' । (स्त्री० खोवियोड़ी)
२ गुमाया हुआ, खोया हुआ ।

खोवीजणौ, खोवीजबौ—१ देखो 'खोसीजणौ'. २ गुमा जाना, खो जाना ।

खोवीजियोड़ौ—१ देखो 'खोवीजियोड़ौ'. २ खोया गया हुआ, गुमाया गया हुआ । (स्त्री० खोवीजियोड़ी)

खोसणौ, खोसबौ–क्रि०स०—१ छीनना, झपटना. २ अनुचित रूप से अधिकार करना या किसी दूसरे की वस्तु जबरदस्ती ले लेना. ३ लूटना, डाका डालना। उ०—पैलौ **खोसै** पाघड़ी, हूंसै दिखाळूं दंत। कायर मोनै क्यूं कहै, सुद्ध सुभावां संत।—बां.दा.

खोसणहार, हारौ (हारी), खोसणियौ—वि०।

खोसाड़णौ, खोसाड़बौ, खोसाणौ, खोसाबौ, खोसावणौ, खोसावबौ—प्रे०रू०।

खोसिप्रोड़ौ, खोसियोड़ौ, खोसयोड़ौ—भू०का०कृ०।

खोसीजणौ, खोसीजबौ—कर्म वा०।

खोसरौ, खोसरौ–सं०पु०—वेश्या का दलाल।

खोसाखूंदौ—देखो 'खोवा-खूंदौ' (रू.भे.)

खोसाड़णौ, खोसाड़बौ, खोसाणौ, खोसाबौ–क्रि०स० ('खोसणौ' का प्रे०रू०) छीनने का कार्य दूसरे से कराना, अनधिकार अधिकार कराना। उ०—जके भड़ छेड़ **खोसाड़** अकबर जवन, हाथ **हूं** हीया हूंत हरियाा।—बां दा.

खोसाणहार, हारौ (हारी), खोसाणियौ—वि०।

खोसायोड़ौ—भू०का०कृ०।

खोसाईजणौ, खोसाईजबौ—कर्म० वा०।

खोसावणौ, खोसावबौ—रू०भे०।

खोसायोड़ौ–भू०का०कृ०—छिनवाया हुआ, खोसाया हुआ, छीनने का कार्य अन्य से कराया हुआ। (स्त्री० खोसायोड़ी)

खोसावणौ, खोसावबौ–क्रि०स० –देखो 'खोसाड़णौ' (रू भे.)

खोसावणहार, हारौ (हारी), खोसावणियौ—वि०।

खोसाविप्रोड़ौ, खोसावियोड़ौ, खोसाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

खोसावीजणौ, खोसावीजबौ—कर्म वा०।

खोसावियोड़ौ–भू०का०कृ०—खुसवाया हुआ, छिनवाया हुआ, किसी अन्य से छीनने का कार्य करवाया हुआ (स्त्री० खोसावियोड़ी)

खोसियोड़ौ–भू०का०कृ०—छीना हुआ, खोसा हुआ, अपने अधिकार में किया हुआ (स्त्री० खोसियोड़ी)

खोसौ–सं०पु०—लुटेरा, डाकू। उ०—बळ कर लूट लियौ सिंध बाधौ, **खोसां** माल मुलक रौ खाधौ।—चिमनजी कवियौ

खोह–सं०स्त्री० [सं० गुहा] १ गुफा, कन्दरा। उ०—१ खो मत जीवण बादळी, डूंगर **खोहां** जाय। मिळण पुकारै मुरधरा, रम-रम धोरां आय।—बादळी

उ०—२ सूअर एक **खोह** में रोकियौ छै सो सिकार खेल फिरतौ कदमपोसी करसै।—आमेर रा धणी री वारता

२ 'झुलसना' क्रिया का भाव। उ०—पोह महीने पाळौ पड़सी, खालड़ी रौ **खोह**। खालड़ी रौ खोह कीनौ, वाह रै सांई वाह।—लो.गी.

खोहण, खोहणी–सं०स्त्री० [सं० अक्षौहिणी] अक्षौहिणी सेना. चतुरंगिनी सेना जिसमें १०९३५० पैदल, ६५६१० घोड़े, २१८७० रथ, और ११८७० हाथी होते हैं। उ०—१ तेरह **खोहण** दळ मिळा, बाजइ खटह पखावज भेर।—बी.दे. उ०—२ खपे अठारह **खोहणी**, रख पंडव न्यारे। मार जरासिंध भूकपै, ढीली भूपारे।—भगतमाळ

खोहळ–सं०स्त्री० [सं० गुहा] १ दो पहाड़ों के बीच की भूमि, घाटी, कन्दरा, गुफा।

खोहळौ–सं०पु०—पानी का गड्ढा। उ०—जिण जायगा आयौ, बडा **खोहळा** दीठा, पांणी रौ निवास दीठौ।—नापे सांखले री वारता

यौ०—वाळौ, खोहळौ।

खोहिण, खोहिणि, खोहिणी—देखो 'खोहणी' (रू.भे.)

खौंगाळ—देखो 'खोगाळ' (रू.भे.)

खौंडौ, खौंडौ–वि० [सं० खंडित] १ वह (पात्र) जिसका किनारा टूटा हुआ हो. २ एक सींग टूटा हुआ (पशु)

सं०पु०—तलवार, खग, खड्ग।

खौखाट—तेज प्रवाह या तेज प्रवाह की ध्वनि।

खौड़—देखो 'खोड़' (रू.भे.)

खौड़ौ–वि०– देखो 'खोड़ौ' (रू.भे)

खौड़–सं०पु०—१ शंख (अ.मा.) २ क्यारियां बनाने का कार्य अथवा इस कार्य के करने की मजदूरी।

खौडिया–सं०स्त्री०– खजूर (अ.मा.)

खौडी–सं०स्त्री० १ घास-फूस एकत्रित करने, क्यारियां बनाने अथवा रेत, खाद आदि के ढेर को छितराने का लकड़ी का कंघे की भांति बड़े दांतेदार एक उपकरण. २ महीन किये हुए बेर. ३ भुरट को महीन पीस कर शक्कर मिला कर बनाया जाने वाला चूर्ण विशेष।

खौडौ—देखो 'खोडौ'। (रू भे.)

खौदौ–सं०पु०—बिना बधिया किया हुआ बैल।

कहा०—खोदा-खोदा आथड़ै'र बांठां रौ खोगाळ।

खौप, खौफ–सं०पु० [अ० खौफ] डर, भय, दहसत, आतंक।

खौर–सं०स्त्री०—१ वृद्धा ऊंटनी. २ भेंस। देखो 'खोर'।

खौरौ–सं०पु० [सं० क्षौर] १ एक प्रकार की खुजली (चर्म रोग) जिसमें चमड़ा बिल्कुल रूखा हो जाता है और बाल प्राय: झड़ जाते हैं। यह रोग कुत्तों और बिल्लियों में अधिक होता है. २ देखो 'खांर'. ३ शिर के बालों को जड़ में जमने वाला मैल।

खौळ–सं०स्त्री० (स्त्री० खोळी) १ हीर कोमल घास. २ दो तह का ओढ़ने का एक वस्त्र. ३ टीका. ४ देखो 'खोळ' (रू.भे.)

खौळियौ– शरीर। उ०—सूरवीर रौ सुभाव चाहे जिण ही **खौळिया** में होवै, सूरपणौ पलटै नहीं।—वी.स.टी.

खौळीड़ौ—देखो 'खोळींडौ'।

खौंळौ–वि० (स्त्री० खौळी) ढीला, शिथिल।

खौहण–सं०स्त्री०—अक्षौहिणी सेना। उ०—चाप करां नृप रांम चढ़ै, मांझ रजी तद भांण मंढ़ै, **खौहण** के असुरांण खपै, पंख सिवा पळ खाय अपै।—र.ज.प्र.

ख्यत्री-सं०पु० [सं० क्षत्रिय] क्षत्रिय, राजपूत। उ०—वीरमदेजी कह्यौ, पातसाहजी, म्हे हींदू हां, ख्यत्री धरम छां।—वीरमदे सोनगरा री वात

ख्यांत—देखो 'खांत'। उ०—तद भरमल ख्यांत कर दीठौ जे झबकौ किणरौ छै।—कुंवरसी सांखला री वारता

ख्यांतीलौ-वि० [सं० ख्यात] विचारशील, बुद्धिमान, चतुर, प्रवीण, दक्ष, निपुण। उ०—सुघड़ नाह रस कस लीजै, मुहंगौ मद पीवण मोलीजै। वालम घण सूं हंस बोलीजै, ख्यांतीला कमरां खोलीजै।

—सियाळा री गीत

ख्यात-सं०स्त्री० [सं०] १ इतिहास संबंधी बात। उ०—खूबी मिळी धारणा ख्यातां, जगदंवा तौ क्रपा जद।—बां.दा.

२ वृत्तान्त, वर्णन। उ०—मुणी मैं ख्यात अहीणी मत्त, गोविंद न लाधी थारी गत्त।—ह.र. ३ कथा. ४ वन (अ.मा.)

५ यश (अ.मा.)

वि०—प्रसिद्ध, विदित।

ख्यातवी-वि० [सं० ख्यात] प्रसिद्ध।

ख्याति-सं०स्त्री० [सं०] प्रसिद्धि, शोहरत, नामवरी।

ख्याल-सं०पु० [अ०] १ ध्यान, विचार।

क्रि०प्र०—आणौ, करणौ, राखणौ।

मुहा०—१ ख्याल आणौ—ख्याल में आना, ध्यान में आना.

२ ख्याल राखणौ—ध्यान रखना, विचार करना, याद रखना.

३ ख्याल रहणौ—ध्यान रहना, याद रहना।

२ अनुमान, अन्दाज।

मुहा०—ख्याल करणौ—अन्दाज लगाना।

३ भाव, सम्मति. ४ आदर, लिहाज. ५ एक विशेष प्रकार का गान जिसमें केवल एक स्थायी पद और एक अंतरा होता है तथा अधिकतर शृंगार रस का वर्णन होता है. ६ खेल, क्रीड़ा।

उ०—१ ऊधड़ै जरदां कड़ी खड़ी चंडी ख्याल ईखै।

—पहाड़ खां आढ़ौ

उ०—२ लेवा मुंड सूर गणां भूतेस चालवा लागा, खंचे रथां दिवेसां भाळवा लागा ख्याल।—रा.रू.

यौ०—ख्याल-तमासौ।

७ नाच-गान का खेल. ८ दिल्लगी, मजाक, मखौल. ९ ऐतिहासिक, पौराणिक प्रेम-गाथा संबंधी विभिन्न रसोंयुक्त आख्यान जो नृत्य, गीत आदि अभिनय के साथ रात्रि भर तक ग्रामीण जनता द्वारा मनोविनोद के लिए नाटक के रूप में खेला जाता है.

१० ऐतिहासिक कथायें जिनको राजस्थान में ग्रामीण नृत्य आदि अभिनय के साथ पद्य रूप में गाई जाती है या खेली जाती है।

ख्यालक-वि०—१ ख्याल या कौतुक करने वाला. २ वाद्यकार।

ख्यालवती-वि०स्त्री०—हँसी-ठठोली व दिल्लगी करने वाली।

ख्याली-वि०—१ कल्पित, फर्जी, मनगढ़न्त. २ खब्ती, सनकी, वहमी।

३ ख्याल करने या देखने वाला। उ०—गुड़ै गिर-कंध मदंध मुगल्ल। ख्याली रिखराज हंसै खलखल्ल।—मे.म.

ख्योणी-सं०स्त्री० [सं० क्षोणी] पृथ्वी, धरा (डि.नां.मा.)

ख्योणीपति-सं०पु० [सं० क्षोणीपति] महिपति, राजा, नरेश (डि.नां.मा.)

खर्ब-सं०पु० [सं० खर्ब] नौ निधियों में से एक (नां.मा.)

ख्रिस्टांन-सं०पु०—ईसाई, क्रिस्तान।

ख्वाजा-सं०पु० [फा० ख्वाजा] १ मालिक, सरदार. २ ऊँचा फकीर, पीर. ३ नवाबों के हरम का नपुंसक प्रहरी. ४ अजमेर में स्थित ख्वाजा पीर की दरगाह. ५ एक बादशाही पद।

ख्वाजेसरौ-सं०पु० [फा० ख्वाजा] नवाबों के हरम का नपुंसक प्रहरी या सेवक।

ख्वाब-सं०पु० [फा० ख्वाब] स्वप्न। उ०—जंगळधर जंग री, लाय किण आय लगाई। खतरनाक ख्वाब में, मनै पीरां फरमाई।

—मे.म.

ख्वार-वि० [फा० ख्वार] १ खराब, बरबाद, नष्ट. २ अनादृत, तिरस्कृत। उ०—अर मित्रां नूं ख्वार बेइज्जत करणौ मत विचारै।

—नी.प्र.

ख्वारी-सं०स्त्री० [फा०] १ बरबादी, खराबी, नष्टता। उ०—पातसाय नौरंगजेब खुदाय का अवतार, अपनी सब ख्वारी करी तहबरखां गंवार।—रा.रू. २ अनादर, अपमान, तिरस्कार।

ख्वालबाह-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

ख्वास—देखो 'खवास' (रू.भे.) उ०—ख्वास, पासवान, क्रपापात्र, अत्य रास्ट भर, सुघर सुनाल सभ्य सबको सुहायौ तूं।—ऊ.का.

ख्वाहिस-सं०स्त्री० [फा० ख्वाहिश] इच्छा, कामना, अभिलाषा।

ख्वाहिसमंद-वि० [फा० ख्वाहिशमंद] ख्वाहिश रखने वाला, इच्छुक, आकांक्षी।

ग

ग—क वर्ग का तीसरा वर्ण जिसका उच्चारण स्थान कंठ है एवं इसका प्रयत्न अघोष अल्पप्राण है।

गंऊं-सं०पु० [सं० गोधूमः] गेहूँ।

गंग-सं०पु०—१ अकबरकालीन एक कवि. २ योग के अनुसार नाक का दाहिना छिद्र। उ०—उंधा कमळ सुलटि करि सूधा, अनहद सब्द उचारा। गंग जमन मधि रवि ससि मेळा, सहज भया मतवारा। —ह.पु.वा.

३ तीर, बाण (ह.नां.)

सं०स्त्री० [सं० गङ्गा] ४ गंगा नदी (ह.नां.) उ०—१ मिळिये तट ऊपटि विथुरी पिळिया घण, धर धाराधर घणी। केस जमण गंग कुसुम करंबित, वेणी किरि त्रिवेणी वणी।—वेलि.

उ०—२ बळ बळ दीप निसंक बळ, तू क्यू लाज मरंत। पिता घी घर पांमणी, उलटी गंग बहंत।—अज्ञात

यौ०—गंगकाज, गंगगरधर, गंगजळ, गंगवार, गंगवधर, गंगसिर।

५ मकान की नींव।

उ०—संमत् ६०१ रै वैसाख सुद ३ रोहणी नक्षत्र मध्यांन्ह विजय मोहरत पाटण रा कोट री गंग भरी।—नैणसी

गंगई-सं०स्त्री०—मैना जाति की एक चिड़िया।

गंगकाज-सं०पु०यौ० [सं० गंगिकाज] गंगा का पुत्र भीष्म (डिं.को.)

गंगगरधर-सं०पु०यौ० [सं० गंग+गर=विष+धर] शिव, महादेव।

उ०—बछूटै कड़ा बरमां रुधर बमासा, गंगगरधर खड़ा तमासागीर। —हुकमीचंद खिड़ियौ

गंगजळ-सं०पु०यौ० [सं० गङ्गा+जल] १ गंगा नदी का जल जो बहुत पवित्र माना जाता है. २ एक प्रकार का घोड़ा विशेष (शा.हो).

गंगधर-सं०पु०यौ० [सं० गङ्गा+धर] गंगा को धारण करने वाला, शिव, महादेव (ह.नां., अ.मा.)

गंगवर-सं०पु०यौ० [सं० गङ्गा+वर=पति] गंगापति, सागर, समुद्र।

गंगवध-सं०पु०—शिव, महादेव।

गंगवार-सं०पु० [सं० गंगा+वारि] गंगाजल। उ०—बादळा कनक रा गंगवार। धूमरां मंजरां तुळछधार।—वि.सं.

गंगसिर, गंगसीस-सं०पु० [सं० गङ्गा+शिरस्] शिव, महादेव। (ना.डिं.को., नां.मा.)

गंगा-सं०स्त्री० [सं० गङ्गा] १ भारतवर्ष की एक प्रधान नदी जो हिमालय पर्वत से निकल कर उत्तर प्रदेश, बिहार व बंगाल में बहती हुई १५६० मील की यात्रा कर कलकत्ते के समीप बंगाल की खाड़ी में गिरती है। हिन्दुओं ने इस नदी के जल को अधिक पवित्र मान कर इसे धर्म में महत्व दिया है। हिन्दुओं के प्रधान तीर्थ प्रयाग, हरिद्वार, काशी, बद्रीनाथ आदि इसी के किनारे पर स्थित हैं।

पर्याय०—अघमोचण (न), ईससीस, खापगा, खितग, गंग, गलअंग, गोमगमण, जगपावन, जटसंकरी, जाह्नवी, त्रिपथगा, त्रिपथा, देवनदी, नदसुरपति, पापमोचन, भागीरथी, भीसमआई, मंदाकणी(नी), मोखदा, रिखधुनि, सरगतरंगण, सरितवरा, सिद्धआपगा, सरगनदी, सुरनदी, सुरसुरी, हरवांम, हरसिरा, हरिपदी, हेमवती।

मुहा०—१ गंगा उठाणी—गंगा की कसम खाना. २ गंगाजळ (गंगाजळी) उठाणी—गंगा का जल हाथ में लेकर कसम खाना. ३ गंगा नां'णी—पाप खतम करना, निश्चित होना. कृतार्थ होना. ४ गंगा लाभ होणी—मरना, मरने के बाद गंगा में अस्थि-विसर्जन होना. ५ वै'ती गंगा में हाथ धोणी—किसी ऐसी बात से लाभ उठाना जिससे सब लाभ उठा रहे हों या जो सबके लिये खुला हो, अच्छा अवसर देख कर फायदा उठा लेना।

कहा०—१ गंगा गियां गंगादास, जमना गियां जमनादास—गंगा गये तो गंगादास बन गये, जमुना गये तो जमनादास बन गये; अवसरानुकूल अपना परिवर्तन करने वालों या मुंहदेखी बात कहने वालों के प्रति। अपने-अपने मतानुसार, अपना-अपना मार्ग ग्रहण करना. २ गंगा गयां गधौ किसौ घोड़ौ व्है—गंगा में स्नान करने से गधा घोड़ा नहीं बन सकता। बाहरी प्रभावों से किसी की वास्तविक प्रकृति (स्वभाव) में अन्तर आना कठिन होता है. ३ मन मां मैल नै गंगा न्हावै—मन में तो कुटिलता एवं पाप भरा है और गंगा में स्नान कर पवित्र होना चाहते हैं; ऊपर से धर्मध्वज एवं अन्दर से कपटी व्यक्तियों के प्रति; ढोंगी व्यक्तियों के प्रति।

रू०भे०—गंग, गंगि।

यौ०—गंगाजमुनी, गंगाजळ, गंगाजळी, गंगाजात्रा, गंगादसमी, गंगाद्वार, गंगाधर, गंगानंद, गंगापथ, गंगापुत्र, गंगामग, गंगासागर, गंगेस, गंगोतरी, गंगोदक।

अल्पा०—गंगड़ी।

२ राजा शांतनु की पत्नी एवं भीष्म की माता (महाभारत)

वि०वि०—कहा जाता है कि कुरु देश के राजा शांतनु से गंगा ने इस शर्त पर विवाह किया था कि मैं जो चाहूँगी वही करूँगी। शांतनु से गंगा को सात पुत्र उत्पन्न हुए, उन सबको गंगा ने जनमते ही जल में फेंक दिया था। जब आठवां पुत्र उत्पन्न हुआ तब शांतनु ने उसे जल में फेंकने से मना किया तब गंगा ने कहा—महाराज आपने अपनी प्रतिज्ञा तोड़दी अतः मैं जाती हूँ। मैंने देव-कार्य की सिद्धि के लिये आपके साथ सहवास किया था। ऐसा कह कर वह चली गई। यही आठवां पुत्र देवव्रत ही आगे चल कर भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वि०—सफेद, श्वेत, उज्ज्वल* (डिं.को.)

गंगागड़बी, गंगागडबी-सं०स्त्री० [अनु०] हुंकार करने से उत्पन्न शब्द,

हुंकार। उ०—गंगागड़हि दुहु ओड़ा वळ गाजै, सागड़दि तबल बाजै रिणतूर। रागड़दि राम रांवण जुध रोपै, सागड़दि ग्रमर ग्रपछरगण ग्रांण।—र.रू.

गंगाजमना, गंगाजमनी–सं०स्त्री०यौ०—१ वह वस्तु जो किन्हीं दो भांति के पदार्थों से बनी हो। उनमें एक पदार्थ बढ़िया तथा दूसरा घटिया भी हो सकता है. २ एक प्रकार की चिलम. ३ एक प्रकार का कपड़ा।

वि०—१ मिला-जुला, दोरंगा. २ स्याह व सफेद* (डि.को.)

गंगाजळ–सं०पु०यौ० [सं० गङ्गा+जल] १ गंगा नदी का जल जो बहुत पवित्र माना गाया है।

वि०वि०—हिन्दू जाति में ग्रायोजित किया जाने वाला एक विशेष समारोह जो प्रायः किसी तीर्थयात्रा की संपूर्णता के पश्चात् घर पर लौटने पर या परिवार के बड़े-बूढ़े सदस्य के मृत्योपरान्त उसका ग्रस्थि-विसर्जन गंगा में करके पुनः लौटने पर बाहरवें दिन ग्रपने जाति व संबंधियों की उपस्थिति में किया जाता है। इस ग्रायोजन में जो तीर्थ यात्रा से लौटते समय गंगा का पवित्र जल ग्रपने साथ लाया जाता है उसे किसी कुए, मंदिर ग्रादि उचित स्थान पर रख दिया जाता है। फिर घर से ढोल बाजे सहित स्त्री व पुरुष उस जल-पात्र को लेने पहुँचते हैं। वहां जल-पात्र की यथा-विधि पूजा कर मिट्टी के पवित्र जलपात्रों में ग्रन्य जल के साथ गंगाजल मिला कर सुहागिन वधुग्रों के सिर पर वे पात्र रख कर पुनः घर लौटा जाता है। लौटते समय कई बार बाजे की ध्वनि व लय से जल-पात्र वाली वधुग्रों की देह हिलने लगती है ग्रौर जल उन पात्रों से बाहर निकलने लगता है। इसे लोग गंगा देवी का पिंड में ग्राना, उबकना या उमड़ना कहते हैं ग्रौर बहुत शुभ मानते हैं। इस ग्रायोजन पर ग्रामंत्रित लोगों को गंगाजल का ग्राचमन कराया जाता है ग्रौर फिर सामूहिक भोज होता है।

कहा०—गधै नै कईं ठा गंगाजळ केड़ो व्है—मूर्ख को ज्ञान के विषय में क्या बोध ?

२ एक विशेष रंग का घोड़ा (शा.हो.) ३ एक प्रकार का बढ़िया कपड़ा (रा.सा.सं.) ४ डिंगल के वेलिया सांणोर (छोटा सांणोर) छंद का भेद विशेष जिसके प्रथम द्वाले में १० लघु २७ गुरु कुल ६४ मात्रायें तथा इसी प्रकार शेष द्वालों में १८ लघु २६ गुरु कुल ६२ मात्रायें होती हैं (पिं.प्र.)

गंगाजळी–सं०स्त्री०—१ कांच या धातु का एक प्रकार का पात्र विशेष जिसमें तीर्थयात्री गंगाजल भर कर ले जाते हैं. २ टोंटीदार जल-पात्र. ३ एक प्रकार का घोड़ा विशेष (शा.हो.)

गंगाजात्रा–सं०स्त्री०यौ० [सं० गङ्गा+यात्रा] १ मरणासन्न व्यक्ति का गंगा के तट की ग्रोर मरने हेतु गमन. २ मृत्यु।

गंगादसमी–सं०स्त्री०यौ०—ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दसमी तिथि।

गंगाद्वार–सं०पु०यौ०—१ गंगा का उद्‌गम स्थल, एक तीर्थ. २ हरिद्वार।

गंगाधर–सं०पु०यौ० [सं० गङ्गा+धर] १ शिव, महादेव (नां.मा.)

उ०—गंगाधर गंगा तजै, कोई पाप करम होवै सुख देण। जै धरम कियां नरकां पड़ै, तोही रांम न लोपै बाप रा बैण।—गी.रां.

२ एक ग्रौषधि का नाम जो नागरमोथा ग्रौर मोचरस ग्रादि के योग से बनती है। यह ग्रौषधि संग्रहणी रोग में दी जाती है (ग्रमरत) ३ चौबीस ग्रक्षरों का एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ८ रगण होते हैं।

गंगानंद–सं०पु०यौ० [सं० गंगा+नंद] १ स्वामी कार्तिकेय (नां.मा.) २ भीष्म पितामह।

गंगापथ–सं०पु०यौ० [सं० गङ्गा+पथ] १ ग्राकाश, व्योम, गगन. २ ग्राकाश गंगा। (डि.को.)

गंगापाट–सं०स्त्री०—एक भौंरी जो घोड़े के तंग के नीचे होती है। यह भौंरी यदि तंग के बाहर हो तो शुभ मानी जाती है। तंग के नीचे होना ग्रशुभ मानते हैं (शा.हो.)

गंगापुत्र–सं०पु०—१ गंगा के गर्भ से उत्पन्न राजा शांतनु का पुत्र भीष्म. २ ब्राह्मणों की एक जाति जिसके व्यक्ति प्रायः गंगा ग्रादि नदियों के किनारे पर रहते हैं एवं नदियों के घाटों पर दान ग्रादि प्राप्त करते हैं. ३ इस जाति का व्यक्ति. ४ गंगा नदी से प्राप्त छोटे-छोटे पत्थर व कङ्कर जिनकी पूजा भी की जाती है।

गंगामग–सं०पु०यौ०—१ तीन की संख्या*। २ ग्राकाश। (मि० गंगापथ)

गंगासपतमी, गंगासप्तमी–सं०पु०—वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि।

गंगासागर–सं०पु०—१ एक तीर्थ-स्थान जहाँ गंगा सागर में मिलती है. २ टोंटीदार जल-पात्र।

गंगासातम—देखो 'गंगासपतमी' (रू.भे.)

गंगासुत–सं०पु०यौ०—१ भीष्म. २ स्वामी कार्तिकेय (डि.को.)

गंगिकाज–सं०पु०—गंगा पुत्र, भीष्म (डि.को.)

गंगेड़–सं०स्त्री०—१ नशा. २ नशे की हालत में ग्राने वाला चक्कर।

गंगेटियो–सं०पु०—जाति विशेष का घोड़ा (शा.हो.)

गंगेय–सं०पु० [सं० गांगेय] १ गंगा का पुत्र, भीष्म पितामह. २ स्वामी कार्तिकेय। ३ सोना, स्वर्ण (ह.नां)

गंगेरण–सं०पु० [सं० गांगेरुकी] एक पौधा विशेष जो ग्रौषधालय में चतुर्विधबला के ग्रन्तर्गत माना जाता है ग्रौर सहदेई के पौधे के समान होता है।

गंगेव–सं०पु० [सं० गांगेय] १ गंगा-पुत्र, भीष्म (डि.को.)

उ०—नमो दुजरांम दांमोदर देव, नमो गुरु द्रोण करन्न गंगेव। २ स्वामी कार्तिकेय। —ह.र.

गंगेस–सं०पु० [सं० गंगेश] शिव, महादेव।

गंगोतरी–सं०स्त्री० [सं० गंगावतार] गढ़वाल जिले में हिमालय पर्वत का वह स्थान जहाँ गंगा का उद्‌गम स्थान है (तीर्थस्थान)

गंगोद—सं०पु०—गंगाजल। उ०—यौं मुख बीड़ी आप यौं गंगोद अचाया।—वं.भा.

गंगोदक—सं०पु० [सं०] १ देखो 'गंगोद'। उ०—एक बांमरण तापस कोई एक गंगाजी सूं कावड़ एक गंगोदक री आंण ने सोमइयै लिंग ऊपर चाढ़ै।—नैरणसी २ चौबीस अक्षरों का एक वर्ण वृत्त।

गंगोळियौ—सं०पु०—एक प्रकार का खट्टा नींबू जिसका छिलका दानेदार होता है।

गंज—सं०पु० [सं० कञ्ज, खंज] १ एक प्रकार का रोग जिसमें शिर के बाल उड़ जाते हैं. २ छोटी-छोटी फुन्सियां निकलने का शिर का एक रोग. ३ काव्य छंद का एक भेद (पिं.प्र.) ४ ज्योतिष शास्त्र के २७ योगों में से एक। किसी शुभ कार्य के करने में इस योग की प्रथम सात घटि अशुभ मानी जाती है.

[सं० गंजा] ५ शराबघर. ६ शराब। उ०—घर घर औघट घाट टाट निस दीह कुटावै, दिल नहिं लेवै दाट लाट गंज हाट लुटावै।—ऊ.का.

७ ढेर, राशि, समूह। उ०—या सुणतां ही जांणं बारूद रा गंज मैं दमंग दीधौ।—वं.भा. ८ घुंघची, गुंजाफल. [रा०] ९ ऊँट। १० युद्ध. [फा०] ११ खजाना, कोष। उ०—लोभियां कज गंज समपण लछी।—र.ज.प्र.

गंजका—सं०स्त्री०—एक प्रकार का वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में पहले दीर्घ एवं फिर लघु इस क्रम से कुल बीस वर्ण होते हैं।

गंजगोळौ—सं०पु०—तोप का वह गोला जिसमें बहुत सी छोटी-छोटी गोलियां भरी रहती हैं।

गंजण—सं०पु० [सं० गंजन] १ संगीत में अष्टताल के आठ भेदों में से एक।

वि०—नाश करने वाला, मिटाने वाला। उ०—१ रिम गंजण सिंघ मछरियौ राजा, जो जिण ठांम स जुवा-जुवा।—द.दा.

उ०—२ गिरतनया पत सिख अभ गंजण, सुध निस बासर सेवै।—र.रू.

२ पराजित करने वाला। उ०—गिर आसिया अगंजी गंजण, वीक हरै खग दीनी वेळ।—द.दा. ३ दबाने वाला। उ०—विरुदावळी हसती वरीस अवनीस, लाख सांसण कोड़ि वरीस। अडंड डंडण अगंजी गंजण, अनमी असूत ताही नमी भूतकरण।—रा.रू.

गंजणरोर—सं०पु०—मेघ, बादल (नां.मा.)

गंजणौ—वि० [सं० गंजन] देखो 'गंजण' (रू.भे.) उ०—सोनंग साहां गंजणौ सोनंग साहां साल। परम तणौ वसियौ पुरां, धरम सुरां चौ ढाल।—रा.रू.

गजणौ, गंजबौ—क्रि०स०—१ नाश करना, नष्ट करना, मारना।

उ०—अखमाल कमंधे बळ अथाह, गंजण खळां बालौ सगाह।—रा.रू.

२ जीतना, पराजित करना। उ०—हैदल कळळ पायदळ हूंकळ, सीसोदै लड़तै संनद्ध। गहकै हो बीजागढ़ पतियां, गंजै अगंजी त्रिकुट-गढ़।—महाराणा लाखा रौ गीत ३ दबाना, दमन करना।

उ०—मल्हनास इत्यादिक राजा नूं रजोगुण रै उफांण दंड लेले'र गंजिया।—वं.भा.

गंजणहार, हारौ (हारी), गंजणियौ—वि०।

गंजिओड़ौ, गंजियोड़ौ, गंज्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गंजीजणौ, गंजीजबौ—कर्म वा०।

गंजन—वि० [सं०] देखो 'गंजण' (रू.भे.)

गंजवाळ—वि०—१ पराजित करने वाला। उ०—ओट कोट पैठा सह आसुर, गंजवाळ वळियौ गाढ़ां गुर।—रा.रू. २ नष्ट करने वाला, मिटाने वाला।

गंजाग्रह—सं०पु०यौ० [सं० गंजागृह] शराब की दूकान, शराब बेचने वाले का घर। उ०—पदमणि पूगळ री ऊगळ गळ आगै। लंजा हंजा दे गंजाग्रह लागै।—ऊ.का.

गंजार—सं०स्त्री०—तोप के छूटने की आवाज, भड़काने की ध्वनि।

उ०—गोळाल कर गंजार, पावेस ता कुण पार।—प्रे.रू.

गंजियौ—वि०—देखो 'गंजौ' (रू.भे.)

गंजी—सं०स्त्री०—मशीन से बनी हुई या सिली हुई छोटी कुरती या बंडी जो शरीर पर कमीज आदि के नीचे पहनी जाती है, बनियान।

उ०—सोचतौ-सोचतौ माथौ जोर सूं बटीड़ा मारण लागौ अर आंसुवां सूं गंजी भीजगी।—बरसगांठ

गंजीफा—सं०पु० [फा०] एक खेल जो आठ रंग के ९६ पत्तों से खेला जाता है। यह खेल तीन आदमियों से खेला जाता है।

गंजेरू—सं०पु०—भीम (अ.मा.)

गंजेड़ी—वि०—गांजा पीने वाला, नशेबाज।

गंजौ—वि० [सं० कंज, खंज] (स्त्री० गंजी) १ जिसके गंज रोग हो गया हो; जिसके सिर के बाल झड़ गये हों।

कहा०—१ कांणा खोड़ा कायरा सिर से गंजा होय। वांनै जद ही छेड़ियै, हाथ में डंडा होय—काना, खोड़ा, कायरा और गंजा इन चार प्रकार के व्यक्तियों से सदैव सतर्क रहना चाहिए (व्यंग्य)

२ गंजे नै नख नहीं देणा हा—गंजे को नाखून दे देने से वह सिर के बाल खुजला २ कर लहूलुहान कर देता है। दुष्ट व्यक्ति को कोई खतरनाक शस्त्र या कोई अन्य अधिकार मिलने पर उसका सदैव दुरुपयोग ही होता है।

[रा०] २ गांजा नामक नशीला पदार्थ।

गंठ—सं०स्त्री० [सं० ग्रंथि] १ ग्रंथि, गिरह. २ शरीर के अंग का जोड़. ३ गन्ने की पोर. ४ गट्ठा, घास-फूस का बंधा बोझ. ५ माया-जाल। उ०—गळै गौ भ्रम बिछूटी गंठ, करौ हरि बात लगाड़िय कंठ।—ह.र. ६ एक रोग. देखो 'गंठियौ' ७ रस्सी आदि का जोड़। ८ कुटिलता। उ०—दिल्ली सूं उत्तर दिसा, जमण तणै उप कंठ। ऊतरियौ मिळ आपरां, गुंभ प्रकासण गंठ।—रा.रू.

गंठकटौ—सं०पु०—गांठ में बंधे रुपये-पैसों को काट लेने वाला, गिरह-कट।

गंठणौ, गंठबौ—क्रि०स० [सं० ग्रंथन] १ गांठना. २ मित्रता करना. ३ धन प्राप्त करना. ४ जूती सीना या बनाना. ५ कस कर बांधना।

गंठणहार, हारौ (हारी), गंठणियौ—वि०।

गंठवाणौ, गंठवाबौ, गंठवावणौ, गंठवावबौ—प्रे०रू०।

गंठाड़णौ, गंठाड़बौ, गंटाणौ, गंठाबौ, गंठावणौ, गंठावबौ—क्रि०स०, प्रे०रू०।

गंठियोड़ौ, गंठियोड़ौ, गंठयोड़ौ—भू०का०कृ०।

गंठीजणौ, गंठीजबौ—क्रि० कर्म वा०।

गंठाई—सं०स्त्री०—१ गांठने का कार्य. २ गांठने की मजदूरी. ३ मित्रता करने का कार्य।

गंठाणौ, गंठाड़बौ—क्रि०स० ('गंठणौ' का प्रे०रू०) गंठाना, गांठने का कार्य अन्य से करवाना, मित्रता करवाना।

गंठाणहार, हारौ (हारी), गंठाणियौ—वि०।

गंठायोड़ौ—भू०का०कृ०।

गंठाईजणौ, गंठाईजबौ—कर्म वा०।

गंठायोड़ौ—भू०का०कृ०—गांठने का कार्य अन्य से कराया हुआ।

गंठावणौ, गंठावबौ—देखो 'गंठाणौ' (रू.भे.)

गंठावणहार, हारौ(हारी), गंठावणियौ—वि०।

गंठाविग्रोड़ौ, गंठावियोड़ौ, गंठाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गंठावीजणौ, गंठावीजबौ—कर्म वा०।

गंठावियोड़ौ—भू०का०कृ०—गंठाया हुआ, गंठाने का कार्य अन्य से कराया हुआ। (स्त्री० गंठावियोड़ी)

गंठियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ गंठा हुआ. २ कस कर बंधा हुआ। (स्त्री० गंठियोड़ी)

गंठियौ—सं०पु० [सं० ग्रंथिल] १ जमीन पर फैलने वाली एक प्रकार की ग्रंथीयुक्त तंतु वाली घास. २ एक रोग जिसमें अंगों के जोड़ में विशेष कर घुटनो में सूजन और पीड़ा होती है।

गंठीजणौ, गंठीजबौ—क्रि० कर्म वा०—गांठा जाना मित्रता किया जाना, कस कर बंधा जाना।

गंठीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—गांठा गया हुआ, मित्रता किया गया हुआ, कस कर बांधा गया हुआ। (स्त्री० गंठीजियोड़ी)

गंठीलियौ—सं०पु०—एक प्रकार का घास विशेष (क्षेत्रीय)

गंठेली—वि०—गाठ वाली। उ०—निकळै मिरड़ां लार गठेली सूखी सांकळ। घर कोटां रै ध्येय पड़ी लद लकड़ यां वाखळ।—दमदेव

गंठौ—सं०पु० [सं० ग्रंथिक] १ गांठ, गट्ठर, बोझा. २ ऊंट पर लदा हुआ लकड़ियों का बोझा।

गंड—सं०पु० [सं०] १ कनपटी, गंडस्थल. २ हाथी का कुंभस्थल। उ०—गडामारि बैसारिया नीठ गज्जं, रुग्रामाल फेरै करै झाड़ि रज्जं।—वचनिका ३ गंडा जो गले में पहिना जाता है, तावीज. [रा०] ४ मलद्वार, गुदा (रू.भे.—गांड)

गंडक—सं०पु०—(स्त्री० गंडकड़ी) कुत्ता, श्वान।

उ०—गैला गंडक गुलांम, बुचकारयां बाथे पड़ै। कूटयां देवै कांम, रीस न कीजै राजिया।—किरपाराम

कहा०—१ अकेलौ गंडक भुसै क पातळ चाटै—अकेला कुत्ता या तो भौंकता है या पातल चाटता रह जाता है; अकेला व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता, उसे दूसरे व्यक्तियों की सहायता की परम आवश्यकता होती है. २ गांव लारै गंडक लादै—प्रत्येक गांव में कुत्ते तो होते ही हैं। थोड़े-बहुत बदमाश या पतित लोग प्रायः सभी जगह मिलते हैं. ३ गंडकड़ हूं गोठीपणा छैनाळ ना हूं संग—कुत्ते अर्थात् दुष्ट व्यक्ति से क्या मित्रता और कुलटा स्त्री का क्या साथ? इन दोनों से दूर ही रहना उचित है. ४ गंडकड़ै री पूंछ री बळ बारा बरस भूंगळी में राखै तौ भी नी नीकळै—कुत्ते की पूंछ बारह वर्ष तक भूंगळी में सीधी रखी जाय तब भी बाहर निकलने पर वह टेढ़ी की टेढ़ी रहेगी। पड़ी हुई कुटेव या बुरी प्रकृति बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं बदलती. ५ गंडकड़ी खांदै लेगी पर हटवाड़ी मावणी—कुतिया को कंधे पर बैठा कर भी साप्ताहिक हाट में जाना। कठिनाई एवं तकलीफ सहन करके भी अपना शौक पूरा करना। ६ गंडकां हूं छांनी गळियां नहीं—दुष्टों से कोई अवगुण छिपा हुआ नहीं।

रू०भे०—गिंडक।

अल्पा०—गडकड़ौ।

महा०—गंडकड़।

गंडकी—सं०स्त्री० [सं०] १ एक नदी जो नैपाल में हिमालय से निकल कर पटना के पास गंगा में मिल जाती है. २ सत्रह मात्राओं का एक ताल (संगीत)

गंडमाळ—सं०स्त्री० [सं० गंडमाला] १ एक रोग जिसमें गले में ग्रंथि या गांठ उठती है। धीरे-धीरे पास-पास में बहुत सी गांठें हो जाती हैं और रोग भयंकर हो जाता है। इसका उपचार भी बड़ी कठिनता से होता है। गलकंड, कंठमाला. २ घोड़े का एक रोग विशेष (शा.हो.)

गंडसूर—सं०पु०—सूअर की आकृति से मिलता-जुलता एक जानवर जो प्रायः मनुष्य की बस्ती में गंदे स्थानों पर रहता है और मनुष्य के मल का भक्षण करता है। सूअर की भांति इसके मुंह के बाहर दांत नहीं निकले हुए होते। मेहतर इसे पालते भी हैं और मार कर इसके मांस का प्रयोग भी करते हैं। ग्राम-शूकर।

गंडासी—१ देखो 'गंडासौ' (अल्पा०) २ वस्तुओं को कस कर पकड़ने का ओजार, सडासी. ३ एक प्रकार का शस्त्र।

गंडासौ—सं०पु० [सं० कंठाशी अथवा कंठासी] १ चौपायों के खाने के लिये चारे या घास के टुकड़े करने का हथियार जो दो फुट के लगभग लम्बा होता है। यह एक लकड़ी के दस्ते में जुड़ा चौड़े व चपटे लोहे का धारदार ओजार होता है. २ एक प्रकार का शस्त्र।

गंडियौ—वि०—देखो गांडू'। उ०—रंडियां का आसक, गडियां का यार। भड़वां का दोस्त, बड़भूओं का प्यार।—दुरगादत्त बारहठ

गंडी—सं०स्त्री०—चूतड़, मलद्वार ।

गंडूपदभव—सं०पु० [सं०] शीशा नामक धातु, जस्ता (डिं.को.)

गंडूपदी—सं०पु०—गिजाई, एक कीट ।

गंडो, गंडौ—सं०पु० [सं० गंडक] १ गांठ जो किसी रस्सी या धागे में लगाई जाय. २ वह बटदार तागा जिसमें मंत्र पढ़ कर गांठ लगाई जाती है । इसे लोग प्राय: रोग और भूत-प्रेत की बाधा या पीड़ा दूर करने के लिये गले में बांधते हैं. ३ वह ताबीज जो मंत्रादि से तैयार किया गया हो. ४ घोड़े की गरदन के साथ कसा जाने वाला तंग ।

गंतव्य—सं०पु० [सं०] १ जानने योग्य । उ०—मंतव्य मांन, गंतव्य ग्यांन, बंदक विधांन, धर धंय ध्यांन ।—ऊ.का. २ पहुंचने का स्थान ।

गंता—वि०—यात्री, राहगीर । उ०—राफां झरणावै गिरणावै रोता, गंता गिरणावै करमां रा गोता ।—ऊ.का.

गंदगी—सं०स्त्री० [फा०] १ मलिनता, मैलापन. २ अशुद्धता, अपवित्रता. ३ मैला, मल. ४ दुर्गंध ।

गंदल—सं०पु० [सं० कंदल] १ कोंपल, किसलय. २ मूली प्याज आदि में होने वाला पत्तों का डंठल जिसमें रस अधिक होता है और स्वाद भी मीठा होता है ।

गंदलो—वि० [फा० गंदा+रा०प्र०लो] मैला-कुचैला, गंदा, मलिन ।

गंदाबगल—सं०पु०यौ०—वह घोड़ा जिसके दोनों बगल में दो भौंरियां हों ।

गंदियौ—सं०पु०—१ गेहूँ की फसल में होने वाली घास. २ वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाला विशेष कीट जो घास में पनपता है । इसके कुचले जाने से विशेष बदबू आती है ।

वि० [फा० गंदा+रा०प्र० इयौ] गंदा (अल्पा०)

गंदोवाड़ौ—सं०पु० [फा० गंदा+रा०ई+रा० प्र० वाड़ौ] गंदगी, मैलापन ।

गंदैली, गंदोली—सं०स्त्री०—खुशबूदार घास विशेष ।

गंदौ—वि० [फा० गंदा] (स्त्री० गंदी) मैला, मलिन, गंदा, अशुद्ध, घिनौना, नापाक ।

सं०पु०—ऊंट के बालों से बना हुआ बिछाने का दरीनुमा मोटा गाढ़ा वस्त्र ।

गंदोपांणी—सं०पु०—१ मद्य, शराब. २ वीर्य, धातु (बाजारू)

गंध्रब—स०पु० [सं० गंधर्व] गंधर्व । उ०—किन्नर गण गंध्रब सहित रिखि नारद आया ।—वचनिका

गंध—सं०स्त्री० [सं० गन्ध] १ बास, महक ।

यौ०—गंधगज, गंधग्राही, गंधपत्र, गंधबह, गंधम्रग, गंधवह ।

२ सुगंध, सुवास, सुगंधित द्रव्य जो शरीर पर लगाया जाय ।

गंध—सं०पु०यौ०—चन्दन (अ.मा.)

गंधक—सं०स्त्री० [सं०] एक खनिज पदार्थ जिसे वैद्यक में उपधातु माना है । यह खारी खारे स्वाद की होती है ।

पर्याय०—दयितेंद्र, पांवकोद्धसात्रव, सुकपिच्छक, सुलव ।

वि०—पीत, पीला* (डिं.को.)

गंधकवटी—सं०स्त्री०यौ० [सं० गंधक+वटी] एक औषधि या गोली जो शुद्ध गंधक, चित्रक, मिर्च, पीपर आदि के योग से बनाई जाती है ।

गंधगज—सं०पु० [सं०] मस्त हाथी ।

गंधगात—सं०पु० [सं० गंधगात्र] चंदन (डिं.को.)

गंधग्राही—सं०पु०यौ० [सं० गंध+ग्राही] नासिका, घ्राणेन्द्रि ।

उ०—तिके वेर चाहिजै विछूट्टे हवाई तेम, गंधग्राही लूतां ले'र हालियौ गैणाग ।—र.रू.

गंधजांण—सं०पु०—नासिका, गंध का अनुभव करने वाली इन्द्रिय, नाक (डिं.को.)

गंधण—सं०स्त्री०—१ तेल इत्र का व्यवसाय करने वाली एक जाति. २ इस जाति की स्त्री ।

गंधपत्र, गंधपत्रता—सं०पु०—तमालपत्र (अ.मा.)

गंधबह—सं०पु० [सं० गंधवाह] १ नासिका, नाक (डिं.को.) २ हवा, पवन (रू०भे०-गंधवह)

गंधमद—सं०पु०—हाथी, गज (डिं.नां.मा.)

गंधमाद—सं०पु०—रामचंद्रजी की सेना का एक बंदर ।

गंधमादि—सं०पु० [सं० गंधमादन] एक पर्वत विशेष ।

गंधम्रग—सं०पु०यौ० [सं० गंधमृग] कस्तूरी मृग ।

गंधरब, गंधरव—सं०पु० [सं० गंधर्व] १ तुरंग, घोटक, घोड़ा (ह.नां.) २ देवताओं का एक भेद, ये पुराणानुसार स्वर्ग में रहते हैं और वहां गाने का कार्य करते हैं (नां.मा.) ३ गवैयों के अन्तर्गत एक भेद जो जैन धर्म के देवताओं की महिमा गाते है. ४ कस्तूरी मृग. ५ एक जाति जिनकी कन्यायें गाती हैं एवं वेश्या-वृत्ति करती हैं । (मा.म.)

गंधरब-विद्या—सं०पु०यौ० [सं० गंधर्वविद्या] गान-विद्या, संगीत ।

गंधरविवाह—सं०पु०यौ० [सं० गंधर्वविवाह] १ आठ प्रकार के विवाहों में से एक, इसमें माता-पिता की अनुमति के बिना ही वर-वधू एक दूसरे को पसंद करते हुए विवाह कर लेते हैं ।

गंधरववेद—सं०पु० [सं० गंधर्ववेद] संगीत शास्त्र जो चार उपवेदों में से एक है । इसमें स्वर, ताल, राग, रागिनी आदि का वर्णन है ।

गंध-रस-पाळग—सं०पु०—मधुप, भौंरा (ह.नां.)

गंधरा—सं०पु०—पड़िहार वंश की एक शाखा ।

गंधवती—सं०स्त्री०—एक पौराणिक नगरी (ग.मो.)

गंधवह, गंधवहण—सं०पु० [सं० गंधवाह] १ वायु, हवा (ह.नां., अ.मा.) २ नाक, नासिका (रू०भे०-गंधबह)

गंधवाद—सं०पु०—पुरुषों की ७२ कलाओं में से एक ।

गंधवाह—सं०पु० [सं०] १ वायु, पवन (ह.नां., अ.मा.) उ०—केवड़ा कुसुम कुंद तणा केतकी, स्रम सीकर निरझर स्रवति । ग्रहियौ कंवगंध भार गुरु, गंधवाह तिणि मंद ।—वेलि. २ नाक, नासिका ।

गंधवाहसुत—सं०पु०यौ० [सं० गंधवाह+सुत] १ भीम (अ.मा.) २ हनुमान ।

गंधबिरोजा–सं०पु०—एक प्रकार का गोंद जो चीड़ वृक्ष पर उत्पन्न होता है।

गंधसार–सं०पु० [सं०] चंदन (नां.मा., ह.नां.) उ०—मृगमद अंबर सार घणु, गंधसार अंगरेळ।—र.रू.

गंधसुख–सं०पु०—मधुप, भ्रमर (नां.मा.)

गंधहर–सं०पु० [सं०] नासिका, नाक (डिं.को.)

गंधहस्ती–सं०पु० [सं०] वह हाथी जिसके कुंभ से मद बहता हो, मदोन्मत हाथी।

गंधाबिरोजा—देखो 'गंधबिरोजा' (रू.भे.)

गंधामादन–सं०पु०—एक पर्वत विशेष।

गंधार–सं०स्त्री० [सं० गांधार] १ सिंधु नदी के पश्चिम का देश जो पेशावर से लेकर कंधार तक माना जाता था. २ गंधार देश का रहने वाला. ३ संगीत में सात स्वरों में तीसरा स्वर. ४ प्राणवायु जो नाभि से उठ कर कंठ में जिव्हा के अन्त से रुक जाती है। स्वर-स्थान, नासिका. ५ एक राग (संगीत)

गंधारपंचम–सं०स्त्री० [सं० गांधारपंचम] एक षाडव राग जो मांगलिक मानी जाती है (संगीत)

गंधारभैरव–सं०पु० [सं० गांधारभैरव] एक राग का नाम जो देवगांधार के मेल से बनती है (संगीत)

गंधारी–सं०स्त्री० [सं० गांधारी] १ गंधार देश की स्त्री या राज-कन्या. २ धृतराष्ट्र की स्त्री एवं कौरवों की माता (महा भा.) ३ मेघ राग की पांचवीं रागिनी (संगीत) ४ जैनों की एक शासन देवी. ५ गांजा. ६ शरीरस्थ योग की नौ नाड़ियों में से एक नाड़ी।

गंधास्टक–सं०पु० [सं० गंधाष्टक] आठ गंध द्रव्यों को मिला कर बना हुआ एक संयुक्त गंध जो पूजा में चढ़ाने और मंत्रादि लिखने के काम में आता है। अष्टगंध।

गंधि—देखो 'गधी' (रू.भे.)

गंधिनी–सं०स्त्री० [सं०] मदिरा, शराब।

गंधियो–सं०पु० [सं० गंधित] १ वर्षा ऋतु में होने वाला एक कीड़ा. २ एक बरसाती घास। देखो 'गदियो'।

गंधी–सं०पु० [सं० गधिन्] १ सुगंधित तेल और इत्र आदि बेचने वाला अत्तार. २ इसका व्यवसाय करने वाली एक जाति. ३ मुसलमान।
वि० [फा० गंद+रा०ई] गंदी, मैली, मलिन।

गंधीलो–वि० [फा० गंदा+रा०प्र० इलो] मैला, गंदा, गंदला।

गंधीवाड़ो–सं०पु०—१ गंदगी. २ वह स्थान जहां दुर्गंधयुक्त बहुत सी चीजें हों।

गंधेल, गंधैल–सं०पु०—खुशबूदार पत्तों की घास विशेष (क्षेत्रीय)

गंध्रप, गंध्रब, गंध्रव—देखो 'गंधरव'।

गंध्रवपति, गंध्रवपती–सं०पु० [सं० गंधर्व+पति] कुबेर (अ.मा.)

गंभारी–सं०स्त्री० [सं०] एक बड़ा वृक्ष जिसके पत्ते पीपल के पत्तों के से चौड़े होते हैं एवं छाल सफेद रंग की होती है।

गंभीर–वि० [सं०] १ जिसकी थाह जल्दी न मिले, गहरा. २ जिसमें जल्दी घुस न सके, घना, गहन. ३ जिसके अर्थ तक पहुँचना कठिन हो, गूढ़, जटिल. ४ घोर, भारी. ५ शांत, सौम्य।
सं०पु०—१ समुद्र (अ.मा., ह.नां.) २ कमल. ३ शिव. ४ एक राग (संगीत) ५ गुदा में होने वाला एक फोड़ा विशेष। (अमरत)

गंभीरता–सं०स्त्री०—१ बड़प्पन, गौरव. २ गहनता, गूढ़ता. ३ शांति, सौम्यता। उ०—मोटापणौ गंभीरता पावै को संघ री मेधा, केथी बभाड़ा सव थंद री कुदीठ। राजी हुआ जकां घरां, आंनंदकंद री रिधी, दुजेस नंद री अजचंद री सुदीठ।—जादूरांम आढ़ौ

गंभीरवेदी–सं०पु० [सं० गंभीरवेदिन्] अंकुश की गहरी चोट की भी परवाह न करने वाला मस्त हाथी।

गंभीरा–सं०स्त्री०—मेघदूत के अनुसार एक नदी का नाम।
उ०—निरमळ चित ज्यूं नीर गंभीरा छांह सुहावै।—मेघ.

गंभीरी–सं०पु० [सं० गंभीर+ई] समुद्र (ह.नां.)

गंमर–सं०पु०—गर्व, दर्प। उ०—नांम अमर गाढ़ गंमर जोध संमर जीत।—ल.पि.

गंमार, गंवार–वि० [सं० ग्राम्य] १ ग्रामीण, देहाती। उ०—देवसिंह री इसड़ी हुकम सुणतां ही गंवारां जांणियौ कहिया जिकां दहियाविकां रा।—वं.भा. २ असभ्य, बेवकूफ, मूर्ख। उ०—ताळि चरंती कुंभडी, सर संधियउ गंमार। कोइक आखर मनि वस्यउ, ऊडी पंख संमार।—ढो.मा. ३ अनजान, अज्ञानी। उ०—निसवासर आसै जुरा, मन सोवै कहां गंवार।—ह.पु.वा.

गंवारिया–सं०स्त्री०—मूंज कूटने, सिरकियां बांधने, भैंस के सींग के कंघे बनाने का व्यवसाय करने वाली एक जाति विशेष।

गंवारी–सं०स्त्री०—१ गंवारपन, देहातीपन, ग्रामीणता. २ मूर्खता, अज्ञानता।
वि० –१ गंवार के समान. २ भद्दा, बेढ़ंगा, बदसूरत।

गंवारू–वि०—देखो 'गंवारी' (रू.भे.)

गंवाळ–सं०पु० [सं० गोधूममाल] वह जमीन जिस पर गेहूँ आदि की फसल बोयी जाय। रबी का खेत।

गंस–सं०स्त्री० [सं० ग्रंथि] १ क्रोध। उ०—गंस धारी खळां हिये ऊबके नेज रा घाव, अंस धारी नमो राजा तेज रा अंबार।
—महाराजा मांनसिंह री गीत
२ गांठ. ३ द्वेष, वैर. ४ मन में कसक उत्पन्न करने वाली व्यंगोक्ति, आक्षेप, ताना।

ग–सं०पु०—१ कृष्ण. २ गणेश. ३ प्रधान व्यक्ति. ४ हाथ. ५ पक्षी. ६ प्राण. ७ जल. ८ एक राग. ९ छंदशास्त्र में गुरु-बोधसूचक अक्षर (एका०) १० देखो 'गंभार'. ११ वायु।
सं०स्त्री०—१२ गंध. १३ प्रीति।

गइंद, गइंदर–सं०पु० [सं० गजेंद्र, गजवर] हाथी (ह.नां.)
उ०—१ गहै दंत रोकै मदाळा गइंदां।—वं.भा.

उ०—२ गइंवरां मीर ऊतरइ गाउ, राठउड़ रूढ़ जइतसी राउ।

—रा.ज.सी.

गइजूह—सं०पु० [सं० गज+यूथ] हाथियों का समूह, गज-यूथ।

उ०—खेतल रिगि खेसइ खुरासांग, जुध घसइ मज्ज गइजूह जांग।

—रा.ज.सी.

गइण, गइणाण, गइणागि—सं०पु० [सं० गगन] आकाश, नभ।

उ०—१ चक अचळा चळचळै गइण गूघळै गरदां।—रा.ज.सी.

उ०—२ वाजिया ढोल दळ हाक वज्जि, गज्जिया गोग गइणाण गज्जि।—रा.ज.सी. उ०—३ धड़धड़इ धरा पइ मगर धज्ज, वेगवंत जेम गइणा ब्रज्ज।—रा.ज.सी.

गइली—सं०स्त्री०—सवारी। उ०—रहि रहि राव ओळगी तूं जाई, महरी गइली तू करइ पठाई।—बी.दे.

वि०स्त्री०—पगली।

गइलौ—सं०पु०—रास्ता।

वि० (स्त्री० गइली) पागल।

गईंद, गईंघ—देखो 'गइंद' (रू.भे.) उ०—१ घणा गाढ़ भाजै गईंदां घटका घाव, ओकां स्रोण लैत काळी घटकां अतोल। जनैबां रटका जगनाथ रा अटका जेम, हुवौ भारात रै बीच बटका हरोल।

—ईसरदास खिड़ियौ

उ०—२ चमराळां पाए उड़ि चींघ, गूंदळइ त्रिक्ख मूझइ गईंघ।

—रा.ज.सी.

गई—सं०स्त्री० [सं० गति, प्रा० गई] १ धूप. २ गति, तरह देने या जाने देने का भाव। उ०—इग परधांनगी मांहे सवाद कौ नहीं तरै रांणै ही गई कीवी।—नैणसी

मुहा०—गई करणी—तरह देना, जाने देना, छोड़ देना, ध्यान न देना।

३ मार्ग. ४ उपाय. ५ दशा. ६ गमन।

गईवाळ—वि०—१ अयोग्य, अपात्र. २ हतभाग्य।

करगउ—सं०स्त्री० [सं० गौ] गाय, गौ। उ०—१ वनमाळीदास रीस बोलियौ कै इग जागा तो गउवां पड़सी, ऐ तो खाजरू है।—द.दा.

उ०—२ गढ़वाड़ां री आंग अहो गउआं।—पा.प्र.

कहा०—गउ संतन के कारणै हर बरसावै मेह—गायों और साधु-संतो के लाभार्थ भगवान मेह बरसाते हैं। सत्पुरुषों के भाग्य से ही सृष्टि को सुख मिलता है।

(रू०भे०—गउअ, गऊ, गाय)

यौ०—गउखांनौ, गउखागौ, गउसाळा।

गऊख—सं०पु० [सं० गौ = गाय+अक्ष = परिमाण अथवा सं० गवाक्ष] झरोखा, वातायन। उ०—१ बाबहिया चढ़ि गऊख सिरि, चढ़ि ऊचइ री भीत।—ढो.मा. उ०—२ सांझ समइ सउदागिरी, आप तणइ उतारि। बइठी गउखई तिणि समइ, नयणे निरखी नारि।

—ढो.मा.

गउखांनौ—सं०पु०यौ० [सं० गौ+फा० खाना] गोशाला।

गउखाणौ—सं०पु०यौ० [सं० गौ+रा० खाणौ] मुसलमान, यवन।

उ०—दांतां झाळै डाढ़ियां खीजै गउखाणाह।—पा.प्र.

गउघूळक—देखो 'गोघूळीक' (रू.भे.) उ०—गउघूळक धांधल वाग ग्रही।—पा.प्र.

गउर—सं०स्त्री० [सं० गौ] १ अचला, भूमि, पृथ्वी (ह.नां.)

२ देखो 'गउ' (रू.भे.) उ०—जग जाडा जूंझार, अकबर पग चांपै अधिप। गउ राखण गुंजार, पिंड मैं रांग प्रतापसी।

—दुरसौ आढ़ौ

गउव—सं०स्त्री० [सं० गौ] गाय। उ०—गउवां थट बाळघले गढ़वा, पुळ आगम 'पाल' थळी पढ़वा।—पा.प्र.

गऊं—सं०पु० [सं० गोधूम] गेहूँ। उ०—आ तौ धमसी चोखी म्हारी गऊंड़ा पीसासूं। ऐ तौ गेऊंडा चोखा म्हारा लाडूड़ा सोंधाऊं।

कहा०—१ गऊं तौ गुटली बायरौ मेवौ है—गेहूँ तो गुठलीरहित मेवा है। अन्य मेवों में गुठली होती है परन्तु गेहूँ गुठलीरहित होने के कारण श्रेष्ठ मेवा है।

(अल्पा०—गऊंड़ौ) (रू०भे०—गेहूँ)

गऊ—सं०स्त्री० [सं० गौ] १ गाय। उ०—हाल घरे हळ डूंगरां, बळद गऊ रै पेट। हाळी हींडै पालणै, भाती पहुँचौ खेत।—अज्ञात

मुहा०—१ अल्लाह री गऊ—नितांत भोला, भोला एवं सीधा व्यक्ति. २ गऊ होणौ—सीधा होना, किसी की शरण में जाना।

कहा०—१ गऊ मारियां पाप व्हैला—गौ की हत्या करने पर पाप के भागी होंगे; गौहत्या महान अधर्म है. २ गरजौ क्यूं तौ सांड हां, भागौ क्यूं तौ के गऊ रा जाया हां—सांड गाय को देख कर गरजता है और जोर-जोर से गरजता है, परन्तु अपने से बलवान को देख कर चुपचाप भागता है। अवसरवादी बहादुरों के प्रति।

यौ०—गऊखांनौ, गऊचर, गऊचरौ, गऊदांन, गऊभेख, गऊमुख।

(रू०भे०—गउ, गाय) (अल्पा०—गऊड़ी)

गऊखांनौ—१ देखो 'गउखांनौ' (रू.भे.) २ राजकीय बैलों द्वारा ढोने योग्य सवारियां (वाहन) रखने का स्थान एवं विभाग।

गऊचरौ—देखो 'गोचर' (रू.भे.)

गऊड़ौ—सं०पु० [सं० गौ+रा०प्र० ड़ौ] गाय या गाय का बछड़ा, बैल।

गऊदांन—सं०पु० [सं० गो+दान] गौ को विधिवत् संकल्प करके दान करने की क्रिया।

क्रि०प्र०—करणौ, देणौ, लेणौ।

गऊभेक, गऊभेख—सं०पु०यौ० [सं० गौ+वेश] १ नितांत भोला-भाला सीधा-सादा व्यक्ति. २ कायर व्यक्ति। उ०—१ फौज आय दोटी फिरी, भड़ भागा गऊभेक। रण रहिया रुगनाथ रा, डेरा बळता देख।

—पहाड़ खां आढ़ौ

उ०—२ भगत भाव गऊभेख मिळै ठाकुर मावड़िया।—पा.प्र.

गऊमुख—देखो 'गोमुख' (रू.भे.)

गऊमुखी—देखो 'गोमुखी' (रू.भे.) उ०—देई देवता लसकोई ले रहा

छी. बनात री गऊमुखी में हाथ घातियां आप रै इस्ट री ध्यांन सुमिरण।—रा.सा.सं.

गऊव—देखो 'गऊ' (रू.भे.) उ०—गऊवां रज उड्ड चढ़ी गयणे। —पा.प्र.

गएण—संपु० [सं० गगन, प्रा० गयण] आकाश, गगन। उ०—मुणियै यळ धूज गएण मही, न रही सम और सगत्त नहीं।—पा.प्र.

गक्कर—संपु० [सं० केकय] पंजाब के उत्तर पश्चिम में रहने वाली एक जाति।

गखड़—संपु०—यवनों की एक जाति अथवा इस जाति का व्यक्ति। (रा.रू.)

गग—देखो 'गघ' (रू.भे.)

गगण—देखो 'गगन' (रू.भे.)

गगणमिण—संपु०यौ० [सं० गगन+मणि] सूर्य्य (ना.डिं.को)

गगन—संपु० [सं०] १ आकाश, आसमान (डिं.को.)

रू०भे०—गएण, गगण, गयण।

यौ०—गगनगति, गगनगाज, गगनचर, गगनचख, गगनचुंबी, गगनध्वज, गगनपति, गगनफाळ, गगनबांण, गगनभेदी, गगनमंडळ, गगनरूप, गगनवटी, गगनवांणी, गगनस्पर्शी, गगनेचर।

२ छप्पय छंद का ६१ वां भेद जिसमें १० गुरु और १३२ लघु सहित १४२ वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं (र.ज.प्र.) ३ आर्यागीति या खंधाण (स्कंधक) का भेद विशेष (पिं प्र.)

गगनकुसुम—संपु०यौ० [सं०] आकाशकुसुम, आकाशपुष्प।

गगनगति—संपु० [सं०] १ वह जो आकाश में चले, नभचारी. २ सूर्य, चंद्र आदि ग्रह. ३ देवता।

गगनगाज—संपु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गगनचर—संपु० [सं०] १ पक्षी. २ ग्रह ३ नक्षत्र. ४ नभचारी।

गगनचख—संपु०—एक प्रकार का घोडा (शा.हो)

गगनध्वज—संपु० [सं०] १ सूर्य्य. २ बादल।

गगनपति—संपु० [सं०] इंद्र, सुरराज।

गगनफाळ—संपु०—एक प्रकार का घोडा (शा.हो.)

गगनबांण—संपु०—एक प्रकार का घोड़ा या घोड़े की एक जाति विशेष (शा.हो.)

गगनभेदी—वि०—आकाशभेदी, अधिक ऊचा।

गगनभेदी हवाई—संपु०—एक प्रकार का अस्त्र विशेष।

गगनमंडळ—संपु० [सं० गगनमण्डल] १ नभमंडल, व्योममंडल.

२ मस्तिष्क (योग) उ०—अनहद नाद बजै इकतारा, गगनमंडळ गरणावै।—ऊ.का.

गगनरूप—संपु०—एक प्रकार का घोड़ा या घोड़े की जाति (शा.हो.)

गगनवटी—संपु० [सं० गगनवर्ती] सूर्य (डिं.को.)

गगनवांणी—संस्त्री० [सं० गगनवाणी] आकाशवाणी।

गगनस्परसी—वि० [सं० गगनस्पर्शी] आकाश को छूने वाला, नभचुम्बी, गगनचुम्बी।

गगनांगना—संस्त्री० [सं०] अप्सरा, परी।

गगनांबु—संपु० [सं०] आकाश से गिरा हुआ वृष्टि का जल जो वैद्यक में त्रिदोषघ्न, बलकारक, रसायनोपयोगी, शीतल और विषनाशक माना जाता है।

गगनानंग—संपु०—२० वर्ण या २५ मात्रा का मात्रिक छंद विशेष जिसके अंत में एक गुरु हो (पिं.प्र.)

गगनाग—संपु०—प्रत्येक चरण में १२, १३ पर यति व अंत में एक रगण सहित २५ मात्रा का मात्रिक छन्द विशेष (र.ज.प्र.)

गगनापति, गगनापती—संपु०—सूर्य (डिं.को.)

गगनेचर—संपु० [सं० गगन+चर] १ ग्रह, नक्षत्र. २ पक्षी. ३ देवता। वि०—आकाश में विचरण करने वाला, आकाशचारी।

गगन्न—देखो 'गगन' (रू.भे.) उ०—प्रभू तूं पांणी मांय पवन्न, गरज्जै गाजै मांय गगन्न।—ह.र.

गगराड़ी—संस्त्री०—छोटे आकार का मिट्टी का पात्र जिसमें दीपावली के समय पूजन का सामान रखा जाता है (क्षेत्रीय)

गगराज—देखो 'गघराज' (रू.भे.) उ०—कवर सर ताज अग चंद नांमो कियौ। लिखी जस दियौ गगराज लालै।—जवांनजी आढ़ौ

गग्गनवटी—देखो 'गगनवटी' (डिं.को)

गघ, गघराज, गघराव—संपु० [सं० घघ = हसने] ऊंट (ना.डिं.को.) (रू०भे०—गग, गगराज)

गघळ—संपु०—पशुओं द्वारा जुगाली करते समय उनके मुंह से उत्पन्न होने वाली ध्वनि।

गघ्घर निसांणी—संस्त्री०—एक प्रकार का छन्द जिसके प्रथम चरण में १८ फिर १४ मात्रा होती है तथा तुकांत में मगण ऽऽऽ होता है। इसके दूसरे भेद में अन्त में जगण और कुल ३२ मात्रायें होती है।

गड़—संपु० [सं० गडु] १ ग्रंथि. २ वह फोड़ा जिसके अन्दर कुछ गांठ सी मालूम होती हो एवं पीब उत्पन्न हो गया हो।

क्रि०प्र०—ऊठणौ, फूटणौ, मिटणौ, होणौ।

कहा० —गड़ फूटा नै पीड़ मिटी—फोड़ा फूटते ही पीब निकल गई और दर्द मिट गया। मूल कारण दूर होने पर झगड़ा, दुख आदि सब समाप्त हो जाते हैं।

यौ०—गड़, गूमड़।

३ देखो 'गिड़' (रू.भे.) उ०—आळ भयंकर कांन अळवै, टाळै नहि कांइ कांटाळ। खळ नाहरां हियै खेड़ैचौ, आठूं पोहर करै गड़ आळ। —राव रायपाळ री गीत

४ वराहावतार। उ०—कहै जम दियै ज्यूं हीज असुर कोपियौ, सहै दुख रहै मांनस अमर मूक। वही जाती थकी प्रथी इण वार विच, रही गड़ डसण कमधज तणी रूक।—दुरगादास राठौड़ री गीत

गड़कंद—देखो 'गिड़कंद' (रू.भे.)

गड़कणो—वि०—लुढ़कने वाला।

गड़कणौ, गड़कबौ—क्रि०अ०—१ लुढ़कना. २ सांड बैल आदि का दहाड़ना

उ०—रिणमल्ल घरा छळ रखपाळ, गड़किया सांड गोत गोवाळ।
—रा.ज.सी.

गड़कणहार, हारौ (हारी), गड़कणियौ—वि०।
गड़काणौ, गड़काबौ, गड़कावणौ, गड़कावबौ—क्रि०स०।
गड़कियोड़ौ, गड़कियोड़ौ, गड़क्योड़ौ—भू०का०कृ०।
गड़कीजणौ, गड़कीजबौ—भाव वा०

गड़काणौ, गड़काबौ—देखो 'गुड़काणौ' (रू.भे.)

गड़कायोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'गुड़कायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० गुड़कायोड़ी)

गड़कावणौ, गड़कावबौ—देखो 'गुड़काणौ' (रू.भे.)

गड़काथियोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'गुड़कायोड़ौ' (स्त्री० गड़काथियोड़ी)

गड़कियोड़ौ—भू०का०कृ०—लुढ़का हुआ (स्त्री० गड़कियोड़ी)

गड़कीजणौ, गड़कीजबौ—देखो 'गुड़कीजणौ' (रू.भे.)

गड़कीजियोड़ौ—देखो 'गुड़कीजियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० गुड़कीजियोड़ी)

गड़क्क—सं०पु० [अनु० अ० गक] १ पानी में डूबने से उत्पन्न शब्द। स्त्री०—२ नक्कारे की ध्वनि। उ०—किय हूंकळ चंचळ कळळ गह त्रांबक गड़क्क। दरस्यउ सरि सुरतांण दळ चळ चळ चारे चक्क।
—अज्ञात

गड़क्कणौ, गड़क्कबौ—क्रि०अ०—१ देखो 'गुड़कणौ' (रू.भे.) २ कड़कना. २ गड़गड़ाना। उ०—भभक्के अरावां नाळां गड़क्के अप्राजा गोम, फड़क्के फीफरां ओण भड़क्के फूणाळ। धड़क्के कायरां नरां बड़क्के सनाह धारां, लड़क्के चावरां सूरां कड़क्के लंकाळ।
—किसनसिंह राठौड़ री गीत

गड़गड़—सं०स्त्री० [अनु०] १ नक्कारे की ध्वनि। उ०—गड़गड़ त्रंबक गाजिया असमांन गजाया।—वी.मा. २ गड़गड़ाहट से उत्पन्न शब्द. ३ तोप की आवाज।

गड़गड़णौ, गड़गड़बौ—क्रि०अ०—१ गड़गड़ाहट की ध्वनि होना. २ नगाड़े का बजना। उ०—१ नत्रीठा त्रंबक गड़गड़ै 'कुसीयाळ' नंद, सत्रां मद भड़ै उर बीच रहै संक।—गुलजी आढ़ौ उ०—२ पैदल हैदल पूर सदाई संग चढ़ै, नित नौबत नीसांण गढ़ां सिर गड़गड़ै। गौड़ करै गजराज खंभा नित खोलणा, एता दे किरतार फेर नहिं बोलणा।
—अज्ञात

३ गरजना. ४ भागना, दौड़ना. ५ हुक्के से धुंआ खींचते समय गड़-गड़ की ध्वनि होना. ६ लुढ़कना. (रू०भे०—गुड़कणौ)

७ कोप करना. ८ तोप की आवाज होना, तोप दगना। (रू.भे.—गड़ड़णौ)

गड़गड़ाट—सं०स्त्री०[अनु०] १ गड़गड़ाने का शब्द, गराड़ी घूमने, गाड़ी चलने या बादल गरजने आदि का शब्द, कड़क. २ हुक्का पीने का शब्द. ३ पेट खराब होने पर उसमें होने वाली गड़गड़ाहट।

गड़गड़ाणौ, गड़गड़ाबौ—क्रि० अ०स० [अनु०] १ गरजना, गड़गड़ करना। उ०—गयण गड़गड़ात पड़ फाट गोळां।—बां.दा. २ कड़कना. —३ नगाड़े का बजना या बजाना।

गड़गड़ी—सं०स्त्री० [अनु०] १ अपराधियों को कठोर दंड देने के लिये बना एक काठ का यंत्र (प्राचीन)

वि०वि०—इसमें अपराधी को एक चरखी के सहारे खड़ा कर भूमि पर पैर बांध देते हैं और हाथ चरखी से बांध देते हैं। चरखी बड़ी होती है। जब चरखी घुमाई जाती है तब चरखी अपने साथ अपराधी को भी लपेटने के लिये पूरे जोर के साथ ऊपर खींचती है किन्तु अपराधी के पैर भूमि पर बंधे होने के कारण वह खिंच नहीं सकता। इससे अपराधी अधमरा हो जाता है तथा अधिक यातना से मर भी जाता है. २ एक प्रकार की बड़ी गिर्री जिसके सहारे कूए से जल भरा मोट (चड़स) बाहर निकाला जाता है।

गड़गड़ौ—देखो 'गुड़गुड़ौ' (रू.भे.)

गड़गूंबड़—सं०पु०यौ०—देखो 'गड़गूमड़' (रू.भे.)

गड़गूबड़—सं०पु०—चिथड़े-लत्ते।

गड़गूबड़, गड़गूमड़—सं०पु०यौ० [सं० गड़ु+रा० गूमड़] फोड़े-फुन्सी आदि चर्म रोग।

गड़ड़—सं०स्त्री० [अनु०] गड़गड़ाहट की ध्वनि।

गड़ड़णौ, गड़ड़बौ—देखो 'गड़गड़णौ' (रू.भे.) उ०—१ लूथ बूथ अहघण सुर लड़ै, गज धरा नभ गड़ड़ै।—र.ज.प्र. उ०—२ न खमे तोप हजार नर जुदौ-जुदौ डर जाग। केहर गड़ड़ै क्रोध कर गाजै गिर गयणाग।—बां.दा.

गड़दनी, गड़दांनी—सं०स्त्री०—गर्दन, गर्दन का पिछला भाग।

उ०—कुवरत्त केवि काळा किरिट्ठ, गड़दनी गोळ गांजा गिरिट्ठ।
—र.ज.प्र.

गड़बड़—सं०स्त्री० [अनु०] १ क्रम-भंग।

क्रि०प्र०—करणी, पड़णी, होणी।

२ नियम-विरुद्ध कार्य. ३ अव्यवस्था, कुप्रबंध।

क्रि०प्र०—करणी, नांखणी, होणी।

वि०—१ ऊँचा-नीचा, असमतल. २ क्रमविहीन. ३ अनियमित।

गड़बड़णौ, गड़बड़बौ—क्रि०अ०—१ गड़बड़ी में पड़ना. २. देखो 'गड़बड़ाणौ'।

गड़बड़ाट—सं०स्त्री० [अनु०] गड़बड़ी, अव्यवस्था। देखो 'गड़बड़'।

गड़बड़ाणौ, गड़बड़ाबौ, गड़बड़ावणौ, गड़बड़ावबौ—क्रि०अ०—१ गड़बड़ी में पड़ना. २ क्रम-भंग होना, क्रम टूटना. ३ भूल में पड़ना. ४ अव्यवस्थित होना, अस्त-व्यस्त होना. ५ बिगड़ना, नष्ट होना।

क्रि०स०—६ गड़बड़ी में डालना. ७ बिगाड़ना, नष्ट करना, खराब करना।

गड़बड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—गड़बड़ में पड़ा हुआ। (स्त्री० गड़बड़ियोड़ी)

गड़बड़ी—देखो 'गड़बड़' (रू.भे.)

गड़बड़ीजणौ, गड़बड़ीजबौ—क्रि०भाव वा०—'गड़बड़णौ' का भाव वाच्य रूप। देखो 'गड़बड़ाणौ'।

गड़बड़ीजियोड़ी–भू०का०कृ०—गड़बड़ में पड़ा हुआ, गड़बड़ से प्रभावित। (स्त्री० गड़बड़ीजियोड़ी)

गड़बो–सं०पु०—फूटा हुआ मिट्टी का पात्र जो रहँट की माल पर बांधा जाता है।

गड़बड़णो, गड़बड़बो–क्रि०प्र०—१ भागना. २ देखो 'गड़बड़णो'। (रू.भे.)

गड़हुड़णो, गड़हुड़बो–क्रि०प्र०—देखो 'गड़गड़णो' (रू.भे.)

गड़ागड़–सं०पु० [अनु०] १ लुढ़कने का क्रम. २ लुढ़कने से उत्पन्न ध्वनि।

गड़ासंध, गड़ासिध–सं०पु० [सं० गड+संधिक]—सीमा, हद। उ०—सु जेसळमेर रौ चढ़ियौ जेसळमेर सूं कोस ४० सोग्राऊ जेसळमेर मेहवारी गड़ासिध ग्रापड़िया। क्रि०वि०—निकट, समीप। उ०—लूणो लूंभो लखो तेजसी, सरणवा रा भाखर सिरोही री मां छै तिणां री गड़ासंध ग्राय रह्या छै।—नैणसी

गड़िंदौ–सं०पु०—१ सिर नीचे कर के उलट जाना, कलाबाजी। क्रि०प्र०—खाणो।

२ पदार्थ आदि के ऊंचे से गिरने की ध्वनि। (मि० 'धड़िंदौ')

गड़ियड़णो, गड़ियड़बो–क्रि०प्र०—१ नगाड़े का बजना. २ देखो 'गड़गड़णो' (रू.भे.) ३ हाथियों का चिग्घाड़ना। उ०—दिस गयंद गड़ियड़ै सीह खिण गुंजारै। कणै कळस झळहळै डंड प्रडंड संभरै। —लल्ल भाट

गड़ीजणो, गड़ीजबो–क्रि०प्र० [सं० गुर्वण] भैंस का गर्भ धारण करना। गड़ीजणहार, हारौ—वि०।

गड़ीजिग्रोड़ो, गड़ीजियोड़ो, गड़ीज्योड़ो—भू०का०कृ०।

गड़ीजियोड़ो–भू०का०कृ०—गर्भ धारण की हुई (भैंस)

गड़ूकणो, गड़ूकबो–क्रि०प्र०—१ गड़गड़ शब्द करना. २ गरजना। उ०—झड़ रूपी पावस झड़ै, विरह लगावै बांण। ऊंडौ गाज गड़ूकियौ, 'जसा' लिये धुक प्रांण।—जसराज

३ मांसाहारी पक्षियों का मस्ती में आवाज करना। उ०—झूक परी बरेवा रेवा काळ झुकै झंप। चूकै डाक भरेवा गड़ूकै मंसचार। —दुरगादत्त बारहठ

गड़ूथळ–सं०पु०—कुलांच। उ०—खाए रिण महि गड़ूथळ खांन। जिहीं नट खेल कुलट्ट जुग्रांन। रुद्रां रिणि भूकि करंत 'रतन्न', कपीदळ जांणि कि कुंभकरन्न।—वचनिका

गड़ूस—देखो 'गड़ूस' (रू.भे.)

गड़ो–सं०पु०—ग्रोला। उ०—गड़ा पड़ बोगड़ै नहीं हरगिज गेहूं, चड़ा-पड़ न ग्रावै रोग चाळौ।—खेतसी बारहठ—२ देखो 'गिड़ो' (रू.भे.)

गच–सं०पु० [सं० खच] १ किसी नरम वस्तु में किसी कड़ी या पैनी वस्तु के धंसने का शब्द (यौ०–गचागच) २ चूने, सुरखी आदि के मैल से बना हुआ मसाला जिससे फर्श (भूमितल) पक्का किया जाता है। ३ चूने, सुरखी आदि से पाटी हुई भूमि (डिं.को.) (यौ०–गचकारी)

गचक–सं०पु० [सं० खच+रा०प्र० का] जचका, धक्का।

गचकारी–सं०स्त्री० [सं० खच] गच (पक्की छत) पीटने का काम, चूने, सुरखी का काम।

गचगर–सं०पु०—पक्का फर्श या पक्की छत बनाने वाला कारीगर।

गचगीरी—देखो 'गचकारी' (रू.भे.)

गच्छ–सं०पु० [सं०] १ (जैन) साधुओं का मठ. २ एक ही सम्प्रदाय के जैन-साधु-शिष्य. ३ देखो 'गच'।

गच्छी–सं०स्त्री०—मकान की छत।

गछंत–सं०पु० [सं० गम्] जाने या चलने की क्रिया, गमन।

उ०—परभाते गह डंबरां, दोपारांह तपंत। रात्यूं तारा निरमळा, चेला करौ गछंत।—वर्षा विज्ञान

गजंद, गजंद्र–सं०पु० [सं० गयंद] हाथी, गज। उ०—गजंद सुंड नाभ कुंड पेट पत्र पीपलं, नितंब तंब गंध रंभ केहरी कटी मिलं।—पा.प्र.

गज–सं०पु० [सं०] १ हाथी (ना.डिं.को.)

यौ०—गजग्रांनन, गजकांन, गजगति, गजघड़ा, गजपति, गजपाल, गजपाळ, गजबंध।

२ एक राक्षस का नाम जो महिषासुर का पुत्र था. ३ रामचन्द्रजी की सेना का एक बन्दर (रामकथा) ४ गंडासा, परशु (डिं.नां.मा.) ५ एक प्रकार का सर्प (डिं.नां.मा.) ६ बंदूक में बारूद जमाने की लोहे की छड़. ७ लंबाई नापने का एक नाप जो सोलह गिरह या तीन फुट का होता है।

मुहा०—१ गज भर री छाती होणी—साहस होना. २ गज भर की जीभ होणी—खाने को लालची होना, बहुत चटक-मटक करना, बहुत बड़-बड़ करना।

यौ०—गजधर।

८ वह पतली लकड़ी जो बैलगाड़ी के पहिये में मूंडी से पुट्ठी तक लगाई जाती है जो पुट्ठी और ग्रारों को मूंडी में जकड़े रहती है. ९ ज्योतिष में नक्षत्रों की बीथियों में से एक. १० सारंगी बजाने का लंबा धनुषाकार उपकरण. ११ चार मात्रा के डगण के प्रथम भेद का नाम (डिं.को.) १२ अंत गुरु की चार मात्रा का नाम। (डिं.को.)

गजग्रांनन–सं०पु०यौ० [सं० गज+ग्रानन] गणेश (डिं.को.)

गजउछाळ–सं०पु०—भीम।

वि०—शक्तिशाली, बलवान। उ०—ग्रासथांनजी रा धूहड़जी, धूहड़ जी रा बेटां री विगत—रायपाळ महिरेळण, जांगाइत उडणो, बेगड़ कटारमल, जालू गजउछाळ।—बां.दा.ख्यात

गजउजळ–सं०पु०यौ० [सं० गज+उज्वल] १ सफेद हाथी. २ इन्द्र का हाथी (नां.मा.)

गजक–सं०स्त्री० [फा० कज़क] १ वह वस्तु जो शराब आदि पीने के बाद मुंह का स्वाद बदलने के लिये खाई जाती है. २ तिलपट्टी, तिलशकरी. ३ भोजन। उ०—घेर सबळ गजराज, केहर पळ गजकां करै। को मठ कर कम काज, रिगता हो रैं राजिया।—किरपाराम

गजकान–वि०—चंचल* ।

गजकुंभ–सं०पु० [सं०] हाथी के मस्तक के दोनों ओर के उठे हुए भाग । (डिं.को.)

गजकुंवर, गजकेसर–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गजककणौ–सं०स्त्री० [फा० कजक] भोजन करना, खाना ।

उ०—गात नमावै गिद्धनी गिलि गूद गजक्के । —वं.भा.

गजखंभ–वि० [स० गजस्तम्भ] शक्तिशाली, बलवान, वीर ।

उ०— १ सेहंचा खार खंधा गजखंभ ।—गो.रू.

उ०—२ मांन रा वाळिया वचन वेढ़ी मणा, खळां रा गाळिया गरब गजखंभ ।—राजूरांम बारहठ

गजग—देखो 'गजगाह' (१)

गजगत—१ देखो 'गजगति' (रू.भे.) उ० –घूंघट खोलंदी नहीं, बोलंदी पिक बैण । गजगत जावै गोरियां, लाबै मर जळ लैण ।—बां.दा.

२ डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसके प्रत्येक द्वाले के प्रथम चार चरणों में नौ-नौ मात्रायें होती हैं एवं अंत में लघु गुरु सहित चारों चरणों में तुकांत मिलते हैं । प्रथम एवं तृतीय चरण के बाद 'जी' शब्द का प्रयोग किया जाता है । तत्पश्चात् चतुर्थ चरण का सिंहावलोकन करते हुए गीया छंद जोड़ा जाता है ।

गजगति–सं स्त्री० [सं०] १ हाथी की चाल. २ हाथी के समान मंद चाल. ३ रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा में शुक्र की स्थिति या गति (ज्योतिष) ४ एक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में नगण, भगण और लघु गुरु होते हैं ।

गजगमणी, गजगवणी–वि०—हाथी के समान मंद और मस्त चलने वाली, गजगामिनी । उ०—त्यौं गजगमणी रुखमणी जी नै सखी ले आई ।—वेलि. टी.

वि०वि०—भारतवर्ष में स्त्रियों की मंद चाल को शुभ एवं सुंदर माना गया है ।

गजगह—देखो 'गजगाह' (रू.भे.)

गजगांमिणी—देखो 'गजगमणी' (रू.भे.)

गजगा, गजगाव—देखो 'गजगाह' (१, २)

कहा० –गदेड़ै नै गजगाव—गधे पर हाथी की झूल; अयोग्य को उचित, उपयोगी या उच्च वस्तु देने मात्र से वह योग्य नहीं बन सकता ।

गजगाह–सं०पु० [सं० गजगाध] १ हाथी को संवारने के लिए उसके होदे के समीप कंधों पर लटकाई जाने वाली झूल. २ घोड़े के चार-जामे के समीप उसके कंधों पर लगाया जाने वाला उपकरण ।

उ०—१ रंग बिरंगे राह के गजगाह लगाया ।—वं.भा.

उ०—२ आप कुसळ चाहो अधप, अर धण रो अहवात । एक 'अजा' गजगाह रै, रहो लूब दिन-रात ।—बदरीदास खिड़ियो

३ युद्ध । उ०—१ एक पथ काज अवरंग खड़े आवियो, त्रंबाळां रोड़ बज अमंस तूर । बारहठ रचै गजगाह 'राजड़' बियै, परम आगळ हुवै लोहड़ां पूर ।—नरूजी सौदा रौ गीत उ०—२ आदमी हजार दोय रजपूतां सूं पोळि माथै गढ़ मांहै साकौ कीयौ, घणा तुरक मारिया, बडौ गजगाह हुवौ ।—वीरमदे सोनगरा री वात

उ०—३ आहड़ियां सूर घटै गढ़ ऊपर, अपछर रथ कढ़िया ओमांहि । बेटौ बाप सेहरौ बांधी, गौड़ चढ़ै तोरण गजगाह ।

—गोपाळदास गौड़ रौ गीत

४ संहार, नाश ध्वंश । उ०—धड़क मत चीत्रगढ़ जोधहर धीरवै गंज सत्रां दळां करूं गजगाह । भुजां सूं मूझ जद कमळ कमळां मिळै, पछै तौ कमळ पग देइ पतसाह ।—जेमल वीरमदेओत रौ गीत

५ हाथियों का दल, समूह । उ०—लियां भूप ऊमेद गजगाह लड़-लोहड़ां, लागियां डांण गजगाह लटकै । बेल गजराज रांणियां बखत-सी', खांत तण हियै गजराज खटकै ।—उमेदसिंह सीसोदिया रौ गीत

६ योद्धा, वीर पुरुष । उ०—१ धावां बहुत खेत पड़्यौ घूमत, बुध-हीणौं कीवी सिरबाह । जठै 'पदम' गिरतै 'जादम' नै, गोडां तळ दीनौ गजगाह ।—द.दा. उ०—२ 'सबळौ' आस करन्न रौ, गो जीपै गजगाह ।—रा.रू. उ०—३ सुत 'बळराव' 'कुंभक्रन' आसौ, राजा राव वदै दोय राह । पूरा पहर हिचे निठ पड़िया, गढ़पत रा मोटा गजगाह ।—गौड़ गोपाळदास अर बीठळदास रौ गीत

७ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.) ८ हाथी का दान ।

उ०—कोट एक जिग कियां, कोट किन्या परणायां । कोट रिखब निमंत्रियां, कोट दीनां विप्र गायां । कोट कोट गजगाह, क्रम्म ऐसा जिग कियां । कोट मोर सोव्रन, दांन पुर अरथह दीयां ।

—ज.खि.

वि० स्त्री०—गजगामिनी । उ०—तिलक कियां केसर तणा, गजबण वण गजगाह । जोय राह बेहूं यै जपै, वाह उदयपुर वाह । वाह उदय-पुर वाह के पुंगळ आरखा, पदमण घर घर नार प्रथी विच पारखा । मरद गरद हुय जाय देख गूंगट को ओ'लो, झुक पीछोला री तीर दीओ पिणियारयां झोलो ।—महादांन महड़ू

गजगीरी–सं०पु०—एक प्रकार का बढ़िया लोह । उ०—तुम गजगीरी को चूंतरो रे, हम बाळू की भीत । –मीरां

गजगुमांन–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गजग्राह–सं०पु०—युद्ध, रण, समर । उ०—अन मुड़तां जुड़तां आवाहै, सिरदारां मोहरै समसेर । मरणै दीह गजग्राह मंडांणौ, मुड़्यौ न कहाणौ गिर मेर ।—गोकुळदास सक्तावत रौ गीत

गजघंटौ–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गजघड़ा–सं०स्त्री० [सं० गजघटा] गजदळ, हाथियों की फौज ।

उ०—त्रिजड़ झालि आगळि धसे साहि दारा तणै, गजघड़ा टूक करि भड़ां गाही । 'सतै' ऊभां रही पातसाही सिरै, 'सतै' पड़ियां गयी पातसाही ।—हाडा राव सत्रसाल रौ गीत

गजच्छाया–सं०स्त्री० [सं०] ज्योतिष का एक योग जो उस समय होता है जब कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन चंद्रमा मघा नक्षत्र में और सूर्य हस्त नक्षत्र में हो ।

गजसिखा–सं०स्त्री०—शरीरस्थ योग की नौ नाड़ियों में से एक।

गजट–सं०पु० [अं० गजेट] १ समाचार-पत्र. २ सरकारी सूचना-पत्र।

गजठेल–वि०—जिसमें हाथियों को भी ठेलने की क्षमता हो, शक्तिशाली। उ०—ठरड़े भड़ करड़ा गजठेल।—अज्ञात

गजढ़ल्ल, गजढ़ाल–सं०स्त्री०—१ हाथियों के मस्तक पर सुरक्षा हेतु लगाई जाने वाली ढाल। उ०—१ गजराजां ऊपरां गजढ़ालां ढळकिनै रही छै। जांणे पहाड़ां ऊपरें खजूर कळ आंबां री मंजर ढळकिनै रही छै।—रा.सा.सं. उ०—२ गाहै सोदे ग्राहकां, ढाहे जे गजढ़ल्ल। लाहौ लोटे वांणियो, आ है सांची गल्ल।—बां.दा.

२ महान योद्धा।

गजणौ–वि०—१ गर्जन करने वाला, गरजने वाला. २ नाश करने वाला।

गजणौ, गजबौ–क्रि०अ०—गर्जन करना। उ०—धुबै दळ राजिंद्र बाजिंद्र धोम, गजै गुण बांण अनै रिण गोम।—वचनिका

गजतार, गजतारण–सं०पु० [सं०] भगवान विष्णु अथवा उनके अवतार यथा–राम, कृष्ण (अ.मा., नां.मा.)

गजथट्ट–सं०स्त्री०—हाथियों की सेना।

गजदंत–सं०पु०यौ० [सं०] १ हाथी का दांत. २ एक प्रकार का घोड़ा जिसके दांत हाथी के दांत की तरह मुंह के बाहर ऊपर की ओर निकले रहते हैं (शा.हो.) ३ दांत के ऊपर निकला हुआ दांत. ४ नृत्य की एक मुद्रा जिसमें दोनों हाथ कंधे के सामने लाए जाते हैं और हाथ की उंगलियों को सर्प के फन की तरह बना कर आगे झुकाते हैं।

गजदंती–वि० [सं०] हाथी-दांत का बना हुआ, हाथी-दांत का।

गजदर—देखो 'गजधर' (रू.भे.)

गजदसा–सं०स्त्री०—गणित ज्योतिष के अनुसार जन्म-पत्रिका में होने वाली प्रधान ग्रह की दशा।

गजदीप–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गजधर–सं०पु०—१ मकान बनाने वाला मिस्त्री या कारीगर. २ वह व्यक्ति जो भवन बनाने के पहिले उसका नक्शा आदि तैयार करता हो. ३ दर्जी. ४ वह बढ़ई जो सरकारी कार्य करता है एवं जिसे राज्य की ओर से नापने का गज मिलता है (मा.म.) ५ एक प्रकार का विशेष बनावट का भवन। उ०—सिद्ध पुरादिक ठिकांणा नेमीस्वर विहारादिक जिन मंदिर संप्रति कराया गजधर अस्वधर नरधर मंडित।—बां.दा.ख्यात.

गजनवी–वि० [फा० ग़ज़नवी] अफगानिस्तान में स्थित गजनी नगर का रहने वाला।

गजनायक–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गजनाळ, गजनाळी–सं०स्त्री० [सं० गजनाल] १ एक प्रकार की बड़ी भारी तोप जो प्राचीन समय में हाथी द्वारा खींची जाती थी. २ एक प्रकार की छोटी तोप जो हाथी पर रख कर चलाई जाती थी। (रा.सा.सं.)

गजनी–सं०स्त्री०—अफगानिस्तान का एक नगर जो महमूद की राजधानी था।

गजनीम–सं०स्त्री०—नींव। उ०—कुण चिणायो ओ बालाजी, थांरो देवरो जी ? कुण दिरायी गजनीम ?—लो.गी.

गजपत–सं०स्त्री०—१ बुद्धि, अक्ल।

पु०—२ देखो 'गजपति' (रू.भे.)

वि०—महान, बड़ा।

गजपति, गजपत्ति–सं०पु० [सं० गजपति] १ वह राजा जिसके पास बहुत से हाथी हों. २ बहुत बड़ा हाथी, ऐरावत. ३ मध्य गुरु की चार मात्रा ।ऽ। का नाम (डिं.को.)

गजपात–सं०पु० [सं० गजपात्र] वह बड़ा व महान कवि जिसे किसी राजा ने पुरस्कार-स्वरूप हाथी प्रदान किया हो। उ०—न क्यूं विहांणी निसा इण वखत दूजा नरां, छता बहु दीसवे बडा वड छात। पदम विन नकौ प्रथमाद दातापण, पदम विन नकौ प्रथमाद गजपात। —द.दा.

वि०वि०—प्राचीन समय में केवल उन्हीं कवियों को गजपात कहा जाता था जिन्हें किसी राजा की ओर से पुरस्कार-स्वरूप हाथी प्रदान किया गया हो किन्तु कालांतर में प्रायः इसे बड़े या महान कवि का पर्यायवाची शब्द मान लिया गया और बिना हाथी-पुरस्कार के भी बड़े कवियों के लिये इसे प्रयुक्त किया जाने लगा।

गजपाळ–सं०पु० [सं० गजपाल] महावत, हाथीवान (डिं.को.)

गजपीठसुरक्षक–सं०पु०यौ०—हाथी की पीठ का कवच।

गजपीपर, गजपीपळ, गजपीपळी–सं०स्त्री०यौ० [सं. गज्जपिप्पली] मझौले कद के एक पौधे का नाम जिसके पत्ते चौड़े और गूदेदार होते हैं। इसकी मंजरी को सुखा कर बाजार में औषध के रूप में बेचते हैं। बड़ी पीपल।

गजपुट–सं०पु० [सं०] धातुओं के फूंकने की रीति। इस क्रिया के अंतर्गत सवा हाथ के लगभग गहरा लंबा-चौड़ा गड्ढा खोद कर नीचे विनुए कंडे बिछा कर फूंकी जाने वाली वस्तु को रख कर ऊपर उतने ही कंडे और बिछा कर गड्ढे को ढक देते हैं। थोड़ा सा मुंह खाली रख कर उसमें आग डाल देते हैं।

गजपुर–सं०पु० [सं०] हस्तिनापुर, दिल्ली का एक नाम।

गजबंध, गजबध–स०पु० [सं० गजबंध] १ एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसमें किसी कविता के अक्षरों को हाथी का एक चित्र बना कर उसके अंग-प्रत्यंग में भर देते हैं. २ जिसके यहां हाथी बंधते हों, राजा, महाराजा। उ०—१ पाखांणां चुणिया सह पड़सी, अधका दिन जातां अनमंध। बडा-बडा गजबध बखांणे, बापाहरा तणां धजबंध।—दुरसौ आढ़ौ उ०—२ अगनि मोर गाजसी, पवन वाजसी, गजबंध छत्रबंध गजराज गुड़सी, हिंदू असुराइण लड़सी।—वचनिका

गजबंधी–वि०—जिसमें हाथी को भी बांध देने की क्षमता हो।
सं०पु०—देखो 'गजबंध' २ (रू.भे.)

गजब–सं०पु० [अ० गजब] १ कोप, रोष, गुस्सा।
क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।
२ आपत्ति, आफत, आपद, दैवी प्रकोप आदि। उ०—१ जवन सफी क्यां झूठ रौ, फळ पायौ तीं वार। गजब जिसौ सुरतांण रौ, फुरमांण रौ विचार।—रा.रू. उ०—२ क्रोध अर गजब रै समय प्रकृति रै वस नहीं होवणौ।—नी.प्र. ३ अनर्थ, अन्याय, जुल्म।
क्रि०प्र०—करणौ, ढाणौ होणौ।
४ विलक्षण बात, विचित्र बात. ५ आश्चर्य। उ०—ऊंट टाट खावै न आ, अपणौ जांण अभाग। अपणौ जांण अभाग गजब न खाय गधेड़ौ।—ऊ.का.
वि०—अत्यंत, अधिक। उ०—गजब रीस रै समय यूं योग्य छै जे आग्या नहीं करणी चुप रहणौ। उण कांम रौ अंत अक्ल में ही विचारणौ।—नी.प्र. २ बहुत बड़ा, भयंकर. ३ अद्भुत, विलक्षण।

गजबदन–सं०पु०यौ० [सं०] गजानन, गणेश।

गजबध–सं०पु०—भीम का एक नाम (अ.मा.)

गजबांक, गजबाग–सं०पु०यौ० [सं० गज+फा० बाग] हाथी को चलाने का अंकुश।

गजबी–वि० (स्त्री० गजबण, गजवण) गजब करने वाला।
(मि० 'गजब')
उ०—१ गळ गयौ देस हा हा गजब, गजबी तज्यौ न गाळणौ।
—ऊ.का.
उ०—२ भीम नै भेखग कर घरौ-घर भमायौ, रतन नैं पकड़ कपकळी कर रमायौ। गजबियां फेर कुंभलनेरगढ़ गमायौ। जोव ज्यौ रांण रौ राज इम जमायौ।—स्यांमजी बारहठ
उ०—३ मिरगानेणी आयौ थारी आसा पजोय हां ए मनै सोगन थारी ए कोई हां ये हतियारी ए कोई आम निराश्यौ गजबणी तैं करयौ जी राज।—लो.गी.
(बहु० गजबियां)

गजबीथी–सं०स्त्री० [सं०] शुक्र की गति के विचार से रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा के समूह का नाम जिसके बीच से होकर शुक्र-गमन करता है।

गजबेल–सं०स्त्री० [सं० गज+वल्ली] एक प्रकार का लोहा, कांतिसार।

गजबोह, गजब्बोह—देखो 'गजां-बोह' (रू.भे.)

गजब्ब—देखो 'गजब' (रू.भे.)

गजभांत–सं०स्त्री०—एक प्रकार का कपड़ा।
उ०—कैर टकां रौ थारौ चूड़लौ कैर टकां री गजभांत, राजीड़ा लाल चूड़ौ पहराव।—लो.गी.

गजभारा–सं०पु०—हाथियों का दल। उ०—थया हरोळी केहरी, भंजण गजभारा। भिड़ फौजां गज दहूं वळां, निज घोर नगारा।
—लूणकरण कवियौ

गजभ्रमी–सं०पु०यौ०—भीम (अ.मा.)

गजमणि–सं०स्त्री० [सं०] गजमुक्ता (मि० 'गजमुक्ता')

गजमुक्ता–सं०पु० [सं०] एक प्रकार का मोती जिसकी उत्पत्ति हाथी के मस्तक से मानी गई है। आज तक ऐसा मोती कहीं नहीं पाया गया (रू.भे.—गजमोती)

गजमुख–सं०पु० [सं०] गणेश, गजानन (ह.नां.)

गजमुखी–सं०पु० [सं०] १ वह जिसके मुख की आकृति हाथी के मुंह के समान हो. २ गजानन. ३ एक प्रकार की तोप।

गजमूरति–सं०पु०यौ० [सं० गज+मूर्ति] एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गजमोचण (न)–सं०पु०यौ० [सं०] विष्णु का एक रूप।
वि०वि०—इसी रूप को धारण कर के उन्होंने एक ग्राह से लड़ते हुए हाथी की रक्षा की थी।

गजमोती–सं०पु० [सं० गजमौक्तिक, प्रा० गजमोत्तिअ] देखो 'गजमुक्ता'।
उ०—१ केहर कुंभ विदारियौ, गजमोती खिरियाह। जांणे काळा जळद सूं ओळा ओसरियाह।—बां.दा. उ०—२ ताहरां कंवर हाथी रौ माथौ चीर अर गजमोती काढ़, फूलमती रै मोंहड़ै आगै ढिग कियौ।—चौबोली
अल्पा०—गजमोतीड़ौ।

गजमोहन–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गजर–सं०पु० [सं० गर्जन] १ निरन्तर होने वाला प्रहार। उ०—दोही तरफ गोळां री गजर हूं ओट आवै जिता ही घोड़ां सिपाहां समेत हाथियां रा गोळ उडण लागा।—वं.भा. २ इस प्रकार के निरन्तर प्रहार से उत्पन्न ध्वनि। उ०—परबत रै सीस पवि पात रैं प्रमांण गढ़ गंजण तोपां रै स्रवण अलात दे दे'र गोळां री गजर लगायौ।
—वं.भा.
३ पहर-पहर पर घंटा बजने का शब्द. ४ प्रातःकाल, उषाकाल।
उ०—गजर ऊगतां नेजां फरक्कै गैंवरां, धोम चख अजर बजराग धवते।—रावत प्रतापसिंह चूंडावत रौ गीत
[सं० गज = मदे] ५ हंसी, मजाक, दिल्लगी, तमाशा।
६ नगाड़ा। उ०—बजियौ भलौ भरतपुर वाळौ, गाजै गजर धजर नभ गोम। पहलां सिर साहिब रौ पड़ियौ, भड़ ऊभै नह दीधी भोम—बां.दा.
क्रि०प्र०—गाजणौ।
७ शोरगुल, तहलका। उ०—गोळां किम मांडौ गजर, होतां फजर हुगांम। नीठ हिया आया नजर, जांणं धजर दुजांम।—वी.स.
८ गर्जन। उ०—प्रथम गजर तोपां पड़ै, गोळां बजर गुड़ांण। मचियौ जिण दिन माझियां घोर प्रळै घमसांण।—वं.भा.
स्त्री०—९ सवेरे प्रभात के पूर्व लगभग चार बजे बजने वाला घंटा या इस घंटे की ध्वनि। उ०—निस बीती जीती फजर, बजी गजर प्रभात। आलम दूत प्रचारियां, प्रात रहे किम रात।—रा.रू.

वि०—विशाल, बड़ा। उ०—यूं विचार नै गजरथ डेरी बड़ौ करायौ और जलाल नूं बुलायौ।—जलाल बूबना री वात

गजरथ–सं०पु०यौ० [सं०] हाथी द्वारा खींचा जाने वाला बड़ा रथ। (डि.को.)

गजरद–सं०पु०यौ० [सं०] हाथीदांत। उ०—सदा मिळै बिल स्याळ रै, बच्छ पुच्छ खुर चांम। मिळै गयां मृगराज थह, गजरद मोती ग्रांम। —बां.दा.

गजरप्रबंध–सं०पु० [सं०] गायन अथवा नृत्य आदि के आरम्भ में श्रोताओं के सामने गाने व बजाने वालों की स्वर-साधने की क्रिया, वाद्य के साथ स्वर मिलाना।

वि०वि०—जब नृत्य अथवा गायन प्रारंभ होते हैं तो उसके पहले गायक अथवा वाद्यक लोग उपस्थित श्रोताओं के सामने अपना स्वर तथा बाजे इत्यादि लय के अनुसार मिलाते हैं। यही क्रिया गजरप्रबंध कहलाती है।

गजराज–सं०पु०यौ० [सं०] १ बड़ा हाथी. २ इन्द्र का हाथी, ऐरावत. ३ डिंगल के वेलिया सांणोर गीत (छंद) का एक भेद जिसके प्रथम द्वाले में ३० लघु १७ गुरु सहित कुल ६४ मात्रायें होती हैं। शेष के द्वालों में ३० लघु १६ गुरु सहित कुल ६२ मात्रायें होती हैं (पिं.प्र.)

गजराजअर, गजराजअरि, गजरिपु–सं०पु०यौ० [सं० गजराज+अरि या रिपु] सिंह (ना.डि.को.)

गजरी–सं०स्त्री०—१ एक आभूषण जिसे स्त्रियां कलाई में पहनती हैं। (मि० 'गजरो २) २ छोटी गाजर (अल्पा०)

गजरूढ़—देखो 'गजरथ' (डि.नां.मा.)

गजरौ–सं०पु०—१ फूलादि की घनी गूंथी हुई माला. २ एक प्रकार का आभूषण जिसे स्त्रियां कलाई पर पहनती हैं। उ०—गजरा नवग्रही पोंचिया पोंचे, वळे वळे विधि विधि वळित।—वेलि. (अल्पा० 'गजरी') ३ गाजर के पत्ते (क्षेत्रीय)

गजल–सं०स्त्री० [अ० गज़ल] फारसी और उर्दू में शृंगार रस की एक कविता जिसमें कोई शृंखलाबद्ध कथा नहीं होती किन्तु प्रेमियों के स्फुट वचन या प्रेमी अथवा प्रेमिका के हृदयोद्‌गार होते हैं।

गजलील–सं०पु० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक जिसमें चार लघु मात्रायें और अंत में विराम होता है (संगीत)

गजवदन–सं०पु०यौ० [सं०] गणेश, गजानन।

गजवांन–सं०पु० [सं० गजवान] महावत, हाथीवान (डि.को.)

गजविभाड़–वि०—हाथी को पछाड़ देने वाला, योद्धा, वीर।

गजवेल, गजवेलि—देखो 'गजबेल' (रू.भे.) उ०—१ तिकण में काळबूत री नीसरी सांठी कांकरे गजवेल रा भळका, सोने री नकसी तिके बांधीजै। पछै कबांणां चाक कीजै छै। —जैतसी ऊदावत री वात

उ०—२ मेघवना फाडा बांधिया, पाए मोजड़ा पोगर नवा। खांडां पटा तणा गजवेलि, अलवि आगिला हींडइ गेलि। —कां.दे.

गजसाळा–सं०स्त्री० [सं० गजशाला] वह घर जिसमें हाथी बांधे जाते हैं, फीलखाना।

गजसिक्षा–सं०स्त्री० [सं० गजशिक्षा] पुरुषों की बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला।

गजसुंदर–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गजसोभा–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गजहंस–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गजांबेल—देखो 'गजबेल' (रू.भे.)

गजांबोह–सं०पु०यौ० [सं० गज+व्यूह] हाथी-दल। उ०—गजांबोह बीच तुरी भेळती बरा थी गाढ़ी, लोह जाय भेळती उरां थी लोह। —बदरीदास खिड़ियौ

गजाड़णौ, गजाड़बौ–क्रि०स० (प्रे०रू०) गर्जन करवाना।

उ०—गजाड़ै घणां घोर यूं घोर गाजै, बिलागां किनां डूंगरां बज्र बाजै।—वं.भा.

गजाणण–सं०पु०यौ० [सं० गज+आनन] जिसका मुख हाथी के समान हो, गणेश। उ०—तरण रथ थिकत घण वहै खागां अतर, अहर कर कर मरै वरण अवरी। पड़ै धड़ गजाणण कहै इम पंचाणण, गजाणण कठै रिण सोभ गवरी।—पीथौ सांदू

गजाणौ, गजाबौ–क्रि०स०—गुंजायमान करना। उ०—गड़ गड़ त्रंबक गाजिया अगमांण गजाया।—वी.मा.

गजानंद–सं०पु०यौ० [सं० गज+वत् (लोप)+आनंद] हाथी के समान मस्त रहने वाला गणेश।

गजानन–स०पु० [सं०] गणेश (डि.को.)

गजारि–सं०पु० [सं० गज+अरि] सिंह।

गजारोहण–सं०पु०—पुरुषों की बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला।

गजारोही–सं०पु०यौ० [सं० गज+आरोही] हाथी पर सवार व्यक्ति।

गजाव–सं०पु० [सं० गज] हाथी, गज।

गजासन–सं०पु० [सं० गज+अशन] अश्वत्थ वृक्ष, पीपल। (अ.मा.)

गजास्य–सं०पु० [सं०] गणेश का एक नाम।

गजिंद्र–सं०पु० [सं० गजेन्द्र] हाथी। उ०—केवियां दळ तंडळ जेण किआ, दत्त सांसण लक्ख गजिंद्र दिया।—वचनिका

गजी–सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का मोटा देशी कपड़ा जिसका अरज कम चौड़ा होता है. २ हथिनी। उ०—दियौ खास हाथी मिळै तास दांनी, गजी साथ हालै सदा सौ गुमांनी।—वं.भा.

गजू–सं०पु० [सं० गज] हाथी। उ०—सुभट्ट सख्ख सक्खरं, लसंग लक्ख पक्खरं। धरा अडोल डुल्लयं, गजू निसांन खुल्लयं।—ला.रा.

गजेंद्र–सं०पु० [सं०] गजराज, ऐरावत।

गजेंद्रगुरु–सं०पु०यौ० [सं०] रुद्रताल का एक भेद (संगीत)

गजोवर–सं०पु० [सं० गज+वर] हाथी (डि.नां.मा.)

गज्ज—देखो 'गज' (रू.भे.) उ०—रतन गज्ज सिरताज, सरब गजराज सिरोमण। पंचहजारी प्रगट, दियौ मनसप्प दरस्सण।—रा.रू.

गज्जगाह—देखो 'गजगाह' (रू.भे.) उ०—गुडी लौं उडी गिद्धनी व्योम छायौ, नहीं हूर रंभा रथां पंथ पायौ। भिरी पक्खरां-पक्खरां भीरि पूर, हयं गज्जगाहं भयं चूरमूरं।—ला.रा.

गज्जणौ–वि०—देखो 'गजणौ' (रू.भे.) उ०—कुरण ढिल्ली कुरण गज्जणौ, हैवं कमरण हमीर।—रा.ज.रासो

गज्जणौ, गज्जबौ—देखो 'गजणौ' (रू.भे.) उ०— बिज्जुळियां नील-ज्जियां, जळहर तूंही लज्जि। सूनी सेज विदेस प्रिय, मधुरइ-मधुरइ गज्जि।— ढो.मा.

गज्जायी–सं०पु०—एक प्रकार का कीट, गिजाई।

गज्ज—देखो 'गजर' (रू.भे.) उ०— फौजां लै हिलोळां ग्रोळ दोळां ग्रज्ज सिंधु फटा महा गज्ज गोळा बज्ज तूटा जज्ज माग।—हुकमीचंद खिड़ियौ

गटक–सं०स्त्री०—१ निगलने का भाव या क्रिया. २ ग्रंथि विशेष।

गटकणौ, गटकबौ, गटकाणौ, गटकाबौ–क्रि०स० [सं० गलगलन]
१ निगलना। उ०—विख रा प्याला रांणंजी भेज्या, इमरत करि गटकास्यां।—मीरां २ हड़पना, दबा लेना।

गटकणहार, हारौ (हारी) गटकणियौ—वि०।

गटकाग्रणौ, गटकावबौ—रू. भे.।

गटकवाणौ, गटकवाबौ, गटकवावणौ, गटकवावबौ —प्रे०रू०

गटकिग्रोड़ौ, गटकियोड़ौ, गटक्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गटकीजणौ, गटकीजबौ गटकाईजणौ, गटकाईजबौ—कर्म वा०।

गटकायोड़ौ–भू०का०कृ०—१ निगला हुग्रा. २ हड़पा हुग्रा, दबाया हुग्रा। (स्त्री० गटकायोड़ी)

गटकावणौ, गटकावबौ—देखो 'गटकाणौ' (रू.भे.)

गटकावणहार, हारौ (हारी), गटकावणियौ—वि०।

गटकाविग्रोड़ौ, गटकावियोड़ौ, गटकाव्योड़ौ— भू०का०कृ०।

गटकावीजणौ, गटकावीजबौ—कर्म वा०।

गटकणौ, गटकबौ, गटकाणौ, गटकाबौ—रू०भे०।

गटकावियोड़ौ, गटकियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ निगला हुग्रा. हड़पा हुग्रा, दबाया हुग्रा। (स्त्री० गटकावियोड़ी, गटकियोड़ी)

गटकीजणौ, गटकीजबौ–क्रि०स० ('गटकाणौ' का कर्म वा०) निगला जाना, हड़पा जाना, ग्रानंद किया जाना।

गटकीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—निगला गया हुग्रा, हड़पा गया हुग्रा। (स्त्री० गटकीजियोड़ी)

गटकूड़ी–सं०स्त्री०—फाख्ता, पंडुकी।

गटकूड़ौ–वि० (स्त्री० गटकूड़ी] १ सुंदर एवं सुडौल. २ प्रिय. ३ छोटा सा (ग्रल्पा०)
सं०पु०—कबूतर।

गटकौ–सं०पु०—१ घूंट। उ०—भूरी कोटी रा ग्रासी भव भटका, गुडळी छाछां रा सपने में गटका।—ऊ.का.
क्रि०प्र०—करणौ, देणौ, लेणौ।
२ रस, ग्रानन्द। उ०—ग्रटका नूं ठाकर ग्रबै, बटका भरणा बोल। भला मिनख भटका लिये, गटका खावै गोल।—ऊ.का.
क्रि०प्र०—ग्राणौ, लेणौ।
३ नतीजा, परिणाम। उ०—परभांम गाल बटकौ भरियौ, काई गटकौ काढ़ियौ।—ऊ.का.
क्रि०प्र०—काडणौ, मिळणौ।
४ हड़पने का भाव। उ०—पड़जौ कुलसगिरयां चोरां पर पटकौ, गैंणागांठा रौ करगा गटकौ।—ऊ.का.
क्रि०प्र०—करणौ।

गटक्कणौ, गटक्कबौ—देखो 'गटकणौ' (रू.भे.)

गटक्कौ—देखो 'गटकौ' (रू.भे.) उ०—सुणै दीधा दादरै थटक्का भड़ां लीधा साथ, पीधा चंडी स्वाद रै गटक्का स्रोण पूत।
—दुरगादत्त बारहठ

गटगट, गटग्गट–सं०पु० [ग्रनु०] किसी पदार्थ को कई बार करके निगलने या घूंट-घूंट पीने में गले से उत्पन्न होने वाला शब्द।
उ०—हाथ कमाई घाट हरख सूं पतळी गटगट पांणी।—ऊ.का.
क्रि०वि०— गटगट शब्द सहित, निरन्तर, लगातार, धड़ाधड़।
उ०—कुसी रिखराज करै झणकार। धजाबंद पत्र भरै रत्र धार। झटइझट खेतल देत झलाय, पठौ पत्र लेत गटग्गट पाय।— मे.म.

गटपट–सं०स्त्री० [ग्रनु०] १ दो या दो से ग्रधिक मनुष्यों या पदार्थों का परस्पर बहुत ग्रधिक मेल, मिलावट. २ सहवास, प्रसंग संयोग. ३ गुप्त मंत्रणा, काना-फूसी।

गटरगूं, गटरगू–सं०पु० [ग्रनु०] कबूतर या पंडुकी के बोलने का शब्द।

गटळकौ— देखो 'गटकौ' (रू.भे.)

गटळी–वि०—कह कर बदलने वाला, कपटी, छली (रू.भे.—गिटळी)

गटागट—देखो 'गटगट' (रू.भे.)

गटाणौ, गटाबौ—देखो 'गिटाणौ' (रू.भे.)

गटायोड़ौ—देखो 'गिटायोड़ौ' (रू.भे.)

गटावणौ, गटावबौ—देखो 'गिटाणौ' (रू.भे.)

गटावियोड़ौ—देखो 'गिटावियोड़ौ' (रू.भे.)

गटी–सं०स्त्री०—१ घोड़े के पैर में पहिनने की लोहे की बड़ी कड़ी।
उ०—सो दरवाजै रै एक गह में राजू खां री सवारी री घोड़ी खड़ी सो चंवर ढाल ऊभी छै। पगां मांही सवा मरण लोह री गटी छै। चाकर रा मांचा दोनूं पासै छै।—सूरे खींवे री वात
२ छोटी गोल काष्ठ की चकरी।

गटीजणौ, गटीजबौ—देखो 'गिटीजणौ' (रू.भे.)

गटूकड़ौ—देखो 'गटकूड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० गटूकड़ी)

गटौ–सं०पु०—१ एक पक्षी विशेष जिसका मांस ग्रच्छा होता है ग्रौर शिकारी बड़े चाव से खाते हैं। यह पक्षी शीतकाल के ग्रारम्भ में उत्तरी ऐशिया से ग्राता है ग्रौर शीतकाल की समाप्ति पर वापिस लौट जाता है. २ तम्बाकू की डिबिया. ३ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.) ४ बेसन या मोठ के ग्राटे का बेल कर बनाया

हुआ खाद्य जिसके टुकड़ों को उबाल कर या तल कर प्रायः शाक बनाया जाता है. ५ पैर की नली और तलुए के बीच की गांठ. ६ हाथ की कलाई के जोड़ पर एक ओर उभरी हुई गांठ. ७ व्यवस्थित रूप से लपेटा हुआ धागा (अल्पा०—गट्टी) ८ वह उपकरण जिस पर व्यवस्थित रूप से धागा लपेटा जाय। यह प्रायः लकड़ी का ही होता है (अल्पा०—गट्टी) ९ हुक्के के नैचे के नीचे की वह गांठ जहां दोनों नै मिलती हैं और जो फरशी या हुक्के के मुंह पर रहती है. १० वे घने बादल जो आच्छादित होने पर एक ही बार में सूर्य के प्रकाश को रोक देते हैं (क्षेत्रीय)

वि०—किसी शब्द के अंत में लग कर तुल्य, बराबर, सदृश आदि अर्थ देने वाला एक विशेषण, ज्यूं--लुगाईगटौ मिनख।

गट्ट–सं०पु० [अनु०] किसी वस्तु को निगलते समय गले से उत्पन्न होने वाली ध्वनि।

गट्टी–स०स्त्री०—१ हाथीदांत का वह खंड जिसे चीर कर स्त्रियों के लिए भुजा और कलाई में पहिनने के लिए चूड़ियां उतारी जाती हैं. २ व्यवस्थित रूप से लपेटा हुआ धागा अथवा वह उपकरण जिस पर इस प्रकार धागा लपेटा गया हो (मह०—गट्टौ)

गट्टौ—देखो 'गटौ' (रू.भे.)

गठकटौ–वि०—गांठ काट कर रुपये चुराने वाला, गिरहकट।

गठजोड़, गठजोड़ौ–सं०पु० [सं० ग्रंथि+रा० जोड़] देखो 'गठबंधन'।
उ०—रण त्रांमागळ रोड़ि, जोड़ि अच्छरां **गठजोड़ां**। सेल धमोड़ां सार, मार मुगळां दळ मोड़ां।—मे.म.

गठण–सं०स्त्री० [सं० ग्रंथन, प्रा० गंठन] बनावट, रचना।

गठणौ, गठबौ–क्रि०अ० [सं० ग्रंथन] १ जुड़ना, सटना. २ बड़े-बड़े टांके लगना. ३ अच्छी तरह निर्मित होना, भली भांति रचा जाना. ४ किसी षटचक्र या गुप्त विचार से सहमतया सम्मिलित होना. ५ अधिक मेल-मिलाप होना।
गठणहार हारौ (हारी) गठणियौ—वि०।
गठवाणौ, गठवाबौ, गठवावणौ, गठवावबौ—प्रे०रू०।
गठाणौ, गठाबौ, गठावणौ, गठावबौ—स०रू०।
गठिओड़ौ, गठियोड़ौ, गठ्योड़ौ—भू०का०कृ०।
गठीजणौ, गठीजबौ—भाव वा०।
गांठणौ, गांठबौ—स०रू०।

गठबंधण, गठबंधन–सं०पु०यौ० [सं० ग्रंथि+बंधन, प्रा० गण्ठबंधन] १ विवाह में वर और वधू के वस्त्र को परस्पर बांध देने की एक रीति. २ पति-पत्नी के वस्त्र के छोरों को परस्पर बांध देना।
पर्याय०—गठजोड़ौ, छेड़ा-छेड़ी, बरजोड़, बरजोड़ण।
मुहा०—गठबंधण करणौ—संबंध स्थापित करना।

गठरी–सं०स्त्री० [सं० ग्रन्थि+रा०प्र०री] १ किसी कपड़े में गांठ देकर बांधा हुआ सामान, बड़ी पोटली।
मुहा०—१ गठरी करणौ—हाथ, पैर तोड़ या बांध कर अथवा और किसी प्रकार बेकाम कर देना। ढेर करना. २ गठरी बांधणा—सर्दी के मारे घुटना और छाती एक करना; जाने को तैयार होना।
२ संचित धन, जमा की हुई दौलत।
मुहा०—गठरी मारणी—चालाकी से किसी का माल चुरा लेना।
३ तैरने का एक ढंग जिसमें तैरने वाला अपने पैरों और घुटनों को छाती से लगा कर और उन्हें दोनों हाथों से जकड़ कर गठरी की सी आकृति बना लेता है।

गठाणौ, गठाबौ–क्रि०स० [सं० ग्रंथन] ('गठणौ' का प्रे०रू०) १ गठाना, सिलवाना. २ मोटी-मोटी सिलाई कराना. ३ जुड़ाना।
गठाणहार, हारौ, (हारी), गठाणियौ—वि०।
गठावणौ, गठावबौ—रू०भे०।
गठाईजणौ, गठाईजबौ—कर्म वा०।
गठाओड़ौ, गठायोड़ौ—भू०का०कृ०।
गठणौ, गठबौ—अक रू०।

गठायोड़ौ–भू०का०कृ०—गठाया हुआ, सिलवाया हुआ। (स्त्री० गठायोड़ी)

गठावणौ, गठावबौ—देखो 'गठाणौ' (रू.भे.)
गठावणहार, हारौ (हारी), गठावणियौ—वि०।
गठाविओड़ौ, गठावियोड़ौ, गठाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।
गठावीजणौ, गठावीजबौ—कर्म वा०।
गठणौ, गठबौ—अक रू०।

गठियोड़ौ–भू०का०कृ०—गठा हुआ, सिला हुआ, जुड़ा हुआ। (स्त्री० गठियोड़ी)

गठीजणौ, गठीजबौ–क्रि०अ० ('गठणौ' का भाव वा०) १ गठा जाना. २ सिला जाना. ३ रचा जाना. ४ जोड़ा जाना।
गठीजणहार, हारौ (हारी), गठीजणियौ—वि०।
गठीजिओड़ौ, गठीजियोड़ौ, गठीज्योड़ौ—भू०का०कृ०।
गठणौ, गठबौ—अक रू०।

गठीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—गठा गया हुआ, जोड़ा गया हुआ। (स्त्री० गठीजियोड़ी)

गठीलौ–वि० [सं० ग्रंथिल] (स्त्री० गठीली) १ गांठ वाला, ग्रंथियुक्त. २ गठा हुआ, सुडौल, मजबूत, दृढ़।

गठुली–सं०स्त्री०—घोड़े का एक रोग विशेष जो जबड़ों पर प्रकट होता है (शा.हो.)

गठूगण–सं०पु०—गठिया नामक वात रोग। उ०—कफजादि रजादि फियादि ससूकण, वायु **गठूगण** भोग जिता।—करुणासागर

गडंग–सं०पु० [सं० गड़+अंग-शाक] ऊंट (डि.को.)

गड–सं०पु० [सं०] १ ओट, आड़. २ चहारदीवारी. ३ गढ़, किला
उ०—दसमाथ विहंडण आसुर खंडण, राघव भूप अरोड़ा। पाथर रच पाजं समुद सकाजं, ते **गड** हाटक तोड़ा।—र.ज.प्र.

गडणौ, गडबौ–क्रि०अ०—१ धंसना, चुभना, गड़ना. २ मिट्टी आदि के नीचे दबना।

मुहा०—१ गड जागो—लजा जाना. २ गडियोड़ा मुरदा उखाड़ना—बीती हुई बातों को फिर से सामने लाना, पुरानी बातों की याद दिलाना।
३ समाना, पैठना।
गडणहार, हारो (हारी), गडणियो—वि०।
गडवाणो, गडवाबो, गडवावणो, गडवावबो—प्रे०रू०।
गडाणो, गडाबो, गडावणो, गडावबो—क्रि०स०।
गडिग्रोड़ो, गडियोड़ो, गड्योड़ो—भू०का०कृ०।
गडीजणो, गडीजबो—भाव वा०।

गडत–सं०स्त्री०—तंद्रा, हल्की नींद।

गडदार–सं०पु०—मस्त हाथी के साथ-साथ भाला लिये चलने वाला व्यक्ति जो हाथी के इधर-उधर जाने पर भाले की नोंक चुभो कर उसे ठीक राह पर रखने का प्रयत्न करता है।

गडमेळ–वि०—गहरा, गंभीर, घना। उ०—दिन ऊगां री चीतरी, सिझ्या रा **गडमेळ**। रात्यूं तारा निरमळा, ऐ काळां रा खेल।
—वर्षा-विज्ञान

गडवाड़ो–सं०पु० [सं० गढ़वृत्ति] चारणों को जागीर में दिया हुआ गांव।

गडवो–सं०पु० [सं० गडवीजिन] १ धातु का बना छोटा कलसा या जलपात्र (अल्पा०–गडवी) २ चारण. ३ कवि।

गडसूर, गडसूरो—देखो 'गंडसूर' (रू.भे.)

गडागड–क्रिवि—जगह-जगह, स्थान-स्थान, पास-पास।
सं०पु०—घनिष्ट प्रेम।

गडाणो, गडाबो–क्रि०स०—१ धँसाना, चुभाना, गड़ाना. २ मिट्टी आदि के नीचे दबाना. ३ समाना, पैठाना।
गडाणहार, हारो (हारी), गडाणियो—वि०।
गडाईजणो, गडाईजबो—कर्म वा०।
गडावणो, गडावबो—रू०भे०।
गडणो, गडबो—अक रू०।

गडायोड़ो–भू०का०कृ०—१ गड़ाया हुआ, चुभाया हुआ. २ भूमि में गाड़ा हुआ. ३ पैठाया हुआ। (स्त्री० गडावियोड़ी)

गडावणो, गडावबो—देखो 'गडाणो' (रू.भे.)
गडावणहार, हारो (हारी), गडावणियो—वि०।
गडाविग्रोड़ो, गडावियोड़ो, गडाव्योड़ो—भू०का०कृ०।
गडावीजणो, गडावीजबो—कर्म वा०।
गडणो—अक रू०।

गडावियोड़ो—देखो 'गडायोड़ो' (रू.भे.) (स्त्री. गडावियोड़ी)

गडासी—देखो 'गंडासी' (रू.भे)

गडि–क्रि०वि०—पास, निकट।
सं०स्त्री०—गाड़ी।

गडियोड़ो–भू०का०कृ०—१ गड़ा हुआ, धँसा हुआ, चुभा हुआ. २ भूमि में दबा हुआ. ३ समाया हुआ, पैठा हुआ। (स्त्री० गडियोड़ी)

गडी–सं०स्त्री०—१ देखो 'गढ़ो' (रू. भे.) २ धातु का बना छोटा कलसा या जलपात्र।
(रू०भे०—गडवी)

गडुळ–सं०पु०—कुबड़ा व्यक्ति।

गडूंबो–सं०पु०—१ इन्द्रायन का फल (ग्रमरत) २ विकृत या भद्दा हिंदवानी का फल।

गडू–वि०—जीर्ण, पुराना। उ०—**गडू** जोई नैं गुणते घाल्यूं, तौ कांम ग्राव्यूं—वस्तु पुरानी और जीर्ण हो गई अतः अनुपयोगी समझ उसे गोणी में रख दिया तो समय पर वह भी काम आ गई; अर्थात् पुरानी और जीर्ण वस्तु भी समय पर उपयोग में आ जाती है।

गडूथळ—देखो 'गडूथळ' (रू.भे.)
उ०—'अजाहर' हसम दरियाव दीधी उभळ, ग्रथ जळ विचै पड नाव ऊंधी। **गडथळ** खावती ऊ ळळां पड़ गयी, सतारा तणं उमराव सूधी।—पिरयाग सेवग

गडूर–सं०स्त्री०—ग्रावाज, ध्वनि।

गडूरी—देखो 'गंडसूरी' (रू.भे.)

गडूस–सं०पु० [सं० घटा] सेना, दल (ह.नां.)

गडै–क्रि०वि०—पास, निकट।

गडौ–सं०पु० [सं० गंड] गंडस्थल, हाथी की कनपटी। उ०—कसन नहं लगौ सिंघ कळोधर, ग्रहवि घाव मनाडि इसौ। **गडौ** उपाड़ न ग्रावै गैमर, दूजा ही 'गोपाळ' दिसौ।—गोपाळदास चूंडावत रौ गीत

गडौथळ—देखो 'गडूथळ' (रू.भे.) उ०—सव लाम्वां ऊपर नवसहसा, लाम्व पचीसूं दीध हिलोळ। खित पुड़ घणा **गडौथळ** खावै, बूडै छात बिया जस बोल।—दुरसौ ग्राढौ

गड्ड–सं०पु०—१ गड्ढा. २ गढ़, किला। उ०—गिराव गढ़ गड्ड को, विगड्ढ़ छडडती वहै। बकारि बैरि व्रंद कौ, डकार डड्ढ़ती वहै।
—ऊ.का.

गड्डी–सं०स्त्री०—एक ही ग्राकार की ऐसी वस्तुग्रों का ढेर जो तह से जमी हुई रक्खी हों। ढेर, समूह, गंज।

गड्डो–सं०पु०—१ छोटी लड़कियों द्वारा एक प्रकार के कंकरों द्वारा खेले जाने वाले खेल का एक गोल कंकर. २ वृद्ध व्यक्ति।
कहा०—गड्डे ते मरे खोजै, मोट क्यार मरै लाजै—वृद्ध अपनी ग्रादत से मरते हैं, किन्तु बड़े अपनी लज्जा से। आदतवश किसी को ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये जिससे दूसरों को दुख हो।

गड्ढ, गढ़–सं०पु० [सं० गाढ़] १ किला, दुर्ग, कोट। उ०—गनीम **गड्ढ** गव्वतीय, गब्भ कौ गमावनी। जहांन ग्रान मांन जोर, सोर तैं जमावनी।
—ऊ.का.

कहा०—१ गढ़ किला तौ बांका ही भला—गढ़ और किले तो बांकुरे ही भले। गढ़ और किला तो रहस्ययुक्त और दृढ़ ही भले. २ गढ़ां रै गढ़ पावणा—गढ़ों के गढ़ ही पाहुने होते हैं अर्थात् बड़ों के बड़े ही पाहुने होते हैं; बड़ों का संबंध भी प्रायः बड़ों से ही होता है.

३ दाबिया ज्यांरा गढ़ कोट—जिसने गढ़ या किले को दबा लिया वही उसका स्वामी होगा। बलपूर्वक अधिकार कर सकने की सामर्थ्य रखने वाला व्यक्ति ही गढ़ का स्वामी हो सकता है।

यौ०—गढ़पत, गढ़बंध, गढ़मंगो।

२ खाई।

क्रि०वि०—पास, नजदीक।

गढ़किला–सं०पु०—एक प्रकार का सरकारी लगान।

गढ़णौ, गढ़बौ–क्रि०स०—१ किसी सामग्री को काट-छाँट कर कोई वस्तु बनाना, रचना. २ बात बनाना, कल्पित बातें रचना. ३ मारना-पीटना।

गढ़णहार, हारौ (हारी), गढ़णियौ—वि०।

गढ़ाणौ, गढ़ाबौ, गढ़ावणौ, गढ़ावबौ—प्रे०रू०।

गढ़िग्रोड़ौ, गढ़ियोड़ौ, गढ़योड़ौ—भू०का०कृ०।

गढ़ीजणौ, गढ़ीजबौ—कर्म वा०।

गढ़त–सं०स्त्री०—रचना, बनावट।

गढ़पत, गढ़पति, गढ़पती, गढ़पत्ति–सं०पु०—१ गढ का स्वामी. राजा।

उ०—१ लाख वरीसै भोज तूं कवित नवा कहणांह। लड़ालूंब वणियौ विहद, गढ़पत जस गहणांह।—बां.दा.

उ०—२ हिकमत करौ हजार, गढ़पतियां जाचौ घणा। धीरज मिळसी धार, करम प्रमांणे किसनिया। २ किलेदार, गढ़-रक्षक।

गढ़बंध–सं०पु०—राजा।

गढ़मंगो–सं०पु०—राजाओं का याचक, ढोली।

गढ़राज, गढ़राव–सं०पु०—राजा। उ०—यह 'पाल' न मावत वीरपणै, गढ़राव जिकां त्रण मात गणै।—पा.प्र.

गढ़रोह, गढ़रोहऊ, गढ़रोहौ–सं०पु०—गढ़ पर किया जाने वाला आक्रमण, गढ़ का घेरा। उ०—१ इणि परि जाळवउ हींदू, हठि चडीउ सुर-तांण। वरस सात करघउ गढ़रोहऊ, छंडाव्यउ चहूआंण।—कां.दे.प्र.

उ०—२ भड़ लखमसी, रतनसी, करन तीने भाई गढ़रोहै कांम आया।—नैणसी

गढ़व–सं०पु०—चारणों का एक नाम (पा.प्र.)

गढ़वाड़ौ–सं०पु०—चारणों को गांव के रूप में दी गई जागीर।

उ०—मेछां अपराधियां मारणी, भलां सेवगां आवै भाव। करै करां छाया तूं करनी, गांजै कुण गढ़वाड़ां गांव।—बां.दा.

गढ़वी–सं०पु०—१ गढ़पति, राजा, ठाकुर. २ चारणों का एक पर्याय-वाची शब्द (हा.झा.)

गढ़वौ–सं०पु०—चारण कवि। उ०—गढ़वां थट बाळ घलै गढ़वा, पुळ आगम 'पाल' थळी पढ़वा।—पा.प्र.

गढ़ांपति(ती)—देखो 'गढ़पति' (रू.भे.) उ०—समांपती लखप्पती सुरिंद नरांपति। धरापति नरिंद गढ़ांपती करांमती।—ल.पि.

गढ़ाई—देखो 'गोडाई' (रू.भे.)

गढ़ाणौ, गढ़ाबौ—देखो 'गोडाणौ' (रू.भे.)

गढ़ी–सं०स्त्री०—१ छोटा किला या गढ़। उ०—सीकरि कै लद्दै भी रावराजा फौज मेली। फेरचौं डूंडळोदा की गढ़ी नै आय भेळी।—शि.वं.

२ गाँव के चारों ओर का अहाता. ३ एक प्रकार का कीटाणु जो ग्वार की फसल को खेत में खा कर नष्ट कर देता है। उ०—कटवळ खाधो कातरै, गढ़ी अरोग्यौ गवार। बरां खाधी बाजरी, आफी खेती जुग्रार।—अज्ञात

गढ़ीस–वि०—गढ़ का स्वामी, गढ़पति।

गढ़ोत–सं०पु०—गहलोत वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

गढ़ोई–सं०पु०—वह गड्ढा जिसमें मकान की विभिन्न नालियों से पानी इकट्ठा होता है।

गढ़ोगढ़—देखो 'गडोगड' (रू.भे.)

गणंमराव–सं०पु० [सं० गण+राज] गजानन गणेश।

गण–सं०पु० [सं०] १ समूह। उ०—राता तत चितारत. गिरि कंदरि घरि बिन्हे गण।—वेलि. २ श्रेणि, जाति. ३ ऐसे मनुष्यों का समुदाय जिनमें किसी प्रकार की समानता हो. ४ नक्षत्रों की तीन कोटियों में से एक. ५ फलित ज्योतिष में नक्षत्रों के तीन गण हैं—देव, मनुष्य और राक्षस. ६ छंदशास्त्र में तीन वर्णों का समूह। लघु, गुरु के क्रम-भेद से इनकी संख्या आठ मानी गई है, यथा—

१ मगण (ऽऽऽ) २ यगण (।ऽऽ) ३ रगण (ऽ।ऽ) ४ सगण (।।ऽ) ६ तगण (ऽऽ।) ६ जगण (।ऽ।) ७ भगण (ऽ।।) ८ नगण (।।।)। इन वर्णिक गणों के अतिरिक्त पाँच मात्रिक गण भी होते हैं—१ टगण (छः मात्रायें) २ ठगण (५ मात्रायें) ३ डगण (चार मात्रायें) ४ ढगण (तीन मात्रायें) ५ णगण (दो मात्रायें) ७ शिव के पार्षद. ८ दूत, सेवक. ९ गणेश. १० हाथी (ना डि को.) ११ आर्या, गाहा अथवा गाथा छंद में चार मात्रा का नाम।

गणईस–सं०पु० [सं० गणेश] गणेश, गजानन।

गणक–सं०पु० [सं०] १ ज्योतिषी (डि.को.) २ वणिक, बनिया।

गणककेतु–सं०पु० [सं०] एक प्रकार का धूमकेतु, जो तारापुंज सा दिखाई पड़ता है।

गणकराज–सं०पु० [सं०] श्रेष्ठ ज्योतिषी। उ०—तुगलक रै समय दक्खिण में कोई गणकराज विप्र रौ चाकर एक हुसन नाम जवन हुवौ।—वं.भा.

गणका—देखो 'गणिका' (रू.भे.)

गणगवर, गणगौर–सं०स्त्री० [सं० गुणगवरी] १ पार्वती, गौरी.

२ राजस्थान की वरकांक्षिणी कुमारियों और सौभाग्यवती महिलाओं का एक हर्षोल्लासपूर्ण पवित्र सांस्कृतिक पर्व या त्यौहार।

उ०—बोल्यौ वाग मैं, सुभटां तणै समाज। उदयापुर री गणगवर, अब देखांला आज।—बगसीरांम प्रोहित री वात

वि०वि०—दाम्पत्य प्रेम के उच्चादर्श के रूप में शंकर-पार्वती के जोड़े की अभिव्यक्ति ही 'गणगौर पूजा' महोत्सव में होती है। होलिका-दहन के पश्चात् 'गणगौर पूजा' चैत्र कृष्ण १ से प्रारम्भ होकर गौरीशंकर की अर्चना के शास्त्र-निर्दिष्ट दिन चैत्र शुक्ला तृतीया को समाप्त होती है। यही जन-साधारण में गणगौर दिवस माना जाता है। पूरे अठारह दिन गणगौर पूजा के रूप में इस त्यौहार की चहल-पहल रहती है। कुमारी कन्यायें गुणशाली वर-लाभार्थ और पतिवती महिलायें अपने सौभाग्य की अभिवृद्धि की कामना से गणगौर की पूजा करती हैं।

(रू०भे०—गवर, गवरजा, गोरल, गौर)

गणग्रभ, गणग्राभ–सं०पु० [सं० ग्रहग्राम] आकाश, नभ (डिं.को.)

गणणंकणौ, गणणंकबौ–क्रि०अ०—१ गोल घेरा बनाते हुए पक्षियों का आकाश में मंडराना। उ०—ठणणंक घंट गदळां ठहे, गणणंके पळ-चर गयण। हणणंक हीस हैगांम हय, जय कणणंके बंदिजण।
—वं.भा.

२ ध्वनि विशेष का होना।

गणणक–सं०स्त्री० [अनु०] १ आकाश में पक्षियों के मंडराने की क्रिया. २ ध्वनि विशेष।

गणणट—देखो 'गणणाट' (रू.भे.)

गणणणौ, गणणबौ–क्रि०अ०—१ प्रतिध्वनित होना। उ०—जागि प्रळै रिण जंग, उडै सर सांम्हा अगनि। गंडां सवाया गणणिया, नाखित्र माळा निहंग।—वचनिका २ चला जाना, व्यतीत होना।

उ०—भरै खजांना धरती भेदे, चोर कटक लेसी घर छेदे। वांट वांट कहियौ इउं वेदे, दीह गणणिया ताळी दे दे।
—ओपौ आढ़ौ

गणणाट, गणणाटौ–सं०पु०—१ चक्कर, परिभ्रमण, घूमने का कार्य. उ०—बारै बारै रै धन दे बणणाटा, गांजर खांचै लै पांजर गणणाटा।
—ऊ.का.

२ जोर की ध्वनि। उ०—सिहां तणौ सकोप, गणणाटौ मोटौ गिणै। कुत्तौ भुसै तो कोय, राखै संक न राजिया।—किरपारांम

[अनु०] ३ पक्षियों, भ्रमरों, मक्खियों आदि का पदार्थ विशेष पर मँडराने की क्रिया, अथवा इस प्रकार मँडराने से उत्पन्न ध्वनि, भिनभिनाहट। उ०—मैलं ऊपर मांखियां, गणणाटा लै गैल। हैकंड कठीनै हाल्लिया, डबी खळींगण डैल।—ऊ का.

गणणाणौ, गणणाबौ, गणणावणौ, गणणावबौ–क्रि०अ० [अनु०]

१ चक्कर खाना। उ०—पड़ै गणणाय मुरझाय इळ ऊपरै। पूर मंगळ हुवां राखसां रूपटै।—र.रू. २ पक्षियों का आकाश में मँडराना। उ०—ग्रीधां गणणावै खावै तन खांचै, रांमद्वारा में रांडां जिम रांचै।—ऊ.का. ३ भिनभिनाना. ४ गुनगुनाहट की ध्वनि करना।

क्रि०स० ('गणणौ' का प्रे०रू०) ५ गिनती करवाना, गणना करवाना।

गणणौ, गणबौ–क्रि०स०—१ गिनती करना, गिनना. २ संख्या निश्चित करना. ३ समझना। उ०—सूरा तन सूरां चढ़ै, सत सतियां सम दोय। आडी धारां ऊतरै, गणै अमळ नूं तोय।—बां.दा. ४ प्रतिष्ठा करना, सम्मान करना. ५ देखो 'गणणाणौ' (रू.भे.)

गणणहार, हारौ (हारी), गणणियौ—वि०।

गणाणौ, गणाबौ, गणावणौ, गणावबौ—प्रे०रू०।

गणिओड़ौ, गणियोड़ौ, गण्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गणीजणौ, गणीजबौ—कर्म वा०।

गणणेटौ, गणणोटौ—देखो 'गणणाट' (रू.भे.) उ०—बागां आंबा गरक भंवरा गणणेटा। पोते पापां गरक गरक सीतंग मैं बेटा।
—अरजुणजी बारहठ

गणतंत्र–सं०पु० [सं०] जनतंत्र, प्रजातंत्र, लोकतंत्र।

गणधर–सं०पु० [सं०] एक प्रकार के जैनाचार्य जो तीर्थङ्कर के शिष्य होते हैं। ये लोग तीर्थङ्करों के उपदेशों का संग्रह करके उनके शिष्यों में प्रचार करते हैं।

गणन, गणना–सं०पु०स्त्री० [सं०] गिनने की क्रिया या भाव, गिनना।

गणनाथ, गणनायक–सं०पु०यौ० [सं०] १ गणों का स्वामी, गणेश। उ०—वंदन कर गणनाथ को, जे पूत गवर का।—दुरगादत्त बारहठ २ शिव, महादेव (अ.मा.)

गणनायिका–सं०स्त्री०यौ० [सं०] १ दुर्गा. २ पार्वती।

गणप–सं०पु० [सं०] गणेश (डिं.को.)

गणपत, गणपति–सं०पु०यौ० [सं० गणपति] १ गणों का स्वामी, गनेश. २ शिव (ह.नां., क.कु.बो.)

गणपरवत–सं०पु०यौ० [सं० गण+पर्वत] वह पर्वत जहां शिव के गण या प्रमथ रहते हों।

गणयल–सं०पु० [सं० गणकल] चंद्रमा (नां.मा.)

गणराज–सं०पु०यौ० [सं० गण+राट] १ गणों का स्वामी, गणेश, गजानन (डिं.को.) उ०—स्री गणराज सारदा सुखकर, बसौ सुमत रांम-सीताबर।—र.ज.प्र. २ प्रजा में से चुने हुए लोगों द्वारा चलाया जाने वाला राज्य, गणराज्य।

गणराव—देखो 'गणराज' १ (रू.भे.)

गणलौ—देखो 'गरणौ' (रू.भे.) उ०—माजी रच राखै मतौ, सौ गणलां छांणंत। असल आगराई अमल, जमियौ जग जांणंत।—बां.दा.

गणव–सं०पु०—गणेश, गजानन (डिं.को.)

गणसूर—देखो 'गंडसूर' (रू.भे.)

गणाई–सं०स्त्री०—१ गिनने की क्रिया. २ गिनने की मजदूरी।

गणाणौ, गणाबौ–क्रि०स०('गणणौ' का प्रे०रू०) १ गिनाना, गिनती कराना. २ समझाना. ३ प्रतिष्ठा कराना, सम्मान कराना. ४ संख्या निश्चित करवाना।

गणाणहार, हारौ (हारी), गणाणियौ—वि०।

गणाओड़ौ, गणायोड़ौ—भू०का०कृ०।

गणावणी, गणावबौ, गिणाणौ, गिणाबौ, गिणावणौ, गिणावबौ—रू०भे० ।

गिणाईजणौ, गणाईजबौ—कर्म वा० ।

गणावपत, गणावपति, गणाधिप, गणाधीस–सं०पु०यौ०—१ गणों का स्वामी, गणेश । उ०—तेग झाळां छोडै कंक बिछोडै वैकूंठ ताळा, गोडै गणाधीस माळा जोड़ै धारगंग ।—हुकमीचंद खिड़ियौ

२ शिव. ३ जैन साधुओं के समुदाय में सबसे प्रतिष्ठित या वृद्ध साधु ।

गणायोड़ौ–भू०का०कृ०—गिनाया हुआ (स्त्री० गणायोड़ी)

गणावणौ, गणावबौ—देखो 'गिणाणौ' (रू.भे.) उ०—किसूं गणावै पीढ़ियां ख्यात सारी कहै, दुनी अब-अब प्रगट सुजस दीधौ । कदी ही कियौ नह रूसणौ कुचांमण, कुचांमण सांम-ध्रम सदा ही कीधौ ।

—बां.दा.ख्यात

गणावणहार, हारौ (हारी), गणावणियौ—वि० ।

गणाविओड़ौ, गणावियोड़ौ, गणाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गणावीजणौ, गणावीजबौ—कर्म वा० ।

गणावीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'गणायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० गणावीजियोड़ी)

गणिका–सं०स्त्री० [सं०] वह नायिका जो द्रव्य के लोभ से नायक से प्रीति करे, वेश्या, पतुरिया । उ०—समझ देख बिगड़ी सभा, आहुट गई उमंग । गणिका सूं राखै गुसट, रसिया तोनै रंग ।—बां.दा.

गणित–सं०पु० [सं०] १ वह शास्त्र जिसमें मात्रा, संख्या और परिमाण का विचार हो । इसमें निर्धारित नियमों और क्रियाओं द्वारा ज्ञात मात्राओं, संख्याओं और परिमाणों के संबंध के आधार पर अज्ञात मात्रा, संख्या या परिमाण का निश्चय किया जाता है. २ पुरुषों की बहत्तर कलाओं के अंतर्गत एक कला ।

गणितग्य–वि० [सं० गणित+ज्ञ] १ गणित शास्त्र का ज्ञाता, गणितज्ञ । २ ज्योतिषी ।

गणियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ गिना हुआ. २ प्रतिष्ठा पाया हुआ । (स्त्री० गणियोड़ी)

गणीस, गणेस–सं०पु० [सं० गणेश] १ हिन्दुओं के एक प्रसिद्ध देवता जिनका सारा शरीर मनुष्य का है किन्तु शिर हाथी के समान है (ड़ि.को.)

वि०वि०—ये शिव के गणों के अधिपति हैं तथा शिव तथा पार्वती के पुत्र हैं । कहा जाता है कि इनके जन्म के समय शनि भी इन्हें देखने आए थे। शनि जिसे देख लेते हैं, उसका सिर धड़ से अलग हो जाता है । शनि के देखते ही गणेश का सिर अलग हो गया। उस समय विष्णु के कहने पर उत्तर दिशा में शिर किये हुए इन्द्र के हाथी ऐरावत का सिर काट कर इनके लगा दिया गया। इन्हें एकदंत कहा जाता है जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि एक बार परशुराम शंकर से मिलने आये । उस समय शंकर व पार्वती निद्रामग्न थे अतः गणेश ने द्वारपाल के रूप में परशुराम को रोका । तब परशुराम ने क्रोध में आकर इनका एक दांत काट डाला । एक बार सब देवताओं ने पृथ्वी की परिक्रमा करने का निश्चय किया । गणेश ने सर्वव्यापी राम नाम लिख कर उसी की परिक्रमा कर डाली जिससे देवताओं में सर्व प्रथम उन्हीं की वन्दना या पूजा होती है । इनके बारे में यह प्रसिद्ध है कि व्यास के बोलने पर इन्होंने ही महाभारत को लिपिबद्ध किया था । इनका वाहन चूहा माना जाता है ।

पर्याय०—अग्रेसुर, इकरदन, एकदन्त, एकरदन, काळीसुतन, गज-आंणण, गजमुख, गजानंद, गजानन, गणप, गणपत, गणराज, गणव, गणेस, गवरीनंद, द्वैमातर, निधगुण, परमनंद, परसीतस, परसीपांण, विनायक, बुद्धिसदन, महेससुत, मूसावाहण, रगण, लंबोदर, विघनराज, विनायक, रिद्धि-सिद्धिनायक, सिधबुधदायक, सुंडाळौ, सूंडाळ, हुड़ंबी, हेरंब आदि ।

(रू.भे.—गणाईस, गणीस, गनीस ।

२ छप्पय छंद का २१ वां भेद जिसमें ५० गुरु ५२ लघु से १०२ वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं । इसे कुंजर भी कहते हैं ।

गणेसखूंटी–सं०स्त्री०—करघे के दाहिनी ओर रहने वाली जुलाहों की वह खूंटी जिसमें ताने को कसा रखने के लिए उसमें बंधी हुई अंतिम रस्सी या जोते का दूसरा सिरा 'पिंडा' या 'हथेला' (करघे के पीछे लगी हुई दूसरी खूंटी) के पीछे से घुमा कर लाया और बांधा जाता है । यह खूंटी करघे की दाहिनी ओर बुनने वाले के दाहिने हाथ के पास इसलिए रहती है कि जिसमें वह आवश्यकतानुसार जोते को ढीला करता रहे और उसके कारण ताना आगे बढ़ता आवे ।

पर्याय०—विनायक खूंटी ।

गणेसचतुरथी, गणेसचौथ–सं०स्त्री०—भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी । इस दिन गणेश की पूजा की जाती है ।

गणेसपुरांण–सं०पु०—एक उप-पुराण का नाम ।

गणेसभूसण–सं०पु०यौ० [सं० गणेश+भूषण] सिंदूर ।

गणेसर, गणेसुर–सं०पु० [सं० गणेश्वर] १ हाथी (ना.डिं.को.) २ गजानन, गणेश ।

गण्णौ—देखो 'गरणौ' (रू.भे.)

कहा०—गोळा मूंडे गण्णू दियै, दन्यां मूंडे सूं दियै—छाछ बिलोने के घड़े तथा मिट्टी के अन्य किसी बर्तन का मुंह कपड़े से बांध कर ढका जा सकता है किन्तु संसार का मुंह नहीं बांधा जा सकता । अर्थात् जन-साधारण में फैली हुई बात को फैलने से रोका नहीं जा सकता ।

गतंड–सं०पु० [सं० गताण्ड] हिजड़ा, नपुंसक ।

गत–वि० [सं०] १ गया हुआ, बीता हुआ । उ०—अज नव बारह अब्द गत, सक विक्रम संबंध । दिन नवमी आसाढ़ बदि, मीणां तेढ़ि मदंध ।—वं.भा.

मुहा०—गत होणौ—मरना ।

२ रहित, हीन, खाली ।

उ०—गत प्रभा थियौ ससि रयणि गळंती, वर मंदासइ वदन वरि ।

दीपक परजळतौ इ न दीपै, नासफरिम सू रतनि नरि ।—वेलि.

सं०स्त्री०—१ समय (अ.मा.) २ हालत, अवस्था, दशा ।

उ०—तारां सेखेंजी कयौ, 'रावजी, मैं थांरो कांई बिगाड़ कियौ, म्हे तौ जमी रै कारणै काकौ भतीजौ विढ़ता हा पण जा मैं गत हुई सो तैं गत हुयज्यौ ।—द.दा.

क्रि०प्र०—करणी, होणी ।

मुहा०—१ गत रौ—अच्छा, भला. २ गत बणाणी—दुर्दशा करनी, दुर्गति करना, अपमान करना, मारना-पीटना, उपहास करना, उल्लू बनना ।

क्रि०प्र०—करणी, होणी ।

४ संगीत में बाजों के कुछ बोलों का क्रमबद्ध मिलान ।

उ०—ढोली वाहर रौ ढोल जूंझाऊ अनै खातौ घणौ लियौ तद कहै छै । वीरांगना वचन—ए ढोलण, ढोली नूं कह इतरी ढोल री पलां (ढोल री पोह व गत) मैं इतरी क्यूं ताकीद करै ।—वी.स.टी.

५ नृत्य में शरीर का विशेष संचालन और मुद्रा । उ०—ताथेई ताथेई थेई थेई थेई ताता, गतां लै अहेस माथा नंद रौ गवाळ ।—र.ज.प्र.

क्रि०प्र०—लेणी ।

६ प्रकार, ढंग, तरह । उ०—जस री गत अदभूत जिका, सत धारियां सुहाय । नर जीवै नर लोक में, जस अमरापुर जाय ।—बां.दा.

[सं० गति] ७ गति, चाल । उ०—१ हुवौ नचीतौ पवन हव, अस रीतौ भो आज । जीतौ खगपत गत जिको, बीतौ चीतौ बाज ।

—रिवदांन महडू

उ०—२ गत गैवर कटि केहरी, रमणी हाटक रंग । कुच गिरवर लोयण कमळ, ऐ है कुसळे अंग ।—बां.दा.

(रू०भे०—गति)

८ गति, मोक्ष । उ०—१ राव बड़ो रजपूत छै, सूरवीर छै । पाछौ जाय कांम आयसूं तौ गत होयसी ।—डाढ़ाळा सूर री वात

उ०—२ आह जिसा अधमां दीन्ही गत, तोनूं राघव कांय न तारै ।

—र.ज.प्र.

क्रि०प्र०—गत मिळणी, गत होणी ।

मुहा०—गत होणी—मोक्ष होना ।

कहा०—रांम-रांम सत है, आगे गियां गत है—राम का नाम ही सत्य है जिसके स्मरण मात्र से परलोक में मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

(रू०भे०—गति)

९ लीला । उ०—अकरम करम उपाय कर, जागविया तें जीव । जगपत को जांणै नहीं, गत थारी हैग्रीव ।—ह.र.

क्रि०प्र०—करणी ।

कहा०—रांम री गत हीरा री भाई कोयलौ व्है है—ईश्वर की भी क्या लीला है ? हीरा जिसकी लाखों रुपयों की कीमत होती है, कोयले की खान में मिलता है ।

[रा०] १० गाय (अ.मा.)

गतखंग-सं०स्त्री०—गंगा (अ.मा.)

गततार-सं०पु०—आभूषण (अ.मा.)

गतपंचमी-सं०स्त्री०—पंचतत्व को प्राप्त होना, मोक्ष । उ०—नहीं गया मांचे मुवा, रवि मंडळ रै राह । जूंझ मुवा रण मैं जिके, गतपंचमी गयाह ।—बां.दा.

गतराड़ौ-सं०पु०यौ० [सं० गत+राद्] नपुंसक, नामर्द, हिजड़ा ।

कहा०—१ गतराड़ा घोड़ै चढ़ै अौ पिंडत पाळा जाय—नामर्द घोड़े पर सवार हैं और पंडित पैदल चलते हैं । योग्य व्यक्तियों की अपेक्षा अयोग्य व्यक्तियों की कद्र होने पर. २ गतराड़ाई कठे गांम लूटया है—क्या नपुंसकों ने भी कभी ग्राम लूटा है ? नामर्द व्यक्तियों से वीरतापूर्ण कार्यों के करने की आशा नहीं रखनी चाहिए. ३ गतराड़ा रै पूंछड़ै गाती मांडै—नामर्द पुरुष की सहायता के लिए कमर कसना व्यर्थ है । जिसके पास थोड़ा बहुत भी स्वयं का बल न हो उसे दूसरों की सहायता अधिक लाभ नहीं पहुँचा सकती.

४ गतराड़ै आळी गाती मारणी है—किसी कार्य को न करने के लिए आलस्य प्रकट करने वाले के प्रति ।

गतराज-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गतवंत-सं०पु० [सं० गतवत] पद, पैर, चरण (अ.मा.)

गतवन्ही-सं०स्त्री०यौ० [सं० गत = प्रकार+वन्हि = अग्नि] केसर (केसर को संस्कृत में अग्निशिखा कहा गया है ।)

गतागत-वि०यौ० [सं०] आया गया ।

सं०स्त्री० [सं०] १ आवागमन. २ जन्म-मरण. ३ गति, लीला—ज्यूं ईस्वर री गतागत समझ में नी आवै. ४ ढंग—ज्यूं इण कांम री गतागत कीं बैठे कोनी ।

गति-सं०स्त्री० [सं०] १ एक स्थान से दूसरे स्थान पर क्रमशः जाने की क्रिया, चाल, गमन । उ०—१ पदमणि रखपाळ पाइदळ पाइक, हिळवळिया हलिया हसति । गमे गमे मदगळित गुड़ंता । गात्र गिरोवर नाग गति ।—वेलि. उ०—२ आकरसण वसीकरण उनमादक, परठि द्रविण सोखण सरपंच । चितवणि हसणि लसणि गति संकुचणि, सुंदरि द्वारि देहरा संच ।—वेलि.

यौ०—गतिवंत ।

२ अवस्था, दशा, हालत । उ०—१ तू म्हांमें कूड़ा ओगुण काढ़ै छै सो जे म्हारी गति हुई जिकी थारी गति हुयज्यौ ।

—ठाकुर जैतसिंहजी री वारता

उ०—२ गढ़वी ढोला ने कहै, तू मांणै नरपत्ति । म्हांसूं सांची आखजे, मारू केही गति ।—ढो.मा. ३ हिलने-डोलने की क्रिया, हरकत—ज्यूं नाड़ी री गति बिल्कुल धीमी है. ४ रूप, रंग, वेष. ५ पहुँच, प्रवेश, पैठ । उ०—इण कारण मागध लोकां रा घणा ग्रंथां में एक ही लेख जांणि सोही प्रमांण इण ग्रंथ में राखियौ परंतु पीढ़ियां री विसेस ही विसमता हूं विरोध आवै जठै और कोई गति न जांणियां चाळुक्यंस री तेवीस ही पीढ़ियां में घणां रै

अंकस्थ पुत्र हुवा होइ इसड़ा ही संभव रा विचार थी खटावै ।
—वं.भा.

६ प्रयत्न की सीमा, अंतिम उपाय. ७ चाल, चेष्टा, करनी.
८ ढंग, रीति । उ०—नर विवने वा न रहै, जग में भ्रा रह जाय । कुळवंती सूं क्रीत री, उलटी गति इण भाय ।—बां.दा. ९ लीला, माया. १० जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन.
११ मुक्ति, मोक्ष । उ०—ध्यांन समाधि नियत मतधारी, बणिक सुता गति दुलभ विचारी ।—वं.भा. १२ प्रकार, तरह.
उ०—हुइ हरख घणै सिसुपाळ हालियौ, ग्रंथे गायौ जेणि गति ।
कुण जांणै संगि हुम्रा केतला, देस देस चा देसपति ।—वेलि.
१३ कुश्ती आदि के समय लड़ने वालों की चाल, पैंतरा. १४ ग्रहों की चाल । यह तीन प्रकार की मानी गई है—शीघ्र, मंद और उच्च.
१५ ताल और स्वर के अनुसार अंग-संचालन. १६ सितार आदि बजाने में कुछ बोलों का क्रमबद्ध मिलान ।
यौ०—गतिकार ।
१७ संगीत में लय. १८ पांच की संख्या* (डिं.को.)
क्रि०वि०—प्रकार, तरह । उ०—असुरै माया आसुरी, गरजै घण गति ।—रांमरासौ

गतिकार–वि०—संगीत में लय लेने वाला अथवा लय के अनुरूप चलने वाला । उ०—विधि पाठक सुक सारस रस, बंछक कोविद खंजरीट गतिकार । प्रगळभ लाग दाट पारेवा, विदुर वेस चक्रवाक विहार ।
—वेलि.

गतिवंत–सं०पु० —पैर, पग, चरण (ह.नां.)

गती— देखो 'गति' (रू.भे.)

गतू–वि०- पूर्ण, संपूर्ण ।
क्रि०वि०—पूर्ण रूप से ।

गत्त—१ देखो 'गत' (रू.भे.) उ०—१ जुध भागां थां मैं जिको, गढ़ तजियां नहि गत्त । गढ़ नूं म्हैं बांध्यौ गळै, आवौ सो 'अभपत्त' ।
—बां.दा.
उ०—२ नाभि सुकोमळ कमळ मुख, डील'सु सीतळ गत्त । तिणि कादमि खुच(द) बिरही, मन मयगळ मयमत्त ।—ढो.मा.
[सं० गात्र] २ गात, शरीर ।

गत्ति, गत्ती—देखो 'गति' (रू.भे.) उ०—१ दीठी तोही गत्ति न जांणां देव, अनंत तुह्मीणा कोटि अभेव ।—ह.र. उ०—२ गावत निगम अगम तव गत्ति, स्री करनी जय जयति सकत्ती ।—मे म.

गत्तू—देखो 'गतू' (रू.भे.) उ०—अह प्रभु चौधरियां कुळ कवण उबारै, मत्तू मत्तू में गत्तू दे मारै ।—ऊ.का.

गत्तौ–सं०पु० [सं० ग्रंथ] १ कागज की कई परतों को सटा कर बनाई गई दफ्ती जो प्राय: जिल्द बांधने के काम आती है, कुट. २ किसी पुस्तक पर चढ़ाया जाने वाला आवरण ।

गत्र–सं०पु० [सं० गात्र] गात, शरीर, देह । उ०—बीजळियां गळ बादळां, मेहां माथे छत्र । कदी मिळूं उण सज्जणा, करी उघाड़ा गत्र ।—ढो.मा.

गत्वर–वि० [सं०] १ जाने वाला, गमनशील. २ नाशवान ।
उ०—सोढ़ी अधम गई सुणि सत्वर । गंजण खळ गिणियौ वपु गत्वर ।—वं.भा.

गथ–सं०पु० [सं० ग्रंथ, प्रा० गत्थ] १ पूंजी, जमा. २ माल.
३ देखो 'गाथा' । उ०—गढ़वा जे पढ़ बीज सची गथ, जनम तणा दुख सो जाळण ।—र.ज.प्र. ४ देखो 'गत' । उ०—रे मीत नचित हुवौ कप राजिद, याद हरी नंह आवै । तोरौ वीर बीछड़ै तीरां, थां गथ सो हिव थावै ।—र.रू.

गथियौ–सं०पु० [सं० गत] नपुंसक, नामर्द, हिंजड़ा । उ०—गथिया आगै हेमाळै गळिया, सह भेळा हुय एक समै । पायौ जनम अथी सिर पाछौ, वां लीधौ अवतार हमैं ।—ऊमरदांन लाळस
वि०—गया-बीता, निकम्मा ।

गथ्थ—देखो 'गथ' (रू.भे.) उ०—रघुनाथ समथ्थं रखि यळ गथ्थं रिण संगी ।—र.ज.प्र.

गद–सं०पु०—१ विष (अ.मा.) २ पीड़ा, रोग, (अ.मा., डिं.को.)
उ०—मग्गण वित्तद मरण मरण सरणद सरणागत । सुणि सेवक अत सुपह, गदी गद समण जांणि गत ।—वं भा.
३ श्रीकृष्ण का छोटा भाई. ४ रामचंद्रजी की सेना का एक बंदर सेनापति (रामकथा) ५ एक असुर का नाम. ६ कवि पंडित (अ.मा.)

गदकाळ–सं०पु०—दाड़िम (अ.मा.)

गदगद–वि० [सं० गद्‌गद्] १ अत्यधिक हर्ष, प्रेम, श्रद्धा आदि के आवेग में निमग्न होने की स्थिति. २ अत्यधिक हर्ष, प्रेमादि के कारण रुका हुआ, अस्पष्ट या असंबद्ध । उ०—१ आणंद लखण रोमांचित आंसू, वाचत गदगद कंठ न वणै । कागळ करि दीधौ करुणाकरि, तिणि-तिणि हित प्रांह्मण तणै ।—वेलि. उ०—२ इतरौ कहतां तुरत दोनूं भाई गदगद कंठ होय सिलांम करण लागा, फिस पड़िया ।
पलक दरियाव री वात
३ प्रसन्न, आनंदित, पुलकित । उ०—ऊभी आंगणियै बोळूंड़ी आवै, गदगद मु'ळी सूं ओळूंड़ी गावै ।—ऊ.का.

गदगदपण, गदगदपणौ–सं०पु०—गदगद होने का भाव ।

गदगदी–सं०स्त्री०—१ गुदगुदी, आह्लाद, उल्लास. २ हँसी, ठट्ठा.
३ एक प्रकार का रोग (अमरत)

गदचांम–सं०पु०यौ० [सं० गदचर्म] हाथी का एक रोग विशेष जिसमें उसकी पीठ पर घाव हो जाता है ।

गदपाळ–सं०स्त्री०—अनार, दाड़िम (अ.मा.) ।

गदफड़–सं०पु०—एक प्रकार का मांसाहारी पक्षी ।
वि०वि०—यह पक्षी गिद्ध से छोटा और चील से बड़ा होता है । यह सफेद रंग का होता है और इसकी चोंच पीली होती है । (रू.भे.-गदपड़)

गदबंधवचनिका–सं०स्त्री०—राजस्थानी साहित्य के अंतर्गत वह गद्य

जिसमें अनुप्रासों और समासों की अधिकता हो। इसको पढ़ने में पद्य का आनंद आता है। वृत्तगंधि।

गदबड़णौ, गदबड़बौ—क्रि०अ०—छोटी-छोटी फुंसियों का जोश में आकर उनमें मवाद उत्पन्न हो जाना।

गदर—सं०स्त्री०—१ पुष्टि मार्ग के अनुसार एक प्रकार की रूईदार बगलबंदी जो जाड़े में ठाकुरजी को पहनाते हैं. (मा. मा.) [अ० गदर] २ हलचल, उपद्रव. ३ विद्रोह, बगावत।

क्रि०प्र०—करणौ, मचाणौ, होणौ।

यौ०—गदरगडीडी।

गदरगडीडी—देखो 'गदर' ३ (रू.भे.) उ०—महाराज रै पावां लगायौ, दिलासा करि साथ लियौ। महना सात आठ मारवाड़ में आम्ही साम्ही गदरगडीडी मांड राखी।

—मारवाड़ रा अमरावां री वारता

गदरौ—सं०पु० [फा० गद्दा] रूई आदि से भरा हुआ मोटा एवं गुदगुदा बिछौना, गद्दा।

गदळ—सं०पु० [सं० गजदल] हाथियों का समूह, गजदल। उ०—ठणणंक घंट गदळां ठहै, गणणंकै पळचर गयणं।—वं.भा.

गदबंधवचनिका—देखो 'गदबंधवचनिका' (रू.भे.)

गदहड़ौ—देखो 'गधौ' (अल्पा०)

गदहपचीसी—सं०स्त्री०—प्राय: १६ से २५ वर्ष तक की अवस्था जिसमें लोगों का विश्वास है कि बुद्धि अपरिपक्व रहती है।

गदहरणी—सं०स्त्री०—हरें, हरीतकी (नां.मा.)

गदहलोट—सं०पु०—कुश्ती का एक दांव।

गदा—सं०स्त्री० [सं०] १ प्राचीन समय में प्रयोग में लाया जाने वाला शस्त्र।

वि०वि०—इसमें लोहे का एक डंडा होता है जिसके एक सिरे पर भारी लट्टू की आकृति का बोझा लगा रहता है। इसका डंडा पकड़ कर उस भारी बोझिले भाग से शत्रु पर प्रहार करते हैं। विष्णु के चतुर्भुज रूप में एक हाथ में गदा धारण की हुई देखी जाती है। प्रमुखतया यह महाभारतकाल में अधिक प्रयुक्त होती थी। भीम का यह प्रमुख शस्त्र माना जाता है। रामायणकाल में हनुमान का यह प्रिय शस्त्र था।

यौ०—गदाधर, गदाधीस, गदापांणि।

२ कसरत के सामान में से एक जिसमें बांस के मजबूत डंडे के सिरे पर पत्थर का गोला छेद कर लगाते हैं और उसे मुग्दर की भांति घुमाते हैं।

गदाधर, गदाधारी—सं०पु०—१ विष्णु (नां.मा.) उ०—सांप्रत सांमी मो मज्झ सरीर। गोविंद गदाधर ग्यांन गहीर।—ह.र. २ भीम. ३ हनुमान (डिं.को., ह.नां., अ.मा.)

गदाधीस—सं०पु०—१ पांडु-पुत्र, भीम. २ हनुमान. ३ विष्णु।

गदापांणि, गदापांणी—सं०पु०यौ० [सं० गदापाणि] १ भीम।

उ०—पांण रा करन महा भारांण रा गदापांणी, नागरी पूहांण रा अम्मांणां रा निधांन।—महाराजा मानसिंह री गीत

२ वह व्यक्ति जिसके हाथ में गदा हो यथा विष्णु या उनके रामकृष्णादि अवतार. ३ हनुमान।

गदाबळवांन—सं०पु०—भीम (अ.मा.)

गदारा—एक प्रकार की तलवार।

गदाव—देखो 'गदा' (रू.भे.)

गदियौ—१ देखो 'गधौ' (अल्पा०) २ सूखे उपलों के ढेर में पाया जाने वाला एक प्रकार का कीट।

३ एक प्रकार का प्राचीन सिक्का जो चांदी एवं तांबे के मिश्रण से बनता था। यह सिक्का पांचवीं शताब्दी में प्रचलित था.

गदी—सं०पु० [सं०] १ रोगी। उ०—मग्गण बिरुद मरण, मरण सरणद सरणागत। सुणि सेवक अत सुपहु, गदी गदसमण जांणि गत।

—वं.भा.

स्त्री०—२ देखो 'गधौ' (स्त्री०)

गदीजणौ, गदीजबौ—क्रि०अ० [भाव वा०] इधर आना या जाना (तिरस्कारसूचक संबोधन)

गदेड़ियौ—सं०पु०—१ कातने के चरखे में लगे हुए दो डंडों में से एक जिनमें तकुआ फँसा या लगा रहता है. २ देखो 'गधौ' (अल्पा०)

गदेड़ौ—(स्त्री० गदेड़ी) देखो 'गधौ' (अल्पा०) उ०—बंगाळै ए बोर, रसै ना मुरधर जेड़ा। खाटा बड़छ निकांम, गिटै ना सूर गदेड़ा।

—दसदेव

गदेलौ—वि०—गंदला, धुंधला, मटमैला।

सं०पु०—रूई या जूट आदि से भरा हुआ बहुत मोटा गद्दा।

गद्दरौ—देखो 'गदरौ' (रू.भे.)

गद्दा—देखो 'गदा' (रू.भे.) उ०—गुपत्ती कत्ती संगि गद्दा गुरज्जं, कसै आवधां त्रीसछे भुज्झ कज्जं।—वचनिका

गद्दी—१ देखो 'गादी' २ देखो 'गदी'। (रू.भे.)

गद्धौ—(स्त्री० गद्धी) देखो 'गधौ' (रू.भे.)

गद्य—सं०पु० [सं०] १ वह लेख जिसमें मात्रा और वर्ण की संख्या व उनके स्थान का कोई नियम न हो. २ वार्तिक काव्यों के दो भेदों में से एक जिसमें छंद और वृत्त का प्रतिबंध नहीं होता, बाकी रस अलंकार आदि सब गुण होते हैं।

गधफड़—देखो 'गदफड़' (रू.भे.)

गधाचीतरी—सं०स्त्री०—आकाश में बड़े-बड़े टुकड़ों के रूप में छितरे हुए बादल।

गधामस्ती—सं०स्त्री०—धक्कमधक्का, ऊधम, उत्पात, शरारत।

क्रि०प्र०—करणी, मांडणी।

गधियौ—सं०पु०—देखो 'गदियौ' (रू.भे.)

गधेड़िया, गधेड़ौ—(स्त्री गधेड़ी) देखो 'गधौ' (अल्पा०)

उ०—अपणौ जांण अमाग अब नहिं खाय गधेड़ौ, सूकर भूंडी

समझ निपट निकळे नहिं नेड़ौ ।—ऊ.का.

गधौ—सं०पु० [सं० गर्दभ, प्रा० गद्दह] (स्त्री० गधी) १ घोड़े के आकार का किन्तु उससे कुछ छोटा एक प्रसिद्ध चौपाया जो प्राय: मटमैले रंग का और दो हाथ ऊंचा होता है। इसके कान लंबे होते हैं और खड़े रहते हैं। यह जानवर बोझा ढोने में मजबूत होता है। मूर्ख मनुष्यों को प्राय: इसकी ही उपाधि दी जाती है।

पर्याय०—अंबापोहण, करणलंब, खर, खुरदम, खुरप, गरदभ, चक्रिवा, चिरमेही, भारवहण, भूंकण, रासभ, रासिवि, रोड़ीराव, लंबकरण, लादणभार, वालेय, संकूकरण, संखसब्दी, सीतळपुहण, सीतळावाहण।

मुहा०—१ गधा माथै किताबां लादणी—मूर्ख को पुस्तकें देना, निरे गंवार को पढ़ाना. २ गधा माथै चढ़ाणौ—खूब बदनाम करना. ३ गधा माथै झूल डालणी—कुरूप को कीमती तथा सुन्दर वस्त्र पहनाना. ४ गधा नै गजगाव—देखो—गधा माथै झूल डाळणी. ५ गधौ होणौ—बिना अक्ल का या मूर्ख होना।

कहा०—१ गदेड़ा री गूणती में ९ मण को बांदौ नी—गधे पर लादे गये माल में ९ मन का अंतर नहीं हो सकता। अर्थात् थोड़ी वस्तु में बड़ा अंतर नहीं चलता. २ गधां रै किसा सींग होवै ?—गधों के कौनसे सींग होते हैं अर्थात् मूर्खों की कोई खास पहिचान नहीं होती. ३ गधै नै मारयां सूं घोड़ौ को हुवै नी—गधे को मारने से घोड़ा नहीं हो सकता अर्थात् मूर्ख मारने से नहीं सुधर सकता. ४ गधै ने लाख साबण सूं धोवौ घोड़ौ को हुवै नी—गधे को साबुन से कितना ही धोइये वह घोड़ा नहीं हो सकता। मूर्ख को ज्ञान देना बेकार है. ५ गधै री लात सूं गधौ को मरै नी—गधे की लात से गधा नहीं मरता; समान शक्ति वाले आदमी परस्पर एक दूसरे को अधिक हानि नहीं पहुँचा सकते. ६ गधै रै तो जीव री पड़ी है नै स्याळियै ने हुकी हालै—गधा तो संकट में फंसा है और सियार का बोलने का मन करता है—कथा-प्रसंग—गधा और सियार एक खेत में चरने गये। पेट भरते ही सियार का मन बोलने को हुआ। गधे ने लाख समझाया कि मैं अभी भूखा हूं और तुम्हारी आवाज को सुन कर खेत का मालिक आ जायगा। किन्तु सियार न माना और वह बोलने लगा। खेत के मालिक ने गधे की अच्छी पिटाई की। दुर्जनों के स्वभाव के कारण उनके साथ वाले व्यक्ति को भी कष्ट भुगतना पड़ता है. ७ गधौ ऊकरड़ी माथै लोटण सूं राजी—गधा घूरे पर लोटने से ही खुश होता है; गंदा व्यक्ति गंदगी में ही खुश रहता है. ८ गधौ जांणै सांवण सदा ही सुरंगौ रहसी—गधा समझता है कि सावन सदा ही हरा-भरा रहेगा; सब समय सदा एक सा नहीं रहता। उसे सदा एक सा समझना मूर्खों का काम है. ९ गधौ मिसरीसार कांई जांणै—गधा मिश्री के सार या स्वाद को क्या समझे ? मूर्ख या अज्ञानी अच्छी वस्तु की कद्र नहीं कर सकता. १० गधौ तौ कूदेई नहीं नै आथरिया पैलाई कूदै—गधा तो उछलता नहीं किन्तु उसके ऊपर रक्खी गद्दी पहले ही उछलने लगती है। वह अफसर (या व्यक्ति जिस पर सब उत्तरदायित्व है) तो कुछ कहता ही नहीं किन्तु उसके साथ के छुटपुटे आदमी या अधीनस्थ कार्यकर्ता व्यर्थ ही डांटने लगते हैं। संबंधित व्यक्तियों की उपस्थिति में असंबंधित व्यक्तियों का कुछ कहना-सुनना. ११ गधेड़ै री मांस राख में धोयां विनां को सीजै नी—गधे का मांस राख से धोये बिना सीझता नहीं। सजा पाने के आदी बिना सजा पाये मार्ग पर नहीं आते। (मि०—लातां रा भूत बातां सूं को मानै नी) १२ गधै नै कांई ठा गंगाजळ कैड़ौ व्है है—गधा गंगाजल का स्वाद क्या जाने। देखो कहावत नं० ९। १३ गधै री पूंछ पकड़णी—बिना सोचे-समझे किसी बात का व्यर्थ हठ करना. १४ बिजळी तौ आसमांन में खिवै नी गधौ जमी माथै लातां वावै—आकाश में बिजली चमकती है और गधा चौंक कर आकाश की ओर दुलत्ती झाड़ता है। असंबंधित कारण से जब कोई भय खाता है, उसके प्रति। स्वार्थ में क्षति पहुँचने की संभावना से अकारण ही भय खाने पर। मूर्खतापूर्ण कार्य करने के बाद।

(रू०भे०—गदहौ, गदौ, गद्धौ)

यौ०—गदहपचीसी, गधामस्ती।

अल्पा०—गदहड़ौ, गदियौ, गदेड़ियौ, गदेड़ौ, गधियौ, गधेड़ियौ, गधेड़ौ

मह०—गदेड़, गधेड़।

गनका—देखो 'गणिका' (रू.भे.)

गनगौर—देखो 'गणगौर' (रू.भे.)

गनायत—देखो 'गिनायत' (रू.भे.) उ०—भेळपदार गनायत भाई, समै देख पलटै सगळा ई।—देवी री गीत

गनिका—देखो 'गणिका' (रू.भे.)

गनीम—सं०पु० [अ०] १ शत्रु, वैरी। उ०—मैं तौ जे कुछ बदखबर सुणूंगा, उस दिन कोई गनीम होसी तौ उण सूं कजियौ कर कांम आऊंला।—पदमसिंह री वात २ लुटेरा, डाकू। उ०—मुंडा मुलक रा भेळा हुइ गया, सो एक तौ मुगल इसावेग और एक पठांण खुसेखां सो दोनूं मुलक नूं लूटै। टका करै। गनीम हुवा फिरै। बादसाह कस्मीर में रहै। ऐ हिंदुस्थांन में रहै बडी धूम मांडी।
—गौड़ गोपाळदास री वारता

गनीमत—सं०स्त्री० [अ० ग़नीमत] १ युद्ध में शत्रु की सेना से छीना हुआ माल. २ लूटा हुआ माल, लूट का माल. ३ संतोष की बात, धन्य मानने की बात।

वि०—उत्तम, अच्छा। उ०—समय नूं गनीमत जांणणौ, चित्त नूं सुख देणौ बादसाहां नूं योग्य नहीं छै।—नी.प्र

गनीमांण—देखो 'गनीम' (रू.भे.) उ०—क्रोधवाळै रूप गनीमांण रौ विधूंस कीधौ, जोध वाळै वीरभद्र दक्ष जाग जोम।
—बदरीदास खिड़ियौ

गनीस—देखो 'गणेस' (रू.भे.) उ०—ईस दनीस गनीस गिर, सोम बराबर सेस। राज करहु जैसे रिधू, माधवसिंह नरेस।—शि.वं

गम्म, गम्मौ-सं०पु०—१ संबंध, रिश्ता। उ०—गोल काढ़णी गम्म, भैंस ऊंठ मन भावणी, धणी खावणी धम्म।—अज्ञात
[रा०] २ गमा, ईख. ३ देखो 'गरणी' (रू.भे.)

गम्यांन—देखो 'ग्यांन' (रू.भे.)

गप-सं०स्त्री० [सं० कल्प, प्रा० कप्प] १ इधर-उधर की बात जिसकी सत्यता का निश्चय न हो. २ केवल जी बहलाने के लिए की जाने वाली बात, बकवाद।
क्रि०प्र०—मारणी।
मुहा०—गप मारणी—व्यर्थ की बकवाद करना।
यौ०—गप्प-सप्प।
३ मिथ्या बात, कपोल-कल्पना।
क्रि०प्र०—धरणी, फेंकणी, मारणी।
मुहा०—गप मारणी या लड़ाणी—झूठ-मूठ की बात करना।
४ मिथ्या खबर, अफवाह।
क्रि०प्र०—उडणी, फैलणी।
मुहा०—गप उडाणी—अफवाह फैलाना। झूठा समाचार कहना।
५ बड़ाई, प्रकट के लिए की जाने वाली झूठी बात, डींग।
क्रि०प्र०—धरणी, मारणी।
[अनु०] ६ वह शब्द जो झट से निगलने, किसी नरम अथवा गीली वस्तु में घुसने, पड़ने या निकलने आदि से होता है। उ०—सो कुंवर सुंदरदास गप से तळाव सूं नीसर घोड़ा सगळा कोस लिया, मारिया पीटिया। उण रौ साथ सगळौ नसे में ही जे थौ सो घणी बुरी हालत हुई।—भाटी सुंदरदास बीकूंपुरिये री वारता
यौ०—गपागप, झटपट, जल्दी-जल्दी।

गपड़चौथ-सं०स्त्री०यौ०—१ गड़बड़. २ व्यर्थ की गोष्ठी, निष्प्रयोजन बातचीत।

गपसप—देखो 'गप' (२)

गपागप-क्रि०वि०—शीघ्र, जल्दी, झटपट।

गपियौ, गपिहौ, गपी-वि०—गप्प मारने वाला, गप्पी, मिथ्याभाषी।
उ०—करामात का बिन करतूती, गपी चलावै गोटा। रांम रांम कर रांड बिगाड़ै, प्रकट पाप का पोटा।—ऊ.का.
कहा०—गपियां रौ बादसाह है—उस व्यक्ति के प्रति जो गप्प मारने में दक्ष हो।

गपोड़—देखो 'गपोड़ौ' (रू.भे.)
वि०—देखो 'गपी' (रू.भे.)

गपोड़ेबाजी-सं०स्त्री०—गप्प लगाने का कार्य।

गपोड़ौ-सं०पु०—'गप' का महत्त्ववाची रूप, कोई बड़ी गप्प।
उ०—ग्यांन गपोड़ा अरु हरि कथा, कळि में घर घर होत। कर दीपक कूए पड़ै, नारायण बिन जोत।—संतवांणी

गप्प—देखो 'गप' (रू.भे.)

गप्पी-वि०—गप्प मारने वाला, मिथ्याभाषी।

गप्फौ-सं०पु० [अनु० 'गप'] १ खाने के लिए उठाया गया बहुत बड़ा ग्रास, बड़ा कौर. २ स्वादिष्ट भोजन खाने का भाव. ३ बढ़िया व स्वादिष्ट भोजन। उ०—खप्फा होवै खलक पर, डप्फा डांवाडोळ। नप्फा थारै है नहीं, गप्फा खावै गोल।—ऊ.का. ४ लाभ, फायदा।

गफलत, गफिलाई-सं०स्त्री० [अ० गफ़लत] १ असावधानी, लापरवाही।
उ०—दुस्मन औरंगजेब सा, फिर गफलत ई भांत। अहड़ी बातां जोग नहिं, परबंध राखौ तात।
—महाराजा जयसिंह आंमेर रा धणी री वारता
२ भूल, भ्रम। उ०—हे दरवेस मैं सुक्र करतौ थौ तींसूं थारै जवाब री गफलत हुई।—नी.प्र.

गफ्फूर-सं०पु० [अ० गफ़ूर] दया करने वाला, ईश्वर का एक विशेषण।
उ०—खांविंद चहत खुद खलक खैर, गफ्फूर गैर इंसाफ गैर।—ऊ.का.

गफ्फौ—देखो 'गप्फौ' (रू.भे.) उ०—आपां हणांई चोखौ गफ्फौ मारचौ है फेर लोभ करणसूं ……।—वरसगांठ

गबड़काणौ, गबड़काबौ, गबड़कावणौ, गबड़कावबौ-क्रि०स०—फटकारना, दुत्कारना।

गबड़कायिोड़ौ-भू०का०कृ०—फटकारा हुआ, दुत्कारा हुआ।

गबड़कौ-सं०पु०—व्यर्थ की बात, अनावश्यक बात।

गबन-सं०पु० [अ० गबन] व्यवहार में मालिक या किसी अन्य के सौंपे हुए माल को हड़प करना, दबाना, खयानत।

गबरू-वि० [फा० खबरू] १ उभड़ती जवानी का, तरुण. २ भोला-भाला, सीधा. ३ बेखबर।

गबागब-सं०पु०—गड़बड़, अव्यवस्था।
क्रि०वि०—देखो 'गपागप' (रू.भे.)

गबीड़ौ-सं०पु०—१ धोखा, हानि, नुकसान।
क्रि०प्र०—खाणौ, धरणौ, नांखणौ, मेलणौ।
२ चोट, प्रहार या प्रहार की ध्वनि. ३ असत्य खबर, अफवाह।

गबूरियौ-सं०पु०—फटा हुआ वस्त्र।

गबोड़ौ—देखो 'गबोळौ' (रू.भे.)

गबोळणौ, गबोळबौ-क्रि०स०—१ गड़बड़ी में डालना, घोटाले में डालना. २ गंदला करना।

गबोळियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ गड़बड़ी में डाला हुआ. २ गंदला किया हुआ (स्त्री०—गबोळियोड़ी)

गबोळौ-सं०पु०—१ गड़बड़-घोटाला। उ०—लाख पचासां लूटिया, रोकड़ धन रोळै। 'मोटल' सिरखा मारिया, गढ़ लीध गबोळै।
क्रि०प्र०—काडणौ, घालणौ, पहुंचाणौ, मिटाणौ, मेलणौ।
२ डुबकी। —बी.मा.

गब्ब-सं०पु० [सं० गर्व] १ अभिमान, गर्व। उ०—वडौ दळ जीतौ आउध वाहि, मरुध्धर गब्ब कियौ मन मांहि।—रा.ज..रासौ
२ देखो 'गप' ६ (रू.भे.) उ०—कांई सभा-धभा हुवै जणै गब्ब देणी जाय'र सभापति बण जावणौ। अखबार में तौ नांव आय जावै।
—वरसगांठ

गब्बू-वि०—१ भोला, नासमझ, दब्बू ।

गब्भ-सं०पु०—१ देखो 'गब्ब' (रू.भे.)

[सं० गर्भ] २ देखो 'गरभ' (रू.भे.) उ०—१ भ्रमारी पति मरत, किधौ सहगौन रीत करि । बुल्ली पावक बिसत, रही जह्योनि गब्भ धरि ।—वं.भा. उ०—२ गनीम गड्ढ गब्बतीय गब्भ को गमावनी ।—ऊ.का.

गब्भूती-सं०स्त्री०—दूरी का एक माप जो चार मील के बराबर माना जाता था ।

गब्भौ, गभौ-सं०पु०—१ वस्त्र, कपड़ा (रू.भे.-गाबौ)

२ गाय का छोटा बछड़ा (स्त्री०—गब्भी, गभी)

गम-सं०पु० [सं० गम्य] १ प्रवेश, पहुँच, पैठ. २ अक्ल, बुद्धि, समझ, विचारशक्ति । उ०—१ गम राखौ मालकां ! थे कांई छोरां सूं छोराई करौ हौ । थे तौ दांना हौ ।—वरसगांठ उ०—२ असल सूं नकल मीढ़ौ असल, गुरगम हीरणां गम नहीं । अमलियां हूंत देखौ अपत, हूका वाळा कम नहीं ।—ऊ.का.

क्रि०प्र०—राखणी, लेणी, होणी ।

३ पता, इल्म, ज्ञान । उ०—१ निस दिन जनमाठम आठम गम नांही । माधव जनम्यो कै मरियौ जग मांही ।—ऊ.का.

उ०—२ सो सगळा लोग कमर बांध आवौ, मांणस च्यार रा पेट में बात, बीजै सगळां नूं गम नहीं ।—ठाकुर जैतसिंह री वारता

क्रि०प्र०—करणी, पड़णी, होणी ।

[सं० गमन] ४ गमन, प्रस्थान । उ०—गढ़ अजमेरा गम करउ, चउरी बइसी पखाळज्यौ पाव ।—वी.दे.

क्रि०प्र०—करणी ।

[अ० ग़म] ५ दुख, शोक, रंज ।

क्रि०प्र०—आणौ, करणौ, होणौ ।

यौ०—गमगीन, गमगलत ।

६ सहन करने का भाव, क्षमाशीलता, क्षमा । उ०—इयां गम मोकळी ही पण कणेई-कणेई तौ छेड़ते ही कपड़ां सूं बारै आय जातौ ।—वरसगांठ

क्रि०प्र०—करणी, खाणी, राखणी ।

मुहा०—गम खाणी—क्षमा करना, सब्र करना, संतोष करना, कुछ देर सब्र से प्रतीक्षा करना, ठहरना ।

यौ०—गमखोर, गमखोरी ।

[रा०] ७ खबर, सूचना । उ०—रिम दौड़ियौ दिवस तिण रतियां, मोहर खबर पूगी मेड़तियां । ऊदां तणै तुरत गम आई, भेळा थया पौहर मैं भाई ।—रा.रू.

क्रि०प्र०—आणी, करणी, भेजणी ।

[सं० गम्य] ८ जानने योग्य बात । उ०—पिंगळराय कहइ तिणि वार, कांई बळी अपूरब सार । दीठी हुइ सा मुझ नइ दाखि, गम गोचर मन मांहि म राखि ।—ढो.मा.

क्रि०वि०—वार, दफा । उ०—एकइ गमइ ऊतरीउ 'सातळ', घणु मेळावउ लेय । बीजइ गमइ कटकि अइ विलगु, राउळ कान्हड़देय ।—कां.दे.प्र.

गमक-सं०पु० [सं०] १ संगीत में एक श्रुति या स्वर पर से दूसरी श्रुति पर या स्वर पर जाने की एक प्रणाली. २ तबले की गंभीर आवाज. ३ आनंद, मौज. ४ पांच मात्रा का मात्रिक छंद विशेष (र.ज.प्र.) ५ स्वर का कंपन ।

गमखोर-वि० [अ० ग़म+फा० खोर] सहिष्णु, सहनशील ।

गमखोरी-सं०स्त्री० [अ० ग़म+फा० खोर+रा० प्र० ई] सहिष्णुता, सहनशीलता, सहन करने की क्षमता ।

गमगलत-सं०पु० [अ० ग़मग़लत] शोक या चिंता दूर करने या भुलाने का भाव ।

गमगीन-वि० [अ० ग़म+फा० गीं] दुखी, खिन्न, उदास, गम में लीन ।

गमछी-सं०स्त्री०—घोड़े की जीन के साथ रकाब से कसी जाने वाली चमड़े की रस्सी ।

गमछौ-सं०पु०—शरीर को पोंछने का वस्त्र विशेष, तौलिया ।

उ०—मास्टरजी गमछै सूं पसीनौ पूंछतां-पूंछतां बारी माय सूं बारै देखियौ । किणी कयौ—थोड़ी म्हांरी-ई सुणौ, बापजी !—वरसगांठ

गमण—१ देखो 'गमन' । उ०—१ नायक रै विदेस गमण आपरी अंगना रै समांन राजपुत्रियां भी कुळ रा धरम रै अनुसार पावक रा प्रवेस बिनां ही उण ही बिदेस में बसण री चाह लागी ।—वं.भा.

उ०—२ और पर स्त्री गमण आदि कळंकां सूं पूरित है ।—बी.स.

२ नाश करने वाला, संहारक, विध्वंसक । उ०—सुतण दसरत्थयं सुकर संख सारंगमं, अनंत अणभंगयं, गमण दैत ग्रीरंगमं ।—पि.प्र.

गमणौ, गमबौ-क्रि०अ० [फा० गुम] १ खोना, भूल जाना ।

उ०- बोलंति मुहुरमुहू विरह गमै बे, तिसी सुकळ निसि सरद तणी । हंसणी ते न पास देखै हंस, हंस न देखै हंसणी ।—वेलि.

२ खोना, गायब होना ।

कहा०—गमै तोई गांम रां नै लादजो—अगर कोई वस्तु खो भी जाय तो किसी साथी को ही मिले तो अच्छा ।

३ नाश होना । उ०—जिण महाभक्त रौ अंग संग होतां ही आपरौ कोढ़ गमियौ जांणि मीसण राठोड़ सूं दसमां साळिग्रांम इसड़ौ बिरद दियौ ।—वं.भा.

कहा०—गमियोड़ी खेती नै कमायोड़ी चाकरी बराबर—बिगड़ी हुई खेती और सुधरी हुई नौकरी दोनों बराबर हैं । नौकरी की निंदा एवं कृषि की प्रशंसा ।

[सं० गमन] ४ चलना, गमन करना ।

क्रि०स० [फा० गुम] ५ खोना गायब करना. ६ खोना, व्यर्थ में बिताना । उ०—१ मट गंगा तपियौ नहीं, नह जपियौ नरसीह । जड़तें आरण भमण जिम, दम गमिया बहु दीह ।—बां.दा.

उ०—२ गाहा गीत विनोद रस, सगुणां दीह लियंति। कइ निद्रा कइ कळह करि, मूरिख दीह गमंति।—हो.मा.

७ नाश करना, विध्वंश करना। उ०—१ देवी गाजता दैत ता वंस गमिया। देवी नवे खंड त्रिभुवन तूझ नमिया।—देवि.

उ०—२ मेघाडंबर छतर धर मसतक, महि लग गमै खळां चा मूळ। जळहर गरज करै जोधपुरो, सत्र आफळै मरै सादूळ।
—देवराज रतनू

[सं० संगमन] ८ फबना, अच्छा लगना। उ०—खातां न गमै खांण पांणी न गमै पीवतां। सयणां विण समसांण, जग सगळो दीसै 'जसा'।—जसराज

गमणहार, हारौ (हारी), गमणियौ—वि०।

गमाड़णौ, गमाड़बौ, गमाणौ, गमाबौ, गमावणौ, गमावबौ—क्रि०स०, रू०भे०।

गमिग्रोड़ौ, गमियोड़ौ, गम्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गमीजणौ, गमीजबौ—कर्म वा०, भाव वा०।

गमत—देखो 'गम्मत' (रू.भे.)

गमन—सं०पु० [सं०] १ जाना, प्रस्थान, रवानगी. २ चलना, यात्रा करना. ३ किसी वस्तु के क्रमशः एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त होने का कर्म। यह वैशेषिक दर्शन के अनुसार पांच प्रकार के कर्मों में से एक माना जाता है. ४ संभोग, मैथुन. ५ राह, रास्ता. ६ पैर (ह.नां.) ७ नाश। उ०—रोग को भवन ज्यूं कुजोग को समन जांणै, दया को दमन ग्रो गमन गरुवाई को।—ऊ.का.

गमना—सं०स्त्री०—भाटी वंश की एक शाखा जो अब मुसलमान हो गई है।

गमयोड़ौ—वि०—१ खोया हुआ, गुमा हुआ. २ नष्ट, ध्वस्त। (स्त्री० गमयोड़ी)

गमर—सं०पु० [सं० गज, प्रा० गय, अप० गवर] हाथी (डिं.को.)

गमलौ—सं०पु० [सं० ग = विनोद + लौ = लाने वाला] नांद के आकार का मिट्टी या धातु आदि का बना हुआ एक प्रकार का पात्र जिसमें फूलों के पेड़ और पौधे लगाए जाते हैं।

गमांगमां—क्रि०वि०—चारों ओर। उ०—गहि चाढ़े मंडोवर जंगळ, सांकड़ियां मिळियां दळ सब्बळ। समहर कुळ लज्या पै संकळ, गमां-गमां वांटांणी गोकळ।
—राठौड़ गोकुळ (सुजांनसिंहोत, ईसरोत) रौ गीत

गमा—सं०स्त्री—दिशा।

गमागम—क्रि०वि०—१ यत्र-तत्र, जहां-तहां। उ०—वणिया टूंक गमागम बंका, जळहर वरसै जुग्रा जुग्रौ। तिण वेळा लागै ग्राभंतर, हरियै वन गरकाब हुग्रौ।—नवलजी लाळस २ निरंतर, लगातार।
उ०—कमंध ग्रखै ललकार, मुगळ उर वार गमागम। मार मार ऊबार, धार हर नांम सांमध्रम।—रा.रू. ३ एक साथ.
४ चारों ओर। उ०—छत्रपती तुंग गमागम छूटा। ति करि गयण सूं नाखत्र तूटा।—रा.रू.

सं०स्त्री०—१ ग्राना-जाना, ग्रावागमन. २ रहस्य, भेद।

गमाड़णौ, गमाड़बौ, गमाणौ, गमाबौ—क्रि०स०—१ 'गमणौ' का प्रे०रू०
उ०—१ ग्रांखड़ियां डंबर हुई, नयण गमाया रोय। ते साजण पर-देस मइं, रह्या विडांणा होय।—ढो.मा. उ०—२ तरै ग्रासकरण भूठो हुवो। तरै मूळराज रतनसी जांणियो—ग्रो मांहरो दुसमण थो सु म्हांरो भलो चाकर गमायो। तिण थी इणां ठाकुरां रै माहोमांहे ग्रसुख घणो वधियो।—नैणसी
२ नाश करना। उ०—इण साक्षात सती रूपी धण रा कपड़ा रंगत ग्रा सत करण नै पोसाक मंगावसी जद म्हांरा दाळद गमाय देसी सो इण ने जीवतै रांड करदी कायर।—वी.स.टी.
गमाड़णहार, हारौ (हारी), गमाड़णियौ—वि०।
गमाणहार, हारौ (हारी), गमाणियौ—वि०।
गमाईजणौ, गमाईजबौ—कर्म वा०।
गमायोड़ौ—भू०का०कृ०।
गमणौ, गमबौ—ग्रक रू०।

गमायोड़ौ—भू०का०कृ०—१ गुमाया हुआ, खोया हुआ. २ नाश किया हुआ, नष्ट।

गमार—देखो 'गंमार' (रू.भे.) उ०—१ घर नीली धण पुंडरी, घरि गहगहइ गमार। मारू देस सुहामणउ, सांवणि सांभी वार।
—ढो.मा.
उ०—२ वदै 'जसौ' जिण वार, कंवर ग्रग्गळ जोड़े कर। मीणा ग्रधम गमार, घणै छक ग्रनड़ रहे घर।—वं.भा.

गमावणौ, गमावबौ—देखो 'गमाणौ' (रू.भे.) उ०—स्याळ मत ग्रावै ज्यूं सांप्रत, गांव तरफ गड़वड़िया है। हया गमावण इण हवाल में, ऊमर सूं ग्रब ग्रड़िया है।—ऊ.का.
गमावणहार, हारौ (हारी), गमावणियौ—वि०।
गमाड़णौ, गमाड़बौ, गमाणौ, गमाबौ—रू०भे०।
गमाविग्रोड़ौ, गमावियोड़ौ, गमाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।
गमावीजणौ, गमावीजबौ—कर्म वा०।
गमणौ, गमबौ—ग्रक रू०।

गमावियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ गंवाया हुआ, खोया हुआ. २ नष्ट किया हुआ, मिटाया हुआ। (स्त्री० गमावियोड़ी)

गमियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ गमा हुआ, खोया हुआ. २ नष्ट, ध्वस्त। (स्त्री० गमियोड़ी)

गमी—सं०स्त्री० [ग्र० गम + ई] गम से संबंधित, मृत्यु, मौत. २ शोकावस्था।

गमूं—देखो 'गम्य' (रू.भे.)

गमे—क्रि०वि०—तरफ, ओर। उ०—'गोकळ' हेक गमेह, हेक गमे हिंदू ग्रवर। सत तोलियौ सनेह, भार कहिक ग्रौ 'भांणवत'।
गोकळदास सक्तावत रौ दूहौ

ग्रव्यय—ग्रथवा, या।

गमेयमण–सं०स्त्री०—सुरनदी, गंगा (ह.नां.)

गमेगमे–क्रि०वि०—१ चारों ओर। उ०—गमेगमे मारेवा लागा, मलिका सवे विध कीधा। अंगोअंगि बिहुं दळि साम्हा, मलिकि ऊथला दीधा।—कां.दे.प्र.

२ इधर-उधर। उ०—पदमिणि रखपाळ पाइदळ पाइक, हिलवळिया हुलिया हसति। गमेगमे मदगळित गुड़ंता गाव, गिरोवर नाग गति।—वेलि.

गमेताई–सं०स्त्री०—गाँव के मुखिया का कार्य।

कहा०—घेर नो खूंणो तो छोड़े ही नी नै गांम में गमेताई करै—घर का कोना तो छोड़ता ही नहीं और गाँव में मुखिया का कार्य करने चला है। एक ही स्थान पर बैठ कर जो केवल बातें करता है उसके प्रति।

गमेती–सं०पु०—१ ग्रामीण. २ गाँव का मुखिया।

कहा०—गमेती ने हाथ में कात नी आवै रळी गांव नी बात—गाँव का मुखिया है और पास में शक्ति है परन्तु जानता साधारण बात भी नहीं है। अयोग्य मुखिया या नायक के प्रति।

गमोगम—देखो 'गमागम' (रू.भे.) उ०—इम स्वास दमोदम दुःख हमोहम रांम रमोरम जांण सवे, ग्रह-ग्राह गमोगम जीव भमोभम एक तमोतम ओर नवे।—करुणासागर

गम्मत–सं०स्त्री० [मराठी] १ हँसी, दिल्लगी. २ मौज, आनन्द, बहार।

गम्य–वि० [सं०] १ जाने योग्य, गमन योग्य. २ सहज, सरल।

उ०—दसा विसम्य संम्य हा अगम्य गम्य है नहीं।—ऊ.का.

३ संभोग करने योग्य, मैथुन करने योग्य। उ०—स्वीय कुमार सारंग की, धात्रेयी भगिनी सु दौड़ि गही, नृप देखत हि, गम्य नहीं न गिनी सु।—वं.भा. ४ साध्य।

गम्योड़ो—देखो 'गमियोड़ो' (रू.भे.) (स्त्री० गम्योड़ी)

गयंद–सं०पु० [सं० गजेन्द्र, प्रा० गयिंद, गइंद] १ हाथी (डिं.को.)

२ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गयंदगुमांन–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो)

गयंदौ—देखो 'गयंद' १ (रू.भे.) उ०—गाजै द्वारि गयंदौ गाजै, नीसांण वैत सिर बाजा।—वचनिका

गय–सं०पु० [सं० गगन] १ आकाश, गगन. [सं० गज] २ हाथी।

उ०—१ इण विध नवाब गय चढ़ प्रयांण। गज घड़ा अग्र चाले घुमांण।—शि.सु.रू. उ०—२ राजति अति एण पदाति कुंज रथ, हंस माळ बंधि लास हय। डालि खजूरि पूठि ढळकावै, गिरवर सिणगारिया गय।—वेलि. [रा०] ३ ऊँट (अ.मा.)

उ०—लांबी कांब चटक्कड़ा, गय लंबावड़ जाळ। ढोलउ अजे न बाहुड़इ, प्रीतम मो मन साल।—ढो.मा.

सं०स्त्री० [सं० गति] ४ गति, चाल। उ०—खंजर नेत विसाळ गय, चाही लागइ चक्ख। एकण साटइ मारवी, देह ऐराकी लक्ख।—ढो.मा

गयगमणि, गयगमणी, गयगवणी—देखो 'गजगमणी (रू.भे.)

उ०—१ लाज लोह लंगरे लगाए, गय जिम आंणि गयगमणी।—वेलि.

उ०—२ मारवणी सिणगार करि, मंदिर कूं मल्हपंति। सखी सुरंग साथ करि, गयगवणी गय गंति।—ढो.मा.

गयणंग, गयणंगणि–सं०पु० [सं० गगन] आकाश, नभ। उ०—१ उड रहियौ मन लाग उळंगे, गड्डी जांण भ्रमै गयणंगे।—रा.रू.

उ०—२ वीर हाक वाजि गयणंगणि, सींगणी ना गुण गाजइ।—कां.दे.प्र.

गयण–सं०पु० [सं० गगन] १ आकाश, गगन, व्योम।

उ०—१ कुसळावत वीठळ रण कोडे, ऊभौ गयण भुजाडंड ओडे।—रा.रू.

उ०—२ पंखी कवण गयण लगि पहुंचै, कवण रंक करि मेरु करै।—वेलि.

यौ०—गयणमणि।

२ हाथी।

गयणाग—देखो 'गयण' १ (रू.भे.) उ०—अतरै गरवां ऊपड़ी, चडी पुणां गयणग्ग। आया भड़ 'अजमाल' रा, कर तोलता खड़ग्ग।—रा.रू.

गयणमण, गयणमणि, गयणमिण, गयणमिणि, गयणमिणी–सं०पु०यौ० [सं० गगन+मणि] सूर्य, भानु (ह.नां., नां.मा.)

उ०—जोधपुर धणी सूं गयणमण रीझियौ, देख रण वखत फतै करण दीधौ।—सुभरांम बारहठ उ०—२ केवी मुहर पूठि सुर कांमणि, जडाधार पासे नभ जोगिणि। मोह्या सुर अंतरीख गयणमिणि, राडजादौ सोहियौ महारिणि।

—राठौड़ गोकुळ (सुजांनसिंहोत, ईसरोत) री गीत

गयणांग, गयणांगण, गयणाग, गयणि–सं०पु० [सं० गगन] गगन, आकाश। उ०—१ लागै मो इकबाल सूं, नीसरणी गयणाग। इण गढ़ क्यूं नहिं लागसी, खिविया मो कर खाग।—बां.दा.

उ०—२ गाढ़ी गयणांगण रज ले गरणाटा। सांवण सूको गो देतौ सरणाटा।—ऊ.का.

उ०—३ न खमै ताप हजार नर, जुदौ जुदौ डर जाग। केहर गड़ड़ै क्रोध कर, गाजै गिर गयणाग।—बां.दा.

उ०—४ ऊंडी खेह थयूं अंधारू, गयणि न सूझइ भांण। चाली बळ मुहडासइ आव्यां, ढमढमियां नीसांण।—कां.दे.प्र.

गयणिमिणी—देखो 'गयणमिणी' (रू.भे) उ०—मुंह भांजिया तणा मोहेला, मिळी ते साखी गयणिमिणि। कुळ आभरण अभिनमा कूंपा, भू-मंडळि चाढ़ियौ भरणि।

—राठौड़ गोवरधनसिंह (चांदावत) री गीत

गयणी –१ देखो 'गयणि' (रू.भे.) २ बादल, मेघ (अ.मा.)

गयदंतौ–सं०पु०—हाथी के दाँतों के समान दाँत वाला, सूअर।

उ०—गयवंतो पाड़ा खुरी, एकरण मंल्ल प्रबीह। जिण बन कवळी संचरै, तिण बन फेरै सीह।—डाढ़ाळा सूर री वात

गयनाळ–सं०स्त्री०यौ० [सं गज+नाल] एक प्रकार की भारी तोप जिसे हाथी खींचते थे, गजनाल।

गयन्न–सं०पु० [सं० गगन] गगन, आकाश। उ०—जांमिनी सत्र जंगमां अत्ति, गोए गयन्न सासत्त गत्ति।—रा.ज.सी.

गयराज—देखो 'गजराज' (रू.भे.) उ०— यराजां गुड़ ग्रहण, रहण पाखर हयराजां। पाजां छळि दळ प्रघळ, सघण बरसाळ समाजां। —वं.भा.

गयला–सं०स्त्री०—चौहान वंश की एक शाखा (वं.भा.)

गयलौ–सं०पु०—चौहान वंश की गयला शाखा का व्यक्ति।

वि०—पागल।

गयवर–सं०पु०यौ० [सं० गजवर] हाथी। उ०—उरि गयवर नइ पग भमर, हालंती गय हूंभ। मारू पारेवाह ज्यूं, अंखी रत्ता मंभ। —ढो.मा.

गयसिर–सं०पु० [सं० गयशिर] १ आकाश. २ गया के पास का एक पर्वत (पौराणिक) ३ गया तीर्थ।

गया–सं०पु० [सं०] बिहार या मगध देश का एक प्राचीन पुण्य-स्थान यह तीर्थ स्थान श्राद्ध और पिंडदान आदि करने के लिए बहुत प्रसिद्ध है और हिन्दुओं का विश्वास है कि बिना वहां जाकर पिंडदान किये पितरों का मोक्ष नहीं होता है।

गयोड़ौ–भू०का०कृ०—क्रिया 'जाणौ' का भू०का०कृ०। उ०—पूरणमल जायौ सो गयोड़ौ भोमि ल्यायौ।—शि.वं.

(स्त्री० गयोड़ी)

गयोबीतौ, गयोवीतौ–वि०—गया-बीता, गया-गुजरा, निकम्मा।

गरंद, गरंद्र–सं०पु० [सं० गिरि+इंद्र] १ पर्वत। उ०—चित सुध 'अभौ' पयंपै 'चिमनौ', ऊपर खड़ आया अरंद। खोसै धन मगरा बळ खाधौ, गळै जकौ बाधौ गरंद।—जादूरांम आढ़ौ

२ हिमालय पर्वत. ३ सुमेरु पर्वत।

गर–सं०पु० [सं०] १ विष, जहर (डिं.को.) २ वत्सनाभ.

३ ग्यारह करणों में से पाँचवां करण (ज्योतिष)

[सं० गिरि] ४ गिरि, पर्वत, पहाड़। उ०—डाकर कर फरंग फरै गर दोळा, जे खग ठाकर केम झलै।—जादूरांम आढ़ौ

[सं० गृह] ५ घर, गृह। उ०—तारै ढोलेजी कह्यौ, थे तो गरै पधारौ। म्हे तौ मारवणी लारै जीवत काठ लेसां।—ढो.मा.

प्रत्यय० [फा०] बनाने या करने वाले के अर्थ में यह प्रायः शब्द के अंत में प्रयुक्त होता है—यथा बाजीगर, कारीगर।

गरक–वि० [अ० गर्क] १ डूबा हुआ, निमग्न। उ०—१ सगळौ साथ अमराव कुंवर रा हजूरी अमलां गरक रहै, ऊगियं आंथे री खबर ही नी पड़ै।—कुंवरसी सांखले री वारता उ०—२ वा ठोड़ मंगळीकाथळ कहावै छै। तठै भ्रम छै। सु भोमियौ होय सु डांडी आवै। असैधौ डांडी टळै सु घोड़ौ असवार गरक हु जाय। अभूमियौ डांडी सूं टळै सु मरै।—नैणसी २ किसी कार्य आदि में लीन, मग्न। उ०—सो घणा दिनां सूं कांम भोग री वासना में थौ सो आय महलां मांही गरक हुवौ।—नापे सांखले री वारता

३ परिपूर्ण, लदा हुआ। उ०—१ भला पधारौ भीचड़ा, गरक सिलह में गात। केहर वाळा कळह री, बळता कीजौ वात।—बां.दा. उ०—२ गरक घणै जळ गूरड़ा, ले तन सूं लपटाय। अत्थ वत्थ भर काढ़जै, मंदिर जळते मांय।—बां.दा. ४ नष्ट, नाश, बरबाद, तबाह। उ०—इतरै में डावी अणी दखिणी आय लूटिया तद जोधौ सुखरूप अभयराजोत मुजरौ कर भेळिया सो गरक हुवा। —मारवाड़ रा अमरावां री वारता

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।

५ गहरा, घना। उ०—हुवै प्रफुल्लत गात हद, सांभळ बात सकोय। गरक घटा उमड़ी गरज, हरख सिखंडी होय।—रा.रू.

गरकाब, गरकाव—देखो 'गरक' (रू.भे.) उ०—१ तिका काळी, डीगी, मोटा दांत, दूबळी, घणी डरावणी, माथा रा लटा विखरिया, घणा तेल मांहे चवती, धवळा केस, माथै निलाड़ सिंदूर थेथड़ियौ थकौ, लोवड़ी काळी, काळौ धाबळौ, कांचळी तेल मांहे गरकाब थकी, उघाड़ौ माथौ कीधां, हाथ मांहे त्रिसूळ झालियां दरबार आई। —जगदेव पंवार री वात

उ०—२ आइस्यै जाइ साथि सु चढ़ि चढ़ि आया, तुरी लाग ले ताकि तिम। सिलह मांहि गरकाब संपेखी, जोध मुकुर प्रतिबिम्ब जिम।—वेलि.

उ०—३ खाट खड़ ढालड़ां टूक ऊछळ खळां, बाज गरकाव कीधा समर बांघळां।—चांदावत राठौड़ उदयसिंह, नरसिंह और लखधीर रौ गीत (रू०भे०—गरगाब, गरगाव)

गरकी–सं०स्त्री० [अ० गर्की] १ डूबने या निमज्जित होने की क्रिया या भाव. २ पानी अधिक बरसने से बाढ़ के पानी का फैल जाना। (मि०—गरक)

गरक्क—देखो 'गरक' (रू.भे.) उ०- -जोग पंथ संकर तजै, व्है गिर मेर गरक्क। करनी ऊपर नह करै, ऊगै केम अरक्क। —चौथ बारहठ

गरग–सं०पु० [सं० गर्ग] १ एक वैदिक ऋषि. २ संगीत में एक ताल।

गरगज–सं०पु० [रा० गढ़+सं० गर्जन] १ किले की दीवारों पर बनी हुई बुर्ज जिस पर तोपें रहती हैं. २ वह ऊँचा कृत्रिम डूहा या टीला जिस पर युद्ध की सामग्री रक्खी जाती है और जहां से शत्रु-सेना का पता चलाया जाता है. [सं० गल+गर्ज] ३ वह तख्ता जिस पर फांसी देने के समय अपराधी को खड़ा करके उसके गले में फंदा लगाते हैं। टिकटी।

गरगाब, गरगाव—देखो 'गरक'। उ०—तिका कटारी किसीएक छै

पेट बूंदी री नीपनी, कड़कती वाजळी, छेड़ी सांपण, घरणा सोनां में गरणाब कीधी ।—जैतसी ऊदावत री वात

गरमेबड़ा–सं०स्त्री०—शमी वृक्ष की बिगड़ी हुई फली (क्षेत्रीय)

गरड़—१ देखो 'गरुड़' (रू.भे.) २ बंदूक छूटने की ध्वनि ।

उ०—गरड़ नाळ गोळियां, दरड़ गाड़ियां अपारां । धरड़ आभ धारतां, जरड़ कुंजरां जयारां ।—बगतौ खिड़ियौ

गरड़गांमी—देखो 'गरुड़गांमी' (रू.भे.) उ०—धार खग चकर घण भगत करुणा धरे, भांज खाफर मगर भुजां भांमी । रज-धरम राखियौ भूप रासाहरै, गज-धरम राखियौ गरड़गांमी ।—ठाकरसी सिढ़ायच

गरड़धज—देखो 'गरुड़ध्वज' (रू.भे.) उ०—तज तज अवर 'कसन' कव ततप्रत । धर मन नहचळ गरड़धज ।—र.ज.प्र.

गरड़ा–सं०स्त्री० [सं० गुरु] एक जाति जो अपनी उत्पत्ति ब्राह्मणों से बताते हैं और भांबी, चमार आदि जाति में विवाह, पूजा आदि कार्य सम्पन्न कराते हैं एवं उनके गुरु माने जाते हैं ।

गरड़ावणौ, गरड़ाववौ–क्रि०अ०—गधे का रेंकना । उ०—छेहा डंबर खर अंबर अरड़ावै । धरणीतळ धूजै गरदभ गरड़ावै ।—ऊ.का.

गरड़ौ–सं०पु०—१ 'गरड़ा' जाति का व्यक्ति (रू.भे.–गुरड़ौ)

२ रंग विशेष का घोड़ा. ३ वह घोड़ा जिसकी एक आंख भूरी हो ।

गरज–सं०स्त्री० [सं० गर्जन] १ बहुत गंभीर और तुमुल ध्वनि, गड़गड़ाहट. २ गाज, वज्र-ध्वनि । उ०—गोम गह तुरी गज गरज गरज वाजा गड़ी, ऊख रंभ तोजियां रैण रज ऊपड़ी ।—द दा.

[अ० ग़रज़] ३ आशय, प्रयोजन, मतलब । उ०—चाहीजे गरज उण लड़ाई सूं छूट पूरी भलाई री न होय धरम न छूटे और दफा अन्याव उत्पात रौ होय ।—नी.प्र.

मुहा०—गरज गांठणी—मतलब सीधा करना ।

४ आवश्यकता, जरूरत, स्वार्थ । उ०—आळस तज निज गरज अब, भज अभुयण भूपाळ । पीय निरंतर आय पय, बांका काळ बिडाळ ।—बां.दा.

क्रि०प्र०—पड़णी, रखणी, राखणी, रैंणी, निकळणी, निकाळणी ।

कहा०—१ गरज गधै नै बाप कैवावै—आवश्यकता व स्वार्थ के कारण गधे को भी बाप कहना पड़ता है । आवश्यकता बुरी होती है, इसके लिए निम्न से निम्न काम भी करना पड़ता है. २ गरज गधै नै बाप करै—देखो कहा० १,३. ३ गरज गधेड़ा ए बाप कैवीजे है—देखो कहावत नं. १,४. ४ गरज जतरै नौकर, गरज मिटी नै दीवी ठोकर—जब तक जरूरत थी तब तक तो नौकर बन कर भी अपना स्वार्थ पूरा किया, बाद में ठोकर मारदी । स्वार्थी व्यक्ति के प्रति. ५ गरज पड़ियां थारू'र मारू करबी पड़ै—कार्य होने पर तेरा मेरा कर इधर-उधर से मांग कर काम चलाना पड़ता है.

६ गरज मटी नैं गूजरी नटी—स्वार्थ पूरा हुआ और गूजरी ने इन्कार किया । जब तक स्वार्थ होता है तभी तक व्यक्ति का रुख अनुकूल रहता है. ७ गरज मिटी रे बांगला बळद गावां में जाय—बैलों का कार्य पूरा हुआ या आवश्यकता मिटी कि बेचारों को भटकने के लिए गायों के साथ छोड़ दिया । स्वार्थ पूरा होने या आवश्यकता मिटने पर पुन: कोई किसी को नहीं पूछता. ८ गरज रौ माटी—स्वार्थ का साथी, मतलब का दोस्त. ९ गरज सरी'र वैद वैरी—स्वार्थ पूरा हुआ कि वैद्य वैरी हो गया । उपचार का स्वार्थ था तब तक वैद्य की आवश्यकता थी और उसका आदर किया जाता था । उपचार होने के बाद उसकी आवश्यकता नहीं रही अत: अब वह अपना शुल्क मांगता है तो शत्रुता बांध ली । काम निकलने के बाद कोई किसी को नहीं पूछता ।

यौ०—गरजदार, गरजवांन ।

५ चाह, इच्छा ।

क्रि०प्र०—रखणी, राखणी, रैंणी, होणी ।

मुहा०—१ गरज रौ बावळौ—अपनी गरज के लिए सब कुछ करने वाला । अपनी लालसा पूरी करने के लिए हानि भी सह लेने वाला. २ गरज रौ दीवांणौ—देखो मुहा० १ ।

कहा०—१ गरज दीवांणी गूजरी, अब आई घर कूद । सांवण छाछ न घालती, भर वैसाखां दूध—स्वार्थ की बावली गूजरी अब स्वत: ही घर में कूद कर आई है । सावण मास में तो वह छाछ भी नहीं डालती थी, स्वार्थ के कारण अब वैसाख माह में जब कि पूर्ण सूखा होता है, भर-भर कर दूध देती है । अपनी लालसा या किसी प्रकार की इच्छा पूरी करने के लिए आदमी सब कुछ करने को तैयार हो जाता है ।

यौ०—गरजमंद, गरजदार, गरजवांन ।

६ खुशामद ।

क्रि०प्र०—करणी, राखणी ।

कहा०—इती देर राजा री गरज करी हुती तौ गांम दे देतौ—इतनी देर तक किसी राजा की खुशामद की होती तो वह इनायत में कोई गांव दे देता । काफी खुशामद करने के बाद भी जब कोई व्यक्ति किसी के लिए कार्य करने के लिए तैयार नहीं होता तब उसके प्रति यह कहावत कह कर असंतोष प्रकट किया जाता है ।

गरजण–सं०पु० [सं० गर्जन] १ गंभीर शब्द, तुमुल ध्वनि.

२ वज्रपात. ३ गरजने की क्रिया या भाव । उ०—बक पंकत रद नीर मद, गरजण गाज पिछांण । पटकै हाथळ पंचमुख, जळहर मैंगळ जांण ।—बां.दा.

गरजणौ–वि०—गरजने वाला, गर्जन करने वाला ।

कहा०—गरजणा वादळ वरसणा नहीं, भुसणा कुत्ता खाणा नहीं—गरजने वाले बादल बरसते नहीं और भौंकने वाले कुत्ते काटते नहीं । बढ़-बढ़ कर बातें मारने एवं काम कुछ न करने वाले के प्रति ।

गरजणौ, गरजबौ–क्रि०अ० [सं० गर्जन] गरजना, गंभीर या तुमुल ध्वनि करना, वज्रपात होना ।

कहा०—गरजै सो वरसै नहीं, वरसै घोर अंधार—जो बादल अधिक गरजता है वह बरसता नहीं तथा जो घोर घटायुक्त चुपचाप आता है वह खूब बरसता है। बढ़-बढ़ कर बातें मारने एवं काम कुछ न करने वाले के प्रति।

गरजणहार, हारौ, (हारी), गरजणियौ—वि०।

गरजवाणौ, गरजवाबौ, गरजाणौ, गरजाबौ, गरजावणौ, गरजावबौ—प्रे०रू०।

गरजिओड़ौ, गरजियोड़ौ, गरज्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गरजीजणौ, गरजीजबौ—भाव वा०।

गरजदार—वि० [अ० गरज+फा० दार] जिसे गरज हो, गरजमंद, स्वार्थी।

गरजदारी—सं०स्त्री० [अ० गरज+फा० दार+रा० ई] गरज, स्वार्थ। उ०—जमींदार हुय जमीं करजदारी में कळगी। ईजतदार अंधार गरजदारी में गळगी।—ऊ.का.

गरजमंद—वि० [अ० गरज+फा० मंद] १ जिसे किसी बात की आवश्यकता हो, जरूरतमंद।

कहा०—गरजमंद मारीजै है—गरजवाला ही मारा जाता है। जरूरत या स्वार्थ होने पर व्यक्ति को विवश होकर उचितानुचित सब सहना पड़ता है।

२ इच्छुक।

गरजवांन—वि० [अ० गरज+रा० वांन] देखो 'गरजमंद' (रू.भे.)

गरजापत—सं०पु०यौ० [सं० गिरिजा+पति] महादेव, शिव (डिं.को.)

गरजित—सं०पु० [सं० गर्जित] मस्त हाथी।

वि०—गरजा हुआ.

गरजियोड़ौ—भू०का०कृ०—गरजा हुआ (स्त्री० गरजियोड़ी)

गरजियौ, गरजी—वि० [अ० गरज+रा०प्र० इयौ, ई] गरजमन्द, स्वार्थी, मतलबी।

गरजू—देखो 'गरजी' (रू.भे.)

गरज्ज—देखो 'गरज' (रू.भे.) उ०—सुण राठौड़ महाबळी, भेळा थया सकैज्ज। खीची मुकन बुलावियौ, दरसण सांम गरज्ज।—रा.रू.

गरज्जणौ, गरज्जबौ—देखो 'गरजणौ' (रू.भे.) उ०—प्रभू तूं पांणी मांय पवन्न। गरज्जै गाजै मांय गगन्न।—ह.र.

गरज्जियोड़ौ—देखो 'गरजियोड़ौ' (रू.भे.)

(स्त्री० गरज्जियोड़ी)

गरझणौ, गरझबौ—देखो 'गरजणौ' (रू.भे.) उ०—स्री सिव संकर क्रीत अणंकळ, ज्वाळ जट जळ गंग गरझै। भूत सभा भव साथ गणेसर, अंग उमावर त्यूं रस तझै।—क.कु.बो.

गरझियोड़ौ—देखो 'गरजियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० गरजियोड़ी)

गरट, गरट्ट, घरट्ट, गरठ—सं०पु० [सं० घरट्ट] १ समूह, दल, झुंड।

उ०—१ छिकि टोप बाहुळ उच्छटै, कटि काळि कंकट की कटै। भट गरट मिळि थट पुरैट, छट पट कुघट।—वं.भा.

उ०—२ वड़ै कोड़ि खेड़ै गजां वाजि राजां, सुरंगां सुभट्टां गरट्टां समाजां।—रा.रू. उ०—३ गरणाट माखियां रौ गरठ लारै उडतौ लाविया। पसु जुगत बात जांणी परी, ऐ बंधांणी आविया।
—ऊ.का.

२ सेना (अ.मा., ह.नां.) ३ राशि, ढेर। उ०—धड़ धरती पग पागड़ै, आंतां तणौ गरट्ट। तऊ न छोडै साहिबौ, मूंछां तणौ मरट्ट।
—वी.स.

४ घेरा। उ०—गरदाय सिविर दीधौ गरट, जांमिकपण लीधौ सजव।—वं.भा. ५ वृक्ष। उ०—रिण रीछ मरकट जयत रट, भट प्रगट गज ठटकज सुभट। झट गरट गिर थट गह झपट, नट जेम वूधट कर निपट।—र.रू. ६ पाताल (डिं.नां.मा.)

वि०—घना, गहरा। उ०—आंब भलौ ऊगौ अठै, गहरौ छांह गरट्ट। पावै फळ मीठा पही, बह आवै इण बट्ट।—बां.दा.

गरड—देखो 'गरुड़' (रू.भे.)

गरडू—सं०पु०—१ बेर तथा शमी वृक्ष की टहनियों पर होने वाली ग्रंथी जो उसी वृक्ष से निकले एक विशेष प्रकार के रस से बनती है। यह अकाल-सूचक मानी जाती है. २ आंख में होने वाली गांठ।

(रू०भे०—गरुड़, गरेडौ)

गरडौ, गरढौ—सं०पु० [सं० गरिष्ठ, प्रा० गरट्ठ] (स्त्री० गरडी, गरढी) वृद्ध, बूढ़ा व्यक्ति। उ०—१ चाकरियां गरडा भया, दमड़ां चित्त दियाह। वळै विदेसी वालमा, कहड़ा कांम कियाह।—र.रा.

उ०—२ पिंड बियापण गरढ़पण, हुवण पराक्रम हांण। पण वय वधन प्रतापसी, अह वध घण आपांण।—जैतदांन बारहठ

उ०—३ राजाजी साथे छै, गरढौ एक खोजौ। नांम मियां मुस्ताक दोढ़ियां राख्यौ।—रा.बां. (रू०भे०—गरढेरौ)

गरण—सं०स्त्री० [सं० गृ=शब्दे] १ दर्दभरी ध्वनि, कराह।

[सं० ग्रहण] २ ग्रहण (रू.भे.)

कहा०—गरण रौ दांन नै गंगा रौ सिनांन—ग्रहण का दान और गंगा-स्नान धार्मिक दृष्टिकोण से बराबर है। ग्रहण में दिये जाने वाले दान के महत्व के प्रति।

गरणगट, गरणाट, गरणाटौ—सं०पु० [अनु०] १ वृत्ताकार तेजी से घूमने की क्रिया या भाव। उ०—गाढ़ी गयणांगण रज ले गरणाटा, सांवण सूकौ गौ देतौ सरणाटा।—ऊ.का. २ वृत्ताकार तेजी से घूमने पर उत्पन्न होने वाली ध्वनि। उ०—गरणाट माखियां रौ गरठ, लारै उडतौ लाविया। पस जुगत बात जांणी परी, ऐ बंधांणी आविया।
—ऊ.का.

३ शून्य एवं निर्जन स्थान में व्याप्त हल्की ध्वनि। उ०—नकीबां बोल हरणाट हुय नोबतां, गयण धर सबद गरणाट गाजै।
—खेतसी बारहठ

गरणाणौ, गरणाबौ—क्रि०अ० [सं० गृ=शब्दे] १ चक्कर खाना, वृत्ताकार घूमना. २ कराहना, दर्दभरी ध्वनि करना. ३ गुंजायमान

होना । उ०—छठी बधावौ भंवरजी रा महल में, म्हांरौ महल रह्यौ गरणाय ।—लो.गी. ४ भिनभिनाना ।

गरणायोड़ौ-भू०का०कृ०—१ चक्कर खाया हुआ, वृत्ताकार घूमा हुआ. २ करुण-क्रंदन किया हुआ, कराहा हुआ. ३ भिनभिनाया हुआ. ४ गुंजित (स्त्री० गरणायोड़ी)

गरणावणौ, गरणावबौ—१ देखो 'गरणाणौ' (रू.भे.)
२ पसरना, फैलना । उ०—खींपा पींपा फोग, भुरट बूई बरणावै । भुरट लांपड़ी लुळ, गजब वेलां गरणावै ।—दसदेव

गरणावियोड़ौ—१ देखो 'गरणायोड़ौ' (रू.भे.) २ पसरा या फैला हुआ । (स्त्री० गरणावियोड़ी)

गरणी-सं०स्त्री०—अफीम को गला कर छानने का एक उपकरण ।

गरणौ-सं०पु० [सं० गलन] कपड़े का वह टुकड़ा जिससे पानी छाना जाय ।
(रू०भे०—गरणलौ, गण्णौ)

गरत-सं०पु० [सं० गर्त] १ गड्ढ़ा, गर्त. २ जलाशय. ३ एक नरक का नाम ।
(रू.भे.—गरत्त)

गरतमांन-सं०पु० [सं० गरुत्मान] गरुड़ (नां मा., ह नां.)

गरता-सं०पु० [सं० गर्त] पाताल (डि.नां.मा.)

गरत्त—देखो 'गरत' (रू.भे.) उ०—जिण घोर समय मैं सस्त्रां रा प्रहार करि व्याकुळ हुवौ नवाब रणमस्तखांन तौ कुमार भोज नूं लेर एक गरत्त में त्रिणां रा समूह हेठै दबि रहियौ ।—वं.भा.

गरत्थ, गरथ-सं०पु० [सं० ग्रथ] १ द्रव्य, धन, संपत्ति (नां मा.)
उ०—१ एकूकी अभसाह री, गोठां उठै गरत्थ । प्रगट इतै धन और पह, सो जिग करै समत्थ ।—रा.रू.
उ०—२ वालिम गरथ वसीकरण, वीजा सहु अकयथ्थ । जिए चड्या दळ उत्तरइ, तरुणि पसारइ हथ्थ ।—ढो.मा.
यौ०—अरथ-गरथ ।
२ गूढ़ार्थ, तत्व, सार. ३ सामग्री । उ०—रुपिया कंचन जात, हुवै हुंडी रा गरथां । नहचै नांणै नहीं, हुवै आरण रा अरथां ।
—अरजुणजी बारहठ

गरथग्रत-सं०स्त्री०—हवन की अग्नि (नां.मा.)

गरद-सं०स्त्री० [सं०] १ विष, जहर. २ एक प्रकार का रेशमी कपड़ा. [फा० गर्द] ३ नाश, संहार । उ०—धरे छत्र संभर धणी, रांमचंद्र नरराज । किया गरद खर कोण सा, बैरी गण जिण बाज ।
—वं.भा.
४ गर्द, धूलि । उ०—सूरज मांथा रै ऊपर आवियौ, जूझारां नूं प्यास लागी । गरमी रै कारण सूं मरदां रा होठ सूखणै लागिया अर गरद गालां ऊपर चढ़ी ।—नी.प्र.
मुहा०—गरद उडणी—नष्ट हो जाना ।
५ झुंड, समूह. ६ पृथ्वी (नां.मा., डि.नां.मा.)
वि०—१ विष देने वाला, विषप्रद. २ मस्त, मदचूर ।
उ०—सूतां सहे सहेलियां, गहरी नींद गरद । दरद नहीं छै दूसरां, दूखै जिकां दरद ।—बगसीरांम प्रोहित री बात

गरदन-सं०स्त्री० [फा० गर्दन] धड़ और सिर को जोड़ने वाला अंग, ग्रीवा ।
मुहा०—१ गरदन उठाणी—विरोध करना, क्रांति या बगावत करना. २ गरदन उडाणी—गरदन काट कर मार डालना.
२ गरदन ऐंठियोड़ी रै'णी—अभिमान में रहना, कष्ट में रहना.
४ गरदन कटणी—बुराई होना, हानि होना, अपमानित होना, गला कटने से मर जाना. ५ गरदन काटणी—अपमानित करना, हानि पहुँचाना, गला काट डालना, बुराई करना. ६ गरदन झुकणी—लज्जित होना, नम्रता दिखलाई पड़ना. ७ गरदन झुकाणी—शर्मा जाना, विनीत या आज्ञाकारी होना, नम्र होना, हार मानना.
८ गरदन नी ऊठणी—कमजोरी के कारण सर न उठना, ऐतराज न करना, सह लेना, लज्जित होना. ९ गरदन पकड़'र करा लेणौ—जबरन करा लेना. १० गरदन पकड़'र निकाळणौ—बेइज्जती करके या गरदनियां देकर बाहर निकालना, जबरदस्ती निकालना.
११ गरदन माथे छुरी फेरणी—हानि पहुँचाना, अनहित करना, तंग करना, बुराई करना, अत्याचार करना. १२ गरदन माथै जुम्रो धरणौ—जिम्मेदारी लेना, जिम्मेवारी देना या सौंपना. १३ गरदन माथै बोझ होणौ—सिर पर बोझ होना, जिम्मेवार होना, बुरा लगना, भारस्वरूप लगना. १४ गरदन माथै लेणौ—उत्तरदायित्व लेना. १५ गरदन माथै सवार होणौ—पीछे-पीछे लगे रहना.
१६ गरदन मरोड़णी—गरदन मरोड़ कर जान से मार डालना, दबाव डालना, कष्ट देना. १७ गरदन रो बोझ—उत्तरदायित्व, कर्तव्य. १८ गरदन हिलण लागणी—बहुत वृद्ध होना.
१९ गरदन हिलाणी—नाहीं करना ।
२ बोतल या किसी प्रकार के अन्य पात्र आदि का ऊपर का संकरा भाग ।

गरदनघुमाव-सं०पु०—कुश्ती का एक पेंच ।

गरदनतोड़-सं०पु०—१ कुश्ती का एक दाँव. २ एक प्रकार का ज्वर ।

गरदनबांध-सं०पु०—कुश्ती का एक पेंच ।

गरदनी-सं०पु०—कुश्ती का एक दाँव ।

गरदब, गरदभ-सं०पु० [सं० गर्दभ] गधा (अ.मा.) उ०—खेहाडंबर खर अंबर अरड़ावै, धरणी तळ धूणै गरदब गरड़ावै ।—ऊ.का.

गरदव-सं०स्त्री० [फा० गर्द] १ धूलि, रज. २ संहार, ध्वंस ।
उ०—विरदपत जबर परताप विजपत बिया, सद विजै अंबाटा पिसण सेलोट । उरड़ जाता वडा करेवा गरदवां, अभैपद वसै वे राज री ओट ।—महाराजा मांनसिंहजी रो गीत

गरबह-सं०स्त्री०—सभा । उ०—ज्यांनै पांच न ओळखै, भरी गरबह मांहि । तिणही हूंदो हे सखी, जीतब ही कुछ नांहि ।
—बगड़ा मुखड़ा भाटी री बात

गरदाणो, गरदाबो, गरदावणो, गरदावबो–क्रि०स०—१ घेरा डाल कर आक्रमण करना। उ०—नरेस भी फरमांण आतां ही जाइ, मऊ गरदाइ झगड़ौ जमाई कोटेसरां राखिया। मऊ रा फौजदार खीची नगराज नूं उचित आतंक दे'र बारै काढ़िणै।—वं.भा. २ घेरना, वेष्ठित करना। उ०—रावत झाटक रजां गजां म्हावत गरदाया। संपड़ाया जळ सींच, बळै चितरांम बणाया।—मे.म.

३ धूल उड़ाना।

गरदाणहार, हारौ (हारी), गरदाणियौ—वि०।

गरदावणहार, हारौ (हारी), गरदावणियौ—वि।

गरदाग्रोड़ौ, गरदायोड़ौ, गरदाविग्रोड़ौ, गरदावियोड़ौ, गरदाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गरदायोड़ौ, गरदावियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ घेरा डाल कर आक्रमण किया हुआ. २ घेरा हुआ, वेष्ठित. ३ धूल उड़ाया हुआ। (स्त्री०—गरदायोड़ी, गरदावियोड़ी)

गरदावळि–सं०स्त्री०—धूलिकण, रजकण। उ०—चढ़ि चल्लिय मेछांन, भांन गरदावळि भिल्लिय। हलचल्लिय हिंदवांन, खखड़ जुग्गनि खिलखिल्लिय।—ला.रा.

गरदिस–सं०स्त्री० [फा० गर्दिश] १ घुमाव, चक्कर. २ विपत्ति, आपत्ति।

गरदी–सं०स्त्री० [फा० गर्दी] १ भीड़, समूह। ज्यूं–गाड़ी में आज घणी गरदी है। २ परिवर्तन। ३ धूलि, रज
उ०—वांरै खुद रै जीवण रा सपना तो इण समाज री गरदी में ठोड़-ठोड़ बिखर नै अलोप व्हैगा।—विजयदांन देथौ
४ क्रांति। उ०—दिखणी घणा मारांणा, भाऊ री कतळ भाऊ गरदी कहांणी।—बां.दा. ख्यात

गरद्द, गरद्दन–सं०स्त्री० [फा० गर्दन] १ ग्रीवा, गर्दन। उ०—गरद्द मझार कियौ रिम घाव। पड़ै धर सीस चलै नह पाव।—पा.प्र.
२ गर्दन का पिछला भाग। उ०—गरद्दन कट्टन केक मुगल्ल, छटे खग वेख क मेख छुगल्ल।—मे.म. ३ धूलि, रज। उ०—आइयौ भड़ ऊबांबरौ, मगज अडोळ मरद्द। भड़ पाताल तोमूं भिड़ै, गज घड़ मिळै गरद्द।—किशोरदांन बारहठ

गरद्दी—१ देखो 'गरदी' (रू.भे.) २ देखो 'गरद्द' (रू.भे.)
उ०—खेह गरद्दी मेहलां अब्बीर उडाया। फूल कळेजे फिफ्फरे फबि फांक फुलाया।—वं.भा.

गरधब, गरधभ—देखो 'गरदभ' (रू.भे.) उ०—गह चढ़िया संतोख गज, धर पुड़ ज्यां नूं धोक। चढ़िया ज्यां नूं चहरजे, लालच गरधभ लोक।—बां दा.

गरनाळ–सं०स्त्री०—एक बहुत चौड़े मुंह की तोप। इसका मुंह इतना चौड़ा होता है कि एक आदमी सरलता से घुस सकता है।

गरनार—देखो 'गिरनार' (रू.भे.) उ०—देवी गढ़े कोटे गरनार गोखे, देवी सिंधु वेळा सवा लाख सोखे।—देवि.

गरब–सं०पु० [सं० गर्व] १ अहंकार, घमंड, दर्प (ह.नां.)
उ०—ममता मिथ्या गरब प्रमाद दष उनमंथा।—केसोदास गाडण
क्रि०प्र०—आणौ, करणौ, पड़णौ, होणौ।
यौ०—गरब-गुमांनण, गरब-गहेली।
२ देखो 'गरभ' (रू.भे.)

गरबणो, गरबबौ–क्रि०अ०—गर्व करना, अभिमान करना।
उ०—१ गरबै फोड़ै कुंभ गज, घण बळ धावड़ियाह। पापड़ फोड़ पोमावही, मन में मावड़ियाह।—बां.दा.
उ०—२ रड़माल गरबै गरबै मारवाड़ रैणा, थाट घणी गरभै जोधांण राजथांन। उरां रंभ रथां माळ चेहड़ा छोडाय आयौ, जीवता संभ ज्यूं चांपा कहायौ जेहांन।—प्रभूदांन मोतीसर

गरबरफ–सं०पु०यौ० [सं० गिरि+फा० बर्फ] सदैव बर्फ से ढका रहने वाला पर्वत, हिमालय पर्वत। उ०—हरा जगपत सरब जांण भाला हता, चमु तज मांण वीरांण चळिया। रांण हिंदवांण रा भांण तप राज रै, गरबरफ जेम उसरांण गळिया।—जवांनजी आढ़ौ

गरबांण—देखो गिरबांण' (रू.भे.) उ०—गै घूमै आरांण थांण मर्थाण नीसांण घोक, सूकै डांण सूंडाडंडां बीछुड़ै सींधांण। वोवळा विवांण ठहै खड़ा गरबांण देखै, भड़ै दखणांण हूंत हिंदवांण भांण।
—पहाड़खां आढ़ौ

गरबाणौ, गरबाबौ—देखो 'गरबणो' (रू.भे.)

गरबायोड़ौ–भू०का०कृ०—गर्वित। (स्त्री० 'गरबायोड़ी')

गरबावणौ, गरबावबौ—देखो 'गरबणो' (रू.भे.)
उ०—मो ऊभां माहरी धरा खग जोर धकावै। बोलै मोटौ बोल वळै मन में गरबावै।—पा.प्र.

गरबावियोड़ौ–भू०का०कृ०—गर्व से ऐंठा हुआ। (स्त्री० गरबावियोड़ी)

गरबी–वि०स्त्री० [सं० गर्व+रा० प्र० ई] १ धैर्यवान, गंभीर।
उ०—नमणी खमणी बहुगुणी, सुकोमळी ज सुकच्छ। गोरी गंगा नीर ज्यूं, मन गरबी तन अच्छ।—र.रा.
२ वह पत्थर जो दो खिड़कियों के बीच में रखा जाता है.
३ एक प्रकार का गायन।

गरबीजणी, गरबीजबौ—भाव वा०—गर्वित होना। उ०—भूपत भणकाराह, जसरा जिके न जां लिया। तां तां तणकाराह, गाणां क्यों गरबीजिया।—बां.दा.

गरबौ–सं०पु०—एक प्रकार का लोक गीत।
वि०—गंभीर, सहनशील (स्त्री० गरबी)

गरब्ब—देखो 'गरब' (रू.भे.) उ०—अघकारी असुरां तणा, सुण धूजिया सरब्ब। निप चौ सोच निवारियौ, उर धारियौ गरब्ब।
—रा.रू.

गरब्बणौ, गरब्बबौ, गरब्बाणौ, गरब्बाबौ—देखो 'गरबणो' (रू.भे.)
उ०—१ कलमपत मांण हीण किया, अब्बर अकबर दब्बिया। चीतोड़नाथ बैकुंठ पर, सुण जगत सै गरब्बिया।
—महाराणा राजसिंह री गीत

उ०—२ गावड़ डावड़ का भावण गुण गाता । गायां गरभाती गोरी गरब्बाता ।—ऊ.का.

गरब्बित–वि० [सं० गर्वित] १ घमंडी, अभिमानी. २ घिरा हुआ, आच्छादित । उ०—छपनै घोरारव आरव छायो । सूरज ससि मंडळ गरब्बित गणणायो ।—ऊ.का.

गरब्भ—१ देखो 'गरभ' (रू.भे.) उ०—१ प्रकत्ति प्रतीत पुरब्ब प्रधांन । गरब्भ बिम्यांन जगत्त गिनांन ।—ह.र.

२ देखो 'गरब' (रू.भे.) उ०—साह सुणे अत सोचियो, मन मोचियो गरब्भ । ईस प्रताप अजीत रो, रीत विचारी अब्ब ।—रा.रू.

गरभ–सं०पु० [सं० गर्भ] १ पेट के अंदर का बच्चा, हमल, भ्रूण ।

क्रि०प्र०—गिरणो, ठैरणो, रै'णो, हिलणो ।

यौ०—गरभघाती, गरभपात ।

२ स्त्री के पेट के अंदर का वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है, गर्भाशय । उ०—कहो पिता है कोण, मात गरभ कुण मेलियो । देखै बैठो द्रोण, सी की अचरज सांवरा ।—रांमनाथ कवियो

यौ०—गरभनाळ, गरभमास, गरभवास, गरभसंकु ।

३ किसी पदार्थ का भीतरी भाग । उ०—१ चंदवदन म्रिग लोयणी, भीसुर ससदळ भाळ । नासिका दीप सिखा जिसी, केळ गरभ सुकमाळ ।—ढो.मा. उ०—२ आरोपित आंखि सह हरि आंननि, गरभ उदधि ससि मथे ग्रिहीत । चाहै मुख अंगणि ओटै चढ़ि, गावै मुखि मंगळ करि गीत ।—वेलि. उ०—३ केळि गरभ जिसी कूंवळी, कूं कूं चंदन कीधां खोळी ।—वी.दे.

४ चक्र का मध्य भाग, केन्द्र.

यौ०—गरभव्यूह ।

५ पेट, उदर (अ.मा.) ६ फलित ज्योतिष में नए मेघों की उत्पत्ति जिससे वर्षा का आगमन होता है (ह.नां.)

क्रि०प्र०—ऊठणो, गळणो ।

यौ०—गरभदिवस, गरभमास ।

[सं० गर्व] ७ देखो 'गरब' (रू.भे.) उ०—महळां गरभ जरम्मनां, पातल धाक पड़ंत । किसूं गरभ जरमन करै, अरभक हि न उछरंत ।

—किसोरदांन बारहठ

गरभकेसर–सं०पु०यौ० [सं० गर्भ+केसर] पुष्प के मध्य में गर्भनाल में होने वाले पतले डंठलों के सिरे पर, बाल के समान पतले व छोटे रेसे या सूत जिसके साथ पराग केसर के पराग कण का मेल होने पर फलों व बीजों की उत्पत्ति होती है ।

गरभग्रह–सं०पु०यौ० [सं० गर्भ+गृह] १ घर का मध्य भाग अथवा मध्य भाग में बनी कोठरी. २ मंदिर के बीच की वह प्रधान कोठरी जिसमें मुख्य प्रतिमा रखी जाती है ।

गरभघाती–वि० [सं० गर्भघातिन्] गर्भपात करने वाला ।

गरभज–वि० [सं० गर्भज] १ गर्भ से उत्पन्न. २ जिसे साथ लेकर कोई उत्पन्न हो ।

गरभणी–वि० [सं० गर्भिणी] वह जिसके गर्भ में हमल (बच्चा) हो, गर्भिणी ।

गरभणो, गरभबो—देखो 'गरबणो' (रू.भे.) उ०—रढ़माल गरबै गरबै मारवाड़ रैणा, थाट धणी गरभै जोधांण राजथांन । ऊरो रंभ रयां माळ चेहड़ा छोडाय आयो, जीवता संभ ज्यूं चांपा कहायो जेहांन ।—प्रभूदांन मोतीसर

गरभद–वि० [सं० गर्भद] गर्भ देने वाल, जिसमें गर्भ रहे ।

गरभदास–सं०पु० [सं० गर्भदास] वह जो जन्म से दास हो, दासीपुत्र ।

गरभदिवस–सं०पु० [सं० गर्भ+दिवस] १ गर्भ का समय, गर्भकाल. २ वृहत्संहिता के अनुसार १९५ दिन की अवधि जिसमें मेघ का गर्भ होता है । यह समय प्रायः कातिक की पूर्णिमा के बाद आता है ।

गरभनाळ–सं०स्त्री०यौ० [सं० गर्भ+नाल] पुष्प के मध्य की वह पतली नलिका जिसके सिर पर गर्भ केसर होता है । इन्हीं गर्भ केसर और पराग केसर के मेल से फल और बीज की पुष्टि और वृद्धि होती है ।

गरभपात–सं०पु०यौ० [सं० गर्भ+पात] पेट के बच्चे का पूरी वृद्धि के पहले ही निकल जाना, गर्भ गिरना ।

गरभमास–सं०पु०यौ० [सं०] वह मास जिसमें गर्भाधान हो ।

गरभवंती, गरभवती–सं०स्त्री० [सं० गर्भवती] जिसके पेट में बच्चा हो, गर्भिणी ।

गरभवास–सं०पु० [सं० गर्भवास] १ गर्भ के अंदर की स्थिति. २ गर्भाशय. ३ गर्भ में रहने की अवधि । उ०—गरभवास दसमास सदा दुख पाइये । हरि हां जन हरिदास भजि रांम स ठौड़ चुकाइये ।—ह.पु.वा.

गरभव्यूह–सं०पु०यौ० [सं० गर्भ+व्यूह] प्राचीनकालीन स्थल-युद्ध में सेना की एक प्रकार की रचना जिसमें सेना कमल के पत्तों की तरह अपने सेनापति या रक्षित वस्तु को चारों ओर से घेर कर खड़ी होती थी ।

गरभसंकु–सं०पु०यौ० [सं० गर्भ+शंकु] चिकित्साशास्त्रानुसार वैद्य के उपयोग का एक उपकरण जिससे गर्भ में मरे हुए बच्चे को पेट के अन्दर से निकालते थे (अमरत)

गरभहत्या–सं०पु०यौ० [सं० गर्भ+हत्या] गर्भस्थ भ्रूण की हत्या करना । गर्भस्थ भ्रूण को किसी प्रकार अवधि से पूर्व गिराना गर्भपात ।

गरभाणो, गरभाबो–क्रि०अ०—गाय-बैल आदि का रंभाना ।

उ०—गावड़ डावड़ का भावण गुण गाता । गायां गरभाती गोरी गरब्बाता ।—ऊ.का.

गरभाधान–सं०पु०यौ० [सं० गर्भ+आधान] मनुष्य के सोलह संस्कारों में से पहला संस्कार । यह संस्कार स्त्री के ऋतुमती होने के समय होता है एवं नर-वीर्य तथा स्त्री के रज से गर्भ स्थिति होती है । गर्भ धारण ।

गरभावास—देखो 'गरभवास' (रू.भे.) उ०—पैसवा नारायणराव री

गादी, नारायणराव री गरभावास छोटी माधोराव बैठी।
—बां दा. ख्यात

गरभासण, गरभासन–सं०पु० [सं० गर्भासन] योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन जिसमें पद्मासन की तरह पाँवों की स्थिति कर के कुक्कटासन की तरह दोनों हाथों को पांवों के बीच में घुसा कर हाथों से गरदन को अंकुड़ा भिड़ा कर पकड़ा जाता है तथा गरदन को नीचे झुकाया जाता है। इससे आलस्य दूर होकर इंद्रियां शांत होती हैं।

गरभासय–सं०पु० [सं० गर्भाशय] स्त्रियों के पेट में वह स्थान जिसमें गर्भाधान के समय वे गर्भ धारण करती हैं। बच्चादानी।

गरभिणी–वि०स्त्री० [सं० गर्भिणी] जिसके हमल रह गया हो, गर्भवती।

गरभीजणौ, गरभीजबौ–भाव वा०—१ गर्भ धारण करना।

उ०—गरभीजण असमांन बुगलियां मिळवा आई। इदका हुवा सुगन्न लेवतां मेघ विदाई।—मेघ. २ गर्वित होना।

गरम–वि० [फा० गर्म या सं० घर्म] १ जिसको स्पर्श करने पर जलन का अनुभव हो उष्ण।

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।

मुहा०—१ गरमचोट—हाल की लगी चोट, ताजा घाव. २ गरम मांमलौ—हाल की घटना, नई घटना, संगीन मामला।

यौ०—गरमागरम।

विलो०—ठंडौ।

२ तीक्ष्ण, उग्र, तेज।

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।

मुहा०—१ गरम करणौ—क्रोधित करना, उत्तेजित करना, उकसाना. २ गरम होणौ—क्रुद्ध होना, आवेश में आना. ३ मिजाज गरम होणौ—क्रोध आना।

विलोम—सांत।

३ जिसका गुण उष्ण हो, जिसके सेवन से गरमी बढ़े।

यौ०—गरम कपड़ौ, गरम मसालौ।

४ उत्साहपूर्ण, आवेशपूर्ण।

गरमाळौ–सं०पु०—एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसके पत्ते लाल चंदन के पत्तों के समान, फूल पीले और फल फली के आकार के डेढ़ हाथ लम्बे होते हैं। इसकी फली का गूदा जुलाब के काम में लिया जाता है। अमलतास।

गरमास, गरमाहट–सं०पु० [सं० घर्म] गरमी, उष्णता।

गरमी–सं०स्त्री० [फा० या सं० घर्म रा०प्र०ई] १ उष्णता, ताप, जलन।

क्रि०प्र०—करणी, पड़णी, लागणी, होणी।

मुहा०—१ गरमी करणी—प्रकृति में उष्णता लाना. २ गरमी निकाळणी—उष्णता दूर करना।

२ तेजी, उग्रता, प्रचंडता।

मुहा०—१ गरमी निकळणी—गर्व एवं उग्रता दूर होनी. २ गरमी निकाळणी—गर्व दूर करना।

कहा०—दुसमण री करपा बुरी, भली सैण री त्रास। जद सूरज गरमी करै, तद वरसण री आस—शत्रु का कृपालु होना खतरे से खाली नहीं और स्वजन द्वारा कष्ट दिया जाना भी प्रायः हितकर होता है। सूर्य्य जब अधिक उग्र होकर तपता है तब ही वर्षा होने की आशा होती है। स्वजनों की प्रशंसा।

३ आवेश, जोश. ४ क्रोध, गुस्सा।

क्रि०प्र०—आणी, चढ़णी।

५ ग्रीष्म ऋतु।

क्रि०प्र०—आणी, जाणी।

६ अप्राकृतिक अथवा दुष्ट मैथुन से होने वाला एक प्रकार का रोग, आतशक, उपदंश।

क्रि०प्र०—निकळणी, फूटणी, होणी।

७ त्वरा, शीघ्रता। उ०—जिकौ कांम गरमी हळकाई सूं आदरै तो सही आ छै, अरथ नहीं सुधरै—आगलै दुख री कारण होय, संसार सूं सरमिंदगी होय।—नी.प्र. ८ हाथी, घोड़े, ऊँट आदि का एक रोग जिससे उनके पेशाब के साथ खून गिरने लगता है (शा.हो.)

वि०वि०—लम्बी दूरी की यात्रा करने के बाद जबकि पशु का शरीर गरम रहता है, एकाएक किसी ऐसे स्थान में बांधने से जहाँ उसे शुद्ध व भरपूर हवा नहीं मिलती, यह रोग हो जाता है। इसमें पशु अपना खाना-पीना छोड़ देता है।

गरमीजणौ, गरमीजबौ–क्रि०अ० [भाव वा०] हाथी, घोड़े, ऊँट आदि का गरमी रोग (देखो—गरमी ८) से ग्रसित होना।

गरर–सं०स्त्री० [अनु०] ध्वनि, आवाज विशेष।

गरळ–सं०पु० [सं० गरल] विष, जहर (ह.नां., अ.मा.)

उ०—जीकारौ अम्रित ज्युंही, भावै जग नूं भाळ। है रेकारौ आक पय, गरळ बराबर गाळ।—बां दा.

गरळक–सं०पु० [सं० गरल+क] १ सर्प. २ शेषनाग।

उ०—छिल बहत धक-धक अछक छक, अंतराळ गरळंक ढुळ इधक।
—र.रू.

गरळधर–सं०पु०यौ० [सं० गरलधर] १ वह जो विष को धारण करे. २ सर्प. ३ शिव, महादेव।

गरळस–सं०पु० [सं० गरलश] सांप, सर्प।

गरळाणौ, गरळाबौ, गरळावणौ, गरळावबौ–क्रि०अ०—१ रुदन करना, विलाप करना। उ०—करसा कुरळावैह, दूणा मरुधर देस रा। घर घर गरळावैह, आज न भूप उम्मेदसी।—उदयराज ऊजळ

२ ऊपर से मुँह में पानी उँडेल कर गल-गल की ध्वनि निकालना।

गरळौ–सं०पु०—ऊपर से मुँह में द्रव पदार्थ को उँडेल कर गल-गल की आवाज करने का भाव या क्रिया।

गरवणियौ–सं०पु०—रहँट के ऊपर दोनों ओर रहने वाले लट्ठों को स्थिर रखने के लिये उनके सहारे हेतु खड़े किये गये स्तम्भों के चारों ओर बनाया जाने वाला छोटा चबूतरा।

गरबणौ, गरबबौ—देखो 'गरबणौ' (रू.भे.) उ०—पेट भरे जायौ पछै, बबरायौ मळ जोय । जिण कारण जगदीस सूं, जणणी गरबी जोय ।
—बां.दा.

गरबस—सं०पु०—१ प्रहास (डिंगल) सांणोर गीत (छंद) का एक भेद. २ गंभीरता । उ०—जस करै एम दुनियांण जाय, महरांण जेम गरबस प्रमाय । दाबसी घणा बांका दुरंग, जीतसी प्रजे नृप घणह जंग ।—वि.सं.

वि० [सं० गर्वित] गर्वित, अभिमानी ।

गरबस निसांणी—सं०स्त्री०—निसाणी नामक डिंगल छंद जिसके प्रत्येक पद में १३ मात्रा और फिर १० मात्रा हो और तुकांत में लघु हो ।

गरबर—सं०पु० [सं० गर्व] १ घमंड, दर्प ।

[सं० गिरिवर] २ पहाड़, पर्वत । उ०—हूब छड़ उरड़ हड़वड़ नरां हैमरां, लोह पसरां दिये छोह लाजा । तजड़ 'उमेद' भांज'र खळां तरवरां, गरबरां ऊपरा खवै गांजा ।—उमेदसिंघ ईसरदास री गीत

गरबरणौ, गरबरबौ—क्रि०अ०—समूह रूप में इकट्ठा होना ।

गरबहारी—वि०—गर्व मिटाने वाला, गर्व को खंडित करने वाला ।

गरबाई—सं०स्त्री०—१ गंभीरता. २ घमंड । उ०—गैलो गांव-गांव गैलै नै, गिणै नहीं गरबाई नै । चित जिंदां री करघी चूरमूं, कनै राखि कड़वाई नै ।—ऊ.का.

गरबाणौ, गरबाबौ—क्रि०अ०—गर्व करना, घमंड करना ।

उ०—उदियापुर दिस आय दोय गांमड़िया पाया । अंधाधुंध हुय गया खांप बोदी गरबाया ।—अरजुनजी बारहठ

क्रि०स०—गर्व कराना, घमंड कराना ।

गरबाराजा—सं०पु०—दामाद के आने पर गाया जाने वाला एक लोक-गीत ।

गरबावणौ, गरबावबौ—क्रि०स०—घमंड करना, गर्व करना ।

गरबिता—सं०स्त्री० [सं० गर्विता] वह नायिका जिसे अपने रूप और गुण आदि का घमंड हो ।

गरबी—देखो 'गरबी' (रू.भे.)

गरबीलौ—वि० [सं० गर्वीला] (स्त्री० गरबीली) १ अभिमानी, घमंडी. २ गंभीर । उ०—रगता सेता रैणा, नमो मा कसना कीला । मीको-तर आसुरी, सुरी सुसिला गरबीला ।—देवि.

गरबेराय—सं०पु०—१ गिरिराज, पर्वतराज. २ चौहान राजपूत ।

गरबौ—वि०—१ गंभीर, धैर्यवान । उ०—१ गरबा होय हरि गुण गावो, छीलर जेम न दाखो छेह ।—ओपो आढ़ो उ०—२ गोतम सौ गरबौ न्याय मांझ निरधारियौ मैं ।—ऊ.का. २ बड़ा ।

उ०—गरबा आदर ना करै, करे प्रीत पाळंत । संकर बिख सायर बहुनि, कोर मधर धारंत ।—अज्ञात

गरह—देखो 'ग्रह' (रू.भे.)

गरहण—देखो 'ग्रहण' (रू.भे.)

गरहणा—सं०स्त्री० [सं० गर्हणा] १ फटकार, डांट । उ०—सबीब सत्य सावधान सावधान की सुनूं । गुमान ग्यांन गरहणा असावधान की सुनूं ।—ऊ.का. २ उपालम्भ, शिकायत ।

[रा०] ३ निंदा, आलोचना. उ०—नरेस बारठ्ठक में बिसेस जीवावणहार आपरा प्रारब्ध री गरहणा करि बंधावदा रै बा'रै ही जोगिणी नांम देवी मूं मस्तक चढ़ाइ अभीस्ट लोक पूगी सो तौ ववंस अठै दूर भावी जांणीजै ।—वं.भा. ४ घृणा ।

[अनु०] ५ नक्कारे की ध्वनि. ६ शब्द, ध्वनि विशेष ।

गरहर—सं०स्त्री० [अनु०] आवाज, ध्वनि । उ०—धारां हूर नरां पाखरां गरहर, बसू हुवै नव बळाबळा । असपत तणी चीत आहड़ा, तुला चढ़ंतां हुवै तुळा ।—महारांणा जगतसिंहजी री गीत

गरहरणौ गरहरबौ—क्रि अ०—१ युद्ध के बाजे बजना, नगाड़े का बजना । उ०—उग्र समै काबली दळ अचाळ । बोहौ मिळै मीर गरहर त्रंबाळ ।—करणीरूपक २ बिजली कड़कना, बादल गरजना. ३ दहाड़ना ।

गरहा—सं०स्त्री० [सं० गर्हणा] निंदा, शिकायत । उ०—१ कुमार प्रिथ्वीराज दुस्मन होय काका री गरहा प्रकट करी । उ०—२ आठवें दिन कुमार प्रिथ्वीराज कन्ह रै सदन जाय सत्कारपूर्वक गरहा री ग्लानि भगाई ।—वं.भा.

गिरांजणौ—देखो 'गांजणौ' (रू.भे.)

गरांपत—सं०पु० [सं० गिरिपति] सुमेरु पर्वत ।

गरा—सं०स्त्री० [सं० गिरा] १ वाणी । उ०—सरण असरण अभै-करण, धरणधर सरीखा चरण धावै । जोण संगट हरण बरण बै हुवै जसा, गरा तरण-तारण किऊं न गावै ।—जसजी आढ़ो
२ सरस्वती ।

गरा'क, गरा'ग—देखो 'ग्राहक' (रू.भे.) उ०—हे बेटा वे सत्रू माथा रा गरा'क है सो बलिया अवार आवण री बाट जोवै ।—वी.स.टी.

गराज—सं०पु०—उपाय, तरकीब ।

गराजा—सं०स्त्री०—गर्जना । उ०—पाजा लोप सिंधु जिउं अराबा हूं अवाजां पूर मातंगां गराजा धुर अठी साजा मोह ।
—हुकमीचंद खिड़ियौ

गराड़—सं०पु०—गर्व घमंड, अभिमान ।

गरायरो—देखो 'गरारौ' (३)

गरारौ—सं०पु० [अ० गग़रा] १ देखो 'गरळौ' (रू.भे.) २ गरारे करने की औषधि ।

[रा०] ३ ढीली मोहरी का पजामा ।

वि०—गर्वयुक्त, प्रचंड, प्रबल ।

गराळ—सं०पु० [सं० गिरि] पहाड़, पर्वत । उ०—झाळ अंबाळ ईसर तणी भळहळै, अळवळै वळै दीजै ऊथाळा । खाळ रीहराळ गाळा वचै खळहळै, भळहळै गराळां वीच भाला ।
—उम्मेदसिंह ईसरदासोत री गीत

गराब—सं०स्त्री०—चौहान वंश की एक शाखा ।

गरासणौ, गरासबौ—क्रि०स०—कंठ से नीचे उतारना, निगलना।
उ०—ग्रोखद जरै तौ मन मरै, खाय'र करै उखाळ। जन हरिदास ता जीव कूं, ग्रंति गरासै काळ।—ह.पु.वा.

गरिट्ट—वि०—देखो 'गरिस्ठ' (रू.भे.) उ०—बरिट्ट में बरिट्ट जे ग्रहेक तिन्न सालितें, गरिट्ट में गरिट्ट ते गुरे कती गजाळि तें।—ऊ.का.

गरिमा—सं०स्त्री० [सं० गरिमान्] १ गुरुत्व, भारीपन, बोझ. २ महिमा, महत्व, गौरव। उ०—तो चरणां लागै तिकी, चाळक करन सुजाव। नर गरिमा महिमा लहै, सांचौ तूं सिधराव।—बां.दा.
३ गर्व, ग्रहंकार. ४ ग्राठ सिद्धियों में से एक सिद्धि (ह.नां.)

गरिस्ट, गरिस्ठ—वि० [सं० गरिष्ठ] १ ग्रति, गुरु, ग्रत्यन्त भारी।
उ०—ग्रर जगमाल मस्तक रा भार नूं गरिस्ट मांनि ग्रद्रि रै ऊपर दव लगाइ धारा तीरथ रै उछाह इसड़ी ग्रनेक बातां रौ ग्रवलंब गहियौ।—वं.भा. २ कठिनता से पचने वाला।
सं०पु०—१ एक राजा का नाम. २ एक राक्षस का नाम. ३ एक तीर्थ का नाम।

गरी—सं०स्त्री०—१ गली, कूंचा, संकरा मार्ग। उ०—सरी-सरी सपोसयं, सुताळ माळ कोसयं। मिठास ग्रास मंजरी, गरी गरी स गुज्जरी।
—रा.रू.
२ मोहल्ला. ३ गिरी, गूदा. ४ नारियल के फल का भीतरी वह गोला जो छिलके के तोड़ने से निकलता है ग्रौर मुलायम तथा खाने के लायक होता है. ५ दशनामी संन्यासियों का एक भेद. देखो 'गिरी'।

गरीट—वि० [सं० गरिष्ठ] १ देखो 'गरिस्ट' (रू.भे.) २ देखो 'गरीठ'। (रू.भे.)

गरीठ, गरीठौ—वि० [सं० गरिष्ठ] १ बलवान, प्रचंडकाय, महाप्रबल।
उ०—१ ग्रहै कर साबळ ग्रंग गरीठ, 'पबौ' चढ़तौ जद केसर पीठ।
—पा.प्र.
उ०—२ वडं पराक्रम ग्राजम वीतौ, जुध गरीठ हठ ग्रालम जीतौ।
—रा.रू.
२ भयंकर। उ०—घणी लाज वीटियौ, वाज मेळिया नत्रीठै। दहुं ग्रोड़ रूकड़ां, रीठ उडियौ गरीठै।—बखतौ खिड़ियौ
३ प्रभावशाली, पराक्रमी। उ०—द्वादस रांमचंद्र सुत दीठा। गुण तोलण जग हूंत गरीठा।—वं.भा. ४ देखो 'गरिस्ठ' (रू.भे.)
सं०पु०—१ हाथी। उ०—रोर ग्रदीठ हुग्रै प्रजळै रिम, रीझ गरीठ ग्रवै भुज राव।—क.कु.बो. २ ऊंट।

गरीण—वि० [सं० गुरु] दीर्घ, विशाल, बहुत बड़ा।

गरीत, गरीथ—देखो 'गरीठ' (रू.भे.) उ०—निरत करवै में हूर, जंग जंगू में गरीत, सालोतरू में पूर।—र.रू.

गरीब—वि० [ग्र० गरीब] (स्त्री० गरीबण, गरीबणी) १ निर्धन, कंगाल। उ०—मारवाड़ रौ माल मुफत में खावै मोडा, सेवक जोसी सेंग गरीबां दे नित गोडा।—ऊ.का.
कहा०—१ गरीब री खाय सो जड़ामूळ सूं जाय—जो गरीब का धन खाता है वह समूल नष्ट हो जाता है. २ गरीब रै तो टाबर-टूबर हीज धन है—गरीब की संपत्ति उसकी संतान ही है।
यौ०—गरीब-गुरबौ। विलो०—ग्रमीर।
२ नम्र, दीन, हीन। उ०—मुरधर नर संमदर मंही, है कुण तारणहार। गज जिम तुरत गरीब री, पातल सुणै पुकार।
—चिमनदांन रतनू
कहा०—१ गरीब ऊपर गुणती वत्ती न्हाकै—गरीब को हर कोई काम सौंप देता है, इससे उसे ग्रधिक काम करना पड़ता है। गरीब को सभी सताते हैं. २ गरीब का बेलू रांम—गरीब का रक्षक ईश्वर है. ३ गरीब री हाय नी लेणी—गरीब को सताना बहुत बड़ा ग्रपराध है. ४ गरीब री जोरू सगळां री भाभी—गरीब की स्त्री सबकी भौजाई होती है, हर कोई उससे दिल्लगी करता है; गरीब को कहीं ग्रादर नहीं मिलता। उसकी हर वस्तु को हर कोई मुफ्त में लेना चाहता है. ५ गरीब री हाय खोटी—गरीब की हाय बुरी होती है, उसे कभी सताना नहीं चाहिये. ६ गरीब रै माथै दोय गूंणती वत्ती लादै—गरीब को हर कोई कार्य करने के लिये कह देता है। गरीब सदैव ग्रधिक कार्य से दबा रहता है. ७ गरीब तौ मैल व्है जकै नै कुण भी नहीं राखै इण वास्तै गरीब नहीं हूणौ—गरीब तो मैल होता है ग्रतः उसको कोई भी नहीं रखता। गरीब का कहीं ग्रादर नहीं होता इसलिये गरीब नहीं होना चाहिये. ८ गरीब रौ बेली रांम ही कोयनी—गरीब का ईश्वर भी सहायक नहीं होता। समर्थ की सब सहायता करते हैं किन्तु दीन जनों की प्रायः कोई सहायता नहीं करता।
यौ०—गरीबखांनौ, गरीबनिवाज, गरीबपरवर।
ग्रल्पा०—गरीबड़ौ।

गरीबखांनौ—सं०पु० [ग्र० गरीब+फा० खानः] ऐसा घर जिसमें सुख का कोई साधन न हो। वक्ता ग्रपने घर के लिये भी शिष्टता हेतु यही शब्द प्रयुक्त करता है। उ०—खांगीबंद सांसणां वरीसै नवा फीलखांना। वीक भोज कीरती बरांना बीसा बीस। भांण ग्रंस मांनसिंघ देखजे ग्ररांना भूप। सदा दीठ ग्रमीरी गरीबखांना सीस।
—जवांनजी ग्राढ़ौ

गरीबगुरबौ—सं०पु०यौ०—निर्धन व्यक्ति, दरिद्र व्यक्ति, कंगाल।
उ०—दरबार सूं गरीबगुरबै नूं खैरायत लंगर वंटणौ लागियौ।
—कुंवरसी सांखला री वारता

गरीबड़ौ—(स्त्री० गरीबड़ी) देखो 'गरीब' (ग्रल्पा०)

गरीबनवाज, गरीबनिवाज, गरीबमेवाज—वि० [ग्र० गरीब+फा० निवाज] दीनों पर दया करने वाला, दयालु, कृपालु। उ०—ग्रवगुण मोरा बापजी, बगस गरीबनिवाज। जो कुळ पूत कपूत व्है, तौ ही पिता कुळ लाज।—ह.र.
सं०पु०—ईश्वर।

गरीबपरवर—वि०यौ० [अ० गरीब+फा०प्र० पर्वर] दीनों का पालन करने वाला।

गरीबांनिवाज—देखो 'गरीबनिवाज' (रू.भे.)

गरीबी—सं०स्त्री० [अ० गरीबी] १ दरिद्रता, निर्धनता, कंगाली।
कहा०—गरीबी में आटो गीलो—गरीब स्थिति में जो कुछ आटा (चून) पास में था, वह भी अधिक पानी मिल जाने से गीला हो गया। गरीबी में आपत्ति पर आपत्ति आने पर।
२ दीनता, नम्रता। उ०—दिन-दिन भोळी दीसती, सदा गरीबी सूत। काकी कूंजर काटतां, जांणवियो जेठूत।—बी.स.

गरु—देखो 'गुरु' (रू.भे.) उ०—चेला बंस छतीस, गरु घर गहलोतां तणो। राजा रांणा रीस, कहतां मत कोई करो।
—सूरायचजी टापरयो

गरुओ—वि०—१ बलवान, शक्तिशाली. २ गंभीर।
उ०—बीस दोई मात्रा विगति, मेक चरण मंडांण। गुण गरुओ गहडेर रा, मेर छंद परमांण।—ल.पिं.

गरुघंटाळ—सं०पु०यौ०—धातु का बना बाजा जो केवल ध्वनि के लिये मोगरी से ठोक कर बजाया जाता है।
वि०—१ बड़ा भारी चालाक, अत्यन्त चतुर. २ धूर्त्त, चालबाज।

गरुड—सं०पु० [सं० गरुड] १ पक्षियों का राजा माना जाने वाला एक पक्षी।
वि०वि०—एक पौराणिक पक्षी जिसका आधा शरीर मनुष्य का और आधा पक्षी का माना जाता है। यह विष्णु का वाहन है। बालखिल्यों की तपस्या के फलस्वरूप पुत्रेष्ठि यज्ञ के पश्चात् कश्यप और वनिता से इसकी उत्पत्ति हुई। कद्रू और वनिता की शत्रुता के कारण कद्रू-पुत्र सर्पों का यह बड़ा शत्रु है। इसका मुख श्वेत, पंख लाल एवं शरीर सुनहला माना गया है। संपाति इसका पुत्र था। इसकी पत्नी का नाम विनायका है। रामचरित मानस के चार वक्ता और श्रोता वर्ग में से काकभुशुंड और गरुड भी एक वर्ग हैं।
पर्याय०—अरुणभंग, अरुणसंख, अरुणतचरण, अरुणानुज, अरुणावरज, अहिगाह, अहिभुक, अहिरिप, इंद्रजीत, उनतीनाह, कसपतनु, कस्यप-सुतन, कस्यपात्मज, कासपी, कासीपी, खग, खगपत, खगराज, खगेस, खगेसर, गिरगाज, ग्रीधळ, चपळवास, जतीवाह, तारक, तारक्ष, तारख, दिढ़वंत, दुजपति, धखपंख, पंखपत, पंखी, पंखीपत, पत्रीराज, पूतात्मा, प्रगड, बळवंत, बिखहा, बिनतासुतन, बिहंगेस, बैनतेय, भुजंगमचर, भुजावेद, भुयंगचर, मंत्रपूत, मनवाह, यंद्रजीत, राजपत्री, लघुअसरण, वजरतुंड, वनितासुत, वायुविरोधी, विखहर, वेनतनय, ब्याळारी, सकलीचरण, सक्तीधर, सजव, सालमळी, सुतपावाहन, सुधाचरण, सुपरण, सुप्रसरण, सेस, सोव्रनतन, हरिवाह, हरिवाहण।
रू.भे.—गरड़, गरुड़ि, गरुड़ू, गुरड़।
यौ०—गरुड़केतु, गरुड़गांमी, गरुड़धज, गरुड़पक्ष, गरुड़पास, गरुड़-पुरांण, गरुड़वाह, गरुड़वेग।
२ उकाब पक्षी जो गिद्ध की तरह का और बहुत बलवान होता है. ३ सेना की एक प्रकार की व्यूह-रचना जिसमें अगला भाग नोकदार, मध्य का भाग विस्तृत और पिछला भाग पतला होता है।
यौ०—गरुड़-व्यूह।
४ बीस प्रकार के प्रासादों में से एक जिसमें बीच का भाग चौड़ा तथा अगला और पीछे का भाग नुकीला होता है. ५ चौदहवें कल्प का नाम. ६ छप्पय छंद का ५५ वां भेद जिसमें १६ गुरु १२० लघु से १३६ वर्ण या १५२ मात्रायें होती हैं (र.ज.प्र.) ७ देवालय में पूजा या आरती के समय हाथ में लटका कर बजाया जाने वाला टिंकोरा जिसके हत्थे पर प्रायः गरुड़ की मूर्ति होती है।

गरुड़केतु—सं०पु०यौ० [सं०] गरुड़ध्वज, विष्णु।

गरुड़गांम, गरुड़गांमी—सं०पु०—विष्णु। उ०—रघुबर महाराज गाव नहचै यक पल न लाव, रंक करै सोई राव सुद्ध भाव सांम रे। दीन-बंधु देवदेव भालत स्तुति भ्रहम भेव, जेता जग सो अजेव गहर गरुड़गांम रे।—र.ज.प्र.

गरुड़घंटो—सं०पु०—देवालय में पूजा के समय हाथ में लटका कर बजाया जाने वाला टिंकोरा जिसके हत्थे पर प्रायः गरुड़ की मूर्ति होती है। (मि० 'गरुड़' ७)

गरुड़धज, गरुड़ध्वज—सं०पु० [सं० गरुडध्वज] १ ईश्वर, विष्णु आदि ईश्वर के रूप (नां.मा.) उ०—गरुड़ध्वज रिम मांण गाळा, बैर बाहर सीतवाळा।—र.ज.प्र. २ एक प्रकार का स्तम्भ जिस पर गरुड़ की आकृति बनी होती है।

गरुड़पक्ष—सं०पु० [सं०] नृत्य में कुहनी टेढ़ी करके दोनों हाथ कमर पर रखने का भाव, नृत्य की एक मुद्रा।

गरुड़पास—सं०पु०यौ० [सं० गरुडपाश] एक प्रकार का फंदा या फांसी, इसे प्राचीन काल में शत्रु को फंसाने और बांधने के लिये उस पर फेंका जाता था।

गरुड़पुरांण—सं०पु०यौ० [सं० गरुडपुराण] अठारह उप-पुराणों के अंतर्गत एक उपपुराण।
वि०वि०— इसकी श्लोक संख्या १९००० तथा प्रकृति सात्विक कही जाती है। गरुड़कल्प में विष्णु भगवान ने इसे सुनाया जिसमें विनता-नंदन गरुड़ के जन्म की कथा कही गई है। इस पुराण में तन्त्रों के मत्र और औषधियों का वर्णन अधिक है। रत्न, धातु आदि की परीक्षा-विधि विस्तार से दी गई है। इसके पश्चात् सृष्टि-प्रकरण से लेकर सूर्य तथा यदुवंशी राजाओं का इतिहास तक का वर्णन किया गया है। पाश्चात्य विद्वान विल्सन गरुड़पुराण के अस्तित्व पर ही सदेह प्रकट करते हैं। हिंदुओं में मृत्यु पर तीसरे दिन से ग्यारहवें दिन तक इसकी कथा कही जाती है।

गरुड़वाह—सं०पु०—विष्णु।

गरुड़वेग—सं०पु०—शीघ्रता, जल्दी (डिं.को.)

गरुड़व्यूह—सं०पु०यौ० [सं० गरुडव्यूह] देखो 'गरुड़' (३)

गरुड़ारूढ़—सं०पु०यौ० [सं० गरुडारूढ] गरुड़ पर सवारी करने वाला,

विष्णु (नां.मा.) उ०—राव,बैकुंठ घनंतर रिक्खभ, गरुड़ारूढ़ विसन प्रसणीग्रभ ।—ह.र.

गरुड़ासण, गरुड़ासन–सं०पु०यौ० [सं० गरुडासन] चौरासी आसनों के अन्तर्गत योग का एक आसन जिसमें खड़े रह कर कमर से शरीर को सम्मुख झुका कर दोनों हाथों को पीछे की तरफ शिर के आगे से मोड़ा जाता है। मतान्तर से खड़े रह कर दाहिने पांव के घुटने पर बायें पांव के घुटने को रखना और फिर बायें पांव के पंजे को दाहिने पांव की घुंडी के ऊपर के भाग में आंटी मार कर, पीछे बायें हाथ के मध्य भाग पर दाहिने हाथ की ठेउनी का ऊपर का भाग रख के आंटी मार, दोनों करतलों को मिला कर स्थिर खड़े रहने से भी गरुड़ासन कहलाता है. २ ईश्वर (नां.मा.)

गरुड़ि—देखो 'गरुड़' (रू.भे.)

गरुड़िधजि—देखो 'गरुड़ध्वज' (रू.भे.)

गरुड़िपति–सं०पु०यौ० [सं० गरुड+पति] विष्णु ।

गरुठ–वि०—देखो 'गरूठ' (रू.भे.)

गरुड—देखो 'गरड़' (रू.भे.)

गरुत्मांन–सं०पु० [सं० गरुत्मत्] गरुड़ (ह.नां.)

गरुर—देखो 'गरूर' (रू.भे.)

गरुरी—देखो 'गरूरी' (रू.भे.)

गरुवत्व–सं०पु० [सं०] १ गौरव, महत्व, बड़प्पन ।

उ०—निस दिन रूप अनंत, वधै विधु सुकळ जिही विध । मकर आदि दिन मांन, सोभ गरुवत्व वधै सिध ।—रा.रू. २ भारीपन, बोझ ।

गरुवाई–सं०स्त्री० [सं० गुरुता] १ बड़ाई । उ०—रोग को भवन ज्यूं कुजोग को समन जांणुं, दया को दमन औ गमन गरुवाई को ।

—ऊ.का.

२ घमंड, अहंकार, गर्व ।

गरुवौ–वि० [सं० गुरु] १ गौरवशाली, यशस्वी । उ०—१ तें गरुवा गिरनार, कांई मन मंछर धरचौ । मरतां रा खेंगार, ऐकौ सिखर न ढाळियौ ।—राजा खंगार री वात उ०—२ गुणांविध त्रिविध भुजनाथ गरुवौ गहउ ।—क.कु.बो.

गरूठ–वि०—प्रचण्ड, जबरदस्त । उ०—रोसायमांन डीलां गरूठ, दळ आया लाखां असुर दूठ ।—करणीरूपक

गरूतमांन—देखो 'गरुतमांन' (रू.भे., ह.नां.)

गरूर–सं०पु० [अ० गुरूर] १ अभिमान, घमंड, गर्व, शेखी, अहंवाद ।

उ०—गयणाग सीस छिबते गरूर । सझ फतै आवियौ बियौ 'सूर' ।

—वि.सं.

२ बड़ा, दीर्घ, प्रचंडकाय, जबरदस्त । उ०—प्रजोध जोध कुप्पि के प्रधाव धप्पि दे परै । महा गरूर पूर सूर दूर दूर तें मरै ।—ऊ.का.

उ०—२ गहकंत इसौ लाखौ गरूर, सीहौ इज साझै महासूर ।

३ भयंकर । —सू.प्र.

गरूरी–सं०पु० [अ० गुरूर] घमंड, अभिमान (रू०भे०–गरूर)

उ०—१ पग-पग हैंवर पाड़िया, गेंवर माता गांज । रण सेजां भख पौंढ़यौ, भड़ां गरूरी भांज ।—वी.स. उ०—२ पावन सत्ये स्वास के भरि फेन भभक्कै । छोह गरूरी छोरि के सिर फोरि ससक्कै ।—वं.भा.

वि० [अ० गुरूर+रा०प्र०ई] अभिमानी, घमंडी ।

गरेडौ—देखो 'गरडू' (रू.भे.)

गरै–क्रि०वि० -१ पास, समीप, निकट ।

२ देखो 'ग्रह' (रू.भे.)

गरोंगौ—देखो 'गांगौ' (रू.भे.)

गरोळणौ, गरोळबौ–क्रि०स०—मिलाना, मिश्रित करना ।

गरोळाणौ, गरोळाबौ, गरोळावणौ, गरोळावबौ–क्रि०स० ['गरोळणौ' का प्रे०रू०] मिलवाना, मिश्रित करवाना ।

गरोळावियड़ौ–भू०का०कृ०—मिलवाया हुआ, मिश्रित कराया हुआ । (स्त्री०–गरोळावियोड़ी)

गरोळी–सं०स्त्री० [सं० गर-रा० ओळी] छिपकली (डिं.को.)

गरोह–सं०पु० [फा० गुरोह] १ समुदाय, झुंड. २ दल, पार्टी ।

गरौ–सं०पु०—१ झड़बेरी के कटे हुए झाड़ों के समूह को गोलाकार रखने का ढंग (मि०–ग्रंबार, ३) २ ढेर, राशि ।

उ०—विणजारां री बाळद पड़ै तिण भांति घोड़ां भड़ां हाथीग्रां रा गरा पड़ीया छै ।—रा.सा.सं. ३ नाश, संहार । उ०—त्यांनै बाघो तरवार छूटी वाहै, तिको घोड़ौ असवार दोनूं ही टूक होय यों हजार चार तुरकां रौ गरौ कीयौ ।—वीरमदे सोनगरा री वात

४ साहस, हिम्मत ।

[फा० गुरोह] ५ समूह, दल । उ०—अरु थांसूं तौ घणाई मिळिया है, एकै मैं आयां कांई थांरै भारी गरौ हुसी ।—द.दा.

[रा०] ६ शक्ति, बल । उ०—नै आसिया सारा आय मिळिया अरु देस मैं रिपिया पैदास कियौ नै राज रौ भारी गरौ बांधियौ ।

—द.दा.

गळ–सं०पु० [सं० गल] १ गला, कंठ, गरदन । उ०—गळ मुंडमाळ मसांण ग्रह, संग पिसाच समाज । पावन तूझ प्रभाव सूं, संभु अपवन साज ।—बां.दा.

यौ०—गळकट, गळकोर, गळगंड ।

२ स्वर, आवाज । उ०—हेरे हरियाळी भूतळ हर खातीं, गहरे ऊँचे गळ हरियाळी गाती ।—ऊ.का. ३ मछली, मीन. ४ एक प्राचीन बाजे का नाम । [रा०] ५ फांसी ।

क्रि०प्र०—देणी, चढ़ावणी ।

६ मांसपिंड, गोश्त का टुकड़ा । उ०—१ सुज पळां समपै ग्रीध समळां, पळां भोजन परघळी ।—र.ज.प्र. उ०—२ गळ भार लिये पळचार ग्रीध, पत धार सगत भर रुधर पीध ।—वि.सं.

वि० [सं० ग्रड] मीठा । उ०—तळ पंथी गळ फूल फळ, सर पंछी न समाय । ओहिज हरियौ रूंखड़ौ, सूखौ ठूंठ कहाय ।—अज्ञात

क्रिoवि०—१ पास, निकट। उ०—गोळू गायां ले गांमां गळ गाहै। दुखिया सुखिया मिळ दोनूं दळ दाहै।—ऊ.का. २ इर्द-गिर्द। उ०—टूको गळ कांठळ लपटांणी, वर्णियो अरबुद नवल बनो। —नवलजी लाळस

गल—देखो 'गळ्ज' (रू.भे.) उ०—१ तो हुंता ढोली कहै, कूड़ी गल मां कत्थ। हवै तो जीवण एकठा, मरतो माक सत्थ।—ढो.मा.

उ०—२ गोपाळोत अमर राखण गल, 'देवा' सवाईसींग जिसे दिल।
राजा हूंत कह्यो वड रिड़मल, खैरायतां हुवै नहि खेचल।
—ठाकुर भभूतसिंह चांपावत री गीत

गळकंबळ-सं०स्त्री०—गाय के गले के नीचे का लटकता रहने वाला भाग।

गळकट-वि० [सं० गलकट] गला काटने वाला, हत्यारा।
उ०—१ भूवा भगनी रा थळचट भिखियारी, धन्या कन्या रा गळकट हठधारी।—ऊ.का.

गळका-सं०पु० (बहु०) आनन्ददायक स्वादिष्ट भोजन को रुचि से खाने का भाव।
कहा०—घणा दाड़ा गळका कीदा, पण खरा खोटां नी पारख आज है— बहुत दिन तक आनन्द से खाते रहे परन्तु समय आ गया है, तुम्हारी अच्छाई या बुराई की परीक्षा आज ही होगी। किसी के द्वारा निरन्तर लाभ उठाते रहने के पश्चात् जब उसे किसी कार्य की कसौटी पर कसा जाता है तब यह कहावत कही जाती है।

गळकाणौ, गळकाबौ-क्रि०स० [सं० गलकलित] १ गले के नीचे उतारना, निगलना. २ खाना हजम करना।

गळकायोड़ौ-भू०का०कृ०—१ गले के नीचे उतारा हुआ, निगला हुआ. २ खाया हुआ, हजम किया हुआ। (स्त्री० गळकायोड़ी)

गळकावणौ, गळकावबौ—देखो 'गळकाणौ' (रू.भे.)

गळकावियोड़ौ—देखो 'गळकायोड़ौ' (रू.भे.)
(स्त्री० गळकावियोड़ी)

गळकोड़-सं०पु०—वह बंधन जिससे बैलगाड़ी के साथ उन दो लकड़ियों को बांधा जाता है जो कि गाड़ी में गाड़ीवान के बैठने की जगह के सामने सीधी लगी हुई होती है एवं जिनकी सहायता से बैल को खोल लेने पर भी गाड़ी खड़ी रहती है।

गळकोड़ा-सं०पु०—१ मालखंभ की एक कसरत. २ कुश्ती का एक पेंच।

गळकोर-सं०स्त्री०—जट की बनी काली पतली रस्सी जो बैलों को सजाने के लिए उनके गले में पहनाई जाती है।

गळखोड़-सं०पु०—घोड़े के गले में बांधने की चमड़े की पट्टी जो लकड़ी की गुडेल से या कसमार से बांधी जाती है।

गळगंट, गळगंठौ-सं०पु० [सं० गल+ग्रंथि] गले के दोनों ओर की गिल्टियां जो जबान की जड़ के दोनों तरफ होती हैं।

गळगंड-सं०पु० [सं०] गले में होने वाला एक रोग जिसमें गले में शोथ हो जाता है और धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते सामने एक गांठ निकल आती है।

गळगळ-सं०स्त्री० [अनु०] १ मुंह में पानी भर कर गले से बाहर हवा निकालने पर उत्पन्न ध्वनि।

गळगळणौ, गळगळबौ-क्रि०स०—निगलना। उ०—गायां गोसाळां गूंदां गळगळती, ढाळां द्रग ढळती बूंदां बळबळती।—ऊ.का.

गळगळौ-वि० (स्त्री० गळगळी) १ डबडबाए नेत्रों वाला, अश्रुपूर्ण।
उ०—तरै डोकरी आंख्यां गळगळी करिनै गळै भूंबी नै कह्यौ, धन दिन आज रो, घणा दिनां री बीछड़ियोड़ी पुत्र मिळियो।
—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात

२ गद्गद् कंठ। उ०—अब्दुल सील पाय गळगळौ थको बारे आइयो।—नी.प्र. ३ अधिक घृतयुक्त (भोजन या कौर)

गळगेटौ-सं०पु०—पानी के साथ आटे आदि को मिला कर आंच पर पकाते समय बिना हिलाये एवं असावधानी के कारण बनने वाली वे ग्रंथियां (गुठलियां) जो कि अंदर से कच्ची रह जाती हैं।

गळगोल-सं०स्त्री०—गिलोल।

गळग्रह-सं०पु०—कंठ का एक रोग विशेष जिसमें कफ की वृद्धि से गला अवरुद्ध हो जाता है (अमरत)

गळग्रहवाई-सं०स्त्री०—घोड़े का एक रोग विशेष जिसके कारण घोड़े के गले में ग्रंथि हो जाती है और घोड़ा अपना कंधा नीचे झुकाए रहता है (शा.हो.)

गळछट-वि०—१ रोटी के लिए मारा-मारा फिरने वाला, टुकड़खोर. २ अधिक घृतयुक्त भोजन (भोजन या कौर) उ०—झिरमिर झिरमिर मेहूड़ो बरसै बादळियो घररावै ए। ग्वाळां नै म्हारै गळछट चूरमो।—लो.गी.

गळछेदक-सं०पु०—एक प्रकार का शस्त्र।

गळजोड़-सं०पु०—१ दो पशुओं को एक साथ बांधने के लिए उनकी गर्दन में बांधा जाने वाला एक उपकरण. २ इस प्रकार एक साथ बंधन में बंधे दो पशु. (मि०—सिलाड़) ३ जोड़ा, युग्म।
उ०—गाजे बांण आरहट गोळां, धोळै दिन साबळां धमोड़।
गोपाळोत ऊपरै गुड़िया, जोगणपुरां तणा गळजोड़।
—बीठल गोपाळदासोत री गीत

गळझंप-सं०स्त्री०यौ० [सं० गल+झंपा] युद्ध के समय हाथियों के गले में पहनाई जाने वाली लोहे की झूल।

गळझट—देखो 'गळछट' २। उ०—बाळकियो भतीजो मेरो रेवड़ चरावै, नणदल गायां घेरै ए। ग्वाळां नै म्हारै गळझट चूरमो, हाळ्यां नै खीर लपसी ए।—लो.गी.

गळडब, गळडबौ-सं०पु०यौ० [सं० गल+द्रव्य] १ कन्धे से लटकने वाला चमड़े का एक पटा, जिसमें तलवार बांधी जाती है।
उ०—बहादुरसिंघजी रै नागौरी धमाकौ खवां में रहतौ। लोह री मूठ लोह रातै नाळवी तरवार गळडबै रहती। अघोड़ी रौ

गळडबो रहतो।—बां.दा. ख्यात २ हाथ में चोट लगने पर उसे गले से लटकाते हुए ऊंचा रखने के लिए कोहनी से हाथ मोड़ कर गले से बांधी जाने वाली पट्टी. ३ पशु आदि के गले में बांधने का पट्टा।

गळडळ—सं०पु०यौ० [रा० गळ = मांस + डळ = टुकड़ा] मांसपिंड, गोश्त का टुकड़ा। उ०—डाक चमु वजाड़ै धपाड़ै ग्रीधां गळडळां, वीजू-जळां भुजावळां भांजै खळां वंद। प्रछरां श्ररजां करै श्रांटीला बीवांणां आवो, श्रंगहोमां कहै ऊभी आवो पुरां इंद।

—वनजी खिड़ियौ

गळणी—सं०स्त्री० [सं० गलनी] गले हुए अफीम को छानने का एक उपकरण। उ०—भला जुवांन मचकावै छै। बेवड़ी गळणी सूं खीची चाढ़ छांणजे छै।—रा.सा.सं.

गळणौ—देखो 'गरणौ' (रू.भे.)

गळणौ, गळबौ—क्रि०अ०—१ किसी द्रव्य के संयोजक अंशों या अणुओं का एक दूसरे से इस प्रकार पृथक होना कि जिससे वह द्रव्य विकृत कोमल या द्रव हो जाय, गलना. २ मिटना, नष्ट होना।

उ०—१ जाळ टळै मन क्रम गळै, निरमळ थावै देह। भाग हुवै तौ भागवत, सांभळजै स्रवणेह।—ह.र.

उ०—२ बीजी ही जायगा छै तौ चोर लगायस्यां सो आज सारी गरब गळियौ।—सूरे खींवे री वात ३ किसी दल के खिलाड़ी का परास्त होकर हटना या पृथक होना.

४ कृश होना, क्षीण होना। उ०—१ सळ पड़ियोड़ा सिथळ गोळ भुज है गळियोड़ा। गळियोड़ा छिक गुंमर गिरे कूंगा गळियोड़ा।

—ऊ.का.

उ०—२ इंदु बदन गोखड़ां ऊभी, टोयां काजळ टीबी। गळती रात पुकारै गोरी, बाबहिया ज्यूं बीबी।—राठौड़ अमरसिंह री वात

उ०—३ गया गळंती राति, परजळती पाया नहीं। से सज्जण परभाति, खड़हड़िया खुरसांण ज्यूं।—ढो.मा.

मुहा०—रात गळणी—रात्रि का ढलना, व्यतीत होना।

क्रि०स०—५ निगलना, हजम करना। उ०—रहचै जतै प्रसण दळ रासै, धारां मुंह नीजोड़ धड़। गळती मांस रंगी रण ग्रीधण, ऊडंती रंगिया अनड़।—संकरजी बारहठ ६ नाश करना।

उ०—तूटै असण घसण तरवार्‌यां, भीक बहै साबळां भळ। गळिया 'गजन' तणै धवळगिर, दहु पतसाहां तणा दळ।

—नरहरदास बारहठ

गळणहार, हारौ (हारी), गळणियौ—वि०।

गळवाणौ, गळवाबौ—प्रे०रू०।

गळाड़णौ, गळाड़बौ, गळाणौ, गळाबौ, गळावणौ, गळावबौ—क्रि०स० प्रे०रू०।

गळिप्रोड़ौ, गळियोड़ौ, गळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गळीजणौ, गळीजबौ—भाव वा०, कर्म वा०।

गळतंग—सं०पु०—ऊंट के गले में डाला जाने वाला चमड़े या सूत का फीता। ऊंट की पीठ पर का चारजामा पीछे न खिसके अतः चार-जामे को रस्सी द्वारा इस फीते के साथ कस कर बांध दिया जाता है।

गळत—वि० [अ०] १ अशुद्ध, भ्रममूलक, असत्य।

[रा०] २ एक प्रकार का कुष्ट रोग (मि०—गळतकोढ़)

३ वह जायदाद या संपत्ति जिसका मालिक मर गया हो एवं उसका कोई उत्तराधिकारी न हो।

गळतकियौ—सं०पु०—१ सोते समय गालों के नीचे रक्खा जाने वाला छोटा गोल और मुलायम तकिया. २ वह छोटा पत्थर का टुकड़ा जो दीवार एवं छत की पट्टियों के संधिस्थल पर आवश्यकतानुसार लगाया जाता है।

गळतकोढ़—सं०पु०—आठ प्रकार के कुष्ठ रोगों में से एक। गलितकुष्ठ।

गळतनांमौ—सं०पु०यौ०—किसी प्रकाशित पुस्तक में लगी हुई वह सूची जिसमें अशुद्धियों को शुद्ध रूप में दिखाया गया हो। शुद्धिपत्र।

गळतफहमी, गळतफैं'मी—सं०स्त्री० [अ० गलतफ़हमी] कुछ का कुछ समझना, बोधभ्रम।

गळतांण, गळतांन—वि०—१ निमग्न, तल्लीन। उ०—रांमरस प्याले रा पीवणहार, दया-धरम रा पाळणहार, करमजाळ रा भोडणहार, तापस अस्टांग जोग साभणहार, सांत रस माहे गळतांण होइनै रहिया छै। --रा.सा.सं.

२ अनुरक्त. ३ मस्त, उन्मत्त। उ०—आदमी बागियां सगळां नूं अमलां सूं गळतांन राखां तौ तीजां नीसर जावै। आपांनूं दोय दोय गोठ पांती आयसै।—कुंवरसी सांखला री वारता

गळतियौ—सं०पु०—पशुओं का, विशेष कर ऊंट का ही एक रोग विशेष जिसके कारण पशु दिन-प्रतिदिन अशक्त होता जाता है। पशुओं का कामला रोग।

गळती—सं०स्त्री० [अ० गलत + रा० प्र० ई] १ अशुद्धि, भूल, त्रुटि.

२ देखो 'गळत' (४)

गळथणियौ—वि० [सं० गलस्तन] १ पर्वतीय जाति की बकरी की गर्दन के नीचे चमड़े के दो टुकड़ों में लटकने वाले वे भाग जो स्तन के समान लटकते रहते हैं. २ गले से पशुओं को बांधने का बंधन।

गळथणी—सं०स्त्री० [सं० गलस्तनी] वह बकरी जिसकी गरदन के नीचे गळथणिया। (देखो 'गळथणियौ' १) लटकते रहते हैं।

गळथण्यौ—देखो 'गळथणियौ' (रू.भे.)

गळथैली—सं०स्त्री० [सं० गल + रा० थैली] बंदरों के गाल के नीचे की थैली जिसमें वे खाने की वस्तु भर लेते हैं।

गळथौ—सं०पु० [सं० गल + हस्त] गर्दन पकड़ कर धक्का देकर गिराने की क्रिया। गरदनियां

गळथ्यण, गळथ्थियौ—सं०पु० [सं० गलस्थाणु] १ गले का बंधन।

उ०—गयवर गळै गळथ्थियौ, जहं खंचै तहं जाय। सिंघ गळथ्थण

जे सही, तौ वह लाख विकाय।—खीची अचळदास री वचनिका

देखो 'गळथणियौ'।

गळबांई-सं०स्त्री०—मंदाग्नि के कारण अम्ल और जलनमय उद्गार के आने का रोग।

गळनहौ-सं०पु०—हाथियों का एक रोग जिसमें उनके नाखून गल-गल कर निकला करते हैं।

वि०—वह हाथी जो इस रोग से पीड़ित हो।

गळपटियौ-सं०पु०—१ स्त्रियों के गले का आभूषण विशेष. २ गले में बांधी जाने वाली पट्टी।

गळपूंछियौ-सं०पु०—एक प्रकार का घास विशेष (क्षेत्रीय)

गळप्रोत-सं०पु०—कंठ का एक आभूषण।

गळफड़ौ-सं०पु० [सं० गलस्फटा] गाल के दोनों ओर का वह मांस जो दोनों जबड़ों के बीच में होता है। गाल का चमड़ा।

गळफवार—एक विशेष प्रकार के बनावट की खिड़की।

गळफांसी-सं०स्त्री० [सं० गलपाश] १ गले की फांसी. २ कष्टदायक वस्तु या कार्य।

गळबंध-सं०पु०—कंठ रुकने या दम घुटने का भाव, कंठावरोध।

उ०—गंधि गयौ ग्रह रेगर के, गळबंध भयौ ग्रहधंध बिगारयौ।
पीनस काय के पास कपूर, धरयौ कवि 'ऊमर' तौ हिय हारयौ।—ऊ.का.

गळबत्थ, गळबथ-सं०स्त्री०—गले में बांहें डाल कर मिलने का भाव, आलिंगन। उ०—१ संपेखे वाल्हा सगा, मिळ गळबत्थां मार। पहली बाहण पांहुणां, मंडीजै मनुहार।—वी.स. उ०—२ मांने तौ एह-सांण द्रमके भांमण डरती। हळफळती धव अंग मिळै गळबत्थां भरती।—मेघ०

क्रि०प्र०—घालणी।

गळबळ-सं०पु० [अनु०] १ कोलाहल. २ खलबली, गड़बड़ी।

वि०—अस्पष्ट। उ०—आघा-आघा ऊचरै, राउत तेथ हरोळ। पग खेरड़ै हलबळ पड़ै, बोलै गळबळ बोल।—वी.स.

गळबांई, गळबांह, गळबांही, गळबाखड़ी, गळबाथ-सं०स्त्री० [सं० गल+बाहु] गले में बांह डालना, कंठालिंगन। उ०—१ माळै बैस विवांणां मांई, क्रीत जुगां तांई कहलोत। अपछर परण गयौ इक दांई, गळबांहीं कीधां गहलोत।—महादांन महडू

उ०—२ च्यारि ही भाई पैलां नूं जाय संसय जणाइ खागां रा खेल्ह में खंड बिहंड होइ बिमांणां बैठा नारियां रै साथ गळबांह कीधां सुरलोक पूगा।—वं.भा.

उ०—३ गळबांही दीजै है, पूरण नेह नेह रस लीजै।—र. हमीर

उ०—४ तिण भांति गळबांखड़ीआं घातियां थकां बालो जोबन मांणीजै छै। इण भांति सुख-बोल करि रात पाछी नाखीजै छै।—रा.सा.सं.

उ०—५ जांणूं हूं हिवड़ै हुवौ, सैणां हंदौ साथ। जे सपनौ सांचौ हुवै, तौ घालूं गळबाथ।—र.रा.

(रू०भे०—गळबत्थ, गळबथ)

गळबाहु-सं०पु०—रहंट के मध्य स्तम्भ के ऊपरी सिरे पर लगा हुआ लकड़ी का अंकोड़ा जिसमें वह सिरा घूमता है।

गळबूचियौ, गळबूचौ-सं०पु०—हथेली को फैला कर बनाई गई वह अर्द्ध-चंद्राकार मुद्रा जो किसी का गला पकड़ कर धक्का देने के उद्देश्य से बनाई जाय अथवा इस प्रकार की मुद्रा से दिया जाने वाला धक्का।

गळबोबौ-सं०पु०—पर्वतीय जाति की बकरी की गर्दन के नीचे चमड़े के दो टुकड़ों में लटकने वाले वे भाग जो स्तन के समान लटकते रहते हैं। (मि०—गळथणियौ)

गलबौ, गळबौ—१ देखो 'गळबळ'। उ०—इस किल्ले में सुजांनसिंघ ठाकर, जिसके 'हाजर्‌या' चाकर। 'हाजर्‌यां' ने आपां दिखलाया, गलबे के साथ बाहर को आया।—ला.रा. २ पशुओं के गले में डालने का बंधन।

गळमुच्छौ-सं०पु०—दोनों गालों पर के बढ़ाये हुए बाल, गलमुच्छा।

गळमुद्रा-सं०स्त्री० [सं० गल+मुद्रा] गाल बजाने की एक प्रकार की मुद्रा जो शिवजी के पूजन, शयन आदि के समय उनको प्रसन्न करने के लिए की जाती है। गलमंदरी।

गळमेद-सं०स्त्री०—गले का एक रोग जिसमें आरम्भ में सूजन होती है और क्रमशः बढ़ते-बढ़ते सामने एक गांठ सी निकल आती है। यह गांठ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है और कभी-कभी इतनी बढ़ जाती है कि थैले की तरह गले में लटकने लगती है।

गलर-सं०पु०—१ स्वाद लेने की क्रिया. २ वृक्ष या पौधे का रस-भरा भाग।

गळळ-सं०स्त्री०—निगलने का भाव। उ०—ग्रीध हळवळ समर गळळ पळ मिळगरां, असळ सळ वळोवळ कळळ हूंकळ तुरां।

—महादांन महडू

गळळाटौ-सं०पु० [अनु०] १ हलक के नीचे द्रव पदार्थ उतारते समय होने वाली एक ध्वनि. २ शोकजनक आवाज। उ०—गदगद वांणी द्रग पांणी गळळाटा, कंगला बंगलां में कीना कळळाटा।

—ऊ.का.

गळळाणौ, गळळाबौ, गळळावणौ, गळळावबौ-क्रि०अ०—१ डबडबाना. २ शोक-ध्वनि करना, विलाप करना। उ०—देखै सूरजमल दरस, हिय पाबू रै हेत। ओठी गळळायौ अधक, दूर हूंता पग देत।

—पा.प्र.

[अनु०] ३ पानी मुंह में भरने एवं अंदर से वायु बाहर निकालने पर भरे पानी के कारण होने वाली गल-गल की ध्वनि। उ०—जळ भीतर आव मचाय महाजुध, कंटक लीध दबाय करी। गळळावत सूंड रही दुय अंगुळ, हेत घणौ पखराय हरी।—भगतमाळ

गळबांणी-सं०स्त्री०—सिके हुए आटे को गुड़ में मिला कर पानी में उबाल कर बनाया हुआ मीठा पेय पदार्थ।

गळबांणौ-सं०पु०—१ देखो 'गळवांणी' (रू भे.) २ एक प्रकार की

बरसाती घास जिसके खाने से पशु का पेट अफर जाता है. २ पशुओं के गले में बांधी जाने वाली चमड़े या सूत की रस्सी।

गळवांन–वि०—गलने वाला, नष्ट होने वाला।

कहा०—गारे ना गड़वा कल गळवाना—मिट्टी के पात्र नाशवान हैं; नश्वर देह का क्या मोह ?

गळवाह–सं०स्त्री०—गर्दन पर किया जाने वाला प्रहार। उ०—करि घड़ बेहद्द गरा केवियां, हाथूं के गळवाह हिचि। हंस वप हूंत विछूटी हालियौ, वांटियौ सुरां विमांण विचि।—लीकमदास खिड़ियौ

गळसरी, गळसिरी–सं०स्त्री० [सं० गलश्री] गले में पहिना जाने वाला कंठश्री नामक आभूषण। उ०—गळै में गळसरी पहर लीज्यो ये धंवा।—लो.गी.

गळसुंडी–सं०स्त्री० [सं० गलशुंडी] १ मांस का एक छोटा जीभ के आकार का खंड जो गले के अंदर जीभ के मूल के पास होता है (अमरत) २ तालु का एक रोग विशेष जिसमें कफ और रक्त के विकार से तालु की जड़ में सूजन हो जाती है (अमरत)

(रू०भे०—गळसूंडी)

गळसुओ–सं०पु० [सं० गलसूती] शीतकाल में मस्ती में आये हुए ऊंट के मुंह से बाहर निकलने वाली गलशुंडी।

वि०वि०—देखो 'साळू' ६।

गळसूंडी—देखो 'गळसुंडी' (रू.भे.)

गलस्तनी—देखो 'गळथणियौ' (रू.भे.)

गळहाथ—देखो 'गळेहाथ' (रू.भे.)

गळांछळौ, गळांठौ–सं०पु० [सं० गलोच्छन्न] (स्त्री० गळांछळी) किसी बर्तन को उसके गले तक भर देने की क्रिया।

वि०—गले तक भरा हुआ।

गलांण—देखो 'गलांनि' (रू.भे.) उ०—हणं पसू तिण खिण हवै, हिये दया री हांण। थाळी मांह मसांण थट, गिल ही छोड गलांण।
—बां.दा.

गळांणौ–सं०पु०—किसी पात्र के गले में रस्सी आदि का डाला जाने वाला वह बंधन जो उस पात्र को उठा कर लाने ले जाने के लिए सहायक हो।

गळांमणौ–सं०पु०—१ गले का बंधन जो पालतू पशुओं के गले में डाला जाता हो। २ देखो 'गळवांणौ' (२)

कहा०—कुत्ती गई नै गळांमणौ ई लेगी—किसी बड़ी हानि के साथ छोटी-मोटी अन्य प्रकार की हानियां होने पर।

२ देखो 'गळांणौ' (रू.भे.)

गळांवड़ौ–सं०पु० [सं० गलांदुक] पशुओं के गले में बंधी हुई रस्सी।

गळाई–क्रि०वि०—भांति, तरह, प्रकार।

सं०स्त्री०—१ पिघलाने का कार्य. २ गलाने के कार्य की मजदूरी।

गळाकौ–सं०पु० [सं० गल+क] १ गला निकाल कर झांकने की क्रिया या भाव।

[सं० गलकलित] २ निगलने का भाव।

गळागळ–सं०स्त्री० (अनु०) एक साथ शीघ्र निगलने की क्रिया या भाव.

गळाणौ, गळाबौ–क्रि०स०—१ किसी द्रव्य के संयोजक अंशों या अणुओं का एक दूसरे से इस प्रकार पृथक करना कि जिससे वह द्रव्य विकृत, कोमल या द्रव हो जाय, गलाना. २ मिटाना, नष्ट करना. ३ किसी दल के खिलाड़ी को परास्त करके खेल से हटाना या पृथक करना. ४ कृश करना, क्षीण करना.

('गळणौ' का प्रे०रू०) ५ निगलाना, हजम कराना।

गळाणहार, हारौ (हारी) गळाणियौ—वि०।

गळाड़णौ, गळाड़बौ, गळावणौ, गळावबौ—रू०भे०।

गळाग्रोड़ौ, गळायोड़ौ—भू०का०कृ०।

गळाईजणौ, गळाईजबौ—कर्म वा०।

गळणौ—अक रू०।

गलांनि–सं०स्त्री० [सं० ग्लानि] १ दुःख या पछतावे के कारण खिन्नता, अपने किए का पछतावा या खेद, अपनी करनी पर लज्जा. २ घृणा।

गळायोड़ौ–भू०का०कृ०—गलाया हुआ। (स्त्री० 'गळायोड़ी')

गलार–सं०स्त्री०—१ भेड़ द्वारा की जाने वाली ध्वनि। उ०—सिंघां सिर नीचा किया, गाडर करै गलार। अधपतियां सिर ओढणी, तो सिर पाघ मलार।—अज्ञात

२ गिद्ध पक्षी की ध्वनि। उ०—खरळ दिसा खांमळी नवै तीतर दिस उत्तर। ग्रीधण करै गलार चील चोहंती वडां सिर।—पा.प्र.

३ आनंद, मौज। उ०—कूकर रखवाळी करै, दूजां लोकां द्वार। देसोतां री डोढ़ियां, गोला करै गलार।—बां.दा.

गलाळ–सं०पु०—मांस-पिंड, गोश्त का टुकड़ा। उ०—भिड़ै अस तोला लोह भिड़ाळ, गिळै रस ग्रीधण गूद गलाळ।—गो.रू.

गळावट–सं०स्त्री०—गलाने की क्रिया या भाव।

गळावणौ, गळावबौ—देखो 'गळाणौ' (रू.भे.)

गळावणहार, हारौ (हारी), गळावणियौ—वि०।

गळाविश्रोड़ौ, गळावियोड़ौ, गळाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गळावीजणौ, गळावीजबौ—कर्म वा०।

गळणौ—अक रू०।

गळावियोड़ौ–भू०का०कृ०—गलाया हुआ। (स्त्री० गळावियोड़ी)

गळि—१ देखो 'गळौ' (रू.भे.) २ गला, गर्दन।

उ०—आभूखण वज्र तणा अथाहै। माथा तणा हार गळि मांहै।
—सू०प्र.

गलिचौ, गळिचौ–सं०पु० [फा० गालीच] गलीचा, कालीन।

गलित–वि० [सं०] १ गला हुआ. २ पुराना, जीर्ण-शीर्ण, खंडित।

गळिआणौ–सं०पु०—१ यज्ञोपवीत धारण किया हुआ व्यक्ति, ब्राह्मण, द्विज। उ०—तितरै हेक दीठ पवित्र गळिआणौ, करि प्रणपति लागी कहण। देहि संदेस लगी द्वारिका, वीर बटाऊ ब्राह्मण।—वेलि.

२ जनेऊ, यज्ञोपवीत।

गळियांभमर–सं०पु०—गली-कूंचे में बना-ठना घूमने वाला, शौकीन, छैला। उ०—सुकर केवांण खेड़ेच झाली समर, भाग भोलाळिया कोट गळियांभमर। गई लग मारगां भड़ां कैतां गुमर, म्राविया वीलो-कण गयण केता भ्रमर।—रिवदांन बारहठ

गळियार, गळियारौ–वि० [सं० गली+चार] (स्त्री० गळियारी) १ गली-गली आवारा घूमने वाला।

कहा०—गधौ गळियार नें आदमी ळळियार—गली-गली घूमने वाला गधा एवं आवारा व्यक्ति दोनों एक समान हैं। आवारा व्यक्ति की निंदा. २ घायल, आहत। उ०—आढ़ौ रण गळियार उठायौ, लागि नूर्जांन अप्प-पुर लायौ।—वं.भा. ३ उन्मत्त, मस्त।

उ०—रण रा गळियार रोस में रजगुण रै रूप हुवा थकां नूं सिंहनाद रै साथ दाकळिया।—वं.भा.

सं०पु०—पतली छोटी गली, गलियारा। उ०—सखी अमीणा कंत रौ, औ इक बडौ सुभाव। गळियारां ढीलौ फिरै, हाकां वागां राव।

—हा.झा.

कहा०—गळियारे रौ घर रांम-रांम में ही जासी—गळी के मार्ग पर पड़ने वाला घर रांम-रांम का अभिवादन में ही नष्ट हो जायगा। मार्ग में पड़ने के कारण आने-जाने वाले लोगों से राम-राम का अभिवादन करने में ही काफी समय नष्ट हो जायगा, इसके साथ ही शिष्टता के नाते आने जाने वालों को धूम्रपान आदि कराने का भी खर्च करना पड़ेगा इस प्रकार बेकार समय गँवाने व खर्च करने से घर शीघ्र नष्ट होगा। आम रास्ते एवं अधिक आवागमन के रास्ते में घर की स्थिति की बुराई।

गळियोगुळसरौ–सं०पु० [सं० गलित] गलाया हुआ अफीम।

उ०—अबै लाल कंवर अमलां रा जमाव मांडिया, गळियोगुळसरौ छूटौ अमल कियौ।—जगदेव पंवार री वात

गळियोड़ौ–भू०का०कृ०—गला हुआ (स्त्री०—गळियोड़ी)

गळियौ–वि०पु० – मीठा, स्वादिष्ट।

कहा०—गळियौ लागै जे गोळ नी, खारी लागै जे खांड—संसार में जो जैसा दीखता हैं या जैसा अपने को कहता है, वास्तव में वह वैसा नहीं होता।

गळिळाणौ, गळिळाबौ–क्रि०अ०—चिल्लाना। उ०—पहिर नु चोळी नवरंगी, बावन चंदन अंग सउहाई। चित फाटा मन उचटया, रूठी गोरी रहइ गळिळाई।—बी.दे.

गळी–सं०स्त्री० [सं० गल] १ घरों की पंक्तियों के बीच से होकर गुजरने वाला तंग व संकरा मार्ग जो मुख्य सड़क से कम चौड़ा होता है, कूंचा। उ०—१ बींजौ बरजै सोरठी, मूझ गळी मत आव। थारी पायल बाजणी, म्हारौ और सुभाव।—र.रा. उ०—२ डाढ़ी मूंछाळा डळियां में डुळिया, रळियां जायोड़ा गाळियां में रुळिया।

—ऊ.का.

पर्याय०—डांडी, तुरती, परतोळी, प्रणा, प्रतोळका, प्रतोळी, विसिखा, वीथि, मग, वाट, रथ्या, सेरी।

मुहा०—गळी-गळी फिरणौ; गळी-गळी मारौ-मारौ फिरणौ—बेकार और बेइज्जत इधर-उधर घूमना; मारे-मारे फिरना।

कहा०—गळी रा गिंडक ही को बूझै नी—गली के कुत्ते भी बात नही करते; अकिंचन का कहीं आदर नहीं होता।

यौ०—गळीकूंची, गळी-गोचरी।

२ मुहल्ला. ३ उपाय, तरकीब। उ०—लीण अलीण गळी नहि लाधी, बुध बिन जगत बूडगी बाधी।—ऊ.का. ४ भेद, रहस्य. ५ बड़ा छेद। उ०—ताहरां पछीत खोदणं बैठौ नचींत थकौ खोदै छै। खोदतै-खोदतै गळी की जिसड़ी मैं माथौ मावै · खींवौ तरवार काढ़िनै बैठौ छै।—चौबोली

गळीकूंची–सं०स्त्री०यौ०—भेद, रहस्य। उ०—तेली लुगाई लेयनै भरथनेर आयौ नै ठाकुरसीजी रै रजपूत नूं गढ़ री सारी गळीकूंची दिखाई।—द दा.

गलीच–स०पु०—प्रेत, भूत-पिशाचादि. २ मल, विष्टा. ३ मैली, गंदी एवं घृणित वस्तु। उ०—कीच मो गलीच कांम भूलि तैं भयौ, नीच कांम बाच अजौं नीच तू नयौ।—ऊ.का.

गलीचता–सं०स्त्री०—१ मैल, गंदगी. २ मल, विष्टा।

गलीचौ–सं०पु० [फा० ग़ालीचा] एक प्रकार का खूब मोटा बुना हुआ बिछौना जिस पर रंग-बिरंगे बेल-बूटे बने रहते हैं और घने बालों की तरह सूत निकले रहते हैं।

गलीज—देखो 'गलीच' (रू.भे.)

गलीडुणियौ–सं०पु०—गुल्ली-डंडे का खेल।

गलीम–सं०पु० [अ० गलीम] १ लुटेरा, डाकू. २ शत्रु, वैरी।

गळूचियौ—देखो 'गळबूचियौ' (रू.भे.)

गळेबाज–वि०—अच्छा गाने वाला, अच्छे कंठ या स्वर वाला।

गळेहाथ–सं०पु०यौ०—गले को छू कर शपथ खाने का भाव।

गळै–क्रि०वि०—पास, निकट, समीप। उ०—जिके इंदु फण इंद कंद तां गळै निकासै। जुध प्रवीण रढरांण पांण त्यां दूरि पियासै।

—मालौ आसियौ

गळोबळ—देखो 'गळबत्थ' (रू.भे.) उ०—गुलाबां मीरजां नबाबां गाहटै, गळोबळ घातियां हेत गाढ़ै। फरोळै पांखड़ी आंतरा फींफरां, काळजा कजळत भमर काढ़ै।—तेजसिंह सेखावत रौ गीत

गळौ–सं०पु०—शरीर का वह भाग जो शिर को धड़ से जोड़ता है। गरदन, कंठ, गला (अ.मा.) उ०—गळौ कटावै लोभ यौ, लोभी काटणहार। लीजै कांनौ लोभ सूं, मिळ संतोख मझार।—बां.दा.

मुहा०—१ गळा रै नीचै उतरणौ—समझ में आना, समझ में बैठना. २ गळा रौ ढोल—गले का बोझ. ३ गळा रौ हार—बहुत प्यारा. ४ गळै पड़णौ—जी को लगना (जबरदस्ती या विवशता से) संबंध जुड़ना या जोड़ना. ५ गळै माथै छूरी

फेरणौ—बहुत नुकसान पहुँचाना, मारना, गला काटना. ६ गळै बांधणौ—इच्छा के खिलाफ देना, जबरदस्ती देना. ७ गळै नांखणौ—किसी के जिम्मे देना, ग्रादर देना. ८ गळै लगणौ—गले मिलना. ९ गळै लगाणौ—प्रेम करना, ग्रालिंगन करना. १० गळौ काटणौ—ग्रत्याचार करना, सर को धड़ से ग्रलग करना, बहुत कष्ट देना, बहुत बड़ा नुकसान, ग्रहित या बुराई करना. ११ गळौ घुटणौ—सांस रुक-रुक कर ग्राना. १२ गळौ घोटणौ—गला दबा कर हत्या कर डालना. १३ गळौ छुडाणौ—छुटकारा पाना, मुक्ति या छुटकारा दिलाना. १४ गळौ छूटणौ—झंझट मिटना, झंझट से निकलना. १५ गळौ टीपणौ—देखो 'गळौ घोटणौ'. १६ गळौ दाबणौ—किसी को कोई कार्य करने के लिए विवश करना, गला दबा कर हत्या कर डालना. १७ गळौ फंसणौ—लाचार होना, फंस कर लाचार होना. १८ गळौ फंसाणौ—बंधन में डालना, जान-बूझ कर किसी ग्राफत में पड़ना. १९ गळौ फाड़णौ—चिल्लाना, बहुत जोर से बोलना. २० गळौ मरोड़णौ—गला घोंट कर मार डालना।

कहा०—१ गया रोजा छोडण नै नै गळै नमाज पड़गी—रोजे की ग्राफत छुड़ाने गये कि नमाज पढ़ने की बड़ी ग्राफत ग्रौर शिर पर लग गई। एक ग्राफत को छोड़ते या हटते दूसरी ग्राफत का ग्रा जाना. २ गळै ताळवै ई को लागै नी—खाने की उस वस्तु के प्रति जो ग्रत्यन्त ग्रल्प मात्रा में ही खाने को दी गई हो।

मि०-ऊँट रै मुंहडै जीरो।

२ गले का स्वर, कंठ-स्वर. ३ गले के ग्रदर, तालू की झालर के बीच का लटकता हुग्रा माँस का टुकड़ा, घांटी, लंगर।

वि०वि०—इस घांटी के कुछ ग्रधिक नीचे लटक ग्राने या सिकुड़ जाने का एक रोग भी होता है जो प्राय: बाल्यावस्था में ही ग्रधिक होता है। इससे कुछ दर्द ग्रौर खाने-पीने में बहुत कष्ट होता है।

मुहा०—१ गळौ पड़णौ, गळौ होणौ—घांटी के कुछ ग्रधिक नीचे लटकने का रोग होना. २ गळौ उठाणौ, गळौ करणौ—बढ़ी या ग्रधिक लटकी हुई घांटी को दबा कर यथास्थान करना।

कहा०—गई तो गळौ करावण नै पण कांच माथै ग्रा पड़ी—गई तो थी गले का कौवा उठवाने परन्तु कांच निकलने की बीमारी ग्रौर लग गई। एक ग्राफत को छोड़ते या हटते ही दूसरी ग्राफत का ग्रा जाना।

मि०—गया रोजा छोडण नै नै गळै नमाज पड़गी।

४ ग्रंगरखे, कुर्ते, ब्लाउज ग्रादि की काट में वह भाग जो पहिनते समय शिर के ऊपर होकर गले में पड़ता है. ५ बरतन का वह तंग या पतला भाग जो उसके मुंह के नीचे रहता है।

गलौ—सं०पु० [ग्र० गुल] १ कोलाहल, शोरगुल। उ०—मूणसिंघजी ग्राय पड़िया ग्रौर मांय गलौ हुवौ। ग्रालमगीर ढोलिये सूं ऊठ ऊभौ हुवौ।—द.दा. २ [फा गल्ला] झुंड, दल, समूह। उ०—ऐ दिन पहर एक चढ़तां डींगसर रै गोखै में सांढियां रा गला सांम्हा ग्राया सो घेर नै घेरिया।—सूरे खींवे री बात

[ग्र० ग़ल्ला] ३ ग्रनाज, गल्ला।

[सं० ग्लौ] ४ चंद्रमा (ह.नां.)

[रा०] ५ देखो 'गुल्लौ' (६)

गळौघ—सं०पु० [सं० गलौघ] गालों में एक प्रकार की सूजन हो जाने एवं सांस लेने में कठिनता होने का एक रोग (ग्रमरत)

गल्प—सं०स्त्री० [सं० जल्प, कल्प] १ मिथ्या प्रलाप, गप्प, डींग. २ छोटी कथा।

गल्ल—सं०स्त्री०—१ छोटी कहानी, कथा, गल्प। उ०—सुदतारां भावै सदा, सुदतारां री गल्ल। ग्रवतारां भावै नहीं, सुणियां ह्वै उर सल्ल।—बां.दा.

कहा०—मन री मन में रह गई वा गूंगैग्राळी गल्ल—गूंगे व्यक्ति की बात मन की मन में रह जाती है; उसके प्रति जो किसी कारणवश ग्रपने मन की बात प्रकट न कर सके।

२ गप्प, डींग. ३ कपोल, गाल. ४ यश, कीर्ति। उ०—इस लेखै ग्रौरूं ग्रनेक हुग्रा कीरत वर का, जिस दी गल्लां ऊबरी सब ग्रालम सिर का।—दुरगादत्त बारहठ ५ पुकार। उ०—रनां बनां तरझंगरां, गढ़ां मढ़ां सुण गल्ल। ज्यां होवौ ज्यां ग्रावज्यौ, (मा) कियां साद करनल्ल।—करणीस्तुति

गल्लका, गल्लकी—सं०स्त्री०—गंडक नदी। उ०—देवी नरमदा सारजू सदा नीरा, देवी गल्लका तुंगभद्रा गंभीरा।—देवि.

गल्लड़ी—देखो 'गल्ल' (ग्रल्पा०) उ० जिस कुळ हुंदी गल्लड़ी, जस दी जाहर का। ग्रवर महीपत सीखवै, पैंतीसूं पर का।—दुरगादत्त बारहठ

गल्ल-बल्ल—सं०पु०यौ०—कोलाहल, शोरगुल, ग्रस्पष्ट ध्वनि।

उ०—मूंछाळ ग्रल्लं क्रोध मल्लं गल्लबल्लं मच्चए। जिंदराव सत्थं बांध जत्थं 'पाल' मत्थं खंचए।—पा.प्र.

गल्लवर—सं०पु० [सं० गजवर] हाथी (डिं.नां.मा.)

गल्लबल्ली—सं०स्त्री०—बोलने की ग्रस्पष्ट ध्वनि। उ०—ऊंचै पागड़ै काळ रूपी ग्रसल्ली, बोलै पारसी ग्ररेसी गल्लबल्ली।—वचनिका

गल्लाफरोस—सं०पु० [फा० ग़ल्लाफरोश] ग्रनाज का व्यापारी, ग्रनाज का विक्रेता।

गल्लिका—सं०पु०—राजस्थानी का एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में रगण, जगण, रगण, जगण, रगण, जगण एवं गुरु लघु के क्रम से बीस वर्ण होते हैं (र.ज.प्र.)

गल्लौ—१ देखो 'गलौ' (रू.भे.) २ वह संदूकची जिसमें दूकानदार रुपये-पैसे ग्रादि दूकान में रखता है ग्रथवा इस संदूकची में रक्खा गया धन।

गल्ह—देखो 'गल्ल' (रू.भे.) उ०—१ मुखवाणां पड़िया मुगळ, गल्ह इसी उचारे। वप निज पूठै पूठबी, ग्रर पड़ लोह ग्रपारे।

—पदमसिंह री बात

उ०—२ गवरी-मगरी हुक्का सूं तमाखू खायजे छै, गल्हां कीजै छै।
(अल्पा०—गल्हड़ी) —रा.सा.सं.

गल्लो—वि०—पागल।

सं०पु०—१ देखो 'गुल्लो' (रू.भे.) २ देखो 'गल्लो' (रू.भे.)

गव—सं०पु०—१ रामचंद्रजी की सेना का एक बंदर।

स्त्री० [सं० गौ] २ गाय। उ०—गवां बचाय थट मुगळ गाय, मारै गिड़ हेकल दिली मांय।—वि.सं.

गवगवंति—सं०स्त्री०—दूध देने वाली गाय, दुधारी गाय।

गवड़—देखो 'गौड़' (रू.भे.) उ०—हुई तांम पुरणाहुती जद मंत्र जपाले। गवड़ द्रवड़ दोनूं गती दुरगा दरसाळे।—अज्ञात

गवण—१ देखो 'गमन' (रू.भे.) उ०—मतलोक मनैं सुरलोक महीं, उभै गवण है माहरी। इण रीत म्हनैं कीजै अमर, तवूं दवा सिध ताहरी।
—पा.प्र.

२ पद, पैर (अ.मा.)

सं०स्त्री०—३ गति, चाल। उ०—हंस गवण कदळी सुजंघ, कटि केहर जिम खीण। मुख ससहर खंजन नयण, कुच स्रीफळ कंठ वीण।
—र.रा.

गवणि, गवणी—सं०स्त्री०—भादा भालू।

वि०—१ गमन करने वाली। उ०—चंदमुखी हंसा गवणि, कोमळ दीरघ केस। कंचन बरणी कांमणी, वेगौ आवि मिळेस।—र.रा.

२ गाने वाली।

गवणो, गवबो—क्रि०अ०—जाना, गमन करना। उ०—१ घुंमडी नभ श्रीधरणि चीलह घणी। गहकाय अवाज सिवा गवणी।—मे.म.

उ०—२ कुंकुम की बेंदी लिलाट कर, चंद बदन छिब अधक चित। आनंदत देखण गवर, गवणी उठ गयंद गति।
—बगसीरांम प्रोहित री वात

गवतम—देखो 'गौतम' (रू.भे.) उ०—गवतम नारी रज पय तारी, भय जप भाखी सुर मुनि साखी।—र.ज.प्र.

गवन—देखो 'गमन'।

गवय—सं०स्त्री० [सं०] १ नील गाय।

सं०पु०—२ रामचद्रजी की सेना का एक बन्दर. ३ गेंडा।

उ०—जिण बन भूल न जावता, गेंद गवय गिड़राज। तिण बन जंबुक ताखड़ा, ऊधम मंडै आज।—बी.स.

गवर—वि०—गौ, गोरे रंग की। उ०—१ प्रथम लघु यगण फळ वृद्ध जळ अधपति, कहू उवध मेदनी गवर रंग कीन। रिखि आत्रेय वहणं मगर करुण रस, तखत गिरमेर कुळ विप्र द्रग तीन।—र.रू.

उ०—२ अदभुत लसै छब गवर अंग, पदमणि कोमळ चंपक प्रसंग। ढुलड़्यां संग सखी ढूल। दमकंत अंग जरकस दकूल।
—बगसीरांम प्रोहित री वात

सं०स्त्री० [सं० गौरी] १ पार्वती, गौरी। उ०—गवर मात सिव तात, सिध पूजित सुरेसुर। मंद सुगंध ऊपर भमै, मद-मस्त मधूकर।
—करणीस्तुति

कहा०—गवर रूठसी तो आपरो सवाग लेसी—गौरी रूठेगी तो अपना दिया हुआ सुहाग ले लेगी, इससे अधिक क्या करेगी ? किसी के रूठने पर।

२ देखो 'गणगोर' (रू.भे.) ३ गणगोर त्यौहार पर गाया जाने वाला लोकगीत. ४ इस त्यौहार पर सजाई जाने वाली पार्वती की मूर्ति।

गवरजा, गवरज्या—सं०स्त्री०—१ गौरी, पार्वती। उ०—हीरां चिंता परहरौ, करौ मती मन कुंद। गावौ मंगळ गवरज्या, वा करसी आणंद।
—बगसीरांम प्रोहित री वात

२ देखो 'गणगोर' (रू.भे.) उ०—फागण उतरे चीव गवरज्या पूजण चावै। वीण लासवा फूल, चढ़ा चंद्रायण गावै।—दसदेव

गवरनर—सं०पु [अं० गवर्नर] किसी प्रांत अथवा प्रदेश का वह प्रधान हाकिम जिसे उस पद पर राजा या प्रजा ने चुना हो या किसी देश की सरकार द्वारा नियुक्त किया गया हो। शासक, हाकिम।

गवरनर-जनरल—सं०पु०यौ० [अं० गवर्नर जनरल] गवर्नरों के ऊपर किसी देश का सबसे बड़ा अधिकारी या शासक।

गवरनरी—सं०स्त्री०—जहाँ पर गवर्नर शासन करता हो, शासन, अधिकार।

गवरमिंट, गवरमेंट—सं०स्त्री—१ शासक-मंडल, सरकार।

उ०—मान मोद सीमोद, राजनीत बळ राखणी। गवरमिंट री गोद, फळ मीठा दीठा 'फता'।—केसरीसिंह बारहठ २ राज्य।

गवरल, गवरांवे—सं०स्त्री० [सं० गुणगौरी] १ गौरी, पार्वती.

२ देखो 'गणगोर' (रू.भे.) उ०—१ चैत महीने गवरल पूजी, बैसाखां बड़ सींच्यो हो रांम।—लो.गी. उ०—२ गढ़ां ए कोटां सूं गवरल ऊतरी, हांजी बैरै हाथ कंवळे केरो फूल, गवरल रूड़ी मजारी तीखा नैणा रो।—लो.गी. उ०—३ रांणी गवरांवे हींडण बैठया, धरती न झेलै भार, ओ जी। ईसरजी ए ललकारो दियो, ओ हींडो गयो गिगनार, ओ जी।—लो.गी.

गवराड़णो, गवराड़बो, गवराणो, गवरबो, गवरावणो, गवरावबो—देखो 'गवाणो' (रू.भे.) उ०—१ घणी दिराड़ै चूमरा, गवराड़ै नह गूढ़। भाड़ै वाळी भांम नूं, माथै चाढ़ै मूढ़।—बां.दा. उ०—२ कियां दुबाहां कोट, पाल जांगड़ गवरावै। गहमह रहै दरबार, वडा भूपत वह आवै।
—पा.प्र.

गवरि—देखो 'गवरी' (रू.भे.) उ०—सांभळि अनुराग थयौ मनि स्यांमा, वर प्रापति बंछति वर। हरि गुण भणि ऊपनी जिका हर, हर तिणि वंदे गवरि हर।—वेलि.

गवरिजा—देखो 'गवरजा' (रू.भे.) उ०—दूलह नै दूलहणी री जोड़ी देखि देखि नै लोक वार-वार बखांणे छै, कहै छै—गंगाजी मांहे ऊंडै जळ पैसि तपस्या करि ईस्वर गवरिजा पूज्या छै।—रा.सा.सं.

गवरी—सं०स्त्री० [सं० गौरी] १ देवी, दुर्गा. २ पार्वती।

उ०—वदन एक सहस दुय सहस रसना वणी, तिको फणपती गुण

थकै तवरी। तनै संपेख रघुनाथ चिरतां तणी, गहर कीरत कहूं सुणी गवरी।—र.रू. ३ हल्दी (अ.मा.)

गवरीनंद—सं०पु०यौ० [सं० गौरीनंद] गणेश, गजानन।

गवळ—सं०पु०—१ रोझ। उ०—देखो जिण वन मे ऊ सिंघ हो जद उण वन में गैंद(हाथी) गवळ रोझ गिड़राज सूर श्र नहीं आता। २ जंगली भैंसा। —वी.स.टी.

गवळू—सं०पु० [सं० गोपाळ] ग्वाला, गोपाल। उ०—१ गमिया वन मांह घणी गवळूं, कुछ देसांय श्रांण घटी कवळूं।—पा.प्र.

गवा—देखो 'गवाह' (रू.भे.)

गवाई—सं०स्त्री० [फा० गवाही] किसी घटना के विषय में किसी ऐसे मनुष्य का कथन जिसने वह घटना देखी हो या उसके विषय में जानता हो। साक्षी या प्रमाण।

गवाख, गवाखम, गवाख, गवाखि, गवाखेस—सं०पु० [सं० गवाक्ष] १ छोटी खिड़की, झरोखा। उ०—गवाक्ष तैं म्रिगाक्ष की कटाक्ष तैं निगै नहीं। थिराभ चंद्रसाळ चंद्रसाळ पै थिगै नहीं। —ऊ.का.

२ गवाक्ष नामक वानर जो राम की सेना का सेनापति था। उ०—दसां जोजनां डांण गै नांम दाखै, थता हूंत दूणा गवाखेस श्राखै। —सू.प्र.

गवाड़—सं०पु०—१ चौक. २ बाड़ा, श्रहाता। उ०—गाडी पड़ी गवाड़ में, पगां उभांणी जाय। बेटी बैठी बाप के, कहो चेला किण दाय।—श्रज्ञात

कहा०—गवाड़े वाळी केरड़ी नै ऊरण हुवो गवाळ- बछड़ों को बाड़े में डाल देने के पश्चात् अपनी जिम्मेदारी से ग्वाला मुक्त हो जाता है। किसी उत्तरदायित्व से मुक्त होने पर।

गवाड़णौ, गवाड़बौ—देखो 'गवाणौ' (रू.भे.) उ०—१ गाय गवाड़ै सीखै-सांभळै, जिण री गोगोजी पूरै छै श्रास श्रो।—लो.गी.

उ०—२ खतम श्रवसांण खंपांण रहिया थखत, रीझियो भांण दईवांण राजी। सिव सगत सवाड़ा श्रखाड़ा सेल रा, गवाड़ै प्रवाड़ा सुतन गाजी।—बखतौ खिड़ियौ

गवाड़ौ—वि० [सं० गै] १ गाने के लिए प्रेरित करने वाला, गवाने वाला. २ देखो 'गवाड़' (रू.भे.)

गवाणौ—क्रि०स० [सं० गै] (गाणौ' का प्रे०रू०) गाना गाने के लिए प्रेरित करना, गाने का कार्य किसी दूसरे से कराना।

गवाणहार, हारौ (हारी), गवाणियौ—वि०।

गवड़ाणौ, गवड़ाबौ, गवाड़णौ, गवाड़बौ, गवारणौ, गवारबौ, गवावणौ, गवावबौ—प्रे०रू०।

गवायोड़ौ, गवायोड़ौ—भू०का०कृ०।

गवायोड़ौ—भू०का०कृ०—गाने का कार्य कराया हुआ, गवाया हुआ। (स्त्री० गवायोड़ी)

गवार—देखो 'गंवार' (रू.भे.) उ०—ईछते श्ररथ न कहै श्रवाचक सो संदग्ध रहै संदेह। श्रप्रतीत निज थांन ऊपई, ग्राम्य गवार वचन मति-ग्रेह।—बां.दा.

सं०पु०—खरीफ की फसल का एक पौधा जिसकी फलियों की तरकारी बनाई जाती है और बीज पशुओं को खिलाने के काम में लिए जाते हैं।

गवारणी—सं०स्त्री०—१ 'गवारिया' जाति की स्त्री. २ मूर्ख स्त्री, गँवार स्त्री।

गवारपाठौ—सं०पु०—प्राय: नदियों के किनारे पर अधिक होने वाला एक प्रकार का क्षुप, घी कुंवार, ग्वारपाठा।

गवारफळी—सं०स्त्री०यौ०—ग्वार के पौधे पर श्राने वाली फली जिसका शाक बनाया जाता है।

गवारिया—सं०स्त्री०—एक जाति विशेष जिनकी औरतें प्राय: सुई व कंघे आदि बेचने का व्यवसाय करती हैं।

गवारियौ—सं०पु०—'गवारिया' जाति का व्यक्ति।

गवाळ—सं०पु० [सं० गोपाल] १ गायों को चराने वाला, ग्वाला, गोपाल उ०—माळी हाळी बाळधी, गाडेती गवाळ। सात देव रक्षा करो, पंखेरू पूंछाळ।—श्रज्ञात २ विष्णु. ३ श्रीकृष्ण। उ०—नमो गोविंद नमो गोपाळ, नमो गिरधारिय नंद गवाळ। —ह.र.

वि०वि०—बचपन में गायें चराने के कारण ही श्रीकृष्ण को गोपाल, ग्वाल, आदि नाम से पुकारा जाने लगा था।

४ भूमि पर बना वह नियत गोल चक्र जिस पर रहँट को घुमाने वाले बैल चक्कर लगाते हैं।

सं०स्त्री०—५ रक्षा। उ०—जनमाळ धुराळ दुधाळ सिरज्जत, काळ में क्यों न गवाळ करै।—करुणासागर

गवाळणी—सं०स्त्री०—१ ग्वाले जाति की स्त्री, ग्वालिन. २ ढोर चराने वाली।

गवाळणौ, गवाळबौ—क्रि०स०—१ रक्षा करना, बचाना. २ गायें चराना।

गवाळियौ—देखो 'ग्वाळौ' (रू.भे.)

गवाळी—सं०स्त्री० [सं० गोपाल+रा० प्र० ई] १ रक्षा करने का कार्य, रक्षा. २ गायों को चराने का कार्य. ३ रक्षा करने या गायों को चराने के कार्य की मजदूरी।

गवास—सं०पु० [सं० गवाशन] गोनाशक, हत्यारा, कसाई।

गवाह—सं०पु० [फा० गवाह] वह जो किसी घटना के विषय में जानकारी रखता हो अथवा वह घटना देखी हो। साक्षी।

गवाही—सं०स्त्री० [फा०] किसी घटना को देखे हुए या जानकार व्यक्ति का उस घटना के संबंध में दिया गया बयान, साक्षी, प्रमाण। क्रि०प्र०—देणी, भरणी, लिखाणी, लेणी। (रू०भे०—गवाई)

गवीजणौ, गवीजबौ—क्रि० कर्म वा०—गाया जाना।

गवीजियोड़ी—भू०का०कृ०—गाया गया हुआ। (स्त्री० गवीजियोड़ी)

गवु—सं०स्त्री०—गाय (अमरत)

गवेसा—सं०स्त्री० [सं० गवेषणा] खोज, गवेषणा, अनुसंधान।

गवै—सं०पु० [सं० गवय] राम की सेना का एक वानर (रामकथा)

गवैयौ—वि०—गायक, गाने वाला।

गव्य—वि०—जो गाय से प्राप्त हो, गौ से उत्पन्न।

सं०पु०—गाय का झुंड, गौ-समूह।

गस—सं०स्त्री० [अ० गशी, फा० गश] १ मूर्च्छा, बेहोशी. २ नेत्रों में होने वाली लाल रेखा। उ०—गस चखां चुरस री खळां भांजण गजौ, छटा रण चुरस री अथी उग्रवट छजौ। महाजस सुरसरी वेग अनमी मजौ, अणी कढ़ उरस री तेग रावत अजौ।

—बदरीदास खिड़ियौ

गसत—देखो 'गस्त' (रू.भे.)

गसती—देखो 'गस्ती' (रू.भे.) उ०—दूठ देव आहंसी बाहादरेस भूप दीठौ, बीरांण नृसींग रूप धीटौ क्रोध वार। भूलगौ गसती भीम आगं व्है असती भागौ, मसती न लागौ फेर हसत्ती मलार।

—हुकमीचंद खिड़ियौ

गसा, गसौ—देखो 'गस' (रू.भे.) उ०—आवै जद याद गसा तद आवै, देख दसा दुखियारी। रसा गयौ तूं राजेस्वर, छोड 'जसा' छत्रधारी।—ऊ.का.

गस्त—सं०स्त्री०—१ टहलना, घूमना, भ्रमण करना. २ दौरा, चक्कर. ३ पुलिस, चौकीदार आदि कर्मचारियों का पहरा देने के लिए चक्कर लगाना।

क्रि०प्र०—देणी, मारणी, लगाणी।

यौ०—गस्त-गिरदावरी।

४ एक प्रकार का नाच जिसमें नाचने वाली वेश्या बरात के आगे नाचती हुई चलती है।

गस्त सलांमी—सं०स्त्री०—वह भेंट या नजर जो पुराने समय में दौरे पर गये हुए हाकिमों को मिला करती थी।

गस्ती—वि० [फा० गश्ती] घूमने वाला, फिरने वाला, गश्त लगाने वाला।

सं०स्त्री०—व्यभिचारिणी, कुल्टा।

गह—सं०पु० [सं० गर्व] १ गर्व, अभिमान, घमंड। उ०—१ घेर सबै रथ पालखी, फेर तुरंगां वग्ग। संग थयौ गह मीर रौ, संग भयौ जू मग्ग।—रा.रू. उ०—२ पै उलटयौ सामंद बीकपुरा, छात बिया बहग्या गह छंड। मेघाडंबर मुकट सिर मंडे, रीझ धकै न सकै पग मंड।—दुरसौ आढ़ौ २ मस्ती, उन्माद। उ०—गह भरियौ गज-राज, मह हालै आपण मतै। कूकरिया बेकाज, रुगड़ भुसै किम राजिया।—किरपाराम

३ वीर, बहादुर व्यक्ति। उ०—काबल धणी पीड़ कछवाहां, गढ़ रोकै रोकिया गह। गिळवा नहीं राखिया गळहथ, साजा रायांसिंघ सह।—द.दा.

४ ग्राह, घड़ियाल। उ०—गहे अब सद्रसण भोज सुरतांण गह, कीध नर सुरां सिहायतनि केही। आवियौ संकट गज सुपह ऊवेळियौ, जंगळ चै नाथ रुघनाथ जेही।—द.दा.

[सं० गृह] ५ घर, गृह। उ०—गह छंडइ गहिलउ हुअउ, पूछइ वळि पूछंत। मारू तणइ संदेसड़इ, ढोलउ नहु धावंत।—ढो.मा.

६ पारसियों द्वारा नमाज पढ़ने का समय (मा.म.)

सं०स्त्री० [अनु०] ७ ध्वनि, आवाज. ८ मान, प्रतिष्ठा।

उ०—नेवर पाखर रोळ नचती, संग सेरबिलंद तणी। सोभंती रोळी 'अजण' तणी रंग रमणी, गह खोसाड़ गई गयगमणी।

—द्वारकादास दधवाड़ियौ

९ मकान का एक भाग या हिस्सा। उ०—पण दरवाजै मांही खंच करतां एक घड़ी लागी। सो दरवाजै रै एक गह में राजूलां री सवारी री घोड़ी खड़ी, सो चंवरढाळ ऊभी छै।—सूरे खींवे री वात

वि०—१ महान, जबरदस्त, भयंकर। उ०—दळ सफ्फल खळ वाह यभ बाज अणथाह, गह रचण गज गाह नरनाह रघुनाथ। सट-पटत भर सेस अति चकित अरेस, दिन धूंधळ दिनेस थरहरइ अर साथ।—र.ज.प्र. २ गहरा, गंभीर। उ०—अकबर मच्छ अयांण, पूंछ उछाळण बळ प्रबळ। गोहिलवत गह रांण, पाथोनिधि प्रतापसी।

—दुरसौ आढ़ौ

३ मस्त। उ०—चवदह बरसां अधिक चित, जोबन तणी जिहाज। जोवत अब टेढ़ी निजरि, गह चालत गजराज।

—बगसीरांम प्रोहित री वात

गहक—सं०पु० [सं०] कविता पढ़ने या गाने की ध्वनि, लय।

गहकणौ, गहकबौ—क्रि०अ०—१ इकट्ठा होना, एकत्रित होना. २ नगाड़े का बजना. ३ गाने की ध्वनि करना, गाना। उ०—गोम नेजा हलक राग सिंधु गहक, डहक डडाहड़ां सीस डंका।—र.रू. ४ गर्व करना। उ०—हैदळ कळळ पायदळ हूकळ, सीसोदै खड़तै संनद्ध। गहकै हो बीजा गढ़पतियां, गजै अंगजी त्रिकुटगढ़।

—महाराणा लाखा री गीत

५ पक्षियों का ध्वनि करना। उ०—ऊपर कुरजां सारसां गहकनै रही छै।—रा.सा.सं. ६ मंडराना. उ०—चिलते झिलंब आयुध चढ़ाय, असवार हुवौ गज पीठ आय। गहकिया ग्रीध टोळा गरूर, त्रहकिया त्रंब ऐराक तूर।—वि.सं. ७ जोशपूर्ण आवाज करना। उ०—छिल बहत धक-धक अछक छक, अंतराळ गरळक कुळ इधक। फीफरड़ फरड़क नद फरक, हुय विढ़क हक-हक वीरहक, खित गहक सूर खतंग।—र.रू.

८ चाह से भरना, उमंग से भरना, लालसा पूर्ण होना।

गहकणहार, हारौ (हारी), गहकणियौ—वि०।

गहकवाणौ, गहकवाबौ—प्रे०रू०।

गहकाणौ, गहकाबौ, गहकाड़णौ, गहकाड़बौ, गहकावणौ, गहकावबौ—स०रू०।

गहकिप्रोड़ौ, गहकियोड़ौ, गहक्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गहकीजणौ, गहकीजबौ—भाव वा०।

गहक्कणौ, गहक्कबौ—रू०भे०।

गहकाणौ, गहकाबौ—'गहकणौ' (रू.भे.)

उ०—गिद्धनि चिल्हनि गैन मैं गनके गहकाया। धूरि बिलग्गी भानु के सब भानु छिपाया।—वं.भा.

गहकाड़णौ, गहकाड़बौ, गहकारणौ, गहकारबौ, गहकावणौ, गहकावबौ—रू०भे० सक.।

गहकियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ एकत्रित. २ गाने की ध्वनि किया हुआ. ३ गर्व किया हुआ. ४ पक्षियों का ध्वनि किया हुआ. ५ मंडराया हुआ. ६ जोशपूर्ण आवाज किया हुआ. ७ चाह व लालसा से पूर्ण, उमंगित। (स्त्री० गहकियोड़ी)

गहकौ—सं०पु०—१ राग, तान, लय. २ चहक. ३ हर्ष ध्वनि।

गहक्कणौ, गहक्कबौ—देखो 'गहकणौ' (रू.भे.) उ०—गिरवर मोर गहक्किया, तरवर मूंक्या पात। घणियां घण सालण लगा, बूठै तौ बरसात।—ढो.मा.

गहक्कियोड़ौ—देखो 'गहकियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० गहक्कियोड़ी)

गहगंध—सं०पु०—नासिका, नाक। उ०—क्रम हंस गत अग अगराज कट, रस उरज नरपा कपोळ रट। गहगंध धज चख एण गुण, अल अकुट चंदु अभाळ।—क.कु.बो.

गहगह—वि०—प्रफुल्लित, प्रसन्नतापूर्ण, उल्लास से भरा हुआ।

उ०—गहगह ग्रिघणी मंगळ गाइ, जोधा घर जीपण खापर जाइ।—रा.ज.सी.

क्रि०वि०—धमाधम, धूम के साथ (वाद्य-वादन आदि)

गहगहणौ, गहगहबौ, गहगहाणौ, गहगहाबौ—क्रि०अ०—१ प्रफुल्लित होना, आनंदित होना। उ०—मारुवणी तव चिति चळवळी, छांनी वातां सहि सांभळी। सांचे मन सउदागरि (कहि), मारुवणी हीयड़े गहगही।—ढो मा. २ वनस्पति आदि का घना होना।

उ०—नदी महा पूरि आवइं, प्रथ्वी पीठ प्लावइ। नवा किसलय गहगहइं, वल्ली वितांन लहलहइं।—वाग्विलास

३ महक फैलना, खुशबू देना। उ०—मेघवना उलच बांध्या छइ। परीयख ढळी छइ। केतकी ना गंध गहगहीया छइ।—कां.दे.प्र.

४ जोशपूर्ण होना। उ०—गहगहिय थाट बेक्रं गरीठ, राठउड़ि राउहि वाजियउ रीठ।—रा.ज.सी. ५ उमंग में भरना.

उ०—रभ सूरां नरख हरख भुख भुख रही, ग्रीध सवळा डळा भख लयण गहगही।—जवांनजी आढ़ौ

गहगहौ—देखो 'गहगह' (रू.भे.)

गहगीर—वि०—१ योद्धा, वीर। उ०—देसोत वाडिम दाखणौ, धर राखणौ लख धीर। बर वीर वांनय धारणौ, गढ़ मारणौ गहगीर।—ल.पिं.

२ गंभीर। उ०—गहगीर तुरां गय करत गोड़। दड़ श्रोक झंड पैदल अरोड़।—करणीरूपक

गहग्गाह—सं०पु०—१ झुंड, समूह. २ पक्षियों का समूह।

गहघट्ट—सं०पु०—१ जमघट, समूह।

वि०—बहुत, अधिक, घना।

उ०—छांडी छांडी पागड़ा, साम्हैं आवौ थट्ट। डाढ़ाळौ कह रावतां, जं माचै गहघट्ट।—डाढ़ाळा सूर री वात

गहघूमणौ—क्रि०अ०—मंडराना। उ०—गहघूमी लूमी घटा, पावस उलट्या पूर। सांवण महिने सायबा, कदे न राखूं दूर।—र.रा.

गहड़, गहड़ेर—वि०—१ गंभीर। उ०—१ माल्हंतौ घरि आंगणै, सखी सहेलौ कांमि। जे जांणूं पिय माल्हणौ, जे मल्है संग्रांमि। ग्रांमि संग्रांमि झूंझार माल्है गहड़। अरि घड़ा खेसवै आप न खिसै अनड़।—हा.झा.

उ०—२ फेरा लेतै फिर अफिर, फेरी घड़ अणफेर। सीह तणौ हरधवळ सुत, गहमाती गहड़ेर।—हा.झा.

२ वीर, बहादुर। उ०—केहरि केस भमंग मणि, सरणाई सुहड़ांह. सती पयोहर क्रपण धन, पड़सी हाथ मुवांह। मुवां हिज पड़सी हाथ तौ भमंग मणि, गहड़ सरणाइयां ताहरै गेड़सणि।—हा.झा.

३ विकट। उ०—नाह नीठि पड़सि खेत मांझि निवड़, गयंद पड़सि गहर करड़ घड़ भड़ गहड़।—हा.झा.

गहभेर—देखो 'गहड़ेर' (रू.भे.)

गहट्ट—सं०पु०—१ नाश, संहार, विध्वंस. २ वैभव, ऐश्वर्य. ३ समूह।

गहट्ठ—देखो 'गहट्ट' (रू.भे.) उ०—घरवट्ट पहट्ट गहट्ठ घड़। पिंड खंड विहंड पमंग पड़।—पा.प्र.

गहडंबर, गहडंभर, गहडंमर—वि०—गहरा, घना, सघन। उ०—१ सूके कांठ संजोइयौ, भज माट मही भर। नीलोतर ह्वै नेहड़ी, बणियौ गहडंबर।—ठाकुर जूंझारसिंह मेड़तियौ

उ०—२ परभाते गहडंमरां दोपारां तपंत। रात्यूं तारा निरमळा, चेला करौ गळंत।—वर्षाविज्ञान

गहण, गहणि—वि०—देखो 'गहन' (रू.भे.)

सं०पु०—१ युद्ध, लड़ाई। उ०—महण वन दहण केसर गहण मंडियौ। तेण खग वहण घण सघण तणियौ।—किसोरदांन बारहठ

२ सेना, फौज. ३ फेरा, चक्कर। उ०—गुरड़ गयण घाले गहण।—अज्ञात ४ समूह। उ०—त्यांकी बीरहक होण लागी, गय हस्ती त्यांकी गहणि हुई। गहण कहतां भीड़ हुई।—बेलि.

५ गंभीर। उ०—काळ वाधी जैतमल कळोधर, गज फौजां डोहण गहण। समहर भर ऊपरि नव सहसौ, ताइ ओडविजै भांण तण।—राठौड़ नरपाळ (नरहरदास भांणोत, चांपावत) री गीत

गहणौ—सं०पु०—गहना, आभूषण, अलंकार। उ०—मन मांणक गहणौ धरयौ, मित तुमारै पास। नेह ब्याज भ्रती बढ़यौ, नहिं छूटण की आस।—र.रा.

क्रि०प्र०—चढ़ावणी, जड़ावणी, चढ़ाणी, भरणी, पैरणी।

गहणौ, गहबौ—क्रि०स०—१ रौंदना, खूंदना। उ०—सो खान घोड़ी नूं देख कहणै लागियौ—जे हूं तौ सारी जमीन गहतौ फिरियौ, भर थोड़ी म्हारी तळहटी में रही—सूरे खींवे री वात २ कुचलना, नष्ट करना। उ०—सो सागी हाथी जाय बागिया, हौदे री पेटी रा रस्सा बाढ़ भर इसा ही जे फौज में फिरिया, फौज सारी गह लीवी।

—भ्रमरसिंह राठौड़ री वात

३ धारण करना। उ०—भर जगमाल मस्तक रा भार नूं गरिस्ट मांनि भग्नि रै ऊपर दव लगाइ धारा तीरथ रै उछाह······इसड़ी भनेक बातां रौ भवलंब गहियौ।—वं.भा.

४ पकड़ना। उ०—मुकन सुतन बळ मंड भ्रत, पड़ी न खंड लिगार। रैणायर रामंग रू, सरू हुवौ गह सार।—रा.रू.

गहतंग गहतंत—वि०—नशे में चूर, मस्त। उ०—१ भ्रमल पांणियां रा थंडा लाग रहिया छै। चार पहर रात नै दिन गहतंग हुवा रहै छै। ऊगे भ्रांथिये री खबर ही नहीं।—कुंवरसी सांखला री वारता

उ०—२ घणै चोज सूं मन लियां मनहारां कीजै छै। दिल हाथ लीजै छै। भ्रमलां गहतंत हुवा छै।—रा.सा.सं.

गहन—वि० [सं०] १ गंभीर, गहरा। उ०—१ देवी ग्यांन रै रूप तूं गहन गीता, देवी क्रिस्ण रै रूप गीता कथीता।—देवि.

उ०—२ बैठी गहन गुफा बिच बांमा, राजा वह निरखी भ्रभिरांमा।

—वं.भा.

२ दुर्गम, कठिन।

सं०पु०—१ वन, जंगल (नां मा., ह.नां.) उ०—पुत्री करि भ्रग्ग जु परिणाई, भनी बहिनि सारंगा भाई। सो पति मरत सिद्धि दुख संजम, रही सु पुस्कर गहन मनोहरम।—वं भा.

२ गुप्त स्थान (ह.नां)

[सं० ग्रहण, प्रा० गहण] ३ कलंक, दोष. ४ दुख, कष्ट, विपत्ति।

(भ्र.मा.)

५ बंधक, रेहन. ६ पकड़ने का भाव, ग्रहण करना।

गहपूर—सं०पु०—सिंह (ह.नां., ना.डि.को.)

गहबरा—सं०स्त्री० [सं० गह्वरी] पृथ्वी, जमीन (भ्र.मा.)

गहबळ—वि०—बलवान, जबरदस्त। उ०—रघुवर तित रह्या जी, मोटी कर मया। भैचक खळ भया जी, गहबळ तज गया।—र.रू.

गहम—वि० [सं० ग्रह] गर्व, घमंड।

गहमत—सं०स्त्री०—सलाह, राय, सम्मति।

गहमह, गहमहाट—सं०स्त्री०—१ भीड़, समूह। उ०—हाडां घर गहमह हुई, जाडां विरुद लुभांण। गाडां भरि जाडां गलां, खाडां तुरक खपांण।—वं.भा. २ भ्रधिकता। उ०—उकतां सुकवि बोलै ऊंच बिरदां भ्रावळी, राजस भड़ां गहमह, कंस पूरण नित रळी।—बां.दा. ३ उत्सव, जलसा, धूमधाम। उ०—पैदल हैवल वळ प्रघळ बह गहमह दरबार।—रां.रा. ४ जगमगाहट। उ०—१ गई रवि किरण ग्रहे थइ गहमह, रहरह कोइ वह रहे रह। सु जु दुज पुरा नीसरे सूतौ, निसा पड़ी चालियौ नह।—वेलि.

५ गह-गह की ध्वनि। उ०—सूरच भ्रस्तमित हुभ्रौ धरा कै विखै गहमहाट होइ रह्यौ छै।—वेलि.

गहमातौ—वि० (स्त्री० गहमाती) गर्वोन्मत्त। उ०—१ हेली थारौ करहलौ, गहमातौ गमियोह।—जलाल बूबना री वात

उ०—२ फेरा लेतै फिर भ्रफिर, फेरी घड़ भ्रण फेर। सीह तणी हर धवळ सुत, गहमातौ गहड़ेर।—हा.झा.

गहम्रग—सं०पु०यौ० [सं० गृह+मृग] श्वान, कुत्ता (ह.नां.)

गहर—वि०- १ गंभीर, भयंकर। उ०—नाह नीठि पड़िसि खेत मांझी निवड़। गयंद पड़िसि गहर करड़ घड़ भड़ गहड़।—हा.झा.

२ भ्रथाह। उ०—दीनबंधु देव देव, भाखत स्रुति भ्रहम भेव। जेता. जग सो भ्रजेव, गहर गुरुड़ गांम रे।—र.ज.प्र.

सं०पु०—१ घमंड, गर्व। उ०—वध भ्रोप वाजत्र वाजिया, सभ टोप बगतर साजिया। कस कमर बड कर गहर कर, धर भजर भ्रावध सधर धर।—र.रू. २ बड़प्पन। उ०—सहर की तारीफ कूंण कर सकै, भ्रमरावती के भ्रमर तिस गहर कूं तकै।—र.रू.

सं०स्त्री०—३ ध्वनि विशेष।

गहरणौ, गहरबौ—क्रि०भ्र०—ध्वनि करना, गरजना।

गहरबा—सं०स्त्री०—चौहान वंश की एक शाखा।

गहरवार—सं०पु०- राजपूत वंश।

गहराई—सं०स्त्री० [सं० गंभीर+रा० ई] गहरापन, गंभीरता, गांभीर्य। उ०—सो इण बार तौ ठाकुराई बधारी, गहराई पकड़ी।

---सूरे खींवे री वात

गहराणौ, गहराबौ—क्रि०भ्र०—१ गरजना। उ०—धर लीली गिरवर धुपै, घन मुधरौ गहरात। निस सागी खारी लगै, बिन प्यारी बरसात।—र.रा. २ गद्‌गद् होना। उ०—तो पिण रतनां भ्रांखियां भरी, चाळां लूंबी, गळै विलूंबी, बोलणी न भ्रायौ, गळौ गहरायौ।—र. हमीर ३ भ्रधिकार में करना।

गहरापण, गहरापणौ—सं०पु०—गहरापन, गहराई। उ०—मचियौ रस-वीर वसंत रत मातौ, त्रवध पवन पोह गोळा तीर। कुसमपात तर जठै कुसळहर, गहरापण कीधौ गजगीर।—भ्रभैरांम मद्दयारियौ

गहरायोड़ौ—भू०का०कृ०—१ गरजा हुभ्रा. २ गद्‌गद्।

(स्त्री० गहरायोड़ी)

गहरावणौ, गहराववौ—देखो 'गहराणौ' (रू.भे.)

गहरियोड़ौ—भू०का०कृ०—गरजा हुभ्रा, ध्वनि किया हुभ्रा।

(स्त्री० गहरियोड़ी)

गहरी—सं०स्त्री० [सं० गह्वरी] भूमि, पृथ्वी (ह.नां.)

गहरौ—वि० [सं० गहन] १ जिसकी थाह बहुत नीचे हो, जिसका विस्तार नीचे की भ्रोर भ्रधिक हो, गंभीर, भ्रथाह।

उ०—गहरा होय हरी गुण गावौ, छीलर जिउं मत दाखौ छेह।

आज क काल करंतां 'ओपा', दीहड़ा गया स ताळी देह ।
—ओपो आढ़ो

२ अधिक, ज्यादा. ३ घोर, प्रचंड. ४ दृढ़, मजबूत.

५ भारी, कठिन ।

गहळ—सं०स्त्री० [सं० ग्रहल] नशा, खुमार, उन्माद । उ०—डाकी ठाकर रौ रिजक, ताखां रौ विख एक, गहळ मुवां ही ऊतरै, सुणिया सूर अनेक ।—बी.स.

गहला—सं०स्त्री०—पंवार वंश की एक शाखा ।

गहळीजणौ, गहळीजबौ—क्रि०अ० भाव वा०—१ किसी नशे के प्रभाव में होना, नशीला होना. २ चेहरे की रौनक कम होना । उ०—भरमल नूं आसा रही, महीने चार रौ गरभ हुवौ तींसूं डील सिथळ पड़णै लागौ, नेत्रां री तह गहळीजण लागी ।—कुंवरसी सांखला री वारता

गहलोत—सं०पु०—क्षत्रियों के ३६ वंशों में से एक वंश अथवा इस वंश का व्यक्ति ।

गहलौ—वि० [सं० ग्रहिल] पागल, बावला । उ०—१ ताहरां हरदांन कह्यौ—महाराज, म्हे गहला कोय नहीं, बात चौकस कहां छां ।
—पलक दरियाव री वात

उ०—२ मांग्या लाभै जव चणा, मांगी लभै जवार । मांग्या साजन किम मिळै, गहली मूढ़ गिंवार ।—र.रा.

गहलौत—देखो 'गहलोत' (रू.भे.)

गहल्ल—सं०स्त्री०—आवड़ देवी की बहिन, एक देवी । उ०—गंजै दळ रेपळ लाग गहल्ल । मारै बोहो मीर अमीर मुगल्ल ।—मे.म.

गहवंत—वि०—१ गंभीर, गहरा । उ०—सबदी लग कोड़ मजाद रायसिंघ, गहवंत रैणायर वड गात ।—दुरसौ आढ़ौ

२ वीर, बहादुर । उ०—आविया मीर तेजी उलाळि, वाराह विढेवा वाग वाळि । गहवंत जइत सांम्हउ मुगुल्ल, तड़मल्ल राउ निहराइ तुल्ल ।—रा.ज.सी. ३ गर्वीला, अभिमानी । उ०—आद इता भड़ आठ सौ, गढ़ आया गहवंत । माप न कौ मांटी पणै, उर ज्यां ताप न अंत ।—रा.रू. ४ अटल, स्थिर । उ०—देवळ पड़इ वाजइ दुवारि, झालरी संख सुसबद झणारि । आदीत जिसा निरमळा अंग, गहवंत राउ धू जेम गंग ।—रा.ज.सी.

गहवग—सं०पु०—मल्लयुद्ध । उ०—गहवगां जण जण अगण गण, सुर भवण कंपण लगण मण, लंकाळ धूजिय लंक ।—र.रू.

गहवर—सं०पु०—घनापन, सघनता । उ०—सु मांनौ वसंत हुलराईजै छै । तरु कहतां जि व्रक्षां गहवर पाकड़्यौ छै ।—वेलि. टी.

गहवरणौ—सं०पु०—गर्व, अभिमान ।

गहवरणौ, गहवरबौ—क्रि०अ०—१ बहादुर होना, निडर होना.

२ घना होना, सघन होना । उ०—हुलरावणै फाग हुलराया, तरु गहवरिया थिया तरुण ।—वेलि.

क्रि०स०—३ उत्तेजित करना. ४ फुलाना ।

गहवरा—सं०स्त्री० [सं० गह्वरी] पृथ्वी, भूमि (अ.मा.)

गहवरी—सं०स्त्री० [सं० गह्वरी] पृथ्वी, भूमि (ह.नां., नां.मा.)

गहवांन—वि०—१ जबरदस्त । उ०—नृप सुमेर पातल निडर, अर अर करण उवांन । तोयध तरळ तरंग तिर, गा लंवन गहवांन । गा लंवन गहवांन सुभट्टां सारखा । साहण लीधां साथ परक्खे पारखा ।
—किसोरदांन बारहठ

२ गर्वीला, अभिमानी ।

गहांणौ—सं०पु०—वह वेलियो गीत जिसके प्रत्येक द्वाले के प्रथम गाथा हो (देखो 'वेलियौ', 'गाथा')

गहांणौ—क्रि०स०—१ संहार करना. २ ग्रहण कराना, पकड़ाना । उ०—दिल्ली रा जावण रा समय सूं तीजे बरस चहुवांण प्रतिहार नूं कुमार रा संबंध री बात स्मरण में गहाई ।—वं.भा.

३ धारण कराना ।

गहाणहार, हारौ (हारी), गहाणियौ—वि० ।

गहाग्रोड़ौ, गहायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

गहणौ—अक रू० ।

गहायोड़ौ—भू०का०कृ०—१ संहार किया हुआ. २ ग्रहण कराया हुआ, पकड़ाया हुआ (स्त्री० गहायोड़ी)

गहावणौ, गहावबौ—देखो 'गहाणौ' (रू.भे.) उ०—सिवरी कुळ भील कुचील सरीरी, चाखत बोर रसील संचै । गहावत ढील करी नह गोविंद, वीच अगीर मंजार वंचै ।—भगतमाळ

गहि—सं०पु० [सं० गृही] १ कुत्ता, श्वान (अ.मा.) २ गृहस्थ ।

गहियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ संहार किया हुआ. २ ग्रहण किया हुआ, पकड़ा हुआ. ३ धारण किया हुआ (स्त्री० गहियोड़ी)

गहिर—देखो 'गहीर' (रू.भे.) उ०—१ बणैव राजां बहिर गहिर तोपां घण गाजां ।—वं.भा. । उ०—२ गंधरब सेण सुत मन गहिर ।
—वं.भा.

गहिलउ—वि०—देखो 'गहलौ' (रू.भे.) उ०—गह छंडइ गहिलउ हुअउ, पूछइ वळि पूछंत । मारू तणइ संदेसड़इ, ढोलउ नह धापंत ।
—ढो.मा.

गहिलाणौ, गहिलाबौ—क्रि०अ०—बहना, प्रवाहित होना । उ०—पांखे पांणी थाहरइ, जळि काजळ गहिलाइ । स्यांणां तणां संदेसड़ा, मुख वच्रने कहिवाइ ।—ढो.मा.

गहिलोत—देखो 'गहलोत' (रू.भे.)

गहिलौ—वि० [सं० ग्रहिल] (स्त्री० गहिली) देखो 'गहलौ' (रू.भे.) उ०—गहिली है, स्त्री तोहइ लागी छइ वाय । अस्त्रीय ले कोइ उलगि जाई ? गहिली मुंधउ तुं बावळी । चंद क्युं कूडइ ढांकाणउ जाई ?
—वी.दे.

गहीर—वि० [सं० गंभीर] १ गंभीर, गहरा, अथाह । उ०—१ भारांणी दुख भंजणी, गुण रंजणी गहीर । जास बखाने जगत रौ, साहिब राखै सीर ।—बां.दा.

उ०—२ गुणपति गुणे गहीरं, गुण ग्राहग दांन गुण दिअणं । सिधि

रिधि सुबुधि सधीरं, सुंडाळा देव सुप्रसनं ।—वचनिका

२ घना, गहन, जटिल. ३ भारी. ४ सौम्य, शांत. ५ मधुर ।

उ०—कोयल सुर मिळ मायका, गावत गीत गहीर । हय ध्यावत घर थरहरत, बिबध खिलावत बीर ।

—बगसीराम प्रोहित री वात

सं०पु०—१ महादेव, शिव (डिं.को.) २ हाथी (डिं.को.)

गहीलौ—वि० [सं० ग्रहिल] देखो 'गहलौ' (रू.भे.)

गहुं, गहूं—देखो 'गेहूं' (रू.भे.)

कहा०—गहूँ'र गोयला तो भेळा ही नीपजै—गेहूँ और 'गोयला' नामक घास साथ ही पैदा होते हैं । संसार में भले-बुरे दोनों प्रकार के व्यक्ति होते हैं ।

गहेठौ—देखो 'गाहटौ' (रू.भे.) उ०—भले भींच केता कढ़े खेंग झोला । टळै ऊछटै भू पड़ै भद्र टोळा । जिणी वार बूडा लगू पाथ जेठौ । घणूं घूमरां पाड़ मातो गहेठौ ।—पा.प्र.

गहेर—गंभीर ।

गहेलड़ौ—देखो 'गहलौ' (अल्पा०) उ०—सगुण सलूणा राउळ रूसणूं किस्यूं । हूं ता प्रेम गहेलड़ी. तूं सोनिगिरउ चहूग्रांण जी ।

—कां.दे.प्र.

गहेलू, गहेलौ—सं०पु०—१ मार्ग, रास्ता, पथ. २ देखो 'गहलौ' (रू.भे.)

गह्वर—सं०पु० [सं०] १ अंधकारमय स्थान, गुफा, कन्दरा. २ वह स्थान जिसमें छिपने से छिपने वाले का पता न चले, विषम स्थान.

३ भूमि में छोटा छिद्र. ४ कुंज, सघन झाड़ी ।

गह्वरौ—सं०पु०—जाति विशेष का घोड़ा (कां.दे.प्र.)

गांगड़ी—सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का टहनियोंदार पौधा, जिसमें कांटे नहीं होते तथा टहनियां पतली होती हैं । इसके फल छोटे-छोटे तथा पकने पर पीले रंग के होते हैं (बां.दा.ख्यात) २ इस वृक्ष का फल. ३ डूंगरपुर की एक नदी का नाम (नैणसी)

गांगड़ौ—सं०पु०—हल और हाल को मजबूत करने के लिए दोनों के बीच में लगाया जाने वाला लकड़ी का गुटका ।

गांगण—देखो 'गांगड़ी' (रू.भे.)

गांगणिय, गांगणियौ—सं०पु०—'गांगड़ी' नामक वृक्ष का फल । देखो 'गांगड़ी' ।

गांगलौ—वि०—१ मूर्ख, विक्षिप्त. २ जिसका ध्यान एक स्थान पर स्थिर न रहे, गाफिल (मि० 'बांगौ')

गांगरत, गांगरौ—सं०स्त्री० [सं० गाङ्ग+कीर्ति, पूर्ण] किसी वस्तु, बात, झगड़ा, कलह या घटना बीत जाने पर भी उसी की राग अलापे जाने का कार्य या क्रिया ।

मुहा०—गांगरौ गाणौ—बीती हुई बात या कथन की बार-बार पुनरावृत्ति करना ।

गांगली—सं०स्त्री०—श्रावण या आषाढ़ मास में दक्षिण और पश्चिम के मध्य से चलने वाली वायु जो वर्षा का अवरोध करती है (क्षेत्रीय)

कहा०—गांगली कोई रोवण में रोईजै नै न कोई गीतां में गाईजै—उस व्यक्ति के प्रति जिसकी कहीं भी प्रतिष्ठा न हो ।

गांगाणी, गांगी, गांगुवण—देखो 'गांगड़ी' (रू.भे.) (रा.सा.सं.)

गांगेड़ौ—सं०पु०—१ बर्तनों के मुंह का गर्दन के ऊपर का भाग.

२ मृत्योपरान्त संबंधियों द्वारा गंगाजी जाकर लौटने के बाद किया गया वह भोज जो बहुत मामूली खर्च में ही पूरा कर लिया गया हो ।

गांगेय, गांगेव—सं०पु० [सं० गांगेय] १ भीष्म. २ कार्तिकेय. ३ सोना (ह.नां.)

गांगौ—सं०पु०—१ बर्तनों के मुंह का वृत्ताकार गर्दननुमा भाग ।

कहा०—गीलै में हाथ नै गांगै में माथो—हाथ गरिष्ठ भोजन में और शिर घी के पात्र में, अर्थात् खूब घृत के बने पकवान प्राप्त हो रहे हैं । अधिक मौज व आनंद के समय की उक्ति ।

गांछा—सं०स्त्री०—बांस की डलिया आदि बनाने या बांस संबंधी व्यापार करने वाली एक जाति ।

गांछौ—सं०पु०—'गांछा' नामक जाति का व्यक्ति ।

गांज—वि०—नाश करने वाला ।

गांजणौ—वि०—तोड़ने वाला, नाश करने वाला । उ०—भारथि खळां दळ भांजणौ, गढ़ गांजणौ गहगीर ।—ल.पि.

गांजणौ, गांजबौ—क्रि०स०—१ तोड़णा, खंडित करना, गर्व मिटाना ।

उ०—गांज मगज पतसाह रो, भांज मुदप्फर खांन । 'प्रभो' त्रिवेणी आवियो, जांणी वात जिहांन ।—रा.रू.

२ पराजित करना । उ०—जितै मो सीस खवा पर जांण, इतै कुण गांज सकै तो प्रांण ।—गो.रू.

गांजणहार, हारौ (हारी), गांजणियौ—वि० ।

गांजवाणौ, गांजवाबौ—प्रे०रू० ।

गांजिओड़ौ, गांजियोड़ौ, गांज्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गांजीजणौ, गांजीजबौ—कर्म वा० ।

गंजणौ, गंजबौ—रू०भे० ।

गांजर—सं०स्त्री०—बहुत से आदमियों द्वारा चरस खींचने की क्रिया ।

उ०—भाजै थाफड लै कोठा भणणाटा, गांजर खांचै लै पांजर गणणाटा ।—ऊ.का.

मुहा०—गांजर खांचणी—जीवनयापन करना ।

गांजवणौ, गांजवबौ—देखो 'गांजणौ' (रू.भे.) उ०—उठै थां मेलउ जेथ भ्रपाल जठै नहि गांजव सकै जगमाल ।—गो.रू.

गांजागिर—सं०पु० १ राजा, नृप (डिं.नां.मा.)

२ भाग्यविधाता ।

गांजीजणौ, गांजीजबौ—क्रि०स० कर्म वा० १ तोड़ा जाना, खंडित किया जाना. २ पराजित किया जाना.

गांडीव—सं०पु० [सं० गांडीव] अर्जुन का धनुष, गांडीव ।

उ०—सज टोप बकत्तर सूर, किये कमध रूप करूर । हुव लीव

सावळ हाथ, पुन सजे गांजोव पाथ ।—पे.रू.

गांजेड़ी-वि०—गांजा नामक मादक पदार्थ सेवन करने वाला, गंजेड़ी।

गांजो-सं०पु० [सं० गंजा] १ भांग की जाति का एक पौधा जिसमें भांग की तरह फूल नहीं लगते। इसकी पत्तियां मादक होती हैं, जिन्हें नशा करने वाले लोग नशे के लिये तम्बाकू के साथ मिला कर चिलम पर फूंकते हैं। औषधि में भी इसका प्रयोग होता है.

२ भाला, बरछा (ना.डिं.को., डिं.को.) उ०—नहंग लग तोल बागां बिकट नगारां, मह श्रणी चगारां रगत मांजो। कळोधर 'जगा' रा धाड़ धारा करां, गज खळां बगारा पार गांजो।

—जोधसिंह राठौड़ रौ गीत

गांट, गांठ-सं०स्त्री० [सं० ग्रंथि, अप० गंठि] १ रस्सी, डोरी, तागे आदि में पड़ी हुई उलझन जो खिंच कर कड़ी और दृढ़ हो जाती है, गिरह, ग्रंथि। उ०—खुलै कुरण जांणै किण पुळ गांठ, हुवै सह धरती रंग-बिरंग।—सांझ

क्रि०प्र०—खुलणी, खोलणी, देणी, पड़णी, बांधणी, लगाणी।

मुहा०—१ गांठ खुलणी—समस्या का सुलझना या हल होना, मनमुटाव दूर होना. २ गांठ खोलणी—अड़चन दूर करना, उलझन मिटाना, कठिनाई मिटाना. ३ गांठ पड़णी—मनमुटाव होना, अनबन होना. ४ गांठ पर गांठ पड़णी—बहुत मनमुटाव हो जाना। मामला पेचीदा होते जाना. ५ गांठ राखणी—मन में डाह रखना।

यौ०—गांठगंठीलौ, गांठ-गोबी, गांठदार।

२ अंचल, चद्दर या किसी कपड़े की खूंट में कोई वस्तु लपेट कर लगाई हुई गांठ।

मुहा०—१ गांठ कतरणी—जेब काटना, धोती के फेंटे आदि को कतर कर रुपया ले लेना. २ गांठ करणी—बटोरना, इकट्ठा करना. ३ गांठ कर राखणी—याद रखना. ४ गांठ काटणी—देखो 'गांठ' कतरणी. ५ गांठ बांधणी—न भूलना, याद रखना, न भूलने के लिये धोती, रूमाल या अंगोछे में गांठ बांधना ६ गांठ में बांधणी—सर्वदा याद रखना. ७ गांठ में राखणी—धनी होना, पास में पैसा रखना. ८ गांठ में होणी—पास में होना, अधिकार में होना. ९ गांठ रौ गमावणौ—अपना रुपया बरबाद करना या खोना. १० गांठ रौ पूरौ—धनी, रुपये वाला ११ गांठ रौ पूरौ नै आंख रौ आंधौ—धनी परन्तु मूर्ख. १२ गांठ रौ पइसौ—अपने पास का धन. १३ गांठ सूं—अपने पास से. १४ गांठ सूं जांणी—अपनी हानि होना।

३ गठरी, गट्ठा।

कहा०—गांठ रौ भरम क्यूं गमावणौ—खुद की गठरी का भेद किसी को क्यों देना ? अपने घर का भेद किसी को नहीं देना चाहिये। (मि०—पोट)

४ अंग का जोड़, बंद।

मुहा०—गांठ उखड़णी—किसी अंग का अपने जोड़ पर से हट जाना, जोड़ उखड़ना।

५ ईख, बांस आदि में गंडा या चिन्ह पड़ा होने का वह स्थान जिसमें से कनखे निकलते हैं। यह स्थान थोड़े-थोड़े अंतर पर कुछ उभरा हुआ एवं कड़ा होता है. ६ गांठ के आकार की जड़. (अल्पा०—गांठियौ) ७ एक प्रकार का गहना. ८ समूह।

उ०—इतरा में छूटा सो भेळा गांठ में जाय पड़िया, लोग सारौ गोळा सूं फूल गयौ।—कुंवरसी सांखला री वारता

गांठ गोभी-सं०स्त्री—गोभी का एक भेद। इसकी जड़ से चार-पांच अंगुल पर एक गांठ पड़ती है। इसकी तरकारी बनाई जाती है।

गांठड़ी—देखो 'गांठ' (अल्पा०) उ०—बांधै गांठड़ियां बड़ियां बग-वाळै, राली गूदड़ ले कांधे पर राळै।—ऊ.का.

गांठड़ौ—१ देखो 'गांठ' (३) (महत्व०) २ ऊंट के पेट में होने वाला एक रोग विशेष।

गांठणौ, गांठबौ-क्रि०स० [सं० ग्रंथन, प्रा० गण्ठन] १ गांठ लगाना. २ फटी हुई चीज के टांका लगाना या मरम्मत करना।

मुहा०—मतलब गांठणौ—काम निकालना, प्रयोजन सिद्ध करना।

३ चमड़े की जूती आदि बनाना. ४ अपनी ओर मिलाना, अपने पक्ष में करना, वश में करना। उ०—परगह सिर लीधौ पलौ, रसिया में नंह रांम। ग्रह नव नाड़े गांठिया, भाड़े वाळी भांम।

—बां.दा.

५ किसी स्त्री को संभोग के लिए मिलाना या राजी करना.

६ दबाना, दबोचना।

मुहा०—सवारी गांठणी—सवार होना।

७ सोचना, विचार करना।

मुहा०—मनसूबौ गांठणौ—नई नई इच्छाओं की पूर्ति के लिए विचार करना।

गांठणहार, हारौ (हारी), गांठणियौ—वि०।

गांठाणौ, गांठाबौ, गांठावणौ, गांठावबौ—प्रे०रू०।

गांठिओड़ौ, गांठियोड़ौ, गांठ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गांठीजणौ, गांठीजबौ—कर्म वा०।

गांठदार-वि०—जिसमें बहुत गांठें हों, गांठ युक्त, ग्रंथिल, गंठीला।

गांठांणी-सं०स्त्री०—कपड़ा बुनते समय सूत के धागों का ताना बनाते समय साधने का कार्य।

गांठियोड़ौ-भू०का०कृ०—गांठा हुआ। (स्त्री० गांठियोड़ी)

गांठियौ-सं०पु०—१ गांठ के आकार की जड़। उ०—नारी गांठियौ सूंठ दूजी न खायौ, जनूनी तुंही हेकहेकौ ज जायौ।—ना द.

कहा०—सैंदो सांमी सूंठ रौ गांठियौ—अधिक परिचित से प्रायः सब कोई फायदा उठाना चाहते हैं।

२ एक प्रकार का घास।

गांठी-सं०स्त्री०—ग्रन्थि, गांठ।

वि०—बैर रखने वाला, अनबन रखने वाला।

गांठी–सं०पु०—गठरी विशेष जो केसर की होती है।
उ०—किस्तूरी रा पुड़ा एक, एक केसर रौ गांठौ, एक बावने चंदण रौ झाड़, एक मूंगियां रौ, तरवार, एक अमल, इतरी वसतां अनोखी अर दूजौ मेवौ. कपड़ौ भांत-भांत रौ नजर करनै बैठौ।
—पलक दरियाव री वात

गांड–सं०स्त्री० [सं० गर्त, प्रा० गड्ड] मल-द्वार, गुदा, अपान।
मुहा०—१ गांड उघाड़्यां फिरणी—नंगा फिरना, बच्चों की तरह अनजान बना फिरना. २ गांड गरदन एक करणी—थका कर लथ-पथ करना; मार-मार कर बेसुध करना. ३ गांड गळा में आवणी—संकट में पड़ना, आफत में फँसना, तंग आना, हैरान होना. ४ गांड चाटणी—चापलूसी करना खुशामद करना.
५ गांड छूटणी—दस्त आना, पेट चलना. ६ गांड तोड़णी—मार-मार कर भुस बनाना, खूब पीटना. ७ गांड धोवणी—खुशामद करना, सेवा करना. ८ गांड फाटणी—डर लगना, भय होना, घबराहट होना. ९ गांड बळणी—बुरा लगना, न सुहाना, ईर्ष्या होना. १० गांड मराणी—गुदा मैथुन कराना, प्रकृति-विरुद्ध मैथुन कराना हानि सहना, नुकसान उठाना, चापलूसी करना. ११ गांड मारणी—गुदा मैथुन करना, तंग करना, सताना, कठिन परिश्रम लेना. १२ गांड में आंगळी करणी—छेड़ना, तंग करना.
१३ गांड में गू होणी—पास में पैसा होना १४ गांड में घुसणी—चापलूसी करना, खुशामद करना. १५ गांड में मिरचां लागणी—बुरा लगना, खलना, न सुहाना. १६ गांड रगड़णी—बहुत प्रयत्न करना, बहुत दौड़-धूप करना।
कहा०—१ गांड झरै नै सराय में डेरा—दस्तें तो लग रही हैं और सराय में आवास चाहते हो। अयोग्य पुरुषों द्वारा योग्य और अच्छे स्थान में रहने की कामना पर व्यंग्य. २ गांड तपै जद सूत कतै—एक स्थान पर जम कर बैठने से सूत कतता है। जम कर कार्य करने से ही कार्य पूरा होता है। कार्य में सफलता के लिए परिश्रम आवश्यक है. ३ गांड में कीड़ौ हालणौ—लगातार कुछ अटपटा या बिगाड़ का काम करते रहने वाले के प्रति. ४ गांड रौ गड़ नै फळसे रौ लेणायत—गुदा का फोड़ा और द्वार के सामने का लेनदार दोनों ही महा दुखदायी होते हैं।

गांडर–सं०स्त्री०—१ किसी वस्तु के नीचे का वह भाग जिसके बल पर वह खड़ी रह सके। पेंदी, तला. २ एक प्रकार की घास विशेष।

गांडीव–सं०पु० [सं०] अर्जुन के धनुष का नाम।

गांडीवी–सं०पु०—गांडीव को धारण करने वाला, अर्जुन।

गांडू–वि०—१ जिसे गुदा-मैथुन कराने की लत हो. २ निकम्मा. ३ जिसमें हिम्मत न हो, डरपोक, कायर।

गांण—देखो 'गांन' (रू.भे.) उ०—राळ पांनड़ा कळस, कांमड़्यां गोघड़ मांडै। चूकै नगदी नेग, गांण ग्रह देख्यां मांडै।—दसदेव

गांणपत–वि० [सं० गाणपत] गणपति सम्बन्धी।
सं०पु०—एक संप्रदाय जो गणेश की उपासना करता है।

गांणवर–सं०पु०—शिव (डि.नां.मा)

गांती—देखो 'गाती'।

गांतौ—देखो 'गांथौ' (रू.भे.)

गांथणौ, गांथबौ–क्रि०स० [सं० ग्रंथन] १ गूँथना. २ मोटी सिलाई करना, गांठना. ३ दो (पशुओं) को एक साथ आपस में गले से बांधना।
गांथणहार, हारौ (हारी), गांथणियौ—वि०।
गांथाणौ, गांथाबौ, गांथावणौ, गांथावबौ—प्रे०रू०।
गांथिओड़ौ, गांथियोड़ौ, गांथ्योड़ौ—भू०का०कृ०।
गांथीजणौ, गांथीजबौ—कर्म वा०।

गांथियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ गूँथा हुआ. २ मोटी सिलाई किया हुआ, गांठा हुआ. ३ दो (पशुओं) को एक साथ आपस में गले से बांधा हुआ (स्त्री० गांथियोड़ी)

गांथौ–सं०पु० [सं० ग्रंथन] वह रस्सी या अन्य बंधन जिससे दो पशुओं को एक साथ उनके गले से बांधते हैं।
मुहा०—गांथै जुतणौ—साथ लगना, मदद में जुतना।
(मि०–मिलाड़)

गांदिनी–सं०स्त्री० [सं०] १ अक्रूर की माता जो काशीराज की कन्या तथा श्वफलक की भार्या थी. २ गंगा।

गांधौ—देखो 'गांधी' (रू.भे.)

गांधरब–वि० [सं० गांधर्व] गंधर्व संबंधी, गंधर्वदेशोत्पन्न।
सं०पु०—१ घोड़ा. २ सामवेद का उपवेद, गंधर्ववेद. ३ गंधर्व.
४ आठ प्रकार के विवाहों में से एक जिसमें वर और कन्या परस्पर अपनी इच्छानुसार अनुरागपूर्वक पति-पत्नीवत् रहते हैं।

गांधरब वेद–सं०पु०यौ० [सं० गांधर्व+वेद] सामवेद का उपवेद, संगीत-शास्त्र।

गांधार–सं०पु० [सं०] १ सिंधु नदी के पश्चिम का पेशावर से कंधार तक माना जाने वाला एक देश. २ गांधार देश का निवासी.
३ संगीत के सात स्वरों में से तीसरा स्वर. ४ एक प्रकार का राग (संगीत)

गांधार पंचम–सं०पु० [सं०] एक षाडव राग (मांगलिक) (संगीत)

गांधार भैरव–सं०पु० [सं०] एक राग का नाम जो देवधार के मेल से बनता है (संगीत)

गांधारी–सं०स्त्री० [सं०] १ धृतराष्ट्र की स्त्री या कौरवों की माता।
वि०वि०—यह गांधार देश के राजा सुबल की कन्या थी। शिव की आराधना के कारण इन्हें १०० पुत्र होने का वरदान मिला था। कुरुवंश में पुत्रों की कमी के कारण भीष्म आदि ने धृतराष्ट्र के लिये गांधारी को मांगा था, अतः इनका विवाह धृतराष्ट्र के साथ हो गया। पति के अंधे होने के कारण गांधारी ने अपनी आंखों पर भी सदा के लिये पट्टी बांधली। कालान्तर में इसके दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए।

२ मेघ राग की पांचवीं रागिनी (संगीत) ३ तंत्र के अनुसार एक नाड़ी. ४ जैनों के एक शासन देवता।

गांधी—सं०पु० १ वर्षाकाल में धान के खेतों में होने वाला एक कीड़ा. २ हींग. [सं० गांधिक] (स्त्री० गांधरण) ३ तेल व इत्र का व्यवसाय करने वाली एक जाति अथवा इस जाति का व्यक्ति.

४ आधुनिक भारत के एक प्रसिद्ध महात्मा।

वि०वि०—इनका नाम मोहनदास था। श्री करमचंद गांधी के यहां गुजरात के पोरबंदर नामक स्थान में इनका जन्म हुआ था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ये मुख्य स्तंभ थे। भारत को ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता दिलवाने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। इनका स्वर्गवास ३० जनवरी १९४८ को हुआ था। प्रति वर्ष दो अक्टूबर को इनकी जयन्ती मनाई जाती है।

गान—सं०पु०—१ गाने की क्रिया. २ गाना, गायन, गीत।

उ०—अलियळ आज करंत नह, गयंद कपोळां **गान**। सिंहनाद मद सूकियौ, औ कीजै अनुमांन।—बां.दा.

३ संगीत।

गानगर—वि० [सं० गानकर] गायक, गाने वाला। उ०—दीजै तिहां डंक न दंड न दीजै, ग्रहणि मवरि तरु **गानगर**। करग्राही परवरिया मधुकर, कुसुम गंध मकरंद कर।—वेलि.

गानवंत—वि० [सं० गानवत] गायक, गवैया। उ०—मुखि **गानवंत** वसंत मंगळ संत धांम सुहावहीं, किरि प्रति अबीर गुलाल केसर भूप लख सुख भावहीं।।—रा.रू.

गांम—सं०पु० [सं०ग्राम] गांव, देहात। उ०—ईंदा ऊदा नयर, मास पख आस विमाळे। **गांम गांम** मैल्हांण, वहै आपांण संभाळे।—रा.रू.

कहा०—१ गांम करै ज्यां गिवार भी करै—समूह या समाज के लोगों के देखादेखी कार्य करन वाले के प्रति. २ गांम खनै आयनै खोळा टांकणा—गांव के पास आकर कस कर तैयार होना। डरपोक व्यक्ति के लिए जो अपने गांव के पास आकर अपने को बहादुर बताता है. ३ गांम मांये घेर नी उजाड़ मांये खेत नी—न गांम में घर है न जंगल में खेत है। उस व्यक्ति के प्रति जिसके पास न रहने को घर है और न बोने को खेत है. ४ गांम रौ नांम खारौ तौ मीठौ काई—गाँव का नाम ही खारा है तो वहाँ मीठा क्या होगा? जैसा व्यक्ति होगा वैसे ही उसके गुण होंगे. ५ जिण गांम नहीं जांणौ उणरौ मारग ही क्यूं पूछणौ—जिस गांव को जाना ही नहीं है, फिर उसका रास्ता पूछने से क्या अभिप्राय। जिस कार्य को करना ही नहीं है, उसके संबंध में जानकारी करने से क्या लाभ।

६ डूम रौ पांमणौ गांम नै भारी—ढोली के घर पर आया हुआ मेहमान गाँव वालों के लिए बोझा होता है। निर्धन व्यक्ति व्यय आदि के कारण उसके पड़ौसी एवं संबंधियों के लिए बोझा होता है.

७ रोवतौ फिरै गांम बांभी फिरै ज्यूं—अधिक इधर-उधर घूमने व चक्कर लगाने वाले के प्रति।

यौ०—गांमखेर, गांम-गांमतरौ, गांम-गोचर।

(अल्पा०—गांमड़ियौ, गांमड़ौ)

गांमखेर—सं०स्त्री०—ग्राम की गायों का समूह (मि०—गोमाळ)

गांम-गांमतरौ—देखो 'गांमतरौ' (रू.भे.)

गांम-गोचर—सं०पु०—किसी गांव के आधीन वहाँ के मवेशियों के चरने के उद्देश्य से छोड़ी गई भूमि, चरागाह।

गांमड़ियौ—देखो 'गांम' (अल्पा०)

गांमड़ी—वि०— ग्रामीण, ग्राम-निवासी।

गांमड़ौ—देखो 'गांम' (अल्पा०) उ०—सोना री इंढ़ारियां, आंणे जळ अबळांह। गांजण निबळा **गांमड़ां**, सगत नहीं सबळांह।

—बां.दा.

गांमतरौ—सं०पु० [सं० ग्रामान्तर] एक गाँव से दूसरे गाँव को जाने की क्रिया, गांव-गांव की जाने वाली यात्रा।

गांम-भांभी—सं०पु०—शासक की ओर से नियुक्त 'भांभी' जाति का वह व्यक्ति जो गाँव के व्यक्तियों को आवश्यकतानुसार बुलाने का कार्य करता है।

गांमाऊ—वि० [सं० ग्राम+रा० प्र० आऊ] गाँव का, गाँव संबंधी।

गांमी—वि० [सं० गामिन्] (स्त्री० गांमणि, गांमणी) १ चलने वाला, गतिवान। उ०—उठा हूं नागणेच्यां भवण आविया, लाविया सरब रणवास लारै। गती गजराज हंसां गवण **गांमणी**, इंद्र पर कांमणी लवण वारै।—मे.म.

यौ०—गरुड़-गांमी।

२ संभोग करने वाला, रमण करने वाला।

यौ०—वेश्यागांमी।

सं०पु०—श्रीकृष्ण (डि.को.)

गांमेट—सं०पु०—वर्षा होने पर गांव के मोहल्लों का एकत्र होकर बहने वाला जल।

गांमेती—वि०—ग्राम-निवासी, ग्रामीण। उ०—ओछी अंगरखियां दुपटी छिब देती। गोढ़ै बरछी जे पूरा **गांमेती**।—ऊ.का.

सं०पु०—गांव का स्वामी।

गांमोगांम—सं०पु०यौ०—प्रत्येक गाँव, हर गाँव।

गांव—सं०पु० [सं० ग्राम] छोटी बस्ती, ग्राम, देहात।

पर्याय०—खेड़ो, निवसथ।

कहा०—१ गांव करै ज्यूं गैली करै—देखो 'गांम करै ज्यां गिवार भी करै'. २ गांव कोटवाळी आप ही सिखाय दे—कोतवाली करना गाँव खुद ही सिखा देता है। कार्य करने एवं अनुभव से ही अधिक सीखा जाता है. ३ गांव गांव खेजड़ी नै गांव गांव गोगौ—प्रत्येक गाँव में साँप मिल जाया करता है, किन्तु उसके इलाजस्वरूप शमी वृक्ष भी प्रत्येक गाँव में मिल जाता है। जहाँ दुष्ट व्यक्ति होते हैं वहाँ दुष्टों का दमन करने वाला भी कोई न कोई मिल ही जाता है.

४ गांव गेलै ने को गिणै नी नै गेलो गांव ने को गिणै नी—गाँव अर्थात् उसमें बसने वाले पागल को महत्व नहीं देते और पागल भी

गांव वालों को कुछ भी महत्व नहीं देता। जैसे को तैसा व्यवहार के प्रति. ५ गांव गैल ढेढ़वाड़ौ सगळै है—जहां गांव है वहां चमार-वाड़ा भी है। अच्छाई-बुराई, सफाई-गंदगी आदि कुछ न कुछ सब स्थानों पर मिलता ही है. ६ गांव जठै ढेढवाड़ौ—देखो 'कहावत' ५ ७ गांव थारौ, नांम म्हारौ—कांम न करके भी उसका यश स्वयं प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले के प्रति. ८ गांव बिगाड़यौ गोरी, ब्याह बिगाड़यौ मेह—विवाह को वर्षा एवं गांव को चर-वाहा बिगाड़ देता है (विवाह के दिनों वर्षा हो जाय तो विवाह का आनन्द किरकिरा हो जाता है और चरवाहा अपने पशुओं को खेतों में चराने लगे तो सारे गांव की हानि होती है। ९ गांव री गधी को पूछै नी—गांव की गधी भी नहीं पूछती। अकिंचन के प्रति.

१० गांव री छब गोर में नै घर री छब पोळ में—जिस प्रकार गांव की स्थिति उसका बाहरी भाग या चौहटा देखने से मालूम हो जाती है ठीक उसी प्रकार घर की स्थिति उसके प्रवेश-द्वार से मालूम हो जाती है. ११ गांव री छब गोर मां सूं ही नजर आवै—गांव की स्थिति उसके बाहरी भाग से ही प्रतीत होती है (मि० कहा०—१०) १२ गांव री साख बाड़ा भरै—गांव की शोभा या उसकी स्थिति उसके बाहरी बाड़ों से ही प्रतीत होती है १३ गांव लार गंडक लाधै—प्रत्येक गांव में कुत्ते होते ही हैं। थोड़े-बहुत बदमाश व दुष्ट लोग प्रायः सभी जगह पर मिलते हैं।

(रू०भे०—गांम)

गांवखेर—सं०स्त्री०—गांव की गायों का समूह।

गांवघाट—सं०स्त्री०—मृत्यु के उपरांत किया जाने वाला एक भोज जिसमें उसी गांव के तथा केवल उसी जाति के व्यक्ति भोजन के लिये बुलाये जाते हैं (जाट) (रू०भे०—'गामघाट')

गांवड़ियौ, गांवड़ौ—देखो 'गांव' (अल्पा०) उ०—लीलांणी चौबीस मांगै, गिणै न छोटौ गांवड़ौ। जद नीम सगळां सूं पै'ली, थारौ ही सुभ नांवड़ौ।—दसदेव

गांवतरौ—देखो 'गांमतरौ' (रू.भे.)

गांवभांभी—देखो 'गांमभांभी' (रू.भे.)

गांवेती—देखो 'गांमेती' (रू.भे.)

गांस, गांसी—सं०स्त्री०—१ रोक-टोक, प्रतिरोध, बंधन. २ ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य. ३ कपट। उ०—सो सगळी सुणी बातां दुरगादासजी नूं कही तिण पर बहोत राजी हुइया, कोई पेट में गांस थी सो पण सारी छोड़ दीवी।—भाटी सुंदरदास री वारता

४ नोक, नुकीला भाग। उ०—बरछियां रा फळ मांहे टूट रहिया। तीरां री सांठी टूटी, भालां री गांस मांही रही सो लोहां सूं पूर हुवौ थकौ पार होय जा बरड़ी ऊपर खड़ौ रहियौ।—डाढाळा सूर री वात

५ गांठ, बंधन। उ०—अरज करै अबळा कर जोड़यां, स्यांम तुम्हारी दासी। मीरां के प्रभु गिरधर नागर करस्यां म्हारो गांसी।—मीरां

६ दुष्ट प्रकृति, दुष्ट स्वभाव।

गांसु—देखो 'गांस'। उ०—स्रवण सुणत मेरी सुध बुध बिसरी, लगी रहत तामैं मन की गांसु री।—मीरां

गा—सं०स्त्री०—१ पार्वती. २ लक्ष्मी. ३ गंगा. ४ पृथ्वी. ५ सरस्वती. ६ नाभि. ७ शक्ति. ८ गाय।

सं०पु०—९ बुद्ध. १० ज्ञान. ११ धनी. १२ बुद्धिमान, पंडित (एका०)

गाअठौ—सं०पु०—१ किसी वस्तु, शरीर आदि को अधिक पीटने से होने वाली अवस्था, कचूमर. २ नाश, विध्वंस ३ खलिहान में भूसे से अनाज पृथक करने की क्रिया या भाव। अनाज के सूखे डंठलों में से दाने निकालने के लिये उसे बैलों द्वारा अथवा बैलों से जुती गाड़ियों द्वारा रौंदने का कार्य।

(रू०भे०—गा'टौ, गा'ठौ, गायटौ, गाहटौ, गाहठौ।

गाअणौ, गाअबौ—देखो 'गाणौ'। उ०—अति उत्तिम दीजै उकति, सरसती हूं सुप्रसंन। गाअां लखपत्ती गुणे, महिपत्ती वड मंन।—ल.पि.

गाइ—सं०स्त्री० [सं० गो] गाय (ह.नां.) उ०—तो इह महा अजोग्य वात होसै। जैसे कपिळा गाइ दांन दीजै।—वेलि.

गाइड़मल—देखो 'गायड़मल' (रू.भे.) उ०—आज म्हारे गाइड़मल ने बाबायेजी रै न्यूं'त्यौ।—लो.गी.

गाइड—सं०पु० [अं०] पथ-प्रदर्शक।

गाइणी—वि०—गाने वाली। उ०—निरखंति अख्रर नीची निजर, गौ मद मच्छर गाइणी। इण वयण सची विलखी उवरि, इंद्र लखी इंद्रायणी।—रा.रू.

गाइब—देखो 'गायब' (रू.भे.)

गाइरूप—सं०स्त्री० [सं० गो+रूपा] पृथ्वी (डिं.नां.मा.)

गाई—सं०स्त्री० [सं० गो] गाय (रू.भे.) उ०—गंडक गिणै न गिणै गधेड़ौ, गोधौ गिणै न गाई नै।—ऊ.का.

गाईजणौ, गाईजबौ—क्रि०स०, कर्म वा०—गाया जाना। उ०—मंगळ रूप गाईजै माहव, चार सूं ए ही मंगळ चार।—वेलि.

गाउन—सं०पु० [अं०] १ एक प्रकार का लंबा ढीला पहनावा जो प्रायः पश्चिमी देशों में पहना जाता है. २ एक तरह का चोगा जो कई आकार और प्रकार का होता है।

गागड़—सं०पु० अपरिपक्व बेर।

गागड़दा—वि०—अधिक गाढ़ा या घना। उ०—वौ मिल कागावासी मे भारिया अर दुपारै अर सिज्या री गागड़दा छांणे। ऊपर जोईजै ठूंगार।—वरसगांठ

वि०वि०—प्रायः यह शब्द किसी द्रव पदार्थ के लिए विशेषण रूप में प्रयुक्त होता है।

गागणौ, गागबौ—क्रि०अ०—चिल्लाना, रोना, कुहराम मचाना, विलाप करना।

गागणहार, हारौ (हारी), गागणियौ—वि०।

गागिओड़ौ, गागियोड़ौ, गाग्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गागीजणौ, गागीजबौ—भाव वा० ।

गागर–सं०स्त्री० [सं० गर्गर] गगरी, घड़ा । उ०—**बेरा बैरागर सागर सम सोभा, रीती गागर ले नागर तिय रोभा** ।—ऊ का.

मुहा०—गागर में सागर भरणौ—संक्षिप्त भाषा में तत्वरूप कहना । थोड़े शब्दों में बहुत कुछ व्यक्त कर देना ।

गागरौ–सं०पु०—लहँगा, घाघरा ।

गागियोड़ौ–भू०का०कृ०—रोया हुआ, चिल्लाया हुआ, विलाप किया हुआ । (स्त्री० गागियोड़ी)

गागोळिया–सं०स्त्री०—गुजराती नटों की एक शाखा (मा.म.)

गाघ–सं०स्त्री०—घाव, क्षत, चोट ।

गाघणौ, गाघबौ–क्रि०अ०—दुख या कष्ट से पीड़ित होकर दर्दभरी आवाज करना, कराहना ।

गाघणहार, हारौ (हारी), गाघणियौ—वि० ।

गाघिओड़ौ, गाघियोड़ौ, गाघ्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गाघीजणौ, गाघीजबौ—भाव वा० ।

गाघरांणौ–सं०पु०—एक प्रकार का पुनर्विवाह । उ०—कोई ठावौ गांमेती, वासळियौ तथा घर रौ धणी रजपूत मरै, कै मोटियार कांम आवै, तो उणरी वायर (बैर) **गाघरांणौ** करै ।

—जखड़ा मुखड़ा भाटी री वात

(मि०—नातौ)

गाघरियौ, गाघरौ–१ देखो 'गाघरांणौ' (रू.भे.)

२ देखो 'घाघरौ' (अल्पा०)

गाछ–सं०पु०—बड़ा वृक्ष, दीर्घकाय पेड़ (क्षेत्रीय)

गाज–सं०पु० [सं० गर्जन, प्रा० गज्ज] १ गर्जन । उ०—१ अर तोपां रा **गाज** हूं सेम रा सीसां समेत मक्राकृत मेखळा मही रै मचोळा लगाया ।—वं.भा. उ०—२ जंबक सबद नचीत कर, डर कर तूं मत भाज । मादूळौ खीजै सुणै, जळहर हंदौ **गाज** ।—बां.दा.

२ बिजली, वज्र । उ०—लंबै अबळा लाज, सबळा हुय बैठा सको । गरढ़ सभा पर **गाज**, सुणतां राळौ सांवरा ।—रांमनाथ कवियौ

३ मस्ती में आए हुए ऊँट की आवाज । उ०—रांगड़ा थळी रा जूंगराज, गूंगला जोड़ रा करय गाज ।—पे.रू.

गाजणौ–वि० (स्त्री० गाजणी) १ गर्जन करने वाला, दहाड़ने वाला । उ०—१ मेरौ देवरियौ चरावै सांड, करला **गाजणा** ।—लो.गी.

उ०—२ मेरौ परण्यौ चुंघावै टोडिया, मेरौ जेठजी दूवै भूरी झोट सांडघां **गाजणी** ।—लो.गी.

२ बजने वाला, ध्वनि करने वाला । उ०—धणी रा **गाजणा** त्रंबाळ नगारा तौ आपरै हीज पांण बाजै है ।—वी.स.टी.

गाजणौ, गाजबौ–क्रि०अ०—१ गर्जना, कड़कना । उ०—कांपिया उर कायरां असुभ **गाजंते** नीसांणै गड़ड़ै ।—वेलि टी.

२ प्रसन्न होना. ३ दहाड़ना । उ०—नाहर जे **गाजिस** नहीं, ऐ गज बहता ईख । सर सर कमळ सुगंध री, भमर न मांगिस भीख ।

—बां.दा.

४ हुंकार भरना. ५ गायन करना । उ०—गोरी पणियारी तेजौ तन गाजै, लारै धोरी रै जणियारी लाजै ।—ऊ.का.

गाजणहार, हारौ (हारी), गाजणियौ—वि० ।

गाजिओड़ौ, गाजियोड़ौ, गाज्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गाजीजणौ, गाजीजबौ—भाव वा० ।

गाजनमाता–सं०स्त्री०—बनजारा जाति की कुलदेवी ।

गाजर–सं०स्त्री०—एक प्रकार का पौधा जिसकी पत्तियां प्रायः धनिए के पौधे की पत्तियों से मिलती-जुलती होती हैं. २ इस पौधे की जड़ जो एक खाद्य पदार्थ है । यह मूली की तरह ही होती है किन्तु मूली से मोटाई में कुछ अधिक तथा लंबाई में कुछ कम होती है ।

कहा०—१ गाजर आळी पीपळी—जिसके रहने से न लाभ हो और मिटने से न हानि हो. २ गाजर री पूंगी वाजी जिते वजाई नी वाजी तौ तोड़ खाई—गाजर की पूंगी जब तक बजी तब तक बजाने के काम में लेली और खराब होने पर तोड़ कर खाने के काम में ले ली । ऐसी वस्तु के प्रति जो अच्छी एवं बुरी दोनों अवस्था में प्रयुक्त हो सके ।

गाजरियौ–सं०पु०—१ गेहूँ की फसल में होने वाली घास. २ गाजर का बना खाद्य पदार्थ ।

गाजरूप–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गाजियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ गर्जना किया हुआ. २ गाया हुआ । (स्त्री० गाजियोड़ी)

गाजी, गाजीउ–सं०पु० [अ०] १ मुसलमानों में वह वीर पुरुष जो धर्म के लिये विधर्मियों से युद्ध करे । उ०—जग्गौ अवसांणे जोरवंत । सुत सांम खेत **गाजी** अरंत ।—रा.रू.

२ एक खास प्रकार का ऊँट । उ०—खाती री खातोड़ गूंजता जावै **गाजी** । लाधै जो लोहार रांमजी मिळग्यौ राजी । —ऊ.का.

३ घोड़ा (अ. मा.)

वि०—बहादुर, वीर पुरुष, श्रेष्ठ पुरुष । उ०—गुरं प्रोहित सुभट **गाजी**, तेड़ मंत्री अकल ताजी, सला कीध सधीर ।—र.रू.

गाजीमरद–सं०पु०—१ बहुत बड़ा वीर. २ घोड़ा ।

गाजी मियां–सं०पु० [अ०] सालार मसउद गाजी नामक एक व्यक्ति जो महमूद गजनवी का भानजा था । वह हिंदुओं को काफिर समझ कर उनसे लड़ने के लिये अवध तक बढ़ आया था पर आरंभ ही में श्रावस्ती के जैन राजा के हाथों मारा गया था ।

गाट–सं०पु० [अं० गॉर्ड] १ रक्षा करने वाला, रक्षक. २ पहरा देने वाला ।

गाटक–सं०पु०—घूंट । उ०—दूधां रा स्वाद अम्रत सारिखा लागै छै । सु कढ़ी रा बड़िआं रा **गाटक** लीजै छै ।—रा.सा.सं.

गाटर–सं०पु० [अं० गर्टर] लोहे की लंबी, मोटी एवं अत्यन्त भारी धरन जिसे बड़ा कमरा बनाने के लिये दीवार पर डाल कर छत पाटी जाती है ।

गाटा-सं०पु०—बैलगाड़ी में मुख्य थाटे (चौड़े तख्ते) के नीचे मजबूती के लिये लगाये हुए लम्बे डंडे।

गा'टौ—देखो 'गाग्रठौ'। उ०—गायां-भैस्यां री कर दीन्ही गा'टौ, लज्जा कुमजा री ले लीनौ लाटौ।—ऊ.का.

गा'ठौ—देखो 'गाग्रठौ' (रू.भे.)

गाड-सं०पु० [सं० गर्त, प्रा० गड्ड] १ गर्त, गड्ढा।

स्त्री०—२ गाड़ी, बैलगाड़ी।

उ०—कसी, क्वाड़, गंडासी, कसिया, डांडा, दांती, दांतियां। ग्याता क्याड़ी, गाड पंजाळी, खेब खूब पड़ै खातियां।—दसदेव

गाडणौ, गाडबौ-क्रि०स० [सं० गर्तन] १ गड्ढा खोद कर किसी वस्तु को उसमें डाल कर ऊपर से मिट्टी आदि डाल कर दबा देना, गाड़ना, दफनाना। उ०—हूंडी सूं भूंडी हुवै, ऊंडी गाडै आथ। देवाळौ दरसाय दे, कर काठौ हिय हाथ।—बां.दा.

२ भूमि में खड्डा खोद कर किसी वस्तु के एक भाग को उसमें डाल मजबूती से खड़ा करना, जमाना. ३ किसी नुकीली वस्तु को उसकी नोंक के बल किसी चीज पर ठोक कर जमाना, धंसाना।

गाडणहार, हारौ (हारी), गाडणियौ—वि०।

गडवाणौ, गडवाबौ, गडवावणौ, गडावबौ—प्रे०रू०।

गाडिग्रोड़ौ, गाडियोड़ौ, गाड्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गाडीजणौ, गाडीजबौ—कर्म वा०।

गडणौ, गडबौ—अक रू०।

गाडर-सं०स्त्री०—भेड़। उ०—पहिरण-ग्रोढ़ण कंबळा, साठे पुरिसे नीर। ग्रापण लोक उभांखरा, गाडर छाळी खीर।—ढो मा.

कहा०—१ गाडर ग्रांणी ऊंन नै ऊबी चरै कपास—भेड़ को ऊन के लिये लाया गया परन्तु वह चरती-चरती कपास को चर गई। एक वस्तु के लाभ के बदले दूसरी वस्तु की हानि सहन करना। लाभ के लिये लाई गई वस्तु से हानि होने पर. २ गाडर रै माथै ऊंन कुण छोडै—भेड़ की ऊन कौन छोड़ता है? गरीबों से हर कोई लाभ उठाता है।

गाडरतांतियौ-सं०पु०—एक प्रकार की घास जो वर्षा ऋतु में उत्पन्न होती है।

गाडरियौ-सं०पु०—१ एक प्रकार की लता का फल।

वि०वि०—इसका स्वाद कड़ुआ होता है। इसके संबंध में यह प्रचलित है कि जो भैंस गर्भ धारण नहीं करती उसे अगर यह फल खिला दिया जाय तो उसमें गर्भ धारण करने की शक्ति आ जाती है।

२ श्वेत बादल।

गाडरौ-सं०पु० (स्त्री० गाडरी) नर भेड़।

गाडलिया—देखो 'गाडोलिया' (रू.भे.)

गाडलियौ—देखो 'गाडोलियौ' (रू.भे.)

गाडांसळ-सं०पु०—गाडियों, छकड़ों आदि पर रखा हुआ सामान।

उ०—बळदां गाडांसळ पाडां पर बोरा। छोटा डोरांतर रोरांकुर छोरा।—ऊ.का.

गाडियोड़ौ-भू०का०कृ०—गाड़ा हुआ (स्त्री० गाडियोड़ी)

गाडी-सं०स्त्री० [सं० शकटी] घोड़े, बैल आदि द्वारा खींचा जाने वाला लकड़ी व लोहे आदि का वह ढांचा जो घूमने वाले पहियों के ऊपर ठहरा हुआ होता है। यह आदमियों के बैठने और असबाब आदि रखने के काम आता है। इस पर माल भी ढोया जाता है। यान, शकट।

क्रि०प्र०—खड़णी, जोतणी, वांगणी।

मुहा०—१ गाडी छूटणी—गाड़ी न पकड़ पाना. २ गाड़ी पकड़णी—ठीक वक्त पर स्टेशन पहुँच कर रेलगाड़ी पर चढ़ना. ३ गाडी भर—बहुत ज्यादा, ढेर।

कहा०—१ गाडी कनै बळद आया रैसी—गाड़ी के पास बैल अवश्य आवेंगे। उचित स्थान पर उपयुक्त वस्तु अवश्य आयेगी. २ गाडी तौ चीलां ही वैवै—गाडी तो अपने मार्ग पर ही चलती है। कार्य का ठीक रूप से चलते रहना या किसी का उचित मार्ग पर कार्य करते रहने के प्रति. ३ गाडी तौ वांगी ही चालै—गाडी तो उसके पहियों में तेल देने पर ही ठीक तरह चलती है। किसी को रिश्वत देने पर शीघ्र कार्य हो जाने के प्रति. ४ गाडी देख'र लाडी रा पग सूजै—साथ में सवारी की व्यवस्था होने पर पैदल चलना हर किसी को बुरा लगता है। किसी वस्तु को देख कर उसे प्राप्त करने की लालसा हो जाना. ५ गाडी नै लाडी वधावणी चोखी—गाड़ी और वधू का स्वागत करना अच्छा है क्योंकि वधु गृहस्थी का मूल आधार है और गाड़ी जीविका का. ६ गाडी नीचै कुत्तो वैवै जकौ जांणै गाडी म्हांरै ही पांण चालै—गाड़ी के नीचे कुत्ता चलता है और समझता है कि गाड़ी मेरी ही शक्ति के कारण चल रही है। दूसरे द्वारा संपादित कार्य का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा यश प्राप्त करने पर. ७ गाडी भर धांन री मूठी भर वांनगी—गाड़ी अनाज से भरी है परंतु एक मुट्ठी भर अन्न ज देखने से ही अनाज की किस्म एवं अच्छाई-बुराई का पता लग जाता है। थोड़े से नमूने से ही पूरी वस्तु की जानकारी की जा सकती है. ८ गाडी भरी नै बोयूं नै टोपी भरी नै लायूं—गाड़ी भर कर बोया और टोपी भर कर लाया। अकुशल व्यक्ति के प्रति. ९ गाडी में छाजळै रौ कांई भार—गाड़ी पर सूप का क्या भार? धनिक व्यक्ति को साधारण खर्च का बोझ मालूम नहीं पड़ता. १० गाडी रा धणी नै गो'र में भी रैंणौ पड़ै—गाड़ी के स्वामी को अवसर पड़ने पर गाड़ी की रक्षा हेतु गांव के बाहर भी रहना पड़ता है। अपने कार्य के लिये कष्ट उठाना ही पड़ता है. ११ गाडी लीक जो गाडै लीक—जिस मार्ग से छोटी गाड़ी निकल जाती है उधर से बड़ी भी निकल सकती है। थोड़े से प्रारंभ के द्वारा बड़ा कार्य भी किया जा सकता है. १२ चालती गाडी मांयै चाग्नी नो सूं भार—चलती गाड़ी में चलनी का क्या भार? देखो 'कहावत सं० ९'। १३ चालती गाडी में फाचरौ देणौ—चलती हुई गाड़ी में रुकावट डालना। किसी पूरे होते हुए काम में रुकावट डालने पर।

यौ०—ऊँटगाडी, घोड़ागाडी, बळदगाडी, मोटरगाडी, रेलगाडी।
अल्पा०—गाडूलौ।
मह०—गाडौ।

गाडीजणौ, गाडीजबौ–कर्म वा०—गाडा जाना, दफनाया जाना।
गाडीजणहार, हारौ (हारी), गाडीजणियौ—वि०।
गाडीजिश्रोड़ौ, गाडीजियोड़ौ, गाडीज्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गाडीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ गाडा हुआ. २ दफनाया हुआ. (स्त्री० गाडीजियोड़ी)

गाडीणौ–सं०पु०—मिट्टी के बड़े-बड़े मटकों में पानी भर कर लाने ले जाने के उपयोग में आने वाली बैलगाड़ी (रेगिस्तानी)
उ०—नाडा भरियोड़ा नैड़ा निजराता, गाडा गुड़काता पैड़ा रुड़ पाता। लावै फूलांणी भीणें सुर लेता, डीगा **गाडीणा** डब-डब धुनि देता।—ऊ.का.

गाडीत, गाडीतौ–सं०पु०—१ देसवाली मुसलमानों का एक भेद. २ गाडोलिया।

गाडीवांन–सं०पु०—गाडी चलाने या हांकने वाला।

गाडूलौ–सं०पु०—१ छोटी बैलगाड़ी, छकड़ा (अल्पा०) उ०—पीढ़े तौ बैठी मायड़ मन करचौ, मन कर मेल्यौ लोंड़ौ वीर। कठै तौ पड़ियौ मायड़ **गाडूलौ**, कठै म्हारा धोळा रा जोत।—लो.गी.
२ बच्चों के खेलने के लिये लकड़ी या लोहे का तीन पहियों वाला खिलौना जिसके सहारे से बच्चे चलना बहुत शीघ्र सीख लेते हैं।

गाडेती–सं०पु०—१ देखो 'गाडोलियौ' (रू.भे.) २ गाडीवान।
उ०—माळी हाळी बाळधी, **गाडेती** गवाळ। सात देव रक्षा करौ, पंखेरू पूंछाळ।—अज्ञात

गाडेसर, गाडेहर–सं०पु०—मकान आदि का वह दरवाजा जिसमें से होकर गाड़ी आ-जा सके या आती हो।

गाडोलिया–सं०स्त्री०—लुहारों की एक जाति विशेष। इसके व्यक्ति प्रायः अपना सब घरबार एक गाड़ी पर ही स्थापित कर एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमते रहते हैं और एक स्थान पर टिक कर नहीं रहते।

गाडोलियौ–सं०पु०—'गाडोलिया लुहार' नामक जाति का व्यक्ति।

गाडोली–सं०स्त्री०—१ देखो 'गाडोलौ'. २ भूरे रंग की छोटे आकार की एक प्रकार की चिड़िया जो प्रायः जलाशयों के पास मिलती है।

गाडोलौ—१ देखो 'गाडौ' (रू.भे.) २ देखो 'गाडूलौ' (रू.भे.)

गाडौ–सं०पु०—१ बड़ी गाड़ी (डिं.नां.मा.)
कहा०—गाडा पाडा ना सूं भरोसौ, वाटे रात राखै—गाड़ी और भैंस का विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि इनके कारण कभी रास्ते में ही रात व्यतीत करनी पड़ती है।
२ बीम मन का परिमाण।

गाढ़–सं०पु०—१ शक्ति, बल। उ०—१ हुवौ जेम हरणंक यम साह अवरंग हुवौ, ग्रहे सुर नरां छोड़ दियौ **गाढ़**। अवन अणथाह जातां हुई अबरके, दुरग री तेग वाराह री डाढ़।—भोजराज महियारियौ
उ०—२ दिकपाळां रा **गाढ़** समेत, दिग्गजां रा मद छूटि जावै ही अनेकप चकितपण रा चीकार करण लागा।—वं.भा.
क्रि०प्र०—पड़णौ, निकळणौ, राखणौ, होणौ।
२ मान, प्रतिष्ठा। उ०—गोहिल कुळ धन **गाढ़**, लेवण अकबर लालची। कोडी दे नह काढ़, पणधर रांण प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ
३ गर्व, अभिमान (अ.मा.) (मि०—गाढ़ रौ आंवळौ)
४ दृढ़ता, मजबूती. ५ धैर्य, धीरज। उ०—आवां मास असाढ़, प्रथम पख में पांवणा। महल रखौ मन **गाढ़**, अब मत लिखजौ ओळभा।—र.रा.
६ प्रेम। उ०—फरगट मारै फूटरा, कर सूं सरगट काढ़। सठ दाखै भाळी सरस, गिणका वाळौ **गाढ़**।—बां.दा. ७ वृद्धावस्था.
८ आग्रह। उ०—तिसै खवास नै **गाढ़** करि पूछियौ, साच बोलौ किण कंवर कै रांणी, प्रधांन महते उमराव दुसमण जिण दिरायौ तिण रौ नांम ले।—वीरमदे सोनगरा री वात ९ साहस, हिम्मत। उ०—तिणसूं सूराचंद रै गोखे चोताळै असैंधा असवार देखै छै, तरै पूछण रौ **गाढ़** घणौ करै तिण ऊपरां राज सूं पूछण रौ गाढ़ कियौ।
—जैतसी ऊदावत री वात
१० गाढ़ापन, सघनता, कठोरता। उ०—नदी दीह वधे मर नीर घटे निमि, **गाढ़** धरा द्रव हेमगिरि। सुतरु छांह तदि दीध जगत सिरि, सूर राह किय जगत सिरि।—वेलि. ११ कपट।
उ०—जद बादसाह **गाढ़** छोड न्याय बोल्यौ।—नी.प्र.
१२ कुत्ता, श्वान (अ.मा.)
वि०—१ अधिक, बहुत। उ०—कोकल परियां गांन घणकिया, ग्रीधां भमर भणकिया **गाढ़**।—बां.दा. २ दृढ़, मजबूत।
उ०—तठै गढ़ रौ घणौ **गाढ़** जाबतौ कियौ—वीरमदे सोनगरा री वात
३ घना, गाढ़ा. ४ विकट, कठिन, दुर्गम. ५ पूर्ण युक्त, परिपूर्ण।
उ०—प्रथम मारियौ सलावतखांन कितांई पछै, सांकड़ै सूर रूधै मंबांही 'अमरसी' तखत पातसाह आगळी, वीर रस **गाढ़** जमदाढ़ वाही।—माधोदास गाडण

गाढ़थंभ–वि०—वीर, योद्धा।

गाढ़म–स०स्त्री० [सं० गाढ़िमा] १ गर्व, गंभीरता. २ वीरता, बहादुरी।
उ०—गाहणी गज थट अघट **गाढ़म** प्रगट रजवट पेखजे।—र.ज.प्र.
३ प्रतिष्ठा, मान. ४ बल, शक्ति। उ०—ऊपड़िया पतसाह, दळ वागी भेर निसांण। भाटी दोनौं भीम दे, तव **गाढ़म** प्रमांण।
—आसराव रतनू

गाढ़मल—देखो 'गायड़मल' (रू.भे.) उ०—**गाढ़मळ** खळां खागां झपट गाहणी, भूप कल्यांण सुत सयण मन भावणौ।—रोड़जी भादौ

गाढ़ रौ आंवळौ–सं०पु०—१ धैर्यवान, गंभीर, स्वाभिमानी।
उ०—**गाढ़ रा आंवळा** हता सरग गया, चूंथियौ मुलक रौ माल चोरां।—सुरतौ बोगसौ २ साहसी, सामर्थ्यवान।

गाढ़वाळ–वि०—गंभीर, धैर्यवान।

गाढ़ांपुर–वि०—१ अभिमानी, घमंडी. २ वीर, योद्धा।
उ०—गाढ़ांपुर देव तणो गिर मेर, सभां सिर झाट दिये समसेर।
—सू.प्र.

गाढ़ाक–वि०—१ गहरा, गंभीर। देखो 'गाढ़ौ'. २ जबरदस्त, जोशीला, वीर। उ०—अंबारा सूं झूठो क्रोध गाढ़ाक गनीमां आगै। मार्भी धर्क चाढ़ाक गनीमां मालकोट।—चावंडदांन महड़ू

गाढ़ामाक–सं०पु०—१ शौकीन, छैला. २ आर्यपुत्र। उ०—जठै नै जंवाइयां लसकर नीकळै। जठै नै गाढ़ामाक रो लसकर नीकळै।
—लो.गी.

गाढ़िम–वि० [सं० गाढ़िम] गंभीर, धैर्य्यवान। देखो 'गाढ़ौ'।
उ०—१ 'मालं' वीरम मंडळी, गाढ़िम गोत्र गंवाळ। तुड़ि तांणण 'चांडे' तणी, राउ चा उर रखवाळ।—राजरासो
उ०—२ गजसिघोत कमंध नर गाढ़िम, तत खिण माचवियो रिण-ताळ। दुवयण वयण काढ़िये दुग्रासूं, प्रिसण परां काढ़ी प्रतमाळ।—केसोदास गाडण

गाढ़ीलो, गाढ़ू, गाढ़ेराव, गाढ़ेल, गाढ़ैराव–वि०—धैर्यवान, गंभीर, देखो 'गाढ़ौ'। उ०—डाकी डाढ़ेराव गजां गनीमां भरंतो डाचा, गाढ़ेराव भूरो बाघ करंतो गंजार।—हुकमीचंद खिड़ियो

गाढ़ौ–वि० [सं० गाढ़] १ जो पानी की तरह तरल न हो, जो घनत्व लिये हुए हो, तरलता वाला. २ जिसके सूत परस्पर मिले हों, ठोस, मोटा. ३ घनिष्ट, गहरा, गूढ़। उ०—हरसा बीर मेरा रै, बैनड़ भाई री गाढ़ौ नेह। जलमी का रै जाया, पर घर की दूती रै आय तुड़ाइयो।
—लो.गी.
४ बहुत, अधिक। उ०—१ गाढ़ौ प्रसन्न रहै जस गायां, बाधारै ईजत वरदायां।—र.ज.प्र. उ०—२ रांणा रा धिन रावतां गाढ़ां आदर गाढ़। पायौ अकबर पांनड़ै, चित्रकोट अळ चाढ़।—बां.दा.
५ गहरा, गंभीर, धैर्य्यवान। उ०—कियां अड़प ठाडो करता सूं, मांटीपणा तणो सिर मोड़। रण गाढ़ौ ठाढ़ो रजपूती, ठांम-ठांम लाडो राठौड़।—बलू गोपाळदासोत रो गीत ६ दृढ़, मजबूत।
उ०—कमळ मुगट गाढ़ौ करै पीत पट बांध कर, भ्रात बळ हाथ दे लकुट भाळी।—बां.दा.

गाणी–सं०पु० [सं० गान] गाने की चीज, गायन, गीत।

गा'णौ–सं०पु०—खलिहान में भूसे से अनाज पृथक करने की क्रिया या भाव। अनाज के सूखे डंठलों में से दाने निकालने के लिये उसे बैलों द्वारा अथवा बैलों जुती गाड़ियों द्वारा रौंदने का कार्य।

गाणौ, गाबौ–क्रि०स०—१ ताल, शब्द के नियमानुसार शब्दोच्चारण करना. २ आलाप के साथ ध्वनि निकालना. ३ मधुर ध्वनि करना. ४ स्तुति करना. ५ वर्णन करना, विस्तारपूर्वक कहना।
उ०—प्रथम ब्रहम मभ्र बेद, छंद मारग बरसायो। खग अग पिंगळ नाग, नाग पिंगळ कर गायो।—र.ज.प्र.

गाणहार, हारौ (हारी), गाणियौ—वि०।
गवाणौ, गवाबौ, गवाड़णौ, गवाड़बौ, गवावणौ, गवावबौ—प्रे०रू०।
गावणौ, गावबौ—रू०भे०।
गाग्रोड़ौ, गायोड़ौ—भू०का०कृ०।
गाईजणौ, गाईजबौ, गायीजणौ, गायीजबौ—कर्म वा०।

गात–सं०पु० [सं० गात्र, प्रा० गात्त] शरीर, अंग, बदन।
उ०—सखी अमीणो साहिबो, मदन मनोहर गात। महाकाळ मूरत बणै, करण गयंदां घात।—बां.दा.

गातरियौ, गातरौ–सं०पु०(स्त्री०)१ शरीर पर वस्त्र लपेटने का एक प्रकार का ढंग जिसे प्राय: साधु लोग काम में लेते हैं। इसमें लपेटे जाने वाले वस्त्र के दोनों छोर एक-दूसरे पर आकर क्रास बनाते हुए पीठ की ओर गिर जाते हैं. २ वह वस्त्र जिसे इस प्रकार लपेटा जाय।

गातरौ–सं०पु०—१ कपाट में मजबूती के लिये बीच-बीच में लगाये गये डंडे. २ काष्ट या लोहे की बनी निश्रेणी के बीच बीच में लगे डंडे जिस पर पैर रख कर ऊपर चढ़ते हैं। उ०—बीजा बारै-बारै लड़ा कराया, बीच में रांढू रा गातरा कराइया सो हाथ तीन चौड़ा गातरा किया।
—ठाकुर जैतसी ऊदावत री बात

गाति—देखो 'गात' (रू.भे.) उ०—तठा उपरांति करिनै राजांन सिलांमति उवै चतुरंगी रायजादी क्रितीयां रो भुंबिखो मोतीग्रां री लड़ी हुवै तिणि भांति री ऊजळी गोरंगीग्रां ऊजळै गाति ऊजळै बावनै चंदण री खोळि कियां।—रा.सा.सं.

गातियौ—१ देखो गातरौ' (अल्पा०) २ जबड़े की हड्डी।

गाती–सं०स्त्री० [सं० गात्रिका] देखो 'गातरी' (रू.भे.)
उ०—आधा भादवा री आधी रात गई छै ताहरां काळी कांबळ री गाती मारि टोपी माथै मेल्हि जांघीयो पहिरि छुरो काढि कढ़ि बांधि अर सहर मांहे चोरी नुं चालीयो।—चौबोली
मुहा०—गाती मारणी—कमर के वस्त्र को कस कर लड़ने को उद्यत होना।

गातौ—१ देखो 'गातरौ' (रू.भे.) उ०—तद मूंज ऊंट दोयरी मंगायी नै जाडा-जाडा रांढू वटाया अरु बीच मैं हाथ रै आंतरै लकड़ी रा गाता दिया रसां बीच नै वरत री नीसरणी बणायी। गाता चोड़ै पेटै हाथ तीन कराया सु इण वात नूं गिंवार लोक कांई जांणै कै कंवरजी हाथियां रो तांगड़ करायो है।—द.दा.

गात्र—देखो 'गात' (रू.भे.) उ०—१ पदमिणि रखपाळ पाइदळ पाइक, हिळवळिया हलिया हसति। गमे-गमे मदगळित गुड़ंता, गात्र गिरोवर नाग गति।—वेलि. उ०—२ उत्तर आज स ऊजमी, पाळौ पड़ै विहांण। भाजै गात्र कुमारीग्रां, देखे मुगळ पठांण।—ढो.मा.

गात्रगुप्त–सं०पु० [सं०] लक्षणा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण का एक पुत्र।

गात्रवरण–सं०पु० [सं० गात्रवर्ण] स्वर-साधन की वह प्रणाली जिसमें सातों स्वरों में से प्रत्येक का उच्चारण तीन-तीन बार करते हैं।

गात्रसैल–सं०पु०यौ० [सं० गात्र+शैल] हाथी (डिं.नां.मा.)

गाथ–सं०पु० [सं० गात्र] १ देखो 'गात' (रू.भे.) उ०—गळियोड़ौ सब गाथ गजब कांधौ गळियोड़ौ। अमल खांग़ नै अजे बळै मूंडौ बळियोडौ—ऊ.का.

सं०स्त्री० [सं० गाथा] २ देखो 'गाथा'।

[सं० ग्रथ] ३ धन, दौलत।

[रा०] ४ यश (अ.मा.)

उ०—मही राखग गाथ रा अखियात रा गात मेर।—र.ज.प्र.

गाथा–सं०स्त्री० [सं०] १ वह श्लोक जिसमें स्वर का नियम न हो. २ स्तुति. ३ प्राचीन काल में होने वाली एक प्रकार की प्रसिद्ध रचना जिसमें लोगों के दान, यज्ञादि का वर्णन होता था। ४ कथा, वृतांत, हाल। उ०—रीधौ साथां रंगवां, जस गाथां जेहल्ल। भारांगी बाथां भरै, अथां दिये अपल्ल।—बां.दा.

५ पारसियों के धर्म ग्रंथ का एक भेद (मा.म.) ६ एक प्रकार का अर्द्ध-मात्रिक छंद जिसके पहले और तीसरे चरण में बारह-बारह तथा दूसरे और चौथे चरण में पन्द्रह-पन्द्रह मात्रायें होती हैं। इसके पहले, तीसरे, पाँचवें और सातवें गण में जगण नहीं होना चाहिये (चार मात्राओं के गण को समूह कहते हैं।) किन्तु छठे गण में जगण आवश्यक है. ७ यश (मि०—गाथ ४)

गाथौ—देखो गाथा' (६)

गाद–सं०पु०—वचन, शब्द। उ०—पाद तणौ परधांन गाद रौ सांप्रत गोटौ।—ऊ.का.

गादड़, **गादड़ियौ, गादड़ौ**–सं०पु०—गीदड़, सियार। उ०—गोड़ावण तिल्लोर, खेत झड़ घां लुक खावै। ओगै ओळौ लियां, आय गादड़ गरळावै।—दमदेव

कहा०—१ गादड़े आळा भाठा भिड़ाणा—फूट पैदा करना; परस्पर मतभेद उत्पन्न कर देना. २ गादड़ै कै मूंडै न्याव होणौ—साधारण व्यक्ति पर किसी बात का निर्णय छोड़ देना. ३ गादड़ै री मौत आवै जद गांव कांनी भाजै—सियार की जब मौत आती है तो वह गाँव की ओर भागता है। विनाशकाले विपरीत बुद्धि।

वि०—कायर, डरपोक, भीरु।

गादरणौ–सं०पु०—मंजरी, कोंपल।

गादरणौ, गादरबौ–क्रि०अ०—अंकुर जमना, अंकुर निकलना, उत्पन्न होना। उ०—अजहूं तरु पुहप न पल्लव अंकुर, थोड़ डाळ गादरित थिया। जिम सिणगार अकीधै मोहति, प्री आगमि जांणियै प्रिया।

—वेलि.

गादरित–वि० [अनु०] १ गद्गद्, प्रसन्न. २ युवावस्था के प्रारम्भ में शरीर का पुष्ट और सुडौल होने का भाव, गदगदाया हुआ, स्थूल।

गादह–सं०पु०—गधा, गर्दभ। उ०—साहिब म्हां का बाप कइ, छइ करहां कउ वग्ग। जे करहउ खोड़उ हुवइ, गादह दीजइ दग्ग।

—ढो.मा.

गादी–सं०स्त्री०—१ छोटा गद्दा. २ रूई या जूट से भरा मोटा गद्देदार बिछौना। उ०—घोड़ां नै तो घास घलावां, थांनै चूरी भात। गादी गिंडवा देवां बैसणां, घणी करां मनवार।

डूंगजी जवारजी री पड़

यौ०—गादी-गींडवौ।

३ वह कपड़ा जो घोड़े-ऊँट आदि की पीठ पर काठी या जीन आदि रखने के लिये डाला जाता है. ४ व्यवसायी आदि के बैठने का स्थान. ५ किसी बड़े अधिकारी या राजा का पद।

ज्यूं–महंत री गादी, राजा री गादी।

उ०—कुमार चूंडै बडा प्रसन्न रै प्रमांण पिता रौ संबंध करवाइ आप चीतोड़ री गादी छोडण रौ लेख करि मारवाड़ रै आधीन कीधौ।—बं.भा.

क्रि०प्र०—बैठणौ, राखणौ, लेणौ।

मुहा०—गादी माथै बैठणौ, गादी बैठणौ—सिंहासनारूढ़ होना।

यौ०—गादीनसीन, राजगादी।

६ गाय के थन।

गादीधर–सं०पु०—१ वह जो किसी सिद्ध पुरुष की गादी पर बैठा हो. २ राजा।

गादीनसीन–वि० [रा० गादी, फा० नशीन] सिंहासनारूढ़।

उ०—अणंदराव फाकड़ा रा बेटा मुकंदराव हमै दौलतरावजी रै खोळै गादीनसीन हुवा।—बां.दा. ख्यात

गादेल–सं०स्त्री०—रहँट के कंगूरेदार चक्र पर बीच में लगा हुआ लम्बा व मोटा काष्ठ का लट्ठा जिसके एक छोर पर बैठ कर रहँट चलाने के लिये बैल हाँके जाते हैं।

गादोतरौ–सं०पु० [सं० गोवधोतर या गाथोत्तर=प्रतिष्ठा से निकला हुआ अर्थात् कलङ्कित] १ गाँव के जमींदार, शासक या ग्राम-निवासियों से ऊब कर कोई जाति विशेष विद्रोह करती थी तब गाय के सिर की पत्थर की मूर्ति उस गांव की भूमि पर खड़ी करके वह जाति उस गाँव को छोड़ देती थी। उसके पश्चात् उस जाति का कोई व्यक्ति उस गाँव में प्रवेश नहीं करता था। इस क्रिया का नाम गादोतरौ है. २ भूमिदान करते समय उस भूमि की सरहद पर पत्थर लगाने की एक प्रकार की क्रिया। इस पत्थर पर गाय व बछड़े की मूर्ति अंकित होती थी। इसका तात्पर्य यह होता था कि भविष्य में यदि कोई उसे पुनः अपने अधिकार में करने की चेष्टा करेगा तो उसे गौहत्या का पाप लगेगा।

गादौ–सं०पु०—कीचड़।

कहा०—गादा मांय जांणीनै पड़ै तो फचड़का उड़ेज—कीचड़ में गिरने पर छींटे अवश्य उछलते हैं। जान-बूझ कर मूर्खता से कोई कार्य किया जायगा तो अवश्य परेशानी होगी।

गाध–सं०पु०—कुत्ता, श्वान (अ.मा.)

गाधनृपनंदण–सं०पु० [सं० गाधिनृपनंदन] विश्वामित्र।

गाधि—सं०पु० [सं०] विश्वामित्र के पिता का नाम जो कौशिक (कुशिक) राजा के पुत्र थे।

गाधिनंद, गाधिपुत्र—सं०पु०यौ० [सं०] विश्वामित्र।

गाधिपुर—सं०पु० [सं०] कान्यकुब्ज।

गाधिसुतंव—सं०पु०यौ०—विश्वामित्र।

गाधी—देखो 'गाधि' (रू.भे.)

गाधेय—सं०पु० [सं०] गाधि के पुत्र, विश्वामित्र।

गाधोतरौ—देखो 'गादोतरौ' (रू.भे.) उ०—गाधोतरा रोप छाड परा गया। पछै जाळोरी रौ गांव वाघरौ जठा सूं वाघरेचा श्रोसवाळ श्राय मिवांणै वसिया।—बां.दा. ख्यात

गाफल, गाफिल—वि० [श्र० गाफ़िल] बेखबर, असावधान।

उ०—डहक्योड़ा डोलै केई डोफा, गाफल जनम गमावै। राजी भेख मात्र नै राखै, सै'जां ही सुख पावै।—ऊ.का.

गाफिली—सं०स्त्री०—असावधानी, गफलत। उ०—रांम तुम्हारी गाफिली, ग्रहड़ी-ग्रहड़ी जोय। म्हारै चित में जांणजै, हित सूं अति दुख होय।—महाराजा जयसिंह आमेर रा धर्णी री वारता

गाबड़—सं०स्त्री०—गर्दन, ग्रीवा, गला (अ.मा.)

रू०भे०—गाबड़ी, गाबड़्।

गाबणी—देखो 'ग्याबणी' (रू.भे.)

गाबळ—देखो 'गाबड़'। उ०—जमजाळ कड़ी जरदाळ जड़ै, उतबंग'र गाबळ बांम अड़ै।—गो.रू.

गाबलियौ, गाबौ—देखो 'गाभौ' (रू.भे.)

गाभ—देखो 'गरभ' (रू.भे.) उ०—जिणि दीहे तिल्ली त्रिड़इ, हिरणी झालइ गाभ। तांह दिहां री गोरड़ी, पड़तउ झालइ आभ।—ढो.मा.

गाभौ—सं०पु० [सं० गर्भ, प्रा० गब्भ] १ पेट के अन्दर का हल्का भोजन. २ गर्भ।

[रा०] ३ वस्त्र, कपड़ा।

गाय—सं०स्त्री० [सं० गौ] सींग वाला एक सीधा-सादा मादा मवेशी जिसे लोग दूध व बछड़े के लिये पालते हैं। इसके नर को सांड या बैल कहते है।

पर्याय०—अंगना, अरजुनी, उसा, उश्रा, कपळा, कवळी, गऊ, तंबा, त्रंबा, दहवन, देवधन, धेन, नलंपिका, निलयका, माहा, माहेयी, रोहिणी, सींगाळी. सुरभी, सुरह, सुरै, सौरभेई, स्रंगणी।

मुहा०—१ गाय रा भेंस हेटै नै भेंस रा गाय हेटै करणा—इधर का उधर करना, गड़बड़ करना. २ गाय री तरह कांपणौ—बहुत भयभीत हो जाना. ३ गाय होणौ या अल्ला री गाय होणौ—बहुत सीधा होना।

कहा०—१ गाय घास सूं भायेली करै तो खावै कांई—गाय यदि घास से ही प्रेम करे तो फिर खाये क्या। निरन्तर प्रयोग या उपयोग में आकर खप जाने वाली वस्तुओं का मोह व्यर्थ है. २ गाय दूयनै गधा नै पावणी—गाय दुह कर गधों को पिलाना। अति कठिन परिश्रम से उपार्जन कर व्यर्थ में अपव्यय करना। उपार्जित धन ऐसे व्यक्तियों पर खर्च करना जिससे कुछ भी लाभ न हो. ३ गाय दू यनै गिंडकां आगै क्यूं ढोळणौ—देखो 'कहावत सं० २'. ४ गाय नै हळ में जोतणौ—गाय को बैल के स्थान पर हल में जोतना। निर्बल या अयोग्य व्यक्ति को कठिन काम सौंपना. ५ कोई गाय में न बळद में—न गाय जैसा और न बैल जैसा। निरर्थक एवं निकम्मे व्यक्ति के प्रति. ६ गाय रै भेंस कांई लागै—गाय और भेंस का परस्पर क्या संबंध? उनके प्रति जिनमें कोई परस्पर संबंध न हो. ७ गायां ऊछरगी, पोठा लारै छोडगी—गायें जंगल में चरने चली गई, पीछे केवल गोबर मात्र छोड़ गई। सज्जन व्यक्तियों के चले जाने एवं पीछे निकम्मे व्यक्तियों के रहने पर. ८ गायां तौ कण्यां री है, गुवाळिये रै तौ हाथ में गेडियौ है—गायें तो अपने-अपने स्वामी की हैं, ग्वाला जो दिन भर उन्हें चराता है, उसके हाथ में केवल लाठी ही है। किसी के द्वारा सौंपा हुआ धन अपनी संपत्ति नहीं होता। अपनी संपत्ति तो कठोर परिश्रम से ही प्राप्त की जा सकती है।

रू०भे०—गऊ, गाइ, गाव, गौ।

अल्पा०—गायड़ी, गावड़ी।

सं०पु०—२ बहुत सीधा-सादा मनुष्य।

गायक—सं०पु० [सं०] १ गाने वाला, गवैया। उ०—आगळि रितुराय मंडियौ अवसर, मंडप वन नीझरण मृदंग। पंचबांण नायक गायक पिक, वसुह रंग मेळगर विहंग।—वेलि.

२ ग्राहक। उ०—टेका कड़ियां बांध ढोवता घर पर आखी। फोगां हूंदी फसल गरीबां गायक लाखी।—दसदेव

गायकवाड़—सं०पु०—बड़ौदा राज्य के महाराजाओं की एक उपाधि।

गायकौ देखो 'गायक' (रू.भे.) उ०—यौ कुण चूड़लै री गायकौ जी म्हारौ, यौ कुण खरचैलौ दांम, राजींदा लाल चूड़ौ पहराव।

—लो.गी.

गायड़—वि०—१ गंभीर. २ बहादुर. ३ अभिमानी।

यौ०—गायड़गाडौ, गायड़मल।

सं०पु०—गर्व, अभिमान (मि० गाढ़)

गायड़मल—सं०पु०—लोक गीतों में प्रचुरता से प्रयुक्त होने वाला शब्द जो प्रायः नायक के लिए ही आता है। उ०—गायड़मल धीमा हालौ जी, फूटरमल धीमा हालौ जी।—लो.गी.

गायटौ, गायठौ—देखो 'गाग्रठौ' (रू.भे.)

गायण—सं०पु० [सं० गायन] १ गाना, गीत। उ०—वड कळस बंदावै गायण गावै विरदावै कह क्रीतां। ईखै असवारी नर अरु नारी पुरी सिंगारी कर प्रीतां।—र.रू.

सं०पु० स्त्री०—२ गायन करने वाला, गायक। उ०—सु कांम का पंचबांण छै। हहै नाइक हुआ। कोकिला ही गायण हुई। प्रथ्वी पै रंगभौमि हुई।—वेलि. टी.

३ वेश्या। उ०—सो प्रवीण गायण सकळ उछरत उछब आखि।—सू.प्र.

गायणी–सं०स्त्री०—१ गाने वाली, गायक. २ वेश्या। उ०—१ गायणी नृत संगीत रंग करत उरवसी रीत।—सू.प्र. उ०—२ लई नैर ग्रोछाड़ियौ हेम तारां। हुवा भांण उद्दोत जांणे हजारां। सफै गायणी सोळ सिंगार साजा। बजावै छ्है तीस ग्राणंद वाजा।—सू.प्र.

गायणेचा–सं०स्त्री०—राठौड़ वंश की एक उपशाखा।

गायणौ–सं०पु०—विश्नोई जाति का गुरु।

गायत्री–सं०स्त्री० [सं० गायत्रिन्] १ एक वैदिक छंद का नाम। यह छंद तीन चरणों का होता है और प्रत्येक चरण में आठ-आठ अक्षर होते हैं। इसके आर्षी, दैवी, आसुरी, प्रजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्ची और ब्राह्मी आठ भेद हैं. २ एक पवित्र मंत्र जिसे सावित्री भी कहते हैं।

वि०वि०—ब्रह्मा की स्त्री का नाम गायत्री था। गायत्री मंत्र वेद का सबसे प्रचलित मन्त्र और गायत्री छंद सबसे प्रसिद्ध छंद है। इसको वेद माता भी कहा गया है। यह मन्त्र सबसे अधिक पुनीत अथवा पावन माना गया है। द्विजों में यज्ञोपवीत के समय वेदारंभ संस्कार करते हुए आचार्य इस मन्त्र का उपदेश ब्रह्मचारी को करता है। प्रत्येक ब्राह्मण के लिए त्रिसंध्या में इसका जप करना अनिवार्य माना गया है। मनु का कथन है कि प्रजापति ने आकार, उकार और मकार वर्णों, भूः भुवः और स्वः तीन व्याहृतियों तथा सावित्री मन्त्र के तीनों पादों को ऋक्, यजः और सामवेद से यथाक्रम निकाला है। गायत्री मन्त्र इस प्रकार है—ॐ भूः भुवः स्वः तत्सवितुः वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्। विद्वानों ने इसका भिन्न-भिन्न अर्थ किया है। मन्त्र का मौलिक आशय इस प्रकार है—'हम उस परम तेजोमय सूर्य (सविता) के उस तेज की उपासना करते हैं कि वह हमारे मन और बुद्धि को प्रकाशमान करे।'

३ दुर्गा. ४ गंगा. ५ गाय।

गायत्रीईस–सं०पु०यौ०—ईश्वर, ब्रह्मा (डिं.को.)

गायन—देखो 'गायण' (रू.भे.)

गायब–वि० [अ० ग़ायब] लुप्त, अंतर्धान।

क्रि०प्र०—करणौ, होणौ।

मुहा०—गायब करणौ—चुरा लेना, उड़ा लेना।

२ गाने वाला, गायक। उ०—कवि नव नव कायब कथै, गायब तांन सगांन। वाजित्रा लोभै भ्रमर, नर सोभै दीवांन।—रा.रू.

गायबिट–सं०पु०यौ० [सं० गोविट] गाय का गोबर।

गायबौ—१ देखो 'गायब' (२) (रू.भे.)

२ गाना, गायन।

गायीजणौ, गायीजबौ—देखो 'गाईजणौ' (रू.भे.) उ०—स्री करनी जी नूं आ चिरजा स्रीमुख सूं वणाय मालम करी। तिका अद्याप रातीजुगै में गायीजै है।—द.दा.

गायोड़ौ–भू०का०कृ०—गाया हुआ। (स्त्री० गायोड़ी)

गार–सं०स्त्री० [सं० गाल] १ गाय, भैंस, बैल आदि के गोबर के साथ मिली हुई चिकनी मिट्टी का सम्मिलित लेप जो घरों के कच्चे आंगन व दीवारों आदि को लीपने के कार्य में लिया जाता है. २ मिट्टी, रेत ३ कीचड़, पंक। उ०—सांवण आयउ साहिबा, पगइ विलूंबी गार। अच्छ विलूंबी बेलड़यां, नरां विलूंबी नार।—ढो.मा.

४ दलदल। उ०—कांकर करहो गार गज, थळ हैवर थाकंत। भिड़ूं ठौड़ हेकण तरह, चंगो धवळ चालंत।—बां.दा.

५ दीवार की चुनाई करने के कार्य में पत्थरों को एक दूसरे पर जोड़ने के लिए लगाया जाने वाला चिकनी गीली मिट्टी का लेप।

(मि० 'गारौ'—रू.भे.)

सं०पु० [अ० गार] ६ गहरा गड्ढा. ७ गुफा, कन्दरा।

गारक–सं०पु० [सं० गैरिक] सुवर्ण, सोना (डिं.को.)

गारगी–सं०स्त्री० [सं० गार्गी] १ एक अत्यन्त ब्रह्मनिष्ठ तथा विदुषी वैदिक स्त्री का नाम। जनक की सभा में इन्होंने याज्ञवल्क्य मुनि से शास्त्रार्थ किया था। यह वचक्नु ऋषि की कन्या थी. २ दुर्गा।

गारग्य–सं०पु० [सं० गार्ग्य] १ महर्षि गर्ग के पुत्र प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार तथा वैय्याकरण जिनका उल्लेख यास्क तथा पाणिनि ने किया है. २ गर्ग गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

गारड़ब, गारड़ी, गारड़ू—देखो 'गारडू' (रू.भे.)

गारट–सं०पु० [अ० ग़ारत] समूह। उ०—खग झपट बे थपट छट खळखट विकट अविग्रट विढ़ै रिणवट। पड़ै घट कटि उलट पालट गारट समरट पहट गाहट विचत्र खंड खट तणां दहवट।

—ल.पिं.

गारड–सं०पु० [अं० गॉर्ड] १ पहरेदार, रक्षक. २ रेल का वह प्रधान कर्मचारी जो रेलगाड़ी की रक्षा एवं देख-रेख के लिये उत्तरदायी हो और पीछे एक निर्धारित भाग (ब्रेक) में रहा करता हो।

गारडब, गारडी, गारडू–सं०पु० [सं० गारुडिन्] १ सांपों का विष उतारने वाला। उ०—विषहर जे डंकिया विजावत, दोरा काढ़ै निस दिवस। ले रांण गारडवां लसकर, वापर पाली लगे विस।

—जगरांमसिंह उदावत नींबाज रौ गीत

२ सँपेरा। उ०—१ गोपीनाथ रा हाथ आया गड्डदे, अही गारडी जांण छांटघौ अड्डदे। अही मूंठ वाजीन जेही उपाडे, रमे गारडी जेम काळौ रमाडे।—ना.द. उ०—२ वदन्न वर्ण कंध वांकै विनांणै। जळै गारडू छेड़ियौ नाग जांणै।—रा.रू.

गारत–वि० [अ० ग़ारत] नष्ट, बरबाद। उ०—१ गारत असुरां दळ किया गाह, मारिया मीर बहु खेत माह।—शि.सु.रू.

उ०—२ अरु रांणा वरसल नरबद कांम आया, नै मोयलां रौ साथ गारत हुवौ।—द.दा.

मुहा०—गारत करणौ—नष्ट करना, तहस-नहस करना।

गारद–सं०स्त्री० [अं० गॉर्ड] १ सिपाहियों का एक निर्धारित संख्या का समूह दल जो एक अफसर के अधीन हो। सेना की टुकड़ी।

उ०—दोय सौ तोपां बाहर हजार गारदां इब्राहिम खां तालुकै हुती।

२ पहरा, चौकी। —बां.दा. ख्यात

वि०—गारवी।

गारब–सं०पु० [सं० गर्व] गर्व, घमंड, अभिमान।

गारहपत्याग्नि–सं०स्त्री० [सं० गार्हपत्याग्नि] छः प्रकार की अग्नियों में से पहली और प्रधान अग्नि।

गाराकान्हड़ो–सं०पु०—संपूर्ण जाति का एक राग जो संध्या के उपरांत गाया जाता है।

गारि—देखो 'गार' (रू.भे.) उ०—१ पावस मास प्रगट्टियउ, पगइ विलंबइ गारि। धण की ओही वीणती, पावस पंथ निवारि।

—ढो.मा.

उ०—२ कसतूरी गारि कपूर ईंट करि, नवै विहांणै नवी परि।

—वेलि.

गारिया–सं०स्त्री०—रामावत साधुओं की एक शाखा विशेष (मा.म.)

गारी—देखो 'गार' (रू.भे.)

गारुड़–सं०पु० [सं० गरुड] १ गरुड़ पक्षी. २ सोना, स्वर्ण (ह नां., अ.मा.) ३ गुरुड़पुराण. ४ पुरुषों की बहत्तर कलाओं में से एक। वि०—महान, बड़ा। उ०—साखां खट तीसां सिरै, भाखां गारुड़ भाग। कुण आखा नाखै कमळ, लाखा ताखा नाग।—सूरजमल मीसण

गारुड़ि, गारुड़ी—देखो 'गारडी' (रू.भे.) उ०—तहां सांपणी नहीं संचरै, डहकि दोय डंक न धारै। प्रथम नहीं चढ़ै जहर, मंत्र गारुड़ी न मारै।

—ह पु.वा.

गारुतमत–सं०पु० [सं० गारुत्मत्] १ मरकत मणि. २ गरुड़देव का अस्त्र।

गारो–सं०पु० [सं० गाल] ईंट, पत्थर की चुनाई के काम आने वाला एक प्रकार का लसदार लेप जो मिट्टी, चूने अथवा सुर्खी आदि को पानी में सान कर बनाया जाता है।

कहा०—१ गारे का नगारा और घर का बजावा वाळा—मिट्टी के नगारे और घर के बजाने वाले तो फिर डर किसका अर्थात् खूब बजाना चाहिए. २ गारे ना गड़्या कल गलवाना है—मिट्टी के बने हुए बर्तन अधिक नहीं चलते। देह की नश्वरता के प्रति।

गाल–सं०पु०—१ आंखों के नीचे का मुँह के दोनों ओर ठुड्डी और कनपटी के बीच का भाग जो बहुत कोमल होता है। कपोल।

पर्याय०—कपोल, लकवण।

मुहा०—१ गाल तोड़णो—जबरदस्ती चुम्बन कर लेना.

२ गाल पिचकणा—कमजोर होना, कृशगात होना. ३ गाल फूलणा—मोटा-ताजा होना. ४ गाल बजाणा—बढ़-बढ़ कर बातें मारना. ५ गालां में घोड़ा दौड़णा—बिना आय का फिक्र किए खर्चे की बढ़ा चढ़ा कर बातें मारना, विभिन्न स्वादु पदार्थों के खाने की तीव्र इच्छा होना।

कहा०—१ गाल थाप आंतरो कितरो'क—गाल और थप्पड़ के बीच फासला कितना ? सन्निकटता के लिए कही गई कहावत.

२ थाप देनै गाल रातो करणो—थप्पड़ लगा कर मुँह लाल रखना; जैसे तैसे इज्जत को बचाए रखना।

(रू०भे०–गल्ल)

(अल्पा०–गालड़ियो, गालड़ो)

गाळ–सं०स्त्री० [सं० गालि] १ कलंक। उ०—१ असजे मो बड़ ओधणी, अरियां समुख उताळ। घर दिस पाछो ओसतां, लागै मो कुळ गाळ।—अज्ञात उ०—२ कहै कंथ नूं दुहूं कुळ ऊजळी कांमणी, बळां फौजां भिळै खाग वागै। नानती तिकां नूं जिके भड़ नीसरै, लारला वंस नूं गाळ लागै।—वीर-प्रशंसा

२ गाली, अपशब्द।

क्रि०प्र०—काढ़णी, देणी, लागणी।

मुहा०—१ गाळ खाणी—गाली सुनना. २ गाळियां री झड़ बांधणी—बहुत गालियां देना, लगातार गालियां देना. ३ गाळ लागणी—गाली का सच्चा होना, शाप पड़ना।

कहा०—१ गोत री गाळ भैंस नैं भी खारी लागै—जाति संबंधी गाली भैंस को भी बुरी लगती है। जाति संबंधी गाली की निंदा। जाति संबंधी गाली नही देनी चाहिए. २ गाळ्यां सूं किसा गूमड़ा ऊठै (हुवै)—गालियों से फोड़े नहीं होते। गालियों का कोई प्रभाव नहीं होता।

३ सगे-संबंधियों की स्त्रियों द्वारा परस्पर पुरुषों या स्त्रियों को संबोधित कर गाये जाने वाले वे गीत जिसमें गायिकायें व्यंग्य, ताने या दिल्लगी स्वरूप संबोधित व्यक्ति की ओर कस कर गालियों की बौछार करती हैं। उ०—गाळ लुगायां गावही, नर मुख उचत न गाळ। अमल गाळ मनवार नर, का सुभ बचन उगाळ।—बां.दा.

क्रि०प्र०—गावणी।

४ मध्य, बीच।

वि०वि०—इस शब्द का प्रयोग प्रायः पहाड़ों के मध्य की तंग घाटी या ऊँचे-ऊँचे टीबे या ऊँचे किनारों के मध्य के लंबे रास्ते के लिए होता है।

उ०—एकलिंगजी रा देहुरा री बेउ तरफ भाखरां री गाळ छै।

—नैणसी

[सं० गल] ५ जहर, विष. ६ वर्षा के उपरांत प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व दिखने वाले बादल. ७ द्रव पदार्थ, घोल. ८ संहार, नाश. ९ देखो 'गाळो' (रू.भे.) १० सिंचाई के लिए खेत तक पानी पहुँचाने वाली नाली में उसकी मजबूती के लिए बिछाए जाने वाला चिकनी मिट्टी का घोल।

[सं० काल] ११ समय। उ०—अकबर लेख प्रमांणे, तहवर सहत राज लोभांणे। आवी चित अचीती, विणसण गाळ बुद्धि विपरीती।

—रा.रू.

१२ छेद, बड़ा सूराख। उ०—नाथ सुत बांधिया चाल भुज नीमजै, जुड़ण जमजाळ लंकाळ जूटै। जोध किरमाळ गहि ढाल ओरै जठी, तठी पड़ि गाळ भुरजाळ तूटै।—अनोपसिंह सांदू

वि०—संहार करने वाला, नाश करने वाला। उ०—तीन रुतां तावड़ो टाळै, भळै किसी रैंगी कसर। मिनख है गुण गाळ अठै रा, मत करज्यो ओगण असर।—दसदेव

गाळक—वि०—गलाने या पिघलाने वाला।

गाळगर—वि०—संहारक, नाश करने वाला। उ०—सुपातां पाळगर जोग पारथ समर, केवियां गाळगर वंस रा दिनंकर। वसू साधार भोख लागै कीलवर, अभंग पारथ अत इळा राजौ अमर।

—विसनदास बारहठ

गालड़ियौ, गालड़ौ—देखो 'गाल' (अल्पा०) उ०—मूछां गालड़िया सेडे में भरिया, ऊबासा लेवै मावा ऊतरिया।—ऊ.का.

गाळण—सं०स्त्री०—लोहा पिघलाने या तपाने की भट्टी (लुहार)

वि०—गलाने वाला, पिघलाने वाला। उ०—दळ दांणव निरदळण अब्ब रांमण चो गाळण।—जग्गौ खिड़ियौ

गाळणौ, गाळबौ—क्रि०स०—१ गलाना (रू.भे.) उ०—मज्जन बांधै पाळ सिर, सीसा छकियां गाळ। दुरजण फोड़ै गाळ दे, प्रीत सरोवर पाळ।—बां.दा.

२ नष्ट करना। उ०—गरब गाळण तणी ठौड़ अब गाळियौ। कुळी खट तीस धिन 'पदम' कहियौ।—द.दा.

गाळणहार, हारौ (हारी), गाळणियौ—वि०।

गाळिओड़ौ, गाळियोड़ौ, गाळयोड़ौ—भू०का०कृ०।

गाळीजणौ, गाळीजबौ—कर्म वा०।

गळाणौ, गळाबौ—प्रे०रू०।

गळणौ—अक रू०।

गालफबार—सं०पु०—एक प्रकार के कपाट जो अर्द्धचंद्राकार दरवाजे में लगाए जाते हैं।

गाळबौ—सं०पु०—अभिमान, गर्व, घमंड। उ०—मोहरै चढ़ियां मयंद रै. भंचक जाय भड़ाक। गंवर भूलै गाळबौ, चीसै चढ़ चित चाक।

— बां.दा.

गालमसूरी, गालमसूरौ—सं०पु०—गले के नीचे लगाने का छोटा गोल मुलायम तकिया, गलतकिया। उ०—मचली रै बेभ वणाय, दांवण घलावौ मखतूल री। सूवा वरणी सोड़ भराय, गालमसूरा गादी-गोंडवा।—लो गी.

गाळमौ—वि०—गला हुआ, तरल।

सं०पु०—गला हुआ अफीम, अफीम का रस। उ०—धीरा धीरा ठाकुरां, इसी उतावळ काय। लीजै खोबां गाळमा, जमी कठै धुस जाय।—वी.स.

गालरकोटं, गालरगोटं, गालरपोटं—वि०—१ अनाज की फसल की वह अवस्था जिसमें उनके ऊपर की बाल या सिट्टा निकलने में मामूली देर हो और पौधा पूर्ण युवा अवस्था में हो. २ पूर्ण युवा अवस्था, यौवनोन्मुखी।

गालव—सं०पु० [सं०] एक प्रसिद्ध ऋषि जो विश्वामित्र के प्रिय शिष्य थे।

गाला—सं०पु०—१ एक वृक्ष विशेष. २ एक औषधि विशेष जिसे लोध भी कहते हैं।

गाळाबंध—सं०पु०—रस्सी का एक प्रकार का गले का बंधन।

उ०—साझे मेछ सुजड़ जस धरिये, कळकळ कोप किये कमळ। गाळाबंध महल नह घातै, गुण घातै पतसाह गळ।

—महारांणा सांगा री गीत

गाळि—१ देखो 'गाळी' (रू.भे.) उ०—१ रति रयण सुदि नर नारि रांमति गाळि प्रमदति गावही। मुख गांन दिन निस स्वांम मंगळ वैण चंग वजावही।—रा.रू.

गालिब—सं०पु०—उर्दू के एक प्रसिद्ध शायर।

वि०—१ जीतने वाला, विजयी. २ समर्थ, बलवान।

उ०—नर जिण सिर गालिब नहीं, दुममण रा सौदाब। विण पड़ियां ही 'वांकला', सपड़ियां रा राव।—बां.दा.

गाळियोड़ौ—भू०का०कृ०—गलाया हुआ। (स्त्री० 'गाळियोड़ी)

गाळी—१ देखो 'गाळ' (१, २ ३) उ०—तेगां बळ गज सिर तोड़ण मांनै, गाळि पीठि पग मोड़ण।—वं.भा.

२ कानों के आभूषण (टोटी) का पिछला गोल भाग.

३ चमड़े की वह रस्सी जो घोड़े की रकाब को ऊगटे (देखो 'ऊगटौ') से जोड़ती है

गाळीगलोज, गाळीगलौज—सं०पु०यौ०—१ परस्पर गालियों का आदान-प्रदान, दुर्वचन।

गालीचौ—देखो 'गलीचौ' (रू.भे.) उ०—तेल्यां कै पिनारां कै दुसाला ओढ़बानै। गालीचा झरोखां में विछात्यां पोढ़बानै।

— शि.वं.

गाळीजणौ, गाळीजबौ—क्रि० कर्म वा० —गलाया जाना।

गाळौ—सं०पु०—१ गले का बंधन, पाश.

२ देखो 'गाळ' (११) (रू.भे.) उ०—ताळा तोड़ करै मूं काळा, गाळा घालै गूढ़। भाळौ नैणां बाळा भोळा, माळा फेरै मूढ़।

—ऊ.का.

३ ढरकी के मध्य का रिक्त स्थान या गड्ढा जिसमें जुलाहे नरी रख कर कपड़ा बुनते हैं. ४ देखो 'गारौ' (रू.भे.) (क्षेत्रीय)

५ घोड़े की टांग में सुम व टखने के मध्य का भाग। उ०—रेसम री बागडोरां सूं आण हाजर कीजै छै। किसाहेक घोड़ा छै? बे पख भला, ऊँचा अललला, कटोरानखा, आरसी सारीखा। तिअंगळ गाळा, मुठिया बीलफळा।—रा.सा.सं.

[सं० गाल] ६ चक्की के ऊपर का वह गोल सूराख जिसमें पीसने के लिए ऊपर से अनाज डाला जाता है अथवा इस छेद में एक बार में डाला जाने वाला अनाज. [सं० गाल] ७ निवाला, ग्रास, कौर। उ०—कही गजदंतां सहित सुंडादंड सूना करी दीठा दोयणां रै सोणित भद्रकाळी रो खप्पर भराइ वीर बैताळां नूं गूद रा गाळा जीमाइ।—वं.भा.

गावंत्री—देखो 'गायत्री' (रू.भे.)

गाव-सं०स्त्री० [सं० गो] १ गौ।

[फा० गाव, सं० ग्राव] २ पर्वत (अ.मा.)

गावकुस-सं०पु०यौ० [सं० ग्रीवाङ्कुश] लगाम (डिं.को.)

गावकोहान-सं०पु० [फा०] वह घोड़ा जिसकी पीठ पर बैल की तरह कूबड़ निकला हो (अशुभ, शा.हो.)

गावड़-सं०पु०—१ गला, गर्दन. २ ग्वाला, गोप।

गावड़ियौ-सं०पु० [सं०] गायों में रहने वाला बैल। उ०—भूसर भार न झल्लही, गोधा **गावड़ियांह**। इम जस भार न ऊपड़ै, मोलां मावड़ियांह।—बां.दा.

कहा०—बेटौ मावड़ियौ नै गोधौ गावड़ियौ—स्त्री-स्वभाव वाले (स्त्रैण) व्यक्ति की निंदा।

गावड़ी-सं०स्त्री० [सं० गो] गाय (अल्पा०)

गावची-सं०स्त्री०—कलाई पर धारण करने का एक आभूषण।

गावजबांन-सं०स्त्री० [फा०] एक बूटी जो फारश देश के गीलान प्रदेश में होती है।

गावटौ—देखो 'गाग्रठौ' (रू.भे.)

गावण—देखो 'गायण' (रू.भे.) उ०—दारा दुद्दिन दुति दुगणित वरसाई, सावण श्रावण में **गावण** सरसाई।— ऊ.का.

गावणौ—१ देखो 'गाणौ' (रू.भे.) २ गायन, गाना। उ०—गाजै घण सुण **गावणौ**, प्याला भर मद पाव। भूलै रेसम रंग झड़, झोटा दे'र झुलाव।—र.रा.

गावणौ, गावबौ—देखो 'गाणौ' (रू.भे.) उ०—दुज जळ मांभळ सांपड़ै, अरुण उदै री बार। गावै कै दातार गुण, कै गावै किरतार।—बां.दा.

मुहा०—१ गावणौ अर रोवणौ सब जांणै—गाना और रोना सभी व्यक्ति जानते हैं. २ गावणा को आवै नी, गावणा रौ भाई आवै है—गाना तो नहीं आता है परन्तु उसका भाई अर्थात् रोना आता है। रोनी सूरत वाले के प्रति. ३ गावणौ अर रोवणौ कुण नी जांणै—देखो मुहा० (१)

कहा०—गावता डूम को कांई नी बिगड़ै—किसी कार्य में अभ्यस्त व्यक्ति को उस कार्य को करने में अधिक थकान मालूम नहीं होती.

गावणहार, **हारौ** (**हारी**), **गावणियौ**—वि०।

गाणौ, **गाबौ**—रू०भे०।

गाविग्रोड़ौ, **गावियोड़ौ**, **गाव्योड़ौ**—भू०का०कृ०।

गावीजणौ, **गावीजबौ**—कर्म वा०।

गा'वणौ, **गा'वबौ**—देखो 'गाहणौ' (रू.भे.)

गावतकियौ-सं०पु० [फा०] बड़ा गोल तकिया जो फर्श पर बैठते समय कमर के सहारे के लिये लगाया जाता है।

उ०—तिसीहीज बिछायत ऊपरां **गावतकिया**, बगलतकिया, गींदवा, बादेला, पास्वा, मसंद ऊपरै पड़िया छै।

—जगदेव पंवार री वात

गावत्रि, **गावत्री**-सं०स्त्री०—१ गाय। उ०—**गावत्रि** हेम तुरी गज ग्रांम।—रांमरासौ।

२ देखो 'गायत्री' (रू.भे.) उ०—**गावत्री** प्रयाग अड़सट्ठि गंग।

—रांमरासौ

गावसुम्मौ-सं०पु०—वह घोड़ा जिसका सुम फटा हो (अशुभ)

गावाळणौ-सं०पु० (स्त्री० गावाळण, गावाळणी) १ गायों के चराने तथा देख-रेख करने वाला ग्वाला. २ रक्षक।

गावाळणौ, **गावाळबौ**-क्रि०स०—१ गायों की रक्षा करना, गायों को चराना. २ देखो 'गवाड़णौ'. ३ रक्षा करना।

उ०—पत राखे द्रोपदी, प्रभु बिरदां प्रतपाळे। ब्रह्म पत राहवी, वेद च्यारे ही **गावाळे**।—जग्गौ खिड़ियौ

गाविन्त्र, **गाविन्त्री**—देखो 'गायत्री' (रू.भे.)

गावीजणौ, **गावीजबौ**—देखो 'गाईजणौ' (रू.भे.)

उ०—गढ़ची गांगौ **गाविजै**, स्यांम न मेल्है साथ। ओढ़ण अनिकारां नरां, हालां रा पण हाथ।—हा.झा.

गावीजियोड़ौ-भू०का०कृ०—गाया गया हुआ। (स्त्री० गावीजियोड़ी)

गास-सं०पु० [सं० ग्रास] मुँह में चबाने हेतु एक ही बार में रखी जाने वाली खाने की वस्तु, कौर, निवाला, ग्रास। (अल्पा०—गासियौ)

गासमारी—सं०स्त्री०— देखो 'घासमारी' (रू.भे.)

गासियौ—देखो 'गास' (अल्पा०) उ०—बैनड भाई जीमां साथ। जांमण की ये जाई, बिच बिच बदलां ये बाल्हा **गासिया**।—लो.गी.

गाहक—देखो 'गाहक' (रू.भे.)

गाह-सं०पु०—१ मकान, घर। उ०—बीजा गामां बाहरू, नींदांणौ घर नाह। छोनगियां धण तेड़वै, गांन मंडाड़ै **गाह**।—बी.स.

२ रक्षक। उ०—नमो रघुनाथ सधीर समाथ, गणां गज **गाह** दसानन दाह।—र.ज.प्र.

३ विध्वंश, नाश। उ०—धरी खरी सरीत निबाही बाज फूल धारां गोळकूंडे रीत चूंडे अरी करे **गाह**।—बदरीदास खिड़ियौ

सं०स्त्री०—४ गाथा, कथा। उ०—माजी मांनै वेद मत, सुणै सदा सुर गाह। सती आठमी सापरत, दसमी स्री दुरगाह।—बां.दा.

गाहक-सं०पु० [सं० ग्राहक] १ लेने वाला, खरीदने वाला, खरीददार।

उ०—नर तेथ निमांणा निलजी नारी, अकबर **गाहक** बट अबट। चोहटै तिण जाय'र चीतोड़ो, बेचै किम रजपूत बट।

प्रथ्वीराज राठौड़

२ चाहने वाला, कद्र करने वाला, इच्छुक, अभिलाषी।

गाहकताई-सं०स्त्री० [सं० ग्राहकता] कदरदानी, चाह।

गाहकी-सं०स्त्री०— बिक्री।

सं०पु०—ग्राहक, खरीददार। उ०— बाप बसाया बैर जे, लेवै निडर निराट। बेटा मिर रा **गाहकी**, बळिया जोवै बाट।—बी स

गाहड़—१ देखो 'गायड़' (रू.भे.) उ०— आवध सझिया थका चौक पधारै छै सु किण भात रा छै—काल्ही रौ कळम सतो रौ नाळे'र,

'''गाहड़ रा गाडा, फौज रा लाडा ।—रा.सा.सं.

सं०स्त्री० [सं० गाहु] २ मान, प्रतिष्ठा, मर्यादा । उ०—दत क्या-वर दौढ़ा सदा, प्रथमी पर परमार । श्रा गाहड़ अमरांण री, साबत राखै सुप्यार ।—पा.प्र.

गाहड़मल, गाहड़मल्ल—देखो 'गायड़मल' (रू.भे.)

गाहटणौ, गाहटबौ—देखो 'गाहणौ' (रू.भे.) उ०—रिण गाहटतै रांम खळां रिण, थिर निज चरण स मेढ़ि थिया ।—वेलि.

गाहटियोड़ौ—देखो 'गाहियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० गाहटियोड़ी)

गाहटौ, गाहठौ—देखो 'गाग्रठौ' (रू.भे.)

गाहण–सं०पु० [सं० गाह] १ युद्ध. २ देखो 'गाग्रठौ' (रू.भे.)

वि०—संहार करने वाला, संहारक । उ०—अग्रज रांमचंद्र मन उज्जळ, खिच्चीराज अनुज गाहण खळ ।—वं.भा.

गाहणी–सं०स्त्री०—१ गाने का व्यवसाय करने वाली, गायिका. २ ढोली जाति की स्त्री. ३ गाहा (आर्या) छंद का एक भेद जिसके प्रथम व तृतीय चरण में बारह-बारह तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में अठारह-अठारह मात्रायें होती हैं ।

गाहणौ–सं०पु०—संहारक । उ०—गोळ भर सबळ नर प्रगट अर गाहणा ।—पदमां सांदू

गाहणौ, गाहबौ–क्रि०स० [सं० गाह] १ संहार करना, नष्ट करना । उ०—मुंह न दियै पर मारियै, केहर कठण प्रबंध । भूखी थाहर में सुए, कै गाहै गज गंध ।—बां.दा. २ डूब कर थाह लेना. ३ मथना । उ०—जिणि यमुना जळ गाहीउं, जिणि नाथीउं भुयंग ।—कां.दे.प्र.

४ लूटना । उ०—गाहै सोदे ग्राहकां, ढाहै जे गज ढल्ल । लाहो लूटै वांणियौं, श्रा है सांची गल्ल ।—बां.दा.

५ खलिहान में अनाज के दानों को पृथक करने के लिये अनाज के डंठलों को कुचलना. ६ दबाना । उ०—कंकांणी चंपै चरण, गीधांणी सिर गाह । मो बिण सूतौ सेज री, रीत न छंडै नाह ।—वी.स.

७ ग्रहण करना, पकड़ना. ८ पार करना, जाना । उ०—गोळू गायां ले गांमां गळ गाहै, दुखिया सुखिया मिळ दोनूं दळ दाहै ।—ऊ.का.

गाहणहार, हारौ (हारी), गाहणियौ—वि० ।

गाहिग्रोड़ौ, गाहियोड़ौ, गाह्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गाहीजणौ, गाहीजबौ—कर्म वा० ।

गाहा—देखो 'गाथा' (रू.भे.) उ०—मारवणी इम वीनवइ, धनि श्राजूणी राति । गाहा-गूढ़ा-गीत-गुण, कहिका नवली वाति ।—ढो.मा.

गाहचोसर–सं०पु०—सावक अडल गीत (डिंगल छंद) का एक ही ढाला । (यह आर्याछंद का ही नाम है । वि०वि०—देखो 'गाथा' ६)

गाहिड़—१ देखो 'गाहड़' (रू.भे.) २ देखो 'गायड़' (रू.भे.) उ०—गौरव गायां रा गाहिड़ रा गाडा ।—ऊ.का.

गाहिड़मल—देखो 'गायड़मल' (रू.भे.)

गाहियोड़ौ–भू०का०कृ०—गाहा हुआ, 'गाहणौ' का भू.का.कृ. । (स्त्री० गाहियोड़ी)

गाहू–सं०पु०—५४ मात्रा का एक छंद विशेष जिसके प्रथम व तृतीय चरण में बारह-बारह मात्रायें तथा द्वितीय व चतुर्थ चरण में पन्द्रह-पन्द्रह मात्रायें होती हैं ।

गाहेणि, गाहेणी–सं०पु०—गाथा (आर्या) का एक भेद जिसके प्रथम एवं तृतीय चरण में बारह-बारह मात्रायें तथा द्वितीय व चतुर्थ चरण में बीस-बीस मात्रायें होती हैं ।

गाहौ—देखो 'गाथा' (६)

गिंजौ—देखो 'गंजौ' (रू.भे.)

गिंडक—देखो 'गंडक' (रू.भे.) (अल्पा०—गिंडकड़ौ)

गिंदड़ी–सं०स्त्री०—गंदगी । उ०—लावौ है दिन चार छूट जासी या गिंदड़ी । कहै दास सगरांम जितै साजी है जिंदड़ी ।—सगरांमदास

गिंदणौ–वि०—दुर्गन्ध देने वाला, बदबूदार ।

गिंदणौ, गिंदबौ–क्रि०अ० [सं० गंधन] बदबू देना ।

गिंदणहार, हारौ (हारी), गिंदणियौ वि० ।

गिंदाणौ, गिंदाबौ, गिंदावणौ, गिंदावबौ—रू०भे० ।

गिंदिग्रोड़ौ, गिंदियोड़ौ, गिंद्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गिंदीजणौ गिंदीजबौ—भाव वा० ।

गिंदफड़ सं०पु० [सं० गंधस्फट] देखो 'गदफड़' (रू.भे.)

गिंदाणौ, गिंदाबौ–क्रि०स०अ०—बदबू फैलाना, गंदगी फैलाना, बदबू देना ।

गिंदाणहार हारौ (हारी) गिंदाणियौ—वि० ।

गिंदावणौ, गिंदावबौ—रू०भे० ।

गिंदाग्रोड़ौ, गिंदायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

गिंदणौ अक० रू० ।

गिंदायोड़ौ–भू०का०कृ०—बदबू फैलाया हुआ । (स्त्री० गिंदायोड़ी)

गिंदावणहार, हारौ (हारी), गिंदावणियौ—वि० ।

गिंदाविग्रोड़ौ, गिंदावियोड़ौ, गिंदाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गिंदावीजणौ, गिंदावीजबौ—कर्म वा० ।

गिंदणौ, गिंदबौ—अक० रू० ।

गिंदावियोड़ौ—देखो 'गिंदायोड़ौ' (रू.भे.)

गिंदियौ–वि० १ गंदा, मैला. २ बुरा नीच ।

सं०पु०—एक प्रकार का बरसाती कीट जिसके स्पर्श से हाथ गंदे हो जाते हैं और उनसे बदबू आने लगती है ।

गिंदीजणौ, गिंदीजबौ–क्रि० भाव वा०—गंदा होना, बदबू आना ।

गिंदीजणहार, हारौ (हारी), गिंदीजणियौ—वि० ।

गिंदीजिग्रोड़ौ, गिंदीजियोड़ौ, गिंदीज्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गिंदीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—बदबू दिया हुआ, गंदगी फैलाया हुआ । (स्त्री० गिंदीजियोड़ी)

गिंदीयौ—देखो 'गंदियौ' (रू.भे.)

गिंदुक–सं०पु०—तकिया, उपधान (अ.मा.)

गिंमार, गिमार—देखो 'गंमार' (रू.भे.) उ०—१ मारवणी तूं प्रति चतुर, हीयइ चेत गिमार। जउ कंता सूं कांमड़उ, करहउ कांबे मार।
—ढो मा.

उ०—२ तरै रावळजी नूं जगमाल प्राय कह्यौ—जु गांव मांहै प्राज इसड़ौ रजपूत प्रायौ छै, सु कैतौ कोई गिवार छै, कै कोई'क राजवी रै घर रौ छोरू छै।—नैणसी

गिवारी—वि०—पागल, पागल संबंधी। उ०—बालपणौ हंस खेल बितायौ, गाफल चाल गिवारी।—ऊ.का.

गिग—सं०स्त्री०—छुहारे की गुठली।

गिगन—सं०पु० [सं० गगन] १ प्राकाश, नभ [नां.मा., ना.डि.को.)

उ०—गिगन ग्रीध चलाय, प्रड़बोम प्रपछर प्राय। सज कमध एम सधीर, 'भैरव' प्राये भीर।- पे.रू.

२ डिंगल के वेलिया सांणोर छंद का एक भेद जिसके प्रथम द्वाले में २६ लघु, १६ गुरु सहित कुल ६४ मात्रायें तथा शेष द्वालों में से प्रत्येक में २६ लघु व १८ गुरु कुल ६२ मात्रायें होती हैं (पिं.प्र.)

गिगनमंडळ—सं०पु० [सं० गगनमंडळ] नभमंडल, व्योम।

गिगनार—सं०पु०—१ सौराष्ट्र का एक पर्वत, गिरनार. २ प्राकाश, गगन। उ०—चांदड़लौ भंवरजी चढ़ियौ गिगनार। हां प्रो भंवरजी कोई कीरति ढळ प्राई गढ़ रै कांगरे जी म्हारा राज।—लो.गी.

गिगन्न—देखो 'गगन' (रू.भे.) उ०—धूघहर वरसतां घन्न, गुरिजां निहाइ वाजइ गिगन्न।—रा.ज सी.

गिगाय—सं०स्त्री०—एक देवी का नाम।

गिड़ंद—सं०पु० [सं० गिरींद्र] १ पहाड़, बड़ा पर्वत। उ०—रघुराजा! रे रघुराजा! रिख मूक गिड़ंद दराजा। चौमास रहे वे प्रात, सुचंगा तांम खटे जस ताजा।—र.रू. २ हिमालय।

गिड़—सं०पु० [सं० गिरि+प्रंग = गिर्यंग] १ योद्धा (डिं.नां.मा.)

२ सूप्रर (प्र.मा.) उ०—गिड़ सूर तौ वन वाडियां ने डोहै है प्रर ऊंडा-ऊंडा पहाड़ी नदियां रा डाहां नै गजराज डोह रहिया छै।
—वी.स. टीका

३ फोड़ा (रू०भे०—गड़)

[सं० गिरि] ४ पर्वत, पहाड़।

गिड़कंब, गिड़कंध—वि०यौ० [सं० गिरिस्कंध] जिसके कंधे बहुत विशाल हों, बलवान, दीर्घकाय। उ०—जरद्रेत लोह मझि कड़ाजूड़, प्रवनाड़ भूप गिड़कंध प्रड़ूड़।—सू.प्र.

सं०पु०—ऊंट। उ०—कच्छ रा कईक भुज रा कहाय, प्रोपिया इसा गिड़कंध प्राय। वेग रा प्रबळ जिम चली वात, जोजन प्रमांण घटि एक जात।—पे.रू.

गिड़कणौ, गिड़कबौ—देखो 'गुड़कणौ' (रू.भे.)

गिड़कणहार, हारौ (हारी), गिड़कणियौ—वि०।

गिड़कवाणौ, गिड़कवाबौ—प्रे०रू०।

गिड़काणौ, गिड़काबौ, गिड़कावणौ, गिड़कावबौ—स०रू०।

गिड़किप्रोड़ौ, गिड़कियोड़ौ, गिड़क्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गिड़कीजणौ, गिड़कीजबौ—भाव वा०।

गिड़काणौ, गिड़काबौ—देखो 'गुड़काणौ' (रू.भे.)

गिड़काणहार, हारौ (हारी) गिड़काणियौ—वि०।

गिड़कावणौ, गिड़कावबौ—रू०भे०।

गिड़काईजणौ, गिड़काईजबौ—कर्म वा०।

गिड़कायोड़ौ—भू०का०कृ०।

गिड़कणौ, गिड़कबौ—प्रक० रू०।

गिड़कायोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'गुड़कायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० गिड़कायोड़ी)

गिड़कावणौ, गिड़कावबौ—देखो 'गुड़काणौ' (रू.भे.)

गिड़कावणहार, हारौ (हारी), गिड़कावणियौ—वि०।

गिड़काणौ, गिड़काबौ—रू०भे०।

गिड़काविप्रोड़ौ, गिड़कावियोड़ौ, गिड़काव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गिड़कावीजणौ, गिड़कावीजबौ—कर्म वा०।

गिड़कणौ, गिड़कबौ—प्रक० रू०।

गड़कावियोड़ौ देखो 'गुड़कायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री०—गुड़कावियोड़ी)

गिड़गिड़ाणौ, गिड़गिड़ाबौ—क्रि०प्र० [सं० गद्गद्] प्रावश्यकता से प्रधिक विनीत या नम्र हो कर कोई बात कहना या प्रार्थना करना।

गिड़गिड़ाहट—सं०स्त्री० [सं० गद्गद्] विनम्रता, गिड़गिड़ाने का भाव।

गिड़गिड़ी—सं०स्त्री० [प्रनु०] १ गोल चरखी जिस पर रस्सी चढ़ा कर कुये से पानी खींचते हैं. २ एक प्रकार का छोटा किन्तु लम्बा गोल काष्ठ प्रादि का गुटका (चकरी) जो चड़स से पानी खींचते समय बड़े चक्र के सहायक रूप में नीचे वाली पतली रस्सी के चलने के सहारे के लिये उपयोग में लिया जाता है।

गिड़णौ, गिड़बौ—देखो 'गुड़णौ' (रू.भे.)

गिड़णहार, हारौ (हारी), गिड़णियौ—वि०।

गिड़िप्रोड़ौ, गिड़ियोड़ौ, गिड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गिड़द—देखो 'गिड़दी' (रू.भे.)

गिड़दाव—सं०पु०—विस्तार, घेरा, क्षेत्रफल।

गिड़दी—सं०स्त्री०—भीड़, जमघट, झुंड।

गिड़दीजणौ, गिड़दीजबौ—क्रि० भाव वा०—१ चारों प्रोर से घेरा आना, प्रावेष्ठित होना. २ भीड़ होना, जमघट होना।

गिड़दौ—सं०पु०—सिर का पिछला भाग, गुद्दी।

गिड़राज—सं०पु०—१ शूकरराज, सूप्रर। उ०—जिण बन भूल न जावता, गैंद गवय गिड़राज। तिण बन जंबुक ताखड़ा, ऊधम मंडे प्राज।
२ ऊंट। —वी.स.

गिड़राय—सं०स्त्री०—प्रावड़ देवी।

वि०वि०—देखो 'प्रावड़'।

गिड़ि, गिड़ी—देखो 'गिड़' (रू.नां.)

गिड़ौ—सं०पु०—१ प्रोला।

कहा०—आज ही माथो मुंडायो नै आज ही गिड़ा पड़ग्या; माथो मुंडावतां ही गिड़ा पड़िया—आज ही सिर मुंडाया और आज ही ओले गिरे; विपत्ति पर विपत्ति पड़ना; कोई कार्य आरम्भ करते ही आपत्ति आना।

२ बड़ा बेडौल गोल शिला-खंड। उ०—नै मालदे जाय मुजरो कियो। पीछै गांगेजी नूं माल देवाय मैं झाल गढ़ सूं हेठै गिड़ां मैं नांखिया।—द.दा.

गिचणो, गिचबो–क्रि०अ०—अधिक भार या बोझ से दबना या पिचकना।

गिचणहार, हारो (हारी), गिचणियो—वि०।

गिचिओड़ो, गिचियोड़ो, गिच्योड़ो—भू०का०कृ०।

गिचपिच–वि० [अनु०] जो साफ या क्रम से न हो, अस्पष्ट।

सं०स्त्री०—हिचकिचाहट।

गिचपिचियो–सं०पु०—बहुत से छोटे-छोटे तारों का पुंज जो एक गुच्छे के समान आकाश में दिखाई देता है। कृतिका नक्षत्र।

गिचपिचो—देखो 'गिचपिच' (रू.भे.)

गिचरको–सं०पु०—१ एक ध्वनि विशेष जो किसी वस्तु आदि के भार से दब कर कुचल जाने के समय उत्पन्न होती है।

क्रि०प्र०—करणो, काडणो, निकळणो, होणो।

२ हिचकिचाहट. ३ किसी फोड़े या गूदेदार फल को जोर से दबाने पर अकस्मात् निकलने वाला द्रव पदार्थ या गूदा।

क्रि०प्र०—करणो, काडणो, निकळणो।

४ देखो 'गुचरको' (रू.भे.)

गिचर-पिचर–सं०स्त्री०- किसी काम विशेष को करने में भय, संकोच या अनिच्छा प्रकट करने का भाव या क्रिया, हिचकिचाहट।

गिचलांण–सं०स्त्री०—अरुचि, मिचलाहट।

गिचली–सं०स्त्री०—कह कर पलटने का भाव, अपने शब्दों से विमुख होने का भाव।

वि०—कह कर पलटने वाला, अपने शब्दों से विमुख होने वाला।

गिचियोड़ो–भू०का०कृ०—अधिक भार से दबा हुआ या पिचका हुआ। (स्त्री० गिचियोड़ी)

गिच्चर-पिच्चर—देखो 'गिचर-पिचर'।

गिजा–सं०स्त्री० [अ० गिज़ा] १ खाने योग्य वे पदार्थ जो पुष्टई प्रदान करते हों. [रा०] २ आफत। उ०—पड़ै तेण पड़ि हाव भूपाळ हैकंप पड़ै, जैत सुत बात संसार जांणी। अकल पतसाह मंडोवरा ऊपरै, अणमिणो गिजा कलियांण आंणी।

—ठाकुर जैतसिंह री वारता

गिट, गिटक–सं०स्त्री०—१ निगलने की क्रिया या भाव. २ ग्रंथि।

गिटकिरी–सं०स्त्री० [अनु०] तान लेने में विशेष प्रकार से स्वर का कांपना जो बहुत अच्छा समझा जाता है (संगीत)

गिटणो, गिटबो–क्रि०स० [सं० गृ] मुँह में गले के नीचे उतारना, निगलना। उ०—चढ़ै जुग समदर री बोछाळ, जड़ां सूं ढावा ढहता जाय। माचगा बगिया मगर बटाळ, साबती माछळियां गिट जाय।

—सांझ

गिटणहार, हारो (हारी), गिटणियो—वि०।

गिटाड़णो, गिटाड़बो, गिटाणो, गिटाबो, गिटावणो, गिटावबो—प्रे०रू०।

गिटिओड़ो, गिटियोड़ो, गिट्योड़ो—भू०का०कृ०।

गिटीजणो, गिटीजबो—कर्म वा०।

गिटपिट–सं०स्त्री० [अनु०] निरर्थक शब्द।

मुहा०—गिटपिट करणो—टूटी-फूटी या साधारण अंग्रेजी भाषा बोलना; कानाफूसी करना।

गिटाड़णो, गिटाड़बो, गिटाणो, गिटाबो–क्रि०प्र०—निगलवाना।

गिटायोड़ो–भू०का०कृ०—निगलवाया हुआ। (स्त्री० गिटायोड़ी)

गिटावणो, गिटावबो—देखो 'गिटाणो' (रू.भे.)

गिटावियोड़ो–भू०का०कृ०—देखो 'गिटायोड़ो' (रू.भे.) (स्त्री० गिटावियोड़ी)

गिटियोड़ो–भू०का०कृ०—निगला हुआ। (स्त्री० गिटियोड़ी)

गिटीजणो, गिटीजबो–क्रि० कर्म वा०—निगला जाना।

गिटीजणहार, हारो (हारी) गिटीजणियो—वि०।

गिटीजिओड़ो, गिटीजियोड़ो, गिटीज्योड़ो—भू०का०कृ०।

गिटणो, गिटबो—सक०रू०।

गिटीजियोड़ो–भू०का०कृ०—निगला गया हुआ (स्त्री० गिटीजियोड़ी)

गिट्टक–सं०स्त्री०—१ गोल कङ्कर. २ इस गोल कंकर के समान गोल ग्रंथि. ३ 'गिटकिरी' लेने में स्वर या तान का वह सब से छोटा भाग जो केवल एक कंपन में निकलता है, दाना (संगीत)

गिडंक, गिड—देखो 'गिड़' (रू.भे.)

गिणगोर, गिणगौर—देखो 'गणगौर' (रू.भे.)

गिणणो, गिणबो–क्रि०स० [सं० गणन] १ गणना करना, शुमार करना, संख्या निश्चित करना। उ०—रिण अचळ जोड़ दळ ढल्ल रांम, जादम संग्रांम कज गिणत जांम।—रा.रू.

मुहा०—१ गिण-गिण नै दिन काटणा—बहुत दुख से दिन गुजारना. २ गिण-गिण नै मारणो—बहुत पीटना. ३ दिन गिणना—आशा में समय बिताना, प्रतीक्षा करना. ४ गिणिया-गिणाया—बहुत थोड़े, सीमित।

२ गणित करना, हिसाब लगाना. ३ कुछ महत्व समझना, कुछ समझना। उ०—१ वयण घण सांभळै रहै किम वीसमो, सुपह सादूळ कुण गिणै आपा समो।—हा.झा. उ०—२ म्हानै गिणजो मूढ़ अमलियां ओगणगारां।—ऊ.का. ४ निगलना।

उ०—तरै आपरा हाथ थी कड़छुणो खोल्यो नै घूमतं नेत्र फाड़तो मूंछां रा केस सरब ऊभा हुवा, जांणै कोई जम सरब तुरकां नै गिण जाय तिसो दीसै।—वीरमदे सोनगरा री वात

गिणणहार, हारौ (हारी), गिणणियौ—वि० ।
गिणाणौ, गिणाबौ, गिणावणौ, गिणावबौ—प्रे०रू० ।
गिणिग्रोड़ो, गिणियोड़ो, गिणयोड़ौ—भू०का०कृ० ।
गिणीजणौ, गिणीजबौ—कर्म वा० ।

गिणत गिणती-सं०स्त्री०—१ वस्तुओं को समूह से तथा एक दूसरी से अलग कर के उनकी संख्या निश्चित करने की क्रिया, गणना, शुमार ।
उ०—१ म्हांनै काढ़ियां पछै दूजां नूं कुण राखसी, आंपणी गिणत कांई नहीं—मारवाड़ रा अमरावां री वात उ०—२ अन गांमां गिणती नह आई, पुर बाले ज्यां लाग पजाई।—रा.रू.
क्रि०प्र०—करणी, होणी ।
मुहा०—१ गिणत (गिणती) कराणी—किसी कोटि के अंतर्गत समझा जाना. २ गिणत (गिणती) में होणी—किसी कोटि में समझा जाना, कुछ समझा जाना. ३ गिणत (गिणती) होणी—किसी महत्व का समझा जाना. ४ गिणती रा—थोड़े ।
२ संख्या, तादाद. ३ एक से सौ तक की अंकमाला. ४ उपस्थिति की जांच, हाजरी ।

गिणाईजणौ, गिणाईजबौ-क्रि० कर्म वा०—गिनाया जाना ।

गिणाणौ, गिणाबौ-क्रि०स० ('गिणणौ' का प्रे०रू०) गिनाना ।
गिणाणहार, हारौ (हारी), गिणाणियौ—वि० ।
गिणाग्रोड़ो, गिणायोड़ौ—भू०का०कृ० ।
गिणावणौ, गिणावबौ—रू०भे० ।
गिणाईजणौ, गिणाईजबौ—कर्म वा० ।
गिणणौ—क्रि०स० ।

गिणायोड़ौ-भू०का०कृ०—गिनाया हुआ । (स्त्री० गिणायोड़ी)

गिणावणौ, गिणावबौ—देखो 'गिणाणौ' (रू.भे.)
गिणावणहार, हारौ (हारी), गिणावणियौ—वि० ।
गिणाविग्रोड़ो, गिणावियोड़ौ, गिणाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।
गिणावीजणौ, गिणावीजबौ—कर्म वा० ।

गिणावियोड़ौ—देखो 'गिणायोड़ौ' (रू.भे.)
(स्त्री० गिणावियोड़ी)

गिणियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ गिना हुआ. २ समझा हुआ ।

गिणीजणौ, गिणीजबौ-क्रि० कर्म वा० ('गिणणौ' कर्म वा०) गिनती में आना, गिना जाना ।
गिणीजणहार, हारौ (हारी), गिणीजणियौ—वि० ।
गिणीजिग्रोड़ो, गिणीजियोड़ौ, गिणीज्योड़ौ—भू०का०कृ० ।
गिणणौ, गिणबौ—सक० रू० ।

गिणीजियोड़ौ-भू०का०कृ०—गिनती किया हुआ, गणना में आया हुआ ।
(स्त्री० गिणीजियोड़ी)

गिद-सं०पु० [सं० गद] १ कवि (अ.मा.) २ रोग ।

गिदळणौ, गिदळबौ-क्रि०अ०—१ गंदला होना ।
क्रि०स०—२ गंदला करना ।

गिदळाईजणौ, गिदळाईजबौ-क्रि० कर्म वा०—गंदला किया जाना ।

गिदळाणौ, गिदळाबौ-क्रि०स०—गंदला करना ।

गिदळायोड़ौ-भू०का०कृ०—गंदला किया हुआ । (स्त्री० गिदळायोड़ी)

गिदळावणौ, गिदळावबौ—देखो 'गिदळाणौ' (रू.भे.)

गिदळावियोड़ौ—देखो 'गिदळायोड़ौ' (रू.भे.)
(स्त्री० गिदळावियोड़ी)

गिद्ध-सं०पु० [सं० गृध्र] (स्त्री० गिद्धणी) एक प्रकार का बड़ा मांसाहारी पक्षी जिसकी छोटी बड़ी कई जातियां होती हैं ।. इसकी आंखें बड़ी तेज होती हैं ।
पर्याय०—खग, दुज, दूरनैण, पंखण, रातंग ।
(रू०भे०— गिध, ग्रीध, गिरज, गिरझ)

गिद्धराज-सं०पु०यौ० [सं० गृध्रराज] १ जटायु. २ गरुड़ ।

गिध—देखो 'गिद्ध' (रू.भे.)

गिनका-सं०स्त्री० [सं० गणिका] १ वेश्या, पतुरिया । उ०—गिनका री जे नर ग्रहै, कबरी डंड करेण । खाग ग्रहै किमि दळण खळ, तेज विहीणा तेण ।—बां.दा.
पर्याय०—कंचणी, कांमकी, कुलटा, खाला, गायणी, चातुर, जगवल्लभा, द्रबप्रिया, धनजोखता, नगरनायका, नगरवधू, निलजा, नृती, परप्रिया, पातर, पुंसचळी, प्रेमास्वारथ, बेस्या, भगतण, रूपजीवणी, लंभिक, वारवधू, संभळी ।
(रू०भे०—गणका गनका, गिणका)
२ सोनजुही (अ.मा.)

गिनर-सं०स्त्री० [सं० गण] ध्यान, ख्याल ।

गिनांन-सं०पु० [सं० ज्ञान] १ देखो 'ग्यांन' (रू.भे.) उ०—सुजळ गिनांन मंजन तन सारिस, ध्रम क्रम जप तप नेम बधारिस ।
—ह.र.

गिनायत-सं०पु०—१ सजातीय व्यक्ति. २ संबंधी, रिश्तेदार, ३ लड़की या लड़के के ससुराल से संबंधित कोई व्यक्ति ।
उ०—भाटी समुद्रसिंह आपरी सीमा में बरी रा लोकां सहित मीसणां री गोळ दिवाइ गिनायतां नूं आदर रै साथ राखिया ।
—वं.भा
यौ०—गिनायतभाई, गिनायतचारौ ।

गिनारणौ, गिनारबौ-क्रि०स०—१ ध्यान देना, परवाह करना ।
उ०—पछै सूरजमल आपनूं कहाड़ियौ—'रावळ रै घर नूं बिगोयै, या सारी न छै, राठोड़ां तांई पोंहतो छै, भूल की छै सु मांन तौ गिनारै ही नहीं ।—नैणसी
२ समझना. ३ गिनना ।
गिनारणहार, हारौ (हारी) गिनारणियौ—वि० ।
गिनारिग्रोड़ो, गिनारियोड़ौ, गिनार्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गिनारियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ ध्यान दिया हुआ. २ समझा हुआ.
३ गिना हुआ । (स्त्री० गिनारियोड़ी)

गिनी–सं०स्त्री० [अं०] सोने का एक सिक्का जिसका व्यवहार इंगलैंड में सन् १६६३ में आरम्भ हुआ था और सन् १८१३ में बंद हो गया।

गिनौ—देखो 'गनौ' (रू.भे.)

गिमार—देखो 'गंमार' (रू.भे.)

गियान—देखो 'ग्यांन' (रू.भे.) उ०—नमो अवधूत उदार अलक्ख, नमो गुरु दत्त गियांन गोरक्ख।—ह.र.

गियांनी—देखो 'ग्यांनी' (रू.भे.) उ०—भणै जती नित जाप भवांनी, ग्यांन विजै मुनि परम गियांनी।—रा.रू.

गियाकस–सं०पु०—घीया, लौकी आदि को रगड़ कर कुतरने व छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त करने का एक औजार।

गियारस—देखो 'इगियारस' (रू.भे.)

गियोड़ौ–भू०का०कृ०—गया हुआ।

कहा०—गियौ धन वोळावौ मांगै—खोया हुआ धन अपने पीछे कुछ व्यय और मांगता है। जो धन चोरी आदि में नष्ट हो जाता है या चला जाता है उसे पुनः प्राप्त करने या उसका पता लगाने के लिए और खर्च करना पड़ता है।

वि०—१ गया-बीता. २ पतित। (स्त्री० गियोड़ी)

गिरंडियौ–सं०पु०—सूखा गोबर।

गिरंद–सं०पु० [सं० गिरि+इंद्र] १ पहाड़, पर्वत (अ.मा.)

२ सुमेरु पर्वत (अ.मा., नां.मा.)

गिरंदबाज–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गिरंदर–सं०पु० [सं० गिरींद्र] १ पर्वत, पहाड़. २ सुमेरु पर्वत।

गिरंदरूप–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गिरंध–सं०पु० [सं० गृध्र] गिद्ध पक्षी।

गिर–सं०पु० [सं० गिरि] १ पहाड़, पर्वत (डिं.नां.मा.)

उ०—न खमै ताप हजार नर, जुदौ जुदौ डर जाग। केहर गड़ड़ै क्रोध कर, गाजै गिर गयणाग।—बां.दा.

२ संन्यासियों के दस भेदों में से एक. ३ किसी फल बीज आदि को तोड़ने पर उसके अंदर से निकलने वाला गूदा।

गिरअठार, गिरअढ़ार—देखो 'अढ़ारगिर' (रू.भे.)

उ०—सीरोही ऊपरां खिवै सार, आबू धर धूजै गिरअढ़ार।
—वि.सं.

गिरउर–सं०पु० [सं० गिरिवर] पर्वत, पहाड़। उ०—सर जहर उडि घोम धर सर। रीठ तर पड़ि वजर गिरउर चौतरफ धमचाळ।
—सू.प्र.

गिरकंध—देखो 'गिड़कंध' (रू.भे.)

उ०—सार का कोट अंतक समांन, मार का बहादर मुसलमांन। पोसाक सिलै ऐसा'क पूर, गिरकंध छाक पौरुख गरूर।—वि.सं.

गिरक–सं०पु०—१ गर्व, घमंड, अभिमान. २ ईर्ष्या, द्वेष, डाह।

गिर-गिराट–सं०पु०—१ जी मिचलने का भाव, मिचली. २ हिच-किचाहट।

गिर-ग्रहण–सं०पु०—पर्वत को धारण करने वाले, श्रीकृष्ण (पिं.प्र.)

गिरज, गिरजड़ौ—देखो 'गिद्ध' (रू.भे.) उ०—आभै ऊपर भमै गिरजड़ा, चीलां उडती जाय। पग-पग ऊपर ला'स मिनख री, कुत्ता माटी खाय।
—रेवतदांन

अल्पा०–गिरजड़ौ।

गिरजपत, गिरजपति—देखो 'गिरजापति' (रू.भे.)

गिरजा–सं०पु० [सं० गिरिजा] १ देखो 'गिरिजा' (रू.भे.)

२ देखो 'गिरजाघर' (रू.भे.)

गिरजाघर–सं०पु०यौ० [पुर्त० इग्रिजिया+रा० घर] ईसाई मत के अनु-यायियों का ईश-आराधना का भवन।

अल्पा०–गिरजौ।

गिरजानंदन–सं०पु०यौ० [सं० गिरिजा+नंदन] पार्वती-पुत्र, गणेश।

गिरजापत, गिरजापति–सं०पु०यौ० [सं० गिरिजा+पति] महादेव, शिव (अ.मा.)

गिरजावर–सं०पु०यौ० [सं० गिरिजा+वर] शिव, महादेव।

गिरजौ–सं०पु० [सं० गृध्र] १ गिद्ध पक्षी। उ०—गुंजवै पर ढाल न गिरजां। भुरजाळांय आंग ग्रही भुरजां।—पा.प्र.

२ देखो 'गिरजाघर'।

गिरझ—देखो 'गिद्ध' (रू.भे.) उ०—फेर वसाई भट्टियां, अंत करे पियारी। मारै ईसर भांणजी, गिरझां गहकारी।—द.दा.

गिरडू–सं०पु०—पेड़ों में रसविकार से निकलने वाला सुपारीनुमा गोल पदार्थ जो औषधि के काम में आता है।

गिरण–सं०स्त्री० [सं० गृ] १ पीड़ा व दर्द के कारण मुंह से निकलने वाली ध्वनि, कराह। उ०—भाटी नै जम भेट कियां डूबंती किरणां। तड़छै घर जंतिया घणू घट करतौ गिरणां।—पा.प्र.

२ देखो 'ग्रहण' (रू.भे.)

गिरणणौ, गिरणबौ, गिरणाणौ, गिरणाबौ, गिरणावणौ, गिरणावबौ–क्रि०अ०—पीड़ा से कराहना, दर्द-भरी आवाज करना।

उ०—राफां झरणावै गिरणावै रोता, गंता निरणावै करमां रा गोता।—ऊ.का.

गिरणियोड़ौ—भू०का०कृ०—दर्द से कराहा हुआ (स्त्री० गिरणियोड़ी)

गिरणौ, गिरबौ–क्रि०अ० [सं० गलन] १ रोक या सहारे के अभाव के कारण किसी वस्तु का ऊपर से नीचे आ जाना। उ०—अवनी आंदो-लन भोळा ओसरिया, पिड़ि भिड़ि प्लासी पै गोळा जिम गिरिया।
—ऊ.का.

२ किसी वस्तु आदि का किसी धरातल पर खड़ा न रह सकना

ज्यूं—घर गिरणौ, रूंख गिरणौ।

३ निरन्तर ह्रास की ओर जाना, अवनति होना।

ज्यूं—जाति गिरणी, देस गिरणौ।

४ छोटी या बड़ी किसी जलधारा का किसी समुद्र या जलाशय में जाकर मिलना. ५ शक्ति, स्थिति, प्रतिष्ठा, मूल्य आदि की दृष्टि से

कम होना। ज्यूं—समाज में आदमी गिरणी, बीमारी सूं डील गिरणी। ६ दुर्बलता या क्षीणता के कारण किसी वस्तु का अपने स्थान से हटना या झड़ना। ज्यूं—दांत गिरणा, केस गिरणा।

७ युद्ध में मारा जाना.

गिरणहार, हारौ (हारी), गिरणियौ—वि०।

गिरावणौ, गिरावबौ—प्रे०रू०।

गिराड़णौ, गिराड़बौ, गिराणौ, गिराबौ, गिरावणौ, गिरावबौ—क्रि०स०।

गिरिओड़ौ, गिरियोड़ौ, गिरयोड़ौ—भू०का०कृ०।

गिरीजणौ, गिरीजबौ—भाव वा०।

गिरत—सं०पु० [सं० गिरि+रा०त] पर्वत। उ०—गोप गायां त्रिया सहत वसिया गिरत, चिरत अदभुत तणी करत चरचा। आप जिम करग नग थपै दर उचत ऐ, ऊथपै पुरंदर तणी अरचा।—बां दा.

गिरथ—सं०पु०—धन, संपत्ति, अर्थ।

गिरद—सं०स्त्री० [फा० गर्द] १ पृथ्वी (ना.डिं.को.) २ धूलि, रज, गर्द। उ०—उड गिरद छव असमांण नूं, भरपूर ढांके भांण नूं। जळ उभळ झळ जळधार जळ, चळ विचळ दिग्गज अचळ चळ।

—र.रू.

[सं० गृध्र] ३ देखो 'गिद्ध' (रू.भे.)

(रू०भे०-गिरध)

[फा० गिर्द] ४ चारों ओर का घेरा। उ०—१ गिरद गजां घमसांण, नहचै घर माई नहीं। मावै किम महरांण, गज सौ रै घेरै गिरद।

—केसरीसिंह बारहठ

उ०—२ सो लसकर बडो भारी कोस च्यार-च्यार रा गिरद में।

—जयसिंह आंमेर रा धणी री वारता

क्रि०वि०— चारों ओर, आस-पास। उ०—मरद झूठ बोलै तौ धाक जाती रहै। हजार तरवार उणरै जतनां रै वास्तै उणारै गिरद होय पण जीभ उणरी झूठी छै तौ मिनखां री निजर में उणरौ भार नहीं छै।—नी.प्र.

गिरदभ—सं०पु० [सं० गर्दभ] गधा (ह.नां.)

गिरदवाई, गिरदवाय—सं०पु०—विस्तार, फैलाव, प्रसार।

उ०—उदयपुर री गिरदवाई कोस ५ आगै गिरवौ कहीजै।—नैणसी

गिरदाणौ, गिरदाबौ—क्रि०स०—आक्रमण द्वारा किसी स्थान को चारों तरफ से घेरना। उ०—लेहाडंबर घूमते घर अंबर छाया। हल्ला बोलि हकारि के किल्ला गिरदाया।—ला रा.

गिरदाब—सं०पु०—चक्कर। उ०—सो पांच सौ पांच-पांच कोस तांई सहिर रै गिरदाव घोड़ौ फेरै।—रिसालू री वात

गिरदावर—सं०पु० [फा० गिर्दावर] घूम-घूम कर जांच करने वाला, दौरा करने वाला व्यक्ति।

गिरदावरी—सं०स्त्री०—गिरदावर का कार्य या पद।

गिरद्द—सं०पु० [सं० गिरि] पर्वत, पहाड़।

गिरध—देखो 'गिद्ध' (रू.भे.) उ०—पळ आस उरध हक गिरध पंख, सर तीर पूर रव नर असंख।—रा.रू.

गिरधर—सं०पु० [सं० गिरिधर] पहाड़ को धारण करने वाला, हनुमान, श्रीकृष्ण। उ०—हंस मांयला मूढ रे, कर हर हर बिसरांम। मर-मर घर-घर नंह फिरै, उर धर गिरधर नांम।—ह.र.

रू०भे०—गिरधरण, गिरधरलाल, गिरधार, गिरधारण, गिरधारन, गिरधारी।

२ एक कवि का नाम जिनकी बनाई कुंडलियां बहुत प्रसिद्ध हैं।

गिरधरण—सं०पु०—१ देखो 'गिरधर' (रू.भे.) उ०—धड़ां सिर जोम ताजै धड़ां धमाधम, कांगुरां तरफ बाजै कुहाड़ा। किलो गिरधरण आेळै 'रयण' बंधकड़ा, विरोळै चौवड़ा फिरंग वाळा।—बां.दा.

स०स्त्री०—२ पृथ्वी।

गिरधरणि, गिरधरणी—सं०स्त्री०—पृथ्वी (डिं. नां. मा.)

गिरधरलाल—सं०पु०—श्रीकृष्ण।

गिरधरियौ—देखो 'गिरधर' (अल्पा०) उ०—अरे रांणा पहली क्यों ना बरजी, लागी गिरधरिया सूं प्रीत।—मीरां।

गिरधार, गिरधारण, गिरधारन, गिरधारी—१ देखो 'गिरधर' (रू.भे.) २ ईश्वर (नां.मा.)

गिरनार—सं०पु०—१ जैनियों का एक पवित्र तीर्थ जो गुजरात में जूनागढ़ के निकट एक पर्वत के ऊपर है. २ एक पर्वत का नाम।

गिरनारी—सं०पु०—१ गिरनार पर्वत के निवासी. २ एक राग विशेष। यह राग सांप को बहुत प्रिय है।

गिरपत, गिरपति, गिरपती—सं०पु०यौ० [सं० गिरि+पति] १ सुमेरु पर्वत (नां.मा.) २ पर्वत, पहाड़ (अ.मा.)

गिरफ्तार—वि० [फा०] जो पकड़ा, कैद किया या बांधा गया हो, ग्रसा हुआ, ग्रस्त।

गिरफ्तारी—सं०स्त्री० [फा०] गिरफ्तार होने का भाव या क्रिया।

गिरबांण, गिरब्बांण—देखो 'गिरवांण' (रू.भे.) उ०—इंद्र गै अरब्ब गिरबांण झूल सामां आया। सारां हे बधाया कीधां झलूसा समाज।

—चांवंडदान महडू

गिरमट—देखो 'गिरमिट' (रू.भे.)

गिरमा—देखो 'गरिमा' (ह.नां., नां.मा.)

गिरमाथ—सं०पु०यौ० [सं० गिरि+मस्तक] सुमेरु पर्वत।

उ०—मलफै कुण गिरमाथ हाथ कुण अगन हलावै। विख भरियोड़ा व्याळ व्याल कर कवण खिलावै।—पे.रू.

गिरमाळ—सं०पु०—१ पर्वत, श्रेणी. २ अमलतास।

गिरमाळौ—देखो 'किरमाळौ' (अमरत)

गिरमास—सं०पु०—१ गरमी, उष्णता, ताप। उ०—गायां नै गिरमास ठिकाणौ चोड़ै ठायौ। सूवै सूतक सुधी तळै छिगास बिसायौ।

—दसदेव

गिरमिट—सं०पु०—लकड़ी आदि में छेद करने के काम आने वाला एक प्रकार का बड़ा बरमा (बढ़ई)

गिरमिर-सं०पु०यौ० [सं० गिरि+मेरु] सुमेरु पर्वत (ह.नां.)

गिरमी—१ देखो 'गरमी' (रू.भे.) उ०—गिरमी गिरमी में गिरवै गुड़ियोड़ा, जांणूं ईरू ज्यूं गोडा जुड़ियोड़ा।—ऊ.का.

[सं० गरिमा] २ आठ सिद्धियों में से एक (अ.मा.)

गिरमेर, गिरमेरु-सं०पु० [सं० गिरिमेरु] सुमेरु पर्वत (ह.नां.)

गिरयंद-सं०पु० [सं० गिरींद्र] १ बड़ा पर्वत, पर्वत।

उ०— चित सुध 'अभौ' पयंपै 'चिमनौ', ऊपर खड़ आया अरयंद। खोसै धन मगरा बळ खाधो, गळै जिकौ बांधो गिरयंद।

२ हिमालय पर्वत. ३ सुमेरु पर्वत। —जादूरांम आढ़ौ

गिरमणी-सं०स्त्री० [सं० गिरि+मणि] पार्वती देवी, गौरी।

गिरराक, गिरराका-सं०पु०यौ० [सं० आरक+गिरि] सुमेरु पर्वत (नां.मा.)

गिरराज-सं०पु०यौ० [सं० गिरिराज] १ सुमेरु पर्वत. २ हिमालय. ३ कोई बड़ा पर्वत। उ०— तेण सर गिरराज तारे, महा खळ दह-कंध मारे।—र.ज.प्र.

४ गरुड़ (नां.मा.)

गिरराय-सं०स्त्री०—१ श्री आवड़ देवी।

वि०वि०— देखो 'आवड़'।

२ पार्वती।

गिरवर-सं०पु० [सं० गिरिवर] बडा पर्वत। उ०—हुई साज सिंधुर हैमरै, प्रति जांग गिरवर पाखरै। इण रूप नृप चढ़ि सुहड़ आतुर, अस्ट दिसि भड़ तुरां अड़वड़ै।—रा.रू.

गिरवरधणी, गिरवरधर-सं०पु०—श्रीकृष्ण। उ०—१ दसण निपाप करिस दांमोदर, आणंद तूझ हूंम गिरवरधर।—ह.र.

गिरवांण-सं०पु० [सं० गीर्वाण] १ देव, देवता, सुर (अ.मा., नां.मा.) उ०—सरवर लांबै संचरै, पणघट पदमणियांह। फिर गिरवांण कंवारिया, बण सोभा बणियांह।—बां.दा.

२ ऊँट के नाक में डाला जाने वाला काष्ठ का उपकरण।

(रू०भे०-गरवांण, गिरबांण, गिरव्वांण, गिरवांन)

गिरवांणपत-सं०पु० [सं० गीर्वाणपति] सुरपति, इंद्र। उ०—जे होता रखपाळ जग, यां सुहड़ां रा थाट। पांख गिरां गिरवांणपत, किण विध सकतो काट।—बां दा.

गिरवांणी-सं०पु० [सं० गीर्वाण+ई] १ देवी.

२ अप्सरा।

गिरवांन—देखो 'गिरवांण' (रू.भे.)

गिरवाणौ, गिरवाबौ-क्रि०स०—गिराने का कार्य दूसरे से कराना, 'गिरणौ' का प्रे०रू०। देखो 'गिरणौ'

(रू०भे०-गिरवावणौ, गिरवावबौ)

गिरावियोड़ौ-भू०का०कृ०—गिरवाया हुआ। (स्त्री० गिरावियोड़ी)

गिरवी-सं०स्त्री० [फा०] बंधक, रेहन। (मि० 'अडांणूं, अडांणौ')

क्रि०प्र०—राखणौ, भरणौ, मेलणौ।

यौ०—गिरवीदार, गिरवीनांमौ, गिरवीपत्र।

गिरवीदार-सं०पु० [फा०] वह व्यक्ति जो रेहन या बंधक रख कर लेन-देन का कार्य करता हो।

गिरवीनांमौ, गिरवीपत्र-सं०पु०यौ०—वह लिखित पत्र जिसमें गिरवी की शर्तें लिखी हों, रेहननामा।

गिरवै—देखो 'गिरवी' (रू.भे.)

गिरव्वर—देखो 'गिरवर' (रू.भे.)

गिरस-सं०पु० [सं० गिरीश] शिव, महादेव।

गिरसार-सं०पु० [सं० गिरिसार] लोहा (अ.मा.)

गिरसर-सं०पु०यौ० [सं० गिरिशिखर] पर्वत की चोटी, पर्वतशिखर।

गिरसुता-सं०स्त्री०यौ० [सं० गिरि+सुता] गिरिजा, पार्वती।

गिरह-सं०स्त्री० [फा०] १ गाँठ, ग्रंथि.

क्रि०प्र०—देणी, बांधणी, लगाणी।

२ एक गज का सोलहवां भाग जो सवा दो इंच के बराबर होता है.

३ कलाबाजी, उलटी कलैया। उ०—केहक गिरैबाज कबूतर री नांई गिरह खाता नै पळचर पंखियां ज्यूं फड़फड़ाता सफीलां सुं अरती पड़ता पहली दोय दोय तीन तीन कटारियां लगावै छै।

--प्रतापसिंह म्होकमसिंह री वात

क्रि०प्र०—खाणी, मारणी, लगाणी, लेणी।

[सं० ग्रह] ४ देखो 'ग्रह'. [सं० गिरि] ५ पर्वत, पहाड़।

उ०—गिरह पखाळण सर भरण, नदी हिंडोळणहारि। सूती सेजइ एकली, हइ हइ दइव म मारि।—ढो.मा.

गिरांमणौ-सं०पु०—एक प्रकार का घास।

गिरा-सं०स्त्री० [सं०] १ सरस्वती (ह.नां.) २ विद्या.

३ वाणी, बोली. ४ जिव्हा. ५ भाषा. ६ सरस्वती नदी.

७ कविता, शायरी।

गिराक—देखो 'ग्राहक' (रू.भे.)

गिराणौ, गिराबौ-क्रि०स० ('गिरणौ' का स०रू०) १ रोक या सहारे को हटा कर किसी वस्तु को ऊपर से नीचे की ओर डालना, पतन करना. २ धरातल पर खड़ी वस्तु या व्यक्ति को जमीन पर डाल देना, ज्यूं— मकान गिराणौ. ३ निरन्तर ह्रास की ओर प्रेरित करना, अवनत करना. ४ किसी जलधारा को किसी ढाल की ओर प्रवृत्त करना. ५ शक्ति, स्थिति, प्रतिष्ठा, मूल्य आदि की दृष्टि से कम करना या ह्रास करना. ६ दुर्बलता, क्षीणता या किसी अन्य कारण से किसी वस्तु को अपने स्थान से हटाना या झाड़ना, ज्यूं— दांत गिराणा, केस गिराणा, गरभ गिराणौ. ७ लड़ाई में प्राण लेना, मार डालना।

गिराणहार, हारौ (हारी), गिराणियौ—वि०।

गिराड़णौ, गिराड़बौ, गिरावणौ, गिरावबौ—रू०भे०।

गिरवावणौ, गिरवावबौ—प्रे०रू०।

गिराईजणौ, गिराईजबौ—कर्म वा०।

गिरायोड़ौ—भू०का०कृ०।

गिरणौ—अक० रू०।

गिरापति–सं०पु० [सं०] सरस्वती के पति ब्रह्मा।

गिरापितु–सं०पु०यौ० [सं० गिरा+पितृ] सरस्वती के पिता ब्रह्मा।

वि०वि०—इस संबंध में एक कथा प्रचलित है। एक बार ब्रह्मा के शरीर से एक अत्यन्त सुंदर कन्या की उत्पत्ति हुई। उसकी सुन्दरता के कारण ब्रह्मा उस पर मोहित हो गये। इनकी वासनाभरी दृष्टि से बचने के लिए वह ब्रह्मा के पीछे खड़ी हो गई ब्रह्मा फिर उसकी ओर मुख करके उसे देखने लगे। इसी प्रकार वह ब्रह्मा के चारों ओर घूमी और ब्रह्मा उसे देखने को चतुर्मुख हो गये। उन्होंने उस कन्या को, जो आगे चल कर सरस्वती की संज्ञा से विभूषित हुई, अपनी अर्द्धांगिनी बना लिया। तब से सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री तथा पत्नी दोनों ही मानी जाती है।

गिराब–सं०पु० [अं० ग्रेप] १ तोप का वह गोला जिसमें छोटी-छोटी गोलियाँ व छर्रे भी रहते हैं।

सं०स्त्री० [रा०] २ ऊमरकोट के इलाके की भूमि।

गिरायोड़ौ–भू०का०कृ०— गिराया हुआ (स्त्री० गिरायोड़ी)

गिरारक–सं०पु०यौ० [सं० गिरि+आरक, गिर्यारक] सुमेरु पर्वत (नां.मा.)

गिराळ–सं०पु० [सं० गिरि+रा०प्र०आळ] पर्वत, पहाड़। उ०— बयाळ सियाळ उनाळ वयाकुळ, वारि वरखाळ खुदाळ मयूं। वनाळ विचाळ गिराळ असाकळ, ज्वाळ मयाळ सखाळ लयूं।—करुणासागर

गिराव, गिरावट–सं०स्त्री०— गिरने का भाव या क्रिया, पतन, उतार, घटाव। उ०—अर बो सोचण लागौ—गरीब बाळक सांमा ऊभा रोटी रै टुकड़ै नै तरसै अर म्हे वांनै चिगाय'र माल उडावां। हिरदै री कित्ती गिरावट अर सभाव रौ कित्तौ टुच्चापण है।—वरसगांठ

गिरावणौ, गिरावबौ–क्रि०स०— देखो 'गिराणौ' (रू.भे.)

उ०—गिणै मदंध सोख जोख गोख को गिरावणौ, फबै फिसाद मंद को सु फंट दे फिरावणौ।—ऊ.का.

गिरावणहार, हारौ (हारी), गिरावणियौ—वि०।

गिराविग्रोड़ौ, गिरावियोड़ौ, गिराव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गिरावीजणौ, गिरावीजबौ—कर्म वा०।

गिरणौ—अक० रू०।

गिराश्रियोड़ौ–भू०का०कृ०—देखो 'गिरायोड़ौ'।

गिरावीजणौ, गिरावीजबौ—देखो 'गिराईजणौ' (रू.भे.)

गिरास–सं०पु०—१ उपाय, तरकीब. २ देखो 'ग्रास' (रू.भे.)

गिरासिया—देखो 'ग्रासिया' (रू.भे.)

गिरासियौ–सं०पु०—ग्रासिया जाति का व्यक्ति।

गिरासी—देखो 'ग्रासिया' (रू.भे.)

गिरास्रमी–सं०पु०—[सं० गिराश्रमी] १ कवि। उ०— विसाळ चटसाळ बीच वेद की धुनी नहीं। महास्रमी ग्रहास्रमी, गिरास्रमी गुनी नहीं।—ऊ.का.

२ पंडित।

गिरिंद–सं०पु०—पर्वत (ह.नां.)

गिरि–सं०पु० [सं०] १ पर्वत, पहाड़. २ दशनामी संन्यासियों के अंतर्गत एक उपाधि. ३ पारे का एक दोष जिसको बिना शोधन सेवन करने से शरीर अचेतन हो जाता है।

गिरिकंटक–सं०पु० [सं०] वज्र।

गिरिक–सं०स्त्री०— १ गेंद (डि.को.)

सं०पु० [सं०] २ शिव, महादेव. ३ वह जो पर्वत से उत्पन्न हो।

गिरिका–सं०स्त्री० [सं०] पुरु वंश के वसु राजा की स्त्री (महा०)

गिरिगुड़–सं०स्त्री०—गेंद, कंदुक (डि.को.)

गिरिज–सं०पु० [सं०] १ शिलाजीत. २ लोहा. ३ अभ्रक. ४ गेरू।

गिरिजा–सं०स्त्री० [सं०] १ पार्वती जो हिमालय की कन्या मानी जाती है।

यौ० –गिरिजापति।

रू०भे०–गिरजा।

२ गंगा।

गिरिजाबीज–सं०पु० [सं०] गंधक।

गिरिट्ठ–वि० [सं० गरिष्ठ] १ शक्तिशाली। उ०—जोड़ाळ मिळइ जमदूत जोध, काइरा कपीमुक्खी सक्रोध। कुवरत्त केवि काळा किरिट्ठ, गड़दनी गोळ गांजा गिरिट्ठ।—रा.ज.सी.

२ पौष्टिक।

गिरित्र–सं०पु० [सं०] १ शिव, महादेव. २ समुद्र।

गिरिधर, गिरिधरन–सं०पु० [सं० गिरिधरन्] १ श्रीकृष्ण. २ हनुमान।

गिरिधातु–सं०पु० [सं०] गोरू।

गिरिधारन, गिरिधारी—देखो 'गिरधर' (रू.भे.)

गिरिध्वज–सं०पु० [सं०] इन्द्र।

गिरिनंदिणी–सं०स्त्री०यौ० [सं० गिरिनंदिनी] १ पार्वती. २ गंगा. ३ नदी, सरिता।

गिरिनगर—देखो 'गिरनार' (रू.भे.)

गिरिनाथ–सं०पु० [सं०] शिव, महादेव।

गिरिमा–सं०स्त्री०—आठ सिद्धियों के अंतर्गत एक सिद्धि (अ.मा.)

गिरियांडोब–क्रि०वि०—टखने तक। उ०—इळायचं रा, मिसरू रा, गुलबदन रा, मालनेरी रा, बाफतां रा, चाळीस चाळीस हाथां रा छै। गिरियांडीब रै समा नाड़ा छै।—रा सा.सं.

गिरियौ–सं०पु०—एडी के ऊपर उभरी हुई हड्डी की गांठ, गुल्फ। उ०—जांघां गरभज केळ की, पींडी पूहरियांह। गिरिया गोळ सुपारियां, झीणी पांसळियांह।

—कुंवरसी सांखला री वारता

गिरिराज–सं०पु० [सं०] १ बड़ा पर्वत. २ हिमालय पर्वत. ३ गोवर्धन पर्वत. ४ सुमेरु पर्वत।

गिरिस—देखो 'गिरीस' (नां.मा.) (रू.भे.)

गिरिसार-सं०पु० [सं०] १ शिलाजीत. २ लोहा।

गिरिसुत-सं०पु० [सं०] मैनाक पर्वत।

गिरिसुता-सं०स्त्री० [सं०] पार्वती।

गिरिस्रंग-सं०पु०यौ० [सं० गिरिश्रृंग] पर्वत-शिखर, पर्वत की चोटी।

गिरींद्र-सं०पु० [सं०] १ हिमालय. २ बड़ा पर्वत.

गिरी-सं०स्त्री०—१ वह गूदा जो किसी बीज आदि को तोड़ने पर उसके अंदर से निकलता है. २ नारियल के अंदर के गूदे का टुकड़ा. [सं० गिरि] ३ देखो 'गिरि' (रू.भे.)

गिरीओ—देखो 'गिरियौ' (रू.भे.) उ०—सुराही गळा रै घाटि, सभासळ पींडी, झीणै **गिरीअै** ऊपरि वाजणी पायल रा घूघरा रमझोळ झणकिआ जांणै कळहंस रा बच्चा बकोर करि रहिआ छै। --रा.सा.सं.

गिरीयक-सं०पु० [सं० गिरिक] गेंद, कंदुक (डि.को.)

गिरीस-सं०पु० [सं० गिरीश] १ महादेव, शिव (ह.नां.) २ हिमालय पर्वत. ३ कोई बड़ा पर्वत. ४ शिव-लिंग।
उ०—अति ऊंचा तिय रै उरज, बगिया बिसवा बीस। जोड़ै लागै जगत में, गिरि गज कुंभ **गिरीस**।—बां.दा.

गिरीस्रंग—देखो 'गिरिस्रंग' (रू.भे.)

गिरुआ-सं०पु०—एक राजपूत वंश (कां.दे.प्र.)

गिरैगोचर—देखो 'गोचर' (३) उ०—किसनू घणी-ई भैरूंजी रै प्रसाद'''मावड़ियाजी-रै आखा भेजिया, डाकोतियै खनै **गिरै-गोचर** देखाया अर छनीछरजी-रौ दांन कियौ पण आंख्यां-रा पट्ट मिळ-ई गया।—वरसगांठ

गिरै—१ देखो 'ग्रह' (रू.भे.)
मुहा०—१ गिरै आवणी—संकटग्रस्त होना, विपत्ति में पड़ना.
२ गिरै लागणी—आपत्ति में पड़ना।
३ देखो 'गिरह' (रू.भे.)

गिरैबाज-सं०पु०यौ० [फा० गिरहबाज] एक प्रकार का कबूतर जो उड़ते-उड़ते ही उलट कर कलाबाजी दिखाने लगता है और फिर वापिस उड़ने लगता है। उ०—केहक गिरैबाज कबूतर री नांई गिरह खाता नै पळचर पंखियां ज्यूं फड़फड़ाता सफीलां सुं धरती पहली दोय-दोय तीन-तीन कटारिया लगावै छै।—प्रतापसिंह म्होकमसिंह री वात

गिरोंगौ—देखो 'गरोंगौ' (रू.भे.)

गिरोवर—देखो 'गिरवर' (रू.भे.) उ०—पदमणि रखपाळ पाइदळ पाइक, हिळवळिया हलिया हसति। गमे गमे मदगळिता गुड़ता, गात्र **गिरोवर** नाग गति।—वेलि.

गिलंका-सं०स्त्री०—मजाक, दिल्लगी।

गिलका-सं०स्त्री०—नदी (अ.मा.)

गिलकासिला-सं०स्त्री०—गंडक नदी जो गंगा की सहायक नदी है (ह.र.)

गिलगिली-सं०स्त्री०—१ गुदगुदी. २ मीठी सुरसुराहट या खुजली जो शरीर के किसी अवयव पर अँगुली आदि के स्पर्श से होती है. ३ घोड़े की एक जाति।

गिलची-सं०पु०—मुसलमानों का खिलजी वंश, गिलजई वंश। (बां.दा. ख्यात)

गिलट-सं०स्त्री० [अं० गिल्ड] १ सोने का पानी चढ़ाने का कार्य, मुलम्मा. २ एक प्रकार की हलकी और कम मूल्य की धातु जिसका रंग सफेद और चमकीला होता है।

गिलटी-सं०स्त्री० [सं० ग्रंथि] १ एक प्रकार का रोग।
वि०वि०—इस रोग में शरीर के संधिस्थलों में स्थित गांठों में से किसी गाँठ में सूजन आकर फूल जाती है अथवा शरीर के किसी दूसरे भाग में इसी प्रकार की कोई गाँठ उत्पन्न हो जाती है।
२ एक प्रकार का छोटा कीटाणु जो मृत देह के मांस पर अधिक होता है. ३ अपने कहे कथन से मुकरने या पलटने का भाव।

गिलण-वि०—निगलने वाला।
सं०स्त्री०—गला, गर्दन।

गिलणी-सं०स्त्री०—गर्दन।

गिलणौ-सं०पु०—गला, गर्दन।

गिळणौ, गिळबौ-क्रि०स० [सं० गल] १ निगलना, खाना।
उ०—१ **गिळती** मांस रंगी रिण ग्रीझण। उडती रंगिया अनड़। – धोळजी
उ०—२ च्यार मजल अजमेर सूं, दाझै अवरंग दुक्ख। ज्यौं विखधर छच्छूंदरी, **गिळै** न त्यागै मुक्ख।—रा.रू.
२ अधिकार में करना। उ०—१ राह विलग्गौ अरिहरां, ग्रहण करण गजगाह। देवगिर सरिखा दुरंग, बैठौ **गिळै** दुबाह।—चतुरौ बारहठ
उ०—२ गाहै थांणा गढ़ **गिळै**, तूं पातल बळवंत। हमै कबर बासौ हुसी, अकबर आयौ अंत।—बां.दा.
३ संहार करना। उ०—वडा विरदेत करमेत रा वीरवर, अंजसै दुरग जोधांण धर ऐत। फिरै॰फिरत अणी सावळ फळां, छळण द्वारां **गिळै** तुहिज छत्रेत।—नरबद
क्रि०अ०—४ पिघलना, द्रवित होना।
गिळणहार, हारौ (हारी), गिळणियौ—वि०।
गिळवाणौ, गिळवाबौ—प्रे०रू०।
गिळिओड़ौ, गिळियोड़ौ, गिळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।
गिळीजणौ, गिळीजबौ—कर्म वा०, भाव वा०।

गिलबिला-सं०पु०—मुसलमान।

गिलबिलाणौ, गिलबिलाबौ-क्रि०अ०—व्याकुल होकर बकना, असंबद्ध प्रलाप करना।

गिलबौ-सं०पु०—१ कोलाहल, शोर। उ०—**गिलबौ** कर कहसौ जे भूंडी गल्ल, (तो) बांभी अणगिणती रा लेसौ बारणा।—लो.गी.
२ गाने की ध्वनि. ३ शिकायत।

गिलमौ, गिलम-सं०पु०—१ बहुत मोटा व मुलायम गद्दा या बिछौना (अ.मा.)

उ०—१ सबळ भूखे सीह ज्यूं, बढ़िया मुहि भुगलाळ। गिलमां ऊपर गिळ गयौ, ज्यां अग भाळ लंकाळ।—रा.रू.

उ०—२ अणी बिछायत बाड़ियां, आजमे गिलम जुहार। आप दुनीचां ऊपरै, अदभुत खुलै अपार।

—बगसीरांम प्रोहित री वात

उ०—३ ताहरां मांहि गिलमां विछाया। ऊपर चादरां बिछाया।

२ तकिया। —चौबोली

गिलबे—देखो 'गिलोय' (अमरत)

गिलांण, गिलांणी, गिलांन, गिलांनी—सं०स्त्री० [सं० ग्लानि] देखो 'ग्लांनि' (रू.भे.) उ०—१ हणं पसू तिण खिण हुए, हिए दया री हांण। थाळी मांह मसांण थट, गिल ही छोड़ गिलांण।—बां.दा.

उ०—२ पण माथै पर करज, मोतीलाल सेठ री बेमुरोवती, वर में टोटो, लुगाई सूं कपट अर ऊपर सूं भाई गोपाळ री मीठी फटकार, अां सारी वातां सूं रमेस रै मन में गिलांणी पैदा हुयगी, अर करतव-बुद्धि जाग उठी।—वरसगांठ

उ०—३ तौ फेर कही—वांरै मन में गिलांनी नहीं, मेरै मन में है इणसूं माफी करौ।—अमरसिंह री वात

गिलाफ—सं०पु० [अ०] १ कपड़े का बना वह आवरण जो तकिये, लिहाफ आदि पर चढ़ाया जाता है. २ लिहाफ. ३ म्यान।

गिलार—सं०स्त्री०—गला, गर्दन। उ०—करके तरवार ग्रहे हिरणाकुस, मूढ़ निरोस निवार मुड़ै। सुत के बळ एक मुरार तणौ, सज थंभ विडार गिलार थड़ै।—भगतमाळ

गिलारी—सं०स्त्री०—एक प्रकार का छोटा चंचल जानवर जो एशिया, यूरोप और उत्तरी अमेरिका में बहुत अधिकता से होता है। गिलहरी

गिलास—सं०स्त्री० [अं ग्लास] पानी, दूध आदि तरल पदार्थ पीने का एक पात्र जो गोल और लम्बा होता है। वह पेंदे में कम चौड़ा और मुंह की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है।

(अल्पा० 'गिलासड़ी')

गिळित—वि०—निगला हुआ। उ०—अहिया मुखि मुखा गिळित उग्रहिया।—वेलि.

गिलिम—देखो 'गिलम' (रू.भे.)

गिली—१ देखो 'गुल्ली' (रू.भे.) २ देखो 'गिलगिली' (रू.भे.)

गिलोड़ी—सं०स्त्री०—१ गुड़, घी व आटे के मेल से बनाई जाने वाली मोटी रोटी. २ देखो 'घिलोड़ी' (रू.भे.)

गिलोणौ, गिलोबौ—क्रि०स०—१ गीला करना. २ मिश्रित करना, मिलाना. ३ गूंधना।

गिलोणहार, हारौ (हारी), गिलोणियौ—वि०।

गिलोयोड़ौ—भू०का०कृ०।

गिलोवणौ, गिलोवबौ—रू०भे०।

गिलोय—सं०स्त्री० [फा०] एक प्रकार की वृक्षों पर चढ़ने वाली लता, गुरुच, गुड़ूची।

गिलोयोड़ौ—भू०का०कृ०—१ गीला किया हुआ. २ मिश्रित किया हुआ, मिलाया हुआ. ३ गूंधा हुआ। (स्त्री० गिलोयोड़ी)

गिलोरी मांडिया—सं०स्त्री०यौ०—घी की रोटी। उ०—कोई जद चित आया गिलोरी मांडिया, लायौ नटड़ौ खाटी-मीठी छाछ जी।

—लो.गी.

गिलोळ—देखो 'गुलेळ' (रू.भे.)

गिलोळी—सं०पु० [फा० गुलेला] मिट्टी की बनी छोटी गोली जो गुलेल से फेंकी जाती है।

गिलोवणौ, गिलोवबौ—देखो 'गिलोणौ' (रू.भे.) उ०—१ म्हे तौ आंगण गार गिलोवस्यां, म्हारी विरधी रा कोडां।—लो गी.

उ०—२ नांखै मोल मजूर, लदै ऊंटां पर बोरा। गार गिलोवणहार चिणावै चेजै ओरा।—दसदेव

गिलोवणहार, हारौ (हारी), गिलोवणियौ—वि०।

गिलोवियोड़ौ, गिलोबियोड़ौ, गिलोव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गिलोवीजणौ, गिलोवीजबौ—कर्म वा०।

गिलोवियोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'गिलोयोड़ौ' (रू.भे.)

(स्त्री० गिलोवियोड़ी)

गिलौ—सं०पु० [सं० गर्हा] १ लड़ाई, झगड़ा, टंटा। उ०—अमरसिंह री आपस मांहे रस नहीं। बकसी रै जसवंतसिंहजी सूं इकळास सो अमरसिंहजी सूं बात बात में गिलौ करै।—अमरसिंह री वात

२ अपकीर्ति, निंदा। उ०—१ जाडा थंडां मेल आया गनीमां सूं बांध जिलौ, जिकौ लेसूं चोड़ैधाड़ै आडा खंडां जूट। कमंधां रै नाथ म्हारै भरोसै सूंपियौ किलौ, किलौ ढीलौ कियां हुवै गिलौ चारूं खूंट।—देवीदांन लाळस उ०—२ जणां कही फलांणौ वैरी थारौ गिलौ करतौ थौ, थारी फाटी वातां कहतौ थौ, मैं उणनूं मनै कियौ थौ।—नी.प्र.

३ खबर, सन्देश। उ०—इणरै अन्याय रौ गिलौ प्रभू री दरगाह में घणौ पहुंचौ।—नी.प्र.

गिल्ली—१ देखो 'गुल्ली'. २ गुदगुदी।

गिवल—सं०पु०—रोझ।

गिव्वर—सं०पु०यौ० [सं० गिरिवर] पहाड़, पर्वत।

गिसत—देखो 'गस्त' (रू.भे.)

गिसी—सं०स्त्री० [अ० गिश, गिश्श] अशुभ, भयंकर।

उ०—गजां दांण सूकै इसा बांण गाजै। अळै काळ सद्दै गिसी नाळ बाजै।—रा.रू.

गिस्ती—देखो 'ग्रहस्थी' (रू.भे.)

गींगणी—सं०स्त्री०—एक प्रकार का छोटा पक्षी जिसके नेत्र पीले होते हैं। जब ये पक्षी बहुत से एक साथ होते हैं तो टांयें-टांय की ध्वनि करते हैं।

गींडबौ—सं०पु०—१ तकिया, उपधान। उ०—लायौ नटड़ौ फाट्यौ पुरांणौ पूर जी, कोई जद चित आया सोड़'र गींडबा।—लो.गी.

२ छोटा गोल तकिया। उ०—सोना रो पिलंग कसणां कसियो छै सो कैसोहेक सोभायमांन दीसं छै? जांणै खीर-समुद्र रा भाग छै। ओसीसा गींडवा कैसा विराजै छै? जांणै सीगीमल काछबा समुद्र में केळ करै छै।—रा.सा.सं.

गींडोळियौ, गींडोळी–सं०पु०—वर्षा ऋतु में होने वाला एक प्रकार का कीड़ा जो गोबर के गोले बनाता है।

गींदवौ–सं०पु० [सं० गेंदुक] देखो 'गींदवौ' (रू.भे.) उ०—कंत लखीजै दोहि कुळ, नथी फिरंती छांह। मुड़िया मिळसी गींदवौ, वळै न धण री बांह।—वी.स.

गी–सं०स्त्री०—१ शोभा. २ स्त्री. ३ वाणी. ४ अमृत (एका०) ५ सरस्वती (ह.नां.)

वि०—कठोर।

'जाणौ' क्रिया का भूतकालिक स्त्री लिंग रूप।

गीआमाळती–सं०स्त्री०—प्रत्येक चरण में २८ मात्रा का एक मात्रिक छंद

गीगौ–सं०पु० (स्त्री० गीगी) छोटा बच्चा। उ०—मरूं अक जीवूं मोरी माय, दुहागण कौ मांन वधायो, जी राज, म्हारी धीहड थारी मरैगी बलाय, दुहागण कौ गीगौ मांन वधायो, जी राज।—लो.गी.

अल्पा०—गीगलड़ौ, गीगलौ, गीगल्यौ, गीगियौ।

गीजड़–सं०पु०—आंख का मैल (डिं.को.)

गीजा–सं०स्त्री०—बिना नगीने वाली एक प्रकार की अंगूठी विशेष।

गीड–सं०पु० [सं० किट्ट] आंख का मैल।

रू०भे०—गीजड़, गीद।

गीण–सं०स्त्री०—पीड़ा या वेदना से उत्पन्न होने वाली कराह।

गीणणौ, गीणबौ–क्रि०अ०—१ कष्ट या पीड़ा से चीखना, कराहना. २ रोना।

गीत–सं०पु०—१ वह वाक्य या पद जो गाया जाता हो, गाने की सामग्री, गायन। उ०—प्रति पोळि भूल सप्रीत, गावंति सुंदर गीत। जग-मगत दीपक जोत, प्रति जोति पंति उद्योत।—रा.रू.

२ मांगलिक गायन।

अल्पा०—गीतड़लौ, गीतड़ौ।

३ बड़ाई, यश।

मुहा०—चमारी आळा गीत—झूठे बड़प्पन के लिये कष्ट उठाना।

४ राजस्थानी (डिंगल) के एक खास प्रकार के छंद जिनकी कुल संख्या ८४ है. ५ स्त्रियों की चौसठ कलाओं के अंतर्गत एक कला. ६ पुरुषों की बहत्तर कलाओं में से एक कला।

गीतका–सं०स्त्री०—१ एक मात्रिक छंद विशेष. २ बीस वर्ण का एक वर्णिक छंद विशेष।

गीतणी–सं०स्त्री०—वह जो गीत गावे, गायिका। उ०—आप कनै सामांन थौ तिकौ बगसियो नै सुखपाळ मंगाय गींदोली नै बैसांण नगर नै चाल्या नै गीतणियां नै हुकम कियो, म्हांनै नै सहजादी गींदोली नै गावौ।—जगमाल मालावत री वात

गीता–सं०स्त्री० [सं०] १ भगवद् गीता. २ छब्बीस मात्रा का एक छंद जिसमें १४ और १२ मात्राओं पर विराम होता है ३ वृत्तांत, कथा, हाल. ४ एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में स ज ज भ र और स के क्रम से तथा अंत में एक लघु एवं एक गुरु सहित २० वर्ण होते हैं।

गीतारी–सं०स्त्री०—१ झुंड बना कर रहने वाला एक प्रकार का पक्षी. २ गायन विद्या में प्रवीण।

गीतिका—देखो 'गीता' (४)

गीतेरण—देखो 'गीतणी' (रू.भे.) उ०—गांवां गांवां में गीतेरण गाती, चित्रण ग्रह भीतर चित्तेरण चाती।—ऊ.का.

गीद—देखो 'गीड' (रू.भे.)

गीदड़–सं०पु०—सियार, शृगाल।

मुहा०—गीदड़ भभकी—सिर्फ डराने के लिए डांट या कोई बात।

वि०—डरपोक, कायर, भीरु।

गीदल–सं०स्त्री०—आंधी चलने के बाद आकाश में छा जाने वाली गर्द (क्षेत्रीय)

गीध–सं०पु० [सं० गृध्र] (स्त्री० गीधण गीधणि, गीधणी, गीधांणी) गिद्ध पक्षी। उ०—१ गई चढ़ि चील्हणि गीधणि गैण। नसौ करि बैल चढ्यौ त्रण-नैण।—मे.म. उ०—२ कंकांणी चंपै चरण, गीधांणी सिर गाह। मो बिण सूतौ सेज री, रीत न छंडै नाह।—वी.स.

गिप्ती–सं०स्त्री० [सं० गीर+पती, गीष्पती] सरस्वती।

उ०—बराबर दीस दिगंतर बाह्य, अगोचर गोचर गिप्ती अग्राह्य।

—ऊ.का.

गीयांन—देखो 'ग्यांन' (रू.भे.)

गीया–सं०पु०—एक प्रकार का मात्रिक छंद विशेष।

गीयाई–सं०स्त्री०—घी की बिक्री पर प्रजा से लिया जाने वाला सर-कारी कर विशेष।

गीरंद–सं०पु०यौ० [सं० गिरि+इंद्र] पहाड़, पर्वत।

गीरथ–सं०पु० [सं०] १ बृहस्पति का नाम. २ जीवात्मा।

गीरदेवी–सं०स्त्री० [सं० गीर्देवी] सरस्वती, शारदा।

गीरपति–सं०पु० [सं० गीर्पति] १ बृहस्पति. २ विद्वान, पंडित (अ.मा.)

गीरवांण—देखो 'गिरवांण' (रू.भे.)

गीला–सं०स्त्री०—१ चौहान वंश की एक शाखा (वं.भा.)

२ ढोली जाति की एक शाखा।

गीलापण, गीलापणौ–सं०पु०—आर्द्र या गीला होने का भाव, नमी, तरी।

गीलोपनौ, गीलोपणौ–वि०—सुकुमार, नाजुक, सुंदर।

गीलौ–वि० [सं० गीली] भीगा हुआ, नम, तर।

गीलसणौ, गीलसबौ–क्रि०स०—निगलना, ग्रसना। उ०—सासु कहइ बहु! घर मांहि आव। चंद कइ ओळइ तोहि गीलसइ राहु।

—बी.दे.

गुंगट–सं०पु० [अनु०] घूं घूं का शब्द (भ्रमरत) २ देखो 'घूंघट' (रू.भे.)

गुंज–सं०स्त्री० [सं० गुञ्ज] १ भौंरों के भनभनाने का शब्द, गुंजार. २ सलाह, परामर्श। उ०—१ ऊकटिया उदियापुर ऊपर, मेवाड़ा मिळिया तिण मौसर। रांण कंवर थी **गुंज** रचायौ, प्रगट करै कांइ देस परायौ।—रा.रू. उ०—२ अकबर तहवर खांन इम, उर निज **गुंज** उपाय। दळ सोनग्ग दुरग्ग रै, दीना दूत पठाय।—रा.रू. ३ घुंघची, गुंजाफल।

गुंजणौ—देखो 'गुंजा' (१)

गुंजणौ, गुंजबौ–क्रि०अ०—भौंरों का भनभनाना, मधुर ध्वनि निकालना।
गुंजणहार, हारौ (हारी), गुंजणियौ—वि०।
गुंजिग्रोड़ौ गुंजियोड़ौ, गुंज्योड़ौ—भू०का०कृ०।
गुंजीजणौ गुंजीजबौ—भाव वा०।

गुंजन–सं०स्त्री० [सं०] १ भौंरों के गूंजने से उत्पन्न शब्द, भनभनाहट. २ भौंरों के समान कोमल मधुर ध्वनि।

गुंजा–सं०स्त्री० [सं०] १ घुंघची नाम की लता जो जंगल में भाड़ों पर चढ़ती है और जिसकी फलियों में से अरहर के बराबर गहरे लाल रंग के दाने निकलते हैं, चिरमटी। उ०—**गुंजा** सूं घटतौ घणौ, मावड़ियां रौ मोल।—बां.दा. २ एक प्रकार का खाद्य पदार्थ विशेष।

गुंजाइस–सं०पु० [फा० गुंजाइश] १ स्थान, जगह। २ सुभीता।

गुंजाड़णौ, गुंजाड़बौ, गुंजाणौ, गुंजाबौ–क्रि०स० ('गुंजणौ' का प्रे०रू०) गुंजाना, मधुर ध्वनि उत्पन्न कराना।

गुंजामाळ–सं०स्त्री०—घुंघचियों की माला।

गुंजायमान–वि०—गूंजता हुआ, मधुर ध्वनि करता हुआ।

गुंजायस—देखो 'गुंजाइस' (रू.भे.)

गुंजार–सं०स्त्री०—१ भौंरों की गूंज, भनभनाहट। उ०—१ रवै लार **गुंजार** रोळंब राजी।—वं.भा. उ०—२ तीं समै वीं कबर रै ऊपर भंवरा **गुंजार** कर रहिया, सुगंध इतर री सारै फैल रही।
—जलाल बूबना री वात
[सं० गुह्यागार] २ सामानगृह, गोदाम. ३ चौड़े द्वार का एक गृह या कोठार जिसमें किसान वर्षा ऋतु में अपनी गाड़ी रखते हैं या घास-फूस भरते हैं. ४ ताकत, शक्ति। उ०—जग जाडा जूंभार, अकबर पग चांपै अधिप। गौ राखण **गुंजार**, पिंड में रांण प्रतापसी।
—दुरसौ आढ़ौ

गुंजारणौ, गुंजारबौ–क्रि०अ०—१ गरजना. २ गुनगुनाना।
गुंजाणहार, हारौ (हारी), गुंजारणियौ—वि०।
गुंजारिग्रोड़ौ, गुंजारियोड़ौ गुंजारयोड़ौ—भू०का०कृ०।

गुंजारव–सं०पु०—१ भौंरों के द्वारा उत्पन्न ध्वनि, गुंजार। उ०—भंवर **गुंजारव** करिनै रहिया छै।—रा.सा.सं. २ गर्जना। उ०—**गुंजारव** गैमरां धुवै हव सांभळ ढोलां, जादम सूं कर जंग फवै थिर भारी बोलां।—द.दा.

गुंजावणौ, गुंजावबौ—देखो 'गुंजाणौ' (रू.भे.)

गुंजाहळ–सं०पु० [सं० गुंजाफल] १ घुंघची, चिरमटी। उ०—अहर रंग रत्तउ हुवइ, मुख का जळ मसि ब्रम्म। जांण्यउ **गुंजाहळ** अछइ, तेण न ढूकउ मन्न।—ढो.मा. २ घुंघची की बनी माला।

गुंजियोड़ौ–भू०का०कृ०—भनभनाया हुआ, गुंजार किया हुआ।

गुंजौ–सं०पु०—एक प्रकार की मिठाई।

गुंझ—देखो 'गुंज' (रू.भे.) उ०—दिल्ली सूं उत्तर दिसा, जमण तणै उपकंठ। ऊतरियौ मिळ आपरां, **गुंझ** प्रकासण गंठ।—रा.रू.

गुंठड़ौ–सं०पु० [सं० गुंठि] घूंघट (अल्पा०) उ०—**गुंठड़ौ** तौ मोड़ नोकोटी रौ राय जगावियौ, जागौ-जागौ भंवर सुजांण।—लो.गी.

गुंठौ–सं०पु०—एक प्रकार का नाटे कद का घोड़ा।

गुंड–सं०पु०—१ मल्हार राग का एक भेद. २ देखो 'गुंडौ'। उ०—दयाळ् व्है न सरवथा वथा दया मया दटै, मिळै जु **गुंड** मुच्छ मुंड थुंड ऊटके थटै।—ऊ.का.

गुंडापण, गुंडापणौ–सं०पु०—गुंडापन, शोहदापन, बदमाशी।

गुंडी–सं०स्त्री०—रस्सी या डोरे आदि में अधिक बल देने पर होने वाली ऐंठन।
मुहा०—मन री गुंडी खुलणी—कपट मिटना।
वि०—देखो 'गुंडौ' (स्त्री०)

गुंडौ–वि० [सं० गुंडक] (स्त्री० गुंडी) १ दुर्वृत्त, दुराचारी, बदमाश. २ मन में गांठ रखने वाला।
सं०पु०—बदमाश व्यक्ति।

गुंढ़ी–सं०स्त्री० [सं० ग्रंथि] १ गांठ, ऐंठन, ग्रंथि. २ सूत के कपड़े से बना छोटा बटन घुंडी।

गुंढेल–सं०स्त्री०—काष्ठ का छोटा गुटका जो रस्सी के किनारे पर विशेष रूप से तैयार करके लगाया जाता है।
वि०—देखो 'गुंडौ' (रू.भे.)

गुणपचास–वि० [सं० ऊनपञ्चाशत, प्रा० ऊणपंचासा] चालीस और नौ के योग के बराबर।

गुंथित–वि० [सं० ग्रंथित] गुंथा हुआ। उ०—कबरी किरि **गुंथित** कुसुम करंवित, जमुण फेण पावन्न जग।—वेलि.

गुंथणौ, गुंथबौ—देखो 'गूंथणौ' (रू.भे.)

गुंथावणौ गुंथावबौ—देखो गूंथावणौ' (रू.भे.)
गुंथावणहार, हारौ (हारी), गुंथावणियौ—वि०।
गुंथाविग्रोड़ौ, गुंथावियोड़ौ, गुंथाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गुंदरइ–क्रि वि०—निकट, पास, समीप। उ०—मोटा मलिक **गुंदरइ** वळइ घोड़ां मरइ नवां मोकळइ। चाल्यां कटक सोनिगिरि भणी, पूठइ बगनी आवइ घणी।—कां.दे प्र.

गुंदिनी—देखो 'गूंदी' (रू.भे.)

गुंफ–सं०पु० [सं०] १ उलझन, जाल. २ गुच्छा।

गुंबड़ौ—देखो 'गूंबड़ौ' (रू.भे.)

गुंबज-सं०पु० [फा० गुंबद] देवालय या अन्य विशाल भवनों पर ऊपर की गोल छत।

रू०भे०—गुम्मज।

यौ०—गुंबजदार।

गुंभार, गुभारौ-सं०पु०—१ तहखाना. २ गुम्बज।

गु-सं०पु०—१ अर्क. २ प्राण. ३ कामदेव. ४ कुत्ता. ५ खर, गधा. ६ भय. ७ नर. ८ गुण. ९ पय. १० समाज (एका०) [सं० गूथ] १२ विष्टा, मल।

कहा०—गू खायां काळ नहीं निकळै—विष्टा खाने से अकाल नहीं निकलता। बेईमानी या हराम की कमाई से जीवन सफल नहीं हो सकता।

सं०स्त्री०—युक्ति, उपाय।

गुआर—देखो 'गवार'।

गुआरपाठौ—देखो 'ग्वारपाठौ' (रू.भे.)

गुआळ-सं०पु० [सं० गोपाल] १ गांव के बीच का चौक।

उ०—छांह गुआळ ढळंती छाया, जकौ पटंतर देख जुए। सुमबद बर्साजं सहर सितारौ, हथणापुर में वेढ़ हुए।—ओपौ आढ़ौ

२ ग्वाला।

गुआळियौ, गुआळौ-सं०पु०—१ ग्वाला. २ श्रीकृष्ण।

गुख-सं०पु०—गवाक्ष, खिड़की। उ०—कोटा नइ कोसीसा घणां, गुख बार मढ़ मतवारणा। वळी धवळहर जोयां चडी, रतनजडित बइठी फूदड़ी।—कां.दे.प्र.

गुगजी-सं०पु०—भाटी वंश की एक शाखा अथवा इस शाखा का व्यक्ति (बां.दा. ख्यात)

गुगर-सं०पु०—किसी धातु का बना वह गोल गुरिया जिसके भीतर छोटी गोली या कंकर होता है। हिलाने पर इससे मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है, घुंघरू।

गुगळ—देखो 'गुग्गुळ' (रू.भे.)

गुगळधूप-सं०पु०—गुग्गुल नामक वृक्ष या सलई के वृक्ष से निकलने वाला गोंद या धूप।

गुगल्यौ—देखो 'गुळगुचियौ' (रू.भे.)

गुग्गुळ-सं०पु०—एक कांटेदार पेड़ जो सिंध, काठियावाड़, राजपूताना, खानदेश आदि में होता है। इसमें से कुछ हरापन लिये हुए भूरे रंग का गोंद निकलता है जिसे गुग्गुल कहते हैं।

पर्याय०—गूगळ, देवधूप, पलंकस, महिखाक, वायुघ्न।

गुग्घर—१ देखो 'घुघर'। उ०—जवन्निय सेन अळै फिर ज्वाळ, घमंघम पक्खर गुग्घर माळ।—रा.रू

२ देखो 'गूगरी' (रू.भे.)

गुघस-सं०पु०—१ बिना जल के बादल. २ मृगी रोग में मुँह से निकलने वाले फेन।

गुग्घी, गुघी—देखो 'घुघी' (रू.भे., मा.म.)

गुड़-सं०पु० [सं० गुड़] १ हाथी का कवच। उ०—१ गाहै गयराजां गुड़ां रुहिर मचावै कीच, ज्यांरै नवग्रह पाखरां, जे बंका रण बीच।—बां.दा.

उ०—२ गयराजां गुड़ ग्रहण, रहण पाखर हयराजां। पाजां छळि दळ प्रधळ, सघण वरसाळ समाजां।—वं.भा.

मुहा०—गुड़ पाखर होणौ—कटिबद्ध होना, तैयार होना।

२ गेंद कंदुक. ३ पका कर जमाया हुआ गन्ने या ताड़ी का रस जो कतरे, बट्टी या भेली के रूप में होता है।

पर्याय०—इक्षु।

मुहा०—१ गुड़ खाणौ नै गुलगुलां सूं परहेज करणौ—बड़ी बुराई करना और छोटी बुराई से बचना। किसी कार्य का बड़ा अंश करना और छोटे से दूर रहना। किसी कम हानिकारक चीज को बचाना और ज्यादा हानिकारक को खाना. ३ गुड़ गाळणौ—किसी मांगलिक कार्य के अवसर पर बड़ा भोज करना जिसमें कोई गुड़-मिश्रित वस्तु बनी हो. ४ गुड़ गोबर करणौ—बना बनाया काम बिगाड़ देना. ५ गुड़ दियां मरै तो जहर क्यूं देणौ—आसानी से काम निकलता हो तो सख्ती नहीं करना चाहिये. ६ गुड़ माथै माखियां घणी आवै—माल होगा तो चखने वाले अपने आप आ जायेंगे; कोई चीज होगी तो उसकी जरूरत वाले अपने आप पहुँचेंगे।

कहा०—१ गुड़ घालसी जितौ मीठौ हुसी—जितना गुड़ डालोगे उतना ही मीठा होगा। जितना परिश्रम करोगे उतना ही लाभ होगा। जितना खर्च करोगे वैसी ही वस्तु मिलेगी. २ गुड़ खाई जिकौ कांन बींदाई—जो गुड़ खायेगा, वही कान छिदावेगा। जो कुछ धन लेगा उसे कुछ कष्ट भी उठाना होगा (लड़कों का कान छेदते प्रायः उनके हाथ में गुड़ की डली दे दी जाती है जिससे वे उसमें भूले रहें और झट से कान छेद दिए जांय. ३ गुड़ देतां ही छोरी हुवै जरां पछै कांई करै—गुड़ देते हुए भी लड़की हो जाय तो क्या किया जाय? अधिक परिश्रम या व्यय करने पर भी सफलता न मिलने पर. ४ गड़ बिना किसी चौथ, जैतल बिना किसी रातीजोगौ—बिना गुड़ अर्थात् मिष्ठान के चौथ आदि का त्योहार पूर्ण नहीं होता, उसी प्रकार बिना जैतल (देवी विशेष का गीत) गाये रात्रि-जागरण अधूरा होता है। जैतल देवी का महत्व-प्रदर्शन।

रू०भे०—गळ, गुळ, गोळ।

गुड़कणौ, गुड़कबौ-क्रि०अ० [अनु०] लुढ़कना।

गुड़कणहार, हारौ (हारी), गुड़कणियौ—वि०।

गुड़काड़णौ, गुड़काड़बौ, गुड़काणौ, गुड़काबौ, गुड़कावणौ, गुड़कावबौ—क्रि०स०।

गुड़िओड़ौ, गुड़ियोड़ौ, गुड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गुड़कीजणौ, गुड़कीजबौ—भाव वा०।

गुड़णौ, गुड़बौ—रू०भे०।

गुड़काणौ, गुड़काबौ–लुढ़काना । उ०—नाडा भरियोड़ा नेड़ा निजराता । गाडा गुड़काता पैड़ा रड़पाता ।—ऊ.का.

गुड़काणहार, हारौ (हारी), गुड़काणियौ—वि० ।

गुड़काड़णौ, गुड़काड़बौ, गुड़कावणौ, गुड़कावबौ—रू०भे० ।

गुड़कायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

गुड़काईजणौ, गुड़काईजबौ—कर्म वा० ।

गुड़कणौ, गुणकबौ—अक०रू० ।

गुड़कायोड़ौ–भू०का०कृ०—लुढ़काया हुआ ।
(स्त्री० गुड़कायोड़ी)

गुड़कावणौ— देखो 'गुड़काणौ' (रू.भे.)

गुड़कावणहार हारौ (हारी), गुड़कावणियौ -वि० ।

गुड़काड़णौ, गुड़काड़बौ, गुड़काणौ, गुड़काबौ— रू०भे० ।

गुड़काविप्रोड़ौ, गुड़कावियोड़ौ, गुड़काव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गुड़कावीजणौ, गुड़कावीजबौ—कर्म वा० ।

गुड़कणौ, गुड़कबौ—अक०रू० ।

गुड़कावियोड़ौ— देखो 'गुड़कायोड़ौ' (रू.भे.)
(स्त्री० गुड़कावियोड़ी)

गुड़कियोड़ौ–भू०का०कृ०—लुढ़का हुआ (स्त्री० गुड़कियोड़ी)

गुड़कीजणौ, गुड़कीजबौ–क्रि० भाव वा०— लुढ़का जाना ।

गुड़कीजणहार, हारौ (हारी), गुड़कीजणियौ—वि० ।

गुड़कीजिप्रोड़ौ, गुड़कीजियोड़ौ, गुड़कीज्योड़ौ— भू०का०कृ० ।

गुड़कीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—लुढ़का हुआ (स्त्री० गुड़कीजियोड़ी)

गुड़कौ–सं०पु०—१ लुढ़कने की क्रिया या भाव. २ ध्वनि, आवाज । उ०—आहियौ आसाडाह गाजै नै गुड़कौ कियौ। बूठौ भेदाहाह, निबळी भंय पर नागजी ।—र.रा.

गुड़गांठ–सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का बड़ा गोल पत्थर जो इसी नाम के एक प्रकार के खेल में उपयोग मे लाया जाता है. २ एक प्रकार की गांठ जो कठिनता से खुल पाती है ।

गुड़गुड़–सं०पु० [अनु०] १ वह शब्द जो जल में नली आदि के द्वारा वेगपूर्ण वायु के घुसने और बुलबुला उठने से उत्पन्न होता है. २ मंदाग्नि से उदर मे होने वाला शब्द ।

गुड़गुड़ाणौ, गुड़गुड़ाबौ–क्रि०स०—१ गुड़गुड़ शब्द करना । २ हुक्का पीना ।

गुड़गुड़ाहट–सं०स्त्री०—गुड़गुड़ शब्द की ध्वनि ।

गुड़गुड़ियौ–सं०पु०—१ हुक्के के नीचे का जल भरने का पात्र. २ एक प्रकार का हुक्का ।

गुड़गुड़ी—१ देखो 'गड़गुड़' (रू.भे.) २ देखो 'गुड़गुड़ियौ' २ (रू.भे.)

गुड़गुड़ीलौ–वि०पु० (स्त्री० गुड़गुड़ीली) वह लकड़ी जिसमें कई ग्रंथियां हों ।

गुड़गुड़ौ–क्रि०वि०—मुँह या किनारे तक ।
(रू०भे०–गड़गड़ौ)

गुड़णौ, गुड़बौ–क्रि०अ०—१ लुढ़कना ।
कहा०— गुड़तौ-गुड़तौ गोळ हुवै—लुढ़कती-लुढ़कती ही कोई वस्तु गोल होती है । सतत अभ्यास करने पर ही कुछ ज्ञान प्राप्त होता है या सफलता मिलती है ।
२ गिरना. ३ जाना, गमन करना । उ०—जाडा घन वाळा सिंधु तट जुड़िया । गाडा तन पाळा गुज्जर घर गुड़िया ।—ऊ.का.
४ बजना । उ०— रिण तूर नफेरिय भेर रड़ै, गहरै स्वर तांम दमांम गुड़ै ।—रा.रू. ५ गड़गड़ शब्द होना. ६ मरना, मृत्यु को प्राप्त होना । उ०—धां-धां गुड़गी खा ऊधां री घेरी, विस में जुड़गी हा दूधां री बेरी ।—ऊ.का. ७ कवच धारण करना ।
उ०— तेहे राउते चालते हूंते हस्ती गुडीया। तुरी पाखरिया रथ जता । –कां.दे.प्र.
८ झूमना, झूमते हुए चलना । उ०— पदमिणि रखपाळ पाइदळ पाइक, हिळवळिया हलिया हसति । गमे-गमे मद गळित गुडंता, गात्र गिरोवर नाग गति ।—वेलि. ९ बीतना, निर्वाह होना ।

गुड़णहार, हारौ (हारी), गुड़णियौ—वि० ।

गुड़ाणौ, गुड़ाबौ, गुड़ावणौ, गुड़ावबौ—क्रि०स० ।

गुड़िप्रोड़ौ, गुड़ियोड़ौ, गुड़्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गुड़ीजणौ, गुड़ीजबौ—भाव वा० ।

गुड़थळ, गुड़थेलौ—देखो 'गड़थळ' (रू.भे.) उ०—बीजूजळ दाव दूसरी वीको, साहे आवाहै सबळ । खळ पारधी गुड़थळ खायै, दाढ़ाळी सिरि हूंकळै दळ ।—नरपाळ राठौड़ रौ गीत

गुड़व, गुड़वापेच–सं०पु०— गिराने या लुढ़काने की क्रिया या भाव ।
उ० लाखां बीच आंगण नै भूपाळ 'बिजै' मार लीधौ, गोपाळ ज्यूं कीधौ काळमेद्ध नै गुड़व ।—हुकमीचंद खिड़ियौ

गुड़वौ–सं०पु० [फा० गुर्दः, स० गोर्द ?] १ रीढ़दार जीवों के अंदर का अंग जो कलेजे के निकट होता है । साधारण जीवों में रीढ़ के दोनों ओर एक-एक के हिसाब से दो गुर्दे होते हैं । शरीर में इनका काम पेशाब को बाहर निकालना और खून साफ करना है. २ एक प्रकार की छोटी बंदूक. ३ कान का एक आभूषण विशेष ।

गुड़पाखर- वि०—सुसज्जित, कटिबद्ध. २ कवच धारण किया हुआ । उ०— गुड़पाखर पूरब गयौ, नभ औ घसते सीस। आटौ करै उडाविया, जरा पटठांणी सीस ।—बां.दा.

गुड़फळ–सं०पु०—पीलू जाति का वृक्ष ।

गुड़बांणियौ–स०पु०—चींटा (क्षेत्रीय)

गुड़मच–सं०स्त्री०—एक ध्वनि विशेष ।

गुड़वरण, गुड़वरणी–सं०स्त्री० [सं० गौरवर्ण] केसर (अ.मा.)

गुड़वाड़–सं०स्त्री० [सं० गुडवाट] गन्ना, ईख ।

गुड़हळ, गुड़हाळ–सं०पु०— एक प्रकार का वृक्ष, गुड़हर ।

गुड़ाणौ, गुड़ाबौ–क्रि०स० ('गुड़णौ' का स०रू०) १ लुढ़काना. २ गिराना. ३ बजाना. ४ गड़गड़ शब्द करना. ५ मारना ।

उ०—केसोदास लखमण बांणज सांधियौ गैणा भमर गुड़ाया ।
—केसोदास गाडण

६ कवच धारण कराना. ७ बिताना ।

गुड़ाणहार, हारौ (हारी), गुड़ाणियौ—वि० ।

गुड़ायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

गुड़ावणौ, गुड़ाबबौ—रू०भे० ।

गुड़ाईजणौ, गुड़ाईजबौ—कर्म वा० ।

गुड़णौ, गुड़बौ—अक०रू० ।

गुड़ावणौ, गुड़ावबौ—देखो 'गुड़ाणौ' (रू.भे.)

गुड़ावणहार, हारौ (हारी), गुड़ावणियौ—वि० ।

गुड़ाविग्रोड़ौ, गुड़ावियोड़ौ, गुड़ाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गुड़ावीजणौ, गुड़ावीजबौ—कर्म वा० ।

गुड़णौ, गुड़बौ—अक०रू० ।

गुड़ावियोड़ौ—भू०का०कृ०—देखो 'गुड़ायोड़ौ' (स्त्री० गुड़ावियोड़ी)

गुड़ियौ—सं०पु०—कवचधारी हाथी । उ०—गुड़िया ढाहै मदंधगज, ताता चाल तुरंग । सांकड़भीड़ौ सुरग व्है, जिकौ कहीजै जंग ।
—बां.दा.

गुड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ लुढ़का हुग्रा. २ युद्ध में काम ग्राया हुग्रा । (स्त्री० गुड़ियोड़ी) ३ मरा हुग्रा ।

गुड़ी—देखो 'गुडी' (रू.भे.) उ०—पहिरावणि राजा करी, ऊछब गुड़ी भोज दुवारि ।—वी.दे.

गुड़ीकेस—सं०पु० [सं० गुडाकेश] अर्जुन (ह.नां.) २ शिव ।

गुड़ीजणौ, गुड़ीजबौ—क्रि० भाव वा०—१ लुढ़का जाना. २ युद्ध में काम ग्राया जाना ।

गुड़ीजणहार, हारौ (हारी), गुड़ीजणियौ—वि० ।

गुड़ीजिग्रोड़ौ, गुड़ीजियोड़ौ, गुड़ीज्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गुड़ीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—लुढ़का गया हुग्रा ।
'गुड़ीजणौ' का भू०का०कृ० । (स्त्री० गुड़ीजियोड़ी)

गुड़ेरक—सं०पु०—कौर, निवाला, ग्रास ।

गुड़ेल—देखो 'गुडेल' (रू.भे.)

गुचरकौ, गुचळकियौ, गुचळकौ—सं०पु० (स्त्री० गुचळकी) १ पानी में गोता खाने की क्रिया, डुबकी । उ०—घड़ा पीपळा नाख नटखट, तिरणौ सीखै सोख सूं । गैला गजब गुचळकी गिटै, चतर दूर दस दोख सूं ।
—दसदेव

२ अधिक भोजन करने से डकार के साथ पेट में से ग्राने वाला वह तरल पदार्थ जो अपच के कारण गले तक ग्रा जाता है । कभी-कभी यह मुँह के बाहर भी ग्रा जाता है । उ०—भोजन ग्रसमरां चाखता भुचरका, गुचरका खावता जावता गोतीह ।—मालौ सांदू

गुच्ची—सं०स्त्री०—१ भूमि में बना हुग्रा बहुत छोटा गड्ढा. २ वह विशेष प्रकार का छोटा गड्ढा जो बालक गोलियां या गुल्ली-डंडा खेलने के लिये बनाते हैं ।

गुच्छ—देखो 'गुच्छौ' (रू.भे.)

गुच्छी—देखो 'गुच्ची' (रू.भे.)

गुच्छौ—सं०पु०—१ सम्मिलित लगे हुए कई पत्तों, फलों या फूलों का गुच्छा. २ एक में लगी गुंथी या बंधी छोटी-छोटी वस्तुग्रों का समूह ।

गुजर—सं०पु० [फा० गुज़र] १ निर्वाह, गुजर-बसर । उ०—सो इसा-इसा बडा रजपूत ग्रागै हुग्रा । एक दिन री बंदगी सूं जमारे तलक की गुजर हुई ।—दूलची जोइयं री वारता

२ पहुँच, पैठ. ३ कालक्षेप. ४ देखो 'गुज्जर' (रू.भे.)

गुजरड़ौ—१ देखो 'गुजर' (ग्रल्पा०) २ देखो 'गुजर' ।

गुजरणौ, गुजरबौ—क्रि०ग्र०—१ किसी स्थान से होकर ग्राना या जाना, गुजरना. २ व्यतीत होना, बीतना. ३ मरना, चल बसना ।

गुजर-बसर, गुजरांण—देखो 'गुजर' (रू.भे.) उ०—परेसांन था तिकां खरच पायौ । हमें थे बैठा जोखिया करौ । थांरी छाया सूं म्हे गुजरांण करस्यां ।—जलाल बूबना री वात

गुजराणौ, गुजराबौ—क्रि०स०—निवेदन करना । उ०—स्त्री महाराज सूं ग्ररज गुजरांणी, सब कूं मुहांणी । स्त्री महाराज ग्रजमाल, सुभचिंतक की ग्ररज का सुणीजै सवाल ।—रा.रू.

गुजरात—सं०पु० [सं० गुर्जर+गोत्रा] पश्चिम में स्थित भारत का एक प्रांत ।

गुजराती—वि०—गुजरात प्रान्त का, गुजरात संबंधी ।
सं०स्त्री०—१ गुजरात की भाषा. २ छोटी इलायची. ३ ब्राह्मणों की एक जाति. ४ नटों का एक भेद विशेष जिनकी स्त्रियां रस्सी पर चलने या कलाबाजियां खाने का काम नहीं करतीं (मा.म.)
सं०पु०—५ गुजरात का निवासी. ६ निमोनिया नामक एक रोग ।

गुजारणौ, गुजारबौ—क्रि०स० [फा० गुजारना] बिताना, व्यतीत करना ।
उ०—थांरै मांहै सीह वाजौ जैड़ी सकती नहीं, दीनता सूं ग्रापरा दिन गुजारौ ।—वी.स.टी.

मुहा०—नमाज गुजारणौ—नमाज पढ़ना ।

गुजारणहार, हारौ (हारी), गुजारणियौ—वि० ।

गुजारिग्रोड़ौ, गुजारियोड़ौ, गुजारयोड़ौ—भू०का०कृ० ।

गुजारियोड़ौ—भू०का०कृ०—बिताया हुग्रा, व्यतीत किया हुग्रा । (स्त्री० गुजारियोड़ी)

गुजारिस—सं०स्त्री० [फा० गुजारिश] प्रार्थना, निवेदन ।

गुजारौ—सं०पु० [फा० गुजर] १ देखो 'गुजर' (रू.भे.)
उ०—बहु मजूरी कर ल्यावै तीमैं गुजारौ करै । ग्राप बजार में महनत मजूरी करै सो दिन बुरी तरह सूं नीसरै ।
—साह रामदत्त री वारता

२ वृत्ति जो किसी को जीवन-निर्वाह के लिये दी जाय ।

गुजहिक—सं०पु० [सं० गुह्यक] देवयोनि विशेष, यक्ष ।

गुझी—सं०स्त्री० [सं० गो+दधि, प्रा० गुवही, गुज्झी] १ छाछ को ग्रग्नि

पर गर्म करने के बाद पुनः ठंडा होने पर उस पर आये हुए पानी को पृथक कर देने के बाद अवशिष्ट गाढ़ा पदार्थ।

[सं० गोधूम+यव] २ वह अनाज जिसमें गेहूँ और जौ दोनों के दाने हों।

(रू.भे.-गुज्जी)

गुज्जर-सं०पु० [सं० गुर्जर] १ गुजरात प्रांत. २ देखो 'गूजर' (रू.भे.) ३ तीसरे विवाह की स्त्री।

गुज्जरात—देखो 'गुजरात' (रू.भे.)

गुज्जरी-सं०स्त्री० [सं०] १ गुर्जर जाति की स्त्री, गूजरी. २ एक रागिनी जो भैरव राग की स्त्री है (संगीत) ३ गुजरात प्रांत की स्त्री।

गुज्जी—देखो 'गुजी' (रू.भे.)

गुज्झ, गुझ-सं०पु० [सं० गुह्य] गुप्त भेद, रहस्य। उ०—नहीं तू गुज्झ नहीं तू ग्यांन। नहीं तू दुज्ज नहीं तू दांन।—ह.र.

वि०—गुप्त। उ०—निरंजणनाथ परम्म नवांण, किसन्न महाघण-रूप कल्यांण। सबग्गुण देव अतीत संसार, बिभू प्रति गुज्झ परम्म-बिचार।—ह.र.

गुझियौ-सं०पु० [सं० गुह्यक] खोये की बनी एक प्रकार की मिठाई जिसके अंदर थोड़ी मिश्री अथवा इलायची और कालीमिर्च रहती है।

गुटक—देखो 'गुटकौ' (रू.भे.)

गुटकणौ, गुटकबौ-क्रि०अ० [अनु०] जलकाग, कबूतर, फाख्ता आदि का मस्ती में बोलना। उ०—टीटोड़ी टहुकनै रही छै, जळकाग गुटकनै रह्या छै।—रा.सा.सं.

क्रि०स०—२ निगलना, घूंट-घूंट कर पीना।

गुटकांण—देखो 'गुटकौ' (रू.भे.)

गुटकी-सं०स्त्री०—१ जन्मजात बच्चे को सर्वप्रथम पिलाया जाने वाला द्रव पदार्थ, जन्मघुट्टी।

क्रि०प्र०—देणी, लेणी।

२ बच्चों को उदर-शुद्धि के लिये दी जाने वाली औषधि. ३ एक बार में गले के नीचे उतरने वाला कोई द्रव पदार्थ, घूंट।

उ०—म्हांने गुर मिळिया अविणासी, दई ग्यांन की गुटकी।—मीरां

गुटकौ-सं०पु० [सं० गुटिका] १ काष्ठ आदि का छोटा टुकड़ा. २ गोली. ३ छोटे आकार की पुस्तक, छोटी पुस्तक. ४ एक सिद्धि जिसके अनुसार कोई सिद्ध-गुटका मुँह में रख लेने पर योगी जहाँ चाहे चला जा सकता है, उसे कोई नहीं देख सकता. ५ नीम वृक्ष के पके फल (शेखावाटी) ६ एक बार में गले के नीचे उतरने वाला कोई द्रव पदार्थ, घूंट। उ०—गुडळी छाछां रा सपना में गुटका।—ऊ.का.

गुटरगूं-सं०स्त्री० [अनु०] जलकाग, कबूतर, फाख्ता आदि की मस्ती में की गई आवाज।

गुटळकौ—देखो 'गटकौ' (रू.भे.)

गुटली—देखो 'गुठली' (रू.भे.)

गुटिका—देखो 'गुटकौ' (रू.भे.)

गुटियौ-सं०पु०—वह गोल व छोटा पत्थर जो 'गुड़ गांठ' खेल में प्रयोग किया जाता है व फेंका जाता है।

गुटकौ—देखो 'गुट्टौ' (रू.भे.)

गुट्ट-सं०पु०—१ समूह, टोली दल। उ०—पांच पचास आदमियां रौ गुट्ट हुवै जद कांम चालै।—वरसगांठ

२ शब्द, आवाज, ध्वनि।

गुट्टौ, गुट्ठौ-सं०पु०—नीम का फल, निंबोरी।

वि०—नाटे कद का, छोटा।

गुठली-सं०स्त्री० [सं० गुटिका] ऐसे फल के बीज जिसमें एक ही बड़ा और कड़ा बीज होता है।

गुठौ—देखो 'गुट्टौ' (रू.भे.)

गुड-सं०पु०—हाथी का कवच (वं.भा.)

(रू०भे०-गुड़)

गुडगुडीलौ-वि०—१ धूर्त, चालाक. २ कपटी. ३ गांठोंयुक्त, गँठीला।

गुडळ—देखो 'गुडळियौ' (रू.भे.)

गुडळकियौ-वि० [सं० गोधूलि] गोधूली समय का, गोधूली समय संबंधी।

गुडळणौ, गुडळबौ-क्रि०अ०—१ (पानी) का गंदा होना. २ धूलिमिश्रित होना। उ०—गुडळ गैणाग रिण तूर सर गड़-गड़ी। ऊभ रंग ताजियां रैण रज ऊपड़ी।—अज्ञात

३ (पानी को) गंदला होना।

गुडळणहार, हारौ (हारी), गुडळणियौ—वि०।

गुडळिओड़ौ, गुडळियोड़ौ, गुडळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गुडळीजणौ, गुडळीजबौ—भाव वा०।

गुडळता-सं०स्त्री०—१ गंदलापन। उ०—प्रथी तैं पंक कहतां कादौ दूरि हुऔ, जळ की गुडळता दूरि हुई।—वेलि. टी.

२ गाढ़ापन।

गुडळपण, गुडळपणौ-सं०पु०—१ गंदला किया हुआ पानी, गंदा जल. २ गन्दला करने की क्रिया, गन्दलापन। उ०—वितए आसोज मिळे नभि वादळ, प्रथी पंक जळि गुडळपण।—वेलि.

३ गाढ़ापन।

गुडळाणौ, गुडळाबौ-क्रि०स०—१ पानी को गन्दा करना. २ धूलि मिश्रित करना।

गुडळायोड़ौ-भू०का०कृ०—गन्दा किया हुआ (पानी आदि)

(स्त्री० गुडळायोडी)

गुडळावणौ, गुडळावबौ—देखो 'गुडळाणौ' (रू.भे.)

गुडळि-सं०स्त्री०—अधिकता। उ०—आडंग री गुडळि मांहे ऊंडी गाजीओ छै।—रा.सा.सं.

गुडळियौ-सं०पु०—पकाए हुए मांस की वह जोड़ के स्थान की हड्डी जिसे मुँह से उसके आस पास लगे मांस को तथा अन्दर के गूदे को चूसते हैं।

गुडलियोड़ो–भू०का०कृ०—गन्दला किया हुआ। (स्त्री० गुडलियोड़ी)

गुडळो–वि० (स्त्री० गुडली) १ गन्दला, गन्दा. २ धूलि से आच्छादित. ३ घना। उ०—चोमासे रा **गुडळा** बादळ, पालर बूठा पांणी।
—रेवतदांन

४ गाढ़ा। उ०—भूरी कीटी रा आसी भटका. **गुडळी** छाछां रा सपना में गुटका।—ऊ.का.

गुडा–सं०पु०—१ कवचधारी हाथी. २ दाख (अ.मा.)

गुडाकेस–सं०पु० [सं० गुडाकेश] १ अर्जुन। उ०—जो मंगी भंडीस ज्याग आयो ज्यूं चंडीस जायो। राजपत्री आयो थंडीस व्याळ रेस। ओडंडीस असीसतो लांगड़ो कपीस आयो, कोडंडीस कसीसतो आयो **गुडाकेस**।—हुकमीचंद खिड़ियो
(रू०भे०–गुड़ीकेस)

२ शिव, महादेव।

गुडायलो–सं०पु० —लोहे का एक गुटका जिस पर रख कर सोने व चांदी की कटोरियां बनाई जाती हैं।

गुडाळ–सं०पु०—राठौड़ वंश की एक उपशाखा।

गुडालियां, गुडाळयां–सं०स्त्री०—घुटनों के बल चलने की क्रिया। उ०—देख **गुडाळयां** हालै उण दिन, डूंगर डिगणो चहीजै।
—रेवतदांन

गुडिया–सं०स्त्री०—कपड़े की बनी हुई पुतली जिससे लड़कियां खेला करती हैं।

गुडियाण–सं०पु०—राठौड़ों की एक उपशाखा या इस शाखा का व्यक्ति
(बां.दा.ख्यात)

गुडियो–सं०पु०—१ समाचार. २ गप्प. ३ देखो 'गुड़ियो' (रू.भे.)

गुडी–सं०स्त्री०—१ किसी रस्सी में अधिक बल देने पर उसमें उत्पन्न होने वाली ऐंठन. २ कपट, धूर्तता, छल।

मुहा०—मन री गुडी खोलना—कपट खोलना. २ मन में गुडी होणी—कपट होना।

३ पतंग, किनका। उ०—१ सो तुरत आंण हाजर कर दियो। साळो सलांम कर आप लेय लियो। असवार हुवो सो जांणजै **गुडी** गुडी होवै।—कुंवरसी सांखला री वारता

उ०—२ खग धावां नह पूगे खड़तां, ले टक छोह लखाई। दीधी
डोरी **गुडी** दो-दोखी, दारू आग दखाई।—देवाजी दधवाड़ियो

४ ध्वजा, झंडी। उ०—नगर लोग आंण दिया, बांध्या तोरण बार। घर घर **गुडी** ऊछळी, जंपै जयजयकार।—ढो.मा.

५ कवच. ६ देखो 'गुडिया' (रू.भे.)

गुडेल–सं०पु०—१ बुनने के निमित्त ताने को लम्बा कर उसके छोर पर बांधा जाने वाला काष्ठ का गुटका जिसे किसी खूंटी या कील से कस कर बांधने के लिए लगाया जाता है। इस प्रकार बांधने से ताना तना हुआ रहता है. २ सूत, ऊन, चमड़े आदि की रस्सी के सिरे पर बांधा जाने वाला विशेष प्रकार से बना हुआ काष्ठ का छोटा गुटका (मि०–गुंडेल)

गुडो–सं०पु०—१ रुपये रखने का थैला। उ०—कुंवरसी **गुडै** मांही सूं पांच मुहर काढ़ भरमल ऊपर निछरावळ करनै बडारण नूं दीवी।
—कुंवरसी सांखला री वारता

२ देखो 'गुढ़ो' (रू.भे.)

गुड्डी—१ देखो 'गुडी' (रू.भे.) उ०—उड रह्यो मन लाग अलंगे **गुड्डी**, जांण भ्रमै गयणंगे।—रा.रू. २ एक प्रकार का छोटा हुक्का. ३ लड़के के जनेऊ के अवसर पर सूचना के लिये उसके ननिहाल भेजा जाने वाला गुड़ व घी।

गुढ़ी—१ देखो 'गुढ़ो' (अल्पा०) २ ध्वजा, पताका. ३ पतंग ('गुडी' का रू.भे.) ४ रहस्य। उ०—अंग भभूती गळै म्रगछाळा, तू जन **गुढ़ियां** खोल।—मीरां

गुढ़ेर–सं०पु०—एक फूल का नाम (अ मा.)

गुढ़ो–सं०पु०—१ रक्षास्थान। उ०—**गुढ़ो** संभाए साहली, पहली जोई वाट। आयो बारठ केहरी, पड़तां झाट निराट।—रा.रू.

२ वह स्थान जहां प्रारम्भ में मनुष्य रक्षार्थ रहते हैं और धीरे-धीरे वह गांव के रूप में बस जाता है. ३ रहस्य।

गुढ्ढ़–सं०पु०—१ गंभीर रहस्य. २ प्रबल इच्छा। उ०—चाह न थी इण सब्द री, मंद मती सुण मुढ्ढ़। प्रौढ़ देख धारण पती, मो मन हुती सु **गुढ्ढ़**।—पा.प्र.

गुणंतर–वि० [सं० ऊनसप्तति, प्रा० एगूणसत्तरि, अप० उणंत्तरि] साठ और नौ की संख्या के योग के बराबर।

गुणंतरमो–वि०—जो क्रम में अड़सठ के बाद पड़ता हो।

गुणंतरेक–वि०—उनहत्तर के लगभग।

गुणंतरो–सं०पु०—उनहत्तरवां वर्ष।

गुण–सं०पु० [सं०] १ किसी पदार्थ आदि में पाई जाने वाली वह विशेषता जिससे वह वस्तु या पदार्थ पहिचाना या जाना जाता है। वस्तु या पदार्थ के साथ लगा हुआ भाव या धर्म।

क्रि०प्र०—आणो, आवणो, जांणणो।

२ निपुणता, प्रवीणता. ३ कोई कला या विद्या।

क्रि०प्र०—जांणणो, सीखणो, सिखणो।

४ असर, प्रभाव।

क्रि०प्र०—करणो, देखणो, पहुंचाणो, होणो।

यौ०—गुणकार, गुणकारक।

५ अच्छा स्वभाव, शील, सद्वृत्ति। उ०—आडा डूंगर बन घणा, आडा घणां पळास। सो साजन किम बीसरइ, बहुत **गुण** तणा निवास।
—ढो.मा.

कहा०—१ गुण नो तो वन भलो, को गुण नो मनख खोटो—सद्गुण का तो वन भी भला किन्तु दुर्गुणी मनुष्य बुरा. २ गुण लारै पूजा—गुण से ही मनुष्य की पूजा होती है।

यौ०—गुणअतीत, गुणआगार, गुणग्राहक, गुणग्राही, गुणचोर, गुणवंत, गुणवांन, गुणवाचक।

६ विसेषता, खासियत, लक्षण. ७ एहसान।
मुहा०—गुण मांनणौ—कृतज्ञ होना।
यौ०—गुणचोर।
८ तीन की संख्या* (डि.को.) ९ सांख्य के अनुसार सत्व, रज और तम—तीन गुण. १० रस्सी, डोर, तागा। उ०—कुमकुमैं मंजण करि धोत वसत धरि, चिहुरै जळ लागौ चुवण। छीणै जांणि छछोहा छूटा, गुण मोती मखतूळ गुण।—वेलि.
११ धनुष की प्रत्यञ्चा। उ०—कप्पड़ जीण कमांण गुण, भीजइ सब हथियार।—ढो.मा. १२ यश, कीर्ति। उ०—१ मन दुख दाधा डोल मत, साधा जग तज साव। मांनव भव भीता मिटण, गुण सीता-वर गाव।—र.ज.प्र. उ०—२ तेरौ जलम-जलम गुण गास्यूं, सूवा म्हारौ भंवर दिखा दे रे।—लो.गी.
मुहा०—गुण गावणौ—यश गाना, प्रशंसा करना।
१३ डिंगल साहित्य का गीत या छंद। उ०—सुज प्रहास सांणोर रै, दस मत अरध सिवाय। मेल दोय पूरब उतर, चोटियाळ गुण चाय। —र.ज.प्र.
१४ मित्र (अ.मा.) १५ काव्य, कविता। उ०—१ चाहुवांण सोभौ हीमालावत मुगळ प्रेम गाय मारी तिण ऊपर मारियौ तिण साख री गुण—छायल फूल बिछाय वीसमतौ वरजांगदै, गैमर गोरी राय तिण आमास अड़ाविया।—नैणसी उ०—२ कवि वेदव्यास बलमीक कवि, करि अस्तुति वंदण कियौ। सूरज प्रकास सूरज जिसौ, 'अभमल' गुण आरंभियौ।—सू०प्र०
सं०स्त्री०—दासी, सेविका (अ.मा.)
वि०—१ अति तीक्ष्ण. २ बड़ा, गुरु।
गुणअंकुस—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)
गुणअतीत—वि०—गुणों से रहित, गणों से परे, निर्गुण।
सं०पु०—परब्रह्म, परमेश्वर।
गुणअसी—देखो 'गुणियासी'।
गुणआकर—सं०पु०—इंद्रिय (अ मा.)
गुणआगर, गुणआगळौ—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)
वि०—गुणों का घर।
गुणक—सं०पु० [सं०] वह अंक जिससे किसी अंक को गुणा किया जाता है।
गुणकर—वि०—गुणकारी, लाभकारी।
गुणकारी—सं०स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो किसी के मत से भैरव राग की और किसी के मत से हिंडोल राग की भार्या मानी जाती है (संगीत)
वि०—लाभप्रद, फायदेमंद।
गुणकार—सं०पु०—१ पाकशास्त्र का ज्ञाता. २ भीमसेन।
वि०—लाभप्रद। उ०—औगण मेटणहार, अमोलख ओखद इणमें। गूंद घणौ गुणकार, अव्यय सक्ति है जिणमें।—ऊदसदेव
(स्त्री० गुणकारी)
गुणकारक, गुणकारी—वि० [सं०] फायदा करने वाला, लाभदायक।
गुणगाथ—१ यशगाथा, कीर्ति-स्तवन। उ०—मूरख कूं पोथी दिवी, वांचण कूं गुणगाथ। जैसे निरमळ आरसी, दी आंधे के हाथ।
२ प्रशंसा। —अज्ञात
अल्पा०—गुणगाथड़ी
गुणगाळ—वि०—गुणों को मिटाने या नाश करने वाला, कृतघ्न
गुणगुण, गुणगुणाहट—सं०पु० [अनु०] मन ही मन गुनगुनाने का भाव, गुनगुनाहट।
गुणगुणाणौ, गुणगुणाबौ—क्रि०स०—१ हल्के स्वर से अपने आप ही मन में गुनगुनाना. २ नाक में बोलना।
गुणगुणायोड़ौ—भू०का०कृ०—गुनगुनाया हुआ। (स्त्री० गुणगुणायोड़ी)
गुणगुणावणौ, गुणगुणावबौ—देखो 'गुणगुणाणौ' (रू.भे.)
गुणग्य, गुणग्याता—वि० [सं० गुणज्ञ, गुणज्ञाता] गुण को जानने वाला, गुणज्ञाता।
गुणग्यांन—सं०पु०—इन्द्रिय (अ.मा.)
गुणग्राम—वि० [सं० गुणग्राम] १ विद्वान, गुणसम्पन्न (अ.मा.)
२ चतुर।
गुणग्राहक, गुणग्राही—सं०पु० [सं० गुणग्राहक, गुणग्राहिन्] गुणियों का आदर करने वाला व्यक्ति, कदरदान मनुष्य।
वि०—गुणियों का आदर करने वाला, गुण की खोज करने वाला।
उ०—१ गुणग्राहक गिरनारपत, चूड़ा राव खंगार। एक परब आधौ अरब, दै तूं हिज दातार।—बां.दा. उ०—२ गुणग्राही गोविंद गुण गावां, भजि भजि रांम परम पद पावां।—ह.पु.वा.
गुणचाळी, गुणचाळीस—वि० [सं० ऊनचत्वारिंशत्, प्रा० अउणचत्तालीसा] तीस और नौ के योग के बराबर।
स०पु०—उनचालीस की संख्या।
गुणचाळीसमौ—वि०—जो क्रम में अड़तीस के बाद पड़ता हो।
गुणचाळीसे'क—वि०—उनचालीस के लगभग।
गुणचाळीसौ, गुणचाळौ—सं०पु०—उनचालीसवां वर्ष।
गुणचास—वि० [सं० ऊनपचाशत] चालीस और नौ के योग के बराबर।
सं०पु० [प्रा० ऊनपचा, एगूणपण्णास] उनपचास की संख्या, ४९।
गुणचासमौ—वि०—जो क्रम में अड़तालीस के बाद पड़ता हो।
गुणचासे'क—वि०—उनचास के लगभग।
गुणचासौ—सं०पु०—उनपचासवां वर्ष।
गुणचोर—वि०—किये हुए उपकार को न मानने वाला, कृतघ्न।
उ०—चुगल बधक गुरु सेजगत, चोर क्रपण गुणचोर, कुण घटतौ बधतौ कवण, एकण गिर रा मोर।—बां.दा.
गुणजोड़ौ—सं०पु०—१ कविता बनाने वाला, कवि. २ कीर्ति-गान करने वाला।
गुणणी—सं०स्त्री० [सं० गुणनी] पाठशाला में छात्रों द्वारा सामूहिक रूप से छुट्टी के समय बोली जाने वाली गिनती। उ०—विद्यारथियां रै मुख गुणणी (नी) गुणीजण लागी।—र. हमीर

गुणणी, गुणबौ–क्रि०स०—१ समझना। उ०—अमरसिंह रा भेजिया, कागद आया आज। सुण कर गुण लेवौ सकळ, पाछै करियौ काज। —राजसिंह री वात

२ विचार करना, मनन करना। उ०—बात बडा चित ना धरै, सुण छोटां रा बोल। अरथ तणी बातां गुणै, ह्रदय तराजू तोल। —ठाकुर जैतसिंह री वारता

कहा०—भणिया पण गुणिया नहीं—पढ़ाई अवश्य करली किन्तु उस पर मनन नहीं किया।

३ गुणा करना. ४ वर्णन करना। उ०—वासिठ विसवामित्र कौ, हेत कळह सुत हांणि। सकळ गुणांणा सुभ असुभ, सत्यानंद सुगांण। —रांमरासौ

५ बोलना। उ०—अचांणी गुणतां गेरी गूंज, सरण ज्यूं आवै भोळी लाज। होठ री ओट हियौ कह जाय, बायरिया धीमौ मुधरौ बाज।—सांझ

६ गुनगुनाहट करना।

गुणणहार, हारौ (हारी), गुणणियौ—वि०।

गुणिओड़ौ, गुणियोड़ौ, गुणयोड़ौ—भू०का०कृ०।

गुणती, गुणतीस–वि० [सं० ऊनत्रिंशत्, प्रा० अउणतीस, अप० उणतीस] बीस और नौ के योग के बराबर।

सं०पु०—उनतीस की संख्या, २९।

गुणतीसमौ–वि०—जो क्रम में अठाइस के बाद पड़ता हो।

गुणतीसे'क–वि०—उनतीस के लगभग।

गुणतीसौ–सं०पु०—उनतीसवां वर्ष।

गुणत्रीस—देखो 'गुणतीस' (रू.भे.)

गुणद–वि०—गुणदायक, गुणकारी।

गुणदा–सं०स्त्री०—हल्दी (अ.मा.)

वि०स्त्री०—गुणकारी।

गुणधारी–सं०पु०—गुणों को धारण करने वाली, गुणधारी।

गुणन–सं०पु० [सं०] गुणा।

गुणनफळ–सं०पु० [सं० गुणनफल] वह अंक या संख्या जो एक अंक को दूसरे अंक के साथ गुणा करने से आती हो।

गुणनिधान–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

वि०—गुणवान, सर्वगुणसम्पन्न।

गुणनिधि–वि०—१ विद्वान, पंडित. २ गुणवान।

सं०पु०—ईश्वर। उ०—आरंभ म्हैं कियौ जेणि पायौ, गावण गुणनिधि हूं निगुण।—वेलि.

गुणनेउमौ–वि०—जो क्रम में अट्ठासी के बाद पड़ता हो।

गुणनेऊ–वि०—अस्सी और नौ के योग के बराबर।

सं०पु०—नवासी की संख्या, ८९।

गुणनेवौ–सं०पु०—८९ वां वर्ष।

गुणपचास—देखो 'गुणचास' (रू.भे.)

गुणपचासमौ—देखो 'गुणचासमौ' (रू.भे.)

गुणपचासेक—देखो 'गुणचासेक' (रू.भे.)

गुणपचासौ—देखो 'गुणचासौ' (रू.भे.)

गुणपत, गुणपति, गुणपत्त–सं०पु० [सं० गणपति] गणेश। उ०—गुणपति गुणे गहीरं, गुणग्राहग दांनगुण दिम्रणं। सिधि रिधि सुबुधि सधीरं, सुंडाळा देव सुप्रसनं।—वचनिका

गुणमाणिक–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुणमोती–सं०पु०—१ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.) २ एक प्रकार का बढ़िया मोती।

गुणयल–सं०पु० [सं० गुणिकल, प्रा० गुणियल] चंदा, चंद्रमा (नां.मा.)

गुणरंजणौ–वि०—१ गुणों से उत्पन्न होने वाला. २ गुणग्राहक।

गुणरासि–सं०पु०—चंद्रमा (नां.मा.)

गुणरूप–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुणवंत–वि० [सं०] (स्त्री० गुणवंती) १ गुणयुक्त, गुणवान। उ०—१ अबळी सबळी नैं सबळी उर आंणै, गोरी गुणवंती गोरी गुण जांणै।—ऊ.का. उ०—२ इसड़ी वा कन्या छै सु काठ भखण करै छै, सरवण छै, गुणवंती छै।

२ विद्वान, पंडित। —पंचदंडी री वारता

गुणवणौ, गुणवबौ–क्रि०स०—विचार करना, मनन करना*।

गुणवती—देखो 'गुणवंत' का स्त्री० (रू.भे.)

गुणवरवांन–सं०पु०—गणेश, गजानन (ह नां.)

गुणवांन–वि०—१ गुणयुक्त, गुणवंत। उ०—नीतिवांन गुणवांन समय सुजांन जांन, गुण के निधांन सूर सुरिंद्र स्वदेस के।—ऊ.का.

२ पंडित, विद्वान।

गुणवाचक–सं०पु०यौ०—गुणों को प्रकट करने वाला, गुणों की प्रशंसा करने वाला।

गुणवाद–सं०पु० [सं०] मीमांसा के अर्थवाद का एक भेद। यह प्रायः तीन प्रकार का होता है—गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद।

गुणवेलड़ी–सं०स्त्री०—गुणलता, गुणसंपन्न। उ०—वाही थी गुणवेलड़ी, वाही थी रसवेलि। पीणइ पीधी मारवी चाल्या सूती मेलि।—ढो.मा.

गुणसठ—देखो 'गुणसाठ' (रू.भे.)

गुणसठमौ—देखो 'गुणसाठमौ' (रू.भे.)

गुणसठौ—देखो 'गुणसाठौ' (रू.भे.)

गुणसमौ–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा।

गुणसांण–वि०—गुणवान, श्रेष्ठ, गुणज्ञ।

गुणसागर–वि०—गुणों का समुद्र, गुणवान, गुणनिधि। उ०—वांणी अवरळ सुध वचन, गुणसागर वडगात। ढोलौ पूगळ आवतां, पंथ मिळै कवि पात।—ढो.मा.

सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा।

गुणसाठ–वि० [सं० ऊनषष्ठि, प्रा० एगूणसट्ठ, अप० अउणट्ठि] पचास और नौ के योग के बराबर।

सं०पु०—उनसठ की संख्या, ५९।
गुणसाठमौ–वि०—जो क्रम में अट्ठावन के बाद पड़ता हो।
गुणसाठे'क–वि०—उनसठ के लगभग।
गुणसाठौ–सं०पु०—५९ वां वर्ष।
गुणसार–सं०पु०—मांगणियार जाति का एक भेद।
गुणसित्तर–वि० [सं० ऊनसप्तति, प्रा० एगूणसत्तरि, अप० अउणत्तरि] साठ और नौ के योग के बराबर।
सं०पु०—६९ की संख्या।
गुणसित्तरमौ–वि०—जो क्रम में अठहत्तर के बाद पड़ता हो।
गुणसित्तरे'क–वि०—उनहत्तर के लगभग।
गुणसित्तरौ–सं०पु०—६९ वां वर्ष।
गुणसोभा–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)
गुणहींण, गुणहीण, गुणहीणौ–वि०—१ गुणहीन, गुणरहित, निर्बुद्धि, मूर्ख. २ कृतघ्न।
गुणांक–सं०पु० [सं०] वह अंक संख्या जिसको किसी से गुणा करना हो।
गुणांकारी—देखो 'गुणकारी' (रू.भे.) उ०—नीमां चढ़ी गिलोय, वणे वडी गुणांकारी। छः आंना भर भाव, फळावै ग्राम पंसारी।
—दसदेव
गुणांगहीर–वि०—गम्भीर गुणों वाला, गुणवान।
गुणांणी–सं०स्त्री०—माला (अने०)
गुणागर—[सं० गुणाकर] देखो 'गुणसागर'। उ०—गति ग्यांन विग्यांन गुणागर बहे, सत्य ध्यांन विधांन सुसागर बहे।—ऊ.का.
गुणताळीस—देखो 'गुणचाळी' (रू.भे.)
गुणातीत–वि०—जो गुणों के प्रभाव से अलग हो, गुणों से परे।
सं०पु०—परमेश्वर।
गुणानुवाद–सं०पु०—गुणों की व्याख्या, यश-स्तवन।
गुणाढ्य–वि०—गुणवान, गुणसम्पन्न।
सं०पु०—एक प्रसिद्ध कवि जिसने पैशाची भाषा में बड़ा ग्रंथ लिखा था।
गुणाधपति–सं०पु०—गणेश, गजानन (डिं.को.)
गुणावळ–सं०स्त्री० [सं० गुणावलि] संन्यासियों के गले में धारण करने की माला। उ०—मिळ अक्ष गुणावळ कंठ मई। लख चींप कमंडळ हाथ लई।—पा.प्र.
गुणावळि, गुणावळी–सं०स्त्री०—१ प्रशंसा, यश कीर्तिगान (ह.नां.) २ हार, माला (अने०)
गुणिंद–सं०पु० [सं० गुणइंद्र] कवि। उ०—इळ सिर भांण विजाहर ओपै। नाथ क्रपा प्रभता नूमळ। अळज गुणिंद हरख मय जाभा। लूटै रिख बळ छोड खळ।—महाराजा मांनसिंहजी री गीत
गुणिअण, गुणिजण, गुणियजण–सं०पु० [सं० गुणीजन] १ गुणवान। उ०—राजा परजा गुणियजण, कविजण पंडित पात। सगळां मन ऊछव हुअउ, वूठै तौ बरसात।—ढो.मा.
२ विद्वान, पंडित। उ०—काळै अजुआळी किमो, आवि दळां अविघट्ट। चारण भाट चगाहटा, गुणिअण बट्ट गरट्ट।—वचनिका
३ कवि। उ०—गुणिअण मारू दिस पुरब ग्रांम। घर सगत द्रब्य अवतार धांम।—पा.प्र.
४ गवैया, गायक। उ०—नृप सनड कोळू नाथ रै, संग बंटै सारी रात। गुणिअणां झूलर गावतां, पावतां मद परभात।—पा.प्र.
यौ०—गुणिजनखांनौ।
गुणिजनखांनौ–सं०पु०—प्राचीन देशी रियासतों के अंतर्गत होने वाला एक विभाग जिसमें गायक, नर्तक व नर्तकियों के कार्यक्रम व खर्च आदि का ब्यौरा रक्खा जाता था।
गुणित–वि० [सं०] गुणा किया हुआ।
गुणियण, गुणियर—देखो 'गुणिअण' (रू.भे.) उ०—१ गुणियण द्वार बधाई गावै, प्रत दिन अन सोव्रन धन पावै।—रा.रू. उ०—२ इळ राइ करन वारउ कि इंद, गुणियणां ग्रिहे बाधा गइंद।—रा.ज.सी.
गुणियासियौ–सं०पु०—उनासी का वर्ष, ७९ वां वर्ष।
गुणियासी–वि० [सं० ऊनाशीति, प्रा० एगुणासी] सत्तर और नौ के योग के बराबर।
सं०पु०—उनासी की संख्या, ७९।
गुणियासीक–वि०—उनासी के लगभग।
गुणियासीमौ–वि०—जो क्रम में अठहत्तर के बाद पड़ता हो।
गुणियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ विचार किया हुआ, मनन किया हुआ. २ समझा हुआ. ३ विद्वान, गुणी। (स्त्री० गुणियोड़ी)
गुणियौ–सं०पु०—१ कमान, प्रत्यञ्चा. २ डोर, तांत. ३ शिल्पकारों का भूमि मापने का एक प्रकार का छोटा गज. ४ बढ़ई का एक औजार।
गुणी–वि०—१ जिसमें कई गुण हों, गुणवान, गुणयुक्त।
उ०—उळझाया तन मन आपमैं, विहृत सीत रुखुमिणि वरि। वांणि अरथ जिम सकति सकतिवत, पुहप गंध गुण गुणी परि।
—वेलि.
२ दक्ष, निपुण।
सं०पु०—१ कवि (अ.मा.) २ विद्वान, पंडित. ३ गवैया. ४ झाड़-फूंक टोना आदि करने वाला ओझा. ५ डोर, रस्सी. ६ प्रत्यञ्चा. ७ कमान।
गुणीअण, गुणीजण—देखो 'गुणिजण' (रू.भे.) उ०—गरीब खैरात पावै। गरीबां नूं नितका नाज, कपड़ो जिको चावै सो पावै। ढाढ़ी गुणीजन आवै।—जलाल बूबना री वात
गुणीजणखांनौ—देखो 'गुणिजणखांनौ' (रू.भे.)
गुणीजणौ–क्रि०अ०—१ अनुभव प्राप्त करना, व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना. २ मनन करना, विचार करना. ३ उच्चरित होना।
उ०—विद्यारथियां रै मुख गुणणी गुणीजण लागी।—र. हमीर
गुणीजनखांनौ—देखो 'गुणिजणखांनौ' (रू.भे.)
गुणीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—अनुभव प्राप्त किया हुआ, मनन किया हुआ।

गुणीभूत व्यंग्य-सं०पु०—काव्य में वह व्यंग्य जो प्रधान न हो वरन वाच्यार्थ के साथ गौण रूप में आया हो।

गुणीयण— देखो 'गुणिजण' (रू.भे.) उ०—**गुणीयण** कहणी गुरु लघु पहली तरह पढ़ंत।—र.ज.प्र.

गुणीस—देखो 'उगणीस' (रू.भे.)

[सं० गुण+ईश] कवि, महाकवि। उ०—धनेस देवेस दुजेस ध्यावै, गुण राघौ नित क्यूं न गावै।—र.ज.प्र.

गुणेस, गुणेसर-सं०पु० [सं० गणेश, गणेश्वर] गणेश, गजानन। उ०—उम्रंकार अन्नाहत अक्खर, सिद्धि बुद्धि दे सारद **गुणेसर**।
—रा.ज.सी.

गुणेस्वर-सं०पु० [सं० गणेश्वर] १ तीनों गुणों पर प्रमुख्य रखने वाला, ईश्वर, परमेश्वर. २ चित्रकूट पर्वत. ३ देखो 'गणेसर' (रू.भे.)

गुणोपेत-वि० [सं०] जिसमें गुण हों, गुणवान, गुणयुक्त।

गुणौ-सं०पु० [सं० गुणन] १ गणित की एक क्रिया।

वि०वि०—इस क्रिया के अनुसार एक अंक पर दूसरे अंक का इस प्रकार से प्रयोग किया जाता है कि जिससे उनका फल उतना ही आवे जितना पहिले अंक को उतनी ही बार रख कर अलग जोड़ने से आवे।

क्रि०प्र०—करणी।

[फा० गुनाह] २ गुनाह, दोष। उ०—बगसै तनै **गुणौ** इण वारै, चित अयणी जो विरद विचारै।—र.रू.

प्रत्यय—एक प्रत्यय जो केवल संख्यावाचक शब्दों के अंत में लगता है, ज्यूं—दुगुणी, तिगुणी आदि।

गुण्य-सं०पु० [सं०] वह अंक जिसको गुणक से गुणा किया जाता है।

गुत्थमगुत्थ-सं०पु०—१ दो या अधिक वस्तुओं का इस प्रकार परस्पर मिलना या गुंथना कि दोनों के कई अंग कई ओर से आकर लिपट गए हों, उलझाव, फँसाव. २ हाथापाई, लड़ाई।

गुत्थी-सं०स्त्री० [सं० ग्रंथि] १ वह गांठ जो कई वस्तुओं के एक में गुंथने से बन जाती हो. २ उलझन।

गुथणौ, गुथबौ-क्रि०अ०—१ एक का दूसरे के साथ लड़ने के लिए खूब लिपट जाना. २ उलझना।

गुथणहार, हारौ (हारी), गुथणियौ—वि०।

गुथवाणौ, गुथवाबौ, गुथाणौ, गुथाबौ—प्रे०रू०।

गुथिप्रोड़ो, गुथियोड़ो, गुथ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गुथीजणौ, गुथीजबौ—भाव वा०।

गुथाणौ, गुथाबौ-क्रि०स० (गुथणौ व गूथणौ का प्रे०रू०) १ उलझाना गुंथवाना. २ गूंथने का कार्य दूसरे से कराना।

गुथाणहार, हारौ (हारी), गुथाणियौ—वि०।

गुथाप्रोड़ो, गुथायोड़ो—भू०का०कृ०।

गुथावणौ, गुथावबौ—रू०भे०।

गुथाईजणौ, गुथाईजबौ—कर्म वा०।

गुथायोड़ौ-भू०का०कृ०—उलझाया हुआ, गुंथवाया हुआ।
(स्त्री० गुथायोड़ी)

गुथावणौ, गुथावबौ—देखो 'गुथाणौ' (रू.भे.)

गुथावणहार, हारौ (हारी), गुथावणियौ—वि०।

गुथाविप्रोड़ो, गुथावियोड़ौ, गुथाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गुथावीजणौ, गुथावीजबौ—कर्म वा०।

गुथावियोड़ौ—देखो 'गुथायोड़ौ' (रू.भे.)
(स्त्री० गुथावियोड़ी)

गुथियोड़ौ-भू०का०कृ०—गुथा हुआ, उलझा हुआ।
(स्त्री० गुथियोड़ी)

गुद-सं०स्त्री० [सं०] १ गुदा, मलद्वार. [रा०] देखो 'गूदी' (रू.भे.)

गुदगुदाणौ, गुदगुदाबौ-क्रि०स०—१ कांख, तलुवे, पेट या शरीर के किसी कोमल, मांसल भाग पर अंगुली आदि के स्पर्श द्वारा सुर-सुराहट या गुदगुदी उत्पन्न करना. २ मन बहलाव या विनोद के लिए छेड़ना।

गुदगुदी-सं०स्त्री० [सं० गुद् क्रीडायाम्] १ कांख, तलुवे, पेट या शरीर के किसी कोमल व मांसल भाग पर अंगुली आदि के स्पर्श से उत्पन्न होने वाली मीठी खुजली, सुरसुराहट. २ उत्कंठा, शौक।

गुदड़ियौ-सं०पु०—१ गुदड़ी पहिनने या ओढ़ने वाला. २ फटे पुराने कपड़े आदि बेचने वाला. ३ खेमा, फर्श, बिछावन, दरी आदि किराए पर देने वाला. ४ गुदड़िया संप्रदाय का साधु।

गुदड़ी-सं०स्त्री० [सं० गुध=परिवेष्टने] १ फटे-पुराने कपड़ों की कई तहों को एक में जुटा या सी कर बनाया हुआ बिछावन या ओढ़ने का वस्त्र। उ०—ऐ तोकस तकिया थारै, थारी बरोबरि म्हे करां, स कोई फाटी **गुदड़ी** म्हारै।—लो.गी.

२ कपड़े के फटे पुराने टुकड़ों को जोड़ कर बनाया हुआ कपड़ा, कंथा। उ०—सुत परताप घणां भर सारां इळा उजीण दुकांन। काया अमर **गुदड़ी** कीधी, जगपत गोरखनाथ जिम।
—महाराणा अमरसिंह री गीत

३ देखो 'गूदी' (अल्पा०)

गुदड़ौ—१ देखो 'गुदड़ी' (रू.भे.) २ एक प्रकार का घोड़ा।

गुदभ्रंस-सं०पु० [सं० गुदभ्रंश] गुदाद्वार से कांच निकलने का एक रोग।

गुदरणौ, गुदरबौ—देखो 'गुजरणौ' (रू.भे.) उ०—दिन पांच-छः **गुदरिया** ताहरां एक दिन दोपहर री वरियां खीमौ रिगसतौ रिगसतौ आयौ।—चौबोली

गुदरांण, गुदरान—देखो 'गुजरांण' (रू.भे.) उ०—इणांरै माहो-माहे रा एका बिगर इळाज नहीं छै नै प्रक्रति इणरी विरुद्ध छै जिणां बीच में रीत चाहीजे तिणसूं मांहोमाहे **गुदरांण** करै। किणां ऊपर अन्याय नी होय।—नी.प्र.

गुदराणौ, गुदराबौ-क्रि०स० [फा० गुजरान+रा० प्र० णौ] १ पेश करना, सामने रखना, उपस्थित करना। उ०—१ अमरावां हजूरियां

कामदारां सागिरदपेसे सगळां आंग मुजरौ कियौ। घोड़ा, हाथी, हवालदारां आंण नजर गुदराया।—डाढ़ाळा सूर री वात

उ०—२ अरज अजीत हूंत गुदराई, सळक गयौ जैसिंघ सवाई।
—रा.रू.

२ निवेदन करना। उ०—ओठिए आंणि राजांन सूं मुजरा गुदराया छै।—रा.सा.सं. ३ हाल कहना।

गुदरायोड़ौ-भू०का०कृ०—१ पेश किया हुआ, सामने रक्खा हुआ. २ निवेदन किया हुआ. ३ हाल कहा हुआ।
(स्त्री० गुदरायोड़ी)

गुदरावणौ—देखो 'गुदरारणौ' (रू.भे.)

गुदरियोड़ौ—देखो 'गुजरियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० गुदरियोड़ी)

गुदरी—देखो 'गुदड़ी' (रू.भे.) उ०—मिट आग तप मिट जाय, साकंप सीत सवाय। द्रढ़ पोत खेवट दांम, तट धरा गुदरी तांम।
—रा.रू.

गुदळणौ, गुदळबौ—देखो 'गुडळणौ' (रू.भे.) उ०—चिळकै सोने रा चीलरिया, अंबगी बा रूपाळी पाळ। कूंपलो किण री दुळियौ आज, गुदळती घणाअसमांनी ढाळ।—सांझ

गुदळाणौ गुदळाबौ, गुदळावणौ, गुदळावबौ—देखो गुडळाणौ' (रू.भे.)

गुदळियोड़ौ—देखो 'गुडळियोड़ौ' (स्त्री० गुदळियोड़ी)

गुदळियौ-वि०—१ धूलि से आच्छादित. २ गंदा, धूलभरा।
उ०—१ गुदळियौ जळगार, जीव न धापै जेठवा।
उ०—२ गुदळियौ तोइ गगजळ, सांकळियौ तोइ सीह।
—कहवार सरवहिया री वात

गुदळौ-वि०—देखो 'गुडळौ' (रू.भे.) उ०—दूध(ए) पकाऊं गुदळी खीर, घोळिया जी ओ थ म्हांरै आयजौ धरमी पांवणा।—लो.गी.

गुदवावणौ, गुदवावबौ—देखो 'गुदाणौ' (रू.भे.)

गुदहळक-सं०स्त्री० [सं० गोधूलिक] गोधूलि, गोधूलिक।
उ०—इम करतां गुदहळक वेळा हुई। तारै कोहर ऊपर पधारिया।
—ढो.मा.

गुदा-सं०स्त्री० [सं०] मलद्वार।

गुदाणौ, गुदाबौ-क्रि०स० ('गुदणौ' का प्रे०रू०) १ गोदने की क्रिया कराना. २ चुभाना।
गुदाणहार, हारौ (हारी), गुदाणियौ—वि०।
गुदाड़णौ, गुदाड़बौ, गुदावणौ, गुदावबौ—रू०भे०।
गुदायोड़ौ—भू०का०कृ०।
गुदाईजणौ, गुदाईजबौ—कर्म वा०।

गदायोड़ौ-भू०का०कृ०—गोदने की क्रिया कराया हुआ।
(स्त्री० गुदायोड़ी)

गुदाळ-सं०पु०—मांस-पिंड (गो.रू.)

गुदाळक-वि०—मांसाहारी, मांसपिंड खाने वाला। उ०—गुदाळक जै पंखाळ गजै, विकराळ बंबाळ त्रंबाळ बजै।—गो.रू.

गुदावणौ, गुदावबौ—देखो 'गुदाणौ' (रू.भे.)

गुदावियोड़ौ—देखो 'गुदायोड़ौ' (रू.भे.)

गुदियारौ-सं०पु०—एक प्रकार की घास।

गुदी-सं०स्त्री०—१ पशुओं के चरने के बाद बचा हुआ घास-फूस का महीन अवशिष्ट भाग. २ देखो 'गुद्दी' (रू.भे.)

गुदीजणौ, गुदीजबौ-क्रि० भाव वा०—गुदा जाना, चुभा जाना।
गुदीजणहार, हारौ (हारी), गुदीजणियौ—वि०।
गुदीजियोड़ौ, गुदीजियोड़ौ, गुदीज्योड़ौ—भू०का०कृ०।
गुदणौ—अक० रू०।

गुद्दी, गुद्धी-सं स्त्री०—१ गूदा, सार, तत्व. २ गर्दन का पिछला भाग।
मुहा०—१ आंखियां गुद्दी में होणी—देख कर काम न करना, मूर्ख होना. २ गुद्दी नापणी—सिर के पीछे थप्पड़ मारना. ३ गोड-गुद्दी एक करणी—मार-मार कर अधमरा करना।
३ गर्दन के पिछले भाग के बाल. ४ हथेली का मांसल भाग।
अल्पा०—गुदड़ी, गुदड़ी।

गुधळकियौ-वि०—गोधूलि समय संबंधी, गोधूलि समय का।

गुधळणौ—देखो 'गुडळणौ' (रू.भे.) उ०—नित गुधळावण नीर, कुंभी सम अकबर क्रमै। गोहिल रांण गंभीर, पण गुधळै न प्रतापसी।
—दुरसौ आढ़ौ

गुधळाणौ, गुधळाबौ, गुधळावणौ, गुधळावबौ—देखो 'गुडळाणौ' (रू.भे.)

गुधळावियोड़ौ—देखो 'गुडळावियोड़ौ' (रू.भे.)

गुधळिक—देखो 'गोधलूक' (रू.भे.)

गुधळौ—देखो 'गुडळौ' (रू.भे.)

गुनकली-सं०स्त्री०—एक राग विशेष।

गुनगुनौ-वि० [सं० कदुष्ण, प्रा० कउण्ह] आधा गरम या कुछ हल्का गरम (पानी), कुनकुना।
(रू०भे०—कुणकुणौ)

गुनहगार-वि० [फा०] १ अपराधी, दोषी. २ पापी।
(रू०भे०—गुनागार, गुनाहगार, गुनैगार, गुन्हगार, गुन्हैगार।

गुनहगारी, गुनहरी-सं०स्त्री० [फा०] १ दोष, अपराध, गुनाह।
२ किसी अपराध या दोष के लिए प्राप्त किया जाने वाला दंड।
उ०—सो तू मन मनाय अर गुनहरी पेसकस देय इतरा बरसां रौ परगना रौ हिसाब देय।—ठाकुर जैतसी री वारता
रू०भे०—गुनागारी, गुनाहगारी, गुनैगारी, गुन्हगारी, गुन्हैगारी।

गुनागार—देखो 'गुनहगार' (रू.भे.) उ०—हूं थां कन्है थां प्रभू कन्है गुनागार छो।—नी.प्र.

गुनागारी—देखो 'गुनहगारी' (रू.भे.)

गुनाढ्य—देखो 'गुणाढ्य' (रू.भे.) उ०—गुमई गरिमादिक ग्यांन गुनाढ्य, रुड रुड त्रंबक घ्यांन धनाढ्य।—ऊ.का.

गुनाळी-सं०स्त्री०—यश, प्रशंसा, गुण। उ०—गुनाळी गाऊं मैं पुनि न पिछताऊं पथ पऊं। कुपथ्यादि काटूं धरम पथ थाटूं गथ धरूं।
—ऊ.का.

गुनाह—सं०पु० [फा०] १ अपराध, दोष. २ पाप।
क्रि०प्र०—करणी, होणी।
(रू०भे०—गुना, गुनौ, गुन्हौ)

गुनाहगार—देखो 'गुनहगार' (रू०भे०) उ०—तौ कही उवा छै के जिणसूं बेगुनह उणसूं निडर रहै अर गुनाहगार डरता रहै।
—नी.प्र.

गुनाहगारी—देखो 'गुनहगारी' (रू.भे.) उ०—१ नै जावणौ दरवेसां रौ बंदगी दरगाह बादसाहां री में गुनाहगारी छै।—नी.प्र.
उ०—२ जिकौ सगळौ सलूकायौ उहां हिसाब दे दिराय राजी किया, गुनहगारी आप लीवी और सारै परगने रै सिर हवालौ ठहरायौ।—ठाकुर जैतसी री वारता

गुनाही—सं०पु० [फा०] अपराधी, दोषी, कसूरवार।

गुनूं—देखो 'गुनाह' (रू.भे.) उ०—सुण हरिरांम गुनूं किय साफ, महाप्रभु मांगत आगत माफ।—ऊ.का.

गुनेगारी—देखो 'गुनहगारी' (रू.भे.) उ०—गुनेगारी भारी बकस हितकारी मम गुणौ।—ऊ.का.

गुनैगार—देखो 'गुनहगार' (रू.भे.)

गुनैगारी—देखो 'गुनहगारी' (रू.भे.)

गुनौ—देखो 'गुनाह' (रू.भे.) उ०—थे भी तौ थांरै भायलां-भपेलां में बैठ'र दुख-सुख री वातां किया करौ हौ। पछै ऐ पाड़ोसण कनै गया परा तौ कांई गुनौ करियौ?—वरसगांठ

गुन्नी—देखो 'गुणणी' (रू.भे.)

गुन्हगार—देखो 'गुनहगार' (रू.भे.)

गुन्हगारी—देखो 'गुनहगारी' (रू.भे.) उ०—देवीदास कह्यौ—अन्न तौ दरसण करनै जीमसूं। साह कह्यौ—सवारै गुन्हगारी भेळी चाढ़ज्यो, पण आज तौ जरूरी कांम छै।—पलक दरियाव री वात

गुन्हैगार—देखो 'गुनहगार' (रू.भे.) उ०—अमरसिंह गजसिंह के, करी अचळ राठौड़। कांन बाढ़ बूचौ कियौ, गुन्हैगार छै गौड़।
—अमरसिंह री वात

गुन्हैगारी—देखो 'गुनहगारी' (रू.भे.)

गुन्हौ—देखो 'गुनाह' (रू.भे.) उ०—ताहरां किवाड़ री सेरियां हाथ घात कैवण लागौ, महाराज पइसौ लीजौ, म्हांमें तकसीर पड़ी, मो'ड़ौ आयौ गुन्हौ माफ कीजौ।—पलक दरियाव री वात

गुपचुप—क्रि०वि०—गुप्त रूप से, छुपा कर, चुपचाप।
सं०स्त्री०—गुप्तगू, गुपचुप की बात।

गुपत—वि० [सं० गुप्त] छुपा हुआ, गूढ़, पोशीदा (अ.मा.)
उ०—मावड़िया अंग मोलिया, नाजुक अंग निराट। गुपत रहै ऊमर गमै, खाय न निज बळ खाट।—बां.दा.
सं०पु०—१ एक प्राचीन राजवंश जिसने पहले मगध देश में राज्य स्थापित करके सारे उत्तरीय भारत में अपना राज्य फैलाया. २ एक प्रकार का शस्त्र जो ऊपर से केवल छड़ी के समान दिखता है किन्तु अन्दर किर्च लगी रहती है। (रू०भे०—गुप्त)

गुपतअंग—सं०पु० [सं० गुप्तांग] १ कछुआ, कमठ (अ.मा.) २ गुप्त अंग।

गुपतकासी—सं०स्त्री० [सं० गुप्तकाशी] हरिद्वार एवं बद्रीनाथ के मध्य स्थित एक तीर्थ।
(रू०भे०—गुप्तकासी)

गुपतचर—सं०पु० [सं० गुप्तचर] किसी बात का चुपचाप भेद लेने वाला, भेदिया, जासूस।
(रू०भे०—गुप्तचर)

गुपतदांन—सं०पु० [सं० गुप्तदान] वह दान जिसे देने वाले के सिवाय और कोई व्यक्ति दानदाता का नाम न जान सके।
उ०—हकीम सिकंदर नूं कहै गुपतदांन दे, असमांन सूं आवै जिका आफत गुपतदांन रा पुण्य प्रभावाल मिटै।—बां.दा. ख्यात
कहा०—गुपतदांन महा पुन—गुप्तदान बड़ा पुण्य-कार्य है। गुप्त रीति से कार्य धीरे-धीरे करते रहने से सिद्धि प्राप्त होती है।
रू०भे०—गुप्तदांन।

गुपतमार—सं०स्त्री० [सं० गुप्त+मार] १ ऐसा प्रहार जिससे शरीर पर न तो कोई चिन्ह पड़े और न खून आदि निकले परन्तु शरीर के किसी भीतरी भाग में चोट पहुँचे. २ ऐसा अनिष्ट जो बहुत छिपा कर किया जाय। (रू०भे०—गुप्तमार)।

गुपता—सं०स्त्री० [सं० गुप्ता] १ वह नायिका जो सुरति छिपाने का उद्योग करती है. २ रखैल स्त्री।
रू०भे०—गुप्ता।

गुपतिपंचअंग—सं०पु०यौ० [सं० गुप्ताङ्ग+पंचांग] कछुआ (ह.नां.)

गुपती, गुपत्तिय, गुपत्ती—देखो 'गुपत' (३) उ०—१ गुपत्तिय खंजर धूप कटार।—ला.रा. उ०—२ गुपत्ती कत्ती संगि गद्दा गुरज्जं।
—वचनिका
क्रि०वि०—छिपे रूप में। उ०—कातिग मांसा जण(ह) चलाई। कोरौ कागळ गुपती लीखाई।—वी.दे.
(रू०भे०—गुप्ती)

गुप्तगंगा—सं०स्त्री०—एक पौराणिक नदी।

गुप्त—देखो 'गुपत' (रू.भे.)

गुप्तकासी—देखो 'गुपतकासी' (रू भे)

गुप्तचर—देखो 'गुपतचर' (रू.भे)

गुप्तदांन—देखो 'गुपतदांन' (रू.भे.)

गुप्तमार—देखो 'गुपतमार' (रू. .)

गुप्ता—देखो 'गुपता' (रू.भे.)

गुप्ती—देखो 'गुपती' (रू.भे.)

गुफ्फा—देखो 'गुफा' (रू.भे.)

गुफ्फागुढ़, गुफागुध्ध—देखो 'गुफ्फागुध्ध' (रू.भे.)

गुफा—सं०स्त्री० [सं० गुहा] वह गहरा अंधकारयुक्त गड्ढा जो जमीन या पहाड़ के नीचे बहुत दूर तक चला गया हो।
पर्याय०—कंदरा, खोह, गुद, दरी।

(रू०भे०—गुहा)

गुफ्तगू—सं०स्त्री० [फा०] १ बातचीत, वार्तालाप. २ गुप्त मन्त्रणा।

गुफ्फागुच्छ—क्रि०वि०—१ दृढ़ आलिंगनपूर्वक । उ०—दूजै पोहरे रयण कै, मिळियत गुफ्फागुच्छ । धण पाळी पिव पाखरघो, विहू भला भड़ जुच्छ ।—ढो.मा.

२ गुत्थमगुत्था ।

गुबार—सं०पु० [अ०] १ गर्द, धूल. २ मन में दबाया हुआ क्रोध, दुख, द्वेष आदि ।

गुब्बारौ—सं०पु०—१ गरम हवा या हवा से हल्की कोई गैस भर कर आकाश में उड़ाने की एक प्रकार की थैली अथवा इसके आकार की कोई अन्य वस्तु. २ इसी प्रकार का बना कागज का गुब्बारा। इसके नीचे जलता हुआ तेल से भीगा कपड़ा बांध देते हैं जिसके गरम धुयें से गुब्बारा उड़ने लगता है ।

क्रि०प्र०—उडणौ, उडाणौ, छूटणौ, छोडणौ ।

३ भेद, रहस्य ।

गुम—सं०पु०—१ गर्व, घमंड. २ पता, ज्ञान । उ०—ताहरां डबी देखि सुजांण कह्यौ—बात सांची । डबी री गुम कुंवरजी बिना दूजै नै पण कोयनी ।—पलक दरियाव री वात

वि०—१ गुप्त, अप्रकट, छिपा हुआ. २ अप्रसिद्ध. ३ खोया हुआ।

क्रि०प्र०—करणौ, जाणौ, होणौ ।

यौ०—गुमनांम, गुमराह ।

गुमड़ौ—सं०पु०—ग्रंथि, फोड़ा ।

गुमटी—सं०स्त्री० [फा० गुंबद] १ इमारत के ऊपरी भाग में सीढ़ी या कमरों आदि की छत जो शेष भाग से अधिक ऊपर उठी हुई होती है । गुंबज. २ श्मशान भूमि में बनवाया जाने वाला स्मारक स्थान।

गुमनांम—वि० [फा० गुमनाम] अप्रसिद्ध, अज्ञात ।

गुमनांम रौ खत—सं०पु०—वह ऋण-पत्र जिसमें ऋणदाता का नाम न लिखा हो ।

गुमर—सं०पु०—१ अभिमान, घमंड (अ.मा.) उ०—१ अभंग कमंध तणौ गुमर उतारियो, चमर बांध धारियौ गुमर चूंडा ।

—रावत जसवंत री गीत

उ०—२ और रजपूतपण रौ गुमर जिकां रै हिया में असर ही नहीं ।—वी.स.टी.

२ मन में छिपाया हुआ क्रोध या दोष ३ धीरे-धीरे की बातचीत, कानाफूसी ।

गुमराह—वि० [फा०] १ कुपथगामी, बुरे मार्ग पर चलने वाला, नीति-पथ से हटा हुआ. २ भटका हुआ ।

गुमराही—सं०स्त्री० [फा०] १ भूल, भ्रम. २ कुपथ, कुमार्ग ।

गुमसुम—वि०—अवाक, स्तब्ध । उ०—थोड़ी ताळ तांई तौ वै गुमसुम ऊभा रहिया, पछै हथाळी में सीप रा बटण लं'र बोल्या ।

—बांणी, विजयदांन देथौ

गुमांन—सं०पु०—गर्व, अभिमान ।

गुमांनगंजण—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुमांनराव—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुमांनसार—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुमांनी—वि० (स्त्री० गुमांनण) १ अभिमानी, घमंडी, अहंकारी ।

उ०—१ हूं अबळा री जात, जूण नार री जोयलै । पग में बेड़ी घात, गयौ गुमांनी जेठवौ । उ०—२ मन मुसकाय खेत के मांहीं, बोल्यौ मोटी बांनी । चंगी चाल चाह कर चूक्यौ, गढ़ नहं सज्यौ गुमांनी ।—ऊ.का.

२ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुमाणौ, गुमाबौ—क्रि०स०—गुम करना, खोना, गायब करना ।

गुमाणहार, हारौ (हारी), गुमाणियौ—वि० ।

गुमाड़णौ, गुमाड़बौ, गुमावणौ, गुमावबौ—रू०भे० ।

गुमायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

गुमाईजणौ, गुमाईजबौ—कर्म वा० ।

गुमणौ—अक० रू० ।

गुमायोड़ौ—भू०का०कृ०—गुम किया हुआ, खोया हुआ ।

(स्त्री० गुमायोड़ी)

गुमावणौ, गुमावबौ—देखो 'गुमाणौ' (रू.भे.)

गुमावणहार, हारौ (हारी), गुमावणियौ—वि० ।

गुमाविग्रोड़ौ, गुमावियोड़ौ, गुमाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गुमावीजणौ, गुमावीजबौ—कर्म वा० ।

गुमणौ—अक० रू० ।

गुमावियोड़ौ—देखो 'गुमायोड़ौ' । (स्त्री० गुमावियोड़ी)

गुमास्तागीरी—सं०स्त्री०यौ० [फा०] गुमाश्ते का कार्य, गुमाश्ते का पद ।

गुमास्तौ—सं०पु० [फा० गुमाश्ता] किसी व्यापारी आदि की पेढ़ी पर हिसाब लिखने या क्रय-विक्रय के लिए नियुक्त किया गया कर्मचारी, मुनीम । उ०—तांहरै अजैपाळ साह कांम गुमास्ता नै सौंपि बेटा देवीदास नै साथ लेय घरै जीमण नै गयौ ।—पलक दरियाव री वात

गुमी—सं०स्त्री०—एक प्रकार की वीणा (अ.मा.)

गुमेज—सं०पु०—गर्व, अभिमान । उ०—१ नाभि उंडाळी खीण कटि, चल मिरगा नैणी । विधना रूप गुमेज, सवारी पैं'ल सैलांणी ।

—मेघ.

उ०—२ वीरा ऊभी ओरिया रै बा'र, देवरजी मूसा बोलिया । भावज करती वीरा री गुमेज, वीरौ बत्तीसी ले गयौ ।

—लो.गी.

क्रि०प्र०—करणौ, खंडणौ, राखणौ, होणौ ।

गुम्मज—देखो 'गुंबज' (रू.भे.)

गुम्मत—देखो 'गम्मत' (रू.भे.)

गुम्मर—देखो 'गुमर' (रू.भे.) उ०—१ धीरा-धीरा ठाकुरां, गुम्मर कियां म जाह । महंगा देसी भूंपड़ा, जै घरि होसी नाह ।—हा.झा.

उ०—२ गौ अजमेर मियां तज गुम्मर, आयौ दुरंग पजावे ऊपर। —रा.रू.

गुरंड—सं०पु०—अंग्रेज। उ०—हिंदू गुरंड खगां हूचकिया, वहिया वाहरण मूंभ विचाळ।—दुरगादत्त बारहठ

गुर—देखो 'गुरु' (रू.भे.) उ०—१ गढ़ तूं जिसौ सिव रायां गुर। गढ़ सिरखां रवि तौ यह गात।—द.दा. उ०—२ खत्री गुर वासिया मोलि महूंगा खरा। अरि घड़ा भांजिसी भीच जसवंत रा। —हा.झा.

गुरगम, गुरगमि—सं०स्त्री०यौ०—१ गुरु-शिक्षा, उपदेश।
उ०—मेर मरजाद रणजीत आखाड़मल, खेर दीश्रा डसरण जबर खेटै। पुखत गुरगम मिळी सेन परा पांकियौ, भरतपुर फेर नह उसर भेटे।—बां.दा.
२ तत्वज्ञान। उ०—जन हरिदास उदबुद कथा, परम गति गुरगमि लहिए। घर बन गिरि तर कंदरा, रांम राखै तहां रहिए।—ह.पु.वा.

गुरगळ—सं०पु०—एक पक्षी विशेष।

गुरगाबी—सं०स्त्री०—एक प्रकार का जूता, मुड्डा जूता। उ०—पातसाह री हजूर अमराव मंमूसाह मीर गाभरू, सु हरम री खुटक नै गुरगाब्यां पगां उबांणा सो तीजै भाई नूं आपड़ियौ थौ सु आ घणी वात छै। —नैणसी

गुरड़—देखो 'गरुड़' (रू.भे.) उ०—जसवंत गुरड़ न उड्डही, ताळी अजड़ तणेह।—हा.झा.

गुरड़गाह—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुरड़धज—देखो 'गरुड़ध्वज' (ह.नां.)

गुरड़पख—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुरड़ासण, गुरड़ासन—सं०पु०—१ गरुड़ पर सवारी करने वाला—ईश्वर, बिष्णु (अ.मा., नां.मा.) २ देखो 'गरुड़ासन' (रू.भे.)

गुरड़ेस—सं०पु०—गरुड़।

गुरड़ो—सं०पु०—१ गुरु. २ गुरु जाति का ब्राह्मण जो चमारों आदि के विवाह-संस्कार आदि कार्य सम्पन्न कराता हो. २ घोड़े का एक प्रकार का विशेष रंग अथवा इस रंग का घोड़ा।

गुरज—सं०पु० [फा० गुर्ज] १ गदा, सोटा (अ.मा.) उ०—हाथ में सोना री गुरज हुती सौ प्रोहितजी रा माथामें दीवी नै कह्यौ—तुम्हारै सीरायंत मारधम हुवौ तौ वीर माहाराज रै वळै कोय नहीं? —रीसालू री वात
२ एक प्रकार की गदा जिसे मुसलमान अपनी भाषा में प्राय: गुर्ज कहा करते थे। यह इस्पात की बनी अत्यधिक भारी होती है और इसके ऊपरी भाग पर आठ अर्द्धचंद्राकार पत्तियाँ लगी होती हैं जिन पर तेज धार होती है। पत्तियों के मिलने वाले स्थान पर मुंगरी (मोगरा) लगी होती है। इसके नीचे के भाग पर सुंदर दस्ता या मूठ बनी होती है. ३ कोट या शहरपनाह (प्राचीर) की दीवार का वह स्थान जो कुछ गोलाकार उभरा हुआ होता है, बुर्ज।

गुरजखाप—सं०स्त्री०—एक प्रकार का रंदा।

गुरजणकुत्तो—सं०पु० (स्त्री० गुरजणकुत्ती) एक जाति विशेष का कुत्ता।

गुरजदार, गुरजबरदार—सं०पु०—१ गदाधारी. २ बादशाह व राजा का व्यक्तिगत सेवक। उ०—ग्रत मिळतां आदर अरब, करै कमंध विरा-पार। सेव खड़ा गिरणदेव सम, गुरजदार पड़दार।—रा.रू.
३ हाथ में डंडा या गुर्ज नामक शस्त्र रखने वाला सिपाही।
उ०—राव फील चराही न देवै और पण लाजमा रा सवाल जवाब न करै तो बादशाह फुरमाई—फील चराई लेवो तद गुरजबरदार मेलियौ सो आंण कही।—अमरसिंह गजसिंहोत री वात

गुरजमार—सं०पु०—एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो लोहे का गुर्ज साथ लिये फिरते हैं।

गुरजर—सं०पु० [सं० गुर्जर] १ गुजरात. २ एक जाति या इस जाति का व्यक्ति।

गुरजरी—सं०स्त्री० [सं० गुर्जरी] १ गुजरात देश की स्त्री. २ गुर्जर जाति की स्त्री, गूजरी. ३ भैरव राग की स्त्री (संगीत)

गुरज री टोडी—सं०स्त्री०—संपूर्ण जाति का एक राग (संगीत)

गुरजी—वि० [फा० गुर्ज] जार्जिया नामक देश का एक कुत्ता।

गुरज्ज—देखो 'गुरज' (रू.भे.) उ०—प्रवरण तहवर ऊपरै, फिर कोपं जगदीस। पवं भुरज्जां वज्र पर, पड़ी गुरज्जां सीस।—रा.रू.

गुरडि—देखो 'गरुड़' (रू.भे.) उ०—गुरडि चडी हरी आव्या अनी, आवी सकति सिंह-वाहिनी।—कां.दे.प्र.

गुरडी—सं०स्त्री०—१ रस्सी की ऐंठन।
क्रि०प्र०—पड़णी, लागणी।
२ कपट।
मुहा०—मन री गुरडी मेटणी—मन में कपट न रखना।

गुरडु—देखो 'गरुड़' (रू.भे.)

गुरणी—१ देखो 'गुराणी' (रू.भे.) २ गुरु-पत्नी।

गुरद्वारो—सं०पु० [सं० गुरुद्वारा] १ गुरु का निवास-स्थान. २ सिक्खों का देवालय।

गुरभाई—सं०पु०—दो या दो से अधिक वे पुरुष जो एक ही गुरु के शिष्य रह चुके हों, गुरुभाई।

गुरमुख—देखो 'गुरुमुख' (रू.भे.)

गुरमुखी—देखो 'गुरुमुखी'।

गुरराणो, गुररावो—क्रि०अ० (अनु०) [सं० घुर] क्रोधवश गले से भारी आवाज निकालना, क्रोध या अभिमान के कारण भारी और कर्कश स्वर में बोलना, गुर्राना।

गुररायोड़ो—भू०का०कृ०—गुर्राया हुआ (स्त्री० गुररायोड़ी)

गुरवादित्य—सं०पु० [सं० गुर्वादित्य] सूर्य और बृहस्पति का एक राशि पर गमन (अशुभ)

गुरवार—देखो 'गुरुवार' (रू.भे.) उ०—मास मिगसर वार गुर, बीज उजाळी पाख।—रा.रू.

गुरसा–सं०स्त्री०—श्यामा चिड़िया ।

गुरांजणी–सं०स्त्री० [सं० गडुभंजनी] आंख की पलक पर होने वाली फुन्सी ।

गुरांणी–सं०स्त्री०—१ गुरुपत्नी, गुरु की स्त्री. २ स्त्री-शिक्षक, शिक्षिका ।

गुरांसा–सं०पु०—१ गुरु के लिये सम्मानसूचक शब्द ।

२ जैन यति ।

कहा०—आप गुरांसा वैंगण खावै दूजां नै परमोद सुणावै—गुरुजी स्वयं तो बैंगन खाते हैं और दूसरों को उसे न खाने का उपदेश देते हैं; जिस बात पर स्वयं आचरण न करते हों उस बात पर दूसरों को आचरण करने की शिक्षा देने पर; कथनी व करनी में अंतर होने पर ।

गुराड़, गुराड़ो–सं०पु०—अंग्रेज, गोरा । उ०—गंज गाडां जंबूरां जंजाळां दागी गोम गाज, दळां आडा अच्छरां अच्छरां लागी दीठ । जाडा थंडां ऊपरै जोसेल आग जागी जठै, रोसेल गुराड़ां हाडां बागी खागां रीठ ।—दुरगादत्त बारहठ

गुराब, गुराबा–सं०स्त्री०—१ छोटी तोप । उ०—गुराबां अटक तट ऊतरै विकट गत, साहीपुर दुरंग थट अघट समाज ।

—रणसिंह सीसोदिया रौ गीत

२ घोड़े, ऊँट आदि से खींची जाने वाली तोप ।

गुरिज–सं०पु० [सं० गुरूर्ज] १ हाथी. २ एक प्रकार का शस्त्र, गदा ।

गुरु–सं०पु० [सं०] १ आचार्य, शिक्षक, उपदेशक । उ०—गुरु गेहि गयौ गुरु चूक जांणि, गुरु नांम लियौ दम घोख नर ।—वेलि.

कहा०—१ गुरु खनै तो ग्यांन हीज लाधै—गुरु के पास तो ज्ञान ही प्राप्त होता है. २ गुरु तो गुड़ रैं'ग्या अर चेला सक्कर ह्वै'ग्या—गुरु तो गुड़ ही रहे और चेले शक्कर हो गये; शिष्य गुरु से भी आगे बढ़ गये. ३ गुरु विना किसो ग्यांन—गुरु के अभाव में ज्ञान कैसा अर्थात् ज्ञान तो गुरु से ही प्राप्त होता है.

४ घर रा तो घट्टी चाटै नै गुरां नै आटो भावै—घर के तो सब चक्की चाट रहे हैं और गुरुजी को आटे की इच्छा हो रही है । किसी व्यक्ति से सामर्थ्य से अधिक मांग करने पर ।

(रू०भे०–गरु, गरू, गुर, गुरू)

यौ०—गुरुकुंडळी, गुरुकुळ, गुरुघंटाळ, गुरुदक्षिणा, गुरुदत्त, गुरुदुवारो, गुरुभाई, गुरुमंतर ।

२ देवताओं का आचार्य, बृहस्पति (अ.मा.) २ बृहस्पति ग्रह । उ०—तैतिळ सोळह साठि भला कवि गुरु न अस्त भणि ।—वं.भा.

यौ०—गुरुवार ।

४ ग्रह (नां.मा.) ५ दो मात्राओं का अक्षर ऽ (छंदशास्त्र)

६ अपने-अपने गृह्य सूत्र के अनुसार यज्ञोपवीत आदि संस्कार कराने वाला जो कि गायत्री मंत्र का उपदेष्टा होता है. ७ वह साधन, प्रणाली या क्रिया जिसके प्रयोग करते ही कार्य तुरंत हल हो जाय, मूल-मन्त्र, सार. ८ ब्रह्मा. ९ विष्णु. १० शिव. ११ माता-पिता । उ०—गुरु गेहि गयौ, गुरु चूक जांणि । गुरु नांम लियौ, दमघोख नर ।

—वेलि.

१२ एक ब्राह्मण जाति जो चमारों आदि के यहां विवाह कार्यादि कराती है अथवा इस जाति का व्यक्ति. १३ तीन की संख्या* ।

वि०—१ भारी, वजनी । उ०—केवड़ा कुसुम कुंद तणा केतकी, स्रीय सीकर निरझर स्रवति । ग्रहियौ कंधै गंध भार गुरु, गंधवाह तिणि मंदगति ।—वेलि. २ लम्बेचौड़े आकार वाला, दीर्घाकार. ३ श्रेष्ठ, शिरोमणि. ४ महान, बड़ा ।

(रू०भे०–गुर)

गुरु कुंडळी–सं०स्त्री० [सं० गुरुकुंडली] फलित ज्योतिष में एक चक्र जिसके द्वारा जन्म नक्षत्र के अनुसार एक-एक वर्ष के अधिपति ग्रह का निश्चय किया जाता है ।

गुरुकुळ–सं०पु० [सं० गुरुकुल] गुरु, आचार्य या शिक्षक के रहने का वह स्थान जहां वह विद्यार्थियों को अपने साथ रख कर शिक्षा देता है ।

गुरुगंधरब–सं०पु० [सं० गुरुगंधर्व] इंद्रजाल के ६ भेदों में से एक (संगीत)

गुरुगम–सं०पु०यौ० [सं० गुरु+गम = ज्ञान] गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान, गुरु से समझा हुआ रहस्य । उ०—प्रीत घीत मेंदी पीठी तंत रो तेल चढ़ायौ, समझ तलवार हाथ में लीन्ही गुरगम ढोल घरायौ ।

— ऊ.का.

गुरघंटाळ–वि०—१ महान धूर्त. २ निपट मूर्ख ।

गुरुघ्न–सं०पु० [सं०] गुरु-हत्या करने वाला, गुरु-हत्या का अपराधी ।

गुरुच–सं०स्त्री० [सं० गुडूची] गिलोय ।

गुरुजन–सं०पु०यौ० [सं०] बड़े लोग, माता-पिता, आचार्य आदि ।

गुरुडियउ–सं०पु०—रंग विशेष का घोड़ा (रा.ज.सी.)

गुरुता, गुरुताई–सं०स्त्री० [सं०] १ गुरुत्व, भारीपन. २ महत्व, बड़प्पन. ३ गुरु होने का भाव ।

गुरुदक्षिण, गुरुदखणा, गुरुदखिणा, गुरुदछणा–सं०स्त्री०—विद्या पढ़ने के पश्चात गुरु को दी जाने वाली दक्षिणा ।

गुरुदत्त–सं०पु०—दत्तात्रेय । उ०—नमो अवधूत उदार अलक्ख, नमो गुरुदत्त गियांन गोरक्ख ।—ह.र.

वि०—१ गुरु का दिया हुआ. २ गुरु को दिया हुआ ।

गुरुदवार, गरुदवारो–सं०पु० [सं० गुरुद्वारा] देखो 'गुरदवारो' ।

गुरुदैवत–सं०पु० [सं०] पुष्य नक्षत्र ।

गुरुद्वारो—देखो 'गुरदवारो' ।

गुरुपुस्य–सं०पु० [सं० गुरुपुष्य] बृहस्पति के दिन पुष्यनक्षत्र के पड़ने का योग ।

गुरुपूनम–सं०पु०यौ० [सं० गुरुपूर्णिमा] आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा । इस दिन गुरु का पूजन किया जाता है । व्यासपूर्णिमा ।

गुरुबला–सं०स्त्री० [सं०] संकीर्ण राग का एक भेद (संगीत)

गुरुभ–सं०पु० [सं०] १ पुष्य नक्षत्र. २ मीन राशि. ३ धन राशि ।

गुरभाई—देखो 'गुरभाई'।

गुरमंतर—सं०पु० [सं० गुरुमंत्र] १ गुरु द्वारा दी जाने वाली शिक्षा।

क्रि०प्र०—देणी, फूंकणी।

२ गुरु का शिष्य को दीक्षित करने का कार्य।

गुरमुख—वि०—कंठस्थ, जैसे गुरु से ज्ञान प्राप्त हो ठीक वैसा ही किया गया याद या कंठस्थ।

गुरमुखी—सं०स्त्री०—१ गुरु नानक की चलाई हुई एक लिपि जो आजकल पंजाबी भाषा की लिपि है. २ इस लिपि में लिखी जाने वाली भाषा, पंजाबी. ३ देखो 'गुरमुख' (रू.भे.)

गुरवार, गुरवासर—सं०पु० [सं०] सप्ताह के सात दिनों में से एक, बृहस्पतिवार। उ०—संवत सत्तर छिनुओ पुणां तस वरस पटंतर। तिथि उतिम सातिम वार उतिम गुरवासर।—ल.पि.

गुरसंथा—सं०स्त्री०—गुरु द्वारा दी जाने वाली शिक्षा व दीक्षा।

गुरड़ो—देखो 'गुरड़ो' (रू.भे.)

गुरू—देखो 'गुरु' (रू.भे.)

गुरूप—सं०पु० [अं० ग्रुप] दल, झुंड, समूह।

गुलंबर—सं०पु०—द्वार पर त्रिभुजाकार बना हुआ आंतरिक ताखा।

गुल—सं०पु० [फा०] १ गुलाब का पुष्प।

२ मनुष्य या पशु के शरीर पर गर्म की हुई धातु आदि के दागने से अंकित होने वाला चिन्ह, दाग।

क्रि०प्र०—दागणी, देणी।

मुहा०—गुल खाणी—अपने शरीर पर गरम धातु से दगवाना।

३ पुष्प, फूल (अ.मा.) उ०—लाजाळू गुल चिमन में, खग कुळ मांहि बकोट। मावड़िया मिनखां मही, यां तीनां में खोट।—बां.दा.

मुहा०—१ गुल खिलणी—विचित्र बात होना, अनहोनी बात सामने आना, हलचल होना, झंझट होना. २ गुल खिलाणी—विचित्र घटना उपस्थित करना, ऐसी बात उपस्थित करना जिसका अनुमान पहले से ही लोगों को न हो, बखेड़ा खड़ा करना, उपद्रव मचाना।

यौ०—गुलजार, गुलदस्तो, गुलदांन।

४ दीपक आदि में बत्ती का वह अंश जो बिल्कुल जल जाता है।

क्रि०प्र०—कतरणी, काटणी, पड़णी।

मुहा०—(दियौ) गुल करणी—(चिराग) बुझाना।

यौ०—गुलगीर।

५ चिलम पीने के बाद बच रहने वाला तम्बाकू का जला हुआ अंश.

६ किसी चीज पर बना हुआ भिन्न रंग का कोई गोल निशान।

क्रि०प्र०—पड़णी।

गुळ—सं०पु० [सं० गुड] गुड़। देखो 'गुड़' (रू.भे.) उ०—दाता धन जेतो दियै, जस तेतो धर पीठ। जेतौ गुळ लै घाळियां, तेतौ जीमण मीठ।—बां.दा.

मुहा०—१ कुलड़ी में गुळ गाळणी—गुप्त रीति से कोई कार्य करना, छिपे-छिपे कोई सलाह करना. २ गुळ डळियां घी आंगळियां—एक-एक डली कर के गुड़ और अंगुली-अंगुली कर के घी चट समाप्त हो जाता है; नित्य की थोड़े-थोड़े व्यय से बड़ी राशि भी समाप्त हो जाती है. ३ गुळ-खळ एकण भाव—अच्छे-बुरे अथवा योग्य-अयोग्य सब को एक समान समझना. ४ गुळ तौ इंधारै में ही मीठौ—गुड़ तो अंधेरे में भी मीठा ही लगता है; उपयुक्त वस्तु सब जगह ही ठीक होती है।

कहा०—१ गुळ नहीं गुळवांणी नहीं, गुळ सूं मीठी जीभ ही नहीं—गुड़ एवं गुड़ का पकवान तो दूर रहा, मुँह से मीठे वचन भी नहीं बोल सकते? भलाई या सहायता करना तो दूर, मीठी बोली बोलने से भी परहेज करने पर. २ गुळ लारै तमाखू बळै—गुड के साथ तम्बाकू भी जलती है; सामूहिक भोज में जहाँ भोजन में अधिक व्यय होता है वहाँ साथ में छोटे-मोटे अन्य खर्च भी करने पड़ते हैं।

गुलअनार—सं०पु०यौ०—एक प्रकार का पुष्प विशेष (रा.सा.सं.)

गुलअब्बास—सं०पु० [फा० गुल+अ० अब्बास] वर्षा ऋतु का एक पौधा जिसमें लाल या पीले रंग के फूल निकलते हैं।

गुलअब्बासी—वि०—गुल अब्बास के पुष्प के रंग का, हल्के नीले रंग की झांईयुक्त चमकते लाल रंग का।

गुलअसरफी—सं०पु० [फा० गुलअशर्फी] एक प्रकार के पीले रंग का फूल।

गुळकंद—सं०पु० [फा०गुल+सं० कंद] ठंडी तासीर की एक मीठी औषधि जो चीनी या मिश्री के रस में अमलतास या गुलाब के फूल की पंखुरियों को मिला कर धूप की गर्मी में पकाई जाती है।

गुलक—देखो 'गोलक' (रू.भे.)

गुलकागड़ी—सं०स्त्री०—एक प्रकार की बकरी विशेष जिसके शरीर पर सफेद, लाल और श्याम रंग के धब्बे होते हैं।

गुळकारस—सं०पु०—मोती (ह.नां.)

गुळकारस उदभव—सं०पु०—१ हीरा. २ मोती (ह.नां.)

गुलक्यारी—सं०स्त्री०यौ० [फा० गुल+सं० केदारिका] फूलों की क्यारी।

गुळगचियो—देखो 'गुळगुचियो' (रू.भे.)

गुलगलो—सं०पु०—१ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.) २ एक प्रकार का व्यंजन।

गुळगांठ—सं०स्त्री० [सं० घटित+ग्रंथि] ऐसी गांठ जो घुल जाती है और आसानी से नहीं खुल सकती।

गुलगीर—सं०पु० [फा०] चिराग का गुल काटने की कैंची, बत्ती काटने की कैंची।

गुळगुचियो—सं०पु०—१ प्राकृतिक रूप से बना हुआ छोटा चिकना गोल पत्थर या ऐसे पत्थर का टुकड़ा। उ०—धूजता हाथां सूं पेटी ऊंधी करनै सगळी चीजां दरी माथै बिखेर दी—सिगरेटां रा चिळकता जळपू, भांत-भांत री छापां, भांत-भांत रा गुळगुचिया, काच रा केई टुकड़ा।—वांणी, विजयदांन देथा

२ एक प्रकार का फैलने वाला कंटीला पौधा जिसके बीज कंकड़ के

समान कठोर व चिकने होते हैं. २ देखो 'गुळगचियौ' (रू.भे.)

गुलगुली—देखो 'गिलगिली' (रू.भे.)

गुलगुलौ-सं०पु०—गुड़ के रस में खमीर, आटा या मैदा मिला घोल बना कर उबलते हुए घी या तैल में निकाले हुए छोटे-छोटे गोल पकोड़े। मीठा पकोड़ा।

गुलचसम-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा।

गुळचियौ-सं०पु०—पानी में डूबते समय खाई जाने वाली डुबकी, गोता।

गुळचोसम-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुळछररा-सं०पु०—वह भोग-विलास या ऐश जो बहुत स्वच्छंदतापूर्वक और अनुचित रीति से किया जाय। उ०—खसखसिया छांणा'र मंडळी मस्त हां'र गुळछररा उडावण लागी।—वरसगांठ

गुलजार-सं०पु०—बाग, उद्यान, वाटिका।

वि०—१ हरा-भरा. २ आनन्द और शोभायुक्त. ३ चहल-पहल से परिपूर्ण।

गुलजारू-सं०पु०—फूल, पुष्प। उ०—गुलजारू की पंकत रोसी सरसावै, तिसकूं देखिये नंदन वन सहसा लखावै।—र.रू.

गुलतुररौ-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो)

गुलदस्तौ-सं०पु० [फा० गुलदस्त:] १ विशेष प्रकार से बँधा हुआ कई प्रकार के सुन्दर फूलों एवं पत्तियों का समूह, गुच्छा. २ एक प्रकार का घोड़ा जिसका अगला बायां पैर गांठ तक सफेद हो और दाहिने पैर का रंग पिछले दोनों पैरों के रंग के समान रंग का हो (शा.हो.)

गुलदांन-सं०पु० [फा० गुलदान] गुलदस्ता रखने का पात्र।

गुलदाउद-सं०पु०—एक प्रकार का रंग विशेष का घोड़ा (शा.हो.)

गुलदाउदी-सं०स्त्री० [फा०] १ एक प्रकार का छोटा पौधा जिसकी लम्बी कटावदार पत्तियों में भी उसके फूल की भाँति हल्की भीनी खुशबू होती है. २ इस पौधे का फूल। ३ देखो 'गुलदाउद'

गुलदार, गुलदारौ-सं०पु० [फा० गुलदार] १ एक रंग विशेष का घोड़ा (रा सा.सं.)

२ एक प्रकार का सफेद कबूतर।

गुलदुपहरिया-सं०पु०—एक प्रकार का पौधा जो लगभग ४-५ फुट ऊँचा होता है।

गुलनरगस, गुलनरगिस-सं०स्त्री०यौ० [फा० गुलनरगिस] एक प्रकार की लता, वल्लरी। उ०—वौ बादसाह नोसेरवां जिण घर रै आंगण में गुलनरगस होतौ उठै आपरी स्त्री सूं भोग विलास न करतौ।
—नी प्र.

गुलनार-सं०पु० [फा०] १ अनार का फूल। (रू०भे०—गुलअनार)

२ गहरा लाल रंग।

गुलफानूस-सं०पु० [फा०] केवल शोभा के लिये लगाया जाने वाला एक प्रकार का बड़ा वृक्ष।

गुलब—देखो 'गुलाब' (रू.भे.)

गुलबदन-सं०पु०—एक प्रकार का बहुमूल्य रेशमी कपड़ा जो प्रायः लहरियेदार या धारीदार होता है (रा.सा.सं.)

गुलबिदांम-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुलमंड-सं०पु०—एक पौधा तथा उसका फूल (अ.मा.)

गुलम-सं०पु० [सं० गुल्म] १ वह पौधा जो एक जड़ से कई होकर निकले तथा जिसमें कड़ी लकड़ी तथा डंठल न हो।

उ०—१ वन थाहर नाहर वसै, बाहर थाट विडार। तरवर गलम समीर विण, न को नमावणहार।—बां.दा.

उ०—२ मावट पोवट मध्य, गुलम गण कूंपळ काढ़ै। नैसावरिया डाग, घणेरा घुरड़ै वाढ़ै।—दसदेव

२ सोने चांदी के आभूषणों पर की जाने वाली खुदाई का नाम विशेष. ३ आभूषणों पर खुदाई करने का एक औजार विशेष।

गुळमट, गुळमटियौ-सं०पु०—घुटने मोड़ कर छाती के पास समेट कर सोने का ढंग।

वि०—गोलाकार, वृत्ताकार।

गुलमवाय-सं०स्त्री०—घोड़े का एक रोग विशेष जिसके कारण घोड़े के समस्त शरीर में ग्रंथियां होती हैं (शा. हो.)

गुलमेहंदी-सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का पौधा जो आश्विन मास में फूलता है. २ इस पौधे का फूल।

गुलरंगदार-वि०—गुलाब के फूल के रंग का। उ०—चत्रवर बजार चित्र कांम चार। दुतिवंत वेलि गुलरंगदार।—सू.प्र.

गुलर—देखो 'गूलर' (रू.भे.)

गुळराब-सं०स्त्री०—सिके हुए आटे को गुड़ में मिला कर पानी में उबाल कर बनाया हुआ मीठा पेय पदार्थ (मि० 'गळवांणी')

गुलरि—देखो 'गूलर' (रू.भे.)

गुलरियौ-सं०पु०—गूलर का फल या गूलर के फल का जन्तु।

गुलरी-सं०पु०- गूलर का वृक्ष।

गुळरूप-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुळरोबाड़-सं०पु०—शस्त्र का पैना भाग।

गुललंजा-सं०स्त्री० [फा० गुल+सं० रंजा] सुंदर स्त्री।

उ०—भाटा तूं सभागियौ, पीछोळा री टग्ग। गुललंजा पांणी भरै, ऊपर दे दे पग्ग।—महादांन महडू

गुललाल-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा।

गुळवाड़, गुळवाड़ि-सं०स्त्री०—१ गन्ने की खेती. २ गन्ना।

उ०—१ सू एकल किण भांत रौ छै। जैरौ बारहं आंगळ खग लीडीकट छै, कांधो-पूठ एक सारखो छै। गुळवाड़ गोहूं जव चिणां रौ, जुवार रौ चरणहार छै।—रा.सा.सं.

उ०—२ सूअरे राते खून किआ छै। सूरे गुळवाड़ि विधांसिया छै।
—रा.सा.सं.

गुलसन-सं०पु० [फा० गुलशन] वाटिका, बाग, उद्यान, फुलवारी।

गुलसफा-सं०स्त्री० [फा० गुलशब्बो] लहसुन की तरह का एक छोटा पौधा जो रात में फूलता है।

गुलसरसक-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुलहजारी—सं०पु० [फा०] १ एक प्रकार का पौधा विशेष या इस पौधे का फूल, गेंदा, गुल्लाला. २ एक प्रकार का घोड़ा।

गुलहुबास—देखो 'गुल-अब्बास' (रू.भे.)

गुळांच, गुळांची—सं०स्त्री०—कलाबाजी, कुलांच। उ०—दो थप्पड़ बापड़ै छोरै रै लागा। लादाळो गुळांची खा'र पड़ियौ।—बरसगांठ

क्रि०प्र०—खाणी, लगाणी।

गुलांम—सं०पु० [अ० गुलाम] १ खरीदा हुआ, नौकर।

मुहा०—१ गुलांम करणो—एकदम अपने वश में करना.

२ गुलांम बणाणौ—देखो 'गुलांम करणौ'. ३ गुलांम होणौ—अधिकार में होना।

२ साधारण सेवक, दास. ३ ताश का एक पत्ता जो दहले से बड़ा और बेगम से छोटा समझा जाता है।

गुलांमी—सं०स्त्री० [अ० गुलाम+ई] १ दासत्व, सेवा, नौकरी।

मुहा०—गुलांमी अख्तियार करणी—दासत्व स्वीकार करना।

२ पराधीनता, परतंत्रता।

गुलांमौ—देखो 'गुलांम' (रू.भे.)

गुलाब—सं०पु० [फा०] १ एक झाड़ या कंटीला पौधा जिस पर बहुत सुंदर एवं सुगन्धित फूल लगते हैं. २ गुलाबजल।

गुलाबजळ—सं०पु०यौ०—भभके द्वारा गुलाब के पुष्पों का निकाला हुआ अर्क।

गुलाबजांमु, गुलाबजांमुन—सं०पु०—खोवे और मैदा के योग से बनाई जाने वाली एक प्रकार की मिठाई।

गुलाबताळू—सं०पु०—गुलाब के रंग के तालु वाला हाथी (शुभ)

गुलाबदांनी—देखो 'गुलाबपास'।

गुलाबदासी—सं०स्त्री०—नानकशाही संप्रदाय की एक शाखा (मा.म.)

गुलाबपास—सं०पु० [फा० गुलाबपाश] प्रायः शुभ अवसरों पर गुलाबजल छिड़कने की एक प्रकार की भारी के आकार का लंबा पात्र जिसके मुंह पर हजारा लगा रहता है।

गुलाबपासी—सं०स्त्री० [फा० गुलाबपाशी] गुलाबजल छिड़कने की एक क्रिया।

गुलाबबाई—सं०स्त्री०—मेहा चारण की पुत्री एवं श्री करनी देवी की बड़ी बहिन जो देवी का अवतार मानी जाती है।

गुलाबबेग—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुलाबी—वि० [फा०] १ गुलाब के रंग का, गुलाब संबंधी.

२ थोड़ा या कम, फीका, हल्का।

यौ०—गुलाबी नसौ।

सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुलाल—सं०स्त्री० [फा० गुल्लाला] १ एक प्रकार की लाल बुकनी या चूर्ण। प्रायः होली के दिनों में लोग इसे एक दूसरे के चेहरे पर मलते हैं। उ०—अतर गुलाल अबीर, सोभ जांनियां सरीकां। चमण केसर चरच, कियौ उच्छब मछरीकां।—रा.रू.

क्रि०प्र०—उडणी, नांखणी।

२ महीन धूलि, धूलिकरण। उ०—पंखिया परदेसी अजकाय, आगमें असमांनी असमांन। उडै कोइ आथूंणी गुलाल, आई सांझ धरा मिजमांन।—सांझ

३ एक प्रकार का लाल पुष्प।

गुलालरंग—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गुलाला—सं०स्त्री०—सोने-चांदी के आभूषणों पर की जाने वाली खुदाई विशेष।

गुलाली—वि०—गुलाल के रंग का, गुलाल संबंधी। उ०—आगला कंध पड़छी अलप, मलप गुलाली मूंठियां।—मे.म.

सं०स्त्री०—लालिमा।

गुलिक—सं०स्त्री०—गुटिका। देखो 'गुटकौ'। उ०—सिधि गुलिक वेग पर सक्ति पाव, धजराज मुकुट खगराज धाव।—रा.रू.

गुलियहल, गुली—सं०स्त्री०—१ एक पौधा विशेष जिससे गहरा आसमानी रंग प्राप्त करने के लिये उसकी खेती की जाती है, नील. २ जिस भेड़ के कान बड़े हों. ३ लहसुन का बीज (अमरत)

गुलीडंडौ—सं०पु०यौ० [सं० कीलदंड] गुल्ली और डंडे से खेला जाने वाला एक प्रकार का खेल। इसमें गुल्ली को डंडे से मार-मार कर खेल खेला जाता है।

गुलीबंद—सं०पु० [सं० गलबंध या फा० गुलूबंध] १ गले में धारण करने का सोने का एक आभूषण जिसमें लहर पड़ी होती है.

२ सर्दियों में प्रायः ठंड से बचने के लिए सूती, ऊनी या रेशमी लंबी और कुछ चौड़ी पट्टी जो प्रायः गले या कानों पर लपेट ली जाती है। यह सिलाई या करघे पर बुनी हुई होती है। मफलर।

गुलीबावळी—सं०स्त्री०—एक प्रकार का बबूल।

गुळेचा—सं०स्त्री०—१ कुलांच. २ डुबकी, गोता।

उ०—जगत सारौ अजूं साख दे जिकण री, खोपरी गुळेचा भीम खाया।—र.रू.

गुळेंटौ—सं०पु०—कुलांच, कलाबाजी।

गुळेडी—सं०स्त्री०—घी तेल आदि में तल कर शक्करपारे की भांति गोल बनाया हुआ खाद्य-पदार्थ।

गुलेनार—देखो 'गुलनार' (रू.भे.)

गुलेल—सं०स्त्री० [फा० गिलूल] १ पक्षियों आदि को मारने के लिये गोलियां या पत्थर के टुकड़े फेंकने के उद्देश्य से बनाया हुआ कमान या धनुष। उ०—फरी पिसतोल गुलेल कुठार, थके नन हुथ्थ बर्क मुख मार।—ला.रा.

सं०पु०—२ गहरा आसमानी रंग।

गुलेलची—सं०पु०—गुलेल नामक अस्त्र को चलाने वाला. २ गुलेल नामक अस्त्र को चलाने में दक्ष व्यक्ति।

गुलेलौ—सं०पु० [फा० गुलूला] चिड़ियों का शिकार करने के लिये बनाई गई मिट्टी की गोली। यह गुलेल में फेंक कर मारी जाती है।

गुल्या-सं०पु०—बीज (ग्रमरत)

गुल्लालौ-सं०पु० [फा० गुल्लाला] एक प्रकार का लाल फूल। इसका पौधा पोस्त के पौधे के समान होता है।

गुल्ली-सं०स्त्री०—लगभग ६ इंच लम्बा और १ इंच मोटा काष्ठ का गुटका जिसके दोनों छोर नुकीले होते हैं। इसे डंडे से मार कर बालक खेल खेलते हैं।

गुल्ली डंडौ—देखो 'गुली डंडौ' (रू.भे.)

गुल्लौ—१ देखो 'गुलेलौ' (रू.भे.) २ देखो 'गुलेल' (रू.भे.) ३ ताश का एक पत्ता, गुलाम. ४ मस्ती के समय ऊँट के मुँह से निकलने वाला गलसुग्रा (वि०वि०—देखो 'साळू' ६)

गुवाड़-सं०पु० [सं० गोवाट] १ गाँव के मध्य का या गाँव के बाहर का खुला स्थान जहाँ गाँव भर की गायें एकत्रित होती हैं. २ मकान के अंदर का या पास का वह ग्रहाता जहाँ गायें बांधी जाती हों अथवा दुही जाती हों।

गुवाड़ी-सं०स्त्री० [सं० गोवाटी] मकान के अंदर का या पास का वह ग्रहाता जहाँ गायें बांधी जाती हैं अथवा दुही जाती हैं। उ०—स्याळा जाति गांवां की **गुवाड़्यां** में फिरावे।—शि.वं.

गुवार—देखो 'ग्वार'।

यौ०—गुवारफळी।

गुवारवा-सं०पु०—ग्वार का खेत।

गुवाळ-सं०पु० [सं० गोपाल] १ गायों को चराने वाला, ग्वाला।

उ०—बूज्यौ सजना गायां रौ **गुवाळ**, सींव बताग्रौ रे हाडे राव री।
—लो.गी.

२ रहँट चलाने वाले बैलों के चलने का गोल चक्र।

गुवाळियौ-सं०पु० [सं० गोपाल] गायों को चराने वाला, ग्वाला।

उ०—ग्रहौ कांई जांणै **गुवाळियौ** बेदरदी पीड़ पराई। (जो) जनमत ही कुळ-त्याग न कीन्हौं, बन-बन धेनु चराई।—मीरां

गुवाळी-सं०स्त्री०—१ गायें चराने का कार्य या मजदूरी, ग्वाले की वृत्ति. २ रक्षा, हिफाजत। उ०—हक री तरै में ग्रन्याई नूं रैयत रै ऊपर ग्रमाल करणौ। इसौ ह्वोय छै ज्यूं **गुवाळी** छाळियां री त्याळियां नूं देणी।—नी.प्र.

गुवावणौ, गुवावबौ-क्रि०स० [सं० गै] गाने का कार्य दूसरे से कराना।

उ०—प्रति दिन मंगळ गीत, देवतां तणा **गुवावै**। विघन विडारण काज, विनायक नूंत बुलावै।—दसदेव

गुवावणहार, हारौ (हारी), गुवावणियौ—वि०।

गुवाड़णौ, गुवाड़बौ, गुवाणौ, गुवाबौ—रू०भे०।

गुवावियोड़ौ, गुवाबियोड़ौ, गुवाय्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गुविंद, गुविंदौ-सं०पु० [सं० गोविंद] १ गोविन्द, श्रीकृष्ण. २ विष्णु।

गुसट-सं०स्त्री० [सं० गोष्ठी] १ सभा, गोष्ठी. २ गुप्त सलाह।

उ०—सुजस विवड़ बिगड़ी सभा, ग्राहुट गई उमंग। गनका सूं **रार्खं गुसट**, रसिया तोनूं रंग।—बां.दा.

३ मित्रता, दोस्ती।

गुसळखांनौ-सं०पु०—नहाने के लिये बनाया गया स्थान, स्नानागार।

गुसांई-सं०पु० [सं० गोस्वामी] १ वैष्णव संप्रदाय की एक शाखा. २ दशनामी संन्यासी।

गुसैल-वि० [ग्र० गुस्सा+रा०प्र० एल] गुस्सा करने वाला, क्रोधी स्वभाव वाला।

गुसौ—देखो 'गुस्सौ'। उ०—ग्राबळी पढ़ं साफी इलम्म। कावली **गुसै** भरिया किलम्म।

क्रि०प्र०—ग्राणौ, उतरणौ, करणौ।

गुस्ट—देखो 'गुसट' (रू.भे.)

गुस्ताख-वि० [फा०] १ धृष्ट, ढीठ. २ ग्रशिष्ट, बेग्रदब।

गुस्ताखी-सं०स्त्री० [फा०] १ धृष्टता, ढिठाई. २ ग्रशिष्टता, बेग्रदबी।

गुस्ल-सं०पु० [ग्र०] स्नान।

गुस्लखांनौ—देखो 'गुसलखांनौ' (रू.भे.)

गुस्सांई—देखो 'गुसांई' (रू.भे.)

गुस्सेल, गुस्सैल-वि०—गुस्सा करने वाला, क्रोधी स्वभाव वाला।

गुस्सौ-सं०पु० [ग्र० गुस्सा] क्रोध, कोप, गुस्सा।

क्रि०प्र०—ग्राणौ, उतरणौ, करणौ।

गुह-सं०पु० [सं०] १ कार्तिकेय (डि.को.) २ निषाद जाति का एक नायक जो राम का मित्र था एवं शृंगवेरपुर में रहता था (रामकथा) ३ गुफा, कंदरा. ४ कुबेर (नां.मा.)

गुहछठ-सं०स्त्री० [सं० गुहषष्ठी] ग्रगहन मास के शुक्ल पक्ष की छठी तिथि जो कार्तिकेय की जन्मतिथि मानी जाती है।

गुहराज-सं०पु०—निषादराज (रामकथा)

गुहांजणी-सं०स्त्री०—नेत्रों की पलक पर होने वाली फुन्सी (ग्रमरत)

गुहा-सं०स्त्री० [सं०] गुहा, कदरा।

गुहाचर-सं०पु० [सं०] ब्रह्म।

गुहिक-सं०पु०—एक देव जाति. यक्ष (नां.मा.)

गुहियण—देखो 'गुणियण' (रू.भे.) उ०—बावीस नांम वांणी बोहत, जांणंग **गुहियण** लहै।—ना.डिं.को.

गुहिर-वि०—गंभीर, गहरा। उ०—१ वरसतै दड़ड़ नड़ ग्रनड़ वाजिया, सघण गाजियौ **गुहिर** सदि।—वेलि. उ०—२ ऊनमियउ उत्तर दिसइं, गाज्यउ **गुहिर** गंभीर। मारवणी प्रिय संभरयउ, नयणे बूठउ नीर।—ढो.मा.

सं०पु०—२४ मात्रा का मात्रिक छंद (ल.पिं.)

गुहिरइ-वि०—देखो 'गुहिर' (रू.भे.) उ०—ढाढी गाया निसह भरि, राग मल्हार निवाज। च्यार पहर झड़ मंडियउ, घण **गुहिरइ** सुर गाज।—ढो.मा.

गुहिल, गुहिलोत—देखो 'गहलोत' (रू.भे.)

गुहीर—देखो 'गुहिर' (रू.भे.) उ०—बाजइ **गुहीर** निसांणी घाव, दुरंग चीतोड़ पहुंतौ राइ।—वी.दे.

गुह्यक—सं०पु० [सं०] कुबेर के खजाने की रक्षा करने वाले यक्ष, निधि-रक्षक, यक्ष।

गुह्यकेस्वर, गुह्यपति—सं०पु० [सं० गुह्यकेश्वर] कुबेर।

गूंगट, गूंगटौ—देखो 'घूंघट' (रू.भे.)

गूंगल—वि०—गूंगा, मूक।

गूंगलियौ—सं०पु०—एक छोटा आठ पदों वाला जन्तु जो प्रायः गोबर के आस-पास पाया जाता है। (मि०—जूंजळौ)

गूंगलौ—वि० (स्त्री० गूंगला, गूंगली) मूक, गूंगा। उ०—देवी अज्ज विमोहणी वोम वांणी, देवी तोतला गूंगला कत्तियांणी।—देवि.

सं०पु०—१ देखो 'गूंगलियौ'।

कहा०—१ गूंगली ही फग करै—गूंगी भी फन करती है अर्थात् अशक्त भी सामना करने के लिये तैयार होता है (व्यंग) २ गूंगलो गळती करै जणां कांनां ऊपर हाथ दे—गूंगा जब त्रुटि करता है तो कानों पर हाथ रखता है।

२ सर्दी की ऋतु में मस्ती से भरा ऊंट। उ०—१ मद भरै करै आकास मून, रिस भरै चरै ताते सु चून। गूंगला मरत बोलै दुगाळ, झुकता सखुन नखता सझाळ।—पं.रू. उ०—२ बजै हाक वाजता उरड ऊंठ गूंगला अराबां, निजर चोळ धारतो धकै मारतो नबाबां।

—बखतो खिड़ियौ

वि०वि०—मस्ती में गूंजते समय गुल्ला (गलसुआ) बाहर न निकालने वाले ऊंट को गूंगला कहते है. ३ गेहूं की फसल में होने वाला एक रोग।

गूंगा—सं०पु० पंवार वंश की एक शाखा।

गूंगापण, गूंगापणौ—सं०पु०—मूकता, गूंगापन।

गूंगिका—सं०स्त्री०—एक देवी का नाम।

गूंगियौ—देखो 'गूंगौ' (अल्पा.)

गूंगी—सं०स्त्री०—१ एक छोटा जंतु. २ मूक स्त्री. ३ दो मुंहा सांप।

गूंगौ—वि० [फा० गुंग] (स्त्री० गूंगी) जो बोल न सके, मूक।

उ०—१ गूंगा राग अलाप कर, कोई राव रीझावै।—केसोदास गाडण

उ०—२ नकटे बूचौ निरख अंग-अंग में उफणायौ, बोलै गूंगौ बोल सबद गुण इधक सुणायौ—ऊ.का.

कहा०—१ गूंगै नै समझावणो गूंगे री गत आंण—गूंगे या मूक को समझाने के लिए गूंगे की भांति मूक बनना पड़ता है. २ गूंगे री पारसी में गूंगा री मा समझै—

३ मन री मन में रैय गई वा गूंगे आली गल्ल—मूक की भांति स्पष्ट करने में असमर्थ होने के कारण कोई बात अव्यक्त ही रह गई। किसी को अपने मन की इच्छा व्यक्त करने में असमर्थ रहने पर।

सं०पु०—नाक के नथुने का मैल, गुजी, नकटी।

गूंघट, गूंघटौ—देखो 'घूंघट' (रू.भे.)

गूंछी—सं०स्त्री०—बैलों की आंतों में बल पड़ने से उत्पन्न होने वाला रोग विशेष।

गूंज—सं०स्त्री० [सं० गुंज] १ भौंरों के गूंजने का शब्द, गुंजार. २ प्रतिध्वनि। उ०—डूंगर-खोहां गूंज मेघ अदंग बजावै। तौ सिव रौ संगीत उणी पुळ पूर लखावै।—मेघ.

३ देर तक बना रहने वाला शब्द या ध्वनि. ४ अपने संबंधियों से गुप्त रूप में बचाया हुआ धन. ५ गुप्त बात, गुप्त मंत्रणा।

गूंजणौ, गूंजबौ—क्रि०अ०—१ भौंरों या मक्खियों का भिनभिनाना, गुंजार करना. २ गूंजना, प्रतिध्वनित होना, शब्द व्याप्त होना. ३ गरजना। उ०—खाती री खातोड़ गूंजता जावै गाजी, लखे जो लोहार रांमजी मिळिया राजी।—ऊ.का.

४ जोश में आना, शक्तिशाली होना।

गूंजणहार, हारौ (हारी), गूंजणियौ—वि०।

गूंजवाणौ, गूंजवाबौ—प्रे०रू०।

गूंजाड़णौ, गूंजाड़बौ, गूंजाणौ, गूंजाबौ, गूंजावणौ, गूंजावबौ—क्रि०स०।

गूंजिओड़ौ, गूंजियोड़ौ, गूंज्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गूंजीजणौ, गूंजीजबौ—भाव वा०।

गूंजी—सं०स्त्री०—लकड़ी के दो तख्तों को जोड़ने के लिए उनके बीच में लगाई जाने वाली कील जो दोनों तरफ से नुकीली होती है।

गूंजाइस—देखो 'गुंजाइस' (रू.भे.)

गूंजाड़णौ, गूंजाड़बौ—देखो 'गूंजाणौ' (रू.भे.)

गूंजाड़णहार, हारौ (हारी), गूंजाड़णियौ—वि०।

गूंजाड़िओड़ौ, गूंजाड़ियोड़ौ, गूंजाड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गूंजाड़णौ, गूंजाड़बौ—रू०भे०।

गूंजणौ, गूंजबौ—अक०रू०।

गूंजाड़ियोड़ौ—देखो 'गूंजायोड़ौ' (रू.भे.)

(स्त्री० गूंजाड़ियोड़ी)

गूंजाणौ, गूंजाबौ—क्रि०स०—गुंजाना, गुंजायमान करना।

गूंजाणहार, हारौ (हारी), गूंजाणियौ—वि०।

गूंजायोड़ौ—भू०का०कृ०।

गूंजणौ, गूंजबौ—अक०रू०।

गूंजायस—देखो 'गुंजाइस'।

गूंजायोड़ौ—भू०का०कृ०—गुंजायमान किया हुआ, गुंजाया हुआ। (स्त्री० गूंजायोड़ी)

गूंजियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ भिनभिनाता हुआ, गुंजार किया हुआ. २ गुंजा हुआ, प्रतिध्वनित. ३ गरजा हुआ ४ जोश में आया हुआ। (स्त्री० गूंजियोड़ी)

गूंजियौ—देखो 'गूंजौ' (१)

गूंजी—सं०स्त्री० [सं० गूढ़+पुंज] १ अपने सम्बन्धियों से गुप्त रूप में बचाया हुआ धन, गुप्त द्रव्य। उ०—थाया संपत थाट, भंवर कंवर सुख भोगवै। म्हूं की आळै माट, फिरतब री गूंजी 'करन'।

—लक्ष्मीदान बारहठ

२ एक प्रकार की मिठाई। उ०—होणी सो होई थिर नह थिर कोई, सिरजण हारै फिर सिरजी सिर सोई। लूंजी लेतोड़ी गूंजी गुण गाती, पिछली पूंजी नै सिर धुणि पछताती।—ऊ.का.

गूंजो—सं०पु०—१ जेब, गिरह, पाकिट।

(ग्रल्पा०—गूंजियो)

२ बादाम, किसमिस, काजू, पिस्ता ग्रादि का मिश्रित मेवा.

३ एक प्रकार की खोवे की मिठाई।

गूंट—देखो 'घूंट' (रू.भे.) उ०—कीजै नींबरी गूंट ज्यूं पीजै प्यालो काळकूट केम, मणां तोल तोलियां तुलीजै केम मेर।—बां.दा.

गूंठ—सं०पु०—मूलस्थान, ग्राधारभत स्थान।

गूंठड़ो—१ ग्रंगुष्ठ। उ०—सुपनो तो ग्रायो सरब सुलखणो जी म्हांरी बैयां तळो कर एजी ए जाय, गूंठड़ो तो बोधै गोरी रै पांव को जी।

—लो.गी.

२. देखो 'घूंघट' (रू.भे.)

गूंड—सं०पु० [सं० गूढ़] १ पेड़ के तने का वह निचला भाग जो सब से नीचे भूमि के ऊपर रहता है. २ जड़।

गूंडळणौ, गूंडळबौ—क्रि०ग्र०—देखो 'गुडळणौ' (रू.भे.)

उ०—गूंडळिग्रो रज गैण, हैकप धर डरां हुग्रां। सहिजादा दरकूच सूं, ग्राया खड़ उजेण।—वचनिका

गूंडेल—सं०स्त्री०—लकड़ी का वह विशेष प्रकार का बना हुग्रा गुटका जो सूत चमड़े ग्रादि के रस्सी के सिरे पर लगाया जाता है।

(रू०भे०—गुंडेल)

गूंडो—१ देखो 'गुढो' (रू.भे.) उ०—सूरे केहर सीह रै, माडचै वड मन्न। देवळिय गूंडो कियो, घणा थयो सुप्रसन्न।—रा.रू.

२ समूह, दल। उ०—वोम छत्र कमळ प्रतमाळ कर वाहतो, गज घड़ां गाहतो खळां गूंडो। रण कटे गयो बैकुंठ भ्रम राहतो, चाहतो मुकत सांमोप चूंडो।—रावत गुलाबसिंह चूंडावत री गीत

३ देखो 'गुंडो' (रू.भे.)

गूंढ़—देखो 'गूंड' (रू.भे.)

गूंढ़ो—सं०पु०—१ वृक्ष का मूल, जड़. २ मूल स्थान।

गूंण—सं०स्त्री० [सं० गोणी] १ बकरी के बालों से बना हुग्रा बोरा.

२ टाट, कंबल या चमड़े ग्रादि की बनी हुई वह खुरजी जिसमें दोनों ग्रोर ग्रनाज ग्रादि सामग्री भरने का स्थान होता है। गधे या बैल ग्रादि की पीठ पर इसे रख कर एवं सामान भर कर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जाता है। उ०—वणक कहै ग्रावं वसत, कै कूड़ कै गूंण। चेळै पड़ै सो होय सुध, सेंभर पड़ै सो लूण।

गूंणो—सं०पु०—मूंग, मोठ ग्रादि के सूखे पौधों का ढेर।—बां.दा.

गूंत, गूंतौ—सं०पु०—१ गोमूत्र. २ प्रसव के बाद गाय या भैंस का पहली बार निकाला हुग्रा दूध जो गरम करने पर जम जाता है।

गूंथणौ, गूंथबौ—क्रि०स० [सं० ग्रंथि = कौटिल्ये] १ कई वस्तुग्रों को तागे ग्रादि के द्वारा एक में बांधना या फँसाना; कई वस्तुग्रों को एक गुच्छे या लड़ी में गूंथना। उ०—चंपा केरी पांखड़ी, गूंथूं नवसर हार। जउ गळ पहरूं पीव बिन, तउ लागै ग्रंगार।—ढो.मा.

२ किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में सुई धागे से ग्रटकाना व टांके ग्रादि के द्वारा दो वस्तुग्रों को परस्पर एक में जोड़ना. ३ कई धागों, रेशों ग्रादि को एक दूसरे में किसी क्रम से फंसाते हुए कोई वस्तु बनाना, बुनना या संवारना। उ०—कुसळसिंह कही—लोग कहे था जे सांचा ठाकुर गूंथण गूंथिया।—मारवाड़ रा ग्रमरावां री वारता

[सं० ग्रंथ संदर्भे या बंधने] ४ क्रमबद्ध कर के एक सूत्र में उपस्थित करना. ५ रचना, बनाना। उ०—सुकदेव व्यास जैदेव सारिखा, सुकवि ग्रनेक ते एक संथ। श्रीवरणण पहिलो कीजै तिणि, गूंथिये जेणि सिंगार ग्रंथ।—वेलि.

गूंथणहार, हारौ (हारी), गूंथणियौ—वि०।

गूंथाणौ, गूंथाबौ, गूंथावणौ, गूंथावबौ—प्रे०रू०।

गूंथिग्रोड़ो, गूंथियोड़ो, गूंथ्योड़ो—भू०का०कृ०।

गूंथीजणौ, गूंथीजबौ—कर्म वा०।

गूंथणौ—ग्रक०रू०।

गूंथाणौ, गूंथाबौ—क्रि०स० ('गूंथणौ' का प्रे०रू०) गूंथने का कार्य ग्रन्य से कराना।

गूंथाणहार, हारौ (हारी), गूंथाणियौ—वि०।

गूंथायोड़ो—भू०का०कृ०।

गूंथाईजणौ, गूंथाईजबौ—कर्म वा०।

गूंथायोड़ो—भू०का०कृ०—गूंथने का कार्य ग्रन्य से कराया हुग्रा।

(स्त्री० गूंथायोड़ी)

गूंथाळ—सं०स्त्री०—गूंथने की क्रिया या भाव। उ०—गळ माळ रंभाळ गूंथाळ ग्रहै। करमाळ मुंछाळ भूताळ कहै।—पा.प्र.

गूंथावणौ, गूंथावबौ—देखो 'गूंथाणौ' (रू.भे.)

गूंथावणहार, हारौ (हारी), गूंथावणियो—वि०।

गूंथाविग्रोड़ो, गूंथावियोड़ो, गूंथाव्योड़ो—भू०का०कृ०।

गूंथावीजणौ, गूंथावीजबौ—कर्म वा०।

गूंथावियोड़ो—देखो 'गूंथायोड़ो' (रू.भे.)

(स्त्री० गूंथावियोड़ी)

गूंथियोड़ो—भू०का०कृ०—गूंथा हुग्रा, बुना हुग्रा, रचा हुग्रा।

(स्त्री० गूंथियोड़ी)

गूंद—सं०पु० [सं० गूथ = वृक्षमल + उन्द = गीलापन] १ चिपचिपा या लसदार वृक्ष का वह पसेव जो सूखने पर कड़ा ग्रौर चमकीला हो जाता है, वृक्षों की निर्यास. २ पड़िहारिया राजपूत वंश की एक शाखा. ३ मांस-पिंड। उ०—दाध तिह वर खंड पत्र पर, गूंद पळ-चर धपाड़े रिण धीर।—प्रतापसिंह म्होकमसिंह री वात

गूंदगरी—सं०पु०—एक प्रकार का वृक्ष विशेष।

गूंदड़ो—देखो 'गूदड़'। उ०—राली नहीं ग्रोढ़ै गूंदड़ो नहीं ग्रोढ़ै, ए तो ग्रोढ़ै वांरा साळाजी री तिलक पिछोवड़ो।—लो.गी.

गूंबाणी–सं०स्त्री०—लेसदार गोंद रखने का पात्र ।

गूंबरो–क्रि०वि०—निकट, पास । उ०—घड़ै चखां पांणीह, जोर नहीं लागै जको । देवळ लूंटांणीह, गढ़वण कोळूं गूंबरै ।—पा.प्र.

(रू.भे.–गूदरी)

गूंबळणी, गूंबळबौ—१ देखो 'गुडळणौ' (रू.भे.) उ०—खुरिसांण खइंग ऊडी खुरेह, रवि छायउ अंबर रजी रेह । चमराळां पाए ऊडी चींध, गूंबळइ त्रिबख मूझइ गइंध ।—रा.ज.सी.

२ मथना, मलना. ३ रौंदना ।

गूंबळियोड़ौ—१ देखो 'गुडळियोड़ौ' (रू.भे.) २ मथा हुआ, मला हुआ. ३ रौंदा हुआ । (स्त्री० गूंदळियोड़ी)

गूंबाळ–सं०पु०—मांस-पिंड । उ०—मांसाळ भूखाळ पंखाळ मिळै । गूंबाळ रसाळ गालाळ गळै ।—पा.प्र.

गूंबी–सं०स्त्री०— १ एक वृक्ष विशेष जिसकी जड़, छाल व पत्तियां औषध के काम आती हैं । इसके फल छोटे-छोटे हरे रंग के व पकने पर पीले रंग के होते हैं जो खाए जाते हैं. २ इस वृक्ष का फल ।

गूंबौ–सं०पु०—१ गूंदी वृक्ष का फल जो कच्ची अवस्था में हरे रंग का होता है एवं पकने पर पीले रंग का होता है । कच्चे फलों का शाक बनाया जाता है तथा पके फल ऐसे ही खाए जाते हैं. २ इस फल का वृक्ष. ३ देखो 'गूंदी' (१)

गूंधणौ, गूंधबौ–क्रि०म० [सं० गुध = क्रीड़ायाम्] पानी में सान कर हाथों से दबाना या मलना, मसलना ।

गूंधणहार, हारौ (हारी), गूंधणियौ—वि० ।

गूंधाड़णौ, गूंधाड़बौ, गूंधाणौ, गूंधाबौ, गूंधावणौ, गूंधावबौ—प्रे०रू० ।

गूंधियोड़ौ, गूंधियोड़ौ, गूंध्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गूंधीजणौ, गूंधीजबौ—कर्म वा० ।

गूंधाणौ, गूंधाबौ–क्रि०स० ('गूंधणौ' का प्रे०रू०) गूंधने का कार्य कराना, गूंधाना ।

गूंधाणहार, हारौ (हारी), गूंधाणियौ—वि० ।

गूंधायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

गूंधाईजणौ, गूंधाईजबौ—कर्म वा० ।

गूंधायोड़ौ–भू०का०कृ०—गूंधाया हुआ, गूंधने का कार्य कराया हुआ । (स्त्री० गूंधायोड़ी)

गूंधावणौ, गूंधावबौ—देखो 'गूंधाणौ' (रू.भे.)

गूंधावणहार, हारौ (हारी), गूंधावणियौ—वि० ।

गूंधावियोड़ौ, गूंधावियोड़ौ, गूंधाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गूंधावीजणौ, गूंधावीजबौ—कर्म वा० ।

गूंधावियोड़ौ—देखो 'गूंधायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० गूंधावियोड़ी)

गूंधियोड़ौ–भू०का०कृ०—गूंधा हुआ । (स्त्री० गूंधियोड़ी)

गूंधीजणौ, गूंधीजबौ–क्रि०स० ('गूंधणौ' का कर्म वा०) गूंधा जाना, मथा जाना ।

गूंधीजणहार, हारौ (हारी), गूंधीजणियौ—वि० ।

गूंधीजियोड़ौ, गूंधीजियोड़ौ, गूंधीज्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

गूंधीजियोड़ौ–भू०का०कृ०—गूंधा गया हुआ ।

(स्त्री०–गूंधीजियोड़ी)

गूंबड़, गूंबड़ौ—देखो 'गूमड़ौ' । (स्त्री० गूंबड़ी)

गूंमर–सं०पु०—गर्व, अभिमान, अहंकार ।

गूंसांई—देखो 'गुसांई' (रू.भे.)

गू–सं०पु० [सं० गूथ, प्रा० गूह] मल, पाखाना, विष्टा ।

मुहा०—१ गू उछाळणौ—निंदा करना, बदनामी करना. २ गू उठाणौ—पाखाना साफ करना, तुच्छ से तुच्छ सेवा करना, नीच कार्य करना. ३ गू करणौ—गंदा और मैला करना. ४ गू खाणौ—बहुत अनुचित और भ्रष्ट कार्य करना. ५ गू मूत करणौ—मलमूत्र से निवृत्त होना, गंदा करना, मैला करना. ६ गू मूत धोवणौ—मल-मूत्र साफ करना, तुच्छ से तुच्छ सेवा करना. ७ गू में भाटौ फेंकणौ—बुरे आदमी से छेड़छाड़ करना. ८ गू री ओडी—बदनामी का टोकरा, कलंक का भार ।

कहा०—गू री भाई पाद नै पाद री भाई गू—दो समान अयोग्य व्यक्तियों के प्रति. २ गू सूं गू थोड़ौ ही धुपै—विष्टा से विष्टा थोड़े ही धुल सकता है । नीचता के बदले नीचता अपनाने से कोई लाभ नहीं ।

गूगक–सं०पु०—राठौड़ वंश की एक उपशाखा या इस शाखा का व्यक्ति ।

गूगरमाळ–सं०स्त्री०यौ० [सं० घुघुरु+माला] घुंघुरुओं की बनी माला जो पशुओं के गले में प्रायः बांधी जाती है ।

गूगरियौ–सं०पु०—१ करील वृक्ष का छोटा पुष्प जो भूरे रंग का और ज्वार के दाने के समान होता है. २ छोटा घुंघरू ।

गूगरी–सं०स्त्री०—१ एक निश्चित लगान या कर जो अनाज के रूप में कृषक भूमि के मालिक को देता है । इसके अनुसार जितना धान भूमि में बोया जाता है उतना ही लगान के रूप में पुनः दिया जाता है. २ उबाले हुए गेहूँ के दाने ।

गूगळ—देखो 'गुग्गुळ' (रू.भे.)

गूगळधूप—देखो 'गुगळधूप' (रू.भे.)

गूगळौ–वि०—१ धुंधला, अस्पष्ट, अस्वच्छ. २ मटमैला ।

गूगस, गूगसवाड़ौ–सं०पु०—१ सर्दी की ऋतु में ऐसा समय जब आकाश में बादल छाये हों एवं नन्हीं-नन्हीं बूंदें गिरती हों या गिरने वाली हों. २ बिना जल के बादल । (रू०भे०–गुग्घस)

गूगू, गूगूराजा–सं०पु० [सं० घुग्घर] उल्लू, उलूक पक्षी ।

गूघर—देखो 'घूघर' (रू.भे.) उ०—परगह ले बांधी पगां, सैंठी गूघर साथ । हंजा री सारी हुकम, हुवी रंगीली हाथ ।—बां.दा.

गूघरमाळा—देखो 'गूगरमाळ' (रू.भे.)

गूघरियूं, गूघरियौ—देखो 'गूगरियौ' (रू.भे.) उ०—घस वाजस पखर गूघरियूं । तिन थामत लेत सुरंतरयूं ।—पा.प्र.

गूघरी—देखो 'गूगरी' (रू.भे.)

गूजड़-सं०पु०—राठौड़ वंश की एक उपशाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

गूजर-सं०पु० [सं० गुर्जर] १ अहीरों की एक जाति जो प्रायः पशु पालने का धंधा करती है. २ इस जाति का व्यक्ति. ३ तीसरे विवाह की स्त्री।

४ गुजरात का प्रदेश।

यौ०—गूजरखंड, गूजरधरा।

गूजरगौड़-सं०पु०—ब्राह्मणों का एक भेद विशेष जो अपने को गौतम ऋषि के वंशज मानते हैं (मा.म.)

गूजरपठांण-सं०पु०—मुसलमानों का एक भेद।

गूजरी-सं०स्त्री० [सं० गुर्जरी] १ गूजर जाति की स्त्री. २ ग्वालिन. ३ स्त्रियों के कलाई में धारण करने का एक आभूषण. ४ एक रागिनी (संगीत) ५ स्त्रियों के कंठ में धारण करने का आभूषण विशेष। उ०—सीसफूल सिर ऊपर सोहै, बिंदली सोभा न्यारी। गळै गूजरी कर मे कंकण, नेवर पहिरै भारी।—मीरां

गूडण-वि०—१ लुढ़काने वाला, गिराने वाला. २ मारने वाला।

उ०—मोटा जळ चाढ़ण मंडोवरि, समहरि गज गूडण सनढ़। उदै खळ सो आफळते, गढ़पति होवै फतेगढ़।—राठौड़ प्रथीराज

गूडणौ, गूडबौ-क्रि०स०—१ गाड़ना. २ मारना, काटना।

उ०—रणि राउत वावरइ कटारी, लोह कटांकडि ऊडइ। तुरक तणा पाखरीया तेजी, ते तरुआरे गूडइ।—कां.दे.प्र.

गूडर—सं०पु०—डेरा, खेमा।

गूडळ-सं०पु०—१ देखो 'गूंडल' (रू.भे.) २ मांस सहित हड्डी जो खाते समय चूसी जाती है।

गूडळियौ-वि०—१ गंदला. २ धूमिल।

सं०पु०—देखो 'गूडळ' (रू.भे.)

गूडळियोड़ौ—देखो 'गुडळियोड़ौ' (रू.भे.)

गूडी—देखो 'गुडी' (रू.भे.) उ०—सवि तळीयातोरण झळहळइ, नगर मांहि गूडी ऊछळइ।—कां.दे.प्र.

गूढ़-सं०पु० [सं०] १ बड़ा छायादार वृक्ष २ स्मृति में पांच प्रकार के साक्षियों में से एक साक्षी जिसे अर्थी ने प्रत्यर्थी का वचन सुना दिया हो ३ एक अलंकार सूक्ष्मालंकार. ४ छिप कर रहने का स्थान. ५ गुफा।

वि०—१ गहन, गम्भीर. २ जिसका आशय स्पष्ट न हो, अबोधगम्य, रहस्ययुक्त. ३ गुप्त, छुपा हुआ (अ.मा.) उ०—केसव भजतां हरख कर, मत कर आळस मूढ़। जिण दीधौ मनखा जनम, गरभ कौल कर गूढ़।—र.ज.प्र.

गूढ़चर-सं०पु०—चोर (अ.मा.)

गूढ़पग, गूढ़पथ, गूढ़पद, गूढ़पाद-सं०पु०—१ सर्प, सांप (ह.नां., अ.मा.) २ मन (ह.नां.)

गूढ़व्यंग्य-सं०स्त्री० [सं०] काव्य में एक प्रकार की लक्षणा। इसमें ऐसा व्यंग्य रहता है जिसका अभिप्राय सर्व साधारण को जल्दी समझ में नहीं आ सकता।

गूढ़ा-सं०स्त्री०—पहेली। उ०—मारवणी इम वीनवइ, धनि आजूणी राति। गाहा गूढ़ा गीत गुण, कहि का नवली वात।—ढो.मा.

गूढ़ावाच-सं०पु०—मन्त्री (डि.नां.मा.)

गूढ़ोक्ति-सं०स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें कोई रहस्ययुक्त बात दूसरे के ऊपर छोड़ तीसरे के प्रति कही जाती है।

गूढ़ोत्तर-सं०पु० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें प्रश्न का उत्तर गूढ़ अभिप्राययुक्त दिया जाता है।

गूढ़ौ-सं०पु० [सं० गूढ़] १ वृक्ष का मूल, जड़. २ रक्षा का स्थान, गढ़। उ०—देवराज सुमरा सासू नूं कह्यौ—'मोनूं लोक सकौ' 'हुरड़वनौ' कह वतळावै छै। हूं थांसूं जुदौ वसीस। तरै नदी रै पैलै कांठै जाय आपरौ गूढ़ौ कर रह्यौ।—नैणसी

गूण—देखो 'गूंण' (रू.भे.) उ०—१ खग इण साकरखोर के, संग न साकर गूण। सब दिन पूरै सांइयौं, चांच दई सो चूण।—बां.दा.

कहा०—गधै री गूण में कणां रौ फरक रै', मणां री को रै' नी—गधे के ऊपर लादे जाने वाले थैले में मामूली कमी हो सकती है, अधिक नहीं। थोड़े परिमाण की वस्तु में अधिक अन्तर नहीं होता।

गूणती—देखो 'गूंणं'।

कहा०—गरीब ऊपर गूणती वत्ती न्हांकै—गरीब पर हर कोई अधिक बोझ लादता है। गरीब को सभी सताते हैं।

गूणियौ-सं०पु०—१ रहँट का वह गड्ढा जिसमें बड़ा कंगूरेदार चक्र घूमता है. २ इस गड्ढे के दोनों किनारों पर लगाया जाने वाला पत्थर. ३ जल भरने के लिये पीतल का कलश. ४ दूध दुहने का पीतल का पात्र।

गूणी-सं०स्त्री०—कुए से चरस खींचने के लिये बनाया हुआ बैलों के चलने का स्थान।

गूणौ-सं०पु० [सं० गुण] १ जनाने वस्त्रों पर गोट के ऊपर लगाई जाने वाली बारीक किनार।

क्रि०प्र०- देणौ, लगाणौ।

२ देखो 'गूंण' (रू.भे.) ३ ग्वार, मूंग तथा मोंठ के पौधों के सूखे डंठल जो मवेशी बड़े चाव से खाते हैं। (रू०भे०—गूंणौ)

गूतौ—देखो 'गूंतौ' (रू.भे.)

गूथण-सं०पु०—गूंथने की क्रिया या भाव।

गूथणौ, गूथबौ—देखो 'गूंथणौ'।

गूथणहार, हारौ (हारी), गूथणियौ—वि०।

गूथिओड़ौ, गूथियोड़ौ, गूथ्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गूथीजणौ, गूथीजबौ—कर्म वा०।

गूथाणौ—देखो 'गूंथाणौ' (रू.भे.)

गूथायोड़ौ—देखो 'गूंथायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० गूथायोड़ी)

गूथावणी, गूथावबौ—देखो 'गूंथाणौ' (रू.भे.)

गूथियोड़ौ—देखो 'गूंथियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० गूथियोड़ी)

गूद–सं०पु० [सं० गुप्त, प्रा० गुत्त] १ मांस का गूदा, मज्जा।

उ०—दोयण रै सोणित भद्रकाळी रौ खप्पर भराइ वीर बेताळ नूं गूद रा गाळा जीमाइ।—वं.भा. २ मांस।

उ०—कितेक गिद्धनी कौ धपाय गूद अप्पने. कितेक सुद्धि के विहीन मार-मार जप्पने।—ला.रा.

[सं० गर्त] ३ गडढा, गर्त. ४ संन्यासियों का एक भेद।

(मि० 'गूदड़ियौ' ३)

गूदड़–सं०पु०—१ चिथड़ा, फटा-पुराना वस्त्र. २ चिथड़ों से बना हुआ ओढ़ने अथवा बिछाने का कपड़ा। उ०—कांधे गांठड़ियां वड़ियां चग वाळै, राली गूदड़ नै कांधै पर राळै।—ऊ.का.

(अल्पा०-गूदड़ियौ, गूदड़ी)

गूदड़ियौ—१ देखो 'गूदड़' (अल्पा०) २ एक प्रकार का नीबू जिसका छिलका मोटा होता है. ३ संन्यासियों का एक भेद।

उ०—सुल्तांन संजर बड़ौ बादसाह कठी नूं जावै थौ, मारग में गूदड़ियौ फकीर उभौ थौ सो बादसाह नूं सलांम कीवी।—नी.प्र.

गूदड़ौ—देखो 'गूदड़' (रू.भे.) उ०—गरक घणौ जळ गूदड़ा, ले तन सूं लपटाय। अत्थ वत्थ भर काडजै, मंदिर जळतां मांय।—बां.दा.

कहा०—१ गूदड़ां रै पूर सूं गमावणौ— किसी काम का न रखना, बुरी तरह से नष्ट करना. २ गूदड़ी में किसा लाल कौ नीपजै नी—गुदड़ी में कौनसे लाल पैदा नहीं होते? गरीब के घर में भी महा-पुरुष उत्पन्न हो सकता है।

(अल्पा०—गूदड़ियौ)

गूदर, गूदरौ—१ देखो 'गूदड़' (रू.भे.) २ हाथ के मणिबंध के पास वाला हथेली का उभरा हुआ भाग. ३ देखो 'गूंदरौ' (रू.भे.)

गूदळणौ, गूदळबौ—देखो 'गुडळणौ' (रू.भे.) उ०—गूदळे व्योम ढंके गरद, रवि लुक्के धूंआं रवण। आलम्म पयांणौ एण पर, कोप तेण झल्ले कवण।—रा.रू.

गूदळौ–वि०—१ गन्दला. २ धुंधला।

गूदाळ–सं०पु०—मांस, मांस-पिंड (रू.भे.–गूंदाळ) उ०—ग्रीधाळ गूदाळ कजे गहकै, चहकै चोटीयाळ सीयाळ चकै।—गो.रू.

गूदौ–सं०पु०—१ किसी फल व बीज के अन्दर का वह भाग जो उसके छिलके के नीचे होता है. २ भेजा, मग्ज. ३ मांस.

४ देखो 'गूंदरौ' (२)

गूधळणौ, गूधळबौ—देखो 'गुडळणौ' (रू.भे.)

गूधळौ—देखो 'गूदळौ' (रू.भे.)

गूपत, गूपति–वि० [सं० गुप्त] १ गुप्त, छिपा हुआ। उ०—ईसा गूपती बचन ती बंचीया। नव जोबन नवरंगी नेह।—वी.दे.

२ देखो 'गुपत' (रू.भे.)

गूमड़, गूमड़ौ–सं०पु०—वह कड़ी और गोल सूजन जो किसी अंग पर चोट लगने से अथवा अपने आप हो जाती है। सूजन, फोड़ा, ग्रंथि।

उ०—गाळ न ऊठै गूमड़ौ, ऊठै झाळ अकस्य। जिण नूं सज्जण बीण जळ, सांत करण समरत्थ।—बां.दा.

गूलर–सं०पु०– १ वट वृक्ष और पीपल की जाति का ही छोटे फलों का एक वृक्ष जिसकी डाल या टहनी से एक प्रकार का दूध निकलता है. २ इस वृक्ष का फल।

पर्याय०—उदंबर, जन्तूफळ, मसकी।

गूलरकबाब–सं०पु०—उबले और पिसे हुए मांस के भीतर अदरक, पुदीना आदि भर कर भूनने से बनने वाला एक प्रकार का कबाब।

गूलरौ–सं०पु०—फल विशेष।

गूली–सं०स्त्री०—मामड़ की पुत्री आवड़ देवी की बहन एक देवी।

गूह—१ देखो 'गू' (रू.भे.) २ रामभक्त गुह नामक एक निषाद-राज (रामकथा)

वि०—गुप्त, छिपा हुआ।

गेंआळ–सं०पु०—वर्षा एवं भूमि की नमी के कारण बिना सिंचाई किए ही उत्पन्न होने वाले गेहूँ का खेत।

गेंडौ–सं०पु० [सं० गंडक] १ जंगलों में नदी के किनारे के दलदलों एवं कछारों में प्रायः रहने वाला भैंसे के आकार का एक बड़ा पशु। इसका चमड़ा बिना बाल का तथा अत्यन्त मोटा और ठोस होता है। इसके नाक की हड्डी पर एक पैना सींग होता है। क्रुद्ध होने पर यह इसीसे चोट करता है। यह बिना छेड़े किसी से नहीं बोलता। इसके चमड़े की ढालें बनती थीं (रू.भे.–गंडौ)

गेंती–सं०स्त्री०– कुदाली, खोदने का एक औजार।

गेंद–सं०स्त्री० [सं० गेंडुक, गेंदुक] कपड़े, रबड़ या चमड़े का बना हुआ छोटा गोला जिससे बालक खेलते हैं। उ०—उडै गति गेंद नरां उतमंग। गहै झट कंज करां जट गंग।—मे.म.

गेंदवौ—देखो 'गींदवौ' (रू.भे.)

गेंवर–सं०पु०—१ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.) २ हाथी।

गेंवार—देखो 'गिवार' (रू.भे.)

सं०पु०—ग्वार।

गे–सं०पु० [सं० ग+ई=गे] १ सूर्य्य। उ०—सुर इंद्र सिव पनंग ससि, गे मह गयण दिपाय। सिवदांना तो जस सुरद, रज धर इता रहाय।—शि.सु.रू.

२ काम संबंधी, प्रेम. ३ यमकानुप्रास. ४ मूर्ख व्यक्ति.

५ पाप. ६ छंद. ७ गीत. ८ मल्हार राग. (एका.) ९ हाथी।

उ०—इंद्र गे अरूढ़ गिरबांण भूल सामां आया। सारां हे वधाया कीधा झळूसा समाज।—चावंडदांन महड़ू

गेऊं–सं०पु० [सं० गोधूम] गेहूँ।

गेऊंआळ–सं०पु० [सं० गोधूम+रा०प्र० आळ] गेहूँ की फसल का खेत।

गेऊंडा–सं०पु० (बहु०)—देखो 'गेहूं' (अल्पा०)

गेगरियौ–सं०पु०—चने का कच्चा दाना जो खाया जाता है।

गैगरी–सं०स्त्री०—दानेयुक्त चने का फोकला जिसे फोड़ कर चना निकाला जाता है (मि० 'सरपट')

गैगरौ–सं०पु०—१ ज्वार की बाल (सिरटा). २ एक प्रकार की ज्वार जिसका डंठल मीठा होता है तथा सिरटा गहरा होता है.
३ चने के पौधे पर लगा हुआ फफोलायुक्त चना।

गैघर—देखो 'गैगरौ' (३) उ०—फोग कैर काचर फळी, पापड़ गैघर पात। बड़ियां भेली बांगियां, सांगरियां सोगात।—बां.दा.

गैड़–सं०पु०—१ घुमाव, चक्कर, फेरा। ज्यूं-दिनमांन रा गेड़ है भाई, रांमजी करी ज्यां होई। २ कारण. ३ बारी, पारी, अवसर. ४ समूह, झुंड. ५ परिभ्रमण।

गैड़णौ, गैड़बौ–क्रि०स०—१ गिराना। उ०—'पता' महाराज 'विजा' ऊपरा, गाज असमांन री तूं हीज गेड़ै।
२ घेरना।

गैड़ौ–सं०पु०—फेरा, चक्कर।

गैड—देखो 'गेडियौ' (२)
वि०—आच्छादित।

गैडियौ–सं०पु०—१ गेंद का बल्ला। उ०—मांचां रा पागलिया लियां, लांमी लांम झड़ामड़ी। टाबरिया गेडिया टाळै, बूढ़ां ठेगण कांमड़ी।
—दसदेव

२ डंडा, लाठी, सोंटा (मि० गेडी)
कहा०—धन तौ धणियां रौ, गुवाळ रै हाथ में गेडियौ—किसी वस्तु की रक्षा करने वाले का उस वस्तु पर स्वामित्व नहीं होता।
३ आगे से पकड़ने के हेतु मुड़ी हुई छड़ी।

गैडी–सं०स्त्री०—१ चक्र या पहिये की नेह या नाभि के दोनों ओर धुरी में डाली जाने वाली चमड़े की छोटी गेंडुरी. २ बकरी, भेड़ या ऊँट के कातने योग्य साफ किये हुए बालों का गोल घेरा, गेंडुरी. ३ रहंट पर समय के ज्ञान के लिये लपेटे जाने वाले धागे के नीचे लगाया जाने वाला काष्ठ का डंडा. ४ लाठी, लकड़ी, डंडा, सोटा।
मुहा०—गेडियां रळाणी—लकड़ियां भिड़ाना, परस्पर लड़ाना।
कहा०—साप ही मर जावै नै गेडी ई नहीं भागै—सांप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे; बिना किसी हानि के किसी काम का सिद्ध हो जाना।
५ स्त्रियों के सिर पर धारण किये जाने वाले सुहाग-चिन्ह 'बोर' नामक आभूषण के पीछे उससे जुड़ी हुई एक खोखली लम्बी नली।

गैडीयौ–सं०पु०—२ देखो 'गेडियौ' (रू.भे.)

गैडौ–सं०पु०—१ एक प्रकार का काष्ठ का डंडा जिस पर जुलाहे लोग करघे की लम्बाई से बढ़े हुए ताने का सूत लपेट कर रखते हैं। ज्यों-ज्यों कपड़ा बुनते जाते हैं त्यों-त्यों उस पर से सूत खींचते जाते हैं. २ देखो 'गेडियौ' (महत्व०)

गैढ़ी—देखो 'गेडी' (२) उ०—सुखिया मन मोहण दोहण घर मेढ़ी, गोढ़ै ढेरी है लूंणी में गेढ़ी।—ऊ.का.

गैण–सं०पु०—पाप, दुष्कर्म (मि० यौ० 'अगणैण')

गैमर—देखो 'गैमर' (रू.भे.)

गैमी–वि०—पापी, दुष्कर्मी, देशद्रोही। उ०—गैमी नांव धराविया, आसावत अणजांण। भाटी दीनों भीमदे, तब गढ़ भेद प्रमांण।
—नैणसी

गैय–सं०पु०—गाने योग्य, गीत, गाना। उ०—महातम ध्येय रती नहिं गम्य, गती निगमागम गेय अगम्य।—ऊ.का.
वि०—जानने योग्य। उ०—धेय कौ विधांन साधि ध्यांन ना धरयौ। गेय कौ अग्यांन तें प्रमांन ना परयौ।—ऊ.का.

गैर—देखो 'गेहर' (रू.भे.)

गैरक—देखो 'गैरक' (रू.भे.)

गैरकी–सं०स्त्री० [सं० गैरिक+रा०प्र० ई] सोने की गोल चकरी जो गले के आभूषण (आड या तिमणिया) के किनारे पर लगाई जाती है।

गैरणी–सं०स्त्री०—छोटी चलनी।

गैरणौ–सं०पु०—अनाज आदि को साफ करने का लोहे का एक उपकरण, बड़ी चलनी।

गैरणौ, गैरबौ–क्रि०स०—१ छोड़ना, निस्सरित करना।
उ०—महाराजा जयसिंहजी निसासा गेरणै लाग गया। धीरां सी कही।—महाराजा आमेर रा धणी री वारता
२ गिराना। उ०—किंवाड़ नहीं खोलस्यौ तौ खुवाड़ियौ मंगाय तोड़ गेरस्यां।—कुंवरसी सांखला री वारता
३ संहार करना।
गैरणहार, हारौ (हारी), गैरणियौ—वि०।
गेड़णौ, गेड़बौ—रू०भे०।
गैरिओड़ौ, गैरियोड़ौ, गैरयोड़ौ—भू०का०कृ०।
गैरीजणौ, गैरीजबौ—कर्म वा०।

गैरमोहल—देखो 'गैरमहल' (रू.भे.) उ०—सो तपस्या हीण पड़ गई, पाछौ दिल्ली आइयौ, गैरमोहल रहियौ।
—ठाकुर जैतसी री वारता

गैरियौ—देखो 'गेहरियौ' (रू.भे.)

गैरी–सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का पक्षी, फाख्ता. २ चमड़े की बनी गोल चकरी।

गैरुऔ, गैरुवौ–वि०—गेरु के रंग का, भगवा।
सं०पु०—गेहूं की फसल में होने वाला एक रोग विशेष।

गैरु–सं०पु०—एक प्रकार का खनिज। यह कड़ी लाल मिट्टी होती है जो खानों से निकलती है।
वि०—गेरू के रंग का सा, गैरिक, भगवा (डिं.को.)

गैरौ–सं०पु०—एक प्रकार का पक्षी, कबूतर। (स्त्री०—गैरी)

गैल—देखो 'गैलौ' (रू.भे.) उ०—बरता सजळै देस फूलती कांचळ धोळी। सूंघै वन री गंध बतावण गैल नवेली।—मेघ.

गेलड़, गेलड़ौ-सं०पु०—१ एक प्रकार का लंबे पैरों वाला बड़ा जन्तु. २ किसी स्त्री के पहले पति का लड़का जिसे लेकर वह दूसरे पति के यहां जाय (मि०—आंगळीफल, लारवाळ)

वि०—पगला।

गेलोत-सं०पु०—१ क्षत्रियों के छत्तीस वंशों में से एक, सूर्यवंश. २ इस वंश का कोई व्यक्ति।

गेलौ, गेल्यौ-सं०पु०—मार्ग, राह, रास्ता। (अल्पा०—गैल्यौ)

मुहा०—१ गेलै घालणौ—ठीक रास्ते पर लाना, सदाचार-वृत्ति सिखाना. गेलै चालणौ—सुमार्ग पर चलना. ३ गेलौ छोडणौ—राह देना, रास्ता देना।

कहा०—गेलै हालतां कांई डर—सुमार्ग पर चलते हुए या सद्कर्म करते हुए किसी का कोई भय नहीं होता।

गेवाळियौ, गेवाळयौ-सं०पु०— गायें चराने वाला, ग्वाला।

गेह-सं०पु० [सं० गृह] १ मकान, घर। उ०—१ अभैसाह जैसाह रै गेह आयौ, वर्ण इंद्र सांमद्र हूं'ता सवायौ।—रा.रू.

उ०—२ जगदातार जनारदन, गिरधारी गुण गेह। ब्रजपत रोटी बांटणौं, मोटां नींद म देह।—बां.दा. २ समूह।

गेहणी-सं०स्त्री० [सं० गृहिणी] घर वाली, गृहिणी, पत्नी।

गेहपति-सं०पु० [सं० गृहपति] गृहस्वामी, घर का मालिक।

गेहर-सं०पु०—फाल्गुन मास का एक लोक-नृत्य।

वि०वि०—देखो 'डंडिया गेर'।

गेहरियौ-सं०पु०—१ फाल्गुन मास के प्रसिद्ध लोक-नृत्य 'डंडिया गेर' में नाचने वाला व्यक्ति। उ०—दुगम जवन घड़ि कांमणि दोळी, हुय खेलूं गेहरियां होळी।—सू.प्र. २ वह जो होली पर दल बना कर गाता-बजाता हो. ३ एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गेहरी—देखो 'गेहरियौ' (१)

गेहरचौ—देखो 'गेहरियौ' (रू.भे.)

गेहलौ-वि०—पागल (देखो 'गैलौ') उ०—पण वीरमदे गेहलौ हुवौ सु मुख सूं बकै घणौ कै जोधपुर म्होहीज है।—द.दा.

गेहा, गेहि—देखो 'गेह' (रू.भे.) उ०—गुरु गेहि गयौ गुरु चूक जांणि, गुरु नांम लियौ दमघोख नर।—वेलि.

गेहि-वि०—घर संबंधी, गेह संबंधी।

सं०पु० [सं० गृहस्थ] गृहस्थ।

गेहुंग्रन-सं०पु०—एक प्रकार का अत्यन्त विषधर सांप जो भूरे रंग का होता है।

गेहूं-सं०पु० [सं० गोधूम] एक अनाज जिसकी फसल विश्व के शीतोष्ण कटिबंध में बहुतायत से होती है। इसकी फसल भारत में अगहन मास में बोई जाती है और चैत्र में काटी जाती है। इसका पौधा तीन से चार फुट तक लम्बा होता है।

पर्याय०—गोधूम, सुमन।

रू०भे०—गऊं, गहूं, गेऊं।

अल्पा०—गेउंड़ा, गेहूं'ड़ौ।

गेहूंमाळ—देखो 'गेऊंमाळ' (रू.भे.)

गेहूंड़ौ—देखो 'गेहूं' (अल्पा०)

गैं-सं०पु० [सं० गज] हाथी। उ०—जन हरिदास कहिए सदा, रूप गैं ज्यूं मन धारै। काया बन में चरै डरै नहिं डहकिन हारै।—ह.पु.वा.

गैंडौ—देखो 'गेंडौ' (रू.भे.)

गैंण, गैंणाग, गैंणायर—देखो 'गैणाग' (रू.भे.) उ०—१ जिके कांम रंधां हुवै नीसरै करेवा जंग। महा कूप हूं'तां ज्यूं परेवा गैंण मांग।—र.रू.

उ०—२ अवगति गति की लहै कौंण, गैंणायर मापै। कौण मेरु कूं तोलि थापना उलटी थापै।—ह.पु.वा.

गैं'णौ-सं०पु०—गहना, आभूषण। उ०—पड़ज्यौ कुलसगियां बो'रां पर पटकौ। गैं'णे गांठै रौ करिगा ठग गटकौ।—ऊ.का.

यौ०—गैं'णौ-गांठौ।

गैंती—देखो 'गेंती' (रू.भे.)

गैंतूळ—देखो 'गेंतूळ' (रू.भे.)

गैंद—१ देखो 'गेंद' (रू.भे.) २ हाथी (डिं.को.) उ०—१ सुणे भूप ए बात ऊठे सतेजं। अचां पांण कोमंड भाले अजेजं। ततै रोस टिल्ला करै गैंद तेही। जु मस्सं न कोमंड धु ग्यांन जेही।—सू.प्र.

उ०—२ जिण बन भूल न जावता, गैंद गवय गिड़राज। तिण बन जंबुक ताखड़ा, ऊधम मंडै आज।—वी.स.

गैंदगड़ा-सं०पु०यौ० [सं० गज+इन्द्र+घटा] गजदल, हाथियों का समूह। उ०—गाजां वाजां अर गैंदगड़ां, जुड़ै न चांदौ रौद-घड़ां। जे जुड़सी चांदौ रौद घड़ां, गाज न बाज न गैंदगड़ां।

—चांदा वीरमदेवोत राठौड़ रौ गीत

गैंदा-सं०पु० [सं० गेंडुक] १ गेंद. २ एक प्रकार का फूल, हजारा।

गैंदाळ-वि० [सं० गेंडुक+रा०प्र० आळ] बड़ी तोंद वाला, तोंदल, पेटू।

गैंवर—देखो 'गेंवर' (रू.भे.) उ०—उद्दम री आसा करै, सहै नहीं घणराव। घात करै गैंवर घड़ा, सीहां जात सुभाव।—बां.दा.

गैंवार—देखो 'गिंवार' (ह.नां.)

गै-सं०पु०—१ हाथी, गज (डिं.को.) उ०—गढ़ गढ़ राजा गै गुड़ै, गढ़ गढ़ राज कुंवार। भुज जेहल नूं भेटियौ, औ कोइक अवतार।—बां.दा.

२ आकाश, आसमान (डिं.को.) उ०—हथनाळि हवाई कुहक बांण, हुवि होइ वीर हक गै गहण।—वेलि.

३ शिव. ४ सूर्य. ५ शोक. ६ पलास का वृक्ष (एका.) ७ गत, गति, चाल। उ०—डरै नहिं डहकिन हारै, चलै अपणी गै गोडै।

—ह.पु.वा.

८ शोभा, छटा. ६ गर्व, अभिमान. १० मंजिल. ११ मकान का हिस्सा (मि०—'गढ़' ६)

गैगमणि, गैगमणी— देखो 'गयगमणी' (रू.भे.)

गैघटाळ, गैघट्ट—सं०पु० [सं० गज+घटा] १ हाथियों की सेना, गजदल. २ आनन्द, बहुलता।

गैघूंबणौ, गैघूंबबौ, गैघूंमणौ, गैघूंमबौ—क्रि०अ०—चारों ओर फैल जाना, उमड़ना, मंडराना। उ०—१ पूरण थयौ अयासियौ, वण वरसात सरस्स। स्रावण घण गैघूंबियौ, चौरासियौ वरस्स।—रा.रू.

उ०—२ गैघूंमै आरांण घांण मथांण नीसांण घोक, सूकै डांण सूंडा-डंडां बीछु ड़ै सीधांण।—पहाड़खां आढ़ौ

गैजुह, गैजूह—सं०पु० [सं० गज व्यूह] १ हाथियों का दल, गज-सेना।

उ०—१ झाड़ दियंदा राड़ कज, सझ किया धेधींगर। तळ लग्गा वरसाळ ज्यूं, गैजूह पटाधर।—लूणाकरण कवियौ

उ०—२ हयं गत्थ गैजूह पागक्क हल्लै, इळा जांणि सांमंद्र साते उझल्लै। जिकै वार स्रीरांम री जांन जोई, कहै ओपमा पार पावै न कोई।—सू.प्र.

गैडंबर—सं०पु०—बिना जल के बादल। उ०—थोथा गैडंबर संबर विण थाया। छपनै सूमां सा आडबर छाया।—ऊ.का.

गैडसणि, गैडसणी-वि०—वीर, बहादुर।

उ०—केहरि केस भमंग मणि, सरणाई सुहड़ांह, सती पयोहर क्रपण धन, पड़सी हाथ मुवांह। मुवांहिज पड़सी हाथ तौ भमंग-मिण, गहड़ सरणाइयां ताहरै गैडसणि।— हा.झा.

गैण, गैणक—सं०पु० [सं० गगन] आकाश (नां.मा.) उ०—फतेसाह साह आए बांह गैण धारे, विजावत विजय रूक पराजय निवारे।

गैं'णकियौ, गैं'णकौ—देखो 'गैं'णौ' (अल्पा०) —रा.रू.

गैण-गड्डू—वि०—लम्बा और पतला, लम्बोतरा। उ०—बांरै घर वाळा सगळा-रा सगळा ओछै खांमणै-रा ईज है। कंवरजी-री दादी तो धधमा-री धधमा है पण दादोजी है गैणगड्डू दाई।—वरसगांठ

गैणवटी-सं०पु० [सं० गगन+वटी] सूर्य्य। उ०—जटी जोग पारावारां धावां सुभ्रतटी जेम, गैणवटी तावां ऊंच सुभावां गोवंद। चीलार पुरंद्र चावां चंद्र ज्यूं नखत्र चावां, नरां लोक दावां सरै 'किसनेस' नंद।

—हुकमीचंद खिड़ियौ

गैणमगी—सं०पु०—आकाश मार्ग।

वि०—आकाश मार्ग से चलने वाला।

गैणमिण—सं०पु० [सं० गगनमणि] सूर्य (क.कु.बो.)

गैणांग, गैणांण, गैणाक, गैणाग, गैणागि—सं०पु० [सं० गगन] आकाश, आसमान। उ०—१ तिके वेर चाहीजै विछुट्टै हवाई तेम। गंध-ग्राही सतां लेर हालियौ गैणांग।—रा.रू. उ०—२ चढ़ी गैणाक अणपार आमंख चर, अपछरां विमांण नभ बीच अड़िया अधर।

—विसनदास बारहठ

उ०—३ खिलै गैघड़ां लड़ंगां तोपां झाळ रै गैणाग छायौ, कोपै लाठ आयौ बंबै काळ रै कल्प।—खिमजी चांपावत रो गीत

गैणा-घड़—सं०पु०यौ०—आभूषण बनाने वाला, स्वर्णकार, सुनार।

गैणाण, गैणारव, गैणाळौ—देखो 'गैणाग' (रू.भे.) उ०—गजां उमंडे बादळां जूथ सकंजा कांठळा गड़ां। बीज सोर झाळां धजा गैणाळ बहेस।—रावत रतनसिंहजी सीसोदिया रो गीत

गैं'णूं, गैं'णौ—सं०पु०—जेवर, आभूषण, गहना।

यौ०—गैं'णौ-गांठौ।

गैतूळ, गैतूळौ—सं०पु०—१ आंधी, झंझावात, वातचक्र, तूफान।

उ०—वीभरै करै गळबाह बीर, नीझरै रुधर जिम सघण नीर। रण फिरै चाक चैतूळ रंग, ऐराक छाक गैतूळ अंग।— वि.सं.

२ सेना, फौज (ह.नां., अ.मा.) उ०—सु सुरतांणि ईसरै समहरि, लोह छरा गैतूळां लाइ। भुजग पांणि उपाड़ै भारथि, ब्रहमंड सांम्हा चाढ़ै वाइ।—ईसरदास मेड़तिया रो गीत

३ गर्द, धूलि. ४ समूह। उ०—ऊपड़ै बीड़ंगां बागां, गरद्दां गैतूळ उड्डै। वीर हाका गमा-गमा बाजै डाक बाह।

—महाराजा बखतसिंहजी रो गीत

[सं० गततोल्य] ४ वायु, हवा (अ.मा.)

गैदंत—सं०पु० [सं० गजदंत] १ हाथी का दांत. २ हाथी।

गैदंतड़ौ, गैदंतौ—सं०पु०—सूअर। उ०—गैदंतौ पाडा खुरौ, आरण अचळ अघट्ट। भूंडण जणै सो भू भलौ, थोभै अरियां थट्ट।—हा.झा.

गैब—सं०पु० [अ० गैब] वह जो सामने न हो, परोक्ष।

उ०— तिणि वेळा गैब री आवाज आकासवांणी कहिओ—महाराज रैणसाहि वधाई-वधाई।—वचनिका

क्रि०वि०—अचानक।

गैबकौ—क्रि०वि०—अचानक, एकदम।

गैबबांणी, गैबबांणी—सं०स्त्री०—आकाशवाणी। उ०—सो उण समय गैबबांणी हुई।—नी.प्र.

गैबांणी, गैबाऊ—वि०—१ गुप्त, जो सामने न हो, अप्रत्यक्ष. २ अचानक होने वाला, गुप्त रूप से होने वाला। उ०—वीखरै बैरियां चक्र म्हांळौ गैबाऊ। रखी लाज रांणी री सरब जांणै आसाऊ।—ऊ.का.

गैबावळ—सं०पु०—गुप्त गोला।

गैबी—वि० [अ० गैब] १ गुप्त, छिपा हुआ. २ अज्ञात. ३ अबोधगम्य।

सं०पु०— अपराध करने वाला, अपराधी। उ०—कंस सिसपाळ पूतना काळी, भगवत दोखी सरब भयौ। पेमी ऊधव ली गत पाछी, गैबी मो'र सुथांन गयौ।—भगतमाळ

क्रि०वि०—अचानक। उ०—अनूंपसिंघ जूंझारसिंघ रौ, बुलाकी साहजादौ गैबी ऊठियौ थौ पूरब में। उण कनै थोह में राजा जैसिंघ रै रै'वै।—नैणसी

गैमर—सं०पु० [सं० गजवर] हाथी (ह.नां.) उ०—हैमर गैमर पायदळ रिणतूर रुड़ंदा।—केसोदास गाडण

गैया—सं०स्त्री० [सं० गौ] गाय, गऊ।

गैर—वि० [अ० ग़ैर] १ अन्य, दूसरा, अपरिचित, अजनबी, अपने कुटुंब

या अपने समाज से बाहर का व्यक्ति। उ०—परणी नै परहरै, गैर सुत गोदी धारै।—ऊ.का.

२ अनुपयुक्त, अनुचित। उ०—तरै नींबा सूं कहाव कियो, तरै नींबै कह्यौ—म्हैं बहोत गैर की छै सु पंजुपायक रा बोल हुवै तो हूं आऊं। —नैणसी

३ विरुद्ध, खिलाफ।

सं०स्त्री०—१ देखो 'गेहर' (रू.भे.) २ निंदा। उ०—भड़ां वैर बढ़ियो भलो, बधियो भलो न वैर। रूक जेण नित कर रहै, गांठ हिये मुख गैर।—बां.दा.

अव्यय—वगैरह, इत्यादि। उ०—बंधियो अकबर वैर, रसत गैर रोकी रिपू। कंदमूळ फळ कैर, पावै रांण प्रतापसी।—दुरसो आढ़ो

गैरइंतजांमी—सं०स्त्री०—अव्यवस्था, कुप्रबन्ध।

गैरक—सं०पु० [सं० गैरिक] सोना (अ.मा.)

गैरचाल—सं०स्त्री०यौ०—कुमार्ग, व्यभिचार। उ०—परमेस्वर रा अवतार हा अरु पराक्रम करनै माहावीर हा, सु पराक्रमपणै री वा पोखता मिळी तिण वगेरै मा'राज री वातां घणी है अरु एक-दोय तो गैरचाल हालणै वाळा ठावा अमीर मारिया।—द.दा.

गैरजबांन—क्रि०वि०—अशिष्टतापूर्ण शब्दों का उच्चारण।

उ०—तद इहां कहाई—जे हरांमखोर हजरत का भो न है, पाजी मुंह से हजूर में गैरजबांन बोलै सो कैसे सहै ? —राठौड़ अमरसिंह री वात

गैरत, गैरथ—सं०पु० [सं० गीरथ] १ आकाश, नभ।

सं०स्त्री० [अ० ग़ैरत] २ लज्जा, शर्म। उ०—गैरत धरम री आ छै जे आज्ञा करणै योग्य कांमां री मांनै अर भूंडा कांमां री ताकीद करै। आपरा चाकरां नूं रैयत देस री नूं जप तप भजन री आग्या करै।—नी.प्र.

३ स्वाभिमान। उ०—गैरत में सो गैरत योग्य अहंकार सूं राखणौ भलौ छै।—नी.प्र.

गैरमनकूला—वि०—जो एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान को न ले जाया जा सके, स्थिर, अचल।

गैरमहल—सं०पु०—१ रंगमहल, केलिगृह। उ०—कोई वीर पुरुस रा राज में राजा रा भुजबळ सूं सांती ही पण जिनांना गैरमहलां में रहणा सूं सत्रू देसमें निरभै रहण लागगा है।—वी.स.टी.

२ जनाना महल।

गैरमामूली—वि० [अ०] असाधारण, नित्य-नियम के विरुद्ध।

गैरमुमकिन—वि० [अ०] असंभव, न होने योग्य।

गैरव—सं०पु० [सं० गजवर] हाथी, गज (रू.भे.—गैंवर)

गैरवाजिब—वि०—अयोग्य, अनुचित, बेजा।

गैरसरकारी—वि०—जो राज्य या सरकार से संबंधित न हो।

गैरसाली—वि०—कपटपूर्ण, कपटी। उ०—पीछै रायमल डेरै जावण लागो तद भीतर सूं कहायो कै रायमल नूं कहो, मैं इणनूं बारी मांय कर दीठो है सु इण धायभाई रो वेसास मती करजे, इणरी निजर गैरसाली है।—द.दा.

गैरहाजर, गैरहाजिर—वि०—अनुपस्थित, जो मौजूद न हो।

गैरहाजिरी—सं०स्त्री०—गैरमौजूदगी, अनुपस्थिति।

गैराई—सं०स्त्री०—गहरापन, थाह।

गैरिक—सं०पु० [सं०] १ गेरू. २ सोना।

गैरी—सं०पु०—१ शत्रु, दुश्मन। उ०—खग झट बैरी खेल गैरी किम कुसळ गयौ।—पा.प्र.

२ दुष्ट व्यक्ति।

गैंरीं—वि०—देखो 'गैंरो'।

गैरुक—सं०पु०—स्वर्ण, सोना (ह.नां.)

गैंरो—वि०—गहरा, अथाह।

मुहा०—१ गैंरो आसांमी—अधिक देने वाला. २ गैंरो पेट—बात हजम करने वाला आदमी, रुपए लेकर न देने वाला, कोई भी चीज लेकर न लौटाने वाला, बहुत खाने वाला. ३ गैंरो रंग पकड़णौ—बात का और बढ़ता ही जाना. ४ गैंरो हाथ पड़णौ—काफी धन मिलना. ५ गैंरो हाथ मारणौ—कहीं से काफी धन या सामान उड़ा लेना।

२ अधिक, काफी।

गैल—सं०स्त्री०—१ मार्ग, राह, रास्ता। उ०—हुवै गैल चौड़ा जठै सैल हूंता, हलै बैल जोटां घणां बैल हूंता।—वं.भा.

२ पीछा। उ०—सायब बड़ा सिरदार, केता चुगल चाड़ी करै। हाथी गैल हजार, भुसै गिंडक रे भंरिया।—राजा बळवंतसिंह

क्रि०वि०—साथ-साथ। उ०—सुणी कीरती छाक वाळै सवादी, विनां नारि हाले नथी कील वादी। करी गैल तो एक दीधी करेणू, वळै डाक दारां सजे लंब वेणू। वं.भा.

गैळ—सं०स्त्री०—१ हल्का नशा, मादकतापूर्ण बेहोशी। उ०—इसा डाकी ठाकर रो अन अर ताखा सरप रो विस बराबर है। उण जहर री गैळ ही मरियां ऊतरै नै इण अन रूपी जहर री गैळ अन रो फरज जुद्ध में मरण सूं हीज ऊतरै है।—वी.स.टी.

२ गफलत।

गैळक—वि०—भूलने वाला, गाफिल, बेखबर।

गैलड़—देखो 'गेलड़' (रू.भे.) उ०—निस आधी रा नीकळै, थळवट ग्रहियो थांन। गादी मालक गैलड़ा, पेह गंगा परधांन।—पा.प्र.

गैलणो—वि०—पागल। उ०—ताजा जीमण त्यार प्रथम मद पीजियै, सारो परगह सेंग अहोड़ो न दीजियै। सबळी हुवै सिरकार क ठाकुर गैलणा, एता दे फिरतार फेर नह बोलणा।—अज्ञात

गैलाइत—सं०पु०—राही, राहगीर। उ०—आतस अपार ऊचार अस, गैलाइत तक्कै गळी। नीसार सोर पूरति निपट, यौं जांणै पति आगळी।—रा.रू.

गैलाई—सं०स्त्री०—पागलपन, नादानी।

गैलागीर—सं०पु०—राही, राहगीर। उ०—कोई खोदवावै तो मजूरी काज आता। गैलागीर आता सो हकोळा नाखि जाता।—शि.वं.

गैलियौ—देखो 'गैलो' (अल्पा०) उ०—पर दार प्यार हुयग्यौ प्रमत, बिन सींगां रौ बैलियौ। भोग रै मांय भंमतौ भंवर, गयौ जनम सब गैलियौ।—ऊ.का.

गैळीजणौ, गैळीजबौ—क्रि०अ०—हल्के नशे या बेहोशी से ग्रसित या प्रभावित होना। उ०—बांडी काळा गोहिरा, मरळक अर संखचूड़। परवा में गैळीजिया, लिट लिट ठंडी धूळ।—बादळी

गैळीजणहार, हारौ (हारी), गैळीजणियौ—वि०।

गैळीजियोड़ौ, गैळीजियोड़ौ, गैळीज्योड़ौ—भू०का०कृ०।

गैळीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—हल्के नशे या बेहोशी से प्रभावित।

गैलेरी—सं०स्त्री० [अं०] १ चढ़ाव से उतार की ओर क्रमशः बैठने के लिए सीढ़ीनुमा बनाया स्थान जैसा प्रायः सरकस, थियेटरों आदि में होता है. २ व्यापारियों की दूकान पर चढ़ाव से उतार तक क्रमशः सीढ़ीनुमा स्थान जहां वस्तुएँ सजा कर रक्खी जाती हैं।

गैलौ—वि० (स्त्री० गैली) पागल, नासमझ।

कहा०—१ गैला कुत्ता हिरणां लारै दौड़ै—पागल कुत्ते हिरणों का पीछा करते हैं। जिस कार्य में सफलता संदिग्ध हो उस कार्य को करने वाले के प्रति. २ गैला-गैला गांव मती बाळजे कै भली चितारी—अरे पागल ! गांव मत जला देना कि अच्छी याद दिलाई। उस व्यक्ति के प्रति जो वही कार्य करता है जिसके लिए कि उसे मना किया जाता है. ३ गैलां रै किसा घर व्है—पागल के कौनसा निश्चित घर होता है। पागल व्यक्ति के प्रति। आवारा व्यक्तियों के प्रति. ४ गैलो सब सूं पैली—पागल हर काम में सब से आगे आते हैं चाहे उस कार्य को करने की उनमें सामर्थ्य न हो। विचारहीन एवं बिना सोचे-समझे हर कार्य में आगे रहने वाले के प्रति. ५ गैली सासरै गई नै नहीं गई—पगली का क्या, वह सासरे जा भी सकती है और नहीं भी। पागल से किसी विशेष प्रकार के निश्चित कार्य की आशा नहीं रखी जा सकती. ६ गैले आळी पांखड़ी बैठोड़ी है—पागलपन के कार्य करने वाले के प्रति. ७ गैलौ बेटौ बाप कै जितोई चोखौ—पगला लड़का बाप के घर पर ही है तभी तक ठीक है। पागल द्वारा की गई हानि घर में तो जैसे-तैसे सहन की जा सकती है परन्तु बाहर किसी अन्य के यहाँ यह हानि असह्य होती है. ८ दादू दुनियां बावळी सोच करै गैली, रोटा देसी रांमजी दिन ऊगां पैली—यह दुनिया पागल है जो व्यर्थ में सोच करती है, ईश्वर सबके लिए सूर्योदय के पहले ही रोटी की व्यवस्था कर देता है। आलसी व अकर्मण्य व्यक्ति द्वारा कही जाने वाली उक्ति।

यौ०—गैलौ-तुड, गैलौ-वीसी।
(अल्पा०—गैलड़ौ, गैहलड़ौ, गैल्यौ)
क्रि०वि०—पीछा।

मुहा०—गैल छोडणी—पीछा छोड़ना।

सं०पु०—मार्ग, रास्ता (डिं.को.) (रू.भे.—गैलौ)

गैब—देखो 'गैब' (रू.भे.) उ०—गैर कांम ही तैं गैब गूंज नूं गयौ। आपनी ही ऐब तैं असूझ नूं दयौ।—ऊ.का.

गैंबर—सं०पु० [सं० गजवर] १ श्रेष्ठ हाथी। उ०—दूठ हाथी छोड दीनौ, रयौ सैंभर रह। तौ गोविंद जी गोविंद, गैंबर टाळियौ गोविंद।—भगतमाळ

२ ऐरावत।

गैवरियौ—देखो 'गेरियौ' (रू.भे.) उ०—तूं तौ कांमी, म्हारी होळी माता, गरभ री तूं तौ देख गैवरियां रौ ढाळौ रे, ढाळघा ढळ कर चाल्यौ ठेलगी।—लो.गी.

गैंवरौ—सं०पु० [सं० गजवर] हाथी (डिं.नां.मा.)

गैस—सं०स्त्री० [अं०] १ वायु-मंडल में वायु के समान एक अत्यन्त, अगोचर और सूक्ष्म द्रव्य जिसके भिन्न-भिन्न रूपों के संयोग से जल-वायु आदि पदार्थ बनते हैं. २ गंदे स्थानों एवं कोयले आदि की गहरी खानों से उठने वाली एक प्रकार की तीव्र गंधयुक्त वायु।

गैसोत—[अ० गैर+सं० श्रोत] दोगला, वर्णसंकर।

उ०—वासी नरकां रा विदर, ग्यासी रा गैसोत। सत्यानासी रा सुगन, दासी रा वैसोत।—ऊ.का.

गैहणलियौ, गैहणौ—देखो 'गैंणौ' (रू.भे.) उ०—घरोबर सत्रुवां री स्त्रियां रा चूड़ा गैहणा चीर ऊतरै छै सो मोनै दया आवै छै।—वी.स.टी.

गैहलड़ा—सं०स्त्री०—पंवार या पंवार वंश की एक शाखा।

गैहलड़ौ—देखो 'गैलौ' (अल्पा०)

गैहवंत—स०पु०—गृहस्थी।

गोंगरौ—१ देखो 'गांगड़ौ' (रू.भे.) २ देखो 'गांगरौ' (रू.भे.)

गोंगौ—सं०पु०—खिडकी पर लगा हुआ वह अर्द्धचन्द्राकार पत्थर जिसकी खुदाई एक पत्थर पर ही हुई हो।

गोंदल—देखो 'कंदळ' (रू.भे.)

गो—देखो 'गौ' (रू.भे.) उ०—मुगळ न जांणै गो दया, चुगळ न जांणै चोज।—बां.दा.

अव्यय [फा०] यद्यपि, अगरचे।

गो'—देखो 'गोह' (रू.भे.)

गोआळियौ—सं०पु० [सं० गोपाल] १ गायें चराने वाला, ग्वाला। २ श्रीकृष्ण।

गोइंतरौ—सं०पु० [सं० गोधा] (स्त्री० गोइंतरी) १ छिपकली की जाति का एक जंतु. २ गाय का बछड़ा।

गोइंद—सं०पु० [सं० गो=पशु+इंद्र] १ श्रेष्ठ हाथी. २ ऐरावत।

गोइतरौ—सं०पु० [सं० गो+पुत्र] गाय का बछड़ा।

गोइ—सं०पु०—कपट, छल।

वि०—कपटी, छली।

गोइड़ौ—सं०पु०—१ विसखोपरा नामक जंतु।

कहा०—गोइड़ा रा पाप सूं पीपळी बळै—गोहरे के दोष से पीपल का वृक्ष भी नष्ट हो जाता है। दुष्ट के साथ रहने से निरपराध भी मारा जाता है।

२ पशुओं का खून चूसने वाला एक कीड़ा विशेष।

गोइयाळ-वि०—धूर्त, चालाक, कपटी।

गोइल-सं०पु०—एक राजपूत वंश, गोयल।

गोईतरी-सं०स्त्री०—गाय।

गोई-सं०स्त्री०—१ घुमाव, मोड़, चक्कर।
सं०पु०—२ कपट, धूर्तता, छल।
सं०पु०—३ कुए पर चरस को खाली करने वाला व्यक्ति।
(रू०भे०—गोही)
४ शत्रु। उ०—डूबी बात छै, कदाचित भूंठी होय जावै तौ पाखती रा सोई तथा गोई डूबी बात जांण कोई हंससी।
—पलक दरियाव री वात

गोईड़ौ—देखो 'गोइड़ौ' (रू.भे.)

गोईतरी-सं०स्त्री० [सं० गो+पुत्र+रा०प्र० ई] गाय।

गोईयाळ—देखो 'गोइयाळ' (रू.भे.)

गोऊं-सं०पु० [सं० गोधूम] गेहूं।

गोग्रौ-सं०पु०—मस्ती में आने पर ऊंट के मुंह से निकलने वाली गलसुंडी। बि०वि०-देखो 'साळ' (६) उ०—साठी केरै भमण ज्यूं चसळका करता, भागं गाडै ज्यूं बठठाठ करता, आगलै भाग भाग नांखता, खोटहड़ीअे रा गोग्रं रा भूठै कुग्रै रा कळसिमा कपोळां रा।
—रा.सा.सं.

गोकन्ह, गोकरण-सं०पु० [सं० गोकर्ण] १ टोडा रायसिंह के निकट बनास के तट पर स्थित एक पहाड़ी के शिखर पर बना हुआ महादेव का मंदिर, एक तीर्थ-स्थान (नैणसी) २ इस स्थान पर स्थापित शिव की मूर्ति का नाम. ३ एक स्थान विशेष जो मलाबार के पास है। यहां शिव की मूर्ति है। कहा जाता है कि रावण और कुम्भकर्ण ने यहां तपस्या की थी. ४ शिव के एक गण का नाम. ५ धुंधकारी के भाई का नाम जिससे भागवत सुन कर धुंधकारी तर गया था. ६ गाय का कान, गोकर्ण. ७ नृत्य मे एक प्रकार का हस्तक।

गोकळ—देखो 'गोकुळ' (रू.भे.)

गोकळनाथ-सं०पु०—श्रीकृष्ण, ईश्वर (ह.नां.)

गोकळिया गुसांई-सं०पु०यौ०—वैष्णव संप्रदाय के संन्यासियों का एक भेद।

गोकळेस-सं०पु०यौ० [सं० गोकुल+ईश] श्रीकृष्ण (अ.मा., नां.मा.)

गोकुळ-सं०पु० [सं० गोकुल] वह गांव जहां श्रीकृष्ण ने अपनी बाल्यावस्था बिताई। यह गांव मथुरा नगर से पूर्व-दक्षिण की ओर तीन कोस की दूरी पर यमुना के दूसरे किनारे पर बसा हुआ था। आजकल यहां जंगल बना हुआ है।

कहा०—गोकुळ गांव रौ पेंडौ ही न्यारौ—गोकुल गांव की अपनी लीला ही निराली है। जिस गांव में नित्य विशेष या असाधारण घटनायें घटती हैं उसके प्रति।

गोकुळचंद, गोकुळचंद्र, गोकुळनाथ-सं०पु०—१ ईश्वर. २ श्रीकृष्ण।

गोकुळस्थ-वि०—१ गोकुल गांव में स्थित. २ गोकुल-निवासी।

गोकुळसरजी-सं०पु०यौ० [सं० गोकुल+ईश्वर रा० जी] १ ईश्वर. २ श्रीकृष्ण।

गोखंबर-सं०पु०—जालीदार कपड़ा।

गोख-सं०पु० [सं० गोक्ष, गवाक्ष] १ झरोखा, वातायन।
उ०—अनूप ताक गोख स्री विचित्र चित्र सूं अटा, बणूं उतंग अंग जांणि स्रंग मेघ की घटा।—रा.रू.
२ आंख का वह भाग जो नाक के मूल में है। उ०—पछै आंख्यां रा गोख, कांनां रा मोर छांटिया, तीखा कुरळा कीया, घड़ी एक अमल नै पोढ़ाड़ियौ।—जैतसी ऊदावत री वात
३ कान का विवर। उ०—तठै जाय घोड़ा सूं ऊतरिया, हथियार खोल्या, गंगाजळी बादळी जळ सूं भरि लाया। घोड़ां रा लाळिया छांट्या। आप आंख्यां छांटी, कांनां रा गोख छांट्या। चावड़ी मुख धोयौ, ठंडाई कीधी।—जगदेव पंवार री वात
४ राजस्थानी का एक गीत (छंद) विशेष जिसके प्रत्येक पद में २० मात्राएँ होती हैं किन्तु प्रथम पद में २३ मात्राएँ होती हैं। चौथे चरण में पांच मात्राओं वाला शब्द चार बार आता है। इस गीत को जंघखोड़ा भी कहते हैं।
सं०स्त्री०—५ सीमा, हद। उ०—१ ऐ दिन पहर एक चढतां ढींगसर रै गोखै में सांढियां रा गळा साम्हा आया सो घेर लै घेरिया।
—सूरे खींबे कांधळोत री वात
उ०—२ इतरै पण चार दिन पाछै आय गोखै उतर कुंवरजी गोठ करी। मारा साथ नूं केसरिया किया व लोगां बडबेहड़ा बधाइया, नजर नछरावळ कीवी।
—कुंवरसी सांखला री वारता

गोखड़ौ—१ देखो 'गोख' (१) (अल्पा०) उ०—ऊंचा रांणाजी रा गोखड़ा जी, नीची मीरांबाई री साळ। रमतां तौ पायौ मीरां कांकरौ कोई सेवा साळिगरांम।—मीरां
२ मकान की खुली 'साळ' (देखो 'साळ') के मुख्य द्वार के पार्श्व में लम्बी पट्टी लगा कर बनाया गया ताक।

गोखरू-स पु० [सं० गोक्षुर] १ वर्षा ऋतु में पनपने वाला एक पौधा जिसमें चने के फल के आकार के कड़े और कँटीले फल लगते हैं। ये फल औषध के काम में लिए जाते हैं और वैद्यक में इन्हें शीतल, मधुर, पुष्ट, रसायन, वायु, अर्श और व्रणनाशक कहा है. २ गोखरू फल के आकार के बने धातु के कँटीले टुकड़े जो हाथियों को पकड़ने के लिए उनके रास्ते में फैला दिए जाते हैं. ३ स्त्रियों की कलाई का एक आभूषण जो कड़े के आकार का होता है।

गोखरूकांटौ-सं०स्त्री०—१ जमीन पर छितराने वाला एक प्रकार का क्षुप जिसके फल 'गोखरू' के समान होते हैं (मि०—गोखरू)
२ इस क्षुप के फल।

गोखांनौ—देखो 'गऊखांनौ (रू.भे.)

गोखुर—सं०पु०—गाय का खुर, गौ का खुर।

गोखौ—सं०पु० [सं० गोक्ष, गवाक्ष] १ देखो 'गोख' (रू.भे.)

२ डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष जिसके हर द्वाले में आठ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में १२ मात्रायें और अंत में गुरु लघु होता है।

गोग—सं०पु०—१ झाग, फेन। उ०—ऊगंते रो माछळी, आथमते री मौग। डंक कहै सुण भड्डळी, नदियां चढ़सी गोग।

२ सांप, सर्प। —भड्डळी पुराण

गोगघोड़ौ—सं०पु०—वर्षा ऋतु में घास में उत्पन्न होने वाला लम्बी टांगों का एक प्रकार का कीट जो प्राय: आक के वृक्ष पर बैठता है। रंग-भेद से यह तीन-चार प्रकार का होता है।

गोगण—सं०पु०यौ० [सं० गौ+गण] गायों का समूह। उ०—कनक कोस सींगां सजे, रजत खुरां अभिरांम। इम गोगण दीधी अधिप, नियत उचारण नांम।—वं.भा.

गोगरा—सं०स्त्री०—गंगा की सहायक नदी, घाघरा।

गोगळी—सं०स्त्री०—भाटी वंश की एक शाखा।

गोगा—सं०स्त्री०—राठौड़ों की एक शाखा (बां दा.ख्यात)

गोगाआंगळी—सं०स्त्री०यौ०—अनामिका और तर्जनी के बीच की एक अंगुली मध्यमिका।

गोगाजी री मासी—सं०स्त्री०—छिपकली जाति का एक जंगली जन्तु जो अधिकतर कँटीली झाड़ियों में रहता है।

गोगादे—सं०पु०—१ राठौड़ राव वीरम के पुत्र गोगादे के वंशज, राठौड़ों की एक उपशाखा. २ देखो 'गोगौ' (रू.भे.)

गोगानम—सं०स्त्री०—भाद्रपद शुक्ला नवमी। इस दिन सर्पों की पूजा की जाती है।

गोगापीर—देखो 'गोगौ' (रू.भे.)

गोगामेड़ी—सं०स्त्री०—चौहान गोगादेव का जन्म-स्थान।

गोगाराखड़ी—सं०स्त्री०—गोगापीर के नाम पर बांधा जाने वाला धागा जिसे किसान प्राय: वर्षा ऋतु में प्रथम बार हल चलाने के समय अपने हाथों में बांधते हैं (तांत्रिक)

वि०वि०—देखो 'गोगौ'।

गोगावत—सं०पु०—कछवाहा वंश की एक शाखा।

गोगी—१ देखो 'घुग्घी' (रू.भे.) २ मुंह पर आने वाले झाग।

गोगौ—सं०पु०—१ प्रसिद्ध गोगादेव चौहान।

वि०वि०—गोगादेव बीकानेर राज्य के रतनगढ़ के ददोड़ा गांव के ठाकुर जेहंवर के पुत्र थे। इनका विवाह राठौड़ पाबूजी की भतीजी केलण दे के साथ हुआ था। इन्होंने तत्कालीन दिल्ली के बादशाह शमसुद्दीन अल्तमिश के पुत्र रुकनुद्दीन फिरोजशाह के साथ भारी युद्ध कर उसको परास्त किया था। उस युद्ध में इनके दो भाई मारे गये थे। युद्ध से लौटने पर इनकी माता ने भाइयों के मरने एवं इनके जीवित लौटने पर इनको धिक्कारा था अतः ये वापस लौट गये और जीवनपर्यन्त छिप कर रहे। भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की नवमी को समस्त राजस्थान में इनकी तिथि मनाई जाती है। कहा जाता है कि इस दिन ये एक युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुए थे। इन्हें आज भी देवता के समान पूजा जाता है।

२ इन्हीं गोगादेव चौहान की प्रशंसा में गाया जाने वाला एक लोक-गीत।

कहा०—गोगौ गायौ गीतां रौ छेह आयौ—गोगा नामक गीत गाया और गीतों का अन्त आया। गोगा नामक गीत सब के अन्त में गाया जाता है।

३ सर्प, सांप, नाग।

गोगोचर—सं०पु० [सं०] १ ईश्वर (नां.मा.) २ श्रीकृष्ण।

गोग्रास—सं०पु० [सं० गौ ग्रास] भोजन प्रारम्भ करने के पूर्व परोसी हुई सामग्री में से थोड़ा सा गौ के लिये पृथक कर रख दिया जाने वाला भाग।

गोघड़—सं०स्त्री०—एक पुतली जो वैवाहिक रस्म के अनुसार बनाई जाती है।

गोघाट—सं०पु०यौ०—जलाशयों पर पशुओं के पानी पीने के निमित्त बना हुआ ढलुवां घाट।

गोघात—सं०स्त्री० [सं०] गौहत्या, गोवध।

गोघातक—सं०पु०—गौ-हिंसक, गौ-हत्यारा।

गोघी—१ देखो 'घुग्घी' (रू.भे.) २ देखो 'घुग्घी' (रू.भे.)

गोघोख—सं०पु०—गौशाला। उ०—संयोगिणि चीर रई कैरव स्त्री, घर हट ताळ भमर गोघोख। विणियर ऊगि एलला दीधा, मांखियां बंध बंधियां मोख।—वेलि.

गोड़—सं०पु०—१ समूह, झुंड। उ०—गाजिया नगारा गयण गाज, भूमी एवासी गया भाज। गैमरां हैमरां थीय गोड़, तरवरां भंगरां दीह तोड़।—वि.सं.

२ नाश, संहार. ३ देखो 'गौड़' (रू.भे.)

सं०स्त्री०—४ ललकार, वीरहाक. ५ नदी में वेगपूर्ण प्रवाह की आवाज या ध्वनि. ६ मस्ती की अवस्था में हाथी द्वारा की जाने वाली ध्वनि। उ०—पैदल हैदल पूर सदाई संग चढ़ै, नित नौबत नीसांण गढ़ां सिर गड़गड़ै। गोड़ करै गजराज खंभां नित खोलणा, एता दै किरतार फेर नहिं बोलणा।—अज्ञात

गोड़णौ, गौड़बौ—क्रि०अ०—१ हाथी का चिंग्घाड़ना। उ०—कळह गोड़िया गहंदां।—भगवांनजी रतनू २ प्रहार करना।

उ०—बिहद मचे धम गजर, किरमर अरि सिर गोड़े। केई-केई कर किलक, धजर अरि उवर धमोड़े।

—प्रतापसिंह म्हौकमसिंह री वात

गोड़ांण—सं०स्त्री०—एक पक्षी विशेष जो कुछ लम्बे कद का होता है। इसका मांस खाने के काम में भी लिया जाता है।

गोड़ारव—सं०स्त्री०यौ०—समुद्र में लहरों के टकराने से उत्पन्न ध्वनि।

उ०--सायर गोड़ारव करै, जाका थाग न पाया ।--केसोदास गाडण
गोड़ियाबाजी--देखो 'गौड़ियाबाजी' (रू.भे.)
गोड़ियौ--देखो 'गौड़ियौ' (रू.भे.)
गोड़ींदौ-सं०पु० [प्र० गोइन्दः] १ मुखबिर. २ गुप्तचर, भेदिया ।
गोड़ी-सं०स्त्री०--हाथी की चिंघाड़ ।
गोड़ीड़-वि०--हृष्ट-पुष्ट, मोटा-ताजा. २ विशालकाय, दीर्घकाय ।
गोड़ीजी-सं०स्त्री०--एक देवी का नाम ।
गोड़ीर-वि०--१ देखो 'गोड़ीड़' ।
सं०पु०--२ देखो 'गोड़ीरव' (रू.भे.)
गोचणी-सं०स्त्री०--गेहूँ और चने का मिश्रण (क्षेत्रीय)
गोचर-सं०पु० [सं०] १ गौओं के चरने का स्थान, चरागाह. २ वह विषय जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो सके. ३ किसी मनुष्य के प्रसिद्ध नाम की राशि के अनुसार गणित करके निकाले हुए ग्रह जो जन्म-राशि के ग्रहों से कुछ भिन्न होते हैं और स्थूल माने जाते हैं (ज्योतिष) यौ०--गोचर-ग्रह ।
गोचरी-सं०स्त्री०--१ योग की एक मुद्रा विशेष. २ कपट से बचाया हुआ धन. ३ जैन यतियों या साधुओं द्वारा मांगी जाने वाली भिक्षा. ४ भिक्षावृत्ति ।
क्रि०वि०--गुप्त रूप से ।
गोचार--१ देखो 'गोचर'. २ ग्वाला, गोप ।
गोजरौ-सं०पु०--गेहूँ और जौ का मिश्रण ।
गोजारौ--देखो 'गुजारौ' (रू.भे.)
गोजीत-वि०--जिसने इंद्रियों को वश में कर लिया हो, जितेंद्रिय ।
गोट-सं०स्त्री० [सं० गोष्ठ] १ किनार, किसी प्रकार का किनारा. २ वह फीता जो किसी वस्त्र के किनारे पर खूबसूरती के लिये लगाया जाता है । उ०--हंसं किण बनडी तणौ सुहाग, बाधळी झीणी घूंघट ओट । बीखरै डाबर नैणां लाज, चमक्कै चोखी कोरां गोट ।--सांझ
(यौ०-गोट-किनार)
३ काष्ठ की बनी वस्तु के किनारों की खूबसूरती हेतु लगाई जाने वाली अर्द्ध गोलाकार लकड़ी ।
[सं० गुटिका] ४ चौसर या किसी अन्य खेल का मोहरा, गोटी ।
सं०पु० [रा०] ५ वातचक्र, तूफान, अंधड़ । उ०--फळगा उडै खंख रा गोट, टोकरां टणमणती टणकार । खुड़कै गायां हंदा लांठ, सुणीजै बंसी री झणकार ।--सांझ ६ समूह । उ०--बोलां में ओछा विदर, मोलां में नह मोट । पोळां में परताप रै, गोलां वाळौ गोट । --ऊ.का.
गोटकौ-सं०पु०--१ वह सूखी कचरी (काचर) जिसका छिलका उतरा हुआ हो. २ पुस्तक का कोई छोटे आकार का संस्करण, गुटका. ३ एक मंत्र विशेष ।
गोटु-गूगरी--देखो 'गोठ-गूगरी' (रू.भे.)
गोटमगोट-वि०--अंधाधुंध, बेढंगा, अव्यवस्थित ।
सं०पु०--बड़ी राशि, बड़ा समूह ।
गोटाजाय-सं०पु०--एक पुष्प विशेष ।
गोटाळौ-सं०पु०--घोटाला, गड़बड़ ।
गोटियौ-सं०पु०--मित्र, दोस्त ।
गोटींबौ-सं०पु०--खरबूजा ।
गोटी-सं०स्त्री० [सं० गुटिका] १ चौसर, शतरंज आदि खेलों का मोहरा. २ उपाय, तरकीब, युक्ति. ३ टिकिया, गोली ।
उ०--१ माथै मैंगळ खाग, तें बाही परतापसी । बांट किया बे भाग, गोटी माबू तांत गत ।--सूरायचजी टापरयौ
उ०--२ तिण हीज वेळा आपरा कडा, मोती, सिरपाव दीधा नै अमल री गोटी एक, मिठाई रौ करंडियौ, दारू री बतक, पांनां सूं भरनै पांनदांन दीधौ ।--जैतसी ऊदावत री वात
सं०पु० [सं० गोष्ठी] ४ मित्र, साथी, सहपाठी ।.
कहा०--गोटीपणा मांये गोडा रगड़वा पड़ै--मित्रता निभाने के लिए कठिन से कठिन कार्य भी करना पड़ता है ।
गोटीजणौ, गोटीजबौ-क्रि०अ०--१ ऊँट के बदहजमी का रोग होना. २ दम घुटना, मूर्छित होना. ३ विशूचिका रोग से पीड़ित होना ।
गोटीजणहार, हारौ (हारी), गोटीजणियौ--वि० ।
गोटीजिओड़ौ, गोटीजियोड़ौ, गोटीज्योड़ौ--भ०का०कृ० ।
गोटेमिसुर-सं०पु०यौ०--सुनहले या रूपहले बादलों का बुना हुआ पतला फीता जो प्राय: सुन्दरता के लिए वस्त्रों के किनारे पर लगाया जाता है । उ०--गोटेमिसुर री थांरी घण खरा लियौ जी म्हारा राज ।--लो.गी.
गोटौ--१ देखो 'गोट' १, २ (रू.भे.) उ०--विहद कोर गोटे वणी, पातर रै पोसाक । परणी फाटै पूंगरण, बैठी फाड़ै बाक ।--बां.दा.
२ वात-चक्र, बवंडर, अंधड़ । उ०--दुसमणां री छाती में होल खाडा पड़ण ढूक जावै वाइहोला (भैं'रा गोटा ऊठै छाती में) निजर पड़तां ही अरसिया ही ओडी ओळा ताक ताक नै कहै ।--वी.स. टी.
३ छिलका उतरा हुआ नारियल. ४ दम घुटने का भाव ।
५ हैजा रोग. ७ उन्माद रोग, पागलपन ।
मुहा०--गोटौ ऊठणौ--उन्माद में होना ।
८ गड़बड़ी ।
मुहा०--१ कांम री गोटौ करणौ--जल्दबाजी से अव्यवस्थित रूप में कार्य करना ।
२ गोटौ वाळणौ--कार्य को बेढंग से पूर्ण करना, किसी कार्य में गड़बड़ी करना ।
६ इन्द्रजाल । उ०--जांमण मरण मरण फिर जांमण, जग नट गोटौ जांणै । सो दुख मेट अखै पद समपण, केसव नांम कहांणौ ।--र.ज.प्र.
१० रस्सी, नेवार आदि को लपेट कर बनाया गया गोला ।
गोठ-सं०स्त्री० [सं० गोष्ठी] १ मित्र-मंडली का वह सामूहिक भोजन

जो किसी बड़े व्यक्ति के सम्मान में, किसी सुग्रवसर पर या सुन्दर मौसम के समय किया जाता है। उ०—१ माता कहै आज सारा घर रा तो गोठ में गया।—बी.स.टी. उ०—२ रावळ आप नांन्हा बेटा रै कोड रै वासतै ग्रायो। पैहलै दिन वीमाह हुवो नै बीजै दिन गोठ की नै साथ सदोरो हुवो, तठै चूक करनै विजैराव नूं मांगस ७५० सूं मारियो।—नैणसी

२ मेहमानदारी, मिहमानी। उ०—भोजन विविध चाव भूंजाई, सदा नवनवी गोठ सवाई। चाखा सबद कहै नित चावां, ग्रकसी सिरै तणो उमरावां।—रा.रू.

३ टोली, दल, गोष्ठी। उ०—ठठोर सत्रु गोठ की जबान गोठ लें जबें, बडी मठोठ में बहैं दु होठ दंत तें दबें।—ऊ.का.

४ समूह, झुंड, दल. ५ छोटा गांव, खेड़ा। उ०—नहीं तूं ठोड नहीं तूं ठांम, नहीं तूं गोठ नहीं तूं गांम।—ह र.

यौ०—गाव-गोठ।

[सं० गुटिका] ६ चौसर या किसी ग्रन्य खेल की गोटी, मोहरा.

उ०—साळै बेहनोई रै घणो सुख छै सु एक दिन चोपड रमता छा सु राज रा हाथ सूं गोठ मारतां चिरफाट उछळी सु लाखै रै निलाड़ लागी।—नैणसी

[रा०] ७ पशुग्रों को रखने का ग्रहाता। (क्षेत्रीय)

गोठ-गुघरी, गोठ-गूगरी देखो 'गोठ' (ग्र.मा.) उ०—ग्रांमा-सांमा कुसळ पूछ्या। घणी मांन-मनवार हुई। ग्रसल ग्रागराई रा फूल सभा मांहै फेरिया। वडी गोठ-गुघरियां हुई।—बात रीमालू री

गोठड़ी—देखो 'गोठ' (ग्रल्पा०) उ०—म्हारै घर ग्रावो स्यांम, गोठड़ी कराइयै।—मीरां

गोठांण—सं०पु० -गायों को बांधने का स्थान। उ०—ऊंचो सो पीपळ कोपल्यो हो देव। वठै बैठी गाय गोठांण।—लो.गी.

गोठि—सं०स्त्री० [सं० गोष्ठी] गोष्ठी, सभा (ह नां.)

गोठियौ—सं०पु० (स्त्री० गोठण, गोठणी) १ दोस्त, सखा, मित्र।

उ०—तरै ग्रा बात पातसाहजी सांभळी सु पातसाह रै कपूरो मरहठो पंचहजारी उमराव थो, तिण पातसाह नूं मालम कियो -'मूळराज कमालदी सोगटै रमै छै। गोठिया हुवा रहै छै'।—नैणसी

कहा०—गूगरियां रा गोठिया खाय पीय नै ऊठिया—गेहूँ के उबाले हुए (गूगरी) दानों के ही प्रेमी हैं, बस खाये ग्रौर उठ गये। स्वार्थी मित्रों के प्रति। पति के ग्रतिरिक्त ग्रन्य प्रेमी, यार। उ०—ढोला, खीस्योरी बहह, सुणे कुडंगा वैण। मारू म्हांजी गोठणी, सै मारूंदा सैण।—ढो.मा.

२ प्रेमी, प्रियतम.

गोठीपण, गोठीपणो—सं०पु० [सं० गोष्ठी] १ मित्रता, दोस्ती.

२ प्रेम, प्यार।

गोड—सं०पु०—१ वृक्ष का तना. २ बाजीगर. ३ जड़, मूल।

उ०—बड़ला काय सूं बंधाऊं थारी पाळ, काय सूं सिंचाऊं थारो गोड।—लो.गी.

४ एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ खाने के काम में लाई जाती है, मूली।

गोडणौ, गोडबौ—क्रि०स०—किसी भूमि की मिट्टी को कुछ गहराई तक खोद कर उलट-पुलट देना जिससे वह पोली ग्रौर भुरभुरी हो जाय।

गोडवणौ, गोडवबौ—क्रि०स०—१ गिराना, पटकना। उ०—चांच पंखां करि गोडवियो रावण गिरध।—रा.रा.

२ देखो 'गोडणौ, गोडबौ' (रू.भे.)

गोडवाड़—सं०स्त्री०—जोधपुर डिविजन के दक्षिणी-पूर्वी भाग का नाम जो पाली जिले में ग्राया हुग्रा है। यहां पहले गौड़ वंशी क्षत्रियों का राज्य था।

गोडवाड़ी—सं०उ०लि—१ गोडवाड़ का निवासी.

सं०स्त्री०—२ गोडवाड़ की भाषा।

वि०—गोडवाड़ संबंधी, गोडवाड़ का।

गोडवाड़ो—देखो 'गोडवाड़ी' (१)

गोडां—क्रि०वि०—पास, निकट। उ०—मिरजो बिहूं फोजां विचाळा ग्रर पातिसाह रा गोडां होड़ नीसरियो।—द.वि.

गोडाई—सं०स्त्री०—गोडने की क्रिया।

गोडाकूट—सं०पु०—वह ऊँट जो बैठने पर निरन्तर ग्रपना घुटना भूमि पर पटकता रहता है (ग्रशुभ)

गोडाटी—देखो 'गौड़ाटी' (रू.भे.)

गोडाणौ, गोडाबौ—क्रि०स० ('गोडणौ' का प्रे०रू०) गोड़ने का कार्य कराना।

गोडापाही—सं०स्त्री०—एक प्रकार का कठोर दंड।

वि०वि०—देखो 'गोडालकडी'।

गोडाफोड़—सं०पु० ऊँट का कुलक्षण (मि०—गोडाकूट)

गोडाळ—सं०पु०—घुटनों पर झुकने का भाव। उ०—मछराळ खेंगाळ सुनाळ मतो। रोहराळ बंबाळ भालाळ रतो। हाडाळ गोडाळ डालाळ हुग्रा। जांण साल जंभाळ जड़ाव जुवा।—पा.प्र.

गोडालकड़ी—सं०स्त्री०—एक प्रकार का कठोर दंड।

वि०वि०—इसमें दोनों हाथों को कलाई पर एवं दोनों पैरों को टखनों पर रस्सी से बांध दिया जाता है। घुटनों को समेट कर डंडा दोनों कुहनियों एवं घुटनों के बीच में से निकलता हुग्रा रखा जाता है। कभी-कभी डंडे के बीच में रस्सी बांध कर छत से लटका दिया जाता है।

क्रि०प्र०—करणी, देणी।

गोडाळियां, गोडाळियै—देखो 'गुडाळियां' (रू.भे.)

वि०वि०—छोटे बच्चे प्रायः पशुग्रों के समान दोनों पैर ग्रौर दोनों हाथ जमीन पर लगा कर घुटनों के बल चला करते हैं।

गोडावण—सं०स्त्री०—एक पक्षी विशेष।

(मि०—'गोड़ांण')

गोढि–क्रि०वि०—पास, निकट। उ०—एक तो सगाई की सनस मन मांहि आवै लागी और रुखमणीजी गोढि बैठा छै सु मारिवा को तो मतो छोडचो।—वेलि. टी.

गोढिय–देखो 'गोढ़ो'। उ०—जभक्यो धड़ धूंणव खाय भकी। तद गोढिय भूम प्रभंक टकी।—पा.प्र.

गोडियौ–सं०पु०—१ उन दो डंडों में से एक डंडा जिसमें घूमने वाली चकरी की धुरी के दोनों छोर फंसाये हुए रहते हैं (कृषि) २ उन दो डंडों में से एक डंडा जिनमें रहँट को उलटा घूमने से रोक के लिये 'डूग्रा' (देखो 'डूग्रा') ग्रटकाया हुग्रा रहता है.

३ देखो 'गोड' (ग्रल्पा०) ४ घुटना (ग्रल्पा०) ५ वह चमड़े की पट्टी जिस पर घुंघरु बंधे रहते हैं। यह पट्टी ऊँट के घटने पर शृंगार एवं मधुर ध्वनि के लिये बांधते हैं।

गोडी–सं०स्त्री०—१ ऊँट के किसी एक ग्रगले पैर को घुटने के साथ बाँधने का ढंग या इस प्रकार बाँधने का बंधन (क्षेत्रीय) २ उद्दंड गाय या बैल के सींग ग्रौर ग्रगले पैर के एक घुटने को एक साथ एक रस्सी से बांधने का ढंग. ३ घुटना। उ०—१ भीणी-भीणी बेळू री रेत, म्हारै धवळै गोडो ढाळ दां।—लो.गी.

उ०—२ मोडी गोडी दे पसवाड़ा मांडै, तड़छां वातोडी घड़छां तन तोड़ै।—ऊ.का. ४ सूत कातने या कपास ग्रोटने की चरखी के चक्र के दोनों ग्रोर लगाये जाने वाले दो डंडो में से एक।

५ सरदार (ढोलियों की सांकेतिक भाषा)

गोडीरव–सं०पु०—समुद्र (ह.नां.)

गोडूंबौ–सं०पु० १ हिंदवाणी. २ तरबूज।

गोडै–क्रि०वि०—पास, निकट सम्मुख। उ०—मेलै मांग दुगांणी मांगै, सब ही ग्रागै नमावै सीस। गोडै बैस डील गरणावै, ऊंडै पैम भज्यो नहि ईस।—ग्रोपो ग्राढ़ो

गोडोंण—देखो गोडांण' (रू.भे.)

गोडौ–सं०पु०—१ पैर ग्रौर जंघा के बीच का जोड़, घुटना।

मुहा०—१ गोडा देणा—किसी को हानि पहुँचाना. २ गोडा रगड़णा—कष्ट उठाना, परिश्रम करना, नीचे घुटने के बल गिर पड़ना. ३ गोडा गाळणा—परिश्रम से ग्रायु बिताना, मेहनत करना. ४ गोडा हालणा—परिश्रम करने की सामर्थ्य होना, स्वस्थ होना. ५ चालै तौ चांदी नै रगड़ै तो गोडा—उस स्थान के प्रति जहाँ कुछ भी हाथ न लगे।

कहा०—१ गोडा तौ पेट नै ही निवसी—घुटने तो पेट की ग्रोर ही भुकेंगे। ग्रपने ही ग्रादमी को सब चाहते हैं. २ गोडा हालै जितरै कमाय खाग्रो—शरीर से परिश्रम होता है जब तक कमाये जाग्रो. ३ होडां-होड (होडा-हांड) गाडा फोड़णा—देखा-देखी करना, व्यर्थ की नकल करना।

२ बैलगाड़ी के नीचे लगाया हुग्रा वह डंडा जिस पर गाड़ी का चौड़ा तख्ता (थाटा) स्थिर रहता है ग्रौर जिसके एक सिरे में पहियें की धुरी रहती है. ३ देखो 'गोडी' (४)

गोडौबोळावण–सं०स्त्री०—मृत व्यक्ति के संबंधियों के स्थान पर जाकर समवेदना प्रकट करने की क्रिया। उ०—उदेकरण कहायौ के रावजी स्री लूणकरणजी कांम ग्राया तिणसूं म्है तौ गोडौबोळावण ग्राया हां। (मि० 'मोंखांण') —द.दा.

गोढ़—देखो 'गोड' (रू.भे.)

गोढ़ल–क्रि०वि०—निकट, पास। उ०—दुरियोधर बोलक मांदरियौ, यम ही गिर गोढ़ल ऊतरियौ।—पा.प्र.

गोढ़ला–सं०स्त्री०—पड़िहार वंश की एक शाखा।

वि०—पास के, निकट के।

गोढ़वाड़, गोढ़ांण—देखो 'गोडवाड़' (रू.भे.)

गोढ़ां, गोढ़ा, गोढ़ि, गोढ़ी, गोढ़ै–क्रि०वि०—पास, निकट।

उ०—१ ग्रांना ग्रव ग्रांना ग्ररथ, तुरत बिगाड़ै तांन। बदलै तुसरै वांणियौं, धूर गोढ़ा लै धांन।—बां.दा. उ०—२ राव रावत रावळ के राजा, रांणहरै राखियौ रिण। तूं हिंदवांण धणी 'पातल' तण, तो गोढ़ां मांगजे तिण।—दुरसौ ग्राढ़ो उ०—३ ग्रोछी ग्रंगरखियां दुपटी छिब देती, गोढ़ै बरड़ी जे पूरा गामेनी।—ऊ.का.

गोण–सं०पु० [सं० गम] १ गमन। उ०—१ ग्राज सखी हम यूं सुण्यो, पौ फाटत पिव गोण। पौ ग्रर हिवड़ै होड है, पहली फाटै कोण।—ग्रज्ञात

२ ग्रासमान, ग्राकाश। उ०—सींघलउ मांहि खेतसी सेर, भारी दुरंग गढ़ भट्टनेर। रउद्रमइ फेरियउ चक्र राह, गाजिया गोण चउहूं गमाह।—रा.ज.सी. ३ भूमि, पृथ्वी। उ०—वाजिया ढोल दळ हाक वज्जि, गाजिया गोण गइणाग गज्जि।—रा.ज.सी.

गोणियौ—देखो 'गूणियौ' (रू.भे.)

गोणौ–सं०पु० [सं० गमन] विवाह के कुछ समय बाद की एक रस्म या प्रथा जिसमें वर ग्रपने ससुराल जाता है ग्रौर कुछ रीति-रस्म पूर्ण करके वधू को ग्रपने साथ घर ले ग्राता है। (मि०—मुकलावौ)

गोत–सं०पु० [सं० गोत्र] १ कुल, वंश, खानदान। उ०—मोनूं तौ इण धरती मांही क्यूंही चाहीजे नहीं तिणसूं हूं गोत री लोही कांहीं नूं ढोळूं।—ठाकुर जैतसी री वारता

कहा०—गोत री गाळ भैंस नै भी खारी लागै—वंश की गाली या वंश के प्रति ग्रपशब्द भैंस जैसे जानवर को भी बुरे लगते हैं ग्रर्थात् कुल के प्रति कलंक की बात सबको ग्रसह्य है।

२ समूह, दल. ३ गायब या लुप्त होने का भाव।

मुहा०—गोत मनावणी—काम से गायब रहना।

गोतकदम–सं०स्त्री०—वंश या गोत्र के व्यक्ति की हत्या का पाप।

उ०—पछै रावत मेघ हीज विचार कर दीठो, घर एक छै, गोतकदम हुसी।—नैणसी

गोतण–सं०स्त्री०—गोत्र या कुल में जन्म लेने वाली स्त्री।

उ०—कै थारे रे बीरा, जलमी छै धीव, कै बड गोतण भावज वरजिया जे।—लो.गी.

गोतणी—देखो 'गोथणी' (रू.भे.)

गोतभाई-संपु०—एक ही गोत्र में उत्पन्न होने वाला व्यक्ति।

गोतम-संपु०—१ गोत्रप्रवर्तक ऋषि. २ एक मंत्रकार ऋषि. ३ देखो 'गौतम' (रू.भे.) ४ महात्मा बुद्ध. ५ गोतम ऋषि के वंशज. ६ एक क्षत्रिय वंश।

गोतमसुता-संस्त्री०—गौतम ऋषि की पुत्री, अंजना (र.रू.)

गोतमी-संस्त्री०—१ गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्या का एक नाम. २ गोदावरी नदी. ३ दुर्गा. ४ कृपाचार्य्य की स्त्री।

गोतम्म—देखो 'गोतम' (रू.भे., र.रू.)

गोतर—देखो 'गोत्र' (रू.भे.)

गोतराड़—देखो 'गोतार' (रू.भे.)

गोतहत्या-संपु० [सं० गोत्रहत्या] वंश या गोत्र के व्यक्ति की हत्या या इस प्रकार की हत्या का पाप। उ०—बीजे घणी ही कह्यौ, सकतावत प्रवाड़ा वधसी। इण आगा कठैही फिर सकां नहीं। पिण मेघ कह्यौ—जांणे सु दुनी कहौ मोनूं तौ गोतहत्या नहीं हुवै।—नैणसी

गोताखोर, गोतामार-संपु० [अ०] डुबकी लगाने वाला, पानी में गोता लगाने वाला।

गोतार-संपु० [सं० गो+त्रि+रात्रि] एक व्रत विशेष जो भादों मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी, नवमी और दशमी को किया जाता है। दशमी के दिन गौर वर्ण की गाय को जलाशय पर लेजा कर उसकी पूजा करते हैं तथा बाद में फलाहार करते हैं।

गोतिमि—१ देखो 'गोतमी' (रू.भे.) २ देखो 'गोतम' (रू.भे.)

उ०—राघव तणी परसतां पद रज, इमि गोतिमि त्रिया हुग्री उधार।—ह.नां.

गोतियौ-वि० [सं० गोत्र+रा०प्र० इयौ] अपने गोत्र का, गोती।

गोती-वि० [सं० गोत्रीय] समान गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति।

उ०—सु जगमाल नूं राव सुरतांण मारियौ, तरै सगर जांणियौ म्हे तौ दीवांण रै ऐन छां, पिण दीवांण छोटा ही गोती रै ऊपर करै छै।—नैणसी

कहा०—एक गोती सौ जाती बराबर है—गोत्र या कुल का एक व्यक्ति जाति के सौ व्यक्तियों के बराबर है। अर्थात् गोत्र का व्यक्ति निकटतम सम्बन्धी होता है।

गोतीत-वि० [सं०] जो मानवीय ज्ञानेन्द्रियों के जानने से परे हो, अगोचर।

संपु०—ईश्वर, विष्णु।

गोतीरथक-संपु० [सं० गोतीर्थक] सुश्रुत के अनुसार फोड़ों आदि को चीरने की एक विधि, जिसके अनुसार अनेक छेद वाले फोड़े चीरे जाते हैं। शल्य चिकित्सा का एक प्रकार।

गोते-वि०—समान, सदृश, तुल्य।

गोतौ-संपु०—१ गहरे जल में डुबकी लगाने की क्रिया, डुबकी, गोता।

उ०—ताहरां साहिजादा नूं खोजी बांहां गरहि-गरहि अर पांणी मांहे गोतौ दियौ।—द.वि.

२ व्यर्थ का आना जाना, असफल यात्रा, चक्कर।

उ०—मूढ़ मन क्यूं घुड़दौड़ मचावै, खाली गोता खावै।—ऊ.का.

मुहा०—गोता खाणा—भ्रम में पड़ना, विपत्ति में पड़ना, हानि उठाना, चक्कर काटना।

३ धोखा।

गोत्त-गोवाळ-वि०—वंश-रक्षक, गोत्र-रक्षक। उ०—'मालौ' 'वीरम' मंडळी गाढ़िम गोत्त-गोवाळ।—रा.ज.रासौ

गोत्र-संपु० [सं०] १ वंश, कुल, खानदान (रू०भे०—गोत) २ कुल या वंश की संज्ञा जो उस कुल के किसी मूल पुरुष के अनुसार होती है. ३ पर्वत, पहाड़ (ह.नां.) ४ पत्थर (ह.नां., अ.मा.) ५ संतति, संतान. ६ बंधु, भाई। ७ समूह, जत्था, झुंड।

गोत्र-गवाळ—देखो 'गोत्त-गवाळ'। उ०—दळपत्त छात्रपत मालदे, गढ़पत्त गोत्र-गवाळ। सत दत्त लूंणकरन्न समवड़ वडै विरद विसाळ।—नैणसी

गोत्रज-संपु०—१ एक ही गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति. २ शिलाजीत. ३ पत्थर।

गोत्रजण-संस्त्री०—पड़िहार वंश की आराध्य देवी (बां.दा.ख्यात)

गोत्रभिदी, गोत्रभेदी-संपु० [सं० गोत्रभेदिन्] १ इन्द्र (अ.मा., नां.मा.) २ वज्र (अ.मा.)

गोत्रसुता-संस्त्री० [सं०] पार्वती, गौरी।

गोत्रहर-संपु० [सं०] वज्र।

गोत्रहरी-संपु०—इन्द्र (अ.मा.)

गोत्रा-संस्त्री०—१ पृथ्वी (नां.मा., ह.नां.) २ गाय।

गोत्राड़—देखो 'गोतराड़' (रू.भे.)

गोत्राचार-संपु०—विवाह आदि अवसरों पर कुलपुरोहित द्वारा कराया जाने वाला गोत्र का उच्चारण।

वि०वि०—यह गोत्रोच्चारण कन्या और वर का पिता करता है।

गोत्री-वि० [सं०] समान गोत्र वाला, गोत्रज।

गोथणी-संस्त्री० [सं० गोस्तनी] मुनक्का, दाख (डिं.को.)

गोथणौ-संपु० (बहु०—गोथणा) हरीसा के उस छोर पर लगने वाली काष्ठ की छोटी कील जहाँ जुंआ बांधा जाता है। ये गाय के स्तन के आकार की होती हैं।

गोथळी-संस्त्री० [सं० गुद=परिवेष्टने] थैली। उ०—निठ दो तीन सेर आटौ जिकौ बड़ै जतन सूं गोथळी में घाल लियौ।—नैणसी (देखो 'कोतळी'-रू.भे.)

गोदंती-वि० [सं० गोदंत] १ कच्चा. २ श्वेत (हरताल)

संपु०—एक प्रकार की मणि या बहुमूल्य पत्थर।

गोद-संस्त्री०—१ बालकों को उठाने के लिये वक्षस्थल के पास एक या दोनों हाथों को मोड़ कर बनाया जाने वाला घेरा, उत्संग। २ साड़ी आदि का वह भाग जो वक्षस्थल के पास रहता है, आंचल।

गोदड़-संपु०—हिन्दुओं का एक संप्रदाय विशेष या इस संप्रदाय का साधु जो गुदड़ी ही धारण किये रहता है (रा.सा.स.)

गोवणी–सं०स्त्री०—वह सुई या नुकीला औजार जिससे गोदने का कार्य किया जाता है। चुभाने, गाड़ने या गोदने की कोई वस्तु।

गोवणो, गोदबो–क्रि०स०—१ किसी नुकीली चीज को चुभाना, गड़ाना. २ छेड़छाड़ करना।

गोवणहार, हारो (हारी), गोवणियो—वि०।

गोदाणो, गोदाबो, गोदावणो, गोदावबो—प्रे०रू०।

गोदियोड़ो, गोदियोड़ो, गोदयोड़ो—भू०का०कृ०।

गोदीजणो, गोदीजबो—कर्म वा०।

गोदान–सं०पु० [सं० गोदान] गाय का विधिवत् संकल्प करके ब्राह्मण को दान करने की क्रिया।

गोदाम–सं०पु० [अं० गोडाउन] वह सुरक्षित विशाल गृह जहां बहुत-सा माल-सबाब रक्खा जाता है।

गोदा, गोदावरी–सं०स्त्री० [सं०] गोदावरी नदी।

गोदि, गोदी—देखो 'गोद' (रू.भे.)

गोदौ–सं०पु० [सं० गौ] १ युवा बैल, वृषभ. २ सांड।

गोध–सं०पु०—१ बबूल की फली (क्षेत्रीय) २ मनुष्य, नर (ह.नां.)

गोधन–सं०पु० [सं०] १ गायों का समूह, गायों का झुंड।

उ०—१ अति सोभ गोधन हरित अवनी, सरिस गत जळ सोभणं।
—रा.रू.

उ०—२ मुरली कर लकुट लेऊं, पीत वसन धारूं। आछी गोप भेख मुकट, गोधन संग चारूं।—मीरां २ गौ रूपी सम्पत्ति।

उ०—भाखा खीणा भड़ एवड़ लै आता, धाया धीणा रा गोधन रा धाता।—ऊ.का. ३ एक प्रकार का तीर जिसका फल चौड़ा होता है।

गोधम–सं०पु०—झगड़ा, टंटा। उ०—किता कटहड़ा कूदिया चढ़-चढ़ चमकारे, खड़ा थड़ा पड़िया किता क आखे अपणारे। हुवो धम गोधम इसौ, गया जम भी हारे। पांवां तळ दिया पिसण, कुण सके वकारे।—पदमसिंहजी री वात

गोधर–सं०पु० [सं०] १ पर्वत, पहाड़. २ चंद्रमा (डि.को.)

गोधरम्म–सं०पु० [सं० गोधर्म्म] अपने पराये का कुछ भी विचार न रखते हुए पशुओं की भांति समागम करने का कार्य।

गोधळियौ–सं०पु०—छोटा बैल। उ०—पहु गोधळिया पास, आळू धा अकबर तणा। रांणो खिमै न रास, प्रघळो सांड प्रतापसी।
—प्रथीराज राठौड़

गोधळूक—देखो 'गोधूळक' (रू.भे.) उ०—तीज रो गोधळूक सावी।
—वरसगांठ

गोधा–सं०पु०—सिसोदिया वंश की एक शाखा।

गोधार–सं०पु०—१ इन्द्र। उ०—किरंटी गोधार वाळी पव्वै पत्रां सीस कना।—हुकमीचंद खिड़ियौ

[सं०] २ गोह नामक जंतु (डि.को.)

गोधि–सं०स्त्री० [सं०] कपाट, ललाट, भाल (डि.को.)

गोधूळीक–सं०पु०—गोधूलि वेला।

वि०—देखो 'गोधूळक' (रू.भे.)

गोधुळूक–सं०पु०—गायों के खुरों से उड़ने वाली धूलि।
(मि० गोधूळ)

उ०—असि पाइ खेह ऊडी उलुक, गो गइण विची मिळि गोधुळुक।
—रा.ज.सी.

वि०—देखो 'गोधूळक' (रू.भे.)

गोधूम–सं०पु० [सं०] गेहूँ (डि.को.)

गोधूळ–सं०स्त्री०—१ संध्या के समय जंगल से लौटने पर गायों के खुरों से उडी हुई धूल. २ वह समय जब इस प्रकार की धूलि उड़ती हो, गोधूलि वेला।

गोधूळक–सं०स्त्री०—गोधूलि वेला। उ०—तिसै ऊगा री फौजां रा तूंगा था तिके आय भेळा हुआ। ऊगै साहनै कह्यो—आज गोधूळक रा फेरा लिवाय द्यौ, जावौ तोरण चंवरी जुदी-जुदी बंधावौ।
—कहवाट सरवहिया री वात

वि०—गोधूलि वेला संबंधी।

गोधूळकियौ, गोधूळक्यौ–वि०—गोधुलि वेला संबंधी।

सं०पु०—गोधुलि वेला। उ०—चाकर एक भींवै माता कनै मेल्यौ नै कहायौ गोधूळक्यां रौ साहौ छै। वींदणी ले आयौ छूं।
—कहवाट सरवहिया री वात

गोधूळिक—देखो 'गोधूळक' (रू.भे.) उ०—गोधूळिक वेळा जब हुई, जोवा जांन पधारी जूई। तब पिंगळ तेडी सुभ वार, परिणाव्यउ करि मंगळच्यारि।—ढो.मा.

गोधूळिकियौ—देखो 'गोधूळकियौ' (रू.भे.) उ०—कोई थेट गोडा रै गयां आंटौ·उठतौ, आरै करि तोरण बांदि चंवरी मांय सिधाया। गोधळिकियां रा फेरा लीया।—जगदेव पंवार री वात

गोधेय, गोधेर, गोधेरक–सं०पु० [सं०] गोह नामक जन्तु (डि.को.)

गोधौ–सं०पु०—युवा बैल या सांड। उ०—भूसर भार न झललही, गोधा गावड़ियांह। कवियण किण पायौ कुरब, मांगै मावड़ियांह।—बां.दा.

गोनंद–सं०पु० [सं०] १ कार्तिकेय के एक गण का नाम. २ पुराणों के अनुसार एक देश।

गोपंगण, गोपंगना–सं०स्त्री० [सं० गोपांगना] गोपियां, गोप जाति की स्त्री। उ०—चीर चोरी तर ऊपर चढ़ियो, गोपंगना तणा गोपाळ। अरज करै ऊभी जळ अंतर, दे व्रज भूखण दीनदयाळ।—बां.दा.

गोप–सं०पु० [सं०] १ गौ का पालन करने वाला, गौ की रक्षा करने वाला, ग्वाला. २ गोशाला का अध्यक्ष. ३ भूपति, राजा (ह.नां.) ४ एक गंधर्व का नाम. ५ गले में पहिनने का सोने का आभूषण. ६ श्रीकृष्ण. ७ व्रजभूमि। उ०—अनेक जाति जाति भांत भांत मेघ आरुहै। धुवै कि मेघमाळ गोप सीस कोप धारुहै।—रा.रू. ८ गाय। उ०—दई राव रै ढल, 'जींद' नै दो गंगाजळ। गढ़वण राखी गोप कमंध, पाबू कज काजळ।—पा.प्र.

वि०—गुप्त। उ०—रजस्वला नारीह, कथा गोप किणनूं कहूं। समझौ हर सारीह, मरम मरम री सांवरा।—रामनाथ कवियौ

गोफण—देखो 'गोफण' (रू.भे.)

गोपत, गोपति—सं०पु० [सं० गोपति] १ शिव. २ विष्णु. ३ सूर्य. ४ राजा. ५ वृषभ, सांड. ६ ग्वाल, गोपाल. ७ श्रीकृष्ण (अ.मा.)

गोपथ—सं०पु०—अथर्ववेद का एक ब्राह्मण।

गोपद—सं०पु०—पृथ्वी पर पड़ा हुआ गाय के खुर का चिन्ह।

गोपदांन—सं०पु०यौ० [सं० गोप्य+दान] वह दान जिसे देने वाले के सिवाय और कोई व्यक्ति दानदाता का नाम न जान सके। (मि० गुपतदांन)

गोपन—सं०पु० [सं०] गोपनीयता लुकाव, छिपाव।

गोपपति—सं०पु०यौ० [सं० गोप+पति] श्रीकृष्ण (अ.मा.)

गोपांगना—देखो 'गोपंगना' (रू.भे.)

गोपांनसि—सं०पु०—कच्चे मकानों की छत का वह भाग जो दीवार से बाहर निकला होता है। अरवाती, ओलती (मि०—नेव)

गोपाचळ—सं०पु० [सं० गोपाचल] १ ग्वालियर का प्राचीन नाम. २ ग्वालियर के निकट का पर्वत।

गोपाटडा—सं०स्त्री०—एक प्रकार की गोह।

गोपायित—वि० [सं०] गुप्त, रक्षित, गोपनीय।

गोपाळ—सं०पु० [सं० गोपाल] १ गौओं का पालन-पोषण करने वाला, ग्वाला. २ श्रीकृष्ण (ह.नां.) ३ राजा. ४ परमेश्वर (ह.नां.) ५ इन्द्रियों को पालने वाला, मन. ६ एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्रायें होती हैं। इसमें क्रमशः ८ एवं ७ पर यति होती है।

गोपाळक—देखो 'गोपाळ' (रू.भे.)

गोपाळखवास—सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गोपालदेओत—सं०स्त्री०—भाटी वंश के क्षत्रियों की एक शाखा अथवा इस शाखा का व्यक्ति।

गोपाळी—सं०स्त्री०—१ गायों का पालन करने वाली. २ कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

गोपाळु—सं०पु० [सं० गोपाल] श्रीकृष्ण (अ.मा.) उ०—कोपे कराळ् अंध जाळ् बंध बाळ् बोल ए। सब में गोपाळू है दयाळू, मार डाळ् कोल ए।—करुणासागर

गोपाळोत—सं०स्त्री०—राठौड़ वंश की एक शाखा।

गोपि—देखो 'गोपी' (रू.भे.)

गोपिका—सं०स्त्री० [सं०] गोप की स्त्री, अहीरनी, ग्वालिन।

गोपिरासिरमण—सं०पु०—गोपियों के साथ रास लीला करने वाले, श्रीकृष्ण (नां.मा.)

गोपी—सं०स्त्री० [सं०] १ ग्वाले की स्त्री, ग्वालिन, गोप-पत्नी. २ ब्रज की वे युवतियां या वयस्क कुमारियां जो कृष्ण के प्रेम में पगी हुई थी, जिनके साथ कृष्ण ने बाल-क्रीडा या रास-क्रीड़ा की थी। उ०—वहे लार लेवार पिंडार वाळें, मवा नेह सूं देह गोपी मिहाळें। —ना.द.

गोपीकामोदी—सं०स्त्री०यौ०—कामोद और केदार राग के मेल से बनने वाली एक संकर रागिनी (संगीत)

गोपीचंण—देखो 'गोपीचंदण' (रू.भे.)

गोपीचंद—सं०पु०—भर्तृहरि की बहिन मैनावती के पुत्र कहे जाने वाले एक प्राचीन राजा जिनका राज्य प्राचीन समय में बंगाल के रंगपुर में था। इन्होंने अपनी माता से उपदेश पाकर वैराग्य धारण कर लिया था।

गोपीचंदण, गोपीचंदन—सं०पु०—एक प्रकार की पीली मिट्टी जो द्वारिका के एक सरोवर से निकलती है। वैष्णव लोग इसका तिलक लगाते हैं। उ०—सतखिणि चडीउ राउळ कान्ह, सये राउते करयां सनान। गोपीचंदनि चरच्यां भाळ, कंठि धरी तुळसी नी माळ।—कां.दे.प्र.

गोपीचंद्र—देखो 'गोपीचंद' (रू.भे.)

गोपीजनवल्लभ—सं०पु०—१ गोपियों और भक्तों का प्यारा, श्रीकृष्ण. २ ईश्वर, परमात्मा (नां.मा.)

गोपीथ—सं०पु० [सं०] १ वह सरोवर जिसमें गौएँ जल पीती हैं. २ एक प्राचीन तीर्थ।

गोपीनाथ, गोपीपत, गोपीपति, गोपीवर, गोपीवल्लभ, गोपीस—सं०पु०यौ०—गोपियों के प्रिय, श्रीकृष्ण (डि.को., नां.मा., ह.नां.मा.)

गोपुर—सं०पु० [सं०] स्वर्ग, गोलोक।

गोपेंद्र—सं०पु०—१ श्रीकृष्ण. २ गोपों में श्रेष्ठ, नंद।

गोपौ—सं०पु०—१ गोप, ग्वाल. २ गाय का बछड़ा. ३ गाय के बांधने का स्थान।

गोप्रवेस—सं०पु०यौ० [सं० गो+प्रवेश] गौओं का जंगल से चर कर पुनः लौटने का समय, गोधूलि वेला।

गोफण—सं०स्त्री० [सं०] सूत का गुंथा हुआ या चमड़े का बना हुआ एक प्राचीन शस्त्र जिसके बीच में एक चौड़ी पट्टी होती है। यह पट्टी प्रायः सर्प के फन के आकार की होती है जिसके दोनों किनारों पर एक-एक लम्बा कस्सा होता है। इसमें पत्थर या ढेले रख कर फसल की रक्षार्थ चिड़ियों आदि को उडाने के लिए अथवा प्रतिपक्षी पर फेंके जाते हैं। (अल्पा०—गोफणियौ)

गोफणियौ—१ देखो 'गोफण' (अल्पा०) २ इस 'गोफण' में रख कर फेंका जाने वाला पत्थर या ढेला। उ०—माळै चढ ऊभा रख-वाळ, दाकळ गोफणियां सूंसाय। उडै जद चिड़ियां ढूळ अलेख, अज-कता आभै में गम जाय।—सांझ

कहा०—गोफणियौ री गोफणियौ नै ठाकुरजी रा ठाकुरजी—एक ही वस्तु को अनेक स्थानों में भिन्न-भिन्न रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। उस पूजनीय व्यक्ति के प्रति जो हर किसी को सलाह देने एवं छोटे से छोटा कार्य करने को तैयार हो।'

गोफा, गोफियौ—देखो 'गोफरण' (रू.भे.)

गोबद्धन–सं०पु० [सं० गोवर्धन] गोवर्धन पर्वत। उ०—**गोबद्धन** कर लैरण को जिम कन्ह कसाया।—वं.भा.

गोबर–सं०पु० [सं० गोविट्] गो-विष्टा, गो-मल।
पर्याय०—गायबिट, गोमय, पोटो, भूमिलेप।
कहा०—गोबर को घड़ तौ काठ की तरवार—अगर गोबर का घट बना हो तो उसके लिए काठ की तलवार ही काफी होगी। व्यक्ति एवं प्रतिपक्षी को देख कर उसके अनुसार ही शस्त्रों का प्रयोग करने पर

गोबर-गणेस–वि०यौ०—१ वह जो देखने में बेडौल मालूम हो, भद्दा, बदसूरत २ मूर्ख या बेवकूफ व्यक्ति।

गोबरधण, गोबरधन–सं०पु०—गोवर्धन पर्वत।

गोबरियौ—१ देखो 'गोबर-गणेस' (रू.भे.) २ गोबर इकट्ठा करने वाला।

गोबरी–सं०स्त्री०—कंडा, उपला, गोहरा।

गोबी—देखो 'गोभी' (रू.भे.)

गोब्यंद—देखो 'गोविंद' (रू.भे.) उ०—**गोब्यंद** सत क्रत गेह सीत नेह सजरण।—र.ज.प्र.

गोभी–सं०स्त्री०—एक शाक विशेष जिसकी खेती वर्तमान समय में भारत में अधिकता से होने लगी है। यह तीन रूपों में प्राप्य है—(१) फूल गोभी, (२) गांठ गोभी, (३) पत्ता गोभी। फूल गोभी को ही जन-साधारण गोभी कह कर पुकारा करते हैं। यह फुट, डेढ़-फुट का पौधा होता है जिसके चौड़े और लंबे पत्तों के बीच में छोटे-छोटे मुंहबंधे फूलों का गुच्छा होता है जिसका शाक बनता है।

गोभ्रत–सं०पु० [सं० गोभृत] पर्वत, पहाड़ (डि.को.)

गोमंग–सं०पु०—१ पृथ्वी (डि.को.) २ आकाश।

गोमंत–सं०पु० [सं०] सह्याद्रि के अंतर्गत एक पहाड़ी जहां गोमती देवी का स्थान है। यह सिद्ध पीठ माना जाता है।

गोमंद—देखो 'गोविंद' (रू.भे.)

गोम–सं०स्त्री० [सं० गो+रा०प्र०म] १ पृथ्वी, भूमि (अ.मा.)
उ०—उडी रज डंबर अंबर **गोम**, बिहंगम की पर बज्जि व्योम।
—ला.रा.
२ आकाश (नां.मा.) ३ नगाड़ा (डि.को.) ४ मेघ (डि.को.)
सं०पु०—वह घोड़ा जिसके पेट के नीचे भौंरी हो (शा.हो.)
वि०—गुप्त, छिपी हुई।

गोमगंगा, गोमगमण–सं०स्त्री०—गंगा नदी, भागीरथी (ह.नां.)

गोमड़ो–सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गोमतसर–सं०पु०—राजस्थान में जालोर राज्य के भीनमाल नगर का प्राचीन नाम।

गोमती–सं०स्त्री०—१ सैदपुर के पास गंगा नदी में मिलने वाली एक नदी जो शाहजहांपुर की एक झील से निकलती है (अ.मा.) २ एक देवी जिसका प्रधान स्थान गोमंत पर्वत पर है. ३ टिपरा की एक छोटी नदी. ४ ग्यारह मात्राओं का एक छंद।

गोमतीसिला–सं०स्त्री०यौ० [सं० गोमतीशिला] हिमालय पर्वत की एक चट्टान जिसके लिये यह बात प्रसिद्ध है कि यहां पहुंच कर अर्जुन का शरीर बर्फ से गल गया था।

गोमत्ती—देखो 'गोमती' (रू.भे.) उ०—सावत्री सरसती गवरि गंगा **गोमत्ती**।—रा.रू.

गोमय–सं०पु० [सं०] १ गोबर. [सं० गोमायु] २ सियार, गीदड़।
उ०—चूंडाळी चहकंय वक **गोमय** बोटी वहे। पौंहरातू आ पखेरू भूरा रा लूं भांमरण।—पा.प्र.

गोमर–सं०पु० [सं० गो] १ आकाश, नभ. २ पृथ्वी।

गोमरी–वि०स्त्री०—१ भूखा. २ गंवार. ३ ग्रामीण।

गोमळ–सं०पु० [सं० गोमल] गोबर।

गोमसावझड़ो–सं०पु०—डिंगल का एक गीत (छंद) जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः तीन सगण और एक यगण होता है।

गोमांन–सं०पु० [सं० गोमान] गायों का स्वामी, गायों का मालिक।

गोमा–सं०स्त्री०—गोमती नदी।

गोमाय, गोमायु, गोमायू–सं०पु०—सियार, गीदड़। उ०—गंडक **गोमाय** पायु पळ पावै, वायस वांसे चख चांचां भख चावै।—ऊ.का.

गोमाळ–सं०स्त्री० [सं० गोमाला] गांव की गायों का समूह, गोझुण्ड।

गोमी–सं०पु० [सं० गामिन्] १ सियार, गीदड़. २ गायों का स्वामी, गोपाल. [सं० गो] ३ पृथ्वी।

गोमुख–सं०पु० [सं०] १ गाय का मुंह. २ एक शंख विशेष जिसकी आकृति गाय के मुंह के समान होती है. ३ देखो 'गोमुखी' (१) ४ योग का एक आसन. ५ इन्द्र के पुत्र जयन्त के सारथी का नाम।

गोमुखी–सं०स्त्री० [सं०] १ माला का गुप्त रूप से जाप करने के लिए प्रयोग में ली जाने वाली एक सूती या ऊनी थैली विशेष जिसकी आकृति गाय के मुंह के समान होती है. २ चित्तौड़ का एक तीर्थ-स्थल. ३ गाय के मुख की आकृति का गंगोतरी का वह स्थान जहां से गंगा देवी निकलती है. ४ घोड़े की एक भंवरी जो उसके ऊपरी होठ पर होती है (शुभ)

गोमूत, गोमूत—देखो 'गोमूत्र' (रू.भे.)
वि०—पीला॰ (डि.को.)

गोमूत्रिका–सं०स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का चित्रकाव्य। इसमें अक्षरों को पढ़ने का ढंग ठीक उसी प्रकार से चलता है जिस क्रम से बैलों के मूतने से जमीन पर रेखा गई रहती है. २ एक प्रकार की घास जिसके बीज सुगंधित होते हैं।

गोमेचा–सं०पु०—राठौड़ों की एक शाखा जो राठौड़ राव मल्लिनाथजी के पुत्र कूंपा से आरम्भ हुई मानी जाती है।

गोमेद, गोमेदक–सं०पु० [सं०] एक प्रसिद्ध मणि जिसकी गणना नौ रत्नों में होती है (अ.मा.)

गोमेध–सं०पु०—अश्वमेध यज्ञ के ढंग का एक यज्ञ जिसमें गौ से हवन किया जाता था। कलियुग में इसका अनुष्ठान पूर्ण वर्जित है।

गोमेदक–सं०पु०—१ नग (अ.मा.) २ देखो 'गोमेदक' (रू.भे.)

गोयंदपोता–सं०पु०—चारणों के याचक, ढोली।

गोयंदासोत–सं०पु०—राठौड़ों की एक उपशाखा।

गोयंदौ–सं०पु० [फा० गोइंद] गुप्तचर, भेदिया, जासूस।

गोय–सं०पु०—वचन (डिं.को.)

गोयड़ौ–सं०पु०—१ नकुल या नेवला से मिलता-जुलता किन्तु उससे कुछ बड़ा विषैला जन्तु. २ रहँट के उपकरणों में वह छोटी लकड़ी की कील जो माल को घुमाने वाले घेरे को उलटा फिरने से रोकने वाली लकड़ी को स्थिर रखने के लिए कुयें के किनारे पर पत्थर में लगाई जाती है।

गोयणौ–सं०पु०—१ एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो पशुओं के शरीर पर चिपक कर उनका रक्तपान करता है. २ विश्नोई जाति के लोगों का गुरु जो उनके विवाह आदि संस्कार कराता है।

गोयणौ, गोयबौ–क्रि०स०—छिपाना। उ०—हारि जीति का पासा डारघा, बाजी जीती डाब विचारघा। खेलणहार गया मुख गोय, ताका पला न पकड़े कोय।—ह.पु.वा.

गोयर—देखो 'गो'र' (रू.भे.)

गोयरौ—देखो 'गोयड़ौ' (१) (रू.भे.)

गोयल–सं०पु०—एक क्षत्रिय वंश या इस वंश का व्यक्ति।

गोयलौ–सं०पु०—एक प्रकार का घास जो प्रायः गेहूँ की फसल में गेहूँ के पौधों के साथ उत्पन्न होता है।
कहा०—गहुं'र गोयलौ भेळा ही नीपजै—गेहूँ और गोयला नामक घास साथ ही उत्पन्न होते हैं। अच्छे और बुरे सब साथ ही उत्पन्न होते हैं एवं इस दुनिया में साथ ही पनपते हैं।

गोया–क्रि०वि०—अगरचे, यदि।

गोयील—देखो 'गोयल' (रू.भे.)

गोरंगी–वि० स्त्री० [सं० गौरंग+ई] गौर वर्ण वाली, गौरांगना।
उ०—मारू देस उपन्निया, ताह कां दंत सुसेत। कूंझ बचा गोरंगियां, खंजर जेहा नेत।—ढो.मा.

गोरंभ, गोरंभौ–सं०पु०—१ योद्धा, वीर. २ युद्ध, कलह, झगड़ा. ३ भंडार.
सं०स्त्री०—४ पृथ्वी, भूमि (डिं.नां.मा.)

गोर–सं०पु०—१ किनारा, तट। उ०—पाड़ खळां रण पौढ़ियो, चाड प्रवाड़ै लज्ज। गढ़ जोधांणै गोर मैं, गढ़ जोधांणै कज्ज।—रा.रू.
[फा० गौर] २ गौर, ध्यान चिंतन। उ०—राजा, बीजा भाई भतीजां सगळां सराह्या नै राजा कह्यौ—आ घास नै कोरड़ री निचिंताई कीधी तौ म्हे थांसूं निपट घणी गोर करिस्यां, हासल मांहे रवायत करस्यां।—कहवाट सरवहिया री वात
सं०स्त्री० [फा० गोर] ३ कब्र, समाधि। उ०—सो डोकरी आधी रात में बादसाह री गोर ऊपर जाय घणी दीनता सूं प्रभू नू बीनती करी।—नी.प्र.
(रू०भे०—घोर)
[सं० गौरी] ४ पार्वती, गौरी. ५ सुन्दर स्त्री. ६ अप्सरा।
वि०—गौरवर्णयुक्त, सुंदर। उ०—बाजूबंध बंधे गोर बाहु बिहुं, स्यांम पाट सोहंत सिरी।—वेलि.

गो'र–सं०पु०—१ गाँव के मध्य या गाँव के बाहर का खुला स्थान।
उ०—कंथ पराये गो'र में, भाजै सोहि गंवार। लांछण लावै दुहुं कुळां, मरणौ एकहि वार।—डाढ़ाळा सूर री वात
सं०स्त्री०—२ गायों का समूह. ३ रात्रि में गायों को बंद करके रखने का अहाता।

गोरक, गोरक्ख–सं०पु० [सं०गोरक्षक] १ देव वृक्षों के अंतर्गत एक देव-वृक्ष. २ एक प्रसिद्ध अवधूत या हठ योगी, गोरखनाथ (वि.सं.) ३ गोरक्षक. ४ जितेन्द्रिय।

गोरक्षासण, गोरक्षासन–सं०पु०—योग के चौरासी आसनों के अंतर्गत एक आसन। वृषण की नीचे की सीवनी के वाम भाग में वाम पाद की एडी रखना और दक्षिण भाग में दक्षिण पाद की एडी रखना चाहिए। फिर दोनों एडियों को उलटा कर जिससे अंगुलियां पीछे की ओर जायें, उन्हीं पर शरीर का बोझ देकर बैठना चाहिए। दोनों हाथों को पीठ की तरफ लाकर हाथ के पंजे से दोनों पाँव की तलियों को आमने-सामने भिड़ा कर जालंधर बंध कर के नासाग्र दृष्टि रख कर स्थिर होकर बैठने से गोरक्षासन होता है। इसे भद्रासन भी कहते हैं।

गोरख—देखो 'गोरक्ख' (रू.भे.) (ऊ.का.)

गोरखआंबली–सं०स्त्री०—मोटे तनेदार वृक्षों की जाति का एक बड़ा वृक्ष जो मध्य व दक्षिणी भारत में अधिकता से होता है। इसका तना मोटा व डालियां खूब फैली हुई होती हैं। इसके फल के बीजों का प्रयोग औषधि में किया जाता है।

गोरखकळी–सं०स्त्री०—एक प्रकार का पौधा अथवा इस पौधे पर लगने वाला पुष्प विशेष।

गोरखकाकड़ी–सं०स्त्री०—एक प्रकार की ककड़ी, गोरख ककड़ी।

गोरखधंधौ–सं०पु०यौ०—१ कई तारों, कड़ियों या लकड़ी के टुकड़ों इत्यादि का समूह जिनको विशेष युक्ति से परस्पर जोड़ा या अलग किया जाता है. २ वह पदार्थ या काम जिसमें बहुत झगड़ा या उलझन हो. ३ उलझन, जटिलता। उ०—मायाजाळ जंजाळ है, जग गोरखधंधा।—केसोदास गाडण
४ गूढ़ बात।

गोरखनाथ–स०पु० [सं० गोरक्षनाथ] पन्द्रहवीं शताब्दी में होने वाले एक प्रसिद्ध अवधूत और सिद्ध पुरुष का नाम जिनका निवासस्थान गोरखपुर माना जाता है। इनका चलाया हुआ गोरखपंथ अब तक प्रचलित है।

गोरखपंथ–सं०पु०यौ०—सिद्ध पुरुष श्री गोरखनाथ द्वारा चलाया हुआ एक सम्प्रदाय विशेष।

गोरखपंथी-सं०पु०—गोरखपंथ का अनुयायी ।

गोरखमुंडी-सं०स्त्री०—१ भूमि पर पसरने वाली एक प्रकार की घास जिसकी पत्तियां उँगली के समान लंबी होती हैं । इसका प्रयोग प्रायः औषधि में अधिक किया जाता है. २ एक जड़ विशेष (अमरत)

गोरखी—देखो 'गोरखकाकड़ी' ।

गोरखेस-सं०पु०—प्रसिद्ध सिद्ध पुरुष गोरखनाथ ।

गोरखौ-सं०पु०—१ भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत की तराई में स्थित पर्वतीय प्रदेश नैपाल या भूटान का निवासी.
२ देखो 'गोरखनाथ' ।
(अल्पा०—गोरखियौ)

गोरख्ख—देखो 'गोरक्ख' (रू.भे.)

गोरख्या—देखो 'गोरखकाकड़ी' ।

गोरड़ी—देखो 'गोरी' (अल्पा०) उ०—जो थूं सायब नीं आवियौ, अणि काजळिया री तीज । चमंक मरैली गोरड़ी, देख खिवंती बीज ।
—लो.गी.

गोरज-सं०स्त्री०—गायों के खुर से उड़ी हुई धूल, गर्द ।

गोरजा-सं०स्त्री०—पार्वती, गौरी । उ०—देवी गोरजा रूप तूं रुद्र राता, देवी रुद्र रै रूप तूं जोग धाता ।—देवि.
२ गौर वर्ण की स्त्री, सुंदरी ।

गोरजी-सं०पु० [सं० गुरु+रा०जी] ब्राह्मण, द्विज ।

गोरज्या—देखो 'गोरजा' (रू.भे.) उ०—अयरापति चढ़ि चाल्यौ राय, ली अस्त्री अरधंग वइसाय । ज्यूं ईस्वर संग गोरज्या, चहुवांण बंस हुव उछाह ।—वी.दे

गोरटौ-वि० (स्त्री० गोरटी) गौर वर्ण वाला, सुंदर ।

गोरण-सं०स्त्री०—विवाहोपरांत दूसरा दिन । उ०—गोरण दिन सूती सखी, वागा ढोल विणास । बांह उसीसौ खींचियौ, जागी पटक निसास ।—वी.स.
सं०स्त्री०—ग्वाले की स्त्री, ग्वालिन ।

गोरणी-सं०स्त्री०—स्त्रियों की एक प्रथा विशेष जिसमें स्त्री अपने जीवन-काल में एक बार चौबीस पात्रों में मेवा या मगद भर कर अपने परि-वार की सुहागिन स्त्रियों में वितरित करती है । यदि जीवनकाल में यह कार्य स्वयं न कर सके तो मृत्योपरांत उसके निकटतम संबंधी उसके निमित्त इस प्रथा को पूरी करते हैं. २ स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले विशेष व्रतोत्सव यथा गणगौर, ऊबछट, गाजव्रत आदि के समय भोजन करने वाली सुहागिन स्त्री ।

गोरधन—देखो 'गोवरधन' (रू.भे.)

गोरपत, गोरपति-सं०पु०—१ शिव, महादेव. २ बादशाह ।

गोरबंद, गोरबंध-सं०पु०—१ ऊँट की सजावट के लिए उसके गले में पहिनाया जाने वाला एक आभूषण विशेष. २ इस प्रकार के आभू-षण की प्रशंसा में गाया जाने वाला लोक गीत ।

गोरम-सं०पु०—१ हिंजड़ों के देवता ।
वि०वि०—अरावली पर्वत शृंखला में सोजत तहसील में गोरम पहाड़ पर फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को इस देवता के नाम पर मेला लगता है । इसमें बहुत से हिंजड़े इकट्ठे होते हैं और नाच गान करते हैं. २ गोरम नामक एक पहाड़ । कहा जाता है कि इस पर्वत पर कभी-कभी अपनेआप गर्जना होती है । यदि इस गर्जना के समय किसी के संतान उत्पन्न होती है तो वह नपुंसक होती है. ३ नाथ सम्प्रदाय का एक सिद्ध पुरुष । ४ देखो 'सोरंभ' ।

गोरमटियौ-सं०पु०—वह खेत जहाँ केवल खरीफ की फसल होती है ।

गोरमिंट-सं०पु० [अं० गवर्नमेंट] १ हकूमत, शासन. २ राज्य-सत्ता. ३ सरकार ।

गोरमिंटी-वि०—गवर्नमेंट का, गवर्नमेंट संबंधी, सरकारी ।
उ०—क्या कंवूं ? म्हारी डोकरी गोरमिंटी है । इयै ऊपर म्हारौ जोर को चालै नी ।— वरसगांठ

गोरमौ-सं०पु०—गाँव के मध्य का या गाँव के बाहर का खुला हुआ स्थान ।
कहा०—गांव री थत गोरमा सूं ही नजर आवै—गाँव की स्थिति का पता उसके समीपवर्ती भाग से ही लग जाता है ।

गोरयौ-सं०पु०—१ एक पक्षी विशेष. २ गोरी चमड़ी का व्यक्ति, अंग्रेज. ३ रात्रि में गौओं के रखने का स्थान ।
वि०—गौर वर्ण वाला ।

गोरल-सं०स्त्री०—गणगोर (वि०वि० देखो 'गणगोर')
उ०— कड़ मोड़ै घोड़ै चढ़ै ए चाल निरखतो जाय । ओ वर देवी माता गोरल ए, म्हे थांनै पूजण जाय ।—लो.गी.

गोरवा-सं०स्त्री०—एक प्राचीन राजपूत वंश ।

गोरवाळ-सं०पु०—१ चौहान वंश की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति. २ एक प्राचीन राजपूत वंश ।

गोरवौ—देखो 'गो'र' (रू.भे.) उ०—तिणसूं सूराचंद रै गोरवै चौताळै असैंधा असवार देखै तरै पूछण री गाढ़ घणी करै ।
—जैतसी ऊदावत री वात

कहा०—गाड़ी गोरवै ही भूखां मारै—गाड़ी का भरोसा नहीं, वह गांव के निकट पहुँचते-पहुँचते भी खराब हो सकती है और गाड़ीवान के पास उसे ठीक करने के औजार न रखने के कारण वहीं भूखों मरना पड़ता है । कल के बल से चलने वाले उपकरणों का क्या भरोसा, न मालूम कब खराब हो जायें ।

गोरस-सं०पु० [सं०] १ दूध, दुग्ध (अ.मा.) २ दही (ह.नां.) ३ तक्र, मट्ठा, छाछ (अ.मा.) ४ मक्खन. ५ इन्द्रियों का सुख ।

गोरस्यौ-सं०पु०—गोरस अर्थात् दूध-दही बेचने वाला ।

गोरह—देखो 'गोरस' (रू.भे.)

गोरहर-सं०पु०—जैसलमेर का किला । उ०—बाहड़ मिर खांबड़ कोटड़ै, छाहोटण सवाईयौ । गोरहर लगौ जु मेहणौ, स्यै ऊतारण आवियौ ।
—नैणसी

गोरा-सं०स्त्री०—१ पार्वती, गौरी. २ गौर वर्ण की स्त्री, सुंदरी।

गोराई-सं०स्त्री०—१ गोरापन. २ सुंदरता, सौन्दर्य।

गोरायौ, गोराबौ-सं०पु०—गौर रंग का एक सर्प विशेष।

गोरि-सं०स्त्री०—गांव का वह चौक जहां गांव के मवेशी इकट्ठे होते हैं।

गोरियाबर—देखो 'गोरायौ' (रू.भे.) उ०—चांनणी रात में कांई देखें के सांमी मारग ऊपरां दो सरप जुद्ध करै। एक प्रचंड गोरियाबर नै बीजौ कालिंदर।—वांणी, विजैदांन देथौ

गोरियाराउ-सं०पु०—मुसलमान पादशाह, बादशाह। उ०—गोरियाराउ थळ माळ आहि।—रा.ज.सी.

गोरियौ-वि०—गोरे रंग का, गौर वर्ण का, सुंदर. १ अंग्रेज. सं०पु०—२ पशुओं को बांधने का वह छोटा स्थान जो किसी से अहाते घिरा हो।

गोरिलौ, गोरिल्लौ-सं०पु०—प्राय: अफ्रीका के जंगलों में पाया जाने वाला वनमानुष जाति का एक जंगली प्राणी।

गोरिसुत-सं०पु० [सं० गौरी+सुत] १ कार्तिकेय (डि.को.) २ गजानन, गणेश।

गोरी-सं०पु० [सं० गो+अरि] १ यवन, मुसलमान।
यौ०—गोरीराय, गोरीपति।
(अल्पा०—गोरीड़ौ)
सं०स्त्री० [रा०] २ फदाली जाति के व्यक्तियों की एक शाखा.
[सं० गौरी] ३ पार्वती, उमा (ह.नां.) ४ दुर्गा. ५ चौसठ योगिनियों में से दूसरी योगिनी. ६ आठ वर्ष की कन्या. ७ लाल रंग की गाय. ८ गंगा नदी. ९ गौर वर्ण की सुंदर स्त्री, रूपवती स्त्री. १० आर्या या गाहा छंद का एक भेद विशेष जिसके चारों चरणों में मिल कर बीस दीर्घ एवं सत्रह ह्रस्व वर्ण सहित ५७ मात्रायें होती हैं (ल.पिं.)
वि०—गौर वर्ण की, सुंदर। उ०—१ नमणी खमणी बहुगुणी, सुकोमळी जु सुकच्छ। गोरी गंगा नीर ज्यूं, मन गरवी तन अच्छ।
—ढो.मा.
उ०—२ गोरी पींडी पर ऊघड़ता गोडा, लंबी बीखां दे लेतोड़ी लोडा।—ऊ.का.
(अल्पा०—गोरड़ी, गोरीड़ौ)

गो'री-सं०पु० [सं० गोभरी, प्रा० गोहरी] (स्त्री० गोरण) गायें चराने वाला, ग्वाला। उ०—गावड़ डाचड़ का मावड़ गुण गाता, गायां गरभाती गो'री गरब्बाता।—ऊ.का.

गोरीत-सं०स्त्री०—विवाह संस्कार के तीन-चार दिन पश्चात् किसी शुभ मुहूर्त में की जाने वाली एक रस्म जिसमें वर के द्वारा ससुराल में एक नारियल की गिरी निकलवा कर उसमें तिल और जव भराते हैं (पुष्करणा ब्राह्मण)

गोरीनंदन-सं०पु०—गणेश, गणपति, गजानन।

गोरीयम-सं०पु०—१ यवन, मुसलमान. २ देखो 'गो'री' (रू.भे.)

गोरीयौ-सं०पु०—१ एक प्रकार का घोड़ा विशेष (शा.हो.) २ देखो 'गोरियौ' (रू.भे.)

गोरीराय, गोरीराव-सं०पु०—१ बादशाह। उ०—छायल फूल बिछाय, वीसमती वरजांगदे। गैमर गोरीराय, तिण आमास पढाविया।
—नैणसी
२ शिव, महादेव।

गोरीसर-सं०स्त्री०—हंसराज नामक जड़ी विशेष (अमरत)

गोरीसुत-सं०पु०यौ० [सं० गौरी+सुत] १ कार्तिकेय (डि.को.) २ गजानन, गणेश।

गोरूप-सं०पु० [सं०] १ महादेव।
सं०स्त्री०—२ पृथ्वी, भूमि।

गोरेल-सं०पु०—ढोलियों की एक शाखा विशेष।

गोरोचन-सं०पु० [सं०] गाय के हृदय के पास पित्त में से उत्पन्न होने वाला पीले रंग का एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य। यह अष्टगंध के अंतर्गत है और बहुत पवित्र माना जाता है (अमरत)
वि०—पीला, पीत* (डि.को.)

गोरौ-सं०पु०—१ गौर वर्ण का एक भैरव, एक देव विशेष।
उ०—काळो अगवांणी करै, गोरौ जैरी गैन। घमकै कटियां घूघरा, लटियां तेल फुलेल। जी मेहाई थांरा बाईसा री करीजै उबेल।—मे.म.
२ गौर वर्ण वाला व्यक्ति, विशेषत: योरोप अमेरिका आदि ठंडे देशों का निवासी, फिरंगी।
वि०—सफेद और स्वच्छ वर्ण वाला।
मुहा०—हाड सूं ही गोरौ होणौ—हड्डी से भी अधिक श्वेत होना, अत्यधिक उज्वल के प्रति, श्रेष्ठ वंश या कुलीन के प्रति।

गोळंटोळ-वि०—बिल्कुल गोल, गोल-मटोल। उ०—ऊंटड़ा उगाळी सारै, झोक लिटै फिर घिर चरै। इण घिटाळ घसकै घणेरा, गोळंटोळ मींगण करै।—दसदेव

गोळंदाज-सं०पु० [फा० गोलंदाज] तोप में गोला रख कर चलाने वाला, तोपची.

गोळंदाजी-सं०पु० [फा० गोलंदाजी] तोप से गोले फेंकने का कार्य।

गोळ-वि० [सं० गोल] १ जिसका घेरा या परिधि वृत्ताकार हो, चक्र के आकार का, गोलाकार. २ वह घनात्मक आकार का पदार्थ विशेष जिसके पृष्ठ भाग का बिंदु उसके भीतर के मध्य बिंदु से समान दूरी या अंतर पर हो, सर्ववर्तुल, अंडाकार।
मुहा०—१ गोळगाळ—अनुमानत:, मोटे हिसाब से, अस्पष्टत:।
२ गोळ बात—घुमाव-फिराव की बात. ३ गोळमाळ करणौ—मिलावट करना, मिला देना, गड़बड़ करना, इधर-उधर हटाना.
४ गोळमाळ होणौ—गड़बड़ होना, हलचल होना. ५ गोळ होणौ—शांत हो जाना, चूक जाना, खतम हो जाना, चुपके से खसक जाना, चला जाना, गैरहाजिर हो जाना।

यौ०—गोळमटोळ ।

सं०पु०—१ दल, झुंड, समूह । उ०—१ दोही तरफां गोळां रा गजर हूं श्रोट श्राबै जिता ही घोड़ा सिपाहां समेत हाथियां रा गोळ उडण लागा ।—वं.भा. उ०—२ श्रोरे श्रसि हुरवलां, सेल खळ खगां संघारू । गज श्रसवारां गोळ, घड़छि घण लोह संधारू ।—सू.प्र. (मि०—चक्र, १०)

२ सेना, फौज (श्र.मा.) उ०—१ रत्रां बोळ चढ़ायो परारी देती खगांरोळं, सत्रां गोळ ऊपरा यो श्रायो सेरसींग।—कविराजा करणीदान उ०—२ पातळो सीह चख चोळ वांणी पढ़ं, केवियां गोळ रण थकै ठहरै कढ़ं ।—श्रज्ञात उ०—३ जबन हरोळ विहारी मधि जावां, श्रसुर गोळ मभि लोह उडावां ।—सू.प्र.

उ०—४ बीज श्रखाढ़ जेम खग बाढ़ां, गोळ दरोळ करूं श्रवगाढ़ां । (मि०—चक्र, ८) —सू.प्र.

३ षड़यन्त्र, जाल, कपट ।

मुहा०—गोळ गुंथणी—जाल फैलाना, षड़यंत्र रचना, छल करना.

४ स्नान, नहाने की क्रिया (डिं.को.) ५ गड़बड़, गोलमाल, खलबली.

क्रि०प्र०—करणी, होणी।

६ शस्त्रों द्वारा चारों श्रोर से घेरने की क्रिया या ढंग, घेरने की क्रिया । उ०—साहरां सारा गोळ कर प्यादा मुंह श्रागै लेय श्रसवार केहेक डावा, केहेक जीवणा लेय कही ।—डाढ़ाळा सूर री वात

७ सेना का वह भाग जो सेना के पीछे रक्षा के लिये चलता है, चन्दावल । उ०—श्रसवार १००० सूं श्राप भाखरी रै श्रोटै जाय ऊभो रह्यो नै रांणो श्राप हरोळां रा श्रणी मांहे थो सु गोळ रा श्रणी मांहे जाय ऊभो रह्यो ।—नैणसी ८ केन्द्र की सेना । उ० —१ डेरा पूठि चंदोळ दिवारै, सभियो गोळ विचै सिरदारे । त्यां म्हांहे 'जसराज' 'गजण' तण, जोधा हरो मांण दुरजोधन ।—वचनिका उ०—२ भोम धूजे घोड़ां रोड़ भैरवी किलक्कं भांत, तरक्कै श्रजीत वाळै मेलिया नत्रीठ । हरोळां चढ़ाय छाती गोळ बीच दिया हाके, गोळ छाती चाढ़े लेगो चंदोळां गरीठ ।—महाराजा बखतसिंह रो गीत

६ दुष्काल या श्रकाल के समय घास-पानी के श्रभाव में मवेशी को लेकर घास-पानी वाले स्थान की श्रोर गमन करने की क्रिया. १० इस प्रकार गमन कर ऐसे स्थान पर डाला जाने वाला पड़ाव जहां घास व पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो ।

उ०—बाटी समुद्रसिंह श्रापरी सीमा में बसी रा लोकां सहित मौसणां रो गोळ दिवाइ गिनायतां नूं श्रादर रै साथ राखिया ।—वं.भा.

११ पीपल वृक्ष का फल. १२ एक प्रकार का भाला विशेष, भाला । उ० —हरवळ श्रस हाकले सत्रां श्रमरोळू साबळ, गोळ जड़ू सिर गयंद खंभ जंगी हवदां खळ ।—सू.प्र.

१३ मंडलाकार क्षेत्र, वृत्त. १४ गोलाकार पिंड, सर्ववर्त्तुल पिण्ड. १५ किसी काम या बात के लिए वह श्रवसर जो कुछ श्रन्तर देकर क्रम से श्राता है । उ०—श्ररी श्राकलै श्रथ श्रणिप, श्रभियो श्रोळ मथोळ । गोळ श्राव मी जिण घड़ी, घर दौडाली घोळ ।

—ठा० रैंवतसिंह भाटी

गोल-सं०पु० [सं० गोलक] १ दास, सेवक । उ०—गोल डोल बाधै गळै, लोक गमं कुळ लाज । काठा बांधै कूटियां, करै काम श्राकाज ।

—बां.दा.

२ वर्णशंकर. ३ गुड़ ।

गोळक-सं०पु० [सं० गोलक] गोल पिंड । उ०—सेन श्रकब्बर तापई, श्राप गयौ खहमग्ग । ज्यौं क्रस भंजे तन मळं, घण गोळक तन लग्ग ।

—रा.रू.

वि०—देखो 'गंळक' (रू.भे.)

गोलक-सं०पु० [सं०] १ विधवा का जारज पुत्र. २ वर्णसंकर संतान. ३ मिट्टी का बड़ा कूंडा. ४ वह सदूक या थैली जिसमें किसी विशेष कार्य के लिये थोड़ा-थोड़ा धन संग्रह किया जाय । इसका मुंह ऊपर से बंद होता है जिस पर एक छोटा सा छिद्र रहता है । इसमें रुपये डाले तो जा सकते हैं किन्तु बिना तोड़े वापस नहीं निकाले जा सकते ।

मुहा०—घर गोलक में—जो कुछ भी प्राप्त हो उसे गोलक में डाल कर संगृहीत करना ।

गोळकपण, गोळकपणौ-सं०पु०—१ अस्थिर दिमाग से काम करने का भाव. २ लापरवाही ।

गोळकाकड़ी-सं०स्त्री०—एक प्रकार की ककड़ी (क्षेत्रीय)

गोळकूंडियो, गोलकुंडो-सं०पु०—वृत्ताकार चक्र ।

गोलखांनो-सं०पु०—१ गोलमेज सम्मेलन. २ वह गोलाकार स्थान जहां सभा व दरबार किया जाता हो । उ०—इतरी कह सवारी री तैयारी कर बादसाह री हजूर पधारिया । रात रो बखत थो, गोलखांने में जाय मुजरो कियो ।—श्रमरसिंह री वात

गोळचाल—देखो 'गोळ' (१०)

गोळची-सं०पु०—१ किसी लकड़ी के किनारे को गोल बनाने का श्रौजार. २ बंदूक या तोप का निशाना लगाने वाला ।

गोळजंत्र-सं०पु० [सं० गोलयंत्र] वह यंत्र जिससे सूर्य, चंद्र, पृथ्वी व नक्षत्र श्रादि की स्थिति श्रौर श्रयन परिवर्तन श्रादि जाने जाते हों ।

गोळजोग-सं०पु० [सं० गोलयोग] ज्योतिष में एक योग जो एक राशि में भिन्न मतानुसार छः श्रौर सात ग्रहों के एकत्र हो जाने से होता है । यह श्रशुभ एवं नष्टकारी माना जाता है ।

गोलणौ-सं०पु० [श्र० गुलाम] दास, सेवक, भृत्य । उ०—गांवां सहरां गोलणा, रहै हुवा रजपूत । लखणां सूं लख लीजिये, मुकर बरणां रा मूत ।—बां.दा.

गोलती-वि०—गोलाकार । उ०—सुचैन देन मेन स्वीव रैन में उठै नहीं, श्रपांग लोल गोलती हलोळ में उठै नहीं ।—ऊ.का.

गोळमी-सं०स्त्री०—मिट्टी का बड़ा पात्र, मटकी, घड़ा ।

गोळमटोळ-वि०यौ०—१ गोल, बिल्कुल गोल। उ०—गोळमटोळ पहिया घड़दे, फाबर लाल-गुलाल। गड़मड़-गड़मड़ करती चालै, गीगे के मन भाय।—लो.गी.
२ अस्पष्ट. ३ मोटा और ठिगना, नाटा।

गोळमदाज—देखो 'गोलंदाज' (रू.भे.) उ०—१ किया अठारव ज्यां फटकारि, दिया घट गोळमदाज बिदारि।—मे.म.
उ०—२ सबळ रौ बेटौ च्यार सौ पड़ियार, दरोगा दूजा बारह गोळमदाज, तीस जुजायळबरदार और साबे री लोम थौ सो कांम आयौ।—मारवाड़ रा अमरावां री वारता

गोळमाळ-सं०पु०—१ गड़बड़, अव्यवस्था. २ मिलावट।

गोळर—देखो 'गूलर' (रू.भे.)

गोळविद्या-सं०स्त्री०यौ० [सं० गोल विद्या] ज्योतिष विद्या का वह अंग जिससे पृथ्वी की गोलाई, आकार-विस्तार, चाल, ऋतु-परिवर्तन आदि बातें जानी जायें।

गोळवौ-वि०—गोलाकार, वृत्ताकार। उ०—काठां गोहुवां रौ आटौ मंगायजै छै सू नाळेरगरा गोळवा वणायजै छै।—रा.सा.सं.

गोलांगूळ-सं०पु० [सं० गोलांगूल] एक बंदर विशेष जिसकी पूंछ गाय की पूंछ से मिलती-जुलती होती है।

गोला-सं०स्त्री०—कुम्हारों की एक शाखा (मा.म.)

गोळाई-सं०स्त्री०—१ किसी गोल वस्तु की परिधि २ गोल का भाव, गोलापन।

गोळाकार-वि०—जिसका आकार गोल हो, वृत्ताकार।

गोलाड़ी-सं०स्त्री०—एक प्रकार की बरसाती लता का फल जो कच्ची अवस्था में हरा एवं पकने पर लाल होता है।

गोळारद्ध-सं०पु० [सं० गोलार्द्ध] एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक की दूरी को बीचोबीच में से विभाजित करने से बनने वाला पृथ्वी का आधा भाग।

गोळासण-सं०पु०—चौहान वंश की एक शाखा।

गोळिया-सं०स्त्री०—एक प्रकार की तलवार।

गोळियौ-सं०पु०—१ स्त्रियों द्वारा पैर की अंगुलियों में धारण किया जाने वाला चांदी का एक आभूषण २ गेहूँ की फसल में होने वाला रोग विशेष जिससे गेहूँ गोल हो जाता है. ३ कांसी का छोटा कटोरा. ४ छोटा पीतल का जलपात्र. ५ पकाये हुए मांस की वह जोड़ के स्थान की हड्डी जिसे मुंह से उसके आसपास लगे मांस को तथा अंदर के गूदे को चूसते हैं। उ०—घणी फीनसताई चोज लियां आरोगजै छै। दारू रा दाव बीच-बीच लीजै छै। गोळियां री खाट-खड़ लागनै रही छै। मुसालां रौ चांनणौ वणनै रह्यौ छै।—रा.सा.सं.
(मि०—गुड़ळियौ)

गोळी-सं०स्त्री०—१ छोटा गोलाकार पिंड, गोलमटोल कोई छोटी सी वस्तु. २ औषधि की वटिका, वटी।
क्रि०प्र०—खाणी, गिटणी, देणी।
३ बालकों के खेलने का मिट्टी अथवा कांच का बना गोल पिंड।
क्रि०प्र०—खेलणी, मारणी।
४ सीसे आदि का ढला हुआ छोटा गोलाकार पिंड जिसे बंदूक में भर कर चलाया जाता है। उ०—मंडियौ चांपे मोरचौ, बाकण नरहरदास। गाजै अंबर गोळियां, लग होळियां प्रकास।—रा.रू.
क्रि०प्र०—खाणी, चलणी, चलाणी, छोडणी, मारणी, लागणी, बावणी।
मुहा०—१ गोळी खाणी—बंदूक की गोली का शिकार बनना. २ गोळी बारूद—लड़ाई का सामान. ३ गोळी मारणी—उपेक्षा से त्याग देना, घृणा करना, बंदूक की गोली का शिकार बनाना।
कहा०—गोळी गई गांड में, म्हारै भूटकै सूं काम—बंदूक के धड़ाके से मतलब है गोली चाहे कहीं लगे।
५ दही मथने का बड़ा पात्र जिसमें दही मथा जाय, मथनी. ६ किसी वृक्ष का स्थूल तना. ७ शरीर की रचना, शारीरिक गठन।

गोली-सं०स्त्री०—१ दासी. २ देखो 'गोलाड़ी' (रू.भे.)

गोलीजावौ-सं०पु०यौ० (स्त्री० गोलीजायी) १ दासी पुत्र, गुलाम. २ वर्णसंकर संतान।

गोळीढाळ-सं०स्त्री०—एक प्रकार का शस्त्र विशेष।

गोलीपौ-सं०पु०—दासी का कार्य, गुलामी, दासत्व।

गोळीयौ-सं०पु०—१ लकड़ी में खुदाई करने का औजार. २ देखो 'गोळियौ' (रू.भे.)

गोलीबाड़-सं०स्त्री०—एक जंगली लता जिसके 'गोलड़' या 'गोलाड़ी' नामक फल लगता है।

गोळीबाळौ-सं०पु०—पशुओं में होने वाला एक रोग विशेष। यह रोग प्राय: बैलों में अधिक पाया जाता है जिससे एक पैर में शोथ हो जाता है। प्राय: घंटे-दो घंटे बाद इस रोग से पशु की मृत्यु हो जाती है।

गोळू-सं०पु०—अकाल पड़ने पर मवेशियों को लेकर अन्य प्रदेश की ओर चारे-पानी की खोज में जाने वाला। उ०—गोळू गायां रा गामां गळ गाहै, दुखिया सुखिया मिळ दोनूं दळ दाहै।—ऊ.का.

गोळे, गोळै-वि०—अधीन, वश में।

गोलोक-सं०पु० [सं०] सब लोकों में श्रेष्ठ माना जाने वाला मनोहर एवं रम्य लोक (पौराणिक)

गोळौ-सं०पु०—१ किसी पदार्थ का बड़ा गोल पिंड. २ छोटी-छोटी गोलियां, मेखें, बारूद आदि भरा हुआ लोहे का वह गोल पिंड जिसे युद्ध में तोपों की सहायता से शत्रु-सेना पर फेंका जाता है।
उ०—अबार रात रा हीज क्यूं गोळां री गजर मांडौ हौ, सुहारे फजर परभात रा हीज हगांम जुद्ध है।—वी.स.टी.
क्रि०प्र०—चलाणी, छोडणी, फेंकणी।
३ एक प्रकार का रोग जिसमें थोड़े-थोड़े समय पर पेट के अंदर

नाभि से गले तक वायु का गोला आता जान पड़ता है। इससे रोगी को बहुत कष्ट होता है। गुल्म रोग. ४ नारियल का वह भाग जो उसके ऊपर का कड़ा छिलका उतारने के बाद बच रहता है, गिरी का गोला. ५ मिट्टी, काठ आदि का बना हुआ गोलाकार पिंड जिसके ऊपर विशेष ढंग की पगड़ी बांधी जाती है. ६ लकड़ी का वह गोल पेटे का सीधा लम्बा लट्ठा जो छाजन में लगाने तथा छप्पर आदि छाने के काम में आता है. ७ सूत, ऊन आदि की गोल लपेटी हुई रस्सी या डोरे की पिंडी. ८ किसी चीज की बनाई हुई गोली. ९ तांबे या लोहे की बनी चिलम में लगने वाला मिट्टी का भाग.
१० एक प्रकार की तलवार।

गोलो–सं०पु० [सं० गोलक] (स्त्री० गोली) दास, सेवक, भृत्य (ह.नां.)
कहा०—१ गोला घर भेळ देवै—गुलाम जिस घर में रहते हैं उसका नाश हुए बिना नहीं रहता. २ गोला किण रा गुण करै, ओगणगारा आप—गुलाम स्वयं अवगुणयुक्त होते हैं अतः उनके द्वारा किसी का गुण या भला होने की आशा रखना व्यर्थ है। गुलामों की निंदा. ३ गोला किण रा गोटिया, जोगी किण रा मित। बेस्या किण री अस्त्री, तीनूं मींत कुमींत—गुलाम एवं योगी किसी के सच्चे मित्र नहीं होते, वेश्या किसी की सच्ची स्त्री नहीं बन सकती। ये तीनों बुरे मित्र होते हैं। गुलामों की निंदा. ४ गोली रांड पराया धोवती फिरै, आपरा धोवती लाजां मरै– उसके प्रति जो दुनिया भर का काम करता फिरे किन्तु अपना खुद का काम न करता हो। (अल्पा०–गोलियौ, गोल्यौ)

गोल्ड–सं०पु० [अं०] सोना, स्वर्ण।

गोल्डन–वि० [अं०] स्वर्णनिर्मित, सुनहला।

गोल्डौ–सं०पु०- जुए को बैल के कंधे पर स्थिर रखने में सहायता देने वाली काष्ठ की कीली।

गोळ्यौ–देखो 'गोळौ' (अल्पा०, रू.भे.)

गोल्यौ—देखो 'गोलौ' (अल्पा०)

गोल्हौ—देखो 'गुल्लौ' (रू भे.)

गोवंद—देखो 'गोविंद' (रू.भे.) (ह.नां.) उ०—नांम **गोवंद** थयो नमो नंदराय नंद, अमंद जस गोरधन आभ अड़ियो।—बां.दा.

गोवड़ी–सं०स्त्री०—१ पशुओं के शरीर पर चिपक कर उनका खून चूसने वाला एक कीड़ा, ईत. २ एक घास विशेष. ३ गौर वर्ण की स्त्री, सुंदरी।

गोवणियौ–सं०पु०—दूध दुहने के लिये एक प्रकार का चौड़े मुंह का बर्तन। उ०—बैनजी बाजी पंद्रै सेर खीर रौ **गोवणियौ** एकर होड माथै ऊभा ई चाटता।—वांणी, विजयदांन देथौ

गोवणौ–सं०पु०—१ अधिक पीटने से होने वाली शारीरिक अवस्था. २ खलिहान में अनाज साफ करने की क्रिया. ३ नाश, ध्वंश।

गोवध–सं०पु०—गौ की हत्या, गौ का वध।

गोवर–सं०पु०—१ गोबर (रू भे.)
सं०स्त्री०—२ गाय। उ०—हिव ते जेसळ नांमि कवास; मनि आपणइ सुबुद्धि विमासि। पूगळ मांहि बुद्धि केळवइ, **गोवळ** सहि **गोवर** मेळवइ।—ढो.मा.
[सं० गह्वर] ३ गुफा। उ०—पिंगळराय कहइ तिणि वार, कांई बळी अपूरब सार। दीठी हुइ सा मुझनइ दाखि, गम **गोवर** मन मांहि म राखि।—ढो.मा. ४ गुप्त बात, रहस्य।

गोवरद्धन, गोवरधन–सं०पु० [सं० गोवर्धन] १ ब्रज में स्थित गोकुल के समीप के एक प्रसिद्ध पहाड़ का नाम।
वि०वि०—भागवत में एक कथा आती है कि ब्रजवासी पहिले इन्द्र की पूजा करते थे। श्रीकृष्ण ने उन्हें इंद्र की पूजा को त्याग कर गोवर्धन पर्वत की पूजा करने की सलाह दी। इससे इंद्र ने अप्रसन्न होकर मूसलाधार वर्षा की। सारे ब्रज में त्राहि-त्राहि मच गई। श्रीकृष्ण ने तब गोवर्धन पर्वत को बायें हाथ की कनिष्ठा अंगुली पर उठा कर ब्रज की जनता की रक्षा की।
२ श्रीकृष्ण का एक नाम. ३ गीले गोबर का बनाया हुआ वह पिंड जिसकी दीपावली के दूसरे दिन पूजा की जाती है।
वि०वि०—पूजा के समय इस पर दीप जला कर रक्खा जाता है। गाँवों में जहाँ मवेशी पाले जाते हैं वहाँ यह पूजा मवेशियों के बाड़े या उनके बांधने के किसी दूसरे स्थान के द्वार के ठीक बाहर करते हैं। पूजा के बाद मवेशियों को हाँक कर उसके ऊपर से निकाला जाता है।

गोवरधनधर, गोवरधनधारी–सं०पु० [सं० गोवर्द्धन+धारिन्] गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले, श्रीकृष्ण।

गोवरी—देखो 'गोयरी' (रू.भे.)

गोवळ–सं०पु०—१ गुड़. २ गोप, ग्वाला। उ०—सुर नर मोहै देवता, जिम **गोवळ** मांहि सोहइ गोव्यंद।—वी.दे.
३ देखो 'गोळ'।
सं०स्त्री०—४ गाय।
वि०—रक्षक, रक्षा करने वाला।

गोवाळ, गोवाळियौ, गोवाळौ–सं०पु० [सं० गोपाल] १ गोपाल, श्रीकृष्ण. २ गोप, ग्वाला। उ०—१ **गोवाळ** सहेत राखी तें गाय, महा दुख हूंत बिछोड़ी माय।—ह.र. उ०—२ तिसैं **गोवाळियौ** एक दौड़ियौ आवै छै तरै जखड़ै कह्यौ—दौड़ियौ इकसासियौ कुं जाय छै।
—जखड़ा-मुखड़ा भाटी री वात
उ०—३ बाबा मत देइ मारुवां, सूधा **गोवाळांह**। कंध कुहाड़ौ सिर घड़ौ, वासौ मझ थळांह।—ढो.मा.
३ रक्षा करने वाला, रक्षक। उ०—रिणमल्ल धरा छळ रखवाळ, गड़कियउ सांड गोत्त **गवाळ**।—रा.ज.सी.

गोविंद–सं०पु० [सं० गोपेंद्र, पा० गोविन्द] १ श्रीकृष्ण (ह.नां.) २ वेदांतवेत्ता. ३ बृहस्पति. ४ शंकराचार्य के गुरु का नाम. ५ सिक्खों के दस गुरुओं में से एक, गुरु गोविंदसिंह. ६ परब्रह्म (अ.मा.)

गोविंददेव-सं०पु०—विष्णु का एक रूप (बां.दा. ख्यात)

गोविंदद्वादसी-सं०स्त्री०यौ० [सं० गोविंदद्वादशी] फाल्गुन माह के शुक्ल पक्ष की बारहवीं तिथि।

गोविंदपद-सं०पु०यौ० [सं०] मोक्ष, निर्वाण।

गोविंदौ-सं०पु० [सं० गोविंद] १ श्रीकृष्ण. २ विष्णु।

गोवीथी-सं०स्त्री० [सं०] चंद्रमा के मार्ग का वह भाग जिसमें भाद्रपद रेवती और अश्विनी तथा किसी किसी के मत से हस्त चित्रा और स्वाती नक्षत्रों का समूह है।

गोवेता-सं०स्त्री०—इन्द्रिय (अ.मा.)

गोवौ-सं०पु० [सं० गोवह] वह मार्ग जिसके दोनों ओर खेतों की ऊँची-ऊँची मेड़ें लगी हों। उ०—गोवै चरतोड़ी पेड़ां थिग गेडी, भें भें करतोड़ी भेड़ां ढिग भेड़ी।—ऊ.का.

(रू०भे०—गोग्रौ)

गोव्यंद—देखो 'गोविंद'। उ०—कर जोड़े 'नरपति' कहई। विसुनपुरी जांणे वसइही गोव्यंद।—बी.दे.

गोव्रत-सं०पु० [सं०] गोहत्या के प्रायश्चित्तस्वरूप किया जाने वाला व्रत।

गोस-सं०पु० [फा० गोश] १ सुनने की इंद्रिय, कान (डिं.को.) २ देखो 'गौस' (रू.भे.)

गोसक-सं०पु० [सं० गोशक] इंद्र (अ.मा.)

गोसणौ, गोसबौ-क्रि०स० [सं० कुष = निष्कर्ष] दुख देकर धन लेना, किसी की आत्मा दुखा कर धन का अपहरण करना।

गोसमायल-सं०पु० [फा० कोशमायल] पगड़ी का वह एक छोर जिस पर मोती जड़े हुए होते हैं और जो पगड़ी बांधने पर कान के पास लटकता है।

गोसमाळी-सं०स्त्री० [फा० गोशमाली] १ कान उमेठना. २ ताड़ना। उ०—दूजा प्यार में गुनागार नूं गोसमाळी इसी भांति देणी आवै छै सो रीस में नहीं दी जाय।—नी.प्र.

गोसळखांनौ—देखो 'गुसळखांनौ' (रू.भे.)

गोसवारौ-सं०पु० [फा० गोशवारा] १ जोड़, योग. २ हरएक मद के आय व्यय का अलग-अलग दिखाया हुआ संक्षिप्त लेखा. ३ किसी रजिस्टर आदि में खाने के ऊपर का वह भाग जिसमें उन खानों का नाम लिखा रहता है।

गोसांई-सं०पु० [सं० गोस्वामी] १ गाय का स्वामी. २ स्वर्ग का स्वामी, ईश्वर. ३ संन्यासियों का एक संप्रदाय जिसमें १० भेद होते हैं. ४ विरक्त साधु. ५ जितेन्द्रिय।

वि०—श्रेष्ठ, बड़ा।

गोसाळा-सं०स्त्री० [सं० गोशाला] गौओं के रहने का स्थान।

उ०—गायां गोसाळां गूंदा गळगळती, ढाळां द्रग ढळती बूंदां बळबळती।—ऊ.का.

गोसियळ-वि०—गुस्सैल, क्रोधी। उ०—सवळ बाराह 'हालौ' लड़ण अंकड़ौ, गोसियळ 'रांण' जसवंत गैंदंतड़ौ।—हा.झा.

गोसौ-सं०पु०—कुये पर जल-भरा मोट खाली करने वाला व्यक्ति।

उ०—तद नापै भींतर पैसारियौ घात सांव भींतर विराई घर कह्यौ—रे गोसौ थारौ नांव कासू।—नापा सांखला री वारता

गोसूक्त-सं०पु० [सं०] गोदान के समय पढ़ा जाने वाला अथर्ववेद का कुछ अंश जिसमें ब्रह्मांड की रचना का गौ रूप में वर्णन किया गया है।

गोसेल-वि०—क्रुद्ध होने वाला, कोप करने वाला (मि० गोसियळ)

गोसौ-सं०पु० [फा०] १ कोना। उ०—१ जणां उजीर अरज कीवी अठै एक दरवेस छै। उण साठ हज किया छै। उठै मक्का में मुद्दतां रहियौ छै। हमें गोसे बैठौ छै।—नी.प्र. उ०—२ वोय दरवेस गोसे बैठा छै।—नी.प्र.

२ कमान की दोनों नोंकें। उ०—परतेज धरै दाढ़ीस पांण, कमधजां अहूं गोसे कबांण।—सू.प्र.

३ एक रोग विशेष. जिसमें अंडकोश की गोलियां बढ़ जाती हैं। ४ आंख में दोनों पलकों के बीच का स्थान। उ०—गै घड़ा विरोळै जोधा दोवळा चळूळां गोसां।—अज्ञात

[रा०] ५ अंडकोश।

वि०—गुप्त। उ०—खिलवत गोसै बैसणौ, जिलवत चौड़ै बैसणौ।—बां.दा.ख्यात

गोस्ठी-सं०स्त्री० [सं० गोष्ठी] १ बहुत से लोगों का समूह, सभा, मंडली. २ वार्तालाप, परामर्श, सलाह।

गोस्त-सं०पु० [फा० गोश्त] मांस, आमिष।

गोस्तनी-सं०स्त्री० [सं०] दाख, मुनक्का, द्राक्षा (अ.मा.)

गोस्रंग-सं०पु० [सं० गोश्रृंग] १ रामायण एवं महाभारत में वर्णित एक पर्वत. २ बबूल का पेड़. ३ एक ऋषि का नाम।

गोस्वांमी—देखो 'गोसांई' (रू.भे.)

गोह-सं०स्त्री० [सं० गोधा] १ छिपकली की जाति का एक जंगली जंतु जो नेवले से कुछ बड़ा होता है। यह बहुत विषैला होता है।

कहा०—गोह री मौत आवै जरां ढेढ़ रा खालड़ा खड़बड़ावै—गोह की जब मौत आती है तब चमारों के घर पड़ी खालों में चली जाती है जिससे वे सूखी खालें खड़बड़ाने लगती हैं और गोह को मार कर चमार उसे खा जाते हैं। विनाशकाले विपरीत बुद्धि (मि० स्याळियै री मौत आवै जद गांव सांमी दौड़ै)

सं०पु०—२ उदयपुर राजवंस के एक पूर्व पुरुष का नाम जो बप्पा रावल के पहिले हुआ था. ३ रामभक्त निषादराज गुह का एक नाम (रामकथा) उ०—गोह सरीसा पांमर गाऊं, व्याध कबंध ग्रीध बताऊं।—र.ज.प्र.

गोहणौ—देखो 'गैंणौ' (रू.भे.) उ०—लोह कुंदण करि जसै चलायौ, दीनौ लाभ सुजस जगदीस। गोहणौ 'रतन' अमोलक गिणियौ, सुज वणियौ दुहुं राहां सीस।—आसियौ रांमौ

गोहबाज-सं०पु०—एक प्रकार का घोड़ा (शा.हो.)

गोहरौ—देखो 'गोह' (१)
(रू०भे०—गोइड़ौ, गोह, गोहिरौ)
(मि० गोइड़ौ)

गोहल—सं०पु०—क्षत्रियों का गहलोत वंश।

गोहलड़ा—सं०स्त्री०—पंवार वंश की एक शाखा।

गोहलोत—सं०पु०—देखो 'गहलोत' (रू.भे.)

गोहलौ—देखो 'गेहलौ' (रू.भे.)

गोहिर—सं०स्त्री०—१ गांव का वह खुला स्थान जहां रात्रि में गायें बैठ कर विश्राम किया करती हैं। उ०—अघसूकोड़ा कांम न आवै, दांम न दे भणदड़िया है। गायां उछरगी गोहिर सूं, पोठा लारै पड़िया है। —ऊ.का.
२ देखो 'गो'र' (३)

गोहिरौ—देखो 'गोह' (१) (मि० 'गोइड़ौ')

गोहिल, गोहिल्ल—देखो 'गहलोत' (रू.भे.) उ०—१ वाघेल गोहिल-वाड़, रस कीध घाट बराड़।—रा.रू. उ०—२ जयवंत यादव वीहल्ल, नर निकुंभ गिरुया गोहिल्ल।—कां.दे.प्र.

गोही, गोहीयाळ—वि०—कपटी, धूर्त।

गोहूं, गोहूं—देखो 'गेहूँ'। उ०—रतनपुर री चौरासी चूंडावतां री ठोड़ गोहूं चणा नीपजै।—नैणसी

गोहेलवाल—सं०पु०—१ चौहान वंश की एक शाखा. २ इस शाखा का व्यक्ति।

गोहौ—देखो 'गोवौ' (रू.भे.)

गौ—सं०स्त्री० [सं०] १ गाय, गऊ। उ०—गायां री वाहर जावणी परणणा सूं वध ने समझियौ सो उण अजकै वींद सूरवीर गौ वाहर में लाखां सत्रुवां ने हण मारनै मोटै पड़वै नींद लीधी।—वी.स.टी.
यौ०—गौदांन, गोमुखी, गौमुखौ, गौवध, गौव्रत।
२ किरण. ३ सरस्वती. ४ इन्द्रिय. ५ दिशा. ६ वसंत. ७ सुगंध. ८ पृथ्वी। उ०—असि पाइ खेह ऊडी उल्लुक, गौ गइण विची मिळी गोधुळक्क। वरहास खिड़इ ऊलळी वग्ग, कळहिवा क्रमइ कम्मांण क्रग।—रा.ज.सी.
९ माता. १० वाणी. ११ जिव्हा. १२ वृष राशि. १३ आंख. १४ दृष्टि. १५ बिजली. १६ नौका. १७ रोमावली. १८ बकरी. १९ भेड़ (एका०)
सं०पु०—२० सूर्य्य. २१ चंद्रमा. २२ घोड़ा. २३ बैल. २४ भंवर. २५ तीर, बाण. २६ स्वर्ग. २७ कल्पवृक्ष. २८ वज्र. २९ घर. ३० वृक्ष. ३१ पक्षी. ३२ हाथी. ३३ जल. ३४ शिव का गण. ३५ अंक. ३६ शब्द. ३७ केश (एका०)
अव्यय—यद्यपि, अगरचे।

गौख—देखो 'गोख' (रू.भे.) उ०—मंदिरां विखै गौखा छै सु पदम-रागमणि रा छै।—वेलि. टी.

गौखड़ौ—देखो 'गोखड़ौ' (रू.भे.) उ०—हे वाभीजी सा। आपरा गोखड़ा सूं आपरा देवर री हथवाहु तरवार वहती देख लेराजौ। —वी.स.टी.

गौड़—सं०पु०—१ बंग देश का एक प्राचीन भाग. २ कायस्थ जाति का एक भेद विशेष. ३ स्कंदपुराण के सह्याद्रि खंड के अनुसार ब्राह्मणों की एक कोटि जिसमें सारस्वत, कान्यकुब्ज, उत्कल, मैथिल और गौड़ सम्मिलित हैं. ४ ब्राह्मणों की एक जाति जो दिल्ली के आसपास अधिक पाई जाती है. ५ राजपूतों के छत्तीस वंशों के अन्तर्गत एक क्षत्रिय वंश. ६ संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं (संगीत) ७ गाय, बैल या भैंस आदि के गले में एक ओर होने वाला गांठ का रोग. ८ देखो 'गोड़' (१, ५, ६) (रू.भे.)

गौड़नट—सं०पु०—गौड़ और नट के योग से बना एक संकर राग।

गौड़पाद—सं०पु० [सं०] स्वामी शंकराचार्य के गुरु के भी गुरु जिन्होंने मांडूक्योपनिषद पर कारिका लिखी थी।

गौड़मल्लार—सं०पु०—गौड़ और मल्लार के योग से बना एक संकर राग (संगीत)

गौड़सारंग—सं०पु०—गौड़ और सारंग के योग से बना एक संकर राग। (संगीत)

गौड़ाटी, गौड़ावटी—सं०स्त्री० [सं० गौड़+पट्टी] गौड़वंशीय क्षत्रियों के राज्य की भूमि। इसके अंतर्गत जोधपुर डिविजन के नागौर जिले का उत्तरी पूर्वी भाग आता है।

गौड़िया-बाजी—सं०स्त्री०—१ नट विद्या. २ ऐंद्रजालिक क्रिया, जादू-गरी. ३ छलकपट।

गौड़ियौ—वि०—गौड़ देश का, गौड़ देश संबंधी।
सं०पु०—१ जादूगर, बाजीगर। उ०—१ जांण लगाया गौड़िये, वाड़ी वन खंड।—केसोदास गाडण उ०—२ हे सखी! ऐ जो जगत रा ओर तमासा गौड़ियां रा, जोगियां रा आद देनै सो ऐ तमासा तो कायरां रै देखण रा छै।—वी.स.टी.
२ वह पशु जो गौड़ रोग से पीड़ित हो. ३ सपेरा।
उ०—कळपै अकबर काय, गुण पुंगीधर गौड़िया। मिणधर छाबड़ मांय, पड़ै न रांण प्रतापसी।—दुरसौ आढ़ौ
कहा०—कांई गौड़ियौ गावै'र कांई पूंगी बजावै—सपेरा न तो अच्छा गायक ही होता है और न उसकी बीन (पूंगी) ही संगीत का वाद्य है अतः उसका गाना और बजाना दोनों ही महत्व नहीं रखते। ऐसे लोगों के प्रति व्यंगोक्ति जो पूर्ण रूप से जाने बिना कार्य करते हैं।

गौड़ी—१ देखो 'गोड़' (५) (रू.भे.) उ०—ललिता गौड़ी करै तौ न्यारी, समद समाय समद समि होवै।—ह.पु.वा.
२ ओजगुण प्रकाशक काव्य की एक प्रकार की रीति या वृत्ति जिसे परुषा भी कहते हैं। इसमें ट वर्ग और संयुक्ताक्षर अधिक आते हैं. ३ संपूर्ण जाति की एक रागिनी (संगीत)

गौढ़ीर—देखो 'गोढ़ीर' (रू.भे.)

गौढ़ीरव—देखो 'गोढ़ीरव' (रू.भे.)

गौढ़ा, गौढ़ै—१ देखो 'गोढ़ै' (रू.भे.) २ अधिकार में, कब्जे में।

गौण—देखो 'गोण' (रू.भे.) उ०—मोह कहै विवेक सूं, वैर कियौ सुख कीण। मेरी वसुधा ऊपरै, तूं ज करता है गौण।—ह.पु.वा.
वि०—जो प्रधान या मुख्य न हो, सहायक।

गौणी-संस्त्री०—ग्रस्सी प्रकार की लक्षणाओं में से एक जिसमें केवल किसी एक वस्तु का गुण लेकर दूसरे में ग्रारोपित किया जाता है।
वि०—अप्रधान, साधारण।

गौणौ—१ देखो 'गोणौ' (रू.भे.) [रा०] २ खलिहान।
३ खलिहान में अनाज आदि को कुचलने की क्रिया।
क्रि०प्र०—करणौ, घालणौ।

गौतम-संपु०—१ नासिक के पास स्थित एक पर्वत का नाम.
२ क्षत्रियों का एक भेद।

गौतमी—देखो 'गोतमी' (रू.भे.)

गौती—देखो 'गोती' (रू.भे.) उ०—खवी गौती कदम निज अठारह, खोहण सारीखौ दुरजोधन समर।—किसनौ सिढ़ायच

गौदांन—देखो 'गोदांन' (रू.भे.)

गौन-भू०का०कृ०—गया हुआ, गमन किया हुआ। उ०—मरणे खातिर फेर द्विज, आवै यहं पै कौन। सपथ करौ जो हेत सो, तौ चाहै कर गौन।—सांई री पलक

गौव्यंद—देखो 'गोविंद' (रू.भे.)

गौमुखी—देखो 'गोमुखी' (रू.भे.)

गौमूत—देखो 'गोमूत' (रू.भे.)

गौमेद—१ देखो 'गोमेद' (रू.भे.) २ गो-मूत्र के रंग का एक प्रकार का रंग।

गौरंगि—देखो 'गोरंगी' (रू.भे.)

गौर-संपु०—१ देखो 'गोर' (रू.भे.) २ एक प्रकार का हिरन जिसके खुर बीच से फटे नहीं होते. ३ चैतन्य महाप्रभु।
संस्त्री०—४ देखो 'गोर' (रू भे.) उ०—ओपमा तेण आवै न और, गणपती रमावै जांण गौर।—वि.सं.
वि०—गोरा, श्वेत वर्ण का।

गौ'र—देखो 'गो'र'।

गौरता-संस्त्री०—गोरापन, गोरा होने का भाव। उ०—सु गौर बांहां छै। मखतूल सूं पोया छै सु गौरता ऊपरि स्यांमता किसी सोभै छै जैस्यै मणी मै हींडोळै मन धरि हींडै छै।—वेलि. टी.

गौरपत, गौरपती—देखो 'गोरपति' (रू.भे.)

गौरबंद, गौरबंध—देखो 'गोरबंद' (रू.भे.)

गौरम-संपु०—१ आकाश, नभ. २ देखो 'गोरम' (रू.भे.)

गौरव-संपु० [सं०] १ बड़प्पन, महत्व. २ गुरुता. ३ सम्मान, आदर।
संस्त्री०—४ कीर्ति, यश. ५ वृद्धि। उ०—तुलि बैठी तरणि तेज सम तुलिया, भूप कणय तुलता भू भांति। दिणि दिणि तिणि लघुता प्रांमै दिन, राति राति तिणि गौरव राति।—वेलि.
६ पाणिग्रहण संस्कार के बाद जीमणवार के दूसरे दिन वधू पक्ष द्वारा दिया जाने वाला भोज विशेष (श्रीमाली ब्राह्मण)

गौरवीबाळा-संस्त्री०—श्रीमाली ब्राह्मणों में 'पड़ गौरव' भोज की रात्रि को वधू के घर की जाने वाली एक रस्म विशेष।

गौरवौ—१ देखो 'गोर' (रू.भे.) उ०—असी रिप्यां में लियौ टोड़ड़ौ, हाल्या रातूं रात। गढ़ बठोठ कै आया गौरबै, ऊगतड़ै परभात।—डूंगजी जवारजी री पड़
२ चटक पक्षी, चिड़ा।

गौरहर—देखो 'गोरहर' (रू.भे.)

गौरहारी-संस्त्री०—ध्रुपद की चार प्रकार की वाणियों में से एक।

गौरांग-संपु०—१ विष्णु. २ श्रीकृष्ण. ३ चैतन्यमहाप्रभु
४ अंग्रेज।
वि०—गोरे रंग का।

गौरा—१ देखो 'गोरा'. २ श्रीराग की स्त्री मानी जाने वाली एक रागिनी (संगीत)

गौरियौ-संस्त्री०—१ काले रंग का एक प्रकार का जल-पक्षी.
२ मिट्टी का बना हुआ एक प्रकार का छोटा हुक्का।
वि०—देखो 'गोरियौ' (रू.भे)

गौरिखौ-संपु०—बादशाह। उ०—भोयंगमंडळ लोह भणावण, गौरिखै कुंभा प्रांण गुर।—महारांणा कुंभा री गीत

गौरी—१ देखो 'गोरी' (रू.भे.) २ विवाह का अंतिम कार्य जिसे गौरी भी कहते हैं। इस दिन माया मातृका का विसर्जन होता है।

गौरीखौ—१ देखो 'गौरिखौ'।
२ गौरीपति, शिव, महादेव।

गौरीसंकर-संपु०यौ०—१ शिव, महादेव. २ हिमालय पर्वत की सब से ऊँची चोटी का नाम, माउंट एवरेस्ट।

गौरीसर—देखो 'गोरीसर' (रू.भे.)

गौळ-संपु०—बादामी व गेहूँ के रंग का मोटे तने का बड़ा वृक्ष जो लम्बे समय तक सूखता नहीं। इसकी लकड़ी पर खुदाई का काम अच्छा होता है। इसका बीज गोल होता है।

गौवरहारी—देखो 'गोरहारी' (रू.भे.)

गौस-संपु० [अ०] १ वह मुसलमान महात्मा जो वली से बड़ा पद रखता है। उ०—कतब गौस अबदाळ (स) सूफी अने कळंदर, पीरजादा मिळै सांज परभात।
—महाराजा जसवंतसिंह प्रथम री गीत
२ पानी में पैठना, गोता मारने का भाव।
वि०—दुहाई सुनने वाला, न्यायकर्ता।

गौसळ, गौसळखांनौ—देखो 'गोसळखांनौ' (रू.भे.) उ०—सह गयौ दरगाह सूं, निज रहअसि ग्रनेह। हितकर बोलाया हितू, गौसळ ग्रंतर गेह।—रा.रू.

गौसाळा—देखो 'गोसाळा' (रू.भे.)

गौह, गौहक, गौहकेसर—सं०पु०—१ एक देव जाति. २ कुबेर (ग्र.मा.)

गौहर—सं०पु०—१ जैसलमेर का किला. २ महल, प्रासाद. [फा०] ३ मोती, मुक्ता।

ग्यांनकांड—सं०पु०यौ० [सं० ज्ञानकांड] वेद के तीनों कांडों या विभागों में से एक विभाग।

ग्यांनकत—वि०पु०यौ० [सं० ज्ञानकृत] जानबूझ कर किया हुआ करतब या पाप।

ग्यांनगोचर—वि०यौ० [सं० ज्ञानगोचर] ज्ञानेन्द्रियों से जानने योग्य, ज्ञानगम्य।

ग्यांनगोभा—सं०स्त्री०यौ०—ज्ञान की जड़। उ०—गिरवांणां सहाई मनोज वेनु ग्यांनगोभा, नाराज, वरीस सोभा इसी प्रथीनाथ।
—र.रू.

ग्यांनजग्य—सं०पु०यौ० [सं० ज्ञानयज्ञ) ज्ञान द्वारा ग्रपनी ग्रात्मा का परमात्मा में हवन, ब्रह्मज्ञान।

ग्यांनजथा—सं०स्त्री०यौ० [सं० ज्ञान+रा० जथा] डिंगल साहित्य में गीतों की वह रचना जिसमें ग्रवधानों का यथासंख्य वर्णन हो।

ग्यांनण—सं०स्त्री०—ज्ञानी, विदुषी।

ग्यांनदाता—सं०पु०यौ० [सं० ज्ञानदाता] ज्ञान देने वाला मनुष्य।

ग्यांनमुद्रा—सं०स्त्री०यौ० [सं० ज्ञानमुद्रा] तंत्रसार के ग्रनुसार राम की पूजा की एक मुद्रा।

ग्यांनयोग—सं०पु०यौ० [सं० ज्ञानयोग] ज्ञान की प्राप्ति द्वारा मोक्ष का साधन।

ग्यांनलक्षण—सं०पु०यौ० [सं० ज्ञानलक्षरा] न्याय में ग्रलौकिक प्रत्यक्ष का एक भेद।

ग्यांनलिंग—सं०पु०—महादेव का एक लिंग। उ०—पुरांण लिखै है—ग्रांनै ग्यांनवापी रौ जळ ग्रागला जुगां में कासी में लोग पीवताग्रां में ग्यांनलिंग प्रकटी। लोक त्रिभंग हो जातौ।—बां.दा.

ग्यांनवांन—वि०यौ० [सं० ज्ञानवान] ज्ञानी, विद्वान।

ग्यांनवृद्ध—वि०यौ० [सं० ज्ञानवृद्ध] ज्ञान में बड़ा, ग्रनुभवी।

ग्यांनसत—सं०पु०यौ० [सं० ज्ञानिषद] स्वर्ग (ग्र.मा.)

ग्यांनसाधन—सं०पु०यौ० [सं० ज्ञानसाधन] १ इंद्रिय. २ ज्ञान-प्राप्ति का प्रयत्न।

ग्यांनावरणी ग्रंतराय—सं०पु०यौ० [सं० ज्ञानावरणी ग्रंतराय] प्राप्त ज्ञान से होने वाले लाभ में उपस्थित होने वाला विघ्न (जैन)

ग्यांनासण, ग्यांनासन—सं०पु०यौ० [सं० ज्ञानासन] रुद्रयामल के ग्रनुसार योग का एक ग्रासन जिससे योगाभ्यास में शीघ्र ही सिद्धि होती है।

ग्यांनी—वि० [सं० ज्ञानिन्] १ जिसे ज्ञान हो, ज्ञानवान, ग्रनुभवी।

उ०—सुख-संपत ग्रर ग्रोदसा, सब काहू को होय। ग्यांनी काटै ग्यांन सूं, मूरख काटै रोय।—ग्रज्ञात

२ ग्रात्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी. ३ कवि ४ हंस (ग्र.मा.)

ग्यात—वि० [सं० ज्ञात] विदित, जाना हुग्रा, ग्रवगत।

ग्यातजोबना, ग्यातजोबना—सं०स्त्री० [सं० ज्ञात-यौवना] वह मुग्धा नायिका जिसे ग्रपने यौवन का ज्ञान हो। उ०—१ हीरा मुगधा ग्यातजोबना कहावै छै, दिल बीच चंपतराय भावै छै। ग्रब मौज-चोज की बातां बणावै छै।—बगसीरांम प्रोहित री वात

उ०—२ ग्यातजोबना गहर मदन छक लहर समाजत, बणि हीरां ग्रंग बिकस रसक रंभादिक राजत।—बगसीरांम प्रोहित री वात

ग्याता—वि० [सं० ज्ञातृ] १ जानने वाला, ज्ञान रखने वाला, जानकार।
उ०—तुहीं ग्याता ग्येय प्रक्रति बनि ग्याता पद तुंही। तुंही ध्याता ध्येय व्रति मति विख्याता प्रत तुंही।—ऊ.का.

२ कवि. ३ पंडित, वेदान्ती।

ग्याति—सं०स्त्री० [सं० ज्ञाति] १ जाति या गोत्र-सम्बन्ध।
उ०—प्रमणंति पुत्र इम मात पिता प्रति। ग्रम्हां वासना वसी इसी। ग्याति किसी राजवियां ग्वाळां, किसी जाति कुळ पांति किसी।
—वेलि.

२ एक ही गोत्र या वंश का मनुष्य, गोती।

ग्याती—सं०स्त्री०—दरवाजा बंद करने का दरवाजे के बीच में लगाया जाने वाला एक प्रकार का डंडा।

ग्याबण, ग्याबणी—वि० [सं० गर्भिणी] गर्भवती। उ०—इतरा में रोही मांही एक धोरी सिकार रै पगां हिरणी मुंहडा ग्रागै लियां ग्रावै, उवा हिरणी ग्याबण तावड़ी में तिस सूं रहि गई थकी वहै।
—साह रांमदत्त री वारता

ग्यारमौ—वि०—जो क्रम में दस के बाद पड़ता हो।

ग्यारस, ग्यारसि, ग्यारसी—सं०स्त्री० [सं० एकादशी] मास के प्रत्येक पक्ष की ग्यारहवीं तिथि, एकादशी। उ०—१ ग्यारस गौरी गंगजळ, भोजन भला ज खीर। वसबौ तौ व्रज कौ भलौ, मरबौ गंगा तीर।
—ग्रज्ञात

उ०—२ ग्यारसि करत बहोत दिन बीता, एकादसी न जांणै रीता। जब लग निज तत निजरि न ग्रावै, बुवध्या खेलि बहुत दुख पावै।—ह.पु.वा.

ग्यास—सं०पु०—हँसी, मजाक, दिल्लगी।

ग्यासी—सं०स्त्री०—वह स्त्री जिसके ग्यारह बारह यार या उपपति हों, व्यभिचारिणी। उ०—बासी नरकां रा बिदर, ग्यासी रा गैसोत। सत्यानासी रा सुकन, वासी रा देसोत।—ऊ.का.

ग्येय—वि० [सं० ज्ञेय] जो जानने योग्य हो, जो जाना जा सके, ज्ञातव्य.

ग्रंजन—सं०पु० [सं०] प्याज।

ग्रंथ—सं०पु० [सं०] पुस्तक, किताब।
यौ०—ग्रंथकरता, ग्रंथकार।

ग्रंथक-सं०पु०—ग्रंथ लिखने वाला, ग्रंथकर्ता।

ग्रंथकरता-सं०पु०यौ० [सं० ग्रंथकर्ता] ग्रंथ की रचना करने वाला, ग्रंथकार।

ग्रंथकार—देखो 'ग्रंथकरता'।

ग्रंथण-सं०पु० [सं० ग्रंथन] १ दो चीजों को इस प्रकार जोड़ना कि उनके बीच में गांठ पड़ जाय. २ जोड़ने या गूंथने का भाव।

ग्रंथसाहब-सं०पु०—सिक्खों का धार्मिक ग्रंथ जिसमें उनके गुरुओं के उपदेश एकत्रित हैं।

ग्रंथांण—देखो 'ग्रंथ'। उ०—तारबै ग्रनेकां दया महरांण तस, गिणां की बडम ग्रंथांण गावै।—र.रू.

ग्रंथि-सं०स्त्री०—१ गांठ, बंधन. २ जोड़, संधि।

३ रक्त-विकार से होने वाला एक प्रकार का रोग।

ग्रंथिभेदनासण, ग्रंथिभेदनासन-सं०पु०—योग के चौरासी ग्रासनों के ग्रंतर्गत एक ग्रासन। इसमें पद्मासन की तरह पांवों की स्थिति करके पीछे ग्रासन को उठा कर दोनों घुटनों को छाती के पास लाया जाता है ग्रौर पीछे दोनों हाथों के बंध में बांध कर स्थिर होकर बैठा जाता है।

ग्रंथि—देखो 'ग्रंथि' (रू.भे.)

ग्रंथीलौ-वि० [सं० ग्रंथिल] गूंथा हुग्रा।

ग्रंदप-सं०पु० [सं० गंधर्व] १ गंधर्व, विद्याधर। उ०—परगह सह परवार ग्ररी सह मार उडाणूं। सुरगण ग्रंदप सुपह डहै बंध तासु छुडांणूं।—र.रू.

२ मृग. ३ घोड़ा।

ग्रंधप, ग्रंध्रप—देखो 'ग्रंदप' (रू.भे.) उ०—जिण सभा रै मांहे ब्रह्मादिक सिवादिक इंद्रादिक ग्राद तेंतीस क्रोड देवता, इठयासी हजार रिखी विद्याधर ग्रंध्रप जक्ष ग्राद देस देस रा राजा बैठा है।—र.रू.

ग्रग-सं०पु० [सं० गर्ग] १ एक वैदिक ऋषि। उ०—कमधजां छात जिग वात क्रत, लख विख्यात संकळप लियौ। रिखि वयण ग्राद वासिस्ट ग्रग, कहिया तिम उद्यम कियौ।—रा.रू.

२ बैल, सांड. ३ पहाड़।

ग्रगाचार-सं०पु० [सं० गर्ग] १ एक वैदिक ऋषि, गर्ग ऋषि।

उ०—बडा जीतसी जुद्ध बाहू बडाई, ग्रगाचार नारद संखेप गाई।
—ना.द.

ग्रझड़—देखो 'ग्रीध' (रू.भे.) उ०—फील घड़ पड़ ग्रझड़ झड़ फड़ हुय दड़ड़ रत मुनंद हुड़हड़।—सू.प्र.

ग्रद, ग्रद्ध, ग्रध-सं०स्त्री० [फा० गर्द] १ गर्द, धूलि।

सं०पु०—२ गिद्ध। उ०—१ ग्रागै पग राज खळक्क उदद्ध, गरज्ज पगां रज मोटा ग्रद्ध।—ह.र. उ०—२ ग्रध झपट बहु मांस गट गट।
—सू.प्र.

ग्रधसी-सं०स्त्री० [सं० गृध्रसी] एक प्रकार का वात रोग जो पहले कूल्हे से उठता है ग्रौर धीरे-धीरे नीचे को उतरता हुग्रा दोनों पैरों को जकड़ लेता है (ग्रमरत)

ग्रब, ग्रब्ब, ग्रभ, ग्रभ—१ देखो 'गरभ' (रू.भे.) उ०—१ जळंतौ उग्रा ग्रभ मझार, ग्रनंत परीखत संत उबार।—ह.र.

उ०—२ महाराजा ग्रजमाल री, बधसी जगत प्रताप। ग्रायौ ग्रभ जिण निस ग्रभो, भागौ सुरां संताप।—रा.रू.

२ देखो 'गरव' (रू.भे.) उ०—१ ग्रड़ाभीड़ रावत पेला ग्रबीहा, सिंधी लब्ब ग्रारब्ब सो ग्रब्ब सीहा।—रा.रू.

उ०—२ बे हरि हर भजै ग्रतारू बोलै, ते ग्रब भागीरथी म तूं। एक देस वाहणी न ग्रांणी, सुरसरी सम सरि वेलि सूं।—वेलि.

उ०—३ गिरतनया पत सिख ग्रभ गंजण, सुख निसबासर सेवै।
—र.रू.

ग्रभवास—देखो 'गरभवास' (रू.भे.) उ०—ग्रभवास बैठ भट किसूं घणूं, भूलै कांइ चीलै भलै।—ज.खि.

ग्रभवासी-वि०—गर्भ का बच्चा, गर्भस्थ शिशु।

ग्रवी-सं०स्त्री०— ग्राग, ग्रग्नि (ह.नां.)

ग्रसण-सं०पु० [सं० ग्रसन] १ निगलने या खाने की क्रिया या भाव. २ पकड़. ३ ग्रहण।

ग्रस्त-वि० [सं०] १ पकड़ा हुग्रा. २ पीड़ित. ३ खाया हुग्रा. [सं० गृहस्थ] ४ गृहस्थ।

ग्रस्तज-सं०पु० [सं० गृहस्थ] गृहस्थी, गृहस्थ।

ग्रस्तास्त-सं०पु० [सं०] १ ग्रहण लगने पर चंद्रमा या सूर्य का ग्रहण की ग्रवस्था में ही बिना मोक्ष प्राप्त किए ग्रस्त होना.

[सं० गृहस्थ] २ गृहस्थ।

ग्रस्तोदय-सं०पु० [सं०] चंद्रमा या सूर्य का ग्रहण लगे हुए ही उदय होना।

ग्रह-सं०पु० [सं०] १ प्राचीन काल से ही ज्ञात वे तारे जिनकी गति, उदय एवं ग्रस्तकाल ग्रादि का पता ज्योतिषियों ने लगा लिया था।

यौ०—ग्रहगोचर, ग्रहपति, ग्रहमिण ग्रहमंत्र, ग्रहराज, ग्रहवेध।

२ सौर जगत में ग्रपनी निश्चित कक्षा पर सूर्य की परिक्रमा करने वाला तारा।

वि०वि०—ये प्रधान ग्रह नौ हैं—१ बुध, २ शुक्र, ३ पृथ्वी, ४ मंगल, ५ बृहस्पति, ६ शनि, ७ ग्ररुण, ८ वरुण, ९ यम (प्लूटो)। फलित ज्योतिष में नौ ग्रहों के ग्रंतर्गत सूर्य व चंद्र भी सम्मिलित किए जाते हैं (मि० 'नवग्रह')

यौ०—ग्रहगोचर, ग्रहचिंतक, ग्रहजग्य, ग्रहजुती, ग्रहजोग, ग्रहदसा, ग्रहद्रस्टि, ग्रहनेमि, ग्रहपति, ग्रहमिण, ग्रहमंत्र, ग्रहराज, ग्रहवेध।

३ नौ की संख्या. ४ ग्रहण करने या लेने का भाव. ५ कृपा. [सं० ग्रहण] ६ देखो 'ग्रहण'. ७ वह पात्र जिससे यज्ञ में देवताग्रों को सोमरस का हविष्य दिया जाता है. [सं० गृह] ८ घर, मकान, निवासस्थान। उ०—ग्रागै जाइ ग्रालि केळि ग्रह ग्रंतरि, करि ग्रंगण मारजण करेण।—वेलि.

यौ०—ग्रहचार, ग्रहचारी, ग्रहचिंतक, ग्रहजुध, ग्रहधारी, ग्रहनार, ग्रहपति, ग्रहपाळ, ग्रहपसु, ग्रहभ्रग, ग्रहवंत।

(रू०भे०—ग्रिह, ग्रे'ह, ग्रेहक)
६ कुटुम्ब, परिवार. १० कैदी।

ग्रहइंद—सं०पु० [सं० ग्रहेन्द्र] सूर्य्य, भानु (क.कु.बो.)

ग्रहकल्लोल—सं०पु० [सं०] राहु नामक ग्रह।

ग्रहकेस्वर—सं०पु०यौ० [सं० गुह्यकेश्वर] कुबेर (नां.मा.)

ग्रहक्कणौ, ग्रहक्कबौ—देखो 'गहकणौ' (रू.भे.) उ०—ग्रहकं ग्रीधणी लाधे ग्रास।—रा.ज.रासौ

ग्रहगण—सं०पु०यौ०—ग्रहावली, ग्रहों का समूह।

ग्रहगति, ग्रहगोचर—१ देखो 'गोचर' (३) उ०—ग्रिह काज भूलिय्या ग्रहि ग्रहि ग्रहगति पूछीजै चिंता पड़ी। मन ग्ररपणा कीधै हरि मारग चाहै प्रज ग्रोटे चढ़ी।—वेलि. २ फलित ज्योतिष के अनुसार ग्रहों का चालू क्रम।

ग्रहग्रहणौ, ग्रहग्रहबौ—क्रि०ग्र०—पक्षियों का ग्राकाश में मंडराना।
उ०—उपड़ रजी ग्रपार, ग्रीभ्रण समळा ग्रहग्रहै। सभै छतीसह सार, वळ हालै गोगा दिसी।—गो.रू.

ग्रहचार—सं०पु० [सं० गृह+चार] संभोग, मैथुन, समागम।
वि० [रा०] घर संबंधी। उ०—पिता पूत ग्रहचार सपूतां, हुई वात राठौड़ां हूंतां। महारांणा सूं कंवर मिळायौ, दुभ्रल मारवां राज दिरायौ।—रा.रू.

ग्रहचारी—सं०पु० [सं० गृहचार+ई] गृहस्थ। उ०—कांनन रहौ रहौ गिरिकंदर, चवै खलक ग्रहचारी। घर घर जो डोलै विण घरणी, भाखै नगर भिखारी।—र.रू.

ग्रहचिंतक—सं०पु० [सं०] १ ज्योतिषी. २ घर की चिंता रखने वाला।

ग्रहजग्य—सं०पु०यौ० [सं० ग्रहयज्ञ] ग्रहों की उग्रता एवं कोप सम्बन्धी दोषों को दूर करने के लिए किया जाने वाला पूजन या यज्ञ (फलित ज्योतिष एवं पौराणिक)

ग्रहजुति—सं०स्त्री०यौ० [सं० ग्रहयुति] एक राशि के एक ही ग्रंश या भाग पर दो ग्रहों के एकत्र होने का भाव।

ग्रहजुध—सं०पु०यौ० [सं० ग्रह युद्ध] १ सूर्य सिद्धांत के अनुसार होने वाला एक प्रकार का ग्रहण जिसका फल फलित ज्योतिष के अनुसार ग्रत्यंत भयंकर होता है।
वि०वि०—इस सिद्धांत के अनुसार बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि या मंगल में से किसी एक ग्रह का चंद्रमा के साथ ग्रथवा उक्त ग्रहों में से किसी दो ग्रहों का एक साथ एक राशि के एक ग्रंश पर इस प्रकार एकत्र होना होता है कि उस ग्रह पर ग्रहण लगा हुआ जान पड़े।
[सं० गृह युद्ध] २ गृहक्लेश, घर का झगड़ा।

ग्रहजुधभ—सं०पु०यौ० [सं० ग्रहयुद्धभ] वह नक्षत्र जिस पर कोई दो ग्रह एक साथ एकत्र हों।

ग्रहजोग—सं०पु० [सं० ग्रह+योग] एक राशि के एक ही ग्रंश या भाग पर दो ग्रहों के एकत्र होने का भाव।

ग्रहण—सं०पु० [सं०] १ सूर्य, चंद्र या किसी दूसरे ग्राकाशचारी पिंड की ज्योति का ग्रावरण जो दृष्टि ग्रौर उस पिंड के मध्य में किसी ग्रन्य ग्राकाशचारी पिंड के ग्रा जाने के कारण इस पिंड की छाया पड़ने से होता है।
वि०वि०—भौगोलिक सिद्धांत के अनुसार सूर्य ग्रौर पृथ्वी के बीच में चंद्रमा के ग्राने से सूर्य का कुछ भाग ढक जाता है। इससे सूर्यग्रहण होता है। इसी प्रकार सूर्य ग्रौर चंद्रमा के बीच पृथ्वी के ग्राने से पृथ्वी की छाया चंद्रमा पर पड़ने से चंद्रग्रहण होता है। पौराणिक मत के अनुसार राहु नामक राक्षस के राहु ग्रौर केतु (धड़ एवं शिर) कभी सूर्य ग्रथवा कभी चंद्रमा को ग्रस लेने का प्रयत्न करते हैं। सूर्य ग्रौर चंद्रमा को इस विपत्ति से बचाने ग्रथवा इस प्रकार के ग्रहण से होने वाले ग्रशुभ फल से बचने के लिए लोग ग्रहण के समय दान-पुण्य ग्रादि करते हैं।
२ पकड़ने, लेने या हस्तगत करने की क्रिया. ३ दुख, कष्ट, पीड़ा, संकट।
वि०—पकड़ने वाला। उ०—गिरंद गाहटण नभै-मण सभै रिण विसम गत, दोयण घण दावटण जैत दूजो। जपै ग्रन सहू जन 'सिव' तणा विजै जस, साह मोखण-ग्रहण भूप सूजो।—किसनौ सिढ़ायच

ग्रहणगंध, ग्रहणग्रंध—सं०पु०यौ० [सं० गंध+ग्रहण] १ भौंरा (ग्र.मा.) २ नाक (ग्र मा.)

ग्रहणवैरी—सं०पु०यौ०—भाला (ना.डिं.को.)

ग्रहणसुगंध—सं०पु०यौ०—नाक (ग्र.मा.)

ग्रहणि, ग्रहणी—स०स्त्री० [सं०] १ पेट में पक्वाशय ग्रौर ग्रामाशय के बीच की एक नाड़ी विशेष। यह ग्रग्नि ग्रौर पित्त का प्रधान ग्राधार है (सुश्रुत) २ इस नाड़ी के दूषित होने से उत्पन्न होने वाला एक प्रकार का रोग जिसमें खाया हुग्रा पदार्थ पचता नहीं है।
[रा०] ३ युद्ध. ४ ग्रहण. [स० गृहिणी] ५ घर की मालकिन. ६ भार्या, पत्नी।

ग्रहणी—देखो 'गैं'णौ' (रू.भे.) उ०—निहसै वूठौ घण विणु नीलांणी वसुधा थळि थळि जळ वसइ। प्रथम समागम वसत्र पदमणी लीध किरि ग्रहणा लसइ।—वेलि.

ग्रहणौ, ग्रहबौ—क्रि०स०—१ लेना। उ०—मोतिए विसाहण ग्रहि कुण लूं कै, एक एक प्रति एक ग्रनूप।—वेलि. २ स्वीकार करना।
उ०—ग्रहिया मुखि मुखा गिळित गिळित उग्राहिया, मूं गिणि ग्राखर ए मरम।—वेलि.
३ पकड़ना, हाथ में थामना। उ०—१ भरिया तरु पुहप वहे छूटा भर, कांम बांण ग्रहिया करगि।—वेलि.
उ०—२ लिया देख दाखै प्रभू काज सारौ। ग्रिगौ नोख रूपी ग्रहौ काय मारौ।—सू.प्र.
४ धारण करना। उ०—ग्रहियौ कंध गंध भार गुरु, गंधवाह तिणि मंद गति।—वेलि. ५ ग्रधिकार में करना। उ०—महदातार पर्यंपै माहव, बोल किसौ ऊबरां बियौ। ग्रहिया पछै उग्रहणौ गोबिंद, कीजौ जिम सगरांम कियौ।—महारांणा संग्रांमसिंह रौ गीत

ग्रहदसा-सं०स्त्री०यौ० [सं० ग्रहदशा] १ गोचर ग्रहों की स्थिति. २ ग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी व्यक्ति की भली या बुरी अवस्था. ३ अभाग्य।
क्रि०प्र०—आणी, बीतणी।

ग्रहदायु-सं०स्त्री० [सं०] जन्म के समय के ग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी जातक की आयु, अवस्था।

ग्रहदस्टि-सं०स्त्री०यौ० [सं० ग्रहदृष्टि] फलित ज्योतिष के अनुसार बनाई जाने वाली कुंडली में एक ग्रह की दूसरे ग्रह पर दृष्टि होने का भाव। इसमें शुभ ग्रहों की दृष्टि का फल शुभ तथा अशुभ ग्रहों की दृष्टि का फल अशुभ होता है।

ग्रहधारी-सं०पु०यौ० [सं० गृह+धारिन्] गृहस्थी। उ०—ग्रहधारी ग्रोडां गिणां, नर थोड़ां में नेक। भेक लियोड़ा में भला, कोड़ां मांहीं केक।—ऊ.का.

ग्रहनार-सं०स्त्री०यौ० [सं० गृह+नारी] गृहिणी, भार्या।
उ०—सिंघासण चढ़णां नर ग्रासण, सासण सह मांनें संसार। खतम खुमी अणखूट खजांना, निरमळ चंदमुखी ग्रहनार।—र.रू.

ग्रहनेम-सं०पु० [सं० ग्रहनेमि] १ आकाश (डिं.को.) २ चंद्रमा।

ग्रहनेमि-सं०स्त्री० [सं०] चंद्रमा की गति के मार्ग का वह भाग जो मूल और मृगशिरा नक्षत्रों के बीच में पड़ता है।

ग्रहप, ग्रहपत, ग्रहपति, ग्रहपती-सं०पु०यौ० [सं० गृह+प—गृहपति] १ घर का मालिक, गृहपति.
उ०—आज भलां दिन उगीयौ, ग्रहपति गयौ मुझ गेह। सुपने मिळती साल पिव, सो दीठा नयणेह।—ढो.मा.
२ श्वान, कुत्ता ४ चौकीदार. ५ पति, खाविंद।
[सं० ग्रहपति] ६ सूर्य, भानु (अ.मा.)

ग्रहपसु-सं०पु० [सं० ग्रहपशु] १ कुत्ता (अ.मा.) २ गाय।

ग्रहपाळ, ग्रहपाळक-सं०पु० [सं० गृहपाल] १ घर का रक्षक, चौकीदार. २ सेवक, दास, दासी. ३ श्वान, कुत्ता।

ग्रहपसु-सं०पु० [सं० ग्रहपुष] सूर्य, भानु।

ग्रहमंडण-सं०पु०यौ० [सं० गृह+मंडन] धन, दौलत, द्रव्य (नां.मा.)

ग्रहमणि, ग्रहिमणि, ग्रहिमणि-सं०पु० [सं० गृहमणि] १ दीपक (अ.मा., ह.नां.) २ प्रकाश, ज्योति।

ग्रहमैत्र, ग्रहमैत्री-सं०पु०स्त्री० [सं० ग्रहमैत्र] वर एवं वधू के ग्रहों के स्वामियों की अनुकूलता, जिसका विचार विवाह-संस्कार के पूर्व किया जाता है।

ग्रहम्रग-सं०पु० [सं० गृहमृग] श्वान, कुत्ता (ह.नां., अ.मा.)

ग्रहराज, ग्रहराव-सं०पु० [सं० ग्रहराज] १ सूर्य। उ०—भारथ मझि मिळे दूसरी भारथ, रथ ठांभियौ जोवण ग्रहराज।—गोरधन बोगसौ
२ चंद्र. ३ वृहस्पति।

ग्रहवंत-वि०—भाग्यवान, सौभाग्यशाली। उ०—रढ़रांण भांण रतन्न, करतब्ब भारथ क्रम्र। नरनाह जे-मुख नीर, ग्रहवंत ग्यांनगहीर।
—वचनिका

ग्रहवार-सं०स्त्री०यौ० [सं० गृह+वारि] मछली (अ.मा.)

ग्रहवास-सं०पु०—१ किसी के घर में रहना. २ किसी के घर में पत्नी रूप बन कर रहना। उ०—कल मांनव रै ग्रहवास करूं। उण स्राप तैं पार जदी उतरूं।—पा.प्र.
(रू०भे०-घरवास, घरबासौ)
३ सहवास।

ग्रहवेध-सं०पु० [सं०] ग्रह की स्थिति आदि का ज्ञान।

ग्रहसणौ, ग्रहसबौ-क्रि०स०—१ ग्रहण करना, स्वीकार करना.
२ छीनना, झपटना।

ग्रहसमागम-सं०पु० [सं०] मंगल, बुध आदि अन्य ग्रहों का चंद्रमा के साथ योग।

ग्रहस्थ-सं०पु० [सं० गृहस्थ] वह व्यक्ति जो ब्रह्मचर्य के उपरांत विवाह कर के दूसरे आश्रम में प्रवेश करे. २ घर-बार वाला, बाल-बच्चों वाला।

ग्रहस्थणौ—देखो 'ग्रहस्थी' (रू.भे.)

ग्रहस्थाश्रम-सं०पु० [सं० गृहस्थाश्रम] जीवनकाल के माने हुए चार आश्रमों के अंतर्गत दूसरा आश्रम जिसमें ब्रह्मचर्य एवं विद्याध्ययन के उपरांत (लगभग पच्चीस वर्ष की आयु के पश्चात्) लोग विवाह कर के घर का काम-काज देखते थे। जीवनकाल का वह भाग जिसमें पुरुष विवाह कर के पारिवारिक जीवन व्यतीत करता है।

ग्रहस्थी-सं०पु० [सं० गृहस्थ+रा०प्र०ई] १ गृहस्थ का कर्तव्य.
२ घरबार, घर की व्यवस्था. ३ कुटुम्ब, परिवार. ४ घर का सामान।
वि०पु० (स्त्री० ग्रहस्थण) गृहस्थ में रहने वाला, घरबार वाला।

ग्रहस्रंगाटक-सं०पु० [सं० ग्रहशृंगाटक] ग्रहों का एक प्रकार का योग जिसके अवस्थानुसार शुभ और अशुभ फल होते हैं (बृहत्संहिता)

ग्रहस्वर-सं०पु० [सं०] संगीत के अंतर्गत किसी राग में वह स्वर जिससे वह राग आरम्भ होती है।

ग्रहांग्रहण-सं०पु० [सं० ग्रह-ग्रहण] रावण (नां.मा.)

ग्रहांचोग्रावास ग्रहांचोरहण-सं०पु०—आकाश, नभ (डिं.नां.मा.)

ग्रहांपत, ग्रहांपति—देखो 'ग्रहपति' (२) (ह.नां.)

ग्रहांराज-सं०पु० [सं० ग्रहराज] सूर्य, भानु। उ०—ग्रहांराज साखी मंदी ज्वाळ गाई। तरै रांम सुग्रीव री मित्रताई।—सू.प्र.

ग्रहाधार-सं०पु० [सं०] ध्रुव नक्षत्र, ध्रुव।

ग्रहारांम-सं०पु०यौ० [सं० गृह+आराम] छोटा बगीचा, वाटिका, उद्यान।

ग्रहावणौ, ग्रहावबौ-क्रि०स० ('ग्रहणौ' का प्रे०रू०) ग्रहण कराना।
उ०—धरे हर केता बार धियांन, ग्रहावण लोक अनोग्रन ग्यांन
—ह.र.

ग्रहाश्रमी-वि० [सं० गृहाश्रमी] गृहस्थाश्रम में रहने वाला।

ग्रहि-सं०पु० [सं० गृह] १ घर (अ.मा.) २ श्वान, कुत्ता (अ.मा.)
[सं० ग्रही] ३ चंद्रमा (अ.मा.)

ग्रहिणी-सं०स्त्री० [सं० गृहिणी] घर की मालकिन, भार्या, पत्नी (अ.मा.)

ग्रहित-वि०—ग्रहण किया हुआ। उ०—गुण गंध ग्रहित गिळि गरळ ऊगळित, पवण वाद ए उभय पख।—वेलि.

ग्रहिमणि-सं०पु० [सं० गृहमणि] दीपक (ह.नां.)

ग्रही-सं०पु०—गृहस्थी. २ श्वान, कुत्ता (अ.मा.)

ग्रहीत-वि०—१ घिरा हुआ, आवृत। उ०—आरोपित आंखि सहू हरि आंननी, गरभ उदधि ससि मछे ग्रहीत।—वेलि.

२ देखो 'ग्रहित' (रू.भे.)

ग्रहेस-सं०पु० [सं० ग्रहेश] सूर्य। उ०—हुवौ असताचळ ओट ग्रहेस। सबयौ नंह देख कुतूहळ सेस।—मे.म.

ग्रहेसणौ, ग्रहेसबौ—देखो 'ग्रहसणौ' (रू.भे.) उ०—घोड़ा सधि जीवता मेहुलाव्या, ते अम्ह पुण्य अनंत। विप्र तणूं धन जेह ग्रहेसइ, ते जासइ भसमंत।—कां.दे.प्र.

ग्रह्य-सं०पु० [सं० ग्रह्य] १ एक प्रकार का यज्ञ-पात्र. २ पालतू पक्षी।

वि० [सं० ग्रह्य] ग्रहण करने योग्य।

ग्रह्यसूत्र-सं०पु० [सं० गृह्यसूत्र] वह पुस्तक जिसमें हिन्दू संस्कृति के संस्कार, यथा—मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि के विधान का वैदिक पद्धति से विवरण हो।

ग्रांजणी-सं०स्त्री० [सं० गुह्य+अंजन] आंख की पलक पर होने वाली फुन्सी, गुहांजणी।

ग्राम-सं०पु० [सं० ग्राम] १ कुछ घरों की सम्मिलित बस्ती, गांव, छोटी बस्ती।

यौ०—ग्रामजाचक, ग्रामपाळ, ग्रामभ्रत, ग्रामवल्लभा, ग्रामसीह।

२ समूह, ढेर, राशि (अ.मा.) उ०—सदा मिळै बिल स्याळ रै, बच्छ पुच्छ खुर चाम। मिळै गयां म्रगराज थह, गज रद मोती ग्राम।—बां.दा.

३ शिव (अ.मा.) ४ क्रम से सात स्वरों का समूह, सप्तक।

उ०—सात सुर तीन ग्राम रो भेद वणियो छै, भाव दिखावै छै।—रा.सा.सं.

वि०वि०—संगीत में सुविधा के लिए षड्ज, गंधार और मध्यम तीन ग्राम निश्चित कर लिए गए हैं।

ग्रामजाचक-सं०पु०यौ० [सं० ग्राम याचक] वह ब्राह्मण जो ग्राम के ऊंच-नीच आदि सभी जाति के लोगों का पुरोहित हो।

ग्रामपाळ-सं०पु०यौ० [सं० ग्रामपाल] १ गांव का मालिक या स्वामी. २ गांव की रक्षा करने वाला सैनिक या चौकीदार।

ग्रामभ्रत-सं०पु०यौ० [सं० ग्रामभृत] वह व्यक्ति जो गांव के बहुत से लोगों की सेवा करता हो।

ग्रामवल्लभा-सं०स्त्री०यौ० [सं० ग्राम+वल्लभा] वेश्या, पतुरिया, रंडी।

ग्रामसिंह, ग्रामसीह-सं०पु० [सं० ग्रामसिंह] श्वान, कुत्ता (ह.नां., अ.मा.)

ग्रामीण-वि०—१ देहाती, गंवार, गांव का रहने वाला।

ग्रामोफोन-सं०पु०—एक प्रकार का वाद्य जिसमें गीत आदि भरे और इच्छानुसार समय-समय पर सुने जा सकते हैं।

ग्राम्य-सं०पु० [सं० ग्राम्य] १ एक प्रकार का रतिबंध शृंगार का एक आसन. २ काव्य का एक दोष। वह काव्य जिसमें गंवारू शब्दों की बहुलता हो. ३ स्त्री-प्रसंग, मैथुन।

वि०—१ ग्राम से संबंधित. २ मूढ़।

ग्रात्र-सं०पु० [सं० गात्र] शरीर, तन, देह।

ग्रायक—देखो 'ग्राहक' (रू.भे.)

ग्राव-सं०पु० [सं० ग्रावन्] १ पत्थर (ह.नां.) उ०—दिपै भाळ बैठा तवां जेब देता. लसै गल्लकी ग्राव भा नैण लेता।—वं.भा.

२ ओला (अ.मा.) ३ पर्वत, पहाड़ (अ.मा.)

४ गाह, मगरमच्छ। उ०—जळ भीतर ग्राव मचाय महाजुद्ध, कंटक लीध दबाय करी।—भगतमाळ

वि०—दृढ़, मजबूत।

ग्रास-सं०पु०—१ भोजन का उतना अंश जो एक बार में चबाने के लिए मुंह में डाला जाय, कौर, निवाला. २ पकड़ने की क्रिया.

३ सूर्य, चंद्रमा के ग्रहण लगने का कार्य या भाव. ४ विभाग, हिस्सा.

५ आय, आमदनी। उ०—ओछी जाति रै बडौ ग्रास हुवां बडां री ओळि में आवण री हूंस धरै।—वं.भा.

ग्रासण सं०पु० [सं० ग्रास] कौर, निवाला।

ग्रासणौ, ग्रासबौ-क्रि०स०—निगलना।

ग्रासणहार, हारौ (हारी), ग्रासणियौ—वि०।

ग्रासिग्रोड़ौ, ग्रासियोड़ौ, ग्रास्योड़ौ—भू०का०कृ०।

ग्रासवेध-सं०पु०

उ०—दूदो तिलोकसी, मांगण, बांगण ऐ मन में धरती रौ ग्रासवेध राखै छै। पण मूळराज रतन सो कंवर निपट जोरावर, परधांन सीहड़ वीकमसी निपट जोरावर तिण आगै कठै ही क्यूं धरती मांहे खाय सकै नहीं। नैणसी

ग्रासियौ—१ देखो 'गिरासिग्रो' २ थोड़ी जमीन का मालिक, भूस्वामी

उ०—तद स्री करणीजी कयौ—वीका थैठै थारो प्रताप जोधा सूं सवाई वाजो हुसी। घणा ग्रासिया थारा पायनांमी हुसी।—द.दा.

३ नये राज्य को पाने वाला. ४ लूट-खसोट करने वाला, लुटेरा।

उ०—सइलोट कीध सांमई साहि, मारियउ सलहदी मीर माहि। सूमरइ जिसा आसुर संघारि, महिपत्ति वडा ग्रासिया मारि।—रा.ज.सी.

५ बागी, विद्रोही। उ०—म्हे थांरो बिगाड क्यूं नहीं करां, तूं थांरा लुद्रवा मांहे बैठो रहै। सु तिण दिनां जेसळ दुसाफ रौ ग्रासियौ हुय बारै नीसरियौ छै। पातसाह नूं कहै छै—पंवार इणां रै आया छै, ओ खबर बिगर दियां रहसी नहीं।—नैणसी

ग्राह-सं०पु० [सं०] १ मगर, घड़ियाल। उ०—राखे तैं बार किता गजराज, मारे ग्राह बारि बिचै महाराज।—ह.र.

२ ग्रहण. ३ ग्रहण करने की क्रिया या भाव।

ग्राहक, ग्राहग–सं०पु०—ग्रहण करने वाला। उ०—जांण प्रवीण विजै अस-ग्राहग, करणीगर सहु विधि कियौ। क्रम कायरां लखण क्रपणां रा, सु तौ न जांणे सरवहियौ।—ईसरदास बारहठ
२ खरीदने वाला, मोल लेने वाला. ३ लेने या पाने की इच्छा रखने वाला।

ग्राहगम–सं०पु०—भ्रमर, भौंरा (ह नां.)

ग्राहगू–सं०पुं०—ग्राहक। उ०—सकळ जग ऊपरा भ्रकळ देसल सुतन, सदा सोभा उदरि भ्राउ सरिखै। गढ़पति नहीं खोटां तणौ ग्राहगू, 'भ्राग' रौ पोतरौ खरा परखै।—ल.पि.

ग्राहग्रह–सं०पु०—हाथी (भ्र.मा.)

ग्राही–सं०पु० [सं०] १ दान ग्रहण करने वाला व्यक्ति. २ स्वीकार करने वाला।
वि० [सं० ग्राह्य] १ अधिकार में करने योग्य. २ ग्रहण करने योग्य

ग्रिध्ध–सं०पु० (स्त्री० ग्रिध्धणी] गिद्ध।

ग्रिह—देखो 'ग्रह' (रू.भे.)

ग्रिहवास—देखो 'ग्रहवास' (रू.भे.) उ०—रंग विण व्याह, वेस विण रांमति, सुंदरि विण ग्रिहवास जिसौ। सुरतांण कहै कलियांण समोभ्रम, त्याग पखै कुळ जलम तिसौ।—भ्रज्ञात

ग्रींज, ग्रींजण–सं०स्त्री० [सं० गृध्र] गिद्ध पक्षी।

ग्री–सं०स्त्री० [सं० ग्रीवा] गरदन। उ०—धनुख भूंह लाज भ्रूह तद्र··· कंज मुखं। करं विसाळ चंप डाळ ग्री कपोत के रुखं।—पा.प्र.

ग्रीक–सं०स्त्री०[भ्रं०] १ यूनान देश का नाम।
२ ग्रीस (यूनान) देश की भाषा।
वि०— यूनान देश का, यूनान संबंधी।

ग्रीखम—देखो 'ग्रीस्म' (रू.भे.) उ०—वपि भ्रसह जळ सुख उसण वल्लभ सूर कर हुइ सीतळं, उण किरण सिस निस जेम ग्रीखम विखम हिम द्रुम बिज्जळं।—रा.रू

ग्रीज, ग्रीझ–सं०पु० [सं० गृध्र] (स्त्री० ग्रीझणी) गिद्ध।
उ०—१ सो बूकड़ा काढ़ि बारै ग्रीजां नै दीधा भ्रौर भ्रांतां ऊभ भेळा करि पेटी सेंठी बांधि ऊपरि हथियार बांध्या।
—वीरमदे सोनगरा री वात
उ०—२ ग्रीझणी काय उतावळी, हय पलांणतां धीर।—हा.झा.

ग्रीठ—देखो 'गरीठ' (रू.भे.)

ग्रीध, ग्रीधड़, ग्रीधट–सं०पु० [सं० गृध्र] (स्त्री० ग्रीधण, ग्रीधणी) गिद्ध पक्षी। उ०—१ कण एक लिया किया एक कण कण, भर खंचे भंजियौ भिड़। बळभद्र खळै खळां सिर बैठौ, चारौ पळ ग्रीधणी चिड़।—वेलि. उ०—२ सुणे रांम रौ उच्छाह साई। उमै ग्रीध संपात रै पंखि भ्राई।—सू. प्र.
(रू०भे०–ग्रींज, ग्रीझ, ग्रीधल, ग्रीधस, ग्रीधिण, ग्रीध्ध।

ग्रीधपंख–सं०पु०—बाण, तीर (ह.नां.)

ग्रीधल, ग्रीधस–सं०पु०—१ गरुड़ (ह.नां, भ्र.मा.)
२ देखो 'ग्रीध' (रू.भे.)

ग्रीधांणी–सं०स्त्री०—मादा गिद्ध। उ०—पिरी घरं ग्रीधांणी चील्ह भ्रघाय। भ्रंत्रावळि काढ़ि नखां उळझाय।—मे.म.

ग्रीधाळ–सं०पु० [सं० गृध्र+भ्राल] १ गिद्धों का समूह. २ बड़ा गिद्ध पक्षी।

ग्रीध्ध—(स्त्री० ग्रीधिण, ग्रीध्धणी) देखो 'ग्रीध' (रू.भे.)

ग्रीव—देखो 'ग्रीवा' (रू.भे.) उ०—घट सुंदर ग्रीव कबांण घटी, पवमांन विमांण समांण पटी।—मे.म.

ग्रीवरेस–सं०स्त्री०—तीन की संख्या*। (डि.को.)

ग्रीवा–सं०स्त्री० [सं०] सर भ्रौर धड़ के मध्य का भ्रंग, गरदन, गला।
उ०—प्रेम बाग पहचांण निरंतर पाळही। ग्रीवा कंबु कपोत गरब्बां गाळही।—बां.दा.

ग्रीवाज–सं०पु०—चौबीस भ्रवतारों के भ्रंतर्गत एक भ्रवतार, हय-ग्रीवावतार।

ग्रीवी–सं०पु० [सं० ग्रीविन्] लम्बी गर्दन वाला (ऊँट)

ग्रीसम, ग्रीस्म–सं०पु० [सं० ग्रीष्म] १ गर्मी की ऋतु. २ उष्णता।
वि०—गरम, उष्ण।

ग्रेट ब्रिटेन–सं०पु० [भ्रं०] यूरोप के उत्तर पश्चिम में स्थित एक बड़ा द्वीप। इंग्लैंड भ्रौर स्कॉटलैंड का सम्मिलित प्रदेश।

ग्रेवड़, ग्रेवड़ौ–सं०पु०—वृक्षों में रस विकार हो कर निकलने वाला एक पदार्थ जो जम कर सुपारी की भाँति दिखाई देता है।
उ०—भ्रमल सुपारी सतपड़ां रम, भ्रमर गोळियां ग्रेवड़ा। खेजड़ां री खपत हुया है, वीर सती भ्रर रूंखड़ा।—दसदेव

ग्रेह—देखो 'ग्रह' (रू.भे.) (ह.नां.) उ०—भलोस भ्राज मुंझ भाग, भ्राप ग्रेह भ्राविया। वरस्स तो रघू दिलीप, पुन्यहूंत पाविया।
—सू प्र.

ग्रेहक–सं०पु० [सं० गृह+क—स्वार्थे] घर, भवन, मकान, गृह।

ग्रेहणि, ग्रेहणी—देखो 'ग्रहणी' (रू.भे.) (ह नां.)

ग्रेहणौ–सं०पु०—गहना, भ्राभूषण।
उ०—भख पळ भ्रमंख घाव नह लाधे, थाट वरग सुर सोच थयौ। ग्रीधण भ्रछर तबीबां ग्रेहणौ, 'गंग' समोभ्रम सुरग गयौ।
—रूपसींग पीपाड़ा री गीत

ग्रेवसा—देखो 'ग्रहदसा' (रू.भे.)

ग्लांणि—देखो 'ग्लानी' (रू.भे.)

ग्लांन, ग्लांनि, ग्लांनी–सं०स्त्री० [सं० ग्लानि] १ शिथिलता, भ्रनुत्साह, खेद, भ्रक्षमता। उ०—भ्रसरमसोन वरम पै कमांन ग्लांन मांन पै। परचौ जमीन पै सु सांग टांग भ्रासमांन पै।—ऊ.का.
२ घृणा, भ्ररुचि। उ०—भ्राठवें दिन कुमार प्रथ्वीराज कन्ह रै सदन जाय सत्कार पूरवक गरहा रो ग्लांनि भगाई।—वं.भा.

ग्लौ–सं०पु० [सं०] चंद्रमा (भ्र.मा.) उ०—सुखी बियोग से मुखी दुखी भ्रमैं दिगंत में। मुखांत कांत ग्लौ मुखी दुखांत तै सुखांत में।
—ऊ.का.

ग्वी-भाळ–सं०पु०—शिव, महादेव (नां.मा.)

ग्वाड़—देखो 'गुवाड़' (रू.भे.) उ०—धवळा सूं राजै धणी, चंगी दीसै ग्वाड़। नारायण मत नांखजै, धवळा ऊपर धाड़।—बां.दा.

ग्वाड़ी—देखो 'गुवाड़ी' (रू.भे.)

ग्वार—देखो 'गवार' (रू.भे.)

ग्वारतरी–सं०स्त्री०—ग्वार नामक पौधे का सूखा घास जो पशुओं को खिलाने के काम में आता है।

ग्वारपाठौ–सं०पु०—घी कुआंर नामक औषधि। मीठे एवं कड़ुवे की दृष्टि से इसके दो भेद होते हैं।

ग्वारफळी—देखो 'गवारफळी' (रू.भे.)

ग्वालंब–सं०पु० [सं० गवालंब] वह व्यक्ति जो गायें आदि पाल कर उनके दूध एवं घी से अपनी जीविका उपार्जन करता हो।

ग्वाळ–सं०पु० [सं० गोपाल, प्रा० गोवाळ] (स्त्री० ग्वाळण, ग्वाळणी) ग्वाला, अहीर।

यौ०—ग्वाळपति।

ग्वाळपति–सं०पु०यौ०—श्रीकृष्ण।

ग्वाळियौ–सं०पु० ('ग्वाळौ' का अल्पा०) १ ग्वाला. २ गडरिया।

उ०—इण पाटण री ठौड़ एक कोई ग्वाळियौ अणहलनांमै त्यांणौ आदमी हुतौ, तिण एक तमासौ दीठौ।—नैणसी

३ श्रीकृष्ण।

(रू०भे०–गवाळियौ, गुवाळियौ)

ग्वाळेर–सं०पु० [सं० गोपालगिरि] ग्वालियर नामक एक प्राचीन देशी रियासत।

ग्वाळौ—देखो 'ग्वाळियौ' (अल्पा०)

घ

घ—कवर्ग का चौथा वर्ण जिसका उच्चारण-स्थान कंठ है। यह 'ग' का महाप्राण है।

घंघोळणी, घंघोळबौ–क्रि०स०—पानी को हिला कर उसमें कुछ घोलना, मिश्रित करना।

घंघोळियोड़ौ–भू०का०कृ०—पानी या किसी तरल पदार्थ को हिला कर कुछ मिश्रित किया हुआ (स्त्री० घंघोळियोड़ी)

घंट–सं०पु० [सं० घट] १ घड़ा, जल-पात्र [रा०] २ गला, कंठ. ३ देखो 'घंटौ' (रू.भे.) उ०—१ मांड पीवइ कण राळजे, लाळ विहूणी वाजै छै घंट। इसी सकति तिहां देव की, चोर नाहर नहीं देव कइ पंथ।—बी.दे.

उ०—२ घंट गै घमंक घोर, जंगमांण नाळ जोर।—सू.प्र.

घंटका–सं०स्त्री० [सं० घंटिका] १ छोटा घंटा. २ घुंघरू।

घंटाकरण, घंटाकरन–सं०पु० [सं० घंटाकर्ण] शिव का एक गण।

वि०वि०—शाप के प्रभाव से यह उज्जयिनी में प्रकट हुआ था। उस समय के समस्त पंडितों को परास्त करने के उद्देश्य से यह शिव की उग्र तपस्या करने लगा। शिव से वर प्राप्त कर इसने कालिदास को छोड़ कर सारे पंडितों को परास्त किया। शिव ने इसे कालिदास को परास्त करने का वर नहीं दिया तो इसने शिव का नाम न लेने की प्रतिज्ञा की। अंत में यह शाप से मुक्त हुआ और शिव ने इसे अपने गणों में स्थान दिया। एक दूसरा मत यह है कि यह शिव का भक्त और विष्णु का द्रोही था। विष्णु का नाम कानों में न पड़े इसलिए इसने अपने कानों में घंटे लटका दिये थे। इसीसे इसका नाम घंटा-कर्ण पड़ा।

घंटाघर–सं०पु०यौ० [सं० घंटा+रा० घर] वह ऊँची स्तंभाकार इमारत जिसके ऊपरी सिरे पर चारों ओर से दिखने वाली बड़ी घड़ी लगी हो और जिसका घंटा दूर तक सुनाई देता हो।

घंटारव–सं०पु०यौ० [सं० घंटा+रव] घंटे या घंटियों की ध्वनि।

उ०—सुराचार घंटारवं तार साजै, वणै नोबती सोभती रीत वाजै।
—रा.रू.

घंटाळ–वि० (स्त्री० घंटाळी) जिसके घंटा या घंटिका बंधी हो।

उ०—इसा गज्ज घंटाळ घंटा अपारं।—वचनिका

घंटाळी–सं०पु०—१ सफेद व मटमैले रंग का एक मृग विशेष जिसके गले में थन होते हैं।

सं०स्त्री०—२ दुर्गा, देवी।

वि०—देखो 'घंटाळ' (पु०)

घंटावळि–सं०स्त्री०यौ० [सं० घंटा+अवलि] घंटे या घंटिकाओं की पंक्ति। उ०—देवळ री घंटावळि जेम घंटा ठणकनै रहि छै।
—रा.सा.सं.

घंटीका, घंटी–सं०स्त्री० [सं० घटिका] १ छोटा घंटा. २ घुंघरू. ३ जीभ की जड़ के पास गले के अंदर लटकने वाली मांस की पिंडी, कौवा।

घंटीयाळी—देखो 'घंटाळी' (रू.भे.)

घंटौ–सं०पु० [सं० घटा] १ ध्वनि-उत्पादक एक बाजा जो धातु का बना होता है।

वि०वि०—यह प्राय: दो प्रकार का होता है। एक तो गोल थाली की तरह धातु को पथरा कर बनाया जाता है जो मोगरी से ठोक कर बजाया जाता है। दूसरा औंधे आकार के प्याले या बर्तन के समान होता है जिसमें एक लंगर होता है, इसी लंगर से उसे हिला कर बजाया जाता है।

क्रि०प्र०—घुरणौ, बजणौ, बजाणौ, बाजणौ।

यौ०—घंटाघर, घंटावळी।

२ किसी घंटे की वह ध्वनि जो किसी निश्चित समय या काल की सूचना देने के लिए की जाय. ३ दिन-रात के समय का २४वां भाग जो साठ मिनट के बराबर माना जाता है.

४ लिंगेन्द्रिय (अशिष्ट एवं बाजारू)

मुहा०—१ घंटौ दिखाणौ—याचक को चीज न देना, अंगूठा दिखाना, साफ इन्कार कर जाना. २ घंटौ देणौ—कुछ न देना. ३ घंटौ पकड़ाणौ—देखो 'घंटौ दिखाणौ'. ४ घंटौ हिलाणौ—व्यर्थ का काम करना, निकम्मा होना।

(रू०भे०—घंट)

अल्पा०—घंटी।

घंस–सं०पु० [सं० घर्ष] १ संहार, नाश. उ०—रूपां पातां बांधलां, छळ जोधांण नरिंद। घंस छतीसां झल्लियौ, घंस वधारण वृंद।—रा.रू.

२ रास्ता, मार्ग।

३ फौज, सेना, दल। उ०—१ खड़िया दिक्खण सांमुहा, चढ़िया सुहड़ हजार। सातां कोसां ऊपरां, जातां घंस तैयार।—रा.रू.

उ०—२ तरै भाटी दूदौ तिलोकसी जसहड़ रा बेटा पारकर रहता। उणां नूं खबर कराई जु–गढ़ लीजै छै। तरै दूदौ तिलोकसी आय गढ़ मांहे पैठा सु जगमाल बांसा थी आयौ। तरै आगै घोड़ां री घंस दीठी तरै कह्यौ—ऐ कुण ?—नैणसी

४ युद्ध. ५ अनुधावन, पीछा। उ०—जैमल जोरां मां है, मांनै नहीं, बदनोर आयौ। गांव तौ आगै आया तिण कह्यौ सूनौ छै, इतरै रात पड़ी। सरि वडे ठाकुरै कह्यौ—डेरौ करौ, सवारै गाडां री घंस लेस्यां।—नैणसी

वि०—संहारक, नाश करने वाला। उ०—केहरी जगौ करणोत घंस, घण वेध लागा असुरांण घंस।—रा.रू.

घंसणौ, घंसबौ—देखो 'घसणौ' (रू.भे.) उ०—कौन जतन करां मोरी आली, चंदन लाऊं घंसिके।—मीरां

घंसार—सं०पु० [सं० घर्ष] मार्ग, रास्ता।
(रू०भे०-घिसार, घींसार) मि० 'घंस' (२)

घंसि—देखो 'घंस' (रू.भे.) उ०—सूरां सीम दूजो सबळावत, राजा घंसि लगायौ रावत।—रा.रू.

घ—सं०पु०—१ सुधर्म. २ हाथी. ३ शिव. ४ नरक. ५ कङ्कण।
सं०स्त्री०—६ वसुमती. ७ राक्षसी. ८ शची (एका०)
वि०—घातक।

घउंटहुली—सं०स्त्री०—नागरबेल।

घकार—सं०पु०—'घ' वर्ण।

घक्को—सं०पु०—१ होश-हवास, ध्यान, ख्याल, चेतना. २ व्यवस्था. ३ 'घ' वर्ण।

घग्घरनिसांणी—देखो 'गग्घरनिसांणी' (रू.भे.)

घघ—सं०पु० [सं० घघ्] ऊंट।

घघरी—सं०स्त्री०—१ छोटा लहँगा. २ एक प्रकार का ढीला-ढाला कुरता जिसे प्रायः छोटी लड़कियां पहनती हैं, फ्रॉक।

घघरौ—देखो 'घाघरौ' (रू.भे.)

घघियौ—देखो 'घघौ'।

घघौ—सं०पु०—वर्णमाला का 'घ' वर्ण। उ०—घघौ घरण घट घाट, नृफळ नर तनौ निमाड़ै। खय जस करै खकार, भभौ परदेस भ्रमाड़ै।
—र.रू.
अल्पा०—घघियौ।

घघ्घू—सं०पु०—उल्लू।
कहा०—घघ्घू रै भाठै री लागी—जैसे उल्लू के पत्थर की लगी। थोड़ा सा कष्ट होने पर जोर से चिल्लाने वाले व्यक्ति के प्रति व्यंगोक्ति।

घट—सं०स्त्री० [सं० घटा] १ सेना, फौज, दल। उ०—विचित्रांण निवड़ घड़ महण वेळ, मुरधरां नरां हुय निजर मेळ। बळ दाख दुहूं दिस सस्त्र बंध, किलवांण पेख वळिया कमंध।—रा.रू.
२ मेघ, बादल। उ०—आज धरा-दस ऊनम्यउ, काळी घड़ सखरांह। उवा धण देसी ओळंबा, कर कर लांबी बांह।—ढो.मा.
३ करवट. ४ गगरी, छोटा घड़ा. ५ समूह, झुंड।
उ०—ऊठे सुण अंगद वयण, विग्रह कज रघुबीर। ओपे गज घड़ ऊपरां, कोपे जांण कंठीर।—र.रू. ७ तरतीब से जमाये हुए कपड़े या वस्त्र की तह. [सं० घट] ८ शरीर। उ०—१ घड़ रत वहै घाव कर घूमै।—सू.प्र.
उ०—२ लोही घड़ वहि वहि फळ लोहां, घड़ गहि गहि ऊठंत छछोहां।—सू.प्र.

घड़उ—सं०पु० [सं० घट] घड़ा। उ०—गाइ तणां मस्तक जळि तरइ, कांठइ कोइ न दांतण करइ। पांणी मांहि वोस एवडउ, पांणी हारि भरइ नवि घड़उ।—कां.दे.प्र.

घड़उथल, घड़उथल्ल—सं०पु०—डिंगल के गीतों (छंद विशेष) के अंतर्गत एक प्रकार का गीत छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में अंत में गुरु सहित १६ मात्राएँ होती हैं। इस गीत में पूर्वार्द्ध को उलट कर उत्तरार्द्ध बनाया जाता है (र.ज.प्र.)

घड़कलियौ—सं०पु०—छोटा घड़ा। (देखो 'घड़ौ' का अल्पा०)
उ०—घट घड़कलिया माट, मंगळिया मटकी हांडा। झोवा कूंज कुंडाळ, कढ़ावणी ढकणा खांडा।—दसदेव

घड़घड़, घड़घड़ाट—सं०स्त्री० [अनु०] गाड़ी चलने अथवा बादल गरजने आदि से उत्पन्न होने वाली ध्वनि, गड़गड़ाहट। उ०—अठे नीसांण कहतां जुद्ध रा वाजित्र वाजता, उठै मेघ घड़हड़ात करता।—वेलि.टी.

घड़घड़ाणौ, घड़घड़ाबौ—क्रि०अ०—घड़घड़ की ध्वनि करना, गड़गड़ाना।

घड़घड़ाहट—देखो 'घड़घड़ाट' (रू.भे.)

घड़ड़—सं०स्त्री० [अनु०] तोप छूटने आदि से उत्पन्न ध्वनि।

घड़ण—सं०पु०—गहना, आभूषण।
सं०स्त्री०—गढ़ने या बनाने की क्रिया।
वि०—गढ़ने या बनाने वाला। उ०—उभै विध खाग गयणाग लग ऊछजै, जिता जुध ताकवै जिता जीपै। सितर नै बोहतर घणी नव साहंसौ, दिली भांजण-घड़ण 'सूर' दीपै।—किसनौ सिंढ़ायच

घड़णौ—सं०पु०—गहना, आभूषण। उ०—चालौ विनायक आपां सोनी रे चालां, चोखा सा घड़णा घड़ासां हे म्हांरौ विड़द विनायक।
—लो.गी.

घड़णौ, घड़बौ—क्रि०स०—१ गढ़ना, बनाना, रचना करना।
उ०—जिण संचे सोरठ घड़ी, घड़ियौ राव खेंगार। कै तौ संचौ गळ गयौ कै लाद बुहा लवार।—र.रा.
२ बात बनाना, कपोल-कल्पना करना. ३ मारना, पीटना.
४ किसी वस्तु को बेच कर पैसा बनाना।
घड़णहार, हारौ (हारी), घड़णियौ—वि०।
घड़ाणौ, घड़ाबौ, घड़ावणौ, घड़ावबौ—प्रे०रू०।
घड़िओड़ौ, घड़ियोड़ौ, घड़्योड़ौ—भू०का०कृ०।
घड़ीजणौ, घड़ीजबौ—कर्म वा०।

घड़त—सं०स्त्री०—१ गढ़ने का ढंग या कार्य, बनावट. २ कारीगरी. ३ गढ़ने या निर्माण करने की मजदूरी।

घड़नाव—सं०स्त्री०—खाली घड़ों को उलट कर बांस के साथ बांध कर बनाई हुई नाव। उ०—तठा उपरायंत सिरदारां देसोतां तळाव में झूलण री हांस करै छै। लाल लांगी री पोतां पहरजै छै। घड़नावां बणायजै छै। सू लै तळाव में वड़जे छै।—रा.सा.सं.

घड़बंध—सं०पु०—१ वह रस्सी या तार जिसके द्वारा घड़िया या ठिलियां रहँट पर बंधी रहती हैं. २ सेनापति।

घड़मोड़—वि०—शूरवीर, योद्धा।

घड़लियौ—सं०पु०—चड़स खींचने के लिए बैल की गर्दन पर रखे जाने वाले जुए में लगाया जाने वाला काष्ठ का डंडा जो बैल की गर्दन के एक बाजू में बाहर की ओर लगाया जाता है।

घड़ली—सं०स्त्री० [सं० घटिका या घटी] रहँट में लगी हुई छोटी-छोटी ठिली जिनमें पानी भर कर आता है, घड़िया।

घड़लौ—सं०पु० [सं० घट] मिट्टी का बना जल-पात्र, घड़ा।

घड़वंद—देखो 'घड़वंद' (रू.भे.)

घड़वौ—सं०पु०—१ गढ़ा हुआ पत्थर. २ घड़ा, गागर।

घड़स—सं०स्त्री० [सं० घटा] १ समूह, दल। उ०—तठा उपरांति करिनै राजांन सिलामति अठीना सफाबंधी हिंदू भाजणी परत राजावत राजांन मारू गुरड़व्यूह, ग्रिद्धव्यूह, चक्रव्यूह सेना रची छै, बिहूं फोजां री घड़स चाली जावै।—रा.सा.सं.

२ सेना, फौज।

घड़सिया—सं०स्त्री०—पड़िहाड़ वंश की एक शाखा।

घड़ा—सं०स्त्री०—१ सेना, फौज (डिं.को) २ समूह, दल।

उ०—उद्दम री आसा करै, सहै नहीं घणराव। धात करै गैंवर घड़ा, सींहां जात सुभाव।—बां.दा.

घड़ाई—सं०स्त्री०—१ गढ़ने या बनाने की क्रिया. २ गढ़न, बनावट. ३ गढ़ने की मजदूरी।

घड़ाईजणौ, घड़ाईजबौ—क्रि०कर्म वा०—गढ़ाया जाना, बनवाया जाना।

घड़ाणौ, घड़ाबौ—क्रि०स० ('घड़णौ' का प्रे०रू०) १ गढ़ाना या रचना करना. २ किसी वस्तु की बिक्री करवा कर पैसा उत्पन्न कराना।

घड़ाणहार, हारौ (हारी), घड़ाणियौ—वि०।

घड़ाअोड़ौ, घड़ायोड़ौ—भू०का०कृ०।

घड़ाईजणौ, घड़ाईजबौ—कर्म वा०।

घड़ावणौ, घड़ावबौ—रू०भे०।

घड़ाभिड़, घड़ामोड़—सं०पु०—योद्धा, शूरवीर। उ०—ऐराकी ऊपरां मांडिया सुचगे, घड़ामोड़ केवियां कड़ां भींड़िया दुतगे।

—बखतो खिड़ियौ

घड़ायोड़ौ—भू०का०कृ०—गढ़ाया हुआ, निर्माण कराया हुआ। (स्त्री० घड़ायोड़ी)

घड़ाळ—सं०पु०—योद्धा। उ०—पाबू जिदराव प्रमांण पहं। गहवंत घड़ाळ सपूर गहं।—पा.प्र.

घड़ाळी—सं०स्त्री०—योद्धा। उ०—धाकां सुणै टोपी वाळा घड़ाळा हिया में धूजै, कड़ाळा ससत्रां भारी केहरी कोपाळ।

—गुलाबसिंह महडू

घड़ावणौ, घड़ावबौ—देखो 'घड़ाणौ' (रू.भे.)

घड़ावणहार, हारौ (हारी), घड़ावणियौ—वि०।

घड़ाविओड़ौ, घड़ावियोड़ौ, घड़ाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घड़ावीजणौ, घड़ावीजबौ—कर्म वा०।

घड़ावियोड़ौ—देखो 'घड़ायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० घड़ावियोड़ी)

घड़ावीजणौ, घड़ावीजबौ—देखो 'घड़ाईजणौ' (रू.भे.)

घड़िय, घड़ियउ—देखो 'घड़ी' (रू.भे.) उ०—१ मसत महीनो आवियो रे जला, अब तो तो बिन घड़िय न आवड़े रे छैला, जीवन उतै इत वेह।

—लो.गी.

उ०—२ काल्ही करहु वियूंभिया, घड़ियउ जोहण जाइ। हरणाखी जउ हसि कहइ, आंणिसि एथि विसाइ।—ढो.मा.

घड़ियक—सं०स्त्री०—एक घड़ी के लगभग, २४ मिनट के लगभग।

घड़िया—सं०स्त्री०—पानी भरने का व्यवसाय करने वाली एक जाति (का.डे.प्र.)

घड़ियाळ—सं०पु० [सं० घटिकावलि] १ देवस्थान पर पूजा या आरती के समय अथवा समय की सूचना के लिए बजाया जाने वाला घंटा।

उ०—लिखमीवर हरख निजर भर लागी, आयु रयणि त्रूटंति इम। क्रीड़ाप्रिय पोकार किरीटी, जीवित प्रिय घड़ियाळ जिम।

—वेलि.

२ समयसूचक यंत्र. ३ जल का एक प्रसिद्ध जन्तु, गाह।

घड़ियाळौ—सं०पु०—गढ़ने वाला, बनाने वाला।

घड़ियोड़ौ—भू०का०कृ०—गढ़ा हुआ, रचा हुआ। (स्त्री० घड़ियोड़ी)

घड़ियौ—सं०पु०—१ स्वर्णकार, सुनार. २ किसी अंक के गुणनफलों की क्रमागत सूची या नकशा, पहाड़ा (गणित)

३ छोटा घड़ा (अल्पा.) ४ वह व्यक्ति जो घड़े या गगरे से पानी भरता हो।

घड़ी—सं०स्त्री० [सं० घटी, घटिका] १ समय का एक मान जो लगभग २४ मिनट का होता है।

मुहा०—१ घड़ियां गिणणी—समय की प्रतीक्षा करना, मौत की प्रतीक्षा करना. २ घड़ीक में घड़ियाळ होणौ—हालत बदलते देर न होना. ३ घड़ी में तोळा नै घड़ी में मासा करणा—थोड़ी-थोड़ी देर में विचार का बदल जाना।

कहा०—१ घड़ी नो घड़्यो पैदा नहीं करवो—कोई भी कार्य शीघ्रता में नहीं करना चाहिए. २ घड़ी पलक नी तो खबर नी नै करै काल नी वातां—घड़ी और पल में घटित होने का तो ज्ञान ही नहीं है और बातें करता है आने वाले कल और परसों की; किसी कार्य को आने वाले समय के लिए न छोड़ कर तत्काल ही कर डालना चाहिए. ३ घड़ी में घड़ावळ बाजणी—शीघ्र एवं उतावल से किया गया कार्य प्रायः ठीक नहीं होता. ४ घड़ी रो हाकम जनम की बाम बिगाड़ देवै—सत्ताधारी व्यक्ति, चाहे वह अल्पकाल के लिए ही क्यों न हो, परम्परा से चलते आये सुव्यवस्थित घर को भी उजाड़ देता है। अतः सत्ताधारी व्यक्ति या पदाधिकारी से वैर करना उचित नहीं है।

यौ०—घड़ी-घड़ी, घड़ी-पुळ।

२ समय, अवसर, मौका. ३ समय-सूचक यंत्र।

घड़ीक—सं०पु०—एक घड़ी के लगभग का समय।

क्रि०वि०—कभी। उ०—सीस छबीली छांट, झूमको मोत्यां झब्बो। घड़ीक धमकै मेघ, घड़ी दो फोगड़ फतबो।—दसदेव

घड़ी-घड़ी—क्रि०वि०—बार-बार।

घड़ीजणौ—क्रि०कर्म वा०—गढ़ा जाना, रचा जाना।

घड़ीभिड़—सं०पु०—योद्धा (डि.नां.मा.)

घड़ीयक—देखो 'घड़ीक' (रू.भे.) उ०—कुरजां ए थूं म्हारै बाप री, घड़ीयक पांखड़ली निवाय। पांखड़ल्यां पर लिखूं ए धण रा ग्रोळबा, चांचड़ली पर लिखूं ए सात सिलांम।—लो गी.

घड़ीयाळौ—देखो 'घड़ियाळ' (रू.भे.)

घड़ीयेक—देखो 'घड़ीक' (रू भे.)

घड़ीसाज—सं०पु०—घड़ियों की मरम्मत करने वाला।

घड़ीसाजी—सं०स्त्री०—घड़ियों की मरम्मत करने का व्यवसाय।

घड़ूथळ—सं०पु०—डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष।

घड़ूलौ, घड़ूल्यौ—सं०पु०—१ छोटा घड़ा, ('घड़ौ' का अल्पा०) २ देखो 'घुड़लौ' (५)

घड़ूस—सं०पु० [सं० घटा+ऊष] १ आकाश में छाये हुए बड़े-बड़े बादल. २ सेना (अ.मा.) ३ समूह, दल। उ०—घरां सांम्हां फौजां रा घड़ूस चालीया छै।—रा.सा.सं.

घड़ोटियौ—सं०पु० (बहु०—घड़ोटिया) १ छोटा घड़ा, ('घड़ौ' का अल्पा०) २ मृत व्यक्ति के पीछे बारहवें दिन किया जाने वाला सामूहिक भोज (मि० 'चुकली') ३ किसी की मृत्यु के बाद बारहवें दिन की एक प्रथा जिसके अनुसार मिट्टी के छोटे-छोटे जल-पात्रों को भर कर विशेष क्रिया के साथ मृत व्यक्ति के तर्पण हेतु उन्हें उलट देते हैं। (मि० 'चुकली')

घड़ोवणौ—देखो 'घड़णौ' (रू.भे.)

घड़ौ—सं०पु० [सं० घट] पानी भरने का मिट्टी का गगरा या बर्तन, जल-पात्र, कलसा।

मुहा०—१ पाप री घड़ौ भरीजणौ—किसी के अत्याचारों या कुकर्मों का पराकाष्ठा पर पहुँचना, २ पाप री घड़ौ फूटणौ—किसी के कुकर्मों या दुराचरण का भंडाफोड़ होना।

कहा०—१ घड़ा सरीखो मोती—अत्यधिक मान-प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति के प्रति. २ घड़े सरीखी ठीकरी, मां सरीखी डीकरी—जैसा घड़ा होगा वैसी ही उसकी ठीकरी होगी तथा जैसी माता होगी वैसी ही उसकी लड़की होगी। संतान प्रायः माता-पिता के अनुरूप ही होती है।

घच—सं०स्त्री० [अनु०] किसी नरम वस्तु या अंग में किसी धारदार या नुकीली वस्तु के चुभने या धंसने से उत्पन्न शब्द।

घचोलणौ—सं०पु०—विघ्न। उ०—मोटी भायप होय, पिंडां हूवै पूजता। वडा राज री गांव, लोग सोह बूजता। नह को लोपै लीह क घरै घचोलणा एता दै किरतार, फेर नह बोलणा।—अज्ञात

घजोंड़—सं०पु०—पहाड़ी भाग में पाया जाने वाला एक प्रकार का बड़े पत्तों वाला वृक्ष जिसके पत्तों को प्रायः गाय-भैंसों को उनका दूध बढ़ाने के लिए खिलाया जाता है।

घट—सं०पु० [सं०] १ तन, शरीर, देह। उ०—१ वच सेल बहै, सक मीर सहै। घट घाव घणौ, बिकराळ वणै।—रा.रू.

उ०—२ मोटा घणी अचंभी मोटी, घट सूरापण तिपट घणोह। ठावी सकळ सकळ री ठाकर, तूं चाकर चाकरां तणोह।—अ.मा.

२ मन, हृदय। उ०—१ घट सूं हेक घड़ीह, अळगौ आवड़तौ नहीं। 'पीथल' घणी पड़ीह, जुग छेटी जसराजवत।—जसवंतसिंह

मुहा०—१ घट में बसणौ, घट में बैठणौ, घट में रमणौ, घट में व्यापणौ—मन में जमना, शरीर में रहना, घट में रहना।

३ घड़ा, जल-पात्र।

यौ०—घटकरतार, घटकार, घटजात, घटजोनि।

वि०—न्यून, कम। उ०—खत्रवट घट हुम्रां समैवळ खातां, पग पग थातां असत पुळ।—जसजी आढ़ौ

घटकंचुकी—सं०स्त्री०यौ० [सं०] वाममार्गियों अथवा तांत्रिकों की एक रीति। ऐसा प्रचलित है कि इस पंथ (कांचळिया पंथ) के अनुयायी स्त्री-पुरुष एक स्थान पर इकट्ठे हो कर मांस-मद्य का सेवन कर उपस्थित सब स्त्रियों की कंचुकियां इकट्ठी कर एक घड़े में डाल देते हैं। फिर इस संप्रदाय का प्रत्येक पुरुष बारी-बारी से उस घड़े में हाथ डाल कर एक कंचुकी निकाल लेता है। जिस स्त्री की कंचुकी उसके हाथ में आती है वह उसी के साथ संभोग कर सकता है। इस प्रथा को चोली-मार्ग भी कहते हैं।

घटकरकट—सं०पु०यौ० [सं० घटकर्कट] एक प्रकार का ताल (संगीत)

घटकरण—सं०पु०यौ० [सं०] १ कुंभकर्ण. २ कुम्हार।

घटकरतार, घटकार—सं०पु०यौ० [सं० घटकर्तार] घड़ा बनाने वाला, कुम्हार।

घटक्क—सं०पु०—शरीर, देह।

घटखरपर—सं०पु० [सं० घटखर्पर] विक्रमादित्य की सभा के नव रत्नों में से एक।

घटज, घटजात—सं०पु०यौ० [सं०] अगस्त्य मुनि।

उ०—ज्यों जंभासुर जंगपै सतसत्त सुहाया। कै द्रोणाचळ लेन को कपिराज कसाया। पीवण पारावार कै घटजात घुमाया। कै बन सुत्ता बिटिकै अगराज जगाया।—वं.भा.

घटजोणी, घटजोनि, घटजोनी—सं०पु०यौ० [सं० घट योनि] अगस्त्य मुनि।

घटण—सं०स्त्री०—न्यूनता, कमी।

घटणौ, घटबौ—क्रि०अ०यौ० [सं० घट चेष्टायाम] कम होना, न्यून होना। उ०—सरधा घटगी सेंग, वेग बिरधापण वळियौ। निकळण रो रथ नहीं, कळण ऊंडी में कळियौ।—ऊ.का.

मुहा०—१ घटती बढ़ती री छाया होणी—सुख-दुख का आते जाते रहना, सुख या दुख कोई स्थायी नहीं रहता.

कहा०—२ घटती-घटती बाड़ में घुसणी—कम होते-होते बाड़े में मिलना; किसी वस्तु का धीरे-धीरे शुरू होकर पूर्ण रूप से लुप्त हो जाना. ३ घटै जिका पूरा करणा—अवशिष्ट समय को पूरा कर रहे हैं; अर्थात् जो आयु बाकी है उसे गुजार रहे हैं।

[सं० घटन] २ उपस्थित होना, वाके होना, होना. ३ आरोप होना, लगना, मेल में होना।

घटणहार, हारौ (हारी), घटणियौ—वि०।

घटाणौ, घटाबौ, घटावणौ, घटावबौ—क्रि०स०।

घटिओड़ौ, घटियोड़ौ, घट्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घटीजणौ, घटीजबौ—भाव वा०।

घटत-सं०स्त्री०—१ न्यूनता, कमी. २ घाटा, हानि, नुकसान।

घटना-सं०स्त्री० [सं०] कोई बात जो हो जाय, वाक़या, वारदात।

घटबढ़-सं०स्त्री०यौ०—घटती-बढ़ती, न्यूनाधिकता, कमी-बेशी।

घटावणौ, घटावबौ-क्रि०स०—घटाने का कार्य कराना।

घटवायोड़ौ-भू०का०कृ०—घटाने का कार्य अन्य से कराया हुआ।

घटवाळियौ-सं०पु० [सं० घट्ट+रा० वाळियौ] तीर्थ-स्थान या किसी सरोवर के घाट पर बैठ कर दान ग्रहण करने वाला व्यक्ति।

घटस्थापन-सं०पु० [सं०] पूजन आदि के समय या किसी मांगलिक कार्य में जलपात्र में जल भर कर रखना (कल्याणकारक)

घटसंभव-सं०पु० [सं०] अगस्त्य मुनि।

घटांण-सं०पु० [सं० घोटक] घोड़ा, अश्व। उ०—मगरै ऊदा हरा महाबळ, वीटे खळ लूंबिया चहूं वळ। जवनां वीत चहूं दिस जावै, ऊंठ घटांण रसत नह आवै।—रा.रू.

घटा-सं०स्त्री०—१ समूह, झुंड। उ०—सटा न मावै बाथ मैं, फलंग अटा गरकाब। पेख छटा सूकै पटा, सिंधुर घटा सताब।—बां.दा.
२ धूमधाम, समारोह. ३ उमड़ते हुए मेघों का समूह, मेघमाला। उ०—विढ़े मल्ल पांणं जिहीं जुंझवांणं। पठांणे कमंधं कमंधे पठांणं। खळां स्रोण रंगे वहै खग्ग खग्गे, अकासे घटा जांण माळा उमंगे।—रा.रू.

क्रि०प्र०—उमड़णी, छावणी।

यौ०—घटाटोप, घटाघूम, घटाघोर।

४ धुंयें का गुब्बारा. ५ गोष्ठी, सभा (अ.मा.) ६ घटना, वाकया. ७ सेना, फौज। उ०—दुगम रीठ गोळां दरसाई, वीरभद्र जिम घटा वणाई।—सू.प्र.

घटाकास-सं०पु०यौ० [सं० घटाकाश] घड़े के अंदर का खाली स्थान।

घटाघूम-सं०पु०—घनघोर घटा।

वि०—घनघोर। उ०—घटाघूम तोपां गरज, छटा खाग रत छोळ। परसण हुय काढ़ै 'पतौ', हण करसण धुर श्रोळ।—जैतदांन बारहठ

घटाघोर, घटाटोप-सं०पु०—१ गाड़ी या बहली को ढकने वाला ओहार, छाजन. २ घनाच्छादित होने का भाव. ३ बादलों की भाँति चहुँ ओर छा जाने वाला दल।

वि०—१ आच्छादित. २ सुसज्जित।

घटाणौ, घटाबौ-क्रि०स०—१ न्यून करना, कम करना, क्षीण करना. २ बाकी निकालना. ३ काटना. ४ अप्रतिष्ठा करना।

घटाणहार, हारौ (हारी), घटाणियौ—वि०।

घटायोड़ौ—भू०का०कृ०।

घटावणौ, घटावबौ—रू०भे०।

घटाईजणौ, घटाईजबौ—कर्म वा०।

घटायोड़ौ-भू०का०कृ०—१ घटाया हुआ, कम किया हुआ. २ बाकी निकाला हुआ। (स्त्री० घटायोड़ी)

घटाळ-सं०पु०—सेना, फौज। उ०—गै घटाळ जटाळ वैताळ गजै, विकराळ त्रंबाळ बंबाळ बजै।—गो.रू.

घटाव-सं०पु०—१ कम होने का भाव, न्यूनता, कमी. २ अवनति, पतन।

घटावणौ, घटावबौ—देखो 'घटाणौ' (रू.भे.)

घटावणहार, हारौ (हारी), घटावणियौ—वि०।

घटाविओड़ौ, घटावियोड़ौ, घटाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घटावीजणौ, घटावीजबौ—कर्म वा०।

घटावळी-सं०स्त्री०—१ एक देवी का नाम (बां.दा.ख्यात) २ मेघमाला।

घटिकावधान-सं०पु०यौ० [सं०] १ अनेक प्रका के कार्य एक ही घड़ी में करने की क्रिया।

घटिकासतक-सं०पु०यौ० [सं० घटिकाशतक] एक ही घड़ी में सौ प्रकार के काम एक साथ करने की क्रिया।

घटित-वि० [सं०] १ घटा हुआ. २ रचा हुआ, निर्मित।

घटिया-वि०—१ कम कीमत का, सस्ता. २ निम्न कोटि का, हल्का. ३ अधम, नीच, तुच्छ।

घटियाळ -देखो 'घंटाळ' (रू.भे.) उ०—सु कर प्रतमाळ किरमाळ जुग सम्हणी, दिपै डाढ़ाळ घंटियाळ देवी।—खेतसी बारहठ

घटियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ घटा हुआ, कम हुआ हुआ. २ गिरा हुआ, अवनत. ३ पथभ्रष्ट. ४ परिमाण या तादाद से कम. (स्त्री० घटियोड़ी)

घटी-सं०स्त्री० [सं०] १ चौबीस मिनट का समय. २ समय, घड़ी. ३ मुहूर्त्त. ४ समयसूचक यंत्र. ५ देखो 'घट्टी' (रू.भे.)

घटीजंत्र-सं०पु० [सं० घटीयंत्र] १ समयसूचक यंत्र, घड़ी. २ रहँट।

घटूलियौ-सं०पु०—छोटे आकार की चक्की जो प्रायः दालें आदि दलने के काम में आती है।

('घट्टी' का अल्पा०)

घटूको, घटोत्कच-सं०पु०—हिडिम्बा के गर्भ से उत्पन्न भीमसेन का एक पुत्र।

घटोद्भव-सं०पु० [सं०] अगस्त्य मुनि।

घटोर, घटोरी-सं०पु० [सं० घटोदर] मैंढ़ा, मेढ़ा, मेष।

घटोलियौ—देखो 'घटूलियौ' (रू.भे.)

घट्ट—१ देखो 'घट' (रू.भे.) उ०—उत्तर आज स उत्तरइ, सीम पड़ेसी थट्ट। सोहागिण घर आंगणइ, दोहागिण रइ घट्ट।—ढो.मा.
२ देखो 'घाट' (रू.भे.)

घट्टा—देखो 'घटा' (रू.भे.)

घट्टित—सं०पु० [सं०] नाच में पैर चलाने का एक ढंग जिसमें एड़ी को जमीन पर टिका कर पंजा ऊपर नीचे करते हैं।

घट्टी—सं०स्त्री०—ऊपर नीचे रखे पत्थर के दो गोल और भारी पाटों का बना यंत्र जिसके द्वारा गेहूँ आदि पीसे जाते हैं या दालें दली जाती हैं।

क्रि०प्र०—चलणी, चलाणी, पीसणी, फेरणी, मांडणी।

मुहा०—घट्टी पीसणी—कड़ा परिश्रम करना।

कहा०—१ घणी घटयां मऊं निकळ्यौ तोई आखौ को आखौ—बहुत सी चक्कियों में से निकला फिर भी पूरा का पूरा। उस व्यक्ति के प्रति जिसे बहुत सी कठिनाइयों में से गुजरने अथवा ठोकरें खाने के बाद भी अक्ल न आवे. २ घर रा तौ घट्टी चाटै नैं पांमणां नैं नैता दै—परिवार के सदस्य तो चक्की चाटते हैं अर्थात् भूखों मरते हैं और अतिथियों को निमंत्रण दिया जा रहा है; उस व्यक्ति के प्रति जिसके घर के लोग तो भूखों मरें और वह दूसरों को निमंत्रण देता फिरे।

घडहडौ-सं०पु०—घड़ा, कलश। उ०—बतळायौ इम केहरि बडाळ, कोप्यौ क प्राय जमजाळ काळ। जग्यौ क सोर ढिग अगन जोम, घडहडौ घीरत घण अगन घोम।—बगसीरांम प्रोहित री बात

घणंकणौ, घणंकबौ—क्रि०स०—गायन गाना, अलापना।

घण—सं०पु० [सं० घन] १ मेघ, बादल। उ०—१ इम बेभड़ां लोह घुबि आरण, घाव जांणि वरसै बारह घण।—सू.प्र.

उ०—२ वेत्रवती जळ पीय लहरतौ घण गरजंतां। ज्यूं मुख भोंह विलास अधर घण पांन करतां।—मेघ.

यौ०—घणघोर, घणनाद, घणपटळ, घणप्रिय, घणमाळ, घणराट, घणराव, घणवाह, घणहर।

२ मोटा भारी हथौड़ा जिससे गरम लोहा पीट कर दूसरे रूप में बदला जाता है (लुहार) उ०—इण भांत कमंधां अग्गळी, रूक वजायी रोहड़ै। वीरांण कि आरण वावरै, ज्यां घण तत्तै लोहड़ै।

—रा.रू.

३ लोहा (ह.नां.) ४ मुख (डिं.को.)

यौ०—घणमाळ।

५ समूह, झुंड. ६ किसी अंक को उसी अंक से दो बार गुणा करने से प्राप्त गुणनफल. ७ ताल देने का बाजा. ८ सेना, फौज (ह.नां.)

९ पत्थर (ह.नां.) १० पिंड, शरीर. ११ अनाज में पड़ने वाला एक कीड़ा विशेष, घुन. १२ प्रथम लघु एवं दो दीर्घ सहित पांच मात्रा का नाम ।ऽऽ (डिं.को.) १३ संगठन।

कहा०—घण जीतै रे लिछमण सदा ही हड़वंत—संगठन की सदैव जीत होती है।

वि०—१ अधिक, बहुत, ज्यादा। उ०—बीजळियां खळभळियां, डाबा थी ढळियांह। काठी भीड़े वल्लहा, घण दीहे मिळियांह।

—अज्ञात

कहा०—१ घण गाजण बरसे नहीं, भूसण कुत्ता न खाय—गरजने वाले बरसते नहीं; शेखी बघारने वाला व्यक्ति काम नहीं कर सकता. २ घण जायां कुळ हांण, घण बूठां कण हांण—अधिक संतान होने से कुल की हानि होती है एवं अधिक वर्षा से खेती नष्ट होती है; अति सर्वत्र वर्जयते. ३ घण दूझी नैं पाडी री मा—अधिक दूध देने वाली और साथ में पाडी की मां; किसी लाभकारी वस्तु से दुहरा लाभ होने पर कही जाती है।

यौ०—घणआणंद, घणखाऊ, घणघोर, घणजांण, घणजांणग, घणजीवौ, घणजुग, घणजूंभौ, घणदाता, घणदूधाळ, घणनांमी, घणमोलौ, घणरूप, घणसहौ।

२ ठोस, दृढ़. ३ श्वेत-कृष्ण, धूमिल* (डिं.को.)

घणअप—सं०पु० [सं० घनाप] पानी, जल (अ.मा.)

घणआणंद—सं०पु०—१ विष्णु. २ अत्यधिक आनंद एवं हर्ष।

घणउकता—वि०—१ अनूठी, अद्भुत. २ चमत्कारपूर्ण।

३ वह कविता जिसमें बहुत-सी उक्तियां हों।

उ०—करणी क्रपा मुज्ज पर कीजै, देवी वचन वडाळा दीजै। घणउकता थळ समय घंटाळी, लाज धंजाळी लोवडियाळी।

—पा.प्र.

घणकंठ सुपंखरौ—सं०पु०—डिंगल का एक गीत (छंद) विशेष। इसमें अनुप्रास की अधिकता होती है।

घणकरौ—क्रि०वि० [सं० घनाकार] प्रायः, अधिकतर, बहुधा।

घणकील—सं०पु० [सं०] लोहा (अ.मा.)

घणकोवंड—सं०पु० [सं० घनकोदंड] इंद्रधनुष।

घणखाऊ—वि०—अधिक खाने वाला, पेटू। उ०—बाबा म देई माळवे, जिहां छै पुरुस कुरूप। ऊघड़ पेट, घणखऊ, रोगीला कुमीठ।

—ढो.मा.

घणखप्पौ—वि०यौ० [सं० घन = अधिक + क्षपयति] अधिक परिश्रम से होने वाला, अधिक परिश्रम का।

घणखरौ—१ देखो 'घणकरौ' (रू.भे.)

वि०—२ अधिक, विशेष। उ०—राजपूत थोड़ा सा कुंवरजी रै साथि घिरिया, घणखरा हेक मदनौ साथि ले गयौ।—द.वि.

घणखाऊ—देखो 'घणखऊ' (रू.भे.)

घणघणा—वि०—बहुत, अधिक। उ०—घणघणा थाट भांजण घड़ण।

—ह्.र.

घणघोर—वि० [सं० घन+घोर] १ बहुत, अधिक. २ घना, गहरा. ३ भीषण, भयानक।

सं०पु०—मेघ-गर्जन। उ०—जोइ जळद पटळ दळ सांवळ ऊजळ, धुरै नीसांण सोइ घणघोर। प्रोळि प्रोळि तोरण परठीजै, मंडै किरि तंडव गिरि मोर।—वेलि.

घणचक, घणचकर, घणचक्क, घणचक्कर, घणचक्र-सं०पु०—१ युद्ध, रण। उ०—१ जै जीती अजमेर, घड़ी मांहीं घणचक्कह, जै लीधो जाळोर भिड़े पट्टांण कटक्कह।—गु.रू.बं. उ०—२ ग्रासस घोर अंधार ले कार संधार घणचक्र उत्तरियांणि, कुरु खेत भारथ जांणि।—गु.रू.बं. २ भीड़-भाड़. ३ गर्दिश, चक्कर।

मुहा०—१ घणचक्कर में आणौ—कष्ट में फँसना, फेर में आना, धोखे में आना, झंझट में फँसना. २ घणचक्कर में पड़णौ—देखो 'घणचक्कर में आणौ'।

४ मूर्ख, बेवकूफ व्यक्ति।

मुहा०—१ घणचक्कर होणौ—बेवकूफ होना. २ मिनख है के घणचक्कर है—बेवकूफ व्यक्ति के प्रति।

५ निठल्ला, आवारागर्द।

घणजांण, घणजांणग-वि० [सं० घनज्ञ, घन ज्ञानांग] १ चतुर. २ बुद्धिमान, पंडित. ३ बहुत अधिक बातों का जानकार व्यक्ति, बहुज्ञ। उ०—वळियो जूह विडार, सीख करै सो जांम सूं। 'दलो' सकज दईवांण, घणजांणग आयो घरे।—गो.रू.

घणजीवौ-वि० [सं० घनजीवः] १ बहुत काल तक जीवित रहने वाला, चिरायु. २ बहुत से जीवों वाला।

घणजुग-वि०—[सं० घनयुग] अति प्राचीन, बहुत पुराना।

घणजूंझौ-वि०—वीर, योद्धा, बहादुर।

घणजोर-वि०—१ बलवान, शक्तिशाली. २ धनाढ्य।

घणझूंझौ—देखो 'घणजूंझौ' (रू.भे.)

घणण-सं०स्त्री० [अनु०] ध्वनि विशेष।

वि०—बहुत, अधिक।

घणताळ-सं०पु० [सं० घनताल] १ चातक पक्षी, पपीहा. २ करताल।

घणदाता-वि०यौ०—अधिक दान देने वाला।

सं०पु०—ईश्वर। उ०—बदरी टीकम परस बुध, जगमोहण जैकार। घणदाता आनंदघण, श्रीपति सब आधार।—ह.र.

घणदीहौ-वि०यौ०—१ वृद्ध, बूढ़ा। उ०—जो घणदीहौ सागड़ी, व्है विरदावणहार। सींगाळो बळ सो गुणौ, जांणावै जिण वार।—बां.दा.

२ पुराना।

घणनांमी-सं०पु०—वह जिसके बहुत से नाम हों—ईश्वर, श्रीकृष्ण, श्रीरामचन्द्र, आदि। उ०—घट घट घणनांमी स्वांमी सुररांई, अंतरजांमी हुय ओळज न आई।—ऊ.का.

वि०—प्रसिद्ध, विख्यात।

घणनाद-सं०पु०यौ० [सं० घननाद] १ रावण का ज्येष्ठ पुत्र, मेघनाद. २ मेघ-गर्जना, बादलों की गर्जना. ३ मोर।

घणनादानळ-सं०पु० [सं० घननादानुलासिन्, घननादानुलासी] मोर, मयूर (अ.मा.)

घणपटळ-सं०पु०यौ० [सं० घनपटल] बादलों का समूह (एका०, नां.मा.)

घणपति-सं०पु० [सं० घनपति] इंद्र।

घणपत्र-सं०पु०यौ० [सं० घनपत्र] वह वृक्ष जो घने पत्तों से आच्छादित हो (नां.मा.)

घणपथ-सं०पु०यौ० [सं० घनपथ] आकाश (नां.मा)

घणपात-सं०पु०यौ० [सं० घनपत्र] देखो 'घणपत्र' (अ.मा.)

घणपुसप-सं०पु०यौ० [सं० घनपुष्प] पानी (मि० 'मेघपुसप')

घणप्रिय-सं०पु०यौ० [सं० घनप्रिय] १ मोर, मयूर. २ एक प्रकार की घास।

घणफळ-सं०पु० [सं० घनफल] १ किसी अंक को उसी अंक से दो बार गुणा करने से प्राप्त गुणनफल (गणित) २ लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई का गुणनफल (गणित)

घणमंख-सं०पु०यौ० [सं० घनमंख] मोर, मयूर (नां.मा.)

घणमंड-सं०पु०—मेघ-घटा। उ०—चकोर चाहै चंद कूं, मोर चहे घणमंड। हीरा चाहे आप कूं, प्रोहित रायै प्रचंड।

—बगसीरांम प्रोहित री बात

घणमाया-सं०पु०—१ ईश्वर. २ विष्णु (नां.मा.) ३ कृष्ण।

घणमाळ-सं०स्त्री० [सं० घनमाल] १ मेघमाला, घनघटा।

उ०—विविध घणमाळ नभ चक्र मांझळ वणी, रवि ससी न दीसै दिवस रजनी।—बां.दा.

२ मुंडमाला। उ०—कळह मझ महत जद रांम धनु निज कर। हुरत रिम कटक घणमाळ उर सझत हर।—र.ज.प्र.

घणमूळ-सं०पु० [सं० घनमूल] किसी अंक के घनफल का मूल अंक।

घणमोल, घणमोलोह, घणमोलौ-वि० [सं० घनमूल्य] बहुमूल्य, कीमती।

उ०—पहरण घण ओढ़ण पसमीनां। नोख तोस घणमोल नवीनां।

—सू.प्र.

उ०—२ लेस्यां जी, पना मारू, म्हे बाईजी खातर हार, चूनड़ लेस्यां घणमोलड़ी।—लो.गी. उ०—३ उदियापुर ऊंचा सहर, मांणस घणमोलाह, दे झाला पांणी भरै, आयो पीछोलाह।

उ०—४ बाल्ही घण बालम मीठी मुखबोली। घड़ियां अग्रत री घुळती घणमोली।—ऊ.का.

घणरस-सं०पु० [सं० घनरस] १ पानी (अ.मा.) २ हाथी का एक रोग।

घणराट-सं०पु० [सं० घनराट] १ मेघ, घन (एका०) २ मेघ-गर्जना।

घणराव-सं०पु० [सं० घन+रव] १ मेघ-गर्जना। उ०—उद्दम री आसा करै, सहै नहीं घणराव। घात करै गेंवर घड़ा, सीहां जात सुभाव।—बां.दा.

२ रावण का ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद।

उ०—दसाणण घणराव दाहे, गहर कुंभ अरोड़ गाहे।—र.ज.प्र.

घणरूप-सं०पु०—जिसके कई रूप हों, जो कई रूप धारण करे, ईश्वर।

उ०—रटै तो नांम जिकै घणरूप, कदे न संसार पड़ै मझ कूप।

—ह.र.

घणवरण-सं०पु०—१ विष्णु. २ श्रीकृष्ण (ह.नां.)

घणवह, घणवाह-स०पु० [सं० घनवाह] हवा, पवन, वायु (अ.मा.)
(मि० 'मेघवाह')

घणवाहण-सं०पु० [सं० घनवाहन] १ इन्द्र (ह.नां.) २ पवन।
(मि० 'मेघवाहण')

घणवाही-सं०स्त्री० [सं० घनवाही] लोहे को घण से कूटने का कार्य।

घणसघण, घणसघन-वि०यौ० [सं० घन+सघन] बहुत, अत्यधिक।
उ०—घण सघण घांम बहुं तरफ घेर। दुरग थी काढ़ियौ त्रास दे'र।
—वि.सं.

घणसहौ-वि०—अत्यधिक सहन करने वाला, सहनशील।
उ०—थळ-मथ्थइ जळ बाहिरी, कांईलक बूी बूरि। मीठा बोला घणसहा, सज्जण मूक्या दूरि।—ढो.मा.

घणसागर-सं०पु० [सं० घनसागर] देखो 'घणसार' (१, २)

घणसार-सं०पु० [सं० घनसार] १ जल, पानी. २ कपूर।
उ०—आतुर चित आगळी धांम विसरांम सुधारै, वन चंदण आवना अगर घणसार अपारै।—रा.रू.
३ राजस्थानी का एक छंद विशेष जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः प्रथम एक दीर्घ, नगण, मगण, नगण एवं अंतमें दो दीर्घ वर्ण होते हैं। (ल.पिं.)

घणसुर-सं०पु०यौ० [सं० घनस्वर] रावण का ज्येष्ठ पुत्र, मेघनाद।
उ०—लूथबथ अह घणसुर लड़ै।—र.ज.प्र.

घणसेड, घणसेड़-सं०पु०यौ०—१ बहुत से कामों में निपुण व्यक्ति.
२ उदार, दातार व्यक्ति. ३ बुद्धिमान, गंभीर।
सं०स्त्री०—४ अधिक दूध देने वाली गाय या भैंस।

घणस्याम-सं०पु०यौ० [सं० घन+श्याम] १ काला बादल.
२ श्रीकृष्ण (नां.मा.)
वि०—श्याम-वर्ण। उ०—वप घणस्याम नेत्र दुति वारज।—सू.प्र.

घणहर-सं०स्त्री० [स० घनभर] घनघटा, मेघमाला।
उ०—१ फजरां हथणी सी दधि मथणी फुरती, माटां घर-घर में घणहर सी घुरती।—ऊ.का.
उ०—२ ऊट प्रचंड अनेक अप्राजै ऊधरै, घणहर भादु मास क जांणै घरहरै।—बगसीरांम प्रोहित री बात

घणाक-वि०—बहुत, ज्यादा, अधिक।

घणाक्षरी-सं०पु० [सं० घनाक्षरी] जनसाधारण में कवित्त के नाम से जाना जाने वाला एक प्रकार का दंडक या मनहर छंद जो ध्रुपद राग में गाया जा सकता है। इसके प्रत्येक चरण में सोलह और पन्द्रह के विराम से ३१ अक्षर होते हैं। अंत में प्रायः गुरु वर्ण रखने का नियम है।

घणाकर-क्रि०वि० [सं० घनकार] प्रायः, अधिकतर, बहुधा।
उ०--पछै मनाकरा आणंद सूं बिदा हुइ डेरां आइया, तुरत ही बीकानेर नूं कूच कीयौ।—मारवाड़ रा अमरावां री वारता

(रू०भे०—घणाकरी, घणाखरी)

घणाखरी—देखो 'घणाक्षरी' (रू.भे.)

घणाघण-सं०पु०यौ० [सं० घनाघन] १ इन्द्र. २ बादल (अ.मा.)
उ०—भज रे मन रांम सियावर भूपत, अंग घणाघण सोभ अनूप।
—र.ज.प्र.
३ मस्त हाथी।

घणात्यय-सं०पु० [सं० घनात्यय] शरद ऋतु (डिं.को.)

घणारंग-सं०पु०—वाहवाही, अधिक प्रसिद्धि।

घणियेर, घणीक-वि०—अधिक, ज्यादा। उ०—जो तुम घणीयेर सोटी मारसौ, हो राजा, नहीं म्हारै माय न बाप।—लो.गी.

घणीवात-सं०स्त्री०—१ अधिक महत्ता. २ मान, प्रतिष्ठा।

घणुं, घणूं-वि० [सं० घन] अधिक, बहुत। उ० –त्रिणि दीह लगन वेळा आडा तै, घणूं किसूं कहिजै आ धात।—वेलि.

घणूघणौ-वि०—अत्यधिक, अधिकाधिक।

घणेड़-वि०—१ दातार, दानवीर. २ बहुत से कार्य करने में निपुण।
(मि०—'घणसेड, घणसेड़')

घणेरौ-वि० बहुत, अधिक। उ०—रोवता टाबरियां नै छोड, आई दूवण नै घर नार। घणेरी व्हैगी गोयर भीड़, सुणीजै मीठी दूधां धार।—सांझ
(स्त्री० घणेरी)

घणोत्तम-सं०पु० [सं० घनोत्तम] मुख (ह.नां.)
(रू०भे०-घनोतम) (स्त्री०-घणी)

घणौ-वि०—बहुत, अधिक। उ०—खग रूपी भड़ दाहिणं, घणे पराक्रम जांण। भुज ओढ़ण भूपाळ रै, वांमे तिके बखांण।
—रा.रू.

मुहा०—१ घणां री ऐब ऐब नहीं—एक ही प्रकार का अवगुण अधिक व्यक्तियों में पाया जाने पर उन व्यक्तियों के समाज में वह अवगुण नहीं कहलाता. २ घणा कहै जिउं करणौ—अधिक लोग जैसा कहें वैसा ही करना चाहिये, बहुमत का आदर करना चाहिए.
३ घणा जी घणा भूंडा—बहुमत या अधिक व्यक्तियों का संगठन शक्तिशाली होता है. ४ घणा वाळा रै घणौ दुख—अधिक संपन्न या अधिक संपत्ति वाले व्यक्ति के अधिक दुःख होता है. ५ घणी खांचियां (तांणियां) टूटै—अधिक खींचने से (रस्सी) टूटती है। किसी बात को कुरेद-कुरेद कर अधिक आगे बढ़ाने से बिगड़ती है.
६ घणी चतराई घणी भूंडी—अत्यधिक चातुर्य्य बुरा है। अति सर्वत्र वर्जयते. ७ घणौ मथियां आक व्है—(घी को) अधिक मथने से वह विष के रूप में बदल जाता है। (मि० मुहा० ५)
८ घणौ लोभ गळौ कटावै—अत्यधिक लालच करना बुरा है.
९ घणौ समझणौ धूळ खावै—अत्यधिक समझदार व्यक्ति भी भूल कर बैठता है, अत्यधिक चतुराई बुरी है।

कहा०—१ घणा कांगां माळवौ ई मूंगौ—अत्यधिक भिखमंगे होने से

मालवा जैसे उपजाऊ प्रान्त में भी भिक्षा का मिलना दुर्लभ हो जाता है; अधिक दरिद्र मिल कर धनाढ्य बस्ती को भी कंगाल बना देते हैं. २ घणा भायां री बैन अलूणी रैवै—अधिक भाइयों की बहिन कोरी ही रह जाती है। बहुतों से आशा रखने की अपेक्षा किसी एक व्यक्ति का आश्रय लेना ही उचित है (मि० भरोसे री भे पाडो लावै, सातां री मा नै सियाळिया खावै) ३ घणा मांमा को भांणेज भूखो रै' जावै—देखो कहा० २। ४ घणा हेत तूटण में नै मोटी आंख फूटण में—घनिष्ठ प्रेम का अंत विछोह में होता है एव बड़ी आख को फूटने का भय अधिक रहता है; अति सर्वत्र वर्जयते.

५ घणा ऊधा झोटा ले'र आयो है—किसी भाग्यशाली पुरुष के प्रति कही जाने वाली उक्ति. ६ घणा घरा रो पावणो भूखा मरै—अत्यधिक घरों का अतिथि प्रायः भूखा ही रह जाता है।

(मि० कहा० २) ७ घणा नाड़ा तोड्या जे रा घरा न आळा बांध्या—परिश्रम द्वारा शरीर की बहुत सी नसे टूटी तब कही जाकर घर का प्रबंध हुआ। परिश्रम करने पर ही सुख प्राप्त हो सकता है. ८ घणी गई थोडी रही, सो भी जावणहार—बहुत समय बीत गया अब तो थोडा समय (आयु) शेष है; समय निरन्तर बीत रहा है ९ घणी चतुराई चूल्हे में पड़ै—अधिक चतुराई चूल्हे में पड़ती है; अधिक चातुर्य्य बुरा है; अति सर्वत्र वर्जयते १० घणी दायां जापै रो नास करै—बहुत सी दाइयो पर भरोसा करने की अपेक्षा एक ही दाई की सेवा अधिक अच्छी रहती है (मि० 'बहुत जोगी मठ उजाड़') ११ घणी सराही खीचड़ी दांतां सूं चिप जाय—अधिक प्रशंसित खिचड़ी भी दांतों के चिपक जाती है; अधिक शोभा या प्रशंसा पाने पर इतराने वाले व्यक्ति के प्रति. १२ घणी सैणप में किरकिर पड़ै—जरूरत से अधिक समझदारी से हानि होने की संभावना रहती है. १३ घणू बोलै नै घणू खाय ज्यो कई कांम थोड़ू करै—बहुत बोलने वाला और अधिक खाने वाला अधिक काम नही कर सकता; अधिक खाने वाले और अधिक बोलने वाले की निंदा. १४ घणो करै, थोड़ो करै, आपणे आपणे घेर नू बोज पूरां पाड़ै, बीजू कोनी पाड़ै—अधिक काम करना पड़े या थोड़ा' किन्तु अपने परिवार का निर्वाह उसे ही करना पड़ता है; अधिक या कम, हरएक को अपना काम खुद ही करना पड़ता है १५ घणो खावै घणो मेद बढ़ावै—अधिक खाने से बुद्धि नही बढ़ती, केवल चर्बी बढती है; अधिक खाने वाले की निंदा १६ घणो खावै जिको घणो मरै—अधिक भोग भोगने वाले की इच्छा भोग में ही बनी रहती है; ज्यो-ज्यो विषयों एवं ऐश्वर्य का उपभोग किया जाता है त्यो-त्यों उनको अधिक प्राप्त करने की इच्छा बढ़ती जाती है. १७ घणो गाजै थोडो वरै'—जो गरजते हैं सो बरसते नही. १८ घणो भुसै जिको काटै नही—देखो कहावत १७. १९ घणो स्यांणो कागलो जको गू में चोंच डबोवै—कौआ बहुत चतुर होने पर भी विष्ठा में अपनी चोंच डालता है; जरूरत से ज्यादा चतुर कई बार मूर्खता का काम कर बैठता है.

२० घणो हसो विणास करावै—अधिक हंसी विनाश का कारण बन जाती है; अधिक हास्य बुरा है. २१ घणो हेत लडाई रो मूळ—आवश्यकता से अधिक प्रेम कई बार लड़ाई का कारण बन जाता है; अति सर्वत्रवर्जयते।

(रू०भे०—घणा, घणा॰, घणू)

घतावणो घतावबो—क्रि०स० ('घातणो' का प्रे०रू०) डलवाना।

उ०—माड़ेचो मुकनेस रो, देस अजाद दुभल्ल। झोळी बीस घताविया, पड़िया तीस मुगल्ल।—रा रू.

घतावणहार, हारो (हारी), घतावणियो—वि०।

घताविप्रोड़ो, घतावियोड़ो, घताव्योड़ो—भू०का०कृ०।

घतावीजणो, घतावीजबो- कर्म वा०।

घातणो—क्रि०स०।

घतावियोड़ो—भू०का०कृ०—डलवाया हुआ। (स्त्री० घतावियोड़ी)

घन—१ देखो 'घण' (रू भ.) २ प्रायः ताल देने के काम आने वाला एक प्रकार का बाजा जो धातु को ढाल कर बनाया जाता है।

उ०—ततवितत घन सुखिर, पंचवरण वाजित्र बाजइ छइ।

—का.दे.प्र.

वि०—१ श्वेत, सफेद* (डि को.) २ घना, सघन. ३ संकीर्ण।

घनकोदंड—देखो 'घणकोदंड' (रू.भे.)

घननाद—देखो घणनाद' (रू भे.) उ०—निडर अंगद दिखण महोदर चर निसा, दुभल हणमंत घननाद पच्छम दिसा।—र.रू.

घननादानळ—देखो 'घणनादानळ' (रू.भे.)

घनपटळ—देखो 'घणपटळ' (रू.भे.)

घनपति—देखो 'घणपति' (रू.भे.)

घनपथ—देखो 'घणपथ' (रू.भे.)

घनपुसप—देखो 'घणपुसप' (रू.भे.)

घनप्रिय—देखो 'घणप्रिय' (रू.भे.)

घनफळ—देखो 'घणफळ' (रू भे.)

घनमंख—देखो 'घणमख' (रू.भे.)

घनमंड—देखो 'घणमंड' (रू.भे.)

घनमाळ—देखो 'घणमाळ' (रू भे.)

घनमूळ—देखो 'घणमूळ' (रू भे.)

घनरस—देखो 'घणरस' (रू.भे.)

घनराट—देखो 'घणराट' (रू.भे.)

घनराव—देखो 'घणराव' (रू.भे.)

घनवरण—देखो 'घणवरण' (रू.भे.)

घनवह, घनवाह—देखो 'घणवाह' (रू.भे.)

घनवाहण, घनवाहन—देखो 'घणवाहण' (रू.भे.)

घनसागर—देखो 'घणसागर' (रू.भे.)

घनसार—देखो 'घणसार' (रू.भे.)

घनसुर—देखो 'घणसुर' (रू.भे.)

घनस्याम—देखो 'घणस्यांम' (रू.भे.)

घनहर—देखो 'घणहर' (रू.भे.)

घनाक्षरी, घनाखरी—देखो 'घणाक्षरी' (रू.भे.)

घनाघन—देखो 'घणाघण' (रू.भे.)

घनोत्तम—देखो 'घणोत्तम' (रू.भे.)

घबड़ाणौ, घबड़ाबौ—देखो 'घबराणौ' (रू.भे.)

घबड़ाणहार, हारौ (हारी), घबड़ाणियौ—वि०।

घबड़ायोड़ौ—भू०का०कृ०।

घबड़ावणौ, घबड़ावबौ—रू०भे०।

घबड़ायोड़ौ—देखो 'घबरायोड़ौ' (रू.भे.)

घबड़ावणौ, घबड़ावबौ—देखो 'घबराणौ' (रू भे.)

घबर, घबराट—सं०स्त्री०—घबराहट, भय। उ०—सबर राख कुसमै समै, कासूं घबर करीस। खिण खिण ले जग री खबर, जबर सगत जगदीस।—बां.दा.

घबराणौ, घबराबौ—क्रि०ग्र०—१ व्याकुल होना, अधीर या अशांत होना, घबराना। उ०—चित पर घोरारव ग्राकर बरचावै। घर घर नर-नायक लायक घबरावै।—ऊ.का.

२ सकपकाना, हक्काबक्का होना. ३ चकित होना. ४ बड़-बड़ाना, उतावली में होना. ५ ऊबना, जी न लगना।

घबराणहार, हारौ (हारी), घबराणियौ—वि०।

घबड़ाणौ, घबड़ाबौ, घबड़ावणौ, घबड़ावबौ, घबरावणौ, घबरावबौ—रू०भे०।

घबरायोड़ौ—भू०का०कृ०।

घबराईजणौ, घबराईजबौ—भाव वा०।

घबरायोड़ौ—भू०का०कृ०—१ घबराया हुआ, व्याकुल, अधीर. २ किंकर्त्तव्यमूढ़, भौंचक्का. ३ सकपकाया हुआ। (स्त्री० घबरायोड़ी)

घबरावट—देखो 'घबराहट' (रू.भे.)

घबरावणौ, घबरावबौ—देखो 'घबराणौ' (रू.भे.) उ०—घर सारौ पूरी होवै तठै हर मिनख घबरावै पण वीर माता आपरा घर में इसा कुळ-सुद्ध सूरवीर देख राजी होवै छै।—वी.स.टी.

घबरावणहार, हारौ (हारी), घबरावणियौ—वि०।

घबराविप्रोड़ौ, घबराविपोड़ौ, घबराव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घबराहट—देखो 'घबराट' (रू.भे.)

घबरियोड़ौ—देखो 'घबरायोड़ौ' (रू.भे.)

घबरीजणौ, घबरीजबौ—क्रि०ग्र० (भाव वा०) १ घबरा जाना, व्याकुल होना। उ०—मरणौ हुवै जिके पग मांडौ, ऊबरणौ हुवै जिके ग्रखौ। दिल घबरीज मौत सूं डरपौ, वळै कहौ किण भांत बिखौ।

—जादूरांम श्राढ़ौ

२ भौंचक्का हो जाना. ३ सकपका जाना।

घबरीजणहार, हारौ (हारी), घबरीजणियौ—वि०।

घबरीजिप्रोड़ौ, घबरीजियोड़ौ, घबरीज्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घबराणौ, घबराबौ—क्रि०ग्र०।

घबरीजियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ घबराया हुआ. २ हड़बड़ाया हुआ. ३ भौंचक्का. ४ सकपकाया हुआ। (स्त्री० घबरीजियोड़ी)

घमंक—सं०स्त्री० [ग्रनु०] १ आघात से उत्पन्न हुई ध्वनि, धमाका. २ झनकार। उ०—सुरंग रंगभोमि में, तरंग है न तांन की। ढमंक ढोलकी न त्यूं, घमंक घुंघरांन की।—ऊ.का.

३ जोर से मूसलाधार वर्षा होने से उत्पन्न शब्द। उ०—गाल सुहाता नीर हठीली लार म छोडै। कड़क घमंका मांड डरपती दड़कै दौड़ै।

—मेघ.

घमंकणौ, घमंकबौ—क्रि०ग्र०—'घमंक' की ध्वनि होना या करना। उ०—१ वडी फौजां दरमांणी घमंकी पाखरां वाजा।—अज्ञात

उ०—२ घमंकि घंट घुग्घरं, सिंदूर सीस चम्मरं।—गु.रू.बं.

घमंकौ—देखो 'घमकौ' (रू.भे.) उ०—वना हसती थे भल लाज्यौ, घुड़लां रे घमंकै आज्यौ।—लो.गी.

घमंघम—देखो 'घमघम' (रू.भे) उ०—जवन्निय सेन ग्रळै किर ज्वाळ, घमंघम पक्खर घुग्घरमाळ।—रा.रू.

घमंड—सं०पु० [सं०] १ अभिमान, गर्व, अहंकार। मुहा०—१ घमड उतारणौ—अभिमान दूर करना. २ घमंड टूटणौ—अभिमान खतम होना. ३ घमड निकाळणौ—अभिमान दूर करना।

२ बल, वीरता। उ०—ज्यूं किण रा घमंड सूं थूं इतरौ नाचै है।

घमंडी—वि०—अहंकारी, अभिमानी, गर्वीला।

घम—सं०पु० [ग्रनु०] किसी तल पर कडी वस्तु का आघात लगने से उत्पन्न शब्द।

यौ०—घमाघम।

घमक—१ देखो 'घमंक' (रू.भे.) उ०—घण सायक सावळ घमक, विखमी लग वग्गी।—सू प्र.

२ यथाशक्ति किया गया परिश्रम. ३ 'घूमर' नामक राजस्थान का एक लोक-नृत्य. ४ घोड़ों की प्रसन्नतासूचक हिनहिनाहट. ५ प्रहार। उ०—वह घमक सावळां, वहै झाटक वीजूजळ।—सू प्र.

घमकणौ, घमकबौ—क्रि०ग्र०—१ नाचना. २ वर्षा का उमड़ना। उ०—मेघ अमीणी नांम घमंकूं जिण पुळ नभ में। खोलण कांमण केस पड़ै धव खाता मग में।—मेघ.

३ अचानक आकर उपस्थित होना, आ धमकना. ४ किसी कार्य को तेजी से करना।

घमकणहार, हारौ (हारी), घमकणियौ—वि०।

घमकिग्रोड़ौ, घमकियोड़ौ, घमक्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घमकीजणौ, घमकीजबौ—भाव वा०।

घमकाणौ, घमकाबौ-क्रि०स०—१ प्रहार करना, मारना-पीटना. २ धमकी देना. ३ नचाना. ४ पैरों को पटक घुंघरू आदि का बजाना। उ०—सातां दीप रास रमैं मातूं, घूघरियां घमकांणी। बीण म्रदंग बजावै डैरू, गावै अम्रत वांणी।—राघवदास भादो
घमकाणहार, हारौ (हारी), घमकाणियौ—वि०।
घमकायोड़ौ—भू०का०कृ०।
घमकावणौ, घमकाबबौ—रू०भे०।

घमकायोड़ौ-भू०का०कृ०—१ पीटा हुआ २ धमकाया हुआ. ३ नचाया हुआ। (स्त्री० घमकायोड़ी)

घमकावणौ—देखो 'घमकाणौ' (रू.भे.)
घमकावणहार, हारौ (हारी), घमकावणियौ—वि०।
घमकाविओड़ौ, घमकावियोड़ौ, घमकाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।
घमकावीजणौ, घमकावीजबौ—भाव वा०।

घमकावियोड़ौ—देखो 'घमकायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० घमकावियोड़ी)

घमकौ-सं०पु० [अनु०] १ प्रहार का शब्द, चोट की आवाज. २ चलते समय पैर पटकने से उत्पन्न ध्वनि. ३ नृत्य करते समय पैर पटक कर की जाने वाली घुंघरुओं की आवाज।
उ०—बांका नैणां री, झोक नांखती, पायल रै ठमकै सूं, घूघरै रै घमकै सूं, विछीयां रै छमकै सूं, रमझोळ करती, अंगूठा मोड़ती, नखरा करती बाजारि चाली जाए छै।—रा.सा सं.

घमघम-सं०स्त्री०यौ० [अनु०] १ निरन्तर प्रहार से उत्पन्न ध्वनि. २ चलते समय जोर से पैर पटकने से उत्पन्न ध्वनि।
उ०—भीने कांचळियै घमघम डग भरतो, घमळां देतोड़ी घम घम पग धरती।—ऊ.का
३ नृत्य करते समय पैर पटक कर की जाने वाली घुंघरुओं की आवाज। उ०—नम नम घमघम नाचती, रमझम अपछर रीत। तिम तिम यम पाबू तवै, वालां खम खम बीत।—पा.प्र.
क्रि०वि०—शीघ्रता।

घमघमणौ घमघमबौ-क्रि०अ०—पैर पटक कर घुंघरुओं की आवाज करते हुए नृत्य करना। उ०—घं वाजित्र घण घाउ घमिघमि अपछर घूघरा।—वचनिका

घमघमाहट—देखो 'घमघम' (रू.भे.)

घमघमाणौ, घमघमाबौ-क्रि०स०—१ प्रहार करना. २ घम-घम शब्द करना।

घमघोर—देखो 'घणघोर' (रू.भे.)

घमड़-सं०स्त्री०—घमघम की ध्वनि। देखो 'घमघम' (२ ३)
क्रि०वि०—जल्दी-जल्दी, उतावली से।
कहा०—घमड़-घमड़ पीसै नै जाती रा पग दीसै—पीसने के कार्य में उतावलापन दिखाने का अभिप्राय यह है कि अब वह इस घर में नहीं रहेगी एवं किसी अन्य पुरुष से नाता जोड़ेगी; कार्यों में उतावलेपन या अरुचि दिखाने की बुराई।

घमड़ौ—देखो 'घमडी' (रू.भे.)

घमचाळ-सं०स्त्री० [सं० घर्मचाल] १ फौज, सेना.
उ०—सैरं जहर उडि घोम धरं धरं, रीठ तर पड़ि बजर गिर उर, चौतरफ घमचाळ।—सू.प्र.
२ युद्ध। उ०—१ सुजड़ भभकाव जड़ कुरड़ परवाह सक, धूठ उमरड़ सत्रां होम वेहा। उरड़ घमचाळ होतां बणै झांपरा, मनड पैराज तस गुरड़ मेहा।—कविराजा करणीदान
३ जी मचलने या ऊबने का भाव. ४ शस्त्रों का प्रहार।
उ०—अंबर बीर छाजंत अरिंदां जाळ का, किरमाळां घमचाळ समोबड़ काळका।—बगसीरांम प्रोहित री बात

घमचोळ-सं०स्त्री०—१ ऊंट की एक चाल विशेष. २ घुंघरुओं की ध्वनि। उ०—पारधै लेय आयोय धाट पती। विढंगां पग नेवरियां वजती। वण जांन सुप्यार तणै वर री, घमचोळ वजै बहु घूघर री।—पा.प्र.
३ मादक द्रव्यों से उत्पन्न नशा. ४ जी मचलने की क्रिया, वमन की स्थिति. ५ वर्षा की तेज बौछार. ६ कोलाहल, हल्ला-गुल्ला।

घमचोळणौ, घमचोळबौ-क्रि०अ०—जी मचलाना, जी घबराना, वमन की स्थिति होना।

घमझोळौ-सं०पु०—झमेला, टंटा। उ०—खींवौ कही—घोड़ी मैं नीका दीठी। ये तौ बातां रै घमझोळै मांहीं था, पण हूं दीठी थी। घोड़ी पिरथी री रूप छै।—सूरे खींवे री बात

घमडी-सं०स्त्री०—घूम, चक्कर। उ०—दुरबिन घमडी दे सणकारी साजी। भारी भमडीलै घर में भूवाजी।—ऊ.का.

घमर-सं०स्त्री० [अनु०] १ ढोल आदि का उत्पन्न गम्भीर शब्द। २ कोई गम्भीर ध्वनि।

घमराळ, घमरोळ-सं०पु०—१ युद्ध, रण. २ शस्त्रों की बौछार।
उ०—कंथ घणी ही सांकड़ी, घेरो घर रै दोळ। वांभी देखण हुलसै, सेलां री घमरोळ।—वी.स.
३ तेज महक. ४ धमाचोकड़ी, उछलकूद. ५ कोलाहल।

घमरोळणौ, घमरोळबौ-क्रि०स०—१ युद्ध करना. २ संहार करना, नाश करना, रौंदना. ३ सुगंध देना, महकना।
घमरोळणहार, हारौ, (हारी), घमरोळणियौ—वि०।
घमरोळिओड़ौ, घमरोळियोड़ौ, घमरोळ्योड़ौ—भू०का०कृ०।
घमरोळीजणौ, घमरोळीजबौ—कर्म वा०।

घमरोळियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ युद्ध किया हुआ. २ संहार किया हुआ. ३ महका हुआ। (स्त्री० घमरोळियोड़ी)

घमरोळी—देखो 'घमरोळ' (रू.भे.)

घमस-सं०स्त्री०—१ घोड़ों के टापों से उत्पन्न ध्वनि। उ०—नाळ घमस वजि निहैंग, धरा जहराळ कमळ धुकि।—सू.प्र.
२ दौड़ने से उत्पन्न होने वाली पंजों की ध्वनि।

घमसाण, घमसांण-सं०पु०—१ भयंकर युद्ध। उ०—१ बण बंटां गढ

घेरियां, वणि रिण ऊग विहांण। निस जाये चख जग्गणौं, दिन पाये घमसांण।—रा.रू. उ०—२ प्रथम गजर तोपां पड़ै, गोळां बजर गुड़ांण। मचियौ जिण दिन मांझियां, घोर प्रळै घमसांण।—बं.भा.

मुहा०—घमसांण करणौ, घमसांण मचाणौ—लड़ाई झगड़ा मचा देना।

२ संहार, नाश. ३ फौज, सेना (ह.ना.)

उ०—बण सुभट थाट हैमर बणाये, ग्राखेट रमण कीनौ उपाये।
घमसांण चले घण थाट घेर, बाजंत घाव नीसांण भेर।
—बगसीराम प्रोहित री बात

४ समूह, दल। उ०—१ तरै मियां नै समाचार हुआ तरै मियां फौज रौ घमसांण करनै रांमदासजी ऊपर चढ़ियौ।—रा.सा.सं.

उ०—२ इसो हुकम सुण घोड़ां रा घमसांण लेनै चढ़िया।
कहवाट सरवहिया री बात

वि०—घमासान, घनघोर, भयंकर।

घमसाळ—वि०—विशाल, बड़ा।

घमस्सांण—देखो 'घमसांण' (रू.भे.)

घमहम, घमाघम—देखो 'घमघम' (रू.भे.)

घमाकौ—सं०पु० [अनु०] भारी वस्तु के गिरने अथवा बंदूक आदि के छूटने का शब्द, धमाका।

घमाघम, घमाघमी—१ देखो 'घमघम' (रू.भे.)

उ०—१ घूघरां तणा झरणाट हुय घमाघम, बेग रा तंत्र तरणाट बाजै।—खेतसी बारहठ उ०—२ मिळै पंथ सालळै खेंग मरद्द, घमाघम ऊपर घोर गरद्द। रा रू.

२ युद्ध, लड़ाई. ३ धूमधाम, चहल-पहल।

क्रि०वि०—निरन्तर, लगातार।

घमाड़ौ, घमीड़, घमीड़ौ, घमीर, घमेड़, घमेड़ौ—सं०पु०—१ दुःख अथवा शोक में छाती पीटने का भाव। उ०—हिये हठी हमीर सो ग्रठी घमीर ऐन मैं। दया गमीर देखिये घमीर लैन दैन मैं।—ऊ.का.

२ प्रहार, चोट। उ०— सेल घमेड़ां सल्ल पड़ै, मल्लां प्रति मल्लां। भल्लां-भल्लां भणै ऊगतां भड़ां ग्रमल्ला। —ऊ.का.

३ प्रहार या आघात से उत्पन्न ध्वनि, धमाका। उ०—परोपर सानुज बांधव पीड़, घमाघम सावळ वाज घमीड़।—पा प्र.

घमोड़—सं०पु० [अनु०] १ दधि मंथन की ध्वनि. २ देखो 'घमीड़'। (रू.भे.)

उ०—संग बहै सामंत, रंग घोड़ां राठोड़ां। अड़ै भुजां असमाण, मुड़ै फण पोड़ घमोड़ां।—मे.म.

घमोड़णौ, घमोड़बौ—क्रि०स०—१ पीटना, मारना, प्रहार करना।

उ०—राघोदे आघा बधतो थको सेल री राजा रै घमोड़ी।
—जैतसी ऊदावत री बात

२ दही मथना, विलोड़ित करना।

घमोड़णहार, हारो (हारी), घमोड़णियौ—वि०।

घमोड़िग्रोड़ौ, घमोड़ियोड़ौ, घमोड़्योड़ौ —भू०का०कृ०।

घमोड़ीजणौ, घमोड़ीजबौ—कर्म वा०।

घमोड़—देखो 'घमीड़ौ'। उ०—सैल घमोड़ा किम सह्या, किम गज दंत। कठिण पयोहर लागतां, कसमसतौ तूं कंत।—हा.झा.

घमोय—सं०स्त्री०—एक छोटा पौधा जिसके पत्ते गोभी के पौधे के रंग के व कटावदार कांटों से युक्त होते हैं। इसका तना सीधा ऊपर की ओर बढ़ता है। इसमें टहनियां नहीं होती। इसके फूल पीले होते हैं। यह पौधा प्राय: रेतीले स्थान पर और ऐसे खड्डे पोखरों में अधिक होता है जहां पानी एकत्रित होकर जल्दी सूख जाता है। इसे लोग सत्यानाशी भी कहते हैं।

घमोर—देखो 'घमोड़' (रू.भे.) उ०—बदूक सोरं मूठ ग्रोर गज्ज डोरं बंधए। गोळी घमोरं दंत तोर चडा ठोरं संधए।—पा.प्र.

घम्म—देखो 'घम' (रू.भे.)

घम्मघमतइ—वि०—१ घेरदार। उ०- घम्मघमंतइ घाघरइ, उलटचौ जांण गयंद। मारू चाली मंदिरे, झीणे बादळ चंद।—ढो.मा.

२ घूमता हुआ।

घर—सं०पु० [सं० गृह] दीवार आदि घेर कर मनुष्य द्वारा अपने लिए बनाया हुआ रहने का स्थान आवास, मकान।

पर्याय०—ग्रगार, ग्रांमम, ग्राथांण, ग्राराम, ग्रालय, ग्रास्पद, ग्रासय, ग्रास्रय, ऐण, ऐवास, ग्रोक, कुट, गेह, ग्रह, जाग, थान, धमळ, धांम, धिसण, निकेत, निलय, निवासपद, बसती, भवन, मंदर, मकांन, रहण, बसी, वास, विस्रांम, वेसंम, सदन, सदम, सुधांनक, सोध।

मुहा०—१ अंधारे घर रौ उजाळौ—भाग्यवान, तेजस्वी, कुलदीपक, अत्यन्त सुंदर. २ ग्रापरौ घर जाणणौ—अपना घर समझना, संकोच न करना, आराम की जगह समझना, ऐसा स्थान समझना जहां घर का सा व्यवहार हो ३ ग्रापरौ घर समझणौ—देखो मुहा० सं० २. ४ घर ग्राबाद करणौ—विवाह कर लेना, किसी सूने घर में निवास करना. ५ घर उजड़णौ—परिवार की दशा बिगड़ना, कुल की समृद्धि नष्ट होना, परिवार पर विपत्ति होना घर के प्राणियों का तितर-बितर होना या मर जाना. ६ घर ऊठणौ—घर बनना, इमारत का खड़ा होना, देखो 'घर उजड़णौ'.

७ घर करणौ—बसना, रहना, निवास करना, किसी वस्तु या प्राणी का जमने या ठहरने के लिए गड्ढा करना, घुसना, बिल बनाना, पत्नी भाव से किसी के घर में रहना, खसम करना, नया पति स्वीकार करना. ८ घर काटण (खावण) नै दौड़णौ—किसी के बिना घर का सूना लगना. ९ घर खाली छोड़णौ—गोटी के खेल में आगे के लिए जगह छोड़ना. १० घर खोणौ, घर खोवणौ—घर का सत्यानाश करना, घर उजाड़ना, घर की संपत्ति नष्ट करना. ११ घर गमाणौ—घर की समृद्धि एवं संपत्ति नष्ट करना. १२ घर-घर—हर एक घर में, सबके यहां. १३ घर-घर री होणौ—तितर-बितर हो जाना, मारे-मारे फिरना, बेठिकाने हो जाना, बिना घर के होना.

१४ घर-घर होणौ (मिळणौ)—हर जगह पर होना. १५ घर घालणौ—निवास करना, बस जाना. १६ घर घुसणियौ, घर घुसणौ—घर में घुसा रहने वाला, हर घड़ी अंतःपुर में पड़ा रहने वाला, सदा स्त्रियों के बीच में बैठा रहने वाला, बाहर निकल कर काम-काज न करने वाला. १७ घर चलणौ—घर का काम चलना, गुजर-बसर होना, घर का खर्च चलना. १८ घर चलाणौ—परिवार का निर्वाह करना, देखभाल कर गृहस्थी का संचालन करना.

१९ घर जमणौ—गृहस्थी ठीक होना, घर का सामान इकट्ठा होना. २० घर जमाणौ—गृहस्थी को ठीक एवं व्यवस्थित करना, घर की समृद्धि बढ़ाना. २१ घर जंवाई करणौ—दामाद को अपने घर में रखना. २२ घर जाणौ—घर का विनाश होना, घर के सभी सदस्यों का कहीं जाना. २३ घर डुबोणौ—परिवार की बेइज्जती करना, घर का धन बरबाद करना, घर को तबाह करना.

२४ घर डूबणौ—घर का नष्ट होना, घर तबाह होना, धन खतम होना, कुल में कलंक लगना. २५ घर तक पूगणौ—घर के आदमियों तक से शिकायत करना, मां-बहिन की गाली देना. २६ घर दीठ—एक एक घर में, प्रति घर से. २७ घर देखणौ—किसी के घर कुछ मांगने जाना, घर का रास्ता देख लेना, घर के भेद की जानकारी करना. २८ घर नै माथा माथै (ऊपर) लेणौ—परिवार के सब आदमियों को परेशान कर देना, शोरगुल मचाना.

२९ घर नै सिर माथै लेणौ—देखो मुहा० २८. ३० घर फाटणौ—मकान की दीवार आदि में दरार पड़ना, घर में फूट एवं विरोध होना. ३१ घर फूंकणौ—घर का नाश करना, घर की समृद्धि नष्ट करना, घर का धन बरबाद करना. ३२ घर फूंक नै तमासौ देखणौ—अपना घर बरबाद करके खुशी मनाना, अपनी हानि पर प्रसन्नता होनी, प्रशंसा या तमाशे के लिए स्वयं को ही हानि पहुँचाना. ३३ घर फोड़णौ—परिवार में लड़ाई-झगड़ा पैदा करना, घर में अशांति उत्पन्न करना, घर का भेद खोलना.

३४ घर बंद होणौ—घर भर का मर जाना, घर में प्राणी न रह जाना, घर का कोई मालिक न रह जाना, घर के प्राणियों का तितर-बितर होना, घर में ताला लगना, किसी घर से कोई संबंध न रह जाना, गोटी के खेल में चलने की जगह न होना. ३५ घर बणणौ—मकान तैयार होना, इमारत बनना, घर की आर्थिक स्थिति अच्छी होना, घर संपन्न होना, धनी होना, घर के लोगों का मेल से रहना.

३६ घर बणाणौ—इमारत बनाना, मकान तैयार करना, निवास-स्थान बनाना, बसना, घर की आर्थिक दशा सुधारना, घर को संपन्न बनाना, अपना लाभ करना, गृहस्थी बनाना. ३७ घर बरबाद होणौ—घर बिगड़ना, घर की समृद्धि नष्ट होना, परिवार नष्ट होना, घर के लोगों में फूट होना. ३८ घर बसणौ—घर आबाद होना, घर में प्राणियों का होना, घर की दशा सुधरना, घर में स्त्री या बहू आना, ब्याह होना. ३९ घर बसाणौ—घर आबाद करना, घर में नये प्राणी लाना, घर की दशा सुधारना, घर को धन-धान्य से पूरित करना, घर में स्त्री या बहू लाना, विवाह करना. ४० घरबार री धणियांणी होणौ—घर की मालकिन होना, बाल-बच्चेदार व गृहस्थिन होना. ४१ घर बिगाड़णौ—घर में फूट पैदा करना, घर में कलह उत्पन्न करना, घर बरबाद करना. घर की समृद्धि नष्ट करना, परिवार की हानि करना, दूसरे घर की औरत को बहकाना, कुलवती को बहकाना, घर की बहू-बेटी को बुरे मार्ग पर ले जाना. ४२ घर बैठणौ—काम पर न जाना, नौकरी छोड़ना, कोई काम न मिलना, बेकार रहना, मकान का गिरना, घर में बैठना, एकांत सेवन करना. ४३ घर बैठा—बिना कुछ काम किये, बिना हाथ-पैर हुलाये, बिना परिश्रम, बिना कुछ देखेभाले, बिना बाहर जाकर सब बातों का पता लगाये, बिना कहीं गये-आये—बिना यात्रा का कष्ट उठाये, एक ही स्थान पर रहते हुए. ४४ घर भर—घर के सब प्राणी. सारा परिवार.

४५ घर भरणौ—घर में खूब माल लाना, घर को धन-धान्य से पूर्ण करना, अपना लाभ करना, घर में ज्यादा आदमी होना, घर का प्राणियों से भरना, मेहमानों या कुटुंब वालों का घर में इकट्ठा होना, हानि पूरी होना, आगे जाने की जगह न होना. ४६ घर मंडणौ—किसी आदमी का विवाह होकर उसकी गृहस्थी जमना.

४७ घर मांडणौ—किसी स्त्री का पुनर्विवाह करना, गृहस्थी आरंभ करना, घर को सुव्यवस्थित करना. ४८ घर माथै चढ़ नै आवणौ—लड़ाई करने के लिए किसी के घर पर जाना. ४९ घर में—स्त्री, जोरू, घरवाली. ५० घर में गंगा होणौ—घर में ही सब कुछ प्राप्त होना. ५१ घर मेटणौ—गृहस्थी उजाड़ना, घर को तबाह करना, घर के परिवार को नष्ट करना, घर का अस्तित्व मिटा देना. ५२ घर राखणौ—घर को उबारना, गृहस्थ की मर्यादा को रखना, अपनी इज्जत रखना. ५३ घर रा घर—भीतर ही भीतर, गुप्त रीति से, बिना लोगों को सूचना दिये, बहुत से घर.

५४ घर रा घर साफ होणा—परिवार के परिवार का सफाया होना, बहुत से घर नष्ट होना. ५५ घर री, घर वाळी—गृहिणी, स्त्री. ५६ घर री जुगत—गृहस्थी का प्रबंध. ५७ घर री तरै बैठणौ—आराम से बैठना, खूब फैल कर बैठना, बैठने में किसी प्रकार का संकोच न करना. ५८ घर री तरै रैणौ—आराम से रहना, अपना घर समझ कर रहना. ५९ घर री पूंजी—अपने पास की संपत्ति, निज का धन. ६० घर री बात—कुल से संबंध रखने वाली बात, आपस की बात, आत्मीय जनों के बीच की बात. ६१ घर री रोसनी—कुलदीपक, कुल की समृद्धि करने वाला, कुल की कीर्ति को बढ़ाने वाला, भाग्यवान, अत्यंत प्रिय, लाडला. ६२ घर रौ—निज का, अपना, आपस का, संबंधियों या आत्मीयजनों के बीच का, संबंधी, अपने परिवार का प्राणी, पति, स्वामी. ६३ घर रौ आदमी—बहुत नजदीकी, अपने ही कुटुम्ब का प्राणी, भाई-बंधु, इष्ट-

मित्र, अत्यन्त विश्वासपात्र, पति. ६४ घर रो उजाळो—परिवार की इज्जत बढ़ाने वाला, घर भर में खूबसूरत, कुलदीपक, कुल की समृद्धि को बढ़ाने वाला, भाग्यवान. ६५ घर रो घर—पूरा का पूरा परिवार, घर के सभी प्राणी. ६६ घर रो घर में रैं'णो—न कुछ हानि न लाभ होना. ६७ घर रो घर साफ होणो—परिवार के परिवार का सफाया हो जाना. ६८ घर रो चोखो—मालदार, समृद्ध कुल का, अच्छे खानदान का, खाने-पीने से खुश. ६९ घर रो दीयो—कुलदीपक, कुल की समृद्धि करने वाला, कुल की कीर्ति को बढ़ाने वाला, भाग्यवान, अत्यन्त प्रिय. ७० घर रो न कोई घाट रो—जिसके रहने का कोई निश्चित स्थान न हो, बेकार, कहीं का भी नहीं, निकम्मा. ७१ घर रो नांम डुबोणो—कुल को कलंकित करना, अपने भ्रष्ट या निकृष्ट आचरण से अपने परिवार की प्रतिष्ठा खोना, घर की बदनामी करना. ७२ घर रो बा'दर—अपने ही घर में बल दिखाने या बढ़-बढ़ कर बोलने वाला, परोक्ष में शेखी बघारने वाला और मुकाबिले के लिए सामने न आने वाला.
७३ घर रो बोझ—गृहस्थी का कारबार. ७४ घर रो बोझ उठाणो (संभाळणो)—गृहस्थी का कामकाज देखना, घर का प्रबंध करना, घर का खर्च चलाना. ७५ घर रो भेदियो—अपनी गुप्त बातों को जानने वाला. ७६ घर रो भेदी—घर का सब भेद जानने वाला, ऐसा निकटस्थ मनुष्य जो सब रहस्य जानता हो. ७७ घर रो मरद—देखो 'घर रो बा'दर'. ७८ घर रो रास्तो पकड़णो—अपने काम से काम रखना. ७९ घर रो रास्तो लेणो—अपने काम से काम रखना. ८० घर रो वीर—देखो 'घर रो बा'दर'.
८१ घर रो सेर—देखो 'घर रो बा'दर'. ८२ घर रो हिसाब—अपने लेन-देन का लेखा, निज का लेखा, अपने इच्छानुसार किया हुआ हिसाब, मनमाना लेखा. ८३ घर लारै—एक एक घर में, एक एक घर से. ८४ घर समझणो—निःसंकोच रहना.
८५ घर सूं—पास से, पल्ले से, पति, स्वामी, स्त्री, पत्नी.
८६ घर सूं देणो—अपने पास से देना, अपनी गांठ से देना, स्वयं हानि उठाना, मूल धन से व्यय करना. ८७ घर सूं बेघर करणो—बिना शरण का कर देना, निकाल देना. ८८ घरे पड़णो—घर में आना, प्राप्त होना, मिलना, मोल मिलना. ८९ घरे पूगणो—सुरक्षित स्थान पर पहुँचना, अपने घर पहुँचना. ९० घरे बैठणो—किसी के घर पत्नी-भाव से जाना, किसी को खसम बनाना, काम पर न जाना, नौकरी छोड़ना, कोई काम न मिलना, बेकार रहना.
९१ घरे बैठा—बिना मेहनत के, बिना आये-गये, देखो मुहा० 'घर बैठा' (रू.भे.). ९२ घरे बैठां रोटी मिळणी—बिना मेहनत की रोटी, बिना परिश्रम की जीविका. ९३ घरोघर—हरएक घर, प्रत्येक घर. ९४ दिल में घर करणो—इतना पसंद आना कि उसका ध्यान सदा बना रहे, अत्यन्त प्रिय होना, प्रेम-पात्र होना।
कहा०—१ आप तणो घर आप रो सूझै सौ कोसां—अपने घर की स्थिति का ज्ञान तो सौ कोस दूर बैठे हुए को भी होता है; किसी भी प्रकार के व्यय आदि को घर की स्थिति के अनुसार ही करना चाहिये. २ घर आयो नाग न पूजै, बांबी पूजण जाय—घर पर आये नाग की पूजा तो होती नहीं और विवर (सांप का बिल) पूजने जाती है; अवसर पर लाभ न उठाने वाले के प्रति. ३ घर आयो बैरी ई पांमणो—घर आये हुए शत्रु को भी अतिथि समझ उसका पूर्ण सम्मान करना चाहिये; अतिथि-सत्कार की भावना. ४ घर आवती लिछमी नै ठोकर नहीं मारणी—घर आती लक्ष्मी की अवहेलना नहीं करना चाहिये; सुगमता से घर बैठे धन एवं लाभदायक वस्तु प्राप्त हो रही हो तो उसे अवश्य स्वीकार करना चाहिये. ५ घर का डांडा सूं आंख फूटणी—घर में लगे छत के डंडे से (नीचा होने के कारण) आंख फूटना; अपने सम्बन्धियों से हानि पहुंचना.
६ घर की खांड करकरी लागै, गुळ चोरी को मीठो—घर की शक्कर तो किरकिरी ही लगती है परन्तु चोरी का तो गुड़ भी मीठा लगता है; परायी वस्तु अधिक सुन्दर या अच्छी प्रतीत होती है. ७ घर की मुरगी दाळ बराबर—अपने अधिकार की वस्तु का कोई खास महत्व नहीं होता; उच्च वस्तु भी साधारण प्रतीत होती है, जैसे मलयाचल पर्वत पर चंदन ईंधन की भाँति जलाया जाता है; परायी वस्तु सुंदर व अच्छी प्रतीत होती है. (मि०—घर की खांड करकरी लागै, गुळ चोरी को मीठो।) ८ घर के आंगण बोरड़ी न लगाजै—घर के आंगन में बेर का वृक्ष नहीं लगाना चाहिये क्योंकि इसके कांटों में कपड़े उलझ कर फटते हैं और पैरों में कांटे लगते हैं; बुरे व्यक्ति को घर में स्थान नहीं देना चाहिये क्योंकि वह सदैव हानि ही पहुँचाता है।
९ घर को गंडक घर में सेर—अपनी गली में कुत्ता भी शेर होता है। (मि० मुहा०—'घर रो बा'दर') १० घर-घर माटी रा चूल्हा है—घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं; सब की परिस्थितियां प्रायः समान ही हैं; घर-गृहस्थी की चिन्ता प्रायः सभी को समान रूप से ही होती है.
११ घर जाय नै झांझर बाजै—घर मे हानि होने के समय थाली बजाना अनुचित है; बिना अवसर के बाजे अप्रिय लगते हैं.
१२ घर जाय मांई सूं, मांचो जाय बांई सूं—सौतेली मां से घर नष्ट होता है और खाट उसकी बुनाई के अंतिम सिरे जहां से दावन कसी जाती है, नष्ट होती है. १३ घर जायां का दांत गिणूं के हाड—घर में उत्पन्न व्यक्ति को क्या परखा जाय, उसकी तो नस-नस जानी हुई होती है. १४ घर तो लुगायां रा हीज कह्या है—घर तो स्त्री का ही है; घर की स्वामिनी तो स्त्री ही होती है; स्त्री होने से ही घर होता है या गृहस्थी बनती है. १५ घर दीया तो मसीत ही दीया—घर में प्रकाश है तो बाहर भी प्रकाश करना संभव है; घर में सुखी है तो अन्यों को भी सुख पहुँचाने का प्रयत्न किया जा सकता है. १६ घर दूर घटी भारी—घर अभी दूर है और सिर पर भारी चक्की है; आलसी व सुस्त के प्रति व्यंग्य. १७ घर देख नै हालणो, मांटी देख नै मालणो—घर की स्थिति के अनुसार ही चलना

चाहिये और पति की शक्ति के अनुसार ही गर्व करना चाहिये; घर की स्थिति के विपरीत चलना और पति की शक्ति के विपरीत गर्व करना अनुचित है. १८ घर ना गोदा नै घर ना जोदा जणा नी खेती—जिनके अपने निजी घर के जवान बैल हैं और घर के मजबूत आदमी हैं उसी की खेती अच्छी हो सकती है. १९ घर नी तो चट्टी चाटै, उपाध्री कै'पोय चपटी—घर के तो बच्चे भूखे हैं और मांगने वाला कहता है कि मुझे रोटी बना के दे; गरीबी की हालत में दूसरे को भोजन देना कठिन होता है; खुद की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद ही दूसरे की सहायता संभव है. २० घर नो दीवो करी नै जाणें डूंगरै दव लगाड़ै—घर का दीपक जलाना तो जानता ही नहीं और पहाड़ पर आग लगाने को उद्यत है; साधारण कार्य को भी करने का ज्ञान नहीं होते हुए भी बड़े कार्य में हाथ डालने वाले के प्रति. २१ घर फूट्यां घर जाय—घर में फूट पड़ने से घर उजड़ जाता है; घर की फूट बहुत बुरी है. २२ घर बळती को दीसै नी, डूंगर बळती दीसै—घर में जलती आग दिखाई नहीं देती, पहाड़ पर जलती आग दिखाई देती है; अपने दोष दिखाई नही देते, दूसरों के दोष दिखाई दे जाते हैं. २३ घर बाळ'र तीरथ नी करणी आवै—घर जला कर तीर्थ-यात्रा नहीं की जाती; घर की स्थिति के अनुसार ही पुण्य-कार्य किया जा सकता है. २४ घर बिना दर कठै ?—घर के बिना रहने को दूसरा स्थान कहां है ? घर में जैसी सुविधायें मिल सकती हैं वैसी अन्य कहां मिल सकती हैं ? घर की प्रशंसा. २५ घर मांहे ऊंदरा ग्यारस करे—घर में चूहे भी एकादशी करते हैं; अत्यन्त दरिद्रता के प्रति. २६ घर में घोड़ो घालणो—घर में आफत उपस्थित करना; अवांछित व्यक्ति का घर में आ फँसना; जानबूझ कर घर में कोई आफत मोल लेना. २७ घर में तो फाका पड़ै, मोडा नूंतण जाय—घर में तो फाके पड़ रहे हैं और साधुओं को भोजन के लिये निमंत्रण देने चला है; अपनी शक्ति से बाहर कार्य करना अनुचित है. २८ घर में तो भूंज्योड़ी भांग ही कोनी—घर में तो भुनी भांग भी नहीं; पास में कुछ भी न होने पर; अत्यन्त दरिद्रता के प्रति. २९ घर में नहीं अखत रा बीज कोडो खेलै आखातीज—घर में कुछ नहीं है और आप मोज व ऐश उड़ा रहे हैं; गरीब स्थिति में मोज व ऐश शोभा नहीं देती. ३० घर में हुवै नांणा तो बींद परणीजै कांणा—गाँठ में पैसा हो तो काने व्यक्ति का भी धूमधाम से विवाह हो सकता है; पैसा हर कठिन कार्य को भी सरल बना देता है; पैसे की प्रशंसा. ३१ घर में नाहर नै बारै गाडर—घर में शेर और बाहर भेड़; घर में या परिचितों में वीरता की शेखी बघारने वाले कायर व्यक्ति के प्रति. ३२ घर में नांहीं तेल तळाई, रांड मरै गुलगुलां तांई—घर में न तेल है न कढ़ाई है फिर भी गृहिणी मिष्ठान्न के लिये मरती है; घर की माली हालत के विपरीत चलने वाली स्त्री कुलक्षणा होती है. ३३ घर में पूंचेटी रौ टाबर लाडको व्है—घर में सबसे छोटा बच्चा अधिक लाडला होता है; घर में सबसे छोटे बच्चे को सबसे अधिक प्यार मिलता है. ३४ घर में बोलै डोकरा अर बा बोलै छोकरा—वृद्ध और अनुभवी व्यक्ति तो घर के झगड़े आदि घर में ही निपटा देते हैं किन्तु युवा व उद्दंड लड़के अपने घर की फूट को बाहर प्रकाशित कर देते हैं. ३५ घर में भुवाजी थड़घां (भचीड़ा खावै) करै—घर में भूख खड़ी है, घर की स्थिति ठीक नहीं है; दरिद्रता के प्रति. ३६ घर में रांमजी को नांम है—घर में कुछ नहीं है; अत्यन्त गरीब स्थिति है. ३७ घर में रांमजी रो दीन है—घर में ईश्वर की कृपा है; गृहस्थी पूर्ण संपन्न है; ईश्वर की कृपा से गृहस्थी ठीक चल रही है. ३८ घर में सळ नहीं है—घर की माली हालत ठीक नहीं है; किसी विशेष व्यय आदि के लिये घर में कोई साधन नहीं है. ३९ घर में हुवै संचार तो झख मारो गवार—अगर घर में लाभ होता हो तो निंदा करने वाले गंवार व्यक्तियों की परवाह नहीं करनी चाहिये. ४० घर में ही मोतियां रो चौक पूरणो—किसी बड़े कार्य को अपनेआप स्वतः ही घर पर पूरा कर लेने पर. ४१ घर रा ऊंदरा सोरा व्है ज्यूं करो—ऐसा कार्य करो जिससे घर के चूहे भी सुखी हों। वही कार्य करना अच्छा है जिसमें सब परिवार वालों का हित हो. ४२ घर रा ही देवता नै घर रा ही पुजारी—घर के ही देव और घर के ही पुजारी। सब प्रकार की सुविधा मिलने पर यह कहावत कही जाती है। ४३ घर री जूती नै घर रो माथो—खुद की जूती और खुद का ही शिर; अपने ही हाथों अपना नुकसान करने वाले के प्रति. ४४ घर री डाकण घर रां नै नहीं खावै—घर की डायन घर के कुटुम्ब पर अपना प्रभाव नहीं डालती; दुष्टों को भी अपने पराये का ख्याल होता है. ४५ घर री तो रोवै है नै पड़ोसण नै फेरा आवै—घर की स्त्री तो संतुष्ट ही नहीं और पड़ौसिन शादी के लिये तैयार है; घर की स्थिति तो सुधरती नहीं एवं दूसरों को सहारा देने की तैयारी करने वाले के प्रति. ४६ घर री मां नै कुण डाकण बतावै—अपनी मां को कौन डायन बताता है; अपने स्वजनों के अवगुणों को कोई प्रकट नहीं करता. ४७ घर री रीत बा'रै मत काढ़ो—घर की प्रथा को बाहर प्रकट नहीं करना चाहिये; घर का भेद बाहर खोलना अच्छा नहीं होता. ४८ घर री रोटी बा'रै खावणी है—घर की रोटी बाहर खानी है; सत्कार देने वाला व्यक्ति ही खूब सत्कार और सम्मान प्राप्त करता है. ४९ घर रो घरकोलियो कर दियो—घर का घरकोलिया बना दिया; लापरवाही और अपव्यय से घर को और घर की पूंजी को नष्ट करने पर. ५० घर रो छोरो बाहर रो बींद—घर का लड़का बाहर का वर; घर के लोगों की अपेक्षा बाहर वालों का आदर-सत्कार अधिक होता है, (मि० 'घर को जोगी-जोगड़ो, आंण-गांव को सिद्ध). ५१ घर रो नांणो खोटो तो परखवा वाळो कांई करै—घर का पैसा ही ठीक नहीं है तो परखने वाले का इसमें क्या दोष ? अपना व्यक्ति ही जब बुरा है तो इसमें बुरा बताने वाले का क्या दोष ?

५२ घर बरसो मेसड़ला नै घर ही हुवो सुगाळ—घर पर ही वर्षा हो जिससे घर में ही सुकाल हो; अपना ही स्वार्थ चाहने वाले व्यक्ति केवल अपने लिए ही प्रयत्न करते हैं, परोपकार के लिए कुछ नहीं करते; स्वार्थी व्यक्तियों के प्रति. ५३ घर साक पावणो है, पावणा साक घर कोयनी—मेहमान का आदर-सत्कार घर की सामर्थ्य के अनुसार ही किया जाता है; मेहमान की स्थिति के अनुसार घर की सामर्थ्य नहीं बनती; किसी का अतिथि-सत्कार अपनी स्थिति के अनुसार ही किया जाता है. ५४ घर सूं वाड़ो जितो वाड़ै सूं घर—घर से जितना दूर बाड़ा है उतना ही बाड़े से घर दूर है; पारस्परिक संबंध की निकटता को प्रकट करने के लिए कही जाने वाली कहावत. ५५ घर सूंवावतो खावणो नै लोक सूवावतो पैरणो—घर-सुहाता खाना और लोक-सुहाता पहिनना चाहिए; जैसी घर की स्थिति हो वैसा ही खाना चाहिए और जिसे पहिनने से लोग टीका-टिप्पणी न करें वैसा ही पहिनना चाहिए। अर्थात् खाने-पीने व वेश-भूषा में व्यय अपनी स्थिति एवं समाज की परिस्थितियों को देख कर ही करना चाहिये. ५६ घरे कांम कूड़े विस्रांम—घर पर काम अधिक हो तो खलिहान में काम के बहाने जाकर विश्राम किया जा सकता है; काम से जी चुराने वाले आलसी व सुस्त व्यक्तियों के प्रति. ५७ घरे घांणी तेली लूखो क्यूं खावै—तेली के घर पर कोल्हू चलता है, फिर वह रूखा-सूखा क्यों खावे; साधन-संपन्न होते हुए कष्ट क्यों देखा जाय.

५८ घरे घोड़ो'र पाळो जावै—घर पर घोड़ा और फिर पैदल चलना; साधन होते हुए भी साधन का उपयोग न करना मूर्खता है.

५९ घरे धीणो'र लूखो खाय—घर में दूध-दही सब है और रूखी-सूखी रोटी खाता है; साधनों के होते हुए भी साधनों का उपयोग न करने पर. ६० घरे नहीं बूको नै घांणी कढ़ावा ढूको—घर पर तो सामग्री नहीं और कोल्हू चलवाने का विचार करता है; स्थिति से परे कार्य करने के प्रयत्न करने पर. ६१ सुसिया मांम खाई रे, कै' म्हारो घर री रैं' जाई तो चोखो—खरगोश मांस खायगा ? खरगोश उत्तर देता है—मेरे शरीर का ही मांस बच रह जायगा तो बहुत अच्छा होगा; जिसको अपने आप की रक्षा का ही भय है वह दूसरों को क्या सतायेगा ?

यौ०—घरकसी, घरगिरस्ती, घरघुसणियो, घरघुसणो, घरचारो, घरजंमाई, घरदासी, घरद्वार, घरनायक, घरफोड़ो, घरभेदू, घरबार, घरलोप, घरवासो, घरसोवू।

अल्पा०—घरकोलियो, घुरकलो।

२ जन्मस्थान, स्वदेश. ३ कुल, वंश, घराना।

मुहा०—१ घर देखणो—कुल या वंश पर विचार करना. २ घर राखणो—कुल की मर्यादा को रखना. ३ घर री उजाळो—कुल का दीपक, कुल को चमकाने वाला।

कहा०—घर हांण जोय लेणी पर वर हांण नीं जोणी—वर के चुनाव में कुल की अपेक्षा वर की सुयोग्यता को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए।

यौ०—घर-घरांणो, घरबार।

४ कोई वस्तु आदि रखने का डिब्बा या चोंगा, खाना. ५ पटरी आदि से घिरा हुआ स्थान, खाना, कोठा, दराज. ६ किसी वस्तु को जमाने या बैठाने का स्थान, किसी वस्तु के अंटने या समाने का स्थान. ७ छेद, बिल।

मुहा०—घर भरणो—छेद मूंदना।

८ राग का स्थान, स्वर. ९ उत्पत्ति-स्थान, मूल कारण।

कहा०—रोग रो घर खांसी अर कळह रो घर हांसी—रोग का मूल कारण खांसी है और झगड़े का मूल कारण हँसी है अतः अधिक हँसी करना अच्छा नहीं।

१० गृहस्थी, घरबार. ११ गृहस्थी का सामान, घर का असबाब।

मुहा०—घर अवेरणो—गृहस्थी व घर के सामान सुव्यवस्थित रूप से रखना, किफायत से खर्च करना।

१२ कार्यालय, कारखाना, दफ्तर. १३ कोठरी, कमरा.

१४ आड़ी व खड़ी खींची हुई रेखाओं से घिरा स्थान, खाना, ज्यूं कुंडळी रो घर. १५ चौखटा, फ्रेम. १६ शतरंज आदि खेलों का चौकोर खाना।

मुहा०—१ घर खाली छोडणो—गोटी के खेल में आगे के लिए जगह छोड़ना. २ घर बंद होणो—गोटी के खेल में चलने की जगह न होना।

१७ भंडार, खजाना कोश. १८ दांव, पेंच युक्ति. १९ देवालय, मंदिर।

घरकोलियो-सं०पु०—गीली मिट्टी आदि से बनाया जाने वाला घरौंदा। ('घर' १ अल्पा०)

घरगिणती-सं०स्त्री०—१ जनगणना के निमित्त राज्य द्वारा लिया जाने वाला कर विशेष. २ घरों की गणना।

घरगिरस्ती-वि०—गृहस्थी का, घर का। उ०—ये घर-गिरस्ती रैं कांम री एक ई जिनस लावो कोयनी।—वरसगांठ

सं०पु०—घर के बाल-बच्चे. घर की स्थिति।

घरघरांणो-सं०पु०—कुल, वंश।

घरघराणो, घरघराबो-क्रि०अ०—घर-घर का शब्द करना, घरघराहट करना।

घरघराहट-सं०स्त्री० [अनु०] घर-घर की ध्वनि।

घरघाल, घरघालणियो-वि० (स्त्री० घरघालणी) १ घर का नाश करने वाला, घर बिगाड़ने वाला. २ कुल में कलंक लगाने वाला।

घरड़क-सं०स्त्री०—घर्षण करने की क्रिया, घर्षण।

घरड़को-सं०पु०—१ रगड़, घर्षण. २ कुरेद।

घरड़णो, घरड़बो-क्रि०स०—१ घिसका. २ परिश्रम करना. ३ तंग करना।

घरड़णहार, हारो (हारी), घरड़णियो—वि०।

घरियोड़ो, घरड़ियोड़ो, घरड़पोड़ो—भू०का०कृ०।

घरड़ीजणी, घरड़ीजबौ—कर्म वा० ।

घरड़ीजणी, घरड़ीजबौ–क्रि० कर्म वा०—१ घिसा जाना. २ परिश्रम किया जाना. ३ तंग किया जाना ।

घरड़ीजियोड़ी–भू०का०कृ०—१ घिसा गया हुआ. २ परिश्रम किया हुआ. ३ तंग किया गया हुआ । (स्त्री० घरड़ीजियोड़ी)

घरवारी–सं०पु०—१ घर-गृहस्थ, गृहस्थाश्रम. २ पति स्वीकार करना ।

घर जमाई–सं०पु०—१ वह व्यक्ति जो अपने विवाह के बाद स्थायी रूप से ससुराल में ससुर का आश्रित बन कर रहे अथवा ससुर द्वारा दिये गये साधनों से अपने परिवार का निर्वाह करे २ वह व्यक्ति जो विवाह के पहले अपने भावी ससुर के यहाँ किसी निश्चित समय तक के लिये रह कर मजदूरी या कार्य करता है। उस निश्चित समय के बाद ही विवाह होता है, एवं कहीं भी रहने के लिये स्वतंत्र होता है ।

घरजाम, घरजामी–सं०पु०—गृहस्थ में जन्म लेने वाला व्यक्ति, अपने घर में उत्पन्न ।

घरजायौ–स०पु०—१ घर में जन्म लिया हुआ २ दास, गुलाम ।

घरट–सं०पु० [सं० घरट्ट] १ एक प्रकार का मोटा, चपटा एवं गोलाकार पत्थर जिसे भैंसे आदि गोलाकार रूप में चलाते हैं जिससे चूना या आटा पीसा जाता है। (अल्पा० घरटियौ) २ वह गोल घेरा जहाँ उपरोक्त घरट फेर कर चूना व आटा आदि पीसा जाता है. ३ बडी चक्की. (अल्पा०-घरटियौ) ४ एक जलचर पक्षी. ५ डिंगल का एक गीत (छन्द) विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सात भगण एवं तुकांत में गुरु होता है ।

घरटियौ–सं०पु०—छोटे आकार की चक्की। देखो 'घरट' १, ३ (अल्पा०) मि०–घटूलियौ ।

घरटी—देखो 'घट्टी' (रू.भे.)

घरट्ट—देखो 'घरट' (रू.भे.) उ०– मैं परगंती परखियौ, मूंछां तणौ मरट्ट । सायधण फेरै अरटियौ, फेरै पीव घरट्ट ।—अज्ञात

घरडू–सं०पु०—कफ के बढ़ने से कंठावरोध होने पर गले से निकलने वाली घर्र-घर्र की ध्वनि ।

घरण, घरणि, घरणी–सं०स्त्री० [सं० गृहिणी, प्रा० घरणी] घर वाली, भार्या, गृहिणी । उ०—१ रिखय मल कर रखवाळ तारी रिख घरण चरण रज हूंता ।—र.ज.प्र. उ०—२ सीस घरणि वौ गळै माळ सभि, 'सिव' तणौ वढ़ियौ जगीस ।

—जसवंतसिंगोत सोनगरा री गीत

उ०—३ घरणी निज परणी घर बाहिर पेखै, बनिता वनितावत निलजा नर बेखै ।—ऊ.का.

घरत–सं०पु० [सं० घृत, प्रा० घीअ] घी, घृत ।

घरतार–सं०स्त्री० [सं० गृह] मकान घर, निवासस्थान ।

उ०—आड़ी दीन्हौ वेढ़ में, घरतार गमाई ।—वी.मा.

घरवासी–सं०स्त्री०—गृहिणी, पत्नी ।

घरधणी–सं०पु०यौ० [सं० गृह+रा० धणी] १ घर का स्वामी, मकान-मालिक. २ पति, भरतार ।

घरधारी–वि०यौ० [सं० गृहधारिन्] घरबारी, गृहस्थ । उ०—घरधारी घबराय नै, भरिया मार्ग भीक । नांणी ले प्रभु नांव री, ठरै काळजौ ठीक ।—ऊ.का.

घरनायक–सं०पु०यौ० [सं० गृहनायक] गृहपति, स्वामी ।

घरनायरा–सं०पु०यौ० [सं० गृह नालक] गगन, आकाश (डिं.नां.मा.)

घरनाळ–सं०स्त्री०—एक प्रकार की प्राचीन तोप ।

घरनी, घरणी—देखो 'घरणी' (रू.भे.)

घरफोड़ौ–सं०पु०—१ चोरो, नकब. २ चोरी के हेतु दीवार तोड़ कर उसमें बनाया गया मार्ग, सेंध. ३ घरेलू कलह. ४ घरेलू कष्ट ।

घरबतावणी–सं०स्त्री०—हाथ की तर्जनी, उँगली ।

घरबार–सं०पु०यौ०—१ घर, रहने का स्थान । उ०—कोस कोस पर पहरा बैठया, पेंड पेंड बटमार । हे विधना कैसी रच दीन्हीं, दूर बस्यो घरबार ।—मीरां

२ गृह सामग्री. ३ गृहस्थी, बालबच्चे । उ०—घर छूटा घरबार छूटग्या, आस छूटगी जीवण री। कायौ हुयनै जैं'र घोळियौ, हिम्मत कीनी पीवण री ।—रेवतदांन

घरबारी–सं०पु०—बाल-बच्चों वाला, कुटुंबी, गृहस्थी. २ (वह साधु) जो पत्नी रखता हो तथा पारिवारिक जीवन व्यतीत करता हो । ३ रामस्नेही साधुओं का एक भेद जो गृहस्थ जीवन बिताते हैं.

घरबिकरी, घरबिखरी–सं०स्त्री० [सं० गृह+विकर:] गृहस्थी के काम में आने वाला सब प्रकार का सामान, माल-मिल्कियत ।

घरबूडौ–वि०—घर को डुबाने वाला, घर को नष्ट करने वाला । उ०– यूं कहतां चौधरी दारू री छकियौ हौ सु चौधरण नूं ताजणा दो-च्यार वाया अरु कयौ, 'रांड रीझी है तौ तूं पांडू रै जा ।' तद जाटणी कयौ, 'घरबूडा, मैं तौ वात कही ती ।'—द.दा.

घरभमतौ–सं०पु०—१ मकान में होने वाला या फैलने वाला धुआं. २ आवारा डोलने वाला ।

घरभेद–सं०पु०—घर का भेद, गुप्त, रहस्य ।

घरभेदू–वि०—घर का भेद एवं गुप्त रहस्य जानने वाला ।

घरमंड–सं०पु०—धन-दौलत (अ.मा.)

घरमंडण–सं०पु०—पति । उ०—गह घूमी लूंबी घटा, बादळ कियौ बणाव । घर-मंडण घर आवियौ, घर-मंडण घर आव ।—अज्ञात

घरमकर–सं०पु० [सं० घर्मंकर] सूर्य ।

घरमपुसप–सं०पु० [सं० गृहपुष्प] अट्टालिका. महल, भवन (अ मा.)

घरमणी–सं०पु० [सं० गृहमणि] घर का प्रदीप, दीया, दीपक (डिं.को.)

घरमेड़ी–सं०पु० [सं० गृहमेधी] घर का प्रकाश, घर का दीपक, कुल-दीपक । उ०—मुखिया मन मोहण दोहण घरमेड़ी, गोडं ढेरी है खूणी में गेडी ।—ऊ.का.

घरर—सं०स्त्री० [अनु०] १ कड़ी वस्तुओं के रगड़ने से उत्पन्न ध्वनि, घर्षण की ध्वनि. २ मेघ-गर्जना। उ०—घण हल्लै गयंद बजि घरर घोर, सहनाय तूर नवकीब सर।—सू.प्र.

घरराट—सं०पु० [अनु०] १ गर्जना, घर्राटा, भीषण ध्वनि।

उ०—बाघ सुणावै वाहरां, घण ज्यूंहीं घरराट। धावै भागां लार नह, नह जावै भगवाट।—बां.दा.

२ देखो 'घरघराहट' (रू.भे.) उ०—ऊपरां थोहर रा ग्राकरा कोयलां रा चिमिया मल्हजै छै, जांणै सहिजादै रा ताइत भभूत लगायोड़ा जोगी सा छै, तिणां री होंस मांणजे छै। मधरी-मधरी ग्रावजै छै, घरराटा हुयनै रह्या छै।—रा.सा.सं.

३ भूमि के कम्पायमान होने की क्रिया या ध्वनि। उ०—वीर जोधारां री जुध होवण लागो तिणसूं धरती धूजण लागी तद नागणी नाग नैं पूछै छै—हे नाग! ग्राज धरती मैं घरराट कांई तरह री होवै छै। तद नाग कही—हे नागण! ग्रा धरती मचकै छै।—वी.स.टी.

घरराणौ, घररावौ, घररावणौ, घररावबौ—क्रि०ग्र०—कड़कड़ाहट की ग्रावाज होना या करना. देखो 'घरघराणौ'। उ०—१ लोरां सावण लूंबियो, घोरां घण घरराय। मांणीगर रंग मांण ग्रब, प्याला भर मद पाय।—र.रा. उ०—२ झिरमिर-झिरमिर मेहड़ो बरसै, बादळियो घररावै ए। जेठजी तो मेरा बूजा काटै, परण्यो हळियो बावै ए।—लो.गी.

घरलोचू—वि० [सं० गृहलोची] विवेकपूर्ण गृहस्थी का कार्य करने वाला।

घरवट—सं०स्त्री० [सं० गृहवृति] १ वंश, कुल। उ०—उदियापुर दिस ग्राय दोय गांमड़िया पाया। ग्रंधधंध हो गया खांप बोदी गवाया। ग्राद् घरवट रीत देस छोड़तां वीसारो।—ग्ररजुणजी बारहठ

२ घर की मर्यादा, वंश का गुण, कुल का स्वभाव।

उ०—व्है भगती हर रीह, किरियावर वंका करै। घरवट जिण घर-रीह विगड़ै कदे न वसतिया।—समेळजी बारठह

घरवतावणी—सं०स्त्री०—हाथ की तर्जनी, ग्रंगुली।

रू०भे०—'घरबतावणी'।

घरवरताऊ—सं०पु०—उतना पदार्थ या सामग्री जो घर की ग्रावश्यकताग्रों को पूरा कर सके।

घरवाट—देखो 'घरवट' (रू.भे.) उ० घटी पुळ मांय घरवाट तो न घटी, भुज मही जकां री फर्न भाखै। तठी तू सवेलो धड़ो साबत तठी, ऊजाळो रव जठी जगत ग्राखै।—नींबाज छत्रसिंह रो गीत

घरवाळी—सं०स्त्री०—पत्नी, गृहिणी।

घरवाळो—सं०पु०—१ पति, स्वामी. २ गृहपति, घर का मालिक।

घरवास—सं०पु०—१ गृहस्थाश्रम। उ०—वनग काठ रो ढोलियो, किस्तूरयां ग्रावास। धग जागै पिव पोढ़ियो, बाळू यो घरवास।

२ पत्नी बन कर रहने का भाव। उ०—तरै ग्रोगीमर कह्यौ, गांध-रांणी क्या कहीजै। भींवं कह्यौ, देवर होय तिणसूं घरवास करै, भोजाई देवर रै घर मांहे पैसे।—जलड़ा मुलड़ा भाटी री बात

घरवासीदार—सं०पु०—कुटुम्ब वाला, बाल-बच्चेदार, गृहस्थ।

उ०—उठै एक रोहो हुंतो तठै रोही मांहे एक सूथार घरवासीदार रहै।—चौबोली

घरवासो—सं०पु० [सं० गृहवास] १ गृहस्थ जीवन. २ किसी स्त्री को पत्नी बना कर उसके साथ रहना. ३ पति-पत्नी का सम्बन्ध।

घरविकरी, घरविक्करी - देखो 'घरबिकरी' (रू.भे)

घरविध, घरविध—सं०स्त्री० [सं० गृहविधि] १ स्नेह, प्रेम. २ परिवार के सदस्यों का पारस्परिक प्रेम. ३ घनिष्ठता, मैत्री, दोस्ती।

घरस्याळ—सं०स्त्री०— पशु-पक्षियों के बसेरा लेने का स्थान।

उ०—लास फोगळ घिटाळ ऊंटां, कातीसरो हर मास रो। से सेट्रां घुरी घरस्याळां, ग्राळां पंछ्यां ग्रासरो।—दसदेव

घरहर—सं०स्त्री०—गर्जन, ध्वनि। उ०—घण भेरी घरहर हुई सिंधु सुर।—गु.रू.बं.

घरहरणौ, घरहरबौ—क्रि०ग्र०—घरघराहट करना, गरजना, बजना।

उ०—सुरदादुर पिक सोर, सबद ग्रद्रु मोर सुहावै। घण सावण घरहरै, सिखरदां मण दरसावै।—रा.रू. उ०—२ फूंकण नवकोटि झंडा फरहरिया, घर-घर जाती रा टांमक घरहरिया।—ऊ.का.

घरांणौ—सं०पु० [सं० गृह+रा प्र.ग्रांणो] खानदान, वंश, कुल।

उ०—ग्रापरो रिण पौढ़णो ग्ररथात झगड़ा में हीज मरण वाळा मांचा री मौत मरण वाळा नहीं, ग्ररथ त सूरवीर घरांणौ है।

—वी.स.टी.

मुहा०—१ घरांणौ उजाळणौ—कुल का नाम उज्ज्वल करना. घरांणौ लजाणौ—कुल को कलंकित करना।

कहा०—घरांणा में कुपातर किसा नहीं जनमै—ग्रच्छे कुल में कौन से कुपात्र उत्पन्न नहीं होते हैं; गुणी या ग्रवगुणी होना वंश से सम्बन्ध नहीं रखता।

घराधक—निजी, निज का।

घरिणि—सं०स्त्री० [सं० गृहिणी] स्त्री, पत्नी। देखो 'घरणी' (रू.भे.)

उ०—देवड़ी नांम ऊमा घरिणि, मारवणी तस धू कुंवर। चौसठि कळा सुंदर चतुर, कथा तास कहिसुं मगरि।—ढो.मा.

घरिया—सं०पु० [बहु०] रहंट की लाट के सिरे पर (जो कुयें की तरफ रहता है) बने हुए छिद्र जिसमें घमने वाले गोल घेरे (डाबड़े) के मंबे डंडे लगे रहते हैं।

घरू—वि०—घरेल, घर से संबंधित। उ०—छलंग बाछरू घरू न उच्छरै चरै चिरै। पलंग मैंचकी थकी न नैचकी बकी फिरै।—ऊ.का.

घरेचो—सं०पु०—पुनर्विवाह। उ०—तरै रांणंगदे री बैर कह्यौ—'घरेचा री सासतर करो।' तरै राव केल्हण कह्यौ—'ग्राज तो रावाई रा सासतर रो मोहरत छै, सवारै बीजो सासतर करस्यां।

—नैणसी

घरोघियौ—क्रि०वि०—प्रत्येक घर से, प्रति घर।

घरोघर, घरोघरि—क्रि०वि०—प्रति घर, प्रत्येक घर से।
उ०—कोपियौ बाळ सुग्रीव खंडै कळह, घरोघर भटकियौ विपत छायौ।—र.ज.प्र.

घरो'घर—सं०पु०—निज का घर, खुद का घर।

घलणौ, घलबौ—क्रि०अ०—१ डालना. २ बांधना. ३ लपेटना.
क्रि०अ० [भाव वा०] ४ डाला जाना. ५ बांधा जाना.
उ०—घल्यौ घलायौ, ए हां ऐ बाई, पड़्यौ हिंडोळौ खाय, हींडण वाळी बाई गवरां सासरै।—लो.गी. ६ लपेटा जाना।

घलाणौ, घलाबौ—क्रि०स० ('घलणौ' का प्रे०रू०) १ डलवाना. २ बंधवाना. ३ लपेटवाना।

घलायोड़ौ—भू०का०कृ०—१ डलवाया हुआ. २ बंधवाया हुआ. ३ लपेटाया हुआ। (स्त्री० घलायोड़ी)

घलावणौ, घलावबौ—देखो 'घलाणौ' (रू.भे.)

घलावियोड़ौ—देखो 'घलायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० घलावियोड़ी)

घल्लणौ, घल्लबौ—देखो 'घलणौ' (रू.भे.) उ०—मग सागर तजि सुद्ध भ्रंमर कुण बेड़ौ घल्लै। ग्रहि कसणा ग्रोटवै कभण रसण कर झल्लै।—रा.रू.

घल्लाणौ, घल्लाबौ—देखो 'घलाणौ' (रू.भे.)

घवको—सं०पु०—ग्रांख का दर्द विशेष (ग्रमरत)

घस—सं०पु०—१ प्रति दिन घर्षण होने वाला, मार्ग, रास्ता।
उ०—१ दिस मारू खुरमांण तणां दळ, बाथै जांण प्रळै चा बद्दळ।
अण तर थळां सिखर खुर तूटै, फौजां घसां परब्बत फूटै।
—रा.रू.
उ०—२ किळ दळ वद्दळ ग्राविया, दिखणी घस लागाह। जरां सजे तुरियां चढे, भागा ग्रणभागाह।—गु.रू.बं.
२ युद्ध। उ०—उग्राहियौ रांम ग्रतुळीबळ, हाथाळां दीपियौ हव। देख तुहारौ चंद दूसरा, वैरां घसि घाए विसव।
—सुजांनसिंह राठौड़ रौ गीत
(मि० घंस)
क्रि०वि०—शीघ्र, जल्दी। उ०—पसवाड़ै धरती मूकिया, मूकि नै बेह वाती, पकड़ि नै मांहीं ले दासी घस सूं उतरियौ।—चौबोली

घसक—सं०स्त्री०—१ सूरत, शक्ल. २ ढंग, ढांचा. ३ ग्रसत्य बात, गप्प, डींग। उ०—ग्रमली ठाकरड़ा डेरां में ग्रावै, मोटी घसकां घड़ मावा मटकावै।—ऊ.का.

घसकणौ, घसकबौ—क्रि०अ०—खा-पी कर जल्दी रवाना होना या खिसकना। उ०—ऊंटड़ा उगाळी सारै, झोक लिटै फिर घिर चरै। इण घिटाळ घसकै घणेरा, गोळटोळ मींगण करै।—दसदेव

घसकाणौ घसकाबौ—क्रि०स०—१ धमकाना, दुत्कारना, फटकारना. २ रगड़ना. ३ स्त्री-प्रसंग करना, मैथुन करना (बाजारू)
घसकाणहार, हारौ (हारी), घसकावणियौ—वि०।
घसकावणौ, घसकावबौ—रू०भे०।
घसकायोड़ौ—भू०का०कृ०।

घसकायोड़ौ—भू०का०कृ०—१ धमकाया हुआ, फटकारा हुआ. २ रगड़ा हुआ। (स्त्री० घसकायोड़ी)

घसकावणौ—देखो 'घसकाणौ' (रू.भे.)
घसकावणहार, हारौ (हारी), घसकावणियौ—वि०।
घसकाविग्रोड़ौ, घसकावियोड़ौ, घसकाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।
घसकावीजणौ, घसकावीजबौ—कर्म वा०।

घसकावियोड़ौ—देखो 'घसकायोड़ौ' (रू.भे.)

घसकौ—सं०पु०—१ झूठी एवं ग्राधारहीन कथा. या कहानी या कोई बात, गप्प. २ ढंग, स्वभाव. ३ ठसक. ४ शक्ति, बल।

घसड़कौ—सं०पु०—१ घर्षण, रगड़. २ कुढंग, ग्रव्यवस्था. ३ व्यय, खर्चा।
मुहा०—घसड़कौ लागणौ—कुछ खर्च होना।

घसड़पसड़—सं०स्त्री०यौ०—गड़बड़ी, ग्रव्यवस्था।
कहा०—घसड़पसड़ की घांणी आधौ तेल'र ग्राधौ पांणी—ग्रव्यवस्थित रूप से किये हुए काम में खूब गड़बड़ी रहती है। जल्दबाजी के काम की निन्दा।

घसटी—सं०पु० [सं० घृष्टिः] सूग्रर (ग्र.मा.)

घसण—सं०पु० [सं० घर्षण] १ मार्ग, राह, रास्ता। उ०—मांण धांण परसण बिय मोकळ, घसण फोज पड़ घण घणी। धणी चत्रंग बैसतां धारण, धारण जकी दिली धणी।—महारांणा जगतसिंह रौ गीत
२ युद्ध, रण. ३ सेना, फौज। उ०—धमकता पाखरां घसण लीधा घणा. पोहव गज घजां तूं खेत पाड़ै।—मांनसिंह ग्रासियौ

घसणौ, घसबौ—क्रि०स० [सं० घर्षण] १ रगड़ना, घिसना।
उ०—१ घसै घसै ग्रर फेर घसै, घस-घस गेरै पांणी।—ग्रज्ञात
उ० —२ ग्रदता टांणा ऊपरै, नांणौ खरचै नांहि। हाथ घसै निरधन हुवां, माखी ज्यूं जग मांहि।—बां.दा.
२ एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ पर दबा कर खूब रगड़ना. ३ भक्षण करना. ४ किसी बात की बार-बार पुनरावृत्ति करना।
घसणहार, हारौ (हारी), घसणियौ—वि०।
घसिग्रोड़ौ घसियोड़ौ, घस्योड़ौ—भू०का०कृ०।
घसीजणौ, घसीजबौ—कर्म वा०।

घसरौ—सं०पु० [सं० घस्त्र] दिन दिवस, समय।
मुहा०—घसरौ काटणौ—जल्दी में काम बिगाड़ना।

घसाणौ, घसाबौ, घसावणौ, घसावबौ—क्रि०स० ('घसणौ' का प्रे०रू०) १ घिसवाना, रगड़वाना. उ०—रुपिया में दोय सेर सोनौ घसावसे नहीं।—बां.दा. २ संभोग कराना (बाजारू)
घसावणहार, हारौ (हारी), घसावणियौ—वि०।
घसाविग्रोड़ौ, घसावियोड़ौ, घसाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।
घसावीजणौ, घसावीजबौ—कर्म वा०।

घसि–सं०पु०—१ आहार, खाद्य-सामग्री (डि.को.)
[सं० घर्षण] २ राह, मार्ग।

घसियारौ–सं०पु० (स्त्री० घसियारी) घास का व्यापार करने वाला, घसियारा।

घसीट–सं०स्त्री०—१ घसीटने की क्रिया या भाव. २ शीघ्रता में लिखी हुई अस्पष्ट लिखावट. ३ रगड़ की रेखा, खरोंच।
सं०पु०—४ एक स्वर से दूसरे स्वर तक जाने में बीच के सब स्वरों पर अंगुली का आभास देने की क्रिया।

घसीटणौ, घसीटबौ–क्रि०स०—१ किसी पदार्थ आदि को इस प्रकार से खींचना कि वह जमीन से रगड़ खाती जाय। धरातल पर रखी किसी वस्तु को धरातल के सहारे खींचना. २ जल्दी-जल्दी में अस्पष्ट लिखावट लिखना. ३ अपने पक्ष की ओर आने के लिए प्रेरित करना. ४ निभाना।
घसीटणहार, हारौ (**हारी**), **घसीटणियौ**—वि०।
घसीटिग्रोड़ौ, घसीटियोड़ौ, घसीटयोड़ौ—भू०का०कृ०।
घसीटीजणौ, घसीटीजबौ—कर्म वा०।

घसीटियोड़ौ–भू०का०कृ०—घसीटा हुआ। (स्त्री० घसीटियोड़ी)

घस्र–सं०पु०—दिन। उ०—अजस्र अस्त्र घस्र ग्रस विस्र पीवतौ बह्यौ। रिजू दलील पीलके जलील जीवणौ रह्यौ।—ऊ.का.

घहंमहमम–सं०पु० [अनु०] एक ध्वनि विशेष।

घहर-घुमेर–वि०—घना, गहरा। उ०—बदळी ए, म्हारौ चांद छिपायौ, घहर-घुमेर ऊमड़ी बादळी, थारी चांद ओट में आयौ। ऊमड़ी बादळी, थारी चांद ओट में आयौ।—लो.गी.
(मि० घेर-घुमेर)

घहरणौ, घहरबौ–क्रि०अ० [अनु०] गर्जन करना, गरजने का-सा शब्द करना, घोर शब्द करना।

घहराणौ, घहराबौ, घहरावणौ, घहरावबौ–क्रि०अ० [अनु०] गरजने का-सा शब्द करना, गरजना, गंभीर शब्द करना। उ०—१ वरसात भर घर परम सुख वरिण उमड़ि जळधर आवही। घणघोर सोर मयोर रस घण घटा घण घहराव ही।—रा रू.
उ०—२ घटा घुमड़ उतराज री, चढ़ी व्योम घहराय, छटा चिमक तिण में छिपै, थिरक थिरक घहराय।—अज्ञात

घांघळ–सं०स्त्री०—कष्ट, तकलीफ। उ०—थाह निहाळइ दिन गिणइ, मारू आसा लुध्ध। परदेसे घांघळ घणा, विलउ न जांणी मुध्ध।
—ढो.मा.

घांघा–सं०पु०—१ स्थान-स्थान, ठौर-ठौर। उ०—घांघा गुड़गी खा ऊधां री घेरी। विस में जुड़गी हा! दूधां की वेरी।—ऊ.का.
२ कंठ से घर्र-घर्र शब्द निकलने का ढंग (अमरत)

घांची–सं०पु०—दूध बेचने का व्यवसाय करने वाली एक हिन्दू जाति या इस जाति का व्यक्ति। ये लोग कहीं-कहीं तेल निकालने का व्यवसाय भी करते हैं।

घांचौ–वि०—वह जो दमन न किया जा सके, वीर।
उ०—भाळ घांचौ प्रेरियौ लेह री हूंत छायौ भांण, बाघळौ केहरी 'चैन' घेरियौ 'बलाय'।—सूरजमल मीसण

घांट–सं०स्त्री०—गरदन।

घांटाळ–सं०स्त्री०—१ घन्टा धारण करने वाली, देवी।
सं०पु०—२ हाथी।

घांटी–सं०स्त्री०—कंठ, गरदन।
मुहा०—घांटी करणी—गला घोंट कर मारना।

घांटै–क्रि०वि०—समीप में, पास में।

घांटौ–सं०पु०—गला, कंठ, गर्दन। उ०—कर जुध धरा रह्यौ करनांणी, वदखोरौ आयौ चढ़ वाढ़। घांड़ हूंत लियौ झल घांटौ, देखत पार करी जमदाढ़।—द.दा.

घांण–सं०पु०—१ पानी की धार से भूमि के कटाव को रोकने के लिये बिछाया जाने वाला पत्थर या घास-फूस। यह किसी नाली या मोरी के नीचे उस स्थान पर रक्खा जाता है जहाँ मोरी से पानी नीचे गिरता है. २ घाव, जख्म. ३ युद्ध, संग्राम, लड़ाई।
(यौ०—घांणमथांण)
४ ध्वंश, नाश। उ०—घणा घोड़ा भड़ां रौ घांण काढ़ि बूंदी कोटा दोंही ऊजळा दिखाई।—वं.भा.
[सं० घ्राण] ५ सुगंध, महक, खुशबू। उ०—बिजय पड़ी क्या पंथ में, मिळियौ बीच पठांण। हेली तोरा कापड़ां, मो पिय हुंदी घांण।—जलाल बूबना री बात
६ तेल व घी में एक साथ एक ही बार में भूने जाने वाले पदार्थ।
७ समूह, झुंड। उ०—१ छायौ धूंए अभ्रास घमंकां सोर भंकां छूट, घोर तोपां अमंखां चरेल पंखां घांण। कसीस अढ़ार टंकां ऊघड़ी परीर कंकां, झड़ी बीर बंकां सीस असंकां भूसांण।
—दुरगादत्त बारहठ
उ०—२ घोर घमसांण कर दूठ कप घांण में, प्रसत किलरा अवर झड़े पीठांण में।—र.रू.
सं०स्त्री०—८ कोल्हू। देखो 'घांणी' का रू०भे०
उ०—ताखी ताव तमांम पीनणी अर पुसळाई, नैंड़ी पैंड़ी तणी जाळ वसतुवां वणाई। गेह किरू सांतीर पीढ़ियां कट बाजोटां, घड़ै धूड़िया घांण थांमला चकळा मोटा।—दसदेव
वि०—सराबोर, लथपथ (पसीने में) उ०—कांई देख्यौ कैए क जाट सूखा में ई खेत खड़ै। घूम तावड़ौ। परसेवां में घांण वियोड़ौ—लथोबथ।—विजयदांन देथौ, वांणी

घांणमथांण, घांणमथांणौ–सं०पु० [अनु०] १ युद्ध, कलह।
उ०—१ गैं घूमें आरांण घांण मथांण नीसांण घोक, सूकै डांण सूंडाडंडां बीछूड़ै सीधांण। दोवळा विवांण ठट्ठै खड़ा गरबांण देखै, भिड़ै दळणांण हूंत हिंदवांण भांण।—पहाड़खां आढ़ौ
उ०—२ भाधी निस अमरांण, प्रहण अरध निस जुंजुए। मंडियौ घांणमथांण, पौह पाटू डेवा प्रतै।—पा.प्र.

२ नाश, संहार। उ०—घाड़ घाड़ हैवर नर बेगर, कुंजर घांणमथांण कर। मेवाड़ा डूंगर मेवाड़ें, प्राछे रंग रंगीया 'अमर'।
—महाराणा अमरसिंह रौ गीत

३ मंथन। उ०—सांमुद्र डहोळा अोद्रका जांण हिलोळां हल्लियौ, आलम्म भड़ां अजमल्ल रा घांण मथांण चल्लियौ।—रा.रू.

४ उथल-पुथल। उ०—बोले इण पर खांन तहव्वर, घांण मथांण हुवण दिल्लीघर।—रा.रू.

घांणियां रौ हासल—सं०पु०—एक प्रकार का सरकारी लगान।

घांणियौ—सं०पु०—१ उबलते हुए तेल या घी में एक ही साथ एक बार में तल कर निकाला हुआ पदार्थ. २ कोल्हू में एक बार में पेरा जाने वाला पदार्थ।

घांणी—सं०स्त्री०—१ तिल आदि से तैल निकालने का यंत्र, कोल्हू।
क्रि०प्र०—करणी, कराणी, काढ़णी, फेरणी।
मुहा०—घांणी रौ गंडक—कोल्हू का कुत्ता; ऐसे लोगों के प्रति जो स्वयं तो किसी पदार्थ एवं वस्तु का उपभोग नहीं कर सकते पर दूसरों को भी उससे लाभान्वित नहीं होने देते. २ घांणी रौ बळद—कोल्हू का बैल, बहुत मेहनती, एक ही लकीर पर सर्वदा चलने वाला।
२ उतनी ही वस्तु जितनी एक ही बार में कोल्हू में डाल कर पेरी जा सके।
क्रि०प्र०—ऊरणी, ओरणी।

घांणौ—सं०पु०—१ कोल्हू. २ संहार, नाश। उ०—घालण अरि घांणै, पालण दाळद पाथवां। जनमें स्रो जोधांणै, 'मांन' जिसा नृप मोतिया।—रायसिंह सांदू

घांतरड़ौ—सं०पु०—गला, कंठ।

घांनर, घांनरौ—स०पु०—१ बहरा व्यक्ति. २ बकरी।

घांम—सं०पु०—१ प्रकाश, गर्मी। उ०—जहां तहां तें जीव सब, न्याय सहै सिर घांम।—ह.पु.वा.
२ धूप। उ०—नहीं तू नार नहीं तू नाह, नहीं तू घांम नहीं तू छांह।—ह.र.
३ फौज, सेना। उ०—घण सघण घांम चहुं तरफ घेर। दुरग थी काढ़ियौ वास दे'र। लड़ एण तरह नागांण लीध, दइवांण बंध वन पटै दीध।—वि.सं.

घांमकर—सं०पु०—रश्मि, किरण (ह.नां.)

घांमघूम—सं०पु०—किसी फिक्र या संकट के कारण गहरा उदास होने का भाव, स्तब्ध। उ०—जस अपजस जाचक पढ़ै, मांगै चाळ विलूंब। नहीं चढ़ै उत्तर न दे, घांमघूम व्है सूंब।—बां.दा.

घांव—देखो 'घांम' (रू.भे.) उ०—न्याय सहै सिर घांव नांव निरभै नहिं पाया। सूक व्रक्ष सूं प्रीति अगम हरि तरवर छाया।—ह.पु.वा.

घांस—सं०पु०—एक प्रकार का पत्थर विशेष।
वि०वि०—कुछ स्थानों में यह दीपावली के दूसरे दिन गांव के चारों ओर घुमाया जाता है (क्षेत्रीय)

घांसाड़—सं०स्त्री०—फौज, सेना (रू.भे.-घांसाहड़) उ०—लंडै ओवणी माहेस लंडै उमंडै परी बैताळ, घुमंडै प्रचंड चंड उडंडै घांसाड़। आडा लंडै रोप भंडै भुजां डंडै तोलै आभ, रायांसींग गनीमां सूं मंडै चोड़ै राड़।—पहाड़ खां आढ़ौ

घांसाड़णौ, घांसाड़बौ—क्रि०अ०—बंदर का चीखना।

घांसाड़ौ—सं०पु०—योद्धा, वीर। उ०—घाड़ा राघव धुर धमळ, अब-नाड़ा अगबीह। ऊबेड़ण आड़ा असह, सुज्ज घांसाड़ा सीह।
—र.ज.प्र.

घांसाहड़, घांसाहर—सं०स्त्री०—१ फौज, सेना (ह.नां.)
उ०—१ घांसाहर नरां पाखरां गरहर, बसू हुवै नच बळा बळा।
असपत तणौ चीत आहाड़ा, तुला चढ़ंतां हुवै तुला।
—महाराणा जगतसिंह रौ गीत
उ०—२ अवण हेक जेण री, भ्रांस नाहर उणहारै। जग आहर जोधार, लाख घांसाहर लारै।—मे.म.
२ समूह, दल। उ०—१ आयौ 'सूर' अभंग सझै फौजां घांसाहर।
—सू.प्र.
उ०—२ फौज चढ़ी घण थाट घांसाहर एह समुद्र क फाटौ अंबर।
—गु.रू.बं.

घांसी—देखो 'घोसी' (रू.भे.) (क्षेत्रीय)

घांसोहर—देखो 'घांसाहर' (रू.भे.) उ०—सेन मेल सिवपुरी, फौज घेरे घांसोहर।—गु.रू.बं.

घा—सं०पु०—१ ब्रह्मा.
सं०स्त्री०—२ देवी. ३ ध्वनि. ४ वसुमती. ५ राक्षसी (एका०)

घाअ—सं०पु०—१ नरक. २ कंकण. ३ प्रहार, चोट।
उ०—ढालां सिर धाराळ, वागा वरिआमां तणा। गळती निसि गाजै गजर, घण घाअे घड़िआळ।—वचनिका
सं०स्त्री०—४ शची. ५ धार।

घा'—सं०पु० [सं० घास] घास, चारा।

घाइ, घाई—सं०स्त्री०—१ नकल. २ चोट, प्रहार। उ०—धुर निसांण तब्बलां घाइ, उत्तर असाढ़ घटा किर आइ।—रा.रू.
उ०—२ जलेब चौक सिरे डयोढी तलग इसके नगारै पर पड़ै घाई।
—ला.रा.
३ घाव। उ०—घाई भांजै घड़ा लाग आछै घणौ। मेर मांभी 'जसौ' हेक रिण माल्हणौ।—हा.झा.

घाइल—देखो 'घायल' (रू.भे.) उ०—ताहरां रांमसिंघ नूं कहियौ जु मौनूं सीख द्यौ तो गांव जाइ अर घाइलां रा घाव बांधूं।—द.वि.

घाउ—सं०पु०—१ प्रहार, चोट। उ०—१ तठा उपरांति करिनै राजांन सिलांमति जिकै सूर सांमंत रावताळा छै सु हाथियां रा कूंभा-थळां दांतूसळां पाउ दे दे नै घाउ वाहै छै।—रा.सा.सं.
उ०—२ काळी कंठळि वादळी, वरसि ज मेल्हइ वाउ। प्री विण लागइ बूंदड़ी, जांणि कटारी घाउ।—ढो.मा.

२ क्षत, घाव। उ०—घटि घटि घण घाव, घाइ-घाइ रत वण।
—वेलि.

३ एक कोस या दो मील का फासला (क्षेत्रीय)

घाव–वि०—१ चतुर, चालाक. २ अनुभवी, सयाना. ३ दक्ष, निपुण, होशियार. ४ बड़ा जखम, घाव (मि० गाघ)

घावड़दि, घावड़ी–वि०—गंभीर, गहरा। उ०—डागड़दि डुले कूरम अहि डंबर, घावड़दि घुळे रवि रज उड घोर। छागड़दि छोभ आवध हद छूटा, जागड़दि जुलम जूटा जंगजोर।—र.रू.

घावड़ा–सं०पु०—बेर के कच्चे फल (क्षेत्रीय)

घावरट–सं०पु०—१ युद्ध, लड़ाई। उ०—उरड़ भड़ सुभट थट 'मांन' सुत ऊपरां, खगां झट घावरट रमै खेळा।
—रावत माहसिंह सारंगदेवोत कानौड़ रो गीत

२ समूह, झुंड।

वि०—जबरदस्त, बड़ा।

घावरा–सं०स्त्री०—१ सरयू नदी का एक नाम.

घाघरो–सं०पु०—स्त्रियों का वह घेरदार व चुननदार वस्त्र जिसे वे कमर से ऐड़ी तक का अंग ढकने के लिए कमर में पहनती हैं। उ०—१ ओढूं लज्या चीर, धीरजि को घाघरौ। समता कांकण हाथ, सुरति को मूंदड़ौ।—मीरां उ०—२ विस खावो कै सरण लो, सरवरिया री थाह। कै कंठा बिच घाल लो, घाघरिया री बाह।
—अज्ञात

मुहा०—१ घाघरा पल्टण—स्त्रियों की सेना, स्त्रियों का समूह.
२ घाघरा री ढेरौ—स्त्री पर अत्यंत आसक्त व्यक्ति, स्त्री का गुलाम.
३ घाघरौ घोळ नै पावणौ—किसी स्त्री का अपने पति को वश में कर लेना. ४ घाघरौ पैर नै बैठणौ—कायरता दिखाना।

अल्पा०—घाघरियौ।

घाव–सं०पु०—बाजरी के एक बीज से उत्पन्न होने वाले पौधों का गुच्छा।

घाट–सं०पु० [सं० घट्ट] १ नदी, सरोवर या किसी अन्य जलाशय का वह भाग जहां लोग पानी भरते, नहाते अथवा कपड़े धोते हों।
२ झील, नदी, सरोवर आदि का वह किनारा जहां पानी तक पहुँचने के लिए सीढ़ियां बनी हों। उ०—कान्हा तोरी रे जोवत रह गई बाट। जोवत जोवत इक पग ठाढ़ी, कालिंदी के घाट।—मीरां

पर्याय०—तीर, बतार।

मुहा०—१ घाट घाट रो पांणी पीणौ—बहुत तजुर्बा हासिल करना, रमता जोगी बनना, काफी स्थानों से भिज्ञ होना. २ घाट लगणौ—ठिकाना पाना, नाव का किनारे पर आना।

३ तंग पहाड़ी रास्ता, कठिन मार्ग।

उ०—पाछा आवतां राजा रा काका सारंगदेव रा बडा पुत्र प्रतापसिंह अरिसिंह दो ही सहोदर एक नदी रै तीर उचित जळ देखि सायंकाळ रो विषेय करम करण पाळा ही चलाया अर विखम दुरग औघट घाट रै कारण आपरा घोड़ा सिपाह पाछा ही भलाया।—वं.भा.

मुहा०—घाट उतारणौ—संकट से पार करना।

४ ढंग, प्रकार। उ०—मन माया लालच लियां, भिसळी लियां लिलाट। रसण नकार लियां रहै, औ सूमां रो घाट।—बां.दा.

५ रचना, बनावट। उ०—१ अगनयणी अगपति मुखी, अग मद तिलक लिलाट। अग रिपु कटि सुंदर वणी, मारू अइहड़ घाट।
—ढो.मा.

उ०—२ वेह कळायां बाघरी घड़ी भयंकर घाट। मूसळदंता मैंगळां, नित डर रहै निराट।—बां.दा.

६ विचार। उ०—माग मुरद्धर देस रो, लियै उरद्धर ज्यास। घाट अनेकन संचरै, एक प्रभू री आस।—रा.रू.

(यौ० घाट-घड़)

७ स्थान, जगह। उ०—गुंडा रो नह घाट साट नह व्है सूमां रो।
—ऊ.का.

८ हाल, स्थिति, दशा। उ०—गंगा मछगंधाह, कुण जाई व्याही कठै। घर कुळ रा ऐ घाट, सरम कठा सूं सांवरा।
—रांमनाथ कवियौ

९ घात, दाव। उ०—ऊठि अचूंका बोलणा, नारि पयंपै नाह। घोड़ां पाखर धमधमी, सिंधू राग हुवाह। हुवी अति सिंधवौ राग वागी हकां, थाट आया पिसण घाट लागै थकां।—हा.झा.

१० समूह, झुंड, दल। उ०—थंभ जंगां बोम बाट, जोड़तौ रातंगां थाट। तोड़तौ मातंगां घाट, रोड़तौ आंबाट।—हुकमीचंद खिड़ियौ

११ घड़ों का समूह। उ०—लोह तावां दळां थाट, अंगां ऊभड़ैबा लागा। घावां कुंभां कोलाळी, घड़ेवा लागा घाट।
—हुकमीचंद खिड़ियौ

१२ षड़यंत्र। उ०—जा कंधै सुख सोवतैं, सो परलोक पलाया। जाकी वाहर चाहतै, उण घाट रचाया।—वं.भा.

१३ धोखा, कपट, छल। उ०—१ माजी जीवतौ मोनूं ही प्यारौ छै। हूं पण जांणूं छूं जो बीजौ तौ पहुंच न पाया जणां औ घाट बिचारियौ छै जे आंधळी छोरी काढ़स्यां अर घर आया नै मारस्यां।
—कुंवरजी सांखला री वारता

१४ शरीर। उ०—वाजि झाट बीजळां, घाट तूटै घण घावां। करि निराट घण कटै, पाव तूटै गज पावां।—सू.प्र.

१५ गढ़े हुए पदार्थ। उ०—१ कंसारा नट माणूटीया, घड़ीया घाट वेचइ लोहटीया।—कां.दे.प्र.

उ०—२ घड़िया घाट भंगाय के, नह और घड़ाये।—सालूजी कवियौ

सं०स्त्री०—१६ सेना, फौज। उ०—इम चढ़े सोनगढ़ ऊपरा, सांमंत गजण सधीर रा। तोड़िवा जांणि चढ़ीया त्रिकुट, विकट घाट रघुवीर रा।—सू.प्र.

१७ निंदा, बुराई. १८ मक्की, ज्वार या बाजरी को दल कर बना

या पानी के साथ पका कर बनाया हुआ व्यंजन। उ०—हाल कमाई घाट हरख सूं पतळी गट गट पीणी। घोर रेत सम चेत घमंडी थोर लियोड़ी चीणी।—ऊ.का.

१६ तलवार की धार.

मुहा०—तरवार रै घाट उतारणौ—तलवार से मार डालना।

२० तरतीब से जमाये हुए कपड़े की तह. २१ मार्ग, रास्ता।

उ०—जोगमाया तणी भगति कीधां जुड़ै, प्रथी सिर मुड़ै नहीं विकट पैंडा। सगत रा पुत्र जांणे कोइक वचन सिध, उगत री जुगत रा घाट ग्रेंडा।—नवलजी लाळस

वि०—कम थोड़ा। उ०—१ नरक सुरग दोऊ हम तोल्या, ग्यांन तराजू मांहीं। दोन्यूं बिधा बराबरि दीसै, घाट बाध कुछ नांहीं।

—ह.पु.वा.

उ०—२ उण कह्यौ 'सीरोही जाळोर गांव बराबर लागै छै, दांण राव रै घणौ आवतो तद रु० ५०,००० तथा ६०,००० आवतो, इणे दिनां तो घाट आवै छै, सीरोही री आध चंदा अमरा रै लीजे छै, विभोगै रा गांव १०० तथा १२५ छै।

—नैणसी

क्रि०वि०—प्रकार, तरह। उ०—महलां पूनम चंद-मुख, आठम चंद ललाट। केहर कह ज्यूं खीण कड़, भ्रूह भ्रमरावळ घाट।—बां.दा.

घाटघट, घाटघड़-संस्त्री० [सं० घट्ट-घटनम्] चिंता, सोच-विचार, ऊहा-पोह। उ०—वीर पुरखां री प्रकती विखय दुरवासना सूं हुटियोड़ी रहै है नै आपरा पुरांणा वैर लेवण नै रात दिन घाटघड़ में वणिया रहै है।—वी.स.टी.

घाटघड़ालोहार-सं०पु०—लोहार जाति की एक शाखा या इस शाखा का व्यक्ति।

घाटबराड़-वि०—विराट, भयंकर जबरदस्त।

घाटबाज-सं०पु०—शरीर की बनावट, शरीर-रचना, डील-डौल।

घाटवाळ-सं०पु०—वह ब्राह्मण जो किसी घाट पर बैठ कर स्नानार्थियों से दान आदि ग्रहण करता हो।

घाटि—देखो 'घाट' (रू.भे.) उ०—ज्यूं मूरति त्यूंहीं सिला, रांम बसे सब मांहीं। जन हरिदास पूरण ब्रह्म, घाटि बाधि कछु नांहीं।

—ह.पु.वा.

घाटियौ—देखो 'घाटवाळ'।

घाटी-संस्त्री०—१ पर्वतों के बीच का रास्ता या भूमि. २ पर्वतीय ढाल. ३ ढालू जमीन. ४ कठिन तंग मार्ग, संकीर्ण रास्ता.

५ आपत्ति, कठिनाई, बाधा।

मुहा०—१ घाटी होणी—कोई कठिनाई या आपत्ति की संभावना होना. २ घाटी डाकणी—किसी आपत्ति या कठिनाई को पार करना।

घाटू-सं०पु०—कमी, हानि, क्षति।

वि०—कम, थोड़ा।

घाटौ-सं०पु०—१ कमी, हानि। उ०—काको भतीजो सारै दिन काटौ, घर में घाटौ नहिं आटा रो घाटौ।—ऊ.का.

क्रि०प्र०—उठावणौ. खाणौ, देणौ, पड़णौ, सहणौ, होणौ।

मुहा०—१ घाटौ आणौ—हानि होना, किसी वस्तु की कमी होना. २ घाटौ उठाणौ—नुकसान में पड़ना. ३ घाटौ भरणौ—हानि को पूरा करना. ४ मुदल में ही घाटौ होणौ—मूल में ही घाटा होना, मूल धन में ही कमी होना।

२ अरावली पर्वत। उ०—सूता-सूता ओ वीरा म्हारा सुख भर नींद, (घारी) परणी घाटौ लांघियौ।—लो.गी.

३ पर्वतीय घाटी. ४ तंग पहाड़ी मार्ग। उ०—सिंघणी आखयौ सूर नै, इण घाटै मत आव। चीत रहै मह गाज घण, रीत यही वणराव।—अगया अगेन्द्र

५ मार्ग, रास्ता। उ०—समंद तरबौ अनै गरब धरबौ सहल, दरब धरबौ सहल परा घाटौ। प्रांमवै छेह संसार अणपार री, घणौ दातार रो विकट घाटौ।—अज्ञात

घाठ—देखो 'घाट' (रू.भे.)

घाणौ, घाबौ-क्रि०अ०—१ पीड़ित होना, दुखित होना। उ०—कोपियां बाळ सुगरीव छोडै कळह। घरोघर भटकियौ विपत घायौ।—र.ज.प्र.

क्रि०स०—२ सहार करना, मारना। उ०—अखौ रांण री पुत्र जूटौ अछायौ। घणौं क्रोधि तेनूं हणूंमांन घायौ।—सू.प्र.

घात-संस्त्री०—१ प्रहार, चोट, मार। उ०—१ उत्तम री आसां करै, सहै नहीं घण राव। घात करै गैंवर घड़ा, सीहां जात सुभाव।

—बां.दा.

उ०—२ सादूळो लाजै ससां, घात करण घिरतांह। कूंभाथळ खाय चौ पळ गजमोती खिरतांह।—बां.दा.

कहा०—घणां री घात हीरौ इज झेलै—घन की चोट हीरा ही सहता है; शक्तिशाली ही कठोरता सहन कर सकता है।

२ वध हत्या, संहार, नाश। उ०—१ सखी अमीणी साहिबौ, मदन मनोहर गात। महाकाळ मूरत बणै, करण गयंदां घात।—बां.दा.

उ०—२ थे जाओ छो नळवरै, ढाढी सुणोज वात। मालवणी चौकी रहै, पंथियां करै ज घात।—ढो.मा.

क्रि०प्र०—करणौ, घालणौ, होणौ।

यौ०—गोघात, नरघात, विस्वासघात।

३ कपट, छल, धूर्तता। उ०—१ तज मन सारी घात, इकतारी राखै अधिक। वां मिनखां री वात, रांम निभावै राजिया।

—किरपारांम

४ मौका, अवसर। उ०—१ रे जगा! समझ इण जीव नूं, पूगै दिन पछत'वमी। अइलोकनाथ समरण तणी, इसी घात कद आवसी।

—ज खि.

उ०—२ जब कागळ लिख्यौ छै, तब लगन आडा तीन दिन थ।

या घात छै । घणउ किसो कहूं । इसो घात और नहीं छै ।
—वेलि.टी.

उ०—३ तठा भी जाब सुण बीठळदास रै प्राग लागी, पण जोर नहीं । पण वीठळदास कनै लोक हजार पनरह छै सु घात जोवै छै ।—द.दा.

मुहा०—१ घात ताकणी—उचित समय की प्रतीक्षा में रहना, मौके की ताक में रहना. २ घात में फिरणी—मौका खोजना, किसी को नुकसान पहुँचाने का अवसर ढूंढ़ना. ३ घात में बैठणी—आक्रमण करने के लिए छिप कर प्रतीक्षा में रहना । देखो 'घात ताकणी' ।
४ घात में होणी—मौके की फिक्र में होना, मौका ताकना.
५ घात लगणी, घात लागणी—अवसर मिलना, मौका हाथ आना.
६ घात लगाणी—उपाय करना, ताक में रहना, अवसर खोजना ।
५ तलवार (ह.नां.) ६ पत्थर (ह.नां.) ७ उपला, कंडा (ह.नां.)
८ दांव, पेंच, षड़यंत्र । उ०—१ उदयादीतइ जांणी बात, ग्राचिगदे इम खेली घात । करी कोप मन माहे घणउ, तेड़ाव्यउ कुमर आपणउ ।
—कां.दे.प्र.

उ०—२ तो सूं दुसमणां घात घाली छै सो टाळो खाय, नहींतर मोनूं मार नै पछै चढ़ जाय । रावजी रै तौ बेटौ छै सो ही रहसे पण म्हारै तौ आंधालकड़ी तूं ही छै ।
—कुंवरसी सांखला री वात

मुहा०—१ घात घालणी—जाल रचना, दांव लगाना, षड़यन्त्र रचना. २ घात चलाणी—कपट करना, षड़यन्त्र करना.
३ घात बताणी—चालें बताना, चालबाजियां सिखाना धोखा देना.
४ घात में आणी—वश में आना, मौके पर चढ़ना. ५ घात में रैणी—षड़यन्त्र या दांव के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करना ।
९ (ज्योतिष में) प्रवेश, संक्रांति.
यौ०—घाततिथ, घातवार ।
१० धोखा । उ०—वीसल दे वे सूर, खाटी पण खाधी नहीं । कीधी घात कुरूर, माया उण में मोतिया ।—रायसिंह सांदू
११ आफत, विपत्ति, संकट. १२ मौत, मृत्यु ।
उ०—वाढ़ फरास वीर वरदाई, आप तणै सिर घात उपाई ।
—गो.रू.

१३ तार-वाद्यों के बजाने में मध्यम अंगुली को जोड़ कर तर्जनी से आघात करने की क्रिया (संगीत) १४ चुगली । उ०—ताहरां मूंहतै भोपत री घात राजाजी आगै घाती अर जीत्र राजाजी री भोपत सेती बुरी कराड़ियी ।—द.वि.

घातक, घातकी, घातकू-स.पु० [सं० घातक] (स्त्री० घातणी)
१ संहार करने वाला, हत्यारा. २ शत्रु । उ०—आगै ही उणनै मारण नै राजाजी घातकू किया हुता । सकताउत, भाटी हेमराज राठवड़ करमसी भींवावत ।—द.वि.

घातणी—देखो 'घातक' का स्त्री० ।
घातणौ, घातबौ—क्रि०स०—१ डालना । उ०—१ पही अमंता अइ मिळइ, तउ प्री आखे भाय । जोबण बंधन तोड़सइ, बंधण घातण आय ।—ढो.मा. उ०—धर स्यांमा सरिस स्यांमतर जळधर, ग्रंथूं चे गळिबाहां घाति । भ्रमि तिणि संध्या वंदन भूला, रिखियन लखी सकै दिन राति ।—वेलि.
२ निर्माण करना । उ०—१ पीछै सं० १७३५ गढ़ घातियो, नाम अनूपगढ़ दीनो ।—द.दा. उ०—२ तद कांधलजी कयौ—'घणी आछी बात है ।' पछै कळकरण कहायो कै थे अठै गढ़ मती घातज्यो, परै जांगळू री हद मैं जावो ।—द.दा.
३ मिलाना । उ०—कोटड़ी जोधपुर वांसै थी सु रावळ हरराज जेसळमेर वांसै घातियो ।—नैणसी
घातणहार, हारो (हारी), घातणियौ—वि० ।
घातिओड़ो, घातियोड़ो, घात्योड़ो—भू०का०कृ० ।
घातीजणौ, घातीजबौ—कर्म वा० ।

घातलो-वि०—१ मारने वाला. २ घातक ।
घाता-वि०—संहारक, विध्वंशक । उ०—रिख मख त्राता, दित कुळ-घाता । सु भुज निघायौ, किरण उडायौ ।—र.ज.प्र.
घातियोड़ो-भू०का०कृ०—१ डाला हुआ. २ पकड़ा हुआ. ३ रक्खा हुआ ४ निर्माण किया हुआ । (स्त्री० घातियोड़ी)
घाती-वि० (स्त्री० घातणी) १ वध करने वाला, हत्यारा, घातक.
२ शत्रु (ह.नां) ३ भयंकर, भयावह । उ०—घाती वार सुकर सुदुकर लगाई घाती, जबैं याद आती ना सुहाती है जहांन को ।
—ऊ.का.

घातीक, घातू—देखो 'घातक' (रू.भे.) (ह.नां.)
घाय-सं०पु० [सं० घात] १ घाव, जख्म । उ०—इक पड़ै मुड़ै मुड़ लड़ै आय । घड़ियाल गजर जिम जजर घाय ।—रा.रू.
२ प्रहार, वार, चोट । उ०—जिण साल तियार करंत जरदी, घाय बिनाणीय लोह घड़े ।—गु.रू.बं.
वि०—घायल, जख्मी ।
घायक-वि० [सं० घातक] १ मारने वाला, वध करने वाला ।
उ०—दिपै रघुनायक दीन दयाळ, पुणां खळ घायक सेवग पाळ ।
२ घायल । —र.ज.प्र.
घायत-वि०—संहार करने वाला, नाश करने वाला । उ०—अठी जींद अजरेल अठी बूढ़ी अड़पायत । प्रथमी भांटै पळं घणा सत्रवां दळ घायत ।—पा.प्र.
घायल, घायल्ल-वि० [सं० घातल] जिसके घाव लगा हो, जख्मी, आहत । उ०—'अजमाल' तणै बळ धार इम, नर दुकाळ भ्रम नीमड़ै । भाजियौ खेत मुहकम भिड़ै, ऐ घायल हुय ऊपड़ै ।—रा.रू.
कहा०—घायल री गत घायल जांणै—घायल की गति को घायल ही जानता है; कष्ट, पीड़ा का अनुभव एक भुक्तभोगी ही जानता है ।

अल्पा०—घायलियौ, घायलियोड़ौ।

घालवाटौ-सं०पु०—रहँट पर फसल की सिंचाई के लिए पानी कुए से निकालने की जितनी सामग्री उपयोग में आती है उसका किराया जो कृषक द्वारा मालिक को दिया जाता है।

घालणौ-वि० (स्त्री० घालणी, घालिणी) संहार करने वाला, संहारक। उ०—घाव घणा घटां अत पिसण दळ घालणौ। पांच सै पाखरघा हेकलौ पालणौ।—हा.झा.

घालणौ, घालबौ-क्रि०स०—१ डालना। उ०—१ ताळा तोड़ करे मूं काळा, गाळा घाले गूढ़। भाळा नैणां बाळा भोळा, माळा फेरै मूढ़।—ऊ.का. उ०—२ घालै बिसमत मत मगमग ठग घेरौ। फोरी किसमत सूं पगपग पगफेरौ।—ऊ.का.

कहा०—घी घालसी जका तौ आडा हाथां घालसी—घी परोसने वाले तो ना-ना करते ही परोसेंगे; बार-बार मांगने से कोई वस्तु नहीं मिलती।

२ रखना. ३ फेंकना. ४ छोड़ना. ५ बिगाड़ना. ६ नाश करना, मारना. ७ प्रहार करना। उ०—पुरस मारग नीत चालै, घाव भागां नकूं घालै।—र.ज.प्र.

घालणहार, हारौ (हारी), घालणियौ—वि०।

घालिप्रोड़ौ, घालियोड़ौ, घाल्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घालमेल-सं०पु०—१ अलग-अलग प्रकार की कई वस्तुओं की एक साथ मिलावट. २ वस्तुओं को एक दूसरे में डालने व रखने की क्रिया।

मुहा०—१ घालमेल करणी—मिला-मिलू देना, गड़बड़ कर देना.

२ घालमेल राखणी—मेल-मिलाप रखना।

३ कपट, छल. ४ चुगली. ५ घनिष्ठता।

घालरिया-सं०पु०—सीसोदिया वंश की एक शाखा।

घालामेलौ—देखो 'घालमेल' (रू.भे.)

घालियोड़ौ-भू०का०कृ०—१ डाला जाना. २ रक्खा हुआ. ३ फेंका जाना. ४ छोड़ा जाना. ५ बिगाड़ा जाना. ६ नाश किया हुआ. ७ प्रहार किया हुआ। (स्त्री० घालियोड़ी)

घालीजणौ, घालीजबौ-क्रि० कर्म वा०—१ डाला जाना. २ रक्खा जाना. ३ फेंका जाना. ४ छोड़ा जाना. ५ बिगाड़ा जाना. ६ नाश किया जाना. ७ प्रहार किया जाना।

घाव-सं०पु० [सं० घात, प्रा० घाअ] १ क्षत, जख्म।

मुहा०—१ घाव भरीजणौ—जखम अच्छा होना. २ घाव माथै नमक छिड़कणौ—दुख पर दुख देना. ३ घाव हरौ होणौ—दुख की याद से दुखी होना।

२ चोट, प्रहार। उ०—१ मुंह न दियै पर मारियौ, भागां न करै घाव। सादूळी साचा गुणां, बेह कियौ वन राव।—बां.दा.

उ०—२ समोभ्रम साहिब खांन सकाज, रिमां खग घाव करै जगराज।—सू.प्र.

कहा०—घाव तौ दुसमण रौ ही सरावणौ—अच्छे गुणों की तो दुश्मनों की भी सराहना करनी चाहिए।

घावक-वि० [सं० घातक] १ प्रहार करने वाला.

सं०पु०—घाव, जखम। उ०—लिया खग खप्पर गैंद गुलाल, खळां घट घावक जाव पलाळ।—मे.म. २ प्रहार, चोट।

घावछक-वि०—घावों से परिपूर्ण, घायल। उ०—घावछक झूमतौ झूमतौ भूम घट, परि तकिया निकट कोल पड़ियौ।

—बालाबख्स बारहठ

घावड़-वि० [सं० घातक] १ प्रहार करने वाला. २ शूरवीर, पराक्रमी. ३ कपटी, धूर्त। उ०—इतरी सुण आदमी घावड़िया था सौ द्वार छोड पासै ऊभा रहिया।—कुंवरसी सांखला री वारता

४ विचारशील, चतुर।

(अल्पा०—घावड़ियौ)

घावणौ, घावबौ—देखो 'घाणौ' (रू.भे.) उ०—१ जुध खग वाहै 'असौ', घण मुगळां खळ घावै।—सू.प्र. उ०—२ ठौड़ ठौड़ राठौड़, घणा मुगळां खग घावंत।—सू.प्र.

घावरियौ-सं०पु०—घावों की चिकित्सा करने वाला, जर्राह, चिकित्सक.

घावांपूर-वि० [सं० घात+पूर्ण] घावों से परिपूर्ण, घावों से युक्त। उ०—सु अठै हरदास नै थोडौ घावांपूर हुवा अर हरदास नूं भांण उठाय पूगतौ कियौ सोझत।—द दा.

घावौ—देखो 'घाव' (रू.भे.)

घास-सं०पु० [सं०] १ भूमि पर उगने वाले उद्भिज, तृण, चारा।

क्रि०प्र०—काटणौ, खाणौ, चरणौ, चराणौ, वाढ़णौ।

पर्याय०—अरजुण, खड़, चारौ, जवस, त्राण।

मुहा०—१ घास काटणौ—छोटा काम करना, आसान काम करना, बिना संभाले जल्दी-जल्दी काम करना, बेकार कोशिश करना.

२ घास खाणौ—तुच्छ चीज पर गुजर करना, जानवर हो जाना।

यौ०—घासपात, घास-फूस, घासमंडी, घासमारी।

अल्पा०—घासड़ौ।

२ एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

घासण-वि०—काटने वाला, संहार करने वाला।

घासणौ, घासबौ-क्रि०स०—१ घिसना, रगड़ना. २ काटना, मारना

घासणहार, हारौ (हारी), घासणियौ—वि०।

घासिप्रोड़ौ, घासियोड़ौ, घास्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घासीजणौ, घासीजबौ—कर्म वा०।

घासपात, घासफूस, घासमूसौ-सं०पु०यौ०—१ घास व पत्ते आदि. २ कूड़ा-करकट. ३ बेकार की वस्तु।

घासमंडी-सं०स्त्री०—वह मंडी जहां घास का फुटकर एवं थोक व्यापार होता हो।

घासमारी-सं०स्त्री०—१ मवेशियों की गणना. २ मवेशी रखने वालों से मवेशियों की गिनती पर लिया जाने वाला एक प्रकार का सरकारी कर।

घासवणी, घासवबो—देखो 'घासणी' (रू.भे.)

घासाहड़, घासाहर—देखो 'घासाहड़' (रू.भे.) उ०—घासाहुरां दीधा घेर बिभाड़ै हाथियां घड़ां, बेध लागा कीधा धू बिलातियां बरंग।
—डूंगजी जवारजी री गीत

घासियौ—सं०पु०—रूई से भरा हुआ गद्दा जो प्रायः आयताकार होता है और सोने के लिए प्रायः बिस्तर का काम देता है। रूई से भरा हुआ गद्देदार बिछौना।

घासौ—सं०पु०—किसी औषधि या जड़ी-बूटी को पानी के साथ घिस कर तरल रूप में दी जाने वाली दवा।

घाह—सं०पु०—झूल, घेरा। उ०—विम खावौ कै सरण लौ, सरवरिया री घाह। कै कंठा बिच घाल लौ, घाघरिया री घाह।—अज्ञात

घिंटाळ, घिंटियाळ—सं०पु०—१ 'फोग' नामक मरुदेशीय वृक्ष के फूल। उ०—लास फोगल घिंटाळ ऊंटां कातीसरौ हर मास रौ। से सेळां धुरी घरस्याळां आळ्यां पंछ्यां आसरौ।—दसदेव
(मि० 'फोग')
२ 'फोग' वृक्ष का पक्का फल।

घिंचड़ा—सं०स्त्री०—१ घास व लकड़ी आदि बाहर से लाकर बेचने वाली एक मुसलमान जाति विशेष।

घियाळणौ, घियाळबौ—क्रि०स०—१ खींचना. २ घसीटना।

घियाळियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ खींचा हुआ. २ घसीटा हुआ।
(स्त्री० घियाळियोड़ी)

घियाळी—सं०स्त्री०—१ लकड़ी का वह उपकरण जिस पर रख कर हल को खींचा जाता है। यह उपकरण उस समय काम में लिया जाता है जब कि हल को बैलों द्वारा खींच कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है. २ घसीट से बनी रेखा।

घि—सं०स्त्री०—१ मृगतृष्णा. २ चँवर, चामर.
सं०पु०—३ धर्म. ४ विस्तार, फैलाव (एका०)

घिचपिच—सं०स्त्री० [अनु०] १ स्थानाभाव के कारण होने वाली तंगी, संकरापन. २ थोड़े से स्थान पर बहुत से व्यक्तियों का जमघट, बेतरतीब की भीड़।
वि०—अस्पष्ट।

घिटोरड़ी—सं०स्त्री०—वह भेड़ जिसने बच्चा न दिया हो।

घियौ—सं०पु०—घीया, लौकी।

घिरणा—सं०स्त्री० [सं० घृणा] घृणा, ग्लानि। उ०—तोछी कथा गरीबां री सँणप सूं झिळकै। रे वैभव ! थूं सुणतां मत घिरणा सूं मुळकै।—सगतीदांन

घिरणी—सं०स्त्री०—घुमाव, मोड़।

घिरणौ, घिरबौ—क्रि०अ०—१ किसी चारों ओर फैली हुई वस्तु के बीच में पड़ना, आवृत होना, गिरना, आवेष्ठित होना. २ चारों ओर छाना, इकट्ठा होना. ३ वमन होना, कै होना. ४ मुड़ना, लौटना।
उ०—१ बरसौ खेतां-माळ खिलां री सौरभ जिणमें। घिरजौ घण असमान अजकता उत्तर छिण में।—मेघ.
उ०—२ कुंवरजी पाछा पधारिया। रजपूत घोड़ा सा कुंवरजी रै साथि घिरिया।—द.वि.
५ प्राप्त होना, मिलना। उ०—वीरमजी रावजी नूं कयौ—कोई जमी घिरण री उपाव कियौ चाहीजै।—द.दा.
घिरणहार, हारौ (हारी), घिरणियौ—वि०।
घिरवावणौ, घिरवावबौ, घिराड़णौ, घिराड़बौ, घिरावणौ, घिरावबौ—प्रे०रू०।
घिरिओड़ौ, घिरियोड़ौ, घिरयोड़ौ—भू०का०कृ०।
घिरीजणौ, घिरीजबौ—क्रि० भाव वा०।

घिरत—सं०पु० [सं० घृत] घृत, घी, गोरस। उ०—खट कारुं निर-दूख खित, आहुत घिरत कपूर। दिव पंडित वेदी सदृढ़, सोभत अगनि सनूर।—रा.रू.
कहा०—घिरत सुधारै सारणा नानी बहू को नाम—साग में कुछ अच्छा घी डालने से साग अच्छा बनता है, किन्तु प्रशंसा बनाने वाली छोटी बहू की ही होती है, अर्थात् माल तो स्वसुर का लगता है पर नाम बहू का होता है। दूसरे के सहारे अपना नाम करना।

घिराई—सं०स्त्री०—१ घेरने की क्रिया या भाव. २ घेरने के कार्य की मजदूरी. ३ मवेशियों को चराने का कार्य तथा इस कार्य की मजदूरी।

घिराव—सं०पु०—घेरने की क्रिया, घेरा।

घिरित—देखो 'घिरत' (रू.भे.)

घिरियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ घिरा हुआ, आवेष्ठित. २ वमन किया हुआ। (स्त्री० घिरयोड़ी)

घिल, घिलोड़ी—सं०स्त्री० [सं० घृतपुटी] धातु का बना घृत रखने का पात्र।
कहा०—घी तौ घिलोड़ी मुजब नै आटै रौ घाटौ नी—घी तो आर्थिक अवस्थानुसार ही मिलेगा किन्तु आटे का घाटा नहीं है; साधारण व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही स्वागत कर सकता है।
(रू०भे०—घीलोड़ी)
अल्पा०—घिलोड़ियौ, घीलोड़ीयौ।
महत्व०—घीलोड़।

घिव, घिवड़ौ—देखो 'घी' (रू.भे.)

घिसघिस—सं०स्त्री० [अनु०] १ किसी काम या बात को निश्चित करने में व्यर्थ की देरी।
मुहा०—घिस घिस करणौ—ठीक से काम न करना।
२ अनिश्चय।
मुहा०—घिस घिस करणौ—साफ न कहना, हीला हवाला करना।
३ कानाफूसी. ४ गड़बड़ी।

घिसटणौ, घिसटबौ—क्रि०अ०—घिसटते हुए चलना, रेंगना।

घिसणौ, घिसबौ—देखो 'घसणौ' (रू.भे.)

घिसणहार, हारौ (हारी), घिसणियौ—वि० ।

घिसावणौ, घिसावबौ—प्रे०रू० ।

घिसाणौ, घिसाबौ, घिसावणौ, घिसावबौ—क्रि०स० ।

घिसिप्रोड़ौ, घिसियोड़ौ, घिस्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

घिसीजणौ, घिसीजबौ—कर्म वा० ।

घिसपिस—देखो 'घिसघिस' (रू.भे.)

घिसवाणौ, घिसवाबौ–क्रि०स० ('घिसणौ' का प्रे०रू०) घिसने का काम कराना, घिसवाना ।

घिसाई–सं०स्त्री०—१ घिसने की क्रिया या भाव. २ घिसने की मजदूरी ।

घिसाणौ, घिसाबौ–क्रि०स० ('घिसणौ' का प्रे०रू०) घिसने का काम दूसरे से कराना ।

घिसाणहार, हारौ (हारी), घिसाणियौ—वि० ।

घिसावणौ, घिसावबौ—रू०भे० ।

घिसाप्रोड़ौ, घिसायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

घिसाईजणौ, घिसाईजबौ—कर्म वा० ।

घिसाणौ, घिसाबौ—क्रि०स० ।

घिसायोड़ौ–भू०का०कृ०—घिसने का काम किसी दूसरे से कराया हुआ । (स्त्री० घिसायोड़ी)

घिसावणौ, घिसावबौ—देखो 'घिसाणौ' (रू.भे.)

घिसियोड़ौ–भू०का०कृ०—घिसा हुआ, रगड़ा हुआ । (स्त्री० घिसियोड़ी)

घिसरपिसर—देखो 'घिसघिस' (रू.भे.)

घिस्सौ–सं०पु०—धोखा, झाँसा, झूठी बात ।

क्रि०प्र०—देणौ, मेलणौ, लगाणौ ।

घींगल–सं०पु०—गोबर का कीड़ा विशेष (क्षेत्रीय)

घींचणौ, घींचबौ–क्रि०स०—१ खींचना, ऐंचना. २ घसीटना । ३ गायों का झुंड बना कर हांकना ।

घींचणहार, हारौ (हारी), घींचणियौ—वि० ।

घींचाणौ, घींचाबौ, घींचावणौ, घींचावबौ—क्रि०स० ।

घींचिप्रोड़ौ, घींचियोड़ौ, घींच्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

घींचीजणौ, घींचीजबौ—कर्म वा० ।

घींचाणौ, घींचाबौ, घींचावणौ, घींचावबौ–क्रि०स० (प्रे०रू०) १ खींचाना. २ घसीटवाना ।

घींचावियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ खिचवाया हुआ. २ घसीटवाया हुआ. (स्त्री० घींचावियोड़ी)

घींचियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ खींचा हुआ. २ घसीटा हुआ । (स्त्री० घींचियोड़ी)

घींयाड़ी, घींयाळी—देखो 'घियाळी' (रू.भे.)

घींयौ–सं०पु०—सिंचाई के लिए बनी हुई नालियों को साफ और चिकनी बनाने के लिए बोझा रख कर नाली में चलाया जाने वाला घास या झाड़ी का गुच्छा ।

घींसणौ, घींसबौ—१ देखो 'घीसणौ' (रू.भे.)

उ०—१ तद स्यांमी कही—बाबा आ घोड़ी मोनूं घींस ले जाय । आगै तौ मरियौ सो पड़ियौ ही छूं, हब और क्यूं मारै छै ।

—सूरे खींवे री बात

उ०—२ लख हेली धण री धणी, करै न जुड़ियौ कोप । पैंतीसां पग घींसतौ, आवै डूंगर ओप ।—बी.स.

२ देखो 'घसीटणौ' (रू.भे.) उ०—सो रुपियां री खीर है । ऐ तौ रांड रा जागां जागां पग घींसता फिरसी ।—बरसगांठ

घींसाणौ, घींसाबौ–क्रि०स०—१ घिसवाना, घसीटवाना ।

उ०—तिसै जखड़ै नाहर नै मार लीयौ । तरै टाबरां कनां सूं बेऊं तखता नाहर रा घींसाइ दरबार आंगण राळ्या ।

—जखड़ा मुखड़ा भाटी री बात

घींसायोड़ौ–भू०का०कृ०—घिसवाया हुआ । (स्त्री० घींसायोड़ी)

घींसार–सं०पु० [सं० घृष्टचार] बड़ा मार्ग, राज-पथ । उ०—सुदतारां सुदतार, केतां इळ चहिला किया । घाल्यौ तैं घींसार, मेरू सिखरां 'मूळसी' ।—महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदान

घींसावणौ, घींसावबौ—देखो 'घींसाणौ' (रू.भे.)

घींसावियोड़ौ—देखो 'घींसायोड़ौ' (रू.भे.)

घींसियोड़ौ–भू०का०कृ०—घसीटा हुआ, खींचा हुआ । (स्त्री० घींसियोड़ी)

घी–सं०पु० [सं० घृत] दूध का वह स्निग्ध सार जो जमे हुए दही से मक्खन प्राप्त कर उसे तपा कर उसमें से जल का अंश अलग निकाल कर प्राप्त किया जाता है । तपाया हुआ मक्खन ।

पर्याय०—अंगबळ, अम्रत, आजि, चोपड़, जोतवंत, तूप, तेजवंत, विखसुधार, सबळी, सरपिख, हयअंगवीन, हविखि ।

मुहा०—१ घी खीचड़ियां होणी—खाने का आनन्द होना. २ घी घालणौ—खूब प्रसन्न रखना, आनंद करवाना. ३ घी रा दीया बाळणा—खुशी या आनन्द में होना, संपत्तिशील होना, कामना पूरी होना. ४ घी रा दीया भरणा—खुशी मनाना, मौज उड़ाना ।

कहा०—१ आपरी गाय रौ घी सौ ई कोसां खाई—अपनी गाय का घी सौ कोस की दूरी पर भी अच्छा लगता है; अपनी वस्तु सदैव प्रिय लगती है. २ घणौ घी भींतां रै लगावण नै को हुवै नी—अधिक घी अगर हो भी तो वह दीवारों पर लगाने को नहीं होता; किसी वस्तु की अधिकता होने पर भी उसे लुटाया या बेकार नष्ट नहीं होने दिया जाता. ३ घी अंधारे में ही छांनौ को रै'वै नी—घी अंधेरे में भी छिपा नहीं रहता; अच्छाई व सच्चाई छिपी नहीं रह सकती. ४ घी खादौ तौ कुलड़ौ तौ कठेई नहीं गयौ—घी खा लिया तो क्या हुआ, उसका बरतन तो शेष है, इससे पता लग सकता है; किसी चोरी या अपराध का ज्ञान विभिन्न संकेतों से भी हो जाता है. ५ घी घटियौ तौ कुलड़ौ परवांण है—घी अगर कम भी हुआ

तो भी वह होगा तो बरतन के अनुसार ही। (मि० कहावत नं० ४) ६ घी घालै जितौ ही स्वाद—जितना घी डालोगे उतना ही स्वाद अच्छा होगा; जितना परिश्रम करोगे उतनी ही सफलता मिलेगी; जितना व्यय करोगे उतना ही आनंद मिलेगा. ७ घी ढुळियौ तोई मूंगां में—घी गिरा तो भी मूंग में; किसी किये गये व्यय का नितांत निरर्थक न जाने पर।

वि०वि०—इस कहावत संबंधी यह दोहा मिलता है—

भाई रौ धन भाई खायौ, बिना बुलायां जीमण आयौ।

आखड़ियौ पण पड़ियौ नहीं, घी ढुळियौ तौ मूंगां में ही ॥

८ घी दूध नजरांना थांन छोड थोनूं—घी दूध देख-रेख करने पर और धान परिश्रम करते रहने पर ही प्राप्त होता है; अच्छी प्रकार देख-रेख करने से कार्य अच्छा होता है. ९ घी में घी सब घालै पण तेल में घी कुण भी नी घालै—घी में घी तो सब डालते हैं किन्तु तेल में घी कोई नहीं डालता; सपन्न या धनियों की सहायता करने को सब तैयार रहते हैं किन्तु भूखों की सहायता कोई नहीं करता; सुखी का साथ हर एक देने का प्रयत्न करता है किन्तु दुखी को कोई नहीं पूछता; संसार की स्वार्थी प्रवृत्ति के प्रति; सच्ची बात में सब साथ देते हैं किन्तु झूठी बात में कोई साथ नहीं देता. १० घी रौ नै खुदा रौ मूंडौ ही कुण देखियौ है—घी और खुदा का मुंह ही किसने देखा है; निर्धनता के प्रति. ११ घी बिगर चूरमा नी कंवाय- बिना घी के चूरमा नहीं कहलाता; बिना उचित खर्चे के कोई कार्य ठीक नहीं हो सकता।

(रू०भे०—घरत, घिरत, घिरित, घिव, घीव, घ्रत, घ्रित)

अल्पा०—घिवड़ो।

२ सार, तत्व (एका०)

घीमड़—देखो 'घीड़' (रू.भे.)

घीम्राई—देखो 'घीयाई' (रू.भे.)

घीम्रौ—सं०पु०—घीया, लौकी।

घीकणौ, घींकबौ—क्रि०स०—प्रहार करना, वार करना।

घीकुआर, घीकुंवार, घीकुमार—सं०पु० [सं० घृत कुमारी] ग्वारपाठा।

घीघाणौ, घीघाबौ, घीघावणौ, घीघावबौ—क्रि०अ०—डर के मारे चीखना, भयभीत होकर रोना या चिल्लाना। उ०—आगै बाजार में आवै तौ सूंडे राजा रौ बेटौ बरस सात में थौ तिकौ बाजार में रमै थो। तिण नै चाकरां पकड़ियौ। टाबर थौ, घीघावण लागौ।

—जैतसी ऊदावत री बात

घीघाणहार, हारौ (हारी), घीघाणियौ—वि०।

घीघावणहार, हारौ (हारी), घीघावणियौ—वि०।

घीघाड़ियोड़ौ, घीघावियोड़ौ, घीघाय्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घीघाबीजणौ, घीघाबीजबौ—भाव वा०

घीघायोड़ौ, घीघावियोड़ौ—भू०का०कृ०—डर के मारे चीखा हुआ, घबराया हुआ। (स्त्री० घीघायोड़ी)

घीड़—सं०स्त्री०—एक प्रकार का बरसाती कीड़ा जो कुछ लंबा व लाल रंग लिए होता है। इसके काटने से भयंकर दर्द होता है और खून निकलता है।

घीतांमणियौ, घीतावणियौ—सं०पु० [सं० घृत+तापन] मक्खन को तपा कर घी बनाने का पात्र विशेष।

घीतोरू—सं०स्त्री०—१ वर्षा ऋतु की एक बेल जिसमें लम्बे फल लगते हैं. २ इस बेल का फल जो शाक बनाने के काम में आता है।

घीद—सं०पु० [सं० गृध्र] (स्त्री० घीदणी) गिद्ध पक्षी।

घीयड़—सं०पु०—एक प्रकार का कीड़ा, बड़ी दीमक, गुबरैला।

घीयाई—सं०स्त्री०—१ एक प्रकार का कर जो जागीरी प्रथा के समय जागीरदार द्वारा घी की उत्पत्ति पर कुछ घी की मात्रा में वसूल किया जाता था। उ०—वछेरां रौ वा घीयाई रौ लाग सदाई सूं सरू हुवौ।—द.दा.

२ घसीटने की क्रिया या भाव. ३ घसीटने की मजदूरी।

घीरत—देखो 'घी' (रू.भे.) उ०—बतळायौ इम केहरि बडाळ, कोप्यौ क आय जमजाळ काळ। अरयौ क सोर ढिग अगन जोम, घड़हड़ौ घीरत घण अगन धोम।—बगसीरांम प्रोहित री बात

घीलोड़ी—देखो 'घिलोड़ी' (रू.भे.)

घीलोड़ौ—सं०पु०—धातु का बना घृत रखने का कुछ बड़ा पात्र।

घीव—देखो 'घी' (रू.भे.) उ०—१ बीजोड़ा नै ए मा चरी चरी घीव, बाई नै दीनौ ए. सासू डोरी तेल रौ।—लो.गी.

उ०—२ घीव कर घीव कर सूवा लापसी रंधाऊं रे। आंब ही को रस सूवा घोळ घोळ पाऊं रे।—मीरां

घीबेल—१ देखो 'घीड़' (रू.भे.) २ एक प्रकार की वर्षा ऋतु में होने वाली लता विशेष।

घीसणपूंछौ—सं०पु०—वह बैल जिसकी पूंछ चलते समय भूमि स्पर्श करती हो (अशुभ)

घीसणौ, घीसबौ—क्रि०स०—घसीटना, खींचना।

घीसणहार, हारौ (हारी), घीसणियौ—वि०।

घीसाणौ, घीसाबौ, घीसावणौ, घीसावबौ—क्रि०स०।

घीसिम्रोड़ौ, घीसियोड़ौ, घीस्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घीसीजणौ, घीसीजबौ—कर्म वा०।

घीसाणौ, घीसाबौ—क्रि०स० (प्रे०रू०) घसीटने का कार्य दूसरे से करवाना, घिसवाना।

घीसायोड़ौ—भू०का०कृ०—घसीटने का कार्य कराया हुआ।

(स्त्री० घीसायोड़ी)

घीसार—देखो 'घींसार' (रू.भे.)

घीसाळ—सं०पु०—१ किला, दुर्ग. २ देखो 'घींसार' (रू.भे.)

घीसावणौ, घीसावबौ—देखो 'घीसाणौ' (रू.भे.)

घीसावणहार, हारौ (हारी), घीसावणियौ—वि०।

घीसाविम्रोड़ौ, घिसावियोड़ौ, घिसाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घीसावीजणौ, घीसावीजबौ—कर्म वा० ।
घीसावियोड़ौ—देखो 'घीसायोड़ौ' (रू.भे.)
(स्त्री० घीसावियोड़ी)
घीसियोड़ौ—भू०का०कृ०—घसीटा हुआ, खींचा हुआ ।
(स्त्री० घीसियोड़ी)
घुंगची, घुंघची—सं०स्त्री० [सं० गुंजा, प्रा० गुंचा] १ एक लता जो अधिकतर पर्वतीय जंगलों में पाई जाती है। यह पेड़ों के सहारे ऊपर चढ़ती है और इसकी फली में से अरहर के दानों के बराबर खूब गहरे लाल रंग के बीज निकलते हैं. २ इस लता के गहरे लाल बीज, इसके बीज का मुंह काला होता है ।
घुंघट—देखो 'घूंघटौ' (रू.भे.) उ०—नागजी, घड़ी दोय घुड़ला थांम, रे बैरी, घुंघट री छैयां करूं ओ नागजी ।—लो.गी.
घुंघराळौ, घुंघरेदार—वि०पु० (स्त्री० घुंघराळी) घुमावदार, टेढ़े व बल खाये हुए बाल ।
घुंघरौ—सं०पु०—१ वह गोल और पोली गुरिया जो प्राय: धातु की बनी होती है एवं जिसके अंदर कंकर या कोई अन्य वस्तु होती है जिससे हिलने से मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है। घुंघुरू. २ ऐसी गुरिया का बना गहना ।
घुंघवारौ—देखो 'घुंघराळौ' (रू.भे.)
घुंडी—सं०स्त्री० [सं० ग्रंथि] १ मटर के दाने के आकार की कपड़े की सिली हुई छोटी गोली जो वस्त्र पर बटन के रूप में लगाई जाती है, कपड़े का गोल बटन. २ कुछ आभूषणों में लगी धातु की गोल गांठ जिसे सूत के घर में डाल कर गहनों को कसते हैं. ३ ग्रंथि, गांठ ।
घुंडीदार—वि०—जिसमें घुंडी लगी हो ।
घुंसौ—देखो 'घूंसौ' (रू.भे.)
घु—सं०पु०—अहि (एका०)
वि०—१ शठ. २ दयालु (एका०)
घुकरी—सं०पु०—१ कौआ, काग. २ उल्लू ।
घुग्घर—देखो 'घुंघरौ' (रू.भे.) उ०—घमंकी घंट घुग्घरं, सिंदूर सीस चम्मरं ।—गु.रू.बं.
घुग्घी—सं०स्त्री० [सं० गूहक, प्रा० गुघई] तीन कोने वाला विशेष प्रकार से बना ऊन का मोटा वस्त्र जिसे प्राय: किसान शीत व वर्षा से बचने के लिए अपने सिर पर ओढ़ लेते हैं । घोंघी ।
घुग्घू—सं०पु०—उल्लू नामक पक्षी ।
घुघ—सं०स्त्री०—झड़ी । उ०—कोई-कोई बूंदां पड़ रही छै, चमकां री घुघ लाग रही छै ।—कुंवरसी सांखला री वारता
घुघराळौ—वि० (स्त्री० घुघराळी) देखो 'घुंघराळौ' (रू.भे.)
घुघु—सं०पु०—उल्लू पक्षी। उ०—चमकत घर घर दीप मोद संजोगण मंडत, कलकलाव कोचरी तीख सुर घुघु तंडत।
—बगसीराम प्रोहित री बात

घुड़कणौ, घुड़कबौ—क्रि०स०—क्रुद्ध होकर फटकारते हुए किसी को कुछ कहना या डांटना, ज़ोर से बोल कर धमकाना ।
घुड़कणहार, हारौ (हारी), घुड़कणियौ—वि० ।
घुड़काणौ, घुड़काबौ, घुड़कावणौ, घुड़कावबौ—क्रि०स० ।
घुड़किओड़ौ, घुड़कियोड़ौ, घुड़क्योड़ौ—भू०का०कृ० ।
घुड़कीजणौ, घुड़कीजबौ—कर्म वा० ।
घुड़काणौ, घुड़काबौ—क्रि०स० (प्रे०रू०) घुड़कने का कार्य दूसरों से कराना ।
घुड़काणहार, हारौ (हारी), घुड़काणियौ—वि० ।
घुड़कायोड़ौ—भू०का०कृ० ।
घुड़काईजणौ, घुड़काईजबौ—कर्म वा० ।
घुड़कायोड़ौ—भू०का०कृ०—घुड़का हुआ, डांटा हुआ, धमकाया हुआ ।
(स्त्री० घुड़कायोड़ी)
घुड़कावणौ, घुड़कावबौ—देखो 'घुड़काणौ' (रू.भे.)
घुड़कावणहार, हारौ (हारी), घुड़कावणियौ—वि० ।
घुड़काविओड़ौ, घुड़कावियोड़ौ, घुड़काव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।
घुड़कावीजणौ, घुड़कावीजबौ—कर्म वा० ।
घुड़कियोड़ौ—भू०का०कृ०—घुड़का हुआ, डांटा हुआ, फटकारा हुआ ।
(स्त्री० घुड़कियोड़ी)
घुड़की—सं०स्त्री०—क्रोध में कड़क कर डराने हेतु कही गई बात, डांट-डपट, धमकी ।
घुड़कौ—देखो 'घुरड़कौ' (रू.भे.)
घुड़चढ़ी—सं०स्त्री०—१ विवाह-संस्कार होने के पश्चात् बरात की विदाई के समय की एक प्रथा जिसमें दूल्हा घोड़े पर चढ़ कर आता है और वर पक्ष वालों की तरफ से वहां पर आये हुए याचकों को यथाशक्ति नेग या दस्तूरी दी जाती है. २ इसी अवसर पर नेग प्राप्त करने हेतु बजने वाला ढोल. ३ कायस्थ जाति में विवाह हेतु वधू के घर जाने के समय वर द्वारा घोड़ी पर चढ़ कर तैयार होने के समय की जाने वाली प्रथा जिसमें उस समय वर के मित्र या संबंधी द्वारा वर को १) या २) रु० घुड़चढ़ी के नाम से दिये जाते हैं. ४ घोड़े पर रख कर चलाई जाने वाली एक छोटी तोप ।
घुड़चढ़ौ—सं०पु०—१ घोड़े पर चढ़ा हुआ व्यक्ति. २ एक प्रकार का स्वांग ।
घुड़दौड़—सं०स्त्री०—१ घोड़ों की दौड़. २ घोड़ों की दौड़ पर खेला जाने वाला जूआ जिसमें एक स्थान से कुछ घोड़े दौड़ते हैं। उनमें से निश्चित स्थान पर सब से पहिले जो घोड़ा पहुंचता है उसकी जीत होती है. ३ घोड़ा दौड़ाने का स्थान. ४ अश्वारोही सेना की कवायद ।
घुड़नाळ—सं०स्त्री०—घोड़े पर रख कर चलाई जाने वाली एक तोप ।
घुड़बैहल—सं०स्त्री०—वह गाड़ी, रथ या बहली जो घोड़े द्वारा खींची जाय, घोड़े का रथ । उ०—रात पाछली घड़ी ४ आय रही थी, साथ

सारी उंघावनी थी, जैमल घुड़बहेल बैठो थो, रतनी भाइ साथ भेळी हुवौ।—नैणसी

घुड़के री दांन—देखो 'घुरड़का री दांन' (रू.भे.)

घुड़लौ, घुड़ल्लौ—सं०पु०—१ विवाहोपरांत पुत्री को वर के साथ विदा करते समय गाया जाने वाला लोक गीत. २ गणगोर त्यौहार के अवसर पर गाया जाने वाला लोक गीत ३ घोड़ा। उ०—कुण थारा घुड़ला भंवरजी कस दिया जी, हांजी ढोला, कुण थांने कस दिया जीए।—लो.गी.

४ घड़े के आकार का छोटा पात्र जिसमें बहुत से छेद होते हैं और उसमें दीया जलता है। इसको लड़कियां सिर पर ले कर चैत्र मास में अपने मुहल्ले में घूमती हैं और इसी नाम का गीत गाती जाती हैं।

वि०वि०—विक्रम संवत् १५४८ चैत्र कृष्ण प्रतिपदा शुक्रवार तद-नुसार तारीख २५ फरवरी १४९२ मतान्तर से वि० सं० १५४८ (चैत्रादि १५५६) चैत्र सुदि ३ (ई० स० १४९२ ता० १ मार्च) को मारवाड़ राज्य के गांव कोसाना की बहुत सी हिन्दू कन्यायें तालाब पर गौरी पूजन करने को गई थीं। मौका पाकर अजमेर का सूबेदार मल्लू खां उनमें से १४१ कन्याओं का अपहरण कर अपने साथ ले गया। जोधपुर के तत्कालीन नरेश राव सातलजी को जब यह संदेश प्राप्त हुआ तब उन्होंने त्वरित ही यवनों का पीछा किया। राव सातलजी उन १४१ हिन्दू कन्याओं को यवनों के बन्धन से छुड़ा लाये और लौटते समय अपने साथ मल्लू खां की रूपवती पुत्री और २ अमीर-जादियों को भी पकड़ कर ले आये। इसके लिए राव सातलजी को सूबेदार के साथ भयंकर युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध में सूबेदार मल्लू-खां तथा उसका साथी घुड़ले खां, जो सिंध का एक अमीर था, रावजी के सेनापति सारंगदेवजी खीची के तीरों से छिद कर मारा गया। तीरों से छिदा घुड़ले खां का शिर उन १४१ कन्या को सौंप दिया गया। वे उस सिर को लेकर सारे गांव में घूमी। आज प्रायः समस्त राजस्थान में उसी दिन की यादगार में घुड़ले का मेला मनाया जाता है। हिन्दू कन्यायें अपने शिर पर अनेक छिद्रोंयुक्त छोटा घड़ा, जो भालों से छिदा घुड़ले खां के शिर का प्रतीक है, लेकर ग्राम में घूमती हैं। यह क्रिया पृथक पृथक स्थानों पर कुछ निश्चित अवधि, प्रायः ३ से ७ दिन तक, होती है और अन्तिम दिवस सभी कन्यायें उन छिद्र-युक्त घड़ों को ग्राम के बाहर कुए या तालाब में डाल कर प्रसन्नता मनाती हुई पुनः घर पर लौटती हैं।

घुड़साल—सं०स्त्री० [सं० घोटशाला] वह स्थान जहां घोड़े बांधे जाते हों, अस्तबल।

घुड़ी—सं०स्त्री०—घोड़ी। उ०—इव काहे चमरी घुड़ी नूं छोड राखा नू सूंपी।—कुंवरसी सांखला री वारता

घुड़ू कणी, घुड़ू कबौ—देखो 'घुड़कणी' (रू.भे.)

घुर्चारियो—सं०पु०—कुत्ते का छोटा बच्चा, पिल्ला (क्षेत्रीय)

घुचली—सं०स्त्री०—छलांग, कूद। उ०—तिकां ऊपर कुत्तां री डोर छूटी छै। आंठ-चौफा कूदै छै। घुचली खाय रह्या छै।—रा.सा.सं.

घुट—सं०पु०—१ टखना, गुल्फ (डिं.को.) २ घुटना।

घुटक—सं०पु०—घुटना।

घुटकी—सं०स्त्री०—गले की वह नली जो भोजन-पानी आदि को पेट में पहुँचाती है।

घुटक्कणौ, घुटक्कबौ—क्रि०स०—घूंट भरना, घूंट उतारना, घूंट लेना। उ०—भुल्लै के मग भांवरी, पग पंक खचक्कै। घुम्मै खेतरपाळ ले घम रत्त घुटक्कै।—वं.भा.

घुटणौ, घुटबौ—क्रि०अ०—१ सांस का अन्दर ही अन्दर दबना व बाहर न निकल सकना, दम घुटना। उ०—सैणा संकट में बंकट सब राया, घांटा घुटियोड़ा घूंघट घबराया।—ऊ.का.

मुहा०—घुट घुट नै मरणौ—हवा या पानी के बिना मर जाना, चिंता या मानसिक दुःख के कारण भीतर ही भीतर घुलना।

२ रगड़ खा कर चिकना होना. ३ परस्पर मेल-जोल अधिक बढ़ना. ४ किसी कार्य में विशेषता प्राप्त करना. ५ कोप करना, क्रोध करना. ६ तन्द्रित होना।

घुटणहार, हारौ (हारी), घुटणियौ—वि०।

घुटाणौ, घुटाबौ, घुटावणौ, घुटावबौ—क्रि०स०।

घुटिओड़ौ, घुटियोड़ौ, घुट्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घुटीजणौ, घुटीजबौ—भाव वा०।

घुटरगूं—सं०पु० [अनु०] १ कबूतर के बोलने की आवाज. २ कानाफूसी।

घुटवाणौ, घुटवाबौ—क्रि०स० ('घुटणौ' का प्रे०रू०) घोटने का कार्य कराना।

घुटाई—सं०स्त्री०—घोटने, रगड़ने अथवा चमकाने का कार्य अथवा इसकी मजदूरी।

घुटाणौ, घुटाबौ—क्रि०स०—घटने का कार्य कराना, घुटवाना।

घुटायोड़ौ—भू०का०कृ०—घुटवाया हुआ। (स्त्री० घुटायोड़ी)

घुटावणौ, घुटावबौ—देखो 'घुटाणौ' (रू.भे.)

घुटियोड़ौ—भू०का०कृ०—१ घुटा हुआ. २ कुपित, क्रुद्ध। (स्त्री० घुटियोड़ी)

घुटीजणौ घुटीजबौ—क्रि० भाव वा०—१ दम का घुटा जाना .२ रगड़ा जाना. ३ क्रुद्ध हुआ जाना।

घुटुवौ—सं०पु०—घुटना।

घुट्टी—देखो 'घूंटी' (रू.भे.)

घुणंतरि—वि०—साठ और नौ के योग के बराबर।

सं०स्त्री०—उनहत्तर की संख्या।

घुण—सं०पु०—एक छोटा कीड़ा विशेष जो प्रायः अनाज, पौधा अथवा सूखी लकड़ी आदि में लग जाता है। उ०—हरि बिण क्यूं जीवां री माय। स्यांम बिना बौरां भयां, मन काठ ज्यूं घुण खाय।—मीरां

वि०वि०—लकड़ी में लगने वाला घुन एवं अनाज में लगने वाले घुन की आकृति एवं भेद अलग-अलग होते हैं।

मुहा०—घुण लागणौ—निरन्तर क्षीण (शरीर) होते जाना।

अल्पा०—घुरिणयौ ।

घुत-सं०स्त्री०—चोट आदि के लगने से होने वाली सूजन ।

घुतकी, घुती-सं०स्त्री०—छोटे कानों की बकरी ।

घुद-सं०पु०—गोदने का शस्त्र विशेष ।

वि०—पूर्ण, निपट ।

(यौ०—आंधौ घुद)

घुदौ—देखो 'घोदौ' (रू.भे.)

घुबारियौ-सं०पु०—बड़े-बड़े भवनों के नीचे बना मकान विशेष जो घर का फुटकर सामान, ईंधन आदि डालने के उपयोग में लिया जाता है । तहखाना ।

घुमंड-सं०पु०—१ घुमड़ने का भाव. २ घमंड (रू.भे.) ३ एक प्रकार की मस्त चाल ।

घुमंडणौ, घुमंडबौ—देखो 'घुमड़णौ' (रू.भे.) उ०—संडै जोगणी महेस संडै उमंडै परी वैताळ, घुमंडै प्रचंडै थंडै उडंडै पैसाड ।
—राजा रायसिंह झाला री गीत

घुमंडी-वि०—घमंडी, अभिमानी ।

घुमड़-सं०स्त्री०—१ बरसने वाले बादलों की घोर घटा. २ ध्वनि-विशेष ।

घुमड़णौ, घुमड़बौ-क्रि०अ०—बादलों का उमडना । उ०—चहुं तरफां बणि चौहटां, अटा उतंग अखंड । घुमड़ै आंगे घन-घटा, दमक छटा छवि-डड ।—बगसीराम प्रोहित री बात

घुमड़णहार, हारौ (हारी), घुमड़णियौ—वि० ।

घुमड़ाणौ, घुमड़ाबौ, घुमड़ावणौ, घुमड़ावबौ—क्रि०स० ।

घुमड़िग्रोड़ौ, घुमड़ियोड़ौ, घुमड़चोड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुमड़ीजणौ, घुमड़ीजबौ—भाव वा० ।

घुमड़ियोड़ौ-भू०का०कृ०—उमड़ा हुआ । (स्त्री० घुमड़ियोडी)

घुमणौ, घुमबौ—देखो 'घूमणौ' । उ०—मतवाळा जेम घुमंत महा भड़, लोह तणी छक लालुरता ।—गु.रू.बं.

घुमर-सं०स्त्री०—१ झुंड, समूह । उ०—डाढ़ाळी पसरां दये, धूंधा फेर हुवोह । तिण पुळ में घोडां तणी, जोय घुमर जाडोह ।—पा.प्र.

२ युद्ध. ३ इस नाम का एक लोक-नृत्य ।

घुमरणौ, घुमरबौ-क्रि०अ०—१ जोर से घम-घम शब्द करना.

२ घोर शब्द होना. ३ एक प्रकार का लोक-नृत्य करना ।

घुमाणौ, घुमाबौ-क्रि०स०—१ घुमाना, फिराना, टहलाना. २ चक्कर दिलाना ।

मुहा०—१ घुमा घुमा नै पूछणौ—हेर-फेर से पूछना, खोद-विनोद कर के पूछना. २ घुमा घुमा नै बातां करणी—स्पष्ट बात न करना.

३ घुमाय फिराय नै पूछणौ—देखो 'घुमा घुमा नै पूछणौ'.

४ घुमाय फिराय री बात—पेचीदा बात, अस्पष्ट बात ।

३ मरोड़ना.

घुमाणहार, हारौ (हारी), घुमाणियौ—वि० ।

घुमाड़णौ, घुमाड़बौ, घुमावणौ, घुमावबौ—रू०भे० ।

घुमायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुमायोड़ौ-भू०का०कृ०—१ घुमाया हुआ, फिराया हुआ. २ चक्कर दिलाया हुआ. ३ मरोड़ा हुआ.

(स्त्री० घुमायोडी)

घुमाल-सं०पु०—१ चक्कर, फेरा. २ घूमने अथवा घुमाने का भाव. ३ मोड़ ।

घुमावणौ-वि०पु० (स्त्री० घुमावणी) १ घुमाने वाला. २ चक्कर दिलाने वाला । उ०—घुराय गैल की छटा, कटी घटा घुमावणौ । पराति धार छार में, पछार के पुमावणौ ।—ऊ.का.

घुमावणौ, घुमावबौ—देखो 'घुमाणौ' (रू.भे.)

घुमावणहार, हारौ (हारी), घुमावणियौ—वि० ।

घुमाविग्रोड़ौ, घुमावियोड़ौ, घुमाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुमावीजणौ, घुमावीजबौ—कर्म वा० ।

घुमावदार-वि०—जिसमें कुछ घुमाव या गोलाई हो, चक्करदार ।

घुमावियोड़ौ—देखो 'घुमायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० घुमावियोड़ी)

घुम्मरणौ, घुम्मरबौ—देखो 'घुमरणौ' (रू.भे.)

घुम्मौ-सं०पु०—१ घूसा, मुष्टिका. २ खरबूजे के आकार की गोल ककड़ी (क्षेत्रीय)

घुर-सं०स्त्री०—नक्कारे की आवाज ।

घुरक-सं०स्त्री०—१ वह गड्ढा जो सियार, कुत्ते आदि द्वारा अपने पैरों से खुरच कर बनाया गया हो. २ गुफा ।

कहा०—घुरक माथै तौ स्याळियौ ही घुरका करै—अपनी मांद या गुफा पर तो शृगाल भी गुर्राता है । (मि० 'आपरी गळी में कुत्तौ ही सेर व्है')

घुरकणौ, घुरकबौ—देखो 'घुड़कणौ' (रू.भे.)

घुरकणहार, हारौ (हारी), घुरकणियौ—वि० ।

घुरकाणौ, घुरकाबौ, घुरकावणौ, घुरकावबौ—क्रि०स० ।

घुरकिग्रोड़ौ, घुरकियोड़ौ, घुरक्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुरकीजणौ, घुरकीजबौ—भाव वा० ।

घुरकाणौ, घुरकाबौ, घुरकावणौ, घुरकावबौ—देखो 'घुड़कावणौ' (रू.भे.)

घुरकियोड़ौ—देखो 'घुड़कियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० घुरकियोड़ी)

घुरकौ-सं०पु०—गुर्राने की ध्वनि, गुर्राहट ।

घुरख, घुरखाळी—देखो 'घुरक' (रू.भे.)

घुरघुर-सं०पु० [अनु०] १ सूअर, बिल्ली आदि के गले से अथवा कफ के कारण मनुष्य के गले से निकलने वाला घुरघुर का शब्द.

२ टकटकी लगा कर देखने की क्रिया ।

घुरघुराणौ, घुरघुराबौ-क्रि०अ० [अनु०] घुरघुर शब्द को ध्वनि करना ।

घुरड़-सं०स्त्री०—१ घर्षण, रगड़. २ रगड़ लगने का निशान.

३ झगड़ा ।

घुरड़का री दांन-सं०पु०—मनुष्य की मृत्यु होने के समय ब्राह्मण आदि को दिया जाने वाला दान ।

घुरड़को-सं०पु०—१ आसन्न मृत्यु के समय कफ प्रकोप से कंठ में होने वाली ध्वनि, घरघराहट. २ अंतिम सांस लेने के समय दान में दिया जाने वाला धन या पदार्थ. ३ अंतिम समय में श्वास-क्रिया का बिगाड़।

घुरड़णो, घुरड़बो-क्रि०स०—१ रगड़ना। उ०—डूंग उघाड़ै डगळ मूंछ मुख घुरड़ मुंडावै। जनम भूमि में जाय भीख लै जनम भंडावै। २ खरोंचना, खुरचना। —ऊ.का.

घुरड़ियोड़ो-भू०का०कृ०—१ रगड़ा हुआ. २ खुरचा हुआ, खरोंच. हुआ। (स्त्री० घुरड़ियोड़ी)

घुरणो, घुरबो-क्रि०अ० [सं० घुर] १ घोर शब्द होना, गरजना।

उ०—फजरां हुयणी सी दधि मथणी फुरनी, मांटां घर-घर में घण-हर सा घुरती।—ऊ.का.

२ नक्कारे नौबत आदि का बजना। उ०—१ जोइ जळद पटळ दळ संबळ उजाळ, घुरै नीसांण सोइ घणघोर।—वेलि.

उ०—२ भूटै मार घुरै त्रंबाळां, विचि आउधां वहै वरमाळां।

—गदाधर राठौड़ री गीत

३ देखो 'गुररासो' (रू.भे.)

घुरणहार, हारो (हारी), घुरणियो—वि०।

घुराणो, घुराबो, घुरावणो, घुरावबो—क्रि०स०।

घुरिओड़ो, घुरियोड़ो, घुरयोड़ो—भू०का०कृ०।

घुरीजणो, घुरीजबो—भाव वा०।

घुरमाळ-सं०स्त्री०—एक प्रकार की बंदूक।

घुरराबणो, घुरराबबो-क्रि०अ०—१ घुर्राना. २ डांटना, पीटना।

घुरळणो, घुरळबो-क्रि०स०—छोटे बच्चों द्वारा पीया हुआ दूध पुनः वमन कर बाहर निकालना, कै करना।

घुरळियो-सं०पु०—कूए से मोट (चड़स) खींचने वाले बैलों के जूए में दोनों बैलों के बाहर की ओर गर्दन की बाजू में लगाये जाने वाले डंडों में से एक। इनके लगाने से बैल अपनी गर्दन इधर-उधर अधिक नहीं हिला सकते।

घुरळी-सं०स्त्री०—१ घोड़े के मुंह में लगाई जाने वाली एक प्रकार की लगाम. २ वमन, कै।

घुरस-सं०स्त्री०—घोड़े का भूमि खोदते समय पैर रखने का ढग या क्रिया. उ०—लाख लाख रा लाखीक घुरस खाइ खाइ झपटां लै छै।

—वचनिका

घुरसली-सं०स्त्री०—जंगली मैना।

घुरसाळ-सं०स्त्री० [सं० घोटशाला] १ घुड़साला, अस्तबल. २ उल्लू पक्षी के रहने का स्थान। उ०—तिण सूं दो ही राजावां रै ऊंची आवै इसा प्रपंच सूं तो घणा प्रामारां रा घर घूकारां घुरसाळां री ही सह-वास गहै।—वं.भा.

३ कुत्ते लोमड़ी आदि के रहने का स्थान।

घुरसाळो-सं०पु०—घोंसला।

घुरस्याळ—देखो 'घुरसाळ' (रू.भे.)

घुराणो-क्रि०स०—१ घुर्राना, घुर्राहट करना. २ पीटना, मारना. ३ डराना, आंखें निकालना. ४ घोर शब्द करना. ५ नक्कारे को बजाना। उ०—लोक लाज कुळ-कांणिहु तजिकै, निरभै निसाण घुराल्यां। मीरां के प्रभु हरि अविणासी, चरण कमळ बलि जाल्यां।

—मीरां

६ गहरी नींद लेना।

घुराणहार, हारो (हारी), घुराणियो—वि०।

घुरावणो, घुरावबो—रू०भे०।

घुरायोड़ो—भू०का०कृ०।

घुराईजणो, घुराईजबो—कर्म वा०।

घुरायोड़ो-भू०का०कृ०—१ घुर्राया हुआ, घुर्राहट किया हुआ. २ पीटा हुआ, मारा हुआ. ३ डराया हुआ. ४ घोर शब्द किया हुआ. ५ नक्कारे का बजाया हुआ. ६ गहरी नींद लिया हुआ। (स्त्री० घुरायोड़ी)

घुरावणो, घुरावबो—देखो 'घुराणो' (रू.भे.)

घुरावणहार, हारो (हारी), घुरावणियो—वि०।

घुराविओड़ो, घुरावियोड़ो, घुराव्योड़ो—भू०का०कृ०।

घुरावीजणो, घुरावीजबो—कर्म वा०।

घुरावियोड़ो—देखो 'घुरायोड़ो' (रू.भे.) (स्त्री० घुरावियोड़ी)

घुरिया-सं०स्त्री०- पँवार वंश के क्षत्रियों की एक शाखा. २ डराने के उद्देश्य से आंखें निकालने की क्रिया या भाव (क्षेत्रीय)

घुरियोड़ो-भू०का०कृ०—घोर गर्जन किया हुआ, घोर शब्द किया हुआ। (स्त्री० घुरयोड़ी)

घुरियो—देखो 'घुर' (रू.भे.)

घुरी—देखो 'घुरक' (रू.भे.) उ०—लास, फोगळ, घिंटाळ ऊंटां, कातीसरो हर मास रो। से 'सेळां' घुरी घरस्याळां, आळां पंछ्यां आसरो।—दसदेव

घुळणो, घुळबो-क्रि०अ० [सं० घूर्णन, प्रा० घुलन] १ किसी द्रव्य पदार्थ या किसी वस्तु का हिलमिल जाना।

मुहा०—१ घुळ-घुळ नै वातां करणी—खूब हिलमिल कर बातें करना. २ घुळमिळ नै—खूब मेल-जोल से, मिल कर।

२ (ग्रंथि आदि का) अधिक फँसना, गाढ़ा होना। उ०—और गांठ खुल जात है, जंह लग पूगै हाथ। प्रीत गांठ नैणा घुळी, रिगस-रिगस अड़ जाय।—र.रा.

३ रोग आदि के कारण अथवा किसी मानसिक चिंता के कारण क्षीणकाय होना, निरन्तर कमजोर होना।

मुहा०—घुळ घुळ नै कांटो होणो—बीमारी आदि से बहुत दुर्बल हो जाना, चिंता के कारण सूख जाना. २ घुळ घुळ नै मरणो—कष्ट सह कर मरना।

४ व्यतीत होना, बीतना, गुजरना। उ०—बाल्ही घणा बालम

मीठी मुख बोली, घड़ियां अमरत री घुळती घणमोली ।—ऊ.का.

मुहा०—दिन घुळणा—समय गुजरना, दिन बीतना ।

५ तन्द्रित होना, झँपना, ज्यूं आंखियां घुळणी (मि० 'घुटणी' ६)

६ बजना । उ०—पब्बं धारां पाए मौत रळेगो अमरां-पुरां । ऊजळै गो गोत बूंदी सम्मरां आथांण । डम्मरां घुळंतां बास मळैगो अदोत दीहां, चम्मरां ढुळंतां गोत भळैगो चहुआंण ।—दुरगादत्त बारहठ

घुळणहार, हारौ (हारी), घुळणियौ—वि० ।

घुळवाणौ, घुळवाबौ—प्रे०रू० ।

घुळाणौ, घुळाबौ, घुळाड़णौ, घुळाड़बौ, घुळावणौ, घुळावबौ—क्रि०स० ।

घुळिग्रोड़ौ, घुळियोड़ौ, घुळ्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुळीजणौ, घुळीजबौ—भाव वा० ।

घुळाणौ, घुळाबौ–क्रि०स०—१ घुलने का कार्य कराना, द्रवित करना, मिश्रित करना. २ (ग्रन्थि आदि का) अधिक फँसाना, गाढ़ा करना. ३ रोग आदि या चिंता के कारण शरीर को निरन्तर क्षीण करना, कमजोर करना ।

मुहा०—घुळा घुळा नै मारणौ—परेशान करना, बहुत कष्ट देना ।

४ व्यतीत करना, बिताना ।

मुहा०—दिन घुळाणा—समय व्यतीत करना, समय गुजारना ।

५ तंद्रित कराना, झँपाना । उ०—अमल उगावै अंग में, निकट घुळावै नैण ।—ऊ.का. ६ बजाना ।

घुळाणहार, हारौ (हारी), घुळाणियौ—वि० ।

घुळायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुळाईजणौ, घुळाईजबौ—कर्म वा० ।

घुळणौ, घुळबौ—क्रि०अ० ।

घुळायोड़ौ–भू०का०कृ०—घुलाया हुआ । (स्त्री० घुळायोडी)

घुळावट–सं०स्त्री०—घुलने की क्रिया या भाव ।

घुळावणौ, घुळावबौ—देखो 'घुळाणौ' (रू.भे.)

घुळावणहार, हारौ (हारी), घुळावणियौ—वि० ।

घुळाविग्रोड़ौ, घुळावियोड़ौ, घुळाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुळावीजणौ, घुळावीजबौ—क्रि०अ० ।

घुळणौ, घुळबौ—क्रि०अ० ।

घुळावियोड़ौ—देखो 'घुळायोडौ' । (स्त्री० घुळावियोड़ी)

घुसण— देखो—'घुसरण' ।

घुसणौ, घुसबौ–क्रि०अ०—१ घुसना, प्रवेश करना.

यौ०—घरघुसणियौ ।

२ धँसना, चुभना. ३ दखल देना. ४ खूब ध्यान से कार्य करना ।

घुसणहार, हारौ (हारी), घुसणियौ—वि० ।

घुसवाणौ, घुसवाबौ—प्रे०रू० ।

घुसाड़णौ, घुसाड़बौ, घुसाणौ, घुसाबौ, घुसावणौ, घुसावबौ—क्रि०स०

घुसायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुसीजणौ, घुसीजबौ—भाव वा० ।

घुसवाणौ, घुसवाबौ–क्रि०स० ('घुसणौ' का प्रे०रू०) घुसाने का कार्य अन्य से कराना, घुसवाना ।

घुसवाणहार, हारौ (हारी), घुसवाणियौ—वि० ।

घुसवायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुसवायोड़ौ–भू०का०कृ०—घुसवाने का कार्य अन्य से कराया हुआ, घुसवाया हुआ । (स्त्री० घुसवायोड़ी)

घुसाड़णौ, घुसाड़बौ, घुसाणौ, घुसाबौ–क्रि०स०—१ भीतर घुसेड़ना, घुसाना, पैठाना. २ चुभाना, धँसाना. ३ दखल दिलवाना ।

घुसाड़णहार हारौ (हारी), घुसाणहार, हारौ (हारी), घुसाड़णियौ, घुसाणियौ—वि० ।

घुसाड़िग्रोड़ौ, घुसाड़ियोड़ौ, घुसाड़्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुसायोड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुसाड़ीजणौ, घुसाड़ीजबौ—कर्म वा० ।

घुसाईजणौ, घुसाईजबौ—कर्म वा० ।

घुसणौ—क्रि०अ० ।

घुसायोड़ौ–भू०का०कृ०—१ भीतर घुसेड़ा हुआ, घुसाया हुआ. २ चुभाया हुआ, धँसाया हुआ. ३ दखल दिलवाया हुआ । (स्त्री० घुसायोड़ी)

घुसाळ देखो 'घुरसाळ' (रू.भे.)

घुसावणौ, घुसावबौ—देखो 'घुसाणौ' (रू.भे.)

घुसावणहार, हारौ (हारी), घुसावणियौ—वि० ।

घुसाविग्रोड़ौ, घुसावियोड़ौ, घुसाव्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुसावीजणौ, घुसावीजबौ—कर्म वा० ।

घुसावियोड़ौ—देखो 'घुसायोड़ौ' । (स्त्री० घुसावियोड़ी)

घुसियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ घुसा हुआ. २ धँसा हुआ, चुभा हुआ । (स्त्री० घुसियोड़ी)

घुसेड़णौ, घुसेड़बौ—देखो 'घुसाणौ' (रू.भे.) ।

घुसेड़णहार, हारौ (हारी), घुसेड़णियौ—वि० ।

घुसेड़ाणौ, घुसेड़ाबौ, घुसेड़ावणौ, घुसेड़ावबौ—प्रे०रू० ।

घुसेड़िग्रोड़ौ, घुसेड़ियोड़ौ, घुसेड़्योड़ौ—भू०का०कृ० ।

घुसेड़ीजणौ, घुसेड़ीजबौ—कर्म वा० ।

घुसेड़ियोड़ौ–भू०का०कृ०—घुसाया हुआ । (स्त्री० घुसेड़ियोड़ी)

घुसौ–सं०पु०—१ गुप्तेन्द्रिय के बाल. २ देखो 'घूंसौ' (रू.भे.)

घुसण, घुस्रन–सं०स्त्री० [सं० घुसृण] १ केशर (अ.मा.)

उ०—अजिर कुंड अग्खिय उनहु, रखहु घुस्रन घुळाइ । जिहिं मरसौ निज वस्त्र जुहि, अकथित बोलहिं आहि ।—वं.भा.

२ आवाज, ध्वनि ।

घूंगटौ, घूंघट—देखो 'घूघटौ' (रू.भे.) उ०—गायण दास खवास भणै अवसर मन भांणौ, घट वाल्ही आप री तिके पट घूंघट ताणौ ।

—रा.रू.

(अल्पा० 'घूंघटड़ो, घूंघटियो')

घूंघटपट–सं०पु०यौ०—घूंघट निकालने का वस्त्र या वस्त्र का छोर।

घूंघटियौ, घूंघटौ–सं०पु० [सं० गुंठ] पर्दा करने के उद्देश्य से अथवा लज्जावश मुंह को ढकने के लिए चेहरे के सम्मुख डाला जाने वाला साड़ी या ओढ़नी का एक भाग।

पर्याय०—अवगुंठण, छेड़ो, पल्लो।

मुहा०—१ घूंघटौ आघौ लेणौ—घूंघट हटाना, परदा दूर करना, नई दुल्हन का घूंघट उठा कर मुंह देखना. २ घूंघटौ उठाणौ—देखो 'घूंघटौ आघौ लेणौ'. ३ घूंघटौ करणौ, घूंघटौ काढ़णौ—मुंह छिपाना, दुपट्टे या साड़ी के सर पर रहने वाले भाग से मुंह को ढंकना, शर्माना, झेंपना, कायरता दिखाना. ४ घूंघटौ राखणौ—लज्जाशील होकर रहना।

(रू०भे०-घूंघट)

(अल्पा०-घूंघटड़ो, घूंघटियो)

घूंघर–सं०पु०—बालों में पड़ी हुई मरोड़ या छल्ले।

घूंघरवाळौ–वि०—जिसके टेढ़े-मेढ़े व मरोड़दार बाल हों, छल्लेदार केशों वाला।

घूंघरौ—देखो 'घुंघरौ' (रू.भे.)

घूंघौ–सं०पु०—१ नाक के अन्दर होने वाला सूखा मैल (क्षेत्रीय) २ इमली के बीज।

घूंची–सं०स्त्री०—कोल्हू का वह मुड़ा हुआ काष्ठ का डंडा जो 'जाट' के ऊपर लगा कर नीचे की ओर आता है।

मुहा०—घूंची मारणौ—सिकुड़ कर बैठना।

घूंट–सं०पु०—एक बार में गले के नीचे उतारा जाने वाला या उतारा जा सकने वाला द्रव पदार्थ। उ०—सतगुरु की परसाद, सुधा मद घूंट न सीखी।—ऊ.का.

क्रि०प्र०—उतारणौ, पीणौ, लेणौ।

मुहा०—१ घूंट घूंट पीणौ—धीरे-धीरे पीना, थोड़ा-थोड़ा कर के पीना. २ घूंट पीणौ—बरदाश्त करना, क्रोध का शमन करना. ३ घूंट लेणौ—थोड़ा-थोड़ा कर के पीना, एक एक घूंट उतारना।

घूंटणौ, घूंटबौ–क्रि०स०—१ पानी या किसी अन्य द्रव पदार्थ को घूंट-घूंट कर के गले से नीचे उतारना, पीना। उ०—बांणी पवित्र करिस सीतावर, नित प्रत क्रीत प्रकासे नरहर। नासा बिसन करिस इम निमळ, प्रभु घूंटे तो चरणां परमळ।—ह.र.

घूंटळवाळौ–वि० (स्त्री० घूंटळवाळी) पैरों को समेट कर घुटनों को सीने के सम्मुख रख कर सोने वाला। उ०—पीपा राईका रा बेटा-पोतां सांढां री दूध पीधौ, मेहरै री बेटौ घूंटळवाळै पग समेट सूतौ।
—बां.दा.ख्यात

घूंटियौ—देखो 'घूंट' (अल्पा०) उ०—नीमां चढ़ी गिलोय वणै वडी गुणकारी। छः आना भर भाव, फळावै ग्रांम पंसारी। काढ़ौ पांणी-झरां, घूंटियौ गुजराती में। कमजोरी में क्वाथ, पीड़ होयां छाती में।
—दसदेव

घूंटी–सं०स्त्री०—एक प्रकार का बाल रोग, मृगी, अपस्मार।
उ०—रिव रिव आया नी छाया सिर रोळं। घूंटी आया जिम काया चख घोळं।—ऊ.का.

२ जन्मजात बच्चे को उदर शुद्धि के लिए दी जाने वाली औषधि।

यौ०—जनमघूंटी।

घूंडी—१ देखो 'घुंडी' (रू.भे.) २ गांठ, ग्रंथि।
उ०—हांजी म्हारा सायबा दिल की तौ घूंडी जी खोल मांनूं ना मांनूं ना हा जर गोरड़ी जी म्हारा राज, मांनूं ना हाजर गोरड़ी जी म्हारा राज।—लो.गी.

घूंदणौ, घूंदबौ—देखो 'खूंदणौ' (रू.भे.) उ०—तूं डां गज फेटां तुरी, डाढ़ां भड़ ओभाड़। हेकण कवळं घूंदिया, फौजां पाथर पाड़।
—वी.स.

घूंदणहार, हारौ (हारी), घूंदणियौ—वि०।

घूंदाड़णौ, घूंदाड़बौ, घूंदाणौ, घूंदाबौ, घूंदावणौ, घूंदावबौ—क्रि०स०।

घूंदिओड़ो, घूंदियोड़ो, घूंदयोड़ो—भू०का०कृ०।

घूंदीजणौ, घूंदीजबौ—कर्म वा०।

घूंदरौ–सं०पु०—एक प्रकार का बरसाती पौधा (क्षेत्रीय)

घूंदाड़णौ, घूंदाड़बौ, घूंदाणौ, घूंदाबौ—देखो 'खूंदाणौ' (रू.भे.)

घूंदायोड़ो—देखो 'खूंदायोड़ो' (रू.भे.)

(स्त्री०-घूंदायोड़ी)

घूंदावणौ, घूंदावबौ—देखो 'खूंदावणौ' (रू.भे.)

घूंदावियोड़ो—देखो 'खूंदावियोड़ो' (रू.भे.)

(स्त्री० घूंदावियोड़ी)

घूंदियोड़ो—देखो 'खूंदियोड़ो' (रू.भे.) (स्त्री० घूंदियोड़ी)

घूंमटणौ–क्रि०अ०—उमड़ना। उ०—दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणावै। घुमंट घटा ऊलर होइ आई, दांमिण दमक डरावै।
—मीरां

घूंमणौ, घूंमबौ—देखो 'घूमणौ' (रू.भे.) उ०—१ चाळक्यराज रा सूरबीर लोहछक होय घूंमता लाधा।—वं.भा.

घूंस–सं०स्त्री०—१ चूहे की जाति का एक बड़ा जन्तु. २ रिश्वत, उत्कोच, घूस।

घूंसणौ, घूंसबौ–क्रि०स०—प्रहार करना, मारना।

घूंसियोड़ो–भू०का०कृ०—१ प्रहार किया हुआ। (स्त्री० घूंसियोड़ी)

घूंसौ–सं०पु०—१ मारने के उद्देश्य से उठाई गई बंधी हुई मुट्ठी.
२ बंधी हुई मुट्ठी का प्रहार।

क्रि०प्र०—खाणौ, चलाणौ, देणौ, मारणौ, लगाणौ।

मुहा०—१ घूंसौ लगाणौ—घूंसे से मारना. २ घूंसा री कांई उधार—मार-पीट का बदला तुरन्त लेना चाहिये।

(यौ०-घूंसेबाजी)

घू–सं०पु० [सं० हूहू] १ देवता. २ हाथी. ३ उल्लू. ४ आकाश।
सं०स्त्री०—५ मदिरा. ६ गुदा. ७ पृथ्वी. ८ ग्यारह की संख्या (एका०)

घूक, घूकार–सं०पु० [सं०] १ उल्लू पक्षी। उ०—तिण सूं दो ही राजावां रै ऊंची भावै इसा प्रपंच सूं तो घणा ग्रामारां रा घर घूकां रा घ ुरसाळां रौ ही सहवास गहै।—वं.भा.

२ भय, डर। उ०—हह खांनसाह किए घूक होय, वुस्टी के करवै टूक दोय।—ऊ.का.

सं०स्त्री०—३ उल्लू पक्षी की आवाज. ४ ध्वनि, घोष।

घूगस–सं०पु०—हेमंत ऋतु के बादल।

घूघ–सं०स्त्री०—युद्ध में शिर को शत्रु के प्रहार से बचाने के लिए पहनी जाने वाली लोह, पीतल या किसी धातु की बनी टोपी, शिरस्त्राण।

उ०—कोरड़ां लोहड़ां तूटै बिछूटै खक्कड़ां कड़ां, नीभकां नीवाड़ा भड़ां हाकलै नत्रीठ। घूघ ग्रोजड़ां झड़ां धजवड़ां भांजि घड़ा, राठोड़ां ग्रोनाड़ां लागौ वागौ बिने रीठ।

—राठौड़ किसनसिंह रौ गीत

घूघर–सं०पु०—१ बालों में पड़े हुए मोड़ या बल. २ नूपुर।

(ग्रल्पा०–घ ूघरियौ)

३ देखो 'घुंघरौ'।

(ग्रल्पा०–घ ूघरड़ौ)

घूघरड़ौ—१ देखो 'घुंघरौ' (ग्रल्पा०) २ देखो 'घ ूग्घी' (ग्रल्पा०)

घूघरमाळ–सं०स्त्री०—घ ुंघरू की माला जो पशुग्रों के कंठ में डाली जाती है। उ०—१ कांम बिरंचि विमास क स्त्री-हथ सूं करी। जे हरी घूघरमाळ प्रगटै झणंकै जियां।—बां.दा.

उ०—२ हाथी सहस बिच्यारि, पाखरीया घंटा घूघरमाळ।

—कां.दे.प्र.

घूघरियौ—देखो 'घ ूघर' २, ३ (रू.भे.) उ०—सातां दीप रास रमै सातुं, घूघरिया घमकांणी। बीण म्रदंग बजावै डैरूं, गावै ग्रम्रत बांणी।—राघवदास भादौ

घूघरौ–१ देखो 'घ ुंघरौ'। उ०—घम घमंत घूघरी, पाय नेउरी रणं-झणं। डम डमंत डाकली, ताळ ताळी बज्जे तणं।—देवि.

२ एक लोक गीत का नाम. ३ पायल, नूपुर. ४ उबले हुए गेहूं या चने। उ०—दिन ूंगै घूघरयां रांध'र मजूरी जोवण निकळसां।

—वरसगांठ

५ एक प्रकार की सरकारी लाग (मि० 'गुगरी')

घूघरौ–सं०पु०—घ ुंघ ूरू। उ०—चरणे चांमीकर तणा चंदाणणि, सज नूपर घूघरा सजि। —वेलि०

घूघी—१ देखो 'घुग्घी' (रू.भे.) २ वाचा की पुत्री जो देवी का ग्रवतार मानी जाती है।

घूघू–सं०पु०—उल्लू पक्षी। उ०—१ ग्रलेखां ग्रांख्यां री उर जोत, कियौ वे घूघू ग्रांख उजास।—सांझ उ०—२ लोग घुगल कांनां लग्या, घूघू बोल्यौ गेह। भायां सूं मेळप नहीं, विपत लिखी विधि एह।—बां.दा.

घूड़–सं०पु०—सूग्रर के मुंह का ग्रग्र भाग या इस भाग से किया जाने वाला प्रहार या टक्कर। उ०—घर घर फुरणियां ग्राया छै, माछुरां रा संताया। घोहर नै झाड़ रा बीड़ां सुख छै। घूड़ वाहै छै पूछै-सू जड़ां समेत उखेड़ नांखै छै।—रा.सा.सं.

घूड़िया–सं०पु० (बहु०) कुग्रें से चरस निकालने के लिए चरस की नाली वाली रस्सी के सहारे के लिए लगाई जाने वाली गिर्री के दोनों ग्रोर के खूंटे जिसमें गिर्री की धुरी रखी जाती है।

घूची–सं०स्त्री०—कोल्हू के 'जाट' के ऊपर खुटिये की तरह का एक उपकरण।

घूटणौ, घूटबौ–क्रि०स०—(गला) घोंटना।

घूटणहार, हारौ (हारी), घूटणियौ—वि०।

घूटिग्रोड़ौ, घूटियोड़ौ, घूटयोड़ौ—भू०का०कृ०।

घूटीजणौ, घूटीजबौ—कर्म वा०।

घूटियोड़ौ–भू०का०कृ०—घोंटा हुग्रा। (स्त्री० घुटियोड़ी)

घूथ–सं०स्त्री०—घ ूंसा, मुष्टिका, प्रहार। उ०—लात घूथ लाठियां बणी, ग्राछी बरखा बळ। जूत भेंट व्हा जठे, नाक हुग्यौ निछरावळ।

—ऊ.का.

घूब–सं०स्त्री०—१ कूबड़, टेढ़ापन. २ किसी बर्तन के गिरने या टक्कर लगने से पड़ने वाली मोच।

घूबौ–वि०—१ कुबड़ा. २ जिसके मोच पड़ी हुई हो (बर्तन)

घूम–सं०स्त्री०—१ घुमाव, मोड़, चक्कर। उ०—खड़ा भड़ घूम चके-रिय खाय।—सू.प्र.

२ वह जगह जहां से किसी दूसरे स्थान के लिए मुड़ना पड़े।

घूमघुमाळौ–वि०—१ घेरदार. २ खूब घूमने वाला, घुमक्कड़।

घूमणौ, घूमबौ–क्रि०ग्र०—१ घ ूमना, इधर-उधर फिरना, टहलना. २ सफर करना, यात्रा करना. ४ लौटना. ५ मुड़ना. ६ चक्कर खाना, गोल-गोल घूमना। उ०—घूम घटा घर घालियौ, ऊपर लूंब ग्रछेह। बालम नित बरसावजो, महलां रंग भर मेह।—र.रा.

७ किसी देव विशेष के बल से उसके ग्रनन्य भक्त का ग्रपने शरीर को घ ुमाना।

घूमणहार, हारौ (हारी), घूमणियौ—वि०।

घुमाड़णौ, घुमाड़बौ, घुमाणौ, घुमाबौ, घुमावणौ, घुमावबौ—स०रू०।

घूमीजणौ, घूमीजबौ—कर्म वा०।

घूमर—१ देखो 'घूमरौ' (रू.भे.) उ०—छछोहा कपी घूमरा एम छूटा, फबै जांण कोटेक सांमंद्र फूटा।—सू.प्र.

सं०स्त्री—२ वृत्ताकार रूप में किया जाने वाला एक प्रकार का लोक नृत्य। उ०—म्हांरी घूमर छै नखराळी ए माय, घूमर रमवा जाबा दे।

—लो.गी.

घूमरौ–सं०पु०—१ समूह, झुंड। उ०—१ घणै सौंघे घणी केसरि ग्रगरचै सूं गरकाब कियां थकां घोड़ां रजपूतां रै घूमरै सूं ग्राइ तोरण बांदिग्रो छै।—रा.सा.सं.

२ घेरा। उ०—लोग साथ रा सारा ही भेळा हुग्रा। लोग सगळा

घूमरी कियां ऊभा राव री ढील संभाळै छै।—डाढ़ाळा सूर री वात

घूमाळो—देखो 'घूमघुमाळो' (रू.भे.) उ०—ग्रधरां रै रंग दीजै है, तिल तिकै कीजै है, घूमाळो घाघरो पहरीजै है।—र. हमीर

घूमियोड़ौ–भू०का०कृ०—घूमा हुग्रा। (स्त्री० घूमियोड़ी)

घूमूं, घूमौ–सं०पु०—घूंसा, मुष्टिका-प्रहार।

घूर–सं०पु०—१ पशु के पेट पर सींग या किसी ग्रन्य पैनी चीज का ग्राघात लगने से होने वाला रोग विशेष. २ नाश, ध्वंश।

घूरण–सं०स्त्री०—घूरने की क्रिया या भाव।

घूरणौ, घूरबौ–क्रि०ग्र०—१ टकटकी लगा कर देखना, घूरना, ताकना। मुहा०—घूर घूर नै देखणौ—टकटकी लगा कर देखना. २ निद्रावस्था में नाक में से श्वास के साथ घर्र-घर्र शब्द निकालना. ३ देखो 'घुरणौ' (रू.भे.) उ०—फरक्कै भंड नेजां ग्राविया लड़ंग फौजां। घूरतां ग्रंबाळां रणताळां दाव-घाव। लोहड़ां देयंतौ झाट, ऊससं गैणाग लागौ। सेवा भड़ां हूंत वागौ 'जैमाल' सुजाव।

—दांनजी बोगसौ

घूरणहार, हारौ (हारी), घूरणियौ—वि०।

घूराणौ, घूराबौ, घूरावणौ, घूरावबौ—क्रि०स०।

घूरिग्रोड़ौ, घूरियोड़ौ, घूर्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घूरीजणौ, घूरीजबौ—भाव वा०।

घूराणौ—देखो 'घुराणौ' (रू.भे.)

घूराणहार, हारौ (हारी), घूराणियौ—वि०।

घूरायोड़ौ—भू०का०कृ०।

घूराईजणौ, घूराईजबौ—कर्म वा०।

घूरायोड़ौ—देखो 'घुरायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० घूरायोड़ी)

घूरावणौ, घूरावबौ—देखो 'घुराणौ' (रू.भे.)

घूरावणहार, हारौ (हारी), घूरावणियौ—वि०।

घूराविग्रोड़ौ, घूरावियोड़ौ, घूराव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घूरावीजणौ, घूरावीजबौ—कर्म वा०।

घूरावियोड़ौ—देखो 'घुरायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० घुरावियोड़ी)

घूरियोड़ौ—१ देखो 'घुरियोड़ौ' (रू.भे.) २ टकटकी लगा कर देखा हुग्रा। (स्त्री० घूरियोड़ी)

घूरी–सं०स्त्री०—सियार, लोमड़ी ग्रादि के रहने की खोह, मांद।

घूस—देखो 'घूंस' (रू.भे.)

घूसौ—देखो 'घूंसौ' (रू.भे.)

घूहौ–सं०पु०—गुप्तेन्द्रिय के बाल।

घेंचणौ, घेंचबौ—देखो 'घेचणौ' (रू.भे.) उ०—उस सुभै रनि मूंठ वाळे ने जुल्म किया, तमांम मुसलमांनों कौ घेंचि किल्ले की रनी में दिया।—ला.रा.

घे–सं०स्त्री०—१ गरदन. २ छड़ी. ३ चौकी. ४ कीली. सं०पु०—५ कुत्ता (एका०)

घेउर, घेऊर—देखो 'घेवर' (रू.भे.) उ०—खुरमा खंडी खुप्परी; चमक्कै घमचक्कै। भेजा भात भराय कै गिलि जात गजक्कै। फैले घेउर पिप्फरन छैले बनि छक्कै। बुक्का ठोर बनाय कै बुक्का भरि हुक्कै।

—वं.भा.

घेघूंबणौ, घेघूंबबौ–क्रि०स०—१ मिलना, ग्रालिंगन करना। उ०—घर स्यांमां सरिस स्यांमतर जळधर, घेघूंबै गळिबाहां घाति।—बेलि.

२ देखो 'घेघूमणौ'।

घेघूंबणौ, घेघूंबबौ–क्रि०ग्र०—१ मंडराना। २ भिड़ना। उ०—ग्रठी हूं जोधांण नाथ नागाण री नाथ उठी। घेघूंबिया थाट, बे बे मेलने को घाव। —मारवाड़ रा ग्रमरावां री वारता

घेड़—देखो 'घड़ली' (रू.भे.)

घेचणौ, घेचबौ–क्रि०स०—१ घसीटना। उ०—घरणी निज परणी घर बाहिर घेचै, वनिता वनितावत निलजा नर बेचै।—ऊ.का.

२ मवेशियों को हांक ले जाना। उ०—१ भालाळ भोपाळ, पाल गयौ परणीजवा। विण धणिया धणवाळ, गढ़वाड़ां वित्त घेचणौ।

—पा.प्र.

उ०—२ पछै वळै हमांऊ पातसाह विक्रमादीत री मदत करी, हमांऊ चीतोड़ ग्रायौ, बहादुर नूं घेच काढ़ियौ।—नैणसी

घेचणहार, हारौ (हारी), घेचणियौ—वि०।

घेचाणौ, घेचाबौ, घेचावणौ, घेचावबौ—प्रे०रू०।

घेचिग्रोड़ौ, घेचियोड़ौ, घेच्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घेचीजणौ, घेचीजबौ—कर्म वा०।

घेचियोड़ौ–भू०का०कृ०—१ घसीटा हुग्रा. २ पशुग्रों को हांका हुग्रा. (स्त्री० घेचियोड़ी)

घेटियौ–सं०पु०—(स्त्री० घेटी) भेड़ का बच्चा, मेमना।
वि०—नाटे कद का, ठिगना।

घेटुग्रौ–सं०पु०—गर्दन या कंठ का ग्रागे की ग्रोर का उभरा हुग्रा छोटा भाग, घेंटुग्रा, घीची (क्षेत्रीय)

घेटौ–सं०पु० (स्त्री० घेटी) १ नर भेड़, मेंढ़ा. २ गेहूं में पड़ने वाला

घेटौ–वि०—मोटाताजा, हृष्टपुष्ट। उ०—घोड़ा दौड़ रह्या छै, होकारौ हगांमौ होय रह्यौ छै, जितरै बीच थोहर झाड़ां रा बीड़ां मांहा खरगोस उठिया छै सू किण भांत रा छै, मोटा घेटा छै, तोबड़िया छै।

—रा.सा.सं.

घेर–सं०पु०—चारों ग्रोर वृत्ताकार फैलने का भाव, घेरा, परिधि. २ चक्कर, फेरा, घुमाव। उ०—सूंडाळा घड़ सांमही, फेरी जेसळमेर। पाछौ वळ पतसाह रौ, घिरियौ घाते घेर।—नैणसी

३ घर, गृह (रू.भे.)

घेरउ–सं०पु०—झुंड, समूह। उ०—केलि कहतां क्रीड़ा, त्यें कौ घणौ सुख पायौ। स्यांम रूक्मणीजी। स्यांमा रुक्मणीजी के संगि। सखी जु मन की राखणहार त्यांकौ घेरउ जुड़ रह्यौ छै।—बेलि. टी.

घेरघार–सं०पु० [ग्रनु०] १ चारों ग्रोर से घिरने या ग्राच्छादित हो जाने की क्रिया. २ खुशामद. ३ विस्तार. ४ परिधि, घेरा।

घेरघुमाळी—देखो—'घूमघुमाळी'। उ०—घेरघुमाळी गवरल घाघरो, जी बैरे म्रोढण दिखणी रो चीर।—लो.गी.

२ देखो 'घेरघूमाळी' (रू.भे.)

घेरघुमेर—वि०—१ सघन, घनी छाया वाला. २ विस्तृत परिधि वाला, घेरदार।

घेरणी—सं०स्त्री०—सूत कातने के चरखे को चलाने का हत्था।

घेरणौ, घेरबौ—क्रि०स०—१ चारों ओर हो जाना, चारों ओर फैल जाना. २ किसी शहर, दुर्ग आदि को अधिकार में करने हेतु उसके चारों ओर घेरा डालना। उ०—१ दुसमण री फौज गढ़ घेरियौ तठै गढ़ री धणी साको कर मरण री बिचारी।—वी.स.टी.

उ०—२ संमत १६५६ सोझत सकतसिंघजी नूं हुई, तद भाटी सुरतांण रावळ साथ जाय सोझत घेरी थी।- -नैणसी

३ मवेशियों को चराना या हांकना. ४ हल पलटना, दिशा बदलना. ५ नाली में बहते पानी को क्यारी में मोड़ना। उ०—बायरै रा ठंडा झोला सांमी छाती झेलजै। पैंलो जोटो म्रावै है, पांणतिया खोडौ घेरजै।—रेवतदांन

घेरणहार, हारो (हारी), घेरणियौ—वि०।

घेराड़णौ, घेराड़बौ, घेराणौ, घेराबौ, घेरावणौ, घेरावबौ—क्रि०स०। (प्रे.रू.)

घेरिम्रोड़ौ, घेरियोड़ौ, घेर्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घेरीजणौ, घेरीजबौ—कर्म वा०।

घेरत—देखो 'घिरत' (रू.भे.)

घेरदार—वि०—जिसमें घेर हो, घेरयुक्त।

घेराई—सं०स्त्री०—१ घेरने की क्रिया या भाव. २ घेरने के कार्य की मजदूरी।

घेराणौ, घेराबौ—क्रि०स०—घेरने का कार्य किसी दूसरे से कराना।

घेरायोड़ौ—भू०का०कृ०—घेरने का कार्य कराया हुआ। (स्त्री० घेरायोड़ी)

घेराव—सं०पु०—१ घेरने का भाव. २ देखो 'घेर'।

घेरावणौ, घेरावबौ—देखो 'घेराणौ' (रू.भे.) उ०—पीछै ऐ पूलो वगैरै साराई नरसिंघ सूं मिळिया, ग्ररज कयो, 'म्हारौ बदळौ घेरावो, थांनूं बा'रै महीनां मैं इतरौ मासूल भरसां।—द.दा.

घेरावियोड़ौ—देखो 'घेरायोड़ौ' (स्त्री० घेरियोड़ी)

घेरियोड़ौ—भू०का०कृ०—घेरा हुआ। (स्त्री० घेरियोड़ी)

घेरौ—सं०पु०—१ चारों ओर का विस्तार या फैलाव, किसी गोल स्थान या वस्तु की परिधि, सीमा। उ०—निचलौ होठ जाडौ नै लटकतौ। उपरला दो दांत पड़ियोड़ा। खांधा थोड़ासा मांय बैठोड़ा। धूंद रौ घेरौ सीना सूं लांठौ। निचलौ तंग हळकौ नै ऊपरलौ भारी।

—वांणी, विजयदांन देथौ

२ वह वस्तु जो किसी स्थान के चारों ओर हो, घेरने की क्रिया या भाव। उ०—थाले बिसमत मत मग मग ठग घेर। फोरी किसमत सूं पग पग-पग फेरौ।—ऊ.का.

३ सेना का किसी गढ़, दुर्ग आदि को चारों ओर से आवेष्ठन करना, चारों ओर से आक्रमण करना। उ०—१ नागौर जोधपुर घेरौ हुवौ। तिण समै माहाराज स्त्री विजयसिंहजी रो मोहल सेखावत नै कंवर जेसळमेर रै गढ़ में रह्या।—नैणसी उ०—२ दक्खणियै घेरौ दियौ, कटकै कोइ न थग्ग। अन घ्रत खड़ इंधण दुलभ, चिहुं दिस रोके मग्ग।—गु.रू.बं.

४ घिरा हुआ स्थान. ५ किसी स्थान या वस्तु आदि को चारों ओर से घेरने वाली वस्तु. ६ किसी वाद्य या वस्तु का गोल वृत्ताकार भाग, चक्कर।

घेवर—सं०पु० [सं० घृत पूर] पतले घुले हुए मैदे की घी और चीनी के संयोग से बनाई जाने वाली एक मिठाई जिसमें जाली सी पड़ी होती है और जिसका आकार छोटी गोल थाली की भाँति होता है।

कहा०—घेवर कै' हूं मीठौ कै म्हारौ लारलौ पग देखौ—घेवर कहता है कि मैं मीठा हूँ, इसके लिए मेरा एक अंग देखो, अर्थात् मुझ में शक्कर डाली जाती है। किसी मनुष्य के भले या बुरे का पता उसके खुद के कहने से नहीं लगता अपितु उसके वंश अथवा कार्य-कलापों से लगता है।

(अल्पा०—घेवरियौ)

घैणौ—सं०पु०—धुआँ (क्षेत्रीय)

घैसाड़, घैसाहड़, घैसाहर—देखो 'घांसाहर' (रू.भे.) उ०—१ तंडै जोगणी महेस संडै उमंडै पर बैताळ। घुमंडै प्रचंडै थंडै उडंडै घैसाड़।

—राजा रायसिंह झाला रौ गीत

उ०—२ विहारी दळ विहंडी जीपि लीधौ जाळंधर, वीर भंबाळ वजाइ सभे फौजां घैसाहर।—सू.प्र.

उ०—३ ग्रभमल मिळे हुसनम्रली ग्रणभंग, साइत मज्झ फिरै घैसाहर।—सू.प्र.

घैड़, घैड़ली—देखो 'घड़ली' (रू.भे.)

घोंई—सं०स्त्री०—१ खेत में सिंचाई के समय पानी की नाली को साफ करने के लिए उसमें घुमाई या फिराई जाने वाली झाड़ी का गुच्छा जिस पर बोझा रख कर खींचते या फिराते हैं. २ कँटीली झाड़ियों का समूह।

घोंघौ—सं०पु०—नदी, तालाब या जलाशय में पाया जाने वाला शंख की तरह का एक कीड़ा।

वि०—१ मूर्ख, मूढ़. २ जड़. ३ निस्सार।

घोंटी—सं०स्त्री०—गरदन, ग्रीवा।

घोंसलौ—सं०पु०—घास-फूस व तिनकों आदि का बनाया गया पक्षियों का घोंसला अथवा निवास-स्थान। नीड़।

घोई—सं०स्त्री०—१ वक्रता, टेढ़ापन. २ घुमाव, मोड़।

घोउकार—सं०स्त्री०—वाद्यों की ध्वनि। उ०—इसौ तालबखांनौ मंडै छै। घोउकार पड़ि रहै छै।—सयणी री बात

घोक—सं०पु० [सं० घोष] १ गर्जन, घोष। उ०—बड़े घोक घावां, घड़ी दोय घावां।—रा.रू.

२ किनारा, तट, कूल. ३ अहीरों की बस्ती. ४ अहीर जाति का व्यक्ति. ५ प्रणाम, नमस्कार (मि० 'धोक')

सं०स्त्री०—द्रव पदार्थों (यथा नदी के जल आदि) का तीव्र प्रवाह।

घोकणी, घोकबौ—देखो 'घोखणी' (रू.भे.)

घोकाणी, घोकाबौ—देखो 'घोखाणी' (रू.भे.)

घोकार-सं०स्त्री० [अनु०] प्रत्यंचा की ध्वनि। उ०—तठा उपरांति करि नै राजांन सिलांमति पचास टांक चिले री'' अणहारी कबांण रा घोकार वाजि नै रहिआ छै।—र सा.सं.

घोकायोड़ौ, घोकावियोड़ौ—देखो 'घोखायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० घोकायोड़ी)

घोकियोड़ौ—देखो 'घोखियोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० घोकियोड़ी)

घोख-सं०पु० [सं० घोष] १ शब्द, घोष, आवाज। उ०—१ नीसांण घोख कर अमल नोख, जोधांण करै आथांण जोख।—वि.सं.

उ०—२ वायक सतगुरु वेंद री, घणौ करै हित घोख। रे इण लालच रोग री, सद ग्रोखद संतोख।—बां.दा.

२ गायों को रखने का अहाता, गौशाला। उ०—संयोगिणी चीर रई कैरव स्त्री, घर हटताळ भमर गौ घोख।—वेलि.

घोखणौ, घोखबौ-क्रि०स० [सं० घोष] याद करने के लिए बार-बार पढ़ना या उच्चारण करना, रटना, किसी ध्यान या विद्या को प्राप्त करने के लिए उसका अधिक मनन करना।

घोखणहार, हारौ (हारी), घोकणियौ—वि०।

घोखाणौ, घोखाबौ, घोखावणौ, घोखावबौ—क्रि०स०।

घोखिओड़ौ, घोखियोड़ौ, घोख्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घोखीजणौ, घोखीजबौ—कर्म वा०।

घोखाणौ, घोखाबौ-क्रि०स० ('घोखणौ' का प्रे०रू०) याद करने का कार्य किसी दूसरे से करवाना, रटाना।

घोखाणहार, हारौ (हारी), घोखाणियौ—वि०।

घोखावणौ, घोखावबौ—रू०भे०।

घोखायोड़ौ—भू०का०कृ०।

घोखाईजणौ, घोखाईजबौ—कर्म वा०।

घोखायोड़ौ-भू०का०कृ०—बार-बार उच्चारण करा के याद कराया हुआ, रटाया हुआ। (स्त्री० घोखायोड़ी)

घोखावणौ, घोखावबौ—देखो 'घोखाणौ' (रू.भे.)

घोखावणहार, हारौ (हारी), घोखावणियौ—वि०।

घोखाविओड़ौ, घोखावियोड़ौ, घोखाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घोखावीजणौ, घोखावीजबौ—कर्म वा०।

घोखावियोड़ौ—देखो 'घोखायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० घोखावियोड़ी)

घोखिओड़ौ-भू०का०कृ०—रटा हुआ, याद किया हुआ। (स्त्री० घोखियोड़ी)

घोघ-सं०पु०—फेन, झाग। उ०—तनै दाखवै जोसवाळी तरक्कां, करै दांत आलावता झासळक्कां। जमै गूगळा घोघ दोनूं जबाड़ै, कवी आंरिण झागूंड लूंणी कराड़ै।—रा.रू.

घोघड़मिन्नी-सं०पु०—बड़ा बिल्ला, बिलाव।

घोघी-सं०स्त्री०—१ मूर्च्छा. २ देखो 'घुग्घी' (रू.भे.)

घोघौ-सं०पु०—चने की फसल को हानि पहुँचाने वाला एक छोटा कीड़ा।

घोड़-सं०पु०—घोड़ा (महत्व०) उ०—१ गुड़घा गज ग्राब गुड़ावत गोड़, घणा सहि घाव पड़या कइ घोड़।—मे.म.

उ०—२ मोवन री मा बोली—'पं'ली छोरयां री फिकर करणी पड़ती। हां, छोरयां-नै-ई सगळा कं'वै है, घोड़-री-घोड़ करली है।'—वरसगांठ

घोड़चढ़ी—देखो 'घुड़चढ़ी' (रू.भे.)

घोड़चौ-सं०पु०—१ अश्वारोही, घुड़सवार। उ०—तद हजार सात-आठ पखरैत तबलबंध, सेर-जुवान सीपाही राखिया। कदे'क बा'रै चढ़ै, तद ५०० घोड़चौ सुतरनाळ रांमचंगी लियां चढ़ै।

—जगमाल मालावत री बात

सं०स्त्री०—२ सारंगी या तंबूरे में तारों के नीचे की लकड़ी।

घोड़तौ-सं०पु०—घोड़ा।

घोड़बच-सं०स्त्री०—घोड़े को दी जाने वाली 'बच' नाम की एक औषधि।

घोड़राई-सं०स्त्री०—राई का एक भेद जिसके दाने बड़े-बड़े होते हैं।

घोड़रोज-सं०पु०—घोड़े की भाँति तेज भागने वाली एक प्रकार की नील गाय।

घोड़लियौ घोड़लौ-सं०पु० (स्त्री० घोड़ली) १ घोड़ा (अल्पा०)

उ०—१ साथ्यां रे साथ्यां, थारा घोड़लियां पर जीण मंडाय। म्हांरे लाडल जंवाई री सुरंगी सागी थे करो।—लो.गी.

उ०—२ इण भांत झालो ठाकुरसिंह ऊभौ ऊभौ विसूरणा करै छै। हाथ मसळै छै। घोड़लौ आपरी सवारी रौ सुन्हली साखत सूं खेत मांहीं पड़ियौ छै।—डाढ़ाळा सूर री बात

२ दीवार में लगाई जाने वाली लकड़ी की वह खूंटी जिसका अग्र भाग घोड़े की आकृति का होता है।

घोड़सार, घोड़साळ-सं०स्त्री०यौ० [सं० घोटशाला] अस्तबल, घुड़साल।

घोड़ाकरंज-सं०पु० [सं० गूत करंज] एक तरह का करंज (वृक्ष) वि०वि०—वैद्यक में इसे चर्म रोग, बवासीर आदि को दूर करने वाला कहा गया है।

घोड़ाकांमळ-सं०स्त्री०—प्रजा से वसूल किया जाने वाला एक प्रकार का सरकारी कर।

घोड़ागांठ-सं०स्त्री०—रस्सी में लगाई जाने वाली एक प्रकार की गांठ, खूंटा-गांठ।

घोड़ागाडी-सं०स्त्री०—वह गाड़ी जिसमें घोड़े जुते हों, इक्का, तांगा, बग्गी आदि।

घोड़ाचोळी-सं०स्त्री०—१ वैद्यक की एक प्रकार की प्रसिद्ध औषधि. सं०पु०—२ नाथ सम्प्रदाय का एक प्रसिद्ध नाथ।

घोड़ावळी—सं०पु०—राजस्थानी साहित्य का एक गीत विशेष जिसके प्रथम चरण में अठारह तथा अन्य चरणों में सोलह मात्रायें होती हैं। तुकांत में दो गुरु होते हैं। इसे त्रंबकड़ी भी कहते हैं।

घोड़ानस—सं०स्त्री०—मनुष्य शरीर के पैर में एडी के ऊपर की ओर जाने वाली मोटी नस।

घोड़ानीम—सं०पु०—बकाइन का वृक्ष।

घोड़ापछाड़—सं०पु०—मालखंभ की एक प्रकार की कसरत।

घोड़ाबच—देखो 'घोड़बच' (रू.भे.)

घोड़ामाख, घोड़ामाखी—सं०स्त्री०—एक प्रकार की मक्खी विशेष जो साधारण मक्खी से कुछ बड़ी होती है और प्रायः घोड़ों पर बैठती है व उन्हें काटती है।

घोड़ाय—सं०पु०—गरासिया जाति का एक रीड (फूंक वाद्य) का संगीत वाद्य जो बांस की पतली दो खपच्चियों से बना होता है। ये खपच्चियां बांस की होती हैं और छः इंच लम्बी होती हैं। इनमें पतली रीडें निकाली जाती हैं। दोनों खपच्चियों के बीच में एक धागा बंधा होता है। इस धागे को खेंचने व घटाने से विभिन्न सुर निकलते हैं।

घोड़ा हरड़ै—सं०स्त्री०—बड़ी हरें (अमरत)

घोड़ियौ—देखो 'घोड़ौ' (अल्पा०)

घोड़ी—सं०स्त्री०—१ मादा घोड़ी (देखो 'घोड़ौ' का स्त्री०)
२ ऊंचाई के स्थान तक पहुँचने के लिए काठ की लम्बी पटरी जो लकड़ी के पायों के सहारे खड़ी रहती है ३ चार पायों के साथ उनके बीच में लगी एक लम्बी लकड़ी के साथ लटकने वाली झोली जिसमें छोटे बच्चे भुलाये जाते हैं। इसके पायों के ऊपर की चौड़ी लकड़ी की आकृति प्रायः घोड़े के मुंह जैसी बनी होती है।
(रू०भे०-घोड़ियौ)
४ विवाह में वर पक्ष की ओर से गाया जाने वाला लोक गीत।
५ बच्चों के एक प्रकार के खेल में वह लड़का जिसकी पीठ पर दूसरे लड़के सवार होते हैं. ६ जुलाहों का कैंचीनुमा एक औजार या उपकरण जिस पर ताना फैला कर पाई करते हैं. ७ ऊंट के पारजामे पर दो व्यक्तियों के बैठने के स्थान के बीच में दोनों को अलग अलग करने तथा आगे व पीछे झुकने से रोकने के लिए बना हुआ लकड़ी या लोह का गोलाकार व उभरा हुआ भाग. ८ छाजन की धरन के बीचों-बीच ठोंकी हुई डेढ़-डेढ़ हाथ की दो खड़ी लकड़ियां जिन पर एक बेंडी लकड़ी वा गडारी बैठा कर उसके ऊपर धरन रखते हैं। उटेव. ९ लँगड़े व्यक्ति के चलने में सहारे के लिए उपयोग में लाया जाने वाला काष्ठ का उपकरण।
(अल्पा०-घोड़ली)
१० मैदे की सेवें निकालने का एक उपकरण।

घोड़ौ—सं०पु० [सं० घोटक, प्रा० घोडा] (स्त्री० घोड़ी) १ सवारी और गाड़ी आदि खींचने के काम आने वाला एक प्रकार का पशु जिसकी गरदन पर बाल होते हैं तथा पैरों में पंजे के स्थान पर गोलाकार सुम (टाप) होते हैं।

पर्याय०—अरबी, अरव, अलल्ल, अस, असप, उडंड, उतंगह, ऐराक, कंबोज, काछी, कुंडी, केकांण, केसरी, क्रमाणंक, खंग, गंधरब, चंचळ, चामरी, चींगो, जंगम, जड़ाग, ताजी, तारख, तुरंग, तोखार, धजराज, घाटी, निहंग, पमंग, प्रोथी, बंगळी, बड़ंगी, बरहास, बाज, बाजी, बेंदूर, भिडज, रूहीयाळ, रेवंत, वानायुज, वाहू, विहंग, वितंड, वीति, साकुर, सारंग, सिधव, हंस, हय, हरी।

मुहा०—ऐ घोड़ा नै ऐ मैदांन—ये घोड़े और ये मैदान, झगड़े के लिए ललकार २ घोड़ा-गिणती गखणी—हिसाब रखना, पूरी गिनती रखना ३ घोड़ा दौड़ै तौ हूंस सूं दौड़ै—घोड़े दबाव या मार की अपेक्षा मन की उमंग से अधिक तेज दौड़ते हैं। दबाव से किये जाने वाले कार्य की अपेक्षा मन की उमंग से व स्वेच्छा से किया गया कार्य अधिक अच्छा होता है. ४ घोड़ा नै घर किती'क दूर—घोड़े के लिए घर कितना दूर? जो स्वयं द्रुतगामी है उसके लिए दूरी का कोई महत्व नहीं। हिम्मती व्यक्ति को प्रत्येक कार्य सरल मालूम होता है. ५ घोड़ा बेच'र सोवणौ—गहरी नींद में सोना, बिल्कुल निश्चित होकर सोना. ६ घोड़ा रै आगै गाडी राखणी—उलटा काम करना; मूर्खतापूर्ण कार्य करना (मि० To put the cart before the horse). ७ घोड़ा वाळी चट्ट पकड़णी—घोड़े वाली जिद्द पकड़नी; घोड़े के समान अड़ जाना; कठोर हठ पकड़ना.
८ घोड़ै चढ़णौ—घोड़े की सवारी करना; किसी कार्य के लिए अत्यधिक उग्र होना. ९ घोड़ौ उडाणौ—घोड़े को तेज दौड़ाना. (मि० हवा से बातें करना) १० घोड़ौ कसणौ—सवारी के लिए घोड़े पर साज जमाना. ११ घोड़ौ घोड़ा री लात सूं नी मरै—घोड़ा घोड़े की लात से नहीं मरता। समान बल वाले व्यक्तियों के लड़ने से लड़ने वालों को अधिक हानि की संभावना नहीं होती. १२ घोड़ौ फेरणौ—घोड़े को सिखा कर सवारी के योग्य बनाना; घोड़े को चाल सिखाना. १३ घोड़ौ भेळणौ—युद्ध में घोड़े झोंकना.
१४ ढोली घोड़ौ होणौ—निकम्मा होना, बेकार होना।

कहा०—१ आगै गधा आवै तौ लारै घोड़ां री आस कं'ड़ी?—सम्मुख गधे ही आते हों तो पीछे घोड़ों की आशा ही क्या? प्रारम्भ में ही यदि कार्य ठीक न हो तो बाद में उत्तम फल की आशा ही कैसे की जा सकती है? २ घोड़ा नी लगांम घोड़ा वाळा रै हाथ में—घोड़े की लगाम घोड़े के मालिक के हाथ में है। किसी अधीनस्थ अथवा परतंत्र व्यक्ति के प्रति। कोई कार्य करने वाले की इच्छानुसार नहीं होता अपितु कराने वाले की इच्छानुसार होता है. ३ घोड़ा मत कर हरणाट, घर आपणा आया—हे घोड़े! अब मत हिनहिनाना, अपना घर आ गया है। क्योंकि मेहमानदारी कराने का समय बीत गया, अब तो घर की रूखी-सूखी रोटी खाना है। दूसरे घरों में की जाने वाली आवभगत प्रायः अपने घर में उपलब्ध नहीं होती.
४ घोड़ाये नी रोवूं हूं घोड़ा नी चाल नै रोवूं हूं—घोड़े को नहीं

रोता, मैं तो उसकी चाल को रोता हूँ। जिस प्रकार घोड़े की श्रेष्ठता उसकी चाल से सिद्ध होती है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य की श्रेष्ठता उसकी बुद्धि एवं आचरण पर निर्भर है ५ घोड़ा री लंबी पूंछ घोड़ा नैं ही आरांम देई—घोड़े की लम्बी पूंछ से घोड़े को ही आराम मिलेगा, उससे वह मक्खियां अधिक उड़ा सकेगा। खुद की वस्तु प्रायः खुद को ही आराम देती है. ६ घोड़ै ही वेगा चढ़ावै नैं गधै ही वेगा चढ़ावै जो घोड़े पर भी शीघ्र चढ़ाता है और गधे पर भी शीघ्र चढ़ाता है। ऐसे व्यक्ति के प्रति जो प्रशंसा करते-करते क्षण भर में निंदा भी करता हो। ऐसे व्यक्ति के प्रति जो क्षण भर में प्रसन्न हो जाता हो किंतु क्षण भर में ही क्रुद्ध हो जाता हो. ७ घोड़ो तौ दौड़ दौड़ नैं मरै नैं सवार रे मन ही नी भावै—भरसक प्रयत्न एवं परिश्रम करने पर भी स्वामी के अप्रसन्न रहने पर. ८ घोड़ो कठै बांधूं, कै थारी जीभ रै—एक ने पूछा—घोड़ा कहां बांधू ? दूसरे ने उत्तर दिया—तेरी जीभ के। उस व्यक्ति के प्रति जो छोटा-मोटा कार्य भी अपनी बुद्धि से न कर के व्यर्थ में दूसरों से पूछता फिरे ९ जंवाई रै घर में घोड़ो नैं सासू हरणाटा करै—घोड़ा तो दामाद के घर में किन्तु घोड़ा रखने का घमंड उसकी सासू को है। काम में सफलता तो किसी को मिलती है और गर्व कोई दूसरा ही करता है। दूसरों के बल एवं संपत्ति पर इतराने वाले के प्रति : स्वजनों की उन्नति में निकट संबंधियों को प्रसन्नता होती है।

(रू०भे०—घुड़ल्ल, घुड़ल्लो)

(अल्पा०—घोड़लियौ, घोड़लो, घोड़ियौ)

महत्व०—घोड़।

२ घोड़े के मुंह की आकृति का बंदूक दागने का खटका. ३ शतरंज का एक मोहरा जो ढाई घर चलता है. ४ चार पायों पर ठहरने वाला कसरत करने का लकड़ी का बना मोटा कुंदा जो लड़कों द्वारा फांदा जाता है. ५ चार पाये लगा कर बनाया हुआ एक चौड़े तख्ते का ऊँचा पाटिया जिस पर एक आदमी आसानी से बैठ कर काम कर सकता है. ६ दो पायों का लकड़ी का बना एक उपकरण जिस पर लकड़ी के किसी बड़े लट्ठे को लम्बी आरी से चीरते समय व्यक्ति बैठता है. ७ बड़ी डलिया के ऊपर बांधा हुआ लकड़ी का गुटका जिससे भूरट नामक घास की बालें झाड़ी जाती हैं।

घोंचियो, घोंचो—सं०पु०—१ तिनका, तृण।

मुहा०—१ घोंचो पड़णो—किसी तिनके आदि का चुभना, (आंख आदि में) किसी वस्तु का गिर जाना. २ घोंचो घालणो, घोंचो फसाणो—बाधा उपस्थित करना, किसी काम के होने में किसी प्रकार की रोक।

२ लकड़ी का छोटा बेडौल टुकड़ा। उ०—१ घोंचो लागां घाव, घी गेहूं भावै घणा। अहड़ा तो अमराव, रोट्यां मूंगा राजिया।
—किरपारांम

उ०—२ नीम घोंचिया घाल, घीवड़ी कांन बंधावै। फोगां लकड़ी ऊंट, नाक गिरबांण घलावै।—दसदेव

सं०स्त्री०—वह विधवा स्त्री जिसने अपने सजातीय पुरुष से पति का सम्बन्ध जोड़ लिया हो या पति रूप में स्वीकार कर लिया हो।

घोट—देखो 'घोड़' (रू.भे.)

(अल्पा०—घोटड़ो)

घोटक—सं०पु० [सं०] (स्त्री० घोटकी) घोड़ा।

घोट—सं०पु० [सं० घोण्टा] सुपारी का वृक्ष या सुपारी (अ मा.)

घोटणी—सं०स्त्री०—घोटने का छोटा उपकरण।

घोटणौ, घोटबौ—क्रि०स०—१ घोटना, पीसना, महीन चूर्ण में परिवर्तन करना. २ किसी वस्तु को चमकीली करने के लिए दूसरी वस्तु पर बार-बार रगड़ना. ३ परस्पर रगड़ना. ४ याद करने के लिए बार-बार उच्चारण करना, रटना, अभ्यास करना.

मुहा०—घोट-घोट पीणो—पक्का याद करने के लिए बार-बार रटना।

५ सिर के बाल साफ करना, मूंडना. ६ दम घोटना, सांस अवरुद्ध करना। उ०—हरसा वीरा मेरा रे, मारूंगा बादस्या नैं गळ घोट। जांमण का रे जाया, छूरां कटवावूं रे जांरी चांमड़ी।—लो.गी.

मुहा०—घोट घोट नैं मारणो—तकलीफ दे दे कर मारना।

घोटणहार, हारो (हारी), घोटणियौ—वि०।

घोटवाणो, घोटवाबो—प्रे०रू०।

घोटाणो, घोटाबो, घोटावणो, घोटावबो—क्रि०स० (प्रे०रू०)।

घोटिग्रोड़ो, घोटियोड़ो, घोट्योड़ो—भू०का०कृ०।

घोटीजणो, घोटीजबो—कर्म वा०।

घोटमघोट—वि०—१ नितांत घुटा हुआ, बिल्कुल घुटा हुआ. २ चिकना. ३ कड़ाई लिए उभरे हुए गोलाकार (स्तन) ४ हृष्ट-पुष्ट।

घोटमा—सं०पु० (बहु०)—लड्डू के आकार की एक प्रकार की मिठाई जो जैसलमेर में बनती है (क्षेत्रीय)।

घोटलियौ—देखो 'घोटो' का अल्पा०। उ०—म्हारे हरामत जोगो घोटलियो घड़ ल्याव, बीनांणी लाल, म्हारे पितरां जोगी बीरा बींट-ली जो।—लो.गी.

घोटाई—सं०स्त्री०—१ घोटने की क्रिया या भाव. २ घोटने के कार्य की मजदूरी।

घोटाणो, घोटाबो—क्रि०स० ('घोटणो' का प्रे०रू०) घोटने का कार्य दूसरे से कराना।

घोटाकरस—सं०पु०—एक प्रकार का शस्त्र।

घोटायोड़ो—भू०का०कृ०—घोटने का कार्य कराया हुआ।

(स्त्री० घोटायोड़ी)

घोटाळो—सं०पु०—गड़बड़, अव्यवस्था।

घोटावणो, घोटावबो—देखो 'घोटाणो' (रू.भे.)

घोटावियोड़ो—देखो 'घोटायोड़ो' (रू.भे.)

(स्त्री० घोटावियोड़ी)

घोटियोड़ो—भू०का०कृ०—घोटा हुआ। (स्त्री० घोटियोड़ी)

घोट-वि०—घोटने वाला।

घोटेबरदार-सं०पु०—चेला जाति के व्यक्तियों का एक नाम।

वि०वि०—इनको राजा की ओर से एक चांदी का डंडा मिला करता था, जिसे ये सदा अपने पास रखा करते थे। घोटा (डंडा) रखने के कारण इनका नाम घोटेबरदार कहलाया।

घोटौ-सं०पु०—१ जिससे घोटा जाय, घोटने का उपकरण. २ सिला पर किसी वस्तु को पीसने का बट्टा (पत्थर)

(अल्पा०-घोटलियौ, घोटलौ)

३ एक सुर देने वाला घन संगीत वाद्य।

वि०वि०—कुछ धातुओं के मिश्रण में कांसी की प्रधानता होती है। एक छोटा प्याला बनाया जाता है जिसमें एक किनारे पर लकड़ी से आघात कर के लकडी को चारों ओर घुमाते हैं। इस क्रिया से गैण का सुर निकलता है।

घोडू—देखो 'घोड़ौ' (रू.भे.) उ०—कटक मांहि सहू दखोऊं हूऊं। घोडूं मांणस विलखूं थयूं।—कां दे.प्र.

घोण-सं०स्त्री० [सं० घ्राण] १ नाक (डि.को.) [रा०] २ बकरी के स्तनों पर किया जाने वाला ऐसा लेप जिससे बकरी के बच्चे स्तन-पान न कर सकें।

घोणा, घोणी-सं०पु० [सं० घोणिन्] सूअर (अ.मा., ह नां.)

घोदौ-सं०पु०—१ किसी नुकीली वस्तु को चुभाने का कार्य, गोदने की क्रिया. २ धक्का. ३ बाधा, रोक, अड़चन।

घोनौ-सं०पु० (स्त्री० घोनी) १ बकरा. २ वृद्ध, बूढ़ा व्यक्ति. ३ नितांत बहुरा।

घोबौ-सं०पु०—१ घास या फसल के कट जाने पर भूमि में खड़े रह जाने वाले छोटे-छोटे नुकीले अंश. २ नुकीली वस्तु को चुभाने का कार्य. ३ शूल, पीड़ा, कसक (नेत्रों में अथवा शिर में) ४ वात-विकार के कारण नाड़ी में चलने वाला शूल।

घोयणौ, घोयबौ-क्रि०स०—नष्ट करना। उ०—सरणियै वसै रिड़मल सुहड़, खंडां डंडां खड़खड़ै। चहुवांण जिकण ऊपर चढ़ै, घण नरिंद घोये घड़ै।—मालो आसियो

घोयणहार, हारौ (हारी), घोयणियौ—वि०।

घोयोड़ौ—भू०का०कृ०।

घोयीजणौ, घोयीजबौ—कर्म वा०।

घोर-वि०—भयंकर, डरावना। उ०—१ महाबळ कांणण-रांण मलंग, दारू मभ्ड जांण क्रतांण दमंग। सत्रां उर घोर घमोड़त सेल, झलै पत्र चोसठि रत्र उभेळ।—मे.म. २ जबरदस्त। उ०—हे जोधार, म्हारी जोड़ी रा सत्रवां नै मारण सारूं घोर (जबर) जमराज जैड़ा रोड़ी।—वी.स. टी. ३ सघन, घना। उ०—लटा लूंब द्रुम बन लता, कुससटा चहुं कोर। उदीपण भूखण भटा, घटा मोर घण घोर।—क.कु.बो. ४ कठिन, दुर्गम, कठोर. ५ अत्यधिक, घना।

सं०स्त्री०—१ दफनाने का स्थान, कब्र। उ०—१ केवांण झाटके बाढ़, झाड़िया मूरियां कंधां। बिमाड़िया लाटके, बूरिया घोरां बीच।

—डूंगजी जवारजी री गीत

उ०—२ हरभम पीर बड़ी करामात री बणी हुवौ। पीर रांमदेवरै घोर ली तरै कह्यौ—घोर एक म्हांरी घोर रै पाखती सांखला हरभम रै वास्तै संवार राखौ।—नैणसी

२ समाधि-स्थान या कब्र पर अंकित शब्द. ३ शब्द, ध्वनि, गर्जना। उ०—१ लोरां सांवण लूंबियौ, घोरां घण घरराय। मांणीगर रंग मांण अब, प्याला भर मद पाय।—र.रा.

उ०—२ गोळै माळिए वाजंती, घड़ा गाजंती करंती घोरि। खिवंती ऊनागे खागे, रचावंती रीठ।—दूदौ बीठू

उ०—३ रणंके तिकां घोर रूड़ी रचाई, ठणंके किनां झल्लरी ठोर ठाई।—वं.भा.

४ निद्रावस्था में नाक से निकलने वाली घर्र-घर्र की ध्वनि.

५ नक्कारे की आवाज (अ.मा.)

घोरणौ, घोरबौ-क्रि०स०—१ पीटना, मारना.

२ देखो 'घुरणौ' (रू.भे.) ३ निद्रावस्था में नाक से घर्र-घर्र की आवाज निकलना।

घोरमघोर—देखो 'घोर' (महत्व०) उ०—ज्ञानी कळयुग घोरमघोर, सहलांनी ढोला कळजुग घोरमघोर, कटारी छैला सागै राखंजी।

—लो.गी.

घोररूपा-सं०स्त्री०—चौसठ योगिनियों के अंतर्गत दूसरी योगिनी।

घोराडंबर-सं०पु०—बादलों की सघन घटायें। उ०—धुरधर आसाढ़ां अंबर घरहरियौ, घोराडंबर में संबर घरहरियौ।—ऊ.का.

घोरारव-सं०स्त्री०—१ शोकसूचक भयंकर ध्वनि। उ०—छपने घोरारव आरव रव छायौ, सूरज ससि-मंडळ गरबित गणणायौ।—ऊ.का.

२ गर्जन, घोर ध्वनि. ३ उल्लू पक्षी की बोली।

घोराणौ, घोराबौ, घोरावणौ, घोरावबौ—देखो 'घुराणौ' (रू.भे.) उ०—आं कही—तूं जागतौ सोय घोरावजे, आ थारौ रात रा मूंडौ सूंघसी।—बां.दा.

घोळ-सं०पु०—१ किसी के सिर पर कोई वस्तु घुमा कर दान कर देने का कार्य. २ इस प्रकार से दान में दिया गया पदार्थ. ३ किसी घुलनशील पदार्थ या वस्तु को किसी द्रव पदार्थ में घुला कर बनाया गया पदार्थ. ४ न्यौछावर।

घोळणौ, घोळबौ-क्रि०स०—१ किसी घुलनशील पदार्थ को किसी तरल पदार्थ में मिलाना व हिलाना। उ०—रतन कचोळै महंदी घोळस्यां, राची छै रंग मजीठ, सौदागर महंदी रावणी।—लो.गी.

मुहा०—१ घोळ नै पावणौ—बिलकुल याद करा देना, रटा देना. २ घोळ नै पी जाणौ, घोळ नै पीवणौ—देखते-देखते खतम कर जाना, कुछ न समझना, शरबत बना कर पीना. ३ घोळ में पड़णौ—दुविधा में पड़ना, झंझट में रहना।

२ सर्पादि जहरीले जंतुओं का घुटना. ३ क्रोधित होना, कोप

करना. ४ कष्ट या दर्द की अवस्था में नेत्रों की पुतली को इधर-उधर डुलाना। उ०—रिब रिब धाया नी छाया सिर रोळैं। घूंटी आया जिम काया चख घोळें।—ऊ.का.

५ बच्चों का वजन करना।

घोळणहार, हारौ (हारी), घोळणियौ—वि०।

घोळाणौ, घोळाबौ, घोळावणौ घोळावबौ—क्रि०स० (प्रे०रू०)

घोळिग्रोड़ौ, घोळियोड़ौ, घोळयोड़ौ—भू०का०कृ०।

घोळीजणौ, घोळीजबौ—कर्म वा०।

घोळवौ-सं०पु०—१ एक प्रकार का पकाया हुआ मांस विशेष.

२ मांस पकाने का ढंग विशेष।

घोळाणौ, घोळाबौ-क्रि०स० ('घोळणौ' का प्रे०रू०) घोलने का कार्य दूसरों से कराना।

घोळायोड़ौ-भू०का०कृ०—घोलने का कार्य कराया हुआ।

(स्त्री० घोळायोड़ी)

घोळावणौ, घोळावबौ—देखो 'घोळाणौ' (रू.भे.)

घोळावणहार, हारौ (हारी), घोळावणियौ—वि०।

घोळाविग्रोड़ौ, घोळावियोड़ौ, घोळाव्योड़ौ—भू०का०कृ०।

घोळावीजणौ, घोळावीजबौ—कर्म वा०।

घोळावियोड़ौ—देखो 'घोलायोड़ौ' (रू.भे.) (स्त्री० घोळावियोड़ी)

घोळियोड़ौ-भू०का०कृ०—घोला हुआ। (स्त्री० घोळियोड़ी)

घोळियौ-सं०पु० [सं० घोलक] वह तरल पदार्थ जो किसी घुलनशील वस्तु के मिश्रण से तैयार किया गया हो।

घोळी—न्योछावर होने की क्रिया। उ०—आगे जा देखें तो कासूं फूलमती बैठी छै। हींडोळाट मांहे हींडे छै। तद नायण जाय बलायां लीनां अर कही—घोळी जावां, म्हारी भांणेजी हूं ऊपर।

—चौबोली

घोळुवौ—देखो 'घोळियौ' (रू.भे.)

घोळौ-सं०पु०—१ मांस को हिलाने की लकड़ी.

२ देखो 'घोळ' (रू.भे.)

घोळ्या-सं०स्त्री०—१ कुशल, खैर, क्षेम।

अव्यय—१ एक अव्यय जिसका अर्थ है—कुछ चिन्ता नहीं, कुछ परवाह नहीं।

ज्यूं—घोळ्या थूं भलांई जा।

२ अस्तु।

घोस-सं०पु० [सं० घोष] १ शब्द, आवाज. २ गर्जन, गरजने का शब्द. ३ ताल के साठ भेदों में से एक (संगीत) ४ शब्दों के उच्चारण में ग्यारह बाह्य प्रयत्नों में से एक।

घोसणा-सं०स्त्री० [सं० घोषणा] १ सूचना, इत्तला. २ सर्वसाधारण अथवा किसी निश्चित समुदाय को दिया गया आदेश. ३ गर्जना, आवाज।

घोसवती-सं०स्त्री० [सं० घोषवती] वीणा।

घोसी-सं०पु० [सं० घोष] १ मुसलमान जाति में दूध दुहने और बेचने का व्यवसाय करने वाली एक जाति विशेष अथवा इस जाति का व्यक्ति. २ वह व्यक्ति जो कुये से गांव वालों के लिये पानी निकालता हो. ३ कुये पर चरस या मोट को पकड़ कर नाली में खाली करने वाला व्यक्ति।

घ्रणा-सं०स्त्री० [सं० घृणा] १ कृपा (अ.मा.) २ नफरत, ग्लानि। (अ.मा.)

घ्रत—देखो 'घी'। उ०—जोगी जगत संन्यासी जेता, मन घ्रत अमित लहै पुर एता।—रा.रू.

घ्रतआहुतण-सं०स्त्री०—जिसमें घी की आहुति दी जाय, अग्नि (ह.नां.)

घ्रताची घ्रतायची-सं०स्त्री० [सं० घृताची] १ घृताची नाम की स्वर्ग की अप्सरा विशेष. २ अप्सरा (अ.मा.)

घ्रति—देखो 'घी' (रू.भे.) उ०—रत घ्रति चंदण कपूर सभे समसांण सझाई। विविध अमित सुचि वसत चेह गिन निमति चलाई।

—रा.रू.

घ्रस्टी-सं०पु० [सं० घृष्टि] सूअर।

घ्रांण, घ्रांणा-सं०पु० [सं० घ्राण] १ नाक (ह.नां.) उ०—तन त्रसित घ्रांण अगमद त्रसींग। हठ अरिन अमल व्है जात हींग।

—ऊ.का.

२ सुगंध. ३ सूंघने की शक्ति।

घ्राई-वि०—भयंकर प्रहार करने वाला।

घ्रिणा—देखो 'घ्रणा' (रू.भे.) (ह.नां.)

घ्रित देखो 'घी'। उ०—अरणी अगनि अगर में इंधण, आहुति घ्रित घणसार अच्छेह।—वेलि.

वि०—तृप्त, संतुष्ट। उ०—माळवणी ढोलौ कहै, सुज मन दाखां साच। मारू मिळियां घ्रित हुई, उर सगळा जग साच।—ढो.मा.

घ्रिति-सं०पु० [सं० घृती] १ यज्ञ (ह.नां.)

सं०स्त्री०—२ अग्नि (ह.मा.)

घ्रसि-सं०पु० [सं० घृष] भोजन (ह.नां.)

घ्रिस्टी-सं०पु० [सं० घृष्टि] सूअर, सूकर (ह.नां.)

घ्रोण, घ्रोणा-सं०स्त्री० [सं० घ्राण] १ देखो 'घ्राण' (रू.भे.) (ह.नां., अ.मा.)

सं०पु०—२ मस्तक, सिर।

घ्रोणी, घ्रोनी-सं०पु० [सं० घोणिन्] सूअर (ह.नां.)